आचार्यप्रवर श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तिरचित

गोम्मटसार

(जीवकाण्ड)

श्रीमत्केशवण्णविरचित कर्नाटकवृत्ति तदनुसारी संस्कृतटीका जीवतत्त्वप्रदीपिका तथा हिन्दी भाषाटीका सहित

यः सर्वकालविषयार्थयथार्थवेदी, देवेन्द्रवृन्दमनुजेन्द्रमुनीन्द्रवन्द्यः ।
निर्दग्धसंसृतिनिबन्धनकर्मकक्षस्तं वर्धमानजिननाथमहं नमामि ॥१॥
अतिविशदबोधनिधि-निर्जितघातिचतुष्टयं प्रजाजीवितनु-
मतवृषभनाथवदनो-दितमाबुबु धर्मतीर्थमाद्यं धरेयोळ् ॥२॥
अजितजिनं जितवृजिनं सुजनविनेयोपकारिदिव्यनिनादं ।
भजनीयनेंदु रुचियिं भजियिसे भवदहनमवगंळं बहिसुगुमे ॥३॥
शंभवनिं मुक्तिश्रीसंभविसुगुमेंब रुचि मनोंबुजदोळि रळ् ।
स्तंभिसुगुं भवतापमनंभोदवदोल्तदागमामृतवर्षं ॥४॥
अभिनंदनं गुणावळियभिनंदविनावनधरिनातन
वचनक्कभिमुखमादोडे साग्गुं त्रिभुवनपरमेश्वरत्वमा क्षणदिदं ॥५॥

जो त्रिकालवर्ती पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जानते हैं, देवोंके इन्द्रोंके समूह, चक्रवर्ती तथा गणधरोंके द्वारा वन्दनीय हैं और जिन्होंने संसारके कारण कर्मसमूहको नष्ट कर दिया है, उन वर्धमान जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अत्यन्त स्पष्ट निर्मल ज्ञान जिनकी निधि है, जिन्होंने चार घातिकर्मोंको जीता है, प्रजाजनोंको जीवनका मार्ग दिखलानेसे जो प्रजाजीवित कहे जाते हैं, ऐसे श्रेष्ठ भगवान् वृषभनाथके मुखसे इस धरातलपर प्रथम धर्मतीर्थका उद्गम हुआ था ॥२॥

जिनने पापकर्मको जीत लिया है, जिनकी दिव्यध्वनि शिष्यजनोंके लिए उपकारी है, ऐसे अजितनाथ जिनेन्द्रको जो आराधना करने योग्य मानकर श्रद्धापूर्वक उनकी आराधना करते हैं, उनको क्या संसाररूपी आग जला सकती है ? ॥३॥

सम्भवनाथ जिनसे मुक्तिश्री प्राप्त होती है, इस प्रकारकी श्रद्धा मनरूपी कमलमें निवास करनेपर उन भगवान्की आगमरूप अमृतवर्षा मेघके समान संसार-सन्तापको शान्त कर देती है ॥४॥

जिनके जन्म लेते ही सब प्राणियोंके ज्ञानादिगुण और सर्वसम्पत्ति वृद्धिको प्राप्त

सुमतिजिनं सुमतिकरं कुमतविनाशक शशांकविनुत भुजौघं ।
नमगे गुरुवेंबु सततं सुमनस्कतेयिंदे केळगे तत्सूक्तिगळं ॥६॥
पद्मप्रभजिनपतियं पद्मबलप्रतिमलेश्यनं निजसुमनः ।
पद्मदोळु निलिसि तत्पद्मपद्मेगे वरनागे मुक्तिवनितिगे वश्यं ॥७॥
व्यपगतदोषसमूहं सुपार्श्वजिननाथनक्षयश्रीरमणं ।
विपदपनोदनकारणमुपदिष्टागममे संततं श्रवणीयं ॥८॥
चंद्रप्रभं जिनाधिपनिंद्रशतार्चितपदांबुजं रविशशिसत्-।
सांद्रतनुकांति पेळ्दुदतींद्रियसुखदायिमागमं श्रवणीयं ॥९॥
सुविधिवदनाब्जविदं प्रवादिमतदीपिकाप्रभंजनरूपं ।
प्रवचनमोगेदुबधृष्यं भवविषमहुताशनोपशमनासारं ॥१०॥
शीतलनाथन वचनं शीतलमेंतंते हारनीहारंगळ् ।
शीतळमे संसृतिश्रममाततमुळ्ळंगे लोकदोळ्पेरबिनुं ॥११॥

होनेसे जो अभिनन्दन कहलाये। उन अभिनन्दन भगवान्के वचनोंके सम्मुख होसे ही त्रिभुवनको परमेश्वर पद प्राप्त होता है ॥५॥

सुमतिको देनेवाले भगवान् सुमतिनाथ कुमतरूपी अन्धकारका नाश करनेवाले चन्द्रमा है। जिनको अनेकों भुजाओंने नमन किया है वे हमारे परम गुरु हैं। उनकी सूक्तियोंको सबलोग निर्मल चित्त होकर सुनें ॥६॥

कमलके पत्रके समान लेश्यावाले पद्मप्रभ जिनेन्द्र भगवान्को अपने मनरूपी कमलमें स्थापित करके जो उनके वचनरूपी लक्ष्मीका पति होता है, वह मुक्तिरूपी नारीके वशमें होता है ॥७॥

जिनसे सब दोष दूर हो गये हैं, जो अक्षय मोक्षलक्ष्मीके पति हैं, तथा भव्य जीवोंके संकटोंको दूर करनेमें कारण हैं, ऐसे सुपार्श्वनाथ भगवान्के द्वारा उपदिष्ट आगम ही निरन्तर श्रवण करनेके योग्य है ॥८॥

जिनके चरणकमल सौ इन्द्रोंके द्वारा पूजे गये हैं, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रशस्त तथा घनी जिनकी शरीरकान्ति है, ऐसे चन्द्रप्रभ भगवान्के द्वारा प्रतिपादित तथा अतीन्द्रिय सुखको देनेवाला आगम सुनने योग्य है ॥९॥

सुविधिनाथके मुखकमलसे निकला हुआ प्रवचन अखण्डनीय है, वह प्रवादियोंके मतरूपी दीपिकाओंके लिए प्रभंजनरूप—वेगशील वायु है। जैसे जोरकी वायुसे दीपक बुझ जाते हैं, वैसे ही उनके प्रवचनसे प्रवादियोंके मत खण्डित हो जाते हैं। तथा वह प्रवचन संसाररूपी विषम अग्निको शान्त करनेके लिए मूसलधार वर्षा है ॥१०॥

शीतलनाथ भगवान्के वचन संसारके सन्तापको दूर करनेसे हार और हिम (बर्फ) से भी शीतल हैं। इसलिए विस्तृत संसारके श्रममें पड़े हुए जीवोंको इस लोकमें भगवान्

---

१. क वितनुतभूं। २. म भुजाळ्यं। ३. क °नागि। ४. म °वनिति। ५. क °मोगिदुबदृष्टयं। ६. क °शमनाऽऽसारं।

मार्गदर्शक :-आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

श्रेयांसं जिननायं, श्रेयोधिजनप्रपुण्यसामर्थ्यविना ।
श्रेयोमार्गमनखिलविनेयावलिगरिपि भव्यबांधवनादं ॥१२॥
श्रीवासुपूज्यनं सुतदेवासुरमनुजसत्सभावेष्टितनं ।
भूविपोक्तं तत्प्रणीतं आर्यसितव्यं भविष्णुमुनिजनदिंदं ॥१३॥
विमलजिनं कमलांबकनेमालांबरभानुकोटिभामंडलना ।
समवसरणस्थितं पेळ्द मानुषागमसुधारसं नीरसमे ॥१४॥
अनघननंतजिनेंद्रानननवमजविनोदवे विश्वभाषामयदिव्य ।
निनादं केवलं लोचनावलंबं विनेयजनतालंबं ॥१५॥
अनवद्यधर्मतीर्थमननुप्रवर्तिसिदनखिललोकंगळोळं- ।
अनिमिषपतिपति धर्मं विनेयजननिवहवभिमतार्थप्रदमं ॥१६॥
शांतिंजिनं दुरितव्रजशांतियुतं विगतधातुमलनैतिह्यं ।
भ्रांतिसदे तिळिदु नंबुव शांतात्मंगतुलसौख्यमं दयेगेय्दुं ॥१७॥

शीतलनाथके वचनोंको छोड़कर दूसरा कौन शीतल है ? अर्थात् उनके वचन ही जीवोंको शीतलता प्रदान करते हैं ॥११॥

कल्याणके इच्छुक जनोंके प्रबल पुण्यके प्रतापसे सब भव्य जीवोंको मोक्ष-मार्गका उपदेश करके भगवान् श्रेयांसनाथ जिनेन्द्र भव्यजीवोंके बन्धु बन गये हैं ॥१२॥

श्री वासुपूज्य जिन नम्रीभूत देव, असुर और मनुष्योंकी श्रेष्ठ सभासे वेष्टित हैं अर्थात् समवसरणमें विराजमान हैं। उनके द्वारा प्रणीत उपदेश भव्य मुनिजनोंके द्वारा भावना करनेके योग्य है ॥१३॥

जिनके नेत्र कमलके समान हैं, निर्मल आकाशमें करोड़ों सूर्योंके समान जिनका प्रभामण्डल फैला हुआ है, ऐसे विमलनाथ जिन समवसरणमें विराजमान हैं। मनुष्योंके लिए प्रतिपादित उनका आगमरूप सुधारस क्या कभी नीरस हो सकता है ? ॥१४॥

निर्दोष श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्रके मुखकमलसे विश्वभाषामय दिव्यध्वनि निकलती है, केवलज्ञान और केवलदर्शन उसका अवलम्बन है। वे भगवान् भव्य जीवोंके आलम्बन हैं अर्थात् भव्यजीव उनके आश्रयसे अपना कल्याण करते हैं ॥१५॥

इन्द्रोंके स्वामी धर्मनाथ तीर्थंकरने सब लोकके भव्य जीवोंको अभिमत अर्थको देनेवाले निर्दोष धर्मतीर्थका प्रवर्तन किया ॥१६॥

पापसमूहकी शान्तिसे युक्त तथा धातु और मलसे रहित शान्तिनाथके इतिवृत्तको निर्भ्रान्त रूपसे जानकर श्रद्धान करनेवाले शान्तात्माको शान्तिनाथ भगवान् अतुल सुख प्रदान करते हैं ॥१७॥

---

१. क °वगरिं । २. म नमळां° । ३. क °लरोळं° । ४. क °जिननु । म °जिनन° । ५. क °युतनु । म °युतन । ६. म दयेने° ।

परमदयोपेतत्वेपि परिरक्षितकुंथु कुंथुजिननाथमुखा-
ब्जरुहविनुवितेतिह्यं परिग्रहाग्रहरोळारोळं रुचिसुगुमे ॥१८॥
अनुपममनंतमरगुणमनितुं स्तुतिविषयमल्तु दृग्बोधनिजा-
ननजनितसकलभाषासनाथदिव्यध्वनिस्तुतिगळिवे सालुं ॥१९॥
मल्लिजिनन मुक्तिश्रीवल्लभन दयामयं वचःसुधेयकु ता-
निल्लदोडे जगज्जीवनमेल्लियदप्पुर्दुमार्गमेल्लियबु विटं ॥२०॥
परिणतशिखिकंठच्छविपरिमंडितदेहदीप्तिधर सुव्रतनें-
बुद नीलगिरियोळोगेदुंबु सरिन्नेनळ्सार्वमतुलदिव्यनिनादं ॥२१॥
नमिनाथन घातितमं सुमनःप्रणिधानभानुविं केडे बोध-।
द्युमणियुदयिसिदोडुदयिसे समस्तभाषात्मकं रवं तन्मुखदिं ॥२२॥
गणिसदे नेमि धरित्रियनेणिसदे राजीमतिविवाहमनघदोळ्।
सेणसिं गेलिदागि केवलि तणिपिदनागमसुधांबुविं सस्सभेयं ॥२३॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

परम दयाभावसे युक्त होनेसे जिन्होंने कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा की है, ऐसे कुन्थुनाथ तीर्थंकरके मुख-कमलसे निकला हुआ वचन सुनकर ऐतिह्य परिग्रहका आग्रह रखनेवालोंमें परिग्रह किनको रुचेगा? अर्थात् परिग्रहका वर्णन सुनकर परिग्रह में उनकी आसक्ति नहीं होती ॥१८॥

अरनाथ भगवान्के गुण अनुपम और अनन्त हैं, इसलिए उनके गुणोंकी स्तुति करना शक्य नहीं है। अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञान तथा उनके मुखसे निर्गत सर्वभाषामय दिव्यध्वनिकी स्तुति ही पर्याप्त है ॥१९॥

मोक्षलक्ष्मीके पति मल्लिनाथ जिनके वचनामृत दयामय हैं। उसके अभावमें निश्चय ही जगत्के प्राणियोंका जीवन कैसे चल सकता है और कैसे मोक्षमार्ग चल सकता है? अर्थात् भगवान् मल्लिनाथके दयामय वचनोंसे ही जगत्का जीवन और मोक्षमार्ग प्रवर्तता है ॥२०॥

तरुण अवस्थाको प्राप्त मयूरके कण्ठकी छविके समान प्रभामण्डलसे अलंकृत शरीर-कान्तिको धारण करनेवाले मुनिसुव्रत भगवान् हैं। उनसे, नील पर्वतसे निकले हुए नदीके प्रवाहके समान सब जीवोंको कल्याणकारी अनुपम दिव्यध्वनि निकली है ॥२१॥

नमिनाथके प्रशस्त अन्तःकरणके एकाग्ररूप सूर्यसे घातिकर्मरूपी अन्धकारके नष्ट होनेपर ज्ञानरूपी सूर्यका उदय हुआ। उसका उदय होनेपर उनके मुखसे सर्वभाषामय दिव्य ध्वनिका उदय हुआ ॥२२॥

संसारकी चिन्ता न करके और राजीमतीके साथ होनेवाले विवाहको ठुकराकर तथा कर्मोंसे लड़कर नेमिनाथ भगवान् केवलज्ञानी बने और आगमरूपी अमृत जलसे प्रशस्त समवसरण सभाको सन्तृप्त किया ॥२३॥

---

१. क कुंथ कुं°। २. म °पमानं°। ३. क °र्ग मेल्लि°। ४. क लोगिदु°। ५. म पूततमं। ६. म किडे। ७. क दोदुद°. ८. क सेणसे°। ९. °वि ग स°।

कमठकठिणोपसर्गं क्षमयिवं [1]पिंगे पार्श्वनाथं पडेदं ।
क्रमकरणरहितबोधमनमृतोपमं प्रवचनमं वयेगेय्दं ॥२४॥
वीरन दुरितजयोत्थित भेरीनिनदंबोलमृतदिव्यरवं दु-
र्वारकलिवह्ननशमनं बोरेदोगे[3]वुत्तु तन्मुखांभोरुहदिं ॥२५॥
इंताप्तनुमागंमुं संतानक्रमवनाविमध्यांतंगळ् ।
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
चिंतिसल् पडुवंतिवु निश्चिततंगिं चिंतितार्थवितरन्मणिगळ् ॥
लौकिक सभ्यन वचनं लोकोत्तरमे[4]दु नंबुवर्जनॅरमघर् ।
लोकालोकज्ञरवर्लोकैशरण्यमवर्गळ वचनं ॥
श्रीवृषभसेनगणधर देवर्मोदलागि चतुरशीतिप्रमितर् ।
श्रीवृषभाननपद्मज पावनवचनांगपूर्वकृद्गणभृद्गळ् ॥१॥८४
नानागुणनिधिकेसरिसेनं मोदलागि पत्तुगुंदिव नूर्वर्ग्गनिगळु
गणधरर्कळु जेनोवाग्धेनुमंतरजितेश्वरनोळ् ॥२॥९०
श्रीचारुषेणनामाद्याचारांगादि शास्त्रकर्तृगळु अगॅल्लो-
चित शंभवनाथंगाचारोदारगणधरर्शूरव्वर् ॥३॥१०५

कमठके कठिन उपसर्गको क्षमागुणसे जीतकर श्री पार्श्वनाथ भगवान्ने क्रम तथा इन्द्रियोंके सहयोगसे रहित अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करके भव्यजीवोंको अमृतोपम उपदेश दिया ॥२४॥

वीरजिनेन्द्रके मुख-कमलसे कर्मकी विजयसे उत्पन्न तथा दुर्वार पापरूपी आगको शान्त करनेवाली, भेरीकी ध्वनिके समान गम्भीर अमृतोपम दिव्यध्वनिकी गर्जना हुई ॥२५॥

इस प्रकार आप्त और उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्गको; जिसका आदि, मध्य, अन्त नहीं है, परम्पराके क्रमसे चिन्तन करना चाहिए। ये सचमुच चिन्तित अर्थको देनेवाले चिन्तामणि रत्न हैं ॥

सामान्यजन जो व्यवहारमें सभ्य होता है, उसके वचनोंको लोकोत्तर समझकर विश्वास करते हैं। परन्तु वे तीर्थंकर तो निर्दोष और लोकालोकको जानते हैं। इसलिए उनके वचन लोगोंके लिए शरणभूत होते हैं ॥

भगवान् ऋषभदेवके मुख-कमलसे प्रकट हुए पावन वचनोंको बारह अंग और चौदह पूर्वोंके रूपमें ग्रथित करनेवाले श्री वृषभसेन गणधर देव आदि चौरासी गणधर थे। अर्थात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवके चौरासी गणधर थे, जिनमें प्रमुख श्री वृषभसेन थे ॥१॥

जिनेश्वरके वचनरूपी धेनुको धारण करनेवाले, नाना गुणोंके निधि, ज्ञानी केसरिसेन आदि दसक्रम सौ अर्थात् नब्बे गणधर अजितनाथ तीर्थंकरके थे ॥२॥

जगत्के नेत्र समान तीर्थंकर सम्भवनाथके आचारांग आदि शास्त्रोंको रचनेवाले चारुषेण आदि एक सौ पाँच गणधर थे जो आचारमें निपुण थे ॥३॥

---

१. क पिंगि । २. क °मृतदिदिं । ३. क °दोगिदं । ४. क °जन° । म °जिन° । ५. म °क शरण्य शरण्यम° । २. म °चारुदत्त° । ७. क °ल्लोचितशंभवनादगा° ।

श्रीवज्रचमरगणधरदेवर्म्मोदलागि नूरमूवर्गणभृ-
द्देवरभिनंदनंगेनलावं बण्णिपनु महिमेयं केवलिया ॥४॥१०३
श्रीवज्रनामगणधरदेवं मोदलागि नूरपविनारप्पर् ।
केवलि सुमतिगे गणधररागमंगादिविविधशास्त्रकृतिज्ञर् ॥५॥११६
श्रीचमरं मोदलादब्भूंचक्रविनुतगणधरंपद्मप्रभवाक्कोम-
गोचरंगुण्णाचारर्म्नूर्ध्वरधिकरेकावशरिं ॥६॥१११
अपवर्गमार्गनिरतंसुपार्श्वजिननाथनल्लि तों[1]बत्तय्वर्लवि-
तर्बलदेवादिगळुपमातीतप्रभावगणधरदेवर् ॥७॥९५
दत्तमदिलागिदं सुवृत्तगणधररु चंद्रनोयगे जगद्-
वृत्तविषयावबोधंगुत्तमरेळ्गुंदिव नूवरप्पत्तर्यातर् ॥८॥९३
सुविधिगे वैदर्भमोदिल वरागिरे गणधरकळें भत्तेय्वर् ।
सुविधिमुखविधुविनिर्गतभुवनस्तुतदिव्यवाक्सुधारसपात्रर् ॥९॥८८
शीतलजिनंगे नागं ख्यातं मोदलागि गणधरर्ब्बंतुरमल-
ज्योतिर्मयरें[2]बत्तेळ्भूतलपतिपूजितांघ्रियुगसरसिरुहर् ॥१०॥८७
श्रेयोजिनंगे कुंथु ज्यौयं मोदलागि गणधरर्हेयोप्पं- ।
देयमनंरिपुवरखिलविनेयगें[3]प्पत्तुमधिकमेळरिनप्पर् ॥११॥७७

श्री वज्रचमर गणधरदेव आदि एक सौ तीन गणधर अभिनन्दन स्वामीके थे। उन भगवान् केवलीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है?॥४॥

केवलज्ञानी सुमतिनाथ भगवान्के श्री वज्र नामक गणधर देव आदि एक सौ सोलह गणधर थे। वे अंग आदि विविध शास्त्रोंकी कृतिके ज्ञाता थे ॥५॥

वचनोंके अगोचर भगवान् पद्मप्रभके श्री चमर आदि एक सौ ग्यारह गणधर थे, जिनकी स्तुति समस्त पृथ्वीमण्डल करता है और जो श्रेष्ठ आचारके धारक थे ॥६॥

भगवान् सुपार्श्वनाथके बलदेव आदि पंचानवें गणधर थे जो मोक्षमार्गमें तत्पर तथा अनुपम प्रभावशाली थे ॥७॥

जगत्के वृत्त विषयको जाननेवाले भगवान् चन्द्रनाथके, श्रेष्ठ चारित्रके धारक दत्त आदि उत्तम गणधर सौमें सात कम अर्थात् तिरानवे प्रसिद्ध थे ॥८॥

भगवान् सुविधिनाथके वैदर्भ आदि अठासी गणधर थे जो भगवान् सुविधिनाथके मुखचन्द्रसे झरते हुए तथा त्रिलोकके द्वारा स्तुत दिव्यवाणी रूप अमृत रसके पात्र थे ॥९॥

शीतलनाथ जिनेन्द्रके चार निर्मल ज्ञानज्योतिके धारी प्रसिद्ध नाग आदि सत्तासी गणधर थे। उनके चरण भूमण्डलके स्वामियोंके द्वारा पूजे जाते थे ॥१०॥

भगवान् श्रेयांसनाथके कुन्थुज्याय आदि सात अधिक सत्तर अर्थात ७७ गणधर थे।

---

१. म °विनूत° । २. म वाचाम° । ३. क °रतसु° । म °रतस्सु° । ४. °नाथगे । ५. म °कृति° । ६. म °पात्र° । ७. क °जायं । ८. हेयापादेय । ९. म °मरि° ।

श्रीवसुपूज्यतनूजनोळागमरक्षवत्तु[1] माररुसंख्येयिमप्पर् ।
भूविनुत धर्मादिगळेवेळ्वं द्वादशांगकृतियोळ् कुशलर् ॥१२॥६६
विमलजिनपतिगे गणधररमळिमगुणनिलयमंदरं मोदलाबर् ।
तमगेवत्तव्वर्गासंमर्थ[2]श्रुतस्कंधविरचना कुशलिकेयोळ् ॥१३॥५५
श्रीमदनंतस्वामिगे तामंतरुवत्तु सासिरप्रश्नेगळं ।
नेमदोळु माडिवर्जयनाममोदलागणधरशांतवर्ध्यं ॥१४॥५०
ओर्मेयिलोळे पर्यनुयोगोमिगे दत्तोत्तरंगे गणधरदेवर् ।
धर्मंगरिष्टसेनाद्यर्मुनिपुंगवरु नाल्वत्तेंटु मूवरुगळ् ॥१५॥४३
शांतिगे चक्रायुधमुनिं[3]पातकषायाद्य गणधरर् षट्त्रिंशर् ।
दांतर् पेररारडेयोळ् शांतपरमप्रवचनकरणसमर्थर् ॥१६॥३६
श्रीकुंथुगे मूवत्तेव्वाकालदोळा स्वयंभुगळ्मोदलाबर् ।
लोकोत्तमगणधररुगळेकैकरुमंगपूर्वकृतियोळु कुशलर् ॥१७॥३५
अरजिनवरंगे कुंभाद्यरुमागित्रिंशद्गणीशरनितुं भुवनो-।
वरमं[4] धवळिसि कीर्त्यमृतरसदिनखिळांगपूर्वकारकरेसेवर् ॥१८॥३०
मल्लिजिनंगे विशाखाद्युल्लसितगुणाब्जषंडगणधरदेवर् ।
जल्लमल ऋद्धिमोदला गेल्लवरि नेरेवे[5] मुनिगळिप्पत्तेंटर् ॥१९॥२८

जो शिष्यजनोंको हेय-उपादेयका बोध कराते थे ॥११॥

श्री वासुपूज्य तीर्थंकरके ज्ञानी साठ और छह अर्थात् छियासठ ६६ संख्यावाले पृथ्वी-पर स्तुत्य धर्मादिक गणधर थे जो द्वादशांगमें कुशल थे ॥१२॥

विमल जिन भगवान्के निर्मल गुणोंके आवास मन्दर आदि पचपन गणधर थे। श्रुतस्कन्धके रचना-कौशलमें उनकी बराबरी करनेवाला दूसरा कौन है ? ॥१३॥

अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मीसे सम्पन्न अनन्तनाथ भगवान्से साठ हजार प्रश्न नियमसे करनेवाले जयनाम आदि पचास गणधर थे ॥१४॥

प्रश्नरूपी उर्मीका प्रथम ही उत्तर देनेवाले अरिष्टसेन मुनिवर आदि तैंतालीस गणधर धर्मनाथ भगवान्के थे ॥१५॥

शान्तिनाथके कषायको नष्ट करनेवाले छत्तीस गणधर थे। वे इन्द्रियोंका दमन करनेवाले शान्त थे। उनके समान दूसरा कौन उत्तम प्रवचन करनेमें कुशल है ? ॥१६॥

श्री कुन्थुनाथके उस समय स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर थे। जो लोकमें उत्तम थे और जिनमें-से प्रत्येक गणधर अंग और पूर्वकी रचनामें कुशल था ॥१७॥

और जिनवरके सम्पूर्ण अंगों और पूर्वोंकी रचना करनेवाले कुम्भ आदि तीस गणधर थे। उन्होंने अपनी कीर्तिरूपी अमृतरससे भुवनके मध्य भागको धवल कर दिया था ॥१८॥

जिनमें गुणरूपी कमल-वन विकसित हुआ है और जो जल्ल,मल आदि सब ऋद्धियोंसे

---

१. म °वत्तमा° । २. क °गलिवेलि° । ३. म °र्संमर्थ्रुत° । ४. °प्रश्नम° । ५. म बोमर्गे° । ६. क °ल्वरुं । ७. म चित्रायु° । ८. क °निवास्त° । ९. म गणेश° । १०. क °दव° । ११. क नोद° ।

मुनिसुव्रतंगे गणधरमुनिमुख्यर्मल्लिमुंबिगेंपंदिनेटर् ।
मुनिसुव्रतवदनोदितमनुपमवचनामृताब्धिवर्धनचंद्रर् ॥२०॥१८
नमिजिनन दिव्यवाक्सोमनाभिसोमांशतनन्मेंपंदिनेळ् ।
समुदितमतिविस्तरमागमानुयोगममनंगपूर्व्व गेय्दर् ॥२१॥१७
नेमिजिनपतिगे वरदत्तामरपतिपूज्यनाद्यियागिरे पंनो- ।
दी महियोळ्गणनाथर्तामनितुं नेमिजिनवरः श्रीकांतर् ॥२२॥११
व्ययोत्पत्तिनिमित्तपरिग्रहरहितस्वयंभुगळ्मोदलागि पु- ।
विप्रेहरुं दशमितरु समग्रतपःश्रुतरु गणधरर् पार्श्वंगोळं ॥२३॥१०
श्रीवर्धमानजिनपतिकेवलिगळिंद्रभूतिगळ्मोदलादय्वर्गा ।
तप्पंन्नो[1]दप्प ज्योतिस्संघरी[2] युगादियोळ्तीर्थप्रवर्तरु ॥२४॥९
इंताप्तागमधारिगळ्[3]तं शास्त्रादियल्लि[4] पेळ्देपेळ्कुं ।
अंतर्गतमलगलनात्यंतिकसुखकारि नाममंगलमवरिं ॥२५॥
मूलोत्तरकर्तृगळो कालदोळवसर्पणदोळ्[5]सर्यदोळित्तळ् ।
कालानुवर्त्तिगळ्गुणशालिगळाचार्यरिल्लिवरमुं तंवर् ॥२६॥

परम पूज्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शोभित हैं, ऐसे विशाख आदि अट्ठाईस गणधर मल्लिनाथ भगवान्के थे ॥१९॥

मुनिसुव्रतनाथके अठारह गणधर थे, जिनमें प्रमुख गणधर मल्लि थे। वे मुनिसुव्रतनाथके मुखसे उत्पन्न हुए अनुपम वचनरूप अमृतसमुद्रको बढानेमें चन्द्रमाके समान थे ॥२०॥

दिव्य वाणीको चन्द्रके समान नमिजिनेन्द्रके श्रीसोम आदि सतरह गणधर थे। उन्होंने आगमको अंग और पूर्वके रूपमें प्रतिपादन करके ज्ञानका विस्तार किया ॥२१॥

इस पृथ्वीतल पर नेमिनाथ भगवान्की वचनरूपी लक्ष्मीके पतिस्वरूप वरदत्त आदि ग्यारह गणधर भगवान् नेमिनाथके थे, जो देवोंसे पूजित थे ॥२२॥

पार्श्वनाथ भगवान्के दस गणधर थे। उनमें प्रथम स्वयम्भू थे। वे चंचलता उत्पन्न करनेमें निमित्त परिग्रहसे रहित थे। उत्तम शरीरके धारी थे। तथा समग्र तप और श्रुतसे शोभित थे ॥२३॥

श्री वर्धमान जिनेन्द्र केवलीके इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर प्रसिद्ध थे। जो इस युगके आदिमें अर्थात् पंचमकालके प्रारम्भमें धर्मतीर्थके आद्य दाता थे ॥२४॥

इस प्रकार शास्त्रके प्रारम्भमें आप्त तीर्थंकरोंका और आगमधारी गणधरोंका कथन करना चाहिए। इससे आन्तरिक मलके गल जानेसे आत्यन्तिक सुखकारी अर्थात् मोक्ष-सुखको देनेवाला नाम मंगल होता है ॥२५॥

इस अवसर्पिणी कालमें मूलकर्ता तीर्थंकर हैं और उत्तरकर्ता गणधर हैं। कालानुवर्ती अर्थात् कालक्रमसे होनेवाले गुणशाली आचार्योंने उनका कथन किया है ॥२६॥

---

१. म °गंपदि°। २. म °नन्मह। ३. म °नां धर्ता°। ४. क °गम्मो°। ५. म °ग्रहम°। ६. म °यरी°। ७. म °गलेंतु। ८. क पोल्लिति°। ९. म °चार्य प्रभवरि°।

श्रीमत्प्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यन्तरनिवासिप्रवादिमदान्धसिन्धुरसिंहायमानसिंह-
नन्दिमुनीन्द्राभिनन्दित-गंगवंशललाम-राजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधेयभागधेयश्रीमद्राचमल्लदेवमही-
वल्लभमहामात्यपदविराजमान-रणरंगमल्लासहायपराक्रम-गुणरत्नभूषण-सम्यक्त्वरत्ननिलयादि-
विविधगुणनामसमासादितकीर्तिकान्त-श्रीमत्-चामुंडरायभव्यपुंडरीकप्रश्नावतीर्णकचत्वारिंशत्पदना-
मसत्त्वप्ररूपणद्वारेणाशेषविनेयजननिकुरम्बसंबोधनार्थं श्रीमन्-नेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती समस्त- ५
सैद्धान्तिकजनप्रख्यातविशदयशोविशालमतिरसौ भगवान् शास्त्रकारो महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथम-
सिद्धान्त-जीवस्थान-क्षुद्रकबन्ध-बन्धस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धानां षट्खण्डानां मध्ये
जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं समुद्धृत्य गृहीत्वा गोम्मटसार-पञ्चसंग्रहप्रपञ्चमारचयन् तच्छास्त्रादौ
निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिनिमित्तं नास्तिकतापरिहारार्थं शिष्टाचारपरिपालनार्थं उपकार-
स्मरणार्थं चेष्टविशिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन् सिद्धं इत्यादि गाथासूत्रमाह। १०

अथ जीवतत्त्वप्रदीपिका (संस्कृत) टीका।

नेमिचन्द्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणम्।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥१॥

श्रीमदप्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यन्तरनिवासिप्रवादिसिंधुरसिंहायमानसिंहनन्दिमुनीन्द्राभिनन्दित-
गङ्गवंशललामराजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधेयभागधेयश्रीमद्राजमल्लदेवमहीवल्लभमहामात्यपदविराजमानरणरंग- १५
मल्लासहायपराक्रमगुणरत्नभूषणसम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणनामसमासादितकीर्तिकान्तश्रीमच्चामुण्डराय-
प्रश्नावतीर्णकचत्वारिंशत्पदनामसत्त्वप्ररूपणद्वारेणाशेषविनेयजननिकुरम्बसंबोधनार्थं श्रीमन्नेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती
समस्तसैद्धान्तिकजनप्रख्यातविशदयशोविशालमतिरसौ भगवान् शास्त्रकारो महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धान्त-
जीवस्थान-क्षुद्रबंध-बंधस्वामित्व-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबन्धानां षट्खण्डानां मध्ये जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं
समुद्धृत्य गोम्मटसारपञ्चसंग्रहप्रपञ्चमारचयंस्तदादौ निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिनिमित्तं नास्तिकतापरिहारार्थं २०
शिष्टाचारपरिपालनार्थमुपकारस्मरणार्थं चेष्टविशिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति—

श्रीमत् स्याद्वादशासनरूपी गुफामें निवास करनेवाले सिंहनन्दि मुनीन्द्र प्रवादि रूपी हस्तियोंके लिए सिंहके समान थे। गंग राजवंशके मुकुटमणि राजसर्वज्ञ आदि अनेक सार्थक नामवाले श्रीमद् राजमल्लदेव महाराजको उनका शुभाशीर्वाद प्राप्त था। उनके महामात्यपद पर श्रीमच्चामुण्डराय विराजमान थे। रणरंगमल्ल, असहाय पराक्रम, गुणरत्न भूषण, २५
सम्यक्त्व रत्ननिलय आदि विविध सार्थक नामोंसे उनकी सुख्याति थी। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें इकतालीस पदोंसे जीवके सत्त्वका कथन करनेके द्वारा समस्त शिष्यजनोंके समूहको सम्बोधन करनेके लिए श्रीमत् नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, जिनकी विशाल मतिका निर्मल यश समस्त सैद्धान्तिकजनोंमें प्रख्यात है, वे शास्त्रकार भगवान् महाकर्मप्रकृतिप्राभृतसे उद्धृत प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थके जीवस्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड, ३०
महाबन्ध, इन छह खण्डोंमें-से जीवादिविषयक समस्त प्रमेयांशका उद्धार करके गोम्मटसार अपरनाम पंचसंग्रहकी विस्तार पूर्वक रचना करते हुए उसके प्रारम्भमें निर्विघ्नतापूर्वक

---

१. म °सिंहाय°। २. म °नन्दिनंदित। ३. म राचम°। ४. म °रायप्रश्नां°। ५. म महाकषायकर्म°। ६. म °षमु°। ७. बन्धकं बध्यमानं यो बन्धेशं बन्धकारणम्। भाषते बन्धभेदं च तं स्तुवे भाव (पंच) संग्रहम् ॥२॥—अमि. पंचसंग्रह। जो बन्धक, बध्यमान, बन्धेश, बन्धकारण और बन्धके भेद इन पाँचका ३५
कथन करता है उसे पंचसंग्रह कहते हैं।

ननु इष्टदेवतानमस्कारकरणेन निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिः किं भवतीति नाशङ्कनीयम्।

'विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥'

इति वचनात्।

प्रायश्चित्ताचरणेन दोषवदौषधसेवनेन रोगवन्मंगलकरणेनापि विघ्नकर्मविलयस्याविप्रतिपत्तेश्च॥

ननु—

'सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।
विद्यते स न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः॥' [ ]

इति न्यायेन प्रारब्धशास्त्रमेवारचयतु किं नास्तिक्यपरिहारेणेत्यपि न वाच्यं, प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यग्दर्शनमित्यादिविषयास्तिक्यस्य सम्यक्त्वसंपत्तिहेतुत्वात्।

मार्गदर्शक - आचार्यश्री विद्यानन्दजी महाराज

ननु इष्टदेवतानमस्कारकरणेन निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिः किं भवतीति नाशङ्कनीयं "विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः। विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥" इति वचनात्। प्रायश्चित्ताचरणेन दोषवदौषधसेवनेन रोगवन्मंगलकरणेनापि विघ्नकर्मविलयस्याऽविप्रतिपत्तेश्च। ननु "सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः। विद्यते स न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः॥" इति न्यायेन प्रारब्धमेवारचयतु किं नास्तिक्यपरिहारेणेत्यपि न वाच्यं, प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यग्दर्शन-

---

शास्त्रकी समाप्तिके लिए तथा नास्तिकताके परिहारके लिए, शिष्टाचारके पालनके लिए और उपकारके स्मरणके लिए इष्ट देवता विशेषको नमस्कार करते हैं।

शंका—क्या इष्टदेवताको नमस्कार करनेसे निर्विघ्नतापूर्वक शास्त्रकी समाप्ति होती है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए। 'जिनेश्वरका स्तवन करनेपर विघ्नोंका समूह, शाकिनी, भूत, सर्प भाग जाते हैं और विष निर्विष हो जाता है।' ऐसा शास्त्रका वचन है। तथा जैसे प्रायश्चित्त करनेसे दोष और औषध सेवनसे रोग दूर हो जाता है, उसी प्रकार मंगल करनेसे विघ्नकारक कर्म विलय हो जाता है, इसमें कोई विवाद नहीं है।

शंका—'मनुष्यको सब प्रकारसे अपना हित करना चाहिए। बकनेवाले बका करें। उनके बकनेसे क्या होता है? ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे सबको सन्तोष हो, इस न्यायके अनुसार जिसको प्रारम्भ करना है उसे प्रारम्भ करो। नास्तिकताके परिहारसे क्या प्रयोजन है?

समाधान—ऐसा कहना भी उचित नहीं है। क्योंकि प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य गुणका प्रकट होना सम्यक्त्वका लक्षण है। अतः आप्त आदिके विषयमें आस्तिक्य सम्यक्त्वकी प्राप्तिका कारण है। तथा प्रसिद्ध है—'यद्यपि योगी निर्मल हैं, तथापि संसार उनके छिद्रोंको देखता है। इसलिए लोकाचारको उल्लंघन करनेकी बात मनमें भी नहीं लाना

---

१. °क एष श्लोकः सर्व। २. क °त्यादि°।

[1]श्लोकः—

'यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी ।
तथापि लौकिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत्' ॥ इति प्रसिद्धत्वाच्च ।

न च शिष्टाचारप्रतिपालनं किमर्थं क्रियत इति पर्यनुयोगो[2] युक्तः । प्रायेण गुरुजनशील-मनुचरन्ति शिष्या इति वाक्यस्य रूढत्वात् ।

'मंगलणिमित्तहेऊ परिमाणं णाम तह[3] य कत्तारं ।
वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ सत्थमाइरिया ॥१॥

इति न्यायस्याचार्यपरम्परागतस्यातिक्रमे चोत्पथप्रवर्तनप्रसंगस्य दुःपरिहारत्वाच्च ।

मंगलनिमित्तहेतून् परिमाणं नाम तथा कर्तारं व्याकृत्य षडपि पश्चात् व्याख्यान्तु शास्त्र-माचार्याः । इति न्यायेन प्रथमोपदिष्टमंगलमाह ।

'पुण्णं पूदपवित्ता पसत्थसिव भद्द-खेमकल्लाणा ।
सुहसोक्खादी सव्वे णिद्दिट्ठा मंगलस्स पज्जाया[5] ॥२॥'

पुण्यं पूतपवित्रप्रशस्तशिवभद्रक्षेमकल्याणानि । शुभसौख्यादीनि सर्वाणि निर्दिष्टा मंगलस्य पर्यायाः ॥

'गालयदि[10] विणासयदि[11] घादेदि दहेदि हंति सोधयदि[12] ।
विद्धंसेदि मलाइं जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं ॥३॥'

मित्यासादिविषयास्तिक्यस्य सम्यक्त्वसंपत्तिहेतुत्वात् । "यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी । तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ॥" इति प्रसिद्धत्वाच्च । न च शिष्टाचारपरिपालनं किमर्थं क्रियत इति पर्यनुयोगो युक्तः । प्रायेण गुरुजनशीलमनुचरन्ति शिष्या इति वाक्यस्य रूढत्वात् । "मंगलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्त्तारमिति षडपि व्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वन्तु" इति न्यायस्याचार्यपरंपरागतस्यातिक्रमे चोत्पथ-प्रवर्त्तनप्रसंगाच्च । तत्र तावत् पुण्यं पूतं पवित्रं प्रशस्तं शिवं भद्रं क्षेमं कल्याणं शुभं सौख्यमित्यादिमंगलस्य पर्यायः । तत्र मलो नाम द्रव्यभावभेदाद्द्विविधः । तत्र तावत् द्रव्यमलो बाह्यः आन्तरश्च । तत्र बाह्यमलः स्वेदमलरेणुकर्दमादिः, अन्तर्मलः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशेषु घननिविडज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म ।

चाहिए ।' शिष्टाचारका पालन क्यों किया जाता है ? ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है, क्योंकि 'प्रायः शिष्य गुरुजनोंके शीलका अनुसरण करते हैं,' यह वाक्य प्रसिद्ध है । तथा 'मंगल, निमित्त, हेतु, परिमाण, नाम, कर्ता, इन छहका व्याख्यान करके पश्चात् आचार्य शास्त्रका व्याख्यान करे ।'

आचार्य परम्परासे आये इस न्यायका उल्लंघन करनेपर कुमार्गके प्रवर्तनका प्रसंग नहीं टाला जा सकता । अतः प्रथम मंगलका कथन करते हैं ॥१॥

पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ,सौख्य आदि सब मंगलके पर्यायवाचक कहे हैं ॥२॥

यतः मलका गालन करता है, विनाश करता है, घात करता है, जलाता है, मारता है, शोधन करता है, विध्वंस करता है,अतः मंगल कहा जाता है ॥३॥

---

१. म नास्ति । २. म °गोऽयं° । ३. क तहा । ४. म व्याप्रत्य । ५. क °चार्य्यात् । ६. ति. प. १।८ । ७. क °भत्थ । ८. म °क्षेमं° । ९. ति. प. १।९-। १०. म °यदे । ११. म यदे । १२. म °यदे ।

गालयति विनाशयति घातयति वहति हन्ति शोधयति। विध्वंसयति मलानि यस्मात्तस्माच्च मंगलं भणितमिति मंगलशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं प्रतिपाद्य मलस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह।

[1]"दोण्णि वियप्पा होंति हु मलस्स इह दव्वभावभेदेहिं।
दव्वमलं दुवियप्पं बाहिरमब्भंतरं चेदि" ॥४॥

इह मलस्य द्वौ विकल्पौ भवतो द्रव्यभावभेदाभ्यां, तत्र द्रव्यमलं द्विविकल्पं बाह्यमभ्यन्तरमिति ॥

[2]"सेदजलरेणुकद्दमपहुडी बाहिरमलं समुद्दिट्ठं।
घणबद्ध जीवपदेसे णिबद्धरूवाइ पयडिठिदियाइं ॥५॥
अणुभागपदेसेहिं चउहि पत्तेक्कमिज्जमाणं तु।
णाणावरणप्पहुडो अट्ठविहं कम्ममखिलपावयरं" ॥६॥

स्वेदजलरेणुकर्दमप्रभृतयो बाह्यमलं समुद्दिष्टं घनबद्धजीवप्रदेशेषु निबद्धम्। प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशैश्चतुर्भिः प्रत्येकं भिद्यमानं ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म अखिलपापकरम् ॥

'अब्भंतरदव्वमलं जीवपदेसे णिबद्धमिदि हेदो।
भावमलं णादव्वं अण्णाणादंसणादिपरिणामो ॥७॥'

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अभ्यंतरं द्रव्यमलं भवति जीवप्रदेशे निबद्धमिति हेतोः। भावमलं ज्ञातव्यमज्ञानादर्शनादिपरिणामः ॥

'अहवा बहुभेदगयं णाणावरणादिदव्वभावमलं।
ताइं गालेइ पुढं जदो तदो मंगलं भणियं ॥८॥'

अथवा बहुभेदगता ज्ञानावरणादयो द्रव्यभावमलास्तान् स्फुटं गालयति यतस्ततो मंगलं भणितं ॥

भावमलो अज्ञानादर्शनादिपरिणामो नामस्थापनाद्रव्यभावभेदो वा। उपचारमलो जीवपार्श्वं। तं सर्वमलं गालयति विनाशयति घातयति वहति हन्ति शोधयति विध्वंसयतीति मंगलं। अथवा मंगं सौख्यं पुण्यं वा लात्यादत्ते इति; मंगलं।

तच्च मंगलं नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाद्दानन्दजनकं षोढा। तत्र नाममंगलमर्हत्सिद्धाचार्योपा-

---

इस प्रकार मंगल शब्दका निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहकर मलका स्वरूप कहते हैं—मलके दो भेद हैं—द्रव्यमल और भावमल। उनमें-से द्रव्यमलके दो भेद हैं—बाह्य और अभ्यन्तर। उनमें-से पसीना, मल, धूल, कीचड़ आदि बाह्य मल हैं। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धके भेदसे चार भेदरूप ज्ञानावरण आदि आठ कर्म, जो आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूपसे दृढ़ बद्ध हैं, अभ्यन्तर द्रव्यमल हैं। ये सब पापोंके कारण हैं ॥४-६॥

ये ज्ञानावरण आदि कर्म जीवके प्रदेशोंमें निबद्ध होनेसे अभ्यन्तर द्रव्यमल कहे जाते हैं। और अज्ञान अदर्शन आदि रूप जीवके परिणाम भावमल हैं ॥७॥

अथवा बहुत भेद रूप ज्ञानावरण आदि द्रव्यमल और भावमलको स्पष्टरूपसे नष्ट करता है, इसलिये उसे मंगल कहते हैं ॥८॥

---

१. क बोण्णि। १ ति. प. १।१०। २. म° रं मेयं। ३. म भगवतो। ४. ति. प. १।११-१२। ५. म मेज्झं°। ६. ति. प. १।१३। ७. ति. प. १।१४। ८. म बहुभेदनामस्थापनाद्रव्यभावमलभेदास्तान्।

आनन्दजनक - आवासं अव्वुच्छित्तिसोक्खं [1]सोक्खं [2]लाभिदु [3]गेण्हेवि मंगलं तम्हा ।
एदेण कज्जसिद्धिं [4]मंगदि गच्छेवि गंथकत्तारो ॥९॥
अथवा मंगं सौख्यं लाति गृह्णाति यस्मात्तस्मात् मंगलं । एतेन मंगलेन ग्रन्थकर्त्ता कार्यसिद्धिं [5]मंगति [= मार्गयति] गच्छतीत्यर्थः ॥
'[6]पुव्विल्लाइरियेहि मंगं पुण्णत्थवाचयं भणियं [7] । ५
तल्लादि हु [8]आवत्ते जदो तदो मंगलं पवरं ॥१०॥
पूर्वाचार्यैर्मंगं पुण्यार्थवाचकं भणितं । तल्लाति हु [-खलु] आवत्ते यतस्ततो मंगलं प्रवरम् ॥
[9]पावं मलेति भण्णइ उवचारसमस्सएण जीवाणं ।
तग्गालेवि विणासं णेवि त्ति भणंति मंगलं केई ॥११॥'
जीवानां पापमुपचारसमाश्रयेण मलमिति भण्यते । तद्गालयति विनाशं [10] नयतीति केचि- १०
दाचार्या मंगलं भणंति ॥
तेषां मंगलानां भेदमाह—
'णामाणि [11] ठावणाओ दव्वक्खेत्ताणि कालभावा य ।
इय छब्भेयं भणिदं मंगलमाणंदसंजणणं ॥१२॥'
नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाविदमानन्दसंजननं [12] मंगलं षड्भेदं भणितम् ॥ १५
'अरिहाणं [13] सिद्धाणं आइरियाणं [14] उवज्झयाण साहूणं ।
णामाणि णाममंगलमुद्दिट्ठं वीयरागेहिं ॥१३॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां नामानि नाममंगलं भणितं वीतरागैः ॥
[15]ठावणमंगलमेवं अकट्टिमा [16] कट्टिमाण जिणबिंबा ।
सूरि-उवज्झय-साहूदेहाणि हु दव्वमंगलयं ॥१४॥ २०

ध्यायसाधूनां नाम, स्थापनामंगलं कृत्रिमाकृत्रिमजिनादीनां प्रतिबिम्बं, द्रव्यमंगलं जिनसूर्य्युपाध्यायसाधुशरीरं, क्षेत्रमंगलमूर्जयन्ताष्टिकमहेश्वादीनां निःक्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानमर्द्धचतुर्थहस्तादिपञ्चविंशत्यग्रपञ्चशतध-

---

अथवा मंग अर्थात् सुखको लाता है, इसलिए मंगल कहते हैं । ग्रन्थकार इस मंगलके द्वारा कार्यकी सिद्धि करता है ॥९॥
पूर्वाचार्योंने मंगका अर्थ पुण्य कहा है । यह उसे लाता है, इससे मंगल कहाता है॥१०॥ २५
उपचारका आश्रय लेकर जीवके पापको मल कहते हैं । उसको यह नष्ट करता है, इससे कुछ आचार्य इसे मंगल कहते हैं ॥११॥
उन मंगलोंके भेद कहते हैं—
इस आनन्दके जनक मंगलके नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके भेदसे छह भेद कहे हैं । अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुके नामोंको नाममंगल कहते हैं । ३०
कृत्रिम, अकृत्रिम जिनबिम्ब आदि स्थापना मंगल हैं । आचार्य, उपाध्याय और साधुके शरीर द्रव्यमंगल हैं ॥१२–१४॥

---

१. ति. प. १।१८ । २. क मंगलसोक्खं । ३. क गेण्हिदि मंगलं तम्मा । ४. क मग्गछेदि । ५. क मंगलति । ६. ति. प. १।१६ । ७. म भणितं । ८. क अदत्ते । ९. ति. प. १।१७ । १०. क °नाशनं । ११. ति. प. १।१८ । १२. म °नमं° । १३. ति. प. १।१९ । १४. क -रिय उव- । १५. ति. प. १।२० । १६. क अकट्टिमाण जि° । ३५

स्थापनामंगलमेतत् कृत्रिमाकृत्रिमा[1] जिनबिंबा। पुनः सूर्युपाध्यायसाधूनां देहाः खलु द्रव्यमंगलं स्यात् ॥

[2]'गुणपरिणदासणं परिणिक्कमणं केवलस्स णाणस्स।
उप्पत्तो इय पहुडी बहुभेयं खेत्तमंगलयं' ॥१५॥

गुणपरिणतासनं गुणपरिणतस्थानं परिनिःक्रमणं केवलज्ञानोत्पत्तिस्थानमिति प्रभृति क्षेत्रमंगलं बहुभेदं ॥

[3]'एवस्स उदाहरणं पावाणयरुज्जयंतचंपादी।
[4]आउट्टहत्थ पहुडि पंचसयधणूणि ॥१६॥

एतस्य क्षेत्रमंगलस्योदाहरणं पावानगर्यूर्जयंतचम्पादीन्यर्द्धचतुर्थहस्तप्रभृति पञ्चविंश-[5]त्युत्तरपञ्चशतधनुःपर्यन्तान्याकाशप्रदेशस्थानानि। तेषां शरीरावष्टब्धाकाशप्रदेशप्रमाणानीत्यर्थः ॥

'वेहावट्ठिदकेवलणाणावट्ठद्धगयणदेसो वा।
सेढीघणमेत्तअप्पपएसजुदा लोगपूरणा पुण्णा' ॥१७॥

वेहावस्थितकेवलज्ञानावष्टब्धगगनप्रदेशो वा जगच्छ्रेणिघनमात्रात्मप्रदेशयुताः[9] लोकपूरणा पूर्णा वा ॥

'विस्साणं[10] लोगाणं होंति पदेसा वि मंगलं खेत्तं।
जस्सि[11] केवलणाणादि[12]मंगलाणि परिणमंति' ॥१८॥

अतो विश्वेषां[13] लोकानां प्रदेशा अपि मंगलं क्षेत्रं भवति। यस्मिन्काले केवलज्ञानादि-मंगलानि परिणमंति ॥

परिणिक्कमणं केवलणाणुब्भवणिव्वुदिप्पवेसादि।
पावमलगालणादो पण्णत्तं कालमंगलं एदं ॥१९॥

नुःपर्यन्तकेवलिशरीरावष्टब्धाकाशः केवलिसमुद्घातावष्टब्धाकाशो वा, कालमंगलं यदा परिनिःक्रमणादिकल्याणान्याष्टाह्निकादिजिनादिमहोत्सवा वर्तन्ते स कालः। भावमंगलं मंगलपर्यायोपलक्षितजीवद्रव्यमात्रं। तदिदमुक्त-

---

जिन स्थानोंमें तपस्या आदिके द्वारा गुण प्राप्त किये हों ऐसे तपकल्याणकके स्थान केवलज्ञानकी उत्पत्तिके स्थान आदि क्षेत्रमंगल हैं। इसके बहुत भेद हैं ॥१५॥

इस क्षेत्र मंगलके उदाहरण पावानगरी, ऊर्जयन्त (गिरनार पर्वत), चम्पापुर आदि हैं, तथा साढ़े तीन हाथसे लेकर पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण आकाश प्रदेशके स्थान हैं अर्थात् उन स्थानोंसे मुक्ति प्राप्त करनेवाले जीवोंके शरीरकी अवगाहनासे जितना आकाश प्रदेश रोका गया हो, उतना स्थान क्षेत्र मंगल है। अथवा केवलज्ञानसे व्याप्त आकाश प्रदेश क्षेत्रमंगल है। अथवा लोकपूरण समुद्घातके द्वारा पूरित जगत् श्रेणिके घन प्रमाण आत्माके प्रदेशोंसे व्याप्त समस्त लोक क्षेत्रमंगल है। इस प्रकार सब लोकोंके प्रदेश भी क्षेत्रमंगल होते हैं। और जिस कालमें केवलज्ञान आदि मंगलरूप जीव परिणमन करता है, दीक्षा लेता है, मोक्ष गमन करता है, उसे काल मंगल कहा है, क्योंकि वह पापरूपी मलको नष्ट करता है ॥१६-१९॥

---

१. म °मज्जिम°। २. ति. प. १।२१। ३. ति. प. १।२२। ४. क अउट्ठ पुत्थ°। ५. क °प्पहुडीसक्खियं°। ६. म °धुत्तर°। ७. क °वट्ठद°। ८. म °प्रदेशा। ९. म °पुत्ता पुर्णा लो°। १०. ति. प. १।२४। ११. म सि काले के°। १२. म मगला प°। १३. म विश्वानां।

परिनिःक्रमणकेवलज्ञानोद्भवनिर्वृतिप्रवेशादयः कालः पापमलगालनात् प्रज्ञप्तं काल-मंगलमेतत् ।

'एवं अणेयभेवं भवेइ[1] तं कालमंगलं पैवरं[2] ।
जिणमहिमासंबंधं णंदीसरदिवसपेहुडीओ[3]' ॥२०॥

एवं नंदीश्वरदिवसप्रभृतयः प्रवरं जिनमहिमासंबंध तत्कालमंगलमनेकभेदं भवेत् ॥ ५

[4]'मंगलपज्जाएहिं उवलक्खिय[5] जीवदव्वमेत्तं च[6] ।
भावं मंगलमेदं तं चेय गंथादिमज्झ अंतेसु[7]' ॥२१॥

मंगलपर्यायैरुपलक्षितजीवद्रव्यमात्रं च भाव-मंगलमेतत्स्यात् । तदेव मंगलं ग्रन्थादि-मध्यान्तेषु ॥

'पुंविल्लाहरिएहिं[8] उत्तो सत्थाण[9] मंगलुग्घोसो । १०
आइम्मि [10]मज्झ अवसाणेसु वि णियमेण कायव्वो' ॥२२॥

शास्त्राणामादौ मध्येऽवसाने च मंगलोद्घोषो नियमेन कर्तव्य इति पूर्वाचार्यैरुक्तः ॥

[11]'पढमे मंगलकरणे सिस्सा सत्थस्स पारगा होंति ।
मज्झिल्ले णिव्विग्घं विज्जा विज्जा फलं चरिमे' ॥२३॥

शास्त्रस्य प्रथमे मंगलकरणे शिष्याः शास्त्रस्य पारगा भवन्ति । शास्त्रस्य मध्यमे १५
मंगलकरणे विद्या निर्विघ्नं[12] चरमे विद्याफलं भवति ।

'णासदि[13] विग्घं भीदी ण होदि दुट्ठा सुरा ण लंघंति ।
इट्ठो अत्थो लब्भइ जिणणामग्गहणमेत्तेण' ॥२४॥

मंगलं जिनादिपरिकीर्तनाविरूपं शास्त्रादौ कृतं शिष्यान् लघु पारगान् करोति, मध्ये कृतं विद्याया अव्युच्छित्तिं करोति, चरमे कृतं विद्याया निर्विघ्नं करोति "नेष्टं विहन्तुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः । तत्कामचारेण २०
गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृतर्हदादेः ॥" इति परमागमप्रसिद्धेः । ततस्तदवश्यं कर्तव्यमेव ।

इसी प्रकार जिन महिमासे सम्बद्ध नन्दीश्वर दिवस (अष्टाह्निका) वगैरह भी काल मंगल है । इस तरह काल मंगलके अनेक भेद हैं ॥२०॥

मंगल पर्यायरूपसे परिणत जीवद्रव्य भावमंगल है । ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें वही भावमंगल करना चाहिए ॥२१॥ २५

शास्त्रके आदि,मध्य और अन्तमें मंगलका उद्घोष अवश्य करना चाहिए,ऐसा पूर्वाचार्योंने कहा है ॥२२॥

शास्त्रके आदिमें मंगल करनेसे शिष्य शास्त्रके पारगामी होते हैं । मध्यमें मंगल करनेसे विद्यामें विघ्न नहीं आता है । अन्तिम मंगलसे विद्याका फल प्राप्त होता है ॥२३॥

जिन भगवान्का नाम लेने मात्रसे विघ्न नष्ट होता है, भय नहीं होता, दुष्ट देव ३०
उपद्रव नहीं करते और इष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है ॥२४॥

---

१. क प्रज्ञाप्तं । २. क हुवेइ । ३. क पदरं । ४. म बहु° । ति. प. १।२७ । ५. क °रद्दीपप्र° । ६. ति. प. १।२८ । ७. म उवलंभिय । ८. ति. पं. १।२८ । ९. क सद्दाण । १०. क वज्ज । ११. ति. प. १।२९ । १२. म °ध्नं स्यात् चरमे मंगलकरणे वि म— । १३. ति. प. १।३० ।

नश्यति विघ्नं भीतिर्न भवति दुष्टास्सुरा न लङ्घयन्ति । इष्टोऽर्थो लभते जिननामग्रहणमात्रेण ॥

[1]'सत्थादिमज्झ अवसाणएसु जिणथोत्तमंगलुग्घोसो ।
णासइ णिस्सेसाइं विग्घाइ रवि व्व तिमिराइं' ॥२५॥

[5] शास्त्रादिमध्यावसानेषु जिनस्तोत्रमंगलोद्घोषः निःशेषान्विघ्नौघान् नाशयति तिमिराणि रविवत् ॥

एवं मंगलं निरूपितं ॥

[3]'विविहवियप्पं दव्वं बहुभेयणयप्पमाणदो भव्वा ।
जाणंति सि णिमित्तं कहिदं गंथावतारस्स' ॥२६॥

[10] विविधकल्पं द्रव्यं बहुभेदनयप्रमाणतो भव्याः । जानंत्विति ग्रन्थावतारस्य निमित्तं कथितं ॥

'केवलणाणदिवायर किरण कलावावु अत्थअवहारो ।
गणधरदेवेहिंतो [6]गंथुप्पत्ती सुसंजादा' ॥२७॥

'केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापादर्थावहारो भवति । गणधरदेवेभ्यो ग्रन्थोत्पत्तिः [15] सुसंजाता' ॥

'छद्दव्व णवपदत्थे सुदणाणदुमणिकिरणसत्तीए ।
देवखंतु [7] भव्वजीवा अण्णाण-तमेण संछण्णा' ॥२८॥

षड्द्रव्यनवपदार्थान् श्रुतज्ञानद्युमणिकिरणशक्त्या । अज्ञानतमसा संछन्ना भव्यजीवाः-पश्यन्तु ॥

[20] निमित्तं गतं ॥

[8]'दुविहो हवेइ हेदू सिरिगोम्मटसारगंथअज्झयणे ।
जिणवरवयणुद्दिट्ठो पच्चक्खपरोक्खभेदेहिं ॥२९॥

निमित्तमस्य शास्त्रावतारस्य भव्या बहुनयप्रमाणैर्विविधविकल्पं द्रव्यं जानन्त्विति ।

शास्त्रके आदि,मध्य और अन्तमें किया गया जिनस्तोत्र रूप मंगलका उच्चारण [25] समस्त विघ्नोंको उसी प्रकार नष्ट करता है,जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है ॥२५॥

इस प्रकार मंगलका कथन किया ।

नाना भेदरूप द्रव्यको भव्य जीव नानाभेदरूप नय और प्रमाणके द्वारा जानें, यह इस ग्रन्थके अवतारका निमित्त कहा है ॥२६॥

केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे अर्थका अवतार हुआ और गणधर देवसे [30] ग्रन्थ (अंगप्रविष्ट) उत्पत्ति हुई ॥२७॥

अज्ञान रूपी अन्धकारमें पड़े हुए भव्य जीव श्रुत ज्ञान रूपी सूर्यकी किरणोंके द्वारा छह द्रव्यों और नौ पदार्थोंको देखें । यह इस ग्रन्थका निमित्त है ॥२८॥

श्री गोम्मटसार ग्रन्थके अध्ययनमें जिन भगवान्ने प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकारका हेतु कहा है ॥२९॥

---

१. ति. प. १।३१ । २. म जिणतोत्थ° । ३. ति. प. १।३२ । ४. ति. प. १।३३ । ५. क गन्थपरुप्प° । ६. ति. प. १।३४। ७. म दिक्खन्तु । ८. दुविहो हवेदि हेदू तिलोयपण्णत्ति गन्थयज्झयणे ।–ति. प. १।३५।

श्रीगोम्मटसारग्रन्थाध्ययने द्विविधो भवेद्धेतुः। प्रत्यक्षपरोक्षभेदाभ्यां जिनवरवचनोद्दिष्टो ज्ञातव्यः ॥

'सक्खोपच्चक्खपरंपरपच्चक्खा दोण्णि होंति पच्चक्खा।
अण्णाणस्स विणासो सण्णाणविवायरस्स उप्पत्ती ॥३०॥

तत्र प्रथमोद्दिष्टप्रत्यक्षं साक्षात्प्रत्यक्षं परम्पराप्रत्यक्षमिति द्वे भवतः। अज्ञानस्य विनाशः सम्यग्ज्ञानदिवाकरस्योत्पत्तिश्च।

'देवेंमणुस्सादीहिं संततमब्भच्चणप्पयाराणि।
पडिसमयमसंखेज्ज-गुणसेढीकम्मणिज्जरणं ॥३१॥

देवमनुष्यादिभिरभ्यर्चनप्रकाराः प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरणं ॥

'इयं सक्खापच्चक्खं पच्चक्खपरम्परं पि णादव्वं।
सिस्स-पडिसिस्सपहुडीहिं सददमब्भच्चणप्पयारं ॥३२॥

इदं साक्षात्प्रत्यक्षं परम्पराप्रत्यक्षमपि ज्ञातव्यं। शिष्यप्रतिशिष्यप्रभृतिभिः सततमभ्यर्चनप्रकारः ॥

'दो भेदं च परोक्खं अब्भुदयसोक्खाइं मोक्खसोक्खाइं।
सादादिविविहसुपसत्थ-कम्मतिव्वाणुभागउवएहिं ॥३३॥

परोक्षं च द्विभेदं भवति अभ्युदयनिश्रेयससुखभेदात्। सातादिविविधसुप्रशस्तकर्मतीव्रानुभागोदयैः ॥

'अणिमं इंदपडिंदविंगदतिंसोसामरसमाणपहुडिसुहं।
राजाहिराजमहराजअद्धमण्डलियमण्डलियाणं ॥३४॥

हेतुरस्याध्ययने प्रत्यक्षः परोक्षश्च। तत्र प्रत्यक्षः—साक्षात्प्रत्यक्षः, परंपराप्रत्यक्षश्च। तत्र साक्षात्प्रत्यक्षः—अज्ञानविनाशः, सम्यग्ज्ञानोत्पत्तिर्देवमनुष्यादिभिः सततपूजाकरणं, प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा च। परंपराप्रत्यक्षः—शिष्यप्रशिष्यैः सततपूजाकरणं।

इनमें-से प्रत्यक्षके दो भेद हैं—साक्षात् प्रत्यक्ष और परम्परा प्रत्यक्ष। अज्ञानका विनाश, सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्यकी उत्पत्ति, देव-मनुष्य आदिके द्वारा निरन्तर की जानेवाली विविध पूजा और प्रतिसमय कर्मोंकी असंख्यात गुणश्रेणी रूपसे निर्जरा, ये साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु हैं। और शिष्य-प्रशिष्योंकी परम्पराके द्वारा निरन्तर विविध रूपसे पूजित होना, यह परम्परा प्रत्यक्ष हेतु है ॥३०-३१॥

परोक्ष हेतुके दो भेद हैं—एक अभ्युदय सुख और दूसरा मोक्ष सुख। साता वेदनीय आदि अनेक प्रशस्त प्रकृतियोंके तीव्र अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र (लोकपाल), त्रायस्त्रिंश और सामानिक जातिके देवोंका सुख, तथा राजा, अधिराजा, महाराजा, अर्द्धमण्डलीक, महामण्डलीक, अर्द्धचक्री, चक्री और तीर्थंकरका सुख अभ्युदय सुख है ॥

भक्तियुक्त अठारह श्रेणियोंका स्वामी, उत्कृष्ट रत्नजटित मुकुटका धारी, सेवा करनेवालों

---

१. ति. प. १।३६। क सक्खापक्खक्ख। २. क सज्ञान°। ३. ति. प. १।३७। ४. ति. प. १।३८। ५. °भ्यर्च्चन°। ६. ति. प. १।३९। ७. क °तिव्वाणु°। ८. ति. प. १।४०। ९. क म°पडिदिसतित्तीसामर°।

अनितमिन्द्रप्रतीन्द्रत्रिगिन्द्रत्रायस्त्रिंशामरसामानिकप्रभृतिसुखं । राजाधिराजमहाराजार्द्ध-मण्डलीकमण्डलीकानां ॥

'अद्धमण्डलियाणं अद्धचक्कि चक्कहरतित्थयरसोक्खं ।
अट्ठारसमेत्ताणं सामो सेणीण भत्तिजुत्ताणं ॥३५॥

महामण्डलीकानामर्द्धचक्रि-चक्रधर-तीर्थंकराणां सौख्यं । अष्टदशप्रमितानां भक्तियुक्तानां श्रेणिनां स्वामी ॥

'वररयणमउडधारी सेवयमाणाण वंछिदं अत्थं ।
दिंता हवेइ राजा जिवसत्तू समरसंघट्टे ॥३६॥

वररत्नमकुटधारी सेवमानानां वांछितार्थं दाता । समरसंघट्टे जितशत्रुः राजा भवेत् ॥

अष्टादश श्रेणीः प्रतिपादयति-

'करितुरगरहाहिवई सेणाहिवमंति-सेट्ठिदण्डवई ।
सुद्दक्खत्तियबम्हण-वइसा तह महयरा पवरा ॥३७॥

गणरायमंतितलवरपुरोहिया दप्पिया महामत्ता ।
बहुविहपइण्णया इय अट्ठारस होंति सेणीओ ॥३८॥

करितुरगरथाधिपतयः सेनाधिपमन्त्रिश्रेष्ठिदण्डपतयः । शूद्रक्षत्रियब्राह्मणवैश्यास्तथा महत्तराः प्रवराः । गणमन्त्रि-राजमन्त्री-तलवर-पुरोहिता दर्पिका महामात्याः । बहुविधप्रकीर्णका इत्यष्टादशश्रेणयो भवन्ति ॥

'पंचसयराजसामी अहिराजो होदि कित्ति-भरिददिसो ।
रायाण जो सहस्सं पालइ सो होदि महराजो ॥३९॥
दुसहस्समउडबद्धाणहिवइ तत्थ अद्धमंडलिओ ।
चउराजसहस्साणं अहिणाओ होदि मंडलिओ ॥४०॥

परोक्षोऽप्यभ्युदयरूपो निःश्रेयसरूपश्च । तत्राभ्युदयरूपः—सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां तीव्रानुभागोदयजनितं

को इच्छित पदार्थ देनेवाला और युद्ध भूमिमें शत्रुको जीतनेवाला राजा होता है ॥३२–३६॥

अठारह श्रेणि कहते हैं—

हाथी, घोड़े और रथोंके अधिपति, सेनापति, मन्त्री, श्रेष्ठि, दण्डपति, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, महत्तर, गणमन्त्री, राजमन्त्री, कोतवाल, पुरोहित, महामात्य और बहुत प्रकारके प्रकीर्णक ये अठारह श्रेणियाँ होती हैं ॥३७–३८॥

पाँचसौ राजाओंका स्वामी अधिराजा होता है। उसकी कीर्ति दसों दिशाओंमें व्याप्त होती है। जो एक हजार राजाओंका पालन करता है, वह महाराजा होता है ॥३९॥

दो हजार मुकुटबद्ध राजाओंका अधिपति अर्द्धमण्डलीक होता है। चार हजार राजाओंका स्वामी मण्डलीक होता है ॥४०॥

---

१. म °र्द्धमंडलिका° । २. ति. प. १।४१ । ३. ति. प. १।४२ । ४. क °संघट्टी । ५. ति. प. १।४३ । ६. क बहाण । ७. —[ति. प. १।४५-४८] । ८. म °णाहो ।

महमंडलीयणयमो अट्ठसहस्साण अहिवई ताणं ।
रायाण अद्धचक्की सामि सोलससहस्समेत्ताणं ॥४१॥
छक्खंडभरहणाहो बत्तीससहस्समउडबद्धपहू ।
सो होवि सयलचक्की तित्थयरो सयलभुवणवई ॥४२॥

पञ्चशतराजस्वामी अधिराजो भवति । कीर्त्तिभरितविग्रहः । यो राज्ञां सहस्रं पालयति स भवति महाराजः ॥ द्विसहस्रमकुटबद्धानामधिपतिस्तत्रार्द्धमण्डलीकश्चतुर्णां राजसहस्राणामधिनाथो भवति मण्डलीकः । महामण्डलीकनामा तेषां राज्ञामष्टसहस्राणामधिपतिः । राज्ञां षोडशसहस्रप्रमाणानां स्वाम्यर्द्धचक्री स्यात् । षट्खण्डभरतनाथो द्वात्रिंशत्सहस्रमकुटबद्धप्रभुः यः स भवति सकलचक्री तीर्थंकरः सकलभुवनपतिः स्यात् ॥

अभ्युदयसुखं निरूपितं । निश्रेयससुखं प्रतिपादयति–

मार्गटिप्पणक सोक्खं च तित्थयरसुदं सिद्धाणं तहायमदिंदियतीदं ।
अदिसयमादसमुत्थं णिस्सेयसमणुवमं पवरं ॥४३॥

अतिशयमात्मसमुत्थं निःश्रेयसमनुपमं प्रवरं । सौख्यं तीर्थंकराणां सिद्धानां तथा चेन्द्रियातीतं सौख्यं ॥

सुदणाणभावणाए णाणं मत्तंडकिरणसुपयासं ।
चंदुज्जलं चरित्तं णियवसचित्तं हवेवि भव्वाणं ॥४४॥

श्रुतज्ञानभावनया ज्ञानं मार्त्तण्डकिरणसुप्रकाशं भवति । चन्द्रोज्ज्वलं चरित्रं निजवशचित्तं भव्यानां भवेत् ॥

कणयधराधरधीरं मूढत्तयविरहिदं हवदुमलं ।
जायवि पवयणपढणे समद्दंसणमणुवमाणं ॥४५॥

तीर्थंकरसुरेन्द्रनरेन्द्रादिसुखं । निःश्रेयसरूपः–सातिशयमात्मसमुत्थमनुपमं प्रवरं तीर्थंकरसुखं पञ्चेन्द्रियातीतं सिद्धसुखं च ।

आठ हजार राजाओंका स्वामी महामण्डलीक होता है । सोलह हजार राजाओंका स्वामी अर्द्धचक्री होता है ॥४१॥

भरतके छह खण्डोंका स्वामी और बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजाओंका प्रभु सकलचक्री होता है । वह सकल भुवनका स्वामी और तीर्थंकर होता है ॥४२॥

इस प्रकार अभ्युदय सुखका कथन किया । अब निश्रेयस सुखको कहते हैं । तीर्थंकरोंके और सिद्धोंके जो अतीन्द्रिय और आत्मासे उत्पन्न सातिशय अनुपम उत्कृष्ट सुख होता है, उसे निश्रेयस सुख कहते हैं ॥४३॥

श्रुतज्ञानकी भावनासे भव्य जीवोंके सूर्यकी किरणोंकी तरह प्रकाशमान ज्ञान होता है, चन्द्रमाकी तरह निर्मल चारित्र होता है और उनका चित्त अपने वशमें होता है ॥४४॥

प्रवचनका अभ्यास करने पर सुमेरु पर्वतकी तरह निश्चल तथा तीन मूढताओंसे और आठ मलोंसे रहित अनुपम सम्यग्दर्शन होता है ॥४५॥

---

१. म पंचदसरा° । २. म दिसह° । ३. ति. प. १।४९ । ४. क सवरं । ५. ति. प. १।५० । ६. क मसंद° । ७. म °नायां ज्ञानमत्ति° । ८. ति. प. १।५१ ।

कनकधराधरधीरं मूढत्रयविरहितं हताष्टमलं । प्रवचनपलनेऽनुपमानं सम्यग्दर्शनं जायते ॥

[1]सुरखेयरमणुवाणं लब्भंति सुहाइ ओरिसब्भासा ।
तत्तो णिव्वाणसुहं णिण्णासिद वारुणट्ठमलं ॥४६॥

सुरखेचरमानवानां सुखान्यवाप्नोत्यासाद्यते । ततो निर्वाणसुखं निर्नाशितदारुणाष्टमलं लभ्यते ॥

हेतु प्ररूपितः । ग्रन्थप्रमाणमाह–

[3]विविहत्थेहि अणंतं संखेज्जा अक्खराण गणणाए ।
एवप्पमाणमुदिदं सिस्साणं मइवियासयरं ॥४७॥

विविधार्थैरनन्तमक्षरगणनया संख्यातानि । एतत्प्रमाणमुदितं शिष्याणां मतिविकाशकरं भवति ॥

प्रमाणं प्ररूपितम् । ग्रन्थनाम निरूपयति–

[4]भव्वाण जेण एसा जीवादीणं पयासणे [परम] दीवं ।
तेण गुणणाममुदिदं णामेणं जीवतच्चदीवं [5] ति [इदि] ॥४८॥

यतो भव्यानां जीवादीनां प्रकाशने एष ग्रन्थः परमदीपस्तेन गुणनामोदितं नाम्ना जीवतत्त्वप्रदीपिकेति । ग्रन्थनाम प्ररूपितं । अथ ग्रन्थकर्त्तारं प्ररूपयति–

[6]कत्तारो दुवियप्पो णादव्वो अत्थगंथभेदेहिं ।
दव्वादि चउपयारेहिं पभासेमो [य] अत्थकत्तारं ॥४९॥

कर्त्ता द्विविकल्पो ज्ञातव्योऽर्थग्रन्थभेदाभ्यां । तत्रार्थकर्तारं द्रव्यादि चतुःप्रकारैः प्रभाष्यामहे ॥

प्रमाणं तु विविधार्थैरनन्तमक्षरगणनया संख्यातमिति । नामजीवादिवस्तुप्रकाशनप्रदीपकत्वाज्जीवतत्त्वप्रदीपिकेति । कर्तास्यार्थकर्त्ता, ग्रंथकर्ता, उत्तरकर्ता च । तत्रार्थकर्ता निःशेषनिर्दग्धघातिचतुष्टयतया समुत्पन्नानन्तज्ञानादिचतुष्टयत्वेन ज्ञातत्रिकालगोचरसमस्तद्रव्यगुणपर्यायस्वभावो विनष्टाष्टादशदोषश्चतुस्त्रिंशदतिशयाष्ट-

---

आगमके अभ्याससे देव विद्याधर और मनुष्योंका सुख प्राप्त होता है । उसके अनन्तर भयानक आठ कर्म रूपी मलका नाश होनेपर मोक्ष सुख प्राप्त होता है ॥४६॥

इस प्रकार हेतुका कथन किया । अब ग्रन्थका प्रमाण कहते हैं—

विविध अर्थोंकी अपेक्षा अनन्त और अक्षरोंकी गणनासे संख्यात प्रमाण जानना । यह ग्रन्थका परिमाण शिष्योंकी बुद्धिको विकसित करता है ॥४७॥

इस प्रकार ग्रन्थका प्रमाण कहा । आगे ग्रन्थका नाम कहते हैं—भव्य जीवोंको जीवादि तत्त्वोंका प्रकाशन करनेके लिए यह टीका ग्रन्थ उत्कृष्ट दीपकके तुल्य है, इसलिए इसका सार्थक नाम जीवतत्त्वप्रदीपिका कहा है ॥४८॥

ग्रन्थका नाम कहा । अब ग्रन्थकर्ताका कथन करते हैं—

अर्थकर्ता और ग्रन्थकर्ताके भेदसे कर्ताके दो भेद हैं । उनमेंसे अर्थकर्ताका कथन द्रव्य आदि चार प्रकारोंसे करते हैं ॥४९॥

---

१. ति. प. १।५२ । २. क आसरीस° । ३. ति. प. १।५३ । क विविहट्ठेहि । ४. भव्वाण जेण एसा तेलोक्क पयासणे परमदीवा ।—ति. प. १।५४ । ५. क दीव इदि ॥४८॥ ग्रंथनाम । ६. ति. प. १।५५ । ७. क प्रभाशिष्या° ।

[1]सेदरजादिमलेणं [2]रत्तच्छिकडक्खबाणमोक्खेहिं ।
दुयपहुडि देहदोसेण [3]संततमदूसिदसरीरो ॥५०॥

स्वेदरजःप्रभृतिमलेन च [4]रक्ताक्षिकटाक्षबाणमोक्षैरेतत्प्रभृतिदेहदोषैः संततमदूषितशरीरः ॥

[5]आदिम [6]संघणणजुदो समचउरस्संगचारुसंठाणो ।
दिव्ववरगंधधारी पमाणठिद [7]रोमणहरुवो ॥५१॥ ५

आद्यसंहननयुतः समचतुरस्राङ्गचारुसंस्थानः । दिव्यवरगन्धधारी प्रमाणस्थितरोमनखरूपः ॥

[8]णिब्भूसणाउहंबर [9]भीदो सोम्माणणादिदिव्वतणू ।
अट्ठुत्तरसहस्सप्पमाणवरलक्खणोपेदो ॥५२॥

निर्भूषणायुधाम्बरभीतिः सौम्याननादिदिव्यतनुः । अष्टा[10]ग्र्यधिकसहस्रप्रमाणवर- १०
लक्षणोपेतः ॥

[11]आजकविहउवसग्गेहिं णिच्चविमुक्को कसायपरिहीणो ।
[12]छुहपहुडिपरीसहोहिं [13]परिचत्तो रायदोसेहिं ॥५३॥

देवमनुष्यतिर्यगचेतन-चतुर्विधोपसर्गैर्नित्यं [14]विमुक्तः । कषायपरिहीणः क्षुत्प्रभृतिपरीषहैः रागद्वेषैश्च परित्यक्तः ॥ १५

[15]जोयणपमाणसंठिद तिरियामरमणुवणिवह पडिबोहो ।
मिदुमहुरगभीरतरा विसदट्ठसयसयलभासाहिं ॥५४॥

मृदुमधुरगम्भीरतरविशदातिशयसकलभाषाभिर्योजनप्रमाणसंस्थिततिर्यगमरमनुजनिवह-प्रतिबोधः ॥

[16]अट्ठरस महाभासा खुल्लयभासाइ सत्तसयसंखा । २०
अक्खर अणक्खरप्पयसण्णीजीवाण सयलभासाओ ॥५५॥

अष्टादशमहाभाषाः क्षुल्लकभाषाः सप्तशतसंख्याः । अक्षरानक्षरात्मकसंज्ञिजीवानां सकलभाषाः ॥

प्रातिहार्योपेतः समस्तसुरनरेन्द्रादिभिः समर्चितचरणसरोजस्त्रिभुवनैकनाथोऽष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषा-

---

जिनका शरीर पसीना, धूल आदि मलसे तथा लाल नयन, कटाक्ष रूपी बाणोंको मारना, २५
आदि शारीरिक दोषोंसे सदा अदूषित है, वज्रर्षभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान रूप सुन्दर आकारसे युक्त है, उत्कृष्ट दिव्य गन्धका धारी है, रोम और नख बढ़ते नहीं हैं, भूषण, आयुध, वस्त्र और भयसे रहित हैं, सौम्य मुख आदिसे युक्त दिव्य रूप है, एक हजार आठ उत्कृष्ट लक्षणोंसे शोभित है। देव मनुष्य तिर्यञ्च और अचेतन कृत चार प्रकारके उपसर्गोंसे सदा रहित है। कषाय रहित है। भूख-प्यास आदि परीषहोंसे तथा राग-द्वेषसे ३०
रहित है। अति कोमल मधुर गम्भीर और स्पष्ट अतिशयोंसे युक्त सकल भाषात्मक दिव्य ध्वनिके द्वारा एक योजन प्रमाण क्षेत्रमें स्थित तिर्यंच देव और मनुष्योंके समूहको प्रति-

---

१. ति. प. १।५६। २. क रत्तेच्छेकडक्ख°। ३. क रक्ताक्षे कटाक्षेबाण। ४. ति. प. १।५७। ५. क संघणण°। म सघडण°। ६. क °माणछिद°। ७. म संघन°। ८. ति. प. १।५८। ९. म भेदो। १०. म °ष्ट्यधि°। ११. ति. प. १।५९। १२. क खुद्दु°। १३. क सरि°। १४. म नित्यवि°। १५. ति. प. १।६०। १६. ति. प. १।६१।

एदासि भासाणं तालुवदंतोट्ठकंठ वावारं ।
परिहरिय एक्ककालं भव्वजणाणंदकरभासो ॥५६॥

एतासां भाषाणां तालुदन्तोष्ठकण्ठव्यापारं परिहृत्यैककालं यथा भवति तथा भव्यजनानन्दकरभाषः ॥

भवणवेंतरजोइसियकप्पवासीहि केसवबलेहिं ।
विज्जाहरेहि चक्कीपमुहेहिं णरेहिं तिरिएहिं ॥५७॥

भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिभिः केशवबलैर्विद्याधरैश्चक्रिप्रमुखैर्नरैस्तिर्यग्भिः ॥

एदेहिं अण्णेहि विरचियचरणारविंदजुगपूजो । श्री सुविधिसागर जी महाराज
विदुसयलत्थसारो महवीरो अत्थकत्तारो ॥५८॥

एतैरन्यैर्विरचितचरणारविन्दयुगपूजो । दृष्टसकलार्थसारो महावीरोऽर्थकर्त्ता स्यात् ॥

द्रव्यविशेषार्थकर्ता ।

सुरखेयरमणहरणे गुणणामे पंचसेलणयरम्मि ।
विउलम्मि पव्वदवरे वीरजिणो अत्थकत्तारो ॥५९॥

सुरखेचरमनोहरे गुणनाम्नि पञ्चशैलनगरे विपुले पर्वतवरे स्थित्वा वीरजिनोऽर्थकर्त्ता ॥

क्षेत्रविशेषार्थकर्त्ता ।

एत्थावसप्पिणीए चउत्थकालस्स चरिमभागम्मि ।
तेत्तीसवास अडमासं पण्णरसदिवससेसम्मि ॥६०॥

अत्र भरतक्षेत्रेऽवसर्पिण्यां चतुर्थकालस्य चरमभागे त्रयस्त्रिंशद्वर्षाष्टमास-पञ्चदशदिवसशेषे ॥

[10]वासस्स पढमसासे[12] सावणणामम्मि बहुलपडिवाए[12] ।
अभिजिदणक्खत्तम्मि य उप्पत्ती धम्मतित्थस्स ॥६१॥

संज्ञयक्षरानक्षरभाषात्मकसर्वभाषाकुभाषासुभाषासंज्ञिजीवाक्षरानक्षरात्मकसकलभाषाः तालुदन्तोष्ठकण्ठव्यापारमन्तरेण युगपत्सर्वोत्तरप्रतिपादकदिव्यध्वन्युपेतो

बोधित करता है। अठारह महाभाषा, सातसौ क्षुद्र भाषा और संज्ञी जीवोंकी अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक समस्त भाषा इन भाषाओंको तालु, दन्त, ओष्ठ और कण्ठके व्यापारके बिना एक ही समयमें भव्य जीवोंको आनन्द करते हुए प्रयोग करता है ॥५०-५६॥

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी देवोंके द्वारा तथा नारायण, बलभद्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि मनुष्यों, तिर्यंचों तथा दूसरे जीवोंके द्वारा जिनके चरण कमल पूजे जाते हैं और जिन्होंने समस्त पदार्थोंके रहस्यको देखा है, वे भगवान् महावीर अर्थकर्ता हैं ॥५७-५८॥

यह द्रव्य रूपसे अर्थकर्ताका कथन हुआ।

देवों और विद्याधरोंसे शोभित सार्थक नामवाले पंचशैल नगरमें विपुलाचल पर स्थित होकर वीरजिनने उपदेश दिया ॥५९॥

यह क्षेत्रकी अपेक्षा अर्थकर्ताका कथन हुआ।

इस भरत क्षेत्रमें अवसर्पिणीके चतुर्थकालके अन्तिम भागमें तेंतीस वर्ष आठ मास

---

१. ति. प. १।६२। २. ति. प. १।६३। ३. ति. प. १।६४। ४. म °वुग°। ५. म °लद्धसा°। ६. म °कर्ता। ७. ति. प. १।६५। ८. म °नाम। ९. ति. प. १।६८। १०. ति. प. १।६९। ११. क °मदुमा°। १२. क पदेवाए।

वर्षस्य प्रथममासे श्रावणनाम्नेये बहुलप्रतिपद्दिनेऽभिजितनक्षत्रे धर्मतीर्थस्योत्पत्तिश्च । कालविशेषेण वर्द्धमानस्वामिनोऽर्थकर्तृत्वं निरूपितम् ।

णाणावरणप्पहुडियणिच्छयववहारपाय अविसयए ।
संजादेण अणंतेणाणेण दंसणेण सोक्खेणं ॥६२॥
विरिएण तहा खाइय सम्मत्तेणं[3] पि दाणलाहेहिं । ५
भोगोपभोगणिच्छयववहारेहिं च परिपुण्णो ॥६३॥

ज्ञानावरणप्रभृतीनां निश्चयव्यवहारापायातिशयेन संजातानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यैस्तथा क्षायिकसम्यक्त्वदानलाभभोगोपभोगनिश्चयव्यवहारैश्च परिपूर्णः ॥

[5]दंसणमोहे णट्ठे घादित्तिदये चरित्तमोहम्मि ।
सम्मत्तणाणदंसणवीरियचरिया य होंति खइयाइं ॥६४॥ १०

दर्शनमोहे घातित्रितये चारित्रमोहे नष्टे यथासंख्यं सम्यक्त्वं ज्ञानदर्शनवीर्याणि चारित्रं च क्षायिकाणि भवन्ति ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जादे अणंतणाणे णट्ठे छदुमट्ठिदम्हि णाणम्मि ।
णवविधपदत्थसारा दिव्वझुणी कहइ सुत्तत्थं ॥६५॥

अनन्तज्ञाने जाते सति छद्मस्थिते ज्ञाने नष्टे सति नवविधपदार्थसारो दिव्यध्वनिः कथयति सूत्रार्थम् ॥ १५

अण्णेहि अणंतेहिं गुणेहि जुत्तो विसुद्धचारित्तो ।
भवभयभंजण[10] वच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥६६॥

अन्यैरनन्तैर्गुणैर्युक्तो विशुद्धचारित्रो भवभयभञ्जनदक्षो महावीरोऽर्थकर्ता ॥

द्वादशसभासेवितो भगवान् श्रीवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेवः, ग्रन्थकर्ता तदर्थज्ञानविज्ञानसर्द्धिसमृद्धगौतमस्वामी, २०

पन्द्रह दिन शेष रहने पर वर्षके प्रथम मास श्रावणके कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन अभिजित नक्षत्रमें धर्मतीर्थकी उत्पत्ति हुई ॥६०-६१॥

यह कालकी अपेक्षा वर्धमान स्वामीके अर्थकर्ता होनेका कथन किया ।

ज्ञानावरण आदि निश्चय और व्यवहार रूप पापकर्मोंका अत्यन्त विनाश होनेसे प्रकट हुए अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, और अनन्तवीर्य तथा क्षायिक सम्यक्त्व, २५
दान, लाभ, भोग, उपभोग इन निश्चय और व्यवहाररूप लब्धियोंसे परिपूर्ण ॥६२-६३॥

दर्शनमोह, चारित्रमोह, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मके नष्ट होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन और क्षायिक चारित्र होते हैं ॥६४॥

अनन्त ज्ञानके प्रकट होनेपर और छद्मस्थ ज्ञानके नष्ट होनेपर नौ प्रकारके पदार्थोंके सारको लिये हुए दिव्यध्वनि सूत्रार्थको कहती है ॥६५॥ ३०

अन्य भी अनन्त गुणोंसे युक्त, विशुद्ध चारित्रसे सम्पन्न तथा संसारके भयका विनाश करनेमें प्रवीण भगवान् महावीर अर्थकर्ता हैं ॥६६॥

---

१. ति. प. १।७१-७२ । क णाणवरणं° । २. म °तं णाणाणं । ३. म °त्तेणापि । ४. म °वीर्यस्तथा । ५. ति. प. १।७३ । ६. क क्षायीणि । ७. ति. प. १।७४ । ८. क °सारो । ९. ति. प. १।७५ । १०. क °वत्थो, म °वत्तो । ११. क °रनन्तगु° । ३५

भावविषे[विशेषे]णार्थकर्ता प्रतिपादितः ॥

महवीर भासियत्थो तँसि खेत्तम्मितत्थ काले य ।
खओवसमविवड्ढिबचउरमलमईहिं पुण्णेण ॥६७॥
लोयालोयाण तहा जीवाजीवाण विविहविसएसु ।
संदेहणासणत्थं उवगयसिरिवीरचलणमूलेण ॥६८॥
विपुले गोदमगोत्ते जादेणं इंदभूदिणामेण ।
चउवेदपारगेण विप्पेण विसुद्धसीलेण ॥६९॥
भावसुदपज्जएणं परिणदमदिणा य बारसंगाणं ।
चोद्दसपुव्वाण तहा एक्कमुहुत्तेण विरचणा विहिदा ॥७०॥

गाथाचतुष्टयं ॥

महावीरभाषितार्थस्तस्मिन्काले तत्रैव क्षेत्रे च क्षयोपशमविवर्द्धितचतुरमलमतिभिः पूर्णेन ॥ लोकालोकानां तथा जीवाजीवानां विविधविषयेषु सन्देहनाशनार्थमुपगतश्रीवीरचलनमूलेन ॥ विपुले गौतमगोत्रे जातेनेन्द्रभूतिनाम्ना चतुर्वेदपारगेण विप्रेण विशुद्धशीलेन ॥ भावश्रुतपर्यायेण परिणतमतिना द्वादशाङ्गानां चतुर्दशपूर्वाणां रचना मुहूर्तेनैकेनैव विहिता ॥

इय मूलतन्तकत्ता सिरिवीरो इंदभूविविप्पवरो ।
उवतंते कत्तारो अणुतंते सेस आइरिया ॥७१॥

अयं मूलतन्त्रकर्त्ता श्रीवीरस्वामी । उपतन्त्रे कर्त्ता इन्द्रभूतिविप्रवरोऽनुतन्त्रे शेषाचार्याः कर्त्तारः ॥

णिण्णट्ठरायदोसा महेसिणो दिव्वतंतकत्तारा ।
किं कारणं पभणिदा कहिदुं सुत्तस्स पामण्णं ॥७२॥

निर्नष्टरागद्वेषा महर्षयः दिव्यतन्त्रकर्त्तारः । किमर्थं प्रभणिताः कथयितुं सूत्रस्य प्रामाण्यं ॥

उत्तरग्रन्थकर्ता तदनुक्रमधराविनष्टसूत्रार्थरागादिदोषरहितमहामुनिगणः ।

इस प्रकार भावकी अपेक्षा अर्थकर्ताका कथन किया ।

उसी कालमें, उसी क्षेत्रमें क्षयोपशमसे वृद्धिको प्राप्त चार निर्मल ज्ञानसे परिपूर्ण, तथा लोक अलोक और जीव-अजीव सम्बन्धी विविध विषयोंमें सन्देहको दूर करनेके लिए भगवान् महावीरके पादमूलमें आये हुए, महान् गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए, चारों वेदोंमें पारंगत विशुद्ध शीलवान् इन्द्रभूति नामक ब्राह्मणने, जिन्हें भाव श्रुतज्ञान प्राप्त हुआ था, भगवान् महावीरके द्वारा कहे गये अर्थको लेकर एक ही मुहूर्तमें बारह अंगों और चौदह पूर्वोंकी रचना की ॥६७-७०॥

इस प्रकार मूल तन्त्रकर्ता श्री महावीर स्वामी हुए। इन्द्रभूति ब्राह्मण श्रेष्ठ उपतन्त्रकर्ता हुए और शेष आचार्य अनुतन्त्रकर्ता हुए। तथा राग-द्वेषसे रहित महर्षिगण दिव्य तन्त्रकर्ता हुए ॥७१॥

शंका—सूत्रका प्रामाण्य किसलिए कहा है ?

१. ति. प. १।७६-७९ । २. क तासिंस । ३. क °विवत्थिद° । ४. क °णम्मिप्पेण । ५. ति. प. १।८० । ६. ति. प. १।८१ । ७. म °दोषा महर्षिणो ।

मार्गदर्शक ... आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

[1]जो ण पमाणणएहि णिक्खेवणं णिरिक्खदे अट्ठं।
तस्सायुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ॥७३॥
यः प्रमाणनयनिक्षेपैरर्थान्नाभिसमीक्षते। तस्यायुक्तं युक्तं युक्तमयुक्तं च प्रतिभाति॥
[2]णाणं होदि पमाणं णयो वि णादुस्स हिदयभावत्थो।
णिक्खेओ वि उवाओ जुत्तीए अत्थपडिगहणं ॥७४॥

प्रमाणं सम्यग्ज्ञानं भवति नयोऽपि ज्ञातुर्हृदयभावार्थः निक्षेपोऽप्युपायो युक्त्यार्थप्रतिग्रहणमिति॥

अथ शास्त्रादौ उपकारस्मरणं किं कारणमिति न मन्यध्वम्।
'श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः॥' इति कथनात्। अथवा।
'अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः
प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धै-
र्नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥' इति वचनाच्च।

किं चास्तां तावद्विशिष्टविवेकवतां पुंसामुपकारस्मरणं सैतन्यमात्रवतामेकेन्द्रियाणामपि दृश्यते ह्युपकारस्मरणमित्युत्प्रेक्षा च।

ननु शास्त्रादावुपकारस्मरणं किमर्थमिति न वाच्यं। "श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः। इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः॥" इति कथनात्। "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः, प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्। इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥" इति वचनाच्च।

समाधान—

जो प्रमाण, नय-निक्षेपके द्वारा अर्थका विचार नहीं करता, उसे अयुक्त बात युक्त और युक्त बात अयुक्त प्रतीत होती है ॥७३॥

सम्यग्ज्ञान प्रमाण होता है। ज्ञाताके हृदयके अभिप्रायको नय कहते हैं। निक्षेप जाननेका उपाय है। इस प्रकार युक्तिसे अर्थको ग्रहण करना चाहिए ॥७४॥

शंका—शास्त्रके आदिमें उपकारका स्मरण किस कारण किया जाता है?

समाधान—ऐसा तर्क नहीं करना चाहिए। क्योंकि आगममें कहा है—

'परमेष्ठीके प्रसादसे श्रेयोमार्गकी सम्यक् सिद्धि होती है। इसलिए मुनिश्रेष्ठ शास्त्रके आदिमें उनके गुणोंका स्तवन करते हैं॥

और भी कहा है—

'इष्ट फलकी सिद्धिका उपाय सम्यग्ज्ञान है। वह सम्यग्ज्ञान शास्त्रसे प्राप्त होता है। शास्त्रकी उत्पत्ति आप्त पुरुषसे होती है। इसलिए परमेष्ठीके प्रसादसे अथवा शास्त्रके प्रसादसे सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पुरुषोंके द्वारा वह आप्त पूज्य होते हैं; क्योंकि साधु पुरुष किये गये उपकारको नहीं भूलते॥'

---

१. ति. प. १।८२। २. क णिरक्ख°। ३. ति. प. १।८३। ४. आ. प. २। ५. प्रबुद्धैर्न—त. श्लो. पृ. २। ६. म°णां दृश्यते।

'प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।
उदकममृतकल्पं दद्युराजीवितान्तं,
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥' उक्तं च तदेतत्सर्वम् ।
'विघ्नं नाशयितुं सदाचरितमन्वाचेष्टितुं चाथवा,
नास्तिक्यं परिहर्तुमभ्युदयसंप्राप्तेः परं कारणम् ।
पुण्यं चार्जयितुं विशुद्धमतिभिः पूर्वोपकाराय वा,
शास्त्रादौ क्रियते जिनेन्द्रनमनं मुख्यं वरं[२] मंगलम्' ॥ इति

सिद्धं सुद्धं पणमिय[३] जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं ।
गुणरयणभूषणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥

सिद्धं शुद्धं प्रणम्य जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रमकलंकं । गुणरत्नभूषणोदयं जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्यामि ॥

अनयाः मंगलगाथाया अर्थः कथ्यते । वक्ष्यामि करिष्यामि । किम् । प्ररूपणं निरूपणं व्याख्यानम् । अथवा प्ररूपयतीति प्ररूप्यतेऽनेनेति वा प्ररूपणो ग्रन्थस्तम् । कस्य प्ररूपणम् । जीवस्य । चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यत्यजीवदिति जीव आत्मा । तस्य जीवस्य भेदप्रतिपादकं शास्त्रमहं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञा । अनया शास्त्रस्य संबन्धाभिधेयशक्त्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवत्त्वात् प्रेक्षावद्भिरा-

---

अतएव विघ्नं विनाशयितुं शिष्टाचारं परिपालयितुं नास्तिक्यं परिहर्तुमभ्युदयकारणपरमपुण्यमुपार्जयितुं कृतोपकारस्मरणार्थं च शास्त्रादौ जिनेन्द्रादिनमस्कारादिरूपमुख्यमंगलमाचरयन्नभिधेयप्रतिज्ञां प्रकाशयन् सिद्धमित्यादिगाथासूत्रमाह—

वक्ष्यामि—करिष्यामि, किं ? प्ररूपणं—निरूपणं व्याख्यानं, अथवा प्ररूपयतीति प्ररूप्यतेऽनेनेति वा प्ररूपणो ग्रन्थस्तं, कस्य प्ररूपणं ? जीवस्य । चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यत्यजीवदिति जीवः—आत्मा, तस्य

तथा विशिष्ट विवेकशाली पुरुषोंके द्वारा उपकारका स्मरण तो दूर रहो, चैतन्यमात्र वाले एकेन्द्रिय जीवोंके भी उपकारका स्मरण देखा जाता है । कहा है—'प्रथम अंकुर अवस्थामें पिये गये थोड़ेसे जलका स्मरण रखते हुए नारियलके वृक्ष अपने मस्तक पर नारियलोंका बोझा लादकर मनुष्योंको जीवन पर्यन्त अमृतके तुल्य जल प्रदान करते हैं । ठीक ही है साधुजन किये हुए उपकारको नहीं भूलते ।'

विघ्नोंका नाश करनेके लिए, अथवा सदाचरणका अनुपालन करनेके लिए अथवा नास्तिकताके परिहारके लिए और अभ्युदयकी प्राप्तिका उत्कृष्ट कारण पुण्यका उपार्जन करनेके लिए अथवा किये हुए पूर्व उपकारके लिये विशुद्ध बुद्धिसे सम्पन्न पुरुष शास्त्रके आदिमें जिनेन्द्रको नमस्कार करते हैं जो मुख्य उत्कृष्ट मंगल है । उसके लिए गाथा-सूत्र कहते हैं—

मैं प्ररूपण अर्थात् व्याख्यानको कहूँगा । अथवा, जो अर्थका प्ररूपण करता है, या जिसके द्वारा अर्थका प्ररूपण किया जाता है, उसे प्ररूपण कहते हैं । इस व्युत्पत्तिके अनुसार प्ररूपणका अर्थ होता है ग्रन्थ । अतः मैं ग्रन्थको कहूँगा । किसका प्ररूपण करोगे उसमें ? जो चार प्राणोंसे जीता है, जियेगा और भूतकालमें जिया था, वह जीव अर्थात् आत्मा है । उस

---

१. म विनतं । २. म परं । ३. म पणमिय । ४. क °जीविष्यं ।

रणीयत्वमावेदितम्। किं कृत्वा। प्रणम्य नमस्कृत्य। कम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। नेमिचन्द्रं जिनेन्द्रम्। कथंभूतम्। सिद्धं समस्तभुवनविख्यातम्। पुनरपि कथंभूतम्। शुद्धं द्रव्यभावात्मकघातिकर्मरहितम्। तथापि क्षुधादिदोषसंभवं वदन्तं प्रत्याह—अकलङ्कमिति। न विद्यन्ते कलङ्काः क्षुधादयोऽष्टादशदोषा यस्यासावकलङ्कस्तम्। भूयः कथंभूतम्। गुणरत्नभूषणोदयं गुणा अनन्तज्ञानादयो गुणा एव रत्नभूषणानि तेषामुदयः प्रकर्षः परमकाष्ठा यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्। इत्यसाधारणविशेषणैरशेषातिशयप्रकाशिभिरमीभिरन्येषामाप्ततावार्तामप्यसहमानैरस्यैव भगवतः परमाप्तता परमकृतकृत्यताऽस्मदादीनामकृतकृतकृत्यानां परमशरण्यतां च नेमिचन्द्रेण प्रतिपादितेत्यवसेयम्॥

अथवा प्रणम्य। कम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। सकलात्मप्रदेशनिबिडनिबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्तज्ञानादिनवकेवललब्धित्वाज्जिनः, निरुपमानपरमैश्वर्यसंपन्नत्वादिन्द्रः, जिन-

---

जीवस्य भेदप्रतिपादकं शास्त्रमहं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञा। अनया शास्त्रस्य संबन्धाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवत्त्वात् प्रेक्षावद्भिरादरणीयत्वमावेदितम्। किं कृत्वा? प्रणम्य नमस्कृत्य। कं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं नेमिचन्द्रं जिनेन्द्रं, कथंभूतं सिद्धं—समस्तभुवनविख्यातं, पुनरपि कथंभूतं? शुद्धं—द्रव्यभावात्मकघातिकर्मरहितं, तथापि क्षुधादिदोषसंभवं वदन्तं प्रत्याह—अकलङ्कमिति। न विद्यन्ते कलङ्काः—क्षुधादयोऽष्टादशदोषा यस्यासावकलङ्कः तं। भूयः कथंभूतं गुणरत्नभूषणोदयं—गुणाः—अनन्तज्ञानादयस्त एव रत्नभूषणानि गुणरत्नभूषणानि तेषां उदयः—प्रकर्षः परमकाष्ठा यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं, इत्यसाधारणविशेषणैरशेषातिशयप्रकाशिभिः अमीभिः अन्येषामाप्ततावार्तामप्यसहमानैः अस्यैव भगवतः परमाप्तता परमकृतकृत्यता अस्मदादीनां अकृतकृतकृत्यानां परमशरणता च प्रतिपादिता चेत्यवसेयं। अथवा—

प्रणम्य, कं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं सकलात्मप्रदेशनिबिडनिबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानन्त-

---

जीवके भेदके प्रतिपादक शास्त्रको मैं कहूँगा। यह प्रतिज्ञा है। इसके द्वारा शास्त्रमें सम्बन्ध अभिधेय, शक्यानुष्ठान और इष्ट प्रयोजनको सूचित करके इस शास्त्रको बुद्धिमानोंके द्वारा आदरणीय बतलाया है। आशय यह है कि जिस शास्त्रमें ये होते हैं, वे ही शास्त्र बुद्धिमानोंके द्वारा मान्य होते हैं। जहाँ जैसा सम्बन्ध हो वैसा ही अर्थ हो, इसे सम्बन्धाभिधेय कहते हैं। जिसमें कही हुई बातका आचरण किया जा सकता हो, उसे शक्यानुष्ठान कहते हैं। और जो हितकारी प्रयोजनको लिये हो, उसे इष्ट प्रयोजन कहते हैं। जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्रको नमस्कार करके कहूँगा। वे जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र सिद्ध अर्थात् समस्त भुवनमें विख्यात हैं। शुद्ध अर्थात् द्रव्य और भावरूप घातिकर्मसे रहित हैं। फिर भी जो यह सम्भावना करते हैं कि उनमें क्षुधा आदि दोष होते हैं; उनके लिए कहते हैं कि वे अकलंक हैं अर्थात् क्षुधा आदि अठारह दोषरूप कलंक उनमें नहीं हैं। तथा अनन्त ज्ञानादि गुणरूप रत्नभूषणोंकी उनमें पराकाष्ठा होनेसे वे 'गुणरत्नभूषणोदय' हैं। समस्त अतिशयोंका प्रकाश करनेवाले इन असाधारण विशेषणोंसे, जो कि दूसरोंके आप्त होनेकी चर्चाको भी सहन नहीं करते, इन्हीं भगवान् जिनेन्द्रकी परमाप्तता, परमकृतकृत्यता, और हमारे-जैसे अकृतकृत्योंकी परमशरणताका प्रतिपादन आचार्य नेमिचन्द्रने किया है, ऐसा जानना।

इसके ही अन्य अर्थ करते हैं—समस्त आत्माके प्रदेशोंमें निबिड़रूपसे बँधे जो

---

१. क प्रणम्य। २. क °वरनेमिचंद्रं। जिनेन्द्रं। ३. क गुणा एव। ४. म °ता च प्रतिपादितमित्यं°। ५. क 'लघटन'।

इत्यासाविन्द्रश्च जिनेन्द्रः, स्वकीयावबोधप्रभावाभिव्याप्तत्रिकालत्रिभुवनविस्तार इति यावत्। वश्च रश्च वरौ चतुर्विंशतिरित्यर्थः। निजाद्भुतपुण्यमाहात्म्येन नागेन्द्रनरेन्द्रदेवेन्द्रवृन्दं निजपादारविन्द[1]द्वन्द्वे नमयतीति नेमिर्यदि[2] वा तीर्थरथप्रवर्तनपरत्वान्नेमिरिव नेमिस्तीर्थकरसमुदायश्चन्द्रयत्याह्लादयति लोकत्रयनेत्रकैरवबनानीति चन्द्रस्तथाविधरूपसौन्दर्यसंपन्नोऽयं[3] यथाविधेन तुलायामिन्द्रादिसौन्दर्यसारसर्वस्वमपि परमाणूयते। नेमिश्चासौ चन्द्रश्च नेमिचन्द्रः। वरसंख्याविशिष्टो नेमिचन्द्रो वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तं वृषभादिवीरावसानतीर्थंकरनिकुरंबमित्यभिप्रायः। शेषविशेषणानां पूर्ववत्संबन्धः॥

अथवा प्रणम्य नमस्कृत्य। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। जयति भिनत्ति विदारयति कर्मभूभृन्निवहमिति जिनः। 'नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्त्तते' इति न्यायेनेन्द्रभूतेर्देवेन्द्रस्य वा। वरो गुरुरिन्द्रवरः

---

१० ज्ञानादिनवकेवललब्धित्वात् जिनः, निरुपमानपरमैश्वर्यसंपन्नत्वादिन्द्रः, जिनश्चासौ इन्द्रश्च जिनेन्द्रः स्वकीयावबोधप्रभावाभिव्याप्तत्रिकालत्रिभुवनविस्तार इति यावत्। वश्च रश्च वरौ चतुर्विंशतिरित्यर्थः। निजाद्भुतपुण्यमाहात्म्येन नागेन्द्रनरेन्द्रदेवेन्द्रवृन्दं निजपादारविन्दद्वन्द्वे नमयति इति नेमिः। यदि वा तीर्थरथप्रवर्तनपरत्वात् नेमिरिव नेमिः तीर्थंकरसमुदायः। चन्द्रयति—आह्लादयति लोकत्रयनेत्रकैरवबनानीति चन्द्रस्तथाविधरूपसौन्दर्यसंपन्नोदयः यद्रूपसंपदातुलायां इन्द्रादिसौन्दर्यसारसर्वस्वमपि परमाणूयते। नेमिश्चासौ चन्द्रश्च नेमिचन्द्रः वरसंख्या१५ विशिष्टो नेमिचन्द्रो वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं। वृषभादिवीरावसानतीर्थंकरनिकुरम्बमित्यभिप्रायः। शेषविशेषणानां पूर्ववत्संबन्धः। अथवा—

प्रणम्य—नमस्कृत्य, कं ? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं, जयति—भिनत्ति विदारयति कर्मभूभृन्निवहमिति जिनः "नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते" इति न्यायेन इन्द्रस्य—इन्द्रभूतेः देवेन्द्रस्य वा वरः—गुरुः इन्द्रवरः

घातिकर्मरूप मेघपटल, उसके विघटनसे प्रकट हुए अनन्तज्ञान आदि नौ केवललब्धियोंसे २० सम्पन्न होनेसे जिन और जिसकी कोई उपमा नहीं,ऐसे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेसे इन्द्र होनेसे जिनेन्द्र हैं। अर्थात् जिन्होंने अपने ज्ञानकी प्रभासे तीनों कालों और तीनों लोकोंके विस्तारको व्याप्त किया है। 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि गणनाके अनुसार 'व' से चार और 'र' से दो लिया जाता है क्योंकि 'य' से 'र' दूसरा और 'व' चतुर्थ अक्षर है। 'अंकानां वामतो गतिः' नियमके अनुसार इसे पलट देनेसे बरसे चौबीस संख्याका बोध होता है। २५ अपने अद्भुत पुण्य माहात्म्यसे नागेन्द्र, नरेन्द्र और देवेन्द्रोंके समूहको अपने चरणकमल युगलमें नमन करानेसे नेमि हैं। अथवा तीर्थरूपी रथका प्रवर्तन करनेमें तत्पर होनेसे जो नेमिके समान है,वह नेमि है अर्थात् तीर्थंकर समुदाय। तीनों लोकोंके नेत्ररूप श्वेतकमलोंके बनको आह्लादयुक्त करनेसे चन्द्र हैं अर्थात् जिनके इस प्रकारके रूपसौन्दर्य सम्पन्नताका उदय है कि जिस रूपसम्पदाकी तुलनामें इन्द्र आदिके सौन्दर्यके सारका सर्वस्व भी परमाणु३० के तुल्य प्रतीत होता है। नेमि, वही हुए चन्द्र, वर संख्या विशिष्ट नेमिचन्द्र वरनेमिचन्द्र। जिनेन्द्र ही हुए वरनेमिचन्द्र। अर्थात् वृषभजिनसे लेकर महावीरपर्यन्त तीर्थंकरोंके समुदायको नमस्कार करके। शेष विशेषणोंका सम्बन्ध पूर्ववत् जानना।

जो कर्मरूपी पर्वतोंका भेदन करता है, वह जिन है। 'नामके एकदेशसे नामका ग्रहण होता है' इस न्यायसे इन्द्र अर्थात् इन्द्रभूति अथवा देवेन्द्र, उनका वर अर्थात् गुरु, इन्द्रवर

---

३५ १. म °इंदं। २. क नेमिर्यदेवा। ३. म °सोदयतुलया°। ४. म °इत्यासौ। ५. म °विसेषाणां। ६. म वर्तत। ७. म °येन जिनेन्द्र°।

श्रीवर्द्धमानस्वामीत्यर्थः। नयत्यनश्वरपदं विनेयनिवहम् इति नेमिः। विश्वतत्त्वप्रकाशकत्वाच्चन्द्रवच्चन्द्रः। जिनश्चासाविन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। पूर्ववदन्यत्॥

अथवा। प्रणम्य। कम्। सिद्धं सिद्धो निष्ठितो निष्पन्नः कृतकृत्यः सिद्धसाध्य इति यावत्। तं सिद्धं सिद्धपरमेष्ठिनम्। जात्यपेक्षयाऽत्रैकवचनं तेन सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारेण सिद्धानामविशेषेण ग्रहणम्। कथंभूतम्। शुद्धं ज्ञानावरणाद्यष्टविधद्रव्यभावात्मककर्मरहितम्। भूयः कथंभूतम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं, अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापणहेतून् कर्मरातीन् जयतीति जिनः। इन्दनात् परमैश्वर्ययोगाद्राजते शोभत इतीन्द्रः। यथावस्थितमर्थं नयति परिच्छिनत्तीति नेमिर्बोधः। वरः परमानन्तरूपो नेमिर्यस्यासौ वरनेमिश्चन्द्रयते आह्लादते परमसुखमनुभवतीति चन्द्रः। सर्वत्र जात्यपेक्षयैकवचनम्। जिनश्चासाविन्द्रश्चासौ वरनेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। पुनरपि कथंभूतम्। अकलङ्कम्। न विद्यन्ते कलङ्काः परवादिपरिकल्पितदोषा यस्यासावकलङ्कस्तम्। पुनरपि कीदृशम्। गुणरत्नभूषणोदयम्। गुणाः परमावगाढसम्यक्त्वाद्यष्टसंख्याविशिष्टास्त एव रत्नभूषणानि तेषामुदयोऽनुभवनं प्रकृष्टा वा प्राप्तिर्यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्।

श्रीवर्धमानस्वामीत्यर्थः। नयति अनश्वरपदं विनेयनिवहमिति नेमिः। विश्वतत्त्वप्रकाशकत्वाच्चन्द्रवच्चन्द्रः, जिनश्चासाविन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्चासौ जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं पूर्ववदन्यत्। अथवा—

प्रणम्य, कं? सिद्धं–सिद्धः निष्ठितः निष्पन्नः कृत्यकृत्यः सिद्धसाध्य इति यावत्, तं सिद्धं–सिद्धपरमेष्ठिनं जात्यपेक्षयात्रैकवचनं तेन सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारेण सिद्धानां अविशेषेण ग्रहणं। कथंभूतं? शुद्धं–ज्ञानावरणाद्यष्टविधद्रव्यभावात्मककर्मरहितं। भूयः कथंभूतं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं–अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापणहेतून् कर्मरातीन् जयतीति जिनः, इन्दनात्–परमैश्वर्ययोगाद्, राजते–शोभत इति इन्द्रः, यथावस्थितमर्थं नयति–परिच्छिनत्ति इति नेमिः–बोधः, वरः–परमोऽनन्तरूपो नेमिर्यस्यासौ वरनेमिः, चन्द्रयति–आह्लादते परमसुखमनुभवतीति चन्द्रः, सर्वत्र जात्यपेक्षयैकवचनं। जिनश्चासौ इन्द्रश्चासौ वरनेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः,

---

अर्थात् श्रीवर्धमान स्वामी। शिष्यसमूहको अविनाशी पदपर ले जानेसे वे नेमि हैं तथा चन्द्रकी तरह विश्वके तत्त्वोंका प्रकाश करनेसे चन्द्र हैं;अतः जिन ही हुए इन्द्रवर, वही हुए नेमि और वही हुए चन्द्र। ऐसे जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र अर्थात् वर्धमान स्वामीको, इत्यादि पूर्ववत् लगाना।

अथवा सिद्धोंको नमस्कार करके। सिद्ध अर्थात् निष्ठित, सम्पन्न, कृतकृत्य, जिसने साध्यको सिद्ध कर लिया। उस सिद्ध अर्थात् सिद्धपरमेष्ठीको। यहाँ जातिकी अपेक्षा एकवचनका प्रयोग किया है।उससे सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारसे सिद्धोंका सामान्यरूपसे ग्रहण करना। वे सिद्ध शुद्ध हैं अर्थात् ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके द्रव्यभावरूप कर्मोंसे रहित हैं। तथा जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र[1] हैं। अनेक भवरूपी वनमें विषम संकटोंको प्राप्त करानेके कारण कर्मरूपी शत्रुओंको जो जीतता है,वह जिन है। इन्दन अर्थात् परम ऐश्वर्यके योगसे जो शोभित हो, वह इन्द्र है। जो पदार्थ जैसा है, उसको उसी रूपसे जो जानता है,वह नेमि अर्थात् ज्ञान है। वर अर्थात् उत्कृष्ट अनन्तरूप नेमि जिसके है, वह वरनेमि है। जो आह्लादयुक्त है अर्थात् परमसुखका अनुभव करता है, वह चन्द्र है। सर्वत्र जातिकी अपेक्षा, एकवचनका प्रयोग किया है। जिन ही हुआ इन्द्र, वही हुआ 'वर नेमि' और वही हुआ चन्द्र

---

१. क सर्वत्र प्रकारेण सिद्धा सर्वदा। २. म जयन्तीति जिनाः। ३. क शोभवत। ४. क आल्हादयते। ५. म °दमर्थं।

अथवा प्रणम्य । कम्[1] । तं आत्मानम् । तथा चाहुः—

'कः प्रजापतिरुद्दिष्टः को वायुरिति चोच्यते ।
कश्चन्द्रः स्वर्गमाख्याति क आत्मा च निगद्यते' ॥ इति ।

कथंभूतमात्मानम् । अकलं न विद्यते कला शरीरं यस्यासौ अकलस्तम् । पुनरपि कथंभूतम् । सिद्धं नित्यमनाद्यनिधनम् । भूयः कथंभूतम् । शुद्धं शुद्धनिश्चयनयविषयम् । पुनरपि कीदृशम् । जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम् । जिनानामसंयतसम्यग्दृष्टिप्रमुखानां इन्द्रः स्वामी परमाराध्यो जिनेन्द्रः । वरः सर्ववस्तुषु सारीभूतः । 'सारं यः सर्ववस्तूनां नमस्तस्मै चिदात्मने ।' इति वचनात् ।

नेमिचन्द्रो ज्ञानसुखस्वभावः रविबिम्बस्य प्रकाशोष्णस्वभाववत्तस्य तत्स्वभाववत्त्वात् । जिनेन्द्रश्चासौ वरश्चासौ नेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम् । पुनरपि कथंभूतम् । गुणरत्नभूषणोदयं गुणानां रत्नभूषणस्य रत्नवत्पूज्यस्य सम्यक्त्वस्योदय-उत्पत्तिर्यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम् ।

तथा चोक्तं—

'शमबोधवृत्ततपसां पात्राणामेष गौरवाधुर्यः ।
पूज्यं महामणिरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥' इति ।

न ह्यात्मतत्त्वोपलब्धिमन्तरेण सम्यक्त्वसिद्धिः ॥

तं । पुनरपि कथंभूतं ? अकलङ्कं—न विद्यन्ते कलङ्काः—परवादिपरिकल्पितदोषा यस्यासावकलङ्कः, तं । पुनरपि कीदृशं ? गुणरत्नभूषणोदयं—गुणाः—परमावगाढसम्यक्त्वाद्यष्टसंख्याविशिष्टाः, त एव रत्नभूषणानि, तेषां उदयः अनुभवनं प्रकृष्टा वा प्राप्तिर्यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं । अथवा—

प्रणम्य, कं—आत्मानं, कथंभूतं ? अकलं न विद्यते कला—शरीरं यस्यासौ अकलः, तं । पुनरपि कथंभूतं ? सिद्धं—नित्यमनादिनिधनं । भूयः कथंभूतं ? शुद्धं—शुद्धनिश्चयनयविषयं । पुनरपि कीदृशं ? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनानां—असंयतसम्यग्दृष्टिप्रमुखानां, इन्द्रः—स्वामी परमाराध्यो जिनेन्द्रः, वरः—सर्ववस्तुषु सारीभूतः, नेमिचन्द्रो ज्ञानसुखस्वभावः, जिनेन्द्रश्चासौ वरश्चासौ नेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं । पुनरपि कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं—गुणानां रत्नभूषणस्य—रत्नवत्पूज्यस्य सम्यक्त्वस्य उदयः—उत्पत्तिः, यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं । अथवा—

अर्थात् जिनेन्द्रवर-नेमिचन्द्र । परवादियोंके द्वारा कल्पित दोष नहीं हैं,अतः अकलंक है । तथा परमावगाढ सम्यक्त्व आदि आठ गुणरूपी रत्नभूषणोंका उदय अर्थात् अनुभवन या प्राप्ति होनेसे गुणरत्नभूषणोदय हैं । ऐसे सिद्धोंको इत्यादि लगा लेना ।

अथवा आत्माको नमस्कार करके । जो अकल अर्थात् शरीरसे रहित है । सिद्ध अर्थात् नित्य अनादि निधन है । शुद्ध अर्थात् शुद्ध निश्चयनयका विषय है । जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र है—जिन अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टी प्रमुखोंका इन्द्र अर्थात् स्वामी परमाराध्य जिनेन्द्र है । वर अर्थात् सब वस्तुओंमें सारभूत है, नेमिचन्द्र अर्थात् ज्ञान और सुख स्वभाव है । जिनेन्द्र ही हुआ वर, वही हुआ नेमिचन्द्र । तथा गुणरत्न भूषणोदय है—गुणोंका रत्नभूषण अर्थात् रत्नकी तरह पूज्य जो सम्यक्त्व उसकी जिससे उत्पत्ति होती है उस आत्माको

---

१. क कं आत्मा° । २. म शरीरं यस्यासौ न कलस्तं । ३. म रत्नभूषणो यस्य रत्नवत्पूज्यस्य उदय° ।
४. आत्मानु० १५ श्लो. ।

अथवा प्रणम्य। कम्। सिद्धं सिद्धपरमेष्ठिसमूहम्। कथंभूतम्। शुद्धं दग्धाष्टकर्ममलं[1] न केवलं सिद्धसमूहम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रम्। जिनेन्द्रोऽर्हत्समूहो वरा गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतयो भव्यपुण्डरीका एव नेमयो नक्षत्राणि तेषां चन्द्र इव चन्द्रः वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। अर्हत्परमेश्वरनिवहमित्यर्थः। कथंभूतम्। अकलङ्कं दूरीकृतत्रिषष्टिकर्ममलकलङ्कम्[3]। न केवलं तम्। गुणरत्नभूषणोदयं च गुणरूपाणि रत्नानि गुणरत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि, तान्येव भूषणान्याभरणानि तेषामुदयः समुदयो यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्। आचार्योपाध्यायसाधुवर्गमित्यर्थः।

अथवा प्रणम्य। कम् जीवस्य प्ररूपणम्। किंविशिष्टम्। सिद्धं सम्यग्गुरूपदेशपूर्वकत्वेनाखण्डप्रवाहरूपेणायातम्। पुनरपि कथंभूतम्। शुद्धं प्रमाणाविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन पूर्वापरप्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनादिविरोधैरबाधितम्। भूयः कथंभूतम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनेन्द्रः सर्वज्ञो वरः कर्ता यस्यासौ जिनेन्द्रवरः [illegible] इति यावत्। एतेन वक्तुः प्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यमुपदर्शितम्।

'यथा च पितृशुद्धापत्यशुद्धिरिह दृश्यते।
तथागमस्य विशुद्धत्वे भवेदागमशुद्धता॥' इति

प्रणम्य, कं? सिद्धं–सिद्धपरमेष्ठिसमूहं, कथंभूतं? शुद्धं–दग्धाष्टकर्ममलं, पुनः कथंभूतं जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं–जिनेन्द्रः–अर्हत्समूहः, वराः–गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतयो भव्यपुण्डरीकाः, त एव नेमयः–नक्षत्राणि तेषां चन्द्र इव चन्द्रः वरनेमिचन्द्रः। जिनेन्द्रश्चासौ वरनेमिचन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तं–अर्हत्परमेश्वरनिवहमित्यर्थः। कथंभूतं? अकलङ्कं–दूरीकृतत्रिषष्टिकर्ममलकलङ्कं। न केवलं तं, गुणरत्नभूषणोदयं च गुणरूपाणि रत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तान्येव भूषणानि–आभरणानि, तेषां उदयः–समुदयः, यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं, आचार्योपाध्यायसाधुवर्गमित्यर्थः। अथवा—

प्रणम्य, कं? जीवस्य प्ररूपणं, किंविशिष्टं? सिद्धं–सम्यग्गुरूपदेशपूर्वकत्वेन अखण्डप्रवाहरूपेण आयातं। पुनरपि कथंभूतं? शुद्धं–प्रमाणाविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन पूर्वापरप्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनादिविरोधैः अबाधितं। भूयः कथंभूतं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं–जिनेन्द्रः–सर्वज्ञः, वरः–कर्ता यस्यासौ जिनेन्द्रवरः–

नमस्कार करके इत्यादि। अथवा सिद्ध अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी समूहको नमस्कार करके। जो शुद्ध अर्थात् अष्टकर्मरूपी मलसे रहित हैं। तथा जिनेन्द्रवर-नेमिचन्द्रको नमस्कार करके—जिनेन्द्र अर्थात् अर्हत्समूह। वर अर्थात् गणधर, चक्रधर, इन्द्र आदि भव्यजीव, वही हुए नेमि अर्थात् नक्षत्र उनमें चन्द्रमाके समान जिनेन्द्रवर-नेमिचन्द्र अर्थात् अर्हत्परमेश्वरोंका समूह। जो अकलंक है—अर्थात् जिसने श्रेसठ कर्मप्रकृतिरूप मलकलंकको दूर किया है। उसको नमस्कार करके। तथा गुणरत्न भूषणोदयको नमस्कार करके अर्थात् गुणरूपी रत्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वे ही हुए भूषण उनका जिनके उदय अर्थात् समुदाय है ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु। इस तरह सिद्ध, अरहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधुरूप पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करके जीवके प्ररूपणको कहूँगा।

अथवा, जीवके प्ररूपणको नमस्कार करके। जो सिद्ध है अर्थात् सम्यक् गुरुओंके उपदेशपूर्वकपनेसे अखण्ड प्रवाहरूपसे चला आया है। शुद्ध है अर्थात् प्रमाणसे अविरुद्ध अर्थका प्रतिपादक होनेसे पूर्वापरविरोध, प्रत्यक्ष विरोध, अनुमान विरोध, आगम विरोध,

---

१. क °मलं केवलं। २. क °कस्तु एव। ३. म कर्मकलंकं।

यथावस्थितमर्थं नयति प्रतिपादयति द्योतयतीति नेमिः। चन्द्रयत्याह्लादयति विकाशयति शब्दार्थालंकाराभ्यां श्रोतृमनःकुमुदकुड्मलानीति चन्द्रः जिनेन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रस्तम्। एवमेवागमलक्षणं च।

'पूर्वापरैरविरुद्धादेर्व्यपेतो दोषसंहतेः।
द्योतकः सर्वभावानामाप्तव्याहृतिरागमः'॥ इति

पुनरपि किंविशिष्टम्। अकलङ्कं दूरोत्सारितशब्दार्थविषयदोषकलङ्कम्। पुनरपि कथंभूतम्। गुणरत्नभूषणोदयम्। गुणरत्नानां रत्नत्रयरूपाणां भूषणानामुदय उत्पत्तिः संपत्तिर्वा यस्मादस्मदादीनामसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तम्। तथा चैतिह्यम्।

'भावियसिद्धंताणं विणयरकरणिम्मलं हवइ णाणं।
सिसिरकरकरसरिच्छं हवइ चरित्तं सवसचित्तं॥७५॥

भावितसिद्धान्तानां दिनकरकरनिर्मलं भवति ज्ञानम्। शिशिरकरकरसदृक्षं भवति चरित्रं स्ववशचित्तम्॥

'मेरुव्व णिप्पकंपं णट्ठट्ठमलं तिमूढउम्मुक्कं।
सम्मद्दंसणमणुवममुप्पज्जइ पवयणब्भासा॥७६॥

मेरुवन्निष्प्रकम्पं नष्टाष्टमलं त्रिमूढोन्मुक्तम्। सम्यग्दर्शनमनुपममुत्पद्यते प्रवचनाभ्यासात्। इति।

अथवा प्रणम्य। कम्। जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्राचार्यम्। कथंभूतम्। सिद्धं प्रसिद्धं तात्कालिकविश्वशास्त्रनिष्पन्नं वा। पुनरपि किंविशिष्टम्। शुद्धं पञ्चविंशतिमलरहित-

---

सर्वज्ञप्रणीत इति यावत्। एतेन वक्तुः प्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यमुपदर्शितं। यथावस्थितमर्थं नयति-प्रतिपादयति द्योतयतीति नेमिः, चन्द्रयति आह्लादयति विकासयति शब्दार्थालंकाराभ्यां श्रोतृमनःकुमुदकुड्मलानीति चन्द्रः, जिनेन्द्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चन्द्रश्च जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रः, तं। पुनरपि किंविशिष्टं? अकलङ्कं-दूरोत्सारित-शब्दार्थविषयदोषकलङ्कं। पुनरपि कथंभूतं? गुणरत्नभूषणोदयं गुणरत्नानां-रत्नत्रयरूपाणां भूषणानां उदयः-उत्पत्तिः-संपत्तिर्वा यस्मादस्मदादीनां असौ गुणरत्नभूषणोदयः तं। अथवा—

प्रणम्य, कं? जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्रं जिनेन्द्रवरनेमिचन्द्राचार्यं, कथंभूतं? सिद्धं-प्रसिद्धं तात्कालिकविश्व-शास्त्रनिष्पन्नं वा। पुनरपि किंविशिष्टं? शुद्धं-पञ्चविंशतिमलरहितसम्यक्त्वं निरतिचारचारित्रं देशकुलजाति-

---

लोक विरोध और स्ववचन विरोधसे अबाधित है। तथा जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र हैं—जिनेन्द्र अर्थात् सर्वज्ञ जिसका वर अर्थात् कर्ता है, अर्थात् जीवका प्ररूपण सर्वज्ञ प्रणीत है। इससे वक्ताके प्रमाणपनेसे वचनका प्रमाणपना दिखलाया। जो यथावस्थित अर्थको 'नयति' अर्थात् प्रतिपादन करता है, प्रकाशित करता है, वह नेमि है। तथा 'चन्द्रयति' अर्थात् शब्दालंकार और अर्थालंकारसे श्रोताओंके मनको सफेद कमलकी तरह आह्लादित या विकसित करता है वह चन्द्र है। जिनेन्द्रवर ही हुआ नेमि, वही हुआ चन्द्र इस तरह प्ररूपण जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र है। तथा अकलंक है—शब्द और अर्थविषयक कलंकसे रहित है। तथा गुणरत्न अर्थात् रत्नत्रय रूप भूषणोंका उदय उससे हमारे जैसे लोगोंको होता है इसलिए प्ररूपण गुणरत्नभूषणोदय है।

अथवा, जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र अर्थात् जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्राचार्यको नमस्कार करके।

---

१. म जिनेन्द्रश्चासौ वरश्चासौ। २. क विरोधादिभ्य। ३. म रूपव्याहृतिरागम। ४. म भरित्तं। ५. म सिद्धांतां। ६. क मेरुव्व°। ७. म °मणुपम°।

सम्यक्त्वम् । निरतिचारचारित्रम् । देशकुलजातिशुद्धम् । भूयः किंभूतम् । अकलंकं विशुद्धमनोवाक्कायसंयुक्तम् । पुनः कथंभूतम् । गुणरत्नभूषणोदयम् । गुणरत्नभूषणश्चामुंडरायस्तस्योदयोऽभिवृद्धिर्यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तमिति ॥

मंगलाचरण [illegible] इति इष्टविशिष्टदेवतानमस्कारलक्षणपरममंगलमनंगीकरिसि तदनंतरं पेळ्वेनेंब जीवप्ररूपणाधिकारनिर्देशार्थमागि मुंदण सूत्रावतारमावुदु— ५

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य ।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा ॥२॥

गुणजीवाः पर्याप्तिः प्राणाः संज्ञा च मार्गणाश्चोपयोगोऽपि च क्रमशो विंशतिस्तु प्ररूपणाः भणिताः ॥ इंति चतुर्दशगुणस्थानंगळुं, अष्टानवति (९८) जीवसमासेगळुं, षट्पर्याप्तिगळुं, दशप्राणंगळुं, चतुःसंज्ञेगळुं, नाल्कु गतिमार्गणेगळुं, अहविंद्रियमार्गणेगळुं, षट्कायमार्गणेगळुं, पविनेदु योगमार्गणेगळुं, मूरु वेदमार्गणेगळुं, नाल्कु कषायमार्गणेगळुं, एंटुज्ञानमार्गणेगळं, एळु संयममार्गणेगळुं, नाल्कु दर्शनमार्गणेगळुं, आरु लेश्यामार्गणेगळुं, एरडु भव्यमार्गणेगळुं, आरु सम्यक्त्वमार्गणेगळुं, एरडु संज्ञिमार्गणेगळुं, एरडाहारमार्गणेगळेरडुपयोगंगळे विंतु जीवप्ररूपणंगळिप्पत्तु पेळल्पट्टवु । १०

शुद्धं वा । भूयः किंभूतं ? अकलंकं विशुद्धमनोवाक्कायसंयुक्तं । पुनः कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं गुणरत्नभूषणश्चामुण्डरायः—तस्य उदयः-अभिवृद्धिः, यस्मात् असौ गुणरत्नभूषणोदयस्तमिति । एवं इष्टविशिष्टदेवतानमस्कारकरणलक्षणं परममंगलमंगीकृत्य अनन्तरं प्रकृतजीवप्ररूपणस्य अधिकारान् निर्दिशति— १५

अत्र चतुर्दश गुणस्थानानि, अष्टानवतिर्जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतसो गतिमार्गणाः, पञ्चेन्द्रियमार्गणाः, षड्जीवकायमार्गणाः, पञ्चदश योगमार्गणाः, तिस्रः वेदमार्गणाः, चतस्रः कषायमार्गणाः, अष्टौ ज्ञानमार्गणाः, सप्त संयममार्गणाः, चतस्रः दर्शनमार्गणाः, षट् लेश्यामार्गणाः, द्वे भव्यमार्गणे, षट् सम्यक्त्वमार्गणाः, द्वे संज्ञिमार्गणे, द्वे आहारकमार्गणे, द्वे उपयोगमार्गणे इत्येताः जीवप्ररूपणा विंशतिर्भणिताः । अत्र २०

जो सिद्ध अर्थात् प्रसिद्ध हैं, अथवा वर्तमान कालके सब शास्त्रोंमें निष्णात हैं। शुद्ध हैं अर्थात् पच्चीस दोष रहित सम्यक्त्व, निरतिचार चारित्र और देश कुल जातिसे शुद्ध हैं। अकलंक अर्थात् विशुद्ध मन, वचन, काय संयुक्त हैं। और गुणरत्नभूषण अर्थात् चामुण्डराय, उसकी अभिवृद्धि उनसे हुई, इसलिये वे गुणरत्नभूषणोदय हैं ॥१॥ २५

इस प्रकार इष्ट विशेष देवताको नमस्कार करनेरूप परम मंगलको करके प्रकृत जीव प्ररूपणके अधिकारोंका निर्देश करते हैं—

यहाँ चौदह गुणस्थान, अठानवें जीवसमास, छह पर्याप्ति, दस प्राण, चार संज्ञा, चार गतिमार्गणा, पाँच इन्द्रियमार्गणा, छह कायमार्गणा, पन्द्रह योगमार्गणा, तीन वेदमार्गणा, चार कषायमार्गणा, आठ ज्ञानमार्गणा, सात संयममार्गणा, चार दर्शनमार्गणा, छह लेश्यामार्गणा, दो भव्यमार्गणा, छह सम्यक्त्वमार्गणा, दो संज्ञी मार्गणा, दो आहारमार्गणा, दो उपयोग इस प्रकार ये जीव प्ररूपणा बीस कही हैं। प्रत्येक प्ररूपणाकी निरुक्ति कहते हैं—'गुण्यते अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्यसे द्रव्यान्तरको जाना जाता है, वह गुण है। कर्मकी उपाधिकी अपेक्षा सहित ज्ञान, दर्शन, उपयोगरूप चैतन्य प्राणोंसे जो जीता है, वह जीव है। वे जीव जिनमें सम्यक्रूपसे 'आसते' रहते हैं, वे जीवसमास हैं। 'परि' अर्थात् ३५

---

१. म च विंशं । २. म इल्लि चं । ३. क षट्कषायं ।

इल्लि गुण्यते परिच्छिद्यते द्रव्यात् द्रव्यांतरमनेनेति गुणः। कर्मोपाधिसापेक्षज्ञानदर्शनोपयोगचैतन्यप्राणेन जीवन्तीति जीवाः। (ते जीवाः) सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। परिसमंतावाप्तिः पर्याप्तिः। शक्तेर्निष्पत्तिरित्यर्थः। आ[illegible] जीवितव्यव्यवहारयोग्या भवन्ति जीवा यैस्ते प्राणाः। आगमप्रसिद्धा वाञ्छा संज्ञा अभिलाष इति यावत्। यकाभिर्यासु वा जीवा मृग्यन्ते ता मार्गणाः। मृगयिता भव्यवरपुंडरीकस्तत्त्वार्थश्रद्धालुरित्यर्थः। मृग्याश्चतुर्दशमार्गणाविशिष्टात्मानः, मृग्यस्य करणतामधिकरणतां वा प्राप्ता गत्यादयो मार्गणाः स्युः। (मार्गणोपायो) ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः॥

इंतु प्ररूपणंगळ्गे[4] साधारणार्थप्रतिपादनमाय्तु। तदनन्तरं संग्रहनयापेक्षेयिं प्ररूपणाद्वैविध्यमं मनदोळिट्टु गुणस्थानमार्गणास्थानमें बितेरडक्कं संज्ञान्तरनिर्देशार्थमी सूत्रमं पेळ्दपरु—

संखेओ ओघो त्ति य गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।
वित्थारादेसो त्ति य मग्गणसण्णा सकम्मभवा॥३॥

संक्षेप ओघ इति च गुणसंज्ञा सा च मोहयोगभवा। विस्तार आदेश इति च मार्गणसंज्ञा स्वकर्मभवा॥ संक्षेपमेंदुं ओघमेंबुं गुणस्थानक्कनादिनिधनार्षदोळ् रूढसंज्ञेयक्कुमासंज्ञेयं

गुण्यते परिच्छिद्यते द्रव्याद् द्रव्यान्तरमनेनेति गुणः। कर्मोपाधिसापेक्षज्ञानदर्शनोपयोगचैतन्यप्राणेन जीवन्तीति जीवाः। ते जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। परि–समन्तात्, आप्तिः पर्याप्तिः शक्तिनिष्पत्तिरित्यर्थः। जीवन्ति प्राणन्ति जीवितव्यव्यवहारयोग्या भवन्ति जीवा यैस्ते प्राणाः। आगमप्रसिद्धा वांछा संज्ञा अभिलाषा इति यावत्। यकाभिः यासु वा जीवा मृग्यन्ते ता मार्गणाः, मृगयिता भव्यवरपुण्डरीकस्तत्त्वार्थश्रद्धालुरित्यर्थः, मृग्याः चतुर्दशमार्गणाविशिष्टात्मानः। मृग्यस्य करणतां अधिकरणतां वा प्राप्ता गत्यादयः मार्गणाः। मार्गणोपायो ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः। एतासां प्ररूपणानां साधारणार्थप्रतिपादनमुक्तं ॥२॥ अथ संग्रहनयापेक्षया प्ररूपणाद्वैविध्यं मनसि धृत्वा गुणस्थानप्ररूपणयोः संज्ञान्तरमाह—

संक्षेप इति ओघ इति च गुणस्थानस्य संज्ञा अनादिनिधनार्षे रूढा प्रसिद्धा, सा च संज्ञा मोहयोगभवा–मोहयोगाभ्यां संजाता भवति। संज्ञावतां गुणस्थानानां मोहयोगप्रभवत्वात् तत्संज्ञाया अपि तत्प्रभवत्वमुपचारेण

समंतरूपसे आप्ति अर्थात् प्राप्ति पर्याप्ति है, जिसका अर्थ है—शक्तिकी निष्पत्ति। जिनसे जीव 'प्राणन्ति' जीते हैं अर्थात् जीवित व्यवहारके योग्य होते हैं, वे प्राण हैं। आगम प्रसिद्ध वांछा या अभिलाषाको संज्ञा कहते हैं। जिनके द्वारा या जिनमें जीव 'मृग्यन्ते' खोजे जाते हैं, वे मार्गणा हैं। मार्गयिता–खोजनेवाला तत्त्वार्थका श्रद्धालु भव्यजीव है। 'मृग्य' अर्थात् खोजने योग्य चौदह मार्गणावाले जीव हैं। मृग्यपनेके कारणपने या अधिकरणपनेको प्राप्त गति आदि मार्गणा हैं अर्थात् गति आदि मार्गणाओंमें उन उन मार्गणावाले जीवोंको खोजा जाता है। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्यरूप उपयोग मार्गणाका उपाय है। इस प्रकार इन प्ररूपणाओंके सामान्य अर्थका कथन किया ॥२॥

आगे संग्रहनयकी अपेक्षा प्ररूपणाके दो प्रकारोंको मनमें रखकर गुणस्थान और मार्गणास्थान इन दो प्ररूपणाओंके नामान्तर कहते हैं—

संक्षेप और ओघ ये गुणस्थानकी संज्ञा अनादिनिधन आगममें रूढ है—प्रसिद्ध है।

---

१. क पच्छेद्यते। २. म °नेनितु गुणः। ३. म °क्तिनि°। ४. क गलगे साधारणंगलगे साधा°। °त्वमं। ६. क ओघमेयेंदु।

मोहोदयदिंदमुं योगदिंदमुमावुदु । संज्ञावंतंगळप्प गुणस्थानंगळ्गे मोहोदययोगप्रभवत्वदिंदं तत्संज्ञिगं तत्प्रभवत्वमुपचारदिंदमक्कुमेंदितनुक्तमुमरियल्पडुगुं । च-शब्ददिंदं सामान्यमेंबुदुं गुणस्थानक्के संज्ञेयक्कुमेंदितनुक्तमुमरियल्पडुगुं । विस्तारमुमादेशमुमेंबितु मार्गणास्थानक्के संज्ञेयक्कुमा संज्ञेयुं स्वाभिधानप्रत्ययव्यवहारनिमित्तकर्मोदयदिंदमक्कुमिल्लियुं मुंनिनंते तत्संज्ञेगं तत्प्रभवत्वोपचारमरियल्पडुगुं । च-शब्ददिंदं विशेषमेंबितं मार्गणेगनुक्तसंज्ञेयुमक्कुं ॥ तदनन्तरं प्ररूपणाद्वैविध्यदोळु शेषप्ररूपणंगळन्तर्भावप्रदर्शनार्थमी सूत्रमं पेळदपरु ।

मार्गदर्शक :- ब्रह्मचारी श्री सविधिसागर जी महाराज

आदेसे संलीणा जीवा पज्जत्तिपाणसण्णाओ ।
उवजोगो वि य भेदे वीसं तु परूवणा भणिदा ॥४॥

आदेसे संलीना जीवाः पर्याप्तिप्राणसंज्ञाश्च । उपयोगोऽपि च भेदे विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ।

मार्गणास्थानप्ररूपणेयोळु जीवसमासेयुं पर्याप्तियुं प्राणमुं संज्ञेयुं उपयोगमेंबी पंचप्ररूपणेगळु संल्लीनंगळादुवुमंतेंबुदेंदोडे अंतर्भूतंगळादुवेंबुदर्थं ॥ अंतागुप्तिरल्लु गुणस्थानप्ररूपणमुं मार्गणास्थानप्ररूपणमेंबितु संग्रहनयापेक्षेयिं प्ररूपणाद्वयमेव प्ररूपितमाय्तु ॥

उक्तं । चशब्दात् सामान्यमित्यपि गुणस्थानस्य संज्ञा भवतीति ज्ञातव्यं । तथा विस्तार आदेशश्चेति मार्गणास्थानस्य संज्ञा भवति । सा च स्वाभिधानप्रत्ययव्यवहारनिमित्तकर्मोदयाद्भवति । अत्रापि प्राग्वत् तत्संज्ञाया अपि तत्प्रभवत्वोपचारो ज्ञातव्यः । चशब्दाद्विशेष इत्यपि मार्गणाया अनुक्तसंज्ञा भवति ॥३॥ अथ प्ररूपणाद्वैविध्ये शेषप्ररूपणानामन्तर्भावं प्ररूपयति—

मार्गणास्थानप्ररूपणायां जीवसमासाः, पर्याप्तयः, प्राणाः, संज्ञा, उपयोगश्च इति पञ्च प्ररूपणाः संलीनाः—सम्यगन्तर्भूता इत्यर्थः । तथा सति गुणस्थानप्ररूपणं मार्गणास्थानप्ररूपणमिति संग्रहनयापेक्षया प्ररूपणाद्वयमेव प्ररूपितं ज्ञातं । अथ कस्यां मार्गणायां का प्ररूपणा अन्तर्भूतेति भेदगाथात्रयेणाह—

वह संज्ञा 'मोहयोगभवा' अर्थात् मोह और योगसे उत्पन्न होती है । यतः जिनकी यह संज्ञा है, वे गुणस्थान मोह और योगसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उपचारसे उनकी संज्ञाको मोह और योगसे उत्पन्न हुई कहा है । 'च' शब्दसे 'सामान्य' यह भी गुणस्थानकी संज्ञा है, यह जानना चाहिए । तथा विस्तार और आदेश ये मार्गणास्थानकी संज्ञा है । वह संज्ञा अपनी-अपनी मार्गणाके नाममूलक व्यवहारमें निमित्त कर्मके उदयसे होती है । जैसे गतिनाम कर्मके उदयसे गति संज्ञा व्यवहारमें आती है । यहाँ भी पहलेकी तरह संज्ञाको भी उपचारसे कर्मोदय जन्य जानना चाहिए । 'च' शब्दसे विशेष भी बिना कहे ही मार्गणाकी संज्ञा है ॥३॥

आगे इन दो प्ररूपणाओंमें शेष प्ररूपणाओंका अन्तर्भाव कहते हैं—मार्गणास्थान प्ररूपणामें जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोग ये पाँच प्ररूपणाएँ सम्यक् रीतिसे अन्तर्भूत हैं । ऐसा होनेपर संग्रहनयकी अपेक्षासे गुणस्थान प्ररूपणा और मार्गणा स्थान प्ररूपणा ये दो प्ररूपणा ही प्ररूपित कहलायी ॥४॥

आगे किस मार्गणामें कौन प्ररूपणा अन्तर्भूत है, यह तीन गाथाओंसे कहते हैं—इन्द्रियमार्गणामें और कायमार्गणामें जीवसमास, पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनोबल प्राण अन्तर्भूत हैं । किस प्रकार अन्तर्भूत हैं, यह बतलाते हैं—जीवसमास और

---

१. क °दिमुं । २. म °गण्प । ३. म °संज्ञेगं । ४. म °मेंदितुं । ५. क साभि° । ६. क °देडो, म °देनेदोडे ।

तदनंतरमाव मार्गणेयोळाव प्ररूपणमंतर्भूतमावुवें बोडे गाथासूत्रत्रयविदं पेळ्दपरं ।

इंदियकाये लीणा जीवा पज्जत्तिआणभासमणो ।
जोगे काओ णाणे अक्खा गदिमग्गणे आऊ ॥५॥

मार्गदर्शक : आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज

इंदियकाये लीना जीवाः पर्याप्तिरानभाषामनांसि । योगे कायः ज्ञानेऽक्षाणि गतिमार्गणा-
५ यामायुः ॥

इंद्रियकायमार्गणेगळ बेरडुं मार्गणेगळोळु जीवसमासेगळुं पर्याप्तिगळु मानभाषामनोबल-प्राणंगळुमंतर्भविसल्पट्टुवुमदे तेंबोडे । जीवसमासेगळुं पर्याप्तिगळुमिंद्रियकायंगळोडने तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदमेनु सामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदं पर्याप्तिगळगे धर्मधर्मीकृतप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदमुं, उच्छ्वासवाङ्मनोबलप्राणंगळगेयुं । स्वकारणसत्पर्याप्त्यंत-
१० र्भावविषयवोळमवक्कमंतर्भावमुं न्यायमक्कुमदु कारणविदमल्लिये अंतर्भविसल्पट्टुवु ।

योगमार्गणेयोळु कायबलप्राणांतर्भावमेंबु पेळल्पट्टुदेकेंबोडे जीवप्रदेशपरिस्पंदलक्षण-काययोगमप्प कार्यदोळु तद्बलाधानलक्षणकायबलप्राणस्वरूपमप्प कारणक्के सामान्यविशेषकृत-प्रत्यासत्तिविशेषमुंटप्पुदरिं कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तियक्कुं । ज्ञानमार्गणेयोळु इंद्रियंगळगंतर्भाव-मक्कुं । एकेंबोडे इंद्रियावरणक्षयोपशमोद्भूतलब्धिरूपंगळप्प इन्द्रियंगळगे ज्ञानदोडने तादात्म्य-

१५ इन्द्रियमार्गणायां कायमार्गणायां च जीवसमासाः पर्याप्तयः आनपानभाषामनोबलप्राणाश्चान्तर्भूताः । कथं ? इति चेत् जीवसमासानां पर्याप्तीनां च इन्द्रियकायाभ्यां तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसंभवात् सामान्यविशेष-कृतप्रत्यासत्तिसंभवाद्वा पर्याप्तीनां धर्मधर्मिकृतप्रत्यासत्तिसंभवाच्च । उच्छ्वासवाङ्मनोबलप्राणानां च स्वकारण-तत्तत्पर्याप्त्यन्तर्भावविषयेऽपि तेषामपि अन्तर्भावस्यापि न्याय्यत्वात् अत्रैवान्तर्भाव्यन्ते । योगमार्गणायां कायबल प्राणोऽन्तर्भूतः । जीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणकाययोगरूपकार्ये तद्बलाधानलक्षणकायबलप्राणस्वरूपकारणस्य
२० स्वरूपसामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिविशेषसद्भावात् कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तिर्भवति । ज्ञानमार्गणायां इन्द्रियाणि

पर्याप्तियोंका इन्द्रिय और कायके साथ तादात्म्यकृत प्रत्यासत्ति अथवा सामान्य विशेषकृत प्रत्यासत्ति सम्भव है। अर्थात् जीवसमास और पर्याप्ति इन्द्रिय कायरूप ही हैं। इन्द्रिय और काय स्वरूप है, जीवसमास स्वरूपवाला है, अथवा इन्द्रिय और काय विशेष हैं, जीवसमास सामान्य हैं। इन्द्रिय और कायके साथ पर्याप्तियोंकी धर्मधर्मिकृत प्रत्यासत्ति सम्भव है।
२५ इन्द्रिय और काय धर्मी हैं,पर्याप्ति धर्म हैं और धर्मीमें धर्मोंका अन्तर्भाव होता है। उच्छ्वास-निश्वास, वचनबल और मनोबल प्राणोंका कारण उच्छ्वास, भाषा और मनःपर्याप्ति हैं। अतः जहाँ पर्याप्तिका अन्तर्भाव हुआ,वहीं उसके कार्य प्राणोंका अन्तर्भाव होना उचित ही है। इसलिए इनका भी अन्तर्भाव इन्द्रिय और कायमार्गणामें होता है। योगमार्गणामें काय-बल प्राण अन्तर्भूत है; क्योंकि जीवके प्रदेशोंके परिस्पन्द लक्षणवाले काययोगरूप कार्यमें
३० उसको बलाधान करनेवाले कायबल प्राणस्वरूप कारणकी सामान्य विशेषकृत प्रत्यासत्ति होनेसे कार्यकारणकृत प्रत्यासत्ति होती है। अर्थात् कायबल विशेष है,योग सामान्य है।इस प्रकार सामान्य विशेषभाव प्रत्यासत्तिसे योगमें कायबलका अन्तर्भाव युक्त है। ज्ञानमार्गणामें इन्द्रियाँ अन्तर्भूत हैं,क्योंकि इन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे प्रकट हुई लब्धिरूप इन्द्रियोंकी ज्ञानके साथ तादात्म्यकृत प्रत्यासत्ति है। अर्थात् लब्धिरूप इन्द्रियाँ ज्ञानरूप ही हैं। गति

३५ १. म °गलं। २. म °क्के प्रत्या°।

कृतप्रत्यासत्तियुंटप्पुदरिंदं गतिमार्गणेयोळायुप्राणक्कंतर्भावमक्कुमेकेंदोडे गतिमायुष्यक्कमन्योन्याजहद्वृत्तिलक्षणप्रत्यासत्तियुंटप्पुदरिंदं ॥

मायालोहे रदिपुव्वाहारं कोहमाणगम्मि भयं ।
वेदे मेहुणसण्णा लोहम्मि परिग्गहे सण्णा ॥६॥

मायालोभे रतिपूर्वाहारः क्रोधमानके भयं, वेदे मैथुनसंज्ञा लोभे परिग्रहसंज्ञा ॥ ५

मार्गदर्शक आचार्यश्रीविद्यानन्दजीमुनिमहाराजाभ्यां आशीर्वादेन प्रेरणया च प्रकाशितः

अंतर्भवितल्पट्टुदेकेंदोडाहारकाक्षेगे रतिकर्मोदयपूर्वकत्वमुंटप्पुदरिंदं । रतिकर्म्ममुमा येरडुं रागहेतुकषायांतःप्रविष्टमप्पु कारणदिंदं ।

क्रोधकषायमुं मानकषायमुमेंबी येरडुरोळुं भयसंज्ञेयंतर्भवितळप्पट्टुदेकेंदोडे भयहेतुगळोळु द्वेषहेतुत्वदिंदं द्वेषरूपंगळप्प क्रोधमानंगळोळु कार्यकारणप्रत्यासत्तिसंभवमप्पुदरिंदं ।

वेदमार्गणेयोळु मैथुनसंज्ञेयंतर्भवितल्पट्टुदेकेंदोडे कामोद्रेकवशीकृतमप्प मिथुनकृत्यं साभिलाषसंभोगरूपमदु वेदोदयजनितपुरुषाद्यभिलाषकार्यमेंदिवु कार्यकारणभावप्रत्यासत्तियुंटप्पुदरिंदं । लोभकषायदोळु परिग्रहसंज्ञेयंतर्भवितळप्पट्टुदेकेंदोडे लोभकषायमुंटागुत्तिरले मूर्च्छास्वभावमप्प परिग्रहाभिलाषक्के संभवमुंटप्पुदरिंदिल्लि कार्यकारणप्रत्यासत्तियेंदरिगे ॥

अन्तर्भूतानि इन्द्रियावरणक्षयोपशमोद्भूतलब्धिरूपेन्द्रियाणां ज्ञानेन सह तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसद्भावात् । गतिमार्गणायां आयुःप्राणोऽन्तर्भूतः गत्यायुषोरन्योन्याजहद्वृत्तिलक्षणप्रत्यासत्तिसद्भावात् ॥५॥ १५

मायाकषाये लोभकषाये च आहारसंज्ञान्तर्भूता आहाराकांक्षाया रतिकर्मोदयपूर्वकत्वसद्भावात्, रतिकर्म मायालोभकषाययोश्च रागहेतुकषायान्तःप्रविष्टत्वात् । क्रोधकषाये मानकषाये च भयसंज्ञान्तर्भूता भयहेतुषु द्वेषहेतुत्वेन द्वेषरूपक्रोधमानयोः कार्यकारणप्रत्यासत्तिसम्भवात् । वेदमार्गणायां मैथुनसंज्ञान्तर्भूता कामोद्रेकवशीकृतमिथुनकृत्यं साभिलाषसंभोगरूपं तत् वेदोदयजनितपुरुषाद्यभिलाषकार्यमिति कार्यकारणभावप्रत्यासत्तिसद्भावात् । लोभकषाये परिग्रहसंज्ञान्तर्भूता लोभकषाये सत्येव मूर्छास्वभावस्य परिग्रहाभिलाषस्य संभवात् अत्र कार्यकारणप्रत्यासत्तिरेवेति जानीहि ॥६॥ २०

मार्गणामें आयुप्राण अन्तर्भूत है, क्योंकि गति और आयुमें परस्पर अजहद्वृत्तिरूप प्रत्यासत्ति है; क्योंकि गतिके बिना आयु नहीं और आयुके बिना गति नहीं ॥५॥

मायाकषाय और लोभकषायमें आहार संज्ञा अन्तर्भूत है। आहारकी इच्छा रतिनाम कर्मके उदयपूर्वक होती है और रतिकर्म तथा मायाकषाय और लोभकषाय रागहेतुक २५
कषायोंमें गर्भित हैं। क्रोधकषाय और मानकषायमें भयसंज्ञा अन्तर्भूत है, क्योंकि भयके कारणोंमें द्वेष कारण है। अतः भयमें और द्वेषरूप क्रोध,मानमें कार्यकारण प्रत्यासत्ति है। वेदमार्गणामें मैथुन संज्ञा अन्तर्भूत है; क्योंकि कामकी तीव्रताके वशमें होकर स्त्री-पुरुष युगल अभिलाषापूर्वक संभोगरूप जो कृत्य करते हैं,वह वेदकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई पुरुष आदिकी अभिलाषाका कार्य है। इसलिए मैथुन संज्ञा और वेदकर्ममें कार्यकारणभाव १०
प्रत्यासत्ति है। लोभकषायमें परिग्रह संज्ञा अन्तर्भूत है, क्योंकि लोभकषायके होनेपर ही ममत्वभावरूप परिग्रहकी अभिलाषा होती है। यहाँ कार्यकारण प्रत्यासत्ति ही जानना ॥६॥

१. म गतिगमायुष्यक्कमजहद्वृ । २. म °ष्टमक्कुमदु ।

सागारो उवजोगो णाणे मग्गम्मि दंसणे मग्गे ।
अणगारो उवजोगो लीणोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो ॥७॥

साकार उपयोगो ज्ञानमार्गणायां दर्शनमार्गणायामनाकारे उपयोगो लीन इति जिनैर्निर्दिष्टः ॥

ज्ञानमार्गणेयोळु साकारोपयोगमंतर्भवि[1]सल्पट्टुदेकेंदोडे ज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमसमुद्भूतज्ञातृव्यापारसन्निधियोळे विशेषग्रहणलक्षणमप्प ज्ञानक्के समुत्पत्तियप्पुर्णिदं कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तियक्कुं । दर्शनमार्गणेयोळनाकारोपयोगमंतर्भविसल्पट्टुदेकेंदोडे इल्लियुं दर्शनावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमविजृंभितार्थसामान्यग्रहणव्यापारमुंटागुत्तिरले अर्थसामान्यग्रहणलक्षणमप्प दर्शनक्के समुत्पत्तियप्पुर्णिदं तदंतर्भावहेतुवं कार्यकारणमुमेंबुदु सुघटमेयक्कुं ॥

ईंतु । जीवसमासादिगळ्गं मार्गणास्थानदोळंतर्भावसमर्थनविदं गुणस्थानमार्गणास्थानप्ररूपणाद्वयम् प्रतिपादिसि मत्ते भेदविवक्षेयिंवमिप्पत्तु प्ररूपणेगळुं पेळ्गे पेळल्पट्टुवेयक्कुं । आचार्यनेंदपं भणिता एंबीपदप्रयोगदिंदं विंशतिप्ररूपणेगळ्गे परमागमप्रसिद्धत्वप्रकाशनविदं तद्विशेषकथनदोळु स्वातन्त्र्यं परिहृतमाकु[3]दु । इंतु न्यायं मुंतेयुं योजिसल्पडुगुं ॥ तदनंतरं प्रतिपादितविंशतिप्ररूपणेगळिगे प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपणप्रतिपादनार्थं मोदलोळु गुणशब्दक्के निरुक्तिपूर्वकमर्थमं पेळ्दपं[4]—महाराज

ज्ञानमार्गणायां साकारोपयोगोऽन्तर्भूतः ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमसमुद्भूतज्ञातृव्यापारसंनिधाने एव विशेषग्रहणलक्षणस्य ज्ञानस्य समुत्पत्तेः कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तिसंभवात् । दर्शनमार्गणायां च अनाकारोपयोगोऽन्तर्भूतः दर्शनावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविजृम्भितार्थसामान्यग्रहणव्यापारे सत्येव अर्थसामान्यग्रहणलक्षणस्य दर्शनस्य समुत्पत्तेः कार्यकारणभावघटनात् । अयमन्तर्भावः इति प्रागुक्तरीत्या जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टः—कथितः न पुनः स्वरुचिविरचित इत्यर्थः । एवं जीवसमासादीनां मार्गणास्थानेऽन्तर्भावसमर्थनेन गुणस्थानमार्गणास्थानप्ररूपणाद्वयं प्रतिपाद्य पुनर्भेदविवक्षया विंशतिः प्ररूपणाः प्रागुक्ता एव उच्यन्ते । भणिता इति पदेन विंशतिप्ररूपणानां परमागमप्रसिद्धानां प्रकाशनेन तद्विशेषकथनेन स्वातन्त्र्यपरिहृतं जातं इत्ययं न्यायस्तत्रैव योज्यते । अथ तासां विंशतिप्ररूपणानां मध्ये प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपणाप्रतिपादनार्थं प्रथमं गुणस्थानशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं कथयति—

ज्ञानमार्गणामें साकार उपयोग अन्तर्भूत है; क्योंकि ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न ज्ञाताके व्यापारके होनेपर ही विशेष ग्रहणरूप ज्ञानकी उत्पत्ति होती है; अतः दोनोंमें कार्यकारण प्रत्यासत्ति है। और दर्शनमार्गणामें अनाकार उपयोग अन्तर्भूत है, क्योंकि दर्शनावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न अर्थ सामान्यके ग्रहणरूप व्यापारके होनेपर ही अर्थ सामान्यके ग्रहणरूप दर्शनकी उत्पत्ति होनेसे दोनोंमें कार्यकारण भाव घटित होता है। इससे यह अन्तर्भाव पूर्वोक्त रीतिसे जिनदेव अर्हन्त आदिने कहा है, स्वरुचिविरचित नहीं है। इस प्रकार जीवसमास आदिका मार्गणास्थानमें अन्तर्भावका समर्थन करनेसे गुणस्थान और मार्गणास्थान इन दो प्ररूपणाओंको कहकर पुनः भेद विवक्षासे पहले कही बीस प्ररूपणाओंको ही कहते हैं। गाथा नं. २ में जो 'भणिता' कहा है, इस पदसे परमागममें प्रसिद्ध बीस प्ररूपणाओंके प्रकाशनसे उनके विशेष कथनमें स्वातन्त्र्यका परिहार

---

१. म °कारोप° । २. म °णभावमें° । ३. म °मादुदेंदु । थिती न्या° । ४. म °गलोलगे ।

जेहि दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहि भावेहि ।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥८॥

यैस्तु लक्ष्यन्ते उदयादिषु संभवैर्भावैर्जीवाः, ते गुणसंज्ञा निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥

मोहनीयादिकर्मगळ उदयोपशमक्षयोपशमक्षयपरिणामरूपंगळोळवस्थाविशेषंगळागुत्तं विरलु संजायमानंगळप्पाधु केलवु भावंगळिंदं मिथ्यात्वादिपरिणामंगळिंदं गुण्यन्ते लक्ष्यन्ते दृश्यंते लांछ्यंते वा जीवास्ते जीवपरिणामा गुणस्थानसंज्ञाभवन्तः एंबिंतु सर्वदर्शिगळप्प सर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुवु । ई गुणशब्दनिरुक्तिप्रधानमप्प सूत्रदिंदं मिथ्यात्वादियागुत्तमयोगकेवलित्वपर्यंतमप्प जीवपरिणामविशेषंगळे गुणस्थानंगळे बितु प्रतिपादितमे दरियल्पडुगुं ॥

स्वस्थितिक्षयवशादुदयनिषेके गलतां कार्मणस्कंधानां फलदानपरिणतिरुदयः । उदये भवः औदयिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदयाभाव उपशमः । उपशमे भव औपशमिकः । प्रतिपक्षकर्मणां पुनरुत्पत्त्यभावेन नाशः क्षयः । क्षये भवः क्षायिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदये विद्यमाने यो जीवगुणांशो दृश्यते स क्षयोपशमः । क्षयोपशमे भवः क्षायोपशमिकः । उदयादिनिरपेक्षः परिणामः परिणामे भवः पारिणामिकः ।

मोहनीयादिकर्मणां उदयोपशमक्षयोपशमक्षयपरिणामरूपेषु अवस्थाविशेषेषु सत्सु संजायमानैर्यैर्भावैः—जीवस्य मिथ्यात्वादिपरिणामैः, गुण्यन्ते—लक्ष्यन्ते दृश्यन्ते लांछ्यन्ते वा जीवास्ते जीवपरिणामाः गुणस्थानसंज्ञा भवन्तीति सर्वदर्शिभिः—सर्वज्ञैः, निर्दिष्टाः—कथिताः । अनेन गुणशब्दनिरुक्तिप्रधानसूत्रेण मिथ्यात्वादयोऽयोगिकेवलित्वपर्यन्ता ये जीवपरिणामविशेषाः त एव गुणस्थानानीति प्रतिपादितं भवति । स्वस्थितिक्षयवशादुदयनिषेके गलतां कार्मणस्कन्धानां फलदानपरिणतिः—उदयः, तस्मिन् भव औदयिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदयाभावः—उपशमः तस्मिन् भव औपशमिकः । प्रतिपक्षकर्मणां पुनरुत्पत्त्यभावेन नाशः क्षयः तस्मिन् भवः क्षायिकः । प्रतिपक्षकर्मणामुदये विद्यमाने यो जीवगुणांशो दृश्यते स क्षयोपशमः तस्मिन् भवः क्षायोपशमिकः ।

किया है अर्थात् बीस प्ररूपणाओंके कथनमें ग्रन्थकारकी स्वेच्छाचारिता नहीं है। इस प्रकार यह न्याय उसी रूपमें योजित किया जाता है ॥७॥

उन बीस प्ररूपणाओंमें-से पहले कही गुणस्थान प्ररूपणाका कथन करनेके लिए पहले गुणस्थान शब्दका निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहते हैं—मोहनीय आदि कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम परिणामरूप अवस्था विशेषोंके होते हुए उत्पन्न होनेवाले जिन भावोंसे अर्थात् जीवके मिथ्यात्व आदि परिणामोंसे जीव 'गुण्यन्ते' अर्थात् देखे जाते हैं, पहचाने जाते हैं, जीवके उन परिणामोंकी गुणस्थान संज्ञा होती है, ऐसा सर्वज्ञदेवने कहा है। इस 'गुण' शब्दकी निरुक्तिकी प्रधानताको लिये हुए सूत्रके द्वारा मिथ्यात्वसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त जो जीवके परिणाम विशेष हैं, वे ही गुणस्थान हैं, यह प्रतिपादित होता है। उन पाँच भावोंकी निरुक्ति कहते हैं—अपनी स्थितिका क्षय होनेसे उदयागत निषेकमें गलनेवाले कार्मणस्कन्धोंका फल देनेरूप परिणमन उदय है। उसके होनेपर होनेवाला परिणाम औदयिक है। प्रतिपक्षी कर्मोंके उदयका अभाव उपशम है। उपशमके होनेपर होनेवाला भाव औपशमिक है। प्रतिपक्षी कर्मका पुनः उत्पत्तिका अभावरूप जो नाश है, उसे क्षय कहते हैं। उसके होनेपर होनेवाला भाव क्षायिक है। प्रतिपक्षी कर्मका उदय रहते हुए जो

---

१. म °गल । २. म °प्यावुदु केलवु भावंगलिदं जीवक्के मि. । ३. म °शावन्तं गलोंदिंगु ।

एंवितौदयिकादिपंचभावंगळ्गे सामान्यार्थप्रतिपादनमं माडि मुंदे विस्तरमागि महाधिकार बोळ्पेळ्वपरु ॥

तदनंतरमा गुणस्थानंगळं गाथाद्वयविवक्षयदं निर्देशमं माडिदपरु श्रुतविद्यासागर जी महाराज

मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।
विरदा पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्टि सुहमो य ॥९॥
उवसंत खीणमोहो सजोगकेवलिजिणो अजोगी य ।
चोद्दस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥१०॥

भावैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते एंबी न्यायदिं धोये परिल्पट्टुगुं । मिथ्यादृष्टिः सासादनो मिश्रोऽविरतसम्यग्दृष्टिश्च देशविरतश्च, विरताः प्रमत्त इतरोऽपूर्वोऽनिवृत्तिः सूक्ष्मश्च । उपशान्त क्षीणमोहौ सयोगकेवलिजिनोऽयोगी च चतुर्दशजीवसमासाः क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्याः ॥

उदयादिनिरपेक्षः परिणामः तस्मिन् भवः पारिणामिकः । एवमौदयिकादीनां पञ्च भावानां सामान्यार्थं प्रतिपाद्य विस्तरतः अग्रे तन्महाधिकारे प्रतिपादयिष्यति ॥८॥ अथ तानि गुणस्थानानि गाथाद्वयेन उद्दिशति—

मिथ्या—अतत्त्वविषया दृष्टिः—श्रद्धा यस्यासौ मिथ्यादृष्टिः । नाम्नि उत्तरपदस्येति दृष्टिपदस्य लोपात् मिच्छो इत्युक्तं । अयं भेदः अग्रेऽपि ज्ञातव्यः । सह आसादनेन विराधनेन वर्तत इति सासादना । सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्यासौ सासादनसम्यग्दृष्टिः । अथवा आसादनेन सम्यक्त्वविराधनेन सह वर्तमानः सासादनः । सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिः । इदं भूतपूर्वन्यायेन सम्यग्दृष्टित्वं ज्ञातव्यं । सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रो मिश्रः । सम्यक्—समीचीना दृष्टिः—तत्त्वार्थश्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः । स चासौ अविरतश्च अविरतसम्यग्दृष्टिः । देशतः—एकदेशतः, विरतो देशविरतः संयतासंयत इत्यर्थः । अत्र विरतपदं उपरितनसर्वगुणस्थानवर्तिनां संयमित्वमेव ज्ञापयति । प्रमाद्यतीति प्रमत्तः । इतरः—अप्रमत्तः । अपूर्वाः करणाः—

जीवके गुणका अंश देखा जाता है, वह क्षयोपशम है । उसके होनेपर होनेवाला भाव क्षायोपशमिक है । जिसमें उदय आदिकी अपेक्षा नहीं है, उसे परिणाम कहते हैं। उसके होते हुए होनेवाला भाव पारिणामिक है । अर्थात् उदयादि निरपेक्ष परिणाम ही पारिणामिक भाव है । इस प्रकार औदयिक आदि पाँच भावोंका सामान्य अर्थ कहा । विस्तारसे आगे उनके महाधिकारमें कहेंगे ॥८॥

आगे उन गुणस्थानोंका निर्देश दो गाथाओंसे करते हैं—मिथ्या अर्थात् अतत्त्वको विषय करनेवाली, दृष्टि अर्थात् श्रद्धा जिसके है, वह मिथ्यादृष्टि है । 'नाम्नि उत्तरपदस्य च' इस सूत्रके अनुसार दृष्टिपदका लोप होनेसे 'मिच्छो' कहा है । यह भेद आगे भी जानना । जो आसादना अर्थात् विराधनाके साथ रहे, वह सासादना है । जिसकी सम्यग्दृष्टि आसादना है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है । अथवा आसादन अर्थात् सम्यक्त्वकी विराधनाके साथ जो वर्तमान है, वह सासादन है । सासादन सम्यग्दृष्टिको सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं । भूतपूर्व न्यायसे अर्थात् पहले वह सम्यग्दृष्टि था, इस अपेक्षासे यहाँ सम्यग्दृष्टिपना जानना । सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके मेलका नाम मिश्र है । सम्यक् अर्थात् समीचीन, दृष्टि अर्थात् तत्त्वार्थ श्रद्धान जिसका है, वह सम्यग्दृष्टि है । तथा जो अविरत होनेके साथ

---

१. म छाये ।

मिथ्यातत्त्वविषया दृष्टिः श्रद्धा यस्यासौ मिथ्यादृष्टिः। नाम्नुत्तरपदस्य श्रद्धुग्वा एंबु दृष्टिपदक्के लोपमागि मिच्छो एंबु पेळल्पटुदु। ई परियल्लु मुंदेयुमरियल्पडुगुं। सह आसादनेन विरोधनेन वर्तत इति सासादना। सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्यासौ सासादनसम्यग्दृष्टिः। अथवा आ-सादनेन सम्यक्त्वविराधनेन सह वर्तमानः सासादनः। सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादन-सम्यग्दृष्टिः। एंदितु भूतपूर्वन्यायविदं सम्यग्दृष्टित्वमनरिवुदु। ५

सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रो मिश्रः। (सम्यक्) समीचीना दृष्टिस्तत्त्वार्थश्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः। स चासावविरतश्चाविरतसम्यग्दृष्टिः। देशत एकदेशतो विरतो देशविरतः संयता-संयत इत्यर्थः। इल्लिदं मेले पेळल्पडुव गुणस्थानवर्त्तिगळेल्लं विरताः। एंदी पददिदं संयमिगळे-यप्परेंदरिगे। प्रमाद्यतीति प्रमत्तः। इतरोऽप्रमत्तः। अपूर्वाःकरणाः परिणामा यस्यासावपूर्व-करणः। निवृत्तिः परिणामविशेषः। न विद्यते निवृत्तिरूपः करणो यस्यासावनिवृत्तिकरणः। सूक्ष्मः १० सांपरायः कषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपरायः। उपशान्तो मोहो यस्यासावुपशान्तमोहः। क्षीणो मोहो यस्यासौ क्षीणमोहः। घातिकर्माणि जयति स्मेति जिनः। केवलज्ञानमस्यातीति केवली। स चासौ जिनश्च केवलिजिनः। योगेन सह वर्तत इति सयोगः। स चासौ केवलिजिनश्च सयोगकेवलिजिनः। योगोऽस्यास्तीति योगी। न योगी अयोगी। [अयोगी-] केवलिजिन इत्यनुवर्तनादयोगी चासौ

परिणामा यस्यासौ अपूर्वकरणः। निवृत्तिः–परिणामविशेषः, न विद्यते निवृत्तिरूपः करणो यस्यासावनिवृत्ति- १५
करणः। सूक्ष्मः साम्परायः–कषायः, यस्यासौ सूक्ष्मसाम्परायः। उपशान्तो मोहो यस्यासौ उपशान्तमोहः। क्षीणो मोहो यस्यासौ क्षीणमोहः। घातिकर्माणि जयति स्मेति जिनः, केवलज्ञानमस्यास्तीति केवली, स चासौ जिनश्च केवलिजिनः। योगेन सह वर्तते इति सयोगः, स चासौ केवलिजिनश्च सयोगकेवलिजिनः। योगः अस्यास्तीति योगी, न योगी अयोगी, अयोगी केवलिजिनः इत्यनुवर्तनात् अयोगी चासौ केवलिजिनश्च अयोगिकेवलिजिनः।

सम्यक्दृष्टि है, वह अविरत सम्यग्दृष्टि है। देश अर्थात् एकदेशसे जो विरत है, वह देश २०
विरत अर्थात् संयतासंयत है। यहाँ जो विरत पद है, वह ऊपरके सब गुणस्थानवर्तियोंके संयमी होनेको सूचित करता है। जो प्रमादयुक्त है, वह प्रमत्त है; जो प्रमादयुक्त नहीं है, वह अप्रमत्त है। अपूर्व करण अर्थात् परिणाम जिसके अपूर्व हैं, वह अपूर्वकरण है। निवृत्ति परिणाम विशेषको कहते हैं। जिसके करण निवृत्ति रूप नहीं हैं, वह अनिवृत्तिकरण है। सूक्ष्म साम्पराय अर्थात् कषाय जिसकी है, वह सूक्ष्मसाम्पराय है। जिसका मोह उपशान्त है, वह उपशान्त- २५
मोह है। जिसका मोह क्षीण है, वह क्षीणमोह है। जिसने घातिकर्मोंको जीत लिया है, वह जिन है और जिसके केवलज्ञान है, वह केवली है। जो केवली वही जिन होनेसे केवलीजिन है। जो योगसहित है, वह सयोग है। जो सयोग होनेके साथ केवलीजिन है, वह सयोग केवलीजिन है। जिसके योग है वह योगी है। जो योगी नहीं, वह अयोगी है। 'केवली जिन' पदकी अनुवृत्तिसे अयोगी वह हुआ केवलिजिन, इस तरह अयोगिकेवलिजिन है। ३० ये मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवलिजिनपर्यन्त चौदह जीवसमास अर्थात् गुणस्थान जानना चाहिए।

शंका—गुणस्थानकी संज्ञा जीवसमास कैसे हुई?

समाधान—जीव इनमें 'समस्यन्ते' अर्थात् संक्षेप रूप किये जाते हैं। अथवा जीव इनमें 'सम्यक् आसते' अच्छी रीतिसे रहते हैं, इसलिए गुणस्थानोंको जीवसमास कहते हैं। ३५

---

१. क °राद्नेन। २. म सम्यंची।

केवलिजिनश्च अयोगिकेवलिजिनः।

[1]एंदितु मिथ्यादृष्टयादियागि अयोगिकेवलिजिनावसानमप्प चतुर्दशजीवसमासेगळु गुणस्थानंगळें बरियल्पडुवुवु। इल्लि जीवसमासे एंब संज्ञे गुणस्थानक्के तादुवें बोडे—जीवाः समस्यन्ते संक्षिप्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। अथवा जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। एंबिल्लि प्रकरणसामर्थ्यदिंदं गुणस्थानंगळे जीवसमासशब्ददिंदं पेळल्पडुवुवु। ई सकर्मरप्प जीवंगळितु लोकदोळोळरंत विनष्टकृत्स्नकर्मरुगळप्प सिद्धपरमेष्ठिगळुमोळरिंदितु ज्ञातव्यरुमप्परु। क्रमेण सिद्धाः एंबितु क्रमशब्ददिंदं मुन्नं घातिकर्मंगळं क्षपियिसि सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळोळु यथायोग्यं कालमंकरिसि अयोगिकेवलिचरमसमयदोळु शेषाघातिकर्मंगळं निरवशेषमागि क्षपियिसि सिद्धरप्परेंबी क्रमं ज्ञापिसल्पट्टुवु। ई ज्ञापकदिंदं युगपत्सकलकर्मक्षयमुं सर्वदा कर्माभावदिंदं सदा मुक्तत्वमुं परमात्मंगे निराकृतमादुदु॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु औदयिकादि भावंगळ्गे संभवमं तोरिदपरु।

मिच्छे खलु ओदइओ बिदिए पुण पारिणामिओ भावो।
मिस्से खओवसमिओ अविरदसम्मम्मि तिण्णेव ॥११॥

एते मिथ्यादृष्टयाद्ययोगिकेवलिजिनावसानाः चतुर्दशजीवसमासाः गुणस्थानानीति ज्ञातव्याः। कथमियं जीवसमास इति संज्ञा गुणस्थानस्य जाता? इति चेत्, जीवाः समस्यन्ते—संक्षिप्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। अथवा जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। इत्यत्र प्रकरणसामर्थ्येन गुणस्थानान्येव जीवसमासशब्देन उच्यन्ते। एते सकर्माणो जीवा यथा लोके सन्ति तथा विनष्टकृत्स्नकर्माणः सिद्धपरमेष्ठिनोऽपि सन्तीति ज्ञातव्याः भवन्ति। क्रमेण सिद्धाश्चेति क्रमशब्देन पूर्वं घातिकर्माणि क्षपयित्वा सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानयोर्यथायोग्यकालं स्थित्वा अयोगिकेवलिचरमसमये शेषाघातिकर्माणि निरवशेषाणि क्षपयित्वा सिद्धा भवन्तीत्ययं क्रमो ज्ञाप्यते। अनेन ज्ञापकेन युगपत्सकलकर्मक्षयत्वं सर्वदा कर्माभावात् सदामुक्तत्वं च परमात्मनो निराकृतं जातं ॥९-१०॥

अथ गुणस्थानेषु औदयिकादिभावानां संभवं दर्शयति—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने दर्शनमोहोदयजनितौदयिकभावः अतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणो भवति खलु स्फुटं। द्वितीये—सासादनगुणस्थाने पुनः पारिणामिकभावो भवति, अत्र दर्शनमोहोदयादिनिरपेक्षासद्भावात्। मिश्रगुण-

---

यहाँ प्रकरणवश गुणस्थान ही जीवसमास शब्दसे कहे जाते हैं। जैसे ये सकर्मा जीव लोकमें हैं, वैसे ही जिनके सब कर्म नष्ट हो गये हैं, वे सिद्धपरमेष्ठी भी हैं, ऐसा जानना। गाथामें कहे 'क्रमेण सिद्धाश्च'के क्रम शब्दसे यह बतलाया है कि पहले घातिकर्मोंको क्षय करके सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानमें यथायोग्य काल तक रहकर अयोगिकेवलीके अन्तिम समयमें शेष अघाति कर्मोंको पूरी तरहसे नष्ट करके सिद्ध होते हैं। इससे एक साथ सब कर्मोंका क्षय होना और सर्वदा कर्मोंका अभाव होनेसे परमात्माके सदा मुक्त होनेका निराकरण किया है ॥९-१०॥

आगे गुणस्थानोंमें औदयिक आदि भावोंको दर्शाते हैं—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहके उदयसे उत्पन्न औदयिक भाव होता है जिसका लक्षण अतत्त्वश्रद्धान है यह स्पष्ट है। दूसरे सासादन गुणस्थानमें पारिणामिक भाव होता है। यहाँ दर्शनमोहके उदय आदिकी अपेक्षा न होनेसे पारिणामिक भाव कहा है। मिश्रगुणस्थानमें क्षायोपशमिक भाव

---

१. म एंदिता। २. क °नंगली।

मिथ्यादृष्टौ खल्वौदयिको भावः। द्वितीये पुनः पारिणामिको भावः। मिश्रे क्षायोपशमिकोऽविरतसम्यग्दृष्टौ त्रय एव॥ मिथ्यादृष्टियोळ्दर्शनमोहोदयजनितौदयिकभावमतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणमक्कुं स्फुटमागि। द्वितीयगुणस्थानदोळु मत्ते पारिणामिकभावमक्कुमेंदल्लि दर्शनमोहोदयादि निरपेक्षमुंटप्पुदर्दिंदं। मिश्रगुणस्थानदोळु क्षायोपशमिकभावमक्कुमदे तेंदोडे—मिथ्यात्वप्रकृतिय सर्वघातिस्पर्धकंगळुदयाभावलक्षणक्षयदोळं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयमुंटागुत्तिरलु मनुदयप्राप्तनिषेकंगळुपशमदोळं समुद्भूतमप्पुदो कारणमागि॥

अविरतसम्यग्दृष्टियोळौपशमकमुं क्षायोपशमिकमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुमेंदितु भावत्रितयमक्कुं मल्लिदर्शनमोहदुपशमदर्त्तणिदं औपशमिकसम्यक्त्वमुं, दर्शनमोहक्षयोपशमदर्त्तणिदं क्षायोपशमिकमप्प वेदकसम्यक्त्वमुं, दर्शनमोहक्षयदर्त्तणिदं क्षायिकसम्यक्त्वमुमक्कु।

ई पेळल्पट्ट भावंगले संभवनियमनिमित्तमं प्रतिपादिसल्वेडि भूदण सूत्रावतारं।

एदे भावा णियमा दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित्तं णत्थि जदो अविरद अंतेसु ठाणेसु॥१२॥

एते भावा नियमाद्दर्शनमोहं प्रतीत्य भणिता खलु। चारित्रं नास्ति यतोऽविरतान्तेषु स्थानेषु॥ इंतु पेरिगे पेळल्पट्टौदयिकादिभावंगळु नियमदिंदं दर्शनमोहमनुद्देशिसि स्फुटमागि पेळल्पट्टुवु। आवुदोंदु कारणदिंदमविरतांतमप्प गुणस्थानंगळोळु चारित्रमिल्लदु कारणमागि चारित्रमोहमनुद्देशिसि पेळल्पट्टुदिल्लि। अदरिंदं सासादनगुणस्थानदोळनंतानुबंधिकषायमंटा-

---

स्थाने क्षायोपशमिकभावो भवति। कुतः? मिथ्यात्वप्रकृतेः सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदये विद्यमाने सत्यनुदयप्राप्तनिषेकाणां उपशमे च समुद्भूतत्वादेव कारणात्। अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने औपशमिकसम्यक्त्व-क्षायोपशमिकरूपवेदकसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वनामानस्त्रयो भावा भवन्ति। तत्र दर्शनमोहोपशमस्य क्षयोपशमस्य क्षयस्य च संभवात्॥११॥ एषामुक्तभावानां संभवनियमस्य निमित्तमाह—

एते प्रागुक्तौदयिकादयो भावाः नियमाद् दर्शनमोहं प्रतीत्य—आश्रित्यैव, भणिताः—कथिताः भवन्ति खलु-स्फुटं, यतः कारणादविरतान्तेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु चारित्रं नास्तीति कारणात् ते चारित्रमोहं प्रतीत्य न भणिताः। तेन सासादनगुणस्थाने अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदये विद्यमानेऽपि तदुविवक्षया पारिणामिकभावः आर्षे प्रतिपादित इति जानीहि। अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदयविवक्षया तु औदयिकभावोऽपि भवेत्॥१२॥

होता है, क्योंकि मिथ्यात्व प्रकृतिके सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदयके अभावरूप क्षय होनेपर तथा सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय रहते हुए और अनुदय प्राप्त निषेकोंका उपशम होनेपर मिश्रगुणस्थान होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक रूपवेदक, तथा क्षायिक सम्यक्त्व नामके तीन भाव होते हैं; क्योंकि इस गुणस्थानमें दर्शनमोहका उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय होता है॥११॥

आगे इन भावोंके होनेका कारण कहते हैं—ये जो ऊपर औदयिक आदि भाव कहे हैं, वे नियमसे दर्शनमोहकी अपेक्षासे ही कहे हैं। क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टिपर्यन्त चार गुणस्थानोंमें चारित्र नहीं होता। इस कारणसे वे भाव चारित्रमोहका आश्रय लेकर नहीं कहे हैं। इससे सासादन गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी-क्रोध-माया लोभमें-से किसी एक कषायका

---

१. क. °भामतर्त°। २. म °क्कुमिल्लि। ३. म °दर्त्तणि°। ४. म °भावमदेतें°। ५. म °यमुंटा°। ६. म °मप्पुदे। ७. म °पशमिक°। ८. क °मनिमिमं। ९. म °कषायोदयमुं°।

गुत्तिर्दोडंदेविवक्षेयिंदं पारिणामिकभावमार्षदोळ्प्रतिपादितमेंदरिगे । अनंतानुबंध्यन्यतरोदय-विवक्षेयिंदौदयिकभावमप्पुदु ॥

देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळु भावनियमप्रदर्शनार्थमागि गाथासूत्रद्वयमं पेळ्दपरु—

देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमिय भावो दु ।
सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं ॥१३॥

देशविरते प्रमत्ते इतरस्मिंश्च क्षायोपशमिको भावस्तु स खलु चारित्रमोहं प्रतीत्य भणितं तथोपरि ॥

देशविरतनोळं प्रमत्तसंयतनोळं इतरनप्प अप्रमत्तसंयतनोळं क्षायोपशमिकसंयममक्कुं ।

देशसंयतापेक्षेयिंदं प्रत्याख्यानकषायंगळुदयिसल्पट्ट देशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागो-
गार्गदर्शक:- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
दयवोडने उदयमनैय्ददे क्षीयमाणंगळप्प विवक्षितनिषेकगळ सर्वघातिस्पर्धकगळनंतबहुभागंगळु-दयाभावलक्षणक्षयदोळमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्पुपशममुंटागुत्ति-रलु समुद्भूतमप्पुदरिंदं चारित्रमोहमं कुरुत्तु देशसंयममनु क्षायोपशमिकभावमेंदु पेळ्दपट्टुदु । अंते प्रमत्ताप्रमत्तगं संज्वलनकषायंगळ उदितदेशघातिस्पर्धकानंतैकभागानुभागदोडने उदयमनैय्ददे

देशसंयतादिषु गुणस्थानेषु भावनियमं गाथाद्वयेन दर्शयति—

देशविरते प्रमत्तसंयते तु पुनः इतरस्मिन् अप्रमत्तसंयते च क्षायोपशमिकसंयमो भवति । देशसंयतापेक्षया प्रत्याख्यानकषायाणां उदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागोदयेन सहानुदयागतक्षीयमाणविवक्षितनिषेक-सर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानामुदयाभावलक्षणक्षये तेषामुपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुद्भूतत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्य देशसंयमः क्षायोपशमिकभाव इत्युक्तं । तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोरपि संज्वलनकषायाणामुदयागतदेशघातिस्पर्धकानन्तैकभागानुभागेन सह अनुदयागतक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषेक-

---

उदय होते हुए भी उसकी विवक्षा न होनेसे आगममें पारिणामिक भाव कहा है, ऐसा जानो । अनन्तानुबन्धीमें-से किसी एक कषायके उदयकी विवक्षासे तो औदयिकभाव भी सम्भव है ॥१२॥

आगे देश संयत आदि गुणस्थानोंमें भावका नियम दो गाथाओंसे कहते हैं—देश-विरतमें, प्रमत्त संयतमें और इतर अर्थात् अप्रमत्त संयतमें क्षायोपशमिक संयमरूप भाव होता है । देशसंयतकी अपेक्षा प्रत्याख्यानावरण कषायोंके उदयको प्राप्त हुए देशघाति स्पर्द्धकोंके अनन्तवें भागमात्र स्पर्धकोंके अनुभागका उदय रहते हुए, उदयमें आये बिना ही क्षयको प्राप्त हुए जो विवक्षित उदयरूप निषेक सर्वघाति स्पर्द्धक उनके अनन्त बहुभागोंका उदया-भावरूप क्षय होनेपर तथा उनके ऊपरवाले अनुदय प्राप्त निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम होनेपर उत्पन्न होनेसे चारित्र मोहकी अपेक्षा देशसंयम क्षायोपशमिक भाव है, ऐसा कहा है । तथा प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें भी संज्वलन कषायोंके उदयको प्राप्त देशघाति स्पर्द्धकोंके अनन्तवें भागके उदयके साथ उदयमें आये बिना क्षयको प्राप्त होनेवाले विवक्षित उदय रूप निषेक सर्वघाति स्पर्द्धकोंके अनन्त बहुभागोंका उदयाभावरूप क्षय होनेपर तथा उनसे ऊपरके अनुदय प्राप्त निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम होनेपर उत्पन्न होनेसे चारित्र

---

१. म °र्दोडंतदवि° । २. म इतरे च । ३. म °गळुदयिस° । ४. म क्षयमाणं° । ५. क °क्षयं ।
६. म °तियप्पुं ।

क्षीयमाणंगळप्प विवक्षितोदयनिषेकंगळ सर्वघातिस्पर्द्धकानंतबहुभागंगळुदयाभावलक्षणक्षयवोळमवरुपरितननिषेकंगळप्पनुदयप्राप्तंगळ्गे सदवस्थालक्षणमप्प उपशममुं टागुत्तिरलु समुत्पन्नमप्पुदरिदं चारित्रमोहमं कुरुतिल्लियुं सकलसंयममुं क्षायोपशमिकभावमेंबु पेळल्पडुवुदेंबुदु श्रीअभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिगळभिप्रायं ।

अहंगेमेयुं अपूर्वकरणादिगुणस्थानंगळोळं चारित्रमोहनीयमने कुरुत्तु तत्तद्गुणस्थानंगळोळु भावंगळरियल्पडुवुवु—

तत्तो उवरिं उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा अजोगिचरिमो त्ति सिद्धे य ॥१४॥

तत उपर्युपशमभाव उपशामकेषु क्षपकेषु । क्षायिको भावो नियमादयोगिचरम इति सिद्धे च ॥

इल्लिदं मेले अपूर्वकरणादिगुणस्थानंगळ्नाल्करुपशमकरोळुं पशमिकभावमक्कुं । चारित्रमोहनीयोपशमवर्त्तणिदं तत्संयमक्के प्रादुर्भावमुंटप्पुदरिदं । अंते अपूर्वकरणादि नाल्कुं गुणस्थानंगळ क्षपकरोळं सयोगायोगिकेवलिगळ्गं क्षायिकभावमक्कुं नियमदिंदं तच्चारित्रक्के चारित्रमोहनीयक्षयवर्त्तणिदं समुद्भूतत्वमुंटप्पुदो कारणमागि । अंते सिद्धपरमेष्ठिगळोळं क्षायिकभावमक्कुमदुवुं सकलकर्मक्षयोद्भूतमप्पुदरिदं ॥

तदनंतरं प्रागुद्दिष्टंगळप्प चतुर्दशगुणस्थानंगळोळगे प्रथमोद्दिष्टमिथ्यादृष्टिगुणस्थान-

---

सर्वघातिस्पर्धकानन्तबहुभागानां उदयाभावलक्षणक्षये तेषां उपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्यापि सकलसंयमोऽपि क्षायोपशमिको भाव इति भणितं इति श्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्यभिप्रायः । तथा उपर्यपि अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु चारित्रमोहनीयं प्रतीत्य तत्तद्गुणस्थानेषु भावा ज्ञातव्याः ॥१३॥

तत उपरि अपूर्वकरणादिचतुर्गुणस्थानोपशमकेषु औपशमिक भावो भवति तत्संयमस्य चारित्रमोहोपशमादेव संभवात् । तथा अपूर्वकरणादिचतुर्गुणस्थानक्षपकेषु सयोगायोगिकेवलिनोश्च क्षायिकभावो भवति नियमेन तच्चारित्रस्य चारित्रमोहक्षयोत्पन्नत्वात् । तथा सिद्धपरमेष्ठिष्वपि क्षायिकभावः स्यात् तस्य सकलकर्मक्षयोद्भूतत्वात् ॥१४॥ अथ प्रागुद्दिष्टचतुर्दशगुणस्थानेषु प्रथमोद्दिष्टस्य मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्य स्वरूपं

मोहकी अपेक्षा सकल संयम भी क्षायोपशमिक भाव है ऐसा कहा है। यह श्रीमान् अभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीका अभिप्राय है। तथा आगे भी अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें चारित्र मोहनीयकी अपेक्षासे भाव जानना ॥१३॥

अप्रमत्तगुणस्थानसे ऊपर उपशम श्रेणि सम्बन्धी अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें औपशमिक भाव होता है। क्योंकि उनमें होनेवाला संयम चारित्रमोहके उपशमसे ही होता है। तथा क्षपक श्रेणि सम्बन्धी अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें और सयोगकेवली अयोगिकेवलीमें क्षायिक भाव होता है; क्योंकि नियमसे उनमें होनेवाला चारित्र चारित्रमोहके क्षयसे उत्पन्न होता है। तथा सिद्ध परमेष्ठीमें भी क्षायिक भाव होता है, क्योंकि सिद्ध पद समस्त कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है ॥१४॥

---

१. म °बहुभागंगल अनन्तबहुभागंगलुव° । २. म °मेलेयुं । ३. क उपर्य्यपर्य्यप° । ४. म °रोलमोप° । ५. म मोहक्षय° । ६. म °प्पुवे ।

स्वरूपमं प्रदर्शिसुवपुदु— मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च अट्ठाणं ।
एयंतं विवरीयं विणयं संसइदमण्णाणं ॥१५॥

मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्वमश्रद्धानं तु तत्त्वार्थानाम् । एकान्तं विपरीतं विनयं संशयितमज्ञानम् ॥

दर्शनमोहनीयभेदमप्प मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिंदं जीवक्के तत्त्वार्थंगळ अश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वमक्कुं मिथ्यात्वमुमेकांत-विनय-विपरीत-संशयाज्ञानभेददिं पंचप्रकारमक्कुमल्लि जीवादिवस्तु सर्वथा सदेव सर्वथाऽसदेव सर्वथैकमेव सर्वथानेकमेव एंबितिवु मोदलादव प्रतिपक्षनिरपेक्षैकांताभिप्रायमेकांतमिथ्यात्वमें बुवक्कुं ।

अहिंसालक्षणसद्धर्मफलमप्प स्वर्गादिसुखक्के हिंसाविरूपयागादिफलत्वंविदं जीवक्के प्रमाणसिद्धमप्प मोक्षक्के निराकरणत्वंविदं प्रमाणबाधितमप्पस्त्रीमोक्षास्तित्ववचनदिंदमितिवु मोदलादमेकांतालंबनदिंदं विपरीताभिनिवेशं विपरीतमिथ्यात्वमें बुवक्कुं ।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिरपेक्षेयिंदं गुरुपादपूजादिरूपमप्प विनयदिंदमे मुक्ति एंबितिवु श्रद्धानं वैनयिकमिथ्यात्वमें बुवक्कुं ।

प्रत्यक्षादिप्रमाणगृहीतमप्पर्थंगळे देशकालांतरंगळोळु व्यभिचारसंभवदिंदं परस्पर-

---

प्ररूपयति—

दर्शनमोहनीयभेदमिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन जीवस्य अतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वं स्यात् । तच्च मिथ्यात्वं—एकान्तं विपरीतं विनयं संशयितं अज्ञानं चेति पञ्चविधं । तत्र जीवादिवस्तु सर्वथा सदेव सर्वथाऽसदेव सर्वथा एकमेव सर्वथा अनेकमेवेत्यादिप्रतिपक्षनिरपेक्षैकान्ताभिप्रायः एकान्तमिथ्यात्वं । अहिंसादिलक्षणसद्धर्मफलस्य स्वर्गादिसुखस्य हिंसाविरूपयागादिफलत्वेन, जीवस्य प्रमाणसिद्धस्य मोक्षस्य निराकरणत्वेन, प्रमाणबाधितस्त्रीमोक्षास्तित्ववचनेन इत्याद्येकान्तावलम्बनेन विपरीताभिनिवेशो विपरीतमिथ्यात्वं । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिरपेक्षतया गुरुपादपूजादिरूपविनयेनैव मुक्तिरेतच्छ्रद्धानं वैनयिकमिथ्यात्वं । प्रत्यक्षादिप्रमाणगृहीतार्थस्य देशान्तरे

आगे पहले कहे चौदह गुणस्थानोंमें-से प्रथम निर्दिष्ट मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—दर्शनमोहनीयके भेद मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जीवके मिथ्यात्व होता है, जिसका लक्षण अतत्त्वश्रद्धान है। वह मिथ्यात्व एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञानके भेदसे पाँच प्रकारका है। उनमें-से जीवादि वस्तु सर्वथा सत् ही हैं या सर्वथा असत् ही हैं, या सर्वथा एक ही हैं या सर्वथा अनेक ही हैं, इत्यादि प्रतिपक्षसे निरपेक्ष एकान्त अभिप्रायको एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं। अहिंसा आदि लक्षणवाले समीचीन धर्मका फल स्वर्ग आदिका सुख है, उसको हिंसा आदि रूप यज्ञका फल मानना, जीवके प्रमाण सिद्ध मोक्षका निराकरण करना, प्रमाणसे बाधित स्त्री मुक्तिका अस्तित्व बतलाना, इत्यादि एकान्तका अवलम्बन करते हुए जो विपरीत अभिनिवेश है, वह विपरीत मिथ्यात्व है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकी अपेक्षा न करके गुरुके चरणोंकी पूजा आदि रूप विनयके द्वारा ही मुक्ति होती है, इस प्रकारका श्रद्धान वैनयिक मिथ्यात्व है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे गृहीत अर्थका

---

१. म °मक्कुमेकांत° । २. क °वस्तुसर्वथाऽसदेव सर्वथैकमेव । ३. म °नेकमेवित्यादि प्रति° । ४ म °दिदमित्यनेकांत°, क °मोदलादनेकांत° ।

विरोधिगाप्तवचनक्केयुं प्रामाण्यानुपपत्तियत्तणिंदमिदमेव तत्त्वमेंदितु निर्णयिसल्कशक्यमप्पुदरिंदं सर्वत्र संशयमे एंबी अभिप्रायं संशयमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ।

ज्ञानदर्शनावरणतीव्रोदयाक्रांतंगळप्पेकेंद्रियजीवंगळ्गेयुमनेकांतात्मकं वस्तुवें दितु वस्तुसामान्यदोळमुपयोगलक्षणो जीव एंदेंबवस्तुविशेषदोळमज्ञानजनितमप्प श्रद्धानमज्ञानमिथ्यात्वमें बुदक्कुं ॥ ५

अनंतरमवरुदाहरणोपलक्षणप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

एयंत बुद्धदरिसी विवरीओ बम्ह तावसो विणओ ।
इंदो विय संसइयो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥१६॥

बुद्धदर्शी एकांतः ब्राह्मणो विपरीतः तापसो वैनयिकः । इंद्रोऽपि च संशयमिथ्यादृष्टिः मस्करपूर्वोऽज्ञानी ॥ क्षणिकैकांतवादिगळप्प बुद्धदर्शीप्रभृतिगळेकांतमिथ्यादृष्टिगळु । याज्ञिकब्राह्मणादिगळु विपरीतमिथ्यादृष्टिगळु । तापसादिगळु वैनयिकमिथ्यादृष्टिगळु । इंद्रमतानुसारिप्रभृतिगळु संशयमिथ्यादृष्टिगळु । मस्करपूर्वादिगळु अज्ञानमिथ्याभिनिवेशरप्पर ।

अनंतरमतत्त्वश्रद्धानलक्षणमप्प मिथ्यात्वमं निरूपिसलिदं पेळ्दपरु ।—

कालान्तरे च व्यभिचारसंभवात् परस्परविरोधिन आप्तवचनस्याऽपि प्रामाण्यानुपपत्तेरिदमेव तत्त्वमिति निर्णयितुमशक्तेः सर्वत्र संशय एव इत्यभिप्रायः संशयमिथ्यात्वं । ज्ञानदर्शनावरणतीव्रोदयाक्रान्तानामेकेन्द्रियजीवानां अनेकान्तात्मकं वस्त्विति वस्तुसामान्ये, उपयोगलक्षणो जीव इति वस्तुविशेषेपि अज्ञानजनितं श्रद्धानं अज्ञानमिथ्यात्वं भवति ॥१५॥ अथैषां पञ्चानामुदाहरणान्युद्दिशति—

एतानि उपलक्षणत्वेन उक्तत्वात् एवं व्याख्येयानि—बुद्धदर्श्यादयः एकान्तमिथ्यादृष्टयः । याज्ञिकब्राह्मणादयः विपरीतमिथ्यादृष्टयः । तापसादयः विनयमिथ्यादृष्टयः । इन्द्रो नाम श्वेताम्बरगुरुः, तदादयः संशयमिथ्यादृष्टयः । मस्करपूर्वादयः अज्ञानमिथ्यादृष्टयो भवन्ति ॥१६॥ अथातत्त्वश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वं निरूपयति—

देशान्तर और कालान्तरमें व्यभिचार सम्भव होनेसे परस्परमें विरोधी आप्तके वचन भी प्रमाण नहीं होते, इसलिए 'यही तत्त्व है' इस प्रकारका निर्णय करना शक्य न होनेसे सर्वत्र संशय ही है, इस प्रकारका अभिप्राय संशय मिथ्यात्व है । ज्ञानावरण और दर्शनावरणके तीव्र उदयसे आक्रान्त एकेन्द्रिय आदि जीवोंका 'वस्तु अनेकान्तात्मक है' इस प्रकार वस्तु सामान्यमें और 'जीवका लक्षण उपयोग है' इस प्रकार वस्तु विशेषमें भी जो अज्ञान मूलक श्रद्धान है, वह अज्ञान मिथ्यात्व है । इस प्रकार स्थूल अंशके आश्रयसे मिथ्यात्वके पाँच भेद कहे । सूक्ष्म अंशके आश्रयसे असंख्यात लोक मात्र भेद हो सकते हैं, किन्तु उनका व्यवहार सम्भव नहीं है ॥१५॥

आगे मिथ्यात्वके इन पाँच प्रकारोंके उदाहरण देते हैं—ये उदाहरण उपलक्षणरूपसे कहे हैं अर्थात् एकका नाम लेनेसे अन्यका भी ग्रहण होता है । इसलिए इस प्रकार अर्थ करना चाहिए—बुद्धदर्शी अर्थात् बुद्धके अनुयायी आदि मत एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं । यज्ञके कर्ता ब्राह्मण आदि विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं । तापसी आदि विनय मिथ्यादृष्टि हैं । इन्द्र नामक श्वेताम्बर गुरु आदि संशय मिथ्यादृष्टि हैं । मस्करी आदि अज्ञान मिथ्यादृष्टि हैं । वर्तमान कालकी अपेक्षा इस भरत क्षेत्रमें होनेवाले बुद्धदर्शी आदिको यहाँ उदाहरणके रूपमें उपस्थित किया है ॥१६॥

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥१७॥

मिथ्यात्वं वेदयमानो जीवो विपरीतदर्शनो भवति । न च धर्मं रोचते मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मिथ्यात्वकर्मोदयानुभागमननुभवितुव जीवं विपरीतदर्शननक्कु मंते बुदेनें दोडे—विपरीतमप्प तत्त्वमं नंबुतं मिथ्यादृष्टियक्कुमेंबुदर्थं । केवलमतत्त्ववने नंबुवातनातनल्लं मत्तमनेकांतात्मकमप्प धर्ममं वस्तुस्वभावमं रत्नत्रयात्मकमप्प मोक्षकारणभूतमुमं न रोचते नंबुवनल्लं येंतिगळु ज्वरितनप्पवंगे मधुरमप्प क्षीरादिरसं न रोचते सोगसवंते ॥

तदनंतरं वस्तुस्वभावश्रद्धानमनेयभिव्यंजयल्लिकदं पेळ्दपरु—

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥१८॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति । श्रद्दधात्यसद्भावमुपदिष्टं वानुपदिष्टम् ॥ मिथ्यादृष्टिजीवनर्हदादिगळिंदमुपदिष्टमं प्रवचनमनाप्तागमपदार्थंगळं न श्रद्दधाति नंबुवनल्लं ।

मिथ्यात्वं उदयागतं वेदयन्—अनुभवन् जीवः विपरीतदर्शनः अतत्त्वश्रद्धायुक्तो भवति न केवलं अतत्त्वमेव श्रद्धत्ते अनेकान्तात्मकं धर्मं वस्तुस्वभावं रत्नत्रयात्मकमोक्षकारणभूतधर्मं न रोचते (नाभ्युपगच्छति) । अत्र दृष्टान्तमाह—यथा ज्वरितः—पित्तज्वराक्रान्तो, मधुरं—क्षीरादिरसं, न रोचते तथा मिथ्यादृष्टिर्धर्मं न रोचते इत्यर्थः ॥१७॥ इदमेव वस्तुस्वभावाश्रद्धानं स्पष्टयति—

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं—अर्हदादिभिर्व्याख्यातं, प्रवचनं आप्तागमपदार्थत्रयं न श्रद्दधाति—नाभ्युपगच्छति । प्रकृष्टं वचनं यस्यासौ प्रवचनः—आप्तः, प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनं—परमागमः, प्रकृष्टमुच्यते—प्रमाणेन अभिधीयते इति प्रवचनं पदार्थः, इति निरुक्त्या प्रवचनशब्देन तत्त्रयस्याभिधानात् । पुनः स मिथ्यादृष्टिः असद्भावं—मिथ्यारूपं प्रवचनं आप्तागमपदार्थं, उपदिष्टं—आप्ताभासैः प्रकथितं अथवा अनुपदिष्टं—अकथितमपि श्रद्दधाति । ननु—,घडपडरथभादिपयत्थेसु मिच्छाइट्ठी न जहावगमं । सद्दहसोवि अण्णाणी उच्चदे जिणवयणे सद्दहणाभावादो ॥' इति सिद्धान्तवाक्योद्दिष्टमिथ्यादृष्टिलक्षणं ज्ञात्वा स मिथ्याभावः परिहर्त्तव्यः । तद्भेदोऽप्यनेनैव

आगे अतत्त्व श्रद्धान रूप मिथ्यात्वका कथन करते हैं—उदयमें आये मिथ्यात्वका वेदन अर्थात् अनुभवन करनेवाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्वश्रद्धासे युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्वकी ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभावको अथवा मोक्षके कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्मको भी पसन्द नहीं करता। इसमें दृष्टान्त देते हैं—जैसे पित्त ज्वरसे ग्रस्त व्यक्ति मीठे दूध आदि रसको पसन्द नहीं करता। उसी तरह मिथ्यादृष्टिको धर्म नहीं रुचता ॥१७॥

इसी वस्तुस्वभावके अश्रद्धानको स्पष्ट करते हैं—मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हन्त आदिके द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्टका वचन प्रवचन अर्थात् परमागम, प्रकृष्टरूपसे जो कहा जाता है अर्थात् प्रमाणके द्वारा कहा जाता है, वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरुक्तियोंसे प्रवचन शब्दसे आप्त, आगम और पदार्थ

---

१५ १. म °तमप्प° । २. म °ष्टियप्पजीव° ।

असद्भावमप्प प्रवचनाभासमनुपदिष्टमुमं मेणु श्रद्दधाति नंबुगुमिल्लि प्रवचनशब्दक्काप्तागम-पदार्थंगळंतु वाच्यंगळादुवं बोडे प्रकृष्टं वचनं यस्यासौ प्रवचनः आप्तः, प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनं परमागमः, प्रकृष्टं प्रमाणेनोच्यते अभिधीयत इति प्रवचनं पदार्थः एंदितु विशेषमरियल्पडुगुं ॥

ननु घडपडत्थंभादिसु मिच्छाइट्ठीणं जहावगमसद्दहणमुवलब्भदे चेण्ण। तत्थ वि तस्स अणज्झवसायवंसणादो। ण चेवमसिद्धं। दुवमेवं चेवेसि णिच्छयाभावादो, अहवा जहाविसा मूढो वण्णगंधरसफासेहि जहावगमं सद्दहंतो वि अण्णाणी उच्चदि। जहावगमेदि सा सद्दहणाभावादो। एवं थंभादि पयत्थेसु मिच्छाइट्ठी जहावगमं सद्दहंतो वि अण्णाणी उच्चदि जिणवयणे सद्दहणाभावादो।

एंदितु सिद्धांतवाक्योद्दिष्ट मिथ्यादृष्टिलक्षणमुमं तिळिदु तन्मिथ्याभावमं भव्यर्परिहरिसुगे।

मत्तमा मिथ्यादर्शनपरिणामभेदमनोवाक्यदिदमुमरियल्पडुगुं। कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणाम आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति। तत्र कारणविपर्यासस्तावत् रूपादीनामेकं कारणममूर्तं नित्यमिति कल्पयति। अपरे पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारंभका इति वर्णयति। भेदाभेदविपर्यासः कार्यात्कारणं भिन्नमेवाभिन्नमेवेति परिकल्पना स्यात्। स्वरूपविपर्यासः रूपादयो निर्विकल्पाः संति न संत्येव वा, तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव न तदालंबनं वस्तु बाह्यमिति।—[सर्वार्थसिद्धि १] आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वाक्ये न ज्ञातव्यः। कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणामः आत्मन्यवस्थितो रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति। तत्र कारणविपर्यासस्तावत् रूपादीनामेकं कारणममूर्तं नित्यमिति कल्पयति। अपरः पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारम्भका इति वर्णयति। भेदाभेदविपर्यासः—कार्यात् कारणं भिन्नमेवाभिन्नमेवेति परिकल्पना स्यात्। स्वरूपविपर्यासः—रूपादयो निर्विकल्पाः सन्ति न सत्येव वा तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव न तदालम्बनं बाह्यं वस्त्विति। एवं कुमतिज्ञानबलाधानेन कुश्रुतविकल्पा भवन्ति। एतेषां सर्वं मूलकारणं मिथ्यात्वकर्मोदय एवेति निश्चेतव्यम् ॥१८॥ अथ सासादनगुणस्थानस्वरूपं सूत्रद्वयेन आह—

तीनों कहे जाते हैं। तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थका 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासोंके द्वारा कथित अथवा अकथितका भी श्रद्धान करता है।

सिद्धान्तमें कहा है—'घट, पट, स्तम्भ आदि पदार्थोंमें मिथ्यादृष्टि जाननेके अनुसार श्रद्धान करते हुए भी अज्ञानी कहा जाता है, क्योंकि उसको जिनवचनमें श्रद्धान नहीं है।' इस सिद्धान्त वाक्यमें कहे मिथ्यादृष्टिके लक्षणको जानकर उस मिथ्यात्वको छोड़ना चाहिए। उस मिथ्यादर्शन परिणामके भेद भी इसी सिद्धान्तवाक्यसे जानने चाहिए। जो इस प्रकार है—आत्मामें अवस्थित कोई मिथ्यादर्शनरूप परिणाम रूपादिकी उपलब्धि होनेपर भी कारण-विपर्यास, भेदाभेद विपर्यास और स्वरूपविपर्यासको पैदा करता है। उनमें-से कारण विपर्यास इस प्रकार है—कोई मानते हैं कि रूपादिका कारण एक अमूर्त नित्य तत्त्व है। दूसरे (नैयायिक आदि) कहते हैं कि परमाणु पृथिवी आदि जातिके भेदसे भेदवाले हैं। पृथिवी जातिके परमाणुओंमें रूप-रस-गन्ध-स्पर्श चारों गुण होते हैं। जल जातिके परमाणुओंमें रस रूप. स्पर्श तीन गुण होते हैं। तेजो जातिके परमाणुओंमें रूप और स्पर्श दो गुण होते

इंतु कुमतिज्ञानबलाभानदिं कुश्रुतविकल्पंगळप्पुमिवक्के मूलकारणं मिथ्यात्वकर्मोदयमे यक्कुमेंदु निश्चयिसुगे ॥

तदनंतरं सासादनगुणस्थानस्वरूपमं पेळलेंदो सूत्रद्वितं बंदुदु ।

आदिमसम्मत्तद्धासमयादो छावलित्ति वा सेसे ।
अणअण्णदरुदयादो णासिदसम्मो त्ति सासणक्खो सो ॥१९॥

आद्यसम्यक्त्वाद्धासमयात् षडावलिपर्य्यंतं वा शेषे । अनंतानुबंध्यन्यतरोदयाज्ञासित सम्यक्त्व-इति सासादनाख्योऽसौ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालदोळु जघन्यदिंदमोंदु समयमुत्कर्षदिंदमावलिकाषट्कमवशिष्टमागुत्तिरलु अनंतानुबंधिकषाय चतुष्कदोळन्यतरमप्प कषायोदयमागुत्तिरलो आवनोर्व विनाशितसम्यक्त्वमक्कुं आतं सासादननेंदितु पेळल्पट्टं । वा शब्दिंदं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालदोळं सासादनगुणस्थानप्राप्तियप्पुदेंदितु कषायप्राभृताभिप्रायमक्कुं ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वकाले जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन आवलिषट्के च अवशिष्टे सति अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्के अन्यतमकषायस्योदये जाते यो विनाशितसम्यक्त्वो आयते स सासादन इत्युच्यते । वाशब्देन द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालेऽपि सासादनगुणस्थानप्राप्तिर्भवति इति कषायप्राभृताभिप्रायो भवति ॥१९॥

हैं । वायु जातिके परमाणुओंमें केवल एक स्पर्श गुण होता है । तथा पृथ्वी जातिके परमाणुओंसे पृथ्वी ही बनती है, जलजातिके परमाणुओंसे जल ही बनता है । इस तरह वे परमाणु समान जातीय कार्योंको ही उत्पन्न करते हैं । दूसरा भेदाभेदविपर्यास इस प्रकार है—कारणसे कार्य भिन्न ही या अभिन्न ही होता है,ऐसी कल्पना भेदाभेदविपर्यास है । स्वरूप विपर्यास इस प्रकार है—रूप आदि निर्विकल्प हैं अथवा नहीं हैं अथवा उनके आकार रूपसे परिणत ज्ञान ही है, उसका आलम्बन बाह्य वस्तु नहीं है । इस प्रकार कुमतिज्ञानके साहाय्यसे कुश्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं । इन सबका मूल कारण मिथ्यात्व कर्मका उदय ही है, ऐसा निश्चय करना चाहिए ॥१८॥

आगे दो गाथाओंसे सासादन गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वके कालमें जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छह आवली शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभमें से किसी एक कषायका उदय होनेपर जिसका सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है,वह सासादन कहा जाता है । 'वा' शब्दसे द्वितीय उपशमसम्यक्त्वके कालमें भी सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति होती है, ऐसा कषाय प्राभृतका अभिप्राय है ॥१९॥

---

१. म सूत्रं बं° । २. म °सिरलनंतानु° । ३. म °रलु । ४. म पेल्कपट्टं । ५. म °भृतंदितु ।

५. मन्दप्रबोधिनी टीकामें सासादन गुणस्थानके सम्बन्धमें कुछ विशेष चर्चा है, उसे यहाँ दिया जाता है—'अनन्तानुबन्धी कषायोंके चारित्रमोहका भेद होते हुए भी सम्यक्त्व और चारित्रको घातनेका स्वभाव है और स्वभावमें कोई तर्क नहीं किया जा सकता । शंका—जब सासादन अनन्तानुबन्धीके उदयसे होता है,तो यह पारिणामिक कैसे हुआ ? समाधान—विवक्षित दर्शनमोहके उदयका अभाव होनेसे । अनन्तानुबन्धी दर्शनमोहमें नहीं है,उसका पाठ चारित्रमोहमें है । शंका—जब अनन्तानुबन्धी सम्यग्दर्शनकी घातक है, तो वह दर्शनमोहमें क्यों नहीं है ? समाधान—नहीं, क्योंकि चारित्रके घातक तीव्रतम अनुभागकी महिमासे उसका चारित्रमोहपना ही उचित है । शंका—तब उससे सम्यक्त्वका विनाश कैसे होता है ? समाधान—अनन्तानु-

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमहिमुहो ।
णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥२०॥

सम्यक्त्वरत्नपर्वतशिखरान्मिथ्यात्वभूमिसमभिमुखः । नाशितसम्यक्त्वः स सासादननामा मन्तव्यः ॥

सम्यक्त्वपरिणाममेंब रत्नपर्वतद शिखरवर्त्तणिदं मिथ्यात्वपरिणाममेंब भूम्यभिमुखनें- ५
नेवरमंतराळकालदोळु एकसमयमादियागि षडावलिकालपर्यंतं वर्त्तिसुगुमावुदो दु जीवमा जीवं विनाशितसम्यक्त्वनप्प सासादननेंनामाभिधेयनें बरियल्पडुगुं ॥

तदनंतरं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थमागि गाथाचतुष्टयमं पेळ्दपरु ।

सम्मामिच्छुदएण य जच्चंतरसव्वघादिकज्जेण ।
ण य सम्मं मिच्छं पि य सम्मिस्सो होदि परिणामो ॥२१॥ १०

सम्यग्मिथ्यात्वोदयेन च जात्यन्तरसर्वघातिकार्येण । न च सम्यक्त्वं मिथ्यात्वमपि च संमिश्रो भवति परिणामः ॥ जात्यंतरसर्वघातिकार्यमप्प सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिंदं जीवक्के

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यो जीवः सम्यक्त्वपरिणामरूपरत्नशिखरात् मिथ्यात्वपरिणामरूपभूम्यभिमुखः सन् मध्यवर्त्यन्तरालकाले एकसमयात् षडावलिकालपर्यन्ते वर्तते स जीवो विनाशितसम्यक्त्वः सासादननामा ज्ञातव्यः ॥२०॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्वरूपं गाथाचतुष्टयेनाह— १५

जात्यन्तरसर्वघातिकार्यरूपसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन जीवस्य युगपत्सम्यक्त्वमिथ्यात्वशबलितरूपपरिणामो भवति तेन सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन मिथ्यात्वकर्मोदयवन्न केवलं मिथ्यात्वपरिणामो भवति, नापि सम्यक्त्व-

---

जो जीव सम्यक्त्व परिणामरूप रत्नपर्वतके शिखरसे मिथ्यात्व परिणामरूपी भूमिके सम्मुख होता हुआ मध्यके कालमें जो एक समयसे छह आवलि पर्यन्त है, रहता है, वह जीव सम्यक्त्वके नष्ट हो जानेसे सासादन होता है। अर्थात् पर्वतसे गिरा व्यक्ति भूमिमें आनेसे २० पहले गिरता हुआ कुछ समय अन्तरालमें रहता है। वैसे ही जो सम्यक्त्वके नष्ट होनेपर मिथ्यात्व रूप भूमिको प्राप्त न करके छह आवलिमात्र अन्तराल कालमें रहता है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है ॥२०॥

जात्यन्तर सर्वघातिके कार्यरूप सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जीवके एक साथ सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप मिला-जुला परिणाम होता है, अतः सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके २५ उदयसे मिथ्यात्व कर्मके उदयकी तरह न केवल मिथ्यात्व परिणाम होता है और न सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयकी तरह सम्यक्त्व-परिणाम होता है। इस कारणसे उस सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका कार्य जुदी ही जातिरूप सम्यग्मिथ्यात्व रूप मिला हुआ परिणाम होता है ॥२१॥

बन्धीका उदय होनेपर छह आवलिरूप थोड़ेसे कालका व्यवधान होनेपर भी मिथ्यात्वकर्मके उदयाभिमुख होनेपर ही सम्यग्दर्शनका विनाश होता है। शंका—यदि ऐसा है तो अनन्तानुबन्धीके उदयसे सम्यक्त्वका नाश क्यों कहा है ? समाधान—मिथ्यात्वके उदयाभिमुख होनेके निकटवर्ती अनन्तानुबन्धीके उदयसे सम्यग्दर्शनके विनाशकी सम्भावना होनेसे ऐसा कहा है। अधिक क्या अनन्तानुबन्धीमें सम्यग्दर्शनके विनाशकी शक्ति होनेपर भी मिथ्यात्वके उदयाभिमुख होनेपर ही उस शक्तिकी व्यक्ति होती है। सासादनमें अतत्त्व श्रद्धान अव्यक्त होता है और मिथ्यात्व में व्यक्त होता है।

१. स समभिमुहो । २. म °वलिकेकां° । ३. म °दनामि° । ४. म जच्चंतर ।

युगपत्सम्यक्त्वमिथ्यात्वशबलितमप्प परिणाममक्कुमा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयविदं मिथ्यात्वकर्मोदयविनेंतु केवलमिथ्यात्वपरिणाममक्कुमंतुमल्तु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयविदैंतु सम्यक्त्वपरिणाममुं मेणक्कुमंतुमल्तु अदुकारणविदं तत्कार्यं आत्यंतरमप्पसम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामशबलितमक्कुमेंबरियल्पडुवुदु ॥

दहिगुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं ।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो ॥२२॥

दधिगुडमिव व्यामिश्रं पृथग्भावं नैव कर्तुं शक्यं । एवं मिश्रकभावः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ मे[1]तु व्यामिश्रमप्प दधिगुडं पृथग्भावमं माडुवडे शक्यमल्तु अंते सम्यग्मिथ्यात्वसंमिश्रपरिणाममुमं केवलसम्यक्त्वभावमुमं केवलमिथ्यात्वभावमुमं मेण[2] पृथग्भावदिंदं व्यवस्थापिसे शक्यमल्तु । इदु कारणदिंदमातं सम्यग्मिथ्यादृष्टि एंदितु ज्ञातनक्कुं । समीचीनासौ मिथ्या च सम्यग्मिथ्या सा दृष्टिः श्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । मे[3]दितु व्युत्पत्तियुं[4]टप्पुदरिंदमुं । मुन्नं परिगृहीतातत्त्वश्रद्धानापरित्यागेऽपि तत्त्वश्रद्धानमविनाभावि[5]यप्पुदु कारणमागि ।

सो संजमं ण [10]गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं ।
सम्मं वा मिच्छं वा परिवज्जिय मरदि णियमेण ॥२३॥

सः संयमं न गृह्णाति देशसंयमं वा न बध्नात्यायुः[6]षि सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य

प्रकृत्युदयवत् सम्यक्त्वपरिणामो भवति । ततः कारणात् तत्कार्यं आत्यन्तररूपसम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामशबलितं भवतीति ज्ञातव्यं ॥२१॥

इव–यथा, व्यामिश्रं–संमिश्रं दधिगुडं पृथग्भावं कर्तुं नैव शक्यं भवति एवं तथा सम्यग्मिथ्यात्वसंमिश्रपरिणामोऽपि केवलसम्यक्त्वभावेन वा केवलमिथ्यात्वभावेन वा पृथग्भावेन व्यवस्थापयितुं नैव शक्यो भवति । अतः कारणात् स सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यो भवति । समीचीनासौ मिथ्या च सम्यग्मिथ्या, सा दृष्टिः–श्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति व्युत्पत्तेरपि पूर्वपरिगृहीतातत्त्वश्रद्धानापरित्यागेन सह तत्त्वश्रद्धानं भवति तथासंभवकारणसद्भावात् ॥२२॥

सः–सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्जीवः सकलसंयमं देशसंयमं वा न गृह्णाति तद्ग्रहणयोग्यकरणपरिणामानां तस्मिन्नसंभवात् । तथा स चतुर्गतिनिबन्धनानि आयूंष्यपि न बध्नाति मरणकाले नियमेन सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामं

जैसे मिले हुए दही, गुड़को अलग-अलग करना शक्य नहीं है उसी प्रकार मिला हुआ सम्यग्मिथ्यात्व परिणाम भी केवल सम्यक्त्वरूपसे या केवल मिथ्यात्वभावरूपसे अलग-अलग व्यवस्थापित करना शक्य नहीं है । इस कारण उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। समीचीन और मिथ्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जिसके होती है वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है । इस व्युत्पत्तिसे भी पहले ग्रहण किये हुए अतत्त्वश्रद्धानको त्यागे बिना उसके साथ तत्त्वश्रद्धान भी होता है क्योंकि उस प्रकारके कारणका सद्भाव है ॥२२॥

वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सकल संयम अथवा देशसंयमको ग्रहण नहीं करता; क्योंकि उनको ग्रहण करने योग्य परिणाम उसमें नहीं होते । तथा वह चारों गतियोंमें ले जानेका कारण जो चार आयुकर्म हैं, उनका भी बन्ध नहीं करता है । तथा मरणकाल आनेपर

---

१. म °ध्यात्वकर्मोदयदिं मि° । २. म °दिदमेंतु । ३. म °ल्पडुगु । ४. म °मल्तु । ५. क मेणु । ६. म °स्थापिप्पडे शं° । ७. म °तत्त्वश्र° । ८. म °गविंदमे । ९. म °क्कुमुं सं° । १०. म गेण्हं ।

म्रियते नियमेन ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवं सकलसंयममुमं देशसंयममुमं मेणु कैकोळ्दल्लं । तद्ग्रहणयोग्यकरणपरिणामंगळात्तनोळ्संभविसवप्पुदरिंद मेले आतं चतुर्गतिनिबंधनमप्पायुष्यमुमं कट्टुवनल्लं । मरणकालदोळु नियमदिंदं सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामदं परिणमिसुगुं । असंयतसम्यग्दृष्टित्वमुमं मेणु मिथ्यादृष्टित्वमुमं पोदि बळिक्कं परभवायुष्यमं कट्टि सागुं ॥

सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं । ५
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि ॥२४॥

सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामेषु यस्मिन्नायुः पुरा बद्धं । तस्मिन्मरणं मारणान्तिकसमुद्घातोऽपि च न मिश्रे ॥ एत्तलानुं बद्धपरभवायुष्यनप्पजीवं सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामदं पोदुगुमागळु सम्यक्त्वपरिणामनिमित्तकमप्प मेणु मिथ्यात्वपरिणामनिमित्तकमप्पावुदो दु गतिसंबंधायुष्यं मुंनं कट्टल्पट्टुदु । बळिकं सम्यग्मिथ्यादृष्टियागि मरणकालदोळु तद्गतियोग्यपरिणामदोळे मरण- १०
मनेय्दुगुमेंबुदितल्लवे मत्ते सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामदोळायुर्बंधकालदोळितप्प परिणामक्कुं । मरणकालदोळंतप्पुदेयक्कुमेंदितु नियमविल्ल ॥

त्यक्त्वा, असंयतसम्यग्दृष्टित्वं वा मिथ्यादृष्टित्वं वा नियमेन प्राप्यैव पश्चान्म्रियते ॥२३॥

सम्यक्त्वपरिणाममिथ्यात्वपरिणामयोर्मध्ये यस्मिन् परिणामे, पुरा-सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वप्राप्तेः पूर्वं परभवायुष्कर्म बद्धं तस्मिन्नेव परिणामे सम्यक्त्वरूपे वा मिथ्यात्वरूपे वा गतस्यैव जीवस्य मरणं भवतीति १५
नियमः कथितः, अन्येषामाचार्याणामभिप्रायेण नियमो नास्ति । तद्यथा—सम्यक्त्वपरिणामे वर्तमानः कश्चिज्जीवः तद्योग्यं परभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते । कश्चिज्जीवः मिथ्यात्वे वर्तमानः तद्योग्यमुत्तरभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं प्रतिपद्य म्रियते । (इदं बद्धायुष्कं प्रत्युक्तं) तथा मारणांतिकसमुद्घातोऽपि मिश्रगुणस्थाने नास्ति ॥२४॥ अथासंयतगुणस्थानस्वरूपं निरूपयति— २०

अनन्तानुबन्धिकषायाणां प्रशस्तोपशमो नास्ति इति तेषामप्रशस्तोपशमे विसंयोजने वा जाते दर्शन-

---

नियमसे सम्यग्मिथ्यारूप परिणामको त्यागकर असंयत सम्यग्दृष्टिपने अथवा मिथ्यादृष्टिपनेको नियमसे प्राप्त करनेके पश्चात् ही मरता है ॥२३॥

सम्यक्त्व परिणाम और मिथ्यात्व परिणाममें-से जिस परिणाममें सम्यग्मिथ्यादृष्टिपनेकी प्राप्तिसे पहले परभवसम्बन्धी आयुकर्मका बन्ध किया था, उसी सम्यक्त्व रूप या २५
मिथ्यात्व रूप परिणाममें जानेपर ही जीवका मरण होता है—यह नियम है । अन्य आचार्योंके अभिप्रायसे नियम नहीं है । उनके मतसे सम्यक्त्व परिणाममें वर्तमान कोई जीव उसके योग्य परभवकी आयुका बन्ध करके पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर पीछे सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त करके मरता है । मिथ्यात्वमें वर्तमान कोई जीव उसके योग्य उत्तर भवकी आयुका बन्ध करके पुनः सम्यग्दृष्टि होकर पीछे सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त करके मरता है । ३०
यह कथन बद्धायुष्कके लिये है । तथा मिश्र गुणस्थानमें मारणान्तिक समुद्घात भी नहीं होता है ॥२४॥

आगे असंयत गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—अनन्तानुबन्धी कषायोंका प्रशस्त उपशम नहीं होता । इसलिए उनका अप्रशस्तोपशम अथवा विसंयोजन होने पर तथा दर्शनमोहनीय-

---

१. म °थमुमं देसंयमुमं । २. म बलिकल्पर° । ३. क °मकनि° । ४. म °दोलमंतप्पु° । ३५

अहंगे मारणांतिकसमुद्घातमुं मिश्रगुणस्थानदोलिल्ल ।
अनंतरमसंयतगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थमी सूत्रमं पेळ्दपरु ।

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं ।
चलमलिणमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥२५॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सम्यक्त्वदेशघातिन उदयाद्वेदक भवेत्सम्यक्त्वं । चलमलिनमगाढं तत्नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥

अनंतानुबंधिकषायंगळ्गे प्रशस्तोपशमनमल्लिप्पुदरिंदमवक्के प्रशस्तोपशमनं मेणु विसंयोजनेमागुत्तिरलु दर्शनमोहंगळप्प मिथ्यात्वकर्मम्मुं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुमे बिवेरडक्कं प्रशस्तोपशमनक्के अप्रशस्तोपशमक्के क्षपणीयक्के मेणागुत्तं विरलु सम्यक्त्वप्रकृतिदेशघातिस्पर्द्धकंगळुदयमप्पुटागुत्तिर्वोडे तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणमप्प सम्यक्त्वं वेदकमक्कुं । तत्सम्यक्त्वप्रकृत्युदय देशघातिस्पर्धकोदयविदं तत्त्वार्थश्रद्धानविनाशनसामर्थ्य शून्यमप्पुदरिंदं तत्सम्यक्त्वं चलमुं मलिनमुमगाढमुमक्कुं । एकेंदोडे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयक्के तत्त्वार्थश्रद्धानक्के मलजननमात्रमे व्यापारप्पुदरिंदं । अदु कारणादिंनक्के देशघातित्वमक्कुं । इंतु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमननुभविसुतिर्दं जीवक्के जायमानमप्प तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमेंदितु पेळल्पट्टुदु ।

इदुवे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमेंदु पेळल्पडुगुमेकेंदोडे दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकंगळ्गुदयाभावलक्षणक्षयदोळं देशघातिस्पर्धकरूपमप्प सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमागुत्तिर्वोडमवक्कये उपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकंगळ्गे सदवस्थानलक्षणोपशमदोळं समुद्भूतमप्पुदरिंदं नित्यमेंदो विशेषणदिंदं षट्षष्टि

मोहमिथ्यात्वकर्मसम्यग्मिथ्यात्वकर्मणोः प्रशस्तोपशान्तयोः क्षपणीययोर्वा जातयोः सम्यक्त्वप्रकृतिदेशघातिस्पर्धकानामुदये सत्येव यत्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यक्त्वं भवेत् तद्वेदकनाम भवति । तत् सम्यक्त्वप्रकृत्युदये देशघातिस्पर्धकोदयस्य तत्त्वार्थश्रद्धानविनाशनसामर्थ्यशून्यत्वात् तत्सम्यक्त्वं चलं मलिनं अगाढं भवति सम्यक्त्वप्रकृत्युदयस्य तत्त्वार्थश्रद्धानस्य मलजननमात्र एव व्यापारात् ततः कारणात् तस्य देशघातित्वं भवति । एवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतो जीवस्य जायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमित्युच्यते । इदमेव क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं नाम, दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणक्षये देशघातिस्पर्धकरूपसम्यक्त्वप्रकृत्युदये तस्यैवोपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात् । नित्यमिति विशेषणेन (जघन्येनान्तर्मुहूर्तत्वेऽपि

के भेद मिथ्यात्व कर्म और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका प्रशस्त उपशम अथवा अप्रशस्त उपशम अथवा क्षय होनेके सम्मुख होते और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप देशघाति स्पर्द्धकोंका उदय रहते हुए ही जो तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व होता है, उसका नाम वेदक है । उस सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयमें देशघाति स्पर्द्धकोंका उदय तत्त्वार्थके श्रद्धानको विनष्ट करनेकी शक्तिसे शून्य होनेसे वह सम्यक्त्व चल, मलिन और अगाढ़ होता है । क्योंकि सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय तत्त्वार्थ श्रद्धानमें मल उत्पन्न करने मात्रमें व्यापार करता है । इसी कारणसे वह देशघाति है । इस प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयको अनुभवन करनेवाले जीवके होनेवाला तत्त्वार्थ श्रद्धान वेदक सम्यक्त्व कहा जाता है । इसीका नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, क्योंकि दर्शन मोहके सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदयाभाव रूप क्षय होनेपर तथा देशघाती स्पर्द्धक रूप सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर और उसीके ऊपरके अनुदय प्राप्त निषेकोंका सदवस्था रूप

---

१. क प्रतौ 'अहंगे' इत्यादि नास्ति । २. म °न मुमागु° । ३. क °प्रकृतिवाति° । ४. क °नमप्पा° । ५. क °कृतिय दे° । ६. क °व्यं शू । ७. म °नमु वे° । ८. म त्वमु मे° ।

सागरोपमकालावस्थायि येदुत्कृष्टविवक्षेयिं पेळल्पट्टुवु । कर्मक्षपणहेतुवेंबुदरिंदं मोक्षकारणंगळप्प सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामंगळोळु सम्यक्त्वमे मुख्यकारणमेंदितु सूचिसल्पट्टुदु ।

वेदकसम्यक्त्वक्के शंकादिमलंगळ् यथासंभवमागि सम्यक्त्वनिर्मूलनोच्छेदना कारणंगळ्-सम्यक्त्वप्रकृत्युदयविंद पुट्टुववु । औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वंगळ्गे मलजननकारणतदुदया-भावदिंदं निर्मलत्वं सिद्धमादुदेंदरिगे । चलमलिनागाढमुमेंतेने पेळ्दपें प्रथमोद्दिष्टचलमें दुवु । ५

श्लोक—

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं ।
लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमिव स्थितं ॥

मेंदितु पेळल्पट्टविंतिदं बोडे आप्तागमपदार्थश्रद्धानविकल्पंगळोळु चलिसुगुमेंदितु चलमें-दुवें तेंबोडे—"स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते । अन्यस्यायमिति भ्राम्यन्मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥" एंदितु स्वकारितार्हच्चैत्यादिगळोळु ममत्वदिंदं ममायं देवः एंदितु अन्यकारिता-र्हच्चैत्यादिगळोळन्यस्यायं देवः एंबु परकीयत्वदिंदं बेर्वेर्प्पु भजनवर्त्तनिंदं चलमें दु पेळल्पट्टुदु । इल्लि दृष्टांतमं पेळ्दपरु । नानाकल्लोलमालेगळोळें तु जलमो देयक्कुमें नानारूपदिं चलिसुगुमें ते १०

उत्कर्षेण) षट्षष्टिसागरोपमकालावस्थायीत्युत्कृष्टविवक्षयोक्तं (न तु सार्वकालिकं) । कर्मक्षपणहेतु इत्यनेन मोक्षकारणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेषु सम्यक्त्वमेव मुख्यकारणमिति सूच्यते । वेदकसम्यक्त्वस्य शंकादिमला अपि यथासंभवं सम्यक्त्वनिर्मूलनोच्छेदनाकारणसम्यक्त्वप्रकृत्युदयादुत्पद्यन्ते । औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वयोर्मल-जननकारणतदुदयाभावाद्विर्मलत्वं सिद्धमिति जानीहि । चलादीनि लक्षयति । तत्र चलत्वं यथा—

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतम् । लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमिव स्थितं ॥

नानात्मीयविशेषेषु आप्तागमपदार्थश्रद्धानविकल्पेषु चलतीति चलं स्मृतं । तद्यथा—

स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते । अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥

स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ ममायं देव इति ममीयत्वेन, अन्यकारितेऽर्हच्चैत्यादौ परकीयत्वेन च भजनाच्चल-मित्युक्तं । अत्र दृष्टान्तमाह—नानाकल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं तथापि नानारूपेण चलति तथा मोहाद्

उपशम होनेपर वेदक सम्यक्त्व होता है । 'नित्य' विशेषणसे यद्यपि वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, तथापि छियासठ सागर प्रमाण स्थितिमात्र दीर्घकाल तक स्थायी होनेसे उत्कृष्ट विवक्षासे नित्य कहा है । नित्यसे यह सदाकाल रहता है, ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिए । 'कर्मक्षपणहेतु' अर्थात् यह सम्यक्त्व कर्मोंके क्षपणका कारण है, इस विशेषणसे यह सूचित किया है कि मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप परिणामोंमें सम्यक्त्व ही मुख्य कारण है । वेदक सम्यक्त्वके शंका आदि मल भी यथासम्भव सम्यक्त्वको मूलसे नष्ट करनेमें असमर्थ सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होते हैं । औप-शमिक और क्षायिक सम्यक्त्वमें मलको उत्पन्न करनेमें कारण सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अभाव होनेसे निर्मलता सिद्ध है, ऐसा जानो ।

चल आदिका लक्षण कहते हैं—अपने ही नाना विशेषोंमें अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ विषयक श्रद्धानके विकल्पोंमें जो चलित होता है, उसे चल कहते हैं । जैसे, अपने द्वारा कराये गये जिनबिम्ब आदिमें 'यह मेरे देव हैं', इस प्रकार अपनेपनेसे और दूसरेके द्वारा कराये गये जिनबिम्ब आदिमें 'यह पराया है', इस प्रकार भेद करनेसे चल दोष कहा है ।

---

१. क तदुभयभाव° ।

मोहात्सम्यक्त्वप्रकृत्युदयविदं श्रद्धानुं भ्रमिसुत्तं चेष्टिसुगुं ॥

मलिनमे बुदे तेने । "तदप्यलब्धमाहात्म्यं पाकात्सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥" तथपि सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयवत्तणिवं पडेयल्पडदमाहात्म्यमनुळुवक्कुमवक्के मलसंगदिं मलिनत्वमुद्भविसुगुं शुद्धमप्प स्वर्णमे तंते ॥

अगाढमे तेने । "स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥" अंते आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थानदोळे इरुतिद्दं कंप्रमगाढमे बुदे ते बोडः—

"समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं । देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥"

एंदितु शांतिकक्रियेगे शांतिनाथदेवनु प्रभुवक्कुमी विघ्नविनाशनाविक्रियेगे पार्श्वनाथने प्रभुवे दित्यादि प्रकारदि रुचिशैथिल्यसंभवदत्तणिवं । एंतोगळ्वृद्धकरतलगतयष्टि शिथिलसंबंधतेयिंदमगाढमंते-वेदकसम्यक्त्वमुमे बरिवुदु ॥

अनंतरमौपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वंगळुत्पत्तिकारणस्वरूपप्रतिपादनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् श्रद्धानमपि भ्रमणं चेष्टते । अथ मलिनत्वं यथा—

तदप्यलब्धमाहात्म्यं स्वकात् सम्यक्त्वकर्मणः । मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥

तथपि सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयादलब्धमाहात्म्यं भवति । तच्च मलसंगेन मलिनं जायते यथा शुद्धं स्वर्णं तथा । अथागाढत्वं यथा—

स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते । वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥

स्थाने एव—आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थायामेव स्थितं कंप्रमेव अगाढमिति कीर्त्यते । तद्यथा—

समेऽप्यनन्तशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयम् । देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥

इति तीव्ररुचिरहितं भवति । तद्यथा—सर्वेषां अर्हत्परमेष्ठिनां अनन्तशक्तित्वे समाने स्थितेऽपि अस्मै शान्तिकर्मणे शान्तिक्रियायै शान्तिनाथदेवः प्रभुर्भवति, अस्मै विघ्नविनाशनादिकर्मणे विघ्नविनाशनाविक्रियायै पार्श्वनाथदेवः प्रभुरित्याविप्रकारेण रुचिशैथिल्यसंभवात् । यथा वृद्धकरतलगतयष्टिः शिथिलसंबन्धतया अगाढा तथा वेदकसम्यक्त्वमपि ज्ञातव्यं ॥ अथ औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वयोरुत्पत्तिकारणं स्वरूपं च प्रतिपादयति ।

इसमें दृष्टान्त देते हैं कि नाना जलकी तरंगोंमें जल एक ही अवस्थित है, तथापि नाना रूपसे चल है । उसी तरह मोहसे अर्थात् सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे श्रद्धान भ्रमण रूप चेष्टा करता है । अब मलिन दोषको कहते हैं—जैसे मलके योगसे शुद्ध स्वर्ण मलिन हो जाता है, वैसे ही सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे अपने माहात्म्यको न पाकर मलके संगसे मलिन होता है । अब अगाढ दोषको कहते हैं—स्थान अर्थात् आप्त आगम और पदार्थकी श्रद्धान रूप अवस्थामें ही रहते हुए भी जो काँपता है, स्थिर नहीं रहता, उसे अगाढ़ कहते हैं । जैसे, सब अर्हन्त परमेष्ठियोंमें अनन्त शक्तिपना समान रूपसे स्थित होते हुए भी 'इस शान्तिक्रियामें शान्तिनाथ भगवान् समर्थ हैं, इस विघ्न विनाश आदि क्रियामें पार्श्वनाथ भगवान् समर्थ हैं', इत्यादि प्रकारसे रुचिमें शिथिलता होनेसे तीव्र रुचिसे रहित होता है । जैसे वृद्ध पुरुषके हाथकी लकड़ी शिथिल होनेसे अगाढ होती है, वैसे ही वेदक सम्यक्त्व भी अगाढ होता है ॥२५॥

आगे औपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण और स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °नमुं । २. म भ्रमियुगुं । ३. क कंप्रमगाढ° । ४. म °त्वदोल्समामभिरुत्तिरलु । ५. क °गाढक सं° । ६. प्रभुरेवोस्या ।

सत्तण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य ।
विदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो हु ॥२९॥

सप्तानामुपशमतः उपशमसम्यक्त्वं क्षयात् क्षायिकं च। द्वितीयकषायोदयात् असंयतो भवति सम्यग्दृष्टिः ॥ स्फुटं । न विद्यते अंतः अवसानं यस्य तदनन्तरं मिथ्यात्वं तदनुबध्नातीत्येवं शीलमनंतानुबंधि । इंतप्पनंतानुबंधि कषायचतुष्कमुं मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतियेंब दर्शनमोहत्रयमुमेंबिंतु सप्तप्रकृतिगळ सर्वोपशमविनोपशमिकसम्यक्त्वं पुट्टुगुमंतेया सप्तप्रकृतिगळ क्षयदत्तणिंदं क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुमी युभयसम्यक्त्वमुं निर्मलमक्कुमेके दोडे शंकादिमलगळ लेशक मप्पडमसंभवमप्पुदरिंदं । अंते निश्चलमुमक्कुमेके दोडाप्तागमपदार्थविषयश्रद्धानविकल्पं गेळोल्लियुमस्खलनमंटप्पुदरिंदमंते गाढमुमक्कुमेके दोडाप्तादिगळोळु तीव्ररुचिसंभवमंटप्पुदरिंदं । मलासंभवादित्रयमुमाबप्रकारदिंदमक्कुमेके दोडे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाभिकल्लियत्यंताभावदत्तणिंदमेंदरिवुदु । इंतुक्तंगळप्प मूरं सम्यक्त्वंगळिंदं परिणतनप्प सम्यग्दृष्टिद्वितीयकषायंगळप्प अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभंगळ्गन्यतमोदयदिंदमसंयतनक्कुं ॥

अनंतरं तत्त्वार्थश्रद्धानक्के ग्रहणत्यागावसरप्रदर्शनार्थमो गाथाद्वयमं पेळ्दपं ।

न विद्यते अन्तः अवसानं यस्य तदनन्तं मिथ्यात्वं, तदनुबध्नन्तीत्येवंशीला अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिनामदर्शनमोहत्रयं चेति सप्तप्रकृतीनां सर्वोपशमेनौपशमिकसम्यक्त्वमुत्पद्यते । तथा तासामेव सप्तप्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं सम्यक्त्वं भवति । इदमुभयसम्यक्त्वमपि निर्मलं भवति शङ्कादिमललेशस्याप्युत्पत्तिसंभवात् । तथा निश्चलं भवति आप्तागमपदार्थविषयश्रद्धानविकल्पेषु क्वचिदपि स्खलनाभावात् । तथा गाढं भवति आप्तादिषु तीव्ररुचिसंभवात् । इदं मलासंभवादित्रयं तु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयस्यात्रात्यन्ताभावादिति ज्ञातव्यं । एवमुक्तविविधसम्यक्त्वैः परिणतसम्यग्दृष्टिः द्वितीयकषायाणां अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानामन्यतमोदयेन असंयतो भवति ॥२९॥ अथ तत्त्वार्थश्रद्धानस्य ग्रहणत्यागावसरं गाथाद्वयेन प्ररूपयति —

जिसका अन्त नहीं है, उसे अनन्त कहते हैं । अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, उसका आश्रय पाकर जो बँधती है, वह अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति नामक तीन दर्शनमोह, इन सात प्रकृतियोंके सर्वोपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है । तथा उन्हीं सात प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है । ये दोनों भी सम्यक्त्व निर्मल होते हैं । इनमें शंकादि मलका लेश भी उत्पन्न नहीं होता । तथा निश्चल होते हैं; क्योंकि आप्त, आगम और पदार्थ विषयक श्रद्धानके विकल्पोंमें कहीं भी स्खलन नहीं होता । तथा गाढ़ होते हैं; क्योंकि आप्त आदिमें तीव्र रुचि होती है । इन तीनों मलोंके न होनेका हेतु यह है कि इन दोनों सम्यक्त्वोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका अत्यन्ताभाव है । इस प्रकार ऊपर कहे गये तीन प्रकारके सम्यक्त्वोंसे परिणत सम्यग्दृष्टि दूसरी कषाय अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया लोभमें-से किसी एक कषायका उदय होनेसे असंयत होता है ॥२९॥

आगे दो गाथाओंसे तत्त्वार्थ श्रद्धानके ग्रहण और त्यागका अवसर कहते हैं—

---

१. म °गलोलेल्लियु° । २. म °क्कुमदेंतेंदो° । ३. म °क्कुमेंदोडे° । ४. क °दृष्टि अप्र° ।

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥

सम्यग्दृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति । श्रद्दधात्यसद्भावमजानानो गुरुनियोगात् ॥

आप्तनोर्व्वनर्हदादिगुरुगळिंदमुपदिष्टमप्प प्रवचनमनाप्तागमपदार्थंगळं श्रद्दधाति नंबुगुमव-
५ रोळसद्भूतमप्प अतत्त्वमुमं तनगे विशेषज्ञानशून्यत्वदिंदं केवलं गुरुगळप्पर्हदादिगळ नियोगदिंदितु तदाज्ञेयनलंबिसि नंबुगुमातं सम्यग्दृष्टियेयक्कुमेकेंदोडिदाज्ञानतिक्रममप्पुदरिंदं ।

मार्गदर्शकाद्यो यं सम्यग्दृष्टिर्जीवो यदा न सद्दहति ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुडि ॥२८॥

सूत्रात्तं सम्यग्दर्शयमानं यदा न श्रद्दधाति स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवस्ततः प्रभृति ॥

१० अस्तसदर्थश्रद्धाननप्पाज्ञासम्यग्दृष्टियप्प जीवनार्वागळोम्मे कुशलरप्पाचार्यांतरंगळिंदं पेरगे तां गृहीतासदर्थमप्प विपरीततत्त्वमं गणधरादिकथितसूत्रमं तोरि सम्यक्प्ररूप्यमानमुमं दुरा-ग्रहावेशदिंदं नंबुवनल्लनागळ्मोदल्गोंडु मुंबाजीवं मिथ्यादृष्टियक्कुमेकेंदोडे सूत्राश्रद्धानदिंदमा-ज्ञातिक्रमं सुप्रसिद्धमप्पुदे कारणमागि ॥

अनंतरमसंयतत्वसम्यग्दृष्टित्वंगळ्गे सामानाधिकरण्यप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

---

१५ यः अर्हदाद्युपदिष्टं प्रवचनं आप्तागमपदार्थत्रयं श्रद्दधाति—रोचते, तेषु असद्भावं—अतत्त्वमपि तस्य विशेषज्ञानशून्यत्वेन केवलगुरुनियोगात् अर्हदाद्याज्ञातः श्रद्दधाति सोऽपि सम्यग्दृष्टिरेव भवति तदाज्ञाया अनतिक्रमात् ॥२७॥

तथा असदर्थश्रद्धानः आज्ञासम्यग्दृष्टिर्जीवो यदा कुशलाचार्यान्तरैः प्राक्तनतद्गृहीतासदर्थरूपविपरीततत्त्वं गणधरादिकथितसूत्रं दर्शयित्वा सम्यक्प्ररूप्यमाणं तत् दुराग्रहावेशेन न श्रद्दधाति तदा प्रभृति स जीवो
२० मिथ्यादृष्टिर्भवति । सूत्राश्रद्धानेन आज्ञातिक्रमस्य सुप्रसिद्धत्वादेव कारणात् ॥२८॥ अथासंयतत्वसम्यग्दृष्टित्वयोः सामानाधिकरण्यं प्रदर्शयति —

जो जीव अर्हन्त आदिके द्वारा उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ इनकी श्रद्धा रखता है, साथ ही उनके विषयमें असद्भाव अर्थात् अतत्त्व भी स्वयंके विशेष ज्ञानसे शून्य होनेसे, केवल गुरुके नियोगसे कि जो गुरुने कहा, वही अर्हन्त भगवान्की
२५ आज्ञा है, श्रद्धान करता है, वह भी सम्यग्दृष्टि ही है । अर्थात् अपनेको विशेष ज्ञान न होनेसे और गुरु भी अल्पज्ञानी होनेसे वस्तुस्वरूप अन्यथा कहे और यह सम्यग्दृष्टि उसे ही जिनाज्ञा मानकर अतत्त्वका श्रद्धान कर ले, तब भी वह सम्यग्दृष्टि ही है; क्योंकि उसने जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं किया ॥२७॥

उक्त प्रकारसे असत् अर्थका श्रद्धान करता हुआ आज्ञासम्यग्दृष्टि जीव जब अन्य
३० कुशल आचार्योंके द्वारा पूर्वमें उसके द्वारा गृहीत असत्यार्थसे विपरीत तत्त्व गणधर आदिके द्वारा कथित सूत्रोंको दिखाकर सम्यक् रूपसे बतलाया जावे और फिर भी वह दुराग्रहवश उस सत्यार्थका श्रद्धान न करे, तो उस समयसे वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है; क्योंकि गणधर आदिके द्वारा कथित सूत्रका श्रद्धान न करनेसे जिनआज्ञाका उल्लंघन सुप्रसिद्ध है । इसी कारण वह मिथ्यादृष्टि है ॥२८॥

---

२५ १. म सद्भावम° । २. म °मनिदेविंतु तदाज्ञेयुमवलं° । ३. क °दोडिवज्ञाऽतिक्र° । ४. म °नागलोम्मे ।

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि ।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥२९॥

नो इंद्रियेषु विरतो नो जीवे स्थावरे त्रसे वापि । यः श्रद्दधाति जिनोक्तं सम्यग्दृष्टिरसंयतः सः ॥

आर्यनोर्व्वनिंद्रियविषयंगळोळु विरतिरहितनुं। स्थावरत्रसजीववधेयोळु मेणु विरतिरहितनुं। जिनोक्तमं नंबुगुमातनविरतसम्यग्दृष्टियक्कुमिवरिंबमसंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च एंदितु समानाधिकरणत्वं समर्थितमाय्तु । अपि शब्ददिदं संवेगादिसम्यक्त्वगुणंगळ्सूचिसल्पट्टुवु । अत्रत्यमप्पविरतत्वविशेषणमन्त्यदीपकमप्पुदरिंद अधस्तनगुणस्थानंगळनितरोळं संबंधिसल्पडुगुं । अपि-

श्रीमद्विद्यमानचारित्रचक्रवर्ती श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनंतरं देशसंयतगुणस्थाननिर्देशार्थमी गाथाद्वयमं पेळ्दपरु ।

पच्चक्खाणुदयादो संजमभावो ण होदि णवरिं तु ।
थोववदो होदि तदो देसवदो होदि पंचमओ ॥३०॥

प्रत्याख्यानोदयात्संयमभावो न भवति । विशेषोऽस्ति तु । स्तोकव्रतं भवति ततो देशव्रतो भवति पञ्चमकः ॥

यः इन्द्रियविषयेषु नो विरतः विरतिरहितः, तथा स्थावरत्रसजीववधेऽपि नो विरतः, जिनोक्तं प्रवचनं श्रद्दधाति स जीवः अविरतसम्यग्दृष्टिर्भवति । अनेन असंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति समानाधिकरणत्वं समर्थितं जातम् । अपिशब्देन संवेगादिसम्यक्त्वगुणाः सूच्यन्ते । अत्रत्यं अविरतत्वविशेषणं अन्त्यदीपकत्वादधस्तनगुणस्थानेष्वपि संबन्धनीयं अपिशब्देन अनुकम्पापि स्यात् ॥२९॥ अथ देशसंयतगुणस्थानं गाथाद्वयेन निर्दिशति—

अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकोपशमात् प्रत्याख्यानावरणकषायाणां देशघातिस्पर्धकोदये जाते सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणक्षयेण सकलसंयमभावो न भवति । (णवरि) विशेषोऽस्ति तु पुनः (स एव

आगे असंयतत्व और सम्यग्दृष्टित्वका सामानाधिकरण्य—अर्थात् दोनोंका एक ही व्यक्तिमें एक साथ होना दिखलाते हैं—

जो इन्द्रियोंके विषयोंमें 'नोविरत' अर्थात् विरतिरहित है, तथा स्थावर और त्रस जीवकी हिंसामें भी नोविरत अर्थात् त्रस-स्थावर जीवकी हिंसाका त्यागी नहीं है; केवल जिन भगवान्के द्वारा कहे हुए प्रवचनका श्रद्धान करता है, वह जीव अविरत सम्यग्दृष्टि होता है। इससे जो असंयत है, वही सम्यग्दृष्टि है इस प्रकार सामानाधिकरण्यका समर्थन किया है। 'अपि' शब्दसे संवेग आदि सम्यक्त्वके गुणोंको सूचित किया है। इससे अनुकम्पा भी सूचित होती है। यहाँ जो अविरत विशेषण है, वह अन्त्यदीपक होनेसे नीचेके गुणस्थानोंमें भी लगाना चाहिए। यहाँ तक सब अविरत होते हैं ॥२९॥

आगे दो गाथाओंसे देशसंयत गुणस्थानको कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरणरूप आठ कषायोंके उपशमसे, और प्रत्याख्यानावरण कषायोंके देशघाती स्पर्धकोंके उदय होते हुए सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे सकल संयमरूप भाव नहीं होता। किन्तु इतना विशेष है कि स्तोकव्रतरूप देशसंयम होता है अर्थात् प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयमें सकल चारित्ररूप परिणाम नहीं

---

१. म °नोर्व्वं इंद्रि° । २. म अप्रत्यमप्प अवि° ।

अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकोपशमवत्तणिवं प्रत्याख्यानावरणकषायंगळ देशघातिस्पर्धकोदयमुमंटागुत्तिरलु सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणमप्प क्षयविदं सकलसंयमभावमागदु। विशेषमुंटु मत्तं देशसंयममक्कुं। तद्वंतं देशसंयतनामपंचमगुणस्थानवर्त्तिजीवनेंदितरियल्पडुगुं॥

जो तसवहाओ विरदो अविरदओ तह य थावरवहाओ।
एक्कसमयम्मि जीओ विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥३१॥

यस्त्रसवधाद्विरतोऽविरतस्तथा च स्थावरवधात्। एकस्मिन् समये जीवो विरताविरतो जिनैकमतिः।

आतने विरताविरतनेंदितु व्यपदेशिसल्पडुं एककालदोळे यावनोवं त्रसवधेयत्तणिवं विरतनुं स्थावर[वधे]यत्तणिवं अविरतनुमा जीवं विरतश्चासावविरतश्च। एंदितु विषयभेदापेक्षेयिवं अविरोधविंदं विरताविरतनेंदितु व्यपदेशार्हनक्कुं। तथा च शब्दविंदं प्रयोजनमिल्लदे स्थावरवधमुम माळ्पनल्लेंदितु व्याख्येयनक्कुं। जिनेष्वाप्तादिष्वेका केवला मतिरिच्छारुचिर्यस्यासौ जिनैकमतिः। एंदितिवरिंदं देशसंयतंगे सम्यग्दृष्टित्वविशेषणं निरूपितमादुदु। इवेयादिदीपकत्वदिंदमुत्तरत्रमुं गुणस्थानंगळोळु विशेषणत्वदिंदं संबंधनीयमक्कुं॥

तदनंतरं प्रमत्तगुणस्थाननिरूपणमं माडल्वेडि गाथाद्वयमं पेळ्दपरु।

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा।
मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥३२॥

संज्वलननोकषायाणामुदयात्संयमो भवेद्यस्मान्मलजननप्रमादोऽपि च तस्मात्खलु प्रमत्तविरतः सः॥

विशेषो वर्ण्यते—स्तोकव्रतं) देशसंयमो भवति। तद्वान् देशसंयतनामा पञ्चमगुणस्थानवर्ती जीवो ज्ञातव्यः ॥३०॥

स एव विरताविरत इति व्यपदिश्यते एककाले एव यत्त्रसवधाद्विरतः स्थावरवधाविरतः स जीवः। विरताश्चासावविरतश्चेति विषयभेदापेक्षया अविरोधेन विरताविरत इति व्यपदेशार्हो भवति। तथा चशब्देन प्रयोजनं विना स्थावरवधमपि न करोतीति व्याख्येयो भवति। जिनेषु-आप्तादिषु, एका—केवला, मतिः—इच्छा, रुचिः, यस्यासौ जिनैकमतिः। इत्यनेन देशसंयतस्य सम्यग्दृष्टित्वविशेषणं निरूपितं ज्ञातं। इदं आदिदीपकत्वेन उत्तरत्रापि गुणस्थानेषु विशेषणत्वेन संबन्धनीयं भवति ॥३१॥ प्रमत्तगुणस्थानं गाथाद्वयेनाह—

होता है क्योंकि प्रत्याख्यान अर्थात् सकल संयमको जो आवरण करती है, उस कषायको प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। देशसंयमसे युक्त जीव पंचम गुणस्थानवर्ती होता है ॥३ ॥

वही देशसंयत विरताविरत भी कहा जाता है; क्योंकि एक ही कालमें जो जीव त्रसहिंसासे विरत है, वही जीव स्थावरहिंसासे अविरत है। इस तरह जो विरत है, वही अविरत है। विषयभेदकी अपेक्षा कोई विरोध न होनेसे 'विरताविरत' व्यपदेशके योग्य होता है। तथा 'च' शब्दसे प्रयोजनके बिना स्थावर हिंसा भी नहीं करता है, ऐसा व्याख्यान करना योग्य है। उसकी रुचि एकमात्र जिन भगवान्में होनेसे वह जिनैकमति होता है। इससे देशसंयतके सम्यग्दृष्टित्व विशेषणका कथन किया है। यह विशेषण आदि दीपक है अतः आगेके भी गुणस्थानोंमें विशेष रूपसे इसका सम्बन्ध करना चाहिए ॥३१॥

आगे दो गाथाओंसे प्रमत्तगुणस्थानको कहते हैं—

---

१. म °जल्लमेंदितु।

संज्वलनसर्वघातिस्पर्धकंगळुदयाभावलक्षणमप्प क्षयदोळं द्वादशकषायंगळ्गेयुमनुदयप्राप्तसंज्वलननोकषायनिषेकंगळ्गुमं सदवस्थालक्षणमप्पुपशमदोळं संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकंगळ्गमुदयविवक्षेयिंदं क्षायोपशमिकमप्प सकलसंयममप्पुदु ।

संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकतीव्रोदयदत्तणिदं संयममलजननप्रमादमुं पुट्टुगुमावुदो कारणदिंदमदु कारणदिंद प्रमत्तविरतो भवति चित्रलाचरणः कुर्वन्नपि लक्षयति स्खलनमपि । यथाख्यातमनीहितमिति चतुर्भेदं चारित्रमोहस्य कर्मणः उपशमात्क्षयात्तदुभयात्मकाच्च भवति । तत्र संज्वलनसर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणक्षये द्वादशकषायाणामनुदयप्राप्तसंज्वलननोकषायनिषेकाणां च सदवस्थालक्षणोपशमे च संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकतीव्रोदयात् संयमो मलजननप्रमादश्च उत्पद्यते तस्मात्कारणात् प्रमत्तविरतो भवति । स षष्ठगुणस्थानवर्ती जीवः प्रमत्तसंयत इत्युच्यते । विवक्षितस्य संयमस्य स्वोदयसमुत्पत्तिप्रतिपक्षगुणविनिर्मूलनशक्तिविरहितानामुदयो विद्यमानोऽपि न सकलसंयमकारकः इति संयमहेतुत्वेन विवक्षितत्वात् । वस्तुतो तु कार्यं प्रतिपादयति । मलजननप्रमादोऽपि च, अपि च इत्यवधारणे । मलजननप्रमाद एव यस्मात् तस्मात् तु प्रमत्तविरतः सः । तमुपलक्षयति] ।

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि ।
सयलगुणसीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो ॥३२॥

यस्मात्कारणात् संज्वलनसर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणक्षये द्वादशकषायाणामनुदयप्राप्तसंज्वलननोकषायनिषेकाणां च सदवस्थालक्षणोपशमे च संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकतीव्रोदयात् संयमो मलजननप्रमादश्च उत्पद्यते तस्मात्कारणात् प्रमत्तविरतश्चेति स षष्ठगुणस्थानवर्ती जीवः प्रमत्तसंयत इत्युच्यते । विवक्षितस्य संजमस्स खओवसमित्तपडुप्पायणमेत्तफलत्तादो कधं संजलणणोकसायाणं चारित्तविरोहीणं चारित्तकारयत्तं ? देशघातिसंण सपडिवक्खगुणविणिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणोवि ण सकज्जकारओत्ति संजमहेदुत्तेण विवक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि मलजणणपमादो वि य, अवि य इत्यवधारणे । मलजणणपमादो चेव जम्हा एवं तम्हा दु पमत्तविरदो सो । तमुवलक्खयि—

जिस कारणसे संज्वलनकषायके सर्वघाती स्पर्द्धकोंका उदयाभाव लक्षणरूप क्षय होनेपर और बारह कषायोंका तथा उदयको न प्राप्त संज्वलनकषाय और नोकषायके निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम होनेपर तथा संज्वलन और नोकषायके देशघाती स्पर्द्धकोंका तीव्र उदय होनेपर संयमके साथ मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद भी उत्पन्न होता है, तिस कारणसे छठे गुणस्थानवर्ती जीवको प्रमत्त और विरत अर्थात् प्रमत्तसंयत कहते हैं ।

शंका—संज्वलन और नोकषायोंका प्रयोजन तो विवक्षित संयमको क्षायोपशमिक रूपसे उत्पन्न करना है अर्थात् उनके क्षयोपशमसे विवक्षित संयम उत्पन्न होता है; क्योंकि वे चारित्रकी विरोधी हैं । यहाँ गाथामें उन कषायोंको चारित्रका उत्पादक कैसे कहा है ?

समाधान—संज्वलन और नोकषाय देशघाती हैं । अतः उनमें अपने प्रतिपक्षी संयम गुणको निर्मूलन करनेकी शक्ति नहीं है । इससे उनका उदय रहते हुए भी अपना कार्य करनेमें असमर्थ हैं । अतः गाथामें उन्हें संयमका हेतु उपचारसे कह दिया है । वास्तवमें तो वे अपना कार्य ही करते हैं । वह कार्य है—मलको उत्पन्न करना । 'अपि' अवधारण अर्थमें आया है, अतः इनसे संयममें मलको उत्पन्न करनेवाला प्रमाद ही उत्पन्न होता है, इससे उसे प्रमत्तविरत कहते हैं ॥३२॥

आगे उसीको कहते हैं—

---

१. म °गल्गुदं । २. [ ] एतत्कोष्ठान्तर्गतो पाठो मप्रतौ नास्ति ।

व्यक्ताव्यक्तप्रमादे यो वसति प्रमत्तसंयतो भवति, सकलगुणशीलकलितो महाव्रती चित्रलाचरणश्चित्तलाचरणो वा ॥ व्यक्तमप्य स्वसंवेद्यमुं परानुमेयमुमप्पुदरोळं अव्यक्तमप्पुदरोळं प्रत्यक्षज्ञानिगळ्गे संवेद्यमप्य प्रमादंगळोळमावनोव्वं संयतं बगिसुत्तिकुं मंतप्पातं चारित्रमोहनीयक्षयोपशममाहात्म्यदिदं सकलगुणशीलकलितनुं महाव्रतियुमक्कुमिल्लि साकल्यमुं महत्त्वमुं देशसंयतापेक्षेयिदमेंदरिवुदु । अदु कारणदिदमे प्रमत्तसंयतं संतं चित्रलाचरणमेंदितु हेळल्पट्टं । चित्रं प्रमादमिश्रं लातीति चित्रलं, चित्रलमाचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथवा चित्रलः सारंगस्तद्वत् शबलितमाचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथवा चित्तं लातीति चित्तलं चित्तलम् आचरणं यस्यासौ चित्तलाचरणः एंबो विशेषव्युत्पत्तियुमरियल्पडुगुं ॥

अनंतरमा प्रमादंगळ्गे नाम संख्याप्रदर्शनार्थमागि पेळ्दपर ।

विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणयो य ।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरसा ॥३४॥

विकथास्तथा कषाया इन्द्रिय निद्रास्तथैव प्रणयश्च । चतस्रश्चत्वारः पञ्च एकैको भवन्ति प्रमादाः पञ्चदश ॥

संयमविरुद्धमप्प कथेगळं विकथेगळेंबुवु । कषन्ति हिंसंति संयमगुणमेंदितु कषायंगळेंबुवु । संयमविरोधिगळप्प इन्द्रियव्यापारंगळुं निद्रियगळेंबुवु । स्त्यानगृद्धयादिकर्म्मत्रितयोदयदिंदमं

व्यक्ते स्वसंवेद्ये, अव्यक्ते—प्रत्यक्षज्ञानिनामेव संवेद्ये च प्रमादे यः संयतो वर्तते स चारित्रमोहनीयक्षयोपशममाहात्म्येन सकलगुणशीलकलितो महाव्रती (अपि) भवति । अत्र साकल्यं महत्त्वं च देशसंयतापेक्षया ज्ञातव्यम् । ततः कारणादेव प्रमत्तसंयतः चित्रलाचरण इत्युक्तं । चित्रं-प्रमादमिश्रं लातीति चित्रलं, चित्रलं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथ वा चित्रलः—सारंगः, तद्वत् शबलितं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरण. । अथवा चित्तं लातीति चित्तलं आचरणं यस्यासौ चित्तलाचरणः इति विशेषव्युत्पत्तिरपि ज्ञातव्या ॥३३॥ अथ तेषां प्रमादानां नामसंख्याप्रदर्शनार्थमाह—

संयमविरुद्धाः कथाः विकथाः, कषन्ति-हिंसन्ति संयमगुणमिति कषायाः, संयमविरोधीन्द्रियव्यापाराः इन्द्रियाणि, स्त्यानगृद्ध्यादिकर्मत्रितयोदयेन निद्रा, प्रचलातीव्रोदयेन वा समुद्भूता जीवस्य स्वार्थसामान्यग्रहण-

---

व्यक्त अर्थात् जो स्वयंके द्वारा जाननेमें आवे, और अव्यक्त अर्थात् जो प्रत्यक्षज्ञानियोंके द्वारा ही जानने योग्य है, ऐसे प्रमादमें जो संयत रहता है, वह चारित्र मोहनीयके क्षयोपशमके माहात्म्यसे समस्त गुण और शीलसे युक्त महाव्रती भी होता है। यहाँ जो सकल संयमीपना और महाव्रतीपना है, वह देशसंयतकी अपेक्षा जानना। इसीसे प्रमत्तसंयतको चित्रलाचरण कहा। चित्र अर्थात् प्रमादसे मिले हुए रूपको जो लाता है, वह चित्रल है। और जिसका आचरण चित्रल है वह चित्रलाचरण है। अथवा जो चित्तको लाता है, वह चित्तल है। और जिसका आचरण चित्तल है, वह चित्तलाचरण है। यह विशेष निरुक्ति भी जानना ॥३३॥

आगे उन प्रमादोंके नाम और संख्या कहते हैं—

संयमविरुद्ध कथाओंको विकथा कहते हैं। जो संयम गुणको 'कषन्ति' अर्थात् घातती हैं, वे कषाय हैं। संयमविरोधी इन्द्रियोंके व्यापार अर्थात् विषयोंमें प्रवृत्तिका नाम

---

१. म स्वसंवेद्यमप्पुदरोलं परानुमेयाऽव्यक्तमप्पुदरोलं । २. म °संयतं चि° । ३. म विकथेगेंबुद ।

निद्राप्रचलातीव्रोदयदिंदमं सप्तुद्भूतमप्पुदं जीवनक्के स्वार्थसामान्यग्रहणप्रतिबंधिकेयप्प जाड्यावस्थितियं निद्रेयेंबुदु । बाह्यार्थंगळोळ्ममत्वरूपमं प्रणयमेंबुदु । इवुं यथासंख्यमागि नाल्कुं नाल्कुमैदुमेकमुमेकमेंदितिवेल्लं कूडि प्रमादंगळ् पविनैदप्पुवु । इल्लि प्रथमोद्दिष्ट तथाशब्दमल्ला प्रमादसाधारण्यज्ञापनार्थं द्वितीयतथाशब्दं समुच्चयार्थमक्कुं ॥

अनंतरमी प्रमादंगळ्गी प्रकारदिंदं संख्यादिपञ्चप्रत्ययप्ररूपणार्थमिदं पेळ्दपरु । ५

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं ।
एदे पंच पयारा पमदसमुक्कित्तणे णेया ॥३५॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संख्या तथा प्रस्तारः परिवर्तनं नष्टं तथा समुद्दिष्टं एते पञ्च प्रकाराः प्रमाद समुत्कीर्त्तने ज्ञेयाः ॥

प्रमादालापोत्पत्तिनिमित्ताक्षसंचारहेतुविशेषमं संख्येयेंबुदु । अवर न्यासमं प्रस्तारमेंबुदु । १०
अक्षसंचारमं परिवर्त्तनमेंबुदु । संख्यां धृत्वाऽक्षानयनं नष्टमेंबिदं नष्टमेमेंबुदु । अक्षं धृत्वा संख्यानयनं समुद्दिष्टमेंदिदं समुद्दिष्टमेंबुदु । ई पंचप्रकारंगळ् प्रमादसमुत्कीर्त्तनदोळु ज्ञेयंगळवकुं ॥

प्र १
नि १
स्व. र. श्रा. च. श्लो. ५ १५
गो. सा. भाया. लो. ४
त्रि. भ. रा. ज. ४

प्रतिबन्धिका जाड्यावस्था निद्रा । बाह्यार्थेषु ममत्वरूपः प्रणयः, एते यथासंख्यं चतस्रः, चत्वारः, पञ्च, एका, एकः सर्वे मिलित्वा प्रमादाः पञ्चदश भवन्ति । अथ प्रथमोद्दिष्टस्तथाशब्दः सर्वप्रमादसाधारण्यज्ञापनार्थः, द्वितीयस्तथाशब्दः समुच्चयार्थः ॥३४॥ अथैषां प्रमादानां प्रकारान्तरेण संख्यादिपञ्चप्रत्ययान् (गाथानवकेन) २०
प्ररूपयति—

प्रमादालापोत्पत्तिनिमित्ताक्षसंचारहेतुविशेषः संख्या, एषां न्यासः प्रस्तारः, अक्षसंचारः परिवर्तनं, संख्यां धृत्वा अक्षानयनं नष्टं, अक्षं धृत्वा संख्यानयनं समुद्दिष्टं । एते पञ्चप्रकाराः प्रमादसमुत्कीर्तने ज्ञेया

इन्द्रियाँ हैं। स्त्यानगृद्धि आदि तीन कर्मोंके उदयसे निद्रा होती है। अथवा प्रचलाके तीव्र उदयसे उत्पन्न जीवकी स्व और अर्थके सामान्य ग्रहणको रोकनेवाली जड़तारूप अवस्थाको २५
निद्रा कहते हैं। बाह्य पदार्थोंमें ममत्वरूप भाव प्रणय है। ये क्रमसे विकथा चार, कषाय चार, इन्द्रियाँ पाँच, निद्रा एक, स्नेह एक सब मिलकर प्रमाद पन्द्रह होते हैं। गाथामें आया पहला 'तथा' शब्द 'ये सब प्रमाद हैं', ऐसा साधारण ज्ञान करानेके लिए है और दूसरा 'तथा' शब्द समुच्चयके लिए है ॥३४॥

आगे इन प्रमादोंके प्रकारान्तरसे संख्या आदि पाँच प्रत्ययोंको नौ गाथाओंसे कहते हैं- ३०

प्रमादके आलापकी उत्पत्तिमें निमित्त अक्षसंचारके विशेष हेतुको संख्या कहते हैं। इनके स्थापनका नाम प्रस्तार है। अक्षसंचारका नाम परिवर्तन है। संख्या रखकर अक्ष लाना नष्ट है। अक्ष रखकर संख्या निकालना उद्दिष्ट है। इस तरह संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट तथा उद्दिष्ट ये पाँच प्रकार प्रमादके व्याख्यानमें जानना चाहिए ॥३५॥

---

१. म °मप्पुदु । २. म °वस्थेयं । ३. म इवे ।

तदनंतरं विशेषसंख्योत्पत्तिक्रमप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु ।
मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा ॥३६॥

सर्वेऽपि पूर्वभंगा उपरिमभंगेष्वेकैकेषु मिलंतीति च क्रमशो गुणिते उत्पद्यते संख्या ॥ एल्ला पूर्वपूर्वभंगंगळुपरिमोपरिमभंगंगळोळुमो दो वरोळु संभविसुगुमें दितु क्रमदिनेडिरि गुणिसुत्तिरलु विशेषसंख्योत्पत्तियक्कुमदे तेंदोडे-पूर्वभंगगळप्प विकथाप्रमादंगळु नाल्कुमुपरितनकषाय मो दो वरोळु संभविसुत्तिरलु नाल्कुं कषायंगळ्गं पदिनारुं प्रमादंगळप्पुवु । मिल्लियनुपातत्रैराशिकं माडल्पडुगुमेंदु कषायचतुष्कं विकथा प्रमादंगळागुत्तं विरलु नाल्कुं कषायंगळिंगनितु विकथा प्रमादंगळप्पुवेंदितु । प्र । क १ । ध । वि ४ । इ । फ ४ । आद्यंतसदृशं त्रैराशिकं मध्यनामफलं भवेदेवं न्यायदिदं प्रमाणं फलं इच्छा इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन तु भाजयेदेंबी गणितन्यायदिंद मिच्छाराशियुमं फलराशियुमं गुणियिसि प्रमाणराशियं भागिसुत्तिरलु पदिनारुं विकथाकषायंगळप्प मध्यनामफलमक्कुमप्पुदरिंदं ।

मत्तमीयधस्तनभंगंगळु पदिनारुमुपरिमभंगगळप्पेंद्रियमो दो दक्के संभविसुत्तिरलुमेंविंद्रियंगळ्गे में भत्तुप्रमादविकल्पंगळक्कुमंते निद्रा सामान्यमो दे यप्पुदरिंदमधस्तनभंगंगळ भत्तुं संभविसुत्तिरलु प्रमाणराशियुमिच्छाराशियुं निद्रेयो दयप्पुदरिंदं फलराशियप्पं भत्तमु मा इच्छाराशियो दुरिंदं गुणियिसि प्रमाणराशियप्पो दरिंदमे भागिसुत्तिरलु लब्धमेंभत्ते प्रमादंगळक्कुमंते प्रणयदोळुमेंभत्ते प्रमादंगळुद्भविसुगुमितु विशेषसंख्यासमुत्पत्तिनिरूपितमाय्तु ।

अनंतरं प्रस्तारक्रमप्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

भवन्ति ॥३५॥ अथ विशेषसंख्योत्पत्तिक्रममाह—

सर्वेऽपि पूर्वभङ्गाः उपरिमोपरिमभङ्गेषु एकैकस्मिन्मिलन्ति संभवन्तीति क्रमेण गुणिते सति विशेषसंख्या समुत्पद्यते (तद्यथा) पूर्वभङ्गाः विकथाप्रमादाश्चत्वारोऽपि उपरितनकषायेष्वेकैकस्मिन् संभवन्तीति चतुःकषायाणां षोडश प्रमादा भवन्ति । पुनः एतेऽधस्तनभङ्गाः षोडशापि उपरितनेन्द्रियेष्वेकैकस्मिन् संभवन्तीति पञ्चेन्द्रियाणामशीतिप्रमादा भवन्ति । तथा निद्रायां प्रणये च एकैकत्वाद् अशीतिरशीतिरेव । एवं विशेषसंख्योत्पत्तिः कथिता ज्ञाता ॥३६॥ अथ प्रस्तारक्रमं प्रदर्शयति—

---

२५ आगे विशेष संख्याकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं—

सभी पहलेके भंग ऊपर-ऊपरके भंगोंमें से एक-एकमें मिलते हैं । इस प्रकार क्रमसे गुणा करनेपर विशेष संख्या उत्पन्न होती है । जैसे, पूर्वभंग विकथा प्रमाद चारों भी ऊपरके कषाय प्रमादमें-से एक-एकमें होते हैं । इस तरह चारों कषायोंके सोलह प्रमाद होते हैं । फिर ये नीचेके सोलह भी भंग ऊपरके इन्द्रिय प्रमादोंमें-से एक-एकमें होते हैं । इस तरह पाँच इन्द्रियोंके अस्सी प्रमाद होते हैं । तथा निद्रा और प्रणय एक-एक होनेसे अस्सी-अस्सी ही होते हैं । अर्थात् चार विकथाको चार कषायोंसे गुणनेपर सोलह प्रमाद होते हैं, इन सोलहको पाँच इन्द्रियोंसे गुणा करनेपर अस्सी होते हैं; अस्सीको एक-एकसे गुणा करनेपर भी अस्सी ही होते हैं, इस प्रकार विशेष संख्याकी उत्पत्ति कही ॥३६॥

आगे प्रस्तारका क्रम दिखाते हैं—

---

२५ १. म °नहरे ।

पढमं पमदपमाणं कमेण णिक्खविय उवरिमाणं च ।
पिंडं पडि एक्केक्कं णिक्खित्ते होदि पत्थारो ॥३७॥

प्रथमं प्रमादप्रमाणं क्रमेण निक्षिप्य उपरितनानां च पिण्डं । प्रत्येकैकं निक्षिप्ते भवति प्रस्तारः ॥

विकथात्मकमप्प प्रथमप्रमादादिगळ प्रमाणमं विरलिसि क्रमदिंद निक्षेपिसि उपरितनोपरितनपिंडमधस्तनाधस्तनविरलितनिक्षिप्तरूपं प्रत्येकैकमं निक्षेपिसि यदं कूडुत्तं बरळ प्रस्तारमक्कु मदेंतेनेविकथाप्रमादप्रमाणमिदु ४ इवं विरलिसि क्रमदिंद निरिसि १।१।१।१। उपरितन द्वितीयकषायप्रमादपिंडम ४, विरलिताधस्तनप्रमादंगळ्गे रूपं प्रत्येकैकपिंडमनिरिसि $\overset{४}{१}\overset{४}{१}\overset{४}{१}\overset{४}{१}$— यिवं कूडुत्तिरलु षोडशप्रमादंगळप्पु १६ ॥ मत्तमुपरितनापेक्षेयिंदमी प्रथमप्रमादपिंडमिदं १६ विरलिसि क्रमदिंद निरिसि उपरितनद्वितीयेंद्रियप्रमादपिंडमनिदं ५ मुन्न विरलिताधस्तनप्रमादरूपंगळ्गरूपं प्रत्येकैकपिंडमनिरिसियवं कूडुत्तविरलुमेप्पत्तु भंगमक्कुमिदं प्रस्तारमेंबुदु ।—

५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
क्रोध	मा	मा	लो.	क्रोध	मा	मा	लो.	क्रोध	मा	मा	लो.	क्रोध	मा	मा	लो.
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-
अ	अ	अ	अ	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-	-

प्रथमं विकथात्मकप्रमादानां प्रमाणं विरलयित्वा क्रमेण निक्षिप्य, उपरितनपिण्डे क्रमोविरलितस्य रूपं रूपं प्रति एकैकं निक्षेपव्यं तेषु मिलितेषु प्रस्तारो भवति । तद्यथा–विकथाप्रमादप्रमाणमिदं ४, विरलयित्वा क्रमेण संस्थाप्य १ १ १ १, उपरितनं द्वितीयं कषायाख्यप्रमादपिण्डमिदं ४ विरलितनिक्षिप्ताधस्तनप्रमादानां रूपं रूपं प्रति एकैकं दत्त्वा ($\overset{४}{१}\overset{४}{१}\overset{४}{१}\overset{४}{१}$) एतेषु मिलितेषु षोडश प्रमादा भवन्ति १६ । पुनः उपरितनापेक्षया इमं प्रथमं प्रमादपिण्डं १६ विरलयित्वा क्रमेण निक्षिप्य उपरितनद्वितीयमिन्द्रियप्रमादपिण्डं ५ प्राग्वद्विरलितनिक्षिप्ताधस्तनप्रमादानां रूपं (रूपं) प्रत्येकैकं निक्षिप्य— ८०

२०				२०				२०				२०			
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
१	१	१	१,	१	१	१	१,	१	१	१	१,	१	१	१	१,
क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री,	म	म	म	म,	रा	रा	रा	रा,	अ	अ	अ	अ,

प्रथम विकथारूप प्रमादके प्रमाणका विरलन करके क्रमसे रखो । फिर नीचे विरलन किये हुए इस एक-एकके प्रति ऊपरके प्रमादको पिण्डरूपसे स्थापित करो । उनके मिलनेपर प्रस्तार होता है । जैसे, विकथा प्रमाण ४ है । इसका विरलन करके क्रमसे स्थापित करो १ १ १ १ । ऊपरका दूसरा कषाय नामक प्रमाद पिण्ड ४ है । विरलन करके स्थापित किये गये नीचेके प्रमादोंके एक-एकके प्रति ऊपरके उक्त पिण्डको देनेपर ($\overset{४}{१}\overset{४}{१}\overset{४}{१}\overset{४}{१}$) उनके मिलनेपर सोलह प्रमाद होते हैं–१६ । फिर ऊपरके प्रमादकी अपेक्षा इस प्रथम प्रमाद पिण्ड १६ का विरलन करके क्रमसे रखो । फिर ऊपरके दूसरे इन्द्रिय प्रमादके पिण्ड ५ को पहलेकी तरह विरलन करके रखे गये नीचेके प्रमादोंके एक-एकपर स्थापित करो

१. म मुं वि° ।

प्रकाशक आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

इ प्रस्तारमं मुंबे पेळ्द्यक्षसंचारहेतुवक्कुमंतु प्रस्तारित मप्पभत्तु भंगंगळ नालापिसुव प्रकारमें तेने । स्नेहवान्निद्रालुः स्पर्शनेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापी एंबुदु प्रथमभंगमक्कु । स्नेहवान्निद्रालुः रसनेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापी एंबुदु द्वितीयभंगमक्कु । स्नेहवान्निद्रालुः घ्राणेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीयेंबुदु तृतीयभंगमक्कुं । स्नेहवान्निद्रालुः चक्षुरिंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापी एंबुदु चतुर्थभंगमक्कुं । स्नेहवान्निद्रालुः श्रोत्रेंद्रियवशगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीयेंबुदु पंचमभंगमक्कुं ।

इंतुळिद मानमायालोभमें बिसो दोक्कमेंदेंबु भंगमागलुमोंदु स्त्रीकथाप्रमादालापविकल्पंगळु (२०) अक्कुमंते, भक्त (२०) राष्ट्रा- (२०) वनिपालकथा (२०) प्रमादंगळुगं प्रत्येकमिप्पत्तिप्पत्तु भंगंगळागुत्तिरलेल्ला भंगंगळुमेंभत्तु (८०) प्रकारंगळक्कुमेंदरिवुदु ॥

अनंतरं प्रस्तारांतर प्रदर्शनार्थमिदं पेळ्दपरु ।

एतेषु मिलितेषु अशीतिभङ्गा भवन्ति । अयं प्रस्तारः, अग्रे वक्ष्यमाणाक्षसंचारहेतुर्भवति । एवं प्रस्तारितानामशीतिभङ्गानामालापप्रकारः कथ्यते–स्नेहवान् निद्रालुः स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति प्रथमः ॥१॥ स्नेहवान् निद्रालु रसनेन्द्रियवशंगतः स्त्रीकथालापीति द्वितीयः ॥२॥ स्नेहवान् निद्रालुः घ्राणेन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति तृतीयः ॥३॥ स्नेहवान् निद्रालुः चक्षुरिन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति चतुर्थः ॥४॥ स्नेहवान् निद्रालुः श्रोत्रेन्द्रियवशंगतः क्रोधी स्त्रीकथालापीति पञ्चमः ॥५॥ एवं शेषमानमायालोभानामपि एकैकस्य पञ्च पञ्च भूत्वा चतुर्णां कषायाणां एकस्त्रीकथाप्रमादे विंशतिरालापा भवन्ति २० । तथा भक्तराष्ट्रावनिपालकथाप्रमादानामपि प्रत्येकं विंशतिर्विंशतिर्भूत्वा मिलित्वा सर्वेऽशीतिरालापा भवन्तीति ज्ञातव्यं ॥३७॥ अथ प्रस्तारान्तरं प्रदर्शयति—

२०	२०	२०	२०
५ ५ ५ ५	५ ५ ५ ५	५ ५ ५ ५	५ ५ ५ ५
१ १ १ १,	१ १ १ १,	१ १ १ १,	१ १ १ १,
क्रो मा मा लो,	क्रो मा मा लो,	क्रो मा मा लो,	क्रो मा मा लो,
स्त्री स्त्री स्त्री स्त्री,	भ भ भ भ,	रा रा रा रा,	अ अ अ अ,

इन सबके मिलनेपर अस्सी भंग होते हैं। यह प्रस्तार है। यह आगे कहे जानेवाले अक्ष संचारका हेतु होता है। इस प्रकार प्रस्तारित अस्सी भंगोंके आलापका प्रकार कहते हैं। स्नेहवान्, निद्रालु, स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह पहला भंग है।१। स्नेहवान्, निद्रालु, रसना इन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह दूसरा भंग है।२। स्नेहवान्, निद्रालु, घ्राण इन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह तीसरा भंग है।३। स्नेहवान्, निद्रालु, चक्षु इन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह चतुर्थ भंग है।४। स्नेहवान्, निद्रालु, श्रोत्रेन्द्रियके आधीन, क्रोधी, स्त्रीकथालापी, यह पाँचवाँ भंग है।५। इस प्रकार शेष मान, माया और लोभमें भी एक-एकके पाँच-पाँच होकर चार कषायोंके एक स्त्रीकथाप्रमादमें बीस आलाप होते हैं।२०। तथा भक्तकथा, राष्ट्रकथा, अवनिपालकथा प्रमादमें-से भी प्रत्येकके बीस-बीस होकर सब मिलकर अस्सी आलाप होते हैं ॥३७॥

आगे प्रस्तारका दूसरा प्रकार कहते हैं—

---

१. म °प्रमादालापंगलिप्पत्तक्कुमंते भक्तराष्ट्रावनिपालकथा प्रमादं° ।

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खेवो एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥३८॥

निक्षिप्य द्वितीयमात्रं प्रथमं तस्योपरि द्वितीयमेकैकं । पिंडं प्रति निक्षेपः एवं सर्वत्र कर्त्तव्यः ॥

कषायाभिधानद्वितीयप्रमादप्रमाणस्थानंगळोळु विकथात्मकप्रथमप्रमादप्रमाणपिंडमं प्रत्येकं स्थापिसि मत्तं पिंडं प्रति द्वितीयप्रमादप्रमाणमेकैकरूपंगळा पिंडंगळं मेले निक्षेपिसल्पडुवुदु । ४ ४ ४ ४ इंतु निक्षेपिसिदोडमनवर युतियुं षोडशप्रमितपिंडमक्कुमी पिंडमुमं बळिक्कमेवं सर्वत्र कर्त्तव्यः एंबुदरिंदं इंद्रियाभिधानतृतीयपिंडप्रमादप्रमाणस्थानंगळोळु षोडशप्रमादप्रमाणपिंडमं स्थापिसि मत्तं पिंडं प्रति तृतीयप्रमादप्रमाणरूपुगळमोंदोंदना पिंडंगळ मेळे मुन्निनंते निक्षेपिसल्पडुगु १६ १६ १६ १६ १६ मिंतु निक्षेपमागुत्तिरळ अधस्तनाक्षसंचारहेतुवप्प द्वितीयप्रस्तारं पुटगुमदेंतेने—स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवान् एंबुदु प्रथमप्रमादालापमक्कुं । भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबिदु द्वितीयप्रमादालापमक्कुं । राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंदु तृतीयप्रमादालापमक्कुं । अवनिपालकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंदु चतुर्थप्रमादालापमक्कु

योगदीपिका आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कषायाभिधानद्वितीयप्रमादप्रमाणस्थानेषु विकथात्मकप्रथमप्रमादप्रमाणपिण्डं प्रत्येकं संस्थाप्य ४ ४ ४ ४ पुनः पिण्डं प्रति द्वितीयप्रमादानां प्रमाणस्य एकैकरूपमुपरि निक्षेपतव्यं, एवं (१ १ १ १ ४ ४ ४ ४) निक्षिप्ते तेषां युतिः षोडशप्रमितपिण्डो भवति । अयं पिण्डः पुनः "एवं सर्वत्र कर्तव्यः" इति वचनात् इन्द्रियाभिधानतृतीयप्रमादपिण्डप्रमाणस्थानेषु संस्थाप्य । १६।१६।१६।१६।१६ । एतेषामुपरि तृतीयप्रमादप्रमाणं एकैकरूपेण निक्षेपतव्यं । (१ १ १ १ १ १६ १६ १६ १६ १६) एवं निक्षिप्ते अधस्तनाक्षसंचारहेतुर्द्वितीयप्रस्तारो जायते । तद्यथा—स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः स्नेहवानिति प्रथमप्रमादालापः ।१। भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः स्नेहवान् इति द्वितीयप्रमादालापः ।२। राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः

कषाय नामक दूसरे प्रमादका जितना प्रमाण है, उतने स्थानोंमें विकथारूप प्रथम प्रमादका जितना प्रमाण है, उसे पिण्डरूपसे स्थापित करो ४ ४ ४ ४। फिर एक-एक पिण्डके प्रति दूसरे प्रमादके प्रमाणका एक-एक रूप ऊपर स्थापित करो। (१ १ १ १ ४ ४ ४ ४) इस प्रकार रखनेपर उनका जोड़ सोलह प्रमाण पिण्डरूप होता है। इसी प्रकार सर्वत्र करना चाहिए। इस वचनके अनुसार इस पिण्डको इन्द्रिय नामक तीसरे प्रमादके पिण्डका जितना प्रमाण है, उतने स्थानोंमें स्थापित करो १६।१६।१६।१६।१६। इनके ऊपर तीसरे प्रमादके प्रमाणको एक-एक रूपसे स्थापित करना चाहिए—(१ १ १ १ १ १६ १६ १६ १६ १६); ऐसे स्थापित करनेपर नीचेकी अपेक्षा अक्षसंचारका कारण दूसरा प्रस्तार होता है। नीचेसे अक्षसंचारका आलाप इस प्रकार होता है—स्त्रीकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह प्रथम प्रमाद आलाप है ।१। भक्तकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह दूसरा प्रमाद आलाप है ।२। राष्ट्रकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु,

मितियुमुळिद मानमायालोभंगळ्गं नाल्कुं नाल्काळापंगळागुत्तमिरलु नाल्कुं कषायंगळ्गं पविनारुप्रमादालापंगळप्पुवु। मत्तमो दु स्पर्शनेंद्रियक्कं पविनारु प्रमादालापंगळागुत्तमिरलु मुळिद रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रंगळ्नाल्कुरोळुमो दो दक्कं पविनारु पविनारु प्रमादालापंगळागुत्तमिरलुमय्दुमिंद्रियंगळ्गमंभत्तु प्रमादालापंगळक्कुमदेल्लमनरिदु नडसुवुवु। मत्तमिती प्रस्तारक्रमं सर्वत्र चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलादिप्रस्तारंगळोळं कर्त्तव्यमक्कुं। अनंतरमक्षपरिवर्त्तनक्रमप्रदर्शनार्थमागि पेळ्दपरु।

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥३९॥

(३९ तमगाथा न विद्यते मूलप्रतौ)

स्नेहवान् इति तृतीयप्रमादालापः ।३। अवनिपालकथालापी क्रोधी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः निद्रालुः स्नेहवान् चतुर्थप्रमादालापः ।४। एवं शेषमानमायालोभानामपि चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्णां कषायाणां एकस्पर्शनेन्द्रियप्रमादे षोडशप्रमादालापा भवन्ति। तथा शेषरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणां चतुर्णामपि एकैकस्य षोडश षोडश भूत्वा पञ्चानामिन्द्रियाणामशीतिप्रमादालापा भवन्ति; तान् सर्वान् ज्ञात्वा वर्तितव्यं यतिभिः। अयं क्रमः सर्वत्र चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलादीनामपि प्रस्तारेऽपि कर्तव्यः ॥३८॥ अथ प्रथमप्रस्तारापेक्षया अक्षपरिवर्तनक्रममाह—

तृतीयप्रमादाक्षः आलापक्रमेण स्वपर्यन्तं गत्वा पुनरावृत्य स्वप्रथमस्थानं युगपदेवागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वद्वितीयस्थानं गच्छति। पुनः तृतीयप्रमादाक्षः क्रमेण स्वपर्यन्तं गत्वा व्यावृत्य युगपदेव स्वप्रथमस्थानमागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयस्थानं गच्छति। एवं द्वितीयप्रमादाक्षो यदा एकवारं स्वपर्यन्तं

स्नेहवान्, यह तीसरा प्रमाद आलाप है।३। अवनिपालकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह चतुर्थ प्रमाद आलाप है।४। इसी प्रकार शेष मान-माया-लोभके भी चार-चार होकर चारों कषायोंके एक स्पर्शन इन्द्रिय सम्बन्धी प्रमादमें सोलह प्रमाद आलाप होते हैं। तथा शेष रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र चारों भी इन्द्रियोंमें एक-एकके सोलह-सोलह होकर पाँचों इन्द्रियोंके अस्सी आलाप होते हैं। उन सबको जानकर व्रतियोंको प्रवृत्ति करना योग्य है। यह क्रम सर्वत्र चौरासी लाख गुण, अठारह हजार शील आदिके भी प्रस्तारमें करना चाहिए ॥३८॥

आगे प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तन कहते हैं—

तीसरा प्रमाद अक्ष इन्द्रिय आलापके क्रमसे अपने अन्त तक जाकर पुनः लौटकर अपने प्रथम स्थानको एक साथ प्राप्त होता है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय अपने दूसरे स्थानको प्राप्त होता है अर्थात् क्रोधकषायका स्थान मानकषाय लेता है। पुनः तीसरा प्रमाद अक्ष इन्द्रिय क्रमसे अपने अन्त पर्यन्त जाकर लौटकर एक साथ ही अपने प्रथम स्थानपर आती है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय अपने तीसरे स्थानको प्राप्त होता है। अर्थात् मायाकषाय मानकषायका स्थान ले लेता है। इस तरह दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय जब एक बार अपने अन्त तक जाता है, तब तीसरा प्रमाद अक्ष इन्द्रिय भी क्रमसे संचार करता हुआ अपने अन्त तक जाता है। इस प्रकार ये दोनों ही अर्थात् इन्द्रिय और कषाय पुनः लौटकर अपने-अपने प्रथम स्थानको एक साथ प्राप्त होते हैं, तब प्रथम प्रमाद अक्ष विकथा अपने

---

१. म °गुत्तिरलु।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गच्छति तदा तृतीयप्रमादाक्षोऽपि क्रमेण संचरन् स्वपर्यन्तं गच्छति । एवं तौ द्वावप्यक्षौ पुनः व्यावृत्य स्वस्व-प्रथमस्थानं यदा युगपदेव आगच्छतः तदा प्रथमप्रमादाक्षः स्वप्रथमस्थानं मुक्त्वा स्वद्वितीयस्थानं गच्छति।अनेन क्रमेण तृतीयद्वितीयाक्षयोः स्वपर्यन्तप्राप्तिनिवृत्तिभ्यां प्रथमप्रमादाक्षस्य स्वतृतीयादिस्थानेषु संचारो ज्ञातव्यः । अयमक्षसंचारक्रमः उपरितोऽधस्तनं विचार्य वर्तयितव्यः॥३९॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया अक्षपरिवर्तनक्रममाह—

प्रथम स्थानको छोड़कर अपने द्वितीय स्थानको प्राप्त होता है अर्थात् स्त्रीकथाका स्थान भक्तकथा लेती है। इस क्रमसे तीसरे और दूसरे अक्षके अपने अन्त तक जाने और लौटनेसे प्रथम प्रमाद अक्षका अपने तृतीय आदि स्थानोंमें संचार जानना चाहिए। इस उक्त कथनका खुलासा इस प्रकार है—

विकथा, कषाय, इन्द्रिय, निद्रा, स्नेहके आदिमें स्त्रीकथा, क्रोध, स्पर्शन प्रमादको स्थापित करके तृतीय अक्ष इन्द्रिय स्पर्शनको छोड़कर रसनामें, रसनाको छोड़कर घ्राणमें, घ्राणको छोड़कर चक्षुमें और चक्षुको छोड़कर श्रोत्रमें संचार करता है। अन्य अक्ष उसी प्रकार स्थिर रहते हैं। इस प्रकार संचार करता हुआ तीसरा अक्ष श्रोत्रेन्द्रिय तक जाकर पुनः लौटकर जब प्रथम स्पर्शनपर आता है,तब दूसरा अक्ष कषाय क्रोधको छोड़कर मानपर आता है। पुनः दूसरे अक्षके मानकषाय पर ही स्थित रहते हुए तीसरा अक्ष इन्द्रिय पूर्वोक्त क्रमसे संचार करता हुआ अन्त तक जाकर लौटकर जब प्रथम स्थानको प्राप्त होता है,तब दूसरा अक्ष मानको छोड़कर मायामें संचार करता है। उस अक्ष मायाके उसी प्रकार स्थिर रहते हुए तीसरा अक्ष इन्द्रिय पुनः पूर्वोक्त क्रमसे संचार करता हुआ अन्त तक जाकर लौटकर जब पुनः प्रथम स्थानको प्राप्त होता है,तब दूसरा अक्ष मायाको छोड़कर लोभमें संचार करता है। उस अक्षके उसी प्रकार स्थिर रहनेपर पुनः तीसरा अक्ष इन्द्रिय पूर्वोक्त क्रमसे संचार करता हुआ अन्त तक जाता है,तब तीसरा और दूसरा दोनों ही अक्ष अन्त तक जाकर लौटकर जब आदिमें आते हैं,तब प्रथम अक्ष विकथा स्त्रीकथाको छोड़कर भक्तकथामें संचार करता है। उसके उसी प्रकार स्थिर रहते हुए तीसरा और दूसरा अक्ष पूर्वोक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्त तक जाकर पुनः लौटकर जब आदिमें आते हैं,तब प्रथम अक्ष भक्तकथाको छोड़कर राष्ट्रकथामें संचार करता है। उसके उसी प्रकार स्थिर रहते हुए तीसरा और दूसरा अक्ष उक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्त तक जाकर पुनः लौटकर जब आदिमें आते हैं,तब प्रथम अक्ष राष्ट्रकथाको छोड़कर राजकथामें संचार करता है। उसके उसी प्रकार स्थिर रहनेपर तीसरा और दूसरा अक्ष उक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्त तक जाते हैं और इस तरह अक्ष संचार समाप्त होता है। निद्रा और स्नेह एक-एक ही हैं। इसलिए उनका अक्ष संचार नहीं होता। इस प्रकार अक्ष संचारका आश्रय लेकर प्रमादोंके आलाप बतलाते हैं—

स्त्रीकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन ।१। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, रसना इन्द्रियके आधीन ।२। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, घ्राण इन्द्रियके आधीन ।३। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, चक्षु इन्द्रियके आधीन ।४। स्त्रीकथालापी, क्रोधी, श्रोत्र इन्द्रियके आधीन ।५। पुनः लौटनेपर स्त्रीकथालापी, मानी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन ।६। इत्यादि क्रमसे आगेके आलाप लाना चाहिए। इस प्रकार स्त्रीकथाके बीस प्रमादालाप होते हैं। इसी प्रकार शेष विकथाओंके भी बीस-बीस आलाप होनेसे चारों कथाओंके मिलकर अस्सी आलाप होते हैं ॥३९॥

आगे द्वितीय प्रस्तारकी अपेक्षा अक्षपरिवर्तनका क्रम कहते हैं—

पढमक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो ।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगते संकमेदि तदियक्खो ।।४०।।

प्रथमाक्षोंतगत आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः । द्वयमपि गत्वान्तं आदिगते संक्रामति तृतीयाक्षः ।।

प्रथमप्रमादाक्षमालापक्रमविदं स्वपर्य्यंतमं पोद्दिमत्तावृत्तिगेय्दु तन्न प्रथमप्रमादस्थानमनागळोम्मे पोद्दुगुमागळु द्वितीय प्रमादाक्षं स्वद्वितीयस्थानमं पोद्दुगुमंत्तेयुं प्रथमप्रमादाक्षं क्रमविदं स्वपर्य्यंतमं पोद्दियावृत्तियिनागळोम्मे तन्न प्रथमप्रमादस्थानमं पोद्दुगुमागळु द्वितीय-प्रमादाक्षं स्वतृतीयस्थानमं पोद्दुगुमितु द्वितीयप्रमादाक्षमागळोम्मे स्वपर्य्यंतमं पोद्दुगुमागळु प्रथमप्रमादाक्षमुं स्वपर्य्यंतमनेय्दिक्कुमितेरडुमक्षंगळुमावृत्तियिं तंतम्म प्रथमस्थानमनागळोम्मे

प्रथमप्रमादाक्षः आलापक्रमेण स्वपर्यन्तं गत्वा पुनर्व्यावृत्य स्वप्रथमस्थानं युगपदेव आगच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षो द्वितीयं स्वस्थानं गच्छति । पुनः प्रथमप्रमादाक्षः उक्तक्रमेण संचरन् स्वपर्यन्तं गत्वा व्यावृत्य युगपदेव स्वप्रथमस्थानमागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयं स्थानं गच्छति एवं संचरन् द्वितीयप्रमादाक्षो यदा स्वपर्यन्तं गच्छति तदा प्रथमाक्षोऽपि स्वपर्यन्तं गत्वा तिष्ठति । एवं द्वावप्यक्षौ व्यावृत्य स्वस्वप्रथमं स्थानं गतौ तदा तृतीयप्रमादाक्षाः स्वप्रथमस्थानं मुक्त्वा स्वद्वितीयस्थानं गच्छति । अनेन क्रमेण प्रथमद्वितीयाक्षयोः

१युगदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पहला प्रमाद अक्ष विकथा आलापके क्रमसे अपने अन्त तक जाकर पुनः लौटकर अपने प्रथम स्थानको युगपत् ही प्राप्त होता है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष अपने दूसरे स्थानको प्राप्त होता है । पुनः प्रथम प्रमाद अक्ष विकथा उक्त क्रमसे संचार करते हुए अपने अन्त तक जाकर लौटकर एक साथ ही अपने प्रथम स्थानको प्राप्त होता है, तब दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय अपने तीसरे स्थानको प्राप्त होता है । इस प्रकार संचार करते हुए दूसरा प्रमाद अक्ष कषाय जब अपने अन्त तक जाता है, तब प्रथम अक्ष विकथा भी अपने अन्त तक जाकर ठहर जाता है । इस प्रकार दोनों ही अक्ष अर्थात् विकथा और कषाय लौटकर जब अपने-अपने प्रथम स्थानको प्राप्त होते हैं, तब तीसरा प्रमाद अक्ष अर्थात् इन्द्रिय अपने प्रथम स्थानको छोड़कर अपने द्वितीय स्थानको प्राप्त होता है । इस क्रमसे पहले और दूसरे अक्षके अपने-अपने अन्त तक प्राप्त होकर लौटनेपर तीसरा प्रमाद अक्ष अपने तीसरे आदि स्थानको प्राप्त होता है, ऐसा जानना । इस कथनका खुलासा इस प्रकार जानना । विकथा, कषाय, इन्द्रिय, निद्रा, स्नेह इनमें अक्षकी स्थापना करो । पहला अक्ष विकथा संचरण करता है अन्य अक्ष वैसे ही स्थिर रहते हैं । इस प्रकार संचार करते हुए प्रथमाक्ष विकथा राजकथा तक जाकर लौटकर जब प्रारम्भमें आता है, तब दूसरा अक्ष कषाय क्रोधका स्थान मान ले लेता है । उस दूसरे अक्ष मानके स्थिर रहते हुए प्रथम अक्ष विकथा पूर्ववत् संचार करता हुआ राजकथा तक जाकर लौटकर जब प्रारम्भमें आता है, तब दूसरे अक्ष मानका स्थान माया ले लेता है । उस माया कषायके तदवस्थ रहते हुए प्रथम अक्ष विकथा पूर्ववत् संचार करता हुआ राजकथा तक जाकर लौटकर पुनः प्रारम्भमें आता है, तब दूसरे अक्ष मायाका स्थान लोभ लेता है । उस कषाय लोभके स्थिर रहते हुए पहला अक्ष विकथा उसी प्रकार संचार करते हुए अन्तको प्राप्त होता है । तब पहला और दूसरा दोनों ही अक्ष अर्थात् विकथा

१. क °द्दिमत्ता° । २. क स्ववृत्तिय स्था° । ३. म °माग्लो° ।

पोद्दुंववागलु वृत्तितृतीयप्रमादाक्षं स्वद्वितीयस्थानवोळु [1]संचरि सुगु मी क्रमविदं प्रथमद्वितीयाक्षंगळ तंतम्म पर्य्यंत प्राप्तिनिवृत्तिगळिदं तृतीयप्रमादाक्षक्के स्वतृतीयादिस्थानंगळोळु संचारमरियल्पडुगु। मी यक्षसंचारक्रमं मेगणिदं केळगणं विचारिसि प्रवर्त्तनीयमक्कुं। इल्लियक्षमें बुवक्के हंसपदं संदृष्टियक्कुं।

अनंतरं नष्टाक्षानयनप्रदर्शनार्थं पेळ्दपरु। ५

सगमाणेहि विभत्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं।
लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंत्ते ण रूवपक्खेवो ॥४१॥

स्वकमानेन विभक्ते शेषं लक्षयित्वा जानीह्यक्षपदं। लब्धे रूपं प्रक्षिप शुद्धेंते न रूपप्रक्षेपः॥

आवुदोंदु विवक्षितमप्प प्रमादसंख्येयं प्रथमप्रमादप्रमाणदिंद भागिसि निंद शेषमक्षस्थान-

---

स्वस्वपर्यन्तप्राप्तिनिवृत्तिभ्यां तृतीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयादिस्थानं गच्छतीति ज्ञातव्यं। अयमक्षसंचारक्रमोऽधस्ता- १०
दुपरितनं विचार्य प्रवर्तनीयः। अक्षस्य संदृष्टिः हंसपदं ॥४०॥ अथ नष्टानयनं प्रदर्शयति—

या विवक्षितप्रमादसंख्या तां प्रथमप्रमादपिण्डप्रमाणेन भक्त्वा शेषमक्षस्थानं भवति। तल्लब्धे रूपं प्रक्षिप्य तत्प्रक्षिप्तयुतं उपरितनद्वितीयप्रमादप्रमाणपिण्डेन भक्त्वा तच्छेषमक्षस्थानं भवति। तल्लब्धे रूपं प्रक्षिप्य तृतीयप्रमादप्रमाणपिण्डेन भक्त्वा लब्धं शून्यं तदा तत्र तत्र प्रमादानां अवसानस्थाने एव अक्षस्तिष्ठति। तल्लब्धे एकरूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। अत्रोदाहरणमुच्यते—यद्विवक्षितनष्टप्रमादसंख्यामिमां १५ प्रथमप्रमादप्रमाण- १५

और कषाय अन्तको प्राप्त होकर जब पुनः लौटकर आदिमें आते हैं, तब तीसरा अक्ष इन्द्रिय स्पर्शनके स्थानमें रसना हो जाता है। उस अक्ष रसना इन्द्रियके तदवस्थ रहते हुए पहला और दूसरा अक्ष पूर्वोक्त क्रमसे संचार करते हुए अन्तको प्राप्त होकर लौटकर जब आदिमें आते हैं, तब तीसरे अक्ष रसनाका स्थान घ्राण ले लेती है। इस प्रकार, श्रोत्र इन्द्रिय पर्यन्त अक्ष संचारका क्रम जानकर करना चाहिए। निद्रा और स्नेह एक-एक ही होनेसे उनका अक्ष- २०
संचार नहीं होता। इस प्रकार अक्षसंचारका आश्रय लेकर प्रमादोंका आलाप इस प्रकार होता है—स्त्रीकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन पहला आलाप है।१। भक्तकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन दूसरा आलाप है।२। राष्ट्रकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन।३। राजकथालापी, क्रोधी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन।४। पुनः लौटनेपर स्त्रीकथालापी, मानी, स्पर्शनेन्द्रियके आधीन।५। इत्यादि क्रमसे अक्षसंचार करना चाहिए। इस प्रकार करने- २५
पर स्पर्शन इन्द्रियमें सोलह प्रमादालाप होते हैं। इसी तरह प्रत्येक इन्द्रियके सोलह-सोलह आलाप होनेसे सब मिलकर अस्सी प्रमादालाप होते हैं ॥४०॥

आगे नष्टको लानेकी विधि कहते हैं—

संख्या रखकर उस संख्यावाले आलापको लानेकी विधिका नाम नष्ट है। उसकी विधि इस प्रकार है—विवक्षित प्रमादकी संख्याको प्रथम प्रमादके पिण्डरूप प्रमाणसे भाग देकर ३०
जो शेष रहे, वह अक्षस्थान होता है। उसके लब्धमें एक जोड़कर उसमें ऊपरके दूसरे प्रमाद-के प्रमाण पिण्डसे भाग देकर जो शेष बचे, उतना अक्षस्थान होता है। उसके लब्धमें एक जोड़कर तीसरे प्रमादके प्रमाणरूप पिण्डसे भाग देनेपर जो शेष बचे, उतना अक्षपद जानना। यदि भाग देनेपर कुछ भी शेष नहीं बचता, तो उस-उस प्रमादका अन्त स्थानका अक्ष ग्राह्य

---

१. म संभवि सु.। २. म मेगलिदं।

मक्कुं। तल्लब्धदोळु रूपं प्रक्षेपिसुवुदंतु प्रक्षेपिसियुपरितनद्वितीयप्रमादप्रमाणपिंडविदं भागिसलुळ-दडे भागिसिद शेषमल्लियक्षस्थानमक्कुं।

तल्लब्धदोळु रूपं कूडे तृतीयप्रमादप्रमाणपिंडदिं भागिसुत्तिरलु लब्धं शून्यमादोडे शेषमेय-क्षस्थानमक्कुमेत्तलानुमल्लल्लि [illegible] शेषं [illegible] यक्षं निल्कुमा लब्धदोळेकरूपक्षेपमं माडलागदु। लब्धमं शून्यमादोडल्लिय शेषमेयक्षस्थानमक्कु-मल्लियुं रूपक्षेपं माडलागदु। इल्लियुदाहरणमं तोने :—

आवुदोंदु विवक्षितनष्टप्रमादसंख्येयनिद १५ प्रथमप्रमादप्रमाणपिंडदिदं ४ भागिसिद लब्धं ३ तच्छेषमुं ३ इवा मूरनेय राष्ट्रकथालापिय बिल्लिगक्षमक्कुमेंदरिवल्लियक्षमनिट्टुवंतोडदु कळदु तल्लब्धमप्प मूररोळेकरूपमं प्रक्षेपं माडल्पडुवुदंतु माडुत्तिरलदु नालकुक्कुमवं मेलण द्वितीयकषाय प्रमादपिंडदिदं ४ भागिसुत्तिरलु शेषं शून्यमक्कुमा शून्यमे तत्कषायप्रमादंगळंत्यमप्प लोभि एंबाला-पस्थानदोळक्षसूचकमक्कुमेंदा शून्यमं बिट्टुकळवुदु। तल्लब्धमेकरूपमक्कुमदरोळेकरूप क्षेपमं माडलागदु बळिक्क अदं मेलेणेंद्रियप्रमादपिंडमिदरिदं ५ भागिसुवुदंतु भागिसुत्तिरलुं लब्धं शून्य-मक्कुमदरोळेकरूपक्षेपकमं माडलागदाशेषमप्पेकरूपमा स्पर्शनेंद्रियवशगतनेंब प्रमादवल्लियक्षमं सूचिसुगुमितु पविनैदिनेय प्रमादराष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंब प्रमादालापमक्कुमेंबुदर्थमितो नष्टालापमं साधिसुवुदु॥

तदनंतरमालापमं पिडिदु संख्येयं साधिसल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु।

पिण्डेन ४ भक्त्वा लब्धं त्रयं ३, शेषमपि त्रयं, इतिराष्ट्रकथायामक्षोऽस्ति इति तत्राक्षं दत्त्वा दर्शयेत्। तल्लब्धत्रये एकं रूपं प्रक्षिप्य तच्चतुष्के तदुपरितनद्वितीयकषायप्रमादपिण्डेन ४ भक्ते शेषं शून्यमिति तत्कषाय-प्रमादालाप्यन्त्ये लोभालापस्थाने अक्षं सूचयतीति तत्र लिखेत्। तल्लब्धमेकरूपं तस्योपरि एकरूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। पुनस्तल्लब्धैकरूपे उपरितनेन्द्रियप्रमादपिण्डेन ५ भक्ते लब्धं शून्यं, शेषमेकरूपमिति तत्स्पर्शनेन्द्रिय-वशगत इति प्रमादोऽक्षं सूचयति। एवं पञ्चदश प्रमादो राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो निद्रालुः स्नेहवानित्यालापो भवतीत्यर्थः। एवमेव नष्टालापं साधयेत् ॥४१॥ अथालापं कृत्वा संख्यां साधयितुमग्रतन-सूत्रमाह—

होता है तथा उसके लब्धमें एक नहीं जोड़ना चाहिए। यहाँ उदाहरण कहते हैं—जैसे विवक्षित नष्ट प्रमादकी संख्या १५ है। प्रथम विकथा प्रमादके प्रमाणरूप पिण्ड ४ से उसमें भाग देनेपर लब्ध तीन आया, शेष भी तीन ही रहा। तीसरी विकथा राष्ट्रकथामें अक्ष है अतः उसमें अक्ष देकर दिखलाना चाहिए। उसके लब्ध तीनमें एक जोड़कर चारमें उससे ऊपरके दूसरे प्रमाद कषायके पिण्डके प्रमाण चारसे भाग देनेपर शून्य शेष रहता है। इसलिए कषाय प्रमादके अन्तिम लोभके आलाप स्थानमें अक्ष सूचित होता है, उसे लिख लेवे। उसका लब्ध एक है, उसमें एक नहीं जोड़ना चाहिए। उसमें ऊपरके इन्द्रिय प्रमादके पिण्डप्रमाण पाँचसे भाग देनेपर लब्ध तो शून्य है। शेष रहता है एक। अतः स्पर्शन इन्द्रियके आधीन यह प्रमाद अक्षको सूचित करता है। इस प्रकार पन्द्रहवाँ प्रमाद आलाप राष्ट्रकथालापी, लोभी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान् होता है। इसी प्रकार नष्ट आलापको साधना चाहिए॥४१॥

आगे आलापको रखकर उसकी संख्या लानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

---

१. मागुत्तिं।

संठाविदूण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे ।
अवणिज्ज अणंकिदयं कुज्जा एमेव सव्वत्थ ॥४२॥

संस्थाप्यरूपमुपरितः संगुण्य स्वकमाने । अपनीयानंकितकं कुर्य्यादेवमेव सर्व्वत्र ॥ मोव-
लोळेन्नेवरमों दु रूपमं संस्थापिसि उपरितनेंद्रियप्रमादसंख्येयिंदं गुणियिसियल्लियनंकितस्थानंगळ
संख्येयं कळेदु मत्तं शेषमं तदनंतराधस्तनकषायप्रमादपिंडसंख्येयिंदं गुणियिसि मेल्लियुमनंकितस्था-
नंगळं कळेदु शेषमं मत्तं तदनंतराधस्तन विकथाप्रमादपिंडसंख्येयिंदं गुणियिसियल्लियुमनंकित-
स्थानंगळं कळेदुळिद शेषमक्षांकितप्रमादालापसंख्येयक्कुमितु सर्व्वत्र गुणशीलादिगळोळमुद्दिष्टा-
नयनक्रममरियल्पडुगु मिल्लियुमुदाहरणमं तोरे ।

मोदलोळों दु रूपमं संस्थापिसियुपरितनेंद्रियप्रमादपिंडसंख्येयिंदं गुणियिसि या लब्धराशि-
यिंदरोळ् ५ पदिनैदनेयुद्दिष्टमं विवक्षिसिदल्लिके रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रंगळनंकितंगळप्पुदरिंदं
नानाल्कं कळेदुळिदों दु रूपमं १ तदनंतराधस्तनकषायप्रमादपिंडसंख्येयिंदं ४ नाल्करिंदं गुणि-
यिसि लब्धराशियोळ् ४ नाल्करोळु अनंकितंगळिल्लि शून्यमप्पुदरिंदं तच्छून्यमं कळेदोडाराशिगे
विकृतिसंभविसदप्पुदरिंदा नाल्केयक्कुमाराशियं तदनंतराधस्तनविकथाप्रमादपिंडसंख्येयिं ४
नाल्करिंदं गुणियिसिदोडे १६ पदिनारप्पुमल्लियुमनंकितमों दों दं कळेदुळिद संख्येयदक्षांकित-

---

प्रथमं तावदेकरूपं संस्थाप्य उपरितनेन्द्रियप्रमादसंख्यया गुणयित्वा अत्रानङ्कितस्थानानां संख्यामपनीय १५
पुनः शेषं तदनन्तराधस्तनकषायप्रमादपिण्डसंख्यया गुणयित्वा तत्राप्यनङ्कितस्थानान्यपनीय शेषं पुनस्तदनन्तरा-
धस्तनविकथाप्रमादपिण्डसंख्यया गुणयित्वा तत्राप्यनङ्कितस्थानान्यपनीय शेषमक्षाङ्कितप्रमादालापसंख्या भवति ।
एवं सर्वत्र गुणशीलादिष्वपि उद्दिष्टानयनक्रमो ज्ञातव्यः । अत्राप्युदाहरणं प्रदर्श्यते—प्रथममेकरूपं संस्थाप्य'
उपरितनेन्द्रियप्रमादसंख्यया पञ्चकेन गुणयित्वा तल्लब्धराशौ पञ्चात्मके ५ पञ्चदशोद्दिष्टस्य विवक्षया, रसनघ्रा- २०
णचक्षुःश्रोत्राण्यनङ्कितस्थानानीति चतुरोऽपनीय शेषमेकरूपं १ तदनन्तराधस्तनकषायसंख्यया ४ चतुर्भिर्गुणयित्वा
तल्लब्धराशौ ४ चतुरात्मके अनङ्कितस्थानमत्र किमपि नास्ति इति शून्येऽपनीते राशेरविकृतिसंभवाच्चत्वार
एव तस्मिन् राशौ पुनस्तदनन्तरास्तनविकथासंख्यया ४ चतुर्भिर्गुणिते १६ षोडश । अत्राप्यनङ्कितस्थाने

पहले एकका अंक स्थापित करके ऊपरके इन्द्रिय प्रमादकी संख्यासे गुणा करके उसमें
अनंकित स्थानोंकी संख्याको घटाकर जो शेष रहे, उसमें पुनः उसके नीचेके कषाय प्रमादके
पिण्डकी संख्यासे गुणा करके उसमें-से भी अनंकित स्थानोंको घटाकर जो शेष रहे, उसमें २५
पुनः उससे नीचेके विकथा प्रमादकी पिण्ड संख्यासे गुणा करके उसमें-से भी अनंकित स्थानों-
को घटाकर जो शेष रहे, उतनी प्रमादके आलापकी संख्या होती है। इसी तरह सर्वत्र गुण-
शील आदिमें भी उद्दिष्ट लानेका क्रम जानना। यहाँ भी उदाहरण देते हैं—पहले एक अंक
स्थापित करके ऊपरके इन्द्रिय प्रमादकी संख्या पाँचसे गुणा करके लब्ध राशि पाँचमें अनंकित
घटा देना चाहिए। तो ऊपरके पन्द्रहवें प्रमादालापमें केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय अंकित है। ३०
अतः रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र अनंकित होनेसे चार घटानेपर शेष एक रहता है। उस एकको
उससे नीचेके प्रमाद कषायकी संख्या चारसे गुणा करके लब्ध राशि चारमें; क्योंकि आलापमें
लोभकषाय गृहीत है, इसलिए अनंकित स्थान कुछ भी न होनेसे शून्य घटानेपर अर्थात् कुछ
भी न घटानेपर राशिमें कमी न होनेसे चार ही रहे। उस राशिमें पुनः उससे नीचेके प्रमाद

१. स °यल्लिं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रमादालापमी राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबीयालापद संख्या-प्रमाणमक्कु १५ मितल्लेडेयोळमिपांगिनिंद मक्षं धृत्वा संख्यानयनमुद्दिष्टमेंबक्षसंख्येयं साधिसुवुदु ॥ तदनंतरं नष्टोद्दिष्टंगळगे गूढयंत्रस्वरूपमं तोरिदपरु—

इगिवितिचपणखपणदसपण्णरसं खत्रीसतालसट्ठी य ।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥४२॥
(४२ तमगाथा न विद्यते मूलप्रतौ)

एकस्मिन्नपनीते शेषं पञ्चदश राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेन्द्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवान् इत्यक्षाङ्कितप्रमादालापस्य संख्या भवति । एवं सर्वत्रापि अक्षं धृत्वा संख्यानयनमुद्दिष्टं सर्वत्र साधयेत् ॥४२॥ अथ प्रथमप्रस्ताराक्षसंचारमाश्रित्य नष्टोद्दिष्टयोर्गूढयन्त्रस्वरूपमाह—

नष्टोद्दिष्टयोर्यन्त्रमिदं—स्प १, र २, घ्रा ३, च ४, श्रो ५,
क्रोध० मा ५, मा १०, लो १५,
स्त्री०, भ २०, रा ४०, अ ६०,

प्रमादस्थानेषु इन्द्रियाणां पञ्चसु कोष्ठेषु यथासंख्यं एकद्वित्रिचतुःपञ्चाङ्कान् संस्थाप्य तथा कषायाणां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यपञ्चदशपञ्चदशाङ्कान् संस्थाप्य तथा विकथानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यविंशतिचत्वारिंशत्षष्टयङ्कान् संस्थाप्य निद्रास्नेहयोर्द्वित्वत्रित्वाद्यभावेन [न] तद्धेतुकं आलापानां संख्याबहुत्वं संभवतीति तेषु त्रिस्थानेष्वेव स्थापिताङ्केषु नष्टमुद्दिष्टं च जानीहि । तत्र नष्टं यथा—पञ्चविंशतितमः आलापः कीदृग् ? इति प्रश्ने इन्द्रियकषायविकथानां यद्यत्कोष्ठगताङ्कशून्येषु मिलितेषु सा संख्या स्यात्

विकथाकी संख्या चारसे गुणा करनेपर सोलह (१६) होते हैं। यहाँ भी अनंकित स्थान एक है,क्योंकि पन्द्रहवें आलापमें राष्ट्रकथा अंकित है।अतः एक घटा देनेपर शेष पन्द्रह रहते हैं। यही 'राष्ट्रकथालापी, लोभी, स्पर्शन इन्द्रियके आधीन, निद्रालु, स्नेहवान्', इस इष्ट प्रमादके आलापकी संख्याका प्रमाण है। इसी प्रकार सर्वत्र अक्ष रखकर संख्या निकालनेको उद्दिष्ट कहते हैं। उसकी साधना करनी चाहिए ॥४२॥

आगे प्रथम प्रस्तारके अक्षसंचारको लेकर नष्ट-उद्दिष्टके गूढ़ यन्त्रका स्वरूप कहते हैं—

प्रमादके स्थानोंमें इन्द्रियोंके पाँच कोठोंमें क्रमसे एक, दो, तीन, चार और पाँचके अंक स्थापित करके, तथा कषायके चार कोठोंमें क्रमसे शून्य, पाँच, दस, पन्द्रहके अंकोंको स्थापित करके तथा विकथाके चार कोठोंमें क्रमसे शून्य, बीस, चालीस और साठके अंक स्थापित करो। निद्रा और स्नेहके दो-तीन आदि भेद न होनेसे उनके कारण आलापोंकी संख्यामें वृद्धि नहीं होती। इसलिए तीन ही स्थानोंमें अंक स्थापित करके नष्ट और उद्दिष्ट जाना जाता है। उक्त क्रमसे अंक स्थापित करनेपर नष्ट और उद्दिष्टका यन्त्र इस प्रकार होता है—

स्प. १	र २	घ्रा ३	च० ४	श्रो ५
क्रोध०	मा ५	मा १०	लो० १५	
स्त्री०	भ० २०	रा ४०	अ ६०	

पहले नष्टको लीजिए—पैंतीसवाँ आलाप कौन-सा है ? ऐसा प्रश्न होनेपर इन्द्रिय कषाय और विकथाके जिस-जिस कोठेमें स्थित अंक और शून्यको जोड़नेपर वह संख्या आती है,उस-उस कोठेमें स्थित प्रमादोंमें स्नेह और निद्राको प्रारम्भमें रखनेपर स्नेही, निद्रालु, श्रोत्रेन्द्रियके अधीन, मायावी, भक्तकथालापी ये पूछा हुआ आलाप होता है। तथा इकसठवाँ

इगिविति चखचउबारं खसोलरागट्ठदाल चउसट्ठिं ।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठं जाण तिट्ठाणे ॥४४॥

एकद्वित्रिचतुःखचतुरष्टद्वादशखषोडशरागाष्टचत्वारिंशच्चतुःषष्टि संस्थाप्य च प्रमादस्थाने नष्टोद्दिष्टे च विद्धि त्रिस्थाने ॥

स्प. , र १६, घ्रा ३२, च ४८, श्रो. ६४
क्रो. , मा ४, मा ८, लो १२
स्त्री १, भ २, रा ३, अ ४,

तत्तत्कोष्ठगतप्रमादेषु स्नेहनिद्राभ्यामग्रे उच्चरितेषु स्नेही निद्रालुः श्रोत्रेन्द्रियवशगतो मायावी भक्तकथालापीति पृष्टालापः स्यात् ॥ तथा एकषष्टितम आलापः कीदृग् ? इति प्रश्ने अत्रापीन्द्रियकषायविकथानां यथाक्रमं [तत्तत्कोष्ठगतप्रमादेषु प्राग्वदुच्चरितेषु स्नेही निद्रालुः, स्पर्शनेन्द्रियवशगतः क्रोधी अवनिपालकथालापीति तत्पृष्टालापः स्यात् । एवमन्यालापप्रश्नेऽपि विधेयं । उद्दिष्टं तु स्नेही निद्रालुः स्पर्शनेन्द्रियवशगतो मानी राष्ट्रकथालापीत्यालापः कतिधः ? इति प्रश्ने स्नेहनिद्रावर्जिततत्तत्कोष्ठगतैकपञ्चचत्वारिंशदङ्केषु मिलितेषु या संख्या षट्चत्वारिंशज्जायते स पृष्टालापस्ततिथो भवति । तथा स्नेही निद्रालुः चक्षुरिन्द्रियवशगतो लोभी भक्तकथालापीत्यालापः कतिधः ? इति प्रश्ने तत्तत्कोष्ठगतचतुःपञ्चदशविंशत्यङ्केषु मिलितेषु या संख्या एकान्नचत्वारिंशत् संपद्यते स पृष्टालापस्ततिथो भवति । एवमन्यालापेऽपि पृष्टे कर्तव्यं ॥४३॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया नष्टोद्दिष्टयोर्गूढयन्त्रमाह—

स्त्री १, भ २, रा ३, अ ४,
क्रो० , मा ४, मा ८, लो १२,
स्प० , र १६, घ्रा ३२, च ४८, श्रो० ६४

आलाप कौन-सा है ? ऐसा पूछनेपर, यहाँ भी इन्द्रिय, कषाय और विकथाके जिस-जिस कोठेमें स्थापित अंकों और शून्योंको जोड़नेपर वह संख्या आती है उस-उस कोठेके प्रमादोंको पहलेकी तरह उच्चारित करनेपर स्नेही, निद्रालु, स्पर्शन इन्द्रियके अधीन, क्रोधी, अवनिपालकथालापी, यह पूछा हुआ आलाप है। अर्थात् इकसठवाँ आलाप है। इसी तरह अन्य आलाप सम्बन्धी प्रश्नमें भी करना चाहिए। अब उद्दिष्टको लीजिए—स्नेही, निद्रालु, स्पर्शन इन्द्रियके अधीन, मानी, राष्ट्रकथालापी इस आलापकी संख्या कितनी है ? ऐसा प्रश्न होनेपर स्नेह और निद्राको छोड़कर उस-उस प्रमादके कोठोंमें स्थापित एक, पाँच और चालीस अंकोंको जोड़नेपर जो छियालीस संख्या होती है, पूछा गया आलाप उतनी ही संख्यावाला होता है। तथा स्नेही, निद्रालु, चक्षु इन्द्रियके अधीन, लोभी, भक्तकथालापी यह आलाप किस संख्याका है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उस-उस प्रमादके कोठेमें स्थापित चार, पन्द्रह, बीस अंकोंको जोड़नेपर जो संख्या उनतालीस आती है, पूछा हुआ आलाप उतनी ही संख्याका है। इसी प्रकार अन्य आलापोंके पूछनेपर भी करना चाहिए ॥४३॥

आगे दूसरे प्रस्तारकी अपेक्षा नष्ट-उद्दिष्टका गूढ यन्त्र बतलाते हैं—

प्रमादके स्थानोंमें विकथा प्रमादके चार कोठोंमें क्रमसे एक, दो, तीन, चार अंकोंको स्थापित करो। तथा कषाय प्रमादके चार कोठोंमें क्रमसे शून्य, चार, आठ, बारहका अंक स्थापित करो। तथा इन्द्रिय प्रमादके पाँच कोठोंमें क्रमसे शून्य, सोलह, बत्तीस, अड़तालीस,

विकथाप्रमादंगळ नाल्कुं कोष्ठंगळोळं यथासंख्येयिंदमोंबुमेरडुं मूरुं नाल्कुं मंकंगळप्पवु। कषायप्रमादंगळ नाल्कुं कोष्ठंगळोळं यथासंख्येयिंदं शून्यमुं नाल्कुमंदु पन्नेरडुमंकंगळवक्कुं। इंद्रिय प्रमादंगळैवुं कोष्ठंगळोळं यथासंख्येयिंदं शून्यमुं पविनारुं मूवत्तेरडुं नाल्वत्तेंटुमदवसनाल्कुमंकंगळप्पु विल्लि पविनैदनेय प्रमादालापमेंतप्पुदक्कुमेंदोडे राष्ट्रकथाविकथालापवल्लिय मूरंकमुमं लोभकषायकोष्ठगतांकंगळप्प पन्नेरडुमं कूडिदोडे पविनेय्दनेय नष्टप्रमादालापं राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबुदक्कुं ॥

मत्तं मूवत्तनेय विवक्षितप्रमादमेंतप्पुदक्कुमेंदोडे भक्तकथाप्रमादकोष्ठगतमप्पेरडंकमुमं लोभकषायप्रमादकोष्ठगतमप्प पन्नेरडंकंगळमं कूडुत्तिरलु पविनाल्कुमं रसनेंद्रियप्रमादकोष्ठगतमप्प पविनारुमंकंगळं कूडुत्तिरलु ३० मूवत्तनेय प्रमादालाप। भक्तकथालापी लोभी रसनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबुदक्कुमिंतिति अय्वनेयदुमं विवक्षितसिकोंडु विकथालापवल्लिय ओंदुमं कषायालापवल्लिय नाल्कुमं कूडोडेय्दक्कुमेय्दनेय प्रमादालापं स्त्रीकथालापी मानी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबुदक्कुमितु नष्टप्रमादसंख्येयं मूरुं स्थानंगळोळगण कोष्ठगतसंख्येयं समानमप्पंतु माडि तत्कोष्ठगतालापमे नष्टप्रमादमक्कुमेंबु निश्चैसुवुवु। मत्तमुद्दिष्टक्कमिते तत्तत्प्रमादकोष्ठस्थितां-

गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज

प्रमादस्थानेषु विकथाप्रमादानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं एकद्वित्रिचतुरङ्कान् संस्थाप्य, तथा कषायप्रमादानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यचतुरष्टद्वादशाङ्कान् संस्थाप्य तथा इन्द्रियप्रमादानां पञ्चसु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यषोडशद्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशच्चतुःषष्ट्यङ्कान् संस्थाप्य पूर्वोक्तहेतोस्तेषु त्रिस्थानेष्वेवं स्थापिताङ्केषु नष्टमुद्दिष्टं च जानीहि। तत्र नष्टं यथा—पञ्चदश आलापः कीदृग् ? इति प्रश्ने विकथाकषायेन्द्रियाणां यत्तत्कोष्ठगताङ्कशून्येषु मिलितेषु तत्संख्या (स्यात्) तत्तत्कोष्ठगतप्रमादसंधाने राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानिति तमालापं वदेत्। तथा त्रिंशत्तमः कीदृग् ? इति प्रश्ने विकथाकषायेन्द्रियाणां यत्तत्कोष्ठगताङ्केषु मिलितेषु तत्संख्या स्यात् तत्तत्कोष्ठगतप्रमादसंधाने भक्तकथालापी लोभी रसनेन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानिति तमालापं वदेत्। अथोद्दिष्टं तु स्त्रीकथालापी मानी घ्राणेन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यालापः कतिथः ? इति प्रश्ने तत्तत्प्रमादकोष्ठगतेष्वेकचतुर्द्वात्रिंशदङ्केषु मिलितेषु या संख्या सप्तत्रिंशज्जायते

और चौसठके अंक स्थापित करो। पूर्वोक्त हेतुसे इन तीन ही स्थानोंमें अंक स्थापित करके नष्ट और उद्दिष्ट जानना चाहिए।

स्त्री १,	भ. २,	रा. ३,	अ. ४,	
क्रो०,	मा. ४,	मा. ८,	लो. १२,	
स्प०,	र. १६,	घ्रा ३२,	च. ४८,	श्रो. ६४

नष्टका उदाहरण इस प्रकार है—पन्द्रहवाँ आलाप कौन है? ऐसा प्रश्न होनेपर विकथा, कषाय, इन्द्रियोंके जिस-जिस कोठोंमें स्थित अंकों और शून्योंको जोड़ने पर वह संख्या आती है, उस-उस कोष्ठगत प्रमादका अनुसंधान करने पर राष्ट्रकथालापी, लोभी, स्पर्शन इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान् यह पन्द्रहवाँ आलाप बोलना चाहिए। तथा तीसवाँ आलाप कौन है ? ऐसा प्रश्न होनेपर विकथा, कषाय और इन्द्रियके जिस-जिस कोठोंमें स्थित अंकों और शून्योंको जोड़नेपर वह संख्या आती है, उन कोष्ठगत प्रमादोंको मिलाने पर भक्तकथालापी, लोभी, रसना इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान, यह आलाप कहना चाहिए। अब उद्दिष्टको लीजिए—स्त्रीकथालापी, मानी, घ्राण इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह आलाप कितनी

---

१. म कूडिदोडेय्दक्कुं। २. म कूडि।

कंगळं कूडि ईयक्षरमनितनेयवेंदु पेळ्वुदर्देतेने—भक्तकथालापी लोभी रसनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानें बुदिं[1] विनितनेयालापमं दोडे तत्तत्कोष्ठगतांकंगळ्नेरडुं[3] पदिनारुमं कूडलु ३० [4]मूवत्तनयवेंदु पेळ्वुदु मत्तमवनिपालकथालापी लोभी चक्षुरिंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानेंबिविनितनेयालापमं दोडे तत्तत्कोष्ठगतांकंगळ्नाल्कुं पन्नेरडुं नाल्वत्तेंटुमं कूडि इदरुवत्तमाल्कनेयवेंदु पेळ्वुदी प्रकारमं सर्वत्र व्यापकमागरिवुदु ॥ ५

इंतु मूलोत्तरोत्तरप्रमादंगळगे यथासंभवमागि संख्यादि पंचप्रकारनिरूपणं माडि प्रमादमार्गणाविशेषमनरियल्बेडुवुदेंदु तेगेदु विकथेगळ्गे २५, कषायंगळ्गे २५, इंद्रियंगळ्गे ६, निद्रेगळ्गे ५, स्नेहमोहंगळ्नेरडुमिवेल्लमनडरि गुणियिसिदोडे ३७५०० प्रमादंगळप्पुवुमिल्लियु

तमालापं तत्तिथं ब्रूयात्। तथा अवनिपालकथालापी लोभी चक्षुरिन्द्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्यालापः कतिथः ? इति प्रश्ने तत्तत्प्रमादकोष्ठगतचतुर्दशाष्टचत्वारिंशदङ्केषु मिलितेषु या संख्या चतुःषष्टिः स्यात् तमालापं तत्तिथं ब्रूयात्, एवमन्यालापे पृष्टेऽपि कुर्यात्। एवं मूलोत्तरोत्तरप्रमादानां यथासंभवं संख्यादिपञ्चप्रकारान् निरूप्य इदानीमपरं प्रमादसंख्याविशेषं ज्ञापयति। तद्यथा—स्त्रीकथा अर्थकथा भोजनकथा राजकथा चोरकथा वैरकथा परपाखण्डकथा देशकथा भाषाकथा गुणबन्धकथा देवीकथा निष्ठुरकथा परपैशुन्यकथा कन्दर्पकथा देशकालानुचितकथा भण्डकथा मूर्खकथा आत्मप्रशंसाकथा परपरिवादकथा परजुगुप्साकथा परपीडाकथा कलहकथा परिग्रहकथा कृष्यारम्भकथा संगीतवाद्यकथा चेति विकथा पञ्चविंशतिः २५। षोडशकषाय-नवनोकषायभेदेन कषायाः पञ्चविंशतिः २५। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनोनामानि इन्द्रियाणि षट् ६। स्त्यानगृद्धिः निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चेति निद्राः पञ्च ५। स्नेहो मोहश्चेति द्वौ २। एतेषु उपरितनभङ्गेषु एकैकस्मिन् अधस्तनभङ्गाः, अधस्तनभङ्गेषु एकैकस्मिन्नुपरितनभङ्गाश्च सर्वे मिलन्तीति

संख्यावाला है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उस-उस प्रमाद कोठोंमें स्थित एक, चार और बत्तीस अंकोंको जोड़नेपर जो सैंतीस संख्या होती है, उस आलापको उसी संख्यावाला कहना चाहिए। तथा अवनिपालकथालापी, लोभी, चक्षु इन्द्रियके अधीन, निद्रालु, स्नेहवान्, यह आलाप कितनी संख्यावाला है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उस-उस प्रमादके कोठोंके अंक चार, बारह, अड़तालीसको जोड़ने पर जो चौसठ संख्या आती है, उस आलापको उतनी ही संख्यावाला कहना चाहिए। इसी प्रकार अन्य आलापोंके विषयमें पूछने पर भी करना चाहिए।

इस प्रकार मूल और उत्तर प्रमादोंके यथासम्भव संख्या आदि पाँच प्रकारोंको कहकर अब प्रमादोंकी अन्य विशेष संख्या बतलाते हैं। जो इस प्रकार है—स्त्रीकथा, अर्थकथा, भोजनकथा, राजकथा, चोरकथा, वैरकथा, परपाखण्डकथा, देशकथा, भाषाकथा, गुणबन्धकथा, देवीकथा, निष्ठुरकथा, परपैशुन्यकथा, कन्दर्पकथा, देशकालानुचितकथा, भण्डकथा, मूर्खकथा, आत्मप्रशंसाकथा, परपरिवाद कथा, परजुगुप्साकथा, परपीडाकथा, परिग्रहकथा, कृष्यादि आरम्भकथा, संगीतवाद्यकथा ये २५ विकथा हैं। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भेदसे पच्चीस कषाय हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और मन ये छह इन्द्रियाँ हैं। स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला ये पाँच निद्रा हैं। स्नेह और मोह ये दो हैं। इन ऊपरके भंगोंमें-से एक-एकमें नीचेके भंग और नीचेके भंगोंमें-से एक-एकमें ऊपरके

---

१. म °क्षमितितेनय°। २. म °दिदेनितेनेवा°। ३. म °डुं पन्नेरडुं प°। ४. म ३० नेयवेंदु। ५. म °मिवेल्ल°।

मिथ्यादृष्ट्यादि प्रमत्तावसानमाद गुणस्थानादि विंशतिप्ररूपणेगळोळं बंधहेतुर्वादंदमे यथासंभवमागि संख्याप्रस्तारादि पंचप्रकारप्ररूपणमनागमाविरोधमागियोजिसुवविशेषविधानमुमुंटदरिंदुवु ॥

अनंतरमप्रमत्तगुणस्थानस्वरूपनिरूपणार्थं मागि पेळ्दपरु ।

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि ।
अपमत्तगुणो तेण य अपमत्तो संजदो होदि ॥४५॥

संज्वलननोकषायाणामुदयो मंदो यदा तदा भवति । अप्रमत्तगुणस्तेन चाप्रमत्तः संयतो भवति ॥

संज्वलनकषायनोकषायंगळुदयं मंदमागि प्रमादजननशक्तिरहितमप्पुदावागळोम्मे यक्कुमागळु प्रमत्तसंयमपरिणाममप्प गुणस्थानमक्कुमदु कारणदिंदमा गुणदोळ्कूडिद जीवमप्रमत्त संयतनक्कुं ।

तदनंतरं स्वस्थानाप्रमत्तस्वरूपनिर्देशार्थमागिदं पेळ्दपरु—

णट्ठासेसपमादो वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी ।
अणुवसमओ अखवगो झाणणिलीणो हु अपमत्तो ॥४६॥

नष्टाशेषप्रमादो व्रतगुणशीलावलिमंडितो ज्ञानी । अनुपशमकोऽक्षपको ध्याननिलीनः खलु सः प्रमत्तः ॥

परस्परं गुणितेषु पञ्चशताधिकसप्तत्रिंशत्सहस्रप्रमिताः तत्प्रमादा भवन्ति ३७५००। एतेऽपि मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तसंयतगुणस्थानावसानवर्तिविंशतिप्ररूपणासु यथासंभवं बन्धहेतुत्वेन संभवन्तः संख्यादिपञ्चप्रकारैः आगमाविरोधेन योजनीयाः ॥४४॥ अथाप्रमत्तगुणस्थानस्वरूपं प्ररूपयति—

यदा—यस्मिन् काले संज्वलनानां क्रोधमानमायालोभानां चतुर्णां, नोकषायाणां हास्यादीनां नवानां च यथासंभवं उदयः—फलदानपरिणामः, मन्दः—प्रमादजननशक्तिरहितो भवति, तदा—तस्मिन् काले अन्तर्मुहूर्तपर्यन्तं जीवस्य अप्रमत्तगुणः—अप्रमत्तगुणस्थानं भवेत् । तेन कारणेन तद्गुणयुतः संयतः सकलसंयमी अप्रमत्तः—अप्रमत्तसंयतो भवति । च शब्दः वक्ष्यमाणगुणयुक्तश्च भवतीति समुच्चयार्थः पूर्णार्थो वा ॥४५॥ स्वस्थानाप्रमत्तः सातिशयाप्रमत्तश्चेति द्वौ भेदौ । तत्र स्वस्थानाप्रमत्तसंयतस्वरूपं निरूपयति—

भंग मिलते हैं। सबको परस्परमें गुणा करने पर सैंतीस हजार पाँचसौ ३७५०० प्रमादके भेद होते हैं। ये भी मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यन्त रहनेवाली बीस प्ररूपणाओंमें यथायोग्य बन्धके कारण होते हैं, अतः संख्या आदि पाँच प्रकारोंसे आगमका विरोध न हो इस प्रकारसे उनकी योजना करनी चाहिए ॥४४॥

आगे अप्रमत्त गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

यदा अर्थात् जिस कालमें संज्वलन क्रोध मान माया लोभ चार कषायोंका और हास्य आदि नौ नोकषायोंका यथासम्भव उदय अर्थात् फल देने रूप परिणाम मन्द अर्थात् प्रमादको उत्पन्न करनेकी शक्तिसे रहित होता है, तदा अर्थात् उस कालमें एक अन्तर्मुहूर्तके लिए जीवके अप्रमत्त गुणस्थान होता है। इस कारणसे अप्रमत्त गुणसे युक्त संयत अर्थात् सकलसंयमी अप्रमत्त संयत होता है। 'च' शब्दसे आगे कहे जानेवाले गुणोंसे भी संयुक्त होता है ॥४५॥

अप्रमत्त संयतके दो भेद हैं—स्वस्थानाप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त। उनमेंसे स्वस्थानाप्रमत्तका स्वरूप कहते हैं—

नष्टाशेषप्रमादनुं व्रतगुणशीलावलिमंडितनुं सम्यज्ञानोपयुक्तनुं धर्म्मध्याननिलीनमानसनुमप्रमत्तसंयतनुमेनेवरमुपशमश्रेण्यारोहणाभिमुखनुमागियुं क्षपकश्रेण्यारोहणाभिमुखनुमागियुं वर्त्तिसनातनं नेवरं स्वस्थानाप्रमत्तनें बु निर्व्वेशिसल्पट्टं । इल्लि ज्ञानियें बी विशेषणविदं सम्यग्दर्शनचारित्रंगळंते सम्यज्ञानमक्कुमुं मोक्षहेतुत्वं सूचितमादुदु ॥

तदनन्तरं सातिशयाप्रमत्तस्वरूपनिरूपणार्थमिदं पेळ्दपरु ।

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापमत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो ॥४७॥

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तेषु । प्रथममधःप्रवृत्तकरणं तु करोत्यप्रमत्तः ॥

एंदिल्लि विशेषकथनमुंटुर्व्वंतेंदोडे प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिंदं वर्द्धमाननुं वेदकसम्यग्दृष्टियुमप्पप्रमत्तसंयतं मोदलोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमं करणत्रयपूर्व्वकं द्वादशकषायनवनोकषायस्वरूपमप्पंतु संक्रमविधानदिं विसंयोजिसि बळिक्कमंतर्म्मुहूर्त्तकालं विश्रमिसि मत्तेयुं (येन परिणामेन दर्शनचारित्रमोहोपशमनादिविवक्षितो भावः क्रियते निःपाद्यते साधकतमत्वेन स परिणामः करणः) ईतप्प करणत्रयमं माडि दर्शनमोहनीयमुमनुपशमियिसि द्वितीयोपशम

योगेऽपेक्षणात् अत्रापि ज्ञानीति विशेषणं सम्यग्दर्शनचारित्रवत् सम्यग्ज्ञानस्यापि मोक्षहेतुत्वं सूचयति ॥४६॥ अथ सातिशयाप्रमत्तसंयतस्वरूपमाह—

यः प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानो वेदकसम्यग्दृष्टिः अप्रमत्तसंयतः सः प्रथमं अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं करणत्रयपूर्वकं संक्रमणविधानेन द्वादशकषायनवनोकषायस्वरूपेण विसंयोजयति—परिणामयति तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालं विश्राम्य पुनरपि करणत्रयेण दर्शनमोहत्रयमुपशमय्य द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति ।

जिस जीवके समस्त प्रमाद नष्ट हो गये हैं, और व्रत, गुण, शीलकी पंक्तिसे भूषित है, सम्यग्ज्ञानके उपयोगसे युक्त है, तथा जिसका मन धर्मध्यानमें लीन है, ऐसा अप्रमत्त संयत जबतक उपशम श्रेणि या क्षपक श्रेणिके सन्मुख चढ़नेके लिए प्रवृत्त नहीं होता, तब तक उसे स्वस्थानाप्रमत्त कहते हैं। यहाँ ज्ञानी विशेषण यह सूचित करता है कि सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी तरह सम्यग्ज्ञान भी मोक्षका कारण है। अर्थात् चतुर्थ गुण स्थानमें सम्यक्त्व और उसके पश्चात् चारित्रका कथन करनेसे कोई यह न समझे कि ये दोनों ही मोक्षके कारण हैं, इसलिए यहाँ ज्ञानी विशेषण दिया है ॥४६॥

आगे सातिशय अप्रमत्तका स्वरूप कहते हैं—

जिसकी विशुद्धि—कषायोंकी मन्दता प्रतिसमय अनन्तगुणी बढ़ती हुई होती है अर्थात् प्रथम समयकी विशुद्धतासे दूसरे समयकी विशुद्धता अनन्तगुणी, उससे तीसरे समयकी विशुद्धता अनन्त गुणी, इस तरह प्रतिसमय जिसकी विशुद्धता बढ़ती हुई हो, वह वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती जीव पहले अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्टयको अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण पूर्वक संक्रमण विधानके द्वारा बारह कषाय और नौ नोकषायरूपसे परिणमाता है। इसीका नाम विसंयोजन है। इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल तक विश्राम करके पुनः तीन करणोंके द्वारा दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका उपशम करके

सम्यग्दृष्टियागि अथवा दर्शनमोहत्रयमं करणत्रयपूर्वकं क्षपयिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टियागि मत्तमंतर्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानंगळ परावृत्तिसहस्रंगळं माडि मत्तं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिदं वर्द्धमाननुमेकविंशतिप्रकृतिभेदभिन्नचारित्रमोहनीयमनुपशमिसल्के उद्युक्तनुमा प्रकृतिगळं मेणु क्षपयिसल्के दु क्षायिकसम्यग्दृष्टियें उद्युक्तनक्कुमितप्प सातिशयाप्रमत्तं चारित्रमोहोपशमनक्षपणनिमित्तकरणत्रयपरिणामंगळोळगे मोदलोलधःप्रवृत्तकरणमं माळ्कुमेंबुदत्थं ॥

तदनन्तरमीयधःप्रवृत्तकरणक्के निरुक्तिसिद्धमप्प लक्षणमं तोरलेंदिदं पेळ्दपरु—

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहि सरिसगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥४८॥

यस्मादुपरिमभावा अधस्तनभावैः सदृशा भवन्ति । तस्मात्तत्प्रथमं करणमधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टं ॥

अथवा तत्करणत्रयेण तद्दर्शनमोहत्रयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालपर्यन्तं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः परावृत्तिसहस्राणि करोति । तदनन्तरं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानः एकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीरुपशमयितुमुद्युक्तो भवति । अथवा ताः एकविंशतिचारित्रमोहप्रकृतीः क्षपयितुं क्षायिकसम्यग्दृष्टिरेवोद्युक्तो भवति । स एवंविधः सातिशयाप्रमत्त एव चारित्रमोहोपशमनक्षपणनिमित्तकरणत्रयपरिणामेषु मध्ये प्रथमं अधःप्रवृत्तकरणं करोतीत्यर्थः ॥४७॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणस्य निरुक्तिसिद्धं लक्षणं कथयति—

द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होता है। अथवा उन तीन करणोंके द्वारा दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों बार आता-जाता है अर्थात् अप्रमत्तसे प्रमत्त और प्रमत्तसे अप्रमत्त होता है। उसके पश्चात् प्रति समय अनन्त गुण विशुद्धिसे बढ़ता हुआ चारित्रमोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम करनेमें तत्पर होता है। अथवा चारित्र मोहनीयकी उन इक्कीस प्रकृतियोंका क्षय करनेके लिए तत्पर होता है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उनका क्षय करनेमें समर्थ होता है। आशय यह है कि उपशम श्रेणी पर आरोहण तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि दोनों ही कर सकते हैं, किन्तु क्षपक श्रेणि पर केवल क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही आरोहण कर सकता है। इस प्रकारका यह सातिशय अप्रमत्त ही चारित्र मोहके उपशम और क्षपणमें निमित्त तीन करण रूप परिणामोंमें से प्रथम अधःप्रवृत्तकरणको करता है ॥४७॥

आगे अधःकरणका निरुक्तिसे सिद्ध लक्षण कहते हैं—

जिस कारणसे ऊपर-ऊपरके समय सम्बन्धी परिणामोंके साथ अन्य जीवके नीचेके समय सम्बन्धी परिणाम समान होते हैं, तिस कारणसे उस प्रथम करणको परमागममें अधःकरण कहा है।

---

१. क तोरलिदं ।

आवुवोंदु कारणविंदमावुवोंदु जीवंगळ उपरितनोपरितनसमयस्थितपरिणामंगळोडनन्यनप्प जीवन अधस्तनाधस्तनपरिणामंगळोडने सदृशंगळागि संभविसल्पडुवुदु कारणमागि प्रथमम[1]प्प करणमधःप्रवृत्तकरणमेंदितनाविसंसिद्धमप्प परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु । अधःप्रवृत्ता इत्याधःप्रवृत्ता एविंतु गौणवृत्तियिंदमुपरितनसमयपरिणामंगळधस्तनसमयपरिणामसदृशंगळागि संभविसल्पडुवुवु ॥ तदनंतरमधःप्रवृत्तकरणकालप्रमाणप्ररूपणार्थमिदं पेळ्दपरु—

अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा ।
लोगाणमसंखमिदा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥४९॥

अन्तर्मुहूर्तमात्रस्तत्कालो भवति तत्र परिणामाः । लोकानामसंख्यमिता उपर्युपरि सदृशवृद्धिंगताः ॥

तदधःप्रवृत्तकरणकालमंतर्मुहूर्तमात्रमक्कुमेंतेंदोडे—सर्व्वतः स्तोकांतर्मुहूर्तमनिवृत्तिकरणकालं २ १ इदं नोडलपूर्व्वकरणकालं संख्यातगुणितमंतर्मुहूर्तमक्कु २ १ १ मिदं नोडलधःप्रवृत्तकरणकालं संख्यातगुणितमप्पंतर्मुहूर्तकालमक्कु २ १ १ १ मितप्पधःप्रवृत्तकरणांतर्मुहूर्तकालदोळु विशुद्धिपरिणामंगळु त्रिकालवर्त्तिनानाजीवसंबंधिगळसंख्यं कूडियसंख्येयलोकमात्रंगळक्कु ⫶ ० मिल्लियेनितोळवु प्रथमसमयवर्त्ति जीव त्रिकालविषयंगळप्प परिणामंगळवं

यस्मात्कारणात् यस्य जीवस्य उपरितनोपरिसमयस्थितपरिणामैः सह अन्यजीवस्य अधस्तनसमयपरिणामाः सदृशा भवन्ति तस्मात्कारणात् तत्प्रथमं करणं अधःप्रवृत्तकरणमिति निर्दिष्टं—परमागमे प्रतिपादितं भवति ॥४८॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणकालप्रमाणं (प्रथमनिर्देशार्थं) कथयति—

स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रात् २ १ अनिवृत्तिकरणकालात् संख्यातगुणः २ १ १ अपूर्वकरणकालः, अतः संख्यातगुणः २ १ १ १ अधःप्रवृत्तकरणकालः सोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव, तस्मिन्नधःप्रवृत्तकरणकाले त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्धिनो विशुद्धिपरिणामाः सर्वेऽपि असंख्यातलोकमात्राः सन्ति ⫶ ० तेषु प्रथमसमयसंबन्धिनो यावन्तः

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणका अर्थ है-नीचेके समय-सम्बन्धी परिणामोंकी समानताको लिये हुए होनेवाले परिणाम । इस करणमें ऊपरके और नीचेके जीवोंके परिणामोंमें समानता पायी जाती है । उदाहरणके लिए,एक जीवने अधःप्रवृत्तकरण किया । दूसरे समयमें पहुँचने पर उसके जैसे परिणाम होते हैं,वैसे परिणाम अधःप्रवृत्त प्रारम्भ करनेवाला कोई दूसरा जीव पहले समयमें ही प्राप्त करता है । इस प्रकार आगे वाले और पीछे वाले जीवोंके परिणामोंमें समानता पाये जानेसे इस करणको अधःप्रवृत्त कहते हैं ॥४८॥

आगे प्रथमके निर्देशके लिए अधःप्रवृत्त करणके कालका प्रमाण कहते हैं—

तीनों करणोंमें अनिवृत्तिकरणका काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होनेपर भी स्तोक (अल्प) अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । उससे संख्यात गुणा अपूर्वकरणका काल है । उससे संख्यात गुणा अधःप्रवृत्तकरणका काल है । वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है । उस अधःप्रवृत्तकरणके कालमें त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी विशुद्धि परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं अर्थात् तीनों कालोंमें अधःप्रवृत्तकरण करनेवाले जीवोंके परिणामोंकी संख्या असंख्यात लोक है । अर्थात् लोकके प्रदेशोंकी जितनी संख्या है,उससे असंख्यात गुणी उन विशुद्धि परिणामोंकी संख्या है । उनमेंसे प्रथम समयमें जितने परिणाम हैं, उनसे द्वितीय आदि समयोंमें ऊपर-ऊपर

---

१. क जीवन उं । २. म °मंगलुपवेशंगलागि ।

नोडलंते द्वितीयादिसमयंगळोळु तदधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयपर्यंतं मेले-मेले सदृशवृद्धि-वृद्धितंगळागिनडेयवर्देनेंदोडे केळि पेळ्दपें ।

इल्लियव्युत्पन्नव्युत्पादनार्थमागि मोदलोळंकसंदृष्टियिंदमधप्रवृत्तकरणन्यास तोरिसल्प-

मार्गदर्शक : ५ आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सन्ति तेभ्यो द्वितीयादिसमयेषु उपर्युपरि चरमसमयपर्यन्तं सदृशवृद्धया वर्धिताः सन्ति ते च तावदङ्कसंदृष्ट्या प्रदर्श्यन्ते—तत्र परिणामाः द्विसप्तत्युत्तरत्रिशतानि ३०७२ । अधःप्रवृत्तकरणकालः षोडशसमयाः १६ । प्रतिसमय-

अन्तिम समय पर्यन्त समान वृद्धिको लिये हुए वर्धमान परिणाम हैं। अर्थात् प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंसे द्वितीय समय सम्बन्धी परिणाम जितनी वृद्धिको लिये हुए हैं, द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामोंसे तृतीय समय सम्बन्धी परिणाम भी उतनी ही वृद्धिको लिये हुए हैं। इसी तरह अन्तिम समय पर्यन्त जानना। यहाँ श्रेणि व्यवहार गणित सम्भव है। अतः यहाँ श्रेणि व्यवहार गणितके द्वारा वर्णन करते हैं। प्रथम संज्ञाओंको कहते हैं। विवक्षित सर्वस्थान सम्बन्धी सर्व द्रव्यको जोड़ने पर जो प्रमाण हो, उसे सर्वधन या पदधन कहते हैं। स्थानोंके प्रमाणको पद कहते हैं या गच्छ कहते हैं। प्रत्येक स्थानमें जितनी वृद्धि होती है, उसे चय या उत्तर या विशेष कहते हैं। आदि स्थानमें जो प्रमाण होता है, उसे मुख कहते हैं अथवा आदि या प्रथम कहते हैं। अन्तिम स्थानमें जो द्रव्यका प्रमाण होता है, उसे अन्तधन या भूमि कहते हैं। सब स्थानोंके बीचके स्थानमें जो द्रव्यका प्रमाण होता है, उसको मध्यधन कहते हैं। जहाँ स्थानोंका प्रमाण सम होता है, वहाँ बीचके दो स्थानोंके द्रव्यको जोड़कर आधा करनेपर जो प्रमाण होता है, उसे मध्य धन कहते हैं। जितना मुखका प्रमाण हो उतना-उतना सब स्थानोंका ग्रहण करके जोड़ने पर जो प्रमाण हो, उसे आदिधन कहते हैं। सब स्थानोंमें जो-जो चय बढ़े, उन सब चयोंको जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उसे उत्तरधन या चयधन कहते हैं। इस प्रकार आदिधन और उत्तरधनको मिलाने पर सर्वधन होता है। अब इनका प्रमाण जाननेके लिए करणसूत्र कहते हैं—'मुख आदि स्थान और भूमि अन्त-स्थानको जोड़कर उसका आधा करके उसे गच्छसे गुणा करनेपर पदधन अर्थात् सर्वधन होता है। और आदिधनको अन्तधन में से घटानेपर जो शेष रहे, उसको चयसे भाग देनेपर जो आवे, उसमें एक मिलानेपर स्थानोंका प्रमाणरूप पद वा गच्छका प्रमाण आता है। तथा पद या गच्छके वर्गका भाग सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण आये उसे संख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उसे चय जानना। सर्वत्र सर्वधनको गच्छसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे, उसमेंसे मुखको घटाकर जो शेष रहे, उसमें से एक घटाकर गच्छके आधे प्रमाणसे भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है' अथवा 'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभाजितः प्रचयः।' इस वचनके अनुसार सब स्थानसम्बन्धी आदि धनको सर्वधनमें-से घटाकर शेषको-गच्छके प्रमाणके वर्गमें-से गच्छका प्रमाण घटाकर जो शेष रहे, उसके आधेका भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है। तथा उत्तर धनको सर्वधनमें-से घटाने पर जो शेष रहे, उसको गच्छ-से भाग देने पर मुखका प्रमाण आता है। तथा 'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं' इस सूत्रके अनुसार एक कम गच्छको चयसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसमें मुखका प्रमाण जोड़ने पर अन्तधन होता है। मुख और अन्तधनको मिलाकर उसका आधा करने पर मध्यधन होता है। पदसे मुखको गुणा करने पर आदिधन होता है। यह श्रेणिव्यवहार गणितका कुछ स्वरूप दिया है।

डुगुं त्रिकालवर्त्तिनानाजीवाश्रयप्रवृत्तकरणपरिणामंगळ संख्यातलोकप्रमितंगळ्गे संदृष्टिद्वासप्तत्युत्तर-त्रिसहस्रमक्कुं ३०७२ ॥ अधःप्रवृत्तकरणकालं गच्छेयक्कुं सदृष्टि पदिनारु १६ प्रति-समयपरिणामवृद्धियुमावुवोदक्के संदृष्टि ४ मत्तं संख्येयरूपगळु मूरु ३ इल्लियूर्द्धरचनेयोळादि प्रमाणांतरल्पडुगुमाव प्रकारदिंदमेंदोडे पदकृदि संखेण भाजिदे पचय बेंविदरिंदं समस्तधनमनिदं ३०७२ ॥ पदमं वुविद १६ र कृतियिंदं २५६ ॥ संख्येयरूपंगळ्मूररिंदमुं ३ भागिसुत्तिरलावुदो वु लब्धमवु चयप्रमाणमक्कुं ४ व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छमेंदिदरिंदं रूपोनपद १५ मनर्द्धिसि $\frac{15}{2}$ चयदिंदं गुणिसि $\frac{15}{2}\times4$ मत्तं गच्छेयिंदं १६ गुणिसिमुवुदु $\frac{15}{2}\times4\times16$ इदनपवर्त्तिसि गुणिसिद लब्धमशीत्युत्तरचतुश्शतप्रमाणचयधनमक्कुं ४८० ॥ चयधनहीनं सर्व्वं पदभजिदे होदि आदि परिमाण मेंबी सूत्राभिप्रायदिंदं समस्तधनदोळु ३०७२ चयधनमनिदं ४८० ॥ कळेदुळिद शेष २५९२ मिदं पददिंदं १६ भागिसुत्तिरलु लब्धमादि प्रमाणमक्कुं १६२ ॥ 'आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणेमेंदी सूत्रदिंदं मोडि प्रमाणं १६२ ॥ चयदि ४ नभ्यधिकमागुत्तिरलु द्वितीय-समयपरिणामधनप्रमाणमक्कुं १६६ ॥ मिदरोळु पूर्व्वोक्तचयदि ४ नभ्यधिकमागुत्तिरलु तृतीय-

परिणामवृद्धिप्रमाणं चत्वारः ४, संख्येयरूपाणि त्रीणि ३, ऊर्ध्वरचनायां धनमानीयते—सर्वपरिणामधनं ३०७२ पद १६ कृत्या २५६ संख्यातरूपैश्च ३ भक्ते $\frac{3072}{256\times3}$ सति प्रतिसमयपरिणामप्रचयप्रमाणं भवति ४, तथा व्येकपदार्धं ($\frac{15}{2}$) धनचय $\frac{15}{2}\times4$ गुणो गच्छः ($\frac{15}{2}\times4\times16$) प्रचयधनप्रमाणं भवति ४८०, अनेन प्रचयधनेन सर्वधनं ३०७२ हीनयित्वा २५९२ पदेन १६ भक्ते लब्धं प्रथमसमयपरिणामसंख्या भवति । १६२ अस्यामेकैकस्मिन् प्रचये ४ वर्धिते सति द्वितीयतृतीयादिसमयवर्तिपरिणामानां संख्या भवन्ति ताः इमाः—

अब अधःकरण सम्बन्धी सर्वधन आदिका वर्णन संदृष्टिके द्वारा दिखाते हैं—

विशेषार्थ—वास्तविक अर्थको समझानेके लिए जो अंक कल्पित करके दिखाये जाते हैं, उन्हें अंक संदृष्टि कहते हैं। जैसे आगे अधःप्रवृत्तकरण काल अन्तर्मुहूर्तके लिए १६, अधः-प्रवृत्तकरणमें होनेवाले परिणामोंकी संख्या असंख्यात लोक प्रमाणके लिए ३०७२ आदि संख्या कल्पित की है, उसके द्वारा उक्त कथनको आगे स्पष्ट करते हैं। कल्पना कीजिए कि अधः-प्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणाम तीन हजार बहत्तर ३०७२ हैं। अधःप्रवृत्तकरणका काल १६ सोलह समय है। प्रतिसमय परिणामोंकी वृद्धिका प्रमाण ४ चार है। संख्यातका प्रमाण तीन ३ है। अब ऊर्ध्व रचनाके लिए धन लाते हैं। प्रति समय सम्बन्धी ऊपर-ऊपर ऊर्ध्वरूप रचना करनेको ऊर्ध्वरचना कहते हैं। उसके लिए धन आदिका प्रमाण लाते हैं। 'पदके वर्गसे और संख्यातसे सर्वधनमें भाग देनेपर प्रचयका प्रमाण आता है', इस गणित सूत्रके अनुसार सर्वपरिणाम धन ३०७२ में पद १६ के वर्ग २५६ तथा संख्यात रूप तीनसे भाग देने पर $\frac{3072}{256\times3}$ चार ४ आता है जो समय-समयमें परिणामोंमें जितनी वृद्धि होती है, उसका प्रमाण है। इसे प्रचय कहते हैं। तथा 'एक हीन पदको चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर चय धनका प्रमाण आता है'। इस सूत्रके अनुसार एक हीन पद १५, उसका आधा $\frac{15}{2}$ को चयसे गुणा करो $\frac{15}{2}\times4$ तथा गच्छसे गुणा करो $\frac{15}{2}\times4\times16$। ऐसा करनेपर ४८० चय धनका प्रमाण होता है। इस चयधनको सर्वधन ३०७२ में-से कम करने पर २५९२ शेष रहता है। इसे पद १६ से भाग देने पर लब्ध १६२ प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंकी संख्या होती

१. म भागिसल्पडुत्तिं। २. म मादि प्रमाण बोलु। ३. म °भवनप्रमाणधनप्रमाणं°।

समयपरिणामधनप्रमाणमक्कु १७० इल्लिमत्तं चयविंद ४ मभ्यधिकमागुत्तिरलु चतुर्थसमय-परिणामधनप्रमाणमक्कु १७४ मितु प्रतिसमयमी ४ विशेषाधिक क्रमविंदं परिणामंगळ प्रवृद्धंगळक्कु मन्नेवरं चरमसमयपरिणामधनप्रमाणं पुट्टुगुमन्नेवरमिवरुत्पत्तिक्रममंतने व्येकपदं चयाभ्यस्तं तत्साध्यं तद्धनं भवेदेंदिवरिंदं रूपोनपदमं १५ चयविंदं ४ गुणिसुत्तिरलु १५।४। लब्ध ६० मरु-वत्तुमनु सहितमप्पादि १६२ यंत धनप्रमाणमक्कु २२२ मिदनो दुवारि चयविंदं ४ हीनं माडुत्ति-रलु द्विचरमसमयधनप्रमाणमक्कु २१८ मितूर्ध्वरचनयोळधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमसमय-मादियागि चरमसमयपर्य्यंतं प्रतिसमय धनंगळनु स्थापिसियल्लि प्रथमसमय परिणामंगळ त्रिकालवर्त्तिनानाजीवसंबंधिगळप्प जघन्यमध्यमोत्कृष्टंगळ समूहमधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यातैक-भागमात्रनिर्वर्गणकांडकसमयमात्रंगळप्प खंडंगळु माडल्पडुवुवु विशेषाधिकंगळु। 'अणुकट्टि-पदेण हिदे पचये पचयं तु होदि तेरिच्छे' एंबीसूत्रविदर्शितविधमूर्ध्वरचनाचयम ४ निदननुकृष्टिपदविंदं ४ भागिसुत्तिरलु लब्धमो १ दिदऽननुकृष्टिचयप्रमाणमक्कुमिल्लियनुकृष्टि यें बुदेनें दोडे—"अधस्तन-समयपरिणामखंडानामुपरितनसमयपरिणामखंडैस्साद्धं सादृश्यमनुकृष्टिः" एंबी लक्षणविदमनु-कृष्टियं निश्चैसुवुदु। इल्लियुं व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणोगच्छ ३।१।४। मुत्तरधनमेंदिवरिंदमनुकृष्टिचय-धनमनिदं ६ तंदु ऊर्ध्वरचनासंबंधिप्रथमसमयसमस्तपरिणामधन[illegible] चयधनहीनं सर्वं पदभजिते होवि आदिपरिमाण" मेंबी सूत्रविदमा चयधनमं कळेव शेष १५६ मिदं पदविंदं

१६६। १७०। १७४। १७८। १८२। १८६। १९१। १९४। १९८। २०२। २०६। २१०। २१४। २१८। २२२॥ अस्यामन्त्यधनस्यानयनन्तु व्येकपदं १५ चया (४) भ्यस्तं ६० तदादि १६२ सहितं इति भवति २२२। अत्र चैकचये ४ अपनीते द्विचरमसमयधनं भवति २१८। एतान्युक्तधनानि अधःप्रवृत्तकरण-प्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यन्तमुपर्युपरि स्थापयितव्यानि। अथानुकृष्टिरचनोच्यते—तत्र अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमय-परिणामखण्डानां उपरितनसमयपरिणामखण्डैः सादृश्यं भवति। अनुकृष्टिगच्छः ऊर्ध्वगच्छे संख्यातेन भक्ते (१६/४) लब्धमात्रः (४), अनुकृष्टिचयः ऊर्ध्वचये अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते (४/४) लब्धमात्रो भवति १। प्रथमसमय-समस्तपरिणामधने १६२ व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छः—(३/२×१×४) अनुकृष्युत्तरधनं ६ तदपनीय शेषे १५६ अनुकृष्टिपदेन भक्ते सति (१५६/४) लब्धं ३९ प्रथमसमयपरिणामानां प्रथमखण्डप्रमाणं भवति। इदमेव

है। इसमें एक-एक चय ४ बढ़ाने पर दूसरे-तीसरे आदि समयवर्ती परिणामोंकी संख्या होती है—जो इस प्रकार है—१६०।१७०।१७४।१७८।१८२।१८६।१९०।१९४।१९८।२०२।२०६।२१०।२१४। २१८।२२२॥ अन्त्यधन लानेके लिए सूत्र इस प्रकार है—'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादि सहितं धनम्।' एक हीन पद १५ को चय ४ से गुणा करने पर ६० होते हैं। उसमें आदि धन १६२ को जोड़नेसे २२२ अन्त्यधन होता है इसमें एक चय ४ को घटाने पर द्विचरम समयवर्ती परिणामोंका प्रमाण २१८ होता है। इन उक्त धनोंको अर्थात् प्रतिसमयमें होनेवाले परिणामों-को अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त ऊपर-ऊपर स्थापित करना चाहिए। आगे अनुकृष्टि रचना कहते हैं—

नीचेके समयमें होनेवाले परिणामोंके खण्डका ऊपरके समयमें होनेवाले परिणामोंके साथ जो समानता होती है, उसका नाम अनुकृष्टि है। अर्थात् ऊपरके और नीचेके समय सम्बन्धी परिणामोंके जो खण्ड परस्परमें समान जैसे हों, तैसे एक समयके परिणामोंके खण्ड

१. स्यात्-।

भागिसुत्तिरलु लब्ध ३९। मितु प्रथमसमयपरिणामप्रथमखंडप्रमाणमक्कुमिदो खंडमे सर्व्वजघन्य-परिणामपुंजमक्कुमी खंडपरिणामव्यक्तिगळगेल्ल मेलिळ्युं सादृश्याभावमप्पुदरत्तणिदंमीखंड-परिणामविशुद्धिगळिदं हीनविशुद्धिपरिणाममावसमयदनुकृष्टिखंडंगळोळमभावमप्पुदरिंदमेंदरिगु। ई प्रथमखंडदोळु आदिम्मि चये उड्ढे एंबिवरिंदं अनुकृष्टिचयमं कूडुत्तिरलु द्वितीय प्रथमसमय-परिणामखंडमक्कुं ४० मितु तृतीयादिखंडंगळुं अन्तिमखंडपर्य्यंतं ४२ तिर्य्यक्कागि स्थापयितव्यं गळक्कुमल्लि बळिक्कं द्वितीयसमयपरिणामंगळ प्रथमखंडमदु प्रथम-समयखंडमं नोड ३९ लिल [1]शेषाधिकमक्कु ४० मितुं द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुंजवो १६६ ळनुकृष्टिचयधनमनारं हीनं माडिशेषमनिव १६० ननुकृष्टिपदविंदं ४ भागिसि बंद लब्धमा नाल्वत्त-क्कुत्पत्ति सिद्धमप्पुदरिंद मल्लि बळिक्कमा द्वितीयसमयद द्वितीयादिखंडंगळु विशेषाधिकंगळु ४१।४२।४३। इल्लि द्वितीयसमयप्रथमखंडमं ४० [2]प्रथमसमयद्वितीयखंडदोडने समानमक्कुं मितु

सर्वजघन्यखण्डं अन्येषां खण्डानां परिणामसंख्याविशुद्धिभ्यां ततोऽधिकत्वसंभवात्। तत्प्रथमखण्डे चैकस्मिन्ननुकृष्टिचये युते तद्द्वितीयखण्डं भवति।४०। एवं तृतीयादीनि चरमखण्डपर्यन्तानि तिर्यगेकैकचयाधिकानि स्थाप्यानि ४१, ४२। ततः परं द्वितीयसमयप्रथमखण्डं प्रथमसमयप्रथमखण्डात् ३९ एकविशेषाधिकं भवति ४०। द्वितीयसमयसमस्तपरिणामेषु १६६ अनुकृष्टिचयधनेन ६ न्यूनयित्वा १६० अनुकृष्टिपदेन

करनेका नाम अनुकृष्टि है। सो ऊर्ध्वगच्छके संख्यातवें भाग अनुकृष्टिका गच्छ है। सो अंक संदृष्टिकी अपेक्षा ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण सोलह १६ है। उसमें संख्यातके प्रमाण चारसे भाग देनेपर चार अनुकृष्टिके गच्छका प्रमाण है। अर्थात् अनुकृष्टिके खण्डोंका प्रमाण चार जानना। तथा ऊर्ध्व रचनाके चयमें अनुकृष्टिके गच्छका भाग देनेपर अनुकृष्टिका चय आता है। सो ऊर्ध्वचय चारमें अनुकृष्टिके गच्छ चारसे भाग देनेपर एक आया। वही अनुकृष्टिका चय है अर्थात् प्रत्येक खण्डमें होनेवाली वृद्धिका प्रमाण एक है। प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणाम १६२ हैं। वही यहाँ प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टि रचनाका सर्वधन है। 'व्येक-पदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्', इस सूत्रके अनुसार गच्छ चारमें-से एक कम करके उसका आधा करके तथा उस आधेको चय और गच्छसे गुणा करनेपर ($\frac{3}{2}\times1\times4$) अनुकृष्टिका उत्तर धन ६ होता है। इस उत्तर धन छहको सर्वधन १६२ में से घटानेपर शेष १५६ एकसौ छप्पन रहे। उसमें अनुकृष्टिके गच्छ चारका भाग देनेपर ३९ आये। वही प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डका प्रमाण है। यही सबसे जघन्य खण्ड है, क्योंकि इस खण्डसे अन्य सब खण्डोंके परिणाम संख्या और विशुद्धिमें अधिक होते हैं। उस प्रथम खण्डमें अनुकृष्टिका चय एक जोड़नेपर उसीके दूसरे खण्डका प्रमाण चालीस ४० होता है। इस तरह तीसरेको आदि लेकर अन्तिम खण्ड पर्यन्त तिर्यक् रूपसे एक-एक चय अधिक करके स्थापित करना चाहिए ४१।४२। अर्थात् तीसरे खण्डके परिणामोंकी संख्या ४१ और अन्तिमकी ४२ है। ऊर्ध्व रचनामें जहाँ प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम स्थापित किये, उनके आगे-आगे बराबरमें इनकी स्थापना करनी चाहिए। ये खण्ड परिणाम एक समयमें वर्तमान अनेक जीवोंके एक साथ पाये जाते हैं, इसलिए इनको बराबरमें स्थापन किया है। उससे ऊपर द्वितीय समयका प्रथम खण्ड प्रथम समयके प्रथम खण्ड ३९ से एक विशेष अधिक होता है, इससे उसका प्रमाण चालीस ४० है। क्योंकि द्वितीय समयके समस्त परिणाम १६६ में अनुकृष्टिका चयधन

१. म द्विशेषा। २. म ४० नाल्वत्तु प्र°।

द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडंगळु प्रथमसमयतृतीयादिखंडंगळोडने सदृशंगळरियल्पडुगुं। द्वितीयसमयचरमखंडमदुमस्ते प्रथमसमयखंडंगळोळो दरोळमप्पुवं सदृशमल्तु। बळिक्कमल्लिवं तृतीयादिसमयंगळोळ प्रथमादिखंडपरिणामंगळ् [illegible] अनंतरोवस्तनखंडपरिणामंगळं नोडल्विशेषाधिकंगळ्वेकें दोडे ऊर्ध्वचयविदं मधिकंगळप्पुवरिदमिन्तधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयखंडपरिणामपुंजपर्य्यंतमरियल्पडुवुवु। ५४। ५५। ५६। ५७। इवरोळु सर्व्वजघन्यखंडपरिणामंगळगं ३९ सर्वोत्कृष्टखंडपरिणामंगळगं ५७। मेलिल्लियुं सादृश्यमिल्ल मुळिदंतुपरितनसमयवर्त्तिपरिणामपुंजंगळगधस्तनसमयवर्त्तिपरिणामपुंजंगळोडने मेणुपरितनसमयवर्त्तिपरिणामपुंजंगळोडनधस्तनपरिणामपुंजंगळगे यथासंभवमागि सदृशत्वसंघटिसि मुख १६२। भूमि २२२। जोग ३८४। दळे १९२। पदगुणिदे १९२। १६। पदधणं होदि ३०७२। एंबो सम्बंधनंतरल्पडुगुं।

---

१० ४ भक्तेषु तदुत्पत्तिसंभवात्। तदधो द्वितीयसमयद्वितीयादिखण्डान्येकैकचयाधिकानि सन्ति ४१। ४२। ४३। अत्र द्वितीयसमयप्रथमखण्डं ४० प्रथमसमयद्वितीयखण्डेन समानं। एवं द्वितीयसमयद्वितीयादिखण्डानि प्रथमसमयस्य तृतीयादिखण्डैः सदृशानि। किन्तु द्वितीयसमयचरमखण्डं प्रथमसमयसर्वखण्डेषु केनापि न सदृशं। पुनस्तृतीयादिसमयेषु प्रथमादिखण्डादि ४१। ४२। ४३। ४४। अनन्तराधस्तनखण्डेभ्यो विशेषाधिकानि ऊर्ध्वचयेन अधिकत्वात्। एवमधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयचरमखण्डपर्यन्तं ज्ञातव्यं ५४। ५५। ५६। ५७।
१५ अत्र सर्वजघन्यखण्डपरिणामानां ३९ सर्वोत्कृष्टखण्डपरिणामानां ५७ च कैरपि सादृश्यं नास्ति शेषाणामेवोपर्यधस्तनसमयवर्तिपरिणामपुञ्जानां यथासंभवं तत्संभवात्। अत्र मुख १६२ भूमि २२२ योग ३८४ दले १९२ पदगुणिदे १९२ × १६ पदधनं ३०७२ होतीति सर्वधनमानेतव्यं।

छह ६ घटानेसे शेष रहे १६० में अनुकृष्टिके गच्छ ४ का भाग देनेसे चालीस उत्पन्न होते हैं। उसके आगे द्वितीय समयके द्वितीय आदि खण्ड एक-एक चय अधिक होते हैं ४१।४२।४३। यहाँ द्वितीय समयका प्रथम खण्ड ४० प्रथम समयके द्वितीय खण्डके समान है। इसी तरह द्वितीय समयके द्वितीय आदि खण्ड प्रथम समयके तृतीय आदि खण्डोंके समान हैं। किन्तु द्वितीय समयका अन्तिम खण्ड प्रथम समयके सब खण्डोंमें किसीसे भी समान नहीं है। पुनः तृतीय आदि समयोंके प्रथम आदि खण्ड द्वितीय आदि समयोंके प्रथम आदि खण्डोंसे एक अधिक हैं। अतः तृतीय समयके ४१।४२।४३।४४। चतुर्थ समयके ४२।४३।४४।४५। पंचम समयके ४३।४४।४५।४६। षष्ठ समयके ४४।४५।४६।४७। सप्तम समयके ४५।४६।४७।४८। अष्टम समयके ४६।४७।४८।४९। नवम समयके ४७।४८।४९।५०। दसवें समयके ४८।४९।५०।५१। ग्यारहवें समयके ४९।५०।५१।५२। बारहवें समयके ५०।५१।५२।५३। तेरहवें समयके ५१।५२।५३।५४। चौदहवें समयके ५२।५३।५४।५५। पन्द्रहवें समयके ५३।५४।५५।५६। सोलहवें समयके ५४।५५।५६।५७ खण्ड जानना। यहाँ सबसे जघन्य खण्ड परिणाम ३९ और सबसे उत्कृष्ट खण्ड परिणाम ५७ की किसीसे भी समानता नहीं है। शेष समस्त ऊपर और नीचले समय सम्बन्धी परिणाम पुंजोंकी यथा सम्भव समानता सम्भव है। यहाँ 'मुहभूमि जोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि' इस सूत्रके अनुसार सर्वधन निकालना चाहिए। सो मुख १६२, भूमि २२२, इनका जोड़ ३८४, इसको आधा करने पर १९२, इसको पदसे गुणा करनेपर १९२ × १६ = ३०७२ सर्वधन आता है।

---

१५ १. ब गोडि-। २. ब °यदुं।

अनंतरमी अधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळर्थसंदृष्टियिंदं विन्यासं तोरल्पडुगुं अवंतेने :—
त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिगळप्पधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळतत्कालसमस्तसमयसंभविगळप्प
परिणामंगळनितुमसंख्यातलोकमात्रमक्कु ≡ a । मिल्लियधःप्रवृत्तकरणकालमे गच्छमक्कुं
२ १ १ १ मत्तं पदकृतिसंक्रमेण भाजिदे पचयमेंदी सूत्रेष्टविदमी समस्तधनमं ≡ a पदकृतियिंदमुं
≡ a
संख्येयरूपुगळिंदमं भागिसुत्तिरलिदु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ र्वधनयमक्कुं । व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज
गच्छ उत्तरधनमेंदी सूत्रविधानदिंदं रूपोनगच्छार्द्धदिंदं २ १ १ १ । २ प्रचयमं गुणियिसि

≡ a २ १ १ १ ≡ a २ १ १ १ । २ १ १ १
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ मत्तं गच्छदिंदं गुणियिसि २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ बळिक्किदं

≡ a २ १ १ १
२ १ १ १ । १ । २ चयण (चयधण) होणं वत्तं पदभजिदे होदि आदिपरिमाण मेंबी सूत्रेष्ट-

---

अथ अर्थसंदृष्ट्या विन्यासो दर्श्यते—तद्यथा त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्धिनः अधःप्रवृत्तकरणकाल-समस्तसमयसंभविनः सर्वपरिणामा असंख्यातलोकमात्राः संति ≡ a । अधःप्रवृत्तकरणकालो गच्छः २ १ १ १ समस्तधने ≡ a पदहृत्या २ १ १ १ × २ १ १ १ संख्यातेन च १ भक्ते[5] सति ऊर्ध्वप्रचयो भवति
≡ a ≡ a
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । रूपोनगच्छार्धेन २ १ १ १ प्रचयं गुणित्वा २ १ १ १, २ १ १ १ । १
२
× २ १ १ १ गच्छेन गुणिते २ १ १ १, २ १ १ १, १, २ १ १ १ × २ १ १ १ अपवर्तितं चयधन-
२ २

विशेषार्थ—केशववर्णीकी इस टीकामें यह तो सर्वधन आदिका प्रमाण कल्पना करके समझानेके लिए किया है, उसीमें अर्थ संदृष्टिके द्वारा विस्तारसे यथार्थ वर्णन भी है; किन्तु इसका अर्थ एक तो कठिन है, दूसरे बहुत विस्तार होनेसे ग्रन्थका विस्तार होनेके साथ पाठकोंको भी कठिनाई हो सकती है। अतः जैसे पं. टोडरमलजी साहबने अर्थ संदृष्टिअधिकार अलग लिखा है, तदनुसार सम्भव हुआ तो अलगसे लिखेंगे। यहाँ हम पं. जी साहबके अनुसार मूल टीकाका ओशय मात्र दे रहे हैं। आगे भी अर्थसंदृष्टियोंके सम्बन्धमें हम ऐसा ही करेंगे। त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी समस्त अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोक मात्र हैं सो यहाँ सर्वधन जानना। इसीके स्थानमें अंक संदृष्टिमें ३०७२ कल्पना किया है। अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र, उसके जितने समय हों सो यहाँ गच्छ जानना। इसीके स्थानमें १६ संख्या कल्पित की है। सर्वधनमें गच्छके वर्गसे भाग देवें। फिर यथासम्भव संख्यातका भाग देवें। जो प्रमाण आवे सो ऊर्ध्वचय जानना। एक कम गच्छको आधा करके उसे चयसे तथा गच्छके प्रमाणसे गुणा करने पर जो प्रमाण आवे सो उत्तर धन जानना। इस उत्तर धनको सर्वधनमें-से घटाकर जो शेष रहे, उसे ऊर्ध्व-

---

१. म सूत्रविदमी। २. म अपवर्तितसुतविरलुद्धचयधनमिदुबलि। ३. ब °नः समस्ता अधःप्रवृत्तकरणपरिणामा असं°। ४. ब तेषु च अधः प्रवृत्तकरणकालस्य २ १ १ १ कृत्या। ५. ब भक्तेषु सत्सु। ६. ब गुणयित्वा।

≡ २ १ १ १ । १ । २

विदं समच्छेदमं विचारिसि माडिदो समस्त धनदोळु २ १ १ १ । १ २ चय धनदोळिई ऋणरूपं

≡ a १

तेगेदु बेरिरिसि २ १ १ १ । १ । २ असमसंख्यातलोकाऽऽवलिसंख्यातत्रयांकंगळप्प गुण्यंगळगे सादृश्यमं तोरि तोरलिल्लव मुंदण द्विगुणसंख्यातांकदोळि १ २ वरोळुं चयधनवात्मप्रमाणमोंदु

≡ २ १ १ १ । १ १

रूपुं कळेयल्पडुगुं २ १ १ १ । १ । २ मुन्नं बेरे तेगेविरिसिद चय धनद ऋणरूपं ऋणस्य ऋणं राशेर्द्धनं भवति एंबी न्यायदिंदमसंख्यातलोकदकसंख्यातलोकमं तोरि समच्छेदमप्पुदें तोरलिल्लव गुणकारंगळोल्लवर मेलधिकमं माडि....पूर्व्वपर्वदिदं २ १ १ १ । भागिसुत्तिरलु त्रिकालगोचर समस्तजीवंगळगे अधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमसमयसंभवपरिणामंगळ पुंजप्रमाणमक्कुं

≡ a ≡ a २ १ १ १ । १ २ ।

मिदं तच्च २ १ १ १, १, २ १ १ १ समच्छेदीकृतसमस्तधनमध्ये २ १ १ १ । १ । २ ।

२

≡ a । १

चयधनस्थं ऋणरूपं पृथक् संस्थाप्य २ १ १ १ । १ । २ असंख्यातलोकावलित्रिसंख्यातात्मकगुणस्य सादृश्यं

≡a २ १ १ १ । १ । २ ।

प्रदर्श्य अग्रस्थद्विगुणसंख्याते १ । २ । चयधनस्य आत्मप्रमाणमेकरूपमपनीय २ १ १ १ । १ । २ पृथक् स्थापितचयधनस्य ऋणरूपं 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति न्यायेनासंख्यातलोकस्यासंख्यातलोकं प्रदर्श्य शेष-

≡ a । २ १ १ १ । १ । २ ।

गुणकारस्योपर्यधिकं कृत्वा २ १ १ १ । १ । २ ऊर्ध्वपंक्तेन २ १ १ १ भक्ते सति त्रिकालगोचरस-

≡ a । २ १ १ १ । १ । २

मस्तजीवानामधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमसमयसंभविपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २

गच्छका भाग देनेपर त्रिकालवर्ती समस्त जीवोंके अधःप्रवृत्तकरण कालके प्रथम समयमें होनेवाले परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। इसीके स्थानमें १६२ का अंक कल्पित किया है। उस परिणामपुंजमें एक ऊर्ध्वचय जोड़नेपर द्वितीय समय सम्बन्धी नाना जीवोंके समस्त परिणामोंके पुंजका प्रमाण जानना। ऐसे ही ऊपर भी समय-समय प्रति एक-एक चय जोड़नेसे परिणामोंके पुंजका प्रमाण आता है। इनमें-से प्रथम समय सम्बन्धी परिणामपुंजमें एक कम गच्छ प्रमाण चयको जोड़नेपर अन्त समय सम्बन्धी नाना जीवोंके समस्त परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। उसमें-से एक चय घटानेपर द्विचरम समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी समस्त विशुद्ध परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। इस तरह ऊपर-ऊपर जो ऊर्ध्वरचना है, उसमें समय-समय सम्बन्धी अधःप्रवृत्तके परिणामपुंजका प्रमाण कहा है।

१. म धन्यंगल। २. म मंगल।

≡ ० २ १ । १ १ । १ २

२ १ १ १ । २ १ । २ १ १ १ इल्लि आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं भावाणं मेंबो सूत्राभिप्राय-

≡ ०

विवमो २ १११२ । १ १ १ । १ प्रचयम रूपद्वयविर्द समच्छेदम माडि गुणकारभूतरूपद्वयमनसंख्यात-

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

लोकक्कसंख्यातलोकमं तोरि समच्छेदमुंटप्पुवरिंद कूडुत्तिरलु द्वितीयसमयदोळु नानाजीवसमस्त-

≡ २ १ १ १ १ २

परिणामपुंजप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ मितु प्रतिसमयमुं रूपोन गच्छ प्रमितचयंगळु प्रथमसमयपरिणामपुंजदोळु प्रक्षिप्तंगळागुत्तं विरलु मल्लल्लिय नानाजीवसंबंधिपरिणामपुंज प्रमाणमक्कुमदु कारणमागि चरमसमयदोळु 'व्येकपदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंत धनं भवे' देंबो

≡ ० २ १ १ १

न्यायमादुदेबरियल्पडुगुं अदरिंद रूपोनोर्ध्वगच्छहतचयंगळु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ मेरडुरूपु

≡ ० २ १ १ १ २

गळिंद समच्छेदमं माडि २ १ १ १ । १ १ १ । १ । २ ऋणरूपद्वयम बेरे तेगेविरिसि

≡≡≡≡≡≡≡≡०

अस्योपर्यूर्ध्वप्रचये २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ द्वाभ्यां समच्छेदेन गुणकारभूतद्वये असंख्यातलोकस्यासंख्यात-

≡≡≡≡० । २ १ १ १ । १ । २

लोकं प्रदर्श्य युते द्वितीयसमयनानाजीवसमस्तपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २

एवमुपर्यपि प्रतिसमयं कुर्वात् । रूपोनगच्छप्रमितचयेषु प्रथमसमयपरिणामपुञ्जे युतेषु चरमसमयनानाजीवसंबन्धि परिणामपुञ्जप्रमाणं स्यात् । तद्यथा—व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यन्तधनं भवेत् इति रूपोनोर्ध्वगच्छहतचयेषु

≡≡≡≡≡० २ १ १ १ ≡ ० २ १ १ १ २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ द्वाभ्यां समच्छेदेन २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ ऋणरूपद्वयं पृथक्

विशेषार्थ—आगे कषायाधिकारमें विशुद्धि परिणामोंकी संख्या कहेंगे। उनमें-से अधःकरणमें होनेवाले शुभलेश्या और संज्वलन कषायके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे संयुक्त विशुद्धि परिणामोंकी संख्या त्रिकालवर्ती नाना जीवोंके असंख्यात लोकमात्र है। उनमें-से जिन जीवोंको अधःप्रवृत्तकरण माड़े हुए पहला समय है, उन त्रिकाल सम्बन्धी अनेक जीवोंके जो परिणाम सम्भव हैं, उनके समूहको प्रथम समय परिणाम पुंज कहते हैं। जिन जीवोंको अधःकरण प्रारम्भ किये हुए दूसरा समय है, उन त्रिकाल सम्बन्धी अनेक जीवोंके जो परिणाम होते हैं, उनके समूहको द्वितीय समय परिणामपुंज कहते हैं। इसी तरह क्रमसे अन्त समय पर्यन्त जानना। सर्व समय सम्बन्धी परिणामोंके पुंजको जोड़नेपर असंख्यात लोक मात्र प्रमाण होता है।

इन अधःप्रवृत्तकरण कालके प्रथम आदि समय सम्बन्धी परिणामोंके विषयमें त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी प्रथम समयके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदवाला जो परिणाम

मार्गदर्शक = आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

२१११।२१११।१२ प्रथमसमयपरिणामपुंजदोळंकसादृश्यमं तोरि तोरलिल्लद मुंवण-
गुणकारदोळु १ २ तत्रत्य ऋणमं शोधिसि शेषैकरूपमं माडि १ २ मुन्न तेगेदु बेरिरिसिद
ऋणरूपद्वयमं धनस्य ऋणं राशिऋणं भवति एंबो न्यायदिंदमसंख्यातलोकमुंदण गुणकारंगळो-
५ ळिर्द्द धनरूपं शोधिसि कळवुलिद रूपनोंदना स्थानदोळु हीनं माडुवुदितु माडुत्तिरलु चरमसमय-

=a २१११२

समस्त परिणाम पुंजमक्कु २१११।२१११।२ विलियोंदु चयमं समच्छेदमं माडि
कळियुत्तिरलु द्विचरमसमयवर्त्तिनानाजीवसंबंधि समस्तविशुद्धिपरिणामपुंजप्रमाणमक्कुं

=२१११२
१० २१११।२१११।१।२ ई यधःप्रवृत्तकरणकालप्रथमादिसमयपरिणामंगळोळगे

=a।२

संस्थाप्य २१११।२१११।१।२ प्रथमसमयपरिणामपुञ्जे सादृश्यरहितायतगुणकारे १ २
स्थितऋणं शोधयित्वा शेषैकरूपं प्रक्षिप्य १ २ पृथक् [1]संस्थाप्य तत् ऋणरूपद्वयं धनस्य ऋणं राशेः ऋणं
भवतीति न्यायेन असंख्यातलोकस्यायतनगुणकारस्य धनरूपं शोधयित्वा शेषरूपं तत्रोनयेत्। एवंकृते

=a।२१११।१।२

१५ चरमसमयसमस्तपरिणामपुञ्जो भवति २१११।२१११।१।२ अत्रैकचये समच्छेदेन अपनीते

=a।२१११।१।२

द्विचरमसमयवर्तिनानाजीवसंबन्धिसमस्तविशुद्धिपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २१११।२१११।१।२

पुंज कहा, उसके अधःप्रवृत्त करण कालके जितने समय हैं उनको संख्यातका भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे, उतने खण्ड करो। वे खण्ड निर्वर्गणाकाण्डकके जितने समय हैं, उतने होते हैं। वर्गणा अर्थात् समयोंकी समानता। उससे रहित जो ऊपर-ऊपर समयवर्ती परिणाम खण्ड हैं, उनका काण्डक अर्थात् सर्वप्रमाण, उसीको निर्वर्गणाकाण्डक कहते हैं। उसके समयोंका प्रमाण अधःप्रवृत्तकरण कालरूप ऊर्ध्वगच्छके संख्यातवें भाग मात्र है। सो यही प्रमाण अनुकृष्टिके गच्छका है। एक-एक समय सम्बन्धी परिणामोंमें अनुकृष्टिके गच्छ-प्रमाण खण्ड होते हैं। वे खण्ड एक-एक अनुकृष्टिचयप्रमाण अधिक हैं। ऊर्ध्वरचनामें जो चयका प्रमाण कहा है, उसको अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेसे जो लब्ध आता है, वही अनुकृष्टिचयका प्रमाण है। तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्।' इस सूत्रके अनुसार एक कम अनुकृष्टिके गच्छके आधे प्रमाणमें अनुकृष्टिचयसे गुणा करनेपर तथा अनुकृष्टि गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वही अनुकृष्टिका चयधन होता है। इसको, ऊर्ध्वरचनामें जो प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणामपुंजका प्रमाणरूप सर्वधनका

१. क लोकद्वयमुं। २. संस्थापित—प.।

त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिगळप्प प्रथमसमय जघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामंगळ समूहमनवः-
प्रवृत्तकरणकालसंख्यातैकभागमात्र निर्वर्गणकांडकसमयसमानंगळागि २ १ १ खंडंगळप्पुवल्लि
प्रथमखंडमादल्पडुवं चयाधिकरणगळक्कु। मेणुकडुव्वि पदेण हिदे पचये पक्षयंतु होदि तेरिच्छे एंबी सूत्रेष्टविव-
मूर्ध्वरचना चयमननुकृष्टिपदविदं भागिसुत्तिरलु बंबलब्धमनुकृष्टि चयप्रमाणमक्कु

≡a १

२ १ १ १ । २ १ १ । १ । २ १ १ मल्लि व्येकपदार्द्धघ्न चयगुणो गच्छ उत्तरधन में[1]बी सूत्राभि-

≡a २ १ १

प्रायदिंदमनुकृष्टिचयधनमं तंदपर्वासिसि २ १ १ १ । २ १ १ १ । २ ऊर्ध्वरचनाप्रथमसमय

≡a २ १ १ १ । १ २

संबंधिसमस्तपरिणामपुंजदोळ् २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ २ 'चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे

≡a २ १ १ १ १ १

होदि आदिपरिमाणमेंबी सूत्रेष्टविद हीनमं माडिदो राशियं २ १ १ २ १ १ १ १ २

एषामधःप्रवृत्तकरणकालस्य प्रथमादिसमयपरिणामानां मध्ये त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिप्रथमसमयजघन्यमध्य-
मोत्कृष्टपरिणामसमूहस्याधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यातैकभागमात्रनिर्वर्गणकाण्डकसमयसमानानि २ १ १ खण्डानि
क्रियन्ते तानि चयाधिकानि भवन्ति। ऊर्ध्वरचनायां अनुकृष्टिपदेन भक्ते लब्धमनुकृष्टिचयप्रमाणं भवति

≡≡≡≡≡≡≡≡a ।

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छोऽनुकृष्टिचयधनं भवति

≡≡≡≡≡≡≡a २ १ १ । २ १ १ ≡a । २ १ १

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ तच्चापवर्त्य २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ ऊर्ध्वरचना-

≡a । २ १ १ १ । १ । २

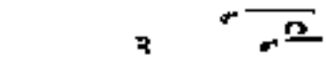
प्रथमसमयसंबंधिसमस्तपरिणामपुंजे २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ ऊनयित्वा शेषं

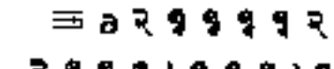
प्रमाण है, उसमें-से घटानेपर जो शेष रहे, उसको अनुकृष्टिके गच्छसे भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, वही प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डका प्रमाण है। उसमें एक अनुकृष्टि चयको जोड़नेपर प्रथम समय सम्बन्धी समस्त परिणामोंके द्वितीय खण्डका प्रमाण होता है। इसी तरह तृतीय आदि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय अधिक अपने-अपने अन्तिम खण्ड पर्यन्त स्थापना करना। अनुकृष्टिके प्रथम खण्डमें एक कम अनुकृष्टिगच्छका प्रमाण तथा अनुकृष्टिचय जोड़नेसे जो प्रमाण होता है, वही अन्तिम खण्डका प्रमाण जानना। उसमें एक अनुकृष्टि चय घटाने पर प्रथम समय सम्बन्धी द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है। इस तरह प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम पुंज रूप खण्ड संख्यात आवली प्रमाण हैं। तथा द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामपुंजका जो प्रथम खण्ड है, वह प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डसे

---

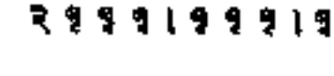
१. म मेंबी।

अनुकृष्टिपदंविदं भागिसुत्तिरलु लब्धं प्रथमसमयपरिणामप्रथमखंडप्रमाणमक्कु



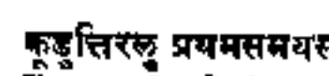


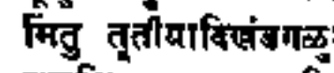
२१११।१११।१२।२११ इवरोळोंदनुकृष्टिचयमं २१११।१।२१११।२११



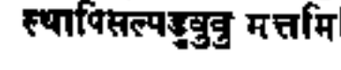
कूडुत्तिरलु प्रथमसमयसमस्तपरिणामंगळ द्वितीयखंडप्रमाणमक्कुं २१११२१११।२।२११
मितु तृतीयादिखंडंगळुमनुकृष्टिचयपदंविदं अभव्यविक्कंगळ् स्वचरमसमयखंडपर्य्यंतं विन्यंपपदंविदं
स्थापिसल्पडुवुवु मत्तमिल्लि व्येकपदं चयाभ्यस्तं तत्साध्यते (साध्यते) धन भवेत् एंबी सूत्रोदित

रूपोनपदमात्रानुकृष्टिचयंगळनेरवरिंदं समच्छेदमं माडि २१११२१११।१।२। २११
मनुकृष्टिप्रथमखंडदोळु कूडुत्तं विरलु चयधनदोळिद्दर्धरडु ऋणरूपिगं प्रथमखंडदोळिद्दर्धरडुं



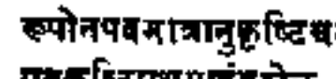


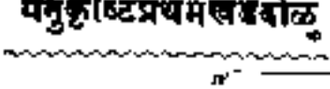
२१११।२१११।१।२ अनुकृष्टिपदेन भक्ते लब्धं प्रथमसमयप्रथमखण्डप्रमाणं भवति



२१११।२१११।१।२११।२ अत्रैकानुकृष्टिचये समच्छेदेन

२१११।२१११।१।२११।२ युते प्रथमसमयसमस्तपरिणामानां द्वितीयखण्डप्रमाणं भवति





२१११।२१११।१।२११।२ एवं तृतीयादिखण्डानि अनुकृष्टिचयेन अधिकानि स्वचरमखण्ड-पर्यन्तं स्थापयितव्यानि। तत्र चरमखण्डं तु अनुकृष्टिप्रथमखण्डे रूपोनपदमात्रानुकृष्टिचयान् द्वाभ्यां समुच्छिद्य

अनुकृष्टि चय अधिक है; क्योंकि द्वितीय समय सम्बन्धी समस्त परिणामपुंज रूप जो सर्वधन है, उसमें पूर्वोक्त प्रमाण अनुकृष्टिका चयधन घटानेपर जो शेष रहे उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर प्रथम खण्ड सिद्ध होता है। इस द्वितीय समयके प्रथम खण्डमें एक अनुकृष्टि चयको जोड़नेपर द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामोंके द्वितीय खण्डका प्रमाण होता है। इस तरह तीसरे आदि खण्ड एक-एक अनुकृष्टि चय अधिक स्थापित करना। एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चयको द्वितीय समय सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डमें जोड़नेपर द्वितीय समय सम्बन्धी

१. म परिमाणमक्कु।

धनरूपिगं सरियेंदु शोधिसि बळिक्कं द्विसंख्यातगुणितावलिप्रमितासंख्यातलोककमनिते गुण्यगुणाकारंगळ तोरि तोरलिल्लव रूपोनद्विगुणसंख्यातद्वयरूपिनोळु एरडु रूपं कूडुत्तिरलु

≡a २ १ १ १ १ २

तत्रत्य ऋणरूपनोंदं शोधिसि शेषैकरूपमल्लि धनमक्कुमिंतु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ प्रथमसमयानुकृष्टिचरखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कुमिल्लियोंदनुकृष्टिक्षयमं कळिवुत्तिरलु द्विचरम-

≡a । १ १ १ १ २

खंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ । २ १ १ इंतु प्रथमसमयपरिणाम-पुंजंगळु संख्यातावलि २ १ १ प्रमितंगळेंदरियल्पडुवुवु । मत्तं द्वितीयसमयपरिणामंगळ प्रथम-खंडमुं प्रथमसमयप्रथमखंडमं नोडल्विशेषाधिकमक्कुमेंतेने :—

≡a २ १ १ १ १

२ १ १ १ । १ १ १ । १ । २ १ १ २ इवुं द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुंजदोळु

≡a २ १ १ १ १ २ ≡a २ १ १ १ २ १ १

२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ अनुकृष्टिक्षयधनमनिद २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ । २ १ १

≡a । मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ ऋणरूपद्वयेन प्रथमखण्डस्थितधनद्वयं समानमिति कृत्वा द्विसंख्यात-गुणितावलिप्रमितासंख्यातलोकगुण्यं उभयत्र समानं प्रदर्श्य शेषरूपोनद्विगुणसंख्यातद्वयगतऋणार्थैकं कृत्वा

≡a । २ १ १ १ । १ । २ ॥

शेषैकस्मिन् युते २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ प्रथमसमयानुकृष्टिचरमखण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति । एवं प्रथमसमयपरिणामपुञ्जाः संख्यातावलि २ १ १ प्रमिता ज्ञातव्याः । पुनः द्वितीयसमयपरिणाम-

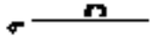
≡a २ १ १ १ । १ । २

प्रथमखण्डं प्रथमसमयप्रथमखण्डादिशेषाधिकं तदिदं २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ कुतः ?

≡a २ १ १ १ । १ । २

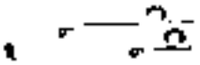
द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुञ्जे २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ अनुकृष्टिक्षयधनं

अन्तिम खण्डका प्रमाण होता है। उसमें एक अनुकृष्टिक्षय घटानेपर द्वितीय समय सम्बन्धी द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है। यहाँ द्वितीय समयका प्रथम खण्ड और प्रथम समयका द्वितीय खण्ड दोनों समान हैं। इसी तरह द्वितीय समयका द्वितीयादि खण्ड और प्रथम समयका तृतीयादि खण्ड समान हैं। इतना विशेष है कि द्वितीय समयका अन्तिम खण्ड प्रथम समयके खण्डोंमें किसीके भी समान नहीं है। इसके आगे ऊपर तृतीय आदि समयोंमें



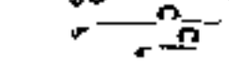
≡ a २ १ १

नपवर्त्तसि २ १ १ १ २ १ १ १ २ । १ २ कळेदु अनुकृष्टिपदविदं भागिसुत्तिरलु सिद्धमप्पुदरिदं ॥



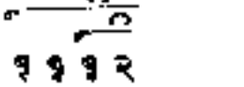
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ततद्वितीयखंडविशेषाधिकं २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ २ १ १ इंदु तृतीयादिखंडंगळु विशेषाधिकंगळागि स्थापिसल्पडुगुं रूपोनानुकृष्टि पदमात्रानुकृष्टिचयंगळं द्वितीयसमयपरिणामंगळ प्रथम-



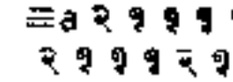
≡a २ १ १ १ १ २

खंडदोळु २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ १ १ २ कूडुत्तिरलु द्वितीयसमयचरमखंडप्रमाणमक्कुं



≡a २ १ १ १ १ २

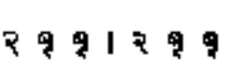
२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ २ १ १ इवरोळेकानुकृष्टिचयमं कळेयुत्तिरलु द्वितीयसमय द्विचरम-



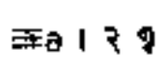
≡a २ १ १ १ १ २

खंडप्रमाणमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ १ । १ १ द्वितीयसमयप्रथमखंडमुं प्रथमसमय-

---

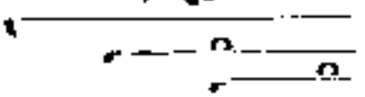


≡a । २ १ १ । २ १ १



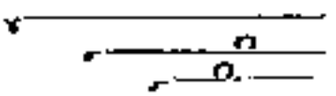
≡a । २ १ १

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अपवर्त्य २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ अपनीय अनुकृष्टिपदेन भक्ते सति सिद्धत्वात् । अत्र द्वितीयसमयप्रथमखण्डे एकानुकृष्टिचये समच्छेदेन युते द्वितीयसमय-



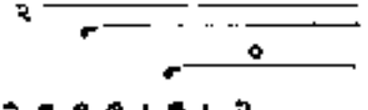
≡ a । २ १ १ १ । १ । २

परिणामानां द्वितीयखण्डप्रमाणं भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ एवं तृतीयादिखण्डानि विशेषाधिकानि स्थाप्यानि । रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयेषु द्वितीयसमयपरिणामप्रथमखण्डे



≡a । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ युतेषु द्वितीयसमयचरमखण्डप्रमाणं भवति



≡ a । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अत्र चैकानुकृष्टिचयेऽपनीते द्वितीयसमयद्विचरमखण्डप्रमाणं

अनुकृष्टिके प्रथमादि खण्ड नीचेके समयसम्बन्धी प्रथम आदि अनुकृष्टि खण्डोंसे एक-एक अनुकृष्टिचय अधिक होते हैं। ऐसा अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय पर्यन्त जानना। उसमेंसे अन्त समयके समस्त परिणामरूप सर्वधनमें अनुकृष्टिके चयधनको घटानेपर जो शेष रहे

---

१. म कळेदु कळेदु अ ।

द्वितीयखंडमुं सदृशमक्कुमितो द्वितीयसमयद्वितीयाविखंडंगळु प्रथमसमयतृतीयाविखंडंग
ळोडने सदृशंगळक्कुमेंदरियल्पडुवुवु । इल्लि विशेषकथनमावुदेंदोडे द्वितीयसमयचरमखंडं
प्रथमसमयखंडंगळोळावुदरोडं समानमल्ल । अल्लि अल्लिकं तृतीयादिसमयंगळोळनुकृष्टि-
प्रथमादिखंडंगळुमनंतराधस्तनानुकृष्टिखंडंगळं नोडल्विशेषाधिकंगळुमेंदितु अधःप्रवृत्तकरण-
कालचरमसमयपर्यंतं नडसल्पडुवुवु । अल्लि चरमसमयसमस्तपरिणामघनमोळ ५

≡a २ १ १ १ १ २ ≡a २ १ १ २ १ १

२ १ १ १ २ १ १ १ १ २ नुकृष्टि चयधनम २ १ १ १ २ १ १ १ २ १ १ २ नपर्वर्त्तिसिदंदं
शोधिसि कळदनुकृष्टि गच्छदिदं २ १ १ भागिसुत्तिरलु चरमसमयपरिणामंगळ

≡a २ १ १ १ १ २

प्रथमानुकृष्टिखंडमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ १ १ २ मिदरोळेकानुकृष्टिप्रचयमं १०

≡a १

२ १ १ १ २ १ १ १ । १ । २ १ १ समच्छेदमं माडि कूडुत्तिरलु चरमसमय द्वितीयानुकृष्टि-

२

≡a २ १ १ १ १ २

खंडमक्कु २ १ १ १ २ १ १ १ १ २ १ १ २ मितु तृतीयाविखंडंगळुमनुकृष्टिचयाधिकंग

≡a २ १ १ १ । १ । २

भवति २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ द्वितीयसमयप्रथमखण्डं प्रथमसमयद्वितीयखण्डं च द्वे १५
सदृशे तथा द्वितीयसमयद्वितीयादिखण्डानि प्रथमसमयतृतीयादिखण्डैः सह सदृशानि किन्तु द्वितीयसमयचरमखण्डं
प्रथमसमयखण्डेषु केनापि सह सदृशं नास्ति । अतोऽग्रे तृतीयादिसमयेषु अनुकृष्टिप्रथमादिखण्डानि अनन्तराधस्त-
नानुकृष्टिखण्डेभ्यो विशेषाधिकानीत्यधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयपर्यन्तं नेतव्यानि । तत्र चरमसमयसमस्त-

≡a । २ १ १ १ । १ । २ ≡a । २ १ १ । २ १ १

परिणामघने २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ २ अनुकृष्टिचयधनं २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ २ २०
अपवर्त्य शोधयित्वानुकृष्टिगच्छेन २ १ १ भक्ते चरमसमयपरिणामप्रथमानुकृष्टिखण्डं भवति

≡a । २ १ १ १ । १ । २ ≡a । १

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अत्र चैकानुकृष्टिचये २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १

उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर अन्त समय सम्बन्धी परिणामका प्रथम अनुकृष्टि
खण्ड होता है । उसमें एक अनुकृष्टिचय जोड़नेपर अन्त समयका द्वितीय अनुकृष्टि खण्ड २५
होता है । इस प्रकार तृतीय आदि खण्ड एक-एक अनुकृष्टिचय अधिक होते हैं । एक कम
अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टिचय अन्त समय सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डमें जोड़ने-

१. म सि शो ।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

≡a २११

ळरियरूपडुवचलि रूपोनानुकृष्टिगच्छमात्रानुकृष्टिचयंगळं २१११।२१११२१११

≡a २१११२

समच्छेदिसि चरमसमय परिणामंगळं प्रथमखंडदोळु २१११२१११२१११

≡a २१११२

कूडुत्तमिरलु चरमसमय चरमानुकृष्टिखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २१११।२१११।१।२१११

≡a १

मिल्लियेकानुकृष्टिचयमं २१११२१११२१११२ समच्छेदिसि कळेयुत्तिरलु द्विचरम-

≡a २१११२

खंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २१११२१११।११ मितु चरमसमयानुकृष्टिपरिणामखंड-

≡a।२१११।१।२

समच्छेदेन युते चरमसमयद्वितीयानुकृष्टिखण्डं भवति २१११।२१११।१।२११।२ एवं तृतीयादिखण्डानि अनुकृष्टिचयाधिकानि ज्ञातव्यानि। तत्र रूपोनानुकृष्टिगच्छमात्रानुकृष्टिचयेषु समच्छेदेन

≡a। २१११।१।२

चरमसमयपरिणामप्रथमखण्डे २१११।२१११।१।२११।२ युतेषु चरमसमयचरमानुकृष्टि-

≡a।२१११।१।२

खण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २१११।२१११।१।२११।२ अत्र चैकानुकृष्टिचये

≡a।१

२१११।२१११।१।२११ समच्छेदेन अपनीते द्विचरमखण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति

≡a।२१११।१।२

२१११।२१११।१।२११।२ एवं चरमसमयानुकृष्टिखण्डानि तिर्यगनुकृष्टिगच्छमात्राणि

पर अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम अनुकृष्टि खण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। उसमेंसे एक अनुकृष्टिचय घटानेपर अन्त समय सम्बन्धी द्विचरमखण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। इस प्रकार अन्त समय सम्बन्धी अनुकृष्टि खण्ड अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण हैं, उन्हें बराबर आगे-आगे क्रमसे स्थापित करना चाहिए। अन्त समय सम्बन्धी अनुकृष्टि-के प्रथम खण्डमें एक अनुकृष्टिचय घटानेपर अवशेष द्विचरम समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड-

स्थितव्यवकागियनुकृष्टिगच्छमात्रंगळ्स्थापिसल्पडुववु मत्तं चरमसमयानुकृष्टिप्रथमखंडवोळु रचने

≍a २१११२ ≡a १

२१११२१११११२११२ एकानुकृष्टिचयमनिदं २१११२१११११२११

समच्छेदिसि कळेयल्बोडन्ते शेषं द्विचरमसमय परिणामंगळनुकृष्टि प्रथमखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु

≡a २१११११२

२१११२१११११२११२ मिवरोळेकानुकृष्टिचयंसमसमयद्वितीयखंडपरिणामपुंजप्रथमं

≡a २१११११२

कूडुत्तिरलु द्विचरमप्रमाणमक्कु २१११२१११२११। २ मितु तृतीयादिखंडंगळु यथाधिकंगळरियल्पडुववु। मत्तमल्लि रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयंगळनेरडरिं समच्छेदिसि

२

≡a २१११११२

द्विचरमसमयपरिणामंगळ प्रथमखंडवोळु २१११२१११११। २११। २ कूडुत्तिरलु द्विचरम-

---

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्थापयितव्यानि। पुनः चरमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डे २१११। २१११। १। २१। २ एकानु-

≍a। १

कृष्टिचये २१११। २१११। १। २१ समच्छेदेन अपनीते शेषं द्विचरमसमयपरिणामानुकृष्टिप्रथम-

२

≡a। २१११। १। २

खण्डपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २१११। २१११। १। २१। २ अनेकानुकृष्टिचये युते द्विचरम-

≡a २१११। १। २

समयद्वितीयखण्डपरिणामपुञ्जो भवति २१११। २१११। १। २१। २ एवं तृतीयादिखण्डानि यथाधिकानि ज्ञातव्यानि। पुनस्तत्र रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयेषु द्वाभ्यां समच्छेदेन द्विचरमसमयपरिणाम-

---

के परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। उसमें एक अनुकृष्टि चय जोड़नेपर द्विचरिम समय-सम्बन्धी द्वितीय खण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। इसी तरह तृतीय आदि खण्ड एक-एक चय अधिक होते हैं। एक कम अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण अनुकृष्टिचय द्विचरम सम्बन्धी परिणामोंके प्रथम खण्डमें जोड़नेपर द्विचरम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिके अन्तिम खण्डके परिणाम पुंजका प्रमाण होता है। इसमें एक अनुकृष्टि चय घटानेपर उस ही द्विचरम समयका द्विचरम खण्डका प्रमाण होता है। इस प्रकार अधःप्रवृत्त करणके कालके

---

१. म खंडंगलोलु। २. म चयमं कूड। ३. म मसमयद्वितीयखंडपरिणामप्रमाण।



समयसमयानुकृष्टिचरमखंडपरिणामपुंजप्रमाणमक्कु २१११।२१११।२११।२ मिल्लि-



येकानुकृष्टिचयमं सोधिसुत्तिरलु तद्विचरमखंडपरिणामपुंजमक्कु २१११२११११२११२ मितधःप्रवृत्तकरणकालद्विचरमसमयानुकृष्टिगळु अनुकृष्टिपदमात्रंगळ्चयाधिकंगळरियल्पडुवु।

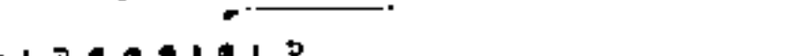
इंतधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळ प्रथमसमयानुकृष्टि प्रथमखंड सर्व्वजघन्यमक्कु ३९ चरमसमयपरिणामंगळनुकृष्टि चरमखंडं ५७ ("भ१") सर्व्वोत्कृष्टमक्कु इवेरडक्कमेल्लियुं सादृश्यमिल्ल। शेषोपरितनसमयवर्त्तिखंडंगळोडनेषु मेणुपरितनसमयवर्त्तिखंडंगळोडनेयुं यथासंभवमप्प सदृशतेयुंटदु। द्वितीयसमयं मोदल्गोंडु ४० द्विचरमसमय

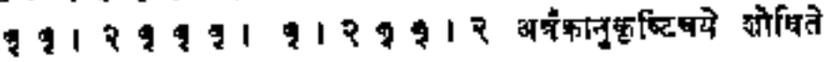




प्रथमखण्डे २१११।२१११।१।२१११।२ मुतेषु द्विचरमसमयानुकृष्टिचरमखण्डपरिणामपुञ्ज-

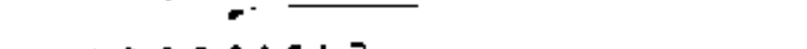
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज





प्रमाणं भवति २१११।२१११।१।२१३।२ अस्मिंकानुकृष्टिचये शोधिते तद्द्विचरमखण्ड-





परिणामपुञ्जो भवति २१३१।२१११।१।२११।२ एवमधःप्रवृत्तकरणकालद्विचरमसमयानुकृष्टयोऽनुकृष्टिपदमात्र्यश्चयाधिका ज्ञातव्याः।

एवमधःप्रवृत्तकरणपरिणामानां प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमसर्वजघन्यखण्डस्य ३९ चरमसमयपरिणामानां चरमानुकृष्टिसर्वोत्कृष्टखण्डस्य ५७ च कुत्रापि सादृश्यं नास्ति शेषोपरितनसमयवर्तिखण्डानामधस्तनसमयवर्तिखण्डैः अथवा अधस्तनसमयवर्तिखण्डानां उपरितनसमयवर्तिखण्डैः सह यथासंभवं सादृश्यमस्ति। द्वितीय-

द्विचरम समय सम्बन्धी अनुकृष्टि खण्ड अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण होते हैं। उन्हें क्रमसे एक-एक चय अधिक करके स्थापित करना चाहिए। इस तरह तिर्यक् रचनामें एक-एक समय सम्बन्धी खण्डोंमें परिणामोंका प्रमाण कहा।

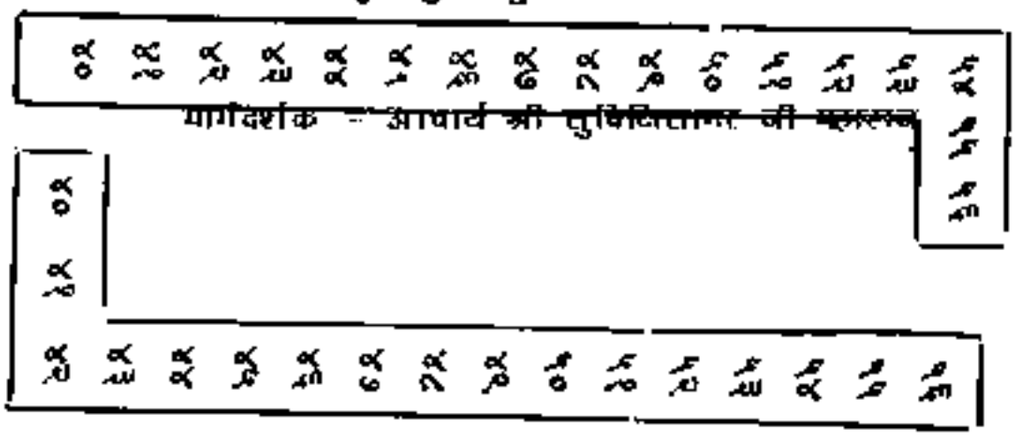
उक्त कथनका सारांश यह है कि पहले अधःकरणके एक-एक समयमें होनेवाले नाना जीवोंके परिणामोंका प्रमाण कहा था। अब उसमें होनेवाले एक-एक समय सम्बन्धी खण्डोंमें परिणामोंका प्रमाण कहा है। सो ऊपरके और नीचेके समय सम्बन्धी खण्डोंमें परस्परमें

१. मंगल सर्वोत्कृष्टानुकृष्टि खंड ५७ मिवेरडक्क।

२. ब ष्टिखण्डान्यान्यनुकृष्टिपदमात्रचयाधिकानि ज्ञातव्यानि।

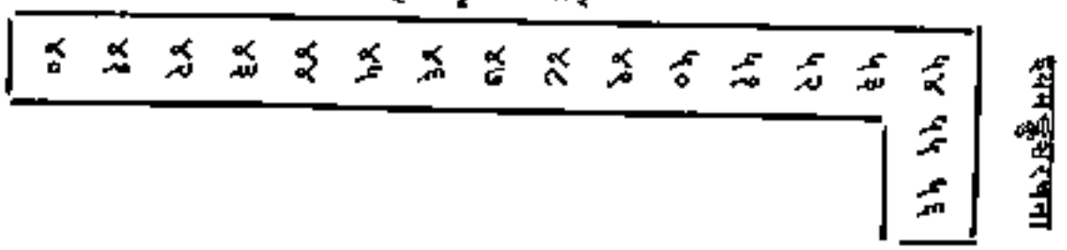
पर्य्यंतं ५३ प्रथमखंडंगळु चरमसमयवोळु द्विचरमखंडपर्य्यंतं खंडंगळु ५४। ५५। ५६। तंतम्मुपरितनसमयपरिणामंगळोडने सादृश्याभावमप्पुदरिंदं असदृशंगळु इवंकुशरचनेयक्कुं।

अहंगे द्वितीयसमयं मोदल्गोंडु ४३ द्विचरमसमय ५६ पर्य्यंतमावुकेलवु चरमखंडंगळु प्रथमसमय प्रथमखंड ३९ वर्ज्जितंगळु मावु केलवु खं—



मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

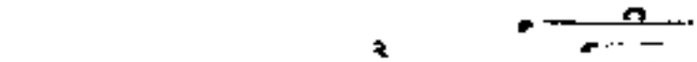
समयात् ४० द्विचरमसमयपर्यन्तं ५३ प्रथमप्रथमखण्डानि चरमसमयप्रथमखण्डात् द्विचरमसमयपर्यन्तखण्डानि च ५४। ५५। ५६। स्वस्वोपरितनसमयपरिणामैः सह सादृश्याभावात् असदृशानि। इयमङ्कुशरचनेत्युच्यते। तथा द्वितीयसमयात् ४३ द्विचरमसमय ५६ पर्यन्तं चरमचरमखण्डानि प्रथमसमयप्रथमखण्ड ३९ वर्जितशेषखण्डानि च स्वस्वाधस्तनसमयपरिणामैः सह सादृश्याभावाद्



समानता पायी जाती है। इसलिए अनुकृष्टि नाम दिया है। जितनी संख्याको लिये ऊपरके समयोंमें परिणाम खण्ड होते हैं, उतनी ही संख्याको लिये नीचेके समयोंमें भी परिणाम खण्ड होते हैं। इस तरह नीचेके समय सम्बन्धी परिणाम खण्डसे ऊपरके समय-सम्बन्धी परिणाम खण्डमें समानता देखकर इसका नाम अधःप्रवृत्तकरण कहा है।

विशेष बात यह है कि प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिका प्रथम खण्ड सबसे जघन्य खण्ड है। क्योंकि अन्य सब खण्डोंसे इसकी संख्या कम है। और अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम अनुकृष्टि खण्ड सबसे उत्कृष्ट है; क्योंकि इसकी संख्या सबसे अधिक है। सो इन दोनोंकी अन्य खण्डोंसे कहीं भी समानता नहीं है। इन दोनोंके सिवाय शेष ऊपर समय सम्बन्धी खण्डोंकी नीचेके समय सम्बन्धी खण्डोंके साथ अथवा नीचेके समय-सम्बन्धी खण्डोंकी ऊपर समय सम्बन्धी खण्डोंके साथ समानता है। उनमें द्वितीय समयसे लेकर द्विचरम समय पर्यन्त समयोंका पहला-पहला खण्ड और अन्तिम समयका प्रथम खण्डसे लेकर द्विचरम पर्यन्त खण्ड अपने-अपने ऊपरके समय सम्बन्धी खण्डोंके समान नहीं हैं अर्थात् उनमें समानता नहीं है। सो द्वितीयादि द्विचरम समय पर्यन्त सम्बन्धी खण्डोंकी ऊर्ध्वरचना करनेपर और ऊपर अन्त समयके प्रथमादि द्विचरम पर्यन्त खण्डोंकी तिर्यक् रचना करनेपर अंकुशके आकार रचना होती है—

डंगळ मवेल्लवं तंतंमप्पत्तनसमयपरिणामंगळोडने सादृश्याभावदत्तणिवं विशदृशंगळु । इदु लांगल-रचनेयल्लियधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळोळु प्रथमसमयपरिणामखंडंगळोळगे प्रथमखंडपरिणा-



≡ a । २ १ १ १ । १ । २

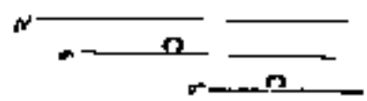
मंगळु असंख्यातलोकमात्रंगळु २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । १ । २ १ १ । २ इवनपवर्त्तसिसिदोडे

≡ a

संख्यातप्रतरावलिभाजितासंख्यातलोकमात्रमक्कु । ४ । १ मिवु जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नंगळ-

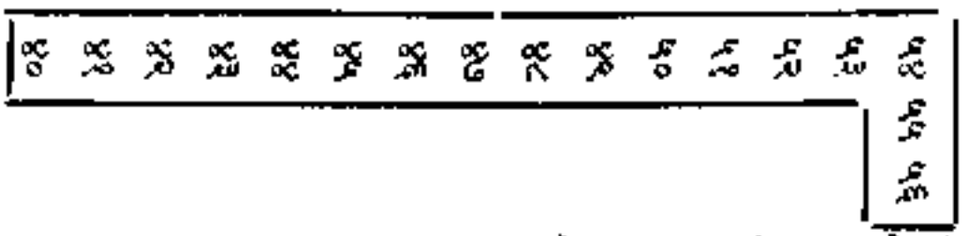
---

विसदृशानि इयं लांगलरचनेत्युच्यते । तत्राधःप्रवृत्तकरणपरिणामेषु प्रथमसमयपरिणामखण्डानां मध्ये प्रथमखण्ड-परिणामा असंख्यातलोकमात्राः—

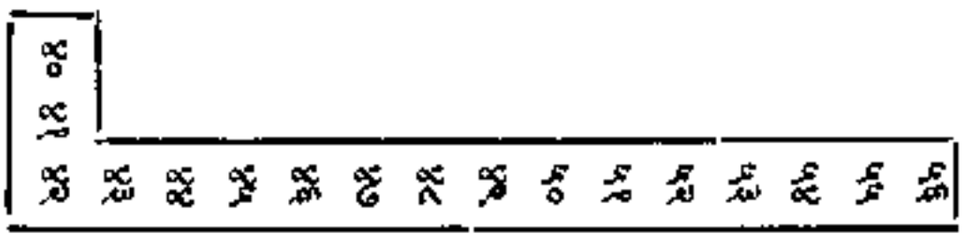


≡a । २ १ १ १ । १ । २

२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २ अपवर्तितास्तदा संख्यातप्रतरावलिभक्ताऽसंख्यातलोकमात्रा



इसलिए इसको अंकुश रचना कहते हैं। तथा दूसरे समयसे लेकर द्विचरम समय पर्यन्त सम्बन्धी अन्तिम-अन्तिम खण्ड और प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके बिना अन्य सर्व खण्ड अपने-अपने नीचेके समय सम्बन्धी किसी भी खण्डसे समानता नहीं रखते। सो यहाँ द्वितीयादि द्विचरम पर्यन्त समय सम्बन्धी अन्त-अन्त खण्डोंकी ऊर्ध्व रचना करनेपर और नीचे प्रथम समयके द्वितीयादि अन्त पर्यन्त खण्डोंकी तिर्यक् रचना करनेपर हलके आकार रचना होती है।



अधःप्रवृत्तकरणकी लांगल रचना

इसलिए इसको लांगल रचना कहते हैं।

अब विशुद्धताके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा वर्णन करते हैं। जिसका दूसरा भाग न हो सके,ऐसे शक्तिके अंशका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है। उनकी अपेक्षा गणना करके पूर्वोक्त अधःकरणके खण्डोंमें अल्पबहुत्वका वर्णन करते हैं। अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंमें प्रथम समय सम्बन्धी परिणामोंके खण्डोंमें प्रथम खण्डके परिणाम सामान्यसे असंख्यात लोक मात्र हैं,तथापि पूर्वोक्त विधानके अनुसार स्थापित भाज्य भाग हारका अपवर्तन करने-पर संख्यात प्रतरावलीसे भाजित असंख्यात लोक मात्र हैं। ये परिणाम अविभाग प्रतिच्छेदों-

प्पिनितु परिणामंगळ रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैकभागघनराशियं[1] रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैक-
१।१।१।१।१
भागवर्गराशियिं गुणिसिदिनितु परिणामव्यक्तिगळ्गे १-१-१-१-१ यो[2] बु षट्स्थानवारं पडेयल्प-
२।२।२।२।२
a a a a a
= a ५
डुत्तिरलु मागलिनितु परिणामंगळ्गे ४।१ इनितु षट्स्थानवारंगळक्कुमेंबिवननुपातत्रैराशिक-
विधानदिदं बंद लब्ध षट्स्थानवारंगळक्कु = a मितप्पसंख्यातलोकवारषट्स्थानपतित वृद्धि-
४।१ १ १ १ १ १
२।२।२।२।२
a a a a a १०
यिवं वर्द्धमानंगळ्[3] प्रथमसमयप्रथमखंडपरिणामंगळ संख्यातलोकमात्रंगळवे द्वितीयसमयदोळु

भवन्ति = a अमी च परिणामा [illegible] य घनगुणित-
४।१
२।२।२।२।२। = a
तद्वर्गमात्रैपरिणामव्यक्तीनां a a a a a यद्येकषट्स्थानवारो लभ्यते तदैतावतां परिणामानां ४।१ १५
कियन्तः षट्स्थानवारा लभ्यन्ते इति त्रैराशिकलब्ध = a असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगतवृद्धया
४।१।२।२।२।२।२
a a a a a

की अपेक्षा जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदको लिये हुए हैं। एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका घन करके उसके ही वर्गका गुणा करनेसे जो प्रमाण होता है, उतने परिणामोंमें यदि २०
एक बार षट्स्थान होता है तो संख्यात प्रतरावलीसे भक्त असंख्यात लोकप्रमाण प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके परिणामोंमें कितनी बार षट्स्थान होगा? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्राप्त हुए असंख्यात लोकबार षट्स्थानोंको प्राप्त विशुद्धताकी वृद्धिसे वर्धमान हैं।

इस कथनका आशय ऐसा है कि आगे ज्ञानमार्गणामें पर्याय समास श्रुतज्ञानका वर्णन करते हुए जैसे अनन्त भागवृद्धि आदि षट्स्थान पतित वृद्धिका कथन करेंगे, उसी प्रकार यहाँ २५
अधःप्रवृत्तकरण सम्बन्धी विशुद्धतारूप कषाय परिणामोंमें भी क्रमसे अनन्त भाग, असंख्यात भाग, संख्यातभाग, संख्यात गुण, असंख्यात गुण, अनन्त गुण वृद्धिरूप षट्स्थान पतित वृद्धि होती है। उस अनुक्रमके अनुसार एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके घनको उसीके वर्गसे गुणा करो अर्थात् एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको पाँच जगह रखकर परस्परमें गुणा करो, जो प्रमाण आवे उतने विशुद्धि परिणामोंमें एक बार षट्स्थान ३०
पतित वृद्धि होती है। इस तरह क्रमसे प्रथम परिणामसे लेकर इतने-इतने परिणाम होनेके पश्चात् एक-एक बार षट्स्थान वृद्धि पूर्ण होते असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थान पतित वृद्धि होनेपर उस प्रथम खण्डके सब परिणामोंकी संख्या पूर्ण होती है। अतः असंख्यात

---

१. म राशियं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्ररूपाधिक-सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणितपरिणाम। २. म गलचयाधिकंगळु प्र.। ३. ब °भिक्षा। ४. ब °मात्रास्य यं। ३५

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यथासंभवविशुद्धिवृद्धियिंद वर्द्धमानगळप्पयाधिकंगळु = ० जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पंगळप्पेरगे ४।१

पेळ्दंत संख्यातलोकवार षट्स्थानपतित वृद्धिकंगळु द्वितीयसमयप्रथमखंड परिणामंगळप्पवु ।

[1]इंती प्रकारदिंदं प्रथमादिसमयंगळोळु द्वितीयादिखंड परिणामंगळु चयाधिकंगळु मोळवयर विशुध्यल्पबहुत्वमिंतु पेळल्पडुगुमदें तेने :—

प्रथमसमयदोळु प्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धि सर्व्वतः स्तोकमागियुं जीवराश्यनंतगुणाविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मिकेयक्कु १६ । ख । मत्तं नोडल्लदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियुमनंतगुणमत्तं नोडळ्द्वितीयखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडल्लदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमिंतु तृतीयादिखंडंगळोळु जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळु मनंतगुणितक्रमदिंदं चरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्य्यंतं प्रवर्त्तिसुवु । मत्तं प्रथमसमयप्रथमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियं नोडलु द्वितीयसमयप्रथमखंडमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणं तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियदं नोडल-

---

धिताः संति । तथा-द्वितीयसमयप्रथमखण्डपरिणामाश्चयाधिका जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाः प्राग्वदसंख्यातलोकषट्स्थानवृद्धिबंधिताः संति । एवं तृतीयसमयादिचरमसमयपर्यन्तं चयाधिकाः प्रथमखण्डपरिणामाः संति तथा प्रथमादिसमयेषु द्वितीयादिखण्डपरिणामाः अपि चयाधिकाः संति ।

अथ तेषां विशुद्धयल्पबहुत्वमुच्यते तद्यथा--प्रथमसमयप्रथमखण्ड ३९ जघन्यपरिणामविशुद्धिः सर्वतः स्तोकापि जीवराशितोऽनन्तगुणाविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मिका भवति १६ ख । अत ३९ स्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । एवं तृतीयादिखण्डेष्वपि जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तगुणाः अनन्तगुणाश्चरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्तं वर्तन्ते । पुनः प्रथमसमयप्रथमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धितो द्वितीयसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धि-

---

लोकमात्र षट्स्थान पतित वृद्धिसे वर्धमान प्रथमखण्डके परिणाम हैं। इसी तरह द्वितीय समयके प्रथम खण्डके परिणाम अनुकृष्टिचय अधिक हैं। वे जघन्य,मध्यम,उत्कृष्ट भेदको लिये हुए हैं। सो ये भी पूर्वोक्त प्रकार असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान पतित-वृद्धिसे वर्धमान हैं।

उक्त कथनका आशय यह है कि एक अधिक सूच्यंगुलके घनको एक अधिक सूच्यंगुल के वर्गसे गुणा करनेपर जो संख्या आवे,उतने परिणामोंमें यदि एक बार षट्स्थान वृद्धि होती है,तो अनुकृष्टि चय प्रमाण परिणामोंमें कितनी बार षट्स्थान वृद्धि होगी,ऐसा त्रैराशिक करनेपर जितना प्राप्त हो,उतनी बार अधिक षट्स्थान पतित वृद्धि प्रथम समयके प्रथम खण्डसे द्वितीय समयके प्रथम खण्डमें होती है। इसी प्रकार तृतीयसे लेकर अन्त पर्यन्त समयोंके प्रथम खण्डके परिणाम एक-एक अनुकृष्टिचय अधिक हैं। इसी तरह प्रथमादि समयोंके अपने-अपने प्रथम खण्डसे द्वितीय आदि खण्डोंके परिणाम भी क्रमसे एक-एक चय अधिक हैं। उनमें यथासम्भव षट्स्थान पतित वृद्धि जितनी बार हो,उसका प्रमाण जानना।

अब उन खण्डोंमें विशुद्धताके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा अल्प-बहुत्व कहते हैं—प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डके जघन्य परिणामकी विशुद्धता अन्य सबसे अल्प है; तथापि जीवराशिका जो प्रमाण है,उससे अनन्त गुणे अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको लिये हुए है। इससे उसी प्रथम समयके प्रथम खण्डके उत्कृष्ट परिणामकी विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे द्वितीय खण्डके जघन्य परिणामकी विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे उसीके

---

१. म °वु। इंतु चरमपर्यंत चयाधिकंगळु प्रथमखंड परिणाममंगळप्पुवु विंती° । २. ब °मर्थद्दि° ।

नंतगुणमदं नोडला द्वितीयखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलदरुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमिंतु तृतीयादिखंडंगळोळु जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळुमनंतगुणितक्रमदिंदं द्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्य्यंतं नडेवंतिती मार्गदिंदं तृतीयादिसमयंगळोळं निर्व्वर्गणकांडक द्विचरमसमयपर्य्यंतं जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणक्रमदिंदं नडसल्पडुवुदु । मार्गणा: प्रवाहरूपेण श्री गुणधराचार्य श्री यतिवृषभाचार्य श्री भूतबलि महाराज

निर्व्वर्गणाकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियं नोडलु प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्ट परिणामविशुद्धियनंतगुणमल्लिदत्तलु द्वितीयनिर्व्वर्गणाकांडक प्रथमसमय प्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलतप्रथमनिर्व्वर्गणाकांडकद्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलु द्वितीयनिर्व्वर्गणाकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलु प्रथमनिर्व्वर्गणकांडकतृतीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमितहितगतियिंदं जघन्यविंदमुत्कृष्टमुत्कृष्टदिंदं जघन्यमितनंतगुणितक्रमदिंदं परिणामविशुद्धिगळनडेदु चरमनिर्व्वर्गणाकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धियनंतानंतगुणमेकंवोडे पूर्व्वपूर्व्वविशुद्धिगळत्तणिंबमनंतानंतगुणितत्वसिद्धमप्पुदरिंदमदं नोडलु चरमनिर्व्वर्गणकांडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलल्लिंद मेले चरमनिर्व्वर्गणकांडकद्वितीयसमय-

---

रनन्तगुणा । ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा ततस्तदुत्कृष्ट ४१ परिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । एवं तृतीयादिखण्डेष्वपि जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तगुणितक्रमेण द्वितीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्तं गच्छन्ति । अनेन मार्गेण तृतीयादिसमयेष्वपि निर्वर्गणकाण्डकद्विचरमसमयपर्यन्तं जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तगुणितक्रमेण नेतव्याः । निर्वर्गणकाण्डककचरमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धितः प्रथमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयनिर्वर्गणाकाण्डकप्रथमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततस्तत्प्रथमनिर्वर्गणकाण्डकद्वितीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयनिर्वर्गणकाण्डकद्वितीयसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततः प्रथमनिर्वर्गणकाण्डकतृतीयसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा

उत्कृष्ट परिणामकी विशुद्धता अनन्तगुनी है। इसी तरह क्रमसे तृतीय आदि खण्डोंमें भी जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंकी विशुद्धता अनन्तगुणी अनन्तगुणी अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त होती है। तथा प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतासे द्वितीय समयके प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे उसीकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे द्वितीय खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे उसकी ही उत्कृष्ट विशुद्धता अनन्तगुनी है। इस प्रकार तृतीय आदि खण्डोंमें भी जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनुक्रमसे द्वितीय समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतापर्यन्त अनन्तगुणी प्राप्त होती है। इसी तरहसे तृतीय आदि समयके खण्डोंमें भी निर्वर्गणकाण्डके द्विचरम समय पर्यन्त जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनुक्रमसे अनन्तगुणी लाना चाहिए। तथा निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धतासे प्रथम समयके अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनन्तगुणी है। उससे दूसरे निर्वर्गणकाण्डकके प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे उस प्रथम निर्वर्गणकाण्डकके द्वितीय समय सम्बन्धी अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे द्वितीय निर्वर्गण काण्डकके द्वितीय समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे प्रथम निर्वर्गणकाण्डकके तृतीय समय सम्बन्धी उत्कृष्ट

चरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिमोदल्गोंडु तत्काण्डकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धि - पर्य्यंतमोदुत्कृष्टखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळनंतानंतगुणितंगळागि नडेवचर मध्यदोळु जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धिगळनंतानंतगुणितंगळ विवक्षितंगळेंदरिवुदु। इंतप्प विशुद्धि विशुद्धि-विशिष्टाधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळोळु गुणश्रेणिनिर्ज्जरेयुं गुणसंक्रमणमुं स्थितिकांडकोत्करणमुं अनुभागकांडकोत्करणमुमेंबी नाल्कावश्यकंगळसंभविसवेकेंदोडे तत्परिणामंगळिंगतप्प कार्य्यंकरण-सामर्थ्यसंभवाऽभावमप्पुदरिंदं केवलं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियु स्थितिबंधापसरणमुं साता-दिप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणानुभागवृद्धियिदं चतुस्थानबंधमुमसाताद्यप्रशस्तप्रकृति-गळगे प्रतिसमयमनंतगुणहानियिंदं निंबकांजीरसदृशद्विस्थानानुभागबंधमुमेंबी नाल्कावश्यकंग-ळोळ्दु इदुक्तार्थोपसंहारोपयोगीरचने मत्तमिंतिल्ल

एक जी. एक काल परिणाम	एक जी. नाना का. परिणाम	ना। जी एक का.	ना। जी ना। का
१	२१११	१०८	८०

ई रचनाभिप्रायमुं सुगममक्कुमेंतेनें एकजीवमेकालमेंबिवु विवक्षिताधःप्रवृत्तकरणपरिणामपरिणतैक-जीवक्के परमार्थवृत्तियिंदं कालमेकसमयमेयक्कुं। एकजीव नानाकालमेंबुदु अधःप्रवृत्तकरण-कालांतर्मुहूर्त्ताऽसंख्यातसमयंगळनुक्रमविदमेकजीवनिंदं पोद्दंत्पडुवप्पुदरिंदमिंतिन्ते समयं-

---

एवमधिगत्या जघन्यादुत्कृष्टं उत्कृष्टाज्जघन्यमित्यनन्तगुणितक्रमेण परिणामविशुद्धीर्नीत्वा चरमनिर्वर्गणकाण्डक-चरमसमयप्रथमखण्डजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तानन्तगुणा। कुतः ? पूर्वपूर्वविशुद्धितोऽनन्तानन्तगुणत्वस्य सिद्धत्वात्। ततश्चरमनिर्वर्गणकाण्डकप्रथमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा। ततस्तदुपरि चरम-निर्वर्गणकाण्डकचरमसमयचरमखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्ता उत्कृष्टखण्डोत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तानन्त-गुणितक्रमेण गच्छन्ति। तन्मध्ये या जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनन्तानन्तगुणिताः सन्ति ता न विवक्षिता इति ज्ञातव्यम्। एवंविधविशुद्धिविशिष्टाधःप्रवृत्तकरणपरिणामेषु गुणश्रेणिनिर्जरा गुणसंक्रमणं स्थितिकाण्डकोत्करण-मनुभागकाण्डकोत्कीर्णनमिति चत्वारि आवश्यकानि न संभवन्ति तत्परिणामानां तादृशकार्यकरणसामर्थ्याभावात्।

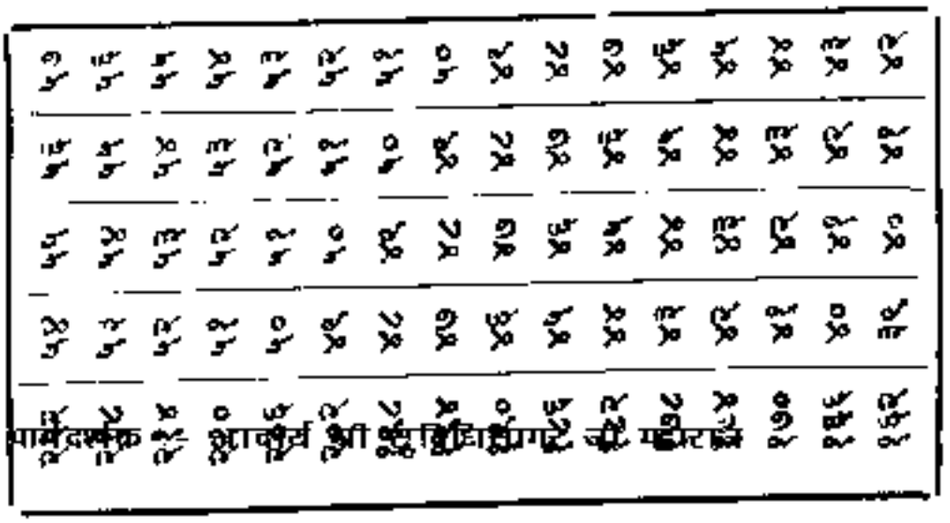
खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धता अनन्तगुणी है। इस तरह जैसे सर्पकी चाल इधरसे उधर, उधरसे इधर पलटती हुई होती है, वैसे ही जघन्यसे उत्कृष्ट और उत्कृष्टसे जघन्य इस तरह अनन्त गुणी विशुद्धता क्रमसे प्राप्त करना। पीछे अन्तके निर्वर्गणाकाण्डकके अन्त समय सम्बन्धी प्रथम खण्डकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनन्तानन्तगुणी है। क्योंकि पूर्व-पूर्व विशुद्धतासे अनन्तानन्तगुणापना सिद्ध है। उससे अन्तके निर्वर्गणा काण्डकके प्रथम समय सम्बन्धी उत्कृष्ट खण्डकी परिणामविशुद्धता अनन्तगुनी है। उससे उसके ऊपर अन्तके निर्वर्गण-काण्डकके अन्त समय सम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यन्त उत्कृष्ट खण्डकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनुक्रमसे अनन्तानन्तगुणी प्राप्त होती है। उनमें जो जघन्यसे उत्कृष्ट परिणामोंकी विशुद्धता अनन्तानन्त गुणी है, उनकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

इस प्रकार विशेष विशुद्धताको लिये हुए अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंमें गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिकाण्डकोत्करण, अनुभागकाण्डकोत्करण ये चार आवश्यक नहीं होते हैं, क्योंकि उन परिणामोंमें गुणश्रेणी निर्जरा आदि करनेकी शक्तिका अभाव है। उनमें केवल प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय अनन्तगुणी अनन्तगुणी विशुद्धताकी वृद्धि होती

गळप्पुवु २१११ नानाजीवमेककालमेंबुदु विवक्षितैकसमयदोळधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यात-समयंगळोळे यथासंभवमागि नूरेंटुसमयस्थानकंगळोळु संग्रहमाद जीवंगळ विवक्षेयिंदमेककाल-मेंबुदु १०८ समयंगळरियल्पडुवुवु ।

नानाजीवं नानाकालमेंबुदु अधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळ संख्यातलोकमात्रंगळु :—

अंकसंदृष्ट्यपेक्षयाऽधःकरणरचना ।



किन्तु केवलं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धिः स्थितिबन्धापसरणं सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुण-वृद्धया चतुःस्थानानुभागबन्ध-असातादिअप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुणहान्या निम्बकाञ्जीरसदृशद्विस्थानानु-भागबन्धश्चेति चत्वार्यावश्यकानि संभवन्ति । एतदुक्तार्थोपयोगिनी रचना लिख्यते—

है । स्थितिबन्धापसरण होता है अर्थात् पहले जिस परिमाणको लेकर कर्मोंका स्थितिबन्ध होता था, उससे घटता-घटता स्थितिबन्ध होता है। तथा सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका प्रतिसमय अनन्तगुणा अनन्तगुणा बढ़ता हुआ गुड़, खाँड़, शर्करा अमृतके समान चतुःस्थान लिये अनुभागबन्ध होता है। तथा असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका प्रतिसमय अनन्तगुणा अनन्तगुणा घटता हुआ नीम और काञ्जीर केवल द्विस्थान लिये अनुभागबन्ध होता है, विष और हालाहलरूप नहीं होता। अब उक्त कथनको अंक संदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं—

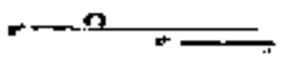
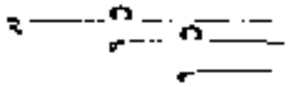
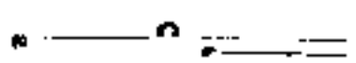
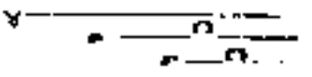
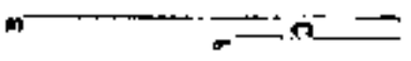
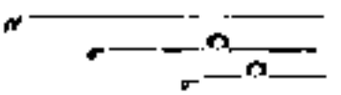
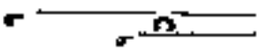
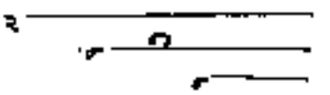
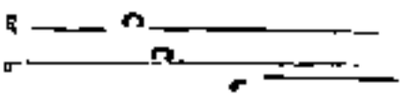
अंक संदृष्टि अपेक्षा अधःकरण रचना



[अर्थसंदृष्टयपेक्षयाऽधःकरणरचना संस्कृतटीकायां द्रष्टव्या]

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

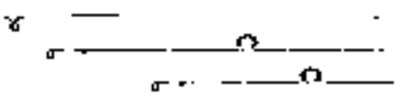
अर्थसंदृष्टयपेक्षयाऽधःकरणरचना ।

चरमसमयपरिणामपुञ्जः  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१२	द्विचरमसमयपरिणामप्रथमखण्डं  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२१।२
द्विचरमसमयपरिणामपुञ्जः  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२	द्वितीयसमयपरिणामप्रथमखण्डं  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२१।२
द्वितीयसमयपरिणामपुञ्जः  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२	प्रथमसमयपरिणामप्रथमखण्डं  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२१।२
प्रथमसमयपरिणामपुञ्जः  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२	चरमसमयद्वितीयखण्डं।  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२१।२
चरमसमयपरिणामप्रथमखण्डं  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२१।२	द्विचरमसमयद्विचरमखण्डं  ८।२१११।१।२ २१११।२१११।१।२१।१

ऊपर टीकामें अर्थसंदृष्टिकी अपेक्षा जो रचना है उसके नीचे ए. जी. आदि संदृष्टि है। उसका यह अभिप्राय है—'एक जीव एक काल' ऐसा कहनेपर विवक्षित अधःप्रवृत्त-

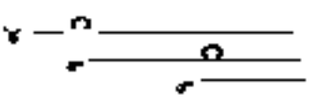
त्रिकालगोचरंगळु नानाजीवसंबंधिगळु पुनरुक्तरूपंगळं वं नानाजीवंगळु नानाकालदोळु पोदुदुंगुमेंबी विवक्षेयिंदं नानाकालमसंख्यातलोकमात्रसमयंगळे अप्पुवेंदरिवुदु ।

प्रथमसमयद्वितीयखण्डं



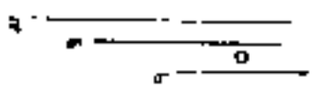
≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्विचरमसमयचरमखण्डं



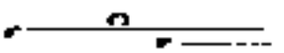
≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्वितीयसमयचरमखण्डं



≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

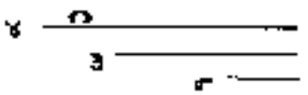
द्विचरमसमयद्वितीयखण्डं



≡a २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

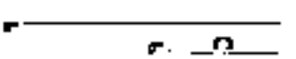
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चरमसमयद्विचरमखण्डं



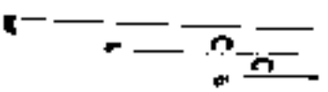
≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्वितीयसमयद्विचरमखण्डं



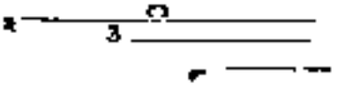
≡≡≡≡≡≡≡a २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

द्वितीयसमयद्वितीयखण्डं



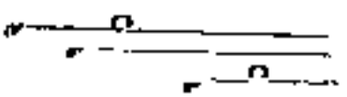
≡≡≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

चरमसमयचरमखण्डं



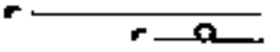
≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

प्रथमसमयद्विचरमखण्डं



≡a २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

प्रथमसमयचरमखण्डं



≡≡≡≡≡a। २१११। १। २
२१११। २१११। १। २१११। २

करणके परिणामरूप परिणत एक जीवका परमार्थवृत्तिसे काल एक समय मात्र ही है। 'एक जीव नाना काल' ऐसा कहनेपर अधःप्रवृत्तकरणका नाना काल अन्तर्मुहूर्तके जितने समय उतना है। क्योंकि एक जीव उनपर क्रमसे आरोहण करता है, इसलिए एक जीवका नाना काल अन्तर्मुहूर्तके समय जितना है। 'नाना जीव एक काल' ऐसा कहनेपर विवक्षित एक

मत्तमधःप्रवृत्तकरणकालदोळु संभविसुवसमस्तपरिणामंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळि = a वक्कंकसंदृष्टि ३०७२ इल्लि प्रथमादिसमयंगळोळु विन्यस्तविशुद्धिकषायपरिणामंगळे प्रमाणावधारणहेतुभूतसूत्रंगळगे गोपाळिकेयिंदं बीजगणितविन्यासमं पेळल्पडुगुमेकेंदोडे पूर्व्वोक्तार्थसंवेहाभावमक्कुमप्पुदरिंदं इल्लिअधःप्रवृत्तकरणकालं संख्यातावलिसमयमात्रांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमवनुमनिवृत्यपूर्व्वकरणकालंगळं नोडलु संख्यातगुणितमितुटक्कु (२१२१) मिवक्के अंकसंदृष्टि १६ अनुकृष्टिपदमिदं नोडलु संख्यातगुणहीनमप्पंतर्म्मुहूर्त्तसमयंगळ प्रमाणमेनिक्कु २१२१ मिवक्के संदृष्टि ४ संख्यातक्कुं संदृष्टि ३ अनेवरमंकसंदृष्टि = ५ इवर तात्पर्य्यमेनेंदोडे अधःप्रवृत्तकरण असंख्यातसमयंगळोळो वानों बु समयदोळु केलवु जीवंगळु वर्त्तिसुत्तिरला समयदोळे केलवु जीवंगळधःप्रवृत्तमं प्रारंभिसुवुदं कूर्त्ता समयं प्रथमं पितणसमयदोळप्रारंभिसिदवं कूर्त्तु द्वितीयंगळवरिं पितणसमयजीवंगळं कूर्त्तु तृतीयं। पितु पितण पितण विवक्षेयिं चतुर्थपंचमादिकवेनिकोंडु नूरेंटनेय पितण समयद जीवंगळ कूर्त्तु नूरेंटनेयदावोडं अधःप्रवृत्तमं कूर्त्तु नूरेंटुसमयंगळेनिसिकोडिल्ल इंतु नूरेंटादोडं संग्रहनयविवक्षितैकसमयमें

ए, जी ए, जी ना, जी ना, जी

मार्गदर्शक ना आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१५ १ २१२१ १०८ =a

तथास्यायमभिप्रायः—एकजीव एककाल इत्युक्ते विवक्षिताधःप्रवृत्तकरणपरिणामपरिणतैकजीवस्य परमार्थवृत्त्या कालः एकसमय एव भवति। एकजीवनानाकाल इत्युक्तेऽधःप्रवृत्तकरणनानाकालान्तर्मुहूर्तमात्रसमयाः क्रमेणैकजीवेनारुह्यन्ते इति तावन्त एव समयाः स्युः २१२१। नानाजीवैककाल इत्युक्ते विवक्षितैकसमयेऽधःप्रवृत्तकरणकालासंख्यातसमयेष्वपि यथासंभवमष्टोत्तरशतसमयस्थाने संगृहीतजीवानां विवक्षयैककाल इत्यष्टोत्तरशतसमया ज्ञातव्याः। नानाजीवनानाकाल इत्युक्ते अधःप्रवृत्तकरणपरिणामा असंख्यातलोकमात्रास्त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्धिनः अपुनरुक्तरूपाः सन् नानाजीवा नानाकाले समाश्रयन्तीति विवक्षया नानाकालोऽसंख्यातलोकमात्रसमया एव भवन्तीति ज्ञातव्यं। अथाधःप्रवृत्तकरणकाले प्रथमादिसमयविन्यस्तविशुद्धकषाय-

---

समयकी अपेक्षा यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणका काल असंख्यात समय है तथापि उनमें यथा सम्भव एक सौ आठ समय रूप स्थानोंमें संगृहीत जीवोंका विवक्षित एक काल होनेसे नाना जीवोंका एक काल एक सौ आठ समय जानना। क्योंकि वर्तमान किसी एक समयमें जो अनेक जीव हैं, वे अधःकरणके प्रथम, दूसरा, तीसरा आदि असंख्यात समयोंमें यथासम्भव एक सौ आठ समयमें ही होते हैं। 'नाना जीव नाना काल' ऐसा कहनेपर अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोक मात्र कहे हैं। वे त्रिकालवर्ती नाना जीवोंके होनेवाले अपुनरुक्त परिणाम हैं। वे परिणाम नाना जीवोंके नाना कालमें होते हैं। सो एक-एक परिणामका एक-एक समयकी विवक्षासे नाना जीवोंका नाना काल असंख्यात लोकमात्र समय प्रमाण ही होता है ऐसा जानना।

अब अधःप्रवृत्तकरणके कालके प्रथम आदि समयोंमें स्थापित विशुद्धता रूप कषाय

---

१. ब शतमात्राणां ष°। २. विवक्षिते—मु.।

नूरेंभत्तनेयदु । नूरहत्तनेयंबितु नानापरियादोडं इल्लि नूरेंटे विवक्षितंगळ् । विवक्षितसमयं पेंतण समयद जोवंगळोळे केलकेलवं कूर्त्तु नूरेंटनेयदु अयिनूरनेयदु साविरवनेयदु संख्यातवदु । असंख्यातवदु एनाबरु नूरेंटेयाद कारणं यथासंभवविशेषणं = योलु पदकदिं संखेण १६ । १६ । ३ । भाजिदे पदधणं ३०७२ भागिसि बंद लब्धं प्रचयं ४ चयधणहीणं दव्वं पद भजिदे होदि आदि परिमाण
१६।१६।३

मेंदु चयधनमिदु ४८० इदरिंदं हीनद्रव्यमिदुमप्पुदरिंदं इदं अन्यत्रविदं १६ सा[illegible]मुसिरल्लि प्रक्षेपिसुव ५
१६

लब्धराशियादिप्रमाणमिदु १६२ । आदिम्मि चये ४ उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणमेंदु आदियिंदं मेलण द्वितीयादि समयंगळोळ् चरमसमयपर्य्यंतं क्रमदिंदं चयं वर्द्धमानमागुत्तिरल्लु भावंगळगे प्रतिसमय धनप्रमाणमक्कुमेंबिल्लि चयधनानयनविधानसूत्रं व्येकपद १६ अर्द्ध १५ घ्नचय १५।४ गुणोगच्छ १५।४।१६ उत्तरधनमेंबिल्लि गोपालिकेयिंदं बीजगणितमरियल्पडुगुं । एकेन विगतं व्येकंपदमेंबिल्लि प्रथमस्य वृद्धिर्हानिर्वा नास्ति यें[illegible]दु प्रथमसमयदोळु वृद्धिरहितमप्पुदरिंदं १०

परिणामेषु प्रमाणावधारणहेतुभूतसूत्राणां गोपालिकया बीजगणितविन्यासः क्रियते पूर्वोक्तेऽर्थे संशयाभावात् ।

व्येकपद १६ अर्ध १५ घ्नचय (१५ ४) गुणो गच्छः (१५ ४ १६) उत्तरधनमित्यत्र व्येकपद इत्यनेन प्रथमस्य वृद्धिर्वा हानिर्वा नास्तीति चरमसमये रूपोनगच्छमात्रचयाः सन्तीति तत्संख्योक्ता । अर्ध इत्यनेन चरमसमयस्य सार्धसप्तचयेषु प्रथमसमयस्थाने रचितेषु तदधस्तनसार्धषट्चयेषु द्वितीयसमयस्थाने एकचयस्याग्रे रचितेषु तदधस्तनसार्धपञ्चचयेषु तृतीयसमयस्थाने द्विचयस्याग्रे रचितेषु उपरितनचतुर्थादिसमयगतसार्धचतुश्च- १५

परिणामोंके प्रमाणके अवधारणमें कारणभूत सूत्रोंका गोपालिका विधानके द्वारा बीजगणितकी स्थापना कर कहते हैं;क्योंकि पूर्वोक्त करण सूत्रोंके अर्थमें संशयका अभाव है । 'व्येकपदार्धघ्न-चयगुणो गच्छ उत्तरधनम् ।' अर्थात् एक हीन पद १६ का आधा $\frac{१५}{२}$ को चयसे और गच्छसे गुणा करनेपर [$\frac{१५}{२} \times ४ \times १६$] उत्तर धन होता है । इस करणसूत्रकी वासना अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा कहते हैं । यहाँपर 'एक हीन पद', इससे किया कि प्रथमकी हानि वृद्धि नहीं होती । तथा अन्त समयमें एक कम गच्छ प्रमाण चय है । इसलिए व्येक पद-एक हीन गच्छ शब्दसे एक कम गच्छ प्रमाण चयकी संख्या कही । तथा 'अर्ध' शब्दसे अन्त समयके पन्द्रह चयोंमें-से साढ़े सात चय प्रथम समयके स्थानमें रखे,तब दोनों जगह साढ़े सात साढ़े सात चय समान हुआ । इसी तरह उसके नीचे पन्द्रहवें समयके चौदह चयोंमें-से साढ़े छह चय द्वितीय समयके एक चयके आगे रचे। तब दोनों जगह साढ़े सात साढ़े-सात चय हुआ । उसके नीचे चौदहवें समयके तेरह चयोंमें-से साढ़े पाँच चय तीसरे समयके स्थानमें दो चयके आगे रचे । तब दोनों जगह साढ़े सात साढ़े-सात चय हुआ । इसी तरह ऊपरकी ओरसे चतुर्थ स्थान तेरहवें समयको आदि लेकर समयोंमेंसे साढ़े चार आदि चय लेकर नीचेसे चौथे समय आदि स्थानोंके तीन चय आदि चयके आगे रचनेपर सोलह स्थानोंमें समपाटीरूपसे साढ़े सात साढ़े-सात चय होते हैं । इनकी संदृष्टि इस प्रकार होती है । १०

	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४ ४ ४ ४
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४ ४ ४
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४ ४
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४ ४
५	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४ ४
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४ ४
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	२ ४
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१०	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
१५	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
	१६२	४ ४ ४ ४ ४ ४ ४ । २	
मार्गदर्शक	आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज		

यादिचयेषु चतुर्थादिसमयगतत्रिचयादीनामग्रे रचितेषु षोडशस्थानेषु समपट्टिकारूपेण सार्धसप्तसार्धसप्तचयाः कृता भवन्ति । संदृष्टिः—

सब स्थानों आदिका प्रमाण	सब स्थानोंमें समानरूप किये चयोंकी रचना। यहाँ चार-चार तो पूरे चयको और दो आधे चयको बतलाता है।	ऊपर समयवर्ती चयोंमें-से नीचेके समय सम्बन्धी स्थानोंमें स्थापित चयोंकी रचना
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
२५ १६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ । ४ ।
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	२ ।
३० १६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
३५ १६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	
१६२	४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । २	

द्वितीयसमयं मोदल्गोंडु चरम समय पर्य्यंतमेकाद्येकोत्तरचयवृद्धिक्रमदिंद चयंगळ्पेच्चिदवप्पुदरिंदं चरमसमयदोळु रूपोनगच्छमात्रचयंगळ्पेच्चिदवप्पुवदरिंदं चयंगळेळुवरियक्कुमदक्के त्रिराशिकमिदु वो वक्के १ नाल्कुरूपगळागलु ४ पदिनैदरिंद १५ वक्केनितु रूपुगळेंदु चयदि गुणियिसुत्तिरलु ३० बक्कुमिदं समपट्टिका = रूपदिं समीकरणनिमित्तं गुणोगच्छमेंबी त्रैराशिकमं प्र १ । फ ३० । इ १६ मनदोळिट्टु गुणिसल्पेळ्वरप्पुदरिंदं पदिनारु मूवत्तप्पुवदेंतेंने चरमसमयदेळुवरे चयंगळं प्रथम- ५ समयस्थानकदोळु रचियिसुवुदु तदधस्तनारुवरे चयंगळं तंदु द्वितीयसमयस्थानकदोळु रचियिसुवुदंतु रचियिसुत्तिरलु मुंनिनोंदु चयंसुमीगळिनारुवरे चयमं कूडियेळुवरे चयंगळक्कुं । तदधस्तन अय्दुवरे चयंगळं तंदु तृतीयसमयस्थानदोळु मुंनिनेरडु सहितमेळुवरे चयंगळक्कुमिंतुपरितन चतुर्थादिसमयगत नाल्कुवरे चयंगळ्मोदलाद चयंगळं तंदु चतुर्थादिसमयस्थानंगळोळु रचियिसुत्तिरल पदिनारेडेयोळं समपट्टिकारूपदिंद मेळवरेयेळवरे चयंगळप्पुवी कारणमागि । १० इंता त्रैराशिकदिंद बंदलब्धमं पेळ्दुत्तरधनमक्कुमितनूकृष्टियोळमंकसंदृष्टियिंदं पेळ्दुको ंडु अर्थसंदृष्टियोळमव्यामोहदिंदं तरल्पडुवुदु ।

इंतु प्रमत्तगुणस्थानव्याख्यानानंतरमपूर्वकरणगुणस्थानस्वरूपप्रतिपादनार्थमागि मुंदण- गाथासूत्रमं पेळ्दपरु ।

अर्थतत्त्रैराशिकलब्धं प्रागुक्तमुत्तरधनं भवति तथानुकृष्टावप्यङ्कसंदृष्ट्या प्ररूप्य अर्थसंदृष्टावव्यामोहेना- १५ नयेत् ॥४९॥ एवमप्रमत्तगुणस्थानं व्याख्याय अनन्तरमपूर्वकरणगुणस्थानमाह—

विशेषार्थ—यह अंक संदृष्टि 'व्येक पद' इत्यादि करण सूत्रकी वासना सूचित करनेके लिए है कि क्यों पदमें-से एक हीन किया और उसका आधा किया। प्रत्येक समयमें एक सौ बासठ परिणाम तो होते ही हैं, उनमें आगे आगे चार-चारकी वृद्धि होती है। पहलेमें वृद्धि होती नहीं है। दूसरे समयमें एक चय बढ़ता है, तीसरेमें दो चय बढ़ते हैं। इस तरह २० एक-एक चय बढ़ते-बढ़ते सोलहवेंमें पन्द्रह चयकी वृद्धि होती है। इस तरह प्रत्येक स्थानमें औसतन साढ़े सात चयकी वृद्धि होती है। यही औसत लानेके लिए ऊपरके जिन स्थानोंमें साढ़े सात चयसे जितने अधिक चयोंकी वृद्धि हुई है, उन्हें वहाँसे कम करके नीचेके स्थानोंमें दे देनेसे सर्वत्र साढ़े सात चय हो जाता है। जैसे अन्तके सोलहवें स्थानमें पन्द्रह चयोंकी वृद्धि होती है। अतः उनमें-से साढ़े सात चय उठाकर प्रथम समयके आगे रखना चाहिए, २५ क्योंकि प्रथम समयमें चयकी वृद्धि नहीं होती। पन्द्रहवें स्थानमें चौदह चयकी वृद्धि होती है, अतः उनमें-से साढ़े सात चय छोड़कर शेष साढ़े छह चय नीचे दूसरे स्थानके आगे रखना चाहिए। उसमें एक चयकी वृद्धि पहले होनेसे चयोंकी संख्या साढ़े सात हो जाती है।

इस तरह जब एक स्थानमें साढ़े सात चय तो सोलह स्थानोंमें कितने चय, इस प्रकार त्रैराशिक करने पर लब्धराशि ४८० सो पूर्वोक्त उत्तर धन है। इसी तरह अनुकृष्टिमें भी ३० अंकसंदृष्टिके द्वारा कथन करके अर्थसंदृष्टिमें भी यथार्थ रूपसे लाना चाहिए ॥४९॥

---

१. म पदिनैदेय्प्पुवरद्दंचयगलेलु वरेयक्कुमदक्के । २. म °यममी° । ३. म °प्पदे । ४. म लब्धमुपेक्षित्त° । ५. म °त्तुवं° ।

अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं ।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥५०॥

अंतर्मुहूर्त्तकालं गमयित्वाऽधः प्रवृत्तकरणं तं प्रतिसमयं शुद्धचलपूर्व्वकरणं समाश्रयति ॥ इंतंतर्म्मुहूर्त्तकालायाममप्प पेरगे पेळ्द लक्षणप्पधःप्रवृत्तकरणमं कळिपि विशुद्धसंयतनागि प्रतिसमयनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिंद वर्द्धमाननप्पपूर्व्वकरणं गुणस्थानमनवं समाश्रयिसुगुं ॥

एदम्मि गुणट्ठाणे विसरिससमयट्ठियेहि जीवेहि ।
पुव्वमपत्ता जम्हा होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥५१॥

एतस्मिन् गुणस्थाने विसदृशसमयस्थितैर्जीवैः पूर्व्वमप्राप्ताः यस्मादूर्ध्वंत्यपूर्व्वाः खलु परिणामाः ॥ ई अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु विसदृशंगळप्पुत्तरोत्तरसमयंगळोळं स्थितजीवंगळिंदं पूर्व्व-पूर्व्व समयंगळोळु पोहँद विशुद्धिपरिणामंगळे समाश्रयिसल्पट्टुवादुदों कारणादिमपूर्व्वाः करणाः परिणामा यस्मिंस्तदपूर्व्वकरणं गुणस्थानमेंदितु निरुक्तियिंदं लक्षणं पेळल्पट्टुदु ॥

भिण्णसमयट्ठिएहि दु जीवेहि ण होदि सव्वदा सरिसो ।
करणेहि एक्कसमयट्ठिएहि सरिसो विसरिसो य ॥५२॥

भिन्नसमयस्थितैर्जीवैर्न भवति सर्व्वदा सदृशः । करणैरेकसमयस्थितैस्सदृशो विसदृशश्च ॥

एवमन्तर्मुहूर्तकालायामं प्रागुक्तलक्षणमधःप्रवृत्तकरणे गमयित्वा विशुद्धसंयतो भूत्वा प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानः अपूर्वकरणगुणस्थानं समाश्रयति ॥५०॥

यस्मात् कारणात् एतस्मिन् अपूर्वकरणगुणस्थाने विसदृशेषु उत्तरोत्तरेषु समयेषु स्थितैर्जीवैः पूर्वपूर्वसमयेष्वप्राप्ता एव विशुद्धिपरिणामाः प्राप्यन्ते, तस्मात् कारणात् अपूर्वाः करणाः परिणामा यस्मिन् तदपूर्वकरणगुणस्थानमिति निरुक्त्या लक्षणमुक्तम् ॥५१॥

यथाधःप्रवृत्तकरणे भिन्नसमयस्थितानां जीवानां परिणामसंख्याविशुद्धिसादृश्यं संभवति तथाऽस्मिन्-

---

इस प्रकार अप्रमत्त गुणस्थानको कहकर अपूर्वकरण परिणाम पूर्वक अपूर्वकरण गुणस्थानको कहते हैं—इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण पूर्वोक्त लक्षणवाले अधःप्रवृत्तकरणको करके विशुद्ध संयमी होकर प्रतिसमय अनन्त गुणी विशुद्धिसे वर्धमान होता हुआ अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है ॥५०॥

जिस कारणसे इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें विसदृश अर्थात् असमान उत्तरोत्तर समयोंमें स्थित जीवोंके द्वारा जो पूर्व-पूर्व समयोंमें नहीं प्राप्त हुए ऐसे विशुद्ध परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। इस कारणसे जिसमें अपूर्व करण अर्थात् परिणाम हो, वह अपूर्वकरण गुणस्थान है। यह निरुक्ति द्वारा अपूर्वकरणका लक्षण कहा है ॥५१॥

जैसे अधःप्रवृत्तकरणमें भिन्न-भिन्न समयोंमें स्थित जीवोंके परिणामोंकी संख्या और विशुद्धिमें समानता पाई जाती है, उस प्रकार इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें सर्वदा किसी भी जीवके समानता नहीं पाई जाती। तथा एक समयमें स्थित करण अर्थात् परिणामोंके मध्यमें विवक्षित एक परिणामकी अपेक्षासे समानता और नाना परिणामोंकी अपेक्षा असमानता जीवोंके अधःप्रवृत्तकरणकी तरह यहाँ भी होती है। सो नियम नहीं है ऐसा जानना ॥५२॥

---

१. म °नमपू °।

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एंतधःप्रवृत्तकरणदोळु भिन्नसमयस्थितगळप्प केलवु जीवंगळगे परिणामसंख्याविशुद्धिसादृश्यं संभविसुगुं मंते ईयपूर्व्वकरण गुणस्थानदोळु सर्व्वकालदोळमो दु जीवक्कमप्पडं तत्सादृश्यं संभविसुदे इल्ल। एकसमयस्थितंगळप्प करणपरिणामंगळिंदं सादृश्यमुं वैसादृश्यमुमधःप्रवृत्तकरणदंते इल्लियं नियममिल्लदे संभवमुंटेंदरिवुदु ॥

अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढा पुव्वगुणे अणुकड्ढी णत्थि णियमेण ॥५३॥

अंतर्मुहूर्त्तमात्रे प्रतिसमयमसंख्यातलोकपरिणामाः । क्रमवृद्धा अपूर्व्वगुणे अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन ॥ अंतर्मुहूर्त्तमात्रमप्प अपूर्व्वकरणकालदोळु प्रतिसमयं क्रमदिंदमु चयदिंद पेच्चिदंदमसंख्यातलोकमात्रपरिणामंगळप्पवु । अल्लि नियमदिंदमनुकृष्टिविधानमिल्लिल्लियंकसंदृष्टिपूर्व्वकमर्थसंदृष्टिदिंदं रचनाक्रममं तोरल्पडुगुमवं तेंने त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधियपूर्व्वकरणविशुद्धिपरिणामंगळु सर्वमुमधःप्रवृत्तकरणपरिणामंगळं नोडलसंख्यातलोकगुणितंगळोळववं तें बोडेयधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयविशुद्धिपरिणामंगळ्गेयपूर्व्वकरणकालप्रथमसमयदोळु प्रत्येकमो दो दु परिणामक्कसंख्यातलोकविकल्पोत्पत्तियुंटप्पुदरिंदं अपूर्व्वकरणसमस्तपरिणामधनं = a × = a । इवक्कंकसंदृष्टि ४०९६ । इल्लियपूर्व्वकरणकालमंतर्मुहूर्त्तमक्कु २ १ १ इवक्कंक-

---

पूर्वकरणगुणस्थाने सर्वदा सर्वकालेऽपि कस्यापि जीवस्य तत्सादृश्यं न संभवति । एकसमयस्थितकरणपरिणामानां मध्ये विवक्षितैकपरिणामापेक्षया सादृश्यं नानापरिणामापेक्षया वैसादृश्यं च जीवानामधःप्रवृत्तकरणवदत्रापि नियमो नास्तीति ज्ञातव्यम् ॥५२॥

अन्तर्मुहूर्तमात्रे अपूर्वकरणकाले प्रतिसमयं क्रमशः चयवृद्धाः असंख्यातलोकमात्राः परिणामाः सन्ति, तत्र नियमेन अनुकृष्टिविधानं नास्ति । अत्रापि अंकसंदृष्टचर्थसंदृष्टिभ्यां रचनाक्रमो दर्श्यते; तद्यथा—त्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्ध्यपूर्वकरणविशुद्धिपरिणामाः सर्वेऽपि अधःप्रवृत्तकरणपरिणामेभ्यः असंख्यातलोकगुणिताः सन्ति । कुतः ? अधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयविशुद्धिपरिणामानां अपूर्वकरणकालप्रथमसमये प्रत्येकमेकैकपरिणामस्य असंख्यातलोकविकल्पोत्पत्तिसंभवात् । अपूर्वकरणस्य समस्तपरिणामधनं = a × = a तत्संदृष्टिः

विशेषार्थ—इस अपूर्वकरण गुणस्थानमें ऊपरके समय वाले जीवोंके और नीचेके समय वाले जीवोंके परिणाम कभी भी समान नहीं होते। किन्तु एक ही समयमें रहनेवाले जीवोंके परिणाम समान भी होते हैं और असमान भी होते हैं। अतः जैसे अधःप्रवृत्तकरणमें भिन्न-भिन्न समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें समानता पायी जाती है, वैसी यहाँ नहीं है। तथा एकसमयवर्ती जीवोंमें जैसे अधःप्रवृत्तकरणमें समानता और असमानता है, वैसे यहाँ भी है ॥५२॥

अन्तर्मुहूर्तमात्र अपूर्वकरणके कालमें प्रतिसमय क्रमसे एक-एक चय बढ़ते हुए असंख्यातलोक मात्र परिणाम होते हैं। इसमें नियमसे अनुकृष्टि विधान नहीं है। यहाँ भी अंकसंदृष्टि और अर्थसंदृष्टिसे रचना-क्रम दिखलाते हैं—त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण रूप विशुद्धिपरिणाम सभी अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंसे असंख्यात लोक गुणित हैं, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरण कालके चरम समयवर्ती विशुद्धिपरिणामोंके अपूर्वकरण

---

१. म °च्चितमसं० । २. म °पुमंकं° । ३. ब °करणत्वादत्रापि नियमोऽस्ती° । ४. ब °कालसमय° ।

संदृष्टि ८। संख्येयरूपगळिनितक्के १। अंकसंदृष्टि ४। इल्लि पदकवे संखेण भाजिदे पचयमेंबी सूत्रेदृष्टिदं समस्तपरिणामधनमं ≡ a ≡ a । ४०९६ । पदकृतिविहतं संखेयरूपगळिवं भागिसुत्तिरलु ≡ a ≡ a ॥ ४०९६ ≡ a ≡ a

२१११।२११।१।८।८।४ लब्धं प्रथमपक्कुं २११।२११।१।१६ व्येक पदार्धघ्नचयगुणो-

५ मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज (?)

गच्छउत्तरधनमेंबी सूत्राभिप्रायदिंदं चयधनमं तेगेदोडे २११।१२ अंक संदृष्टि ४४८। चयधनहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदि परिमाणमेंबी सूत्रेदृष्टिदं चयधनमं समस्तधनदोळु शोधिसिकळदु पदविंदं भागिसुत्तिरलु - प्रथमसमयवर्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबंध्यपूर्वकरणपरिणामप्रमाणं

≡ a ≡ a २११।१।१२

१० बक्कुं २११।२११।१।२।४५६। आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणमेंबी सूत्रविंदं प्रथमसमयविशुद्धिपरिणामपुंजदोळो तु चयमं कूडुत्तिरलु द्वितीयसमयवर्तिनानाजीवसंबंधियपूर्व-

४०९६। कालोऽन्तर्मुहूर्तः २११ तत्संदृष्टिः ८। संख्यातरूपाणि ४ तत्संदृष्टिः ४। तद्धनं ≡ a ≡ a । ४०९६ ।

≡ a । ≡a ४०९६ ≡ a । ≡a

पदकविसंखेण भाजिदे २११×२११, १।८।८।४ पचयो होदि २११।२११।१ १६

≡ a ≡ a २११।२११

१५ व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छश्चयधनं भवति २११।२११।१।२। ४४८ तच्च समस्तधने शोधयित्वा शेषे पदेन भक्ते प्रथमसमयवर्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबन्ध्यपूर्वकरणपरिणामपुञ्जप्रमाणं भवति

≡ a । ≡ a । २११।१।२

२११। २११। १। २ ४५६ अत्रैकचये युते द्वितीयसमयवर्तिनानाजीवसंबन्ध्यपूर्वकरणपरिणाम-

२० कालके प्रथम समयमें प्रत्येक एक-एक परिणामके असंख्यात लोक भेदोंकी उत्पत्ति सम्भव है। अतः अपूर्वकरण परिणामोंका सर्वधन अंकसंदृष्टिमें कल्पना किया ४०९६ है। अपूर्वकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है सो यहाँ ८ कल्पना किया। संख्यातका प्रमाण चार है। 'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयो होदि', इस सूत्रके अनुसार पद अर्थात् गच्छ ८ के वर्ग ६४ और संख्यातके प्रमाण चारका भाग सर्वधन ४०९६ में देनेसे चय होता है सो उसका प्रमाण १६ हुआ। तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनम्', इस सूत्रके अनुसार एक कम गच्छ ७ उसका आधा २५ ३ को चय १६ से गुणा करने पर ५६ प्रमाण आता है। उसको गच्छ ८ से गुणा करने पर चयधन चारसौ अड़तालीस ४४८ होता है। उसको सर्वधन ४०९६ में घटाने पर शेष ३६४८ को गच्छ ८ से भाग देने पर प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम ४५६ होते हैं। इसमें एक चय जोड़ने पर द्वितीय समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरणपरिणाम पुंजका प्रमाण ४७२ होता है। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोंमें एक-एक चयकी वृद्धिके क्रमसे परिणाम पुंजोंका ३० प्रमाण लाने पर अन्तिम समय सम्बन्धी परिणामपुंजका प्रमाण प्रथम समय सम्बन्धी धन ४५६ में एक कम गच्छ प्रमाण चयों ८ − १ = ७ × १६ = ११२ एकसौ बारह जोड़ने पर ५६८

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

≡ a ≡ a २ १ १ । १ । २

करण परिणामपुंजप्रमाणमक्कु २ १ १ । २ १ १ । १ । २ ४७२ इंतु तृतीयादि समयंगळोळु एकैकचयवृद्धि क्रमविंदं परिणामपुंजप्रमाणं तरल्पडुवुदु । व्येकपदं चयाभ्यस्तं तत्साध्यं तद्धनं भवेदेंबी सूत्रोक्तक्रमविंदं रूपोनगच्छमात्रं चयंगळं प्रथमसमयपरिणामपुंजबोळ्कूडुत्तिरल्- पूर्वकरणकालसमयचरमवर्त्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिविशुद्धपरिणामपुंजप्रमाणमप्पुदु ५

≡ a ≡ a २ १ १ । १ । २

२ १ १ । २ १ १ । १ । २ । ५६८ इवरोळोंदु चयमं कळेयुत्तिरलु द्विचरमसमयवर्त्तिनानाजीव-

≡ a ≡ a । २ १ १ । १ । २

संबंधिविशुद्धिपरिणामपुंजमक्कु २ १ १ । २ १ १ । १ । २ । ५५२ । ईयपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु पूर्व्वोत्तरसमयपरिणामंगळगे एल्ला कालदोळं सादृश्याभावमप्पुदरिंदं अनुकृष्टिरचने शून्यमेंदरि- १०

≡ a ≡ a २ १ १ । १ । २

पुञ्जप्रमाणं भवति । २ १ १ । २ १ १ । १ । २ ४७२ । एवं तृतीयादिसमयेषु एकैकचयवृद्धिक्रमेण परिणामपुञ्जप्रमाणेषु आनीतेषु चरमसमयधनं रूपोनगच्छमात्रचययुतप्रथमसमयधनमात्रं भवति

≡ a । ≡ a । २ १ १ । १ । २

२ १ १ । २ १ १ । १ । २ । ५६८ अत्रैकचये अपनीते तु द्विचरमसमयवर्तिनानाजीवसंबंधिविशुद्ध- १५

≡ a ≡ a २ १ १ । १ । २

परिणामपुञ्जप्रमाणं भवति २ १ १ । २ १ १ । १ । २ ५५२ अस्मिन्नपूर्वकरणगुणस्थाने पूर्वोत्तर-

होता है। इसमें एक चय घटाने पर द्विचरम समयवर्ती नाना जीवसम्बन्धी विशुद्ध परिणाम पुंज ५५२ होता है। इसी प्रकार एक-एक चय घटाने पर आठों गच्छोंका प्रमाण जानना। यथा—५६८, ५५२, ५३६, ५२०, ५०४, ४४८, ४७२, ४५६ = ४८६। अब यथार्थ कथन करते २० हैं—त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरणके सब ही परिणाम अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंसे असंख्यात लोक गुने हैं; क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणके कालके अन्त समय सम्बन्धी जो विशुद्धता रूप परिणाम हैं, उनका अपूर्व करण कालके प्रथम समयमें प्रत्येक एक-एक परिणामके असंख्यात लोक प्रमाण भेदोंकी उत्पत्तिका सद्भाव है। अतः अपूर्वकरणके सर्वपरिणाम रूप सर्वधन असंख्यात लोकको असंख्यात लोकसे गुणा करने पर जितना प्रमाण होता है, उतना २५ है। उसे सर्वधन जानो। उसका काल अन्तर्मुहूर्त है, उसके जितने समय उतना गच्छ जानो। 'पदकदि संखेण भाजिदे पचयं', इस सूत्रके अनुसार गच्छके वर्ग और संख्यातका भाग

१. म सर्वोत्तर ।

वुद्वू । आपूर्वकरणद अर्थसंदृष्टिगळ्वु :—

≡ a ≡ a । २ १ १ । १ । २	≡ a ≡ a २ १ १ १ २
२ १ १ । २ १ १ । १ । २	२ १ १ । २ १ १ । १ । २
≡ a ≡ a २ १ १ । १ । २	≡ a ≡ a २ १ १ । १ । २
२ १ १ । २ १ १ २ । १ । २	२ १ १ । २ १ १ । १ । २

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६

१० इवपूर्वकरणकालप्रथमादिसमयंगळोळ्पेळ्द परिणामविन्यासरचने ।
इल्लि प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्यंतमवस्थितंगळप्पसंख्यातलोकवार ≡ a ≡ a
१ १ १ १ १
२ २ २ २ २
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज a a a a a

१५ षट्स्थानपतितंगळप्प जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नंगळप्प परिणामस्थानंगळ्गे प्रतिसमयं प्रति-

---

समयपरिणामानां सर्वकालेऽपि सादृश्याभावात् अनुकृष्टिरचना नास्ति । अत्र अपूर्वकरणकाले प्रथमादिचरम-
≡ a ≡ a
२ । २ । २ । २ । २ ।
समयपर्यन्तस्थितानां असंख्यातलोकवार— a a a a a षट्स्थानपतितजघन्यमध्यमोत्कृष्टभेद-

---

२० सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण हो, उसे चय जानो। तथा 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रके अनुसार एक कम गच्छके आधे प्रमाणसे चयको गुणा करके गच्छसे गुणा करने पर जो प्रमाण हो, उसे चयधन जानो। उसको सर्वधनमें-से घटाकर शेषको गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आये, वही प्रथम समयवर्ती त्रिकाल गोचर नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण परिणामोंका प्रमाण होता है। उसमें एक चय जोड़ने पर द्वितीय समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण परिणामोंका प्रमाण होता है। इसी प्रकार तीसरे आदि समयोंमें एक-एक चय क्रमसे बढ़ाने पर परिणामोंका प्रमाण होता है। ऐसा करने पर अन्तिम समय सम्बन्धी परिणाम धन एक कम गच्छ प्रमाण चयोंको प्रथम समय सम्बन्धी धनमें जोड़ने पर जितना प्रमाण हो, उतना है। उसमें एक घटाने पर द्विचरम समयवर्ती नाना जीव सम्बन्धी विशुद्ध परिणामोंके पुंजका प्रमाण होता है। इस प्रकार समय-समय सम्बन्धी परिणाम क्रमसे बढ़ते हुए जानना। इस अपूर्वकरणमें पूर्वोत्तर समय सम्बन्धी परिणामोंमें सदा ही समानताका अभाव है, इससे यहाँ खण्ड रूप अनुकृष्टि रचना नहीं है। इस अपूर्वकरणके कालमें प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त परिणामस्थान पूर्वोक्त विधानके अनुसार असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धिको लिये हुए जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे युक्त हैं।

परिणामस्थानं [illegible] पेळल्पडुगु मदे ते दोडे ।

इल्लि प्रथमसमयवर्त्ति सर्वजघन्यपरिणामविशुद्धियधःप्रवृत्तकरणचरमसमयखंडोत्कृष्टविशुद्धियं नोडलनंतगुणविभागप्रतिच्छेदात्मकेयादोडमपूर्वकरणपरिणामविशुद्धिगळनितं नोडलिदु स्तोकं इदं नोडलु प्रथमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमदं नोडलु द्वितीयसमयदोळु जघन्यपरिणामविशुद्धियनंतगुणमसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानंगळनंतरिसि यवक्कुत्पत्त्यभ्युपगममुंटप्पुदरिदं अदं नोडलत्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धियनंतगुणमितुत्कृष्टमं नोडलु जघन्यं जघन्यमं नोडलुत्कृष्टविशुद्धिस्थानमनंतगुणितमिंतहिगतियिंदमपूर्वकरणकालचरमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्य्यंतं जघन्योत्कृष्टविशुध्यल्पबहुत्वमरियल्पडुगुं ॥

अनंतरमितप्पपूर्वकरणपरिणामकार्य्यविशेषप्रतिपादनार्थमी गाथाद्वयमं पेळ्दपरु—

भिन्नपरिणामस्थानानां प्रतिसमयं प्रतिपरिणामस्थानं च विशुद्धयविभागप्रतिच्छेदप्रमाणावधारणार्थं अल्पबहुत्वमुच्यते । तद्यथा—प्रथमसमयवर्तिसर्वजघन्यपरिणामविशुद्धिः अधःप्रवृत्तकरणचरमसमयचरमखण्डोत्कृष्टविशुद्धितोऽनन्तगुणाविभागप्रतिच्छेदात्मिकाप्यपूर्वकरणपरिणामविशुद्धितः स्तोका । ततः प्रथमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा । ततो द्वितीयसमयजघन्यपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि अन्तरयित्वैव तस्योत्पत्त्यभ्युपगमात् । ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनन्तगुणा एवमुत्कृष्टाज्जघन्यं जघन्यादुत्कृष्टं च विशुद्धिस्थानं अनन्तगुणं अनन्तगुणमित्यहिगत्या अपूर्वकरणकालचरमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यन्तं जघन्योत्कृष्टविशुद्ध्यल्पबहुत्वं ज्ञातव्यं ॥५३॥ एवंविधस्यापूर्वकरणपरिणामस्य कार्यविशेषं गाथाद्वयेनाह—

उनका प्रतिसमय और प्रत्येक परिणाम स्थानके प्रति विशुद्धिके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण अवधारण करनेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं—जो इस प्रकार है—

प्रथम समयवर्ती सबसे जघन्य परिणाम विशुद्धि अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे, यद्यपि अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेदोंको लिये हुए है; तथापि अपूर्वकरणके अन्य परिणामोंकी विशुद्धिसे स्तोक हैं। उससे प्रथम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे द्वितीय समयवर्ती जघन्य परिणाम विशुद्धि अनन्तगुणी है। क्योंकि प्रथम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धिसे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानोंका अन्तराल देकर यह द्वितीय समयवर्ती जघन्य विशुद्धि उत्पन्न होती है। उससे उसी द्वितीय समयकी उत्कृष्ट परिणामविशुद्धि अनन्तगुणी है। इस तरह उत्कृष्टसे जघन्य और जघन्यसे उत्कृष्ट विशुद्धिस्थान अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार सर्पकी गतिकी तरह अपूर्वकरणके चरम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणामविशुद्धि पर्यन्त जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिका अल्पबहुत्व जानना ॥५३॥

आगे इस प्रकारके अपूर्वकरण परिणामोंका विशेष कार्य दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म°य चरम २ २ २ २ २१ खं० ।

तारिसपरिणामट्ठिय-जीवा हु जिणेहि गलिदतिमिरेहिं ।
मोहस्सपुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥५४॥

तादृशपरिणामस्थितजीवाः खलु जिनैर्गलिततिमिरैर्मोहस्यापूर्वकरणाः क्षपणोपशमनोद्यता भणिताः ॥ अंतर्प्प पूर्व्वोत्तरसमयविलक्षणंगळप्पेडपूर्वकरणपरिणामंगळोळ स्थितर्प्परिणतगळप्प जीवंगळु अपूर्वकरणरेंदितु गलितज्ञानावरणादिकर्म्मतिमिररप्प जिनरिंगलिद पेळल्पट्टरु । आ अपूर्व्वकरणरनिवरु चारित्रमोहनीयकर्म्ममं क्षपणोपशमनोद्युक्तरप्परु । अपूर्वकरणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु प्राक्तनावश्यकचतुष्टयं बेरसु गुणश्रेणिगुणसंक्रमस्थितिखंडनानुभागखंडनलक्षणावश्यकचतुष्टयमं प्रवर्त्तिसुगुमेंबुवर्थं ॥

णिद्दायजले णट्ठे सदि आऊ उवसमंति उवसमया ।
खवयं ढुक्के खवया णियमेण खवंति मोहं तु ॥५५॥

निद्राप्रचले नष्टे सत्यायुषि उपशमयंत्युपशमकाः । क्षपकं ढौकमानाः क्षपकाः नियमेन क्षपयन्ति मोहं पुनः ॥ इल्लियपूर्वकरणगुणस्थानदोळु विद्यमानायुष्यंगे प्रथमभागदोळु निद्रा-

---

तादृशेषु पूर्वोत्तरसमयविलक्षणेषु अपूर्वकरणपरिणामेषु स्थिताः परिणता जीवा अपूर्वकरणा इति गलितज्ञानावरणादिकर्मतिमिरैर्जिनैर्भणिताः । ते च अपूर्वकरणाः सर्वेऽपि प्रथमसमयमादिं कृत्वा चारित्रमोहनीयकर्मणः क्षपणोपशमनोद्युक्ता भवन्ति गुणश्रेणिगुणसंक्रमणस्थितिखण्डानुभागखण्डनलक्षणानि चत्वार्यावश्यकानि कुर्वन्तीत्यर्थः ॥५४॥

अत्र अपूर्वकरणगुणस्थाने विद्यमानायुष्कस्य प्रथमभागे निद्राप्रचलाद्वये बन्धतो व्युच्छिन्ने सति उपशम-

---

पूर्व समय और उत्तर समयमें इस प्रकार विलक्षणताको लिये हुए अपूर्वकरण परिणामोंमें स्थित अर्थात् उन परिणाम रूप परिणत जीवोंको, जिनका ज्ञानावरणादि रूप अन्धकार दूर हो गया है उन जिन भगवान्ने अपूर्वकरण कहा है। वे सभी अपूर्वकरण जीव प्रथम समयसे ही चारित्र मोहनीय कर्मको क्षय करनेमें या उसका उपशम करने पर तत्पर होते हैं। अर्थात् गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखण्डन, अनुभागखण्डन रूप चार आवश्यकोंको करते हैं ॥५४॥

विशेषार्थ—पहले बाँधे हुए सत्ता रूप कर्म परमाणु द्रव्यमें-से जो द्रव्य गुणश्रेणिमें दिया, उसकी गुणश्रेणिके कालमें प्रति समय असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये जो पंक्तिबद्ध निर्जरा होती है, वह गुणश्रेणिनिर्जरा है। प्रतिसमय गुणकारके अनुक्रमसे विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृति रूप परिणमन करे, वह गुण संक्रमण है। पूर्वबद्ध सत्तारूप कर्मप्रकृतियोंकी स्थितिको घटाना स्थितिखण्डन है। पूर्वबद्ध सत्तारूप अप्रशस्त कर्म प्रकृतियोंके अनुभागको घटाना सो अनुभाग खण्डन है। ये चार कार्य अपूर्वकरणमें अवश्य होते हैं ॥५४॥

इस अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम भागमें निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति मनुष्य आयुके विद्यमान होते होती है। अर्थात् उपशम श्रेणि पर आरोहण करनेवाले अपूर्वकरण जीवका प्रथम भागमें मरण नहीं होता, ऐसा आगम है। इस तरह यदि वे अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती मनुष्य उपशम श्रेणि पर आरोहण करते हैं, तब नियमसे

---

१. म °यमिल° । २. °तरप्प° । ३. म °मोहनीय° ।

प्रवलिंगळरडु ग्रंथविदं व्युच्छिन्नंगळागुत्तिरलु अंतें बुदेने दोडे उपशमश्रेण्यारोहणकाऽपूर्वकरणंगे प्रथमभागदोळु मरणमिल्लें दागममंटे बुदत्थं। आ अपूर्वकरणगुणस्थानवर्त्तिगळु उपशमश्रेण्यारूढरुगळोदोडे चारित्रमोहनीयमनियमदिंदमुपशमिसुवरु। क्षपकश्रेण्यारूढरागुत्तिर्दं क्षपकरु तच्चारित्रमोहनीयमं नियमदिदं क्षपियिसुवरु। क्षपकश्रेणियोळेल्लियुं मरणं नियमदिंदमिल्ल॥

अनंतरमनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्वरूपप्ररूपणार्त्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपरु।

एक्कम्मि कालसमये संठाणादीहि जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहंचिय परिणामेहिं मिहो जे हु॥५६॥

एकस्मिन् कालसमये संस्थानादिभिर्यथा निवर्तन्ते। न निवर्तन्ते तथैव च परिणामैर्मिथो ये खलु॥ अनिवृत्तिकरणकालदोळु[3] बो[2]दु समयदोळु वर्त्तमानरप्प त्रिकालगोचरनानाजीवंगळु एंतु संस्थानवर्णवयोऽवगाहनज्ञानोपयोगादिगळिंदं परस्परं भेदमरप्परंते विशुद्धिपरिणामंगळिंदं भेदमरल्लरु। आर्केलंबरु स्फुटमागि—

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

श्रेण्यारोहकापूर्वकरणस्य प्रथममागे मरणं नास्तीति आगमोऽस्तीत्यर्थः। ते अपूर्वकरणगुणस्थानवर्तिनः उपशमश्रेणिमारोहन्ति तदा चारित्रमोहनीयं नियमेन उपशमयन्ति। क्षपकश्रेणिमारुह्यमाणाः क्षपकाः तच्चारित्रमोहनीयं नियमेन क्षपयन्ति। क्षपकश्रेण्यां सर्वत्र मरणं नियमेन नास्ति ॥५५॥ अथानिवृत्तिकरणगुणस्थानस्वरूपं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

ये अनिवृत्तिकरणकाले एकस्मिन् समये वर्तमानास्त्रिकालगोचरा नानाजीवा यथा संस्थानवर्णवयोऽवगाहनज्ञानोपयोगादिभिः परस्परं भिद्यन्ते तथा विशुद्धिपरिणामैर्न भिद्यन्ते खलु-स्फुटं ॥५६॥

चारित्रमोहनीयका उपशम करते हैं। तथा क्षपक श्रेणि पर आरोहण करनेवाले क्षपक नियमसे चारित्र मोहनीयका क्षपण करते हैं। क्षपक श्रेणिमें तो सर्वत्र नियमसे मरण नहीं होता। उपशम श्रेणिमें अपूर्वकरणके प्रथम भागमें मरण नहीं है, किन्तु द्वितीयादि भागोंमें मरण सम्भव है ॥५५॥

आगे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्वरूप दो गाथाओंसे कहते हैं—

अनिवृत्तिकरणकालके एक समयमें वर्तमान त्रिकालवर्ती नाना जीव जैसे शरीरका आकार वर्ण, वय, अवगाहना, ज्ञानोपयोग आदिसे परस्परमें भेदको प्राप्त होते हैं, उस प्रकार विशुद्ध परिणामोंके द्वारा भेदको प्राप्त नहीं होते। उन जीवोंको अनिवृत्तिकरण सम्यक् रूपसे जानना। जिनके निवृत्ति अर्थात् विशुद्ध परिणामोंमें भेद नहीं है, वे अनिवृत्तिकरण हैं—इस निरुक्तिके आश्रयसे उक्त बात सिद्ध है। इसका खुलासा इस प्रकार जानना। जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये पहला दूसरा आदि समान समय हुआ है, उन त्रिकालवर्ती अनेक जीवोंके परिणाम समान ही होते हैं। जैसे अधःकरण अपूर्वकरणमें समान अथवा असमान होते हैं, वैसे यहाँ नहीं हैं। तथा अनिवृत्तिकरण कालके प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय वर्तमान सर्व जीव हीन अधिक परिणामसे रहित समान विशुद्ध परिणाम वाले होते हैं। वहाँ जो प्रतिसमय अनन्तगुणे-अनन्तगुणे विशुद्धि परिणाम होते हैं, उनसे दूसरे समयमें होने वाले विशुद्ध परिणाम अनन्तगुणे हैं। इस प्रकार पूर्व-पूर्व समयवर्ती विशुद्ध परिणामोंसे

---

१. म °देनेने। २. म °गलाव रे। ३. म °बोंदोंदु।

होंति यणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्सि एक्कपरिणामा ।
विमलयर-झाणहुतवहसिहाहि णिद्दड्ढ-कम्मवणा ॥५७॥

भवन्त्यनिवृत्तयस्ते प्रतिसमयं यस्मादेकपरिणामा । विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः ॥ आ जीवंगळनिवृत्तिकरणरं बितु सम्यक्कागरियल्पडुवरु । अवंतेने न विद्यते निवृत्तिविशुद्धिपरिणामभिन्नत्वं येषां तेऽनिवृत्तयः ये बितु निरुक्त्याश्रयविदमाश्रयो दु कारणविदमायेल्ला [illegible] समयं समयंप्रति वर्त्तमानरुगळु मन्योन्यमेकादृशपरिणामरे यप्परु । अदु कारणविदमनिवृत्तिगळे बितु तात्पर्यमरियल्पडुगुं ।

मत्तमपूर्वकरणकालचरमसमयवर्त्तिविशुद्धिपरिणामंगळु जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नंगळु असंख्यातलोकमात्रंगळिरुत्तिर्क्कुमवेल्लमं नोडलसंख्यातलोकमात्रं षट्स्थानंगळनंतरिसि अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयदोळु हीनाधिकभावरहितंगळप्प विशुद्धिपरिणामंगळनंतगुणंगळप्पुटुदुवं नोडलु द्वितीयसमयदोळु विशुद्धिपरिणामंगळमनंतगुणंगळप्पवु । इंतु पूर्व्वंपूर्व्वसमयवर्त्तिविशुद्धिपरिणामंगळत्तणिदं जीवंगळुत्तरोत्तरसमयवर्त्तिगळु विशुद्धिपरिणामंगळुमनंतानंतगुणितक्रमदिदं वर्द्धमानमंगळागि नडेयवु । एंबितिविशेषं प्रवचनदोळु प्रतिपादितमरियल्पडुगुं । आ अनिवृत्तिकरणपरिणामंगळनुळ्ळ जीवंगळु विमलतरध्यानहुतवह शिखिगळिदं निर्द्दग्धकर्म्मवनरेंबिवरिदं चारित्रमोहोपशमनक्षपणलक्षणमनिवृत्तिकरणपरिणामकार्य्यं सूचिसल्पटटु ।

ते जीवा अनिवृत्तिकरणा इति सम्यग्ज्ञातव्याः । न विद्यते निवृत्तिः विशुद्धिपरिणामभेदो येषां ते अनिवृत्तय इति निरुक्तन्यायबलात् । ते सर्वेऽपि अनिवृत्तिकरणा जीवाः तत्कालप्रथमसमयमादिं कृत्वा प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानेन हीनाधिकभावरहितेन विशुद्धिपरिणामेन प्रवर्तमानाः सन्ति यतः, ततः प्रथमसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामेभ्यो द्वितीयसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामा अनन्तगुणा भवन्ति । एवं पूर्वपूर्वसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामेभ्यो जीवानामुत्तरोत्तरसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामा अनन्तानन्तगुणितक्रमेण वर्धमाना भूत्वा गच्छन्ति इत्ययं विशेषः प्रवचने प्रतिपादितः प्रत्येतव्यः । तदनिवृत्तिकरणपरिणामयुतजीवाः विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवना भवन्ति । अनेन चारित्रमोहस्य उपशमनं क्षपणं च अनिवृत्तिकरण-

---

जीवोंके उत्तरोत्तर समयवर्ती विशुद्ध परिणाम अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा क्रमसे अनन्तगुणे-अनन्तगुणे बढ़ते हुए होते हैं ।

सारांश यह है कि अनिवृत्तिकरणमें एक समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें समानता है । तथा ऊपर समयवर्तियोंके अनन्तगुणी विशुद्धता बढ़ती हुई है । उसका उदाहरण—जैसे जिनको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये पाँचवाँ समय हुआ, उन त्रिकालवर्ती अनेक जीवोंके विशुद्ध परिणाम समान ही होते हैं; हीन-अधिक कभी भी नहीं होते । वे विशुद्ध परिणाम जिन जीवोंको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये चौथा समय हुआ है, उनके विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तगुणे विशुद्ध हैं; इनसे जिनको अनिवृत्तिकरण आरम्भ किये छठा समय हुआ है, उनके अनन्तगुणे विशुद्ध परिणाम होते हैं । ऐसे ही आगे भी सर्वत्र जानना । वे अनिवृत्तिकरण परिणामवाले जीव विमलतर ध्यानरूपी अग्निकी ज्वालासे कर्मरूपी वनको जलानेवाले होते हैं । इससे यह सूचित किया है कि अनिवृत्तिकरण परिणामोंका कार्य चारित्र मोहका उपशमन और क्षपण करना है ॥५७॥

---

३५ १ म °णाममनुल्ल ।

अनंतरं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानस्वरूपप्ररूपणार्थमो सूत्रमं पेळ्दपरु—

धुवकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहुमरायसंजुत्तं ।
एवं सुहुमकसाओ सुहुमसरागोत्ति णादव्वो ॥५८॥

धौतकौसुंभवस्त्रं भवति यथा सूक्ष्मरागसंयुक्तं । एवं सूक्ष्मकषायः सूक्ष्मसराग इति ज्ञातव्यः ॥

एंतीगळ्धौतकौसुंभवस्त्रं सूक्ष्मरागसंयुक्तं अक्कुमंते मुंदणसूत्रदिं पेळ्द प्रकारदिंदं सूक्ष्म- ५
कृष्टिगतलोभकषायं सूक्ष्मसांपरायनेंतितरियल्पडुगुं ॥

अनंतरं सूक्ष्मकृष्टिगतत्वस्वरूपनिरूपणार्थं ई गाथाद्वयमं पेळ्दपरु—

पुव्वापुव्वप्फड्डयबादरसुहुमगयकिट्टियणुभागा ।
हीणकमाणंतगुणेणवरादु वरं च हेट्ठस्स ॥५९॥

पूर्वापूर्वस्पर्द्धकबादरसूक्ष्मगतकृष्टयनुभागाः हीनक्रमाः अनंतगुणेनावराद्वरश्चाधस्तनस्य ॥ १०

मुन्नमनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळसंसारावस्थेयोळसंभवमप्पनुळ्ळ कर्म्मशक्तिसमूहरूप-पूर्वस्पर्द्धकं गळगे (उ । ध्व । ना) अनिवृत्तिकरणपरिणामंगळिंद क्रियमाणंगळप्प तदनंतैक-
ज ० ८

पागंशकं आधाश्च आ सावाहासंगति जो प्रहारज
परिणामकार्यमिति सूचितं ॥५७॥ अथ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानस्वरूपमाह—

यथा धौतकौसुम्भवस्त्रं सूक्ष्मरागसंयुक्तं भवति तथाग्रतनसूत्रोक्तप्रकारेण सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायः १५
सूक्ष्मसांपराय इति ज्ञातव्यः ॥५८॥ अथ सूक्ष्मकृष्टिगतस्वरूपं गाथाद्वयेन निरूपयति—

पूर्वं अनिवृत्तिकरणस्थाने संसारावस्थायां संभवत्कर्मशक्तिसमूहरूपस्पर्धकानां (उ । व ९ । ना) अनि-
ज । व । १

आगे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

जैसे कुसुम्भसे रंगा हुआ वस्त्र सम्यक् रूपसे धोनेपर भी सूक्ष्म लाल रंगसे युक्त होता २०
है, उसी प्रकार आगेके सूत्रमें कहे विधानके अनुसार सूक्ष्म कृष्टिको प्राप्त लोभकषायसे युक्त जीवको सूक्ष्म साम्पराय जानना ॥५८॥

विशेषार्थ—राग अर्थात् यथाख्यात चारित्रको रोकनेवाला कषाय रंग, उसके साथ जो हो, वह सराग अर्थात् विशुद्धि परिणाम । सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मकृष्टि अनुभागोदयसे सह-चरित सराग जिसका है, वह सूक्ष्म सराग अर्थात् सूक्ष्म साम्पराय है ॥५८॥ २५

पूर्व अर्थात् अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अथवा संसार अवस्थामें होनेवाले कर्मकी शक्ति समूह रूप पूर्वस्पर्धक, अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा किये उनके अनन्तवें भाग प्रमाण अपूर्व स्पर्धक, उन्हीं परिणामोंके द्वारा की गयी बादरकृष्टि और उन्हींके द्वारा की गयी कर्मशक्तिका सूक्ष्म खण्डरूप सूक्ष्मकृष्टि, इनका अनुभाग यथाक्रम अपने उत्कृष्टसे अपना जघन्य और ऊपरके जघन्यसे नीचेका उत्कृष्ट क्रमसे अनन्त गुणा हीन है ॥५९॥ ३०

विशेषार्थ—इन पूर्व स्पर्धक आदिका स्वरूप यहाँ कहते हैं; जैसा पं. टोडरमलजीने लिखा है—कर्मप्रकृतिरूप परिणत परमाणुओंमें जो फल देनेकी शक्ति है, उसको अनुभाग कहते हैं । उस अनुभागका ऐसा कोई केवलज्ञान गम्य अंश जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता,

---

१. म पेल्द । २. म °यमेंदितरि । ३. म °गळोडने ।

उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। एक परमाणुमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं उनके समूहका नाम वर्ग है। जिन परमाणुओंमें परस्पर समान गणनाको लिये अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं,उनके समूहका नाम वर्गणा है। अन्य परमाणुओंमें-सेजिनमें थोड़े अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं,उनके समूहका नाम जघन्य वर्ग है। उस परमाणुके समान जिन परमाणुओंमें अविभाग प्रतिच्छेद पाये जाएं,उनके समूहका नाम जघन्य वर्गणा है। जघन्य वर्गसे एक अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें अधिक पाया जाये,ऐसे परमाणुओंके समूहका नाम दूसरी वर्गणा है। इस प्रकार जहाँ तक एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक लिये हुए वर्गणा पायी जाये,उन सबके समूहका नाम जघन्य स्पर्धक है। इससे ऊपर जघन्य वर्गणाके वर्गोंमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद थे,उनसे दूने जिस वर्गणाके वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेद हों,वहाँसे दूसरा स्पर्धक प्रारम्भ होता है। वहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़नेके क्रमको लिये वर्गोंके समूह रूप जितनी वर्गणा होती हैं,उनके समूहका नाम द्वितीय स्पर्धक है। प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद थे,उनसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेद जिस वर्गणाके वर्गोंमें पाये जायें,वहाँसे तीसरा स्पर्धक प्रारम्भ होता है। इसमें भी पूर्वोक्त क्रम जानना। सारांश यह है कि जहाँ तक वर्गणाओंके वर्गोंमें क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता है,वहाँ तक यही स्पर्धक कहा जाता है। और जहाँसे एक साथ अनेक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ते हैं,वहाँसे नवीन अन्य स्पर्धकका आरम्भ होता है। सो चतुर्थ आदि स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणाके वर्गमें अविभागी प्रतिच्छेद प्रथम स्पर्धकके प्रथम वर्गणाके वर्गमें जितने थे,उनसे चौगुणे, पाँचगुणे आदि क्रमसे जानना। तथा अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणाके वर्गमें अपनी-अपनी प्रथम वर्गणाके वर्गसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद क्रमसे बढ़ता जानना। ऐसे स्पर्धकोंके समूहका नाम प्रथम गुणहानि है। इस प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणामें जितने परमाणुरूप वर्ग होते हैं,उनसे एक-एक चय प्रमाण घटते हुए द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्ग जानने। इस क्रमसे जहाँ प्रथम गुण-हानिकी वर्गणाके वर्गोंसे आधे वर्ग जिस वर्गणामें होते हैं,वहाँसे दूसरी गुणहानि आरम्भ होती है। इस क्रमसे जितनी गुणहानियाँ सब कर्म परमाणुओंकी पायी जाती हैं,उनके समूहका नाम नाना गुण-हानि है।

इन वर्गणादिमें परमाणुओंका प्रमाण लानेके लिए द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, दो गुण-हानि, नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि ये छह जानना। उसमें-से सर्व कर्म परमाणुओंका प्रमाण किंचित् ऊन द्वयर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण है। उसे सर्व द्रव्य जानो। तथा नाना गुणहानिसे गुणहानि आयामको गुणा करने पर जो सर्व द्रव्यमें वर्गणाओंका प्रमाण होता है,वह यहाँ स्थिति जानना। एक गुणहानिमें अनन्त गुणित अनन्त प्रमाण वर्गणा पायी जाती है सो गुणहानि आयाम जानना। उसको दूना करने पर जो प्रमाण हो, वह दो गुणहानि है। सर्व द्रव्यमें जो अनन्त गुणहानियाँ होती हैं,उनका नाम नाना गुण-हानि है। क्योंकि दोके गुणाकार रूप घटता-घटता द्रव्य जिसमें पाया जाये,वह गुणहानि है और अनेक गुणहानि नाना गुणहानि है। नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करने पर जो प्रमाण हो,वह अन्योन्याभ्यस्त राशि है। एक कम अन्योन्या-भ्यस्त राशिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर जो प्रमाण आवे,उतना ही अन्तकी गुणहानिके द्रव्यका प्रमाण है। उससे दूना-दूना प्रथम गुणहानि पर्यन्त द्रव्यका प्रमाण है।

भागमात्रापूर्वस्पर्द्धकंगळगे उ ८ अवरिंदमे विधीयमानंगळप्प बादर कृष्टिगळगे उ ८
ख ख ९ ख
: ८ उ ०
ज ख ९ (ज ८) ख
उ ० ख ख ९ ख ४ ५
उ ० ख

अवरिंदमे विधीयमानंगळप्प कर्म्मशक्ति सूक्ष्मखंडंगळप्प सूक्ष्मकृष्टिगळगे —उ ८ यथा-
ख ९ ख ४ ख
उ ० ख
ज ८ १०
ख ९ ख ४ ख ४
उ ० । ख । ख

वृत्तिकरणपरिणामैः क्रियमाणतदनन्तैकभागमात्रापूर्वस्पर्धकानां (उ । ख) तेभ्य एव क्रियमाणबादरकृष्टीनां
ख
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज ख । ख १५
ख ९
उ ०

(उ ख) तेभ्य एव क्रियमाणकर्मशक्तिसूक्ष्मखण्डरूपसूक्ष्मकृष्टीनां च (उ । ख) यथाक्रमं अनुभागः
ख ९ ख ख ९ ख ४ ख
उ ० ख उ ० ख २०
ज । ख ज ख
ख ९ ख ४ ख ४ ख ९ ख ४ ख ४
उ ० ख ख उ ० ख ख

तथा 'दिवड्ढगुणभाजिदे पढमा', इस सूत्रके अनुसार साधिक डेढ़ गुणहानि आयामका भाग सर्व द्रव्यमें देनेपर जो प्रमाण हो, वही प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणाके परमाणुओंका २५
प्रमाण है। उसमें दो गुणहानिसे भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है। सो द्वितीयादि वर्गणाओंमें एक-एक चय घटता परमाणुओंका प्रमाण जानना। इस क्रमसे प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणासे जिस वर्गणामें परमाणुओंका प्रमाण आधा हो, वह द्वितीय गुणहानिकी प्रथम वर्गणा है। उससे पहले जितनी वर्गणा हुई, वे सब प्रथम गुणहानि सम्बन्धी जानना। द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी द्वितीयादि वर्गणाओंमें भी एक-एक चय घटता परमाणुओंका ३०
प्रमाण जानना। तथा यहाँ द्रव्य, चय आदिका प्रमाण प्रथम गुणहानिसे आधा-आधा जानना। इस तरह क्रमसे सर्व द्रव्यमें अनन्त नाना गुणहानियाँ हैं। उनमें प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणासे लेकर अनन्त गुणहानिकी अनन्त वर्गणा पर्यन्त जो वर्गणा है, उनके वर्गोंमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमसे बढ़ता-बढ़ता जानना। इसे अंक संदृष्टि द्वारा स्पष्ट करते हैं—सर्व द्रव्य ३१००, स्थिति ४०, गुणहानि आयाम ८, ३५
दो गुणहानि १६, नाना गुणहानि ५, अन्योन्याभ्यस्त राशि ३२। एक कम अन्योन्याभ्यस्त

राशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० को देने पर १०० प्राप्त हुए,वह अन्तिम गुणहानिका द्रव्य है। उससे दूना-दूना प्रथम गुणहानि पर्यन्त द्रव्य जानना १६००,८००,४००,२००,१००। साधिक डेढ़ गुण हानिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर २५६ आये। सो प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणामें वर्गोंका प्रमाण है। इसको दो गुणहानि १६ से भाग देनेपर सोलह आये। सो चयका प्रमाण है। सो द्वितीयादि वर्गणाओंमें इतना-इतना घटता वर्ग जानना। इस तरह प्रथम गुणहानिमें आठ वर्गणा जानना। द्वितीय गुणहानिमें भी आठ वर्गणा हैं। उनमें द्रव्य और चयका प्रमाण पूर्वसे आधा-आधा जानना। इस प्रकार सर्व द्रव्यमें क्रमसे आधी-आधी पाँच गुणहानियाँ होती हैं। उनकी रचना—

प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि
१४४	७२	३६	१८	९
१६०	८०	४०	२०	१०
१७६	८८	४४	२२	११
१९२	९६	४८	२४	१२
२०८	१०४	५२	२६	१३
२२४	११२	५६	२८	१४
२४०	प्रतिदेशक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज			१५
२५६	१२८	६४	३२	१६
१६००	८००	४००	२००	१००

चार-चार वर्गणाका समूह एक-एक स्पर्धक। एक-एक गुणहानिमें दो-दो स्पर्धक हैं। सो प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें आठ-आठ अविभाग प्रतिच्छेद पाये जाते हैं। दूसरी वर्गणाके वर्गोंमें नौ-नौ, तीसरीकीमें दस-दस और चौथीकीमें ग्यारह-ग्यारह जानना। तथा प्रथम गुणहानिके द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें सोलह-सोलह, दूसरीकीमें सतरह-सतरह, तीसरीकीमें अठारह-अठारह, चौथीकीमें उन्नीस-उन्नीस अविभाग प्रतिच्छेद हैं। तथा द्वितीय गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गोंमें चौबीस-चौबीस, आगे एक-एक अधिक है। इसी प्रकार अन्तिम गुणहानिके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणा पर्यन्त जानना।

अंक संदृष्टि अपेक्षा अविभाग प्रतिच्छेदोंकी रचनाका यन्त्र

प्रथम गुणहानि		द्वितीय गुणहानि		तृतीय गुणहानि		चतुर्थ गुणहानि		पंचम गुणहानि	
प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.	प्र. स्प.	द्वि. स्प.
११	१९	२७	३५	४३	५१	५९	६७	७५	८३
१०।१०	१८।१८	२६।२६	३४।३४	४२।४२	५०।५०	५८।५८	६६।६६	७४।७४	८२।८२
९।९। ९	१७।१७। १७	२५।२५। २५	३३।३३। ३३	४१।४१। ४१	४९।४९। ४९	५७।५७। ५७	६५।६५। ६५	७३।७३। ७३	८१।८१। ८१
८।८। ८।८	१६।१६। १६।१६	२४।२४। २४।२४	३२।३२। ३२।३२	४०।४०। ४०।४०	४८।४८। ४८।४८	५६।५६। ५६।५६	६४।६४। ६४।६४	७२।७२। ७२।७२	८०।८०। ८०।८०

क्रमविननुभागंगळ् स्वोत्कृष्टात्स्वजघन्यमुपरितनजघन्यादिवमधस्तनोत्कृष्टंगळ्नुमनंतगुणहीन-
क्रमंगळप्पुवु ।

ई प्रकारदिवमनिवृत्तिकरणपरिणामकृतसूक्ष्मकृष्टिगतलोभमनुळ्ळ जीवं ।

मार्गप्रकाश आचार्य श्री १०८ विद्यानन्द जी महाराज
स्वोत्कृष्टात् स्वजघन्यः उपरितनजघन्यादधस्तनोत्कृष्टश्चेति अनन्तगुणहीनक्रमा भवन्ति ॥

इस प्रकार अंक संदृष्टिके द्वारा जैसा कहा, वैसा ही पूर्वोक्त यथार्थ कथन समझ लेना चाहिए।

इस प्रकार कहे जो अनुभागके स्पर्धक पूर्व संसार अवस्थामें जीवोंके होते हैं, इससे इनको पूर्व स्पर्धक कहते हैं। इनमें जघन्य स्पर्धकसे लेकर लताभागादिरूप स्पर्धक होते हैं। उनमें लताभागादिरूप कुछ स्पर्धक देशघाती हैं। ऊपरके कुछ स्पर्धक सर्वघाती हैं। अनिवृत्तिकरण परिणामोंसे पहले कभी जो नहीं हुए, वे अपूर्व स्पर्धक हैं। उनमें जघन्य पूर्व स्पर्धकसे भी अनन्तवें भाग अनुभाग शक्ति उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धकमें पायी जाती है। अर्थात् विशुद्धताके द्वारा अनुभाग शक्ति घटाकर कर्म परमाणुओंको उस रूप परिणमाते हैं। यहाँ विशेष इतना ही हुआ कि पूर्व स्पर्धककी जघन्य वर्गणाके वर्गसे इस अपूर्व स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके वर्गमें अनुभाग अनन्तवें भाग है। उससे अन्य वर्गणाओंमें अनुभाग घटता हुआ है। उसका विधान पूर्वस्पर्धकवत् ही जानना। तथा वर्गणाओंमें परमाणुओंका प्रमाण पूर्व स्पर्धककी जघन्य वर्गणासे एक-एक चय बढ़ता हुआ पूर्व स्पर्धककी तरह क्रमसे जानना। यहाँ चयका प्रमाण पूर्व स्पर्धककी प्रथम गुणहानिके चयसे दूना है।

इसके पश्चात् अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा ही कृष्टि की जाती है। अनुभागका कृष करना अर्थात् घटानेको कृष्टि कहते हैं। सो संज्वलन क्रोध-मान-माया लोभका अनुभाग घटाकर स्थूल खण्ड करना बादर कृष्टि है। उत्कृष्ट बादरकृष्टिमें भी जघन्य अपूर्व स्पर्धकसे भी अनुभाग अनन्तगुणा घटता हुआ होता है। चारों कषायोंकी बारह संग्रह कृष्टि होती हैं। और एक-एक संग्रह कृष्टिमें अनन्त-अनन्त अन्तर कृष्टि होती हैं। उनमें लोभकी प्रथम संग्रहकी प्रथम कृष्टिसे लेकर क्रोधकी तृतीय संग्रहकी अन्तकृष्टि पर्यन्त क्रमसे अनन्तगुना-अनन्तगुना अनुभाग है। उस क्रोधकी तृतीय कृष्टिकी अन्तिम कृष्टिसे अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें अनन्तगुणा अनुभाग है। सो स्पर्धकोंमें तो पूर्वोक्त प्रकार अनुभागका क्रम था। यहाँ अनन्तगुणा घटता हुआ अनुभागका अनुक्रम हुआ। यही स्पर्धक और कृष्टिमें विशेष जानना। किन्तु वहाँ परमाणुओंका प्रमाण लोभकी प्रथम संग्रहकी जघन्य कृष्टिमें यथासम्भव बहुत है। उससे क्रोधकी तृतीय संग्रहकी अन्तिम कृष्टि पर्यन्त चय क्रमसे घटता हुआ है। यह अपूर्व स्पर्धक बादरकृष्टि क्षपक श्रेणीमें ही होती है, उपशम श्रेणीमें नहीं होती। तथा अनिवृत्तिकरण परिणामोंके द्वारा ही कषायोंके सर्व परमाणु संक्रम आदि विधानपूर्वक एक लोभरूप परिणमा कर बादर कृष्टिगत लोभरूप करके पीछे उनको सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमाता है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें की गयी जो सत्तामें सूक्ष्म कृष्टि, सो जब उदयरूप होती है, तब सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान होता है ॥५९॥

---

१. म °क्कोळुमनंत°।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहुमसांपराओ जहखाएणूणओ किंचि ॥६०॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अणुलोभं वेदयमानो जीव उवशमकः क्षपको वा । स सूक्ष्मसांपरायो यथाख्यातेनोनकः किंचित् ॥ अनिवृत्तिकरणचरमसमयस्थितजीवननंतरसमयदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमं पोद्दि सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायोदयमननुभविसुवुपशमकनुं क्षपकनुं मेणु सूक्ष्मसांपरायनेंबितु परमागमदोळ् प्रख्यातनाद नातने सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमंगळ विशुद्धियं नोडलनंतगुण-विशुद्धि सूक्ष्मसांपरायसंयमसंपन्ननु यथाख्यातचारित्रसंपन्ननं नोडलिकिन्त्यूननक्कुं ।

सूक्ष्मः सूक्ष्मकृष्टिगतस्सांपरायो लोभकषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपरायः एंबितन्वर्थसंज्ञेयिदं व्यपदेशिसल्पट्टं ॥

अनंतरमुपशांतकषायगुणस्थानस्वरूपनिर्द्देशार्थमी सूत्रावतारं—

कदकफलजुदजलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलए ।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि ॥६१॥

कतकफलयुतजलवत् शरदि सरः पानीयवन्निर्म्मले सकलोपशान्तमोहः उपशान्तकषायो भवति ॥

एंतु कतकफलचूर्णयुतं जलं प्रसन्नं मेघभ्रकलंकरहितमप्प शरत्कालदोळु सरःपानीयं प्रसन्नं अंते साकल्यदिंदमुपशांतमोहनीयमनुळ्ळमुपशांतकषायनक्कुं । उपशांताः साकल्येनोदया-ऽयोग्याः कृताः कषायनोकषायाः येनासावुपशांतकषायः एंबितु माडिद निरुक्तियिंदमत्यंतप्रसन्न-चित्तते सूचिसल्पट्टुदु ॥

अनिवृत्तिकरणचरमसमयानन्तरं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानं प्राप्य सूक्ष्मकृष्टिगतलोभं अनुभवन् उपशमकः क्षपको वा सूक्ष्मसांपराय इत्याख्यायते । स एव सामायिकछेदोपस्थापनसंयमविशुद्धितोऽतिविशुद्धिसूक्ष्मसांपराय-संयमसंपन्नः यथाख्यातचारित्रसंपन्नात् किंचिद्धीनो भवति । सूक्ष्मः कृष्टिगतः सांपरायो लोभकषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपराय इत्यन्वर्थनामत्वात् ॥६०॥ अथोपशान्तकषायगुणस्थानस्वरूपं निर्दिशति—

यथा कतकफलचूर्णयुतं जलं प्रसन्नं अथवा अभ्रकलंकरहितशरत्काले सरःपानीयं प्रसन्नं तथा साकल्येन उपशान्तमोहनीयः उपशान्तकषायो भवति । उपशान्ताः—साकल्येन उदयायोग्याः कृताः कषायनोकषाया येन

अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयके अनन्तर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको प्राप्त करके सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभके उदयको भोगनेवाला उपशमक अथवा क्षपक जीव सूक्ष्म साम्पराय कहा जाता है। वही जीव सामायिक और छेदोपस्थापना संयमकी विशुद्धिसे अतिविशुद्ध सूक्ष्म साम्पराय संयमसे सम्पन्न हुआ यथाख्यात चारित्रसे सम्पन्न जीवसे कुछ हीन होता है। जिसका साम्पराय अर्थात् लोभकषाय सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त है, वह सूक्ष्म-साम्पराय है। इस प्रकार यह नाम सार्थक है ॥६०॥

आगे उपशान्त कषाय गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

जैसे कतकफलके चूर्णसे युक्त जल निर्मल होता है अथवा मेघपटलसे रहित शरत् ऋतुमें जैसे सरोवरका जल ऊपरसे निर्मल होता है, वैसे ही पूर्णरीतिसे मोहको उपशान्त करनेवाला उपशान्त कषाय होता है। जिसने कषाय नोकषायोंको उपशान्त अर्थात् पूर्णरूपसे

यथाख्यातक्षीणकषायगुणस्थानमुं निर्देशार्हमप्पुदरिंदं पेळल्पटुदु—

णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥६२॥

निःशेषक्षीणमोहः स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तः । क्षीणकषायो भण्यते निर्ग्रंथो वीतरागैः ॥ ५

निःशेषक्षीणाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशसत्त्वरहिता मोहप्रकृतयो यस्यासौ क्षीणकषायः एंबो निरुक्त्याश्रयदिंदं निरवशेषमोहप्रकृतिसत्त्वरहितनप्प क्षीणकषाय नदुकारणदिंदं स्फटिकभाजनोदकसदृशमप्प प्रसन्नचित्तनुं क्षीणकषायनेंदितु वीतरागसर्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टनातने परमार्थदिंदं निर्ग्रंथनक्कुं । उपशांतकषायनुं यथाख्यातचारित्रसाधारण्यदिंद निर्ग्रंथनेंदितु प्रवचनदोळु प्रथितनादं ॥ १०

अनंतरं सयोगकेवलिगुणस्थानकथननिमित्तमो सूत्रमं पेळ्दपरु द्वितयमं—

असौ उपशान्तकषायः इति निरुक्त्या अत्यन्तप्रसन्नचित्तता सूचिता ॥६१॥ अथ क्षीणकषायगुणस्थानस्वरूपमाह—

निश्शेषक्षीणाः—प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरहिता मोहप्रकृतयो यस्यासौ निःशेषक्षीणमोहः (कषायः) इति निरवशेषमोहप्रकृतिसत्त्वरहितः क्षीणकषायः । ततः कारणात् स्फटिकभाजनोदकसदृशप्रसन्नचित्तः क्षीण- १५
कषाय इति वीतरागसर्वज्ञैर्भण्यते स एव परमार्थेन निर्ग्रन्थो भवति । उपशान्तकषायोऽपि यथाख्यातचारित्रसाधारण्येन निर्ग्रन्थ इति प्रवचने प्रतिपाद्यते (प्रतिपादितो जातः) ॥६२॥ अथ सयोगकेवलिगुणस्थानं गाथाद्वयेन कथयति—

उदयके अयोग्य कर दिया है, वह उपशान्त कषाय है । इस निरुक्तिसे उसका अत्यन्त प्रसन्न चित्तपना सूचित किया है ॥६१॥ २०

आगे क्षीणकषाय गुणस्थानका स्वरूप कहते हैं—

जिसकी मोहनीय कर्मकी प्रकृतियाँ निश्शेष क्षीण अर्थात् प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसे रहित हो गयी हैं, वह निःशेष क्षीणमोह अर्थात् समस्त मोहनीय कर्मप्रकृतियोंसे रहित जीव क्षीणकषाय है । इसी कारणसे क्षीणकषाय स्फटिकके पात्रमें रखे हुए स्वच्छ जलके समान प्रसन्नचित्त होता है, ऐसा वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं । वही परमार्थसे निर्ग्रन्थ होता २५
है । उपशान्तकषाय भी यथाख्यात चारित्रके होनेसे निर्ग्रन्थ है, ऐसा आगममें कहा है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायक्षपकके अन्तिम समयमें चारित्रमोहकी प्रकृति स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका बन्ध, उदय, उदीरणा तथा सत्ताके व्युच्छिन्न होनेपर उसके अनन्तर समय में चारित्र मोहका भी पूर्ण रूपसे विनाश होनेपर जीव क्षीणकषायी होता है। उसका चित्त अर्थात् भावमन विशुद्ध परिणाम अति निर्मल स्फटिक पात्रमें भरे निर्मल जलके समान ३०
होता है । अर्थात् जैसे वह जल कलुषित नहीं होता, उसी प्रकार यथाख्यात चारित्रसे पवित्र क्षीणकषायका विशुद्ध परिणाम भी किसी भी कारणसे कलुषित नहीं होता, वही परमार्थसे निर्ग्रन्थ है क्योंकि उसके कोई भी अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह नहीं होता ॥६२॥

आगे सयोग केवलि गुणस्थानको दो गाथाओंसे कहते हैं—

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥६३॥

केवलज्ञानदिवाकर-किरणकलापप्रणाशिताज्ञानः । नवकेवललब्ध्युद्गम-सुजनितपरमात्मव्यपदेशः ॥

केवलज्ञानदिवाकरस्य किरणकलापाः अर्थप्रकाशनपटवो दिव्यध्वनिविशेषास्तैः प्रणाशितं विनेयजनाज्ञानान्धकारं येनासौ केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः एवंविधविशेषणविशिष्टः सयोगभट्टारकोऽपि भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थसंपत्प्रणीतमादृढु । नवानां केवललब्धीनां क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यलक्षणानामुदयेन प्रादुर्भावेन सुजनितो वस्तुवृत्त्या विहितः परमात्मेति व्यपदेशो यस्यासौ नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः । एवंविधस्तु भगवानर्हत्परमेष्ठिगलनंतज्ञानादिविलक्षणस्वार्थसंपत् प्रदर्शितमाद्रियतु ॥

असहायणाणदंसणसहियो इदि केवली हु जोगेण ।
जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो ॥६४॥

असहायज्ञानदर्शनसहितः इति केवली खलु योगेन युक्त इति सयोगो जिनोऽनादिनिधनार्षे उक्तः । योगेन सह युक्त इति सयोगः असहायज्ञानदर्शनसहितः केवली । सयोगश्चासौ केवली च सयोगकेवली । घातिकर्मनिर्मूलको जिनः, सयोगकेवली चासौ जिनश्च सयोगकेवलिजिनः एवंविधस्तु अनादिनिधनार्षागमश्रोत्रा प्रतिपादितनावं ॥

तदनंतरमयोगकेवलिगुणस्थाननिरूपणार्थमिदं पेळ्दपरु—

केवलज्ञानदिवाकरस्य किरणकलापाः—अर्थप्रकाशनपटवो दिव्यध्वनिविशेषाः तैः प्रणाशितं विनेयजनाज्ञानान्धकारं येनासौ केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः । अनेन सयोगभट्टारकस्य भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थसंपत्प्रणीता । नवानां केवललब्धीनां क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यलक्षणानां उदयेन प्रादुर्भावेन सुजनितः—वस्तुवृत्त्या विहितः परमात्मेति व्यपदेशो यस्यासौ नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः इति भगवतोऽर्हत्परमेष्ठिनोऽनन्तज्ञानादिलक्षणस्वार्थसंपत् प्रदर्शिता ॥६३॥

योगेन सह युक्त इति सयोगः असहायज्ञानदर्शनसहित इति केवली सयोगश्चासौ केवली च सयोगकेवली । घातिकर्मनिर्मूलको जिनः, सयोगकेवली चासौ जिनश्च सयोगकेवलिजिनः, इत्यनादिनिधनार्षागमे उक्तः प्रतिपादितः ॥६४॥ अथायोगकेवलिगुणस्थानं निरूपयति—

जिनने केवलज्ञानरूपी सूर्यके किरण समूह रूप जो पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें प्रवीण दिव्यध्वनिके विशेष, उनके द्वारा शिष्य जनोंका अज्ञानान्धकार नष्ट कर दिया है। इससे सयोग केवली भगवान्के भव्यजीवोंका उपकार करने रूप परार्थ सम्पदा कही है। तथा क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, केवलज्ञान, केवल दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य इन नौ केवललब्धियोंके प्रकट होनेसे जिन्होंने वास्तवमें परमात्मा नामको प्राप्त किया है। इससे भगवान् अर्हन्त परमेष्ठीके अनन्तज्ञानादिरूप स्वार्थ सम्पदा दिखाई है ॥६३॥

योगसे युक्त होनेसे सयोग और असहाय ज्ञानदर्शनसे सहित होनेसे केवली, इस तरह सयोग और केवली होनेसे सयोग केवली हैं और घातिकर्मोंको निर्मूल करनेसे जिन हैं। इस तरह अनादि निधन आगममें उन्हें सयोगकेवली जिन कहा है ॥६४॥

आगे अयोग केवलि गुणस्थान कहते हैं—

सीलेसिं संपत्तो निरुद्धणिस्सेसआसओ जीवो ।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि ॥६५॥

शैलेशिं संप्राप्तो निरुद्धनिःशेषास्रवो जीवः । कर्मरजो विप्रमुक्तो गतयोगः केवली भवति ॥

अष्टादशसहस्रशीलाधिपत्यमं प्राप्तनुं निरुद्धनिःशेषास्रवनुमप्पुदरिंदं नूतनबध्यमानकर्मरजोविप्रमुक्तनुं मनोवाक्काययोगरहितनप्पुदरिंदं अयोगनुमेंदितु । न विद्यते योगो यस्यासौ अयोगः स चासौ केवली चायोगकेवली एंदितु भगवदर्हत्परमेष्ठिजीवं पेळल्पट्टं ॥

एवंविधमप्प पदिनाल्कुगुणस्थानंगळोळु स्वायुर्वर्जितकर्मंगळगे गुणश्रेणिनिर्ज्जरातत्कालविशेषनिर्देशार्थं गाथाद्वयावतारं ।

सम्मत्तुप्पत्तीए सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवगे कसायउवसामगे य उवसंते ॥६६॥

सम्यक्त्वोत्पत्तौ श्रावकविरतयोरनंतकर्मांशे । दर्शनमोहक्षपके कषायोपशमके चोपशान्ते ॥

खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा ।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति ॥६७॥

क्षपके च क्षीणमोहे जिनयोर्द्रव्याण्यसंख्यातगुणितक्रमाणि । तद्विपरीताः कालाः संख्येयगुणक्रमा भवन्ति ॥ प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तियोळकरणत्रयपरिणामचरमसमयवोळवर्त्तमानविशुद्धिविशिष्टमिथ्यादृष्टिगायुर्वर्जितज्ञानावरणादिकर्मंगळगावुदो दु गुणश्रेणिनिर्ज्जराद्रव्यमदं

अष्टादशसहस्रशीलाधिपत्यं संप्राप्तः, निरुद्धनिश्शेषास्रवत्वात् नूतनबध्यमानकर्मरजोविप्रमुक्तः, मनोवाक्काययोगरहितत्वादयोगः, न विद्यते योगो यस्यासौ अयोगः स चासौ केवली च अयोगकेवली इति भगवत्परमेष्ठिजीवः कथितः ॥६५॥ एवंविधचतुर्दशगुणस्थानेषु स्वायुर्वर्जितकर्मणां गुणश्रेणिनिर्जरा तत्कालविशेषं च गाथाद्वयेनाह—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ करणत्रयपरिणामचरमसमये वर्तमानविशुद्धिविशिष्टमिथ्यादृष्टेः आयुर्वर्जितज्ञानावरणादिकर्मणां यद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं ततः असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम् ।

जो अठारह हजार शीलोंके स्वामीपनेको प्राप्त हैं, समस्त आस्रवोंके रुक जानेसे जो नवीन बध्यमान कर्मरजसे सर्वथा रहित हैं, तथा मनोयोग, वचनयोग और काययोगसे रहित होनेसे अयोग हैं। इस तरह जिनके योग नहीं है तथा केवली भी हैं, वे अयोगकेवली भगवान् परमेष्ठी हैं ॥६५॥

इस प्रकारके चौदह गुणस्थानोंमें अपनी आयुके सिवाय शेष कर्मोंकी गुणश्रेणिनिर्जरा और उसका कालविशेष दो गाथाओंसे कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय होनेवाले तीन करणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें वर्तमान विशुद्धिसे विशिष्ट मिथ्यादृष्टिके, आयुको छोड़कर ज्ञानावरण आदि कर्मोंका जो गुणश्रेणिरूप निर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है, उससे असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी गुणश्रेणिरूप निर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे देशसंयतका गुणश्रेणिरूप निर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे सकल संयमीके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे अनन्तानुबन्धीकषायके विसंयोजकका गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है।

---

१. म °मदं नोडल्लं ।

नोडलसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु देशसंयतनगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडल् सकलसंयतनगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलनंतानुबंधिकषायविसंयोजकन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलनंतानुबंधिकषायसंयोजकन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडल् दर्शनमोहक्षपकन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलकषायोपशमकत्रयद गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलुपशांतकषायन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु क्षपकत्रयद गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु क्षीणकषायन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलु स्वस्थानकेवलिजिनगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलसमुद्घातकेवलिजिनन गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणमितेकादशस्थानंगळोळु गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यक्के प्रतिस्थानमसंख्यातगुणितत्वं पेळल्पट्टुदिल्लि गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यप्रमाणमें तुटे दोडे—अनादिसंसारनिबंधनबंधानुबंधसंबंधदिं संबंधिसिद्दं जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवप्रदेशंगळोळु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिसत्वद्रव्यं त्रिकोणरचनाभिप्रायदिंद किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणमक्कुं स ० १२ मी द्रव्यमनायुर्वर्जितज्ञानावरणादिकर्मंगळगेळ्कं पसलोंदु ज्ञानावरणीयकर्मद्रव्यमिनितक्कु ७ मिदं देशघाति-

स ० १२

ततः देशसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणम्। ततः सकलसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणम्। ततोऽनन्तानुबन्धिकषायविसंयोजकस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणम्। ततो दर्शनमोहक्षपकस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम्। ततः कषायोपशमकत्रयस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम्। तत उपशान्तकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम्। ततः क्षपकत्रयस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम्। ततः क्षीणकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम्। ततः स्वस्थानकेवलिजिनस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणम्। ततः समुद्घातकेवलिजिनस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं इत्येकादशसु स्थानेषु गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यस्य प्रतिस्थानमसंख्यातगुणितत्वमुक्तम्। तद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यप्रमाणं उच्यते। तद्यथा अनादिसंसारनिबन्धनबन्धानुबन्धसंबन्धेन संबद्धं जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवप्रदेशेषु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं त्रिकोणरचनाभिप्रायेण किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणं (स ० १२-) इदमायुर्वर्जितसप्तकर्मणां सप्तभिर्भक्त्वा दत्ते ज्ञानावरणीयस्यैतावत् (स ० । १२-) इदं देशघातिसर्वघातिविभागार्थं जिनदृष्टानन्तेन

७

उससे दर्शनमोहके क्षय करनेवालेके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे कषायोंका उपशम करनेवाले अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवोंके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे क्षपकश्रेणिवाले अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे समुद्घात न करते हुए स्वस्थान केवली जिनके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। उससे समुद्घात करनेवाले केवली जिनके गुणश्रेणिनिर्जराका द्रव्य असंख्यात गुणा है। इस प्रकार ग्यारह स्थानोंमें गुणश्रेणिनिर्जरा द्रव्यको प्रत्येक स्थानमें असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कहा। अब उस गुणश्रेणिनिर्जरा द्रव्यका प्रमाण कहते हैं। वह इस प्रकार है—अनादि संसारका कारण जो बन्ध, उस बन्धकी परम्पराके सम्बन्धसे बन्धरूप हुआ जगत्श्रेणिके घनप्रमाण एक जीवके प्रदेशोंमें स्थित ज्ञानावरण आदि मूल और उत्तर प्रकृतियोंके सत्तारूप द्रव्य त्रिकोण रचनाके अभिप्रायसे,

सर्वघातिशक्तियुक्तद्रव्यविभागनिमित्तमागि जिनदृष्टानंतभागहार । स । मिदरिं भागिसि सर्व्व-
स a १२-ख
घातिकेवलज्ञानावरणीयकर्मक्केकभागमं कोट्टु शेषबहुभागमनिदं ७ ख गुणकार
ऋणैकरू १ पमवज्ञे शेष्यु भाज्यभागहारानंतगळनपवर्त्तिसिदेशघातिगळप्प मतिज्ञानावरणीयं
श्रुतज्ञानावरणीयमवधिज्ञानावरणीयं मनःपर्य्ययज्ञानावरणीयमेंबी नाल्कक्कं पसुगे गेय्दोडों बु
स a १२-
मतिज्ञानावरणीयद्रव्यमिनितक्कु ७ । ४ इदनपकर्षण भागहारदिंदं भागिसि बंदेकभागद्रव्यमं ५
स a १२- स a १२-
७ । ४ ओ पल्यासंख्यातदिंदं भागिसि बंदेकभागद्रव्यमं ७ । ४ ओ । प मत्तमसंख्यातलोक-
स a १२- a
भागहारदिंदं भागिसि बंदेकभागद्रव्यमं ७ । ४ ओ । प≡a अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिम-
a

स a १२-१ स a १२-१ ख
भक्तैकभागं ७ । ख सर्वघातिकेवलज्ञानावरणस्य दत्त्वा शेषबहुभागे ७ । ख गुणकारे
ऋणैकरूपमवज्ञाय भाज्यभागहारभूतावनन्तावपवर्त्य देशघातिनां मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानां चतुर्णां
स a । १२-
चतुर्भिर्भक्त्वा दत्ते मतिज्ञानावरणस्यैतावत् ७ । ४ । इदमपकर्षणभागहारेण भक्त्वा बहुभागमिदं— १०
स a । १२-उ स a । १२-१ । १
७ । ४ उ तथैव तिष्ठतीति मत्वा शेषैकभागमिदं ७ । ४ उ पल्यासंख्यातेन भक्त्वा बहुभाग-

---

कुछ कम डेढ़ गुणहानि आयामसे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना है। इसमें आयुकर्मका भी थोड़ा-सा द्रव्य है। इसलिए उसमें कुछ कम करनेपर शेष सब द्रव्य सात कर्मोंका है। इसलिए उस द्रव्यमें सातका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण ज्ञानावरण कर्मका द्रव्य होता है। इसमें सर्वघाती और देशघातीका विभाग करनेके लिए जिन भगवान्‌के द्वारा देखे गये अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती केवलज्ञानावरणका द्रव्य है, अवशेष बहुभाग प्रमाण मतिज्ञानावरण आदि देश घाति प्रकृतियोंका द्रव्य है। इस देशघाति द्रव्यको मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानावरणरूप चार देशघाति प्रकृतियोंमें विभाग करनेके लिए चारसे भाग देनेपर एक भागप्रमाण मतिज्ञानावरणका द्रव्य होता है। इस मतिज्ञानावरण द्रव्यमें अपकर्षण भागहारका भाग देकर बहुभाग तो वैसे ही स्थित रहता है, ऐसा जानकर एक भागका ग्रहण किया।

विशेषार्थ—यहाँ मतिज्ञानावरणके द्रव्यको उदाहरणके रूपमें लिया है, इसलिए केवल उसीके द्रव्यका ग्रहण किया है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंका भी जानना। तथा जैसे अलकी राशिमें-से चार भाग करके किसी कार्यके लिए एक भाग ग्रहण करके शेष बहुभाग वैसे ही रख देते हैं, वैसे ही मतिज्ञानावरणके द्रव्यमें अपकर्षण भागहारका भाग देकर एक भागको अन्य रूप परिणमानेके लिए ग्रहण किया और शेष बहुभाग द्रव्य जैसे पहले अपनी स्थितिके समय सम्बन्धी निषेकोंमें स्थित था, वैसे ही रहा। विवक्षित भागहारका भाग देनेपर एक

धणमागच्छदि एंदुदयावलिसमयप्रमाणदिंद खंडिसिदोडे मध्यमधनमें बुवक्कुं $\frac{\text{स}\ a\ १२-}{१\ ।\ ४\ ओ\ ।\ प\equiv a}$

तं रूऊण अद्धाण अद्धेण णिसेयभागहारेण भजिदमेत्तमवहरिदेपचय" में दु रूपोनावलियर्द्धदिंद

होनमप्प निषेकहारदिंद मध्यमधनमं भागिसिदोडे प्रथमनिषेकमक्कुं $\frac{\text{स}\ a\ १२-}{१\ ।\ ४\ ।\ ओ\ ।\ प\equiv a}$ । ४ । १६–४ । श्रीमान् अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री महाराज

प्रचयराशियं दोगुणगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयमें दु द्विगुणगुणहानियिंद गुणियिसिदोडे

उदयावलिप्रथमनिषेकमक्कु $\frac{\text{स}\ a\ १\ २\ १\ ६}{१\ ४\ ।\ ओ\ प\equiv a\ ।\ ४\ ।\ १६+४}$ मिवरोळोंदु चयमं कळेदुत्तिरलु-

द्वयावलिद्वितीयनिषेकद्रव्यमक्कु $\frac{\text{स}\ a\ १२-१६-१}{१\ ।\ ४\ ।\ ओ\ प\equiv a\ ४\ ।\ १६\ ४}$ मितुदयावलिचरमसमय-

---

$\frac{\text{स}\ a\ ।\ १२-प}{\text{मिदं}\ ७\ ।\ ४\ ।\ उ\ ।\ प\ a}$ उपरितनस्थितौ देयमित्येकत्र संस्थापयेत् । शेषैकभागमिदं $\frac{\text{स}\ a\ ।\ १२—१}{७\ ।\ ४\ ।\ उ\ ।\ प\ a}$

$\frac{\text{स}\ a\ ।\ १२-\equiv a}{\text{पुनरसंख्यातलोकेन भक्त्वा बहुभागमिदं}\ ७\ ।\ ४\ ।\ उ\ ।\ प\equiv a}$ गुणश्रेण्यायामे देयमित्येकत्र संस्थापयेत् ।

$\frac{\text{स}\ a\ ।\ १२-१}{\text{शेषैकभागमिदं}\ ७\ ।\ ४\ ।\ उ\ ।\ प\equiv a}$ उदयावल्यां दीयते इत्युदयावल्या भक्ते मध्यधनमागच्छति

$\frac{\text{स}\ a\ ।\ १२-}{७\ ।\ ४\ ।\ उ\ प\equiv a\ ।\ ४}$। पुनः रूपन्यूनावल्यर्धनानेन निषेकभागहारेण भक्ते प्रचयो भवति

$\frac{\text{स}\ ।\ a\ ।\ १२-}{७\ ।\ ४\ ।\ उ\ प\equiv a\ ।\ ४\ ।\ १६\ ४}$ अयं दोगुणहान्या गुणितः उदयावलिप्रथमनिषेकः

$\frac{\text{स}\ ।\ a\ ।\ १२-।\ १६\ ।}{\text{स्यात्}\ ७\ ।\ ४\ ।\ उ\ ।\ प\equiv a\ ।\ ४\ ।\ १६-४}$ अयमेकचये अपनीते उदयावलिद्वितीयनिषेकः स्यात्

भागके बिना शेष सब भागको बहुभाग कहते हैं। सो अपकर्षण भागहारका भाग देकर बहुभागको वैसे ही रखकर एक भागको ग्रहण कर उसे किस-किस तरह परिणमाया, यह आगे कहते हैं।

उस एक भागको पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभागको तो ऊपरकी स्थितिमें देना है, इसलिए एक जगह स्थापित करके शेष एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देकर उसका बहुभाग तो गुणश्रेणिआयाममें देना है सो एक जगह स्थापित करके शेष एक भागको उदयावलीमें दिया जाता है। उदयावलीमें दिया हुआ द्रव्य वर्तमान समयसे लेकर

पर्य्यंतमोंदोंदु चयमं कळेयुत्तं पोगलु रूपोनावलिमात्रचयंगळं उदयावलिप्रथमनिषेकदोळु

$$\text{स a } १२-१६-४ \quad \text{स a } १२-१६-४$$

कळेयुत्तिरलन्तन्त्यनिषेकप्रमाणमक्कु ७।४ ओ प ≡ a।४।१६ + ४ मिल्लि मेलण गुण-

$$\text{a} \qquad \text{२}$$

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

$$\text{स a } १२-≡a$$

श्रेणिनिर्ज्जराद्रव्यमसंख्यातलोकबहुभागमं ७।४ ओ। प ≡ a सम्यक्त्वोत्पत्तिय गुणश्रेण्या-

$$\text{a}$$

यामम्मंतर्मुहूर्त्तमात्रसमयंगळोळु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमविदं निषेकरचने माडल्पडुगुमदं तंने—

गुणश्रेणिप्रथमसमयदोळु यावत्तावत्प्रमाणमोंदु १ द्वितीयसमयदोळदं नोडलसंख्यातगुणित- ५

शलाकेगळु ४ नाल्कंतसंख्यातगुणशलाकाक्रमदिं गुणश्रेणिचरमसमयदोळन्तद्योग्यासंख्यातगुण-

शलाकेगळक्कु मवक्के संदृष्टि ६४ मी प्रथमाविसमयशलाकेगळेल्लमं कूडिदोडे संदृष्टि ८५।

$$\text{स a । १२-१६ १} \qquad \text{स a । १२-१६-४}$$

७।४। उ। प ≡ a ४ १६-४ एवमुदयावलिचरमनिषेकपर्यन्तमेकैकचये अपनीते रूपोनावलिमात्रचयेषु

$$\text{a} \qquad \text{२}$$

$$\text{स a । १२-१६-४} \qquad \text{स a । १२-१६-४}$$

उदयावलि प्रथमनिषेकेषु अपनीतेषु तच्चरमनिषेकप्रमाणं भवति ७।४। उ। प ≡ a।४। १६-४

$$\text{a} \qquad \text{२}$$

$$\text{स । a । १२-≡a}$$

इतः परं गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातलोकबहुभागमात्रं ७।४।उ। प ≡ a सम्यक्त्वोत्पत्ति- १०

$$\text{a}$$

गुणश्रेण्यायामान्तर्मुहूर्तमात्रसमयेषु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण निषेकरचना क्रियते तद्यथा—गुणश्रेण्यायाम-

प्रथमसमये यावद् द्रव्यं निक्षिप्यते तत्प्रमाणं शलाका एका १, द्वितीयसमये ततोऽसंख्यातगुणितशलाकाश्चतस्रः ४।

एवमसंख्यातगुणितशलाकाक्रमेण गुणश्रेणिचरमसमये तद्योग्यासंख्यातगुणितशलाकाः स्युः, तत्संदृष्टिः ६४।

एक आवली प्रमाण कालमें पहले जो आवलीके निषेक थे, उनके साथ अपना फल देकर खिर जाता है। सो आवलीके प्रथम आदि समयमें कितना-कितना द्रव्य उदयमें आता है, यह आगे १५
कहते हैं—एक समय सम्बन्धी जितना द्रव्यका प्रमाण होता है, उसका नाम निषेक है। उदयावलीमें दिये गये द्रव्यको उदयावली कालके समयोंके प्रमाणसे भाग देनेपर मध्यके समय सम्बन्धी द्रव्यरूप मध्य धनका प्रमाण आता है। उसको एक कम आवलीके आधे प्रमाणसे हीन निषेक भागहार अर्थात् गुणहानि आयामके प्रमाणसे दूना जो दो गुणहानिका प्रमाण—उससे भाग देनेपर एक चयका प्रमाण होता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा २०
करनेपर उदयावलीके प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम निषेकका प्रमाण आता है। उसमें एक चय घटानेपर उदयावलीके द्वितीय समय सम्बन्धी द्वितीय निषेकका प्रमाण आता है। इसी तरह क्रमसे उदयावलीके अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक चय घटानेपर एक कम आवली प्रमाण चय उदयावलीके प्रथम निषेकमें-से कम होनेपर उदयावलीके अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। २५

"प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेत्सः" एंबी न्यायविदं प्रक्षेपशलाकायोग-

स अ १२ ≡ २

राशियिदं ८५। मिश्रपिंडराशियं भागिसि ७।४ ओ प ≡ अ।८५ बो राशिप्रक्षेपकंगळगे

अ

गुणकमक्कुमेंदु तंतम्म प्रमाणक्के संदृष्टिगळप्प गुणकारंगळोंदु नाल्कु पदिनारुगळ्वत्त नाल्कुगळिं

स अ १२ ≡ अ १

गुणियिसिवोडे प्रथमनिषेक ७।४ ओ प ≡ अ।८५ मिदं नोडलु द्वितीयनिषेकमसंख्यातगुणं—

अ

स अ १२≡अ ४

५ ७।४।ओ प≡अ ८५ इंतसंख्यातगुणितक्रमदिदं नडवु गुणश्रेणिचरमनिषेकसर्वोत्कृष्टमिदु

अ

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स अ १२ ≡ अ ६४ स अ १२-प

७।४ ओ प ≡ अ ८५ इल्लि मेलुपरितनस्थितिद्रव्यमिदु ७।४।ओ।प अ इदं नानागुणहानि-

अ

एताः प्रथमादिसमयसर्वशलाकाभिर्मिलितास्तदा संदृष्टिः ८५। अनेन शलाकायोगेन मिश्रपिण्डराशिं भक्त्वा

स अ।१२-।≡अ स अ।१२-।≡अ।१

७।४।उ।प ≡ अ।८५ संदृष्टिगुणकारेण एकेन गुणिते प्रथमनिषेकः ७।४।उ प ≡ अ।८५

अ अ

स अ।१२-।≡अ।४

चतुर्भिर्गुणिते द्वितीयनिषेकः ७।४।उ।प।≡अ।८५ षोडशभिर्गुणिते तृतीयनिषेकः

अ

स अ।१२-≡अ।१६ स अ।१२-।≡अ।६४

१० ७।४।उ।प।≡अ।८५ चतुःषष्ट्या गुणिते चरमनिषेकः ७।४।उ प।≡अ।८५ एवम-

अ अ

विशेषार्थ—उक्त कथनको अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं—जैसे उदयावलीमें दिये हुए द्रव्यका प्रमाण दो सौ, गच्छ आवलीका प्रमाण आठ। एक-एक गुणहानिमें जो निषेकोंका प्रमाण सो गुणहानि आयाम। उसका प्रमाण आठ, उसको दूना करने पर दो गुणहानिका प्रमाण सोलह, सौ सर्वद्रव्य दो सौको आवली प्रमाण गच्छ आठका भाग देनेपर पचीस १५ आये सो मध्यधनका प्रमाण हुआ। इसको एक कम आवलीका आधा साढ़े तीन, उसे निषेकहार सोलहमें घटानेपर साढ़े बारह रहे, उससे भाग देनेपर दो आये। यही चयका प्रमाण जानना। इसको दो गुणहानि सोलहसे गुणा करनेपर बत्तीस आये, यही प्रथम निषेकका प्रमाण है। इसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीय आदि निषेकोंका तीस आदि प्रमाण होता है। इस तरह एक कम आवली प्रमाण चयके हुए चौदह, उन्हें प्रथम निषेक

गळ प्रथमप्रथमनिषेकंगळोळर्द्धार्द्धक्रममागि मुंदे त्रिकोणरचनाविशेषमं माळपल्लि पेळ्दपेमिल्लि प्रयोजनमिल्लिप्पुदरिं गुणश्रेणिनिर्ज्जराद्रव्यं पेळल्पट्टुदु। आवकावि पेत्तु स्थानंगळुमसंख्यातगुणितक्रममाद प्रकारमं तोरे—

गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यनिमित्तमागि पुगुवपकर्षणभागहारंगळ्गे विशुद्धिनिबंधनत्वमुंटप्पुदरिंवं तत्तद्विशुद्धयनुगुणमागियपकर्षणभागहारंगळसंख्यातगुणहीनंगळागि पुगलसंख्यातगुणितक्रमसिद्धियक्कुमप्पुदरिंवं गुणश्रेण्यायामकालंगळु मत्ते तद्विपरीतंगळदं तोरे समुद्घातजिनन मोदलागि विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालपर्य्यंतं संख्यातगुणंगळक्रमदिंदं अप्पुवु। समुद्घातजिनगुणश्रेण्यायामकालमंतर्मुहूर्त्तमं २ १ नोडल् स्वस्थानजिनगुणश्रेण्यायामकालं संख्यातगुणमितु पश्चादनुपूर्व्वियिंदं संख्यातगुणितक्रमदिंदं अल्लल्लि गुणश्रेण्यायामकालंगळुपरियल्पडुवुवु।

स ठ । १२—। प ।

संख्यातगुणितक्रमेण गुणश्रेणिद्रव्यं दत्तं भवति। इतोऽग्रे उपरितनस्थितद्रव्यमिदं ७ । ४ । उ । प ठ

ठ

नानागुणहानिषु प्रथमप्रथमनिषेकेषु अर्धार्धक्रमेण अग्रे त्रिकोणरचनाविशेषः करिष्यते, अत्र प्रयोजनाभावाच्च कृतः।

मार्गदर्शक, आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तत्तद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्य [illegible] कथं जातं ? इति चेत् तन्निमित्तप्रविष्टापकर्षणभागहाराणां विशुद्धिनिबन्धनत्वेन असंख्यातगुणहीनत्वात्तस्यासंख्यातगुणितक्रमप्रसिद्धेः। गुणश्रेण्यायामकालाः पुनस्तद्विपरीताः। तद्यथा—समुद्घातजिनमादिं कृत्वा विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालपर्यन्तं संख्यातगुणाः क्रमेण भवन्ति। समुद्घातजिनगुणश्रेण्यायामकालोऽन्तर्मुहूर्तः २ १, अतः स्वस्थानजिनगुणश्रेण्यायामकालः

---

३२ में घटाने पर शेष अठारह अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। इन सब ३२, ३०, २८, २६, २४, २२, २०, १८ को जोड़नेपर दो सौ सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है। इसी तरह अर्थसंदृष्टिसे भी पूर्वोक्त यथार्थ स्वरूपको जानना।

गुणश्रेणी निर्जराका द्रव्य असंख्यात लोक बहु भाग मात्र है। सो सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय होनेवाले करणोंके काल सम्बन्धी गुणश्रेणी आयाम अन्तर्मुहूर्तके समयोंमें प्रति समय असंख्यात गुणित क्रमसे निषेक रचना की जाती है। जो इस प्रकार है—उस गुणश्रेणी आयामके प्रथम समयमें जितना द्रव्य दिया, उसका प्रमाण एक शलाका है। दूसरे समयमें उससे असंख्यात गुणी शलाका ४ है। इस तरह असंख्यात गुणित शलाकाके क्रमसे गुणश्रेणीके अन्तिम समयमें उसके योग्य असंख्यात गुणित शलाका होती हैं। उनकी संदृष्टि ६४ है। इनमें प्रथम आदि समय सम्बन्धी सब शलाकाओंको मिलानेपर उसकी संदृष्टि ८५ है।

विशेषार्थ—इस कथनको अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं—जैसे गुणश्रेणीमें दिये हुए द्रव्यका प्रमाण छह सौ अस्सी है। गुणश्रेणी आयामका प्रमाण चार, असंख्यातका प्रमाण चार। प्रथम समय सम्बन्धी द्रव्यकी शलाका एक, दूसरे समय सम्बन्धी द्रव्यकी शलाका उससे असंख्यात गुणी ४, तीसरे समय सम्बन्धी उससे असंख्यात गुणी शलाका १६, चौथे समय सम्बन्धी उससे असंख्यात गुणी शलाका चौंसठ ६४। इनका जोड़ पचासी होता है। इससे सबके द्रव्य छह सौ अस्सीमें भाग देनेपर आठ आते हैं। इस आठको अपनी-अपनी शलाकासे गुणा करें। आठको एकसे गुणा करनेपर प्रथम समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण

१. म °पसु °शे४ ओ प = ठ ८५ स्था ।

पर्य्यवसानदोळ् बहुवारं संख्यातगुणितमादोडं विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेणि-आयामकाल-मंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमेयक्कुमवरिंदधिकभागदेकें दोडे जघन्यांतर्म्मुहूर्त्तमावलिप्रमाणं २ सर्व्वतः स्तोकं मेले समयोत्तरावलिगळेल्लं मध्यमांतर्म्मुहूर्त्तंगळागुत्तं पोगि समयोनमुहूर्त्तक्के उच्छ्वासंगळु ३७७३ अल्लियो दुच्छासके संख्यातनिमेषंगळो दु निमेषक्के संख्यातावलिगळु २१ इंतागुत्तं विरलु चरमांतर्म्मुहूर्त्तं संख्यातावलिवक्कुं २१९ मादियंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा एंदु जघन्यावलियंतर्मुहूर्तवात्मप्रमाणमं तंदु २।१। चरमांतर्म्मुहूर्तावलिय गुणकारबोळो दु रूपं

कळेदु २१९ वृद्धियिदं भागिसुवुदु वृद्धियो दे समयप्रमाणमप्पुदरिंदं भागिसि बंद लब्धमनितेयक्कुं

संख्यातगुणः। एवं पश्चादानुपूर्व्या गन्तव्यं। पर्यवसाने बहुवारं संख्यातगुणितत्वेऽपि विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुण-
मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
श्रेण्यायामकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र एव नाधिकः। कुतः? जघन्योऽन्तर्मुहूर्तः आवलिप्रमाणः सर्वतः स्तोकः,
उपरिसमयोत्तरावलिप्रभृतयः सर्वेऽपि मध्यमान्तर्मुहूर्ता भूत्वा चरमस्य समयोनमुहूर्तस्योच्छ्वासाः ३७७३।
एकोच्छ्वासस्य संख्यातावल्यः २१ तदा चरमान्तर्मुहूर्तस्य संख्यातावल्योऽमूः २१९ आवलिमात्रान्तर्मुहूर्तस्य

आत्मप्रमाणमेकरूपं संस्थाप्य २।१, चरमान्तर्मुहूर्तावलेर्गुणकारस्योपर्यपनीय २१९ वृद्ध्या एकसमयेन

आठ ८ होता है। चारसे गुणा करनेपर द्वितीय समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण बत्तीस ३२ होता है। सोलहसे गुणा करनेपर तीसरे समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण एक सौ अट्ठाईस १२८ होता है। चौसठसे गुणा करनेपर अन्तिम समय सम्बन्धी निषेकका प्रमाण पाँच सौ बारह ५१२ होता है। इस तरह सब समयोंमें ८, ३२, १२८, ५१२ सब मिलकर ६८० छह सौ अस्सी द्रव्यकी निर्जरा होती है। इस प्रकार यहाँ सम्यक्त्वकी उत्पत्तिरूप जो करण हैं, उनके गुणश्रेणी आयाममें उदाहरण देकर कथन किया; इसी तरह अन्यत्र भी जानना।

इससे आगे जो ऊपर की स्थितिमें दिया द्रव्य है वह विवक्षित मतिज्ञानावरणकी स्थितिके जो पहले निषेक थे, उनमें क्रमसे देना चाहिए। उन निषेकोंके पूर्व द्रव्यमें इसको भी क्रमसे मिला देना चाहिए। सो नाना गुणहानिमें पहले-पहले निषेकमें आधा-आधा देना, तथा द्वितीयादि निषेकोंमें क्रमसे एक-एक चय हीन देना। इसमें त्रिकोण रचना होती है, उसका विशेष कथन आगे करेंगे। यहाँ प्रयोजन नहीं होने से नहीं किया।

शंका—पहले कहा था कि वह गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य श्रावक आदि दस स्थानोंमें असंख्यात गुणा-असंख्यात गुणा होता है? सो कैसे होता है?

समाधान—उस गुणश्रेणी द्रव्य लानेमें कारणभूत जो अपकर्षण भागहार है, उत्तरोत्तर अधिक विशुद्धि होनेसे उस भागहारमें असंख्यात गुणा हीनपना है। इसलिए उस गुणश्रेणी-द्रव्यके क्रमसे असंख्यात गुणापना सिद्ध है। अर्थात् श्रावकादि दस स्थानोंमें विशुद्धता अधिक-अधिक है। इससे जो पूर्वस्थानमें अपकर्षण भागहारका प्रमाण था, उसके असंख्यातवें भाग अपकर्षण भागहारका प्रमाण आगेके स्थानमें होता है। सो जितना भागहार कम होता जाता है, उतना ही लब्धराशिका प्रमाण बढ़ता जाता है। इससे गुणश्रेणिका द्रव्य जो लब्धराशिरूप है, वह भी क्रमसे असंख्यात गुणा होता है। किन्तु गुणश्रेणी आयामका काल उससे विपरीत है अर्थात् समुद्घात गत केवलिजिनसे लेकर विशुद्धमिथ्यादृष्टि पर्यन्त गुणश्रेणी आयामका काल क्रमसे संख्यात गुणा-संख्यात गुणा है। वह इस प्रकार है—समुद्घात गत केवलिजिनका गुणश्रेणी आयामकाल अन्तर्मुहूर्त है। उनसे स्वस्थान केवलिजिनका

२ १ १ २ १ १

१ रूवसंजुदे ठाणा ओवुरूपं कूडुत्तिरलु मंगदिर्शिक्यानविकल्पंगळ गुणस्थानंगळ संख्यातसहस्रराज
संख्यातमागुत्तं संख्यातावलिप्रमाणंगळक्कुमप्पुवरिंदं ॥

अनंतरमितु कर्मसहितं जीवंगळ्गं गुणस्थानाश्रितमप्प स्वरूपमं तत्तत्कर्मनिर्जराकालप्रमाणमुमं पेळ्दु निर्जीर्णकर्म्मरूप्य सिद्धपरमेष्ठिगळ स्वरूपमं मतांतरविप्रतिपत्तिनिराकरणपूर्वकं निरूपिसल्वेडि मुंदणगाथाद्वयमं पेळ्दपरु । ५

अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥६८॥

अष्टविधकर्मविकलाः शीतीभूता निरंजना नित्याः । अष्टगुणाः कृतकृत्याः लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥ केवलमुक्तगुणस्थानवर्तिगळे जीवंगळोळवें बुदिल्ल । मत्तं सिद्धाश्च

भक्ता २ १ १ एकरूपे युते २ १ १ लब्धान्तर्मुहूर्तविकल्पानां संख्यातावलिप्रमाणत्वात् ॥ ६७ ॥ १०
१ १

अथैवं सकर्मजीवानां गुणस्थानाश्रितस्वरूपं तत्तत्कर्मनिर्जराद्रव्यकालायामप्रमाणं च प्ररूप्य निर्जीर्णकर्मसिद्धपरमेष्ठिनां स्वरूपं मतान्तरविप्रतिपत्तिनिराकरणपूर्वकं गाथाद्वयेनाह—

न केवलं उक्तगुणस्थानवर्तिन एव जीवाः सन्ति सिद्धा अपि—स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धिसंपन्नमुक्तजीवा

गुणश्रेणी आयामकाल संख्यात गुणा है। इसी प्रकार पश्चात् आनुपूर्वीसे संख्यात गुणा-संख्यात गुणा ले जाना चाहिए। इस तरह अन्त तक अनेक बार संख्यातगुणा-संख्यातगुणा होनेपर भी विशुद्ध मिथ्यादृष्टिके गुणश्रेणी आयामका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, अधिक नहीं है। क्योंकि जघन्य अन्तर्मुहूर्त आवलिप्रमाण है वह सबसे छोटा है। इससे ऊपर एक समय अधिक आवलिसे लेकर सब मध्यम अन्तर्मुहूर्त एक समय कम मुहूर्त प्रमाण है। एक मुहूर्तमें तीन हजार सात सौ तिहत्तर ३७७३ उच्छ्वास होते हैं। तथा एक उच्छ्वासमें संख्यात आवली होती हैं। अतः दो बार संख्यात गुणित आवलि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। 'आदी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा', इस सूत्रके अनुसार आवलिमात्र जघन्य अन्तर्मुहूर्तको दो बार संख्यात गुणित आवलि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तमें-से घटाकर वृद्धिके प्रमाण एक समयसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो, उसमें एक जोड़नेपर जो प्रमाण आवे, उतने ही अन्तर्मुहूर्तके भेद होते हैं जो संख्यात आवलि प्रमाण हैं ॥६७॥

इस प्रकार कर्मसहित जीवोंके गुणस्थानोंके आश्रयसे होनेवाले स्वरूपका और उस उस कर्मकी निर्जराके द्रव्य तथा कालके आयामका प्रमाण कहकर अब सब कर्मोंको निर्जीर्ण कर देनेवाले सिद्ध परमेष्ठीके स्वरूपको अन्य मतोंके विवादका निराकरण करते हुए कहते हैं—

केवल उक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव नहीं हैं, किन्तु सिद्ध भी हैं अर्थात् स्वात्माकी

---

१. म संख्यातंगलागुत्तिरलु सं. ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संति सिद्धरुमोळरु सिद्धियें बुदु स्वात्मोपलब्धियक्कुमदरिंदं सिद्धिरस्त्येषामिति सिद्धाः एंदितु प्राप्तानंतज्ञानादिस्वरूपरें बुदत्थं ।

मत्तमवर्गळें तप्परें दोडे अष्टविधकर्मविकलाः अंतें बुदेनें बुदें दोडे अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भितंगळप्प ज्ञानावरणाविमूलप्रकृतिकर्मंगळें टु मेंटु गुणंगळगे प्रतिपक्षंगळवेंतेने इल्लिगुपयोगिगाथासूत्रद्वयं ।

मोहो खाइयसम्मं केवळणाणं च केवळालोयं ।
हणदि हु आवरणदुगं अणंतविरियं हणेदि विग्घं तु ॥
सुहुमं च णामकम्मं हणेदि आऊ हणेदि अवगहणं ।
अगुरुगलहुगं गोदं अव्वाबाहं हणेदि वेयणियं ॥

एंवितष्टविधप्रतिपक्षकर्मप्रक्षयविंद निष्प्रतिपक्षमागितोळगे बेळगुतिप्प सिद्धमुक्तरेंबुदत्थं । अेदरिंदं संसारिजीवक्के मुक्तियिल्लेंब याज्ञिकमतमुं, सर्वदा कर्ममलंगळिंदमस्पृष्टत्वविंद सदा मुक्तने सदैवेश्वरनें एंबितु पेळ्व सदाशिवमतमुमपास्तमाप्तु ॥

मत्तें तत्परवर्गळें दोडे शीतीभूताः अंतें बुदुमेनें बुदें दोडे सहजशारीरागंतुकमानसादिविविधसांसारिकदुःखवेदनापरितापपरिक्षयविंदं सुनिर्वृत्तरेंबुदत्थं । इदरिंदं मुक्तियोळात्मंगे सुखाभाववेंबितु पेळ्व सांख्यमतमपाकृतमाप्तु ॥

अपि सन्ति । ते कथंभूताः ? अष्टविधकर्मविकला अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भाणां ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिकर्मणां—

इत्यष्टगुणप्रतिपक्षाणां प्रक्षयेण विकलाः निष्प्रतिपक्षा मुक्ता इत्यर्थः । अनेन संसारिजीवस्य मुक्तिर्नास्तीति याज्ञिकमतं, सर्वदा कर्ममलैरस्पृष्टत्वेन सदा मुक्त एव सदैवेश्वर इति सदाशिवमतं च अपास्तं । पुनः कथंभूताः ? शीतीभूताः सहजशरीरागन्तुकमानसादिविविधसांसारिकदुःखवेदनापरितापपरिक्षयेण सुनिर्वृत्ता इत्यर्थः । अनेन मुक्तौ आत्मनः सुखाभावं वदन् सांख्यमतमपाकृतं । पुनः कथंभूताः ? निरंजनाः—अभिनवास्रवरूपकर्ममलरूपाञ्जनान्निष्क्रान्ताः इत्यर्थः । अनेन मुक्तात्मनः पुनः कर्माञ्जनसंसर्गेण संसारोऽस्तीति वदन्

उपलब्धिरूप सिद्धिसे सम्पन्न मुक्त जीव भी हैं। वे अनेक प्रकारकी उत्तर प्रकृतियोंको गर्भमें लिये ज्ञानावरण आदि आठ मूल प्रकृतियोंका, जो आठ गुणोंकी विरोधी हैं, क्षय हो जानेसे कर्मसे रहित हैं। कहा है—

'मोहनीय कर्म क्षायिक सम्यक्त्वको घातता है। ज्ञानावरण केवलज्ञानको और दर्शनावरण केवलदर्शनको घातता है। अन्तराय कर्म अनन्तवीर्यको घातता है। नामकर्म सूक्ष्मत्व गुणको घातता है। आयुकर्म अवगाहन गुणको घातता है। गोत्रकर्म अगुरु-लघुत्व गुणको घातता है। वेदनीय अव्याबाध गुणको घातता है।'

इससे 'संसारी जीवकी मुक्ति नहीं है', ऐसा माननेवाला याज्ञिकमत तथा 'सदा कर्ममलसे अछूता होनेसे सदा मुक्त ही ईश्वर है', यह सदाशिववादियोंका मत अपास्त किया। वे सिद्ध शीतीभूत हैं अर्थात् जन्ममरणरूप सहज दुःख, रोगादिरूप शारीरिक दुःख, सर्प आदिसे होनेवाला आगन्तुक दुःख, आकुलतारूप मानसिक दुःख इत्यादि अनेक सांसारिक दुःखोंकी वेदनाके सन्तापका सम्पूर्ण रूपसे विनाश होनेसे सुखस्वरूप हैं। इससे

---

१. म विदरिं ।

मत्तवर्गळेतप्परे दोडे निरंजनाः अंतेबुदेनें बुदे दोडे अभिनवास्रवरूपमप्प कर्ममलरूपांजनवर्त्तिसिदं निष्क्रांतरें बुदर्त्थमिवरिंदं मुक्तात्मगें पुनः कर्म्मांजनसंसर्गदिंदं संसारमुंटेंदितु पेळ्व मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातमाय्तु ॥

मत्तमवर्गळे तप्परे दोडे नित्याः अंतेबुदेनें बुदे दोडे एत्तलानु प्रतिसमयविवर्त्तिगळप्पर्थपर्य्यायंगळिदं परिणतरप्प सिद्धरु उत्पादव्ययंगळं तन्मोळमाळ्परागियुं विशुद्धचैतन्यसामान्यरूपद्रव्याकारान्वयमाहात्म्यवर्त्तिसिदं सर्व्वकालमुं ध्रौव्यमनवलंबिसिर्प्पवर्गळु नित्यतेयं बिडुवरल्लें बुदर्त्थमिदरिंदं प्रतिक्षणं विशराग्गळप्पचित्पर्य्यायंगळे एकसंतानवर्त्तिगळपरमार्त्थंगळागि नित्यं द्रव्यमिल्लें दितु पेळ्व बौद्धप्रत्ययवस्थे प्रतिव्यूढमाय्तु ॥

मत्तमेंतप्परवर्गळें दोडे अष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्य्यसौक्ष्म्यावगाहाऽगुरुलघुकत्व अव्याबाधत्वमें बे टुं गुणंगळोळ्कूडिदरु अदुपलक्षणमदरिंदं तदनुसारिगळप्पनंतानंतगुणंगळवरोळेयंतर्भावमक्कुमें बुदर्त्थमिवरिंदं ज्ञानादिगुणंगळत्यंतोच्छित्तियात्मग मुक्ति यें दितु पेळ्व नैयायिकवैशेषिकाभिप्रायं प्रत्युक्तमाय्तु ॥

मत्तमवर्गळे तप्परे दोडे कृतकृत्याः कृतं निष्ठापितं कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं यैस्ते कृतकृत्याः एंदितु पेळ्दुवरिंदमीश्वरं सदा मुक्तनादोडं जगन्निर्म्मापणदोळु कृतादरत्वदिंदमकृतकृत्यने यक्कुमें दितु पेळ्वेश्वरसृष्टिवादाकूतमुं निराकृतमाय्तु ॥

मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातं । पुनः कथंभूताः ? नित्याः । यद्यपि प्रतिसमयवर्त्यर्थपर्यायैः परिणतसिद्धा उत्पादव्ययौ स्वस्मिन् कुर्वन्तोऽपि विशुद्धचैतन्यसामान्यरूपद्रव्याकारान्वयमाहात्म्यात् सर्वकालाश्रिताव्ययत्वात् ते नित्यतां न जहन्तीत्यर्थः । अनेन प्रतिक्षणं विनश्वरचित्पर्यायाः एव एकसंतानवर्तिनः परमार्थतो नित्यद्रव्यं नेति वदन्तोऽपि बौद्धप्रत्ययवस्था प्रतिव्यूढा । पुनः कथंभूताः ? अष्टगुणाः क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्यावगाहागुरुलघुकत्वाव्याबाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपलक्षणं । तेन तदनुसार्यनन्तानन्तगुणानां तेष्वेवान्तर्भाव इत्यर्थः, अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यन्तोच्छित्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रायः प्रत्युक्तः । पुनः कथंभूताः ? कृतकृत्याः कृतं-निष्ठापितं, कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं यैस्ते कृतकृत्याः । इत्यनेन ईश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्निर्मापणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वददीश्वरसृष्टिवादाकूतं निराकृतं । पुनः कथंभूताः ? लोकाग्रनिवासिनः-लोक्यन्ते जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति लोकः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रान्ते

मुक्तिमें आत्माके सुखका अभाव कहनेवाले सांख्यमतका निराकरण किया। वे सिद्ध निरंजन हैं अर्थात् नवीन आस्रवरूप कर्ममल रूप अंजनसे रहित हैं। इससे मुक्तात्मा पुनः कर्ममलके संसर्गसे संसारमें लौट आते हैं,ऐसा माननेवाला मस्करी मत खण्डित किया। वे सिद्ध नित्य हैं अर्थात् यद्यपि प्रतिसमय होनेवाली अर्थपर्यायरूप परिणमन करनेवाले सिद्ध अपनेमें उत्पाद-व्ययशील हैं,फिर भी विशुद्ध चैतन्य सामान्यरूप द्रव्याकारके अन्वयके माहात्म्यसे सदा अविनाशी होनेसे वे नित्यताको नहीं छोड़ते हैं। इससे प्रतिक्षण विनश्वर एकसन्तानवर्ती चित्क्षण ही परमार्थ सत् है; नित्य द्रव्य नहीं है, ऐसा कहनेवाले बौद्धोंका निराकरण किया। तथा वे सिद्ध क्षायिक सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सौक्ष्म्य, अवगाह, अगुरुलघु, अव्याबाध नामक आठ गुणोंसे सहित हैं। ये गुण तो उपलक्षण हैं, जिससे उनमें तदनुसारी अनन्तानन्त गुणोंका अन्तर्भाव होता है। इससे ज्ञानादि विशेष गुणोंका अत्यन्त नाश हो

---

१. म द्रव्य° ।

मत्तमवर्गळे तप्परे वोडे लोकाग्रनिवासिनः लोक्यंते जीवादयः पदार्थाः अस्मिन्निति लोकः एंवितप्प लोकत्रयसन्निवेशाग्रवोळ्तनुवातप्रांतवोळ् निवासिगळु स्थस्नुगळु एत्तलानुं कर्म्मक्षय-क्षेत्रवर्त्तणिदं मेगणि कर्मक्षयानंतरमंतप्प गमनस्वाभाव्यवर्त्तणिमवर्गळेप्पुवरंतेंदोडे लोकाग्रवर्त्तणिवमूर्ध्वगमनसहकारि धर्म्मास्तिकायाभाववर्त्तणिवमल्लिवं मेगणिसल्वरल्लरु इंतो लोकाग्र-निवासित्वमे युक्तमवर्गळ्के वोडेऽन्यथा लोकालोकविभागाभावं प्रसंगिसुगुमिदरिंदमात्मंगे ऊर्ध्व-गमनस्वाभाव्यवर्त्तणिवं मुक्तावस्थे योळ्लिल्लियु विश्रमाभावविवं मेळे मेळे पोपनें दि पेळ्द मंडलिमतं प्रत्यस्तमाय्तु ।

सदसिव संखो मक्कडि बुद्धो णइयाइयो य वैसेसी ।
ईसर-मंडलिदंसणविदूसणट्ठं कयं एदं ॥६९॥

सदाशिवसांख्यमस्करीबुद्धनैयायिकवैशेषिकेश्वरमंडलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतद्विशेषणं ॥

ई गाथासूत्रविंदं पूर्व्वोक्तविशेषणंगळ्गुदाहरणोल्लेखनं तोरल्पट्टुदु ।

सदाशिवः सदाऽकर्म्मा सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितम् ।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिम् ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो योगश्च मन्यते ।
कृतकृत्यं त्वसौ ज्ञानो मंडली चोर्ध्वगामिनम् ॥ एंवितु ॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सविधिसागर जी महाराज

निवासिनः स्थास्नवः । यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्मक्षयानन्तरं तथागमनस्वाभाव्यात् ते गच्छन्ति तथापि लोकाग्रत ऊर्ध्वगमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावान्न तदुपरि इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां, अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते । अनेन आत्मनः ऊर्ध्वगमनस्वाभाव्यात् मुक्तावस्थायां क्वचिदपि विश्रामाभावात् उपर्युपरि गमनमिति वदन्माण्डलिकमतं प्रत्यस्तं ॥६८॥

सदाशिवसांख्यमस्करिबुद्धनैयायिकवैशेषिकेश्वरमण्डलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतद्विशेषणं ।

इत्याचार्य नेमिचन्द्र विरचितायां गोम्मटसारापरनाम पञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानप्ररूपणा नाम प्रथमोऽधिकारः ॥१॥

जाना आत्माकी मुक्ति है, ऐसा कहनेवाले नैयायिक-वैशेषिकोंके अभिप्रायका निराकरण किया। तथा वे सिद्ध कृतकृत्य हैं अर्थात् उन्होंने सकल कर्मोंका क्षय और उनके कारणादि-का अनुष्ठानरूप सब कृत्य पूर्ण कर लिया है। इससे ईश्वर सदा मुक्त होकर भी जगत्के बनानेमें लगा रहनेसे अकृतकृत्य है, ऐसा ईश्वर-सृष्टिवादियोंका अभिप्राय निराकृत किया। वे सिद्ध लोकाग्रनिवासी हैं। जिसमें जीवादि पदार्थ देखे जायें, वह लोक है। इस प्रकार तीनों लोकोंके अग्रभाग तनुवातवलयके अन्तमें वे निवास करते हैं। यद्यपि वे जिस स्थानमें कर्मोंका क्षय करते हैं; कर्मोंका क्षय करनेके बाद उस क्षेत्रके ऊपर ही जानेका उनका स्वभाव है, फिर भी लोकके अग्र भागसे आगे ऊर्ध्वगमनमें सहायक धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे उससे ऊपर नहीं जाते। इसलिए उनका लोकके अग्रभागमें निवास करना ही युक्त है; अन्यथा लोक और अलोकके विभागका अभाव प्राप्त होता है। इससे 'आत्माका ऊर्ध्वगमन-का स्वभाव होनेसे मुक्त होनेपर कहीं भी ठहरना सम्भव नहीं है। अतः सर्वदा ऊपर-ऊपर जाता है' ऐसा माननेवाले माण्डलिक मतका निराकरण किया ॥६८॥

आगे श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव 'अष्टविधकर्मविकला' इत्यादि सात विशेषणोंका प्रयोजन कहते हैं—

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित-पुण्यपुंजायमान-श्रीमद्रायराजगुरु-भूमंडलाचार्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचित गोम्मटसारकर्म्माटकवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळ्प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपण महाधिकारं निरूपितमाय्तु ॥ ५

सदाशिवमत, सांख्यमत, मस्करी, बौद्धमत, नैयायिकमत, वैशेषिक मत, ईश्वरवादी, और माण्डलिकमतको दोषयुक्त बतलानेके लिए उक्त विशेषण कहते हैं। कहा है—

सदाशिव मतवादी ईश्वरको सदा कर्मसे रहित मानता है। सांख्य मुक्त जीवको सुखसे रहित मानता है। मस्करी मुक्तोंका पुनः संसारमें आगमन मानता है। बौद्ध क्षणिक और यौग मुक्तात्माको निर्गुण मानते हैं। ईश्वरवादी ईश्वरको कृतकृत्य नहीं मानते। और मण्डलीक मत आत्माको सदा ऊर्ध्वगामी मानता है ॥६९॥ १०

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से गुणस्थान प्ररूपणा नामक प्रथम महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१॥ १५

अथ जीवसमासप्ररूपणा ॥ २ ॥

नमः सिद्धेभ्यः । श्रीवीतरागाय नमः ॥

इंतु गुणस्थानलक्षणसंख्याविप्ररूपणानंतरं जीवसमासप्ररूपणमं प्रारंभिसुत्तं निरुक्तिपूर्व्वकमागि सामान्यदिंदं तल्लक्षणमं पेळ्दपं ।

जेहि अणेया जीवा जोयंते[1] बहुविहा वि तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था जीवसमासा त्ति विण्णेया ॥७०॥

यैरनेके जीवा ज्ञायंते बहुविधा अपि तज्जातयस्ते पुनः संगृहीतार्था जीवसमासा इति विज्ञेयाः ॥

आवुवु केलवु सदृशपरिणामस्वरूपंगळप्प धर्म्मंगळिंदं जीवंगळनेकंगळु पलवाहोडं बहुविधंगळु बहुप्रकारंगळादोडं तज्जातिगळु विवक्षितसामान्यक्रोडीकरणदिंदमेकध्यमानीतंगळप्परियल्पडुवु वा धर्म्मंगळु संगृहीतार्थंगळंतर्भावितव्यक्तिगळ्जीवसमासे गळेंबरियल्पडुवुवु ।

जीवाः समस्यंते संगृह्यंते यैर्येषु वा ते जीवसमासा इति । एंबिंतु निर्व्वचनसद्भावमंटप्पुदरिंदमिदरिंद समस्तसंसारिजीवसंग्रहप्रयोजनमप्प जीवसमासप्ररूपणं प्रारंभिसल्पट्टुदेंबितरियल्पट्टुवु । अथवा यैर्धर्म्मैर्जीवा अणेया अनेया अपि कुतो बहुविधत्वात् । न च नानात्मव्यक्तयः

जित्वा घातीनि कर्माणि लब्ध्वानन्तचतुष्टयम् ।
विश्वं येन समुद्दिष्टमजितं तं नमाम्यहं ॥ १ ॥

एवं गुणस्थानलक्षणसंख्यादिप्ररूपणानन्तरं जीवसमासप्ररूपणामारभमाणः निरुक्तिपूर्वकं सामान्येन तल्लक्षणमाह—

यैः सदृशपरिणामधर्मैः जीवाः, अनेके—बहवोऽपि, बहुविधाः—बहुप्रकारा अपि तज्जातयः विवक्षितसामान्यक्रोडीकरणादेकत्रानीताः[2], ज्ञायन्ते ते धर्माः संगृहीतार्थाः अन्तर्भावितव्यक्तयः जीवसमासा इति विज्ञेयाः । जीवाः समस्यन्ते—संगृह्यन्ते यैः, येषु वा ते जीवसमासा इति निर्वचनात् । अनेन समस्तसंसारि-

---

इस प्रकार गुणस्थानका लक्षण, संख्या आदि कहनेके बाद जीव समासकी प्ररूपणाको रचते हुए निरुक्तिपूर्वक सामान्यसे उसका लक्षण कहते हैं—

समान पर्यायरूप जिन धर्मोंके द्वारा अनेक जीव और बहुत प्रकारकी भी उनकी जातियाँ अर्थात् विवक्षित सामान्य धर्मके द्वारा इकट्ठा करनेसे एकत्र किये गये जीव समूह जाने जाते हैं, व्यक्तियोंको अन्तर्भूत करनेवाले उन धर्मोंको जीव समास जानना । जिनमें या जिनके द्वारा जीव 'समस्यन्ते' अर्थात् संगृहीत किये जाते हैं, वे जीव समास हैं, ऐसी उसकी निरुक्ति है । इससे यह जानना कि समस्त संसारी जीवोंके संग्रहके प्रयोजनसे जीव समासका

---

१. णज्जंते मु. । २. ब °दैकदेशनीता ।

सामस्त्येन केवलज्ञानव्यतिरेकेण गम्यन्तेऽतस्तथा ज्ञातुमशक्या अपि तज्जातयः सैव जातिर्येषां ते तज्जातयः। संगृहीतार्थाः सम्यक् सामस्त्येन गृहीता गर्भीकृताः क्रोडीकृताः अर्था व्यक्तयो यैस्ते संगृहीतार्थास्ते जीवसमासा इति ज्ञातव्याः। अथवा तज्जातयस्ताश्च ताः जातयश्च तज्जातयः। संगृहीतार्थाः सं सामस्त्येन गृहीता गर्भीकृताः क्रोडीकृताः अर्था व्यक्तयो यकाभिस्ताः संगृहीतार्था निर्विशेषा न भवंतीत्यर्थः। 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्'। इति संगृहीतार्थाभिस्तज्जातिभिः करणभूताभिर्जीवाः प्राणिनोऽनेकेऽपि बहुविधा अपि ज्ञायन्ते ता जीवसमासा इति ज्ञातव्याः॥

अनंतरं जीवसमासोत्पत्तिनिबन्धनतल्लक्षणप्रणयनार्थमिदं पेळ्दपरु।

तसचदुजुगाणमज्झे अविरुद्धेहि जुदजादिणामकम्मुदए।
जीवसमासा होंति हु तब्भवसारिच्छसामण्णा॥७१॥

त्रसचतुर्युगलानां मध्येऽविरुद्धैर्युतजातिनामकर्मोदये जीवसमासा भवंति तद्भवसादृश्यसामान्याः॥ त्रसस्थावरंगळु बादरसूक्ष्मंगळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तंगळु प्रत्येकसाधारणंगळु एंबी नाल्कुं युगलंगळ्नामकर्मप्रकृतिगळोळगे यथासंभवमविरुद्धप्रकृतिगळोडने कूडिदेकेंद्रियादि जातिनाम

जीवसंग्रहप्रयोजनं जीवसमासप्ररूपणं प्रारब्धमिति ज्ञातव्यं। अथवा यैर्धर्मैः जीवा अणेया अज्ञेया अपि कृतः? बहुविधत्वात् न च नानात्मव्यक्तयः सामस्त्येन केवलज्ञानव्यतिरेकेण गम्यन्ते अतस्तथा ज्ञातुमशक्या अपि तज्जातयः सैव जातिर्येषां ते तज्जातयः संगृहीतार्थाः—सम्यक्—सामस्त्येन, गृहीताः—गर्भीकृताः क्रोडीकृता अर्था व्यक्तयो यैस्ते संगृहीतार्थास्ते जीवसमासा इति ज्ञातव्याः। अथवा तज्जातयः—ताश्च ताः जातयश्च तज्जातयः। संगृहीतार्थाः—सं सामस्त्येन गृहीताः—गर्भीकृता क्रोडीकृता अर्था व्यक्तयो यकाभिस्ताः संगृहीतार्था निर्विशेषा न भवन्तीत्यर्थः 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्' इति संगृहीतार्थाभिस्तज्जातिभिः करणभूताभिः जीवाः प्राणिनः, अनेकेऽपि बहुविधा अपि ज्ञायन्ते ता जीवसमासा इति ज्ञातव्याः॥७०॥ अथ जीवसमासोत्पत्तिनिबन्धनतल्लक्षणमाह—

त्रसस्थावरौ बादरसूक्ष्मौ पर्याप्तापर्याप्तौ प्रत्येकसाधारणाविति चत्वारि युगलानि नामकर्मप्रकृतीनां तन्मध्ये यथासंभवमविरुद्धप्रकृतिभिः सह मिलितस्य एकेन्द्रियादिजातिनामकर्मणः उदये सति प्रादुर्भूताः

कथन प्रारम्भ किया है। अथवा जीव 'अणेय' अर्थात् अज्ञेय हैं, उन्हें जानना सम्भव नहीं है; क्योंकि संसारी जीवोंके बहुत प्रकार हैं। तथा केवलज्ञानके बिना नाना आत्मा रूप व्यक्तियोंको पूरी तरहसे नहीं जाना जा सकता। इसलिए यद्यपि समस्त पर्यायरूपसे जीवोंको जानना अशक्य है, फिर भी समस्त रूपसे व्यक्तियोंको अपनेमें समाविष्ट करनेवाली जो उनकी जातियाँ हैं, वे ही जीवसमास हैं। अथवा समस्त रूपसे व्यक्तियोंको अपनेमें गर्भित करनेवाली वे जातियाँ विशेषसे रहित नहीं हैं; क्योंकि कहा है—'विशेषसे शून्य सामान्य गधेकी सींगकी तरह असम्भव है।' इसलिए व्यक्तियोंको पूरी तरहसे अपनेमें गर्भित करनेवाली जातिके द्वारा बहुत प्रकारके भी जीव जाने जाते हैं। उन्हें जीवसमास जानना॥७०॥

आगे जीवसमासकी उत्पत्तिके कारणोंको लिये हुए उसका लक्षण कहते हैं—

त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारण ये चार युगल हैं। इन नामकर्मकी प्रकृतियोंमें-से यथासम्भव अविरुद्ध प्रकृतियोंके साथ मिलित एकेन्द्रिय आदि

---

१. म °तार्थास्तैर्भिस्त°।

कर्म्मोदयमुंटागुत्तिरलु प्रादुर्भूतंगळप्प तद्भवसादृश्यसामान्यरूप जीवधर्म्मंगळु जीवसमासंगळे बुवक्कुं। तद्भवसामान्यमें बुदुते विवक्षितद्रव्यगतपर्य्यायास्त्रिकालगोचरा भवंति। विद्यन्तेऽस्मिन्निति तद्भवं। सामान्यमूर्ध्वतासामान्यमित्यर्थः। ऊर्ध्वतासामान्यमें बुदु नानाकालवोळेकव्यक्तिगतान्वयमूर्ध्वतासामान्यमक्कुं। द्रव्याश्रितपर्य्यायमन्वयमें बुदु। स्यासकोशकुशूलघटकपालादि पर्य्यायंगळोळनुस्यूतमृत्तिकाद्रव्यमन्वयरूपद्रव्यमन्वयमेंदु पेळल्पट्टुदु।

सादृश्यसामान्यंगळ्तिर्य्यक्सामान्यंगळेंबुदर्थ। एककालवोळु नानाव्यक्तिगतान्वयं तिर्य्यक्सामान्यं। सदृशपरिणामंगळप्प खंडमुंडशबलशाबलेयादिविविधव्यक्तिगळोळु गोत्वादियें तंते, पृथिवीकायिकादि विविध जीवंगळोळेकेंद्रियत्वादि धर्म्मंगळु सदृशपरिणामरूपगळ् जीवसमासंगळप्पुवें बुदु खलु तात्पर्य।

मत्तमा चतुर्युगलंगळोळु एकेंद्रियजातिनामकर्म्मोदयं त्रसनामकर्म्मोदयं विरुद्धं शेषकर्म्मोदयमविरुद्धं, द्वींद्रियादि जातिनाम कर्म्मचतुष्टयोदये स्थावरसूक्ष्मसाधारणनाम कर्म्मंगळुदयं विरुद्धमितर कर्म्मोदयमविरुद्धमन्ते त्रसनाम कर्म्मोदये स्थावरसूक्ष्मसाधारण नामकर्मोदयं विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं स्थावरनामकर्मोदये त्रसनामकर्मोदयमोदे विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं थावर-

---

तद्भवसादृश्यसामान्यरूपजीवधर्मा जीवसमासा भवन्ति। तद्भवसामान्यं नाम ते विवक्षितद्रव्यगतपर्यायास्त्रिकालगोचरा भवन्ति—विद्यन्ते अस्मिन्निति तद्भवं सामान्यं—ऊर्ध्वतासामान्यमित्यर्थः। तच्च नानाकाले एकव्यक्तिगतान्वयरूपं भवति। द्रव्याश्रितपर्यायोऽन्वयः। स्थासकोशकुशूलघटकपालिकादिषु मृदिव अन्विताकारद्रव्यं तेनोपलक्ष्यते। सादृश्यसामान्यानि तिर्यक्सामान्यानीत्यर्थः। एककाले नानाव्यक्तिगतोऽन्वयस्तिर्यक्सामान्यं सदृशपरिणामाः खण्डमुण्डशबलशाबलेयादिविविधव्यक्तिषु गोत्वादिवत्। तथा पृथिवीकायिकादिविविधजीवेषु एकेन्द्रियत्वादिधर्माः सदृशपरिणामरूपा जीवसमासा भवन्तीति खलु तात्पर्यं। पुनः तेषु चतुर्षु युगलेषु एकेन्द्रियजातिनामकर्मणा सह त्रसनामकर्मोदयो विरुद्धः। द्वीन्द्रियादिजातिनामकर्मचतुष्टयेन सह स्थावरसूक्ष्मसाधारणनामकर्मोदयो विरुद्धः इतरकर्मोदयः अविरुद्धः। तथा त्रसनामकर्मणा सह स्थावरसूक्ष्मसाधारणनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः। स्थावरनामकर्मणा सह त्रसनामकर्मोदय एव विरुद्धः

जातिनाम कर्मका उदय होनेपर प्रकट हुए तद्भव सादृश्य सामान्य रूप जीवधर्म जीव समास होते हैं। जिसमें विवक्षित द्रव्यगत त्रिकालवर्ती पर्याय होती हैं, उसे तद्भव सामान्य कहते हैं। उसीका नाम ऊर्ध्वता सामान्य है। वह नाना समयोंमें एक व्यक्तिमें विद्यमान अन्वय रूप होता है। एक द्रव्यके आश्रित पर्यायोंको अन्वय कहते हैं। जैसे स्थास, कोश, कुशूल, घट, कपाल आदि पर्यायोंमें मिट्टी अन्वित आकारको लिये हुए द्रव्य है। अर्थात् स्थास आदि सब पर्यायोंमें मिट्टी अनुस्यूत रहती है। सादृश्य सामान्य तिर्यक् सामान्यको कहते हैं। एक कालमें नाना व्यक्तियोंमें पाया जानेवाला अन्वय तिर्यक् सामान्य है अर्थात् नाना व्यक्तियोंमें जो सदृश परिणाम होता है, वह तिर्यक् सामान्य है। जैसे खण्डी, मुण्डी, चितकबरी, काली, धौली आदि गायोंमें गायपना समान धर्म है, उसी प्रकार पृथिवीकायिक आदि विविध जीवोंमें एकेन्द्रियपना आदि सदृश परिणामरूप धर्म जीवसमास हैं। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उक्त चार युगलोंमें एकेन्द्रिय जाति नाम कर्मके साथ त्रस नाम कर्मका उदय विरुद्ध है। इसी तरह द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म, तेइन्द्रिय जाति नाम कर्म, चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म और पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्मके साथ स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम

---

१. म बुदक्कुं।

नामकर्मंदोडने सूक्ष्मनामकर्मोदयमो दे विरुद्धं शेषप्रकृतिगळुदयमविरुद्धं । सूक्ष्मनामकर्मंदोडने त्रसबादरप्रत्येकनामकर्मंगळुदयं विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं । पर्याप्तनामकर्मंदोडनऽपर्य्याप्तनामकर्मोदयमो दे विरुद्धमुळिदेल्ला कर्मोदयमविरुद्धमपर्य्याप्तनामकर्मोदयदोडने पर्य्याप्तनामकर्मोदयमो दे विरुद्धमुळिदेल्ला कर्मोदयमविरुद्धं । प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयदोडने साधारणशरीरनामकर्मोदयं विरुद्धं शेषकर्मोदयमविरुद्धं । साधारणशरीरनामकर्मंदोडने प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयं विरुद्धं । त्रसनामकर्मोदयमुं विरुद्धमितविरुद्धप्रकृत्युदयजनितसदृशपरिणामधर्मंगळु जीवसमासंगळे दितु वेदितव्यंगळप्पुवु ॥

अनंतरं संक्षेपविदं जीवसमासस्थानप्ररूपणनिमित्तमी सूत्रावतारं ।
णगदसेक - ...वाले श्री सुबाहिसागर जी महाराज

बादरसुहुमेइंदिय विदिचदुरिंदिय असण्णिसण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा होंति ॥७२॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियाऽसंज्ञी संज्ञिनश्च । पर्याप्तापर्याप्ता एवं ते चतुर्दश भवंति ॥

एकेंद्रियक्के बादरसूक्ष्मभेदविदमेरडु भेदमप्पुवु । द्वींद्रिय-त्रींद्रिय-चतुरिंद्रियंगळे बु विकलत्रयक्के मूरु भेदमप्पुवु । पंचेंद्रियक्कसंज्ञिसंज्ञिगळे बेरडु भेदमप्पुवु । इंती येळुं जीवभेदक्कं प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्त भेदसंभवदिदमा जीवसमासंगळु संक्षेपविदं पदिनाल्कप्पुवे बितु ज्ञातव्यमक्कु ॥

शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । बादरनामकर्मणा सह सूक्ष्मनामकर्मोदयो विरुद्धः, शेषप्रकृत्युदयः अविरुद्धः । सूक्ष्मनामकर्मणा सह त्रसबादरप्रत्येकनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । पर्याप्तनामकर्मणा सह अपर्याप्तनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषसर्वकर्मोदयः अविरुद्धः । अपर्याप्तनामकर्मोदयेन सह पर्याप्तनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषसर्वकर्मोदयः अविरुद्धः । प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयेन सह साधारणशरीरनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । साधारणशरीरनामकर्मणा प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयः, त्रसनामकर्मोदयश्च विरुद्धः । एवमविरुद्धप्रकृत्युदयजनितसदृशपरिणामधर्माः जीवसमासा इति ज्ञातव्या भवन्ति ॥७१॥ अथ संक्षेपेण जीवसमासस्थानानि प्ररूपयति—

एकेन्द्रियस्य बादरसूक्ष्माविति द्वौ, विकलत्रयस्य द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया इति त्रयः, पञ्चेन्द्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिनाविति द्वौ । एवं समजीवभेदाः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताभ्यां गुणिताः संक्षेपेण चतुर्दशजीवसमासा

कर्मका उदय विरुद्ध है। अन्य कर्मोंका उदय अर्थात् त्रस, बादर और प्रत्येक नाम कर्मका उदय अविरुद्ध है। तथा त्रसनाम कर्मके साथ स्थावर, सूक्ष्म और साधारण नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मका उदय अविरुद्ध है। स्थावर नाम कर्मके साथ एक त्रस नाम कर्मका उदय ही विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है। बादर नाम कर्मके साथ सूक्ष्म नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है। सूक्ष्म नाम कर्मके साथ त्रस, बादर, और प्रत्येक नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है। पर्याप्त नाम कर्मके साथ अपर्याप्त नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष सब कर्मोंका उदय अविरुद्ध है। अपर्याप्त नाम कर्मके उदयके साथ पर्याप्त नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष सब कर्मोंका उदय अविरुद्ध है। प्रत्येक शरीर नाम कर्मके उदयके साथ साधारण शरीर नाम कर्मका उदय विरुद्ध है, शेष कर्मोंका उदय अविरुद्ध है। साधारण शरीर नाम कर्मके साथ प्रत्येक शरीर नाम कर्मका उदय और त्रसनाम कर्मका उदय विरुद्ध है। इस प्रकार अविरुद्ध प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुए सदृश परिणाम रूप धर्मको जीवसमास जानना चाहिए ॥७१॥

तदनंतरं विस्तरजीवसमासप्ररूपणार्थमी गाथासूत्रमं पेळ्दपरु।

भू आउ तेउ वाऊ णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा।
पत्तेयपदिट्ठिदरा तस पण पुण्णा अपुण्णदुगा ॥७२॥

भू अप्तेजोवायवो नित्यचतुर्गतिनिगोदस्थूलेतराः। प्रत्येकप्रतिष्ठितेतरौ त्रसपञ्चपूर्णा-
५ पूर्णद्विकाः॥

भूकायिकाप्कायिक-तेजस्कायिक-वायुकायिकंगळु वनस्पतिकायिकंगळोळु नित्यनिगोद-साधारणचतुर्गतिनिगोदसाधारणमेंबितिवारं जीवभेदंगळ्गे प्रत्येकं बादरसूक्ष्मविकल्पदिंद द्वादश-भेदंगळप्पुवु। प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकक्के प्रतिष्ठिताऽप्रतिष्ठितभेददिं मेरडु भेदंगळप्पुवु। द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियमे बी विकलेंद्रियक्के मूरु भेदंगळु पंचेंद्रियक्कसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियभेददिंद-
१० मेरडु भेदंगळप्पुवु। इंतु त्रसक्कैदु भेदंगळप्पुविल्लमं कूडियों दुगुंदिदिप्पत्तु जीवसमासंगळप्पुवु। इवक्केल्लं प्रत्येकं पर्याप्तकं निर्वृत्यपर्याप्तकं लब्ध्यपर्याप्तकमेंवितु मूरुं विकल्पमक्कुमदरिंदं मूरिरवं गुणियिसिदोडे विस्तरदिंदं जीवसमासंगळु सप्तपंचाशत्प्रभेदं(भेदं)गळप्पुवु ॥५७॥

तदनंतरमी सप्तपंचाशज्जीवभेदंगळ्गवांतरविशेषप्रदर्शनार्थं स्थानाद्यधिकारचतुष्टयमं पेळ्दपं।

---

१५ भवन्ति ॥७२॥ अथ विस्तरजीवसमासान् प्ररूपयति—

भूकायिकाप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकाः वनस्पतिकायिकेषु नित्यनिगोदसाधारणचतुर्गतिनिगोद-साधारणाश्चिति षट्भेदाः। प्रत्येकं बादरसूक्ष्माविति द्वादश। प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकस्य प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिताविति द्वौ। द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिया इति त्रयः। पञ्चेन्द्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाविति द्वौ एवं सर्वे मिलित्वा एकोनविंशतिजीवसमासा भवन्ति। एते सर्वेऽपि प्रत्येकं पर्याप्तकाः निर्वृत्यपर्याप्तका लब्ध्यपर्याप्तकाश्च
२० भवन्तीति विस्तरतो जीवसमासाः सप्तपञ्चाशद्भेदा भवन्ति ॥७३॥ अथैषां सप्तपञ्चाशज्जीवभेदानां अवान्तर-विशेषप्रदर्शनार्थं स्थानाद्यधिकारचतुष्टयमाह—

आगे संक्षेपसे जीवसमासोंके स्थान कहते हैं—

एकेन्द्रियके बादर और सूक्ष्म दो भेद, विकलत्रयके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये तीन भेद, पंचेन्द्रियके संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद, इस तरह ये सात जीवभेद हुए। प्रत्येक
२५ भेदको पर्याप्त और अपर्याप्तसे गुणा करने पर संक्षेपसे चौदह जीवसमास होते हैं ॥७२॥

आगे विस्तारसे जीवसमासोंको कहते हैं—

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकोंमें नित्य निगोद साधारण तथा चतुर्गति निगोद साधारण ये छह भेद हुए। प्रत्येकके बादर और सूक्ष्म भेद होनेसे बारह हुए। प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिकके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ये दो भेद हैं।
३० दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन विकलत्रय हैं। पंचेन्द्रियके असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय ये दो भेद, ये सब मिलकर उन्नीस जीवसमास होते हैं। इन सबमें भी प्रत्येक पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक होते हैं। इस प्रकार विस्तारसे जीव-समासके सत्तावन भेद होते हैं ॥७३॥

आगे इन सत्तावन जीव भेदोंके अवान्तर भेद बतलानेके लिए चार अधिकार
३५ कहते हैं—

ठाणेहि वि जोणीहि वि देहोगाहणकुलाण भेदेहि ।
जीवसमासा सव्वे परूविदव्वा जहाकमसो ॥७४॥

स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनकुलानां भेदैर्जीवसमासा सर्वे प्ररूपयितव्याः यथा क्रमशः ॥

स्थानंगळिंदमुं योनिगळिंदमुं देहावगाहनंगळिंदमुं कुलंगळ भेदंगळिंदमुल्ला जीवसमासंगळु यथाक्रमविंदं प्रवचनपरिपाटिघनतिक्रमविंदं प्ररूपयितव्यंगळक्कुं ॥

अनंतरं यथोद्देशस्तथा निर्देशः एंबी न्यायविंदं प्रथमोद्दिष्टजीवसमासस्थानाधिकारव प्ररूपणार्थमी गाथा चतुष्टयमं पेळ्दपं ।

सामण्ण जीव तसथावरेसु इगिवियलसयल चरिमदुगे ।
इंदियकाये चरिमस्स य दुतिचदुपणगभेदजुदे ॥७५॥

सामान्यजीवस्त्रसस्थावरयोरेक विकल सकले चरमद्विके इंद्रिये काये चरमस्य च द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते ॥ एंबितल्लिप्पुपयोगलक्षणमनुळ्ळ सामान्यजीवनोळु द्रव्यार्थिकनयविषयमागि माडल्पट्टुत्तिरलोंदु जीवसमासस्थानमक्कुं ।

संग्रहनयगृहीतार्थभेदकव्यवहारनयविवक्षेयोळु संसारिजीवक्के प्रथमभेदंगळप्प त्रसस्थावरंगळ् बेंगी करिसल्पट्ट बेरडु जीवसमासस्थानंगळक्कुं । मत्तमन्यप्रकारविंदं व्यवहारविवक्षेयोळे-केंद्रिय-विकलेंद्रिय-सकलेंद्रियस्वरूपंगळप्प मूरुजीवभेदंगळोळधिकृतंगळ् मूरुजीवसमासस्थानंगळप्पुवितु मुंदेल्लेडेयोळं प्रकारांतरं गळिंदं व्यवहारनयविवक्षेयरियल्पडुगु मवं तोडे—एकेंद्रिय-विकलेंद्रियंगळ कडेय सकलेंद्रियक्कसंज्ञि संज्ञिभेदद्वयमागुत्तिरलु नाल्कु जीवसमासस्थानंगळप्पुवे

स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनैरपि कुलानां भेदैरपि सर्वे ते जीवसमासाः, यथाक्रमं—प्रवचनपरिपाट्यनतिक्रमेण प्ररूपयितव्या भवन्ति ॥७४॥ अथ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायेन प्रथमोद्दिष्टजीवसमासस्थानाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह—

तत्रोपयोगलक्षणसामान्यजीवे द्रव्यार्थिकनयेन विषयीकृते जीवसमासस्थानमेकं, संग्रहनयगृहीतार्थभेदक-व्यवहारनयविवक्षायां संसारिजीवस्य प्रथमभेदौ त्रसस्थावरावधिकृतौ इति जीवसमासस्थाने द्वे । पुनरन्यप्रकारेण व्यवहारनयविवक्षायां एकेन्द्रियविकलेन्द्रियसकलेन्द्रियजीवानधिकृत्य जीवसमासस्थानानि त्रीणि । एवमग्रेऽपि सर्वत्र

स्थानोंके द्वारा, योनियोंके द्वारा, शरीरकी अवगाहनाके द्वारा और कुलोंके भेदोंके द्वारा वे सब ही जीवसमास आगमकी परिपाटीका उल्लंघन न करके प्ररूपण करनेके योग्य हैं ॥७४॥

आगे 'उद्देशके अनुसार निर्देश होता है' इस न्यायके अनुसार प्रथम कहे जीवसमास स्थानाधिकारको चार गाथाओंसे कहते हैं—

द्रव्यार्थिक नयसे उपयोग लक्षणसे युक्त सामान्य जीवको ग्रहण करनेपर जीव समास-का स्थान एक है। संग्रहनयसे गृहीत अर्थका भेद करनेवाले व्यवहारनयकी विवक्षासे संसारी जीवके प्रथम दो भेद त्रस और स्थावर अधिकृत होनेसे जीवसमासके स्थान दो हैं। पुनः अन्य प्रकारसे व्यवहारनयकी विवक्षा होनेपर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीवोंको अधिकृत करके जीवसमासके स्थान तीन हैं। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र प्रका-

१. म प्पु वुमक्कुं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

हांगे एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदविंदं पंचजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति-त्रसकायिकभेदविंदं षड्जीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकंगळेंदितु पंचस्थावरकायंगळुं कडेय त्रसकायद विकलेंद्रियसकलेंद्रियंगळेंबेरडुमितु सप्तजीवसमास-स्थानंगळप्पुवंते पंचस्थावरकायंगळुं विकलेंद्रियमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियमेंदितु मूरुं त्रसकायमेदंगळुं कूडि येंटु जीवसमासस्थानंगळप्पुवु। मत्तंगे पंचस्थावरकायंगळुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियमेंबी नाल्कुं त्रसकायंगळुमितो भत्तु जीवसमासस्थानंगळप्पुवत्तंगे पंचस्थावरकायंगळुं द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळुं संज्ञिपंचेंद्रियमुमसंज्ञिपंचेंद्रियमु मेंदितु पंचत्रसकायंगळुमितु पत्तुं जीवसमासस्थानंगळप्पुवु ॥

पणजुगले तससहिए तसस्स दुतिचदुरपंचभेदजुदे।
छद्दुगपत्तेयम्मि य तसस्स तियचदुरपणग-भेदजुदे ॥७६॥

पंचयुगले त्रससहिते त्रसस्य द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते। षड्द्विकप्रत्येके च त्रसस्य त्रिचतुः पंचकभेदयुते ॥ अंते पंचस्थावरकायंगळु प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदविंदं द्विप्रकारमप्पुदरिंद पत्तुं स्थावरकायंगळु त्रसकायमुमित एकादशजीवसमासस्थानंगळप्पुवत्तंगे पत्तुं स्थावरकायंगळं

प्रकारान्तरैर्व्यवहारनयविवक्षा ज्ञातव्या। तद्यथा—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियौ तथा अन्त्यस्य सकलेन्द्रियस्य असंज्ञि-संज्ञिभेदौ च मिलित्वा जीवसमासस्थानानि चत्वारि। तथा एकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियभेदजीवसमासस्थानानि पञ्च। तथा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकभेदात् जीवसमासस्थानानि षट्। तथा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पति-कायिकाः पञ्च अन्त्यस्य च त्रसकायस्य विकलेन्द्रियसकलेन्द्रियौ द्वाविति मिलित्वा जीवसमासस्थानानि सप्त। तथा स्थावरकायाः पञ्च विकलेन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च त्रयो मिलित्वा जीवसमासस्थानान्यष्टौ। तथा स्थावरकायाः पञ्च द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्च चत्वारः मिलित्वा जीवसमासस्थानानि नव। तथा स्थावरकायाः पञ्च द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्च पञ्च मिलित्वा जीवसमासस्थानानि दश ॥७५॥

तथा स्थावरकायाः पञ्चापि बादरसूक्ष्माः त्रसकायश्चेति जीवसमासस्थानान्येकादश। तथा स्थावरकाया दश विकलेन्द्रियसकलेन्द्रियौ चेति जीवसमासस्थानानि द्वादश। तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य विकला-

---

रान्तरसे नयविवक्षा जानना। वह इस प्रकार है—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तथा अन्तिम सकलेन्द्रियके असंज्ञी और संज्ञी भेद मिलकर जीवसमासके स्थान चार हैं। तथा एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रियके भेदसे जीवसमासके स्थान पाँच हैं। तथा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिकके भेदसे जीवसमासके स्थान छह हैं। तथा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायु-कायिक, वनस्पतिकायिक पाँच और अन्तिम त्रसकायके विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय ये दो भेद मिलकर जीवसमासके स्थान सात हैं। तथा स्थावरकाय पाँच और विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय भेद मिलकर जीवसमासके स्थान आठ हैं। तथा स्थावर काय पाँच, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार मिलकर जीवसमासके स्थान नौ हैं। तथा स्थावरकाय पाँच और दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, और संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच मिलकर जीवसमासके स्थान दस होते हैं ॥७५॥

तथा स्थावर काय पाँचों भी बादर और सूक्ष्म तथा त्रसकाय मिलकर जीवसमासके स्थान ग्यारह होते हैं। तथा स्थावरकाय दस और विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय ये मिलकर जीव-

---

१. म °लुक्कमिं।

विकलेंद्रियसकलेंद्रियभेदर्दिदमेरडुं त्रसकायमुमिंतु द्वादशजीवसमासस्थानंगळप्पुवुमिंते पत्तु स्थावरकायंगळुं त्रसकायद विकलाऽसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियभेदंगळ्मूरुमिंतु त्रयोदशजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पत्तुं स्थावरकायंगळुं त्रसकायद द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियंगळे ब नाल्कुमिंतु चतुर्दश जीवसमासस्थानंगळप्पुवहंगे पत्तुं स्थावरकायंगळं त्रसकायद द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळुमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियमुमेंबय्दुमिंतु पंचदशजीवसमासस्थानंगळप्पुवंते पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकंगळुं साधारणवनस्पतिय नित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदंगळुमिंतारक्कं बादरसूक्ष्मभेददिंदं पन्नेरडुं भेदंगळुं प्रत्येकवनस्पतियुमिंतु स्थावरकायत्रयोदशभेदंगळुं त्रसकायद विकलासंज्ञिसंज्ञिभेदत्रयमुमिंतु षोडश जीवसमासस्थानंगळप्पुवी प्रकारदिंदं स्थावरकायंगळ्पदिमूरुं त्रसकायद द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदंगळोळ्नाल्कुमिन्तु सप्तदश जीवसमासस्थानंगळप्पुवंते त्रयोदशस्थावरकायंगळु त्रसकायद द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियंगळे बय्दुमितंष्टादश जीवसमासस्थानंगळप्पुवु ॥

सगजुगलम्मि तसस्स य पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा ।
एयादुणवीसोत्ति य इगिविगितिगुणिदे हवे ठाणा ॥७७॥

समयुगले त्रसस्य च पंचकयुतेषु भवन्त्येकान्नविंशतिः । एकाद्येकान्नविंशतिपर्यंतं एकद्वित्रिभिर्गुणिते भवेयुः स्थानानि ॥ अहंगे पृथिव्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदसाधारणवनस्पति-

---

संज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियास्त्रयः इति पञ्चदशजीवसमासस्थानानि भवन्ति । सुप्रसिद्धस्थावरकाया दश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्चत्वारश्चेति जीवसमासस्थानानि चतुर्दश । तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः पञ्च चेति जीवसमासस्थानानि पञ्चदश । तथा पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः साधारणवनस्पतेर्नित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदौ चेति षडपि बादराः सूक्ष्माश्च प्रत्येकवनस्पतिश्चेति स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य विकलासंज्ञिसंज्ञिनस्त्रयश्चेति जीवसमासस्थानानि षोडश । तथा स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाश्चत्वारश्चेति जीवसमासस्थानानि सप्तदश । तथा स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः पञ्च चेति जीवसमासस्थानान्यष्टादश ॥७६॥

तथा पृथिव्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदाः षडपि बादराः सूक्ष्माश्च प्रत्येकवनस्पतेः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाश्चेति जीवसमासस्थानान्येकान्नविंशतिः । एवमुक्तानि सामान्यजीवरूपैक-

---

समासके स्थान बारह हैं। तथा स्थावरकाय दस और त्रसकायके विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये तीन मिलकर जीवसमासके स्थान तेरह होते हैं। स्थावरकाय दस और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार भेद मिलकर जीवसमासके स्थान चौदह हैं। स्थावरकाय दस और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच भेद मिलकर जीवसमासके स्थान पन्द्रह हैं। तथा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, साधारण वनस्पतिके नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद ये छह भी बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पति ये स्थावरकाय तेरह और त्रसकायके विकलेन्द्रिय, असंज्ञी , संज्ञी ये तीन भेद मिलकर जीवसमासके स्थान सोलह हैं। स्थावरकाय तेरह और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार भेद मिलकर जीवसमासके स्थान सतरह होते हैं। तथा स्थावरकाय तेरह और त्रसकायके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञीपंचेन्द्रिय ये पाँच भेद मिलकर जीवसमासके स्थान अठारह होते हैं ॥७६॥

तथा पृथिवीकाय, अप्काय, तेजकाय, वायुकाय, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद ये

कायंगळे बितारं प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदंविदं पन्नेरडु भेदंगळु प्रत्येकवनस्पतियप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदंगळेरडुमितु स्थावरकायिकचतुर्दशभेदंगळु त्रसकायद द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळुमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियंगळु में बत्तुमितु एकान्नविंशतिजीवसमासस्थानंगळप्पुवितु पेळल्पट्ट सामान्यजीवरूपैकस्थानादिगळेकान्नविंशतिभेदस्थानपर्यंतंगळो बरिव मेरडरिव मूरिंदं गुणियिसल्पट्टंतप्पुवु । यथाक्रममेकान्नविंशतिभेदस्थानंगळुमष्टात्रिंशद्भेदस्थानंगळुं सप्तपंचाशत् भेदस्थानंगळुमप्पुवु ॥

सामण्णेण तिपंती पढमा बिदिया अपुण्णगे इदरे ।
पज्जत्ते लद्धियपज्जत्ते अप्पढमा हवे पंती ॥७८॥

सामान्येन त्रिपङ्क्तिः प्रथमा द्वितीयाऽपूर्णके इतरे । पर्याप्ते लब्ध्यपर्याप्तेऽप्रथमा भवेत्पङ्क्तिः ॥

इन्तु पेळल्पट्टेकाद्येकोत्तरमागेकान्नविंशतिविकल्पस्थानंगळमूरुं पंक्तिगळागि केळकेळगे तिर्य्यक्कागि स्थापिसल्पडुववंतु स्थापिसल्पट्ट मूरुं पंक्तिगळोळ्प्रथमपंक्ति पर्याप्तादिविवक्षेयं माडदे सामान्यालापदिंदं गुणियिसल्पट्टुदु । तदवस्थास्वरूपदिंदिरुतिर्क्कुं । द्वितीयपंक्ति पर्याप्तभेदमप्प पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तमेंबेरडु भेददिंदं गुणियिसल्पडुवुदु । अप्रथमा तृतीयपंक्तिपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदत्रयदिंदं गुणियिसल्पडुगुमिल्लि द्वितीयतृतीयपंक्तिद्वयक्कमप्रथमत्वं साधारण्यदिंदं प्रसंगिसल्पडुत्तिरलु द्वितीयपंक्तिगे कंठोक्तत्वदिंदमप्रथमा एंबिदरिंदं पारिशेष्यन्यायदिंदं तृतीयपंक्ति गृहीतमादुदु । इल्लि सामान्यप्रथमपंक्तिय युति । मुख । १ । भूमि १९ । जोग २० । बले

मार्गणास्थानेषु ... स्थानानीदानीं एकान्नविंशतिभेदस्थानपर्यंतानि एकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितानि यथाक्रमं एकोनविंशतिभेदस्थानानि अष्टात्रिंशद्भेदस्थानानि सप्तपञ्चाशद्भेदस्थानानि च भवन्ति ॥७७॥ अथ एक-द्वित्रिगुणकारकारणं प्ररूपयति—

प्रागुक्तैकाद्येकोत्तरैकान्नविंशतिविकल्पस्थानानां तिस्रः पङ्क्तयोऽधोधः कर्तव्याः । तासु प्रथमा पङ्क्तिः पर्याप्तादिविवक्षामकृत्वा सामान्यालापेन गुणयितव्या । द्वितीया पङ्क्तिस्तद्वाभ्यां पर्याप्तापर्याप्तभेदाभ्यां गुणयितव्या । अप्रथमा—तृतीया पङ्क्तिः त्रिभिः पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदैर्गुणयितव्या । द्वितीयतृतीयपङ्क्तयोरप्रथमत्वेऽपि द्वितीयायाः कण्ठोक्तत्वेन अप्रथमा इत्यनेन पारिशेष्यात्तृतीयैव गृहीता । तत्र सामान्यप्रथमपङ्क्तेः मुह १

छहों बादर और सूक्ष्म, प्रत्येक वनस्पतिके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेद, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, ये सब मिलकर जीवसमासके स्थान उन्नीस होते हैं। इस प्रकार सामान्य जीवरूप एक स्थानसे उन्नीस भेद पर्यन्त स्थानोंको एक, दो और तीनसे गुणा करनेपर यथाक्रम उन्नीस भेदस्थान, अड़तीस भेदस्थान और सत्तावन भेदस्थान होते हैं ॥७७॥

आगे एक दो और तीनसे गुणकार करनेका कारण कहते हैं—

पहले कहे एकसे लेकर उन्नीस भेदस्थानोंकी तीन पंक्तियाँ नीचे-नीचे करनी चाहिए। उनमें-से पहली पंक्तिको तो पर्याप्त-अपर्याप्त आदिकी विवक्षा न करके सामान्य आलापसे गुणा करना चाहिए। दूसरी पंक्तिको पर्याप्त और अपर्याप्त भेदसे गुणा करना चाहिए। और अप्रथमा अर्थात् तीसरी पंक्तिको पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त इन तीन भेदोंसे गुणा करना चाहिए। यद्यपि दूसरी और तीसरी दोनों ही पंक्तियाँ अप्रथम हैं, फिर भी द्वितीयाका नाम लिया है, इसलिए अप्रथमासे पारिशेष्य न्यायसे तीसरी का ही ग्रहण किया है। इन तीनों पंक्तियोंके समस्त भेदोंका जोड़ लानेके लिए 'मुहभूमिजोगदले पदगुणिदे

---

१५ १. म प्रसक्तिसुत्तिरलु ।

१०। पद गुणिदं १०। १९। लब्धधनं १९०। द्वितीयपंक्ति युति। आदिमुख २। भूमि ३८। जोग ४०। दळे २०। पदगुणिदे २०।१९। पदधणं भवति ३८०॥ तृतीयपंक्तियुति मुख ३। भूमि ५७। जोग ६०। दळे ३०। पद गुणिदे ३०। १९। पदधणं होदि ५७०॥

तदनंतरमेकेंद्रियविकलत्रयजीवसमासस्थानंगळ्वेरसु पंचेंद्रियगतजीवसमासस्थानविशेषप्ररूपणार्थं गाथासूत्रद्वयमं पेळ्दपरु। ५

इगिवण्णं इगिविगले असण्णि-सण्णिगय-जलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगं भोगथलखचरगे दोदो ॥७९॥

एकपंचाशदेकविकले असंज्ञिसंज्ञिगतजलस्थलखगानां गर्भभवे सम्मूर्च्छिमे द्वौ त्रयो भोगस्थलखचरके द्वौ द्वौ।

अज्जवमलेच्छमणुए तिदु भोगकुभोगभूमिजे दोदो। १०
सुरणिरए दोदो इदि जीवसमासा हु अडणउदी ॥८०॥

आर्य्यम्लेच्छमनुष्ये त्रयो द्वौ भोगकुभोगभूमिजे द्वौ द्वौ। सुनारके द्वौ द्वौ इति जीवसमासाः खल्वष्टानवतिः॥

समयुगलंगळप्पेकेंद्रियंगळ्गे चतुर्दश जीवसमासंगळु विकलेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियंगळ्मूरितु पदिनेळु जीवसमासस्थानंगळपर्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तलब्ध्यपर्य्याप्तमेंब मूरुं भेदंगळिंदं गुणियिसल्पट्टोडेकपंचाशत्संख्या समन्वितंगळप्पुगमंगळे दितु प्रपंचिसल्पट्टुविल्ल॥ १५

मत्तं कर्म्मभूमियोळु पंचेंद्रियतिर्य्यंचरप्पजलचरस्थलचरखगचरंगळगे प्रत्येकमसंज्ञिसंज्ञि विकल्पदिंदं षट्स्थानंगळप्पुवा षट्स्थानंगळं प्रत्येकं गर्भजरोळु पर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तमेंवि-

---

भूमि १९ जोग २० दले १० पदगुणिदे १०। १९। लब्धयुतिः १९०। द्वितीयषट्कतेः मुह २ भूमि ३८ जोग ४० दले २० पदगुणिदे २०। १९ युतिः ३८०। तृतीयषट्कतेः मुह ३ भूमी ५७ जोग ६० दले ३० पदगुणिदे ३० × १९ युतिः ५७०॥ ७८। अथैकेन्द्रियविकलत्रयजीवसमासमिश्रितपञ्चेन्द्रियगतजीवसमासस्थान् विशेषान् गाथाद्वयेनाह—

एकेन्द्रियसप्तयुगलद्वित्रिचतुरिन्द्रियाः पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इत्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु एकपञ्चाशत्। तिर्यग्गतौ कर्मभूमिजलस्थलखचरास्त्रयोऽपि प्रत्येकमसंज्ञिसंज्ञिनो भूत्वा षट्, ते च गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमेषु च पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इति त्रिधात्। भोगभूमिसंज्ञिगर्भजस्थल-

---

पदधनं होदि' इस करण सूत्रके अनुसार प्रथम पंक्तिका मुख १, भूमि १९, दोनोंको जोड़नेपर २०, आधा करनेपर १०, और उसको पद १९ से गुणा करनेपर १९×१०=१९० भेद होते हैं। दूसरी पंक्तिका मुख २, भूमि ३८, जोड़नेपर ४०, आधा करनेपर २०, उसमें पदसे गुणा करनेपर २०×१९=३८० सर्वधन होता है। तीसरी पंक्तिका मुख ३, भूमि ५७, जोड़ ६०, आधा ३० को पदसे गुणा करनेपर १९×३०=५७० सर्वधन होता है ॥७८॥ ३०

आगे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवसमासोंके साथ पंचेन्द्रियगत जीवसमासोंके भेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

एकेन्द्रियके सात युगल और दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय ये सतरह पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं अतः एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंके इक्यावन जीवसमासोंके स्थान होते हैं। तिर्यंच गतिमें पंचेन्द्रिय कर्मभूमिया तिर्यंच जलचर, थलचर और नभ- ३५

तेरडेरडु[१२] अल्लि संमूच्छिमरोळु पर्य्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्तरें[१८]बितु मूरु मूरु भेदंगळुमें[१६]बिन्तेवेदु संभविसुगुमेंदु गुणियिसल्पडुत्तिरलु कर्म्मभूमिजतिर्यंचर जीवसमासस्थानंगळारूवसप्पवु[३०]। भोगभूमिजतिर्य्यंचस्थलचररुं खचररुमप्प संज्ञिगळगर्भजरु गळगेयेपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तरें[४]बेरडेरडु भेदंगळिंतु भोगभूमियोळु तिर्य्यंचर्गे नाल्कु[४] जीवसमासस्थानंगळु इंतु तिर्य्यग्गतियोळ्पंचेंद्रिय-
५ जीवसमासस्थानंगळारूवत्त नाल्कु पेळल्पट्टुवु[३४]।

कर्म्मभूमिजमनुष्यरार्य्यखंडजरप्प गर्भजरुगळगे पर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तरें[२]बेरडेयप्पुवु। संमूच्छिमर्गे लब्ध्यपर्य्याप्तमेयक्कुमन्यविकल्पमिल्लिवुकारणं मूरे जीवसमासस्थानंगळु। म्लेच्छखंडजरप्प गर्भजर्गे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तमेंबेरडे भेदमक्कुमितु कर्म्मभूमियोळ्[५] पंचजीवसमासस्थानंगळु। भोगभूमिजरुं कुभोगभूमिजरुमेंबी मनुष्यगर्भजरुगळगे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तरें[४]बेरडेरडे
१० भेदंगळिंतु भोगभूमिजमनुष्यर्गे नाल्के जीवसमासस्थानंगळु कूडि मनुष्यगतियोळो[४]भत्तु जीवसमासस्थानंगळु [illegible] पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तरें[४]बेरडेरडे जीवसमासस्थानंगळप्पुवितु चतुर्गतिगळोळु पंचेंद्रियंगळ जीवसमासस्थानंगळनितुं कूडि सप्तचत्वारिंशज्जीवसमासस्थानंगळु केवलं तैर्य्यग्योनैकविकलेंद्रियजीवसंबंधिगळप्प एकपंचाशज्जीवसमासंगळसहितमागि सर्व्वजीवसमासभेदंगळष्टानवति प्रमाणंगळप्पुवेंबिदु सूत्रतात्पर्यं॥

---

१५ खचरौ पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ भूत्वा चत्वारः, एवं तिर्यक्पञ्चेन्द्रियस्य चतुस्त्रिंशत्। कर्मभूमौ मनुष्याणां आर्यखण्डे गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमे तु लब्ध्यपर्याप्त एवेति त्रयः, म्लेच्छखण्डे गर्भजेषु पर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ द्वौ, भोगकुभोगभूम्योर्गर्भजे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः, मिलित्वा मनुष्यगतौ नव। देवनारकोपपादिकयोः प्रत्येकं पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः। एवं चतुर्गतिषु पञ्चेन्द्रियजीवसमासस्थानानि सप्तचत्वारिंशत्। एतानि च एकविकलेन्द्रियाणामेकपञ्चाशता मिलित्वा अष्टानवतिर्भवन्तीति सूत्रतात्पर्यम्।
२० अत्र विवक्षया स्थावराणां द्वाचत्वारिंशत् ४२, विकलेन्द्रियाणां नव ९, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाणां चतुस्त्रिंशत् ३४,

---

चर होते हैं तथा तीनों भी असंज्ञी और संज्ञी होनेसे छह भेद हुए। उनमें जो गर्भज होते हैं वे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त होते हैं। जो सम्मूर्छन होते हैं, वे पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त होते हैं। इस तरह ६×२=१२ और ६×३=१८ सब तीस होते हैं। भोगभूमिज तिर्यंच संज्ञी तथा गर्भज ही होते हैं। तथा थलचर और नभचर ही होते हैं और
२५ पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त ही होते हैं अतः चार भेद होनेसे तिर्यंच पंचेन्द्रियके चौंतीस भेद हुए। कर्मभूमिमें मनुष्योंके आर्यखण्डमें गर्भजोंमें पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और सम्मूर्छनोंमें केवल लब्ध्यपर्याप्तक ही होनेसे तीन ही भेद होते हैं। म्लेच्छखण्डमें गर्भज ही होते हैं और उनमें पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक दो भेद होते हैं। भोगभूमि और कुभोगभूमिमें गर्भजोंमें पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त होनेसे चार भेद होते हैं। सब मिलकर मनुष्यगतिमें नौ भेद होते हैं। देवों
३० और नारकोंमें उपपादजन्म ही होता है तथा उसमें पर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक ही होनेसे चार भेद होते हैं। इस तरह चारों गति सम्बन्धी पंचेन्द्रियोंमें जीवसमासस्थान ३४+९+४=४७ होते हैं। इनमें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियके ५१ स्थान मिला देनेपर सब

इल्लि जीवविवक्षेयिं स्थावरंगळ जीवसमासंगळनाल्वत्तेरडु ४२। तिर्य्यंचज पंचेंद्रियंगळ जीवसमासंगळमूवत्तनाल्कु ३४। विकलत्रयंगळोळों भत्तु ९ जीवसमासंगळु। देवरोळु जीवसमासंगळेरडु २। नारकरोळु जीवसमासगळेरडु २। मनुष्यरोळु ओंभत्तु ९। जीवसमासंगलिवेल्लमुं कूडि तोंभत्तेंदु जीवसमासंगळप्पुवु। इंतु पेळल्पट्ट जीवसमासस्थानंगळु संसारिजीवसंबंधिगळेयप्पुवु।

मार्गणाओंके - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मुक्तात्मसंबंधिगळल्लेकेंदोडे विशुद्धचैतन्यनिष्ठज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तरोळु त्रसस्थावरादिभेदगळिल्लेंतेंदोडे "संसारिणः त्रसस्थावराः" एंबो सूत्रप्रमाणदत्तणिंदं। इंतु जीवसमासंगळगे स्थानाधिकारंतिर्कुंदु॥

देवानां द्वौ २, नारकाणां द्वौ, २, मनुष्याणां नव ९। सर्वाणि मिलित्वा अष्टानवतिः ९८। अमूनि संसारिणामेव न मुक्तानां विशुद्धचैतन्यनिष्ठज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तत्वेन तेषां त्रसस्थावरभेदाभावात् संसारिणस्त्रसस्थावरा इति सूत्रसद्भावात् ॥७९। ८०॥ अथोक्तेभ्यो विशेषजीवसमासकथकमपराचार्योक्तं गाथासूत्रत्रयमाह—

सुद्धखरकुअलतेवा णिच्चचदुग्गदिणिगोदधूलिवरा।
पदिट्ठिदरपत्तेयवियलतिपुण्णा अपुण्णदुगा ॥१॥
इगिविगले इगिसीदी असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगतिभोगथलखेचरे दो दो ॥२॥
अज्जवसमुच्छिगिगब्भे मलेच्छभोगतियकुणरछप्पण्णंतीससये।
सुरणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु छहियचारिसयं ॥३॥

मृदादिरूपपृथ्वीकायिकः पाषाणादिरूपखरपृथ्वीकायिकः अप्कायिकः तेजस्कायिकः वायुकायिकः नित्यनिगोदः इतरनिगोदः परनामचतुर्गतिनिगोदश्चेति सप्तापि स्थूलसूक्ष्मभेदाच्चतुर्दश। तृणं वल्ली गुल्मः वृक्षः मूलं चेति पञ्चापि प्रत्येकवनस्पतयो निगोदशरीरैः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदाद्दश। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियश्चेति विकलेन्द्रियास्त्रयः। एतेषु सप्तविंशत्येकेन्द्रियविकलेन्द्रियभेदेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादेकाशीतिः। पञ्चेन्द्रियेषु कर्मभूम्यसंज्ञिसंज्ञिभेदजलचरस्थलचरखचरेषु षट्स्वपि गर्भजेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तभेदाद् द्वादश।

स्थान ९८ होते हैं; यह गाथा सूत्रका तात्पर्य है। पृथक्-पृथक् विवक्षा करनेपर स्थावरोंके बयालीस ४२, विकलेन्द्रियोंके नौ ९, तिर्यंच पंचेन्द्रियोंके चौंतीस ३४, देवोंके दो २, नारकियोंके दो २ और मनुष्योंके नौ ९, सब मिलकर अट्ठानवे ९८ होते हैं। ये जीवसमासस्थान संसारी जीवोंके ही होते हैं, मुक्त जीवोंके नहीं होते। क्योंकि मुक्त जीव विशुद्ध चैतन्यनिष्ठ ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगसे युक्त होते हैं। उनके त्रस-स्थावर भेद नहीं हैं। तत्त्वार्थसूत्रमें संसारी जीवोंके ही त्रस-स्थावर भेद कहे हैं ॥७९-८०॥

आगे उक्त जीवसमासके भेदोंसे विशेष कथन करनेवाले अन्य आचार्योंके द्वारा कहे हुए तीन गाथासूत्रोंको कहते हैं—

मिट्टी आदि रूप शुद्ध पृथ्वीकायिक, पाषाण आदि रूप खर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, नित्यनिगोद, इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद, ये सातों भी स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे चौदह होते हैं। तृण, वल्ली, गुल्म, वृक्ष और मूल ये पाँचों ही प्रत्येक वनस्पति निगोद शरीरोंसे प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित होनेके भेदसे दस हैं।

---

१. अथ प्रकारान्तरेण जीवसमासस्थानानि वक्तुमुक्तं गाथात्रयम्।

अनंतरं योनिप्ररूपणेयोळमुन्नमाकारयोनिनिर्देशार्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपरु ।

संखावत्तयजोणी कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य ।
तत्थ य संखावत्ते णियमाद् विवज्जदे गब्भो ॥८१॥

शंखावर्तयोनिः कूर्मोन्नतयोनिर्वंशपत्रयोनिश्च । तत्र च शंखावर्ते नियमाद्विवर्ज्यते गर्भः ॥

गा.दशक ५

शंखावर्त्तयोनियुं कूर्म्मोन्नतयोनियुं वंशपत्रयोनियुमेंदिताकारयोनि त्रिविधमक्कुं । यौति मिश्रीभवत्यौदारिकादिनोकर्म्मवर्गणापुद्गलैस्सह संबध्यते जीवो यस्यां सा योनिः येंदितु जीवोत्पत्तिस्थानक्के योनित्वं निरुक्तिसिद्धमन्तप्प त्रिप्रकारमप्प योनिगळोळगे शंखावर्त्तयोनियोळु गर्भं नियमदिंदं विवर्ज्जिसल्पडुगुं विपद्यते विनश्यते येंदितु मेणन्वर्थं माडल्पडुवुदु ॥

---

१० तत्सम्मूर्छिमेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादष्टादश । उत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमीनां संज्ञिस्थलचरखचराविति षट्सु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तभेदाद्द्वादश । मनुष्येषु आर्यखण्डजे संमूर्छिमे लब्ध्यपर्याप्त एकः । तद्गर्भजे म्लेच्छखण्डजे तत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमिजेषु कुभोगभूमिजे एवं षट्सु, तथा दशविधभावनाष्टविधव्यन्तरपञ्चविधज्योतिष्कपटलापेक्षत्रिषष्टिविधवैमानिकभेदात् षडशीतिसुरेषु प्रस्तारापेक्षयैकान्नपञ्चाशद्विधनारकेषु च पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तभेदात् द्व्यशीत्यग्रद्विशतं मिलित्वा सर्वे षडधिकचतुःशतीं जीवसमासा भवन्ति ॥१॥२॥३॥

१५ इति जीवसमासानां स्थानाधिकारः समासः । अथ योनिप्ररूपणायाः प्रथममाकारयोनिभेदानाह—

शंखावर्तयोनिः कूर्मोन्नतयोनिः वंशपत्रयोनिश्चेति आकारयोनिस्त्रिविधा भवति । यौति मिश्रीभवति औदारिकादिनोकर्मवर्गणा पुद्गलैः सह संबद्धयते जीवो यस्यां सा योनिः—जीवोत्पत्तिस्थानं । तत्त्रिविधयोनिषु शंखावर्तयोनौ गर्भो नियमेन विवर्ज्यते विपद्यते विनश्यति वा ॥८१॥

दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन विकलेन्द्रिय हैं। इन एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय सम्बन्धी २७ भेदों में पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तकके भेदसे इक्यासी ८१ होते हैं। २०
पंचेन्द्रियोंमें कर्मभूमिज तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञीके भेदसे युक्त जलचर, थलचर और नभचर ये छहों गर्भज पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्तके भेदसे बारह होते हैं। और ये सम्मूर्छन पर्याप्त, निवृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तके भेदसे अठारह होते हैं। उत्कृष्टभोगभूमि, मध्यम भोगभूमि और जघन्य भोगभूमिके तिर्यंच संज्ञी ही होते हैं तथा थलचर और नभचर होते हैं। इन छहके पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्तके भेदसे बारह होते हैं। मनुष्योंमें आर्यखण्डमें जन्मे २५
सम्मूर्छन जन्मवालोंमें लब्ध्यपर्याप्तकरूप एक स्थान होता है। आर्यखण्डमें उत्पन्न गर्भज मनुष्योंमें तथा म्लेच्छ खण्डमें, उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भोगभूमि तथा कुभोगभूमिमें जन्मे मनुष्य गर्भज ही होते हैं। इस तरह ये छह प्रकारके मनुष्य हुए। तथा दश प्रकारके भवनवासी, आठ प्रकारके व्यन्तर, पाँच प्रकारके ज्योतिष्क, पटलोंकी अपेक्षा तेरसठ प्रकारके वैमानिक;इस तरह ये सब (१०+८+५+६३=८६) छियासी प्रकारके देव हुए। प्रस्तारोंकी ३०
अपेक्षा उनचास प्रकारके नारकी, ये सब मिलकर (६+८६+४९=१४१) एक सौ इकतालीस हुए। ये सब पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्तके भेदसे दो सौ बारह होते हैं। इनमें पूर्वके सब भेद एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके इक्यासी, पंचेन्द्रिय तिर्यंचके बयालीस, सम्मूर्छन मनुष्यका एक, गर्भज मनुष्य देव नारकियोंके दो सौ बयासी मिलकर चार सौ छह जीवसमास होते हैं।

इस प्रकार जीवसमासोंका स्थानाधिकार समाप्त हुआ। आगे योनिप्ररूपणामें पहले ३५
आकारयोनिके भेद कहते हैं—

पार्श्वकीर्ति - आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज

कुम्मुण्णयजाणीया तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य ।
रामा वि य जायंते सेसाए सेसगजणो दु ॥८२॥

कूर्मोन्नतयोनौ तीर्थंकरा द्विविधचक्रवर्तिनश्च । रामा अपि च जायन्ते शेषे शेषकजनस्तु ॥

कूर्मोन्नतयोनियोळु तीर्थंकररुं सकलचक्रवर्त्तिगळुं अर्द्धचक्रवर्त्तिगळुं प्रतिवासुदेवर्कळुं बलदेवरुगळुं पुट्टुवरु । अपि शब्ददिदमुमितरजनंगळुं पुट्टुवरु । शेषवंशपत्रयोनियोळु मिक्कजनंगळे पुट्टुवरु, तीर्त्थंकरादिगळ्पुट्टरु ॥ अनंतरं जन्मभेद निर्देशपूर्वकमागि गुणयोनिनिर्देशार्थं पेळ्दपरु ।

जम्मं खलु संमुच्छणगब्भुववादा दु होदि तज्जोणी ।
सच्चित्तसीदसंवुडसेदरमिस्सा य पत्तेयं ॥८३॥

जन्म खलु संमूर्च्छनगर्भोपपादास्तु भवन्ति तद्योनयः । सच्चित्तशीतसंवृतसेतरमिश्राश्च प्रत्येकम् ॥

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादंगळु संसारिजीवंगळगे जन्मभेदंगळप्पुवु । सं समन्तान्मूर्च्छनं जायमान-

---

कूर्मोन्नतयोनौ तीर्थङ्कराः सकलचक्रवर्तिनः अर्धचक्रवर्तिनः प्रतिवासुदेवा बलदेवाश्चोत्पद्यन्ते अपिशब्दान्नेतरजनाः । शेषवंशपत्रयोनौ शेषजना एवोत्पद्यन्ते न तीर्थङ्कराद्यः ॥८२॥ अथ जन्मभेदनिर्देशपूर्वकं गुणयोनीर्निदिशति—

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाः संसारिजीवानां जन्मभेदा भवन्ति । सं समन्तात्, मूर्च्छनं जायमानजीवानुग्राहकाणां जीवोपकारकाणां शरीराकारपरिणमनयोग्यपुद्गलस्कन्धानां समुच्छ्रयणं सम्मूर्च्छनं । जायमानजीवेन शुक्रशोणित-

---

शंखावर्तयोनि, कूर्मोन्नतयोनि, वंशपत्रयोनि इस प्रकार तीन आकारयोनियाँ होती हैं। योनि अर्थात् मिश्ररूप होना। जिसमें जीव औदारिक आदि नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलोंके साथ सम्बद्ध होता है, वह योनि अर्थात् जीवकी उत्पत्तिका स्थान है। इन तीन प्रकारकी योनियोंमें-से शंखावर्तयोनिमें गर्भ नियमसे नहीं ठहरता अथवा रहे, तो नष्ट हो जाता है। चक्रवर्तीकी महिषी स्त्रीरत्न आदि किन्हीं स्त्रियोंमें इस प्रकारकी योनि होती है ॥८१॥

कूर्मोन्नतयोनिमें तीर्थंकर, सकलचक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती, प्रतिवासुदेव, और बलदेव उत्पन्न होते हैं। अपि शब्दसे अन्य जन इसमें पैदा नहीं होते। शेष वंशपत्रयोनिमें शेष जन ही पैदा होते हैं, तीर्थंकर आदि पैदा नहीं होते ॥८२॥

आगे जन्मके भेद कहते हुए गुणयोनिका कथन करते हैं—

सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद ये संसारी जीवोंके जन्मके भेद हैं। 'सं' अर्थात् समस्त रूपसे 'मूर्छनं' अर्थात् उत्पन्न होनेवाले जीवके उपकारी शरीराकार रूपसे परिणमने योग्य पुद्गल स्कन्धोंके स्वयं एकत्र होनेको सम्मूर्छन कहते हैं। उत्पन्न होनेवाले जीवके द्वारा रज और वीर्यरूप पिण्डका 'गरण' अर्थात् शरीररूपसे ग्रहण करना गर्भ है। उपपादन अर्थात् संपुट शय्या, ऊष्ट्र आदि मुखके आकारवाले उत्पत्तिस्थानोंमें लघु अन्तर्मुहूर्त कालमें ही जीवका उत्पन्न होना उपपाद है।

विशेषार्थ—संसारी जीवोंके जन्मका अर्थ है—पूर्वभवके शरीरको छोड़कर उत्तरभवके शरीरको ग्रहण करना। यद्यपि परमार्थसे तो विग्रहगतिके प्रथम समयमें ही उत्तरभवकी

जीवानुग्राहकजीवोपकारकशरीराकारपरिणमनेन पुद्गलस्कंधानां समुच्छ्रयणं संमूर्च्छनं। जायमानजीवेन शुक्लशोणितरूपस्य पिंडस्य ग्रहणं शरीरतयोपादानं गर्भः। उपपादनं संपुटशय्योष्ट्रकादिषु लघुनांतर्म्मुहूर्तेनैव जीवस्य जननमुपपादः। एंबितु निरुक्तिसिद्धंगळप्पवरयोनिगळप्पत्तं सच्चित्तशीतसंवृतंगळुं सेतरंगळुं मिश्रंगळुमेंदु नवविधमप्पुवुर्दु।

सन्मूर्च्छनादिगळ्गे प्रत्येकं यथासंभवमागि संभविसुवुवु। चित्तेन चेतनेन सह वर्त्तंत इति सचित्ताः। प्राण्यंतरप्रदेशपरिगृहीतपुद्गलस्कंधा इत्यर्थः। तद्विपरीता अचित्ताः। तदुभयात्मकाः पुद्गला मिश्राः। प्रादुर्भूतशीतस्पर्शाः पुद्गलाः शीताः। अभिव्यक्तोष्णस्पर्शाः पुद्गला उष्णाः। तदुभयात्मकाः पुद्गलाः मिश्राः। दुरुपलक्ष्यो गुप्ताकारपुद्गलस्कंधः संवृतः। प्रकटाकार उपलक्षणीयः पुद्गलस्कंधो विवृतः। तदुभयात्मको मिश्रः॥

अनंतरं सम्मूर्च्छनादिगळ्गे स्वामिनिर्द्देशमं माडिदपरु।

रूपपिण्डस्य ग्रहणं—शरीरतया उपादानं गर्भः। उपपादनं संपुटशय्योष्ट्रमुखाकारादिषु लघुनान्तर्मुहूर्तेनैव जीवस्य जननं उपपादः। इति निरुक्तिसिद्धसंमूर्छिमादिभिस्तद्योनयः जीवशरीरग्रहणाधाराः यथासंभवं सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चेति नवविधा भवन्ति। तासु संमूर्छनादय एव प्रत्येकं यथासंभवं संभवन्ति। चित्तेन चेतनेन सह वर्त्तते इति सचित्ताः प्राण्यन्तःप्रदेशपरिगृहीतपुद्गलस्कन्धाः इत्यर्थः। तद्विपरीता अचित्ताः। तदुभयात्मका मिश्राः। प्रादुर्भूतशीतस्पर्शाः पुद्गलाः शीताः। अभिव्यक्तोष्णस्पर्शाः पुद्गलाः उष्णाः। तदुभयात्मकाः पुद्गला मिश्राः। दुरुपलक्ष्यो गुप्ताकारपुद्गलस्कन्धः संवृतः। प्रकटाकार उपलक्षणीयः पुद्गलस्कन्धो विवृतः। तदुभयात्मकः पुद्गलस्कन्धो मिश्रः ॥८३॥ अथ संमूर्छनादीनां स्वामिनिर्देशं करोति—

प्रथम पर्याय प्रकट होनेरूप जन्म हो जाता है। क्योंकि पूर्वपर्यायका विनाश और उत्तरपर्यायका उत्पाद एक ही कालमें होता है; तथापि सम्मूर्छन आदि रूपसे पुद्गल पिण्डका ग्रहण उस प्रथम पर्यायमें नहीं होता। इसलिए उसके समीप शरीरग्रहणके प्रथम समयमें पर्यायका उत्पाद ही जन्मके समीप होनेसे उपचारसे जन्म कहा जाता है। अथवा ऋजुगतिकी अपेक्षा उत्तरभवके प्रथम समयमें ही सम्मूर्छन आदि रूपसे शरीरग्रहणसे विशिष्ट उसकी प्रथम पर्यायका उत्पाद और पूर्वभवकी चरम पर्यायका विनाश एक साथ होता है, इसलिए जन्मका लक्षण मुख्य ही है।

इस प्रकार जीवके शरीरग्रहणके आधाररूप योनियाँ यथासम्भव सचित्त, शीत, संवृत, अचित्त, उष्ण, विवृत, और सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृतविवृतके भेदसे नौ प्रकारकी होती हैं। उनमें सम्मूर्च्छन आदि ही प्रत्येक यथायोग्य उत्पन्न होते हैं। चित्त अर्थात् चेतनके साथ जो रहें, वे सचित्त हैं अर्थात् प्राणीके अन्तःप्रदेश द्वारा परिगृहीत पुद्गल-स्कन्ध उसका अर्थ है। उससे विपरीतको अचित्त कहते हैं। उभयात्मकको मिश्र कहते हैं। जिन पुद्गलोंमें शीतस्पर्श प्रकट है, वे शीत हैं। जिन पुद्गलोंमें उष्णस्पर्श प्रकट है, वे उष्ण हैं। उभयरूप पुद्गल मिश्र हैं। जो पुद्गल-स्कन्ध देखनेमें नहीं आता, जिसका आकार गुप्त है, वह संवृत है। जो पुद्गल-स्कन्ध प्रकट आकारको लिये है, देखनेमें आता है, वह विवृत्त है। उभयात्मक पुद्गलस्कन्ध मिश्र है ॥८३॥

आगे सम्मूर्छन आदि जन्मोंके स्वामी बतलाते हैं—

---

३५ १. ब °ष्ट्रादिमुखाकारयोर्ल°।

पोतजरायुज अंडजजीवाणं गब्भदेवणिरयाणं ।
उववादं सेसाणं सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं ॥८४॥

पोतजरायुजाण्डजजीवानां गर्भः । देवनारकाणामुपपादः शेषाणां संमूर्च्छनं तु निर्दिष्टं ॥ किंचित्परिवरणमंतरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गममात्रेणैव परिस्पंदादिसामर्थ्योपेतः पोतः । जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जरायुस्तस्मिन् जरायौ जाता जरायुजाः । शुक्रशोणित-परिवरणमुपात्तकाठिन्यं नखत्वक्सदृशं परिमंडलमंडं । तस्मिन् जाता अंडजाः । एंबिवी पोतादि-जीवंगळगे गर्भमे जन्ममक्कुं । चतुर्निकायदेवर्कळिगेयुं नारकर्गेयुं घर्म्मादिभवंगळगुपपादमे जन्ममक्कुं । शेष जीवंगळगेकेंद्रिय द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियंगळगेयुं वो वो दु केलवु पंचेंद्रियंगळगेयुं लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यर्गेयुं संमूर्च्छनमे जन्ममेंदितु प्रवचनदोळ्पेळल्पट्टुदु ॥

अनंतरं सचित्तादियोनिभेदंगळगे संमूर्च्छनादिजन्मभेदंगळोळु संभवासंभवमं तोरल्वेडि गाथात्रयावतारं—

॥ गोम्मटसार — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उववादे अचित्तं गब्भे मिस्सं तु होदि संमुच्छे ।
सच्चित्तं अच्चित्तं मिस्सं च य होदि जोणी हु ॥८५॥

उपपादेऽचित्तं गर्भे मिश्रस्तु भवति संमूर्च्छने । सचित्तोऽचित्तो मिश्रश्च भवति योनिः खलु ॥ देवनारकसंबंधियप्पुपपाद जन्मभेददोळचित्तमे योनियक्कुं । गर्भजन्मदोळु सचित्तचित्त-

---

किंचित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गममात्रेणैव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेतः पोतः । जालव-त्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जरायुः, तस्मिन् जातो जरायुजः । शुक्रशोणितपरिवरणं उपात्तकाठिन्यं नखत्वक्सदृशं परिमण्डलमण्डं तस्मिन् जातोऽण्डजः ।एषां जीवानां गर्भ एव जन्म । चतुर्णिकायदेवानां नारकाणां च घर्मादिभवानामुपपाद एव जन्म । उक्तजीवेभ्यः शेषाणां एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां केषांचित्पञ्चेन्द्रियाणां लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां च संमूर्च्छनमेव जन्मेति प्रवचने निर्दिष्टं—कथितं ॥८४॥ अथ सचित्तादियोनिभेदानां संमूर्छनादिजन्मभेदेषु संभवासंभवं गाथात्रयेण निर्दिशति—

शरीरपर किसी भी प्रकारका किंचित् भी आवरण न हो, शरीरके अवयव सम्पूर्ण हों, और योनिसे निकलते ही चलने-फिरने लगे, ऐसे जीवको पोत कहते हैं। रुधिर और मांसका विस्ताररूप जो प्राणीके शरीरके चारों ओर आलकी तरह आवरण होता है, वह जरायु है। उससे जो जीव पैदा होता है, वह जरायुज है। रज और वीर्यका जो आवरण नखके चमड़ेकी तरह कठोरताको लिये हुए गोलाकार होता है उसे अण्डा कहते हैं, उससे जिसका जन्म हो, वह जीव अण्डज है। इन पोत, जरायुज और अण्डज जीवोंका गर्भजन्म ही होता है। चार निकायके देवोंका और घर्मा आदि नरकोंमें पैदा होनेवाले नारकियोंका उपपाद जन्म ही होता है। उक्त जीवोंसे शेष एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवोंका, किन्हीं पंचेन्द्रियोंका, और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका सम्मूर्छन ही जन्म होता है, ऐसा आगममें कहा है ॥८४॥

आगे सचित्त आदि योनिभेदोंका सम्मूर्छन आदि जन्मके भेदोंमें होना या न होना तीन गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. क शेषंगळगे उक्त जीवंगळगेरगागि उलिदेल्लाजीवं° ।

मिश्रमे पुद्गलस्कंधं योनियक्कुं। संमूर्च्छनजन्मदोळु तु मत्ते सचित्तमुमचित्तमुं तदुभयात्मकमुमेंबी त्रिविधयोनिगळक्कुं॥

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उववादे सीदुसणं सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि।
उववादेयक्खेसु य संउडविवरलेसु विउलं तु ॥८६॥

उपपादे शीतोष्णौ शेषे शीतोष्णमिश्रकं भवति। उपपादे एकाक्षे च संवृतो विकलेषु विवृतं तु॥ उपपादजन्मदोळु शीतमुमुष्णमुमेरडुं योनिगळु। शेषगर्भजन्मदोळं संमूर्च्छनजन्मदोळं प्रत्येकं शीतमुमुष्णमुं मिश्रमुमेंबी मूरु मूरुं योनिगळवक्कुं। तेजस्कायिकंगळोळुष्णयोनियक्कुमुपपादजन्मरोळमेकेंद्रियंगळोळं संवृतमे योनियक्कुं। विकलेंद्रियंगळोळु विवृतयोनियेयक्कुं॥

गब्भजजीवाणं पुण मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु।
सम्मुच्छणपंचक्खे वियलं वा विउडजोणी हु ॥८७॥

गर्भजजीवानां पुनर्मिश्रो नियमेन भवति योनिः खलु। संमूर्च्छनपंचाक्षे विकलवद्विवृतो योनिः खलु॥ गर्भजजीवंगळगे मत्ते संवृतविवृतंगळिदं मिश्रयोनिये यक्कुं। सम्मूर्च्छनजपंचेंद्रियंगळोळु विकलेंद्रियवोळेन्तन्ते विवृतयोनियक्कुं॥

देवनारकसंबन्ध्युपपादजन्मभेदे अचित्तैव योनिः स्यात्। गर्भजन्मनि सचित्ताचित्तमिश्र एव पुद्गलस्कन्धो योनिः स्यात्। संमूर्छनजन्मनि तु पुनः सचित्ता अचित्ता उभया चेति त्रिविधा योनिर्भवति ॥८५॥

उपपादजन्मनि शीतोष्णे द्वे योनी स्यातां। शेषे गर्भजन्मनि संमूर्छनजन्मनि च प्रत्येकं शीता उष्णा मिश्रा चेति तिस्रो योनयः स्युः। (तेजस्कायिकेषु उष्णैव योनिः स्यात्) उपपादजेषु एकेन्द्रियेषु च संवृतैव योनिः स्यात्। विकलेन्द्रियेषु विवृतैव योनिः स्यात् ॥८६॥

गर्भजजीवानां पुनः संवृतविवृताभ्यां मिश्रा एव योनिः स्यात्। संमूर्छनजपञ्चेन्द्रियेषु विकलेन्द्रियव-

---

देव-नारकी सम्बन्धी उपपाद जन्मभेदमें अचित्त ही योनि होती है। गर्भजन्ममें सचित्त और अचित्तका मिश्र ही पुद्गलस्कन्धरूप योनि होती है। अर्थात् माताके उदरमें रज और वीर्य अचित्त होता है और उसका मिश्रण सचित्त आत्माके साथ होनेसे मिश्ररूप सचित्ताचित्त योनि होती है। सम्मूर्छन जन्ममें सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त तीन प्रकारकी योनियाँ होती हैं। क्योंकि गर्भ और उपपादसे रहित प्रदेशोंमें कहीं सचित्त, कहीं अचित्त और कहीं सचित्ताचित्त पुद्गलस्कन्धमें जीवोंकी उत्पत्ति सम्भव है ॥८५॥

उपपाद जन्ममें शीत और उष्ण ये दो योनि होती हैं। क्योंकि रत्नप्रभासे लेकर धूमप्रभाके तीन चतुर्थ भाग पर्यन्त बिलोंमें उष्ण स्पर्श ही होता है। और धूमप्रभाके चतुर्थ भागसे लेकर महातमःप्रभा पर्यन्त बिलोंमें शीत स्पर्श ही होता है। शेष गर्भजन्म और सम्मूर्छन जन्ममें-से प्रत्येकमें शीत, उष्ण और मिश्र तीनों योनियाँ होती हैं। किन्तु तेजस्कायिक जीवोंमें उष्ण ही योनि होती है। उपपाद जन्मवालोंमें और एकेन्द्रियोंमें संवृत ही योनि होती है। तथा विकलेन्द्रियोंमें विवृत योनि ही होती है ॥८६॥

गर्भज जीवोंके संवृत और विवृतके मिश्ररूप योनि होती है, क्योंकि पुरुषके शरीरसे निकला वीर्य विवृतरूप और स्त्रीका रज संवृतरूप होनेसे दोनोंके मेलसे मिश्र योनि होती है। सम्मूर्छन पंचेन्द्रियोंमें विकलेन्द्रियोंकी तरह विवृत योनि ही होती है ॥८७॥

---

१. ब विकलत्रयेषु।

तदनंतरं पूर्वोक्तगुणयोन्युपसंहारपुरस्सरमागि योनिप्रभेदसंख्योद्दिश्यमं पेळ्दपं।

सामण्णेण य एवं णव जोणीओ हवंति वित्थारे।
लक्खाण चदुरसीदी जोणीओ होंति णियमेण ॥८८॥

सामान्येनैवं नवयोनयो भवन्ति विस्तारे। लक्षाणां चतुरशीतियोनयो भवन्ति नियमेन॥

यितुक्तप्रकारदिदं सामान्यदिं संक्षेपदिनो भत्तु योनिगळप्पुवु। विस्तरदोळु चतुरशीतिलक्ष- ५
योनिगळप्पुवु नियमदिंदं॥

अनंतरमा योनिगळ विस्तरसंख्याविषयमं तोरल्वेडम्बुदंण्ण सूत्रावतारं मुनिविडासागर जी महाराज

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो चोद्दस मणुए सयसहस्सा ॥८९॥

नित्येतरधातुसप्तकं तरु दश विकलेंद्रियेषु षट् चैव। सुरणिरयतिर्यक्चत्वारि मनुष्ये १०
चतुर्दशशतसहस्राणि॥

द्विवृतैव योनिः स्यात् ॥८७॥ अथ योनिप्रभेदसंख्योद्देशपुरस्सरमुपसंहारमाह—

एवं—उक्तप्रकारेण, सामान्येन—संक्षेपेण, नव योनयो भवन्ति। विस्तरेण तु चतुरशीतिलक्षयोनयो भवन्ति नियमेन ॥८८॥ अथ तासां योनीनां विस्तरसंख्यां दर्शयति—

नित्यनिगोदेतरनिगोदपृथिवीकायिकाप्कायादिकतेजस्कायिकवायुकायिकेषु एतेषु षट्सु अपि स्थानेषु १५
प्रत्येकं सप्त-सप्त लक्ष योनयो भवन्ति। (मिलित्वा द्वाचत्वारिंशल्लक्षाणि भवन्ति)। तरुषु प्रत्येकवनस्पति-कायिकेषु दशलक्ष योनयो भवन्ति। विकलेन्द्रियरूपद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु प्रत्येकं द्वे-द्वे लक्ष योनयो भवन्ति, (मिलित्वा षट्)। सुरेषु नारकेषु तिर्यग्पञ्चेन्द्रियेषु च प्रत्येकं चतुश्चतुर्लक्ष योनयो भवन्ति। (मिलित्वा द्वादशलक्षाणि)। मनुष्येषु चतुर्दशलक्षयोनयो भवन्ति। एवं समस्तसंसारिजीवानां योनयः सर्वा मिलित्वा चतुरशीतिलक्षसंख्या प्रतिपत्तव्या ॥८९॥ अथ गत्याश्रयेण जन्म गाथाद्वयेनाह— २०

आगे योनिके प्रभेदोंकी संख्याका निर्देश करते हुए कथनका उपसंहार करते हैं—

उक्त प्रकारसे संक्षेपसे नौ योनियाँ होती हैं। विस्तारसे तो चौरासी लाख योनियाँ नियमसे होती हैं ॥८८॥

आगे उन योनियोंकी विस्तारसे संख्या कहते हैं—

नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक इन २५
छहों स्थानोंमें-से प्रत्येकमें सात-सात लाख योनियाँ होती हैं। सब मिलकर बयालीस लाख होती हैं। तरु अर्थात् प्रत्येक वनस्पतिकायिकोंमें दस लाख योनियाँ होती हैं। विकलेन्द्रिय रूप दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रियोंमें प्रत्येकमें दो-दो लाख योनियाँ होती हैं। सब मिलकर विकलेन्द्रियोंमें छह लाख योनियाँ होती हैं। देवोंमें, नारकियोंमें और तिर्यंच पंचेन्द्रियोंमें-से प्रत्येकमें चार-चार लाख योनियाँ होती हैं। सब मिलकर बारह लाख योनि होती हैं। ३०
मनुष्योंमें चौदह लाख योनियाँ होती हैं। इस प्रकार समस्त संसारी जीवोंकी सब योनियाँ मिलकर चौरासी लाख होती हैं ॥८९॥

आगे दो गाथाओंसे गतिके आश्रयसे जन्मका कथन करते हैं—

---

१. म तदनन्तरं योनिप्रभेदसंख्योद्देशपुरःसरमागियुपसंहारमं पेळ्दपं।

नित्यनिगोदंगळोळं इतरनिगोदंगळोळं पृथ्वीकायिकंगळोळं अप्कायिकंगळोळं तेजस्कायिकंगळोळं वायुकायिकंगळोळमिन्तु आरेडेयोळं सप्त सप्त लक्ष योनिगळप्पुवु । तरुगळोळ् प्रत्येकवनस्पतिगळोळु दशलक्षयोनिगळप्पुवु । विकलेंद्रियंगळप्प द्वित्रिचतुरिंद्रियंगळोळु प्रत्येकमेरडेरडु लक्षयोनिगळागलंतवरोळारु लक्षयोनिगळप्पुवु । सुररोळं नारकरोळं तिर्य्यक्पंचेंद्रियंगळोळं प्रत्येकं नाल्कु नाल्कु लक्षयोनिगळप्पुवु । मनुष्यरोळु चतुर्दशलक्षयोनिगळप्पुवु विन्तु समस्तसंसारिजीवंगळ योनिगळनित्तं कूडि चतुरशीतिलक्षसंख्येगळु प्रतिपत्तव्यंगळप्पुवु ॥

आगमिकः आगमे [illegible] अवधारणनिमित्तमागि गाथाद्वयमं पेळ्दपरु ।

उववादा सुरणिरया गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया ।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयविय लद्धी ॥९०॥

उपपादजाः सुरनारकाः गर्भजसंमूर्च्छिमाः खलु नरतिर्यञ्चः । संमूर्च्छिमा मनुष्या अपर्याप्ता एकविकलाक्षाः ॥ उपपादजरु सुररु नारकरप्परु । गर्भजरुं संमूर्च्छिमरुं खलु स्फुटमागि यथासंभवं मनुष्यरुं तिरियंचरुगळेयप्परु । केवलं संमूर्च्छिमरे लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्यरुमेकेंद्रियंगळु विकलेंद्रियंगळुमक्कुं ॥

पंचक्खतिरिक्खाओ गब्भजसंमुच्छिमा तिरिक्खाणं ।
भोगभुमा गब्भभवा णरपुण्णा गब्भजा चेव ॥९१॥

पंचेंद्रियतिर्यञ्चो गर्भजसंमूर्च्छिमास्तिरश्चां । भोगभौमा गर्भभवा नरपूर्णा गर्भजाश्चैव ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचरु गर्भजरुं संमूर्च्छिमरुमप्परु । तिर्य्यंचरोळगे भोगभूमितिर्य्यंचरु गर्भभवरेयप्परु । नरपर्य्याप्तकरु गर्भजरुगळेयप्परु ॥ अनंतरमौपपादिकादिगळोळु लब्ध्यपर्याप्तकत्वसंभवासंभवमं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं निरूपिसिदपरु ।

उववादगब्भजेसु य लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण ।
णरसंमुच्छिमजीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥९२॥

उपपादगर्भजेषु च लब्ध्यपर्याप्तका न नियमेन । नरसंमूर्च्छिमजीवा लब्ध्यपर्याप्तका एव ॥

उपपादजाः सुरा नारकाश्च भवन्ति । गर्भजाः संमूर्छिमाश्च खलु स्फुटं यथासंभवं मनुष्याः तिर्यञ्च एव भवन्ति । केवलसंमूर्छिमा एव लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्या एकेन्द्रिया विकलेन्द्रियाश्च भवन्ति ॥९०॥

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चो गर्भजाः संमूर्छिमाश्च भवन्ति । तिर्यक्षु भोगभूमिजा गर्भभवा एव । नरपर्याप्तका गर्भजा एव भवन्ति ॥९१॥ अथौपपादिकादिषु लब्ध्यपर्याप्तकत्वस्य संभवासंभवं कथयति—

देव और नारकी उपपाद जन्मवाले होते हैं। गर्भजन्म और सम्मूर्छन जन्मवाले यथासम्भव मनुष्य और तिर्यंच ही होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय केवल सम्मूर्छन ही होते हैं ॥९०॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और सम्मूर्छन होते हैं। तिर्यंचोंमें भोगभूमि या तिर्यंच गर्भज ही होते हैं। तथा पर्याप्तक मनुष्य गर्भज ही होते हैं ॥९१॥

आगे औपपादिक आदिमें लब्ध्यपर्याप्तकपनेका होना और न होना बतलाते हैं—

उपपाद जन्मवालोंमें लब्ध्यपर्याप्तक नियमसे नहीं होते। तथा सम्मूर्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त ही होते हैं ॥९२॥

औपपादिकरोळं गर्भजरोळमुं लब्ध्यपर्याप्तकरिल्लमेंदितमिल्ल। संमूर्च्छिममनुष्यरु लब्ध्यपर्याप्तकरेयप्परु ॥

अनंतरं नरकादिगतिगळोळु वेदावधारणनिमित्तं पेळ्दपं—

णेरइया खलु संढा णरतिरिए तिण्णि होंति संमुच्छा ।
संढा सुरभोगभुमा पुरिसित्थीवेदगा चेव ॥९३॥

नारकाः खलु षण्डा नरतिरश्चि त्रयो भवन्ति संमूर्च्छिमाः । षण्डाः सुरभोगभौमाः पुरुषस्त्रीवेदकाश्चैव ॥

नारकरनियमं षंडरु । मनुष्यतिर्य्यंचरुगळोळु स्त्रीपुन्नपुंसकवेदत्रयोदयमुमुंटु । संमूर्च्छितिर्य्यंग्मनुष्यरेल्लरुं षंडरेयप्परु । आ संमूर्च्छिममनुष्यरु स्त्रीजनयोनिगळोळं तत्कक्षस्तनमूलद्वयगर्भळोळं चक्रवर्तिय पडेविट्टुलिय-मूत्रपुरीषाद्यशुचिस्थानंगळोळं पुट्टुवरु । सुररुं भोगभूमिजरुं पुरुषस्त्रीवेदनियतोदयरे नियमदिंदप्परु । इंतु त्रिप्रकारमप्पयोन्यधिकारं जीवसमासंगळ्गे पेळ्दनंतरं ॥ :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनंतरं शरीरावगाहनाश्रयदिंदं जीवसमासंगळं पेळ्वातंगे बलोळंनेवरं सर्व्वजघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनस्वामिनिर्देशार्थमिदं पेळ्दपं ।

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्मि ।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥९४॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये । अङ्गुलाऽसंख्यभागं जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥

औपपादिकेषु गर्भजेषु च लब्ध्यपर्याप्तका नियमेन न सन्ति । संमूर्छिममनुष्या लब्ध्यपर्याप्ता एव भवन्ति ॥९२॥ अथ नरकादिगतिषु वेदानवधारयति—

नारकाः सर्वेऽपि खलु नियमेन षण्ढाः—द्रव्यतो भावतश्च नपुंसकवेदा एव भवन्ति । मनुष्यतिर्यक्षु स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रयं स्यात् । संमूर्छिमतिर्यग्मनुष्या षण्ढवेदा एव भवन्ति । ते संमूर्छिममनुष्यास्तु स्त्रीयोनिलक्षास्तनमूलान्तरालेषु चक्रवर्तिनः षट्महिषीं विना मूत्रपुरीषाद्यशुचिस्थानेषु चोत्पद्यन्ते । सुरा भोगभूमिजाश्च पुरुषस्त्रीवेदनियतोदया एव नियमेन भवन्ति ॥९३॥ इति त्रिविधो योन्यधिकारो जीवसमासेषु कथितः । अथ शरीरावगाहनाश्रयेण जीवसमासान् वक्तुमनाः प्रथमं तत्सर्वजघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनस्वामिनो निर्दिशति—

आगे नरकादि गतियोंमें वेदोंका निर्णय करते हैं—

नारकी सब ही नियमसे—द्रव्यरूपसे और भावरूपसे भी नपुंसक वेदवाले ही होते हैं। मनुष्य और तिर्यंचोंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद तीनों होते हैं। सम्मूर्छन तिर्यंच और सम्मूर्छन मनुष्य नपुंसकवेदवाले ही होते हैं। वे सम्मूर्छन मनुष्य स्त्रीकी योनि, काँख, स्तनोंके मूलमें तथा चक्रवर्तीकी पट्टरानीके सिवाय मूत्र, विष्टा आदि अशुचि स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं। देव तथा भोगभूमिया नियमसे पुरुषवेद और स्त्रीवेदके नियत उदयवाले होते हैं ॥९३॥

इस प्रकार जीवसमासोंमें तीन प्रकारकी योनियोंका अधिकार कहा।

आगे शरीरकी अवगाहनाके आश्रयसे जीवसमासोंको कहनेका भाव मनमें रखकर प्रथम सबसे जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनाके स्वामियोंको कहते हैं—

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यप्पर्याप्तकन तद्भवदोळु ऋजुगतियिंवं पुट्टिद तृतीयसमयदोळु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रप्रदेशावगाहमनुळ्ळशरीरं सर्वावगाहविकल्पंगळं नोडल्जघन्यमक्कुं। स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्त्ति महामत्स्यदोळुत्कृष्टावगाहंगळेल्लमं नोडल्सर्वोत्कृष्टावगाहमनुळ्ळ शरीरमक्कुमुत्पन्नतृतीयसमयदोळे सर्व्वजघन्यावगाहनमनुळ्ळ शरीरमेंबितेकेंदोडे उत्पन्नप्रथमसमयदोळु निगोदजीवशरीरमायतचतुरस्रमक्कुं तद्द्वितीयसमयदोळु समचतुरस्रमक्कुं। तृतीयसमयदोळु मत्ते कोणापनयनदिंद वृत्तत्वदिंदमा प्रथमद्वितीयसमयंगळेरडु मवगाहंगळं नोडलल्पीयस्त्वं संभविसुगुमेंदितु तृतीयसमयदोळे सर्व्वजघन्यमप्प शरीरावगाहनमं पुट्टुगुं। विग्रहगतियोळु योगवृद्धियुक्तदिंरदं अवगाहवृद्धिसंभविसुगुमदिंरदं ऋजुगत्युत्पन्नं गळेंबितु पेळल्पट्टुदु। सर्व्वजघन्यशरीरावगाहदोळु घनांगुलक्के भागहारंगळ्पल्यासंख्यातैकभागंगळेकान्नविंशतिसंख्याप्रमितंगळक्कुमावल्यसंख्यातैकभागंगळोंभत्तु। रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागंगळ्द्वाविंशतिप्रमितंगळक्कुं। संख्यात-

---

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य तद्भवे ऋजुगत्योत्पन्नस्य तृतीयसमये घनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रप्रदेशावगाहविशिष्टशरीरं सर्वावगाहविकल्पेभ्यो जघन्यं भवति स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्तिमहामत्स्ये उत्कृष्टावगाहेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वोत्कृष्टावगाहविशिष्टं शरीरं भवति। ननूत्पन्नतृतीयसमये एव सर्वजघन्यावगाहनं कथं संभवेत्? इति चेत् तत्प्रथमसमये निगोदजीवशरीरस्यायतचतुरस्रत्वात् द्वितीयसमये समचतुरस्रत्वात् तृतीयसमये कोणापनयनेन वृत्तत्वात् तदैव तदवगाहनस्याल्पत्वसंभवात्। तर्हि ऋजुगत्योत्पन्नस्यैव कथमुक्तं विग्रहगतौ योगवृद्धियुक्तत्वेन तदवगाहवृद्धिप्रसङ्गात्। तत्सर्वजघन्यावगाहे घनाङ्गुलस्य भागहाराः पल्यासंख्या-

---

जो सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव उस भवमें ऋजुगतिसे उत्पन्न हुआ है, उसका तीसरे समयमें घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र प्रदेशोंकी अवगाहनासे विशिष्ट शरीर समस्त अवगाहनाके विकल्पोंसे जघन्य होता है। स्वयम्भूरमण समुद्रके मध्यवर्ती महामत्स्यके समस्त उत्कृष्ट अवगाहनाओंसे सर्वोत्कृष्ट अवगाहनासे विशिष्ट शरीर होता है।

शंका—उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें ही सबसे जघन्य अवगाहना कैसे होती है?

समाधान—जन्म लेनेके प्रथम समयमें निगोदिया जीवका शरीर आयतचतुरस्र अर्थात् लम्बा अधिक चौड़ा कम होता है। दूसरे समयमें समचतुरस्र अर्थात् समान लम्बा चौड़ा चौकोर होता है। तीसरे समयमें कोने दूर हो जानेसे गोल आकार होता है। उसी समय उसकी अवगाहनाका प्रमाण अल्प होता है।

शंका—तो ऋजुगतिसे उत्पन्न हुए जीवके ही जघन्य अवगाहना क्यों कही?

समाधान—विग्रहगतिमें योगकी वृद्धिसे युक्त होनेसे उसकी अवगाहनामें वृद्धिका प्रसंग आता है।

जघन्य अवगाहनाका प्रमाण लानेके लिए घनांगुलके भागहार उन्नीस पल्यके असंख्यातवें भाग, नौ आवलीका असंख्यातवाँ भाग, बाईस एक अधिक आवलीका असंख्यातवाँ भाग, और नौसंख्यात है अर्थात् घनांगुलमें इतनी-इतनी बार इन राशियोंसे भाग देना है। और गुणकार बाईस आवलीके असंख्यातवें भाग हैं अर्थात् बाईस बार आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करना है।

---

१. म °कापल्यसं°।

रूपवारंगळोंभत्तु । मत्तं गुणकारंगळावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळ्द्वात्रिंशतिप्रमितंगळक्कुमवके
६।८।२२

संदृष्टि प ᵃ १९।८।८।२२।१।१९ अनंतरमिंद्रियाश्रयदिंदमुत्कृष्टावगाहंगळ प्रमाण तत्स्वामिनिर्देश निमित्तमी
ᵃ
सूत्रमं पेळ्दपरु—

साहिय सहस्समेक्कं बारं कोसूणमेक्कमेकं च । ५
जोयणसहस्सदीहं पम्मे वियले महामच्छे ॥९५॥

साधिकसहस्रमेकं द्वादशक्रोशोनमेकं च । यं जनसहस्रदैर्घ्यं पद्मे विकले महामत्स्ये ॥

एकेंद्रियंगळोळु स्वयंभूरमणद्वीपमध्यवर्त्तिस्वयंप्रभाचलापरभागस्थितक्षेत्रोत्पन्नपद्मदोळु साधिकसहस्रयोजनायाममुमेकयोजनव्यासमुमुत्कृष्टावगाहमक्कु मिदक्के "वासो तिगुणो परिही" एंदु व्यासमुं १ । त्रिगुणं माडल्लु १।३ । परिधियक्कुं "व्यासचतुर्थाहतस्तु क्षेत्रफल" मेंदु १० १ १।३।१
व्यासचतुर्थांशविदं ४ परिधियं गुणिसिदोडे क्षेत्रफलमक्कुं ४ क्षेत्रफलं वेदगुणं खातफलं

तैकभागा एकान्नत्रिंशतिः । आवल्यसंख्यातैकभागा नव । रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागा द्वात्रिंशतिः संख्याता नव। गुणकारास्तु आवल्यसंख्यातैकभागा द्वात्रिंशतिः । संदृष्टिः ६।८।२२

ᵃ
प।१९।८।९।८।२२।१।९ १५
ᵃ ᵃ ᵃ ॥९४॥ अथेन्द्रियाश्रयेणोत्कृष्टावगाहानां प्रमाणं तत्स्वामिनश्च निर्दिशति—

एकेन्द्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपमध्यवर्तिस्वयंप्रभाचलापरभागस्थितक्षेत्रोत्पन्नपद्मे साधिकसहस्रयोजनायामैकयोजनव्यासोत्कृष्टावगाहो भवति अस्य च व्यासः (यो०) १ । त्रिगुणः १ । ३ परिधिः । अयं च व्यास-

---

विशेषार्थ—इन सब भागहारोंको परस्परमें गुणा करनेसे तो सब भागहारोंका प्रमाण २०
आ जायेगा। और बाईस जगह आवलीके असंख्यातवें भागोंको रखकर परस्पर गुणा करनेसे गुणकारका प्रमाण आ जायेगा। घनांगुलमें भागहारका भाग देकर और गुणकारसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना ही जघन्य अवगाहनाके प्रदेशोंका परिमाण जानना ॥९४॥

आगे इन्द्रियोंके आश्रयसे उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण और उसके स्वामियोंका कथन करते हैं— २५

एकेन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमण द्वीपके मध्यवर्ती स्वयंप्रभाचलके अपर भागमें जो कर्मभूमि-रूप क्षेत्र है, उस क्षेत्रमें उत्पन्न हुए कमलमें कुछ अधिक एक हजार योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा उत्कृष्ट अवगाह है अर्थात् वह कमल इतना लम्बा-चौड़ा है। उसका क्षेत्रफल कहते हैं—

कमल गोलाकार है। और गोलाकारका क्षेत्रफल लानेके लिए व्याससे तीन गुनी ३०
परिधि होती है। परिधिको व्यासके चतुर्थांशसे गुणा करनेपर प्रतररूप क्षेत्रफल होता है। और उसे ऊँचाईसे गुणा करनेपर घनक्षेत्रफल या खातफल होता है। वही यहाँ इष्ट है। सो कमलका व्यास एक योजन, उसको तीनसे गुणा करनेपर परिधि तीन योजन होती है।

---

१. म °णसमुद्दम° ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

भवति सर्व्वत्रमेंदा क्षेत्रफलमं वेदिर्यिवं गुणियिसिदोडे खातफलमक्कुं १।३।१।१०००/४ इदनपर्वत्तिसि गुणियिसिदोडे घनफलमेरु नूरैवत्तुयोजनप्रमाणक्कुं ७५०। द्वींद्रियंगळोळु तत्स्वयंभूरमणसमुद्रवर्त्ति शंखदोळु द्वादशयोजनायाममुं पंचचतुर्त्थांशप्रमितोत्सेधमुं ५/४ चतुर्योजनमुखव्यासमु ४। मुत्कृष्टाव-
५ गाहमक्कुमिदक्के :—

व्यासं तावत्कृत्वा वदनदलोनं मुखार्धवर्गयुतं। द्विगुणं चतुर्विभक्तं पंचगुणं नाभिसहितफलं ॥

एंदु व्यासमं १२। तावत्कृत्वा अनितने माडि १२।१२ वदन ४। दल २। ऊनं १४२ मु ४। अर्द्ध २। वर्गं ।४। युतं १४६। द्विगुणं १४६।२। चतुर्व्विभक्तं १४६।२/४ पंचगुणं १४६।५।२/४ नाभिसहितफलमेंदु
१० इदनपर्वत्तिसि गुणिसिद घनफलयोजनंगळु ३६५ अप्पुवु। त्रींद्रियंगळोळु स्वयंभूरमणद्वीपापरभाग-वर्त्तिकर्म्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रदोळुरक्तवृश्चिकजीवनोलुयोजनत्रिचतुर्भागंगळायाममुं ३/४ तदष्टमांश-

---

चतुर्थ्या १/४ हृतः १।३।१/४ क्षेत्रफलं। तच्च बेधेन १००० चतुर्भिरपवर्तितेन गुणितं योजनात्मकं खातफल-मेतावद्भवति ७५०। द्वीन्द्रियेषु तत्स्वयंभूरमणसमुद्रवर्तिशङ्खे द्वादशयोजनायामपञ्चचतुर्थांशोत्सेध ५/४ चतुर्यो-जनमुखव्यासोत्कृष्टावगाहो भवति। अस्य च व्यासः १२ तावद्गुणितः १४४ वदन ४ दल २ ऊन १४२ मुखा-र्द्धवर्ग ४ युतः १४६ द्विगुणः २९२ चतुर्भिर्भक्तः ७३ पञ्चगुणः ३६५ षड्खखातफलं। त्रीन्द्रियेषु स्वयंभूर-मणद्वीपापरभागवर्तिकर्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रे रक्तवृश्चिकजीवे योजनत्रिचतुर्भागायाम ३/४ तदष्टमांशव्यास ३/३२ तदर्द्धोत्सेध ३/६४ उत्कृष्टावगाहोऽस्ति। अस्य च भुजकोटिवधात् प्रजायते क्षेत्रफलं ३/४ ३/३२ तच्च वेधगुणं

उसको व्यासके चौथे भाग एक योजनके चतुर्थांशसे गुणा करनेपर प्रतर क्षेत्रफल १×३×¾ पौन योजन होता है। उसे कमलके वेध एक हजार योजनसे गुणा करनेपर साढ़े सात सौ (७५०) योजन खातफल होता है। दोइन्द्रियोंमें उस स्वयम्भूरमण समुद्रवर्ती शंखमें बारह योजन लम्बा, पाँच योजनके चार भाग प्रमाण ऊँचा, मुखमें चार योजनका व्यासवाला अवगाह है अर्थात् वह शंख इतना लम्बा-ऊँचा है। इसका खातफल लानेके लिए व्यासको व्याससे गुणा करके, उसमें मुखके आधेका प्रमाणको घटाकर, उसमें मुखके आधेका वर्ग जोड़कर उसको दोसे गुणा करो, चारका भाग दो फिर पाँचसे गुणा करो तो शंखका खातफल आता है। सो शंखके व्यास बारह योजनको बारहसे गुणा करनेपर १२×१२ = १४४ (एक सौ चवालीस) होते हैं। उसमें मुखका आधा प्रमाण दो घटानेपर एक सौ बयालीस रहे। इसमें मुखके आधे प्रमाणका वर्ग चार जोड़नेपर एक सौ छियालीस हुए। इसको दूना करनेपर दो सौ बानवे हुए। इसमें चारका भाग देनेपर तिहत्तर रहे। तिहत्तरमें पाँचसे गुणा करनेपर तीन सौ पैंसठ योजन प्रमाण शंखका क्षेत्रफल होता है। तेइन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमण-द्वीपके अपर भागमें कर्मभूमिसे सम्बन्धित क्षेत्रमें जो रक्त विच्छू है, उसका अवगाह एक

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

व्यासमुं ४।८ तद्बाहल्योत्सेधमुं ४।८।२ मुत्कृष्टावगाहमक्कुमिल्लि भुजकोटिवधात्प्रजायते क्षेत्रफलमें विंदु
३।३ ३।३
४।३२ क्षेत्रफलमिदं वेदगुणं स्वादफलं होदि सव्वत्थ। एंदा क्षेत्रफलमुं ४।३२ वेदेयिदं गुणियिसुत्ति-
३।३।३ २७
रलु ४।३२।६४ घनफलमक्कुं ८१९२ चतुरिंद्रियंगळोळु स्वयंभूरमणद्वीपापरभागकर्म्मभूमिप्रति-
३ १
बद्धक्षेत्रवर्त्तिभ्रमरनोळेकयोजनायाममुं १। तत्त्रिचतुर्भागव्यासमु ४ मर्द्धयोजनोत्सेधमु २ मुत्कृ-
३
ष्टावगाहमक्कुमिल्लियुं भुजकोटीत्यादिसूत्रानीत घनफलं ८ व्यष्टमभागयोजन प्रमाणमक्कुं। पंचेंद्रि- ५
यंगळोळु स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्त्तिमहामत्स्यनोळु सहस्रयोजनायाममुं पंचशतयोजनव्यासमुं
पंचाशद्विशतयोजनोत्सेधमुमुत्कृष्टावगाहमक्कुमिल्लि भुजकोटीत्यादि सूत्रानीतघनफलं।
१२५०००००००। सासिरदिन्नूरैवत्तुलक्षयोजनंगळक्कुं। ई पद्मादिगळगे प्रदेशीकृतघनफलंगळु
यथाक्रमदिंदं संख्यातघनांगुलंगळगी प्रकारंगळिदिप्पुवु।

---

३ ३ ३ घनफलं भवति २७। चतुरिन्द्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपापरभागकर्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्र- १०
४। ३२। ६४ ८१९२
वर्तिभ्रमरे एकयोजनायामतत्त्रिचतुर्भागव्यास ३ अर्धयोजनोत्सेध १ उत्कृष्टावगाहोऽस्ति। अस्य च
४ २
भुजकोटीत्यादिनानीतघनफलं ३ योजनव्यष्टमभागो भवति। पञ्चेन्द्रियेषु स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्ति-
८
महामत्स्ये सहस्रयोजनायामपञ्चशतयोजनव्यासपञ्चाशदधिकद्विशतयोजनोत्सेधोत्कृष्टावगाहोऽस्ति। अस्य च भुज- १५
कोटीत्यादिनानीतघनफलं १२५०००००००० सार्धद्वादशकोटियोजनमात्रं भवति। एतान्युक्तघनफलानि प्रदेशी-

---

योजनका तीन चौथा भाग $\frac{3}{4}$ प्रमाण लम्बा, लम्बाईके आठवें भाग $\frac{3}{32}$ चौड़ा और चौड़ाईसे आधा $\frac{3}{64}$ ऊँचा है। यह क्षेत्र आयत चतुरस्र अर्थात् लम्बाई लिये चौकोर है। इसलिए इसका प्रतर क्षेत्रफल भुजकोटिवध इत्यादि सूत्रके अनुसार लाया जाता है। लम्बाई-चौड़ाईमें-से एकका नाम भुज और एकका नाम कोटि है। इनका वध अर्थात् गुणा करनेसे प्रतर क्षेत्रफल होता है। सो यहाँ लम्बाई $\frac{3}{4}$, चौड़ाई $\frac{3}{32}$ इनको परस्परमें गुणा करने पर $\frac{3}{4} \times \frac{3}{32} = \frac{9}{128}$ हुआ। इसको ऊँचाई $\frac{3}{64}$ से गुणा करनेपर सत्ताईस योजनका इक्यासी सौ बानवेवाँ भाग प्रमाण $\frac{27}{8192}$ रक्तविच्छुका घनक्षेत्रफल होता है। चतुरिन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमणद्वीपके परले भागमें कर्मभूमि सम्बन्धी क्षेत्रमें भ्रमर होता है। उसका उत्कृष्ट अवगाह एक योजन लम्बा, पौन योजन चौड़ा और आधा योजन ऊँचा है। 'भुजकोटिवध' के अनुसार एक योजन, पौन योजन और आधा योजनको परस्परमें गुणा करनेपर $1 \times \frac{3}{4} \times \frac{1}{2} = \frac{3}{8}$ तीन योजनका आठवाँ भाग घनक्षेत्रफल होता है। पंचेन्द्रियोंमें स्वयम्भूरमण समुद्रके मध्यवर्ती महामत्स्यका अवगाह एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा और दो सौ पचास योजन ऊँचा है। 'भुजकोटि' इत्यादिके अनुसार १०००×५००×२५० तीनोंको परस्परमें गुणा करनेपर साढ़े बारह करोड़ १२५०००००० योजन प्रमाण घनफल होता है। इन उक्त घनफलोंको

एकेंद्रियक्के चतुःसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६१११। द्वींद्रियक्के त्रिसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६११। त्रींद्रियक्के एकसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६१। चतुरिंद्रियक्के द्विसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६११। पंचेंद्रियक्के पंचसंख्यातगुणितघनांगुलमक्कुं ६१११११॥

अनंतरं पर्य्याप्तकद्वींद्रियादिगळ जघन्यावगाहप्रमाणमं तत्स्वामिनिर्देशमुमं माडल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु।

वितिचदुपण्णजहण्णं अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु।
सिच्छयमच्छे बिंदंगुलसंख संखगुणिदकमा ॥९६॥

द्वित्रिचतुःपञ्चपूर्णजघन्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिकासु। सिक्थकमत्स्ये वृंदाङ्गुलसंख्या संख्यगुणितक्रमाणि॥

द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरोळु यथासंख्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिका सिक्थकमत्स्यमें बी जीवंगळोळ जघन्यावगाहमनुळ्ळ शरीरावष्टब्धप्रदेशंगळु वृंदांगुलसंख्यातैकभागं मोदलागिसंख्यातगुणित क्रममक्कुं ११११।१११।११।१ इवरायाम व्यासोत्सेधंगळेंबिनितुपदेशमिल्लल्लि सूत्रोपविष्टघनफलमनें पेळ्दपं॥

मार्गदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कृतानि तदैकेन्द्रियस्य चतुस्संख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६१११। द्वीन्द्रियस्य त्रिसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६११ त्रीन्द्रियस्य एकसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६१। चतुरिन्द्रियस्य द्विसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं ६११। पञ्चेन्द्रियस्य पञ्चसंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं भवति ६१११११ ॥९५॥ अथ पर्याप्तकद्वीन्द्रियादीनां जघन्यावगाहप्रमाणं तत्स्वामिनिर्देशं चाह—

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकेषु यथासंख्यं अनुंधरीकुन्थुकाणमक्षिकासिक्थकमत्स्यजीवेषु जघन्यावगाहविशिष्टशरीरावष्टब्धप्रदेशप्रमाणं वृन्दाङ्गुलसंख्यातैकभागमादिं कृत्वा संख्यातगुणितक्रमेण भवति। ६ द्वि ६ त्रि ६ च ६ पं। एषामिदानीं व्यासायामोत्सेधानामुपदेशो नास्ति इति घनफल-१ १ १ १ १ १ १ १

प्रदेशरूप करनेपर एकेन्द्रियके चार बार संख्यात गुणित घनांगुलप्रमाण, दोइन्द्रियके तीन बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण, त्रीन्द्रियके एक बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण, चतुरिन्द्रियके दो बार संख्यातगुणित घनांगुल प्रमाण, पंचेन्द्रियके पाँच बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण प्रदेशोंका उत्कृष्ट अवगाह होता है ॥९५॥

आगे पर्याप्त दोइन्द्रिय आदिके जघन्य अवगाहना प्रमाण और उसके स्वामियोंका निर्देश करते हैं—

पर्याप्त दोइन्द्रियोंमें अनुन्धरी, तेइन्द्रियोंमें कुन्थु, चौइन्द्रियोंमें काणमक्षिका और पंचेन्द्रियोंमें तन्दुलमत्स्यकी जघन्य अवगाहनासे विशिष्ट शरीरके द्वारा रोके गये क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घनांगुलके संख्यातवें भागसे लेकर क्रमसे संख्यात गुणा जानना। सो दोइन्द्रियोंमें चार बार, तेइन्द्रियोंमें तीन बार, चौइन्द्रियोंमें दो बार और पंचेन्द्रियोंमें एक बार संख्यातसे भाजित घनांगुल मात्र जघन्य अवगाहनाके प्रदेशोंका प्रमाण होता है। इन

---

१. म °ल्दपं। २. म मिल्लि। ३. म पेल्देवु।

अनंतरं सर्व्वजघन्यशरीरावगाहं मोवल्गोंडुत्कृष्टशरीरावगाहपर्यंतमप्प शरीरावगाहन-विकल्पंगळ्गे स्वाम्यल्पबहुत्वगुणकारक्रमप्रदर्शनार्त्थमागि मुंदण गाथापंचकमं निरूपिसिवपरु ।

सुहुमणिवाते आभूवाते आपुणि पदिट्ठिदं इदरं ।
बितिचपमाइल्लाणं एयाराणं तिसेढीय ॥९७॥

सूक्ष्मनिवासे आभूवासे आपुनिप्रतिष्ठितमितरं । द्वित्रिचतुःपञ्चाद्यानामेकादशानां त्रिश्रेणयः ॥ ५

इल्लि नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्त्तते एंबी लघुकरणन्यायमनाश्रयिसि नि । वा । ते । एंदित्यादि वर्ण्न-गळिंदं निगोदवायुकायिकतेजस्कायिकादिजीवंगळ् पेळल्पट्टुवु ।

निगोदवायुतेजोऽब्भूकायिकंगळे बीयद्दु सूक्ष्मंगळ् प्रथमकोष्ठदोळु मत्तं वायुतेजोऽप्पृथ्वी-कायिकंगळु निगोदमुं प्रतिष्ठितप्रत्येकमुमेंदी बादरषड्जीवंगळु तिर्य्यक्कागि मुंनिनंते क्रमदिं द्वितीयकोष्ठदोळु पुनरुक्तता सामर्थ्यदिदमिवु बादरंगळेंदरिवुदु ॥ मत्तमप्रतिष्ठित प्रत्येकद्वित्रिचतुः- १०

पंचेंद्रियमेंदी पंचजीवसमासंगळ् बादरंगळेयप्पुवु । तृतीयकोष्ठदोळ् ई पेळल्पट्ट पदिनारुं जीव-

---

मेवोक्तं ॥९६॥ अथ सर्वजघन्यावगाहनादीनां उत्कृष्टावगाहनपर्यन्तानां शरीरावगाहनविकल्पानां स्वाम्य-ल्पबहुत्वगुणकारान् गाथापञ्चकेन प्रदर्शयति—

अत्र नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तत इति लघुकरणन्यायमाश्रित्य निवेत्यादिवर्णैर्निगोदवायुकायिकादयो जीवा गृह्यन्ते । निगोदवायुतेजोऽब्भूकायिकनामानः पञ्च सूक्ष्माः प्रथमकोष्ठे भवन्ति । पुनः वायुतेजोऽप्पृथ्वी-कायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकनामानः षट् बादरास्तिर्यक्प्रागवत् क्रमेण द्वितीयकोष्ठे भवन्ति । पुनरुक्ततासामर्थ्यात् एते बादरा एवेति ज्ञातव्यं । पुनरप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियनामानः पञ्चबादरास्तृतीयकोष्ठे भवन्ति । एतेषु षोडशसु आद्यानां सूक्ष्मनिगोदादीनां एकादशानामग्रे तिस्रः षट्कृतयः कर्तव्याः । तत्रैकैकषट्कृतेः कोष्ठत्रयं त्रयं ज्ञातव्यम् ।

सबकी चौड़ाई, लम्बाई और ऊँचाईका कथन आजकल यहाँ प्राप्त नहीं है । इसलिए घनफल ही कहा है अर्थात् घनफल करनेपर जो प्रदेशोंका प्रमाण होता है, उसे कहा है ॥९६॥ २०

आगे सबसे जघन्य अवगाहनासे लेकर उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त शरीरकी अवगाहना-के विकल्पोंको उनके स्वामी, अल्पबहुत्व तथा गुणकारोंको पाँच गाथाओंसे कहते हैं—

यहाँ 'नामका एकदेश सम्पूर्ण नाममें प्रवर्तित होता है', इस लघुकरणके न्यायको आश्रय करके 'नि' 'वा' इत्यादि वर्णोंके द्वारा निगोदिया, वायुकायिक आदि जीवोंका ग्रहण २५ होता है । सो यहाँ अवगाहनाके भेद जाननेके लिए एक यन्त्र बनाओ । उसके प्रथम कोठेमें निगोद, वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथिवीकायिक पाँच जीवोंको स्थापित करो । पुनः दूसरे कोठेमें वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक नामक छह बादर जीवोंको पहलेकी तरह तिर्यक् रूपसे स्थापित करो । पहले कोठेमें जो नाम थे, वे ही नाम दूसरे कोठेमें होनेसे यह जान लेना चाहिए कि ये जीव जो दूसरे ३० कोठेमें लिखे गये हैं, बादर ही हैं । पुनः तीसरे कोठेमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय नामक पाँच बादर जीवोंको लिखो । इन सोलहमें-से आद्य सूक्ष्मनिगोद आदि ग्यारहकी आगे तीन पंक्तियाँ करनी चाहिए । उनमें-से एक-एक पंक्तिके दो-दो कोठे

---

१. म दिवु ।

समासंगळोळगे मोदल सूक्ष्मनिगोदादि पंनों दुजीवसमासंगळ्मुंदे मूरुपंक्तियागि तिर्यग्रचियिसल्पडुवल्लि यो दो दु पंक्तिग कोष्ठद्वयमुमरियल्पडुगुं ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अपदिट्ठिदपत्तेयं तित्तियमेत्तीचवि अपदिट्ठिदं सयलं ।
तीचवि अपदिट्ठिदं च य सयलं बादालगुणिदकमा ॥९८॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येको द्वित्रिचतुःपञ्चत्रिचतुर्द्वयप्रतिष्ठिताः सकलः । त्रिचतुर्द्वयंप्रतिष्ठिताश्च सकलो द्वाचत्वारिंशद्गुणितक्रमाः ॥

मत्तमा पंक्तित्रयद मुंदे दशमकोष्ठदोळऽप्रतिष्ठित प्रत्येकमुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवंगळेंबय्दुंजीवसमासंगळ्बादरंगळेयप्पुवल्लि बळिक्कं पन्नोंदनेय कोष्ठदोळु त्रिचतुर्द्वींद्रियंगळुमप्रतिष्ठितप्रत्येकमुं सकलेंद्रियमुमेंबीयय्दु जीवसमासंगळ्बादरंगळेयप्पुवु । मुंदण पन्नेरडनेय कोष्ठदोळु त्रिचतुर्द्वयंप्रतिष्ठितसकलेंद्रियगळेंबीयय्दु जीवसमासंगळ्बादरंगळेयप्पुवी चतुःषष्टिजीवसमासंगळवगाहनविकल्पंगळोळुपरितनपंक्तिगत द्वाचत्वारिंशज्जीवसमासंगळवगाहनविकल्पंगळु गुणितक्रमंगळप्पुवी सामर्थ्यींदमे केळगणपंक्ति द्वयगतद्वात्रिंशतिजीवसमासंगळवगाहनविकल्पंगळधिकक्रमंगळप्पुवंतल्लदेयुं सेढिगया अहिया तत्थेक्कपडिभागो एंबुं सूचितमाय्तु ॥

पुनस्तत्पङ्क्तित्रयस्याग्रे दशमकोष्ठे अप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियनामानः पञ्चबादरा भवन्ति । तदग्रे एकादशे कोष्ठे त्रिचतुर्द्वीन्द्रियाप्रतिष्ठितप्रत्येकसकलेन्द्रियनामानः पञ्च बादरा भवन्ति । तदग्रे द्वादशे कोष्ठे त्रिचतुर्द्वयप्रतिष्ठितसकलेन्द्रियनामानः पञ्चबादरा भवन्ति । एतेषु चतुष्षष्टिजीवसमासावगाहनविकल्पेषु उपरितनपङ्क्तिगतद्वाचत्वारिंशज्जीवसमासावगाहनविकल्पा गुणितक्रमा भवन्ति । तदन्ये तु 'सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो' इति सूचितं जातम् ॥९८॥

जानने चाहिए। अर्थात् पहले कहे तीसरे कोठेके आगे दो कोठे करो। उनमें जैसे पहले और दूसरे कोठेमें क्रमसे पाँच सूक्ष्म और छह बादर लिखे थे, वैसे ही यहाँ भी लिखना। उन दोनों कोठोंके नीचे एक पंक्तिमें दो कोठे और बनाओ। उनमें भी उसी प्रकार पाँच सूक्ष्म और छह बादर लिखो। उनके भी नीचे दो कोठे और बनाओ। उनमें भी उसी तरह पाँच सूक्ष्म छह बादर लिखो। इस तरह सूक्ष्म निगोद आदि ग्यारह स्थानोंकी दो-दो कोठोंकी तीन पंक्तियाँ हुईं। इस प्रकार ऊपरकी पंक्तिमें पाँच कोठे, और उन पाँच कोठोंमें-से अन्तके दो कोठोंके नीचे दो कोठे और फिर उनके भी नीचे दो कोठे, इस तरह सब मिलकर नौ कोठे हुए ॥९७॥

पुनः उन तीन पंक्तियोंके आगे दसवें कोठेमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय नामक पाँच बादर होते हैं। उसके आगे ग्यारहवें कोठेमें त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, पंचेन्द्रिय ये पाँच बादर लिखो। उसके आगे बारहवें कोठेमें त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, पंचेन्द्रिय ये पाँच बादर लिखो। इन चौसठ जीवसमासकी अवगाहनाके विकल्पोंमें-से ऊपरकी पंक्तिके आठ कोठोंमें स्थापित बयालीस जीवसमास अवगाहनाके विकल्प गुणितक्रम हैं अर्थात् क्रमसे पूर्वस्थानको विवक्षित गुणकारसे गुणा करनेपर आगेका अवगाहना विकल्प आता है। इन बयालीस स्थानोंसे अतिरिक्त जो नीचेकी दो पंक्तियोंमें स्थापित बाईस स्थान हैं, वे एक प्रतिभाग अधिक हैं। अर्थात् पूर्वस्थानको सम्भावित भागहारका भाग देकर एक भागको उस पूर्वस्थानमें जोड़नेपर आगेका स्थान होता है ॥९८॥

अवरमपुण्णं पढमं सोलं पुण पढमबिदिय तदियोली ।
पुण्णिदरपुण्णयाणं जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं ॥९९॥

अवरमपूर्णं प्रथमं षोडश पुनः प्रथमद्वितीयतृतीयपंक्तयः पूर्णेतरपूर्णानां जघन्यमुत्कृष्ट-मुत्कृष्टम् ॥

मोदल मूरुं कोष्ठंगळा पविनारुं जीवसमासंगळ्गे अपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनंगळें दरियल्प-डुवुवु। मत्तं मेगेळिदं प्रथमद्वितीयतृतीयपंक्तिगळोळमों बोंदु पंक्तियोळमेरडेरडु कोष्ठंगळोळं यथाक्रमं पर्य्याप्तापर्य्याप्तलब्धिअपर्य्याप्तस्वकर्मेंद मूरेप्रकारमप्प जीवंगळ्गे जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टम-वगाहनमक्कुं। प्रथमपंक्तियोळु सूक्ष्मंगळैंदु बादरंगळारुमितु पन्नों दक्कुं। पर्याप्तजीवसमासंगळ्गे जघन्यावगाहस्थानंगळप्पुवंते द्वितीयपंक्तिगतपन्नों दुं पर्याप्तजीवसमासंगळुत्कृष्टावगाहस्थानंग-ळप्पुवहांगे तृतीयपंक्तिगतपन्नों दुं पर्याप्तजीवसमासंगळुत्कृष्टावगाहनस्थानंगळप्पुवु एंदितीविभागं ज्ञातव्यमक्कुं ॥

पुण्णजहण्णं तत्तो वरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं ।
बीपुण्णजहण्णोत्तियसंखं संखं गुणं तत्तो ॥१००॥

पूर्णजघन्यं ततो वरमपूर्णस्य पूर्णोत्कृष्टं । द्वींद्रियपूर्णं जघन्यपर्यंतमसंख्यं संख्यं गुणं ततः ॥

अल्लि बळिकं पत्तनेय कोष्ठगतपर्याप्तपंचजीवसमासंगळ्गे जघन्यावगाहस्थानंगळप्पुवल्लिंद-त्तल्पन्नों दनेय कोष्ठगतापर्य्याप्त पंचजीवसमासंगळ्गेयुत्कृष्टावगाहनस्थानंगळप्पुवल्लिं मुंदणपंनेरड-नेय कोष्ठगतपर्य्याप्तपंचजीवसमासंगळगुत्कृष्टावगाहनस्थानंगळप्पुवल्लि दशमकोष्ठगतबादरपर्य्या-

---

प्रथमकोष्ठत्रयगतषोडशजीवसमासानां अपर्याप्तजघन्यावगाहा इति ज्ञातव्याः। पुनरुपरि प्रथमद्वितीय-तृतीयपङ्क्तिषु एकैकस्यां पङ्क्तौ द्वौ द्वौ कोष्ठौ यथाक्रमं पर्याप्तापर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इति त्रिविधजीवानां जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं चावगाहनं स्यात्। प्रथमपङ्क्तौ सूक्ष्माः पञ्च बादराः षडित्येकादशानां पर्याप्तजीवसमासानां जघन्यावगाहनानि सन्ति। तथा द्वितीयपङ्क्तिगततदेकादशपर्याप्तजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि सन्ति। तथा तृतीयपङ्क्तिगतैकादशपर्याप्तजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि सन्तीत्ययं विभागो ज्ञातव्यः ॥९९॥

तदग्रे दशमे कोष्ठे पर्याप्तकपञ्चजीवसमासानां जघन्यावगाहनस्थानानि भवन्ति। ततस्तदग्रे एकादशे कोष्ठे अपर्याप्तकपञ्चजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि भवन्ति। तदग्रे द्वादशे कोष्ठे पर्याप्तकपञ्चजीव-

---

पहले तीन कोठोंमें स्थापित सोलह जीवसमास अपर्याप्त जीवोंकी जघन्य-अवगाहना-रूप जानना। आगे ऊपरसे पहली, दूसरी, तीसरी पंक्तिमें एक-एक पंक्तिके दो-दो कोठे हैं। वे क्रमसे पर्याप्त, अपर्याप्त, और पर्याप्त जीवोंकी जघन्य, उत्कृष्ट और उत्कृष्ट अवगाहनाके हैं। अर्थात् ऊपरसे प्रथम पंक्तिके दो कोठोंके ग्यारह स्थान पर्याप्त जीवोंकी जघन्य अवगाहनाके हैं। उससे नीचेकी दूसरी पंक्तिके दोनों कोठोंके ग्यारह स्थान अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाके हैं। उससे नीचेकी पंक्तिके दोनों कोठोंके ग्यारह स्थान अपर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाके हैं ॥९९॥

उससे आगे दसवें कोठेमें पर्याप्तक पाँच जीवसमासोंके जघन्य अवगाहनास्थान हैं। उससे आगे ग्यारहवें कोठेमें अपर्याप्तक पाँच जीवसमासोंके उत्कृष्ट अवगाहना स्थान हैं। उससे आगे बारहवें कोठेमें पर्याप्तक पाँच जीवसमासोंके उत्कृष्ट अवगाहनास्थान हैं।

१. म मेगणिदं ।

प्तद्वींद्रियजघन्यावगाहनस्थानपर्यंतमिप्पतो भत्तुं स्थानंगळोळसंख्यातगुणितक्रमावगाहनस्थानंगळप्पुवल्लिंदं मुंदे बादरपर्याप्त सकलेंद्रियपर्यंतमिई पदिमूरुं जीवसमासंगळोळसंख्यातगुणितक्रममेंबितु निश्चयिसल्पडुवुवु ॥

सुहुमेदरगुणगारा आवलिपल्ला असंखभागो दु ।
सट्ठाणे सेडिगया अहिया सत्थेक्कु पडिभागो ॥१०१॥

सूक्ष्मेतरगुणकारा आवलिपल्यासंख्यभागास्तु । स्वस्थाने श्रेणिगताः अधिकास्तत्रैकः प्रतिभागहारः ॥ इल्लि सूक्ष्मजीवंगळवगाहस्थानंगळावल्यसंख्येयभागगुणितंगळु । मत्तं बादर जीवंगळवगाहनस्थानंगळु पल्यासंख्यातभागगुणितंगळु स्वस्थानदोळप्पुवेंदितसंख्यातगुणकारविभागं काणल्पडुगु ॥

अनंतरं द्वितीय तृतीयपंक्तिगतंगळप्पवगाहनस्थानंगळधिक क्रमंगळप्पुवल्लि सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानादिगळुत्तरोत्तरंगळपूर्वपूर्वावगाहनस्थानंगळं नोडलावल्यसंख्यातैकभागखंडितैकभागमात्राधिकंगळप्पुवेंबुदर्त्थं । अधिकागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहार एंबी गणितो-

---

समासानां उत्कृष्टावगाहनस्थानानि भवन्ति । तत्र [illegible] एकात्रिंशदवगाहनानि असंख्यातगुणितक्रमाणि । तदग्रे बादरपर्याप्तसकलेन्द्रियपर्यन्तानि त्रयोदश तु संख्यातगुणितक्रमाणीति ज्ञातव्यानि ॥१००॥

अत्र सूक्ष्मजीवावगाहस्थानानि आवल्यसंख्येयभागगुणितानि । बादरजीवावगाहनस्थानानि पल्यासंख्यातभागगुणितानि च स्वस्थाने सन्तीत्यसंख्यातगुणाकारविभागो द्रष्टव्यः । अधस्तनद्वितीयतृतीयपङ्क्तिगतानि अवगाहनस्थानानि अधिकक्रमाणि स्युः । तत्र सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानादीनि उत्तरोत्तराणि पूर्वपूर्वावगाहनस्थानादावल्यसंख्यातैकभागखण्डितैकभागमात्राधिकानीत्यर्थः । अधिकागमननिमित्तं भागहारः

उनमें प्रथम कोठेके प्रथम स्थानसे लेकर दसवें कोठेके बादर पर्याप्तक दोइन्द्रियकी जघन्य अवगाहना पर्यन्त उनतीस अवगाहनाएँ क्रमसे असंख्यातगुणी-असंख्यातगुणी हैं। उससे आगे बादर पर्याप्तक पंचेन्द्रियकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त तेरह स्थान क्रमसे संख्यातगुणित-संख्यातगुणित जानना ॥१००॥

यहाँ ऊपर जो उनतीस स्थान असंख्यात गुणे कहे हैं, उनमें-से जो सूक्ष्म जीवोंके अवगाहना स्थान हैं, वे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित हैं। अर्थात् पहले स्थानको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर आगेका स्थान होता है। तथा जो बादर जीवोंके अवगाहना स्थान हैं, वे पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित हैं अर्थात् पूर्वस्थानको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर उससे आगेका स्थान होता है। इस तरह स्वस्थानमें गुणाकार है। उनमें इस प्रकार असंख्यातके गुणाकारका विभाग देखना चाहिए। नीचेकी दूसरी और तीसरी पंक्तिके अवगाहना स्थान उत्तरोत्तर अधिक-अधिक हैं। अर्थात् सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थानसे लेकर उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व अवगाहनाके स्थानसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अधिक है। अर्थात् पूर्व अवगाहना स्थानको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उसे पूर्वस्थानमें जोड़नेपर उत्तरस्थानका प्रमाण होता है। यहाँ अधिकका प्रमाण लानेके लिए भागहार और भागहारका भागहार आवलीका असंख्यातवाँ भाग है जो परमगुरुके उपदेशसे आया हुआ जानना।

८
क्तिप्पिदमावल्यसंख्येयभागमात्र अ मिदु परमगुरूपदेशगम्यं प्रतिभागहारं ज्ञातव्य मिल्लि पेळल्प-
ट्टवगाहनस्थानंगळ्गे गुणकारविधानमं पेळ्दपर्मतेनेंदोडे—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन जघन्याव-
गाहनस्थानमेकान्नविंशतिवारपल्यासंख्यातैकभागंगळिंदमुं ओंभत्तुवारावल्यसंख्यातभागंगळिंदमुं
द्वाविंशतिवाररूपाधिकावल्यसंख्यातभागंगळिंदमु मो भत्तुवारसंख्यातरूपंगळिंदं भागिसल्पट्ट
द्वाविंशतिवारावल्यसंख्यातभागंगळिंदं गुणिसल्पट्ट घनांगुलप्रमाणमाविभूतमागि स्थापिसि ५
६।८।२२ मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अ ८
प १९।८।९।८।२२।१।९ वी राशियं नोडे सूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिकजीवनजघन्यमवगाहनस्थान-
अ अ अ ६।८।२२।८।

मावल्यसंख्येय भागगुणित प।१९।८।९।८।२२।१।९ मिदनपवर्त्तसिदोडे गुणकारभूतावल्यसंख्यात १०
अ अ अ

६।८ २२
अ ८
भागहारभूतंगळागिर्द्वावल्यसंख्यात भागंगळोंभत्तरोळोंदं सरियेंदपवर्त्तसि प १९।८।८।२२।१।९
अ अ अ

वी राशियं नोडे सूक्ष्मापर्याप्ततेजस्कायिकन जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणित

प्रतिभागहारः स चावल्यसंख्येयभागः ८ परमगुरूपदेशागतो ज्ञातव्यः । अत्रोक्तावगाहनस्थानानां गुणकार-
अ
विधानमुच्यते तद्यथा—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनस्थानमेकान्नविंशतिवारपल्यासंख्येयभागनव- १५
वारावल्यसंख्येयभागद्वाविंशतिवाररूपाधिकावल्यसंख्येयभागनववारसंख्यातभक्तद्वाविंशतिवारावल्यसंख्येयभाग -
६।८।२२
अ ८
गुणितघनाङ्गुलप्रमाणमादिभूतं संस्थाप्य प। १९।८।९।८।२२।१।९ अतः सूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिक-
अ अ अ
६।८।२२।८
अ अ
जीवस्य जघन्यमवगाहनस्थानमावल्यसंख्येयभागगुणितं प। १९।८।९।८।२२।१।९ अस्य २०
अ अ अ
गुणाकारभूतावल्यसंख्यातेन भागहारभूतावल्यसंख्यातभागेषु नवस्वेकः सदृश इत्यपवर्तितः ।

विशेषार्थ—नीचे दिया यन्त्र उक्त कथनके अनुसार जीवोंकी अवगाहनाका है। ऊपरकी पंक्तिमें लिखे बयालीस स्थान गुणाकार रूप हैं। इनमें पहले और चौथे कोठेमें सूक्ष्म जीव हैं, वे पूर्वस्थानसे उत्तरस्थान आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित हैं। तथा दूसरे, तीसरे, सातवें कोठेमें बादर जीव हैं, वे दसवें कोठेके अप्रतिष्ठित प्रत्येक और बेन्द्री, ये २५
क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित हैं। दसवें कोठेके तेन्द्रीसे लेकर आगेके सब स्थान संख्यात गुणे हैं। नीचेकी दोनों पंक्तिके चार कोठोंके स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक हैं।

---

१. म °कपल्यसं.।

६।८।२२।८ ६।८।२२
अ अ अ
प।१९।८।८।२२।१।९ मिदनपर्याप्तसि प १९।८।७।८।२२।१।९ धी राशियं नोडे सूक्ष्मापर्याप्ता-

६।८।२२।

अ
प।१९।८।८।८।२२।१।९। अतः सूक्ष्मापर्याप्ततेजस्कायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभाग-

सूक्ष्म निगोद १ वा २ ते ३ अप्४, पृथ्वी ५ अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना	अपर्याप्त जघन्य अवगाहना बादर वात ६, तेज ७ अप्८, पृथ्वी ९, नि. १०, प्रति प्रत्येक ११	अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना अप्रति. प्रत्येक १२, बेन्द्री १३, तेन्द्री १४, चौन्द्री १५ पंचेन्द्रिय १६	पर्याप्तकी ज. अव. सू. निगो. १७, वात १८, तेज १९, अप् २०, पृथ्वी २१,	पर्याप्तकी जघ. अव. बादर वात २२, तेज २३ अप् २४, पृथ्वी २५, निगोद २६, प्रति. प्रत्येक २७	पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना अप्रतिष्ठि. प्रत्येक ५० बेन्द्री ५१ तेन्द्री ५२ चौइन्द्री ५३, पंचे ५४	अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगा. तेन्द्री ५५, चौइन्द्री ५६ बेन्द्री ५७, अप्रति. ५८ पंचेन्द्री ५९	पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना तेन्द्री ६०, चौइन्द्री ६१, बेन्द्री ६२, अप्र.प्रत्येक ६३, पंचेन्द्री ६४
१	२	३	४	७	१०	११	१२

			सू. नि.२८, वात २९, तेज ३०, अप् ३१, पृथ्वी ३२, अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना ५	अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना बादर वात ३३, तेज३४ अप् ३५, पृथ्वी ३६, निगोद ३७ प्रति. प्रत्येक ३८ ८			
			पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना सू. नि. ३९, वात ४० तेज ४१, अप् ४२ पृथ्वी ४३ ६	पर्याप्तकी उत्कृ. अव. बादर वात ४४, तेज४५, अप् ४६, पृथ्वी ४७ निगोद ४८ प्रति. प्रत्येक ४९ ९			

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्कायिकजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित प १९।८।६।८।२२।७।९ मिदं नोडे

सूक्ष्मापर्याप्तभूकायिकजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमनपवर्त्तितसि प १९।८।५।८।२२।७।९

बी राशियं नोडे सूक्ष्मात् सूक्ष्मस्य को गुणकार आवल्यसंख्येयभाग एंदितु स्वस्थानगुणकारंगळ्सूत्रो- ५
क्तक्रमदिदं नडेदु परस्थानमप्प बादरवातकायिकन अपर्याप्तजघन्यावगाहनं सूक्ष्माद्बादरस्य को गुणकारः पल्यासंख्यातभागः एंदितु कृतांतोपदिष्टवाक्यप्रमाणदिंदं पल्यासंख्यातभागदिंदं गुणिसि

यपवर्त्तितमिदु प १९।८।५।८।२२।७।९ मी राशियं नोडे बादरतेजस्कायिकापर्याप्तजघन्याव-

गाहं बादराद्बादरस्य को गुणकारः पल्यासंख्येयभागः एंदितु स्वस्थानदोळु सूत्रोक्तक्रमदिदं १०

६।८।२२।८ ६।८।२२।
गुणित-प।१९।८।८।८।२२।१।९ मिदमपवर्तितं प।१९।८।७।८।२२।१।९ अतः

६।८।२२
सूक्ष्मापर्याप्तकायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं।प।१९।८।६।८।२२।१।९।

अतः सूक्ष्मापर्याप्तभूकायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं १५

६।८।२२
प।१९।८।५।८।२२।१।९। अतः सूक्ष्मात्सूक्ष्मस्य गुणकारं स्वस्थानभूतमतीत्य परस्थानभूतबादरा-

अब उक्त अवगाहना स्थानोंके गुणकारका विधान कहते हैं, जो इस प्रकार है—

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकको जघन्य अवगाहनाका स्थान उन्नीस बार पल्यके असंख्यातवें भागसे, नौबार आवलीके असंख्यातवें भागसे, बाईस बार एक अधिक आवलीके २०
असंख्यातवें भागसे, और नौ बार संख्यातसे भाजित तथा बाईस बार आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित घनांगुल प्रमाण है। इस आदिभूत स्थानको स्थापित करके इससे सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक जीवका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। सो इसका गुणाकार आवलीका असंख्यातवाँ भाग और पहले जो आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार नौ बार कहा था, सो उसमें-से एक बार आवलीके असंख्यातवें भागको समान २५
होनेसे दोनोंका अपवर्तन करनेपर पहले जहाँ नौ बार कहा था, उसके स्थानमें एक कम करके आठ बार आवलीका असंख्यातवाँ भागका भागहार जानना। इसी तरह आगे भी

१. सिद्धान्तोपदिष्ट।

६।८।२२
अ
पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित प १९।८।५।८।२२।१।९ मिती क्रमदिदं स्वस्थान-
अ अ
दोळं परस्थानदोळं बादरवि बादरक्के पल्यासंख्येयभागगुणकारमक्कुमेंदु बादरपंचेंद्रियापर्याप्त-
यागीतरावगाहनानयने पल्यासंख्येयभागगुणितक्रमभागवृत्तिरलु बादरपंचेंद्रियापर्याप्तजघन्यावगाहं
६।८।२२
अ
गुणितापवर्त्तित— प ८।८।५।८।२२।१९ मिदं नोडे मुंवण सूक्ष्मनिगोदपर्य्याप्तक जघन्याव-
अ अ अ

६।८।२२
अ
५ पर्याप्तवातकायिकस्य जघन्यावगाहः पल्यासंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प। १८।८।५।८।२२।१।९
अ अ अ
अतो बादरतेजस्कायिकापर्याप्तजघन्यावगाहः पल्यासंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—
६।८।२२
अ
प। १७।८।५।८।२२।१।९। एवं पल्यासंख्येयभागगुणितक्रमेण अग्रे नवस्थानानि नीत्वा नवमो
अ अ अ
६।८।२२
अ
बादरपञ्चेन्द्रियापर्याप्तजघन्यावगाहोऽयं। प। ८।८।५।८।२२।१।९। अतः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजघ-
अ अ अ

गुणाकार और भागहारमें समानता देख दोनोंका अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्
१० कायिककी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे अपवर्तन करने पर आठबारकी जगह सात बार आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार होता है। इससे सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिकका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्म अपर्याप्त पृथिवीकायिकका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी
१५ पूर्ववत् अपवर्तन करना। इस तरह यहाँ आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार तो पाँच बार रहा;अन्य सब गुणाकार और भागहार जैसे पहले सूक्ष्मनिगोदियाकी अवगाहनामें बतलाये थे, वैसे ही रहे। यहाँ तक तो सूक्ष्मसे सूक्ष्मका गुणाकार हुआ,अतः इसे स्वस्थान गुणाकार कहते हैं। आगे सूक्ष्मसे बादरका गुणाकार कहते हैं सो परस्थान गुणाकार जानना।

इस सूक्ष्मसे सूक्ष्मका गुणाकाररूप स्वस्थानका उल्लंघन करके परस्थान भूत बादर
२० अपर्याप्त,वायुकायिककी जघन्य अवगाहना सूक्ष्म पृथिवीकायिककी जघन्य अवगाहनासे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित है। पहले उन्नीस बार पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार था,उसमें-से एक बार कम करना। इससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनाका स्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। यहाँ भी पूर्ववत् अपवर्तन करके एक कम करना। इसी तरह पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणितके क्रमसे आगेके नौ स्थानोंको ले जानेपर नवम
२५ स्थान बादर पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहनामें ग्यारह स्थानोंमें ग्यारह पल्यके

गाहं परस्थानक्के बादरात्सूक्ष्मस्य को गुणकार आवल्यसंख्येयभाग : एंदी राद्धांतोपविष्टवाक्योप-
६।८।२२
देशदिंदमादावल्यसंख्येयभागगुणित— प ८।८।४।८।२२।१।९ मिदं नोडे सूक्ष्मनिगोदा-
a a a
पर्याप्तोत्कृष्टावगाहं विशेषाधिकमक्कुं तद्विशेषप्रमाणमुं सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तजघन्यावगाहनमिदं
६।८।२२ मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज २२१
a a
प ८।८।४।८।२२।१।९ मावल्यसंख्यातभागदिंदं खंडिसिदेकभाग प ८।८।४।८।२२।१।९।८
a a a a a a a
६।८।२१
a
मिदु विशेष प्रमाणमिदरिंदमभ्यधिकमें बुदर्त्थमिदं कूडियपर्वात्तितमिदु प ८।८।४।८।२१।१।९ ५
a a a a
इदं नोडे सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहं विशेषाधिकमक्कुमा विशेषमुं पूर्व्वोक्तसूक्ष्मनिगोदा-

---

६।८।२२
a
स्यावगाहः परस्थानभूतावल्यसंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प।८।८।४।८।२२।१।९। अतः
a a a
सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तोत्कृष्टावगाहो विशेषाधिकः तद्विशेषप्रमाणं तु सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तजघन्यावगाहस्यावल्यसंख्येय-
६।८।२२।
a
भागमेकभागमात्रं प।८।८।४।८।२२।१।९।८ इदं प्रक्षिप्य राशिमपवर्तयेत्।
a a a a
६।८।२१।
a
प।८।८।४।८।२१।१।९ अतः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहो विशेषाधिकः। विशेषप्रमाणं तु १०
a a a

असंख्यातवें भागोंका अपवर्तन होनेसे आठ बार पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार रहता है। अन्य भागहार गुणाकार पूर्ववत् जानना। इससे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तकका जघन्य अवगाहना स्थान परस्थानरूप है सो आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा है। पहले आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार पाँच बार रहा था। उसमें-से एक बारका अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाह विशेष अधिक है। विशेषका प्रमाण सूक्ष्म- १५
निगोद पर्याप्तके जघन्य अवगाहस्थानको आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक भाग मात्र है। इसको उसी सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तके जघन्य अवगाहस्थानमें समच्छेद विधानके द्वारा मिलाकर राशिका अपवर्तन करनेपर सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना होती है। सो पूर्व राशिमें बाईस बार एक अधिक आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार है और बाईस बार ही आवलीके असंख्यातवें भागका गुणाकार है सो इनमें एक बारका २०
अपवर्तन करनेपर बाईस बारकी जगह गुणाकार भागहार इक्कीस बार ही रहे। इसी तरह आगे भी जहाँ विशेष अधिक हो, वहाँ अपवर्तन करके आवलीके असंख्यातवें भागके गुणाकार और एक अधिक आवलीके असंख्यातवें भागके भागहारको एक बार कम कर देना। आगे

६।८।२१।१
अ
पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनमनावल्यसंख्येय भागविदं खंडितैकभागमक्कु प ८।८।४।८।२१।१९८
अ अ अ अ

६।८।२०
अ
मिनितरिदमभ्यधिकमं बुदत्थं । इवं कूडियपवत्तितं प ८।८।३।८।१९।१९ इवं नोडे
पार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

६।८।२०
सूक्ष्मवायुकायिकपर्य्याप्तजघन्यावगाहमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्त्तित प ८।८।३।८२०।१९
अ अ अ

६।८।१९
मिवं नोडे सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकमा विशेषमुं मुंनिनंतेयावल्यसंख्येय-
६।८।१९
अ
५ भागमं तंदु कूडियपवर्त्तिसि बी राशियं प ८।८।३।८।१९।१९ नोडे तदधस्तन सूक्ष्मवायु-
अ अ अ

६।८।२१
अ
पूर्वोक्तसूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकोत्कृष्टावगाहस्यावल्यसंख्येयभागभक्तैकभागमात्रं प।८।८।४।८।२१।१९।८
अ अ अ अ

६।८।२०
अ
इमं मेलयित्वापवर्तितः प।८।८।४।८।२०।१।९ अतः सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तजघन्यावगाहः
अ अ अ

६।८।२०
अ
आवल्यसंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प।८।८।३।८।२०।१।९ अतः सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तो-
अ अ अ

त्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकं । विशेषोऽत्रावल्यसंख्येयभक्तपूर्वराशिमात्रः तं मेलयित्वा अपवर्तयेत्—
६।८।१९
अ
१० प।८।८।३।८।१९।१।९ अतस्तदधस्तनसूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकं
अ अ अ

सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनासे सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। यहाँ विशेषका प्रमाण पूर्वोक्त सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना के आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग मात्र है। इसको पूर्व अवगाहनामें जोड़ पूर्ववत् अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्तका जघन्य अवगाह आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा है। सो अपवर्तन करनेपर पहले चार बार आवलीके असंख्यातवें १५ भागका भाग था। सो तीन बार ही रहा। इससे सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाह विशेष अधिक है। विशेषका प्रमाण पूर्व राशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग मात्र है। उसे जोड़कर अपवर्तन करना। इससे नीचे सूक्ष्म वायुकायिक

कायिकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकमक्कुमा विशेषमं मुंनिनंते आवल्यसंख्येयभागमं तंदु

६।८।१८
अ

कूडिपवर्त्तितमिवं प।८।८।३।८।१८।१।९ नोडे सूक्ष्मतेजस्कायिकपर्य्याप्तजघन्यावगा-
अ अ

६।८।१८
अ

हनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्त्तितमिदी प अ।८।८।२।८।१८।१।९ प्रकारदिंदं पोगि
अ अ अ अ

६।८।१२
अ

सूक्ष्मभूमिकायिकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहं विशेषाधिकमागियपवर्त्तित प।अ।८।८।१२।१।९ मिवं
अ अ

नोडे बादरवायुकायिकपर्य्याप्तजघन्यावगाहं सूक्ष्मादबादरस्य को गुणकार : पल्यासंख्येयभाग : एंबी ५

६।८।१८
अ

आवल्यसंख्येयभागभक्तपूर्वराशिनाधिकमित्यर्थः। प।८।८।३।८।१८।१।९ अतः सूक्ष्मतेजस्कायिक-
अ अ अ

६।८।१८
अ

पर्याप्तजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं प।८।८।२।८।१८।१।९ एवं द्वे द्वे
अ अ अ

आवल्यसंख्येयभागभक्तस्वस्वपूर्वराश्यधिके एकैकं स्वस्वपूर्वराशितः आवल्यसंख्येयभागगुणितमित्यष्टावगाहनान्य-

---

पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। सो ही पूर्वराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भाग अधिक जानना। यहाँ भी अपवर्तन करना। इससे सूक्ष्म तेजस्- १०
कायिक पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ अपवर्तन करनेपर आवलीके असंख्यातवें भागका भागहार तीन बारकी जगह दो बार रहा। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक- १५
की जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इससे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इस तरह दो-दो तो आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित २०
पूर्वराशि प्रमाण विशेष अधिक हैं और एक-एक अपनी-अपनी पूर्वराशिसे आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा जानना। इस तरह आठ अवगाहनास्थानोंको उल्लंघ कर आठवाँ सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। सो पूर्वोक्त प्रकारसे अपवर्तन करनेसे बारह बार आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित तथा आठ बार

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

६।८।१२
सिद्धांतवाक्यप्रमाणमिदं पल्यासंख्यातभागगुणितसमयवर्त्तितमिदं प a ८।८।८ १२।१।९
a a

नोडे तदधस्तनबादरवातकायापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनमुं तदधस्तनबादरवायुकायिकपर्य्याप्तोत्कृष्टाव-
गाहनादिगळे विशेषाधिकक्रममप्पुपरितनपल्यासंख्यातभागगुणितक्रमक्रममिदं पोगि बादर प्रतिष्ठित
६
पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनमधिकमुं गुणितमुमेल्लमसमयवर्त्तितमि प।२।१।९ दी राशियं नोडे बादरा-
a

५ प्रतिष्ठितपर्य्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितसमयवर्त्तित ६ प १।१।९ मिदं नोडे
a

६।८।१२
तीत्य अष्टमं सूक्ष्मभूकायिकपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकमसमयवर्त्तितमिदं प a ८।८।१२।१।९
a

अतः बादरवायुकायिकपर्याप्तजघन्यावगाहनं परस्थानत्वात्पल्यासंख्येयभागगुणितसमयवर्त्तितं—
६।८।१२
a
प।७।८।१२।१।९ इतोऽग्रे द्वे द्वे प्राग्वत्प्रतिभागभक्तैकैकभागाधिके एकैकं पल्यासंख्यातगुणितमिति
a a

सप्तदशावगाहनान्यतीत्य सप्तदशं बादरपर्याप्तप्रतिष्ठितोत्कृष्टावगाहनमधिकमसमयवर्त्तितं ६ प।२।१।९ अतः
a

१० बादरप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितसमयवर्त्तितं ६ प।१।१।९ अतः बादरद्वीन्द्रिय-
a

पल्यके असंख्यातवें भागसे, बारह बार एक अधिक आवलीके असंख्यातवें भागसे और नौ बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण होती है। इससे बादर वायुकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना परस्थानरूप होनेसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित है। ऊपर पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार आठ बार था। उसमें-से एकका अपवर्तन करनेपर सात बार रहा। इससे आगे दो-दो स्थान तो विशेष अधिक और एक-एक स्थान पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित जानना। सो विशेषका प्रमाण अपनी-अपनी पूर्वराशिको आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण जानना। सो यहाँ अधिक होता है। अपवर्तन करनेपर बारह बार आवलीके असंख्यातवें भागका गुणाकार और बारह बार एक अधिक आवलीके असंख्यात भागका भागहार थे। सो इनमें-से एक-एक कम करना। तथा जहाँ पल्यके असंख्यातवें भागका गुणाकार हो, वहाँ अपवर्तन करनेपर सात बार पल्यके असंख्यातवें भागके भागहारमें-से एक बार कम करना चाहिए।

सो बादर वायुकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहनासे बादर वायुकायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर वायुकायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके

बादरद्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्यातैकभागगुणित ६ ९ मिदं नोडे त्रिचतुःपंचेंद्रिय-
६ । त्रि च । ६ पं ६
पर्य्याप्तजघन्यावगाहनंगळु प्रत्येकं पूर्व्वपूर्व्वमं नोडलु संख्यातगुणितंगळु १ । ८ । ७ । १ १६ मिदं
६
नोडे बादरत्रींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ । ५ मिदं नोडे बादर चतुरिंद्रियापर्य्याप्तो-
६ ६ ।
त्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ । ४ मिदं नोडे द्वींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ । ३
६
मिदं नोडलप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ २ मिदं नोडे सकलेंद्रियापर्य्याप्तो- ५
६ ६ । १
त्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ १ मिदं नोडे त्रींद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण १ १ मिदंनप
वर्तिसुत्तिरलु गुणकारबाहुल्यदिंद संख्यातघनांगुल प्रमाणमक्कु ६ । १ मिदं नोडे चतुरिंद्रिय-

---

पर्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्तितं ६ अतः त्रिचतुःपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजघन्यावगाहनानि प्रत्येकं
१ ९
पूर्वपूर्वतः संख्यातसंख्यातगुणितानि त्रि ६ । च ६ । पं ६ अतः बादरत्रीन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं
१ ८ १ ७ १ ६
संख्यातगुणं ६ अतः बादरचतुरिन्द्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं [illegible] १०
१ ५ १ ४
वगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः सकलेन्द्रिया-
१ ३ १ २
पर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः त्रीन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ १ इदमपवर्तितं
१ । १ १ । १
गुणकारबाहुल्यात्संख्यातघनाङ्गुलप्रमाणं भवति ६ १, अतश्चतुरिन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं

असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे १५
बादर अप्कायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर अप्कायिक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर अप्कायिक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर पृथ्वी अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर पृथ्वीकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। २०
उससे बादर निगोद पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे बादर निगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे बादर निगोद पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है। उससे प्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। उससे प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी २५
उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है। इस तरह सतरह अवगाहना स्थानोंको लाँघकर पूर्वोक्त प्रकारसे अपवर्तन करनेपर सतरहवाँ बादर पर्याप्त प्रत्येककी उत्कृष्ट

पर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण । "६ १ १ १" मिदं नोडे द्वींद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण । ६ । १ १ १ । मिदं नोडलप्रतिष्ठित - प्रत्येकपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुण ६ १ १ १ १ मिदं नोडल्सकलेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ १ १ १ १ १ । अनंतरं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनमिदं मुंदण सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनद गुणकारभूतावल्यसंख्येयभागदुत्पत्तिक्रममुमं तन्मध्यावगाहनविकल्पप्रकारंगळुमं पेळलेंदु मुंदण गाथानवकमं पेळ्दपरु ।—

अवरुवरि इगिपदेसे जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए ।
आदी णिरंतरमदो एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥१०२॥

अवरोपर्य्येकप्रदेशयुतेऽसंख्येयभागवृद्धेरादिर्निरंतरमत एकैकप्रदेशपरिवृद्धिः ॥

१० ६ १ १ अतः द्वीन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ । १ । १ । १ । अतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ । १ । १ । १ । १ । अतः सकलेन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं भवति ६ १ १ १ १ १, ॥१०१॥ अथ सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनतोऽग्रतनसूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्य गुणकारभूतावल्यसंख्येयभागस्योत्पत्तिक्रमं तन्मध्यावगाहविकल्पप्रकारांश्च गाथानवकेनाह— मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१५ अवगाहना दो बार पल्यके असंख्यातवें भागसे और नौ बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण होती है। उससे बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित है। यहाँ भी अपवर्तन करना। इससे बादर दोइन्द्रिय पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना पल्यके असंख्यातवें भाग गुणित है। यहाँ भी अपवर्तन करनेपर पल्यके असंख्यातवें भागका भागहार समाप्त होकर केवल नौ बार संख्यातसे भाजित घनांगुल
२० प्रमाण अवगाहना रहती है। आगे तेन्द्री, चौन्द्री, पंचेन्द्री पर्याप्तकी जघन्य अवगाहना प्रत्येक पूर्व-पूर्वसे संख्यातगुणित-संख्यातगुणित हैं। इससे तेन्द्री अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे चौन्द्री अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। इससे दोइन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। उससे अप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट
२५ अवगाहना संख्यातगुणी है। इस तरह एक-एक बार संख्यात गुणकारको नौ बार संख्यातके भागहारमें-से कम करनेपर पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना एक बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण होती है। इससे तेइन्द्रिय अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। सो अपवर्तन करनेपर यहाँ गुणकारके संख्यातका प्रमाण भागहारके संख्यातके प्रमाणसे बहुत है। अतः तेइन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण
३० होती है। उससे चौइन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे दोइन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। उससे पंचेन्द्रिय पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी है। इस तरह क्रमसे अवगाहनास्थान जानना ॥१०१॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे सूक्ष्मवायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तकी
३५ जघन्य अवगाहनाका गुणाकार आवलीका असंख्यातवाँ भाग कहा है। आगे उसकी उत्पत्तिका क्रम और उन दोनोंकी मध्य अवगाहनाके भेदोंके प्रकार नौ गाथाओंसे कहते हैं—

६।८।२२,—

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकनजघन्यावगाहनमनिदं प a । १९ । ८ । २२ । ३ । ९ लघुसंदृष्टि-निमित्तमागि । ज एंदितु स्थापिसि मत्तं द्वितीयावगाहनभेदनिमित्तमिदरोळु ओंदु प्रदेशमं प्रक्षेपिसुत्तिरलु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तन द्वितीयावगाहनविकल्पमक्कु । ज मितु प्रदेशोत्तरक्रमदिदं सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तकन जघन्यावगाहनं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन जघन्यावगाहमं नोडलावल्यसंख्येयभागगुणितमक्कुमेन्नेवरं नडेवबु । असंख्यातभागवृद्धियुं संख्यातभागवृद्धियुं संख्यातगुणवृद्धियुमसंख्यातगुणवृद्धियुमेंबितु चतुःस्थानगतवृद्धिगळ नडुवे नडुवेयवक्तव्य भागवृद्धिगळिदमुं वर्द्धमानावगाहनस्थानंगळ्पुट्टुव प्रकारमेतेंदोडे सर्वजघन्यावगाहनमिदु । ज । मत्तमो राशियनी राशियिंदमे भागिसि बंद लब्धमोंदु रूपूनवना जघन्यदोळ्कूडि स्थापिसिदडे द्वितीय विकल्पस्थानमसंख्यातभागवृद्धिगे मोदलक्कुं । ज । ज । मत्तमाजघन्यावगाहनमने तंनर्द्धदिदं २

६।८।२२

a

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनमिदं प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ३ । ९ लघुसंदृष्टया

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ज इति कृत्वा संस्थाप्य पुनर्द्वितीयावगाहनभेदनिमित्तमत्रैकप्रदेशे युते सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य द्वितीयावगाहनविकल्पो भवति । ज । एवं प्रदेशोत्तरक्रमेण तावदवगन्तव्यं यावत्सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तकजघन्यावगाहनं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनाद् आवल्यसंख्येयभागगुणितं भवति । तत्र असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः इति चतुःस्थानगतवृद्धिभिर्मध्ये मध्ये अवक्तव्यभागवृद्धिश्च । वर्धमानावगाहनस्थानानां उत्पत्तिप्रकारः कथ्यते—सर्वजघन्यावगाहनमिदं (ज) अस्मिन् अनेनैव

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना पहले कही है। लघुसंदृष्टिके लिए उसके स्थानमें 'ज' अक्षर स्थापित किया; क्योंकि यह सबसे जघन्य है। अवगाहनाका दूसरा भेद लानेके लिए इस जघन्य अवगाहनामें एक प्रदेश जोड़नेपर सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तका दूसरा भेद होता है। इस तरह क्रमसे एक-एक प्रदेश बढ़ाते हुए तबतक जाना चाहिए, जबतक सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना आवे। सो सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित होती है। उसमें असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि इन चतुःस्थानगतवृद्धिके मध्य-मध्यमें अवक्तव्यभागवृद्धियोंसे वर्धमान अवगाहन स्थानोंकी उत्पत्तिका प्रकार कहते हैं।

विशेषार्थ—सबसे जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र है। अतः उसके प्रदेश असंख्यात ही हैं, अनन्त नहीं हैं। इससे अनन्त भागवृद्धि यहाँ नहीं होती। तथा उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात घनांगुल मात्र है। उसके प्रदेश भी असंख्यात ही हैं, अनन्त नहीं हैं इसलिए जघन्यसे अनन्तगुणवृद्धि भी नहीं होती। अतः असंख्यातभागवृद्धि आदि चार ही वृद्धियाँ यहाँ कही हैं। जहाँ-जहाँ संख्यात और असंख्यातका भागहार या गुणाकार सम्भव नहीं है, ऐसे प्रदेशोंकी वृद्धिको अवक्तव्य वृद्धि कहा है। यह वृद्धि उक्त चतुःस्थान वृद्धिके बीच-बीचमें होती है। उसीका कथन करते हैं—

ज
भागिसि ज बंद लब्धमेरडु रूपुगळना जघन्यदोळ्कूडि स्थापिसुत्तिरलु तृतीयावगाहनविकल्पमक्कु
२

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१ २
ज ज ज मितो जघन्यावगाहनमं यथायोग्य संख्यातासंख्यातराशिगळिंदं भागिसि बंद लब्धांगळ्कूडुत्तं नाल्कुं मय्दुं मोदलागि संख्यातासंख्यातरूपुगळु जघन्यावगाहनदोळधिकमागुत्तं निरंतरमेकैकप्रदेशवृद्धियुक्तावगाहनस्थानंगळसंख्यातंगळनक्कु—

१ २ ३ ४ ५ १ १ ०
ज ज ज ज ज ज। ० ० ० ज। ज ० ० ० ज

अवरोगाहणमाणे जहण्णपरिमिद-असंखरासिहिदे ।
अवरस्सुवरिं उड्ढे जेट्ठमसंखेज्जभागस्स । १०३॥

जघन्यावगाहनमाने जघन्यपरिमिताऽसंख्यराशि हृते । अवरस्योपरि वृद्धे ज्येष्ठमसंख्येय भागस्य ॥

ओंदेडेयोळजघन्यावगाहनदोळ्कुं जघन्यावगाहनमं जघन्यपरिमितासंख्यातराशियिंदं भागिसि
ज
१६ बंद लब्धमनपवर्तितमं कूडुत्तिरलु राशिय संख्यातभागवृद्धिय अवगाहनस्थानंगळावसानस्थान-

---

भक्ते लब्धमेकरूपं । तज्जघन्यस्य उपरि युते द्वितीयविकल्पस्थानं असंख्यातभागवृद्धेरादिर्भवति । ज । ज । पुनस्तज्जघन्यावगाहने एव तदर्धेन ज भक्ते लब्धं रूपद्वयं तज्जघन्यस्य उपरि युते तृतीयोऽवगाहनविकल्पः
२

स्यात् । ज । ज । ज । एवमेव जघन्यावगाहनं यथायोग्यासंख्यातैर्भक्त्वा लब्धेषु त्रिचतुःपञ्चप्रभृति संख्यातासंख्यातरूपेषु जघन्यावगाहनयुतेषु निरन्तरमेकैकप्रदेशप्रवृद्धियुक्तावगाहनस्थानान्यसंख्यातान्यतीत्य—

१ १ ०
ज । ज । ज । ज । ज । ज । ० ० ० ज । ज । ० ० ० ज ॥१०२॥

एकत्र जघन्यावगाहने जघन्यपरिमितासंख्यातराशिना भक्ते ज लब्धं अपवर्त्य युते सति ज समच्छेदेन
१६ १६

सबसे जघन्य अवगाहनाको इस जघन्य अवगाहना प्रमाण असंख्यातका भाग देनेपर लब्ध एक आया। उसे जघन्य अवगाहनामें जोड़नेपर दूसरा अवगाहना भेद होता है। यह असंख्यातभागवृद्धिका आदि स्थान है। पुनः उस जघन्य अवगाहनामें उस जघन्य अवगाहनासे आधे प्रमाणवाले असंख्यातसे भाग देनेपर लब्ध दो आया। उसे जघन्य अवगाहनामें जोड़नेपर तीसरा भेद होता है। यह असंख्यातभागवृद्धिका दूसरा स्थान है। इसी प्रकार क्रमसे जघन्य अवगाहनाको यथायोग्य असंख्यातसे भाग देकर लब्धरूपसे प्राप्त तीन, चार, पाँच आदि संख्यात-असंख्यातरूपोंको जघन्य अवगाहनमें जोड़नेपर निरन्तर एक-एक प्रदेशवृद्धिसे युक्त असंख्यात अवगाहन स्थान होते हैं ॥१०२॥

आगे जघन्य अवगाहनामें जघन्यपरीतासंख्यात राशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे जघन्य अवगाहनामें जोड़नेपर असंख्यात भागवृद्धिरूप अवगाहना स्थानोंका

२ २ ३ ४ ५ १ १ ०
मक्कु ज । ज । ज । ज । ज । ज । ००० । ज । ज ००० ज ।—

ज ज ज ज
ज ००० । ज १६ १६ मीयसंख्यातभागवृद्धिस्थानं गळेनिताकुवेंदोडे आदि ज अंते १६
ज

ज ज ज
सुद्धे १६ वड्ढिहिदे १६ । १ रूपसंजुदे ठाणा १६ । १ एंबिनितु स्थानविकल्पंगळप्पुवु ।

तस्सुवरि इगिपदेसे जुदे अवत्तव्वभागपारंभो ।
वरसंखमवहिदवरे रूऊणे अवर उवरि जुदे ॥१०४॥ ५

आलोक तस्योपरि एकप्रदेशे युते अवक्तव्यभागप्रारंभः । वरसंख्यापहृतावरे रूपोनेवरोपरि युते ॥
मुन्निन असंख्यातभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानदोळोंदु प्रदेशमुं कूडुत्तिरलुमवक्तव्यभाग-

१
वृद्धिप्रारंभावगाहनस्थानमक्कु ज मिल्लिवं मुंदे प्रदेशोत्तरवृद्धिविधमवक्तव्यभागवृद्धिस्थानंगळनडे-
१६
ज

ज १६ अस्य जघन्यस्योपरि युते सति ज अपवर्त्य ज स राशिः असंख्यातभागवृद्धयवगाहनस्थानानां
१६ १६ १६
ज

१ १
अवसानस्थानं स्यात् एतानि । ज । ज । ज । ज । ज । ज । ००० ज ज । ००० ज असंख्यातभाग- १०
१६
ज

वृद्धिस्थानानि । तु आदौ ज, अन्ते ज शुद्धे ज वड्ढिहिदे ज रूवसंजुदे ज ठाणेत्येतावंति भवन्ति ॥१०३॥
१६ १६ । १ १६ । १
ज

प्राक्तनासंख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने तु एकप्रदेशे युते सति अवक्तव्यभागवृद्धिप्रारम्भाव-

गाहनस्थानं स्यात् ज तदग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमेण अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानान्यसंख्यातान्यतीत्य एकत्र स्थाने
१६
ज

अन्तिम स्थान होता है। इन सब असंख्यात भागवृद्धिके स्थानोंकी संख्या 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा', इस करण सूत्रके अनुसार असंख्यात भागवृद्धिरूप अवगाहनाके आदिस्थानके प्रदेशोंके परिमाणको अन्तिम स्थानके प्रदेश परिमाणमें-से घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जितने ही रहे, उनमें एक जोड़नेपर जितनी संख्या होती है, उतने ही असंख्यात भागवृद्धिके स्थान जानना ॥१०३॥ १५

पूर्वोक्त असंख्यात भागवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक प्रदेश जोड़नेपर अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रारम्भरूप अवगाहना स्थान होता है। उससे आगे क्रमसे एक-एक २०

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बो॑डेयोळोम्मेयुत्कृष्ट संख्यातभक्तजघन्यावगाहनदोळो॑दु प्रदेशमं कुंविसि १५ बुदं जघन्याव-
गाहनदोळ् कूडुत्तिरलु १५

तव्वड्ढीए चरिमो तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा ।
संखेज्जभाग उड्ढी उवरिमदो रूवपरिवड्ढो ॥१०५॥

तद्वृद्धेश्चरमस्तस्योपरि रूपसंयुते प्रथमं । संख्यात भागवृद्धेरुपर्यंतो रूपपरिवृद्धिः ॥

सर्वोत्कृष्टसंख्यभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानमक्कु ज १६ ज १६ ज १५ मी अवक्तव्यभाग-

वृद्धिस्थानविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे आदी ज १६ अंते ज १५ सुद्धे ज १६ वड्ढिहिदे ज १६।१५।१ रूवसंजुदे

एकवारमुत्कृष्टसंख्यातभक्तजघन्यावगाहने एकप्रदेशोने ज १५ तज्जघन्यावगाहनस्योपरि युते सति ज १५ ॥१०४॥

तदवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् ज १६ ज १६ ००० ज १५ एते च अवक्तव्यभाग-

वृद्धिस्थानविकल्पाः कति ? इति चेत् आदी ज १६ अन्ते ज १५ सुद्धे ज १६।१५ वड्ढिहिदे ज १६।१५।१

प्रदेश बढ़नेपर अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थानोंको लाँघनेपर जघन्य अवगाहनामें एक बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उसमें-से एक घटाकर उसे जघन्य अवगाहना जोड़नेपर ॥१०४॥

उस अवक्तव्य भागवृद्धिका अन्तिम अवगाहन स्थान होता है। ये अवक्तव्य भाग-वृद्धिके स्थानोंके भेद कितने हैं? यह जाननेके लिए पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार अवक्तव्य भागवृद्धिके आदिस्थानके प्रदेशप्रमाणको उसके अन्तिम स्थानके प्रदेशप्रमाणमें-से घटाकर शेषमें एकका भाग देकर और एक जोड़नेपर जो संख्या हो, उतने ही अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थान हैं। अब अवक्तव्य वृद्धिकी उत्पत्ति अंकसंदृष्टिके द्वारा स्पष्ट करते हैं—

जघन्य अवगाहना अड़तालीस सौ ४८००। इसके भागहारभूत परीतासंख्यातका प्रमाण सोलह १६। इससे जघन्य अवगाहनामें भाग देनेपर लब्ध तीन सौ ३००। इतनी

ज
ठाणा १६।१५ 'एंदितवक्तव्य भागवृद्धिस्थानविकल्पंगळप्पुविन्नाऽवक्तव्य भागवृद्धिगळुत्पत्तिय-नंकसंदृष्टियिंवं विशदं माळ्पेमवे तंदोडे—

जघन्यावगाहनक्कंकसंदृष्टि ४८०० इवक्के भागहारभूतपरिमितासंख्या जघन्यक्कंकसंदृष्टि १६ इवरिंवं जघन्यावगाहनमं भागिसि बंदलब्धमसंख्यातभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानमक्कुं ३०० मत्तमा जघन्यावगाहनमनुत्कृष्टसंख्यातदिंदं भागिसि बंद लब्धं संख्यातभागवृद्धिय प्रथमाव- ५
गाहनस्थानमक्कु ३२० ॥ मी येरडरंतराळदोळु ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ । मी एकोनविंशतिस्थानविकल्पंगळाएरडु भागहारंगळिंवं १६।१५ । भागिसि पुट्टिदुदळेकेंदोडे मूनूरं मूनूरिप्पत्तुं तल्लब्धंगळं नोडलधिकमुं हीनमुमप्पुदरिंवं । अंतादोडेंतप्प भागहारंगळिंवं भागिसि बंद लब्धंगळेंदोडे अन्यभिन्नभागहारंगळिंवं भागिसि बंद लब्धंगळिंदरिवुदा भागहारंगळे तप्पुवेंदोडे १०

रूवसंजुदे ज ठाणेत्येतावन्तो भवन्ति । इदानीमवक्तव्यवृद्धीनां उत्पत्तिं अङ्कसंदृष्ट्या विशदयति तद्यथा-
१६।१५
जघन्यावगाहनं ४८०० अस्य भागहारभूतपरिमितासंख्यातः १६ अनेन जघन्यावगाहने भक्ते लब्धमसंख्यात-भागवृद्धेश्चरमावगाहनं स्यात् ३०० । पुनस्तज्जघन्यावगाहने उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते लब्धं संख्यातभागवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् । ३२० । एतद्द्वयान्तराले ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ । एते एकान्नविंशतिस्थानविकल्पा एतद्भागहारद्वया १६ । १५ । न्यतरभक्तलब्धा न भवन्ति । कुतः ? त्रिंशतत्रिंश-त्यग्रत्रिशततल्लब्धाभ्यां तेषामधिकहीनत्वात् । तर्हि कीदृशभागहारभक्तलब्धाः ? इति चेत् उच्यते—एतज्जघन्ये

जघन्य अवगाहनामें बढ़नेपर असंख्यात भागवृद्धिकी अन्तिम अवगाहना होती है। पुनः उस जघन्य अवगाहनामें उत्कृष्ट संख्यात १५ से भाग देनेपर तीन सौ बीस ३२० प्राप्त हुए। इतनी वृद्धि होनेपर संख्यात भागवृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान ५१२० होता है। इन दोनों तीन सौ और तीन सौ बीसके मध्यके ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ ये उन्नीस स्थानभेद १६ और १५ इन दोनों भागहारोंमें-से किसीसे भी जघन्य अवगाहनामें भाग देनेसे प्राप्त नहीं होते। क्योंकि ४८०० में १६ का भाग देनेपर ३०० और १५ से भाग देनेपर ३२० प्राप्त होते हैं। किन्तु उक्त उन्नीस स्थान या तो तीन सौ-से अधिक हैं या तीन सौ बीससे कम हैं। इसीलिए इन्हें अवक्तव्य भागवृद्धिरूप स्थान कहा गया है। ये स्थान किस प्रकारके भागहारसे भाग देनेपर प्राप्त होते हैं, यह बतलाते हैं—

जघन्य अवगाहनाके प्रमाण ४८०० में इस भागहार ३०१ से भाग देनेपर $\frac{४८००}{३०१}$ 'हारस्य हारो गुणकोंशराशेः' भागहारका भागहार भाज्य राशिका गुणाकार होता है, इस भिन्न गणितके आश्रयसे अड़तालीस सौ को तीन सौ एकसे गुणा करके उसमें अड़तालीस सौ-से भाग देनेपर तीन सौ एक ही आता है, सो वह अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रथम अवगा-

---

१. म एंदितनि° । २. म °गलेंवरिवुदु° ।

ई जघन्यराशिय ४८०० नी भागहारदिंद ४८०० भागिसि बंद लब्धं ४८०० हारस्य हारो गुण-
३०१ ४८००
३०१

कोशरा[illegible] एवं [illegible] अवक्तव्यभागवृद्धिय प्रथमावगाहनविकल्प ३०१ मत्स्य-संदृष्टियोळमिते योजिसिकोळ्तुटक्कु मी प्रकारदिंद चरमावक्तव्यभागवृद्धिस्थानावसानं स्थानंगळुमं तंदुकोळ्वुदु ।

मत्तमा अवक्तव्यभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानवोळो[1]दु रूपं निक्षेपिसुत्तिरल्संख्यात-
१५
भागवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कुं ज मेले ओंदुत्तलेकैकप्रदेशपरिवृद्धिक्रमदिंदमवगाहन-
ज
स्थानंगळासंख्यातंगळ्नडवु[2]।

अवरद्धे अवरुवरिं उड्ढे तव्वड्ढि परिसमत्ती हु ।
रूवे तदुवरि उड्ढे होदि अवत्तव्वपढमपदं ॥१०५॥

अवराद्धं अवरोपरि वृद्धे तद्वृद्धिपरिसमाप्तिः खलु । रूपे तदुपरि वृद्धे भवत्यवक्तव्यप्रथम-
पदं ॥ जघन्यावगाहनार्द्धं ज जघन्यावगाहनद मेले पेच्चुत्तिरलु संख्यातभागवृद्धिचरमाव-
२
गाहनस्थानमक्कु ज ०००० ज मी संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळोळितक्कुमे वडे आदी ज अंते ज सुद्धे
१५ २ १५ २
ज ज ज ज

४८०० अनेन भागहारेण ४८०० भक्ते सति लब्धं ४८०० हारस्य हारो गुणकोशराशेरितिभिन्नगणिताश्रयेण
३०१ ४८००
३०१

तदवक्तव्यभागवृद्धेः प्रथमावगाहनविकल्पः ३०१ स्यात् अर्थसंदृष्टावप्येवमेव योजयितव्यं । अनेन क्रमेण चरमा-
वक्तव्यभागवृद्धिस्थानावसानस्थानान्यानेतव्यानि । पुनस्तदवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने एकरूपे युते सति
संख्यातभागवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात् । ज । तद्यथा एकैकप्रदेशपरिवृद्धिक्रमेणावगाहनस्थानान्यसंख्या-
१५
ज
तानि गच्छन्ति ॥१०५॥

जघन्यावगाहनार्धं ज जघन्यावगाहनस्योपरि वृद्धे सति संख्यातभागवृद्धिचरमावगाहनस्थानं स्यात्
२

ज ० ० ० ज एतानि संख्यातभागवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् आदी ज अन्ते ज सुद्धे ज १५—२
१५ २ १५ २ २ १५.
ज ज ज ज

हना विकल्प होता है । अर्थ संदृष्टिमें भी इसी प्रकार लगाना चाहिए । इसी क्रमसे अन्तिम अवक्तव्य भागवृद्धिके अन्तिम स्थान पर्यन्त लाना चाहिए । पुनः उस अवक्तव्य भागवृद्धिके अन्तिम अवगाहनास्थानमें एक जोड़नेपर संख्यात भागवृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान होता है। उससे आगे एक-एक प्रदेशवृद्धिके क्रमसे असंख्यात अवगाहना स्थान प्राप्त होते हैं ॥१०५॥

जघन्य अवगाहनाका आधा जघन्य अवगाहनाके ऊपर बढ़ानेपर संख्यात भाग-वृद्धिका अन्तिम अवगाहना स्थान होता है । ये संख्यात भागवृद्धिके स्थान कितने हैं ? यह

१. म कोंडु । २. म °तस्थानंगलु° ।

ज १५ । २ वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ज १५ २ एंदितु तंद लब्ध प्रमाणंगळप्पुवु । मत्तमा
२ १५ २।१५।१
संख्यातभागवृद्धिय चरमावगाहनस्थानदोळोंदु रूपं पेर्च्चिसुत्तिरलवक्तव्यभागवृद्धिय प्रथमावगाहन-
स्थानं पुट्टदुदु ज मल्लिदं मुंदे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमदिंद अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानंगळसंख्यातंगळन-
२
डवोम्में । ज

रूऊणवरे अवरस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं ।
तम्हि पदेसे उड्ढे पढमा संखेज्जगुणवड्ढी ॥१०७॥

रूपोनावरेऽवरस्योपरि संवर्द्धिते तदुत्कृष्टं । तस्मिन् प्रदेशे वृद्धे प्रथमा संख्यातगुणवृद्धिः ॥

रूपोनजघन्यावगाहनमिदु ज जघन्यावगाहनद मेले मेले संवर्द्धिसल्पडुत्तिरलुमवक्तव्य
भागवृद्धिय चरमोत्कृष्टावगाहनस्थानमक्कुं ज मिल्लियवक्तव्यभागवृद्धिस्थानंगळेनितप्पुवेंदोडे
ज
आदि अंते इत्यादि सूत्रोक्तक्रमदिंद तंद लब्धमिनितप्पुदु ज मत्तमा चरमावक्तव्य भागवृद्धिस्थान-
२

वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणेत्येतावन्ति स्युः ज १५—२ । संख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने एकरूपे युते
२।१५।१
सत्यवक्तव्यभागवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानमुत्पद्यते ज एतदग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमेण अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानान्य-
२
संख्यातान्यतीत्यैकत्र ॥१०६॥ ज

रूपोनजघन्यावगाहने ज जघन्यावगाहनस्योपरि वर्धिते सति अवक्तव्यभागवृद्धेः चरममुत्कृष्टावगाहन-
स्थानं स्यात् ज । अथावक्तव्यभागवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् आदौ, अन्ते, सुद्धे इत्यादिना लब्धानि
ज

जाननेके लिए पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार संख्यात भागवृद्धिके आदि स्थानके प्रदेश प्रमाणको अन्तिम स्थानके प्रदेश परिमाणमें घटाकर एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतने ही संख्यात भागवृद्धिके स्थान हैं । संख्यात भागवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक प्रदेश जोड़नेपर अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान उत्पन्न होता है । उसके आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धिके क्रमसे अवक्तव्य भागवृद्धिके असंख्यात स्थानको उलंघ कर ॥१०६॥

एक कम जघन्य अवगाहनाको जघन्य अवगाहनाके ऊपर बढ़ानेपर अवक्तव्य भागवृद्धिका अन्तिम उत्कृष्ट अवगाहनस्थान होता है । यहाँ अवक्तव्यभागवृद्धिके कितने सब स्थान हुए, यह जाननेके लिए पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार आदि स्थानको अन्तिम स्थानमें

बोळो दु प्रदेशमं कूडुत्तिरलु संख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानमक्कु ज २ मतः परमेकैकप्रदेश-
वृद्धिक्रमदिदं संख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळसंख्यातावगाहनविकल्पंगळनडेदो डेयोळु ।—

अवरे वरसंखगुणे तच्चरिमो तम्हि रूवसंजुत्ते ।
आगाहणम्हि पढमा हवदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥१०८॥

अवरे वरसंख्यातगुणे तच्चरमं तस्मिन् रूपसंयुक्ते । अवगाहने प्रथमं भवत्यवक्तव्यगुणवृद्धिः ॥

जघन्यावगाहनमनुत्कृष्टसंख्यातदिंद गुणियिसुत्तिरल्लत्संख्यातगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थान-
मक्कु ज १५ मी संख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळेनितक्कुमेंदोडे मुन्निनंते आदो अंते सुद्धे इत्यादि
१
सूत्रोक्तक्रमदिंदं लब्धमितप्पुवु ज १५ २ मुंदेयुमा संख्यातगुणवृद्धि चरमावगाहनदोळो दु रूपं
१

कूडुत्तिरलवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कु ज १५ मिल्लिदं मुंदेयुमेकैकप्रदेशोत्तरवृद्धि-
क्रमदिंदमवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानंगळसंख्यातंगळनडेदो डेयोळु ।—

एतावन्ति स्युः ज । पुनः तच्चरमावक्तव्यभागवृद्धिस्थाने एकप्रदेशे युते सति संख्यातगुणवृद्धेः प्रथमाव-
२
गाहनस्थानं स्यात् ज तदग्रे एकैकप्रदेशवृद्धया संख्यातगुणवृद्धेरसंख्यातावगाहनस्थानानि नीत्वा एकत्र
२
स्थाने ॥१०७॥

जघन्यावगाहने उत्कृष्टसंख्यातेन गुणिते संख्यातगुणवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् ज १५ । एतानि
संख्यातगुणवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् प्राग्वत् आदौ अन्ते सुद्धेत्यादिना लब्धानि एतावन्ति स्युः ।
ज १५—२ । अग्रे संख्यातगुणवृद्धिचरमावगाहने एकरूपयुते सति अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात्
ज १५ । इतोऽग्रे एकैकप्रदेशवृद्ध्या अवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानानि असंख्यातानि नीत्वा एकत्र ॥१०८॥

घटाकर शेषको एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतने ही अवक्तव्यभागवृद्धिके स्थान होते हैं। उस अवक्तव्यभाग वृद्धिके अन्तिम स्थानमें एक प्रदेश जोड़नेपर संख्यातगुण-
वृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान होता है। उसके आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धि होते संख्यात-
गुण वृद्धिके असंख्यात अवगाहन स्थानोंके जानेपर ॥१०७॥

जघन्य अवगाहनामें उत्कृष्ट संख्यातसे गुणा करनेपर संख्यातगुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहन स्थान होता है। ये संख्यातगुणवृद्धिके स्थान कितने हैं, यह जाननेके लिए पूर्वमें कहे करणसूत्रके अनुसार आदि स्थानको अन्तिम स्थानमेंसे घटाकर उसमें एकसे भाग देकर
तथा एक जोड़कर जितना हो, उतने हैं। आगे संख्यातगुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक जोड़नेपर अवक्तव्यगुणवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान होता है। इससे आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धि करते हुए अवक्तव्यगुणवृद्धिके असंख्यात स्थान बिताकर ॥१०८॥

---

१. म °लेतक्कु ।

अवरपरित्तासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे ।
तच्चरिमो रूवजुदे तम्मि असंखेज्जगुणपढमं ॥१०९॥

अवरपरीतासंख्येनावरं संगुण्य रूपपरिहीणे । तच्चरमं रूपयुते तस्मिन्नसंख्येयगुणप्रथमं ॥

जघन्यपरिमितासंख्यातविदं जघन्यावगाहनराशियं गुणिसिदो राशि रूपपरिहीनभागलु

तदवक्तव्यगुणवृद्धिय चरमावगाहनस्थानमक्कु ज १६ मीयवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानावगाहनंगळोळ्नि- ५
तक्कुमेंदोडे मुन्निनंते आदी अंते इत्यादि सूत्रोक्तक्रमदिंद तदावगाहनविकल्पंगळिनिसप्पुवु ।

ज इल्लियवक्तव्यगुणवृद्धियनंकसंदृष्टियिंदं तोरिदपेमवे तेंदोडे—जघन्यावगाहनक्के संदृष्टि १६ इदं रूपोनपरिमितासंख्यातविदं ३ गुणिसिदोडे ४८ इदरोळोंदु रूपं कूडिदोडेयवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथम-
स्थानमक्कु ४९ । मिदं जघन्यावगाहनदिंदं भागिसलु लब्ध ४९ मिदवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमस्थानगुण
१६
कारमक्कुमिदरिंदं जघन्यावगाहनमं गुणिसलु १६ । ४९ इदवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमावगाहनस्थानमक्कु १०
१६

मपवर्तिसिदोडिदु ४९ । अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिय प्रथमस्थानमं १६ ४ जघन्यावगाहदिंदं भागिसि

जघन्यपरिमितासंख्यातेन जघन्यावगाहनं गुणयित्वा रूपे परिहीने तदवक्तव्यगुणवृद्धेश्चरमावगाहन-

स्थानं स्यात् ज १६ एतानि अवक्तव्यगुणवृद्धयवगाहस्थानानि कति ? इति चेत् प्राग्वत् आदि-अन्तेत्यादिना

गतावगाहनस्थानानि एतावन्ति स्युः ज । अत्र अवक्तव्यगुणवृद्धिरङ्कसंदृष्टया प्रदर्श्यते तद्यथा—जघन्यावगाहन-
मिदं १६ रूपोनपरिमितासंख्यातेन ३ गुणयित्वा ४८ रूपे युते सति अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानं स्यात् १५
४९ । एतस्मिन् जघन्यावगाहनेन भक्ते लब्धं ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानेगुणकारः स्यात् । अनेन
१६
जघन्यावगाहनं गुणयित्वा ४९ । १६ अपवर्तिते अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् ४९ । अथवा
१६

जघन्य परीतासंख्यातसे जघन्य अवगाहनाको गुणा करके उसमें-से एक घटानेपर अवक्तव्यगुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहनस्थान होता है। ये अवक्तव्यगुणवृद्धिके अवगाह-स्थान कितने हैं? यह जाननेके लिए पहलेकी तरह आदि स्थानको अन्तिम स्थानमें-से घटाकर उसमें एकका भाग दें, एक जोड़नेपर जितना हो, उतने हैं। यहाँ अवक्तव्य गुणवृद्धि अंकसंदृष्टिके द्वारा दिखलाते हैं। जैसे, जघन्य अवगाहनाका प्रमाण १६, इसको एक कम परीतासंख्यात ३ से गुणा करके १६ × ३ = ४८ इसमें एक जोड़नेपर अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम स्थान ४९ होता है। इसमें जघन्य अवगाहनासे भाग देनेपर $\frac{४९}{१६}$ अवक्तव्य गुणवृद्धि का प्रथम स्थान लानेके लिए गुणाकार होता है। इससे जघन्य अवगाहनाको गुणा करके २५
$\frac{४९}{१६}$ × १६ अपवर्तन करनेपर अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम अवगाहनस्थान ४९ होता है।

१. ब °नानयने गु° ।

१६ ४ बंद लब्धमिदु ३।१ इवरिंदं जघन्यावगाहनमं गुणियिसि १६।३।१ इवनपवर्तिसि
१६ १६ १६
कूडिदोडे ४९ इदवक्तव्यगुणवृद्धिप्रथमावगाहनमक्कु मितुत्तरोत्तरतद्विकल्पंगळोळं गुणाकारक्रम-
मरियल्पडुगुमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानमुं मत्ते जघन्यावगाहनमं १६ जघन्यपरिमिता-
संख्यातदिंदं ४ गुणिसि बंद लब्धं रूपोनमादोडे चरमावक्तव्यगुणवृद्धिस्थानमक्कु ६३ मिदं
५ जघन्यावगाहनदिंदं भागिसि ६३ बंद लब्ध मात्रवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानक्के गुणा-
१६
कारमक्कुमिदरिंदं जघन्यावगाहनमं गुणिसलवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानवुत्पत्तिकाणल्पडुगुं
१६।६३ अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धि चरमावगाहनमं ६३ जघन्यावगाहनदिंदं १६ भागिसि बंद लब्ध
१६
६३ मिदरिंद जघन्यावगाहनमं गुणिसि बंद लब्धमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानमक्कु।
१६

---

१ १ १ ७
अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानं १६, ४ जघन्यावगाहनेन भक्त्वा १६।४। लब्धमिदं ३,१। अनेन
१६ १६
१० जघन्यावगाहनं गुणयित्वा १६ ३ १ युते ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात्। एवमुत्तरोत्तर-
विकल्पेष्वपि गुणकारक्रमो ज्ञातव्यः। अवक्तव्यगुणवृद्धेः चरमावगाहनस्थानं तु जघन्यावगाहनं १६ जघन्य-
परिमितासंख्यातेन गुणयित्वा लब्धे रूपोने सति स्यात् ६३। इदं च जघन्यावगाहनेन भक्त्वा ६३ लब्धं
१६
अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानानयने गुणकारः स्यात्। अनेन जघन्यावगाहने गुणिते अवक्तव्यगुणवृद्धि-
चरमावगाहनस्थानमित्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या १६।६३। अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनं ६३ जघन्यावगाहनेन
१६
१५ १६ भक्त्वा लब्धेन ६३ जघन्यावगाहनं गुणिते लब्धमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानं भवति ६३ तत्सर्वा-
१६

अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिका प्रथम स्थान एक अधिक तिगुणा सोलह, उसमें जघन्य अवगाहना १६ से भाग देकर पाया एक सोलहवाँ भाग अधिक तीन। इसको जघन्य अवगाहनसे गुणा करके $\frac{1}{16} \times 3$ उसमें एक जोड़नेपर ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धिका प्रथम अवगाहनस्थान होता है। इसी प्रकार आगे-आगेके स्थानोंमें भी गुणाकारका क्रम जानना
२० चाहिए। अवक्तव्यगुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहनस्थान तो जघन्य अवगाहना १६ को जघन्यपरीतासंख्यात चारसे गुणा करके लब्धमें-से एक कम करनेपर ६३ होता है। इसको जघन्य अवगाहनासे भाग देनेपर $\frac{1}{16}$ जो लब्ध आता है, वह अवक्तव्य गुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहनस्थानके लानेमें गुणाकार होता है। इससे जघन्य अवगाहनाको गुणा करनेपर अवक्तव्य गुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहनस्थानकी उत्पत्ति होती है। $\frac{16 \times 63}{16}$। अथवा
२५ अवक्तव्य गुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहन ६३ को, जघन्य अवगाहन सोलहसे भाग देकर लब्ध

६३। मितु सव्वंवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानंगळ न्यासमिदु । :—४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ ॥ ई क्रमंविदमर्थसंदृष्टियोळु तत्स्थानोत्पत्तिक्रममरियल्पडुवु विल्लियावीयंते सुद्धे इत्यादियिनवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानंगळंकसंदृष्टियोळमिनितप्पुवु । १५ ।

इल्लु मुंपेळ्दवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानदोळ [illegible] मसंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानमक्कु । १६ ॥

रूउत्तरेण तत्तो आवलियासंखभागगुणगारे ।
तप्पाओग्गे जादे वाउस्सोग्गाहणं अवरं ॥११०॥

रूपोत्तरेण तत आवल्यसंख्येयभागगुणकारे । तत्प्रायोग्ये जाते वायोरवगाहनं अवरं ॥

अल्लिदं मुंदे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमंविदमसंख्यातगुणावगाहनस्थानंगळनडेदोंदेडेयोळु यथायोग्यावल्यसंख्येयभागगुणितमप्प सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तक जघन्यावगाहनस्थानोत्पत्तियप्पुदु

६ । ८ २२ ८
अ
प ८ । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९ मिल्लिगेनितवगाहनस्थानयिकल्पंगळप्पुवेंबोडाबी अंते
अ अ अ

वक्तव्यगुणवृद्धिस्थानानां न्यासः ४९, ५० ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, अनेन क्रमेण अर्थसंदृष्ट्यापि एतावन्ति स्युः १५ । इदानीं प्रागुक्तावक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानेऽत्र

ज १६ । एकरूपे युते सति असंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानं स्यात्—१६ ॥१०९॥

ततः—तस्मादसंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानादग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धया असंख्यातानि असंख्यातगुणवृद्धयवगाहनस्थानान्यतीत्य एकत्र स्थाने यथायोग्यावल्यसंख्येयभागगुणकारे सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकनिगोदजघन्यावगाहनस्य जाते सति सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानस्योत्पत्तिर्जायते ।

६ । ८ । २२ । ८
अ अ
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९ अत्र कति अवगाहनस्थानानि ? इति चेत् आदौ, अन्ते, सुद्धेत्याद्यानी-
अ अ अ

---

६३ से जघन्य अवगाहनमें गुणा करनेपर लब्ध ६३ अवक्तव्य गुणवृद्धिका अन्तिम अवगाहन स्थान होता है । सो सब अवक्तव्य गुणवृद्धि स्थानोंका विस्तार उनचाससे तिरसठ पर्यन्त ४९,५०,५१,५२,५३,५४,५५,५६,५७,५८,५९,६०,६१,६२,६३ होता है । इसी क्रमसे अर्थसंदृष्टिसे भी इतने ही १५ स्थान होते हैं । अब पूर्वोक्त अवक्तव्यगुणवृद्धिके अन्तिम अवगाहना स्थानमें एक जोड़नेपर असंख्यातगुणवृद्धिका प्रथम अवगाहना स्थान होता है ॥१०९॥

उस असंख्यातगुणवृद्धिके प्रथम अवगाहनस्थानसे आगे एक-एक प्रदेशकी वृद्धि होते असंख्यातगुणवृद्धिके अवगाहन स्थानोंको उल्लंघकर एक स्थानमें यथायोग्य आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणाकार सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक निगोदकी जघन्य अवगाहनाका होनेपर अर्थात् उक्त प्रकारसे वृद्धि होते हुए जब गुणाकारका प्रमाण यथायोग्य आवलीके असंख्यातवें भाग हो जाता है तब उससे सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक निगोदकी जघन्य अवगाहनमें गुणा करनेपर

६।८।२२।८

अ

सुद्धे इत्याद्यानीतंगळु प।१९।८।९।८।२२।८।९ मिनितप्पुवु ॥

अ अ अ

अनंतरं सर्व्वावगाहनस्थानंगळ्गे गुणकारोत्पत्तिक्रममनतिदेशिसुत्तं पेळ्दं ।

एवमुवरि वि णेया पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं ।
सव्वत्थेक्केक्कम्मि य जीवसमासाण विच्चाले ॥११०॥

एवमुपर्य्यपि ज्ञेयः प्रदेशवृद्धिक्रमो यथायोग्यं । सर्व्वत्रैकैकस्मिंश्च जीवसमासानामंतराले ॥

इंती प्रकारदिंदमे सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनस्थानपर्य्यन्तमुं पेळ्दु पेळ्द चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमप्रकारदिंद मेले सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहनमादियागि द्वींद्रियपर्य्याप्तकजीवजघन्यावगाहनस्थानपर्य्यंतमिदक्कुं जीवसमासावगाहनस्थानंगळ्गे दोंदंतरालदोळु प्रत्येकं चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमदिंदमुं अल्लिदत्तणि त्रींद्रियपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु संज्ञि-

---

६।८।२२।८।

अ अ

तानि एतावन्ति स्युः— प।१९।८।९।८।२२।१।९॥

अ अ अ

अथ सर्वावगाहनस्थानानां गुणकारोत्पत्तिक्रममाह—

एवं—अनेन प्रकारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनस्थानपर्यन्तं प्रागुक्तचतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमप्रकारेण उपर्यपि सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहनादारभ्य द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यावगाहनपर्यन्तं जीवसमासावगाहस्थानानामन्तरालेषु प्रत्येकं चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमेण तथा तदग्रे त्रीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा संज्ञिपञ्चे-

---

सूक्ष्म वायुकायिक लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अवगाहनास्थानकी उत्पत्ति होती है। यहाँ कितने अवगाहन स्थान हुए? यह जाननेके लिए उक्त सूत्रके अनुसार आदि स्थानको अन्तिम स्थानमें घटाकर एकका भाग देकर लब्धराशिमें एक जोड़नेपर स्थानोंका प्रमाण होता है ॥ ११० ॥

आगे सब अवगाहन स्थानोंके गुणकारकी उत्पत्तिका क्रम कहते हैं—

इस प्रकार सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अवगाहनस्थानको आदि देकर सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिक जीवके जघन्य अवगाहनस्थान पर्यन्त पूर्वोक्त चतुःस्थानपतित प्रदेशवृद्धिका क्रम विधान कहा। इसी तरह ऊपर भी सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक तेजस्कायिकके जघन्य अवगाहनसे लेकर दोइन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य अवगाहनस्थान पर्यन्त जीवसमासोंके अवगाहनस्थानोंके अन्तरालोंमें-से प्रत्येकके चतुःस्थानपतित प्रदेशवृद्धिके क्रमसे यथायोग्य

---

१. म °क्रमणतिदेशिसुत्तवं पेल्दपं ।

पंचेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानमवसानमागिर्द्दवगाहनस्थानंगळंतरालदोळु प्रत्येकमसंख्यातगुण-वृद्धिरहितत्रिस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमंगळ्वडेदु तत्तद्योग्यगुणकारोत्पत्ति प्रकारमरियल्पबगुमनंतरं तत्तज्जीवसमासावगाहनविकल्पप्रमाणानयनार्त्थमिदं पेळ्दपरु ।

हेट्ठा जेसिं जहण्णं उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ ।
तत्थंतरगा सव्वे तेसिं ओगाहणवियप्पा ॥११२॥ ५

अधो येषां जघन्यमुपर्य्युत्कृष्टकं भवेद्यत्र । तत्रान्तरङ्गाः सर्वे तेषामवगाहनविकल्पाः ॥

इल्लि महामत्स्यरचनेयं कट्टुगुमिल्लि पेळ्दपरं । हीनप्रमाणस्थानंगळनितुमधस्तनस्थानंगळुपरितन-स्थानंगळधिकप्रमाणस्थानंगळु एंबितु परिभाषिसल्पडुवुवु । अवु केलवु जीवंगळ्गे एल्लि जघन्यावगाहनस्थानं केळगिरुतिक्कुं । एल्लियुत्कृष्टावगाहनं मेलिरुतिक्कुं । तदंतरालवर्त्तियवगाहनस्थानंगळेल्लमु माजीवंगळ मध्यमावगाहनस्थानविकल्पंगळेंबितु प्रवचनदोळ्प्रतिपादितंगळल्लि सूक्ष्म- १०

६।८।२२
निगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनमिदादियक्कु प ६।१९।८।९।८।२२।९ मिवरुत्कृष्टाव-
अ अ अ

न्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानावसानावगाहनस्थानानामन्तरालेषु प्रत्येकमसंख्यातगुणवृद्धिं विना त्रिस्थानपतित-प्रदेशवृद्धिक्रमेण च गत्वा तत्तद्योग्यगुणकारोत्पत्तिप्रकारो ज्ञातव्यः ॥१११॥ अथ तत्तज्जीवसमासावगाहन-विकल्पप्रमाणमानयति—

मत्स्यरचनामिमां मनसि कृत्वेदं कथनं क्रियते । यानि जघन्यावगाहनस्थानानि अधस्तनस्थानानि अधिकप्रमाणस्थानानि च १५
उपरितनस्थानानीति परिभाष्यते । येषां जीवानां यत्र जघन्यावगाहनस्थानमधस्तिष्ठति यत्रोत्कृष्टावगाहनस्थान-मुपरि तिष्ठति तदन्तरालवर्त्त्यवगाहनस्थानानि सर्वाण्यपि तेषां जीवानां मध्यमावगाहनस्थानविकल्पाः इति प्रवचने प्रतिपादितं । तत्र सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनमिदमादिः—

६।८।२२।
अ
प।१९।८।९।८।२२।१।९। अस्योत्कृष्टावगाहनमिदमन्तः—
अ अ अ

गुणाकारकी उत्पत्तिका विधान जानना । तथा उससे आगे तेइन्द्रियके जघन्य स्थानको आदि २०
देकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट अवगाहनस्थानपर्यन्त अवगाहन स्थानोंके अन्तरालों-में-से प्रत्येकके असंख्यातगुणवृद्धिके बिना त्रिस्थान पतित प्रदेशोंकी वृद्धिका अनुक्रम प्राप्त करके यथायोग्य गुणाकार की उत्पत्तिका विधान जानना ।

विशेषार्थ—तेइन्द्रियके जघन्य अवगाहस्थानसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब स्थान एक दूसरेसे संख्यातगुणे हैं । इससे यहाँ असंख्यातगुणवृद्धिके बिना २५
त्रिस्थानपतितवृद्धि ही होती है ॥१११॥

आगे समस्त जीव-समासोंके शरीरकी अवगाहनाके स्थापनसे होनेवाली मत्स्य रचनाको सूचित करनेके लिए जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना स्थानोंका कथन करते हैं—

यहाँ मत्स्य रचनाको मनमें रखकर यह कथन करते हैं । जिन अवगाहनस्थानोंके १०

---

१. म पेल्दपं ।

गाहमस्थानमिदु ६।८।२२।८।४।प।११।८।८। अन्तमक्कु आदियंते सुद्धे इत्यादि-
a a a a a

प।१९।८।९।८ २२।१।९।८
a a a a

६।८।२२।८
a a

यिदमावल्यसंख्यातभागदिंवं समच्छेदविसदृशपदादियंतंदु प १९।८।९।८।२२।१।९।८
a

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधासागर जी महाराज

५ गुण्यगुणकारंगळगे समसं भाज्यभागहारंगळगं समानसं तोरि तोरलिल्लव नाल्कावल्य-संख्यातंगळमोदल्गोंडु मुंदण गुणकारंगळेल्लरोळमोंदु रूपं कळेयल्का राशियिदु

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।१
a a a a a

प।१९।८।९।८।२२।९।८ बड्ढे हिदे रूवसंजुदे ठाणा एंदु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन
a a a a

६।८।२२।८।४।प।११।८।८।१
a a a a a

१० प।१९।८।९।८।२२।१।९।८। आदौ अन्ते सुद्धेत्यादिना आवल्यसंख्येयभागेन समच्छिन्न-
a a a a

६।८।२२।८।
a a

मादिमानीय प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ गुण्यगुणकाराणां तथा भाज्यभागहाराणां
a a a a

च साम्यं दर्शयित्वा तेन चतुरावल्यसंख्याद्यगतनसर्वगुणकाराणामुपर्येकरूपमपनीय शेषे

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।१
a a a a a

१५ प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ बड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणेति सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकस्य
a a a a

प्रदेशोंका परिमाण कम होता है, उन्हें अधस्तनस्थान कहा है। और जिन अवगाहनस्थानों-का प्रदेश परिमाण बहुत होता है, उन्हें उपरितनस्थान कहा है। जिन जीवोंका जघन्य अवगाहनस्थान नीचे स्थित होता है और उत्कृष्ट अवगाहनस्थान ऊपर स्थित है, उनके मध्यके सभी अवगाहनस्थान उन जीवोंके मध्य अवगाहनस्थानके विकल्प होते हैं, ऐसा आगममें
२० कहा है। सो सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकका पूर्वोक्त प्रमाणरूप जघन्य स्थान आदि है और उसीका उत्कृष्ट अवगाहस्थान अन्तिम है। सो आदिके प्रमाणको अन्तके प्रमाणमें-से घटाकर

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।८।१
अ अ अ अ अ

सर्व्वावगाहनस्थानंगळु समस्तमिनितप्पुवु—प।१९।८।९।८।अ।२२।१।९।८ इवरो-
अ अ अ अ

ळिप्पेरडु रूपुगळं कळेयुत्तिरलुमा जीवन मध्यमावगाहनविकल्पंगळप्पुवु।

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।८।१
अ अ अ अ अ

प।१९।अ।८।९।अ।८।२२।१।९।८ ई प्रकारदिंदं सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तवायुकायिक- ९
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मादियागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकपर्य्यंतमप्प जीवंगळ स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादियागि स्वस्वो-
त्कृष्टस्थानपर्य्यंतमप्पवगाहनस्थानंगळेल्लं तन्मध्यमविकल्पंगळ्सूत्रानुसारदिंदं तरल्पडुवुवु॥

अनंतरं मत्स्यरचनांतःप्रविष्टसर्व्वांगाहनंगळ न्यासक्रमं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।१
अ अ अ अ अ

सर्वविगाहनस्थानविकल्पा भवन्ति— प।१९।८।९।८।२२।१।९।८ एतेषु मध्ये रूपद्वये १०
अ अ अ अ

६।८।२२।८।८।४।प।११।८।
अ अ अ अ अ

अपनीते तज्जीवमध्यमावगाहनस्थानानि भवन्ति। प।१९।८।९।८।२२।१।९।८। अनेन
अ अ अ अ

प्रकारेण सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टस्थानपर्यन्तं सर्वावगाहनस्थानानि तन्मध्यविकल्पांश्च सूत्रानुसारेण आनयेद्।

अथ मत्स्यरचनान्तःप्रविष्टसर्वावगाहनविन्यासक्रमः कथ्यते तद्यथा—प्रथमं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक- १५

शेषको वृद्धिका भाग देकर और एक जोड़कर जो प्रमाण आता है, उतने सूक्ष्मनिगोदलब्ध्य-पर्याप्तकके सब अवगाहनस्थानोंके विकल्प होते हैं। उनमें-से आदि स्थान और अन्तस्थानको कम कर देनेपर उसी जीवके मध्यम अवगाहनस्थान होते हैं। इसी प्रकारसे सूक्ष्मलब्ध्य-पर्याप्तक वायुकायसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके अपने-अपने जघन्य अवगाहन-स्थानसे लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब अवगाहन स्थान तथा उनमें-से २० आदिस्थान और अन्तस्थानको कम कर देनेपर मध्यम अवगाहनस्थान सूत्रके अनुसार लाना चाहिए।

अब मत्स्याकार रचनामें अन्तःप्रविष्ट सब अवगाहन स्थानोंके स्थापनका क्रम

मोदलोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टपर्य्यंतमाद पदिनारुं गुणितक्रमस्थानंगळागुमो दधिकक्रमस्थानक्कमुं प्रत्येकमरडेरडु शून्यसंदृष्टिकरणविंदं चतुस्त्रिंशच्छून्यंगळु तिर्य्यक्कागि स्थापिसल्पट्टु वा प्रकारदिदमा पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानमादेकान्नविंशतिस्थानंगळगमष्टात्रिंशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते तत्पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्ततेजस्कायिकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनावसानमागेकविंशतिस्थानंगळ्गे द्वाचत्वारिंशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते तत्पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्काप्कायिकजघन्यावगाहनस्थानं मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टपर्य्यंतमादवगाहनस्थानंगळत्तोंभत्तिप्पत्तनाल्कक्के षट्चत्वारिंशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते तत्पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्कभूकायिकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनपर्य्यंतं पंचविंशतिस्थानंगळ्गे पंचाशच्छून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवंते। तत्पंक्तियिंदं केळगे बादरलब्ध्यपर्य्याप्तकवायुतेजोभूकायिकनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुः-

---

जघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टपर्यन्तं षोडशगुणितक्रमस्थानानामेकाधिकस्थानस्य च प्रत्येकं शून्यद्वयसंदृष्टिकरणेन चतुस्त्रिंशच्छून्यानि तिर्यग्लिखितव्यानि तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनादितदुत्कृष्टावगाहनावसानैकोनविंशतिस्थानानां अष्टात्रिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानैकविंशतिस्थानानां द्वाचत्वारिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकाप्कायिकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानत्रयोविंशत्यवगाहस्थानानां षट्चत्वारिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकभूकायिकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं पञ्चविंशतिस्थानानां पञ्चाशच्छून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पङ्क्तेरधो बादरलब्ध्यपर्याप्तकवायुतेजोभूकायिकनिगोद-

---

कहते हैं। प्रथम सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य अवगाहन स्थानसे लेकर उसके उत्कृष्ट अवगाहनस्थानपर्यन्त सोलह स्थान तो गुणित क्रम हैं और एक स्थान साधिक है। एक-एक स्थानकी सूचक संदृष्टि दो शून्य है। सो चौंतीस शून्य दो-दो बिन्दीमें बराबर लिखते हुए सतरह जगह लिखना। यहाँ सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तका जघन्य स्थान पहला है और उत्कृष्ट अठारहवाँ है। किन्तु गुणकारपनेकी अधिकतारूप अन्तराल सतरह ही हैं। इसलिए सतरहका ही ग्रहण किया है। ऐसे ही आगे भी समझना। इसी तरह उक्त पंक्तिके नीचे दूसरी पंक्तिमें सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक वायुकायिक जीवके जघन्य अवगाहनस्थानसे लेकर उसीके उत्कृष्ट अवगाहनस्थान पर्यन्त उन्नीस स्थान हैं। उनकी अड़तीस बिन्दी लिखना। यह दूसरा स्थान होनेसे ऊपरकी पंक्तिमें प्रथम स्थानकी दो बिन्दी छोड़कर द्वितीय स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर आगे बराबर अड़तीस बिन्दी लिखना। तीसरी पंक्तिमें सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक तेजस्कायिककी जघन्य अवगाहनासे उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त इक्कीस स्थान हैं। उनकी बयालीस बिन्दी लिखना। सो यह तीसरा स्थान होनेसे इससे ऊपरकी दूसरी पंक्तिके दूसरे स्थानकी दो बिन्दीके नीचेके स्थानको छोड़कर तीसरे स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर बयालीस बिन्दी दो-दो करके इक्कीस स्थानोंमें लिखना। इसी तीसरी पंक्तिके नीचे चौथी पंक्तिमें सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त अप्कायिकके जघन्य अवगाहनसे लेकर उत्कृष्ट अवगाहन पर्यन्त तेईस स्थानोंकी छियालीस बिन्दी लिखना। यह चौथा स्थान होनेसे तीसरे स्थानकी दो बिन्दीके नीचेको

---

१. म °गलिर्यक्कागि।

पंचेंद्रियजीवंगळ्गे तं तम्मजघन्यावगाहनमावियागि तंतम्ममुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतं यथासंख्यमागि सप्तविंशत्येकान्नत्रिंशदेकत्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत्पंचत्रिंशत्सप्तत्रिंशत्षट्चत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशदेकचत्वारिंशत् एकचत्वारिंशत्त्रिचत्वारिंशत्स्थानंगळ्गं यागदिक्क ते-अगाधूमि अम सुक्विट्टिगम ओं महाराज

२७	२९	३१	३३	३५	३७	४६	४४	४१	४३

चतुःपंचाशदष्टपंचाशद्द्विषष्टिषट्षष्टिसप्ततिचतुःसप्ततिद्वानवत्यष्टाशीतिद्व्यशीतिद्व्यशीति षडशीति संख्याशून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवु ॥ ५

वा	ते	आ	पृ	नि	प्र	अ	बि	ति	च	पं
५४	५८	६२	६६	७०	७४	९२	८८	८२	८२	८६

ई प्रकारदिंदमा पंचेंद्रि[illegible]लिकन पंक्तियिंदं केळगे सूक्ष्मनिगोदपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादियागि [illegible]मुत्कृष्टावगाहनपर्य्यंतमेरडे स्थानंगळ्गे नाल्कु शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टु णि २ १०

४ वी प्रकारदिंदं मुंदेयो दे पंक्तियोळु सूक्ष्मपर्य्याप्तकवायुतेजोऽब्भूकायिकंगळ्गेयुं मत्तं बादरपर्य्याप्तवायुतेजोऽप्पृथ्वीकायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवंगळ्गेयुं स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादियागि

प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं यथासंख्यं सप्तविंशत्येकान्नत्रिंशदेकत्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत्पञ्चत्रिंशत् सप्तत्रिंशत्षट्चत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशदेकचत्वारिंशत्एकचत्वारिंशदेकचत्वारिंशत्त्रिचत्वारिंशत्स्थानानां चतुःपञ्चाशत्अष्टपञ्चाशत्द्विषष्टिषट्षष्टिसप्ततिचतुःसप्ततिद्वानवत्यष्टाशीतिद्व्यशीतिद्व्यशीतिषडशीतिसंख्यानि शून्यानि लिखितव्यानि । अनेन प्रकारेण तत्पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकषट्क्षेरधः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं

छोड़कर चौथे स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर छियालीस बिन्दी लिखना। इसी तरह इस चतुर्थ पंक्तिके नीचे पाँचवी पंक्तिमें सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त पृथ्वीकायिकके जघन्य अवगाहनसे लेकर उत्कृष्ट अवगाहनपर्यन्त पन्द्रह स्थान हैं। उनकी पचास बिन्दी लिखना। सो यह पाँचवाँ स्थान होनेसे चौथे स्थानकी भी दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर पाँचवें स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर पचास बिन्दी लिखना। इसी तरह उक्त पंक्तिके नीचे छठी, सातवीं, आठवीं, नवमी, दशमी, ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं और सोलहवीं पंक्तिमें बादरलब्ध्यपर्याप्तक वायुकाय, तेजकाय, अप्काय, पृथ्वीकाय, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन ग्यारहकी अपने-अपने जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थानपर्यन्त क्रमसे सत्ताईस, उनतीस, इकतीस, तैंतीस, पैंतीस, सैंतीस, छियालीस, चवालीस, इकतालीस, इकतालीस, तेतालीस स्थान हैं। इनके चौवन, अठावन, बासठ, छियासठ, सत्तर, चौहत्तर, बानवे, अठासी, बयासी, बयासी और छियासी बिन्दी लिखना। सो ये स्थान छठे-सातवें आदि होनेसे ऊपरकी पंक्तिके आदि स्थानकी दो-दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर छठे-सातवें आदि स्थानकी दो बिन्दीसे लेकर पंक्तिमें लिखना।

इसी प्रकार उस पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तककी पंक्तिके नीचे सतरहवीं पंक्तिमें सूक्ष्म निगोद पर्याप्तके जघन्य अवगाहन स्थानसे लेकर उत्कृष्ट अवगाह पर्यन्त दो स्थान हैं।

स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमेरडेरडु स्थानंगळ्गे नाल्कु नाल्कु शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवु—

बा २	ते २	आ २	भू २	वा २	ते २	अ २	पु २	नि २	प्र २
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४

मिते प्रतिष्ठितप्रत्येकोत्कृष्टावगाहनस्थानविदं मुंदे तत्पंक्तियोळे अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तक-
५ जघन्यावगाहनस्थानमादियागि तदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतमिप्पत्तं त्रयोदशस्थानंगळ्गे षड्विंशति-
शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवु अ १३ बंते मत्तमा पंक्तियिंदं केळगे पर्य्याप्तकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवं-
२६
गळ्गे तंतम्म जघन्यावगाहनस्थानमादियागि स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतमेकावशाऽष्टाऽष्टदश-
स्थानंगळ्गे द्वि ११ त्रि च ८ पं १० यथासंख्यमागि द्वाविंशतिषोडशषोडशविंशति संख्या-
२२ ८ १६ २०
१६
१० शून्यंगळु स्थापिसल्पट्टुवु बिंदु मत्स्यरचनेयोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाहनस्थान-

---

स्थानद्वयस्य चत्वारि शून्यानि लिखितव्यानि । अनेनैव प्रकारेणाग्रे एकैकस्मिन् स्थाने एकैकशून्यहीनं सूक्ष्मपर्याप्तकवायुतेजोऽब्भूकायिकानां पुनः बादरपर्याप्तवायुतेजोऽप्पृथ्वीकायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवानां च स्वस्वजघन्यावगाहन-स्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं प्रत्येकं स्थानद्वयस्य चत्वारि चत्वारि शून्यानि लिखितव्यानि । एवमेव प्रतिष्ठितप्रत्येकोत्कृष्टावगाहनस्थानादग्रे तत्पङ्क्तावेव अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानादित-

---

१५ उनकी चार बिन्दी लिखना। इसी प्रकारसे आगे एक ही पंक्तिमें सूक्ष्म पर्याप्तक वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, पुनः बादर पर्याप्त वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंके अपने-अपने जघन्य अवगाह स्थानको लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट अवगाहस्थान पर्यन्त प्रत्येकके दो-दो स्थान हैं। उनकी चार-चार बिन्दी लिखना। इसी प्रकार प्रतिष्ठित प्रत्येकके उत्कृष्ट अवगाहन स्थानसे आगे
२० उसी पंक्तिमें ही अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तकके जघन्य अवगाहन स्थानसे लेकर उत्कृष्ट अवगाहनस्थान पर्यन्त तेरह स्थानोंकी छब्बीस बिन्दियाँ लिखना। सो पर्याप्त सूक्ष्म निगोदका आदि स्थान सतरहवाँ है। इसलिए सोलहवें स्थानकी दो बिन्दुके नीचेको छोड़कर सतरहवें, अठारहवें आदि स्थानकी चार बिन्दी लिखना। सूक्ष्म पर्याप्तकका आदि स्थान बीसवाँ है, इसलिए उसी पंक्तिमें उन्नीसवें स्थानके दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर बीसवाँ-इक्कीसवाँ
२५ दो स्थानोंकी चार बिन्दी लिखना। इसी तरह बीच-बीचमें एक स्थानकी दो-दो बिन्दीके नीचेको छोड़-छोड़कर सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय आदिके दो-दो स्थानोंकी चार-चार बिन्दी लिखना। उसी पंक्तिमें अप्रतिष्ठित प्रत्येकके पचासवेंसे लेकर स्थान हैं। इसलिए पचासवें स्थानकी बिन्दीसे लेकर तेरह स्थानोंकी छब्बीस बिन्दी लिखना। ये सब एक पंक्तिमें कहा है। उस पंक्तिके नीचे-नीचे अठारहवीं, उन्नीसवीं, बीसवीं, इक्कीसवीं, पंक्तिमें पर्याप्त
३० दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवोंका अपने-अपने जघन्य अवगाहनस्थानसे लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट अवगाहस्थान पर्यन्त ग्यारह, आठ, आठ, दस स्थानोंकी क्रमसे

माविंयागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्य्यंतमाव सर्व्वावगाहनस्थानंगळोळ प्रत्येकं शून्यद्वयविवक्षेयिंदं तत्तत्स्थानगणनाश्रयदिं हीनाधिकभागशून्यविन्यासक्रममनादिनिधनार्षदोळपेळ्प्पट्टुदु। इंतु जीवसमासंगळो देहावगाहनाधिकारं प्ररूपितमाय्तु ॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तत्रयोदशस्थानानां षड्विंशतिशून्यानि लिखितव्यानि। तथा सप्तदशतमेऽपः पर्याप्तक- ५
द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तमेकादशाष्टाद-
शस्थानानां यथासंख्यं द्वाविंशतिषोडशषोडशविंशतिसंख्यानि शून्यानि लिखितव्यानि। एवं मत्स्यरचनायां
सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यन्तं सर्वावि-
गाहनस्थानानां प्रत्येकं शून्यद्वयविवक्षया तत्स्थानगणनाश्रयो हीनाधिकभावः शून्यविन्यासक्रमः अनादिनिधनार्षे

बाईस, सोलह, सोलह और बीस बिन्दी लिखना। सो पर्याप्त दोइन्द्रियके इक्यावनसे लेकर १०
स्थान हैं। इसलिए सतरहवीं पंक्तिमें अप्रतिष्ठित प्रत्येककी जो छब्बीस बिन्दी लिखी थी, उनके नीचे आदिकी पचासवें स्थानकी दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर आगे बाईस बिन्दी लिखना। इसी तरह नीचे-नीचे आदिकी दो बिन्दीके नीचेको छोड़कर बावनवें, तेरपनवें, चौवनवें स्थानोंकी बिन्दीसे लगाकर क्रमसे सोलह, सोलह, बीस बिन्दी लिखना। इस प्रकार मत्स्य रचनामें सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्यअवगाहनस्थानसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय १५
पर्याप्तके उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यन्त सब अवगाहनस्थानोंमें-से प्रत्येकके दो-दो शून्योंकी विवक्षा होनेसे उन स्थानोंकी गणनाके आश्रयसे हीन अधिक भावको लिये हुए शून्य स्थापना-का क्रम अनादि निधन आगममें कहा है। इसके अनुसार रचना करनेपर समस्त अवगाहन-की रचना मत्स्याकार होती है।

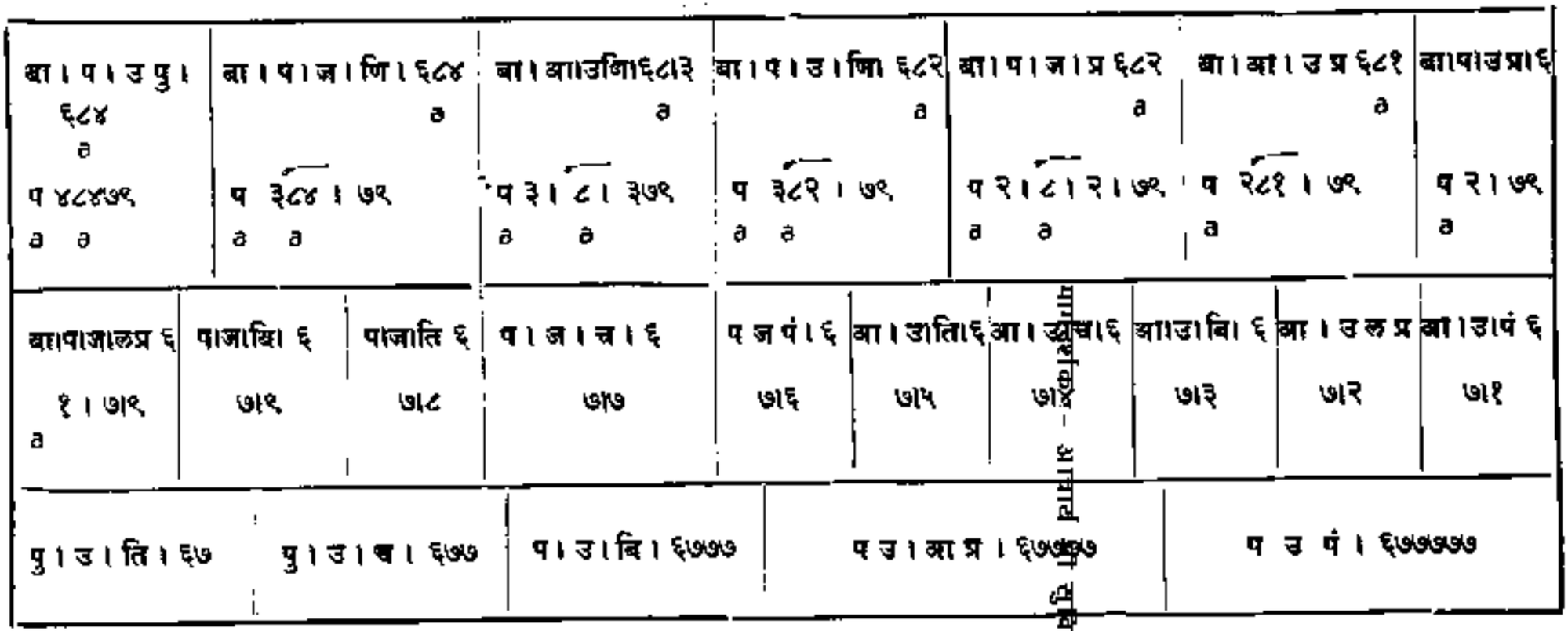
विशेषार्थ—मत्स्य रचनाके उक्त विवरणका संक्षिप्तसार इस प्रकार है—सूक्ष्म २०
अपर्याप्तक निगोदकी जघन्य अवगाहनासे उसके उत्कृष्ट अवगाहपर्यन्त गुणाकार सोलह है, पुनः एक अधिक है। इस प्रकार सतरह स्थानोंके प्रत्येक स्थानके दो शून्यके हिसाबसे चौंतीस शून्य सबसे ऊपरकी पंक्तिमें लिखना चाहिए। उसके नीचे सूक्ष्म अपर्याप्तक वायुकायिकके जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त उन्नीस स्थानोंके अड़तीस शून्य लिखना चाहिए। इसी तरह सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्कायिकसे लेकर प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्यन्त प्रत्येकके दो स्थान अधिक होनेसे प्रत्येक २५
पंक्तिमें चार शून्य अधिक होते हैं। इस तरह बयालीस, छियालीस, पचास, चौवन, अठा-वन, बासठ, छियासठ, सत्तर और चौहत्तर शून्य होते हैं। आगे भी अपने जघन्यसे अपने उत्कृष्ट पर्यन्त स्थान गणनाके द्वारा शून्य गणना जानना चाहिए। ऊपरकी पंक्तिके जघन्यसे नीचेकी पंक्तिका जघन्य दो शून्य छोड़कर होता है। सतरहवीं पंक्तिमें एकमें ही बारह जीवों-के जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त अपने-अपने योग्य शून्य लिखकर उसके नीचे दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, ३०
चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंके अपने-अपने जघन्य से अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यन्त चार पंक्तियोंमें अपनी-अपनी स्थान गणनासे शून्योंकी गणना जानना। इस प्रकार रचनेपर सब अवगाहोंकी रचना मत्स्यके आकार होती है ॥११२॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूत्राजोणिण ६।८।२२	सूत्राजाजाद ६।८।२२	ते ६।८।२२	आ ६।८।२२	सु ६।८।२२	बाजाजार्क ६।८।२२
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प१९।८।९।८।२२।७।९	प१९।८।८।८।२२।७।९	प१९।८।७।८।२२।७।९	प१९।८।६।८।२२।७।९	प१९।८।५।८।२२।७।९	प१८।८।५।८।२२।७।९
अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ
ते ६।८।२२	आ ६।८।२२	पु ६।८।२२	णि ६।८।२२	प्र ६।८।२२	अप्र ८।२२
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प१७।८।५।८।२२।७।९	प१६।८।५।८।२२।७।९	प१५।८।५।८।२२।७।९	प१४।८।५।८।२२।७।९	प१३।८।५।८।२२।७।९	प१२।८।५।८।२२।७।९
अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ	अ अ अ
बि ६।८।२२	ते ६।८।२२	ध ६।८।२२	पं ६।८।२२	सूणाजाणि ६।८।२१	सूणाजाणि ६।८।२१
अ	अ	अ	अ	अ	अ
प११।८।५।८।२२।७।९	प१०।८।५।८।२२।७।९	फ९।८।५।८।२२।७।९	प८।८।५।८।२२।७।९	प८।८।४।८।२१।७।९	प८।८।४।८।२१।७।९
अ अ अ	प अ अ	अ अ अ	अ अ	अ अ अ	अ अ अ

सूपाउ णि ६।८।२०	सूपाज बाध६।८।२०	सूआआउआ ६।८।१५	सूपाउ बाध६।८।१८	सूपाजाओ६।८।१८	सूआआउते ६।८।१७
a	a	a	a	a	a
प८८४।८।२०७९	प८८३।८।२०७९	प८८३।८।१५७९	प८८३।८।१८७९	प८८२।८।१८७९	प८८२।८।१७७९
a a a	a a a	a a a	a a a	a a a	a a a a
सूपाउज ६८१६	सूपाउज ६८१६	सूआआउआ६८१५	सूपाउआआ६८१४	सूपाजासू ६८१४	सूआ । उ । भू ६८१३
a	a	a	a	a	a
प८८२।८।१६७९	प८८२।८।१६७९	प८८२।८।१५७९	प८८२।८।१४७९	प८ । ८ । १४७९	प८ । ८ । १३ । ७९
a a a	a a a	a a a	a a a	a a	a a
सूपाउआभू६८१२	बापाउआपा ६८१२	बाआआउआपा ६८११	बापाउआपा ६८१०	बापाजाओ६८१०	बा । आ । उ । ते ६८९
a	a	a	a	a	a
प८८१।२।७९	प७।८१२।७९	प७।८१९।७९	प७।८१०।७९	प६ । ८९ । ७९	प६ । ८९ । ७९
a a	a a	a a	a a	a	a a
बापाउ लेश्या६८८	बापाजाल ६८८	बापाउआआ६८७	बा पाउ आ ६८७	बापाजासु ६८६	बाआ । उ । पु ६८५
a	a	a	a	a	a
प६।८८।७९	प५।८८।७९	प५।८७ । ७९	प५।८६।७९	प४ । ८६ । ७९	प४ ।८५ । ७९
a a	a a	a a	a a	a	a a

मार्गदर्शक :- अध्यक्षश्री सुविधिसागर जी महाराज


बा। प। उ पु। ६८४ अ प ४८४७९ अ अ
बा। प। ज। णि। ६८४ अ प ३८४। ७९ अ अ
बा। आ।उ।नि।६८३ अ प ३। ८। ३७९ अ अ
बा। प। उ। णि। ६८२ अ प ३८२। ७९ अ अ
बा। प। ज। प्र ६८२ अ प २। ८। २। ७९ अ अ
बा। आ। उ प्र ६८१ अ प २८१। ७९ अ
बा।पा।उ प्रा।६ प २। ७९ अ
बा।पा।ज।ल।प्र ६ १। ७१९ अ
पा।ज।ति। ६ ७१९
पा।ज।ति ६ ७१८
प। ज। च। ६ ७१७
प। ज। पं। ६ ७१६
आ। उ।ति।६ ७१५
आ। उ।च।६ ७१४
आ।उ।बि। ६ ७१३
आ। उ।ल।प्र ७१२
आ।उ।पं ६ ७११
पु। उ। ति। ६७ पु। उ। च। ६७७ प। उ। बि। ६७७७ प उ। आ प्र। ६७७७७ प उ पं। ६७७७७७
८ ८ ८ प प प प प प प प प प प प प प प प अधिक अ
अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ अ
णि ज ०००००००००००००००००००००००००००००००० उ ३४
अ
वा ज ०००००००००००००००००००००००००००००००००० उ ३८
अ
ते ज ०००००००००००००००००००००००००००००००००००० उ ४२
अ
अ ज ०००००००००००००००००००००००००००००००००००० उ ४६
अ
भू ज ०००००००००००००००००००००००००००००००००००० उ ५०
आगमोदय समिति सुविधिसागर जी महाराज

आ ज ०००००००

अनंतरं जीवसमासगळगे कुलसंख्याविशेषप्रदर्शनार्त्थमिदं पेळ्दपरु ।—

बावीस सत्त तिण्णि य सत्त य कुलकोडि सयसहस्साइं ।
णेया पुढविदगागणिवाउक्कायाण परिसंखा ॥११३॥

द्वाविंशतिस्सप्त त्रयस्सप्त च कुलकोटिशतसहस्राणि । ज्ञेयानि पृथिव्युदकाग्निवायुकायानां परिसंख्या ॥

पृथिवीकायिकजीवंगळगे द्वाविंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । अप्कायिकंगळगे सप्तलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । तेजस्कायिकंगळगे त्रिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । वायुकायिकंगळगे सप्तलक्षकोटिकुलंगळप्पुवेंदितु ज्ञेयंगळप्पवु ।

कोडिसयसहस्साइं सत्तट्ठ णव य अट्ठवीसाइं ।
बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय हरिदकायाणं ॥११४॥

कोटीनां शतसहस्राणि सप्ताष्ट नवाष्टाविंशति । द्वींद्रियत्रींद्रिय चतुरिंद्रिय हरितकायानां ॥

द्वींद्रियंगळगे सप्तलक्षकोटि कुलंगळप्पुवु । त्रींद्रियंगळगष्टलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । चतुरिंद्रियंगळगे नवलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । वनस्पतिकायिकंगळगष्टाविंशति लक्षकोटिकुलंगळप्पुवु ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अद्धं तेरस बारस दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं ।
जलचरपक्खिचउप्पयउरपरिसप्पेसु णव होंति ॥११५॥

अर्द्धत्रयोदश द्वादश दशकं कुलकोटिशतसहस्राणि । जलचरपक्षिचतुष्पदानामुरःपरिसर्पेषु नव भवन्ति ॥

कथितः ॥११२॥ एवं जीवसमासानामवगाहनान्युक्त्वा अधुना तेषां कुलसंख्याविशेषं गाथाचतुष्केण कथयति—

पृथ्वीकायिकानां कुलानि द्वाविंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति । अप्कायिकानां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवन्ति । तेजस्कायिकानां कुलानि त्रिलक्षकोट्यो भवन्ति । वायुकायिकानां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवन्ति इति ज्ञातव्यं ॥११३॥

द्वीन्द्रियाणां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवन्ति । त्रीन्द्रियाणां कुलानि अष्टलक्षकोट्यो भवन्ति । चतुरिन्द्रियाणां कुलानि नवलक्षकोट्यो भवन्ति । वनस्पतिकायिकानां कुलानि अष्टाविंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति ॥११४॥

इस तरह जीव समासोंके अवगाहन स्थानोंको कहकर अब उनके कुलोंकी संख्या चार गाथाओंसे कहते हैं—

पृथ्वीकायिकके कुल बाईस लाख कोटि होते हैं । अप्कायिकोंके कुल सात लाख कोटि हैं । तेजस्कायिकोंके कुल तीन लाख कोटि हैं । वायुकायिकोंके कुल सात लाख कोटि हैं । यह ज्ञातव्य है ॥११३॥

दो इन्द्रियोंके कुल सात लाख कोटि हैं । त्रीन्द्रियोंके कुल आठ लाख कोटि हैं । चतुरिन्द्रियोंके कुल नौ लाख कोटि हैं । वनस्पतिकायिकोंके कुल अट्ठाईस लाख कोटि हैं ॥११४॥

पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जलचरोंके कुल साढ़े बारह लाख कोटि हैं । पक्षियोंके कुल बारह

पंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळु जलचरंगळगं अर्द्धत्रयोदशं । त्रयोदशानां पूरणं त्रयोदशं । अर्द्धं त्रयोदशमर्द्धत्रयोदशं । अर्द्धत्रयोदशलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । चतुष्पदंगळगे दशलक्षकोटि कुलंगलप्पुवु । उरपरिसर्प्पंगळप्पसरीसृपादिगळगे नवलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु ॥

छप्पंचाहियवीसं बारसकुलकोडिसदसहस्साइं ।
सुरणेरइयणराणं जहाकमं होंति णेयाणि ॥११६॥

षट्पञ्चाधिकविंशतिर्द्वादशकुलकोटिशतसहस्राणि । सुरनैरयिकनराणां यथाक्रमं भवन्ति ज्ञेयानि ॥

सुरगळगे षड्विंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । नैरयिकरगे पंचविंशतिलक्षकोटिकुलंगळप्पुवु । नरगळगे द्वादशलक्षकोटिकुलंगळु ज्ञेयंगळप्पुवु ॥

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनंतरं सर्व्वजीवसमासंगळ कुलयुतिनिदर्वेशात्थंमिदं पेळ्वपरु ।—

एया य कोडकोडी सत्ताणउदी य सदसहस्साइं ।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीणं कुलाणं तु ॥११७॥

एका च कोटिकोटी सप्तनवतिश्च शतसहस्राणि । पंचाशत्कोटिसहस्राणि सर्व्वांगिनां कुलानां तु ॥

इंतु पेळल्पट्ट पृथ्वीकायिकाविमनुष्यपर्य्यंतमप्प सर्व्वदेहिगळ कुलंगळयुतियो दुकोटिकोटियुं तों भत्तेळु लक्षमु मयिवत्तु सासिरकोटियुमक्कुं १९७५०००००००००० ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यंमहावादवादीश्वरराय वादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांत-

---

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु जलचराणां कुलानि अर्धत्रयोदश—साधद्वादशलक्षकोट्यो भवन्ति । पक्षिणां कुलानि द्वादशलक्षकोट्यो भवन्ति । चतुष्पदानां कुलानि दशलक्षकोट्यो भवन्ति । उरःपरिसर्पाणां सरीसृपादीनां कुलानि नवलक्षकोट्यो भवन्ति ॥११५॥

सुराणां कुलानि षड्विंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति । नैरयिकाणां कुलानि पञ्चविंशतिलक्षकोट्यो भवन्ति । नराणां कुलानि द्वादशलक्षकोट्यो भवन्ति । एतानि सर्वकुलानि यथाक्रमं भव्यैर्ज्ञेयानि भवन्ति ॥११६॥ अथ सर्वजीवसमासानां कुलयुतिं निर्दिशति—

एवमुक्तानां पृथ्वीकायिकादिमनुष्यपर्यन्तसर्वदेहिकुलानां युतिः एका कोटाकोटिः सप्तनवतिलक्षपञ्चा-

---

लाख कोटि हैं। चौपायोंके कुल दस लाख कोटि हैं। और जो छातीके बल रेंगकर चलनेवाले सर्प आदि हैं उनके कुल नौ लाख कोटि हैं ॥११५॥

देवोंके कुल छब्बीस लाख कोटि हैं। नारकियोंके कुल पच्चीस लाख कोटि हैं। मनुष्योंके कुल बारह लाख कोटि हैं। ये सब कुल यथाक्रम भव्य जीवोंके द्वारा जानने योग्य हैं ॥११६॥

इस प्रकार कहे गये पृथिवीकायिकसे लेकर मनुष्य पर्यन्त सब प्राणियोंके कुलोंका जोड़ एक कोटाकोटि सत्तानवे लाख पचास हजार कोटि होता है ।

चक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटक-वृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड विंशतिप्ररूपणंगळोळु द्वितीय जीवसमास प्ररूपणमहाधिकारं प्ररूपितमाय्तु ॥

शतसहस्रकोट्यश्च भवति ॥११७॥

विशेषार्थ—जिन पुद्गल स्कन्धोंसे शरीर बनता है उनके भेदका नाम कुल है ॥ ११७ ॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी भृंगिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से जीवसमास प्ररूपणा नामक द्वितीय महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

अथ पर्याप्तिप्ररूपणा

मत्तमिल्लि गुप्पयोगियप्प लोकोत्तरगणितपरिभाषेयं पेळ्वेमवंते दोडे :—लोकोत्तरगणितं संख्यातमसंख्यातमनंतमेंदितु मूरु भेदमप्पुदल्लि संख्यात जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदंदिव मूरु भेदमक्कु मसंख्यातमुं परीतासंख्यातं युक्तासंख्यातं द्विकवारासंख्यातमुमेंदितु मूरु भेदमक्कुं। अल्लि परीतासंख्यातं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदंदिव मूरु भेदमक्कुं। युक्तासंख्यातमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदंदिव मूरु भेदमक्कुं द्विकवारासंख्यातं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदंदिवं मूरु भेदमक्कुं मनंतमुं परीतानंतं युक्तानन्तद्विकवारानंतभेदंदिवं त्रिविधमक्कुं। परीतानंतमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदंदिव त्रिविधमक्कुं। युक्तानंतमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदंदिव त्रिविधमक्कुं। द्विकवारानंतमुं जघन्यमध्यमोत्कृष्ट भेदंदिवं त्रिविधमक्कुं।

इंतेकविंशतिभेदभिन्नंगळोळु प्रथमोद्दिष्टसंख्यातजघन्यमेरडरूपुगळक्कुं। संख्यातं भेदग्राहियप्पुदरिंद मोंदक्क भेदत्वमप्पुदरिनदं बिट्टेरडक्के पहृणमक्कुमिंदु संख्यातसर्वजघन्यमेंदु पेळल्पट्टुदु। मूरु मोदलागि परीतासंख्यातजघन्यराशियोळोंदं कुविसिदोडे संख्यातोत्कृष्टमप्पुदरोळो दु रूपुगुंदिदोडे संख्यातचरममध्यविकल्पमक्कुमा परीतासंख्यातजघन्यप्रमाणमावुदेंदोडे

प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानन्तचतुष्टयम् ।
तृतीयं तीर्थकर्तारं संभवेशं नमाम्यहम् ॥१॥

अत्रोपयोगिलोकोत्तरगणितमुच्यते—तत् संख्यातमसंख्यातमनन्तमिति त्रिधा। तत्र संख्यातं जघन्यं मध्यममुत्कृष्टमिति त्रिधा। असंख्यातं तु परीतं युक्तं द्विकवारमिति त्रिधापि जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं सप्तधा भवति। तथानन्तमपि तथा। एतेषु तदेकविंशतिभेदेषु जघन्यसंख्यातं द्विसंख्यं। तस्य भेदग्राहकत्वेन एकस्यैतदभावात्। त्र्यादीनां तु तन्मध्यमभेदत्वेन द्विकस्यैव तद्भावात्। उत्कृष्टसंख्यातं रूपोनजघन्यपरिमितासंख्यात-

---

जिन्होंने घातिकर्मोंको नष्ट करके अनन्तचतुष्टयको प्राप्त कर लिया है, उन तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथको नमस्कार करता हूँ।

अब यहाँ उपयोगी अलौकिक गणित कहते हैं। अलौकिक मानके चार भेद हैं—द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। उनमें-से द्रव्यमानके दो भेद हैं—संख्यामान और उपमामान। संख्यामानके तीन भेद हैं—संख्यात, असंख्यात, अनन्त। उनमें-से संख्यातके तीन भेद हैं—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। असंख्यात परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यातके भेदसे तीन प्रकारका होनेपर भी प्रत्येकके जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद होनेसे नौ प्रकारका है। इसी तरह अनन्त भी परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्तमें-से प्रत्येकके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद होनेसे नौ प्रकारका है। इन इक्कीस भेदोंमें-से जघन्य संख्यात दोकी संख्या है। क्योंकि एकसे गुणा करनेपर या एकका भाग देनेपर न वृद्धि होती है और न हानि होती है, अतः भेदका ग्राहक होनेसे दोकी संख्याको ही जघन्य संख्यात माना है। रही तीन आदि संख्या, सो वे मध्यम संख्यातके भेद होनेसे दोको ही जघन्य संख्यात कहा है। एक कम जघन्यपरीतासंख्यात उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण है।

चरमानवस्थितकुंडसर्षपप्रमितमक्कु मा चरमानवस्थितकुंडमें बुवें तेंदोडे :—पेळ्दें ।—अनवस्था-कुंडमें बु शलाकाकुंडमें बु प्रतिशलाकाकुंडमें बु महाशलाकाकुंडमें बितु नाल्कुकुंडंगळ्[4] जंबूद्वीपोपमानंगळ्प्रत्येकमेकैकलक्षप्रमाणयोजनव्यासंगळं सहस्रयोजनोत्सेधंगळ् स्थापिसल्पडुवुवु ।

अवरोळ् प्रथमोद्दिष्टानवस्थाकुंडमं शिखाफलकसहितमागि सर्षपंगळ् तुंबल्पडुववुमंतु तुंबिद प्रथमानवस्थितकुंडसर्षपप्रमाणंगळ्गोनितक्कुमेंबोडे सासिरदो भैनूरतो भत्तेळु षड्वार-कोटिगळं, पत्तोंबत्तुलक्षमुमिप्पत्तोंभत्तु सासिरद मुन्नूरतो भत्तेळु षड्वारकोटिगळु, मयवत्तो बु लक्षमुं मूवत्तो बु सासिरवरु नूर मुवत्तारु चतुर्व्वारकोटिगळं, मुवत्तारु लक्षमुं मुवत्तारु सासिरव मूनूरुवत्तमूरु त्रिवारकोटिगळु, मरवत्तमूरु लक्षमुमरुवत्तमूरु सासिरवरुनूर मूवत्तारु कोटिकोटिगळं, मूवत्तारुलक्षमुं मूवत्तारु सासिरव मूनूरुवत्तमूरु कोटिगलु मरुवत्तमूरुलक्षमुमरुवत्तमूरु सासिरवरुनूर मूवत्तारुसर्षपंगळ् मो बु सर्षपव चतुरेकादश भागंगळप्पुवु । १९९७ ११२९३८४ ५१३१६३६ ३६३६३६३६३ ६३६३६३६३ ६३६३ ६३६३६३६ । $\frac{४}{११}$ मितु सर्षपंगळं देवनागलु मेणुमनुष्यं बुद्धियिवं करतलदोळ्तुंबिकोंडु जंबूद्वीपं मोदल्गोंडु द्वीपदोळोंदुं समुद्रदोळोंदं कर्मविदं कुडुत्तं पोगि यावेडेयोळा सर्षपंगळ् परिसमाप्तमंगळप्पुवा द्वीपं मेणुमासमुद्रमागलवु पूर्ति परेगण द्वीपसमुद्रं-

---

मात्रम् । कियत्तज्जघन्यपरिमितासंख्यातम् ? इति चेदुच्यते अनवस्था-शलाका-प्रतिशलाका-महाशलाकानामानि[1] प्रमाणयोजनलक्षव्याससहस्रावगाधानि जम्बूद्वीपोपमानानि चत्वारि कुण्डानि कर्तव्यानि । तत्र अनवस्थाकुण्डं सर्षपैरेकसहस्रनवशतसप्तनवतिषड्वारकोट्येकादशलक्षैकाशीतिसहस्रत्रिंशत्तमचतुरशीतिपञ्चवारकोट्येकपञ्चाशल्लक्षैकत्रिंशत्सहस्रषट्शतषड्त्रिंशच्चतुर्वारकोटिषट्त्रिंशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रत्रिंशत्तमत्रिषष्टित्रिवारकोटित्रिषष्टिलक्ष-त्रिषष्टिसहस्रषट्शतषड्त्रिंशत्कोटीकोटिषट्त्रिंशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रत्रिंशत्तमत्रिषष्टिकोटित्रिषष्टिलक्षत्रिषष्टिसहस्रषट्-शतषड्त्रिंशत्संख्यैश्चतुरेकादशभागाधिकैः १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३-६३६३६३६३६ $\frac{४}{११}$ सशिखं भृत्वा अन्यमेकं सर्षपं शलाकाकुण्डे निक्षिप्य तदनवस्थाकुण्डसर्षपान्मत्या मनुष्यो

अतः जघन्यपरीतासंख्यातका प्रमाण कहते हैं—अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका नामके चार कुण्डोंकी कल्पना करें। प्रत्येक कुण्ड प्रमाण योजनसे एक लाख योजनका व्यास और एक हजार योजनकी गहराईको लिये हुए जम्बूद्वीपके प्रमाण हो। इस अनवस्था कुण्डको सरसोंसे मुख तक भरनेके बाद उसके ऊपर आकाशमें जितनी ऊँचाई तक वह भरा जा सकता हो, भरनेपर समस्त सरसोंका प्रमाण एक हजार नौ सौ सत्तानवे कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि, ग्यारह लाख उनतीस हजार तीन सौ चौरासी कोटि कोटि कोटि कोटि कोटि, इक्यावन लाख इकतीस हजार छह सौ छत्तीस कोटि कोटि कोटि कोटि, छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीन सौ त्रेसठ कोटि कोटि कोटि, तरेसठ लाख तरेसठ हजार छ सौ छत्तीस कोटि कोटि, छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीनसौ तरेसठ कोटि, तरेसठ लाख तरेसठ हजार छ सौ छत्तीस तथा चारबटे ग्यारह १९९७, ११२९३८४, ५१३१६३६, ३६३६३६३, ६३ ६३ ६३६, ३६ ३६ ३६३, ६३ ६३ ६३६ $\frac{४}{११}$ होता है। इस प्रकार शिखा तक अनवस्थाकुण्डके एक बार भरनेपर शलाकाकुण्डमें एक सरसों डाल दें। उस अनवस्था कुण्डकी सरसोंको

---

१. अनवस्था। २. शलाका। ३. प्रतिशलाका। ४. महाशलाका इंतुमाल्कुकुंडंगलु। ५. क विनितुं। ६. ब °काख्यानि चत्वारि कुण्डानिवृत्तानि कर्तव्यानि। तानि प्रमा°।

गळनोळकोंड सूचीव्यासमं तंदु सहस्रयोजनोत्सेधमनुळ्ळ द्वितीयानवस्थितकुंडमं शिखाफलसहितमागि तुंबि । तुंबिसिंदु शलाकाकुंडदोळु बेरेरडु सर्षपंगळं कल्पिसि मोदलोंदु मनिगळिनोंदु-मनितेरडुमं हाइक्कि मत्ता द्वितीयानवस्थितकुंडसर्षपंगळं मुंनिनंते मुंदण द्वीपसमुद्रंगळनोळकोंदं समुद्रक्कोंदं कुडुत्तं पोगि यावडेयोळा सर्षपंगळ्समाप्तंगळक्कुं अवू गूडि पेरगण समस्तद्वीपसमुद्रंगळनोळकोंड सूचीव्यासमं तंदु सहस्रयोजनोत्सेधमप्प तृतीयानवस्थितकुंडमं शिखाफलं बेरसुतुंबि तुंबिसिंदु मुंनिन शलाकाकुंडदोळ्मत्तोंदु सर्षपमं बेरोंदं कल्पिसि हाइक्किलल्लिमूरु सर्षपंगळक्कुमल्लिवं बळिका तृतीयानवस्थाकुंडसर्षपंगळु मुंनिनंते मुंदण द्वीपसमुद्रंगळिगतुपरिसमाप्तमाहुवु मोदलोंदु पेरगण द्वीपसमुद्रंगळनितुमनोळकोंडु सूचीव्यासमं तंदु सहस्रयोजनोत्सेधमप्प चतुर्थानवस्थितकुंडमं सर्षपंगळिं शिखिबेरसु तुंबितुंबिसिंदु मत्तोंदु सर्षपमं बेरोंदं कल्पिसि शलाकाकुंडदोळु हाइक्कलदु कूडि नालकु शलाकेगळप्पुवितु क्रमदिंदनवस्थाकुंडगळं नडसि नडसि तुंबि तुंबिसिंदोंदु सर्षपंगळं हाइक्कुत्तं बरलु शलाकाकुंडमुमा अनवस्थाकुंडमु मोवले तुंबुगुमंतु तुंबुतिरलु शलाकाकुंडं तुंबिदुदेंदु प्रतिशलाकाकुंडदोळु बेरोंदु सर्षपमं कल्पिसि हाकि शलाकाकुंडमं बळिकेय्दु मुंनिनंतेयनवस्थाकुंडंगळं नडसि तुंबि तुंबि शलाकाकुंडमुमं द्वितीयवारमुं तुंबि प्रतिशलाकाकुंडदोळ्मुंनिनंते बेरोंदु

देवो वा गृहीत्वा जम्बूद्वीपादिद्वीपसमुद्रेषु एकैकस्मिन् दत्ते यत्र द्वीपे समुद्रे वा परिसमाप्यन्ते तावद्द्वीपसमुद्रसूचीव्यासं पूर्वोक्तागाधं द्वितीयमनवस्थाकुण्डं कृत्वा सशिखं सर्षपैर्भृत्वा शलाकाकुण्डे अपरं सर्षपं निक्षिपेत् । तत्कुण्डसर्षपान् तदग्रतनद्वीपसमुद्रेषु एकैकं दत्वा तत्सहितपूर्वद्वीपसमुद्रव्यासं प्रागुक्तागाधं तृतीयमनवस्थाकुण्डं कृत्वा सर्षपैः सशिखं भृत्वा प्राक्तनशलाकाकुण्डे अपरं सर्षपं निक्षिपेत् । अनेन क्रमेण प्रागुक्तैकनवाद्यङ्ककृतसंख्यामात्रेषु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु शलाकाकुण्डं सशिखमेव भियते-तदा प्रतिशलाकाकुण्डे [illegible] पुनः शलाकाकुण्डं रिक्तीकृत्य पुनस्तावत्सु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु शलाकाकुण्डं भियते तदा प्रतिशलाकाकुण्डे अपरं सर्षपं निक्षिपेत् । अनेन क्रमेणैकनवाद्यङ्कवर्गमात्रेषु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु प्रतिशलाकाकुण्डमपि भियते

मनुष्य अपनी बुद्धिके द्वारा अथवा देव ग्रहण करके जम्बूद्वीपसे लेकर प्रत्येक द्वीप और समुद्रमें एक-एक सरसों क्षेपण करें। ऐसा करनेपर जिस द्वीप या समुद्रमें सरसों समाप्त हों, उतने द्वीप समुद्रोंके सूचीव्यास प्रमाण चौड़ा तथा एक हजार योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुण्ड करके उसे भी पूर्ववत् शिखा पर्यन्त सरसोंसे भरकर शलाका कुण्डमें दूसरी बार एक सरसों क्षेपण करें। उस कुण्डके सरसोंको उससे आगेके द्वीपसमुद्रोंमें एक-एक सरसों क्षेपण करनेपर जिस द्वीप या समुद्रमें वे सरसों समाप्त हों, वहाँ तकके समस्त पूर्व द्वीपसमुद्रोंके व्यास प्रमाण चौड़ा और एक हजार योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुण्ड करके उसे शिखा तक सरसोंसे भरकर पूर्वोक्त शलाका कुण्डमें तीसरी बार एक सरसों क्षेपण करें। पुनः उसी प्रकार करें। इस क्रमसे पूर्वोक्त एक नौ आदि अंकोंकी संख्यामात्र अनवस्था कुण्डोंके होनेपर शलाका कुण्ड शिखा पर्यन्त भरता है। शलाका कुण्डके भरनेपर प्रतिशलाकाकुण्डमें एक सरसों क्षेपण करें। पुनः शलाकाकुण्डको खाली करके उसी तरह अनवस्था कुण्डके द्वारा उसे भरना चाहिए। उक्त एक नौ आदि अंक प्रमाण अनवस्थाकुण्डोंके होनेपर शलाका कुण्ड भरता है। उसके भरनेपर प्रतिशलाका कुण्डमें पुनः एक सरसों क्षेपण करें। इस प्रकार क्रमसे एक नौ आदि अंकोंके वर्ग प्रमाण अनवस्था कुण्डोंके होनेपर प्रतिशलाका कुण्ड भी भर जाता है। प्रतिशलाका कुण्डके भरनेपर महाशलाका कुण्डमें अन्य सरसों क्षेपण करें। इस

---

१. क हाकि। २. म °बिदुदेंदु।

सर्षपमं कल्पिसि हाकिदोडवरोळेरडु सर्षपंगळप्पिंतु प्रतिशलाकाकुंडमुं तुंबिदागळा पिदण शलाकाकुंडमुमनवस्थाकुंडमुमेरडुं तुंबिर्प्पुवंतु मूरुं कुंडंगळं तुंबिरला प्रतिशलाकाकुंड तुंबिदं बु महाशलाकाकुंडदोळो दु सर्षपमं बेरो दं मुन्निनंते कल्पिसि हाकि मत्ता अनवस्थाकुंडं नडवु शलाकाकुंड तुंबुगुमा शलाकाकुंडमं तुंबि तुंबि प्रतिशलाकाकुंडं तुंबुगुमा प्रतिशलाकुंडं तुंबि तुंबि महाशलाकाकुंडमुं तुंबिदागळ् पिदण प्रतिशलाकाकुंडमुं शलाकाकुंडमुमनवस्थाकुंडमुं नाल्कुं तुंबिर्प्पुवंतु तुंबिदनवस्थाकुंडमवु चरमानवस्थितकुंडमें बुवंकुमा कुंडसर्षपंगळु परीतासंख्यातजघन्यराशि प्रमाणमप्पुवु ॥

इल्लि त्रैराशिकमं माडल्पडुगु । शलाकाकुंडदोळो दु सर्षपमं हाइक्कुत्तिरलु आनुमो दनवस्थाकुंडमक्कु । मागळु शलाकाकुंडदोळेकनवाविमात्रमं हाकलिनितुमनवस्थाकुंडंगळप्पुवें दोडे प्र १। फल १। इ १९=। मत्तं प्रतिशलाकाकुंडदोळो दु सर्षपनिक्कलेत्तलानुमनवस्थाकुंड-
१९
गळिंगे नवमात्रमागलागळा प्रतिशलाकाकुंडदोळेंगे नवमात्रसर्षपंगळं प्रक्षेपिसुत्तिरलेनितुमनवस्थाकुंडमप्पुवें दोडे प्र=प्र १। फल। आ १९=इ। प्रति १९=मत्तं महाशलाकेयोळो दु सर्षपक्के

तदा महाशलाकाकुण्डे एकं सर्षपं निक्षिपेत्। अनेन क्रमेणैकनवादिघनमात्रेषु अनवस्थाकुण्डेषु गतेषु महाशलाकाकुण्डमपि भ्रियते तदा प्राक्तनानि प्रतिशलाकाशलाकानवस्थाख्यान्यपि कुण्डानि भ्रियन्ते। तदात्र मध्यवरममनवस्थाकुण्डं तत्र यावन्तः सर्षपास्तत्प्रमाणं रूपोनं चेत्तदोत्कृष्टसंख्यातं भवति तत्संदृष्टिः १५ संपूर्णं तदा जघन्यपरीतासंख्यातं भवति तत्संदृष्टिः १६ अस्योपरि एकाद्येकोत्तरक्रमेण सर्वेषु मध्यपरीतासंख्यातविकल्पेषु गतेषु यदा अघन्यपरीतासंख्यातं विरलयित्वा रूपं प्रति तदेव दत्त्वा परस्परगुणितलब्धमात्रं रूपोनं जायते तदा उत्कृष्ट-

परीतासंख्यातं भवति। तत्संदृष्टिः २ संपूर्णं तदा जघन्ययुक्तासंख्यातं भवति। २। इदमावलिसदृशं। अस्योपरि एकाद्येकोत्तरक्रमेण मध्यमान् युक्तासंख्यातविकल्पान् नीत्वा जघन्ययुक्तासंख्यातवर्गमात्रं रूपोनं

तदा उत्कृष्टयुक्तासंख्यातं भवति ४। सम्पूर्णं तदा जघन्यद्विकवारासंख्यातं भवति। ४। अस्योपरि द्विरूपोन-

---

तरह एक नौ आदि अंकोंके घन प्रमाण अनवस्थाकुण्डोंके होनेपर महाशलाका कुण्ड भी भर जाता है। महाशलाकाकुण्डके भरनेपर पहलेके प्रतिशलाका, शलाका और अनवस्थाकुण्ड भी भर जाते हैं। उस समय अन्तिम अनवस्थाकुण्डमें जितनी सरसों समाती है, उनके प्रमाणमें एक कम करनेपर उत्कृष्ट संख्यात होता है। उसकी संदृष्टि १५ है। और अन्तिम अनवस्थाकुण्डकी सम्पूर्ण सरसोंका जितना प्रमाण है, उतना ही जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण है। उसकी संदृष्टि १६ है। जघन्य परीतासंख्यातके ऊपर एक-एक बढ़ते हुए क्रमसे एक कम उत्कृष्ट परीतासंख्यात पर्यन्त मध्यम परीतासंख्यातके विकल्प (भेद) होते हैं। अब जघन्य परीतासंख्यातका विरलन करके अर्थात् जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण एक-एक स्थापित करके प्रत्येक एकके अंकके ऊपर जघन्य परीतासंख्यातको देकर सब परीतासंख्यातोंको परस्परमें गुणा करनेपर जघन्य युक्तासंख्यातका प्रमाण आता है। उसमें-से एक कम करनेपर उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है। जघन्य युक्तासंख्यात और आवली समान हैं अर्थात् एक आवलीमें जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं। या इतने समयकी आवली है। जघन्य युक्तासंख्यातके ऊपर एक-एक बढ़ते हुए एक कम उत्कृष्ट युक्तासंख्यात पर्यन्त मध्ययुक्तासंख्यातके भेद होते हैं। जघन्य युक्तासंख्यातका वर्ग करनेपर जघन्य असंख्याता-

---

१. म °गल्तुवि। २. म °क्कलेत्तलानु°। ३. ह्यिक्कलेनितु°।

अनवस्थाकुंडंगळेगे नवदर्ग्गमात्रंगळगलागळु महाशलाकाकुंडदोळेगे नवमात्रसर्षपंळ प्रक्षेपिसुत्तिरलेनितु मनवस्थाकुंडंगळप्पुवेनलु प्र १। फल १९=१९। इ। १९=समस्तानवस्थाकुंडंगळिनितु १९=१९=१९=नडदु कडेयदे बंदर्त्तमी जघन्यपरिमितासंख्यातराशिगे संदृष्टि १६। ई राशिय मेलेकाद्येकोत्तर क्रमदिंदं परिमितासंख्यातमध्यमविकल्पंगळ्नडेववा परीतासंख्यातजघन्यराशियं १६ विरळिसि रूपं प्रति तद्राशियने कोट्टु संगुणिसल्पडुत्तिरलु लब्धराशियुक्तासंख्यातजघन्यमवकुमिदक्के संदृष्टि २। ई राशिये प्रसिद्धमप्पावळियें बवक्कुं। ई राशियोळोंदु रूपं कळेदोडे परिमितासंख्यातोत्कृष्टमक्कु। २। मत्तमावलिय मेलेकाद्येकोत्तरक्रमदिं पेच्चें नडेव राशिगळु युक्तासंख्यातमध्यमविकल्पंगळप्पुवा युक्तासंख्यातजघन्यराशियं वर्गगोंडडे द्विकवारासंख्यातजघन्यराशियक्कुमदक्के संदृष्टि ४। ई राशियोळोंदु रूपं कळेदोडे युक्तासंख्यातोत्कृष्टराशिप्रमाणमक्कु ४—१ मा द्विकवारासंख्यातजघन्यराशिय मेलेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदं पेच्चि नडेव राशिगळु विकवारासंख्यात मध्यमविकल्पंगळप्पुवंता द्विकवारासंख्यातजघन्यराशियं शलाका विरलन देयमेंदु मूरडेयोळक्रमदिंदं स्थापिसि। श ४। वि ४। दे ४। द्वितीयविरलनराशियं विरलिसि रूपं प्रतिदेय राशियं

जघन्यपरीतानन्तपर्यन्तं एकाद्येकोत्तरक्रमेण मध्यमान् द्विकवारासंख्यातविकल्पान् जानन् जघन्यद्विकवारासंख्यातं शलाकाविरलनदेयरूपेण संस्थाप्य श ४। वि ४। दे ४। विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा

संख्यात होता है। उसमें एक कम करनेपर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है। जघन्य असंख्यातासंख्यातके ऊपर एक-एक बढ़ते हुए एक कम उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात पर्यन्त मध्यम असंख्यातासंख्यातके भेद होते हैं। एक कम जघन्य परीतानन्त प्रमाण उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होता है।

अब जघन्य परीतानन्तको कहते हैं—जघन्य असंख्यातासंख्यात राशिको शलाका विरलन और देय राशिके रूपमें तीन जगह स्थापित करें। विरलन राशिका विरलन करके अर्थात् जघन्य असंख्यातासंख्यातको अलग-अलग एक-एकके रूपमें फैलाकर लिखो और उनके ऊपर देय राशिको स्थापित करो। अर्थात् जघन्य असंख्यातासंख्यातका जितना प्रमाण है, उतनी जगह जघन्य असंख्यातासंख्यातको रखकर परस्परमें एक दूसरेसे गुणा करो। और एक बार गुणा करनेपर जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण शलाका राशिमें-से एक कम करो। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उतनी ही विरलन और देयराशि स्थापित करो। विरलन राशिका विरलन करके देयराशिको एक-एकके ऊपर स्थापित करके परस्परमें गुणा करो। और शलाकाराशिमें-से एक और घटा दें। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, पुनः उस राशि प्रमाण विरलन और देयराशि स्थापित करके विरलन राशिको एक-एकके रूपमें विरलित करके प्रत्येकपर देयराशि देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से पुनः एक कम करो। ऐसा करते-करते जब प्रथम बार स्थापित जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण शलाका राशि सब समाप्त हो जावे, तब जो राशि उत्पन्न हो, उतने ही परिमाणको लिये शलाका विरलन और देयराशि स्थापित करो। विरलन राशिका विरलन करके देयराशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से एक कम करो। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, उतनी ही विरलन और देयराशि स्थापित करके विरलन राशिका विरलन करके देयराशिको उसपर देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से एक कम करो। ऐसा करते-करते

कोट्टु परस्परं गुणिसि बंद लब्धराशियं विरलन देयमें बेरडेयोळु क्रमदिदं स्थापिसि । वि a दे a बळिकोंडुरूपं शलाकाराशियोळ्कळदु श ४१ । वि a । दे a । मत्तमा विरलनराशियं वि a । विरलिसि रूपं प्रति देयराशियुमनुवने दे a । कोट्टु परस्परं गुणिसि पूर्व्वशलाकाराशियोळ्मत्तों बु रूपं कळदु ४–२ तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि तद्राशियने कोट्टु संगुणं माडि पूर्व्वशलाकाराशियोळु मत्तों बु रूपं कळेवुदितु ४–३ प्रथमशलाकाराशियं निष्ठापिसि तत्रतनमहाराशियबुवुं द्विकवारासंख्यातमध्यमविकल्पमप्पुदाराशियं शलाकाविरलन देयमें बु त्रिप्रतिकं माडि श a वि a दे a मुन्निनंतेविरलन राशियं विरलिसि प्रतिरूपं तद्राशियं कोट्टु परस्परं गुणिसि शलाकाराशियोळों बु रूपं कळेवु श a–१ तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि रूपं प्रति तद्राशियनिसु संगुणं माडि पूर्व्वशलाकाराशियोळ्मत्तों दं कळेवु । श a । २ वितु द्वितीयशलाकाराशियं निष्ठापिसि तच्चरमोत्पन्नमहाराशियबुवुं द्विकवारासंख्यातमध्यमविकल्पमक्कुमा राशियं मत्ते शलाकाविरलनदेयमें बु त्रिप्रतीकं माडि श a वि a दे a मुन्निनंते विरलनराशियं विरलिसि रूपं प्रति तद्राशियने कोट्टु परस्परं गुणिसि तृतीयशलाकाराशियोळों बु रूपं कळेवु a १ तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि तद्राशियं

परस्परं गुणितं शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् । श ४–१ । पुनस्तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् । श ४–२ । पुनस्तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् । अनेन क्रमेण प्रथमवारस्थापितशलाकाराशौ निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशिमपि शलाकाविरलनदेयक्रमेण संस्थाप्य श a । वि a । दे a । प्राग्वत् विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श a–१ । तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श a–२ । एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशौ निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशिमपि प्राग्वत् शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श a । वि a । दे a । विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणयित्वा शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श a–१ । पुनस्तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् । श a–२ । एवं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशावपि निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशौ जगच्छ्रेणिघनप्रमिताश्चरवारो धर्माधर्मैकजीवलोकाकाशप्रदेशराशय असंख्यातलोकमात्रोऽप्रतिष्ठितप्रत्येकराशिः = a असोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः प्रतिष्ठितप्रत्येकराशिः = a × = a एते षट्राशयः प्रक्षेप्तव्याः ।

जब दूसरी बारकी शलाका राशि भी समाप्त हो जावे, तब जो राशि उत्पन्न हुई हो, उतने ही परिमाणकी विरलन देय और शलाका राशि स्थापित करो। विरलन राशिका विरलन करके और प्रत्येकपर देयराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करो और शलाकामें-से एक कम कर दो। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, उतनी ही विरलन और देयराशि रखकर विरलन राशिका विरलन करो और देयराशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें गुणा करो तथा शलाका राशिमें से एक कम करो। ऐसा करते-करते जब तीसरी बारकी भी शलाका राशि समाप्त हो जावे, तब जो राशि उत्पन्न हो, उसमें जगतश्रेणिके घन अर्थात् लोकराशि प्रमाण धर्मद्रव्यके प्रदेश, उतने ही अधर्मद्रव्यके प्रदेश, उतने ही एक जीवके प्रदेश, उतने ही लोकाकाशके प्रदेश, असंख्यात लोक प्रमाण अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशि, इस राशिसे असंख्यात गुणा होनेपर भी असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवोंकी राशि, ये छह राशियाँ मिलाना। सबको जोड़नेपर जो परिमाण उत्पन्न हो, उतने ही परिमाणवाली शलाका विरलन और देयराशि

---

१. म °मुमदने । १. म °रमोत्तमर्म ।

प्रतिरूपमिप्पु गुणं माडि पूर्ववृतीयशलाकाराशियोळ् मत्तों दु रूपं कळेयुवेंता श a। २ तृतीय-शलाकाराशियं निष्ठापिसि तत्रोत्पन्नराशियनुवुं द्विकवारासंख्यातमध्यमविकल्पराशियक्कु मा महाराशियं स्थापिसि धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यमेकजीवप्रदेश लोकाकाशप्रदेशमी नाल्कुराशिय प्रदेशांगळ्-समानंगळसमानंगळागुत्तं जगच्छ्रेणिघनप्रमितंगळ् प्रत्येकमप्पुवी नाल्कु राशिगळंमद≡अ≡एकजी ≡लोका≡अप्रतिष्ठितप्रत्येकांगळ संख्यातलोकमात्रांगळुम≡a प्रतिष्ठितप्रत्येकांगळ संख्यातलोकमात्रं-गळोंगुत्तमप्रतिष्ठितप्रत्येकमं नोडलसंख्यातलोकमात्रगुणितंगळक्कु ≡ a ≡ a मी राशियुमितारु राशिगळनु महाराशियोळ्कूडि मत्तमा महाराशियं शलाकाविरलन देयमेंबु त्रिप्रतीकं माडि श a विर a। दे a॥ विरलनदेय क्रमविदं शलाकात्रयनिष्ठापनं गेय्दु तत्रोत्पन्नमहाराशियनुवुं द्विकवार-असंख्यातमध्यमविकल्पराशियक्कुमी महाराशियोळ् उत्सर्पणावसर्पणाकालद्वयमं कल्पमेंबुवु। आ कल्पसमयसंख्येयुमं प ७॥ ("३॥") स्थितिबंधप्रत्ययंगळुमं≡a अनुभागबंधाध्यवसायंगळुमं ≡ a≡a योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदंगळुम ≡ a ≡ a ≡ a निन्तो नाल्कं राशिगळुमनल्लि कूडि मत्तमा महाराशियं शलाकाविरलनदेयमेंबु त्रिप्रतीकं माडि श a। वि a दे a मुन्निनंते विरलन देयक्रमविदं शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्नमहाराशिय संख्यातमं मोरि परीतानन्त जघन्य-

---

तं महाराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श a। वि a। दे a। विरलनदेयक्रमेण प्राग्वत् शलाकात्रये निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशौ उत्सर्पिण्यवसर्पिणीद्वयात्मकसंख्यातसमयमात्रकल्पसमयराशिः प a असंख्यातलोकमात्र-स्थितिबन्धप्रत्ययराशिः ≡ a असंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रोऽनुभागबन्धा(ध्य)ध्यवसायराशिः ≡ a ≡ a असंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रो योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदराशिः ≡ a ≡ a ≡ a एते चत्वारो राशयो मेलयितव्याः। तं महाराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श a। वि a। दे a प्राग्वदेव विरलनदेयक्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तद्रूपोनं तदोत्कृष्टद्विकवारासंख्यातं भवति २५६ सम्पूर्णं तदा जघन्यपरीतानन्तं भवति। तत्संदृष्टिः २५६। अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान्मध्यमपरीतानन्तविकल्पान्नीत्वा इदं जघन्यपरीतानन्तं विरलयित्वा रूपं प्रति इदमेव दत्वा परस्परं गुणिते यल्लब्धं तद्रूपोनं तदा उत्कृष्टपरी-तानन्तं भवति। तत्संदृष्टिः-ज जु अ-१ सम्पूर्णं तदा जघन्ययुक्तानन्तं भवति तत्संदृष्टिः। ज जु अ। इदम-

---

स्थापित करो। पहलेकी ही तरह विरलन राशिका विरलन और देयराशिको उसपर स्थापित कर परस्परमें गुणा करना और शलाका राशिमें-से एक कम करना, आदिकी विधिसे जब शलाका राशि तीसरी बार भी समाप्त हो जाये तब जो राशि उत्पन्न हो, उसमें ये चार राशियाँ मिलाना—उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालके संख्यात पल्य प्रमाण समयराशि, असंख्यात लोक-मात्र स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थान, इनसे असंख्यात लोक गुणे होनेपर भी असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थान, तथा इनसे असंख्यात-लोकगुणे होनेपर भी असंख्यात लोक मात्र योगोंकी उत्कृष्ट अविभागी प्रतिच्छेद राशि। इनके मिलानेपर जो राशि उत्पन्न हो, उस राशि प्रमाण विरलन देय शलाका राशि स्थापित करके पूर्व रीतिसे तीन बार शलाका राशि स्थापित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, वह जघन्य परीतानन्त है। इसके ऊपर एक-एक बढ़ते-बढ़ते एक कम उत्कृष्ट परीतानन्त पर्यन्त मध्यम परीतानन्तके भेद जानना। एक कम जघन्य युक्तानन्त प्रमाण उत्कृष्ट परीतानन्त है। अब

---

१. म °प्रहितंग°। २. म °लमागुत्त°।

राशियक्कुमदक्के संदृष्टि २५६ ई राशियोळ्कॆंदु रूपं कळेदोडे द्विकवारासंख्यातोत्कृष्टराशियक्कु २५६।१ मा परीतानंतजघन्यराशियं विरलिसि रूपं प्रति तन्नाशियं कोट्टु परस्परं गुणिसिदोडुत्पन्नलब्धराशियुक्तानंतजघन्यप्रमाणमक्कुमीराशियभव्यजीवंगळ समानमक्कुमिदक्के संदृष्टि । ज । जु । आ । ई राशियोळोंदु रूपं कुंदिसिदोडे परीतानन्तदुत्कृष्टमक्कुं । परीतानंतजघन्यराशिय मेलेकाद्येकोत्तर वृद्धिक्रमदिंद नडदु मध्यमविकल्पराशिगळागुत्तं बंदिदु परीतानंतोत्कृष्टराशियक्कुं मेबुवर्थं ज जु अ=१ मा अभव्यजीवराशिसमानमप्प युक्तानन्तजघन्यराशियं वॆग्गंगळोळ्सिरलु जघन्यद्विकवाराऽनन्तराशियक्कुमिदक्के संदृष्टि । ज जु । अ । व । ई द्विकवारानन्तजघन्यराशियोळोंदु रूपं होनं माडि बोडे युक्तानंतजघन्यराशिय मेलेकाद्येकोत्तरवृद्धिक्रमदिंद नडदु युक्तानंतमध्यमविकल्पराशिगळागुत्तं बंदिदु सर्व्वोत्कृष्टयुक्तानंतराशियक्कु । ज जु अ व १ ॥ मा द्विकवारानंतजघन्यराशियं ज जु अ व त्रिप्रतिकं माडि विरलनदेयक्रमदिंद शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्नराशियदु जघन्यद्विकवारानंतराशिय मेलेकाद्येकोत्तरवृद्धिक्रमदिंदं पेच्चिदंद द्विकवारानंत-

---

भव्यराशिसमं । अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान् मध्यमयुक्तानन्तविकल्पान् नीत्वा अस्य वर्गं गृहीत्वा रूपमूनं तदा उत्कृष्टयुक्तानन्तं भवति संदृष्टिः ज जु अ व–१ । सम्पूर्णं तदा जघन्यद्विकवारानन्तं भवति । संदृष्टिः ज जु अ व । अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान् रूपोनकेवलज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदराशिपर्यन्तान् मध्यमान् द्विकवारानन्तविकल्पान् जानन् जघन्यद्विकवारानन्तं त्रिःप्रतिकं कृत्वा प्राग्वत् शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तत्र सिद्धराशिः २ पृथिव्यादिचतुष्टयप्रत्येकवनस्पतित्रसराशिरहितसंसारिराशिरेव निगोदराशिः १३ = । अतः प्रत्येकवनस्पत्यधिकवनस्पतिराशिः १३ = इतोऽनन्तानन्तगुणपुद्गलराशिः १६ ख । इतोऽनन्तानन्तगुणो व्यवहारकालसमयराशिः । १६ ख ख । इतोऽनन्तानन्तगुणो अलोकाकाशप्रदेशराशिः १६ ख ख ख । एते षट् राशयः प्रक्षेपव्याः । तं राशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा क्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तत्र धर्माधर्मद्रव्ययोः अगुरुलघुगुणा-

---

२० जघन्य युक्तानन्तका प्रमाण कहते हैं—जघन्य परीतानन्तको एक-एकके रूपमें विरलन करके प्रत्येक एकपर जघन्य परीतानन्तको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, वह जघन्य युक्तानन्त है। इतनी ही अभव्य जीवोंकी राशि है। इसके ऊपर एक-एक बढ़ते एक कम उत्कृष्ट युक्तानन्त प्रमाण मध्य युक्तानन्तके भेद हैं। तथा एक कम जघन्य अनन्तानन्त प्रमाण उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है।

२५ अब जघन्य अनन्तानन्तको कहते हैं—जघन्य युक्तानन्तको जघन्य युक्तानन्तसे गुणा करनेपर जघन्य अनन्तानन्त होता है। इसके ऊपर एक-एक बढ़ते-बढ़ते एक कम केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण मध्यम अनन्तानन्तके भेद होते हैं। जघन्यअनन्तानन्त प्रमाण विरलन देय शलाका राशिके क्रमसे पहलेकी तरह तीन बार शलाका राशि स्थापित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो, उसमें ये छह राशियाँ मिलाना—सिद्ध राशि, पृथिवी आदि चार, ३० प्रत्येक वनस्पति और त्रसराशिसे रहित संसारी जीवराशि मात्र निगोदराशि, प्रत्येक वनस्पति सहित निगोदराशि प्रमाण वनस्पतिराशि, जीवराशिसे अनन्तगुणी पुद्गलराशि। इससे भी अनन्तानन्तगुणी व्यवहार कालके समयोंकी राशि। इससे भी अनन्तानन्तगुणी अलोकाकाशके प्रदेशोंकी राशि। ये छह राशियाँ मिलाना। इन सबको मिलानेसे जो परिमाण हुआ, उतना ही विरलन देय शलाका राशिके क्रमसे पूर्ववत् तीनबार शलाका राशि ३५ समाप्त होनेपर जो राशि उत्पन्न हो, उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यके अगुरुलघुगुणके

---

१. म °जघन्यमक्कुं° । २. म वग्गंगोलुत्तिरलु ।

मध्यमविकल्पमप्प राशियप्पुदा महाराशियोळु सिद्धराशियुं ३। पृथिव्यादिचतुष्टयं प्रत्येकवनस्पति-त्रसमेंबी मूरुं राशिगळिंद हीनमप्प निगोदराशियुं १३= पृथिव्यादिचतुष्टयं त्रसमुमेंबी राशिद्वय-विहीनं संसारिराशि निगोदराशियं नोडे साधिकमक्कुमप्पुदरिंदं ई साधिकवनस्पतिराशियु १३= मिदं नोडलनन्तानन्तगुणितमप्प पुद्गलराशियु १६ ख मिदं नोडलनन्तानन्तगुणितमप्प व्यवहार-कालसमयप्रमाणराशियु १६ ख ख मिदं नोडलनन्तानन्तगुणितमप्प अलोकाकाशप्रदेशप्रमाणराशियु १६ ख ख ख मेंबीयारुमनन्तानन्तात्मकराशिगळ् प्रक्षेपिसल्पडुवुवन्तु प्रक्षेपिसल्पट्ट महाराशियं त्रिप्रतीकं माडि विरलनदेयक्रमविदं वर्गितसंवर्गं माडि शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्न-महाराशियुं द्विकवारानन्तमध्यमविकल्पमक्कुमा महाराशियोळु धर्म्माधर्म्मद्रव्यंगळ अगुरुलघु-गुणाविभागप्रतिच्छेदंगळनन्तानंतंगळु ख ख प्रक्षेपिसल्पडुवुवन्तु प्रक्षेपिसल्पट्ट आ महाराशियं त्रिप्रतीकं माडि विरलनदेयक्रमविदं शलाकात्रयनिष्ठापनं माडि तत्रोत्पन्नराशियुं द्विकवारानंतमध्यम-विकल्पराशियक्कुमा महाराशियं केवलज्ञानदोळ् किंचिन्यूनं माडि मत्तमा किंचिन्यूनकेवलज्ञान-राशियं केवलज्ञाननुं नोडल्कक्षिप्तप्प तत्रोत्पन्नराशि केवलज्ञानानन्तैकभागमप्पुदरिंदा राशियो-

---

विभागप्रतिच्छेदसमूहमात्मकं (स्थाप्य) अपि पुनस्तस्मिन् एव क्षिप्ते सति द्विरूपं कृत्वा क्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तं राशिं केवलज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदसमूहे क्षपयित्वा पुनस्तत्रैव निक्षिप्ते उत्कृष्टद्विक-वारानन्तमुत्पद्यते। तत्संदृष्टिः के। यदीदं सर्वं संख्यातादिकमेकादिकं स्यात् तदा सर्वधारैवोक्ता भवति। तेन शेषाः सम-विषम-कृति-कृतिमातृक-घन-घनमातृक-अकृति-अकृतिमातृक-अघन-अघनमातृक-द्विरूपवर्ग-द्विरूप-घन-द्विरूपघनाघनाख्यास्त्रयोदश धारास्तस्यामेवोत्पन्ना इति जानीहि। तासु द्विरूपवर्गधारादीनामेवात्रोपयोगित्वात्ता एव तिस्रः उच्यन्ते। तत्र द्विरूपवर्गधारा तावत् द्वौ चत्वारः षोडश विसदलक्षपण्णं पण्णट्ठी बादालं एकट्ठं, एवं पूर्वपूर्वस्य कृतिक्रमेण संख्यातस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतासंख्यातस्य वर्गशलाकाराशिः। ततः

अविभाग प्रतिच्छेदोंका जो अनन्तानन्त प्रमाण है, वह मिलाना। वह मिलानेसे जो राशि हो, उस राशि प्रमाण विरलन देय शलाकाके क्रमसे तीन बार शलाका राशि स्थापित करके गुणा करते हुए जो राशि उत्पन्न हो, उसे केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहमें घटाकर और पुनः उसीमें मिलानेपर केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनन्तानन्तका प्रमाण होता है।

यदि ये सब संख्यात आदि एकको आदि लेकर हों, तो सर्वधारा ही कही जायेगी। इससे शेष समधारा, विषमधारा, कृतिधारा, अकृतिधारा, घनधारा, अघनधारा, कृति-मातृकधारा, अकृतिमातृकधारा, घनमातृकधारा, अघनमातृक धारा, द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा और द्विरूपघनाघनधारा ये तेरह धाराएँ उसीमें उत्पन्न जानो। इन धाराओंमें से द्विरूपवर्गधारा वगैरह ही यहाँ उपयोगी हैं, अतः उन्हीं तीनका यहाँ कथन किया जाता है।

दो के वर्गसे लेकर पूर्व-पूर्व संख्याका वर्ग करते हुए जो धारा चलती है, वह द्विरूप-वर्ग-धारा है। इसका प्रथम स्थान दो का वर्ग चार, चारका वर्ग सोलह दूसरा स्थान है, सोलहका वर्ग दो सौ छप्पन तीसरा स्थान है, उसका वर्ग पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस, जिसे संक्षेपमें पण्णट्ठी कहते हैं, चौथा स्थान है। उसका वर्ग ४२९४९६७२९६ जिसे संक्षेपमें बादाल कहते हैं, पाँचवाँ स्थान है। बादालका वर्ग एकट्ठी १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ छठा स्थान है। इस तरह पूर्व-पूर्वका वर्ग करते हुए संख्यात स्थान होनेपर जघन्य परीता-संख्यातकी वर्ग शलाका राशि होती है। उससे आगे संख्यात वर्ग स्थान जानेपर उसकी

मार्गदर्शक - आर्यिका श्री सुविधिमतिजी आर्यिका श्री सहजमतिजी

ळप्पनेयिप्पुदिरलनन्तानन्तोत्कृष्टमप्प महाराशि केवलज्ञानमेयमक्कु मवक्क संदृष्टि के ई पेळ्दुदे एकाधिकमादोडे सर्व्वधारियक्कुमी सर्व्वधारियोळे समा विषम। कृति। कृति मातृक। घन। घनमातृक। अकृति। अकृति मातृक। अघन। अघनमातृक। द्विरूपवर्ग। द्विरूपघन। द्विरूपघनाघन। मेंब त्रयोदश धारिगळ् पुट्टुवुदिवरोळ् द्विरूपवर्ग द्विरूपघन द्विरूपघनाघनमेंब कडेय मूरु धारिगळेल्लिगुपयोगिगळेंदु पेळ्दमत्तं तेंदोडे द्विरूपवर्गधारियं बुदु मेरडु। मालकु। पविमारु। सिन्नूरुरुवत्तारु। सासिरद मिन्नूरमूवत्तारुं। नानूरि (रे) प्पत्तोंभत्तुकोटियु नाल्वत्तोंभत्तुलक्षमु मरुवत्तेळु सासिरवयिनूर तोंभत्तारुं। बोंदु लक्षमु मेम्भत्तनाल्कुसासिरद नानूरुवत्तेळु कोटिकोटिगळुं नाल्वत्तनाल्कु लक्षमु मेळु सासिरद मूनूरेप्पत्तु कोटिगळुं। तों भत्तैदुलक्षमुमय्वत्तारु सासिरवरुनूरपविनारु। मितु पूर्व्वपूर्व्वकृतिगळागि संख्यातस्थानंगळनडेदोडेयोळु जघन्यपरीतासंख्यातराशिय वर्गशलाकाराशि पुट्टिदल्लिवं मुंदे संख्यातस्थानंगळनडेवर्द्धच्छेदराशि पुट्टुवल्लिवं मेले संख्यातवर्गस्थानंगळनडदु प्रथम मूलं पुट्टिदुवनंतरवर्गस्थानं जघन्यपरिमितासंख्यातराशि पुट्टिदुवल्लिवं मुंदे संख्यातवर्गस्थानंगळं नडदु प्रसिद्धमप्पावलि पुट्टिदुवनोम्मे

संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरिमितासंख्यातमुत्पद्यते। ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा आवलिरुत्पद्यते। तस्यामेकवारं वर्गितायां प्रतरावलिरुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यस्य वर्गशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यमुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा सूच्यङ्गुलमुत्पद्यते।

अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे आगे संख्यात वर्ग स्थान जानेपर जघन्य परीतासंख्यातका वर्गमूल उत्पन्न होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर जघन्य परीतासंख्यात आता है।

विशेषार्थ—दो के वर्गसे लगाकर जितनी बार वर्ग करनेपर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है, उसकी उतनी ही वर्ग शलाका होती है। जैसे चार बार वर्ग करनेपर पण्णट्ठी राशि उत्पन्न होती है, तो उसकी चार वर्गशलाका है। और विवक्षित राशिका जितनी बार आधा-आधा हो सकता है, उतने उस राशिके अर्द्धच्छेद होते हैं। जैसे सोलहका एक बार आधा करनेपर आठ, दूसरी बार आधा करनेपर चार, तीसरी बार आधा करनेपर दो और चौथी बार आधा करनेपर एक आता है। अतः सोलहकी अर्द्धच्छेद राशि चार है। और जिसका एक बार वर्ग करनेपर विवक्षित राशि आती है, उसे उस राशिका प्रथम वर्गमूल कहते हैं।

जघन्य परीतासंख्यातसे संख्यातवर्ग स्थान जानेपर आवली उत्पन्न होती है। आवलीका वर्ग करनेपर प्रतरावलि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जानेपर पल्यकी वर्गशलाका राशि आती है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जानेपर पल्यकी अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जानेपर पल्यका प्रथम वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर पल्य उत्पन्न होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जानेपर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर प्रतरांगुल उत्पन्न होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर जगत श्रेणिका घनमूल उत्पन्न होता है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जाकर जघन्य परीतानन्तकी वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे

---

१. म मेले।

वर्गिसिदडे प्रतरावलि पुट्टिदुवल्लिंद मेलेयुमसंख्यातवर्गस्थानंगळनडदु प्रसिद्धमप्प पल्यद वर्गशलाकेगळु पुट्टिदुवल्लिंदं मेलेयुमसंख्यातवर्गस्थानंगळनडेदर्द्धच्छेदराशि पुट्टिदुवल्लिंदं मेलें असंख्यातवर्गस्थानंगळनडदु प्रथममूलं पुट्टिदुववनोम्में वर्गिसिदोडे = पल्यं पुट्टिदुवल्लिंद मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळनडदु सूच्यंगुलं पुट्टिदुववनोम्में वर्गिसिदोडे प्रत-

मार्गदर्शक - आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

रांगुलं पुट्टिदुवल्लिंदं मेलें असंख्यातवर्गस्थानंगळनडदु जगच्छ्रेणिय घनमूलं पुट्टिदुवल्लिंदं मेल- ५
संख्यात वर्गस्थानंगळे नडेदु परीतानंतराशिय वर्गशलाकाराशि पुट्टिदुवल्लिंदं मेलसंख्यातराशि-
वर्गस्थानंगळं नडेदुमर्द्धच्छेदं पुट्टिदुवल्लिंद मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिदुववनोम्में
वर्गिसिदोडे परीतानंतजघन्यराशि पुट्टिदुवल्लिंद मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु युक्तानंतजघन्य-
राशि पुट्टिदुववनोम्में वर्गिसिदोडे द्विकवारानन्तराशि पुट्टिदुवल्लिंदंतस अनंतानंतवर्गस्थानंगळं
नडेदु सर्व्वजीवराशिय वर्गशलाकाराशि पुट्टिदुवल्लिंदं मेलनन्तवर्गस्थानंगळं नडेदर्द्धच्छेदराशि १०
पुट्टिदुवल्लिंद मेलनंतवर्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिदुववनोम्में वर्गं गोंडोडे सर्व्वजीवराशि
प्रमाणं पुट्टिदुवल्लिंदंतनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु सर्व्वपुद्गलराशिप्रमाणं पुट्टिदुवल्लिंदं मेलनंता-
नंतवर्गस्थानंगळं नडेदु सर्व्वकालराशिप्रमाणं पुट्टिदुवल्लिंदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु अ ेंय्या-

---

तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतराङ्गुलमुत्पद्यते । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिघनमूलमुत्पद्यते । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतानन्तस्य वर्गशलाकाराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा १५
तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरीतानन्तमुत्पद्यते । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जघन्ययुक्तानन्तमुत्पद्यते । तदभव्यराशिसमं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यद्विकवारानन्तमुत्पद्यते । ततः अनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा जीवराशेर्वर्गशलाका-
राशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाका राशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सर्वजीवराशिरुत्पद्यते । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा सर्वपुद्गल- २०
राशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा सर्वकालराशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाश-
प्रदेशराशिः । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतराकाशप्रदेशराशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा धर्माधर्मद्रव्य-
योरगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदराशिः । ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा एकजीवद्रव्यागुरुलघुगुणाविभाग-

---

असंख्यात वर्ग स्थान जाकर उसकी अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर जघन्य परीतानन्तका प्रथम वर्गमूल आता है। उसका एक बार २५
वर्ग करनेपर जघन्य परीतानन्त आता है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान जाकर जघन्य युक्तानन्त उत्पन्न होता है। इतना ही अभव्य राशिका प्रमाण है। उसका एक बार वर्ग करने-पर जघन्य अनन्तानन्त उत्पन्न होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जीवराशिकी वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्ग स्थान जाकर उसकी अर्द्धच्छेद शलाका राशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्ग स्थान जाकर उसका प्रथम वर्गमूल ३०
होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर सर्व जीवराशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सर्व पुद्गल राशि उत्पन्न होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सर्व काल राशि होती है। उससे अनन्तानन्त वर्ग स्थान जाकर श्रेणिरूप आकाशके प्रदेशोंका परिमाण होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर प्रतराकाशके प्रदेशोंका परिमाण होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु गुणोंके अविभाग ३५

काशप्रवेशप्रमाणं पुट्टिदुवनोम्मे वग्गिसिदोडे प्रतराकाशप्रवेशप्रमाणं पुट्टिदुवल्लिदं मेलनंतानंत-वर्गस्थानंगळं नडेदु धर्म्माधर्म्मद्रव्यंगळ गुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदप्रचयप्रमाणं पुट्टिदुवल्लिदमल्लमनंतानंतवर्गस्थानंगळनडेदुमेकजीवद्रव्यागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदनिवहप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदसमूहप्रमाणं

५ पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानन्तवर्गस्थानंगळनडेदु जघन्यक्षायिकलब्ध्यविभागप्रतिच्छेदकलापप्रमाणं पुट्टिदुवल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु केवलज्ञानवर्गशलाकाराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंत-वर्गस्थानंगळं नडेदर्द्धच्छेदराशिप्रमाणं पुट्टिदुवल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदष्टममूलं पुट्टिदुवदनोम्मे वग्गिसिदोडिल्लिनेय मूलं पुट्टिदुदनोम्मे वग्गिसलु सप्तमूलं पुट्टिदुवदनोम्मे वग्गिसल् पंचममूलं पुट्टिदुवदनोम्मे वग्गिसिदोडे चतुर्थमूलं पुट्टिदुवदनोम्मे वर्गगोळल् तृतीयमूलं पुट्टिदुद-

१० दनोम्मे वर्गगोळल् द्वितीयमूलं पुट्टिदुवदनोम्मे वग्गिसिदोडे प्रथममूलं पुट्टिदुवदनोम्मे वग्गिसि-दोडे गुणपर्य्ययवद्द्रव्यमेंदु द्रव्यगुणंगळगाजन्मवृत्तिलक्षणाविनाभावमुंप्पुटुगुमिदं त्रिलोकोदरवर्त्ति त्रिकालगोचरजीवादिपदार्थसार्थाविभासिकेवलज्ञानदिवाकरप्रभाप्रतिपक्षकर्म्मनिरवशेषक्षयदिनभि-व्यक्तिगतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदनिकुरुंबप्रमाणमप्प सर्व्वोत्कृष्टभावप्रमाणं पुट्टुगुमिदक्कुत्कृष्टक्षा-यिकलब्धि येंब पेसरुमक्कुं।

---

१५ प्रतिच्छेदराशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदसमूह-राशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा जघन्यक्षायिकलब्ध्यविभागप्रतिच्छेदकलापराशिः। ततोऽनन्तानन्त-वर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानवर्गशलाकाराशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तस्याष्टमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सप्तमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते षष्ठवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पञ्चमवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते चतुर्थवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं

२० वर्गिते तृतीयवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते द्वितीयवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रथमवर्गमूलम्। तस्मि-न्नेकवारं वर्गिते गुणपर्ययवत् त्रिलोकोदरवर्तित्रिकालगोचरजीवादिपदार्थसार्थाविभासिकेवलज्ञानदिवाकरप्रभा-

---

प्रतिच्छेदकी राशि होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर एक जीव द्रव्यके अगु-रुलघु गुणके अविभाग प्रतिच्छेदोंकी राशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद समूहकी राशि उत्पन्न

१५ होती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जघन्य क्षायिक लब्धिके अविभाग प्रतिच्छेदके समूहकी राशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानकी वर्गशलाका राशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानकी अर्द्धच्छेदराशि आती है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानका अष्टम वर्गमूल आता है। उसके एक बार वर्ग करनेपर सप्तम वर्गमूल आता है। उसके एक बार वर्ग करनेपर छठा वर्गमूल आता है।

२० उसका एक बार वर्ग करनेपर पाँचवाँ वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर चतुर्थ वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर तृतीय वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर द्वितीय वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर प्रथम वर्गमूल आता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर गुणपर्यायसे संयुक्त तीनों लोकों और तीन कालोंके जीवादि पदार्थोंके समूहके प्रकाशक केवलज्ञानरूपी सूर्यके प्रतिपक्षी कर्मोंके सर्वथा विनाशसे

२५ प्रकट हुए समस्त अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहात्मक भावप्रमाण उत्पन्न होता है। यही

ई द्विरूपवर्गधारेय सर्व्वराशिविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे केवलज्ञानवर्गशलाकाराशिप्रमाणंगळप्पुवु। मत्तमी द्विरूपवर्गधारेयोळं द्विरूपघनधारेयोळं द्विरूपघनाघनधारेयोळं॥ शलाकाराशिं विना विरलनदेयमात्रेण यो राशिरुत्पद्यते तस्य वर्गशलाकार्द्धच्छेदाः नोत्पद्यंते एंबितो वाक्यदिंदं विरलनदेयक्रमदिंदं पुट्टिद सूच्यंगुलादिराशिगळगे वर्गशलाकार्द्धच्छेदंगळ्पुट्टुवें दु पेळ्द तेरं॥ मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज ५

मत्तमी द्विरूपवर्गधारेयोळु "देयराशेरुपरि विरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा विवक्षितराशिरुत्पद्यते" येदिवरिंदं सूच्यंगुलादिगळ्तम्म देयराशियिंद मेलेनितु स्थानंगळं नडदु पुट्टुवर्वें दोडे देयराशिय मेले विरलनराशियर्द्धच्छेदराशिप्रमाणवर्गस्थानंगळं नडदु पुट्टुवर्वें दु पेळ्द तेरं।

सूच्यंगुलं पल्यच्छेदराशियं विरलिसि प्रतिरूपं पल्यमं कोट्टु संवर्गजनितराशियप्पुदरिं विरलनराशि पल्यच्छेदमदरच्छेदंगळ्पल्यवर्गशलाकाराशियप्रमाणंगळप्पुदरिंद पल्यद मेले पल्यवर्गशलाकाराशिप्रमाणवर्गस्थानंगळं नडेदु पुट्टिदुदेंदु निश्चैसुवुदु॥ २। ४। १६। २५६। ६५५३६। ४२९४९६७२९६। १८४४६७४४०–७३७०९५५१६१६। ०। व। ०। छे। ०। मू १। १६। ०। २। ४। ०। व०। छे। मू १। प०। २। ४। ०। ज॑। घ। मू ०। व०। छे०। मू १। २५६। ०। ज जु अ। ज जु अ व०। व०। छे०। मू १। जी १६। ०। १६ ख०। १६ ख ख। ०। अ॑ आ १६ ख ख ख। प्र आ। १६ ख ख ख। १६ ख ख ख। ०। द। अ। अ। लघु ख

प्रतिपक्षकर्मनिरवशेषक्षयाभिव्यक्तसमस्तविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मकं सर्वोत्कृष्टं भावप्रमाणमुत्पद्यते। इदमेवोत्कृष्टक्षायिकलब्धिः। संदृष्टिः–२। ४। १६। २५६। ६५५३६। ४२९४९६७२९६। १८४४६७४४०-७३७०९५५१६१६। ०। व०। छे०। मू १। १६। ०। २। ४। ०। व०। छे। मू १। प०। २। ४। ०। ज घ मू व०। छे०। मू १।२५६। ०। जजु अ०। जजु अ व०। व०। छे०। मू १। जी १६। ०। १६ ख०। १६ ख ख०। अं आ १६ ख ख ख। प्र आ १६ ख ख ख ख ख। ०। द ज अ ख ख। ०। ए जी अ ख ख ख०। सू नि ज ज्ञा ख ४। ०। ज ज्ञा ल ख ५। ०। व०। छे०। मू ८। मू ७। मू ६। मू ५। मू ४। मू ३। मू २। मू १। के।

अस्या धारायां वर्गितवाराः तु केवलज्ञानस्य वर्गशलाकामात्राः। अस्यां च द्विरूपघनद्विरूपघनाघन-

---

उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि है। इस द्विरूपवर्गधाराके वर्गरूप सब स्थान केवलज्ञानकी वर्गशलाका प्रमाण होते हैं अर्थात् जितनी केवलज्ञानकी वर्गशलाका हैं, उतने ही द्विरूपवर्गधाराके सब वर्गस्थान हैं।

इस द्विरूपवर्गधारामें तथा द्विरूपघनधारा और द्विरूपघनाघनधारामें सूच्यंगुल आदिकी वर्गशलाका और अर्धच्छेदराशि उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि ये विरलन और देयके क्रमसे उत्पन्न होती हैं।

विशेषार्थ—जो राशि विरलन और देयके क्रमसे उत्पन्न होती है, वह राशि जिस धारामें कही है, उस राशिकी वर्गशलाका या अर्धच्छेद उसी धारामें नहीं होते। जैसे विरलन राशि सोलहका विरलन करके प्रत्येकपर सोलह-सोलह देय राशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर एकट्ठी राशि उत्पन्न होती है, यह राशि द्विरूपवर्गधारामें है। किन्तु इसके अर्धच्छेद चौंसठ और वर्गशलाका छह ये दोनों द्विरूपवर्गधारामें नहीं हैं। ऐसा ही सूच्यंगुल वगैरहके विषयमें जानना।

ख । ० । एक जो अगुरुलघु ख ख ख ० । सूक्ष्मनिजप्ता । प्रति । ख = । ४ । ० । ज = क्षा = लब्धि ख = ५ । ० । व । ० । छे । ० । मू ८ । मू ७ । मू ६ । मू ५ । मू ४ । मू ३ । मू २ । मू १ । के ॥ इदु द्विरूपवर्गधारा विन्यासं ॥

मत्तमी द्विरूपादि धारात्रयदोळु केळगण द्विरूपादि वर्गराशिगळर्द्धच्छेदंगळं नोडलु मेलण वर्गराशिगळर्द्धच्छेदंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु । तिर्य्यक्कागि परस्थानंगळप्प द्विरूपघन द्विरूपघनाघन धारेगळोळु त्रिगुणत्रिगुणंगळप्पुवु । वर्गशलाकेगळे बुदु स्वस्थानंगळोळु रूपाधिकक्रमंगळप्पुवु । मुन्निनंते परस्थानंगळोळु समानंगळेयप्पुवु—। मिल्लि द्विरूपवर्गधारेयोळु स्ववर्गशलाकामात्र द्विकाहृतलब्धराशियर्द्धच्छेदप्रमाणमक्कुमा अर्द्धच्छेदप्रमितद्विकाहृतलब्धराशिप्रमाणमक्कुमेंदरियल्पडुगु । मी वर्गशलाकागळिंदमे दोडे राशियं वर्गिसिद धारंगळ् वर्गशलाकेगळंतल्लदोडे राशियंदळिदिसिद धारंगळ दळ धारंगळ्गे मेण वर्गशलाकेगळप्पुवु राशियनर्द्धिसिद धारंगळर्द्धच्छेदंगळेंदु निर्णीतंगळप्पुवु :—

२ । ४ । १६ । २५६ । ६५ = । ४२ । = १८ =

ई प्रकारदिंदं केवलज्ञानावसानमागि राशिगळुमर्द्धच्छेदंगळु वर्गशलाकेगळु मडेयवु । द्विरूपघनधारेयोळु मेंदु मरुवत्तनालकु मी प्रकारदिंदं पूर्वपूर्व वर्गस्थानंगळ क्रमदिंदं संख्यातवर्गस्थानं-

प्राप्तिस्थान आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

धारयोश्च सूच्यङ्गुलादीनां वर्गशलाकार्धच्छेदराशी नोत्पद्येते, विरलनदेयक्रमेण तदुत्पत्तेः । तथापि ते सूच्यङ्गुलादयो द्विरूपवर्गधारायां स्वस्वदेयराशेरुपरि विरलनराश्यर्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा उत्पद्यन्ते । तत्र सूच्यङ्गुलस्य विरलनराशिः पल्यच्छेदराशिः देयराशिः पल्यं जगच्छ्रेणेर्विरलनराशिः पल्यच्छेदराश्यसंख्यातैकभागः देयराशिः घनाङ्गुलं । स्वस्वविरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसम्वर्गं कृते तद्राशिरुत्पद्यते इत्यर्थः । तदर्धच्छेदराशिः राशेरर्धितवारमात्रः । वर्गशलाकाराशिः तदर्धच्छेदानां अर्धितवारमात्रः । अर्धच्छेदाः द्विरूपवर्गधारादिधारात्रये विवक्षितवर्गादुपरितनवर्गे द्विगुणद्विगुणा भवन्ति तत्प्रणिधौ परिस्थाने (स्थापने) द्विरूपघनद्विरूपघनाघनधारयोस्त्रिगुणास्त्रिगुणा भवन्ति । वर्गशलाकाः वर्गादुपरितनवर्गे

सूच्यंगुल आदि द्विरूपवर्गधारामें अपनी-अपनी देयराशिसे ऊपर विरलन राशिके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने वर्गस्थान जानेपर उत्पन्न होते हैं। उसमें-से सूच्यंगुलकी विरलन राशि पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण है और देय राशि पल्य प्रमाण है। तथा जगत् श्रेणिकी विरलन राशि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग मात्र है और देय राशि घनांगुल प्रमाण है। अपनी-अपनी विरलन राशिका विरलन करके एक-एकके ऊपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करनेसे वह राशि उत्पन्न होती है। राशिके आधा करनेके बार मात्र उसकी अर्धच्छेद राशि होती है। और उसके अर्धछेदोंको जितनी बार आधा-आधा किया जा सकता है, उतनी वर्गशलाका राशि होती है। द्विरूपवर्गधारा आदि तीन धाराओंमें विवक्षित वर्गसे ऊपरके वर्गमें अर्धच्छेद दूने-दूने होते हैं। तथा उसके निकटवर्ती जो ऊपरका स्थान होता है, उसका जितने नम्बर हो, उतने ही नम्बरका स्थान द्विरूपघनधारा और द्विरूपघनाघनधारामें हो, तो तिगुने-तिगुने अर्धच्छेद होते हैं।

विशेषार्थ—जैसे द्विरूपवर्गधारामें दूसरा वर्गस्थान सोलह है। उसके अर्धच्छेद चार हैं। तीसरा वर्गस्थान दो सौ छप्पन है। उसके अर्धच्छेद आठ हैं। इसी तरह दूने-दूने होते हैं। तथा जैसे द्विरूपवर्गधाराका द्वितीय वर्गस्थान सोलह और उसके अर्धच्छेद चार हैं, उससे ऊपरका द्विरूपघनधाराका तीसरा स्थान चार हजार छियानबे हैं। उसके अर्धच्छेद बारह हैं। इस प्रकार सर्वत्र जानना।

गळनडेदावलिय घनं पुट्टिदुदवरि नंतरमे प्रतरावलिवृंदं पुट्टिदु १।[२]४।८।१६।३२।६४ दल्लिदं
०।१।२।३।४।५।६
मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु पल्यवर्गशलाकाघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेले असंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु पल्यच्छेदघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेले असंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु पल्यप्रथममूलवृंदं पुट्टिदुदरं नंतरमे पल्यघनं पुट्टिदुदुदल्लिदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु घनांगुलं पुट्टिदुदल्लिदं मेलसंख्यात- ५
वर्गस्थानंगळं नडेदु जगच्छ्रेणि पुट्टिदुदल्लिदं मेलेकोटाकोटियुं प्रथमं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु जीववर्गशलाकाघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु जीव राश्यर्द्धच्छेदवृंदं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु जीवप्रथममूलघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतरमे जीवघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु श्रेण्याकाशवर्गशलाकाघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलेपुमनंतानंतवर्गस्थानगळं नडेदु श्रेण्याकाशार्द्धच्छेदघनं पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंता- १०
नंतवर्गस्थानंगळं नडेदु श्रेण्याकाशप्रथममूलघनं पुट्टिददनंतरमदनोम्मे वर्गगोळल् श्रेण्याकाश-
घनरूपमप्प सर्व्वाकाशप्रदेशप्रचयप्रमाणराशि पुट्टिदुदल्लिदं मेलनंतानंतवर्गस्थानंगळ् निरंतरं

स्वस्थाने रूपाधिकाः परस्थाने तत्प्रतिभो समाना भवन्ति। अर्धच्छेदराशिद्विरूपवर्गधारायां राशेर्वर्गशलाका- मात्रेषु राशिश्च धारात्रये तदर्धच्छेदमात्रेषु च द्विकेषु गुणितेषु भवति। का वर्गशलाका? राशेर्वर्गितवारः, द्विरूपवर्गधारायामेवार्धच्छेदराशेरधितवारो वा भवति। कोऽर्धच्छेदः? राशेरर्धितवारः। अथ द्विरूपघनधारा- १५
अष्टौ चतुष्षष्टिः षोडशघनः वेसदछप्पणघनः पण्णट्ठिघनः वादालघनः, एवं पूर्वपूर्वस्य वर्गक्रमेण संख्यातवर्ग-स्थानानि गत्वा आवलेर्घनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतरावलिवृन्दम्। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा

तथा वर्गशलाका नीचेके वर्गसे ऊपरके वर्गकी स्वस्थानमें एक अधिक होती हैं और परस्थानमें समान होती हैं। जैसे द्विरूपवर्गधाराके दूसरे वर्ग सोलहकी दो और तीसरे वर्ग दो सौ छप्पनकी तीन वर्गशलाका हैं। तथा द्विरूपघनधाराके तीसरे स्थान चार हजार ६५ ५३६ वेकी भी वर्गशलाका तीन ही हैं। द्विरूपवर्गधारा राशिकी जितनी वर्गशलाका हों, उतनी जगह दो-दो के अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे अर्धछेदोंका प्रमाण आता है। तथा अर्धच्छेद प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे राशि उत्पन्न होती है। जैसे सोलहकी वर्गशलाका दो हैं। सो दो जगह दो रखकर गुणा करनेसे चार आता है सो सोलहके चार अर्धच्छेद होते हैं। तथा चार अर्धच्छेद प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे सोलह राशि आती है। जितनी बार वर्ग करनेसे राशि उत्पन्न हो, उन्हें वर्गशलाका कहते हैं। अथवा द्विरूपवर्गधारामें अर्धच्छेदोंकी राशिको आधा-आधा करनेके बारोंको वर्गशलाका कहते हैं। और राशिको जितनी बार आधा-आधा किया जा सकता हो, उन्हें अर्धच्छेद कहते हैं।

अब द्विरूपघनधाराको कहते हैं। दोका घन आठ होता है। यह इस धाराका पहला स्थान है। इसका वर्ग चौंसठ दूसरा स्थान है, यह आठका घन है। चौंसठका वर्ग चार हजार ९६ छियानवे तीसरा स्थान है, यह सोलहका घन है। सोलहका घन दो सौ छप्पन उसका घन चौथा स्थान है। पण्णट्ठीका घन पाँचवाँ स्थान है। बादालका घन छठा स्थान है। इस प्रकार पहले-पहले स्थानका वर्ग करनेपर एक-एक स्थान होता है। ऐसे संख्यातवर्गस्थान जाने पर परीतासंख्यातका घन होता है। उससे संख्यात स्थान जानेपर आवलीका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर प्रतरावलिका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान

१. म °दरंतर°।

नडेदु केवलज्ञानद्वितीयमूलमनदरुद्दिट्टदो[illegible] केवलज्ञानप्रथममूलमं केवलज्ञानमुमोंदिवर घनंगळवलानराशियादोडे केवलज्ञाननलिकमिसुगुं। केवलज्ञानमे सर्वोत्कृष्टप्रमाणमप्पुदरिंदं। किं बहुना—

अत्थुद्देसे जायदि जो जो रासी विरूवधाराए।
घणरूवे तद्देसे उप्पज्जदि तस्स तस्स घणो॥

५ इंतिनु द्विरूपवर्गधारेयोळु आवुदो दुद्देसिसल्पट्टेडेयोळु आवुदानु मोदलो दु राशिगळ् काणल्पडुवुवा तत्तद्देशदोळु द्विरूपघनधारेयोळु तत्तद्राशिय घनं पुट्टुगुमेंबी व्याप्तियरियल्पडुगुं। ई द्विरूपघनधारेगे सदृष्टि :—

८। ६४। ४०९६। २५६ ≡। ६५ ≡। ४२ ≡। १८ ≡। ०। आ २। २। प्र आ ६४।
१० ०। व व व ०। छे छे छे ०। मू १। मू १। मू १। प प प ०। ६। ०। —। ≡। ०। जी॥ व
व व। ०। छे छे छे ०। मू १। मू १। मू १। १६। १६। १६। ०। श्रेण्याकाशवर्ग। व व व ०।
छे छे छे ०। मू १। मू १। मू १। सर्वाकाश। ०। के ≡। मू २। मू २। मू २।

पल्यवर्गशलाकाघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यच्छेदराशिघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यप्रथममूलवृन्दम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा घनाङ्गुलम्। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिः। तस्यामेकवारं वर्गितायां जगत्प्रतरः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा जीवराशेर्वर्गशलाकाराशिघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदशलाकाराशिघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलघनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जीवराशिघनः ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाशस्य वर्गशलाकाघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलघनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते श्रेण्याकाशघनः। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानस्य द्वितीयमूलवृन्दं तदेव तस्या अन्तः। अनन्तरवर्गस्य केवलज्ञानस्य तत्प्रथममूलसंवर्गमात्रत्वे सति केवलज्ञानातिक्रमात् तदधिकसंख्याया अभावात्। द्विरूपवर्गधारायां यद्यद्देशे यो यो

जाकर पल्यकी वर्गशलाकाका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर पल्यकी अर्धच्छेद राशिका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर पल्यके प्रथम वर्गमूलका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर पल्यका घन होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर घनांगुल होता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर जगतश्रेणि होती है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर जगतप्रतर होता है। उससे अनन्तानन्त स्थान जाकर जीवराशिकी वर्गशलाका राशिका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जीवराशिकी अर्धच्छेद शलाका राशिका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर जीवराशिके प्रथम वर्गमूलका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर जीवराशिका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर श्रेणिरूप आकाशकी वर्गशलाकाका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर उसीके अर्धच्छेदोंका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर उसीके प्रथम वर्गमूलका घन होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर श्रेणिरूप आकाशका घन होता है। उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूलका घन होता है। यही द्विरूपघनधाराका अन्तस्थान है। प्रथम वर्गमूल और द्वितीय वर्गमूलको परस्परमें गुणा करनेसे जो परिमाण होता है, वही द्वितीय वर्गमूलका घन है। यदि केवलज्ञानके प्रथम वर्गमूलका घन किया जाये, तो केवलज्ञानका अतिक्रमण हो जाये। किन्तु केवलज्ञानसे अधिक

मी द्विरूपघनधारेगे स्थानविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे—केवलज्ञानवर्गशलाकेगळोळेरडु रूपहीनमादवितावन्तप्पुवु। व—२। एक्कें दोडे वर्गशलाकेगळ् परसमंगळप्पुदरिंदं द्विरूपघनधारेयुमरियल्पडुगुमदं तं दोडे :—एंटर घनमादियागि तद्वर्गमितु पूर्वपूर्वकृतिगळमेले मेले नडेयवनन्तसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु लोकालोकप्रदेशप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिवं मेलसंख्यात वर्गस्थानंगळं नडेदु तेजस्कायिकजीवराशिय गुणकारशलाकाराशि पुट्टिदुदी गुणकारशलाकाराशियें बुदें तोडे गुणित वारंगळं गुणकारशलाकेगळें बुवदावुवं गुणिसिद वारंगळें दोडे तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणानयन विधानदोळु लोकंगळं गुणिसिद वारंगळ बुवर्त्थमवें तें दोडे :—

सूत्राविरोधमागि आचार्य्यपरंपरागतोपदेशदिंदं पेळ्वे—। मो दु घनलोकमं शलाकाभूतमं स्थापिसिमदने विरलन देयमेंदु माडि श ≡ वि ≡ वे ≡ विरलन राशियं विरलिसि रूपं प्रति देयं-

---

राशिर्जायते तद्देशे द्विरूपघनधारायां तस्य तस्य घनो जायते—संदृष्टिः—८, ६४, ४०९६, २५६, = ६५ = - ६५ = । ४२ = ४२ = । १८ = । ० । आ २।२ । प्र आ ६४ । ० । व व व ० । छे छे छे ० । मू १ मू १ मू १ । प प प ०, ६।०।—। = ।०। जी व व व ०। छे छे छे ०। मू १ मू १ मू १। १६ १६ १६ ।०। श्रे आ व व व ० छे छे छे ।०। मू १ मू १ मू १। सर्वाकाशं ।०। के मू २, मू २ मू २। अस्याः स्थानविकल्पाः केवलज्ञानस्य द्विरूपोनवर्गशलाकामात्राः व—२।

अथ द्विरूपघनाघनधारोच्यते तद्यथा—अष्टघनमादिं कृत्वा पूर्वपूर्वस्य वर्गक्रमेणासंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा लोकाकाशप्रदेशराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तेजस्कायिकजीवराशेर्गुणकारशलाकाराशिः। का गुणकारशलाका ? विरलनराशिमात्रतत्सर्वदेयराशीनां[3] गुणितवारूपा। ततोऽसंख्यातान्वर्गसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा तद्वर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराशितेजस्कायिकजीवराशय उत्पद्यन्ते। एषां राशीनां[4] असंख्यातानि असंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वे उपपत्तिरुच्यते। घनलोकं शलाकाविरलनदेयरूपेण

संख्याका अभाव है। द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थानपर जो राशि होती है, उस स्थानपर द्विरूपघनधारामें उस-उस राशिका घन होता है। इस धाराके स्थानोंके विकल्प केवलज्ञानके दो कम वर्गशलाका प्रमाण हैं।

अब द्विरूपघनाघनधाराको कहते हैं—दोके घनके घनको आदि देकर पहले-पहले स्थानका वर्ग करते हुए जो संख्या उत्पन्न हों, वे जिस धारामें पायी जायें, उसे द्विरूपघनाघनधारा कहते हैं। सो दोका घन, आठका घन, पाँच सौ बारह इसका आदिस्थान है। इससे आगे पूर्व-पूर्व स्थानका वर्ग करते हुए क्रमसे असंख्यात वर्गस्थान जाकर लोकाकाशके प्रदेशोंका परिमाण आता है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर तेजस्कायिक जीव राशिकी गुणकार शलाका राशि आती है।

शंका—गुणकार शलाका किसे कहते हैं ?

समाधान—विरलन राशि प्रमाण उसकी सर्व देय राशियोंके गुणन करनेके बारोंको गुणकार शलाका कहते हैं।

उससे आगे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर अग्निकायिक जीवराशिकी वर्गशलाका राशि, अर्धच्छेद राशि और अग्निकायिक जीव राशि उत्पन्न होती है। इन राशियोंकी असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर उत्पन्न होनेको उपपत्ति कहते हैं।

---

१. म देयंगलुमारि। २. म °यमनदने। ३. ब गुणन समाशिरूपा। ततः पृथक्-पृथक् संख्यातानि वर्ग°। ४. ब °नाम संख्यात वर्गस्थानानि।

मवने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळों दु रूपं कळेयल्पडुवुदु। श तदा एकान्यो-न्याभ्यस्तगुणकारशलाके पडेयल्पडुगुं। तत्रोत्पन्नराशिगे पलितोपमा संख्यातैकभागमात्रंगळवर्ग-शलाकेगळप्पुवेंतेकेंदोडे "देयराशेरुपरिविरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्र वर्गस्थानानि गत्वा लब्धराशिरुत्पद्यते" एंदु घनलोकवर्द्धच्छेदंगळं पल्यासंख्यातैकभागंगळं वर्गस्थानंगळं लोकव मेले नडवु पोगि पुट्टिदुदें बुदर्त्थं। आ तत्रोत्पन्नराशिगे अर्द्धच्छेदशलाकेगळु मसंख्यातलोकंगळु राशियुमसंख्यातलोक-मात्रमु मादुदु मत्तमा तत्रोत्पन्नमहाराशियं विरलनदेयंगळु माडि वि = a दे = a विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनवने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि पूर्वशलाकाराशियोळमत्तों दु रूपं कळेय-

ल्पडुवुदु। श = तदा अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळेरडु। २। वर्गशलाकार्द्धच्छेदशलाकेगळु राशियुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु। इन्ती क्रमदिदं नेतव्यमेक्कुमेन्नेबरं लोकमात्रशलाकाराशिपरि-

---

१० संस्थाप्य श = वि = दे = विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गं कृते

शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श =। अन्योन्यगुणराशेर्गुणकारशलाका एका। वर्गशलाकाराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः विरलनराश्यर्धच्छेदयुतदेयराशिवर्गशलाकामात्रत्वात्। अर्धच्छेदराशिः असंख्यात-लोकमात्रः देयराश्यर्धच्छेदगुणितविरलनराशिमात्रत्वात्। पुनस्तमुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव

दत्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशेरेकरूपमपनयेत् श = [illegible] १५ शलाकाराश्यर्धच्छेदराश्युत्पन्नराशयः त्रयोऽपि असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। एवं तावत्कर्तव्यं यावल्लोकमात्रशलाकाराशिर्निष्ठाप्यते। तदुत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः लोकमात्राः = अन्ये त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। पुनस्तदुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श = a। वि = a। दे = a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गं कृते

जैसे लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण पृथक्-पृथक् विरलन, देय और शलाकारूप तीन राशि करो। विरलन राशिका विरलन करके एक-एकके ऊपर देयराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करो। और शलाकाराशिमें-से एक कम करो। यहाँ जो राशि हुई उसकी गुणाकार शलाका एक हुई। और वर्गशलाका पल्यके असंख्यातवें भाग हुई; क्योंकि विरलन राशिके अर्धच्छेद देयराशिके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेदोंमें जोड़नेसे विवक्षित राशिकी वर्गशलाकाका प्रमाण होता है। तथा अर्धच्छेद राशि असंख्यात लोक प्रमाण हुई। क्योंकि देयराशिके अर्धच्छेदोंसे विरलन राशिको गुणा करनेपर विवक्षित राशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। और उत्पन्न हुई राशि असंख्यात लोक प्रमाण है। ऐसा करते जो राशि हो, उसे प्रमाण विरलन और देयराशि करके तथा विरलन राशिका विरलन करके और उसपर देयराशिको देकर परस्पर गुणा करनेपर शलाकाराशिमें-से एक कम करना। यहाँ तक गुणाकार शलाका दो हुई। और वर्ग शलाकाराशि, अर्धच्छेदराशि और इनको गुणन करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, तीनों ही असंख्यात लोक प्रमाण हुई। जबतक वह लोक प्रमाण शलाका राशि एक-एक कम करते हुए समाप्त हो, तबतक ऐसे करते जाना। ऐसा करनेसे जो राशि उत्पन्न हुई, उसकी गुणाकार शलाका तो लोकप्रमाण हुई और सब तीनों राशि असंख्यात लोक, असंख्यात लोक

---

१. म a =। २. म °व्यवेन्ने। ३. ब °ष्ठापितो भवति।

समाप्ति पर्य्यंतं। तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाका प्रमाणं घनलोकमक्कु। = मुळिदु मूरु राशिगळुमसंख्यातलोकंगळु। मत्तमा तत्रोत्पन्नराशियं शलाकाविरलन देयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि श = ० वि = ० दे = ० विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनिरिसि राशियन्ने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि द्वितीयशलाकाराशियोळु श = ० दोंदु रूपं कळेयल्पडुगु श = ०। तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळु रूपाधि- (धि) क लोकंगळु = शेषत्रयमुमसंख्यात लोकंगळु। मत्तमा तत्रोत्पन्नराशियं विरलन देयंगळं माडि विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि द्वितीयशलाकाराशियोळमोंदु रूपु कळेयल्पडुगुं। श = ०। २ तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळु द्विरूपाधिक लोकंगळु। =। शेष वर्गशलाकार्द्धच्छेदंगळु राशियुमेंब मूरुमसंख्यातलोकंगळु।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

इन्ती क्रमदिद द्विरूपोनोत्कृष्टसंख्यातशलाकामात्रलोकशलाकेगळनडेदल्लि = २ १५। ई यन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळं मुन्निन द्विरूपाधिकलोकमात्रान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळोळु

द्वितीयशलाकाराशित एकं रूपमपनयेत्। श = ० अत्रोत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः रूपाधिकलोकमात्राः = अपरे त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्राः असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव दत्वा वर्गितसंवर्गे कृते द्वितीयशलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श = ०–२। अस्योत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः द्विरूपाधिकलोकमात्राः =। शेषास्त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। एवं तदुपरि गुणकारशलाकाः उत्कृष्टसंख्यातलोकमात्रा द्विरूपोना नीत्वा = २ १५ एतासु प्राक्तनद्विरूपाधिकलोकमात्रगुणकारशलाकाः निक्षिप्यन्ते। तदा ततः प्रभृति चत्वारोऽपि राशय

मात्र हुई। इस राशि प्रमाण विरलन देय शलाका स्थापित करके विरलन राशिका एक-एकके रूपमें विरलन करके और एक-एकके ऊपर देयराशिको देकर परस्पर गुणा करो। और दूसरी बार स्थापित की हुई शलाका राशिमें-से एक कम करो। यहाँ जो राशि उत्पन्न हुई, उसकी गुणाकार शलाका एक अधिक लोकप्रमाण है और शेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र, असंख्यात लोकमात्र हैं। इस उत्पन्न हुई राशि प्रमाण विरलन और देयराशि स्थापित करके विरलनराशिका विरलन करके और देयराशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें गुणा करनेपर दूसरी शलाकाराशिमें-से एक कम करना। तब गुणाकार शलाका दो अधिक लोकप्रमाण हुई। और शेष तीनों राशि असंख्यातलोक-असंख्यातलोक हुई। इसी प्रकार दो कम उत्कृष्ट संख्यात लोकमात्र गुणाकार शलाका प्राप्त करके इनमें पूर्वोक्त दो अधिक लोकमात्र गुणाकार शलाका जोड़नेपर गुणाकार शलाका भी असंख्यात लोकप्रमाण हुई। तब यहाँसे लेकर गुणाकार शलाका, वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद राशि और उत्पन्न हुई राशि ये चारों विशेष रूपसे हीन अधिक हैं, तथापि सामान्यसे असंख्यात लोकप्रमाणरूप असंख्यात हैं। इस तरहसे दूसरी बार स्थापित शलाकाराशिको भी एक-एक कम करके पूर्ण करे। ऐसा करनेसे उत्पन्न हुई राशि प्रमाण विरलन देय और शलाका राशि स्थापित करके पूर्वोक्त प्रकारसे इस तीसरी बार स्थापित

कूडुत्तिर = १६ ला येडेयोळु नाल्कुं राशिगळुमसंख्यातलोकंगळालापमात्रंविवप्पुर्वितु नडसल्पडुवुवेन्नेवरं द्वितीयवारं स्थापिसिव शलाकाराशि निष्ठापिसल्पडुवन्नेवरं तवा तन्नाशिचतुष्टयमसंख्यात लोकंगळु। मत्तमा तत्रोत्पन्नराशियं त्रिप्रतीकं माडि श = a वि = a दे = a विरलन राशियं विरलिसि रूपं प्रति देयमनवने कोट्टु वर्गितसंवर्ग्गं माडि तृतीयशलाकाराशियोळोंदु रूपु कळेयल्पडुगुं। श = a तदा राशिचतुष्टयमुमसंख्यातलोकंगळु इन्ती क्रमदिवं नेतव्यमवक्कुमेन्नेवरं तृतीयवारं स्थापिसि शलाकाराशि परिसमाप्तमक्कु मन्नेवरं तदान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशियुं वर्गशलाकाराशियुमर्द्धच्छेदराशियुं लब्धराशियुमेंबी राशिचतुष्टयमुं तद्योग्यासंख्यातलोकंगळु।

मत्तमा तत्रोत्पन्न महाराशियं त्रिप्रतीकमं माडि श = a वि = a दे = a विरलनराशियं विरलिसि रूपं प्रति देयमनवने कोट्टु वर्गितसंवर्ग्गमं माडि चतुर्थवारशलाकाराशियोळोंदु रूपं कळेयल्पडुगुमिते पुनः पुनं माडि नडसल्पडुवुवेन्नेवरं अतिक्रांतान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकगळिंदं परिहीनमप्प चतुर्थवारं स्थापितान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशि परिसमाप्तियक्कुमन्नेवरं।

तदा तेजस्कायिक जीवराशिप्रमाणंमप्पलब्धराशि पुट्टुगुं। ईयर्थमनाचार्य्यं मनबोळिरिसि :

---

१५ आलापसः असंख्यातलोका असंख्यातलोका भवन्ति। एवं गत्वा द्वितीयवारनिष्ठापितशलाकाराशिं निष्ठापयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं त्रिः प्रतिकं कृत्वा प्राग्वत् इमं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठापयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा अतीतगुणकारशलाकाराशित्रयहीनोयं चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिनिष्ठाप्यते। तदा तेजस्कायिकजीवराशिरुत्पद्यते। एतद्दृष्ट्वा....

'आसद्धरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ'

२० इत्युक्तमाचार्यैः। ततोऽसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तेजस्कायिकस्थितेर्वर्गशलाकाराशिः। का तत्स्थितिः?

शलाका राशिको भी समाप्त करके जो राशि उत्पन्न हो, उसी प्रमाण विरलन देय और शलाका राशि स्थापित करके, इस चौथी बार स्थापित की गयी शलाकाराशिमें-से पहले कही तीन गुणकार शलाकाराशिके प्रमाणको कम करके जो शेष रहे, उतनी शलाकाराशिमें-से पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक कम करते जब वह समाप्त हो तब जो राशि उत्पन्न हो, वही अग्निकायिक २५ जीवोंकी राशि है। यह देखकर ही आचार्योंने कहा है कि साढ़े तीन बारकी शलाका राशिरूपसे लोकको परस्परमें गुणा करनेपर तैजस्कायिक जीवराशि होती है। इस प्रकार अग्निकायिक जीवराशिकी गुणकार शलाकासे आगे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर उसकी वर्गशलाका, अर्द्धच्छेदराशि और प्रथम वर्गमूल होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर तैजस्कायिक जीवोंका प्रमाण होता है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर ३० तैजस्कायिककी स्थितिकी वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है।

शंका—तैजस्कायिक स्थिति किसे कहते हैं?

समाधान—अन्यकायसे आकर तैजस्कायमें जीव उत्पन्न हो। और तैजस्कायको न छोड़कर उत्कृष्ट काल तक तैजस्कायमें ही जन्म लेता रहे। यही काल तैजस्कायिक स्थिति है।

---

१५ १. म °डुवन्ने°।

'आउद्धरासि वारं ळोगे अण्णोण्ण संगुणे तेऊ' एंदु पेळ्दं । अंता चतुर्त्थवारं स्थापिसिद शलाकाराशिप्रमाणमप्प तेजस्कायिकान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशियिंदं मेले असंख्यात-वर्गस्थानंगळं नडेदा तेजस्कायिकजीवराशिय वर्गशलाकाराशि पुट्टिदल्लिंदं मेलसंख्यातवर्ग-स्थानंगळं नडेदु तेजस्कायिकजीवराशियर्द्धच्छेदराशि पुट्टिदुदल्लिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिदुदा प्रथममूलमनोम्मे वर्गगोळ्ततेजस्कायिक जीवराशि प्रमाणं पुट्टिदु- ५
दल्लिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु तेजस्कायस्थितिय वर्गशलाकाराशी पुट्टिदुदी तेजस्काय-स्थिति एंबुदेनें दोडन्यकायदत्तणिंदं बंदु तेजस्कायंगळोळु पुट्टिद जीवक्कुत्कृष्टदिंदं तेजस्कायिकत्वमं पत्तुविडविर्प्पं कालमें दितु पेळल्पट्टुदा तेजस्कायिकस्थितिय वर्गशलाकाराशियिंदं मेलसंख्यात-वर्गस्थानंगळं नडेदु अर्द्धच्छेदराशि पुट्टिदुदल्लिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु प्रथममूलं पुट्टिदुददनोम्मे वर्गगोळ्ततेजस्कायिकस्थितिराशि पुट्टिदुदल्लिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं १०
नडेदवधि निबद्ध क्षेत्रोत्कृष्टराशिय वर्गशलाकाराशि पुट्टिदुदल्लिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु मर्द्धच्छेद प्रथममूलंगळ्पुट्टिदुदा प्रथममूलमनोम्मे वर्गगोळु सिरलवधि निबद्धक्षेत्रो-त्कृष्टप्रमाणं पुट्टिदुदल्लिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु वर्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलंगळे यथाक्रमदिंदं पुट्टिदुदा प्रथममूलमनोम्मे वर्गगोळ्दु स्थितिबंधाध्यवसाय राशिप्रमाणं पुट्टिदुदी स्थितिबंधाध्यवसायमें बुदेनें दोडे ज्ञानावरणादिकर्म्मंगळु ज्ञानाच्छादनादि तंतम्म स्वभावमक्कु १५
पत्तु विडविर्प्पं कालमुं स्थितियें बुदा स्थितिबंधकारणकषायपरिणामस्थानविकल्पराशिप्रमाणमें-

---

अन्यकायादागत्य तेषूत्पन्नस्य तेजस्कायिकत्वमत्यक्त्वा उत्कृष्टेन अवस्थानकालः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते तेजस्कायिक-स्थितिप्रमाणम् । ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदशलाकाराशिः प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रम् । ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशि- २०
रर्धच्छेदराशिः प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि । कानि तानि ? ज्ञानप्रच्छा-दनादिस्वभावेन कर्मणामवस्थितिकालात्मकस्थितिबन्धनिबन्धनानि । ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानानि । कानि

तैजस्कायिक स्थितिसे असंख्यात वर्गस्थान जाकर उसकी अर्द्धच्छेदराशि होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान जाकर प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर २५
तैजस्कायिक स्थितिका प्रमाण होता है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर अवधिज्ञान सम्बन्धी उत्कृष्ट क्षेत्रकी वर्गशलाकाराशि, अर्द्धच्छेदराशि और प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर अवधिज्ञानसे सम्बद्ध उत्कृष्ट क्षेत्र होता है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंकी वर्गशलाका, अर्द्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर स्थितिबन्धाध्यवसाय ३०
स्थानोंका प्रमाण होता है।

शंका—स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान किसे कहते हैं ?

समाधान—ज्ञानावरण आदि कर्मोंका ज्ञानको आवरण करना आदि स्वभाव रूपसे रहनेके कालका नाम तो स्थिति है और स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थानोंको स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान कहते हैं। उससे आगे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जा-जाकर ३५
अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंकी वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होते हैं।

बुदर्त्थ मिल्लिवं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वर्गिसिदोडनुभागबंधाध्यवसायस्थानं पुट्टिदुवा अनुभागबंधाध्यवसायमं बुदें तें दोडे ज्ञानावरणादि कर्म्मंगळ वर्ग। वर्गणा। स्पर्द्धक। गुणहानिस्थानरूपविनिवृद्धविभाग प्रतिच्छेदंगळ समूहमननुभागमें बुदा अनुभागबंधनिबंधनमप्प सकलसंसारिजीव त्रिकालगोचरं गळप्प कषायपरिणामविकल्पराशिप्रमाणमें बुदर्त्थ मिल्लिवं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वर्गिसिदोडे निगोदजीवंगळ्कायोत्कृष्ट संख्याप्रमाणं पुट्टिदुवी निगोदकायोत्कृष्टसंख्ये येंबुदें तें दोडे। स्कंधांडरावासपुळविगळु यथाक्रमदिंदमसंख्यातलोकगुणित क्रमंगळु। स्कं = a। अं = a। = a। आ। = a। = a। = a। पु = a। = a। = a। = a।

१ आगदर्शक ई-पुळविगळोळु प्रत्युवे[illegible] निगोदशरीरंगळु = a असंख्यातलोकमात्रंगळागलुमिनितु पुळविगळ्गेनितु निगोदशरीरंगळप्पुवेंबितनुपातत्रैराशिकसिद्धसमस्तनिगोदशरीरप्रमाणमेंबुदर्त्थं = a = a = a = a मिल्लिवं मेलसंख्यातलोकवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्गशलाकार्द्धच्छेदप्रथममूलगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोम्मे वर्गिसिदोडल् निगोद-

---

तानि ? ज्ञानावरणादिकर्मणां वर्गवर्गणास्पर्धकगुणहानिस्थानरूपावस्थिताविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मकानुभागस्य बन्धनिबन्धनानि। ततोऽसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिरर्धच्छेदराशिः प्रथममूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदशरीरोत्कृष्टसंख्या। कियती सा ? स्कन्धाण्डरावासपुलविदेहा। मतः पृथगसंख्यातलोकालापाः अपि असंख्यातलोकगुणितक्रमाः ततः एतावती = a = a = a = a = a।

ततः असंख्यातलोकमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथमवर्गमूलम्। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदकायस्थितिः। का सा ? निगोदशरीराकारेण परिणतपुद्गलस्कन्धानां तदाकारा-

---

शंका—अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान किसे कहते हैं—

समाधान—ज्ञानावरण आदि कर्मोंके वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुण-हानिरूपसे स्थित अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहरूप अनुभागके बन्धके कारणभूत परिणामोंके स्थानोंका नाम स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान है। उससे असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जाकर निगोद शरीरोंकी उत्कृष्ट संख्याकी वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसमें एक बार वर्ग करनेपर निगोदशरीरोंकी उत्कृष्ट संख्या होती है।

शंका—वह संख्या कितनी है ?

समाधान—स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवि और देह ये पाँचों पृथक्-पृथक् असंख्यात लोकप्रमाण होनेपर भी क्रमसे असंख्यात लोक गुणित हैं। अतः पाँच जगह असंख्यात लोकको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उतनी ही निगोद शरीरोंकी उत्कृष्ट संख्या है।

उससे आगे असंख्यातलोकमात्र असंख्यातलोकमात्र वर्गस्थान जाकर निगोदकायस्थितिकी वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल होता है। उसका एक बार वर्ग करनेपर निगोदकायस्थिति होती है।

शंका—निगोदकायस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—निगोदशरीररूप परिणमे पुद्गल स्कन्ध उत्कृष्ट रूपसे जितने काल तक निगोदशरीरपनेको नहीं छोड़ते, उतने कालके समयोंका प्रमाण निगोदकायस्थिति है। यहाँ

कायस्थिति पुट्टिदुदा निगोदकायस्थितियेंबुदे ते बोडे ॥ ॥ निगोदशरीरस्वरूपदिदं परिणमिसिद पुद्गलस्कंधंगळ् तत्स्वरूपमं पत्तुविडदेनितु कालमिर्प्पुदा कालमं निगोदकायस्थितियेंबु केकोळ्वुदेकेंदोडे निगोदजीवंगळ्गे निगोदत्वपरित्यागकालमावोडमुत्कृष्टदिंदं द्वयर्द्धपुद्गलपरावर्तप्रमितकालमप्पुदवनंतमप्पुदरिंदमदिल्लि केकोळल्पडदु । आ निगोदकायस्थितियिंदं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु नडेदु यथाक्रमदिंदं वर्गशलाकार्द्धच्छेद प्रथममूलंगळ्पुट्टिदुवा प्रथममूलमनोन्मे वर्गंगोळल् योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं पुट्टिदुदायोगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदमेंबुदेंते बोडे जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवप्रदेशंगळोळु कर्म्मनोकर्म्मपर्य्यायपरिणमनयोग्यकार्म्मणवर्गणाहारवर्गणारूप पुद्गलपिंडके तत्तत्पर्यायपरिणमन बोळ् प्रकृतिप्रदेशबंधनिमित्तशक्तियं योगमेंबुदा योगविकल्पस्थानंगळु जगच्छ्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमाणंगळप्पुवु । जघन्यदिंकंगळागुत्तं पोगि सर्व्वोत्कृष्टस्थानंगताविभागप्रतिच्छेदप्रमाणमेंबुदर्त्थं । अल्लिलवं मेलसंख्यातवर्गस्थानत्वमं बिट्टनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु केवलज्ञानचतुर्थमूलघनाघनं पुट्टिदुविदुवुं केवलज्ञानप्रथममूलमुमं तुरीयमूलमुमं गुणिसिद राशिप्रमाणमक्कुमिदे द्विरूपघनाघनाधारेगवस्थानमक्कुं । किं बहुना :—

त्यजनेन अवस्थानकालः, न तु निगोदजीवानां उत्कृष्टावस्थानकालः, तस्य द्वयर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमितत्वात् । ततः असंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथममूलम् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते योगस्य चतुःस्थानवृद्धिंगतश्रेण्यसंख्येयभागमात्रेण उत्कृष्टस्य अविभागप्रतिच्छेदराशिरुत्पद्यते । कः सः ? कर्मनोकर्मवर्गणानां सर्वात्मप्रदेशेषु प्रकृतिप्रदेश[illegible]। ततोऽनन्तानन्तवर्गस्थानान्यतिक्रम्य केवलज्ञानस्य चतुर्थवर्गमूलघनाघनः । स च तस्य प्रथमचतुर्थवर्गमूलगुणनलब्धमात्रः । अयमेव अस्याः धारायाः अन्तः । द्विरूपवर्गधारायां इष्टस्थाने यो यो राशिर्दृश्यते अस्यां तत्स्थाने तत्सदृशाः नव नव राशिगुणनलब्धमात्राः सन्ति । अस्याः स्थानविकल्पाः केवलज्ञानस्य चतुरूनवर्गशलाकामात्राः के ब–४ । एवं यत्र एव धारा

निगोद जीव निगोदपर्यायमें जितने उत्कृष्ट काल तक रहें, उसे निगोदकायस्थिति नहीं लेंगे क्योंकि उसका काल ढाई पुद्गल परावर्तन है जो अनन्त है । उससे असंख्यात-असंख्यात-वर्गस्थान जाकर उत्कृष्ट योगस्थानोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी वर्गशलाकाराशि, अर्धच्छेद राशि और प्रथम वर्गमूल उत्पन्न होता है । उसमें एक बार वर्ग करनेपर जो चतुःस्थान वृद्धिको लिये हुए श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान हैं, उनमें जो उत्कृष्ट योगस्थान है, उनके अविभागी प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है । वे योगस्थानोंके अविभागी प्रतिच्छेद जीवके समस्त प्रदेशोंमें कर्म और नोकर्मपर्यायरूप परिणमनेके योग्य वर्गणाओंमें प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके कारण होते हैं । उससे अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर केवलज्ञानके चतुर्थ वर्गमूलके घनका घन आता है । वह केवलज्ञानके प्रथम वर्गमूल और चतुर्थ वर्गमूलको गुणा करनेपर जो लब्ध आता है, उतना मात्र है । यही द्विरूप घनाघनधाराका अन्तस्थान है । द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थानमें जो राशि होती है, इस धारामें उस स्थानमें उस राशिको नौ जगह स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, उतनी राशि होती है । इस धाराके सब स्थान केवलज्ञानकी वर्गशलाकाके प्रमाणसे चार कम होते हैं । इस तरह यहाँ चार ही धाराओंका कथन किया है । शेष समधारा आदि दस धाराएँ यहाँ उपयोगी न होनेसे नहीं

---

१. ब °नेषूक्तं ।

जो जो रासी विरूवधरगे सनिट्ठाणम्मि ।
तट्ठाणे तस्सरिसा घणाघणे णव णउट्ठिहा ॥

येंदु द्विरूपवर्गधारेयोळु स्वकीयेष्टस्थानदोळु आवावराशि काणल्पडुगुमास्थानदोळा-राशि समानंगळु द्विरूपघनाघनधारेयोळु नवनवोद्दिष्टंगळु ई द्विरूपघनाघनधारेगे स्थानविकल्पं-गळगेनितक्कुमेंदोडे केवलज्ञानवर्गशलाकाराशियोळ्नाल्कु रूपगळ् कुंदिदनितु स्थानं विकल्पंगळ्-प्पुवु । के ≡ । व – ४ । इंतिल्लिगुपयोगिगळप्प नाल्कु धारेगळ्गेळल्पट्टविन्नुळिद सम । विषम । कृति । अकृति । कृतिमूल । अकृतिमूल । घन । अघन । घनमूल । अघनमूल मेंब पत्तुं धारेग-ळिल्लिगनुपयोगिगळेंदु पेळ्दुविल्लं विस्तरभयदिंगळ् त्रिलोकसारदोळं बृहद्धारापरिकर्म्मदोळं नोडिकोळ्वुवु ॥

अनंतरं जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकनिर्णयार्थ्यमागि परिभाषे पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

पल्लं समुद्दुवमं अंगुळयं सूइ पदरघणणामं ।
जगसेढि लोयपदरो लोओ विं य अट्ठपमाणाणि ॥

पल्यमुं । सागरोपममुं । सूच्यंगुलमुं । प्रतरांगुलमुं । घनांगुलमुं । जगच्छ्रेणियुं । लोकप्रतरमुं । लोकमुमेंदितुपमा प्रमाणंगळगेंदु प्रकारंगळप्पुवु । "एकद्व्यादिगणनया वक्तुमशक्यस्य राशेः कयाचिदुपमया प्रतिपादनमुपमा । उपमैव प्रमाणमुपमाप्रमाण" मेंबी निरुक्त्याभिप्रायदिंद । प । सा । सू २ । प्र ४ । घ ६ । जगच्छ्रेणि— । अ प्र ८ । लो ≡ । मा ८ एंदु प्रमाणंगळागे द्वयु संदृष्टिगळ् ॥

ववहारुद्धारद्धा तिय पल्ला पढमयम्मि संखाओ ।
बिदिए दीवसमुद्दा तदिये णिज्जेवि कम्मठिदी ॥

व्यवहारपल्यमेंबुद्धारपल्यमेंदु अद्धापल्यमेंदितु पल्यं मूरु विकल्पमप्पुदल्लि प्रथमोद्दिष्ट-व्यवहारपल्यदोळु रोमसंख्येगळुं, द्वितीयोद्धारपल्यदोळु द्वीपसागरसंख्येगळुं । तृतीयाद्धापल्यदोळु कार्म्मस्थितिगळुमोवलावुवु प्रमाणिसल्पडुववु ।

उक्तः । शेषसप्तादिदशधाराणामत्रानुपयोगित्वात् । तज्जिज्ञासुः त्रिलोकसारे बृहद्धारापरिकर्मणि वा शिष्या जानन्तु ।

यदेकद्व्यादिगणनया विना उपमयैव उच्यते तदुपमानं, तत्—पल्यं सागरोपमं सूच्यङ्गुलं प्रतराङ्गुलं घनाङ्गुलं जगच्छ्रेणिः लोकप्रतरो लोकश्च इत्यष्टधा । एषां स्वरूपं परिभाषाकथनपूर्वकं इदानीमुच्यते तद्यथा— यत् सुतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण छेत्तुं भेत्तुं मोटयितुं च न शक्यते अग्न्यनलादिभिर्नाशं नैति एकैकरसवर्णगन्धं

कही हैं। जिन्हें उनके जाननेकी इच्छा हो, उन्हें त्रिलोकसार अथवा बृहद्धारापरिकर्मसे जानना चाहिए।

जो राशि एक-दो आदि गणनाके द्वारा न कही जा सकनेके योग्य होनेसे केवल उपमाके द्वारा ही कही जाती है, उसे उपमान कहते हैं। उपमानके पल्य, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणि, लोकप्रतर और लोक इस प्रकार आठ भेद हैं। परिभाषाके कथनपूर्वक इनका स्वरूप अब कहते हैं—जो सुतीक्ष्ण शस्त्रसे भी छेदन-भेदन और मोड़नेमें असमर्थ होता है, जल-आग आदिसे नाशको प्राप्त नहीं होता, एक रस, एक गन्ध, एक रूप और दो स्पर्श गुणोंसे युक्त होता है, शब्दका कारण है किन्तु स्वयं शब्दरूप नहीं है, आदि-मध्य

खंवं सयळ समत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी होइ परमाणू ॥

सकलावयवसमर्थं स्कंधमें बुदक्कुं । अदरर्द्धमं देशमें बितु पेळ्वरर्द्धार्द्धमुमं प्रदेशमें बु पेळवप्पंरमाणुमेंबुदविभागियक्कुं ॥

सच्छेण सुतीक्खेण छेत्तुं भेत्तुं च जं किळ ण सक्को ।
जळ अणळादीहि णासं ण एवि सो होवि परमाणू ॥

सुतीक्ष्णशस्त्रविदमेरडु खंडमाडलु विदारि-सलु-मोडेयलुं शक्यमल्लबुदुं जलानलादिगळिंदं नाशमनेय्दददुदावुदो बु पुद्गलद्रव्यमबु परमाणुमक्कुं ॥

एक्करसवण्णगंधं दोपासं सद्दकारणमसद्दं ।
खंडंतरिदं दव्वं तं परमाणुं भणंति बुहा ॥

यथायोग्यमप्प ओं बु रसनों बु वर्णमों बु गंधमुमेरडु स्पर्शंगळनुळ्ळुदुं शब्दकारणमुमशब्दमुं स्कंधांतरितं द्रव्यं परमाणुमेंदवं बुधवरर्गणधरादिदेवर्पेळ्वरु ।

अंताइमज्झहीणं अपदेसं इंदिएहि ण हगेज्झं ।
जं दव्वं अविभत्तं तं परमाणुं भणंति जिणा ॥

अंतादिमध्यहीनमप्रदेशमिंद्रियंगळिंदमग्राह्यमुं यद्द्रव्यमविभक्तं तद्द्रव्यं परमाणुवेंदु जिनर्पेळ्वरु ॥

पूरंति गळंति जदो पूरणगळणेहि पोग्गळा तेण ।
परमाणु णिय (णं पि य) णामा हवदि [illegible]

यस्मोऽन्तरंगबहिरंगकारणाभ्यां पूरणगलनस्वभावैः पुद्गलाः पूरयंति गलंति तेन कारणेन पुद्गलपरमाणवोपि च पुद्गला जाताः ॥

आवदु केलवंतरंगबहिरंग कारणंगळिंदं पूरणगलनस्वभावदिंदं पुद्गलंगळु पूरिसुववुं गलिसुववदु कारणदिंदं परमाणुगळु पुद्गलंगळुमप्पुवेंदिदु दृष्टिवाददोळ् दृष्टं ।

इंद्रियंगळिनग्राह्यंगळप्परमाणुगळें बिनरिवमल्लंगळ् परमाणु गळ्एें आशंकेयादोडे स्पर्शरसगंधवर्णवंतः पुद्गलाः एंदिदरिंदं परमाणुगळ् मूर्त्तंगळु पूरणगलनस्वभावदिंदं पूरिसुवुवुं गलिसुवुमदरिंदं पुद्गलंगळुमप्पुवेंदोडे परमाणुगळविभागिगळप्पुदरिंदं गलनपूरणमिल्लेंदोडे पेळ्दपरु :—

द्विस्पर्शशब्दकारणं अशब्दं स्कन्धान्तरितं आदिमध्यावसानरहितं अप्रदेशं इन्द्रियैरग्राह्यं अविभागि तद् द्रव्यं परमाणुः कथ्यते । स च अन्तरङ्गबहिरङ्गकारणाभ्यां वर्णरसगन्धस्पर्शैः सर्वदा पूरणं गलनं च स्कन्धवत् करोति इति पुद्गलः । तेषामनन्तानन्तानां स्कन्धः अवसन्नासन्नो नाम, ततः सन्नासन्नः त्रुटरेणुः त्रसरेणुः रथरेणुः, उत्तमभोगमध्यमजघन्यभोगभूमिकर्मभूमिबालाग्राणि लिक्षासर्षपयवाङ्गुलानि चेति द्वादशापि अष्टाष्टगुणानि

और अन्तसे रहित है, बहुप्रदेशोंका न होनेसे अप्रदेशी है, इन्द्रियोंके द्वारा जाननेके अयोग्य है, जिसका विभाग नहीं हो सकता, उस द्रव्यको परमाणु कहते हैं। वह परमाणु अन्तरंग-बहिरंग कारणोंसे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श गुणोंके द्वारा स्कन्धकी तरह पूरण और गलन अर्थात् वृद्धि-हानिको प्राप्त होता रहता है, इसलिए उसे पुद्गल कहते हैं। इन अनन्तानन्त परमाणुओंके स्कन्धका नाम अवसन्नासन्न है। उससे सन्नासन्न, त्रुटरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, मध्यमभोगभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, जघन्यभोगभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, कर्मभूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग, लीख,

वण्णरसगंधफासे पूरणगलणाइ सव्वकालम्मि ।
खंधं पि व कुणमाणा परमाणू पोग्गला तम्हा ॥

वर्णरसगंधस्पर्शेषु पूरणगलनानि सर्व्वकालेषु । कुर्व्वाणाः परमाणवस्तस्मात् स्कंधा अपीव पुद्गलाः स्युः ॥

वर्णरसगंधस्पर्शंगळोळु पूरणगलनंगळं सर्व्वदा माळ्प परमाणुगळु स्कंधंगळुमेंतंते पुद्गलंगळप्पुवु ।

परमाणूहि अणंताणंतेहि बहुविदेहि दव्वेहि ।
ओसण्णासण्णेत्तिय सो खंधो होदि णामेण ॥

बहुविधंगळप्प परमाणुगळनंतानंतद्रव्यंगळिंदं समुदितमाद स्कंधमदवसन्नासन्ने एंबुदक्कुं ॥

ओसण्णासण्णो जे य गुणिदे अट्ठेहि होदि णामेण ।
सण्णासण्णे त्ति तदो दु इट्ठि खंधो पमाणत्थं ॥

आ अवसन्नासन्नेयुमनें टरिवं गुणिसुत्तिरलु नामविंदमवु सन्नासन्नेयेंबुदक्कु मी द्वितीयस्कंधोपम द्रव्यमं ।—

अट्ठेहि गुणदव्वेहि सण्णासण्णेहि होदि तुडिरेणू ।
तत्तियमेत्तहदेहि तुडिरेणूहि पि तसरेणू ॥

मत्तमें टरिव गुणिसल्पट्ट सन्नासन्नेगळिंनों दु त्रुटिरेणुमक्कुमपिशब्दविंदमा त्रुटिरेणुगळुमेटरिव गुणिसल्पट्टवादोंदु त्रसरेणुवक्कु ।

तसरेणू रथरेणू उत्तमभोगावणीए बालग्गं ।
मज्झिम भोगखिदीए बालंपि जहण्ण भोग खिदिबालं ॥

मा त्रसरेणुगळें टं गोंडदों दु रथरेणुमक्कुं रथरेणुगळें टरिवमों दु सम भोगभूमिजबालाग्रमक्कु मा बालाग्रंगळें टरिवमों दु मध्यमभोगभूमिजबालाग्रमक्कु मा बालाग्रंगळें टरिवं जघन्यभोगभूमिजातनों दु बालाग्रमक्कुमा बालाग्रंगळेंटरिवं :—

कम्ममहीए बालं लिक्खं पूयं जवं च अंगुलयं ।
इय उत्तरा पमाणिवा पुव्वेहि अट्ठगुणिदेहि ॥

कर्म्मभूमिजनों दु बालाग्रमप्पुवा बालाग्रंगळे ट रिवों दु लिक्षमप्पुदा लिक्षगळें टरिवमों दु सर्षपमप्पुदा सर्षपंगळें टरिवमों दु यवेयक्कुमा यवंगळें टरिवं ओंदंगुलमक्कु ।

मन्तव्यानि । अङ्गुलं तु उत्सेधाङ्गुलं प्रमाणाङ्गुलं आत्माङ्गुलमिति त्रिधा । तत्र प्रागुक्तपरिभाषानिष्पन्नमुत्सेधाङ्गुलम् । तेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवशरीराणि भावनादिचतुर्विधदेवनगरतन्निकेतनानि च वर्ण्यन्ते । तच्च पञ्चशतगुणं भरतैरावतावसर्पिणीकालप्रथमचक्रवर्त्यङ्गुलसमं प्रमाणाङ्गुलं भवति । तेन द्वीपोदधिशैलवेदीनदीकुण्डजगतीक्षेत्रप्रमाणानि वर्ण्यन्ते । भरतैरावतमनुष्याणां स्वस्ववर्तमानकालाङ्गुलमात्माङ्गुलं भवति । तेन

सरसों, जौ, और अंगुल ये बारह भी एक दूसरेसे आठ-आठ गुने जानना । अंगुलके तीन भेद हैं—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल । पूर्वोक्त क्रमसे उत्पन्न हुआ उत्सेधांगुल है । इससे नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवोंके शरीर, भवनवासी आदि चार निकायोंके देवोंके नगर और निवासस्थान आदिके मापका कथन किया जाता है । उस उत्सेधांगुलसे पाँच सौ गुना प्रमाणांगुल होता है । यह प्रमाणांगुल भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणी कालके प्रथम चक्रवर्तीका आत्मांगुल होता है । इससे द्वीप, समुद्र, पर्वत, वेदी, नदी, कुण्ड, जगती, क्षेत्र

तिविकप्पमंगुलं तं उच्छेह पमाण अप्प अंगुलयं ।
परिभासाणिप्पण्णं होदि हु उस्सेहसूचि अंगुलयं ॥—[ति. प. १।१०७]

मत्तमा अंगुलं त्रिविकल्पमक्कु मुत्सेधप्रमाणात्मांगुलमेंबितुमिवरोळ् प्रथमोद्दिष्टपरिभाषा-
निष्पन्नांगुलमुत्सेधसूच्यंगुलमक्कुं ।

मार्गदर्शक :- आचार्यश्री विशुद्धसागर जी महाराज

तच्चिय पंचसयाइं अवसप्पिणि-पढम-भरहचक्किस्स । ५
अंगुलमेक्कं जं जिय तं तु पमाणंगुलं होदि ॥—[ति. प. १।१०८]

आ उत्सेधसूच्यंगुलंगळैनूरु कोंडो बु भरतक्षेत्रवत्तसर्प्पिणीकालद प्रथमचक्रवर्त्तिय अंगुल-
मक्कुमदु तानें मत्ते प्रमाणांगुलमें बपेसरनुळ्ळुदक्कुं ।

जस्सि जस्सि काळे भरहेरावदमहीसु जे मणुवा ।
तस्सि तस्सि ताणं अंगुलमावंगुलं णाम ॥—[ति. प. १।१०९] १०

आवाव कालदोळु भरतैरावतमहीगळोळावकेलंबमनुष्यरुगळा आ कालदोळा मनुष्य-
रुगळंगुलमदात्मांगुलमें बुदक्कुं ।

उच्छेह अंगुळेण य सुराण णरतिरिय णारयाणं च ।
उस्सेह जाण भावण चउदेवणिकेदणयराणं ॥—[ति. प. १।११०]

देवमनुष्यतिर्य्यग्नारकरुगळ शरीरोत्सेधंगळ्गं भावनादि चतुर्व्विधदेवर्कळ नगरंगळोळगण- १५
निकेतनंगळगुत्सेधांगुलंविवं पवणिशल्पडुवुवु ।

दीवोवहिसेलाणं वेदीण णदीण कुंड जगदीणं ।
वस्साणं च पमाणं होदि पमाणंगुलेणेव ॥—[ति. प. १।१११]

द्वीपोदधिशैलंगळ वेदिगळ नदिगळ कुंडंगळ जगतिगळ वर्षंगळ प्रमाणंगळनितुं प्रमाणांगुल-
विंद मेयप्पुवु । २०

भिंगारकलसदप्पणधणुहपडहजुगाण सयणसगडाणं ।
हलमुसलसत्तितोमरसिंहासण बाणणालि अक्खाणं ॥
चामरदुंदुहिपीढच्छत्ताणं णरणिवासणयराणं ।
उज्जाण पहुडियाणं संखा आवंगुलेणेव ॥—[ति. प. १।११२-११३]

भृंगारकलशदर्पणधनुःपटहयुगशयनशकटहलमुशलशक्तितोमरसिंहासनबाणलक्षनालि चामर- २५
वुंदुभिपीठछत्रनरनिवासनरनगरोद्यान प्रभृतिगळ संख्येयात्मांगुलदिंद मेयमक्कुं ।

भृंगारकलशदर्पणधनुःपटहयुगशयनशकटहलमुशलशक्तितोमरसिंहासनबाणाक्षनालिचामरखुन्दुभिपीठछत्रनरनिवास-नगरनगोद्यानादयो वर्ण्यन्ते । षड्यवैः पादस्ततो वितस्तिः हस्तः किष्कुः दण्डश्चेति चत्वारोऽपि द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति । द्विसहस्रदण्डैः क्रोशः चतुर्भिः क्रोशैर्योजनम् । प्रमाणयोजनागाधव्यासो वृत्तो गर्तः, उत्तमभोग-

आदिके प्रमाणका कथन किया जाता है । भरत और ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने-अपने ३०
वर्तमानकालमें जो अंगुल होता है, वह आत्मांगुल है । उससे झारी, कलश, दर्पण, धनुष, ढोल, जुआ, शय्या, गाड़ी, हल, मूसल, शक्ति, भाला, सिंहासन, बाण, पासे, नाली, चमर, दुन्दुभि, आसन, छत्र, मनुष्योंके निवास, नगर, उद्यान आदिके प्रमाणका कथन किया जाता है । छह अंगुलका एक पाद होता है । उससे वितस्ति, हाथ, चार हाथ (२४ अंगुल) और दण्ड ये चारों दूने-दूने होते हैं । दो हजार दण्डका एक कोस, और चार कोसका एक योजन होता है । ३५

प्रमाणांगुलसे निष्पन्न योजन प्रमाण चौड़ा और गहरा गोल गड्ढा करो । उसे उत्तम-भोगभूमिके मेढ़ेके युगलके जन्मसे एक दिनसे लेकर सात दिनके रोमोंके अग्रभागोंको,

छहि अंगुलेहि पादो बेपादेहिं विहत्थिणामा य ।
दोण्णि विहत्थी हत्थो बेहत्थेहिं हवे किक्कू ॥—[ति. प. १।११४]

आरंगुलविंदं पादं, पादद्वयविंदं वितस्ति, वितस्तिद्वयविंदं हस्तं हस्तद्वयविंदं किष्कु ।

बेकिक्कूहिं दंडो दोण्णि सहस्सेहि तेहि कोसो य ।
कोसचउक्केण हवे जोयणमेक्कं जहा कमसो ॥—[ ]

किष्कुद्वयविंदं दंडमक्कुमा दंडद्विसहस्रंगळिंदं क्रोशमक्कुमाक्रोश चतुष्कदिनों दु योजनमक्कुं । प्रमाणैकयोजनोत्सेध योजनविस्तार वृत्तगर्तघनफलमं गणितकुशलविंदं तरल्पडुवुदु ।

समवट्टवासवग्गे दहगुणिदे करणिपरिरयो होदि ।
वित्थार तुरिमभागे परिहिहवे तस्स खेत्तफलं ॥—[ति. प. १।११७]

समवृत्तव्यासवर्गमं । १ । १ । दशगुणितं माडुत्तिरलु करणिवृत्त परिधियक्कु १ । १ । १० । मी करणियं मूलंगोळलनितक्कु । १९ मिदं वित्थारतुरिमभागे परिहिहदि तस्स खेत्तफलं १९ । १
६ ६ ४

एंविदु क्षेत्रफलमप्पुदिंदं वेदिंयिदं गुणिसुत्तिरलु पल्यद घनफलमक्कु १९ १ (१९/२४) मी
२ ४
घनफलमे प्रत्येकं त्रिविधपल्यंगळक्कुं।

उत्तमभोगभूमियोळुत्पन्नावि युगळरोमंगळनेळुदिवसावसानदोळ् कत्तरिसिकोंडु रोमाग्र-व्याससमानमं केळगिळिवु कत्तरिसिदा बालाग्रकोटिगळं संग्रहिसिकोंडु ।—

एक्कादिसत्तदिवसावहिम्मि छेत्तूण संगहिदं ॥—[ति. प. १।११९]

उत्तमभोगभूमियोळुत्पन्नावि युगळरोमंगळनेळुदिवसावसानदोळ् कत्तरिसिकोंडु रोमाग्र-व्याससमानमं केळगिळिवु कत्तरिसिदा बालाग्रकोटिगळं संग्रहिसिकोंडु ।—

अइवट्टीहिं रोमं गेहिंतेहिं णिरंतरं पढमं ।
अब्भंतं णिचिदूणं भरिदव्वं जावभूमिसमं ॥—[ति. प. १।१२०]

इंतितिवृत्तंगळप्पाऽरोमाग्रंगळिंदं निरंतरं अंतरालावर्शमिर्मेंतंते अत्यंतनिचितं माडि प्रथम-कुंडं तुंबलपडुवुदुमदेन्नेवरं भूमिसमानमप्पुवन्नेवरं । इंतु तुंबिद प्रथमव्यवहारपल्यद रोमप्रमाणंगळुत्पत्तिपूर्व्वकमागि रोमप्रमाणंगळं पेळ्दपरु ।

दंडपमाणंगुलए उस्सेहंगुलं जवं च जूवं च ।
लिक्खं तह कादूणं बालग्गं कम्मभूमीए ॥—[ति. प. १।१२१]

मुं पेळ्द गर्तघनफलमं १९ प्रमाणदंडंगळुमं प्रमाणांगुलंगळुमं माडि मत्तमा प्रमाणां-
२४

भूमावियुगलस्य एकादिसप्तदिनाभ्यन्तरे गृहीतैरग्रव्यासायामैं रोमाग्रैर्निरन्तरमत्यन्तनिचितो भूमिसमो भर्तव्यः । तद्रोमसंख्या साध्यते—

व्यासस्य वर्गो १ । १ दशभिर्गुणिते सति करणिरूपपरिधिर्भवति १ । १ । १० अस्य मूलमिदं १९
६

अस्मिन् व्यासतुरीयभागेन गुणिते क्षेत्रफलं भवति । १९ । १ अस्मिन् पुनः वेधेन गुणिते घनफलं भवति १९
६ । ४ २४

---

३० जिनकी लम्बाई-चौड़ाई अग्रभागके समान हो, पृथ्वीके स्तर तक अत्यन्त ठसाठस भर दो। उसके रोमोंकी संख्या साधते हैं—व्यास एक योजन, उसका वर्ग भी एक योजन, उसे दससे गुणा करनेपर दस योजन प्रमाण परिधि होती है। इसका वर्गमूल $\frac{19}{6}$ होता है। इसमें व्यासके चतुर्थ भागसे गुणा करनेपर क्षेत्रफल $\frac{19}{6} \times \frac{1}{4} = \frac{19}{24}$ होता है। इसको गहराईमें एक योजनसे गुणा करनेपर घनफल भी $\frac{19}{24}$ होता है।

गुलंगळनुत्सेधांगुलंगळं माडियवने यवेगळं माडि, यवेगळं यूकंगळं माडि, यूकंगळं लिक्षंगळं माडि लिक्षंगळं कर्म्मभूमिजर बालाग्रंगळं माडि कर्म्मभूमिजर बालाग्रंगळं ।

अवरं मज्झिमउत्तमभोगखिदीणं च बाल अग्गाणं ।
एक्केक्कमट्ठघणहव रोमा ववहारपल्लस्स ॥—[ति. प. १।१२२]

जघन्य भोगभूमिजर बालाग्रंगळं माडि मत्तमवं मध्यमभोगभूमिजर बालाग्रंगळं माडि मत्तवनुत्तमभोगभूमिजर बालाग्रंगळं माडि बंदंगळमोदलादुमेल्लं घनराशिगे पुगुवमुच गुणकारंगळु घनात्मकंगळेयागल्वेळकुमप्पुवरिनेल्ला गुणकारंगळनुत्तमभोगभूमिजर बालाग्रपर्य्यंतमाद गुणकारंगळनितुमं घनात्मकंगळागि स्थापिसुवुदि १९।८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।
२४।८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।
८००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

नु स्थापिसिदी गुणकारंगळं राश्यर्धखंडविधानदिवं लघुकरणमागि गुणियिसिद लब्धराशिय रोमप्रमाणंगळु व्यवहारपल्यरोमखंडंगळप्पुवुमवर प्रमाणमं पेळ्दपरु ।

अट्ठारसठाणेसुं सुण्णाणि दो णवेक्क दो एक्कं ।
पण णव चउक्क सत्ता सग सत्ता एक्क तिय सुण्णा ॥
दो अट्ठ सुण्ण तिय णभ तियछक्का दोण्णि पण चउक्काणि ।
तियएक्क चउक्काणि अंककमे पल्लरोमस्स ॥—[ ]

इदं पुनरेकयोजनस्य अष्टसहस्रैर्दण्डैः, एकदण्डस्य षण्णवत्यङ्गुलैः, एकप्रमाणाङ्गुलस्य पञ्चशत्या व्यवहाराङ्गुलैः, एकतदङ्गुलस्य अष्टभिर्यवैरेकयवस्य अष्टभिर्यूकाभिः, एकयूकाया अष्टभिर्लिक्षाभिः, एकलिक्षाया अष्टभिः कर्मभूमिबालाग्रैः, एकतद्बालाग्रस्य अष्टभिर्जघन्यभोगभूमिबालाग्रैः, एकतद्बालाग्रस्य अष्टभिर्मध्यमभोगभूमिबालाग्रैः, एकतद्बालाग्रस्य अष्टभिरुत्कृष्टभोगभूमिबालाग्रैश्च घनराशेर्गुणकारा घनात्मका भवन्तीति घनीकृतैर्गुणयित्वा—

$\frac{1}{24}$—८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।
८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।
८०००।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८।

अब यहाँ एक योजनके आठ हजार धनुष, एक धनुषके छियानवे अंगुल, एक प्रमाणांगुलके पाँच सौ व्यवहारांगुल, एक व्यवहारांगुलके आठ यव, एक यवके आठ जू, एक जू के आठ लीख, एक लीखके कर्मभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र, एक बालाग्रके जघन्य भोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र, इस एक बालाग्रके मध्य भोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र, इस एक बालाग्रके उत्कृष्ट भोगभूमिज मनुष्यके आठ बालाग्र होते हैं। घनराशिके गुणकार घनात्मक ही होते हैं। अतः इन सबका गुणकार घनरूप करनेके लिए पहले उन्नीसका चौबीसवाँ भाग लिखकर उसके आगे आठ हजार आदि तीन-तीन बार रखकर परस्परमें गुणा करना चाहिए—$\frac{1}{24}$ × ८०००।८०००।८०००।९६।९६।९६।५००।५००।५००।८।८।८।८।८।८।८।८

अंकक्रमविवं पदिनेंटु स्थानंगळोळु शून्यंगळप्पुवुमेरडुमों भत्तु मों भुमेरडुमों बुमय्वुमोंभत्तुं नाल्कुमेळु मेळु मेळुमों दु मूरुं शून्यमुमेरडुमें टुं शून्यमुं मूरु शून्यमु मूरु मारु मेरडुमय्दुं नाल्कु मूरुमोंदु नाकुमक्कुं। ४१३। ४५२६३०३०८२०३१७। ७७४९५१२। १९२०००००००००००००००००। नानूर पदिमूरुं षड्वारकोटिगळं नाल्वत्तप्पु लक्षेयुमिप्पत्तारु सासिरद मूनूर मूरु पंचवार कोटिगळुमेंदु लक्षेयु मिप्पत्तुसासिरद मूनूर पदिनेळु चतुर्व्वारकोटिगळुं मय्वत्तेळु लक्षेयुं नाल्वत्तोंभत्तु सासिरवेनूर हन्नेरडु त्रिवारकोटिगळुं हत्तों भत्तुलक्षेयुमिप्पतु सासिरद्विकवारकोटिगळप्पुवेंबुदत्थं।

एक्केक्कं रोमग्गं वस्ससदे पेलिदम्मि सो पल्लो।
रित्तो होदि स कालो उद्धारणिमित्तववहारो।—[ति. प. १।१२५]

इन्ती गर्त्तस्थित रोमाग्रंगळोळोंदोंदु रोमाग्रमं वर्षशतदोळु स्पेटिसला पल्यमेंदु होगे रिक्तमक्कुमा कालमुद्धारपल्यनिमित्तमप्प व्यवहार पल्यकालमक्कुं। संदृष्टि २–७। ७॥

ववहाररोमरासिं पत्तेक्कमसंखकोडिवरिसाणं।
समयसमं छेत्तूणं बिदिए पल्लम्मि भरिदंमि॥—[ति. प. १।१२६]

व्यवहारपल्यस्थित रोमराशियोळेकैकरोममं प्रत्येकसंख्यातकोटिवर्षंगळसमयंगळोळ् समानमागि कत्तरिसि द्वितीयपल्यमं तुंबुतुंबुत्तिरलु।

समयं पडि एक्केक्कं बालग्गं पेलिदम्मि सो पल्लो।
रित्तो होदि स कालो उद्धारं णाम पल्लं तु॥—[ति. प. १।१२७]

आ तुंबिद बालाग्रंगळोळोंदोंदं समयं प्रति स्पेटिसुत्तिरला पल्यमेंदिगे रिक्तमक्कुमा

गुणकारेषु राश्यर्धच्छेदविधानेन लघुकरणेन गुणितेषु यल्लब्धं तदिदमङ्कक्रमेण अष्टादशशून्यद्विनवैकद्व्येकपञ्चनवचतुःसप्तसप्तसप्तैकत्रिशून्यद्वयष्टशून्यत्रिशून्यत्रिषट्द्विपञ्चषट्चतुस्त्र्येकचतुर्मात्रं व्यवहारपल्यसंख्या भवति—४१३, ४५२६३०३, ०८२०३१७, ७७४९५१२, १९२०००००, ००००००००००००००००। चतुःशतत्रयोदशषट्वारकोटिपञ्चचत्वारिंशल्लक्षषड्विंशतिसहस्रत्रिशतत्रिपञ्चवारकोट्यष्टलक्षविंशतिसहस्रत्रिशतसप्तदशचतुर्वारकोटिसप्तसप्ततिलक्षैकाशीतिपञ्चाशत्सहस्रपञ्चशतद्वादशत्रिवारकोट्येकाग्रविंशतिलक्षविंशतिसहस्रद्विवारकोटिमात्रमित्यर्थः। एकैकस्मिंस्तद्रोमाग्रे वर्षशते वर्षशतेऽपनीते यावान् कालः स सर्वो व्यवहारपल्यस्य कालो भवति। संदृष्टिः २१७। पुनरेकैकस्मिंस्तद्रोमाग्रे असंख्यातकोटिवर्षसमयैः समं प्रत्येकं खण्डिते द्वितीयपल्यस्य रोमाग्र-

---

४१३,४५२६३०३,०८२०३१७, ७७४९५१२, १९२०००००००००००००००००। अर्थात् चार सौ तेरह कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी, पैंतालीस लाख छब्बीस हजार तीन सौ तीन कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी कोड़ी, आठ लाख बीस हजार तीन सौ सतरह कोड़ाकोड़ी कोड़ाकोड़ी, सतहत्तर लाख उनचास हजार पाँच सौ बारह कोड़ाकोड़ी कोड़ी, उन्नीस लाख बीस हजार कोड़ाकोड़ी प्रमाण होते हैं। इन रोमाग्रोंमें-से एक-एक रोम सौ-सौ वर्षके बाद निकालनेपर जितना काल होता है, वह सब व्यवहारपल्यका काल है। पुनः इन एक-एक रोमाग्रका असंख्यात करोड़ वर्षोंके जितने समय होते हैं, उतने-उतने खण्ड करनेपर दूसरे उद्धार पल्यके रोमाग्रोंकी संख्या होती है। इतने ही इसके समय होते हैं। उनकी संख्या लाते हैं—विरलन राशिको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर जो लब्ध आता है, वह उत्पन्न राशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। अतः अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिमें अद्धापल्यकी अर्धच्छेद

---

१. ब उद्धारप°।

कालमुद्धारपल्यमेंब नामक्कुमिदक्के संदृष्टि । वि $\frac{३}{२५ \text{ को } २}$ छे छे ३ ई संदृष्टिगे निर्णयमं माळ्पें ।

"तियहीण सेढि छेदणमेत्तो रज्जुच्छेदे हवेइ" एंबु त्रिरूपोनजगच्छ्रेणिय अर्द्धच्छेदंगळु रज्जुच्छेदंगळप्पुवा (ज) गच्छ्रेणियर्द्धच्छेदंगळेनितेंदोडे :—

विरळिज्जमाणरासिं विण्णस्सद्धच्छिदोहि संगुणिदे ।

यागच्छेदा होंति तु [illegible] [illegible] [illegible]

३०
प्रमाणराशियक्कु मवक्के संदृष्टि वि छे छे ३ मत्तमी द्वीपसागरंगळु "सव्वे दीवसमुद्दा अड्ढाइज्जुद्धा खवहिमेत्तया होंति" एंदुद्धारसागरोपमंगळ्गे रज्जुवरेयक्कुमो बुद्धारसागरोपमक्के पत्तु कोटि-कोटिपुद्धारपल्यंगळप्पुवरिंदं रज्जुवरेयुद्धारसागरोपमंगळिप्पत्तप्पु कोटि कोटियुद्धारपल्यंगळप्पुवा उद्धारपल्यंगळिप्पत्तप्पु कोटि कोटिगळिंगनितु राशियागलो बुद्धारपल्यक्केनितु राशि प्रमाणमप्पु-

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

५ वेंदु त्रैराशिकं माडि प्र उप=२५ को २ फ। वि—१ छे छे ३ इच्छ ॥ उप १ ॥ बंद लब्ध-

२
मो बुद्धारपल्यप्रमाणमक्कुं संदृष्टि वि १। छे छे ३ इंतुद्धारपल्यप्रमाणं सिद्धमाय्तु।
३२५ को २

ईयुद्धारपल्यरोमंगळ मो वो बंऽसंख्यात वर्षसमयसमानमागि खंडिसि तृतीयपल्यमं तुंबि प्रतिसमयमो वो दु रोममं तेगेयलेनितुकालक्का पल्यरोमंगळ्तीर्ग्गुंमनितु समयप्रमाणमद्धापल्य-मेंबुदक्कुमवरिंदं नारकतिर्य्यग्नरामरगळ कर्म्मस्थिति पवणिसल्पडुगुं। संदृष्टि। प। उद्धारपल्य-
१० दोंदु रोममनद्धापल्यनिमित्तमागियसंख्यातवर्षसमय समानमागि खंडिसिदोडेनितु रोमखंडंगळप्पुवेंदु

३०
प्रश्नेयादोडे त्रैराशिकं माडल्पडुगुं। उद्धारपल्यरोमखंडंगळनितक्के प्र उ=रो=। वि छे छे ३

३।२५ को २
फ। फ पल्यमागलो द्धारपल्यरोमक्केनितद्धारपल्यरोमखंडंगळप्पुवें—॥ इच्छ उ=रो=१॥ दु

पनयने एकं रूपं फ १ अपनीयते तदा इ छे छे एतावदपनयने कियदपनीयते इति त्रैराशिकेन लब्धं साधिक-

त्रिभागं १ गुण्येऽपनयेत्। तत्संदृष्टिः—वि (छे छे ३)। एषा द्वीपसमुद्रसंख्या मतः सार्धद्वयोद्धारसागरोपम-
३ १ २

१५ मात्रो ततः कारणात् पञ्चविंशतिकोटीकोटयुद्धारपल्यानि भवन्ति। तावतां पल्यानां प्र प २५ को २, यद्येषां

राशिः फ वि (छे छे ३) तदा एकोद्धारपल्यस्य इ प १ कियान् राशिरिति त्रैराशिकेन प्रागुक्त एकोद्धार-
१ २

अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागको पल्यके अर्धच्छेदोंके वर्गसे तीन गुणे प्रमाणसे गुणा करनेपर समस्त द्वीप-समुद्रोंकी संख्या होती है। यतः इतने द्वीपसमुद्र ढाई उद्धार सागर प्रमाण होते हैं।अतः वे पचीस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य प्रमाण हुए। सो यदि इतने पल्योंकी पूर्वोक्त
२० संख्या होती है,तो एक उद्धार पल्यकी कितनी हुई, ऐसा त्रैराशिक करनेपर पूर्वोक्त द्वीपसमुद्रों-की संख्याको पचीस कोड़ाकोड़ीसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे,उतनी उद्धार पल्यके रोम खण्डोंकी संख्या जानना। इन उद्धार पल्यके रोमखण्डोंमें-से भी प्रत्येक खण्डके असंख्यात वर्षके जितने समय हैं,उतने खण्ड करो। जो प्रमाण हो,उतने ही अद्धापल्यके रोमखण्ड हैं। इसके समयोंका प्रमाण भी उतना है, क्योंकि प्रतिसमय एक-एक रोम निकालनेपर जितने

त्रैराशिकमं माडि बंद लब्धमिं वि छे प छे ३ दो उद्धाररोमगं खंडिसिव खंडप्रमाणमक्कुं । अद्धा-

पल्य तत्प्रर्द्धच्छेदराशियं मेलसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु पुट्टिदुदी हारं पल्यच्छेदराशिय प्रथमवर्गमं पल्यच्छेदासंख्यातैकभागदिदं गुणिसिदनितेयक्कुमर्द्धरज्जुसंख्यातवर्षसमयंगळें बुवुमिनितेयप्पुवु

वि प छे छे ३ पल्यं प्रतिपादितमाप्तु ॥

इ २५ को २

एवाणं पल्लाणं वहुप्पमाणाओ कोडकोडीओ । ५
सागरउवमस्स पुढं एक्कस्स हवेज्ज परिमाणं ॥—[ति. प. १।१३०]

ई मूरु पल्यगळ पत्तुकोटिकोटियं प्रत्येकं कोंडोडे यथासंख्येयिंदं तत्तद्व्यवहारादि सागरोपमंगळप्पुवोंदोंदु ॥ बोंदु सागरोपमं पत्तुकोटिकोटि पल्यप्रमाणमप्पुवक्कुपपत्तियं पेळ्दपं ।

पल्यस्य संदृष्टिः सिद्धयति वि छे छे ३ । पुनरस्यैकैकस्मिन् रोमखण्डे असंख्यातवर्षसमयैः समं खण्डिते

इ २५ को २

यावन्ति रोमखण्डानि तावती अद्धापल्यस्य रोमखण्डसंख्या भवति । तत्समयसंख्यापि तावत्येव । ते असंख्यात- १०

वर्षसमयाः कतीति चेत् उच्यते—एतावन्ति रोमखण्डानि प्र वि छे छे ३ असंख्यातवर्षसमयैः खण्डितानि

इ २५ को २

यद्यद्धापल्यमात्राणि भवेयुः फ प १ तदा एकखण्डे असंख्यातवर्षसमयैः खण्डिते कति खण्डानि भवेयुः ? इति

समयमें वह रिक्त हो, उतना ही अद्धापल्यका काल है। वे असंख्यात वर्षके समय कितने हैं, सो बतलाते हैं—उद्धारपल्यके समस्त रोमखण्डोंमें-से प्रत्येकके असंख्यात वर्षका समय प्रमाण खण्ड करनेपर यदि एक अद्धापल्य प्रमाण खण्ड होते हैं, तो एक खण्डको असंख्यात वर्षके १५ समयोंसे खण्डित करनेपर कितने खण्ड होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेसे जितना लब्धराशिका प्रमाण होता है, उतना ही असंख्यात वर्षके समय होते हैं। अद्धापल्य अपनी अर्धच्छेदराशिसे ऊपर असंख्यात वर्गस्थान जाकर उत्पन्न होता है, ऐसा जानना। इस प्रकार पल्योंको कहा।

---

१. म प
वि + छे छे
इ २५ को २ ।
२. म प + छे छे ३
वि.
इ २५ को २ ।
३. ब सिद्धा भवति ।

'लवणंबुहिसुहुमफळे चउरस्से एक्कजोयणस्सेव ।
सुहुमफलेणवहरिदे वट्टं सूळं सहस्सवेहगुणं ॥'—[त्रि. सा. १०३]
रोमहदं छक्केसजलु सेगे पण्णुवीस समयात्ति ।
संपादं करिय हृदे केसेहि सागरुप्पत्ती ॥'—[त्रि. सा. १०४]

लवणसमुद्रवायत चतुरस्रसूक्ष्मफलमं तंदु :—

'अंताइसूइजोग्गं रुढद्धगुणिस्तु दुण्णिडं किच्चा ।
तिगुणं दसकरणि गुणं बाबरसुहुमं फळं वलए ॥'—[त्रि. सा. ३१५]

अंतसूची । ५ ल । आदिसूची १ ल । योगं ६ ल रुंद्रार्द्धगुणं ६ ले ल । द्विप्रतीकं साडियोंदु राशियं त्रिगुणिसिदडे बादरक्षेत्रफलमक्कुमोंदु राशियं दशकरणियिदं गुणिसिदडे वर्गात्मकसूक्ष्मफलमक्कु । ६ ल ल ६ ल ल १० । मिदनेक योजनसूक्ष्मफलदिदं भागिसलु वृत्त पल्यगर्त्तगळप्पु ६ ल ल । ६ ल ल १० विवनपर्वात्तसिवडे दशकराणिगे दशकरणि होगि 'हारस्य हारो गुणकोंश-

१ १
४ ४ १०

त्रैराशिकेन लब्धमात्रसमया भवन्ति इत्यर्थः वि] छे छें ३ । (अद्धापल्यं हि निजार्धच्छेदराशेरुपरि असंख्यात-
१]
१ २५ को २
३

वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नं इति ज्ञातव्यं) एवं पल्यान्युक्तानि ।

तत्राद्येन पल्येन रोमसंख्या, द्वितीयेन द्वीपसमुद्रसंख्या, तृतीयेन कर्मस्थित्यादिश्च वर्ण्यते । तैस्तैर्दशभिः कोटिकोटिभिः, एकैकं तत्तन्नाम सागरोपमं भवति । तस्योपपत्तिरुच्यते—लवणसमुद्रस्यान्तःसूची ५ ल, तथादि सूची १ ल । अनयोर्योगः ६ ल । अस्मिन् रुन्द्रार्धेन १ ल गुणिते सति यल्लब्धं तदिदं ६ ल ल वर्गात्मकं कृत्वा ६ ल ल ६ ल ल दशभिः करण्यात्मभिर्गुणिते सूक्ष्मफलवर्गो भवति ६ ल ल । ६ ल ल १० । इमं एकयोजनव्यासवृत्तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलेन ६ ल ल । ६ ल ल । १० । भक्त्वा दशकरण्या दशकरणिम-
१ १ १०
४ ४

इनमें-से प्रथम पल्यसे रोम संख्या, दूसरेसे द्वीपसमुद्रोंकी संख्या और तीसरेसे कर्मोंकी स्थिति आदि जानी जाती है । प्रत्येक पल्यको दस कोड़ाकोड़ीसे गुणा करनेपर अपने-अपने नामका एक-एक सागर होता है । उसकी उपपत्ति कहते हैं—

लवणसमुद्रकी अन्तसूची पाँच लाख और आदि सूची एक लाख है। दोनोंको मिलानेपर छह लाख होते हैं। इसको लवणसमुद्रके दो लाख व्यासके आधे एक लाखसे गुणा करनेपर छह लाख लाख होते हैं। इसका वर्ग करके उसे दससे गुणा करनेपर ६ ल. ल. × ६ ल. ल. × १० यह परिधिरूप क्षेत्र हुआ। इस परिधिरूप क्षेत्रफलको एक योजन व्यासवाले गोलाकार पल्यके गड्ढेके सूक्ष्म क्षेत्रफलसे भाग देनेपर $\frac{६ \text{ ल. ल.} \times ६ \text{ ल. ल.} \times १०}{\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times १०}$ इससे दसका अपवर्तन करके तथा 'भागहारका भागहार राशिका गुणाकार होता है', इस नियमके

१. म ६ ल । १ ल । २. रेखाङ्कितभागो नास्ति ब प्रतौ ।

राशेः[1] एंदा नाल्कु नाल्कुगळिदमारारु अंकंगळं गुणियिसलु २४ ल ल २४ ल ल वृत्तगर्त्तंगळ वर्ग्गमक्कुमी वर्ग्गमं मूलंगोळलु शुद्धगर्त्तसूक्ष्मफलंगळप्पुवु। २४ ल ल इवं वेधेयप्पसहस्रदिंदं गुणियिसलु पल्यगर्त्तंगळ घनफलमक्कु २४ ल ल। १०००। मी राशियं तत्र रोमखंडंगळिंदं गुणियिसलु गर्त्तंगळं रोमप्रमाणमप्पु। २४ ल ल १००० ४१ = a a। वी रोमंगळारिद्देडेय जलमं सूंचिसुतिरलिप्पत्तय्दु समयंगळागलिनितु रोमंगळिद्देडेय जलमं सूंचिसुत्तिरलेनितु समयंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडि :—प्र = रो ६। फ। स २५। इ। रो = २४ ल ल। १०००। ४१। a a। बंद लब्धं समयंगळप्पु १०० ल ल। १०००। ४१। = a a वी समयंगळ प्रमाणराशियनिनितु समयंगळ ४१ = a a ळोंदु पल्यमाग —। प। लिनितुं समयंगळंनितु पल्यंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडि प्र ४१ = a a फ। प। इ। १०० ल ल। १०००। ४१ = a a बंद लब्धं पत्तु कोटि कोटि पल्यंगळप्पुवु प १० को २ इंतु सागरोपममुं प्रतीतमाय्तु। आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अद्धारपल्लछेवो तस्सासंखेज्जभागमेत्ते य।
पल्लघणंगुलवग्गिद संवग्गिदयम्मि सूइ जगसेढी ॥—[ति. प. १।१३१]

अद्धापल्यच्छेदराशियुमनो घनवरसंख्यातैकभागमनो वर्गिसततेरडु राशिगळं बेरेबेरे स्थापिसि

पवर्त्य हारस्य हारो गुणकोशराशेरिति चतुष्कत्रयेण स्वस्वोपरितनषट्कं गुणयित्वा २४ ल ल। २४ ल ल। अस्य मूलं गृहीत्वा २४ ल ल। अस्मिन् सहस्रवेधेन गुणिते पल्यगर्तानां संख्यात्मकं घनफलं भवति २४ ल ल १०००। अस्मिन् स्वस्वरोमखण्डैर्गुणिते तद्गर्त्तानां रोमसंख्या भवति—

२४ ल ल। १०००। ४१ = aa। षड्रोममात्रजलोत्सेके प्र ६ पञ्चविंशतिसमया यान्ति फ २५। तदा एतावद्रोममात्र इ २४ ल ल १०००।४१ = aa। जलोत्सेके कति समया यान्ति ? इति त्रैराशिकेन लब्धसमया एतावन्तो भवन्ति। १०० ल ल १००० ४१ = aa एतावद्भिः समयैः प्र ४१ = प्र ४१ a। प्र ४१ = aa यद्येकैकपल्यं भवति फ प १, तदा एतावद्भिः समयैः इ १०० ल ल १०००।४१ = aa स्थानत्रयेऽपि इ १०० ल ल १००० ४१ = इ १०० ल ल १००० ४१ = aa कति पल्यानि भवन्तीति त्रैराशिके दशकोटीकोटिपल्यानि लभ्यन्ते। प १० को २। एवं सागरोपममुत्पन्नं तत्संदृष्टिः—सा। अद्धापल्यस्य

अनुसार नीचेके दोनों चारके द्वारा अपने-अपने ऊपरके छहको गुणा करनेपर २४ ल. ल. × २४ ल. ल. होता है। इसका वर्गमूल निकालनेपर २४ ल ल. होता है। इसको गहराई एक हजारसे गुणा करनेपर समस्त लवणसमुद्रमें पल्य प्रमाण गड्ढोंका प्रमाण २४ लाख लाख × १००० होता है। इसको अपने-अपने रोमखण्डोंसे गुणा करनेपर उन-उन गड्ढोंकी रोम संख्या होती है। छह रोम जितना क्षेत्र रोकते हैं, उतने क्षेत्रका जल निकालनेमें पच्चीस समय लगते हैं तो सब रोमोंके क्षेत्रका जल निकालनेमें कितना समय बीतेगा। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि रोम छह, फलराशि समय पच्चीस, इच्छाराशि गड्ढोंके रोमोंका प्रमाण। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर समयोंका प्रमाण आता है। इतने समयोंका यदि एक पल्य होता है, तो सब समयोंके कितने पल्य होंगे—ऐसा त्रैराशिक करनेपर दस कोड़ाकोड़ि पल्योंका प्रमाण आता है। अतः दस कोड़ाकोड़ि पल्योंका एक सागरोपम होता है।

१-२. म सुसुत्तिरं। ३ म विन्तु।

४. ब २४ ल ल। १०००। ४१ =। २४ ल ल १०००। ४१ = a। २४ ल ल १०००। ४१ = aa। १००० ल ल १०००। ४१ = a। ५. २४ ल ल १०००। ४१ = aa। इ २४ ल ल १०००। ४१ = aa।

यथासंख्यमागि छे छे प्रथमोद्दिष्टपल्यच्छेदराशियं विरलिसि रूपं प्रति पल्यमं कोट्टु वर्गित-
a
संवर्गमाडलु सूच्यंगुलं पुट्टुगुं । २ । द्वितीयोद्दिष्टपल्यच्छेदासंख्यातमं विरलिसि रूपं प्रति घनांगुल-
मनित्तु वर्गितसंवर्गमाडलु जगच्छ्रेणि पुट्टुगुं ।

तव्वर्गो पदरंगुळ पदराणि घणे घणंगुळं लोगो ।
जगसेढीए सत्तम भागो रज्जू पभासंते ॥—[ति. प. १।१३२]

आ सूच्यंगुलमं वर्गगोळल् प्रतरांगुलं पुट्टुगुं । घनंगोळल् घनांगुलं पुट्टुगुं । ४ । ६ । जगच्छ्रेणियं वर्गगोळल् लोकप्रतरे पुट्टुगुं । घनंगोळल् घनलोकपुट्टुगुं । = । ≡ मितुपमा प्रमाणंगळे टुं पेळल्पट्टुवु ।

प	सा	सू	छे	प्र ४	घ ६	ज—.	ज =	घ लो
छे	छे	छे	२	छे छे२	छे छे३	वि छे छे३	वि छे छे ६	वि छे छे ९
व	०	व		व २	व २	व २	व २	व २

मार्गदर्शक आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज

ई राशिगळ्गे अर्द्धच्छेदंगळुं वर्गशलाकेगळुं पेळल्पट्टुवु । अद्धापल्यं द्विरूपवर्गधारेयोळ्
पुट्टिदुवदरर्द्धच्छेदंगळा राशियिंदं केळगसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळनिळिदु पुट्टिदुवा वर्गशलाकाराशि-
युमा यर्द्धच्छेदराशियिंदं केळगेयसंख्यातवर्ग्गस्थानंगळं मूलरूपदिंदं केळकेळगिळिदु पुट्टिदुदु ।

अर्धच्छेदराशिं विरलयित्वा प्रतिरूपमद्धापल्यमेव दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृते सूच्यङ्गुलमुत्पद्यते २ । तस्य वर्गः प्रतराङ्गुलं ४ । घनो घनाङ्गुलं ६ । पुनः अद्धापल्यस्यार्धच्छेदराश्यसंख्येयभागं विरलयित्वा प्रतिरूपं घनाङ्गुलं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृते जगच्छ्रेणिरुत्पद्यते, तस्या वर्गो जगत्प्रतरं = घनो लोको भवति ≡ । एवमष्टोपमा-
प्रमाणमुक्तम् ।

अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिका विरलन करके एक-एकके ऊपर अद्धापल्यको देकर परस्परमें गुणा करनेपर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है । सूच्यंगुलका वर्ग प्रतरांगुल है और घन घनांगुल है ।

विशेषार्थ—एक प्रमाणांगुल प्रमाण लम्बे तथा एक प्रदेश प्रमाण चौड़े ऊँचे क्षेत्रमें जितने प्रदेश आवें, उनका प्रमाण सूच्यंगुल है । एक अंगुल चौड़े, एक अंगुल लम्बे, तथा एक प्रदेश ऊँचे क्षेत्रमें जितने प्रदेश आते हैं, उनका प्रमाण प्रतरांगुल है । और एक अंगुल चौड़े, एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल ऊँचे क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण घनांगुल है ।

अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिके असंख्यातवें भाग राशिका विरलन करके प्रत्येकपर घनांगुलको देकर परस्परमें गुणा करनेपर जगतश्रेणी उत्पन्न होती है । जगतश्रेणीका वर्ग जगत्प्रतर है और उसका घन लोक है ।

विशेषार्थ—सात राजू लम्बी आकाशप्रदेश पंक्तिको श्रेणी कहते हैं । जगतश्रेणीका सातवाँ भाग राजूका प्रमाण है । जगतश्रेणीको जगतश्रेणीसे गुणा करनेपर जगत्प्रतर होता है और जगतश्रेणीका घन लोक है । सो सब लोकके प्रदेशोंका प्रमाण जानना ।

---

१. म द्विरूपवर्गा° । २. म केळगिळिदु ।

सागरोपमराशि सर्व्वधारेयोळ्पुट्टिदुवुदरिंदं सर्व्वधारेयोळे पुट्टिदुवुदर प्रमाणं—

गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धच्छेदजुदा ।
लद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्स छेदणा णत्थि ॥—[त्रि. सा. १०५]

एंदु पल्यक्के गुणकारभूत पत्तु कोटि कोटियर्द्धच्छेदंगळिंदधिकमाद पल्यार्द्धच्छेदप्रमितंगळप्पुवा सागरोपमं वर्गात्मकमल्लप्पुदरिंदं वर्गच्छेदंगळप्पुदिल्लेंदुं । सूच्यंगुलं द्विरूपवर्गधारियोळ् पुट्टिदुवुदरर्द्धच्छेदवर्गशलाकंगळु ।

उप्पज्जदि जो रासी विरलणदिज्जक्कमेण तस्सेत्थ ।
वग्गसलद्धच्छेदा धारासिदएण जायंते ॥—[त्रि. सा. ७३]

एंदु विरलनदेयक्रमदिनुत्पन्नराशिगळ्गे वर्गशलाकार्द्धच्छेदंगळ्गे द्विरूपवर्गादि धारात्रयदोळ् पुट्टुवु । मत्तेल्लि पुट्टुगुमेंदडे सर्व्वधारियोळं यथायोग्यमप्पधारिगळोळं पुट्टुवुवु । अर्द्धच्छेदंगळनितप्पुवेंदोडे :—

विरळिज्जमाणरासिं विण्णस्सद्धच्छिदिहिं संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥—[त्रि. सा. १०७]

विरलनराशिगुप्प पल्यार्द्धच्छेदराशियं तेगसुप्पपल्यार्द्धच्छेदंगळिंदं गुणियिसुत्तिरलु तद्राशिगर्द्धच्छेदंगळक्कुं । वर्गशलाकेगळं "देयराशेरुपरि विरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा तद्राशिरुत्पद्यते" एंदु द्विरूपवर्गधारियोळु पल्यद मेले तत्र विरलनराशिपल्यार्द्धच्छेदमवरर्द्धच्छेद-

---

तेषामर्धच्छेदसंख्या वर्गशलाकासंख्या चोच्यते । तत्र तावदद्धापल्यस्य अर्धच्छेदसंख्या द्विरूपवर्गधारायां अद्धापल्योपमः असंख्यातवर्गस्थानान्यवतीर्य उत्पन्नराशिमात्रीयं, छे । तद्वर्गशलाकासंख्या तु ततोऽप्यधोसंख्यातवर्गस्थानान्यवतीर्य उत्पन्नराशिमात्रीयं २ छे । सागरोपमस्य सर्वधारादित्रयोग्यधारोत्पन्नस्यार्धच्छेदाः पल्यार्धच्छेदेषु गुणकारस्य दशकोटीकोटेरर्धच्छेदसंख्यातेनाधिकेषु लब्धमात्रा भवन्ति १ तद्वर्गशलाकास्तु तस्यावर्गु-
छे
त्मकत्वात् न घटन्ते । सूच्यङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य विरलनदेयक्रमेण उत्पन्नत्वात् अर्धच्छेदवर्गशलाका द्विरूपवर्गधारात्रितयं विना शेषतद्योग्यधारासु उत्पद्यन्ते । ते अर्धच्छेदाः विरलनराशौ अद्धापल्यार्धच्छेदे देयस्य तत्पल्यस्यार्धच्छेदैर्गुणिते लब्धमात्रा भवन्ति छे छे । तद्वर्गशलाकास्तु सूच्यङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारायां

इस प्रकार आठ प्रकारके उपमा प्रमाणका कथन पूर्ण हुआ । अब इनके अर्धच्छेदों और वर्गशलाकाओंकी संख्या कहते हैं । सो प्रथम अद्धापल्यके अर्धच्छेदोंकी संख्या द्विरूपवर्गधारामें अद्धापल्यसे नीचे असंख्यात वर्गस्थान उतरकर जो राशि होती है, उतनी है । तथा अद्धापल्यकी वर्गशलाकाओंकी संख्या उससे भी नीचे असंख्यात वर्गस्थान उतरकर जो राशि है, उतनी है । सागरोपमके अर्धच्छेद सर्वधारामें होते हैं । सो सागरोपमके अर्धच्छेद पल्यके अर्धच्छेदोंमें गुणाकार दस कोड़ाकोड़ीके संख्यात अर्द्धच्छेद जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं । यतः सागरोपमराशि अवर्गात्मक है, इसलिए उसकी वर्गशलाका नहीं बनतीं । सूच्यंगुल द्विरूपवर्गधारामें उत्पन्न हुआ है, अतः विरलन और देयके क्रमसे उत्पन्न होनेसे इसकी अर्धच्छेद और वर्गशलाका द्विरूपवर्गधारा आदि तीन धाराओंके बिना शेष अपने योग्य धाराओंमें पायी जाती हैं । विरलन राशि अद्धापल्यके अर्द्धच्छेदोंमें देयराशि अद्धापल्यके अर्धच्छेदोंसे

---

१. म द्विरूपधारे° । २. म वग्गसकलद्धच्छेद । ३. १०० ल ल १०००। ४१ = ७०।

प्रमाणवर्गस्थानंगळु पल्यवर्गशलाकाराशिमात्रंगळं नडेदु पुट्टिदुदा वर्गशलाकेगळुमं पल्यवर्गशलाकेगळुमं कूडलु पल्यद्विगुणवर्गशलाकामात्रंगळप्पुवु । अथवा "गुणयारद्धच्छेदा" एंबिवु मोदलादुवरिंदं सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंगळर्द्धच्छेदंगळं वर्गशलाकेगळप्पुदरिंदं गुणकारार्द्धच्छेदंगळु पल्यवर्गशलाकेगळ्गुण्यवर्द्धच्छेदंगळं पल्यवर्गशलाकेगळा येरडुमं कूडलु पल्यशलाकाद्विगुणप्रमितंगळप्पुवु । व २ । प्रतरांगुलं द्विरूपवर्गधारियोळपुट्टिदुदक्कं वर्गशलार्द्धच्छेदंगळु यथायोग्यधारिगळोळु पुट्टिदुवर्द्धच्छेदंगळेनितक्कुमेंदोडे :—

वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा दुगुणा हवंति अद्धच्छिदि ।
धारातयसंठाणे तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे ॥ —[त्रि. सा. ७४]

एंदु प्रतरांगुलं सूच्यंगुलोपरितनानन्तरवर्गराशियप्पुदरिनदरर्द्धच्छेदंगळु सूच्यंगुलार्द्धच्छेदंगळं नोडल् द्विगुणंगळप्पुवक्के संदृष्टि :—छे छे २ । अथवा :—गुणयारद्धच्छेदेत्यादिंयिंदं गुण्यगुणकाररूपविनिर्दिष्टं सूच्यंगुलंगळर्द्धच्छेदंगळं कूडुत्तिरलु तत्प्रमाणंगळप्पुवेंबुदत्थं । छे छे २ । वर्गशलाकेगळेनितक्कुमेंदोडे वग्गसला रूवहिया सपदे इत्यादिंयिंदं सूच्यंगुलानंतरवर्गमप्पुदरिंदं

पार्श्वनाथ अनुवादक श्री सुविधिसागर जी महाराज

सूच्यंगुलवर्गशलाकेगळं नोडलोंदु रूपधिकमक्कुं व २ । घनांगुलं द्विरूपघनधारियोळपुट्टिदुव-

---

पल्यस्योपरि स्वविरलनराश्यर्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि गत्वा उत्पत्तेर्द्विगुणपल्यवर्गशलाकामात्र्यः । अथवा सूच्यङ्गुलार्धच्छेदराशौ गुणकारस्यार्धच्छेदेषु गुण्यस्यार्धच्छेदैर्युतेषु यल्लब्धं तावन्मात्र्यो भवन्ति व २ । प्रतराङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य वर्गशलाकार्धच्छेदाः यथायोग्यधारासु उत्पद्यन्ते । तत्रार्धच्छेदाः 'वग्गादुवरिमवग्गो दुगुणा दुगुणेति' सूच्यङ्गुलार्धच्छेदेभ्यो द्विगुणाः । अथवा गुण्यगुणकारयोः सूच्यङ्गुलयोरर्धच्छेदयुतिमात्रा भवन्ति छे छे २ । तद्वर्गशलाकास्तु रूवहियेति सूच्यङ्गुलानन्तरवर्गराशित्वात् तद्वर्गशलाकाभ्यो रूपाधिकमात्र्यो भवन्ति व २ । घनाङ्गुलस्य द्विरूपघनधारोत्पन्नस्य अर्धच्छेदाः अन्यत्रोत्पन्नाः 'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणेति

गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, उतने ही सूच्यंगुलके अर्द्धच्छेद हैं। द्विरूपवर्गधारामें पल्यके ऊपर सूच्यंगुलकी विरलनराशि पल्यके अर्द्धच्छेद, उन अर्द्धच्छेदोंके जितने अर्द्धच्छेद हैं उतने वर्गस्थान जानेपर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है। इसलिए पल्यकी वर्गशलाकाके प्रमाणसे सूच्यंगुलकी वर्गशलाका दुगुनी होती हैं। अथवा सूच्यंगुलके अर्द्धच्छेदोंमें विरलनराशि पल्यके अर्द्धच्छेद, उनके जितने अर्धच्छेद हैं, उनमें देयराशि पल्य, उसके अर्द्धच्छेदोंके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर सूच्यंगुलकी वर्गशलाका होती हैं। इस तरह पल्यकी वर्गशलाकासे दूनी सूच्यंगुलकी वर्गशलाका है। प्रतरांगुल द्विरूपवर्गधारामें आता है, अतः उसके वर्गशलाका और अर्धच्छेद यथायोग्य धाराओंमें उत्पन्न होते हैं। 'वर्गसे ऊपरके वर्गस्थानके अर्धच्छेद दूने-दूने होते हैं'—इस नियमके अनुसार सूच्यंगुलसे दूने प्रतरांगुलके अर्द्धच्छेद होते हैं। अथवा गुण्य और गुणकारके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर उत्पन्न राशिके अर्धच्छेद होते हैं। इसके अनुसार गुण्य सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंमें गुणकार सूच्यंगुलके अर्धच्छेद जोड़नेपर प्रतरांगुलके अर्धच्छेद होते हैं। तथा 'वर्गशलाका एक अधिक होती है' अतः सूच्यंगुलके अनन्तर प्रतरांगुलका स्थान है, इसलिए प्रतरांगुलकी वर्गशलाका सूच्यंगुलकी वर्गशलाकासे एक अधिक होती है। घनांगुल द्विरूपघनधारामें उत्पन्न होता है, इसलिए अन्य धारामें उत्पन्न होनेसे 'अन्य धारामें ऊपरके

---

१. म इत्यादिंयिदं सूच्यंगु० । २. म एंदु सू० । ३. तत्प्रमाणंगलेंबुदत्थं ।

वरद्धंच्छेदंगळुमन्यत्र पुट्टिदुवु । अर्द्धच्छेदंगळेनितक्कुमेंदोडे तिगुणा तिगुणा परट्टाणे एंदु सूच्यं- पाठोऽयं क्वचित्क्वचित् आर्षेषु श्री. ति. विद्यानन्दिसूरिभिः कृतः पुस्तिकासु
गुलार्द्धच्छेदंगळं नोडलु त्रिगुणमप्पुवु । छे छे ३ ॥ अथवा गुणधारद्धच्छेदस्यादिर्यदं गुण्यगुणकार-
छे छे १
रूपविनिर्द्दं सूच्यंगुलं मूररलु प्रत्येकं सूच्यंगुलार्द्धच्छेदप्रमितंगळु मूरुमं छे छे १ कूडुत्तिरलु
छे छे १

तत्प्रमाणाराशियक्कुमेंबुदर्थं । छे छे ३ ॥ वर्गशलाकेगळु वग्गसळा रूवहिया सपदे परसम्- मित्यादिर्यिदं द्विरूपवर्गधारियोळ्पुट्टिद सूच्यंगुलवर्गशलाकेगळ समं घनाघनधारिगळ राशिगळप्पे ५
तत्सैवलियोळ् समानंगळप्पुदरिंदं सूच्यंगुलवर्गशलाकाप्रमितंगळप्पुवु अथवा 'राशिस्स अद्ध-
च्छेदस्स अद्धिदवारा वा वग्गसलागा' एंदु घनांगुलार्द्धच्छेदराशिय दलितशलाकाप्रमितंगलप्पुव-
वा प्रमाणममखि गुणयारद्धच्छेदेत्यादि सूत्रदिंदं द्विगुणपल्यवर्गशलाकाप्रमितंगलप्पुवु । व. २ ॥

जगच्छ्रेणियुं द्विरूपघनधारियोळ्पुट्टिदुदरर्द्धच्छेदवर्गशलाकेगळुमन्यत्र पुट्टिदवु । अर्द्धच्छेदं- १०
गळेनितप्पुवेंदोडे—

विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहि संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु लद्धस्सुप्पण्णरासिस्स ॥ [त्रि. सा. १०७]

एंदु विरलनराशिपल्यार्द्धच्छेदासंख्यातैकभागमं छे । देयमप्प घनांगुलदर्द्धच्छेदंविदं
a
गुणिसुत्तिरलु जगच्छ्रेणिगर्द्धंगळप्पुवु । छे छे छे ३ वर्गशलाकेगळु ।
a a a

सूच्यङ्गुलार्धच्छेदेभ्यस्त्रिगुणाः । अथवा गुण्यगुणकारसूच्यङ्गुलत्रयस्यार्धच्छेदानां छे छे १ यावन्तो युतिस्ता- १५
छे छे १
छे छे १

वन्मात्रा भवन्ति छे छे ३ । तद्वर्गशलाकास्तु परसमेति घनधारोत्पन्नघनाङ्गुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नसूच्यङ्गुल-
प्रणिधौ समुत्पन्नत्वात् सूच्यङ्गुलवर्गशलाकामात्र्यो भवन्ति । जगच्छ्रेणे. द्विरूपघनधारोत्पन्नत्वादर्धच्छेदवर्ग-
शलाका अन्यत्रोत्पद्यन्ते । ते अर्धच्छेदाः "विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे लद्धच्छेदा होंति ।"
इति पल्यार्धच्छेदासंख्येयभागे छे घनाङ्गुलस्यार्धच्छेदैर्गुणिते लब्धमात्रा भवन्ति छे छे छे ३ । तद्वर्ग-
a a

स्थानके तिगुने-तिगुने अर्धच्छेद होते हैं'-इस नियमके अनुसार सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंसे तिगुने २०
घनांगुलके अर्धच्छेद होते हैं। अथवा सूच्यंगुलको तीन जगह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे घनांगुल उत्पन्न होता है। अतः गुण्य और गुणकाररूप तीन सूच्यंगुलके अर्धच्छेदोंको जोड़नेसे घनांगुलके अर्धच्छेद होते हैं। तथा 'वर्गशलाका अन्य धारामें समान होती हैं' इस नियमके अनुसार द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थानमें सूच्यंगुल उत्पन्न होता है, द्विरूपघनधारामें उसी स्थानमें घनांगुल उत्पन्न होता है, इसलिए जितनी वर्गशलाका सूच्यंगुलकी है उतनी ही २५
घनांगुलकी है। जगतश्रेणी द्विरूपघनधारामें उत्पन्न है, अतः इसके अर्धच्छेद और वर्गशलाका अन्य धारामें उत्पन्न होते हैं। 'विरलनरूप राशिको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर लब्धराशिके अर्धच्छेद होते हैं।'-इस सूत्रनियमके अनुसार विरलनराशि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागको देयराशि घनांगुलके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतने जगतश्रेणीके अर्धच्छेद होते हैं। दुगुने जघन्य परीतासंख्यातका भाग अद्धापल्यकी ३०
वर्गशलाकामें देनेपर जो प्रमाण आवे, उसमें घनांगुलकी वर्गशलाकाओंको जोड़नेपर जो

दुगुणपरिवत्तासंखेज्जवहरिदद्धारपल्लवग्गसला ।
विदंगुल वग्गसलासहिया सेढिस्स वग्गसला ॥ —[त्रि. सा. १०९]

एंदु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यराशियिंदं भागिसल्पट्टद्धापल्यवर्गशलाकेगळु व विदंगुल १६।२
वग्गसलासहिया। वृंदांगुलवर्गशलाकेगळं कूडि श्रेणिगे वर्गशलाकेगळप्पुवु। व २ अथवा व
१६।२.

५ देयराशेरुपरिविरलनराश्यर्द्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा विवक्षितराशिरुत्पद्यते एंदु देय-राशियप्प घनांगुलद मेले विरलनराशियर्द्धच्छेदमात्रवर्गस्थानंगळं नडेदु व जगच्छ्रेणि पुट्टिदु- १६।२
विदतू घनांगुलवर्गशलाकेगळनु कूडुत्तिरलु तद्राशिप्रमाणमेयप्पु वेंबुत्थंमिल्लि द्विगुण व १६।२
परीतासंख्यातजघन्यवर्गं भागिसल्पट्टद्धापल्यवर्गशलाकाराशिय लब्धमं विरलिसि रूपं प्रति

शलाकास्तु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यभक्ताद्धापल्यवर्गशलाकामात्र्यः व अथवा— १६।३
व।२

१० जगच्छ्रेणेर्देयराशिघनाङ्गुलस्योपरि विरलनराश्यर्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नत्वादभ्युक्तमाश्यो भवन्ति। स च विरलनराशिः कियानिति चेत् उच्यते—अद्धापल्यार्धच्छेदराशेर्वर्गमूलानि द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्य-स्यार्धच्छेदमात्राण्यधोऽवतीर्य चरमवर्गमूलस्यार्धच्छेदाः द्विगुणजघन्यपरीतासंख्यातभक्तवर्गशलाकामात्राः 'तस्मिंस्तद्गुणे गुणे राशीति' तदर्धच्छेदस्य व भाज्यमात्रेषु च हारमात्रेषु च द्विकेषु पृथग्वर्गितेषु १६।२

प्रमाण हो, उतनी ही जगतश्रेणीकी वर्गशलाका है। अथवा जगतश्रेणीकी देयराशि घनांगुलके
१५ ऊपर विरलन राशि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग, उसके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने वर्गस्थान जाकर जगतश्रेणी उत्पन्न होती है। इससे भी जगतश्रेणीकी वर्गशलाका का पूर्वोक्त प्रमाण जानना। सो जगतश्रेणीकी विरलन राशि कितनी है, यह बतलाते हैं— अद्धापल्यकी अर्धच्छेदराशिके वर्गमूल दूने जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेद प्रमाण करो। सो द्विरूपवर्गधारामें पल्यके अर्धच्छेदरूप स्थानसे नीचे उतने स्थान जाकर अन्तमें जो
२० वर्गमूलरूप स्थान हो, उसके अर्धच्छेद, दूने जघन्य परीतासंख्यातका भाग पल्यकी वर्गशलाकामें देनेपर जो प्रमाण होता है, उतने हैं। 'अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण हो उतने दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर राशि उत्पन्न होती है।' इस नियमके अनुसार यहाँ पल्यकी वर्गशलाकाका प्रमाण भाज्य है सो उतने दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यकी अर्धच्छेद राशि होती है और दूना जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण
२५ भागहार है सो उतने दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर यथासम्भव असंख्यात होता है। इस तरह उस अन्तिम वर्गमूलका प्रमाण पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग जानना। वही यहाँ जगतश्रेणीकी विरलनराशि है। लोकप्रतर द्विरूपघनधारामें उत्पन्न होता है। अतः उसके अर्द्धच्छेद और वर्गशलाका अन्य धाराओंमें उत्पन्न होते हैं। लोकप्रतरके अर्धच्छेद जगतश्रेणीके अर्द्धच्छेदोंसे दूने होते हैं। तथा 'वर्गशलाका एक अधिक होती है'-इस नियमके
३० अनुसार जगतश्रेणीकी वर्गशलाकासे एक अधिक जगतप्रतरकी वर्गशलाका होती है। तथा

द्विकंगळं कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडलु जगच्छ्रेणिय विरलन राशि पुट्टुगुमा राशि प्रमाणमनरिवुपायमं तोर्प्पं ।

भज्जमिवदुगगुणुत्थिदरासी मूलाणि हारयिविहिमिवं ।
गंतूण चरिममूलं लद्धमिदद्धाहदे अणिवं ॥ —[ ]

एंबु भाज्यमप्पद्धापल्यवर्गशलाकाराशिय द्विकसंवर्गदिंदं पल्यार्द्धच्छेदराशि पुट्टुगुमा च्छेदराशिय मूलंगळु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यराशियर्द्धच्छेदमात्रमूलंगळं कळगिरिसि चरमरूपाधिकसंख्यातदनितेनेयमूलं जगच्छ्रेणिय विरलनराशियप्पुवरर्द्धच्छेदंगळं द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यराशिभाजिताद्धापल्यवर्गशलाकेगळेंबुवु सिद्धमाप्तु ॥

आ रूपाधिकसंख्यातनितेनेय मूलं मोदल्गोंडु च्छेदराशिय प्रथमं मूलपर्य्यंत इर्द मूलंगळ नडरे गुणियिसिवंतप्पडसंख्यातं पल्यच्छेदराशिगे पोक्क भागहारप्रमाणमप्पुवुतल्लब्धमुमा रूपाधिकसंख्यातदनितेनेय मूलमक्कुं । मू १ ॥

लोकप्रतरेयुं द्विरूपघनधारियोळ्पुट्टिदुवरर्द्धच्छेदवर्गशलाकेगळुमन्यत्र पुट्टिदुवर्द्धच्छेदंगळु । 'वग्गादुवरिमवग्गेदुगुणादुगुणा हवंति अद्धच्छिदि' । एंबु जगच्छ्रेणियर्द्धच्छेदंगळं नोडलु

छे		ब	
मू	१	ब	
		२	
मू	३	ब	अधस्तनराशेः अर्धच्छेदमात्रं छे तन्मूलमुत्पद्यते । तदेव जगच्छ्रेणेर्विरलनराशि-
२	,	२	
मू	३	ब	a
२,	२,	२	ज्ञातव्याः । लोकप्रतरस्य द्विरूपघनधारोत्पन्नस्यार्धच्छेदवर्गशलाकाः अन्यत्रोत्पद्यन्ते । ते
०		०	अर्धच्छेदा जगच्छ्रेण्यर्धच्छेदेभ्यो द्विगुणा भवन्ति छे छे छे ६ । तद्वर्गशलाकास्तु स्वत्रिर्येति
०		०	
०		०	
मू	१	ब	
	१६		
मू	१	ब	
१६	,	२	

घनलोक द्विरूपघनाम्बुधारामें उत्पन्न होता है, इसलिए उसके अर्धच्छेद और वर्गशलाका अन्य धाराओंमें उत्पन्न होते हैं। 'परस्थानमें दुगुने-दुगुने अर्धच्छेद होते हैं'-इस नियमके अनुसार द्विरूपघनधारामें प्राप्त जगतश्रेणीके अर्धच्छेदोंसे लोकके अर्धच्छेद दुगुने होते हैं। अथवा जगतश्रेणीको तीन जगह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे लोक होता है। अतः गुण्य और गुणाकाररूप तीन जगतश्रेणीके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर लोकके अर्धच्छेद होते हैं। उसकी वर्गशलाका तो 'परस्थान' नियमके अनुसार जगतश्रेणीकी वर्गशलाका जितनी ही होती है। इस विषयमें उपयोगी गाथा सूत्र कहते हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार है—गुणाकारके अर्धच्छेदोंमें गुण्यराशिके अर्धच्छेद जोड़नेपर लब्धराशिके अर्धच्छेद होते हैं। जैसे गुणाकार आठके अर्धच्छेद तीन और गुण्य सोलहके अर्धच्छेद चारको जोड़नेपर लब्धराशि एक सौ अट्ठाईसके अर्धच्छेद सात होते हैं। इसी प्रकार गुणाकार दश कोड़ाकोड़ीके असंख्यात अर्धच्छेद गुण्यराशि पल्यके अर्धच्छेदोंमें जोड़नेपर लब्धराशि सागरके अर्धच्छेद होते हैं। किन्तु अधिक-

द्विगुणंगळप्पुवु ॥ वि छे छे ६ । वर्गशलाकेगळं जगच्छ्रेणिय वर्गशलाकेगळं नोडलु रूपाधिकगळप्पुवेकें दोडे "वग्गसला रूवहिया सपदे" एंवरियल्पडुवुदरिंदं व २ घनलोकमं द्विरूपघनाधारियोळ्पुट्टिदुदरद्धच्छेदवर्गशलाकेगळन्यत्र पुट्टिदुवर्द्धच्छेदंगळेनितक्कुमेंदोडे तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे एंवु द्विरूपघनधारियोळ्पुट्टिद जगच्छ्रेणियर्द्धच्छेदंगळं नोडलु त्रिगुणंगळप्पुवु । वि छे छे ९ ॥ अथवा गुणयारद्धमेत्यादियिंदं गुण्यगुणकाररूपविनिर्मुक्तं जगच्छ्रेणिय मूरु राशिगळगं समानंगळप्पर्द्धच्छेदंगळं वि छे छे ३ कूडिदोडे तद्राशिप्रमाणमेयक्कुं वि छे छे ९ वर्ग-

वि छे छे ३

वि छे छे ३

जगच्छ्रेणिवर्गशलाकाभ्यो रूपाधिका भवन्ति व । घनलोकस्य द्विरूपघनाघनधारोत्पन्नत्वात्तदर्धच्छेदवर्ग-

१६ । २

व । २

शलाका अन्यत्रोत्पद्यन्ते, तेऽर्धच्छेदाः 'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणेति' द्विरूपघनधारोत्पन्नजगच्छ्रेण्यर्धछेदेभ्यस्त्रिगुणाः, अथवा गुण्यगुणकारस्थितजगच्छ्रेणित्रयस्यार्धच्छेदेषु वि छे छे ३ मिलितेषु युतिमात्रा भवन्ति

वि, छे छे ३

वि, छे छे ३

के छेद नहीं हैं, क्योंकि अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेदप्रमाण वर्गशलाका होती है। सो यहाँ पल्यके अर्धच्छेदोंसे संख्यात अर्धच्छेद सागरके अधिक कहे हैं सो इन अधिक अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद तो होते हैं, परन्तु वर्गशलाकारूप प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती। इसीसे अधिकके अर्धच्छेद नहीं करते, ऐसा कहा है। इसीसे सागरको वर्गशलाका नहीं है।

भाज्यराशिके अर्धच्छेदोंमें-से भागहारके अर्धच्छेदोंको घटानेपर लब्धराशिकी अर्धच्छेद शलाका सर्वत्र होती है। जैसे एक सौ अट्ठाईसके भाज्यके अर्धच्छेद सातमें भागहार आठके तीन अर्धच्छेद घटानेपर लब्धराशि सोलहके चार अर्धच्छेद होते हैं, ऐसे ही सर्वत्र जानना।

विरलन राशिको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर सर्वत्र उत्पन्न राशिके अर्धच्छेद होते हैं। जैसे विरलनराशि चारको देयराशि सोलहके अर्धच्छेद चारसे गुणा करनेपर उत्पन्न राशि पण्णट्ठिके सोलह अर्धच्छेद होते हैं इसी प्रकार यहाँ भी पल्य अर्धच्छेद प्रमाण विरलन राशिको देयराशि पल्यके अर्धच्छेदोंसे गुणा करनेपर उत्पन्न राशि सूच्यंगुलके अर्धच्छेद होते हैं, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

विरलनराशिके अर्धच्छेदोंमें देयराशिके अर्धच्छेदोंको मिलानेपर उत्पन्न राशिकी वर्गशलाकाका प्रमाण होता है।

जैसे विरलनराशि चारके अर्धच्छेद दो और देयराशि सोलहके अर्धच्छेद चारके अर्धच्छेद दो मिलानेपर उत्पन्न राशि पण्णट्ठीकी वर्गशलाका चार होती है। इसी प्रकार विरलनराशि पल्यके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेदोंमें देयराशि पल्यके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद जोड़नेपर उत्पन्न राशि सूच्यंगुलके वर्गशलाकाका प्रमाण होती है, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

---

१. म °पघनधा° ।

शलाकेगळु परसमयमेंबी न्यायदिंदं जगच्छ्रेणिय सैदळिय घनाघनधारिय लोकवर्गशलाकेगळं सामानंगळेय्दुव ब २ इल्लिगुपयोगिगळप्प गाथासूत्रंगळु :—

१६ । २

'गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणिस्स अद्धछेदजुदा ।
अद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्स च्छेदणा णत्थि ॥'
भज्जस्सद्धच्छेदा हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा । ५
अद्धच्छेदसलागा अद्धस्स हवंति सव्वत्थ ॥
विरलिज्जमाणरासि विण्णस्सद्धच्छेदेहि संगुणिदे ।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ।
विरलिदरासिच्छेदा विण्णद्धच्छेदछेदसंमिलिदा । १०
वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स ॥

वि छे छे ९ तद्वर्गशलाकास्तु परसमेति जगच्छ्रेणिवर्गशलाकामात्र्यो भवन्ति व । अत्रोपयोगिगाथासूत्राणि—

१६ । २
ब २

गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धछेदजुदा । अद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्स च्छेदणा णत्थि ॥१॥
भज्जस्सद्धच्छेदा हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा । अद्धच्छेदसलागा अद्धस्स हवन्ति सव्वत्थ ॥२॥
विरलिज्जमाणरासि विण्णस्सद्धच्छिदीहि संगुणिदे । अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥३॥
विरलिदरासिच्छेदा विण्णद्धच्छेदछेदसम्मिलिदा । वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स ॥४॥ १५

दूने जघन्य परीतासंख्याका भाग अद्धापल्यकी वर्गशलाकाको देनेपर जो प्रमाण हो, उसमें घनांगुलकी वर्गशलाकाका प्रमाण जोड़नेपर जो प्रमाण हो, उतनी जगतश्रेणीकी वर्गशलाका होती है।

विरलनराशिसे जितने अधिक रूप हों, उनको परस्परमें गुणा करनेपर लब्धराशिका गुणकार होता है। जैसे चार अर्धच्छेदरूप विरलनराशि और तीन अर्धच्छेदरूप अधिकराशि २० इनमें-से विरलनराशिके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर २×२×२×२ सोलह लब्धराशि होती है। और अधिकराशि तीन अर्धच्छेदप्रमाण दोके अंक रखकर २×२×२ परस्पर गुणा करनेपर गुणाकार आठ होता है। सो लब्धराशिके गुणाकारसे गुणा करनेपर एक सौ अट्ठाईस होते हैं। जिसके अर्द्धच्छेद सात हैं। इसी प्रकार पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण विरलनराशि है सो इतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर लब्ध- २५ राशि पल्य होती है और अधिक राशि संख्यात अर्धच्छेद है सो इतने प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर दस कोड़ाकोड़ी गुणाकार होता है सो पल्यको दस कोड़ाकोड़ीसे गुणा करनेपर सागरका प्रमाण होता है, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

विरलनराशिसे जितने हीन रूप हों, उनको परस्पर गुणा करनेपर उत्पन्न राशिका भागहार होता है। जैसे विरलन राशि अर्धच्छेद सात और हीन रूप अर्द्धच्छेद तीन इनमें-से ३० विरलन राशिमात्र दोके अंक रखकर २×२×२×२×२×२×२ परस्पर गुणा करनेपर एकसौ अट्ठाईस राशि उत्पन्न होती है। और हीनरूप प्रमाण दोके अंक रखकर २×२×२ परस्पर गुणा करनेपर आठ भागहार राशि होती है। सो उत्पन्नराशिमें भागहाररूप राशिका

दुगुणपरीत्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला ।
विदंगुलवग्गसलासहिया सेढिस्स वग्गसला ॥
विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि [illegible]
तेसिं अण्णोण्णहदे गुणयारो लद्धरासिस्स ॥
विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ [त्रि. सा. १०५-१११]

इंतु परिभाषास्वरूपनिरूपणं माडि प्रकृतमं प्रवर्त्तिसिदपें ।

□

दुगुणपरीत्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला । विदंगुलवग्गसला सहिया सेढिस्स वग्गसला ॥५॥
विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमित्ताणि अहियरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स ॥६॥
विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमित्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥७॥
एवं परिभाषोक्त ।

भाग देनेपर सोलह होते हैं, जिसके अर्द्धच्छेद चार हैं ; ऐसे ही अन्यत्र जानना। इस प्रकार प्रमाणका वर्णन किया।

विशेषार्थ—इस प्रकार मानभेदके द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका परिमाण किया जाता है—सो जहाँ द्रव्यका परिमाण हो, वहाँ उतने पदार्थ अलग-अलग जानना, जहाँ क्षेत्रका परिमाण हो,वहाँ उतने प्रदेश जानना, जहाँ कालका परिमाण हो, वहाँ उतने समय जानना, जहाँ भावका परिमाण हो, वहाँ उतने अविभागी प्रतिच्छेद जानना। जैसे हजार मनुष्य कहनेपर हजार मनुष्य अलग-अलग जानना। इसी प्रकार द्रव्य परिमाणमें अलग-अलग पदार्थ जानना। जैसे यह वस्त्र बीस हाथ है, यहाँ उस वस्त्रमें बीस अंश अलग-अलग नहीं हैं,परन्तु एक हाथ जितना क्षेत्र रोकता है, उसकी कल्पना करके बीस हाथ कहते हैं। इसी प्रकार क्षेत्र परिमाणमें जितना क्षेत्र परमाणु रोकता है,उसको प्रदेश कहते हैं, उसकी कल्पना करके क्षेत्रका परिमाण कहा जाता है। तथा जैसे एक वर्षके तीन सौ छियासठ दिन-रात कहे जाते हैं, किन्तु अखण्डित काल-प्रवाहमें अंश नहीं हैं। परन्तु सूर्यके उदय-अस्त होनेकी अपेक्षा कल्पना करके कहे जाते हैं। इसी प्रकार कालप्रमाणमें जितने कालमें एक परमाणु मन्दगतिसे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जाता है, उसको समय कहते हैं, उसीकी अपेक्षा कल्पना करके कालका प्रमाण कहा है। तथा जैसे ये सोना सोला वानीका है सो उस सोनेमें सोलह अंश नहीं हैं,तथापि एक वानके सोनामें जैसे वर्णादिक पाये जाते हैं,उनकी अपेक्षा कल्पना करके कहा है। इसी प्रकार भाव परिमाणमें केवलज्ञानगम्य अतिसूक्ष्म जिसका दूसरा भाग न हो,ऐसे शक्तिके अंशको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। उसकी कल्पना करके भावका परिमाण कहा है। इस प्रकार मुख्य परिमाणका कथन जानना। विशेष जैसा जहाँ विवक्षित हो,वहाँ वैसा जानना। जैसे क्षेत्र परिमाणमें आवलीका परिमाण कहा,वहाँ आवलीके जितने समय हों, उतने प्रदेश जानना। इसी प्रकार कालप्रमाणमें जहाँ लोकप्रमाण कहा, वहाँ लोकके जितने प्रदेश हों,उतने समय जानना। इस प्रकार इस ग्रन्थमें यत्र-तत्र मानका प्रयोजन जान कर मानका वर्णन किया है।

अनंतरं पर्य्याप्तिप्ररूपणाधिकारमं प्रारंभिसुवातं दृष्टांतपुरस्सरं पर्य्याप्तेतरस्वामिनिर्देशार्थमिदिस्तमागि पेळ्दपं :—

जह पुण्णापुण्णाइं गिहघडवत्थादियाइ दव्वाइं ।
तह पुण्णिदरा जीवा पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥११८॥

यथा पूर्णापूर्णानि गृहघटवस्त्रादिकानि द्रव्याणि । तथा पूर्णेतरा जीवाः पर्य्याप्तेतरा मन्तव्याः ॥

एन्तिगळु लोकदोळु गृहघटवस्त्रादिद्रव्यंगळु व्यंजनपर्य्यायात्मकंगळु पूर्णंगळ् सर्व्वशक्तिसंपूर्णंगळुमपूर्णंगळु तच्छक्तिविकलंगळ् काणल्पडुवंते पर्य्याप्तापर्य्याप्तनामकर्म्मोदयं गळिवमाक्रांतंगळप्प जीवंगळु पूर्णंगळु स्वस्वयोग्यपर्य्याप्तिगळिंद संभृतंगळु । मत्तमपर्य्याप्तंगळु तच्छक्तिविकलंगळप्पुवेंदितु ज्ञातव्यंगळु ।

अनंतरं पर्य्याप्तिविशेषमं तत्स्वामिविशेषमुमं पेळल्वेडि मुंदणगाथासूत्रमं पेळ्दपं ।

आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणभासमणो ।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदियविय्लसण्णीणं ॥११९॥

आहारशरीरेन्द्रियपर्य्याप्तयः आनापानभाषामनःपर्य्याप्तयो यथासंख्यं चतस्रः पंच षडपि चैकेन्द्रियविकलसंज्ञिनां ॥

अथ पर्याप्तिप्ररूपणां प्रारभमाणो दृष्टान्तपुरस्सरं ताभिः पूर्णापूर्णत्वं जीवानां दर्शयति—

यथा लोके गृहघटवस्त्रादिद्रव्याणि व्यञ्जनपर्यायात्मकानि पूर्णानि— सर्वशक्तिसम्पूर्णानि, अपूर्णानि—तच्छक्तिविकलानि च दृश्यन्ते । तथा पर्याप्तापर्याप्तनामकर्मोदयाक्रान्ता जीवा अपि पूर्णाः—स्वस्वयोग्यपर्याप्तिभिः संभृताः, अपूर्णाः—तच्छक्तिविकलाश्च भवन्ति इति मन्तव्याः ॥११८॥

अथ पर्याप्तीनां तत्स्वामिनां च विशेषमाह—

पर्याप्तिशब्दः प्रत्येकमभिसंबद्ध्यते मध्यदीपकत्वात् । आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिः इन्द्रियपर्याप्तिः आनपानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनःपर्याप्तिरिति पर्याप्तयः षट् ६ । तत्र आद्यास्तासु एकेन्द्रियजीवानां मनः-

---

अब पर्याप्तियोंके कथनका प्रारम्भ करते हुए दृष्टान्तपूर्वक उनके द्वारा जीवोंकी पूर्णता और अपूर्णता दिखाते हैं—

जैसे लोकमें घर, घट, वस्त्र आदि व्यंजन पर्यायरूप द्रव्य कुछ पूर्ण और कुछ अपूर्ण होते हैं अर्थात् कुछ पदार्थ सर्वशक्तिसे सम्पन्न और कुछ सर्वशक्तिसे रहित देखे जाते हैं या कुछ अपने अवयवोंसे निष्पन्न होते हैं और कुछ अपने अवयवोंसे अनिष्पन्न होते हैं, वैसे ही पर्याप्तनामकर्मके उदयसे युक्त जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियोंसे पूर्ण होते हैं और अपर्याप्तनामकर्मके उदयसे युक्त जीव अपूर्ण होते हैं अर्थात् जो सब पर्याप्तियोंको पूर्ण करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होते हैं, वे पर्याप्तक जानना, और जिनमें इस तरहकी शक्ति नहीं है, वे अपर्याप्तक जानना ॥११८॥

आगे उन पर्याप्तिके भेदोंको और उनके स्वामियोंको कहते हैं—

मध्यदीपक होनेसे पर्याप्ति शब्द प्रत्येकके साथ लगाया जाता है । आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और भाषापर्याप्ति, मनःपर्याप्ति ये छह पर्याप्तियाँ हैं । इनमें-से एकेन्द्रिय जीवोंके आदिकी चार पर्याप्तियाँ होती हैं । दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके मनःपर्याप्तिके बिना पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं । संज्ञिपंचे-

आहारपर्य्याप्तियुं शरीरपर्य्याप्तियुमिंद्रियपर्य्याप्तियुमानापानपर्य्याप्तियुं भाषापर्य्याप्तियुं मनःपर्य्याप्तियुमेंवितु षट्पर्य्याप्तिगळप्पुववरोळु मोदल नाल्कुं पर्य्याप्तिगळेकेन्द्रियजीवंगळ्गप्पुवुमंते मोवल्यडु पर्य्याप्तिगळ् विकलेंद्रियजीवंगळ्गप्पुवुमंतेयारुं पर्य्याप्तिगळ्पंचेंद्रियसंज्ञिजीवंगळोळप्पुवुमिल्लियौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्म्मोदयप्रथमसमयं मोवल्गोंडु तच्छरीरत्रयषट्पर्य्याप्तिपर्य्यायपरिणमनयोग्यंगळप्प पुद्गलस्कंधंगळं खलरसभागदिवं परिणमिसल्के पर्य्याप्तनामकर्म्मोदयावष्टंभसंभूतमप्पात्मन शक्तिनिष्पत्तियाहारपर्य्याप्ति एंबुदक्कुमन्तु परिणतंगळप्प पुद्गलस्कंधंगळ्गे खलभागमप्प अस्थ्यादिस्थिरावयवरूपदिवमुं रसभागमं रुधिरादिद्रवावयवरूपदिवं परिणमिसल्के शक्तिनिष्पत्तिशरीरपर्य्याप्तियें बुदक्कुमावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमविजृंभितमप्पात्मन योग्यदेशावस्थितरूपादिविषयग्रहणव्यापारदोळु शक्तिनिष्पत्ति जातिनामकर्म्मोदयजनितमिंद्रियपर्य्याप्तियें बुदक्कु —माहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळनुच्छ्वासनिःश्वासरूपदिवं परिणमिसल्के उच्छ्वासनिःश्वासनामकर्म्मोदयजनितशक्तिनिष्पत्ति उच्छ्वासनिःश्वासपर्य्याप्तियें बुदक्कु । स्वरनामकर्म्मोदयवशदिवं भाषावर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळं सत्यासत्योभयानुभयभाषारूपदिवं परिणमियिसिसल्के

पर्याप्तिं विना पञ्च विकलेन्द्रियजीवानां षट् संज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवानां भवन्ति । अत्र औदारिक-वैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्मोदयप्रथमसमयमादिं कृत्वा तच्छरीरत्रयषट्पर्याप्तिपर्यायपरिणमनयोग्यपुद्गलस्कन्धान् खलरसभागेन परिणामयितुं पर्याप्तिनामकर्मोदयावष्टम्भसंभूतात्मनः शक्तिनिष्पत्तिराहारपर्याप्तिः । तथापरिणतपुद्गलस्कन्धानां खलभागं अस्थ्यादिस्थिरावयवरूपेण रसभागं रुधिरादिद्रव्यावयवरूपेण च परिणामयितुं शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः । आवरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविजृम्भितात्मनो योग्यदेशावस्थितरूपादिविषयग्रहणव्यापारे शक्तिनिष्पत्तिर्जातिनामकर्मोदयजनितेन्द्रियपर्याप्तिः । आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् उच्छ्वासनिश्वासरूपेण परिणामयितुं उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयजनितशक्तिनिष्पत्तिरुच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिः । स्वरनामकर्मोदयवशाद् भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् सत्यासत्योभयानुभयभाषारूपेण परिणामयितुं शक्तिनिष्पत्तिः भाषापर्याप्तिः ।

न्द्रिय जीवोंके छह पर्याप्तियाँ होती हैं। औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर नामकर्मके उदयके प्रथम समयसे लेकर उन तीन शरीर और छह पर्याप्तिरूप पर्यायके परिणमने योग्य पुद्गल स्कन्धोंको खल और रसभागरूपसे परिणमानेके लिए पर्याप्तिनामकर्मके उदयके साहाय्यसे उत्पन्न आत्माकी शक्तिकी निष्पत्ति आहारपर्याप्ति है। अर्थात् जैसे तिलोंको पेलकर खल और तेलके रूपमें परिवर्तित करते हैं, वैसे ही शरीरनामकर्मका उदय होते ही शरीर और पर्याप्तियोंके योग्य जो पुद्गलस्कन्ध जीव ग्रहण करता है, उनको खल और रसभागरूपसे परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको आहारपर्याप्ति कहते हैं। खल और रसभागरूपसे परिणत पुद्गल स्कन्धोंमें-से खल भागको हड्डी आदि स्थिर अवयवरूपसे और रसभागको रक्त आदि द्रव अवयव रूपसे परिणमानेकी शक्तिकी निष्पत्तिको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। मतिश्रुतज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे युक्त तथा योग्यदेशमें अवस्थित रूप आदि विषयोंको ग्रहण करने रूप व्यापारसे विशिष्ट आत्माके स्पर्शन आदि द्रव्येन्द्रिय रूपसे विवक्षित पुद्गल स्कन्धोंको जातिनामकर्मके उदयके अनुसार परिणमानेकी शक्तिकी निष्पत्तिको इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं। आहारवर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गलस्कन्धोंको उच्छ्वास-निश्वास रूपसे परिणमानेके लिए उच्छ्वास-निश्वासनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई शक्तिकी निष्पत्तिको उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्ति कहते हैं। स्वरनामकर्मके उदयके वशसे

---

१. म °प्पयो° । २. म °सिसं° ।

शक्तिनिष्पत्तिभाषापर्य्याप्तियें बुवक्कुं। मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळनंगोपांगनामकर्म्मोदयबलाधानदिं द्रव्यमनोरूपदिंदं परिणमिसिसिसल्के आ द्रव्यमनोबलाधानदिं नोइंद्रियावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमविशेषदिंदमुं गुणदोषविचारानुस्मरणप्रणिधानलक्षणभावमनःपरिणमनशक्तिनिष्पत्ति मनःपर्य्याप्तियें बुदु अक्कुं। (मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज)

पज्जत्ती पट्ठवणं जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं।
अंतोमुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ॥११०॥

पर्य्याप्तिप्रस्थापनं युगपत्पुनः क्रमेण भवति निष्ठापनमन्तर्मुहूर्त्तकालेनाधिकक्रमास्तावन्मात्रालापाः॥

समस्तस्वस्वयोग्यपर्य्याप्तिगळ्गे शरीरनामकर्म्मोदयप्रथमसमयदोळे युगपत्प्रारंभमक्कुं। मत्तं तन्निष्ठापनंगळुमंतर्म्मुहूर्त्तदिनधिकक्रमंगळादोडं तावन्मात्रालापगळेयप्पुवु। तें दोडे आहारपर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालं सर्व्वतस्तोकमंतर्म्मुहूर्त्तकालमक्कु २१। मिदं नोडे शरीरपर्य्याप्तिकालं

मनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् अङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयबलाधानेन द्रव्यमनोरूपेण परिणामयितुं तद्द्रव्यमनोबलाधानेन नोइन्द्रियावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविशेषेण च गुणदोषविचारानुस्मरणप्रणिधानलक्षणभावमनःपरिणमनशक्तिनिष्पत्तिर्मनःपर्याप्तिः ॥११९॥

समस्तस्व-स्वयोग्यपर्याप्तीनां शरीरनामकर्मोदयप्रथमसमये एव युगपत् प्रतिष्ठापनं प्रारम्भो भवति। तु पुनः तन्निष्ठापनानि अन्तर्मुहूर्तेन क्रमेण तथापि तावन्मात्रालापेनैव भवन्ति। तद्यथा—आहारपर्याप्तिनिष्पत्ति-

भाषावर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गल स्कन्धोंको सत्य, असत्य, उभय और अनुभय भाषाके रूपमें परिणमानेकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं। मनोवर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गलस्कन्धोंको अंगोपांगनामकर्मके उदयकी सहायतासे द्रव्यमनोरूपसे परिणमानेके लिए तथा उस द्रव्य मनकी सहायतासे नोइन्द्रियावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम विशेषसे गुणदोषका विचार, स्मरण, प्रणिधानलक्षणवाले भावमन रूपसे परिणमन करनेकी शक्तिकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं ॥११९॥

विशेषार्थ—शक्तिकी निष्पत्तिको पर्याप्ति कहते हैं। औदारिक आदि शरीरनामकर्मके उदयसे औदारिक आदि शरीररूप परिणमनके योग्य आहारवर्गणाके स्कन्ध आत्माके द्वारा गृहीत होकर समस्त आत्मप्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूपसे स्थित होते हैं। वे पर्याप्तनामकर्मका मन्द अनुभागोदय होनेसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक आहार आदिकी शक्ति निष्पत्तिको उत्पन्न नहीं करते। अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् पर्याप्तनामकर्मका तीव्र अनुभागोदय होनेसे उस रूप परिणमनकी शक्ति निष्पत्तिको करते हैं। गाथामें आये 'च' शब्दसे लब्ध्यपर्याप्तक एकेन्द्रिय आदिके क्रमसे अपर्याप्तियाँ भी चार-पाँच और छह होती हैं ॥११९॥

शरीरनामकर्मके उदयके प्रथम समयमें ही अपने-अपने योग्य समस्त पर्याप्तियोंका प्रतिष्ठापन अर्थात् प्रारम्भ एक साथ होता है। किन्तु उनका निष्ठापन अर्थात् समाप्ति क्रमसे अन्तर्मुहूर्त कालमें होती है। जैसे, आहारपर्याप्तिकी निष्पत्तिका काल सबसे छोटा अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उससे शरीरपर्याप्तिका काल उसके असंख्यातवें भाग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक है तथा मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त ही है। अर्थात् आहारपर्याप्तिके कालको संख्यातका भाग देनेसे जो

१. म °मिसल्के नो।

तत्संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्त्तविनधिकमक्कु २१।२१ कूडिदडिन्तिक्कुमो युक्ति संस्कृतव्याख्यान-
४
दोळपेळ्दे अथवा एंब पक्षांतरमनपेक्षिसि पेळल्पट्टुदु ॥ मुंदे नाल्कें डेयोळमी सेर २१।५ मिदु-
४
वुमंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिदं नोडलिंद्रियपर्य्याप्तिकालं संख्यातैकभागमात्रांतर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु
२१।२१।२१ कूडिदोडिंद्रियपर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालमिदुवु २१ ५।५ मंतर्मुहूर्त्तकालमेयक्कु
४ ४ ४ ४ ४
२१ मिदं नोडलुच्छ्वासनिःश्वासपर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालं संख्यातैकभागमात्रांतर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु
२१।२१।२१।२१ मिवर्वुं कूडि २१।५।५।५ यु मंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिल्लिमेकेंद्रियपर्य्याप्तकन
४।४।४।४ ४४ ४।४।४।
पर्य्याप्तिगळ क्रमदिंदं नाल्कुं संपूर्णगळप्पुवुमिदं नोडे भाषापर्य्याप्तिनिष्पत्तिकालं संख्यातैकभागां-
तर्मुहूर्त्तदिनधिकमक्कु २१।२१।२१।२१ २१ मिवर्णुं कूडिदोडे २१ ५।५।५।५।५
४।४।४।४।४।४।४।४।४।४ ४।४।४।४
मंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिल्लिगे विकलेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळो[illegible]पर्य्याप्तिगळ क्रमदिंदं
परिपूर्णगळप्पुवुमिदं नोडे मनःपर्य्याप्तिकालं संख्यातैकभागांतर्मुहूर्त्तविनधिकमक्कु ।

कालः सर्वतः स्तोकोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रः, २१, इतः शरीरपर्याप्तिकालः तत्संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्तेनाधिकः
२१।२१ मिलितोऽपि २१।५ अन्तर्मुहूर्तः । इतः इन्द्रियपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागमात्रान्तर्मुहूर्ताधिकः
४ ४
२१।२१।२१ मिलितोऽपि २१।५ अन्तर्मुहूर्तः । इतः उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्तेनाधिकः
४।४।४
२१।२१।२१।२१ मिलितोऽप्यन्तर्मुहूर्तः २१ ५।५।५। एता एव ततः एकेन्द्रियपर्याप्तकस्य
४।४।४।४।४।४ ४।४।४
पर्याप्तयोऽनेन क्रमेण पूर्णा भवन्ति । ततः भाषापर्याप्तिकालः संख्यातैकभागान्तर्मुहूर्तेनाधिकः
२१।२१।२१। २१। २१। मिलितोऽपि अन्तर्मुहूर्तः २१।५।५।५।५।
४।४।४।४।४।४।४।४।४।४ ४।४।४।४।
एताः पञ्च विकलेन्द्रियपर्याप्तकजीवानामनेन क्रमेण पूर्णा भवन्ति । ततः मनःपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागान्त-

---

कालका परिमाण आता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। यह अन्तर्मुहूर्त उस आहारपर्याप्तिके अन्तर्मुहूर्तमें मिलानेपर जो परिमाण होता है, वह शरीरपर्याप्तिका निष्ठापन काल है। वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। इसका संख्यातवाँ भाग उसीमें मिलानेपर इन्द्रियपर्याप्तिका काल होता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। इसका संख्यातवाँ भागप्रमाण अन्तर्मुहूर्त इसीमें मिलानेसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिका काल है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। ये चार पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय पर्याप्तकके इसी क्रमसे पूर्ण होती हैं। श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिके कालका संख्यातवाँ भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त इसीमें मिलानेपर भाषापर्याप्तिका काल होता है, वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है। ये पाँच पर्याप्तियाँ विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके इसी क्रमसे पूर्ण होती हैं। भाषापर्याप्तिकालका

---

१. म °क्कु २१।५ मिदुवुमंत° ।
४

२१ । २१ । २१ । २१ । २१ । २१ । मिवुडुं कूडि २१ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४

मुमंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुमिल्लिगे संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरुगळु पर्य्याप्तिगळ्गे असंख्यातैकभागमुं ।

अनंतरं पर्य्याप्तिनिर्वृत्यपर्य्याप्ति कालविभागकालमं पेळ्दपं :—

पज्जत्तस्स य उदये णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि ।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तियपुण्णगो ताव ॥१२१॥

पर्य्याप्तिनामकर्म्मण उदये निजनिजपर्य्याप्तिनिष्ठितो भवति । यावच्छरीरमपूर्णं निर्वृत्य-पर्य्याप्तकस्तावत् ॥

पर्य्याप्तिनामकर्म्मोदयमुंटागुत्तिरलेकेंद्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवंगळ् तंतम्म नाल्कैदु मूरु पर्य्याप्तिगळिंद निष्ठितात्मरप्परु । निष्पन्नशक्तिकरप्पुवु । येन्नेवरं मा जीवंगळ्गे शरीरपर्य्याप्तिनिष्पन्नमागदन्नेवरं समयोनशरीरपर्य्याप्तिकालांतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं २१।५ निर्वृत्यपर्य्याप्तकरेंदु पेळल्पट्टरु ॥

४

निर्वृत्याशरीरनिष्पत्याऽपर्य्याप्ता अपूर्णानिर्वृत्यपर्य्याप्ताः एंदितु निरुक्तिसिद्धरप्परु ॥

मुहूर्तेनाधिकः २१ । २१ । २१ । २१ । २१ । २१ ।
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४

मिलितोऽप्यन्तर्मुहूर्तमात्रः २१ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । एताः षट् संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकानामनेन क्रमेण
४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

पूर्णा भवन्ति ॥१२०॥

अथ पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तकालविभागमाह—

पर्याप्तनामकर्मोदये सति एकेन्द्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवाः निजनिजचतुःपञ्चषट्पर्याप्तिभिर्निष्ठिताः निष्पन्नशक्तयो भवन्ति । ते च यावत् शरीरपर्याप्तिया न निष्पन्नाः तावत् समयोनशरीरपर्याप्तिकालान्तर्मुहूर्तपर्यन्तं २१।५ निर्वृत्यपर्याप्ता इत्युच्यन्ते । निर्वृत्या शरीरनिष्पत्त्या अपर्याप्ता अपूर्णा निर्वृत्यपर्याप्ता इति निर्वचनात् ॥१२१॥

संख्यातवाँ भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त उसीमें मिलानेपर मनःपर्याप्तिका काल होता है वह भी अन्तर्मुहूर्त ही है । वे छह पर्याप्तियाँ संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्तकके इसी क्रमसे पूर्ण होती हैं ॥१२०॥

आगे पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्तके कालका विभाग करते हैं—

पर्याप्तनामकर्मका उदय होनेपर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय चार और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव अपनी-अपनी चार, पाँच और छह पर्याप्तियोंसे निष्ठित अर्थात् सम्पूर्ण शक्तियुक्त होते हैं । वे जबतक शरीर पर्याप्तिसे निष्पन्न नहीं होते अर्थात् जबतक उनकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती, तब तक निर्वृत्यपर्याप्त कहे जाते हैं । अर्थात् एक समय कम शरीरपर्याप्तिके काल अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तका काल है । निर्वृत्ति अर्थात् शरीरपर्याप्तिकी निष्पत्तिसे अपर्याप्त अर्थात् अपूर्णको निर्वृत्यपर्याप्त कहते हैं, यह उसकी व्युत्पत्ति है ॥१२१॥

विशेषार्थ—शरीरपर्याप्तिकी निष्पत्तिके समयसे लेकर इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनःपर्याप्तिकी निष्पत्ति नहीं होनेपर भी जीव पर्याप्तक ही कहा जाता है ।

१. म त्रिकलत्रयसं° ।

अनंतरलब्ध्यपर्याप्तकस्वरूपनिरूपणं माडिदपं ।

उदए दु अपुण्णस्स य सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि ।
अंतोमुहुत्तमरणं लद्धियपज्जत्तगो सो दु ॥१२२॥

उदये त्वपूर्णस्य च स्वक-स्वकपर्याप्तिं न निष्ठापयति । अंतर्मुहूर्त्तमरणं लब्ध्यपर्याप्तकः स तु । अपर्याप्तनामकर्म्मक्कुदयमागुत्तिरलेकेंद्रियविकलसंज्ञिजीवंगळ् तंतम्म पर्याप्तिगळनाल्कुमय्दु मारुगळं निष्ठापनमं माळ्परल्लरुमवर्गळुमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रांतर्मुहूर्त्तदोळे मरणमनुळ्ळरु ॥ लब्ध्यपर्याप्तरेंदु पेळल्पट्टरु । लब्ध्या स्वस्वपर्याप्तिनिष्ठापनयोग्यतयाऽपर्याप्ता अनिष्पन्ना लब्ध्यपर्याप्तका एंबिवु निरुक्तिसिद्धरप्परु । लब्ध्यपर्याप्तरिगायुष्यमुमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमें[illegible] व्याख्यानिसि विशेषप्रतिपत्तिः [illegible] पेळल्पट्टुदु । अनंतरमेकेंद्रियादिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्यंतमिर्द्द लब्ध्यपर्याप्तकजीवंगळोळु सर्वनिरंतरजन्ममरणकालप्रमाणमं पेळ्दपं ।

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥१२३॥

त्रिशतं षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्राणि मरणान्यंतर्मुहूर्त्तकाले तावत्काश्चैव क्षुद्रभवाः ॥ षट्त्रिंशत्त्रिशताभ्यधिकषट्षष्टिसहस्रमरणंगळंतर्मुहूर्त्तकालदोळु संभविसुवुदंतिते क्षुद्रभवंगळुमप्पुवु । क्षुद्रस्य सर्वनिकृष्टस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य भवाः क्षुद्रभवाः एंबी निरुक्तिसिद्धंगळप्प लब्ध्यपर्याप्तक-

---

अथ लब्ध्यपर्याप्तकस्वरूपं निरूपयति—

अपर्याप्तनामकर्मोदये सति एकेन्द्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवाः स्व-स्वचतुःपञ्चषट्पर्याप्तीर्न निष्ठापयन्ति । उच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रे एवान्तर्मुहूर्ते म्रियन्ते ते जीवा लब्ध्यपर्याप्तका इत्युच्यन्ते । लब्ध्या स्वस्य पर्याप्तिनिष्ठापनयोग्यतया अपर्याप्ता अनिष्पन्ना लब्ध्यपर्याप्ता इति निरुक्तेः ॥१२२॥

अथैकेन्द्रियादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तलब्ध्यपर्याप्तकजीवेषु सर्वनिरन्तरजन्ममरणकालप्रमाणमाह—

अन्तर्मुहूर्तकाले क्षुद्राणां लब्ध्यपर्याप्तानां मरणानि षट्त्रिंशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि संभवन्ति । तथा तद्भवा अपि तावन्त एव ॥१२३॥

लब्ध्यपर्याप्तकका स्वरूप कहते हैं—

अपर्याप्तकनामकर्मका उदय होनेपर एकेन्द्रिय, चारों विकलेन्द्रिय और संज्ञी जीव अपनी-अपनी चार, पाँच और छह पर्याप्तियोंको पूर्ण नहीं करते हैं । उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमें ही वे मर जाते हैं । वे जीव लब्ध्यपर्याप्तक कहे जाते हैं । लब्धि अर्थात् अपनी पर्याप्तिको पूर्ण करनेकी योग्यतासे अपर्याप्त अर्थात् अनिष्पन्न जीव लब्ध्यपर्याप्त हैं ऐसी निरुक्ति है ॥१२२॥

आगे एकेन्द्रियसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें निरन्तर जन्म और मरणके कालका प्रमाण कहते हैं—

अन्तर्मुहूर्तकालमें लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका मरण छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार होता है । तथा उनका जन्म भी उतनी ही बार होता है ॥१२३॥

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक जीवके ८७$\frac{1}{3}$ उच्छ्वासोंसे हीन एक मुहूर्त काल प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालमें छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते हैं । उतने ही क्षुद्रभव हैं ।

---

१. म °गळंतम्म । २. म °लायुष्यमुं° । ३. म °त्तंमे मा° ।

मरणजन्मंगळगेकेंद्रियादिजीवंगळोळु संभविसुव प्रमाणमुमं पेळ्दपं।

आगमग्रंथमाला आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे ॥१२४॥

अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशद्विकले चतुर्विंशतिः पंचाक्षे षट्षष्टिसहस्राणि शतं च द्वात्रिंशदेकाक्षे॥

एकेंद्रियंगळ्गे द्वात्रिंशच्छतान्यधिकषट्षष्टिसहस्रंगळ् निरंतरक्षुद्रभवंगळप्पवु ६६१३२। वानुमोर्व्वमेकेंद्रियं लब्ध्यपर्य्याप्तकजीवं तद्भवप्रथमसमयं मोदल्गो डुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रकालमं स्वस्थितियं जीविसि सत्तु मत्तमल्लियेकेंद्रियंगळोळ् पुट्टि मसं तावन्मात्रस्थितियं जीविसि सत्तिंतु निरंतरमेकेंद्रियंगळोळु लब्ध्यपर्य्याप्तकंगेत्तलानुं बहुभवंगळ् संभविपोडमा पेळ्द संख्याप्रमाणम ६६१३२। नतिक्रमिसवु। इन्ते द्वींद्रियादिगळोळं निरंतरक्षुद्रभवप्रकारंगळ् योजिसल्पडुवुमन्ते द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळेण्भत्तु ८० त्रींद्रियलब्ध्यपर्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळरुवत्तु ६० चतुरिंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळ्नलवत्तु ४० पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळिप्पत्तनालकु २४ इन्तरोळमनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळेंटु ८। असंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतर क्षुद्रभवंगळेंटु ८ संज्ञिपंचेंद्रिय लब्ध्यपर्य्याप्त-

---

अथ तन्मरणजन्मनां एकेन्द्रियादिजीवसंभविनां तत्कालस्य च प्रमाणमाह—

ते निरन्तरक्षुद्रभवा लब्ध्यपर्याप्तकेषु एकेन्द्रिये द्वात्रिंशदग्रशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि भवन्ति ६६१३२। तद्यथा—कश्चिदेकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकः तद्भवप्रथमसमयादारभ्य उच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रीं स्वस्थितिं जीवित्वा पुनस्तदेकेन्द्रिये एवोत्पन्नः, पुनस्तावन्मात्रस्वस्थितिं जीवितः। एवं निरन्तरमेकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकभवानेव बहुवारं गृह्णाति। तदा उक्तसंख्यां ६६१३२ नातिक्रामति। एवमेव द्वीन्द्रिये लब्ध्यपर्याप्तके अशीति ८०, त्रीन्द्रिये लब्ध्यपर्याप्तके षष्टि ६०, चतुरिन्द्रिये लब्ध्यपर्याप्तके चत्वारिंशत् ४०, पञ्चेन्द्रिये लब्ध्य-

---

उसका भव सब जीवोंके भवसे अति अल्प होता है, इसलिए उसे क्षुद्रभव कहते हैं। लब्ध्यपर्याप्तकको छोड़कर अन्य किसी भी जीवका उच्छ्वासके अठारहवें भाग मात्र भव नहीं होता। एक भवके कालका प्रमाण यदि एक उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग मात्र है, तो छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस क्षुद्रभवोंके कितने उच्छ्वास होते हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर पृथिवीकायिकसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका अव्यवहित क्षुद्रभवोंका काल तीन हजार छह सौ पिचासी तथा एक त्रिभाग ३६८५⅓ उच्छ्वास प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है ॥१२३॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंके होनेवाले उन मरण और जन्मोंका तथा उनके कालका प्रमाण कहते हैं—

वे निरन्तर क्षुद्रभव लब्ध्यपर्याप्तोंमें एकेन्द्रियोंके छियासठ हजार एक सौ बत्तीस ६६१३२ होते हैं। सो इस प्रकार हैं—कोई एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक अपने भवके प्रथम समयसे लेकर उच्छ्वासके अठारहवें भागमात्र अपनी स्थिति प्रमाण जीवित रहकर पुनः उस एकेन्द्रिय पर्यायमें उत्पन्न हुआ। और एक उच्छ्वासके अठारहवें भाग काल तक जीवित रहा। इस प्रकार निरन्तर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके भवोंको ही बार-बार ग्रहण करता है। तब उक्त संख्या ६६१३२ का उल्लंघन नहीं करता। इसी तरह दोइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें अस्सी ८०, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें साठ ६०, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें चालीस ४०, पंचेन्द्रिय

---

१. म °मं कालप्रमाणमुमं। २. म °गळगेंटु।

कन निरंतरक्षुद्रभवंगळेंटु कूडि पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळिप्पत्तनाल्कु २४। अनंतरमेकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभव संख्येयोळु स्वामिभेवमनाश्रयिसि विभागिसिदपं :

पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बार खं छक्कं ॥१२५॥

पृथिव्युदकाग्निमारुतसाधारणस्थूलसूक्ष्मप्रत्येकाः। एतेष्वपूर्णेषु चैकस्मिन् द्वादश खं षट्कं ॥

पृथिवीकायिक - अप्कायिक - तेजस्कायिक - वातकायिक साधारणवनस्पतिकायिकंगळोळु प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेवद्वयविभिन्नंगळोळं प्रत्येकवनस्पतिकायिकंगळोळमितु पन्नों वंडेयोळं द्वादशोत्तरषट्सहस्रंगळिन्तिरंतरं क्षुद्रभवंगळप्रत्येकमप्पुवें तु पन्नोंवरिदमेकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकन निरंतरक्षुद्रभवंगळ ६६१३२ भागिसलो बो वक्के मुंपेन्द बार खं छक्कं ६०१२ निरंतरक्षुद्रभवंगळप्पुवु। सामान्यलब्ध्यपर्य्याप्तकन सर्व्वनिरंतरक्षुद्रभवसंख्यातत्कालादिगळ्गे परिमाणनिर्णयनिमित्तमागि चतुर्द्धापवर्त्तनं तोरल्पडुगुमवे ते दोडे—ओ बु क्षुद्रभवैकसंबंधिसूक्ष्मोच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रमक्कु मागळु षट्त्रिंशत्त्रिशतोत्तरषट्षष्टिसहस्र ६६३३६ निरंतरक्षुद्रभवंगळगेनितु कालमक्कुमेंबिदु संपातिसुत्तिरलु प्र भ १ फ उ १८ इ भ ६६३३६ लब्धकालमुच्छ्वासंगळु ३६८५ १/३ इवित्ति-

---

पर्याप्तके चतुर्विंशतिः २४। तत्र तु मनुष्ये लब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८, संज्ञिपञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८ मिलित्वा पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तके चतुर्विंशतिर्भवन्ति ॥१२४॥

अथैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य निरन्तरक्षुद्रभवसंख्यां स्वामिभेदानाश्रित्य विभजति—

पृथिव्यप्तेजोवायु-साधारणवनस्पतयः पञ्चापि प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदेन दश। तथा प्रत्येकवनस्पतिश्चेत्येषु एकादशसु लब्ध्यपर्याप्तभेदेषु एकैकस्मिन् भेदे प्रत्येकं द्वादशोत्तरषट्सहस्री निरन्तरक्षुद्रभवा भवन्तीति एकादशभिः एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य निरन्तरक्षुद्रभवेषु ६६१३२ भक्तेषु एकस्य प्रागुक्तं 'बार खं छक्कं' ६०१२ निरन्तरक्षुद्रभवप्रमाणमागच्छति। उक्तसर्वनिरन्तरक्षुद्रभवसंख्यां तत्कालादिप्रमाणं च निर्णेतुं चतुर्धापवर्तनं दर्श्यते। तद्यथा—यद्येकक्षुद्रभवस्य उच्छ्वासाष्टादशैकभागकालः तदा षट्त्रिंशत्त्रिशतोत्तरषट्षष्टिसहस्र-६६३३६ निरन्तरक्षुद्रभवानां कियन्त उच्छ्वासाः ? इति संपाते सति प्र., भ १। फ. उ. १/१८। इ, भ ६६३३६

लब्ध्यपर्याप्तकमें चौबीस २४, उनमें भी मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें आठ ८, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय-लब्ध्यपर्याप्तकमें आठ ८, और संज्ञी पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकमें आठ ८ सब मिलकर चौबीस होते हैं। इस प्रकार सब भवोंका ग्रहण करता है ॥१२४॥

आगे एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके निरन्तर क्षुद्रभवोंकी संख्याको स्वामिभेदसे विभाजित करते हैं—

पृथिवी, अप्, तेज, वायु और साधारण वनस्पति, इन पाँचोंमें-से प्रत्येक बादर और सूक्ष्म होनेसे दस होते हैं। तथा प्रत्येक वनस्पति मिलाकर इन ग्यारह लब्ध्यपर्याप्तकोंमें-से एक-एक भेदमें छह हजार बारह निरन्तर क्षुद्रभव होते हैं। एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके निरन्तर क्षुद्रभव ६६१३२ में ग्यारहसे भाग देनेपर एक एकेन्द्रियके क्षुद्रभवोंका प्रमाण छह हजार बारह होता है। उक्त समस्त निरन्तर क्षुद्रभवसंख्या और उसके काल आदिके प्रमाणका निर्णय करनेके लिए चार प्रकारके अपवर्तनको दिखाते हैं। यदि एक क्षुद्रभवका काल उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग है, तो छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस निरन्तर क्षुद्रभवोंका कितने उच्छ्वास

---

१. म °गलेंटु।

यंतम्मुहूर्त्तमेंबु पेळल्पट्टुवु ।

आढ्याऽनल साऽनुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तत्रिमितैः ३७७३ आहुर्म्मुहूर्त्तमन्तर्म्मुहूर्त्त-
मष्टाष्टवर्ज्जितैस्त्रिभागयुतैः ३६८५ १ ई यंतम्मुहूर्त्तमेकमुहूर्त्तोच्छ्वासंगळं ३७७३ नोडलें भक्तेळु-
३ ५

मुच्छ्वासंगळु मुच्छ्वासद्वित्रिभागंगळिवं न्यूनमेंदरियल्पडुवुवु । 'आयुरंतर्म्मुहूर्त्तः स्यादेषोऽप्यष्टा-
१

दशांशकः । उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ॥' एंबितो बुच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्र- ५
कालक्के बोंबु क्षुद्रभवमागलु इंतुच्छ्वासंगळ्गेंनितु क्षुद्रभवंगळ्पुट्टुबु संपादिसल्पु प्र उ १ फ भ
१८

१ । इ उ ३६८५ १ लब्धक्षुद्रभवंगळु ६६३३६ । मत्तमितु क्षुद्रभवंगळ्गे प्रमाण ६६३३६ फल-
३

मिनितुच्छ्वासंगळागलु ३६८५ १ बोंबु क्षुद्रभवक्केनितु कालमक्कुमेंबु त्रैराशिकमं माडलु लब्धं
३

उ १ मत्तमितु कालक्के ३६८५ १ इंतु भवंगळागलु ६६३३६ इंतु कालक्के उ १ एंतु भवमेंबु
१८ ३ १८

लब्धोच्छ्वासाः ३६८५$\frac{1}{3}$ इत्ययमन्तर्मुहूर्तो ग्राह्यः । १०

'आढ्यानलसानुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तत्रिमितैः ३७७३ ।
आहुर्मुहूर्तमन्तर्मुहूर्तमष्टाष्टवर्जितैस्त्रिभागयुतैः ॥' इति वचनात् ।
'आयुरन्तर्मुहूर्तः स्यादेषोऽप्यष्टादशांशकः ।
उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके ॥'

इत्युक्तोच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रस्यैकक्षुद्रभवः, तदा एतावतां उच्छ्वासानां कति क्षुद्रभवाः ? इति १५
संपाते प्र उ $\frac{1}{18}$ । फ भ. १ । इ उ ३६८५$\frac{1}{3}$ लब्धक्षुद्रभवाः ६६३३६ । पुन इयतां क्षुद्रभवानां ६६३३६ यदि
इयन्त उच्छ्वासाः ३६८५$\frac{1}{3}$ तदा एकक्षुद्रभवस्य किमिति त्रैराशिके कृते लब्धैकक्षुद्रभवकालः उ $\frac{1}{18}$ ।
पुनरियतः कालस्य ३६८५$\frac{1}{3}$ इयन्तो भवाः ६६३३६ तदा इयतः कालस्य उ $\frac{1}{18}$ कति भवाः ? इति संपातेन

प्रमाण काल होगा। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि एक, फलराशि एकका अठारहवाँ भाग $\frac{1}{18}$ और इच्छाराशि छियासठ हजार तीन सौ छत्तीस। फलको इच्छासे गुणा करके २०
प्रमाणका भाग देनेपर लब्धराशि तीन हजार छहसौ पिचासी और एक त्रिभाग प्रमाण उच्छ्वास होती है। इतना अन्तर्मुहूर्त काल लेना। क्योंकि कहा है—धनसम्पन्न निरालसी और नीरोगी मनुष्यके तीन हजार सातसौ तिहत्तर उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है। उसमें-से अठासी और एकका तीसरा भाग प्रमाण उच्छ्वासोंको घटानेपर क्षुद्रभवोंका काल अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य-तिर्यंचोंकी आयु एक उच्छ्वासका २५
अठारहवाँ भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होती है। अतः यदि एक श्वासका अठारहवाँ भाग कालका एक क्षुद्रभव होता है, तो छत्तीस सौ पिचासी और एकके त्रिभाग प्रमाण उच्छ्वासोंके कितने क्षुद्रभव होंगे। इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि $\frac{1}{18}$ उच्छ्वास, फलराशि एक भव और इच्छाराशि ३६८५$\frac{1}{3}$ उच्छ्वास। भाग देनेपर ६६३३६ भव आते हैं। पुनः इतने ६६३३६ क्षुद्रभवोंके यदि इतने ३६८५$\frac{1}{3}$ उच्छ्वास, तो एक क्षुद्रभवके कितने ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर ३०

---

१. म यिदनिल्लि ।

संपादिसल्पडुगुं लब्धं भव १ इंतो बु भवकं तत्कालकं समस्तभवंगळ्गं तत्कालंगळ्गं क्रमदिंदं प्रमाणराशिकरणदिंदं चतुर्धा त्रैराशिकं सर्व्वत्र यथासंभवमरियल्पडुगुं।

अनंतरं समुद्घातकेवलिगे अपर्य्याप्तकत्वसंभवमं पेळ्दपं :—

पज्जत्तसरीरस्स य पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स।
जोगिस्स अपुण्णत्तं अपुण्णजोगो त्ति णिद्दिट्ठं ॥१२६॥

पर्य्याप्तशरीरस्य च पर्य्याप्तोदयस्य काययोगस्य। योगिनोऽपूर्णत्वमपूर्णयोगवदिति निर्दिष्टं।

परिपूर्णपरमौदारिकशरीरनुं पर्याप्तनामकर्मोदयमनुळ्ळनुं काययोगमनुळ्ळनुमिंतप्प सयोगकेवलिभट्टारकंगे आरोहणावरोहणकवाटद्वयसमुद्घातदोळु पेळल्पट्टपूर्णत्वमौदारिकमिश्रकाययोगदिंतप्पपूर्णकाययोगमेंदु पेळल्पट्टुदरिदु कारणदिंदमामौदारिकमिश्रकाययोगदिंदं आक्रांतनप्प सयोगकेवलिभट्टारकनुं कवाटयुगलकालदोळपर्य्याप्तनेयं भजिसुगुमेंदितु प्रवचनदोळ्पेळल्पट्टं।

अनंतरं लब्ध्यपर्य्याप्तकादिगळ्गे गुणस्थानंगळोळु संभवासंभवप्रकारमं पेळ्दपं :—

लद्धियपुण्णो-मिच्छे तत्थ वि विदिये चउत्थ सट्ठे य।
णिव्वत्तियपज्जत्तो तत्थ वि सेसेसु पज्जत्तो ॥१२७॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

लब्ध्यपूर्णमिथ्यात्वे तत्रापि द्वितीये चतुर्थे षष्ठे च। निर्वृत्त्यपर्याप्तकः तत्रापि शेषेषु च पर्याप्तकः।

लब्धभवः १। एवमेकभवस्य तत्कालस्य समस्तभवानां तत्कालानां च क्रमशः प्रमाणराशिकरणात् चतुर्धा त्रैराशिकं सर्वत्र यथासंभवं ज्ञातव्यम् ॥१२५॥

अथ समुद्घातकेवलिनः अपर्याप्तत्वसंभवमाह—

परिपूर्णपरमौदारिकशरीरस्य पर्याप्तनामकर्मोदययुतस्य काययोगयुक्तस्य सयोगकेवलिभट्टारकस्य आरोहणावरोहणकपाटद्वये समुद्भूते कथितमपूर्णत्वं अपूर्णकाययोग इति। ततः कारणादौदारिकमिश्रकाययोगाक्रान्तः सयोगकेवलिभट्टारकः कपाटयुगलकाले अपर्याप्ततां भजतीति प्रवचने निर्दिष्टं—कथितं ॥१२६॥ अथ लब्ध्यपर्याप्तकादीनां गुणस्थानेषु संभवासंभवप्रकारमाह—

एक क्षुद्रभवका काल $\frac{1}{18}$ उच्छ्वास आता है। पुनः इतने ३६८५$\frac{1}{2}$ कालमें इतने ६६३३६ भव तो $\frac{1}{18}$ उ. कालमें कितने भव ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्ध एक भव आता है। इस प्रकार एक भव और उसके कालको तथा समस्त भवों और उनके कालोंको क्रमसे प्रमाणराशि करनेसे चार प्रकारसे त्रैराशिक किया। इसी प्रकार सर्वत्र यथासम्भव जानना ॥१२५॥

आगे समुद्घात केवलीके अपर्याप्तपना बतलाते हैं—

सयोगकेवली भट्टारकका परम औदारिक शरीर परिपूर्ण है, उनके पर्याप्त नामकर्मका उदय भी है और वे काययोगसे युक्त हैं। फिर भी जब वे कपाट समुद्घात करते हैं, एक समुद्घातका विस्तार करते हुए और एक संकोच करते हुए, तब इन दोनोंमें अपूर्ण काययोगके होनेसे अपूर्णपना कहा है। इस कारणसे औदारिक मिश्रकाययोगसे युक्त सयोगकेवलि भट्टारकके दोनों कपाटोंके कालमें अपर्याप्तपना होता है,ऐसा जिनागममें कहा है ॥१२६॥

विशेषार्थ—इसी गाथाकी मन्द प्रबोधिनी टीकामें कहा है कि सयोग केवलीके समुद्घातकालमें, कपाटयुगलमें, प्रतरयुगलमें और लोकपूरणमें इन पाँच समयोंमें अपर्याप्तपना कैसे सम्भव है ? ऐसा प्रश्न होनेपर उत्तर है कि अपूर्णयोग ही अर्थात् औदारिकमिश्र

लब्ध्यपर्य्याप्तकजीवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळे संभविसुगुमुळिदंतुपरिमगुणस्थानंगळोळे-ल्लियुमिल्ल। पर्य्याप्तकालदोळे सम्यक्त्वग्रहणसंभवमप्पुदरिंद लब्ध्यपर्य्याप्तकस्थितिगपर्य्याप्तकाल-दोळे क्षयमप्पुदरिंद लब्ध्यपर्य्याप्तकालदोळु सम्यक्त्वग्रहणाभावमप्पुदरिंद सासादनादिगुणस्थानंगळु संभविसमप्पुवरिंद मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळे लब्ध्यपर्य्याप्तकसंभवमेंदितु सिद्धं।

मत्तमा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनगुणस्थानदोळमसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तगुण- ५
स्थानदोळं निर्वृत्यपर्य्याप्तजीवसंभवमक्कुमन्यगुणस्थानंगळोळिल्ल। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळम-
संयतगुणस्थानदोळं मृतमागि जीवंगळु चतुर्गतिगळोळ्पुट्टिदवक्कं। सासादनगुणस्थानदोळु
मृतमागि नरकगतिवर्ज्जितचतुर्गतिगळोळ्पुट्टिदवक्कमुत्पन्नप्रथमसमयं मोदल्गों डौदारिक-
वैक्रियिकशरीरपर्य्याप्तिकालं समयोनमन्नेवर-मन्नेवरं तत्तच्छरीरनिर्वृत्तिगभावमप्पुदरिंद तद्गुण-
स्थानंगळोळु निर्वृत्यपर्य्याप्तजीवंगळ् संभविसुगुं। १०

प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु मत्ताहारकशरीरपर्य्याप्तिकालं समयोनमन्नेवरमन्नेवरं तच्छरीर-
निर्वृत्यभावमप्पुदरिंद प्रमत्तगुणस्थानदोळं जीववंतनप्पवस्थेयोळं निर्वृत्यपर्य्याप्तकजीवं संभवि-

---

लब्ध्यपर्याप्तकजीवो मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव संभवति नान्यगुणस्थाने सासादनत्वादिविशेषगुणानां तस्याभावात्। पुनः तत्रापि—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानेऽपि द्वितीये-सासादनगुणस्थाने, चतुर्थे—असंयतगुणस्थाने, षष्ठे—प्रमत्तगुणस्थाने चेति चतुर्षु गुणस्थानेषु अपि निर्वृत्यपर्याप्तकजीवः संभवति, नान्यगुणस्थानेषु। मिथ्यादृष्टय- १५
संयतगुणस्थानमृताश्चतुर्गतिषु, सासादनगुणस्थानमृता नरकवर्जितगतिषु चोत्पद्यन्ते, तत्तत्तद्गुणस्थानत्रये तदुत्पत्तिप्रथमसमयादारभ्य समयोनौदारिकवैक्रियिकशरीरपर्याप्तिकालपर्यन्तं तथा प्रमत्तसंयतस्य समयोनाहारक-

---

और कार्मणकाययोगका सद्भाव ही उनके उपचारसे अपर्याप्तपनेका कारण है, मुख्य रूपसे वे अपर्याप्त नहीं हैं।

आगे लब्ध्यपर्याप्तक आदिके गुणस्थानोंके होने न होनेका कथन करते हैं— २०

लब्ध्यपर्याप्तक जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है, अन्य गुणस्थानमें नहीं होता, क्योंकि उसके सासादनत्व आदि विशेष गुणोंका अभाव है। पुनः तत्रापि अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें भी, तथा दूसरे सासादनगुणस्थानमें, चतुर्थ असंयतगुणस्थानमें, छठे प्रमत्तगुण-स्थानमें, इन चार गुणस्थानोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक जीव होता है। इनके सिवाय अन्य गुणस्थानोंमें नहीं होता। क्योंकि मिथ्यादृष्टि और असंयतगुणस्थानमें मरे जीव चारों गतियोंमें और २५
सासादन गुणस्थानमें मरे जीव नरकगतिके सिवाय शेष तीन गतियोंमें उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन तीन गुणस्थानोंमें जन्मके प्रथम समयसे लेकर एक समय कम औदारिक और वैक्रियिक शरीरकी शरीरपर्याप्तिके काल पर्यन्त, तथा प्रमत्तसंयतके एक समय कम आहारकशरीर पर्याप्तिके काल पर्यन्त निर्वृत्यपर्याप्तकपना सम्भव है। पुनः तत्रापि अर्थात् उक्त चारों गुण-स्थानोंमें भी और शेष मिश्र, देश संयत, तथा अप्रमत्तसे लेकर सयोगकेवली पर्यन्त गुणस्थानों- ३०
में पर्याप्तक जीव होता है,क्योंकि उसका कारण पर्याप्तिनामकर्मका उदय इन सब गुणस्थानोंमें होता है।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्मिथ्यात्वका उदय, दर्शनमोहका उपशम, देश-संयम और सकल संयम नहीं होता। तथा निर्वृत्यपर्याप्तकालमें सम्यक्मिथ्यात्वका उदय देशसंयम आदि नहीं होते। प्रश्न हो सकता है कि तब निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें प्रमत्तसंयम ३५

सुगुमेंबितु गुणस्थानचतुष्टयदोळु निर्वृत्यपर्य्याप्तकनियममं पेळल्पट्टुदु। गुणस्थानचतुष्टयदोळं शेषमिश्रगुणस्थानदोळं देशसंयतगुणस्थानदोळमप्रमत्तादि सयोगकेवलिपर्य्यंतमिई गुणस्थानंगळोळु पर्याप्तजीवसंभवमक्कुमेकेंदोडे तत्कारणभूतपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयक्के सर्व्वत्र सद्भावमप्पुदरिंदं।

अनंतरमपर्य्याप्तकालदोळु सासादनंगमसंयतंगं नियमविंदमुत्पत्त्यभावस्थानंगळं पेळ्दपं।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं।
पुण्णिदरे ण हि सम्मो ण सासणो णारया पुण्णे ॥१२८॥

मार्गदर्शक - अधस्तनषट्पृथ्वीनां ज्योतिर्व्यन्तरभावनसर्व्वस्त्रीणां। पूर्णेतरेषु नास्ति सम्यग्दृष्टिर्न सासादनो नारकापूर्णे ॥ नरकगतियोळु रत्नप्रभेयोळ्पुट्टिदरं बिट्टुळिदषस्तनषड्भूमिजरप्प नारकरुगळ ज्योतिर्व्यंतरभावनदेवरुगळ सर्व्वतिर्य्यग्मनुष्यर देवगतिसंबंधिगळप्प स्त्रीयर निर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु सम्यक्त्वग्रहणायोग्यकालमप्पुदरिंदमुं सम्यक्त्वपूर्वकं मरणमाद तिर्य्यग्मानुषरुं देवनारकरुं यथायोग्यमागि शर्कराप्रभादिषड्भूमिजरप्प निर्वृत्यपर्य्याप्तकरुं भवनत्रयनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुं सर्व्वतिर्य्यग्मनुष्यदेवस्त्रीयरप्प निर्वृत्यपर्य्याप्तकरागि पुट्टुवरु मा येडेगळोळ्पुट्टुवर्ग विराधितसम्यक्त्वरुमप्प मिथ्या-

---

शरीरपर्याप्तिकालपर्यन्तं च निर्वृत्त्यपर्याप्तकत्वसंभवात्। पुनस्तत्रापि—उक्तगुणस्थानचतुष्टयेऽपि शेषेषु मिश्रदेशसंयताप्रमत्तादिसयोगकेवलिपर्यन्तगुणस्थानेषु च पर्याप्तकजीवः संभवति तत्कारणस्य पर्याप्तिनामकर्मोदयस्य तत्र सर्वत्र संभवात् ॥१२७॥ अथापर्याप्तकाले सासादनासंयतयोर्नियमेन अभावस्थानान्याह—

नरकगतौ रत्नप्रभारहितशेषषड्भूमिनारकाणां ज्योतिर्व्यन्तरभावनदेवानां सर्वतिर्यग्मनुष्यदेवस्त्रीणां च निर्वृत्यपर्याप्तके सम्यग्दृष्टिर्नहि नास्त्येव, तदा तद्ग्रहणयोग्यकालाभावात् सम्यक्त्वेन सह मृतस्य तिर्यग्मनुष्यस्य तत्रोत्पत्त्यभावाच्च। मरणे विराधितसम्यक्त्वमिथ्यादृष्टिसासादनानां यथासंभवं तत्रोत्पत्तौ विरोधाभावात्।

कैसे होता है? इसका उत्तर यह है कि आहारक शरीरके प्रारम्भ समयसे लेकर उसकी निर्वृत्यपर्याप्ति और पर्याप्ति प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ही सम्भव है, यह बात परमागममें प्रसिद्ध है। ऋद्धिप्राप्त भी मुनि अप्रमत्त आदि ऊपरके गुणस्थानोंमें अपनी ऋद्धिका प्रयोग नहीं करते ॥१२७॥

आगे अपर्याप्तकालमें सासादन और असंयतगुणस्थानका जहाँ नियमसे अभाव होता है, उन्हें कहते हैं—

नरकगतिमें रत्नप्रभाके बिना शेष छह भूमिके नारकियोंमें, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंमें, समस्त तिर्यंच मनुष्य और देवगति सम्बन्धी स्त्रियोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्योंकि उस अवस्थामें सम्यक्त्वके ग्रहण योग्य काल नहीं है। तथा सम्यक्त्वके साथ मरे तिर्यंच और मनुष्य वहाँ उत्पन्न नहीं होते। मरनेसे पूर्व सम्यक्त्वकी विराधना करके मिथ्यादृष्टि या सासादन होनेवाले यथासम्भव वहाँ उत्पन्न होते हैं, इसमें कोई विरोध नहीं है। तथा सातों पृथिवियोंके नारकियोंके निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें

---

१. म °योलु बि°।

दृष्टिगळ्गं सासादनरुमागमाविरोधमेंतप्पुवंते पुट्टुवुदं । सासादनसम्यग्दृष्टिगळु नरकमं पुगरप्पुदरिंदं समस्तनरकभूमिजरप्प नारकापूर्णरोळु सासादनरिल्ल ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यंवर्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह - सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति - श्रीमदभयसूरि-सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं - श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड विंशतिप्ररूपणंगळोळु तृतीयपर्य्याप्तिप्ररूपणाधिकारं प्रतिपादितमाय्तु ।

समपृथ्वीनारकांश्चैवं पर्याप्तके सासादनसम्यग्दृष्टिर्नास्ति तस्य नरके गमनाभावात् । तद्भवोत्पन्नस्य तु तस्मिन् काले सासादनत्वसंभवाभावाच्च ॥१२८॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु पर्याप्तिप्ररूपणानाम तृतीयोऽधिकारः ॥ ३ ॥

गोम्मटसार ... आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सासादनगुणस्थान नहीं होता। क्योंकि सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें नहीं जाता। और वहाँ उत्पन्न हुए जीवके उस समय सासादनपना होना सम्भव नहीं है ॥१२८॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु भूमण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से पर्याप्ति प्ररूपणा नामक तृतीय महा-अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

अथ प्राणप्ररूपणाधिकारः ॥४॥

श्रीवीतरागाय नमः । अनंतरं प्राणप्ररूपणनिरूपणनिमित्तं पेळ्दपरु ।

बाहिरपाणेहि जहा तहेव अब्भंतरेहि पाणेहिं ।
पाणंति जेहि जीवा पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा ॥१२९॥

बाह्यप्राणैर्यथा तथैवाभ्यंतरैः प्राणैः प्राणंति यैर्जीवाः प्राणास्ते भवंति निर्दिष्टाः । आवुवु केलवभ्यंतरभावप्राणंगळिंवं जीवंगळु जीविसुत्तिर्प्पुवु जीविसुव व्यवहारयोग्यंगळप्पुवु । बाह्यप्राणंगळिंवंतेया जीवधर्मंगळ् प्राणंगळप्पुर्वेंदितु पेळल्पट्टुवु । यैरभ्यंतरैर्भावप्राणैर्जीवाः प्राणंति जीवंति जीवद्व्यवहारयोग्या भवंति कैरिव बाह्यैर्द्रव्यप्राणैरिव यथाशब्दस्य इवार्थवाचकत्वात् ते आत्मनो धर्म्माः प्राणा भवंतीति निर्दिष्टाः ।

एंदी निर्वचनदिंदमे प्राणशब्दार्थमरियल्के शक्यमेंदितु तल्लक्षणं पृथक्पेळल्पट्टुविल्ल । पौद्गलिकद्रव्येंद्रियव्यापाररूपंगळु द्रव्यप्राणंगळु तन्निमित्तकंगळप्प ज्ञानावरण वीर्य्यांतरायक्षयो-

---

विध्वंसि प्रकृतीर्हत्वा लब्ध्वार्हन्त्यं जगन्नुतम् ।
शास्ति भव्यान् द्विधा धर्मं यस्तं वन्देऽभिनन्दनम् ॥४॥

अथ प्राणप्ररूपणां निरूपयति—

यैरभ्यन्तरैर्भावप्राणैः जीवाः जीवन्ति—जीवद्व्यवहारयोग्या भवन्ति । कैरिव ? बाह्यैर्द्रव्यप्राणैरिव यथाशब्दस्य इवार्थवाचकत्वात् । ते आत्मनो धर्माः प्राणाः भवन्तीति निर्दिष्टाः । इति निर्वचनेनैव प्राणशब्दार्थस्य ज्ञातुं शक्यत्वात् तल्लक्षणं पृथग् नोक्तम् । पौद्गलिकद्रव्येन्द्रियादिव्यापाररूपाः द्रव्यप्राणाः । तन्निमित्तभूत-ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमादिविजृम्भितचेतनव्यापाररूपा भावप्राणाः । अत्र पर्याप्तिप्राणयोः को भेदः ? इति चेदुच्यते—पञ्चेन्द्रियावरणक्षयोपशमजाः पञ्चेन्द्रियप्राणाः तदुत्पन्नार्थग्रहणसमर्थस्वेनोत्पन्नप्रथमसमयादारभ्य

जो कर्मोंकी त्रेसठ प्रकृतियोंको नष्ट करके और जगत्के द्वारा वन्दनीय आर्हन्त्य पदको प्राप्त करके श्रावक और मुनिधर्मका उपदेश भव्यजीवोंको देते हैं, उन अभिनन्दननाथ भगवान्को नमस्कार करता हूँ ।

आगे प्राणप्ररूपणाको कहते हैं—

बाह्य अर्थात् द्रव्य प्राणोंकी तरह जिन अभ्यन्तर अर्थात् भावप्राणोंसे जीव 'प्राणन्ति' अर्थात् जीवनव्यवहारके योग्य होते हैं आत्माके वे धर्म प्राण कहे जाते हैं । इस व्युत्पत्तिसे ही प्राण शब्दका अर्थ जानना शक्य होनेसे उसका लक्षण अलगसे नहीं कहा है । पौद्गलिक द्रव्येन्द्रिय आदिके व्यापाररूप द्रव्यप्राण होते हैं । और उनमें निमित्तभूत ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशम आदिसे प्रकट हुए चेतनके व्यापाररूप भावप्राण होते हैं ।

शंका—पर्याप्ति और प्राणमें क्या भेद है ?

समाधान—पाँच इन्द्रियसम्बन्धी आवरणोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए पाँच इन्द्रियप्राण होते हैं । और उस क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई अर्थको ग्रहण करनेकी सामर्थ्यके साथ उत्पन्न

पशमाविर्गळिंदं विजृंभिसल्पट्ट चेतनव्यापाररूपंगळ भावप्राणंगळ्। इल्लि पर्य्याप्ति-प्राणंगळगे भेदमेंतेंदोडे पंचेंद्रियावरणक्षयोपशमजंगळ् पंचेंद्रियप्राणंगळ् तदुत्पन्नार्थग्रहणशक्तियिंदमुत्पन्न प्रथमसमयं मोदल्गोंडंतर्मुहूर्त्तदिंद मेलप्पुदिंद्रियपर्य्याप्तियें बुदु। मनोज्ञानावरणक्षयोपशमसन्निधानदिंदं विजृंभिसल्पट्ट मनोवर्गणेगळिंदं विरचिसल्पट्टद्रव्यमनदिंदं समुत्पन्नजीवशक्तियदनुभूतार्त्थग्रहणकारणमुत्पन्नांतर्म्मुहूर्त्तविसाननिष्पन्नमप्पुदुमनःपर्य्याप्तियें बुदु। ५

अनुभूतार्त्थग्रहणमुं तद्योग्यतेयुं मनःप्राणमें बुदु। नोकर्म्मशरीरोपचयमानशक्तिनिष्पत्तियदु जीवक्के समुचितकालायातभाषावर्गणाविशेषपरिणतिविधायि भाषापर्य्याप्तियें बुदु। स्वरनामकर्म्मोदयसहकारिणियप्प भाषापर्य्याप्तियोळुत्तरकालविशिष्टोपयोगप्रयोजनात्मकं वाक्प्राणमें बुदक्कु। कायवर्गणावष्टंभजनितात्मप्रदेशप्रचयशक्तिकायबलप्राणमें बुदक्कुं। नोकर्म्मपुद्गलंगळनु खलरसभागपरिणतंगळनस्थ्यादिस्थिरास्थिरावयवरूपिंदं परिणामियिसल्के शक्ति- १०
निष्पत्ति जीवक्के शरीरपर्य्याप्तियें बुदक्कु—।

मुच्छ्वासनिःश्वासनिःसरणशक्तिनिष्पत्तिर्जीवस्य आनापानपर्याप्ति र्बुदक्कुं तत्परिणतिये तत्प्राणमें बुदक्कु मदु कारणमागि भेदमुंटु।

अनंतरं प्राणविकल्पंगळं पेळ्दपं :—

अन्तर्मुहूर्तस्योपरि जायमाना इन्द्रियपर्याप्तिः। मनोज्ञानावरणक्षयोपशमसन्निधानविजृम्भितामनोवर्गणाविरचित- १५
द्रव्यमनः समुत्पन्ना जीवशक्तिः सानुभूतार्थग्रहणसमुत्पन्नान्तर्मुहूर्तविसाननिष्पन्ना मनःपर्याप्तिः। अनुभूतार्थ-
ग्रहणं तद्योग्यता च मनःप्राणः। नोकर्मशरीरोपचीयमानशक्तिनिष्पत्तिः सा जीवस्य समुचितकालायात-
भाषावर्गणाविशेषपरिणतिविधायिभाषापर्याप्तिः। स्वरनामकर्मोदयसहकारिभाषापर्याप्त्युत्तरकालविशिष्टोपयोग-
प्रयोजनात्मको वाक्प्राणः। कायवर्गणावष्टम्भजनितात्मप्रदेशप्रचयशक्तिः कायबलप्राणः। नोकर्मपुद्गलान् २०
खलरसभागपरिणतान् अस्थ्यादिस्थिरास्थिरावयवरूपेण परिणमयितुं शक्तिनिष्पत्तिर्जीवस्य शरीर-
पर्याप्तिः। उच्छ्वासनिःश्वासनिःसरणशक्तिनिष्पत्तिरानपानपर्याप्तिः। तत्परिणतिरेव तत्प्राणाः, इति भेदो
ज्ञातव्यः ॥१२९॥ अथ प्राणभेदानाह—

होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तके ऊपर होनेवाली इन्द्रियपर्याप्ति है। मनोज्ञानावरणके क्षयोपशमके सामीप्यसे प्रकट हुई और मनोवर्गणासे बने द्रव्यमनसे उत्पन्न हुई जीवकी जो शक्ति अनुभूत अर्थका ग्रहण करनेके लिए उत्पन्न हो अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तमें पूर्ण होती है वह २५
मनःपर्याप्ति है। और अनुभूत अर्थको ग्रहण करना तथा उसकी योग्यता मनःप्राण है। नोकर्म शरीरसे संचित शक्तिकी पूर्णता जो जीवके समुचित कालमें आयी भाषावर्गणाके विशेष परिणमनको करनेवाली है वह भाषापर्याप्ति है। स्वरनामकर्मका उदय जिसका सहायक है उस भाषापर्याप्तिके उत्तरकालमें विशिष्ट उपयोगका प्रयोजक वचन प्राण है। कायवर्गणाके साहाय्यसे होनेवाली आत्मप्रदेशके समूहकी शक्ति कायबलप्राण है। और खल तथा रसभाग १०
रूपसे परिणत नोकर्म पुद्गलोंको अस्थि आदि स्थिर और रुधिर आदि अस्थिर अवयवोंके रूपसे परिणमन करनेकी शक्तिकी पूर्णताको शरीरपर्याप्ति कहते हैं। उच्छ्वास-निःश्वासके निकलनेकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं और श्वासोच्छ्वासका परिणमन श्वासोच्छ्वास प्राण है। यह पर्याप्ति और प्राणमें भेद जानना ॥१२९॥

आगे प्राणोंके भेद कहते हैं— ३५

---

१. ब °लाया स °।

पंचेविंदियपाणा मणवचिकायेसु तिण्णि बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दसपाणा ॥१३०॥

पंचेवेंद्रियप्राणा मनोवचःकायेषु त्रयो बलप्राणाः । आनापानप्राणा आयुष्प्राणेन भवंति दशप्राणाः ।

स्पर्शनाविया दैविंद्रियप्राणंगळुं मनोबलप्राणमुं वचोबलप्राणमुं कायबलप्राणमुमानापानप्राणमु आयुः प्राणमेंबितु दशप्राणंगळेयप्पवधिकमल्तु ।

अनंतरं द्रव्यभावप्राणंगळुत्पत्तिसामग्रियं पेळ्दपं ।

वीरियजुदमदिखओवसमुत्था णोइंदियेंदियेसु बला ।
देहुदये कायाणा वचीबला आउ आऊदए ॥१३१॥

वीर्यांयुत मतिक्षयोपशमोत्था नोइंद्रियेंद्रियेषु बलाः । देहोदये काया नौ वचोबला आयुः आयुरुदये ॥

वीर्यांतरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनित नोइंद्रियेंद्रियस्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रसमुद्भूतंगळिंद्रियप्राणंगळु । नोंद्रियजनितमनोबलप्राणमुं शरीरनामकर्म्मोदयदोळु कायबलप्राणमुमानापानाप्राणमुमप्पुवु । शरीरनामकर्म्मोदयदोळं स्वरनामकर्म्मोदयदोळं वचोबलप्राणं प्रादुर्भूतमप्पुवायुष्कर्मोदयदोळायुःप्राणमुद्भविसुगुमितु प्राणंगळुत्पत्तिसामग्रि सूचितमाय्तु ।

अनंतरं प्राणंगळगे स्वामिभेदमं पेळ्दपं ।

स्पर्शनाद्यः पञ्चेन्द्रियप्राणाः मनोबलप्राणः वचोबलप्राणः आनापानप्राण आयुःप्राणश्चेति दशैव प्राणा भवन्ति नाधिकाः ॥१३०॥ अथ द्रव्यभावप्राणानामुत्पत्तिसामग्रीमाह—

वीर्यान्तरायक्षयोपशमयुतमतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनिताः नोइन्द्रियेन्द्रियेषु बलाः स्वार्थग्रहणशक्तिरूपलब्धिनामभावेन्द्रियस्वभावाः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रजेन्द्रियप्राणनोइन्द्रियजमनोबलप्राणाः षट् भवन्ति । देहोदये—शरीरनामकर्मोदये सति कायचेष्टाजननशक्तिरूपः कायबलप्राणः । उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयसहितदेहोदये सति उच्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिकारणशक्तिरूपः आनपानप्राणश्च भवति । स्वरनामकर्मोदये सति वचनव्यापारकरणशक्तिविशेषरूपो वचोबलप्राणो भवति । आयुःकर्मोदये सति नारकादिपर्यायरूपभवधारणशक्तिरूपः आयुःप्राणो भवति । एवं दशप्राणानामुत्पत्तिसामग्री सूचिता ॥१३१॥ अथ प्राणानां स्वामिभेदमाह—

स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रिय प्राण हैं । तथा मनोबलप्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वासप्राण और आयुप्राण ये दस ही प्राण हैं; अधिक नहीं हैं ॥१३०॥

स्वार्थको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप लब्धि नामक भावेन्द्रिय स्वभाववाले स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रसे उत्पन्न हुए पाँच इन्द्रियप्राण और नोइन्द्रियसे उत्पन्न मनोबलप्राण ये छह प्राण तो वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे सहित मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं । शरीरनामकर्मका उदय होनेपर शरीरकी चेष्टाको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप कायबलप्राण होता है । उच्छ्वासनिश्वास नामकर्मके उदयके साथ शरीर नामकर्मका उदय होनेपर उच्छ्वासनिश्वासकी प्रवृत्तिका कारण शक्तिरूप श्वासोच्छ्वासप्राण होता है । स्वरनामकर्मका उदय होनेपर वचनव्यापारका कारण शक्ति विशेषरूप वचनबलप्राण होता है । आयुकर्मका उदय होनेपर नारकादिपर्यायरूप भवधारणकी शक्तिरूप आयुप्राण होता है । इस तरह दस प्राणोंकी उत्पत्तिकी सामग्री सूचित की ॥१३१॥

अब प्राणोंके स्वामी बतलाते हैं—

इंदियकायाऊणि य पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा ।
बीइंदियादिपुण्णे वचीमणोसण्णिपुण्णेव ॥१३२॥

इंद्रियकायायूंषि च पूर्णापूर्णेषु पूर्णके आनाः । द्वींद्रियादिषु पूर्णे वाक्मनःसंज्ञिपूर्णे एव ।

इंद्रियकायायुष्प्राणंगळु पर्य्याप्तकरोळमपर्य्याप्तकरोळमप्पुवितु साधारणप्राणंगळप्पुवु उच्छ्वास-निःश्वासप्राणं पर्य्याप्तकरोळेयक्कुं मेकें दोडे तत्कारणमप्पुच्छ्वासनामकर्म्मोदयक्कं पर्य्याप्तकालदोळे संभवमप्पुदरिंदं । द्वींद्रियादिगळोळ् पंचेंद्रियावसानमादवरोळु पर्य्याप्तरोळे वाग्बलप्राणं संभविसुगुमेकें दोडे तद्धेतु स्वरनामकर्मोदयक्के पर्य्याप्तकरोळमल्लदेडपर्य्याप्तकरोळ् संभवमल्लप्पुदरिंदं । पर्याप्तकसंज्ञिपंचेंद्रियंगळोळे मनोबलप्राणमक्कुं तन्निबंधनमप्प वीर्य्यांतराय नोइंद्रियावरणक्षयोपशमक्कन्यत्रासंभवमप्पुदरिंदं ।

अनंतरं दशप्राणंगळोळेकेंद्रियादि जीवंगळोळु संख्यावधारणनियममं माडल्वेडि मुंदण गाथा सूत्रमं पेळ्दपरु :—

दससण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्स वेऊणा ।
पज्जत्तेसिदरेसु य सत्तदुगे सेसगेगूणा ॥१३३॥

दश संज्ञिनां प्राणाः शेषेष्वेकोनाः चरमस्य द्विहीनाः पर्य्याप्तकेष्वितरेषु च सप्त द्विके शेषकेष्वेकोनाः ।

परगे पेळ्द स्वामि नियमदिंदं ई विभागं पडेयल्पडुगुमदें तेंदोडे:—संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरोळु दशप्राणंगळुमप्पुवु॥ शेषासंज्ञिमोदलागि पश्चादानुपूर्व्वियिंदं द्वींद्रियावसानमादवरोळु पर्य्याप्तकरोळु एकैकप्राणोनंगळु संभविसुगुमंतिमसमप्पेकेंद्रियदोळु द्विप्राणोन प्राणंगळप्पुवुवदें तेंदोडे असंज्ञिगळोळु मनोविरहितमागि नवप्राणंगळप्पुवु । चतुरिंद्रियगळोळु मनःश्रोत्रेंद्रियावशेषंगळे दु संभविसुववु ।

इन्द्रियकायायूंषीति त्रयः प्राणाः पर्याप्तेष्वपर्याप्तेषु च साधारणा भवन्ति । उच्छ्वासनिश्वासप्राणः पर्याप्तकेष्वेव भवति तत्कारणोच्छ्वासनामकर्मोदयस्य पर्याप्तकाल एव संभवात् । द्वीन्द्रियादिषु पञ्चेन्द्रियावसानेषु पर्याप्तेष्वेव वाग्बलप्राणः संभवति तद्धेतुस्वरनामकर्मोदयस्यान्यत्र संभवाभावात् । मनोबलप्राणः पर्याप्तसंज्ञिपञ्चेन्द्रियेष्वेव संभवति तन्निबन्धनवीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमस्यान्यत्रासंभवात् ॥१३२॥ अथ प्राणानामेकेन्द्रियादिजीवेषु संख्यानियममवधारयति—

समनन्तरोक्तस्वामिनियमेनायं विभागो लभ्यते तद्यथा—संज्ञिपञ्चेन्द्रियेषु पर्याप्तकेषु दश प्राणा भवन्ति । शेषेषु असंज्ञ्यादिषु पश्चादानुपूर्व्या द्वीन्द्रियावसानेषु पर्याप्तकेषु एकैकोनाः प्राणा भवन्ति । तथाहि—

इन्द्रिय, काय और आयु ये तीन प्राण पर्याप्तों और अपर्याप्तोंमें समान रूपसे होते हैं। उच्छ्वासनिश्वास प्राण पर्याप्तकोंमें ही होता है। क्योंकि उसका कारण जो उच्छ्वासनामकर्मका उदय है, वह पर्याप्तकालमें ही होता है। दोइन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रियपर्यन्त पर्याप्तोंमें ही वचनबलप्राण होता है, क्योंकि उसका कारण स्वरनामकर्मका उदय है और वह पर्याप्तोंमें ही होता है। मनोबलप्राण पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें ही होता है क्योंकि उसका कारण है नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम ; और वह अन्य किसीके नहीं होता ॥१३२॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंमें प्राणोंकी संख्याका नियम करते हैं—

इससे पहलेकी गाथामें जो स्वामीका नियम किया है उसीसे आगे कहा-भेद प्रकट होता है। जो इस प्रकार है—संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें दस प्राण होते हैं। शेष असंज्ञीसे लेकर पश्चात्

त्रींद्रियंगळोळु मनःश्रोत्रचक्षुरिंद्रियावशेषंगळेळु प्राणंगळप्पुवु। द्वींद्रियंगळोळु मनःश्रोत्रचक्षुघ्राणावशेषंगळारु प्राणंगळप्पुवु। एकेंद्रियंगळोळु मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनवाग्बलप्राणावशेषंगळ् नाल्कु प्राणंगळप्पुवु। इंतु पर्य्याप्तकरोळु प्राणंगळ्गे स्वामिभेदमप्पुदरिंदं संख्याभेदं पेळल्पट्टुदु। पर्य्याप्तेतररप्प अपर्य्याप्तरोळु संज्ञिअसंज्ञिपंचेंद्रियरोळु प्रत्येकमेळेळु प्राणंगळप्पुवेकेंदोडे पर्य्याप्तकाल संभविगळप्पुच्छ्वासवाग्मनोबलप्राणंगळ्गिंतु मिल्लियसंभवमप्पुदु कारणमागि शेषंगळोळु चतुरिंद्रियादि एकेंद्रियावसानमादऽपर्य्याप्तकरोळु यथासंख्यं श्रोत्रचक्षुघ्राणरसनेंद्रियप्राणावशेष प्राणंगळु षट्पञ्चचतुस्त्रिसंख्याकृतप्राणंगळप्पुवु।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविद्यासागर जी महाराज

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यं महावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्ट श्रीमत्केशवण्णविरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्व प्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु चतुर्त्थं प्राणप्ररूपणाधिकारं निगदितमाय्तु।

असंज्ञिषु मनोरहिता नव। चतुरिन्द्रियेषु मनःश्रोत्रेन्द्रियावशेषा अष्टौ। त्रीन्द्रियेषु मनःश्रोत्रचक्षुरिन्द्रियावशेषाः सप्त। द्वीन्द्रियेषु मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणावशेषाः षड् भवन्ति। अन्तिमे एकेन्द्रिये द्वीन्द्रियोक्तप्राणेषु द्वौ ऊनाविति मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनवाग्बलप्राणावशेषाश्चत्वारः प्राणा भवन्ति। तथा इतरेषु अपर्याप्तजीवेषु तु संज्ञासंज्ञिपञ्चेन्द्रिययोः प्रत्येकं प्राणाः सप्तैव भवन्ति पर्याप्तकालसंभविनां उच्छ्वासवाग्मनोबलप्राणानामत्रासंभवात्। शेषेषु चतुरिन्द्रियाद्येकेन्द्रियावसानेषु अपर्याप्तेषु यथासंख्यं श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनेन्द्रियावशेषाः षट्पञ्चचतुस्त्रिसंख्या प्राणा भवन्ति ॥ १३३ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु प्राणप्ररूपणानाम चतुर्थोऽधिकारः ॥४॥

---

२० आनुपूर्वीसे दोइन्द्रिय पर्यन्त पर्याप्तकोंमें एक-एक प्राण घटता है। असंज्ञीपंचेन्द्रियोंमें मनके बिना नौ प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रियोंमें मन और श्रोत्रेन्द्रियको छोड़कर शेष आठ प्राण होते हैं। त्रीन्द्रियोंमें मन, श्रोत्र और चक्षुके सिवाय शेष सात प्राण होते हैं। दोइन्द्रियोंमें मन, श्रोत्र, चक्षु और घ्राणके सिवाय शेष छह प्राण होते हैं। अन्तिम एकेन्द्रियमें दोइन्द्रियमें कहे गये प्राणोंमें-से दो कम होते हैं। इस तरह मन, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और वचनबलप्राणोंमें
२५ से शेष चार प्राण ही होते हैं। इतर अपर्याप्त जीवोंमें संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें-से प्रत्येकके सात प्राण ही होते हैं। क्योंकि पर्याप्तकालमें होनेवाले उच्छ्वास, वचनबल और मनोबल प्राण यहाँ नहीं होते। शेष चौइन्द्रियसे लेकर एकेन्द्रिय पर्यन्त अपर्याप्तोंमें क्रमसे श्रोत्र, चक्षु, घ्राण और रसनेन्द्रियको छोड़कर छह, पाँच, चार और तीन प्राण होते हैं ॥१३३॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव
३० परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयसूरि सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा
३५ टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से प्राण प्ररूपणा नामक चतुर्थ महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

संज्ञाप्ररूपणाधिकारः ॥५॥

अनंतरं संज्ञाप्ररूपणार्थमागि पेळ्दपं ।

इह जाहि बाहियावि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
सेवंतावि य उभये ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥१३४॥

इह याभिर्बाधिता अपि च जीवाः प्राप्नुवंति दारुणं दुःखं । सेवमाना अपि च उभये ताश्चतस्रः संज्ञाः ।

आवु केलवु संज्ञेगळिवमाहारभयमैथुनपरिग्रहंगळ बांछेगळिवमे बाधिसल्पट्ट जीवंगळो भवदोळु दारुणमप्पदुःखमनेय्दुवरा विषयंगळननुभविसुवव्गळु मत्ता विषयंगळु प्राप्ताप्राप्तंगळादोडमुभयभवंगळोळं दारुणदुःखमनेय्दुवरंतप्प आनाल्कु बांछेगळं संज्ञेगळे बु पेळ्दपरु ।

अनंतरमाहारसंज्ञेगुत्पत्तियोळु बहिरंतरंगकारणद्वयमं पेळ्दपरु ।

आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोट्ठाए ।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु ॥१३५॥

आहारदर्शनेन च तस्योपयोगेनावमकोष्ठतया । सातेतरोदीरणया भवति खल्वाहारसंज्ञा खलु ।

विशिष्टान्नादिचतुर्विधाहारदर्शनविदं तत्स्मरणकथाश्रवण प्रागुपयुक्तविशिष्टान्नाविस्मरणविदमुं रिक्तकोष्ठतेयिंदमुमी बाह्यकारणंगळिवमु मंतरंगकारणमप्प असातावेदोदीरणेयिंदं तीव्रोदयदिंद-

---

जितरजोरहस्कारिः प्राप्तानन्तगुणो जिनः ।
जितदोषो जगन्नाथः सुमतीशो नमस्यते ॥ ५ ॥

अथ संज्ञाप्ररूपणां प्ररूपयति—

याभिः संज्ञाभिः—आहारभयमैथुनपरिग्रहवाञ्छाभिः, एव बाधिता जीवा अस्मिन् भवे तद्विषयान् सेवमानाः अपि च तत्प्राप्त्यप्राप्त्योः सत्योः उभयभवयोर्दारुणं दुःखं प्राप्नुवन्ति ताः चतस्रो वाञ्छाः संज्ञा इति वदन्ति ॥१३४॥ अथाहारसंज्ञोत्पत्तौ बहिरन्तरंगहेतू कथयति—

विशिष्टान्नादिचतुर्विधाहारदर्शनेन तत्स्मरणकथाश्रवणाद्युपयोगेन रिक्तकोष्ठतयेति बाह्यकारणैः

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मको जीतकर अनन्तगुणोंको प्राप्त करनेवाले दोषविजेता जगत्के स्वामी सुमतिनाथको नमस्कार करता हूँ ।

आगे संज्ञाप्ररूपणाको कहते हैं—

आहार, भय, मैथुन और परिग्रहकी वांछारूप जिन संज्ञाओंके द्वारा पीड़ित जीव इस भवमें उन विषयोंका सेवन करते हुए भी इस लोक और परलोकमें उनके प्राप्त होने और न होनेपर भी दारुण दुःख पाते हैं, उन चार वांछाओंको संज्ञा कहते हैं ॥१३४॥

आगे आहारसंज्ञाकी उत्पत्तिमें बाह्य और अन्तरंग कारण कहते हैं—

विशिष्ट अन्न आदि चार प्रकारके आहारके देखनेसे, उसके स्मरण, उसकी कथाका

माहारसंज्ञे पुट्टुगु-। "आहारे विशिष्टान्नादौ संज्ञा वांछा आहारसंज्ञा" एंदितु ई निरुक्तियिंद मेतल्लक्षणं पेळल्पट्टुवु ।

अनंतरं भयसंज्ञोत्पत्तिकारणमं पेळ्दपं ।

अइभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्ताए ।
भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चदुहि ॥१३६॥

अतिभीमदर्शनेन च तस्योपयोगेनावमशक्त्या । भयकर्म्मोदीरणया भयसंज्ञा जायते चतुर्भिः ।

बहिरंगकारणंगळप्पतिभयंकरव्याघ्रादिक्रूरमृगादिगळ दर्शनदिंदं तत्कथाश्रवणस्मरणादिगळिंदं रिक्तशक्ततेयिंदमुमंतरंगकारणमप्प भयनोकषायतीव्रोदयदिंदमिंतो चतुर्विधकारणंगळिंदं भयसंज्ञे पुट्टुगुं । भयदिंदं पुट्टिद पलायनेच्छे भयसंज्ञे एंबुदक्कुं ।

अनंतरं मैथुनसंज्ञासामग्रियं सूचिसिदपं ।

पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ॥१३७॥

प्रणीतरसभोजनेन च तस्योपयोगेन कुशीलसेवया । वेदस्योदीरणया मैथुनसंज्ञा भवति एवं ।

वृष्यरसंगळ भोजनदिंदमुं कामकथाश्रवणानुभूतकामविषयस्मरणाद्युपयोगदिंदं कुशीलरप्प विटकंदर्प्पाविजनंगळ सेवे गोष्ठियिंदमुमेंदी बहिरंगकारणंगळिंदमुमंतरंगकारणमप्प स्त्रीपुन्नपुंसक-

---

असातवेदनीयोदीरणात् तीव्रोदयाभ्यां अन्तरङ्गकारणाभ्यां च आहारसंज्ञा भवति-जायते । आहारे-विशिष्टान्नादौ संज्ञा-वाञ्छा आहारसंज्ञा ॥ १३५ ॥ अथ भयसंज्ञोत्पत्तिकारणमाह-

अतिभयंकरव्याघ्रादिक्रूरमृगादिदर्शनेन तत्कथाश्रवणस्मरणाद्युपयोगेन रिक्तशक्तितया चेति बहिरङ्गकारणैः भयनोकषायतीव्रोदयेन अन्तरङ्गकारणेन च भयसंज्ञा जायते । भयेन उत्पन्ना पलायनेच्छा भयसंज्ञा ॥१३६॥ अथ मैथुनसंज्ञासामग्रीं सूचयति-

वृष्यरसभोजनेन कामकथाश्रवणानुभूतकामविषयस्मरणाद्युपयोगेन कुशीलविटकंदर्पादिजनसेवागोष्ठ्येति बहिरङ्गकारणैः स्त्रीपुंनपुंसकवेदान्यतमनोकषायोदीरणयेत्यन्तरङ्गकारणेन च मैथुनसंज्ञा जायते । मैथुने—

श्रवण आदिरूप उपयोगसे तथा पेटके खाली होनेसे इन बाह्य कारणोंसे और असातावेदनीयकी उदीरणा या तीव्र उदयरूप अन्तरंग कारणोंसे आहारसंज्ञा होती है। आहार अर्थात् विशिष्ट अन्न आदिमें संज्ञा अर्थात् वांछाको आहारसंज्ञा कहते हैं ॥१३५॥

आगे भयसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारण कहते हैं—

अति भयंकर व्याघ्र आदि या क्रूर मृगादिके देखनेसे, उसकी कथा सुनना, उनका स्मरण करना इत्यादि उपयोगसे और शक्तिकी कमी इन बाह्य कारणोंसे और भय नामक नोकषायके तीव्र उदयरूप अन्तरंग कारणसे भयसंज्ञा उत्पन्न होती है। भयसे उत्पन्न हुई भागनेकी इच्छाको भयसंज्ञा कहते हैं ॥१३६॥

आगे मैथुनसंज्ञाकी सामग्री कहते हैं—

कामोत्पादक पौष्टिक भोजन करनेसे, कामकथाका सुनना, अनुभूत काम विषयका स्मरण आदि उपयोगसे, दुराचारी वेश्यागामी कामी पुरुषोंकी संगति गोष्ठीसे, इन बाह्य

वेदान्यतमनोकषायोदीरणेयिंदमिती चतुर्व्विधकारणंगळिंदं मैथुनसंज्ञे पुट्टुगुं ।

मैथुने मिथुनकर्म्मणि सुरतव्यापाररूपे संज्ञा वांछा मैथुनसंज्ञा येंबुदत्थं ।

अनंतरं परिग्रहसंज्ञोत्पत्तिहेतुगळं पेळ्दपं ।

उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।
लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा ॥१३८॥

उपकरणदर्शनेन च तस्योपयोगेन मूर्च्छिता येन । लोभस्योदीरणया परिग्रहे जायते संज्ञा ।

बाह्यपरिग्रहंगळप्प धनधान्यादुपकरणदर्शनविंदमुं तत्परिग्रहकथाश्रवणस्मरणादिगळिंदमुं मूर्च्छितरप्प परिग्रहार्जनादिगळोळासक्तरुगळ 'अयः संबंधः मूर्च्छिता यस्तेन' एंदीसंबंधविंद-मंतरंगकारणमप्प लोभकषायोदीरणेयिंदमुमिती कारणचतुष्टयविंदं परिग्रहसंज्ञे तद्वर्ज्जनवांछे पुट्टुगुमेंबुदत्थं ।

अनंतरं संज्ञेगळगे स्वामिभेदमं पेळ्दपं ।

~~णट्ठपमादे पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा~~ ।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि ण हि कज्जे ॥१३९॥

नष्टप्रमादे प्रथमा संज्ञा न हि तत्र कारणाभावात् । शेषाः कर्म्मास्तित्वेनोपचारेण संति न हि कार्ये ।

नष्टप्रमादेरप्पऽप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिगळप्प जीवंगळोळु प्रथमोद्दिष्टाहारसंज्ञे संभविसदेकें-दोडे तन्निमित्तमप्पऽसातावेदोदीरणेगप्रमत्तरोळु व्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं 'कारणाभावात्कार्य्यस्याप्य-

---

मिथुनकर्मणि सुरतव्यापाररूपे संज्ञा—वाञ्छा मैथुनसंज्ञा ॥ १३७ ॥ अथ परिग्रहसंज्ञोत्पत्तिहेतूनाह—

बाह्यपरिग्रहस्य धनधान्यादुपकरणस्य दर्शनेन तत्कथाश्रवणादिभिः मूर्च्छितस्य परिग्रहार्जनाद्यासक्तेः अनेन संबन्धेन चेति बाह्यकारणैः लोभकषायोदीरणयेति अन्तरङ्गकारणेन च परिग्रहसंज्ञा—तद्वर्जनादि-वाञ्छा जायते ॥१३८॥ अथ संज्ञानां स्वामिभेदानाह—

नष्टप्रमादे-अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिजीवेषु प्रथमा आहारसंज्ञा नहि नैवास्ति । तद्धेत्वसातावेदनीयो-दीरणायाः प्रमत्ते एव व्युच्छित्तेः कारणाभावात् कार्यस्याप्यभावः । इति प्रमादरहितेषु प्रथमा संज्ञा नास्ति

कारणोंसे तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदमें-से किसी एक वेदरूप नोकषायकी उदीरणासे इस अन्तरंग कारणसे मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है । मैथुन अर्थात् कामसेवनरूप मिथुन कर्ममें संज्ञा अर्थात् वांछा मैथुनसंज्ञा है ॥१३७॥

आगे परिग्रहसंज्ञाकी उत्पत्तिके कारणोंको कहते हैं—

बाह्य परिग्रह धनधान्य आदि उपकरणोंके देखनेसे, उसकी कथा सुनने आदिसे, परिग्रह आदिके उपार्जन करनेकी आसक्तिके सम्बन्धसे इन बाह्य कारणोंसे और लोभकषाय-की उदीरणारूप अन्तरंग कारणसे परिग्रहसंज्ञा, उसके अर्जन करनेकी वांछा होती है ॥१३८॥

संज्ञाओंके स्वामी कहते हैं—

नष्टप्रमाद अर्थात् अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवोंमें पहली आहारसंज्ञा नहीं होती । क्योंकि आहारसंज्ञाका अन्तरंग कारण असातावेदनीयकी उदीरणा है और उसकी व्युच्छित्ति प्रमत्तगुणस्थानमें ही हो जाती है । अतः कारणका अभाव होनेसे कार्यका भी अभाव होता

भावः' एंदु प्रमाद रहितरप्पऽप्रमत्ताद्युपरितनगुणस्थानवर्त्तिगळोळु संभविसदु । शेषसंज्ञे तत्कारणकर्मोदयास्तित्वविवमुपचारादिवमेदुलदेते लब्धियु प्रमादरहितरोळिल्ल ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमन्नायराजगुरुमंडलाचार्य्य महावादवादीश्वर रायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितभव्यगोम्मटसारकर्णाट वृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणेगळोळु पंचमसंज्ञाप्रकरणाधिकारं निरूपितमाय्तु ।

शेषसंज्ञाः तत्कारणकर्मोदयास्तित्वेन उपचारेणैव सन्ति । न च तत्कार्यं प्रमादरहितेष्वस्ति ॥ १३९ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामधेयपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु संज्ञाप्ररूपणानाम पञ्चमोऽधिकारः ॥ ५ ॥

---

१० है । इस प्रकार प्रमादरहित संयमियोंमें पहली संज्ञा नहीं है । शेष संज्ञाएँ उनके कारण कर्मोंके उदयका अस्तित्व होनेसे उपचारसे ही हैं, उनका कार्य वहाँ नहीं पाया जाता अर्थात् उक्त आहार आदि चारों संज्ञाएँ मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त होती हैं ॥१३९॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से संज्ञा प्ररूपणा नामक पाँचवाँ महा-अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

मार्गणामहाधिकारे गतिप्ररूपणाधिकारः ॥६॥

अनंतरमर्हत्परमेश्वरप्रणामरूपमंगलपुरःसरं मार्गणामहाधिकारं प्ररूपणनिरूपणप्रतिज्ञेयं माह्रिवपं ।

धम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबलं जिणं णमंसित्ता ।
मग्गणमहाहियारं विविहहियारं भणिस्सामो ॥१४०॥

धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलं जिनं नत्वा । मार्गणामहाधिकारं विविधाधिकारं भणिष्यामः ।

रत्नत्रयात्मको धर्मो धनुस्तस्योपकारका ज्ञानादिधर्मा गुणा ज्याः । तदाश्रयाश्चतुर्दश मार्गणास्त एव मार्गणा बाणास्तैराहृतानि मोहारेर्मोहनीयनाम्नः कर्मणः शत्रोर्बलानि ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतयो येनासौ धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलस्तं जिनमर्हद्भट्टारकं नमंसित्वा गत्यादिविविधाधिकारांचितं मार्गणा महाधिकारं भणिष्यामः । इत्यनेन मध्यममंगलकरणेन विनाशितविघ्नमलो नेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्ती मार्गणाधिकारं वक्तुं प्रारभते ।

जित्वा घातीनि सर्वाणि लब्ध्वा लब्धिगुणव्रजम् ।
प्रकाशितं हितं येन पद्माभं तं भजेऽनघम् ॥ ६ ॥

अथार्हत्परमेश्वरप्रणामरूपमंगलपुरस्सरमार्गणामहाधिकारप्ररूपणप्रतिज्ञां करोति—

रत्नत्रयात्मको धर्मो धनुः, तदुपकारका ज्ञानादिधर्माः गुणाः ज्याः, तदाश्रयाश्चतुर्दशमार्गणाः ता एव बाणाः तैराहृतानि मोहारेः मोहनीयकर्मशत्रोः, बलानि ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतयः, येन असौ धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलः, तं जिनं—अर्हद्भट्टारकं, नमस्कृत्वा गत्यादिविविधाकाराञ्चितं मार्गणामहाधिकारं भणिष्यामः । इत्यनेन मंगलकरणेन विनाशितविघ्नमलो नेमिचन्द्रसैद्धांतचक्रवर्ती मार्गणाधिकारं वक्तुं प्रारभते—॥ १४० ॥

जिन्होंने सब घातिकर्मोंको जीतकर गुणोंके समूहको प्राप्त किया और हितका प्रकाशन किया,उन पापरहित पद्मप्रभ स्वामीको मैं भजता हूँ ।

आगे अर्हन्तदेवको प्रणामरूप मंगलपूर्वक मार्गणामहाधिकारको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

जिन्होंने रत्नत्रयात्मक धर्मरूप धनुष, उसके उपकारक ज्ञानादि धर्मरूप गुण अर्थात् धनुषकी डोर और उनके आश्रयभूत चौदह मार्गणारूपी बाणोंके द्वारा मोहनीय कर्मशत्रुकी ज्ञानावरण आदि कर्म प्रकृतिरूप सेनाको मार डाला है,उन जिन भगवान्को नमस्कार करके गति आदि विविध अधिकारोंसे युक्त मार्गणामहाधिकारको कहेंगे। इस मंगलके द्वारा विघ्नरूपी मलको नष्ट करके नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती मार्गणा महाधिकारको कहना प्रारम्भ करते हैं ॥१४०॥

अनंतरमार्गणाशब्दक्के निरुक्तिसिद्धमप्प लक्षणमं पेळ्दल्लेडि मुंदणगाथासूत्रमं पेळ्दपं ।

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चोद्दस जाणे सुयणाणे मग्गणा होंति ॥१४१॥

[illegible] आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज

याभिर्य्यासु वा जीवा मार्ग्यंते यथा तथा दृष्टास्ताश्चतुर्दश जानीहि श्रुतज्ञाने मार्गणा भवंति ।

आवुवु केलवरिंदमावुवु केलवरोळु मेणावप्रकारदिंदं श्रुतज्ञानदोळु काणल्पट्टुवा प्रकारविषमरसल्पडुववु चतुर्दशमार्गणेगळप्पुवु ।

परेगे सामान्यदिंदं गुणस्थानजीवसमासपर्य्याप्तिप्राण संज्ञेगळिंदं त्रिलोकोदरवर्त्तिगळप्प जीवंगळं लक्षणदिंदं भेददिंदमुं विचारिसि मत्तीगळ् विशेषरूपदिंदं गत्यादिमार्गणेगळिंदमा जीवंगळ् विचारिसल्पडुत्तिर्द्दपमेंदरियेंबु शिष्यसंबोधनं प्रयुक्तमादुदु ।

गत्यादिमार्गणेगळावागळोम्मे जीवक्के नारकत्वादिपर्य्यायस्वरूपंगळु विवक्षितंगळप्पुदागळु याभिः एंबितु इत्थंभूतलक्षणदोळु तृतीयादिभक्तियक्कुमागळोम्मे द्रव्यमं कूर्त्तु पर्य्यायंगळधिकरणते विवक्षिसल्पडुगुमागळु यासु एंदितधिकरणदोळ् सप्तमीविभक्तियक्कुमेकेंदोडे 'विवक्षावशात्कारकप्रवृत्तिः' एंबिती न्यायमुंटप्पुदरिं ।

अथ मार्गणाशब्दस्य निरुक्तिसिद्धलक्षणमाह—

याभिः यासु वा जीवाः यथा श्रुतज्ञानेन दृष्टाः तथा मृग्यन्ते विचार्यन्ते ज्ञायन्ते ताश्चतुर्दश मार्गणा भवन्ति। पूर्वं सामान्येन गुणस्थानजीवसमासपर्याप्तिप्राणसंज्ञाभिः एताभिः त्रिलोकोदरवर्तिनो जीवाः लक्षणेन भेदेन च विचारिताः। पुनरिदानीं विशेषरूपगत्यादिमार्गणाभिः तानेव विचार्यमाणान् जीवान् जानीहि इति शिष्यसंबोधने प्रयुक्तम्। गत्यादिमार्गणा यदा एकजीवस्य नारकत्वादिपर्यायस्वरूपा विवक्षिताः तदा 'याभिः' इतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया विभक्तिः। यदा पुनः एकद्रव्यं प्रति पर्यायाणामधिकरणता विवक्ष्यते तदा 'यासु' इत्यधिकरणे

जिनके द्वारा या जिनमें जीव, जैसे श्रुतज्ञानके द्वारा देखे गये हैं, उसी रूपमें विचारे जाते हैं, जाने जाते हैं, वे चौदह मार्गणाएँ होती हैं। पहले सामान्यसे गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण और संज्ञाके द्वारा तीनों लोकोंमें रहनेवाले जीवोंका लक्षण और भेदके साथ विचार किया। अब विशेषरूप गति आदि मार्गणाओंके द्वारा उन्हीं विचारने योग्य जीवोंको हे शिष्य, तू जान। इस प्रकार सम्बोधनमें प्रयोग किया है। जब गति आदि मार्गणा एक जीवके नारक आदि पर्यायरूपसे विवक्षित हों, तब 'जिनके द्वारा जीव जाने जायें' इस प्रकार तृतीया विभक्ति कहना। और जब एक द्रव्यके प्रति पर्यायोंके अधिकरणकी विवक्षा हो, तब 'जिनमें जीव पाये जायें' इस प्रकार अधिकरणमें सप्तमी विभक्ति कहना; क्योंकि 'विवक्षाके वश कारकोंकी प्रवृत्ति होती है', यह न्याय वर्तमान है ॥१४१॥

विशेषार्थ—गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण और संज्ञाके द्वारा संक्षेप रूपसे विचारित जीवोंका विस्तारसे गति, इन्द्रिय आदि पाँच भावविशेषोंके द्वारा विचार करना युक्त है, ऐसा अर्थ करनेपर 'याभिः' तृतीया विभक्तिका निर्देश है। और गति, इन्द्रिय आदि पाँच भावरूप पर्यायोंमें जीवद्रव्य रहते हैं; इस प्रकार आधारकी विवक्षा होनेपर 'यासु' सप्तमीनिर्देश युक्त है। जिसके द्वारा श्रुतका ज्ञान हो, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। वर्णपदवाक्यरूप

अनंतरमा चतुर्द्दशमार्गणेगळगे नामोद्देश मं माडिदपं ।

गइइंदिएसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य ।
संजमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसण्णिआहारे ॥१४२॥

गतींद्रियपोः काये योगे वेदे कषायज्ञानयोश्च । संयमदर्शनलेश्या भव्यसम्यक्त्वसंज्ञाहारे ।

इनितुं गत्यादिपदंगळु तृतीयांतंगळुमेनु सप्तम्यांतंगळुमागलिवरर्त्तणिदमी प्रकारदिंद व्याख्यानिसल्पडुगुं । गत्यागत्यां । इंद्रियेणेंद्रिये । कायेन काये । योगेन योगे । वेदेन वेदे । कषायेण कषाये । ज्ञानेन ज्ञाने । संयमेन संयमे । दर्शनेन दर्शने । लेश्यया लेश्यायां । भव्येन भव्ये । सम्यक्त्वेन सम्यक्त्वे । संज्ञिना संज्ञिनि । आहारेणाहारे । जीवाः मार्ग्यंते एंबितु । ई गत्यादिचतुर्द्दश मार्गणेगळितु नामोद्देशदिंदं पेळल्पट्टुवु ।

अनंतरमी मार्गणेगळोळु सांतरमार्गणेगळ स्वरूपसंख्याविधाननिरूपणार्थं ई गाथात्रयमं पेळ्दपं ।

सप्तमीविभक्तिः । विवक्षावशात्कारकप्रवृत्तिरिति न्यायस्य सद्भावात् ॥१४१॥ अथ तासां चतुर्दशमार्गणानां नामोद्देशं करोति—

एतानि गत्यादिपदानि तृतीयान्तानि वा सप्तम्यन्तानि तदा एवं व्याख्येयानि गत्या गत्यां, इन्द्रियेण इन्द्रिये, कायेन काये, योगेन योगे, वेदेन वेदे, कषायेण कषाये, ज्ञानेन ज्ञाने, संयमेन संयमे, दर्शनेन दर्शने, लेश्यया लेश्यायां, भव्येन भव्ये, सम्यक्त्वेन सम्यक्त्वे, संज्ञिना संज्ञिनि, आहारेण आहारे च जीवाः मार्ग्यन्त इति ता मार्गणा यथानामोद्देशं कथयिष्यन्ते ॥१४२॥ अथ तासु सान्तरमार्गणानां स्वरूपसंख्यातत्रनन्तरकाल-प्रमाणं व्यवधाननिरूपणार्थं च गाथात्रयमाह—

द्रव्यश्रुत गुरु-शिष्य-प्रशिष्य परम्परासे अविच्छिन्न प्रवाहरूपसे चला आता है। 'उसमें जैसा देखा है,वैसा जानो' इस कथनसे काल, दोष और प्रमादसे ज्ञानकारके द्वारा जो त्रुटि हुई हो, उसे छोड़कर परमागमके अनुसार व्याख्यान अथवा अध्ययन करनेवाले वस्तुस्वरूपको विरोधरहित ही ग्रहण करते हैं। ऐसा आचार्यने बतलाया है।

आगे उन चौदह मार्गणाओंका नाम निर्देश करते हैं—

ये गति आदि पद तृतीया अथवा सप्तमी विभक्तिको लिये हुए हैं। अतः इनकी व्याख्या इस प्रकार करनी चाहिए—गतिके द्वारा अथवा गतिमें, इन्द्रियके द्वारा अथवा इन्द्रियमें, कायके द्वारा या कायमें, योगके द्वारा या योगमें, वेदके द्वारा या वेदमें, ज्ञानके द्वारा या ज्ञानमें, संयमके द्वारा या संयममें, दर्शनके द्वारा या दर्शनमें, लेश्याके द्वारा या लेश्यामें, भव्यके द्वारा या भव्यमें, सम्यक्त्वके द्वारा या सम्यक्त्वमें, संज्ञीके द्वारा या संज्ञीमें तथा आहारके द्वारा या आहारमार्गणामें जीव 'मार्ग्यन्ते' जाने जाते हैं,वे मार्गणा हैं। नामनिर्देशके अनुसार आगे उनका कथन करेंगे ॥१४२॥

इन चौदह मार्गणाओंमें आठ सान्तर मार्गणा हैं। आगे उनकी संख्या, स्वरूप, अन्तरकाल और निरन्तर प्रवृत्तिकाल तीन गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. "स्वरूपसंख्याविधाननिरूपणार्थं गाथात्रयमाह" इति ब पुस्तके पाठः ।

उवसम सुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्सणर अपज्जत्ते ।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणाअट्ठ ॥१४३॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उपशमसूक्ष्माहारेषु वैक्रियिकमिश्रनरापर्याप्तयोः। सासादनसम्यग्दृष्टौ मिश्रे सांतरमार्गणाः अष्टौ।

सत्तदिणा छच्चमासा वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमओ दु ॥१४४॥

सप्तदिनानि षण्मासाः वर्षपृथक्त्वं च द्वादश मुहूर्ताः। पल्यासंख्यं त्रयाणां वरमवरमेकसमयस्तु ।

अन्तरं विरहकालः। विवक्षितमप्प गुणस्थानमं मार्गणास्थानमं मेणु बिट्टु गुणांतरदोळं मार्गणांतरदोळं मेणेन्नेवरमिद्दुं मत्ते विवक्षितमप्प गुणस्थानमं मार्गणास्थानमं मेणु पोद्दुंगुमन्नेवरमा कालमंतरमें बुदवरोळौपशमिकसम्यग्दृष्टिगळगे लोकबळु नानाजीवापेक्षेयिमुत्कृष्टांतरं सप्तदिनंगळुत्कृष्टविदं सप्तदिन पर्य्यंतमे उपशमसम्यग्दृष्टिगळगे चतुर्गतिगळोळऽभावमक्कुमल्लिवं मेलोळरेंबुदर्त्थं। सूक्ष्मसांपरायसंयमिगळगे षण्मासमेयंतरकालमक्कु-। माहारकाहारकमिश्रकाययोगिगळगे वर्षपृथक्त्वमंतरकालमुत्कृष्टमक्कुं। मूररिंदं मेलेयो भत्तरिंदं केळगे पृथक्त्वमें बुदागमिके संज्ञेयक्कुं। वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळगे द्वादश मुहूर्त्तंगळुत्कृष्टांतरकालमक्कुं। लब्ध्यपर्य्याप्तमनुष्यरुगळगे पल्यासंख्यातैकभागकालमुत्कृष्टांतरमक्कुं। सासादनसम्यग्दृष्टिगळगे

लोके नानाजीवापेक्षया विवक्षितगुणस्थानं विवक्षितमार्गणास्थानं वा त्यक्त्वा गुणस्थानान्तरे मार्गणान्तरे वा गत्वा पुनर्यावत्तद्विवक्षितं गुणस्थानं मार्गणास्थानं वा नायाति तावान् कालः अन्तरं नाम। तच्च उत्कृष्टेन औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सप्त दिनानि। तदनन्तरं कश्चित्स्यादेवेत्यर्थः। सूक्ष्मसांपरायसंयमिनां षण्मासाः। आहारकतन्मिश्रकाययोगिनां वर्षपृथक्त्वं। त्रिकोदुपरि नवकादधः पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा। वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां द्वादशमुहूर्ताः। लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्याणां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभागमात्रं एवं सान्तरमार्गणा अष्टौ। तासां जघन्येनान्तरं एकसमय एव ज्ञातव्यः। लोके उपशमसम्यग्दृष्ट्यादयो

लोकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान और मार्गणास्थानको त्यागकर अन्य गुणस्थान और अन्य मार्गणास्थानमें जाकर पुनः जबतक विवक्षित गुणस्थान और मार्गणास्थानमें नहीं आता, तबतकके कालको अन्तर कहते हैं। वह अन्तर उत्कृष्टसे औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका सात दिन है। अर्थात् तीनों लोकोंमें कोई भी जीव उपशमसम्यक्त्वधारी यदि न हो,तो अधिकसे-अधिक सात दिन तक न हो। उसके बाद कोई अवश्य ही होगा। इसी तरह सूक्ष्म साम्पराय संयमियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। आहारक और आहारकमिश्रकाय योगवालोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।

तीनसे ऊपर और नौ से नीचेकी संख्याकी आगममें पृथक्त्व संज्ञा है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंका अन्तर बारह मुहूर्त है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सासादनसम्यग्दृष्टि और

---

१. त्रितया—ब। २. संख्येय भा—ब.।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पल्यासंख्यातैकभागमात्रकालमुत्कृष्टांतरमक्कुं । सम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गं पल्यासंख्यातैकभागमात्रकालमुत्कृष्टांतरमक्कुमितु सांतरमार्गणेगळोळ्मेंदुपरियल्पडुवु ।

इवकेल्लं जघन्यदिंदमंतरकालमो दे समयमक्कुं ।

पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा ।
विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोद्धव्वो ॥१४५॥ ५

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहिते विरताविरते चतुर्दश. दिवसाः । विरते पंचदश दिवसा· विरहितकालस्तु बोद्धव्यः । प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहितरप्प विरताविरतरिगे विरहितकालमुत्कृष्टदिंदं चतुर्दशदिवसंगळक्कुमा सम्यक्त्वमुं महाव्रतमुळ्ळगे विरहितकालमुत्कृष्टदिंदं पंचदशदिवसंगळप्पुवु । द्वितीयसिद्धांतापेक्षेयिंदमिप्पत्तनाल्कु दिवसंगळप्पुवुमिदुपलक्षणमेकजीवापेक्षेयिंदं मार्गणेगळ्गं विरहकालं प्रवचनानुसारमागियरियल्पडुवुदु :— उ=वि ७। सू=भा ६। आ=७।८। १०
उ = देशव्रतदिन १४ उपशम सम्यक्त्व ।
उ = विरत दि १५

आमि = वर्ष । ७ । ८ । वै = मि = मु १२ । न = अ = प । सा = प मि = प ।
अ अ अ

अनंतरं गतिमार्गणास्वरूपनिरूपणं माडिदपं ।

यदि न सन्ति तदा उत्कर्षेणोक्तस्वस्वकालपर्यन्तमेव तेषामष्टानां अभावः ततो नाधिकः कालः ॥१४३-१४४॥
अथ सांतरमार्गणाविशेषं प्ररूपयति—

विरहकालः[1] लोके नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टेनान्तरं प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहिताया विरताविरतेः— १५
अणुव्रतस्य, चतुर्दशदिनानि । तत्सहितविरतेः—महाव्रतस्य पञ्चदश दिनानि । तु पुनः, द्वितीयसिद्धान्तापेक्षया चतुर्विंशतिदिनानि । इदमुपलक्षणं इत्येकजीवापेक्षयापि उक्तमार्गणानामन्तरं प्रवचनानुसारेण बोद्धव्यम् ॥१४५॥
अथ गतिमार्गणास्वरूपं निरूपयति—

सम्यग्मिथ्यादृष्टिमेंसे प्रत्येकका अन्तर पल्यका असंख्यातवाँ भाग काल है । इस प्रकार सान्तरमार्गणा आठ हैं । इनका जघन्य अन्तर एक समय ही जानना । लोकमें यदि उपशम- २०
सम्यग्दृष्टि आदि न हो,तो उत्कर्षसे उक्त अपने-अपने काल पर्यन्त ही इन आठोंका अभाव हो सकता है,इससे अधिक काल तक नहीं ॥१४३-१४४॥

आगे सान्तर मार्गणाविशेषको कहते हैं—

विरहकाल अर्थात् लोकमें नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित विरताविरत अर्थात् अणुव्रतका चौदह दिन है । और प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित २५
विरत अर्थात् महाव्रतका पन्द्रह दिन है । किन्तु द्वितीय सिद्धान्तकी अपेक्षा चौबीस दिन है । यह कथन उपलक्षणरूप है । अतः एक जीवकी अपेक्षा भी उक्त मार्गणाओंका अन्तर प्रवचनके अनुसार जानना ॥१४५॥

अब गतिमार्गणाका स्वरूप कहते हैं—

---

१. ल उ-ब. ।

गइउदयजपज्जाया चउगइगमणस्स हेदु वा हु गई ।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइत्ति य हवे चदुधा ॥१४६॥

गत्युदयजपर्य्यायश्चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्वा गतिः । नारकतिर्य्यग्मानुषदेवगतिरिति च भवेच्चतुर्धा । गम्यत इति गतिः एवमुच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीवप्राप्यद्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेशः स्यादिति चेन्न गतिनामकर्म्मणः समुत्पन्नस्य जीवपर्य्यायस्यैव गतित्वाभ्युपगमात् । गमनं वा गतिः एवं सति ग्रामारामादिगमनस्यापि गतित्वप्रसंग इति चेन्न । भवाद्भवसंक्रांतिर्गतिरिति विवक्षितत्वात् । गमनहेतुर्वा गतिरिति अपि भण्यमाने शकटादेरपि गतित्वप्राप्तिरिति चेन्न । भवांतरगमनहेतोर्गतिनामकर्म्मणो गतित्वाभ्युपगमात् ।

सा च गतिर्नारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिभेदाच्चतुर्धा स्यात् ।

अनंतरं नारकगतिनिर्द्देशार्थं पेळ्दपं ।

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य कालभावे य ।
अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिदा ॥॥१४७॥

न रमंते यतो नित्यं द्रव्ये क्षेत्रे काले भावे च अन्योन्यैश्च यस्मात्तस्मात्ते नारका भणिताः ।

आवुदो दु कारणदिंद मावुवु केलवु जीवंगळु नरकभूमिसंबंधियप्पन्नपानादि द्रव्यदोळं तद्भूतलमप्प क्षेत्रदोळं समयादिस्वायुरवसानमप्प कालदोळं चित्पर्य्यायमप्प भावदोळं भवांतर-

---

गम्यत इति गतिः एवमुच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीवं प्राप्य द्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेशः स्यात् ? तन्न–गतिनामकर्मोदयोत्पन्नजीवपर्यायस्यैव गतित्वाभ्युपगमात् । गमनं वा गतिः । एवं सति ग्रामारामादिगमनस्यापि गतित्वं प्रसज्यते, तन्न, भवाद् भवसंक्रान्तेरेव विवक्षितत्वात् । गमनहेतुर्वा गतिः इत्यपि भण्यमाने शकटादेरपि गतित्वं प्राप्नोति, तन्न–भवान्तरगमनहेतोर्गतिनामकर्मणो गतित्वाभ्युपगमात् । सा च गतिः[2] उत्तरप्रकृतिसामान्येन एकापि उत्तरोत्तरप्रकृतिविवक्षया नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिभेदाच्चतुर्धा भवेत् ॥१४६॥

अथ नारकगतिं निर्दिशति—

यस्मात्कारणात् ये जीवाः नरकगतिसम्बन्धयन्नपानादिद्रव्ये तद्भूतलरूपक्षेत्रे, समयादिस्वायुरवसानकाले

'गम्यते' गमन करना गति है । ऐसा कहनेपर गमन क्रिया करते हुए जीवको प्राप्त करके द्रव्य आदिको भी गति कहना सम्भव होगा । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि गति नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न जीवकी पर्यायको ही गति माना है । अथवा गमन गति है, ऐसा कहनेपर ग्राम, उद्यान आदिकी ओर गमन करनेको भी गति कहा जायेगा? किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि एक भवसे दूसरे भवमें जानेकी ही विवक्षा है । अथवा गमनमें जो हेतु है,वह गति है । ऐसा कहनेपर गाड़ी आदिको भी गतिपना प्राप्त होता है । किन्तु ऐसा नहीं है,क्योंकि भवान्तरके प्रति गमनमें कारण गतिनाम कर्मको गति माना है । वह गति उत्तर प्रकृतिसामान्यकी अपेक्षा एक होनेपर भी उत्तर-उत्तर प्रकृतिकी अपेक्षा नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिके भेदसे चार प्रकारकी है ॥१४६॥

अब नारक गतिको कहते हैं—

जिस कारणसे जो जीव नरकगति सम्बन्धी अन्नपान आदि द्रव्यमें, वहाँके भूतलरूप क्षेत्रमें, प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुपर्यन्तकालमें और चैतन्यके पर्यायरूप भावमें,

---

१५ १. ळद्दुव–ब. । २. गति नारक–ब. ।

वैरोद्भववैरो[1] द्रिक्तविदं संजनितक्रोधादिगळोळावुदो[2]वु कारणदिमोरोर्व्वरोडने नूतनपुरातन नारकरुगळु परस्परं क्रीडिसुवरल्लदु कारणदिंदमा जीवंगळु नरतरे[3]वु पेळल्पट्टुवु। न रता एव नारता एंबितु स्वार्त्थिकाण्प्रत्ययदिंदं नारता एंदु अप्पुवु। नरकेषु जाता नारका एंबितु मेणु च्छाये माडल्पट्टुदिंतप्प नारकपर्य्यायं जीवक्के नारकगति एंबितु निर्द्देशिसल्पट्टुदु। अथवा हिंसाद्यसदनुष्ठानेषु निरता व्यापृताः प्रवृत्तास्तेषां गतिर्निरतगतिः। अथवा नरान् प्राणिनः कायति पातयति कदर्थयति क्लेशीकरोति बाधत इति नरकं कर्म तस्मात्यत्यति नारकाः[4] तेषां गतिर्नारकगतिः। अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावेष्वन्योन्येषु चारता न रतास्तेषां गतिर्नरतगतिः। अथवा निर्गतोऽयः पुण्यमेभ्यस्ते निरयास्तेषां गतिर्निरयगतिः। एंदितो व्युत्पत्तिगळिंदमे नारकगतिलक्षणं पेळल्पट्टुदु।

अनंतरं तिर्य्यग्गतिस्वरूपनिरूपणं माडिदपं।

तिरियंति कुडिलभावं सुविवलसण्णा णिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंतपावबहुला तम्हा तेरिच्छिया भणिदा ॥१४८॥

तिरोंचंति कुटिलभावं सुविवृतसंज्ञा निकृष्टा अज्ञानाः। अत्यंतपापबहुलाः तस्मात्तैरश्चा भणिताः।

चित्पर्यायरूपभावे भवान्तरवैरोद्भवतज्जनितक्रोधादिभ्योऽन्योन्यैः सह नूतनपुराततनारकाः परस्परं च न रमन्ते तस्मात्कारणात् ते जीवा नरैता इति भणिताः। नरता एव नारताः स्वार्थिकाण्प्रत्ययात्। अथवा नरकेषु जाता नारका इति छाया। एवंविधनारकपर्यायो जीवस्य नारकगतिर्निर्दिश्यते। अथवा हिंसाद्यसदनुष्ठानेषु निरता व्यापृताः प्रवृत्ताः—तेषां गतिर्निरतगतिः। अथवा नरान्—प्राणिनः, कायति—घातयति, कदर्थयति क्लेशीकरोति बाधक इति नरकं कर्म तस्यापत्यानि नारकाः, तेषां गतिः नारकगतिः। अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु अन्योन्येषु चारताः नरताः तेषां गतिर्नरतगतिः। अथवा निर्गतोऽयः पुण्यं एभ्यः ते निरयाः तेषां गतिः निरयगतिः इति व्युत्पत्तिभिरपि नारकगतिलक्षणं कथितम् ॥१४७॥ अथ तिर्यग्गतिस्वरूपं निरूपयति—

पूर्वभवके वैरके कारण उत्पन्न हुए क्रोधादिके कारण नवीन और पुराने नारकी परस्परमें रमण नहीं करते, वे जीव नरत कहलाते हैं। नरत ही स्वार्थमें अण् करनेसे नारत होते हैं। अथवा जो नरकोंमें जन्म लेते हैं, वे नारक हैं। जीवकी इस प्रकारकी नारक पर्यायको नरक गति कहते हैं। अथवा जो हिंसा आदि असत् कार्योंके अनुष्ठानमें निरत अर्थात् प्रवृत्त हैं, उनकी गति नरक गति है। अथवा 'नरान्' अर्थात् प्राणियोंको 'कायति' कष्ट देता है, दुर्गति करता है, बाधा पहुँचाता है, वह नरक कर्म है; उसकी सन्तान नारक हैं। और उनकी गति नारक गति है। अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें परस्परमें जो रत नहीं हैं, वे नरत हैं। उनकी गति नरकगति है। अथवा निर्गत अर्थात् चला गया है पुण्य जिनसे, वे निरय हैं और उनकी गति निरयगति है। इन व्युत्पत्तियोंके द्वारा नरकगतिका लक्षण कहा ॥१४७॥

आगे तिर्यंच गतिका स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °रोद्रेकदिदं। २. म °दोंदुरुत्तणिदमोरोर्व्व°। ३. वैरतद्भवजनित—ब.। ४. नारका—ब.।
५. नारका एव नारका स्वा—ब.।

आवुदो वु कारणदिंदं तिरोभावं कुटिलभावमं मायापरिणाममनेय्दुवरे वितु तिर्य्यंचरप्परहंगेयुमा गूढमप्पाहारादि प्रकटसंज्ञेगळनुळ्ळवुदंते प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धिमोदलादुवरिंदमल्पियंसरप्पुदरिंदं निकृष्टंगळुमंते हेयोपादेयज्ञानादिविशिष्टज्ञानहीनमप्पुदरिंद अज्ञानमंते नित्यनिगोदतिर्य्यग्जीवविवक्षेयिंदमंतातीतपापबहुलरप्परदुःकारणदिंदं आ जीवंगळु तिर्य्यंचरेंदु पेळल्पट्टरिल्लिय स्वार्थिकाण्प्रत्ययदिंदं तैरश्चा एंबितु शब्दस्थितियक्कुं। एवंविधतिर्य्यक्पर्य्यायमे तिर्य्यग्गतियेंबितु भाषितमाय्तु।

अनंतरं मनुष्यगतिस्वरूपनिरूपणमं माडिदपं।

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मणुउब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिदा ॥१४९॥

मन्यंते यतो नित्यं मनसा निपुणा मनोत्कटा यस्मात्। मनोरुद्भवाश्च सर्व्वे तस्मात्ते मानुषा भणिताः।

आवुदो वु कारणदिंदमाकेलंबरु जीवंगळु नित्यं बगेवरु अरिवरु हेयोपादेयादिविशेषमने वितु मानुषाः एंबुदु। आवुदो वु मेणु मनसा निपुणाः कलाशिल्पादिगळोळं कुशलरप्पुदरिंदं मानुषा एंबुदु। मनसोत्कटाः अवधानादिदृढोपयोगरप्पुदरिंदं मानुषा एंबुदु। अथवा मनोरुद्भवा अपत्यानि मानुषा यें बुदितो यथोक्तनिरुक्तिसिद्ध लक्षणरप्यमानुषा एंबितु प्रवचनदोळ् पेळल्पट्टरेल्लरं।

यस्मात्कारणात् ये जीवाः सुविधृतसंज्ञाः अगृहाहारादिप्रकटसंज्ञायुताः, प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्ध्यादिभिरल्पीयस्त्वान्निकृष्टाः, हेयोपादेयज्ञानादिभिर्विहीनत्वादज्ञानाः, नित्यनिगोदविवक्षया अत्यन्तपापबहुलाः, तस्मात्कारणात्ते जीवाः तिरोभावं-कुटिलभावं मायापरिणामं अंचंति-गच्छन्ति, इति तिर्यञ्चो भणिता भवन्ति। तिर्यञ्च एव तैरश्चाः स्वार्थिकाण्विधानात्। एवंविधतिर्यक्पर्याय एव तिर्यग्गतिरिति भाषितम् ॥१४८॥

अथ मनुष्यगतिस्वरूपं निरूपयति—

यस्मात्कारणात् ये जीवाः नित्यं मन्यन्ते हेयोपादेयादिविशेषान् जानन्ति-वा मनसा निपुणाः-कलाशिल्पादिषु कुशलाः वा मनसोत्कटाः अवधानादिदृढोपयोगाः वा मनोरुद्भवाः अपत्यानीति ते जीवाः सर्वेऽपि

जिस कारणसे जो जीव 'सुविधृत संज्ञा' अर्थात् आहार आदिकी प्रकृत संज्ञावाले होते हैं, प्रभाव-सुख-कान्ति-लेश्याविशुद्धि आदिसे हीन होनेसे निकृष्ट हैं, हेय उपादेयके ज्ञानसे विहीन होनेसे अज्ञानी हैं, नित्य निगोदकी विवक्षासे अत्यन्त पापबहुल होते हैं, तिस कारणसे वे जीव 'तिरोभाव' अर्थात् कुटिलभाव मायापरिणामको 'अंचन्ति' प्राप्त होते हैं, इसलिए उन्हें तिर्यंच कहते हैं। तिर्यंच ही स्वार्थमें अण् प्रत्यय करनेसे तैरश्च होते हैं। इस प्रकारकी तिर्यक् पर्याय ही तिर्यग्गति कही गयी है ॥१४८॥

आगे मनुष्यगतिका स्वरूप कहते हैं—

जिस कारणसे जो जीव नित्य 'मन्यन्ते' अर्थात् हेय-उपादेय आदिके भेदको जानते हैं। अथवा 'मनसा निपुणाः' अर्थात् कला, शिल्प आदिमें कुशल होते हैं। अथवा 'मनसा उत्कटाः' अर्थात् अवधान आदि दृढ़ उपयोगके धारी हैं। अथवा मनुके वंशज हैं। इसलिए वे जीव सभी मनुष्य हैं, ऐसा आगममें कहा है ॥१४९॥

---

१. म एंदितु। २. मनोरुद्भ-ब.।

अनंतर तिर्य्यंग्मनुष्यगें व्यक्तिभेदनिदर्शन निमित्तं पेळ्दपं ।

सामण्णा पंचिंदी पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता ।
तिरिया णरा तहावि य पंचिंदियभंगदो हीणा ॥१५०॥

सामान्याः पंचेंद्रियाः पर्य्याप्ता योनिमत्योऽपर्य्याप्ताः । तिर्य्यंचो नरास्तथापि च पंचेंद्रिय-भंगतो हीनाः ।

सामान्यतिर्य्यंचरेंदुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरेंदु पर्य्याप्ततिर्य्यंचरेंदुं योनिमतिर्य्यंचरेंदु पंचप्रकारं तिर्य्यंचरप्परवरु । मत्तं मनुष्यरुं पंचेंद्रियभंगविदं हीनरु सामान्यादि चतुःप्रकारमनुष्य-रप्परेकेंदोडे तिर्य्यंचरोळ् पंचेंद्रियांगलल्लव द्वींद्रियादिजीवांगळुंटप्पुदरिंदमिल्लि मनुष्यरेल्लरुं पंचेंद्रियं-गळेयप्पुदरिनिल्लि यी विशेषणं व्यवच्छेदमिल्लदुदरिंदं तद्रिंगयल्पट्टुदु ।

अनंतरं देवगतियं पेळ्दपं ।

दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहि दिव्वभावेहिं ।
भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा ॥१५१॥

दीव्यंति यतो नित्यं गुणैरष्टभिश्च दिव्यभावैर्भासमानदिव्यकायाः तस्मात्ते वर्णिता देवाः ।

आवुदोंदु कारणदिंदमावुवु केलवु जीवंगळु नित्यमनवरतं कुलगिरिमहासमुद्राविगळोळु क्रीडिसुवरुं । मोदंते माद्यंति कामयंते अणिमादिभिरष्टभिर्दिव्यभावैरमानुषगोचरप्रभावैर्गुणैर्भास-मानाः प्रकाशमानाः दिव्यकाया धातुमलदोषरहितप्रभास्वरमनोहरशरीरास्ते जीवास्तस्मात्कारणा-द्देवा इति परमागमे वर्णिताः ।

मानुषा इति प्रवचने भणिताः ॥१४९॥ अथ तिर्यग्मनुष्यगतिव्यक्तिभेदान् दर्शयति—

तिर्यञ्चः—सामान्यतिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः पर्याप्ततिर्यञ्चः योनिमत्तिर्यञ्चः अपर्याप्ततिर्यञ्चश्चेति पञ्च-विधा भवन्ति । तथा मनुष्या अपि । किन्तु पञ्चेन्द्रियभङ्गतः—भेदात् हीना भवन्ति—सामान्यादिचतुर्विधा एव भवन्तीत्यर्थः । सर्वमनुष्याणां केवलं पञ्चेन्द्रियत्वेनैव सम्भवात्, तिर्यग्वत्तद्विशेषणस्य व्यवच्छेदत्वाभावात् ॥१५०॥ अथ देवगतिं प्ररूपयति—

यस्मात्कारणात् ये जीवाः नित्यं—अनवरतं, कुलगिरिमहासमुद्रादिषु दीव्यन्ति क्रीडन्ति मोदन्ते माद्यन्ति कामयन्ते अणिमादिभिरष्टभिः दिव्यभावैः—अमानुषगोचरप्रभावैः गुणैर्भासमानाः—प्रकाशमानाः, दिव्यकाया धातुमलदोषरहितप्रभास्वरमनोहरशरीराः ते जीवाः तस्मात्कारणात् देवा इति परमागमे वर्णिताः ॥१५१॥

आगे तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें जीवोंके भेद दिखलाते हैं—

तिर्यंच सामान्यतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच, योनिमत् तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच इस तरह पाँच प्रकारके होते हैं । तथा मनुष्य भी होते हैं, किन्तु पंचेन्द्रिय नामक भेद मनुष्योंमें नहीं होता, अतः वे सामान्य आदि चार ही प्रकारके होते हैं; क्योंकि सभी मनुष्य केवल पंचेन्द्रिय ही होते हैं । अतः तिर्यंचोंकी तरह पंचेन्द्रिय विशेषणसे किसीका व्यवच्छेद नहीं होता ॥१५०॥

आगे देवगतिका कथन करते हैं—

जिस कारणसे जो जीव नित्य—निरन्तर कुलाचल, महासमुद्र आदिमें 'दीव्यन्ति' अर्थात् क्रीड़ा करते हैं, मत्त होते हैं, कामाविष्ट होते हैं, अणिमा आदि आठ अमानवीय

---

१. मेदेन ब. ।

अनंतरं संसारिविलक्षणमप्प सिद्धगतियं व्यक्तं माडिदपं ।

जाइजरामरणभया संयोगविजोगदुक्खसण्णाओ ।
रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धेगई । १५२॥

जातिजरामरणभयानि संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः । रोगादिकाश्च यस्यां न संति सा भवति सिद्धगतिः ।

जातिजरामरणभयंगळुमनिष्टसंयोगइष्टवियोगदुःखसंज्ञेगळुं रोगादिकंगळिनप्प विविधवेदनेगळुमावुवोंदु गतियोळिल्लदिप्पुवा कृत्स्नकर्म्मविप्रमोक्षप्रादुर्भूतसिद्धत्वपर्य्यायलक्षणमप्प सिद्धगतियुमुंटु । इवरिंदं संसारिगत्यपेक्षेयिं गतिमार्गणेगे चतुर्व्विधत्वं पेळल्पट्टुदेकेंदोडे मत्ते मुक्तगत्यपेक्षेयिंदं अदक्के तद्विलक्षणावत्तणिंदं गतिमार्गणेयोळविवक्षितत्वमप्पुदरिंदं ।

अनंतरं गतिमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्वातनभेदरं नरकगतियोळु गाथाद्वयदिंदं तत्संख्येयं पेळ्दपं ।

सामण्णा णेरइया घणअंगुलविदियमूलगुणसेढी ।
विदियादि बारदस अडछत्तिदुगिजपदहिदा सेढी ॥१५३॥

सामान्यनारका घनांगुलद्वितीयमूलगुणश्रेणिः । द्वितीयाविद्वावशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजपदहृता श्रेणिः ।

घर्म्मादिपृथ्वीभेदविवक्षेयं माडदे सामान्यनारकरु सर्व्वपृथ्विजरु घनांगुलद्वितीयवर्गमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितरप्पर् संदृष्टि २ मू.। वंशादिपृथ्विगळोळु नारकरु मत्ते यथाक्रमदिं

अथ संसारविलक्षणां सिद्धगतिं व्यनक्ति—

जातिजरामरणभयानि, अनिष्टसंयोगेष्टवियोगदुःखसंज्ञाः, रोगादिविविधवेदनाश्च यस्यां न सन्ति सा कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षादुर्भूतसिद्धत्वपर्यायलक्षणा सिद्धगतिरस्ति । अत एव संसारिगत्यपेक्षया गतिमार्गणायाश्चतुर्विधत्वमुक्तं । मुक्तगत्यपेक्षया तस्यास्तद्विलक्षणत्वेन गतिमार्गणायामविवक्षितत्वात् ॥१५२॥ अथ गतिमार्गणायां जीवसंख्यां कथयंस्तावन्नरकगतौ गाथाद्वयेनाह—

घर्मादिपृथ्वीभेदविवक्षामकृत्वा सामान्यनारकाः सर्वपृथ्वीजाः घनाङ्गुलद्वितीयवर्गमूलगुणितजगच्छ्रेणि-

---

गुणोंसे युक्त धातुमल दोषसे रहित मनोहर शरीरोंसे जो भासमान हैं, वे जीव परमागममें देव कहे गये हैं ॥१५१॥

आगे संसारसे विलक्षण सिद्धगतिको कहते हैं—

जन्म, जरा, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, दुःख, संज्ञा, रोग आदि नाना प्रकारकी वेदना जिसमें नहीं हैं, वह समस्त कर्मोंके सर्वथा विनाशसे प्रकट हुई सिद्ध पर्याय रूप सिद्धगति है ॥१५२॥

आगे गति मार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हुए सर्वप्रथम नरकगतिमें दो गाथाओंसे संख्या कहते हैं—

घर्मा आदि पृथ्वीके भेदोंकी विवक्षा न करके सभी पृथ्वीके सब नारकी घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणी प्रमाण हैं। तथा वंशा आदि नीचेकी छह पृथिवियोंमें नारकी क्रमसे जगतश्रेणीके बारहवें, दसवें, आठवें, छठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे जगत-

---

१५ १-२. म सिद्धि ।

द्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजवर्गमूलविभक्तजगच्छ्रेणिप्रमितरुंदु ।

−।−।−।−।−।−।

१२।१०।८। ६। ३। २।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं रासिविहीणो दु सव्वरासी दु ।
पढमावणिम्हि रासी णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो ॥१५४॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां राशिविहीनस्तु सर्व्वराशिस्तु । प्रथमावनौ नैरयिकाणां राशिस्तु निर्दिष्टः ।

अधस्तनवंशादिषट्पृथ्विगळ्गे पेळ्दारराशिगळं कूडिदा राशियं साधिकद्वादशमूलभक्त-जगच्छ्रेणिप्रमितमं १२ । १ सामान्यनारकराशियोळ्कळेदोडे − २ − १ । १२ धर्म्मेय नारकर प्रमाण-मक्कु− । मिल्लियपनयनत्रैराशिकमं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे प्र −।फ १।इ।१ । १२ जगच्छ्रेणियं गुण्यमं तोरि गुणाकारमप्प घनांगुलद्वितीयमूलदोळोंदु रूपु कळेयल्पडुत्तिरलु साधिकद्वादश मूलभक्त-

प्रमिता भवन्ति (−२मू०) वंशादिषस्तनपृथ्वीषु नारकाः पुनः यथाक्रमं द्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजवर्ग-मूलविभक्तजगच्छ्रेणीमात्राः सन्ति १२ । १० । ८ । ६ । ३ । २ ॥१५३॥

अधस्तनवंशादिषट्पृथ्वीकीयतत्षड्राशीनां संयोगः निजद्वादशमूलभक्तसाधिकजगच्छ्रेणिमात्रः १२ । अनेन सामान्यनारकराशिविहीनः तदा धर्मानारकप्रमाणं भवति−२−१ । तदपनयनत्रैराशिकमिदं−प्र−। फ १ इ १२ । १२

एकजगच्छ्रेण्यपनयने घनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रराशौ गुणकारे यद्येकं रूपमपनीयते तदा निजद्वादश-

श्रेणीमें भाग देनेपर जो लब्ध आवें, उतने हैं। अर्थात् जगतश्रेणीके बारहवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण दूसरी पृथ्वीके नारकी हैं। जगतश्रेणीके दसवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण तीसरे नरकके नारकी हैं। जगतश्रेणीके आठवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण चतुर्थ पृथ्वीके नारकी हैं। जगतश्रेणीके छठे वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण पंचम पृथ्वीके नारकी हैं। जगतश्रेणीके तीसरे वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण छठी पृथ्वीके नारकी हैं। और जगतश्रेणीके दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी प्रमाण सातवीं पृथ्वीके नारकी हैं। इस तरह अपने-अपने वर्गमूलका भाग जगतश्रेणीमें देनेसे जो लब्ध आवे, उतने उस नरकमें नारकी हैं ॥१५३॥

नीचेकी वंशा आदि छह पृथिवियोंकी ऊपर कही संख्याका जोड़ अपने बारहवें वर्गमूलसे भाजित साधिक जगतश्रेणी प्रमाण है। इस राशिको पहले कही सामान्य नारकियोंकी संख्यामें घटानेपर प्रथम नरकके नारकियोंका प्रमाण आता है। इस घटानेका त्रैराशिक इस प्रकार है—सामान्य नारकियोंका प्रमाण लानेके लिए गुण्य जगतश्रेणीका प्रमाण है और गुणाकार घनांगुलका द्वितीय वर्गमूल है। इस प्रमाणमें-से यदि जगतश्रेणी मात्र घटाना हो, तो गुणाकारमेंसे एक घटाना चाहिए। तब जो जगतश्रेणीके बारहवाँ वर्गमूलसे भाजित साधिक जगतश्रेणी मात्र घटाना हो, तो गुणाकारमें-से कितना घटाना चाहिए। ऐसा त्रैराशिक करनेपर यहाँ प्रमाणराशि जगतश्रेणी है, फलराशि एक, इच्छाराशि जगत-

जगच्छ्रेणियं तोरि एनितना गुणाकारदोळु कळेयल्पक्कुमेंदु त्रैराशिकदिं बंद लब्धं साधिकैक-द्वादश भागमं १/१२ कळेवेनितेंबुवर्थं ।

अनंतरं तिर्यंग्जीवसंख्येयं पेळ्वातंनेरडुगाथासूत्रंगळिदं पेळ्दपरु ।

संसारी पंचक्खा तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो ।
सामण्णा पंचिंदी पंचिंदियपुण्ण तेरिच्छा ॥१५५॥

संसारिणः पंचाक्षास्तत्पूर्णास्त्रिजगतिहीनकाः क्रमशः । सामान्याः पंचेंद्रियाः पंचेंद्रिय-पूर्णास्तैरश्चाः ।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नारकमनुष्यदेवराशित्रयविहीनसर्वसंसारिराशियवु तिर्य्यंग्गतियोळु सामान्यतिर्य्यंचराशि-प्रमाणमक्कुं १३≡ तद्गतित्रयराशिहीनमप्प सामान्यपंचेंद्रियराशियवु तिर्य्यंग्गतियोळु पंचेंद्रिय-
१० राशियक्कु = ५८३६ तद्गतित्रयपर्य्याप्तराशिहीनसामान्यपंचेंद्रियपर्य्याप्तराशियवु तिर्य्यंग्गतियोळु
४।४।६५६१
८≡

मूलभक्तसाधिकश्रेण्यपनयने गुणकारे कियदपनीयते ? इति लब्धे साधिकैकद्वादशभागं १/१२ अपनयेदित्यर्थः ॥१५४॥ अथ तिर्यग्जीवसंख्यां गाथाद्वयेन आह—

नारकमनुष्यदेवराशित्रयविहीनसर्वसंसारिराशिरेव तिर्यग्गतौ सामान्यतिर्यग्राशिप्रमाणं भवति । १३≡ । तद्गतित्रयराशिविहीनः सामान्यपञ्चेन्द्रियराशिरेव तिर्यग्गतौ पञ्चेन्द्रियराशिः स्यात् । = ५८३६
४ । ४ । ६५६१
८≡

---

१५ श्रेणीके बारहवें वर्गमूलसे भाजित जगतश्रेणी है । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जगतश्रेणीके वर्गमूलका साधिक एकका बारहवाँ भाग लब्ध आया । इसे घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमें-से घटाकर जो शेष रहे,उससे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर प्रथम घर्मा पृथिवीके नारकियोंका प्रमाण आता है ॥१५४॥

विशेषार्थ—तीसरी आदि सब पृथिवियोंके नारकी दूसरी पृथिवीके नारकियोंके
२० असंख्यातवें भाग मात्र ही हैं, क्योंकि उनका भागहार अधिक होनेसे लब्ध कम आता है । इसलिए दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तकके नारकियोंकी संख्या द्वितीय पृथिवीके नारकियोंसे कुछ अधिक कही है । इसे सर्वनरक राशिमें-से घटानेपर प्रथम नरकके नारकियों-की संख्या आती है । इस घटानेको अंकसंदृष्टिसे इस प्रकार जानना । गुण्यराशि २५६ और गुणाकार चार है । यदि २५६ कम करनेके लिए गुणाकार चारमें-से एक घटाया जाता है, तो
२५ ३/४ कम करनेके लिए कितना घटाना चाहिए । यहाँ फलराशिसे इच्छा राशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर १/४ आता है।इसे गुणाकार ४ में-से घटानेपर ३/४ आता है।इसे गुण्य राशि २५६ से गुणा करनेपर ९६० लब्ध आता है । इसी तरह अर्थसंदृष्टिसे जानना ॥१५४॥

आगे दो गाथाओंसे तिर्यंचगतिमें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

संसारी जीवोंकी राशिमें-से नारकी, मनुष्य और देवोंकी राशि घटानेपर तिर्यंचगतिमें
३० सामान्य तिर्यंचोंकी राशिका प्रमाण होता है । आगे इन्द्रियमार्गणामें सामान्य पंचेन्द्रिय जीवोंकी राशिका प्रमाण कहेंगे । उसमें-से नारकी, मनुष्य और देव, इन तीन गतिके जीवोंकी

पंचेंद्रियपर्य्याप्तरुगळिप्पक्कु । मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
८५८६४
४।४।६५६१
५ ≡

छस्सदजोयणकदिहिदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं ।
पुण्णूणा पंचक्खा तिरिय अपज्जत्त परिसंखा ॥१५६॥

षट्शतयोजनकृतिहृतजगत्प्रतरो योनिमतीनां परिमाणं । पूर्णोनाः पंचाक्षास्तिर्य्यग्-पर्य्याप्तपरिसंख्या । ५

षट्शतयोजनगळ कृतियिंदं भागिसल्पट्ट जगत्प्रतरप्रमाणं तिर्य्यग्गतियोळु योनिमतिगळप्प द्रव्यस्त्रीयर प्रमाणमक्कुं ४। ६५ ८ ८१।४।१० तिर्य्यंकपंचेंद्रियपर्य्याप्तराशिहीनतिर्य्यक्पंचेंद्रिय-राशियवु तिर्य्यंगपर्य्याप्तपंचेंद्रियराशिप्रमाणमक्कुं ८५८ ३६ ५८ ६४।५≡
४।४।६५६१
५ ≡

तद्गतित्रयपर्याप्तराशिहीनः सामान्यपर्याप्तपञ्चेन्द्रियराशिरेव तिर्यग्गतौ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियराशिः स्यात् । = ५८६४ ॥१५५॥ १०
४।४।६५६१
५≡

षट्शतयोजनानां कृत्वा भक्तजगत्प्रतरप्रमाणं तिर्यग्गतौ योनिमतीनां द्रव्यस्त्रीणां प्रमाणं

भवति । ४ । ६५ ८ । ८१ । ४ । १० तिर्यक्पंचेन्द्रियपर्याप्तराशिहीनतिर्यक्पंचेन्द्रियराशिरेव तिर्यग्पर्याप्तपंचे-

---

राशि घटानेपर जो शेष रहे, उतनी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवोंकी संख्या है। तथा सामान्य पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी राशिमें-से उक्त तीन गतिके पर्याप्तकोंकी राशि घटानेपर तिर्यंचगतिमें पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंकी राशि होती है ॥१५५॥ १५

छह सौ योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो प्रमाण होता है, उतना तिर्यंच-गतिमें योनिमती अर्थात् द्रव्यस्त्रियोंका प्रमाण होता है। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके प्रमाणमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंका प्रमाण घटानेपर जो शेष रहे, वह अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका प्रमाण है।

विशेषार्थ—छह सौ योजनके वर्गके अंगुल पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीससे तीन लाख चौबीस हजार करोड़को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं। इसके प्रदेश संख्यात प्रतरांगुलमात्र होते हैं। यही जगत्प्रतरका भागहार है ॥१५६॥ २०

---

१. इतो अग्रे-'क' प्रतौ- = ९ ई संदृष्टिय हारंगळे तादुदे बोडे षट्छत योजनंगळ कृतियं ६०० योजनदंडंगळिदं ६००
वर्गात्मकंगळिवं ८००० गुणिसि मत्तवं एकदंडांगुलंगळिद वर्गरूपं गळिदं ९६ गुणिसुवल्लि दशशून्यं-
८०००
गळि बेरिरिसिवे आररिं ९६दं अपवर्तिसलिनिक्कु १६।६ एंटनेयदरिनपवर्तिसि ४।२
१६।६
४।२

अनंतरं मनुष्यजीवसंख्येयं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपं :—

सेढी सूई अंगुल आदिमतदियपद भाजिदेगूणा ।
सामण्ण मणुसरासी पंचमकदिघणसमा पुण्णा ॥१५७॥

आगमज्ञानी आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

श्रेणी सूच्यंगुलप्रथमतृतीयपदभाजितैकोना । सामान्यमनुष्यराशिः पंचमकृतिघनसमाः पूर्णाः ।

जगच्छ्रेणियं सूच्यंगुलद प्रथमवर्गमूलदिंदमुं तृतीयवर्गमूलदिंदमुं भागिसि बंद लब्धबोळोंदु रूपं कळेयलोडना राशि सामान्यमनुष्यराशियक्कु १ । ३ द्विरूपवर्गधारा संबंधि पंचमवर्गं बादाळसंज्ञेयनुळ्ळ राशियं घनंगोंडनितु प्रमाणद मनुष्यरुपर्य्याप्तकरप्परु । ४२ = ४२ = ४२ = । ई राशियं परस्परं गुणिसिद लब्धराशियनक्षरसंज्ञेयिंदमंकक्रमदिंद पेळ्दपरु ।

तल्लीन मधुगविमलं धूमसिलागाविचोर भयमेरू ।
तटहरिसङ्का होंति हु माणुसपज्जत्तसंखंका ॥१५८॥

। ७९ २२ ८१ ६२ ५१ ४२ ६४ ३३ ७५ ९३ ५४ ३९ ५० ३३६ ।

ई राशियने सप्तमक्षरसंज्ञेगिंदं पूर्वानुपूर्वियागि पेळ्दपं ।

न्द्रियराशिप्रमाणं भवति = ५८ ३६ a≅ ॥१५६॥ अथ मनुष्यगतिजीवसंख्यां गाथात्रयेणाह—

५८ ६४ । ५≅
४, ४, ६५ ६१

जगच्छ्रेणिं सूच्यङ्गुलस्य प्रथममूलतृतीयमूलाभ्यां भक्त्वा तल्लब्धे एकरूपे अपनीते स राशिः सामान्य-

मनुष्यराशिः स्यात् १ । ३ । द्विरूपवर्गधारासम्बन्धिपञ्चमवर्गस्य बादालसंज्ञस्य घनप्रमाणाः पर्याप्तमनुष्या भवन्ति ४२ = ४२ = ४२ = ॥१५७॥ अस्मिन् राशौ परस्परं गुणिते यल्लब्धं तं राशिम् अक्षरसंज्ञयाङ्कक्रमेण कथयति—

सप्तचतुर्वारकोटिकोटिनवतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्रैकशतद्वाषष्टित्रिवारकोट्येकपञ्चाशल्लक्षद्वाचत्वारिंशत्सहस्र-षट्शतत्रिचत्वारिंशद्द्विवारकोटिसप्तत्रिंशल्लक्षैकान्नषष्टिसहस्रत्रिंशतचतुःपञ्चाशत्कोट्येकान्नचत्वारिंशल्लक्षपञ्चा-शत्सहस्रत्रिंशतषट्त्रिंशत्प्रमिता पूर्वोक्तपञ्चमवर्गघनाङ्करूपा पर्याप्तमनुष्याणां संख्या भवति ७, ९२२८१६२,

---

आगे तीन गाथाओंसे मनुष्यगतिमें जीव संख्या कहते हैं—

जगतश्रेणीको सूच्यंगुलके प्रथम वर्गमूलका भाग दो, जो लब्ध आवे उसमें पुनः सूच्यंगुलके तृतीय वर्गमूलका भाग दें। और लब्धमें-से एक घटानेपर जो शेष रहे, उतनी सामान्य मनुष्य राशि है। तथा द्विरूप वर्गधारा सम्बन्धी पंचमवर्ग बादाल प्रमाण है उसके घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण है। इस राशिको परस्परमें गुणित करनेपर जो राशि आती है, उसे अक्षरोंके द्वारा अंकरूपमें बतलाते हैं ॥१५७॥

सात कोटिकोटि कोटाकोटी, बानवे लाख अट्ठाईस हजार एक सौ बासठ कोटिकोटि कोटी, इक्यावन लाख बयालीस हजार छह सौ तैंतालीस कोटि कोटि, सैंतीस लाख उनसठ हजार तीन सौ चौवन कोटि, उनतालीस लाख पचास हजार तीन सौ छत्तीस ७,९२२८१६२, ५१४२६४३,३७५९३५४,३९५०३३६। प्रमाण पूर्वोक्त पंचमवर्गके घनरूप अंक होते हैं। यह ही

---

१. वर्गक्रमाः मु ।

'साधूरराज कीर्तेरेणांको भारती विलोलः समधिः ।
गुणवर्ग धर्म्मनिगलितसंख्यावन्मानवेषु वर्णक्रमतः ॥'

एंबितु पर्य्याप्तमनुष्यर संख्येयं पेळल्पट्टुदु ।

१५४२६४३, ३७५९३५४, ३९५०३३६ । अमेव राशिः पुनरक्षरसंख्यया पूर्वानुपूर्व्या कथ्यते—

पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या है । इसी राशिको पूर्वानुपूर्वीसे अक्षरोंकी संख्याके द्वारा दूसरे रूपमें कहा गया है ।

विशेषार्थ—इस गाथामें पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या अक्षरोंके द्वारा अंकोंको सूचित करते हुए बायीं ओरसे कही है । अक्षरोंके द्वारा अंक कहनेका सूत्र इस प्रकार है—

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवपञ्चाष्टौ क्रमात् [illegible] सागर जी महाराज
स्वरमनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम् ॥

इसका अर्थ इस प्रकार है—ककारसे लेकर नौ अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर नौ तक अंक जानना । टकारसे लेकर धकार पर्यन्त नौ अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर नौ तक अंक जानना । इसी तरह पकारसे लेकर मकार तक पाँच अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर पाँच तक जानना । यकारसे लेकर हकार पर्यन्त आठ अक्षरोंसे क्रमसे एकसे लेकर आठ तक अंक जानना । जहाँ स्वर या अकार या नकार लिखा हो,वहाँ शून्य (बिन्दी) जानना । अक्षरपर लगी मात्रा या ऊपर लिखे अक्षरसे कुछ प्रयोजन नहीं है । इस सूत्रके अनुसार यहाँ अक्षरोंके द्वारा अंक कहे हैं । 'त' से छह, 'ल' से तीन, 'ली' से तीन, 'न' से शून्य, 'म' से पाँच, धु से नौ, ग से तीन, वि से चार, 'म' से पाँच, 'लं' से तीन, घू से नौ, म से पाँच, सि से सात, ला से तीन, गा से तीन, वि से चार, चो से छह, र से दो, भ से चार, य से एक, म से पाँच, ह से दो, त से छह, ट से एक, ह से आठ, रि से दो, ख से दो, झ से नौ, स से सात । अंकोंको बायीं ओरसे लिखनेपर उक्त संख्या होती है । इन्हीं अंकोंको एक श्लोकमें जो ऊपर टीकाकारने अपनी टीकामें दिया है, अक्षरोंके द्वारा दाहिनी ओरसे कहा है—'सा से सात, धु से नौ, र से दो, रा से दो, ज से आठ, की से एक, र्ते से छह, रे से दो, णां से पाँच, को से एक, भा से चार, र से दो, ती से एक, वि से चार, लो से दो, ल से दो, स से सात, म से पाँच, धी से नौ, गु से तीन, ण से पाँच, 'ब' से चार, गँ से तीन, ध से नौ, र्म से पाँच, नि से शून्य, ग से तीन, लि से तीन, त से छह । इस गाथाकी मन्द प्रबोधिनी टीकामें 'किंचित् प्रकृतोपयोगी' लिखा है । उसका आशय यहाँ दिया जाता है—पैंतालीस लाख चौड़े गोलाकार मनुष्य क्षेत्रकी सूक्ष्म परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन, एक कोस, एक हजार सात सौ छियासठ दण्ड और पाँच अंगुल होती है । इसका क्षेत्रफल सोलह लाख नौ सौ तीन करोड़ छह लाख चौवन हजार छह सौ एक योजन, एक योजनके उन्नीस भागोंमें-से सोलह भाग प्रमाण होता है । इस क्षेत्रफलके अंगुल नौ हजार चार सौ बयालीस कोटि कोटि कोटि, इक्यावन लाख चार हजार नौ सौ अड़सठ कोटि कोटि, उन्नीस लाख बयालीस हजार चार सौ कोटि प्रमाण होते हैं । ऐसा होनेपर मनुष्य क्षेत्रके प्रतरांगुलोंसे पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या संख्यात गुणी होती है । अतः उनकी अवगाहन शक्ति केवल आगमगम्य है । हमें इसपर कोई आक्षेप नहीं करना है । यह केवल आज्ञाश्रद्धानका विषय है,यह बतलानेके लिए आचार्योंने लिखा है । इसी प्रकार अन्य-अन्य भी विषय आज्ञाश्रद्धानमें आते हैं ॥१५८॥

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं ।
सामण्णा पुण्णूणा मणुव अपज्जत्तगा होंति ॥९५९॥

पर्य्याप्तमनुष्याणां त्रिचतुर्थो भागो मानुषीणां परिमाणं । सामान्याः पूर्णोना मनुष्यका अपर्य्याप्तका भवंति ।

पर्य्याप्तमनुष्यरुगळ राशित्रिचतुर्भाग मानुषियरप्प द्रव्यस्त्रीयर परिमाणमक्कुं ४२=४२=४२ ३ सामान्यमनुष्यराशियोळु पर्य्याप्तमनुष्यराशियं कळेदोडे मनुष्यापर्य्याप्तर ४

प्रमाणमक्कुं ⌐=−१ इल्लि प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्या एंदितेरडुवरे द्वीपमे मनुष्यलोकमप्पुदरिंदमा १ । ३

मनुष्यक्षेत्रदक्षेत्रफलमं तंदु तन्मनुष्यक्षेत्रस्थरप्प मनुष्यपर्य्याप्तक व्यक्तिगळिरविंगे तत्क्षेत्रावगाहनशक्तियं तोरल्पडुगुमदे तेंदोडे :—

इगिचउदुगपमाणं वा अवणमणोगाहणपणि इगिहीणं ।
णरमहिपरिहीइगि सग छस्सं दंडाणि पण य अंगुलय ॥

एंदितु नाल्वत्तय्विदु लक्षयोजनव्यासमप्प मनुष्यक्षेत्रपरिधिय प्रमाणमं 'विक्खंभवग्ग दह-गुणकरणि वट्टस्स परिरओ होदि' एंबी सूत्रविदं तंद परिधिप्रमाण योजनंगळ १४२३०२४९ । क्रो १ दंडंगळु १७६६ अंगुलंगळु ५ । ई परिधियं व्यासचतुर्थांशविदं ४५ ल । इदर लब्धं । ११२५००० ४

गुणिसिदडे क्षेत्रफलमक्कुं । प्रमाणयोजनंगळु १६००९०३०६५४६०१ भागि १९ ई क्षेत्रफलमं २५६

पर्याप्तमनुष्यराशेः त्रिचतुर्भागो मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणां परिमाणं भवति ४२=४२=४२=३/४

सामान्यमनुष्यराशौ पर्याप्तमनुष्यराशावपनीते अपर्याप्तमनुष्यप्रमाणं भवति । १ ३−१ अत्र च 'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः, इति पञ्चचत्वारिंशल्लक्षविष्कम्भमनुष्यलोकस्य विक्खंभवग्गदहगुणेत्यादिना आनीतपरिधिः एककोटिद्वाचत्वारिंशल्लक्षत्रिंशत्सहस्रद्विशतैकोनपञ्चाशद्योजनैकक्रोशसप्तदशशतषट्षष्टिदण्डपञ्चाङ्गुलमात्रः यो १, ४२, ३०, २४९, क्रो १ दं १७६६, अं ५ । अयं च व्यासचतुर्थांशेन ४५ ल एतावता ११२५००० गुणितः षोडशलक्षनवशतत्रिकोटिषट्लक्षचतुःपंचाशत्सहस्रषट्शतैकयोजनमात्रं एकयोजनस्यैकान्नविंशतिद्विशतषट्पञ्चाशद्भागाधिकं क्षेत्रफलं भवति १६००९०३०६५४६०१ भागा १९ इदं चाङ्गुलीकृतं वर्गात्मकत्वाद्धो- २५६

पर्याप्त मनुष्योंकी राशिके तीन चतुर्थ भाग प्रमाण मानुषी अर्थात् द्रव्यस्त्रियोंका परिमाण होता है। सामान्य मनुष्योंकी राशिमेंसे पर्याप्त मनुष्योंकी राशिको घटानेपर अपर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण होता है। 'मानुषोत्तरपर्वतसे पहले ही मनुष्योंका निवास है', इस सूत्रकथनके अनुसार पैंतालीस लाख विष्कम्भवाले मनुष्यलोककी 'विक्खम्भवग्ग दह गुण' इत्यादि सूत्रके अनुसार निकाली गयी परिधि एक कोटि बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन, एक कोस, सत्रह सौ छियासठ दण्ड और पाँच अंगुल मात्र होती है। १४२३०२४९ योजन १ को, १७६६ दं. ५ अं.। इसको व्यासके चतुर्थांश ४५ से अर्थात् ११२५००० से गुणा करनेपर सोलह लाख नौ सौ तीन कोटि, छह लाख चौवन हजार छह सौ एक योजन मात्र, एक योजनके दो सौ छप्पन भागोंमें-से उन्नीस भाग १६००९०३०६५४-

प्रमाणांगुलंगलं माडलु क्षेत्रफलं वर्गात्मकमप्पुदरिंदं "वग्गरासिस्स। गुणयारभागहारा वग्गाणि हवंति णियमेण।" एंबी सूत्रविष्टंदिदमंगुलंगळं माडले। १६०० ९० ३०६५४६०१ भागंदिद १९ ७६८००० गुणियिसि लब्धराशियं तुदें बोडे—

२५६ ७६८०००

दोर्भूभारमयिनेव भीत जाड्याद्धिभारवे।
न्नंबांबरखुता संख्या नृलोके प्रतरांगुलैः॥

९४४२५१०४९६८१९४३४०००००००००।

इंतु प्रतरांगुलंगळु प्रमाणांगुलंगळेयप्पविवनिन्नुत्सेधांगुलंगळप्प व्यवहारांगुलंगळं माडल्वेळ्कुमेकें बोडे शरीरावगाहनंगळु व्यवहारांगुलमप्पुदरिंदमे बिंतु व्यवहारांगुलंगळं माडदे प्रमाणांगुलंगळने माडिदुदक्कें कारणमेनें बोडात्मांगुलापेक्षेयिवं चतुर्थकालप्रथमवोळमुत्सर्पणतृतीयकालावसानवोळं विदेहादि क्षेत्रदोळ मन्नूरुविल्लिंडेयरपेक्षेयिंते प्रमाणांगुलमेयक्कुमें बुदु कारणमागि।

छट्ठक्कवीए उवरि सत्तण्हं हेट्ठदो य णउपण्णा।
तियवाराणो उवरि हेट्ठा चउवारकोडीए॥ [ ]

प्रतिदेशक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एंदितु पर्य्याप्तमनुष्यरुमनुष्यक्षेत्रफलांगुलंगळं नोडलु संख्यातगुणमप्परु।

अनंतरं देवगतिजीवसंख्येयं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपं।

तिण्णिसय जोयणाणं बेसदछप्पण अंगुलाणं च।
कदिहिदपदरं वेंतरजोइसियाणं च परिमाणं॥१६०॥

त्रिशतयोजनानां द्विशतषट्पंचाशदंगुलानां च यथाक्रमं कृतिहतप्रतरं व्यंतरज्योतिष्काणां च परिमाणं।

जनांगुलवर्गेण ७६८००० ७६८००० गुणितं नवसहस्रचतुःशतद्वाचत्वारिंशत्त्रिवारकोट्येकपञ्चाशल्लक्षचतुःसहस्रनवशताष्टषष्टिद्विवारकोट्येकान्नविंशतिलक्षत्रिचत्वारिंशत्सहस्रचतुःशतकोटिप्रतराङ्गुलमात्रं भवति ९४४२, ५१०४९६८, १९४३४०००००००० एतानि च प्रमाणाङ्गुलानि नोत्सेधाङ्गुलानि कर्तव्यानि। चतुर्थकालादौ उत्सर्पिणीतृतीयकालावसाने विदेहादिक्षेत्रे चात्माङ्गुलस्यापि तत्प्रमाणत्वात्। एतेभ्यः पर्याप्तमनुष्याणां संख्यातगुणत्वेऽपि आकाशस्यावगाहशक्तिवैचित्र्यात्संशीतिर्न कर्तव्या॥१५९॥ अथ देवगतिजीवसंख्यां गाथाचतुष्टयेनाह—

६०१५६५ क्षेत्रफल होता है। इसके अंगुल बनानेके लिए वर्गात्मक होनेसे एक योजन अंगुलके वर्गसे ७६८०००×७६८००० गुणा करनेपर नौ हजार चार सौ बयालीस कोटि कोटि कोटि, इक्यावन लाख चार हजार नौ सौ अड़सठ कोटि कोटि, उन्नीसलाख तैंतालीस हजार चार सौ कोटि ९४४२,५१०४९६८,१९४३४०००००००० प्रतरांगुलमात्र होते हैं। ये प्रमाणांगुल हैं। इनके उत्सेधांगुल नहीं करना चाहिए। चतुर्थ कालके आदिमें और उत्सर्पिणीके तृतीयकालके अन्तमें तथा विदेह आदि क्षेत्रमें आत्मांगुल भी प्रमाणांगुलरूप होता है। इनसे पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या संख्यातगुणी होनेपर भी आकाशकी अवगाहन शक्तिकी विचित्रतामें सन्देह नहीं करना॥१५९॥

आगे देवगतिके जीवोंकी संख्या चार गाथाओंसे कहते हैं—

मूनूरु योजनंगळ कृतियिंदमुमिन्नूररय्वत्तारंगुलंगळ कृतियिंदमुं भागिसल्पट्ट जगत्प्रतरे यथासंख्यं व्यंतरपरिमाणमुं ज्योतिष्कप्रमाणमुमप्पुवु । संदृष्टि व्यंतररु $\overline{=}४।६५=८१।१०^{\circ}$ ज्योतिष्करु $\overline{=}४६५=$

घण अंगुलपढमपदं तदियपदं सेढिसंगुणं कमसो ।
भवणे सोहम्मदुगे देवाणं होदि परिमाणं ॥१६१॥

घनांगुलप्रथमपदं तृतीयपदं श्रेणिसंगुणं क्रमशः । भवने सौधर्मद्विके देवानां भवति परिमाणं ॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

श्रेणिय गुणियिसिद घनांगुलप्रथमवर्गमूलमुं तृतीयवर्गमूलमुं यथाक्रमदिदं भवंगळोळं सौधर्म्मद्वयदोळं देवर्कळ प्रमाणमक्कुं । संदृष्टि भावनरु—१ सौधर्म्मद्वयदोळु—३ ।

तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूल भाजिदा सेढी ।
पल्लासंखेज्जदिमा पत्तेयं आणदादिसुरा ॥१६२॥

तत एकादशनवमसप्तमपंचमचतुर्थनिजमूलभाजिता श्रेणी । पल्यासंख्येयभागाः प्रत्येकमानतादिसुराः ।

त्रिशतयोजनानां कृत्या षट्पञ्चाशदुत्तरद्विशताङ्गुलानां कृत्या च भाजितौ जगत्प्रतरौ यथासंख्यं व्यन्तरप्रमाणं ज्योतिष्कप्रमाणं च भवति । संदृष्टिः व्यन्तराः $\overline{४।६५}=\overline{८१।१०^{\circ}}$ ज्योतिष्काः $\overline{४।६५}=$ ॥१६०॥

श्रेणीगुणितघनाङ्गुलप्रथमवर्गमूलं श्रेणिगुणितघनाङ्गुलतृतीयवर्गमूलं च यथाक्रमं भवनेषु सौधर्मद्वये च देवानां प्रमाणं भवति । संदृष्टिः—भावनाः –१ । सौधर्मद्वयजाः –३ ॥१६१॥

तीन सौ योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरको देनेसे जो परिमाण हो, उतना व्यन्तरोंका प्रमाण है । और दो सौ छप्पन अंगुलके वर्गका भाग जगतप्रतरमें देनेसे जो परिमाण आवे, उतना ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—तीन सौ योजन लम्बा, तीन सौ योजन चौड़ा और एक प्रदेश ऊँचा क्षेत्रमें जितने आकाशके प्रदेश हों, उनका भाग जगतप्रतरमें देनेसे व्यन्तर देवोंका प्रमाण आता है । सो उक्त क्षेत्रके प्रतरांगुल पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीससे गुणित इक्यासी हजार कोटि प्रमाण होते हैं । यही जगत्प्रतरका भागहार है । तथा ज्योतिष्क देवोंकी संख्या लानेके लिए दो सौ छप्पन अंगुल प्रमाण क्षेत्रके प्रतरांगुल पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस होते हैं, यही जगत्प्रतरका भागहार है ॥१६०॥

घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर जो परिमाण हो, उतना भवनवासी देवोंका परिमाण है । तथा घनांगुलके तृतीय वर्गमूलसे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर जो परिमाण हो, उतना सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवोंका परिमाण है ॥१६१॥

---

१. भवतः ब ।

इल्लिदत्तलु सानत्कुमारमाहेंद्रयुगलं मोदल्गोंडु शतारसहस्रारयुगलावसानमादप्पुं कल्पयुगलंगळोळु देवर्कळु यथाक्रमदिदं निजैकादशमूलदिदं नवममूलदिदं सप्तममूलदिदं पंचममूलदिदं चतुर्थमूलदिदं भागिसल्पट्ट जगच्छ्रेणिप्रमितरप्परु। मत्तमिल्लिदं मेलानतादिकल्पयुगलद्वयदोळं ग्रैवेयकाधस्तनमध्यमोपरिमत्रयदोळमनुदिशविमानंगळोळं नाल्कनुत्तरविमानंगळोळं देवर्कळु प्रत्येकं पल्यासंख्येयभागप्रमितरप्परु। संदृष्टि –।–।–।–।–।प।प।प।प।प।प।प ५
११।९।७।५।४।a।a।a।a।a।a।a

तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो।
सामण्णदेवरासी ओहिस्सियादो विसेसहियो ॥१६२॥

त्रिगुणाः सप्तगुणा वा सर्वार्थाः मानुषीप्रमाणतः। सामान्यदेवराशिर्ज्योतिषिकात् विशेषाधिकः। १०

सर्व्वार्थसिद्धिजरप्पहमिंद्ररु मनुष्यरस्त्रीयर संख्येयं नोडलु त्रिगुणमप्परु। अथवा आचार्य्यांतराभिप्रायदिंदं सप्तगुणरुमप्परु ४२=४२=४२=३।३।७ भावनव्यन्तरकल्पजदेवर्कळु कूडिद साधिकव्यंतरराशियं ज्योतिष्करराशियोळु संख्यातैकभागमं $=\frac{1}{४६५}$ कूडिदोडे $=८१।१०$

सर्व्वसामान्यदेवराशियक्कुं॥ संदृष्टि $=\frac{1}{४।६५}=७$।

तत उपरि सनत्कुमारमाहेन्द्रयुगलादारभ्य शतारसहस्रारयुगलावसानपञ्चकल्पयुगलेषु देवाः यथाक्रमं १५
निजैकादशमूलेन नवममूलेन सप्तममूलेन पञ्चममूलेन चतुर्थमूलेन भाजितजगच्छ्रेणिप्रमिता भवन्ति। ११। ९। ७। ५। ४ पुनः तत उपरि आनतादिकल्पयुगलद्वये अधस्तनमध्यमोपरिमग्रैवेयकत्रये अनुदिशविमानेषु चतुरनुत्तरविमानेषु च देवाः प्रत्येकं पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवन्ति प ॥१६२॥

a

सर्वार्थसिद्धिजाहमिन्द्राः मनुष्यस्त्रीसंख्यातः त्रिगुणा भवन्ति। अथवा आचार्यान्तराभिप्रायेण सप्तगुणा भवन्ति ४२=४२=४२=३। ३। ७। ज्योतिष्कराशिमध्ये भावनकल्पवासिदेवसाधिकव्यन्तरराशौ २०

इससे ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र युगलसे लेकर शतार सहस्रारयुगल पर्यन्त पाँच कल्प युगलोंमें क्रमसे जगतश्रेणीके ग्यारहवें वर्गमूलसे, नवें वर्गमूलसे, सातवें वर्गमूलसे, पाँचवें वर्गमूलसे, और चतुर्थवर्गमूलसे जगतश्रेणीमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना परिमाण होता है। उससे ऊपर आनत आदि दो कल्पयुगलोंमें, अधोग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयकोंमें, अनुदिश विमानोंमें और चार अनुत्तरविमानोंमें-से प्रत्येकमें देव पल्यके २५
असंख्यातवें भाग हैं ॥१६२॥

सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्रोंका प्रमाण मनुष्यस्त्रियोंकी संख्यासे तिगुणा है। अथवा अन्य आचार्यके अभिप्रायसे सात गुणा है। ज्योतिष्क देवोंकी राशिमें भवनवासी और कल्पवासी देवोंसे साधिक व्यन्तर देवोंकी राशिको, जो कि ज्योतिषीदेवोंके संख्यातवें भाग हैं, जोड़नेपर सामान्य देवराशिका प्रमाण होता है। ३०

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमन्नायराजगुरु मंडलाचार्यवर्य्य महावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धान्तचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु षष्ठगतिमार्गणाधिकारं प्ररूपितमाय्तु ।

मार्गदर्शक :—आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

५ संख्येयभागमात्रे ४ । ६५ = । ८१ । १० युक्ते सति सर्वसामान्यदेवराशिर्भवति । ४ । ६५ = ९ ॥१६३॥

विशेषार्थ—ज्योतिष्क देवोंकी राशिसे विशेष अधिक सामान्य देवराशि है। उस विशेष अधिकका प्रमाण इस प्रकार है—ज्योतिष्क देवराशिके संख्यातवें भाग व्यन्तरदेवोंकी राशि, असंख्यात श्रेणीमात्र भवनवासी देवोंकी राशि, और असंख्यात श्रेणी मात्र वैमानिक देवोंकी राशि, इन्हें ज्योतिष्क देवोंकी राशिमें जोड़नेसे सामान्य देवराशिका प्रमाण १० होता है ॥१६३॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहको भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी १५ अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से गति प्ररूपणा नामक छठा महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

१. —११ ब ।

इन्द्रियमार्गणाप्ररूपणाधिकारः ॥७॥

अनंतरमिंद्रियमार्गणेयं प्रारंभिसुत्तमिंद्रियशब्दक्के निरुक्तिपूर्व्वकमर्त्थमं पेळ्दपं।

अहमिंदा जह देवा अविसेसं अहमहंति मण्णंता ।
ईसंति एक्कमेक्कं इंदा इव इंदिए जाण ॥१६४॥

अहमिंद्रा यथा देवा अविशेषमहमहमिति मन्यमानाः। ईशत एकमेकं इंद्रा इवेंद्रियाणि जानीहि ।

ये तिगळु ग्रैवेयकादिभवरप्पहमिंद्रदेवक्कळु अहमहमेंदितु स्वामिभृत्यविशेषशून्यमं बगेयुत्तमेकैकमोरोव्वंरु माज्ञादिगळिनपरतंत्ररु। ईशते प्रभवंति स्वामिभावमं पोद्दुवरहंगे स्पर्शनादींद्रियंगळु स्पर्शनादिस्वस्वविषयंगळोळु ज्ञानमं पुट्टिसुवेडेयोळु । ईशते परमुखाऽप्रेक्षतेयिंदं प्रभविसुववु कारणदिंदमहमिंद्ररंते इंद्रियंगळेंदितु ।

मार्गदर्शक :- आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज

लोकालोकस्य प्रकाशकं जगत्पूज्यं सप्तमं तीर्थंकर्तारं श्रीसुपार्श्वं नमाम्यहम् ॥७॥

अथेन्द्रियमार्गणां प्रारभमाणः इन्द्रियशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं कथयति–

यथा ग्रैवेयकादिजाता अहमिन्द्रदेवा अहमहमिति स्वामिभृत्यादिविशेषशून्यं मन्यमाना एकैके भूत्वा आज्ञादिभिरपरतन्त्राः सन्तः ईशते–प्रभवन्ति-स्वामिभावं श्रयन्ति तथा स्पर्शनादीन्द्रियाण्यपि स्पर्शादिस्वस्वविषयेषु ज्ञानमुत्पादयितुं ईशते-परानपेक्षतया प्रभवन्ति ततः कारणात् अहमिन्द्रा इव इन्द्रियाणीति सादृश्यार्था-

---

लोकालोकके प्रकाशक जगत्पूज्य सप्तम तीर्थंकर भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामीको नमस्कार करता हूँ।

आगे इन्द्रिय मार्गणाको प्रारम्भ करते हुए इन्द्रिय शब्दका निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहते हैं—

जैसे ग्रैवेयक आदिमें उत्पन्न हुए अहमिन्द्रदेव स्वामी-सेवक आदिके भेदसे रहित 'मैं ही हूँ' इस प्रकार मानते हुए एक-एक होकर आज्ञा आदिके पराधीनतासे रहित होते हुए अपनेको स्वामी मानते हैं। उसी प्रकार स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ भी अपने-अपने स्पर्श आदि विषयोंमें ज्ञान उत्पन्न करनेके लिए अन्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा न करते हुए स्वयं समर्थ होती हैं। इस कारणसे अहमिन्द्रोंके समान इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार सादृश्यका आश्रय लेकर इन्द्रिय शब्दका निरुक्तिसे सिद्ध अर्थ हे शिष्य तू जान ॥

विशेषार्थ—जैसे अहमिन्द्र देव अपने-अपने व्यापारमें स्वतन्त्र होते हैं, उसी तरह इन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयको ग्रहण करनेमें स्वतन्त्र हैं। कोई इन्द्रिय अपने विषयको

---

१. दिजा अ-ब। २. ग्रा इ-ब।

सादृश्यार्थाश्रयनिरुक्तिसिद्धरिंप्पेंद्रियशब्दार्थमं नीनरियें बितु शिष्यसंबोधनं प्रतिपत्तव्यमक्कुं।

अनंतरमिंद्रियभेदस्वरूपनिरूपणार्थं पेळ्दपं।

मदियावरणखओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्जबोहो वा।
भाविंदियं तु दव्वं देहुदयजदेहचिण्हं तु ॥१६५॥

मत्यावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धिः खलु तज्जबोधो वा। भावेंद्रियं तु द्रव्यं देहोदयजदेहचिह्नं तु।

मतिज्ञानावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धियवु तानु जीवक्कर्थग्रहणशक्तिलक्षणमप्प लब्धियुं बुवक्कुं। ई लब्धियुं मतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितबोधमुमर्थग्रहणव्यापाररूपमप्पुपयोगमुमितेरडुं भावेंद्रियं एंबुदक्कुं। आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

भावमें बुदु चित्परिणामं तदात्मकमप्पेंद्रियं भावेंद्रियमक्कुमेकें दोडे इंद्रस्यात्मनो लिंगमिंद्रियमें बितु व्युत्पत्तिवशदिंदं लब्ध्युपयोगलक्षणचित्परिणामक्कंये भावेंद्रियत्वसमर्थनवर्त्तिगळं। मत्ते जातिनामकर्म्मोदयसहकारिदेहनामकर्म्मोदयजनितमप्प निर्वृत्युपकरणरूपं देहचिह्नमेकेंद्रियादिशरीरक्के प्रतिनियतसंस्थानाभिव्यंजकमप्प पुद्गलद्रव्यात्मकमप्पेंद्रियं द्रव्येंद्रियमें बितु इंद्रियं द्रव्यभावात्मकतेयिंदं द्विप्रकारमागि भेदिसल्पट्टुदिल्लि लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियमें बितु लब्धियें बुवर्त्थं-

---

१५ थनिरुक्तिसिद्धमिन्द्रियशब्दार्थं जानीहि इति शिष्यसम्बोधनं प्रतिपत्तव्यं ॥१६४॥ अथेन्द्रियभेदस्वरूपं निरूपयति—

प्रतिज्ञानावरणक्षयोपशमोत्था विशुद्धिर्जीवस्यार्थग्रहणशक्तिलक्षणलब्धिः[1], मतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितबोधश्चार्थग्रहणव्यापाररूपोपयोगः[3] इति द्वयं भावेन्द्रियम्। भावः—चित्परिणामः, तदात्मकमिन्द्रियं भावेन्द्रियं, इन्द्रस्य—आत्मनो लिङ्गं इन्द्रियं इति व्युत्पत्त्यापि लब्ध्युपयोगलक्षणस्यैव भावेन्द्रियत्वसमर्थनात्। पुनः जातिनामकर्मोदयसहकारि देहनामकर्मोदयजनितं निर्वृत्युपकरणरूपं[4], देहचिह्नं एकेन्द्रियादिशरीरस्य प्रतिनियतसंस्थानाभिव्यञ्जकरूपपुद्गलद्रव्यात्मकमिन्द्रियं द्रव्येन्द्रियम्। एवमिन्द्रियं द्रव्यभावात्मकतया द्विधा

ग्रहण करनेमें दूसरी इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं करती। अतः इन्द्रके समान स्वतन्त्र होनेसे इन्द्रिय कहते हैं ॥१६४॥

आगे इन्द्रियके भेद और उनका स्वरूप कहते हैं—

मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई विशुद्धि जो जीवके अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति है, वह लब्धि है। वह लब्धि मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ बोधरूप है। और अपने विषयको ग्रहण करनेके व्यापारका नाम उपयोग है। ये दोनों लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय हैं। आत्माके परिणामको भाव कहते हैं, उस रूप इन्द्रिय भावेन्द्रिय है। इन्द्र अर्थात् आत्माके लिंगको इन्द्रिय कहते हैं। इस व्युत्पत्तिसे भी लब्धि और उपयोग लक्षणवाली भावेन्द्रियका ही समर्थन होता है। तथा जाति-नाम-कर्मके उदयके साथ शरीरनामकर्मके उदयसे उत्पन्न निर्वृत्ति और उपकरणरूप देह चिह्न द्रव्येन्द्रिय है। अर्थात् एकेन्द्रिय आदिके शरीरके प्रतिनियत आकारको व्यक्त करने रूप पुद्गल द्रव्यसे बनी इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय है। इस तरह इन्द्रिय द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रियके भेदसे दो प्रकारकी होती है। उनमें-से लब्धि और उपयोग भावेन्द्रिय है। अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति लब्धि है। अर्थको

---

१. म प्राप्तेति वें°। २. —ब्दार्थत्वं जा—म। ३. लब्धिः सा च म—मु०। ४. बोधः स्वा—मु०।

ग्रहणशक्तिमक्षमर्थग्रहणव्यापारमुपयोगमक्षं। प्रत्यक्षनिरतानीन्द्रियाणि। अक्षाणीन्द्रियाणि अक्षमक्षं प्रति वर्त्तंत इति प्रत्यक्षं। विषयोऽक्षजो बोधो वा तत्र निरतानि व्यापृतानीन्द्रियाणि। विशेषाभावात्तेषां संकरव्यतिकररूपेण व्यापृतिः प्राप्नोतीति चेन्न प्रत्यक्षे नियमिते रतानिति प्रतिपादनात् संकरव्यतिकरदोषनिवारणाय। स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणीति वा वक्तव्यं। स्वेषां विषयः स्वविषयस्तत्र नि निश्चयेन निर्णयेन रतानीन्द्रियाणि स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि। संशयविपर्य्यासावस्थायां निर्णयात्मकरतेरभावात्तत्रात्मनोऽनिन्द्रियत्वं स्यादिति चेन्न रूढिबलादुभयत्र प्रवृत्त्यविरोधः।

अथवा स्ववृत्तिनिरतानीन्द्रियाणि। संशयविपर्य्ययनिर्णयादौ वर्त्तनं वृत्तिस्तस्यां स्ववृत्तौ रतानीन्द्रियाणि। निर्व्यापारावस्थायामनिन्द्रियव्यपदेशः स्यादिति चेन्न उक्तोत्तरत्वात्।

भिद्यते। तत्र लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियमिति, अर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः अर्थग्रहणव्यापार उपयोगः। 'प्रत्यक्षनिरतानीन्द्रियाणि' अक्षाणि इन्द्रियाणि, अक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षं विषयः, अक्षबोधो वा। तत्र निरतानि व्यापृतानीन्द्रियाणि। विशेषाभावात्तेषां संकरव्यतिकररूपेण व्यापृतिः प्राप्नोति? इति चेन्न, प्रत्यक्षे नियमिते रतानीति प्रतिपादनात्। संकरव्यतिकरदोषनिवारणाय स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणीति वा वक्तव्यम्। स्वेषां विषयः स्वविषयः, तत्र निश्चयेन निर्णयेन रतानीन्द्रियाणि[2] स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि। संशयविपर्यासावस्थायां निर्णयात्मकरतेरभावात् तत्र आत्मनोऽनिन्द्रियत्वं स्यात्? इति चेन्न रूढिबलादुभयत्र प्रवृत्त्यविरोधः। अथवा 'स्ववृत्तिनिरतानीन्द्रियाणि' संशयविपर्ययनिर्णयादौ वर्तनं-वृत्तिः तस्यां स्ववृत्तौ निरतानीन्द्रियाणि।

ग्रहण करनेका व्यापार उपयोग है। इन्द्रिय शब्दकी आगममें विविध निरुक्ति मिलती है, उसे कहते हैं—

'प्रत्यक्षनिरतानि इन्द्रियाणि'—अक्ष अर्थात् इन्द्रिय। अक्ष अक्ष प्रति जो प्रवृत्त हो, वह प्रत्यक्ष है। इस व्युत्पत्तिके अनुसार प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ विषय और इन्द्रियजन्य ज्ञान दोनों होता है। उसमें जो निरत अर्थात् व्यापारयुक्त है, वह इन्द्रिय है।

शंका—इस व्युत्पत्तिके अनुसार तो कोई भेद न होनेसे संकर और व्यतिकर रूपमें भी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति प्राप्त होती है अर्थात् एक ही विषयमें सब इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति हो सकेगी। यह संकर है। या जिस विषयको रसना जान सकती है, उसे घ्राण जान सकेगी और घ्राणके विषयमें रसनाकी प्रवृत्ति हो सकेगी—यह व्यतिकर है।

समाधान—नहीं, क्योंकि नियमित प्रत्यक्षमें जो रत है, वह निरत है; ऐसा निरत शब्दका अर्थ कहा है। अथवा संकर व्यतिकर दोषको निवारण करनेके लिए 'स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि' ऐसा कहना चाहिए। स्वविषय अर्थात् अपने-अपने विषयमें निश्चय रूपसे या निर्णयात्मक रूपसे रत इन्द्रियाँ स्वविषयनिरत इन्द्रियाँ हैं।

शंका—संशय और विपर्ययकी अवस्थामें निर्णयात्मक रतिका अभाव होनेसे आत्माको अनिन्द्रियपना प्राप्त होगा।

समाधान—नहीं प्राप्त होता; क्योंकि रूढ़िके बलसे दोनोंमें प्रवृत्ति होनेमें विरोध नहीं है अथवा 'स्ववृत्तिनिरतानीन्द्रियाणि' ऐसा कहना चाहिए। संशय, विपर्यय, निर्णय आदिमें प्रवृत्ति करना वृत्ति है। उस अपनी वृत्तिमें निरत इन्द्रियाँ हैं।

शंका—यदि इन्द्रिय अपने विषयमें प्रवृत्त न होकर निर्व्यापार रहे, तो वह उस अवस्थामें अनिन्द्रिय कहलायेगी?

---

१. रूपं वि-ब। २. निर्णयेन रतानीन्द्रियाणि सं-ब।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अथवा स्वार्थं निरतानींद्रियाणि । अर्थ्यते परिच्छिद्यत इत्यर्थः । स्वस्मिन्नर्थे च निरतानींद्रियाणि निरवद्यत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति । अथवा इंदनाद्वाधिपत्यादिंद्रियाणि स्पर्शरसगंधरूपशब्दज्ञानावरणकर्म्मणां क्षयोपशमाः द्रव्येंद्रियकारणानींद्रियाणीत्यर्थः ।

यदींद्रस्यात्मनो लिंगं यदि वेंद्रेण कर्म्मणा ।
सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं चेति तदिंद्रियं ॥ [ ]
मलविद्धमणिव्यक्तिर्व्यथानेकप्रकारतः ।
कर्म्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥ [ ]

तत्तदा इंद्रियंगळोळु तत्तदावरणक्षयोपशमविशिष्टात्मप्रदेशसंस्थानमभ्यंतरनिर्वृत्तियक्कुं । तदवष्टब्धशरीरप्रदेशसंस्थानं बाह्यनिर्वृत्तियक्कुं । इंद्रियपर्य्याप्त्यायातनोकर्म्मवर्गणास्कंधरूपं स्पर्शाद्यर्थज्ञानसहकारि यत्तदभ्यंतरमुपकरणं तदाश्रयमप्प त्वगादिकं बाह्यमुपकरणमेंदितु ज्ञातव्यमक्कुं ।

निर्व्यापारावस्थायामनिन्द्रियव्यपदेशः स्यादिति चेन्न, दत्तोत्तरत्वात् । अथवा 'स्वार्थेनिरतानीन्द्रियाणि' अर्यते—परिच्छिद्यते इत्यर्थः स्वस्मिन्नर्थे च निरतानीन्द्रियाणि निरवद्यत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति । अथवा इन्दनाद्याधिपत्यात् इन्द्रियाणि स्पर्शरसगन्धरूपशब्दज्ञानावरणकर्मणां क्षयोपशमाः द्रव्येन्द्रियकारणानीन्द्रियाणीत्यर्थः । उक्तं च—

यदिन्द्रस्यात्मनो लिङ्गं यदि वा इन्द्रेण कर्मणा ।
सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं चेति तदिन्द्रियम् ॥—[ ]
मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथानेकप्रकारतः ।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥—[ ]

पुनस्तेष्विन्द्रियेषु तत्तदावरणक्षयोपशमविशिष्टात्मकप्रदेशसंस्थानमभ्यन्तरनिर्वृत्तिः । तदवष्टब्धशरीरप्रदेशसंस्थानं बाह्यनिर्वृत्तिः । इन्द्रियपर्याप्त्यायातनोकर्मवर्गणास्कन्धरूपं स्पर्शाद्यर्थज्ञानसहकारि यत्तदभ्यन्तरमुपकरणम् । तदाश्रयभूतत्वगादिकं बाह्यमुपकरणमिति ज्ञातव्यम् ॥१६५॥

समाधान—नहीं, इसका उत्तर दे चुके हैं कि रूढ़िके बलसे वह इन्द्रिय ही है । अथवा 'स्वार्थेनिरतानीन्द्रियाणि'। 'अर्यते' अर्थात् जो जाना जाये वह अर्थ है । अपने अर्थमें जो निरत हैं, वे इन्द्रियाँ हैं। निर्दोष होनेसे इसमें किसी तर्कके लिए स्थान नहीं है । अथवा 'इन्दनात्' अर्थात् स्वामित्वके कारण इन्द्रियाँ हैं । स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द सम्बन्धी ज्ञानावरण कर्मोंके जो क्षयोपशम द्रव्येन्द्रियके कारण हैं, वे इन्द्रियाँ हैं; यह इसका अभिप्राय है । जो इन्द्र अर्थात् आत्माका लिंग (चिह्न) है, वह इन्द्रिय है । अथवा इन्द्र अर्थात् कर्मके द्वारा रची गयी है, सेवित है, दृष्ट अथवा दत्त है, वह इन्द्रिय है । जैसे मलसे लिपटी हुई मणिकी व्यक्ति अनेक प्रकारसे होती है, उसी तरह कर्मोंसे लिप्त आत्माकी व्यक्ति भी अनेक प्रकारसे होती है अर्थात् ये इन्द्रियाँ कर्मविद्ध आत्माकी ही विविध प्रकारसे व्यक्तियाँ हैं ।

द्रव्येन्द्रियके दो भेद हैं—निर्वृत्ति और उपकरण । ये दोनों भी बाह्य और अभ्यन्तरके भेदसे दो प्रकारके हैं । अपने-अपने आवरणके क्षयोपशमसे विशिष्ट आत्मप्रदेशोंका इन्द्रियके आकार रचना होना अभ्यन्तरनिर्वृत्ति है । और उन आत्मप्रदेशोंसे सम्बद्ध स्थानमें शरीरके प्रदेशोंकी तदनुरूप रचना बाह्यनिर्वृत्ति है । इन्द्रिय पर्याप्तिके द्वारा आये नोकर्मवर्गणारूप स्कन्ध जो स्पर्श आदि अर्थके ज्ञानमें सहायक हैं, वह अभ्यन्तर उपकरण है । और उसके आश्रयभूत त्वचा वगैरह बाह्य उपकरण हैं ॥१६५॥

अनंतरं तथाविधेंद्रियंगळिंदमुपलक्षितंगळप्प जीवंगळं पेळ्दपं :—

फासरसगंधरूवे सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं ।
इगिबितिचदुपंचिंदिय जीवा णियभेयभिण्णाओ ॥१६६॥

स्पर्शरसगंधरूपे शब्दे ज्ञानं च चिह्नं येषां । एकद्वित्रिचतुः पंचेंद्रिय जीवा निजभेदभिन्नाः ॥

आवुवु केलवु जीवंगळ्गे स्पर्शदोळे ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळेकेंद्रियजीवंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु द्वींद्रियंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं गंधदोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु त्रींद्रियंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं गंधदोळं रूपदोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु चतुरिंद्रियंगळु । आवुवु केलवक्के स्पर्शदोळं रसदोळं गंधदोळं रूपदोळं शब्ददोळं ज्ञानं चिह्नमा जीवंगळु पंचेंद्रियंगळु । आ एल्ला जीवंगळु निजनिजभेदप्रभेदभिन्नंगळेंदितरियल्पडुवु ।

अनंतरमेकेंद्रियादिजीवंगळ्गे संभविसुविंद्रियसंख्याप्ररूपणार्थं पेळ्दपं ।

एइंदियस्स फुसणं एक्कंचि य होदि सेसजीवाणं ।
होंति कमवड्ढियाइं जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं ॥१६७॥

एकेंद्रियस्य स्पर्शनमेकमेव भवति शेषजीवानां । भवंति क्रमवर्द्धितानि जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि ।

एकेंद्रियजीवक्के स्पर्शनमो दे इंद्रियमक्कुं । शेषद्वींद्रियादिजीवंगळ्गे जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्रंगळु क्रमदिंदमेकैकवृद्धंगळप्पुवु । एकमेवेंद्रियं येषां ते एकेंद्रियाः । द्वे एवेंद्रिये येषां ते द्वींद्रियाः । त्रीण्ये-

---

अथ तथाविधेन्द्रियोपलक्षितजीवानाह—

येषां जीवानां स्पर्शे ज्ञानं चिह्नं ते जीवा एकेन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसयोर्ज्ञानं चिह्नं ते जीवा द्वीन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसगन्धेषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवास्त्रीन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसगन्धरूपेषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवाश्चतुरिन्द्रियाः । येषां स्पर्शरसगन्धरूपशब्देषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवाः पञ्चेन्द्रियाः । ते सर्वेऽपि जीवा निजनिजभेदैर्भिन्ना इति ज्ञातव्याः ॥१६६॥ अथैकेन्द्रियादिजीवानां संभवदिन्द्रियसंख्यां प्ररूपयति—

एकेन्द्रियजीवस्य एकं स्पर्शनमेव भवति । शेषद्वीन्द्रियादिजीवानां जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि क्रमेणैकैक-

---

आगे इन्द्रियोंसे युक्त जीवोंको कहते हैं—

जिन जीवोंका चिह्न स्पर्शविषयक ज्ञान है, वे जीव एकेन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श और रसका ज्ञान है, वे जीव दोइन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श, रस और गन्धका ज्ञान है, वे जीव तेइन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श, रस, गन्ध और रूपका ज्ञान है, वे जीव चतुरिन्द्रिय हैं। जिनका चिह्न स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्दका ज्ञान है, वे जीव पंचेन्द्रिय हैं। ये सब जीव अपने-अपने भेदसे अनेक प्रकारके हैं ॥१६६॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंके सम्भाव्य इन्द्रियोंकी संख्या कहते हैं—

एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन ही होती है। शेष दो इन्द्रिय आदि जीवोंके जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रमें-से क्रमसे एक-एक अधिक होती है। जिनके एक ही इन्द्रिय है, वे एकेन्द्रिय

---

१. म स्पर्शन । २. म रसन । ३. म स्पर्शन । ४. म चालु । स्पर्शनदोलं । ५. म भालु स्पर्शम दोलं । ६. म °गलेंदरियल्प° ।

वेंद्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः। चत्वार्येवेंद्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः। पंचैवेंद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रियाः। एंदितु व्युत्पत्तिसिद्धंगळप्पुवु।

अनंतरं स्पर्शनादींद्रियंगळगे विषयक्षेत्रपरिमाणमं पेळ्दपं।

धणुसीसदुदसयकदी जोयणछादालहीणतिसहस्सा।
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
अट्ठसहस्स धणूणं विसया दुगुणा असण्णित्ति ॥१६८॥

धनुष्विंशत्यष्टदशकृतिर्योजनानां षट्चत्वारिंशद्हीनत्रिसहस्राणि। अष्टसहस्रं धनुषां विषया द्विगुणा असंज्ञिपर्यंतं॥

एकेंद्रियजीवक्के स्पर्शनेंद्रियविषयक्षेत्रं विंशतिकृतिवंडप्रमितमक्कुं ४००। द्वींद्रियादसंज्ञिपर्यंतं स्पर्शनेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु ८००। १६००। ३२००। ६४००। द्वींद्रियजीवक्के रसनेंद्रियविषयमष्टकृतिवंडप्रमाणमक्कुं ६४। त्रींद्रियादियसंज्ञिपंचेंद्रियावसानमाद जीवंगळगे रसनेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु। १२८। २५६। ५१२। त्रींद्रियजीवक्के घ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रं दशकृतिवंडपरिमितमक्कुं। १००। चतुरिंद्रियादिगळगे घ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु। च २००। अ ४००। चतुरिंद्रियजीवक्के चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं षट्चत्वारिंशन्न्यूनत्रिसहस्रयोजनपरिमितमक्कुं।२९५४।

वृद्धानि भवन्ति। एकमेव इन्द्रियं येषां ते एकेन्द्रियाः। द्वे एव इन्द्रिये येषां ते द्वीन्द्रियाः। त्रीण्येवेन्द्रियाणि येषां ते त्रीन्द्रियाः। चत्वारि एव इन्द्रियाणि येषां ते चतुरिन्द्रियाः। पञ्चैव इन्द्रियाणि येषां ते पञ्चेन्द्रिया इति व्युत्पत्तिसिद्धत्वात् ॥१६७॥ अथ स्पर्शनादीन्द्रियाणां विषयक्षेत्रं प्रमाणयति—

एकेन्द्रियजीवस्य स्पर्शनेन्द्रियविषयक्षेत्रं विंशतिकृतिदण्डप्रमितं भवति। ४००। द्वीन्द्रियादसंज्ञिपर्यन्तं स्पर्शनेन्द्रियविषयक्षेत्राणि द्विगुणद्विगुणक्रमाणि भवन्ति। ८००। १६००। ३२००। ६४००। द्वीन्द्रियजीवस्य रसनेन्द्रियविषयक्षेत्रम् अष्टकृतिदण्डप्रमाणं भवति। ६४। त्रीन्द्रियादसंज्ञिपञ्चेन्द्रियावसानजीवानां रसनेन्द्रियविषयक्षेत्राणि द्विगुणद्विगुणक्रमाणि भवन्ति। १२८। २५६। ५१२। त्रीन्द्रियजीवस्य घ्राणेन्द्रियविषयक्षेत्रं दशकृतिदण्डपरिमितं भवति १००। चतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियजीवयोर्घ्राणेन्द्रियविषयक्षेत्रं द्विगुणद्विगुणक्रमं भवति। २००। ४००। चतुरिन्द्रियजीवस्य चक्षुरिन्द्रियविषयक्षेत्रं षट्चत्वारिंशन्न्यूनत्रिसहस्रयोजनप्रमितं

हैं। जिनके दो ही इन्द्रियाँ हैं, वे दोइन्द्रिय हैं। जिनके तीन ही इन्द्रियाँ हैं, वे तेइन्द्रिय हैं। जिनके चार ही इन्द्रियाँ हैं, वे चौइन्द्रिय हैं और जिनके पाँच इन्द्रियाँ हैं, वे पंचेन्द्रिय हैं। इस तरह प्रत्येककी व्युत्पत्तिसे सिद्ध है ॥१६७॥

आगे स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण कहते हैं—

एकेन्द्रिय जीवके स्पर्शन इन्द्रियके विषयका क्षेत्र बीसकी कृति अर्थात् ४०० धनुष प्रमाण है। दो इन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त जीवोंके स्पर्शन इन्द्रियके विषयका क्षेत्र क्रमसे दूना-दूना होता है—८००।१६००।३२००।६४००। दो इन्द्रिय जीवके रसना इन्द्रियके विषयका क्षेत्र आठकी कृति अर्थात् ६४ धनुष प्रमाण होता है। तेइन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त जीवोंके रसना इन्द्रियका विषयक्षेत्र क्रमसे दूना-दूना १२८।२५६।५१२ धनुष होता है। तेइन्द्रिय जीवके घ्राणेन्द्रियका विषयक्षेत्र दसकी कृति अर्थात् १०० धनुष होता है। चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके घ्राणेन्द्रियका विषयक्षेत्र दूना-दूना २००।४०० धनुष होता है। चतुरिन्द्रिय जीवके चक्षु इन्द्रियके विषयका क्षेत्र छियालीस कम तीन हजार योजन

असंज्ञिपंचेंद्रियक्के चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं तद्द्विगुणमक्कुं । ५९०८ । असंज्ञिपंचेंद्रियक्के श्रोत्रेंद्रियविषयक्षेत्रं अष्टसहस्रदंडावच्छिन्नमक्कुं । ८००० ॥

सण्णिस्स वार सोदे तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स ।
सत्तेतालसहस्सा बेसदतेसट्ठिमदिरेया ॥१६९॥

संज्ञिनो द्वादश श्रोत्रे त्रयाणां नवयोजनानि चक्षुषः । सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशतत्रिषष्टि- ५
रतिरेकाणि ॥

संज्ञिपंचेंद्रियक्के स्पर्शनरसनघ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रंगळ्नवनव-योजन प्रमितंगळक्कुं । ९ । ९ । ९ । चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं साधिकत्रिषष्टयभ्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनप्रमितमक्कुं । ४७२६३ । ७ । श्रोत्रेंद्रियविषयक्षेत्रं द्वादशयोजनप्रमितमक्कुं १२ ।

मागदेशके – अधिके आ सुरिशिलासिते जा व्हासिते

तिण्णिसयसट्ठिविरहिदलक्खं दसमूलताडिदे मूलं । १०
णवगुणिदे सट्ठिहिदे चक्खुप्फासस्स अद्धाणं ॥१७०॥

त्रीणि शतानि षष्ठिविरहितलक्षं दशमूलताडिते मूलं नवगुणितं षष्ठिहृते चक्षुःस्पर्श-स्याध्वानम् ।

जंबूद्वीपलक्षयोजनव्यासवोळ् पार्श्वद्वयद्वीपचारक्षेत्रमं सूनूररुवत्तु योजनमं कळेदोडे शेषमभ्यं-तरपरिधिविष्कंभप्रमाणमक्कुं । ९९६४० । १५

इदं "विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदि" एंबु वर्ग्गसि दशगुणितं माडिव करणियं ९९२८१२९६००० मूलंगोळलभ्यंतरपरिधिप्रमाणमक्कुं । ३१५०८९ इल्लि त्रैराशिकं

भवति । २९५४ । असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चक्षुरिन्द्रियविषयक्षेत्रं द्विगुणं भवति । ५९०८ । असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य श्रोत्रेन्द्रियविषयक्षेत्रं अष्टसहस्रदण्डावच्छिन्नं भवति ८००० ॥१६८॥

संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियविषयक्षेत्राणि नवनवयोजनमात्राणि चक्षुरिन्द्रियविषयक्षेत्रं २०
साधिकं त्रिषष्टयभ्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनप्रमितं भवति । ४७२६३ $\frac{७}{२०}$ श्रोत्रेन्द्रियविषयक्षेत्रं द्वादशयोजनमात्रं भवति ॥१६९॥

जम्बूद्वीपस्य लक्षयोजनव्यासः पार्श्वद्वयद्वीपचारक्षेत्रेण षष्ट्यधिकत्रिशतयोजनमात्रेण विरहितोऽभ्यन्तर-परिधिविष्कम्भः स्यात् ९९६४० । अस्य वर्गं कृत्वा दशकरण्या वर्गमूलग्रहणयोग्यराशिना गुणयित्वा ९९२८१२९६००० मूले गृहीते अभ्यन्तरपरिधिप्रमाणं भवति । ३१५०८९ । षष्टिमुहूर्तानां प्र ६० एतावद्गु- २५

प्रमाण २९५४ होता है । असंज्ञी पंचेन्द्रियके चक्षु इन्द्रियका विषयक्षेत्र उससे दूना ५९०८ योजन होता है । असंज्ञीपंचेन्द्रियके श्रोत्रेन्द्रियके विषयका क्षेत्र आठ हजार धनुष है ॥१६८॥

संज्ञी पंचेन्द्रियके स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रियके विषयका क्षेत्र नव-नव योजन मात्र है । चक्षु इन्द्रियका विषयक्षेत्र सैंतालीस हजार दो सौ तरेसठ योजन तथा सात योजनका बीसवाँ भाग अधिक है ४७२६३ $\frac{७}{२०}$ । श्रोत्र इन्द्रियका विषयक्षेत्र बारह योजन ३०
मात्र है ॥१६९॥

संज्ञी पंचेन्द्रियके चक्षु इन्द्रियके विषयके उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण लानेकी यह विधि है— जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है । सूर्यके गमनका क्षेत्र, जिसे चार क्षेत्र कहते हैं, जम्बूद्वीपके भीतर दोनों पार्श्वोंमें एक सौ अस्सी-एक सौ अस्सी योजन तक है । अतः एक लाखमें-से तीन सौ साठ कम करनेपर जम्बूद्वीपकी अभ्यन्तर परिधिका विस्तार ९९६४० ३५

माडल्पडुगुं। अरुवत्तु मुहूर्तक्केल्लमिनितु गम्यक्षेत्रमागलो भत्तु मुहूर्त्तक्केनितु गम्यक्षेत्रमक्कुमेंदितु प्र । मू ६० । फ । ३१५०८९ । इ । मु । ९ । लब्धक्षेत्रं चक्षुरिंद्रियविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्रमक्कुं। ४७२६३ $\frac{३}{६०}$ अनंतरमिंद्रियंगळ्गे संस्थाननिर्देशमं माडिदपं।

चक्खू सोदं घाणं जिब्भायारं मसूरजवणाली ।
अदिमुत्तखुरप्पसमं फासं तु अणेयसंठाणं ॥१७१॥

चक्षुःश्रोत्रं घ्राणं जिह्वाकारः यथासंख्यं मसूरिकयवनाल्यतिमुक्तकक्षुरप्रसमः भवत्याकारः स्पर्शनं स्वनेकसंस्थानम् ॥

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारंगळ्गे यथासंख्यमागि मसूरिकायवनालिकयतिमुक्तक क्षुरप्रसमानंगळप्पुवु ८।

स्पर्शनमनेक संस्थानमक्कुमेकें दोडे पृथिव्यादिगळ्गं द्वींद्रियादिगळ्गं शरीराकारमनेकविधमप्पुदरिंदं स्पर्शनेंद्रियक्के सर्व्वांगव्यापित्वमिदं शरीराकारानुकारित्वमुंटप्पुदु कारणमागि।

म्यक्षेत्रं फ ३१५०८९ तदा नवमुहूर्तानां इ ९ कियदिति त्रैराशिकं कृत्वा नवभिर्गुणयित्वा षष्ट्याहृते सति यल्लब्धं तच्चक्षुरिन्द्रियविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्रं भवति ४७२६३$\frac{३}{६०}$ ॥१७०॥ अथेन्द्रियाणां संस्थानं निर्दिशति—

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारा यथासंख्यं मसूरिकायवनाल्यतिमुक्तकक्षुरप्रसमाना भवन्ति। स्पर्शनमनेकसंस्थानं भवति। पृथिव्यादीनां द्वीन्द्रियादीनां च शरीराकारस्यानेकविधत्वात् सर्वव्यापिनः स्पर्शनेन्द्रियस्यापि

होता है। इसका वर्ग करके फिर उसे दससे गुणा करनेपर ९९२८१२९६००० होता है। इसका वर्गमूल ग्रहण करनेपर अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण ३१५०८९ होता है। इस परिधिको एक सूर्य साठ मुहूर्तमें समाप्त करता है। और सूर्यको निषधाचलसे अयोध्या तकका मार्ग तय करनेमें नौ मुहूर्त लगते हैं। यदि सूर्य साठ मुहूर्तमें ३१५०८९ योजन चलता है, तो नौ मुहूर्तमें कितना चलता है, ऐसा त्रैराशिक करनेपर ३१५०८९ को नौसे गुणा करके साठसे भाग देनेपर जो लब्ध आता है ४७२६३$\frac{३}{६०}$, वही चक्षु इन्द्रियके विषयका सबसे उत्कृष्ट क्षेत्र होता है।

विशेषार्थ—जब श्रावण मासमें सूर्य अभ्यन्तरवीथीमें होता है, तो निषधगिरिके ऊपर उदय होते सूर्यको अयोध्याके मध्यमें महलके ऊपर स्थित भगवान् ऋषभदेव, भरतचक्रवर्ती आदि विशिष्ट क्षयोपशमवाले विशिष्ट पुरुष देखते हैं। अतः अयोध्यासे निषधाचलकी जितनी दूरी है उतना ही चक्षुका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र है। सूर्यको उस समय अयोध्या तक आनेमें नौ मुहूर्त लगते हैं, क्योंकि अयोध्या मध्यमें है और उस समय दिन अठारह मुहूर्तका होता है। तथा एक सूर्य दो दिनमें परिधिको समाप्त करता है—इस तरह प्रमाणराशि साठ मुहूर्त और इच्छाराशि नौ मुहूर्त सिद्ध होती है ॥१७०॥

आगे इन्द्रियोंका आकार कहते हैं—

चक्षु इन्द्रियका आकार मसूरके समान है। श्रोत्र इन्द्रियका आकार जौकी नालीके समान है। घ्राण इन्द्रियका आकार तिलके फूलके समान है। और जिह्वाका आकार खुरपाके समान है। स्पर्शन इन्द्रियके अनेक आकार हैं, क्योंकि पृथिवी आदि और दोइन्द्रिय आदिके शरीरके आकार अनेक प्रकारके होनेसे सर्वशरीरव्यापी स्पर्शन इन्द्रियके भी अनेक आकार होते हैं ॥१७१॥

अनंतरमिंद्रियसंस्थानंगळ्गे प्रदेशावगाहप्रमाणमं पेळ्दपं ।

अंगुलअसंखभागं संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं ।
तत्तो असंखगुणिदं अंगुलसंखेज्जयं तत्तु ॥१७२॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

अंगुलासंख्यभागं संख्यातगुणं ततो विशेषाधिकम् । ततो संख्यगुणितमंगुलसंख्येयं तत्रैव ॥

घनांगुलमं रूप्पाधिकपल्यासंख्यातगुणितसंख्यातद्वयविवर्गमुं पल्यासंख्यातविवर्गमुं भागिसि ५

पल्यासंख्यातविवं गुणितप्रमाण $\frac{६\ \overline{प}\ प}{प\ \ a}$ चक्षुरिंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणमक्कुमिदं संख्यातविवं गुणिसि-
$a\ 1\ 1\ 1$

दनितु श्रोत्रेंद्रियावगाहप्रमाणमक्कु । $\frac{६\ \overline{प}\ प}{प\ \ a}$ घ्राणेंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं पल्यासंख्यातैकभाग-
$a\ 1\ a$

खंडितैक भागमात्र $\frac{६\ प}{प\ a}\ \frac{\overline{\quad}}{प\ प}$ मितितरिंदधिकमक्कु $\frac{६}{प\ 1}$ जिह्वेंद्रियप्रदेशावगाहं पल्या-
$a\ 1\ a\ a$ a

संख्यातैकभागगुणितमक्कु $\frac{६}{1}$ मिदे घनांगुलसंख्येयभागप्रमितमक्कुं ।

तथाविधत्वसंभवात् ॥१७१॥ अथेन्द्रियसंस्थानानां प्रदेशावगाहं प्रमाणयति— १०

रूपाधिकपल्यासंख्यातसंख्यातद्वयपल्यासंख्यातभक्तपल्यासंख्यातगुणितघनाङ्गुलमात्रं $\frac{६\ 1\ प}{प\ a}\ \frac{\overline{\quad}}{प}$
$a\ 1\ 1\ 1\ a$

चक्षुरिन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति । ततः संख्यातेन गुणितं श्रोत्रेन्द्रियावगाहप्रमाणं भवति— $\frac{६\ 1\ प}{a}\ \frac{\overline{\quad}}{प}$
$प\ 1\ 1\ प$
$a\quad a$

ततस्तस्यैव पल्यासंख्येयभागेन समच्छेदेन $\frac{६\ 1\ प}{प\ a}\ \frac{\overline{\quad}}{प\ प}$ अधिकमपवर्तितं घ्राणेन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति
$a\ 1\ 1\ a\ p$

आगे इन्द्रियोंके आकारोंके प्रदेशोंके अवगाहका प्रमाण कहते हैं—

घनांगुलको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करो तथा उसमें एक अधिक पल्यके १५
असंख्यातवें भागसे, दो बार संख्यातसे तथा पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दो, जो प्रमाण आवे, उतनी ही चक्षु इन्द्रियकी अवगाहना है अर्थात् उतने आकाशके प्रदेशोंको चक्षु इन्द्रिय रोके हुए हैं। उससे संख्यातगुणी श्रोत्र इन्द्रियकी अवगाहनाका प्रमाण है। इस गुणाकारसे एक बार संख्यातके भागहारका अपवर्तन करके फिर उसे पल्यके असंख्यातवें भागका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे, उसे श्रोत्र इन्द्रियकी अवगाहनामें जोड़नेसे घ्राण इन्द्रियके प्रदेशोंकी २०
अवगाहनाका प्रमाण होता है। उसे पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जिह्वा इन्द्रियके

---

१. गेनाधि क ।

अनंतरं स्पर्शनेंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणमं पेळ्दपं।

मानदशोद्धारक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥१७३॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तस्य जातस्य तृतीयसमये। अंगुलासंख्येयभागं जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकन उत्पन्नतृतीयसमयदोळु आवुदों दु शरीरावगाहं घनांगुलासंख्येयभागप्रमित ६।८-२२ मिदु स्पर्शनेंद्रियप्रदेशावगाहं जघन्यमक्कुं। उत्कृष्टविदं

६ अ
प १९।८।९।८।२२।१।१९
अ अ अ

महामत्स्यदावुदों दु शरीरावगाहं संख्यातघनांगुलप्रमितमदुत्कृष्टस्य ६१११११ स्पर्शनेंद्रियदेशावगाहप्रमाणमक्कुं।

अनंतरमेकेंद्रियादि संसारिगळं पेळ्दु मत्तमतींद्रियज्ञानिगळं पेळदपं।

६। ततः पल्यासंख्येयभागगुणितं जिह्वेन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति तत्तु घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रमेव।

प १
अ
६ ॥१७२॥ अथ स्पर्शनेन्द्रियप्रदेशावगाहप्रमाणमाह—
१

स्पर्शनेन्द्रियस्य जघन्यप्रदेशावगाहप्रमाणं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पन्नस्य तृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यशरीरावगहनघनाङ्गुलसंख्येयभागप्रमितं— ६। ८। २२ तदेव भवति। उत्कृष्टं

अ १—
प १९।८।९।८।२२।१।१९
अ अ अ

तु महामत्स्ये यदुत्कृष्टशरीरावगाहनं संख्यातघनाङ्गुलप्रमितमुक्तं ६ १ १ १ १ १ तद्भवति। [सर्वत्र स्पर्शनेन्द्रियस्य स्वशरीरप्रमाणसर्वात्मप्रदेशसंगत्वात्] ॥१७३॥ एवमिन्द्रियज्ञानिजीवान्—संसारिजीवान् प्ररूप्य अधुना अतीन्द्रियज्ञानिजीवान् प्ररूपयति—

प्रदेशोंकी अवगाहनाका प्रमाण होता है। इस प्रकार यह जिह्वा इन्द्रियकी अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भाग मात्र ही है ॥१७२॥

आगे स्पर्शन इन्द्रियके प्रदेशोंकी अवगाहनाका प्रमाण कहते हैं—

स्पर्शन इन्द्रियकी जघन्य प्रदेशावगाहनाका प्रमाण सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें जो पहले कही जघन्य शरीरावगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग है, उतना ही है। तथा उत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्यकी जो उत्कृष्ट शरीरावगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, वही है। क्योंकि सर्वत्र स्पर्शन इन्द्रिय अपने शरीर प्रमाण सर्व आत्मप्रदेशोंमें संगत होती है ॥१७३॥

इस प्रकार इन्द्रियज्ञानवाले संसारी जीवोंका कथन करके अब अतीन्द्रियज्ञानवाले जीवोंका कथन करते हैं—

---

१. [ ] एतदन्तर्गतः पाठः 'ब' प्रतौ नास्ति।

णवि इंदियकरणजुदा अवग्गहादीहि गाहया अत्थे ।
णेव य इंदियसोक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा ॥१७४॥

नापींद्रियकरणयुता अवग्रहादिभिर्ग्राहका अर्थान् । नैव चेंद्रियसौख्याः अतींद्रियानंतज्ञानसुखाः ॥

इंदियकरणंगळिंदमुन्मीलनादिव्यापारंगळिंद नियमदिंद कूडिवरल्लरवुकारणदिंदमवग्रहादि क्षायोपशमिकज्ञानं गळिंवमर्थग्राहकरुमल्तु । इंद्रियविषयसंश्लेषजनितसुखमनुळ्ळरुमल्तुमाक्कें लंब- जीवंगळा जीवंगळु जिनरुं सिद्धरुगळुमोळरवग्गंदुमिंद्रियानंतज्ञानसुखमनुळ्ळराज्ञानसुखंगळ्गे शुद्धात्मस्वरूपोपलब्धिसमुद्भूतमुंटप्पुदरिंदं ।

अनंतरमेकेंद्रियादिगळ्गे सामान्यदिदं संख्येयं पेळ्दपं ।

थावरसंखपिपीलियभमरमणुस्सादिगा समेदा जे ।
जुगवारमसंखेज्जा णंताणंता णिगोदभवा ॥१७५॥

स्थावरशंखपिपीलिका भ्रमरमनुष्यादिकाः सभेदा ये । द्विकवारमसंख्येया अनंताश्चानंता निगोदभवाः ॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायिकपंचस्थावरंगळप्पेकेंद्रियंगळं शंखादिद्वींद्रियंगळं पिपीलिकादित्रींद्रियंगळं भ्रमरादिचतुरिंद्रियंगळं मनुष्यादिपंचेंद्रियंगळिवु तंतम्मवांतरभेदसहितंगळ् परगे पेळल्पट्टुवु प्रत्येकं द्विकवारासंख्यातंगळ् । निगोदसाधारणवनस्पतिकायिकंगळनंतानंतंगळ् ।

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

ये जीवा नियमेन इन्द्रियकरणैः—उन्मीलनादिव्यापारैः, युताः—युक्ता न सन्ति [कस्मात् ? तेषामशरीरत्वात् तत्कारणजातिनामादिकर्माभावाच्च] । तथा च अवग्रहादिभिः—क्षायोपशमिकज्ञानैरर्थग्राहका न भवन्ति । पुनः इन्द्रियविषयसंश्लेषजनितसुखयुता नैव सन्ति ते जिनसिद्धनामानो जीवा अनिन्द्रियानन्तज्ञानसुखकलिता भवन्ति । कस्मात् ? तज्ज्ञानसुखयोः शुद्धात्मस्वरूपोपलब्ध्युत्पन्नत्वात् ॥१७४॥ अथैकेन्द्रियादीनां सामान्यसंख्यामाह—

स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायिकनामानः पञ्चविधैकेन्द्रियाः । शङ्खादयो द्वीन्द्रियाः । पिपीलिकादयस्त्रीन्द्रियाः । भ्रमरादयश्चतुरिन्द्रियाः । मनुष्यादयः पञ्चेन्द्रियाश्च स्वस्वावान्तरभेदसहिताः प्राक्

जो जीव नियमसे इन्द्रियोंके उन्मीलन आदि व्यापारसे युक्त नहीं हैं, क्योंकि वे अशरीरी हैं, उनके इन्द्रियव्यापारका कारण जातिनाम आदि कर्मोंका अभाव है, इसीसे अवग्रह आदि क्षायोपशमिक ज्ञानोंके द्वारा पदार्थोंका ग्रहण नहीं करते । तथा इन्द्रिय और विषयके सम्बन्धसे होनेवाले सुखसे भी युक्त नहीं हैं; वे जिन और सिद्ध नामधारी जीव अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान और सुखसे युक्त होते हैं, क्योंकि उनका ज्ञान और सुख शुद्ध आत्मस्वरूपकी उपलब्धिसे उत्पन्न हुआ है ॥१७४॥

आगे एकेन्द्रिय आदि जीवोंकी सामान्य संख्या कहते हैं—

स्थावर अर्थात् पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक नामवाले पाँच प्रकारके एकेन्द्रिय, शंख आदि दोइन्द्रिय, पिपीलिका आदि तेइन्द्रिय, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय, तथा मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय पहले कहे अपने-अपने

१. [ ] एतदन्तर्गतः पाठः 'ब' प्रतौ नास्ति । २. तत एव च ब ।

अनंतरं विशेषसंख्येयं पेळ्वातं मोवलोळेकेंद्रियसंख्येयं पेळ्दपं ।

तसहीणो संसारी एयक्खा ताण संखगा भागा ।
पुण्णाणं परिमाणं संखेज्जदिमं अपुण्णाणं ॥१७६॥

त्रसहीनसंसारिण एकाक्षास्तेषां संख्येयभागाः पूर्णानां परिमाणं संख्येयं भागमपूर्णानां ॥

त्रसराशिविहीनमप्प संसारिराशियदेकेंद्रियराशिक्कु १३ मी एकेंद्रियराशिय संख्यातबहुभा-
गमात्रपर्याप्तकंगळ्प्रमाणमक्कुं सुचिसल्पडुवुदक्कागि मत्तमेकभागमपर्याप्तकराशिप्रमाणमक्कु— प अ
१३ — ४ १३— १
मिल्लिय संख्यातक्के पंचांकं संदृष्टियक्कुं ॥ ५ ५

अनंतरमेकेंद्रियावांतरभेदसंख्याविशेषमं पेळ्दपं ।

बादरसुहुमा तेसिं पुण्णापुण्णेत्ति छव्विहाणंपि ।
तक्कायमग्गणाए भणिस्समाणक्कमो णेया ॥१७७॥

बादरसूक्ष्मास्तेषां पूर्णापूर्णा इति षड्विधानामपि । तत्कायमार्गणायां भणिष्यमाण-
क्रमो ज्ञेयः ॥

सामान्यैकेंद्रियराशियदु बादरसूक्ष्मभेदविंदं द्विप्रकारमक्कुमा बादरसूक्ष्मंगळुं प्रत्येकं पर्याप्ता-
पर्याप्तभेदविंदं चतुःप्रकारमप्पुदरिंमितारुं प्रकारंगळ्गे तत्कायमार्गणेयोळु मुंबे पेळ्व संख्याक्रममरि-
यल्पडुगुं । इल्लियुं संख्याक्रममरियल्पडुगुमदं तेंदोडे एकेंद्रियसामान्यराशियनसंख्यातलोकविंद

कथिताः ते प्रत्येकं द्विकवारासंख्यातप्रमिता भवन्ति । निगोदाः-साधारणवनस्पतिकायिकाः, अनन्तानन्ता भवन्ति ॥१७५॥ अथ विशेषसंख्यां कथयंस्तावदेकेन्द्रियसंख्यामाह—

त्रसराशिहीनसंसारिराशिरेकेन्द्रियराशिर्भवति १३—। अस्य च संख्यातबहुभागाः पर्याप्तकराशिपरिमाणं भवति १३—। ४। तदेकभागः अपर्याप्तकराशिप्रमाणं भवति १३—। १। अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः पञ्चाङ्कः
५ ५
५ ॥१७६॥ अथैकेन्द्रियावान्तरभेदसंख्याविशेषमाह—

सामान्यैकेन्द्रियराशेर्बादरसूक्ष्माविति द्वौ भेदौ तयोः पुनः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । एवं षड्भेदानां तत्कायमार्गणायां भणिष्यमाणः क्रमो ज्ञेयः । तद्यथा—एकेन्द्रियसामान्यराशेरसंख्यातलोकभक्तैकभागो

अवान्तर भेदोंके साथ प्रत्येक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं । और निगोद अर्थात् साधारण वनस्पतिकायिक अनन्तानन्त हैं ॥१७५॥

आगे विशेष संख्याको कहते हुए पहले एकेन्द्रियोंकी संख्या कहते हैं—

संसारी जीवराशिमें-से त्रसजीवोंकी राशि कम कर देनेपर एकेन्द्रिय जीवोंकी राशि होती है । इस एकेन्द्रिय राशिमें संख्यातसे भाग देनेपर संख्यात बहुभाग प्रमाण पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवोंका परिमाण होता है और संख्यात एक भाग प्रमाण अपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीवोंका परिमाण होता है ॥१७६॥

सामान्य एकेन्द्रिय राशिके बादर और सूक्ष्म इस प्रकार दो भेद हैं । और उनमें-से प्रत्येकके पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद हैं । इस तरह एकेन्द्रियके चार भेद हैं । छहों प्रकारके जीवोंका कायमार्गणामें क्रमसे कथन किया जायेगा जो इस प्रकार है—

एकेन्द्रिय सामान्यकी राशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भाग बादर एकेन्द्रिय जीवोंकी राशिका प्रमाण है और बहुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी राशिका प्रमाण है ।

भागिसिदेकभागमात्रं बादरैकेंद्रियराशिप्रमाणमक्कुं १३—१ तद्बहुभागं १३—८ सूक्ष्मैकेंद्रियराशि-
९ ९
प्रमाणमक्कुं इल्लियसंख्यातलोकक्के नवांके संदृष्टियक्कुं । ९ ।

मत्तं बादरैकेंद्रियराशिनसंख्यातलोकदिंवं खंडिसिदेकभागं बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तराशियक्कुं । १३ तद्बहुभागं बादरैकेंद्रियापर्याप्तराशिप्रमाणमक्कु १३—६ इल्लियुमसंख्यातलोकक्के सप्तांकं
९७ ९।७
संदृष्टियक्कुं । ७ । ५

सूक्ष्मैकेंद्रियराशियं संख्यातदिंवं खंडिसिद बहुभागं सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तराशिय प्रमाण-मक्कुं १३—८।४ तदेकभागमपर्य्याप्तराशिप्रमाणमक्कु १३—८।१ इल्लियुं संख्यातक्के
९।५ ९।५।
संदृष्टि पंचांकमक्कुं ५ ।

अनंतरं त्रसजीवसंख्येयं गाथात्रयदिंद पेळ्दपं ।

बितिचपमाणमसंखेणवहिदपदरंगुलेण संविदिसागर जी महाराज १०
हीणकमं पडिभागो आवलियासंखभागो दु ॥१७८॥

द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियमानमसंख्येनापहृतप्रतरांगुलेन हृतप्रतरो हीनक्रमः प्रतिभाग आवल्य-संख्यभागस्तु ।

द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवंगळ सामान्ययुतराशिप्रमाणमसंख्यातदिनपहृतप्रतरांगुलदिनपहृत-जगत्प्रतरप्रमितमक्कु ४ मिल्लिद्वींद्रियराशिप्रमाणमेल्लवरिंदमधिकमक्कुमदं नोडे त्रींद्रियंगल्
a १५

बादरैकेन्द्रियराशिप्रमाणं १३— १ तद्बहुभागः १३—८ सूक्ष्मैकेन्द्रियराशिप्रमाणं । अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिर्व-
९ ९
वाङ्कः ९ । पुनः बादरैकेन्द्रियराशेरसंख्यातलोकभक्तैकभागस्तत्पर्याप्तराशिः । १३—। १ १ बहुभागस्तद-
९ ७
पर्याप्तराशिः १३—। १ ६ अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिः सप्ताङ्कः । सूक्ष्मैकेन्द्रियराशेः संख्यातभक्तबहुभाग-
९।७
स्तत्पर्याप्तराशिः १३—। ८।४ तदेकभागस्तदपर्याप्तराशिः १३—। ८।१ अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः
९।५ ९।५
पञ्चाङ्कः ॥१७७॥ अथ त्रसजीवसंख्यां गाथात्रयेणाह— २०

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियजीवानां सामान्यराशिप्रमाणं असंख्यातभक्तप्रतराङ्गुलेन भक्तं जगत्प्रतरप्रमितं

पुनः बादर एकेन्द्रियोंकी राशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भाग बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंकी राशिका प्रमाण है और बहुभाग अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय राशिका प्रमाण है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी राशिमें संख्यातका भाग देनेपर बहुभाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंका प्रमाण है और एक-एक भाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंका प्रमाण है ॥१७७॥ २५

आगे त्रसजीवोंकी संख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंकी सामान्य राशिका प्रमाण असंख्यातसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगतप्रतरमें दो, जो प्रमाण आवे उतना है। इनमें

विशेषहीनंगळवं नोडल् चतुरिंद्रियराशियं विशेषहीनंगळं त्रीन्द्रियराशियं विशेषहीनंगळं द्वीन्द्रियराशियं विशेषहीनंगलुमिल्लि विशेषागमननिमित्तं भागहारं प्रतिभागहारमदुवुमावल्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कुमा विभागक्रममे तें दोडे :—

बहुभागे समभागो चउण्हमेदेसिमेक्कभागम्हि ।
उत्तक्कमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥१७९॥

बहुभागे समभागश्चतुर्णामेकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ।

त्रसराशियनितव $\frac{=}{४}_{a}$ नावल्यसंख्यातभागदिंदं भागिसि तदेकभागमं बेरों देडेयोलिरिसि बहुभागमं नाल्करिंदं भागिसि द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियंगळगे नाल्कैडेयोळ् समभागमं कुडुवुदु :—

द्वि $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ त्रि $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ च $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ । प $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ मत्तं बेरिरिसिदेक भागमनिव $\frac{=}{४}_{a}$ । ९ ।

नावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसि बहुभागमं द्वींद्रियक्के कोडुवुदु $\frac{=}{४}_{a}$ । ९ । ९ तदेकभागमनिव

$\frac{=}{४}_{a}$ । ९ । ९ नावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसि बहुभागमं त्रींद्रियक्के कुडुवुदु $\frac{=}{४}_{a}$ । ९ । ९ । ९

भवति $\frac{=}{४}_{a}$ । अत्र द्वीन्द्रियराशिप्रमाणं सर्वतोऽधिकम् । ततस्त्रीन्द्रियराशिः विशेषहीनः । ततश्चतुरिन्द्रियराशिः विशेषहीनः । ततः पञ्चेन्द्रियराशिः विशेषहीनः । अत्र विशेषागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहारः स चावल्यसंख्येयभागमात्रः ॥१७८॥ तद्विभागक्रमः कथमिति चेदाह—

त्रसराशिं $\frac{=}{४}_{a}$ आवल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा एकभागं पृथक् संस्थाप्य बहुभागं $\frac{=}{४}_{a}$ । ८ चतुर्भिर्भक्त्वा- ९

द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियाणां चतुर्षु स्थानेषु समभागतया दत्त्वा $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ । १८ । $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ । १८ । $\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ । १८ ।

$\frac{=}{४}_{a}$ । ४ । ९ । १८ तत्पृथक्स्थापितैकभागमिमं $\frac{=}{४}_{a}$ । ९ । १ पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन $\frac{=}{४}_{a}$ । ९ । ९ । १ भक्त्वा बहुभागं

दोइन्द्रियोंकी राशिका प्रमाण सबसे अधिक है । उससे तेइन्द्रियोंकी राशि विशेष हीन है । उससे चतुरिन्द्रियोंकी राशि विशेष हीन है । उससे पंचेन्द्रियोंकी राशि विशेष हीन है । यहाँ विशेषका प्रमाण जाननेके लिए भागहार और भागहारका भागहार आवलीके असंख्यातवें भाग है ॥१७८॥

आगे उस विभागका क्रम दिखलाते हैं—

त्रसराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित करके एक भागको अलग रखो । और बहुभागको चारसे भाजित करके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियोंके चार स्थानोंमें बराबर-बराबर समभाग रूपसे दो । अलग रखे हुए एक भागमें पुनः आवलीके

तदेकभागमनिद = १ नावल्यसंख्यातदिंद भागिसि बहुभागमं चतुरिंद्रियक्के कुडुवुदु
४।९।९।९
अ

= १ तदेकभागमं पंचेंद्रियक्के कोडुवुदु = १ इंतिल्ल विभागन्यासमिदु
४।९।९।९।९ ४।९।९।९।९
अ अ

वि = ८	ति = ८	च = ८	प = ८
४।४।९	४।४।९	४।४।९	४।४।९
अ	अ ८	अ	अ
= ८	४।९९९	=	= ८
४।९।९	अ	४	४।९।९।९।९
अ		अ ९।९।९।९	अ

ई राशिगळं समच्छेदमं माडि कूडिदोडिदु न्यासवु :—

वि = ८४२४	ति = ६१२०	च = ५८६४	प = ५८३६
४।४।६५६१	४।४।६५६१	४।४।६५६१	४।४।६५६१
अ	अ	अ	अ

द्वीन्द्रियस्य दत्त्वा = १ ८ ४।९।९ तदेकभागमिमं = १ ४।९।९ पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा बहुभागं
अ अ

त्रीन्द्रियस्य दत्त्वा = १ ८ ४।९।९।९ तदेकभागमिमं = १ ४।९।९।९ पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा बहुभागं
अ अ

चतुरिन्द्रियस्य दत्त्वा = ८ ४।९।९।९।९ तदेकभागं पञ्चेन्द्रियस्य दद्यात् = १ ४।९।९।९।९ तद्विन्यासः—
अ अ

समभागः	वि = ८ ४।४।९ अ	ति = ८ ४।४।९ अ	च = ८ ४।४।९ अ	पं = ८ ४।४।५ अ
देयभागः	= ८ ४।९।९ अ	= ८ ४।९।९।९ अ	= ८ ४।९।९।९।९ अ	= १ ४।९९९९ अ

स्वस्वाधस्तनराशयः स्वस्वोपरितनराशिषु समच्छेदेन मिलिता ईदृशा भवन्ति—

वि = ८४२४	ति = ६१२०	च = ५८६४	पं = ५८३६
४, ४, ६५९१	४, ४, ६५६१	४, ४, ६५६१	४, ४, ६५६१
अ	अ	अ	अ

असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग दोइन्द्रियको दो। और एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग तेइन्द्रियको दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग चतुरिन्द्रियको दो। और शेष एक भाग पंचेन्द्रियको

तिबिपंचपुण्णपमाणं पदरंगुलसंखभागहिदपदरं ।
हीणकमं पुण्णूणा तिदि चपजीवा अपज्जत्ता ॥१८०॥

त्रिद्विपंचचतुःपूर्णप्रमाणं प्रतरांगुलसंख्येयभागहृतप्रतरो । हीनक्रमः पूर्णोनाः द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवाः अपर्याप्ताः ।

धर्मदर्शक आचार्य श्री सविधिसागर जी महाराज

५ त्रिद्विपंचचतुरिंद्रियपर्याप्तराशिप्रमाण प्रतरांगुलसंख्येयबहुभक्तजगत्प्रतरप्रमितमक्कु $\frac{४}{५}$

मिल्लि त्रींद्रियादिगळुक्तक्रमदिंदं हीनक्रमंगळप्पुवु । इल्लियं पूर्व्योक्तक्रमदिंदं—

बहुभागे समभागो चउण्णमेवेसिमेक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थ वि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥

एंदी सूत्रोक्तक्रमदिंदं त्रींद्रियद्वींद्रिय पंचेंद्रियचतुरिंद्रियऽपर्याप्तकंगळ्गे विभागिसिद न्यासमिदु :

१० ति = ८ बि = ८ प = ८ च = ८ ई राशिगळं
४।४।९ ४।४।९ ४।४।९ ४।४।९
५ ५ ५ ५
= ८ = ८ = ८ = १
४।९।९ ४९९९ ४९९९९ ४९९९९
५ ५ ५ ५

समच्छेदमं माडि कूडिद न्यासमिदु :—

१५ त्रिद्विपञ्चचतुरिन्द्रियपर्याप्तराशिप्रमाणं प्रतराङ्गुलसंख्येयभागभक्तजगत्प्रतरप्रमितं भवति = अत्र त्रीन्द्रि- $\frac{४}{५}$

यादय उक्तक्रमेण हीनक्रमा भवन्ति । अत्रापि 'बहुभागे समभागो' इत्यादिसूत्रोक्तक्रमेण त्रिद्विपञ्चचतुरिन्द्रियपर्याप्तकानां विभक्तस्य विन्यासोऽयम्—

ति = ८ ४।४।९ ५	वि = ८ ४।४।९ ५	पं = ८ ४।४।९ ५	च = ८ ४।४।९ ५
= ८ ४।९।९ ५	= ८ ४।९९९ ५	= ८ ४।९९९९ ५	= १ ४९९९९ ५

२० समच्छेदेन मिलितानां न्यासोऽयम् ।

दो । अपने-अपने पीछेकी राशिको अपनी-अपनी पहली राशिमें मिलानेसे दोइन्द्रिय आदिकी संख्या आती है ॥१७९॥

पर्याप्त तेइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव राशिका प्रमाण प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे भाजित जगतप्रतर प्रमाण है। इनमें सबसे अधिक तेइन्द्रिय हैं। उनसे कम दोइन्द्रिय हैं। उनसे कम पंचेन्द्रिय हैं और उनसे कम चौइन्द्रिय हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त 'बहुभागे समभागो' इत्यादि सूत्रमें कहे अनुसार विभाग करना। अर्थात् सामान्य पर्याप्त त्रसराशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रखकर शेष बहुभागके चार समान भाग करके एक-एक भाग तेइन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और

ति = ८४२४ बि = ६१२० प = ५८६४ च = ५८३६
४।४।६५६१ ४।४।६५६१ ४।४।६५६१ ४।४।६५६१
५ ५ ५ ५

ई पर्य्याप्तराशिगळं तंतम्म द्वींद्रियादि सामान्यराशिगळोळ कळिदोडे द्वींद्रियादि पंचेंद्रिय-पर्य्यंतमिर्द्दपर्य्याप्तकंगळ प्रमाणमक्कुमवरुक न्यासमिदु

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बि ५।६१२० ति ५।८४२४ च ५।५८३६ प ५।५८६४
= अ।८४२४ = अ।६१२० = अ।५८६४ = अ।५८३६
४।४।६५६१ ४।४।६५६१ ४।४।६५६१ ४।४।६५६१

ज्ञातपर्य्याप्तराशिगळं तंतम्म सामान्यराशिय मेले यिरिसि सोन्नेयनिक्किदोडे कळेवुदें-बुदर्त्थमा शेषराशियुं तत्तदपर्य्याप्तकराशिप्रमाणमेंबुदु ज्ञातव्यमक्कुं।

ति = ८४२४ ४।४।६५६१ ५	बि = ६१२० ४।४।६५६१ ५	पं = ५८६४ ४।४।६५६१ ५	च = ५८३६ ४।४।६५६१ ५

एतेषु पर्याप्तराशिषु निजनिजद्वीन्द्रियादिसामान्यराशिषु अपनीतेषु शेषद्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानाम् अपर्याप्तक-जीवराशीनां प्रमाणं भवतीति ज्ञातव्यम्—

० ५।६१२० बि = ८४२४ अ ४।४।६५६१	० ५।८४२४ ति = ।६१२० अ ४।४।६५६१	० ५।५८३६ च = ।५८६४ अ ४।४।६५६१	० ५।५८६४ पं. = ।५८३६ अ ४।४।६५६१

चतुरिन्द्रियको देना। अलग रखे एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग तेइन्द्रियको देना। अलग रखे एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग दोइन्द्रियको देना। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग पंचेन्द्रियको देना। अलग रखा एक भाग चौइन्द्रियको देना। इस प्रकार अपने-अपने सम-भागमें पीछेके देय भागको जोड़नेसे तेइन्दिय आदि पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है। पहले जो सामान्य दोइन्द्रिय आदि जीवोंका प्रमाण कहा था, उसमें-से यहाँ कहे अपने-अपने पर्याप्तके परिमाणको घटानेपर अपना-अपना अपर्याप्त जीवोंका परिमाण होता है ॥१८०॥

विशेषार्थ—यहां 'बहुभागे समभागो' को अंक संदृष्टिसे स्पष्ट किया जाता है। कल्पना कीजिए कि त्रसजीवोंकी सामान्य राशि ६४०० है और भागहार आवलीके असंख्यातवें भागका प्रमाण ४ है। अतः ४का भाग ६४००में देनेसे एक भाग १६०० को अलग रखकर बहुभाग ४८००के चार समान भाग करके दोइन्द्रिय आदिको १२००, १२०० दे दिये। शेष एक भाग १६०० में पुनः ४ से भाग देकर एक भाग ४०० को अलग रखकर बहुभाग १२०० दोइन्द्रियको दिया। एक भाग चार सौमें चारसे भाग देकर एक भाग १०० को अलग रख बहुभाग ३०० तेइन्द्रियको दिया। शेष एक भाग १००में पुनः ४ से भाग देकर बहुभाग ७५ चौइन्द्रियको दिया और शेष एक भाग २५ पंचेन्द्रियोंको दिया। अपने-अपने समभाग और बहुभागको मिलानेसे अपना-अपना प्रमाण होता है ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु भूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति-जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड विंशतिप्ररूपणंगळोळु सप्तमेंद्रियप्ररूपणाधिकारं रूपितमाय्तु ।

---

५ इत्याचार्य-श्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु इन्द्रियमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तमोऽधिकारः ॥७॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले
१० श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें- इन्द्रिय प्ररूपणा नामक सातवाँ महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कायमार्गणाप्ररूपणाधिकारः ॥८॥

अनंतरं कायमार्गणेयं पेळ्दपं :—

जाई अविणाभावीतसथावरउदयजो हवे काओ।
सो जिणमदम्मि भणियो पुढविकायादिछब्भेयो ॥१२१॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

जात्यविनाभावित्रसस्थावरोदयजो भवेत्कायः। स जिनमते भणितः पृथ्वीकायादिषड्भेदः॥

जातिनामकर्म्माविनाभावित्रसस्थावरनामकर्म्मोदयजनितात्मत्रसस्थावरत्वपर्य्यायमं कायमेंबुदु। आ कायमुं पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेददिं षड्भेदमनुळ्ळुदेंदु जिनमतदोळु पेळल्पट्टुदु। कायते त्रसस्थावर इति व्यवहर्तृजनैः शब्द्यते कथ्यते इति कायः एंदितु द्वेजनक्रियेयोळं स्थानक्रियेयोळं तल्लक्षणं निरुक्तिसिद्धमक्कु। चीयते पुष्टिं नीयते पुद्गलस्कंधैरिति कायः। औदारिकादिशरीरमुं कायस्यमप्पात्मपर्य्यायमुं कायमेंदितुपचारदिंदं पेळल्पट्टुदु। जातित्रसस्थावरनाम-

चन्द्रकोटिप्रभाचक्रं समवसृतिसंयुतम्।
नवकेवललब्धीशं चन्द्रप्रभजिनं भजे ॥८॥

अथ कायमार्गणामाह—

जातिनामकर्मोदयाविनाभावित्रसस्थावरनामकर्मोदयजनितः आत्मनः त्रसत्वस्थावरत्वपर्यायः कायो नाम। स च कायः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदात् षड्भेदो जिनमते भणितः। कायते—त्रस इति स्थावर इति च व्यवहर्तृजनैः शब्द्यते—कथ्यते इति कायः इति उद्वेजनक्रियायां स्थानक्रियायां च तल्लक्षणस्य निरुक्तिसिद्धत्वात्। चीयते—पुष्टिं नीयते पुद्गलस्कन्धैरिति वा कायः—औदारिकादिशरीरं, कायस्य आत्मपर्यायोऽपि काय इत्युपचर्यते। जातित्रसस्थावरनामकर्मणां जीवविपाकित्वेन तेषां कार्यस्य जीवपर्यायस्य काय

एक कोटि चन्द्रमाके समान प्रभामण्डलसे शोभित, समवसरणमें विराजमान तथा नव केवल लब्धियोंके स्वामी चन्द्रप्रभ जिनको भजो ॥

आगे कायमार्गणाको कहते हैं—

जातिनामकर्मके उदयके अविनाभावी त्रस और स्थावर नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न आत्माकी त्रसरूप और स्थावररूप पर्यायको काय कहते हैं। वह काय पृथिवीकाय, अप्काय, तैजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकायके भेदसे छह प्रकारका जिनमतमें कहा है। 'कायते' अर्थात् व्यवहारी पुरुषोंके द्वारा 'त्रस' 'स्थावर' इस प्रकारसे कही जाती है, वह काय है। 'त्रस्' धातुका अर्थ उद्वेगरूप किया है, उससे त्रस शब्द निष्पन्न हुआ है और स्थान क्रियासे स्थावर शब्द निष्पन्न हुआ है, अतः त्रस और स्थावरका लक्षण निरुक्तिसिद्ध है। अथवा 'चीयते' अर्थात् पुद्गलस्कन्धोंके द्वारा जो पुष्टिको प्राप्त हो, वह काय है। अर्थात् औदारिक आदि शरीर। कायमें स्थित आत्मपर्यायको भी उपचारसे काय कहते हैं। जातिनामकर्म,

१. कायन्ते ब। २. शब्द्यन्ते-कथ्यन्ते ब। ३. कायाः ब।

कर्म्मंगळ्गे जीवविपाकत्वंदिवमवरकार्य्यमप्प जीवपर्य्यायंगळ्के कायमेंदितु व्यवहारसिद्धियक्कुं। पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्म्मोदयकार्य्यत्वदिंनिल्लि शरीरक्के कायशब्ददिंद ग्रहणमिल्लि।

अनंतरं स्थावरकायपंचकप्रपंचमं पेळ्दपं।

पुढवी-आऊतेऊ-वाऊकम्मोदयेण तत्थेव।
णियवण्णचउक्कजुदो ताणं देहो हवे णियमा ॥१८२॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुकर्म्मोदयेन तत्रैव। निजवर्णचतुष्कयुतस्तेषां देहो भवेन्नियमात्॥

पृथिव्यप्तेजोवायुविशिष्टनामकर्म्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदयदिंदमा पृथिव्यप्तेजोवायुपुद्गलस्कंधंगळोळ् तंतम्मवर्णचतुष्कवोळ्कूडिया जीवंगळ देहं नियमदिंद अप्पुदंतागुत्तिरलु पृथ्वीकायिकंगळ्मप्कायिकंगळुं तेजस्कायिकंगळुं वायुकायिकंगळुमप्पुवु। पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामिति पृथ्वीकायिकाः अथवा पृथ्वीकायः शरीरं येषां ते पृथ्वीकायिकाः।

अप्कायोऽप्त्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामित्यप्कायिकाः अथवा आपः कायः शरीरं येषां तेऽप्कायिकाः। तेजःकायस्तेजस्त्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामिति तेजस्कायिकाः अथवा तेजः कायः शरीरं येषां ते तेजस्कायिकाः। वायुकायो वायुत्वविशिष्टस्थावरपर्य्यायोऽस्त्येषामिति वायुकायिकाः अथवा वायुः कायः शरीरं येषां ते वायुकायिकाः।

इति व्यवहारसिद्धेः। पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्मोदयकार्यत्वेन अत्र शरीरस्यैव कायशब्देन ग्रहणं नास्ति ॥१८१॥ अथ स्थावरकायपञ्चकं प्रपञ्चयति—

पृथिव्यप्तेजोवायुविशिष्टनामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदयेन तत्रैव पृथिव्यप्तेजोवायुपुद्गलस्कन्धेषु तत्तद्वर्णचतुष्कयुतः तेषां जीवानां देहः नियमेन भवेत्। तथा सति पृथ्वीकायिका अप्कायिकाः तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च भवन्ति। पृथ्वीकायः—पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति पृथ्वीकायिकाः। अथवा पृथ्वी कायः—शरीरं येषां ते पृथ्वीकायिकाः। अप्कायः—अप्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामित्यप्कायिकाः। अथवा आपः कायः शरीरं येषां ते अप्कायिकाः। तेजस्कायः-तेजस्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति तेजस्कायिकाः। अथवा तेजः कायः शरीरं येषां ते तेजस्कायिकाः। वायुकायः—वायुत्वविशिष्टस्थावरपर्यायो-

---

त्रसनामकर्म और स्थावरनामकर्म जीवविपाकी होनेसे उनका कार्य जीवपर्याय काय है, यह व्यवहारसिद्ध है। पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्मके उदयका कार्य होनेसे यहाँ काय शब्दसे शरीरका ही ग्रहण नहीं है ॥१८१॥

आगे स्थावर कायके पाँच भेदोंका कथन करते हैं—

नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें एक स्थावर नामकर्म है और उसकी भी उत्तरप्रकृतियाँ पृथ्वी, अप्, तेज और वायु नामकर्म हैं। इस प्रकार नामकर्मकी इन उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके उदयसे पृथिवीरूप, जलरूप, तेजरूप और वायुरूप पुद्गल स्कन्धोंमें अपने-अपने रूपरसगन्ध और स्पर्शगुणोंसे युक्त उन जीवोंके शरीर नियमसे होते हैं। ऐसा होनेपर वे जीव पृथिवीकायिक, तैजस्कायिक और वायुकायिक होते हैं। पृथ्वीकाय अर्थात् पृथिवीत्व विशिष्ट स्थावरपर्याय जिनकी है, वे पृथिवीकायिक हैं। अथवा पृथ्वी जिनका काय अर्थात् शरीर है, वे पृथ्वीकायिक हैं। अप्काय अर्थात् अप्त्वविशिष्ट स्थावर पर्याय जिनके हैं वे अप्कायिक हैं। अथवा अप् जिनका काय अर्थात् शरीर है, वे अप्कायिक हैं। तैजस्काय अर्थात् तैजस्त्व विशिष्ट स्थावर पर्याय जिनकी है, वे तैजस्कायिक हैं। अथवा तेज जिनका काय अर्थात् शरीर है, वे तैजस्कायिक हैं। वायुकाय अर्थात् वायुत्वविशिष्ट स्थावर पर्याय जिनके हैं, वे

एंबितु तिर्य्यग्गत्येकेंद्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरकायाविगळ्गेनामकर्म्मप्रकृत्युदयमनाश्रयिसिये एंबिवि निरुक्ति संभविसुगुं। पूर्व्वकायिकत्वपर्य्यायाभिमुखं विग्रहगतियोळ् वर्त्तमानमप्प पृथ्वीजीवं, गृहीतपृथ्वीशरीरमनुळ्ळं पृथ्वीकायिकमा जीवनिव बिडल्पट्ट देहं पृथ्वीकायमक्कुं। मिते अब्जीवः अप्कायिकोऽप्कायास्तेजोजीवस्तेजस्कायिकस्तेजस्कायः। वायुजीवो वायुकायिको वायुकाय इति। एंबितु त्रिधा व्यवस्थेयरियल्पडुगुं। ९

बादरसुहुमुदएण य बादरसुहुमा हवंति तद्देहा।
घादसरीरं थूलं अघाददेहं हवे सुहुमं ॥१८२॥

बादरसूक्ष्मोदयेन च बादरसूक्ष्मौ भवतस्तद्देहौ। घातशरीरं स्थूलमघातशरीरं भवेत्सूक्ष्मं॥

बादरनामकर्म्मोदयविंदं तद्देहजंगळप्प पृथ्वीकायिकादिजीवंगळु बादरंगळप्पुवु। सूक्ष्मनामकर्म्मोदयविंद पृथ्वीकायिकादिजीवंगळु सूक्ष्मंगळेंबु पेळल्पडुवुवु। एकेंदोडे जीवविपाकिगळप्प १०
बादरसूक्ष्मनामकर्म्मोदयंगळिंदं बादरसूक्ष्मजीवव्यपदेशमुंटप्पुदरिंदमा देहंगळुं बादरंगळु सूक्ष्मंगळु अप्पुदरिंदमिंद्रियविषयसंयोगजनितसुखदुःखमेंतंते परदिंदं तनगे तन्निंदं परंगे मेणु प्रतिघातसंभव-

---

ऽस्त्येषामिति वायुकायिकाः। अथवा वायुः कायः—शरीरं येषां ते वायुकायिकाः। तिर्यग्गत्येकेन्द्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरकायादीनां नामकर्मप्रकृतीनाम् उदयमाश्रित्यैव एवंविधनिरुक्तिसंभवात्। पृथ्वीकायिकत्वपर्यायाभिमुखो विग्रहगतौ वर्तमानः पृथ्वीजीवः। गृहीतपृथ्वीशरीरः पृथ्वीकायिकः। तत्परित्यक्तदेहः पृथ्वीकायः। १५
तथैव अब्जीवः अप्कायिकः अप्कायः। तेजोजीवः तेजस्कायिकः तेजस्कायः। वायुजीवः वायुकायिकः वायुकायः, इति त्रिविधत्वं ज्ञातव्यम् ॥१८२॥

बादरनामकर्मोदयेन तद्देहाः पृथ्वीकायिकादिजीवाः बादरा भवन्ति। सूक्ष्मनामकर्मोदयेन च पृथ्वीकायिकादिजीवाः सूक्ष्मा भवन्ति। जीवविपाकिबादरसूक्ष्मनामकर्मोदयाभ्यां बादरसूक्ष्मजीवव्यपदेशसद्भावात्तद्देहा अपि बादरसूक्ष्मा भवन्ति। तेन इन्द्रियविषयसंयोगजनितसुखदुःखवत् परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा प्रतिघात- २०

वायुकायिक हैं। अथवा वायु जिनका काय है, वे वायुकायिक हैं। तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, स्थावरकाय आदि नामकर्मकी प्रकृतियोंके उदयको लेकर ही इस प्रकारकी निरुक्ति होती है। जो जीव पूर्व पर्यायको छोड़कर पृथ्वीकायिकरूप पर्यायको धारण करनेके अभिमुख होता हुआ जबतक विग्रहगतिमें वर्तमान है, तबतक उसे पृथ्वीजीव कहते हैं। जिसने पृथ्वीको शरीररूपसे ग्रहण कर लिया है, वह पृथ्वीकायिक है। जिस पृथ्वी- २५
में-से जीव निकल गया है वह पृथ्वीकाय है। इसी तरह अप्जीव, अप्कायिक, अप्काय, तेजोजीव, तेजस्कायिक, तेजस्काय, वायुजीव, वायुकायिक, वायुकाय इस प्रकार प्रत्येकके तीन-तीन भेद जानना ॥१८२॥

बादरनामकर्मके उदयसे पृथ्वीकायिक आदि जीव बादर होते हैं और सूक्ष्मनामकर्मके उदयसे पृथ्वीकायिक आदि जीव सूक्ष्म होते हैं, क्योंकि बादर और सूक्ष्मनामकर्म ३०
जीवविपाकी हैं। अतः उनके उदयसे जीव बादर और सूक्ष्म कहे जाते हैं। और उनके सम्बन्धसे उनके शरीर भी बादर और सूक्ष्म होते हैं। इस कारणसे इन्द्रिय और विषयके संयोगसे उत्पन्न सुख-दुःखकी तरह परसे अपना और अपनेसे परका घात सम्भव होनेसे घात शरीर स्थूल होता है और अघात शरीर सूक्ष्म होता है। उन शरीरोंके धारी भी घात

मार्गदर्शक :-

वत्तणिवं घातशरीरं स्थूलमक्कुमघातदेहं सूक्ष्ममक्कुं। तद्देहिगळुं घातशरीररप्प स्थूलरुमघातदेहमप्प सूक्ष्मरुमप्पर। घातलक्षितं शरीरं येषां ते घातशरीराः अघातो देहो येषां ते अघातदेहाः एंदितु [illegible]।

तद्देहमंगुलस्सासंखं भागस्स विंदमाणं तु।
आधारे थूलाओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ॥१८४॥

तद्देहोंगुलस्यासंख्येयभागस्य वृंदमानस्तु। आधारे स्थूलाः सर्वत्र निरंतराः सूक्ष्माः॥

आ बादरसूक्ष्मंगळप्प पृथ्वीकायिकादिचतुःप्रकारमप्प जीवंगळ शरीरंगळु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवेकेंदोडे—सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तकजघन्यशरीरावगाहं मोदल्गोंडु बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकोत्कृष्टशरीरावगाहनपर्यंतं ४२ नाल्वत्तेरडुं स्थानदोळं पल्यासंख्यातभागहारंगळु घनांगुलक्के संभविसुगुमप्पुदरिंदमदल्लदेयुमागमदोळु "बिपुण्णजहण्णोत्ति य संखं संखं गुणं तत्तो" एंबसंख्यातगुणकारसंभवदिंदं घनांगुलमसंख्यातभागहाराभिव्यक्ति प्रसिद्धियक्कुं।

सूक्ष्मापर्याप्तवातकायजघन्यावगाहनन्यासमिदु ६।८।२२ पृथ्वीकायबाव-

प। १९। ८। ८। ८। २२। १। १
a a a a

संभवात् घातशरीरं स्थूलं भवति। अघातदेहः सूक्ष्मो भवति। तद्देहिनोऽपि घातशरीराः स्थूलाः, अघातदेहाः सूक्ष्मा भवन्ति। घातोपलक्षितं शरीरं येषां ते घातशरीराः। अघातो देहो येषां ते अघातदेहा इति बाध्यत्वाबाध्यत्वपरिणतिसंभवात् ॥१८३॥

तेषां बादरसूक्ष्मपृथ्वीकायिकादिचतुर्विधजीवानां शरीराणि घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्राणि भवन्ति। सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तकजघन्यशरीरावगाहनादारभ्य बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकोत्कृष्टशरीरावगाहनपर्यन्तं द्वाचत्वारिंशत्स्थानेषु घनाङ्गुलस्य पल्यासंख्यातभागहारसंभवात्। अथवा परमागमे—'बीपुण्णजहण्णोत्तियअसङ्खसङ्खं गुणं तत्तो। इदयसंख्यातगुणकारसंभवबचनात्तस्यासंख्यातभागहाराभिव्यक्तिप्रसिद्धेः। तत्र तु सूक्ष्मापर्याप्तवात-

६।८।२२
a
कायजघन्यावगाहनन्यासोऽयं प १९। ८। ८। ८। २२। १ १ पृथ्वीकायबादरपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनप्रमाण-
a a a

शरीरवाले स्थूल और अघात शरीरवाले सूक्ष्म होते हैं। जिनका शरीर घात सहित होता है अर्थात् घाता जाता है, वे घातशरीर हैं और जिनका शरीर घात रहित होता है, वे अघातशरीर हैं। इस प्रकार बाध्यत्व और अबाध्यत्व रूप परिणमन सम्भव होनेसे शरीर बादर-सूक्ष्म होते हैं ॥१८३॥

उन बादर और सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि चार प्रकारके जीवोंके शरीर घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होते हैं। क्योंकि सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तककी जघन्य शरीर अवगाहनासे लेकर बादरपर्याप्त पृथ्वीकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त बयालीस स्थानोंमें घनांगुलका पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र भागहार होता है। अथवा परमागममें कहा है कि 'दोइन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना पर्यन्त असंख्यातवें भाग गुणाकार है और आगे संख्यातवें भाग गुणाकार है' इस सूत्रसे बयालीसवें स्थानको असंख्यातसे गुणा करनेपर अगले स्थानमें संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना होती है। अतः बयालीसवें स्थानमें घनांगुलका

रपर्य्याप्तकोत्कृष्टावगाहनप्रमाणमिदु ६।८।४ आधारवोळाश्रयदोळु वर्त्तिसुव

अ
प।४।८।४।१।९

अ अ
शरीरम नुळ्ळवावु केलवु जीवंगळवेल्लमुं स्थूलंगळु बादरंगळ बुदर्थ्य । आधारविदमा जीवंगळ्गे बादरस्वभावप्रतिघाताभावमोवोडेमधःपतनरूपगतिप्रतिघातसंभवविदं मुं पेळ्व लक्षण समणसमर्त्थनं मेणिदक्कुं । सर्व्वत्र सर्व्वलोकदोळं जलस्थलाकाशदोळं मेणु निरंतरंगळुमाधारानपेक्षितशरीरमनुळ्ळ जीवंगळु सूक्ष्मंगळप्पुवु । जलस्थलरूपाधारविदमा जीवंगळ शरीरगतिप्रतिघातमुमिल्लप्पुदंतं सूक्ष्मपरिणामम्प्पुदरिदमा जीवंगळु सूक्ष्मंगळप्पुवु । अंतरयति व्यवदधाति विलंबयतीत्यंतरमाधारस्ततो निष्क्रांता निरंतरा एंदितिल्लियं पूर्व्वोक्तलक्षण समर्त्थनमरियल्पडुगुं । ओ एंबिदु शिष्यसंबोधनमक्कुमेत्तलानु बादरपर्य्याप्तक वायुकायिकादिगळ्गे जघन्यशरीरावगाहनमल्पमदं नोडलसंख्येयगुणत्वदिदं सूक्ष्मपर्य्याप्तकवायुकायिकादि पृथ्वीकायिकावसानमाद जीवंगळ्गे जघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनंगळु परिवप्पुदंतादोडं सूक्ष्मनामकर्म्मोदयसामर्थ्यदिदमन्यदिदमप्रतिघातमक्कुं कारणमागि निष्क्रमिसि नुसुळ्दु पोप परिणतिसंभविसुगुमें तोगळु श्लक्ष्णवस्त्रनिष्क्रांतजलबिंदुविनंते, बादरंगळु मत्तल्पशरीरत्वमादोडं बादरनामकर्म्मोदयदिं मन्यदिदं प्रतिघातमक्कुं । श्लक्ष्णवस्त्रानिष्क्रां-

६।८।४।
अ
मिदं प।४।८।४।१।९। आधारे थूलओ आधारे आश्रये वर्तमानशरीरविशिष्टाः ये जीवास्ते सर्वेऽपि
अ अ
स्थूलाः—बादरा इत्यर्थः । आधारेण तेषां बादरस्वभावप्रतिघाताभावेऽप्यधःपतनरूपप्रतिघातसंभवात् प्रागुक्तलक्षणमेव समर्थितं भवति । सर्वत्र—सर्वलोके जले स्थले आकाशे वा निरन्तराः—आधारानपेक्षितशरीराः जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति । जलस्थलरूपाधारेण तेषां शरीरगतिप्रतिघाती नास्ति । अत्यन्तसूक्ष्मपरिणामत्वात्ते जीवाः सूक्ष्मा भवन्ति । अन्तरयति—व्यवदधाति विलम्बयतीत्यन्तरं—आधारः, ततो निष्क्रान्ता निरन्तरा इत्यत्रापि पूर्वोक्तलक्षणमेव समर्थितं ज्ञातव्यम् । ओ इति शिष्यसंबोधनम् । यद्यपि बादरापर्याप्तवायुकायिकादीनां जघन्यशरीरावगाहनमल्पम् । ततोऽसंख्येयगुणत्वेन सूक्ष्मपर्याप्तकवायुकायिकादिपृथ्वीकायिकावसानजीवानां जघन्योत्कृष्ट-

भागहार असंख्यात सिद्ध है, यह स्पष्ट है । पीछे जीव समासाधिकारमें सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायकी जघन्य अवगाहना और बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिककी उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण कहा ही है सो जानना । वर्तमान शरीरसे विशिष्ट जो जीव आधार अर्थात् आश्रयसे रहते हैं, वे सब बादर होते हैं । आधारसे उनके बादर स्वभावका प्रतिघात नहीं होनेपर भी नीचे गिरनेरूप स्वभावका प्रतिघात होता है । अतः पहले जो घातरूप लक्षण बादर शरीरका कहा था, उसीका समर्थन होता है । गाथामें 'ओ' पद शिष्यके लिए सम्बोधन है । यद्यपि बादर अपर्याप्त वायुकायिक आदिकी जघन्य शरीरावगाहना अल्प है और उससे असंख्यात गुणी होनेसे सूक्ष्म पर्याप्तक वायुकायिकसे लेकर पृथ्वीकायिक पर्यन्त जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना महान् है । फिर भी सूक्ष्मनामकर्मके उदयके सामर्थ्यसे उनका अन्यसे प्रतिघात नहीं होता, और जैसे महीन वस्त्रसे जलकी बूंद निकल जाती है उसी तरह ये सूक्ष्म जीव निकलकर चले जाते हैं । किन्तु बादरोंका शरीर अल्प होनेपर भी बादर-

१. म °वदोलम्° । २. म °णं मेणि° ।

तसर्वपदंते । एत्तलानुं वृद्धिप्राप्तर स्थूलशरीरक्के वज्रशिलाविनिष्क्रांतियुंदु अदु तपोतिशयमाहात्म्यदिनेंदु पेळ्वेमाचित्यं हि तपोविद्यामणिमंत्रौषधिशक्त्यतिशयमाहात्म्यं दृष्टस्वभावमप्पुदु कारणमागि स्वभावोऽतर्कगोचरः एंदितु समस्तवादिसंमतमक्कुमप्पुदरिंदं अतिशयरहितवस्तुविचारदल्लि पूर्व्वोक्तशास्त्रमार्गमे बादरसूक्ष्मंगळ्गे सिद्धमक्कुं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति ।
पत्तेयं सामण्णं पदिट्ठिदिदरंति पत्तेयं ॥१८५॥

उदये तु वनस्पतिकर्म्मणश्च जीवा वनस्पतयो भवंति । प्रत्येकं सामान्यप्रतिष्ठितेतरमिति प्रत्येकं ॥

वनस्पतिविशिष्टस्थावरनामकर्म्मोत्तरोत्तरप्रकृतिपुदयदोळु तु मत्ते जीवंगळु वनस्पतिकायिकंगळप्पुवुमवुं प्रत्येकशरीरंगळुं सामान्यशरीरंगळेंदितु द्विविधंगळप्पुवु। एकं प्रतिनियतं प्रत्येकमेंदु जीवक्कोंदे शरीरमेंबुदत्थं । प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । समानमेव सामान्यं सामान्यं शरीरं येषां ते सामान्यशरीराः साधारणशरीरा इत्यर्थः ।

शरीरावगाहनानि महान्ति तथापि सूक्ष्मनामकर्मोदयसामर्थ्यात् अन्यतस्तेषां प्रतिघातोभावात् निष्क्रम्य गच्छन्ति श्लक्ष्णवस्त्रनिष्क्रान्तजलबिन्दुवत् । बादराणां पुनरल्पशरीरत्वेऽपि बादरनामकर्मोदयवशादन्येन प्रतिघातो भवत्येव श्लक्ष्णवस्त्रानिष्क्रान्तसर्षपवत् । यद्यपि ऋद्धिप्राप्तानां स्थूलशरीरस्य वज्रशिलादिनिष्क्रान्तिरस्ति सा कथं ? इति चेत् तपोऽतिशयमाहात्म्येनेति ब्रूमः, अचिन्त्यं हि तपोविद्यामणिमन्त्रौषधिशक्त्यतिशयमाहात्म्यं दृष्टस्वभावत्वात् । 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' इति समस्तवादिसंमतत्वात् । अतिशयरहितवस्तुविचारे पूर्वोक्तशास्त्रमार्ग एव बादरसूक्ष्माणां सिद्धः ॥१८४॥

वनस्पतिविशिष्टस्थावरनामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदये तु पुनः जीवा वनस्पतिकायिका भवन्ति । ते च प्रत्येकशरीराः सामान्यशरीरा इति द्विविधा भवन्ति । एकं प्रति नियतं प्रत्येकं एकजीवस्य एकशरीरमित्यर्थः ।

नामकर्मका उदय होनेसे अन्यसे प्रतिघात होता ही है,जैसे सरसों छोटी होनेपर भी महीन वस्त्रमें-से नहीं निकलती ।

शंका—यदि ऐसा है तो ऋद्धिधारी मुनियोंका शरीर स्थूल होनेपर भी वज्रशिला आदिमें-से कैसे निकल जाता है ?

समाधान—तपके अतिशयके माहात्म्यसे निकल जाता है । तप, विद्या, मणि, मन्त्र, औषधकी शक्तिके अतिशयका माहात्म्य अचिन्त्य है । सभी वादी इस बातसे सहमत हैं कि वस्तुका स्वभाव तर्कका विषय नहीं है । अतिशय रहित वस्तुके विचारमें पूर्वोक्त शास्त्रमार्ग ही बादर और सूक्ष्मोंका सिद्ध है ॥१८४॥

वनस्पतिविशिष्ट स्थावर नामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतिका उदय होनेपर जीव वनस्पतिकायिक होते हैं । वे दो प्रकारके होते हैं—एक प्रत्येकशरीर और एक सामान्यशरीर । एकके प्रति नियत जो है,वह प्रत्येक है अर्थात् एक जीवका एक शरीर । जिनका शरीर प्रत्येक है,वे प्रत्येकशरीर हैं । समान ही हुआ सामान्य । जिनका सामान्य शरीर है, वे सामान्यशरीर अर्थात् साधारणशरीर हैं । उनमें-से प्रत्येक शरीर प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितके भेदसे दो प्रकार-

---

१. युं म° तपो° । २. तो नास्तीति नत् नि–ब । ३. सा तपो–ब ।

इल्लि प्रत्येकशरीरंगळु प्रतिष्ठितप्रतिष्ठितभेददिंद द्विविधंगळु । इति शब्दमिल्लि प्रकारवाचियक्कुं । बादरनिगोदैराश्रिताः प्रतिष्ठितास्तैरनाश्रिता अप्रतिष्ठिता एंदितु प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदंगळरियल्पडुगुं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंधबीजबीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥१८६॥ ५

मूलाग्रपर्वबीजाः कंदा स्कंधबीजास्तथा बीजरुहास्संमूर्च्छिमाश्च भणिताः प्रत्येका अनंतकायाश्च ॥

मूलं बीजं येषां ते मूलबीजाः आर्द्रकहरिद्रादिगळु । अग्रं बीजं येषां ते अग्रबीजाः आर्य्यकोविदार्यादिगळु कगोरले मुडिवाळादिगळु । पर्व्वबीजं येषां ते पर्व्वबीजाः इक्षुवेत्रादिगळु । कंदो बीजं येषां ते कंदबीजाः पिंडालसूरणादिगळु । स्कंधो बीजं येषां ते स्कंधबीजाः सल्लकी कंटकी पलाशादिगळु । बीजाद्रोहंतीति बीजरुहाः शालिगोधूमादिगळु । संमूर्च्छं सं समंतात्प्रसृतपुद्गलस्कंधे भवास्ते संमूर्च्छिमाः । मूर्च्छिमाः मूलादिनियतबीजनिरपेक्षास्ते च इन्तो मूलादिबीजनिरपेक्षसंमूर्च्छिमंगळु पेळल्पट्टवु ।

प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । समानमेव सामान्यं, सामान्यं शरीरं येषां ते सामान्यशरीराः—साधारणशरीरा इत्यर्थः । तत्र प्रत्येकशरीराः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदाद् द्विविधाः । इतिशब्दोऽत्र प्रकारवाची । बादरनिगोदैराश्रिताः प्रतिष्ठिताः, तैरनाश्रिताः अप्रतिष्ठिता इति तयोर्भेदावगमनात् ॥१८५॥

मूलं बीजं येषां ते मूलबीजाः आर्द्रकहरिद्रादयः । अग्रं बीजं येषां ते अग्रबीजाः—आर्यकोदीच्यादयः । पर्व बीजं येषां ते पर्वबीजाः इक्षुवेत्रादयः । कन्दो बीजं येषां ते कन्दबीजाः—पिण्डालुसूरणादयः । स्कन्धो बीजं येषां ते स्कन्धबीजाः—सल्लकीकण्टकीपलाशादयः । बीजात् रोहन्तीति बीजरुहाः—शालिगोधूमादयः । संमूर्छं समन्तात् प्रसृतपुद्गलस्कन्धे भवाः सम्मूर्छिमाः—मूलादिनियतबीजनिरपेक्षाः ते च ये प्रत्येकशरीरा जीवाः परमागमे भणितास्ते अनन्तकायाश्च अनन्तानां निगोदजीवानां कायाः—शरीराणि एष्विति अनन्तकायाः

के हैं। यहाँ इति शब्द प्रकारवाची है। जो प्रत्येकशरीर वनस्पति बादर निगोद जीवोंके द्वारा आश्रयरूपसे स्वीकार किया गया है, वह प्रतिष्ठित है। और जो उनसे आश्रित नहीं है, वह अप्रतिष्ठित है। इस प्रकार इन दोनोंमें भेद जानना ॥१८५॥

जिन वनस्पतियोंका बीज उनका मूल होता है; जैसे अदरक, हल्दी वगैरह वे मूलबीज हैं। जिनका बीज उनका अग्रभाग होता है; जैसे आर्यक उदीचि (?) आदि, वे अग्रबीज हैं। जिनका बीज पर्व होता है; जैसे ईख, बेंत वगैरह वे पर्वबीज हैं। जिनका बीज कन्द होता है, जैसे सूरण वगैरह वे कन्दबीज हैं। जिनका बीज स्कन्ध होता है; जैसे पलास, सल्लकी वगैरह वे स्कन्धबीज हैं। जो बीजसे पैदा होते हैं; जैसे धान, गेहूँ वगैरह, वे बीजरुह हैं। सम्मूर्च्छं अर्थात् चारों ओरसे आये पुद्गलस्कन्धोंसे होनेवाली वनस्पति सम्मूर्च्छिम है। उनके लिए मूल आदि नियत बीजकी अपेक्षा नहीं होती। इस प्रकार परमागममें जो ये प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव कहे हैं, वे अनन्तकाय होते हैं। जिनमें अनन्तकाय अर्थात् अनन्तानन्त निगोद जीवोंके शरीर रहते हैं, उन्हें अनन्तकाय अर्थात् प्रतिष्ठितप्रत्येक कहते हैं तथा 'च'

---

१. क्षाः ते च ये प्रत्येक शरीरा जीवाः परमागमे भणितास्ते अनन्तकायाश्च अ–गु० ।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रत्येकाः प्रत्येकशरीरंगलप्प जीवंगळ्गे । अप्रतिष्ठितप्रत्येकाः अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्प जीवंगळ्गे । च शब्दादिदमरियल्पडुवुदु ।

अनंतानां निगोदजीवानां कायाः शरीराणि श्रेष्ठितं तेऽनंतकायाः प्रतिष्ठितप्रत्येका इत्यर्थः । च शब्दादप्रतिष्ठितप्रत्येकाश्च संतीत्यर्थः । मूलबीजादि संमूर्च्छिमपर्य्यंतमाद प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठित-प्रत्येकशरीरजीवंगळ्नितुं संमूर्च्छिमंगळेयप्पुवु । प्रतिष्ठितं साधारणशरीरैराश्रितं प्रत्येकशरीरं येषां ते प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरास्तैरनाश्रितशरीरा अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः स्युः । प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीर-जीवसर्व्वोत्कृष्टावगाहनमुं घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रत्वदिंद पूर्व्वोक्तार्द्रकादिस्कंधंगळोळो वो वरोळ-संख्यातंगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळु ज्ञातव्यंगळप्पुवदरिंदमी त्रैराशिकमरियल्पडुगुं ।

इंतिनितु क्षेत्रक्केत्तलानुमो दु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमक्कुमागळिंतितु क्षेत्रक्केनितु प्रतिष्ठित-प्रत्येकशरीरंगळप्पुवेंदितु प्र ६ । प १ । इ १ । ६ । २ लब्धराशियो वो दु आर्द्रकादि-प । २ । १ । ९

a

स्कंधंगळोळ् संभविसुव प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्पुवु प २ । १ । १० अप्रतिष्ठितप्रत्येक-

a

प्रतिष्ठितप्रत्येका इत्यर्थः, चशब्दादप्रतिष्ठितप्रत्येकाश्च सन्तीत्यर्थः । प्रतिष्ठितं-साधारणशरीरैराश्रितं प्रत्येक-शरीरं येषां ते प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः तैरनाश्रितशरीरा अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः स्युः । एते मूलबीजादि-सम्मूर्छिमपर्यन्ताः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरजीवास्तेऽपि सम्मूर्छिमा एव भवन्ति । प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति-जीवशरीरस्य सर्वोत्कृष्टावगाहनमपि घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रमेवेति पूर्वोक्तार्द्रकादिस्कन्धेषु एकैकस्मिंस्तानि असंख्यातानि असंख्यातानि सन्ति । यद्येतावत्क्षेत्रस्य प्र ६ प । २ । १ । ९ एकं प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरं फ-१

a

स्यात् तदैतावत्क्षेत्रस्य इ-। ६ । १ कति प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि स्युरिति त्रैराशिकलब्धानि एकैकार्द्रकादि-स्कन्धसंभवीनि प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि भवन्ति प २ । १ । १० । अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिजीवशरीराणि

a

शब्दसे अप्रतिष्ठितप्रत्येक भी होते हैं। जिनका प्रत्येक शरीर प्रतिष्ठित अर्थात् साधारण-शरीरोंसे आश्रित होता है, वे प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर हैं। और जिनका प्रत्येक शरीर साधारण शरीरोंसे आश्रित नहीं होता, वे अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर होते हैं। ये मूलबीजसे लेकर सम्मूर्छिम पर्यन्त जो प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर और अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर जीव कहे हैं, वे भी सम्मूर्छनजन्मवाले ही होते हैं। अर्थात् सम्मूर्छिम वनस्पतिसे यह नहीं समझना चाहिए कि अकेले उन्हींका सम्मूर्छन जन्म होता है। प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवके शरीरकी सबसे उत्कृष्ट अवगाहना भी घनांगुलके असंख्यातवें भाग-मात्र ही है। अतः पूर्वोक्त अदरक आदि स्कन्धोंमें एक-एकमें असंख्यात-असंख्यात प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर होते हैं। घनांगुलको दो बार पल्यके असंख्यातवें भागसे और नौ बार संख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने क्षेत्रमें यदि एक प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर रहता है, तो संख्यात घनांगुल प्रमाण अदरक आदिमें कितने रहेंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर लब्ध-राशि दो बार पल्यका असंख्यातवाँ भाग और दस बार संख्यातको रखकर परस्पर गुणा करनेसे जितना प्रमाण होता है, उतने प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर एक अदरक आदि स्कन्धमें

वनस्पतिजीवशरीरंगळु यथासंभवमागियसंख्यातमुं संख्यातमुं मेणप्पुवु मेनिंतु प्रत्येकशरीरंगळनितें प्रत्येकवनस्पतिजीवंगळप्पुवु मल्लि प्रतिशरीरमेकैकजीवप्रतिज्ञानमप्पुदरिंदं ।

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं ।
साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥१८७॥

गूढशिरासंधिपर्व्वाणि समभंगमहीरुहकं च छिन्नरुहं । साधारणं शरीरं तद्विपरीतं च प्रत्येकं ॥ ५

यत्प्रत्येकशरीरं आवुदो दु प्रत्येकशरीरं गूढशिरं अदृश्यबहिः स्नायुकमुं । गूढसंधि अदृश्यसंधिरेखाबंधमुं । गूढपर्व्वं अदृश्यग्रंथिकमुं । समभंगं त्वगपोहनत्वादिव सदृशच्छेदप्पुदुं । अहीरुकमंतर्गतसूत्ररहितमुं छिन्नरुहं छिन्नं रोहतीति छिन्नमावोडं मोळेवुदुं । साधारणं साधारणजीवाश्रितत्वदिदं साधारणमेंदुपचारदिंदं [illegible] । तद्विपरीतं गूढसिरत्वादिपूर्व्वोक्तलक्षणरहितं तालं नाळिकेरतिन्निणिकादिशरीरमप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमेंदु विभागार्थमागि च शब्दमक्कुं । १०

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥१८८॥

मूले कंदे छल्लीप्रवालशालावलकुसुमफलबीजे । समभंगे सत्यनंता असमे सति भवंति प्रत्येकाः ॥ १५

यथासंभवं असंख्यातानि संख्यातानि वा भवन्ति । यावन्ति प्रत्येकशरीराणि तावन्त एव प्रत्येकवनस्पतिजीवाः तत्र प्रतिशरीरं एकैकस्य जीवस्य प्रतिज्ञानात् ॥१८६॥ अथ साधारणशरीरवनस्पतिजीवस्वरूपं गाथाचतुष्टयेन प्ररूपयति—

यत् प्रत्येकशरीरं गूढशिरं-अदृश्यबहिःस्नायुकं, गूढसन्धि-अदृश्यसन्धिरेखाबन्धं, गूढपर्व-अदृश्यग्रन्थिकं, समभङ्गं-त्वगपोहरहितत्वेन सदृशच्छेदं, अहीरुकं-अन्तर्गतसूत्ररहितं, छिन्नं रोहतीति छिन्नरुहं तच्छिन्नरुहं साधारणं- २०
साधारणजीवाश्रितत्वेन साधारणमित्युपचर्यते प्रतिष्ठितशरीरमित्यर्थः । तद्विपरीतं गूढशिरत्वादिपूर्वोक्तलक्षणरहितं तालनालिकेरतिन्तिणीकादिशरीरं अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमिति विभागं चशब्दः सूचयति ॥१८७॥

रहते हैं। तथा एक स्कन्धमें अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति जीव यथासम्भव असंख्यात अथवा संख्यात होते हैं। जितने प्रत्येकशरीर होते हैं, उतने ही प्रत्येकवनस्पति जीव होते हैं; क्योंकि उनमें प्रत्येकशरीरमें एक-एक जीवके होनेका नियम है ॥१८६॥ २५

आगे साधारण शरीर वनस्पतिजीवका स्वरूप चार गाथाओंसे कहते हैं—

जिस प्रत्येकशरीर वनस्पतिके ऊपरकी बाह्य स्नायु, भीतरमें फाँकोंकी सन्धियाँ, पोरियाँ जैसे ईखमें, अदृश्य हों, प्रकट नहीं हुई हों, तोड़नेपर बिलकुल समान रूपसे दो टुकड़ोंमें टूट जाये, तोड़नेपर दोनों टुकड़ोंके बीचमें कोई तार-सा लगाव न हो, तथा काटने पर भी उग आवे तो वह साधारण है। साधारण जीवोंके द्वारा आश्रित होनेसे प्रतिष्ठित प्रत्येकको ३०
उपचारसे साधारण कहा है। यहाँ वैसे साधारणका अर्थ प्रतिष्ठित शरीर है। जो इससे विपरीत है अर्थात् जिसके सिर आदि प्रकट हैं, वह अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर है, जैसे तालफल, नारियल, इमली वगैरह। गाथा का 'च' शब्द इस भेदका सूचक है ॥१८७॥

---

१. विभागः चशब्देन सूचितः ब ।

मूलदोळं कंददोळं त्वक्किनोळं पल्लवांकुरदोळं क्षुद्रशाखेयोळं पत्रदोळं कुसुमदोळं फलदोळं बीजदोळमुं समभंगे सति समभंगमागुत्तिरलु नारिल्लबुदरिनेरडु खंडमादोडे अनंताअनंतकायंगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळे बुदर्थं ।

आ मूलादिगळोळु समभंगमिल्लद वनस्पतिगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्पुवु ।

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वापि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया दु तणुकदरी ॥१८९॥

कंदस्य वा मूलस्य वा सालायाः स्कंधस्य वापि बहुलतरा । त्वक् ते अनंतजीवाः प्रत्येकजीवास्तु तनुत्वचः ॥

आवुदु केलवु प्रत्येकवनस्पतिगळ कंदक्के मेणु मूलक्के मेणु सालेगे क्षुद्रशाखेगे मेणु स्कंधक्के मेणु आवुदो दुत्वक् बहुलतरं स्थूलतरमक्कुमप्पोडे या वनस्पतिगळनंतकायजीवंगळुमप्पुवु । [illegible] तु मत्ते आवुदु केलवक्के कंदादिगळोळ् त्वक्तनुतरमादोडे तद्वनस्पतिगळऽप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळप्पुवु ।

बीजे जोणीभूदे जीवो वक्कमदि सो व अण्णो वा ।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥१९०॥

बीजे योनीभूते जीवः प्रक्रामति स वान्यो वा । येपि च मूलादिकास्ते प्रत्येकाः प्रथमतायां ।

योनीभूते जीवोत्पत्तिगे योग्यमाद मूलाग्रबिबीजावसानमाद बीजंगळोळु जीवं स एव वाऽन्यो वा पेरगे तत्रस्थितजीवं स्वायुःक्षयवशदिंदं मृतशरीरनागि मत्तमल्लिये प्रक्रामत्युत्पद्यते

मूले कन्दे त्वचि पल्लवाङ्कुरे क्षुद्रशाखायां पत्रे कुसुमे फले बीजे च समभङ्गे सति अनन्ताः-अनन्तकायाः-प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा इत्यर्थः । मूलादिषु समभङ्गरहितवनस्पतिषु अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवन्ति ॥१८८॥

येषां प्रत्येकवनस्पतीनां कन्दस्य वा मूलस्य वा शालायाः वा क्षुद्रशाखाया वा स्कन्धस्य वा या त्वक् बहुलतरी-स्थूलतरी स्यात् ते वनस्पतयः अनन्तकायजीवा भवन्ति—अनन्तजीवैः-निगोदजीवैः सहिताः प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवन्ति इत्यर्थः । तु पुनः येषां कन्दादिषु त्वक् तनुतरी ते वनस्पतयः अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवन्ति ॥१८९॥

बीजे—मूलादिबीजावसाने, योनिभूते—जीवोत्पत्तियोग्ये, जाते सति स एव—तत्र स्थित एव जीवः मृत्वा—स्वायुःक्षयवशेन मृतशरीरी भूत्वा पुनस्तत्रैव प्रक्रामति—उत्पद्यते । अन्यो वा अन्यशरीरान्तरव्यवस्थितो जीवः

जिन प्रत्येक वनस्पतियोंके मूल, कन्द, छाल, कोंपल, अंकुर, छोटी टहनी, बड़ी डाल, पत्ते, फूल, फल और बीज यदि तोड़नेपर इनका समभंग होता है, तो ये अनन्तकाय अर्थात् प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं और यदि समभंग नहीं होता, तो अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं ॥१८८॥

जिस प्रत्येक वनस्पतिके कन्द, मूल, क्षुद्र, शाखा, या स्कन्धकी छाल मोटी हो, तो वे वनस्पति अनन्तकाय होती हैं अर्थात् निगोद जीवोंसे सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक होती है। किन्तु जिनकी छाल पतली होती है, वे वनस्पतियाँ अप्रतिष्ठित प्रत्येक होती हैं ॥१८९॥

बीज अर्थात् मूलसे लेकर बीज पर्यन्त, योनिभूत अर्थात् जीवोंकी उत्पत्तिके योग्य हो जानेपर वही जीव जो उसमें वर्तमान है, मरकर अर्थात् अपनी आयुके क्षय हो जानेसे शरीरको छोड़कर पुनः उसीमें उत्पन्न होता है। अथवा अन्य शरीरमें रहनेवाला जीव अपनी

पुट्टुगुमन्योपि बा परगे शरीरांतरव्यवस्थितनप्प जीवं स्वायुःक्षयवशदिंदं त्यक्तशरीरनागि बंदु स्वयोग्यमूलाविबीजंगळोळु प्रक्रामति पुट्टुगु मावु केलवु मूलादिगळु प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरत्वदिंदं प्रसिद्धंगळु अवु प्रथमतायां स्वोत्पन्नप्रथमसमयं मोदल्गोंडु यावदंतर्मुहूर्त्तं तावत्कालपर्य्यंतं साधारणजीवंगळिंदमप्रतिष्ठितंगळेयप्पुवु ।

अनंतरं साधारणशरीरवनस्पतिस्वरूपनिरूपणमं गाथाचतुष्टयदिं माडिदपं । ५

साहारणोदएण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा ।
ते पुण दुविहा जीवा बादरसुहुमात्ति विण्णेया ॥१९१॥

साधारणोदयेन निगोदशरीरा भवंति सामान्याः । ते पुनर्द्विविधाः जीवा बादरसूक्ष्मा इति विज्ञेयाः ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

साधारणनामकर्म्मोदयदिंदं समुत्पन्ननिगोदशरीर जीवंगळु सामान्यवनस्पतिजीवंगळप्पुवु । साधारणवनस्पतिगळप्पुवें बुदत्थं । नि नियतां गां भूमिं क्षेत्रमनंतानंतजीवानां ददातीति निगोदं । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः । ते पुनः साधारणवनस्पतिकायिकाः जीवाः बादराः सूक्ष्माश्च भवंति । एतेषां बादराणां सूक्ष्माणां च लक्षणं पूर्व्वोक्तमेवेति विज्ञेया भवंति ।

स्वायुःक्षयवशेन त्यक्तशरीरो भूत्वा आगत्य स्वयोग्यमूलादिबीजे प्रक्रामति । तेऽपि च मूलकादयः प्रतिष्ठित-प्रत्येकशरीरत्वेन प्रसिद्धाः तेऽपि खलु प्रथमतायां स्वोत्पन्नप्रथमसमये अन्तर्मुहूर्तकालं साधारणजीवैरप्रतिष्ठिता एव भवन्ति ॥१९०॥

साधारणनामकर्मोदयेन जीवा निगोदशरीरा भवन्ति । नि—नियतां गां—भूमिं क्षेत्रं अनन्तानन्तजीवानां ददाति इति निगोदं । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः इति लक्षणसिद्धत्वात् । त एव सामान्याः—साधारणशरीरा जीवाः पुनः बादराः सूक्ष्माश्चेति द्विधा पूर्वोक्तलक्षणलक्षिता विज्ञेयाः ॥१९१॥

आयुके क्षय हो जानेसे वह शरीरको छोड़कर अपने योग्य मूल आदि बीज पर्यन्तमें उत्पन्न होता है। जो भी मूली आदि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर रूपसे प्रतिबद्ध हैं, वे भी अपनी उत्पत्तिके प्रथम समयमें अन्तर्मुहूर्त काल तक साधारण जीवोंसे अप्रतिष्ठित ही होते हैं ॥१९०॥

विशेषार्थ—मूलसे लेकर बीज पर्यन्त वनस्पतिमें जो जीव पहले था, उसकी आयु पूरी होनेसे मर गया। किन्तु उस वनस्पतिकी उत्पादन शक्ति नष्ट नहीं हुई है, तो बाह्य कारण मिलनेपर वही जीव जो पहले उसमें प्रत्येकशरीररूपमें जीकर मर गया था, पुनः उसी मूलादि बीजको शरीर बनाकर उत्पन्न होता है अथवा यदि वह पूर्व शरीरका स्वामी जीव अन्यत्र उत्पन्न हो जाता है, तो अन्य जीव आकर उसमें उत्पन्न होता है। तथा जो प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है, वह भी अपनी उत्पत्तिके प्रथम समयमें या अन्तर्मुहूर्त कालतक अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहती है। पीछे जब निगोद जीव उसके आश्रित हो जाते हैं, तब प्रतिष्ठित हो जाती है।

साधारण नामकर्मके उदयसे जीव निगोद शरीरवाले होते हैं। 'नि' अर्थात् नियत गां अर्थात् भूमि, क्षेत्र या निवास अनन्तानन्त जीवोंको देता है, वह निगोद है। निगोद शरीर जिनका है, वे निगोद शरीर हैं, इस प्रकार लक्षणसे सिद्ध है। वही सामान्य अर्थात् साधारण-शरीर होते हैं। उनके दो भेद हैं—बादर और सूक्ष्म। इनका लक्षण पहले कहा है ॥१९१॥

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च ।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥१९२॥

साधारणमाहारः साधारणमानापानग्रहणं च । साधारणजीवानां साधारणलक्षणं भणितं ॥

आवुवु केलवु साधारणनामकर्मोदयवशवर्तिगळप्पनंतजीवंगळ्गे उत्पन्नप्रथमसमयदोळाहारपर्य्याप्तियं तत्कार्य्यमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधखलरसभागपरिणमनमुं साधारणं सदृशं समकालमक्कुमंते शरीरपर्य्याप्तियुं तत्कार्य्यमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ्गे शरीराकारपरिणमनमुमंते इंद्रियपर्य्याप्तियुं तत्कार्य्यं स्पर्शनेंद्रियाकारपरिणमनमुमंतेयानपानपर्य्याप्तियुं तत्कार्य्यमुच्छ्वासनिःश्वासग्रहणमुं साधारणं सदृशरूपं समकालमुमक्कुमा जीवंगळु साधारणजीवंगळेंदितु साधारणजीवंगळ्गे उत्पत्तिप्रथमसमयोत्पन्नंगळ्गे संतेया शरीरदोळु द्वितीयादिसमयोत्पन्नंगळ्गेयुमनंतजीवंगळ्गे पूर्वपूर्वसमयोत्पन्नानंतजीवंगळोडनेयाहारपर्य्याप्त्यादिसर्व्वं सदृशरूपं समकालमक्कुमेंदितु साधारणलक्षणं पूर्व्वसूरिगळिंदं भणितं ज्ञातव्यमक्कुं । च शब्ददिंद शरीरेंद्रियपर्य्याप्तिद्वयसमुच्चयं माडल्पटटुदु ।

जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं ।
वक्कमइ जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थणंताणं ॥१९३॥

यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र तु मरणं भवेदनंतानां । प्रक्रामति यत्रैकः प्रक्रमणं तत्रानंतानां ॥

यत्साधारणनामकर्मोदयवशवर्त्यनन्तजीवानां उत्पन्नप्रथमसमये आहारपर्याप्तिस्तत्कार्यं च आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां खलरसभागपरिणमनं साधारणं सदृशं समकालं च भवति । तथा शरीरपर्याप्तिः तत्कार्यं च आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां शरीराकारपरिणमनं तथा इन्द्रियपर्याप्तिः तत्कार्यं च स्पर्शनेन्द्रियाकारपरिणमनं तथा आनपानपर्याप्तिः तत्कार्यं च उच्छ्वासनिश्वासग्रहणं साधारणं सदृशं समकालं च भवति । तथा प्रथमसमयोत्पन्नानामिव तत्रैव शरीरे द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामपि अनन्तानन्तजीवानां पूर्वपूर्वसमयोत्पन्नानन्तानन्तजीवैः सह आहारपर्याप्त्यादिकं सर्वं सदृशं समकालं च भवति । तदिदं साधारणलक्षणं पूर्वसूरिभिर्भणितं ज्ञातव्यम् । चशब्देन शरीरेन्द्रियपर्याप्तिद्वयं समुच्चयीकृतं ॥१९२॥

साधारण नाम कर्मके उदयके वशीभूत अनन्त जीवोंका उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें आहारपर्याप्ति और उसका कार्य आहारवर्गणाके आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका खल और रसभागरूपमें परिणमन साधारण अर्थात् एक समान तथा एक ही कालमें होता है। तथा शरीरपर्याप्ति और उसका कार्य आहारवर्गणाके आये पुद्गलस्कन्धोंका शरीरके आकाररूपसे परिणमन साधारण होता है। इन्द्रियपर्याप्ति और उसका कार्य स्पर्शन इन्द्रियके आकाररूपसे परिणमन तथा श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और उसका कार्य उच्छ्वास-निश्वासका ग्रहण समान और समान कालमें होता है। तथा प्रथम समयमें उत्पन्न होनेवालोंकी ही तरह उसी शरीरमें द्वितीय-तृतीय आदि समयोंमें उत्पन्न अनन्तानन्त जीवोंका पूर्व-पूर्व समयोंमें उत्पन्न अनन्तानन्त जीवोंके साथ आहारपर्याप्ति वगैरह सब समान और समान कालमें होती है। यह साधारण जीवोंका लक्षण पूर्वाचार्योंने कहा है। यहाँ 'च' शब्दसे शरीरपर्याप्ति और इन्द्रियपर्याप्तिका ग्रहण किया है ॥१९२॥

---

१. समुच्चीयते ब ।

यस्मिन्नेकस्मिन् शरीरे आयुषानों ३ निगोदशरीरदोळु यदा आगळोम्मे एको जीवः ओं ३ दु जीवनु स्वस्थितिक्षयवशदिं [illegible] यस्मिन् शरीरे आगला निगोदशरीरदोळु समस्थितिकंगळप्पनंतजीवंगळ्गे मरणमोडनेयक्कु मायुषों ३ दु निगोदसरीरदोळागळोम्मेयों ३ दु जीवं प्रक्रामति पुट्टुगुमागला निगोदशरीरदोळु समस्थितिकंगळप्पनंतजीवंगळ्गे प्रक्रमणमुत्पत्तियुमोडनेयक्कु मितुत्पत्तिमरणंगळ्गे समकालत्वमुं साधारणलक्षणं तोरल्पट्टुवु। द्वितीयादिसमयोत्पन्नानंतजीवंगळ्गेयुं स्वस्थितिक्षयवोळमोडने मरणमरियल्पडुगुमितों ३ दु निगोदशरीरदोळु प्रतिसमयमनंतानंतजीवंगळ्गोडने मरणमुमोडनुत्पत्तियुमन्नेवरेगं संभविसुगुमेन्नेवरमसंख्यातसागरोपमंगळ कोटिकोटिगळसंख्यातलोकमात्रसमयप्रमितंगळुत्कृष्टनिगोदकायस्थिति परिसमाप्तियक्कुं।

इल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे ओं ३ दु बादरनिगोदशरीरदोळु सूक्ष्मनिगोदशरीरदोळु मेणु अनंतसाधारणजीवंगळु केवलं पर्याप्तकंगळे पुट्टुवु मत्तमा ओं ३ दु शरीरदोळे केवलमपर्याप्तकंगळे पुट्टुवुवु अल्लदे मिश्रंगळु पुट्टुवुदिल्लेकेंदोडे अवक्के समानकर्म्मोदयनियममप्पुदु कारणमागि एगस्स ओं ३ दु साधारणजीवनकर्म्मोदानशक्तिलक्षणयोगविदं तंदेयल्पट्ट पुद्गलपिंडोपकारमनंतानंत साधारणजीवंगळ्गेयुमाहारकनप्प तनगेयुमनुग्रहणमक्कुं। मत्तमनंतानंतसाधारणजीवंगळ योगशक्ति-

---

यस्मिन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः स्वस्थितिक्षयवशेन म्रियते तदा तस्मिन्निगोदशरीरे समस्थितिकाः अनन्तानन्ता जीवाः सहैव म्रियन्ते। यस्मिन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः प्रक्रामति—उत्पद्यते तदा तस्मिन्निगोदशरीरे समस्थितिकाः—अनन्तानन्ता जीवाः सहैव प्रक्रामन्ति। एवमुत्पत्तिमरणयोः समकालत्वमपि साधारणलक्षणं प्रदर्शितं। द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामनन्तानन्तजीवानामपि स्वस्थितिक्षये सहैव मरणं ज्ञातव्यं। एवमेकनिगोदशरीरे प्रतिसमयमनन्तानन्तजीवास्तावत्सहैव म्रियन्ते सहैवोत्पद्यन्ते यावदसंख्यातसागरोपमकोटीकोटिमात्री असंख्यातलोकमात्रसमयप्रमिता उत्कृष्टनिगोदकायस्थितिः परिसमाप्यते। अत्र विशेषोऽस्ति—स च कः? एकबादरनिगोदशरीरे सूक्ष्मनिगोदशरीरे वा अनन्तानन्ताः साधारणजीवा केवलपर्याप्ता एवोत्पद्यन्ते पुनरपि एकशरीरे केवलमपर्याप्ता एवोत्पद्यन्ते न च मिश्रा उत्पद्यन्ते तेषां समानकर्मोदयनियमात्। एकस्य साधारण-

---

जिस निगोद शरीरमें जब एक जीव अपनी आयुके क्षय होनेसे मरता है, तभी उस निगोद शरीरमें समान आयुवाले अनन्तानन्त जीव एक साथ ही मरते हैं। जिस निगोद शरीरमें जब एक जीव उत्पन्न होता है, तब उस निगोद शरीरमें समान आयुवाले अनन्तानन्त जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उत्पत्ति और मरणका समकालमें होना भी साधारणका लक्षण कहा है। द्वितीय आदि समयोंमें उत्पन्न अनन्तानन्त जीवोंका भी अपनी आयु पूरी होनेपर एक साथ ही मरण जानना। इस प्रकार एक निगोद शरीरमें प्रतिसमय अनन्तानन्त जीव एक साथ ही मरते हैं और एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। ऐसा तबतक होता रहता है, जबतक निगोदकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात सागरोपम कोटि-कोटि मात्र जो कि असंख्यात लोक मात्र समय प्रमाण है, समाप्त हो।

यहाँ कुछ विशेष कथन है—एक बादर निगोद शरीरमें या सूक्ष्म निगोद शरीरमें अनन्तानन्त साधारण जीव या तो केवल पर्याप्त ही उत्पन्न होते हैं या एक शरीरमें केवल अपर्याप्त ही उत्पन्न होते हैं। दोनों एक ही शरीरमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि उनके एक समान कर्मके उदयका नियम है। एक साधारण जीवके कर्मोंको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप योगके

---

१. यस्मिन्नि ब। २. तस्मिन्नि ब। ३. णे द ब। ४. ते तेषां ब।

गळिंदमाहारिसल्पट्ट पुद्गलपिंडोपकारमोयोळ्वंगमा अनंतानंतसाधारणजीवंगळ्गं मनुग्रहणं समासदिदं संपिंडितत्वदिदमक्कुमो[दु] बादरनिगोदशरीरदोळ् सूक्ष्मनिगोदशरीरदोळु मेणु यथासंख्यमागि पर्य्याप्तकंगळप्प बादरनिगोदजीवंगळु सूक्ष्मनिगोदजीवंगळुं भवप्रथमसमयदोळमनंतानंतंगळु पुट्टुववु। द्वितीयसमयदोळमवं नोडलसंख्येयगुणहीनंगळु पुट्टुगुमितु निरंतरमावल्यसंख्यातैकभागकालपर्य्यंतं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनक्रमदिंद पुट्टुववल्लिंदं मेलें जघन्यदिनो[दु] समयमुत्कृष्टदिनावल्यसंख्येयभागमात्रकालमंतरिसि मत्तं जघन्यदिनो[दु] समयमुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्येयभागमात्रकालं निरंतरमा निगोदशरीरदोळसंख्यातगुणहीनक्रमदिंदं साधारणजीवंगळु पुट्टुववितु सांतरनिरंतरक्रमदिंदमन्नेवरं पुट्टुववन्नेवरं प्रथमसमयोत्पन्नसाधारणजीवन सर्व्वजघन्यमप्प निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालमवशेषमक्कुं। २ १। मत्तमा प्रथमादिसमयंगळोळुत्पन्नंगळप्प सर्व्वसाधारण-
जीवंगळाहारशरीरेंद्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्य्याप्तिगळ्गं स्वस्वयोग्यकालदोळु निष्पत्तियक्कुं।

अनंतरं बादरनिगोदशरीराधारप्रतिपादनमं माडिदपं।

जीवस्य कर्मादानशक्तिलक्षणयोगेन गृहीतपुद्गलपिण्डोपकारोऽनन्तानन्तसाधारणजीवानां तस्य चानुग्रहणं भवति। पुनरपि अनन्तानन्तसाधारणजीवानां योगशक्तिभिः गृहीतपुद्गलपिण्डोपकारः एकस्य अनन्तानन्तसाधारणजीवानां चानुग्रहणं समासेन संपिण्डितत्वेन भवति। एकबादरनिगोदशरीरे सूक्ष्मनिगोदशरीरे वा यथासंख्यं पर्याप्ताः बादरनिगोदजीवाः सूक्ष्मनिगोदजीवाश्च भवप्रथमसमये अनन्तानन्ता उत्पद्यन्ते। द्वितीयसमये तेभ्योऽसंख्येयगुणहीना उत्पद्यन्ते। एवं निरन्तरमावल्यसंख्येयभागकालपर्यन्तं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनक्रमेणोत्पद्यन्ते। ततः परं जघन्येनैकसमयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्येयभागमात्रकालमन्तरयित्वा पुनरपि जघन्येनैकसमयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं निरन्तरं निगोदशरीरे असंख्यातगुणहीनक्रमेण साधारणजीवा उत्पद्यन्ते। एवं सान्तरनिरन्तरक्रमेण तावदुत्पद्यन्ते यावत्प्रथमसमयोत्पन्नसाधारणजीवस्य सर्वजघन्यो निर्वृत्यपर्याप्तकालोऽवशिष्यते २ १। पश्चात् तत्प्रथमादिसमयोत्पन्नसर्वसाधारणजीवानां आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तीनां स्वस्वयोग्यकाले निष्पत्तिर्भवति ॥१९३॥ अथ बादरनिगोदशरीराधारं प्रतिपादयति—

द्वारा गृहीत पुद्गलपिण्ड अनन्तानन्त साधारण जीवोंका भी उपकारी होता है, उस जीवका भी उपकारी होता है। इसी तरह अनन्तानन्त साधारण जीवोंकी योगशक्तिके द्वारा गृहीत पुद्गल पिण्ड एक साथ संयुक्त रूपसे एक जीवका भी उपकारी है और अनन्तानन्त साधारण जीवोंका भी उपकारी होता है। एक बादर निगोद शरीरमें अथवा सूक्ष्म निगोद शरीरमें यथाक्रम पर्याप्त बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव भवके प्रथम समयमें अनन्तानन्त उत्पन्न होते हैं। दूसरे समयमें उससे असंख्यातगुणा हीन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निरन्तर आवलीके असंख्यातवें भाग काल पर्यन्त प्रतिसमय असंख्यात गुण हीन क्रमसे उत्पन्न होते हैं। उसके बाद जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र कालका अन्तर देकर पुनः जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक निरन्तर निगोद शरीरमें असंख्यात गुण हीन क्रमसे साधारण जीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार निरन्तर या सान्तरके क्रमसे निगोद शरीरमें तबतक जीव उत्पन्न होते हैं जबतक प्रथम समयमें उत्पन्न साधारण जीवका सबसे जघन्य निर्वृत्यपर्याप्तकाल शेष रहता है। तथा प्रथम समय आदिमें उत्पन्न सर्वसाधारण जीवोंकी आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और उच्छ्वासपर्याप्तिकी पूर्ति अपने-अपने योग्य कालमें होती है ॥१९३॥

आगे बादर निगोद शरीरोंका आधार बतलाते हैं—

खंधा असंखलोगा अंडरआवासपुलविदेहावि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥१९४॥

स्कंधा असंख्यलोका अंडरावासपुलविदेहा अपि । अधस्तनयोनिका असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥

बादरनिगोदजीवंगळ शरीरसंख्यानयनार्थमुदाहरणपूर्व्वकमागि गाथाद्वयमिंदं पेळल्पडुगुमे तेने स्कंधाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवंगळ शरीरंगळसंख्यातलोकंगळु स्वयोग्यासंख्यातगुणितलोकप्रदेशमात्रंगळे बुवर्त्थमल्लि लोकाकाशप्रदेशंगळु जगच्छ्रेणिघनप्रमितंगळा लोकाकाशप्रदेशंगळोलनंतानंतपुद्गलपरमाणुगळवगाहपरिणामदंतेयुमेकनिगोदजीवकार्म्मणशरीरदोळनंतानंतनिगोदजीवकार्म्मणशरीरंगळवगाहदंतेयुं मेणिल्लियुमोंदोंदु स्कंधदोळसंख्यातलोकमात्रंगळंडरंगळु प्रत्येकजीवशरीरविशेषंगळप्पुवंतेयोंदोंडरंगळोळमसंख्यातलोकमात्रावासंगळु अवुं प्रत्येकशरीरभेदंगळप्पुवु । ओंदोंदावासंगळोळसंख्यातलोकमात्रंगळपुळुविगळवुं प्रत्येकजीवशरीरविशेषंगळप्पुवु । ओंदोंदु पुळविगळोळमसंख्यातलोकमात्रंगळु बादरनिगोदजीवशरीरंगळप्पुविंतंडरादयुत्तरोत्तरंगळधस्तनाधस्तनस्कंधादियोनिकंगळप्पुवेंदितिल्लि त्रैराशिकमं माडल्पडुगुमोंदु स्कंधदोळेत्तलानुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवागळसंख्यातलोकमात्रस्कंधंगळोळेनसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवेंदितु प्र स्कं १ । फ अंड । इ । इ । स्कं = अ । लब्धांडरंगळसंख्यातलोकमात्रस्कंधंगळनसंख्यातलोकदिंद गुणिसिदनितप्पुवु

बादरनिगोदजीवशरीरसंख्यानयनार्थं उदाहरणपूर्वकमिदं गाथाद्वयमुच्यते । तद्यथा—स्कन्धाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवशरीराणि, असंख्यातलोकाः स्वयोग्यासंख्यातगुणितलोकप्रदेशमात्रा इत्यर्थः । तत्र एकैकस्मिन् स्कन्धे लोकाकाशप्रदेशेषु जगच्छ्रेणिघनप्रमितेषु अनन्तानन्तपुद्गलानामवगाहपरिणामवत्, एकनिगोदजीवकार्मणशरीरे अनन्तानन्तनिगोदजीवकार्मणशरीराणामवगाहनवद्वा असंख्यातलोकमात्रा अण्डराः प्रत्येकजीवशरीरविशेषाः सन्ति । तथैव एकैकस्मिन्नण्डरे असंख्यातलोकमात्रा आवासास्तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरभेदाः सन्ति । एकैकस्मिन्नावासे असंख्यातलोकमात्राः पुलवयः तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरविशेषाः एव । एकैकस्मिन् पुलवौ असंख्यातलोकमात्राणि बादरनिगोदजीवशरीराणि सन्ति । एवमण्डरादीनि उत्तरोत्तराण्यधस्तनस्कन्धादियोनिकानि[1] तत्र जातानि भवन्ति । यद्येकैकस्मिन् स्कन्धे असंख्यातलोकमात्रा अण्डराः सन्ति तदा असंख्यात-

बादर निगोद जीवोंके शरीरकी संख्या लानेके लिए उदाहरणपूर्वक दो गाथाओंसे यह कथन करते हैं । स्कन्ध अर्थात् प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवके शरीर असंख्यातलोक हैं अर्थात् अपने योग्य असंख्यातसे लोकके प्रदेशोंको गुणा करनेपर जो परिमाण हो, उतने हैं । तथा जैसे जगतश्रेणीके घन प्रमाण लोकाकाशके प्रदेशोंमें अनन्तानन्त पुद्गलोंका अवगाह होता है, या एक निगोद जीवके कार्मण शरीरमें अनन्तानन्त निगोद जीवोंके कार्मण शरीरोंका अवगाहन होता है, वैसे ही एक-एक स्कन्धमें असंख्यात लोक मात्र अण्डर रहते हैं। ये अण्डर प्रत्येक जीव शरीरके विशेष अवयवरूप होते हैं । उसी तरह एक-एक अण्डरमें असंख्यात लोक मात्र आवास होते हैं । वे भी प्रत्येक जीवशरीरके भेद हैं । एक-एक आवासमें असंख्यात लोक मात्र पुलवियाँ हैं । वे भी प्रत्येक जीवशरीरके विशेष भेद हैं । एक-एक पुलविमें असंख्यात लोक मात्र बादरनिगोद जीवोंके शरीर होते हैं । इस प्रकार ये अण्डर आदि उत्तरोत्तर नीचेके स्कन्ध आदिकी योनि हैं । अर्थात् नीचे कहे भेदोंकी संख्याकी उत्पत्तिका

१. एवमण्डरादयः उत्तरोत्तरेऽधस्तनाधस्तनस्कन्धादियोनिकाः ब ।

इंतावासादिगळोळं प्रत्येकं त्रैराशिकक्रमदिंद लब्धंगळसंख्यातलोकगुणाकारंगळनुक्रमदिंपुटुवर विन्यासमिवु स्कंधंगळु ≡ a अण्डरंगळु ≡ a ≡ a आवासंगळु ≡ a ≡ a ≡ a पुलविगळु ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a बादरनिगोदशरीरंगळु ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a।

जंबूदीवं भरहं कोसलसागेदतग्घराइं वा।
खंधंडर-आवासा-पुलविसरीराणि दिट्ठंता ॥१९५॥

जंबूद्वीप भरत कोशल साकेत तद्गृहादयो वा। स्कंधांडरावासपुलविशरीराणि दृष्टांता ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्कंधंगळगे जंबूद्वीपादिगळु दृष्टांतमंडरंगळगे भरतादिक्षेत्रंगळु दृष्टांतमावासंगळगे कोसलादिदेशंगळु दृष्टांतं पुलविगळगे साकेतादिनगरंगळु दृष्टांतं। बादरनिगोदशरीरंगळगे तत् साकेतादिनगरंगळ गृहंगळु दृष्टांतं। वा शब्दमिवार्थमी पेळ्व दृष्टांतमें तंतेयन्यंगळु दृष्टांतंगळ् नडसल्पडुवुवु।

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥१९६॥

एकनिगोदशरीरे जीवा द्रव्यप्रमाणतो दृष्टाः। सिद्धेभ्योऽनंतगुणाः सर्वस्मादपि व्यतीतकालात् ॥

लोकमात्रस्कन्धानां कति अण्डराः स्युः ? इति त्रैराशिकेन–प्र स्कं १, फ अं ≡ a। इ स्कं ≡ a। लब्धाण्डराः असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकमात्रा भवन्ति। एवमावासादिषु प्रत्येकं त्रैराशिकक्रमेण लब्धानामसंख्यात-लोकगुणकाराणां विन्यासोऽयं–स्कन्धाः ≡ a। अण्डराः ≡ a ≡ a। आवासाः ≡ a ≡ a ≡ a। पुलवयः ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a। बादरनिगोदशरीराणि ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a ॥१९४॥

स्कन्धानां दृष्टान्ताः जम्बूद्वीपादयः। अण्डराणां भरतादिक्षेत्राणि। आवासानां कोशलादिदेशाः। पुलवीनां साकेतादिनगराणि। बादरनिगोदशरीराणां साकेतादिनगरगृहाणि। वा शब्दः इवार्थः। उक्तदृष्टान्तव-दन्येऽपि दृष्टान्ता नेतव्याः ॥१९५॥

कारण ऊपरके भेद हैं। यदि एक-एक स्कन्धमें असंख्यात लोक मात्र अण्डर हैं, तब असंख्यात लोक मात्र स्कन्धोंमें कितने अण्डर हुए; इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर असंख्यात लोकसे गुणित असंख्यात लोक प्रमाण अण्डर होते हैं। इसी तरह आवास आदिके सम्बन्धमें भी त्रैराशिक करनेपर अण्डरसे असंख्यात लोकगुणे आवास होते हैं। आवाससे असंख्यात लोक गुणे पुलवी होते हैं, उनसे असंख्यात लोकगुणे बादर निगोद होते हैं ॥१९४॥

स्कन्धोंका दृष्टान्त जम्बूद्वीप आदि हैं। अण्डरोंका दृष्टान्त भरत आदि क्षेत्र हैं। आवासोंका दृष्टान्त कोशल आदि देश हैं। पुलवीका दृष्टान्त साकेत आदि नगर हैं और बादर निगोद शरीरोंका दृष्टान्त साकेत आदि नगरोंके घर हैं। 'वा' शब्द दृष्टान्तके अर्थमें है। अर्थात् जैसे मध्यलोकमें जम्बूद्वीप आदि द्वीप हैं, वैसे ही लोकमें स्कन्ध है। जैसे एक जम्बूद्वीपमें भरत आदि क्षेत्र हैं, वैसे ही स्कन्धमें अण्डर हैं। जैसे भरत क्षेत्रमें कोशल आदि देश हैं, वैसे ही अण्डरमें आवास हैं। जैसे कोशल देशमें अयोध्या आदि नगर हैं, वैसे ही आवासमें पुलवियाँ हैं। तथा जैसे अयोध्यामें अनेक घर हैं, वैसे ही पुलवीमें बादर निगोद शरीर है। इसी तरह अन्य भी दृष्टान्त जानना ॥१९५॥

एकनिगोदशरीरदोळु वर्त्तमानजीवंगळु द्रव्यप्रमाणदिं द्रव्याश्रयप्रमाणसंख्येयिंदमनंतानंतंगळु सर्व्वजीवराश्यनंतबहुभागंगळु संसारिजीवराश्यसंख्येयभागप्रमितंगळु सर्व्वदा विद्यमानंगळवुमक्षयानंतंगळेंदु परमागमदोळ् पेळल्पट्टुवु । सर्व्वजीवराश्यनंतैकभागमुमप्पनादिकालसिद्धजीवंगळं नोडलनंतगुणंगळुमंते सर्व्वातीतकालमं नोडेयुमनंतगुणंगळु मक्कुमिवरिंदं कालमनाश्रयिसि एकशरीरनिगोदजीवसंख्ये पेळल्पट्टुदु । क्षेत्रभावंगळनाश्रयिसि तत्संख्येयागमानुसारदिंदं योजनीयमक्कुं तेनें सर्व्वाकाशप्रदेशंगळं नोडेयुं केवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळं नोडेयुमनंतगुणहीनतेयिंदं ।

लोकाकाशप्रदेशंगळं नोडेयुं सर्व्वावधिज्ञानविषयभावमं नोडेयुमनंतगुणितमक्कुं । तत्संख्येय परमागमदोळु जिनदृष्टत्वप्रसिद्धियुंटप्पुदरिनविरुद्धमक्कुं । इल्लि विशेषविचारमुंटदावुदें दोडे—अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरदोळष्टोत्तरषट्शतजीवंगळु कर्म्मक्षयमं माडि सिद्धरागुत्तमिरलु सिद्धराशिगे पेच्चुगेयुं संसारिजीवराशिगे हानियुं काणल् बप्पुदरिनाव प्रकारदिंद सर्व्वदा सिद्धरुगळं नोडलनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवंगळगेकें दोडे सर्व्वजीवराश्यनंतगुणमप्प कालसमयसमूहक्के तद्योग्यानंतभागं पोगुत्तिरलु संसारिजीवराशिक्षयक्कं सिद्धराशिबहुत्वक्कं सुघटत्वमं दितेनल्वेडेकें दोडे केवलज्ञानदृष्टियिंदं केवलिगळिंवं श्रुतज्ञानदृष्टियिंदं श्रुतकेवलिगळिंदमुं सदा काणल्पट्ट भव्यसंसारिजीवा-

---

एकस्मिन् निगोदशरीरे वर्तमाना जीवा द्रव्यप्रमाणतः द्रव्याश्रयप्रमाणसंख्यया अनन्तानन्ताः सर्वजीवराश्यनन्तबहुभागमात्रसंसारिजीवराश्यसंख्येयभागप्रमिताः सर्वदा विद्यमानाः ते अक्षयानन्ता इति परमागमे भण्यन्ते । ते च सर्वजीवराश्यनन्तैकभागमात्रेभ्योऽनादिकालसिद्धजीवेभ्योऽनन्तगुणाः । तथैव सर्वातीतकालसमयेभ्योऽप्यनन्तगुणाः । अनेन कालमाश्रित्यैकशरीरनिगोदजीवसंख्या कथिता । क्षेत्रभावावाश्रित्य तत्संख्या आगमानुसारेण योज्यते । सर्वाकाशप्रदेशेभ्यः केवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदेभ्यश्चानन्तगुणहीनाः, तथा लोकाकाशप्रदेशेभ्यः सर्वावधिज्ञानविषयभावेभ्यश्चानन्तगुणिताः सन्ति । तत्संख्यायाः परमागमे जिनदृष्टत्वप्रसिद्धेर्विरोधो नास्ति । ननु अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु कर्मक्षयं कृत्वा सिद्धेषु सत्सु सिद्धराशेर्वृद्धिदर्शनात् संसारिजीवराशेश्च हानिदर्शनात् कथं सर्वदा सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वं एकशरीरनिगोदजीवानां सर्वजीवराश्यनन्तगुणकालसमयसमूहस्य तद्योग्यानन्तभागे गते सति संसारिजीवराशिक्षयस्य सिद्धराशिबहुत्वस्य च सुघटत्वात् ? इति चेन्न, केवलज्ञानदृष्ट्या केवलिभिः, श्रुतज्ञानदृष्ट्या श्रुतकेवलिभिश्च सदा दृष्टस्य भव्यसंसारिजीवराश्य-

---

एक निगोद शरीरमें वर्तमान जीव द्रव्यप्रमाणसे अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षा संख्यासे अनन्तानन्त हैं। अर्थात् सर्वजीव राशिके अनन्त बहुभाग मात्र संसारी जीवोंकी राशि है। उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव एक निगोद शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। वे अनन्तानन्त हैं, ऐसा परमागममें कहा है। तथा वे सर्व जीवराशिके अनन्तवें भागमात्र जो अनादिकालसे हुए सिद्ध जीव हैं, उनसे अनन्तगुणे हैं। तथा समस्त अतीत कालके समयोंसे भी अनन्तगुणे हैं। इससे कालकी अपेक्षा एक शरीरमें निगोद जीवोंकी संख्या कही। क्षेत्र और भावकी अपेक्षा उनकी संख्या आगमके अनुसार कहते हैं। समस्त आकाशके प्रदेशोंसे और केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे अनन्तगुणा हीन हैं। तथा लोकाकाशके प्रदेशोंसे और सर्वावधिज्ञानके विषयभूत भावोंसे अनन्त गुणित हैं। परमागममें उनकी संख्याको जिन भगवान्के द्वारा दृष्ट कहा है, इसलिए कोई विरोध नहीं है।

शंका—आठ समय और छह मासमें छह सौ आठ जीवोंके कर्मोंका क्षय करके सिद्ध होनेपर सिद्ध राशिकी वृद्धि देखी जाती है और संसारी जीवराशिकी हानि देखी जाती है। तब कैसे सर्वदा एक शरीरमें रहनेवाले निगोद जीव सिद्धोंसे अनन्तगुणे हो सकते हैं ? तथा

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्षयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तर्कविषयत्वाभावात्। प्रत्यक्षागमबाधितस्य च तर्कस्याप्रमाणत्वात्। अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वात् यद्यद्द्रव्यं तत्तदनुष्णं यथा जलम्। प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वात् यो यः पुरुषाश्रितः स सोऽसुखप्रदो यथाऽधर्मः इत्यादितर्कवत्। तर्हि तर्कबाधितस्य आगमस्य कथं प्रामाण्यं ? इति चेन्न प्रत्यक्षप्रमाणतर्कान्तरसंभावितस्यागमस्याविसंवादित्वेन प्रामाण्यसुनिश्चयात्। तद्द्वयविरोधिनस्तव तर्कस्याप्रमाणत्वाच्च। तर्हि किमिदं तर्कान्तरमिति चेदुच्यते सर्वो भव्यसंसारिराशिरनन्तेनापि कालेन न क्षीयते अक्षयानन्तत्वात् यो योऽक्षयानन्तः स सोऽनन्तेनापि कालेन न क्षीयते यथा इयत्तया परिच्छिन्नः कालसमयौघः, सर्वद्रव्याणां पर्यायोऽविभागप्रतिच्छेदसमूहो वा इत्यनुमानाङ्गस्य तर्कस्य प्रामाण्यसुनिश्चयात्। तर्हि हेतोः साध्यसमत्वमिति चेन्न—

कालके समयोंका समूह सर्व जीवराशिसे अनन्तगुणा है। अतः अपने योग्य अनन्त भाग काल बीतनेपर संसारी जीव राशिका क्षय और सिद्धराशिकी वृद्धि सुघटित है।

समाधान—उक्त शंका ठीक नहीं है, क्योंकि केवल ज्ञान रूप दृष्टिसे केवलियोंके द्वारा और श्रुतज्ञानरूप दृष्टिसे श्रुतकेवलियोंके द्वारा सदा देखा गया भव्य संसारी जीव राशिका अक्षयपना अति सूक्ष्म होनेसे तर्कका विषय नहीं है। तथा जो तर्क प्रत्यक्ष और आगमसे बाधित है, वह प्रमाण नहीं है। जैसे अग्नि शीतल होती है, क्योंकि द्रव्य है। जो-जो द्रव्य होता है, वह शीतल होता है जैसे जल। धर्म मरनेपर दुःख देता है; पुरुषके आश्रित होनेसे। जो-जो पुरुषके आश्रित होता है, वह-वह दुःखदायी होता है, जैसे अधर्म। ये तर्क प्रत्यक्ष और आगमसे बाधित हैं।

शंका—तब तर्कसे बाधित आगमको कैसे प्रमाण माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और अन्य तर्कोंसे सम्भावित आगमके असंवादि होनेसे उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है। तथा आपका तर्क प्रत्यक्ष और आगमका विरोधी होनेसे अप्रमाण है।

शंका—तब वह तर्क कौन-सा है। जिससे आगमका प्रामाण्य निश्चित है ?

समाधान—समस्त भव्य संसारी जीव राशि अनन्तकाल बीतनेपर भी क्षयको प्राप्त नहीं होती, क्योंकि वह अक्षय अनन्त प्रमाण है। जो-जो अक्षयानन्त होता है, वह-वह अनन्तकालमें भी क्षयको प्राप्त नहीं होता। जैसे इतने हैं, इस रूपसे परिमित होनेपर भी तीन

---

१. नागमस्य त ब।

बहुना सर्वतत्त्वंगळ प्रवक्तृपुरुषनप्पाप्तनु सिद्धनागुत्तिरलु तद्वाक्यमप्पागमव सूक्ष्मांतरितदूरार्थंगळोळु प्रामाण्य सुप्रसिद्धियप्पुदरिंदं तदागमपदार्थंगळोळ् निःशंकमेम्म चित्तं साकिन्तु वादवृकतेयिं। आप्तसिद्धियं "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः" इत्यादि वेदवाक्यदिंदं "प्रणम्य शंभुम्" इत्यादि नैय्यायिकवाक्यदिंदं "बुद्धो भवेयम्" इत्यादि बौद्धवाक्यदिंदं "मोक्षमार्गस्य नेतारमित्याद्याहंतवाक्यदिंदं परिंरवं तत्तद्दर्शनदेवतेयं स्तवरूपवाक्यंगळिंदं सामान्यदिनोडंबडलपट्टुदु। विशेषदिंदं मत्ते सर्वज्ञः वीतरागनप्प स्याद्वादियप्पाप्तंगेये युक्तियिंद साधनमुंटप्पकारणदिंदं विस्तरदिंदं स्याद्वादतर्ककशास्त्रंगळोळु तत्सिद्धि ज्ञातव्यमक्कुमेंदितु सुनिश्चिताऽसंभवद्बाधकप्रमाणत्वदिंदं आप्तंगं तदागमक्कं सिद्धत्वदत्तणिंदं तत्प्रणीतमप्प मोक्षतत्त्वमुं बंधतत्त्वमुमवश्यमभ्युपगमनीयमेंदितु सिद्धमाप्तु। सिद्धरं मोडलनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवंगळ्गं।

भव्यराश्यक्षयानन्तत्वस्यागमसिद्धस्य साध्यसमत्वाभावात्। किं बहुना सर्वतत्त्वानां प्रवक्तरि पुरुषे आप्ते सिद्धे सति तद्वाक्यस्यागमस्य सूक्ष्मान्तरितदूरार्थेषु प्रामाण्यसुप्रसिद्धेः। तदागमपदार्थेषु निश्शङ्कं मम चित्तं किन्तु वादबृंहितया। आप्तसिद्धिस्तु विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः इत्यादिवेदवाक्येन। प्रणम्य शम्भुमित्यादिनैयायिकवाक्येन। बुद्धो भवेयमित्यादिबौद्धवाक्येन। मोक्षमार्गस्य नेतारमित्याहंतवाक्येन अपरैस्तत्तद्दर्शनदेवतास्तवनरूपवाक्यैश्च सामान्यतोऽङ्गीकृता। विशेषेण सर्वज्ञवीतरागस्याद्वाद्यास्यैव युक्तयापि साधनात्। विस्तरतः स्याद्वादतर्कशास्त्रेषु तत्सिद्धिर्ज्ञातव्येति इत्येवं सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् आप्तस्य तदागमस्य च सिद्धत्वात् तत्प्रणीतं मोक्षतत्त्वं बन्धतत्त्वं चावश्यमभ्युपगमनीयमिति सिद्धं सिद्धेभ्योऽनन्तगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवानाम् ॥१९६॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कालके समय कभी समाप्त नहीं होते; या सब द्रव्योंकी पर्याय अथवा अविभाग प्रतिच्छेदोंका समूह कभी समाप्त नहीं होता। इस प्रकार अनुमानका अंग जो तर्क है, उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है।

शंका—तब आपका हेतु भी साध्यके समान हुआ, क्योंकि साध्य भी अक्षयानन्त है और हेतु भी वही है।

समाधान—नहीं, क्योंकि भव्यराशिका अक्षयानन्तपना आप्त प्रणीत आगमसे सिद्ध है, अतः साध्यसम नहीं है। अधिक कहनेसे क्या, सब तत्त्वोंके प्रवक्ता पुरुषके आप्त सिद्ध होनेपर उसके वचनरूप आगमका प्रमाण सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थोंमें सुप्रसिद्ध है। इसलिए उनके द्वारा उपदिष्ट आगममें कहे हुए पदार्थोंके सम्बन्धमें मेरा चित्त शंका रहित है। वृथा बकवाद करनेसे क्या लाभ है? आप्तकी सिद्धि तो 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' इत्यादि वेदवाक्यसे, 'प्रणम्य शम्भुं' इत्यादि नैयायिकोंके वाक्यसे, 'बुद्धो भवेयम्' इत्यादि बौद्ध वाक्यसे और 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' इत्यादि जैनवाक्यसे तथा दूसरे वादियोंके अपने-अपने मतके देवताके स्तवनरूप वाक्योंसे सामान्यसे स्वीकृत ही है। विशेष रूपसे सर्वज्ञ वीतराग स्याद्वादी आप्तको ही युक्तिसे भी सिद्ध किया है। विस्तारसे उसकी सिद्धि स्याद्वादके तर्कशास्त्रोंसे जाननी चाहिए। इस प्रकार बाधक प्रमाणके सुनिश्चित रूपसे असम्भव होनेसे आप्त और उसके द्वारा उपदिष्ट आगम सिद्ध है। अतः उसमें कहे हुए मोक्ष तत्त्व और बन्ध तत्त्वको अवश्य स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार एक शरीरमें निगोद जीव सिद्धोंसे अनन्तगुणे होते हैं, यह सिद्ध है ॥१९६॥

१. म °नंदिंदमुं कि°।

अत्थि अणंता जीवा जेहि ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंक सुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ॥१९७॥

मार्गदर्शक आचार्य श्री जयकीर्तिजी महाराज

सन्त्यनंता जीवा यैर्न प्राप्तः त्रसानां परिणामः । भावकलंकसुप्रचुरा निगोदवासं न मुंचंति ॥

नित्यनिगोदलक्षणमिदरिंदमरियल्पडुगुमवंतेने यैर्निगोदजीवैः आवुवु केलवु निगोदजीवंगळिवं त्रसानां द्वींद्रियादिगळ परिणामः पर्य्यायमेंतप्पडं प्रायेण न प्राप्तः पिरिदुं पोर्द्दल्पडदु ते जीवाः आ जीवंगळु अनंताः अनंतानंतंगळु । अनादिसंसारदोळु निगोदभवमनेयनुभविसुवंतप्प नित्यनिगोदसंज्ञेयनुळ्ळवु सर्व्वदा संति एल्ला कालमोळवु । किं विशिष्टाः भावकलंकसुप्रचुराः भावमप्प निगोदपर्य्यायावकलंकदिवं तद्योग्यकषायोदयाविर्भावितकुलेश्यालक्षणमप्प संक्लेशदिवं सुप्रचुराः अत्यंतसंघटितंगळुमितप्प नित्यनिगोदजीवंगळु निगोदावासं निगोदभवस्थितियं कदाचिदपि न मुंचंति एंबप्पडं विदुषुवल्लु । अदु कारणमागि निगोदभवक्काद्यंतरहितत्वविंदमनंतानंतजीवंगळगे नित्यनिगोदत्वं समर्थितमाय्तु ।

नित्यविशेषणविंदमनित्यनिगोदंगळु चतुर्गतिनिगोदंगळप्प सादिसांतरनिगोदभवंगळनुळ्ळवु जीवंगळु मोळवेंबु सूचितमरियल्पडुगु "णिच्च चदुग्गदि णिगोदचूलिदरा" इत्यादिपरमागमदोळु निगोदजीवंगळ्विविक्षितत्वक्के सुप्रसिद्धत्वंविंदं । एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचियप्प प्रचुरशब्दविंदं कदाचित् अष्ट समयाधिकषण्मासाभ्यंतरदोळु चतुर्गतिजीवराशियिंदं पोरमट्टुत्तरवद्शत-

---

नित्यनिगोदलक्षणमनेन ज्ञातव्यम् । तत्कथम् ? यैर्निगोदजीवैः त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां परिणामः—पर्यायः, कदाचिदपि-प्रायेण न प्राप्तः ते जीवा अनन्तानन्ता अनादिसंसारे निगोदभवमेवानुभवन्तो नित्यनिगोदसंज्ञाः सर्वदा सन्ति । किं विशिष्टाः ? भावकलङ्कसुप्रचुराः—भावस्य—निगोदपर्यायस्य कलङ्केन तद्योग्यकषायोदयाविर्भावितदुर्लेश्यालक्षणसंक्लेशेन प्रचुराः—अत्यन्तं संघटिताः । एवंविधनित्यनिगोदजीवाः निगोदावासं निगोदभवस्थितिं कदाचिदपि न मुञ्चन्ति । तेन कारणेन निगोदभवस्य आद्यन्तरहितत्वादनन्तानन्तजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं जातम् । नित्यविशेषणेन पुनरनित्यनिगोदाः चतुर्गतिनिगोदरूपसादिसान्तनिगोदभववन्तः केचन जीवाः सन्तीति सूचितं ज्ञातव्यम् । 'णिच्चचदुग्गदिणिगोदेत्यादौ परमागमे निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात् । एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यन्तरे चतुर्गतिजीवराशितो निर्गतेषु अष्टो-

---

इस गाथासे नित्यनिगोदका लक्षण जानना । वह इस प्रकार है—

जिन निगोद जीवोंने दोइन्द्रिय आदि त्रसोंके परिणाम अर्थात् पर्यायको कभी भी प्रायः करके प्राप्त नहीं किया, वे अनन्तानन्त जीव अनादि कालसे निगोद भवको ही भोगते हुए सर्वदा नित्यनिगोद संज्ञावाले होते हैं । वे भाव अर्थात् निगोद पर्यायके, कलंक अर्थात् उसके योग्य कषायके उदयसे प्रकट हुई अशुभ लेश्यारूप संक्लेशसे प्रचुर अर्थात् अत्यन्त सम्बद्ध होते हैं । इस प्रकारके नित्यनिगोद जीव निगोदवास अर्थात् निगोदकी भवस्थितिको कभी भी नहीं छोड़ते । इस कारणसे निगोद भवके आदि और अन्तसे रहित होनेसे अनन्तानन्त जीवोंके नित्यनिगोदपनेका समर्थन होता है । नित्य विशेषणसे यह सूचित होता है कि चतुर्गति निगोदरूप सादि सान्त निगोद भववाले कुछ जीव अनित्यनिगोद होते हैं । 'णिच्चचदुग्गतिणिगोद' इत्यादि परमागममें निगोद जीवोंके दो प्रकार सुप्रसिद्ध हैं । एकदेशके अभावसे विशिष्ट सकल अर्थके वाचक प्रचुर शब्दसे यह अर्थ प्रतिपादित हुआ जानना

---

१. ब °भावजाता । २. ब देशभाव° ।

जीवंगळ् मुक्तिगे सलुत्तिरलिन्तु जीवंगळु नित्यनिगोदभवमं पत्तुविट्टु चतुर्गतिभवमनेय्दुवर्नेंदितीयर्थं प्रतिपादितमेवरियल्पडुवुदु ।

अनंतरं त्रसकायप्रकरणनिमित्तं गाथाद्वयमं पेळ्दपं ।

विहि तिहि चदुहि वि पंचहि सहिया जे इंदिएहि लोयम्हि ।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवदेसेण ॥१९८॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पंचभिः सहिता ये इंद्रियैर्लोके । ते त्रसकाया जीवा ज्ञेया वीरोपदेशेन ॥

स्पर्शनरसनमेंबेरडुं स्पर्शनरसनघ्राणमेंबी मूरुं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुस्सेंब नाल्कं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमेंबैदुमिन्द्रियंगळिवं सहितंगळप्प जीवंगळावुवु केलवु लोकदोळोळवु त्रसकायंगळेंदितु वीरवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेवनुपदेशदिंदमविच्छिन्नगुरुपरंपेक्रमागतसंप्रदायदिंदं श्रुत गृहीतधारितार्थंरप्पेन्निम्बं प्रतिपादितंगळेवितु ज्ञेयंगळ् ।

उववादमारणंतियपरिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसनालिबाहिरम्मि य णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥१९९॥

उपपादमारणांतिकपरिणतत्रसमुज्झित्वा शेषत्रसाः । त्रसनालिबाह्ये च न संति इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

विवक्षितभवप्रथमसमयपर्य्यायप्राप्तिरुपपादः । मरणं प्राणत्यागः । मरणमंतोवसानं यस्य स मरणांतः कालः वर्त्तमानभवस्थितिचरमांतर्मुहूर्तः । मरणांते भवो मारणांतिकः समुद्घात

सरघट्शतजीवेषु मुक्तिगतेषु तावन्तो जीवा नित्यनिगोदभवं त्यक्त्वा चतुर्गतिभवं प्राप्नुवन्तीत्ययमर्थः प्रतिपादितो बोद्धव्यः ॥१९७॥ अथ त्रसकायं गाथाद्वयेनाह—

स्पर्शनरसनाभ्यां, द्वाभ्यां ताभ्यां घ्राणेन चेति त्रिभिः, तैश्चक्षुषा चेति चतुर्भिः, तैः श्रोत्रेण चेति पञ्चभिरक्षेन्द्रियैः सहिता ये जीवास्त्रसकाया इति वीरवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवस्य उपदेशेन अविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागतसंप्रदायेन श्रुतगृहीतधारितार्थेन प्रतिपादिता ज्ञेयाः ॥१९८॥

विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्तिः उपपादः । मरणं—प्राणत्यागः अन्तः अवसानं यस्य स मरणान्तः

कि कदाचित् छह महीना आठ समयके भीतर चतुर्गति राशिसे निकलकर छह सौ आठ जीवोंके मुक्ति जानेपर उतने ही जीव नित्यनिगोद भवको छोड़कर चतुर्गति भवमें आते हैं ॥१९७॥

आगे दो गाथाओंसे त्रसकायको कहते हैं—

स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियोंसे, स्पर्शन, रसना, घ्राण तीन इन्द्रियोंसे, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इन्द्रियोंसे, तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच इन्द्रियोंसे सहित जो जीव लोकमें हैं, वे जीव त्रसकाय हैं। ऐसा वर्धमान तीर्थंकर परमदेवके उपदेशसे अविच्छिन्न गुरु परम्परासे आगत सम्प्रदायसे हमने श्रुतके अर्थका अवधारण करके कहा है सो जानना ॥१९८॥

विवक्षित भवके प्रथम समयमें पर्यायकी प्राप्तिको उपपाद कहते हैं। मरण अर्थात् प्राणत्याग और अन्त अर्थात् अवसान जिसके हो, वह मरणान्त काल वर्तमान भवकी

---

१. °न अस्माभिः श्रुतगृहीतधारितार्थैः मु ।

उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्य्यंतं जीवप्रदेशप्रसरणलक्षणः । उपपादविदं परिणतमप्प मारणांतिक समुद्घातविदं परिणतमप्प त्रसजीवमं वर्ज्जिसि च शब्दविदं सूचिसल्पट्ट केवलिसमुद्घातपरिणतमप्प त्रसमं वर्ज्जिसि शेषंगळप्प स्वस्थानादिपदपरिणतंगळप्प सर्वमुं त्रसजीवंगळु त्रसनाळिबाह्यलोकक्षेत्रदोळिल्लेंदितु जिनैर्म्मिहिष्टमर्हदादिगळिंदं पेळल्पट्टुदु । अदु कारणमागि त्रसंगळ नळिगेयंते त्रसनाळियें देकरज्जुविष्कंभायतमुं चतुर्द्दशरज्जूत्सेधमुमप्प लोकमध्यस्थितमन्वर्थसंज्ञेयिदं पेळल्पट्टुदु ।

ओंदानुमोर्व्वं जीवनु त्रसनाळिबाह्यमप्प वातवलयदोळिद्दु त्रसदोळ् बद्धायुष्कनु प्राक्तनवायुकायिकभवमं पत्तुविट्टु मुंदण त्रसकायिकभवमं पोंदि विग्रहगतिय प्रथमसमयदोळु त्रसनामकर्म्मोदयविदं त्रसभावि वर्त्तिसुगुमेंदितुपपाद परिणत त्रसक्के त्रसनाळिबाह्यदोळस्तित्वं । ओंदानुमोर्व्वं त्रसजीवं त्रसनाळिमध्यदोळिद्दु तनुवातवलयदोळ् वायुकायिकदोळ् बद्धायुष्कं स्वायुरवसानांतर्मुहूर्त्तकालदोळ् तनुवातवलयपर्य्यंतं त्रसनाळिबाह्यक्षेत्रदोळात्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणमारणांतिकसमुद्घातमं माळ्कुमेंदितुमा त्रसक्के त्रसनाळिबाह्यक्षेत्रदोळस्तित्वं केवलियुं कवाटाद्याकारविदं

कालः वर्तमानभवस्थितिचरमान्तर्मुहूर्तः । मरणान्ते भवः मारणान्तिकः समुद्घातः उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्यन्तजीवप्रदेशप्रसर्पणलक्षणः । उपपादपरिणतं मारणान्तिकसमुद्घातपरिणतं चशब्दात् केवलिसमुद्घातपरिणतं च त्रसं उज्झित्वा-वर्जित्वा शेषाः स्वस्थानादिपदपरिणताः सर्वे त्रसजीवाः त्रसनाडिबाह्ये लोकक्षेत्रे न सन्तीति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं-कथितम् । ततः कारणात् त्रसानां नालिरिव नालिस्त्रसनालिः । सा च एकरज्जुविष्कम्भायामा चतुर्दशरज्जूत्सेधा लोकमध्यस्थिता अन्वर्थसंज्ञया कथिता । कश्चिज्जीवः त्रसनालिबाह्ये वातवलये स्थितः त्रसे बद्धायुष्कः प्राक्तनं वायुकायिकभवं त्यक्त्वा उत्तरं त्रसकायं प्राप्य अग्रतनविग्रहगतिप्रथमसमये त्रसनामकर्मोदयेन त्रसो जातः इत्युपपादपरिणतत्रसस्य त्रसनालिबाह्येऽस्तित्वम् । कश्चित् त्रसजीवः त्रसनालिमध्ये स्थितः तनुवातवलयस्य वायुकायिके बद्धायुष्कः स्वायुरवसानान्तर्मुहूर्तकाले तनुवातवलयपर्यन्तं त्रसनालिबाह्ये क्षेत्रे आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणमारणान्तिकसमुद्घातं करोतीति तस्य त्रसस्य त्रसनालिबाह्यक्षेत्रेऽप्यस्तित्वम् ।

स्थितिका अन्तिम मुहूर्त है । मरणान्तमें हुआ मारणान्तिक समुद्घात है। उत्तर भवकी उत्पत्ति स्थान पर्यन्त जीवके प्रदेशोंके विस्तारको मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं । उपपादसे परिणत, मारणान्तिक समुद्घातसे परिणत और 'च' शब्दसे केवलि समुद्घातसे परिणत त्रसको छोड़कर शेष स्वस्थान आदि पदरूपसे परिणत सब त्रसजीव त्रसनाड़ीसे बाहरके लोकक्षेत्रमें नहीं रहते,ऐसा अर्हन्त आदिने कहा है । इसी कारणसे त्रसोंकी नालिके समान नालि त्रसनालि यह सार्थक नाम है । यह त्रसनालि लोकके मध्यमें स्थित है । एक राजू लम्बी, चौड़ी और चौदह राजू ऊँची है । कोई जीव त्रसनालिके बाहर वातवलयमें स्थित है, उसने त्रसकी आयु बाँधी है । अपने वर्तमान वायुकायिक भवको त्यागकर उत्तर त्रसकायको प्राप्त करके आगेकी विग्रहगतिके प्रथम समयमें त्रसनामकर्मका उदय होनेसे त्रस हुआ । इस प्रकार उपपाद परिणत त्रसका त्रसनालिके बाहर अस्तित्व हुआ । कोई त्रसजीव त्रसनालिके मध्यमें स्थित है । उसने तनुवातवलयके वायुकायिककी स्थितिका बन्ध किया । अपनी आयुके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त कालमें तनुवातवलय पर्यन्त त्रसनालीके बाहरके क्षेत्रमें आत्माके प्रदेशोंके विस्तार रूप मारणान्तिक समुद्घातको करता है । उस त्रसका त्रसनालिके बाह्य क्षेत्रमें भी अस्तित्व-

---

१. ब त्यक्त्वाग्रत° ।

त्रसनालिबाह्यदोळमात्म प्रदेशप्रसर्पणलक्षणमप्प समुद्घातमं माळ्कुमेंदितु केवलिगं त्रसनालिबाह्यदोळस्तित्वं सिद्धमेंदितु शास्त्रकारन तात्पर्य्यं ।

अनंतरं वनस्पतियंते पेरवु जीवंगळगं प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागमं पेळ्दपं ।

पुढवीयादिचउण्हं केवलियाहारदेवणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदा णिगोदहि पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥२००॥

पृथिव्यादिचतुर्णां केवल्याहारदेवनारकांगानि । अप्रतिष्ठितानि खलु निगोदैः प्रतिष्ठितांगानि शेषाणि ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकंगळ नाल्कुं तेरद जीवंगळंगगळुं केवलिआहारकदेवनारकांगंगळुं बादरनिगोदजीवशरीरंगळिवं अप्रतिष्ठितंगळनाश्रितंगळेंबुवर्थं । शेषंगळऽप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीरंगळुं द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यंज्जीवशरीरंगळमवशिष्टमनुष्यजीवशरीरंगळुं बादरनिगोदजीवशरीरंगळिवं प्रतिष्ठितंगळुमाश्रितंगळु ।

मुनिदर्शक – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनंतरं स्थावरकायिकंगळगेयुं त्रसकायिकंगळगेयुं शरीरसंस्थानं पेळ्दपं :—

मसुरंबुबिंदुसूई कलावधयसण्णिहो हवे देहो ।
पुढवीयादि चउण्हं तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

मसूरांबुबिंदु सूचीकलापध्वजसंनिभो भवेद्देहः । पृथिव्यादिचतुर्णां तरुत्रसकाया अनेकविधाः ॥

केवलीकवाटाद्याकारेण त्रसनालिबाह्ये आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणसमुद्घातं करोतीति तस्य केवलिनोऽपि त्रसनालिबाह्येऽस्तित्वं सिद्धमिति शास्त्रकारस्य तात्पर्यम् ॥१९९॥ अथ वनस्पतिवदन्येषामपि जीवानां प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागं कथयति—

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकचतुर्विधजीवाङ्गानि केवल्याहारकदेवनारकाङ्गानि च बादरनिगोदजीवशरीरैरप्रतिष्ठितानि अनाश्रितानीत्यर्थः । शेषाणि अप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीराणि द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियतिर्यग्जीवशरीराणि अवशिष्टमनुष्यजीवशरीराणि च बादरनिगोदजीवशरीरैः प्रतिष्ठितानि—आश्रितानि भवन्ति ॥२००॥ अथ स्थावरकायिकानां त्रसकायिकानां च शरीरसंस्थानमाह—

हुआ। जो केवली कपाट आदिके आकाररूपसे त्रसनालीके बाहर आत्माके प्रदेशोंके फैलावरूप समुद्घातको करता है, उस केवलीका भी त्रसनालीके बाह्य क्षेत्रमें अस्तित्व सिद्ध है। यह ग्रन्थकारका तात्पर्य है ॥१९९॥

वनस्पतिकी तरह अन्य जीवोंके भी प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित भेद कहते हैं—

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक इन चार प्रकारके जीवोंके शरीर, केवलीका शरीर, आहारकशरीर, देवों और नारकियोंका शरीर, बादरनिगोद जीवोंके शरीरसे अप्रतिष्ठित हैं; इन शरीरोंमें उनका वास नहीं है। शेष सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक शरीर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवोंके शरीर, और कहेसे बाकीके मनुष्योंके शरीर बादर निगोद शरीरोंसे प्रतिष्ठित हैं; उनमें उनका वास है ॥२००॥

आगे स्थावरकायिकों और त्रसकायिकोंके शरीरका आकार कहते हैं—

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकजीवंगळ्नाल्कर देहं यथाक्रमं मसूरांबुबिंदुसूचीकलापध्वजसन्निभमक्कुं।

पृथिवीकायिकन शरीरं मसूरवृत्त चणकबोडने सदृशमंते गोलकाकारमें बुदत्थं। अप्कायिकन शरीरं जलबिंदुविनोडने सदृशमिदुवुं गोलकाकारमें बुदत्थं। तेजस्कायिकनशरीरं सूचीकलापदोडन सदृशमंतेयूर्ध्वबहुमुखमें बुदत्थं। वातकायिकन शरीरं ध्वजबोडने सदृशमंतेयायतचतुरस्रमें बुदत्थं एत्तलानुमिवर शरीरंगळ्मे पेळल्पट्ट संस्थानंगळ्दंतावोडं तदवगाहनं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमेयक्कुमप्पुदरिदं दृष्टिगोचरमल्तु। इंद्रियगोचरत्वदिदं प्रतीयमानमप्प पृथिव्यादिकमुं बहुशरीरसमूहमेंदितु ग्राह्यमक्कुं। तरुगळप्प वनस्पतिकायिकंगळ त्रसकायिकंगळ कायंगळनेकविधंगळऽ नियतसंस्थानंगळ यथासंभवं घनांगुलासंख्यातभागमुं संख्यातभागमुं संख्यातगुणितप्रमितावगाहनंगळनुळ्ळ वेंदरियल्पडुवुवु।

इंतु कायमार्गणेयं पेळ्दनंतरं तत्कायसहितनप्प संसारिजीवंगे दृष्टांतपूर्वकमागि व्यवहारमं पेळ्दपं।

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकजीवानां चतुर्णां देहाः—शरीराणि यथाक्रमं मसूराम्बुबिन्दुसूचीकलापध्वजसन्निभानि भवन्ति। पृथ्वीकायिकशरीरं मसूरेण वृत्तचणकेन सदृशं तादृक्गोलकाकारमित्यर्थः। अप्कायिकशरीरं जलबिन्दुना सदृशं इदमपि गोलकाकारमित्यर्थः। तेजस्कायिकशरीरं सूचीकलापेन सदृशं तादृगूर्ध्वबहुमुखमित्यर्थः। वातकायिकशरीरं ध्वजेन सदृशं तादृगायतचतुरस्रमित्यर्थः। यद्यपि तच्छरीराणि उक्तसंस्थानानि तथापि तदवगाहनं घनाङ्गुलासंख्येयभागमात्रमेवेति दृष्टिगोचरं नास्ति—इन्द्रियगोचरत्वेन प्रतीयमानं पृथिव्यादिकं बहुशरीरसमूह इति ग्राह्यम्। तरूणां वनस्पतिकायिकानां, त्रसानां द्वीन्द्रियादीनां च कायाः शरीराणि अनेकविधाः अनियतसंस्थाना यथासंभवं घनाङ्गुलासंख्येयभागादिसंख्यातगुणितघनाङ्गुलावसानावगाहनविकल्पविशिष्टाः सन्तीति ज्ञातव्याः ॥२०१॥ एवं कायमार्गणाकथनान्तरं कायसहितसंसारिजीवस्य दृष्टान्तपूर्वकं व्यवहारमाह—

पृथिवी, अप, तेज और वायुकायिक इन चारका शरीर क्रमसे मसूर, जलकी बूँद, सूचीकलाप, और ध्वजाके समान होता है। अर्थात् पृथिवीकायिकका शरीर मसूरके समान गोलाकार होता है। अप्कायिकका शरीर जलकी बूँदके समान गोलाकार होता है। तेजस्कायिकका शरीर सूचीकलापके समान अर्थात् जैसे सूचीसमूह ऊँचा और बहुत मुखवाला होता है वैसा ही आकार होता है। वायुकायिकका शरीर ध्वजाके समान लम्बा चौकोर होते हैं। यद्यपि इनके शरीर उक्त आकारवाले हैं तथापि उनकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र हैं इसलिए इन्द्रियगोचर नहीं हैं। जो पृथिवी आदि इन्द्रियगोचर प्रतीत होती है, वह तो बहुत-से शरीरोंका समूह है ऐसा जानना। तरु अर्थात् वनस्पतिकायिकोंके तथा दोइन्द्रिय आदि त्रसोंके शरीर अनेक प्रकारके हैं, उनका कोई नियत आकार नहीं है। उनकी अवगाहना यथासम्भव घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर संख्यात गुणित घनांगुल पर्यन्त भेदोंको लिये हुए है; ऐसा जानना ॥२०१॥

इस प्रकार कायमार्गणाके कथनके पश्चात् कायसहित संसारी जीवोंका व्यवहार दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं—

---

१. म °भागमेयप्पुदं। २. म संख्यात संख्यातभागमुं गुणित°। ३. तद्वद्गो० मु।

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेण्हियूण कावलियं ।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावलियं ॥२०२॥

यथा भारवहः पुमान् वहति भारं गृहीत्वा कावटिकं । एवमेव वहति जीवः कर्मभरं काय-कावटिकं ॥

लोकदोळे तिगळु भारवाहकनप्प पुरुषं कावटिकं काबटियं भद्दः कावटिकस्तं कावटियोळिट्टु भारमं कोंडु विवक्षितस्थानमं वहति नयति प्रापयति येयिदिसुगुमंते संसारिजीवनुमौदारिकादि-नोकर्म्मशरीरमेंब कवाडियोळिट्टिर्द्द ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्म्मभारमं पोत्तुकोंडु नानायोनिस्थानंगळनु वहति येयिदिसुगुं । बळिक्कं विप्रमुक्तकावटिक भारमप्प पुरुषनंतोंडु तन्निष्टस्थानदोळु तद्भारा-क्रांतिजनितदुःखविगमदिंदं सुखियागिक्कुमंतेयो दानुमोर्व्व भव्यजीवनुं लब्धियिंदं बेरेकोंड सम्यग्दर्शनादिसामग्रिसंपन्ननप्प तत्वज्ञानि शरीरकावटिकेयोळ् तीविर्द्द कर्म्मभरमं लेसागि पत्तु-विट्टु तद्भाराक्रांतिजनित नानाविधदुःखवेदनाविगमदिंदं एंदानुमोर्म्मं इष्टमप्प लोकाग्रनिवासदोळ् सुखियागिक्कुमेंदितु भव्यजनहितोपदेशमिदाचार्य्यनभिप्रायगतं लक्ष्यमक्कुं ।

अनंतरं दृष्टांतपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रांतमप्प सोपायसिद्धस्वरूपमं पेळ्दपं ।

मार्ग~~जह कंचणमग्गिगयं मुच्चइ किट्टेण कालिकाए य ।~~

तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण ॥२०३॥

यथा कांचनमग्निगतं मुच्यते किट्टेन कालिकया च । तथा कायबंधमुक्ता अकायिका ध्यानयोगेन ॥

लोके यथा भारवाहकः पुरुषः कावटिकः—कावटिभूतं भारं गृहीत्वा विवक्षितस्थानं वहति नयति प्रापयति तथा संसारिजीवः औदारिकादिनोकर्मशरीरलक्षणज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभारं गृहीत्वा नानायोनिस्थानानि वहति । पुनरपि स एव विप्रमुक्तकावटिकभारः एकत्र तदिष्टस्थाने तद्भाराक्रान्तिजनितदुःखविगमेन सुखी भूत्वा तिष्ठति । तथा कश्चिद्भव्यजीवोऽपि लब्धिभिः स्वीकृतसम्यग्दर्शनादिसामग्रीसम्पन्नः तत्त्वज्ञानी शरीरकावटिक-भूतकर्मभरं विप्रमुच्य तद्भाराक्रान्तिजनितनानाविधदुःखवेदनाविगमेनेष्टे लोकाग्रनिवासे सुखीभूत्वा तिष्ठति इति भव्यजनहितोपदेशोऽयमाचार्यस्याभिप्रायगतो लक्ष्यः ॥२०२॥ अथ दृष्टान्तपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रान्त-सोपायसिद्धस्वरूपं प्ररूपयति—

लोकमें जैसे बोझा ढोनेवाला पुरुष कावटिकामें रखे भारको लेकर विवक्षित स्थानको ले जाता है, वैसे ही संसारी जीव औदारिक आदि नोकर्म शरीरमें रखे ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मोंके भारको लेकर नाना योनिस्थानोंमें जाता है। पुनः वही मनुष्य कावटिकाके भारसे मुक्त होकर अपने इष्ट स्थानमें उस भारसे होनेवाले दुःखके चले जानेसे सुखी होकर बैठता है। उसी प्रकार कोई भव्य जीव भी पाँच लब्धियोंके द्वारा सम्यग्दर्शन आदि सामग्री-से सम्पन्न हो, तत्त्वज्ञानी बन शरीररूपी कामरमें भरे कर्मोंके भारसे मुक्त होकर उस भारसे होनेवाली नाना प्रकारके दुःखोंकी वेदनाके चले जानेसे इष्ट लोकके अग्रभागमें सुखी होकर रहता है। इस प्रकार आचार्यके अभिप्रायमें भव्यजीवोंके लिये जो यह हितोपदेश है, उसपर दृष्टि देना चाहिए ॥२०२॥

आगे दृष्टान्त पूर्वक कायमार्गणासे रहित सोपाय सिद्धोंका स्वरूप कहते हैं—

१. म °रनागियोंदु°तन्निष्ट ।

एंतीग लोकदोळु मलिनमप्प कांचनं सुवर्णमग्निगतं प्रज्वलज्ज्वलनदग्धमंतरंगसूतादिभावना-संस्कृतमादुदु, किट्टमप्प बहिर्म्मलविदमुं वैवर्ण्यरूपमप्पंतरंगमलदिदमुं पत्तुविट्टु बळिक्कं जाज्वलवत् षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धियं पोंदि सर्व्वजनंगळिंव श्लाघनीयमक्कुमन्ते ध्यानयोगदिदं धर्म्म-शुक्लध्यानभावनेयिंदं संस्कृतबहिरंगतपोऽग्निविशेषदिदमंगळप्पासन्नभव्यजीवंगळौदारिकतैजसकाय-द्वयदिदं कार्म्मणशरीरसंश्लेषरूपमप्प बंधदिदमुं मुक्तरागि अकायिका अशरीराः सिद्धपरमेष्ठिगळु अनंतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धियनेय्दि लोकाग्रदोळु सर्व्वलोकदिंदं स्तुतिप्रणामार्च्चनादिगळिंद श्लाघ्यर-प्पर। कायोऽस्त्येषामिति कायिकाः शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः। तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इत्यर्थः।

अनंतरं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरुगळेकादशगाथासूत्रंगळिंदं कायमार्गणेयोळ पृथ्वीकायिकादि जीवंगळ संख्येयं पेळ्दपर।

मार्गदर्शक :- आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

भूजलवाऊ अहिया पडिभागो असंखलोगो दु॥२०४॥

अङ्गुलचतुर्थराशिवारान् लोकान् अन्योन्यसंगुणिते तेजस्कायिकाः भूजलवाययोऽधिकाः प्रति-भागोऽसंख्यलोकस्तु॥

जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकप्रदेशप्रमाणमं शलाकाविरलनदेयमेंदु त्रिप्रतीकं माडि श वि दे

यथा लोके मलिनं काञ्चनं-सुवर्णं, अग्निगतं-प्रज्वलज्ज्वलनदग्धं, अन्तरङ्गसूतादिभावनासंस्कृतं सत् किट्टेन-बहिर्मलेन वैवर्ण्यरूपान्तरङ्गमलेन च मुच्यते जाज्वलत्षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य सर्वजनैः श्लाघ्यते। तथा ध्यानयोगेन-धर्म्यशुक्लध्यानभावनया संस्कृतबहिरङ्गतपोऽग्निविशेषेण आसन्नभव्यजीवा अपि औदारिकतैजसकायाभ्यां कार्मणशरीरसंश्लेषरूपबन्धेन च मुक्ता भूत्वा अकायिकाः-अशरीराः सिद्धपरमेष्ठिनः, अनन्तज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य लोकाग्रे सर्वलोकेन स्तुतिप्रणामार्चनादिभिः श्लाघ्यन्ते। काय अस्ति एषामिति कायिकाः-शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः। तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इत्यर्थः॥२०३॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवा एकादशगाथासूत्रैः कायमार्गणायां पृथ्वीकायिकादिजीवसंख्यामाख्यान्ति—

जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकप्रदेशप्रमाणं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श। वि। दे।

जैसे लोकमें मलयुक्त सुवर्ण प्रज्वलित अग्निमें जलकर तथा अन्तरंगमें पारा आदि भावनासे संस्कारयुक्त होकर बाह्य मल और कालिमारूप अन्तरंग मलसे मुक्त हो जाता है और चमकते हुए सोलहतावरूप स्वरूपको प्राप्त करके सर्वजनोंसे प्रशंसित होता है। उसी तरह ध्यान योगरूप धर्म और शुक्ल भावनाके द्वारा संस्कृत बाह्यतपरूप अग्निविशेषसे निकट भव्यजीव भी औदारिक और तैजस तथा कार्मणशरीरके साथ संश्लेषरूप बन्धसे मुक्त होकर अशरीर सिद्धपरमेष्ठी, अनन्तज्ञानादि स्वरूपको प्राप्त करके लोकके अग्रभागमें स्थित होकर सब लोगोंके द्वारा स्तुति, प्रणाम, पूजा आदिसे प्रशंसित होते हैं। जिनके काय अर्थात् शरीर हैं वे कायिक अर्थात् संसारी हैं। और जो उससे विपरीत अकायिक हैं, वे मुक्त हैं॥२०३॥

आगे श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव ग्यारह गाथासूत्रोंसे कायमार्गणामें पृथ्वीकायिक आदि जीवोंकी संख्या कहते हैं—

जगतश्रेणीके घन प्रमाण लोकके प्रदेश होते हैं। लोकके प्रदेश प्रमाण विरलन, देय

विरलनराशियं विरलिसि देयराशियं रूपं प्रति कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि समंतात् वर्गः संवर्गः वर्गितस्य संवर्गो वर्गितसंवर्गस्सं कृत्वा शलाकाराशियोळो[ं]दु रूपं कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनवनित्तु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळ् मनो[ं]दुरूपं कळेंदितु लोकप्रमित-शलाकाराशि परिसमाप्तियप्पन्नेवरं विरलनदेयक्रमदिवं वर्गितसंवर्गं माडि माडि शलाकाराशियो-ळो[ं]दो[ं]दु रूपं कळेयुत्तं बंदु पुट्टिद चरम तत्रोत्पन्नराशियं शलाकाविरलन देयमें[ं]बु त्रिप्रतीकं माडि ५

श वि दे विरलनमं विरलिसि देयमं रूपं प्रति कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि द्वितीयवारं
=a =a =a

स्थापिसिद शलाकाराशियोळो[ं]दो[ं]दु रूपं कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळ् मत्तो[ं]दुरूपं कळेंदितु द्वितीयवारमुं स्थापिसि शलाकाराशियं निष्ठापिसि चरमतत्रोत्पन्नमहाराशियं मुन्निनंते त्रिप्रतीकं माडि श वि दे विरलनमं
=a =a =a

विरलिसि देयमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडि तृतीयवारं स्थापिसिद शलाकाराशियोळो[ं]दु रूप १०

विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा, समन्तात् वर्गः संवर्गः वर्गितस्य संवर्गः वर्गितसंवर्गः, तं विधायेत्यर्थः शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तच्छलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं लोकप्रमित-शलाकाराशिपरिसमाप्तिपर्यन्तं कृत्वा तं च समुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा

श वि दे विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा द्वितीयवार- १५
=a =a =a

स्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य तत्तन-चरमसमुत्पन्नराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति
=a =a =a

देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तृतीयवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं

और शलाका राशि स्थापित करके विरलन राशिका एक-एकके रूपमें विरलन करो और देय- २०
राशिको प्रत्येकपर देकर परस्परमें वर्गित संवर्ग करो। समन्तरूपसे वर्ग करनेको संवर्ग कहते हैं और वर्गितके संवर्गको अर्थात् परस्परमें गुणा करनेको वर्गित संवर्ग कहते हैं। वह करके शलाका राशिमें-से एक कम करो। पुनः उससे उत्पन्नराशिका विरलन करके एक-एक-पर उसी राशिको देकर वर्गित संवर्ग करके शलाका राशिमें-से एक कम करो। इसी तरह लोक प्रमाण शलाका राशिकी समाप्ति तक करो। ऐसा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो २५
उसको शलाका विरलन और देयके रूपमें तीन जगह स्थापित करके विरलन राशिको विरलित करके एक-एकके ऊपर देयराशिको स्थापित करके परस्परमें गुणा करो और द्वितीय बार स्थापित शलाका राशिमें-से एक कम करो। उससे उत्पन्न राशिका विरलन करके और एक-एकके ऊपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करके शलाका राशिमें-से एक कम करो। इस तरह दूसरी बार स्थापित शलाका राशिके समाप्त होनेपर अन्तमें जो महाराशि उत्पन्न हो, पहलेकी तरह उसे शलाका विरलन और देयके रूपमें स्थापित करके विरलन ३०
राशिका विरलन करो और एक-एकपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करो और तीसरी बार स्थापित शलाका राशिसे एक कम करो। उससे उत्पन्न राशिका विरलन करके और

कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळ् मत्तों दु रूपं कळेदितु तृतीयवारं स्थापिसिद शलाकाराशियं निष्ठापिसि चरमतत्रोत्पन्नमहाराशियं मुन्निनंते त्रिप्रतीकं माडि श वि दे विरलनमं विरलिसि रूपं प्रति देयमनित्तु वर्गित-
अ अ अ

संवर्गं माडि चतुर्थवारं स्थापिसिद शलाकाराशियोळों दु रूपं कळेदु तत्रोत्पन्नराशियं विरलिसि देयमनदने कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि शलाकाराशियोळु मत्तों दु रूपं कळेदितु चतुर्थवारं स्थापिसिदन्योन्याभ्यस्तशलाकाराशियोळ् प्रथमद्वितीयतृतीयवारं स्थापिसिदन्योन्याभ्यस्त शलाकाराशित्रयंगळं कळेदु मिक्क चतुर्थवारं स्थापिसिदन्योन्याभ्यस्तशलाकाराशि परिसमाप्तियप्पनेवरं तत्रोत्पन्नराशिगळं वर्गितसंवर्गं माडिमाडि विरलनदेयक्रमदिदं पुट्टिद चरमतत्रोत्पन्नमहाराशि तेजःकायिकजीवंगळ प्रमाणमक्कुं।

ई राशियन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशियुं तद्वर्गशलाकेगळुं तदर्द्धच्छेदंगळुमिती मूरु राशिगळ्गं प्रमाणमं परिभाषेयोळ् पेळ्दंतल्लियं अल्पबहुत्वमुमनरिवुदु। तु मत्ते भूजलवायुकायिकंगळु क्रमदिदं तेजस्कायिकराशियं नोडलधिकाधिकंगळु अधिकागमननिमित्तं भागहारं प्रतिभागहारमसंख्यातलोकप्रमितमक्कुमवक्के संदृष्टि तोर्पाङ्कः। ९। मवरधिकक्रममं तोडे असंख्यातलोक-

---

विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य चरमसमुत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे
अ अ अ

विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा, वर्गितसंवर्गं कृत्वा चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नमहाराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं प्रथमद्वितीयतृतीयवारस्थापितशलाकाराशिन्यूनचतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिपरिसमाप्तौ सत्यां तत्रोत्पन्नमहाराशिः तेजस्कायिकजीवराशेः प्रमाणं भवति। अस्य राशेः अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशिवर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराशीनां प्रमाणं तदल्पबहुत्वं च प्राक् परिभाषोक्तमत्रापि ज्ञातव्यम्। पुनः भूजलवायुकायिकाः क्रमेण तेजस्कायिकराशितोऽधिका भवन्ति तदधिकागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहारः असंख्यातलोकप्रमितो भवति। तत्संदृष्टिर्नवाङ्कः। अधिकक्रमो दर्श्यते तद्यथा—

एक-एकपर उसी राशिको देकर परस्परमें गुणा करो और शलाका राशिमें-से एक कम करो। इस तरह तीसरी बार स्थापित शलाका राशिके समाप्त होनेपर अन्तमें जो महाराशि उत्पन्न हो, पहलेकी तरह उसे विरलन शलाका और देयके रूपमें तीन जगह स्थापित करके विरलनराशिका विरलन करके एक-एकपर देयराशिको देकर परस्परमें गुणा करो और चतुर्थ बार स्थापित शलाका राशिमें-से एक कम करो। उससे उत्पन्न महाराशिका विरलन करके और एक-एकपर उसी राशिको देकर शलाकाराशिमें-से एक कम करो। इस बार शलाका राशिमें-से प्रथम बार, द्वितीय बार और तृतीय बारकी स्थापित शलाकाराशियाँ कम करके जितनी शेष रहें, उतनी चतुर्थ बारकी शलाकाराशि समाप्त करनेपर जो महाराशि उत्पन्न होती है, उतना ही तेजस्कायिक जीवराशिका प्रमाण है। इस राशिकी परस्पर गुणकार शलाका राशि, वर्गशलाकाराशि और अर्धच्छेदराशिका प्रमाण और उसका अल्पबहुत्व पहले द्विरूपघनाघनधाराके कथनमें कहा है सो यहाँ भी जानना। पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वायुकायिक जीव क्रमसे तेजस्कायिक राशिसे उत्तरोत्तर अधिक हैं। उस अधिकका प्रमाण

मात्रमप्प तेजस्कायिकराशियनिदं ≡a । संस्थापिसि तल्लोग्यासंख्यातलोकदिंदं भागिसि तदेकभागमं ततेजःकायिकराशियोळ् प्रक्षेपिसुवुदितु प्रक्षेपिसुत्तिरलुमा राशि पृथ्वीकायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु।

≡a । १० मी पृथ्वीकायिकजीवराशियनसंख्यातलोकदिंदं भागिसि तदेकभागमं तत्पृथ्वी-
९

कायिकजीवराशियोळे प्रक्षेपिसुत्तिरला राशियुमप्कायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु ≡a१० । १० मोय-
९ ९

प्कायिकजीवराशियनसंख्यातलोकदिंदं भागिसि तदेकभागमं तदप्कायिकजीवराशियोळे प्रक्षेपि- ५
सुत्तिरला राशि वायुकायिकजीवराशिप्रमाणमक्कुं ≡ a १० । १० । १० ॥
९ ९ ९

अपदिट्ठिदपत्तेया असंखलोगप्पमाणया होंति ।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण असंखलोगेण संगुणिदा ॥२०५॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येका असंख्यलोकप्रमाणका भवंति । ततः प्रतिष्ठिताः पुनरसंख्यलोकेन १०
संगुणिताः ॥

सम्यग्दर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अप्रप्रिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकंगळु यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणंगळप्पुवु ≡ a मत्ते प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकंगळुमवं नोडलसंख्येयलोकगुणितंगळप्पुवु ≡ a ≡ a ।

उक्ततेजस्कायिकराशौ ≡ a अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡ a । १ अधिकीकृते सति पृथ्वीकायिक-
९

जीवराशिप्रमाणं भवति । ≡ a १० । पुनः अस्मिन्नेव राशौ अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन १५
९

≡a । १० । १ अधिकीकृते सत्यप्कायिकजीवराशिप्रमाणं भवति ≡ a १० । १० । पुनः अस्मिन्नेव राशौ
९ । ९ ९ । ९

अस्यैव प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡ a । १० । १० । १ अधिकीकृते सति वायुकायिकजीवराशिप्रमाणं
९ । ९ । ९

भवति ≡ a । १० । १० । १० ॥२०४॥
९ । ९ । ९

अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणा भवन्ति ≡ a । पुनः प्रतिष्ठित-
प्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः तेभ्यः असंख्येयलोकगुणिता भवन्ति ≡ a ≡ a ॥२०५॥ २०

लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंख्यात लोक है । अधिकका क्रम बतलाते हैं—

उक्त तैजस्कायिक राशिमें असंख्यातलोक भागहारसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे तैजस्कायिक जीवराशिमें जोड़नेपर पृथ्वीकायिक जीवराशिका प्रमाण आता है । उस पृथ्वीकायिक जीवराशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे पृथ्वीकायिक जीवराशिमें जोड़नेपर अप्कायिक जीवराशिका प्रमाण होता है । पुनः अप्कायिक जीवराशिमें २५
असंख्यातलोकका भाग देनेसे जो लब्ध आवे, उसे उसीमें जोड़नेपर वायुकायिक जीवराशिका प्रमाण आता है ॥२०४॥

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव यथायोग्य असंख्यातलोक प्रमाण हैं । उनसे असंख्यात लोक गुणे प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव होते हैं ॥२०५॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तसरासिपुढवियादीचउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।
साहारणजीवाणं परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

त्रसराशिपृथिव्यादिचतुष्कप्रत्येकहीनसंसारी । साधारणजीवानां परिमाणं भवति जिनदृष्टं ॥

वक्ष्यमाणत्रसराशियावल्यसंख्येयभागभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरप्रमितं ≡ पृथिव्यादि

४
२
a

५ **चतुष्टयं** ते ≡ a पृ≡a अ≡a वा≡a पुति≡a ४

≡a । १ ≡a । २ ≡a । ३ ≡a । ६
९ ९ ९ ९

≡a १ ≡a । ३ ≡a । ४
९ । ९ ९ ९ ९ ९

≡a । १ ≡a । १
≡९ । ९ । ९ ९ ९ ९

१० **इवु साधिकचतुर्गुणतेजस्कायिकराशिप्रमाणं ≡ a ४ प्रत्येकवनस्पतिराशिभेवद्वयं**

≡ a ≡ a **इंती राशित्रयविहीनसंसारिराशिसाधारणजीवराशिप्रमाणमक्कुमेंदु जिनदृष्टं जिनकथितं । १३≡॥**

त्रसराशिना वक्ष्यमाणप्रमाणेन आवल्यसंख्येयभागभक्तप्रतराङ्गुलभाजितजगत्प्रतरप्रमितेन ≡ ४ २ a तथा

पृथिव्यादिचतुष्टयेन उक्तप्रमाणेन एतावता

१५ ते ≡ a पृ ≡ a अ ≡ a वा ≡ a मिलितेन ≡ a । ४

≡ a । १ ≡ a । २ ≡ a । ३ ≡ a । ६
९ ९ ९ ९

≡ a । १ ≡ a । ३ ≡ a । ४
९ । ९ ९ । ९ ९ । ९

≡ । a । १ ≡ a । ४
९ । ९ । ९ ९ । ९ । ९

साधिकचतुर्गुणतेजस्कायिकराशिप्रमाणेन ≡ । ४ प्रत्येकवनस्पतिराशिद्वयेन ≡ a ≡ a । चेति राशि-

२० त्रयेण विहीनसंसारराशिरेव साधारणजीवराशिप्रमाणं भवतीति जिनैर्दृष्टं—कथितं वा १३≡ ॥२०६॥

आगे त्रसराशिका प्रमाण आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो प्रमाण आवे, उतना है। तथा पृथिवीकाय आदि चारोंका प्रमाण जो ऊपर कहा है तैजस्कायिक राशिके प्रमाणसे चौगुनेसे भी कुछ अधिक है। तथा सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिका परिमाण ऊपर कहा है। ये तीनों राशियाँ संसारी जीवोंके

२५ परिमाणमें-से कम कर देनेपर जो शेष रहे, उतना ही साधारण जीवोंका परिमाण जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥२०६॥

---

१. म °तुष्कयुते ।

सगसग असंखभागो बादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहुमपमाणं पडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥२०७॥

स्वकस्वकासंख्यभागो बादरकायानां भवति परिमाणं । शेषाः सूक्ष्मप्रमाणं प्रतिभागः पूर्वनिर्दिष्टः ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकंगळ साधारणवनस्पतिकायिकंगळ पूर्व्वोक्तस्वकस्वकसंख्येगळऽसंख्यातैकभागमात्रं । स्वस्वबादरकायंगळ परिमाणमक्कुं । शेष तद्बहुभागंगळु सूक्ष्मकायजीवंगळं प्रमाणमक्कुमिल्लि पोक प्रतिभागं प्रतिभागहारं पूर्व्वदलु पेळ्दऽसंख्यातलोकमात्रमेंबितु ज्ञातव्यमवक्कंक संदृष्टि मवांकं । ९ । पृ=बा ≡ ə १० अ बा ≡ ə १०।१० तेज=
९९ ९९ ९
बा ≡ ə १० वा=बा ≡ ə १०।१०।१० साधारणबादरंगळु १३ ≡ १ सूक्ष्मंगळु
९ ९९९९ ९
बहुभागंगळु पृ सू । ≡ ə । १० । ८ । अ ≡ सूं ≡ ə १० १०।८। ते=सू ≡ ə ८। १०
९९९ ९
बा=सू ≡ ə १०।१०।१०।८ साधा=सू १३ ≡ ८
९९९९ ९

सुहुमेसु संखभागं संखाभागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥२०८॥ विद्यासागर जी महाराज

सूक्ष्मेषु संख्यभागः संख्याभागा अपूर्णका इतराः । यस्मात्कारणादपूर्णाद्धायाः पूर्णाद्धाः संख्यगुणितक्रमाः ॥

पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकंगळ आवुवु केलवु सूक्ष्मकायंगळु पूर्वोक्तसंख्यासमन्वितंगळवरोळु अपर्य्याप्तंगळु तत्संख्यातैकभागप्रमाणंगळप्पुवु । पर्य्याप्तंगळु तत्संख्यातबहुभागप्रमितंगळप्पुवेकेंदोडे कारणं पेळल्पडुगुं । यस्मात् आवुदोंदु कारणदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रापर्य्याप्ताद्धेयबं नोडे तत्पर्य्याप्ताद्धे संख्यातगुणितक्रममक्कुमदेंतेंदोडे शुद्धपृथ्वीकायिकक्कुत्कृष्टायुर्व्वर्षंगळ् द्वादश-

---

पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां साधारणवनस्पतिकायिकानां च असंख्येयलोकैकभागमात्रं स्वस्वबादरकायानां परिमाणं भवति । शेषाः तद्बहुभागाः सूक्ष्मकायिकजीवानां प्रमाणं भवति । अत्र प्रविष्टप्रतिभागः प्रतिभागहारः पूर्वोक्तासंख्यातलोकमात्र एवेति ज्ञातव्यः । तदङ्कसंदृष्टिर्नवाङ्कः ॥२०७॥

पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकानां ये सूक्ष्माः प्रागुक्तास्तेषु अपर्याप्ताः तत्संख्यातैकभागप्रमाणा भवन्ति । पर्याप्तकास्तत्संख्यातबहुभागप्रमिता भवन्ति । किं कारणं ? इति चेदुच्यते यस्मात्कारणादन्तर्मुहूर्तमात्र्याः अपर्याप्ताद्धायाः कालात्सत्पर्याप्ताद्धा संख्यातगुणितक्रमा भवति । मृदुकठिनभूमिजलवायुवनस्पतितेज-

---

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक जीवोंके अपने-अपने परिमाणमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अपने-अपने बादरकायोंका प्रमाण होता है और शेष बहुभाग सूक्ष्मकायिक जीवोंका प्रमाण होता है। यहाँ भी भागहार पूर्वोक्त असंख्यात लोक मात्र ही जानना चाहिए ॥२०७॥

पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तैजस्कायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिकोंके सूक्ष्मजीवोंका जो परिमाण पहले कहा है, उसमें संख्यातका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अपर्याप्त जीव और संख्यात बहुभाग प्रमाण पर्याप्त सूक्ष्म जीव होते हैं। इसका

सहस्रंगळु १२०००। खरपृथ्वीकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु द्वाविंशतिसहस्रंगळु २२०००। अप्कायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु सप्तसहस्रंगळु ७०००। तेजस्कायिकक्कुत्कृष्टायुष्यं दिनत्रयमक्कुं दिन ३। वायुकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु त्रिसहस्रंगळु ३०००। वनस्पतिकायिकक्कुत्कृष्टायुर्वर्षंगळु दशसहस्रंगळु १००००। एवं परमागमोक्तपंचस्थावरंगळुत्कृष्टस्थितिगळु पर्य्याप्तकालमक्कुमपर्य्याप्तकालमंतर्मुहूर्त्तमात्रमवं नोडे संख्येयगुणत्वं सुप्रसिद्धमक्कुं कारणदिंदं कालसंचयमनाश्रयिसि प्रवर्त्तिसिदुदी पेळ्द त्रैराशिकं पर्य्याप्तापर्य्याप्तकालद्वयमिनितक्के २१ इल्लानुमितु सूक्ष्मपृथ्वीकायिकंगळु आगुत्तिरलु—आगळुमितुसपर्य्याप्तकालमेनितु सूक्ष्मपृथ्वीकायिकंगळु पेदडेल् बक्कुमे बुदु लब्धं सूक्ष्मपृथ्वीकायिकराशिसंख्यातैकभागमात्रं तदपर्य्याप्तसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणमक्कुं।

प्र २१ ४ फ≡a१०।८। इ। २१। लब्धं≡a१०।८।१ संख्यातक्के संदृष्टि पंचांक।
९।९ ९९ ५

एवं पर्य्याप्तंगळगमिन्ते त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र २१४। फ≡ a १०।८। इ = २१।४ लब्धं
९ ९

स्कायिकजीवानामुत्कृष्टायुषो द्वादशद्वाविंशतिसप्तत्रिदशसहस्रवर्षत्रिदिनप्रमितत्वेन अन्तर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालात्

२१ पर्याप्तकालस्य संख्येयगुणत्वप्रसिद्धेः। तस्मात्कारणात्तत्पर्याप्तापर्याप्तकालत्रयेन २१। १ अनेन २। १।

४ यद्येतावन्तः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका जीवाः ≡ a। १०। ८ लभ्यन्ते तदा एतावदपर्याप्तकालेन २१ कियन्तः
९।९

सूक्ष्मपृथ्वीकायिकजीवा लभ्यन्ते? इति त्रैराशिकेन लब्धः संख्यातैकभागमात्रः तदपर्याप्तजीवराशिर्भवति

≡ a। १०। ८। १ संख्यातस्य संदृष्टिः पञ्चाङ्कः। तथा—प्र २१। ४। फ ≡ a। १०। ८।
९।९।५ ९।९

कारण यह है कि अपर्याप्तका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है और उससे उनके पर्याप्तकोंका काल संख्यात गुणा है। कोमल पृथ्वीकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष, खर पृथिवीकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष, जलकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष, वायुकायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष और तैजस्कायिक जीवकी उत्कृष्ट आयु तीन रात-दिन होनेसे अन्तर्मुहूर्तमात्र अपर्याप्तकालसे पर्याप्त काल संख्यातगुणा प्रसिद्ध है। इस कारणसे पृथ्वीकायिकके पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों कालोंमें यदि समस्त सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं, तो अन्तर्मुहूर्तमात्र अपर्याप्तकालमें कितने पाये जायेंगे? ऐसा त्रैराशिक करनेपर

---

१. पर्याप्तकालोऽयं २१। १ अपर्याप्तकालोऽयं २१ द्वावपि मिलित्वा २१। १ एवं जातम्। अस्य संदृष्टिः।

२१। ४। रूपाधिकसंख्यातस्य रूपाधिकचतुरङ्कत्वं कृत्वमित्यर्थः।

पर्य्याप्तपृथ्वीकायसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणमक्कुं ≡ a १० । ८ । ४ एवं सूक्ष्माप्कायिकावि-
९ । ९ । ५

शल्लोयं पर्य्याप्तापर्य्याप्तपरिमाणं तरल्पडुगुं । कालसंचयाश्रितसंख्यानयनमो प्रकारमेल्लेडयोळमें-
दरियल्पडुगुं । अप्कायिकसूक्ष्मापर्य्याप्तराशि ≡ a १० । १० । ८ तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणं
९ । ९ । ५

≡ a १० । १० । ८ । ४ मार्गदर्शक तेजस्कायिकापर्याप्तसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणं ≡ a । ८
९ । ९ । ९ । ५ ९ । ५

तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणं ≡ a । ८ । ४ वायुकायिकापर्य्याप्तसूक्ष्मजीवराशिप्रमाणं ५
९ । ५

≡ a । १० । १० । १० । ८ तत्पर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणं ≡ a । १० । १० । १० । ८ । ४
९ ९ ९ ९ । ५ ९ ९ ९ ९ । ५

साधारणसूक्ष्म अपर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणं १२ ≡ ८ तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणं १३ ≡ ८ । ४
९ ५ ९ । ५

पल्लासंखेज्जवहिदपदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे ।
जलभूणिपबादरया पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा ॥२०९॥

पल्यासंख्यातापहृतप्रतरांगुलभाजिते जगत्प्रतरे । जलभूनिपबादराः पूर्णाः आवल्यसंख्य- १०
भजितक्रमाः ॥

इ २ १ । ४ । इति त्रैराशिकेन लब्धस्तत्पर्याप्तजीवराशिर्भवति ≡ a । १० । ८ । ४ एवमुक्तत्रैराशिकक्रम-
९ । ९ । ५

क्रमेण लब्धः सूक्ष्माप्कायिकापर्याप्तराशिः ≡a । १० । १० । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः ≡a । १० । १० । ८ । ४ ।
९ । ९ । ९ । ५ ९ । ९ । ९ । ५

सूक्ष्मतेजस्कायिकापर्याप्तराशिः ≡ a । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः । ≡ a । ८ । ४ सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्त-
९ । ५ ९ । ५

राशिः ≡ a । १० । १० । १० । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः— ≡ a । १० । १० । १० । ८ । ४ सूक्ष्म-
९ । ९ । ९ । ९ । ५ ९ । ९ । ९ । ९ । ५

साधारणापर्याप्तजीवराशिः १२ ≡ । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः १३ ≡ । ८ । ४ ॥२०८॥ १५
९ । ५ ९ । ५

प्रमाणराशि पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों कालोंके समयोंका समूह, फलराशि सूक्ष्मजीवोंका प्रमाण, इच्छाराशि अपर्याप्तकालके समयोंका प्रमाण। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण-राशिका भाग देनेपर जो लब्ध राशिका प्रमाण आता है, उतने ही सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त जीव जानना। तथा प्रमाणराशि और फलराशि पूर्वोक्त तथा इच्छाराशि पर्याप्तकाल करनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण आता है, उतना ही सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवोंका प्रमाण २०
जानना। इसीसे संख्यातका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अपर्याप्त और बहुभाग प्रमाण पर्याप्त कहे हैं। इसी प्रकार उक्त दोनों त्रैराशिकके अनुसार अपने-अपने सर्वकालको प्रमाण राशि, अपने-अपने प्रमाणको फलराशि और अपर्याप्तकाल तथा पर्याप्तकालको इच्छाराशि बनाकर लब्धराशि प्रमाण सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और सूक्ष्म-साधारणवनस्पतिकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण जानना ॥२०८॥ २५

पल्यासंख्यातभागापहृतप्रतरांगुलविदं जगत्प्रतरेयं भागिसुत्तिरलावुवो दु लब्धं तावत्प्रमितं बादराप्कायिकपर्य्याप्तजीवंगळप्पुवो = $\frac{४}{प}$ राशियनावल्यसंख्यातभागविदं भागिसि बंद-
$\frac{}{अ}$

लब्धप्रमितं बादरपृथ्वीकायिकपर्य्याप्तजीवंगळ प्रमाणमक्कुं = $\frac{४}{प।१}$ मत्तमो राशियनावल्य-
$\frac{}{अ}$

संख्यातविदं भागिसि बंद लब्धप्रमितं प्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणमक्कुं = $\frac{४}{प९९}$ मत्तमो
$\frac{}{अ}$

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

राशियनावल्यसंख्यातविदं भागिसि बंद लब्धप्रमितमप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तजीवंगळ प्रमाणमक्कुं = $\frac{४}{प९९९}$ निगोदशब्दविनिल्लि निगोदाश्रितंगळप्प प्रतिष्ठितप्रत्येकंगळ्गे ग्रहणमक्कुं साधारण-
$\frac{}{अ}$

पल्यासंख्येयभागापहृतप्रतरांगुलेन जगत्प्रतरे भाजिते यल्लब्धं तद्बादराप्कायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति = $\frac{४}{प}$ अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तद्बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं
$\frac{}{अ}$

भवति = $\frac{४।१}{प}$ पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तत्प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशिप्रमाणं
$\frac{}{अ}$

भवति = $\frac{४।९९}{प}$ पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तदप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजीवराशि-
$\frac{}{अ}$

प्रमाणं भवति । = $\frac{४।९।९।९}{प}$ । निगोदशब्देन अत्र निगोदाश्रिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका एव गृह्यन्ते । न
$\frac{}{अ}$

पल्यके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आये, उतना बादर अप्कायिक पर्याप्त जीवराशिका प्रमाण होता है। इस राशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवराशिका प्रमाण है। पुनः इस राशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवराशिका प्रमाण है। पुनः इस राशिमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तराशिका प्रमाण

गळिगल्लेकें दोडे मुंदे सुव्यक्तमागि पेळ्दपनप्पुदरिंदं । इल्लियावलियसंख्यातभागक्कंक संदृष्टि नवांकं । ९ ॥

विंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं ।
पज्जत्ताण पमाणं तेहि विहीणा अपज्जत्ता ॥२१०॥

वृंदावलिलोकयोरसंख्यं संख्यं च तेजोवायूनां पर्य्याप्तानां प्रमाणं तैर्विहीना अपर्य्याप्ताः ॥ ५

वृंदावलियनू लोकवनू यथासंख्यमसंख्यातदिंदं संख्यातदिंदं भागिसि बंद लब्धमात्रं बादर-तेजस्कायिकपर्य्याप्तंगळु बादरवायुकायिकपर्य्याप्तंगळुमप्पुवु । ते = बा = प $= \frac{८}{a}$ = बा = बा = प = $\frac{a}{७}$ बादरशब्दक्कप्रयोगमप्पुदरिन्नें तरियल्पडुगुमें दोडे पेरसे सूक्ष्मंगळ्गे पेळ्द कारणदिंदमिल्लि बादरंगळ्गे ग्रहणमक्कुं । तैर्विहीना अपर्य्याप्ताः स्युः । तत्सूत्रदोळगळप्प बादर-जल भू । नि । प । तेजोवायुपर्य्याप्तजीवराशिविहीनंगळप्प तंतम्म बादरअप्कायिकाविजीवराशिगळे १०
तंतम्मऽपर्य्याप्तजीवराशिप्रमाणंगळप्पुवु । बादरअप्कायिकापर्य्याप्तंगळु $= \frac{a}{a}$ । १० । १० । २

योगदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

$९ ९ ९ \overset{०}{\underset{=}{४}} ५ a$

बादरपृथ्वीकायिकापर्य्याप्तजीवंगळु $= \frac{a}{a}$ । १० ६४ अप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तंगळु $= \frac{a}{a} = \frac{a}{a}$ २

$९ ९ \overset{०}{\underset{=}{४}} ९ ५ a$ $\overset{०}{\underset{=}{४}} ९ ९ ५ a$

साधारणाः तेषामग्रे वक्तव्यं कथितत्वात् । अत्र आवल्यसंख्येयभागस्य संदृष्टिर्नवाङ्कः ९ ॥२०९॥

वृन्दावलेरसंख्यातभक्तैकभागमात्राः बादरतेजस्कायिकपर्याप्तजीवा भवन्ति $\frac{८}{a}$ तथा लोकस्य संख्यात-भक्तैकभागप्रमिता बादरवायुकायिकपर्याप्तजीवा भवन्ति $\frac{a}{७}$ । सूक्ष्माणां तु प्राक्कथितत्वात् अत्र बादरा एव

होता है । गाथामें आये 'नि' अक्षरसे निगोद शब्दसे निगोदोंके आश्रित प्रतिष्ठित प्रत्येक ही ग्रहण किये गये हैं, साधारण जीव नहीं; क्योंकि आगे उनका स्पष्ट कथन किया है ॥२०९॥

घनावलीके असंख्यातवें भागमात्र बादर तैजस्कायिक पर्याप्त जीव हैं । तथा लोकमें संख्यातका भाग देनेसे लब्ध एक भाग प्रमाण बादर वायुकायिक पर्याप्तजीव होते हैं । सूक्ष्म जीवोंका प्रमाण पहले कहा है इसलिए यहाँ बादर जीवोंका ही ग्रहण किया है । पहले जो दो गाथाओंसे बादर जलकायिक, पृथिवीकायिक, सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित, तैजस्कायिक और २०

१. व्यक्तं मु ।

प्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तांगळ्गु = a ॥ बादरतेजस्कायिकापर्य्याप्तांगळ्गु = a ८ बादर-
a
= ४९९९
प
a

वायुकायिकापर्य्याप्तांगळ्गुं = a । १० । १० । १० । २ ।
= ९ ९ ९ ९ १

साहारणबादरेसु असंखं भागं असंखगा भागा ।
पुण्णाणमपुण्णाणं परिमाणं होदि अणुक्कमसो ॥२११॥

साधारणबादरेष्वसंख्यं भागमसंख्यका भागाः । पूर्णानामपूर्णानां परिमाणं भवत्यनुक्रमशः ॥

साधारणबादरंगळोळावुवु केलवु पर्य्याप्तकंगळवरप्रमाणं तद्राशियोळसंख्यातैकभागपरिमाण-मक्कु १३ = मिवर असंख्यात बहुभागिगळऽपर्य्याप्तांगळक्कु १३ = ६ मे बितनुक्रमदिदमा
९।१ ९।१

सर्वबादरपर्य्याप्तभवंगळ्गे दुर्ल्लभत्वमाचार्य्यसंप्रदायानुक्रममनाश्रयिसि तदल्पसंख्यत्वमुक्तमाय्तु ।

कालसंचयमनाश्रयिसि पेळ्दोडिल्लेंबुविदाचार्य्यन हृदयं । इल्लि असंख्यातदक्के संदृष्टि सम्माकं ।

आवलि असंखसंखेणवहिद पदरंगुलेण हिदपदरं ।
कमसो तसतप्पुण्णा पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥२१२॥

आवल्यसंख्यसंख्येनावहृत प्रतरांगुलेन हृतप्रतरः । क्रमशस्त्रसतत्पूर्णाः पूर्णोनत्रसाः अपूर्णाः खलु ॥

गृह्यन्ते । तैः सूत्रद्वयोक्तबादरजलभूनिषतेजोवायुपर्याप्तजीवराशिभिर्विहीनाः स्वस्वबादराप्कायिकादिराशय एव स्वस्वापर्याप्तजीवराशयो भवन्ति ॥२१०॥

साधारणबादरेषु ये पर्याप्तजीवास्तेषां प्रमाणं तद्राशेरसंख्यातैकभागमात्रं भवति । १३ = १ शेषाः
९ । ७
असंख्यातबहुभागाः अपर्याप्ता भवन्ति १३ = । ६ अनेन अनुक्रमेण तत्सर्वं बादरपर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमित्या-
९ । ७
चार्यसंप्रदायानुक्रममाश्रित्य तदल्पसंख्यत्वमुक्तम् । कालसंचयमाश्रित्य कथनं नास्तीति आचार्यस्य हृदयम् ॥२११॥

---

१० वायुकायिक जीवराशिका प्रमाण कहा था, उसमें-से अपने-अपने पर्याप्त जीवोंके प्रमाणको घटानेपर जो शेष रहे, उतना-उतना अपने-अपने बादर अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण जानना ॥२१०॥

साधारण बादरोंमें जो पर्याप्त जीव हैं, उनका प्रमाण साधारण बादरोंकी राशिके असंख्यातवें भागमात्र है। शेष असंख्यात बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त होते हैं। इस अनुक्रमसे साधारण बादरोंमें पर्याप्त भवोंका दुर्लभपना कहा है। इस आचार्य परम्पराके अनुक्रमको
२५ लेकर बादरोंमें पर्याप्तकोंकी संख्या थोड़ी कही है। यहाँ कालके संचयको लेकर कथन नहीं है, ऐसा आचार्यका अभिप्राय है ॥२११॥

आवल्यसंख्यातभागविदमुं शुद्धसंख्यातविदमुं भागिसल्पट्ट प्रतरांगुलंगळिदमवहृतजगत्प्रतरं यथासंख्यं त्रसराशियुं तत्पर्य्याप्तराशियुमक्कुं। पूर्णत्रसंगळुमपूर्णंगळप्पुवुमिल्लियुं पर्य्याप्तभवंगळ्गे दुर्ल्लभत्वमे पर्य्याप्तजीवसंख्याल्पत्वक्क कारणमक्कुं। अ $\frac{=}{४}$ $\frac{=}{२}$ $\frac{}{a}$ तत्पर्य्याप्तराशिप्रमाणमिदु $\frac{=}{४}$ $\frac{}{५}$

अपर्य्याप्तराशिप्रमाणमक्कु $\frac{=}{४}$ $\frac{=}{२}$ $\frac{}{a}$ $\frac{=}{४}$ $\frac{}{५}$ अपनयन $\frac{=}{४}$ $\frac{}{a}$ । $\frac{}{२}$ [1]त्रैराशिकविधियिंदिंतिसादरु

संदृष्टियक्कुं।

अनंतरं बादर तेजस्कायिकादि षट्राशिगळगे संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपरु।

आवलि असंखभागेणवहिदपल्लूण सायरद्धछिदी।
बादरतेपणिभूजलबादाणं चरिमसायरं पुण्णं ॥२१३॥

आवल्यसंख्यभागेनावहृतपल्योनसागरार्द्धच्छेदाः। बादरतेपनिभूजलवातानां चरमसागरः पूर्णः॥

आवल्यसंख्यातभागभक्तप्रतराङ्गुलेन भाजितजगत्प्रतरमात्रं सामान्यत्रसराशिप्रमाणं भवति। $\frac{=}{४}$ $\frac{}{२}$ $\frac{}{a}$ तथा संख्यातभक्तप्रतराङ्गुलेन भक्तजगत्प्रतरमात्रं तत्पर्याप्तराशिप्रमाणं भवति $\frac{=}{४}$ $\frac{}{५}$। पूर्णत्रसराशिरहितः सामान्यत्रसराशिरेव अपूर्णत्रसराशिप्रमाणं भवति[2] $\frac{=}{४}$ $\frac{}{a}$—५ अत्रापि पर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमेव पर्याप्तजीवसंख्याल्पत्वकारणम् ॥२१२॥ अथ बादरतेजस्कायिकादिषड्राशीनां संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वयमाह—

आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आवे, उतना सामान्य त्रसराशिका प्रमाण होता है। तथा संख्यातसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे पर्याप्त त्रसराशिका प्रमाण होता है। सामान्य त्रसराशिमें-से पर्याप्त त्रसराशिको घटा देनेपर जो शेष रहे, उतना अपर्याप्त त्रसराशिका प्रमाण होता है। यहाँ पर्याप्त भवोंकी दुर्लभता ही पर्याप्त जीवोंकी संख्याके अल्प होनेका कारण है ॥२१२॥

आगे बादर तेजस्कायिक आदि छह राशियोंकी संख्याविशेषके निर्णयके लिए दो गाथाएँ कहते हैं—

---

१. त्रैराशिक आदि पाठः म प्रतौ नास्ति।

२. विशदतया तु $\frac{=}{४}$ $\frac{}{२}$ $\frac{}{a}$ $\frac{}{\infty}$ $\frac{}{४}$ $\frac{}{५}$ एवं भवति।

बादरतेजस्कायिकाप्रतिष्ठितप्रत्येकप्रतिष्ठितप्रत्येकपृथ्वीजलवायुकायिकंगळप्पारुं राशि गळगर्द्धच्छेदंगळ प्रमाणंगळ् पेळल्पडुगुमवरोळ् मोदल तेजस्कायिक बादरजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळ्-
निसप्पुवें दोडाऽवल्यसंख्यातभागदिदमवहृतपल्योनसागरोपमप्रमितंगळप्पुवु । ते=बा= । ≅ अ
९
तदर्द्धच्छेदंगळु सा प मत्तमावल्यासंख्यातैकभागमनावल्यसंख्यातैकभागदिंद भागिसिदेकभाग-
९
मार्गदर्शक - आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज
५ होनसागरप्रमितंगळऽप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशिगळर्द्धच्छेदंगळप्पुवु । अ प्र ≅ अ । तदर्द्धच्छेदंगळु सा प मत्तं तदेकभागमनावल्यसंख्यातदिंदं भागिसिदेकभागहीनसागरोपमप्रमितंगळु प्रतिष्ठित-
९ ९
प्रत्येकजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळप्पुवु ≅ अ ≅ अ । तदर्द्धच्छेदंगळु सा – प मत्तं तदेकभाग-
९ ९ ९
मनावल्यसंख्यातदिंद भागिसिदेकभागहीनसागरोपमप्रमितंगळु बादरभूकायिकजीवराशिगर्द्धच्छेदं-
गळप्पुवु भू ≅ बा ≅ अ १० तदर्द्धच्छेदंगळु सा – प मत्तं तदेकभागमनावल्यसंख्यातदिंदं
९ ९ ९ ९ ९
१० भागिसिदेकभागोनसागरोपप्रमितंगळु बादराप्कायिकजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळप्पुवु ।
अ = बा ० ≅ अ १० । १० तदर्द्धच्छेदंगळु सा – प मत्तंसंपूर्णसागरोपमप्रमितंगळु
९ ९ ९ ९ ९ ९ ९
बादरवायुकायिकजीवराशिगळर्द्धच्छेदंगळप्पुवु । बा = बा ≅ अ १० । १० । १० तदर्द्धच्छेदंगळु ।
९ ९ ९ ९

अर्धच्छेदाः खलु बादरतेजस्कायिकजीवराशेः आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपमप्रमिता भवन्ति
सा–प । अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनः एकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपममात्रा भवन्ति
९
१५ सा–प । प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागापहृतपल्यरहितसागरोपमसंख्या भवन्ति ।
९ । ९
सा—प । बादरभूकायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यहीनसागरोपमप्रमाणा भवन्ति ।
९ । ९ । ९
सा—प बादराप्कायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागभाजितपल्यविहीनसागरोपममात्रा भवन्ति ।
९ । ९ । ९ । ९

बादर तैजस्कायिक, अप्रतिष्ठित और सप्रतिष्ठित वनस्पति, पृथ्वी, अप्, वायु इन छहों की राशिके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण कहते हैं। आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देनेसे
२० जो एक भाग आवे, उसे सागरमें-से घटानेपर बादर तैजस्कायिक जीवराशिके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। दो बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देकर लब्धको सागरमें-से घटानेपर अप्रतिष्ठित प्रत्येक जीवराशिके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। तीन बार आवली-के असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देकर लब्धको सागरमें-से घटानेपर प्रतिष्ठित प्रत्येक जीव-राशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। चार बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग
२५ देनेपर जो लब्ध आवे, उसे सागरमें-से घटानेपर शेष बादर पृथ्वीकायिक जीवराशिके अर्ध-च्छेदोंका प्रमाण होता है। पाँच बार आवलीके असंख्यातवें भागसे पल्यमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना सागरमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतना बादर अप्कायिक जीवराशिके

सा चरमसागरोपमे विवरितं वायुकायिकबादरजीवराशिगर्द्धच्छेदंगळ् पेळल्पट्टुवु कारणदिदं ॥

तेवि विसेसेणहिया पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण ।
तम्हा ते रासीओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥२१४॥

तेऽपि विशेषेणाधिकाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रेण । तस्मात् ते राशिका असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥ ५

तेपि आ अर्द्धच्छेदंगळु पूर्व्वपूर्व्वंगळं नोडलुत्तरोत्तरंगळु पल्यासंख्यातभागमात्रदिदं द्वितीयादिगळोळु पल्यासंख्यातैकभागमात्रद बहुभागमात्रदिदमधिकाधिकंगळप्पुवु । संदृष्टि ते अ ९

तद्वर्ग सा प प ८। अ प्र अ ९। तद्वर्गच्छेद सा प प ८। प ८ नि अ ९ अ ९।
९।

तद्वर्गच्छेद सा प प ८। प ८। प ८ तद्वर्ग सा। प प ८। प ८। प ८। प ८
९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९

अ अ ९ १०। १० तद्वर्ग सा। प प ८। प ८। प ८। प ८। प १ १०
९ ९ ९ ९। ९ ९। ९ ९ ९। ९ ९ ९ ९। ९ ९ ९ ९ ९

वा अ ९। १०। १०। १० तद्वर्ग सा — प प ८। प ८। प ८। प ८। प ८। प ८
९ ९ ९ ९ ९। ९९। ९९९। ९९९९। ९९९९९। ९९९९९

इंतु बादरतेजस्कायिकजीवंगळर्द्धच्छेदंगळं नोडलु द्वितीयाप्रतिष्ठितप्रत्येकादिगळोळावल्यसंख्यातैकभागदिंद भागिसिद भागिसिद बहुभाग पल्यासंख्यातैकभाग प निदनावल्यसंख्यातैकभागदिंद
९

भागिसि भागिसि बहुभाग बहुभागाधिकक्रमदिंद पोगि चरमबादरवायुकायिकजीवंगळोळेकभागमेयधिकममक्कुं । संदृष्टिगळु :— १५

अ प्र = । प ८। णि । प ८। भू । प ८। ज । प ८। वा । प १
९ ९। ९ ९ ९। ९ ९ ९ ९। ९ ९ ९ ९ ९। ९ ९ ९ ९ ९।

सा—प बादरवायुकायिकजीवराशेः सम्पूर्णसागरोपमप्रमिता भवन्ति । सा चरिमसायरं पुण्णमिति
९।९।९।९।९
वचनात् ॥२१३॥

यतः कारणात् ते उक्तार्धच्छेदराशयः बादरतेजस्कायिकोक्तार्धच्छेदराशितः अप्रतिष्ठितप्रत्येकादीनामुक्तार्धच्छेदराशयः पञ्चापि आवल्यसंख्येयभागमात्रपल्यासंख्येयभागमात्रेण स्वस्वैकैकविशेषेण क्रमशः एवंविधेन— १०

अ प ८ ९।९	णि प ८ ९।९।९	भू प ८ ९।९।९।९	ज प ८ ९।९।९।९।९	वा प १ ९।९।९।९।९

अर्धच्छेदोंका प्रमाण होता है । बादर वायुकायिक जीवराशिके अर्धच्छेदोंका प्रमाण सम्पूर्ण सागर है, क्योंकि गाथामें "चरिम सायरं पुण्णं" ऐसा कहा है ॥२१३॥

जिस कारणसे बादर तैजस्कायिककी उक्त अर्धच्छेदराशिसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि उक्त पाँचों भी अर्धच्छेद राशियाँ आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित पल्यके असंख्यातवें २५
भाग मात्र अपने-अपने एक-एक विशेषसे क्रमसे अधिक हैं, तिस कारणसे जितना-जितना

---

१. म °लोलधिकाधिक° ।

मदु कारणदिंदमोयधिकाधिकार्द्धच्छेदप्रमितद्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकंगळिंदं बादरतेजस्कायिकजीवराशियं नोडलु गुणितक्रमंगळप्पुविन्नवरेधिकार्द्धच्छेदप्रमितद्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमं तोरल्पडुगुं अवं तें दोडे :—मोदलोळन्तेवरमंकसंदृष्टियिंदं तोरल्पडुगुं । तस्मात्ते राशिका असंख्यातलोकेन गुणितक्रमाः एंदितु पेळ्दरप्पुदरिनिल्लि त्रैराशिक माडल्पडुगु । षोडश द्विकान्योन्याभ्यासविरलनराशिगे येत्तलानुं पण्णट्ठि राशि पडेयल्बत्तिरलुमागलु चतुःषष्टि द्विकान्योन्याभ्यासविरलनराशिगे तत्प्रमाण राशि पडेयल्पडुगुमेंदितु प्रमाणफलइच्छाराशिगळं माडि प्र वि वे २ प इष्ट ६५=इ । वि वे २ । ६४ लब्धानयनविधानदोळु विशेषकरण-
१६
सूत्रमुंटदावुदेंदोडे :—

अधिकाः सन्ति ततः कारणात् तत्तदर्धच्छेदप्रमिततद्द्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकेन ते जीवराशयो गुणितक्रमा भवन्ति । तदसंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमः अङ्कसंदृष्टयर्थसंदृष्टिभ्यां दर्श्यते—तत्राङ्कसंदृष्टया यथा—षोडशद्विकान्योन्याभ्यासे यदि षण्णट्टिराशिर्लभ्यते तदा चतुःषष्टिद्विकान्योन्याभ्यासे को राशिर्लभ्यते इति प्रमाणफलेच्छाराशीन् कृत्वा—

वे २ | वे २ | लब्धानयने करणसूत्रमाह—
प्र । वि १६ । फ ६५=। इ वि ६४ ।

अर्धच्छेदोंका अधिक प्रमाण कहा है, उतने-उतने दुए रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो यथासम्भव असंख्यात लोक मात्र प्रमाण होता है, उतने प्रमाण वे जीवराशियाँ क्रमसे गुणित होती हैं । यहाँ असंख्यात लोककी उत्पत्तिका क्रम अंकसंदृष्टिसे दिखाते हैं—जैसे यदि सोलह जगह दो-दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस लब्ध आता है, तो चौंसठ जगह दुए रखकर परस्परमें गुणा करनेसे क्या राशि प्राप्त होगी । इस प्रकार प्रमाणराशि १६, फलराशि पण्णट्ठी और इच्छाराशि ६४ रखकर फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्धका प्रमाण आता है ।

विशेषार्थ—पं. टोडरमलजीने अपनी टीकामें इसे अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट किया है । उसे यहाँ दिया जाता है। पल्यका प्रमाण है ६५५३६ पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस। आवली के असंख्यातवें भागका प्रमाण है—आठ। सागरका प्रमाण है—छह लाख पचपन हजार तीन सौ साठ ६५५३६०। कल्पित पल्य पण्णट्ठीमें एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार और पाँच बार कल्पित आवलीके असंख्यातवें भाग आठसे भाग देनेपर क्रमसे इक्यासी सौ बानवे ८१९२, एक हजार चौबीस १०२४, एक सौ अट्ठाईस १२८, सोलह १६ और दो २ आते हैं । ये क्रमसे आठ-आठ गुने घटते हुए हैं। इनको कल्पित सागरके प्रमाण छह लाख पचपन हजार तीन सौ साठमें-से घटाइए। अन्तिममें कुछ भी नहीं घटाना; क्योंकि उसका प्रमाण पूर्ण सागर है । तब अग्निकायिक आदिकी अर्धच्छेद राशिका प्रमाण ६४७१६८, ६५४३३६, ६५५२३२, ६५५३४४, ६५५३५८ और ६५५३६० होता है । यहाँ अधिकका प्रमाण लानेके लिए पण्णट्ठीको सातसे गुणा करके दो, तीन, चार, पाँच बार आठका भाग देनेपर तथा अन्तमें एकसे गुणा करके पाँच बार आठका भाग देनेपर इकहत्तर सौ अड़सठ ७१६८, आठ सौ छियानवे ८९६, एक सौ बारह ११२, चौदह १४ और दो २ क्रमसे अधिकका प्रमाण आता है । इसी प्रकार यथार्थमें भी जानना ।

---

१५ १. म °वर एकार्द्धच्छेद° ।

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहि पयदविरलणे भजिदे ।
लद्धम्मिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

देयराश्यर्द्धच्छेदंगळिंदं फलभूतेष्टराश्यर्द्धच्छेदंगळं भागिसि तल्लब्धंविंदं साध्यभूतप्रकृतराशिय विरलनराशियं भागिसि तल्लब्धप्रमितेष्टराशियनन्योन्याभ्यासंविंदं साध्यभूतप्रकृतघनमक्कुमेंदिल्लि प्रमाणराशिय देयार्द्धच्छेदंगळु १ इवरिंदं फलभूतेष्टराशि पण्णट्ठि इव ६५ = अर्द्धच्छेदंगळु विरलनंगळु १६ पविनारु ई राशियं भागिसि १६ बंद लब्धमुं मनितेयक्कु १६। मी राशियिंदं
१

साध्यभूत प्रकृत घनदर्द्धच्छेदंगळनवविरलनराशियं [illegible] ६४ बंद
१६

तल्लब्धं नाल्कुं ४ ई राशियं विरलिसि इष्टराशियं पण्णट्ठियं प्रतिरूपमित्तन्योन्याभ्यासं माडिदो ६५=६५=६५=६५= उत्पन्नराशि साध्यभूतप्रकृतघनमेक्कंटुनक्कु १८। = ।
१ १ १ १

मितेयर्त्थ संदृष्टियिंदमिनितु रूपमात्रद्विकान्योन्याभ्यासविंदमिष्टराशियप्प लोकं पुट्टुत्तिरलेतावद्रूपमात्रप्रकृतघनवर्द्धच्छेदंगळनन्योन्याभ्यासं माडलेंतप्प प्रकृतघनमक्कुमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र वि दे २ छे छे छे ९। फ = इष्टराशि = इ = प्रकृत व वि दे २। सा प लब्धं प्रकृतघनमानयन-
३ १

देयराश्यर्धच्छेदेन १ फलभूतेष्ट ६५ = राश्यर्धच्छेदान् १६ भक्त्वा १६ तल्लब्धेन साध्यभूतप्रकृतराशेः
१

१८ = विरलनराशि ६४ भक्त्वा ६४ तल्लब्ध ४ प्रमितेष्टराशि ६५ =। ६५ =। ६५ =। ६५ = अन्योन्या-
१६ १ १ १ १

भ्यासेन साध्यभूतप्रकृतघनमेकट्ठराशिर्भवति १८ = एवमर्थसंदृष्ट्यापि—एतावतां द्विकानामभ्यासे यदि लोको
प्र दे २

जायते तदा एतावतां द्विकानामभ्यासे को राशिर्जायते इति त्रैराशिकं रचयित्वा वि छे छे छे ९। फ
३

दे २
इष्टराशिः । = इ प्रकृतस्य वि सा—प प्रकृतघनमानीयते—देयस्य रूपद्वयस्य अर्धच्छेदेनैकेन फलभूतेष्टराशेर्लोक-
९

देयराशि दोके अर्धच्छेद एक १ से फलभूत इष्ट राशि पण्णट्ठी ६५५३६ के अर्धच्छेद सोलहमें १६ भाग देनेपर सोलह ही लब्ध आया। उस लब्ध सोलह १६ से साध्यभूत प्रकृत राशि एकट्ठीके अर्धच्छेद ६४ में भाग देनेपर लब्ध चार ४ आया। चार जगह इष्ट राशि पण्णट्ठीको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे साध्यभूत प्रकृत घनराशि एकट्ठी आती है। इसी प्रकार अर्थसंदृष्टिसे भी जानना। सो पहले लोकके अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण कहा है, उतने दुए रखकर परस्परमें गुणा करनेसे लोकराशि होती है, तो यहाँ अग्निकायिक जीवराशिके अर्धच्छेद प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे कितने लोक होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर यहाँ प्रमाणराशिमें देयराशि दो, विरलनराशि लोकके अर्धच्छेद, और फलराशिलोक। तथा इच्छाराशिमें देयराशि दो, विरलनराशि अग्निकायिकराशिके अर्धच्छेद प्रमाण है। सो लब्धराशि लानेके लिए देयराशि दोके अर्धच्छेद एकका भाग फलराशि लोकके अर्धच्छेदोंमें देनेपर लोकके अर्धच्छेद मात्र लब्ध आया। इस लब्धसे अग्निकायिक

विधानकरणसूत्रविदं विण्णाच्छेदेणवहिदेत्यादिइदं वेयरूपुगळेरडरर्द्धच्छेदमोंदरिदं फलराशिभूतेष्ट-राशियप्प लोकदर्द्धच्छेदंगळु भागिसुत्तिरलु लब्धमुमोंदरिंदमुं भागिसिदडु तावन्मात्रमक्कुमा राशियिदमिच्छाराशिभूतप्रकृतघनार्द्धच्छेदविरलनराशियं भागिसि सा—प बंद लब्धं छे। छे छे ९। ९।

लोकार्द्धच्छेदभक्तकिंचिन्न्यूनसंख्यातपल्यप्रमितवारंगळं प १ लोकमभ्यो न्याभ्यासं माडि-छे छे छे ९

५ बोडे लब्धराशि असंख्यातलोकमात्रं बादरतेजस्कायिकप्रकृतघनप्रमाणमक्कुं = अ लोकच्छेद-९

भक्तमूनप्रमाणमं प विरळिसि तावन्मात्रलोकंगळनन्योन्याभ्यासं माडलु पुट्टिद लब्धराशिय-९ छे छे छे ९

संख्यातलोकमात्रमक्कु = अ मा राशियं बादरतेजस्कायिकराशिगे हारहारमक्कु = अ ९

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मेकं बोडे—

विरलण रासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि होणरूवाणि।

१० तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ [ ]

एंबी निर्णयमुंटप्पुदरिंदं ई भागहारं मुंबणऽप्रतिष्ठितप्रत्येकादिजीवराशिगळ भागहारंगळ-निंतुमं नोडेयुं अधिकमक्कुमेकें बोडे मुंबण भुंबणप्रतिष्ठित प्रत्येकादिगल ऊनंगळु सावल्यसंख्यात-गुणहीनक्रमंगळप्पुदरिंदं ॥

स्यार्धच्छेदान् भक्त्वा तेन लब्धेनेच्छाराशिभूतप्रकृतघनार्धच्छेदे विरलनराशौ भक्ते सति सा — प छे छे छे ९। ९ अ

१५ यल्लब्धं लोकार्धच्छेदभक्तं किंचिन्न्यूनसंख्यातपल्यप्रमितं प १— एतावतां लोकानामभ्यासे कृते यो लब्ध-छे छे छे ९ अ

राशिः सोऽसंख्यातलोकमात्रो भवति— = अ। अस्य च लोकच्छेदभक्तन्यूनप्रमाण प मात्रलोका-अ छे छे छे ९ अ

नामन्योन्याभ्यासेन समुत्पन्नमसंख्यातलोकं स्तोकत्वात् संदृष्टया नवार्द्धं कृत्वा न्यूनराशिमात्रद्विकैर्जनितत्वात् वारं कुर्यात्। सोऽयमसंख्यातलोको बादरतेजस्कायिकराशिर्भवति = अ। अस्य च भागहारः अग्रतना- ९

राशिके अर्धच्छेदरूप इच्छाराशिमें भाग देनेपर जो प्रमाण आया सो लोकमें अर्धच्छेदोंसे २० कुछ कम संख्यात पल्यमें भाग देनेसे जो प्रमाण आता है, उतना है। सो इतने लोकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो लब्ध राशि होती है, वह असंख्यात लोकमात्र होती है। यही बादर अग्निकायिक जीवराशिका प्रमाण है। यहाँ कुछ कम संख्यात पल्य प्रमाण लोकों-को परस्परमें गुणा करनेसे जो महान् असंख्यात लोक मात्र परिमाण आया, वह तो भाज्य राशि जानना। और लोकके अर्धच्छेद प्रमाण लोकोंको परस्परमें गुणा करनेसे जो छोटा २५ असंख्यात लोकमात्र परिमाण आया सो भागहार जानना। भागहारका भाग भाज्यमें देनेसे जो प्रमाण आवे, उतना ही बादर अग्निकायिक जीवोंका प्रमाण है। यहाँ अग्निकायिक

ई क्रमविदमप्रतिष्ठितादिराशिगळोनविशेषदिंदं मुं पेळ्द त्रैराशिकविधानदिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळागुत्तमुत्तरोत्तरंगळुमसंख्यातलोकगुणितक्रमंगळप्पुवेकें दोडे तद्भागहारंगळुमूनभेदविदमसंख्यातलोकमात्रंगळागुत्तमुत्तरोत्तरंगळुमसंख्यातलोकगुणहीनक्रमंगळप्पुवेकें दोडे आकारणं मुं पेळ्दुदेयक्कुं। इल्लियसंख्यातलोकक्कमावळियसंख्यातैकभागक्कं नवांकमेयक्कु।९। मत्तु कारणविदमा भाज्यराशिगळप्पाबहुत्वदोळु मूढभावमं ताळ्दवे समीक्षिसि बेक्कें यल्कंडुवुवु। ५

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित-पुण्यपुंजायमान श्रीमन्नाथ राजगुरु मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटकवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळष्टम कायमार्गणाप्ररूपणमहाधिकारं प्रलपितमाय्तु। १०

प्रतिष्ठितप्रत्येकादिजीवराशीनां सर्वभागहारेभ्योऽसंख्यातलोकगुणितः तत्तन्यूनराशीनामावल्यसंख्येयगुणहीनक्रमेण सद्भावात्। तत एव प्रागुक्तत्रैराशिकक्रमेणागता अप्रतिष्ठितादिराशयोऽसंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरं असंख्यातलोकगुणितक्रमा भवन्ति। अत्रासंख्यातलोकस्यावल्यसंख्येयभागस्य च संदृष्टिभूतो नवाङ्को भाज्याल्पबहुत्वं ज्ञात्वा विवेचनीयः ॥२१५॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां १५
जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु कायप्ररूपणाख्यो
मार्गदर्शक — आचार्यश्री सुविधिसागरजी महाराज अष्टमोऽधिकारः ॥८॥

जीवोंकी राशिमें जो भागहार कहा है, वह आगेके अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशियोंमें जो भागहारका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकारसे आता है, उन सबसे असंख्यात लोक गुणा है। क्योंकि सागरमें-से जो-जो राशि घटायी है, वह क्रमसे आवलीके असंख्यातवें भाग गुणा कम है। इसीलिए प्रमाणराशि और फलराशि पूर्वोक्त प्रकारसे स्थापित करके और इच्छाराशिमें-से विरलनराशि अपने-अपने अर्धच्छेद प्रमाण स्थापित कर पूर्वोक्त प्रकारसे त्रैराशिकके क्रमसे आयी हुई अप्रतिष्ठित आदि प्रत्येक राशियाँ सामान्यसे असंख्यात लोकमात्र होनेपर भी उत्तरोत्तर क्रमसे असंख्यात लोक गुणित होती हैं। जहाँ भागहार घटता हुआ होता है, वहाँ राशि बढ़ती हुई होती है। सो यहाँ भागहार असंख्यात लोक गुणा क्रमसे घटता हुआ है। इससे राशि असंख्यात लोक गुणा हुई। यहाँ असंख्यातलोक और आवलीके असंख्यातवें भागकी संदृष्टिभूत अंक भाज्यका अल्पबहुत्व जानकर करना चाहिए ॥२१५॥

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तिके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से काय प्ररूपणा नामक आठवाँ महा-अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

योगमार्गणाप्ररूपणाधिकारः ॥९॥

अनन्तरं शास्त्रकारं योगमार्गणा प्ररूपणेयं पेळल्पडुगुमिसुत्तमन्नेवरं मोदलोळु योगक्के साधारणलक्षणमं पेळ्दपं।

पोग्गलविवाइदेहोदएण मणवयणकायजुत्तस्स ।
जीवस्स जा हु सत्ती कम्मागमकारणं जोगो ॥२१६॥

पुद्गलविपाकिदेहोदयेन मनोवचनकाययुक्तस्य। जीवस्य या खलु शक्तिः कर्म्मागमकारणं योगः ॥

पुद्गलविपाकित्वं देहक्के विशेषणमल्तु। पुद्गलविपाकोशब्दंविडमंगोपांगनामकर्म्मक्के ग्रहणमक्कुं। अंगोपांगशरीरनामकर्म्मंगळ्गुदयंविडं मनोवचनकाय पर्य्याप्तिपरिणतनप्प कायवाङ्मनोवर्गणावलंबियप्प संसारिजीवन लोकमात्रप्रदेशगतकर्म्मादानकारणमप्पावुदो दु शक्तियवु भावयोगमक्कुं। तद्विशिष्टात्मप्रदेशंगळोळावुदो दु किंचिच्चलनरूपपरिस्पंदमदु द्रव्ययोगमक्कुं। कर्म्मम दितुपलक्षणमप्पुदरिदं कर्म्मनोकर्म्मवर्गणारूपपुद्गलस्कंधक्के ज्ञानावरणादि कर्म्मस्वरूपविदमुमौदारिकादिनोकर्म्मभावविदमुं। परिणमनहेतुमप्पावुदानुमो दु सामर्थ्यमुं आत्मप्रदेशपरिस्पंदमुं योगमेंदितु पेळल्पट्टुदु।

कल्याणैः पञ्चभिर्भान्तं नवकेवललब्धिभिः।
शतेन्द्रपूज्यपादाब्जं पुष्पदन्तं नमाम्यहम् ॥९॥

अथ शास्त्रकारो योगमार्गणां प्रक्रममाणस्तदादौ योगस्य साधारणलक्षणमाह—

पुद्गलविपाकिनः अङ्गोपाङ्गनामकर्मणः, देहस्य च शरीरनामकर्मणः, उदयेन मनोवचनकायपर्याप्तिपरिणतस्य कायवाग्मनोवर्गणावलम्बिनः संसारिजीवस्य लोकमात्रप्रदेशगता कर्मादानकारणं या शक्तिः सा भावयोगः। तद्विशिष्टात्मप्रदेशेषु च यः किञ्चिच्चलनरूपपरिस्पन्दः स द्रव्ययोगः। कर्मेति लक्षणेन कर्मनोकर्मवर्गणारूपपुद्गलस्कन्धस्य ज्ञानावरणादिकमौदारिकादिनोकर्मभावेन परिणमनहेतुर्यत्सामर्थ्यं आत्मप्रदेशपरिस्पन्दश्च

पाँच कल्याणकों और नव केवललब्धियोंसे शोभित तथा सौ इन्द्र जिनके चरण कमल को पूजते हैं, उन पुष्पदन्त भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ।

आगे शास्त्रकार योगमार्गणाको प्रारम्भ करते हुए उसके आदिमें योगका साधारण लक्षण कहते हैं—

पुद्गलविपाकी अंगोपांग नामकर्म और शरीरनामकर्मके उदयसे मन-वचन और कायपर्याप्तिरूपसे परिणत तथा कायवर्गणा वचनवर्गणा और मनोवर्गणाका अवलम्बन करनेवाले संसारी जीवके लोकमात्र प्रदेशोंमें रहनेवाली जो शक्ति कर्मोंको ग्रहण करनेमें कारण है, वह भावयोग है। और उस शक्तिसे विशिष्ट आत्म प्रदेशोंमें जो कुछ हलन-चलन रूप परिस्पन्द होता है वह द्रव्य योग है। 'कर्म' इस शब्दसे कर्म वर्गणारूप पुद्गल स्कन्धोंको ज्ञानावरण आदि कर्म रूपसे और नोकर्मवर्गणारूप पुद्गल स्कन्धको औदारिक आदि नोकर्म

अंगोपांगशरीरनामकर्म्मोदयगळिंदं मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळ आहारवर्गणायातनोकर्म्मपुद्गलस्कंधंगळ संबंधदिंदं जीवप्रदेशंगळ्गे, अग्निसंबंधदिंदं तु लोहक्के दहनशक्तिपुट्टुगुमंते कर्म्मनोकर्म्मादानशक्तिसामर्थ्यं पुट्टुगुमें बुदिंतु भावार्थं ।

अथ योगविशेषं प्रेरयन्नाह ।

मणवयणाण पउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु ।
तण्णामं होदि तदा तेहि दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मनोवचनयोः प्रवृत्तयः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगात् खलु तद्योगाः ॥

सत्यासत्योभयानुभयार्थंगळोळावुकलवु प्रवृत्तिगळु मनोवचनंगळ्गेत्तळ् ज्ञानवाक्प्रयोगजननदोळ् जीवप्रयत्नंगळा प्रवृत्तिगळ्गे सत्यादितन्नाममक्कुं सत्यमन इत्यादि । तु मत्ते तैस्तु योगात् आ सत्याद्यर्थंगळोडने संबंधवर्त्तणिंदं खलु स्फुटमागि ताः आ मनोवचनप्रवृत्तिगळु । तद्योगाः सत्यादिविशेषणं गळिंदं विशिष्टंगळप्प नाल्कुं मनोयोगंगळुं नाल्कुं वाग्योगंगळुमप्पुवु । सम्यग्ज्ञानविषयमप्पर्थं सत्यमें बुदु यथा जलज्ञानविषयं जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावदिंदं ।

योग इत्युच्यते । अङ्गोपाङ्गशरीरनामकर्मोदयेन मनोभाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां आहारवर्गणायातनोकर्मपुद्गलस्कन्धानां च संबन्धेन जीवप्रदेशानामग्निसंयोगेन लोहस्य दहनशक्तिवत् कर्मनोकर्मादानशक्तिः सामर्थ्यमुत्पद्यते इति भावार्थः ॥२१६॥ अथ योगविशेषमाह—

सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु याः प्रवृत्तयः मनोवचनयोः तदा ज्ञानवाक्प्रयोगजनने जीवप्रयत्नरूपप्रवृत्तीनां सत्यादि तन्नाम भवति सत्यमन इत्यादि । तु—पुनः तैः सत्याद्यर्थैः सह योगात्—संबन्धात्, खलु—स्फुटं, ताः मनोवचनप्रवृत्तयः, तद्योगाः—सत्यादिविशेषणविशिष्टाः, चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाश्च भवन्ति । सम्यग्ज्ञानविषयोऽर्थः सत्यः यथा जलज्ञानविषयो जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावात् । मिथ्याज्ञानविषयोऽर्थः असत्यः यथा जलज्ञानविषयो मरीचिकाचक्रे जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहात् । सत्यासत्यज्ञानविषयोऽर्थः उभयः

रूपसे परिणमनमें हेतु जो सामर्थ्य है तथा आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दको योग कहते हैं। भावार्थ यह है कि जैसे अग्निके संयोगसे लोहेमें दहन शक्ति होती है, उसी तरह अंगोपांग शरीर नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणा तथा भाषावर्गणाके आये पुद्गल स्कन्धोंके और आहारवर्गणाके आये नोकर्म पुद्गल स्कन्धोंके सम्बन्धसे जीवके प्रदेशोंमें कर्म और नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥२१६॥

आगे योगके भेदोंका लक्षण कहते हैं—

सत्य, असत्य, उभय और अनुभयरूप पदार्थोंमें जो मन और वचनकी प्रवृत्तियाँ होती हैं, तब जानने और वचनका प्रयोग करनेमें जीवके प्रयत्नरूप वृत्तियाँ सत्य आदि उन नामवाली होती हैं, जैसे सत्य मन इत्यादि । पुनः उन सत्य आदि अर्थोंके सम्बन्धसे वे मन वचनकी प्रवृत्तियाँ सत्य आदि विशेषणसे विशिष्ट होनेसे चार मनोयोग और चार वचन योग होते हैं । सम्यग्ज्ञानके विषयभूत अर्थको सत्य कहते हैं । जैसे जलज्ञानका विषय जल सत्य है, क्योंकि स्नान पान आदि अर्थ क्रिया उसमें पायी जाती है । मिथ्या ज्ञानका विषय पदार्थ असत्य है । जैसे मरीचिकामें जल ज्ञानका विषय जल असत्य है, क्योंकि उसमें स्नान

१. म °लमप्प प्र° ।

मिथ्याज्ञानविषयमप्पर्थमसत्यं एंतीगळ्जलज्ञानविषयमप्प मरीचिकाचक्रदोळ् जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहदिंदमसत्यं ।

सत्यासत्यज्ञानविषयमप्पर्थमु भयमक्कुं । सत्यासत्यमें बुदर्त्थं । येंतीगळु घटज्ञानविषयमप्प कमंडलुविनोळु घटं । यिल्लि जलधारणार्थक्रियासद्भावमुंटप्पुदरिंदं सत्यतेयुं घटाकारविकलतेयिंदमसत्यतेयुं प्रतीतियक्कुमेंबितु इवु गौणार्थमग्निर्माणवकः एंदीत्यादिरूपं । अनुभयज्ञानविषयार्थोनुभयः । सत्यासत्यार्थद्वयंगळिंदमव्यक्तमक्कुं । एंतीगळु किंचित्प्रतिभासते एंदितु सामान्यदिंदं प्रतिभासमानमप्पर्थं स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावदिंदं सत्य येंबितु नुडियल्बारदु । सामान्यप्रतिभासदिंदमसत्यमेंबितुं नुडियल्बारदेंबितु जात्यंतरमनुभयार्थं स्फुटमागि तालकनेय भेदमक्कुमिंतु घटे घटविकल्पः सत्यः, घटे पटविकल्पोऽसत्यः कुंडिकायां जलधारणे घटविकल्प उभयः आमंत्रणादिषु अहो देवदत्त इति विकल्पोऽनुभयः कालेनैव गृहीता सा कन्या किं मृत्युनाऽथवा धर्म्मणेति अनुभयः ।

सत्यार्थविषयमप्प मनोयोगं सत्यमनोयोगमेंदित्यादिविशेषलक्षणमं गाथाचतुष्टयदिंद पेळ्दपरु ।

सब्भावमणो सच्चो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।
तव्विवरीयो मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥२१८॥

सद्भावमनः सत्यं यो योगस्तेन सत्यमनोयोगः । तद्विपरीतो मृषा जानीह्युभयं सत्यमृषेति ॥

सत्यासत्य इत्यर्थः यथा जलज्ञानविषयः कमण्डलुनि घटः । अत्र जलधारणार्थक्रियायाः सद्भावात् सत्यतायाः घटाकारविकलत्वादसत्यतायाश्च प्रतीतेः । अयं गौणार्थः अग्निर्माणवक इत्यादिवत् । अनुभयज्ञानविषयोऽर्थः अनुभयः सत्यासत्यार्थद्वयेनावक्तव्यः यथा किंचित्प्रतिभासते । सामान्येन प्रतिभासमानोऽर्थः स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावात् सत्य इति वक्तुं न शक्यते । सामान्यप्रतिभासात् असत्य इत्यपि वक्तुं न शक्यते इति जात्यन्तरं अनुभयार्थः स्फुटं चतुर्थो भवति । एवं घटे घटविकल्पः सत्यः, घटे पटविकल्पोऽसत्यः, कुण्डिकायां जलधारणे घटविकल्पः उभयः, आमन्त्रणादिषु अहो देवदत्त इति विकल्पः अनुभयः । कालेनैव गृहीता सा कन्या किं मृत्युना अथवा धर्मणा इत्यनुभयः ॥२१७॥ सत्यार्थविषयो मनोयोगः सत्यमनोयोग इत्यादिविशेषलक्षणं गाथाचतुष्टयेन कथयति—

पान आदि अर्थ क्रियाका अभाव है । सत्य और असत्य ज्ञानका विषय अर्थ उभय अर्थात् सत्यासत्य है । जैसे कमण्डलुमें घटव्यवहार । कमण्डलुमें घटकी तरह जलधारणरूप अर्थ क्रिया होनेसे सत्यताकी और घटका आकार न होनेसे असत्यताकी प्रतीति होती है । माणवकमें अग्निकी तरह यह गौण अर्थ है । अनुभयज्ञानका विषय अर्थ अनुभय है; उसे न सत्य ही कहा जा सकता है और न असत्य ही कहा जा सकता है; जैसे कुछ प्रतिभासित होता है । यहाँ सामान्य रूपसे प्रतिभासमान अर्थ अपनी अर्थक्रिया करनेवाले विशेषके निर्णयके अभावमें सत्य नहीं कहा जा सकता । और सामान्यका प्रतिभास होनेसे असत्य भी नहीं कहा जा सकता । इसलिये जात्यन्तर होनेसे अनुभय अर्थ स्पष्ट ही चतुर्थ होता है । इसी तरह घटमें घटका विकल्प सत्य है । घटमें पटका विकल्प असत्य है । कुण्डिकामें जलधारणसे घटका विकल्प उभय है । किसीको बुलाने पर 'हे देवदत्त' यह विकल्प अनुभय है ॥२१७॥

आगे सत्य अर्थको विषय करनेवाला सत्य मनोयोग है; इत्यादि विशेष लक्षण चार गाथाओंसे कहते हैं—

सद्भावः सत्यार्थः। सद्भावविषयमप्प मनसं सत्यमनमें बुदु। सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपमप्प भावमनमें बुवर्त्थं। तेन अंतप्प सत्यमनदिदं जनितमप्पावुदो दु योगं प्रयत्नविशेषमदु सत्यमनोयोगमें बुदु। तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजननशक्तिरूपभावमनदिदं जनितमप्प प्रयत्नविशेषं मृषा असत्यमनोयोगमक्कुं। उभयं सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषमुभयमनोयोगमें दितु जानीहि हे भव्यजीवने नीनरि। ५

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो ॥२१९॥

न च सत्यमृषा युक्तं यन्मनस्तदसत्यमृषामनः। यो योगस्तेन भवेदसत्यमृषा स तु मनोयोगः।

यन्मनः आवुदो दु मनं सत्यमृषायुक्तं सत्यमुं मृषेयुमें दिवरोळ् कूडिदुदु न च नैव भवति अल्लदुदक्कुं। तु मत्तं असत्यमृषा मनः अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनमें बुवर्त्थं। तेन जनितो यो योगः आभावमनदिदं जनितमप्पावुदो दु योगं प्रयत्नविशेषं सः अदु, तु मत्तं असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोगमें बुवर्त्थमिप्पु नाल्कुं मनोयोगंगळ् पेळल्पट्टुवु। १०

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीयो मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥२२०॥ १५

दशविधसत्ये वचने यो योगः स तु सत्यवाग्योगस्तद्विपरीतो मृषा जानीह्युभयं सत्यमृषेति ॥

सद्भावः सत्यार्थः, तद्विषयं मनः सत्यमनः, सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः। तेन सत्यमनसा जनितो यो योगः—प्रयत्नविशेषः स सत्यमनोयोगः। तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजननशक्तिरूपभावमनसा जनितप्रयत्नविशेषो मृषा—असत्यमनोयोगः। उभयः—सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः उभयमनोयोगः, इति हे भव्य! त्वं जानीहि ॥२१८॥ २०

यन्मनः सत्यमृषायुक्तं न च भवति तु—पुनः, तदसत्यमृषामनः, अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमन इत्यर्थः। तेन भावमनसा जनितो यो योगः—प्रयत्नविशेषः स तु पुनः असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोयोग इत्यर्थः। इति चत्वारो मनोयोगाः कथिताः ॥२१९॥

सद्भाव अर्थात् सत्य अर्थ। उसको विषय करनेवाला मन सत्य मन है। अर्थात् सत्य अर्थका ज्ञान उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भावमन सत्यमन है। उस सत्य मनसे उत्पन्न हुआ योग अर्थात् प्रयत्न विशेष सत्य मनोयोग है। उससे विपरीत अर्थात् असत्य अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भाव मनसे उत्पन्न प्रयत्न विशेष मृषा अर्थात् असत्य मनोयोग है। उभय अर्थात् सत्य और असत्य अर्थके ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भावमनसे उत्पन्न प्रयत्न विशेष उभयमनोयोग है। हे भव्य,ऐसा तुम जानो ॥२१८॥ २५

जो मन सत्य और असत्यसे युक्त नहीं होता,वह असत्यमृषामन है अर्थात् अनुभय रूप अर्थके ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्तिरूप भावमन असत्यमृषा मन है। उस भावमनसे उत्पन्न जो योग अर्थात् प्रयत्नविशेष है, वह असत्यमृषा मनोयोग अर्थात् अनुभयमनोयोग है। इस प्रकार चार मनोयोग कहे हैं ॥२१९॥ ३०

सत्यार्थवाचकं वचः सत्यवचनं जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थमप्पस्वरनामकर्म्मोदयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणावलंबनात्मप्रदेशशक्तिरूपमप्पावुदो दु भाववचनदिंद जनितमप्प योगं प्रयत्नविशेषं सः अदु सत्यवचोयोगः सत्यवचनयोगमक्कुं। तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नमसत्यवचोयोगोऽसत्यवाग्योगमक्कुं। कमंडलुविनोळु घटमिदें-
५ दित्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्नमदु उभयवाग्योगमें दितु जानीहि नीनरि भव्यने।

जो णेव सच्चमोसो सो जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणीयादि ॥२२१॥

यो नैव सत्यमृषार्थविषयो नीहसत्यमृषाकनखोवदसमनसांप्रभृतिसंज्ञिनामामंत्रण्यादिः॥

यः आवुदो दु सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति सत्यासत्यार्थविषयमल्तु। सः अदु असत्य-
१० मृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषमनुभयवचोयोगमेंदितु जानीहि नीनरि। अदावुदेंदोडे अमनसां द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्यंतमाद जीवंगळावुदो दु अनक्षरात्मिकेयप्प भाषेयुं संज्ञिनां संज्ञिजीवंगळा मंत्रण्याद्यक्षरात्मिकेयप्प भाषेयुमेल्लमुमनुभयवचोयोगमें दितु पेळल्पट्टुवु।

अनंतरं जनपदादिदशविधसत्यमनुदाहरणपूर्व्वकमागि गाथात्रयदिं पेळ्दपरु।

सत्यार्थवाचकं वचनं सत्यवचनं जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थः, स्वरनामकर्मो-
१५ दयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणावलम्बनात्मप्रदेशशक्तिरूपो यो भाववचनजनितो योगः प्रयत्नविशेषः स सत्यवचोयोगो भवति। तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नः असत्यवचोयोगः असत्यवाग्योगो भवति। कमण्डलुनि घट इत्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्नतः स उभयवाग्योग इति भव्य! त्वं जानीहि॥२२०॥

यः सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति स असत्यमृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषः अनुभयवचोयोग इति हे भव्य! त्वं जानीहि। स कः? उत्तरार्धेन तमेवोदाहरति—अमनसां द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तजीवानां या अनक्षरात्मिका भाषाः संज्ञिनां च आमन्त्रण्याद्यक्षरात्मिकाभाषास्ताः सर्वाः अनुभयवचोयोग इत्युच्यते॥२२१॥
२० अथ जनपदादिदशविधसत्यमुदाहरणपूर्वकं गाथात्रयेणाह—

सत्य अर्थका वाचक वचन सत्यवचन है। वह जनपद आदि दस प्रकारके सत्य अर्थको विषय करनेवाले वचन व्यापारको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। स्वर नाम कर्मके उदयसे प्राप्त भाषापर्याप्तिसे उत्पन्न भाषावर्गणाके आलम्बनसे आत्मप्रदेशोंमें शक्तिरूप जो भाववचनसे उत्पन्न योग अर्थात् प्रयत्नविशेष है, वह सत्यवचनयोग है। उससे विपरीत
२५ असत्य है अर्थात् असत्य अर्थको विषय करनेवाला वचन व्यापाररूप प्रयत्न असत्यवचन योग है। कमण्डलुमें घटव्यवहारकी तरह सत्य और असत्य अर्थविषयक वचन व्यापाररूप प्रयत्न उभय वचन योग है। हे भव्य, तुम जानो ॥२२०॥

जो सत्य और असत्य अर्थको विषय नहीं करता, वह असत्यमृषा अर्थको विषय करनेवाला वचन व्यापाररूप प्रयत्न विशेष अनुभय वचन योग है, ऐसा हे भव्य! तुम जानो।
३० वह कौन है? यह उत्तरार्धसे उदाहरण देकर कहते हैं—अमनस् अर्थात् दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंकी जो अनक्षरात्मक भाषा है तथा संज्ञीपंचेन्द्रियोंकी जो आमन्त्रण आदि रूप अक्षरात्मक भाषा है, वह सब अनुभयवचन योग कही जाती है॥ २२१॥

आगे जनपद आदि दस प्रकारके सत्य उदाहरण पूर्वक तीन गाथाओंसे कहते हैं—

जणवदसंउदिट्ठवणाणामे रूवे पडुच्चववहारे ।
संभावणे य भावे उवमाए दसविहं सच्चं ॥२२२॥

जनपदसंवृतिस्थापनानाम्नि रूपे प्रतीत्यव्यवहारे। संभावनायां भावे उपमायां दशविधं सत्यं॥

जनपददोळं संवृतियोळं-सम्मतियोळं मेणु स्थापनेयोळं नामदोळं रूपदोळं प्रतीत्यदोळं व्यवहारदोळं संभावनेयोळं भावदोळं उपमेयोळमिंतु पत्तेडेयोळं सत्यं दशविधमक्कुं। ५

भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो ।
सेदो दिग्घो रज्झदि कूरोत्ति य जं हवे वयणं ॥२२३॥

भक्तं देवी चंद्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्तः। श्वेतो दीर्घो रध्यते क्रूर इति च यत् भवेद्वचनं ॥

जनपदंगळोळल्लल्लिय व्यवहर्तृजनंगळ रूढमप्पावुदों दु वचनमदु जनपदसत्यं। यें तोगळु १०
महाराष्ट्रदेशदोळ् भातु भेदु। आंध्रदेशदोळु वटिकमु। ककूडु। कर्णाटदेशदोळु कूळु। द्रविडदेशदोळु चोरु। इंति हिंगे संवृतिः कल्पना कल्पनेयिंदं सम्मतिर्बहुजनाभ्युपगमः बहुजनंगळनुमतदिंदं मेणु सर्व्वदेशसामान्यमप्प नामं रूढमदु संवृतिसत्यं। सम्मति सत्यं मेणु। एंतोगळग्रमहिषित्वाभावदोळ-मों दानुमोर्व्वळिगे देवि एंबितु सम्मतं। अन्यत्र अन्यवस्तुविंगे समारोपं स्थापनेयं बुदु तथाश्रितमप्प मुख्यवस्तुविन नामं स्थापनासत्यमक्कुं। यें तोगळु चंद्रप्रभप्रतिमे चंद्रप्रभनें ब हंगे तथा च यन्तोगळु १५
भातु एंबित्यादिनामं देशाद्यपेक्षेयिंदं सत्यमक्कुमन्ते मेंतन्यनिरपेक्षतेयिंदमे संव्यवहारार्थमागियं

जनपदे संवृत्तौ सम्मतौ वा स्थापनायां नाम्नि रूपे प्रतीत्ये व्यवहारे संभावनायां भावे उपमायां चेति दशस्थानेषु सत्यं दशविधं भवति ॥२२२॥

जनपदेषु तत्रतनतत्रतनव्यवहर्तृजनानां रूढं यद्वचनं तज्जनपदसत्यं यथा महाराष्ट्रदेशे भातु भेटु, आन्ध्रदेशे वण्टक मुकुडु, कर्णाटदेशे कूलु, द्रविडदेशे चोरु। तथा संवृत्त्या कल्पनया सम्मत्या वा बहुजनाभ्युप- २०
गमेन सर्वदेशसाधारणं यन्नाम रूढं तत् संवृतिसत्यं सम्मतिसत्यं वा, यथा अग्रमहिषीत्वाभावेऽपि कस्याश्चि-देवीति नाम। अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना तदाश्रितं मुख्यवस्तुनो नाम स्थापनासत्यं यथा चन्द्रप्रभ-प्रतिमा चन्द्रप्रभ इति। तथा च यथा भातु इत्यादि नाम देशाद्यपेक्षया सत्यं तथा अन्यनिरपेक्षतयैव संव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्तं संज्ञाकर्म नामसत्यं यथा कश्चित् पुरुषो जिनदत्त इति। अत्र जिनैर्दत्त इति

जनपद, सम्मति, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, सम्भावना, भाव, उपमा २५
इन दस स्थानोंमें दस प्रकारका सत्य जानना ॥२२२॥

भिन्न-भिन्न जनपदोंमें उस-उस जनपदके व्यवहारी पुरुषोंके रूढ वचनको जनपद सत्य कहते हैं; जैसे भातको महाराष्ट्र देशमें भातु-भेदु कहते हैं, आन्ध्र देशमें वटक मुकुडु कहते हैं, कर्णाट देशमें कुलु और द्रविड देशमें चोरु कहते हैं। संवृत्ति अर्थात् कल्पनासे य सम्मति अर्थात् बहुत जनोंके स्वीकार करनेसे सर्वदेश साधारण जो नाम रूढ है, वह संवृति ३०
सत्य या सम्मति सत्य है; जैसे पट्टरानीपना नहीं होनेपर भी किसीको देवी कहना। अन्यमें अन्यवस्तुका समारोप स्थापना है। उसका आश्रय करके मुख्य वस्तुका नाम स्थापना सत्य है; जैसे चन्द्रप्रभकी प्रतिमाको चन्द्रप्रभ कहना। तथा जैसे भातु इत्यादि नाम देश आदिकी अपेक्षा सत्य है, उसी तरह अन्यकी अपेक्षा न करते हुए ही संव्यवहारके लिए किसीका नाम रखना नाम सत्य है; जैसे किसी पुरुषका जिनदत्त नाम। जिनदेवने जिसे दिया, वह जिनदत्त ३५
होता है, किन्तु इस दान क्रियाकी अपेक्षा न करते हुए यह नाम प्रयुक्त होता है। चक्षुके

वानुमोर्व्वंगे प्रयुक्तसंज्ञाकर्म्मं नामसत्यमक्कुं । येंतीगळोंदानुमोर्व्वं पुरुषं जिनदत्तन हंगे, इल्लि जिनैर्दत्तो जिनदत्तः येंदितु दानक्रियानिरपेक्षमागिये प्रयुक्तमिदुं । चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वदिंदं रूपादिपुद्गलगुणंगळोळगे रूपप्रधान्यदिंदं तदाश्रितवचनं रूपसत्यमक्कुं । येंतीगळोर्व्व पुरुषं श्वेतनेंदि हेंगे इल्लि केशंगळ नीलादिवर्णांतरंगळगं रसादिगुणांतरंगळगं सद्भाववोळविवक्षितमागि श्वेतनेंदे वाक्प्रयोगं प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं एंबुदु विवक्षितवस्तुविंदं मत्तोंदुनुद्देशिसि विवक्षितक्कंये स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमेंबुदर्थं । एंतीगळों दानुमों दु दीर्घमेंदिए हेंगे मत्तोंबर ह्रस्वत्वमनपेक्षिसि प्रकृतक्के दीर्घत्वमादुदुं एवं स्थूलसूक्ष्मादिवचनंगळुं प्रतीत्यसत्यंगळेंदु ज्ञातव्यंगळु । नैगमादिनयप्राधान्यमनाश्रयिसि प्रवृत्तमप्प वचनं व्यवहारसत्यमक्कुमल्लि नैगमनयप्राधान्यदिंदं येंतीगळु रध्यते कूरः एंबितु पच्यते ओदन येंदितुं इति शब्दं संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारप्रदर्शनार्थमक्कुं । इंतु नयव्यवहाराश्रितमप्पावुदों दु वचनं स्यात् सर्वं सत् स्यात्सर्व्वमसत् इत्यादिवाक्यं व्यवहारसत्यमक्कुं । च शब्दं सर्व्वनयसमुच्चयार्थं पच्यते ओदनः येंदिल्लि पाकसमाप्त्यनंतरकालभावियप्पोदनपर्य्यायं । पाककालदोळे एसलानुमिल्लमंतावोडं तंडुलंगळोदनपर्य्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षेयिंदमोदनपर्य्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षेयिंदं तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धियक्कुं ॥२२३॥

दानक्रियानिरपेक्षमेव प्रयुक्तमिदम् । चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वेन रूपादिपुद्गलगुणेषु रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचनं रूपसत्यं यथा कश्चित् पुरुषः श्वेत इति । अत्र केशादीनां नीलादिवर्णान्तररसादिगुणान्तरसद्भावेऽप्यविवक्षितत्वात् । प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः । यथा कश्चिद्दीर्घ इति अन्यस्य ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वकथनात् । एवं स्थूलसूक्ष्मादिवचनान्यपि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि । नैगमादिनयप्राधान्यमाश्रित्य प्रवृत्तं वचनं व्यवहारसत्यम् । अत्र नैगमनयप्राधान्येन यथा रध्यते कूर पच्यते ओदन इति । इतिशब्दः संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारदर्शनार्थः । नयव्यवहाराश्रितं यद्वचनं—स्यात्सर्वं सत् स्यात् सर्वमसत् इत्यादिवाक्यं व्यवहारसत्यं भवति । चशब्दः सर्वनयसमुच्चयार्थः । पच्यते ओदन इत्यत्र पाकसमाप्त्यनन्तरकालभावी ओदनपर्यायः पाककाले यद्यपि नास्ति तथापि तण्डुलानामोदनपर्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षया ओदनपर्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षया तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धिः ॥२२३॥

व्यापारकी अधिकतासे रूपादिसे युक्त पुद्गलके गुणोंमें रूपकी प्रधानतासे तदाश्रित वचन रूप सत्य है; जैसे अमुक पुरुष श्वेत है। यहाँ मनुष्यके केशोंके नील आदि वर्णके होनेपर तथा रस आदि अन्य गुणोंका सद्भाव होनेपर भी उनकी विवक्षा नहीं है। प्रतीत्य अर्थात् विवक्षित वस्तुसे अन्यकी अपेक्षा करके विवक्षित वस्तुके ही स्वरूपको कहना प्रतीत्य सत्य अर्थात् आपेक्षिक सत्य है; जैसे किसीको दीर्घ कहना। यहाँ दूसरेके छोटेपनकी अपेक्षा करके ही प्रकृतको दीर्घ कहा गया है। इसी तरह यह स्थूल है या यह सूक्ष्म है, इत्यादि वचन भी प्रतीत्यसत्य जानना। नैगमादि नयकी प्रधानता लेकर कहा गया वचन व्यवहार सत्य है। जैसे नैगमनयकी प्रधानतासे 'भात पकता है', ऐसा कहना; क्योंकि पकते तो चावल हैं, पकनेपर भात होगा। गाथामें आया इति शब्द संग्रहनय आदिके द्वारा होनेवाले व्यवहारके प्रकारको दर्शाता है। नयव्यवहारके आश्रयसे होनेवाला वचनव्यवहार, जैसे 'स्यात् सब वस्तु सत् है, स्यात् सब वस्तु असत् है, इत्यादि वाक्य व्यवहार सत्य है। 'च' शब्द सब नयोंके समुच्चयके लिए है। 'भात पकता है', यहाँ भातपर्याय पाककी समाप्तिके अनन्तर कालमें होती है, अतः पाककालमें यद्यपि नहीं है; तथापि चावलोंकी भातरूप पर्यायकी निकटताके

सक्को जंबूदीवं पल्लट्टदि पावबज्जवयणं च ।
पल्लोवमं च कमसो जणवदसच्चादिदिट्ठंता ॥२२४॥

शक्रो जंबूद्वीपं परावर्तयति पापवर्जवचनं च । पल्योपमं च क्रमशो जनपदसत्यादिदृष्टांताः ॥

संभावनेयिंदमसंभवपरिहारपूर्वकवस्तुधर्मविधिलक्षणविदमाडुवोदु प्रवृत्तमप्प वचनमदु संभावनासत्यं येंतीगळु शक्रनु जंबूद्वीपमनंत्तरंगळोळु [illegible] जंबूद्वीपपरिवर्त्तन शक्त्यसंभवपरिहारविंदं तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्षं । सत्यमें दितु बीजदोळंकुरजननादि-शक्तिवचनवंते असंभवपरिहारविंदं वस्तुधर्मविधिरूपमप्प संभावनेगे नियमविंद तत्क्रियापेक्षे घटिसुवुविल्लेकेंदोडे क्रियेगे बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वमप्पुदे कारणमागि । अतींद्रियार्थंगळोळु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामं भावमक्कुं तदाश्रितमप्पवचनं भावसत्यमेंतेंगळु शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यंगळु प्रासुकमदु कारणदिं तत्सेवनदोळ् पापबंधमिल्लें-दितु पापवर्ज्यवचनवंतिल्लि । सूक्ष्मप्राणिगळिंद्रियागोचरत्वदोळं प्रवचनप्रामाण्यदिंदं प्रासुका-प्रासुकसंकल्परूपमप्प भावाश्रितमप्प वचनक्के सत्यत्वमुंटप्पुदरिंदं । समस्तातींद्रियार्थज्ञानिप्रणीत-प्रवचनक्के सत्यत्वमुंटप्पुदे कारणमागि च शब्दमेवंविधाऽनुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थं प्रसिद्धार्थसाहश्य-

---

संभावनया असंभवपरिहारपूर्वकवस्तुधर्मविधिलक्षणया यत्प्रवृत्तं वचनं तत्संभावनासत्यं यथा शक्रो जम्बूद्वीपं परावर्तयेत् परिवर्तयितुं शक्नोतीत्यर्थः । जम्बूद्वीपपरिवर्तनशक्त्यसंभवपरिहारेण तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्षं सत्यमिति बीजे अङ्कुरजननादिशक्तिवचनवत् । असंभवपरिहारेण वस्तुधर्मविधिरूपसंभावनाया नियमेन तत्क्रियापेक्षा न घटते क्रियाया बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वात् । अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्त-विधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः । तदाश्रितं वचनं भावसत्यम् । यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादि-द्रव्यं प्रासुकं ततस्तत्सेवने पापबन्धो नास्तीति पापवर्जनवचनम् । अत्र सूक्ष्मप्राणिनामिन्द्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्येन प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात् । समस्तातीन्द्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनस्य

प्ररूपक नैगमनयकी विवक्षासे भात पर्यायरूप परिणमन करनेवाले द्रव्यकी अपेक्षा 'भात पकता है', इस वचनकी सत्यता सिद्ध है ॥२२३॥

असम्भवके परिहारपूर्वक वस्तुके धर्मका विधान करनेवाली सम्भावनाके द्वारा जो वचनव्यवहार होता है, वह सम्भावनासत्य है; जैसे इन्द्र जम्बूद्वीपको पलटनेमें समर्थ है। यहाँ जम्बूद्वीपको पलटनेकी शक्तिकी असम्भवताका परिहार करते हुए उस शक्तिके विधान-का वचन पलटनेकी क्रियासे निरपेक्ष होते हुए सत्य है; जैसे यह कहना कि बीजमें अंकुरको उत्पन्न करनेकी शक्ति है। इन्द्रमें जम्बूद्वीपको पलटनेकी शक्ति असम्भव है। इस असम्भवता-का परिहार करके इन्द्रमें पलटन रूप धर्मके अस्तित्वकी सम्भावना नियमसे उस क्रियाकी अपेक्षा नहीं रखती। अर्थात् इन्द्र जम्बूद्वीपको पलट दे, तभी इन्द्र जम्बूद्वीपको पलट सकता है, यह कहा जा सकता है, ऐसी बात नहीं है। क्रिया तो बाह्य कारण समूहके व्यापारसे उत्पन्न होती है। अतीन्द्रिय पदार्थोंमें प्रवचनमें कहे गये विधि निषेधके संकल्परूप परिणाम-को भाव कहते हैं। उसके आश्रित वचन भाव सत्य है; जैसे सूखा हुआ, पकाया हुआ, छिन्न-भिन्न किया हुआ, खटाई या नमक मिलाया हुआ तथा जला हुआ द्रव्य प्रासुक है। अतः उसके सेवनमें पापबन्ध नहीं है। इस प्रकारके पापके त्यागरूप वचन भावसत्य है। यहाँ सूक्ष्म प्राणियोंके इन्द्रियोंके अगोचर होनेपर भी आगमकी प्रामाणिकतासे प्रासुक और अप्रासुकका संकल्परूप भावके आश्रयसे वचन सत्य है, क्योंकि आगममें ऐसा कहा है। और

मनुपमे एंबुदु। तदाश्रितमप्प वचनमुमनुपमासत्यमें बुदे तोगळु पल्योपमं पल्यं धान्याधारकुशूलमदरोडनुपमे सदृशत्वं रोमखंडाधारतेयिंदमावुदो वस्तुवं उंदु तत्संख्यानपल्योपममें दितु असंख्यातासंख्यातरोमखंडाश्रयमप्प तत्प्रमाणसमयमप्प संख्यानविशेषक्कं यथाकथंचित्पल्यसादृश्यमनाश्रयिसि प्रवृत्तमप्प पल्योपमवचनक्कुपमा सत्यत्वसिद्धियक्कुं। अंते सागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थं च शब्दं। इंतु यथाक्रमं भक्तादिगळु जनपदसत्यादिदृष्टांतंगळुदाहरणंगळु पेळल्पट्टुवु।

अनंतरमनुभयवचनभेदंगळं पेळ्दातं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपं।

आमंतणी आणवणी जायणिपुच्छणि पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥२२५॥

आमंत्रणी आज्ञापनी याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी। प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोमवचनी च॥

आगच्छ भो देवदत्त इत्याद्याह्वानभाषे आमंत्रणी एंबुदु। इदं माडु एंबुदु मोदलाद कार्य्यनियोजन भाषे आज्ञापनी एंबुदु। इवनेनगे कोडु एंबुदु मोदलाद प्रार्थनाभाषे याचनी एंबुदु। येनिवें बुदु मोदलावुदु प्रश्नभाषे आपृच्छनी एंबुदु। येगेय्वेनें बुदु मोदलाद विज्ञापनाभाषे प्रज्ञापनी

सत्यत्वादेव कारणात्। चशब्दः एवंविधानुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थः। प्रसिद्धार्थसादृश्यमुपमासत्यं यथा पल्योपमं पल्येन धान्याधारकुशूलेन सह उपमासदृशत्वं रोमखण्डाधारतया यस्यास्ति तत्संख्यानं पल्योपममिति असंख्यातासंख्यातरोमखण्डाश्रयस्य तत्प्रमाणसमयाश्रयस्य वा संख्यानविशेषस्य यथाकथञ्चित्पल्यसादृश्यमाश्रित्य प्रवृत्तस्य पल्योपमवचनस्य उपमासत्यत्वसिद्धेः। तथा सागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थश्चशब्दः। एवं यथाक्रमं भक्तादयो जनपदसत्यादिदृष्टान्ता उदाहरणान्युक्तानि ॥२२४॥ अथानुभयवचनभेदान् गाथाद्वयेनाह—

आगच्छ भो देवदत्त, इत्याद्याह्वानभाषा आमन्त्रणी। इदं कुरु इत्यादिकार्यनियोजनभाषा आज्ञापनी। इदं मह्यं देहीति प्रार्थना भाषा याचनी। किमेतदित्यादिप्रश्नभाषा आपृच्छनी। किं करवाणीत्यादिविज्ञापन-

---

समस्त अतीन्द्रिय पदार्थोंके ज्ञाताके द्वारा उपदिष्ट आगम सत्य ही होता है, इसलिए उसके आधारसे जो संकल्प भावपूर्वक वचन है, वह सत्य है। 'च' शब्द इस प्रकारके जो भावसत्य यहाँ नहीं कहे गये हैं, उन सबके समुच्चयके लिए है। प्रसिद्ध अर्थके साथ सादृश्य बतलानेवाला वचन उपमा सत्य है; यथा पल्योपम। पल्य अर्थात् अनाज भरनेका खत्ता, उसके साथ उपमा अर्थात् सदृशता जिसकी है, क्योंकि पल्यमें रोमखण्ड भरे जाते हैं, उसकी संख्याको पल्योपम कहते हैं। इस प्रकार असंख्यातासंख्यात रोमखण्डोंका आधारभूत अथवा उतने प्रमाण समयोंका आधारभूत जो संख्यानविशेष है, उसकी जिस-किसी प्रकारसे पल्यसे समानताका आश्रय लेकर प्रवृत्त हुआ पल्योपमका वचन उपमा सत्य है; यह सिद्ध होता है। तथा 'च' शब्द सागरोपम आदि उपमासत्यके भेदोंके समुच्चयके लिए है। इस प्रकार क्रमसे जनपद सत्य आदिके भक्त आदि दृष्टान्त कहे ॥२२४॥

आगे दो गाथाओंसे अनुभय वचनके भेद कहते हैं—

'हे देवदत्त आओ'। इस प्रकारकी बुलानेरूप भाषा आमन्त्रणी है। 'यह करो', इत्यादि कार्यमें नियुक्त करनेकी भाषा आज्ञापनी है। 'यह मुझे दो', इस प्रकारकी प्रार्थनारूप भाषा याचनी है। 'यह क्या है' इस प्रकारकी प्रश्नरूप भाषा आपृच्छनी है। 'क्या करूँ' इस

---

३५ १. म °क्के तत्संख्यानमुंटु पल्यो°। २. म यिद नगे कुडु एंबिदु। ३. म एनिर्देबोरयादि प्रश्न°।

यंबुदु । इवं वर्ज्जिसुवेनेंबिदु मोदलाद परिहरणभाषे प्रत्याख्यानि एंबुदु । यिदु बलाकेयो मेण् पताकेयो एंबिदु मोदलाद संदेहभाष संशयवचनि एंबुदु ।

अंतक्कुमेंबिदु मोदलाद इच्छानुवृत्तिभाषे इच्छानुलोमवचनि एंबुदु । ओंदु च शब्दं समुच्चयार्थमोंदु चरम च शब्दमनुक्तसमुच्चयार्थं ।

णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवंति भासाओ। ५
सोदाराणं जम्हा वत्तावत्तंससंजणया ॥२२६॥

नवमी अनक्षरगता असत्यमृषा भवंति भाषाः । श्रोतृणां यस्माद्व्यक्ताव्यक्तांशसंजनिकाः ॥

अनक्षरगता अनक्षरात्मिकेयप्प द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्यंतमप्प जीवंगळ स्वस्वसंकेतप्रदर्शिकेयप्प भाषे नवमी ओंभत्तनेयनुभयभाषे । पूर्व्वगाथोक्तानुभयभाषाष्टकापेक्षेयिंदमिता- १०
मंत्रण्याविगळुं असत्यमृषाः । सत्यासत्यलक्षणरहितंगळनुभयभाषेगळप्पुविल्लि कारणं पेळल्पडुगुं । यस्मात्कारणात् आवुदो दु कारणदिंद श्रोतृजनंगळगे सामान्यदिंदं व्यक्तमुं विशेषदिंदमव्यक्तमुमेंबी व्यक्ताव्यक्तार्थावयवंगळगे संज्ञापिकेगळप्प प्रकाशिकेगळे भाषेगळप्पवदु कारणदिंदं सामान्यरूपदिंदं व्यक्तार्थत्वदिंदं असत्यंगळेंबितुं नुडियलु शक्यंगळल्लवु । विशेषस्वरूपदिंदमव्यक्तार्थत्वदिंदं सत्यंगळेंबितुं नुडियलु शक्यमल्लदिंतेत्तलानु परवनुभयभाषेगळु संभविसुगुमप्पोडे अवुमिल्लिये हुं

भाषा प्रज्ञापनी । इदं वर्जयामीत्यादिपरिहरणभाषा प्रत्याख्यानी । किमिदं बलाका वा पताका वा इत्यादिसंदेहभाषा संशयवचनी । तथैव मयापि भवितव्यमित्यादि इच्छानुवृत्तिभाषा इच्छानुलोमवचनी । एकश्चशब्दः समुच्चयार्थः चरमश्चशब्दोऽनुक्तसमुच्चयार्थः ॥२२५॥

अनक्षरगता अनक्षरात्मिका द्वीन्द्रियाद्यसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तजीवानां स्वस्वसंकेतप्रदर्शिका भाषा नवमी पूर्वगाथोक्तानुभयभाषाष्टकापेक्षया । एवमामन्त्रण्याद्याः असत्यमृषा सत्यासत्यलक्षणरहिता अनुभयभाषा भवन्ति । अत्र कारणमुच्यते यस्मात्कारणात् श्रोतृजनानां सामान्येन व्यक्तानां विशेषेणाव्यक्तानां अर्थावयवानां संज्ञापिकाः प्रकाशिकाः भाषा भवन्ति यस्मात्कारणात् सामान्यरूपेण व्यक्तार्थत्वादसत्या इति वक्तुं न शक्यते विशेषस्वरूपेणाव्यक्तार्थत्वात्सत्या इत्यपि वक्तुं न शक्यते इत्यनुभयत्वम् । एवं यद्यपि परा अनुभयभाषाः संभवन्ति

प्रकारकी विज्ञापनरूप भाषा प्रज्ञापनी है । 'मैं इसका त्याग करता हूँ' इस प्रकारकी त्यागनेरूप भाषा प्रत्याख्यानी है । 'क्या यह बगुलोंकी पंक्ति है या पताका है ?' इत्यादि सन्देहात्मक भाषा संशयवचनी है । 'मुझे भी ऐसा ही होना चाहिए', इत्यादि इच्छाको प्रकट करनेवाली भाषा इच्छानुलोमवचनी है । पहला 'च' शब्द समुच्चयके लिए है और अन्तिम 'च' शब्द अनुक्त भेदोंके समुच्चयके लिए है ॥२२५॥

अनक्षरगता अर्थात् अनक्षरात्मिका दोइन्द्रियसे लेकर असंज्ञीपंचेन्द्रियपर्यन्त जीवोंकी अपने-अपने संकेतोंको बतलानेवाली नवमी भाषा है । पहली गाथामें कही आठ अनुभयभाषाओंकी अपेक्षा यह नवमी अनुभय भाषा है । इस प्रकार आमन्त्रिणी आदि असत्यमृषा अर्थात् सत्य और असत्यके लक्षणसे रहित अनुभय भाषा होती हैं । यहाँ कारण बतलाते हैं—जिस कारणसे श्रोताजनोंको सामान्यसे व्यक्त और विशेष रूपसे अव्यक्त अर्थके अवयवोंकी संज्ञापक अर्थात् प्रकाशक ये भाषाएँ होती हैं, तिस कारणसे सामान्य रूपसे व्यक्त अर्थको कहनेसे इन्हें असत्य नहीं कहा जा सकता और विशेष रूपसे व्यक्त अर्थको न कहनेसे इन्हें सत्य भी नहीं कहा जा सकता; इसलिए ये अनुभय हैं । इसी प्रकार अन्य भी अनुभय भाषाएँ हैं; तथापि

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज

ओं भत्तरोळेयंतर्भावनीयंगळु । अथवा इवक्कुपलक्षणत्वदिंदं व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापकंगळु परमनुभयभाषेगळु पृथगनुसर्त्तव्यंगळप्पुवु । अनक्षरात्मकेयप्प भाषेयोळु व्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावदिंदमे तदुभयत्वनिंतेंदोडल्लेकेंदोडे द्वींद्रियादिजीवंगळप्प तद्भाषावक्तृगळ सुखदुःखप्रकरणाद्यवलंबनदिंदं हर्षाद्यभिप्रायमनरियल्के शक्यत्वदिंद व्यक्तत्वोपपत्तियक्कुमप्पुदरिंदं ।

अनंतरं सत्यानुभयासत्योभयमनोवचनयोगंगळ्गे कारणमं पेळ्दपं :—

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मनोवचनयोर्म्मूलनिमित्तं खलु पूर्णदेहोदयस्तु । मृषोभययोर्म्मूलनिमित्तं खलु भवत्यावरणं ॥

सत्यमनोयोगक्कं सत्यवाग्योगक्कमनुभयमनोयोगक्कमनुभयवचनयोगक्कं पर्य्याप्तनामकर्म्मोदयमुं शरीरनामकर्म्मोदयमुं खलु स्फुटमागि मूलनिमित्तं प्रधानकारणं सामान्यक्के विशेषाविनाभावित्वदिंदं मनोवचनसामान्यग्रहणदिंदं तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धं । अथवा मोसुभयाणमेंबितु कंठोक्तमादुदरिंदं । शेषसत्यानुभयमनोवचनंगळ्गे पारिशेषिकन्यायदिंदं ग्रहणमक्कुमेकेंदोडे आवरणक्के मंदोदयमागुत्तिरलु विद्यमानत्वमादोडमसत्यजनकत्वाभावमप्पुदरिंदं । मृषोभययोः असत्यमनोवाग्योगंगळ्गमुभयमनोवाग्योगंगळ्गमावरणतीव्रानुभागोदयमे मूलकारणं । खलु स्फुट-

(सन्ति) तथापि ता अत्रैव नवस्वेवान्तर्भावनीयाः । अथवा एतासामुपलक्षणत्वाद् व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिका अपरा अनुभयभाषा पृथगनुसर्तव्याः । अनक्षरात्मकभाषाया सुव्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावात् कथमनुभयत्वमिति चेत्तन्न, द्वीन्द्रियादिजीवानां तद्भाषावक्तृणां सुखदुःखप्रकरणाद्यवलम्बनेन हर्षाद्यभिप्रायस्य ज्ञातुं शक्यत्वेन व्यक्तत्वोपपत्तिभावात् ॥२२६॥ अथ सत्यानुभयासत्योभयमनोवचनयोगानां कारणं कथयति—

सत्यमनोयोगस्य सत्यवाग्योगस्य अनुभयमनोयोगस्य अनुभयवचनयोगस्य च पर्याप्तनामकर्मोदयः शरीरनामकर्मोदयश्च खलु स्फुटं मूलनिमित्तं प्रधानकारणं भवति । सामान्यस्य विशेषाविनाभावित्वेन मनोवचनसामान्यग्रहणेन तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धमेव । अथवा 'मोसुभयाणमिति' कण्ठोक्तत्वात् शेषसत्यानुभयमनोवचनयोः पारिशेषिकन्यायाद् ग्रहणं भवति । आवरणस्य मन्दोदये विद्यमाने असत्यजनकत्वाभावात् मृषोभयोः

वे सब इन्हीं नौ भाषाओंमें अन्तर्भूत करना । अथवा ये भाषाएँ उपलक्षणरूप हैं, अतः व्यक्त और अव्यक्त अर्थके अवयवोंकी प्रकाशिका अन्य अनुभय भाषा पृथक् जानना ।

शंका—अनक्षरात्मक भाषा सुव्यक्त अर्थके अंशकी प्रकाशक नहीं है, तब वह कैसे अनुभयरूप हो सकती है ?

समाधान—उस भाषाको बोलनेवाले दोइन्द्रिय आदि जीवोंके सुख-दुःखके प्रकरण आदिके अवलम्बनसे हर्ष आदिका अभिप्राय जाना जा सकता है । इसलिए व्यक्तपना सम्भव है ॥२२६॥

आगे सत्य, असत्य, उभय और अनुभय मनोयोग तथा वचन योगके कारण कहते हैं—

सत्यमनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभयमनोयोग और अनुभयवचनयोगका मूलनिमित्त अर्थात् प्रधानकारण पर्याप्तनामकर्म और शरीरनामकर्मका उदय है । यतः सामान्य विशेषका अविनाभावी होता है, अतः मन सामान्य और वचन सामान्यके ग्रहणसे उसके विशेष सत्य और अनुभयका ग्रहण सिद्ध ही है । अथवा 'मोसुभयाणं' ऐसा कण्ठोक्त होनेसे शेष सत्य मन, वचन और अनुभयमन तथा वचनका ग्रहण पारिशेष न्यायसे होता है । आवरणका मन्द

मागि इल्लि विशेषमुंटवावुदे दोडे तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणमसत्यमनोवाग्योगनिमित्तं। तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणमुभयमनोवाग्योगनिमित्तमेंदरिगे। दर्शनचारित्रमोहोदययंगळ्गसत्योभययोगकारणत्वमेके पेळल्पड्दे बेनल्वेडेके दोडे मिथ्यादृष्टिगे तंते असंयतसम्यग्दृष्टिगं संयतंगं तद्योगसद्भावमप्पुदरिंदं सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिगळोळु सत्यासत्ययोगव्यवहारक्कावरणंगळ मंदतीव्रानुभागोदयंगळे कारणं गळेंदितु प्रवचनदोळु प्रसिद्धियुंटप्पुदरिंदं। तु मत्ते केवलियोळु सत्यानुभययोगव्यवहारं सर्व्वावरणक्षयजनितमेंदितु ज्ञातव्यमक्कुमयोगकेवलियोळु शरीरनामकर्म्मोदयाभावदिंदं योगाभावमप्पुदरिंदं सत्यानुभयव्यवहारमिल्लेंदितु सुव्यक्तं। सयोगकेवलिगे दिव्यध्वनिगेंतु सत्यानुभयवाग्योगत्वमेंदितेनल्वेडेके दोडे तदुत्पत्तियोळु अनक्षरात्मकत्वदिंदंश्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्य्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धियुं तदनंतरं श्रोतृजनाभिप्रेतार्थंगळोळु संशयादिनिराकरणदिंदं सम्यग्ज्ञानजनकत्वदिंदं सत्यवाग्योगत्वसिद्धियुं सुनिश्चितमक्कुं।

असत्यमनोवाग्योगयोः उभयमनोवाग्योगयोश्च आवरणतीव्रानुभागोदय एव मूलकारणं भवति खलु—स्फुटम्। अत्रायं विशेषः। स कः? तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणं असत्यमनोवाग्योगनिमित्तम्। तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणं उभयमनोवाग्योगनिमित्तमिति जानीहि। दर्शनचारित्रमोहोदययोः असत्योभययोगकारणत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्तन्न, मिथ्यादृष्टेरिव असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतस्यापि तद्योगसद्भावात्। सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु सत्यासत्ययोगव्यवहारस्यावरणमन्दतीव्रानुभागोदय एव कारणमिति प्रवचनप्रसिद्धेः। तु-पुनः केवलिनि सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः। अयोगकेवलिनि शरीरनामकर्मोदयाभावेन योगाभावात् सत्यानुभयव्यवहारोऽपि नास्ति इति सुव्यक्तम्। सयोगकेवलिदिव्यध्वनेः कथं सत्यानुभयवाग्योगत्वमिति चेत्तन्न तदुत्पत्तावनक्षरात्मकत्वेन श्रोतृश्रोत्रप्रदेश-प्राप्तिसमयपर्यन्तमनुभयभाषात्वसिद्धेः। तदनन्तरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वेन सत्यवाग्योगत्वसिद्धेश्च तस्यापि तदुभयत्व-

---

उदय होते हुए असत्यकी उत्पत्ति नहीं होती, अतः असत्य मनोयोग, असत्य वचन योग, उभय मनोयोग, उभय वचनयोगका मूल कारण आवरणके तीव्र अनुभागका उदय ही है;यह स्पष्ट है। यहाँ इतना विशेष है कि तीव्रतर अनुभागके उदयसे विशिष्ट आवरण असत्यमनोयोग और असत्यवचनयोगका कारण है। और तीव्र अनुभागके उदयसे विशिष्ट आवरण उभयमनोयोग और उभयवचनयोगका कारण है; ऐसा जानना।

शंका—दर्शनमोह और चारित्रमोहके उदयको असत्य और उभययोगका कारण क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टिकी तरह असंयत सम्यग्दृष्टिके और संयतके भी असत्य और उभय योग होते हैं। सर्वत्र मिथ्यादृष्टि आदिमें सत्य और असत्य योगके व्यवहारका कारण आवरणके मन्द और तीव्र अनुभागका उदय ही है, यह बात आगममें प्रसिद्ध है। किन्तु केवलीके सत्य और अनुभय योगका व्यवहार समस्त आवरणके क्षयसे होता है;यह ज्ञातव्य है। अयोगकेवलीके शरीरनामकर्मके उदयका अभाव होनेसे योगका अभाव है। अतः सत्य और अनुभयका व्यवहार भी नहीं है;यह स्पष्ट है।

शंका—सयोगकेवलीकी दिव्यध्वनि कैसे सत्य और अनुभयवचन योगरूप होती है?

समाधान—दिव्यध्वनि उत्पत्तिके समय अनक्षरात्मक होती है।अतः श्रोताके श्रोत्र प्रदेशको प्राप्त होनेके समय तक अनुभय भाषारूप होना सिद्ध है। उसके अनन्तर श्रोता

---

१. ब सत्ययोगत्व°।

अनंतरं सयोगकेवलियोळु मनोयोगसंभवप्रकारमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं।

मणसहियाणं वयणं दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्हि ॥२२८॥

मनःसहितानां वचनं दृष्टं तत्पूर्वमिति सयोगे। उक्तो मन उपचारेणेंद्रियज्ञानेन हीने ॥

इंद्रियज्ञानविहीने मतिज्ञानविहीनस्यापि सयोगनोळु मुख्यवृत्तियिंदं मनोयोगाभावमप्पकुमादोडमा मनोयोगमुपचारविंदमुंटे दु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदा उपचारमुं निमित्तप्रयोजनंगळनुळ्ळुदन्नेवरं निमित्तं पेळल्पडुगमस्मदादिच्छद्मस्थमनोयुक्तर्गे तत्पूर्वकं मनःपूर्वकमागिये वचनं वर्णपदवाक्यात्मकमप्प वाग्व्यापारं काणल्पट्टुदु। इति इति हेतोः इदु कारणमागमनसोऽस्मदाद्यनतिशयपुरुषरोळु काणल्पट्ट धर्मं सातिशयपुरुषनप्प भगवंतनोळु केवलियोळदेंतु कल्पिसल्पडुगुमेन-
मार्गदर्शक [illegible] मुख्यमनोयोगस्यकभावदिंदमे तत्कल्पनारूपोपचारं पेळल्पट्टुदक्कके प्रयोजनमीग पेळल्पडुत्तिवे।

अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणिंदचंदम्हि।
मणवग्गणखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

अंगोपांगोदयतो द्रव्यमनोर्थं जिनेंद्रचंद्रे। मनोवर्गणास्कंधानां आगमनतस्तु मनोयोगः ॥

घटनात् ॥२२७॥ अथ सयोगकेवलिनि मनोयोगसंभवप्रकारं गाथाद्वयेनाह—

इन्द्रियज्ञानेन—मतिज्ञानेन, विहीने सयोगिनि मुख्यवृत्त्या मनोयोगाभावेऽपि उपचारेण मनोयोगोऽस्तीति परमागमे कथितः। उपचारो हि निमित्तप्रयोजनवानेव। तत्र निमित्तं यथा अस्मदादेः छद्मस्थस्य मनोयुक्तस्य तत्पूर्वकं मनःपूर्वकमेव वचनं वर्णपदवाक्यात्मकवाग्व्यापारो दृष्ट इति कारणात्। अस्मदाद्यनतिशयपुरुषे दृष्टो धर्मः सातिशयपुरुषे भगवति केवलिनि कथं कल्पते? इति न च वाच्यं, तत्कारणस्य मुख्यमनोयोगस्य केवलिन्यभावादेव तत्कल्पनारूपोपचारः कथितः। तस्य प्रयोजनमधुना कथयति ॥२२८॥

जनोंके इष्ट पदार्थोंमें संशय आदिको दूर करके सम्यग्ज्ञानको उत्पन्न करनेसे सत्य वचन योगपना सिद्ध है। इस तरह वह उभय योगरूप होती है ॥२२७॥

आगे सयोगकेवलीमें दो गाथाओंसे मनोयोगको बतलाते हैं—

इन्द्रियज्ञान अर्थात् मतिज्ञानसे रहित सयोगकेवलीमें मुख्य रूपसे मनोयोगका अभाव होनेपर भी उपचारसे मनोयोग है; ऐसा परमागममें कहा है। उपचारके होनेमें निमित्त और प्रयोजन दो कारण होते हैं। निमित्त इस प्रकार है—जैसे हमारे जैसे मनसे युक्त छद्मस्थ जीवोंके तत्पूर्वक अर्थात् मनपूर्वक ही वचन अर्थात् वर्णपदवाक्यात्मक वचन व्यापार देखा जाता है, अतः केवलीके भी मनोयोगपूर्वक वचन कहा है।

शंका—हमारे जैसे अतिशयरहित पुरुषोंमें देखा गया धर्म सातिशय पुरुष भगवान् केवलीमें कैसे कल्पना करते हैं?

समाधान—ऐसा मत कहिए, उसका कारण मुख्य मनोयोगका केवलीमें अभाव होनेसे ही मनोयोगकी कल्पनाका उपचार कहा है। अब उपचारका प्रयोजन कहते हैं ॥२२८॥

जिनेंद्रचंद्रे जिन इंद्रो येषां ते जिनेंद्राः सम्यग्दृष्टयस्तेषां। चंद्र इव चंद्रः भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात्तस्मिन् जिनेंद्रचंद्रे। इंतप्प जिनेंद्रचंद्रनोळंगोपांगनामकर्म्मोदयविंदं हृदयांतर्भागदोळक्कुं। तत्परिणमनकारणमप्प मनोवर्गणास्कंधंगळागमनदत्तणिंदं द्रव्यमनःपरिणमनप्राप्तिरूपप्रयोजनदत्तणिंदं पूर्वोक्तनिमित्तदिंदं मुख्यमप्प भावमनोयोगाभावदिंदमुपचारदिंदं मनोयोगमुंटेंदितु पेळल्पट्टुदु। ५

अथवात्मप्रदेशंगळ्गे कर्म्मनोकर्म्माकर्षणशक्तिरूपमप्प भावमनोयोगमामनोयोगदिंदं समुद्भूतमप्प मनोवर्गणाद्रव्यमनःपरिणमनरूपं द्रव्यमनोयोगमुमी गाथासूत्रदिंदं भाषितमाय्तु। पूर्वोक्तोपचारक्के प्रयोजनं तु मत्ते सर्व्वजीवदयेयुं तत्त्वार्थदेशनेयुं शुक्लध्यानादिकमेंदितु तु शब्ददिंदं सूचितमाय्तु।

अनंतरं काययोगमं पेळ्दातं मुन्नमौदारिककाययोगमं निरुक्तिपूर्व्वकं पेळ्दपं। १०

पुरुमहदुदारुरालं एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं।
ओरालियं ति उच्चइ ओरालियकायजोगो सो॥२२९॥ जी महाराज

पुरुमहदुदारुरालं एकार्थः संविजानीहि। तस्मिन् भवं औदारिकमित्युच्यते औरालिककाययोगः सः॥

जिनेन्द्रचन्द्रे—जिनः इन्द्रो येषां ते जिनेन्द्राः सम्यग्दृष्टयः, तेषां चन्द्र इव चन्द्रः, भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात् तस्मिन् जिनेन्द्रचन्द्रे अङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन द्रव्यमनो विकसिताष्टदलपद्माकारेण हृदयान्तर्भागे भवति। तत्परिणमनकारणमनोवर्गणास्कन्धानामागमनाद् द्रव्यमनःपरिणमनेन प्राप्तिरूपप्रयोजनात् पूर्वोक्तनिमित्तात् मुख्यभावमनोयोगाभावाच्चोपचारेण मनोयोगोऽस्तीत्युच्यते। अथवा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिरूपो भावमनोयोगः तत्समुद्भूतो मनोवर्गणानां द्रव्यमनःपरिणमनरूपो द्रव्यमनोयोगश्चानेन गाथासूत्रेण भाषितो जातः। पूर्वोक्तोपचारस्य प्रयोजनं तु सर्वजीवदयातत्त्वार्थदेशनाशुक्लध्यानादिकमिति तुशब्देन सूचितम् ॥२२९॥ अथ काययोगं कथयन् प्रथमौदारिककाययोगं निरुक्तिपूर्वकं कथयति—

जिन जिनका इन्द्र हैं, वे जिनेन्द्र अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं। भवरूप सन्ताप और अज्ञानरूप अन्धकारका विनाशक होनेसे उन जिनेन्द्रोंके लिए जो चन्द्रमाके तुल्य हैं, उन जिनेन्द्रचन्द्रमें अंगोपांग नाम कर्मका उदय होनेसे हृदयके अन्तर्भागमें खिले हुए आठ दलवाले कमलके आकार द्रव्यमन होता है। उसके परिणमनमें कारण मनोवर्गणाके स्कन्धोंके आनेसे द्रव्यमनका परिणमन होता है। अतः प्राप्तिरूप प्रयोजनसे तथा पूर्वोक्त निमित्तसे और मुख्य मनोयोगका अभाव होनेसे उपचारसे मनोयोग कहा है। अथवा आत्मप्रदेशोंके कर्म और नोकर्मको आकृष्ट करनेकी शक्तिरूप भावमनोयोग है। उससे उत्पन्न हुआ मनोवर्गणाका द्रव्यमनरूपसे परिणमनेरूप द्रव्यमनोयोग है। यह इस गाथासूत्रसे कहा गया है। पूर्वोक्त उपचारका प्रयोजन तो सब जीवोंपर दया, तत्त्वार्थका उपदेश, शुक्लध्यान आदिका केवलीमें होना है। यह 'तु' शब्दसे सूचित किया है ॥२२९॥

आगे काययोगका कथन करते हुए निरुक्तिपूर्वक प्रथम औदारिक काययोगको कहते हैं—

उदारं उरालं वा पुरु महत् स्थूलंगळे बुदर्थ्थं तत्स्वार्थ्थदोळं ष्ण्विधानमुंटप्पुदरिंदमुदारमुरालमेव वा औदारिकं उदारे उराले वा भवं औदारिकं मेणितुं भवार्त्थदोळं ष्ण्विधानमुंटप्पुदरिंदमक्कुं। औदारिकमेवोपचितपुद्गलपिंडरूपत्वात्कायः। औदारिकश्चासौ कायश्च औदारिककायः। औदारिकशरीरनामकर्म्मोदयसंपादितमप्पौदारिकशरीराकारस्थूलपुद्गलस्कंधपरिणामं वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणाममं नोडे महत्वसंभवविंदमोदारिककायमक्कुं। सूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणशरीरंगळ्गे स्थूलत्वाभावविंदमे तवक्कौदारिकत्वमे बेनल्वेडेके दोडवं नोडलु सूक्ष्मतरमप्प वैक्रियिकादिशरीरापेक्षेयिंदमवक्के महत्वमुळ्ळुदरिंदं परमागमरूढियिंदं मेणौदारिकत्वं संभविसुगुमौदारिककायार्त्थमागि यावुदो आत्मप्रदेशंगळ्गे कर्म्मनोकर्म्मकर्षणशक्तियदु तानेयौदारिककाययोगमे बिंतु पेळल्पट्टुदु।

औदारिकवर्गणास्कंधंगळौदारिककायत्वपरिणमनकारणमात्मप्रदेशपरिस्पंदमेणौदारिककाययोगमे बिंतु एले भव्यनीनरियें बिंतु संबोधिसल्पट्टुदु।

अथवा औदारिककाय औदारिककाययोगमे बिंतु कारणे कार्योपचारः एंबो न्यायदिं पेळल्पट्टुदावुपचारमुं निमित्तप्रयोजनंगळनुळ्ळुदरिंदं औदारिककायाद्योगः औदारिककाययोगः एंबी

उदारं उरालं वा पुरु महत् स्थूलमित्यर्थः। वार्थे कन्[1] विधानात् उदारं उरालमेवौदारिकमौरालिकम्। उदारे उराले वा भवमौदारिकं औरालिकं वेति भवार्थे[2] ष्ण्विधानात्। औदारिकमेव उपचितपुद्गलपिण्डरूपत्वात् कायः, औदारिकश्चासौ कायश्च औदारिककायः, औदारिकशरीरनामकर्मोदयसंपादितः औदारिकशरीराकारस्थूलपुद्गलस्कन्धपरिणामः। वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणामादेव महत्त्वसंभवेन औदारिककायः स्यात्। सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात्[3] कथमेषामौदारिकत्वमिति न वाच्यं, ततोऽपि सूक्ष्मतरवैक्रियिकादिशरीरापेक्षयैषां महत्त्वयुक्तत्वात् परमागमरूढ्या वा औदारिकत्वं संभवति। औदारिककायार्थं वा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिः सैव औदारिककाययोग इत्युच्यते तदा औदारिकवर्गणास्कन्धानां औदारिककायत्वपरिणमनकारणं आत्मप्रदेशपरिस्पन्दो वा औदारिककाययोग इति, हे भव्य! त्वं

उदार, उराल, पुरु, महत् ये सब शब्द एकार्थवाची हैं। इनका अर्थ है स्थूल। स्वार्थमें 'कन्' प्रत्ययका विधान करनेसे उदार और उराल ही औदारिक और औरालिक होता है। अथवा उदारमें या उरालमें जो हो, वह औदारिक या औरालिक है। यहाँ होनेके अर्थमें 'अण्' का विधान किया है। औदारिक ही पुद्गलपिण्डका संचय रूप होनेसे काय है। औदारिक वही हुआ काय सो औदारिककाय है। औदारिक शरीर नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ औदारिक शरीरके आकार स्थूल पुद्गलस्कन्धोंका परिणाम औदारिककाय है। वैक्रियिक आदि शरीर सूक्ष्म परिणामरूप हैं, अतः उनसे स्थूल होनेसे औदारिककाय होता है।

शंका—सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अप्काय, तैजस्काय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकायके शरीर तो स्थूल नहीं होते, तब वे शरीर औदारिक कैसे हैं?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उनसे भी सूक्ष्मतर वैक्रियिक आदि शरीरकी अपेक्षा ये शरीर स्थूल हैं। अथवा परमागममें रूढ़ होनेसे उनको औदारिक कहा है। औदारिक शरीरके लिए जो आत्मप्रदेशोंकी कर्म और नोकर्मको आकर्षण करनेकी शक्ति है, उसे ही

---

३५ १-२. ष्ण् सु-। ३. ब सूक्ष्मत्वभा°।

निमित्तत्वविदमुं तस्माद्योगात् आकृष्टकर्म्मनोकर्म्म परिणामरूपप्रयोजनविदमुं औदारिककायक्कुपचारदिं तद्योगत्वसिद्धियक्कुं।

अनंतर औदारिकमिश्रकाययोगमं पेळ्दपरु।

ओरालिय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सजोगो सो ॥२३१॥

औदारिकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्। यस्तेन संप्रयोगः औदारिकमिश्रयोगः सः॥

प्रागुक्तलक्षणमौदारिकशरीरं तदेवान्तर्मुहूर्तमध्यंमपूर्णमपर्याप्तमन्नेवरं मिश्रमेंदितु पेळल्पट्टुदु। अपर्याप्तकालसंबंधिसमयत्रयसंभविकार्म्मणकाययोगाकृष्टकार्म्मणवर्गणा संयुक्तत्वविदं परमागमरूढियिदं मेणपर्य्याप्तमप्प शरीरं मिश्रमेंबुदर्त्थमदु कारणविदं औदारिककायमिश्रदोडने तदर्थमागि वर्त्तिसुव यः संप्रयोगः आत्मंगे कर्म्मनोकर्म्मादानशक्तिप्रदेशपरिस्पंदसंयोगमदु शरीरपर्य्याप्तिनिष्पत्त्यभावविदं औदारिकवर्गणास्कंधंगळगे परिपूर्णशरीरपरिणमनसमर्थमप्पुदौदारिककायमिश्रयोगमेंदितु विजानीहि अरि।

जानीहि इति संबोध्यते। अथवा औदारिककाय एव औदारिककाययोग इति कारणे कार्योपचारात्। अयमुपचारोऽपि निमित्तप्रयोजनवानेव। औदारिककायाद् योगः औदारिककाययोग इति निमित्तस्य तद्योगाकृष्टकर्मनोकर्मपरिणामरूपप्रयोजनस्य च भावात् ॥२३०॥ अथ तस्मिन्मिश्रयोगं प्ररूपयति—

प्रागुक्तलक्षणमौदारिकशरीरं तदेवान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपूर्णं अपर्याप्तं तावन्मिश्रमित्युच्यते। अपर्याप्तकालसंबन्धिसमयत्रयसंभविकार्मणकाययोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागमरूढ्या वा अपर्याप्तं—अपर्याप्तशरीरमिश्रमित्यर्थः। ततः कारणादौदारिककायमिश्रेण सह तदर्थं वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्मनोकर्मादान-

---

औदारिककाययोग कहते हैं। ऐसी अवस्थामें औदारिकवर्गणाके स्कन्धोंका औदारिककायरूप परिणमनमें कारण जो आत्मप्रदेशोंका परिस्पन्द है, वह औदारिककाययोग है; ऐसा हे भव्य, तू जान। अथवा कारणमें कार्यका उपचार करनेसे औदारिककाय ही औदारिककाय योग है। यह उपचार भी निमित्त और प्रयोजनको लिये हुए है। औदारिककायसे योग होता है, इसलिए औदारिककाययोग है, यह तो निमित्त हुआ और उस योगके द्वारा आकृष्ट पुद्गलोंका कर्म नोकर्मरूपसे परिणमन होता है, यह प्रयोजन हुआ ॥२३०॥

आगे औदारिकमिश्रकाय योगको कहते हैं—

औदारिक शरीरका लक्षण पहले कहा है। वही अन्तर्मुहूर्त काल तक अपूर्ण अर्थात् अपर्याप्त होता है, तब उसको औदारिक मिश्र कहते हैं। अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुरूके तीन समयोंमें होनेवाले कार्मणकाय योगसे आकृष्ट कार्मणवर्गणासे संयुक्त होनेसे औदारिक मिश्र कहते हैं। अर्थात् मिश्रनाम मेलका है। सो जब जीव पूर्व शरीरको छोड़कर नया शरीर धारण करनेके लिए विग्रहगतिसे गमन करता है, तब अधिकसे अधिक तीन समय तक उसके कार्मणकाययोग होता है। उससे कार्मण वर्गणाओंका ग्रहण होता है। इस तरह कार्मण और औदारिक वर्गणाका मेल होनेसे अपर्याप्त अवस्थामें औदारिकको ही औदारिक मिश्र कहा जाता है। अथवा परमागममें ऐसा रूढ़ है कि अपर्याप्त शरीर मिश्र होता है। इस कारणसे औदारिकमिश्रके साथ उसके लिए वर्तमान जो संप्रयोग अर्थात् आत्माका कर्म और

अनंतरं वैक्रियिककाययोगमं पेळ्दपर ।

विविहगुणइड्ढिजुत्तं विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं ।
तिस्से भवं च णेयं वेगुव्वियकायजोगो सो ॥२३२॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं विक्रियं वा हि भवति वैगूर्व्वं । वैक्रियिकं वा तस्मिन् भवं च ज्ञेयं वैक्रियिककाययोगः सः ॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विविधगुणर्द्धियुक्तं विविधशुभाशुभप्रकारगुणरूप्प अणिमाद्यतिशयगळऋद्धिमंहत्त्वमवरोळ्कूडिद देवनारकशरीरं वैगूर्व्वमक्कुं मेणु वैक्रियिकमक्कुं । विगूर्व्वे विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्व्वं येंदितु निर्व्वचनं संभविसुगुमप्पुदरिंवं वैक्रियिकमें बुदर्थं । वैगूर्व्विकमेंदितु पाठमक्कुमल्लि विगूर्व्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्व्विकमें दितु ठण् प्रत्ययमक्कुं । अथवा विविधा क्रिया विक्रिया अनेकाणिमादिविकारमेंबुदर्थं । तस्यां विक्रियायां भवं वैक्रियिकं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकमें दितुं च शब्दं प्रयोजनार्थसमुच्चयार्थमप्पुदरिनक्कुं । यः आवुदो वु वैगूर्व्विककायार्थमागि तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कंधाकर्षणाशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः सः अदु वैगूर्व्विककाययोगमें दितुं वैक्रियिककाययोगमें दितुं ज्ञेयं अरियल्पडुगुं ।

अथवा वैक्रियिकशब्दमे कारणे कार्य्योपचारन्यायदिंवं वैक्रियिककाययोगमें दितुपचरिसल्पडुगुं । तदुपचारं निमित्त प्रयोजनमनुऋद्धप्पुदरिंवं वैक्रियिककाद्योगो वैक्रियिककाययोगः

शक्तिप्रदेशपरिस्पन्दसंयोगः स शरीरपर्याप्तिनिष्पत्यभावेन औदारिकवर्गणास्कन्धानां परिपूर्णशरीरपरिणमनासमर्थः औदारिककायमिश्रयोग इति विजानीहि ॥२३१॥ अथ वैक्रियिककाययोगं कथयति—

विविधगुणर्द्धियुक्तं—विविधानां—शुभाशुभप्रकाराणां गुणानां—अणिमाद्यतिशयानां ऋद्धिः—महत्त्वं तेन सहितं देवनारकशरीरं वैगूर्वं वैक्रियिकं वा भवति । विगूर्वे—विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्वमिति निर्वचनात् । वैक्रियिकमित्यर्थः । वैगूर्विकमिति पाठे विगूर्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्विकमिति ठण्प्रत्ययविधानात् । अथवा विविधा क्रिया विक्रिया अनेकोऽणिमादिविकार इत्यर्थः । तस्यां विक्रियायां भवं वैक्रियिकं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकं, चशब्दस्य प्रयोजनार्थसमुच्चयार्थत्वात् । यः वैगूर्विककायार्थं तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कन्धाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पन्दः स वैगूर्विककाययोग इति ज्ञेयः—ज्ञातव्यः । अथवा वैक्रियिककाय

नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिको लिये हुए प्रदेशपरिस्पन्दरूप योग है, वह शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता न होनेसे औदारिक वर्गणाके स्कन्धोंको परिपूर्णरूपसे शरीररूप परिणमानेमें असमर्थ होनेसे औदारिक मिश्रयोग होता है;ऐसा जानो ॥२३१॥

आगे वैक्रियिक काययोगको कहते हैं—

विविध अर्थात् शुभ और अशुभ प्रकारके गुण अर्थात् अणिमा आदि अतिशय रूप ऋद्धि, उससे सहित देव और नारकियोंका शरीर वैगूर्व अथवा वैक्रियिक होता है । विगूर्व अर्थात् विविध गुणोंके उद्योगमें हुआ शरीर वैगूर्व है,ऐसी व्युत्पत्ति है । उसका अर्थ वैक्रियिक है । 'वैगूर्विक' पाठ होनेपर विगूर्व जिसका प्रयोजन है, वह वैगूर्विक है; इस प्रकार ठण् प्रत्ययका विधान किया है । अथवा विविध क्रिया-विक्रिया है, उसका अर्थ है-अनेक अणिमा आदि विकार । उस विक्रियामें जो हो अथवा विक्रिया जिसका प्रयोजन हो,वह वैक्रियिक है । 'च' शब्द प्रयोजनके समुच्चयके लिए है । वैगूर्विक शरीरके लिए जो उस रूप परिणमनके योग्य शरीर वर्गणाके स्कन्धोंको आकृष्ट करनेकी शक्तिसे विशिष्ट आत्मप्रदेशोंका कम्पन है,

एंदितु निमित्तमुं। तस्माद्वैक्रियिककाययोगात्कर्म्मनोकर्म्मरूपपरिणमनप्रयोजनमुमेंब निमित्त-प्रयोजनंगळिदमु वैक्रियिककाय्यकुपचारदिंदं तत्काययोगस्यसिद्धियक्कुं।

अनंतरं वैक्रियिककाययोगक्के संभवस्थानांतरं पेळ्दपं :—

बादरतेऊवाऊ पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति ।
ओरालियं सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं ॥२३३॥

बादरतेजोवायुपंचेंद्रियपूर्णका विगुर्व्वंति विकुर्व्वंति वा। औदारिकं शरीरं विगूर्व्वणात्मकं विकुर्व्वणात्मकं च वा भवेद्येषां ॥

बादरंगळु स्थूलंगळप्प तेजस्कायिकंगळु वायुकायिकंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तंगळप्प तिर्य्यग्-मनुष्यरुं भोगभूमिजतिर्य्यग्मनुष्यरुं तंतम्मौदारिकशरीरंगळनु विगूर्व्वंति विकुर्व्वंति वा विगुर्व्विसुवुवु । एंतप्पुवेंदोडे एषां आवुवु केलवु जीवंगळ्गौदारिकशरीरमे विगूर्व्वणात्मकं विक्रियात्मकं भवेत् अक्कुमा जीवंगळ्अपृथग्विक्रियेयिदं परिणमंति परिणमिसुवर्वेबुवर्थं भोग-भूमिजरुं चक्रवर्त्तिगळुं पृथग्विगुर्व्विसुवरु ।

अनंतरं वैक्रियिककायमिश्रयोगमं पेळ्दपरु :—

वेगुव्वियउत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो वेगुव्वियमिस्सजोगो सो ॥२३४॥

वैगूर्व्विकोक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्। यस्तेन संप्रयोगो वैगूर्व्विकमिश्र-योगः सः ॥

एव वैक्रियिककाययोगः कारणे कार्योपचारात्, अयमप्युपचारः प्राग्वदेव निमित्तप्रयोजनयुक् 'वैक्रियिककाया-द्योगः वैक्रियिककाययोगः इति निमित्तस्य तद्योगात्, कर्मनोकर्मरूपपरिणमनप्रयोजनस्य चात्रापि संभवात्॥२३२॥ अथ वैक्रियिककाययोगसंभवस्थानान्तरमाह—

बादरा एव स्थूला एव तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च तथा संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याः भोग-भूमितिर्यग्मनुष्याश्च स्वस्वौदारिकशरीरं विगूर्वन्ति—विकुर्वन्ति वा। ते के ? येषां जीवानां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मकं विक्रियात्मकं भवेत् ते जीवाः अपृथग्विक्रियया परिणमन्तीत्यर्थः। भोगभूमिजाः चक्रवर्तिनश्च पृथग् विगूर्वन्ति ॥२३३॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति—

यह वैगूर्विककाययोग जानना। अथवा कारणमें कार्यका उपचार करनेसे वैक्रियिककाय ही वैक्रियिककाययोग है। यह उपचार भी पहलेकी तरह निमित्त और प्रयोजनको लिये हुए है। वैक्रियिककायसे हुआ योग वैक्रियिककाययोग है; यह निमित्तका योग है। तथा कर्म-नोकर्म रूपसे परिणमन होना प्रयोजन है। यह भी यहाँ वर्तमान है ॥२३२॥

अन्यत्र भी जहाँ वैक्रियिककाययोग सम्भव हैं उनको बतलाते हैं—

बादर तैजस्कायिक, बादर वायुकायिक तथा संज्ञीपंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य, भोगभूमिके तिर्यंच और मनुष्य अपने-अपने औदारिक शरीरको विक्रियारूप परिणमाते हैं। सभी ऐसा नहीं करते; किन्तु जिन जीवोंका औदारिक शरीर ही विक्रियारूप होता है, वे जीव अपृथक् विक्रिया करते हैं। भोगभूमिया और चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया करते हैं। अपने शरीरसे भिन्न अनेक शरीरादि बनाते हैं ॥२३३॥

आगे वैक्रियिक मिश्रकाययोगको कहते हैं—

उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणमप्प तत् आ वैगूर्व्विकशरीरमे वैक्रियिकशरीरमे मेणु। अपरिपूर्णं यन्नेवरमंतर्म्मुहूर्त्तमात्राऽपर्य्याप्तकालपर्य्यंतं अपरिपूर्णं। शरीरपर्य्याप्तिनिष्पत्त्यभावदिंद वैक्रियिककाययोगजननासमर्त्थमन्तेवरं तु मत्ते औदारिककायमिश्रवंते मिश्रमेंदितु जानीहि अरि। तेन आ वैक्रियिकमिश्रकायदोडने यः संप्रयोगः आवुदोंदु कर्म्मनोकर्म्म आकर्षणशक्तिसंगतमप्पऽपर्य्याप्तकालमात्रात्मप्रदेशपरिस्पंदरूपमप्पयोगं सः अदु वैक्रियिककायमिश्रयोगमक्कुमपर्य्याप्तयोगं मिश्रकाययोगमेंबुदर्त्थं।

अनंतरमाहारकाययोगमं गाथापंचकदिंदं पेळ्दपं :—

आहारस्सुदयेण य पमत्तविरदस्स होदि आहारो।
असंजमपरिहरणट्ठं संदेहविणासणट्ठं च ॥२३५॥

आहारस्योदयेन च प्रमत्तविरतस्य भवत्याहारमसंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशनार्त्थं च ॥

प्रमत्तविरतंगाहारशरीरनामकर्म्मोदयदिंद माहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळगाहारकशरीररूपपरिणमनदिंदमाहारकशरीरमक्कुमवेनु निमित्तमक्कुमेंदोडे सार्द्धद्वीपद्वयवर्त्तितीर्थयात्रादिविहारदोळसंयमपरिहरणार्त्थं ऋद्धिप्राप्तनादोडं प्रमत्तसंयतंगे श्रुतज्ञानावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशममांद्यमागुत्तिरलागळोम्मे धर्म्मध्यानविरोधियप्प श्रुतार्थसंदेहमक्कुमागळु तत्संदेहविनाशनार्त्थमुमाहारकशरीरमोगेगुमेंबुदर्त्थं।

उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणं तत् वैगूर्विकशरीरमेव वैक्रियिकशरीरमेव वा यावदन्तर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तिकालपर्यन्तं अपरिपूर्णं शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावेन वैक्रियिककाययोगजननासमर्थं तावत् तु पुनः औदारिककायमिश्रवन्मिश्रमिति जानीहि। तेन वैक्रियिककायमिश्रेण सह यः संप्रयोगः कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिसङ्गतापर्याप्तकालमात्रात्मप्रदेशपरिस्पन्दरूपो योगः स वैक्रियिककायमिश्रयोगः अपर्याप्तयोगो मिश्रकाययोग इत्यर्थः ॥२३४॥ अथाहारककाययोगं गाथापञ्चकेनाह—

प्रमत्तविरतस्य आहारकशरीरनामकर्मोदयेन आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां आहारकशरीररूपपरिणमनेनाहारकशरीरं भवति तत् किमर्थं ? सार्धद्वीपद्वयवर्तितीर्थयात्रादिविहारे असंयमपरिहरणार्थं ऋद्धिप्राप्तस्यापि प्रमत्तसंयतस्य श्रुतज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशममांद्ये सति यदा धर्म्यध्यानविरोधी श्रुतार्थसन्देहः स्यात्तदा तत्सन्देहविनाशार्थं च आहारकशरीरमुत्तिष्ठतीत्यर्थः ॥२३५॥

जिसका लक्षण पहले कहा है, वह वैक्रियिक शरीर ही अन्तर्मुहूर्त मात्र अपर्याप्त काल तक शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता न होनेसे वैक्रियिककाययोगको उत्पन्न करनेमें असमर्थ होता है। तब तक औदारिककाय मिश्रकी तरह उसे वैक्रियिक कायमिश्र जानो। उस वैक्रियिक कायमिश्रके साथ जो संप्रयोग अर्थात् कर्म-नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिको प्राप्त अपर्याप्त कालमात्र आत्माके प्रदेशोंका चलनरूप योग वैक्रियिक मिश्रकाय योग है। अर्थात् अपर्याप्तयोगका नाम मिश्रकाय योग है ॥२३४॥

आगे पाँच गाथाओंसे आहारककाययोगको कहते हैं—

प्रमत्तविरतके आहारक शरीर नामकर्मके उदयसे आहारवर्गणाके आये हुए पुद्गल स्कन्धोंको आहारक शरीररूप परिणमन करनेसे आहारक शरीर होता है। उसका प्रयोजन कहते हैं—अढ़ाई द्वीपके तीर्थोंकी यात्रा आदिके लिए विहार करना हो, तो असंयमसे बचनेके लिए ऋद्धिप्राप्त प्रमत्त संयत मुनिके आहारक शरीर होता है। अथवा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमकी मन्दता होनेपर जब धर्मध्यानका विरोधी शास्त्रके अर्थमें सन्देह

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुडि कल्लाणे ।
परखेत्ते संचरिदे जिण जिणघरवंदणट्ठं च ॥२३६॥ आहारज

निजक्षेत्रे केवलियुगविरहे निष्क्रमणप्रभृतिकल्याणे । परक्षेत्रे संचरिते जिनजिनगृहवंदनार्थं च ॥

निजक्षेत्रे स्ववृत्त्याधारदेशदोळु केवलियुगरहितमागि केवलिश्रुतकेवलिगळभावमागि परक्षेत्रे औदारिकशरीरगमनागोचरमप्प दूरक्षेत्रदोळु केवलिश्रुतकेवलिगळु तीर्थकरपरिनिष्क्रमण- ५
प्रभृतित्रिकल्याणंगळु संचरिते वर्त्तमाने सति प्रवर्त्तिसुतंविरलुमसंयमपरिहरणार्थमुं संदेहविनाशार्थमुं जिनवंदनार्थं जिनगृहवंदनार्थं यंतुमुद्युक्तमप्प प्रमत्तसंयतंगाहारकशरीरमक्कुं ।

उत्तम अंगम्मि हवे धादुविहीणं सुहं असंघडणं ।
सुहसंठाणं धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥२३७॥

उत्तमांगे भवेद्धातुविहीनं शुभं असंहननं । शुभसंस्थानं धवलं हस्तप्रमाणं प्रशस्तोदयं ॥ १०

तदा तवाहारकशरीरमेंतुटें दोडे धातुविहीनं रसादिसप्तधातुरहितमुं शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवंगळनुळ्ळुवुं । असंहननं रहितास्थिबंधनमुळ्ळुवुं शुभसंस्थानं शुभं प्रशस्तं समचतुरस्राख्यं संस्थानमंगोपांगविन्यासो यस्य तच्छुभसंस्थानं । धवलं चंद्रकांतनिर्म्मितवंतति विशदमुं । हस्तप्रमाणं चतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितमुं । प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिगळोळु

निजक्षेत्रे स्ववृत्त्याधारदेशे केवलियुगरहिते—केवलिश्रुतकेवलिद्वयाभावे, परक्षेत्रे औदारिकशरीरगमना- १५
गोचरे दूरक्षेत्रे केवलिश्रुतकेवलिद्वये तीर्थकरपरिनिष्क्रमणादिकल्याणत्रये च संवृत्ते वर्तमाने सति असंयमपरिहरणार्थं सन्देहविनाशनार्थं जिनजिनगृहवन्दनार्थं च गन्तुं समुद्युक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारकशरीरं भवति ॥२३६॥

तदाहारकशरीरं कथंभूतं ? धातुविहीनं रसादिसप्तधातुरहितं, शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयव- विशिष्टं, असंहननं—अस्थिबन्धनरहितं, शुभसंस्थानं—प्रशस्तसमचतुरस्रसंस्थानांगोपाङ्गविन्यासयुतं, धवलं— २०
चन्द्रकान्तनिर्मितमिवातिविशदं, हस्तप्रमाणं चतुर्विंशतिव्यवहाराङ्गुलप्रमितं प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिषु

होता है, तब उस सन्देहको दूर करनेके लिए ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयतके आहारक शरीर प्रकट होता है ॥२३५॥

निजक्षेत्र अर्थात् मुनिके अपने रहनेके देशमें केवली और श्रुतकेवली दोनोंका ही अभाव होनेपर तथा परक्षेत्र अर्थात् औदारिक शरीरसे जाना जहाँ सम्भव नहीं है, ऐसे २५
दूरवर्ती क्षेत्रमें केवली, श्रुतकेवलीके होनेपर या तीर्थंकरके तप आदि तीन कल्याणक होनेपर असंयमके परिहारके लिए, सन्देहको नष्ट करनेके लिए तथा जिनदेव और जिनालयोंकी वन्दनाके लिए जानेको उद्यत प्रमत्त संयतके आहारक शरीर होता है ॥२३६॥

यह आहारकशरीर रस आदि सात धातुओंसे रहित होता है, शुभ अर्थात् शुभ नामकर्मके उदयसे प्राप्त प्रशस्त अवयवोंसे विशिष्ट होता है, अस्थिबन्धनसे रहित होता है, प्रशस्त ३०
समचतुरस्र संस्थान सहित अंगोपांगकी रचनासे युक्त होता है, धवल अर्थात् चन्द्रकान्तमणिसे निर्मितकी तरह अत्यन्त स्वच्छ होता है, हस्त प्रमाण अर्थात् चौबीस व्यवहारांगुल परिमाणवाला होता है । प्रशस्तोदय अर्थात् अध्रुवोदयी प्रकृतियोंमें आहारकशरीर, आहारक-

---

१. आत्मांगुलमिति भावः ।

आहारकशरीरतद्बंधनसंघाताहारकांगोपांगादिप्रशस्तप्रकृतिगळुदयमनुळ्ळुदुमेंवविधमप्पाहारकशरीरमुत्तमांगदोळु भवेत् पुट्टुगु ।

अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे ।
पज्जत्तीसंपुण्णे मरणंपि कदाचि संभवइ ॥२३८॥

अव्याघात्यंतर्मुहूर्तकालस्थिति च जघन्येतरस्मिन् पर्याप्तिपरिपूर्णायां मरणमपि कदाचित् संभवति ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तदाहारकशरीरमन्यनिंदं तनगे तन्निंदमन्यंगे मेणु व्याघातरहितं बाधवर्ज्जितं अदु कारणमागिये वैक्रियिकशरीरवंते वज्रशिलादिनिर्भेदनसमर्त्थं जघन्योत्कृष्टविदमंतर्मुहूर्तकालस्थितियनुळ्ळुदुं तच्छरीरपर्य्याप्तिपरिपूर्णमागुत्तंविरलु कदाचित्तच्छरीरर्द्धियुक्तमप्प प्रमत्तसंयतंगाहारककाययोगकालदोळे स्वायुःक्षयवशदिंदं मरणमुं संभविसुगुं ।

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारगो जोगो ॥२३९॥

आहरत्यनेन मुनिः सूक्ष्मानर्थान् स्वकस्य संदेहान् । गत्वा केवलिपार्श्वं तस्मादाहारको योगः ॥

आहारकर्द्धियुक्तनप्प प्रमत्तमुनीश्वरं तनगे प्रवचनपदार्थंगळोळु संशयमादुदादोडे तद्व्यवच्छेदार्थ्यमागि ई आहारकशरीरदिंदं केवलिगळ श्रीपादपार्श्वमनेय्दि सूक्ष्मंगळप्पर्थंगळनाहरति गृह्णाति कळवुकोळ्गे दितु आहारं आहारमें बुदक्कुं आहार एवाहारकं शरीरं यतः आवुदों दु कारणदिंद-

---

आहारकशरीरतद्बन्धनसङ्घाताङ्गोपाङ्गादिप्रशस्तप्रकृत्युदययुतं, एवंविधं आहारकशरीरं उत्तमाङ्गे भवेत् जायते ॥२३७॥

तदाहारकशरीरं परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा व्याघातरहितं बाधावर्जितं ततः कारणादेव वैक्रियिकशरीरवत् वज्रशिलादिनिर्भेदनसमर्थं जघन्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तकालस्थितियुतं, तच्छरीरपर्याप्तिपरिपूर्णायां सत्यां कदाचिच्छरीरर्द्धियुक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारककाययोगकाले स्वायुःक्षयवशेन मरणमपि संभवति ॥२३८॥

यतः कारणात् आहारकर्द्धियुक्तः प्रमत्तमुनीश्वरः[2] स्वस्य प्रवचनपदार्थेषु संशये जाते तद्व्यवच्छेदार्थं अनेनाहारकशरीरेण केवलिश्रीपादपार्श्वं गत्वा सूक्ष्मार्थान् आहरति गृह्णाति इत्याहारः, आहार एव आहारकं-

---

बन्धन, आहारक संघात, आहारक अंगोपांग आदि प्रशस्त प्रकृतियोंके उदयसे सहित होता है। इस प्रकारका आहारक शरीर उत्तमांग मस्तकसे प्रकट होता है ॥२३७॥

वह आहारकशरीर परसे अपनी और अपनेसे परकी बाधासे रहित होता है; इसी कारणसे वैक्रियिक शरीरकी तरह वज्रशिला आदिमें-से निकलनेमें समर्थ है। उसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण होती है। आहारक शरीरपर्याप्ति परिपूर्ण होनेपर कदाचित् आहारक शरीरऋद्धिसे युक्त प्रमत्तसंयतकी आहारक काययोगके कालमें अपनी आयुका क्षय हो जानेसे मरण भी हो जाता है ॥२३८॥

जिस कारणसे आहारकऋद्धिसे युक्त प्रमत्त मुनीश्वर आगमिक पदार्थोंमें संशय होनेपर उसको दूर करनेके लिए इस आहारक शरीरके द्वारा केवलीके चरणोंके समीप जाकर सूक्ष्म अर्थोंको ग्रहण करता है, इसलिए आहार कहते हैं। आहार ही आहारक शरीर है।

---

१. ब दिभि भेदेन । २. ब तस्य ।

मबुकारणदिंद शरीरपर्य्याप्तिनिष्पत्तियागुत्तिरलु आहारवर्गणेयिनाहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रवेशपरिस्पंदमाहारककाययोगमें दितु ज्ञातव्यमक्कुं।

अनंतरमाहारककायमिश्रयोगमं पेळ्दपं :—

आहारय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सजोगो ॥२४०॥

मार्गदर्शक - आहाराकोयुत्तार्थं विजानीहि मिश्रंतु अपरिपूर्णं तत्। यस्तेन संप्रयोगः आहारकमिश्रयोग सः॥

उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपमप्पुदावुवानुमोंवाहारकशरीरमे यन्नेवरमपर्य्याप्तकालांतर्म्मुहूर्तपर्य्यंतमपरिपूर्णमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधमनाहारकशरीराकारदिंदं परिणमिसल्कसमर्थमन्नेवरं मिश्रमेंदु पेळल्पट्टुदु। तत् प्राक्काल भावियप्पौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वदिंद मंदरोडने वर्त्तमानमप्प यस्संप्रयोग अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रवेशपरिस्पंदं स आहारककायमिश्रयोगमें दितु भणितमाय्तु। तु शब्दमीयर्थमन्नेले भव्य विजानीहि एंबितु विशेषमं पेळ्दुं।

अनंतरं कार्म्मणकाययोगमं पेळ्दपं :—

कम्मेव य कम्मभवं कम्मइयं तेण जो दु संजोगो।
कम्मइयकायजोगो इगिविगतिगसमयकालेसु ॥२४१॥

कर्म्मैव च कर्म्मभवं कार्म्मणं तेन यस्तु संयोगः। कार्म्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयकालेषु॥

शरीरं ततः कारणाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पन्नो सत्यां आहारकवर्गणाभिः आहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कन्धाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पन्दः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यम् ॥२३९॥ अत्र तन्मिश्रयोगं प्ररूपयति—

यत् उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपं आहारकशरीरं तदेव यावदपर्याप्तकालान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपरिपूर्णं आहारकवर्गणायातपुद्गलस्कन्धान् आहारकशरीराकारेण परिणमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते। तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वेन ताभिः सह वर्तमानो यः संप्रयोगः—अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पन्दः स आहारककायमिश्रयोग इति भण्यते। तु शब्दः इममर्थं हे भव्य! त्वं जानीहि इति विशेषं कथयति ॥२४०॥

अथ कार्मणकाययोगमाह—

तिस कारणसे शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता होनेपर आहार वर्गणाओंके द्वारा आहारक शरीरके योग्य पुद्गलस्कन्धोंको ग्रहण करनेकी शक्तिसे विशिष्ट आत्माके प्रदेशोंका चलन आहारकाय योग जानना ॥२३९॥

जिसका स्वरूप ऊपर कहा है, वह आहारक शरीर ही जब अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अपर्याप्तकालमें अपरिपूर्ण होता है अर्थात् आहारवर्गणाके गृहीत पुद्गल स्कन्धोंको आहारक शरीरके आकार रूपसे परिणमानेमें असमर्थ होता है, तब तक उसे आहारक मिश्र कहते हैं। उससे पहले होनेवाली औदारिक शरीर वर्गणासे मिला होनेसे उनके साथ जो संप्रयोग अर्थात् अपरिपूर्ण शक्तिसे युक्त आत्माके प्रदेशोंका चलन है, उसे आहारकमिश्रयोग कहते हैं। 'तु' शब्द 'हे भव्य! इस अर्थको तुम जानो' यह विशेष कथन करता है ॥२४०॥

आगे कार्मणकाय योगको कहते हैं—

---

१. क °स्संजोगो सो। २. म मिवरो°। ३. म कालम्मि।

कर्म्मैव अष्टविधकर्म्मस्कंधमे काम्मंणं काम्मंणमप्य शरीरं अथवा कर्म्मभवं काम्मंणशरीर-नामकर्म्मोदयदोळादुदु काम्मंणम् । तेन आ काम्मंणस्कंधदोडने प्रवर्त्तमानमप्प यः संयोगः आत्मन कर्म्माकर्षणशक्तिसंगतप्रदेशपरिस्पंदरूपमप्प योगः सः अवा काम्मंणकाययोगमें बुक्तमाम्तु । आ काम्मंणकाययोगमुमेकद्वित्रिसमयविशिष्टंगळप्प विग्रहगतिकालंगळोळु केवलिसमुद्घात संबंधिगळप्प प्रतरद्वयलोकपूरणसमयत्रयदोळं प्रवर्त्तिसुगुमुळिद कालदोळिल्लें बितु विभागं तु शब्दविंदं सूचितमक्कुमिदरिंदं शेषयोगंगळ्गे अव्याघातविषयदोळंतर्म्मुहूर्त्तमप्पकालमुं व्याघातविषयदोळेक-समयादियथासंभवांतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमप्प कालमेकजीवं प्रति भणितमक्कुं । नानाजीवापेक्षेयिंदं उवसमसुहुमेत्यादि सांतरमार्गणाष्टकमं वर्जिसि शेषनिरंतरमार्गणेगळगे सर्व्वंकालमेंबितु विशेषमरियल्पडुगुं ।

अनंतर योगप्रवृत्तिप्रकारमं पेळ्दपं ।

वेगुव्विय आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्मि ।
जोगो वि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण ॥२४२॥

वैक्रियिकाहारकक्रिया न समं प्रमत्तविरते । योगोप्येककाले एक एव च भवति नियमेन ॥

कर्म एव अष्टविधकर्मस्कन्ध एव कार्मणं कार्मणशरीरं अथवा कर्मभवं—कार्मणशरीरनामकर्मोदयजातं तत् कार्मणं तेन कार्मणस्कन्धेन सह वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्माकर्षणशक्तिसङ्गतप्रदेशपरिस्पन्दरूपो योगः स कार्मणकाययोग इत्युच्यते । स कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयविशिष्टविग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घात-सम्बन्धिप्रतरद्वयलोकपूरणे समयत्रये च प्रवर्तते शेषकाले नास्तीति विभागः तुशब्देन सूच्यते । अनेन शेषयोगा-नामव्याघातविषये अन्तर्मुहूर्तकालो व्याघातविषये एकसमयादि यथासंभवान्तर्मुहूर्तपर्यन्तकालश्च एकजीवं प्रति भणितो भवति । नानाजीवापेक्षया उवसमसुहुमेत्याद्यष्टसान्तरमार्गणावर्जितशेषनिरन्तरमार्गणानां सर्वकाल इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥२४१॥ अथ योगप्रवृत्तिप्रकारमाह—

कर्म ही अर्थात् आठ प्रकारके कर्मोंका स्कन्ध ही, कार्मण अर्थात् कार्मण शरीर है। अथवा कर्मभव अर्थात् कार्मणशरीरनामकर्मके उदयसे जो उत्पन्न हुआ, वह कार्मण है। उस कार्मणस्कन्धके साथ वर्तमान जो सम्प्रयोग अर्थात् आत्माके कर्मोंको आकर्षण करनेकी शक्तिसे संयुक्त प्रदेशोंका परिस्पन्दरूप योग है, वह कार्मणकाय योग कहा जाता है। वह कार्मणकाययोग एक-दो या तीन समयवाली विग्रहगतिके कालमें और केवलीसमुद्घात सम्बन्धी दो प्रतर और लोकपूरणके तीन समयोंमें होता है; शेष कालमें नहीं होता। यह विभाग 'तु' शब्दसे सूचित होता है। इससे शेष योग यदि कोई व्याघात न हो, तो अन्तर्मुहूर्त काल तक और यदि व्याघात हो, तो एक समयसे लेकर यथासम्भव अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त एक जीवकी अपेक्षा होते हैं, यह कहा है। नाना जीवोंकी अपेक्षा 'उवसमसुहुमाहारे' इत्यादि गाथामें कही आठ सान्तर मार्गणाओंको छोड़ शेष निरन्तर मार्गणाका सर्वकाल कहा है सो ही जानना ॥२४१॥

आगे योगोंकी प्रवृत्तिका प्रकार कहते हैं—

---

१. म व्याघात°।

मार्ग प्रमत्तविरतरोळार्द वैक्रियिकयोगक्रियेयुमाहारकयोगक्रियेयुं युगपत्संभविसुवल्लवु आगळोम्मेयाहारकयोगमवलंबिसि प्रमत्तसंयतंगे गमनादिक्रिये प्रवर्त्तिसुगुमागळु विक्रियर्द्धिबलदिंदं वैक्रियिकयोगमवलंबिसि प्रमत्तसंयतनोळु वैक्रियिकक्रिये घटिसदेकेंदोडे आहारकर्द्धिविक्रियर्द्धियुक्तरोळु युगपद्वृत्तिविरोधमप्पुदरिंदमिवरिंदं गणधरादिगळ्गमितरर्द्धि युगपद्वृत्तिसंभवं सूचिसल्पटटुदंत । योगोपि योगमु मोदे कालदोळु स्वयोग्यांतर्म्मुहूर्त्तदोळेकयोगमे नियमदिंदमक्कुमेरडुं मूरुं मेणु योगंगळेकजीवनोळसंभविसवु ।

अंतागुत्तिरलेकयोगकालदोळन्ययोगकार्य्यंगळप्प गमनादिक्रियेगळ्गे संभवमें बुवल्लिक्रांतयोगसंस्कारजनितं विरोधिसल्पडदेंतेंदोडे कुलालदंडप्रयोगाऽभावदोळं तत्संस्कारबलदिंदं चक्रभ्रमणदंते संस्कारक्षयदोळु बाणपतनदंते क्रियावृत्ति काणल्पडुगुमदु कारणदिंदमे संस्कारवशदिंदं युगपदनेकक्रियाप्रवृत्तिप्रसंगमागुत्तिरलु प्रमत्तविरतनोळु वैक्रियिकाहारकशरीरक्रियेगळ्गे युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधमाचार्य्यनिंदं प्ररूपितमाय्तु ।

अनंतर योगरहितात्मस्वरूपमं पेळ्दपं ।

प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च द्वे युगपन्न संभवतः । तथाहि—कदाचिदाहारकयोगमवलम्ब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते, तदा विक्रियर्द्धिबलेन वैक्रियिकयोगमवलम्ब्य वैक्रियिकक्रिया न घटते; आहारकर्द्धिविक्रियर्द्ध्योस्तस्य युगपद्वृत्तिविरोधात् । अनेन गणधरादीनां इतरर्द्धियुगपद्वृत्तिसंभवः सूचितः । तथा योगोऽपि एककाले स्वयोग्यान्तर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति । द्वौ त्रयो वा योगा एकजीवे युगपन्न संभवन्ति । तथा सति एकयोगकाले अन्ययोगकार्यरूपगमनादिक्रियाणां संभवो नातिक्रान्तयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते । कुलालदण्डप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलेन चक्रभ्रमणवत् संस्कारक्षये बाणपतनवत्क्रियानिवृत्तिदर्शनादेव संस्कारवशेन युगपदनेककियावृत्तिप्रसङ्गे सति प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोः युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितो जातः ॥२४२॥ अथ योगरहितात्मस्वरूपं प्ररूपयति—

प्रमत्तविरतमें वैक्रियिकयोगक्रिया और आहारकयोगक्रिया ये दोनों एक साथ नहीं होतीं । जब आहारकयोगका अवलम्बन लेकर प्रमत्तसंयतके गमन आदि क्रिया होती है, तब विक्रिया ऋद्धिके बलसे वैक्रियिक योगका अवलम्बन लेकर वैक्रियिक क्रिया नहीं होती । क्योंकि उसके आहारकऋद्धि और विक्रियाऋद्धि दोनोंके एक साथ होनेमें विरोध है । इससे गणधर आदिके अन्य ऋद्धियोंका एक साथ रहना सूचित किया है । तथा योग भी एक कालमें अर्थात् अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तमें नियमसे एक ही होता है । दो या तीन योग एक जीवमें एक साथ नहीं होते । ऐसा होनेपर एक योगके कालमें अन्य योगका कार्यरूप गमन आदि क्रियाके होनेमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जो योग चला गया उसके संस्कारसे एक योगके कालमें अन्य योगकी क्रिया होती है । जैसे कुम्हार दण्डके प्रयोगसे चाकको घुमाता है । पीछे दण्डका प्रयोग नहीं करनेपर भी संस्कारके बलसे चाक घूमता रहता है । या धनुषसे छूटनेपर बाण जबतक उसमें पूर्व संस्कार रहता है, तबतक जाता है पीछे संस्कार नष्ट हो जानेसे गिर जाता है । इस प्रकार संस्कारके वश एक साथ अनेक योगोंकी क्रियाके होनेका प्रसंग उपस्थित होनेपर प्रमत्तविरतमें वैक्रियिक और आहारक शरीरकी क्रियाओंके एक साथ होनेका निषेध आचार्यने किया है । अर्थात् ये दोनों क्रिया प्रमत्तविरतके संस्कारवश भी एक साथ नहीं होतीं ॥२४२॥

आगे योगरहित आत्माका स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °गलनरकजीव° ।

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलकलिया ॥२४३॥

येषां न संति योगाः शुभाशुभाः पुण्यपापसंजनकाः । ते भवंत्ययोगिजिना अनुपमानंतबलकलिताः

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

येषामात्मनां आबर्कलंबरात्मगर्गे पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्म्मबंधहेतुगळप्प शुभाशुभयोगाः कायवाग्मनःकर्म्मलक्षणंगळप्प शुभाशुभयोगंगळु न संति ते आत्मानः इल्लदिर्प्पा जीवंगळु अयोगिजिनाः चरमगुणस्थानवर्त्तिगळप्प अयोगिकेवलिगळुं । तदनंतरगुणस्थानातीतसिद्धपर्य्यायपरिणतरुगळुं भवंति विद्यंते ओळरु । इल्लि योगा भावमागुत्तिरलु अयोगिकेवल्यादिगळ्गे बलाभावं प्रसंगिसल्पडुगुमेकेंदोडे अस्मदादिगळोळु बलक्के योगाश्रितत्वदर्शनंदिवमें दिताशंकिसिदु पेळल्पट्टुदु । अनुपमानंतबलकलिताः अनुपममस्मदाद्युपमातिक्रांतमनंतमक्षयानंताविभागप्रतिच्छेदसमग्रं बलं वीर्य्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्त्ति सकलद्रव्यगुणपर्य्ययुगपद्ग्रहणसामर्थ्यं तेन कलिताः व्याप्तास्तत्स्वभावपरिणता इत्यनंतबलकलिताः एंदितु योगाश्रितमप्पबलं प्रतिनियतविषयमप्पुदु । परमात्मनबलं केवलज्ञानादियंते आत्मस्वभावत्वदिंदमप्रतिनियतविषयमप्पुदरिमनंतबलकलितमुमनुपममुमें बुदु भावार्थं ।

अनंतरं शरीरक्के कर्म्मनोकर्म्मविभागमं पेळ्दपं ।

येषामात्मनां पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्मबन्धहेतवः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणाः शुभाशुभयोगाः न सन्ति ते आत्मानः अयोगिजिनाः चरमगुणस्थानवर्त्तयोगिकेवलिनः तदनन्तरगुणस्थानातीतसिद्धपर्यायपरिणताश्च भवन्ति विद्यन्ते । अत्र योगाभावे सति अयोगिकेवल्यादीनां बलाभावः प्रसज्यते, अस्मदादिषु बलस्य योगाश्रितत्वदर्शनात् इत्याशङ्क्य इदमुच्यते अनुपमानन्तबलकलिताः-अनुपमं अस्मदाद्युपमातिक्रान्तं, अनन्तं अक्षयानन्ताविभागप्रतिच्छेदसमग्रं बलं वीर्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्तिसकलद्रव्यगुणपर्याययुगपद्ग्रहणसामर्थ्यं तेन कलिताः व्याप्ताः तत्स्वभावपरिणताः इत्यनन्तबलकलिताः इत्येवं योगाश्रितबलं प्रतिनियतविषयं भवेत्, परमात्मनो बलं केवलज्ञानादिवदात्मस्वभावत्वेन अप्रतिनियतविषयमित्यनन्तबलकलिता इति भावार्थः ॥२४३॥ अथ शरीरस्य कर्मनोकर्मविभागं कथयति—

जिन आत्माओंके पुण्य-पाप रूप प्रशस्त और अप्रशस्त कर्मबन्धके कारण मन-वचन-कायकी क्रियारूप शुभ और अशुभ योग नहीं हैं, वे आत्मा चरम गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली और उसके अनन्तर गुणस्थानोंसे रहित सिद्धपर्यायरूप परिणत मुक्त जीव होते हैं । योगका अभाव होनेसे अयोगिकेवली आदिमें बलका अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि हम लोगोंमें बल योगके आधारपर ही देखा जाता है । ऐसी आशंका करके कहते हैं—'अनुपमानन्तबलकलिताः ।' अनुपम अर्थात् हमारे जैसे लोगोंकी उपमाको अतिक्रान्त करनेवाले, अनन्त अर्थात् अक्षयानन्त अविभाग प्रतिच्छेदोंसे सम्पूर्ण, बल अर्थात् त्रिकालके लोक-अलोकवर्ती समस्त द्रव्य, गुणपर्यायको एक साथ ग्रहण करनेकी सामर्थ्य, उससे कलित अर्थात् तत्स्वभावपरिणत अयोगी होते हैं । इस प्रकार योगके आधारसे जो बल होता है, वह तो प्रतिनियत विषयवाला ही होता है । परमात्माका बल केवलज्ञान आदिकी तरह आत्माका स्वभाव होनेसे अप्रतिनियत विषयवाला होता है । यह 'अनन्तबलकलिता' का भावार्थ है ॥२४३॥

आगे शरीरोंमें कर्म-नोकर्मका विभाग कहते हैं—

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजणामकम्मुदए ।
चउणोकम्मसरीरा कम्मेव य होदि कम्मइयं ॥२४४॥

औदारिकवैक्रियिकाहारक तैजसनामकर्मोदये । चतुर्नोकर्मशरीराणि कर्मैव च भवति कार्मणं ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मोदयमागुसिरलु यथासंख्यं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसंगळनाल्कुं नोकर्मशरीरंगळप्पुवु । अकर्मशरीराणि ईषत्कर्मशरीराणीति वा नो कर्मशरीराणि एंबितु नो शब्दके विवक्षितकर्मविपर्य्ययवोळं इषदर्थदोळं वृत्तिसंभवं नो इंद्रियादिगेतरियल्पडुगुं । कर्मशरीरकें तंते आत्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वभावदिंदं कर्मविपर्य्ययत्वमुं कर्मशरीरसहकारित्वदिंदमीषत्कर्मशरीरत्वमुमेंदितु नोकर्मशरीरत्वं युक्तमक्कुं । कर्मैव कर्मणि भवं वा कार्मणमेंदितु कार्मणशरीरनामकर्मोदयमागुसिरलु कार्मणशरीरमक्कुं । मेकें दोडे ज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कंधसमूहवल्लदन्यकार्मणशरीरक्के परमागमदोळ् पेळ्दिल्लप्पुदरिदं ।

अनंतरमौदारिकादिशरीरंगळगे समयप्रबद्धादिसंख्येयं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं ।

परमाणूहि अणंतहि वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु ।
ताहि अणंतहि णियमा समयपबद्धो हवे एक्को ॥२४५॥

परमाणुभिरनंतैर्व्वर्गणासंज्ञा खलु भवत्येका खलु । ताभिरनंतैर्न्नियमात्समयप्रबद्धो भवेदेकः ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मोदये सति यथासंख्यं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसनामानि चत्वारि नोकर्मशरीराणि भवन्ति । नोशब्दस्य विपर्यये ईषदर्थे च वृत्तेः । तेषां शरीराणां कर्मवदात्मगुणघातित्वगत्यादिपारतन्त्र्यहेतुत्वाभावेन कर्मविपर्ययत्वात् कर्मसहकारित्वेन ईषत्कर्मत्वाच्च नोकर्मशरीरत्वसंभवात् । कर्मैव कार्मणशरीरनामकर्मोदयसञ्जातज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कन्धसमूह एव कार्मणशरीरं भवति तदन्यस्य परमागमे कार्मणशरीरत्वेन कथनाभावात् ॥ २४४ ॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धादिसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस शरीर नाम कर्मका उदय होनेपर क्रमसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस नामक चार नोकर्म शरीर होते हैं। 'नो' शब्द विपरीत अर्थमें और ईषद् अर्थमें प्रवृत्त होता है। वे शरीर कर्मकी तरह आत्माके गुणोंके घाती नहीं हैं, न गति आदिकी तरह परतन्त्रताके हेतु हैं। अतः कर्मसे विपरीत होनेसे तथा कर्मोंके सहायक होनेसे और ईषत्कर्म होनेसे शरीरोंको नोकर्म कहा है। तथा कार्मण शरीर नामकर्मके उदयसे उत्पन्न ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कार्मणस्कन्धका समूह ही कार्मण शरीर होता है। परमागममें इससे अन्य कार्मणशरीरका कथन नहीं किया है ॥२४४॥

आगे औदारिक आदि शरीरोंके समयप्रबद्ध आदिकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म °कर्मदुदय° । २. ब सम्पादित ।

अनंतैः द्विकवारानंतमध्यपतितसिद्धानंतैकभागमात्रमुमभव्यराशियं नोडलनंतगुणप्रमाणंगळप्प परमाणुगळिंदमों दु वर्गणेयें बुदक्कुं। खलु स्फुटं संख्यातपरमाणुगळिंदमु मेणसंख्यातपरमाणुगळिंदं वर्गणेयें बुदल्तु। मत्तदें तेंदोडे अनंतपरमाणुगळिंदमे वर्गणेयें बुदु निश्चयिसल्पडुगुमेंबुदर्थं। पुद्गलद्रव्यक्के संख्यातासंख्यातपरमाणुस्कंधरूपवर्गणासद्भावमादोडमिल्लियौदारिकादिशरीरप्रकरणदोळौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्म्मणवर्गणेगळ्गेये ग्रहणमक्कुं। सिद्धानंतभागमुमभव्यानंतगुणप्रमितंगळुमप्पा वर्गणेगळनंतानंतंगळिंदं नियमदिंदमों दु समयप्रबद्धमक्कुं। समये समये समयेन वा प्रबध्यते स्म—कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना संबध्यते स्म यः पुद्गलस्कंधः सः समयप्रबद्धः एंदितु निरुक्तिसिद्धमक्कुं।

आत्मन मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामंगळिंदं प्रतिसमयं कर्म्मनोकर्म्मरूपतेयिंदं परिणमिसुत्तिप्पं तत्तद्योग्यपुद्गलस्कंधं समयप्रबद्धमेंदितु स्याद्वादसिद्धांतप्रसिद्धमप्पुदरिनरियल्पडुगुं। नियमशब्ददिंद वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थंगळ्गेरडुमी प्रकारदिंदं पेळल्पट्ट स्वरूपमनुळ्ळुवु स्याद्वादिगळ्गेये गोचरंगळप्पुदिंद सर्व्वथैकांतवादिगळ्गे गोचरंगळल्लवुमेंबी विभागं व्यवस्थापिसल्पट्टुदु।

अनन्तैः द्विकवारानन्तमध्यपतितसिद्धानन्तैकभागमात्राभव्यराश्यनन्तगुणप्रमाणैरेव परमाणुभिरेका वर्गणा भवति खलु स्फुटं, न संख्यातैर्वा असंख्यातैर्वा परमाणुभिरित्यर्थः। यद्यपि पुद्गलद्रव्यस्याणुसंख्यातासंख्यातपरमाणुस्कन्धरूपवर्गणाः सन्ति तथाप्यत्रौदारिकादिशरीरप्रकरणे औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणवर्गणानामेव ग्रहणात्। ताभिश्च सिद्धानन्तैकभागाभव्यराश्यनन्तगुणप्रमितानन्तवर्गणाभिर्नियमेनैकः समयप्रबद्धो भवति। समये समयेन वा प्रबध्यते स्म कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना सम्बध्यते स्म यः पुद्गलस्कन्धः स समयप्रबद्ध इति निरुक्तेः। आत्मनो मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामैः प्रतिसमयं कर्मनोकर्मरूपतया परिणममानः तद्योग्यपुद्गलस्कन्धः समयप्रबद्ध इति स्याद्वादसिद्धान्तप्रसिद्धो बोद्धव्यः। नियमशब्देन वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थौ द्वावप्येवमुक्तस्वरूपौ स्याद्वादिनामेव गोचरौ, न सर्वथैकान्तवादिनामित्ययं विभागो व्यवस्थापितः (व्यवस्थाप्यते) ॥२४५॥

अनन्त अर्थात् अनन्तानन्तके मध्यमें पतित सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्य राशिसे अनन्तगुणे परमाणुओंकी एक वर्गणा होती है, संख्यात या असंख्यात परमाणुओंकी एक वर्गणा नहीं होती। यद्यपि पुद्गल द्रव्यकी अणुवर्गणा, संख्यात परमाणुरूप असंख्यातपरमाणुस्कन्धरूप वर्गणा भी होती है। तथापि इस औदारिक शरीरके प्रकरणमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण वर्गणाका ही ग्रहण किया है। और सिद्धराशिके अनन्तवें भाग तथा अभव्यराशिसे अनन्तगुणी वर्गणाओंका नियमसे एक समयप्रबद्ध होता है। समयमें या समयसे जो पुद्गल स्कन्ध कर्म-नोकर्म रूपसे आत्मासे सम्बद्ध होता है, वह समय प्रबद्ध है; ऐसी व्युत्पत्ति है। आत्माके मिथ्यादर्शन आदि संक्लेश परिणामोंसे प्रतिसमय कर्म-नोकर्म रूपसे परिणमन करनेवाला उसके योग्य पुद्गल स्कन्ध समयप्रबद्ध है। यह प्रसिद्ध स्याद्वाद सिद्धान्त जानना। 'नियम' शब्दसे यह व्यवस्थापित किया है कि वर्गणा और समयप्रबद्ध शब्दोंका जो स्वरूप ऊपर कहा है, वह स्याद्वादियोंके ही यहाँ है, एकान्तवादियोंके यहाँ नहीं है ॥२४५॥

---

१. म °रंगलिदं।

ताणं समयपबद्धा सेडियसंखेज्जभागगुणिदकमा ।
णंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहुमं खु ॥२४६॥

तेषां समयप्रबद्धाः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः । अनंतेन च तेजोद्विकं परं परं भवति सूक्ष्मं खलु ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तेषां समयप्रबद्धाः तदौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्म्मणशरीरंगळ संबंधिगळप्प समय- ५
प्रबद्धंगळु सर्व्वमुं परस्परं सदृशंगळल्लु । मत्तेंतप्पुवेंदोडे उत्तरोत्तरमधिकपरमाणु संख्येयनुळ्ळुवु । अवेंतेंदोडे सर्व्वतः स्तोकमौदारिकसमयप्रबद्धमनवं नोडलु श्रेण्यसंख्यातैकभागगुणितपरमाणुप्रमितं वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धं स ā इवं नोडलु श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितमाहारक-शरीरसमयप्रबद्धं स ā ā श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः एंबिवरिंदमाहारकशरीरसमय-प्रबद्धपर्य्यंतमे विवक्षितमप्पुदरिंदमतः परमाहारकशरीरसमयप्रबद्धमं नोडे तैजसशरीरसमयप्रबद्ध- १०
मनंतगुणमक्कुम स ā ā ख मिवं नोडे कार्म्मणशरीर समयप्रबद्धमनंतगुणपरमाणुप्रमित-मक्कु स ā ā ख । ख । मेकेंदोडे अनंतेन च तैजसद्विकमेंदिवरिंदमाहारकशरीर समय-प्रबद्धदत्तणिद मुंदे तैजसकार्मणशरीर समयप्रबद्धंगळनंतानंतगुणत्वकथनमुंटप्पुदरिंद च शब्दविंदं प्रत्येकसमुच्चयं सूचिसल्पट्टुदु । एत्तलानुमितादोडे वैक्रियिकादिशरीरंगळ्गे उत्तरोत्तरं प्रवेशा-

---

तेषां औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीराणां सम्बन्धिनः समयप्रबद्धाः सर्वेऽपि न परस्परं १५
सदृशाः किन्तु उत्तरोत्तरेऽधिकपरमाणुसंख्याविशिष्टा भवन्ति । तद्यथा—सर्वतः स्तोकः औदारिकसमयप्रबद्धः । औ स । ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धः । वै स ā । ततः श्रेण्यसंख्येय-भागगुणितपरमाणुप्रमितः आहारकशरीरसमयप्रबद्धः । आ स ā ā । श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमा इत्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्यन्तमेव विवक्षितत्वात् । तेन परं तदाहारकशरीरसमयप्रबद्धादग्रे तैजसशरीरसमय-प्रबद्धोऽनन्तगुणपरमाणुप्रमितः । तै स ā ā ख । ततः कार्मणशरीरसमयप्रबद्धोऽनन्तगुणपरमाणुप्रमितः । का २०
स ā ā ख ख । अनन्तेन च तैजसद्विकमित्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धात् परं तैजसकार्मणशरीरसमयप्रबद्ध-

---

इन औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीरोंके समयप्रबद्ध सब परस्परमें समान नहीं हैं, किन्तु उत्तरोत्तर अधिक परमाणुओंकी संख्याको लिये हुए हैं। सबसे कम औदारिकके समयप्रबद्ध हैं। उससे श्रेणीके असंख्यातवें भाग गुणित परमाणु प्रमाण वैक्रियिक शरीरके समयप्रबद्ध हैं। उससे श्रेणीके असंख्यातवें भाग गुणित परमाणु प्रमाण २५
आहारकके समयप्रबद्ध हैं। श्रेणीके असंख्यातवें भाग गुणितका क्रम आहारक शरीरके समयप्रबद्ध तक ही विवक्षित है। आहारकशरीरके समयप्रबद्धसे आगे तैजसशरीरके समय-प्रबद्ध अनन्तगुणे परमाणु प्रमाण हैं। उससे कार्मण शरीरके समयप्रबद्ध अनन्तगुणे परमाणु प्रमाण हैं। 'णं तेण य तेजदुगा' इससे आहारक शरीरके समय प्रबद्धसे आगे तैजस और कार्मण शरीरके समयप्रबद्धोंको अनन्तगुणा-अनन्तगुणा कहा है। 'च' शब्दसे प्रत्येकके ३०
समुच्चयको सूचित किया है। यदि इनके समयप्रबद्ध उत्तरोत्तर अधिक हैं, तो वैक्रियिक

धिक्यदिदं स्थूलत्वं प्रसंगिसल्पडुगुमेंदिताशंकिसि परं परं सूक्ष्मं भवति खलु परं परं सूक्ष्ममक्कुमेंदितु पेळल्पट्टुदु। एसलानुं वैक्रियिकादि उत्तरोत्तरशरीरंगळ्गे बहुपरमाणु संचयत्वमंतादोडं बंधपरिणतिविशेषदिदं सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवमक्कुं। एंतीगळ्कार्प्पासपिंडायःपिंडंगळंते विरोधिसल्पडवु। खु खलु इंतु निश्चयिसल्पडुगुं।

अनंतरमौदारिकादिशरीरंगळ समयप्रबद्धवर्गणावगाहनभेदमं पेळ्दपं :—

ओगाहणाणि ताणं समयपबद्धाण वग्गणाणं च।
अंगुलअसंखभागा उवरुवरिमसंखगुणहीणा ॥२४७॥

अवगाहनानि तेषां समयप्रबद्धानां वर्गणानां च। अंगुलासंख्यभागानि उपर्युपरि असंख्यगुणहीनानि॥

मुंपेळल्पट्टौदारिकादि शरीरंगळ संबंधिसमयप्रबद्धंगळतद्वर्गणेगळ अवगाहनंगळु घनांगुलासंख्यातैकभागप्रमितंगळागुत्तं मेले मेलसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवदेंतेंदोडौदारिकशरीरसमयप्रबद्धदवगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभाजितघनांगुल प्रमितमक्कुं। औ स ६ तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रप्रमाण ममदे सत्ते सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तैकभागप्रमाणमक्कु—। औ व ६ मिते

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

योरनन्तानन्तगुणत्वकथनात्। चशब्देन प्रत्येकसमुच्चयः सूचितः। यद्येवं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणां उत्तरोत्तरं प्रदेशाधिक्येन स्थूलत्वं प्रसज्यते इत्याशङ्क्य परं परं सूक्ष्मं भवतीत्युक्तम्। यद्यपि वैक्रियिकादुत्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणुसञ्चयत्वं तथापि बन्धपरिणतिविशेषेण सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवः कार्पासपिण्ड-अयःपिण्डवन्न विरुध्यते खल्विति निश्चेतव्यम् ॥२४६॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धवर्गणयोरवगाहनभेदानाह—

तेषामौदारिकादिशरीराणां सम्बन्धिनां समयप्रबद्धानां तत्तद्वर्गणानां च अवगाहनानि घनाङ्गुलासंख्यातभागप्रमितानि उपर्युपरि असंख्येयगुणहीनानि भवन्ति। तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यङ्गुलासंख्येयभागभक्तघनाङ्गुलप्रमितम्। औ स ६ । तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं, तदेव पुनरपि सूच्यङ्गुलासंख्येय-
अ

आदि शरीरोंके उत्तरोत्तर अधिक प्रदेश होनेसे स्थूलता प्राप्त होती है। ऐसी आशंका करके 'परं परं सूक्ष्मं' कहा है। यद्यपि वैक्रियिक आदि उत्तरोत्तर शरीर बहुत परमाणुओंके संचयको लिये हुए हैं, तथापि बन्धपरिणतिकी विशेषतासे कपासके पिण्ड और लोहेके पिण्डकी तरह सूक्ष्म-सूक्ष्म अवगाहन होनेमें कोई विरोध नहीं है; यह निश्चय करना चाहिए ॥२४६॥

आगे औदारिक आदि शरीरोंके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहनामें भेद कहते हैं—

घन औदारिक आदि शरीर सम्बन्धी समयप्रबद्धोंकी और उनकी वर्गणाओंकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और ऊपर-ऊपर असंख्यात गुणी हीन है। जो इस प्रकार है—औदारिक शरीरके समय प्रबद्धका अवगाहन क्षेत्र सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाजित घनांगुल प्रमाण है। और उसकी वर्गणाका अवगाहन क्षेत्र उसमें पुनः

१. म सुमवने सूं ।

वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तर शरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहंगळेरडुगळुं पूर्व्वपूर्व्वतत्तवगाहनक्षेत्रंगळं नोडलु सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्राऽसंख्येय गुणहीनंगळागुत्तं पोपवु। वै स $\frac{ओ}{ब}$ ६ / २ २ / ओ ब। तद्वर्गणावगाह

आहा। स $\frac{ओ}{ब}$ ओ। ६ / २ २ २ / ओ ओ ओ। तद्वर्गं ६ / २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ। ते स $\frac{ओ}{ब}$ ओ ख ६ / २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ।

तद्वर्गं ६ / २ २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ ओ। का। स। ओ ओ ख ख ६। तद्वर्गणावगाह ६ / २ २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ ओ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यीयर्त्थमने श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरु विशदं माडिदपरु।

तस्समयबद्धवग्गण ओगाहो सूइअंगुलासंख।
भागहिदविंद अंगुलमुवरुवरिं तेण भजिदकमा ॥२४८॥

तत्समयप्रबद्धवर्गणावगाहः सूच्यंगुलासंख्येयभागहृतवृंदांगुलमुपर्य्युपरि तेन भजितक्रमाः॥

आ समयप्रबद्धवर्गणावगाहंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागहृतघनांगुलमात्रंगळु। मेले आ

भागभक्तं घनाङ्गुलप्रमितम्। ओ ब ६। एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहनक्षेत्रे द्वे अपि
२ २
ओ ब

पूर्वपूर्वतत्क्षेत्राभ्यां सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रासंख्येयगुणहीने गच्छतः।

वै स $\frac{ओ}{ब}$। ६ / २ २ / ओ ब	व। ६ / २ २ २ / ओ ओ ओ	आ। स। $\frac{ओ}{ब}$ ओ। ६ / २ २ २ / ओ ओ ओ	व। ६ / २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ	ते स। $\frac{ओ}{ब}$ ओ ख। ६ / २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ
व। ६ / २ २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ ओ	का। स। $\frac{ओ}{ब}$ ओ ख ख ६। / २ २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ ओ	व। ६ / २ २ २ २ २ २ / ओ ओ ओ ओ ओ ओ	॥२४७॥ अमुमेवार्थं श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवा अपि कथयन्ति—	

पूर्वोक्तौदारिकादिशरीरसम्बन्धिसमयप्रबद्धतद्वर्गणानामवगाहनानि घनाङ्गुलासंख्येयभागप्रमितान्यपि उपर्युपर्यसंख्यातगुणहीनक्रमाणि भवन्ति। तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यङ्गुलासंख्येय-

---

सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दो, उतना है। इस प्रकार वैक्रियिक आदि उत्तरोत्तर शरीरोंके समयप्रबद्ध और वर्गणाके अवगाहन क्षेत्र दोनों भी पूर्व-पूर्व अपने क्षेत्रोंसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात गुणा हीन होते हैं। अर्थात् वैक्रियिकसे आहारककी, आहारकसे तैजसकी, तैजससे कार्मणकी समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहना असंख्यात-गुणी असंख्यातगुणी क्रमसे घटती हुई जानना ॥२४७॥

इसी बातको आगे माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव भी कहते हैं—

पूर्वोक्त औदारिक आदि शरीर सम्बन्धी समयप्रबद्ध और उनकी वर्गणाओंकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर भी ऊपर-ऊपर क्रमसे असंख्यात

सूच्यंगुलासंख्येयभागदिंदं भक्तप्रमाणंगळप्पुवु ।

अनंतरं विस्रसोपचयस्वरूपमं पेळ्दपं ।

जीवादोणंतगुणा पडिपरमाणुम्मि विस्ससोपचया ।
जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडि समाणा हु ॥२४९॥

जीवादनंतगुणा प्रतिपरमाणु विस्रसोपचयाः । जीवेन च समवेताः एकैकं प्रति समानाः खलु ॥

जीवराशियं नोडलुमनंतानंतगुणितमप्प विस्रसोपचयंगळुमुपेळ्दौदारिकादि कर्म्मनोकर्म्मपरमाणुगळो दो वरोळेकैकं प्रति समानसंख्यावच्छिन्नंगळु जीवप्रदेशंगळोडने समवेताः संबद्धाः संयुतंगळप्पुवु विस्रसा स्वभावेनैवात्मपरिणामनिरपेक्षतयैवोपचीयंते । तत्तत्कर्मनोकर्मपरमाणु-

भागभाजितघनाङ्गुलप्रमितं औ स ६ तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं तस्यैव सूच्यङ्गुलासंख्येयभागप्रमाणम् । तद्व ६ एवं
२ २ २
अ अ

वैक्रियिकादुत्तरोत्तरशरीराणामपि समयप्रबद्धतद्वर्गणावगाहो पूर्वपूर्वतदवगाहनक्षेत्राभ्यां सूच्यङ्गुलासंख्येयभाग-गुणहीनौ गच्छतः ।

वै । स ॅ ६ २ । २ अ अ	तद्व ६ २ । २ २ अ अ अ	आ । स ॅ । ॅ । ६ २ । २ २ अ अ अ	तद्व ६ २ । २ । २ २ अ अ अ अ	तै । स ॅ । ॅ ख ६ २ । २ । २ २ अ अ अ अ
तद्व ६ २ । २ । २ । २ २ अ अ अ अ अ	का । स ॅ ॅ ख ख ६ २ । २ । २ । २ २ अ अ अ अ अ	तद्व ६ २ । २ । २ । २ । २ २ अ अ अ अ अ अ	॥२४८॥ अथ विस्रसोपचय - स्वरूपं प्ररूपयति—	

जीवराशितोऽनन्तानन्तगुणि.विस्रसोपचयाः पूर्वोक्तौदारिकादिकर्मनोकर्मपरमाणुषु एकैकं प्रति समान-संख्यावच्छिन्नाः जीवप्रदेशैः सह समवेताः संबद्धाः संयुक्ताः सन्ति । विस्रसा स्वभावेनैव आत्मपरिणामनिरपेक्षतयैव उपचीयन्ते—तत्तत्कर्मनोकर्मपरमाणुस्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कन्धतां प्रतिपद्यन्ते इति विस्रसोपचयाः कर्मनोकर्म-

गुणा हीन होती है। वही कहते हैं—औदारिक शरीरके समयप्रबद्धका अवगाहन क्षेत्र सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाजित घनांगुल प्रमाण है। और उसकी वर्गणाका अवगाहन क्षेत्र उसके भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार वैक्रियिक आदि उत्तरोत्तर शरीरोंके भी समयप्रबद्ध और उनकी वर्गणाओंकी अवगाहना पूर्व-पूर्व अवगाहन क्षेत्रसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणा हीन होती है।

विशेषार्थ—वैक्रियिकके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहनाको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर औदारिकके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहना होती है। और औदारिकके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहनाको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर वैक्रियिक शरीरके समयप्रबद्ध और वर्गणाकी अवगाहना होती है। ऐसे ही सर्वत्र जानना ॥२४८॥

आगे विस्रसोपचयका स्वरूप कहते हैं—

जीवराशिसे अनन्तानन्तगुणे विस्रसोपचय पूर्वोक्त औदारिक आदि कर्म और नोकर्मके परमाणुओंमें एक-एकके प्रति समान संख्याको लिये हुए जीवके प्रदेशोंके साथ सम्बद्ध हैं।

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कंधतां प्रतिपद्यंते इति विस्रसोपचयाः एंबी निरुक्तिलक्षणसिद्धत्वदिंद बेरेयक्के लक्षणं पेळल्पडदु। तद्विस्रसोपचयपरमाणुगळ् कर्म्मनोकर्म्मपरिणतिरहितंगळ्दु तद्योग्यंगळल्लदिरुत्तिप्पुदुविंदु विशेषं। ओंदु कर्म्मनोकर्म्मपरमाणुविनोळ् एषलानुमिनितु विस्रसोपचयंगळागुत्तिरलु मागळ् किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्म्मनोकर्म्मसत्वपरमाणुगळोळनितु विस्रसोपचयंगळक्कुमेंदिनु त्रैराशिकविधानदिंद प्रमाणं फलं इच्छा इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन तु भाजयेत्। ५
प्र १। फ १६ ख। इ। स ७ १ ७। एंदु बंद लब्धमात्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचय परमाणुगळिनितप्पुवु —। स ७ १२। १६ ख। मिवरोळ् किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाण कर्म्मनोकर्म्मसत्वदोळु प्रक्षेपिसुत्तिरलु विस्रसोपचयसहितकर्म्मनोकर्म्मसत्वमिनुटक्कुं स ७ १ २ – १६ ख।

अनंतरं कर्म्मनोकर्म्मोत्कृष्टसंचयस्वरूपमप्प स्थानलक्षणमं पेळ्दपं—

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे सगसगउक्कस्ससंचयो होदि। १०
पणदेहाणं वरजोगादिसगसामग्गिसहियाणं ॥२५०॥

उत्कृष्टस्थितिचरमे स्वकस्वकोत्कृष्टसंचयो भवति। पंचदेहानां वरयोगादिस्वसामग्रीसहितानां॥

परिणतिरहितपरमाणव इति भावः। यद्येकस्मिन् कर्मनोकर्मपरिमाणौ एतावान् विस्रसोपचयः तदा किञ्चिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वपरमाणूनां कियान् विस्रसोपचयः? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र १। फ १६ ख। इ स १ १२–इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा ये लब्धा आत्मप्रदेशस्थितसर्व- १५
विस्रसोपचयपरमाणवः ते एतावन्तः स १ १२—१६ ख। एतेषु पुनः किञ्चिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणकर्मनोकर्मसत्त्वे प्रक्षिप्ते सति विस्रसोपचयसहितकर्मनोकर्मसत्त्वमेतावद्भवति। स ७ १२—।

१६ ख ॥२४९॥ अथ कर्मनोकर्मोत्कृष्टसंचयस्वरूपस्थानलक्षणं प्ररूपयति—

'विस्रसा' अर्थात् स्वभावसे ही आत्माके परिणामसे निरपेक्ष रूपसे जो 'उपचीयन्ते' अर्थात् उन-उन कर्म-नोकर्म परमाणुओंके स्निग्ध–रूक्ष गुणके कारण स्कन्धरूप होते हैं, वे २०
विस्रसोपचय हैं। अर्थात् कर्म और नोकर्मरूप परिणमनसे रहित परमाणु विस्रसोपचय कहे जाते हैं।

विशेषार्थ –विस्रसोपचयरूप परमाणु कर्म-नोकर्मरूप होनेके योग्य तो होते हैं, किन्तु वर्तमानमें कर्म-नोकर्मरूप नहीं परिणमे हैं, उनको विस्रसोपचय कहते हैं। वे जीवके प्रदेशोंके साथ ही एक क्षेत्रावगाही होते हैं। किन्तु उनका जीवके परिणामोंसे कोई सम्बन्ध २५
नहीं होता।

यदि एक-एक कर्म परमाणुमें इतने विस्रसोपचय होते हैं,तो सत्तामें स्थित डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र नोकर्म-कर्म परमाणुओंके कितने विस्रसोपचय होते हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि एक, फलराशि जीवराशिसे अनन्तगुणा, इच्छाराशि डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध। सो इच्छाराशिसे फलराशिको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेसे ३०
जो लब्ध आया,वह है-आत्माके प्रदेशोंमें स्थित समस्त विस्रसोपचयरूप परमाणु। इनमें कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म-नोकर्म परमाणुओंको मिलानेपर विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्मका सत्त्व होता है ॥२४९॥

उत्कृष्टयोगादिस्वसामग्रिसहितंगळप्प जीवंगळौदारिकादिपंचशरीरंगळ स्वस्वोत्कृष्टस्थिति चरमसमयदोळु स्वस्वोत्कृष्टकर्म्मनोकर्म्मपरमाणुसंचयमक्कुं। तत्तत् स्थितिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धदोळु गळितैकनिषेकावशेषमात्रंगळनित् संचीयमानमागुत्तिरलु तत् स्थितिचरमसमयदोळायुर्वर्जितकर्म्मनोकर्मशरीरंगळ्गे गलितावशेषोत्कृष्टसंचयं किंचिदून द्वयर्द्धगुण-हानियुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वमक्कुं। स० १२।

अनंतरं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरुगळुत्कृष्टसंचयसामग्रिविशेषमं पेळ्दपरु।

आवासया हु भव अद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य।
ओकड्डुक्कड्डणयं छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ॥२५१॥

आवश्यकानि खलु भवाद्धा आयुष्यं योगः संक्लेशश्चापकर्षणमुत्कर्षणकं षट् चैतानि गुणित-कर्म्मांशे ॥

भवाद्धा भवाद्धेयुमायुष्यमुं योगमुं संक्लेशमुमपकर्षणमुमुत्कर्षणमुमेंदितु षट्चैतान्यावश्यकानि ईयारुमावश्यकंगळवश्यं भवान्यावश्यकानि एंबी निरुक्तिसिद्धंगळुमुत्कृष्टसंचयकारणंगळुमिवु मागुणितकर्म्मांशजीवदोळुत्कृष्टकर्म्मसंचयमुळ्ळ जीवनोळप्पुविवुं मुंदे विस्तारदिदं पेळल्पट्टप्पुवु। खलु स्फुटमागि।

अनंतरमौदारिकादिपंचशरीरंगळुत्कृष्टस्थिति प्रमाणमं पेळ्दपं।

उत्कृष्टयोगादिस्वस्वसामग्रीसहितानां जीवानाम् औदारिकादिपञ्चशरीराणां स्वस्वोत्कृष्टस्थितिचरमसमये स्वस्वोत्कृष्टकर्मनोकर्मपरमाणुसंचयो भवति। तत्तत्स्थितिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयम् एकैकसमयप्रबद्धगलितै-कैकनिषेकावशेषमात्रेषु तावत्सु संचीयमानेषु सत्सु तत्स्थितिचरमसमये आयुर्वर्जितकर्मनोकर्मशरीराणां गलितावशेषोत्कृष्टसंचयः किञ्चिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रः सत्त्वं भवति स० १२—॥२५०॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवाः उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषं कथयन्ति—

भवाद्धा आयुष्यं योगः संक्लेशः अपकर्षणमुत्कर्षणं चेति षट् उत्कृष्टकर्मसंचयकर्तुर्जीवस्य आवश्यकानि इत्युच्यन्ते। गुणितकर्मांशे उत्कृष्टकर्मसंचययुते जीवे तेषामवश्यम्भावात् अग्रे तानि विस्तरेण वक्ष्यन्ति खलु स्फुटम् ॥२५१॥ अथौदारिकादिपञ्चशरीराणामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमाह—

आगे कर्म-नोकर्मके उत्कृष्ट संचयका स्वरूप, स्थान और लक्षण कहते हैं—

उत्कृष्ट योग आदि अपनी-अपनी उत्कृष्ट बन्धकी सामग्रीसे सहित जीवोंके औदारिक आदि पाँच शरीरोंका अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम समयमें अपने-अपने कर्म-नोकर्म परमाणुओंका उत्कृष्ट संचय होता है। अपनी-अपनी स्थितिके प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्ध बँधता है और उसमें-से एक-एक निषेक प्रतिसमय निर्जरित होकर शेष संचित होता जाता है। तब अपनी-अपनी स्थितिके अन्तिम समयमें आयुकर्मको छोड़ शेष कर्म और नोकर्मरूप शरीरोंका निर्जरासे शेष रहा उत्कृष्ट संचय कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सत्तामें होता है ॥२५०॥

आगे श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव उत्कृष्ट संचयकी सामग्री कहते हैं—

भवाद्धा, आयुष्य, योग, संक्लेश, अपकर्षण और उत्कर्षण ये छह उत्कृष्ट कर्मसंचय करनेवाले जीवके आवश्यक कहे जाते हैं। गुणितकर्मांश अर्थात् उत्कृष्ट कर्म संचयसे युक्त जीवमें ये अवश्य होते हैं। आगे इन्हें विस्तारसे कहेंगे ॥२५१॥

आगे औदारिक आदि पाँच शरीरोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण कहते हैं—

पल्लतियं उवहीणं तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं ।
छावट्ठीकम्मट्ठिदि बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं ॥२५२॥

पल्यत्रयमुदधीनां त्रयस्त्रिंशदंतर्म्मुहूर्त्त उदधीनां । षट्षष्टिः कर्म्मस्थितिर्बंधोत्कृष्टस्थितिस्तेषां ॥

तदौदारिकादिपंचशरीरंगळगे यथासंख्यमागि बंधोत्कृष्टस्थितिगळु त्रिपल्यमुं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममंतर्म्मुहूर्त्तमुं षट्षष्टिसागरोपमंगळुं कर्म्मसामान्योत्कृष्टस्थिति सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमंगळप्पुवु । विशेषदिंद ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायंगळुत्कृष्टस्थिति त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटिगळप्पुवु । मोहनीयक्कुत्कृष्टस्थिति सप्ततिसागरोपमकोटीकोटिगळप्पुवु । नामगोत्रंगळगे विंशति कोटीकोटिसागरोपमंगळुत्कृष्टस्थितियप्पुवु । त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळायुष्यक्कुत्कृष्टस्थितियक्कुं ।

अनंतरमौदारिकादिपंचशरीरंगळोळुत्कृष्टस्थितिगळगे गुणहान्यायामप्रमाणमं तोरिदपं ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं ।
पल्लासंखेज्जदिमं गुणहाणी तेजकम्माणं ॥२५३॥

अंतर्म्मुहूर्त्तमात्रा गुणहानिर्भवत्यादिमत्रयाणां । पल्यासंख्येयभागा गुणहानिस्तैजसकार्म्मणयोः ॥

आदिमत्रयाणां औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरंगळुत्कृष्टस्थितिसंबंधिनियप्प गुणहानिः गुणहान्यायामंगळु प्रत्येकं स्वयोग्यांतर्म्मुहूर्त्तमात्रंगळप्पुवु । २ १ । तैजसकार्म्मणशरीरंगळुत्कृष्टस्थितिसंबंधिनियप्प गुणहानिः गुणहान्यायामं स्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुववरोळु

तेषामौदारिकादिपञ्चशरीराणां यथासंख्यं बन्धोत्कृष्टस्थितयः त्रिपल्यं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममन्तर्मुहूर्तः षट्षष्टिसागरोपमं उत्कृष्टकर्मस्थितिः, सा च सामान्येन सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि । विशेषेण तु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणां त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणि । मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि, नामगोत्रयोः विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि, आयुषस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि भवन्ति । (बन्धप्रकरणे प्ररूपिता सर्वोत्कृष्टस्थितिर्ग्राह्या) ॥२५२॥ अथौदारिकादिपञ्चशरीरोत्कृष्टस्थितीनां गुणहान्यायामं प्रमाणयति—

आदिमानामौदारिकवैक्रियिकाहारकत्रिशरीराणाम् उत्कृष्टस्थितिसम्बन्धिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः प्रत्येकं स्वस्वयोग्यान्तर्मुहूर्तमात्रो भवति । २ १ । तैजसकार्मणशरीरयोः उत्कृष्टस्थितिसम्बन्धिनी गुणहानिः

उन औदारिक आदि पाँच शरीरोंकी बन्धरूप उत्कृष्ट स्थिति औदारिककी तीन पल्य, वैक्रियिककी तैंतीस सागर, आहारककी अन्तर्मुहूर्त, तैजसकी छियासठ सागर है। तथा कार्मणकी सामान्यसे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण और विशेषसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्मकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर, मोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, नाम और गोत्रकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर और आयुकर्मकी तैंतीस सागर है। इस प्रकार बन्धके प्रकरणमें कही सबकी उत्कृष्ट स्थिति ग्रहण करना ॥२५२॥

आगे इन पाँच शरीरोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें गुणहानि आयामका प्रमाण कहते हैं—

आदिके औदारिक, वैक्रियिक और आहारक तीन शरीरोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी गुणहानि और गुणहानि आयाम प्रत्येक अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। अर्थात् अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होते हैं, उतना गुणहानिका आयाम जानना।

१. कोष्ठकगतः पाठः 'ब' प्रतौ नास्ति ।

तैजसशरीरके संख्यातपल्यमात्रस्वोत्कृष्टस्थितियनु पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदोन पल्यार्द्धच्छेदसंख्येय-गुणितमात्र भक्तैकभागमात्रं गुणहान्यायाममक्कुं। सम्मुत्कृष्टस्थितियं नानागुणहानिशलाकेगळिंदं भागिसिबंदलब्धमात्रं गुणहान्यायाममेंबुदर्थं प १ कार्म्मणशरीरमके मत्ते संख्यातपल्य- छे व छे ०

मात्रस्वोत्कृष्टस्थितियनवरि नानागुणहानिशलाकेगळप्प पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदोनपल्यच्छेदराशियि
५ भक्तैकभागमात्रं गुणहान्यायाममक्कुं प १ मेंबी विशेषमरियल्पडुगुं। छे व छे

इल्लि त्रैराशिकमं माडल्पडुवुदेंतेंदोडे—अंतर्मुहूर्त्तमात्रायामक्के सलानुमो दु गुणहानि-यागुत्तिरलु सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामं पल्यत्रयक्के नितु नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकं माडि २ १। फ। १, इ। प ३। बंद लब्ध प्रमितंगलीदारिकशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळप्पु
पार्श्वदर्शक प ३ इ एंबी वैक्रियिकशरीरांतर्मुहूर्त्तमात्रायामक्के नानागुणहानिशलाकेगळ्साधिसल्पडुवुवु प २ १ फ १। इ।
२ १
१० सा ३३। लब्धं वैक्रियिकशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेळप्पुवु सा ३३। प्र। २ १।
२ १

स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवति। तत्र तैजसशरीरस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदेभ्यो-ऽसंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिप्रमितेन शलाकाराशिना भक्तसंख्यातपल्यप्रमाणस्वोत्कृष्टस्थितिमात्री प १ कार्मणशरीरस्य तु स्वनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यच्छेदराशिना छे व छे १

भक्तसंख्यातपल्यप्रमितस्वोत्कृष्टस्थितिप्रमाणा प १ इति विशेषो ज्ञातव्यः। यदि अन्तर्मुहूर्तायामस्य एका छे व छे

१५ गुणहानिः तदा सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य पल्यत्रयस्य कियत्यः इति प्र २ १। फ १। इ, प ३। त्रैराशिकेन

तैजस और कार्मण शरीरकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी गुणहानि अपने-अपने योग्य पल्यके असंख्यातवें भागमात्र होती है। उनमें-से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से कम करके जो शेष रहे, उसे असंख्यातसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी तैजस शरीरकी नाना गुणहानि शलाका है। इस शलाका राशिसे तैजसकी उत्कृष्ट
२० स्थिति संख्यात पल्यमें भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी पल्यके असंख्यातवें भागमात्र तैजस शरीरकी गुणहानिका आयाम है। पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यकेअर्धच्छेदों में-से घटानेसे जो शेष रहे, उतनी कार्मणकी नाना गुणहानि शलाका है। इस शलाकाका भाग कार्मणकी उत्कृष्ट स्थिति संख्यात पल्यमें भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतना पल्यके असंख्यातवें भाग कार्मण शरीरकी गुणहानिका आयाम है; इतना विशेष जानना। अब यदि
२५ अन्तर्मुहूर्तमात्र आयामकी एक गुणहानि होती है, तो तीन पल्य प्रमाण सर्वोत्कृष्ट स्थितिके आयामकी कितनी गुणहानि होंगी? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि अन्तर्मुहूर्तके समय, फलराशि एक, इच्छाराशि तीन पल्यके समय। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर तीन पल्यको अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे

---

१. ब °गुणितस्वनानागुणहानिशलाका।

फ १ । इ । २ १ १ । लब्धमाहारकशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळिप्पुवु २ १ १
२ १

प ७ । प १ फ १ । इ । सा ६६ लब्धं । तैजसशरीरस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवु
छे व छे ० ०

छे—व छे ० – प सा ७० को २ । फ १ । इ । सा ७० को २ । लब्धं कार्म्मणशरीरस्थितिगे
छे व छे

नानागुणहानिशलाकेळप्पुवु । छे—व छे । इंतु पेळल्पट्ट नानागुणहानिशलाकेगळौदारिकादिशरीरंगळ
स्थितिगळगे भागहारप्पंतु त्रैराशिकंगळं माडुवुदंतु माडुत्तिरलेकगुणहानि आयामंगळप्पुवदे ते बोडे ५
इनितु नानागुणहानिशलाकेगळगोत्तलानुमितु स्थित्यायाममनागुत्तिरलु औगळो वु गुणहानिगळनितायाम-
मक्कुमेंदितु त्रैराशिकंगळं माडिदंत लब्धंगळौदारिकादिशरीरस्थितिगळगेकगुणहान्यायामंगळप्पुवु
प ३ फ । प ३ । इ । १ । लब्धमौदारिकशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं २ १ । प्र सा ३३
२ १
फ । सा ३३ । इ । १ । लब्धं वैक्रियिकशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं २ १ प्र १ । फ २ १ १ । इ । १ ।
लब्धमाहारकशरीरस्थितिगेकगुणहान्यायामं २ १ । प्र । छे—व छे ० । फ सा ६६ । इ । १ लब्धं १०
तैजसशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं । प १ प्र छे व छे । फ, सा ७० को २ । इ १ । लब्धं
छे व छे

लब्धाः नानागुणहानिशलाकाः औदारिकशरीरस्थितेरेतावत्यः प १ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि ताः
२ १

साधयेत् । तत्र प्र २ १ । फ १ । इ सा ३३ लब्धा वैक्रियिकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः
सा ३३ । प्र २ १ । फ १ । इ २ १ १ । लब्धाः आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः
२ १
२ १ १ । प्र सा ६६ । फ १ । इ सा ६६ लब्धास्तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः— १५
२ १ छे । व । छे । ०

छे व छे ० । प्र सा ७० को २ । फ १ । इ सा ७० को २, इ लब्धाः कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका
छे व छे

उतना लब्ध आता है ; उतना ही औदारिक शरीरकी स्थितिकी नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण है। ऐसे ही वैक्रियिक शरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि तैंतीस सागर। सो तैंतीस सागरको अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतना नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना। आहारक शरीरमें प्रमाणराशि छोटा अन्तर्मुहूर्त, फल- २०
राशि एक, इच्छाराशि बड़ा अन्तर्मुहूर्त है। सो बड़े अन्तर्मुहूर्तमें छोटे अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी नाना गुणहानि जानना। तैजस शरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि छियासठ सागर है। सो प्रमाणराशिका इच्छाराशिमें भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंको असंख्यातसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतनी नाना गुणहानि तैजसकी जानना। कार्मणशरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्त, २५
फलराशि एक, इच्छाराशि मोहकी स्थितिकी अपेक्षा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। सो प्रमाण-
राशिका इच्छाराशिमें भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद

कार्मणशरीरस्थित्येकगुणहान्यायामं प १ [इल्लि सर्व्वस्थानंगळल्लि यथायोग्यवागि
छे व छे
अपवर्त्तनं माडल्पडुगुं ।]

इन्नौदारिकादिशरीरंगळ स्थितिगळन्योन्याभ्यस्तराशिगळप्पेकल्पडुगुं । तंतम्म शरीरस्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळं विरलिसि प्रतिरूपं द्विकनन्तिप्पुवर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु तंतम्मन्योन्याभ्यस्तराशिगळप्पुदप्पुवुमदें ते बोडिल्लिरूपोगियप्प त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । इनितु विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गमं माडुत्तिरलिनितप्प राशि पुट्टुत्तिरलागळेनितु विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गमं माडलेनितप्प राशि पुट्टुगुमेंदितु त्रैराशिकं माडि लब्धमनीकरणसूत्रदिदं साधिसुगे ।

वे २ फ । ञ इ देय २
प्र लि छे छे छे ९
a
३ वि प ३
२ १

एतावत्यः । छे व छे । अथौदारिकादिशरीराणां गुणहान्यायामाः साध्यन्ते । तद्यथा—एतावन्नानागुणहानीनां यदि एतावान् स्थित्यायामः, तदा एकगुणहानेः कियान् स्थित्यायामः इति त्रैराशिकेन प्र प ३ । फ प ३ । इ १ । २ १
लब्धः औदारिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र सा ३ ३ । फ सा ३३ । इ १ । लब्धः वैक्रियिक- २ १
शरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । आहारकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र, छे व छे a । फ सा ६६ । इ १ । लब्धः तैजसशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प १ । छे व छे ।

प्र छे व छे । फ, सा ७० को २ । इ १ । लब्धः कार्मणशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प १ । औदारिकादि- a छे व छे

मात्र नाना गुणहानि जानना । अब औदारिक आदि शरीरोंके गुणहानि आयामको साधते हैं—

यदि अपने-अपने नाना गुणहानि प्रमाणका आयाम अपनी-अपनी स्थिति प्रमाण होता है, तो एक गुणहानिका आयाम कितना हुआ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशि प्रमाण गुणहानिका आयाम होता है । सो औदारिकमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्य, इच्छाराशि एक, फलराशि तीन पल्य । सो औदारिक शरीरकी स्थितिकी एक गुणहानिका आयाम अन्तर्मुहूर्तमात्र हुआ । वैक्रियिक शरीरमें प्रमाणराशि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तैंतीस सागर, फलराशि तैंतीस सागर, इच्छाराशि एक । सो वैक्रियिक शरीरकी स्थितिकी एक गुणहानिका आयाम अन्तर्मुहूर्त आया । आहारक शरीरमें प्रमाणराशि संख्यात, फलराशि अन्तर्मुहूर्त, इच्छाराशि एक । सो छोटा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण गुणहानि आयाम हुआ । तैजसमें प्रमाणराशि पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंसे असंख्यातगुणी । फलराशि छियासठ सागर । इच्छाराशि एक । सो संख्यात पल्यमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंसे असंख्यात गुणे प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आवे,

---

१ म प्रतौ नास्ति [ ] पाठः ।

दिण्णच्छेदेणवहिव इट्ठच्छेदेहि पयदविरळण भजिदे।
लद्धमिद इट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदो रासी ॥

एंदी सूत्राभिप्रायदिंद लोकार्द्धच्छेदंगळिंद औदारिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशियं भागिसि प ३ तल्लब्धमितमिष्टराशिवर्ग्ग लोकमं वर्गितसंवर्ग माडुत्तिरलु
२ ३ । छे छे छे ९
a

पुट्टिद राशियौदारिकशरीरस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमसंख्यातलोकमक्कु = a । मंते वैक्रियिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशियं लोकार्द्धच्छेदंगळिंद भागिसि सा ३ ३
२ ३ छे छे छे ९

शरीरस्थितीनामन्योन्याभ्यस्तराशयस्तु नानागुणहानिशलाकाः विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते समुत्पद्यन्ते तद्यथा—एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते यद्येतावान् राशिरुत्पद्यते तदा एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते को राशिरुत्पद्यते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा दे २ देय २
प्र वि छे छे छे ९ । फ = । इ वि प ३ । १०
a २ ३

लब्धं करणसूत्रेणानीयते—

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहि पयदविरलणं भजिदे। लद्धमिदइट्ठरासोगण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥

उतना गुणहानि आयाम जानना। कार्मण शरीरमें प्रमाणराशि पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद मात्र, फलराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, इच्छाराशि एक। सो संख्यात पल्यमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेदोंका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उतना गुणहानि आयाम जानना। इस प्रकार सर्वत्र एक गुणहानिका आयाम जानना।

विशेषार्थ—इतने-इतने समयोंके समूहका नाम एक गुणहानि है। समस्त स्थितिमें जितनी गुणहानियाँ हों, उसके प्रमाणका नाम नाना गुणहानि है। अपने-अपने योग्य अन्तर्मुहूर्तके जितने समय हों, उतना गुणहानि आयाम है। आयाम नाम लम्बाईका है। जैसे छह नाना गुणहानिका अड़तालीस समय प्रमाण स्थिति आयाम होता है तो एक गुणहानिका आयाम आठ-आठ समय हुआ। नाना गुणहानि प्रमाण दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न होती है, उसे अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं। जैसे नाना गुणहानिका प्रमाण छह। सो छहका विरलन करके एक-एक जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे ६४ अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है।

इसी प्रकार औदारिक आदि शरीरोंकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्त राशि लानेके लिए उनकी नाना गुणहानि शलाकाओंका विरलन करके प्रत्येकपर दो देकर उन्हें परस्परमें गुणा करना चाहिए। सो लोकके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर लोकराशि उत्पन्न होती है, तो नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर कितने लोक होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करना। इसका लब्ध लानेके लिए करण सूत्र कायमार्गणा गाथा २१४ में कहा है। उसके अनुसार देयराशि दोका अर्धच्छेद एक, उसका भाग इष्टराशिके अर्द्धच्छेद लोकके अर्धच्छेदोंमें देनेसे उतने ही रहे।

१ व छे २।

तल्लब्धप्रमितलोकंगळं वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलावुवों दु राशियुमसंख्यातलोकप्रमितमागुत्तिरलु-
मौदारिकशरीरस्थितियन्योन्याभ्यस्तराशियं नोडलसंख्यातलोकगुणितमागि वैक्रियिकशरीरस्थिति-
यन्योन्याभ्यस्तराशियक्कु = ० = ० मेकें दोडौदारिकशरीरस्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळं
नोडलु वैक्रियिकशरीरस्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळुमसंख्यातभागहीनंगळप्पुवप्पुरिंदं
तल्लब्धप्रमितलोकंगळं वर्गितसंवर्गंगोळिसल्पट्टुदु मत्तमन्तर्मुहूर्तभाजितत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमि-
तंगळप्पुवरिंदं । अंतर्मुहूर्तभक्तमप्प त्रिगुणितमप्प नूरेपत्तु कोटीकोटिपल्योपमंगळप्पुवरिंदं । नूरपत्तु
कोटिकोटि पल्योपमंगळु गुणकाररूपंगळधिकंगळप्पुवरिंदं । ११० को २ एतावन्मात्र लोकंगळ
वर्गितसंवर्गंगोंडिदं पुट्टिदंतप्प राशि असंख्यातलोक = ० गुणितमप्पुवरिंदं = ० = ० अथवा ।
इनितौदारिकशरीर नानागुणहानिशलाकेगळेसलानुमितप्पन्योन्याभ्यस्तराशियागलु मागळिनितु
वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकेगळिंगितप्पसंख्यातलोकमक्कुमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र व प ३
२ १

---

१० इति लोकार्धच्छेदैः औदारिकविशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं भक्त्वा प ३ / २ १ । छे छे छे ९ । ०

तल्लब्धप्रमितेष्विष्टराशिरूपलोकेषु अन्योन्यं गुणितेषु उत्पन्नराशिः औदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्यातलोकमात्रो भवति = ० । तथाहि वैक्रियिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं लोकार्धच्छेदैर्भक्त्वा सा ३३ / २ १ । छे छे छे ९ । तल्लब्धप्रमितलोकेषु वर्गितसंवर्गीकृतेषु यो राशिः स वैक्रियिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्त- ०

राशिर्भवति । = ० । = ० । अयमौदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशितोऽसंख्यातलोकगुणितः = ० ।
१५ अन्तर्मुहूर्तभक्तत्रिपल्येभ्योऽन्तर्मुहूर्तभक्तत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां एकशतदशकोटीकोटिगुणितत्वात् तदधिकमात्र-
त्रिकसंवर्गोत्पन्नस्यास्य = ० गुणकारैस्त्वसंभवात् । अथवा एतावतीनां औदारिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां
यद्येतावान् अन्योन्याभ्यस्तराशिः तदा एतावतीनां वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां कियान् अन्योन्या-

---

इन लोकके अर्धच्छेदोंके प्रमाणका भाग औदारिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी नानागुणहानिके प्रमाणमें देनेसे जो प्रमाण आवे, उतनी जगह इष्टराशि लोकको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे
२० जो लब्ध आवे, उतना औदारिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातलोकमात्र होता है। इसी तरह वैक्रियिक शरीरकी स्थितिकी नाना गुणहानि शलाका-राशिको लोकके अर्धच्छेदोंसे भाग देकर जो प्रमाण आवे, उतने लोकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो, वह वैक्रियिक शरीरकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्तराशि होती है। यह राशि औदारिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिसे असंख्यात-
२५ लोक गुणित होती है। क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्यसे अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तैंतीस सागर एक सौ दस कोड़ाकोड़ी गुणित होते हैं। सो इस अधिक प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे असंख्यात लोक आता है सो ही औदारिककी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे वैक्रियिक शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातलोक गुणी है। अथवा यदि अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्य प्रमाण औदारिक शरीरकी नानागुणहानिकी अन्योन्या-
३० भ्यस्त राशि असंख्यातलोक मात्र होती है, तो एक सौ दस कोड़ाकोड़ी गुणित अन्तर्मुहूर्तसे भाजित तीन पल्य प्रमाण वैक्रियिक शरीरकी नानागुणहानिकी कितनी अन्योन्याभ्यस्तराशि

---

१. ब दशोत्तरशतकोटि° । २. ब °र असं° ।

फ ≡ ८ । इ व प २ ११० । को २। लब्धं विण्णच्छेदेत्याद्यानीत सं वैक्रियिकशरीरस्थिति-
२१
गन्योन्याभ्यस्तराशि मूरपत्तु कोटिकोटिवारंगळौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिवर्गितसंवर्ग-
मावंतप्पऽसंख्यातलोकमंतु निश्चैसल्पडुगुं ।

आहारकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकेगळसंख्यातंगळवं विरलिसि रूपं प्रति द्विकमनिरु
यर्गितसंवर्गं माडुत्तिरल्पुट्टिदराशियं संख्यातमेयक्कुमा राशि साहारकशरीरस्थितिगन्योन्याभ्य- ९
स्तराशियक्कुं १ १ । तैजसशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिकाम्मंणशरीरस्थितिनानागुण-
हानिशलाकाराशियं नोडलसंख्यातगुणमा राशियं पल्यार्द्धच्छेदराशियिंदं भागिसि छे व छे ८
छे
ऋणरूपं गुणकार भागहारं बेरसु तेगदु बेरिरिसि व छे ८ शेष ऋणसहितराशिय छे । ८
छे छे
निवनु पल्यच्छेदभाज्यराशियं पल्यच्छेदभागहारं सदृशं बेरदु राशिगळनपवर्तिसि कळवु शेष तद्-
गुणाकारभूतासंख्यातमनु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रमेयागल्वेळकेके दोडे पल्यच्छेदप्रमितमावोळं १०

भ्यस्तराशिरिति त्रैराशिके कृते प्र प ३ । फ ≡ ८ । इ प ३ । ११० को २ । लब्धस्य एकशतदशकोटी-
२१ २१
कोटिवारमौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तानाम् अन्योन्यगुणितोत्पन्नराशिमात्रत्वात् तेन गुणितत्वप्रसिद्धेः ।
आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः संख्याताः विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्न-
राशिरपि संख्यातः स तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् १ १ । तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः कार्मण-
शरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणितास्ताः पल्यार्धच्छेदराशिना भक्त्वा छे व छे ८ ऋणं १५
छे
सगुणकारभागहारं पृथग्धृत्य व छे ८ शेषऋणरहितराशिं छे ८ पल्यच्छेदभाज्यराशिना पल्यच्छेदराशिभागहारः
छे छे
सदृशः इति तावपवर्तयेत् ८ । शेषतद्गुणकारभूतासंख्यातः पल्यच्छेदासंख्यातैकभाग एव न पल्यच्छेदप्रमितः,

---

होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर एक सौ दस कोड़ाकोड़ी बार औदारिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे वैक्रियिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। इससे औदारिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे वैक्रियिक शरीर सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातलोक गुणित सिद्ध हुई। आहारक शरीरकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाका संख्यात हैं। उनका विरलन करके और एक-एक पर दो-दोका अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर संख्यात राशि उत्पन्न होती है। वह आहारक शरीरकी अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना। तैजस शरीरकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाका कार्मण शरीरकी नानागुणहानि शलाकाओंसे असंख्यात गुणी हैं। सो पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमेंसे घटानेपर जो शेष रहे, उससे असंख्यात गुणी जानना। यहाँ सरलताके लिए इसे पल्यकी अर्धच्छेदराशिका भाग देना। उसमें-से 'पल्यकी वर्गशलाकाकी अर्धच्छेद राशिको असंख्यातसे गुणा करना और पल्यकी अर्धच्छेद राशिका भाग देना' इस ऋणरूप गुणाकार और भागहारको पृथक् रखकर, शेष ऋणरहित राशि पल्यके अर्धच्छेदोंको असंख्यातसे गुणा करें और पल्यकी अर्धच्छेदराशिका भाग दें, इतना रहा। यहाँ भाज्यराशि और भाजक राशिमें पल्यकी अर्धच्छेदराशि समान है। अतः उसका अपवर्तन करनेपर शेष असंख्यात गुणाकार रहा। सो इस असंख्यातका जितना प्रमाण है, उतनी जगह पल्योंको

तावन्मात्रपल्यसंवर्गोद्भवं सूच्यंगुलं पुट्टिवप्पुदन्तु पुट्टुत्तिरलु तैजसशरीरस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशियल्लदे पोक्कुदेकें दोडे तैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिक्षेत्रप्रमाणविदं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमक्कुं कालप्रमाणविदमसंख्यातकल्पप्रमितमेंबागमविरोधमागि बप्पुदरिंदं अंता पल्यच्छेदासंख्यातैकभागप्रमितासंख्यातरूपुगळं विरळिसि रूपं प्रति पल्यमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु पुट्टिदराशि द्विरूपवर्गधारायोपरिगतैक पल्यसन्निभविदंश्रमेल्लं विरलनराशिगे हारभूताऽसंख्यातक्कनितर्द्धच्छेदंगळप्पुविनितु वर्गस्थानंगळं नडदु पोगि पुट्टिद सूच्यंगुलासंख्यातैकभागप्रमितऋणसहितधनमक्कु २
ə

सिदं मुंतेगेदु बेरिरिसिद ऋणरूपुगळ ब छे ə नपवर्त्तिसिदोडेकरूपासंख्येयभागप्रमितमक्कु-
छे

मेकें दोडे कारणं मुं पेळ्दुदेयक्कुं।

आ रूपाऽसंख्येयभागविदं पल्यमं गुणिसिदोडे पल्यासंख्यातैकभागमप्पुदा राशि मुन्निन ऋणसहितमप्प सूच्यंगुलासंख्यातैकभागक्के हारमक्कुमेकें दोडे :—

विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

अन्यथा तावन्मात्रपल्यसंवर्गोत्पन्नतैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिः सूच्यङ्गुलं भवेत् न च स तथा, परमागमे क्षेत्रप्रमाणेन सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रत्वेन कालप्रमाणेन असंख्यातकल्पमात्रत्वेन च तत्प्रमाणप्रतिपादनात्। तदसंख्यातरूपाणि विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति पल्यं दत्वा संवर्गोत्पन्नराशिः द्विरूपवर्गधारायां पल्यराशेरुपरि विरलनराशिहारभूताऽसंख्यातस्य यावन्तोऽर्धच्छेदाः तावन्ति वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नसूच्यङ्गुलासंख्येयभागः २। अयं च—
ə

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि। तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

रखकर परस्परमें गुणा करो। क्योंकि असंख्यात गुणा पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना ही पल्यकी अर्धच्छेदराशिका भाग देनेपर अवशेष गुणाकार असंख्यात रहा, उतनी जगह पल्यको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर प्रमाण होता है, जैसे पल्यका प्रमाण सोलह मानें, तो उसके अर्धच्छेद चार हुए और असंख्यातका प्रमाण तीन। सो तीनसे चारको गुणा करनेपर बारह हुए। सो बारह जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर चार हजार छियानवे होते हैं। तथा बारहको चारसे भाग देनेपर तीन रहा। सो तीन जगह सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेपर भी चार हजार छियानवे होते हैं। अतः सरलताके लिए पूर्वोक्त राशिको पल्यके अर्धच्छेदराशिसे भाग देकर लब्धराशि असंख्यात प्रमाण पल्य रखकर परस्परमें गुणा किया। सो यहाँ यह गुणकार रूप जो असंख्यात है, वह पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र है। पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण नहीं है। यदि यह असंख्यात पल्यके अर्धच्छेदोंके बराबर होवे, तो उतने पल्योंको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर तैजस शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि सूच्यंगुल प्रमाण हो जायेगी, किन्तु वह उतनी नहीं है। क्योंकि परमागममें क्षेत्र प्रमाणसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र और कालप्रमाणसे असंख्यात कल्पमात्र तैजस शरीरकी स्थिति सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण कहा है। अतः पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यातका विरलन करके और एक-एकपर पल्यको देकर परस्परमें गुणा करनेसे

एंदु भागहारमप्पुदी कारणमागि अंता पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिदोड २ प अपवर्त्तिसि
अ अ
शुद्धराशियुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमेयक्कुं २ कार्म्मणशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाके-
अ

गळगे छे—व छे। प्रतिरूपं द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडलुत्पन्नराशिकार्म्मणशरीरस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुमवुदुं स्ववर्गशलाकाराशिप्रभक्तपल्यप्रमितमक्कुमेकें दोडे विरलिदरासीदो पुणेत्यादि सूत्राभिप्रायदिंदं पल्यच्छेदराशिगे ऋणरूपमप्पत्तद्वर्गशलाकार्द्धप्रमितमं तेगदु बेरिरिसि व छे शेषपल्यच्छेदराशियं विरलिसि तावन्मात्रद्विकसंवर्गमं माडल् पुट्टिद ऋणसहितमप्प पल्यक्के मुं पेळ्द ऋणरूपंगळं विरलिसि तावन्मात्रद्विकसंवर्गमं माडल् पुट्टिद राशि पल्यवर्गशलाकाराशिप्रमितमवा ऋणसहित घनमप्प पल्यक्के हारमक्कुमप्पुदरिंदं।

इति नियमात् प्राक्पृथक्स्थापितऋणेन व छे ० अपवर्तितेन एकस्यासंख्येयभागेन पल्ये गुणिते संजात-
छे
पल्यासंख्यातैकभागेन भक्त्वा २ प अपवर्तितः सूच्यङ्गुलासंख्येयभाग एव भवति २। कार्मणशरीरस्थितेर्नाना-
अ अ अ
गुणहानिशलाकानां छे व छे प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नः स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः तदन्योन्याभ्यस्त-
राशिर्भवति। प। पल्यार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नपल्यस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदराशिमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्न-
व

सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भागमात्र प्रमाण आता है। सो द्विरूपवर्गधारामें पल्यराशिरूप स्थानसे ऊपर विरलनराशिरूप असंख्यातके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने वर्गस्थान जाकर उत्पन्न सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग आता है।

'विरलनराशिसे जितने रूप हीन होते हैं, उनका परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न होती है, वह उत्पन्न राशिका भागहार है।'

इस नियमके अनुसार जो ऋणरूप राशि पहले अलग स्थापित की थी, उसका अपवर्तन करनेपर एकका असंख्यातवाँ भाग हुआ। इसको पल्यसे गुणा करनेपर पल्यका असंख्यातवाँ भाग हुआ। यतः असंख्यात गुणा पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेद प्रमाण दो-दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेसे भी इतना ही प्रमाण होता है। इसलिए सरलताके लिए यहाँ पल्यकी अर्द्धच्छेदराशिका भाग देकर एकका असंख्यातवाँ भाग पाया, उसे पल्यसे गुणा किया है। सो ऐसा करनेसे जो पल्यका असंख्यातवाँ भाग आया, उसका भाग सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको देनेपर भी सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग ही रहा; वही तैजस शरीरकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्तराशि है।

कार्मणशरीरकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाका पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण है। इसका विरलन करके एक-एकके ऊपर दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न होती है, वह पल्यकी वर्गशलाकासे भाजित पल्य प्रमाण है वही अन्योन्याभ्यस्त राशि है। क्योंकि यहाँ पल्यके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे पल्य उत्पन्न होता है, वह तो भाज्य है और पूर्वोक्त नियमके अनुसार पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदराशि प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे पल्यकी वर्गशलाका होती है, वह भाजक है।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इन्नौदारिकाविशरीरस्थितिगळ्गे निषेकहारमेंतेंदोडे दोगुणहानियिंदुवा निषेकहारंगळ्गे तंतम्मेकगुणहान्यायामंगळनेरवरिवं गुणियिसुत्तिरलु तंतम्मौदारिकाविशरीरस्थितिगे निषेकहारंगलप्पुवु औ २ १।२। वै २ १।२। आ २ १।२। तै प १।२। का प १।२ इन्नौदारिकाविशरीरंगळ्

छे व छे ० छे व छे

द्रव्यस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणंगळंक संदृष्टिगळ्गे द्र ६३०० । स्थि ४८ । गु ८ । ना ६ । नि १६ । अ ६४ । इन्नौदारिकावि शरीरसमयप्रबद्धंगळु प्रकृतिप्रदेशस्थित्यनुभागमेंबु चतुर्विधबंधमक्कुमल्लि मोदल प्रकृतिप्रदेशबंधमेरडुं योगविंदप्पुवु । स्थित्यनुभागबंधंगळेरडुं कषायोदयदिंदमप्पुवल्लि विवक्षितसमयदोळ् कट्टल्पट्ट कार्म्मणेय समयप्रबद्धक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुमा स्थितियोळु बंधप्रथमसमयं मोदल्गोंडु सप्तसहस्रवर्षसमयमात्रकालमनाबाधेयं कळेदुदिव स्थितिय प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकंगळप्प परमाणुपुंजंगळं निषेकंगळेंदुवा निषेकरचनेयं माळ्प विधानमनंकसंदृष्टियिंदमन्नेवरं तोरिदपेमदेंतेंदोडे विवक्षितैकसमयदोळ् कट्टिद कार्म्मणसमयप्रबद्धद्रव्यं । स १ । इदक्कंकसंदृष्टि ६३०० ।

पल्यवर्गशलाकाराशेर्हारित्वकथनात् । अथौदारिकादिशरीरस्थितीनां यो यो गुणहान्यायामः स स द्वाभ्यां गुणितो निषेकहारापरनामा दोगुणहानिर्भवति । औ २ १। २। वै २ १। २। आ २ १। २। तै प १। २। छे व छे ०।

का प १। २। तदौदारिकशरीरसमयप्रबद्धानां अङ्कसंदृष्ट्या द्रव्यं ६३०० स्थितिः ४८ गुणहानिः ८ नाना- छे व छे

गुणहानिः ६ निषेकहारः १६ अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ । औदारिकादिशरीरसमयप्रबद्धाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धवन्तः । तत्र प्रकृतिप्रदेशबन्धौ योगतः स्याताम्, स्थित्यनुभागबन्धौ कषायतः स्याताम् । तत्र विवक्षितसमये बद्धस्य उत्कृष्टस्थितिबन्धस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममात्रस्य प्रथमसमयादारभ्य सप्तसहस्रवर्षकालपर्यन्तमाबाधेति त्यक्त्वा शेषस्थितिप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यन्तं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकाः परमाणुपुञ्जाः निषेका भवन्ति । तद्रचनाकरणविधानं तावदङ्कसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते । तद्यथा—विवक्षितैकसमये बद्धकार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदम् । स । अङ्कसंदृष्ट्या इदं ६३०० ।

औदारिक आदि शरीरोंकी स्थितियोंका जो-जो गुणहानि आयाम है, उसे दोसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी दो गुणहानि होती है। उसीका दूसरा नाम निषेकहार है। अंकसंदृष्टिसे औदारिक शरीरके समय प्रबद्धका द्रव्य ६३००। स्थिति ४८। गुणहानि ८। नानागुणहानि ६। दो गुणहानि १६। अन्योन्याभ्यस्त राशि ६४। औदारिक शरीरके समयप्रबद्ध, प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धको लिये होते हैं। उनमें-से प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगसे तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषायसे होते हैं। विवक्षित समयमें बँधे कार्मणके समयप्रबद्धका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है। उसमें प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष काल पर्यन्त आबाधाकाल है। उसे छोड़कर शेष स्थितिके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त परमाणुपुंजरूप निषेक होते हैं। प्रत्येक निषेककी स्थिति अपने-अपने काल प्रमाण होती है। उनकी रचनाका विधान अंक संदृष्टिसे दिखाते हैं—विवक्षित एक समयमें बँधे कार्मणके समय प्रबद्धका द्रव्य अंकसंदृष्टिसे ६३०० है।

रूऊणण्णोण्णब्भत्थरहिदवव्वं तु चरिमगुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ॥

एंदिल्लि कार्म्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिमुं पेळ्द पल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रदमदक्कंकसंदृष्टि ६४। ई राशियं रूपहीनं माडि समयप्रबद्धद्रव्यमं भागिसिदोडे तदेकभागं ६३०० । १ पूर्व्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहं छे--व छे मिदक्कंकसंदृष्टि ६ ईयारं गुण- ५
६३
हानिगळोलु चरमगुणहानिसंबंधिद्रव्यमक्कुं । १०० । मेले प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुण- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
क्रममक्कुमंतागुत्तिरलु प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यमं नोडलु रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गजनितान्योन्याभ्यस्तराशियर्द्धमिदं गुणिसिद चरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणमक्कुं १००
६४ सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासं ।—
२

रूऊणण्णोण्णब्भवहिदवव्वं तु चरिमगुणदव्वं । होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति । १०

इति प्रागुक्तपल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रेण कार्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिना अङ्कसंदृष्ट्या चतुःषष्ट्यात्मकेन ६४रूपोनेन भक्तैकभागः । ६३०० । पूर्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहस्य । छे व छे ।
६३
अङ्कसंदृष्ट्या षडात्मकस्य ६ चरमगुणहानिसंबधिद्रव्यं भवति १०० । अधः प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमो भवति । तथा सति प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्याद्रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं भवति १०० । ६४ । १५
२

'एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग द्रव्यमें देनेसे अन्तिम गुणहानिका द्रव्य आता है । उससे आदिम गुणहानि पर्यन्त द्रव्य दूना-दूना होता है ।'

इस नियमके अनुसार पूर्वोक्त पल्यकी वर्गशलाकाराशिसे भाजित पल्य प्रमाण कार्मण शरीरकी अन्योन्याभ्यस्तराशि है । जो अंक संदृष्टिसे ६४ कल्पना की गयी है, उसमें एक कम करके ६३०० में भाग देनेपर नानागुणहानि ६ में-से अन्तिम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्य १०० होता है । आगे प्रथम गुणहानि पर्यन्त यह द्रव्य दूना-दूना क्रमसे होता है । ऐसा होनेपर एक कम नानागुणहानिशलाका प्रमाण दो-दोको परस्परमें गुणा करनेसे जो अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधा प्रमाण होता है, उससे अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है । सो एक कम नाना गुणहानि पाँच, उतने प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे २×२×२×२×२ = बत्तीस आता है । सो यह अन्योन्याभ्यस्तराशि चौंसठका आधा है । इससे अन्तिम गुणहानिके द्रव्य सौको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य

१०० | प्रथमगुणहानिद्रव्यमनदं ३२००। 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि' एंदनेकगुणहान्यायामदिंदं ८ भागिसुतिरलु मध्यमधनमें बुदक्कुं ४०० तं रूऊण अद्धाण अद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं एंदा मध्यमधनमं रूपोनगुणहान्यर्द्धदिंदं हीनमप्प निषेकहारदिंदं भागिसुतिरलु तत्प्रथमगुणहानि संबंधिप्रचयमक्कुं ४०० — मिदनपवर्तितलब्धमक्कुं ३२

१६ — ८ / २

मिदं द्विगुणगुणहानिदिंदं गुणिसुतिरलु ३२। १६। प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकमक्कुं। ५१२। ततो विसेसहीणकमं मेले मेले तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यंतमेकैकचयहीनमागुत्तं पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितचयप्रमाणमक्कुं ३२ ८ मिदं गुणिसिदोडिनितक्कुं २८८। प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासमिदु

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः।

१०० | प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं ३२००, अद्धाणेण सव्वधणे खण्डिदे मज्झिमधणमागच्छदीति गुणहान्यायामेन ८भक्ते सति मध्यमधनं भवति। ४००। तं रूऊणअद्धाणअद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयमिति तन्मध्यमधनं रूपोनगुणहान्यर्धेन हीननिषेकहारेण भक्तं सत् तत्प्रथमगुणहानिसम्बन्धिप्रचयो भवति। ४००

१६–८ / २

अयं चापवर्तितो ३२

निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या गुणितः ३२। १६ प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति ५१२ 'ततो विसेसहीणकमं' उपर्युपरि तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यन्तमेकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भवति

— ८

इति रूपाधिकगुणहानिगुणितचयप्रमाणो भवति ३२। ८ अयं च गुणित एतावान् भवति। २८८। प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासः—

बत्तीस सौ होता है। सर्व गुणहानियोंका द्रव्य अन्तसे लेकर आदि पर्यन्त क्रमसे १००,२००, ४००,८००,१६००,३२०० होता है। इस तरह प्रथम गुणहानिका द्रव्य ३२०० है। 'गुणहानि-आयामसे सर्वधनमें भाग देनेपर मध्यम धन आता है।' इस सूत्रके अनुसार गुणहानि आयाम ८ से भाग देनेपर मध्यधन ४०० होता है। उसे एक कम गुणहानिके आधेसे हीन निषेकहारसे भाग देनेपर उसका प्रथम गुणहानि सम्बन्धी प्रचय होता है। इस नियमके अनुसार मध्यधनमें एक कम गुणहानि ८—१ = ७/२ के आधेसे कम निषेकहार १६—१/२ = १२½ का भाग देनेपर ३२ चय होता है। इस चयको दो गुणहानिरूप निषेकहारसे गुणा करनेपर ३२ × १६ प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक ५१२ होता है। उससे ऊपर-ऊपर उस गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त एक एक चय हीन क्रमसे जाकर अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छमात्र चय हीन होता है। इस प्रकार एक अधिक गुणहानिसे गुणित चयप्रमाण ३२×९ = २८८

२८८ | द्वितीयगुणहानिद्रव्य १६०० मिदनद्धाणेणेत्यादियिंदं मध्यमधनमिदि २०० मध्यमधनमं
३२० | रूऊणद्धाणद्धेणेत्यादियिंदं भागिसुत्तिरलु तच्चयमक्कु २०० मिदं भागिसि
३५२ |
३८४ |
४१६ |
४४८ | बंद लब्ध १६ मी चयमं निषेकहारदिंदं गुणिसुत्तिरलु १६।१६। द्वितीयगुणहानि
४८० | प्रथमनिषेकमक्कुं २५६। मेळेतन्नेकैकविशेषहीनक्रमदिंदं पोगि चरमनिषेकदोळु तन्न
५१२ | रूपोनगच्छमात्र विशेषहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणित तन्न चयप्रमाण ५

१६८ मक्कुं १४४। तृतीयगुणहानिद्रव्यम ८०० निदं गुणहानियिंदं भागिसि मध्यमधन १०० मिदं रूपोनगुणहान्यर्द्धहीनद्विगुणगुणहानियिंदं भागिसुत्तिरलु तच्चय १०० मदं दोगुण-
२५
२
हानियिंदं गुणिसुत्तिरलु प्रथमनिषेकमक्कुं १२८ मेले मेले तन्नेकैकचयहीनक्रमदिंदं पोगि चरम-

---

२८८ | द्वितीयगुणहानिद्रव्ये १६०० गुणहान्यायामेन खण्डिते मध्यमधनं २००। इदं पुनः
३२० | रूपोनगुणहान्यायामार्धहीननिषेकहारेण भक्तं सद् द्वितीयगुणहानिप्रचयो भवति २०० स एव १०
१६-८
२
३५२ |
३८४
४१६ | द्विगुणगुणहान्या गुणितो द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति २५६। उपरि निजैकैकविशेषहीन-
४४८ | क्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रस्वविशेषा हीना भवन्ति इति रूपाधिकगुणहानिगुणित-
४८० | निजप्रचयप्रमाणो भवति १४४। तृतीयगुणहानिद्रव्ये ८०० गुणहान्या भक्ते मध्यमधनं १००
५१२ | इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं प्रचयः १०० अयं दोगुणहान्या गुणितः प्रथम-
२५
२

निषेकः १२८। क्रमेणोपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिक- १५
गुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणो भवति ८। ८ गुणितः ७२। एवमनेन क्रमेण गत्वा चरमगुणहानिद्रव्ये १००

होता है। प्रथम गुणहानिकी निषेक रचना इस प्रकार जानना ५१२।४८०।४४८।४१६।३८४। ३५२।३२०।२८८।

इसी तरह द्वितीय गुणहानिके द्रव्य १६०० को गुणहानि आयामसे भाग देनेपर मध्य- धन २०० होता है। इसको एक कम गुणहानि आयामसे हीन निषेकहारसे भाग देनेपर द्वितीय २० गुणहानिका प्रचय होता है १६—$\frac{१}{२}$ = १२$\frac{१}{२}$ से २०० में भाग देनेपर चय १६ होता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक १६×१६ = २५६ होता है। इससे ऊपर द्वितीयादि निषेक अपना एक-एक चय हीन क्रमसे जाकर अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छ प्रमाण अपने चय हीन होते हैं। इस प्रकार एक अधिक गुणहानिसे गुणित अपने चय प्रमाण अन्तिमनिषेक होता है—१६×९ = १४४। तीसरी गुणहानिके द्रव्य २५ ८०० में गुणहानिका भाग देनेपर मध्यमधन १०० होता है। इसे एक कम गुणहानिसे

निषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणमक्कु ८८ मिदं गुणिसिदोडिनितक्कु ७२ मितु क्रमदिंदं पोगि चरमगुणहानिद्रव्य १०० मिदं मुन्निनंते गुणहानियिंदं भागिसिदोडे लब्धं मध्यमधनमक्कु १०० मदं रूपोनगुणहान्यर्द्धहीनदोगुण-
८
हानियिं भागिसुत्तिरलु चरमगुणहानिसंबंधिगच्छमक्कु १०० मिदनपवर्त्तिसिदोडिनितक्कु १
८।२५
२

मिदं दोगुणहानियिंदं गुणिसुत्तिरलु चरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणमक्कु १६ मिल्लिदं मेले मेले तन्नेकैकचयहीनक्रमदिंदं पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुण-हानिगुणितस्वप्रचयप्रमाण १।९। चरमनिषेकमक्कु ९। मितु द्वितीयादिगुणहानिगळोळु गुणहीनक्रमं चरम गुणहानिपर्यंतं काणल्पट्टुदरिंदं गुणहानित्वमन्वर्थमक्कुं। प्रथमगुणहानिगे तु गुणहानित्वमेनल्बेडेकेंदोडे मुख्यमप्प गुणहानित्वमिल्लदिद्दोडं मेलण गुणहानित्वक्क मिमित्तमप्प

---

१० प्राग्वद्गुणहान्या भक्ते लब्धं मध्यमधनं १००। इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत्तच्चरमगुण-
८
हानिसम्बन्धिचयः १०० अपवर्तितोऽयं १, दोगुण ८ हान्या गुणितः चरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणं भवति
८।२५
२

मा.दि.ग्रंथमाला आगासं श्री सुविधिसागर जी महाराज

१६। तदुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिनिषेकरूपोनगच्छमात्रचयहीनं भवतीति रूपाधिकगुण-हानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणं १।९ चरमनिषेको भवति। एवं द्वितीयादिगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यन्तासु गुणहीनक्रमो दृश्यते ततो गुणहानिरन्वर्थनामा स्यात्। तर्हि प्रथमगुणहानेः कथं गुणहानित्वमिति चेत्सत्यं, मुख्यत्वेन गुणहानित्वाभावेऽपि उपरितनीनां गुणहानिनिमित्तभूतविशेषहीनत्वस्य सद्भावात् तस्या उपचारेण

हीन दो गुणहानिका भाग देनेपर १०० − $\frac{३५}{२}$ = चय ८ होता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर १६ × ८ = १२८ प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। इसमें ऊपर-ऊपर अपना एक-एक चय हीन करते-करते अन्तिम निषेकमें एक कम गच्छमात्र हीन होकर एक अधिक गुण-हानिसे गुणित अपने चय प्रमाण अन्तिम निषेक ९ × ८ = ७२ होता है। इस प्रकार इसी क्रमसे जाकर अन्तिम गुणहानिके द्रव्य १०० को पहलेकी तरह गुणहानि ८ से भाग देनेपर मध्यम $\frac{३५}{२}$ होता है। इसमें एक कम गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिका भाग देनेपर अन्तिम गुणहानिसम्बन्धी चय होता है। इसे अपवर्तित करनेपर चयका प्रमाण एक होता है। दो गुणहानिसे इसे गुणा करनेपर अन्तिम गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण १६ होता है। इससे अपना एक-एक चय क्रमसे हीन करते जाकर अन्तिम निषेक एक कम गच्छमात्र चयोंसे हीन होता है। इस प्रकार एक अधिक गुणहानिसे गुणित अपने चयप्रमाण ९ × १ = ९ अन्तिम निषेक होता है। इस प्रकार द्वितीय आदि गुणहानिसे लेकर अन्तिम गुणहानि पर्यन्त द्रव्यादि गुणकाररूप हानिको लिये हुए होते हैं। इसलिए इनका गुणहानि नाम सार्थक है। शंका—तब पहली गुणहानिमें गुणहानिपना कैसे घटित होता है?

---

१. ब °दिगुणहानिपर्यन्तासु गुणहानिक्रमस्य वर्शनात् गुण°। २. मुख्यत्वेन गुणहानित्वं नास्ति तथापि उपरितनीनां गुणहानित्वनिमित्तभूतविशेषहीनत्वमस्तीति तस्या अप्युप-।

विशेषहीनत्वमुंटप्पुदरिंदमुपचारदिंद गुणहानित्वं पेळल्पट्टुदु ।

इंतिवरोळ समयप्रबद्धद अष्टगुणहानिगत सर्वनिषेकविन्यास रचनेयिंतु

२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

तत्सिद्धेः । एवमेकैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्वनिषेकविन्यासरचनेयम् ।

	२२८	१४४	७२	३६	१८	९	
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०	
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११	
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२	
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३	
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४	
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५	
	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६	
६३००	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००	एकत्र ६३००

समाधान—उसमें यद्यपि मुख्य रूपसे गुणहानिपना नहीं है, तथापि ऊपरकी गुण-हानियोंमें निमित्तभूत चयकी हीनताका सद्भाव होनेसे उसे उपचारसे गुणहानिपना सिद्ध है।

इस प्रकार एक समयप्रबद्धकी समस्त गुणहानियोंके सब निषेकोंकी रचना जानना।

२२८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१७६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

इंतु प्रथमादिगुणहानिद्रव्यंगळं तद्विशेषंगळुं निषेकंगळुमनर्द्धार्द्धक्रमंगळेंदु निश्चैसुवुदु । इल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे संतम्म गुणहानिय चरमनिषेकदोळु संतम्म चयमनोंदर्द कळयलु मेलण मेलण गुणहानिगळ प्रथम प्रथमनिषेकंगळप्पुवु ।

इंतौदारिकादितैजसपर्य्यंतमाद नोकर्म्मसमयप्रबद्धंगळगे संतम्म द्रव्यस्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि निषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणनरिदु निषेकरचनेयं माळ्पुदुमिल्लियों दु विशेषमुंटदावुदेंदोडे नाल्कं शरीरसमयप्रबद्धंगळगे निषेकरचनेयं माळ्पागळाबाधावर्जितसंसम्मस्थितिप्रथमसमयमोदल्गों डु निषेकरचनेयं बुबिल्ल । औदारिकादिशरीरंगळगे मुंदे विशेषं पेळल्पडुगुमप्पुदरिदं ।

इन्नौदारिकादिशरीरंगळर्थसंदृष्टिसंक्षेपदिंदं तोरल्पडुगुमदेंतेंदोडे—मुंनं कार्म्मणशरीरस्थितिनिषेकरचनेगर्थसंदृष्टियोळ् पेळ्दंते 'रूऊणण्णोण्णब्भत्थरहिदेत्यादि' विधानदिंदं स्वस्थितिय रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं द्रव्यमं भागिसुसिरलु चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुं स ā ā ख ख ई द्रव्यमं लघुसंदृष्टिनिमित्तमागि स एंदु बरेयुदु । स । रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं भागिसि २ दु स

अ

एवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषाः निषेकाश्च अर्धार्धक्रमा[1] इति निश्चेतव्याः । अयं तु विशेषः । स्वस्वगुणहानिचरमनिषेके स्वस्वैकैकचयेऽपनीते उपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमप्रथमनिषेको भवति । एवमौदारिकादितैजसान्तानां नोकर्मसमयप्रबद्धानां तु प्रागुक्तं स्वस्वस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं स्मृत्वा स्वस्वस्थितिप्रथमसमयादेव आरभ्य निषेकरचना कर्तव्या, औदारिकादिशरीराणां अग्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात् । अधुना अर्थसंदृष्ट्या दर्श्यते तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धं द्रव्यमिदं स ā ā ख ख लघुसंदृष्टिनिमित्तं स इति लिखित्वा (स) रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते तच्चरमगुणहानिद्रव्यं भवति ।

इस प्रकार प्रथम आदि गुणहानिका द्रव्य, उसका चय और निषेक क्रमसे आधे-आधे होते हैं । इतना विशेष है कि अपनी-अपनी गुणहानिके अन्तिम निषेकमें अपना-अपना एक चय घटानेपर ऊपर-ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक होता है । इस प्रकार औदारिकसे तैजस पर्यन्त नोकर्म समयप्रबद्धोंकी तो अपनी-अपनी स्थिति सम्बन्धी गुणहानि, नानागुणहानि, निषेकहार और अन्योन्याभ्यस्तराशिके प्रमाणका स्मरण करके अपनी-अपनी स्थितिके प्रथम समयसे ही निषेक रचना करनी चाहिए । आगे औदारिक आदि शरीरोंके सम्बन्धमें ऐसा ही कहेंगे । अब अर्थसंदृष्टिसे दिखाते हैं—

कार्मणके समयप्रबद्धका द्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण जानना । उसमें एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर अन्तिम गुणहानिका द्रव्य होता है । उससे प्रथम गुणहानि पर्यन्त दूने-दूने क्रमसे जाकर प्रथम गुणहानिका द्रव्य अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधेसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना होता है । इसको गुणहानिका भाग देनेपर मध्यमधन होता है । उसमें एक कम गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम गुणहानि सम्बन्धी चयका प्रमाण होता है । इसको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक होता है । उससे अपने अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक चय हीन क्रमसे जाते हुए अन्तिम निषेकमें एक कम गुणहानि आयाम मात्र चयके घटनेपर एक अधिक

---

१. ब °क्रमात् निश्चेतव्यम् ।

चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमल्लिवं अल्लिकळु प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमदिवं पोगि प्रथम-
गुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यमं नोडलु अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धगुणितप्रमाणमक्कु स अ

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मिदनद्धाणेण सव्वधण खंडितेत्यादिविधानदिदं गुणहानियिवं भागिसलु मध्यमधनमक्कु स अ

मी मध्यमधनमं रूवूण अद्धाण अद्धेण ऊणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदेपचयमेंदितु मध्यम-
धनमं रूपोनगुणहान्यर्द्धोनद्विगुणगुणहानियिवं भागिसुत्तिरलु प्रथमगुणहानिसंबंधिचयमक्कु ५
स अ मिवं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयमंबु द्विगुणगुणहानियिदं गुणिसुत्तिरलु

प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकमक्कु स अ गु २ तत्तो विसेसहीणकममेंबु तन्न चरम-

निषेकपर्य्यंतमेकैक स्वचयहीनमागुत्तं पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगुणहान्यायाममात्रचयहीनमप्पु-

---

स । ततः प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यादन्योन्याभ्यस्त-

अ

राश्यर्धगुणितप्रमाणं भवति । स । अ । इदं पुनः गुणहान्या भक्तं सत् मध्यमधनं भवति स । अ तच्च १०
अ । २ अ । २ गु

स । अ

रूपोनगुणहान्यर्धोनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसम्बन्धिचयो भवति । अ । २ । गु । गु ३ ।
२

स । अ । गु २

अयं च दोगुणहान्या गुणितः सन् प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । अ । २ गु । गु । ३ ततः स्वचरम-
२

निषेकपर्यन्तं एकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगुणहान्यायाममात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुण-

---

गुणहानिसे गुणित चयप्रमाण अन्तिम निषेक होता है। इसी प्रकार द्वितीय आदि गुणहानियों-
में अपने-अपने द्रव्यकी निषेक रचना करना। अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणहानिसे भाजित १५
करनेपर मध्यमधन होता है। इसमें एक कम गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिसे भाग
देनेपर उसकी चरम गुणहानिका चय होता है। इसको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम
निषेक होता है। उससे ऊपर अपने एक-एक चय हीन क्रमसे जाकर अन्तिम निषेकमें एक
कम गच्छ प्रमाण चय हीन होता है तब एक अधिक गुणहानिसे गुणित अपने चय प्रमाण
अन्तिम निषेक होता है। इस प्रकार कार्मणशरीरकी सर्वोत्कृष्ट स्थितिगत एक समयप्रबद्धकी २०

१. ब प्रथमनिषेको भवति चयो भवति ।

दरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वचयप्रमाणमक्कु स अ गु मो प्रकारदिं
अ २ गु गु ३
२

द्वितीयादिगुणहानिगळोळु निषेकंगळोळु तंतम्म द्रव्यंगळ्गे रचनेयं माडि चरमगुणहानिद्रव्यमनिंद
स नट्ठाणेत्यादिविधानदिंदं गुणहानियिंदं भागिसलु मध्यमधनमक्कु स मी मध्यम-
अ अ गु
धनमं रूऊणद्धाणब्भेणेत्यादिविधानदिं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहानियिंदु भागिसुत्तिरलु
५ तच्चरमगुणहानिचयमक्कु । स मी चयमं दोगुणहानियिंदं गुणिसलु प्रथम-
अ गु गु ३
२
निषेकमक्कुं स गु २ तत्तो विसेसहीणक्कमें दु मेले तन्नेकैकचयहीनमागुत्तं
अ गु गु ३
२
पोगि चरमनिषेकदोळु रूपोनगच्छमात्रचयहीनमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्रमितं

प्राप्तिस्थान : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स । अ । गु
हानिगुणितस्वचयप्रमाणो भवति । अ । २ गु । गु ३ अनेन प्रकारेण द्वितीयादिगुणहानिषु स्वस्य द्रव्यस्य
२
स स
निषेकरचनां कृत्वा चरमगुणहानिद्रव्यमिदं अ, गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं भवति अ । गु । इदं च रूपोन-
स
१० गुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत् तच्चरमगुणहानिचयो भवति अ । गु । गु । ३ । अयं च दोगुण-
स । गु २ ।
हान्या गुणितः प्रथमनिषेको भवति—अ । गु । गु । ३ तत उपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरम-
२

समस्त गुणहानियोंकी रचना जानना। इस प्रकार प्रथम आदि गुणहानियोंका द्रव्य, उनका चय और निषेक उत्तरोत्तर आधे-आधे होते जाते हैं ॥२५३॥

विशेषार्थ—कार्मण शरीरकी स्थितिमें आबाधाकाल भी सम्मिलित है। अतः आबाधा
१५ रहित स्थितिमें गुणहानिका जितना प्रमाण होता है, उतने समय पर्यन्त प्रथम गुणहानि कही जाती है। तथा विवक्षित समयप्रबद्धके जितने परमाणु प्रथम समयमें निर्जीर्ण होते हैं, उनका नाम प्रथम निषेक है। दूसरे समयमें जितने परमाणुओंकी निर्जरा हो, उनका नाम द्वितीय निषेक है। इस प्रकार प्रथम गुणहानिके अन्तपर्यन्त जानना। उसके बाद अनन्तर समयसे लगाकर द्वितीय गुणहानि होती है। उसमें भी उक्त प्रकारसे प्रथम निषेक आदि जानना।

चरमनिषेकप्रमाणमेवं स । गु / अ गु गु ३/२ इदं कार्मणशरीरसर्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयबद्ध-

समयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासमिदं :— ५

स अ गु / अ २ गु गु ३ / ० २ / ० / ० / स अ गु २ / अ २ गु गु ३ / २	स अ गु / अ २ । २ । गु गु ३ / ० २ / ० / ० / स अ गु २ / अ २ । २ । गु गु ३ / २	० ० ० / छे व छे / ० ० ० ०	स २ गु / अ गु गु ३ / ० २ / ० / ० / स २ गु २ / अ गु गु ३ / २	स गु / अ गु गु ३ / ० २ / ० / ० / स गु २ / अ गु गु ३ / २
स अ / अ २	स अ / अ २ । २	० ० ० ०	स २ / अ	स २ / अ
प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि		द्वि चरम गुणहानि	चरम गुणहानि

गुरुदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स गु १५

निषेको रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्रमितश्चरमनिषेको भवति अ । गु ।

गु ३/२ एवं कार्मणशरीरसर्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासोऽयं.....

स । अ । गु / अ । २ । गु । गु । ३ / ० २ / ० / ० / स । अ । गु २ / अ । २ । गु । गु ३ / स । अ २ / अ । २	स । अ । गु । / अ । २ । २ । गु । गु । ३ / ० २ / ० / ० / स । अ । गु । २ / अ । २ । २ गु । गु ३ / स , अ २ / अ , २ , २	० ० ० / छे व छे / ० ० ०	स , २ , गु / अ , गु , गु ३ / ० २ / ० / ० / स , २ , गु , २ , / अ गु , गु , ३ , / स २ २ / अ ,	स , गु , / अ , गु , गु , ३ , / ० २ / ० / ० / स , गु , २ / अ , गु , गु , ३ / स २ / अ ,

इंतो प्रथमादिगुणहानिद्रव्यंगळुं विशेषंगळुं निषेकंगळुमर्द्धार्द्धक्रमंगळरियल्पडुवुवु ।
अनंतरमौदारिकादिसमयप्रबद्धंगळ्गे बंधोदयसत्वाऽवस्थेयोळु द्रव्यप्रमाणमं पेळ्दपं :—

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥२५४॥

एकं समयप्रबद्धं बध्नाति एक उदेति चरमे । गुणहानीनां द्वयर्द्धः समयप्रबद्धः भवेत्सत्त्वं ॥

औदारिकादिशरीरंगळोळु तैजसकार्म्मणशरीरंगळ्गनादिसंबंधत्वदिंद सर्व्वदा बंधोदयसत्त्वसंभवमप्पुदरिंदं जीवं मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तकमप्प तैजसेयमुं कार्म्मणेयमुं प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धमं बध्नाति तैजसशरीररूपतेयुमं ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्मस्वरूपतेयमनेयिसिदुगुं । प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धमुदेति फलदानपरिणतेयिंदं परिणमिसि स्वफलमं कोट्टु तैजसशरीररूपतेयुमं कर्मरूपतेयुमं त्यजिसि गलिसुगुमेंबुदर्थं ।

इत्येवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषनिषेकाश्च अर्धार्धक्रमा ज्ञातव्याः ॥२५३॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धानां बन्धोदयसत्त्वावस्थायां द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

औदारिकादिशरीराणां मध्ये तैजसकार्मणशरीरयोरनादिसंबद्धत्वेन सर्वदा बन्धोदयसत्त्वसंभवात् जीवो मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तं तैजसं कार्मणीयं च प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धं बध्नाति—तैजसशरीररूपतां कार्मणवर्गणाः कार्मणशरीररूपतां च प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धमुदेति च स्वफलदानपरिणत्या परिणम्य फलं दत्त्वा तैजसशरीररूपतां कार्मणरूपतां च त्यक्त्वा गलतीत्यर्थः । विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमनिषेके किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वद्रव्यं भवति, परमार्थतस्तु एतावत्सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयं संभवतीत्यर्थः । औदारिकवैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धानां विशेषोऽस्ति । स कः ? तच्छरीरद्वयग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वायुश्चरमसमयपर्यन्तं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टो जीवः प्रतिसमयमेकैकं तच्छरीरसमयप्रबद्धं बध्नाति

---

२० प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य, चय आदि अपनी-अपनी पूर्व गुणहानिसे उत्तरोत्तर आधा-आधा होता जाता है । इसी तरह औदारिक आदिका भी जानना । किन्तु उनकी स्थितिमें आबाधाकाल नहीं होता, अतः अपनी स्थितिके प्रथम समयसे ही निषेक रचनाका क्रम चलता है ।

आगे औदारिक आदि समयप्रबद्धोंके बन्ध, उदय और सत्त्व अवस्थामें द्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

२५ औदारिक आदि पाँच शरीरोंमें तैजस और कार्मण शरीरका जीवके साथ अनादि सम्बन्ध होनेसे सर्वदा बन्ध, उदय और सत्त्व रहता है । अतः जीव मिथ्यादर्शन आदि परिणामके निमित्तसे प्रतिसमय तैजस और कार्मण सम्बन्धी एक-एक समयप्रबद्धको बाँधता है । अर्थात् पुद्गलवर्गणाओंको तैजस शरीररूप और ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूप परिणमाता है । प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका उदय होता है और अपने फल देने रूप
३० परिणतिसे परिणमन करके फल देकर तैजस शरीररूपता और कार्मणरूपताको छोड़कर निर्जीर्ण होते हैं । विवक्षित समयप्रबद्धकी स्थितिके अन्तिम निषेकमें कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्य सत्तामें रहता है । परमार्थसे तो इतने द्रव्यकी सत्ता प्रतिसमय रहती है । औदारिक और वैक्रियिक शरीरके समयप्रबद्धोंमें कुछ विशेषता है । उन दोनों शरीरोंके ग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुके अन्तिम समय पर्यन्त शरीरनामकर्मके
३५ उदयसे विशिष्ट जीव प्रतिसमय उस शरीरका एक-एक समयप्रबद्ध बाँधता है अर्थात् उस समयप्रबद्धको औदारिक या वैक्रियिक शरीररूपसे परिणमाता है ।

विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमस्थितिनिषेकदोळु किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमय-प्रबद्धमात्रसत्वद्रव्यमक्कुं परमार्त्थवृत्तियिदं इनितु सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयं संभविसुगुमें बुदर्थं ।

औदारिकवैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धंगळ्गे विशेषमुंटदें तेंदोडे तच्छरीरद्वयग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु स्वायुश्चरमसमयपर्यंतं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टजीवं प्रतिसमयमेकैकतच्छरीरसमय-प्रबद्धमं बध्नाति तत्तच्छरीरस्वरूपतेयनेय्दिसुगुमुदयमंतल्तु । मत्तें तेंदोडे शरीरग्रहणप्रथमसमयदोळु बद्धमाद समयप्रबद्धदोळु प्रथमनिषेकमों बुदयिसुगुं । तदेकदेशस्तदुग्रहणेन गृह्यते एंदितौपचारिकन्यायमनाश्रयिसि प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेति एंदितु पेळल्पटटुदु । द्वितीयसमयदोळु प्रथमसमयसमयप्रबद्धद द्वितीयनिषेकमुं द्वितीयसमयसमयप्रबद्धद प्रथमनिषेकमुमुदयिसुगुमितु तृतीयादिसमयंगळोळु मुंपेळ्दंतेकैकनिषेकवृद्धियिदमुदयिसुगुं चरमसमयदोळुदयमुं सत्वसंचयमुं द्वयर्द्धहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रमक्कुमाहारकशरीरक्कमुमी क्रममेयक्कुमिंतु विशेषं आहारकशरीर-ग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु स्वस्थितियंतर्मुहूर्त्तकालावसानसमयदोळु किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानि-गुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यक्कुदयमुं सत्वसंचयमुं युगपत्सवक्कुमें बी विशेषमरियल्पडुगुं ।

मार्गदर्शक -- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज विशेषमं पेळ्दपं ।

तत्तच्छरीररूपेण परिणमयतीत्यर्थः । तर्हि उदयः कियान् ? इति चेदुच्यते–शरीरग्रहणप्रथमसमये यद्बसमय-प्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः उदेति तदेकदेशस्य उपचारेण प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेतीति कथनात् । द्वितीयसमये प्रथमसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकः, द्वितीयसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः एवं द्वौ उदयतः । एवं तृतीयादिसमयेषु प्राग्वदेकैकनिषेकवृद्धयोदयक्रमेण चरमसमये उदयः सत्त्वसंचयश्च युग-पद्द्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रो भवति । आचार्येणापि तथा वक्ष्यते । आहारकशरीरस्याप्येवमेव । अयं तु विशेषः, तच्छरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थित्यन्तर्मुहूर्तकालावसानसमये किंचिदूनद्वयर्धगुणहानि-गुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्योदयः सत्वसंचयश्च युगपद्भवतीति विशेषो ज्ञातव्यः ॥२५४॥ अथौदारिक-वैक्रियिकशरीरयोः स्थितिबन्धोदयसत्वविशेषमाह—

शंका—तब उदय कितना होता है ?

समाधान—शरीरग्रहणके प्रथम समयमें बद्ध समयप्रबद्धका प्रथम निषेक उदयमें आता है। समयप्रबद्धके एकदेशको उपचारसे समयप्रबद्ध मानकर यह कहा है कि प्रतिसमय एक समयप्रबद्धका उदय होता है। दूसरे समयमें प्रथम समयमें बँधे समयप्रबद्धका दूसरा निषेक और दूसरे समयमें बँधे समयप्रबद्धका प्रथम निषेक इस तरह दो निषेकोंका उदय होता है। इसी तरह तीसरे आदि समयोंमें पहलेकी तरह एक-एक निषेककी वृद्धिके उदयके क्रमसे अन्तिम समयमें उदय और सत्त्वका संचय एक साथ डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र होता है। आचार्य भी आगे ऐसा कहेंगे। आहारक शरीरका भी ऐसा ही है। किन्तु यह विशेष है कि आहारक शरीरके ग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अपनी स्थिति अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तिम समयमें कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्र द्रव्यका उदय और सत्त्वसंचय एक साथ होता है ॥२५४॥

आगे औदारिक और वैक्रियिक शरीरोंके स्थितिबन्ध उदय और सत्त्वमें विशेष कहते हैं—

---

१. ब भवति । आहारकशरीरस्य तु तं ।

णवरि य दुसरीराणं गलिदवसेसाउमेत्तट्ठिदिबंधो।
गुणहाणीण दिवड्ढं संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

मार्गदर्शक : आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषोऽस्ति द्विशरीरयोर्गलितावशेषायुर्मात्रः स्थितिबंधः। गुणहानीनां द्वयर्धः संचय-उदयश्चचरमे ॥

औदारिकवैक्रियिकशरीरद्वयक्कं शरीरग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु स्वस्थितिचरमसमय-पर्य्यंतं बध्यमानशरीरसमयप्रबद्धंगळगे गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रस्थितिबंधमक्कुमवेंतेंदोडे शरीरग्रहणप्रथमसमयदोळ् कट्टिद समयप्रबद्धक्के संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रमक्कुं। द्वितीयसमयदोळ् कट्टिद समयप्रबद्धक्के एकसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रस्थितिबंधमक्कुं। तृतीयसमयदोळ् कट्टिद समयप्रबद्धक्के द्विसमयोनस्वायुस्थितिमात्रस्थितिबंधमक्कुं। इंतु चतुर्थ्यादयुत्तरोत्तरसमयगळोळु कट्टिद समयप्रबद्धंगळगे स्थितिबंधंगळु गलितावशेषायुःप्रमितंगळेंदरियल्पडुवुवु। चरमसमयदोळु कट्टिद समयप्रबद्धक्के स्थितिबंधमेकसमयमात्रमक्कुं प्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं कट्टिद समयप्रबद्धंगळगे स्वायुरवसानसमयमनतिक्रमिसि स्थितिसत्वासंभवमप्पुदरिंदं।

चरमसमयदोळ्गलितावशेषसर्वसमयप्रबद्धंगळ्किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसंचयंगळो-म्मोंदलोळे उदयमक्कुमदरिना चरमसमये दत्तणि मुंदणसमयदोळु जीवक्के तच्छरीरद्वयदोळिरं-विल्लवप्पुदरिंदं। देवर्क्कंरोळं नारकरोलं वैक्रियिकशरीर संचयमक्कुं, मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळ-मौदारिकशरीरसंचयमक्कुमौदारिकशरीरसंचयमावुदेयोळें तप्पसामग्रियप्पावश्यकंगळनुळ्ळनोळुत्कृष्ट-संचयमक्कुमें दोडे :—

औदारिकवैक्रियिकशरीरद्वयस्य शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यन्तं बध्यमानशरीर-समयप्रबद्धानां स्थितिबन्धः गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवति। तद्यथा—शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रः। द्वितीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः, एकसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः। तृतीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः द्विसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः। एवं चतुर्थ्यादयुत्तरोत्तरसमयेषु बद्धानां समयप्रबद्धानां स्थितिबन्धो गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवन् चरमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबन्धः एकसमयमात्रो भवति। प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यन्तं बद्धानां समयप्रबद्धानां स्वायुरवसानसमयमतिक्रम्य अवस्थित्यसंभवात् चरमसमये गलितावशेषसर्वसमय-प्रबद्धानां किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्राणां देवनारकयोर्वैक्रियिकशरीरस्य तिर्यग्मनुष्ययोरौदारिकशरीरस्य च

औदारिक और वैक्रियिक शरीरका शरीरग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अपनी स्थितिके अन्तिम समय पर्यन्त बँधनेवाले समयप्रबद्धोंका स्थितिबन्ध गलनेसे जितनी आयु शेष रहती है,उतनी स्थितिको लिये हुए होता है। जैसे, शरीरग्रहणके प्रथम समयमें बद्ध समयप्रबद्धका स्थितिबन्ध अपनी सम्पूर्ण आयुकी स्थिति प्रमाण होता है। दूसरे समयमें बद्ध समयप्रबद्धका स्थितिबन्ध एक समय कम अपनी आयुकी स्थितिमात्र होता है। तीसरे समयमें बद्ध समय-प्रबद्धका स्थितिबन्ध दो समय कम अपनी आयुकी स्थिति प्रमाण होता है। इसी तरह चतुर्थ आदि उत्तरोत्तर समयोंमें बद्ध समयप्रबद्धोंका स्थितिबन्ध गलनेसे शेष रही अपनी आयुकी स्थिति प्रमाण होता है। तथा अन्तिम समयमें जो समयप्रबद्ध बँधता है,उसका स्थितिबन्ध एक समय मात्र होता है। प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त बद्ध समय प्रबद्धोंका अपनी आयुके अन्तिम समयके बाद ठहरे रहना असम्भव होनेसे अन्तिम समयमें निर्जरासे

---

१. म °य दोले जीवक्के। २. म °दोलिरप्पु। ३. ब °कशरीरग्रहण°।

ओरालियवरसंचं देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स ।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

औदारिकवरसंचयो देवोत्तरकुरूपजातजीवस्य । तिरश्चो मनुष्यस्य भवेत् चरमद्विचरमयोः त्रिपल्यस्थितिकस्य ॥

आवनोर्व्वं जीवनु त्रिपल्योपमायुष्यमनुळ्ळ देवोत्तरकुरुगळोळु तिर्य्यंचनुं मेणु मनुष्यनुमागि पुट्टिदवनु तन्नुत्पत्तिप्रथमसमयदोळुत्कृष्टयोगविशेषदिन्दमुत्कृष्टयोगवृद्धियिन्दं बर्द्धितनुत्कृष्टयोगस्थानंगळं बहुवारं पोद्दुगुं । जघन्ययोगस्थानंगळं बहुवारं पोद्ददनुं तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानंगळनेय्दुगुं । तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानंगळं बहुवारं पोद्ददनुं अधस्तनस्थितिगळ निषेकक्के जघन्यपदमं माळ्पनुपरितनपरमाणुगळनपकर्षिसियधस्तनभागदोळु स्तोकंगळं निक्षेपिसुगमें बुदर्त्थ । उपरितनस्थितिनिषेकगळुत्कृष्टपदमं माळ्पनुपरितन भागदोळु अधस्तनपरमाणुगळनुत्कर्षिसि बहुपरमाणुगळं क्षेपिसुगुमें बुदर्त्थ ।

अंतरदोळु नडुवे विकुर्व्वणंगेय्यदनुमंतरदोळु नखच्छेदमं माडल्पडदमुमल्पंगळप्प भाषादिगळुमल्पंगळप्प मनोयोगादिगळुं स्तोकंगळप्प वाग्योगशलाकेगळुं स्तोकंगळप्प मनोयोगशलाकेगळु-

---

संचय उदयश्च युगपदेव भवति ॥२५५॥ औदारिकशरीरस्य कस्मिन् स्थाने कीदृक्सामग्रीरूपावश्यकयुतजीवे उत्कृष्टसंचयः स्यात् ? इति चेदाह—

यो जीवः त्रिपल्योपमायुष्को देवोत्तरकुर्वोः तिर्यङ् मनुष्यो वा भूत्वा उत्पन्नः तदुत्पत्तिप्रथमसमये उत्कृष्टयोगेन आहारितः उत्कृष्टवृद्धया वर्धितः उत्कृष्टानि योगस्थानानि बहुशो गच्छति जघन्यानि न गच्छति । तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानानि बहुवारं गृह्णाति तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृह्णाति । अधस्तनस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति—उपरितनपरमाणूनपकृष्य अधस्तनभागस्तोकान्निक्षिपतीत्यर्थः । उपरितनस्थितिनिषेकानामुत्कृष्टपदं करोति—उपरितनभागे अधस्तनपरमाणूनुत्कृष्य बहून्निक्षिपतीत्यर्थः । अन्तरे गमनविकुर्वणां न प्राप्नोति अन्तरे नखच्छेदं न करोति—अल्पा भाषाद्द्रव्याः अल्पा मनोयोगाद्द्रव्याः स्तोकाः

शेष रहे सब कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित प्रमाण समयप्रबद्धोंका देव और नारकियोंमें वैक्रियिक शरीरका तथा तिर्यंच और मनुष्योंमें औदारिक शरीरका संचय और उदय एक साथ होता है ॥२५५॥

आगे औदारिक शरीरका उत्कृष्ट संचय किस स्थानमें किस प्रकारकी सामग्रीसे युक्त जीवके होता है, यह कहते हैं—

जो जीव तीन पल्यकी आयु लेकर देवकुरु-उत्तरकुरुमें तिर्यंच या मनुष्य होकर उत्पन्न हुआ । उत्पत्तिके प्रथम समयमें उत्कृष्ट योगके द्वारा आहार ग्रहण किया । वह उत्कृष्ट वृद्धिसे बढ़े हुए उत्कृष्ट योगस्थानोंको बहुत बार ग्रहण करता है, जघन्य योगस्थानोंको ग्रहण नहीं करता । अर्थात् अपने योग्य उत्कृष्ट योगस्थानोंको तो बहुत बार ग्रहण करता है, किन्तु अपने योग्य जघन्य योगस्थानोंको बहुत बार ग्रहण नहीं करता । नीचेकी स्थितियोंके निषेकोंका जघन्यपद करता है अर्थात् ऊपरके निषेक सम्बन्धी परमाणुओंका अपकर्षण करके स्थिति घटाकर नीचेके निषेकोंमें क्षेपण करता है । और ऊपरकी स्थितिके निषेकोंका उत्कृष्ट पद करता है । अर्थात् नीचेके निषेकोंके बहुतसे परमाणुओंका उत्कर्षण करके उनकी स्थितिको

---

१. म °गलनेक्षेपि° ।

मितंतर्म्मुहूर्त्तमात्रजीवितावशेषमागुत्तिरलु योगयवमध्यदुपरिमभागार्द्धदोळंतर्म्मुहूर्त्तमिर्द्दितं चरम-जीवगुणहानिस्थानांतरदोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रकालमिर्द्दितं द्विचरमचरमसमयंगळोळुत्कृष्टयोग-स्थानमं पोद्दुगुं। आ संगौदारिकशरीरोत्कृष्टसंचयमक्कुं। वैक्रियिकशरीरक्केयुमिते पेळल्पडुवुदु ओंदु विशेषमुंटावुदें दोडे अंतरे नखच्छेदो न कृतः एंबी विशेषणमं पेळलागदु।

५ वेगुव्वियवरसंचं बावीससमुद्द आउपढमम्मि [illegible] मुनिविद्यासागर जी महाराज

जम्हा वरजोगस्स य बारा अण्णत्थ ण हि बहुगा ॥२५७॥

वैक्रियिकवरसंचयो द्वाविंशतिसमुद्धारणद्वये। यस्माद्वरयोगस्य च बारा अन्यत्र न हि बहुकाः॥

आरणाच्युतकल्पद्वयदुपरितनपटलवर्त्तिगळोळु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिसंभवमप्पुवरिंदं तत्पटलवर्त्तिगळप्प देवर्क्कळोळु वैक्रियिकशरीरक्कुत्कृष्टसंचयमक्कुं अन्यत्राधस्तनपटलंगळोळमु-
१० परितनपटलंगळोळं नारकरोळं वैक्रियिकशरीरक्कुत्कृष्टसंचयं संभविसुवुदेकें दोडन्यत्र न हि बहुकायोगवाराः यस्मात् आवुदों दु कारणदिंदमारणाच्युतकल्पद्वयविनन्यत्र वैक्रियिकशरीरक्कुत्कृष्ट-

---

वाग्योगशलाकाः स्तोका मनोयोगशलाकाः। एवमन्तर्मुहूर्तमात्रे जीवितावशेषे सति योगयवमध्यस्योपरिमभागा-र्धान्तर्मुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थितः द्विचरमचरमसमय-योरुत्कृष्टयोगस्थानं गतः। तस्य औदारिकशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति। वैक्रियिकशरीरस्याप्येवमेव वक्तव्यं
१५ किन्तु अन्तरे नखच्छेदो न कृतः इत्येतद्विशेषणं न संभवति ॥२५६॥

वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः आरणाच्युतकल्पद्वयस्य उपरितनपटलवर्तिषु द्वाविंशतिसागरोपम-स्थितिकेषु एव देवेषु संभवति नान्यत्र अधस्तनोपरितनपटलेषु नारकेषु च। कुतः (वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्ट-संचयो न भवति। कुतो नास्तीत्याशङ्क्य उत्तरं कथयति) यस्मात्कारणात् आरणाच्युतकल्पद्वयादन्यत्र

बढ़ाकर ऊपरके निषेकोंमें क्षेपण करता है। अन्तरमें गमन विकुर्वणा नहीं करता, नखच्छेद
२० नहीं करता। उसके मनोयोगका काल अल्प है, वचनयोगका काल अल्प है, वचनयोगके बार थोड़े हैं, मनोयोगके बार थोड़े हैं अर्थात् काययोगके बार बहुत हैं, काल भी बहुत है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त मात्र जीवन शेष रहनेपर योगयव मध्यके ऊपरके भागार्धमें अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थित रहे, फिर अन्तिम जीव गुणहानि स्थानके मध्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग मात्र काल तक स्थित रहे, द्विचरम और चरम समयमें उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त हो। उसके औदारिक
२५ शरीरका उत्कृष्ट संचय होता है। वैक्रियिक शरीरका भी उत्कृष्ट संचय इसी प्रकार कहना चाहिए। किन्तु 'अन्तरमें नखच्छेद नहीं करता' यह विशेषण यहाँ सम्भव नहीं है॥२५६॥

विशेषार्थ—पहले उत्कृष्ट संचयके लिए जो छह आवश्यक कहे थे, उन्हींको ऊपर कहा है। उत्कृष्ट स्थिति होनी चाहिए सो औदारिककी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य होती है। उत्कृष्ट योग होना चाहिए, उत्कर्षण-अपकर्षण होना चाहिए, उत्कृष्ट योगके लिए उत्कृष्ट
३० संक्लेश होना चाहिए। ये ही सब ऊपर कहे हैं। अन्तमें जो गमन विकुर्वणा और नखच्छेद कहा है, पं. टोडरमलजी साहब भी उसे स्पष्ट नहीं कर सके, उनके भी जाननेमें यह नहीं आये। यवमध्य रचना कर्मकाण्डके योग प्रकरणमें आयेगी।

वैक्रियिक शरीरका उत्कृष्ट संचय आरण और अच्युत कल्पके ऊपरके पटलमें रहने-वाले बाईस सागरकी स्थितिवाले देवोंमें ही होता है। अन्यत्र नीचे और ऊपरके पटलोंमें

---

३५ १ ब. गच्छति।

योगवारंगळ् बहुकंगळु [1]संभविसवु । तद्योग्यसामग्र्यंतरंगळुं बहुवारं संभविसवु कारणमागि तवारणाच्युतकल्पद्वयदोळे बहुवारोत्कृष्टयोगादि सामग्र्यंतरसंभवमप्पुदरिंदं वैक्रियिकशरीरोत्कृष्टसंचयमक्कुमेंदु निश्चयिसल्पडुवुदु । च शब्ददिंदं तद्योग्यसामग्र्यंतरं संचिसल्पट्टुदु ।

अनंतरं तैजसशरीरकार्म्मणशरीरद्वयोत्कृष्टसंचयस्थानविशेषमं पेळ्दपं :—

तेजासरीरजेट्ठं सत्तमचरिमम्मि विदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य णिरए बहुवारमभियस्स ॥२५८॥

तैजसशरीरोत्कृष्टं सप्तम्यां चरमे द्वितीयवारस्य । कार्म्मणस्यापि तत्रैव च निरये बहुवारान् भ्रमितस्य ॥

यावदौदारिकशरीरवत्तावदुत्कृष्टसंचयं तैजसकार्मणयोरपि विशेषमुंटदावुदेंदोडे सप्तमपृथ्वियोळु वारद्वयं पुट्टिदं-गें दितु पेळल्पडुवुदु ।

आहारशरीरक्कमुमौदारिकशरीरक्कंतंते पेळल्पडुगुं विशेषमुंटदावुदेंदोडे :—प्रमत्तविरतंगाहारशरीरमनुत्थापिसिदंगे दितु वक्तव्यमक्कुं । कार्म्मणशरीरसंचयसामग्रिविशेषमुं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडा सप्तमपृथ्वियोळे नरकंगळोळु बहुवारं भ्रमिसल्पट्टंगे दु पेळ्दुदाव प्रकारदिमेंदोडे आवनोवं जीवं बादरपृथ्वीकायंगळोळंतर्मुहूर्तोनपूर्वकोटिपृथक्त्वाधिकम्मप्प द्विसहस्रसागरोपमहीनकर्म्म-

---

वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टयोगवारा चशब्दात्तद्योग्यसामग्र्यन्तरं न संभवति तस्मात् कारणात् ॥२५७॥ अथ तैजसशरीरकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टसंचयस्थानविशेषमाह—

तैजसशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः औदारिकशरीरवज्ज्ञातव्यः । किन्तु सप्तमपृथिव्यां द्वितीयवारोत्पन्नस्यैव [जीवस्य तैजसशरीरोत्कृष्टसंचयो] भवतीति विशेषः । आहारकशरीरस्यापि औदारिकशरीरवत् किन्तु प्रमत्तविरतस्य आहारकशरीरमुत्थापितस्यैव भवति । कार्मणशरीरस्य तु सप्तमपृथिव्यामेव नारकेषु बहुवारं भ्रमितस्यैव [चरमवारे कार्मणशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो] भवति [अन्यत्र तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशस्यासंभवात्] केन कारणेन ? इति चेद्—कश्चिज्जीवः बादरपृथ्वीकायेष्वन्तर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटिपृथक्त्वाधिकद्विसहस्रसागरोपम-

---

रहनेवाले देवों और नारकियोंमें नहीं होता; क्योंकि आरण और अच्युत कल्पोंको छोड़कर अन्यत्र उत्कृष्ट योगके बार बहुत नहीं होते। तथा 'च' शब्दसे उत्कृष्ट संचयके योग्य अन्य सामग्री भी बहुत बार अन्यत्र नहीं होती। इसलिए यहीं उत्कृष्ट संचय होता है ॥२५७॥

आगे तैजसशरीर और कार्मणशरीरके उत्कृष्ट संचयका स्थान कहते हैं—

तैजस शरीरका उत्कृष्ट संचय औदारिक शरीरकी तरह जानना। किन्तु इतना विशेष है कि सातवीं पृथ्वीमें दूसरी बार उत्पन्न हुए जीवके तैजस शरीरका उत्कृष्ट संचय होता है। आहारक शरीरका भी औदारिक शरीरवत् जानना। किन्तु आहारक शरीरकी उत्थापना करते हुए प्रमत्त विरतके ही उसका उत्कृष्ट संचय होता है। कार्मण शरीरका उत्कृष्ट संचय सातवीं पृथिवीमें ही जो नरकोंमें बहुत बार भ्रमण कर चुका है, उसके अन्तिम बारमें होता है। क्योंकि अन्यत्र उसके योग्य उत्कृष्ट संक्लेश नहीं होता। क्यों नहीं होता? यह बतलाते हैं—कोई जीव बादर पृथ्वीकायोंमें अन्तर्मुहूर्तहीन पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागरसे न्यून कर्मकी स्थितिको प्राप्त हुआ। वहाँ भवस्थितिको भोगते हुए उसने पर्याप्त भव थोड़े

---

१. म घटयिसवु। २. °वारा बहवो न सन्ति च शब्दात्तद्योग्यसामग्र्यन्तरं च बहुवारं न संभवति—मु।
३. ब प्रकारेण इति चेत् यो जीवो।

स्थितियोळिर्द्दा बादरपृथ्वीकायभवंगळनु पालिसुतिप्पंगपर्य्याप्तभवंगळल्पंगळ् पर्य्याप्तभवंगळ् बहुकंगळ् पर्य्याप्ताद्धेगळल्पंगळ् दीर्घंगळ्पर्य्याप्ताद्धेगळ् ह्रस्वंगळागळोम्मे आयुष्यमं कट्टुगुमागळागळ् तत्प्रायोग्यजघन्ययोगविंदं कट्टुगु उत्कृष्टयोगविंदमाहारिसुगुमुत्कृष्टयोगविंदं पेच्चुगुं। पलवुं पलवुं सूळ्गळुत्कृष्टयोगस्थानमुं पोद्दुगुं जघन्ययोगस्थानंगळं पलवुं सूळ् पोद्दुवनुं पलवुं पलवुं सूळ् बहुसंक्लेश-
५ परिणामपरिणतनुं विशुद्धनागुत्तलुं तत्प्रायोग्यजघन्यविशुद्धिविशिष्टनुमधस्तनस्थितिनिषेकंगळोळपकर्षणविधानदिंदमुपरितनपरमाणुगळं स्तोकंगळं प्रक्षेपिसुगुमुपरितननिषेकंगळोळुत्कर्षणविधानदिंदमधस्तनपरमाणुगळं बहुकंगळ् प्रक्षेपिसुगुमितु परिभ्रमिसि आजुगतियिंदं बादरत्रसपर्य्याप्तकरोळ् पुट्टियुमल्लियुं तोळल्वंगे पर्य्याप्तभवंगळ् बहुकंगळपर्य्याप्तभवंगळु स्तोकंगळ् पर्य्याप्ताद्धेगळबीर्घंगळ-पर्य्याप्ताद्धेगळ् ह्रस्वंगळ्। यदा यदायुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्यजघन्ययोगेन बध्नाति इत्यादि
१० पूर्वोक्तसर्वविशेषणविशिष्टनितु परिभ्रमिसियुं पश्चिमभवग्रहणदोळेळनेय नरकद नारकरोळ् पुट्टितद्भवग्रहणप्रथमसमयदोळु तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगविंदमाहरिसियुत्कृष्टयोगवृद्धियिंद वर्द्धितं सर्वलघुसर्वपर्य्याप्तिगळनंतर्म्मुहूर्त्तदोळ् नेरेदा नरकदोळु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं योगावश्यकमं संक्लेशावश्यकमनेय्दिवनितु परिभ्रमिसि जीवितव्यं स्तोकावशेषमागुत्तिरलु योगयवमध्यवमेगणभागदोळन्तं-

---

हीनकर्मस्थितिस्थितः तत्र भवस्थितिमनुपालयमानस्य स्तोकाः अपर्याप्तभवाः बहवः पर्याप्तभवाः दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः। यदा यदा आयुर्बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्येन जघन्ययोगेन बध्नाति। उत्कृष्टयोगेनाहारितः उत्कृष्टवृद्धया वर्धितः बहुशो बहुशः उत्कृष्टयोगस्थानानि गतः जघन्ययोगस्थानानि न गतः बहुशो बहुशो बहुक्लेशपरिणामपरिणतः विशुध्यन् तत्प्रायोग्यविशुद्धया विशुध्यति। अधस्तनीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति। उपरितनीनां स्थितीनां निषेकस्य उत्कृष्टपदं करोति। एवं संसरित्वा बादरत्रसपर्याप्तकेषूत्पन्नः। तत्र च संसरमाणस्य बहवः पर्याप्तभवाः स्तोकाः अपर्याप्तभवा दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः, ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः। एवं संसरित्वा पश्चिमे भवग्रहणे अधःसप्तमपृथ्वीनारकेषूत्पन्नः तद्भवग्रहणप्रथमसमये तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेनाहारितः उत्कृष्टयोगवृद्धया वर्धितः अन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः प्राप्तः। तत्र नरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं योगावश्यकं संक्लेशावश्यकं च प्राप्तः। एवं परिभ्रम्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे सति योगयव-

---

धारण किये और पर्याप्त भव बहुत धारण किये। अतः पर्याप्तकाल बहुत हुआ और अपर्याप्तकाल थोड़ा हुआ। जब-जब आयुबन्ध करता है, तब-तब उसके योग्य जघन्य योगसे
२५ करता है। उत्कृष्ट योगसे आहारित और उत्कृष्ट वृद्धिसे वर्धित होता हुआ बहुत बार उत्कृष्ट योग स्थानोंको प्राप्त हुआ, जघन्ययोगस्थानोंको प्राप्त नहीं हुआ। बहुत बार बहुत संक्लेशरूप परिणामोंसे परिणत हुआ, विशुद्ध हुआ तो अपने योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता है। नीचेकी स्थितिके निषेकोंका जघन्यपद करता है और ऊपरकी स्थितिके निषेकोंका उत्कृष्ट पद करता है। इस प्रकार भ्रमण करके बादर-त्रस पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ भ्रमण
३० करते हुए पर्याप्तके भव बहुत धारण किये, अपर्याप्तके भव थोड़े धारण किये। पर्याप्तका काल बहुत हुआ, अपर्याप्तका काल थोड़ा हुआ। इस प्रकार भ्रमण करके अन्तिम भव ग्रहण करते समय सातवीं पृथ्वीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। उस भवको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे आहार ग्रहण किया, उत्कृष्ट योगकी वृद्धिसे बढ़ा। सबसे लघु अन्तर्मुहूर्तमें सब पर्याप्तियोंको प्राप्त किया। उस नरकमें तैंतीस सागर काल तक आवश्यक
३५ योग और आवश्यक संक्लेशको प्राप्त हुआ। इस प्रकार भ्रमण करके थोड़ी आयु शेष रहनेपर योगयवमध्यके ऊपरके भागमें अन्तर्मुहूर्त तक स्थित रहकर जीवयवमध्य रचनाकी

र्मुहूर्त्तमिदक्कुं चरमजीवगुणहानिस्थानांतरदोळावल्यसंख्यभागमात्रकालमिदक्कुं त्रिचरमद्विचरम समयदोळुत्कृष्टसंक्लेशमं पोंदि चरमद्विचरमसमयदोळुत्कृष्टयोगस्थानमं पोंदि चरमसमयतद्भव-स्थानादलातंगे कार्म्मणशरीरोत्कृष्टसंचयमक्कुं। यितौदारिकादिशरीरंगळुत्कृष्टसंचयसामग्रिविशेषमं पेळ्दनंतरं।

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं॥

एंदी गाथासूत्रमनाश्रयिसि त्रिकोणरचनेयं कटाक्षिसि पेळ्दनदें तें दोडे एकसमयदोळोवंजीवनिवं कट्टल्पट्टोंदु समयप्रबद्धवस्थिति एप्पत्तुकोटिकोटिसागरोपममक्कुमदरोळाबाधार्वर्ज्जितस्थितिप्रथम-समयं मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टस्थितिचरमसमयपर्य्यंतमिदं निषेकंगळु प्रतिसमयमेकैकनिषेकंगळे यथाक्रमविनुदयिसल्पडुवुदिन्तेंदोडे कालमेप्पत्तुकोटिसागरोपमकालकल्लदोंदु समयप्रबद्धमुदयिसि पोगवदु कारणविनेक्कं [illegible] प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धंगळु कट्टल्पट्टोंदोंदु समयप्रबद्धंगळुमुदयिसुववेंबिदें तु घटियिसुगुमें दोडनादिबंधनिबंधनबद्धविवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेक । ९ । मुदयिसुवागळा समयप्रबद्धमं कट्टिदनंतरसमयदोळ्कट्टिद समयप्रबद्धद द्विचरमनिषेकमुदयिसुगुं।

मध्यस्य उपरितनभागे अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा चरमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थित्वा त्रिचरमद्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशं संप्राप्य चरमद्विचरमसमये उत्कृष्टयोगस्थानं प्राप्य चरमसमयतद्भवस्थो जायते तस्य कार्मणशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति। एवमौदारिक[-आदि-]शरीराणाम् उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषः कथितः। ननु एकैकसमये जीवेन बद्धैकैकसमयप्रबद्धस्य आबाधावर्जितस्वस्वस्थितिप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयमेकैकनिषेक एवोदेति कथमेकैकसमयप्रबद्ध उदेतीति प्रश्ने उच्यते—अनादिबन्धनिबन्धनबद्धविवक्षित-समयप्रबद्धचरमनिषेकः ९ उदेति। तदा तदनन्तरसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य द्विचरमनिषेकः उदेति १०, तदनन्तर-

---

अन्तिम गुणहानिरूप योगस्थानमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर आयुके अन्तसे पहले तीसरे और दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर अन्तिम समयमें तथा अन्तिमसे पहले समयमें उत्कृष्ट योगस्थानको प्राप्त करके जब वह उस भवके अन्तिम समयमें स्थित होता है, तब उसके कार्मणशरीरका उत्कृष्ट संचय होता है। इस प्रकार औदारिक आदि शरीरोंके उत्कृष्ट संचयकी सामग्री विशेषका कथन किया।

शंका—एक-एक समयमें जीवके द्वारा बाँधे गये एक-एक समयप्रबद्धका आबाधारहित अपनी-अपनी स्थितिके प्रथम समयसे लेकर उसके अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय एक-एक निषेकका ही उदय होता है। तब एक-एक समयप्रबद्धका उदय प्रतिसमय कहाँ हुआ?

समाधान—अनादि बन्धनके कारण बँधे विवक्षित समयप्रबद्धके अन्तिम निषेक ९ का उदय होता है। तब उसके अनन्तर समयमें बद्ध समयप्रबद्धका अन्तसे दूसरा निषेक १० का उदय होता है। उसके अनन्तर समयमें बद्ध समयप्रबद्धका अन्तसे तीसरा निषेक १०

---

१. ब स्थितः त्रिचरमद्विचरमसमये उत्कृष्टसंचयो भवति।

तदनंतरसमयदोळ्कट्टिद समयप्रबद्धद त्रिचरमनिषेकसुदयिसुगुं ॥ ११ ॥ इंतु चतुर्थादिसमयंगळोळ् कट्टिद समयप्रबद्धंगळ चतुश्चरमादिनिषेकंगळ्गुदयमागुत्तं पोगलु विवक्षितसमयप्रबद्धदप्रभागदोळ्-तदाबाधाकालसमयमात्रनिषेकावशिष्टमादागळ्कट्टिद समयप्रबद्धद प्रथमनिषेकमुदयिसुगुमन्नेवरमितो दो दा विवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेकमुदयिसुवागळ्कृगूडिदो दु समयप्रबद्धमुदयिसुगुमें बागमोक्ति सुघटितमाय्तु । इंतो दु समयप्रबद्धं बंधमक्कुमो दुं समयप्रबद्धमुदयिसुगुमोयुदयसमयप्रबद्धं

समये बद्धसमयप्रबद्धस्य त्रिचरमनिषेकः उदेति ११ । एवं चतुर्थादिसमयेषु बद्धसमयप्रबद्धानां चतुश्चरमादि-निषेकोदयक्रमेण आबाधावर्जितविवक्षितस्थितिसमयमात्रस्थानेषु गत्वा चरमतत्समयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेक उदेति । एवं विवक्षितसमये एकः समयप्रबद्धो बध्नाति एक उदेति किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं

११ का उदय होता है। इस प्रकार चतुर्थ आदि समयोंमें बद्ध समयप्रबद्धोंके अन्तसे चतुर्थ आदि निषेकोंके उदयके क्रमसे आबाधारहित विवक्षित स्थितिके जितने समय हों उतने स्थान जाकर उसके अन्तिम समयमें बद्ध समयप्रबद्धका प्रथम निषेक उदयमें आता है। इस तरहसे विवक्षित समयमें एक समयप्रबद्धका बन्ध और एकका उदय होता है तथा कुछ कम डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धका सत्त्व रहता है। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

जिन समयप्रबद्धोंके सब निषेक गल गये,उनका तो उदय रहा ही नहीं। जिस समयप्रबद्धके सैंतालीस निषेक गल गये, उसका अन्तिम निषेक नौका वर्तमानमें उदय होता है। जिस समयप्रबद्धके छियालीस निषेक गल गये,उसके दसका निषेक उदयमें आता है। इसी तरह जिस समयप्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला,उसका प्रथम निषेक पाँच सौ बारह उदयमें आता है। इस तरह किसी भी एक विवक्षित समयमें सब निषेकोंका उदय होता है ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६। १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२। ३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४। ७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८। १४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६। २८८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२। इन सबको जोड़नेसे पूरे समयप्रबद्धका प्रमाण ६३०० होता है। आगे-आगे जैसे-जैसे नवीन समयप्रबद्धके निषेकोंका उदय होता जाता है, वैसे-वैसे पुराने समयप्रबद्धके निषेकोंके उदयका अभाव होता जाता है। जैसे आगामी समयमें नवीन समयप्रबद्धका ५१२ का निषेक उदयमें आयेगा,तो वर्तमान समयमें जिस समयप्रबद्धका ५१२ का निषेक उदयमें है, आगामी समयमें उसका दूसरा निषेक चार सौ अस्सीका उदय होगा। जिस समयप्रबद्धका चार सौ अस्सीका निषेक वर्तमानमें उदयमें है, आगामी समयमें उसका तीसरा निषेक चार सौ अड़तालीसका उदय होगा। इसी तरह जिस समयप्रबद्धका अन्तिम नौका निषेक उदयमें है,उसका आगामी समयमें अभाव हो जायेगा। प्रत्येक समयमें यही क्रम चलता है। अतः प्रत्येक समयमें पूर्वबद्ध एक-एक समयप्रबद्धका क्रमसे एक-एक निषेक मिलकर एक-एक समयप्रबद्धका उदय होता आता है। अन्तमें अवशेष

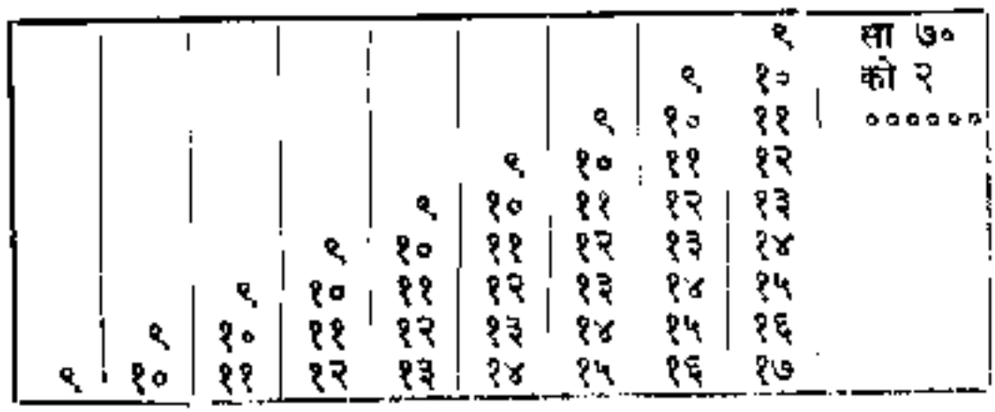
सहितमागि मेलणमेलंण समयनिषेकंगळं संकलिसिदोडे तत्समयदोळ् तृटिसुगुणहानि किंचिदून समयप्रबद्धंगळ् सत्वमक्कुमिदक्के संदृष्टियिंतु :—

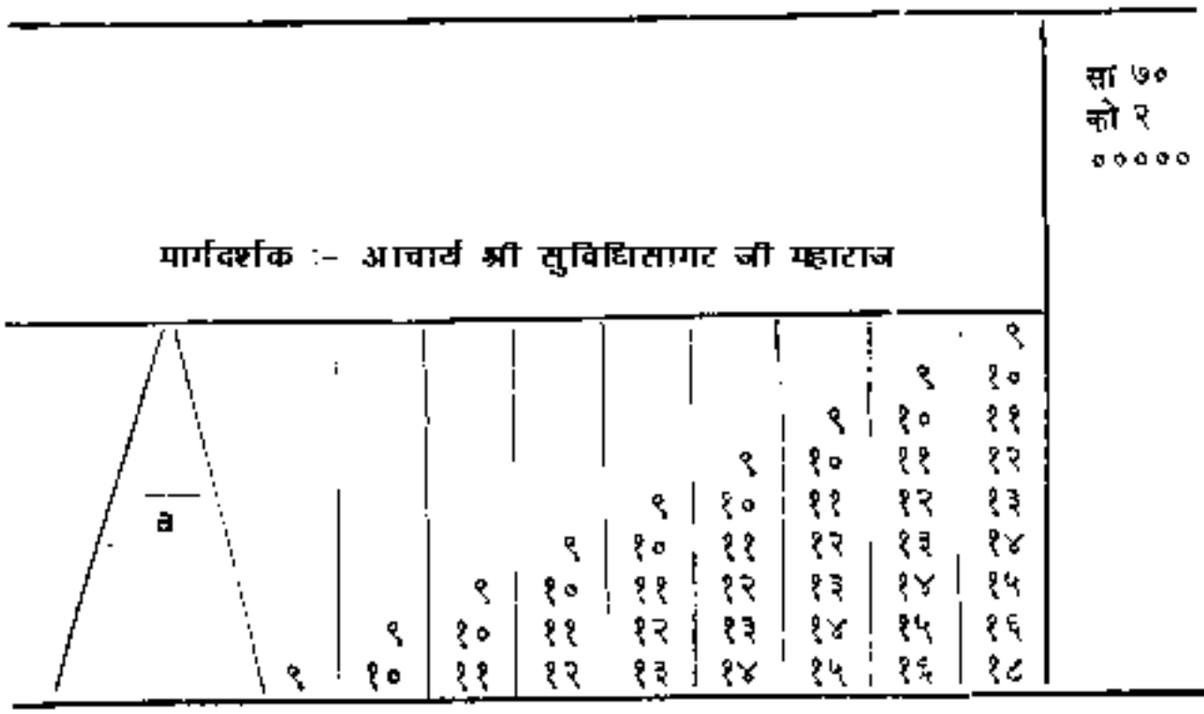
भवति । तत्संदृष्टिरियम्—

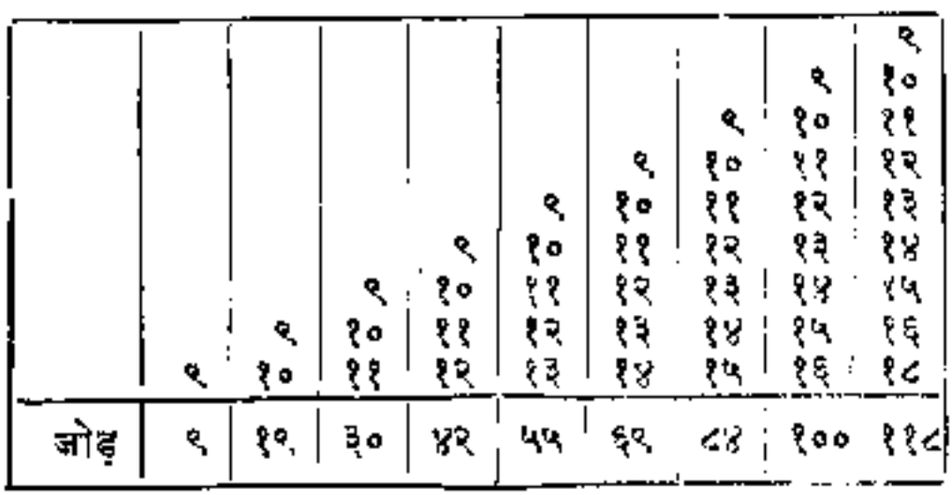
रहे,सब निषेकोंको जोड़नेसे कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्तामें शेष रहता है। उसे इस प्रकार जानना—जिस समयप्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला, उसके सब निषेक नीचे एक पंक्तिमें लिखिए। उसके ऊपर जिस समयप्रबद्धका एक निषेक गल गया, उसके पहले निषेकको छोड़कर शेष सब निषेक एक पंक्तिमें लिखिये। उसके ऊपर जिस समयप्रबद्धके दो निषेक गल गये हों,उसके दो निषेकोंके विना शेष सब निषेक एक पंक्तिमें लिखिये। इसी तरह ऊपर-ऊपर एक-एक निषेक घटते हुए शेष सब निषेकोंको एक-एक पंक्तिमें लिखते जाइये। सबसे ऊपर जिस समयप्रबद्धका केवल एक अन्तिम ही निषेक शेष रहा हो, उसे लिखना। ऐसा करनेसे त्रिकोण रचना होती है। जैसे सबसे नीचे अड़तालीस निषेक एक पंक्तिमें लिखे। उसके ऊपर पाँचसौ बारहके विना शेष ४७ निषेक लिखे। उसके ऊपर पाँचसौ बारह और चारसौ अस्सीके विना शेष छियालीस निषेक लिखे। इसी तरह ऊपर-ऊपर एक-एक निषेक घटते हुए लिखे। अन्तमें सबसे ऊपर केवल नौका अंक लिखा। इस तरह यह त्रिकोनी रचना होती है। इसका जोड़ समस्त सत्त्व द्रव्यका प्रमाण होता है जो कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। पहले जो गुणहानि आयामका प्रमाण कहा है,उसमें उसका आधा मिलानेसे डेढ़ गुणहानि होती है। उसमें कुछ कम संख्यात गुणी पल्यकी वर्गशलाकासे अधिक गुणहानिका अठारहवाँ भाग घटानेपर जो प्रमाण होता है उसे कुछ कम डेढ़ गुणहानि कहते हैं। उससे समयप्रबद्धके परमाणुओंको गुणा करनेसे जो प्रमाण हो,उतना ही त्रिकोण रचनाके परमाणुओंको जोड़नेसे प्रमाण होता है। जैसे अंक संदृष्टिके आधारपर रचित त्रिकोण रचनाकी सब पंक्तियोंको जोड़नेसे इकहत्तर हजार तीनसौ चार होता है। और गुणहानि आयाम आठमें उसका आधा चार मिलानेसे डेढ़ गुणहानिका प्रमाण बारह होता है। उससे समयप्रबद्धके परमाणु तिरेसठसौको गुणा करनेसे छिहत्तर हजार छहसौ होता है। त्रिकोण रचनाका जोड़ इससे कम है। इसलिये कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धका सत्त्व कहा है। यहाँ त्रिकोण रचना और उसके जोड़को उदाहरणके रूपमें अंकित करते हैं;यह केवल अन्तिम गुणहानिको लेकर है।

---

१. म मेलणऽनुभयनिषेकंगळं संदणिसिदोडे ।


सा ७०
को २
०००००


सा ७०
को २
०००००
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज


जोड़
९
१०
३०
४२
५५
६९
८४
१००
११८

९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	१४४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१४४	१६०	०	०	०	०	०	३२०	०	०	०	०
१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३५२	०	०	०
१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	४१६	४४८	४८०	५१२	०
२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४४८	४८०	५१२	०	०
२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४८०	५१२	०	०	०
२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	५१२	०	०	०	०
२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	०	०	०	०	०
२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०	०	०
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
१४४	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४
१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६
१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८
१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०
२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०
२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०
२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०
२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०	०

सब गुणहानियोंका पृथक्-पृथक् जोड़ इस प्रकार होता है—

	षष्ठ गुणहानि	पंचम गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	तृतीय गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	प्रथम गुणहानि	
	९	११८	३३६	७७२	१६४४	३३८८	
	१९	१३८	३७६	८५२	१८०४	३७०८	
	३०	१६०	४२०	९४०	१९८०	४०६०	
	४२	१८४	४६८	१०३६	२१७२	४४४४	
	५५	२१०	५२०	११४०	२३८०	४८६०	
	६९	२३८	५७६	१२५२	२६०४	५३०८	
	८४	२६८	६३६	१३७२	२८४४	५७८८	
	१००	३००	७००	१५००	३१००	६३००	
जोड़	४०८	१६१६	४०३२	८८६४	१८५२८	३७८५६	७१३०४

इंतन्तादियिंदं प्रतिसमयमो दु समयप्रबद्ध बद्धमुमोंबुमो दु समयप्रबद्धोदयमुमं द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वमुमं तोरलार्प्पंत्रिकोणरचनासंकलनधन मं तंदु द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वमं तोरिदपं। त्रिकोणरचनावस्थितद्रव्यक्के हीनहीनसंकलनदिंदमुमधिकाधिकसंकलनधनदिंदमुमनुलोमविलोमसंकलनदिंदमुं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिसमयप्रबद्धसत्वमं सुव्यक्तमाक्रियपनल्लि हीनहीनसंकलनदिंदमे तेंदोडे प्रथमसमयप्रथमनिषेकदोळु संपूर्णसमयप्रबद्धमात्रं। ६३००। द्वितीयसमयद्वितीयनिषेकदोळु प्रथमनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रं। तृतीयसमयतृतीयनिषेकदोळु प्रथमद्वितीयनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रं। चतुर्थसमयचतुर्थनिषेकदोळु प्रथमद्वितीयतृतीयनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रं। पंचमसमयपंचमनिषेकदोळु प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थनिषेकोनसमयप्रबद्धमात्रमिंतु षष्ठादिसमयषष्ठादिनिषेकंगळोळु प्रथमनिषेकप्रभृतिरूपोनगच्छमात्रनिषेकंगळिंदं परिहीनसमयप्रबद्धमात्रंगळल्लिल्लिगप्पुवेंदिंतु तदभावद्रव्यमनिवक्के नोडुत्तिरलु प्रथमगुणहानियोळु गुणहानिमात्रंगळु समयप्रबद्धंगळप्पुवु। ६३००। ८। तदभावद्रव्यमं निरीक्षिसुवागळु रूपोनगुणहानिमात्रंगळु प्रथमनिषेकंगळप्पुवु। ५१२। ८। द्विरूपोनगुणहानिमात्रंगळु द्वितीयनिषेकंगळप्पुवु। ४८०। ८२।

तावत्तत्त्रिकोणरचनावस्थितं सत्वद्रव्यं हीनहीनसंकलनेन अधिकाधिकसंकलनेन अनुलोमविलोमसंकलनेन च सुव्यक्तयति। तत्र हीनहीनसंकलनेन यथा—प्रथमसमयप्रथमनिषेके सम्पूर्णसमयप्रबद्धः ६३००, द्वितीयसमयद्वितीयनिषेके प्रथमनिषेकोनसमयप्रबद्धः, तृतीयसमयतृतीयनिषेके प्रथमद्वितीयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, चतुर्थसमयचतुर्थनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयसमयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, पञ्चमसमयपञ्चमनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थनिषेकोनसमयप्रबद्धः। एवं षष्ठादिगमयषष्ठादिनिषेकेषु प्रथमनिषेकादिरूपोनगच्छमात्रनिषेकोनसमयप्रबद्धाः। अतस्तदभावद्रव्ये निरिक्षिते प्रथमगुणहानौ गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धा भवन्ति ६३००×८। तदभावद्रव्यं तु प्रथमनिषेकाः रूपोनगुणहानिमात्राः ५१२×८। द्वितीयनिषेकाः द्विरूपोनगुणहानिमात्राः ४८०। ८-२।

इस तरह त्रिकोण रचनामें स्थित सत्त्व द्रव्यको जोड़नेकी तीन विधियाँ हैं—उत्तरोत्तर हीन संकलनके द्वारा, अधिक-अधिक संकलनके द्वारा और अनुलोम-विलोम संकलन द्वारा। हीन-हीन संकलनके द्वारा यथा—प्रथम समयप्रबद्धके निषेकमें सम्पूर्ण समयप्रबद्ध ६३०० है। द्वितीय समयके द्वितीय निषेकमें प्रथम निषेक ५१२ से हीन समयप्रबद्ध ५७८८ है। तीसरे समयके तीसरे निषेकमें प्रथम और द्वितीय निषेकसे हीन समयप्रबद्ध ५३०८ है। चतुर्थ समयके चतुर्थ निषेकमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय समय सम्बन्धी निषेकसे हीन समयप्रबद्ध ४८६० है। पंचम समयके पंचम निषेकमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ निषेकसे हीन समयप्रबद्ध ४४४४ है। इसी तरह छठे आदि समय सम्बन्धी छठे आदि निषेकोंमें प्रथम निषेकसे लेकर एक कम गच्छ प्रमाण निषेकोंसे हीन समय प्रबद्ध होते हैं। अतः प्रथम गुणहानिमें गुणहानि मात्र समयप्रबद्ध ६३००×८ होते हैं। अब इसमें-से जो अभावरूप द्रव्य है, वह एक हीन गुणहानि प्रमाण तो प्रथम निषेक ५१२×८-१ है। दूसरा निषेक दो कम गुणहानि प्रमाण है ४८०×८-२। तीसरा निषेक तीन हीन गुणहानि प्रमाण है ४४८×८-३। इस प्रकार क्रमसे हीन होते-होते अन्तमें अन्तिम निषेक ३२० एक रहता है।

१. यिल्लियु मुन्निनंते प्रथमादिपंक्तिगळोळु द्वितीयादिनिषेकंगळोळेकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वत्रिशेषंगळं प्रक्षेपिसिकोंडरुदल्ल। ऋणद्रव्यनिक्षेपः॥

तृतीयनिषेकंगळु त्रिरूपोनगुणहानिमात्रंगळप्पुवु । ४४८ । ८–३ । मिंतु क्रमहानिविद नडदु पर्य्यवसानदोळु ओंदे द्विचरमनिषेकमक्कु–३२० । मत्तनप्रथमादिपंक्तिगळोळु द्वितीयादिनिषेकंगळोळेकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वस्वविशेषंगळं प्रक्षेपिसुत्तिरलु रूपोनगुणहानिमात्रगच्छक्कय एकवार-

संकलनमात्रप्रथमनिषेकप्रमाणमभावद्रव्यमक्कु ५ । १२ । ८ । ८ मभावद्रव्यदोळु
२

प्रविष्टाभावद्रव्यमुं द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलितमात्रविशेषप्रमाणमक्कु ३२ । ८ । ८ । ८ ५
३ । २ । १

मिदं पूर्व्वाभावद्रव्यदोळ् कळेयुत्तिरलु द्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छक्कय एकवारसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु शुद्धसर्वऋणमक्कु । मी एरडुं धनऋणद्रव्यंगळुनोंदि पंक्तियोळु

स्थापिसल्पडुववु ६३०० । ८३२ ८ । ५ । ८ । ८ मत्तं द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु
३ २ १

तृतीयनिषेकेषु द्विरूपोनगुणहानिमात्रा सुविशेषा भवन्ति । अन्त्यनिषेकस्तावान् गत्वा चरमे चरमनिषेकः एकः ३२० अत्र प्रथमादिपङ्क्तिषु द्वितीयादिनिषेकेषु एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषेषु प्रक्षिप्तेषु रूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य १०

एकवारसंकलनमात्रप्रथमनिषेकप्रमाणमभावद्रव्यं भवति । ५१२ । ८ । ८ । अत्र स्थितभावद्रव्यं च
२ १

द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारे संकलितमात्रविशेषमिदं ३२ । ८ । ८ । ८ पूर्वाभावद्रव्यादपनीय शेषद्विरूपा-
३ । २ । १

इन प्रथम आदि पंक्तियोंके द्वितीय आदि निषेकोंमें एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ाते हुए अपने-अपने चयोंके मिलानेपर एक कम गुणहानि प्रमाण गच्छका एक बार संकलन मात्र प्रथम निषेक प्रमाण अभावद्रव्य होता है। इसका आशय यह है कि नीचेसे लेकर आठ पंक्ति रूप जो प्रथम गुणहानि है, उसकी दूसरी आदि पंक्तियोंमें जो निषेक घटे, उनके प्रमाणरूप घटाने योग्य जो ऋण, उसको मिलानेपर गुणहानि मात्र पंक्तियोंका धन गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है, क्योंकि प्रथम पंक्तिका जोड़ समयप्रबद्ध प्रमाण है। ऋणको मिलानेपर अन्य पंक्तियोंका जोड़ भी उसीके समान होता है। इस तरह गुणहानिका प्रमाण आठ है, उससे गुणित समयप्रबद्धका प्रमाण तिरेसठ सौ है। अब इसमें ऋण कितना घटाना है, यह कहते हैं—

---

१. स गुणहानिसंकलनमात्र । २. स °हानिसंकलनत्रिभाग° ।

३. स्वस्वप्रचयेषु प्रक्षिप्तेषु इति किं ? प्रथमनिषेक ५१२ संपूर्णः, द्वितीयनिषेके ४८० । ३२ । एकचयाधिके, तृतीयनिषेके ४४८ । ३२ । ३२ । द्विचयादिके एवं एकोत्तराधिकक्रमेण चरमनिषेकपर्यन्तं क्रियमाणे सति अष्टाविंशतिप्रमितानि द्वादशोत्तरपञ्चशतकानि जायन्ते । अत्र षट्पञ्चाशत्प्रमितानि द्वात्रिंशत्कानि ऋणेऽृण-रूपाणि सन्तीति ज्ञातव्यम् । ४. व्येकपदोत्तरघातः सरूपचारो धृतो मुखेन युतः । रूपाधिकवरान्तासपदार्ध-हृतो वित्तं ॥१॥ हारारूपादिकाः स्थाप्या अंशा गच्छादिकास्तथा । सैकचारप्रमाणान्ताश्चैकचारादिकं धनम् ॥२॥ एकचारद्विचारादिसंकलनसूत्रमिदम् ।

द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यमेल्लमुमुंटु । ३१००। तदनंतरसमयनिषेकवोळु द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकोनद्वितीयादिगुणहानिद्रव्यमेल्लमुमुंटु । ३१००—२५६ । मितु प्रथमगुणहानिविधानदिंद हानिप्रमाणमवधरिसि कूडुत्तिरलु गुणहानिमात्रद्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळप्पुवु । ३१००। ८ ।

रूपोनगुणहानिसंकलितमात्राऽभावस्वकप्रथमनिषेकंगळप्पुवु । २५६। ८।८ द्विरूपोन-
२।१

२ ०
गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रस्वकविशेषंगळु ऋणप्रविष्टऋणंगळप्पुवु—। १६ ८ ८ ८
३ २ १

मिवं पूर्वाभावद्रव्यदोळु फळेयुत्तिरलु द्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रस्वविशेषंगळु शुद्धसर्वऋणमक्कु मी येरडुं द्रव्यगळं मुन्नं स्थापिसिद धनऋणद्वयंगळ मेलेकपंक्तियागि मुन्निनंते स्थापिसल्पडुवुवु :—

धिकपञ्चगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसङ्कलनत्रिभागमात्रविशेषं शुद्धसर्वऋणं भवति ।

एते द्वे धनऋणे एकस्यामेव पङ्क्तौ स्थापयितव्ये ६३००। ८। ३२। ८। ५। ८। ८ पुनः द्वितीयगुणहानि-
३ २ १

प्रथमनिषेके द्वितीयादिगुणहानिसर्वद्रव्यमिदमस्ति ३१००। तदनन्तरसमयनिषेके द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकोनं तदस्ति ३१००—२५६। एवं प्रथमगुणहानिवद्धानिप्रमाणमवधार्य निक्षिप्ते सति गुणहानिमात्रं द्वितीयादिगुण-

हानिद्रव्याणि भवन्ति ३१००। ८। रूपोनगुणहानिसंकलितमात्रेभ्योऽभावस्वप्रथमनिषेकेभ्यः २५६। ८। ८।
२। १

द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रस्वविशेषे ऋणप्रविष्टऋणे १६। ८। ८।८ अपनीते शेषं द्विरूपाधिक-
३। २।१

पञ्चगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रस्वविशेषं शुद्धसर्वऋणं भवति। एते द्वे पूर्वस्थापितधनर्णयोः उपर्येकपङ्क्तिक्रमा पूर्ववत् स्थापयितव्ये—

प्रथम निषेक एक कम गुणहानि प्रमाण ५१२। ७। द्वितीय निषेक दो कम गुणहानि प्रमाण अर्थात् ६। इस तरह एक-एक घटता तीसरा आदि निषेक होता है। अन्तमें द्विचरम निषेक एक प्रमाण होता है। इस तरह गुणहानि प्रमाण पंक्तियोंमें एक-एक निषेक घटता है। अन्तिम निषेक सब पंक्तियोंमें रहता है। सो यहाँ द्वितीय आदि निषेकोंमें प्रथम निषेकसे जितने अपने-अपने चय घटें, उनको मिलानेपर सब निषेक प्रथम निषेकके समान होते हैं। यथा—

५१२। ७
५१२। ६
५१२। ५
५१२। ४

---

१. म °णहानिसंकलन त्रिभाग ।

२
३१००।८ ऋ १६।८।५। ८ ८ मितु मेले मेले ऋणराशिगळर्द्धार्द्धक्रमदिंद नडेयवु । धन-
३ ३ २ १

०
६३००।८। ऋ ३२।८ ५ ८ ८
३ २ १

राशिगळधस्तनाधस्तनराशिगळोळु गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमं १००।८। कळेदु द्विरूप-भाजितमात्रंगळागि नडेयवु कारणमागियुपरितनोपरितनगुणहानिद्रव्यं पडमस्स हीणदळमेत्तमें दितु पेळल्पट्टुदितिरुतिर्द्द पंक्तिद्वयद्रव्यंगळोळु मोदल धनपंक्तियोळु

१००।८	५
३००।८	
७००।८	
१५००।८	
३१००।८	
६३००।८	१०

३१००–८।	ऋ १६। ८×५। ८। ८
	३। २। १
६३००।८	ऋ ३२। ८ ५। ८। ८
	३। २। १

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

एवमुपर्युपि ऋणराशयोऽर्धार्धक्रमेण धनराशयो गुणहानिगुणितचरमगुणहानिधन १००।८। न्यूनाधस्तनगुणहानिधनार्धक्रमेण गच्छन्तीत्युपरितनोपरितनगुण-हानिद्रव्यं पडमस्स हीणदळमेत्तमित्युक्तमेव भवति। तत्र पङ्क्तिद्वये प्रथमधनपङ्क्तौ–

१००।८	१५
३००।८	
७००।८	
१५००।८	
३१००।८	५
६३००।८	२०

५१२।३
५१२।२
५१२।१

इन सबका जोड़ एक कम गच्छका एक बार संकलन मात्र प्रथम निषेक प्रमाण होता है। यहाँ गच्छका प्रमाण आठ है। गणितके नियमानुसार एक कम गच्छको दो और सम्पूर्ण गच्छको एकसे भाग देकर उससे प्रथम निषेक पाँच सौ बारहको गुणा करनेपर २५

१ कम
५१२ × २ ८ = इतना जोड़ होता है।

इसमें अभाव द्रव्यका प्रमाण लाना है, क्योंकि प्रथम निषेक ५१२ सम्पूर्ण है। प्रथम पंक्तिमें कोई निषेक घटा नहीं। दूसरी पंक्तिमें एक प्रथम निषेक कम है। उसमें कोई चय नहीं मिलाया। तीसरी पंक्तिमें पहला और दूसरा दो निषेक कम हैं। उसके दूसरे निषेक ३० ४८० में एक चय ३२ मिलानेसे ५१२ होते हैं। तीसरी पंक्तिमें पहला, दूसरा और तीसरा निषेक कम है। यहाँ दूसरे निषेक ४८० में एक चय ३२, और तीसरे निषेक ४४८ में दो चय

चरमगुणहानिमोदल्गोंडु प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं सर्वत्र गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमनिनितं । १००।८। कूडि २००।८ ४००।८ ८००।८ १६००।८ ३२००।८ ६४००।८ कूडि द्विरूपदिदं वेरिसि १००८। २। २००।८।२। ४००।८।२। ८००।८।२। १६००।८।२। ३२००।८।२।

विवं तंदुभयपंक्तिद्रव्यमितिप्पुदु संदृष्टियिदु ६३००।८।२।६३।८।५।८।८। इल्लि ३ २ १

धनपंक्तियोळु प्रविष्टद्वितीयऋणं नानागुणहानिगुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यमात्रमिदु १००।८।६। ई मूरुं द्रव्यंगळु । ६३००। समयप्रबद्धविदं । शलाकीकृतंगळु यथाक्रमदिंनितिप्पुवु २

८।२।८ ५ ८।८ ८६ इवरोळु मध्यमराशियं भागहार भूतशतषट्कंगळोळु यथाक्रमं १०० ६ ६३

चरमगुणहानिमादिं कृत्वा प्रथमगुणहानिपर्यन्तं सर्वत्र हानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यम् १००।८ मेलयित्वा मेलयित्वा— २००।८ ४००।८ ८००।८ १६००।८ ३२००।८ ६४००।८ द्वाभ्यां संभेद्य— १००।२ २००।२ ४००।२ ८००।२ १६००।२ ३२००।२ गुणसंकलने आनीते उभयपङ्क्तिद्रव्यं एवं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तिष्ठतः । ६३००।८।२।६३।८।५।८।८। अत्र धनपङ्क्तौ प्रविष्टद्वितीयऋणं नानागुणहानिमात्र- ३ २ १

चरमगुणहानिद्रव्यमात्रमिदम् १००।८।६। एतानि त्रीणि द्रव्याणि समयप्रबद्धेन ६३०० शलाकीकृतानि

---

३२ - ३२ मिलानेसे ५१२ होते हैं। इस तरह अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक अधिक चय मिलानेसे ५१२ होते हैं। इस सबका जोड़ दो कम गच्छका दो बार संकलन मात्र चय प्रमाण होता है। उक्त चयोंका प्रमाण इस प्रकार होता है— ३२×३१
३२×१५
३२×६
३२×३
३२×१

गणित सूत्रके अनुसार इनका जोड़ दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छको २ कम १ कम
तीन, दो और एकसे भाग देकर उससे चयके प्रमाण ३२ को गुणा करनेपर ३२×६ ३ २
इस प्रकार होता है। इसको पहलेके अभाव द्रव्यमें-से घटाना है। कन्नड़ वृत्तिके अनुसारी संस्कृत टीकाकारने जिस पुरानी रीतिसे लिखा है, उससे आजके पाठकोंको समझानेमें कठिनता होती है। अतः सीधा अभिप्राय यह है कि ६३००×८ में-से जो घटाना है, वह ५१२×२८ में-से ३२×५६ को घटा देनेपर जो शेष रहे, उतना है। इतना घटा देनेपर प्रथम

चतुष्कद्विकमुं द्विकद्विकमुं भेदिसि चतुष्कमं द्विकद्विकं गुणिसि गुणहानिगे गुणहानियमुत्पादिसि गुण-
हानिगे गुणहानियनपवर्तिसि मत्तं भागहारभूतपंचविंशतिरूपुगळं मूररिवं भेदिसि रूपाधिकत्रिगुण-

हानियनुत्पादिसि स्थापिसिदोडिंतिक्कु ८।५।८ मिल्लिदं ऋणरूपं ऋणस्य ऋणं राशिर्द्वेन-

८।३। ३

मंबेरडरूपं पार्श्वदोळु स्थापितमिदु संदृष्टि ८।५।८।८५ १ ईयेरडुं राशिगळ

८।३।१ ८।३।३

मोल्लिदं द्विरूपुगळ् ततीय कडेयं स्थापिसि जी महाधिय ८ १।८५८। २।८।२ ध] ५

९८ ८३ ८३ ८३ ३ ८३ ३

क्रमेणैवं तिष्ठन्ति ८।२।, ८।५।८।८, ।८।६ एतेषु मध्यराशेर्भागहारभूतशतषट्कयोर्ययाकथं
१००।६। , ६३।

चतुष्कद्वयाभ्यां संभेद्य चतुष्कं द्वाभ्यां गुणयित्वा गुणहानिमुत्पाद्य गुणहान्या गुणहानिमपवर्त्य पुनर्भागहारभूत-

पञ्चविंशतौ रूपाधिकत्रिगुणहानौ कृतायां एवं ८।५।८। अत्र स्थिते ऋणरूपे ऋणस्य ऋणं राशेर्वेन-

८।३।३

मिति पार्श्वे स्थापिते एवं ८।५।८ | ८।५।१ एतयोरुपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य
८।३।३ | ८।३।३

८।५।८ | ८।५। गुणहानिगुणितप्रथमनिषेकं २।८ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणयित्वा १०
८।३।३ | ८।३।३
२।८ | २।
८।३।३ | ८।३।३

गुणहानिका जोड़ आजाता है। इसी तरह द्वितीय गुणहानिके प्रथम निषेकमें सर्व द्रव्य ३१०० है। द्वितीय गुणहानिके दूसरे निषेकका द्रव्य उससे २५६ कम है। इसी तरह प्रथम गुणहानिके समान हानिका प्रमाण जानकर उसमें जोड़नेपर द्वितीय गुणहानिका सर्व द्रव्य ३१००×८ होता है। जैसे पहली गुणहानिमें प्रथम गुणहानिका प्रथम द्रव्य ५१२ और चय बत्तीस है। दूसरी गुणहानिमें उससे आधा अर्थात् २५६ और १६ है। अतः २५६×२८ में १६×५६ को कम करके ३१००×८ में घटानेपर दूसरी गुणहानिका जोड़ आता है। इसी तरह ऊपर भी

१. म द्विगुण°। २. म प्रतौ न विद्यते संदृष्टिः।

गुणहानिगुणित प्रथमद्विकमं केळगेयु मेगेयुं त्रिगुणिसियल्लि पंचरूपुगळं मेले समच्छेदं माडि पंचगुणहानिगे पंचगुणहानियं तोरि तदात्मप्रमाणमनों दु रूपं त्रिगुणहानियोळ्कूडियदनपवर्तिसिदोडिमितक्कुं ८।५ शेषमं १।८ । मेलण पार्श्वदोळु समच्छेदमं माडि
९ ८।३।९

गुणहानिगे गुणहानियं तोरि त्रिगुणपंचकदोळों दूपं कळेदोडितक्कुं ८।९।३° मत्तमा केळ-
८।३।९

गेयुं स्थापिसिदं द्वितीयद्विकमं केळगेयुं मेगेयुं ओं भत्तरिवं गुणिसि २।९ यिल्लिय
८।३।३।९

४३९
८३ ८३ ३९
चतुर्दशरूपयुगळं मूररिवं समच्छेद माडिद मेलण राशियोळु रूपोनत्रिगुणपंचकके रूपोनत्रिगुण पंचकमप्प पदिनाल्कु रूपुगळं तोरि त्रिगुणहानियोळात्मप्रमाणमनों दुरूपं कूडि रूपाधिकत्रिगुणहानिगे

६। ८	पार्श्वे पञ्चरूपाणामधस्तात् १।५ उपरि समच्छेदं कृत्वा पञ्चगुणहानेः
८।३।९	८।३।९

पञ्चगुणहानिं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणमेकरूपं त्रिगुणगुणहानौ निक्षिप्य ८।३।८।५ अपवर्तिते एवं ८।५
८।३।९ ९
शेषं १।८। उपरितनपार्श्वे समच्छेदं कृत्वा गुणहानेर्गुणहानिं प्रदर्श्य त्रिगुणपञ्चके रूपे १।८
८।३।९ ८।३।९
अपनीते एवं ८।५।३। पुनस्तदधःस्थापितद्वितीयद्विकं- २।१° उपर्यधो नवभिर्गुणयित्वा
८।३।९ ८।३।३
२।९ अग्रतनचतुर्दश- १।५।३। रूपाणि त्रिभिः समच्छेदीकृत्य उपरितनराशौ रूपोन-
८।३।३।९
त्रिपञ्चकस्य रूपोनत्रिपञ्चकरूपचतुर्दशरूपाणि दर्शयित्वा त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं मेलयित्वा

सब गुणहानियोंका धन जानना। यथा ६३००।८।, ३१००।८।, १५००।८।, ७००।८।, १००।८।

---

१. ब °कस्वरूपोनत्रिपञ्च पञ्चचतुर्दश° ।

रूपाधिकत्रिगुणहानियनपवर्त्तसि ५ । ३ भागहारं सप्तविंशतिरूपुगळप्पुवरिंवमेकरूपहीनत्वमनव
९ । ३

गणिसियपवर्त्तसिसोडेकरूपार्द्धमक्कुं । १ मिवरोळ्वशिष्ट नाल्कु रूपुगळं ४ रूपा-
२ ८ । ३ । २३

संख्येय भागमं १ साधिकं माडि १ द्वितीयऋणदोळ् ८ । ६ इवरोळु प ७ छे व छे
१ २ ६ ३

छे ८ छे प
व

किंचिन्न्यूनं माडियपवर्त्तसिसिदोडे संख्यातवर्गशलाकेगळप्पुवु । द्वित्रिऋण ९३
व १—प्रथमऋणमं ८ । ५
९

१
संदृष्टिनिमित्तं केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसि ८, १० एकरूपमं वेरे स्थापिसि ८ । १८ शेषमनपवर्त्तसि ५
१८

द्विगुणहानियोळ् ८ । १ शोधिसिसोडिनितक्कु ८ । ३ द्वितीयऋणंविदं व १—साधिकमप्प
२ २

वेरिरिसिद गुणहान्यष्टावशैकभागमं ८ । १ किंचिन्न्यूनं माडिंविदं १२ समयप्रबद्धंविदं मुंपिसुत्तिरलु
१८

---

८ । ३ । ५ । ३ रूपाधिकत्रिगुणगुणहान्या रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिमपवर्त्य– ५ । ३ भागहारभूतसम-
८ । ३ । ३ । ९ ३ । ९

विंशतौ एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्तिते एकरूपार्धं स्यात् १ अत्र च प्राक्तनावशिष्टरूपचतुष्टयं ४
२ ८ । ३ । २७

अपवर्तिते रूपासंख्येयभागत्वात् १ साधिकं कृत्वा १ द्वितीयऋणे ८, ६ अर्थसंदृष्ट्या अत्र— १०
a २ ६३

प , १ , छे व छे किंचिदूनं कृत्वा अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकाः स्युः व १–। प्रथमऋणं ८ । ५
९

छे व छे प
व

अर्थसंदृष्टिनिमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणयित्वा ८, १० एकरूपं पृथक् संस्थाप्य– ८ । १ शेषमपवर्त्य ८ । १
१८ १८ २

यहाँ एक गुणहानिके धनमें अन्तिम गुणहानिका धन मात्र ऋण १०० । ८ मिलानेसे तथा दोका भाग देनेसे धन इस प्रकार होता है—३२०० । ८ । २ । १६०० । ८ । २ । ८०० । ८ । २ । ४०० । ८ । २ । २०० । ८ । २ । १०० । ८ । २ । १५

गणित सूत्रके अनुसार अन्तधन ३२०० । ८ । २ । को दोसे गुणा करनेपर ६४०० । ८ । २ । होता है । इसमें आदि धन १०० । ८ । २ । को घटानेपर सब गुणहानियोंके धनका जोड़ ६३०० । ८ । २ । होता है । ऊपर कह आये हैं कि द्वितीयादि गुणहानिका ऋण भी क्रमसे आधा-आधा होता जाता है । इसीको टीकामें बहुत विस्तारसे स्पष्ट करके दिखलाया है ।

किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वमक्कुं ठ स ठ १२॥ अधिकाधिकसंकलनदिंद ७ १ ३ ० ४
६ ३ ० ०

अब्धि शेष १ १ में तेवोडे आबाधारहितकर्म्मस्थितिमात्रसमयप्रबद्धंगळ चरमसंचयगुणहानियोळु
२ ० ० ४
६ ३ ० ०

गुणहानिसंकलनमात्रचरमनिषेकंगळादि धनरूपदिंदिक्कुं। ९ ८ ८ रूपोनगुणहानिसंकलन
२

मात्रविशेषंगळु चयधनरूपदिंदमिर्त्तिप्पुं १ ८ ८ ८ वी येरडु द्रव्यंगळनेकत्रं माडिदोडे
३ २ १

५ द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु चरमगुणहानिसर्वधनमक्कु
२ १
१ ८ । ४ ८ । ८ मदक्के तोडे आदि धनद चरमनिषेकदोळो डु रूपं बेरिरिसि १ ८ ८
६ २ । १

शेषमिदु ८ । ८ ८ उत्तरधनदोळिर्द्धोनरूपं तेगेदु बेरिरिसि १ । ८ । ८ शेषमिदु
२ १ ६

८ । ८ । ८ नादि धनदोळ् कूडुवागळु त्रिरूपुगळिदं समच्छेदं माडि ८ ३ ८ ८ तंदु
६ ६

द्विगुणगुणहानौ शोधिते एतावत् ८ । ३ इदं पुनः द्वितीयऋणा व १–धिकेन पृथक्संस्थापितगुणहान्यष्टादशैक-
२

१० भागेन ८ , १ न्यूनयित्वा १२– समयप्रबद्धेन गुणितं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति।
१८

स १२–। अथाधिकसंकलनेन सत्त्वद्रव्यमुच्यते—

आबाधारहितकर्मस्थितीनां समयप्रबद्धानां चरमसंचयगुणहानौ गुणहानिसंकलनमात्रचरमनिषेकाः आदि-

धनरूपेण तिष्ठन्ति–९ , ८ , ८ रूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषाः चयधनरूपेण तिष्ठन्ति
२ , १

१ , ८ , ८ , ८ , एतद्धनद्वयमेकीकृतं द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं
३ , २ , १

१५ चरमगुणहानिसर्वधनं भवति १ , ८ , ४ , ८ , ८ तद्यथा–आदिधनस्य चरमनिषेकस्थरूपं पृथग् न्यस्य
६

ऐसे करनेसे समय-प्रबद्धसे गुणित कुछ कम डेढ़ गुणहानि मात्र समयप्रबद्धका सत्त्व रहता है। जिसका चिह्न स १२– जानना।

---

१. म नेरिसि।

कुडुत्तिरलुमिवु ८।४।८ ८ बेरिरिसिदादिधनदेकरूपं सूरिरिवं समच्छेदं माडि ३।८।८
६

उत्तरधनदोळिर्द्देकऋणरूपनवरोळ् कळेदुवनिव २ ८ ८ नुभयधनव चतुर्गुणहानिय मेळे-
६

निलिसिदुदप्पुवरिवं ।

रूपमावुदो बु कारणदिदं द्विचरमगुणहानियोळु तन्न चरमादिनिषेकंगळु चरमगुणहानि-चरमादिनिषेकंगळं नोडलु द्विगुणद्विगुणंगळागि चरमगुणहानिद्रव्यदिदं अधिकंगळप्पुवुमदु कारणदिदं

द्विचरमगुणहानिद्रव्यं पूर्वमे नोडलिदिनु चयधनमु द्विगुणमक्कु १ ८। ८ ८ २ ८। ८ ८
२ ३ २ १

अदु कारणदिं सर्व्वधनं द्विगुणमागि गुणिहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यनधिकमक्कु २ ८ ४ ८ ८
२ ६

१००। ८। मिदें तावुदें दोडे संदृष्टि इदं संकलिसिदोडे :—

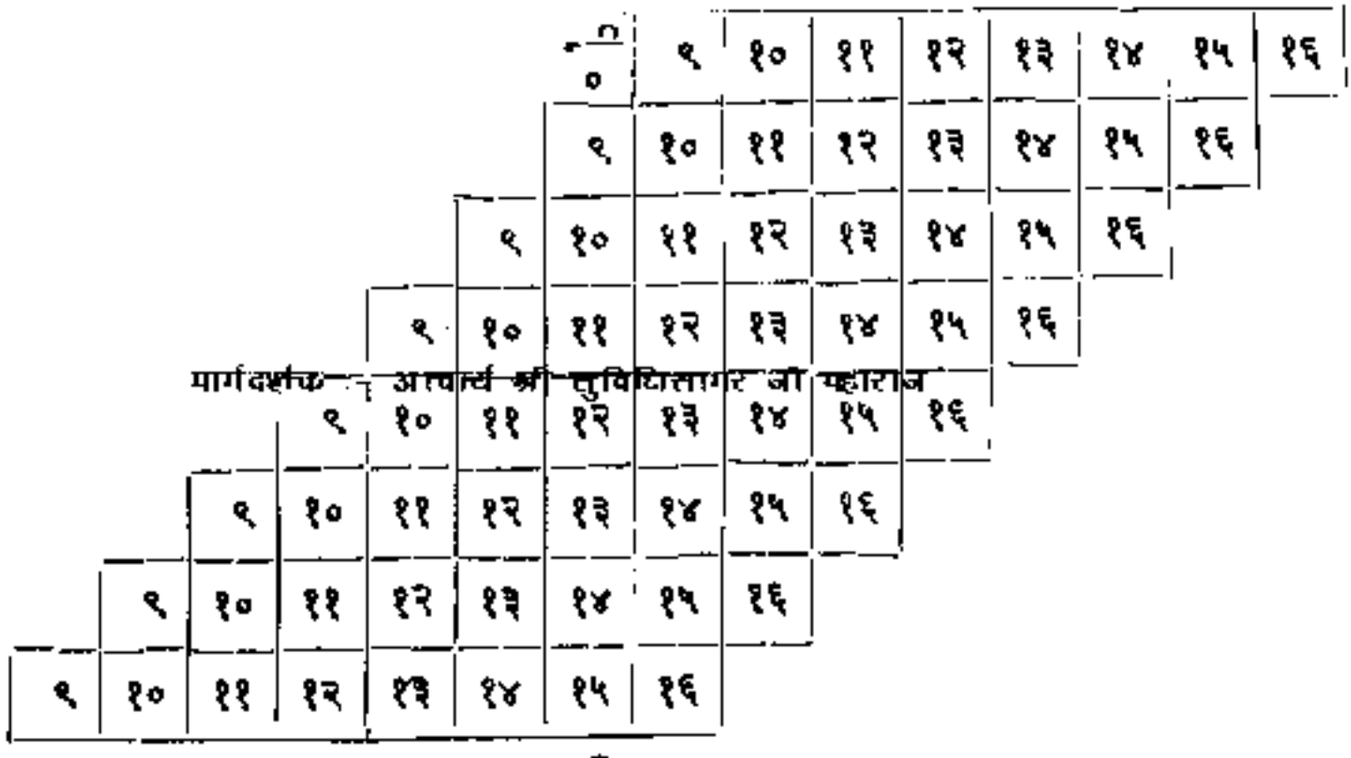
							१८
						१८	२०
					१८	२०	२२
				१८	२०	२२	२४
			१८	२०	२२	२४	२६
		१८	२०	२२	२४	२६	२८
	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०
१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२

---

१ , ८ , ८ शेषे ८ , ८ , ८ त्रिभिः समच्छेदीकृते ८ , ३ , ८ । ८ उत्तरधनस्थितऋणरूपं पृथग्न्यस्य
२ , १ २ , १ ६

१ , ८ , ८ अवशिष्टेन ८ , ८ , ८ युते सति एतावति ८ , ४ , ८ , ८ पुनः पृथक्स्थापितादिधनैकरूपेण
६ ६ ६

त्रिभिः समच्छेदीकृतेन ३ , ८ , ८ उत्तरधनस्थितैकऋणरूपन्यूनेन– २ , ८ , ८ चतुर्गुणहानीनामुपरियुत-
६ ६



मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पूर्व्वमं नोडलु द्विगुणमक्कुं २।८।४।८।८ गुणहानिगुणितमावोडे चरमगुण-
६
हानिद्रव्यमधिकप्रमाणमक्कु १००।८ मितु त्रिचरमादिगुणहानिद्रव्यंगळु तंतम्माधस्तनधनमं
नोडलू द्विगुणद्विगुणंगळ्कु ०—१/० गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यदिंदमधिकंगळप्पुवागि
सर्वधनमेचरमंगोडे प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं संदृष्टि रचने—

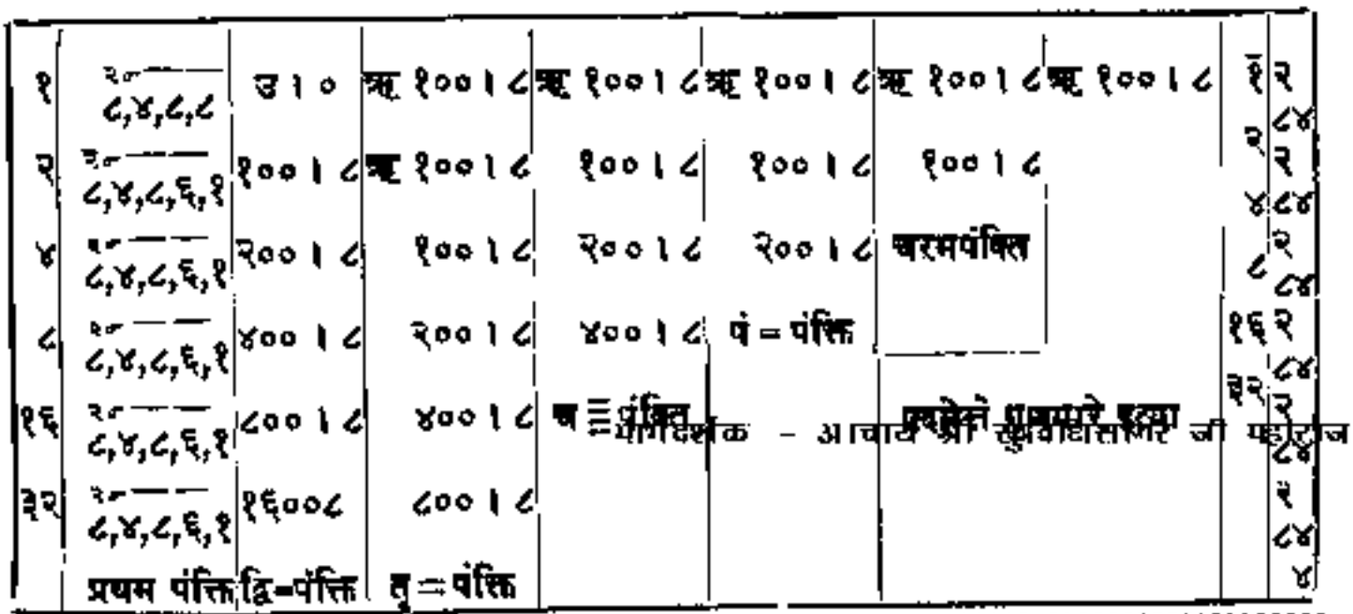
त्वात्, पुनः यतः कारणाद् द्विचरमगुणहानौ निजचरमादिनिषेकाः चरमगुणहानिचरमादिनिषेकेभ्यो द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चरमगुणहानिद्रव्येणाधिकाः स्युस्ततः कारणाद् द्विचरमगुणहानिद्रव्यं पूर्वस्मादादिधनं चयधनं च

द्विगुणं द्विगुणं स्यात् ९, २, ८, ८ | २, ८, ८, ८ अतः कारणात् सर्वधनं द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा
२, १ ३, २, १

गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्येणाधिकं भवति— २, ८, ४, ८, ८।१००, ८, तथा संदृष्टिः—
६

							१८
						१८	२०
					१८	२०	२२
				१८	२०	२२	२४
			१८	२०	२२	२४	२६
		१८	२०	२२	२४	२६	२८
	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०
१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२

इदं संकलितं सत्पूर्वस्माद् द्विगुणं भवति २।८।४।८।८। इदं च
६



मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

							९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
						९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६		
					९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६			
				९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६				
			९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६					
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६						
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६							
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६								

संकलितं गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं तदधिकप्रमाणं भवति १००।८। एवं चरमादिगुणहानिद्रव्याणि स्वस्वाधस्तनतो द्विगुणद्विगुणगुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्याधिकानि भूत्वा गच्छन्ति। तद्यथा-प्रथमगुणहानिपर्यन्तं संदृष्टिः-

१	८ , ४,८, ८ (६)	अ १००,८				
२	८ , ४,८, ८ (६)	१००,८	अ १००,८			
४	८ , ४,८, ८ (६)	२००,८	१००,८	अ १००,८		
८	८ , ४,८, ८ (६)	४००,८	२००,८	१००,८	अ १००,८	
१६	८ , ४,८, ८ (६)	८००,८	४००,८	२००,८	१००,८	अ १००,८
३२	८ , ४,८, ८, (६)	१६००,८	८००,८	४००,८	२००,८	१००,८ अ १००,८
प्रथमपंक्तिः		द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः	पञ्चमपंक्तिः	चरमपंक्तिः

इल्लि चरमगुणहानिद्रव्यमं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं गुणिसुत्तमिरलु सर्वगुणहानि

२
प्रथमपंक्ति सर्वधनमिनितक्कु ६३।८।४८८ मी प्रकारदिंदं गुणहानिगुणितचरमगुण-
६

हानिद्रव्यमं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं गुणिसुत्तिरलधिकसर्व्वधनमक्कु ६३००।८। मत्तं तेंदोडे

ऋण सहितमुत्तरधनरचने संदृष्टि

५ १००८ यिदं संकलिसिदडे तत्प्रमाणमक्कुमेंबुदर्त्थं । इल्लि उत्तरधनसंकलनार्त्थं
२००८ नानागुणहानिशलाकागुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यं ऋणद्रव्यप्रमाणमक्कुं
४००८ १००।८।६। इंती मूरु राशिगळु समयप्रबद्धप्रमाणदिंदं शलाकीकृतंगळागुत्तिरलु
८००८ यथाक्रमदिंदमिदु संदृष्टि
१६००८
१० ३२००८

२ मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

८।४।८।८ आदिधन उत्तरधनमिदु ८।१। ऋणधनमिदु ८।६ इल्लियुं शतषट्कवि-
१००, ६ ६ ३

२
धानदिंदं संजातद्रव्यमिदु ८,४।८ अधिकरूपं पार्श्वदोळिरिसिदोडिदु शे ८।४।८
८।३।३ ८।३।३

अत्र चरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं सत् सर्वगुणहानिप्रथमपंक्तिसर्वधनमेतावत्स्यात्

६३, ८, ४, ८, ८, अनेन प्रकारेण गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना
६

१५ गुणितं सत् अधिकसर्वधनं स्यात् ६३००।८ तद्यथा—ऋणसहितोत्तरधनरचनासंदृष्टिः—

१००।८ इदं संकलितं तत्प्रमाणमित्यर्थः। अथोत्तरधनसंकलनार्थं निक्षिप्तं नानागुणहानिशलाका-
२००।८ गुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यं ऋणं भवति १००, ८, ६। एते त्रयो राशयः
४००।८ समयप्रबद्धेन प्रमाण्यन्ते तदा क्रमेणादिधनमिदं ८, ४, ८, ८ उत्तरधनमिदं
८००।८ १००, ६
२० १६००।८
३२००।८

८, १ ऋणमिदं ८, ६ अत्रापि शतषट्कविधानसंजातद्रव्यमिदं ८, ४, ८
६३ ८, ३, ३

अधिकरूपे पार्श्वे स्थापिते एवं ८, ४, ८ ८, ४, १ उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः
८, ३, ३ ८, ३, ३

२
अ ८ ४ । १ उभयत्रोपरिस्थितद्विरूपुगळं तंतम्म क्रमेळगे स्थापिसि ८।४।८ ८।४।१
८।३।३ ८।३।३ ८।३।३
२ २
८।३।३ ८।३।३
प्रथमद्विकमं केळगेयुं मेगे त्रिगुणिसि २।३।८ नाल्कुरूपु गळं कोंडु मेगे
८।३।३।३
कूडिदोडिवु अपवर्तितमिदु ४।८ मत्तं द्वितीय-
९
८।३।४८
८।३९
द्विकमं केळगेयुं मेगेयुं त्रिगुणिसि ६।१ नाल्कु
८।३।९
रूपुगळं कोडु मेलण पाश्वंदोळु ८।४ मूरिरवं समच्छेदं माडि कूडिदोडिवु
८।३।३
८।३।४ अपवर्तितमिदु ४ इदरोळगे प्रथमद्विकशेषमिदु २।८ इदरोळु द्वितीय-
९
८।३।९ ८।३।९
यद्विकशेषवनिवं ८।३।९ साधिक माडि २।८ कोंडु बंदु साधिकं माडि-
८।३।९

संस्थाप्य | ८ , ४ , ८ | ८ , ४ , १ | प्रथमद्विकमुपर्यधस्थिभिः संगुण्य | २ , ३ , ८ |
८ , ३ , ३	८ , ३ , ३		८ , ३ , ३ , ३
२ , ८	२ , १		
८ , ३ , ३	८ , ३ , ३		

रूपचतुष्कं गृहीत्वा उपरिनिक्षिप्ते एवं | ८ , ३ , ४ , ८ | अपवर्तितं ४ , ८ पुनः द्वितीयद्विकमुपर्यधः
९
८ , ३ , ९ |

त्रिभिर्गुणयित्वा ६ , १ अस्माद्रूपचतुष्टयं चतुर्गुणितैकरूपात्मकं गृहीत्वा १ , ४ उपरि समच्छेदेन १०
८ , ३ , ९ ८ , ३ , ९

त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं निक्षिप्य ८ , ३ , ४ अपवर्तिते एवं ४ इदं प्रथमद्विकशेषेण २ , ८
९
८ , ३ , ९ ८ , ३ , ९

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वोडिदु $\frac{४}{९}$ इवनपवर्त्तसिदोडे किंचिदूनार्द्धमक्कु —$\frac{१}{२}$ मिवं द्वितीयऋण संख्यातवर्गशलाके-गळोळु किंचिदूनं माडुवुदु व १—। इन्नु प्रथमधनमिदु ४।$\frac{८}{९}$ द्वितीयधनमिदु ८। ई येरडु राशिगळं समच्छेदं माडि कूडिदोडिदु ८।$\frac{१}{९}$ इदं [illegible] संदृष्टिनिमित्तमागि गुणहान्यष्टादशभागमनिक्के अपवर्त्तसिदुदरोळु ८।$\frac{३}{२}$ किंचिदूनसंख्यातवर्गशलाके-

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागरजी महाराज

५ गळिदं साधिकाष्टादशभागमं ८।$\frac{१}{१ ८}$ किंचिदूनं माडि समयप्रबद्धमं गुणिसिदोडे किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानि समयप्रबद्धसत्वमक्कुं स ७ १२— ॥

अनुलोमविलोमसंकलनविदं सत्वद्रव्यमें तेंदोडे इल्लि त्रिकोणरचनयोळु प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकमो दु ५१२।१। द्वितीयनिषेकंगळेरडु ४८०।२। तृतीयनिषेकंगळु मूरु ४४८।३। इंतेकैकोत्तरक्रमविदं नडदु चरमनिषेकंगळु गुणहानिमात्रंगळप्पुवु २८८।८। इदु प्रथमपंक्ति।

१० मत्तं द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकंगळु रूपाधिकगुणहानिमात्रंगळु २५६$\frac{८}{२}$ द्वितीयनिषेकंगळु द्विरूपोत्तरद्विगुणहानिमात्रंगळु। २४०।८। तृतीयनिषेकंगळु त्रिरूपाधिकगुणहानिमात्रंगळु। २२४।$\frac{८}{३}$। इंतु पदमात्रंगळु नडदु चरमनिषेकंगळु द्विगुणगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। १४४।८।२

द्वितीयद्विकशेषा २, १ त्रिकेन २, $\overline{८}$ अधिकं कृत्वा ४ अपवर्तितं किंचिदूनार्धं $\frac{१}{२}$ भवति। अनेन $\overline{८}, ३, \frac{९}{}$ $\overline{८}, ३, \frac{९}{}$ द्वितीयऋणसंख्यातवर्गशलाकाः किंचिदूनयेत् व १—शेषप्रथमधनमिदं ४, $\frac{८}{९}$ द्वितीयधने ८ समच्छेदेन मेलयित्वा

१५ ८, १३ संदृष्टिनिमित्तं गुणहान्यष्टादशैकभागं $\frac{८}{१८}$, १ ऋणं निक्षिप्यापवर्त्य ८, $\frac{३}{२}$ किंचिदूनसंख्यात-वर्गशलाकाभ्यधिकाष्टादशभागेनोनयित्वा समयप्रबद्धेन गुणिते किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्वं भवति स ७ १२—।

अथानुलोमविलोमसंकलनेन सत्वद्रव्यमुच्यते। तत्र त्रिकोणरचनायां प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकः एकः ५१२—१ द्वितीयनिषेकौ द्वौ ४८०—२ तृतीयनिषेकास्त्रयः ४४८—३। एवमेकैकोत्तरक्रमेण गत्वा चरमनिषेका

२० गुणहानिमात्राः सन्ति २८८, ८। इयं प्रथमा पङ्क्तिः। पुनर्द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकगुणहानिमात्राः २५६, $\overline{८}$ द्वितीयनिषेकाः द्विरूपाधिकगुणहानिमात्राः २४०, $\overline{८}$। तृतीयनिषेकाः त्रिरूपाधिकगुणहानि-मात्राः २२४, $\overline{८}$। एवं एकैकाधिकक्रमेण गत्वा चरमनिषेकाः द्विगुणगुणहानिमात्राः सन्ति १४४, $\overline{८}$ १

यिवु द्वितीयपंक्ति। मत्तं तृतीयगुणहानिप्रथमनिषेकंगळु रूपाधिकद्विगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। १२८।८।२। द्वितीयनिषेकंगळु द्विरूपोत्तरद्विगुणहानिमात्रंगळप्पुवुं १२०।८।२। तृतीयनिषेकंगळु त्रिरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। ११२।८।२। ई प्रकारदिंदं नडवु चरमनिषेकंगळु त्रिगुणगुणहानिमात्रंगळप्पुवु। ७२।८।३। इवु तृतीयपंक्ति इंतु चतुर्थादिपंक्तिप्रथमादिनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळागुत्तं पोपुवन्नेवरं स्वस्वचरमनिषेक प्राप्तंगळक्कवन्नेवरं इंतवडनि तुं तिर्य्यग्रूपदिंदं रचिसल्पडुवुवंतु रचिसल्पडुत्तिरलु नानागुणहानिशलाकामात्रंगळुपंक्ति गळप्पुवक्के संदृष्टिप्पिवु :—

२८८	८।०	१४४	८।२	७२	८।३	३६	८।४	१८	८।५	९	८।६
३२०	८—१	१६०	८०।२	८०	८।३–१	४०	८।४–१	२०	८।५–१	१०	८।६–१
३५२	८—२	१७६	८।२–२	८८	८।३–२	४४	८।४–२	२२	८।५–२	११	८।६–२
३८४	८—३	१९२	८।२–३	९६	८।३–३	४८	८।४–३	२४	८।५–३	१२	८।६–३
४१६	४	२०८	८–४	१०४	८।३–४	५२	८।४–४	२६	८।५–४	१३	८।६–४
४४८	३	२२४	८–५	११२	८।३–५	५६	८।४–५	२८	८।५–५	१४	८।६–५
४८०	२	२४०	२	१२०	८०।२	६०	८।२–३	३०	८०।२।४	१५	८–५
५१२	१	२५६	८	१२८	८।२	६४	८।३	३२	८।४	१६	८।५
			८								

इयं द्वितीया पङ्क्तिः। पुनः तृतीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः १२८, ८, २। द्वितीयनिषेका द्विरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः १२०, ८, २। तृतीयनिषेकाः त्रिरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः ११२, ८, २,। अनेन प्रकारेण गत्वा चरमनिषेकाः त्रिगुणगुणहानिमात्राः सन्ति ७२, ८, ३ इयं तृतीया पङ्क्तिः। एवं चतुर्थादिपङ्क्तिः प्रथमादिनिषेकाः गच्छमात्रा भूत्वा गच्छन्ति यावत् स्वस्वचरमनिषेकं तावत्। एवमेताः सर्वाः तिर्यग्रूपेण रचयितव्याः। तथा सति नानागुणहानिशलाकामात्राः पङ्क्तयो भवन्ति। तत्संदृष्टिः—

१. म तृतीयनिषेकं°।

इल्लि प्रथमपंक्तियोळु चरमनिषेकप्रभृति प्रथमनिषेकपर्य्यंतं स्वस्वगुणकारमात्रंगळेकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वविशेषंगळु तेगेदु पृथक् स्थापिसल्पडुवुवु संदृष्टि :

	३२	८	१	३२	८	३२	३६
	३२	७	२	३२	१४	३२	२८
५	३२	६	३	३२	१८	३२	२१
	३२	५	४	३२	२०	३२	१५
	३२	४	५	३२	२०	३२	१०
	३२	३	६	३२	१८	३२	६
	३२	२	७	३२	१४	३२	३
१०	३२	१	८	३२	८	३२	१

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इवर युतियुं गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळप्पुवु ३२ ८ ८ ८ कळेव
२ १

शेषंगळु द्वितीयगुणहान्यादिनिषेकमात्रंगळेकाद्येकोत्तरक्रमदिवमितिप्पुवु संदृष्टि :—

२५६	८
२५६	७
२५६	६
२५६	५
२५६	४
२५६	३
२५६	२
२५६	१

इवर संकलनधनं गुणहान्येकवारसंकलनमात्रंगळु द्वितीयगुणहान्यादिनिषेकंगळप्पुवु २५६।८ ८ ई येरडु राशिगळुमनेकत्र माडिदोडे द्विरूपाधिक
२।१
चतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषंगळु प्रथमपंक्त्यादिधनमक्कुं।
२
३२।८।४।८।८ इल्लि वुत्तरधनमिल्ल। मत्तं द्वितीयपंक्तिय स्वकप्रथमादि-
६

	२८८।८	१४४।८	७२।८।२	३६।८।३	१८।८।४	९।८।५
	३२०।७	१६०।८	८०।८।२	४०।८।३	२०।८।४	१०।८।५
	३५२।६	१७६।८	८८।८।२	४४।८।३	२२।८।४	११।८।५
२०	३८४।५	१९२।८	९६।८।२	४८।८।३	२४।८।४	१२।८।५
	४१६।४	२०८।८	१०४।८।२	५२।८।३	२६।८।४	१३।८।५
	४४८।३	२२४।८	११२।८।२	५६।८।३	२८।८।४	१४।८।५
	४८०।२	२४०।८	१२०।८।२	६०।८।३	३०।८।४	१५।८।५
	५१२।१	२५६।८	१२८।८।२	६४।८।३	३२।८।४	१६।८।५
२५	प्रथमपङ्क्तिः	द्वितीयपङ्क्तिः	तृतीयपङ्क्तिः	चतुर्थपङ्क्तिः	पञ्चमपङ्क्तिः	चरमपङ्क्तिः

निषेकंगळोळु तच्चरमनिषेकपर्य्यंतमेकाद्येकोत्तरक्रमविदमिद्दंधिकरूपगळ ५६ तेरेदु स्थापिसुवुदु संदृष्टि :

१४४	८	१४४	८
१६०	७	१६०	८
१७६	६	१७६	८
१९२	५	१९२	८
२०८	४	२०८	८
२२४	३	२२४	८
२४०	२	२४०	८
२५६	१	२५६	८

अंतु स्थापिसिदवरोळु चरमनिषेकप्रभृति स्वस्वगुणकारमात्रैकाद्येकोत्तरक्रमदिं स्वकविशेषंगळं तेगुदु स्थापिसुवुदु संदृष्टि :

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अत्र प्रथमपङ्क्तौ चरमनिषेकात्प्रभृति प्रथमनिषेकपर्यन्तं स्वस्वगुणकारमात्राः एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वस्वविशेषानुद्धृत्य पृथक् स्थापयितव्याः । संदृष्टिः-

३२	१	८	
३२	२	७	एषां युतिः गुणहानिप्रमितगच्छस्य द्विकवारसंकलनमात्रविशेषा भवन्ति-३२।८।८।८ (३ २ १)
३२	३	६	
३२	४	५	
३२	५	४	अपनीतशेषद्वितीयगुणहान्यादिनिषेक एकाद्येकोत्तरक्रमेण एते
३२	६	३	
३२	७	२	
३२	८	१	

२५६	८		
२५६	७		
२५६	६		
२५६	५		
२५६	४		
२५६	३		
२५६	२		
२५६	१		

संकलिताः सन्तो गुणहानिरूपगच्छस्य एकवारसंकलनमात्रा भवन्ति २५६, ८, ८, एतौ द्वौ राशी (२ १) मिलित्वा द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं[1] प्रथमपङ्क्त्यधिधनं भवति ३२, ८, ४, ८, ८, अग्रोत्तरधनं नास्ति, तथा द्वितीयपङ्क्तेः स्वप्रथमादिनिषेकेषु तच्चरमनिषेकपर्यन्तेषु (६) एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थितानि अधिकरूपाणि पृथक्स्थाप्यानि । संदृष्टिः-

१४४।८	१४४।८
१६०।७	१६०।८
१७६।६	१७६।८
१९२।५	१९२।८
२०८।४	२०८।८
२२४।३	२२४।८
२४०।२	२४०।८
२५६।१	२५६।८

अत्र चरमनिषेकात्प्रभृति स्वस्वगुणकारमात्रैकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषानुद्धृत्य स्थापयेत्—

१. ब °हानिसंकलनत्रिभाग°।

१६।८।१	१६। ८	१६।३६
१६।७।२	१६।१४	१६।२८
१६।६।३	१६।१८	१६।२१
१६।५।४	१६।२०	१६।१५
१६।४।५	१६।२०	१६।१०
१६।३।६	१६।१८	१६। ६
१६।२।७	१६।१४	१६। ३
१६।१।८	१६। ८	१६। १

इंतु स्थापिसि संकलिसुत्तिरलु गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळप्पुवु ।

मुनिदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

			२		
१६	८	८	८	शेषमिवु	
	३	२	१		

१२८	८
१२८	७
१२८	६
१२८	५
१२८	४
१२८	३
१२८	२
१२८	१

इवं संकलिसिदोडे गुणहान्येकवारसंकलनमात्रंगळु तृतीयगुणहान्याद्यनिषेकंगळप्पुवु।

१२८।८ ८ ई येरडु राशिगळनेकत्रं मांडिदोडे द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं गळु द्वितीयपंक्त्यादिधनमिवु पूर्वमं नोडलर्द्धमक्कुं। १६।८।४।८।८।

मुन्नं कळेदशेषदोळु चरमनिषेकप्रभृति सर्वत्रगुणहानिगुणितविशेषंगळनेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदं तगेदोडे मिवु—

१६।८।१	१६। ८	१६।३६
१६।७।२	१६।१४	१६।२८
१६।६।३	१६।१८	१६।२१
१६।५।४	१६।२०	१६।१५
१६।४।५	१६।२०	१६।१०
१६।३।६	१६।१८	१६। ६
१६।२।७	१६।१४	१६। ३
१६।१।८	१६। ८	१६। १

एषां संकलनं गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषं भवति—

१६।८।८।८ २।१।२।१ तदुद्धृतशेषमिदं

१२८।८
१२८।७
१२८।६
१२८।५
१२८।४
१२८।३
१२८।२
१२८।१

अस्य संकलितगुणहान्येकवारसंकलनमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति। १२८।८।८ २।१ एतौ द्वौ राशी मिलित्वा द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं द्वितीयपंक्त्यादिधनं पूर्वस्मादर्धप्रमाणं भवति। १६।८।४।८।८ ६ पुनरपरस्मादपनीतशेषाच्चरमनिषेकात् प्रभृति सर्वत्र गुणहानिगुणितैकाद्येकोत्तरविशेषानपनीय—

१. ब चतुर्गुणि संकलनत्रि।

१६	८	१
१६	८	२
१६	८	३
१६	८	४
१६	८	५
१६	८	६
१६	८	७
१६	८	८

इवं संकलिसिदोर्ड इदु १६।८।८ $\overline{८}_{२}$ गुणहानिगुणित-गुणहानिसंकलनमात्रविशेषंगळप्पुवु कळेद शेषंगळु सर्वत्र गुणहानिगुणित-तृतीयगुणहान्याद्यनिषेकमात्रंगळप्पुववक्के संदृष्टि :—

१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८
१२८	८

इवं त्रैराशिककर्मदिदं गुणिसुत्तमिरलु गुणहानिवर्गमात्रंगळु तृतीय-गुणहान्याद्यनिषेकंगळप्पुवु। १२८।८।$\overline{८}_{२}$। ई येरडु राशिगळुमनेकत्र माडुत्तिरलु रूपाधिकद्वयार्द्धगुणहानिगुणितगुणहानिवर्गमात्रविशेषंगळु द्वितीय-पंक्त्युत्तरधनमक्कुं १६।८।८।$\overline{८}_{२}$ इंतु तृतीयादिपंक्तिगळोळावि-धनमुत्तरधनमर्द्धार्द्धमागि नडेवल्लेवरं चरमपंक्ति अल्लेवरं :—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१६।८।१	
१६।८।२	संकलने १६।८।८।$\overline{८}_{२}$। गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनमात्रविशेषा भवन्ति। अपनीत-
१६।८।३	
१६।८।४	शेषं सर्वत्र गुणहानिगुणिततृतीयगुणहान्याद्यनिषेकमात्रं—
१६।८।५	
१६।८।६	
१६।८।७	
१६।८।८	

१२८, ८	इति गुणहानिवर्गमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति १२८, ८, ८, एतौ द्वौ राशी मिलित्वा
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	
१२८, ८	

रूपाधिकद्वयार्धगुणहानिगुणितगुणहानिवर्गमात्रविशेषं द्वितीयपङ्क्त्युत्तरधनं भवति १६, ८, ८, ८, ३, $\frac{}{२}$

एवं तृतीयादिपङ्क्तिष्वपि आद्युत्तरधने अर्धार्धक्रमेण गच्छतः यावच्चरमपङ्क्तिस्तावत्, किंतूत्तरधनं सर्वत्र रूपोनगच्छमात्रगुणकारगुणितं भवति। संदृष्टिः—[कर्नाटटीकावत्]

१. ब °न्यादिनि°। २. ब °न्यादिवर्गमात्रविशेषं°।

नाम	आदिधनं ।	उत्तरधनं ।
अंतगुणहानिः	१, ८, ४, ८, ८/६	१ । ५ । ८ । ८ । ८/२ । ३
पंचमगुणहानिः	२, ८, ४, ८, ८/६	२ । ४ । ८ । ८ । ८/२ । ३
चतुर्थगुणहानिः	४, ८, ४, ८, ८/६	४ । ३ । ८ । ८ । ८/२ । ३
तृतीयगुणहानिः	८, ८, ४, ८, ८/६	८ । २ । ८ । ८ । ८/२ । ३
द्वितीयगुणहानिः	१६, ८, ४, ८, ८/६	१६ । १ । ८ । ८ । ८/२ । ३
प्रथमगुणहानिः	३२, ८, ४, ८, ८/६	०

इल्लि विशेषमुंटावुदेंदोडे उत्तरधनंगळु रूपोनगच्छमात्रगुणकारगुणितंगळप्पुवु, चरमपंक्त्यादिधनमं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं गुणिसुत्तिरलु सर्वपंक्त्यादिधनसंकलितधनमक्कुं ६३ ८४ ८/६ ८१ उत्तरधनगुणकारंगळोळु सर्वत्र स्वस्वगुण्यद्वयोनगुणिदेकैकरूपं तेगेदु बेरे बेरिरिसूवितु बेरिरिसिद राशिगळु रूपोननानागुणहानिशलाकमात्रराशिगळु प्रथमपरिपाटियिंदमिं (मी) रीतिप्पुंवु :—

अत्र चरमपङ्क्त्यादिधनं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं तदा सर्वपङ्क्त्यादिधनं संकलितं स्यात् ११ । ८ । ४ । ८ । ८/६ । उत्तरधनगुणकारेषु सर्वत्र स्वस्वगुण्ययुतैकैकरूपेषु अपनीय पृथक् स्थापितेषु रूपोनानागुणहानिशलाकामात्रराशयः प्रथमपरिपाट्या तिष्ठन्ति । [कर्नाटटीकावत्]

१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	१।८।८।८।३/२	०
२।८।८।८।३/२	२।८।८।८।३/२	२।८।८।८।३/२	२।८।८।८।३/२	०	०
४।८।८।८।३/२	४।८।८।८।३/२	४।८।८।८।३/२	०	०	०
८।८।८।८।३/२	८।८।८।८।३/२	०	०	०	०
१६।८।८।८।३/२	०	मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज			०
०	०	०	०	०	०

५

इवरोळु प्रथमराशि रूपाधिक द्वयर्द्धगुणहानियिंदमुं गुणहानिवर्गदिंमुं गुणितद्वितीयगुणहानिविशेषमात्रंगळप्पुवु। तच्चरमराशियुं तद्गुणकारगुणितचरमगुणहानिविशेषमात्रमक्कुमितु विशेषगुणकारंगळोळु पूर्व्वोक्त प्रमाणदिंदं राशिगळ क्रमदिंदं तेगेदु बेरिरिसिदवु रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रंगळु परिपाटियिनिर्द्दवर गुणसंकलनंगळिवु :—

३१।८।८।८।३/२ १५।८।८।८।३/२ ७।८।८।८।३/२ ३।८।८।८।३/२ १।८।८।८।३/२ १०

इवरोळु गुणसंकलनमं पुट्टिसल्वेडि चरमपरिपाटिद्रव्यमात्रमनिनितं १।८।८।८।८।३/२

सर्व्वत्र मिक्कल्पट्टप्पुदरिंदं नानागुणहानिमात्रंगळं १।८।८।८।८।३/२ ऋणमनिक्कि गुणसंकलनधनमं तंदोडे इवु :—

एते च क्रमेण संकलिता एवं तिष्ठन्ति—

३१, ८, ८, ८, ३/२	१५, ८, ८, ८, ३/२	७, ८, ८, ८, ३/२	३, ८, ८, ८, ३/२	१, ८, ८, ८, ३/२

१५

पुनः एतेषु गुणसंकलनार्थं नानागुणहानिमात्रस्थानेषु चरमपरिपाटिमात्रमेलाबदेतावत्

१, ८, ८, ८, ३/२ ऋणं निक्षिप्य—

३१।८।८।८।३/२ १५।८।८।८।३/२ ७।८।८।८।३/२ ३।८।८।८।३/२ १।८।८।८।३/२ १।८।८।८।३/२

इवर गुणसंकलनधनमिनितक्कुं ६३ ८।८ ८।३/२ इल्लि ओंदु गुणहानियं

गुणकाररूपदिंदं मुंदे स्थापिसि ६३।८।८।३।८/२ मिक्कुवं परस्परं गुणिसुत्तिरलु रूपाधिकत्रिगुणहानियं गुणिसिवोडे यिप्पत्तय्दु एरडनेंटरोळुपवर्त्तिसि शेषनाल्कुरिदं गुणिसलु ६३००।८। गुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रमें बुदर्त्थ-। मिल्लि संकलननिमित्तमिक्किद मुन्निन ऋणमिनितप्पुदि १।८।८।३।६/२ ल्लियमोंदु गुणहानियं नानागुणहानियुमं मुंदे

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्थापिसि १।८।८।३/२।८।६ मिक्कुवं परस्परं गुणिसुत्तिरलु मिनितक्कुं। १००।८।६। मितविधनमिवु ६३।८।४।८/६। उत्तरधनमिवु ६३००।८। ऋण १००।८।६। ई मूरु राशिगळं समयप्रबद्धशलाकेगळं माडिवोडे यथाक्रमदिंनितप्पुवु

३१,८,८,८,३/२	१५,८,८,८,३/२	७,८,८,८,३/२	३,८,८,८,३/२	३,८,८,८,३/२	१,८,८,८,३/२

संकलितेषु धनमेतावद्भवति। ६३।८।८।८।३/२। अत्रैकगुणहानिगुणकाररूपेणाग्रे संस्थाप्य—

६३।८।८।३/२।८। रूपाधिकत्रिगुणगुणहानौ परस्परं गुणितायां पञ्चविंशतिः। तस्यां च द्वौ अष्टभिरपवर्त्य शेषचतुर्भिर्गुणितायां ६३००।८। गुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं दृश्यते। प्रागत्र संकलनार्थं निक्षिप्ते एतावद्ऋणे १।८।८।८।३/२।६। अप्येकगुणहानिं नानागुणहानिं चाग्रे संस्थाप्य

१।८।८।३/२।८।६। परस्परं गुणिते एवं भवति १००।८।६ एवमुक्तमादिधनम्।

६३।८।४।८।८/६। उत्तरधनं ६३००।८। ऋणं च १००।८। समयप्रबद्धशलाकाः कृत्वा

८।४।८।८ ८ ८।६ मुंदे अधिकाधिकसंकलनविधानदोळ् पेळ्दंते नडसिदोडे
१००।६ ६३
किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळ् सत्त्वमप्पुवु स a १२। इंतायुर्वर्जिताष्टविधकर्म्म मूलोत्तरप्रकृतिगळगे प्रतिसमयं बंधोदयसत्त्वलक्षणमं पेळ्दुक्तलक्षणविलक्षणमप्प बंधोदयसत्त्व सामग्रिविशेषमनायुष्यकर्म्मंवर्के पेळ्दपं।

यो जीवः आवनोर्व्वं कर्म्मभूमिय मनुष्यजीवं भुज्यमानपूर्व्वकोटिवर्षायुष्यमनुळं परभवसंबंधि पूर्व्वकोटिवर्षायुष्यमं जलचरंगळोळु दीर्घमप्पायुर्बंधाद्धेयिंदमुं तत्प्रायोग्यसंक्लेशदिंदमुं तत्प्रायोग्योत्कृष्ट योगदिंदमुं कट्टुगुं। योगयवमध्यमेगंतर्म्मुहूर्त्तमिर्द्दों चरमजीवगुणहानिस्थानांतरदोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रकालमिर्द्दों क्रमदिं कालंगतनागि पूर्व्वकोटयायुर्ज्जलचरंगळोळ्पुट्टिदो नंतर्म्मुहूर्त्तदिंदं सर्व्वलघुसर्व्वपर्य्याप्तिगळिंदं पर्य्याप्तकनादोनंतर्म्मुहूर्त्तं विश्रमिसिदों अंतर्म्मुहूर्त्तदिंदं पुनरपि परभवसंबंधि पूर्व्वकोटयायुष्यमं जलचरंगळोळ्कट्टुगुं तदा दीर्घायुर्बंधाद्धेयिंदमुं तत्प्रायोग्यसंक्लेशदिंदमुं तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगदिंदमुं कट्टुगुं योगयवचरमजीवं बहुशः सातद्धेयोळु कूडिदोन-

८।४।८।८ ।८।८।६। अधिकाधिकसंकलनवन्मेलयित्वा किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्ध-
१००।६ ६३
सत्त्वं भवति स a १२–।

एवमायुर्वर्जिताष्टविधकर्ममूलोत्तरप्रकृतीनां प्रतिसमयं बन्धोदयसत्त्वलक्षणं कथयित्वा उक्तलक्षणविलक्षणं बन्धोदयसत्त्वसामग्रीविशेषं आयुःकर्मणः कथयति—

कश्चिज्जीवः कर्मभूमिमनुष्यः भुज्यमानपूर्वकोटिवर्षायुष्कः परभवसम्बन्धिपूर्वकोटिवर्षायुष्यं जलचरेषु दीर्घायुर्बन्धाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति। योगयवमध्यस्योपर्यन्तर्मुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानान्तरे आवल्यसंख्यातैकभागमात्रकालं स्थितः क्रमेण कालं गमयित्वा पूर्वकोट्यायुर्जलचरेषु उत्पन्नोऽन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः अन्तर्मुहूर्तेन विश्रान्तः अन्तर्मुहूर्तेन पुनरपि परभवसम्बन्धिपूर्वकोट्यायुष्यं जलचरेषु बध्नाति तदा दीर्घायुर्बन्धाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन

इस प्रकार आयुको छोड़ शेष कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके प्रतिसमय बन्ध, उदय और सत्त्वका लक्षण कहकर आयुकर्मके बन्ध, उदय सत्त्वकी सामग्री विशेष कहते हैं जो उक्त लक्षणसे विलक्षण है।

एक पूर्वकोटि वर्षकी आयुको भोगनेवाला कोई कर्मभूमिया मनुष्य परभवसम्बन्धी एक पूर्वकोटि वर्षकी जलचरसम्बन्धी आयु उसके योग्य संक्लेश और उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे बाँधता है। योगयवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त तक स्थित होकर अन्तिम जीवगुणहानिस्थानमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल तक ठहरता है। फिर क्रमसे एक पूर्वकोटि काल बिताकर एक पूर्वकोटिकी आयुके साथ जलचरोंमें उत्पन्न हुआ। अन्तर्मुहूर्तमें सब पर्याप्तियोंको पूर्ण करके पर्याप्त हुआ, फिर अन्तर्मुहूर्त तक विश्राम किया। अन्तर्मुहूर्तमें पुनः परभवसम्बन्धी पूर्वकोटिकी जलचर सम्बन्धी आयु बाँधता है। वह भी उसके योग्य संक्लेश

१. यः कर्म° ब। २. ब योगपञ्चमं°।

नंतर समयदोळायुर्बंधमं निर्लेपि सुगुमेंदितु। जीवंगायुर्वेदनाद्रव्यमुमेरडुमुत्कृष्टसंचयमक्कुं। "अंतोमुहुत्तमेत्तेण सव्वलहु सव्वपज्जत्तीहि पज्जत्तयदो "एंदिल्लितु पर्य्याप्तिगळं परिसमाप्ति माडि तदनंतरमंतर्मुहूर्तकालं विश्रमिसि जीविसि बंदंतर्मुहूर्तावशेषमप्प प्रमाणदिदं मेलणपूर्व्वकोटयायुष्यमनेल्लमनोंदे समयदिदं जीविताद्धायामसमात्रसंख्यातसदृशखंडमं कदलीघातदिदं घातिसि मत्तं घातिसिद समयदोळे परभवद संबंधि पूर्व्वकोटयायुष्यमं जलचरसंबंधियनन्यायुर्बंधाद्धिय नोडलु जलचरायुर्बंधाद्धिदीर्घमेंदितु दीर्घायुर्बंधाद्धियिं कटिट जलचरंगळोळ विवेकाभावदिदं संक्लेशवर्जितंगळप्पसातबहुलंगळोळपकर्षणकरणदिदं विनाश्यमानद्रव्यक्क बहुत्वाभावमं कुरुत्तु मेणु जलचरंगळोळायुर्बंधमरियल्पट्टु एकसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकमं स्थापिसि स २२।१६ जीविताद्धयिदं गुणिसि

८।पू १६ पू
२

स ३२।१६।२१४ अल्लि रूपोनजीविताद्धासंकलनमात्रगोपुच्छविशेषगळं

८।पू १६—पू
२

---

१० च वध्नाति। योगोचरजीवो बहुशः साताद्धया सहितः अनन्तरसमये आयुर्बन्धं निर्लिपति इत्येवं तज्जीवानां आयुर्वेदनाद्रव्ये द्वेऽपि उत्कृष्टसंचये भवति। अन्तर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो भूत्वा तदनन्तरमन्तर्मुहूर्तकालं विश्रम्य जीवित्वा उत्पन्नान्तर्मुहूर्तावशेषप्रमाणेन वा पूर्वकोट्यायुष्यं सर्वमप्येकेनैव समयेन जीविताद्धायामसमात्रसंख्यातसदृशखण्डं कदलीघातेन घातयित्वा पुनः घातसमये एव परभवसम्बन्धिपूर्वकोट्यायुष्यं जलचरसम्बन्धिन्यान्यायुर्बन्धाद्धातो जलचरायुर्बन्धाद्धा दीर्घेति दीर्घायुर्बन्धाद्धया बद्ध्वा जलचरेष्वेकभावेन
१५ संक्लेशवर्जितेषु सातबहुलेषु अपकर्षणकारणेन विनाश्यमानद्रव्यस्य बहुत्वाभावं स्तोकं वा जलचरेषु आयुर्बन्धो ज्ञातव्यः। एकसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकं स्थापयित्वा स ३२ । १६ जीविताद्धया गुणयित्वा

८।पू, १६—पू
२

और उसके योग्य उत्कृष्ट योगसे बाँधता है। योगयवरचनाके अन्तमें यह जीव बहुत बार सातके कालसे युक्त होता हुआ अनन्तर समयमें आयुबन्धको घटाता है। इस प्रकार उन जीवोंके आयुके वेदनाद्रव्यका उत्कृष्ट संचय होता है। इसीका विस्तारसे वर्णन कर्णाटक
२० वृत्ति तथा तदनुसारी संस्कृत टीकामें किया है।

विशेषार्थ—आयुके बन्ध, उदय, सत्त्वका लक्षण अन्य कर्मोंसे विलक्षण है; क्योंकि आयुका बन्ध अपकर्ष कालमें अथवा अन्तिम कालमें ही होता है। तथा आयुका आबाधाकाल पूर्वभवमें ही बीत जाता है। इससे आयुकी स्थिति जितने समयकी होती है, उतनी ही निषेकरचना होती है। यहाँ आयुकी स्थितिमें-से आबाधाकाल घटाया नहीं जाता।

---

२५ १. ब योग्यचरमजीवो बहुशः साताद्धय सहितो। २. ब द्रव्यं च उत्कृष्टसंचयं भवति—मु। ३. ब सर्वमेकेनैव। ४. ब द्रव्यबहुत्वाभावं।

स ३२-२१३४,२१२,४ कळदु २१३ अपवर्तनमं रूपोनार्द्धार्द्धरहितद्वोगुणहानिगे रूपो-
८ पू १६ पू २
२

स ३-१६ । २१३४
८ पू १६—पू
२

नं जीविताद्धार्द्धहीनदोगुणहानियं सरिगळेदोडिदु शेष स ३२ । २ १ ४ सिद्धमुत्कृष्टायुर्बं-
८ । पू
धाद्धियिदं गुणिसलिदु स ३२ । २१३ । ४ । १ आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धमक्कुं
८ पू २
स ३२ । २ एकेंदोडे उत्कृष्टबंधाद्धियिदं गुणिसिद जीविताद्धावलिय शलाकेगळं नोडलु
८ १
पूर्वकोटिय आवलिशलाकेगळ्गे संख्यातगुणमुंटप्पुदरिंदं—

४ ≡ अद्धाणेण । पू । सव्वधणे । स ३२ । खंडेडे । स ३२ मज्झिमधनमाच्छेदे तंह ऊणऊण
अद्धाणे । पू । अद्धेण । पू । ऊणेण निषेयहारेण । पू—१६ मज्झिमधणमवहरिदे
२ २ मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
स ३२ । पचयं । तद्दोगुणहाणिणा १६ गुणिदे । स ३२ । १६ आदिणिसेयं = ४ । १
८ पू १६ — पू ८ । पू १६—पू
२ २

स ३२ । १६ । २१३४ अत्र रूपोनजीविताद्धासंकलनमात्रगोपुच्छविशेषान् स ३२ , २ १ ३ ४, २ १ १, ४ ,
८ , पू , —पू ८ , पू, १६ पू २
२

अपनीय स ३२ , २ १ १ , ४ , १६ , २ १ १ ४ , अपवर्तितं रूपोनार्धार्धिरहितदोगुणहान्या रूपोनजीवि- १०
८ पू १६ पू , २
२

ताद्धार्द्धहीनदोगुणहानिमपवर्त्य शेषं स ३२ । २ १ १ ४ , उत्कृष्टायुर्बन्धाद्धया गुणितं स ३२ , २ १ १ ४ ,
८ , पू ८ पू

२ १ १ आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धं भवति—स ३२ , २ तत्कथं ? उत्कृष्टबन्धाद्धागुणितजीवि-
८ १

ताद्धावलि शलाकानां संख्यातगुणत्वात् , प्रकृतिगोपुच्छस्य प्रथमनिषेके जीविताद्धामात्रनिषेकेषु अपनीतेषु
स ३२ १६ २ १ १ ४ एकसमयप्रबद्धमाश्रित्य विकृतिगोपुच्छस्य प्रथमखण्डप्रथमनिषेको भवति
८ पू १६ पू ,
२

समयक्कें ३२। १'१ ४ इष्टद्रव्यमागलु इनितक्कें २ १ १ नितु द्रव्यमक्कुं =४॥
८ पू

प्रकृतिगोपुच्छेयप्रथमनिषेकदोळु जीविताद्धामात्रविशेषंगळं कळेयुत्तिरलु स ३२।१६ २ १ १४
८ १ ६–पू
२

एकसमयप्रबद्धमनाश्रयिसि विकृतिगोपुच्छेय प्रथमखंड प्रथमनिषेकमपवर्तितमिनितक्कु स ३२
८।पू

मिदं संख्यातरूपमात्रखंडशलाकेगळिदं गुणिसि स ३२—पू इदरोळु जीविताद्धामात्रविशेषंगळ-
८पू।२१४

५ नाविय मात्रि स ३२।२१४ जीविताद्धामात्रविशेषंगळनुत्तरमं मात्रि स ३२ २ १ १ ४
८ पू १६ पू ८ पू १६ पू
२ २

रूपोनखंडशलाकेगळं गच्छेयं मात्रि १ संकलन धनमं तंदु स ३२।२१ १ ४ १ १ इवं कळे-
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज २१
८ पू १६—पू
२

युत्तिरलेकसमयप्रबद्धप्रतिबद्धसंख्यातखंडविकृतिगोपुच्छेय प्रथमनिषेकंबक्कुं सु ३२ पू
त पू २ १ १ ४

स ३२ २ १ १ ४ १ १

८ पू १६–पू २ १
२

मेकें दोडे प्रथमखंडप्रथमनिषेकमं नोडलु द्वितीयादिखंडंगळ प्रथमनिषेकंगळल्लल्लि जीविताद्धामात्र-विशेषहीनंगळप्पुवरिंदं :

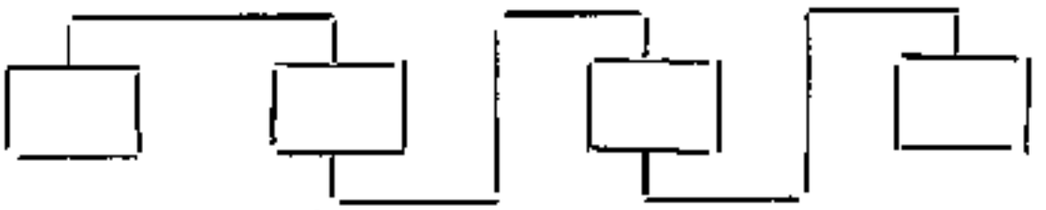
---

१० अपवर्तितः स ३२ असावेव संख्यातरूपमात्रखण्डशलाकागुणितः स ३२ , पू , जीविद्धा-
८ , पू २ १ १ ४ ८ पू २१ १ ४

मात्रविशेषान् स ३२ , २ १ १ ४ आदिमुत्तरं च कृत्वा रूपोनखण्डशलाकाः १ गच्छं कृत्वा आनीत-
८ , पू , १६ , – पू
२

संकलनेन स ३२। २ १ १ १, ४ १। १। ऊनितः एकसमयप्रबद्धप्रतिबद्धसंख्यातखण्डविकृति-
८।पू।१६–पू।२।१।
२

गोपुच्छस्य प्रथमनिषेको भवति—स ३२ , पू तत्कथं ? प्रथमखण्डप्रथमनिषेकाद्द्वितीयादिखण्डप्रथम-
८ , पू , २ १ १ ४



पू
२ १ १ ४

मत्तमा विकृतिगोपुच्छेयसंख्यातखंडप्रथमनिषेकमं स ३२ पू— नष्टद्रव्यप्रमाणा-

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

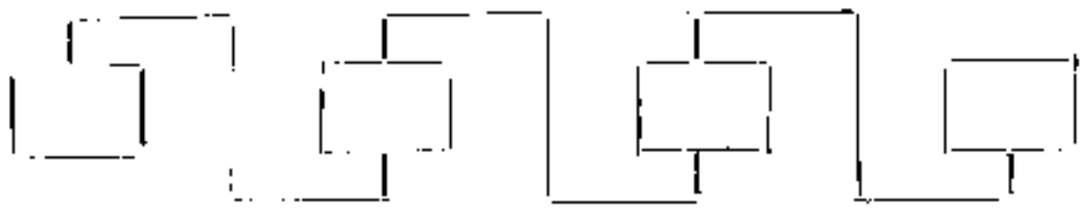
नयननिमित्तमागि रूपोनोत्कृष्ट बंधाद्धियिवं गुणिसि स ३२-पू २७७—१ दी राशियोळु
८ पू २ १ १ ४

खंडशलाकामात्रविशेषावि स ३२ १
८ पू १६ - पू
२

बंधाद्धागच्छ २ १ १—२ संकलनधनमं तंदिवं स ३२ । १ । १ २ १ १ कळेदोडेक-
२ १

८ पू १६—पू
२

निषेकाणां तत्र जीविताद्धामात्रप्रचयहीनत्वात्—



पू
२ १ १ ४

पुनरपि स एव विकृतगोपुच्छस्य संख्यात खण्ड— स ३२ , २ १ १ । ४ , १ , १ , प्रथमनिषेकः
८ , पू , १६ पू । २
२

स ३२ , पू— नष्टद्रव्यप्रमाणमानेतुं रूपोनोत्कृष्टबन्धाद्धया गुणयित्वा—स ३२ , पू २ १ १—१ ।
८ । पू । २ १ १ १ ४ ८ , पू , २ १ १ ४

खण्डशलाकामात्रविशेषान् स ३२ । १ आदिमुत्तरं च कृत्वा द्विरूपोनोत्कृष्टबन्धाद्धां गच्छं २ १ १
८ , पू १६—पू
२

---

१. उत्कृष्टबंधाद्धायाश्चरमनिषेके स्थित्वा आयुष्यस्योत्कृष्टसंचयो निरीक्ष्यत इति हेतोस्तद्द्विचरमपर्यंतस्था एव निषेका नष्टद्रव्यप्रमाणं ततोऽन्यनिषेकनिरासार्थं रूऊणेत्युक्तं ± ।

२. ब °स्य खण्डे प्रथमनिषेकं संख्यातप्रमाणरूपमानेतुं रूपेणोत्कृष्टबन्धाद्धया गुणयित्वा संख्यातनष्टद्रव्यखण्ड-शलाकामात्रविशेषान् U U आदिमुत्तरं च कृत्वा ।

समयप्रबद्धमनाश्रयिसि विकृतिगोपुच्छेय नष्टसर्व्वनिषेकंगळु समयप्रबद्धसंख्येय भागगळप्पुववनुत्कृष्टायुर्बंधाद्धियिंदं गुणिसुत्तमिरलु आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धंगळु विकृतिस्वरूपदिवं नष्टंगळु बप्पुवु स ३२ — । पू २ १ १–१ २ १ १ अपवर्तितमिदु स ३ २ २ इल्लि
८ पू २ १ १ ४ ८ १

विशेषमुंटवावुदेंदोडे ई विकृतिस्वरूपदिवं नष्टद्रव्यं प्रकृतिरूपदिवं नष्टद्रव्यमं नोडलु संख्यातगुणमेकेंदोडेयुत्कृष्टबंधाद्धियिंदं कदळीघातदिदं घातिसिदधस्तनाद्धेयं गुणिसि पूर्वकोटियिंदं भागंगोळ्
२
ळावुदो दु लब्ध स ३२ १ १ ४ २ १ १ मिदं नोडलु कदळीघातैकखंडायामदिवमुत्कृष्ट-
८ पू

बंधाद्धावर्गमं भागिसुत्तिरलावुदो दु लब्ध स ३२ पू २ १ १ २ १ १ मिदक्के संख्यात-
८ पू २ १ १ ४

गुणत्वोपलंभमप्पुदरिंदं ई येरडुं द्रव्यंगळमेकत्रं माडुत्तिरलु आ विकृतिस्वरूपदिवं नष्टसर्व्वद्रव्यमावळियसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुविव स ३२ २ नुभयोत्कृष्टबंधाद्धामात्रसमय-
८ १

प्रबद्धंगळोळु कळेयुत्तमिरलायुष्योत्कृष्टसंचयद्रव्यमक्कुं स ३२ २ १ १ २ —
८

अनंतरं द्वादशगाथासूत्रं गळिंदं योगमार्गणेयोळु संख्येयं पेळ्दपरु—

कृत्वानीतसंकलनेन स ३२ , १ , २ १ १ , २ १ १ ऊनः एकसमयप्रबद्धमाश्रित्य विकृति-
८ , पू १६—पू , २
२

गोपुच्छस्य नष्टसर्वनिषेकाः समयप्रबद्धसंख्येयभागानां भवन्ति, ते उत्कृष्टायुर्बन्धाद्धया गुणिताः तदावलिसंख्यातैक-

भागमात्रसमयप्रबद्धाः विकृतिस्वरूपेण नष्टा आगच्छन्ति स ३२— , पू २ १ १ । २ १ १ अपवर्तिते एवं
८ , पू , २ १ १ ४

स ३२ , २ । अत्रायं विशेषः—एतद्विकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यं प्रकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यात्संख्यातगुणं , कुतः ?
८ १

उत्कृष्टबन्धाद्धया कदलीघातेन घातिताधस्तनाद्धां गुणयित्वा पूर्वकोट्या भागे गृहीते यल्लब्धं—

स ३२ , २ १ १ ४ , २ १ १ तस्मात्कदलीघातैकखण्डायामेन उत्कृष्टबन्धाद्धावर्गे भक्ते यल्लब्धं
८ पू

स ३२ , पू २ १ १ २ १ १ , अस्य संख्यातगुणत्वोपलम्भात् एते द्रव्यद्वये एकत्र कृते सति प्रकृति-
८ , पू २ १ १ ४

स्वरूपेण (प्रकृतिविकृतिरूपेण) नष्टद्रव्यमावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धा भवन्ति स ३२ , २ एतेषु
८ १

उभयोत्कृष्टबन्धाद्धामात्रसमयप्रबद्धेषु अपनीतेषु आयुरुत्कृष्टसंचयद्रव्यं भवति स ३२ , २ १ १ , २ ॥२५८॥
८

अथ द्वादशगाथासूत्रैर्योगमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

बादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा ।
विक्किरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥२५९॥

बादरपूर्णास्तेजसाः स्वकराशेरसंख्यभागमिताः । विक्रियाशक्तियुक्ताः पल्यासंख्याता वायवः ॥

विक्रियाशक्तियुक्तंगळप्प बादरपर्य्याप्ततेजस्कायिकजीवंगळु तम्म राशि वृंदावल्य ८
a
संख्येयभागमात्रमप्पुदर पुनरप्यसंख्येयभागप्रमितंगळ ८ बादरपर्य्याप्तवायुकायिकजीवं- ५
a
गळोळु विक्रियाशक्तियुक्तंगळु पल्यासंख्येयभागप्रमितंगळु ∴विक्रि = प "बादरतेऊवाऊ-
ृ a
पंचिंदिय पुण्णगा विगुव्वंते" एंबिती तैजस्कायिकवायुकायिकंगळ्गे वैक्रियिकयोगकथनमुंटप्पुदरिंदं ।

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।
वेगुव्वियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥२६०॥

पल्यासंख्याताहतवृंदांगुलगुणितश्रेणिमात्रा खलु । वैक्रियिकपंचेंद्रिया भोगभूमाः पृथक् १०
विगूर्व्वंति ॥

वैक्रियिकयोगिगळप्प पर्य्याप्तपंचेंद्रियतिर्य्यंचरं मनुष्यरु पल्यासंख्यातैकभागाभ्यस्तघनांगुल-

---

बादरपर्याप्ततेजस्कायिकजीवेषु विक्रियाशक्तियुक्ताः स्वराशेर्वृन्दावल्यसंख्येयभागमात्रस्य ८ पुनरसंख्येय-
a
८ ≡
भागप्रमिता भवन्ति a a बादरपर्याप्तवायुकायिकजीवेषु लोकसंख्येयभागमात्रेषु ृ विक्रियाशक्तियुक्ताः
प
पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवन्ति a । "बादरतेऊवाऊपंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति" इत्यनेन अत्रयोर्वैक्रियिक- १५
योगस्य अस्तित्वकथनात् ॥२५९॥

पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्येषु वैक्रियिकयोगिनः पल्यासंख्यातैकभागाभ्यस्ता घनाङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रा

आगे माधवचन्द्र वैविद्यदेव बारह गाथाओंसे योगमार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

बादर पर्याप्तक तैजस्कायिक जीवोंमें विक्रिया शक्तिसे युक्त जीव अपनी राशि अर्थात् आवलीके घनके असंख्यातवें भागमें असंख्यातका भाग देनेसे जितना प्रमाण आता है, उतने २०
हैं । तथा बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवोंमें जो कि लोकके असंख्यातवें भागमात्र कहे हैं, विक्रिया शक्तिसे युक्त जीव पल्यके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं । पीछे 'बादरवाऊतेऊ पंचिंदियपुण्णगाविगुव्वंति' इस गाथाके द्वारा बादर पर्याप्त अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके वैक्रियिक योगका सद्भाव कहा है ॥२५९॥

पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्योंमें वैक्रियिककाय योगी पल्यके असंख्यातवें २५

---

१. ब नेन एषामपि वै- ।

गुणितजगच्छ्रेणिमात्रंगळ्‌ —६ – प । खलु स्फुटमागि अप्पुवल्लि भोगभूमिजतिर्य्यङ्मनुष्यरुगळ्‌ कर्म्मभूमिजरोळ्‌ चक्रवर्त्तिगळ्‌ पृथक्‌ मूलशरीरवर्त्तणिंदमन्यच्छरीरमं विगुर्व्विसुवरु । इवरिंदं कर्म्मभूमिजरिगे पृथग्विक्रिये सूचिसल्पट्टुदु ।

देवेहि सादिरेया तिजोगिणो तेहि हीण तसपुण्णा ।
वियजोगिणो तदूणा संसारी एकजोगा हु ॥२६१॥

देवैः सातिरेकत्रियोगिनस्तैर्विहीनाः त्रसपूर्णाः । द्वियोगिनस्तदूनाः संसारिणः एकयोगाः खलु ॥

नारकरु—२ घनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितरु । तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकरु- = ४ । ६५ = १ पर्य्याप्तमनुष्यरु ४२ = ४२ = ४२ = इंतो मूरु राशिगळिंदं सातिरेकमप्प देवराशि = १ त्रियोगिराशियक्कुं । कायवाङ्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशियेंबुदर्त्थमा- ४ । ६५ = १

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

भवन्ति—६ । प खलु—स्फुटं । तत्र भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिजेषु चक्रवर्तिनश्च पृथक्मूलशरीरादन्यदेव उत्तरशरीरं विगुर्वन्ति । अनेन कर्मभूमिजानामपृथग्विक्रिया सूचिता ॥२६०॥

घनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितनारकैः —२ , संख्यातपण्णट्ठीप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरप्रमित- = संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्भिः ४ , ६५ = १ बादरलब्धनप्रमितपर्याप्तमनुष्यैश्च ४२ = ४२ = ४२ = , सातिरेकः = साधिको देवराशिः ४ , ६५ = १ त्रियोगिराशिर्भवति—कायवाङ्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिरित्यर्थः । तैः-

---

भागसे गुणित घनांगुलसे जगतश्रेणीको गुणा करनेपर जो परिमाण आता है, उतने हैं । उनमें-से भोगभूमिमें जन्मे तिर्यंच और मनुष्य तथा कर्मभूमिजोंमें चक्रवर्ती पृथक् अर्थात् मूल-शरीरसे भिन्न ही विक्रिया करते हैं । इससे कर्मभूमिजोंमें अपृथक् विक्रिया ही होती है, यह सूचित किया है ॥२६०॥

पहले देवराशिका प्रमाण साधिक ज्योतिष्क देवराशि प्रमाण कहा था । उस देवराशिमें घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणी प्रमाण नारकी, और असंख्यात पण्णट्ठी तथा प्रतरांगुलसे भाजित जगतप्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच तथा बादरके घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य इन सबको मिलानेसे जो परिमाण होता है, उतनी त्रियोगी अर्थात् काय-वचन-मन तीनों योगोंसे युक्त जीवोंकी राशि होती है । पर्याप्त त्रसराशि प्रमाणमें-से त्रियोगी जीवोंके परिमाणको कम कर देनेसे जो शेष रहे, उतने द्वियोगी अर्थात् काययोग और वचनयोगसे

---

१. ब °रादन्यशरीरं ।

त्रियोगिजीवहीनत्रसपर्य्याप्तराशि $\frac{=}{५-}$ ४ द्वियोगिराशिप्रमाणमक्कुं। काययाग्योगयुक्तजीव-
राशियें बुदर्थमा द्वियोगिजीवंगळिंदमुं त्रियोगिजीवंगळिंदमुं हीन संसारिराशि १३ एकयोगिराशियक्कुं
काययोगजीवराशियें बुदर्त्थमितु खलु स्फुटमागि ज्ञातव्यमक्कुं।

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा ॥२६२॥

अंतर्म्मुहूर्त्तमात्राश्चतुर्म्मनोयोगाः क्रमेण संख्यगुणाः। तद्योगः सामान्यं चतुर्व्वाग्योगास्ततस्तु संख्यगुणाः॥

सत्यासत्योभयानुभयमें बी विकल्पंगळप्प नाल्कुं मनोयोगंगळुमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रंगळु। प्रत्येकमंतर्मुहूर्त्तकालवृत्तिगळप्पुवंतावोडं क्रमदिंदं संख्येयगुणंगळु

	सा	२१	८५
अ	२१	६४	
उ	२१	१६	
अ	२१	४	
स	२१	१	

मो नाल्कुं

योगकालंगळु पुटियुमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमेयक्कुमी नाल्कुं मनोयोगकालयुति सामान्यमें नोडलु २१।८५।

हीनत्रसपर्याप्तराशिः $\frac{=}{५-}$ ४ द्वियोगिराशिप्रमाणं भवति—काययाग्योगयुक्तजीवराशिरित्यर्थः। ताभ्यां द्वित्रियोग-
राशिभ्यां हीनसंसारी १३ = एकयोगिराशिर्भवति—काययोगिजीवराशिरित्यर्थः। एवं खलु स्फुटं ज्ञातव्यम् ॥२६१॥

सत्यासत्योभयानुभयाख्याः चत्वारो मनोयोगाः अन्तर्मुहूर्तमात्राः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणा भवन्ति—

अ २ १। ६४ उ २ १। १६ अ २ १। ४ स २ १। १	एषां कालानां युतिः सामान्यं सामान्यमनोयोगकालो भवति २ १ ८५। अयमप्यन्तर्मुहूर्तमात्र एव, ततः सामान्यमनोयोगकालात्तु पुनः ते चत्वारो वाग्योगकाला अपि क्रमेण संख्यातगुणाः, तथापि प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तमात्रा एव—

युक्त जीवोंका परिमाण होता है। संसारी जीवराशिमें-से दो योग और तीन योगवाले जीवोंका परिमाण हीन कर देनेपर जो शेष रहे, उतना एक योगी अर्थात् काययोगी जीवोंकी राशि होती है ॥२६१॥

सत्य, असत्य, उभय और अनुभय नामक चारों मनोयोगोंमें-से प्रत्येकका काल अन्तर्मुहूर्त है, तथापि क्रमसे संख्यात गुणा है अर्थात् सत्य मनोयोगका काल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त असत्य मनोयोगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभय मनोयोगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभय मनोयोगका काल है। इन चारों योगोंके कालका जोड़ सामान्य मनोयोगका काल है। वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है। सामान्य मनोयोगके कालसे चारों वचनयोगोंका काल भी क्रमसे संख्यातगुणा है, तथापि प्रत्येकका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है अर्थात् चारों मनोयोगोंके कालोंके जोड़से संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त सत्य वचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा

तु मत्तें नाल्कुं वाग्योगकालंगळ्गं संख्यातगुणंगळ्गं क्रमविदप्पुवु सम अं। वाग्योग इल्लियुं

	२१।८५	३४०
आ	२१।८५	२५६
उ	२१।८५	६४
अ	२१।८५	१६
स	२१।८५	४

प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त्तकालवृत्तिगळप्पुवंतादोडं क्रमविदं संख्येयगुणंगळुमी नाल्कुं वाग्योगकालयुतिसमु-मंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमेयक्कुं २१।८५।३४०।

तज्जोगो सामण्णं काओ संखाहदो तिजोगमिदं।
सव्वसमासविभजिदं सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ॥२६२॥

तद्योगः सामान्यं कायः संख्याताहतस्त्रियोगमितं। सर्व्वसमासविभाजितं स्वकस्वगुणसंगुणे तु स्वकराशिः॥

आ नाल्कुं वाग्योगकालंगळ योग सम्मेलन सामान्यवाग्योगकालमक्कुं। २१।८५।३४०। मिदं नोडलु काययोगकालं संख्यातगुणमक्कुं। २१८५।१३६०। मनोवाक्काययोगंगळ सर्व्वसमास-विदं। त्रियोगमितिं त्रियोगिगळ प्रमाणमप्प मिश्रपिंडमं भागिसि स्वस्वगुणकारगळिंदं सत्य-

अ	२१।८५।२५६	एषां युतिः २१, ८५, ३४० अपि अन्तर्मुहूर्तमात्री भवति ॥२६२॥
उ	२१।८५।६४	
अ	२१।८५।१६	
स	२१।८५।४	

तेषां चतुर्णां वाग्योगकालानां योगः—युतिः सामान्यवाग्योगकालो भवति २१, ८५, ३४०। अस्मात् काययोगकालः संख्यातगुणः २१, ८५, १३६०। सर्वसमासेन सर्वेषां मनोवाक्काययोगकालानां संयोगेन २१, ८५, १७०१ त्रियोगमितं प्रागुक्तं—

म	२१, ८५, १	त्रियोगिजीवसंख्यां विभज्य स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालेन गुणिते सति स्वस्वसत्य-
व	२१, ८५, ३४०	
का	२१, ८५, १३६०	
एषां योगः १७०१		

अन्तर्मुहूर्त असत्य वचनयोगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त उभयवचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा अन्तर्मुहूर्त अनुभयवचन योगका काल है। इन सबका योग भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है। संदृष्टिके रूपमें सत्यमनोयोगका काल १ है, तो असत्यमनोयोगका काल ४ है, उभय मनोयोगका काल १६ है और अनुभयका ६४। इन सबका जोड़ ८५ होता है। इससे संख्यातगुणा ८५×४ सत्य वचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा ८५×१६ असत्य वचन योगका काल है। उससे संख्यातगुणा ८५×६४ उभयका तथा उससे संख्यात-गुणा ८५×२५६ अनुभयवचन योगका काल है। इसका जोड़ ८५×३४० होता है ॥२६२॥

इन चारों वचनयोगोंके कालका जोड़ ८५×३४० सामान्य वचनयोगका काल है। इससे संख्यात गुणा ८५×१३६० काययोगका काल है। सब मनोयोग, वचनयोग और

१. ब "त्रियोगिजीवराशिप्रमाणं भक्त्वा स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालरूपगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वसत्यमनो-योग्यादि जीवराशिप्रमाणमायाति तथथा—।"

मनोयोगादिगुणकारंगळिंदं गुणिसुत्तमिरलु स्वस्वराशिप्रमाणं बक्कुं। सत्यमनोयोगिगळादिगळ संख्ये बक्कुमदें तेदोडे—'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेत्सः, एंबी गणितसूत्रोक्तविंद इनितु कालदोळेल्लमिनितु जीवंगळ्गे संचयमागुत्तिरलु सत्यमनोयोगकालमिनितरोळेनितु जीवंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकं माडि तंतम्म शलाकेगळिंदं गुणिसि प्रमाणराशिप्रक्षेपकयोगविंदं भागिसुत्तिरलु

सत्यमनोयोगिगळादियाद योगिगळ संख्येयमक्कुं। सत्यमनोयोगिगळु $\frac{=१}{४।६५=१।८५।१७०१}$ । १ ५

असत्यमनोयोगिगळु $\frac{=१}{४।६५।=।१।८५।१७०१}$ ४ उभयमनोयोगिगळु

$\frac{=१।१६}{४।६५=१।८५।१७०१}$ अनुभयमनोयोगिगळु $\frac{=१।६४}{४।६५=१।८५।१७०१}$

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समस्तमनोयोगिगळु $\frac{=१}{४।६५=१।१७०१}$ सत्यवाग्योगिगळु $\frac{=१-४}{४।६५=१।१७०१}$

मनोयोगादियुक्तजीवराशिर्भवति अनेन कालसंचयमाश्रित्य संख्या प्ररूपिता, तद्यथा—एतावति काले

$\frac{\text{प्र २ १, ८५, १७०१}}{४, ६५ = १}$ यद्येतावन्तो जीवाः संचीयन्ते फ = १ तदा एतावति काले इ २ १ कियन्तो १०

जीवाः संचीयन्ते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा स्वस्वशलाकाभिर्गुणयित्वा प्रमाणराशिना भक्ते सति सत्यमनोयोगादि-

योगिनां संख्या भवति, सत्यमनोयोगिनः— $\frac{=१, १}{४, ६५ = १, ८५, १७०१}$ असत्यमनोयोगिनः—

$\frac{=१।४}{४।६५=१।८५।१७०१}$ उभयमनोयोगिनः $\frac{=१।१६}{४।६५=१।८५।१७०१}$ अनुभयमनोयोगिनः—

$\frac{=१।६४}{४।६५=१।८५।१७०१}$ समस्तमनोयोगिनः $\frac{=१।}{४।६५=१।१७०१}$ सत्यवाग्योगिनः-

---

काययोगके कालोंका जोड़ ८५ × १७०१ होता है। यथा ८५ × १ + ३४० + १३६० = १७०१। १५
इस अन्तर्मुहूर्त कालके जितने समय होते हैं, उनसे त्रियोगी जीवोंकी संख्यामें भाग देनेपर जो एक भाग परिमाण आये, उसे सत्य मनोयोग आदिके कालसे गुणा करनेपर सत्य मनोयोग आदिसे युक्त जीवराशिका परिमाण होता है। इससे कालके संचयका आश्रय लेकर संख्याका कथन किया है जो इस प्रकार है—यदि सब योगोंके कालमें पूर्वोक्त सब त्रियोगी जीव पाये जाते हैं, तो विवक्षित योगके कालमें कितने जीव पाये जायेंगे। इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर सब योगोंका काल तो प्रमाणराशि, त्रियोगी जीवोंका परिमाण फलराशि और जिस योगकी विवक्षा हो, उसका काल इच्छाराशि। सो यहाँ फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो परिमाण आवे, उतने-उतने जीव उस-उस २०

असत्यवाग्योगिगळु =१।१६ ४।६५=१।१७०१ उभयवाग्योगिगळु =१।६४ ४।६५=१।१७०१

अनुभयवाग्योगिगळु =१।२५६ ४।६५=१।१७०१ समस्तवाग्योगिगळु =१।३४० ४।६५=१।१७०१

समस्तकाययोगिगळु =१।१३६०। ४ ६५=१।१७०१ द्वियोगिगळोळु वाग्योगकालमंतर्मुहूर्तं

२१। काययोगकालमवं नोडलु संख्यातगुणमी उभययोगकालयुतियिंदं २१४ द्वियोगि-
५ गळसंख्येयं त्रियोगिहीनत्रसपर्य्याप्तराशियं ४/५ भागिसि स्वस्वगुणकारदिंदं गुणिसुत्तिरलु तंतम्म राशिगळप्पुवु। द्वियोगिवाग्योगिगळु =२१।१ ४।२१।५ ५-१ द्वियोगिकाययोगिगळु =२१।४ ४।२१।५ ५-१

=१।४ असत्यवाग्योगिनः =१।१६ उभयवाग्योगिनः =१।६४
४।६५=१।१७०१ ४।६५=१।१७०१ ४।६५=१।१७०१

अनुभयवाग्योगिनः =१।२५६ समस्तवाग्योगिनः =१।३४० समस्तकाययोगिनः-
४।६५=१।१७०१ ४।६५=१।१७०१

=।१।१३६०। द्वियोगिषु वाग्योगकालोऽन्तर्मुहूर्तः। २१। काययोगकालः ततः संख्यातगुणः
४।६५=१।१७०१

१० २१।४। उभयकालयुत्या २१।४। द्वियोगिजीवसंख्यां त्रियोगिहीनत्रसपर्याप्तराशिमात्रीं भक्त्वा स्वस्वगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वराशिर्भवति। द्वियोगिवाग्योगिनः =२१।१। द्वियोगिकाययोगिनः ४।२१।५ ५-

---

योगवाले जानना। जैसे ८५×१७०१=१४४५८५ अन्तर्मुहूर्तमें १४४५८५०० इतने त्रियोगी-जीव होते हैं,तो एकमें कितने होंगे। अन्तर्मुहूर्त कालसे त्रियोगीकी संख्यामें भाग देनेपर लब्ध सौ आया। उसमें सत्य मनोयोगके काल एकसे गुणा करनेपर सत्यमनोयोगियोंकी संख्या सौ
१५ आती है। असत्यमनोयोगके काल चारसे गुणा करनेपर उनकी संख्या चार सौ आती है। इसी तरह शेष योगवालोंकी भी संख्या जानना। द्वियोगी जीवोंमें वचनयोगका काल अन्तर्मुहूर्त है,उसकी संदृष्टि एक मान लो। इससे संख्यातगुणा काययोगका काल है, उसकी संदृष्टि चार मान लो। इन दोनोंके कालको जोड़नेपर जो प्रमाण हो,उसका भाग दो योग-वाले जीवोंकी राशिमें देनेपर जो एक भाग परिमाण आवे,उसे अपने-अपने कालसे गुणा
२० करनेपर अपनी-अपनी राशि होती है। सो कुछ कम त्रसराशिके प्रमाणको उक्त संदृष्टि अपेक्षा

कम्मोरालियमिस्सय ओरालद्धासु संचिद अणंता ।
कम्मोरालियमिस्सय ओरालियजोगिणो जीवा ॥२६४॥

कार्मणौदारिकमिश्रकौदारिकाद्धासु संचितानंताः । कार्मणौदारिकमिश्रकौदारिकयोगिनो जीवाः ॥

कार्म्मणकाययोगमौदारिकमिश्रकाययोगमौदारिककाययोगमेंबिवर कालंगळोळु मुंपे पेळ्द प्रमाणमप्पुवल्लमोळु संचिसल्पट्ट कार्मणकाययोगिगळुमौदारिकमिश्रकाययोगिगळुमौदारिककाययोगिगळुमप्प जीवंगळु प्रत्येकमनंतानंतंगळप्पुवदं तें दोडे :—

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी ।
सगसगगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो ॥२६५॥

समयत्रयसंख्यावलिसंख्यगुणावलिसमासहृतराशिः । स्वकगुणगणिते स्तोकः असंख्यसंख्याहृतः क्रमशः ॥

कार्म्मणकाययोगकालं समयत्रयमक्कुमेकें दोडे विग्रहगतियोळमाहारकसमयत्रयदोळु कार्म्मणकाययोगमक्कये संभवमप्पुदरिंदं औदारिकमिश्रकाययोगक्के कालं संख्यातावलिमात्रमेकें दोडंतर्म्मुहूर्त्तप्रमितापर्य्याप्तकालमक्कये तत्कालत्वमप्पुदरिंदं औदारिककाययोगकालमवं नोडे संख्यातगुणमेकें दोडा कालद्वयहीन सर्व्वंकालमौदारिककाययोगकालमप्पुदरिंदं आ कालंगळ न्यासमिदु । स ३ । २१ । २१ । ४ । इवर युति २१५ । इवरिंदं द्वियोगित्रियोगिसंख्याविहीनसंसारि राशि ।

=२१ । ४ ॥२६३॥
४ । २१ । ५
५—

कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगौदारिककाययोगानां कालेषु वक्ष्यमाणप्रमाणेषु ये संचिताः कार्मणकाययोगिनः औदारिकमिश्रकाययोगिनः औदारिककाययोगिनश्च जीवाः ते प्रत्येकमनन्तानन्ताः भवन्ति ॥२६४॥ तद्यथा—

कार्मणकाययोगकालः समयत्रयं भवति विग्रहगतौ अनाहारकसमयत्रये कार्मणकाययोगस्यैव संभवात् । औदारिकमिश्रकाययोगस्य कालः संख्यातावलिमात्रो भवति अन्तर्मुहूर्तप्रमितापर्याप्तकालस्यैव तत्कालत्वात् । औदारिककाययोगकालः ततः संख्यातगुणः तत्कालद्वयहीनसर्वकालस्यैव औदारिककाययोगकालत्वात् । तेषां

पाँचसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे एकसे गुणा करनेपर दो योगियोंमें वचन योगवालोंका प्रमाण होता है और चारसे गुणा करनेपर दो योगियोंमें काययोगियोंका प्रमाण होता है ॥२६३॥

कार्मणकाययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, औदारिककाययोगके आगे कहे गये कालोंमें संचित हुए कार्मणकाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और औदारिक काययोगी जीव प्रत्येक अनन्तानन्त जानना ॥२६४॥

कार्मणकाय योगका काल तीन समय होता है, क्योंकि विग्रहगतिमें अनाहारकके तीन समयोंमें कार्मणकाय योग ही सम्भव है । औदारिकमिश्र काययोगका काल संख्यात आवलिमात्र होता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्तका काल ही औदारिक मिश्रका काल है ।

प्रमितमेककाययोगिसंख्येयं भागिसि स्वस्वकालमात्रगुणकारदिं गुणिसुत्तिरलु लब्धं स्वस्वयोगिसंख्येयक्कुमल्लि कार्म्मणकाययोगिजीवराशिप्रमाणं सर्व्वतः स्तोकमिदु १३=। ३ इवं स ३—
२१।५

नोडलौदारिकमिश्रकाययोगिजीवराशि असंख्यातगुणितमक्कु १३=२१ मिदु नोडलौ- ३—
२१।५

दारिककाययोगिजीवराशिसंख्यातगुणमक्कु १३=२१।४ मी राशिगळुमिनितु काल- ३—
२१।५

५ बोळिनितु जीवराशिगळु संचिसल्पडुवुवागळिनितु कालबोळेनितु जीवंगळु मिनितु कालबोळेनितु जीवराशिगळु संचिसल्पडुवुवागळिनितु कालबोळेनितु जीवंगळु संचिसल्पडुवुदेंदितु त्रैराशिकसिद्धलब्धराशिगळिवरिंदु।

मार्गदर्शक :—आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

कालानां न्यासः—स ३। २१। २१। ४। एषां युतिः २१।५। अनया द्वियोगित्रियोगिसंख्याविहीनसंसारिराशिप्रमितैककाययोगिसंख्यां भक्त्वा स्वस्वकालमात्रगुणकारेण गुणिते सति लब्धं स्वस्वयोगिसंख्या १० भवति। अत्र कार्मणकाययोगिनः सर्वतः स्तोका १३=३ एभ्यः औदारिकमिश्रकाययोगिनः असंख्यात- ३—
२१।५

गुणाः— १३= २१। एभ्य औदारिककाययोगिनः संख्यातगुणाः— १३=।२१।४। एते त्रयोऽपि ३—
२१।५ ३—
२१।५

राशयः। एतावति काले यद्येतावन्तो जीवा संचीयन्ते तदा एतावति काले कियंतो जीवाः संचीयन्ते ? इति त्रैराशिकसिद्धा ज्ञातव्याः।

औदारिक काययोगका काल उससे संख्यातगुणा है, क्योंकि उन दोनों कालोंसे हीन सब काल १५ ही औदारिक काययोगका काल है। इन तीनों कालोंको जोड़नेसे जो प्रमाण हुआ, उससे दो योगी और तीन योगियोंकी संख्यासे हीन संसारी जीवराशि प्रमाण एक काययोगियोंकी संख्याको भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसे अपने-अपने काल प्रमाण गुणाकारसे गुणा करनेपर अपने-अपने योगवालोंकी संख्या होती है। यहाँ कार्मणकाययोगी सबसे थोड़े हैं। इनसे औदारिक मिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं। इनसे औदारिक काययोगी संख्यातगुणे हैं। यहाँ २० भी जो तीनों काययोगोंके कालमें इतने सब एक योगी जीव पाये जाते हैं, तो विवक्षित कार्मणकाययोग आदिके कालमें कितने जीव पाये जायेंगे, इस प्रकार त्रैराशिक होता है। सो तीनों काययोगोंका काल तो प्रमाणराशि है, एक योगी जीवोंका परिमाण फलराशि है और विवक्षित कार्मणकाय आदिका काल इच्छाराशि है। फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो-जो प्रमाण आवे, उतना-उतना विवक्षित योगके धारक २५ जीव जानना।

प्र $\overline{२१।५}^{m}$	फ १३=।इ स ३	लब्धं का = जी =	१३=३
प्र $\overline{२१।५}^{m}$	फ १३=।इ २१	लब्धं औ = मिश्र	$\overline{२१।५}^{m}$ १३=२१
प्र $\overline{२१।५}^{m}$	फ १३=।इ २१।४	लब्ध औ = का	$\overline{२१।५}^{m}$ १३=।२१४
			$\overline{२१।५}^{m}$

क्रमशः एंबोदरिवं धवले येंब प्रथमसिद्धांतोक्तसंख्यानुक्रममनोश्रयिसि ई संख्याप्ररूपणे येम्मिदं पेळल्पट्टुदें बोद्धस्य परिहारं शास्त्रकारनिंदं सूचिसल्पट्टुदु ।

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे ।
आवलि असंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥२६६॥

सोपक्रमानुक्रमकालो संख्यातवर्षस्थितिः वाने । आवल्यसंख्यभागः संख्येयावलिप्रमः क्रमशः ॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्येयुं वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्येयुं गाथा चतुष्टयदिंदं पेळल्पट्टुदर्वे तं दोडे जघन्यस्थितिदशवर्षसहस्रायुष्यवनुळ्ळवानरदेवळोळा स्थितिगे सोपक्रमकालमों दुमनुपक्रमकालमें दितरडु भागमक्कु-। मेलें उत्पत्तिरूपक्रमस्तेन सहितः कालः सोपक्रमकालः

प्र $\overline{२१।५}^{m}$	फ १३=	इ स ३।	ल। का. जी.	१३=३
प्र $\overline{२१।५}^{m}$	फ १३=	इ २१	ल। औ. मि. जी.	$\overline{२१५}^{m}$ १३=२१
प्र $\overline{२१।५}^{m}$	फ १३=	इ २१।४	ल औ. का. जी.	$\overline{२१।५}^{m}$ १३=।२१४
				$\overline{२१।५}^{m}$

क्रमशः इत्यनेन धवलाख्यप्रथमसिद्धान्तोक्तसंख्यानुक्रममाश्रित्य उक्तेयं संख्या प्ररूपणा अस्माभिरित्यौद्धत्यपरिहारः शास्त्रकारेण सूचितः ॥२६५॥

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्या वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्या च गाथाचतुष्टयेनोच्यते । तद्यथा—संख्येयवर्षस्थितिषु दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यायुष्केषु वानेषु देवेषु तत्स्थितेः सोपक्रमकालः अनुपक्रमकालश्चेति

गाथामें 'आये 'कमसो' पदसे शास्त्रकारने यह सूचित किया है कि धवल नामक प्रथम सिद्धान्तमें कही गयी संख्याके अनुसार ही यह कथन हमने किया है। इस तरह उन्होंने अपनी बद्धतताका परिहार किया है ॥२६५॥

आगे वैक्रियिक मिश्रकाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंकी संख्या चार गाथाओंसे कहते हैं जो इस प्रकार है—संख्यात वर्षकी स्थितिवालोंमें दस हजार वर्षकी

---

१. म °माश्रैसिपेलल्पट्टो सं° ।

एंबिता कालप्रमाणमावल्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कुं। निरंतरोत्पत्तिकालमेंबुदर्थं। अनुपक्रमकालमें बुदुत्पत्तिरहितकालमदु संख्यातावलिप्रमितमक्कु द्वादशमुहूर्तमात्रमुत्कर्षदिदमुत्पत्त्यभावकालमें बुदर्थमितु क्रमशः यथाक्रमं वनेषु भवा वाना व्यंतरा इत्यर्थः वाने एंबितेकवचनं सामान्यापेक्षयिंदं माडल्पट्टुदु अ = २ १

उ २
a
अ २ १
उ २
a

तहि सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु संखगुणा।
तत्तो संखगुणूणा अपुण्णकालम्मि सुद्धसला ॥२६७॥

तत्र सर्व्वाः शुद्धशलाकाः सोपक्रमकालतस्तु संख्यगुणाः। ततः संख्यगुणोना अपूर्णकाले शुद्धशलाकाः॥

तद्दशसहस्रवर्षमात्रस्थितियोळेल्ला पर्य्याप्तापर्य्याप्तकालद्वयसंबंधिगळप्प शुद्धशलाकाः शुद्धोपक्रमकालशलाकगळु आवल्यसंख्यात भागमात्रमप्प सोपक्रमकालमं नोडलु संख्यातगुणितंगळु २ १ १
a
मवं नोडलु अपर्य्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकेगळु संख्यातगुणहीनंगळप्पु २ १— बबे ते बोडे इल्लि त्रैराशिकंगळु माडल्पडुवुबवे ते बोडे सोपक्रमानुपक्रमकालद्वययुतिगिनितु कालक्कों दु शलाकेया-

---

द्वौ भंगौ भवतः। तत्र उत्पत्तिः—उपक्रमः तत्सहितः कालः सोपक्रमकालः निरन्तरोत्पत्तिकालः इत्यर्थः। तत्प्रमाणं आवल्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। अनुपक्रमकालः—उत्पत्तिरहितः कालः, स च संख्यातावलिप्रमितो भवति। द्वादशमुहूर्तमात्रः उत्कर्षेण उत्पत्त्यभावकालः इत्यर्थः। क्रमशः—यथाक्रमं, वनेषु भवाः वानाः—व्यन्तराः इत्यर्थः। वाने इत्येकवचनं सामान्यापेक्षया कृतम् ॥२६६॥

तत्र दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यस्थितौ सर्वाः पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयसम्बन्धिन्यः शुद्धशलाकाः शुद्धोपक्रमकालशलाकाः आवल्यसंख्यातैकभागमात्रात् सोपक्रमकालात् संख्या गुणिता भवन्ति २ १ १। एताभ्यः
a
अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकाः संख्यातगुणहीना भवन्ति। २। १ तद्यथा सोपक्रमानुपक्रमकालद्वयस्य यद्येका
a

जघन्य स्थितिवाले व्यन्तर देवोंकी स्थितिके सोपक्रमकाल और अनुपक्रमकाल इस प्रकार दो भाग हैं। उपक्रमका अर्थ है उत्पत्ति। अतः उत्पत्ति सहित कालको सोपक्रम काल कहते हैं, उसका अर्थ है निरन्तर उत्पत्तिकाल। उसका प्रमाण आवलिका असंख्यातवाँ भागमात्र है। उत्पत्तिरहित कालको अनुपक्रम काल कहते हैं, उसका प्रमाण संख्यात आवली है। अर्थात् उत्पत्तिके अभावका काल उत्कृष्ट बारह मुहूर्त मात्र है। इसका यह अभिप्राय है कि यदि व्यन्तर देवोंमें निरन्तर व्यन्तर देव जन्म लेते रहें, तो आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल तक लेते रहते हैं। और यदि कोई भी व्यन्तर देव नहीं उत्पन्न होता, तो अधिकसे अधिक बारह मुहूर्त तक उत्पन्न नहीं होता ॥२६६॥

उस दस हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिमें सब पर्याप्त और अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध शलाका अर्थात् शुद्ध उपक्रमकाल सम्बन्धी शलाका आवलीके असंख्यातवें भागमात्र सोपक्रम कालसे संख्यात गुणित होती हैं। इनसे अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाका

गलु दशवर्षसहस्रकालस्थितियोळेनितु शलाकगळप्पुवेंदु प्र २ १ फ। श १। इ। वर्ष १००००
२ १

लब्धं मिश्रशलाकेगळु २ १ १ १ ई भाज्यराशियोळिनितु ऋणमनिक्कि २ १ १
२ ८
८
२ १

वोडिदु २ २ १ । १ मत्तमिदनपवर्त्तिसि प्रक्षिप्तऋणमं किंचिन्न्यूनं माडिदोडिदु प्र। श १। फ
८
२ १

उ २ इ। श १ १— लब्धं शुद्धोपक्रम सर्व्वकालमपवर्त्तितमिदु २ १ १— इवक्कों
८

कालक्के शुद्धशलाकाजनितत्वविवं शुद्धशलाकेगळेंबिताचार्य्योक्तं पेळल्पट्टुदु। मत्तं दशसहस्र- ५
वर्षप्रमितसर्व्वकालवोळु शुद्धोपक्रमकालमितु पडेयल्पट्टुदिरलागळु पर्य्याप्तकालमिनितरोळेनितु शुद्धोपक्रमकालं पडेयल्पडुगुमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र स = २ १ १ फ २ १ १ —। इ २ १ १।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

शलाका तदा दशसहस्रवर्षकालस्थितौ कियन्त्यः शलाका भवेयुरिति त्रैराशिकेन प्र २ १ ८, फ श १,
८
इ वर्ष १०००० लब्धमिश्रशलाका २ १ १ १ भवन्ति। अत्र भाज्यराशौ एतावद्रूपे २ १ १ प्रक्षिप्ते
८
२ १ ८
८

एवं २ १ १ १ ८ इदमपवर्त्य प्रक्षिप्तऋणे किंचिदूनिते एवं १ १—। प श १। फ उ २। इ श १ १—। १०
८ । ८
२ १ ८
८

लब्धशुद्धोपक्रमसर्वकालो भवति २ १ १—। अस्य कालस्य शुद्धशलाकाजनितत्वेन शुद्धशलाका इत्याचार्येण
८
उक्तम्। पुनरपि दशसहस्रवर्षप्रमितसर्वकाले शुद्धोपक्रमकाल एतावान् लभ्यते तदा अपर्याप्तकाले एतावति कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र सर्व २ १ १ १। फ २ १ १—। इ २ १ १ लब्धं
८

संख्यातगुणी हीन हैं। जो इस प्रकार हैं। यदि सोपक्रम और अनुपक्रम दोनों कालोंको मिलकर एक शलाका होती है, तो दस हजार वर्ष प्रमाण स्थितिमें कितनी शलाकाएँ होंगी; इस प्रकार त्रैराशिक करना। सो सोपक्रम और अनुपक्रम कालको मिलाकर आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक संख्यात आवली प्रमाण तो प्रमाण राशि हुई, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि दस हजार वर्ष। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाण राशिसे भाग देनेपर कुछ कम संख्यात गुणा संख्यात प्रमाण मिश्र शलाका होती है। अर्थात् जघन्य स्थितिमें इतनी बार उपक्रम और अनुपक्रमकाल होता है। तथा प्रमाण राशि शलाका एक, फलराशि आवलिका संख्यातवाँ भाग उपक्रमकाल, इच्छाराशि मिश्रशलाका कुछ कम संख्यातगुणा संख्यात। ऐसा करनेपर जघन्य स्थिति प्रमाण कालमें शुद्ध उपक्रम शलाका

लब्धमपर्य्याप्तकालदोळु शुद्धोपक्रमकालमिदु २।१ अथवा प्र का २ फ श १। इ २ १ १ लब्धमपर्य्याप्तपर्य्याप्तकालद्वयशुद्धोपक्रमशलाकेगळु २ १ १ मत्तं प्र श १। फ श २। इ १ १ १। लब्धमपर्य्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकेगळिदु २ १ उभयत्र जघन्यजननांतरमेक-समयमनाश्रयिसि शुद्धोपक्रमशलाकेगळु साधिसल्पट्टुवेंबरिवुदु। अनुपक्रमकालरहितमुपक्रमकालं शुद्धोपक्रमकालमबकुं।

तत्सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहि।
सुद्धसलागाहिगुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥२६८॥

तच्छुद्धशलाकाहृतनिजराशिमपूर्णकाललब्धाभिः। शुद्धशलाकाभिर्गुणे व्यंतरवैक्रियिक-मिश्राः खलु॥

अपर्याप्तकालस्य शुद्धोपक्रमकालो भवति २ १ । अथवा—प्र का २ । फ श १ । इ २ १ १—लब्धाः पर्याप्ता-
अ अ अ
पर्याप्तकालद्वयशुद्धोपक्रमशलाकाः १ १—। प्र श १ । फ २ । इ श १ १—लब्धः सर्वशुद्धोपक्रमकालः २ १ १—।
अ अ
पुनरपि प्र श १ फ २ इ १ लब्धः अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमकालः २ १ । उभयत्र जघन्यजननान्तरमेकसमय-
अ अ
माश्रित्य शुद्धोपक्रमशलाकाः साधिता इति ज्ञातव्यम्। अनुपक्रमकालरहितः उपक्रमकालः शुद्धोपक्रमकालः॥२६७॥

कालका परिमाण कुछ कम संख्यात गुणा संख्यातसे गुणित आवलीका असंख्यातवाँ भाग होता है। तथा प्रमाण राशि जघन्य स्थिति, फलराशि शुद्ध उपक्रम शलाका काल, इच्छाराशि अपर्याप्तकाल। ऐसा करनेपर अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यात-गुणा आवलीका असंख्यातवाँ भागमात्र होता है। दूसरे प्रकारसे—प्रमाण राशि एक शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल, फल एक शलाका, इच्छाराशि सर्वशुद्ध उपक्रम काल। ऐसा करनेसे पर्याप्त-अपर्याप्त सर्वकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाका कुछ कम संख्यातगुणी संख्यात जानना। तथा प्रमाण राशि एक शलाका, फलराशि शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग, इच्छाराशि सब शुद्ध शलाका कुछ कम संख्यात गुणित संख्यात। ऐसा करनेसे लब्ध सर्व जघन्यस्थिति सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम काल आवलीके असंख्यातवें भागको कुछ कम संख्यात गुणित संख्यातसे गुणा करनेपर जितना प्रमाण आये, उतना होता है। तथा प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि एक शलाकाका काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग, इच्छाराशि अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शलाका संख्यात। ऐसा करनेसे लब्ध अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवाँ भाग मात्र होता है। उक्त दोनों प्रकारके कथनोंमें उत्पत्तिका जघन्य अन्तर एक समय है उसको लेकर शुद्ध उपक्रम शलाकाएँ साधी हैं, ऐसा जानना। अनुपक्रम कालसे रहित उपक्रम कालको शुद्ध उपक्रम काल जानना ॥२६७॥

---

१. ब साधिका इति।

तत्सर्वकालसंबंधिगळप्प शुद्धोपक्रमशलाकेगळिंवं २ ३ १ भागिसल्पट्टु निजराशियप्प व्यंतरजीवराशियनपर्य्याप्तकाल लब्धशुद्धोपक्रमशलाकेगळिंवं गुणिसुत्तिरलावुदो[1]दु लब्धं तत्प्रमाणं व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशियक्कुं २ ३ खलु स्फुटमागरिय-

= ८
४।६५=८१।१०

ल्पडुवुदु।

तहि सेसदेवणेरयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा वेगुव्वियकायजोगा दु ॥२६९॥

तस्मिन् शेषदेवनारकमिश्रयुते सर्वमिश्रवैगुर्वं। सुरनारककाययोगिनो वैक्रियिककाययोगि- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

नस्तु॥

तद्व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशियोळु शेषदेवर्कळप्प भावनज्योतिष्कवैमानिक-देवर्कळं नारकवैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळं कूडुत्तिरलावुदो[1]दु राशियक्कुमा राशि सर्ववैक्रियिक-मिश्रकाययोगिजीवराशियक्कुं =३ शेषदेवनारकरोळनुपक्रमकालक्के

८
४।६५=८१।१०

तत्सर्वकालसम्बन्धिशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २ ३ भक्ते निजराशौ व्यन्तरजीवराशौ अपर्याप्तकाल-

८
लब्धशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २ ३ गुणिते सति यल्लब्धं तत्प्रमाणो व्यन्तरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति

८
= २ ३ खलु स्फुटम् ॥२६८॥

८ ०
४। ६५=। ८१ । १०। २ ३ ३—

८
तद्व्यन्तरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशौ शेषदेवेषु भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवेषु सप्तपृथ्वीनारक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिषु च युतेषु यो राशिः सः सर्ववैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति।

इस प्रकार जघन्य स्थिति प्रमाण सर्वकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाका परिमाण कुछ कम संख्यातगुणा संख्यातसे गुणित आवलीका असंख्यातवाँ भाग जो ऊपर कहा है, उसका भाग व्यन्तर देवोंके पूर्व कहे परिमाणमें देनेसे जो लब्ध आवे, उसे अपर्याप्तकाल सम्बन्धी शुद्ध उपक्रम शलाकाके प्रमाण संख्यातगुणा आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो परिमाण आवे, उतना वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक व्यन्तर देवोंका प्रमाण जानना।

विशेषार्थ—पहले जो व्यन्तर देवोंका परिमाण कहा था, उसके संख्यातवें भाग वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक व्यन्तर देव होते हैं। संख्यात वर्षकी स्थितिवाले व्यन्तर अधिक जन्म लेते हैं, इसलिए उन्हींकी मुख्यतासे यहाँ कथन किया है ॥२६८॥

उस वैक्रियिक मिश्रकाय योगी व्यन्तर देवोंके परिमाणमें शेष देव भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिकदेव तथा सात पृथिवियोंके नारकी वैक्रियिक मिश्रकाय योगियोंके परि-

---

१. ब शेषभावन—।

बहुतरत्वविदं वैक्रियिकमिश्रयोगिप्रमाणमल्पमेंदितु तद्राशिगळु साधिकं माडल्पट्टुवु। देवनारककाय-योगिराशिद्वयमं कूडिदोडावुवों बु राशिप्रमाणं आ राशिय प्रमाणं ।वैक्रियिककाययोगिराशियक्कुं।

त्रियोगिराशियोळावुवों बु काययोगिप्रमाणं पिवेपेळल्पट्टु $= \frac{1}{\text{४। ६५ = १। १७०१}}$ १३६० ॥ १ बदरोळु

तिर्य्यंग्मनुष्यसंबंध्यौदारिकाहारक काययोगिसंख्याद्वयहीनमप्प तद्राशिप्रमाणमे वैक्रियिककाययोगि

५ जीवराशियक्कुमेंबुदर्त्थं $= \frac{1}{\text{४। ६५ = १। १७०१}}$ १३६० = तु शब्द मी विशेषमं सूचिसुगुं।

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एककसमयम्मि।
आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सा ॥२७०॥

आहारकाययोगाश्चतुःपंचाशद्भवंत्येकसमये। आहारकमिश्रयोगाः सप्तविंशतिस्तूत्कृष्टात् ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

$= \frac{1}{\text{२ १}}$ शेषदेवनारकेषु अनुपक्रमकालस्य बहुत्वेन वैक्रियिकमिश्रयोगिप्रमाणं

१० ४। ६५ =। ८१। १०। २ १ १—

अल्पमिति तद्राशयः साधिकाः कर्तव्याः। देवनारककाययोगिराशिद्वये युते यो राशिः स वैक्रियिककाययोगि-राशिर्भवति। त्रियोगिराशौ यत्काययोगिराशिप्रमाणं प्रागुक्तं $= \frac{11}{\text{४। ६५ =। १। १७०१}}$ १। १३६०। तन्मध्यात्तिर्य-ग्मनुष्यसम्बन्ध्यौदारिकाहारककाययोगिसंख्याद्वये अपनीते यावदवशिष्यते स वैक्रियिककाययोगिजीवराशि-

रित्यर्थः। $= \frac{1}{\text{४। ६५ = १। १७०१}}$ १। १३६० =। तुशब्दः इमं विशेषं सूचयति ॥२६९॥

१५ माणको मिलानेपर जो राशि हो, वह सर्ववैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंकी राशि होती है। व्यन्तर देवोंके सिवाय शेष देव नारकियोंका अनुपक्रम काल बहुत है, इसलिए उनमें वैक्रियिक मिश्रयोगियोंका प्रमाण अल्प है। अतः वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक व्यन्तरदेव बहुत हैं, इसलिए उनको साधिक कर लेना चाहिए। काययोगके धारी देवों और नारकियोंके परिमाणको मिलानेसे जो राशि हो, उतना वैक्रियिक काययोगके धारी जीवोंका प्रमाण होता
२० है। पूर्वमें जो तीन योगवाले जीवोंके परिमाणमें काययोगके धारी जीवोंका परिमाण कहा था, उसमें-से तिर्यंच और मनुष्य सम्बन्धी औदारिक तथा आहारक काययोगके धारक जीवोंका परिमाण घटानेपर जो शेष रहे, उतने वैक्रियिक काययोगके धारक जीव जानना। गाथामें आगत 'तु' शब्द इस विशेष अर्थको सूचित करता है ॥२६९॥

आहारककाययोगिगळेकसमयदोळ् युगपत् चतुःपंचाशत्प्रमितरप्परु । आहारकमिश्रकाय-योगिगळेकसमयदोळु युगपत्सप्तविंशतिप्रमितरप्परु । एकसमये तूत्कृष्टान्ते बी विशेषणद्वयं पिंदे पेळल्पट्ट गत्यादिजीवसंख्येगळ्गं वक्ष्यमाणजीवसंख्येगळ्गमुं संबंधिसल्पडुवुदिल्लि मध्यदीपकत्वदिंदं पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं । अघन्यसंख्यापेक्षयिंदं नानाकालापेक्षयिंदमुं संभविसुव विशेषं परमागमदोळ्-नोडल्पडुगुदु ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-भूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांत-चक्रवर्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्ट श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटकवृत्ति जीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळनवमं योगमार्गणाप्ररूपण महाधिकारं भाषितमाय्तु ।

आहारककाययोगिनः एकसमये युगपच्चतुष्पञ्चाशत्प्रमिता भवन्ति, आहारकमिश्रकाययोगिनः एकसमये युगपत्सप्तविंशतिप्रमिता भवन्ति । एकसमये उत्कृष्टादिति विशेषणद्वयं तु प्रागुक्तगत्यादिजीवसंख्याभिः वक्ष्यमाण-जीवसंख्याभिश्च सम्बन्धनीयं । अत्र मध्यदीपकत्वेनोक्तत्वात् । जघन्यसंख्यापेक्षया नानाकालापेक्षया च संभवन् विशेषः परमागमे द्रष्टव्यः ॥२७०॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहस्य जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां महाराज जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु योगमार्गणानाम नवमोऽधिकारः ॥९॥

आहारक काययोगके धारक एक समयमें एक साथ अधिकसे अधिक चौवन होते हैं तथा आहारक मिश्रकाययोगी एक समयमें एक साथ अधिकसे अधिक सत्ताईस होते हैं। यहाँ गाथामें 'एक समयम्हि' तथा 'उक्कस्से' ये दोनों विशेषण मध्यदीपक रूपसे कहे हैं। अतः पूर्वमें जो गति आदिकी अपेक्षा जीव संख्या कही है और आगे जो जीव संख्या कहेंगे, वह सब उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें जानना। अर्थात् उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें उक्त संख्या प्रमाण जीव होते हैं, इससे कम हो सकते हैं; किन्तु अधिक नहीं हो सकते। जघन्य रूपसे तथा अनेक काल सम्बन्धी संख्या विशेष परमागमसे जानना ॥२७०॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से योग प्ररूपणा नामक नवम महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

वेदमार्गणाधिकारः ॥१०॥

अनंतरं वेदमार्गणेयं पेळ्दपं :—

पुरुसित्थिसंढवेदोदयेण पुरिसित्थिसंढवो भावे ।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा ॥२७१॥

पुरुषस्त्रीषंढवेदोदयेन पुरुषस्त्रीषंढो भावे । नामोदयेन द्रव्ये प्रायेण समाः क्वचिद्विषमाः ॥

पुरुषस्त्रीषंढनामंगळप्प मूरं वेदंगळ चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतिगळुदयदिंद भावे चित्परिणामदोळु यथासंख्यमिवं पुरुषनुं स्त्रीयुं षंडनुं जीवनक्कु । निर्म्माणनामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मविशेषोदयदिंद । द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्य्यायविशेषदोळु पुरुषस्त्रीषंडनुमक्कुं [illegible] पुंवेदोदयदिंद स्त्रीयोळभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतनप्प जीवं भावपुरुषनेनिसक्कुं । स्त्रीवेदोदयदिंद पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतनप्प जीवं भावस्त्रीयेनिसप्पं । नपुंसकवेदोदयदिंदमुभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतनप्प जीवंभावनपुंसकनेनिसप्पं । पुंवेदोदयदिंदं निर्म्माणनामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मोदयवशदिंदं श्मश्रुकूर्चशिक्षाविलिंगांकितशरीरमनुळ्ळजीवं भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यपुरुषनक्कुं । स्त्रीवेदोदयदिंदं निर्म्माण-

---

कल्याणैः पंचभिर्भान्तं षट्चत्वारिंशता गुणैः ।
शीतलं तीर्थकर्तारं वन्दे शीतलसूक्तिकम् ॥१०॥

अथ वेदमार्गणामाह—

पुरुषस्त्रीषण्ढाख्यस्त्रिवेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनामुदयेन भावे—चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षण्ढश्च जीवो भवति । निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मविशेषोदयेन, द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुषः स्त्री षण्ढश्च भवति । तद्यथा—पुंवेदोदयेन स्त्रियां अभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावपुरुषो भवति । स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावस्त्री भवति । नपुंसकवेदोदयेन उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावनपुंसकं भवति । पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयवशेन

अब वेदमार्गणाको कहते हैं—

चारित्र मोहनीयका भेद नोकषायकी पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नामक प्रकृतियोंका उदय होनेपर जीव भाव अर्थात् चित्परिणाममें पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। निर्माण नामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांगनामकर्म विशेषके उदयसे द्रव्य अर्थात् पुद्गलद्रव्यकी पर्याय-विशेषमें पुरुष, स्त्री और नपुंसक होता है। वह इस प्रकार जानना—पुरुषवेदके उदयसे स्त्रीमें अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञासे आक्रान्त जीव भावपुरुष होता है। स्त्रीवेदके उदयसे पुरुषकी अभिलाषारूप मैथुनसंज्ञासे आक्रान्त जीव भावस्त्री होता है। नपुंसकवेदके उदयसे स्त्री और पुरुष दोनोंकी अभिलाषारूप मैथुनसे आक्रान्त जीव भावनपुंसक होता है। पुरुषवेदके

---

१० १. ब पञ्चभिः युक्तं ।

नामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मोदयविदं निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरमनुळ्ळ जीवं भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्भवचरमसमयपर्य्यंतं द्रव्यस्त्रीयेंबुदक्कं। नपुंसकवेदोदयविदं निर्म्माणनामकर्म्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्म्मोदयविदं उभयलिंगव्यतिरिक्तदेह मनुळ्ळं भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्भवचरमसमयपर्य्यंतं द्रव्यनपुंसकजीवनक्कुं।

ई द्रव्यभाववेदंगळु प्रायेण प्रचुरवृत्तियिंदं देवनारकरोळु भोगभूमिगळोळु तिर्य्यंग्मनुष्यरेल्लरोळं समंगळु द्रव्यविदं भावदिदं समवेदोदयंगळनुळ्ळरप्परु। क्वचित् कर्म्मभूमिमानुषतिर्य्यग्गतिद्वयदोळु विषमाः विसदृशंगळप्परु। अवंतेंदोडे द्रव्यदिदं पुरुषनोळु भावपुरुष-भावस्त्रीभावनपुंसकनेंदुं।

द्रव्यस्त्रीयोळु भावपुरुष, भावस्त्री, भावनपुंसकनेंदुं, द्रव्यनपुंसकनोळु भावपुरुष-भावस्त्री-भावनपुंसकनेंदु विषमत्वं द्रव्यभावंगळ्गनियमं पेळल्पट्टुदेकेंदोडे द्रव्यपुरुषनप्प क्षपकश्रेण्यारूढनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्य्यंतं वेदत्रयक्के परमागमदोळु :—

पुंवेयं वेदंता पुरुसा जे खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य सिज्झंति॥

श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिङ्गाङ्कितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिङ्गलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन उभयलिङ्गव्यतिरिक्तदेहाङ्कितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यनपुंसकं जीवो भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण—प्रचुरवृत्त्या देवनारकेषु भोगभूमिसर्वतिर्यग्मनुष्येषु च समाः द्रव्यभावाभ्यां समवेदोदयाङ्किता भवन्ति। क्वचित् कर्मभूमिमनुष्यतिर्यग्गतिद्वये विषमाः—विसदृशा अपि भवन्ति। तद्यथा—द्रव्यतः पुरुषे भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं। द्रव्यस्त्रियां भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं। द्रव्यनपुंसके भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं इति विषमत्वं द्रव्यभावयोरनियमः कथितः। कुतः? द्रव्यपुरुषस्य क्षपकश्रेण्यारूढानिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यन्तं वेदत्रयस्य परमागमे "सेसोदयेण

उदयसे तथा निर्माणनामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांग नामकर्मके उदयवश दाढ़ी, मूँछ, शिश्न आदि चिह्नोंसे अंकित शरीरसे विशिष्ट जीव भवके प्रथम समयसे लेकर उस भवके अन्तिम समय पर्यन्त द्रव्यपुरुष होता है। स्त्रीवेदके उदयसे तथा निर्माणनामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांग नामकर्मके उदयसे रोमरहित मुख, स्तन, योनि आदि चिह्नोंसे युक्त शरीरवाला जीव भवके प्रथम समयसे लेकर उस भवके अन्तिम समय पर्यन्त द्रव्यस्त्री होता है। नपुंसकवेदके उदयसे तथा निर्माणनामकर्मके उदयसे युक्त अंगोपांग नामकर्मके उदयसे दोनों लिंगोंसे भिन्न शरीरवाला जीव भवके प्रथम समयसे लेकर उस भवके अन्तिम समय पर्यन्त द्रव्यनपुंसक होता है। ये द्रव्यवेद और भाववेद प्रायः अर्थात् अधिक रूपसे देव, नारकियों और भोगभूमिके सब तिर्यंचों तथा मनुष्योंमें सम होते हैं अर्थात् जो द्रव्यवेद होता है वही भाववेद होता है। किन्तु क्वचित् अर्थात् कर्मभूमिसम्बन्धी तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें विषम अर्थात् असमान होते हैं। जैसे, द्रव्यसे पुरुष भावसे पुरुष स्त्री या नपुंसक होता है। द्रव्यसे स्त्री भावसे पुरुष स्त्री या नपुंसक होता है। द्रव्यसे नपुंसक भावसे पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। इस प्रकार द्रव्य और भावका अनियम विषम शब्दसे कहा है। क्योंकि क्षपक श्रेणीपर आरूढ़

एंबितु प्रतिपादितत्वविदं संभवमप्पुदरिंदं ।

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो ।
संमोहेण ण जाणदि जीवो हु गुणं व दोसं वा ॥२७२॥

वेदस्योदीरणया परिणामस्य च भवेत्संमोहः । संमोहेन न जानाति जीवः खलु गुणं वा दोषं वा ॥

वेदस्य चारित्रमोहभेदमप्प नोकषायप्रकृतिय अपक्वपाचन लक्षणोदीरणेयिंदमुं स्वकालपाकलक्षणोदयदिंदमुं परिणामस्य चित्पर्य्यायक्के संमोहः रागावेशरूपचित्तविक्षेपमक्कुं—। मदरिंदमा संमोहविदं गुणमं मेणु दोषमं मेणु जीवं बगेयनें वितिदरिंदं गुणदोषविवेकाभावलक्षणवेदोदयकृतचित्तविक्षेपप्रभवमनर्थं तोरल्पदुदुदु कारणमागि परमागमभावनाबलदिंदं जीवनिंदं यथावत्स्वरूपसंवेदिसिदं । आत्महितवेव[-तमेतद्]व्रतमवश्यमनुष्ठातव्यमें बुदु भावार्त्थं ।

पुरुगुणभोगे सेदे करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु उत्तमो य जम्हा तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो ॥२७३॥

पुरुगुणभोगे शेते करोति लोके पुरुगुणं कर्म्म । पूरुत्तमश्च यस्मात्तस्मात्स वर्णितः पुरुषः ॥

यस्मात् कारणात् आवुदों दु कारणदिंदं लोके लोकदोळु यो जीवः आवनोर्व जीवं पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाद्यधिकगुणसमूहदोळु शेते स्वामित्वदिंदं प्रवर्त्तिसुगुं । पुरुभोगे नरेंद्र नागेंद्र देवेंद्राद्यधिकभोगचयदोळु भोक्तृत्वदिंदं प्रवर्त्तिसुगुं । पुरुगुणवत्कर्म्म धर्म्मार्थ्यकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थ्यसाधनमप्प

मार्गदर्शक

वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति ।" इति प्रतिपादितत्वेन संभवात् ॥२७१॥

वेदस्य चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतेः अपक्वपाचनलक्षणोदीरणया स्वकाले पाकलक्षणोदयेन च परिणामस्य चित्पर्यायस्य संमोहः—रागद्वेषरूपः चित्तविक्षेपो भवति । तेन संमोहेन गुणं वा दोषं वा जीवो न जानाति । अनेन गुणदोषविवेकाभावलक्षणः वेदोदयकृतचित्तविक्षेपप्रभवः अनर्थो दर्शितः । ततः कारणात् परमागमभावनाबलेन जीवेन यथावत्स्वरूपसंवेदनादिना आत्महितमेतद्व्रतमवश्यमनुष्ठातव्यमिति भावार्थः ॥२७२॥

यस्मात् कारणात् लोके यो जीवः पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाधिकगुणसमूहे शेते—स्वामित्वेन प्रवर्तते, पुरुभोगे नरेन्द्रनागेन्द्रदेवेन्द्राद्यधिकभोगचये भोक्तृत्वेन प्रवर्तते, पुरुगुणं कर्म धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनरूप-

---

जीवके अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त तीनों वेदोंका अस्तित्व परमागममें कहा है। यथा—'शेष वेदोंके उदयसे भी ध्यानमें मग्न जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं' ॥२७१॥

चारित्रमोहनीयके भेद नोकषायरूप वेद प्रकृतिकी उदीरणा या उदयसे आत्माके परिणामोंमें सम्मोह अर्थात् रागद्वेषरूप चित्तविक्षेप होता है। बिना ही काल आये कर्मके फल देनेको उदीरणा कहते हैं, इसीसे इसका लक्षण अपक्वपाचन कहा है। और काल आनेपर फल देना उदय है। उस सम्मोहके होनेसे जीव गुण या दोषको नहीं जानता। इस कथनसे यह दिखलाया है कि गुण और दोषका विवेक न होने रूप अनर्थ वेदके उदयसे होनेवाले चित्तविक्षेपसे होता है। इसलिए जीवको परमागमकी भावनाके बलसे यथार्थ स्वरूप संवेदन आदिके द्वारा आत्महित (ब्रह्मचर्यव्रत) को अवश्य ग्रहण करना चाहिए, यह भावार्थ है ॥२७२॥

जिस कारणसे लोकमें जो जीव पुरुगुण अर्थात् सम्यग्ज्ञान आदि गुणसमूहमें 'शेते' अर्थात् स्वामीरूपसे प्रवृत्त होता है, पुरुभोग अर्थात् नरेन्द्र, नागेन्द्र, देवेन्द्र आदिसे भी अधिक भोगोंका भोक्ता होता है, 'पुरुगुणकर्म' अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थकी

विध्यानुष्ठानमं शेते करोति माळ्कुं। पुरौ उत्तमे परमेष्ठिपदेशेते तिष्ठति। पूरुत्तमस्सन् तिष्ठतीत्यर्थः। तस्मात् कारणात् अदु कारणदिंदमा जीवं पुरुषनेंदितु द्रव्यभावंगळेरडरिंदं संपन्न पुरुषनेंबी जीवं वर्णितः पेळल्पट्टं, धातुगळ्गनेकार्थवाचकत्वसंभवदिंदं शीङ् स्वप्ने एंबी धातुविंग प्रवृत्ति। करण। स्थान। लक्षणार्थविशेषंगळुमाचार्य्यनिंदं पेळल्पट्टुवु विरोधिसल्पडवु। पृषोदरादित्वदिंदमक्षरविपर्य्यासमुं तालव्यक्के षत्वमुं पुरुष एंबितु षो अंतकर्म्मणि येंबी धातुविंग मेणरियल्पडुगुं।

छादयदि सयं दोसे, णयदो छादेदि परं वि दोसेण।
छादण सीला जम्हा तम्हा सा वण्णिया इत्थी ॥२७४॥

छादयति स्वयं दोषेण नयतश्छादयति परमपि दोषेण छादनशीला यस्मात्तस्मात्सा वर्णिता स्त्री॥

यस्मात्कारणात् आवुदोंदु कारणदिंद स्वयमात्मानं तंतन्नु दोषैर्मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभंगळिंदं छादयति संवृणोति पोद्दिसुगुं। यतो नयतः आवुदोंदु नयदिंदं मृदु भाषित स्निग्धविलोकन अनुकूलवर्तनादि कुशलव्यापारंगळिंद परमपि अन्यनप्प पुरुषनुमं स्ववशं माडि दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकदिंदं छादयति पोदिसुगुं। तस्मात् कारणात् अदु कारणदिंदं छादनशीला द्रव्यभावंगळिंदप्प सा आ अंगने स्त्री इति वर्णिता, द्रव्यभावंगळिंदं स्त्रीयेंदितु परमागमदोळु प्रतिपादिसल्पट्टळु। एत्तलानुं तीर्थंकरजनन्यादिस्त्रीयरुगळप्प सम्यग्दृष्टिगळ्गे यितु पेळल्पट्ट दोषाभावमादोडमवर्ग्गळ्गे दुर्ल्लभत्वदिंदं सर्व्वत्र सुलभप्राचुर्य्यव्यवहारापेक्षेयिंदं

विध्यानुष्ठानं शेते—करोति च। पुरुत्तमे परमेष्ठिपदे शेते—तिष्ठति पुरुत्तमः सन् तिष्ठति इत्यर्थः। तस्मात् कारणात् स द्रव्यभावद्वयसंपन्नः जीवः पुरुषः इति वर्णितः। धातूनामनेकार्थवाचकत्वसंभवेन शीङ् स्वप्ने इत्येतस्य धातोः प्रवृत्तिकरणस्थानलक्षणार्थविशेषाः आचार्येण उक्ता न विरुध्यन्ते। पृषोदरादित्वेन अक्षरविपर्यासश्च तालव्यस्य षत्वं पुरुष इति। षोऽन्तकर्मणि इत्येतस्य धातोर्वा ज्ञातव्यः ॥२७३॥

यस्मात्कारणात् स्वयमात्मानं दोषैः मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभैः छादयति संवृणोति, नयतः मृदुभाषितस्निग्धविलोकमानुकूलवर्तनादिकुशलव्यापारैः परमपि-अन्यपुरुषमपि स्ववशं कृत्वा दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकेन छादयति आवृणोति तस्मात्कारणात् छादनशीला द्रव्यभावाभ्यां सा अङ्गना स्त्रीति वर्णिता—परमागमे प्रतिपादिता। यद्यपि तीर्थंकरजनन्यादीनां कासांचित् सम्यग्दृष्टीनां एतदुक्तदोषाभावः,

---

साधनादिरूप अनुष्ठान करता है, 'पुरुत्तम' अर्थात् परमेष्ठीपदमें 'शेते' अर्थात् विराजता है, तिस कारणसे वह जीव द्रव्य और भावरूपसे पुरुष कहा जाता है। धातुओंके अनेक अर्थ होते हैं, इससे 'शीङ् स्वप्ने' इस धातुका आचार्यने जो प्रवृत्ति करना, ठहरना आदि अर्थ कहा है, उसमें कोई विरोध नहीं आता। पृषोदरादिमें पाठ होनेसे अक्षरविपर्यास तथा तालव्य शकारका मूर्धन्य षकार होनेसे पुरुष शब्द निष्पन्न हुआ है, अथवा 'षोऽन्तकर्मणि' इस धातुसे पुरुष शब्द निष्पन्न हुआ जानना ॥२७३॥

जिस कारणसे स्वयं अपनेको मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, क्रोध, मान, माया, लोभरूप दोषोंसे आच्छादित करती है, अन्य पुरुषोंको भी कोमल वचन, कटाक्ष सहित अवलोकन, अनुकूल प्रवर्तन आदि कुशल व्यापारोंसे अपने वशमें करके हिंसा, झूठ, चोरी,

---

१. ब °दि स्त्रीसंज्ञं। २. ब °भावेऽपि।

स्त्रीलक्षणं या स्तृणोति स्वयमन्यं च दोषैरिति स्त्री ये तु निरुक्तिपूर्वकमाचार्यैरिदं पेळल्पट्टुदु ।

णेवित्थी णेव पुमं णउंसओ उभयलिंगवदिरित्तो ।
इट्ठावगिसमाणगवेयणगुरुओ कलुसचित्तो ॥२७५॥

नैव स्त्री नैव पुमान् नपुंसक उभयलिंगव्यतिरिक्तः । इष्टिकापाकाग्निसमानक वेदनागुरुकः कलुषचित्तः ॥

यो जीवः आवनोर्वजीवं नैव पूमान् पेरगे पेळल्पट्टु पुरुषलक्षणाभावविदं पुरुषनुमल्तु । नैव स्त्री उक्तस्त्रीलक्षणाभावविदं स्त्रीयुमल्तु । ततः अदु कारणदिदं उभयलिंगव्यतिरिक्तः श्मश्रुस्तनादि पुंस्त्रीद्रव्यलिंगरहितनुं इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकनुं कलुषचित्तः सर्ववेदा तद्वेदनेयिंदं कलंकितहृदयनुमप्प स जीवः आ जीवनु नपुंसकमिति नपुंसकनेंदितु परमागमदोळु वर्णितः पेळल्पट्टनु । स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षण भावनपुंसकवेदमुंदेंदिताचार्यन तात्पर्यमरियल्पडुगुं ।

तिणकारिसिट्ठपागग्गि-सरिस-परिणामवेयणुम्मुक्का ।
अवगयवेदा जीवा सयसंभवणंतवर सोक्खा ॥२७६॥

तृणकारीषेष्टकापाकाग्निसदृशपरिणामवेदनोन्मुक्ताः अपगतवेदा जीवाः स्वकसंभवानंतवर-सौख्याः ॥

तथापि तासां दुर्लभत्वेन सर्वत्र सुलभप्राचुर्यव्यवहारापेक्षया स्त्रीलक्षणं स्तृणाति स्वयमन्यं च दोषैरिति स्त्री निरुक्तिपूर्वकमाचार्येणोक्तम् ॥२७४॥

यो जीवो नैव पुमान्—पूर्वोक्तपुरुषलक्षणाभावात् पुरुषो न भवति, नैव स्त्री—उक्तस्त्रीलक्षणाभावात् स्त्री अपि न भवति । ततः कारणात् उभयलिङ्गव्यतिरिक्तः श्मश्रुस्तनादिपुंस्त्रीद्रव्यलिङ्गरहितः इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकः, कलुषचित्तः सर्वदा तद्वेदनया कलङ्कितहृदयः स जीवो नपुंसकमिति परमागमे वर्णितः कथितः, तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षणो भावनपुंसकवेदोऽस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यम् ॥२७५॥

अब्रह्म, परिग्रह आदि पापोंसे आच्छादित करती है, तिस कारणसे द्रव्य और भावसे छादनशील होनेसे परमागममें स्त्री कहा है । यद्यपि तीर्थंकरकी माता आदि किन्हीं सम्यग्दृष्टि स्त्रियोंमें इन दोषोंका अभाव होता है, तथापि उनके दुर्लभ होनेसे तथा सर्वत्र उक्त दोषोंसे युक्त स्त्रियोंके सुलभ होनेसे आधिक्य व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रीका उक्त लक्षण निरुक्ति पूर्वक कहा है ॥२७४॥

जो जीव पूर्वोक्त पुरुष लक्षणोंका अभाव होनेसे पुरुष नहीं है और उक्त स्त्री लक्षणोंका अभाव होनेसे स्त्री भी नहीं है, तिस कारणसे दाढ़ी, मूँछ और स्तन आदि पुरुष और स्त्रीके चिह्नोंसे रहित, ईंट पकानेके पजावेकी आगके समान तीव्र कामवेदनासे पीड़ित होनेसे कलुषित चित्त उस जीवको परमागममें नपुंसक कहा है । उस जीवके स्त्री और पुरुषकी अभिलाषारूप तीव्र कामवेदना लक्षणवाला भाव नपुंसक वेद होता है ऐसा आचार्यका तात्पर्य जानना ॥२७५॥

मार्गदर्शकतृणाग्निकारीषाग्नीष्टिकापाकाग्निसदृशस्त्रीपुरुषोभयाभिलाषरूपजीव परिणामंगळ तीव्रवेदनेगळिंदमाबुदो दु संक्लेशमा, संक्लेशदिंदमुन्मुक्तरुमनिवृत्तिकरणापगतवेदभागं मोदल्गोंड योगिचरमसमयपर्य्यंतं भावदिंद गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळु द्रव्यभावदिंदं वेदोदयजनित-कामवेदनोन्मुक्तरु मोळरु, किंविशिष्टरेंते दोडे स्वकसंभवानंतवरसौख्याः शुद्धज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणस्वात्मोत्थानंतानंतमुख्यसुखसंपन्नरुगळु । एतल्लानुमपगतवेदानिवृत्तिकरणादिगळ्गे वेदोदय- ९
जनितकामवेदनारूप[1] संक्लेशाभावमादोडं गुणस्थानातीतमुक्तात्मरुगळ्गे स्वात्मोत्थसुखसद्भावं ज्ञानादिगुणसद्भावमेंतंते तोरल्पट्टुदु । परमार्थवृत्तियिंदं मत्तमपगतवेदरुगळ्गेनिवर्ग्गमुं ज्ञानोप योगस्वास्थ्यलक्षणपरमानंदजीवस्वभावमप्पुदेंदितु निश्चयिसल्पडुवुदु ।

अनंतरं वेदमार्गणेयोळु जीवसंख्याप्ररूपणार्थं गाथापंचकमं पेळ्दपरु ।

जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरिसा य सण्णिणो जीवा । १०
तत्तेउपम्मलेस्सा संखगुणूणा कमेणेदे ॥२७७॥

ज्योतिष्कवानयोनिमत्तिर्य्यक्पुरुषाश्च संज्ञिनो जीवाः । तत्तेजःपद्मलेश्याः संख्यगुणोनाः क्रमेणैते ॥

तृणाग्निकारीषाग्नीष्टिकापाकाग्निसदृशस्त्रीपुरुषोभयाभिलाषरूपजीवपरिणामानां तीव्रवेदनाभिः यः संक्लेशः तेनोन्मुक्ताः अनिवृत्तिकरणादपगतवेदभागादारभ्ययोगिचरमसमयपर्यन्ताः, भावेन गुणस्थानातीतसिद्ध- १५
परमेष्ठिनश्च द्रव्यभावाभ्यां वेदोदयजनितकामवेदनोन्मुक्ताः सन्ति । किंविशिष्टाः ? स्वकसंभवानन्तवरसौख्याः— शुद्धज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणात्मोत्थानन्तानन्तमुख्यसुखसंपन्नाः । यद्यपि अपगतवेदानिवृत्तिकरणादीनां वेदोदय-जनितकामवेदनारूपसंक्लेशाभावः तथापि गुणस्थानातीतमुक्तात्मनां स्वात्मोत्थसुखसद्भावः ज्ञानादिगुणसद्भाव-वद्दर्शितः । परमार्थवृत्त्या पुनः अपगतवेदानामेषामपि ज्ञानोपयोगस्वास्थ्यलक्षणपरमानन्दो जीवस्वभावोऽ-स्तीति निश्चेतव्यम् ॥२७६॥ अथ वेदमार्गणायां जीवसंख्यां गाथापञ्चकेन प्ररूपयति— २०

पुरुषवेदीका परिणाम तृणकी आगके समान होता है । स्त्रीवेदीका परिणाम कंडेकी आगके समान होता है । और नपुंसक वेदीका परिणाम पजावेकी आगके समान होता है । इन तीनों ही अग्नियोंके समान स्त्री, पुरुष और स्त्री-पुरुषकी अभिलाषा रूप परिणामोंकी तीव्र वेदनासे होनेवाले संक्लेशसे रहित, भाववेदकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थानके अन्तिम समयपर्यन्त जीव तथा गुणस्थान रहित सिद्ध- २५
परमेष्ठी द्रव्यवेद और भाववेदके उदयसे होनेवाली कामवेदनासे उन्मुक्त हैं । तथा वे शुद्ध ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग लक्षणवाली आत्मासे उत्पन्न हुए अनन्त सुखसे सम्पन्न होते हैं । यद्यपि अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे ही वेदके उदयसे होनेवाली वेदनारूप संक्लेशका अभाव होता है, तथापि गुणस्थानातीत मुक्तात्माओंके ज्ञानादि गुणके सद्भावकी तरह आत्मिक सुखका सद्भाव दिखलाया है । परमार्थसे तो वेदोंका अभाववाले गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी ३०
ज्ञानोपयोग तथा स्वास्थ्य लक्षणरूप परमानन्द जीवस्वभाव रहता है; ऐसा निश्चय जानना ॥२७६॥

---

१. म °पस्वभावमं ।

ज्योतिष्करुगळ पण्णट्ठिगुणप्पतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितरप्परु ४। ६५= मुंदे वानररुं तिर्य्यंचयोनिमतिगळप्प द्रव्यस्त्रीयरुं। तिर्य्यग्द्रव्यपुरुषरुं। तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियंगळु। तत्तिर्य्यक्पंचेंद्रियसंज्ञितेजोलेश्या जीवंगळुं। संज्ञिपंचेंद्रियपद्मलेश्याजीवंगळुं क्रमदिदं ज्योतिष्करराशियत्तणिदं पद्मलेश्याजीवपर्य्यंतमाद जीवंगळु संख्यातगुणहीनंगळेंदितु ज्ञातव्यमक्कुं।

व्यंतररु ४। ६५=१ तिर्य्यंचयोनिमतिगळु ४। ६५=१ १ तिर्य्यंचपुरुषरु ४। ६५=१ १ १ तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियंगळु ४। ६५=१ १ १ १ तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियं तेजोलेश्याजीवंगळु ४। ६५=१ १ १ १ १ तिर्य्यक्पंचेंद्रियसंज्ञिपद्मलेश्याजीवंगळु ४। ६५=१ १ १ १ १ १

पारिशिष्ट्य॥ आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इगिपुरिसे बत्तीसं देवी तज्जोग भजिददेवोघे ।
सगगुणगारेण गुणे पुरिसा महिला य देवेसु ॥२७८॥

एकपुरुषे द्वात्रिंशद्देव्यस्तद्योगभाजितदेवौघे । स्वकगुणकारेण गुणे पुरुषाः महिलाश्च देवेषु ॥

देवगतियोळोव्वंपुरुषंगे देवियरुगळु मूवत्तीरव्वरु। ओरोव्वंगे सर्व्वजघन्यदिदं द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्। देवियरुगळें बुदर्थं। एसलानुमिन्द्रादिगळगे संख्यातगुणितदेवियरुगळप्परादोडमवर्गळगल्पत्वदिदं।

ज्योतिष्काः पणट्ठिगुणितप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरप्रमिताः सन्ति, = ४। ६५= एतेभ्योऽग्रे वानाः वने भवाः—वानाः व्यन्तरा इत्यर्थः, योनिमतितिर्यञ्चः तिर्यग्द्रव्यस्त्रिय इत्यर्थः, तिर्यग्द्रव्यपुरुषाः तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियतेजोलेश्या जीवाः तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियपद्मलेश्याः जीवाश्चेत्येते षड्राशयः क्रमेण संख्यातगुणहीनाः सन्तीति ज्ञातव्यम्। व्यन्तराः = ४। ६५=१ तिर्यग्योनिमत्यः = ४। ६५=१। १ तिर्यक्पुरुषाः = ४। ६५=१ १ १ तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः = ४। ६५=१ १ १ १ तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियतेजोलेश्या जीवाः = ४। ६५=१ १ १ १ १ तिर्यक्संज्ञिपञ्चेन्द्रियपद्मलेश्या जीवाः = ४। ६५=१ १ १ १ १ १ ॥२७७॥

देवगतौ एकस्मिन् पुरुषे देवे तद्देव्यो द्वात्रिंशत् सर्वजघन्येन एकैकस्य पुरुषस्य द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्।

आगे वेदमार्गणामें पाँच गाथाओंसे जीव संख्या कहते हैं—

ज्योतिषीदेव पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीससे गुणित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जितना परिमाण आवे, उतने हैं। इनसे संख्यातगुणे हीन व्यन्तर हैं। व्यन्तरोंसे संख्यातगुणे हीन योनिमती तिर्यंच अर्थात् तिर्यंच द्रव्यस्त्री हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन द्रव्य पुरुषवेदी तिर्यंच हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन पीतलेश्यावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। उनसे संख्यातगुणे हीन पद्मलेश्यावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं। इस प्रकार ये छह राशियाँ क्रमसे संख्यातगुणा हीन जानना ॥२७७॥

देवगतिमें एक पुरुषदेवकी सबसे कम बत्तीस-बत्तीस देवियाँ होती हैं। यद्यपि इन्द्रादिकोंके उससे संख्यातगुणित देवियाँ होती हैं, तथापि इन्द्रादिकी संख्या अल्प है, तथा प्रकी-

१. ब "देवगतौ एकपुरुषस्य देव्यः सर्वजघन्येन द्वात्रिंशत् भवन्ति"।

प्रकीर्णकादिगळगे असंख्येयगुणितत्वदिंदं बहुत्वमेंदितिन्द्रादिदेव्याधिक्यपक्षविषये माडल्पट्टुदा देवदेवियर संख्यायोगं त्रयस्त्रिंशन्मात्रमक्कु ३३ मी भागहारदिंदं देवौघमप्प देवसामान्यराशियं भागिसि तदेकभागमं पुरुषर गुणकारमो दरिंदं गुणिसुत्तिरलु तल्लब्धमात्रं देवपर्कळोळु पुरुषरुगळप्परु। द्वात्रिंशत्प्रमित गुणकारदिंदं गुणिसुत्तिरलु तल्लब्धमात्रं देवपर्कळुगळोळु देवियरुगळप्परु।

संदृष्टि। देवपुंवेदिगळु $\frac{1}{=१।१}$ $\frac{}{४।६५।१।३३}$ देवस्त्रीयरुगळु $\frac{1}{=१।३२}$ $\frac{}{४।६५=१।३२}$ ५

देवेहि सादिरेया पुरिसा देवीहि साहिया इत्थी।
तेहि विहीण सवेदो रासी संढाण परिमाणं ॥२७९॥

देवैः सातिरेकाः पुरुषाः देवीभिः साधिकाः स्त्रियः। ताभ्यां विहीनः सवेदो राशिः षंढानां परिमाणं ॥

तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिद्वयदिंदं साधिकमप्प देवपुरुषराशियदु सामान्यपुरुषवेदराशियक्कुं १०

$\frac{1}{=१।१}$ मनुष्यतिर्यग्योनिमतिराशिद्वयदिंदं साधिकमप्प देविराशियदु सामान्यस्त्रीराशि-
४।६५=१३३ मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यद्यपि इन्द्रादीनां ततः संख्यातगुणिता देव्यः सन्ति तथापि तेषां अल्पत्वेन प्रकीर्णकादीनां असंख्येयगुणितत्वेन[२] बहुत्वं, इन्द्रादिदेव्याधिक्यस्य विवक्षा न कृता। तदेकदेवद्वात्रिंशद्देवीनां संयोगेन त्रयस्त्रिंशता ३३ देवौघं देवसामान्यराशिं भक्त्वा तदेकभागेन एकरूपेण पुरुषगुणकारेण गुणिते यल्लब्धं तावन्तो देवगतौ पुरुषा

भवन्ति। = $\frac{1}{१।१}$ द्वात्रिंशता गुणिते तु यल्लब्धं तावन्त्यो देव्यो भवन्ति। १५
४।६५=।१।३३।

= $\frac{1}{१।३२}$ (देवदेवीभेदमकृत्वा सामान्यापेक्षया स्वकगुणकारेणेति उक्तं तेनात्र भेदो
४।६५=।१।३३
ज्ञातव्यः) ॥२७८॥

तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिभ्यां अधिको देवपुरुषराशिः स सामान्यपुरुषराशिर्भवति = $\frac{1}{१।१।}$
४।६५=१।३३।

णक आदि जातिके देव उनसे असंख्यातगुणे होनेसे बहुत हैं। इसलिए इन्द्रादिकी अधिक देवियोंकी विवक्षा यहाँ नहीं की। अतः एक देव और बत्तीस देवियोंकी संख्याको मिलाकर २०
तैंतीस संख्यासे सामान्य देवराशिको भाग देनेपर जो एक भाग आवे, उसमें पुरुषका गुणकार एकसे गुणा करनेपर जो लब्ध हो, उतने देवगतिमें पुरुष होते हैं। और उस एक भागको बत्तीससे गुणा करनेपर जो लब्ध आवे, उतनी देवियाँ होती हैं ॥२७८॥

पुरुषवेदी देवोंकी राशिमें पुरुषवेदी तिर्यंचों और पुरुषवेदी मनुष्योंकी राशि मिलानेपर समस्त पुरुषवेदी जीवोंका परिमाण होता है। तथा देवियोंकी राशिमें मनुष्य और तिर्यंच २५

---

२. ब °त्वेन तद्देव्या°।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रमाणमक्कु = ३ २ मी सामान्यपुरुषस्त्रीराशिद्वयविवं हीनमप्प सवेदराशि नपुंसक-
४।६५=१३३
वेदिगळ परिमाणमक्कु। १३८ मपगतवेदानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषाय सयोगिकेवलि अयोगिकेवलि संख्याविहीनसंसारिराशियदुसवेदराशियक्कुं।

गब्भणपुंइत्थिसण्णी समुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा।
कुरुजा असण्णिगब्भज णउइत्थीवापजोइसिया ॥२८०॥
थोवा तिसु संखगुणा तत्तो आवलि असंखभागगुणा।
पल्लासंखेज्जगुणा तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥२८१॥

युगलं। गर्भज। नपुंसक। पुंस्त्रीसंज्ञिनः संमूर्च्छन संज्ञिपूर्णकाः इतराः। कुरुजाः असंज्ञिगर्भजः नपुंसकपुंस्त्रियः व्यानज्योतिषिकाः। स्तोकास्त्रिषु संख्यगुणाः तत आवल्यसंख्यभागगुणाः। पल्यासंख्येयगुणाः ततः सर्वत्र संख्यगुणाः॥

संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिगळुं संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिगळुं संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिगळुं संमूर्च्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकरुं संमूर्च्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियापर्याप्तकरु मी स्थानद्वयदोळु नपुंसकवेदिगळेयप्परु। भोगभूमिजरुमवरुं गर्भजसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तपुंस्त्रीवेदिगळेयप्परु। असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिगळुमसंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिगळुमसंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिगळुं व्यंतरदेवक्कळुं ज्योतिष्करुमेंबितेकावशजीवराशिगळुक्रमदिंद मेगे मेगे रचिसल्पडुववु। अंतु

मनुष्यतिर्यक्स्त्रीराशिभ्यामधिको देवीराशिः स सामान्यस्त्रीराशिर्भवति = ३।३२ एतत्पुरुष-
४।६५=१।३३।
स्त्रीराशित्रयविहीनसवेदराशिर्नपुंसकवेदराशिर्भवति १३ ≃ सवेदराशिस्तु अवेदानिवृत्तिकरणाद्ययोगकेवल्यन्तानां संख्यया हीनसंसारराशिः १३–॥२७९॥

संज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, संज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजपुंवेदिनः, संज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, सम्मूर्छिमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ताः, सम्मूर्छिमसंज्ञिपञ्चेन्द्रियापर्याप्ताः, अस्मिन् स्थानद्वये नपुंसकवेदिन एव। कुरुजा भोगभूमिजाः ते च गर्भजसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ताः स्त्रीपुंवेदिन एव। असंज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः,

---

स्त्रियोंकी राशि मिलानेपर सब स्त्रीवेदी जीवोंका परिमाण होता है। सवेद जीवोंकी राशिमें उक्त पुरुषवेदियों और स्त्रीवेदियोंकी राशि घटानेपर नपुंसकवेदी जीवोंकी राशि होती है। तथा सब संसारी जीवोंकी राशिमें अनिवृत्तिकरणके अवेद भागसे लेकर अयोगिकेवली पर्यन्त जीवोंकी संख्या घटानेपर सवेद जीवोंका परिमाण होता है ॥२७९॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी, संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदी, संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्रीवेदी, सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी, सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त नपुंसकवेदी, भोगभूमिया गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पुरुषवेदी तथा स्त्रीवेदी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्रीवेदी, व्यन्तरदेव, ज्योतिषीदेव ये ग्यारह जीव राशियाँ उक्त क्रमसे ऊपर-ऊपर

स्थापिसिव सर्व्वाधस्तनराशि सर्व्वतः स्तोकमक्कुमष्टवारसंख्यातरूपुगळिंदं आवल्यसंख्यातभागविंदं पल्यासंख्यातभागविंदमुं पण्णट्ठिगुणप्रतरांगुलंगळिंदमुं जगत्प्रतरमं भागिसुत्तिरलुमावुदों दु लब्धं तत्प्रमाणमेंबुदर्त्थं प्रथम $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८।१११$ द्वितीयः— $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८।११$ तृतीयराशि $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८।१$

आशीर्वादक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

चतुर्थ $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८$ पंचम $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५$ षष्ठ $\overline{\overline{४}}।६५=११११$ सप्तम $\overline{\overline{४}}।६५=१११$ अष्टम $\overline{\overline{४}}।६५=११$ नवम $\overline{\overline{४}}।६५=१$ दशम $\overline{\overline{४}}।६५=$ एकादश $\overline{\overline{४}}६५=$ द्वितीयादि

असंज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः व्यन्तरदेवाः ज्योतिष्काश्च इत्येकादश जीवराशयः उक्तक्रमेण उपर्युपरि रचयितव्याः। तत्र सर्वाधस्तनराशिः सर्वतः स्तोकः अष्टवारसंख्यातरूपैः आवल्यसंख्येयभागेन पल्यासंख्येयभागेन पण्णट्ठिगुणितप्रतराङ्गुलैश्च जगत्प्रतरे भक्ते यल्लब्धं तत्प्रमाणं भवति। $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८१११$। ततः उपरि त्रिषु स्थानेषु द्वितीय—$\overline{\overline{४}}।६५=११११५८११$ तृतीय—$\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८१$ चतुर्थ—$\overline{\overline{४}}।६५=१११११५८$ राशयः संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति। ततः उपरि स्थितः पञ्चमराशिः आवल्यसंख्येयभागगुणितः $\overline{\overline{४}}।६५=१११११५$ अतः उपरि स्थितः षष्ठराशिः पल्यासंख्येयभागगुणितः—$\overline{\overline{४}}।६५=११११$ अतः उपरि स्थानेषु सर्वेषु सप्तम— $\overline{\overline{४}}।६५=१११$ अष्टम—$\overline{\overline{४}}।६५=११$ नवम—$\overline{\overline{४}}।६५=१$ दशम $\overline{\overline{४}}।६५=$

स्थापित करनी चाहिए। इनमें-से सबसे नीचेकी राशि सैनी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी सबसे कम हैं अर्थात् आठ बार संख्यात, आवलीका असंख्यातवाँ भाग, पल्यका असंख्यातवाँ भाग और पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आये, उतना परिमाण होता है। उसके ऊपर संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदीसे लेकर तीन स्थानोंका परिमाण क्रमसे संख्यातगुणा होता है। चतुर्थसे ऊपर पंचम राशि सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त नपुंसकवेदी आवलीके असंख्यातवें भाग गुणित हैं। पंचम राशिसे छठी राशि पल्यके

---

१. ब °ण इत्यर्थं....ततः द्वितीय। २. ब ततः पं°। ३. ब अतःषष्ठ। ४. ब अतः सप्तम।

त्रिस्थानदोळु संख्यातगुणं चरमराश्यावल्यसंख्यातैकभागगुणमक्कुं। षष्ठराशिपल्यासंख्यात भागगुणमक्कुं सप्तमादिराशिगळु सर्व्वत्र संख्यातगुणक्रमंगळु।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमन्नायराजगुरु, भलाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति जीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांड-विंशतिप्ररूपणंगळोळु दशमं वेदमार्गणाप्ररूपणाधिकारं रूपितमाय्तु ॥

एकादशे—४। ६५= राशयः पञ्चापि संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥२८९-२८१॥

इति श्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीव-जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु वेदमार्गणाप्ररूपणो नाम दशमोऽधिकारः ॥१०॥

असंख्यातवें भाग गुणित है। इस छठी राशिसे ऊपर अर्थात् असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसक-वेदीसे लेकर ज्योतिषीदेव पर्यन्त सातवीं, आठवीं, नवमी, दसवीं और ग्यारहवीं राशि क्रमसे संख्यातगुणी होती हैं ॥२८०-२८१॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इस प्रकार आचार्य नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से वेदमार्गणा प्ररूपणा नामक दसवाँ महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

---

१. ब °दश सं°।

कषायमार्गणाधिकारः ॥११॥

अनंतरं कषायमार्ग्गणेयं पेळ्दपरु ।

सुहदुक्खसुबहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स ।
संसारदूरमेरं तेण कसाओत्ति णं बेंति ॥२८२॥

सुखदुःखसुबहुसस्यं कर्म्मक्षेत्रं कृषति जीवस्य । संसारदूरमर्य्यादं तेन कषाय इतीमं ब्रुवंति ॥

येन कारणेन आवुदो दु कारणदिंदं जीवस्य संसारिजीवन कर्म्मक्षेत्रं ज्ञानावरणादि मूलोत्तर- ५
प्रकृतिभेदभिन्नशुभाशुभकर्म्मरूपक्षेत्रमं सस्याधिकरणभूतलमं कृषति विलिखति विलेखिसुगुमदु कारणदिंदं कषाय इति कषायमेंबितु इमं कषायपरिणामं ई कषायपरिणाममं कषाय इति कषाय-मेंबितु ब्रुवंति श्रीवर्द्धमानभट्टारकियरप्प गौतमगणधरदेवादिगळु पेळ्दरु । अदु कारणदिंदं कषाय-प्राभृतादियोळु गणधरसूत्रानुसारदिंदं यथोक्तमं कषायस्वरूपसंख्याशक्तयस्थाफलादिकमनानहंगे पेळ्दंगे दितु स्वरुचिविरचितत्वं परिहरिसल्पट्टुदु । १०

किं विशिष्टं कर्म्मक्षेत्रं सुखदुःखसुबहुसस्यं इंद्रियविषयसंबंधसमुद्भवहर्ष शारीरमानस-परितापरूपगळप्प सुबहून बहुप्रकारोणि सस्यानि धान्यानि यस्मिन् भवंति तत् सुखदुःखसुबहुसस्यं ।

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सिद्धिसागर जी महाराज

श्रेयोमार्गस्य नेतारं श्रेयोऽनेकान्तशासनम् ।
श्रेयांसं तीर्थकर्तारं श्रेयसे संस्तवीम्यहम् ॥११॥

अथ कषायमार्गणामाह—

येन कारणेन जीवस्य—संसारिणः कर्मक्षेत्रं ज्ञानावरणादिमूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नशुभाशुभकर्मरूपक्षेत्रं सस्याधिकरणं भूतलं कृषति विलिखति, तेन कारणेन इमं क्रोधादिजीवपरिणामं कषाय इति ब्रुवन्ति श्रीवर्ध-मानभट्टारकीया गौतमगणधरदेवादयः कथयन्ति, ततः कारणात् कषायप्राभृतादौ गणधरसूत्रानुसारेण यथोक्तं कषायस्वरूपं संख्याशक्तयस्थवस्थाफलादिकं तथैव कथयिष्यामीति स्वरुचिविरचितत्वं परिहृतम् । किंविशिष्टं कर्मक्षेत्रं ? सुखदुःखसुबहुसस्यं सुखदुःखानि इन्द्रियविषयसंबन्धसमुद्भवहर्षशारीरमानसपरितापरूपाणि सुबहूनि

अब कषायमार्गणाको कहते हैं—

जिस कारणसे संसारी जीवके ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिके भेदसे भिन्न शुभ-अशुभ कर्मरूप क्षेत्रको अर्थात् धान पैदा होनेकी भूमिको यह कृषति अर्थात् जोतती है, इस कारणसे इन क्रोधादिरूप जीव परिणामको श्रीवर्धमान भट्टारकके गौतम गणधर आदि देव कषाय कहते हैं। अतः कषाय प्राभृत आदिमें गणधररचित सूत्रके अनुसार २५
जैसा कषायका स्वरूप, संख्या, शक्ति, फल आदि कहा है, वैसा ही मैं कहूँगा। इस प्रकार ग्रन्थकारने स्वरुचि विरचितपनेका परिहार किया है। जैसे खेतमें बहुत प्रकारके धान्य उत्पन्न होते हैं, वैसे ही कर्मरूपी खेतमें इन्द्रियोंके विषयके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले हर्ष तथा शारीरिक और मानसिक सन्ताप रूप बहुत प्रकारके सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं। जैसे खेतके

पुनरपि कथंभूतं संसारदूरमर्य्यादं अनाद्यनिधनद्रव्यक्षेत्रकालभवभावानंतपरिवर्तनरूपसीमानुबद्धमें बुवर्त्थं । इल्लि मिथ्यादर्शनादिजीवसंक्लेशपरिणामरूपबीजमं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदकर्म्मबंधलक्षणमप्प क्षेत्रदोळु बित्ति क्रोधादिकषायमें बी जीवभृत्यनुं मत्तं कालादिसामग्रिलब्धिसमुत्पन्न सुखदुःखलक्षणबहुविधधान्यंगळनाद्यनिधनसंसारदूरसीमेयनुळ्ळुवनेंतु सुफलिसंगळप्पुवंते मेले मेले कृषति एंदेवरगुवरें दितु कृष विलेखने यें बी धातुविन विलेखनार्त्थमं कोंडु निरुक्तिपूर्व्वकं कषायशब्दकर्त्तृनिरूपणमाचार्य्यनिवं माडलूपट्टुवें बुवु तात्पर्य्यार्त्थं ।

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खाद-चरणपरिणामे ।
घादंति वा कसाया चउसोल असंखलोगमिदा ॥२८३॥

सम्यक्त्वदेशसकलचारित्रयथाख्यातचरणपरिणामान् । घ्नंतीति वा कषायाश्चतुष्षोडशाऽसंख्यलोकमिताः ॥

वा अथवा सम्यक्त्वं तत्वार्थश्रद्धानमं । देशचारित्रं अणुव्रतमं । सकलचारित्रं महाव्रतमं । यथाख्यातचरणं यथाख्यातचारित्रमेंनितप्पात्मविशुद्धिपरिणामंगळं कषंति हिंसंति घ्नंतीति कोन्सुवर्वेदितु कषायाः कषायंगळे दितु निरुक्तिसामर्थ्यदिंदं साळ्दट्टुवें बुवु । अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभकषायंगलात्मन सम्यक्त्वपरिणामम कषंति कंडिसुवुवनंतसंसारकारणत्वात् मिथ्यात्वमनंतमनंतभवसंस्कारकालं वाऽनुबध्नंति संघटयंतीत्यनंतानुबंधिनः एंदितो निरुक्तिसामर्थ्यमुळ्ळुदरिंदं ।

बहुप्रकाराणि सस्यानि धान्यानि यस्मिन् भवन्ति तत्सुखदुःखसुबहुसस्यम् । पुनरपि कथंभूतं ? संसारदूरमर्यादं अनाद्यनिधनद्रव्यक्षेत्रकालभवभावानन्तपरिवर्तनरूपसीमानुबद्धमित्यर्थः । अत्र मिथ्यादर्शनादिजीवसंक्लेशपरिणामरूपं बीजं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदकर्मबन्धलक्षणे क्षेत्रे उप्त्वा क्रोधादिकषायनामा जीवस्य भृत्यः पुनरपि कालादिसामग्रीलब्धिसमुत्पन्नसुखदुःखलक्षणबहुविधधान्यानि अनाद्यनिधनसंसारदूरसीमानि यथा सुफलितानि भवन्ति तथा उपर्युपरि कृषति इति कृषि विलेखने इत्यस्य धातोर्विलेखनार्थं गृहीत्वा निरुक्तिपूर्वकं कषायशब्दस्यार्थनिरूपणम् आचार्येण कृतमिति तात्पर्यार्थः ॥२८२॥

वा-अथवा सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं-अणुव्रतं, सकलचारित्रं-महाव्रतं, यथाख्यातचरणं यथाख्यातचारित्रं एवंविधान् आत्मविशुद्धिपरिणामान् कषन्ति हिंसन्ति घ्नन्तीति कषाया इति निरुक्तिरयम् । तद्यथा-अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभकषायाः आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषन्ति अनन्तसंसारकारणत्वात् अनन्तं-मिथ्यात्वं, अनन्तभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नन्ति सुघटयन्तीत्यनन्तानुबन्धिन इति निरुक्तिसामर्थ्यात् ।

मेड़ होती है, वैसे ही कर्मरूपी खेत अनादि अनिधन पंच परावर्तन रूप सीमासे अनुबद्ध है । यहाँ जीवके मिथ्यादर्शनादि संक्लेश परिणामरूप बीजको प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धरूप कर्म क्षेत्रमें बोकर जीवका क्रोधादि कषाय नामक नौकर काल आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे उत्पन्न सुख-दुःख रूप अनेक प्रकारके धान्य उत्पन्न करता है । अतः 'कृषि विलेखने' धातुका जोतना अर्थ लेकर आचार्यने निरुक्तिपूर्वक 'कषाय' शब्दका अर्थ कहा है; ऐसा तात्पर्यार्थ जानना ॥२८२॥

अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व, अणुव्रतरूप देशचारित्र, महाव्रतरूप सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र रूप आत्माके विशुद्धि परिणामोंको 'कषति' अर्थात् घातते हैं इसलिए कषाय कहते हैं । इसका स्पष्टीकरण—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभकषाय आत्माके सम्यक्त्व परिणामको घातती है, क्योंकि अनन्त संसारका कारण होनेसे अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व, या अनन्तभवके संस्कार कालको 'अनुबध्नन्ति' बाँधती है, इसलिए उसे

अप्रत्याख्यानावरणंगळ्वणुव्रतपरिणाममं कर्षंति केडिसुवव्रत्याख्यानमणुव्रतं तदावृण्वंति घ्नंतीति केडिसुवर्वेदितु निरुक्तिसिद्धत्वमप्पुदरिंदं। प्रत्याख्यानावरणंगळ्वुं सकलचारित्रमं महाव्रत-परिणाममं कर्षंति केडिसुवदवु प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तमावृण्वन्ति घ्नंतीति केडिसुवर्वेदितु निरुक्तिसिद्धंगळप्पुवरिंदं। संज्वलनंगळुमवुं यथाख्यातचारित्रपरिणाममं कर्षंति केडिसुवव्रु। सं समीचीनं विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहंतीति संज्वलनाः एंदितु निरुक्ति- ९
बलदिंदमदरुदयदोळं सामायिकादितरसंयमाविरोधं सिद्धमाप्तु।

इंतप्प कषायं सामान्यदिंदं मोंदु १। विशेषविवक्षेयोळ् अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलनभेददिं नालकप्पुवु ४॥ मत्तमा नालकक्कं प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभं-गळेंदु षोडशभेदंगळप्पवु। १६॥ सर्वेवं वोडे अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभंगळे[illegible] आ मूवत्तोंदुं महाव्रत-
चारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पंगळ्मसंख्यातलोकमात्रत्वदिंदं ॥ ७। १०

अप्रत्याख्यानावरणाः अणुव्रतपरिणामं कर्षन्ति। अप्रत्याख्यानं ईषत् प्रत्याख्यानं अणुव्रतं आवृण्वन्ति घ्नन्तीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। प्रत्याख्यानावरणाः सकलचारित्रं महाव्रतपरिणामं कर्षन्ति। प्रत्याख्यानं-सकलसंयमं आवृण्वन्ति घ्नन्तीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कर्षन्ति, सं-समीचीनं, विशुद्धं ।५
संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलन्ति दहन्ति इति संज्वलनाः इति निरुक्तिबलेन तदुदये सत्यपि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः। एवंविधः कषायः सामान्येन एकः, विशेषविवक्षायां तु अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदाच्चत्वारः। पुनस्ते चत्वारोऽपि प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति षोडश १६। तद्यथा—अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः संज्वलनक्रोधमानमायालोभाः इति। पुनः सर्वेऽपि उदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यात- २०
लोकप्रमिता भवन्ति। कुतः? तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानां असंख्यातलोकमात्रत्वात् ॥ ७ ॥२८३॥

अनन्तानुबन्धी कहते हैं, इस निरुक्तिके बलपर उक्त कथन सिद्ध होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय अणुव्रत परिणामोंको घातती है। अप्रत्याख्यान अर्थात् ईषत् प्रत्याख्यान यानी अणुव्रत-को आवृण्वन्ति अर्थात् घातती है; इस निरुक्तिसे सिद्ध होता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय २५
सकल चारित्ररूप महाव्रत परिणामोंको घातती है। प्रत्याख्यान अर्थात् सकल संयमको 'आवृण्वन्ति' अर्थात् घातती है, इस निरुक्तिसे सिद्ध है। संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र-रूप परिणामोंको घातती है। सं अर्थात् समीचीन विशुद्ध संयम यथाख्यात चारित्रको 'ज्वलन्ति' जो जलाती है, वह संज्वलन है इस निरुक्तिके बलसे संज्वलन कषायके उदयमें सामायिक आदि अन्य संयमोंके होनेमें कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार- ३०
की कषाय सामान्यसे एक है। विशेष विवक्षामें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनके भेदसे चार हैं। पुनः वे चारों भी प्रत्येकके क्रोध, मान, माया, लोभ भेद होनेसे सोलह हैं। यथा, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्या-ख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ। पुनः सभी कषाय उदयस्थान विशेषकी अपेक्षा असंख्यात लोक ३५

सिलपुढविभेदधूलीजलराइसमाणओ हवे कोहो ।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥२८४॥

शिलापृथ्वीभेदधूलीजलराजिसमानो भवेत्क्रोधः । नारकतिर्य्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥

शिलाभेद पृथ्वीभेद धूलीरेखा जलरेखासमानउत्कृष्टानुत्कृष्टाऽजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टमप्प क्रोधकषायमदु नारकतिर्य्यग्नरामरगतिगळोळु क्रमशो यथाक्रममुत्पादिसुगुं जीवमनदे तें दोडे शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधकषायं जीवमं नारकगतियोळ्पुट्टिसुगुं । पृथ्वीभेदानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधं तिर्य्यग्गतियोळु जीवमं पुट्टिसुगुं । धूलीरेखाऽजघन्यशक्तियुक्तक्रोधं जीवनं मनुष्यगतियोळु पुट्टिसुगुं जलरेखा[illegible]क्रोधं जीवं देवगतियोळ्पुट्टिसुगुं । अदरिंदं तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतजीवं तत्तद्गत्युत्पत्तिकारण तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यनामादिप्रकृतिगळं कट्टुगुमें बुदत्थं । इल्लि राजिशब्दं रेखार्थवाचियक्कुं । पंक्ति वाचियल्तु । यें तोगळु शिलाभेदादिगळ्गे चिरतर चिर शीघ्र शीघ्रतर कालंगळिंदमल्लदे संधानं घटिसदंते उत्कृष्टादिशक्तियुक्त क्रोधपरिणामजीवनुमंतप्प कालंगळल्लदे क्षमालक्षणसंधानार्हनागनें बितुपमानोपमेयंगळ्गे सादृश्यं संभविसुगुमें बिदु तात्पर्य्यार्थं ।

शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलीरेखाजलरेखासमानः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः स नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्रमशो यथाक्रमं उत्पादयति जीवम् । तद्यथा—शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः जीवं नरकगतावुत्पादयति । पृथ्वीभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधः तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । धूलीरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधो जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति । जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधः जीवं देवगतावुत्पादयति । तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिप्रकृतीर्बध्नातीत्यर्थः । अत्र राजिशब्दो रेखार्थवाची न तु पङ्क्तिवाची । यथा शिलादिभेदानां चिरतरचिरशीघ्रशीघ्रतरकालैर्विना अनुसंधानं न घटते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तक्रोधपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना क्षमालक्षणसंधानार्हो न स्यात् इत्युपमानोपमेययोः सादृश्यं संभवतीति तात्पर्यार्थः ॥२८४॥

प्रमाण है क्योंकि उसके कारण चारित्र मोहनीयके उत्तरोत्तर प्रकृति भेद असंख्यात लोक मात्र हैं ॥२८३॥

शिलाभेद, पृथ्वीभेद, धूलीरेखा और जलरेखाके समान उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य शक्तिसे विशिष्ट क्रोध कषाय जीवको क्रमसे नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है । स्पष्टीकरण इस प्रकार है—शिलाभेदके समान उत्कृष्ट शक्तिसे विशिष्ट क्रोध कषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है । पृथ्वीभेदके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे विशिष्ट क्रोध जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराता है । धूलकी रेखाके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त क्रोध जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराता है । जलमें रेखाके समान जघन्य शक्तिसे युक्त क्रोध जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराता है । इसका अभिप्राय यह है कि उस-उस शक्तिसे युक्त क्रोध कषायरूप परिणमा जीव उस-उस गतिमें उत्पत्तिमें कारण उस-उस आयु, गति, आनुपूर्वी आदि प्रकृतियोंको बाँधता है । यहाँ गाथामें आया 'राजि' शब्दका अर्थ रेखा लेना चाहिए, पंक्ति नहीं । जैसे शिला आदिमें पड़ी दरार अतिचिरकाल,

१५ १. ब शिलाभेदादीनां । २. ब °णामजीवः हं ।

सेलट्ठि-कट्ठ-वेत्ते णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥२८५॥

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजभेदेनानुहरन् मानः । नारकतिर्य्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥

शिलास्थिकाष्ठवेत्रान् शैलास्थिकाष्ठवेत्रंगळनु निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदविंदमनुहरन् उपनीयमानुमानकषायं क्रमशः क्रमदिंद नारकतिर्य्यग्नरामरगतिगळोळु जीवनं पुट्टिसुगुमदें तेंदोडे शिलासमानोत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायं जीवनं नारकगतियोळु पुट्टिसुगुमस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायं जीवनं तिर्य्यग्गतियोळ्पुट्टिसुगुं, काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तमानकषायं मनुष्यगतियोळु जीवनं पुट्टिसुगुं, वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमानकषायं जीवनं देवगतियोळ्पुट्टिसुगुमें तीगळु चिरतरादिकालंगळिंदमल्लदे शिलास्थिकाष्ठवेत्रंगळु मुचिहसलक्कर्थंतोत्कृष्टादि शक्तियुक्तमानकषायपरिणतजीवमुमंतप्प कालंगळिंदमल्लदे मानमनपहरिसि विनयरूपमप्प नमनमं माडलु शक्तनल्लें दितु सादृश्यसंभवमिल्लेंबरियल्पडुगुं । तत्तच्छक्तियुक्तमानकषायपरिणतजीवं तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतु तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्विनामादिकर्म्मबंधकनक्कुमें बुदितु तात्पर्य्यार्थं ।

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदैरनुहरन् उपमीयमानो मानकषायः क्रमशः—क्रमेण नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा—शिलास्तम्भसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायो जीवं नारकगतावुत्पादयति । अस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायो जीवं तिर्यग्गतावुत्पादयति । काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तमानकषायो मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति । वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमानकषायो जीवं देवगतावुत्पादयति । यथा हि चिरतरादिकालैर्विना शैलास्थिकाष्ठवेत्राः नामयितुं न शक्यन्ते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तमानपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मानं परिहृत्य विनयरूपनमनं कर्तुं न शक्नोतीति सादृश्यसंभवोऽत्र ज्ञातव्यः । तत्तच्छक्तियुक्तमानकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतुतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्म बध्नातीति तात्पर्यम् ॥२८५॥

चिरकाल, शीघ्र और अतिशीघ्र कालोंके बिना भरती नहीं है वैसे ही उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त क्रोधरूप परिणमा जीव भी उस प्रकारके कालके बिना क्षमा भाव धारणके योग्य नहीं होता है इस प्रकार उपमान और उपमेयमें समानता बनती है ॥२८४॥

शैल, अस्थि, काष्ठ और बेंतको अपनी उत्कृष्ट आदि शक्तिके भेदोंसे उपमा बनानेवाली मानकषाय क्रमसे जीवको नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है। उसका स्पष्टीकरण—पत्थरके स्तम्भके समान उत्कृष्ट शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है। अस्थिके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराती है। काष्ठके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराती है। बेंतके समान जघन्य शक्तिसे युक्त मानकषाय जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराती है। जैसे चिरतर आदि समयके बिना पत्थर, हड्डी, काठ और बेंतको नमाना शक्य नहीं है वैसे ही उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त मानकषायरूप परिणत जीव भी उस प्रकारके कालोंके बिना मानको त्यागकर विनयरूप नमन करनेमें समर्थ नहीं होता है इस प्रकार समानता जानना। इसका आशय यह है कि उस-उस शक्तिसे युक्त मानकषायरूप परिणत जीव उस-उस गतिमें उत्पत्तिके कारण उस-उस गति, आयु और आनुपूर्वी नामकर्मका बन्ध करता है ॥२८५॥

वेणुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरुप्पे ।
सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जियं ॥२८६॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगेण गोमूत्रेण च क्षुरप्रेण । सदृशी माया नरकतिर्य्यंग्नरामरगतिषु क्षिपति जीवं ॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्तमप्प माया वंचने यथाक्रमं नारकतिर्य्यंग्नरामरगतिगळोळु जीवननिक्कुगुमदें तेंदोडे वेणूपमूलमें बुदु वेणूपमूलग्रंथियक्कुं अदरोडने समानोत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायं जीवनं नरकगतियोळिक्कुगुं । उरभ्रकगें बुदु मेषमवरशृंगसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्त मायाकषाय जीवनं तिर्य्यग्गतियोळिक्कुगुं । गोमूत्रसमानाजघन्यशक्तियुक्त मायाकषायं जीवनं मनुष्यगतियोळिक्कुगुं । क्षुरप्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायं जीवनं देवगतियोळिक्कुगुमें तीगळु वेणूपमूलादिगळु चिरतरादिकालविनल्लदे तंतम्म वक्रतेयं परिहरिसि ऋजुत्वमनेय्दुवंते जीवनुमुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतनुमंतप्प कालंगळिदमल्लदे तंतम्म वक्रतेयं परिहरिसि ऋजुपरिणामियागनेंदितु सादृश्यं युक्तमक्कुं । तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतजीवं तत्तद्गतिक्षेपकारणं तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यनामादिकर्म्मबंधकनक्कुमें बुदु तात्पर्य्यार्थं ।

पार्श्वनाथ के :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

वेणूपमूलोरभ्रकशृङ्गगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्ता माया—वञ्चना यथाक्रमं नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवं निक्षिपति । तद्यथा—वेणूपमूलं वेणुमूलग्रन्थिः तेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायो जीवं नरकगतौ निक्षिपति । उरभ्रकः—मेषः, तच्छृङ्गसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं तिर्यग्गतौ निक्षिपति । गोमूत्रसमानाजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायो जीवं मनुष्यगतौ निक्षिपति क्षुरप्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायो जीवं देवगतौ निक्षिपति । यथा वेणूपमूलादयः चिरतरादिकालं विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुत्वं न प्राप्नुवन्ति तथा जीवोऽपि उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतः तथाविधकालैर्विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुपरिणामो न स्यात् इति सादृश्यं युक्तम् । तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतजीवः तत्तद्गतिक्षेपकारणं तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिकर्म बध्नाति । इति तात्पर्यार्थः ॥२८६॥

बाँसकी जड़, मेढ़ेके सींग, गोमूत्र तथा खुरपाके समान उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त माया जीवको यथाक्रम नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है । स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बाँसकी जड़के समान उत्कृष्ट शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है । मेढ़ेके सींगके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराती है । गोमूत्रके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराती है । तथा खुरपेके समान जघन्य शक्तिसे युक्त माया कषाय जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराती है । जैसे बाँसकी जड़ वगैरह चिरतर आदि कालोंके बिना अपने-अपने टेढ़ेपनेको छोड़कर सरलतासे सीधेपनेको प्राप्त नहीं होते, वैसे ही उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त माया कषायरूप परिणत जीव भी उस प्रकारके कालोंके बिना अपनी वक्रताको छोड़कर सरल परिणामी नहीं होता । इस प्रकार समानता योग्य है । इसका आशय यह है कि उस-उस उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त माया कषाय रूप परिणत जीव उस-उस गतिमें ले जानेमें निमित्त उस-उस आयु, गति और आनुपूर्वी आदि कर्मोंको बाँधता है ॥२८६॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दरागेण सरिसओ लोहो ।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवेसुप्पायओ कमसो ॥२८७॥

किमिरागचक्रलतनुमलहरिद्रारागेण सदृशो लोभः । नारकतिर्य्यग्मानुषदेवेषूत्पादकः क्रमशः ॥

किमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागबंधसमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभकषायं विषयाभिलाषरूपं क्रमशः यथासंख्यं नारकतिर्य्यग्मानुषदेवगतिगळोळु जीवनुत्पादिसुगुं पुट्टिसुगुमवें ते दोडे किमिरागदोडने कंबलादिरंजनदोडने समानोत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायं जीवनं नारकगतियोळु पुट्टिसुगुं । चक्रमलं रथांगमलमदरोडने समानानुत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायं जीवनं तिर्य्यंगतियोळु पुट्टिसुगुं । तनुमलं शरीरमलं बहिर्गतजल्लमलं तद्बंधसदृशाऽजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायं जीवनं मनुष्यगतियोळ्पुट्टिसुगुं । हरिद्रारागमंगवस्त्रादिरंजनद्रव्यरागमदर बंधसदृशजघन्यशक्तियुक्तं लोभकषायं जीवनं देवगतियोळु पुट्टिसुगुं । किमिरागादिसदृशतत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणामविदं जीवं तत्तद्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यनामादिकर्मबंधकनक्कुमें बुदु भावार्थं ।

णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्मि ।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥२८८॥

नारकतिर्य्यंग्नरसुरगतिषूत्पन्नप्रथमकाले । क्रोधो माया मानो लोभोदयोऽनियमो वापि ॥

किमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागबन्धसमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तो लोभकषायो विषयाभिलाषरूपः क्रमशो—यथासंख्यं नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा—किमिरागेण कंबलादिरञ्जनेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायो जीवं नारकगतौ उत्पादयति । चक्रमलः—रथाङ्गमलः, तेन समानानुत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं तिर्यग्गतौ उत्पादयति । तनुमलः शरीरमलः बहिर्गतः जल्लमलः, तद्बन्धसदृशाजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायो जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति । हरिद्रारागः, अङ्गवस्त्रादिरञ्जनद्रव्यरागः—तद्बन्धसदृशजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं देवगतावुत्पादयति । किमिरागादिसदृशतत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणामेन परिणतो जीवः तन्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिकर्म बध्नातीति भावार्थः ॥२८७॥

कृमिराग, चक्रमल, शरीरमल और हल्दीके रंगके समान उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त विषयोंकी अभिलाषारूप लोभ कषाय क्रमसे जीवको नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न कराती है; जो इस प्रकार है—कृमिराग जिससे कम्बल रंगे जाते हैं, उसके समान उत्कृष्ट शक्तिसे युक्त लोभकषाय जीवको नरकगतिमें उत्पन्न कराती है। चक्रमल अर्थात् रथके पहियेकी औंगनके समान अनुत्कृष्ट शक्तिसे युक्त लोभकषाय जीवको तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराती है। शरीरके बाह्य मैलके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त लोभ कषाय जीवको मनुष्यगतिमें उत्पन्न कराती है। हल्दीके रंगके समान जघन्य शक्तिसे युक्त लोभ कषाय जीवको देवगतिमें उत्पन्न कराती है। इसका भावार्थ यह है कि कृमिराग आदिके समान उस-उस उत्कृष्ट आदि शक्तिसे युक्त लोभ परिणामसे परिणत जीव उस-उस नारक आदि भवोंमें उत्पत्तिके कारण उस-उस आयु, गति, आनुपूर्वी आदि कर्मोंका बन्ध करता है ॥२८७॥

नारकतिर्य्यग्नरसुरगतिगळोळु पुट्टिव जीवक्के तद्भवप्रथमकालदोळु प्रथमसमयदोळु यथासंख्यंक्रोधमानमायालोभकषायंगळुदयमक्कुं मेंबी नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धांतव्याख्यातृगळप्प यतिवृषभाचार्य्यरभिप्रायमनाश्रयिसि पेळल्पट्टुदु ।

वा अथवा महाकर्म्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धांतकर्तृगळप्प भूतबल्याचार्य्यरभिप्रायविदम-
५ नियममरियल्पडुगुं । पेररे पेळ्द नियममिल्लदे यथासंभवं कषायोदयमक्कुमेंबुदर्थं ।

[illegible] संशयाधिरूढमेयक्कु मेकतरावधारणदोळु शक्तिरहितमप्पुदरिंदमी भरतक्षेत्रदोळु केवलिद्वयाभावमप्पुदरिंदं आरातीयाचार्य्यरुगळोळमी सिद्धांतद्वयकर्तृगळं नोडलु ज्ञानातिशयमनुळ्ळरुगळाभावमप्पुदरिंदमुं एत्तलानुं विदेहदोळ् पोगि तीर्थंकरादिसंनिधियोळु मो[1]वानुमोर्व्वंगाचार्य्यंगे सकलश्रुतार्थंगळोळु संशय-
१० विपर्य्यासानध्यवसायव्यवच्छेदविंदं वस्तुनिर्णयमक्कुमागळु सिद्धांतद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिय तयैवास्तीति आ प्रकारदिंदमेयुंटे दितावं प्रेक्षावंतं नंबुगुं ।

अप्पपरोभयबाधणबंधासंजमणिमित्तकोहादी ।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥२८९॥

आत्मपरोभयबाधनबंधासंयमनिमित्तक्रोधादयः । येषां न सन्ति कषायाः अमला अकषायिणो
१५ जीवाः ॥

नारकतिर्यग्नरसुरगत्युत्पन्नजीवस्य तद्भवप्रथमकाले-प्रथमसमये यथासंख्यं क्रोधमायामानलोभकषायाणामुदयः स्यादिति नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धान्तव्याख्यातुर्यतिवृषभाचार्यस्य अभिप्रायमाश्रित्योक्तम् । वा-अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धान्तकर्तुः भूतबल्याचार्यस्य अभिप्रायेणाऽनियमो ज्ञातव्यः । प्रागुक्तनियमं विना यथासंभवं कषायोदयोऽस्तीत्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः, ततः कारणादुभयसंप्रदायोऽपि अस्माकं
२० संशयाधिरूढ एवास्ति एकतरावधारणे शक्तिरहितत्वात् अस्मिन् भरतक्षेत्रे केवलिद्वयाभावात् आरातीयाचार्याणामेतत्सिद्धान्तद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावात् । यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थंकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धान्तद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति तत्प्रेक्षावान् कः श्रद्दधीत ॥२८८॥

नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगतिमें उत्पन्न हुए जीवके जन्म लेनेके
२५ प्रथम समयमें क्रमसे क्रोध, माया, मान और लोभ कषायका उदय होता है, इस नियमका कथन कषाय प्राभृत नामक द्वितीय सिद्धान्त ग्रन्थके व्याख्याता आचार्य यतिवृषभके अभिप्रायको लेकर किया है । अथवा महाकर्म प्रकृति प्राभृत नामक प्रथम सिद्धान्त ग्रन्थके रचयिता आचार्य भूतबलीके अभिप्रायसे अनियम जानना । अर्थात् पूर्वोक्त नियमके बिना यथायोग्य कषायका उदय होता है । 'अपि' शब्द समुच्चयके लिए है । इसलिए दोनों ही आचार्यों-
३० के अभिप्राय हमारे लिए सन्देहास्पद हैं,दोनोंमें-से किसी एकको मान्य करनेकी शक्ति हममेंमें नहीं है,क्योंकि इस भरत क्षेत्रमें केवली, श्रुतकेवलीका अभाव है । तथा आरातीय आचार्योंमें दोनों सिद्धान्तोंके रचयिताओंसे अधिक ज्ञान नहीं है । यद्यपि विदेहमें जाकर तीर्थंकर आदिके निकटमें कोई आचार्य समस्त श्रुतके अर्थके विषयमें संशय, विपर्यय और अनध्यवसायको दूर करके वस्तुका निर्णय कर सकते हैं;तथापि सिद्धान्तद्वयके कर्ताओंमें जो विवाद है उसके

---

१. म °र्य्यंगलामो ।

आत्मा तनगं पर पेरगं, उभय तनगं पेरगंमेंदी त्रिस्थानकदोळं प्रत्येकं बाधनमुं बंधनमुमसंयममुमेंबी मूरक्कं निमित्तमप्प क्रोधादयः कषायाः क्रोधमानमायालोभंगळुमेंब कषायंगळुं पुंवेदादिनोकषायंगळुं येषां न संति आवुवु केलवु जीवंगळिल्लमवर्गळकषायरुं, द्रव्यभावनोकर्म्मरूपमलरहितरुमप्प सिद्धपरमेष्ठिगळुमोळरेंदितारियल्पडुगुं। येत्तलानुमुपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळुमकषायरुममलरुं यथासंभवद्रव्यभावमलरहितमप्परादोडमवर्गोयुं गुणस्थानप्ररूपणेयिंदमेयकषायत्वसिद्धियुंटेदरियल्पडुगुमिल्लि क्रोधादिकषायं तनगे बंधनबाधाऽसंयमहेतुमक्कुमेंतेदोडे ओदानुमोर्व्वजीवंगे क्रोधादिकषायवु आत्मन एव तनगे बंधनहेतुवुं स्वशिरोभिघातादि बाधाहेतुवु हिंसाद्यसंयमहेतुवुमक्कु। मत्तोर्व्वन क्रोधादिकषायं पेरंगेये स्वशत्रादिगे बाधनबंधनाऽसंयमहेतुमक्कुं। मत्तोर्व्वन कामुकादिजीवन क्रोधादिकषायमुभयक्कुं स्वपरद्वयक्कं यथासंभव बंधनबाधाऽसंयमहेतुवक्कुमेंदितु विभागं लोकानुसारदिंदमुमागमानुसारदिंदमु नोडल्पडुवुदु। १०

कोहादिकसायाणं चउ चोद्दसवीस होंति पद संखा।
सत्तीलेस्सा आउगबंधाऽबंधगदभेदेहिं ॥२९०॥

क्रोधादिकषायाणां चतुश्चतुर्दश विंशतिश्च भवंति पदसंख्याः। शक्तिलेश्यायुर्बंधाऽबंधगतभेदैः॥

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्वस्मिन् परस्मिन् उभयस्मिन् इति स्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं बाधनबन्धनासंयमानां त्रयाणामपि निमित्तभूताः क्रोधादयः कषायाः, पुंवेदादयो नोकषायाश्च येषां जीवानां न सन्ति ते अकषायाः, अमलाः द्रव्यभावनोकर्ममलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः सन्तीति ज्ञातव्यम्। यद्यपि उपशान्तकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽपि अकषाया अमलाश्च यथासंभवं द्रव्यभावमलरहिताः सन्ति तथापि तेषां गुणस्थानप्ररूपणयैव अकषायत्वसिद्धिरस्तीति ज्ञातव्यम्। तद्यथा—कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः स्वस्यैव बन्धनहेतुः स्वशिरोऽभिघातादिबाधाहेतुः हिंसाद्यसंयमहेतुश्च भवति। कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः परस्यैव स्वशत्र्वादेर्बाधनबन्धनासंयमहेतुर्भवति। कस्यचित्कामुकादिजीवस्य क्रोधादिकषायः स्वपरयोरपि यथासंभवं बाधनबन्धनासंयमहेतुर्भवति इति विभागः लोकानुसारेण आगमानुसारेण च द्रष्टव्यः ॥२८९॥

सम्बन्धमें 'यही ठीक है'; ऐसा कौन बुद्धिशील श्रद्धान करेगा। अतः दोनों मतोंका कथन किया है ॥२८८॥

अपने, दूसरे और दोनोंके बन्धन, बाधा तथा असंयममें निमित्तभूत क्रोधादि कषाय और पुरुषवेद आदि नोकषाय जिन जीवोंके नहीं हैं, वे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप मलसे रहित सिद्धपरमेष्ठी अकषाय-कषाय रहित हैं; ऐसा जानना। यद्यपि उपशान्त कषाय आदि चार गुणस्थानवर्ती जीव भी अकषाय तथा यथायोग्य द्रव्य मल और भावमलसे रहित होते हैं, तथापि उनके गुणस्थान प्ररूपणासे ही अकषायत्वकी सिद्धि जानना। किसी जीवकी क्रोधादि कषाय अपने ही बन्धनमें हेतु होती है, अपने सिर फोड़ने आदि बाधामें हेतु होती है तथा हिंसा आदि असंयममें हेतु होती है। किसी जीवकी क्रोधादि कषाय दूसरे अपने शत्रु आदिके बन्धन, बाधा तथा असंयममें हेतु होती है। किसी कामी आदि जीवकी क्रोधादि कषाय यथा सम्भव अपने और दूसरोंके बन्धन, बाधन और असंयममें हेतु होती है। इस प्रकारका विभाग लोकानुसार और आगमानुसार करना ॥२८९॥

१. म °दोडे स्वशिरोभिघातादिबाधाहेतुवु बन्धनहेतुवुं हिंसा°।

क्रोधादिकषायंगळगे शक्तिलेश्यायुर्बंधाऽबंधगतभेदंगळिंदं यथाक्रमं चतुश्चतुर्दश विंशति-प्रमितस्थानंगळ संख्येगळप्पुवेंतेंदोडे :—

शक्तिस्थानंगळु नाल्कु ४। लेश्यास्थानंगळु पदिनाल्कु १४। आयुर्बंधाबंधगतस्थानंगळिप्पत्त २० प्पुवेंबुदर्थमा स्थानादिगळं पेळ्दपं।

सिलसेलवेणुमूलकिमिरायादी कमेण चत्तारि।
कोहादिकसायाणं सत्ति पडि होंति णियमेण ॥२९१॥

शिलाशैलवेणुमूलकृमिरागादीनि क्रमेण चत्वारि। क्रोधादिकषायाणां शक्तिं प्रति भवंति नियमेन॥

क्रोधादि चतुःकषायंगळगे शक्तियं कूर्तु स्वफलदानसामर्थ्यमनुद्देशिसि तीव्रतर तीव्र मंद मंदतरानुभागरूपंगळुमुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपंगळु मेणु स्थानंगळनाल्कुं नियमदिंदं शिलाभेदशैलवेणुमूलकिमिरागंगळु तीव्रतरानुभागोदाहरणंगळु आदिशब्दंगिप्पुवुवावुवु केलवु पृथ्वीभेदादिगळप्प तीव्रानुभागाद्युदाहरणंगळगवु शिलाशैलवेणुमूलकिमिरागंगळनुळ्ळ स्थानंगळप्पुवेंदितु शिलाभेदादिदृष्टांतंगळु स्फुटमागि व्यवहारावधारणदिंदमप्पुवु। परमागम व्यवहारिगळप्पाचार्य्यरुगळिंदमव्युत्पन्नमंदप्रज्ञस्वशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यंगळप्पुवु। दृष्टांत-प्रदर्शनबलदिंदमे स्फुटमागियुमव्युत्पन्नमंदप्रज्ञरप्प शिष्यरु तिळिपल्के शक्यरप्परवु कारणदिंद दृष्टांतनामंगळ शिलाभेदादिगळु शक्तिगळगे नामंगळेंदितु रूढंगळु।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

क्रोधादिकषायाणां शक्तिलेश्यायुर्बन्धाबन्धगतभेदैर्यथाक्रमं चतुश्चतुर्दशविंशतिप्रमितपदानां[1] स्थानानां संख्या भवति। तद्यथा शक्तिस्थानानि चत्वारि ४ लेश्यास्थानानि चतुर्दश १४ आयुर्बन्धाबन्धस्थानानि विंशतिः २० इत्यर्थः ॥२९०॥

क्रोधादिचतुःकषायाणां शक्तिं प्रति स्वफलदानसामर्थ्यमुद्दिश्य तीव्रतरतीव्रमन्दमन्दतरानुभागरूपाणि उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपाणि वा स्थानानि चत्वारि नियमेन, शिलाभेदशैलवेणुमूलकृमिरागाः तीव्रतरानुभागोदाहरणानि आदयो येषां पृथ्वीभेदादीनां तीव्रानुभागाद्युदाहरणानां तानि शिलाशैलवेणुमूलकृमिरागादीनि भवन्ति इति शिलाभेदादिदृष्टान्ता स्फुटं व्यवहारावधारणेन भवन्ति। परमागमव्यवहारिभिराचार्यैः अव्युत्पन्नमन्दप्रज्ञशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यानि भवन्ति। दृष्टान्तप्रदर्शनबलेनैव हि अव्युत्पन्नमन्दप्रज्ञाः शिष्याः प्रतिबोधयितुं शक्यन्ते। अतो दृष्टान्तनामान्येव शिलाभेदादिशक्तीनां नामानीति रूढानि ॥२९१॥

क्रोधादि कषायोंके शक्ति, लेश्या और आयुबन्धाबन्धगत भेदोंसे क्रमसे चार, चौदह और बीस स्थान संख्या होती है। अर्थात् शक्तिस्थान चार हैं, लेश्यास्थान चौदह हैं और आयुबन्धाबन्ध स्थान बीस हैं ॥२९०॥

उन स्थानोंको कहते हैं—

क्रोध आदि चार कषायोंके शक्ति अर्थात् अपना फल देनेकी सामर्थ्यकी अपेक्षा नियमसे चार स्थान होते हैं जो तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर अनुभागरूप अथवा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य अनुभागरूप हैं। शिला भेद, शैल, बाँसकी जड़ और कृमिराग ये तीव्रतर या उत्कृष्ट अनुभागके उदाहरण हैं। आदि शब्दसे तीव्र आदि अनुभागके उदाहरण पृथ्वीभेद आदि जानना। शिलाभेद आदि दृष्टान्त स्पष्टरूपसे व्यवहारके अवधारणके लिये हैं।

---

१. ब °प्रमितपदां।

किण्हं सिलासमाणे किण्हादी छक्कमेण भूमिम्मि ।
छक्कादी सुक्कोत्ति य धूलिम्हि जलम्मि सुक्केक्का ॥२९२॥

कृष्णा शिलासमाने कृष्णादि षट् क्रमेण भूमौ । षट्कादिशुक्लपर्यंतं धूली जले शुक्लैका ॥

शिलाभेदसमानमप्प क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थानदोळु ओंदे कृष्णलेश्येयक्कुं । येत्तलानुमल्लिय-संख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टकषायोदयस्थानंगळप्पुवादोडमवेल्लमुं कृष्ण-लेश्येय संक्लेशहानिस्थानंगळेंयप्पुवन्यलेश्येय स्थानंगळल्लेंदीयभिप्रायदिंदं शिलाभेदसमानोत्कृष्ट-स्थानदोळु कृष्णलेश्येये येंदिताचार्य्यनिवं पेळल्पट्टुदु । नियमेनेंबितन्वर्त्यमनुळ्ळुदरिंदं नियम-शब्ददिंदमिल्लियुमवधारणात्थं सूचिसल्पडुगुमवावुदेंबोडे तच्चरमस्थानदोळुत्कृष्टशक्तिव्युच्छि-त्तियक्कुमेंबितिदु ।

इन्तु भूमिभेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थानदोळु क्रमदिंदं कृष्णलेश्याविगळारुं लेश्यगळ-प्पुवेंतेंबोडे अल्लि स्वयोग्यमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूभेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थान-मादियागि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळऽसंख्येयलोकमात्रंगळोळं कृष्णलेश्ययेयक्कुमेकेंदोडे नीलाद्यन्यलेश्यालक्षणक्कास्थानंगळोळसंभवमप्पुदरिंदं । अल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेश-हानिस्थानंगळसंख्येयलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळु मध्यमकृष्णलेश्येयुमुत्कृष्टनीललेश्येयुं वर्ति-

---

शिलाभेदसमाने क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थाने एकैव कृष्णलेश्या भवति । यद्यपि तत्र असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टानि कषायोदयस्थानानि सन्ति तथापि तानि सर्वाण्यपि कृष्णलेश्याया एव संक्लेशहानिस्थानानि नान्यलेश्यायाः इत्यभिप्रायेण शिलाभेदसमानोत्कृष्टस्थाने कृष्णलेश्यैव इत्याचार्येण कथितम् । नियमेन इत्यनुवर्तमानेन नियमशब्देन अवाप्यावधारणार्थः सूच्यते । स कः ? तच्चरमस्थाने उत्कृष्ट-शक्तिर्व्युच्छिद्यते इति । भूमिभेदसमाने क्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थाने क्रमेण कृष्णादयः षडपि लेश्या भवन्ति । तद्यथा—तत्र स्वयोग्यमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूभेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थान-पतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेष्वपि कृष्णैव लेश्या भवति नीलाद्यन्यलेश्यालक्षणस्य तत्रासम्भवात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेषु अपि उदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या उत्कृष्टनील-

---

परमागमके व्यवहारी आचार्योंके द्वारा अव्युत्पन्न मन्दबुद्धि शिष्यको समझानेके लिये इनका व्यवहार किया गया है । दृष्टान्तके बलसे ही अव्युत्पन्न मन्दबुद्धि शिष्योंको समझाया जा सकता है । अतः दृष्टान्तके नाम ही शिलाभेद आदि शक्तियोंके नाम रूढ़ हो गये हैं ॥२९१॥

शिलाभेदके समान क्रोधके उत्कृष्ट शक्ति स्थानमें एक कृष्णलेश्या ही होती है । यद्यपि उस स्थानमें षट्स्थानपतित संक्लेशहानिसे विशिष्ट असंख्यातलोकमात्र कषायोंके उदयस्थान हैं तथापि वे सभी कृष्णलेश्याके ही संक्लेशहानिस्थान हैं, अन्य लेश्याके नहीं; इस अभिप्रायसे आचार्यने शिलाभेदके समान उत्कृष्टस्थानमें कृष्णलेश्या ही कही है ।

विशेषार्थ—षट्स्थान पतित संक्लेश हानिका स्वरूप ऐसा है कि कषायोंके अविभाग प्रतिच्छेद जितने पहले थे, उनसे घटने लगें तो अनन्तभागहानि, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि, असंख्यातगुणहानि, अनन्तगुणहानिरूपसे घटते हैं । इस तीव्र कषायके घटनेको षट्स्थानपतितसंक्लेश हानि कहते हैं । कषायोंके अविभाग प्रतिच्छेद अनन्त हैं । उनकी अपेक्षा षट्स्थान पतित हानि होती है ।

सुयवर्वे तें दोडा लेश्याद्वयलक्षणं संभविसुगुमप्पुदरिदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानं गळसंख्येयलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमकृष्णलेश्येयुं मध्यमनीललेश्येयुमुत्कृष्टकपोतलेश्येयुं वर्तिसुवुवल्लिया लेश्यात्रयलक्षणसंभवमुळ्ळुवरिंद मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमकृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयमुं जघन्यतेजोलेश्येयुमें वी नाल्कुं लेश्येगळ्वर्तिसुवल्लियुमा लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावदिंद मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमकृष्णनीलकपोततेजोलेश्येगळें वी नाल्कु लेश्यगळुं जघन्यपद्मलेश्येयुमिनितप्पुं लेश्येगळु वर्तिसुवल्लिमा लेश्यापंचकलक्षणसद्भावदिंदं मल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्याः पंचकमुं शुक्ललेश्याजघन्यमुमी यारु लेश्येगळु वर्तिसुवल्लियुमा लेश्याषट्कलक्षणसद्भावदिंद मल्लिया चरमस्थानदोळे अनुत्कृष्टशक्तिव्युच्छित्तियक्कुमल्लिदत्तलु धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थानदोळ यथाक्रमदिंद लेश्या-

---

लेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणस्यैव संभवात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या उत्कृष्टकपोतलेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसंभवात्। ततः उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या मध्यमकपोतलेश्या जघन्यतेजोलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याः जघन्यपद्मलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्यापञ्चकलक्षणसद्भावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु अपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते तत्र, तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमस्थाने

पूर्व गाथासे नियम शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे यहाँ भी अवधारण अर्थ सूचित होता है। वह यह है कि उसके अन्तिम स्थानमें उत्कृष्ट शक्तिकी व्युच्छित्ति होती है। अस्तु। पृथ्वी भेदके समान क्रोधके अनुत्कृष्ट शक्ति स्थानमें क्रमसे कृष्ण आदि छहों लेश्याएँ होती हैं; जो इस प्रकार जानना—पृथ्वी भेदके समान क्रोधके अनुत्कृष्ट शक्तियाले प्रथम उदय स्थानको लेकर असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानपतित संक्लेशहानिस्थानोंमें कृष्ण लेश्या ही होती है, नील आदि अन्य लेश्याका लक्षण वहाँ सम्भव नहीं है। यहाँसे आगे षट्स्थानपतित संक्लेशहानिको लिये हुए असंख्यातलोकमात्र कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्णलेश्या और उत्कृष्ट नीललेश्या होती है, क्योंकि वहाँ इन दोनों लेश्याओंके लक्षण ही सम्भव हैं। इससे ऊपर षट्स्थान पतित संक्लेश हानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यमकृष्णलेश्या, मध्यमनीललेश्या और उत्कृष्ट कापोतलेश्या रहती है। वहाँ इन्हीं तीन लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। इससे ऊपर षट्स्थान पतित संक्लेश हानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्णलेश्या, मध्यम नील लेश्या, मध्यम कापोत लेश्या और जघन्यपीतलेश्या रहती है। वहाँ इन्हीं चार लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। इससे ऊपर षट्स्थानपतित संक्लेशहानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्ण, नील, कापोत और पीतलेश्या तथा जघन्य पद्मलेश्या होती है। क्योंकि

---

१. म वर्तिपुवल्लिया लेश्या।

षट्कादिगळ्शुक्ललेश्यपर्य्यंतंगळेकैकहीनंगळागि नडेयवर्वेंतेंदोडे धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्त प्रथमस्थानमादियागि षट्स्थानपतित संक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं जघन्यकृष्णलेश्ययुं मध्यमनीलकपोततेजःपद्मशुक्लपंचकमुमंतारुं लेश्यगळ्गु वर्त्तिसुवल्लियु मा लेश्याषट्कलक्षणसद्भावदिदमा चरमोदयस्थानदोळे कृष्णलेश्याव्युच्छित्तियक्कुमेकेंदोडे तदनंतरोदयस्थानदोळ् तल्लेश्यालक्षणाभावदिंद मल्लिवत्तलु षट्स्थानपतित संक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं जघन्यनीललेश्ययुं मध्यमकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याचतुष्टयमुमंतु लेश्यापंचकंगळ्गु वर्त्तिसुवल्लि तल्लेश्यापंचक लक्षणसद्भाववर्त्तणिंदं। तत्र तच्चरमोदय स्थानदोळे नीललेश्याव्युच्छित्तियक्कुं। तदनंतरोदयस्थानदोळ् तल्लेश्यालक्षणाभावदिंदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं जघन्यकपोतलेश्ययुं मध्यम तेजः पद्मशुक्ललेश्यात्रयमुमंतु नाल्कुलेश्यगळ्गु वर्त्तिपुवल्लि तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भाववर्त्तणिंदमल्लिये चरमस्थानदोळे कपोतलेश्याव्युच्छित्तियक्कु मल्लिदत्तलनंतरोदयस्थानदोळ् तल्लेश्यालक्षणाभावदिंदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळमुत्कृष्टतेजोलेश्ययुं मध्यमपद्मशुक्ललेश्याद्वयमुमिंतु लेश्यात्रयंगळ्गु वर्त्तिपुवल्लियुं

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनुत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते। ततः उपरि धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थाने यथाक्रमं लेश्याषट्कादयः शुक्ललेश्यापर्यन्ताः एकैकहीना भूत्वा गच्छन्ति। तद्यथा—धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्तप्रथमस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यकृष्णलेश्या मध्यमनीलकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तन्ते तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने कृष्णलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यनीललेश्या मध्यमाः कपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तन्ते। तत्र तल्लेश्यापञ्चकलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने नीललेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यकपोतलेश्या मध्यमाः तेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तन्ते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव

यहाँ इन्हीं पाँच लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। इससे ऊपर षट्स्थानपतित संक्लेश हानिको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम कृष्ण, नील, कापोत, पीत और पद्म लेश्या तथा जघन्य शुक्ल लेश्या होती है, क्योंकि वहाँ छहों लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। यहाँ ही अन्तिम स्थानमें अनुत्कृष्ट शक्तिका विच्छेद हो जाता है। इससे ऊपर धूलिरेखाके समान क्रोधके अजघन्य शक्ति स्थानमें क्रमसे छह लेश्याओंको आदि लेकर एक-एक हीन होते हुए शुक्ल लेश्या पर्यन्त होती हैं; जो इस प्रकार जानना। धूलिरेखाके समान क्रोधके अजघन्य शक्तिवाले प्रथम स्थानसे लेकर षट्स्थान पतित संक्लेशहानि स्थानोंको लिये हुए असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें जघन्य कृष्णलेश्या, मध्यम नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती है, क्योंकि वहाँ इन छह लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहीं उसके अन्तिम उदय स्थानमें कृष्ण लेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है, क्योंकि उसके अनन्तर उदयस्थानमें कृष्णलेश्याका लक्षण नहीं पाया जाता। इससे ऊपर षट्स्थान पतित संक्लेश हानिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें जघन्य नील लेश्या और मध्यम कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती है। क्योंकि वहाँ इन्हीं पाँच लेश्याओं-

१. म वर्त्तिपुवल्लि।

तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावदिंदमा चरमोदयस्थानदोळे उत्कृष्टतेजोलेश्याव्युच्छित्तियक्कुमनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाभावदत्तणिंदमल्लिवत्तलु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तासंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळमुत्कृष्टपद्मलेश्येयुं मध्यमशुक्ललेश्ययुमें बी लेश्याद्वयमे वर्तिपुवल्लि तल्लेश्याद्वयलक्षणसद्भावदत्तणिंदमल्लिये चरमोदयस्थानदोळेयुत्कृष्टपद्मलेश्याव्युच्छित्तियक्कु
५ मनंतरोदयस्थानदोळु तल्लेश्यालक्षणाऽभावदत्तणिंदमल्लिदत्तलु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्ताऽसंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळु मध्यमशुक्ललेश्ययें वर्तिसुगुमल्लि तल्लेश्यालक्षण सद्भावदिंदमल्लिये चरमोदयस्थानदोळेयऽजघन्यशक्तिव्युच्छित्तियक्कु मल्लिवत्तलु जलरेखासमान क्रोधजघन्यशक्तिस्थानदोळु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिविशिष्टासंख्यातलोकमात्रकषायोदयस्थानंगळोळं मध्यमशुक्ललेश्ययो दे वर्तिसुगुमा चरमोदयस्थानदोळेयुत्कृष्टशुक्ललेश्ययक्कुमंतु चतुःशक्ति-

---

१० चरमस्थाने कपोतलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु उत्कृष्टा तेजोलेश्या मध्यमे पद्मशुक्ललेश्ये च वर्तते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टतेजोलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषूत्कृष्टपद्मलेश्या [1]मध्यमशुक्ललेश्या च वर्तते। तत्र तद्द्वयलेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमो-

मार्गदर्शक :— आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

१५ दयस्थाने उत्कृष्टपद्मलेश्या व्युच्छिद्यते तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव वर्तते तत्र तल्लेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने अजघन्यशक्तिव्युच्छिद्यते। तत उपरि जलरेखासमानक्रोधजघन्यशक्तियुक्तेषु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिविशिष्टेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव

के लक्षण पाये जाते हैं। वहींपर उसके अन्तिम उदय स्थानमें नीललेश्याकी व्युच्छित्ति हो
२० जाती है क्योंकि उससे आगेके उदयस्थानमें उसका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर षट्स्थानपतित संक्लेश हानिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें जघन्य कापोत लेश्या और मध्यम पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या होती है। क्योंकि वहाँ इन्हीं चार लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहीं उसके अन्तिम उदय स्थानमें कपोत लेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है क्योंकि उससे आगेके उदयस्थानमें उसका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर
२५ षट्स्थानपतित विशुद्धिकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय स्थानोंमें उत्कृष्ट पीतलेश्या और मध्यम पद्म और शुक्ल लेश्या रहती है। क्योंकि वहाँ इन्हीं तीन लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहींपर उसीके अन्तिम उदय स्थानमें उत्कृष्ट पीत लेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है, क्योंकि उससे आगेके उदय स्थानमें उस लेश्याका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर षट्स्थानपतित विशुद्धिकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोक प्रमाण कषाय उदय
३० स्थानोंमें उत्कृष्ट पद्मलेश्या और जघन्य शुक्ललेश्या होती है। वहाँ इन्हीं दोनों लेश्याओंके लक्षण पाये जाते हैं। वहीं उसीके अन्तिम उदयस्थानमें उत्कृष्ट पद्मलेश्याकी व्युच्छित्ति हो जाती है, क्योंकि उससे आगेके उदयस्थानमें उसका लक्षण नहीं पाया जाता। उससे ऊपर षट्स्थानपतित विशुद्धिकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोक मात्र कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम शुक्ललेश्या ही रहती है वहाँ उसीका लक्षण पाया जाता है। वहीं उसीके अन्तिम उदयस्थान-
३५ में अजघन्य शक्तिकी व्युच्छित्ति हो जाती है। उससे ऊपर जलरेखाके समान क्रोधके जघन्य

---

१. जघन्यशुक्ल° मु.।

क्रोधक्के लेश्याश्रयणदिंदं चतुर्दशस्थानंगळप्पेळ्वपट्टुवो क्रमदिंदं मानादिगळगं चतुर्दशलेश्याश्रित-
मागळ्पेळ्वुदु नवरितागळ्पेळ्दा [illegible] सुविधिसागर जी महाराज

सेलगकिण्हे सुण्णं णिरयं च य भूगएगविट्ठाणे ।
णिरयं इगिविति आऊ तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥२९३॥

शिलागतकृष्णे शून्यं नरकं च च भूगतैकद्वित्रिस्थाने । नरकं एकद्वित्र्यायूंषि त्रिस्थाने चत्वारि शेषपदे ॥

शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानंगळोळसंख्यातलोकमात्रंगळोळावुववरोळमायुष्यमुं कट्टल्पडवदु कारणदिंदं शून्यं बरेयल्पट्टुदेकेंदोडे तीव्रतमसंक्लेशस्थानंगळोळु आयुर्बंधाभावमप्पुदरिंदं । मत्तमल्लिये मुंदण केलवु हीनसंक्लेशस्थानंगळोळु नरकायुष्यमोंदे कट्टल्पडुवुदेंदितोंदे अंकं बरेयल्पट्टुदु । अदं नोडलनंतगुणहीनसंक्लेशस्थानंगळनुळ्ळ भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानंगळोळं कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानंगळोळं नरकायुष्यमोंदे कट्टल्पडुगुमेंदितु येरडुस्थानदोळोंदोंदेयंकगळु बरेयल्पट्टुवु ।

वर्तते तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टा शुक्ललेश्यैव स्यात् । एवं चतुःशक्तियुक्तानि क्रोधस्य लेश्याश्रयेण चतुर्दशस्थानान्युक्तानि । अनेनैव क्रमेण मानादीनामपि चतुर्दशलेश्याश्रितस्थानानि नेतव्यानि ॥२९२॥

शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु केषुचित् किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं तीव्रतमसंक्लेशस्थानेषु आयुर्बन्धाभावात् । पुनस्तत्रैव अग्रतनेषु केषुचित् हीनसंक्लेशस्थानेषु नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकाङ्को लिखितः । ततोऽनन्तगुणहीनसंक्लेशेषु भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यते इति तत्स्थानद्वये एकैकाङ्को लिखितः । पुनः तद्भूभेदगतकृष्णनीलकपोतलेश्यात्रय-स्थानेषु केषुचिन्नरकायुरेकमेव बध्यते, अग्रे तत्रैव केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यगायुर्द्वयमेव बध्यते । तत्रैव अग्रे

शक्तिसे युक्त तथा षट्स्थानपतित विशुद्धि वृद्धिसे विशिष्ट असंख्यात लोक मात्र कषाय उदय स्थानोंमें मध्यम शुक्ललेश्या ही रहती है । उसीके अन्तिम उदय स्थानमें उत्कृष्ट शुक्ललेश्या ही होती है । इस प्रकार क्रोधके लेश्याके आश्रयसे चार प्रकारकी शक्तिसे युक्त चौदह स्थान कहे । इसी क्रमसे मान आदिके भी लेश्याकी अपेक्षा चौदह स्थान जानना ॥२९२॥

शिलाभेदगत कृष्णलेश्यावाले असंख्यात लोक मात्र स्थानोंमें-से किन्हींमें किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता । इसलिए शून्य लिखा है । क्योंकि तीव्रतम संक्लेश स्थानोंमें आयुबन्धका अभाव है । पुनः वहीं आगेके कुछ हीन संक्लेशवाले स्थानोंमें एक नरकायु ही बँधती है, इसलिए एकका अंक लिखा है । उससे अनन्तगुणे हीन संक्लेशवाले पृथ्वीभेदगत कृष्णलेश्यावाले और कृष्ण नील लेश्यावाले स्थानोंमें एक नरकायुका ही बन्ध होता है, इसलिए इन दोनों स्थानोंपर एक-एक अंक लिखा है । पुनः पृथ्वीभेदगत कृष्ण, नील और कापोत तीन लेश्यावाले स्थानोंमें-से कुछमें एक नरकायुका ही बन्ध होता है, आगे उसीके कुछ स्थानोंमें नरक और तिर्यंच दो आयुका ही बन्ध होता है । उससे आगेके कुछ स्थानोंमें

---

१. म °तगुणसंक्लेश । २-३. ब इत्येको ।

मत्तमा भूभेदगतकृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळ्गे केलवरोळु नरकायुष्यमो दे कट्टल्पडुगुं। मुंदेयुमल्लिये केलवु स्थानंगळोळु नरकतिर्य्यगायुद्वयमे कट्टल्पडुगुमल्लिये मुंदे केलवु स्थानंगळोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यायुस्त्रयं कट्टल्पडुगुमेंदिंता भूभेदगतत्रिलेश्यास्थानंगळोळेकद्वित्र्यंकंगळु बरेयल्पट्टुवु। मत्तमा भूभेदगतकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानंगळोळं पद्मलेश्यासहितलेश्यापंचकस्थानंगळोळं शुक्ललेश्यासहितलेश्याषट्कस्थानंगळोळमुं नरकतिर्य्यंग्मनुष्यदेवायुष्यमेंबी नाल्कायुष्यंगळुं कट्टल्पडुववेंदितु शेषस्थानत्रयदोळं प्रत्येकं नाल्कुं नाल्कुमंकंगळु बरेयल्पट्टुवु।

धूलिगछक्कट्ठाणे चउराऊ तिगदुगं च उवरिल्लं।
पण चदुठाणे देवं देवं सुण्णं च तिट्ठाणे ॥२९४॥

स्वस्तिश्री भट्टारक चारुकीर्ति पण्डिताचार्य जी महाराज

धूलिगतषट्कस्थानेषु चतुरायूंषि त्रिकद्विकं चोपरितनपंचचतुःस्थानयोर्देवं देवं शून्यं च त्रिस्थाने ॥

धूलीरेखासदृशशक्तियुक्तंगळप्प लेश्याषट्कस्थानंगळोळु केलवरोळु भूभेदगतषट्कस्थानंगळ चरमस्थानशक्तियं नोडलनंतगुणहीनसंक्लेशंगळनुळ्ळवरोळु नाल्कायुष्यंगळु कट्टल्पडुवविल्लिये नरकायुर्व्युच्छित्तियक्कुमल्लिये मुंदे केलवु स्थानंगळोळु नरकायुर्व्वर्ज्जितशेषायुस्त्रयं कट्टल्पडुवुविल्लिये तिर्य्यगायुष्युच्छित्तियक्कुमल्लिये मुंदे लेश्याषट्कस्थानंगळोळकेलवु स्थानंगळोळु शेषमनुष्यदेवायुर्द्वयमे कट्टल्पडुगुमल्लिये मनुष्यायुर्व्युच्छित्तियक्कुमेंदितु चतुस्त्रिद्व्यंकंगळु बरेयल्पट्टुवु मत्तमा कृष्णलेश्यारहितलेश्यापंचकस्थानेगळोळं कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्कस्थानंगळोळमुं देवा-

---

केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं बध्यते। इति तद्भूभेदगतत्रिलेश्यास्थानेषु एकद्वित्र्यङ्का लिखिताः। पुनस्तद्भूभेदगतकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानेषु पद्मलेश्यासहितलेश्यापञ्चकस्थानेषु शुक्ललेश्यासहितलेश्याषट्कस्थानेषु च नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषि चत्वार्यपि बध्यन्ते। इति शेषस्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं चतुरङ्को लिखितः ॥२९३॥

धूलिरेखासदृशशक्तियुक्तेषु लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् भूभेदगतलेश्याषट्कस्थानचरमस्थानशक्तितोऽनन्तगुणहीनसंक्लेशयुक्तेषु चत्वार्यायूंषि बध्यन्ते। तत्रैव नरकायुर्व्युच्छिद्यते। तत्रैव अग्रे केषुचित्स्थानेषु नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयं बध्यते। तत्रैव तिर्यगायुर्व्युच्छिद्यते। तत्रैव अग्रे लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् शेषमनुष्यदेवायुषी बध्येते। तत्रैव मनुष्यायुर्व्युच्छिद्यते इति चतुस्त्रिद्व्यङ्का लिखिताः। पुनस्तत्रैव कृष्णलेश्या-

---

नरक, तिर्यंच, मनुष्य तीन आयु बँधती है। इसलिए पृथ्वीभेदगत तीन लेश्यावाले स्थानोंमें एक, दो और तीनका अंक लिखा है। पुनः उसी पृथ्वीभेदगत कृष्ण, नील, कापोत, पीत लेश्यावाले स्थानोंमें, पद्मलेश्या सहित पाँच लेश्यावाले स्थानोंमें तथा शुक्ललेश्या सहित छह लेश्यावाले स्थानोंमें नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव चारों भी आयु बँधती है, इसलिए शेष तीनों स्थानोंमें भी प्रत्येकमें चारका अंक लिखा है ॥२९३॥

धूलिरेखाके समान शक्तिसे युक्त छह लेश्यावाले स्थान पृथ्वीभेदगत छह लेश्यावाले स्थानोंके अन्तिम स्थानसे अनन्त गुणे हीन संक्लेशवाले होते हैं। उनमें-से कुछ स्थानोंमें चारों आयु बँधती हैं। नरकायु वहीं तक बँधती है; अतः उससे आगेके उसीके कुछ स्थानोंमें नरकायुको छोड़कर शेष तीन आयु बँधती हैं। तिर्यंचायु यहीं तक बँधती है, अतः उसी छह लेश्यावाले स्थानमें आगेके कुछ स्थानोंमें मनुष्यायु-देवायु बँधती है। मनुष्यायु यहीं तक बँधती है। इसीसे इनमें चार, तीन, दोके अंक लिखे हैं। पुनः उसी धूलरेखाके समान शक्तिसे

मुष्यमोंदे कट्टल्पडुगुमेंबिंतु बोंदोंदंकगळे बरेयल्पट्टुवु। मत्तमा कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहित-शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळु केलवरोळु देवायुष्यमोंदे कट्टल्पडुवुदें बितेकांकमे बरेयल्पट्टुवल्लियदे देवायुर्ब्बंधच्छेदकं मत्तमा शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळु मुंदे केलवरोळु तीव्रविशुद्धियुक्तंगळोळमायायुष्यं कट्टल्पडदें बितु शून्यं बरेयल्पट्टुदु। लेश्यात्रयतीव्रतरविशुद्धविशिष्टपरिणामकस्यायुर्बंध-हेतुत्वासंभवमप्पुदरिंदं। ५

सुण्णं दुगइगिठाणे जलम्मि सुण्णं असंखभजिदकमा।
चउ चोद्दसवीसपदा असंखलोगा हु पत्तेक्कं ॥२९५॥

शून्यं द्विकैकस्थानयोर्ज्जले खलु शून्यमसंख्यभाजितक्रमाणि। चतुश्चतुर्दशविंशतिपदानि असंख्यलोकानि खलु प्रत्येकं ॥

तत्र धूलीरेखासदृशशक्तियुक्तस्थानंगळोळु तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वयस्थानंगळोळं १०
केवलशुक्ललेश्यायुक्तस्थानंगळोळमुमायुष्यभावुदुं कट्टल्पडवदिंतेरडेडेयोळं शून्यंगळु बरेयल्पट्टुवु।

अवं नोडलनंतगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तजलरेखासदृशशक्तिविशिष्टशुक्ललेश्यास्थानंगळोळमायायुष्यमं कट्टल्पडदें बितु शून्यं बरेयल्पट्टुदु। तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानंगळोळतिशयदिंदमायुर्ब्बंधहेतुत्वाभावदत्तणिदं। इंतु पेळल्पट्ट कषायंगळ नाल्कुं शक्तिस्थानंगळुं चतुर्द्दश-लेश्यास्थानंगळुं विंशत्यायुर्ब्बंधाबंधगतस्थानंगळुमेल्लमुं असंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवंतावोडमुत्कृष्ट- १५

रहितलेश्यापञ्चकस्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्कस्थानेषु च देवायुरेकमेव बध्यते। इत्येकैकोङ्को लिखितः। पुनस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहितशुभलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिद्देवायुरेकमेव बध्यते इत्येकाङ्को लिखितः। तत्रैव देवायुर्व्युच्छिद्यते। पुनस्तच्छुभलेश्यात्रयस्थानेषु अग्रे केषुचित्तीव्रविशुद्धियुक्तेषु किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितम्। शुभलेश्यात्रयतीव्रतरविशुद्धिविशिष्टपरिणामस्य आयुर्बन्धहेतुत्वासंभवात् ॥२९४॥

तत्रैव धूलिरेखासदृशशक्तियुक्तस्थानेषु केषुचित् तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वययुक्तेषु केवलशुक्ललेश्या- २०
युक्तेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति स्थानद्वये शून्यं लिखितं। ततोऽनन्तगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तजलरेखासदृशशक्ति-विशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेष्वपि किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं, तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्यो-त्कृष्टस्थानेषु अतिशयेन आयुर्बन्धहेतुत्वाभावात्। एवं कथितानि कषायाणां चत्वारि शक्तिस्थानानि चतुर्दश-

---

युक्त कृष्ण लेश्या रहित पाँच लेश्यावाले स्थानोंमें, और कृष्ण-नील लेश्या रहित चार लेश्या-वाले स्थानोंमें एक देवायु ही बँधती है। इसलिए एक-एकका अंक लिखा है। पुनः उसीके २५
कृष्ण, नील, कापोत लेश्यासे रहित तीन शुभलेश्यावाले स्थानोंमें-से कुछमें एक देवायु ही बँधती है, इसलिए एकका अंक लिखा है। देवायुका बन्ध यहीं तक होता है। पुनः उन तीन शुभ लेश्यावाले स्थानोंमें-से आगेके तीव्र विशुद्धियुक्त कुछ स्थानोंमें किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता, इसलिए शून्य लिखा है। क्योंकि तीन शुभलेश्या सम्बन्धी तीव्रतर विशुद्धि विशिष्ट परिणामवालेके आयुबन्धका कारण नहीं है ॥ २९४॥ १०

धूलिरेखाके समान शक्तिसे युक्त, तेजोलेश्याके बिना दो शुभ लेश्यावाले तथा केवल शुक्ललेश्यावाले कुछ स्थानोंमें किसी भी आयुका बन्ध नहीं होता। इसलिए दोनों स्थानोंमें शून्य लिखा है। उससे अनन्तगुणी विशुद्धि वृद्धिसे युक्त तथा जलरेखाके समान शक्ति विशिष्ट शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट स्थानोंमें भी किसी आयुका बन्ध नहीं होता। इसलिए शून्य लिखा है। क्योंकि तीव्रतम विशुद्धि विशिष्ट शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट स्थान आयुबन्धके कारण नहीं होते। १५

स्थानं मोदल्गों डु तज्जघन्यस्थानपर्य्यंतं असंख्यातगुणहीनं गळप्पुवें सें बोडे सर्व्वकषायोदयस्थानं प्रमाणमनिदं ≡ a तद्योग्यासंख्यातलोकविदं खंडिसि तद्बहुभागमात्रंगळु शिलाभेदसमानोत्कृष्ट-शक्तियुक्तोदयस्थानंगळप्पुवें बु बगेदु ≡ a ८ मत्तमा शेषैकभागमनसंख्यातलोकभागहारविदं
९
भागिसि तद्बहुभागमात्रंगळु भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानंगळे बु बगेदु ≡ a ८ मत्तमा
९ ९
शेषैकभागमनसंख्यातलोकविदं भागिसि तद्बहुभागमात्रंगळु धूलीरेखासमानशक्तियुक्तोदयाऽजघन्य-स्थानंगळें दु बगेदु ≡ a ८ मत्तमा शेषैकभागमात्रस्थानंगळु जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तोदय-
९ ९ ९
स्थानंगळें दु बरेयल्पट्टुवु ≡ a । १ । इल्लि भागहारभूताऽसंख्यातलोकक्के नवांकं संदृष्टियक्कुं
९ ९ ९
९ । मत्तमंते चतुर्दशपदंगळोळु प्रथमकृष्णलेश्यापददोळु एनितु शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानंग-ळनिते तच्छक्तिगतसकृष्णलेश्यासर्वोत्कृष्टस्थानं मोदलागि तद्योग्यमध्यमस्थानपर्य्यंतंगळसंख्यात-
लोकमात्रषट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानंगळप्पुवु ≡ a ८ वर्षं नोडलु भूभेदसमान.
९

लेश्यास्थानानि विंशतिरायुर्बन्धाबन्धगतस्थानानि च सर्वाण्यपि असंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति तथापि उत्कृष्ट-स्थानमादिं कृत्वा तज्जघन्यस्थानपर्यन्तमसंख्यातगुणहीनानि भवन्ति । तद्यथा सर्वकषायोदयस्थानप्रमाणमेतावत् ≡ a । तद्योग्यासंख्यातलोकेन खण्डयित्वा तद्बहुभागमात्राणि शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवन्ति इति लिखित्वा ≡ a । ८ पुनस्तच्छेषैकभागोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः । तमपि तद्भागहारेण भक्त्वा
९
तद्बहुभागमात्राणि भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवन्तीति लिखित्वा– ≡ a । ८ पुनस्तच्छेषैक-
९ । ९
भागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवन्तीति लिखित्वा ≡ a । ८ पुनस्तच्छेषैकभागमात्रासंख्यातलोकस्थानानि जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानी-
९ । ९ । ९
ति लिखितव्यानि– ≡ a । १ । अत्र भागहारभूतासंख्यातलोकस्याङ्कसंदृष्टिर्नवाङ्कः ९ । पुनस्तथा चतुर्दशपदेषु प्रथमे कृष्णलेश्यापदे यावन्ति शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानानि तावन्त्येव तच्छक्तिगतानि
कृष्णलेश्यासर्वोत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा तद्योग्यमध्यमस्थानपर्यन्तानि असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेश-

---

इस प्रकार कहे कषायके चार शक्तिस्थान, चौदह लेश्यास्थान और बीस आयुबन्धाबन्ध स्थान, ये सभी असंख्यात लोकमात्र होते हैं। तथापि उत्कृष्ट स्थानसे लेकर उसीके जघन्य स्थान पर्यन्त असंख्यात गुणा हीन होते हैं। इसका स्पष्टीकरण—सब कषायोंके उदय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उनमें यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण शिला भेदके समान उत्कृष्ट शक्ति युक्त उदय स्थान हैं। जो एक भाग शेष रहा, वह भी असंख्यात लोक मात्र है। उसमें भी यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर उसके बहुभाग प्रमाण पृथ्वी भेदके समान अनुत्कृष्ट शक्तियुक्त उदय स्थान हैं। पुनः जो एक भाग शेष रहा उसमें असंख्यात लोकसे भाग देकर उसके बहुभाग प्रमाण धूलिरेखाके समान अजघन्य शक्तिसे युक्त उदयस्थान हैं। अवशेष एक भाग प्रमाण जलरेखाके समान जघन्य शक्ति-

शक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानंगळसंख्यातगुणहीनंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पु ≡ ८।८।८ ९।९।९।१
वे तें दोडे भूभेदसमानशक्तियुक्तसर्व्वस्थानंगळोळ संख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळप्पुदरिंदं। तदेकभागबहुभागमात्रंगळल्लिये कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ८।८ ववं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळु तदेकभागबहुभाग ९।९।९।२। मात्रंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ८।८।८ मत्तं तदेकभाग बहुभागमात्रंगळु कृष्णनील- ९।९।९।३ कपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ ८।८।८ मत्तं तदेकभागाऽ- ९।९।९।४। संख्यातलोकबहुभागंगळल्लिये कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु

हानियुक्तस्थानानि भवन्ति। ≡ ८।८ एभ्यः भूभेदसमानशक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानानि असंख्यातगुण- ९
हीनानि असंख्यातलोकमात्राणि- ≡ ८।८।८ कुतः? भूभेदसमानशक्तियुक्तकेवलसर्वस्थानेषु असंख्यात- ९।९।९।१
लोकभक्तबहुभागमात्रत्वात्। तदेकभागमात्रेष्वेव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यात- लोकमात्राणि- ≡ ८।८।८-तेभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ९।९।९।२
असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि- ≡ ८।८।८-पुनस्तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्णनील- ९।९।९।३
कपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि- ≡ ८।८।८-पुनस्तदेक- ९।९।९।४
भागासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापञ्चकस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यात-

---

युक्त उदय स्थान है। ये सभी असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं। यह चार शक्ति स्थान सम्बन्धी उदय स्थानोंका प्रमाण जानना। अब चौदह लेश्या स्थान सम्बन्धी उदयस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—प्रथम कृष्णलेश्या स्थानमें जितने शिलाभेद समान उत्कृष्ट शक्तिको लिये उदयस्थान हैं, वे सब उत्कृष्ट शक्तिको प्राप्त कृष्णलेश्याके सर्वोत्कृष्ट स्थानसे लेकर यथायोग्य कृष्णलेश्याके मध्यम स्थान पर्यन्त षट्स्थानपतित संक्लेशहानियुक्त होते हैं। ये असंख्यात लोक मात्र स्थान उत्कृष्ट शक्तिके स्थान जानना। इनसे असंख्यातगुणे हीन पृथ्वी भेद समान शक्तिसे युक्त केवल कृष्णलेश्याके स्थान असंख्यात-लोक प्रमाण हैं। क्योंकि पृथ्वी भेद समान शक्ति युक्त सब स्थानोंमें असंख्यातलोकका भाग देकर उसके बहुभाग मात्र वे स्थान हैं। उस शेष बचे एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो बहुभाग हो, उतने उनसे असंख्यातगुणे हीन कृष्ण और नील लेश्याके स्थान वहाँ ही हैं जो असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही कृष्ण, नील-कापोत तीन लेश्याके स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं, वे उस शेष बचे एक भागके योग्य असंख्यात लोकका भाग देकर उसके बहुभाग हैं। पुनः उस शेष बचे एक भागके बहुभागमात्र कृष्ण, नील, कापोत, पीत इन चार लेश्याओंके स्थान उनसे असंख्यातगुणे हीन शक्तिवाले तथा असंख्यात

≡ a।८।८। मत्तं तदेकभागा संख्यातलोकभक्तैकभागमात्रंगळु कृष्णनीलकपोततेजःपद्म-
९।९।९।५
शुक्ललेश्याषट्कस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a ८।१ बेकें बोडे बहुभागमप्यड-
९।९।९।५
संख्यातलोकगुणकाररहितत्वविदमसंख्यातगुणहीनत्वं सिद्धमप्पुदरिंदं।

मत्तमवं नोडलसंख्यातगुणहीनंगळुं धूलीरेखासमानशक्तियुक्तसर्व्वस्थानंगळोळु तद्योग्या-
संख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु लेश्याषट्कस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८।८।
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मत्तमल्लिये तदेकभागबहुभागमात्रंगळु कृष्णलेश्यारहितशेषलेश्यापंचकस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रं-
गळप्पुवु ≡ a।८।८ मत्तमल्लिये तदेकभागासंख्यातलोकबहुभागमात्रंगळु कृष्णनील-
९।९।९।९।२
लेश्याद्वयरहितशेषलेश्याचतुष्टयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८।८ मल्लिये
९।९।९।९।३
तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु शुभलेश्यात्रयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु

लोकमात्राणि— ≡ a।८।८ पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मशुक्ल-
९।९।९।५
लेश्याषट्कस्थानान्यसंख्यातलोकहीनानि ≡ a।८।१ कुतः बहुभागरूपासंख्यातलोकगुणकाररहितत्वात्।
९।९।९।५
पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि धूलिरेखासमानशक्तियुक्तसर्वस्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि षट्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि। ≡ a।८।८ पुनस्तत्रैव तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्ण-
९।९।९।९।१
लेश्यारहितशेषपञ्चलेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।८।८ पुनस्तत्रैव तदेकभागासंख्यात-
९।९।९।९।२
लोकभक्तबहुभागमात्राणि कृष्णनीलरहितशेषचतुर्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।८।८
९।९।९।९।३
पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि शुभलेश्यात्रयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि

लोकमात्र हैं। पुनः उस शेष बचे एक भागमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभागमात्र कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म इन पाँच लेश्याओंके स्थान असंख्यातगुणे हीन तथा असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उस एक भाग प्रमाण जो असंख्यात लोक मात्र है, कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल इन छह लेश्याके स्थान असंख्यात लोकहीन हैं। इसका कारण यह है कि यहाँ बहुभाग रूप असंख्यात लोक गुणाकार नहीं है। इनसे असंख्यातगुणे हीन धूलिरेखाके समान शक्तियुक्त सब स्थानोंमें उनके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र छह लेश्याके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके अवशेष रहे एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देकर बहुभाग प्रमाण कृष्णलेश्या रहित शेष पाँच लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके अवशेष रहे एक भागमें उसके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देनेपर बहुभाग मात्र कृष्ण, नील लेश्यासे रहित चार लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके शेष रहे एक भागमें उसके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र तीन शुभ

≡ a।८।८ मत्तमल्लिये तदेकभागाऽसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु तेजोलेश्यारहित-
९।९।९।९।४
शुभलेश्याद्वयस्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८।८ मत्तमल्लिये तदेकभाग-
९।९।९।९।५
मात्रंगळु । केवलशुक्ललेश्यास्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळु पूर्व्वमं नोडलसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु
≡ a ८।१ मेंतेंदोडे बहुभागमप्पऽसंख्यातलोकगुणकाररहितत्वदिंदमसंख्यातगुणहीनत्वं
९।९।९।९।५
सिद्धमप्पुदरिंदं । मत्तमवं नोडलसंख्यातगुणहीनंगळु जलरेखासमानशक्तियुक्तंगळकेवलशुक्ल- ५
लेश्यास्थानंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।१ मेकेंदोडे धूलीरेखासमानशक्तिसर्व्व-
९।९।९
स्थानंगळोळु केवलशुक्ललेश्यास्थानंगळोळु पोक्क भागहारंगळागे गुणकारभूतासंख्यातलोकबहु-
भागमं नोडलसंख्यातगुणहीनत्वदिंदं ।

मत्तमंतायुर्ब्बंधाऽबंधगतविंशतिपदंगळोळु प्रथमशिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्या-
स्थानंगळोळायुरबंधकस्थानंगळु कृष्णलेश्योत्कृष्टस्थानं मोदल्गोंडसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रा- १०

≡ a।८।८ पुनस्तत्रैव तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वय-
९।९।९।९।४
स्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।१।८ पुनस्तत्रैव तदेकभागमात्राणि केवलशुक्ललेश्यास्थानानि
९।९।९।९।५
असंख्यातलोकमात्राण्यपि पूर्वस्मादसंख्यातगुणहीनानि ≡ a।८।१। कुतः ? बहुभागरूपासंख्यात-
९।९।९।९।५
लोकगुणकाररहितत्वात् । पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि जलरेखासमानशक्तियुक्तानि केवलशुक्ललेश्या-
स्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।१। कुतः धूलिरेखासमानशक्तिसर्वस्थानेषु केवलशुक्ललेश्यास्थानेषु १५
९।९।९
प्रविष्टभागहाराणां गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागादसंख्यातगुणहीनत्वात् । पुनस्तथायुर्बन्धाबन्धगतविंशतिपदेषु
प्रथमशिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानेषु आयुरबन्धस्थानानि कृष्णलेश्योत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा

लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः उसीके शेष रहे एक भागमें उसके योग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र तेजोलेश्या रहित दो शुभ लेश्याओंके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः शेष रहे एक भाग मात्र केवल शुक्ल लेश्याके स्थान हैं। जो असंख्यात लोक मात्र होनेपर भी पहलेसे असंख्यातगुणे हीन हैं। क्योंकि बहुभागरूप असंख्यात लोक गुणाकारसे रहित हैं। पुनः उनसे असंख्यातगुणे हीन भी जलरेखाके समान शक्तिसे युक्त केवल शुक्ललेश्याके स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं। क्योंकि धूलिरेखाके समान शक्तिवाले सब स्थानोंमें-से केवल शुक्ललेश्या सम्बन्धी स्थानोंमें प्रविष्ट भागहारोंके गुणाकार-भूत असंख्यात लोक बहुभागसे असंख्यातगुणाकार हीन हैं अर्थात् वहाँ गुणाकारभूत असंख्यात लोकका बहुभाग हैं और यहाँ एक भाग है, इससे असंख्यातगुणा हीन कहा है।

अब आयु बन्धाबन्धगत बीस स्थानोंमें उदय स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

प्रथम शिलाभेद समान उत्कृष्ट शक्तिगत कृष्ण लेश्याके स्थानोंमें कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट स्थानसे लेकर असंख्यात लोक प्रमाण आयुके अबन्ध स्थान हैं। उनसे वहाँ

संख्यातलोकप्रमितस्थानंगळप्पुवदं ≡ a । ८ । ८ नोडलल्लिये नरकायुर्बंधहेतुस्थानंगळ्-
९ । ९

संख्यातलोकमात्रस्थानंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ a । ८ । १ बेकेंदोडे तदेकभागमात्रत्वदिंदं ।
९ । ९

मत्तमदं नोडलु भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानंगळ् नरकायुर्बंधकारणंगळसंख्यात-
लोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ a । ८ । ८ वदं नोडलल्लिये कृष्णनीललेश्याद्वय-
९ । ९ । ९ । १

स्थानंगळ् नरकायुर्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ a । ८ । ८
मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज ९ । ९ । ९ । २

वदं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळ् केवलं नरकायुर्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रं-
गळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ a । ८ । ८ । ८ वदं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्या-
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । १

त्रयस्थानंगळ् नरकतिर्य्यगायुर्द्वयं बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु
≡ a । ८ । ८ । ८ वदं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानंगळ् नरकतिर्य्यक्मनुष्यायु-
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । २

. . . . . .

असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यप्यसंख्यातलोकप्रमितानि ≡ a । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव नरकायुर्बन्धहेतु-
९ । ९ ।

स्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि अपि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । १ कुतः ? तदेकभागमात्रत्वात् ।
९ । ९ ।

पुनस्तेभ्यो भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानानि नरकायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि अपि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । ८ । एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि नरकायुर्बन्धकारणानि
९ । ९ । ९ । १

असंख्यातलोकमात्राणि अपि असंख्यातगुणहीनानि । ≡ a । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रय-
९ । ९ । ९ । २

स्थानानि केवलनरकायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । ८ । ८
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । १

एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नरकतिर्यगायुर्द्वयबन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यात-गुणहीनानि ≡ a । ८ । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्या-
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । २

ही नरकायु बन्धके कारण स्थान असंख्यात लोक मात्र हैं जो उनसे असंख्यातगुणे हीन हैं, क्योंकि वे बहुभागमात्र हैं और ये एक भागमात्र हैं। उनसे पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्ट शक्तिगत कृष्णलेश्याके स्थान नरकायु बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहाँ ही कृष्ण-नील लेश्याके स्थान नरकायुबन्धके कारण हैं – जो उनसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहीं कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके स्थान केवल नरकायु बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके स्थान नरकायु और तिर्यंचायु बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यात गुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत लेश्याके स्थान नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायुके बन्धके कारण हैं जो उनसे असंख्यातगुणे

त्रयबंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ a।८।८।१ ९।९।९।३।९।२ अवं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानंगळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ a।८।८ ९।९।९।४ अवं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानंगळु चतुर्गत्यायुर्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ a।८।८ ९।९।९।५ अवं नोडलल्लिये लेश्याषट्कस्थानंगळु चतुरायुर्बंधकारणंगळसंख्यातलोकमात्रंगळ ५ संख्यातगुणहीनंगळप्पु ≡ a।८।१ ९।९।९।५ अवंतेंदोडे गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागरहितत्वदिदं। मत्तमवं नोडलु धूलीरेखासमानशक्तिगतसर्व्वस्थानंगळोळु असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळु लेश्याषट्कस्थानंगळु चतुरायुर्बंधकारणंगळ[1]संख्यातबहुभागंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८।८।८ ९।९।९।९।९।१ मत्तमल्लिये षड्लेश्यास्थानंगळु नरकायुर्व्वर्ज्जितशेषायुस्त्रयबंधकारणंगळु

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

त्रयबन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि— ≡ a।८।८।१ ९।९।९।३।९।२ एभ्यस्तस्यैव १०

कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a।८।८ ९।९।९।४ एभ्यस्तस्यैव कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापञ्चकस्थानानि चतुर्गत्यायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a।८।८ ९।९।९।५ एभ्यस्तस्यैव षड्लेश्यास्थानानि

चतुरायुर्बन्धकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a।८।१ कुतः ? गुणकारभूता- ९।९।९।५

संख्यातलोकबहुभागरहितत्वात्। पुनस्तेभ्यः धूलिरेखासमानशक्तिगतसर्वस्थानेषु असंख्यातलोकभक्तबहुभाग- १५
मात्राणि षड्लेश्यास्थानानि चतुरायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।८।८।८ पुनस्तस्यैव षड्लेश्यास्थानानि नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयबन्धकारणानि तदेकभाग- ९।९।९।९।९।१

हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत, पीत लेश्याके स्थान नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवायुके बन्धके कारण हैं तथा पूर्व स्थानोंसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोकमात्र हैं। वहाँ ही कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म लेश्याके स्थान चारों गतिकी २०
आयुबन्धके कारण हैं जो पूर्वस्थानोंसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। वहाँ ही छह लेश्याओंके स्थान चारों आयुके बन्धके कारण हैं जो पूर्व स्थानोंसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। क्योंकि गुणाकारभूत असंख्यात लोक बहुभागसे रहित हैं अर्थात् वहाँ गुणाकार बहुभाग था यहाँ एक भाग है। इनसे असंख्यातगुणे हीन धूलिरेखाके समान शक्तिगत सब स्थानोंमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र छह लेश्या २५
सम्बन्धी स्थान चारों आयुके बन्धके कारण हैं और असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः वहाँ ही

१. म °लसंख्यातभागकारणंगलसंख्यात°।

तदेकभागासंख्यातबहुभागमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = a।८।८।८
९।९।९।९।९।२

मत्तमल्लिये लेश्याषट्कस्थानंगळु मनुष्यदेवायुर्द्वयबंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळ् तदेकभागासंख्यातलोकभक्तैकभागंगळप्पुदरिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = a।८।८।१ मत्तमल्लिये
९।९।९।९।९।२

कृष्णलेश्यावर्जितशेषलेश्यापंचकस्थानंगळु देवायुर्बंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = a।८।८ मत्तं नोडलल्लिये कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्टयस्थानंगळ्केवलं देवायुर्बंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पु = a।८।८
९।९।९।९।९।३

मत्तं नोडलल्लिये कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहितशुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळु देवायुर्बंधकारणस्थानंगळु यथायोग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु = a।८।८।८ तदेकभागंगळल्लिये शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळायुर्बंधरहितस्थानंगळसंख्यात-
९।९।९।९।४।९

संख्यातबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि = a।८।८।८ पुनस्तत्रैव
९।९।९।९।९।२

षड्लेश्यास्थानानि मनुष्यदेवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि तदेकभागासंख्यातलोकभक्तैकभागत्वादसंख्यातलोकमात्राणि = a।८।८।१ पुनस्तत्रैव कृष्णलेश्यावर्जितशेषपञ्चलेश्यास्थानानि देवायुर्बन्ध-
९।९।९।९।९।२

कारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि = a।८।८। एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलरहित-
९।९।९।९।२

चतुर्लेश्यास्थानानि केवलदेवायुर्बन्धकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि = a।८।८।
९।९।९।९।३

एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशेषशुभलेश्यात्रयस्थानेषु देवायुर्बन्धकारणानि यथायोग्यासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि। = a।८।८।८। तदेकभागगत-
९।९।९।९।४।९

छह लेश्या सम्बन्धी स्थान नरकायुको छोड़ शेष तीन आयुके बन्धके कारण हैं। यह पूर्वमें शेष रहे एक भागमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र है, अतः पूर्वसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। पुनः वहाँ ही छह लेश्या सम्बन्धी स्थान मनुष्यायु और देवायुके बन्धके कारण हैं। यह उनसे असंख्यात गुणे हीन हैं, क्योंकि शेष रहे एक भागमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भागमात्र है, तथापि असंख्यात लोक मात्र हैं। इनसे असंख्यात गुणे हीन वहाँ ही कृष्णलेश्याको छोड़ शेष पाँच लेश्या सम्बन्धी स्थान जो असंख्यात लोक मात्र हैं, देवायुके बन्धके कारण हैं। इनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही कृष्ण, नीलके सिवाय चार लेश्या सम्बन्धी स्थान केवल देवायुबन्धके कारण हैं जो असंख्यात लोक मात्र हैं। इनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही कृष्ण, नील, कपोत लेश्यासे रहित शेष तीन शुभ लेश्या स्थानोंमें यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग मात्र स्थान देवायुबन्धके कारण हैं जो असंख्यात लोक मात्र हैं। शेष एक भाग मात्र तीन शुभ लेश्याओंके स्थान

लोकमात्रंगळुमसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु सुविशुद्धिस्थानंगळोळाज मत्तमल्लिये पद्मशुक्ल-
९।९।९।९।४।९.
लेश्याद्वयस्थानंगळायुरबंधकारणंगळसंख्यातगुणहीनंगळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु ≡ a।८ ८
९।९।९।९।५
मदें तें दोडे पेरगण शुभलेश्यात्रयस्थानंगळोळायुर्बंधरहितस्थानंगळोळु पोक्क भागहारक्कसंख्यात-
गुणहीनत्वमुंटप्पुदरिंदं असंख्यातगुणहीनत्वं सिद्धमक्कुं।

मत्तमवं नोडल्लिये शुक्ललेश्यास्थानंगळोळायुरबंधकारणविशुद्धिपरिणामंगळसंख्यात- ५
लोकमात्रंगळसंख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ a।८।१ वें तें दोडे गुणकारभूतासंख्यातबहु-
९।९।९।९।५
भागरहितत्वदिंदं।

मत्तमवं नोडलु जलरेखसमानशक्तिगतलेश्यास्थानंगळायुर्ब्बंधशून्यंगळसंख्यातलोकमात्रंगळ-
संख्यातगुणहीनंगळप्पुवु ≡ a।१ मदें तें दोडे धूलीरेखासमानशक्तियुक्तस्थानंगळोळु केवलं
९ ९ ९
चरमशुक्ललेश्यास्थानंगळोळु पोक्क पंचवारासंख्यातलोकभागहारंगळं नोडलु तद्गुणकारभूता- १०
संख्यातबहुभागक्कसंख्यातगुणितत्वदिंदमसंख्यातगुणहीनत्वं सिद्धमक्कुं। चतुश्चतुर्व्वंशविंशतिपदं-
गळ्गे संदृष्टियिवु :—

शुभलेश्यात्रयस्थानेषु देवायुर्बन्धरहितानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a।८।८।१।
९।९।९।९।४।९
पुनस्तत्रैव पद्मशुक्ललेश्याद्वयस्थानानि आयुर्बन्धाकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि
≡ a।८।८। कुतः प्राक्तनशुभलेश्यात्रयस्थानेषु आयुर्बन्धरहितस्थानेषु प्रविष्टभागहारस्य असंख्यात- १५
९।९।९।९।५
गुणहीनत्वात्। पुनस्तेभ्यस्तत्रैव शुक्ललेश्यास्थानेषु आयुर्बन्धाकारणविशुद्धिपरिणामस्थानानि असंख्यातलोक-
मात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ । ८।१ कथं ? इति चेत् गुणकारभूतासंख्यातबहुभागरहितत्वात्।
९।९।९।९।५
पुनस्तेभ्यो जलरेखासमानशक्तिगतशुक्ललेश्यास्थानानि आयुर्बन्धशून्यानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुण-
हीनानि ≡ a।१। कथं ? धूलिरेखासमानशक्तियुक्तस्थानेषु केवलचरमशुक्ललेश्यास्थाने प्रविष्टपञ्चवारा-
९।९।९।
संख्यातलोकभागहारेभ्यः तद्गुणकारभूतासंख्यातबहुभागस्य असंख्यातगुणितत्वात्। एवं चत्वारि पदानि, २०
चतुर्वंशपदानि, विंशतिः पदानि च प्रत्येकमसंख्यातगुणहीनक्रमाणि ज्ञातव्यानि ॥२९५॥ अथ श्रीमाधवचन्द्र-

---

आयुबन्धसे रहित हैं, वे असंख्यातगुणे हीन किन्तु असंख्यात लोकमात्र हैं। पुनः यहाँ ही पद्म और शुक्ल लेश्याके स्थान आयुबन्धके कारण नहीं हैं। वे पूर्वसे असंख्यातगुणे हीन, किन्तु असंख्यात लोक मात्र हैं। क्योंकि पहलेके तीन शुभ लेश्याओंके आयुबन्ध रहित स्थानोंमें प्रविष्ट भागहार असंख्यात गुणा हीन है। पुनः उनसे असंख्यातगुणे हीन वहाँ ही शुक्ल- २५
लेश्याके स्थानोंमें आयुबन्धके अकारण विशुद्धि परिणाम स्थान असंख्यात लोकमात्र हैं जो पूर्वसे असंख्यातगुणे हीन हैं। क्योंकि गुणकार असंख्यात बहुभागसे रहित है। पुनः उनसे जलरेखाके समान शक्तिगत शुक्ललेश्या स्थान जो आयुबन्धसे रहित हैं, असंख्यातगुणे हीन हैं, किन्तु असंख्यात लोक प्रमाण है। क्योंकि धूलिरेखाके समान शक्तिसे युक्त स्थानोंमें केवल अन्तिम शुक्ललेश्याके स्थानमें प्रविष्ट पाँच बार असंख्यात लोक भागहारोंसे उसके गुणकार- ३०

तीव्रतरशिलाभेद≡a ८ नरक ९	तीव्र	मूभेद ≡ a ८ तिरिक ९ ९				≡a	सर्व्व घनमेवत्			
कृष्ण १	कृष्ण १	कृष्ण नी २	कृष्ण नील कपोत ३			कृष्णादि ४	कृष्णादि ५	कृष्णादि ६		
≡a।८।८ ९	≡a।८।८ ९।९।१	≡a।८।८ ९।९।२	≡a।८।८। ९।९।९।३			≡a।८।८। ९।९।९।४	≡a।८।८ ९।९।९।५	≡a।८।१।		
०	१	१	१	२	३	४	५		६	
≡a।८।८ ९।९	≡a।८।१ ९।९	≡a।८।८ ९।९।९।१	≡a।८।८ ९।९।९।२	≡a।८।८।८ ९९।९।३।९	≡a।८।८।८ ९९९।३९	≡a।८८।१ ९९९।३९२	≡a।८।८ ९।९।९।४।	≡a।८।८ ९।९।९।५		≡a।८।१ ९।९।६।५

मन्द	धूली रेखा ≡ a ८ मनुष्य ९ ९ ९						मन्दतर जलरेखा ≡a १। देवचतुः पदङ्गळु ९ । ९ । ९ ।			
कृष्णादि ६			नीलादि ५	कपोतादि ४	३ तेजादि		पद्मादि २	शुक्ल १	शुक्ल १	चतुर्द्दश पद्मङ्गळु
≡ a।८।८ ९।९।९।९।१			≡a।८।८। ९।९।९।९।२	≡a।८।८। ९।९।९।९।	≡a।८।८। ९।९।९।९।४		≡a।८।१। ९९९।९।५	≡a।८।१। ९९९।९।५	≡a।१ ९९९	विंशति पद्मङ्गळु
४	३	२	१	१	१	०	०	०	०	विंशति पद्मङ्गळु
≡a।८।८।८ ९।९।९।९।९।१।	≡a।८।८।८ ९।९।९।९।९।२	≡a।८।८।१ ९।९।९।९।२	≡a।८।८ ९९९।९ २	≡a।८।८ ९९९।९।३	≡a।८।८।८ ९९९।९।४	≡a।८।१ ९९९।९।५	≡a।८।१ ९९९।९।५	≡a।८।१। ९९९।९।५	≡a।१ ९९९।	

इंतु चतुःपदंगळुं । चतुर्द्दशपदंगळुं । विंशतिपदंगळु । प्रत्येकमसंख्यातगुणहीनक्रमंगळप्पुवें दरियल्पडुवुवु ।

अनंतरं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवरुगळु कषायमार्गणेयोळु संख्येयं पेळ्वपरु :—

पुह पुह कसायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो ।
लोहादि संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥२९६॥

पृथक् पृथक् कषायकालो नरकेऽन्तर्मुहूर्तपरिमाणः । लोभादयस्संख्यगुणा देवेषु च क्रोध- ५
प्रभृतितः ॥

नरकगतियोळु नारकर्गे लोभादिकषायोदयकालंगळु पृथक् पृथक् बेरे बेरे प्रत्येकमंतर्मुहूर्त-परिमाणमक्कुमंतादोडमुत्तरोत्तरमायादिकषायंगळु क्रोधपर्य्यंतं संख्यातगुणक्रमंगळप्पुवल्लि सर्व्वतः स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रं २१।१। लोभकषायोदयकालमक्कु—। मदं नोडलु संख्यातगुणं माया-कषायोदयकालमक्कुं। २१।४। अदं नोडलु संख्यातगुणं मानकषायोदयकालमक्कु—। २१।१६। १०
मदं नोडलु क्रोधकषायोदयकालं संख्यातगुणमक्कुं। २१।६४। देवगतियोळु देवर्कळ्गे क्रोधादि-कषायोदयकालंगळु पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रंगळप्पुवादोडमुत्तरोत्तरमानादि लोभपर्य्यंतं संख्यातगुणक्रमंगळप्पुवदेंतेंदोडे अल्लि सर्व्वतः स्तोकं क्रोधकषायोदयकालमंतर्मुहूर्तकालमक्कु—। २१।१। मदं नोडलु मानकषायोदयकालं संख्यातगुणमक्कु—। २१।४। मदं नोडलु माया-कषायोदयकालं संख्यातगुणितमक्कु—। २१।१६। मदं नोडलु लोभकषायोदयकालं संख्यातगुण- १५
मक्कुं। २१।६४।

त्रैविद्यदेवाः कषायमार्गणायां जीवसंख्यां गाथात्रयेण कथयन्ति—

नरकगतौ नारकाणां लोभादिकषायाणां उदयकालः पृथक् पृथक् प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तपरिमाणो भवति । तथापि पूर्वपूर्वकषायोदयकालादुत्तरोत्तरकषायोदयकालः संख्यातगुणो ज्ञातव्यः । तद्यथा—तत्र लोभकषायोदय-कालः सर्वतः स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रः २१ । ततो मायाकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ ४ । ततो मानकषायोदय-कालः संख्यातगुणः २१ । १६ । ततः क्रोधकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ ६४ । देवगतौ देवानां क्रोधादि- २०
कषायोदयकालाः पृथक् पृथक् प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तमात्राः तथापि उत्तरोत्तरमानादिलोभपर्यन्तं संख्यातगुणक्रमा भवन्ति । तद्यथा—तत्र क्रोधकषायोदयकालः अन्तर्मुहूर्तः सर्वतः स्तोकः २१ । १ । ततो मानकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ । ४ । ततो मायाकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ । १६ । ततो लोभकषायोदयकालः संख्यातगुणः २१ । ६४ ॥२९६॥

भूत असंख्यात बहुभाग असंख्यात गुणित हैं। इस प्रकार, चार, चौदह और बीस स्थानोंमें-से २५
प्रत्येक स्थान क्रमसे असंख्यातगुणा हीन जानना ॥२९५॥

अब श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव कषायमार्गणामें जीवसंख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

नरकगतिमें नारकियोंके लोभादि कषायका उदयकाल पृथक्-पृथक् प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। फिर भी पूर्व-पूर्व कषायके उदय कालसे उत्तरोत्तर कषायका उदयकाल ३०
संख्यातगुणा जानना। जो इस प्रकार है—नरकगति लोभकषायका उदयकाल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उससे माया कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है। उससे मान कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है। उससे क्रोध कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है। अर्थात् यदि लोभका उदय काल एक है, तो मायाका चार, मानका सोलह और क्रोधका उदय काल चौसठ जानना। तथा देवगतिमें देवोंके क्रोधादि कषायका उदयकाल पृथक्-पृथक् प्रत्येकका ३५
अन्तर्मुहूर्त मात्र है, तथापि उत्तरोत्तर मानसे लेकर लोभ पर्यन्त क्रमसे संख्यातगुणा है।

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणो वि संगुणिदे ।
सगसगगुणकारेहि य सगसगरासीण परिमाणं ॥२९७॥

सर्वसमासेनापहृतस्वस्वराशिः पुनरपि संगुणिते । स्वस्वगुणकारैश्च स्वस्वराशीनां परिमाणं ॥

पुनः मत्तं नारकदेवगतिगळ सर्व्वकषायोदयकालंगळ समानदिदं संयोगदिदं युतियिंदं भागिसि स्वस्वगतिसंभविजीवराशियं स्वस्वकषायोदयकालगुणकारंगळिंदं गुणिसुत्तिरलु स्वस्वकषायोदयविशिष्टजीवराशिगळ परिमाणमक्कुमिप च शब्दंगळु गतिद्वयसमुच्चयार्थंगळु । नरकगतियोळं देवगतियोळमिंते कर्तव्यमेंदितु इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमिनितु कालक्किनितु जीवंगळु पडेयल्पडुत्तिरलागळिनितु कालक्किनितु जीवंगळ्पडेयल्पडुवमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र का = २१।८५ फ–२' इ। २१।६४ अपवर्तितलब्धप्रमितंगळु नरकगतिय क्रोधकषायोदययुक्तनारकजीवंगळ प्रमाणमक्कु–। —२।६४ मिंते मानादिकषायोदयकालंगळनिच्छाराशिगळं
८५
माडि त्रैराशिकविधानदिदं बंद लब्धप्रमाणमानादिकषायोदयपरिणतनारकजीवंगळ प्रमाणमक्कुं। नारकमानकषायिगळु :– —२।१६ नारकमायाकषायिगळु —२।४ नारकलोभकषायिगळु
८५ ८५

पुनर्नारकदेवगत्योः सर्वकषायोदयकालानां समासेन युत्या भक्ते स्वस्वगतिसंभविजीवराशौ स्वस्वकषायोदयकालगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वकषायोदयविशिष्टजीवराशीनां परिमाणं भवति । अपि च–शब्दौ गतिद्वयसमुच्चयार्थौ नरकगतौ देवगतौ चैवं कर्तव्यमिति । अत्र एतावता कालेन यद्येतावन्तो जीवा लभ्यन्ते तर्ह्येतावता कालेन कियन्तो जीवा लभ्यन्ते इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र २१।८५। फ–२। इ २१।६४ अपवर्तितलब्धप्रमिते नरकगतौ क्रोधकषायोदययुक्तनारकजीवराशिप्रमाणं भवति ।—। २।६४। एवं
८५
मानादिकषायोदयकालान् इच्छाराशीन् कृत्वा त्रैराशिकविधानेन लब्धप्रमाणं मानादिकषायोदयपरिणतनारकजीवराशिप्रमाणं भवति । नारकमानकषायिणः–२।१६ नारकमायाकषायिणः–२।४ नारकलोभ-
८५ ८५

यथा—देवोंमें क्रोध कषायका उदयकाल सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त है अर्थात् एक है। उससे मान कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है यथा ४। उससे माया कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है यथा १६। उससे लोभ कषायका उदयकाल संख्यातगुणा है, यथा ६४ ॥२९६॥

नरकगति और देवगतिमें सब कषायोंके उदयकालोंको जोड़कर उससे अपनी-अपनी गतिमें सम्भवित जीवराशिमें भाग देनेपर तथा जो लब्ध आवे उससे अपने-अपने कषायके उदयकालरूप गुणकारसे गुणा करनेपर अपने-अपने कषायके उदयसे विशिष्ट जीव राशिका परिमाण होता है। गाथामें आये 'अपि' और 'च' शब्द दो गतियोंके समुच्चयके लिए है। अर्थात् नरकगति और देवगतिमें ऐसा करना चाहिए। अतः वहाँ यदि इतने कालमें इतने जीव प्राप्त होते हैं तब इतने कालमें कितने जीव प्राप्त हुए इस प्रकार त्रैराशिक करना चाहिए। प्रमाण राशि सब कषायोंका काल, फलराशि समस्त नारकियोंकी संख्या, इच्छाराशि अमुक कषायका काल। जैसे नरक गतिमें लोभका काल १, मायाका ४, मानका १६ और क्रोधका ६४ है सबका जोड़ पिचासी ८५ हुआ। नारकी जीवोंका प्रमाण कल्पना किया १७००। उसमें पचासीसे भाग देनेपर लब्ध बीस आया। उसको एकसे गुणा करनेपर बीस लोभ कषायवालोंकी संख्या आयी। चारसे गुणा करनेपर अस्सी आये सो माया कषाय-

—२।१ मत्तमंते देवगतियोळु लोभकषायिगळु संदृष्टि ९।६४ देवमायाकषायिगळु
८५ ४।६५=९।८५

=९।१६ देवमानकषायिगळु =९।४ देवक्रोधकषायिगळु =९।१
४।६५=९।८५ ४।६५=९।८५ ४।६५=९।८५

मार्गदर्शक ... आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

णरतिरिय लोहमाया कोहो माणो विइंदियादिव्व ।
आवलि असंखभज्जा सगकालं वा समासेज्ज ॥२९८॥

नरतिर्यंग्लोभमायाक्रोधमानाः द्वीन्द्रियादिवत् । आवल्यसंख्या भाज्याः स्वकालं वा समाश्रित्य ॥

मनुष्यतिर्य्यंग्गतिगळोळु लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्येगळु द्वींद्रिय त्रींद्रिय-चतुरिंद्रिय पंचेंद्रियजीवसंख्यानयनप्रकारदिंदं तरल्पडुववल्लि मनुष्यगतियोळु मनुष्यजीवराशियं संस्थापिसि बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानदिंदं । मत्तं तिर्य्यंग्गतियोळं अकषाय-

कषायिणः — , २ , १ तथा देवगतौ लोभकषायिणः = ९ , ६४ देवमायाकषायिणः
८५ ४ , ६५ = ९ , ८५

= ९ , १६ देवमानकषायिणः = ९ , ४ देवक्रोधकषायिणः = ९,१ ॥२९७॥
४ , ६५ = ९ , ८५ ४ , ६५ = ९ , ८५ ४ , ६५ = ९,८५

मनुष्यतिर्यग्गत्योर्लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्या द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियजीव-संख्यानयनप्रकारेणानेतव्या । तत्र मनुष्यगतौ अकषायसंख्योनमनुष्यजीवराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो

वालोंका परिमाण हुआ। सोलहसे गुणा करनेपर ३२० हुए सो मानवालोंका परिमाण हुआ। चौंसठसे गुणा करनेपर बारह सौ अस्सी हुए। यह क्रोधवालोंका परिमाण हुआ। इसी तरह देवगतिमें भी जानना। यदि देवगतिकी भी संख्या १७०० ही मान लें तो लब्ध बीसको एकसे गुणा करनेपर २० क्रोध कषायवालोंका, ४ से गुणा करनेपर ८० मान कषायी देवोंका, सोलहसे गुणा करनेपर तीन सौ बीस मायाकषायी देवोंका और चौंसठसे गुणा करनेपर बारह सौ अस्सी लोभकषायी देवोंका परिमाण होता है ॥२९७॥

मनुष्यगति और तिर्यंचगतिमें लोभ, माया, क्रोध और मान कषायरूप परिणत जीवों-की संख्या जैसे पहले इन्द्रिय मार्गणामें बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों-की संख्या निकाली थी उसी प्रकार लाना चाहिए। सो मनुष्यगतिमें मनुष्योंके परिमाणमें-से कषायरहित मनुष्योंके परिमाणको कम करके जो शेष बचे उतनी संख्या स्थापित करने उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रखना चाहिए और शेष बहुभागके चार भाग करके चारों कषायवालोंमें समान देना चाहिए। फिर अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभाग लोभ कषायवालोंको दिये समान भागमें मिलानेपर लोभ कषायवाले मनुष्योंका परिमाण होता है। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख, शेष बहुभागको मायाकषायवालोंको मिले समान भागमें मिलानेपर माया कषायी

जीवप्रमाणसंख्यातरूपहीन संसारिराशियंसंस्थापिसि बहुभागे समभागो च उण्हमित्यादिसूत्रविधानदिंदमे लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्येगळ् तरल्पडुवुवु अथवा स्वस्वकालमप्प द्वींद्रियादिविधानाऽऽनीतालपबहुत्वमनंतर्मुहूर्तमात्रमप्प लोभादिकषायोदयकालमनाश्रयिसि लोभादिकषायपरिणतजीवसंख्येगळ् तरल्पडुवल्लिदं तें दोडे इनितु कालदोळ्नलानुमिनितु जीवंगळ् पडेयल्पडुवुवागळिनितु कालदोळेनितु जीवंगळ् पडेयल्पडुवुवेंदितु त्रैराशिकमं

माडि प्र=२१।फ १।३ इ=का= २१।८४२४ अपवर्तितलब्धं लोभकषायोदय-
४।६५६१

परिणतमनुष्यजीवंगळ प्रमाणमक्कु— यदीदृशैक :- अत्रलब्धं श्री सूत्रोक्तमायाकषायोदयपरिणत-
४।६५६१

मनुष्यजीवराशिप्रमाणमिदु १।३।६१२० क्रोधकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणमिदु
४।६५६१

चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेनैव लोभादिपरिणतजीवसंख्या आनेतव्या, तथा तिर्यग्गतौ देवनारकमनुष्यसंख्योनसंसारराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेन च लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या, अथवा अन्तर्मुहूर्तमात्रात् सामान्यकषायोदयकालात् द्वीन्द्रियादिविधानानीतं स्वस्वलोभादिकषायोदयकालमाश्रित्य लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या। तद्यथा—एतावति काले यद्येतावन्तो जीवा लभ्यन्ते तदा एतावति काले कियन्तो जीवा लभ्यन्ते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र २१, फ १।३, ४,

इ २१, ८४२४ अपवर्तिते लब्धं लोभकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं भवति। १।३, ८४२४
६५६१ ४, ६५६१

तथा मायाकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं १।३, ६१२० क्रोधकषायोदयपरिणतमनुष्यराशिप्रमाणं
४, ६५६१

मनुष्योंका परिमाण आता है। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागको क्रोध कषायको मिले समान भागमें मिलानेपर क्रोधी मनुष्योंका परिमाण आता है। शेष अलग रखे एक भागको मान कषायको दिये समान भागमें मिलानेपर मान कषायी मनुष्योंका परिमाण आता है। ऐसे ही तिर्यंचोंमें जानना। विशेष इतना कि तिर्यंचोंमें तिर्यंच गतिके जीवोंकी संख्या जो देव नारक मनुष्योंकी राशिसे हीन संसारी जीवराशि परिमाण है, स्थापित करके उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देना चाहिए। शेष विधि पूर्ववत् जानना।

अथवा सामान्य कषायके उदयकाल अन्तर्मुहूर्त मात्रसे द्वीन्द्रिय आदिकी विधिसे लाये गये अपने-अपने लोभ आदि कषायके उदयकालको लेकर लोभादि कषायरूप परिणत जीवोंकी संख्या लानी चाहिये। वह इस प्रकार है—

चारों कषायोंका काल जो अन्तर्मुहूर्तमात्र है, उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रखना। शेष बहुभागके चार भाग करके चार जगह समान

१।३, ५८६४ मानकषायोदयपरिणतमनुष्यराशिप्रमाणमिदु १।३, ५८३६ मत्तं
४।६५६१ ४।६५६१

तिर्य्यंग्गतियोळमंते किंचिदूनसंसारराशिं फलराशियं माडि तत्कषायपरिणतजीवराशिप्रमाणं
आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तरल्पडुगुमल्लि तिर्य्यंग्लोभकषायंगळ्ग संदृष्टि १३।८४२४ तिर्य्यंम्मायाकषायिगळ्
४।६५६१

१३।६१२० तिर्य्यक् क्रोधकषायिगळ्ग १३।५८६४ तिर्य्यक् मानकषायिगळ्
४।६५६१ ४।६५६१

१३।५८३६ द्वींद्रियादि विधानदोळ्ं तावल्यसंख्यातभागमात्रं भागहारमंते इल्लियुं जोव- ५
४।६५६१

संख्यानयनदोळं कालसंचयप्रमाणमनाश्रयिसि जीवराशिप्रमाणानयनदोळमुमावल्यसंख्येयभागमात्रं

लोभ	माया	क्रोध	मान	
२१।८४२४ ४।६५६१	२१।६१२० ४।६५६१	२१।५८६४ ४।६५६१	२१।५८३६ ४।६५६१	नरकतिर्य्यंच काल
दे को १ २१	मा २१।१६	या २१।१६	लो २१।६४	देव काल
ना २१६४	२१।१६	२१।१	२१।१	नारक काल

१०

१।३, ५८६४ मानकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशि प्रमाणं १।३, ५८३६ । तथा तिर्यग्गतावपि
४, ६५६१ ४, ६५३१

किंचिदूनसंसारराशिं फलराशिं कृत्वा तत्कषायपरिणतजीवराशिप्रमाणमानेतव्यम्। तत्र तिर्यग्लोभकषायिणः
१३— ८४२४ तिर्यग्मायाकषायवन्तः १३—। ६१२० तिर्यक्क्रोधकषायिणः १३—, ५८६४ तिर्यग्मान-
४, ६५६१ ४। ६५६१ ४, ६५६१

कषायिणः १३—, ५८३६ [द्वीन्द्रियादिविधानेन यथा आवल्यसंख्यातभागमात्रो भागहारः तथा अत्रापि
४, ६५६१

रूपसे देना चाहिए। अलग रखे एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक १५
भागको अलग रख शेष बहुभागको समान रूपसे दिये एक भागमें मिलानेसे लोभ कषायके कालका परिमाण होता है। अलग रखे एक भागमें पुनः पूर्ववत् भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागको दूसरे समान भागमें मिलानेसे माया कषायके कालका परिमाण होता है। अलग रखे एक भागमें पूर्ववत् भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभाग को तीसरे समान भागमें मिलानेपर क्रोधका काल होता है। अलग रखे एक भागको चौथे समान २०
भागमें मिलानेपर मान कषायका काल होता है। अब यहाँ त्रैराशिक करना चाहिए—यदि चारों कषायोंके कालमें सब मनुष्य पाये जाते हैं, तो लोभ कषायके कालमें कितने मनुष्य पाये जायेंगे। यहाँ प्रमाण चारों कषायोंका काल, फलराशि सब मनुष्य, इच्छाराशि लोभ कषाय-

१. एतद् [ ] कोष्ठान्तर्गतः पाठो ब प्रतौ नास्ति।

भागहारमेंबितु सुसुक्ष्यर्थमागि कृपेयिनाचार्य्यरुगळिंदं आवलि असंख्यभज्जा एंदितु पेळल्पट्टुदु ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांत चक्रवर्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्त्व-प्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळेकादशं-कषायमार्गणा प्ररूपणामहाधिकारं निरूपितमाय्तु ।

जीवसंख्यानयने कालप्रमाणानयने च आवल्यसंख्येयभागमात्रो भागहारः इति सु व्यक्तार्थमाचार्यैः आवलि असंखभज्जेत्युक्तं] ॥२९८॥

मार्गदर्शक – [illegible]

जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु कषायमार्गणाप्ररूपणा नाम एकादशोऽधिकारः ॥११॥

का काल सो फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर जो लब्ध आये, उतने लोभ कषायवाले मनुष्य जानना । इसी तरह प्रमाण राशि तथा फलराशि पूर्वोक्त रखकर और माया, क्रोध तथा मानके कालको इच्छाराशि बनाकर लब्धराशि प्रमाण मायादि कषायवाले मनुष्योंकी संख्या होती है । इसी तरह तिर्यंचगतिमें कषायाविष्ट जीवोंकी संख्या जानना । अन्तर केवल इतना है कि यहाँ फलराशि तिर्यंच जीवोंकी संख्या प्रमाण रखना चाहिए । शेष विधि पूर्ववत् है ॥२९८॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से कषायमार्गणा प्ररूपणा नामक एकादश महा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

ज्ञानमार्गणाधिकारः ॥१२॥

अनंतरं श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्त्तिगळु ज्ञानमार्गणेयं पेळलुपक्रमिसि निरुक्तिपूर्व्वकं ज्ञानसामान्यलक्षणमं पेळ्दपरु ।

जाणइ तिकालविसए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे ।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेत्ति णं वेंति ॥२९९॥

जानाति त्रिकालविषयान् द्रव्यगुणान् पर्य्यायांश्च बहुभेदान् । प्रत्यक्षं परोक्षमनेन ज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ॥

त्रिकालविषयान् वृत्तवर्त्स्यद्वर्त्तमानकालगोचरंगळप्प बहुभेदान् जीवादि ज्ञानादि स्थावरादि नानाप्रकारंगळप्प द्रव्यगुणान् जीवपुद्गलधर्म्माऽधर्म्माऽऽकाशकालंगळेंब द्रव्यंगळुमं ज्ञानदर्शन-सम्यक्त्वसुखवीर्य्यादिगळुं स्पर्शरसगंधवर्णादिगळुं गतिस्थित्यवगाहनवर्त्तनाहेतुत्वादिगळुमेंबी गुणंगळुमं पर्य्यायांश्च स्थावरत्वत्रसत्वंगळुमणुत्वस्कंधत्वंगळुं अर्त्थव्यंजनभेदंगळुमं परचुगुमेंबी पर्य्यायंगळुमनात्मं प्रत्यक्षं स्पष्टं परोक्षं च अस्पष्टमुसागि अनेन जानातीति अरिगुमिदरिनेंदितु ज्ञानमितीदं ज्ञानमेंदितिदं करणभूतमप्प स्वार्त्थव्यवसायात्मकमप्प जीवगुणमं ब्रुवंति पेळ्वरर्हंदादिगळी ज्ञानमे

वासवै पूज्यपादाब्जं समवसृतिसंस्कृतम् ।
द्वादशं तीर्थकर्तारं वासुपूज्य जिनं स्तुवे ॥१२॥

अथ श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणामुपक्रममाणो निरुक्तिपूर्वकज्ञानसामान्यलक्षणमाह—

त्रिकालविषयान् वृत्तवर्त्स्यद्वर्तमानकालगोचरान् बहुभेदान्—जीवादिज्ञानादिस्थावरादिनानाप्रकारान् द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाख्यानि, गुणान् ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्यादीन् स्पर्शरसगन्धवर्णादीन् गतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतुत्वादीश्च पर्यायाश्च स्थावरत्रसत्वादीन् अणुत्वस्कन्धत्वादीन् अर्थव्यञ्जनभेदानन्याश्च आत्मप्रत्यक्ष स्पष्टं परोक्षं च अस्पष्टं अनेन जानातीति ज्ञानमितीदं करणभूतं स्वार्थव्यवसायात्मकं जीवगुणं

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ज्ञानमार्गणाको प्रारम्भ करते हुए निरुक्तिपूर्वक ज्ञान-सामान्यका लक्षण कहते हैं—

त्रिकाल अर्थात् अतीत, अनागत और वर्तमान कालवर्ती बहुत भेदोंको अर्थात् जीव आदि स्थावर आदि नाना प्रकारोंको, जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल नामक द्रव्योंको, ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व सुख वीर्य आदि और स्पर्श रस गन्ध वर्ण आदि गुणोंको, तथा गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व आदि पर्यायोंको, स्थावर त्रस आदिको, परमाणु स्कन्ध आदिको अर्थपर्याय और व्यंजनपर्यायोंको इसके द्वारा प्रत्यक्ष अर्थात् स्पष्ट और परोक्ष अर्थात् अस्पष्ट रूपसे जानता है इसलिए अर्हन्त आदि इसे ज्ञान कहते हैं यह जीवका व्यवसायात्मक गुण है। यह ज्ञान ही प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो

---

१. म तिकालसहिए । २. त्रिकालसहितान् ।

प्रत्यक्षं परोक्षमुमेंदितु द्विप्रकारमप्प प्रमाणमक्कुं। तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षणंगळं तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणमिमं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापनमुमं सविस्तरमागि मार्त्तंडादितर्क्कशास्त्रंगळोळु नोडिकोळल्पडुवुदें केंदोडेऽहेतुवादरूपमप्पागमदोळं हेतुवादक्कनधिकारत्वदिंदं।

अनंतरं ज्ञानभेदमं पेळ्दपं।

पंचेव होंति णाणा मदिसुदओहीमणं च केवलयं।
खयउवसमिया चउरो केवलणाणं हवे खइयं ॥३००॥

पंचैव भवंति ज्ञानानि मतिः श्रुतावधिमनःपर्य्ययश्च केवलं। क्षायोपशमिकानि चत्वारि केवलज्ञानं भवेत्क्षायिकं॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलमेंदितु सम्यग्ज्ञानंगळुमय्दे अप्पुव नाधिकंगळल्तु। येत्तलानु सामान्यापेक्षेयिदं संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमनाश्रयिसि ज्ञानमो दे येंदु पेळल्पट्टुदंतादोडं विशेषापेक्षेयिदं पर्य्यायार्थिकनयमनाश्रयिसि ज्ञानंगळय्दे एंदितु पेळल्पट्टुवें बुदर्त्थं। अवरोळु मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययमेंब नाल्कुं ज्ञानंगळुं क्षायोपशमिकंगळप्पुवु। मतिज्ञानाद्यावरणवीर्य्यांतरायकर्म्मद्रव्यगळनुभागक्के सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळगुदयाभावरूपमं क्षयमें बुदनुदयप्राप्तंगळगे सदवस्थारूपमनुपशममें बुदु। क्षयश्चासावुपशमश्च क्षयोपशमः। क्षयोपशमे भवानि क्षायोपशमिकानि। अथवा क्षयोपशमः प्रयोजनमेषां क्षायोपशमिकानि। तत्तदावरणदेशघातिस्पर्द्धकंगळुदयक्के विद्यमानत्व-

ब्रुवन्ति—कथयन्ति अर्हदादय.। एतज्ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष चेति द्विविधं प्रमाणं भवति। तत्स्वरूपसख्याविषयफललक्षणानि तद्विप्रतिपत्तिनिराकरण स्याद्वादमतप्रमाणस्थापन च सविस्तर मार्तण्डादितर्कशास्त्रेषु द्रष्टव्यं, अत्राहेतुवादरूपे आगमे हेतुवादस्यानधिकारात् ॥२९९॥ अथ ज्ञानभेदानाह—

मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलनामानि सम्यग्ज्ञानानि पञ्चैव नोनाधिकानि। यद्यपि सामान्यापेक्षया संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानमेकमेव कथित, तथापि विशेषापेक्षया पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानानि पञ्चैवेत्युक्तानि इत्यर्थ। तेषु मतिश्रुतावधिमन पर्ययाख्यानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि भवन्ति मतिज्ञानाद्यावरणवीर्यान्तरायकर्मद्रव्याणा अनुभागस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावरूप क्षय, तेषामेव अनुदयप्राप्ताना सदवस्थारूप उपशम। क्षयश्चासावुपशमश्च क्षयोपशम क्षयोपशमे भवानि क्षायोपशमिकानि। अथवा क्षयोपशम प्रयोजनमेषामिति क्षायोपशमिकानि। तत्तदावरणदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य विद्यमानत्वेऽपि

प्रकारका प्रमाण होता है। प्रमाणका स्वरूप, संख्या, विषय, फल तथा तत्सम्बन्धी विवादोंका निराकरण करके स्याद्वादसम्मत प्रमाणका स्थापन विस्तारपूर्वक प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि तर्कशास्त्रके ग्रन्थोंमें देखना चाहिए। इस अहेतुवाद रूप आगम ग्रन्थमें हेतुवादका अधिकार नही है ॥२९९॥

आगे ज्ञानके भेद कहते हैं—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल नामक सम्यग्ज्ञान पाँच ही हैं, न कम हैं, न अधिक हैं। यद्यपि सामान्यकी अपेक्षा संग्रह रूप द्रव्यार्थिक नयके आश्रयसे ज्ञान एक ही कहा है, तथापि विशेषकी अपेक्षा पर्यायार्थिक नयके आश्रयसे ज्ञान पाँच ही कहे है यह उक्त कथनका अभिप्राय है। उनमें-से मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय नामक चार ज्ञान क्षायोपशमिक होते है। मतिज्ञान आदि आवरण और वीर्यान्तराय कर्म द्रव्यके अनुभागके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभाव रूप क्षय और जो उदय अवस्थाको प्राप्त न होकर सत्तामें स्थित हैं उनका वही हुआ सदवस्थारूप उपशम। क्षय और उपशमको क्षयोपशम कहते

मादोडं ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाऽभावदिंदमविवक्षेयरियल्पडुवुदु । केवलज्ञानं क्षायिकमेयक्कुमेकेंदोडे केवलज्ञानावरणवीर्यांतराय निरवशेषक्षयप्रादुर्भूतत्वदिंदं, क्षये भवं क्षयः प्रयोजनमस्येति वा क्षायिकं । येत्तलानुमात्मंगे केवलज्ञानं प्रतिबंधकावस्थेयोळु शक्तिरूपदिंदं सिर्प्पुदंतिर्दोडं प्रतिबंधकक्षयदिंदमे तद्व्यक्तियक्कुमेंदितु व्यक्त्यपेक्षेयिंदं कार्य्यत्वसंभवदिंदं क्षायिकमेंदितु पेळल्पट्टुदु । आवरणक्षयमुंटागुत्तिरलु प्रादुर्भवति येंबी निरुक्तिगे तद्व्यक्त्यपेक्षत्वमुळ्ळुदरिंदं ।

अनंतरं मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदंगळं पेळ्दपं :—

अण्णाणतियं होदि हु सण्णाणतियं खु मिच्छ अणउदए ।
णवरि विभंगं णाणं पंचिंदियसण्णिपुण्णेव ॥३०१॥

अज्ञानत्रयं भवति खलु सज्ज्ञानत्रयं खलु मिथ्यात्वानंतानुबंध्युदये । विशेषो विभंगं ज्ञानं पंचेंद्रियसंज्ञिपूर्ण एव ॥

आवुदोंदु मतिश्रुतावधिगळु सम्यग्दर्शनपरिणतजीवसंबंधि सम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवनविशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणमप्प तत् सम्यग्ज्ञानमे मिथ्यादर्शनानंतानुबंधिकषायान्यतमोदयमागुत्तिरलऽतत्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसंबंधिमिथ्याज्ञानत्रयं खलु स्फुटमक्कुं । णवरि विशेषमुंटदु आवुदोंदवधिज्ञानविपर्य्ययरूपमप्प विभंगमेंब पेसरनुळ्ळ मिथ्याज्ञानमदु

ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाभावात् अविवक्षा ज्ञातव्या । केवलज्ञान पुन. क्षायिकमेव भवति केवलज्ञानावरणवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयेण प्रादुर्भूतत्वात् । क्षये भवं, क्षय. प्रयोजनमस्येति वा क्षायिकम् । यद्यप्यात्मनः केवलज्ञानं प्रतिवन्धकावस्थाया शक्तिरूपेण विद्यमानं तथापि प्रतिवन्धकक्षयेणैव तद्व्यक्तिः स्यात् इति व्यक्त्यपेक्षया कार्यत्वसंभवात् क्षायिकमित्युक्तं । आवरणक्षये सति प्रादुर्भवति इति निरुक्तेः तद्व्यक्त्यपेक्षत्वात् ॥३००॥

अथ मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदानाह—

यत्सम्यग्दर्शनपरिणतजीवसंवन्धिमतिश्रुतावधिसंज्ञं सम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तजीवस्य विशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणं तदेव मिथ्यादर्शनानन्तानुवन्धिकषायान्यतमोदये सति अतत्त्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसम्बन्धिमिथ्याज्ञानत्रयं खलु—स्फुटं भवति । नवरीति विशेषोऽस्ति यदवधिज्ञानविपर्ययरूप विभङ्गनामकं

है । जो क्षयोपशमसे होते है अथवा क्षयोपशम जिनका प्रयोजन हैं वे क्षायोपशमिक है । क्षायोपशमिक ज्ञानोंमें यद्यपि उस-उस आवरण सम्बन्धी देशघाती स्पर्धकोंका उदय विद्यमान रहता है तथापि वे ज्ञानकी उत्पत्तिके प्रतिघाती नहीं हैं इसलिए यहाँ उनकी विवक्षा नहीं है । किन्तु केवलज्ञान क्षायिक ही होता है क्योंकि वह केवल ज्ञानावरण तथा वीर्यान्तरायके सम्पूर्ण क्षयसे प्रकट होता है । जो क्षयसे होता है या क्षय जिसका प्रयोजन है वह क्षायिक है । यद्यपि आत्मामें केवलज्ञान प्रतिबन्धक अवस्थामें शक्तिरूपसे विद्यमान है तथापि प्रतिवन्धकके क्षयसे ही वह प्रकट होता है इसलिए व्यक्तिकी अपेक्षा कार्य होनेसे उसे क्षायिक कहा है । आवरणका क्षय होनेपर प्रकट होता है ऐसी निरुक्ति होनेसे उसकी व्यक्तिकी अपेक्षा है ॥३००॥

अब मिथ्याज्ञानकी उत्पत्तिके कारण, स्वरूप और स्वामीभेदोंको कहते हैं—

जो सम्यग्दृष्टि जीवके मति, श्रुत और अवधि नामक तीन सम्यग्ज्ञान हैं, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके विशेष ग्रहणरूप आकार सहित उपयोग जिनका लक्षण है, वे ही तीनों मिथ्यादर्शन और अनन्तानुबन्धी कषायमें-से किसी एक कषायका उदय होनेपर अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणत मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्याज्ञान होते हैं । किन्तु इतना विशेष है

तत्संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तनोळेयक्कुमन्यनोळागदें बुदरिंदं इतरमत्यज्ञानमुं श्रुताज्ञानमुमें बीयज्ञानद्वयमेकेंद्रियादिगळोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तकरोळेल्लरोळु मिथ्यादृष्टिसासादनरोळु संभविसुगुमें दु पेळल्पट्टुदाय्तु । खलु स्फुटमागि ।

अनंतरं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ज्ञानस्वरूपमं पेळ्दपं ।

मिस्सुदए संमिस्सं अण्णाणतिएण णाणतियमेव ।
संजमविसेससहिए मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥३०२॥

मिश्रोदये समिश्रमज्ञानत्रयेण ज्ञानत्रयमेव । संयमविशेषसहिते मनःपर्य्ययज्ञानमुद्दिष्टं ॥

मिश्रोदये सम्यग्मिथ्यात्वकर्म्मोदयमागुत्तिरलु अज्ञानत्रयदोडने सम्यग्ज्ञानत्रयमे संमिश्रं संमिश्रमक्कुमशक्यविवेचनत्वदिंदं । सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानमुं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानमुं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमुमें ब व्यपदेशमक्कुं । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोळु वर्त्तमानज्ञानत्रयं केवलं सम्यग्ज्ञानमुमल्तु । केवलं मिथ्याज्ञानमुमल्तु । मत्तं तप्पुदेदोडुभयात्मकश्रद्धानमात्मनोळें तंते उभयात्मकत्वदिंदं ज्ञानमुं संमिश्रमें दितु युक्तमप्पुदाचार्य्यरुगळिदं पेळल्पट्टुदु । मनःपर्य्ययज्ञानं मत्ते संयमविशेषसहितनोळु प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्य्यंतमप्प गुणस्थानसप्तकदोळु तपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामम्मुळळनोळु संभविसुगुमितरदेशसंयतादियोळु संभविसदेकें दोडे देशसंयतादियोळु तद्विधतपोविशेषाऽभावमप्पुदरिंदं ।

मिथ्याज्ञान तत् संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्त एव भवति, नान्यस्मिन् जीवे इति अनेन इतरत् मत्यज्ञान श्रुताज्ञानमिति द्वय एकेन्द्रियादिषु पर्याप्तापर्याप्तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिसासादनेषु संभवति इति कथित भवति । द्वितीय. खलुशब्द अतिशयेन स्पष्टत्वार्थे स्फुटं ॥३०१॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ज्ञानस्वरूप निरूपयति—

मिश्रोदये—सम्यक्मिथ्यात्वकर्मोदये सति अज्ञानत्रयेण सह सम्यग्ज्ञानत्रयमेव सम्मिश्रं भवति अशक्यविवेचनत्वेन सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञान सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमिति व्यपदेशभाग्भवति । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वर्तमानं ज्ञानत्रय न केवलं सम्यग्ज्ञान, न केवलं मिथ्याज्ञानं किन्तु उभयात्मकश्रद्धानवत् उभयात्मकत्वेव मिथ्याज्ञानसमिश्र सम्यग्ज्ञानं भवति इत्याचार्यै कथित ज्ञातव्यम् । मन पर्ययज्ञान तु सयमविशेषसहितेष्वेव प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्यन्तेषु सप्तगुणस्थानेषु तपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामविशिष्टेषु

कि जो अवधिज्ञानका विपरीत रूप विभंग नामक मिथ्याज्ञान है वह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके ही होता है, अन्य जीवके नहीं होता । इससे यह व्यक्त होता है कि अन्य मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ये दोनों एकेन्द्रिय आदि पर्याप्त और अपर्याप्त सब मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंके होते है ॥३०१॥

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानका स्वरूप कहते हैं—

मिश्र अर्थात् सम्यक्मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेपर तीन अज्ञानोंके साथ तीनों सम्यग्ज्ञान मिले हुए होते हैं । अलग-अलग करना शक्य न होनेसे उन्हें सम्यग्मिथ्या मतिज्ञान, सम्यग्मिथ्या श्रुतज्ञान और सम्यग्मिथ्या अवधिज्ञान नामसे कहते हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें वर्तमान तीनों ज्ञान न केवल सम्यग्ज्ञान होते है और न केवल मिथ्याज्ञान होते है किन्तु जैसे उनके सम्यग्रूप और मिथ्यारूप मिला हुआ श्रद्धान होता है वैसे ही मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान मिला हुआ होता है यह आचार्यका कथन जानना । किन्तु मनःपर्ययज्ञान विशेष संयमसे सहित प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानपर्यन्त सात गुणस्थानोंमें तपविशेषसे वृद्धिको प्राप्त विशुद्धिरूप परिणामोंसे विशिष्ट

अनंतरं मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणमं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपं ।

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु विणुवएसकरणेण ।
जा खलु पवट्टइ मई मइअण्णाणेत्ति णं बेंति ॥३०३॥

विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु विनोपदेशकरणेन । या खलु प्रवर्त्तते मतिर्मत्यज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥

विषयंत्रकूट पंजरबंधमें विवु मोदलाद जीवमारणबंधनहेतुगळोळु या मतिः आवुदो दु मति परोपदेशकरणमिल्लदे प्रवर्त्तिसुगुमदे मत्यज्ञानमें दु अर्हदादिगळु पेळ्वरल्लि परस्परसंयोगजनितमारणशक्तिविशिष्टतैलकर्प्पूरादिद्रव्यं विषमें बुदक्कुं । सिंहव्याघ्रादि क्रूरमृगंगळ धरणार्त्थमभ्यंतरीकृतच्छागादिजीवमनुळ्ळ काष्ठादिरचितमप्पुदु तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंघटीकरणदक्षसूत्रकीलितमप्पुदु यंत्रमें बुदक्कुं । मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्त्थमवष्टब्धकाष्टादिमयं कूटमें बुदक्कुं । तित्तिरीलावकहरिणादिधारणात्थं विरचितग्रंथिविशेषकलितरज्जुमयमप्प जालं पंजरमें बुदक्कुं । गजोष्ट्रादिधारणार्त्थमवष्टब्धमप्पगर्त्तमुखकीलितग्रंथिविशिष्टवारिरज्जुरचनाविशेषं बंधमें बुदक्कुं । आदिशब्ददिंदं पक्षिगळ पक्षमं पत्तिसि सिक्किसल्के दु दीर्घदंडाग्रदोळ् तोडद पिप्पलनिर्य्यासादि चिक्कणबंधमुं । गृहहरिणादिशृंगलग्नसूत्रग्रंथिविशेषादिगळगे ग्रहणमक्कुमुपदेशपूर्व्वंकत्वदोळु

संभवति नेतरदेशसंयतादिषू गुणस्थानेषु तथाविधतपोविशेषाभावात् ॥३०२॥ अथ मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणं गाथात्रयेणाह—

विषयन्त्रकूटपञ्जरबन्धादिषु जीवमारणबन्धनहेतुषु या मतिः परोपदेशकरणेन विना प्रवर्तते तदिदं मत्यज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवन्ति । तत्र परस्परसयोगजनितमारणशक्तिविशिष्ट तैलकर्पूरादिद्रव्यं विषं, सिंहव्याघ्रादिक्रूरमृगधारणार्थमभ्यन्तरीकृतछागादिजीवं काष्ठादिरचित तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंपुटीकरणदक्षं सूत्रकीलित यन्त्र, मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्थमवष्टब्धं काष्ठादिमयं कूटं, तित्तिरलावकहरिणादिधारणार्थविरचितं ग्रन्थिविशेषकलितरज्जुमयं जाल पञ्जर, गजोष्ट्रादिधारणार्थमवष्टब्धो गर्तमुखकीलितग्रन्थिविशिष्टो वारीरज्जुरचनाविशेषो बन्ध । आदिशब्देन पक्षिपक्षलगनार्थं दीर्घदण्डाग्रम्रक्षितपिप्पलनिर्यासादिचिक्कण-

---

महामुनियोंके होता है, अन्य देशसंयत आदि गुणस्थानमें नहीं होता क्योंकि वहाँ उस प्रकारका तपविशेष नहीं है ॥३०२॥

अब तीन गाथाओंसे मिथ्याज्ञानोंका विशेष लक्षण कहते हैं—

जीवोंको मारने और बन्धनमें हेतु विष, यन्त्र, कूट, पंजर, बन्ध आदिमें विना परोपदेशके मति प्रवर्तित होती है वह मतिअज्ञान है ऐसा अर्हन्त भगवान् आदि कहते हैं । परस्पर वस्तुके संयोगसे उत्पन्न हुई मारनेकी शक्तिसे युक्त तैल, रसकपूर आदि द्रव्य विष हैं । सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर जीवोंको पकड़नेके लिए, अन्दरमें बकरा आदि रखकर लकड़ी आदिसे बनाया गया, जिसमें पैर रखते ही द्वार बन्द हो जाता हो, ऐसा सूत्रसे कीलित यन्त्र होता है । मच्छ, कछुआ, चूहा आदि पकड़नेके लिए काष्ठ आदिसे रचे गयेको कूट कहते हैं । तीतर, लावक, हरिण आदि पकड़नेके लिये रस्सीमें अमुक प्रकारकी गाँठ देकर बनाये गये जालको पंजर कहते हैं । हाथी, ऊँट आदि पकड़नेके लिए गढ़ा खोदकर और उसका मुख ढाँककर या रस्सी आदिका फन्दा लगाकर जो विशेष रचना की जाती है उसे बन्ध कहते हैं । आदि शब्दसे पक्षियोंके पंख चिपकाने के लिए लम्बे बाँस आदिके अग्रभागमें पीपल आदिका चिकना रस गोंद वगैरह लगाना और हरिण आदिके सींगके अग्रभागमें फन्दा आदि डालना आदि लिया जाता है । इस प्रकारके कार्योंमें जो विना परोपदेशके स्वयं

श्रुताज्ञानत्व प्रसंगमुळुदरिंदमुपदेशक्रियेयिल्लदे येत्तलानुमितप्पूहापोहविकल्पात्मकमप्प हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारणमप्पार्त्तरौद्रध्यानकारणमप्प शल्यदंडगारवसंज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकारणमप्प इंद्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूपमप्प मिथ्याज्ञानमदु मत्यज्ञानमेंदितु निश्चयिसल्पडुवुदु ।

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादि उवएसा ।
तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणेत्ति णं बेंति ॥३०४॥

आभीतमासुरक्षं भारतरामायणाद्युपदेशाः । तुच्छा असाधनीयाः श्रुताज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥

तुच्छाः परमार्थशून्यंगळु असाधनीयाः सत्पुरुषवर्ग्गनादरणीयंगळुमेकेंदोडे परमार्थशून्यत्वदिंदं आभीताऽसुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशंगळं तत्प्रबंधंगळुमवर श्रवणदिंदं पुट्टिदुदावुदोंदु ज्ञानमदिदु श्रुताज्ञानमेंदिताचार्य्यरुगळु पेळ्दरु । आसमंतात् भीताः आभीताः चोरास्तच्छास्त्रमप्याऽऽभीतं । असवः प्राणास्तेषां रक्षा येभ्यस्तेऽसुरक्षास्तलवरास्तेषां शास्त्रमासुरक्ष । कौरवपांडवीयपंचभर्तृकैकभार्य्यावृत्तांतयुद्धव्यतिकरादिचर्च्याव्याकुलमं भारतमेंबुदु । सीताहरणरामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचितमं रामायणमेंबुदु । आदिशब्दिंदिदावुदावुदु मिथ्यादर्शनदूषितसर्व्वथैकांतवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबधभुवनकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्म्ममुं त्रि-

---

बन्धनग्रहहरिणादिशृङ्गाग्रलग्नसूत्रग्रन्थिविशेषादिश्च गृह्यते । उपदेशपूर्वकत्वे श्रुताज्ञानत्वप्रसगात् । उपदेशक्रिया विना यदीदृशमूहापोहविकल्पात्मक हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारण आर्तरौद्रध्यानकारणं शल्यदण्डगारवसज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकारण च इन्द्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूप मिथ्याज्ञान तन्मत्यज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥३०३॥

तुच्छा. परमार्थशून्या , असाधनीया अत एव सत्पुरुषाणामनादरणीया परमार्थशून्यत्वात् आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशा तत्प्रबन्धा तेषा श्रवणादुत्पन्न यज्ज्ञान तदिद श्रुताज्ञानमिति ब्रुवन्त्याचार्या । आ समन्ताद्भीता आभीता चोरा तच्छास्त्रमप्याभीतं । असव प्राणा तेषा रक्षा येभ्य ते असुरक्षा तलवरा तेषा शास्त्रमासुरक्षं । कौरवपाण्डवीयपञ्चभर्तृकैकभार्यावृत्तान्तयुद्धव्यतिकरादिचर्चाव्याकुलं भारत, सीताहरणरामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचित रामायण । आदिशब्दाद्यद्यन्मिथ्यादर्शनदूषित-

---

ही बुद्धि लगती है वह कुमति ज्ञान है । उपदेशपूर्वक होनेपर उसे कुश्रुत ज्ञानका प्रसंग आता है । अत. उपदेशके बिना जो इस प्रकारका ऊहापोह विकल्परूप हिंसा, असत्य, चोरी, विषयसेवन और परिग्रहका कारण, आर्त तथा रौद्रध्यानका कारण, शल्य, दण्ड, गारव, संज्ञा आदि अप्रशस्त परिणामोंका कारण, जो इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न हुआ विशेष ग्रहणरूप मिथ्या-ज्ञान है वह कुमतिज्ञान है यह निश्चय करना चाहिए ॥३०३॥

तुच्छ अर्थात् परमार्थसे शून्य और इसी कारणसे सज्जनोंके द्वारा अनादरणीय आभीत, आसुरक्ष, भारत रामायण आदिके उपदेश, उनकी रचनाएँ, उनका सुनना तथा उनके सुननेसे उत्पन्न हुआ ज्ञान उसे आचार्य श्रुतअज्ञान कहते है । आभीत चोरको कहते है क्योंकि उसे सब ओरसे भय सताता है । उनके शास्त्रको भी आभीत शास्त्र कहते है । असु अर्थात् प्राणोंकी रक्षा जिनसे होती है वे असुरक्ष अर्थात् कोतवाल आदि उनके शास्त्रको असुरक्ष कहते है । कौरव पाण्डवोंके युद्ध, पंचभर्ता द्रौपदीका वृत्तान्त, युद्धकी कथा आदिकी चर्चासे भरा महाभारत ग्रन्थ है, सीताहरण, रामकी उत्पत्ति, रावणकी जाति, वानरों और राक्षसोंके युद्धकी यथेच्छ कल्पनाको लेकर रची गयी रामायण है । आदि शब्दसे जो-जो मिथ्यादर्शनसे दूषित सर्वथा एकान्तवादी यथेच्छ कथाप्रबन्ध, भुवनकोश हिंसामय यज्ञादि

दंडजटाधारणादितपःकर्म्ममुं षोडशपदार्त्थ षट्पदार्त्थभावनाविधिनियोग भूतचतुष्टय पंचविंशतितत्वब्रह्माद्वैतचतुरार्य्यसत्यविज्ञानाद्वैतसर्व्वशून्यतादिप्रतिपादकागमाभासजनितमप्प श्रुतज्ञानाभासमदेल्लं श्रुताज्ञानमें बुदितु निश्चैसल्पडुवुदेकें दोडे दृष्टेष्टविरुद्धार्त्थविषयत्वदिंदं ।

विवरीयमोहिणाणं खओवसमियं च कम्मवीजं च ।
वेभंगोत्ति पउच्चइ समत्तणाणीण समयम्मि ॥३०५॥

विपरीतावधिज्ञानं क्षयोपशमिकं च कर्म्मबीजं च । विभंग इति प्रोच्यते समाप्तज्ञानिनां समये ॥

मिथ्यादर्शनकलंकितमप्प जीवंगे अवधिज्ञानावरणीयवीर्य्यांतरायक्षयोपशमजनितमप्पुदुं द्रव्यक्षेत्रकालभावमाश्रितमप्पुदुं रूपिद्रव्यविषयमप्पुदुं आप्तागमपदार्त्थंगळोळु विपरीतग्राहकमप्पुदुं तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळु तीव्रकायक्लेश द्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्ययमप्पुदुं । च शब्ददिंदं देवनारकगतिगळोळु भवप्रत्ययमप्पुदुं मिथ्यात्वादिकर्म्मबंधबीजमप्पुदुं चशब्ददिंद येत्तलानुं नारकादियोळु पूर्व्वभवदुराचारसंचित्तदुःकर्म्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्म्मबीजमुमप्पुदुं ।

एवंविधमवधिज्ञानं विभंगमेंदितु समाप्तज्ञानिगळ केवलज्ञानिगळ समये स्याद्वादशास्त्रदोळु प्रोच्यते पेळल्पट्टुदु । एकें दोडे नारकविभंगज्ञानदिंदं वेदनाभिभवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसंधान-

---

सर्वथैकान्तवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबन्धभुवनकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्मत्रिदण्डजटाधारणादितपःकर्मषोडश - पदार्थषट्पदार्थभावनाविधिनियोगभूतचतुष्टयपञ्चविंशतितत्त्वब्रह्माद्वैतचतुरार्यसत्यविज्ञानाद्वैतसर्वशून्यत्वादिप्रतिपादकागमाभासजनितं श्रुतज्ञानाभासं तत्तत्सर्वं श्रुताज्ञानमिति निश्चेतव्य, दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वात् ॥३०४॥

मिथ्यादर्शनकलङ्कितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणीयवीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं द्रव्यक्षेत्रकालभावसीमाश्रितं रूपिद्रव्यविषय आप्तागमपदार्थेषु विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्यो. तीव्रकायक्लेशद्रव्यसयमरूपगुणप्रत्ययं, चशब्दाद्देवनारकगत्योर्भवप्रत्ययं च मिथ्यात्वादिकर्मबन्धबीजं, चशब्दात् कदाचिन्नारकादिगतौ पूर्वभवदुराचारसंचितदुष्कर्मफलतीव्रदु खवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्मबीज वा अवधिज्ञानं विभङ्ग इति समाप्तज्ञानिना केवलज्ञानिना समये स्याद्वादशास्त्रे प्रोच्यते कथ्यते । नारकाणा विभङ्गज्ञानेन वेदनाभि-

---

गृहस्थकर्म, त्रिदण्ड तथा जटा धारण आदि तपस्वियोंका कर्म, नैयायिकोंका षोडश पदार्थ वाद, वैशेषिकोंका षट्पदार्थवाद, मीमांसकोंका भावनाविधिनियोग, चार्वाकका भूतचतुष्टयवाद, सांख्योंके पचीस तत्त्व, बौद्धोंका चार आर्यसत्य, विज्ञानाद्वैत, सर्वशून्यवाद आदिके प्रतिपादक आगमाभासोंसे होनेवाला जितना श्रुतज्ञानाभास है वह सब श्रुतअज्ञान जानना । क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमानसे विरुद्ध अर्थको विषय करता है ॥३०४॥

मिथ्यादृष्टि जीवके अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादाको लिये हुए रूपी द्रव्यको विषय करनेवाला, किन्तु देव शास्त्र और पदार्थोंको विपरीत रूपसे ग्रहण करनेवाला अवधिज्ञान केवलज्ञानियोंके द्वारा प्रतिपादित आगममें विभंग कहा जाता है । यह विभंग ज्ञान तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें तीव्र कायक्लेश रूप द्रव्य संयमसे उत्पन्न होता है इसलिए गुणप्रत्यय है । 'च' शब्दसे देवगति और नरकगतिमें भवप्रत्यय है तथा मिथ्यात्व आदि कर्मोंके बन्धका बीज है । 'च' शब्दसे कदाचित् नरकगति आदिमें पूर्वजन्ममें किये गये दुराचारमें-से संचित खोटे कर्मोंके फल तीव्र दुःख वेदनाके भोगनेसे होनेवाले सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान रूप धर्मका भी बीज है ।

प्रत्ययबलात् सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीतेर्व्विशिष्टस्यावधिज्ञानस्य भंगो विपर्य्ययो विभंगमेंदितु निरुक्ति-सिद्धार्त्थंक्किदर्रिदमे प्ररूपितत्वदिदं ।

अनंतर गाथानवकदिदं स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयंगळनाश्रयिसि मतिज्ञानमं पेळ्दपं :—

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं ।
अवगहईहावाया धारणगा होंति पत्तेयं ॥३०६॥

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं । अवग्रहेहावायधारणकाः भवंति प्रत्येकं ॥

स्थूलवर्त्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थोऽभिमुखः । अस्येंद्रियस्यायमेवार्थ इत्यवधारितो नियमितोऽभिमुखश्चासौ नियमितश्च अभिमुखनियमितस्तस्यार्थस्य बोधनं ज्ञानमाभिनिबोधिकमेंदितु मतिज्ञानमेंबुदर्त्थं । अभिनिबोध एवाभिनिबोधिकमेंदितु स्वार्त्थिकठण् प्रत्ययदिदं सिद्धमक्कुं । स्पर्शनादींद्रियंगळगे स्थूलादिगळप्प स्पर्शादिस्वार्त्थंगळोळु ज्ञानजननशक्तिसंभवमप्पुदरिंदं सूक्ष्मांतरितदूरार्त्थंगळप्प परमाणु शंखचक्रवर्त्तिनरकस्वर्ग्गपटलमेर्व्वादिगळोळमा इंद्रियंगळगे ज्ञानजननशक्ति संभविसदेंबुदर्त्थं ।

इवरिंदं मतिज्ञानक्के स्वरूपमं पेळल्पट्टुदुं, एंतप्पुदा मतिज्ञानमेंबोडे अनिंद्रियेंद्रियजं मनमुं

भवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसधानप्रत्ययबलात् सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीते । विशिष्टस्य अवधिज्ञानस्य भङ्ग—विपर्यय विभङ्ग इति निरुक्तिसिद्धार्थस्यैव अनेन प्ररूपितत्वात् ॥३०५॥ अथ नवभिर्गाथाभि स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य मतिज्ञान प्ररूपयति—

स्थूलवर्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थ अभिमुख', अस्येन्द्रियस्य अयमेवार्थ इत्यवधारितो नियमित । अभिमुखश्चासौ नियमितश्च अभिमुखनियमित । तस्यार्थस्य बोधन ज्ञान आभिनियबोधिक मतिज्ञानमित्यर्थ । अभिनिबोध एव आभिनिबोधकमिति स्वार्थिकेन ठण्प्रत्ययेन सिद्ध भवति । स्पर्शनादीन्द्रियाणा स्थूलादिष्वेव स्पर्शादिपु स्वार्थेषु ज्ञानजननशक्तिसभवात् । सूक्ष्मान्तरितदूरार्थेषु परमाणुशङ्खचक्रवर्तिमेर्वादिषु तेषा ज्ञानजननशक्तिर्न सभवतीत्यर्थ । अनेन मतिज्ञानस्य स्वरूपमुक्तं । कथभूत तत् ? अनिन्द्रियेन्द्रियज—अनिन्द्रिय मन,

---

क्योंकि नारकियोंके विभंग ज्ञानके द्वारा वेदनाभिभव और उसके कारणोंके दर्शन स्मरण आदि रूप ज्ञानके बलसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है । 'वि' अर्थात् विशिष्ट अवधिज्ञानका भंग अर्थात् विपर्यय विभंग होता है इस निरुक्ति सिद्ध अर्थको ही यहाँ कहा है ॥३०५॥

अब नौ गाथाओंसे स्वरूप, उत्पत्ति, कारण, भेद और विषयको लेकर मतिज्ञानका कथन करते हैं—

स्थूल, वर्तमान और योग्यदेशमें स्थित अर्थको अभिमुख कहते हैं । इस इन्द्रियका यही विषय है इस अवधारणाको नियमित कहते है । अभिमुख और नियमितको अभिमुख-नियमित कहते हैं । उस अर्थके बोधन अर्थात् ज्ञानको मतिज्ञान कहते है । अभिनिबोध ही अभिनिबोधिक है इस प्रकार स्वार्थमें ठण् प्रत्यय करनेसे इसकी सिद्धि होती है । स्पर्शन आदि इन्द्रियोंकी अपने स्थूल आदि स्पर्श आदि विषयोंमे ही ज्ञानको उत्पन्न करनेकी शक्ति

---

१ म स्थूलार्थंग° । २. म यॅतप्प । ३ ब अथ स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य गाथानवकेन मतिज्ञानमाह । ४ ब स्थूलार्थरूपस्पर्शादि स्वार्थेषु । ५ ब णुनरकस्वर्गपटलमे° । ६ ब °प प्रारूपितम् ।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्श्रोत्रंगळुमेंबिवरिंदं जातं पुट्टिदुदक्कुमिदरिंदमिंद्रियमनस्सुगळ्गे मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं पेळल्पट्टुदितु कारणभेदात् कार्य्यभेदः एंदितु मतिज्ञानं षट्प्रकारमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

मत्ते प्रत्येकमों दों दु मतिज्ञानक्के अवग्रहमुमीहेयवायमुं धारणे एंदितु नाल्कु नाल्कु भेदंगळप्पुवु-। मदें तें दोडे :—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोऽवायः मानसी धारणा एंदितु नाल्कप्पुवु ४। स्पर्शनजोऽवग्रहः स्पर्शनजेहे स्पर्शनजोऽवायः स्पर्शनजा धारणा एंदितु नाल्कप्पुवु ४। रसनजोऽवग्रहः रसनजेहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा एंदितिवु नाल्कप्पुवु ४। घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजेहा घ्राणजोऽवायः घ्राणजा धारणा एंदितु नाल्कप्पुवु ४। चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषीहा चाक्षुषोऽवायः चाक्षुषी धारणा एंदितुनाल्कप्पुवु ४। श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजेहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा एंदितिवु नाल्कप्पुवु ४ । इंतु मतिज्ञानं चतुर्व्विंशतिप्रकारमक्कु २४। मवग्रहादिगळ्गे लक्षणमं मुंदे शास्त्रकारं ताने पेळ्दपं ।

वेंजणअत्थअवग्गह भेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे ।
कमसो ते वावरिदा पढमं णहि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

व्यंजनार्थावग्रहभेदौ खलु भवतः प्राप्ताप्राप्तार्थयोः । क्रमशस्तौ व्यापृतौ प्रथमो न हि चक्षुर्म्मनसोः ॥

इन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि । तेभ्यो जातमुत्पन्न अनिन्द्रियेन्द्रियजं, अनेन इन्द्रियमनसोर्मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं[1] दर्शितम् । एवं च कारणभेदात्कार्यभेद इति मतिज्ञानं षट्प्रकारमुक्तम्[2] । पुनः प्रत्येकमेकैकस्य मतिज्ञानस्य अवग्रहः ईहा अवाय. धारणा चेति चत्वारो भेदा भवन्ति । तद्यथा—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोऽवायः मानसी धारणा इति चत्वार' । स्पर्शनजोऽवग्रहः, स्पर्शनजा ईहा स्पर्शनजोऽवायः स्पर्शनजा धारणा इति चत्वार. । रसनजोऽवग्रह' रसनजा ईहा रसनजोऽवाय. रसनजा धारणा इति चत्वारः । घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजा ईहा घ्राणजोऽवाय घ्राणजा धारणा इति चत्वार. । चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषीहा चाक्षुषोऽवाय चाक्षुषी धारणा ४। श्रोत्रजोऽवग्रह' श्रोत्रजा ईहा श्रोत्रजोऽवाय. श्रोत्रजा धारणा इति चत्वारः । एवं मतिज्ञान चतुर्विंशतिविकल्पं[3] भवति अवग्रहादीना लक्षण[4] उत्तरत्र ग्रन्थकारः स्वयमेव वक्ष्यति ॥३०६॥

होती है । अर्थात् सूक्ष्म परमाणु आदि, अन्तरित शंख चक्रवर्ती आदि तथा दूरार्थ मेरु आदिको जाननेकी शक्ति उनमें नहीं है । इससे मतिज्ञानका स्वरूप कहा । वह मतिज्ञान अनिन्द्रिय मन और इन्द्रियाँ स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्रसे उत्पन्न होता है । इससे इन्द्रिय और मनको मतिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण दिखलाया है । इस प्रकार कारणके भेदसे कार्यमें भेद होनेसे मतिज्ञान छह प्रकारका कहा । पुनः प्रत्येक मतिज्ञानके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद होते है । यथा—मानस अवग्रह, मानस ईहा, मानस अवाय और मानसी धारणा । स्पर्शनजन्य अवग्रह, स्पर्शनजन्य ईहा, स्पर्शनजन्य अवाय और स्पर्शनजन्य धारणा । रसनाजन्य अवग्रह, रसनाजन्य ईहा, रसनाजन्य अवाय और रसनाजन्य धारणा । घ्राणज अवग्रह, घ्राणज ईहा, घ्राणज अवाय और घ्राणज धारणा । चाक्षुष अवग्रह, चाक्षुषी ईहा, चाक्षुष अवाय और चाक्षुषी धारणा । श्रोत्रजन्य अवग्रह, श्रोत्रजन्य ईहा, श्रोत्रजन्य अवाय और श्रोत्रजन्य धारणा । इस प्रकार मतिज्ञानके चौबीस भेद होते हैं । अवग्रह आदिका लक्षण आगे ग्रन्थकार स्वयं ही कहेंगे ॥३०६॥

---

१ ब कारत्वमुक्तं । २ ब षोढा कथितं । ३ ब °त्रिभेद° । ४ ब णमग्रे शास्त्रकारः ।

मतिज्ञानविषयं व्यंजनमें दुमर्त्थमें दु द्विविधमक्कुं २। अल्लि इंद्रियंगळिदं प्राप्तमप्प विषयं व्यंजनमें बुदक्कुं। इंद्रियंगळिदमप्राप्तमप्प विषयमर्त्थमें बुदक्कुमा प्राप्ताप्राप्तार्थंगळोळु क्रमदिदं यथासंख्यं। आ व्यंजनार्थावग्रहभेदंगळेरडुं २ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवतः प्रवृत्तंगळप्पुवु। इंद्रियंगळिदं प्राप्तार्थविशेषग्रहणं व्यंजनावग्रहमक्कुं। मिंद्रियंगळिदमप्राप्तार्थविशेषग्रहणमर्त्थावग्रहमक्कुमें दु-
५ पेळ्दतेरं। व्यंजनव्यक्तं शब्दादिजातमें दितु तत्त्वार्थविवरणंगळोळु पेळल्पट्टुदितु पेळल्पट्टोडितो व्याख्यानदोडनें तु संगतमक्कुमें दोडे पेळल्पडुगुं।

विगतमंजनमभिव्यक्तिर्यस्य तद्व्यंजनं। व्यज्यते मृक्ष्यते प्राप्यत इति व्यंजनमें दितंज्जगति व्यक्ति मृक्षणेषु एंदितु व्यक्तिमृक्षणार्थंगळ्गे ग्रहणमप्पुदरिंदं। शब्दाद्यर्थं श्रोत्रादीद्रियंदिदं प्राप्तमुमा-
दोडमन्नेवरमभिव्यक्तमल्तन्नेवरमे व्यंजनमें दु पेळल्पट्टुदेकवारजलकणसिक्तनूतनशरावदंते मत्तम-
१० भिव्यक्तियागुत्तिरलदे अर्थमक्कुमें तीगळु पुनः पुनर्ज्जलकणसिच्यमाननूतनशरावमभिव्यक्तसेक-
मक्कुमदुकारणादिदं चक्षुर्म्मनस्सुगळऽप्राप्तमप्प विषयदोळु प्रथमोद्दिष्टव्यंजनावग्रहमिल्ल। चक्षु-
र्म्मनस्सुगळु स्वविषयमप्पार्थमं प्राप्य पोद्दिये अल्लिज्ञानमं पुट्टिसुगुमें ब नैय्यायिकादिमतं स्याद्वाद-

---

मतिज्ञानविषयो व्यञ्जन अर्थश्चेति द्विविध। तत्र इन्द्रियै प्राप्तो विषयो व्यञ्जन[२] तैरप्राप्त अर्थ। तयो प्राप्ताप्राप्तयोरर्थयो[३] क्रमश यथासख्य तौ व्यञ्जनार्थावग्रहभेदौ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवत। इन्द्रियै
१५ प्राप्तार्थविशेषग्रहण व्यञ्जनावग्रह। तैरप्राप्तार्थविशेषग्रहण अर्थावग्रह इत्यर्थ। व्यञ्जनं—अव्यक्त शब्दादिजातं इति तत्त्वार्थविवरणेपु[४] प्रोक्त कथमनेन व्याख्यानेन सह सगतमिति चेदुच्यते। विगतं—अञ्जन—अभिव्यक्तिर्यस्य तद्व्यञ्जनम्। व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यञ्जन अञ्जु गतिव्यक्तिम्रक्षणेष्विति व्यक्तिम्रक्षणार्थयोर्ग्रहणात्। शब्दाद्यर्थ. श्रोत्रादीन्द्रियेण प्राप्तोऽपि यावन्नाभिव्यक्तस्तावद् व्यञ्जनमित्युच्यते एकवारजलकणसिक्तनूतन-शरावत्। पुनरभिव्यक्तौ सत्या स एवार्थो भवति। यथा पुन पुनर्जलकणसिच्यमाननूतनशराव अभिव्यक्तसेको
२० भवति। अत कारणात् चक्षुर्मनसोऽप्राप्ते विपये प्रथमो व्यञ्जनावग्रहो नास्ति। चक्षुर्मनसी स्वविषयमर्थं प्राप्यैव तत्र ज्ञान जनयत, इति नैयायिकादीना मत स्याद्वादतर्कग्रन्थेपु बहुधा निराकृतमित्यत्राहेतुवादे आगमाश्रे

मतिज्ञानका विषय दो प्रकारका है—व्यंजन और अर्थ। उनमें-से इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त विषयको व्यंजन और अप्राप्तको अर्थ कहते है। उन प्राप्त और अप्राप्त अर्थोंमें क्रमसे व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह प्रवृत्त होते है। इन्द्रियोंसे प्राप्त अर्थके विशेष ग्रहणको व्यंजना-
२५ वग्रह कहते हैं, और अप्राप्त अर्थके विशेष ग्रहणको अर्थावग्रह कहते है।

शंका—तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें कहा है, शब्दादिसे होनेवाले अव्यक्त ग्रहणको व्यंजन कहते हैं। उसकी संगति इस व्याख्याके साथ कैसे सम्भव है?

समाधान—'अंजु' धातुके तीन अर्थ है—गति, व्यक्ति और म्रक्षण। यहाँ उनमें-से व्यक्ति और म्रक्षण अर्थ लेकर व्यंजन शब्द बना है। 'विगतं-अंजनं-अभिव्यक्तिर्यस्य' जिसका
३० अंजन अर्थात् अभिव्यक्ति दूर हो गया है वह व्यंजन है। यह अर्थ तत्त्वार्थकी टीकामें लिया है। 'व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनम्' जो प्राप्त हो वह व्यंजन है यह यहाँ ग्रहण किया हैं। शब्द आदि रूप अर्थ श्रोत्र आदि इन्द्रियके द्वारा प्राप्त होनेपर भी जबतक व्यक्त नहीं होता तबतक उसे व्यंजन कहते है। जैसे एक बार जलबिन्दुसे सिक्त नया सकोरा। पुनः व्यक्त होनेपर उसे ही अर्थ कहते है। जैसे बार-बार जलविन्दुओंसे सींचे जानेपर नया

---

३५ १. म प्राप्तमुमैवुदर्त्थमं। २. ब °नमिन्द्रियैरप्राप्तो विपयोऽर्थ। ३. ब °साार्थयो। ४ ब °णे प्रोक्तमनेन सहेदं व्याख्यान कथ सगतं।

तर्कग्रंथंगळोळु बहुप्रकारदिंदं निराकरिसल्पट्टुदंतिल्लि अहेतुवादमप्पागमांशदोळुपक्रमिसल्पट्टुदिल्ल। व्यंजनमप्प विषयदोळु स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रंगळेंब नाल्किंद्रियंगळिंदमवग्रहमो दे पुट्टिसल्पडुवुदु ईहादिगळ् पुट्टिसल्पडवेकेंदोडे ईहादिज्ञानंगळगे देशसर्व्वाभिव्यक्तियागुत्तिरले उत्पत्तिसंभवमप्पुदरिंदं। तत्कालदोळु तद्विषयक्के अव्यक्तरूपव्यंजनत्वाऽभावमप्पुदरिंदं। इंतु व्यंजनावग्रहंगळु नाल्केयप्पुवु। ५

विसयाणं विसईणं संजोगाणंतरं हवे णियमा।
अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा ॥३०८॥

विषयाणां विषयिणां संयोगानंतरं भवेन्नियमात्। अवग्रहज्ञानं गृहीते विशेषाकांक्षा भवेदीहा॥

विषयाणां अर्थंगळ विषयिणामिंद्रियंगळ संयोगः योग्यदेशावस्थानमप्प संबंधसदुंटागुत्तिरलु अनंतरं तदनंतरमे वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यनिर्व्विकल्पग्रहणं प्रकाशरूपमप्प दर्शनं नियमादुत्पद्यते नियमदिंदं पुट्टुगुं। अनंतरं तदनंतर दृष्टमप्पर्थद वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूपमप्पवग्रहमेंब प्रसिद्धज्ञानं उत्पद्यते पुट्टुगुं। "अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीरवग्रहः" येंदितु श्रीमद्भट्टाकलंकपादंगळिंदं दर्शनपूर्व्वकं ज्ञानं छद्मस्थानामेंदितु श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्त्तिगळिंदमुं १० १५

नोपक्रम्यते। व्यञ्जनरूपे विषये स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रै चतुर्भिरिन्द्रियैः अवग्रह एवोत्पद्यते नेहादय'। ईहादीना ज्ञानाना देशसर्वाभिव्यक्तौ सत्यामेव उत्पत्तिसभवात्। तदा तद्विषयस्य अव्यक्तरूपव्यञ्जनत्वाभावात्। इति व्यञ्जनावग्रहाश्चत्वार एव ॥३०७॥

विषयाणां—अर्थाना, विषयिणा इन्द्रियाणा च सयोग.—योग्यदेशावस्थानरूपसंबन्ध तस्मिन् जाते सति अनन्तर-तदनन्तरमेव वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यस्य निर्विकल्पग्रहणमिदमिति प्रकाशरूप दर्शनं नियमादुत्पद्यते—नियमाज्जायते। अनन्तर तदनन्तरं दृष्टस्यार्थस्य वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूप अवग्रहाख्यं आद्यं ज्ञानं भवेत् उत्पद्यते। 'अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधी· अवग्रहः' इति श्रीमद्भट्टाकलङ्कपादै', 'दर्शनपूर्वकं २०

सकोरा भीग जाता है। इस कारणसे अप्राप्त विषयमें चक्षु और मनसे प्रथम व्यंजनावग्रह नहीं होता। चक्षु और मन अपने विषयभूत अर्थको प्राप्त होकर ही उसको जानते हैं यह नैयायिकोंका मत जैन तर्क ग्रन्थोंमें विस्तारसे खण्डित किया गया है। यह तो अहेतुवादरूप आगम ग्रन्थ है अतः यहाँ वैसा नहीं गिना है। व्यंजनरूप विषयमें स्पर्शन, रसना, घ्राण, श्रोत्र चार इन्द्रियोंसे एक अवग्रह ही उत्पन्न होता है, ईहा आदि नही होते। क्योंकि एकदेश या सर्वदेश अभिव्यक्ति होनेपर ही ईहा आदि ज्ञानोंकी उत्पत्ति सम्भव है। उस समय उनका विषय अव्यक्तरूप व्यंजन नहीं रहता। इसलिए व्यंजनावग्रह चार ही होते है ॥३०७॥

विषय अर्थात् अर्थ और विषयी अर्थात् इन्द्रियोंका, संयोग अर्थात् योग्य देशमें स्थित होनेरूप सम्बन्धके होते ही नियमसे दर्शन उत्पन्न होता है। वस्तुके सत्तामात्र सामान्यरूपके निर्विकल्प ग्रहणको दर्शन कहते हैं। दर्शनके पश्चात् ही दृष्ट अर्थके वर्ण-आकार आदि विशेष रूपको ग्रहण करना अवग्रह नामक आद्यज्ञान उत्पन्न होता है। श्रीमद् भट्टाकलंक देवने लघीयस्त्रयमें कहा है—इन्द्रिय और अर्थका योग होते ही सत्तामात्रका दर्शन होता है। उसके

---

१. म 'व्य'।

पेळल्पट्टुदरिंदमिंद्रियार्त्थसंबंधानंतरं दर्शनं पुट्टुगुमेंदु पेल्दी गाथासूत्रदोळनुक्तमुं पूर्व्वाचार्य्यवचनानुसारिंदिदं व्याख्यानिसल्पट्टुदु ग्राह्यमक्कुं कैकोळल्पडुवुदेंबुदर्त्थं। गृहीते अवग्रहदिंदमिदु श्वेतमे दितु ज्ञातार्त्थदोळु विशेषमप्प वलाकारूपक्कागलु पताकारूपक्कागलु यथावस्थितवस्तुविनाऽकांक्षे वलाकया भवितव्यमेंदितु भवितव्यताप्रत्ययरूपमप्प वलाकेयोळे संजायमानमीहे येंब द्वितीयज्ञानमक्कुमथवा पताकारूपमप्प विषयमनवलंबिसि उत्पद्यमानमनथा पताकया भवितव्यमेंदितु भवितव्यताप्रत्ययरूपं पताकेयोळे संजायमानाकांक्षे ईहेयेंब द्वितीयज्ञानमक्कुमिन्द्रियांतरविषयंगळोळं मनोविषयदोळमवग्रहगृहीतदोळु यथावस्थितमप्प विशेषदाकांक्षारूपमीहे येदितु निश्चितव्यमक्कुमेकेंदोडे मतिज्ञानावरणक्षयोपशमतारतम्यभेदिंदमवग्रहेहाज्ञानंगळगे भेदसंभवमुळ्ळुदरिंदमी सम्यज्ञानप्रकरणदोळुवलाका वा पताका वा येंदितु संशयमक्कु वलाकेयोळु पताकया भवितव्यमेंदितु विपर्य्ययक्कुमुमी मिथ्याज्ञानंगळगनवतारमेंदरियल्पडुगुं।

ज्ञान छद्मस्थाना' इति श्रीनेमिचन्द्रसैद्धान्तचक्रवर्तिभिरपि प्रोक्तत्वात्, इन्द्रियार्थसबन्धानन्तर दर्शनमुत्पद्यते इत्येतस्मिन् गाथासूत्रे अनुक्तमपि पूर्वाचार्यवचनानुसारेण व्याख्यान ग्राह्यमित्यर्थ। गृहीते—अवग्रहेण इद श्वेतमिति ज्ञाते अर्थविशेषस्य वलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितवस्तुन आकाङ्क्षा वलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूप वलाकायामेव सजायमान ईहारूप द्वितीय ज्ञान भवेत्। अथवा पताकारूप विषयमालम्ब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा पताकायामेव सजायमाना आकाङ्क्षा ईहेति द्वितीय ज्ञान भवेत्। एव इन्द्रियान्तरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थितरूपविशेषस्य आकाङ्क्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यम्। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसभवात्। अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे वलाका वा पताका इति सशयस्य, वलाकाया पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात्[1] ॥३०८॥

अनन्तर अर्थके आकारादिको लिये हुए जो सविकल्प ज्ञान होता है वह अवग्रह है। श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीने भी कहा है कि छद्मस्थोंके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। यद्यपि इस गाथासूत्रमे यह नहीं कहा है कि इन्द्रिय और अर्थका सम्बन्ध होनेके अनन्तर दर्शन उत्पन्न होता है। फिर भी पूर्वाचार्योंके वचनके अनुसार व्याख्यान करना चाहिए। 'गृहीते' अर्थात् अवग्रहके द्वारा 'यह श्वेत है' ऐसा जाननेपर वलाकारूप या पताकारूप यथावस्थित अर्थको जाननेकी आकांक्षा यह वलाका—वगुलोंकी पंक्ति होना चाहिए इस प्रकार वगुलोंकी पंक्तिमे ही जो भवितव्यतारूप ज्ञान होता है वह ईहा है। अथवा पताकारूप विषयका आलम्बन लेकर अर्थात् यदि अवग्रहसे जानी हुई श्वेत वस्तु पताका प्रतीत हो तो यह पताका होनी चाहिए, इस प्रकार जो पताकामें ही भवितव्यता प्रत्ययरूप आकांक्षा होती है वह दूसरा ईहा ज्ञान है। इस प्रकार अन्य इन्द्रियोंके विषयमे और मनके विषयमे अवग्रहसे गृहीत वस्तुमें यथावस्थित विशेषकी आकांक्षारूप ज्ञान ईहा है यह निश्चय करना चाहिए। मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमकी हीनाधिकताके भेदसे अवग्रह और ईहा ज्ञानमे भेद होता है। इस सम्यग्ज्ञानके प्रकरणमें 'यह वलाका है या पताका' इस संशयको तथा वलाकामे यह पताका होनी चाहिए, इस विपरीत मिथ्याज्ञानको स्थान नहीं है ॥३०८॥

---

१ व °तार इति ज्ञातव्यम्।

ईहणकरणेण जदा सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु ।
कालंतरेवि णिण्णिदवत्थुसुमरणस्स कारणं तुरियं ॥३०९॥

ईहनकरणेन यदा सुनिर्णयो भवति सोऽवायस्तु । कालांतरेपि निर्णीतवस्तुस्मरणस्य कारणं तुर्य्यं ॥

ईहनकरणेन विशेषाकांक्षाकरणदिंदं बळिकं यदा आगळोम्मे ईहितविशेषार्थद सुनिर्णयः उत्पतननिपतनपक्षविक्षेपादिचिह्नंगळिंदमिदु बलाकैये येंदितु बलाकात्वक्कये आवुदो दु सुनिश्चयमक्कुमागळु सः अदु अवाय इति अवायमेंदितु अवयवोत्पत्तिरवायः एंब व्यपदेशमक्कुं । तु शब्दं पेरगाकांक्षितविशेषक्कये सुनिर्णयमवायमेंदितवधारणार्थमिदरिंदं विपर्य्यासिंदिदं निर्णयं मिथ्याज्ञानतेयिंदमवायमेंतेंदितु ग्राह्यमक्कुमल्लि बळिक्कं स एवावायः आ अवायमे पुनः पुनः प्रवृत्तिरूपाभ्यासजनितसंस्कारात्मकमागि कालांतरदोळं निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वदिंदं तुरियं चतुर्थं धारणाख्यं ज्ञानं भवे अक्कुं ।

बहुबहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।
तत्थेक्केक्के जादे छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥३१०॥

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवं चेतरं च । तत्रैकैकस्मिन् जाते षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदं तु ॥

अर्थमु व्यंजनमुमेंब मतिज्ञानविषयं द्वादशप्रकारमक्कुमें तेंदोडे बहुर्ब्बहुविधः क्षिप्रोऽनिःसृतोऽनुक्तो ध्रुवश्चेति । येंदु षट्प्रकारमुं । एक एकविधोऽक्षिप्रोऽनिःसृत उक्तोऽध्रुवश्चेति । येंदु षट्प्रकारमितरभेदमुं कूडि द्वादशविधमक्कुमल्लि बह्वादिद्वादशविषयभेदंगळोळु एकैकस्मिन्

ईहनकरणेन-विशेषाकाङ्क्षाक्रियाया पश्चात् यदा ईहितविशेषार्थस्य सुनिर्णयः उत्पतनपतनपक्षविक्षेपादिभिश्चिह्नै. इयं वलाकैवेति बलाकात्वस्य य सुनिश्चयो भवेत् तदा स[1] अवाय इति व्यपदिश्यते । तुशब्द प्रागाकाङ्क्षितविशेषस्यैव[2] सुनिर्णयोऽवाय इत्यवधारणार्थ. । अनेन विपर्यसेन निर्णयो मिथ्याज्ञानतया अवायो न भवतीति ग्राह्यम्[3] । ततः स एवावाय पुन पुन प्रवृत्तिरूपाभ्यासजनितसस्कारात्मको भूत्वा कालान्तरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वेन तुर्य चतुर्थ धारणाख्यं ज्ञान भवति ॥३०९॥

अर्थो व्यञ्जनं वा मतिज्ञानविषय बहु. बहुविध क्षिप्र. अनिसृत अनुक्तो ध्रुवश्चेति षोढा । तथा इतरोऽपि एक. एकविध अक्षिप्र निसृत उक्त अध्रुवश्चेति षोढा एव द्वादशधा भवति । तत्र द्वादशस्वपि

विशेषकी आकांक्षारूप ईहा ज्ञानके पश्चात् जब ईहित विशेष अर्थका सुनिर्णय हो जाता है । जैसे ऊपर-नीचे होने तथा पंखोके हिलाने आदि चिह्नोंसे यह बलाका ही है इस प्रकार निश्चयके होनेको अवाय कहते हैं । 'तु' शब्द पहले आकांक्षा किये गये विशेष वस्तुके निर्णयको ही अवाय कहते है यह अवधारणके लिए है । इससे यह ग्रहण करना चाहिए कि वस्तु तो कुछ और है और निर्णय अन्य वस्तुका किया तो वह अवाय नहीं है । वही अवाय बार-बार प्रवृत्तिरूप अभ्याससे उत्पन्न संस्काररूप होकर कालान्तरमें भी निर्णीत वस्तुके स्मरणमें कारण होता है तो धारण नामक चतुर्थ ज्ञान होता है ॥३०९॥

अर्थ या व्यंजनरूप मतिज्ञानका विषय बारह प्रकारका होता है—बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव ये छह तथा इनके प्रतिपक्षी एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त

---

१. ब स अवयवोत्पाद अवाय । २. ब काङ्क्षालक्षित वि° । ३. °ह्य पश्चात् स' ।

वो दो दु विषयदोळु पेरगे पेळ्दष्टाविंशतिप्रकारमप्प मतिज्ञानं जाते सति पुट्टुत्तमिरलु मतिज्ञानं तु पुनः मत्ते षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदमक्कुमेंतेंदोडे अर्थात्मकबहुविषयमोंदरोळु अनिन्द्रियेंद्रिय-भेदर्दिदं मतिज्ञानंगळु षट्प्रकारंगळप्पु ६ वल्लि प्रत्येकमवग्रहेहावायधारणा एंब मतिज्ञानभेदंगळु नाल्कुं नाल्कुमागलुमारक्कमिप्पत्तनाल्कुं भेदंगळपुट्टुव २४वी प्रकारदिंदं व्यंजनात्मक बहुविषयदोळु स्पर्शनरसनघ्राण श्रोत्रंगळेंब चतुष्कदिदं चतुरवग्रहज्ञानंगळे पुट्टुर्वेंतु अर्थव्यंजनात्मकबहुविषय-दोळु कूडि मतिज्ञानभेदंगळष्टाविंशतिप्रकारंगळप्पु २८ वी प्रकारदिंदमे अर्थव्यजनात्मकबहुविधादि-गळोळु प्रत्येकमष्टाविंशतिअष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदंगळागुत्तमिरलु अर्थव्यजनात्मकबहुविषयादि पन्नेरडुं विषयंगळोळु पुट्टुव मतिज्ञानभेदगळु षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदंगळप्पुवु ३३६।

बहुवत्तिजादिगहणे वहुवहुविहमियरमियरगहणम्मि ।
सगणामादो सिद्धा खिप्पादी सेदरा य तहा ॥३११॥

बहुव्यक्तिजातिग्रहणे बहुबहुविधमितरमितरग्रहणे । स्वकनामतः सिद्धाः क्षिप्रादयः सेतराश्च तथा ॥

एकैकस्मिन् विषये प्रागुक्ताष्टाविंशतिप्रकारे मतिज्ञाने जाते उत्पन्ने सति मतिज्ञान तु पुन षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेद भवति ३३६। तद्यथा—बहुविषये अर्थात्मके अनिन्द्रियेन्द्रियभेदेन मतिज्ञानस्य भेदा षट्, त एव पुन अवग्रहेहावायधारणाभेदेन प्रत्येक चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्विंशति । तथा व्यञ्जनात्मके तु स्पर्शनरसनघ्राण-श्रोत्रैश्चत्वारोऽवग्रहा एव । एवमर्थव्यञ्जनात्मके बहुविषये मिलित्वा मतिज्ञानभेदा अष्टाविंशतिर्भवन्ति । अनेन प्रकारेण अर्थव्यञ्जनात्मकबहुविधादिष्वपि प्रत्येकमष्टाविंशत्यष्टाविंशतिज्ञानभेदेषु जातेषु द्वादशविषयेषु मतिज्ञानभेदा षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतीप्रमिता भवन्ति । यद्येकस्मिन्विषये अष्टाविंशतिर्मतिज्ञानभेदा भवन्ति तदा द्वादशसु विषयेषु कियन्तो मतिज्ञानभेदा भवन्तीति प्र १। फ २८। इ १२ त्रैराशिक कृत्वा इच्छां फलेन सगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा लब्धस्य तत्प्रमाणत्वात् ॥३१०॥

और अध्रुव। इन बारहोंमें-से एक-एक विषयमें पूर्वोक्त अट्ठाईस भेदरूप मतिज्ञानके उत्पन्न होनेपर मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस ३३६ भेद होते है। जो इस प्रकार जानना—बहुविषयरूप अर्थमें अनिन्द्रिय और इन्द्रियके भेदसे मतिज्ञानके छह भेद होते है। वे ही अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणाके भेदसे प्रत्येकके चार-चार होकर चौबीस होते हैं। तथा व्यंजनरूप विषयमें स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्रके द्वारा चार अवग्रह ही होते है। इस प्रकार अर्थ और व्यंजनरूप बहुविषयमें मिलकर मतिज्ञानके अठाईस भेद होते है। इस प्रकार अर्थ व्यंजनरूप बहुविध आदिमें भी प्रत्येकके अठाईस भेद होनेपर बारह विषयोंमें मतिज्ञानके भेद तीन सौ छत्तीस होते है। यदि एक विषयमें मतिज्ञानके भेद अठाईस होते है तो बारह विषयोंमें मतिज्ञानके भेद कितने होते हैं? इस प्रकार त्रैराशिक प्रमाणराशि एक, फलराशि अठाईस, इच्छाराशि बारह स्थापित करके फलराशि अठाईसको इच्छाराशि बारहसे गुणा करके प्रमाण-राशि एकसे भाग देनेपर मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद होते है ॥३१०॥

---

१. म पुट्टुत्त विरलु। २ म °रमप्पु°।

बहुव्यक्ति विषयग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयमुं बहु एंदितु पेळल्पट्टुदु, एंतीगळु खंडमुंडशबलादि बहुगोव्यक्तिगळिवें दितु । बहुजातिग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयं बहुविधमें दु पेळल्पट्टुदु । यें तीगळु गोमहिषाश्वादिबहुजातिगळें दितु । इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयमेकः ओंदु यें तीगळु खंडनिदें दितु । एकजातिग्रहणमतिज्ञानदोळु तद्विषयमेकविधमें तीगळु खंडनागलि मुंडनागलियदु गोवेयें दितु । ५

क्षिप्रादिगळु क्षिप्राऽनिःसृतानुक्तध्रुवंगळं सेतरंगळुमक्षिप्रनिःसृत उक्त अध्रुवंगळु तंतम्म नामदिंदमे सिद्धंगळऽदें ते दोडे क्षिप्रमें बुदु शीघ्रदिनिळितप्प जलधाराप्रवाहादियक्कुमनिःसृतमें बुदु गूढं जलमग्नहस्त्यादियक्कुमनुक्तमें बुदु अकथितमभिप्रायगतमक्कुं । ध्रुवमें बुदु स्थिरं चिरकालावस्थायिपर्व्वतादियक्कुमक्षिप्रमें बुदु मंदगमनाश्वादियक्कुं । निःसृतमें बुदु व्यक्तनिष्क्रांतं जलनिर्गतहस्त्यादियक्कुमुक्तमें बुदु इदु घटमें दितु पेळल्पट्टु दृश्यमानमक्कुमध्रुवमें बुदु क्षणस्थायि विद्युदादियक्कुं । १०

वत्थुस्स पदेसादो वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा ।
सयलं वा अवलंबिय अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ॥३१२॥

वस्तुनः प्रदेशतो वस्तुग्रहणं तु वस्तुदेशं वा । सकलं वाऽवलंब्यानिःसृतमन्यवस्तुगतिः ॥

बहुव्यक्तीना ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुरित्युच्यते यथा खण्डमुण्डशबलादिबहुगोव्यक्तय । बहुजातीना ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुविध[2] इत्युच्यते यथा गोमहिषाश्वादिबहुजातय इति । इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकः यथा खण्डोऽयमिति । एकजातिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकविध यथा खण्डो वा मुण्डो वा गौरिति । क्षिप्रादय. क्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवा स्वेतरे च अक्षिप्रनिसृतोक्ताध्रुवाश्च स्वस्वनामत एव सिद्धा । तथाहि क्षिप्र शीघ्रपतज्जलधाराप्रवाहादि । अनिसृत. गूढो जलमग्नहस्त्यादि । अनुक्त. अकथित अभिप्रायगत । ध्रुवः स्थिर चिरकालावस्थायी पर्वतादि । अक्षिप्र मन्दं गच्छन्नश्वादि । निसृत व्यक्तनिष्क्रान्तः जलनिर्गतहस्त्यादि । उक्त. अय घट इति कथितो दृश्यमान । अध्रुव क्षणस्थायी विद्युदादि. । तथा चेतिशब्दौ समुच्चयार्थौ ॥३११॥ १५ २०

जो मतिज्ञान बहुत व्यक्तियोंको ग्रहण करता है उसके विषयको बहु कहते है जैसे खण्डी, मुण्डी, चितकबरी आदि बहुत-सी गायें। जो मतिज्ञान बहुत-सी जातियोंको ग्रहण करता है उसके विषयको बहुविध कहते है। जैसे गाय, भैस, घोड़ा आदि बहुत-सी जातियाँ। जो मतिज्ञान एक व्यक्तिको ग्रहण करता है उसके विषयको एक कहते है जैसे खण्डी गौ। जो मतिज्ञान एक जातिको ग्रहण करता है उसके विषयको एकविध कहते है जैसे खण्डी या मुण्डी गौ। शेष क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त, ध्रुव और उनके प्रतिपक्षी अक्षिप्र, निसृत, उक्त, अध्रुव तो अपने नामसे ही स्पष्ट हैं। क्षिप्र जैसे शीघ्र गिरती हुई जलधाराका प्रवाह आदि। अनिसृत गूढको कहते हैं जैसे जलमें डूबा हाथी आदि। अनुक्त विना कहे हुए को या अभिप्रायमें वर्तमानको कहते है। ध्रुव स्थिरको कहते हैं जैसे चिरकाल तक स्थायी पर्वत आदि। अक्षिप्र जैसे धीरे-धीरे जाता हुआ घोड़ा वगैरह। निसृत व्यक्त या निकले हुएको कहते है। जैसे जलसे निकला हाथी आदि। उक्त 'यह घट है' इस प्रकारसे जो कहा गया वह विषय उक्त है। अध्रुव जैसे क्षणस्थायी बिजली आदि। तथा और चशब्द समुच्चयवाची है ॥३११॥

---

१ ब बहुर्यथा। २ ब बहुविध यथा।

ओंदानुमोंदु वस्तुविन प्रदेशात् एकदेशदोडनविनाभावियप्पव्यक्तमप्प वस्तुविन ग्रहणमनिसृतज्ञानमेंबुदथवा ओंदु वस्तुविन एकदेशमं मेणु सकलं वस्तुवं मेणवलंबिसिकोंडु मत्तमन्यवस्तुविन गतिः ज्ञानमावुदोंदद्दुमनिःसृतज्ञानमक्कुमदक्कुदाहरणमं तोरिदपं।

पुक्खरगहणे काले हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा।
वत्थंतरचंदस्स य धेणुस्स य बोहणं च हवे ॥३१३॥

पुष्करग्रहणे काले हस्तिनश्च वदनगवयग्रहणे वा। वस्त्वंतरचंद्रस्य च धेनोश्च बोधनं च भवेत् ॥

जलदिंदं पोरगे दृश्यमानमप्प पुष्करद जलमग्नहस्तिकराग्रद ग्रहणकालदोळु, दर्शनकालदोळु तदविनाभावि जलमग्नहस्तिग्रहणं जलदोळु हस्तिमग्ननिर्द्दुपुदेंदितु प्रतीति वा इव एंतंते इदरिंदमी साध्याविनाभावनियमनिश्चयमनुळ्ळ साधनदत्तणिं "साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानमेंदितु अनुमानप्रमाणं संगृहीतमक्कुं। अथवा ओंदानुमोर्व्व युवतिय वदनग्रहणकाले वदनदर्शनकालदोळे वस्त्वंतरचंद्रग्रहणं मुखसादृश्यदिंदं चंद्रस्मरणं चंद्रसदृशं मुखमेंदितु प्रत्यभिज्ञान मेणरण्यदोळु गवयग्रहणकाले गवयदर्शनकालदोळे धेनुविन बोधनं धेनुविन स्मरणं गोसदृशं गवयमेंदितु प्रत्यभिज्ञानं मेणु भवेत् अक्कुं। अनंतरगाथोक्तमप्पनिःसृतज्ञानदिकनितुमुदाहरणंगळु। वा शब्दं पक्षांतरसूचकं मेणु एंतीगळु

कस्यचिद्वस्तुन, प्रदेशाद्-एकदेशाद् व्यक्तात् तदविनाभाविनोऽव्यक्तस्य वस्तुनो ग्रहण अनिसृतज्ञानम्। अथवा एकस्य वस्तुन एकदेशं वा सकल वस्तु वा अवलम्ब्य गृहीत्वा पुनरन्यस्य वस्तुनो गति –ज्ञानं यत्, तदप्यनिसृतज्ञानं भवति ॥३१२॥ तदुदाहरति–

पुष्करस्य जलाद्बहिर्दृश्यमानस्य जलमग्नहस्तिकराग्रस्य ग्रहणकाले दर्शनकाले एव तदविनाभाविजलमग्नहस्तिग्रहण जले हस्तो मग्नोऽस्तीति प्रतीति। वा इव यथा अनेन अस्मात् साध्याविनाभावनियमनिश्चयात् साधनात् साध्यस्य ज्ञानमनुमानमिति अनुमानप्रमाणं सगृहीत भवति। अथवा कस्याश्चित् युवतेर्वदनग्रहणकाले वस्त्वन्तरस्य चन्द्रस्य ग्रहणम्। मुखसादृश्याच्चन्द्रस्य स्मरण चन्द्रसदृश मुखमिति प्रत्यभिज्ञानं वा। अरण्ये गवयग्रहणकाले गवयदर्शनकाल एव धेनोर्बोधन स्मरण गोसदृशो गवय इति प्रत्यभिज्ञान वा भवेत्। वा इव

किसी वस्तुके प्रकट हुए एकदेशको देखकर उसके अविनाभावी अप्रकट अंशको ग्रहण करना अनिसृत ज्ञान है। अथवा एक वस्तुके एकदेश या समस्त वस्तुको ग्रहण करके अन्य वस्तुको जानना भी अनिसृत ज्ञान है ॥३१२॥

उसका उदाहरण देते हैं—

जलमें डूबे हुए हाथीकी जलसे बाहर दिखाई देनेवाली सूँडको देखते ही उसके अविनाभावी जलमग्न हस्तिका ग्रहण अनिसृत ज्ञान है। इससे, जिसका साध्यके साथ अविनाभाव नियम निश्चित है ऐसे साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते हैं इस अनुमान प्रमाणका संग्रह होता है। अथवा किसी युवतीके मुखको ग्रहण करते समय अन्य वस्तु चन्द्रमाका ग्रहण अथवा मुखकी समानतासे चन्द्रमाका स्मरण कि चन्द्रके समान मुख है अथवा गवयको देखते ही गायका स्मरण या गौके समान गवय है यह प्रत्यभिज्ञान इससे गृहीत होता है। 'वा' शब्द उदाहरणके प्रदर्शनमें प्रयुक्त हुआ है। जो बतलाता है कि अनन्तर

---

१. म °भावियप्प प्रतीत्यनिश्चयदत्तणिंद साधना°।

[1]वाणसिगनावासदोळग्नियुंटागुत्तिरले पुट्टिद धूमं काणल्पट्टुदु अनग्निह्रददोळु धूममनुप्पन्नं निश्चितमंते सर्व्वदेशसर्व्वकालसंबंधितेयिंदमग्नि धूमंगळ अन्ययानुपपत्तिरूपाऽविनाभावसंबंधक्के ज्ञानं तर्कमें बुदकुं अदुवुं मतिज्ञानमक्कुमितनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्क्कांख्यंगळु नाल्कुं मतिज्ञानंगळुमनिःसृतार्त्थविषयंगळु केवलपरोक्षंगळेकें दोडेकदेशदिंदमुं वैशद्याभावमप्पुदरिंदं। शेषस्पर्शनादीद्रियानिंद्रियव्यापारप्रभवंगळप्प बह्वाद्यर्त्थविषयमतिज्ञानंगळु सांव्यवहारिकप्रत्यक्षंगळप्पुवेकें दोडेकदेशदिंदं वैशद्यसंभवदिंदं प्रत्यक्षं विशदज्ञानमेंदितु पूर्व्वाचार्य्यरुगळिंदं प्रत्यक्षक्के लक्षणं पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं। यिंतवेल्लमुं मतिज्ञानंगळु प्रमाणंगळप्पुवेकेंदोडे सम्यग्ज्ञानत्वदिंदं सम्यग्ज्ञानं प्रमाणमेंदितु प्रवचनदोळु पेळल्पट्टुदरिंदं।

एक्कचउक्कं चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा।
इगिछब्बारसगुणिदे मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥३१४॥

एकं चत्वारि चतुर्विंशतिमष्टाविंशतिं च त्रिः प्रति कृत्वा। एक षड्द्वादशगुणिते मतिज्ञाने भवन्ति स्थानानि॥

यथा अत्र इवार्थद्योतको वाशब्दः उदाहरणप्रदर्शने प्रयुक्तः अनन्तरगाथोक्तानिसृतार्थज्ञानस्य एतावन्त्युदाहरणानि। पक्षान्तरसूचको वा। यथा महानसे अग्नौ सत्येव धूम उपपन्नो दृष्टः। ह्रदे अग्न्यभावे धूमोऽनुपपन्नो निश्चित। तथैव सर्वदेशकालसंबन्धितया अग्निधूमयोरन्यथानुपपत्तिरूपस्य अविनाभावसंबन्धस्य ज्ञानं तर्क सोऽपि मतिज्ञानं भवति। एवमनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काख्यानि चत्वारि मतिज्ञानानि अनिसृतार्थविषयाणि केवलं परोक्षाणि एकदेशतोऽपि वैशद्याभावात्। शेषाणि स्पर्शनादीन्द्रियानिन्द्रियव्यापारप्रभवानि बह्वाद्यर्थविषयाणि मतिज्ञानानि साव्यवहारिकप्रत्यक्षाणि एकदेशतो वैशद्यसंभवात्। प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानमिति पूर्वाचार्यैः[2] प्रत्यक्षलक्षणस्योक्तत्वात्। तानि सर्वाणि अपि मतिज्ञानानि प्रमाणानि सम्यग्ज्ञानत्वात्। सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं, इति प्रवचने प्रतिपादनात् ॥३१३॥

गाथामें कहे अनिसृत अर्थके ज्ञानके ये उदाहरण हैं। अथवा वा शब्द पक्षान्तरका सूचक है। जैसे रसोई घरमें अग्निके होनेपर ही धूम देखा जाता है। तालाबमें अग्निका अभाव होनेसे धूम भी नहीं होता। तथा सर्वदेश और सर्वकाल सम्बन्धी रूपसे आग और धूमके अन्यथानुपपत्तिरूप अविनाभाव सम्बन्ध—कि जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है। जहाँ आग नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता—का ज्ञान तर्क है। यह भी मतिज्ञान है। इस प्रकार अनुमान, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और तर्क नामक चारों ज्ञान मतिज्ञान हैं। ये चारों अनिसृत अर्थको विषय करते हैं इससे केवल परोक्ष हैं, एकदेशसे भी इनमे स्पष्टताका अभाव है। शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ और मनके व्यापारसे उत्पन्न होनेवाले तथा बहु आदि अर्थको विषय करनेवाले मतिज्ञान सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है क्योंकि एकदेशसे स्पष्ट होते हैं। स्पष्ट ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं। इस प्रकार पूर्वाचार्योंने प्रत्यक्षका लक्षण कहा है। ये सब मतिज्ञान प्रमाण है क्योकि सम्यग्ज्ञान है। 'सम्यग्ज्ञान प्रमाण है' ऐसा आगममें कहा है ॥३१३॥

---

१ म प्रमाण। २ ब °स्यकथनात्।

मतिज्ञानं सामान्यापेक्षेयिंदमो दु १। अवग्रहेहावायधारणापेक्षेयिंदं नाल्कु ४। इंद्रियानिंद्रियजनितार्त्थावग्रहेहावायधारणापेक्षेयिंदं चतुर्व्विंशति २४। अर्त्थव्यंजनोभयावग्रहापेक्षेयिंदं अष्टाविंशतिगळुमप्पु २८। वितु नाल्कुं स्थानंगळं त्रिःप्रतिकंगळं माडि यथाक्रम प्रथमस्थानचतुष्टयमं विषयसामान्यदिंदमो[1]दरिंदं गुणिसुवुदु। द्वितीयस्थानचतुष्टयमं बह्वादिविषयषट्कदिंदं गुणियिसुवुदु। तृतीयस्थानचतुष्टयमं बह्वादिद्वादशविषयंगळिंदं गुणिसुवुदितु गुणिसुत्तमिरलु मतिज्ञानदोळु विषयसामान्यार्धविषयसर्वविषयापेक्षंगळप्प स्थानंगळप्पुवु

२८।१	२८।६	२८।१२
२४।१	२४।६	२४।१२
४।१	४।६	४।१२
१।१	१।६	१।१२

अनंतरं श्रुतज्ञानप्ररूपणेयं प्रारंभिसुवातं मोदलोळन्नेवरं तत्सामान्यलक्षणं पेळ्दपं :—

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभं तं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥३१५॥

अर्त्थादर्त्थांतरमुपलभमानं तद्भणंति श्रुतज्ञानमाभिनिबोधिकपूर्व्वं नियमेनेह शब्दजं प्रमुखं ॥

मतिज्ञानं सामान्येन एक १। अवग्रहेहावायधारणापेक्षया चत्वारि ४। इन्द्रियानिन्द्रियजनितार्थावग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुर्विंशति २४। अर्थव्यञ्जनोभयावग्रहापेक्षया अष्टाविंशति २८। एतानि चत्वारि स्थानानि त्रि प्रतिकानि—

२८।१	२८।६	२८।१२
२४।१	२४।६	२४।१२
४।१	४।६	४।१२
१।१	१।६	१।१२

कृत्वा यथाक्रम प्रथमं स्थानचतुष्टयं विषयसामान्येनैकेन गुणयेत्। द्वितीय स्थानचतुष्टय बह्वादिविषयषट्केन गुणयेत्। तृतीय स्थानचतुष्टय बह्वादिभिर्द्वादशविषयैर्गुणयेत्। एव गुणिते सति मतिज्ञाने सामान्यविषयार्धविषयसर्वविषयापेक्षया स्थानानि भवन्ति ॥३१४॥ अथ श्रुतज्ञानप्ररूपणा प्रारभमाण प्रथमस्तावत्तत्सामान्यलक्षण[2]माह—

मतिज्ञान सामान्यसे एक है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी अपेक्षा चार है। इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाकी अपेक्षा चौबीस है। अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहकी अपेक्षा अठाईस है। इन चारों स्थानोंको तीन जगह स्थापित करके यथाक्रम प्रथम चार स्थानोंको सामान्य विषय एकसे गुणा करना चाहिए। दूसरे चार स्थानोंको बहु आदि छह विषयोंसे गुणा करना चाहिए। तीसरे चार स्थानोंको बहु आदि बारह विषयोंसे गुणा करना चाहिए। इस तरह गुणा करनेपर मतिज्ञानके सामान्य विषय, बहु आदि छह अर्धविषय और सर्व विषयकी अपेक्षा स्थान होते हैं। यथा—॥३१४॥

२८×१	२८×६	२८×१२
२४×१	२४×६	२४×१२
४×१	४×६	४×१२
१×१	१×६	१×१२

अब श्रुतज्ञान प्ररूपणाको प्रारम्भ करते हुए पहले श्रुतज्ञानका सामान्य लक्षण कहते है—

---

१ म °दिद गु°। २ ब °ण प्ररूपयति।

मतिज्ञानदिंदं निश्चितमादर्त्थदिंदं तदर्त्थमनवलंबिसि अर्त्थांतरं तत्संबंधमन्यार्त्थमं उपलंभमानं अवबुध्यमानमं श्रुतज्ञानावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नमं जीवज्ञानपर्य्यायमं श्रुतज्ञानमेंदितु मुनीश्वररुगळु भणंति पेळ्वरु। अदेंतप्पुदेंदोडे आभिनिबोधिकपूव्वं नियमेन आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं पूव्वं कारणं यस्य तदाभिनिबोधिकपूव्वं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमदिंदं मतिज्ञानमे मोदलोळ् पुट्टुगुं मत्ते तद्गृहीतार्त्थमनवलंबिसि तद्बलादानंदिंदमर्त्थांतरविषयमप्प श्रुतज्ञानं पुट्टुगुं मत्तों डु प्रकारदिंदं पुट्टदेंदितु नियमशब्दंदिंदं मतिज्ञानप्रवृत्यभावदोळु श्रुतज्ञानाभावमेंदितवधारणमरिपल्पट्टुदु। इह ई श्रुतज्ञानप्रकरणदोळु अक्षरानक्षरात्मकंगळप्प शब्दजमुं लिंगजमुमे बेरडुं श्रुतज्ञानभेदंगळोळु शब्दजं वर्णपदवाक्यात्मकशब्दजनितमप्प श्रुतज्ञानं प्रमुखं प्रधानमेकेंदोडे दत्तग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहारंगळगे तन्मूलत्वदिंदं। अनक्षरात्मकमप्प लिंगजश्रुतज्ञानमेकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतमाद जीवंगळोळु विद्यमानमप्पुदादोड व्यवहारानुपयोगदिंदमप्रधानमक्कुं। श्रूयते श्रोत्रेंद्रियेण गृह्यते इति श्रुतः शब्दस्तस्मादुत्पन्नमर्त्थज्ञानं श्रुतज्ञानमेंदितु व्युत्पत्तिगमुमक्षरात्मकप्राधान्याश्रयमक्कुमप्पुदरिंदमथवा श्रुतशब्दं रूढिशब्दमक्कुं। मतिज्ञानपूव्वंकमर्थांतरमप्प

मतिज्ञानेन निश्चितमर्थमवलम्ब्य अर्थान्तर—तत्सबद्धमन्यार्थमुपलभ्यमानं—अवबुध्यमान श्रुतज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमोत्पन्नं जीवस्य ज्ञानपर्याय श्रुतज्ञानमिति मुनीश्वरा भणन्ति। तत्कथं भवेत्? आभिनिबोधिकपूर्वं—नियमेन आभिनिबोधिक मतिज्ञान पूर्वं कारण यस्य तत्[1] तथोक्तं आभिनिबोधिकपूर्वं, मतिज्ञानावरणक्षयोपशमेन मतिज्ञानमेव[2] पूर्वं प्रथममुत्पद्यते। पुनः—पश्चात् तद्गृहीतार्थमवलम्ब्य तद्बलादर्थान्तरविषय श्रुतज्ञानमुत्पद्यते नान्यप्रकारेणेति नियमशब्देन मतिज्ञानप्रवृत्त्यभावे श्रुतज्ञानाभाव इत्यवधार्यते। इह—अस्मिन् श्रुतज्ञानप्रकरणे अक्षरानक्षरात्मकयो. शब्दजलिङ्गजयोः श्रुतज्ञानभेदयो मध्ये शब्दज-वर्णपदवाक्यात्मकशब्दजनितं श्रुतज्ञानं प्रमुखं प्रधान दत्तग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणा तन्मूलत्वात्। अनक्षरात्मक तु लिङ्गज श्रुतज्ञान एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तेषु जीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुपयोगित्वाद-

---

मतिज्ञानके द्वारा निश्चित अर्थका अवलम्बन लेकर उससे सम्बद्ध अन्य अर्थको जाननेवाले जीवके ज्ञानको, जो श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ है, मुनीश्वर श्रुतज्ञान कहते है। वह ज्ञान नियमसे अभिनिबोधिक पूर्व है अर्थात् अभिनिबोधिक यानी मतिज्ञान उसका कारण है। मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे पहले मतिज्ञान ही उत्पन्न होता है। पश्चात् उससे गृहीत अर्थका अवलम्बन लेकर उसके बलसे अन्य अर्थको विषय करनेवाला श्रुनज्ञान उत्पन्न होता है। अन्य प्रकारसे नहीं। नियम शब्दसे यह अवधारण किया गया है कि मतिज्ञानकी प्रवृत्तिके अभावमें श्रुतज्ञान नहीं होता। इस श्रुतज्ञानके प्रकरणमें श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक या शब्दजन्य और लिंगजन्य भेदोंमें-से वर्णपदवाक्यात्मक शब्दसे होनेवाला श्रुतज्ञान प्रमुख है प्रधान है क्योंकि देन-लेन, शास्त्रका अध्ययन आदि समस्त व्यवहारका मूल वही है। अनक्षरात्मक अर्थात् लिंगजन्य श्रुतज्ञान एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंमें विद्यमान रहते हुए भी व्यवहारमें उपयोगी न होनेसे अप्रधान होता है। 'श्रूयते' अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा जो ग्रहण किया जाता है वह

---

१ व तत् तदाभिनि°। २ ब °ज्ञानं पूर्वमु°। ३ व तद्वलाधानेनार्था°।

अर्थांतरज्ञानद प्रतिपादकमप्पुदु परमागमदोळु रूढमक्कुमेंदानुमेंदु प्रकारदिंदं कथंचित् निरुक्तिसंभविप रूढिशब्ददोळजहत्स्वार्थवृत्तिकदोळु कुशं लातीति कुशलः एंदितु कुशलादिशब्दंगळोळु निपुणाद्यर्थंगळु रूढंगलागि रूढार्थंगळोळ तत्कुशलशब्दनिरुक्ति येंतंते अरियल्पडुगुमल्लि जीवोऽस्ति येंदितु नुडियल्पडुत्तिरलु जीवोऽस्ति येंदितीशब्दज्ञानं श्रोत्रेंद्रियप्रभवमतिज्ञानमक्कुमा ज्ञानदिंदं जीवोऽस्तिशब्दवाच्यरूपात्मास्तित्वदोळु वाच्यवाचकसबंधसंकेतसंकलनेमा पूर्व्वकमागि आवुदोंदु ज्ञानं पुट्टुगुमदक्षरात्मकश्रुतज्ञानमक्कुमेकेदोडक्षरात्मकशब्दसमुत्पन्नत्वदिंद कार्य्यदोळु कारणोपचारमुळ्ळुदरिंदं । वातशीतस्पर्शज्ञानदिंदं वातप्रकृतिगे तत्स्पर्शनदोळमनोज्ञज्ञानमनक्षरात्मकलिंगजमप्प श्रुतज्ञानमेंबुदक्कुमेकेंदोडे शब्दपूर्व्वकत्वाभावमप्पुदरिंदं ।

लोगाणमसंखमिदा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा ।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥३१६॥

लोकानामसंख्यमितान्यनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि । द्विरूपषष्ठवर्गप्रमाणं रूपोनमक्षरगं॥

प्रधान भवति । श्रूयते—श्रोत्रेन्द्रियेण गृह्यते इति श्रुत शब्द., तस्मादुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतज्ञानमिति व्युत्पत्तेरपि अक्षरात्मकप्राधान्याश्रयणात् । अथवा श्रुतमिति रूढिशब्दोऽय मतिज्ञानपूर्वकस्य अर्थान्तरज्ञानस्य प्रतिपादक परमागमे रूढ । यथाकथचिन्निरुक्तिसभव. रूढिशब्दे अजहत्स्वार्थवृत्तिके कुश लातीति कुशल इति कुशलादिशब्देषु निपुणाद्यर्थेषु रूढेषु तन्निरुक्तिवत् । तत्र जीवोऽस्तीत्युक्ते जीवोऽस्तीति शब्दज्ञान श्रोत्रेन्द्रियप्रभव मतिज्ञान भवति । तेन ज्ञानेन जीवोऽस्तीति शब्दवाच्यरूपे आत्मास्तित्वे वाच्यवाचकसंबन्धसकेतसकलनपूर्वक यत् ज्ञानमुत्पद्यते तदक्षरात्मक श्रुतज्ञानं भवति, अक्षरात्मकशब्दसमुत्पन्नत्वेन कार्ये कारणोपचारात् । वातशीतस्पर्शज्ञानेन वातप्रकृतिकस्य तत्स्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमनक्षरात्मक लिङ्गज श्रुतज्ञान भवति, शब्दपूर्वकत्वाभावात् ॥३१५॥ अथ श्रुतज्ञानस्य अक्षरानक्षरात्मकभेदौ प्ररूपयति—

श्रुत अर्थात् शब्द है । उससे उत्पन्न अर्थज्ञान श्रुतज्ञान है । इस व्युत्पत्तिसे भी अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी प्रधानता लक्षित होती है । अथवा 'श्रुत' यह रूढि शब्द है । परमागममें मतिज्ञानपूर्वक होनेवाले अन्य अर्थके ज्ञानको कहनेमें रूढ है । फिर भी यथायोग्य निरुक्ति होती है । रूढि शब्द अपने अर्थको नहीं छोडते । जैसे कुशको जो लाता है वह कुशल है इस प्रकार कुशल आदि शब्द चतुर आदि अर्थोंमे रूढ हैं फिर भी उनकी व्युत्पत्ति उसी प्रकार की जाती है । इसी प्रकार श्रुतके सम्बन्धमे जानना । 'जीव है' ऐसा कहनेपर यह जो शब्दका ज्ञान होता है कि 'जीव है,' यह श्रोत्रेन्द्रियसे उत्पन्न हुआ मतिज्ञान है । और ज्ञानके द्वारा 'जीव है' इस शब्दके वाच्यरूप आत्माके अस्तित्वमें वाच्यवाचक सम्बन्धके संकेत ग्रहणपूर्वक जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । क्योंकि अक्षरात्मक शब्दसे उत्पन्न हुआ है इस प्रकार कार्यमे कारणका उपचार किया है । तथा वायुके शीत स्पर्शके ज्ञानसे वात प्रकृतिवाले मनुष्यको जो उसके स्पर्शमे 'यह मेरे लिए अनुकूल नहीं है' ऐसा जो ज्ञान होता है वह अनक्षरात्मक लिंगजन्य श्रुतज्ञान है क्योंकि वह शब्दपूर्वक नहीं हुआ है ॥३१५॥

अब श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक भेदोंको कहते हैं—

---

१. म °लनपूर्व सकलनमागि । २ म कार्यकारणो । ३ व °स्त्येतद्ज्ञानं ।

अल्लि श्रुतज्ञानक्कऽनक्षरात्म अक्षरात्मकभेदर्दिदं द्विभेदमक्कु मल्लि अनक्षरात्मकमप्प श्रुतभेददोळु पर्य्यायपर्य्यायसमासलक्षणसर्व्वजघन्यज्ञानं मोदल्गोंडु स्वोत्कृष्टपर्य्यंतं असंख्येयलोकमात्राऽज्ञानविकल्पंगळप्पुववुमसंख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धियिंदं संवृद्धंगळप्पुवु। अक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्ठवर्गमप्पे कट्टमेंब पेसरनुळ्ळोड्डिनोळेनितोळवु रूपुगळनितुमेकरूपोनंगळप्पुवुमनितुमक्षरंगळुमपुनरुक्ताक्षरंगळनाश्रयिसि संख्यातविकल्पमक्कुं। विवक्षितार्थाऽभिव्यक्तिनिमित्तपुनरुक्ताक्षरग्रहणदोळदं नोडलधिकप्रमाणमुमक्कुमेंबुदर्त्थं।

अनंतरं श्रुतज्ञानक्के प्रकारांतरदिंदं भेदप्ररूपणार्त्थमागि गाथाद्वयमं पेळ्दपं :—

पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणि जोगं च।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥३१७॥

पर्य्यायाक्षरपदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च। द्विकवारप्राभृतं च च प्राभृतकं वस्तुपूर्व्वं च ॥

तेसिं च समासेहि य वीसविधं वा हु होदि सुदणाणं।
आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंतित्ति ॥३१८॥

तेषां च समासैश्च विंशतिविधं वा हि भवति श्रुतज्ञानं। आवरणस्यापि भेदास्तावन्मात्रा भवंतीति ॥

श्रुतज्ञानस्य अनक्षरात्मकाक्षरात्मकौ द्वौ भेदौ, तत्र अनक्षरात्मके श्रुतज्ञाने पर्यायपर्यायसमासलक्षणे सर्वजघन्यज्ञानमादिं कृत्वा स्वोत्कृष्टपर्यन्त असख्येयलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा भवन्ति। ते च असख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धचा सर्वधिता भवन्ति। अक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्टवर्गस्य एकट्टनाम्नो यावन्ति रूपाणि एकरूपोनानि सन्ति तावन्ति अक्षराणि अपुनरुक्ताक्षराण्याश्रित्य सख्यातविकल्पं भवति। विवक्षितार्थाभिव्यक्तिनिमित्त पुनरुक्ताक्षरग्रहणे ततोऽधिकप्रमाणं भवतीत्यर्थ ॥३१६॥ अथ श्रुतज्ञानस्य प्रकारान्तरेण भेदान् गाथाद्वयेनाह—

श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक ये दो भेद हैं। अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय और पर्यायसमास दो भेद हैं। इसमें सर्वजघन्य ज्ञानसे लेकर अपने उत्कृष्ट पर्यन्त असंख्यात लोक प्रमाण ज्ञानके भेद होते हैं। वे भेद असंख्यात लोकमात्र बार षट्स्थानपतित वृद्धिको लिये हुए हैं। अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके संख्यात भेद हैं। सो द्विरूप वर्गधारामें उत्पन्न छठे वर्गका, जिसका प्रमाण एकट्ठी है उसके प्रमाणमें-से एक कम करनेपर जितने अपुनरुक्त अक्षर होते हैं उतने हैं। इसका आशय यह है कि विवक्षित अर्थको प्रकट करनेके लिए पुनरुक्त अक्षरोंके ग्रहण करनेपर उससे अधिक प्रमाण हो जाता है ॥३१६॥

विशेषार्थ—दोसे लेकर वर्ग करते जानेको द्विरूपवर्गधारा कहते हैं। जैसे दोका प्रथम वर्ग चार होता है। चारका वर्ग सोलह होता है। सोलहका वर्ग दो सौ छप्पन होता है। दो सौ छप्पनका वर्ग पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस होता है जिसको पण्णट्ठी कहते हैं। पण्णट्ठीका वर्ग बादाल और बादालका वर्ग एकट्ठी प्रमाण होता है यही छठा वर्गस्थान है। इसमें एक कम करनेसे श्रुतज्ञानके समस्त अपुनरुक्त अक्षर होते हैं। उतने ही अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेद हैं।

अब अन्य प्रकारसे श्रुतज्ञानके भेद दो गाथाओंसे कहते हैं—

वा अथवा पर्य्यायश्च पर्य्यायसुं अक्षरं च अक्षरमुं पदं च पदमुं संघातश्चेति संघातमुमेंदितु द्वंद्वैकत्वं प्रतिपत्तिकश्चानुयोगश्च प्रतिपत्तिकमुमनुयोगमुमेंदिल्लियुमंते द्वंद्वैकत्वमक्कुं। द्विकवारभाभृतकं च प्राभृतकप्राभृतकमुं प्राभृतकमेंदुं वस्तु वस्तुवेंदुं पूर्व्वं च पूर्व्वमुमेंदितु दशभेदगळप्पुवु। तेषां पेरगे पेळ्द पर्य्यायादिगळ पत्तुं समासंगळिदं कूडि श्रुतज्ञानं विंशतिविधमुमक्कुमल्लि अक्षरादि विषयार्थज्ञानमप्प भावश्रुतक्के विवक्षितत्वदिंदमवर विंशतिविधत्वनियमदोळु हेतुवं पेळ्दप।

श्रुतज्ञानावरणद भेदंगळुमंतावन्मात्रगळे भवंति अप्पुवेंदितु इतिशब्दक्के हेत्वर्थवृत्ति सिद्धमाय्तु। पर्य्यायः पर्य्यायसमासश्च अक्षरमक्षरसमासश्च पदं पदसमासश्च संघातः संघातसमासश्च प्रतिपत्तिकः प्रतिपत्तिकसमासश्च अनुयोगोऽनुयोगसमासश्च प्राभृतकप्राभृतकं प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च प्राभृतकं प्राभृतकसमासश्च वस्तु वस्तुसमासश्च पूर्व्वं पूर्व्वसमासश्चेति एंदितिदु तदालापक्रममक्कुं।

अनंतरं पर्य्यायमेंब प्रथमश्रुतज्ञानभेदस्वरूपप्ररूपणार्थं गाथाचतुष्टयमं पेळ्दपं।

णवरि विसेसं जाणे सुहुमजहण्णं तु पज्जयं णाणं।
पज्जायावरणं पुण तदणंतरणाणभेदम्मि ॥३१९॥

नवरि विशेषं जानीहि सूक्ष्मजघन्यं तु पर्य्यायं ज्ञानं। पर्य्यायावरणं पुनस्तदनंतरज्ञानभेदे ॥

वा–अथवा, पर्यायाक्षरपदसघात पर्यायश्च अक्षर च पद च सघातश्चेति द्वन्द्वैकत्वम्। प्रतिपत्तिकानुयोग–प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्चेति द्वन्द्वैकत्वम्। द्विकवारप्राभृतक च प्राभृतकप्राभृतकमित्यर्थ। प्राभृतक च वस्तु च पूर्वं च इति दशभेदा भवन्ति। तेषा पूर्वोक्ताना पर्यायादीना दशभि समासै मिलित्वा श्रुतज्ञान विंशतिविध भवति। अत्राक्षरादिविषयार्थज्ञानस्य भावश्रुतस्य विवक्षितत्वेन तेषा विंशतिविधत्वनियमे हेतुमाह–श्रुतज्ञानावरणस्य भेदा अपि तावन्मात्रा एव विंशतिविधा एव भवन्ति, इति इतिशब्दस्य हेत्वर्थवृत्तिसिद्धे। तद्यथा–पर्याय. पर्यायसमासश्च, अक्षर, अक्षरसमासश्च, पद, पदसमासश्च, सघात., सघातसमासश्च, प्रतिपत्तिक , प्रतिपत्तिकसमासश्च, अनुयोग , अनुयोगसमासश्च, प्राभृतकप्राभृतक, प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च, प्राभृतक, प्राभृतकसमासश्च, वस्तु वस्तुसमासश्च, पूर्व पूर्वसमासश्चेति तदालापक्रमो भवति ॥३१७–३१८॥ अथ पर्यायनाम्न प्रथमश्रुतज्ञानस्य स्वरूप गाथाचतुष्टयेनाह—

पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राभृत प्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु, पूर्व ये दस भेद होते है। इनके दस समास मिलानेसे श्रुतज्ञानके बीस भेद होते है—अर्थात् पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतक प्राभृतक, प्राभृतक प्राभृतकसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व, पूर्वसमास, यह उनके आलापका क्रम है। यहाँ अक्षरादिके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका ज्ञानरूप जो भावश्रुत है उसकी विवक्षा होनेसे उनके बीस ही होनेमें हेतु कहते है कि श्रुतज्ञानावरणके भेद भी बीस ही होते है। यहाँ 'इति' शब्द हेतुके अर्थमें है। इसलिए श्रुतज्ञानके बीस भेद हैं ॥३१७-३१८॥

अब पर्याय नामक प्रथम श्रुतज्ञानका स्वरूप चार गाथाओंसे कहते है—

पोसतप्प विशेषमरियल्पडुगुमदावुदें दोडे पर्य्यायमें ब प्रथमश्रुतज्ञानं तु मत्ते सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन संबंधि सर्व्वजघन्यश्रुतज्ञानमक्कुं। पुनः मत्ते पर्य्यायज्ञानदावरणमुं तदनंतरज्ञान भेददोळनंतभागवृद्धियुक्तपर्य्यायसमासज्ञानप्रथमभेददोळक्कुमदें तें दोडे उदयागतपर्य्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धदुदयनिषेकदनुभागंगळ सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळुदयाभावलक्षणक्षयमुमवक्केये सदवस्थालक्षणोपशममुं देशघातिस्पर्द्धकंगळुदयमुमुंटागुत्तिरलुमंतप्पावरणोदयदिदं पर्य्यायसमासप्रथमज्ञानमेयावरणिसल्पडुगुं। तुमत्ते पर्यायज्ञानमावरणिसल्पडदेके दोडे तदावरणदोळु जीवगुणमप्प ज्ञानक्कभावमागुत्तिरलु गुणियप्पजीवक्केयुमभावप्रसंगमक्कुमप्पुदरिंदं।

अनुभागरचनेयं स्थापिसल्पट्टल्लि सिद्धानंतैकभागमात्रद्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्तनानागुणहानिस्पर्द्धकवर्गणात्मकमप्प श्रुतज्ञानावरणद्रवदल्लि सर्व्वतःस्तोकमप्प सर्व्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानुभागसर्व्वघातिस्पर्द्धकद्रव्यक्केयो पर्य्यायज्ञानावरणत्वदिंदं तावन्मात्रावरणद्रव्यक्के सर्व्वकालदोळमुदयाभावमप्पुदरिंदं।

नवीन विशेष जानीहि, स क ? पर्यायज्ञानं–पर्यायाख्यं प्रथम श्रुतज्ञानं, तु–पुन , सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य सबन्धि सर्वजघन्य श्रुतज्ञानं भवति। पुन –पश्चात् पर्यायज्ञानस्य आवरणं तदनन्तरज्ञानभेदे अनन्तभागवृद्धियुक्ते पर्यायसमासज्ञानप्रथमभेदे भवति, तद्यथा–उदयागतपर्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धोदयनिषेकस्यानुभागाना सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षण क्षय , तेषामेव सदवस्थालक्षण उपशम , देशघातिस्पर्धकानामुदये सति तदावरणोदयेन पर्यायसमासप्रथमज्ञानमेव आव्रियते न तु पर्यायज्ञानम्। तदावरणे जीवगुणस्य ज्ञानस्याभावे गुणिनो जीवस्याप्यभावप्रसगात्। अनुभागरचनाया विन्यस्ते सिद्धानन्तैकभागमात्रे द्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्ते नानागुणहानिस्पर्धकवर्गणात्मके श्रुतज्ञानावरणद्रव्ये सर्वतः स्तोकस्य सर्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानुभागसर्वघातिस्पर्धकद्रव्यस्यैव पर्यायज्ञानावरणत्वात्। तावत आवरणद्रव्यस्य सर्वकालेऽप्युदयाभावात् ॥३१९॥

यह विशेष जानना कि पर्याय नामक प्रथम श्रुतज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है। किन्तु पर्यायज्ञानका आवरण उसके अनन्तर जो ज्ञानका भेद है, जो उससे अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए है उस पर्याय समास ज्ञानके प्रथम भेदपर होता है। जो इस प्रकार है—उदयप्राप्त पर्याय ज्ञानावरणके समयप्रबद्धका जो निषेक उदयमें आया है उसके अनुभागके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयका अभाव ही क्षय है तथा जो अगले निषेक सम्बन्धी सर्वघाती स्पर्द्धक सत्तामें वर्तमान है उनका उपशम है और देशघाती स्पर्धकोंका उदय है। ऐसा क्षयोपशम पर्याय ज्ञानावरणका सदा रहता है। अतः पर्याय ज्ञानावरणके उदयसे पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेद ही आवृत होता है, पर्यायज्ञान नहीं। यदि उसका भी आवरण हो जाये तो जीवके गुण ज्ञानका अभाव होनेपर गुणी जीवके भी अभावका प्रसंग आता है। तथा अनुभाग रचनामें स्थापित किया सिद्ध राशिका अनन्तवॉ भागमात्र जो श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य अर्थात् परमाणुसमूह है वह क्रम हानि और वृद्धिसे संयुक्त है, नाना गुणहानि स्पर्धक वर्गणात्मक है, उस श्रुतज्ञानावरणके द्रव्यमें जिसका उदयरूप अनुभाग क्षीण हो गया है और जो सबसे थोड़ा तथा सबसे अन्तिम सर्वघाति स्पर्धक है उसीका नाम पर्यायज्ञानावरण है। इतने आवरणका कभी भी उदय नहीं होता। इसलिए भी पर्यायज्ञान निरावरण है ॥३१९॥

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्मि ।
हावदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥३२०॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये भवति खलु सर्व्वजघन्यं नित्योद्घाटं निरावरण ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तक जननद प्रथमसमयदोळु निरावरणं प्रच्छादनरहितमप्प नित्योद्घाटं सर्व्वदा प्रकाशमानमप्प सर्व्वजघन्यं सर्व्वनिकृष्टशक्तिकमप्प पर्य्यायमेंब श्रुतज्ञानमक्कुं । खलु । ई गाथासूत्रं पूर्व्वाचार्य्यप्रसिद्धं स्वोक्तार्थसंप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्थमागि उदाहरणत्वदिंदं बरेयल्पट्टुदु ।

सुहुमणिगोद अपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण ।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥३२१॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तगतेषु स्वसभवेषु भ्रमित्वा । चरमापूर्णत्रिवक्राणामाद्यवक्रस्थित एव भवेत् ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तनोळु संद स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितंगळप्प भवेषु भवंगळोळु भ्रमित्वा भ्रमिसि चरमापूर्णभवद त्रिवक्रविग्रहगतियिंदमुत्पन्नजीवन प्रथमवक्रद प्रथमसमयदोळिर्द्दंगेये मुंपेळ्द सर्व्वजघन्यपर्य्यायमेंब श्रुतज्ञानमक्कुं । मत्तल्लिये तज्जीवक्के स्पर्शनेंद्रियप्रभवसर्व्वजघन्यमतिज्ञानमचक्षुर्द्दर्शनावरणक्षयोपशमसमुद्भूताचक्षुर्द्दर्शनमुमक्कुमेकें दोडे -

---

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जात–जनन तस्य प्रथमसमये निरावरण–प्रच्छादनरहित नित्योद्घाट अतएव सर्वदा प्रकाशमान सर्वजघन्य–सर्वनिकृष्टशक्तिक पर्याय[1]ाख्य श्रुतज्ञान भवति । खलु एतद्गाथासूत्र पूर्वाचार्यप्रसिद्ध–स्वोक्तार्थसप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्थं उदाहरणत्वेन लिखितम् ॥३२०॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकेषु स्वसभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितेषु भवेषु भ्रमित्वा चरमापूर्णभवस्य त्रिवक्रविग्रहगत्या उत्पन्नस्य जीवस्य प्रथमवक्रसमये स्थितस्यैव पूर्वोक्त सर्वजघन्य पर्यायाख्य श्रुतज्ञान भवति तत्रैव तस्य जीवस्य स्पर्शनेन्द्रियप्रभव सर्वजघन्य मतिज्ञान, अचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमसभूत अचक्षुर्दर्शनमपि

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके जन्मके प्रथम समय पर्यायनामक श्रुतज्ञान होता है। यह निरावरण है इसीसे सर्वदा प्रकाशमान रहता है, सबसे जघन्य अर्थात् निकृष्ट शक्तिवाला होता है। यह गाथा सूत्र प्राचीन है यहाँ ग्रन्थकारने अपने कथनकी यथार्थता दिखलानेके लिए उदाहरणके रूपमे लिखा है ॥३२०॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव अपने सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक सम्बन्धी छह हजार बारह भवोंमें भ्रमण करके अन्तिम लब्ध्यपर्याप्तक भवमें तीन मोड़ेवाली विग्रहगतिसे उत्पन्न होकर प्रथम मोड़ेके समयमें स्थित होता है उसके ही सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान होता है। उसी समय उसके स्पर्शन इन्द्रियजन्य सबसे जघन्य मतिज्ञान होता है और अचक्षुदर्शनावरणके क्षयोपशमसे उत्पन्न अचक्षुदर्शन भी होता है। वहाँ ही सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान होनेका कारण यह है कि बहुत क्षुद्रभवोंमे भ्रमण करनेसे उत्पन्न हुए बहुत

---

१ ब पर्यायनाम ।

बह्वपर्य्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्धियिंदमावरणक्के तीव्रानुभागोदयसंभवमप्पुदरिंद । द्वितीयादिसमयंगळोळु ज्ञानदर्शनवृद्धि संभवमेंदितु त्रिवक्रप्रथमवक्रसमयदोळे पर्य्यायज्ञानसंभवमरियल्पडुगुं ।

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्मि ।
फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥३२२॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये । स्पर्शनेंद्रियमतिपूर्व्वं श्रुतज्ञानं लब्ध्यक्षरकं ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन जननप्रथमसमयदोळु सर्व्वजघन्यस्पर्शनेंद्रियमतिज्ञानपूर्व्वकमप्प लब्ध्यक्षरापरनामधेयमप्प पूर्व्वोक्तचरमभवत्रिवक्रप्रथमसमयादिविशेषणविशिष्टमप्प सर्व्वजघन्यपर्य्यायश्रुतज्ञानमक्कुमेंदितु ज्ञातव्यमक्कु । लब्धि एंबुदु श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशममदक्कुमर्थग्रहणशक्तिमेणु लब्ध्या अक्षरमविनश्वरं लब्ध्यक्षरं तावन्मात्रक्षयोपशमक्के सर्व्वदा विद्यमानत्वदिंदं ।

अनंतरं दशगाथासूत्रंगळिंदं पर्य्यायसमासप्रकरणमं पेळ्दपं :—

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीओ ।
संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥३२३॥

अवरोपर्य्यनंतमसंख्यं संख्यं च भागवृद्धयः । संख्यमसंख्यमनंतं गुणवृद्धयो भवंति हि क्रमेण ॥

सर्व्वजघन्यपर्य्यायज्ञानदमेले क्रमेण वक्ष्यमाणपरिपाटियिंदमनंतभागवृद्धियुमसंख्यातभागवृद्धियुं संख्यातभागवृद्धियुं संख्यातगुणवृद्धियुमसंख्यातगुणवृद्धियुमनंतगुणवृद्धियुमेंदितु षट्स्थान-

---

भवति । बह्वपर्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्धया आवरणस्य तीव्रतमानुभागोदयसंभवात्, द्वितीयादिसमयेषु ज्ञानदर्शनवृद्धिसंभवात् 'त्रिवक्रप्रथमवक्रसमये एव पर्यायज्ञानसंभवो ज्ञातव्य ॥३२१॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जननप्रथमसमये सर्वजघन्यस्पर्शनेन्द्रियमतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षरापरनामधेयं 'पूर्वोक्तचरमभवत्रिवक्रप्रथमसमयादिविशेषणविशिष्ट' सर्वजघन्य पर्यायश्रुतज्ञानं भवतीति ज्ञातव्यम् । लब्धिर्नामश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशम. अर्थग्रहणशक्तिर्वा, लब्ध्या अक्षरं अविनश्वरं लब्ध्यक्षरं तावतः क्षयोपशमस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् ॥३२२॥ अथ दशभिर्गाथाभिः पर्यायसमासप्रकरणं प्ररूपयति—

सर्वजघन्यपर्यायज्ञानस्य उपरि क्रमेण वक्ष्यमाणपरिपाट्या अनन्तभागवृद्धि· असख्यातभागवृद्धि.

संक्लेशके बढ़नेसे आवरणके तीव्रतम अनुभागका उदय होता है, तथा दूसरे मोड़े आदिके समयोंमें ज्ञान और दर्शनमें वृद्धि सम्भव है । इसलिए तीन मोड़ोंमें-से प्रथम मोड़ेके समयमें ही पर्याय ज्ञान जानना ॥३२१॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जन्म लेनेके प्रथम समयमें सबसे जघन्य स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक तथा पूर्वोक्त विशेषणोंसे विशिष्ट सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान होता है । उसका दूसरा नाम लब्ध्यक्षर है । श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमको अथवा अर्थको ग्रहण करनेकी शक्तिको लब्धि कहते हैं । लब्धिसे जो अक्षर अर्थात् अविनाशी होता है वह लब्ध्यक्षर है ; क्योंकि इतना क्षयोपशम सदा विद्यमान रहता है ॥३२२॥

अब दस गाथाओंसे पर्यायसमासका कथन करते हैं—

सबसे जघन्य पर्यायज्ञानके ऊपर आगे कही गयी परिपाटीके अनुसार अनन्तभागवृद्धि,

पतितंगळप्प वृद्धिगळप्पुवु। खलु। द्विरूपवर्गधारियोळनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु जीवपुद्गलकालाकाशश्रेणियिंदं मेलेयुमनंतानंतवर्गस्थानंगळं नडेदु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन जघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळुत्पत्तिकथनदिंदं तज्जघन्यज्ञानक्कनंतात्मकभागहारं पुट्टिसुगुं विरुद्धमल्तु।

जीवाणं च य रासी असंखलोगा वरं खु संखेज्जं।
भागगुणंमि य कमसो अवट्ठिदा होंति छट्ठाणा ॥३२४॥

जीवानां च च राशिसंख्यातलोका वरं खलु संख्येयं। भागगुणयोश्च क्रमशोऽवस्थिता भवंति षट्स्थाने॥

इल्लियनंतभागादिषट्स्थानंगळोळु क्रमदिं ई षट्संदृष्टिगळप्पुवुमवुमवस्थितंगळु प्रतिनियतंगळुमप्पुववे ते दोडे अनंतमें बुदु भागवृद्धियोळं गुणवृद्धियोळं भागहारमुं गुणकारमुं प्रतिनियतसर्व्वजीवराशियेयक्कुं। १६। असंख्यातभागवृद्धियोळं गुणवृद्धियोळं भागहारमुं गुणकारमुं प्रतिनियतमसंख्यातलोकमेयक्कुं =a। संख्यातभागवृद्धियोळं गुणवृद्धियोळं भागहारमुं गुणकारमुं प्रतिनियतोत्कृष्टसंख्यातमेयक्कु।

उव्वंकं चउरंकं पणछस्सत्तंकं अट्ठ अंकं च।
छव्वड्ढीणं सण्णा कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं ॥३२५॥

उर्व्वंकश्चतुरंकः पंचषट्सप्तांकाः। अष्टांकश्च षड्वृद्धीनां संज्ञाः क्रमशः संदृष्टिकरणार्थं॥

संख्यातभागवृद्धि सख्यातगुणवृद्धि असख्यातगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धिश्चेति षट्स्थानपतिता वृद्धयो भवन्ति खलु। द्विरूपवर्गधाराया अनन्तानन्तानि वर्गस्थानानि अतीत्यातीत्य उत्पन्नाना जीवपुद्गलकालाकाशश्रेणीना उपर्यपि अनन्तानन्तवर्गस्थानानि अतीत्य सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यज्ञानाविभाग-प्रतिच्छेदानामुत्पत्तिकथनात् तज्जघन्यज्ञानस्यानन्तात्मकभागहार सुघटन् न विरुध्यते ॥३२३॥

अत्र अनन्तभागादिषु षट्सु स्थानेषु क्रमेण एता षट् सदृष्टय अवस्थिता प्रतिनियता भवन्ति। तद्यथा—अनन्तभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियत· सर्वजीवराशिरेव १६। असख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियत. असख्यातलोक एव = a। सख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियत उत्कृष्टसख्यात एव १५ ॥३२४॥

असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि ये षट्स्थानपतित वृद्धियाँ होती हैं। द्विरूपवर्गधारामें अनन्तानन्त वर्गस्थान जा-जाकर जीवराशि, पुद्गलराशि, कालके समयोंकी राशि तथा आकाश श्रेणी उत्पन्न होती है। उनके भी ऊपर अनन्तानन्त वर्गस्थान जाकर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद उत्पन्न होते हैं ऐसा कथन है। अतः उसके जघन्य ज्ञानका भागहार अनन्तरूप सुघटित होता है इसमें कोई विरोध नहीं है ॥३२३॥

यहाँ अनन्तभागादिरूप छह स्थानोंमें क्रमसे ये छह संदृष्टियाँ अवस्थित हैं जो इस प्रकार हैं—अनन्तभागवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिका भागहार और गुणकार प्रतिनियत सर्व जीवराशि प्रमाण है। असंख्यात भागवृद्धि और गुणवृद्धिका भागहार और गुणकार प्रतिनियत असंख्यात लोक ही है। संख्यातभागवृद्धि और गुणवृद्धिका भागहार और गुणकार प्रतिनियत उत्कृष्ट संख्यात ही है ॥३२४॥

पूर्व्वोक्तानंतभागाद्यर्थसंदृष्टिगळगे मत्तं लघुसंदृष्टिनिमित्तं षड्विधवृद्धिगळगे यथासंख्यमागियन्यनामसंदृष्टिगळ् पेळल्पट्टप्पुवदेतें दोडेनंतभागक्के उव्वंक। उ। मसंख्यातभागक्के चतुरंकं। ४। संख्यात भागक्के पंचांकं। ५। संख्यातगुणक्के षडंक-। ६। मसंख्यातगुणक्के सप्तांक। ७। मनंतगुणक्कष्टांक। ८। मक्कुं।

अंगुल असंखभागे पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी।
एक्कं वारं होदि हु पुण पुणो चरिमउड्ढित्ती ॥३२६॥

अंगुलासंख्यातभागान् पूर्व्ववृद्धौ गतायां तु परवृद्धिरेकं वारं भवति खलु पुनःपुनश्चरमवृद्धिरिति॥

अंगुलासंख्यातभागान् सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगलनु पूर्व्ववृद्धौ गतायां सत्यां पूर्व्ववृद्धियोलुसलुत्तंविरलु। तु मत्ते परवृद्धिरेकंवारं भवति खलु। मुंदणवृद्धियोंदु बारियहुदु। स्फुटमागियिंती प्रकारदिंदं पुनःपुनश्चरमपर्य्यंतं ज्ञातव्यं। मत्ते मत्ते चरमवृद्धिपर्यंत अरियल्पडुगुंमदेंतें दोडे[2] पर्य्यायाख्यजघन्यज्ञानद मेलनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळु नडेदोडोम्मे असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुं। ४। मत्तमंते अनतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडदु मत्तमोम्मे असंख्यातभाग[3]-

---

पूर्वोक्तानन्तभागाद्यर्थसदृष्टीना पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्तं षड्विधवृद्धीना यथासंख्यं अपरसज्ञाः संदृष्टयः कथ्यन्ते। अनन्तभागस्य उर्वङ्क उ। असंख्यातभागस्य चतुरङ्कः ४। संख्यातभागस्य पञ्चाङ्क. ५। संख्यातगुणस्य षडङ्क. ६। असंख्यातगुणस्य सप्ताङ्क. ७, अनन्तगुणस्य अष्टाङ्क ८ ॥३२५॥

पूर्ववृद्धौ—अनन्तभागवृद्धौ सूच्यङ्गुलासख्यातभागमात्रवारान् गताया सत्या तु पुन. परवृद्धि.-असंख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति खलु स्फुटं, पुनरपि अनन्तभागवृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रवारान् गताया सत्या असंख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति। अनेन क्रमेण तावद् गन्तव्यं यावदसंख्यातभागवृद्धिरपि सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रवारान् गच्छति। तत पुनरपि अनन्तभागवृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रवारान् गताया सख्यात-

---

पूर्वोक्त अनन्तभाग आदि अर्थसंदृष्टियोंकी पुनः लघुसंदृष्टिके निमित्त छह प्रकारकी वृद्धियोंकी यथाक्रम अन्य संज्ञा संदृष्टि कहते है—अनन्तभागवृद्धिकी उर्वंक अर्थात् उ, असंख्यातभाग वृद्धिकी चारका अंक ४, संख्यातभागवृद्धिकी पाँचका अंक ५, संख्यातगुणवृद्धिकी छहका अंक ६, असंख्यातगुणवृद्धिकी सातका अंक ७, और अनन्तगुणवृद्धिकी आठका अंक ८ ॥३२५॥

पूर्ववृद्धि अर्थात् अनन्तभागवृद्धिके सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार होनेपर परवृद्धि अर्थात् असंख्यातभागवृद्धि एक बार होती है। पुनः अनन्तभागवृद्धि सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार होनेपर असंख्यातभागवृद्धि एक बार होती है। इस क्रमसे तबतक जाना चाहिए जब तक असंख्यातभागवृद्धि भी सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार होवे। उसके पश्चात् पुनः अनन्तभागवृद्धिके सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार होनेपर संख्यातभागवृद्धि एक बार होती है। पुनः पूर्वोक्त क्रमसे पूर्व-पूर्व वृद्धिके सूच्यंगुलके असंख्यातभाग मात्र बार होनेपर

---

१ म °वृद्धिगलेकैकवारगलप्पुवु स्फुट°। २ म दोडनंतभागवृद्धियुक्त स्थानंगलु पर्यायजघन्यज्ञानादिविकल्पगलु सूच्यं। ३. म °तैकभाग।

वृद्धियुक्तस्थानमक्कु-। ४। मी प्रकारदिंदमसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैक भागमात्रंगळागुत्तिरलु। मत्त मुंदेयनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडदोम्मे संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कु। ५। मत्तमनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैक-भागमात्रगळु नडदोम्मे असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमत्तमते अनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासख्यातैकभागंगळु नडदु मत्तोम्मे असख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमितु असंख्यात-भागवृद्धियुक्तस्थानगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळागुत्तिरलु मत्तमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानगळु सूच्यगुलासंख्यातैकभागमात्रगळु नडेदु मत्तमोम्मे सख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमितु पूर्व्वापूर्व्वा-नंतासंख्यातैकभागवृद्धियुक्तस्थानगळु सूच्यंगुलासख्यातैकभागमात्रंगळु नडनडदोम्मे संख्यात-भागवृद्धियुक्तस्थानगळागुत्तमिरलु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानगळं सूच्यगुलासख्यातभागमात्रगळ-प्पुवतागुत्तिरलु मत्तमितनतभागवृद्धियुक्तस्थानगळुमसख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानगळं प्रत्येक सूच्यगुलासख्यातैकभागप्रमितगळु नडेनडेदु मत्तं मुंदे अनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुला-संख्यातैकभागमात्रगळु नडदोम्मे सख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कु-। ६। मितु पूर्व्वपूर्व्वभागवृद्धि-युक्तस्थानगळु सूच्यगुलासंख्यातैकभागगळु नडनडदोम्मोम्मे सख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानगळागुत्त पोगलासंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळं सूच्यंगुलासंख्यातैभागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तिरलु। मत्तमित-नतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळं प्रत्येकं कांडकमितगळनडेनडेदु मत्तं मुंदेयनतभाग-वृद्धियुक्तस्थानंगळं सूच्यगुलासंख्यातैकभागमात्रगळु नडदोम्मे असख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमिते पूर्व्वापूर्व्वानंतासख्यातसख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानगळं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानगळं सूच्यंगुला-

---

भागवृद्धिरेकवार भवति। पुनरपि पूर्वोक्तक्रमेण पूर्वपूर्ववृद्धौ सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् गताया परवृद्धिरेकैकवार भवतीत्यङ्गुलासंख्यातभागमात्रसख्यातभागवृद्धौ गताया पुन पूर्ववृद्धिषु सर्वासु पूर्वोक्तक्रमेण सख्यातभागवृद्धिरहितं आवर्तितासु सख्यातगुणवृद्धिरेकवारं भवति। उक्ताना वृद्धीना पूर्वोक्तसदृष्टय –उ उ ४, उ उ ४, उ उ ५, उ उ ४, उ उ ४, उ उ ५, उ उ ४, उ उ ४, उ उ ६, द्विवारलिखित उर्वङ्कादि अङ्गुलासख्यातभागमात्रवारसदृष्टि। एव षडङ्कपर्यन्तपङ्क्तिगतोर्वङ्कादीना सर्वेषामावृत्तौ सत्या षडङ्कोऽप्य-ङ्गुलासख्यातभागमात्रवारान् गत इत्यर्थ, तत षडङ्करहितैकपङ्क्तेरावृत्तौ सत्या एकवार सप्ताङ्कनामा-

---

वृद्धि एक-एक बार होती है। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातभाग मात्र संख्यात भागवृद्धिके होनेपर पुनः पूर्वोक्त क्रमसे संख्यातभाग वृद्धिके सिवाय सब पूर्व वृद्धियोंकी आवृत्ति होनेपर एक बार संख्यात गुणवृद्धि होती है। उक्त वृद्धियोंकी पूर्वोक्त संदृष्टि इस प्रकार है—

उ उ ४। उ उ ४। उ उ ५। उ उ ४। उ उ ४। उ उ ५। उ उ ४। उ उ ४। उ उ ६।

उर्वंक आदिका दो बार लिखना सूच्यंगुलके असंख्यातभाग मात्र बारकी संदृष्टि है। इस प्रकार षडंक पर्यन्त पंक्तिगत उर्वंक आदि सबकी आवृत्ति होनेपर षडंक भी सूच्यंगुलके असंख्यात बार हुआ। अर्थात् ६ के अंककी वृद्धि भी दो बार हुई कहलायी। उसके पश्चात्

---

१ म °युक्त सू°। २ म मात्रस्थानगलु। ३ म °ला संख्यातैकभाग°। ४ म °मत्तमनन्तैक भाग°। ५ म °तैकभाग°।

संख्यातैकभागमात्रंगळु नडेनडेदोम्मोम्मे असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमंतागुत्तंविरलुमा असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तमिरलु । मत्तमंते अनतासख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानगळु संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानगळुं प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडनडेडु मत्तमंते मुंदे अनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळुं प्रत्येकं कांडकप्रमितगळ् नडेदु मत्तेमंते मुंदे मुंदेयुं अनंतासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडेदु मत्तेमंते मुंदे मुंदेयुं अनंतासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडकप्रमितंगळ् नडे नडेडु मुंदेयुमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु नडदोम्मे अनंतगुणवृद्धियुक्तस्थानमक्कुमितोंदु षट्स्थानदोळनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु संख्यातासंख्यातानंतगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुमेंदिती षट्स्थानंगळगमनिकेयुमं तत्तद्वृद्धिस्थानसंख्याप्रमाणमुमं ज्ञापिसि तोरलु समर्थमप्प रचनाविशेषमिदु :—

२ १ २	२ २ १	२ १	२ २ २	२ २ १	२ २	२				
ə ə	ə ə	ə	ə ə ə	ə ə	ə ə	ə				
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ	६
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७	१
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	१
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	१
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६	२ ə
उ उ ४	उ उ ४		उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८	१

सख्यातगुणवृद्धिर्भवति । एवं षडङ्कपड्क्तिद्वयसप्ताङ्कैकपड्क्तिरूपपड्क्तित्रयस्यावृत्तौ सत्या सप्ताङ्कस्याङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टिर्भवति । इत्थं षट् पक्तयो जाता । ततः पुन. सप्ताङ्करहितपड्क्तित्रयस्य आवृत्तौ सत्या एकवारमष्टाङ्कनामा अनन्तगुणवृद्धिर्भवति । एव षट्स्थानवृद्धीनां वृत्तिक्रमो दर्शितो ग्रन्थलिखितरचनानुसारेण अव्यामोहेन श्रोतृजनैर्ज्ञातव्य ।

षडंक रहित एक पंक्तिकी आवृत्ति होनेपर एक बार सप्तांक नामक संख्यात गुणवृद्धि होती है। इसी प्रकार षडंक सहित दो पंक्तियों और सप्तांक सहित एक पंक्ति, इस तरह तीन पंक्तियोंकी आवृत्ति होनेपर सप्तांककी सूच्यंगुलके असंख्यातभाग बार संदृष्टि होती है। इस प्रकार छह पंक्तियाँ हुईं। इसके पश्चात् पुनः सप्तांक रहित तीन पंक्तियोंकी आवृत्ति होनेपर एक बार अष्टांक नामक अनन्तगुणवृद्धि होती है। यथा—

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

इस प्रकार षट्स्थान वृद्धियोंका क्रम दिखलाया। ग्रन्थमे दर्शित रचनाके अनुसार श्रोताजनोंको बिना व्यामोहके जानना चाहिए। इस यन्त्रका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पर्याय नामक श्रुतज्ञानके भेदसे अनन्तभागवृद्धि युक्त पर्याय समास नामक श्रुतज्ञानका प्रथम भेद होता है। इस प्रथम भेदसे अनन्तभागवृद्धि युक्त पर्याय समासका दूसरा भेद होता है। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर एक बार असंख्यात भागवृद्धि होती है। ऊपर यन्त्रमें प्रथम पंक्तिके प्रथम कोठेमें दो बार उकार लिखा है वह सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिकी पहचान जानना। उसके आगे चारका अंक लिखा वह एक बार असंख्यात भाग वृद्धिकी पहचान जानना। इसके ऊपर सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भागवृद्धि होनेपर दूसरी बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसी क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसीसे यंत्रमें प्रथम पंक्तिके दूसरे कोठेमें प्रथम कोठाकी तरह दो उकार और एक चारका अंक लिखा है जो दो बार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग बारका सूचक है। अतः दूसरी बार लिखनेसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग बार जानना। उससे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर एक बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। अतः प्रथम पंक्तिके तीसरे कोठेमें दो उकार और एक पाँचका अंक लिखा है। आगे जैसे पहले अनन्त भाग वृद्धिको लिये सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धिके होनेपर पीछे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिके होनेपर एक बार संख्यात भाग वृद्धि हुई वैसे ही उसी क्रमसे दूसरी संख्यात भाग वृद्धि हुई। इसी क्रमसे तीसरी हुई। इस प्रकार संख्यात भाग वृद्धि भी सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण बार होती है। इससे ऊपर यन्त्रमें प्रथम पंक्तिमें जैसे तीन कोठे किये थे वैसे ही सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागकी पहचानके लिए दूसरे तीन कोठे उसी प्रथम पंक्तिमें किये। यहाँसे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिके होनेपर एक बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि होती है। उसकी पहचानके लिए यन्त्रमें दो उकार और चारका अंक लिये दो कोठे किये। इससे आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर एक बार संख्यात गुण वृद्धि होती है। सो उसकी पहचानके लिए प्रथम पंक्तिके नौवे कोठेमें दो उकार और छहका अंक लिखा। जैसे प्रथम पंक्तिका क्रम रहा उसी प्रकार आदिसे लेकर सब क्रम दूसरी बार होनेपर एक बार दूसरी संख्यातगुणवृद्धि होती है। इसी क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण संख्यातगुणवृद्धि

द्विवारलिखितोर्व्वंकादिकमंगुलाऽसंख्यातैकवारसंदृष्टिः।

मत्तमिल्लि सर्व्वजघन्यमप्प श्रुतज्ञानं पर्य्यायमेंब लब्ध्यक्षरापरनामधेयस्थानद मुंदण पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रविकल्पंगळप्पुववर वृद्धिप्रमाण क्रमविधानप्ररूपणं माडल्पडुमुगदे तें दोडनंतगुणजीवराशिप्रमितस्वार्थप्रकाशनशक्त्यविभागप्रतिच्छेदात्मकसर्व्वजघन्यश्रुतज्ञानमं। ज। एंदितु संस्थापिसि मत्तमा राशियं सर्व्वजीवराशियप्पनंतदिंदं भागिसि तदेकभागमं तज्जघन्यज्ञानदोळे समच्छेदमं माडि कूडुत्तमिरलदु

अथानन्तभागवृद्धेरङ्गुलासंख्यातभागमात्रवारान् वृत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—अनन्तगुणजीवराशिमात्रस्यार्थप्रकाशनशक्तेरविभागप्रतिछेदात्मकं सर्वजघन्यश्रुतज्ञान ज इति संदृष्ट्या संस्थाप्य त राशिं सर्वजीवराशिरूपानन्तेन भक्त्वा तदेकभागे ज तज्जघन्यस्योपरि समच्छेदेन युते सति यो राशिर्जायते स पर्यायसमासश्रुत-

१६

होती है। उसकी पहचानके लिए यन्त्रमें जैसे प्रथम पंक्ति थी उसी प्रकार उसके नीचे दूसरी पंक्ति लिखी। यहाँसे आगे—तीसरी पंक्ति प्रथम पंक्तिके समान लिखी। इतना विशेष कि नौवें कोठेमें जहाँ दो उकार एक छहका अंक लिखा था वहाँ तीसरी पंक्तिमें नौवें कोठेमें दो उकार और सातका अंक लिखा। यहाँसे आगे जैसे तीनों पंक्तियोंमें आदिसे लेकर अनुक्रमसे वृद्धि हुई उसी अनुक्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर जब असंख्यात गुण वृद्धि भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण हो तब पूर्ति हो। इसीसे यन्त्रमें जैसे प्रथम तीन पंक्तियाँ थीं वैसे ही दूसरी तीन पंक्तियाँ लिखीं। इस तरह छह पंक्तियाँ हुईं। यहाँसे आगे—जैसे आदिसे लेकर तीन पंक्तियोंमें क्रमसे वृद्धियाँ कही थीं वैसे ही क्रमसे पुनः सब वृद्धियाँ हुईं। विशेष इतना कि तीसरी पंक्तिके अन्तमें जहाँ असंख्यात गुण वृद्धि कही थी, उसके स्थानमें यहाँ तीसरी पंक्तिके अन्तमें एक बार अनन्त गुणवृद्धि होती है। इसीसे यन्त्रमें पहली, दूसरी, तीसरीके समान तीन पंक्तियाँ और लिखी। किन्तु तीसरी पंक्तिके नौवें कोठेमें जहाँ दो उकार और सातका अंक लिखा है उसके स्थानमें यहाँ तीसरी पंक्तिके नौवें कोठेमें दो उकार और आठका अंक लिखा। जो अनन्त गुणवृद्धिका सूचक है। इसके आगे किसी वृद्धिके न होनेसे अनन्त गुणवृद्धि एक ही बार होती है। उसके होनेपर जो प्रमाण हुआ वह षट्स्थान पतित वृद्धिका प्रथम स्थान जानना। इस प्रकार पर्याय समास श्रुतज्ञानमें असंख्यात लोक बार मात्र षट्स्थान पतित वृद्धि होती है।

आगे उक्त कथनको स्पष्ट करते हैं—

सबसे जघन्य पर्याय श्रुतज्ञानके अपने विषयके प्रकाशनरूप शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद जीवराशिसे अनन्तगुणे होते हैं। उस राशिको सब जीवराशिरूप अनन्तसे भाजित करनेपर जो एक भाग आवे उसे उस जघन्य ज्ञानमें मिलानेपर पर्याय समास श्रुतज्ञानके विकल्पोंमें-से सबसे जघन्य प्रथम भेद आता है। यह एक बार अनन्त भाग वृद्धि हुई। फिर उस पर्याय समास ज्ञानके प्रथम विकल्पको जीवराशि प्रमाण अनन्तका भाग देनेपर जो एक भाग आवे उसे पर्याय समास ज्ञानके प्रथम भेदमें मिलानेपर उसका दूसरा भेद होता है। यह दूसरी अनन्त भाग वृद्धि हुई। उस दूसरे भेदको अनन्तका भाग देनेसे जो एक भाग आवे उसे उस दूसरे विकल्पमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका तीसरा विकल्प होता है। यह तीसरी अनन्तभाग वृद्धि हुई। फिर इस तीसरे भेदमें अनन्तसे भाग देनेपर जो एक भाग

पर्य्यायसमासश्रुतज्ञानविकल्पंगळोळु सर्व्वजघन्यप्रथमविकल्पमक्कु ज $\frac{\overline{1}}{१६}$ मिदरनंतैकभागमन-
$\frac{}{१६}$

ल्लिये समच्छेदं माडि कूडुत्तिरलुमदु पर्य्यायसमासद्वितीयज्ञानविकल्पमक्कु ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ मदरनंतैक-

भागममल्लिये समच्छेदं माडि कूडुत्तं विरलु पर्य्यायसमासतृतीयज्ञानविकल्पमक्कु ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$
मदरनंतैकभागमनल्लिये समच्छेदं माडि कूडिदोडे पर्य्यायसमासचतुर्त्थज्ञानविकल्पमक्कु

५ ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ मदरनंतैकभागमनल्लिवे समच्छेदं माडि कूडिदोडे पर्य्यायसमासपंचम-

श्रुतज्ञानविकल्पमक्कु ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ $\frac{\overline{१६}}{१६}$ मदरनंतैकभागमनल्लिये समच्छेदं माडि कूडु-

---

ज्ञानविकल्पेषु सर्वजघन्यप्रथमविकल्प स्यात् ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ अस्यानन्तैकभागे ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते

स पर्यायसमासद्वितीयज्ञानविकल्प ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमास-

तृतीयाज्ञानविकल्प ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमास-

१० चतुर्थज्ञानविकल्प ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमास-

पञ्चमश्रुतज्ञानविकल्प । ज $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । $\frac{\overline{१६}}{१६}$ । अस्यानन्तैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन

आवे उसे उस तीसरे भेदमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका चतुर्थ विकल्प आता है। यह चतुर्थ अनन्त भाग वृद्धि हुई। फिर इस चतुर्थ भेदमें अनन्तसे भाग देकर जो एक भाग आवे उसे उस चतुर्थ विकल्पमें मिलानेपर पर्याय समासका पंचम विकल्प आता है। यह
१५ पाँचवी अनन्तभाग वृद्धि हुई। फिर उस पाँचवे भेदमें अनन्तसे भाग देनेपर जो भाग आता है उसे पाँचवे भेदमें मिलानेपर पर्याय समासका छठा विकल्प आता है। यह छठी अनन्त भाग वृद्धि हुई। इसी प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसको एक बार असंख्यात लोक प्रमाण संख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे उसी भेदमें मिलानेपर एक बार असंख्यात भाग वृद्धिको लिये
२० हुए पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है। उसमें अनन्तसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे

त्तिरलु पर्य्यायसमासषष्ठ श्रुतज्ञानविकल्पमक्कु ज $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ मितु सूच्यंगुला-
$\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$

संख्यातैकभागमात्रानंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सर्व्वमु नडसल्पडुवुवल्लि तद्वृद्धिगळ्गे तज्जघन्यं

युते पर्यायसमासपष्ठश्रुतज्ञानविकल्पः ज $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ एवं सूच्यङ्गुलासंख्यातैक-
$\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$ $\frac{}{१६}$

भागमात्राणि अनन्तैकभागवृद्धियुक्तस्थानानि सर्वाण्यानेतव्यानि ।

उसीमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है। यहाँसे अनन्त भाग वृद्धिका प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धि होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसमें पुनः असंख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आया उसको उसी भेदमें मिलानेपर दूसरी असंख्यात भाग वृद्धिको लिये पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है।

इसी क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धिके पूर्ण होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसमें अनन्तका भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसको उसीमें मिलानेपर पर्याय समास ज्ञानका भेद होता है। यहाँ पुनः अनन्त भाग वृद्धिका प्रारम्भ हुआ सो सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भाग वृद्धिके पूर्ण होनेपर जो पर्याय समास ज्ञानका भेद हुआ उसको उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आया उसको उसीमें मिलानेपर प्रथम संख्यात भाग वृद्धिको लिये पर्याय समासका भेद होता है। इससे आगे पुनः अनन्त भाग वृद्धि प्रारम्भ होती है। सो जैसे पूर्वमें कहा है उसीके अनुसार वृद्धि जानना। इतना विशेष है कि जिस भेदसे आगे अनन्त भाग वृद्धि होती है उसी भेदमें जीवराशि प्रमाण अनन्तका भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे उसी भेदमें मिलानेपर अनन्तरवर्ती भेद होता है। तथा जिस भेदसे आगे असंख्यात भाग वृद्धि होती है वहाँ उसी भेदको असंख्यात लोक प्रमाण असंख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसको उसी भेदमें मिलानेपर उससे अनन्तरवर्ती भेद होता है। तथा जिस भेदसे आगे संख्यात भाग वृद्धि हो वहाँ उसी भेदको उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण संख्यातसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उसे उसी भेदमें मिलानेपर उससे आगेका भेद होता है। तथा जिस भेदसे आगे संख्यात गुण वृद्धि होती है वहाँ उस भेदको उत्कृष्ट संख्यातसे गुणा करनेपर उस भेदसे अनन्तरवर्ती भेद होता है। जिस भेदसे आगे असंख्यात गुण वृद्धि होती है वहाँ उसी भेदको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर उससे आगेका भेद होता है। जिस भेदसे आगे अनन्त गुण वृद्धि होती है वहाँ उसी भेदको जीवराशि प्रमाण अनन्तसे गुणा करनेपर उससे आगेका भेद होता है इस प्रकार षट्स्थान पतित वृद्धिका क्रम जानना।

यहाँ जो संख्या कही है सो सब संख्या ज्ञानके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी जानना। तथा जो यहाँ भेद कहे हैं उनका भावार्थ यह है कि जीवके पर्याय ज्ञानसे यदि बढ़ता हुआ ज्ञान होता है तो पर्याय समासका प्रथम भेद ही होता है। ऐसा नहीं है कि किसी जीवके पर्यायज्ञानसे एक-दो अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ता हुआ भी ज्ञान हो।

मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टवृद्धिपर्य्यंतं भेदमुंटप्पुदरिंदमवर विन्यासं तोरल्पडुगुमदें तेंदोडे पर्य्यायसमास-ज्ञानप्रथमविकल्पदोळिर्द्द वृद्धियं तेगदु जघन्यद मेगे स्थापिसि अदर केळगे एकसारानंतैकभाग-वृद्धियं स्थापिसुवुदंतु स्थापिसुत्तिरलु तद्वृद्धिगे प्रक्षेपकमेंब पेसरक्कु। मंते द्वितीयविकल्प-दोळिर्द्द जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु तद्वृद्धिप्रक्षेपकंगळेरडुमोंदु प्रक्षेपकप्रक्षेपक-
५ मुमप्पुवदं क्रमदिंदं केळगे केळगिरिसुवुदु। तृतीयविकल्पदोळं जघन्यमं मेगे स्थापिसि तद्वृद्धि-गळप्प मूरुं प्रक्षेपकंगळं मूरुं प्रक्षेपकप्रक्षेपंगळमोंदु पिशुलियुमं यथाक्रमदिंदं तज्जघन्यद केळगे केळगे स्थापिसुवुदु। चतुर्त्थविकल्पदोळुमंते जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु तद्वृद्धिगळप्प नाल्कुं प्रक्षेपकंगळं षट्प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळं चतुःपिशुलिगळुमनोंदु पिशुलिपिशुलियुमं यथाक्रमदिंद केळगे केळगे स्थापिसुवुदु।

१० पंचमविकल्पदोळमंते जघन्यमं मेग स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु तद्वृद्धिगळप्प प्रक्षेपकंग-ळय्दुमं प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळ पत्तुं। पिशुलिगळु पत्तुमं पिशुलिपिशुलिगळैदुमनोंदु चूर्णियुमं यथाक्रम-दिंदं केळगे केळगे स्थापिसुवुदु। षष्ठविकल्पदोळुमंते जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु

तत्र तद्वृद्धीना तज्जघन्यमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टवृद्धिपर्यन्त भेदे सति तद्विन्यासो दर्श्यते। तद्यथा—प्रथमविकल्पे स्थितवृद्धि पृथक्कृत्य जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याध एकवारानन्तैकभागवृद्धिं स्थापयेत्, तद्वृद्धे
१५ प्रक्षेपक इति नाम। तथा द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेर्द्वौ प्रक्षेपकौ एकं प्रक्षेपक-प्रक्षेपकं च अधोधो न्यस्येत्। तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तद्वृद्धेस्त्रीन् प्रक्षेपकान् त्रीन् प्रक्षेपक-प्रक्षेपकान् एकं पिशुलिं च अधोधो न्यस्येत्। चतुर्थविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेश्चतुर प्रक्षेपकान् पट् प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् चतुर पिशुलीन् एक पिशुलिपिशुलिं च अधोधो न्यस्येत्। पञ्चमविकल्पे

आगे यहाँ अनन्त भाग वृद्धि रूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान कहे हैं
२० उसका जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त स्थापनका विधान कहते है। सो प्रथम ही संज्ञाओंको कहते हैं—

विवक्षित मूल स्थानको विवक्षित भागहारका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेपक कहते है। उसी प्रमाणको उसी भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेपक-प्रक्षेपक कहते है। उसमें भी विवक्षित भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे पिशुलि
२५ कहते है। उसमें भी विवक्षित भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे पिशुलि-पिशुलि कहते हैं। उसमें भी विवक्षित भागहारसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे चूर्णि कहते हैं। उसमें भी विवक्षित भागहारका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे चूर्णि-चूर्णि कहते है। इसी प्रकार पूर्व प्रमाणमें विवक्षित भागहारका भाग देनेपर द्वितीय आदि चूर्णि-चूर्णि कही जाती है। अस्तु—

३० सो पर्याय समास ज्ञानके प्रथम भेदमें ऊपर जघन्यको स्थापित करके उसके नीचे एक बार अनन्त भाग वृद्धिकी स्थापना करना चाहिए। उस वृद्धिका नाम प्रक्षेपक है। तथा दूसरे विकल्पमे जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके दो प्रक्षेपक और एक प्रक्षेपक-प्रक्षेपक स्थापित करे। तीसरे विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसकी वृद्धिके तीन प्रक्षेपक, तीन प्रक्षेपक-प्रक्षेपक और एक पिशुली नीचे-नीचे स्थापित करे।
३५ चतुर्थ विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके चार प्रक्षेपक,

तद्वृद्धिगळप्प प्रक्षेपकंगळारुमं प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळ् पदिनैदुमं पिशुलिगळिप्पत्तुमं पिशुलिपिशुलिगळ् पदिनैदुमं चूर्णिगळारुमनों दु चूर्णिचूर्णियुमं यथाक्रमदिंदं केळगे केळगे स्थापिसुवुदितनंतभागवृद्धि-युक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळेळवरोळं बेक्केंय्दु तंतम्म जघन्यंगळ केळगे केळगे तंतम्म प्रक्षेपकंगळु गच्छमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळु रूपोनगच्छेय एकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसुवुदवर केळगे पिशुलिगळु द्विरूपोनगच्छेय द्विकवार-संकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे पिशूलिपिशुलिगळु त्रिरूपोनगच्छेय त्रिकवार-संकलनधनमात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवर केळगे चूर्णिगळु चतूरूपोनगच्छेय चतुर्वारसंकलनधन-मात्रंगळप्पुववं स्थापिसि यवरे केळगे चूर्णिचूर्णिगळु पंचरूपोनगच्छेय पंचवारसंकलनधनमात्रं-गळप्पुववं स्थापिसुवुदितु स्थापिसुत्तं पोगुत्तिरलु चरमाननंतभागवृद्धियुक्तस्थानविकल्पदोळु

तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेः पञ्च प्रक्षेपकान् दश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् दश पिशुलीन् पञ्च पिशुलिपिशुलीन् एकं चूर्णि च अधोधो न्यस्येत्। षष्ठविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धे. षट् प्रक्षेपकान् पञ्चदश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् विंशति पिशुलीन् पञ्चदश पिशुलिपिशुलीन् षट् चूर्णीन् एक चूर्णिचूर्णि च अधोधो न्यस्येत्, एवमनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानेषु सूच्यङ्गुलासंख्येयभागमात्रेषु सर्वेष्वपि स्वस्वजघन्यानामधोध. स्वस्वप्रक्षेपकान् गच्छमात्रान् न्यस्येत्, तेषामध प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् रूपोनगच्छस्य एकवारसकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तेषामध पिशुलीन् द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तेषामध पिशुलिपिशुलीन् त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिकवारसकलनधनमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः चूर्णीन् चतूरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसकलनधन-मात्रान् न्यस्येत्। तेषामध चूर्णिचूर्णीन् पञ्चरूपोनगच्छस्य पञ्चवारसकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। एव गत्वा

छह प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, चार पिशुलि और एक पिशुलि-पिशुली स्थापित करें। पाँचवें विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके पाँच प्रक्षेपक, दश प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, दस पिशुली, पाँच पिशुली-पिशुली और एक चूर्णि स्थापित करे। छठे विकल्पमें जघन्यको ऊपर स्थापित करके उसके नीचे-नीचे उसकी वृद्धिके छह प्रक्षेपक, पन्द्रह प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, बीस पिशुली, पन्द्रह पिशुली-पिशुली, छह चूर्णि और एक चूर्णि-चूर्णि स्थापित करे। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त सब पर्याय समास ज्ञानके स्थानोंमें अपने-अपने जघन्यके नीचे-नीचे अपने-अपने प्रक्षेपकोंको गच्छ प्रमाण स्थापित करना। उनके नीचे प्रक्षेपक-प्रक्षेपक एक कम गच्छके एक बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली दो हीन गच्छके दो बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली-पिशुली तीन हीन गच्छके तीन बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि चार हीन गच्छके चार बार संकलन धनमात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि-चूर्णि पाँच हीन गच्छके पाँच बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। इसी प्रकार क्रमसे एक हीन गच्छका एक-एक अधिक बार संकलन चूर्णि-चूर्णि ही अन्त पर्यन्त जानना। अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें अनन्तका जो स्थान है उनमें-से जघन्यको ऊपर स्थापित करना। उसके नीचे क्रमानुसार प्रक्षेपकोंको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र

१. म केळगे।

बेक्कर्कट्टु तज्जघन्यमं मेगे स्थापिसि तदधस्तनभागदोळु यथाक्रमदिंदं प्रक्षेपकंगळु गच्छेमात्रंगळप्पुवेंदु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळं स्थापिसिदवर केळगे प्रक्षेपकप्रक्षेपकंगळु रूपोनगच्छेय एकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुवेंदु रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय एकवारसंकलनधनप्रमितंगळ स्थापिसुवुदवर केळगे पिशुलिगळु द्विरूपोनगच्छेय द्विकवारसंकलनधनमात्रंगळप्पुवेंदु द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय द्विकवारसंकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदवर केळगे पिशुलि पिशुलिगळु त्रिरूपोनगच्छेय त्रिवारसंकलनधनप्रमितंगळप्पुवेंदु त्रिरूपोनसूच्यंगुलासंख्यात भागगच्छेय त्रिवार-

चरमानन्तभागवृद्धियुक्तस्थानविकल्पे पृथक्कृततज्जघन्यमुपरि न्यस्येत्। तदधस्तनभागे यथाक्रम प्रक्षेपकान् सूच्यङ्गुलासख्येयभागमात्रान् न्यस्येत्। तदध प्रक्षेपकप्रक्षेपका रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रा सन्तीति रूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य एकवारसकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तदध पिशुलय द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसकलनधनमात्रा सन्तीति द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्।

स्थापित करना, उसके नीचे प्रक्षेपक-प्रक्षेपकोंको, यतः वे एक कम गच्छके एक बार संकलन धन मात्र होते है अतः एक कम सूच्यंगुलके असंख्यात भाग गच्छके एक बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली, जो दो हीन गच्छके दो बार संकलन धन मात्र होती हैं, इसलिए दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके दो बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे पिशुली-पिशुली तीन हीन गच्छके तीन बार संकलन धन मात्र होती है इसलिए तीन हीन सूच्यंगुलके असख्यातवें भाग गच्छके तीन बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि चार हीन गच्छके चार बार संकलन धन मात्र होती है इसलिए चार हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके चार बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे चूर्णि-चूर्णि पाँच हीन गच्छके पाँच बार संकलन धन मात्र होती है इसलिए पाँच हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके पाँच बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। इसी प्रकार उसके नीचे-नीचे चूर्णि-चूर्णि छह हीन आदि गच्छके छह बार आदि संकलन धन मात्र होती है इसलिए छह हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग आदि गच्छोंके छह हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भागादि बार संकलन धन मात्र नीचे-नीचे स्थापित करना। ऐसा करते-करते सबसे नीचेकी द्विचरम चूर्णि-चूर्णि दो हीन गच्छसे हीन गच्छकी दो हीन गच्छवार संकलित धन प्रमाण होती है इसलिए दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार संकलन धन मात्र स्थापित करना। उनके नीचे एक हीन गच्छसे हीन गच्छके एक हीन गच्छ मात्र बार संकलन धन मात्र उसकी अन्तिम चूर्णि-चूर्णि हैं इसलिए एक हीन सूच्यंगुलके असख्यातवें भागसे हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गच्छके एक हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार सकलित धन प्रमाण स्थापित करना। परमार्थसे अन्तिम चूर्णि-चूर्णिका संकलित धन ही घटित नहीं होता क्योकि द्वितीय आदि स्थानका अभाव है।

विशेषार्थ—अंक संदृष्टिसे उक्त कथन इस प्रकार जानना। जघन्य पर्याय ज्ञानका प्रमाण ६५५३६। विवक्षित भागहार अनन्तका प्रमाण चार। पूर्वोक्त क्रमसे चारका भाग देनेपर प्रक्षेपकका प्रमाण १६३८४। प्रक्षेपक-प्रक्षेपकका प्रमाण ४०९६। पिशुलीका प्रमाण १०२४। पिशुली-पिशुलीका प्रमाण २५६। चूर्णि प्रमाण ६४। चूर्णि-चूर्णि प्रमाण १६। इसी

संकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदवर केळगे चूर्णिगळु चतूरूपोनगच्छेय चतुर्व्वारसंकलनधनप्रमितंगळप्पुवेंदु चतूरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय चतुर्व्वारसंकलनधनमात्रगळं स्थापिसुवुदवर केळगे चूर्णि चूर्णिगळु पंचरूपोनगच्छेय पंचवारसंकलनधनप्रमितंगळप्पुवेंदु पंचरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय पंचवारसंकलनधनमात्रंगळं स्थापिसुवुदिंतु तदधस्तनाधस्तनचूर्णिचूर्णिगळु

तदध. पिशुलिपिशुलयः त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसकलनधनमात्रा. सन्तीति त्रिरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभाग- ५
गच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तदध चूर्णयः चतूरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्राः सन्तीति चतूरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्येयभागगच्छस्य चतुर्वारसकलनधनमात्रान् न्यस्येत्। तदध चूर्णिचूर्णय पञ्चरूपोनगच्छस्य पञ्चवारसंकलनधनप्रमिता. सन्तीति पञ्चरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्यातभागगच्छस्य पञ्चवारसकलन-

---

तरह चारका भाग देते रहनेसे द्वितीयादि चूर्णि-चूर्णिका प्रमाण चार, एक आदि जानना। ऊपर जघन्य ६५५३६ को स्थापित करके नीचे एक बार प्रक्षेपक १६३८४ स्थापित करके १०
जोड़नेपर पर्याय समासके प्रथम भेदका प्रमाण ८१९२० होता है। फिर ऊपर जघन्य ६५५३६ स्थापित करके उसके नीचे दो प्रक्षेपक १६३८४।१६३८४ तथा एक प्रक्षेपक-प्रक्षेपक ४०९६ स्थापित करके जोड़नेपर पर्याय समासके दूसरे भेदका प्रमाण १०२४०० प्रमाण होता है। फिर ऊपर जघन्य ६५५३६ स्थापित करके उसके नीचे तीन प्रक्षेपक १६३८४। १६३८४। १६३८४। तीन प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, एक पिशुली स्थापित करके जोड़नेपर तीसरे भेदका प्रमाण १५
१२८००० होता है। फिर ऊपर जघन्यको स्थापित करके नीचे-नीचे चार प्रक्षेपक, छह प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, चार पिशुली एक पिशुली-पिशुली स्थापित करके जोड़नेपर चौथे भेदका प्रमाण १६०००० होता है। फिर ऊपर जघन्य स्थापित करके नीचे-नीचे पाँच प्रक्षेपक, दश प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, दस पिशुली, पाँच पिशुली-पिशुली, एक चूर्णि स्थापित करके जोड़नेपर पाँचवें भेदका प्रमाण दो लाख होता है। फिर ऊपर जघन्य स्थापित करके उसके नीचे-नीचे छह प्रक्षेपक, २०
पन्द्रह प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पन्द्रह पिशुली-पिशुली, छह चूर्णि, एक चूर्णि-चूर्णि स्थापित करके जोड़नेपर छठे स्थानका प्रमाण दो लाख पचास हजार होता है। इसी तरह सब स्थानोंमे ऊपर जघन्य स्थापित करके उसके नीचे-नीचे जितना गच्छका प्रमाण है उतने प्रक्षेपक स्थापित करना। जहाँ जिस नम्बरका स्थान हो वहाँ उतना ही गच्छ जानना। जैसे छठे स्थानमें गच्छका प्रमाण छह होता है। उसके नीचे एक हीन गच्छका एक बार संकलन २५
धनका जितना प्रमाण हो उतने प्रक्षेपक-प्रक्षेपक स्थापित करना उनके नीचे दो हीन गच्छका दो बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने पिशुली स्थापित करने। उनके नीचे तीन हीन गच्छका तीन बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने पिशुली-पिशुली स्थापित करने। उनके नीचे चार हीन गच्छका चार बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो उतने चूर्णि स्थापित करने। उनके नीचे पाँच हीन गच्छका पाँच बार संकलन धनका जितना प्रमाण हो ३०
हो उतने चूर्णि-चूर्णि स्थापित करना। इसी तरह नीचे-नीचे छह आदि हीन गच्छका छह आदि बार संकलन धनका जितना-जितना प्रमाण हो उतने द्वितीयादि चूर्णि-चूर्णि स्थापित करना। इस तरह स्थापित करके जोड़नेपर पर्याय समास ज्ञानके भेदोंका प्रमाण आता है। यहाँ जो एक बार-दो बार आदि संकलन धन कहे है उनका विधान कहते हैं।

षड्रूपोनादिगच्छेय षड्वारसंकलनादिधनप्रमितंगळप्पुवेंदु षड्रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागादिवार-संकलनधनमात्रंगळं केळगंकेळगे स्थापिसुत्तं पोगि सर्व्वाधस्तनद्विचरम चूर्णिचूर्णिगळु द्विरूपोन-गच्छोनगच्छद्विरूपोनगच्छोनगच्छवारसकलनदधन प्रमितंगळप्पुवेंदु द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यात-भागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय द्विरूपोनसूच्यंगुलाऽसंख्यातभागवारसंकलनधनमात्रंगळं

५ स्थापिसुवु ज २ । ३ । ४ । ० ० ० । २–३ । २–२ । २ २ दुवनपर्वर्त्तिसि ज २ २ यवर केळगे
१६ । २ २ । २ २ । २३ । ० ० ० । ४ । ३ । २ । १
१६ अ अ

रूपोनगच्छोनगच्छरूपोनगच्छमात्रवार संकलनधनमात्र तच्चरमचूर्णिचूर्णियप्पुदरिंदं रूपोनसूच्यं-गुलासंख्यातभागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छेय रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारसंकलनधन-प्रमितमं ज । १ । २ । ३ ० ० ० २ २ २–१ २ अपवर्त्तितमनिदं ज । १ स्थापिसुवुदु
१६ २ । २ । २–१ । २–२ । ० ० ० अ ३–अ २ । अ १ १६ । २
अ अ अ अ अ

परमार्थरूपदिंदं चरमचूर्णिचूर्णिगे संकलितमे घटिसदेकेंदोडे द्वितीयादिस्थानाभावमप्पुदरिंदं।
१० इल्लि षट्स्थानप्रकरणदोळनंतभागवृद्धियुक्तपर्य्यायसमासजघन्यादिज्ञानविकल्पंगळोळु सर्व्वत्र स्थापिसिद प्रक्षेपकंगळु गच्छमात्रंगळप्पुवदु कारणदिंदं सुगमंगळु। प्रक्षेपकप्रक्षेपकादिगळ प्रमाण-नरिवल्लिगे करणसूत्रमिदु।

धनमात्रान् न्यस्येत्। एव तदधस्तनाधस्तनचूर्णिचूर्णय षड्रूपोनादिगच्छस्य षड्वारादिसकलनधनप्रमिता सन्तीति षड्रूपोनसूच्यङ्गुलासख्येयभागादिगच्छाना षड्रूपोनसूच्यङ्गुलासख्यातभागादिवारसकलनधनमात्रान्
१५ अधोऽधो विन्यस्यन् गत्वा सर्वाधस्तनद्विचरमचूर्णिचूर्णय द्विरूपोनगच्छोनगच्छस्य द्विरूपोनगच्छवारसकलनधन-प्रमिता सन्तीति द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासख्येयभागोनसूच्यङ्गुलासख्यातभागगच्छस्य द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासख्यातभाग-वारसकलनधनमात्रान् न्यस्येत्—

ज २ ३ ४ । ० ० ० । २–३ २–२ २–१ २
१६ २–१ २–१ २–२ २–३ । ० ० ० । अ । ४ अ । ३ अ । २ २ । १
अ अ अ अ

ज २
अपवर्तिते एव—१६ २–१ अ तदधो रूपोनगच्छोनगच्छस्य रूपोनगच्छमात्रवारसकलनधनमात्रा तच्चरम-
अ
२० चूर्णिचूर्णय सन्तीति रूपोनसूच्यङ्गुलासख्यातभागोनसूच्यङ्गुलासख्यातभागगच्छस्य रूपोनसूच्यङ्गुलासख्यात-भागमात्रवारसकलनधनप्रमितं—

ज १ २ ३ ४ ० ० ० २ । ३ । २–२ । २–१ । २
१६ २ २ २–१ २–२ २–३ । ० ० ० अ ४ । अ ३ । अ २ । अ १
अ अ अ अ अ

ज १
अपवर्तितमिद— १६ २ स्थापयेत्। परमार्थत चरमचूर्णिचूर्णे सकलितमेव न घटेत द्वितीयादिस्थाना-
अ
भावात्। अत्र षट्स्थानप्रकरणे अनन्तभागवृद्धियुक्तविकल्पेषु सर्वत्र प्रक्षेपका गच्छमात्रा सन्तीति सुगमा।

इस षट्स्थान प्रकरणमे अनन्त भागवृद्धि युक्त विकल्पोंमें सर्वत्र प्रक्षेपक गच्छ प्रमाण
२५ होते है इसलिए वे सुगम हैं। प्रक्षेपक-प्रक्षेपक आदिका प्रमाण लानेके लिए करणसूत्र इस

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः।
रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हृतोवित्तं ॥

एंदितु पर्य्यायसमास ज्ञानविकल्पंगळोळु विवक्षितषष्ठविकल्पदोळु चतुर्व्वार संकलनधनानयनदोळु व्येकपद विगतमेकेन व्येकं। तच्च तत्पदं च व्येकपदं। अत्र चतूरूपोनगच्छ एव ६।४ पदं २। तत्र एकस्मिन्नपनीते २—१ एवं। तेनोत्तरघातः। एकवारादिसंकलनमाश्रित्यैवोत्पत्तिसंभवाद्येकाद्येकोत्तरत्वादुत्तरघातः कर्त्तव्यः। १।१। सरूपवारोद्धृतः रूपेण सहितः सरूपः।

स चासौ वारश्च सरूपवार ४ स्तेनोद्धृतो भक्तः। १ ० १। मुखेन युतः मुखमादिस्तेन युतः
१
४

समच्छेदी कृत्य युते एवं ६ पुनः रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हृतः। रूपाधिकवारावसान १। हार
५ ४

विकल्पै ४।३।२।१। राप्तभक्तपदाद्यंकैः। पदं गच्छ आदिर्य्येषां ते पदादयस्ते च ते अंकाश्च तैर्हृतः ६।२।३।४।५ अपवर्त्तितं वित्तं धनं भवति एंदिती सूत्रदिंदं तरल्पट्ट विवक्षितषष्ठ- १०
५।४।३।२।१
विकल्पदोळु चतुर्व्वारसंकलनधनमारक्कु। ६। इंते सर्व्वत्र समस्तवारसंकलनधनंगळं विवक्षितंगळं तदुकों बुदु।

प्रक्षेपकप्रक्षेपकादीना प्रमाणानयने करणसूत्रमिदं—

व्येकपदोत्तरघात सरूपवारोद्धृतो मुखेन युत ।
रूपादिकवारान्ताप्तपदाद्यङ्कैर्हृतो वित्तम् ॥ १५

तत्र षष्ठ विकल्प विवक्षित कृत्वा चूर्णीना चतुर्वारसकलितधनमानीयते। तत्र पदं चतूरूपोनगच्छ ६—४ मात्र २। व्येक एकरहित २—१ अस्य उत्तरेण घात. एकवारादिसंकलनरचनामाश्रित्यैव द्विकवारादिसंकलनरचनोत्पत्ते सर्वत्रादिः उत्तरश्चैकैक. इत्येकेन घात कर्तव्य १।१। गुणिते एवं १, सरूपवारोद्धृत·
१
रूपाधिकवार ४। भक्त. ४। मुखमादि १ तेन समच्छेदेन ५ सहित· ५ रूपादिकवारान्ताप्तपदाद्य-
५ ६
२ ३ ४ ५ ६ २ ३ ४ ५
ङ्कैर्हृत एकरूपप्रभृतिवारावसानहारभक्तपदाद्यङ्क ४ ३ २ १ हत. गुणितः ५ ४ ३ २ १ २०
अपवर्तित ६ वित्त षष्ठविकल्पचूर्णिधन भवति, एवमेव सर्वत्र समस्तवारसंकलनधनानि विवक्षितान्यन्यानि

प्रकार है—उसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करनेके लिए छठे विकल्पको विवक्षित करके चूर्णियोंका चार बार संकलित धन लाते है—यहाँ पद चार हीन गच्छ ६ – ४ = मात्र २ है। उसमें एक घटानेपर २ – १ = एक शेष रहता है। इसको उत्तरसे गुणा करना चाहिए। सो एक बार आदि संकलन धन रचनाकी अपेक्षा ही दो बार आदि संकलनकी रचना उत्पन्न होती है। २५
सर्वत्र आदि और उत्तर एक-एक है अतः उसे एकसे गुणा करने पर १ × १ = एक ही रहा। इसका यहाँ चार बार संकलन कहा है सो चारमें एक मिलानेपर पाँच हुआ। उसका भाग देनेपर एकका पाँचवाँ भाग हुआ। इसमें मुख जो आदि, उसका प्रमाण एक, सो समच्छेद करके मिलानेपर छहका पाँचवाँ भाग हुआ। यहाँ चार बार कहा है सो एकसे लेकर एक-एक

---

१ म चतुर्थवार। ३०

मत्तं केशण्णंगळु तम्मभिप्रायदिं तरल्पडुव विशेषकरणगाथासूत्रद्वयं :—

तिरियपदे रूऊणे तदिट्ठहेट्ठिल्ल संकळणवारा ।
कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूणिदुड्ढपदसंखा ॥

तिर्य्यक्पदे रूपोने तदिष्टाधनस्तनसंकलनवारा । भवंति कोष्ठधनस्यानयने प्रभवः इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या ॥

तत्तो रूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति ।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥

ततो रूपाधिकक्रमेण गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं । एकरूपादिरूपोत्तरहारा भवति प्रभवपर्य्यंतं ।

इल्लिष्टमप्पुदावुदानुमोंदु तिर्य्यक्पददोळ् ६ रूपोनमागुत्तिरलु ६° तत्तत्पदप्रमाणं इष्टाधस्तनसंकलनवारा भवंति । आ तिर्य्यग्गच्छेदद केळगे प्रक्षेपकोनैकवारसंकलनादिसर्व्वसंभवद्वार-

---

आनयेत् । पुनरेतदेव केशववर्णिभिः स्वाभिप्रायेण आनेतु गाथाद्वयमुच्यते—

तिरियपदे रुऊणे तदिट्ठहेट्ठिल्लसकलणवारा ।
कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूण उड्ढपदसखा ॥१॥

तिरियपदे अनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानेषु यद्विवक्षितं स्थानं तत् तिर्यक्पदं ६, तस्मिन् रूऊणे रूपोने कृते ६° तदिट्ठहेट्ठिल्लसकलणवारा तदिष्टपदे प्रक्षेपकादधस्तनकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकैकं संकलनमिति संभवता क्रमेणैकवारद्विवारादिसंकलनाना संख्या भवति ५ ॥ तत्र इष्टस्य 'कोट्ठधणस्स' चतुर्वारसकलनधनगतकोष्ठधनस्य आणयणे आनयने 'इट्ठूणउड्ढपदसंखा' तदिष्टसंकलनवारस्य प्रमाणेन ४ न्यूनोर्ध्वपदं-६–४ पभवो आदिर्भवति ॥२॥

तत्तोरूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति ।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥२॥

तत्तो तमादि २ मादिं कृत्वा रूवहियकमे रूपाधिकक्रमेण गुणगारा गुणकारा अनुलोमगत्या होंति—

बढ़ते हुए चार पर्यन्त अंक रखकर १×२×३×४ परस्परमें गुणा करनेपर २४ हुए। यह भागहार हुआ। और गच्छ दो के प्रमाणसे लेकर एक-एक बढ़ता अंक रखकर २×३×४×५ परस्पर गुणा करनेपर १२० भाज्य हुआ। सो भाज्य १२० में भागहार २४ से भाग देनेपर लब्ध पाँच आया। इस पाँचसे पूर्वोक्त छहके पाँचवें भागको गुणा करनेपर पाँच रहे। यही दो का चार बार संकलन धन होता है। इसी तरह तीनका तीन बार संकलन धन लाना हो तो गच्छ तीनमें एक कम करके दो शेष रहे। उसे उत्तर एकसे गुणा करनेपर भी दो ही हुए। यहाँ तीन बार संकलन है। अतः उसमें एक अधिक बार चारका भाग देनेपर आधा रहा। उसमें मुख एक जोड़नेपर डेढ़ हुआ। यहाँ तीन बार कहा है अतः एकसे लेकर एक-एक बढ़ते तीन पर्यन्त अंक रखकर १×२×३ = परस्परमें गुणा करनेपर भागहार छह हुआ। और गच्छको आदि लेकर एक-एक अधिक अंक रख ३×४×५ परस्परमें गुणा करनेपर भाज्य साठ हुआ। भाज्य साठमें भागहार छहसे भाग देनेपर दस पाये। इस दससे पूर्वोक्त डेढ़को गुणा करनेपर छठे भेदमें तीन कम गच्छका तीन बार संकलन धनमात्र पन्द्रह पिशुली-पिशुली होती हैं। इसी तरह सर्वत्र विवक्षित संकलित धन लाना चाहिये।

संकलनवारंगळ प्रमाणमक्कुमल्लि कोष्ठधनस्थानयने विवक्षित ४ चतुर्व्वारसंकलनधनमंतप्पल्लि। प्रभवः आदि येंतुंटक्कुमेंदोडे इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या स्यात्। तन्न विवक्षितसंकलनवारप्रमाणमं नाल्कं कळेदुळिदूर्ध्वपदप्रमाणमेंतुंटंतुटु प्रभवमक्कुमेंदिल्लि ऊर्ध्वगच्छमु मूरप्पुववरोळु नाल्कं कळेदुळिद द्विरूपुगळु प्रभवमेंबुदत्थं।

ततो रूपाधिक क्रमेण तदादिभूतप्रभवभूत द्विरूपं मोदल्गोंडु मुंदे रूपाधिकक्रमदिंदं गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं अनुलोमक्रमदिं गुणकारंगळप्पु ऊर्ध्वगच्छप्रमाणांकक्के नेवरमुत्पत्तियक्कुमन्नेवरं ज २।३।४।५।६ ई गुणकारंगळगे केळगे एकरूपादि रूपोत्तरहाराः भवन्ति एक- १६।५

रूपादिरूपोत्तरमप्प भागहारंगळु विलोमक्रमदिंदमप्पुवु। प्रभवपर्य्यंतं मेलण गुणकारभूतप्रभवांकमाद्यंकमवसानमन्नेवरमन्नेवरं ज ३।४।५।६ केळगे अपवर्त्तितलब्धं चतुर्व्वारसकलन- १६।५।४।३।२।१

धनमक्कु ज ६ इंतनंतभागवृद्धियुक्तचरमज्ञानविकल्पद तिर्य्यक्पदे १६ १६ १६ १६ १६

तिर्य्यग्गच्छदोळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रगच्छदोळु २ रूपोने २ एकरूपोनमादोडे तत् अ अ

भवन्ति उड्ढगच्छोत्ति ऊर्ध्वगच्छाङ्कोत्पत्तिपर्यन्त-ज २ ३ ४ ५ ६ तेषा गुणकाराणा अध' हारा भागहारा १६ ५

इगिरूवमादि एकरूपादय रूउत्तरा-रूपोत्तरा होंति भवन्ति विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारस्थानेषु पभवोत्ति प्रभवाङ्कपर्यन्तं ज २ ३ ४ ५ ६ अपवर्तिते लब्ध चतुर्वारसंकलनधन भवति— १६ १६ १६ १६ १६ ५ ४ ३ २ १

ज ६ एवमनन्तभागवृद्धियुक्तचरमविकल्पे तिर्यक्पद सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्र २ १६ १६ १६ १६ १६ अ

इस संकलित धनको अपने अभिप्रायके अनुसार लानेके लिए केशववर्णीने दो गाथाएँ कही हैं। उनका अर्थ उदाहरण पूर्वक कहते हैं–अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें जो विवक्षित स्थान है वह तिर्यक् पद है। जैसे छठा स्थान तिर्यक्पद है। उसमें एक घटानेपर उसके नीचे पाँच सकलन वार होते हैं। प्रक्षेपकके नीचे कोठोंमें-से प्रत्येकमे क्रमसे एक वार, दो वार आदि सम्भव संकलनोंकी संख्या होती है। यहाँ इष्ट चार वार संकलन धन गत कोठेके धनको लानेके लिए इष्ट संकलन वारके प्रमाण ४ को ऊर्ध्वपद ६ मे कम करनेपर ६ – ४ = २ आदि होता है। इस आदि दोसे लगाकर एक-एक अधिकके क्रमसे ऊर्ध्व गच्छ छह पर्यन्त गुणकार होते हैं यथा २, ३, ४, ५, ६। इन गुणकारोंके नीचे भागहार एक रूप आदि एक अधिक बढते हुए उल्टे क्रमसे होते हैं। सो यहाँ चार वार संकलनके कोठेमे चूर्णि है। जघन्यमें पाँच वार अनन्तका भाग देनेसे जो प्रमाण आता है उतना चूर्णिका प्रमाण है। इस प्रमाणके गुणकार क्रमसे दो, तीन, चार, पाँच, छह है और पाँच, चार, तीन, दो एक भागहार है। गुणकारसे चूर्णिके प्रमाणको गुणा करके भागहारोंका भाग देनेपर यथायोग्य अपवर्तन करनेपर छह गुणित चूर्णि मात्र प्रमाण आता है। इसका आशय यह है जो १६, १६, १६, १६, १६ यह चूर्णिका प्रमाण है। 'ज' अर्थात् जघन्य पर्याय ज्ञानमें १६ अर्थात् अनन्तका पाँच वार

---

१ म °णाकमेन्नेवर°।

तत्पदप्रमाणं। इट्ठहेट्ठिल्लसंकलनवारा इष्टाधस्तनसंकलनवाराः तन्न विवक्षित तिर्य्यग्गच्छद कळगे कळगे संभविसुव प्रक्षेपकोनैकवारसंकलन आदिसर्व्ववारसंकलनगळ प्रमाणमक्कु $\frac{\circ}{२}$ मवरोळु कोष्ठधनस्यानयने विवक्षित ४ चतुर्व्वारसंकलनधनमंतप्पल्लि प्रभवः आदि ये तुटक्कुमें दोडे इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या स्यात् तन्न विवक्षितसंकलनवारप्रमाणमं नाल्कं कळेदुळिददूर्ध्वपदप्रमाणमक्कु २ ~ ४ मिल्लियूर्ध्वगच्छमुं सर्व्वाधस्तनचूर्णिचूर्णियागि प्रक्षेपकाख्यपर्य्यायावसानमप्प स्थानंगळु ५ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रमेयक्कु २ मवरोळातन्निष्टवारसंकलनांकं नाल्कं कळेदुळिद शेषप्रमाणमादियक्कुमेंबुदत्थं ज २—४ ततो रूपाधिकक्रमेण ई यादिस्थानं मोदलगों डु मुंदे रूपाधिक क्रमदिंदं गुणकारा भवंत्यूर्ध्वगच्छपर्य्यंतं अनुलोमदिं गुणकारंगळप्पुवूर्ध्वगच्छप्रमाणांकक्केन्नेवरमुत्पत्तियक्कुमन्नेवरं ज २–४। २–३। २–२। २–१। २ ई गुणकारंगळगे एकरूपादि रूपोत्तर-

---

तस्मिन् रूपोने $\frac{\circ}{२}$ अवशिष्टं तदिष्टाधस्तनसंकलनवारा भवन्ति $\frac{\circ}{२}$ तेषु मध्ये विवक्षितस्य चतुर्वारसंकलन- १०
गतकोष्ठधनस्यानयने तद्वारप्रमाणे ४ ऊर्ध्वपदे २ अपनीते २–४ शेषप्रमाणमादिर्भवति ज २–४ ततः
तमादिमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण गुणकारा भवन्ति ऊर्ध्वगच्छप्रमाण यावदुत्पद्यते तावत् ज
२–४। २–३। २–२। २–१। २ एषा गुणकाराणामध एकाद्येकोत्तरा आदिपर्यन्तं विलोमक्रमेण हारा

भाग देनेसे आता है। भागहार और गुणकार इस प्रकार है— २, ३, ४, ५, ६। यहाँ दो
५, ४, ३, २, १
तीन, चार पाँच का तो अपवर्तन हो गया। दोसे दो, तीनसे तीन, चारसे चार और पाँचसे १५
पाँच अपवर्तित हो गये। छह और भागहार एक शेष रहा। सो छहगुना चूर्णिमात्र प्रमाण रहा। इसी प्रकार अनन्तभाग वृद्धि युक्त अन्तिम विकल्पमें वह स्थान सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका जितना प्रमाण है उतनेका है इसलिए तिर्यग् गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र है। उसमें-से एक घटानेपर जो अवशेष है उतना अधस्तन संकलनके बार है। उनमें-से विवक्षित चार बार संकलन गत कोठाका धन लानेके लिए विवक्षित संकलन बारके प्रमाण २०
चारमें ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्रमें-से घटानेपर जो अवशेष रहता है वह आदि है। उसको आदि करके एक-एक बढ़ते क्रमसे ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग पर्यन्त तो गुणकार होता है। और इन गुणकारोंके नीचे उल्टे क्रमसे एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ते हुए पाँच पर्यन्त भागहार होता है। यहाँ गुणकार और भागहार समान नहीं है

---

१. ब °रूपोने २ अवशिष्टं भवन्ति २ तेषु मध्ये। २५

हाराः एकरूपमादियागि रूपोत्तरमप्प भागहारंगळु विलोमक्रमदिं भवंति प्रभवपर्य्यंतं आदिभूत-रूपचतुष्टयोनसूच्यंगुलासंख्यातभागावसानमप्प गुणकारं गलकेळगेयप्पुवु :—

ज २-४ । २-३ । २-२ २ । २ इल्लि विषमापवर्त्तनमप्पुदरिंदमनपवर्त्तितमिते
१६।१६ १६ १६ १६ । ə ५ ə ४ ə ३ ə २ ə १

यिरुतिक्कुमेकेंदोडे तल्लब्धमवधिज्ञानविषयमप्पुदरिंदं ।

इल्लिये चरमविकल्पदोळु ई प्रकारदिंदं विवक्षितद्विचरमचूर्णिचूर्णि द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागवारसंकलनधनं तरतरल्पडुगुमदेंतेंदोडे तिर्य्यक्पदे रूपोने सति रूपहीनमादोडिद्दु २ तदिष्टाधस्तनसंकलनवाराः तद्विवक्षितेष्टाधस्तनसंकलनसमस्तवारसंख्येयक्कु कोष्ठधनस्या-ə
नयने तन्निष्टावारसंकलनधनमंतप्पल्लि प्रभवः आदिय प्रमाणमेंतुटेंदोडे इष्टोनितोर्ध्वपदसंख्या स्यात् तन्न विवक्षितवारसंकलनप्रमाणमं २—२ कळिदुळिदूर्ध्वपदप्रमाणं प्रभवमक्कुमेंदूर्ध्वपदं ə
सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रमदरोळकळेदोडे शेषं द्विरूपमादियक्कुमेंबुदत्थं ।

ततो रूपाधिकक्रमेण तदादिभूतद्विरूपं मोदल्गोंडु मुंदे रूपाधिकक्रमदिंदं गुणकारा भवंत्यू-र्ध्वगच्छपर्य्यंतं अनुलोमक्रमदिं गुणकारंगळूर्ध्वगच्छप्रमाणांकोत्पत्तिपर्य्यवसानमागियप्पु-

---

भवन्ति— ज २-४ । २-३ । २-२ । २-१ । २ अत्र विषममपवर्तनमस्ती-
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । ə ५ । ə ४ । ə ३ । ə २ । ə १

त्यनपवर्तितमेव अवतिष्ठते तल्लब्धस्य अवधिज्ञानविषयत्वात् । पुनस्तच्चरमविकल्पे विवक्षितद्विचरमचूर्णिचूर्णे-

द्विरूपोनसूच्यङ्गुलासंख्यातभागवारसंकलनधनमानीयते, तद्यथा—तिर्यक्पदे २ रूपोने सति २ तदिष्टाधस्तन-
ə ə

संकलनसमस्तवारसंख्या भवति निजेष्टवारसंकलनधनानयने तद्वारसंकलनप्रमाणेन २—२ ऊनोर्ध्वपद २
ə ə

आदि २ । ततस्तमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण अनुलोमगत्या गुणकारा ऊर्ध्वगच्छप्रमाणाकोत्पत्तिपर्यन्तं

अतः अपवर्तन हुए विना तदवस्थ रहता है । यहाँ जो लब्ध राशि होती है वह अवधिज्ञान-का विषय है । पुनः अनन्त भाग वृद्धिसे युक्त उसके अन्तिम विकल्पमें विवक्षित उपान्त्य चूर्णि-चूर्णिके दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यात भाग बार संकलन धनका प्रमाण लाते है जो इस प्रकार है—यहाँ भी तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र है । उसमें एक घटानेपर इष्ट अधस्तन संकलनके समस्त वारोंकी संख्या होती है । उनका सकलन धन लानेके लिए विवक्षित संकलन बार दो हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र है । उसे ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमें-से घटानेपर दो शेष रहे वह आदि, इससे लेकर आगे एक-एक बढ़ते क्रमसे ऊर्ध्वगच्छ पर्यन्त गुणकार होते है । और एकसे लेकर आगे एक-एक बढते हुए अपने इष्ट बारके प्रमाणसे एक अधिक पर्यन्त विपरीत क्रमसे भागहार होते हैं । यहाँ दो आदि एक हीन सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग पर्यन्त गुणकार और भागहारके अंक समान है । अतः

ज । २ । ३ । ४ । ००० । २–३ । २–२ । २–२ वी गुणकारंगळ केळगे एकरूपादिरूपोत्तरहाराः
१६ २ ə ə ə

एकरूपादिरूपोत्तरमप्प हारंगळु विलोमक्रमदिं रूपाधिकेष्टवारसंकलनांकपर्य्यंयवसानमागि भवंति प्रभवपर्य्यंतं । तदादिभूतगुणकारद्विरूपावसानमागियप्पुवु :—

ज । २ । ३ । ४ । ०००२–३ । २–२ २ २ इल्लि समापवर्त्तनमुंटप्पुदरिंदमवर्त्तितमिदु
१६ २ २ २–२ २–३ । ००० ə ४ ə ३ । ə २ । ə १
२
ज ə ə चरम चूर्णिचूर्णिगे संकलितमिल्ल द्वितीयादिस्थानाभावदिंदं । सूच्यंगुलासंख्यात- ५
१६ ə
भागमात्रवारानन्तभक्तजघन्यप्रमितमक्कुं ज १ । इंतनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुला-
१६ । २
ə

भवन्ति— ज २ । ३ । ४ । ००० । २–३ । २–२ । २–१ । २ एषामध रूपादिरूपोत्तरा
१६ २ । ə ə ə ə
ə २
हारा विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारसंकलनाङ्कावसाना भवन्ति प्रभवपर्यन्त—

ज ३ ४ । ००० २–३ २–२ २–१ २ अत्र समानापवर्तनमस्तीति अप-
१६ २ २ २–२ २–३ ००० ə ४ ə ३ ə २ ə १
ə ə ə ə
वर्तिते एवं— ज २ चरमचूर्णिचूर्णेः संकलित नास्ति [1] द्वितीयादिस्थानाभावात् । सूच्यङ्गुलासंख्यात- १०
१६ ə
२ ।
ə
भागमात्रवारानन्तभक्तजघन्यप्रमितं स्यात् ज १ एवमनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभाग-
१६ २
ə

उनका अपवर्तन करनेपर शेष सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागका गुणकार और एकका भागहार रहता है। इस कोठेमें उपान्त्य चूर्णि-चूर्णि है उसका प्रमाण जघन्यको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र बार भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना जानना। इसको पूर्वोक्त गुणकारसे गुणा करनेपर और एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आता है वह उस कोठा सम्बन्धी प्रमाण है। १५
अन्तिम चूर्णि-चूर्णिमें संकलन नहीं है क्योंकि उसके दूसरे आदि स्थान न होनेसे वह एक ही है। सो जघन्यको सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार अनन्तसे भाग देनेपर अन्तिम चूर्णि-चूर्णिका प्रमाण होता है। उसमें एकसे गुणा करनेपर भी उतना ही उस कोठेमें वृद्धिका प्रमाण जानना। इस प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान

---

१ ब द्वितयादिस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा । २०

संख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तमिरलु वों दसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुं ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ इल्लियुर्व्वंकमं चतुरंकदिंद भागिसि तदेकभागमनल्लिये कूडिदप्पुदरिंदं जघन्यं साधिकमक्कुं मुंदेल्लावृद्धिगळ्गं मी क्रममेयक्कुं तंतम्म पेरगणुर्व्वंकंगळं भागिसिद भागवृद्धिगळुं गुणिसिद गुणवृद्धिगळुमरियल्पडुगुं। मत्तं मुन्निनंताऽनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलु मत्तमों द-

५ संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कु ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ मी क्रमदिंदमसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलु मत्तमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलु ओंदु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानमक्कुं ज $\frac{१५}{१५}$ मुंदे मत्तं मुन्निनंत-

---

मात्राणि नीत्वा एक असंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थान भवति ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$। अत्र उर्वक चतुरङ्केन भक्त्वा तदेकभाग तत्रैव युतोऽस्तीति जघन्यं साधिकं भवति। अग्रेऽपि सर्ववृद्धीना अयमेव क्रमो भवति। स्वस्वप्राक्तनोर्वक १० भक्त्वा तदेकभागवृद्धिरवगन्तव्या। पुन प्राग्वदनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरपरमसख्यातभागवृद्धियुक्त स्थान भवति ज $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ $\frac{\equiv a}{\equiv a}$ अनेन क्रमेण असख्यातभागवृद्धियुक्त-स्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासख्यातभाग-मात्राणि नीत्वा एक सख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज $\frac{१५}{१५}$। पुन पूर्ववदनन्तभागासंख्यातभागवृद्धि-

---

होनेपर एक असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। यहाँ ऊर्ध्वंक जो अनन्त भाग १५ वृद्धि युक्त अन्तिम स्थान है उसमे चतुरंकसे भाग देनेपर जो एक भागका प्रमाण आवे उसे उसीमें जोड़ा, सो यहाँ जघन्य ज्ञान साधिक होता है। आगे भी सब वृद्धियोका यही क्रम होता है। अपने-अपनेसे पूर्वके ऊर्वंकमें भाग देनेपर जो एक भाग आवे उतनी वृद्धि जानना। पुनः पूर्वकी तरह सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थानोंके बीतने पर पुनः आगेका असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। २० इस क्रमसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान बिताकर पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धिसे युक्त स्थान बिताकर एक संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। पुनः पूर्ववत् प्रत्येक अनन्त भाग वृद्धि युक्त तथा असख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंके सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र होनेपर तथा पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान होनेपर पुनः एक सख्यात २५ भाग वृद्धि युक्त स्थान होता है। इसी क्रमसे संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान भी सूच्यंगुलके असख्यातवे भाग मात्र होनेपर आगे पूर्ववत् सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र अनन्त भाग

नंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळावर्त्तिसि मुंदे मत्तमनंतवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभगमात्रंगळु सलुत्तं विरलु मत्तमों दु संख्यातभागवृद्धि-

युक्तस्थानं पुट्टुगु ज $\frac{\text{१५}}{\text{१५}} \cdot \frac{\text{१५}}{\text{१५}}$ मी क्रमदिंदमी संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळुं संख्यातगुण-

वृद्धियुक्तस्थानंगळुमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुं यथाक्रमावस्थितरूपसूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगळु संदु संदु मत्तं मुंदे अनंतभाग असंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडक कांडक प्रमितंगळु संदु संदु मत्तं मुंदे अनंताऽसंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितंगळु संदु संदु मत्तं मुंदे, अनंतासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितंगळु नडेनडेदु मुंदे मत्तमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानंगळे सूच्यंगुलासंख्यात-

युक्तस्थानानि प्रत्येक सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि आवर्त्य पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुला-

सख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरेकं संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानं ज $\frac{\text{१५}}{\text{१५}} \cdot \frac{\text{१५}}{\text{१५}}$ अनेन क्रमेण संख्यातभाग-

वृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा । अग्रे प्राग्वदनन्तभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं सख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानं भवति । एवं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनः अनन्तभागासंख्यातभागसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्राग्वत्सूच्यङ्गुलासख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनन्तभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि[1] पूर्ववत्सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा[1] (पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्राणि नीत्वा) एकमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानं भवति । एवमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यङ्गुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा अग्रे अनन्तभागासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं काण्डककाण्डकप्रमितानि[2] नीत्वा पुनरनन्तासंख्यात-

वृद्धि युक्त और असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंको करके पुनः सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र अनन्त भाग वृद्धि स्थानोंके होनेपर एक संख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान होता है। इस प्रकार संख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान भी सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान, असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान और संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें से प्रत्येक पूर्ववत् सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त असंख्यात भाग वृद्धि युक्त और संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर तथा पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर एक असंख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान होता है। इस प्रकार असंख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थान भी सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र होनेपर आगे अनन्त भाग वृद्धि युक्त, असंख्यात भाग वृद्धि युक्त तथा संख्यात गुण वृद्धि युक्त स्थानोंमें-से प्रत्येकके सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त, असंख्यात भाग वृद्धि युक्त, संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें-से प्रत्येकके सुच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि और असंख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें-से प्रत्येकके सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग

१ ब कोष्ठान्तर्गत भागो नास्ति । २ सूच्यङ्गुलसज्ञा ।

भागमात्रंगळु संदु द्वितीयषट्स्थानक्कादिभूतमप्पऽष्टांकमोंदु पुट्टुगुमेन्नेवर मन्नेवरेगमी क्रममरियल्पडुगुं ।

आदिमछट्ठाणम्मि य पंच य वड्ढी हवंति सेसेसु ।
छव्वड्ढीओ होंति हु सरिसा सव्वत्थ पदसंखा ॥३२७॥

आदिमषट्स्थाने च पंच वृद्धयो भवंति शेषेषु । षड्वृद्धयो भवंति खलु सदृशी सर्व्वत्र पदसंख्या ॥

इल्लि संभविसुवंतप्पऽसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानंगळोळु आदिमषट्स्थाने आदौ भवमादिमं षण्णां स्थानानां समाहारः षट्स्थानं आदिम षट्स्थानमादिमषट्स्थानं तस्मिन् मोदल षट्स्थानदोळु पंच वृद्धयो भवंति पंचवृद्धिगळेयप्पुवेकेंदोडे चरमाष्टांकसंज्ञेयनुळ्ळनंतगुणवृद्धियुक्तस्थानक्के द्वितीय षट्स्थानक्कादित्व प्रतिपादनदिंदं शेषेषु शेषद्वितीयादिचरमावसानमाद षट्स्थानंगळोळेल्लमष्टांकादियाद षड्वृद्धिगळप्पुवुमंतागुत्तिरलु सदृशी सर्व्वत्र पदसंख्या ई षट्स्थानंगळोळु संभविसुव स्थानविकल्पंगळ संख्यासादृश्यनियमक्के निमित्तमप्प सूच्यंगुलासंख्यातभागक्कवस्थितस्वरूपमुळुदरिंदं । समस्तषट्स्थानंगळ स्थानविकल्पंगळ संख्येसमानमेयुक्कुमंतादोडे मोदल षट्स्थानदोळु पंचवृद्धियुक्तस्थानंगळप्पुदरिनष्टांकमें तु घटियिसुगुमें दोडुत्तरसूत्रदोळु पेळ्दपं :—

संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि प्रत्येक काण्डककाण्डकप्रमितानि नीत्वा पुनरनन्तभागासख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येक काण्डकप्रमितानि नीत्वा पुनरनन्तभागवृद्धियुक्तस्थानान्येव सूच्यङ्गुलासख्यातभागमात्राणि नीत्वा द्वितीयषट्स्थानस्य आदिभूतमष्टाङ्कसज्ञ भवति इत्येव सर्वत्र षट्स्थानपतितवृद्धिक्रमो ज्ञातव्य ॥३२६॥

अत्र सभवत्सु असख्यातलोकमात्रेषु षट्स्थानेषु मध्ये आदिमे प्रथमे षट्स्थाने पञ्चैव वृद्धयो भवन्ति, चरमस्य अष्टाङ्कसज्ञस्य अनन्तगुणवृद्धियुक्तस्य द्वितीयषट्स्थानस्यादित्वप्रतिपादनात् । शेपेषु द्वितीयादिचरमावसानेषु षट्स्थानेषु सर्वा अष्टाङ्कादय षड्वृद्धयो भवन्ति । तथासति सदृशी सर्वत्र पदसख्या एतेषु षट्स्थानेषु सभवति—स्थानविकल्पसख्या सदृशा समानैव सादृश्यनियमनिमित्तस्य सूच्यङ्गुलासख्यातभागस्य अवस्थितस्वरूपत्वात् । तथा सति प्रथमषट्स्थाने पञ्चवृद्धियुक्तस्थानानि सभवन्ति ॥३२७॥ अष्टाङ्क कथ न घटते इति चेद्धेतुमाह—

होनेपर पुनः अनन्त भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यगुलके असंख्यातवे भाग मात्र होनेपर द्वितीय षट्स्थानका आदिभूत अष्टांक होता है । इस प्रकार सर्वत्र षट्स्थानपतित वृद्धि क्रम जानना ॥३२६॥

जघन्य पर्याय ज्ञानके ऊपर असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान होते हैं जो पर्याय समास श्रुतज्ञानके विकल्प हैं । उनमें-से प्रथम षट्स्थानमें पाँच ही वृद्धियाँ होती हैं क्योकि अनन्त गुण वृद्धिसे युक्त जो अष्टांक संज्ञावाला अन्तिम स्थान है उसे दूसरे षट्स्थानका आदि स्थान कहा है । शेप दूसरेसे लेकर अन्तिम पर्यन्त सब षट्स्थानोमें अष्टांक आदि छहों वृद्धियाँ होती है । ऐसा होनेसे इन षट्स्थानोंमें स्थानके विकल्पोंकी सख्या समान ही है क्योंकि सर्वत्र सूच्यगुलका असख्यातवाँ भाग तदवस्थ है उसमें हीनाधिकता नहीं है । इस तरह प्रथम पट्स्थानमें पाँच वृद्धि युक्त स्थान ही होते है ॥३२७॥

---

१ म °सूत्रगल ।

छट्ठाणाणं आदी अट्ठंकं होदि चरिमसुव्वंकं ।
जम्हा जहण्णणाणं अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ॥३२८॥

षट्स्थानानामादिरष्टांको भवति चरमसूर्व्वंकः । यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांको भवति जिनदृष्टः ।

षट्स्थानवारंगळेनितोळवनितक्कमादिस्थानमष्टांकमेयक्कुं चरमसुर्व्वंकमेयक्कुमंतागुत्तिरलु प्रथमषट्स्थानदोळष्टांकमेंतक्कुमेंदोडे यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांको भवति जिनदृष्टत्वात् । तस्मात् आवुदोंदु जिनदृष्टत्वकारणदिंदं जघन्यज्ञानमष्टांकमक्कुमदु कारणदिंदं प्रथमषट्स्थानदोळष्टांकादिकत्वं युक्तमक्कुं । इल्लि षट्स्थानंगळादियष्टांकमवसानसुर्व्वंकमेंब नियमं पेळल्पट्टुदरिंदं चरमषट्स्थानंगळादियष्टांकमवसानमुसूर्व्वंकमुमागुत्तिरलल्लि सुंदणष्टांकमदेनक्कुमेंदोडर्त्थाक्षरज्ञानमेंदु सुंदे पेळ्दपनदु कारणदिंदं जघन्यपर्य्यायज्ञानमादियेंदु पेळ्दागमं निर्बाधबोधविषयमक्कु ।

ई षट्स्थानंगळगे स्थानसंख्ये समानमेंबुदं तोरिदपं :—

एक्कं खलु अट्ठंकं सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा ।
रूवहियकंडएण य गुणिदकमा जाव सुव्वंकं ॥३२९॥

एकः खल्वष्टांकः सप्तांकः कांडकं ततोऽधो रूपाधिककांडकेन गुणितक्रमा यावदूर्व्वंकः ॥

षट्स्थानवाराणा सर्वेषामादि. प्रथमस्थानमष्टाङ्कमेव अनन्तगुणवृद्धिस्थानमेव भवति तेषा चरमस्थानमुर्वङ्कमेव अनन्तभागवृद्धिस्थानमेव भवति । तर्हि प्रथमस्थानस्य अष्टाङ्कत्व कथ ? इति तन्न, यस्मात् कारणात् तज्जघन्य ज्ञानं पर्यायाख्य पूर्वस्मादेकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदाना वर्गस्थानादनन्तगुणत्वेन अष्टाङ्कं भवतीति जिनैः अर्हदादिभि. दिष्ट कथितं दृष्टं वा, तस्मात् कारणात् प्रथमषट्स्थानेऽपि अष्टाङ्कादित्वं युक्तम् । अत्र षट्स्थानानामादिः अष्टाङ्क., अवसानं उर्वङ्क इति नियम उक्तोऽस्तीति । चरमषट्स्थानेऽपि आदौ अष्टाङ्के अवसाने उर्वङ्के च सति तदग्रतनोऽष्टाङ्क कीदृगस्ति ? इति चेत् अर्थाक्षर-ज्ञानरूपो भवति तथैव अग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । तदेव जघन्यपर्यायज्ञानमादि' इत्युक्तागमो निर्बाधबोधविषय. ॥३२८॥ एषा पट्स्थानाना सख्या समानेति दर्शयति—

षट्स्थान पतित वृद्धिरूप सब स्थानोंमें प्रथम स्थान अष्टांक अर्थात् अनन्तगुण वृद्धि रूप स्थान ही होता है । वही आदि स्थान है । तथा उनका अन्तिम स्थान उर्वक अर्थात् अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थान ही होता है । तब प्रथम स्थानमें अष्टांक कैसे रहा, इसका समाधान यह है वह जो पर्याय नामक जघन्य ज्ञान है इस जघन्य ज्ञानसे पहला ज्ञान स्थान एक जीवके अगुरु लघु गुणके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण है उससे अनन्त गुणा जघन्य ज्ञान है इसलिए जिनदेवने अष्टांक रूप देखा है । इस कारणसे प्रथम स्थानके भी आदिमें अष्टांक और अन्तिम उर्वक है । यह नियम कहा है ।

शंका—अन्तिम षट्स्थानमें भी आदिमें अष्टांक और अन्तमें उर्वक होनेपर उससे आगेका अष्टांक किस रूपमें है ?

समाधान—वह अर्थाक्षर ज्ञान रूप है । ऐसा ही आगे कहेंगे ।

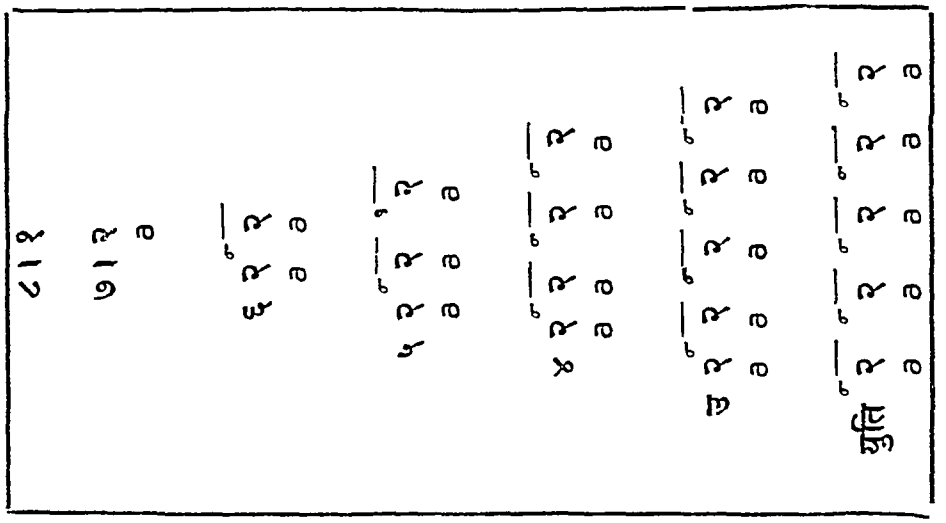
इस प्रकार जघन्य पर्याय ज्ञान आदि है यह कथन निर्बाध है ॥३२८॥

आगे इन षट्स्थानोंकी संख्या समान है यह दर्शाते हैं—

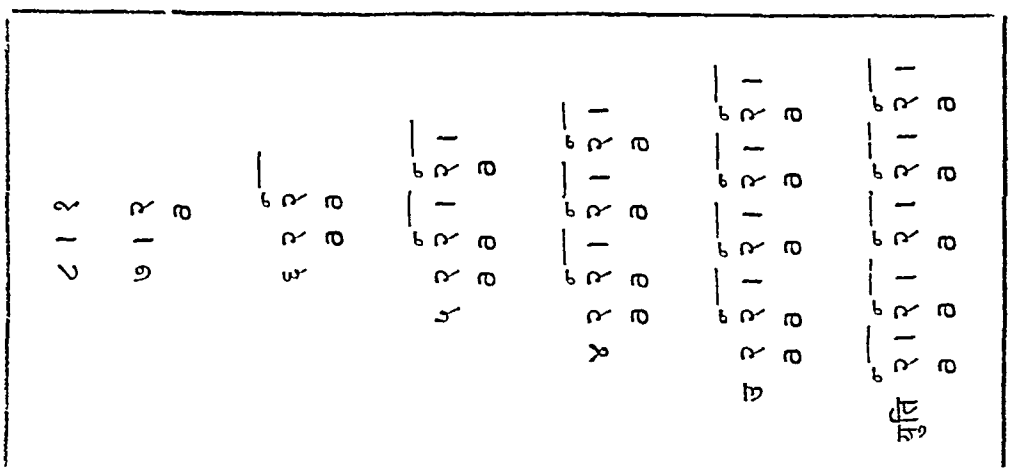
---

१ म नदोलादि° ।

ओंदु षट्स्थानदोळु ओंदेयष्टांकमक्कुमेकें दोडक्कावृत्यभावमप्पुदरिंदं। 'अंगुल असंख-भागं पुव्वगवड्ढी गदे दु परवड्ढी एक्कं वारं होदिहु' एंदितु पूर्व्वपूर्व्ववृद्धिगळु सूच्यंगुलासंख्यात-भागमात्रवारंगळु सलुत्तिरलुत्तरोत्तरवृद्धिगळोंदोंदप्पुवें ब क्रममुळ्ळुदरिंद मनंतगुणवृद्धिगावृत्य-भावमेकें दोडे ईयनंतगुणवृद्धिस्थानक्के पूर्व्ववृद्धिगळावृत्यसिद्धियप्पुदरिंदं। सप्तांकः कांडकं असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रंगळेयक्कुमदरिंदं केळगण षडंकपंचांक-चतुरंकोर्व्वंकगळु रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातभागगुणितक्रमंगळप्पुवु। यावदुर्व्वंकमें बिदभिविधि-यप्पुदरिंदमुर्व्वंकक्के सीमात्वमं सूचिसुत्तमदनु व्यापिसुगुमवर न्यासमिदु :—



एकस्मिन् पट्स्थाने एक एवाष्टाङ्को भवति कुत ? 'अडगुलअसंखभाग पुव्वगवड्ढीगदे हु परवड्ढी एक्कं वार होदीति' तस्य पूर्वत्वासभवेनावृत्तेरभावात्। सप्ताङ्क असख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि काण्डकं सूच्यङ्गुलासख्यातभागमात्राण्येव भवन्ति। तदधस्तना षडङ्कपञ्चाङ्कचतुरङ्कोर्वङ्कास्तु रूपाधिकसूच्यङ्गुला-सख्यातभागगुणितक्रमा भवन्ति यावदुर्वङ्क इत्यभिविधि उर्वङ्कस्य सीमत्व सूचयन् तमेव व्याप्नोति तन्न्यासोऽय—



एक पट्स्थानमें एक ही अष्टांक होता है क्योंकि पहले कहा है कि सूच्यंगुलके असं-ख्यातवे भाग पूर्वकी वृद्धि होनेपर आगेकी वृद्धि एक वार होती है। सो अष्टांक पूर्वमें है नहीं, इसलिए इसकी आवृत्ति बार-बार पलटना सम्भव नही है। सप्तांक अर्थात् असख्यात

इंतु द्वितीयादि षट्स्थानदोळादिभूताष्टांकदिदं मुंदे उर्व्वंकमक्कुमादोडमेक्कंखलु अट्ठंकमेंबी नियमवचनदिंदष्टांकक्कसंगुलासंख्यातभागमात्रवाराऽभावमेयक्कुमेकेंदोडे खलुशब्दक्के नियमार्थवाचकत्वदिंदं।

सव्वसमासो णियमा रूवाहियकंडयस्य वग्गस्स।
विंदस्स य संवग्गो होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३२०॥

सर्व्वसमासो नियमाद्रूपाधिककांडकस्य वर्ग्गस्य। वृंदस्य च संवर्गो भवतीति जिनैर्न्निदिष्टं॥

यल्ला अष्टांकादिषड्वृद्धिगळ संयोगं रूपाधिककांडकस्य रूपाधिककांडकद, वर्ग्गस्य वर्गद, वृंदस्य च घनद, संवर्ग्गः संवर्ग्गमात्रं भवति अक्कुमेंदितु जिनैर्न्निदिष्टं अर्हंदादिर्गळिंदं पेळल्पट्टुदिल्लि तद्युतियं माळ्प क्रममेंतेंदोडे अष्टांकदात्मप्रमाणमनोंदु रूपं तंदु सप्तांकद सूच्यंगुलासंख्यातभागदोळु कूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकमक्कुमदं तोरि तदात्मप्रमाणमनोंदु रूपं षडंकसंख्येयोळ्कूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकद्वयमक्कुमा वर्ग्गरूपाधिककांडकात्मप्रमाणमं पंचांकसंख्ये-

---

एवं द्वितीयवारपट्स्थाने आदिभूताष्टाङ्कतोऽग्रे उर्वङ्कोऽस्ति तथापि 'एकं खलु अट्ठक' इति नियमवचनान्न तस्याङ्गुलासख्यातभागमात्रवार, खलुशब्दस्य नियमार्थवाचकत्वात् ॥३२९॥

सर्वासा अष्टाङ्कादिषड्वृद्धीना सयोग रूपाधिककाण्डकस्य वर्गस्य वृन्दस्य च संवर्गमात्रो भवति इति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्ट कथितम्। अत्र तद्युतिः क्रियते तद्यथा—

अष्टाङ्कस्य आत्मप्रमाणैकरूपे सप्ताङ्कस्य सूच्यङ्गुलासंख्यातभागे युते सति रूपाधिककाण्डकं भवति तस्मिन् पुन आत्मप्रमाणैकरूपे षडङ्कसख्याया काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकमात्र्या युते सति रूपाधिक-

---

गुण वृद्धि युक्त स्थान काण्डक अर्थात् सूच्यंगुलके असंख्यात भाग मात्र ही होते हैं। उससे नीचेके षडंक, पंचांक, चतुरंक और उर्वक क्रमसे रूपाधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणित उत्तरोत्तर उर्वक पर्यन्त होते हैं अर्थात् असंख्यात गुण वृद्धिका प्रमाण सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग कहा है उसको एक अधिक सूच्यगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार संख्यात गुण वृद्धि होती है। इसको भी एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार संख्यात भाग वृद्धि होती है। इसको भी एक अधिक सूच्यगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसको भी एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी बार अनन्त भाग वृद्धि होती है। इस प्रकार एक षट्स्थान पतित वृद्धिमें पूर्वोक्त प्रमाण एक-एक वृद्धि होती है। दूसरे षट्स्थानमें आदिमें अष्टांक उससे आगे उर्वक है अतः एक ही अष्टांकका नियम जानना। वह अंगुलके असंख्यात भाग मात्र बार नहीं होता ॥३२९॥

अष्टांक आदि छह वृद्धियोंका जोड़ एक अधिक काण्डकके वर्गका तथा घनका परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उतना है ऐसा जिन भगवान्ने कहा है। यहाँ उनका जोड़ दिखाते हैं—

अष्टांकके अपने प्रमाण एक रूपमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागको मिलानेपर सप्तांकका प्रमाण एक अधिक काण्डक होता है। उसमें षडंककी संख्या, जो काण्डकसे गुणित एक अधिक काण्डक प्रमाण है, मिलानेपर रूपाधिक काण्डकका वर्ग होता है। उसमें पंचांककी संख्याको, जो काण्डकसे गुणित रूपाधिक काण्डकके वर्ग प्रमाण है, मिलानेपर रूपाधिक

योळ्कूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकघनमक्कुमदरात्मप्रमाणमनों दु रूपं चतुरंकसंख्ययोळ्कूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकंगळ घनमुं रूपाधिककाडकगुणमक्कुमदरात्मप्रमाणमनों दु रूपं तंदुव्वंकसंख्ययोळु रूपाधिककांडचतुष्टयक्के रूपाधिककांडकचतुष्टयमं तोरि तोरलिल्लद काडकदोळकूडुत्तिरलु रूपाधिककांडकदवर्गदघनद संवर्गप्रमाणमक्कुमेंदें नंबुवुदेकेंदोडे जिनैर्न्निर्द्दिष्टं जिनोक्तत्वात् जिनप्रणीतमप्पुदरिंदमिंद्रियज्ञानागोचरमप्पुदरिंदमा गुणकारंगळं गुणिसिद लब्धं घनांगुलासंख्यातभागमादोडं ६ घनांगुलसंख्यातमादोडं ६ घनागुलप्रमितमादोडं ६ संख्यातघनांगुलप्रमितमादोड ६ ā ṣ असंख्यातघनांगुलप्रमितमादोड ६ ā । स्मदादिगळगव्यक्तमिप्पुदरिंदं ।

काण्डकवर्गो भवति । तदात्मप्रमाणैकरूपे पञ्चाङ्कसंख्याया काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकवर्गप्रमितायां युते सति रूपाधिककाण्डकघनो भवति । तदात्मप्रमाणैकरूपे चतुरङ्कसंख्याया काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकघनप्रमितायां युते सति रूपाधिककाण्डकवर्गस्य वर्गो भवति । तदात्मप्रमाणैकरूपे उर्वङ्कसंख्याया काण्डकगुणितरूपाधिककाण्डकवर्गस्य वर्गप्रमितायां रूपाधिककाण्डकचतुष्टयेन रूपाधिककाण्डकचतुष्टयं समं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणैकरूपे शेषकाण्डके युते सति रूपाधिककाण्डकवर्गस्य घनस्य च सवर्गप्रमाणं भवति । इदमित्थमेव प्रतिपत्तव्यम् । कुत ? जिनैर्निर्दिष्टमिति कारणात् इन्द्रियज्ञानगोचरत्वाभावात् तेषु । गुणकारेषु गुणितेषु लब्धं घनाङ्गुलासंख्यातभागमात्रं वा ६ घनाङ्गुलसंख्यातभागमात्रं वा ६ घनाङ्गुलमात्रं वा । ६ । संख्यातघनाङ्गुलमात्रं ā वा ६ ṣ असंख्यातघनाङ्गुलमात्रं वा ६ ā इत्यस्माभिर्न ज्ञायते ॥३३०॥

काण्डकका घन होता है । उसमे चतुरंकोकी संख्या जो काण्डकसे गुणित रूपाधिक काण्डकके घन प्रमाण है, मिलानेपर रूपाधिक काण्डकके वर्गका वर्ग होता है । उर्वंकोकी संख्या काण्डकसे गुणित रूपाधिक काण्डकके वर्गके वर्ग प्रमाण है । इसमे शेष काण्डकोको जोड़नेपर रूपाधिक काण्डकके वर्गका तथा घनका गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उतना होता है ।

विशेषार्थ—एक अधिक सूच्यगुलके असंख्यातवे भागको दो जगह रख परस्परमे गुणा करनेसे जो परिमाण होता है वह रूपाधिक काण्डकका वर्ग है और एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागको तीन जगह रख परस्परमे गुणा करनेसे जो प्रमाण होता है वह रूपाधिक काण्डकका घन है । इस वर्गको और घनको परस्परमे गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उतनी बार एक षट्स्थानमें अनन्त भागादि वृद्धियाँ होती है । जैसे पहले अक सदृष्टिमे आठका अक एक बार लिखा और सातका अंक दो बार लिखा । दोनों मिलकर तीन हुए । छहका अक छह बार लिखा । मिलकर तीनका वर्ग नौ हुए । पाँचका अंक अठारह बार लिखा । मिलकर तीनका घन सत्ताईस हुए । चारका अक चौवन बार लिखा । मिलकर तीनसे गुणित तीनका घन ३×२७=८१ इक्यासी हुए । उर्वंक एक सौ वासठ लिखे । मिलकर तीनके वर्गसे गुणित तीनका घन ९×२७=२४३ दो सौ तैंतालीस हुए । अक सदृष्टिमे काण्डकका प्रमाण दो है । यथार्थमें सूच्यगुलका असख्यातवाँ भाग है ।

इसको इसी प्रकार जानना क्योंकि जिन भगवान्ने ऐसा कहा है । यह इन्द्रिय ज्ञानका विषय नही है । अतः उन गुणकारोंसे गुणा करनेपर लब्ध घनांगुलका असख्यातवाँ भाग मात्र है, अथवा घनांगुलका सख्यातवाँ भाग है, अथवा घनांगुल मात्र है अथवा असंख्यात घनागुल मात्र है यह हम नही जानते ॥३३०॥

उक्कस्ससंखमेत्तं तत्तिचउत्थेक्कदालछप्पण्णं ।
सत्तदसमं व भागं गंतूण य लद्धियक्खरं दुगुणं ॥३२१॥

उत्कृष्टसंख्यातमात्रं तत्त्रिचतुर्थैकचत्वारिंशत् षट्पंचाशत् सप्तदशमं वा भागं गत्वा च लब्ध्यक्षरं द्विगुणं ॥

रूपाधिककांडकगुणितांगुलसंख्यातभागमात्रवारंगळननंतभागवृद्धिस्थानंगळु २ २ मवर ५
अ अ
मध्यदोळु सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारंगळनसंख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु सलुत्तिरलु २ तदुभय-
अ
वृद्धियुक्तजघन्यद एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पन्नमक्कु ज १५ मुंदे मत्तं मुं पेळ्द क्रम-
१५
वृद्धिद्वयसहचरितंगळोळु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळुत्कृष्टसंख्यातमात्रंगळ् सलुत्तमिरलु अल्लि प्रक्षेपकवृद्धियं कूडुत्तिरलु लब्ध्यक्षरं सर्व्वजघन्यमप्प पर्य्यायमेंब श्रुतज्ञानं साधिकमागि द्विगुण-मक्कुमेकेंदोडे प्रक्षेपकदुत्कृष्टसंख्यातभाज्यभागहारंगळनपवर्त्तिसि कूडिदोडे अदक्के द्विगुणत्वसंभव- १०

रूपाधिककाण्डकगुणिताङ्गुलासख्यातभागमात्रवारान् अनन्तभागवृद्धिस्थानेषु अङ्गुलासंख्यातभाग-मात्रवारान् असंख्येयभागवृद्धिस्थानेषु च गतेषु तदुभयवृद्धियुक्तजघन्यस्य एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते ।

ज १५ अग्रे पुन, प्रागुक्तक्रमवृद्धिद्वयसहचरितेषु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानेषु उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु गतेषु
१५
तत्र प्रक्षेपकवृद्धिषु युतासु लब्ध्यक्षर सर्वजघन्यपर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं साधिकद्विगुण भवति । कुत ? प्रक्षेपकस्य उत्कृष्टसंख्यातभाज्यभागहारानपवर्त्य युते तस्य द्विगुणत्वसभवात् तत्त्रिचतुर्थ पूर्वोक्तसंख्यातभागवृद्धियुक्तोत्कृष्ट- १५

एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागसे गुणित अंगुलके असंख्यात भाग बार अनन्त भाग वृद्धियोंके होनेपर तथा अंगुलके असंख्यात भाग बार असंख्यात भाग वृद्धिके होनेपर उन दोनों वृद्धियोंसे युक्त जघन्य पर्याय ज्ञानका एक बार संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थान उत्पन्न होता है। आगे पुनः पूर्वोक्त अनन्त भाग वृद्धि और असंख्यात भाग वृद्धिके साथ संख्यात भाग वृद्धिसे युक्त स्थानोंके उत्कृष्ट संख्यात मात्र होनेपर उनमें प्रक्षेपक वृद्धियोंको २० जोड़नेपर लब्ध्यक्षर नामक सर्व जघन्य पर्याय श्रुतज्ञान साधिक दुगुना होता है। कैसे होता है यह बतलाते हैं—पूर्ववृद्धिके होनेपर जो साधिक जघन्य ज्ञान हुआ उसे अलग रखकर उस साधिक जघन्य ज्ञानमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है। तथा उत्कृष्ट संख्यात मात्र प्रक्षेपक है क्योंकि गच्छमात्र प्रक्षेपक वृद्धि होती है सो यहाँ उत्कृष्ट संख्यात मात्र संख्यात वृद्धिके स्थान हुए इसलिये उत्कृष्ट संख्यात मात्र प्रक्षेपक बढ़ाने है। सो यहाँ २५ उत्कृष्ट संख्यात मात्र प्रक्षेपक होनेसे उत्कृष्ट संख्यात ही गुणकार हुआ। इस तरह गुणकार भी उत्कृष्ट संख्यात और भागहार भी उत्कृष्ट संख्यात; क्योंकि साधिक जघन्य ज्ञानमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेसे प्रक्षेपक होता है। सो गुणकार और भागहारका अपवर्तन करने पर साधिक जघन्य ज्ञान रहा। उसे अलग रखे साधिक जघन्य ज्ञानमें मिलाने पर जघन्य ज्ञान साधिक दूना होता है। तथा 'तत्तिचउत्थ' अर्थात् पूर्वोक्त संख्यात भाग वृद्धि युक्त उत्कृष्ट ३०

मुळ्ळुदरिंदं तत्त्रिचतुर्थं भुंपेळ्दसंख्यातभागवृद्धियुक्तोत्कृष्टसंख्यातमात्रस्थानंगळ त्रिचतुर्थभाग-स्थानंगळु सलुत्त विरलल्लिय प्रक्षेपकमुं प्रक्षेपकप्रक्षेपकमें बेरडु वृद्धिगळुं जघन्यदोळ्कूडिकल्पडुत्तिरलु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुमदे तेंदोडे प्रक्षेपकप्रक्षेपकद रूपोनगच्छदेकवारसंकलनधनप्रमितद

ज १५।३।१५।३ ऋणमं बेरिरिसि ज १।३ अपवर्त्तितधनमिदु ज ९ इदरोळोंदु रूपं-
१५।१५।४।२।४।१ १५ ३२ ३२

तॅगेदु धनमं बेरिरिसिदु ज १ शेषापवर्त्तितधनं ज १ इदं प्रक्षेपकवृद्धियोळु ज ३ कूडिदोडे
३२ ४ ४

संख्यातमात्रस्थानाना त्रिचतुर्थभागस्थानानि नीत्वा तत्र प्रक्षेपक प्रक्षेपकप्रक्षेपकश्चेति वृद्धिद्वये जघन्यस्योपरि युते लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति । तद्यथा—

प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छस्य एकवारसकलनधनप्रमितस्य ज १५ ३ । १५ ३ ऋणं पृथक्कृत्य
१५ १५ ४ २ ४ १

ज १ ३ शेषमपवर्त्य ज ९ एकरूपं पृथग् न्यस्य ज १ शेषे ज ८ अपवर्त्य ज १ प्रक्षेपकवृद्धौ ज ३
१५ ३२ ३२ ३२ ४ ४

संख्यात मात्र स्थानोंको चारसे भाग देकर उनमें-से तीन भाग प्रमाण स्थानोंके होनेपर प्रक्षेपक और प्रक्षेपक-प्रक्षेपक इन दोनों वृद्धियोंको साधिक जघन्य ज्ञानमें जोड़नेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान साधिक दूना होता है। कैसे, सो कहते हैं—पूर्व वृद्धि होनेपर जो साधिक जघन्य ज्ञान हुआ उसमें दो बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक-प्रक्षेपक होता है। सो एक हीन गच्छका संकलन धन मात्र प्रक्षेपक-प्रक्षेपककी वृद्धि यहाँ करनी है। पूर्वोक्त करण सूत्रके अनुसार उस प्रक्षेपक-प्रक्षेपकको एक हीन उत्कृष्ट संख्यातके तीन चौथाई भागसे और उत्कृष्ट संख्यातके तीन चौथाई भागसे गुणा करना और दो और एकसे भाग देना। ऐसा करनेपर साधिक जघन्यका एक हीन तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यात और तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यात तो गुणकार हुआ तथा दो बार उत्कृष्ट संख्यात और चार दो, चार एक भागहार हुआ। एक हीन सम्बन्धी ऋणराशि साधिक जघन्यको तीनका गुणकार और उत्कृष्ट संख्यात तथा बत्तीसको भागहार करनेपर होती है। उसको अलग रखकर शेषका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको नौसे गुणा और बत्तीससे भाग प्रमाण हुआ। साधिक जघन्यका चिह्न ज॑ ऐसा है सो ज॑ $\frac{9}{32}$ हुआ।

विशेषार्थ—यहाँ दो बार उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार और भागहारका अपवर्तन किया। गुणकार तीन-तीनको परस्परमें गुणा करनेसे नौका गुणकार हुआ और चार, दो, चार एक भागहारको परस्परमें गुणा करनेसे बत्तीस भागहार हुआ। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना। अस्तु।

इस ज॑ $\frac{9}{32}$ में एक गुणकार साधिक जघन्यका बत्तीसवाँ भाग है ज॑ $\frac{1}{32}$। इसको अलग रखकर शेष साधिक जघन्यको आठका गुणकार और बत्तीसका भागहार रहा। इसका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यका चौथा भाग रहा ज॑ $\frac{1}{4}$। प्रक्षेपक गच्छ प्रमाण है सो साधिक जघन्यको एक बार उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है उसको उत्कृष्ट

साधिकजघन्यमक्कु ज मिदं मेलण साधिकजघन्यदोळकूडुत्तिरलु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं (+ओ अथवा ज २) प्रक्षेपकप्रक्षेपकदोळगण ऋणधनमं ज १– नोडलु गसंख्यातगुणहीनमेंदु
३२
किंचिन्न्यूनं माडि शेषमं ज १ – द्विगुणजघन्यदोळकूडिसाधिकं माडुवुदु।
३२

एक्कदाळछप्पण्णं मुंपेळ्द संख्यातभागवृद्धिस्थानगळुत्कृष्टसंख्यातप्रमितंगळोळु एकचत्वारिंशत् षटपंचाशद्भागमात्रंस्थानंगळु सलुत्तं विरलु प्रक्षेपक प्रक्षेपकप्रक्षेपकवृद्धिद्वययोगदोळु साधिकजघन्यं द्विगुणमक्कुमल्लि प्रक्षेपकमिदु ज १५।४१ प्रक्षेपकप्रक्षेपकमिदु रूपोनगच्छद एकवार-
१५।५६

संकलित धनमात्रं ज १५।४१।१५।४१ इल्लिय ऋणरूपं तेगेदु बेरिरिसुवुदु
१५।१५।५६।२।१।५६

युते सति साधिकजघन्यं भवति ज। अस्मिन् पुन उपरितनसाधिकजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति

ज २। प्रक्षेपकप्रक्षेपकागतऋण घनत. सख्यातगुणहीनमिति किंचिदून कृत्वा शेष ज १–द्विगुणजघन्ये संयोज्य
३२

साधिक कुर्यात्। एक्कदालछप्पण्ण प्रागुक्तसख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानाना उत्कृष्टसख्यातमितेषु एकचत्वारिंशत्-षट्पञ्चाशद्भागमात्रस्थानानि नीत्वा प्रक्षेपकप्रक्षेपकद्वययोगे साधिकजघन्यं द्विगुण भवति तत्र प्रक्षेपकोऽयं—

ज १५ ४१। प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्तु रूपोनगच्छस्य एकवारसकलितधनमात्र। ज १५ ४१ १५ ४१
१५ ५६ १५ १५ ५६ २ ५६ १

संख्यातके तीन चौथे भागसे गुणा करना। सो उत्कृष्ट संख्यात गणकार भी और भागहार भी। उनका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यका तीन चौथाई भाग मात्र प्रमाण रहा। इसमें पूर्वोक्त एक चौथा भाग जोड़नेपर साधिक जघन्य मात्र वृद्धिका प्रमाण होता है। इससे मूल साधिक जघन्य ज्ञानको जोड़नेपर लब्ध्यक्षर दूना होता है। यहाँ प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी ऋण राशि धन राशिसे संख्यात गुणी कम है इसलिए साधिक जघन्यका बत्तीसवाँ भाग मात्र धनराशिमें ऋणराशि घटानेके लिए कुछ कम करके शेषको पूर्वोक्त द्विगुणित जघन्यमें जोड़नेपर साधिक दूना होता है।

'एक्कदालछप्पणं' अर्थात् पूर्वोक्त संख्यात वृद्धि युक्त उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण स्थानोंमेंसे इकतालीस बटे छप्पन प्रमाण $\frac{४१}{५६}$ स्थान होनेपर प्रक्षेपक तथा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धियोंको उसमें जोड़नेपर लब्ध्यक्षर दूना होता है। इसको स्पष्ट करते हैं—साधिक जघन्यको उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है। सो प्रक्षेपक गच्छमात्र है। इससे इसको उत्कृष्ट संख्यात तथा इकतालीस बटे छप्पनसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट संख्यातका अपवर्तन हो जाता है अतः साधिक जघन्यको इकतालीसका गुणकार और छप्पन भागहार होता है। यथा— ज १५ ४१। तथा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक एक हीन गच्छका एक बार संकलन धन मात्र है। सो
१५ ५६

पूर्वोक्त करण सूत्रके अनुसार साधिक जघन्यको दो बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक-प्रक्षेपक होता है। उसको एक हीन इकतालीस गुणा उत्कृष्ट संख्यात और इकतालीस

a
ज १।४१ अपवर्त्तितप्रक्षेपकप्रक्षेपक ज १६ ८१ इल्लि एकरूपं धनमं बेरिरिसुवुदु
१५।११२।५६ ११२।५६

ज १ शेषमनु ज १६।८० अपवर्त्तिसलु ज १५ इदं प्रक्षेपकदोळु ज ४१ कूडिदोडे
११२।५६ ११२।५६ ५६ ५६

ज ५६ अपवर्त्तितंजघन्यमक्कुमदनुपरितनजघन्यदोळ्कूडिदडे लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कु ज २।
५६

मुन्निरिसिद धनदोळु ज १ इदं नोडलु सख्यातगुणहीनमप्प ऋणमं ज १।४१
११२।५६ १५।११२।५६

५ किंचिदूनमं माडि शेषमं ज १ – द्विगुणजघन्यदोळु कूडिदोडे साधिकमक्कुव ज २ सत्तदसमं
११२।५६

अत्रतन ऋण अपनीय पृथक् सस्थाप्य ज १ ४१ । शेषं अपवर्त्य ज १६ ८१ । एकरूप धन पृथग्धृत्य
१५ ११२ ५६ ११२ ५६

ज १ शेप ज १६ ८० अपवर्त्य ज १५ प्रक्षेपके निक्षिप्य ज ५६ अपवर्तिते जघन्य भवति।
११२ ५६ ११२ ५६ ५६ ५६

ज। अस्मिन् पुन उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति। ज २। इदमेव पृथक्स्थापितधनेन

ज १ इत सख्यातगुणहीनऋणेन ज १ ४१ किंचिदूनीकृतेन ज १— साधिक कुर्यात् ज २।
११२ ५६ १५ ११२ ५६ ११२ ५६

---

१० गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार तथा छप्पन, दो, छप्पन एकका भागहार होता है। यहाँ एक हीन सम्बन्धी ऋण साधिक जघन्यको इकतालीसका गुणकार और उत्कृष्ट संख्यात, एक सौ बारह और छप्पनका भागहार मात्र है यथा ज १ × ४१ । सो इसको अलग रखकर
१५ । ११२ । ५६
शेषमें दो बार उत्कृष्ट संख्यातका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको सोलह सौ इक्क्यासी-का गुणकार और एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार होता है यथा ज १६८१ । यहाँ
११२ × ५६
२५ गुणकारमें इकतालीस-इकतालीस थे उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर सोलह सौ इक्यासी हुए और भागहारमें छप्पनको दोसे गुणा करनेपर एकसौ बारह हुए तथा दूसरे छप्पनको एकसे गुणा करने पर छप्पन हुए। गुणकारमें एक अलग रखा उसका धन साधिक जघन्यको एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार मात्र होता है। शेष रहे साधिक जघन्यको सोलहसौ अस्सीका गुणकार और एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार। यथा एक ऋणका धन
३० ज १ शेष। ज १६८० । इसमें एकसौ बारहसे अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको
११२ × ५६ ११२ × ५६
पन्द्रहका गुणकार और छप्पनका भागहार रहा ज १५/५६ । इसमें प्रक्षेपकका प्रमाण जघन्यको

व भागं वा अथवा संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळुत्कृष्टसंख्यातमात्रंगळोळु सप्तदशमभागमात्रंगळु सलुत्तिरलु प्रक्षेपक प्रक्षेपकप्रक्षेपक पिशुलिगळेंब मूरुं वृद्धिगळं कूडुत्तिरलु साधिकजघन्यं द्विगुण-

मक्कुमदेंतेंदोडे प्रक्षेपकं ज १५।७ प्रक्षेपकप्रक्षेपकं रूपोनगच्छद एकवारसंकलितधनमात्रं
१५।१०

ज १५।७।१५।७ पिशुलिद्विरूपोनगच्छद्विकवारसंकलितधनमात्रं
१५।१५।१०।२।१०।१

ज १५।७।१५।७।१५।७ ई मूरुं वृद्धिगळोळु पिशुलिय प्रथम ऋणमं बेरिरिसि
१५।१५।१५।१०।३।१०।२।१०।१

ज रं १५।७।७ शेषधनमपवर्त्तिसिदु ज १५।७।४९ इदरोळु इनितु ऋणमं
१५।१५।१६।१०।१०।१० १५।१०।६०००

'सत्तदसमं च भाग' वा अथवा सख्यातभागवृद्धिस्थानाना उत्कृष्टसख्यातमात्रेषु मध्ये सप्तदशमभागमात्रेषु गतेषु प्रक्षेपक–प्रक्षेपकप्रक्षेपक–पिशुलिसज्ञवृद्धित्रये प्रक्षिप्ते साधिकजघन्य द्विगुणं भवति। तद्यथा प्रक्षेपकः

ज १५ ७। प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रः ज १५ ७ १५ ७।
१५ १० १५ १५ १० २ १० १

पिशुलिः द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसकलितधनमात्र ज १५ ७। १५ ७। १५ ७
१५ १५ १५ १०। ३। १०। २। १०। १

तद्वृद्धित्रयमध्ये पिशुलेः प्रथमऋणं पृथक् सस्थाप्य[1] ज २ १५ ७। ७।
१५। १५। ६। १०। १०। १०।

इकतालीसका गुणकार और छप्पनका भागहार मिलानेपर अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्य मात्रवृद्धिका प्रमाण रहा। इसमें मूल साधिक जघन्य जोड़नेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। यहाँ प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी धनसे ऋण संख्यात गुणा कम है। अतः किंचित् उन धनराशिको अधिक करनेपर साधिक दूना होता है।

'सत्तदसमं च भागं वा' अथवा संख्यात भाग वृद्धि युक्त उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानोंमें-से सात बटे दस भाग मात्र स्थानोंके होनेपर उसमें प्रक्षेपक-प्रक्षेपक, और पिशुलि नामक तीन वृद्धियोंके जोड़नेपर साधिक जघन्य ज्ञान दूना होता है। वही आगे कहते हैं— साधिक जघन्यको एक बार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक होता है वह गच्छ मात्र है अतः इसको उत्कृष्ट संख्यातके सात बटे दसवें भागसे गुणा और उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर साधिक जघन्यको सातका गुणकार और दसका भागहार होता है। प्रक्षेपक-प्रक्षेपक

---

१ सदृष्टेरयमप्याकारः—ज २ १५ । ७ । ७
१५ १५ ६०० । १० । १

ज १।४९ वेरिरिसि अपवर्त्तसिदोडिनितक्कुं ज ३४३ इदरोळु पदिमूरु रूपगळं तेगेदिरि-
१५।६००० ६०००

सुवुदु ज १३ शेषमिदु ज ३३० अपवर्त्तितमिदु ज ११ इल्लि धन ज १३ मिदरोळु
६००० ६००० २०।१० ६०००

प्रथमद्वितीयऋणंगळु संख्यातगुणहीनंगळे दु किंचिदूनं माडि ज १३= मत्तं प्रक्षेपकप्रक्षेपक
६०००

ज १५।७।७ ऋणमिनितक्कु ज १।७ मिदं वेरिरिसि ज १५।७।७ अपवर्त्तितमिदु
१५।२।१०।१० १५।२०० १५।२००

५ ज ४९ इदरोळु मुन्निन पिशुलिधनमनेकादशरूपं कूडुत्तिरलुभयधनमिदु ज ६० अपवर्त्तितमिदु
२०।१० २००

शेषननमपवर्त्य ज १५ ७।४९ अत्रस्यमृण ज १ ४९ पृथक्सस्थाप्य शेपमपवर्त्य ज ३४३।
१५ १० ६०० १५ ६००० ६०००

इतस्त्रयोदशरूपाण्यपनीय पृथक्मस्थाप्य ज १३। शेप ज ३३०। अपवर्त्य ज ११ एकत्र सस्थाप्य
६००० ६००० २० १०

अस्य प्राक् पृथक्ग्वृतघने ज १३ प्रथमद्वितीयऋण संख्यातगुणहीनमिति किंचिदूनं कृत्वा ज १३–। एकत्र
६००० ६०००

संस्थाप्य पुन प्रक्षेपकप्रक्षेपके ज १५ ७। ७। ऋण ज १ ७। पृथक् सस्थाप्य शेप ज १५ ७ ७।
१५ २ १० । १०। १५ २०० १५ २००

---

१० एक हीन गच्छका एक वार संकलन धन मात्र है सो साधिक जघन्यको दो वार उत्कृष्ट संख्यातसे भाग देनेपर प्रक्षेपक-प्रक्षेपक होता है। उसका पूर्व सूत्रानुसार एक हीन सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका तथा सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार और दस, दो तथा दस एक भागहार हुआ। पिशुलि दो हीन गच्छका दो वार संकलित धन मात्र होती है। सो साधिक जघन्यको तीन वार उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेसे पिशुली होती है। उसको पूर्व सूत्रानुसार
१५ दो हीन और सातसे गुणित उत्कृष्ट संख्यात और एक हीन तथा सातसे गुणित उत्कृष्ट संख्यात व सात गुणित उत्कृष्ट सख्यात गुणकार तथा दस, तीन, दस दो, दस एक भागहार होते हैं। इनमे पिशुलीके गुणकारमे दो कम किये थे उस सम्बन्धी प्रथम ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यको दोका और एक हीन तथा सातसे गुणित उत्कृष्ट संख्यातका तथा सात गुणा उत्कृष्ट सख्यातका गुणकार तथा दो वार उत्कृष्ट संख्यातका और छहका और तीन
२० वार दसका भागहार करनेपर होता है। उसको अलग स्थापित करके शेपका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको एक हीन सात गुणा उत्कृष्ट संख्यातका तथा उनचासका तो गुणकार हुआ और उत्कृष्ट संख्यात छह हजारका भागहार होता है यहाँ गुणकारमें एक हीन है।

ज ३/१० इदं प्रक्षेपकदोळु कूडिदोडे ज १०/१० अपवर्त्तितमिदु ज इदरोळु संख्यातगुणहीनमप्प प्रक्षेपकप्रक्षेपकऋणमं किंचिदूनं साडि धनमं ज १३/६००० = साधिकं साडि मेलण जघन्यदोळु कूडिदोडे लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं ज २ मुन्नं प्रक्षेपकप्रक्षेपकधनदोळु वेरिरिसिद ज १३/६०० त्रयोदशरूपधनदोळुतन्न संख्यातभागमात्र ऋण रहितधनमं साधिकं साडुवुदु। अंतु साडुत्तिरलु साधिकद्विगुणलब्ध्यक्षरमक्कुं ज २। मोदलोळुत्कृष्टसंख्यातगुणितसंख्यातभागद सप्तदशमभागमात्रंगळु ज १५।७/१५।१० संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानंगळु पिशुलिपर्यंतमागि नडदु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं।

अपवर्त्य ज ४९/२०० । प्राक्तनपिशुलिधनैकादशरूपाणि मेलयित्वा ज ६०/२०० । अपवर्त्य इद ज ३/१० । प्रक्षेपके ज ७ । सयोज्य ज १०/१० । अपवर्त्येदं ज १०/१० प्राक्पृथग्धृतकिंचिदूनत्रयोदशरूपैः संख्यातगुणहीनप्रक्षेपकप्रक्षेपकऋणेन पुन. किंचिदूनितैः ज १३/६००० = । साधिकं कृत्वा उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुण भवति । ज २ । प्रथमत. उत्कृष्टसंख्यातगुणितसंख्यातभागस्य सप्तदशमभागमात्रेषु ज १५।७/१५।१० सख्यातभागवृद्धियुक्त-

---

उस सम्बन्धी द्वितीय ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यको पचासका गुणकार तथा उत्कृष्ट संख्यात और छह हजारका भागहार करनेपर होता है। उसको अलग रखकर शेषका अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको तीन सौ तैतालीसका गुणकार और छह हजारका भागहार होता है। यहाँ गुणकारमें तेरह कम करके अलग रखना। उसमें साधिक जघन्यको तेरहका गुणकार और छह हजारका भागहार जानना। शेष साधिक जघन्यको तीन सौ तीसका गुणकार और छह हजारका भागहार रहा। तीससे अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको ग्यारहका गुणकार और दस गुणित वीसका भागहार हुआ। उसे एक जगह स्थापित करना। यहाँ गुणकारमें-से तेरह कम करके जो अलग स्थापित किये थे उस सम्बन्धी प्रमाणसे प्रथम द्वितीय ऋण सम्बन्धी प्रमाण संख्यात गुणा कम है इसलिए कुछ कम करके साधिक जघन्य किंचित् कम तेरह गुणाको छह हजारसे भाग देनेपर इतना शेष रहा सो अलग रखे। तथा प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी गुणकारमें एक घटाया था उस सम्बन्धी ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यको सातका गुणकार और उत्कृष्ट संख्यात तथा दो सौका भागहार किये होता है। उसको अलग रखकर शेष पूर्वोक्त प्रमाण साधिक जघन्यको उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार और

मत्तं मुंदे मुंदे तदेकचत्वारिंशत् षट्पचाशत् भागद प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानमागि नडदु लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुं-ज २ मुंदेयु संख्यातभागवृद्धिप्रथमस्थानं मोदल्गोंडुत्कृष्टसंख्यातद त्रिचतुर्त्थभागमात्र-स्थानंगळु ज १५ । ३ प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानमागि सलुत्तं विरलु लब्ध्यक्षर द्विगुणमक्कु । ज २ । १५ । ४ मत्तमंते संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु प्रथमस्थानंगल् मोदल्गोंडुत्कृष्टसंख्यातमात्रगळु प्रक्षेपकावसान-मागि नडदल्लियु ज १५ लब्ध्यक्षरं द्विगुणमक्कुमिल्लि साधिकजघन्यं द्विगुणमादोडं पर्य्याय-समासमध्यमविकल्पगत श्रुतज्ञानमुपचारदिंदं लब्ध्यक्षरं मे दु पेळल्पट्टुदेकें दोडे पर्य्यायज्ञानमप्प

स्थानेषु पिशुलिपर्यन्तेषु गतेषु लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति ज २ । पुनस्तस्यैव एकचत्वारिंशत्षट्पञ्चाशद्भागस्य प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति ज २ । अग्रेऽपि सख्यातभागवृद्धिप्रथमस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्ट-संख्यातस्य त्रिचतुर्थभागमात्रेषु ज १५ ३ । प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति ज २ । १५ ४ पुनस्तथा सख्यातभागवृद्धिस्थानेषु प्रथमस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टसख्यातमात्रेषु प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु ज १५ १५ लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति । ननु साधिकजघन्य द्विगुणं तदा पर्यायसमासमध्यमविकल्पगत श्रुतज्ञान उपचारेण

दो बार सातका गुणकार तथा उत्कृष्ट संख्यात, दस, दो, दस एकका भागहार रखकर अपवर्तन तथा परस्पर गुणा करनेपर साधिक जघन्यको उनचासका गुणकार और दो सौका भागहार हुआ। इसमें पूर्वोक्त पिशुली सम्बन्धी ग्यारह गुणकार मिलानेपर साधिक जघन्य-को साठका गुणकार और दो सौका भागहार हुआ। यहाँ बीससे अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्यको तीनका गुणकार और दसका भागहार हुआ। इसमें प्रक्षेपक सम्बन्धी प्रमाण साधिक जघन्यको सातका गुणकार और दसका भागहार जोड़ तो दससे अपवर्तन करनेपर वृद्धिका प्रमाण साधिक जघन्य होता है। इसमें मूल साधिक जघन्य जोड़नेपर लब्ध्यक्षर दूना होता है। तथा पहले पिशुली सम्बन्धी ऋण रहित धनमें किंचित् कम तेरहका गुणकार था उसमें प्रक्षेपक-प्रक्षेपक सम्बन्धी ऋण संख्यात गुणा हीन है। उसको घटानेके लिए किंचित् कम करनेपर जो साधिक जघन्यको दो बार किंचित् कम तेरहका गुणकार और छह हजारका भागहार हुआ सो इतना प्रमाण पूर्वोक्त दूना लब्ध्यक्षरमें जोड़नेपर साधिक दूना होता है। इस तरह प्रथम तो संख्यात भाग वृद्धि युक्त स्थानोंमें उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानोंका सात बटे दस भाग प्रमाण स्थान पिशुली वृद्धि पर्यन्त होनेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। दूसरे, उस हीके इकतालीस बटे छप्पन भाग प्रमाण स्थान प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धि पर्यन्त होनेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। आगे भी संख्यात भागवृद्धिके पहले स्थानसे लेकर उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानोंका तीन बटे चार भाग मात्र प्रक्षेपक-प्रक्षेपक वृद्धि पर्यन्त होनेपर

मुख्यलब्ध्यक्षरक्के समीपवर्त्तित्वदिंदं। नडे नडेदे दिंतु वीप्सार्थज्ञापकं च शब्दमक्कुं।

एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्छामि ॥३३२॥

एवमसंख्यलोकान्यनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि। तानि पर्य्यायसमासा अक्षरगमुपरि वक्ष्यामि ॥

इंती पेळ्द प्रकारदिंदमनक्षरात्मकमप्प पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहदोळु षट्स्थानानि षट्स्थानवारंगळऽसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु तत्प्रमाणमं साधिसुव त्रैराशिकमिदु। एत्तलानुमिनितोळवु स्थानविकल्पंगळ्गों दु षट्स्थानं पडेयल्पडुत्तिरलागळिनितु स्थानविकल्पंगळनक्षरात्मकज्ञानविकल्पं-

गळसंख्यातलोकमात्रंगळेनितोळवु षट्स्थानवारंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकं माडि प्र २ २ २ २ २ (a a a a a)

प १ इ=a प्रमाणराशियिंदमिच्छाराशिय भागिसुत्तिरलु तल्लब्धप्रमितषट्स्थानवारंगळप्पुवु

लब्ध्यक्षरं कथमुक्तं ? इति चेत् पर्यायज्ञानस्य मुख्यलब्ध्यक्षरस्य समीपवर्तित्वात्। चशब्द. गत्वागत्वेति वीप्सार्थं ज्ञापयति ॥३३१॥

एवमुक्तप्रकारेण अनक्षरात्मके पर्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहे षट्स्थानवारा असख्यातलोकमात्रा भवन्ति तद्यथा—यद्येतावतामनक्षरात्मकज्ञानविकल्पाना एकं षट्स्थान लभ्यते तदा एतावतामनक्षरात्मकश्रुतज्ञानविकल्पा-नामसंख्यातलोकमात्राणा कति षट्स्थानवारा लभ्यन्ते। इति त्रैराशिकं कृत्वा

प्र २ २ २ २ २ फ १। इ = a प्रमाणराशिना इच्छाराशौ भक्ते यल्लब्धं तावन्तः
(a a a a a)

लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है। इसी तरह संख्यात भाग वृद्धिके पहले स्थानसे लेकर उत्कृष्ट संख्यात स्थान मात्र प्रक्षेपक वृद्धि पर्यन्त होनेपर लब्ध्यक्षर ज्ञान दूना होता है।

शंका—साधिक जघन्य ज्ञान दूना हुआ कहा। सो साधिक जघन्य ज्ञान तो पर्याय समास ज्ञानका मध्य भेद है। यहाँ लब्ध्यक्षर दूना हुआ ऐसे कैसे कहा ?

समाधान—मुख्य लब्ध्यक्षर जो पर्याय ज्ञान है उसका समीपवर्ती होनेसे उपचारसे पर्याय समासके भेदको भी लब्ध्यक्षर कहा है ॥३३१॥

उक्त प्रकारसे अनक्षरात्मक पर्याय समास ज्ञानके भेदोंके समूहमें असंख्यात लोक मात्र बार षट्स्थान होते हैं। वही कहते है—यदि इतने अर्थात् एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गसे उसहीके घनको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने भेदोंमें एक बार षट्स्थान होता है तो असंख्यात लोक प्रमाण पर्याय समासके भेदोंमें कितने बार षट्स्थान होंगे। इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके वर्गसे गुणित उस ही के घन प्रमाण है, फलराशि एक, इच्छाराशि असंख्यात लोक मात्र पर्याय समास-के स्थान। यहाँ फलसे इच्छाको गुणाकर उसमें प्रमाण राशिसे भाग देनेपर जो लब्ध राशि आवे उतनी ही बार सब भेदोंमें षट्स्थान पतित वृद्धि होती है। इस प्रकार असंख्यात लोक

≡ अ इती प्रकारदिंदमसंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धिगळिंद संवृद्धंगळप्पनतभाग-

२ २ २ २ २
अ अ अ अ अ

वृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पं मोदल्गोंडु सर्व्वचरमोर्व्वंकवृद्धियुक्तसर्व्वोत्कृष्टज्ञानावसानमाद असंख्यातलोकमात्रंगळप्प ज्ञानविकल्पंगळनितोळवनितुं पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पगळप्पुवे बुदर्त्थं। उवरि इल्लिंद मेले अक्षरगं अक्षरगतज्ञानमप्प श्रुतज्ञानमं वक्ष्यामि पेळ्दपें।

अनंतरमक्षरगतश्रुतज्ञानमं पेळ्दपं।

चरिमुव्वंकेणवहिद अत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं।
अत्थक्खरं णाणं होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३३३॥

चरमोर्व्वंकेनापहृतार्त्थाक्षर गुणितचरमउर्व्वंकः। अर्त्थाक्षरंतु ज्ञानं भवतीति जिनैर्न्निर्द्दिष्टं॥

पर्य्यायसमासज्ञानविकल्पंगळ संबंधिगळप्पऽसंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानंगळोळु भागवृद्धि-गुणवृद्धियुक्तास्थानगळोळु तद्वृद्धिनिमित्तंगळप्प सख्याताऽसख्यातानंतंगळवस्थितंगळु प्रतिनियत-प्रमाणंगळप्पुदरिंद चरमषट्स्थानद चरमोर्व्वंकदिंदं मुंदणष्टाकवृद्धियुक्तस्थानमर्त्थाक्षरश्रुतज्ञान-मप्पुदरिंदमा पूर्व्वप्रतिनियताष्टांकप्रमाणमल्लीयष्टाकं विलक्षणमप्पुदें दु पेळ्दपं। असंख्यातलोक-

≡ अ

षट्स्थानवारा भवन्ति २ २ २ २ २ एवमनेन प्रकारेण असंख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धिसवृद्धा
अ अ अ अ अ

अनन्तभागवृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पमादिं कृत्वा सर्वचरमोर्वङ्कवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टज्ञानावसाना असंख्यातलोक-मात्रा ज्ञानविकल्पा यावन्तस्तावन्त पर्यायसमासज्ञानविकल्पा भवन्ति इत्यर्थ। इत उपरि अक्षरगत श्रुतज्ञान वक्ष्यामि ॥३३२॥ अथाक्षरगव श्रुतज्ञान प्ररूपयति—

पर्यायसमासज्ञानविकल्पसम्बन्धिषु असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु भागवृद्धिगुणवृद्धियुक्तेषु तद्वृद्धि-निमित्तसंख्यातासंख्यातानन्ता अवस्थिता प्रतिनियतप्रमाणा भवन्ति इति चरमपट्स्थानस्य चरमोर्वङ्कतो-ऽग्रेतनमष्टाङ्कवृद्धियुक्तस्थान अर्थाक्षरश्रुतज्ञान भवति इति तत्पूर्वकप्रतिनियताष्टाङ्कप्रमाण अत्रतनाष्टाङ्कविल-क्षणमिति कथयति—

बार षट्स्थान वृद्धिसे बढ़े हुए पर्याय समास ज्ञानके विकल्प होते हैं। सो अनन्त भाग वृद्धिसे युक्त जघन्य ज्ञानके विकल्पसे लेकर सबसे अन्तिम उर्वक नामक अनन्त भाग वृद्धि युक्त सबसे उत्कृष्ट ज्ञान पर्यन्त असंख्यात लोक मात्र ज्ञानके विकल्प होते हैं। वे सब पर्याय समास ज्ञानके विकल्प हैं। यहाँसे आगे अक्षरात्मक श्रुतज्ञानको कहेंगे ॥३३२॥

अब अक्षरश्रुतज्ञानको कहते हैं—

पर्याय समास ज्ञानके विकल्प सम्बन्धी असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान भाग वृद्धि और गुणवृद्धिको लिये हुए हैं। उनमे वृद्धिके निमित्त संख्यात, असंख्यात और अनन्त अव-स्थित हैं, उनका प्रमाण निश्चित है। अर्थात् संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोक मात्र और अनन्तका प्रमाण जीवराशि मात्र निश्चित है। अन्तिम षट्स्थानका अन्तिम उर्वक जो अनन्त भाग वृद्धिको लिए हुए पर्याय समास ज्ञानका सर्वोत्कृष्ट भेद है उससे आगेका अष्टांक अर्थात् अनन्त गुण वृद्धि युक्त स्थान अर्था-

मात्रवारषट्स्थानंगळ आवुदों दु चरमषट्स्थानमदर चरमोर्व्वंकवृद्धियुक्तसर्व्वोत्कृष्टपर्य्यायसमास-ज्ञानमष्टांकदिंदमोम्मे गुणिसिदुदरोरन्नमप्पुदर्त्थाक्षरज्ञानमष्टांकवृद्धियुक्तस्थानमें बुदर्त्थमदें तप्पुदे दोडे रूपोनेकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूप द्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञानं श्रुतकेवलमें दु पेळल्पट्टुदु। के। ई श्रुतकेवलज्ञानं रूपोनेकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरप्रमाणदिंदं भागिसुत्तिरलु अर्त्थाक्षररूपमप्पेकाक्षर-प्रमाणमक्कु के मी यर्त्थाक्षरमं सर्व्वोत्कृष्टपर्य्यायसमासज्ञानमप्प चरमोर्व्वंकदिंद भागिसुत्तिरलु

१८=

चरमोर्व्वंकमं गुणिसिदष्टांकप्रमाणमक्कु मदु कारणदिंद मिन्ना अर्त्थाक्षरश्रुतज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं चरमोर्व्वंकापहृत अर्त्थाक्षररूपाष्टांकदिंदं गुण्यरूपमप्प चरमोर्व्वंकमं गुणिसुत्तिरलु तु पुनः अर्त्था-क्षरज्ञानं भवतीति अर्त्थाक्षरज्ञानं युक्ति युक्तमप्पुदें दु जिनैर्न्निर्दिष्टं जिनोक्तमक्कुमिदंत्यदीपकमेल्ला चतुरंकादियष्टांकावसानमाद षट्स्थानंगळ भागवृद्धियुक्तस्थानंगळुं गुणवृद्धियुक्तस्थानंगळुं तंतम्म पिंदणानंतरोर्व्वंकवृद्धियुक्तस्थानमं भागिसियुं गुणिसियुं यथासंख्यं चतुरंकपंचांकंगळ षट्सप्ताष्टांकंगळ

असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु यच्चरम पट्स्थानं तस्य चरमोर्वङ्करूपवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टपर्यायसमास-ज्ञानं अष्टाङ्केन एकवारं गुणिते समुत्पन्नं अर्थाक्षरज्ञानं अष्टाङ्कवृद्धियुक्तस्थानमित्यर्थः। तत् कियद् ? रूपोनैकट्ट-मात्राऽपुनरुक्ताक्षरसन्दर्भरूपद्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धजनितार्थज्ञान श्रुतकेवलमित्युच्यते। के। इदं श्रुतकेवलज्ञानं रूपोनैकट्टमात्रापुनरुक्ताक्षरप्रमाणेन भक्तं सत् अर्थाक्षररूपमेकाक्षरप्रमाणं भवति के इदमर्थाक्षरं सर्वोत्कृष्ट-

१८=

पर्यायसमासज्ञानरूपोर्वङ्केन भक्त सच्चरमोर्वङ्कगुणिताष्टाङ्कप्रमाणं भवति ततः कारणादिदानी तदर्थाक्षरश्रुत-ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं चरमोर्वङ्कापहृताक्षररूपाष्टाङ्केन गुण्यरूपे चरमोर्वङ्के गुणिते तु-पुन अर्थाक्षरज्ञानं युक्तियुक्तं भवति इति जिनैर्निर्दिष्टम्। इदमन्त्यदीपक इति सर्वाण्यपि चतुरङ्काद्यष्टाङ्कावसानानि षट्स्थानाना भागवृद्धि-युक्तस्थानानि गुणवृद्धियुक्तस्थानानि च स्वस्वपूर्वानन्तरोर्वङ्कवृद्धियुक्तस्थानेन भक्त्वा पुनस्तेनैव गुणयित्वा

क्षर श्रुत ज्ञान होता है। पहले जो अष्टांकका प्रमाण जीवराशि मात्र गुणा कहा है उससे यहाँ जो अष्टांक है उसका प्रमाण वह नहीं है विलक्षण है यह कहते है—

असंख्यात लोक मात्र षट्स्थानोंमें जो अन्तिम षट्स्थान है उसके अन्तिम उर्वंक रूप वृद्धिसे युक्त सर्वोत्कृष्ट पर्यायसमास ज्ञानको एक बार अष्टांकसे गुणा करनेपर अर्थाक्षर श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इससे उसे अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान कहते हैं। उस अष्टांकका कितना प्रमाण है यह बतलाते है एक कम एकही मात्र अपुनरुक्त अक्षरोंकी रचना रूप द्वाद-शांग श्रुतस्कन्धसे उत्पन्न हुए ज्ञानको श्रुत केवल ज्ञान कहते हैं। इस श्रुत केवल ज्ञानको एक कम एकट्टी मात्र अपुनरुक्त अक्षरोंके प्रमाणसे भाग देनेपर अर्थाक्षर रूप एक अक्षरका प्रमाण होता है। इस अर्थाक्षरमें सबसे उत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान रूप उर्वंकसे भाग देनेपर अन्तिम उर्वंकके गुणकार रूप अष्टांकका प्रमाण होता है। अर्थात् अर्थाक्षर ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदों-का जितना प्रमाण है उसमें सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञानके भेद रूप उर्वंकके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणका भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है वही यहाँ अष्टांकका प्रमाण है। इस कारणसे अब उस अक्षर श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका कारण जो अन्तिम उर्वंक है उससे भाजित अक्षर रूप अष्टांकसे गुण्य रूप अन्तिम उर्वंकमें गुणा करने पर अर्थाक्षर ज्ञान होता है यह युक्तियुक्त है। ऐसा जिनदेवने कहा है। यह कथन अन्त्यदीपक अर्थात् अन्तमें रखे हुए दीपक-

वृद्धियुक्तस्थानंगळ्गुत्पत्तियक्कुमल्लदे केवलं पर्य्यायजघन्यज्ञानमने भागिसियुं गुणिसियुं पुट्टिदुवल्लें-
बुदक्कें दु निश्चयिसुवुदु मीयत्यर्थाक्षरज्ञानम के । उ नपवर्त्तितसुत्तिरलु श्रुतकेवलज्ञानसंख्यातभाग-
१८ । = उ
मात्रार्थाक्षरज्ञानप्रमाणमक्कुं के अक्षराज्जातं ज्ञानमक्षरज्ञानमर्त्थविषयमर्त्थग्राहकमर्त्थाक्षर-
१८ =
ज्ञानं । अथवा अर्य्यते गम्यते ज्ञायतयित्यर्त्थः । न क्षरतीत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात् ।
५ अर्त्थश्चासावक्षरं च तदर्त्थाक्षरं । अथवा अर्य्यते गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयत
इत्यर्त्थः । अर्त्थश्चासावक्षर च तदर्त्थाक्षर तस्माज्जात ज्ञानमर्त्थाक्षर ज्ञानं ।

अथवा त्रिविधमक्षर लब्ध्यक्षर निर्वृत्यक्षरं स्थापनाक्षरं चेति । तत्र पर्य्यायज्ञानावरण-
प्रभृतिश्रुतकेवलज्ञानावरणपर्य्यंतक्षयोपशमोद्भूताऽत्मनोर्त्थग्रहणशक्तिर्लब्धिर्भावेंद्रियं । तद्रूपमक्षरं
लब्ध्यक्षरं अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् । कंठोष्टताल्वादिस्थानस्पृष्टताधिकरणप्रयत्ननिर्व्वर्त्यमानस्वरूप-
१० मकारादिककारादिस्वरव्यंजनरूपमूलवर्णतत्संयोगादिसस्थानं निर्वृत्यक्षरं । पुस्तकेषु तत्तद्देशानु-

---

यथासख्य चतुरङ्कपञ्चाङ्कषडङ्कसप्ताङ्काष्टाङ्कवृद्धियुक्तस्थानानि उत्पद्यन्ते, न च केवल पर्यायजघन्यज्ञानमेव
भक्त्वा गुणयित्वा उत्पद्यत इति निश्चेतव्य, इदमर्थाक्षरज्ञान के उ अपवर्तित सत् श्रुतकेवलज्ञान-
१८ = उ
संख्यातभागमात्र अर्थाक्षरज्ञानप्रमाणं भवति के अक्षराज्जातं ज्ञान अक्षरज्ञानं अर्थविषयमर्थग्राहकं
१८ =
अर्थाक्षरज्ञान अथवा अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थ , न क्षरति इत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात् । अर्थश्चा-
१५ सावक्षर च तदर्थाक्षरम् । अथवा अर्यते गम्यते श्रुतकेवलस्य सख्येयभागत्वेन निश्चीयते इत्यर्थ , अर्थश्चासावक्षर
च तदर्थाक्षरं तस्माज्जात ज्ञानमर्थाक्षरज्ञानम् । अथवा त्रिविधमक्षर लब्ध्यक्षर निर्वृत्त्यक्षर स्थापनाक्षरं चेति ।
तत्र पर्यायज्ञानावरणप्रभृतिश्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यन्तक्षयोपशमादुद्भूतात्मनोऽर्थग्रहणशक्तिर्लब्धि भावेन्द्रिय,
तद्रूपमक्षर लब्ध्यक्षर, अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् कण्ठोष्ठताल्वादिस्थानस्पष्टतादिकरणप्रयत्ननिर्वर्त्त्यमानस्वरूप
अकारादिककारादिस्वरव्यञ्जनरूप मूलवर्णतत्सयोगादिसस्थान निर्वृत्त्यक्षरम् । पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया

---

२० के समान है इसलिए चतुरंकसे लेकर अष्टांक पर्यन्त षट्स्थानोके भागवृद्धि और गुण वृद्धिसे
युक्त सब स्थान अपने-अपने अनन्तर पूर्व उर्वक वृद्धि युक्त स्थानसे भाग देनेपर जितना प्रमाण
आवे उससे पुनः उस पूर्व स्थानको गुणा करनेपर यथाक्रमसे चतुरंक, पंचांक, षष्ठांक, सप्तांक
और अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान उत्पन्न होते हैं । केवल जघन्य पर्याय ज्ञानमें भाग देकर और
फिर उसीसे गुणा करनेपर ये स्थान उत्पन्न नहीं होते । यह निश्चित जानना । इस प्रकार
२५ श्रुत केवल ज्ञानका संख्यातवाँ भाग मात्र अर्थाक्षर श्रुत ज्ञानका प्रमाण होता है ।

अक्षरसे उत्पन्न हुआ ज्ञान अक्षर ज्ञान है । जो अर्थको विषय करता है या अर्थका
ग्राहक है वह अर्थाक्षर ज्ञान है । अथवा जो अर्यते अर्थात् जाननेमें आता है वह अर्थ है और
द्रव्य रूपसे विनाश न होनेसे अक्षर है अर्थ और अक्षरको अर्थाक्षर कहते हैं । अथवा 'अर्यते'
अर्थात् श्रुत केवलके संख्यातवे भाग रूपसे जिसका निश्चय किया जाता है वह अर्थ है ।
३० अर्थ और अक्षर अर्थाक्षर है । उससे उत्पन्न ज्ञान अर्थाक्षर ज्ञान है । अथवा अक्षर तीन
प्रकारका है—लब्ध्यक्षर, निर्वृत्त्यक्षर, और स्थापनाक्षर । उनमें-से पर्याय ज्ञानावरणसे लेकर
श्रुतकेवलज्ञानावरण पर्यन्तके क्षयोपशमसे उत्पन्न आत्माकी अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति लब्धि-

रूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरं। एवविधमप्प एकाक्षरश्रवणसंजातार्थज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञानमेंदितु जिनरुगळिदं पेळल्पट्टुदेम्मिदं किंचित्प्रतिपादितमाय्तु।

अनंतरं श्रुतनिबद्धमं श्रुतविषयमं पेळ्दपं—

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो दु सुदणिबद्धो ॥३३४॥

प्रज्ञापनीया भावा अनंतभागस्तु अनभिलाप्यानां। प्रज्ञापनीयानां पुनरनंतभागः श्रुतनिबद्धः॥

अनभिलाप्यंगळप्प वाग्विषयंगळल्लदंतप्प केवलं केवलज्ञानगोचरमप्प भावानां जीवाद्यर्थंगळ अनंतैकभागमात्रंगळु। भावाः जीवाद्यर्थंगळु प्रज्ञापनीयाः तीर्थंकरसातिशयदिव्यध्वनि प्रतिपाद्यंगळप्पुवु। पुनः मत्ते प्रज्ञापनीयानां सातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्यंगळप्प भावानां जीवाद्यर्थंगळ अनंतैकभागः अनंतैकभागं श्रुतनिबद्धद्वादशांगश्रुतस्कंधनिबद्धक्के विषयतेयिदं नियमितमक्कुं। श्रुतकेवलिगळगम्यमगोचरअर्थप्रतिपादनशक्ति दिव्यध्वनिगुंटुमादिव्यध्वनिगमगोचरजीवाद्यर्थग्रहणशक्ति केवलज्ञानदोळे बुदर्थं।

अवाच्यानामनंतांशो भावाः प्रज्ञाप्यसानकाः।
प्रज्ञाप्यमानभावानामनंतांशः श्रुतोदितः॥

लिखितसस्थानं स्थापनाक्षरम्। एवविधैकाक्षरश्रवणसजातार्थज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनै कथितत्वात् किंचित् प्रतिपादितम् ॥३३३॥ अथ श्रुतनिबद्ध श्रुतविषयं च प्ररूपयति—

अनभिलाप्याना अवाग्विषयाणा केवलं केवलज्ञानगोचराणां भावाना जीवाद्यर्थाना अनन्तैकभागमात्राः भावा'—जीवाद्यर्था., प्रज्ञापनीयाः तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्या. भवन्ति। पुनः प्रज्ञापनीयाना भावाना जीवाद्यर्थाना अनन्तैकभागः श्रुतनिबद्ध. द्वादशाङ्गश्रुतस्कन्धस्य निवद्धः विषयतया नियमित श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थग्रहणशक्ति' केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थः।

अवाच्यानामनन्ताशो भावा प्रज्ञाप्यनामकाः। प्रज्ञाप्यमानभावाना अनन्ताशः श्रुतोदितः ॥१॥

रूप भावेन्द्रिय है। उस रूप अक्षर लब्ध्यक्षर है। क्योंकि वह अक्षर ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण है। कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि स्थानोंकी हलन-चलन आदि रूप क्रिया तथा प्रयत्नसे जिनके स्वरूपकी रचना होती है वे अकारादि स्वर, ककारादि व्यंजनरूप मूल वर्ण और उनके संयोगसे बने अक्षर निर्वृत्त्यक्षर हैं। पुस्तकोंमें उस-उस देशके अनुरूप लिखित अकारादिका आकार स्थापनाक्षर है। इस प्रकारके एक अक्षरके सुननेसे उत्पन्न हुआ अर्थज्ञान एकाक्षर श्रुतज्ञान है ऐसा जिनदेवने कहा है। उसीके आधारसे मैंने किंचित् कहा है ॥३३३॥

अब श्रुतके विषयको तथा श्रुतमें कितना निबद्ध है इसको कहते है—

जो भाव अनभिलाप्य अर्थात् वचनके द्वारा कहनेमें नहीं आ सकते, केवल केवलज्ञानके ही विषय हैं ऐसे पदार्थ जीवादिके अनन्तवें भाग मात्र प्रज्ञपनीय है अर्थात् तीर्थंकरकी सातिशय दिव्यध्वनिके द्वारा कहे जाते हैं। पुनः प्रज्ञापनीय जीवादि पदार्थोंका अनन्तवाँ भाग द्वादशांग श्रुतस्कन्धमें विषय रूपसे निबद्ध होता है। श्रुतकेवलियोंके भी अगोचर अर्थको कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिमें होती है। और दिव्यध्वनिसे भी अगोचर अर्थको ग्रहण करनेकी शक्ति केवलज्ञानमें है ॥३३४॥

अनंतरं गाथाद्वयदिंदं शास्त्रकारनक्षरसमासमं पेळ्दपं :—

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं ॥३३५॥

एकाक्षरादुपरि चैकैकेनाक्षरेण वर्द्धमानाः । सख्येये खलु वृद्धे पदनाम भवति श्रुतज्ञानं ॥

एकाक्षरजनितार्त्थज्ञानदमेले तु मत्ते पूर्वोक्तक्रमदिं षट्स्थानवृद्धिरहितमागि एकैकाक्षरदिंद वर्द्धमानमागुत्तिरलु द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्य्यंतसमुदायश्रवणजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पंगळु संख्येयंगळु द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितगळु सलुत्तं विरलु तदनंतरमुत्कृष्टाक्षरसमासविकल्पदमेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तिरलु पदनाममनुळ्ळ श्रुतज्ञानमक्कुं ।

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव ।
सत्तसहस्सट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥३३६॥

षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यस्त्र्यशीतिलक्षाणि चैव । सप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिश्च पदवर्णाः ॥

इल्लि अर्त्थपदं प्रमाणपदं मध्यमपदमेंदु पदं त्रिविधमक्कुं । अल्लिये निरक्षरसमूहदिंदं विवक्षितार्थमरियल्पडुवुमदर्थपदमक्कुं । गां दंडेन शालिभ्यो निवारय । त्वमग्निमानय । इत्यादिगळु । अष्टाक्षरादिसंख्येयिंदं निष्पन्नमप्पक्षरसमूहं प्रमाणपदमेंबुदक्कुं । नमः श्रीवर्द्धमानाय । एंबिवु मोदलादुवु । षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यस्त्र्यशीतिलक्षाणि । सप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिश्च पदवर्णाः एंदी गाथोक्तप्रमाणैकपदा पुनरुक्ताक्षरंगळं समूहं मध्यमपदमेंबुदक्कुं १६३४८३०७८८८

॥३३४॥ अथ गाथाद्वयेन शास्त्रकार अक्षरसमास कथयति—

एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु-पुन. पूर्वोक्तषट्स्थानवृद्धिक्रमरहिततया एकैकाक्षरेणैव वर्धमाना द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यन्ताक्षरसमुदायश्रवणसजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पा संख्येया द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितागता तदा अनन्तरस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या पदनाम श्रुतज्ञान भवति ॥३३५॥

अत्र अर्थपद प्रमाणपद मध्यमपद चेति पद त्रिविधम् । तत्र यावताक्षरसमूहेन विवक्षितार्थो ज्ञायते तदर्थपदम् । दण्डेन शालिभ्यो गा निवारय, त्वमग्निमानय इत्यादय । अष्टाक्षरादिसख्यया निष्पन्नोऽक्षरसमूह प्रमाणपद 'नम श्रीवर्धमानाय' इत्यादि । षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्य त्र्यशीतिलक्षाणि सप्तसहस्राणि अष्टशतानि

अब शास्त्रकार दो गाथाओंसे अक्षर समासको कहते है—

एक अक्षरसे उत्पन्न अर्थज्ञानके ऊपर पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धिके क्रमके बिना एक-एक अक्षर बढ़ते हुए दो अक्षर तीन अक्षर आदि रूप एक हीन पदके अक्षर पर्यन्त अक्षर समूहके सुननेसे उत्पन्न अक्षर समास ज्ञानके विकल्प संख्यात है अर्थात् दो हीन पदके अक्षर प्रमाण है । उसके अनन्तर उत्कृष्ट अक्षर समासके विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढनेपर पदनामक श्रुतज्ञान होता है ॥३३५॥

पदके तीन भेद हैं—अर्थपद, प्रमाणपद, मध्यमपद । जितने अक्षरोंके समूहसे विवक्षित अर्थका ज्ञान होता है वह अर्थपद है । जैसे डण्डेसे गायको भगाओ । आग लाओ, इत्यादि । आठ आदि अक्षरोंकी संख्यासे बने अक्षर समूहको प्रमाण पद कहते हैं । जैसे 'नमः श्रीवर्धमानाय' । इत्यादि । सोलह सौ चौतीस करोड़, तेरासी लाख, सात हजार आठसौ अठासी अक्षरोंका एक पद होता है । इस गाथामे कहे प्रमाण एक पदके अपुनरुक्त अक्षरों-

३५ १. मं एवीत्यादिगलु ।

हीनाधिकमानंगळप्प प्रमाणपदार्थपदद्वयमध्यदोळे पेळल्पट्ट संख्याक्षरपरिमितसमूहदोळु वर्त्तमानत्वदिदं मध्यमपदमेंदितन्वर्थतेयिंदं परमागमदोळा मध्यमपदमे गृहीतमाप्तेकेंदोडे प्रमाणार्त्थपदंगळु लोकव्यवहारदोळु गृहीतंगळागुत्तिरलो मध्यमपदमे लोकोत्तरमप्प परमागमदोळु पदमेंदितु व्यवहारिसल्पट्टुदु ।

अनंतरं संघातश्रुतज्ञानमं पेळ्दपं :—

एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥३३७॥

एकपदादुपर्य्येकैकाक्षरेण वर्द्धमाने । संख्येयसहस्रपदे वृद्धे संघातनामश्रुतं ॥

एकपदक्के पेळ्द प्रमाणाक्षरसमूहद मेले एकैकवर्णवृद्धिक्रमदिंदमेकपदाक्षरमात्रपदसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु द्विगुणपदज्ञानमक्कु-। मदर मेले मत्तमेकैकवर्णवृद्धिक्रमदिंदमेकपदाक्षरमात्रपदसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु त्रिगुणपदश्रुतज्ञानमक्कुमितु प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितंगळप्प चतुर्गुणपदादिसंख्यातसहस्रगुणितपदमात्रंगळु रूपोनपदसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु प ० ० ० प २ प २०००० प ३०००० प ४०००० प १००० १-१ ई चरमपद-

---

अष्टाशीतिश्च पदवर्णा इत्येतद्गाथोक्तप्रमाणैकपदाऽपुनरुक्ताक्षरसमूहो मध्यमपद १६३४८३०७८८८ । हीनाधिकमानयो प्रमाणपदार्थपदयोर्मध्ये एतदुक्तसंख्यापरिमिताक्षरसमूहे वर्तमानत्वात् मध्यमपद इत्यन्वर्थतया परमागमे तदेव परिगृहीत, प्रमाणपदार्थे पदे तु लोकव्यवहारे परिगृहीते । अत एव लोकोत्तरे परमागमे मध्यमपदमेव पदमिति व्यवह्रियते ॥३३६॥ अथ सघातश्रुतज्ञान प्ररूपयति—

एकपदस्य उक्तप्रमाणाक्षरसमूहस्योपरि एकैकाक्षरवृद्धया एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु द्विगुणपदज्ञानं भवति । तस्योपरि पुनरपि एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु त्रिगुणपदज्ञान भवति । एव प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितेषु चतुर्गुणपदादिषु सख्यातसहस्रगुणितपदमात्रेषु रूपोनेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु—

प । प प । ० ० । प २ । प २ । प २ । ० ० । प ३ । प ३ । प ३ ० ० ० प १ ० ० ० १ उ

१६= १६= १६= १०००१

का समूह १६३४८३०७८८८ मध्यम पद है । प्रमाण पद और अर्थ पदमें हीन अधिक अक्षर होते है । उन दोनोंके मध्यमें कही गयी संख्या परिमाणवाले अक्षर समूहमें वर्तमान होनेसे इसका मध्यम पद नाम सार्थक होनेसे परमागममें वही लिया गया है । प्रमाणपद और अर्थपद तो लोकव्यवहारमें चलते है इसीसे लोकोत्तर परमागममें मध्यमपदको ही पद कहा है ॥३३६॥

अब संघात श्रुतज्ञानको कहते हैं—

एक पदके उक्त प्रमाण अक्षर समूहके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धि होते-होते एक पदके अक्षर प्रमाण पद समास ज्ञानके विकल्पोंके होनेपर पद श्रुत ज्ञान दूना होता है । उसके ऊपर पुनः एक पदके अक्षर प्रमाण पदसमास ज्ञानके विकल्प बीतनेपर पदज्ञान तिगुना होता

---

१. म °पदमर्त्थपद° । २ म संखेज्जपदे उड्ढे सघाद णाम होदि सुद ।

समासज्ञानोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरमे वृद्धमागुत्तिरलु संघातश्रुतज्ञानमक्कुं- प १००० १ मिदुवुं चतुर्गतिगळोळोंदु गतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्थज्ञानमक्कुं ।

अनंतरं प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपमं पेळ्दपं :—

एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्मि पडिवत्ती ॥३३८॥

एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतादुपरि पूर्व्ववत् । वर्णे संख्येये संघाते वृद्धे प्रतिपत्तिः ॥

पूर्व्वोक्तप्रमाणमप्प एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतद मेले पूर्व्वपरिपाटियिंदमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितमप्पेकैकपदवृद्धिक्रमदिंदं संख्यातसहस्रपदमात्रसंघातंगळु संख्यातसहस्रप्रमितंगळु रूपोनसंघातसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमसंघातोत्कृष्टविकल्पद प १०००१ । १००० १-१ वृद्धिय मेले एकाक्षरवृद्धियमेलेयागुत्तिरलु प्रतिपत्तिकमेंब श्रुतज्ञानमक्कु १६=१०००।१।१०००१ । इदुवुं नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रंथश्रवणसंजातार्थज्ञानमेंदितु निश्चैसल्पडुवुदु ।

अनंतरमनुयोगश्रुतज्ञानमं पेळ्दपरु—

चरमस्य पदसमासज्ञानोत्कृष्टविकल्पस्य उपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति सघातश्रुतज्ञान भवति १६=१०००१ तच्चतसृणा गतीना मध्ये एकतमगतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसघातश्रवणजनितार्थज्ञान ॥३३७॥ अथ प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूप निरूपयति—

पूर्वोक्तप्रमाणस्य एकतमगतिनिरूपकसघातश्रुतस्य उपरि पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितैकैकपदवृद्धिक्रमेण सख्यातसहस्रपदमात्रसघातेषु सख्यातसहस्रेषु रूपोनेषु सघातसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य सघातसमासोत्कृष्टविकल्पस्य १६=१००० १ । १००० १-१ एतस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्रतिपत्तिक नाम श्रुतज्ञान भवति १६=१००० १ । १००० १ । तच्च नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रन्थश्रवणजनितार्थज्ञानमिति निश्चेतव्यम् ॥३३८॥ अथानुयोगश्रुतज्ञान प्ररूपयति—

है । इस प्रकार प्रत्येक एक पदके अक्षर मात्र विकल्पोंके बीतनेपर पदज्ञानके चतुर्गुने-पंचगुने होते-होते संख्यात हजार गुणित पदमात्र पदसमास ज्ञानके विकल्पोंमें एक अक्षर घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने पदसमास ज्ञानके विकल्प होते है । अन्तिम पदसमास ज्ञानके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढानेपर संघात श्रुतज्ञान होता है । सो चार गतियोंमें-से किसी एक गतिके स्वरूपका कथन करनेवाले मध्यमपदके समुदायरूप संघात श्रुतज्ञानके सुननेसे जो अर्थज्ञान होता है वह संघात श्रुतज्ञान है ॥३३७॥

अब प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानका स्वरूप कहते है—

पूर्वोक्त प्रमाण किसी एक गतिके निरूपक संघात श्रुतके ऊपर पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक अक्षरकी वृद्धिपूर्वक एक-एक पदकी वृद्धिके क्रमसे संख्यात हजार पदप्रमाण संख्यात हजार संघातमें होते है । उनमे एक अक्षर कम करनेपर संघात श्रुतज्ञानके विकल्प होते है । उसके अन्तिम संघात समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढानेपर प्रतिपत्ति नामक श्रुतज्ञान होता है । नारक आदि चार गतियोंके स्वरूपका विस्तारसे कथन करनेवाले प्रतिपत्तिक नामक ग्रन्थके सुननेसे होनेवाला अर्थज्ञान प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है ॥३३८॥

अब अनुयोग श्रुतज्ञानको कहते हैं—

चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्ती उड्ढम्मि अणियोगं ॥३३९॥

चतुर्गतिस्वरूपरूपकप्रतिपत्तितस्तूपरि पूर्ववत्। वर्णे संख्येये प्रतिपत्तिके वृद्धे अनुयोगं ॥

चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तिकदिंदं मुंदेयुमदर मेले प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमदिंदं संख्यातसहस्रपदसघातप्रतिपत्तिकंगळु संवृद्धंगळागुत्तिरलु रूपोनतावन्मात्रप्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तमिरलु तच्चरमप्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलु अनुयोगाख्यश्रुतज्ञानमक्कुं। अदुवुं चतुर्दशमार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगमेंब शब्दसंदर्भश्रवणजातार्थज्ञानमेंबुदर्थं।

अनंतरं प्राभृतप्राभृतकसं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपर :—

चोद्दसमग्गणसंजुद अणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे।
चउरादी अणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥३४०॥

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगादुपरि वर्द्धिते वर्णे। चतुराद्यनुयोगे द्विकवारं प्राभृतं भवति ॥

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगश्रुतद मेले मुंदे पूर्वोक्तक्रमदिंदं प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिंदं चतुराद्यनुयोगंगळु संवृद्धिगळागुत्तिरलु रूपोनतावन्मात्रंगलनुयोगसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमानुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तिरलु द्विकवारप्राभृतकमेंब श्रुतज्ञानमक्कुं।

चतुर्गतिस्वरूपनिरूपकप्रतिपत्तिकात् पर तस्योपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु पदसघातप्रतिपत्तिकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति अनुयोगाख्य श्रुतज्ञानं भवति। तच्चतुर्दशमार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगसंज्ञशब्दसदर्भश्रवणजनितार्थज्ञानमित्यर्थ ॥३३९॥ अथ प्राभृतकप्राभृतकस्य स्वरूप गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिश्चतुराद्यनुयोगेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रानुयोगसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमानुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या द्विकवारप्राभृतकं नाम श्रुतज्ञान भवति ॥३४०॥

चार गतियोंके स्वरूपको कहनेवाले प्रतिपत्तिकसे आगे उसके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे संख्यात हजार पदोंके समुदायरूप संख्यात हजार संघात और संख्यात हजार संघातोंके समूहरूप प्रतिपत्तिककी संख्यात हजार प्रमाण वृद्धि होनेपर उसमें-से एक अक्षर कम करनेपर प्रतिपत्तिक समास ज्ञानके विकल्प होते है। उसके अन्तिम प्रतिपत्तिक समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढ़ानेपर अनुयोग नामक श्रुतज्ञान होता है। चौदह मार्गणाओंके स्वरूपके प्रतिपादक अनुयोग नामक श्रुतग्रन्थके सुननेसे हुआ अर्थज्ञान अनुयोग श्रुतज्ञान है ॥३३९॥

अब दो गाथाओंसे प्राभृतक-प्राभृतकका स्वरूप कहते हैं—

चौदह मार्गणाओंसे सम्बद्ध अनुयोगसे आगे उसके ऊपर पूर्वोक्त क्रमसे प्रत्येक एक-एक अक्षरकी वृद्धिसे युक्त पद आदिकी वृद्धिके द्वारा चार आदि अनुयोगोंकी वृद्धि होनेपर प्राभृतक-प्राभृतक श्रुतज्ञान होता है। उसमें एक अक्षर कम करनेपर उतने मात्र अनुयोग

अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।
पाहुडपाहुडणामं होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३४१॥

अधिकारः प्राभृतकमेकार्थः प्राभृतस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकनामा भवतीति जिनैर्निर्दिष्ट ॥

वस्तुवेंब श्रुतज्ञानद अधिकारः प्राभृतकमे बेरडुमेकार्त्थंगळु । प्राभृतद अधिकारमं प्राभृतक प्राभृतकमें बुदु अदुकारणदिंदमेकार्थपर्य्यायशब्दमें दितु जिनेंद्रभट्टारकरिंदं पेळल्पट्टुदु । स्वरुचि-विरचित मल्ते बुदर्त्थं ।

द्विकवारप्राभृतानंतरं प्राभृतकस्वरूपम पेळ्दपरु :—

दुगवारपाहुडादो उवरि वण्णे कमेण चउवीसे ।
दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥३४२॥

द्विकवारप्राभृतकादुपरि वर्णे क्रमेण चतुर्व्विंशतौ । द्विकवारप्राभृते संवृद्धे खलु भवति प्राभृतकं ॥

द्विकवारप्राभृतकदिंदं मेले तदुपरि पूर्व्वोक्तक्रमदिंद प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादि-वृद्धिगळिंदं चतुर्व्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकगळु वृद्धंगळागुत्तिरलु रूपोनतावन्मात्रंगळु प्राभृतकप्राभृतक-समासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमोत्कृष्ट विकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तिरलु प्राभृतकमें बं श्रुतज्ञानमक्कुं ।

अनंतरं वस्तुवेंब श्रुतज्ञानस्वरूपमं पेळ्दपं—

वस्तुनामश्रुतज्ञानस्य अधिकार प्राभृतक वेति द्वौ एकार्थौ । प्राभृतकस्य अधिकारोऽपि प्राभृतक-प्राभृतकनामा भवति ततः कारणात् एकार्थ पर्यायशब्द. इति जिनै –अर्हद्भट्टारकै निर्दिष्ट न स्वरुचिविरचित-मित्यर्थ ॥३४१॥ द्विकवारप्राभृतानन्तर प्राभृतकस्वरूप प्ररूपयति—

द्विकवारप्राभृतकात्परं तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभि चतुर्विंशति-प्राभृतकप्राभृतकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकप्राभृतकज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमसमासोत्कृष्टविकल्पस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या प्राभृतक नाम श्रुतज्ञान भवति ॥३४२॥ अथ वस्तुनामश्रुतज्ञानस्वरूपमाह—

समास ज्ञानके विकल्प होते है । उसके अन्तिम अनुयोग समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षरके बढनेपर प्राभृतक-प्राभृतक नामक श्रुतज्ञान होता है ॥३४०॥

वस्तु नामक श्रुतज्ञानका अधिकार कहो या प्राभृतक कहो, दोनोंका एक ही अर्थ है । प्राभृतकका अधिकार भी प्राभृतक-प्राभृतक नामक होता है । ऐसा अर्हन्त देवने कहा है, स्वरुचि रचित नहीं है ॥३४१॥

अब प्राभृतकका स्वरूप कहते है—

प्राभृतक-प्राभृतकसे आगे उसके ऊपर पूर्वोक्त प्रकारसे प्रत्येक एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे पद आदिकी वृद्धिके होते-होते चौबीस प्राभृतक प्राभृतकोकी वृद्धिमें एक अक्षर घटानेपर प्राभृतक-प्राभृतक समासके भेद होते है । उसके अन्तिम भेदमे एक अक्षर बढानेपर प्राभृतक श्रुतज्ञान होता है । उसके ऊपर पूर्वोक्त क्रमसे एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे वीस प्राभृतक नामक अधिकारोंके बढनेपर प्राभृतक नामक श्रुतज्ञान होता है । उसमें एक अक्षर कम करनेपर उतने मात्र प्राभृतक समास ज्ञानके विकल्प होते हैं उसके अन्तिम प्राभृतक समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षर बढनेपर

वीसं वीसं पाहुड अहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णादव्वा ॥३४३॥

विंशतिर्विंशतिः प्राभृताधिकारे एकवस्त्वधिकारः । एकैकवर्णवृद्धिः क्रमेण सर्व्वत्र ज्ञातव्या ॥

मुं पेळ्द प्राभृतकद मुंदे तदुपरि अदर मेले पूर्व्वोक्तक्रमदिंदमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिंमिप्पत्तु प्राभृतकनामाधिकारंगळु संवृद्धंगळागुत्तं विरलु रूपोनतावन्मात्रप्राभृतकसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमप्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलु ओंदु वस्तुनामाधिकारश्रुतज्ञानमक्कुं । वीसं वीसमे दितु उत्पादादिपूर्व्वंगळनाश्रयिसल्पट्ट वस्तुगळ समूहवीप्सेयोळु द्विर्वचनं पेळल्पट्टुदु । सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पप्रभृति पूर्व्वसमासोत्कृष्टविकल्पपर्य्यंतमप्पुवरोळु क्रमदिंदं । पर्य्यायाक्षरपदसंघातेत्यादि परिपाटियिंदमेकैकवर्णवृद्धियेबुदिदुपलक्षणमप्पुदरिंदमेकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धिगळुमरियल्पडुवुवु । ई सूत्रानुसारदिंदं वृत्तियोळमा प्रकारदिंदमे बरेयल्पट्टुदु ।

अनंतरं गाथासूत्रत्रयदिंदं पूर्व्वश्रुतस्वरूपमं पेळ्वातं तदवयवंगळप्पुत्पादपूर्व्वादिचतुर्द्दशपूर्व्वंगळुत्पत्तिक्रममं तोरिदपं :—

दस चोद्दसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च ।
वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ॥३४४॥

दश चतुर्द्दशाष्टाष्टादश द्वादश द्वादश षोडश, विंशति त्रिंशत्पंचदश दश चतुर्षु वस्तूनां ॥

पूर्व्वोक्तवस्तुश्रुतद मेले प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिगळिंदं वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्द्दशपूर्वाधिकारंगळोळु यथासंख्यमागि दश चतुर्दश अष्ट अष्टादश द्वादश द्वादश षोडश विंशति

पूर्वोक्तप्राभृतकस्याग्रे तदुपरि पूर्वोक्तक्रमेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभि' विंशतिप्राभृतकनामाधिकारेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या एक वस्तुनामाधिकारश्रुतज्ञानं भवति । वीस वीसमिति उत्पादादिपूर्वाश्रितवस्तुसमूहवीप्साया द्विर्वचनमुक्तम् । सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पात् प्रभृति पूर्वसमासोत्कृष्टविकल्पपर्यन्तेषु क्रमेण पर्यायाक्षरपदसंघातेत्यादिपरिपाट्या एकैकवर्णवृद्धि' इदमुपलक्षण, तेन एकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धयो ज्ञातव्या । एतत्सूत्रानुसारेण वृत्तौ तथा लिखितम् ॥३४३॥ अथ गाथात्रयेण पूर्वनामश्रुतज्ञानस्वरूपं प्ररूपयंस्तदवयवभूतोत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वाणामुत्पत्तिक्रम दर्शयति—

पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभि' वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्दश-

---

एक वस्तु नामक श्रुतज्ञान होता है । उत्पाद पूर्व आदि पूर्वोंके वस्तु समूहकी वीप्सामें 'वीस वीसं' ऐसा दो बार कथन किया है । सर्वत्र अक्षर समासके प्रथम भेदसे लेकर पूर्व समासके उत्कृष्ट विकल्प पर्यन्त क्रमसे पर्याय, अक्षर, पद, संघात इत्यादि परिपाटीसे एक-एक अक्षरकी वृद्धि करना चाहिए । यह कथन उपलक्षण है । अतः 'एक-एक अक्षर पद, संघात आदिकी वृद्धि जानना' । इस सूत्रके अनुसार टीकामें सर्वत्र यथास्थान कथन किया है ॥३४२-३४३॥

अब तीन गाथाओंसे पूर्व नामक श्रुतज्ञानका स्वरूप कहते हुए उसके अवयवभूत उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्वोंकी उत्पत्तिका क्रम दर्शाते है—

पूर्वोक्त वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके साथ पद आदिकी वृद्धि होते-

त्रिंशत् पंचदश दश दश दश दश वस्तुगळु वृद्धंगळागुत्तिरलु ।

उप्पापुव्वग्गेणिय विरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मपवादे य ॥३४५॥
पच्चक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोय बिदुसारे य ॥३४६॥

उत्पादपूर्व्वाग्रायणीयवीर्य्यप्रवादास्तिनास्तिप्रवादे । ज्ञानसत्यप्रवादे आत्मकर्म्मप्रवादे च ॥
प्रत्याख्याने विद्यानुवादकल्याणप्राणवादे च । क्रियाविशालपूर्व्वे क्रमशोथ त्रिलोकबिंदुसारे च ॥

यथाक्रमदिंदमुत्पादपूर्व्वमग्रायणीयपूर्व्वं वीर्य्यप्रवादपूर्व्वमस्तिनास्तिप्रवादपूर्व्वं ज्ञानप्रवादपूर्व्वं सत्यप्रवादपूर्व्वं आत्मप्रवादपूर्व्वं कर्म्मप्रवादपूर्व्वं प्रत्याख्यानपूर्व्वं विद्यानुवादपूर्व्वं कल्याणवादपूर्व्वं प्राणवादपूर्व्वं क्रियाविशालपूर्व्वं त्रिलोकबिंदुसारपूर्व्वं वेंदितु चतुर्द्दशपूर्व्वंगळप्पुविनवरोळु पूर्व्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानद मेले मुंदे प्रत्येकमैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धियिंदं दशवस्तुप्रमितवस्तुसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु रूपोनतावन्मात्रवस्तुश्रुतसमासज्ञानविकल्पंगळोळु चरमवस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलुत्पादपूर्व्वंश्रुतज्ञानमक्कुमल्लिदत्तलावुत्पाद-

---

पूर्वाधिकारेषु यथासख्य दशचतुर्दशाष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पञ्चदशदशदशदशदशवस्तुषु वृद्धेषु सत्सु– ॥३४४॥

यथाक्रम उत्पादपूर्वं आग्रायणीयपूर्वं वीर्यप्रवादपूर्वं अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं ज्ञानप्रवादपूर्वं सत्यप्रवादपूर्वं आत्मप्रवादपूर्वं कर्मप्रवादपूर्वं प्रत्याख्यानपूर्वं विद्यानुवादपूर्वं कल्याणवादपूर्वं प्राणवादपूर्वं क्रियाविशालपूर्वं त्रिलोकविन्दुसारपूर्वं चेति चतुर्दशपूर्वाणि भवन्ति । एतेषु पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि–अग्रे प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया दशवस्तुप्रमितवस्तुसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु रूपोनतावन्मात्रवस्तुश्रुतसमासज्ञानविकल्पेषु चरमवस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या उत्पादपूर्वश्रुतज्ञान भवति । तत उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकाक्षरवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया चतुर्दशवस्तुषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमोत्कृष्टोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्या

होते आगे कहे गये उत्पाद पूर्व आदि चौदह अधिकारोंमें क्रमसे दस, चौदह, आठ, अठारह, बारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दस, दस, दस, दस वस्तु अधिकार होते हैं। इतने वस्तु अधिकारोंकी वृद्धि होनेपर ॥३४४॥

यथा क्रम उत्पाद पूर्व, अग्रायणीपूर्व वीर्य प्रवाद पूर्व, अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व, सत्य प्रवाद पूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यान पूर्व, विद्यानुवादपूर्व, कल्याणवाद पूर्व, प्राणवादपूर्व, क्रियाविशाल पूर्व, त्रिलोकविन्दुसार पूर्व ये चौदह पूर्व होते है। इनमें-से प्रत्येकमें पूर्वोक्त वस्तु श्रुतज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके साथ दस वस्तु प्रमाण वस्तु समास ज्ञानके विकल्पोंमें एक अक्षरसे हीन विकल्प पर्यन्त वस्तु श्रुत समास ज्ञानके विकल्प होते है। उनमें अन्तिम वस्तु समासके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर उत्पाद पूर्व श्रुतज्ञान होता है। फिर उत्पादपूर्व श्रुतज्ञानके ऊपर एक-एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे पद आदिकी वृद्धिके साथ चौदह वस्तुओकी वृद्धि होनेपर उसमें एक अक्षर कम विकल्प पर्यन्त उत्पाद पूर्व समास ज्ञानके विकल्प होते है। उसके अन्तिम

पूर्व्वश्रुतज्ञानद मेळे प्रत्येकमेकैकाक्षरवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिर्यिदं चतुर्द्दशवस्तुगळु सलुत्तं विरलु रूपोनतावन्मात्रोत्पादपूर्व्वसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तच्चरमोत्कृष्टोत्पादपूर्व्वसमासज्ञानविकल्पद मेले एकाक्षरवृद्धियागुत्तविरलु अग्रायणीयपूर्व्वश्रुतज्ञानमक्कु-। मितु मुंदे मुंदे अष्ट अष्टादश द्वादश द्वादश षोडश विंशति त्रिंशत् पंचदश दश दश दशं दश वस्तुगळु क्रमवृद्धंगळागुत्तं विरलु रूपोन रूपोन तावन्मात्र तावन्मात्र तत्तत् पूर्व्वसमासज्ञानविकल्पंगळु सलुत्तं विरलु तत्तत्पूर्व्व-समासोत्कृष्टस्थानविकल्पंगळोळेकैकाक्षरवृद्धियागुत्तं विरलु तत्तद्वीर्य्यप्रवादपूर्व्व-अस्तिनास्ति-प्रवादपूर्व्व ज्ञानप्रवादपूर्व्व–सत्यप्रवादपूर्व्व–आत्मप्रवादपूर्व्व–कर्म्मप्रवादपूर्व्व-प्रत्याख्याननामधेयपूर्व्व-विद्यानुवादपूर्व्व–कल्याणवादपूर्व्व–प्राणावादपूर्व्व–क्रियाविशालपूर्व्व–त्रिलोकबिंदुसारपूर्व्वमेंबी श्रुत-ज्ञानंगळुत्पत्तिगळप्पुवु। इल्लि त्रिलोकबिंदुसारपूर्व्वक्के समासाभावमेर्के दोडे उत्तरज्ञानविकल्प-रहितत्वदिंदं।

अनंतरं चतुर्द्दशपूर्व्ववस्तु वस्तुप्राभृतकसंख्येयं पेळ्दपरु :—

पण णउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवयसया।
एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि ॥३४७॥

पंचनवतिशतानि वस्तूनि प्राभृतकानि त्रिसहस्रनवशतानि। एतेषु चतुर्द्दशसु पूर्व्वेषु सर्व्वेषु भवंति मिलितानि॥

उत्पादपूर्व्वमादियागि लोकबिंदुसारावसानमाद चतुर्द्दशपूर्व्वगळोळु वस्तुगळु सर्व्वमुं कूडि पंचनवत्युत्तरशतप्रमितंगळप्पुवु १९५ प्राभृतकंगळु सर्व्वमुं कूडि नवशतोत्तरत्रिसहस्रप्रमितंगळप्पुवु

अग्रायणीयपूर्वश्रुतज्ञानं भवति। एवमग्रेऽग्रेऽष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पञ्चदशदशदशदशदश-वस्तुषु क्रमेण वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रतावन्मात्रतत्तत्पूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तत्तत्पूर्वसमासोत्कृष्टज्ञान-विकल्पस्योपरि एकैकाक्षरे वृद्धे सति तत्तद्वीर्यप्रवादपूर्वास्तिनास्तिप्रवादपूर्वज्ञानप्रवादपूर्वसत्यप्रवादपूर्वात्म-प्रवादपूर्वकर्मप्रवादपूर्वप्रत्याख्यानपूर्वविद्यानुवादपूर्वकल्याणवादपूर्वप्राणवादपूर्वक्रियाविशालपूर्वत्रिलोकबिन्दुसार-पूर्वनामश्रुतज्ञानान्युत्पद्यन्ते। अत्र त्रिलोकबिन्दुसारस्य तु समासो नास्ति उत्तरज्ञानविकल्पाभावात्॥३४५–३४६॥

अथ चतुर्दशपूर्वगतवस्तुप्राभृतकसख्या कथयति—

उत्पादपूर्वमादि कृत्वा त्रिलोकबिन्दुसारावसानेषु चतुर्दशपूर्वेषु वस्तूनि सर्वाणि मिलित्वा पञ्चनवत्यु-त्तरशतप्रमितानि १९५ भवन्ति। प्राभृतकानि तु सर्वाणि मिलित्वा नवशतोत्तरत्रिसहस्रप्रमितानि भवन्ति

उत्कृष्ट उत्पाद पूर्व समास ज्ञान विकल्पके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अग्रायणी पूर्व श्रुतज्ञान होता है। इसी प्रकार आगे-आगे आठ, अठारह, बारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दस, दस, दस, दस वस्तुओंकी क्रमसे वृद्धि होनेपर एक अक्षर कम उतने-उतने उस-उस पूर्व समास ज्ञान पर्यन्त उस-उस पूर्व समास ज्ञान सम्बन्धी विकल्प होते हैं। उस-उस पूर्व समास ज्ञानके उत्कृष्ट विकल्पके ऊपर एक-एक अक्षर बढ़ानेपर उस-उस वीर्य प्रवाद पूर्व अस्ति, नास्ति, प्रवाद, पूर्व आदि त्रिलोकबिन्दुसार पर्यन्त पूर्व श्रुतज्ञान उत्पन्न होते हैं। त्रिलोकबिन्दुसारका समास ज्ञान नही है क्योंकि उसके आगे श्रुतज्ञानके विकल्प नहीं है ॥३४५–३४६॥

आगे चौदह पूर्वगत वस्तुओंके प्राभृतक नामक अधिकारोंकी संख्या कहते हैं—

उत्पाद पूर्वसे लेकर त्रिलोकबिन्दुसार पर्यन्त चौदह पूर्वोंमें मिलकर सब वस्तु अधिकार एक सौ पंचानवे होते है। तथा सब प्राभृत मिलकर तीन हजार नौ सौ होते है

३९०० वस्तुगळ प्रमाणमनिप्पत्तरिंदं गुणिसुत्तिरलु तत्संख्ये संभविसुगुमप्पुदरिंदं ।

अनतरं पूर्व्वोक्तविंशतिप्रकारश्रुतज्ञानविकल्पोपसंहारमं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपं :—

अत्थक्खरं च पदसंघादं पडिवत्तियाणियोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थुपुव्वं च ॥३४८॥
कमवण्णुत्तरवड्ढिय ताण समासा य अक्खरगदाणि ।
णाणवियप्पे वीसं गंथे बारस य चोद्दसयं ॥३४९॥

अर्थाक्षरं च पदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च । द्विकवारप्राभृतकं च च प्राभृतकं वस्तु-पूर्व्वं च ॥ क्रमवर्णोत्तरवर्द्धिततत्समासाश्च अक्षरगतानि । ज्ञानविकल्पे विंशतिः ग्रंथे द्वादश च चतुर्द्दर्शकं ॥

अर्थाक्षरमें बुदु रूपोनैक्कट्ठविभक्तश्रुतकेवलज्ञानमात्रमेकाक्षरप्रमाणमक्कु के मी १८=

अर्थाक्षरमुं पदमुं संघातमुं प्रतिपत्तिकमुं अनुयोगमुं द्विकवारप्राभृतमुं प्राभृतकमुं वस्तुवुं पूर्व्वमुमेबी योंभत्तुयोभत्तरक्रमवर्णोत्तरवर्द्धितंगळप्पोंभत्तुं समासंगळुमितष्टादशभेदंगळुमक्षरगतंगळु द्रव्यश्रुतविकल्पगळप्पुवु । तत् द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञानं विवक्षितसत्पडुत्तिरलुमनक्षरात्मकपर्य्याय-पर्य्यायसमासज्ञानद्वयसहितं विंशतिविकल्पं श्रुतज्ञानमक्कुं । ग्रंथे शास्त्रसंदर्भं विवक्षितसत्पडुत्तं विरलु द्वादश आचारांगादि द्वादशांगविकल्पमुमुत्पादपूर्व्वादिचतुर्द्दर्शपूर्व्वभेदमुमप्प द्रव्यश्रुतमुं तच्छ्रवणजनितज्ञान-

---

३९०० । वस्तुसख्याया विंशत्या गुणिताया तत्सख्यासभवात् ॥३४७॥ अथ पूर्वोक्तविंशतिविधश्रुतज्ञानविकल्पोपसहार गाथाद्वयेनाह—

अर्थाक्षर तु रूपोनैकट्ठविभक्तश्रुतकेवलमात्रमेकाक्षरज्ञान के तच्च तथा पद च सघात प्रति- १८=

पत्तिक अनुयोग द्विकवारप्राभृतक प्राभृतक वस्तु, पूर्व चेति नव पुन एषामेव नवाना क्रमवर्णोत्तरवर्धिता समासाश्च नव एवमष्टादशभेदा अक्षरगतद्रव्यश्रुतविकल्पा भवन्ति । तद्द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञानमेव पुन ज्ञाने विवक्षिते अनक्षरात्मकपर्यायपर्यायसमासज्ञानद्वययुत सत् विंशतिविध श्रुतज्ञान भवति । ग्रन्थे शास्त्रसन्दर्भे विवक्षिते सति आचाराङ्गादिद्वादशाङ्गविकल्प उत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वभेदं च द्रव्यश्रुत तच्छ्रवणसंजनितज्ञान-

---

क्योंकि एक-एक वस्तुमें बीस-बीस प्राभृत होते हैं अतः वस्तुओंकी संख्या एक सौ पंचानबेमें वीससे गुणा करनेपर प्राभृतकोंकी संख्या उनतालीस सौ होती है ॥३४७॥

अब पूर्वोक्त श्रुतज्ञानके बीस भेदोंका उपसंहार दो गाथाओंसे करते है—

अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोग, प्राभृतक-प्राभृतक, प्राभृतक वस्तु, पूर्व ये नौ तथा इन्हीं नौके क्रमसे एक-एक अक्षरसे बढ़े नौ समास, इस प्रकार अठारह भेद अक्षरात्मक द्रव्यश्रुतके होते है। उस द्रव्यश्रुतके सुननेसे उत्पन्न हुआ श्रुतज्ञान ही अनक्षरात्मक पर्याय और पर्याय समास ज्ञानोंको मिलानेपर बीस प्रकारका श्रुतज्ञान होता है। ग्रन्थकी विवक्षा होनेपर आचाराग आदि बारह भेदरूप और उत्पाद पूर्व आदि चौदह भेदरूप द्रव्यश्रुत है और उसके सुननेसे उत्पन्न ज्ञानस्वरूप भावश्रुत है। 'च' शब्दसे अंगबाह्य, सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक भेदरूप द्रव्यश्रुत और भावश्रुतका समुच्चय किया जाता है। पुद्गल द्रव्य

स्वरूपमप्प भावश्रुतमुं च शब्ददिनंगबाह्यमप्प सामायिकादिचतुर्द्दशप्रकीर्णकभेदद्रव्यभावात्मकश्रुतं समुच्चयं माडल्पट्टुदु। पुद्गलद्रव्यरूपं वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतमक्कुं। तच्छ्रवणसमुत्पन्न श्रुतज्ञानपर्य्यायरूपं भावश्रुतमक्कुमेंदितिदाचार्य्याभिप्रायं।

पर्य्यायादिशब्दंगळ्गे निरुक्ति तोरल्पडुगुमदेंतेंदोडे परीयंते व्याप्यंते सर्व्वे जीवा अनेनेति पर्य्यायः। सर्व्वजघन्यज्ञानमितप्प ज्ञानरहितजीवक्कभावमेयक्कुमप्पुदरिंदं। केवलज्ञानवंतरप्प जीवंगळोळमा ज्ञानमुमक्कुमदेंतेंदोडे महासंख्येयप्प कोटयादियोळु एकाद्यल्पसंख्येयुमल्लियंतंते ज्ञातव्यमक्कुं।

अक्षमिंद्रियं तस्मै अक्षाय श्रोत्रेंद्रियाय राति ददाति स्वमर्पयतीत्यक्षरम्। पद्यते गच्छति जानात्यर्थमात्माऽनेनेति पदम्। सम् संक्षेपेणैकदेशेन हन्यते गम्यते ज्ञायते एका गतिरनेनेति संघातः। प्रतिपद्यंते सामस्त्येन ज्ञायंते चतस्रो गतयोऽनयेति प्रतिपत्तिः। संज्ञायां कप्रत्ययविधानात्प्रतिपत्तिकः। अनु गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु युज्यंते संबंध्यते जीवा अस्मिन्ननेनेति वा अनुयोगः।

प्रकर्षेण नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्द्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानसत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारात्थ्यैंराभृतं परिपूर्णं प्राभृतं वस्तुनोधिकारः प्राभृतमिति संज्ञाऽस्यास्तीति प्राभृतकं प्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकं। वसंति पूर्व्वमहार्ण-

---

स्वरूपं भावश्रुतम्। चशब्दात् अङ्गबाह्यसामायिकादिचतुर्दशप्रकीर्णकभेदद्रव्यभावात्मकश्रुत पुद्गलद्रव्यरूप वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं, तच्छ्रवणसमुत्पन्नश्रुतज्ञानपर्यायरूपं भावश्रुतं च समुच्चीयते इति आचार्यस्य अभिप्राय। पर्यायादिशब्दाना निरुक्ति. प्रदर्श्यते। तद्यथा—परीयन्ते व्याप्यन्ते सर्वे जीवा अनेनेति पर्यायः-सर्वजघन्यज्ञानं, ईदृशज्ञानरहितस्य जीवस्याभावात्। केवलज्ञानवत्स्वपि तत्संभवात् महासख्याया कोट्यादौ एकाद्यल्पसंख्यावत्। अक्षाय—श्रोत्रेन्द्रियाय राति ददाति स्वमर्पयतीत्यक्षरम्। पद्यते गच्छति जानात्यर्थमात्मा अनेनेति पदम्। सं—संक्षेपेण एकदेशेन हन्यते गम्यते ज्ञायते एका गतिः अनेनेति संघातः। प्रतिपद्यन्ते सामस्त्येन ज्ञायन्ते चतस्रो गतय. अनयेति प्रतिपत्तिः, संज्ञाया कप्रत्ययविधानात् प्रतिपत्तिकः। अनु गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु युज्यन्ते संवध्यन्ते जीवा अस्मिन्ननेनेति चानुयोग। प्रकर्षेण—नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्देश-स्वामित्वसाधनाधिकारणस्थितिविधान-सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारार्थैरा-

---

रूप वर्णपद वाक्यात्मक द्रव्यश्रुत होता है और उसके सुननेसे उत्पन्न हुए ज्ञानरूप भावश्रुत है यह आचार्यका अभिप्राय है। अब पर्याय आदि शब्दोंकी निरुक्ति कहते हैं—इसके द्वारा सब जीव 'परीयन्ते' व्याप्त किये जाते है वह पर्याय अर्थात् सर्वजघन्य ज्ञान है। इस प्रकारके ज्ञानसे रहित कोई जीव नहीं है, केवलज्ञानियोंमें भी वह रहता है। जैसे कोटि आदि महासंख्यामें एक आदि अल्प संख्या गर्भित रहती है। 'अक्षाय' अर्थात् श्रोत्रेन्द्रियके लिए 'राति' अपनेको देता है वह अक्षर है। जिसके द्वारा आत्मा अर्थको 'पद्यते' जानता है वह पद है। जिसके द्वारा एक गति 'सं' संक्षेप रूपसे एकदेशसे 'हन्यते' जानी जाती है वह संघात है। जिसके द्वारा चारों गतियाँ 'प्रतिपद्यन्ते' पूर्ण रूपसे जानी जाती है वह प्रतिपत्ति है। संज्ञामें 'क' प्रत्यय करनेसे प्रतिपत्तिक होता है। जिसमें या जिसके द्वारा जीव 'अनु' गुणस्थानके अनुसार गति आदि मार्गणाओंमें 'युज्यन्ते' युक्त किये जाते है वह अनुयोग है। 'प्रकर्षेण' नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान, सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व आदि विशेषोंसे वस्तु अधिकार

वस्यार्थ्या एकदेशेन संत्यस्मिन्निति वस्तुपूर्व्वाधिकारः। पूरयति श्रुतार्थान् सबिभर्त्तीति पूर्व्वं। सं संगृह्य पर्य्यायादीनि पूर्व्वपर्य्यंतानि स्वीकृत्य अस्यंते क्षिप्यंते विकल्प्यंते इति समासाः। पर्य्यायज्ञानदत्तणिनुत्तरविकल्पंगळु पर्य्यायसमासंगळु। अक्षरज्ञानदत्तणिनुत्तरविकल्पंगळक्षरसमासंगळु इंतु मुंदेल्लेडेयोळं पदसमासादिगळु योज्यंगळप्पवु।

इल्लि पूर्व्वंगळु १४ वस्तुगळु १९५ प्राभृतकंगळु ३९०० द्विकवारप्राभृतकंगळु ९३६०० अनुयोगंगळु ३७४४०० प्रतिपत्तिकसंघातपदंगळु संख्यातसहस्रगुणितक्रमंगळु। एकपदाक्षरंगळु १६३४८३०७८८८ समस्ताक्षरंगळु रूपोनैकट्टप्रमितंगळु १८४४६७४४०७३७०९५'११६१५ ईयक्षरंगळनेकपदाक्षरंगळिं प्रमाणिसुत्तं विरलु द्वादशांगपदप्रमाणमक्कुमेंदु लब्धमं पेळ्दपं :—

बारुत्तरसयकोडी तेसीदी तह य होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा पंचेव पदाणि अंगाणं ॥३५०॥

द्वादशोत्तरं शतं कोट्यस्त्र्यशीतिस्तथा च भवंति लक्षाणामष्टपंचाशत् सहस्राणि पंचैव पदान्यंगानां॥

भूतं परिपूर्ण प्राभृत वस्तुनोऽधिकार, प्राभृतमिति सज्ञा अस्यास्तीति प्राभृतकं, प्राभृतकस्याधिकार प्राभृतक-प्राभृतकम्। वसन्ति पूर्वमहार्णवस्य अर्था एकदेशेन सन्त्यस्मिन्निति वस्तु। पूर्वाधिकार पूरयति श्रुतार्थान् सविभर्त्तीति पूर्वम्। स–सगृह्य पर्यायादीनि पूर्वपर्यन्तानि स्वीकृत्य अस्यन्ते क्षिप्यन्ते विकल्प्यन्ते इति समासा। पर्यायज्ञानादुत्तरविकल्पा पर्यायसमासा। अक्षरज्ञानादुत्तरविकल्पा अक्षरसमासा। एवमग्रेऽपि सर्वत्र पदसमासादयो योज्या। अत्र पूर्वाणि १४, वस्तूनि १९५, प्राभृतकानि ३९००, द्विकवारप्राभृतकानि ९३६००, अनुयोगा ३७४४००, प्रतिपत्तिकसंघातपदानि सख्यातसहस्रगुणितक्रमाणि एकपदाक्षराणि १६३४८३०७८८८, समस्ताक्षराणि रूपोनैकट्टप्रमितानि १८४४६७४४०७३७०९५५११६१५। एतेष्वक्षरेषु एकपदाक्षरै प्रमाणितेषु यल्लब्ध तद्द्वादशाङ्गपदप्रमाण शेषमङ्गबाह्याक्षराणि ॥३४८–३४९॥ तत्र प्रथम तत्पदप्रमाणमाह—

सम्बन्धी अर्थोंसे जो 'आभृत' परिपूर्ण है वह प्राभृत है। और प्राभृत संज्ञा होनेसे प्राभृतक है। प्राभृतकके अधिकारको प्राभृतक-प्राभृतक कहते हैं। जिसमें पूर्व नामक महासमुद्रके अर्थ 'वसन्ति' एक देशसे रहते है वह वस्तु है। यह पूर्वोंका अधिकार है। श्रुतके अर्थोंका 'पूरयति' पोषण करता है वह पूर्व है। सं अर्थात् पर्यायसे लेकर पूर्व पर्यन्त भेदोंको 'अस्यन्ते' अपनाता है वह समास है। पर्याय ज्ञानसे उत्तर भेद पर्याय समास है, अक्षर ज्ञानसे उत्तर भेद अक्षर समास हैं इसी प्रकार आगे भी पदसमास आदिकी योजना कर लेना। पूर्व चौदह है। वस्तु एक सौ पंचानवे है। प्राभृतक उनतालीस सौ है। प्राभृतक-प्राभृतक तिरानवे हजार छह सौ है। अनुयोग तीन लाख चौहत्तर हजार चार सौ है। प्रतिपत्तिक, संघात और पद उत्तरोत्तर क्रमसे संख्यात हजार गुणित है। एक पदके अक्षर सोलह सौ चौतीस कोटि, तेरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी है। समस्त अक्षर एक कम एकट्ठी प्रमाण १८४४६७४४०७३७०९५५०६१५ है। इन अक्षरोंमें एक पदके अक्षरोंसे भाग देनेपर जो लब्ध आया वह द्वादशांगके पदोंका प्रमाण है और शेष बचा वह अंगबाह्यके अक्षरोंका प्रमाण है ॥३४८–३४९॥

पहले द्वादशांगके पदोंकी संख्या कहते है—

द्वादशोत्तरशतप्रमितकोटिगळु त्रैशीतिलक्षंगळु मय्वत्तेंटु सासिरदय्दु द्वादशांगमध्यमस[illegible] पदप्रमाणमक्कुं ११२८३५८००५ ।

अनंतरमंगबाह्याक्षरसंख्येयं पेळ्दपनवु मेकपदाक्षरंगळिं देक्कट्टनं भागिसुत्तिरलु शेषाक्षरंगळवर प्रमाणमं पेळ्दपं :—

अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ।
पण्णत्तरिवण्णाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५१॥

अष्टकोट्येकलक्षमष्टसहस्रं चैकशतिकं च । पंचोत्तरसप्ततिवर्णाः प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥

एंटु कोटिगळुमेकलक्षमुमेंटुसहस्रगळु नूरेप्पत्तैदु ८०१०८१७५ मंगबाह्यांगळप्प सामायिकादिचतुर्द्दशभेदंगळोळु संभविसुव प्रकीर्णकाक्षरंगळ प्रमाणमक्कुं। तु शब्ददिंदं पूर्व्वसूत्रदोळु द्वादशांगपदसंख्ये पेळल्पट्टुदी सूत्रदोळंगबाह्याक्षरसंख्ये पेळल्पट्टुदेंबी विशेषमरियल्पडुगु ।

अनंतरमी यर्त्थनिर्णयार्त्थं गाथाद्वयमं पेळ्दपं :—

तेत्तीसवेंजणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारिय जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥३५२॥

त्रयस्त्रिंशद्व्यंजनानि सप्तविंशति स्वराः तथा भणिताः । चत्वारश्च योगवाहाः चतुःषष्टिमूलवर्णाः ॥

द्वादशोत्तरशतकोट्य त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टपञ्चाशत्सहस्राणि पञ्च च द्वादशाङ्गाना मध्यमसर्वपदप्रमाण भवति ११२, ८३, ५८, ००५ । [अङ्ग्यते मध्यमपदैर्लक्ष्यते इत्यङ्गम् । अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमूहरूपश्रुतस्कन्धस्य अङ्ग अवयव. एकदेश आचाराद्येकैकशास्त्रमित्यर्थ] ॥३५०॥ अथाङ्गबाह्याक्षरसख्या कथयति—

अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपञ्चसप्ततिपमाणा. प्रकीर्णकाना अङ्गबाह्याना सामायिकादीना च चतुर्दशाना वर्णा भवन्ति ८०१०८१७५ तुशब्द पूर्वसूत्रे द्वादशाङ्गपदसख्योक्ता, अस्मिन् सूत्रे च अङ्गबाह्याक्षरसंख्योक्तेति विशेष ज्ञायति ॥३५१॥ अथामुमेवार्थ गाथाद्वयेनाह—

द्वादशांगके सब मध्यम पदोंका प्रमाण एक सौ बारह कोटि, तेरासी लाख, अठावन हजार पाँच है। अङ्ग्यते अर्थात् मध्यम पदोंके द्वारा जो लक्षित होता है वह अंग है। अथवा आचार आदि बारह शास्त्रसमूहरूप श्रुतस्कन्धका जो अंग अर्थात् अवयव या एकदेश है। अर्थात् आचार आदि एक-एक शास्त्र अंग है ॥३५०॥

अब अंगबाह्यकी अक्षर संख्या कहते है—

प्रकीर्णक अर्थात् सामायिक आदि चौदह अंगबाह्योंके अक्षर आठ कोटि, एक लाख आठ हजार एक सौ पिचहत्तर प्रमाण होते है। तु शब्द विशेषार्थक है वह ज्ञापित करता है कि पूर्व गाथासूत्रमें द्वादशांगके पदोंकी संख्या कही है। इस गाथा सूत्रमें अंगबाह्यके अक्षरोंकी संख्या कही है ॥३५१॥

इसी अर्थको दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. [ ] एतत्कोष्ठान्तर्गतपाठो नास्ति ब प्रतौ ।

ओ अहो व्यंजनानि अर्द्धमात्रंगळप्प व्यंजनंगळुत्रयस्त्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु ३३ स्वराः स्वरंगळेक द्वित्रिमात्रगळु सप्तविंशतिः सप्तविंशतिप्रमितंगळु २७ योगवाहाः योगवाहंगळु चत्वारश्च नाल्कु ४ अप्पुवु इंतु मूलवर्णगळुचतुःषष्टिप्रमितंगळप्पुवेंदु ओ अहो भव्या नीनरियें दितनादिनिधनपरमागम - दोळु प्रसिद्धंगळा प्रकारदिंदमे पेळल्पट्टुवु ।

व्यज्यते स्फुटीक्रियतेऽर्थो यैस्तानि व्यंजनानि । स्वरंत्यर्थं कथयतीति स्वराः । योगमन्याक्षरसंयोगं वहंतीति योगवाहाः । मूलानि संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणभूता वर्णा मूलवर्णाः एंदितु समासार्थबलदिंदमसंयुक्तमागिये चतुःषष्टिवर्णगळु ग्राह्यंगळप्पुवु । ई वर्णंगळ्के संस्कृतदोळु दीर्घाभावमादोडमनुकरणदोळं देशांतर भाषेगळोळं सद्भावमक्कुं । ए ऐ ओ औ एंबी नाल्कक्कं संस्कृतदोळु ह्रस्वाभावमादोडं प्राकृतदोळं देशांतरभाषेगळोळं सद्भावमक्कु ।

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ।
रूऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥३५२॥

चतुःषष्टिपदं विरलयित्वा द्विकं च दत्वा संगुणं कृत्वा । रूपोनं च कृते पुनः श्रुतज्ञानस्याक्षराणि भवंति ॥

ओ–अहो भव्य ! व्यञ्जनानि अर्धमात्राणि क् ख् ग् घ् ङ् । च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह । इत्येतानि त्रयस्त्रिंशत् ३३ । स्वरा एकद्वित्रिमात्रा । अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ इत्येते नव, प्रत्येक ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदैस्त्रिभिर्गुणिता अ आ आ ३, इ ई ई ३, उ ऊ ऊ ३, ऋ ॠ ॠ ३, ऌ ॡ ॡ ३, ए १ ए २ ए ३, ऐ १ ऐ २ ऐ ३, ओ १ ओ २ ओ ३, औ १ औ २ औ ३ इत्येते सप्तविंशति २७ । योगवाहा अ अ ँक ँप इत्येते चत्वार ४, एवं मिलित्वा मूलवर्णाश्चतु षष्टि ६४ । यथानादिनिधने परमागमे प्रसिद्धास्तथैवात्र भणिता सजानीहि । व्यज्यते स्फुटीक्रियते अर्थो यैस्तानि व्यञ्जनानि । स्वरन्ति–अर्थ कथयन्तीति स्वरा । योग–अन्याक्षरसयोग वहन्तीति योगवाहा । मूलानि सयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणानि वर्णा मूलवर्णा इति समासार्थबलेन असयुक्ता एव चतु षष्टिरिति लभ्यन्ते । ऌवर्ण सस्कृते दीर्घो नास्ति तथापि अनुकरणे देशान्तरभाषाया चास्ति । ए ऐ ओ औ इति चत्वारोऽपि सस्कृते ह्रस्वा न सन्ति तथापि प्राकृते देशान्तरभाषाया च सन्ति ॥३५२॥

'ओ' अर्थात् हे भव्य ! अर्धमात्रा जिनमे होती है ऐसे सब व्यंजन तैतीस है—

क् ख् ग् घ् ङ् । च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह् । एक-दो-तीन मात्रावाले स्वर सत्ताईस होते है—अ, इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ये नौ । प्रत्येकको ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीनसे गुणा करनेपर सत्ताईस होते है । अ आ आ ३ । इ ई ई ३ । उ ऊ ऊ ३ । ऋ ॠ ॠ ३ । ऌ ॡ ॡ ३ । ए १ ए २ ए ३ । ऐ १ ऐ २ ऐ ३ । ओ १ ओ २ ओ ३ । औ १ औ २ औ ३ । अं अः ँक ँप ये चार योगवाह । इस प्रकार सब मिलकर मूल अक्षर चौसठ है । जैसा अनादिनिधन परमागममे प्रसिद्ध है वैसा ही यहाँ कहे है ।

'व्यज्यते' जिनके द्वारा अर्थ प्रकट किया जाता है वे व्यंजन है । 'स्वरन्ति' जो अर्थको कहते है वे स्वर है । योग अर्थात् अन्य अक्षरोके सयोगको जो 'वहन्ति' वहन करते है वे योगवाह है । 'मूल' अर्थात् संयुक्त उत्तर वर्णोंकी उत्पत्तिके कारण वर्ण मूल वर्ण है । इस समासके अर्थके बलसे असयुक्त अक्षर ही चौसठ है यह ज्ञात होता है । ऌ वर्ण संस्कृत भाषामें दीर्घ नहीं है, तथापि देशान्तरकी भाषामें है । ए ऐ ओ औ ये चारो संस्कृतमें ह्रस्व नहीं है । तथापि प्राकृत और देशभाषामे हैं ॥३५२॥

मूलवर्णप्रमाणमप्प चतुःषष्ट्यंकस्थानरूपंगळं विरलिसि तिर्य्यक्पंक्तिरूपदिंदं स्थापिसि रूपं प्रति द्विकंगळनित्तु संगुणं कृत्वा परस्पर गुणनसं माडि तल्लब्धदोळु रूपोनं माडुत्तिरलु श्रुतज्ञानस्य द्वादशांगप्रकीर्णक श्रुतस्कंधद्रव्यश्रुतद अपुनरुक्ताक्षरंगळु तल्लब्धप्रमितंगळप्पुवें तेंदोडे वाक्यार्थप्रतीतिनिमित्तंगळप्पपुनरुक्ताक्षरंगळो संख्यानियमाभावमप्पुदरिंदं। एकद्विकादि चतुःषष्टिसंयोगपर्य्यंतमप्प संयोगाक्षरंगळु संकलितमागुत्तिरलु श्रुतस्कंधाक्षरप्रमाणोत्पत्तियक्कुमा संकलितधनमेनितेंदोडे पेळ्दपरु :—

एक्कट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता ।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥३५४॥

एकाष्टचतुःचतुःषट्सप्तकं च चतुःचतुःशून्यसप्तत्रिकसप्त। शून्यं नव पंच पंच च एकं षट्कैककश्च पंचकं च ॥

एंदितेकांकसादियागि पंचांकावसानमादविंशतिस्थानात्मकद्विरूपवर्गधारारूपोनषष्ठवर्गप्रमाणाक्षरंगळप्पुवु—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ।

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	००००६४
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोग
	२	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसंयोग
		४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोग
			८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोग
				१६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोग
					३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोग
						६४	१	८	३६	अष्टसंयोग
							१२८	१	९	नवसंयोग
								२५६	१	दशसंयोग
									५१२	

मूलवर्णप्रमाण चतु.षष्टिपदं एकैकरूपेण विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा परस्पर सङ्गुण्य तल्लब्धे

मूल अक्षर प्रमाण चौसठ पदोंको एक-एक रूपसे विरलन करके एक-एक रूपपर दो-

इवेकद्वित्रिसंयोगादिचतुःषष्ठिसंयोगपर्य्यंतमप्प सयोगाक्षरसंजनिताक्षरंगळ संख्येयप्पुदरिं ना एकद्वित्रिसंयोगाक्षरगळिनुत्पत्तिक्रम तोरल्पडुगुमदे तेंदोडे व्यंजनगळु त्रयस्त्रिंशत्प्रमितगळु। स्वरंगळु सप्तविंशतिप्रमितंगळु। योगवहगळु चतुःप्रमितंगळंतु मूलवर्णंगळु चतुःषष्टिप्रमितंगळिवं क्रमदिंदमरुवत्तनाल्कंडयोळु बेरे बेरे तिर्य्यग्रूपदिंदं स्थापिसि प्रत्येक द्विसयोगादिगळं साध्यपुदेंते दोडे कवर्ण-
५ दोळु प्रत्येकभगमों देयक्कुं १। द्विसंयोगमुळ्ळ खवर्णदोळु प्रत्येकभंगदु १। द्विसंयोगभंग १। अंतु २। गवर्णदोळु प्र १। द्वि २ त्रि ३। अंतु ४। घवर्णदोळु प्र १। द्वि २ त्रि ३ च १ अंतु ८। ङ वर्णदोळु प्र १ द्वि ४ त्रि ६ च ४ पं १ अंतु १६। च वर्णदोळु प्र १ द्वि ५ त्रि १० च १० पं ५ ष १ अंतु ३२। छवर्णदोळु प्र १ द्वि ६ त्रि १५ च २० प १५ ष ६ सप्त १ अंतु ६४। जवर्णदोळु प्र १ द्वि ७ त्रि २१ च ३५ पं ३५ ष २१ सप्त ७ अष्ट १ अंतु १२८। झवर्णदोळु प्र १ द्वि ८ त्रि २८

---

१० रूपोने कृते सति श्रुतज्ञानस्य द्वादशाङ्गप्रकीर्णकरूपश्रुतस्कन्धस्य द्रव्यश्रुतस्य अपुनरुक्ताक्षराणि भवन्ति। वाक्यार्थप्रतीत्यर्थं गृहीताना पुनरुक्ताक्षराणा सख्यानियमाभावात् ॥३५३॥ तदपुनरुक्ताक्षरप्रमाण कियदिति चेदाह—

एकाष्टचतुश्चतु पट्सप्तक चतुश्चतु शून्यसप्तत्रिकसप्तशून्य नवपञ्चपञ्च एक षट्कैकश्च पञ्चक च इत्येकाङ्कादिपञ्चाङ्कावसानविंशतिस्थानात्मकद्विरूपवर्गधारोत्पन्नरूपोनषष्ठवर्गप्रमाणाक्षराणि भवन्ति—

१५ १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। एतानि अक्षराणि एकद्वित्रिसयोगादीनि चतुष्पष्टिसंयोगपर्यन्तानि सन्ति तेषामुत्पत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—उक्तमूलवर्णचतु षष्टि तिर्यक्पङ्क्त्या लिखित्वा तत्र कवर्णे प्रत्येकभङ्गे एक १। द्विसंयोगो नास्ति। खवर्णे प्रत्येकभङ्ग १ द्विसयोगभङ्ग १ एवं २। गवर्णे प्र १ द्वि २ त्रि १ एवं ४। घवर्णे प्र १ द्वि ३ त्रि ३ च १ एव ८। ङवर्णे प्र १ द्वि ४ त्रि ६ च ४ प १ एव १६। चवर्णे प्र १ द्वि ५ त्रि १० च १० प ५ प १ एव ३२। छवर्णे प्र १ द्वि ६ त्रि १५ च २० प १५ ष ६ सप्त १ एव ६४।
२० जवर्णे प्र १ द्वि ७ त्रि २१ च ३५ पं ३५ ष २१ सप्त ७ अष्ट १ एव १२८। झवर्णे प्र १ द्वि ८ त्रि २८

दोका अंक देकर परस्परमे गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें एक कम करनेपर द्वादशांग और प्रकीर्णक श्रुतस्कन्ध रूप द्रव्य श्रुतके अपुनरुक्त अक्षर होते है। वाक्यके अर्थका ज्ञान करानेके लिए गृहीत पुनरुक्त अक्षरोकी संख्याका कोई नियम नहीं है ॥३५३॥

एक आठ चार चार छह सात चार चार शून्य सात तीन सात शून्य नौ पाँच पाँच
२५ एक छह एक पाँच १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इस प्रकार एक अंकसे लेकर पाँच अंक पर्यन्त बीस स्थानरूप अपुनरुक्त अक्षर होते है। सो द्विरूप वर्गधारामें उत्पन्न एक हीन छठे वर्ग प्रमाण हैं। ये अक्षर एक संयोगी दो संयोगी तीन संयोगी आदि चौसठ सयोग पर्यन्त होते है। उनकी उत्पत्तिका क्रम दिखलाते हैं—

उक्त मूल वर्ण चौसठ एक पंक्तिमें लिखे। उनमें-से कवर्णमें प्रत्येक भंग एक है।
३० द्विसयोगी आदि नहीं है। खवर्णमें प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी भंग एक है। इस प्रकार दो भंग है। गवर्णमे प्रत्येक एक, दो संयोगी दो, तीन सयोगी एक, इस तरह चार भंग है। घवर्णमें प्रत्येक एक, दो सयोगी तीन, तीन संयोगी तीन, चार सयोगी एक, इस तरह आठ भंग है। ङवर्णमे प्रत्येक एक, दो संयोगी चार, तीन सयोगी छह, चार सयोगी चार, पाँच सयोगी एक, इस तरह सोलह भंग है। चवर्णमें प्रत्येक एक, दो सयोगी पाँच, त्रिसंयोगी दस, चार
३५ सयोगी दस, पाँच सयोगी पाँच, छह संयोगी एक, इस तरह बत्तीस भंग है। छवर्णमें प्रत्येक एक, दो सयोगी छह, तीन संयोगी पन्द्रह, चार संयोगी बीस, पाँच संयोगी पन्द्रह, छह संयोगी छह, सात संयोगी एक, इस तरह चौसठ भंग है। जवर्णमें प्रत्येक एक दो, संयोगी सात, तीन

च ५६ पं ७० । ष ५६ । सप्त २८ । अष्ट ८ नव १ अंतु २५६ । अवर्णदोळु प्र १ द्वि ९ त्रि ३६ च ८४ पं १२६ । ष १२६ । स ८४ । अष्ट ३६ । नव ९ । दश १ अंतु ५१२ । इंती क्रमदिंदं अरुवत्त-नाल्कुं स्थानंगळोळं नडसुवुदंतु नडसुत्तिरलु प्रत्येकादिभंगंगळु पूर्व्वपूर्व्वमं नोडलूत्तरोत्तर भंगयुत्तिगळु द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदं नडेववा संदृष्टिपदगळंनिरिसिदोडिंतिर्प्पुवी चतुःषष्टिपदंगळोळु ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह् । अ आ आ । इ ई ई । ऊ ऊ ऊ इत्यादि सप्तविंशतिस्वराः । अं अः ॅ पं इवरोळु विवक्षिताक्षरस्थानदोळु प्रत्येकद्विसंयोगादि भंगंगळं समस्त-पदंगळोळु संभविसुव संयोगंगळ संख्याप्रमाणमुमं चरमस्थानपर्य्यंतं तरल्समर्त्थमप्प करणसूत्रमं श्रीमदभयचंद्रसूरिसैद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादप्रसादंदिंदं केशवण्णंगळ्पेळ्दपरदें तें दोडे :—

पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं ।
तिसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकळिदं ॥

प्रत्येकभग एकः विवक्षितस्थानदोळु प्रत्येकभंगमों देयक्कुं । १ । द्विसंयोगो विरूपपदमात्रः विगतं रूप यस्मात् तच्च तत्पदं च विरूपपदं । तदेव मात्रं प्रमाणं यस्यासौ विरूपपदमात्रः । रूपोनपदप्रमितमें बुदर्त्थं । तिसंजोगादिपमा त्रिसंयोगादिप्रमा त्रिसंयोगचतुःसंयोगपंचसंयोगादि-विवक्षितपदसंभवसंयोगंगळ प्रमाणं यथाक्रमं क्रमसमनतिक्रमिसदे रूवहियवारहीणपदसंकळिदं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं भवति रूपाधिकैकद्वित्रिवारादिसंकलनसंख्याविहीनविवक्षितपदंगळ एकद्वित्रिवारादिसकलितधनमक्कुं । इल्लि विवक्षितमप्प पत्तनेय अवर्णदोळु प्रत्येकभंग एकः प्रत्येकभंगमोंदु १ । द्विसंयोगो विरूपपदमात्रः द्विसंयोगसंख्ये रूपोनपदमात्रमक्कुं । ९ । त्रिसंयोगादि-

---

च ५६ प ७० ष ५६ सप्त २८ अष्ट ८ नव १ एवं २५६ । अवर्णे प्र १ द्वि ९ त्रि ३६ च ८४ प १२६ प १२६ सप्त ८४ अष्ट ३६ नव ९ दश १ एव ५१२ । अनेन क्रमेण चतुःषष्टिस्थानेषु गतेषु प्रत्येकादिभङ्गाः पूर्वपूर्वेभ्य उत्तरोत्तरे द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति । ३५४ । तेषां संख्यासाधने करणसूत्र श्रीमदभयचन्द्रसूरिसैद्धान्त-चक्रवर्तिश्रीपादप्रसादेन केशववर्णिन प्राहु—

पत्तेयभङ्गमेग वेसजोगं विरूवपदमेत्त । तियसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं ॥
प्रत्येकभङ्गमेक द्विसंयोगं रूपोनपदमात्रं । त्रिसंयोगादिप्रमाण रूपाधिकवारहीनपदसकलितं ॥

विवक्षितस्थानेपु सर्वत्र प्रत्येकभङ्ग. एकैक. । द्विसंयोगभङ्गो रूपोनपदमात्र । त्रिसंयोगादीना प्रमाण तु यथाक्रम रूपाधिकवारहीनपदसंकलितम् । एकवारादिसकलितं तद्वारसख्यया एकरूपाधिकया हीनस्य

संयोगी इक्कीस, चार संयोगी पैंतीस, पाँच संयोगी पैंतीस, छह संयोगी इक्कीस, सात संयोगी सात, आठ संयोगी एक, इस तरह एक सौ अठाईस भंग हैं। अवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी आठ, तीन संयोगी अठाईस, चार संयोगी छप्पन, पाँच संयोगी सत्तर, छह संयोगी छप्पन, सात संयोगी अठाईस, आठ संयोगी आठ, नौ संयोगी एक, इस तरह दो सौ छप्पन भंग होते है। अवर्णमें प्रत्येक एक, दो संयोगी नौ, तीन संयोगी छत्तीस, चार संयोगी चौरासी, पाँच संयोगी एक सौ छब्बीस, छह संयोगी एक सौ छब्बीस, सात संयोगी चौरासी, आठ संयोगी छत्तीस, नौ संयोगी नौ, दस सयोगी एक, इस तरह पाँच सौ बारह भंग है। इस क्रमसे चौंसठ स्थानोंमें प्रत्येक आदि भंग पूर्व-पूर्वसे उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने होते हैं। उनकी संख्या लानेके लिए करणसूत्र श्रीमत् अभयचन्द्र सूरि सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणोंके प्रसादसे केशववर्णी कहते है। जिसका आशय इस प्रकार है—विवक्षित स्थानोंमें सर्वत्र प्रत्येक भंग एक-एक होता है। द्विसंयोगी भंग एक कम गच्छ प्रमाण होते है। तीन संयोगी

प्रमा त्रिसंयोगचतुःसंयोगपंचसंयोगादिस्वसभवसंयोगंगळ प्रमाणं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं भवति। रूपाधिकैकद्वित्रिवारादिस्वसंभवसंकलनसंख्या १ १ १ १ १ १ १ १ विहीनविवक्षित-
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

पदं :—१०।–२।१०।–३।१०।–४।१०।–५।१०।–६।१०।–७।१०।–८।१०।–९। ई पदंगळ तत्तद्वारसंकलितं यावत्तावद्भवति। त्रियोगंगळु रूपाधिकैकवारसंकलनसंख्याहीनपद-
५ देकवारसंकलितमक्कुं १०–२।१०१ अपवर्त्तितमिदु। ३६। चतुःसंयोगंगळु त्रिरूपोनपदद्विकवार-
२ १

संकलितमक्कु ७।८।९ अपवर्त्तितमिदु। ८४। पंचसंयोगंगळु चतूरूपोनपदत्रिवारसंकलितमक्कुं
३।२।१

६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु। १२६। षट्संयोगंगळु पंचरूपोनपदचतुर्वारसंकलितमक्कुं
४।३।२।१

५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु–१२६। सप्तसंयोगंगळु षड्रूपोनपदपंचवारसंकलितमक्कुं
५।४।३।२।१

विवक्षितपदस्य यावत्तावद्भवति। यथा दशमे अवर्णे त्रिसंयोगा द्विरूपोनपदस्य एकवारसकलनमात्रा —
१० १०—२। १०—१ अपवर्तिता ३६ चतु सयोगा त्रिरूपोनपदस्य द्विकवारसकलनमात्रा —
२ १ १

७।८।९ अपवर्तिता ८४। पञ्चसयोगा चतूरूपोनपदस्य त्रिकवारसंकलनमात्रा ६।७।८।९
३।२।१ ४।३।२।१

अपवर्तिता १२६। षट् संयोगा पञ्च रूपोनपदस्य चतुर्वारसकलनमात्रा ५।६।७।८।९ अपवर्तिता
५।४।३।२।१

आदिका प्रमाण यथाक्रम एक अधिक बार हीन गच्छका संकलन धन मात्र है। जितनी बार संकलन हो उतने बारोंकी सख्यामें एक अधिक करके और उसे विवक्षित गच्छमें घटानेपर
१५ जो शेष प्रमाण रहे उतनेका संकलन करना चाहिए। जैसे दसवे अवर्णमें त्रिसंयोगी भग लानेके लिए एक बार संकलनका प्रमाण एक होनेसे उसमें एक अधिक करनेपर दो हुए। इस दोको गच्छ दसमें-से घटानेपर शेष आठ रहे। इस आठका एक बार संकलन धन मात्र त्रिसयोगी भंग होते है। सकलन धन लानेके लिए कहे गये करणसूत्रके अनुसार विवक्षित दसवे अवर्णमें प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी एक कम गच्छ प्रमाण नौ, त्रिसंयोगी भंग दो
२० हीन गच्छ प्रमाण आठका एक बार संकलन धन मात्र हैं। सो संकलन धन लानेके सूत्रके अनुसार आठ और नौको दो और एकसे भाग देकर अपवर्तन करनेपर छत्तीस होते है। अर्थात् आठ और नौको परस्परमें गुणा करनेपर बहत्तर हुए। और दो-एकको परस्परमे गुणा करनेपर दो हुए। दोसे बहत्तरमें भाग देनेपर छत्तीस रहते है। इसी तरह चतुःसंयोगी भंग तीन हीन गच्छका दो बार संकलन धन मात्र है। सो सात, आठ, नौको तीन, दो, एकका
२५ भाग देनेपर ७।८।९। अपवर्तन करनेपर चौरासी होते हैं। पंचसयोगी भंग चार हीन
३।२।१।

गच्छका तीन बार संकलन धन मात्र है। सो छह, सात, आठ, नौ को चार, तीन, दो, एकसे भाग देकर ६।७।८।९। अपवर्तन करनेपर एक सौ छब्बीस होते है। षट्संयोगी भंग
४।३।२।१।

४।५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदुवु ८४। अष्टसंयोगंगळु। सप्तरूपोनपदषड्वारसंकलितमक्कु ६।५।४।३।२।१

३।४।५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु ३६। नवसंयोगंगळु अष्टरूपोनपदसप्तवारसंकलितमक्कुं ७।६।५।४।३।२।१

२।३।४।५।६।७।८।९ अपवर्त्तितमिदु ९। दशसंयोगंगळु नवरूपोनपदाष्टवारसंकलित- ८।७।६।५।४।३।२।१

मक्कुमादोडमल्लि परमार्थदिंदं संकलितमिल्लिल्लियो दे रूपमक्कु-। मिवेल्लं कूडि ५१२। इंती प्रकारदिवेल्लेडेयोळु तंदु कों बुदु।

चरमस्थानदोळु तोर्प्पवे दंते दोडे चरमदोळं प्रत्येकभंग एकः प्रत्येकभंगमों दु। द्विसंयोगो द्विरूपपदमात्रः। द्विसंयोगंगळवसंख्ये विरूपपदमात्रमक्कुं। ६३। त्रिसंयोगादिक्रमाः त्रिसंयोगचतुः-संयोगपंचसंयोगादि स्वसंभवचतुःषष्टिसंयोगावसानमाद संयोगंगळ प्रमाणं यथाक्रमं क्रममनति-क्रमिसदे रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं रूपाधिकैकद्वित्रिवारादि-स्वसंभवद्वयुत्तरषष्टिपर्य्यवसानं-

---

१२६। सप्तसंयोगाः षड्रूपोनपदस्य पञ्चवारसकलनमात्रा[२] ४।५।६।७।८।९ अपवर्तिता ८४। ६।५।४।३।२।१

अष्टसयोगा· सप्तरूपोनपदस्य षड्वारसंकलनमात्रा. ३।४।५।६।७।८।९ अपवर्तिता ३६। ७।६।५।४।३।२।१

नवसंयोगा. अष्टरूपोनपदस्य सप्तवारसकलनमात्रा २।३।४।५।६।७।८।९ अपवर्तिता. ९। ८।७।६।५।४।३।२।१।

दशसंयोगाः नवरूपोनपदस्य अष्टवारसंकलनमात्रा। अत्र परमार्थत. संकलनमेव नास्ति इत्येक.। एते सर्वे एकप्रत्येकभङ्गनवद्विसयोगै द्वादशोत्तरपञ्चशतभङ्गा भवन्ति ५१२। एवं सर्वपदेष्वानयेत्। चरमस्थाने प्रत्येकभंगः एक. १। द्विसंयोगो विरुपपदमात्राः। दश त्रिसंयोगा द्विरूपोनपदस्यैकवारसंकलनमात्राः

पाँच हीन गच्छका चार बार संकलन धन मात्र है। सो पाँच, छह, सात, आठ, नौको पाँच, चार, तीन, दो, एकसे भाग देकर ५।६।७।८।९। अपवर्तन करनेपर एक सौ छब्बीस ५।४।३।२।१।

होते हैं। सात संयोगी भंग छह हीन गच्छका पाँच बार संकलन धन मात्र है। सो चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ में छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देकर ४।५।६।७।८।९ ६।५।४।३।२।१

अपवर्तन करनेपर चौरासी होते है। आठ संयोगी भंग सात हीन गच्छका छह बार संकलन धन मात्र है। सो तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ को सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देकर ३।४।५।६।७।८।९ अपवर्तन करनेपर छत्तीस होते है। ७।६।५।४।३।२।१।

नौ सयोगी भंग आठ हीन गच्छका सात बार सकलन धन मात्र है। सो दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौको आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर नौ होते है। दस संयोगी भंग नौ हीन गच्छका आठ बार संकलन धन मात्र है। सो यहाँ वास्तवमें संकलन नही है क्योंकि एकका सकलन एक ही होता है अतः एक ही भंग है। इस प्रकार सबको जोड़नेपर दसवें स्थानमें पाँच सौ बारह भंग होते है इसी प्रकार सब

---

१. म °सानवार संकलनसंख्या°। २. इतोऽग्रे मुद्रितप्रतौ सर्वं नास्ति।

संकलनवारसंख्याहीनपदंगळ ६४–२ । –६४–३ । –६४–४ । ६४–५ । ०००० । ६–४–६३ तत्तद्वार-
संकलितं यावत्तावद्भवति एंदितु त्रिसयोगंगळ रूपाधिकैकवारसंकलनसंख्याहीनपदद एकवार-
संकलितमक्कुं ६४–२ । ६ ४ । १ अपवर्त्तितमिदु १९५३ चतुःसंयोगंगळु त्रिरूपोनपदद्विकवार-
२ १
संकलितमक्कुं ६ १ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु ३९७११ पचसंयोगंगळु चतूरूपोनपदत्रिवारसंकलित-
३ २ १
५ मक्कुं ६० । ६१ । ६२ अपवर्त्तितमिदु ५९५६६५ षट्संयोगंगळु पंचरूपोनपदचतुर्व्वारसंकलित-
४ । ३ । २
मक्कुं ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु ७०२८८४७ सप्तसंयोगंगळु षड्रूपोनपदपंच-
५ ४ ३ २ १
वारसंकलितमक्कु ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्त्तितमिदु गुणितमिद्दु ६७९४५५२१
६ ५ ४ ३ २ १
अष्टसंयोगंगळु सप्तरूपोनपद षड्वारसंकलितमक्कुं ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३
७ ६ ५ ४ ३ २ १
अपवर्त्तितगुणितमिदु ५५३२७०६७१ नवसंयोगंगळु अष्टरूपोनपदसप्तवारसंकलितमक्कु अपवर्त्तिते-

---

१० ६४—२ । ६४—१ अपवर्तितगुणिता १९५३ । चतु संयोगा त्रिरूपोनपदस्य द्विकवारसकलनमात्रा
२ । १
६१ । ६२ । ६३ । अपवर्तिता ५९५६६५ । षट्संयोगा. पञ्चरूपोनपदस्य चतुर्वारसकलनमात्रा
३ । २ । १ ।
५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ अपवर्तिता ७०२८८४७ । सप्तसंयोगा षड्रूपोनपदस्य पञ्चवारसंकलन-
५ । ४ । ३ । २ । १
मात्रा । अपवर्तिता ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६७९४५५२१ । अष्टसयोगा सप्तरूपोन-
६ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।
पदस्य षड्वारसकलनमात्रा । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । अपवर्तिता ५५३२७०६७१ ।
७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ।

---

१५ स्थानोंमे जानना । अन्तके चौसठवे स्थानमें प्रत्येक भंग एक, द्विसंयोगी भंग एक हीन गच्छ मात्र तिरसठ, त्रिसंयोगी भंग दो हीन गच्छका एक वार संकलन धन मात्र । सो बासठ और तिरसठको दो और एकका भाग देनेपर उन्नीस सौ तिरपन होते है । तथा चतुःसंयोगी भंग तीन हीन गच्छका दो वार संकलन धन मात्र । सो इकसठ, बासठ, तिरसठको तीन, दो, एकका भाग देनेपर उनतालीस हजार सात सौ ग्यारह भंग होते हैं । पंच संयोगी भंग चार
२० हीन गच्छका तीन वार संकलन धन मात्र । सो साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर पाँच लाख पंनचानवे हजार छह सौ पैंसठ होते हैं । छह संयोगी भंग पाँच हीन गच्छका चार वार संकलन धन मात्र । सो उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर सत्तर लाख अठाईस हजार आठ सौ सैंतालीस होते हैं । सात संयोगी भंग छह हीन गच्छका पाँच वार संकलन मात्र । सो
२५ अठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर छह करोड़ उन्न्यासी लाख पैंतालीस हजार पाँच सौ इक्कीस होते हैं । आठ संयोगी

---

१. म [५८०४५६०१] ।

नागतराशि ७।५७।२९।५९। ०।६१।३१। ० अपवर्त्तितगुणितमिदु ३८।७२८९४६९७
५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३
८। ७। ६। ५। ४। ३। २। १

दशसंयोगदोळु नवरूपोनपद अष्टवारसंकलितमक्कुं अप ५५। ७।१९।२९।५९। ०।६१।३१। ०
५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३
९ ८ ७ ६ ५ ४ ३ २ १

[1]इंतीप्रकारदिंदमक्षसंचारसंजनितैकादशसंयोगादिभंगंगळु यथासंभवंगळु नडदु द्विचरमत्रिषष्टि-

संयोगंगळु रूपाधिकैकषष्टिवारसंकलनसंख्याविहीनपद ६४-६१ एकषष्टिवारसंकलितमक्कुं
२३।४।०००।६०।६१।६२।६३ अपवर्त्तितमिदु ६३। चतुःषष्टिसंयोगमो देयक्कुं।१। ५
६२ ६२।६०।५५४।३। २। १
मध्य
० ० ० ०

ई चरमचतुःषष्टचक्षरस्थानदोळु प्रत्येकभंगमादियागि चतुःषष्टचक्षरं संयोगभंगावसानमादसमस्ता-[2]
क्षरविकल्पंगळ युति एक्कट्ठुन अर्द्धमक्कु-१८= मितेकाद्येकोत्तरवर्णवृद्धिक्रममिदं चतुःषष्टिवर्णावि-
२

नवसंयोगा. अष्टरूपोनपदस्य सप्तवारसंकलनमात्रा ५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।
८। ७। ६। ५। ४। ३। २। १।

अपवर्तिता. ३८७२८९४६९७। दशसंयोगा. नवरूपोनपदस्याष्टवारसंकलनमात्रा
५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३। अनेन द्रवण .....क्षसंचारसंजनितैकादशसंयो- १०
९। ८। ७। ६। ५। ४। ३। २। १।

गादिभङ्गा यथासभव नीत्वा द्विचरमत्रिषष्टिसंयोगा. द्वाषष्टिरूपोनपदस्यैकषष्टिवारसंकलनमात्राः
२। ३। ४।०००।६०।६१।६२।६३। अपवर्तिता ६३। चतु.षष्टिसयोगः एक एव भवति।
६२।६१।६०। मध्य ४। ३। २। १।

अत्र चतु.षष्टितमेऽक्षरस्थाने प्रत्येकादीना चतु षष्ठिसंयोगान्ताना सर्वेपामक्षराणा युतिरेकट्ठुस्यार्द्धं भवति।

भंग सात हीन गच्छका छह बार संकलन मात्र होते हैं सो सत्तावन, अट्ठावन, उनसठ, साठ, इकसठ, बासठ, तिरसठको सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर १५
पचपन करोड़ बत्तीस लाख सत्तर हजार छह सौ इकहत्तर होते है। नौ संयोगी भंग आठ हीन गच्छका सात बार संकलन मात्र। सो छप्पन, सत्तावन, अठावन, उनसठ, साठ, इक-सठ, बासठ, तिरसठको आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकंका भाग देनेपर तीन अरब सत्तासी करोड़ अट्ठाईस लाख चौरानबे हजार छह सौ सत्तानबे होते है। दस संयोगी भंग नौ हीन गच्छका आठ बार संकलन मात्र। सो पचपन, छप्पन, सत्तावन, अठावन, २०
उनसठ, साठ, इकसठ बासठ, तिरसठको नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकका भाग देनेपर होते हैं। इसी प्रकार ग्यारह संयोगी आदि भंग जानना।

तिरसठ संयोगी भंग बासठ हीन गच्छ दोका इकसठ बार संकलन धन मात्र सो दो, तीन आदि एक-एक बढते तिरसठ पर्यन्तको बासठ इकसठ आदि एक-एक घटते एक पर्यन्तका भाग देनेपर तिरसठ भंग होते है। चौसठ संयोगी भंग एक ही है। चौंसठवें २५

---

१. म अपवर्तितगुणितमिदु २१४५८८४५८३१५ इती प्रकार। २. म °वस्थान°।

सानमाद चतुःषष्टिस्थानविकल्पंगळोळक्षसंचारदिंदमु पत्तेयभंगमेगमित्यादिकरणसूत्रविधानदिंदं मेणुतरल्पट्ट प्रत्येकद्विसंयोगादिवर्णविकल्पगळ युतिप्रतिस्थानमुमेकवर्णस्थान मोदल्गोंडु चतुःषष्टिवर्णस्थानावसानमागि वोंदेरडु नाल्कें टु पदिनारु मूवत्तेरडु अरुवत्तनाल्कु नूरिप्पत्तें टिभूरय्वत्तारैनूरहन्नेरडी क्रमदिं द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि चतुश्चरमत्रिचरमद्विचरम चरमस्थानंगळोळु एक्कट्ठन षोडशांशमेक्कट्ठनष्टमांशमेक्कट्ठनचतुर्थांशमेक्कट्ठनर्द्धप्रमितार्द्धाक्षरविकल्पंगळप्पुवु संदृष्टि :—

१ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । १२८ । २५६ । ५१२ । ०००।५०।००१८ = १८। = १८। = १८। =
१६ ८ ४ २

इंतिर्दक्षरविकल्पसंख्येगळं चउसट्ठिपदविरळिय इत्यादिगुणसंकलनविधानदिंद मेणु अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणंतरभजियमें दितु संकलन धनमं तरुत्तिरलु द्वादशागप्रकीर्णकश्रुतस्कधसमस्ताक्षरगळ संख्ये रूपोनेकट्ठप्रमितमक्कुमें बुदु तात्पर्य्यं ।

---

१८ = । एवमेकाद्येकोत्तरक्रमेण चतु षष्ट्यन्तवर्णस्थानेष्वक्षसचारक्रमेण 'पत्तेयभगमेकामि'त्यादि-करणसूत्र-
२

विधानेन वा आनीताना प्रत्येकद्विसयोगादीना युति क्रमश एको द्वौ चत्वारोऽष्टौ षोडश द्वात्रिंशच्चतुःषष्टिरष्टाविंशत्यग्र शत षट्पञ्चाशदधिकद्विशत द्वादशोत्तरपञ्चशतभेद द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चतुश्चरमत्रिचरमद्विचरमचरमेषु एकट्ठस्य षोडशागाष्टाशचतुर्थाशार्द्धप्रमिता भवन्ति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । १२८ । २५६ । ५१२ । ००० । ०० । ००० १८ = । १८ = । १८ = । १८ = । एवं स्थिताक्षर-
१६ । ८ । ४ । २

सख्या 'चउसट्ठिपद विरलिय' इत्यादिना वा 'अन्तधण गुणगुणिय' इत्यादिना वा सकलिता सती द्वादशाङ्गप्रकीर्णकश्रुतस्कन्धसमस्ताक्षरसख्या रूपोनैकट्ठप्रमिता भवतीति तात्पर्यम् ॥३५४॥

स्थानमे प्रत्येक आदि चौसठ संयोगी पर्यन्त भंगोको जोड़नेपर एकट्ठीके आधे प्रमाण मात्र भंग होते हैं। इस प्रकार एक आदि एक-एक अधिक चौसठ पर्यन्त अक्षरोंके स्थानोंमें 'पत्तेयभंगमेगं' इत्यादि करण सूत्रके अनुसार भंग होते है। अथवा गुणस्थानोंके वर्णनमें प्रमादोंका व्याख्यान करते हुए जो अक्षसंचार विधान कहा था उसके अनुसार भी इसी प्रकार भंग होते है। वे भंग क्रमसे एक, दो, चार, आठ, सोलह, बत्तीस, चौसठ, एक सौ अठाईस, दो सौ छप्पन, पाँच सौ बारह, एक हजार चौबीस, दो हजार अड़तालीस, चार हजार छानवे, आठ हजार एक सौ बानवे, सोलह हजार तीन सौ चौरासी, बत्तीस हजार सात सौ अड़सठ, पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस, एक लाख बत्तीस हजार बहत्तर, दो लाख बासठ हजार एक सौ चौआलीस, पाँच लाख चौबीस हजार दो सौ अठासी, दस लाख अड़तालीस हजार पाँच सौ छियत्तर, बीस लाख सत्तानवे हजार एक सौ बावन, इकतालीस लाख चौरानवे हजार तीन सौ दो, तिरासी लाख अठासी हजार छह सौ चार, एक करोड़ सड़सठ लाख तिहत्तर हजार दो सौ आठ आदि दूने-दूने होते है। अन्तिम स्थानसे चौथे, तीसरे, दूसरे तथा अन्तिम स्थानमें अर्थात् ६१, ६२, ६३ और ६४वे स्थानमें एकट्ठीके सोलहवे भाग, आठवे भाग, चतुर्थ भाग और आधे भाग प्रमाण भंग होते हैं। इस प्रकार स्थित अक्षरोकी संख्या 'चउसट्ठि पदं विरलिय' इत्यादिके द्वारा या 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादिके द्वारा सकलित की जानेपर द्वादशांग और अगवाह्य श्रुतस्कन्धोंके समस्त अक्षरोंकी सख्या एक हीन एकट्ठी प्रमाण होती है ॥३५४॥

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंगुपुव्वगपदाणि ।
सेसक्खरसंखाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥३५५॥

मध्यमपदाक्षरापहृतवर्णास्तानि अंगपूर्व्वगपदानि । शेषाक्षरसंख्याः ओ अहो भव्याः प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥

परमागमप्रसिद्धमध्यमपदषोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटिव्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीति - ५
प्रमिताक्षरसंख्येयिंदमा सकलश्रुतस्कंधाक्षरसंख्येयं भागिसुत्तिरलु तल्लब्धप्रमितंगळु द्वादशांग-पूर्व्वगतमध्यमपदंगळप्पुवु । अवशिष्टाक्षरसंख्येयु-मंगबाह्यप्रकीर्णकाक्षरंगळ प्रमाणमक्कुमिल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमेत्तलानुमों दु मध्यमपदाक्षरंगळने तक्कों डु मध्यमपदमागलु इंतक्षरंगळगेनितु मध्यमपदंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमंमाडि प्रमाणराशियिंदं भागिसिबंदलब्धमंगपूर्व्वपदंगळप्पुवु ११२८३५८००५ अवशिष्टाक्षरंगळु सामायिकादियादंगबाह्यश्रुताक्षरंगळप्पुवु ८०१०८१७५ ओ १०
अहो भव्य येंदितु । अंगअंगबाह्यश्रुतंगळेरडर यथासंख्यमागिपदप्रमाणमुमनक्षरप्रमाणमुमनरिनी-नेंदितु । प्राकृतदोळु ओ शब्दमव्ययं संबोधनार्थमक्कुं ।

अनंतरमंगपूर्व्वंगळ पदसंख्याविशेषमं त्रयोदशगाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :—

आयारे सूदयडे ठाणे समवायणामगे अंगे ।
तत्तो विहाहपण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥३५६॥ १५

आचारे सूत्रकृते स्थाने समवायनामके अंगे । ततो व्याख्याप्रज्ञप्तौ नाथस्य धर्म्मकथा ॥

मध्यमपदस्य परमागमप्रसिद्धस्याक्षरै षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटिव्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीति-प्रमितै तेषु सकलश्रुतस्कन्धाक्षरेषु रूपोनैकट्ठमात्रेषु भक्तेषु यल्लब्ध तावन्त्यङ्गपूर्वगतमध्यमपदानि भवन्ति । अवशिष्टाक्षरसंख्या अङ्गबाह्यप्रकीर्णकाक्षरप्रमाण भवति । यद्येतावतामक्षराणा एक मध्यमपदं तदा एतावदक्षराणा कियन्ति मध्यमपदानि भवन्ति ? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्रमाणराशिना भक्ते यल्लब्धं तदङ्गपूर्वपदानि २०
भवन्ति । ११२८३५८००५ । अवशिष्टाक्षराणि सामायिकाद्यङ्गबाह्यश्रुताक्षराणि भवन्ति । ८०१०८१७५ । ओ ! अहो भव्य ! इत्यङ्गाङ्गबाह्यश्रुतद्वयस्य यथासंभवं पदप्रमाणमक्षरप्रमाण च त्वं जानीहि । प्राकृते ओ शब्द. अव्ययं सबोधनार्थं ॥३५५॥ अथाङ्गपूर्वपदसख्याविशेषं त्रयोदशगाथासूत्रैराख्याति—

परमागममें प्रसिद्ध मध्यम पदके सोलह सौ चौंतीस कोटि, तिरासी लाख, सात हजार आठ सौ अठासी प्रमाण अक्षरोंसे समस्त श्रुतस्कन्धके एक कम एकट्ठी प्रमाण २५
अक्षरोंमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने अंगों और पूर्वोंके मध्यमपद होते हैं। शेष रहे अक्षरोंकी संख्या अंगबाह्यरूप प्रकीर्णकोंके अक्षरोंका प्रमाण होता है।

यदि इतने अक्षरोंका एक मध्यमपद होता है तब एक हीन एकट्ठी प्रमाण अक्षरोंके कितने पद होते है ? इस प्रकार त्रैराशिक करके प्रमाण राशि मध्यम पदके अक्षरोंकी संख्यासे भाग देनेपर जो लब्ध आया एक सौ बारह कोटि, तिरासी लाख अठावन हजार पाँच, यह ३०
अग और पूर्वोंके पदोंका प्रमाण है। तथा शेष बचे अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर सामायिक आदि अंगबाह्यके अक्षर होते है। हे भव्य ! इस प्रकार अंग और अंगबाह्य श्रुतोंके पद और अक्षरोंका प्रमाण जानो। प्राकृतमें 'ओ' शब्द सम्बोधनार्थक अव्यय है ॥३५५॥

अब अंगों और पूर्वोंके पदोंकी संख्या तेरह गाथासूत्रोंसे कहते है— ३५

द्रव्यश्रुतमनधिकरिसिकों डे निरुक्तियुं प्रतिपाद्यार्थमु पदसंख्याविशेषगळुमें दिवक्के तत्तदंग-पूर्व्वंगळोळु प्ररूपणे माडल्पडुगुमेकें दोडे भावश्रुतदोळु निरुक्त्याद्यसंभवमप्पुदरिंदं। इल्लि द्वादशांगंगळ मोदलोळाचारांगं पेळल्पट्टुदेकें दोडे मोक्षहेतुगळप्प सवरनिर्जराकारणपंचाचारादिसकल-चारित्रप्रतिपादकत्वदिंदं। मुमुक्षुगळिनादरिसल्पडुव मोक्षांगमप्प परमागमशास्त्रक्के मोदळोळु वक्तव्यत्व युक्तिसिद्धमें दितु।

चतुर्ज्ञानसमृद्धिसपन्नरप्प गणधरदेवरुगळिदं तीर्त्थंकरमुखसरोजसंभूतसर्वभाषा-त्मकदिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थगळिदं शिष्यप्रतिशिष्यानुग्रहार्त्थमागि विरचिसिद श्रुतस्कधद्वादशांगगळोळगे मोदळोळाचारांग विरच्चिसल्पट्टुदु। आचरंति समततोऽनुतिष्ठति मोक्षमार्ग्गमाराधयंत्यस्मिन्ननेनेति वा आचारस्तस्मिन् आचारांगे इतप्पाचारांगदोळु—

जदं चरे जदं चिट्ठे जद आसे जदं सये।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ॥

कथं चरेत् कथमासीत कथं शयीत कथं भाषेत कथ भुंजीत कथ पापं न बध्यते। एंदितु गणधरप्रश्नानुसारिंदं यतं चरेत् यत तिष्ठेत् यतमासीत यतं शयीत। यतं भाषेत यतं भुंजीत

द्रव्यश्रुतमधिकृत्य निरुक्तिप्रतिपाद्यार्थपदसख्याविशेषाणा तत्तदङ्गपूर्वेषु प्ररूपणा क्रियते भावश्रुते निरुक्त्याद्यसभवात्। अत्र द्वादशाङ्गेषु प्रथमाचाराङ्गं कथितम्। कुत ? मोक्षहेतुभूतसवरनिर्जराकारणपञ्चाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकत्वेन मुमुक्षुभिराद्रियमाणस्य मोक्षाङ्गभूतस्य परमागमशास्त्रस्य प्रथमतो वक्तव्यत्वस्य युक्तिसिद्धत्वात्। चतुर्ज्ञानसमधिसपन्नगणधरदेवै तीर्थकरमुखसरोजसभूतसर्वभाषात्मकदिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थै शिष्यप्रशिष्यानुग्रहार्थ विरचितश्रुतस्कन्धद्वादशाङ्गाना मध्ये प्रथममाचाराङ्ग विरचितम्। आचरन्ति समन्ततोऽनुतिष्ठन्ति मोक्षमार्गमाराधयन्ति अस्मिन्ननेनेति वा आचार तस्मिन् आचाराङ्गे—

जद चरे जद चिट्ठे जद आसे जद सये।
जद भुञ्जेज्ज भासेज्ज एव पाव ण वज्झई॥१॥

कथ चरेत् ? कथ तिष्ठेत् ? कथमासीत् ? कथ शयीत ? कथ भाषेत ? कथ भुञ्जीत ? कथ पाप न बध्यते ? इति गणधरप्रश्नानुसारेण यत चरेत्। यत तिष्ठेत्। यतमासीत। यत शयीत। यत भाषेत। यत

द्रव्यश्रुतको अधिकृत करके उस-उस अंग और पूर्वोंमें निरुक्ति, प्रतिपादित अर्थ और पदोंकी संख्याका कथन करते हैं क्योंकि भावश्रुतमें निरुक्ति आदि सम्भव नही है। द्वादशांगमें पहला आचारांग कहा है क्योंकि मोक्षके हेतु संवर निर्जराके कारण पंचाचार आदि सकल चारित्रका प्रतिपादक होनेसे मुमुक्षुओंके द्वारा आदरणीय तथा मोक्षके अगभूत आचारका परमागम शास्त्रमें प्रथम वक्तव्य होना युक्तिसिद्ध है। चार ज्ञान और सात ऋद्धियोसे सम्पन्न गणधरदेवने तीर्थंकरके मुखकमलसे उत्पन्न सर्वभाषामयी दिव्यध्वनिको सुनकर समस्त शब्दार्थको अवधारण करके शिष्य-प्रशिष्योके अनुग्रहके लिए विरचित द्वादशांग श्रुत स्कन्धमें प्रथम आचारांगकी रचना की। जिसमें या जिसके द्वारा 'आचरन्ति' अच्छी रीतिसे आचरण करते है, मोक्ष मार्गकी आराधना करते है वह आचार है। उस आचारागमें कैसे चलना, कैसे खड़े होना, कैसे बैठना, कैसे सोना, कैसे बोलना, कैसे भोजन करना कि पापका बन्ध न हो। इस गणधरके प्रश्नके अनुसार सावधानतापूर्वक चलिए, सावधानतापूर्वक खड़े होइए, सावधानता पूर्वक बैठिए सावधानतापूर्वक सोइए, सावधानतापूर्वक बोलिए

एवं पाप न बध्यते । इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितमुनिजनसमस्ताचरणं वर्णितत्वप्दुदु । सूत्रयति-संक्षेपेणार्थं सूचयतीति सूत्रं परमागमः । तदर्थं कृतं करणं ज्ञानविनयादि निर्व्विघ्नाध्ययनादिक्रिया । अथवा प्रज्ञापना कल्प्याकल्प्यच्छेदोपस्थापना व्यवहारधर्म्मक्रियाः स्वसमय-परसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत्सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगं । तिष्ठंत्यस्मिन्येकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं स्थानांगं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षणः, कर्म्मवशाच्चतुर्ग्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः, औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंच विशिष्टधर्म्म-प्रधानः, पूर्व्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कापक्रमयुक्तः, स्यादस्ति-स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्त्यवक्तव्यः स्यान्नास्त्यवक्तव्यः स्यादस्तिनास्त्य-वक्तव्यः इत्यादिसप्तभंगिसद्भावे उपयुक्तः, अष्टविधकर्म्मास्रवणयुक्तत्वादष्टास्रवः, नवजीवाजीवा-स्रवबंधसंवरनिर्ज्जरामोक्षपुण्यपापरूपाः अर्त्थाः पदार्त्थाः विषयाः यस्य स नवार्त्थः, पृथिव्यप्तेजो-वायुप्रत्येकसाधारणद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदाद्दशस्थानकः इत्यादीनि जीवस्य, सामान्यार्प्पणया एकः

भुञ्जीत । एव पाप न बध्यते । इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितमुनिजनसमस्ताचरण वर्ण्यते । सूत्रयति–संक्षेपेण अर्थं सूचयति इति सूत्रं परमागम. । तदर्थ कृतं करणं ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया, अथवा प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना, व्यवहारधर्मक्रिया, स्वसमयपरसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत् सूत्रकृतं नाम द्वितीयमङ्गम् । तिष्ठन्ति अस्मिन् एकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थान तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा । व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्प. । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षण. । कर्मवशात् चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः । औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिक-पारिणामिकभेदेन पञ्चविशिष्टधर्मप्रधान । पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थाया षट्कोपक्रम-युक्त । स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्य. स्यादस्त्यवक्तव्य. स्यान्नास्त्यवक्तव्यः स्यादस्तिना-स्त्यवक्तव्य. इत्यादिसप्तभङ्गीसद्भावेऽप्युपयुक्त. । अष्टविधकर्मास्रवयुक्तत्वादष्टास्रवः । नव जीवाजीवास्रवबन्ध-संवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्था–पदार्थाः विषया. यस्य स नवार्थ. । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारण-

---

और सावधानतापूर्वक भोजन करिए। ऐसा करनेसे पापका बन्ध नहीं होता, इत्यादि उत्तर वाक्योंमें प्रतिपादित मुनिजनोंका समस्त आचरण वर्णित है। 'सूत्रयति' अर्थात् जो संक्षेपसे अर्थको सूचित करता है वह सूत्र नामक परमागम है। उसमें कृत अर्थात् ज्ञानकी विनय आदि, निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रिया अथवा प्रज्ञापना, कल्प्य-अकल्प्य, छेदोपस्थापना, व्यवहार धर्मकी क्रियाएँ तथा स्वसमय-परसमयका वर्णन है। अथवा सूत्रोंके द्वारा कृत क्रियाविशेष का जिसमें वर्णन है वह सूत्रकृत नामक दूसरा अंग है। जिसमें एकको आदि लेकर एक-एक बढ़ते हुए स्थान 'तिष्ठन्ति' रहते हैं। वह स्थानांग है। उसमें संग्रहनयसे आत्मा एक है, व्यवहारनयसे संसारी मुक्त दो प्रकार है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त होनेसे त्रिलक्षण है, कर्मवश चारों गतियोंमें संक्रमण करनेसे चार संक्रमणसे युक्त है, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक, पारिणामिकके भेदसे पाँच विशिष्ट भावोंसे युक्त है, पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्वगति, अधोगतिके भेदसे संसार अवस्थामें छह उपक्रमोंसे युक्त है, स्यादस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य इत्यादि सप्तभंगीके सद्भावमें उपयुक्त है, आठ प्रकारके कर्मास्रवोंसे युक्त होनेसे आठ आस्रवरूप है, जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप

पुद्गलः विशेषार्पणया अणुस्कंधभेदाद्द्वितयः इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यंत इति स्थानं नाम तृतीयमंगं।

सम्संग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयंते ज्ञायंते जीवादिपदार्थाः द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य तस्मिन्निति समवायांगं। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्म्मास्तिकायेनाधर्म्मास्तिकायः सदृशः, संसारिजीवेन संसारिजीवः सदृशः, मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः इत्यादिद्रव्यसमवायः। क्षेत्राश्रयेण सीमंतनरक मनुष्यक्षेत्र ऋत्विकसिद्धक्षेत्राणि प्रदेशतः सदृशानि। अवधिस्थाननरकजंबूद्वीपसर्व्वार्थसिद्धि-विमानसैतानि सदृशानीत्यादि क्षेत्रसमवायः। एकसमयः एकसमयेन सदृशः। आवलिरावल्या सदृशी। प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यंतराणां जघन्यायूंषि सदृशानि। सप्तमपृथ्वीनारक सर्व्वार्थसिद्धि-देवानामुत्कृष्टायुर्षी सदृशी। इत्यादि कालसमवायः। केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भाव-समवायः। इति समवायाख्यं चतुर्थमंगं। विशेषैर्ब्बहुप्रकारैराख्या किमस्ति जीवः किं नास्ति जीवो किमेको जीवः किमनेको जीवः किं नित्यो जीवः किमनित्यो जीवः किमवक्तव्यो जीवः किं वक्तव्यो जीव इत्यादीनि (६०००) षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थंकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्न-

---

द्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियभेदाद् दशस्थानक इत्यादीनि जीवस्य, सामान्यार्पणादेक पुद्गल विशेषार्पणया अणुस्कन्धभेदाद् द्वितय, इत्यादि पुद्गलादीना च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यन्ते इति स्थानं नाम तृतीयमङ्गम्। सं-सग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयन्ते ज्ञायन्ते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य अस्मिन्निति समवायाङ्गम्। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्मास्तिकायेन अधर्मास्तिकाय सदृश.। संसारिजीवेन ससारिजीव सदृश.। मुक्तजीवेन मुक्तजीव. सदृश इत्यादिर्द्रव्यसमवाय। क्षेत्राश्रयेण सीमन्तनरक-मनुष्यक्षेत्र-ऋत्विन्द्रक-सिद्ध-क्षेत्राणि प्रदेशत सदृशानि। अवधिस्थान-नरक-जम्बूद्वीप-सर्वार्थसिद्धिविमानानि सदृशानि इत्यादि क्षेत्र-समवाय। एकसमय एकसमयेन सदृश, आवलि आवल्या सदृशी, प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यन्तराणा जघन्यायूषि सदृशानि। सप्तमपृथ्वीनरकसर्वार्थसिद्धिदेवाना उत्कृष्टायुषी सदृशे इत्यादि कालसमवाय। केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भावसमवाय' इति समवायाख्य चतुर्थमङ्ग। विशेषै बहुप्रकारैराख्यात किमस्ति जीव ? किं नास्ति जीव ? किमेको जीव ? किमनेको जीव ? किं नित्यो जीव ? किमनित्यो जीव ? किं वक्तव्यो जीव ? किमवक्तव्यो जीव इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ

ये नौ पदार्थ उसके विषय होनेसे नौ अर्थरूप है, पृथिवी अप् तेज वायु प्रत्येक साधारण दोइन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियके भेदसे दस स्थानवाला है, इत्यादि जीवका और सामान्यसे पुद्गल एक है, विशेषकी अपेक्षा अणु और स्कन्धके भेदसे दो प्रकार है, इत्यादि पुद्गल आदिके एकादि एक-एक अधिक स्थानोंका वर्णन रहता है। इस प्रकार स्थान नामक तीसरा अंग है। 'सं' अर्थात् सादृश्य सामान्यरूप संग्रहनयसे 'अवेयन्ते' द्रव्य क्षेत्र काल भावको लेकर जीवादि पदार्थ जिसमें जाने जाते हैं वह समवायांग है। उससे द्रव्यकी अपेक्षा धर्मास्तिकायसे अधर्मास्तिकाय समान है, संसारी जीवसे संसारी जीव समान है, मुक्त जीवसे मुक्त जीव समान है, इत्यादि द्रव्यसमवाय है। क्षेत्रकी अपेक्षा सीमन्त नरक, मनुष्यलोक, ऋतु नामक इन्द्रक विमान, सिद्धक्षेत्र प्रदेशसे समान है, सातवे नरकका अवधि-स्थान नामक इन्द्रकविला, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि विमान समान है इत्यादि क्षेत्रसमवाय है। एक समय एक समयके समान है, आवली आवलीके समान है, प्रथम पृथिवीके नारकी, भवनवासी और व्यन्तरोंकी जघन्य आयु समान है, सातवे नरकके नारकी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंकी उत्कृष्ट आयु समान है, इत्यादि कालसमवाय है। केवलज्ञान केवलदर्शनके समान है इत्यादि भावसमवाय है। इत्यादि समवायोंका कथन समवाय नामके चतुर्थ

वाक्यानि प्रज्ञाप्यंते कथ्यन्ते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पंचममंगं । नाथस्त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थंकरपरमभट्टारकस्तस्य धर्म्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं । घातिकर्म्मक्षयानंतर-केवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयविजृंभितमहिम्नस्तीर्थंकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णाऽर्द्धरात्रिषु षट् षट् घटिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छत्यन्यकालेपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं चोद्भवति । एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुद्दिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं वा धर्म्मं कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्म्मकथातत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं । अथवा ज्ञातृणां तीर्थंकर-गणधरशक्रचक्रधरादीनां धर्म्मानुबंधिकथोपकथाकथनं ज्ञातृधर्म्मकथानाम षष्ठमंगं ।

तो वासयअज्झयणे अंतयडेणुत्तरोववाददसे ।
पण्हाणं वायरणे विवायसुत्ते य पदसंखा ॥३५७॥

तत उपासकाध्ययने अंतकृद्दशे अनुत्तरोपपाददशे । प्रश्नानां व्याकरणे विपाकसूत्रे च पद-संख्या ॥

गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यन्ते कथ्यन्ते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पञ्चममङ्ग । नाथ—त्रिलोकेश्वराणा स्वामी तीर्थंकरपरमभट्टारकः तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं, घातिकर्मक्षयानन्तरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयविजृम्भितमहिम्नः तीर्थकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्पट्घटिकाकालपर्यन्त द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति । अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानन्तरं चोद्भवति । एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुद्दिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं रत्नत्रयात्मकं वा धर्मं कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्मकथा तत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं, अथवा ज्ञातृणा तीर्थकरगणधरशक्रचक्रधरादीना धर्माऽनुबन्धिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथानाम वा षष्ठमङ्गम् ॥३५६॥

अंगमें होता है। क्या जीव है या नहीं है ? क्या जीव एक है या अनेक है ? क्या जीव नित्य है या अनित्य है ? क्या जीव वक्तव्य है या अवक्तव्य है इत्यादि गणधरदेवके साठ हजार प्रश्न भगवान् अर्हन्त तीर्थंकरके पासमें पूछे गये जिसमें विशेष अर्थात् बहुत प्रकारसे प्रज्ञाप्यन्ते कहे जाते है वह व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पाँचवाँ अंग है। नाथ अर्थात् तीनों लोकों-के ईश्वरोंका स्वामी तीर्थंकर परम भट्टारककी धर्मकथा—जीवादि वस्तुओंके स्वभावका कथन, कि घातिकर्मोंके क्षयके अनन्तर केवलज्ञानके साथ उत्पन्न तीर्थंकर नामक पुण्याति-शयसे जिनकी महिमा बढ़ गयी है उन तीर्थंकरकी पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और अर्धरात्रिमें छह-छह घड़ी काल पर्यन्त बारह गणोंकी सभाके मध्य स्वभावसे दिव्यध्वनि खिरती है, अन्य समयमें भी गणधर, इन्द्र और चक्रवर्तीके प्रश्न करनेपर खिरती है। इस प्रकार उत्पन्न हुई दिव्यध्वनि समस्त निकटवर्ती श्रोतागणोंके उद्देशसे उत्तमक्षमादि लक्षणरूप रत्नत्रयात्मक धर्म-का कथन करती है। अथवा ज्ञाता जिज्ञासु गणधर देवके प्रश्नके अनुसार उत्तर वाक्यरूप धर्मकथा, पूछे गये अस्तित्व-नास्तित्व आदिके स्वरूपका कथन अथवा ज्ञाता तीर्थंकर गण-धर इन्द्र चक्रवर्ती आदिके धर्मानुबन्धी कथोपकथन जिसमें हो वह ज्ञातृधर्मकथा नामक छठा अंग है ॥३५६॥

अल्लिदं बळिकं उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयंतीत्युपासकाः। ते अधीयंते पठ्यंते दर्शनिकव्रतिकसामायिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचार्य्यारंभपरिग्रहनिवृत्ताऽनुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयसंबंधिव्रतगुणशीलाचारक्रियामंत्रादिविस्तरैर्व्वर्ण्यंतेऽस्मिन्निति उपासकाध्ययनं नाम सप्तममंगं।

प्रतितीर्त्थं दशदशमुनीश्वरास्तीव्रं चतुर्व्विधोपसर्गं सोढ्वा इंद्रादिभिर्व्विरचितं पूजादि, प्रातिहार्य्यसंभावना लब्ध्वा कर्म्मक्षयानंतरं संसारस्यांतमवसानं कृतवंतोऽन्तकृतः। श्रीवर्द्धमानतीर्त्थे नमि मतंग सोमिल रामपुत्र सुदर्शन यमलीकबलिककिष्कंबिल पालंबष्टपुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्त्थेष्वपि दश दशांतकृतो वर्ण्यंते यस्मिन्तदन्तकृद्दशं नामाष्टममंगं। तथा उपपादः प्रयोजनमेषां ते इमे औपपादिकाः अनुत्तरेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितसर्व्वार्थसिद्धाख्येषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिका। प्रतितीर्त्थं दश दश मुनयः दारुणान्महोपसर्गान्सोढ्वा लब्धप्रातिहार्य्यास्समाधिविधिना त्यक्तप्राणा ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूपपन्नास्ते वर्ण्यंते यस्मिन् तदनुत्तरौपपादिकदशं नाम नवममंगं। तत्र श्रीवर्द्धमानतीर्त्थे ऋजुदास धन्य सुनक्षत्र कार्त्तिकेय नंद नंदन शालिभद्र

अत पर उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च सघमाराधयन्तीति उपासका. ते अधीयन्ते पठ्यन्ते दर्शनिकव्रतिकसामयिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचर्यारम्भपरिग्रहनिवृत्तानुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयसबन्धिव्रतगुणशीलाचारक्रियामन्त्रादिविस्तरैर्वर्ण्यन्ते अस्मिन्निति उपासकाध्ययन नाम सप्तमङ्गम्। प्रति तीर्थं दश दश मुनीश्वरा तीव्रं चतुर्विधोपसर्ग सोढ्वा इन्द्रादिभिर्विरचिता पूजादिप्रातिहार्यसभावना लब्ध्वा कर्मक्षयानन्तर ससारस्यान्त अवसान कृतवन्तोऽन्तकृत.। श्रीवर्धमानतीर्थे नमि-मतङ्ग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलिक-किष्कम्बिल-पालवष्ट-पुत्रा इति दश। एव वृषभादितीर्थेष्वपि दश दशान्तकृतो वर्ण्यन्ते यस्मिंस्तदन्तकृद्दशनामाष्टममङ्गम्। तथा उपपाद प्रयोजनमेषा ते इमे औपपादिका। अनुत्तरेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धाख्येषु औपपादिका अनुत्तरौपपादिका। प्रति तीर्थं दश दश मुनयो दारुणान् महोपसर्गान् सोढ्वा लब्धप्रातिहार्या समाधिविधिना त्यक्तप्राणा ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूपपन्ना ते वर्ण्यन्ते यस्मिंस्तदनुत्तरौपपादिकदश नाम नवममङ्गम्। तत्र श्रीवर्धमानतीर्थे ऋजुदास-

---

'उपासते' जो आहार आदि दानके द्वारा और नित्यमह आदि पूजाविधानके द्वारा संघकी आराधना करते है वे उपासक है। वे उपासक दर्शनिक, व्रतिक, सामयिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभक्तव्रत, ब्रह्मचर्य, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतविरत, उद्दिष्टविरत इन गृहस्थोंके ग्यारह भेदोसे सम्बद्ध व्रत, गुण, शील, आचार, क्रिया, मन्त्र आदि विस्तारसे जिसमे 'अधीयन्ते' पढ़े जाते है वह उपासकाध्ययन नामक सातवाँ अंग है। प्रत्येक तीर्थमे दस-दस मुनीश्वर तीव्र चार प्रकारके उपसर्गको सहकर इन्द्रादिके द्वारा रचित पूजादि प्रतिहार्योंकी सम्भावनाको प्राप्त करके कर्मोंके क्षयके अनन्तर संसारका अन्त करते हुए। इसलिए उन्हें 'अन्तकृत्' कहते है। श्री वर्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें नमि, मतग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्कंविल, पालम्बु, अष्टपुत्र ये दस अन्तकृत् हुए। इसी प्रकार ऋषभदेव आदिके भी तीर्थमें हुए। जिसमे दस-दस अन्तकृतोंका वर्णन हो वह अंग अन्तकृद्दश नामक है। उपपाद जिनका प्रयोजन है वे औपपादिक हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नामक अनुत्तरोंमें उपपाद जन्म लेनेवाले अनुत्तरौपपादिक होते है। प्रत्येक तीर्थमे दस-दस मुनि दारुण महान् उपसर्गोंको सहकर प्रातिहार्य प्राप्त करके समाधिपूर्वक प्राणोंको त्यागकर विजयादि अनुरोत्तरोमें उत्पन्न हुए। उनका जिसमे वर्णन हो वह अनुत्तरौपपादिकदश नामक नौवाँ अंग है। उनमें-से श्रीवर्धमान

अभय वारिषेण चिलातपुत्रा इत्येते दारुण महोपसर्गान्विजित्येन्द्रादिकृतां पूजां लब्ध्वाऽनुत्तरविमानेषूपपन्नाः। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्याः। प्रश्नस्य दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्यार्थः त्रिकालगोचरो धनधान्यादि लाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरणं। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्व्वेजनी चेति कथा चतुर्व्विधा। तत्र प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थंकरादिवृत्तांतलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्म्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितं कथनमाक्षेपणीकथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुवादबलेन सर्व्वथैकांतादिपरसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणीकथा। रत्नत्रयात्मकधर्म्मानुष्ठानफलभूततीर्थंकराद्यैश्वर्य्यप्रभावतेजोवीर्य्यज्ञानसुखादिवर्णनारूपा संवेदनीकथा। ससारशरीरभोगजनितदुःकर्म्मफलनारकादिदुःखदुःकुलविरूपांगदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्व्वेजनीकथा। एवंविधाः कथाः व्याक्रियंते

धन्य-सुनक्षत्र-कार्तिकेय-नन्द-नन्दन-शालिभद्र-अभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा इत्येते दारुणमहोपसर्गान् विजित्य इन्द्रादिकृता पूजा लब्ध्वा अनुत्तरविमानेषूपपन्नाः। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्या.। प्रश्नस्य–दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिन्तादिरूपस्य अर्थ त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदु खजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणम्। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपणी विक्षेपणी सवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थाना तीर्थकरादिवृत्तान्तलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्मपञ्चास्तिकायादीना परमताशङ्कारहितं कथनमाक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुत्वादिवलेन सर्वथैकान्तादि परसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थंकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनारूपा सवेजनी कथा। ससारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदु.खदुष्कुलविरूपाङ्गदारिद्र्यापमानदु खादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा

स्वामीके तीर्थमें ऋजुदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण, चिलातपुत्र ये दारुण महा उपसर्गोंको जीतकर इन्द्रादिके द्वारा की गयी पूजाको प्राप्त करके अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हुए। इसी प्रकार ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके तीर्थमें भी परमागमके अनुसार जानना। प्रश्न अर्थात् दूतवाक्य, नष्ट, मुष्टि चिन्तादि विषयक प्रश्नका त्रिकाल गोचर अर्थ जो धनधान्य आदिकी लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, जय-पराजय आदिसे सम्बद्ध है वह जिसमें व्याक्रियते अर्थात् उत्तरित किया गया हो, वह प्रश्नव्याकरण है। अथवा शिष्योंके प्रश्नके अनुसार अवक्षेपणी विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेजनी ये चार कथाएँ जिसमें वर्णित हों वह प्रश्नव्याकरण है। तीर्थंकर आदिके इतिवृत्तको कहनेवाले प्रथमानुयोग, लोकके आकार आदिका कथन करनेवाले करणानुयोग, देशचारित्र और सकलचारित्रको कहनेवाले चरणानुयोग तथा पंचास्तिकाय आदिका कथन करनेवाले द्रव्यानुयोग रूप परमागमके पदार्थोंका परमतकी आशंकाको दूर करते हुए कथनको आक्षेपणी कथा कहते है। प्रमाणनयात्मक युक्ति तथा हेतु आदिके बलसे सर्वथा एकान्त आदि अन्य मतोंका निराकरण करानेवाली कथाको विक्षेपणी कथा कहते हैं। रत्नत्रयात्मक धर्मका अनुष्ठान करनेके फलस्वरूप तीर्थंकर आदिके ऐश्वर्य, प्रभाव, तेज, ज्ञान, सुख, वीर्य आदिका कथन करनेवाली संवेजनी कथा है। संसार शरीर और भोगोंसे राग करनेसे दुष्कर्मका बन्ध होता है और उसके फलस्वरूप नारक आदिका दुःख, दुष्कुलकी प्राप्ति, शरीरोंके अंगोंका विरूपपना, दारिद्र्य, अपमान आदिके वर्णनके द्वारा वैराग्यका कथन करनेवाली निर्वेजनी

१. अवक्षे–मु।

व्याख्यायंते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरणं नाम दशममंगम् । शुभाशुभकर्म्मणां तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयः फलदानपरिणतिरूप उदयो विपाकस्तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रं नामैकादशमंगम् । एतेष्वाचारादिषु विपाकसूत्रपर्य्यंतेष्वेकादशस्वंगेषु प्रत्येकं मध्यमपदानां संख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थः ।

अट्ठारस छत्तीसं बादालं अडकदी अडबिछप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीसं चउदालं सोलस सहसा ॥३५८॥

अष्टादश षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टकृतिरष्टद्विः षट्पंचाशत् सप्ततिरष्टविंशतिः चतुश्चत्वारिंशत् षोडश सहस्राणि ॥

इगिदुगपंचेयारं तिवीस दुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिलक्खमेया कोडी य विवागसुत्तम्मि ॥३५९॥

एकद्विपंचैकादशत्रिविंशति द्वित्रिनवतिलक्षाणि तुर्य्यादीनि चतुरशीतिलक्षाण्येका कोटी च विपाकसूत्रे ॥

सहस्रशब्दः सर्व्वत्र संबध्यते । आचारागे आचारांगदोळु अष्टादशसहस्रपदंगळप्पुवु १८००० सूत्रकृतांगदोळु षट्त्रिंशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ३६००० स्थानांगदोळु द्वाचत्वारिंशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ४२००० चतुर्त्थसमवायादिप्रश्नव्याकरणपर्य्यंतमाद सप्तांगदोळु एकलक्षादियोगं माडल्पडुवुदंतेंदोडे समवायागदोळु एकलक्षमु चतुःषष्टिसहस्रपदंगलप्पुवु १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगदोळु द्विलक्षमुमष्टाविंशतिसहस्रपदंगळप्पुवु २२८००० ज्ञातृकथांगदोळु पंचलक्षंगळुं षट्पंचाशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ५५६००० उपासकाध्ययनांगदोळु एकादशलक्षंगळु सप्ततिसहस्रपदंगळप्पवु ११७००००

निर्वेजनी कथा । एवविधा कथा व्याक्रियन्ते व्याख्यायन्ते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरण नाम दशममङ्गम् । शुभाशुभकर्मणा तीव्रमन्दमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयफलदानपरिणतिरूप उदय — विपाक त सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्र नामैकादशमङ्गम् । एतेष्वाचारादिषु विपाकसूत्रपर्यन्तेषु एकादशसु अङ्गेषु प्रत्येक मध्यमपदाना सख्या यथाक्रम वक्ष्यते इत्यर्थ ॥३५७॥

सहस्रशब्द सर्वत्र सबध्यते । आचाराङ्गे अष्टादशसहस्राणि पदानि १८००० । सूत्रकृताङ्गे षट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ३६००० । स्थानाङ्गे द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ४२००० । चतुर्थादिषु समवायादिषु प्रश्नव्याकरणपर्यन्तेषु सप्तस्वङ्गेषु एकलक्षादियोग क्रियते । तद्यथा—समवायाङ्गे एकलक्षचतु षष्टिसहस्राणि पदानि १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्त्यङ्गे द्विलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २२८००० । ज्ञातृकथाङ्गे पञ्चलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्राणि पदानि ५५६००० । उपासकाध्ययनाङ्गे एकादशलक्षसप्ततिसहस्राणि पदानि ११७००००।

कथा है । इस प्रकारकी कथाएँ जिसमें वर्णित हों वह प्रश्नव्याकरण नामक दसवाँ अंग है। शुभ और अशुभ कर्मोंके तीव्र-मन्द-मध्यम विकल्प शक्तिरूप अनुभागके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके आश्रयसे फलदानकी परणतिरूप उदयको विपाक कहते है । उसको जो वर्णन करता है वह विपाक सूत्र नामका ग्यारहवाँ अंग है । आचारसे लेकर विपाक सूत्र पर्यन्त ग्यारह अगोमें-से प्रत्येकमें मध्यमपदोको यथाक्रम कहते है ॥३५७॥

सहस्र शब्दका सम्बन्ध सर्वत्र लगता है । आचारांगमें अठारह हजार पद है । सूत्रकृतांगमें छत्तीस हजार पद हैं । स्थानांगमें बयालीस हजार पद है । चतुर्थ समवायांगसे लेकर प्रश्नव्याकरण पर्यन्त सात अंगोंमें एक लाख आदिका योग किया जाता है । अतः समवायांगमें एक लाख चौसठ हजार पद है । व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगमें दो लाख अठाईस

अंतकृद्दशांगदोळु त्रयोविंशतिलक्षंगळुमष्टाविंशतिसहस्रपदंगळप्पुवु २३२८०००। अनुत्तरौपपादिकदशांगदोळु द्विनवतिलक्षंगळुं चतुश्चत्वारिंशत्सहस्रपदंगळप्पुवु ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणांगदोळु त्रिनवतिलक्षंगळुं षोडशसहस्रपदंगळप्पुवु ९३१६०००। विपाकसूत्रांगदोळु एककोटियुं चतुरशीतिलक्षपदंगळप्पुवु १८४००००००।

वापणनरनोनानं एयारंगे जुदी हु वादम्मि ।
कनजतजमतानानमं जनकनजयसीम वाहिरे वण्णा ॥३६०॥

वा ऋतुः। प एक। ण पंच। न शून्य। र द्वि। नो शून्य। ना शून्य। नं शून्यमेकादशांगे युतिः। खलु वादे क एक। न शून्य। ज अष्ट। त षट्। ज अष्ट। म पंच। ता षट्। न शून्य। न शून्य। नं पंच। ज अष्ट। न शून्य। क एक। न शून्य। ज अष्ट। य एक। सि सप्त। म पंच बाह्ये वर्णाः पेरगे पेळल्पट्ट एकादशांगगळ पदसंख्यायुतियनक्षरसंख्येयिंदं वापणनरनोनानं नाल्कु कोटियुं पदिनैदुलक्षमुमेरडु सासिर पदंगळप्पुवु। ४।१५०२००० खलु स्फुटमागि वादे दृष्टिवाददोळु कनजतजमतानानमं नूरेंटुकोटियुमरुवत्तेंटुलक्षमुमय्वत्तारुसासिरदय्दु पदंगळप्पुवु १०८६८५६००५, जनकनजयसीम। मेंटुकोटियु मोंदुलक्षमु मेंटुसासिरद नूरेप्पत्तैय्दक्षरंगळु सामायिकादिचतुर्दशभेदंगळंगबाह्यदोळप्पुवु ८०१०८१७५, दृष्टीनां त्रिषष्टयुत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादोऽनुवादस्तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद्दृष्टिवादं नाम द्वादशमंगं। अदें तेंदोडे कोत्कल। काण्ठे-

---

अन्तकृद्दशाङ्गे त्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २३२८०००। अनुत्तरौपपादिकदशाङ्गे द्विनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणाङ्गे त्रिनवतिलक्षषोडशसहस्राणि पदानि ९३१६०००। विपाकसूत्राङ्गे एककोटिचतुरशीतिलक्षाणि पदानि १८४००००० ॥३५८–३५९॥

पूर्वोक्तैकादशाङ्गपदसख्यायुति अक्षरसख्यया वापणनरनोनानं चतुःकोटिपञ्चदशलक्षद्विसहस्रप्रमिता भवति ४१५०२००० खलु स्फुट। दृष्टिवादाङ्गे कनजतजमताननम अष्टोत्तरशतकोट्यष्टपष्टिलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्रपञ्चपदानि भवन्ति १०८६८५६००५। जनकनजयसीम अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपञ्चसप्तत्यक्षराणि सामायिकादिचतुर्दशभेदेऽङ्गबाह्यश्रुते भवन्ति ८०१०८१७५। दृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्याना मिथ्यादर्शनाना वाद. अनुवाद. तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद् दृष्टिवादं नाम द्वादशमङ्गम्। तद्यथा कौत्कल-कण्ठेविद्धि-

---

हजार पद हैं। ज्ञातृकथांगमें पाँच लाख छप्पन हजार पद हैं। उपासकाध्ययनांगमें ग्यारह लाख सत्तर हजार पद है। अन्तकृद्दशांगमें तेईस लाख अठाईस हजार पद है। अनुत्तरौपपादिक दशांगमें बानवे लाख चवालीस हजार पद है। प्रश्नव्याकरणमें तिरानवे लाख सोलह हजार पद है विपाक सूत्रमें एक कोटि चौरासी लाख पद है ॥३५८–३५९॥

पूर्वोक्त ग्यारह अंगोंके पदोंका जोड़ अक्षरोंकी संख्यामें 'वापणनरनोनानं' अर्थात् चार कोटि, पन्द्रह लाख दो हजार प्रमाण होते हैं। पहले गतिमार्गणामें मनुष्योंकी संख्या अक्षरोंमें कही है। उसकी टीकामें स्पष्ट कर दिया है कि किस अक्षरसे कौन संख्या लेना। जैसे यहाँ 'व' से चार, 'प' से एक, 'ण' से पाँच, 'न' से शून्य, 'र' से दो और तीन शून्य लेना क्योंकि 'व' य से चतुर्थ अक्षर है, 'र' दूसरा अक्षर है, 'ण' टवर्गका पाँचवाँ अक्षर है और 'प' पवर्गका प्रथम अक्षर है। दृष्टिवाद अंगमें 'कनजतजमताननम' अर्थात् एक सौ आठ कोटि अड़सठ लाख, छप्पन हजार पाँच पद हैं १०८६८५६००५। 'जनकनजयसीम' आठ कोटि, एक लाख, आठ हजार एक सौ पचहत्तर ८०१०८१७५ अक्षर सामायिक आदि चौदह भेदरूप अंगबाह्यमें होते है। तीन सौ तिरसठ दृष्टि अर्थात् मिथ्यादर्शनोंका वाद

बिद्धि। कौशिक। हरिस्मश्रु। मान्यंपिक। रोमश। हारीत। मुण्ड। आश्वलायननेंबिववर्गळु क्रियावादद्दष्टिगळिवर्गळ नूरेंभत्तु १८०। मरीचि। कपिल। उलूक। गार्ग्य। व्याघ्रभूति। वाड्वलि। माठर। मौद्गलायनं मोदलादवर्गळु अक्रियावादद्दष्टिगळवर्गळेंवत्तनाल्कुं ८४। शाकल्य। वल्कल। कुंथुमि। सात्यमुग्रि। नारायण। कठ। माध्यंदिन। मौद। पैप्पलाद। बादरायण। स्वष्टिकय। दैतिकायन। वसु जैमिन्यादिगळु अज्ञानद्दष्टिगळु इवर्गळरुवत्तेळुं ६७। वशिष्ठ। पाराशर। जतुकर्ण। वाल्मीकि। रोमहर्षिणि। सत्यदत्त। व्यास। एलापुत्र औपमन्यव। इंद्रदत्त। अगस्त्यादिगळु वैनैकद्दष्टिगळिवर्गळ मूवत्तेरडु। ३२। मितु कूडि मूनूरुवत्तमूरु मिथ्यावादंगळप्पुवु। ३६३।

चंदरविजंबुदीवय दीवसमुद्दय वियाहपण्णत्ती।
परियम्म पंचविहं सुत्तं पढमाणियोगमदो ॥३६१॥
पुव्वं जलथलमाया आगासयरूवगयमिमा पंच।
भेदा हु चूलियाए तेसु पमाणं इमं कमसो ॥३६२॥

चंद्ररविजंबूद्वीपद्वीपसमुद्रव्याख्याप्रज्ञप्तयः। परिकर्म्म पंचविधं सूत्रं प्रथमानुयोगोऽतः॥ पूर्व्वं, जलस्थलमायाकाशरूपगतमिमे पंचभेदाश्चूलिकायाः तेषु प्रमाणमिदं क्रमशः॥

दृष्टिवाददोळधिकारंगळैदप्पुववावुवेंदोडे परिकर्म्म। सूत्र। प्रथमानुयोगः। पूर्व्वगतं। चूलिकेयुमेंदितिल्लि परितः सर्व्वतः कर्म्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म्मं। ई परि-

---

कौशिक-हरिश्मश्रु-मान्धपिक-रोमश-हारीत-मुण्ड-आश्वलायनादय क्रियावाददृष्टय अशीत्युत्तरशत १८०। मरीचि-कपिल-उलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाड्वलि-माठर-मौद्गलायनादय अक्रियावाददृष्टयश्चतुरशीति ८४। शाकल्य-वाल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कठ-माध्यन्दिन-मौद-पैप्पलाद-वादरायण-स्विष्टिक्य-दैतिकायन-वसु-जैमिन्यादय अज्ञानकुदृष्टय सप्तषष्टि ६७। वशिष्ट-पाराशर-जतुकर्ण-वाल्मिकि-रोमहर्षणि-सत्यदत्त-व्यास-एलापुत्र-औपमन्यव-ऐन्द्रदत्त-अगस्त्यादयो वैनयिकदृष्टयो द्वात्रिंशत् ३२। मिलित्वा मिथ्यावादा त्रिषष्ट्यग्र-त्रिशती भवन्ति ॥३६०॥

दृष्टिवादाङ्गे अधिकारा पञ्च। ते के? परिकर्म सूत्र प्रथमानुयोग पूर्वगतं चूलिका चेति। तत्र

अर्थात् अनुवाद और उनका निराकरण जिसमें किया जाता है वह दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अंग है। कौत्कल, कंठेविद्धि कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधपिक, रोमश, हारीत, मुंड, आश्वलायन आदि क्रियावाद दृष्टियाँ एक सौ अस्सी है। मरीचि, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाड्वलि, माठर, मौद्गलायन आदि अक्रियावाददृष्टि चौरासी है। शाकल्य, वाल्कल, कुंथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कठ, माध्यंदिन, मौद, पैप्पलाद, वादरायण, स्विष्टिक्य, ऐतिकायन, वसु, जैमिनि आदि अज्ञानकुदृष्टि सडसठ हैं। वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मिकि, रोमहर्षणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, ऐन्द्रदत्त, अगस्त्य आदि वैनयिक दृष्टि बत्तीस है। ये सब मिथ्यावाद मिलकर तीन सौ तिरसठ होते हैं ॥३६०॥

दृष्टिवाद अंगमें पाँच अधिकार है—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका।

---

१. म मान्वयिक। २ व काकल्य। ३ व दतिकायन। दैत्यकायन मु। ४ अपम°।

कर्म्ममेंदु प्रकारकक्कुमदें तें दोडे चंद्रप्रज्ञप्तियुं। सूर्य्यप्रज्ञप्तियुं। जंबूद्वीपप्रज्ञप्तियुं। द्वीपसागरप्रज्ञप्तियुं व्याख्याप्रज्ञप्तियुमें दितु चंद्रप्रज्ञप्तियें बुदु चंद्रविमानायुःपरिवारऋद्धिगमनहानिवृद्धिसकलार्द्ध-चतुर्त्थांशग्रहणादिगळं वर्णिसुगुं। सूर्य्यप्रज्ञप्तियें बुदु सूर्य्यनायुर्म्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणा-दिगळं वर्णिसुगुं। जंबूद्वीपप्रज्ञप्तियें बुदु जंबूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षकुंडवेदिकावनषंडव्यंतरावास महानदिगळमोदलादुवं वर्णिसुगुं। द्वीपसागरप्रज्ञप्तियें बुदु असंख्यातद्वीपसागरंगळ स्वरूपमं तत्र-स्थितज्योतिर्व्वानभावनावासंगळोळु विद्यमानंगळप्पऽकृत्रिमजिनभवनादिगळ वर्णनमं माळ्कुं। व्याख्याप्रज्ञप्तियें बुदु रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्यंगळ भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणंगळ, अनंतरसिद्ध परंपरा-सिद्धरुगळ परवुं वस्तुगळ वर्णनमं माळ्कुं। सूत्रयति सूचयति कुदृष्टिदर्शनानिति सूत्रं। जीवोऽबंध-कोऽकर्त्ता निर्गुणोऽभोक्ताऽस्वप्रकाशकः परप्रकाशकोस्त्येव जीवो नास्त्येव जीव इत्यादिक्रियाक्रिया-ज्ञानविनयकुदृष्टिनां त्रिषष्टयुत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनंगळं पूर्व्वपक्षतेयिंदं पेळ्गुं। प्रथमानुयोगमें बुदु प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः।

परित' सर्वत. कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म, तच्च पञ्चविध चन्द्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति' व्याख्याप्रज्ञप्तिश्चेति। तत्र चन्द्रप्रज्ञप्तिः चन्द्रस्य विमानायु परिवारऋद्धि-गमनहानिवृद्धिसकलार्धचतुर्थांशग्रहणादीन् वर्णयति। सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मण्डलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रह-णादीन्वर्णयति। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः जम्बूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षकुण्डवेदिकावनखण्डव्यन्तरावासमहानद्यादीन् वर्णयति। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति. असंख्यातद्वीपसागराणां स्वरूपं तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासेषु विद्यमानाकृत्रिम-जिनभवनादीन् वर्णयति। व्याख्याप्रज्ञप्ति. रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणा भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणाना अनन्तर-सिद्धपरम्परासिद्धाना अन्यवस्तूना च वर्णनं करोति। सूत्रयति—सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रम्। जीवः अबन्धक' अकर्ता निर्गुण. अभोक्ता स्वप्रकाशक परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः नास्त्येव जीवः इत्यादि क्रिया-क्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति। प्रथमानुयोग. प्रथम मिथ्या-दृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोग.। चतुर्विंशतितीर्थकरद्वादश-

'परितः' अर्थात् पूरी तरहसे 'कर्माणि' अर्थात् गणितके करणसूत्र जिसमें है वह परिकर्म है। उसके भी पाँच भेद हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्या-प्रज्ञप्ति। उनमें-से चन्द्रप्रज्ञप्ति चन्द्रमाके विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, हानि, वृद्धि, पूर्णग्रहण, अर्धग्रहण, चतुर्थांशग्रहण आदिका वर्णन करती है। सूर्यप्रज्ञप्ति सूर्यकी आयु, मण्डल, परिवार, ऋद्धि, गमनका प्रमाण तथा ग्रहण आदिका वर्णन करती है। जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति जम्बूद्वीपगत मेरु, कुलाचल, तालाब, क्षेत्र, कुण्ड, वेदिका, वनखण्ड, व्यन्तरोंके आवास, महानदी आदिका वर्णन करती है। द्वीपसागरप्रज्ञप्ति असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके स्वरूप, उनमें स्थित ज्योतिषीदेवों, व्यन्तरों और भवनवासी देवोंके आवासोंमें वर्तमान अकृत्रिम जिनालयोंका वर्णन करती है। व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपी-अरूपी, जीव-अजीव द्रव्योंका, भव्य और अभव्य भेदोंका, उनके प्रमाण और लक्षणोंका, अनन्तर सिद्ध और परम्परा सिद्धों-का तथा अन्य वस्तुओंका वर्णन करती है। 'सूत्रयति' अर्थात् जो मिथ्यादृष्टि दर्शनोंको सूचित करता है वह सूत्र है। जीव अबन्धक है, अकर्ता है, निर्गुण है, अभोक्ता है, स्वप्रकाशक नहीं है, परप्रकाशक है, जीव अस्ति ही है या नास्ति ही है इत्यादि क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी और वैनयिक मिथ्यादृष्टियोंके तीन सौ तिरसठ मतोंको पूर्वपक्षके रूपमें कहता है।

१. म प्रकारमदेतेने। २. क °तु,मल्लि चं°।

गतनम मनगं गोरम मरगत जवगातनोननं जजलक्खा ।
मननन धममननोननंनामं रनधजधरानन जलादी ॥३६३॥
याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परियम्मे ।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो ॥३६४॥

ग । त्रि । त । षट् । न । शून्य । म । पंच । म । पंच । न । शून्य । गं । त्रि । गो । त्रि । र । द्वि । म । पंच । म । पंच । र । द्वि । ग । त्रि । त । षट् । ज । अष्ट । व । चतुः । गा । त्रि । त । षट् । नोननं । शून्य । शून्य । शून्य । ज । अष्ट । ज । अष्ट । लक्षाणि । म । पंच । न । नन । शून्य । शून्य । शून्य । ध । नव । म । पंच । म । पंच । न । शून्य । नो । शून्य । न । शून्य । ना । शून्य । म । पंच । रा । द्वि । न । शून्य । ध । नव । ज । अष्ट । ध । नव । रा । द्वि । न । शून्य । न । शून्य । जलादयः ॥

या । एक । ज । अष्ट । क एक । ना शून्य । मे । पंच । ना शून्य । न शून्य । न शून्य । मेतानि पदानि भवति । परिकर्म्मणि । का । एक । न शून्य । व । चतुः । धि । नव । वा चतुः । च षट् । ना शून्य । न शून्य । न शून्य । मेषः पुनश्चूलिकायोगः । अक्षरसंज्ञेयिंदं गतनमनोननं षट्त्रिंशल्लक्षपंचसहस्रपदंगळु चंद्रप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ३६०५०००। मनगं नोननं पंचलक्षत्रिसहस्रपदंगळु सूर्य्यप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ५०३०००। गोरमनोननं त्रिलक्षपंचविंशतिसहस्रपदंगळु जंबूद्वीपप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ३२५०००। मरगतनोननं द्विपंचाशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रपदंगळु द्वीपसागरप्रज्ञप्तियोळप्पुवु ५२३६०००। जवगातनोननं चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्रपदंगळु व्याख्याप्रज्ञप्तियोळप्पुवु। ८४३६०००। जजलक्खा अष्टाशीतिलक्षपदंगळु सूत्रदोळप्पुवु ८८०००००। मननन पंचसहस्रपदंगळु प्रथमानुयोगदोळप्पुवु ५०००। धममननोननंनामं पंचनवतिकोटियुं पंचाशल्लक्षमुमप्पु पदंगळु चतुर्दशपूर्व्वसमुच्चयदोळप्पुवु ९५५०००००५। रनधजधराननजलादि द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्रद्विशतोत्तरपदंगळु प्रत्येकं जलगतादि पंचचूलिकास्थानंगळोळु समानंगळेयप्पुवु। जलगतंगळु २०९८९२०० स्थलगतंगळु २०९८९२०० मायागतंगळु २०९८९२०० आकाशगतंगळु

अक्षरसंज्ञया चन्द्रप्रज्ञप्तौ गतनमनोनन-षट्त्रिंशल्लक्षपञ्चसहस्राणि पदानि ३६०५०००। सूर्यप्रज्ञप्तौ मनगंनोनन-पञ्चलक्षत्रिसहस्राणि पदानि ५०३०००। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ गोरमनोनन त्रिलक्षपञ्चविंशतिसहस्राणि पदानि ३२५०००। द्वीपसागरप्रज्ञप्तौ मरगतनोननं द्विपञ्चाशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ५२३६०००। व्याख्याप्रज्ञप्तौ जवगातनोननं—चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ८४३६०००। सूत्रे जजलक्खा—अष्टाशीतिलक्षाणि पदानि ८८०००००। प्रथमानुयोगे मननन—पञ्चसहस्राणि पदानि ५०००। चतुर्दशपूर्वसमुच्चये धमननोननंनामं—पञ्चनवतिकोटिपञ्चाशल्लक्षपञ्चपदानि ९५५०००००५। जलादौ जलगतादिपञ्चचूलिकास्थानेषु प्रत्येके रनधजधरानन-द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्रद्विशतानि पदानि। २०९८९२००।

अक्षरोंकी संज्ञासे चन्द्रप्रज्ञप्तिमें 'गतनमनोननं' अर्थात् छत्तीस लाख पाँच हजार ३६०५००० पद है। सूर्यप्रज्ञप्तिमें 'मनगंनोननं' पाँच लाख तीन हजार ५०३००० पद हैं। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें 'गोरमनोननं' तीन लाख पच्चीस हजार ३२५००० पद है। द्वीपसागर प्रज्ञप्तिमें 'मरगतनोननं' बावन लाख छत्तीस हजार ५२३६००० पद है। व्याख्याप्रज्ञप्तिमें 'जवगातनोन' चौरासी लाख छत्तीस हजार ८४३६००० पद है। सूत्रमे 'जजलक्खा' अठासी लाख ८८००००० पद हैं। प्रथमानुयोगमें 'मननन' पाँच हजार ५००० पद है। चौदह पूर्वोंमे 'धममननोननंनामं' पंचानवे कोटि पचास लाख पाँच ९५५०००००५ पद हैं। जलगता आदि

२०९८९२०० रूपगतंगळु २०९८९२००। याजकनामेनाननं एककोटचेकाशीतिलक्षंगळुमय्दुसहस्रपदंगळु चंद्रप्रज्ञप्त्यादि पंचप्रकारमनुळ्ळ परिकर्म्मयुतियोळप्पुवु १८१०५००० कानवधिवाचनाननं दशकोटचेकोनपंचाशल्लक्षषट्चत्वारिंशत्सहस्रपदंगळु पुनः[1] मत्तं जलगतादि पंचप्रकारभूतचूलिकायोगमिदु १०४९४६०००।

५ पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं।
णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं ॥३६५॥
छस्सयपण्णासाइं चउसयपण्णास छसयपणुवीसा।
विहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥

पंचाशदष्टचत्वारिंशत्पंचत्रिंशत् त्रिंशत् पंचाशत् पंचाशत् त्रयोदशशतं नवतिर्द्वाचत्वारिंशत्
१० पूर्व्वे पंच पंचाशत् त्रयोदशशतानि। षट्छतपंचाशश्चतुःशतपंचाशत् षट्शतपंचविंशतिद्वाभ्यां लक्षाभ्यां गुणितास्तु पंचमरूपोन षड्युताः षष्टि।

५०। ४८। ३५। ३०। ५०। ५०। १३००। ९०। ४२। ५५। १३००।—६५०। ४५०। ६२५।

पूर्व्वे उत्पादादि पूर्व्वदोळु चतुर्द्दशविधदोळं यथाक्रमदिदमी संख्ये पेळल्पट्टुदु। वस्तुविन
१५ द्रव्यद उत्पादव्ययध्रौव्यादि अनेकधर्म्मपूरकमुत्पादपूर्व्वमक्कु—मद्दु जीवादिद्रव्यंगळ नानानयविषयक्रम यौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्यंगळु त्रिकालगोचरंगळु। नवधर्म्मंगळप्पुवु। तत्परिणत द्रव्यमुं नवविधमक्कुं। उत्पन्नमुत्पद्यमानमुत्पत्स्यमानं नष्टं नश्यत् नंक्ष्यत् स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति इतु नवप्रकारंगळप्पुवुत्पन्नत्वादिगळ्गे प्रत्येकं नवविधत्वसंभवदत्तणिदमेकाशीतिविकल्पधर्म्म-

---

चन्द्रप्रज्ञप्त्यादिपञ्चविधपरिकर्मयुतौ याजकनामेनानन—एककोट्येकाशीतिलक्षपञ्चमहस्राणि पदानि १८१०५०००।
२० जलगतादिपञ्चविधचूलिकायोग पुन कानवधिवाचनानन—दशकोटचेकोनपञ्चाशल्लक्षषट्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि १०४९४६००० ॥३६३-३६४॥

उत्पादादिचतुर्दशपूर्वेषु यथाक्रम पदसख्योच्यते—वस्तुनो—द्रव्यस्य उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकमुत्पादपूर्वं तच्च जीवादिद्रव्याणा नानानयविषयक्रमयौगपद्यसभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नवधर्मा भवन्ति। तत्परिणत द्रव्यमपि नवविध। उत्पन्न उत्पद्यमान उत्पत्स्यमान। नष्ट नश्यन् नक्ष्यत्।
२५ स्थित तिष्ठत् स्थास्यदिति नवप्रकारा भवन्ति। उत्पन्नादीना प्रत्येकं नवविधत्वसभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरि-

---

प्रत्येक चूलिकामें 'रनधजधरानन' दो कोटि नौ लाख नवासी हजार दो सौ पद है २०९८९-२००। चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि पाँच परिकर्मोंसे मिलाकर 'याजकनामेनानन' एक कोटि इक्यासी लाख पाँच हजार पद है १८१०५०००। जलगता आदि पाँचो चूलिकाओंके पदोंका जोड़ 'कानवधिवाचनान' दस कोटि उनचास लाख छियालीस हजार १०४९४६००० है ॥३६३-३६४॥

३० उत्पाद आदि चौदह पूर्वोंमें क्रमसे पद संख्या कहते है—द्रव्यके उत्पाद-व्यय आदि अनेक धर्मोंका पूरक उत्पादपूर्व है। जीवादि द्रव्योंके नाना नय विषयक क्रम और युगपत् होनेवाले तीन कालके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप नौ धर्म होते है अतः उन धर्मरूप परिणत द्रव्य भी नौ प्रकारका है—उत्पन्न, उत्पद्यमान, उत्पत्स्यमान, जो नष्ट हो चुका, हो
३५ रहा है, होगा, स्थिर हुआ, हो रहा है, होगा ये नौ प्रकार हैं। उत्पाद आदि प्रत्येकके नौ

परिणतद्रव्यवर्णनमं माळ्कु-। मल्लि द्विलक्षंगळिंदं गुणितपंचाशत्तुगळगेककोटिपदंगळप्पुवु १००००००। अग्रस्य द्वादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानमग्रायणं तत्प्रयोजनमग्रायणीयं द्वितीयं पूर्वमीयग्रायणी पूर्व्वं सप्तशत सुनय दुर्णय पंचास्तिकाय षड्द्रव्य सप्ततत्व नवपदार्थंगळु मोदलादवनु वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणिताष्टचत्वारिंशत्पदंगळु षण्णवतिलक्षंगळप्पुवेंबुदर्थं।— ९६००००० । वीर्य्यस्य जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य अनुप्रवादोनुवर्णनमस्मिन्निति वीर्य्यानुप्रवादसंगं तृतीयपूर्व्वमदु आत्मवीर्य्य परवीर्य्य उभयवीर्य्य क्षेत्रवीर्य्य कालवीर्य्य भाववीर्य्य तपोवीर्य्य मेंदित्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्य्यंगळं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचत्रिंशत्पदंगळु सप्ततिलक्षपदंगळप्पुवेंबुदर्थं—७००००००। अस्तिनास्तीत्यादि धर्म्माणां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं पूर्व्वमिदु।

जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य। स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य। स्यादस्ति च नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य। स्यादवक्तव्यं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तया वक्तुमशक्यत्वात्। स्यादस्ति चावक्तव्यं च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य एंदितेकानेकनित्यानित्याद्यनंतधर्म्मंगळ विधिनिषेधायक्तव्यभंगंगळ प्रत्येक-

---

णतद्रव्यवर्णन करोति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशत्पदानि एका कोटिरित्यर्थ १००००००। अग्रस्य द्वादशाङ्गेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयन ज्ञान अग्रायण। तत्प्रयोजनम् अग्रायणीयं, द्वितीय पूर्वं। तच्च सप्तशतसुनयदुर्णयपञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन् वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणिताष्टचत्वारिंशत्पदानि षण्णवतिलक्षाणि इत्यर्थः। ९६००००० । वीर्यस्य—जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य अनुप्रवादः—अनुवर्णन अस्मिन्निति वीर्यानुप्रवादं नाम तृतीय पूर्वं। तच्च आत्मवीर्यपरवीर्योभयवीर्यक्षेत्रवीर्यकालवीर्यभाववीर्यतपोवीर्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चत्रिंशत्पदानि सप्ततिलक्षाणीत्यर्थ ७००००००। अस्तिनास्तीत्यादिधर्माणा प्रवादः-प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवाद चतुर्थ पूर्व। तच्च जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य। स्यादस्ति नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय संयुक्तमाश्रित्य। स्यादवक्तव्य युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा ववतुमशक्यत्वात्। स्यादस्ति

प्रकार हो सकते हैं अतः इक्यासी धर्म परिणत द्रव्यका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पचास अर्थात् एक कोटि पद होते है। अग्र अर्थात् द्वादशांगमें प्रधान भूत वस्तुका 'अयन' अर्थात् ज्ञान अग्रायण है। वह जिसका प्रयोजन है वह दूसरा पूर्व अग्रायण है। वह सात सौ सुनयों, दुर्नयों, पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदिका वर्णन करता हे। उसमें दो लाखसे गुणित अड़तालीस अर्थात् छानवे लाख पद है। वीर्य अर्थात् जीवादि वस्तुकी सामर्थ्यका 'अनुप्रवाद' अर्थात् वर्णन जिसमें होता है वह वीर्यानुप्रवाद नामक तीसरा पूर्व है। वह अपने वीर्य, पराये वीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपवीर्य आदि समस्त द्रव्य गुण पर्यायोके वीर्यका कथन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पैंतीस अर्थात् सत्तर लाख पद है। अस्ति-नास्ति आदि धर्मोंका 'प्रवाद' अर्थात् प्ररूपण जिसमें है वह अस्ति-नास्ति प्रवाद नामक चतुर्थ पूर्व है। जीवादि वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षा स्यादस्ति है। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा स्यात्नास्ति है। क्रमसे स्वद्रव्यक्षेत्रकालभाव और परद्रव्यक्षेत्रकाल

द्विसंयोगत्रिसंयोगजंगळ त्रित्र्येकसंख्यंगळ ७ मेलनंत सप्तभंगियं प्रश्नवशदिंदमों दे वस्तुविनोळविरोधदिंद सभविपुदं नानानयमुख्यगौणभावदिंद प्ररूपिसुगुमिल्लि । द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदंगळु षष्टिलक्षपदंगळप्पुवेबुदर्त्थं ६०००००० ल ।

ज्ञानानां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवादं । पंचमं पूर्व्वमिदु । मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यय केवलमेंदु पंच सम्यज्ञानंगळु । कुमतिकुश्रुतविभंगमेंब त्र्यज्ञानंगळिवेरर स्वरूपसंख्याविषयफळंगळनाश्रयिसियवक्के प्रामाण्याप्रामाण्यविभागमुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदंगळु रूपोनकोटिगळप्पुवेकेदोडे पंचमरूऊणमेंबुदरिंद पंचमप्पूर्व्वदोळु द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदलब्धदोळोंदु कोटियोळोंदु गुंदुगुमेदु पेळ्दुदरिंदं ५ = अ = ९९९९९९९ । सत्यस्य प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति सत्यप्रवादं षष्ठपूर्व्वमिदु वाग्गुप्तियुमं वाक्संस्कारकारणगळुमं वाक्प्रयोगमुमं द्वादशभाषेगळुमं वक्तृभेदगळुमं बहुविधमृषाभिधानमुमं दशविधसत्यमुमं प्ररूपिसुगु-

चावक्तव्य च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय च सयुक्तमाश्रित्य । स्यान्नास्ति चावक्तव्य च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय च सयुक्तमाश्रित्य । स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्य च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय च सयुक्तमाश्रित्य । इत्येकानेकनित्यानित्याद्यनन्तधर्माणा विधिनिषेधावक्तव्यभङ्गाना प्रत्येकद्विसयोगत्रिसयोगजाना त्रित्र्येकसख्याना मेलन सप्तभङ्गी प्रश्नवशादेकस्मिन्नेव वस्तुनि अविरोधेन सभवन्ती नानानयमुख्यगौणभावेन प्ररूपयति । तत्र द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदानि षष्टिर्लक्षाणि इत्यर्थ । ६०००००० । ज्ञानाना प्रवाद प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवाद पञ्चम पूर्वं, तच्च मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, कुमतिकुश्रुतविभङ्गाख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसख्याविषयफलानि आश्रित्य तेषा प्रामाण्याप्रामाण्यविभाग च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशत्पदानि किन्तु पञ्चमरूऊणमिति कथनादेकरूपोना कोटिरित्यर्थ ९९९९९९९ । सत्यस्य प्रवाद प्ररूपणमस्मिन्निति सत्यप्रवाद षष्ठ पूर्वं, तच्च वाग्गुप्ति वाक्सस्कारकारणानि वाक्प्रयोग द्वादश भाषा

भावकी अपेक्षा स्यात् अस्ति नास्ति है। एक साथ स्वपर द्रव्यक्षेत्रकाल भावकी अपेक्षा अवक्तव्य है क्योकि एक साथ दोनों धर्मोंका कहना शक्य नहीं है। स्वद्रव्यक्षेत्रकाल भाव तथा युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकाल भावकी अपेक्षा स्यादस्ति अवक्तव्य है। परद्रव्यक्षेत्रकालभाव और युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा स्यात् नास्ति अवक्तव्य है। तथा क्रमसे स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभाव और युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। इस प्रकार एक अनेक, नित्य अनित्य आदि अनन्त धर्मोंके विधि निषेध और अवक्तव्य भंगोंके प्रत्येक, दो सयोगी, तीन संयोगी तीन, तीन और एक भंगोंकी संख्याको मिलानेसे सप्तभंगी होती है। वह प्रश्नके अनुसार एक वस्तुमें किसी विरोधके बिना नाना नयोंकी मुख्यता और गौणतासे कथन करती है। उसमें दो लाखसे गुणित तीस अर्थात् साठ लाख पद है। ज्ञानका जिसमें प्रवाद अर्थात् प्ररूपण हो वह ज्ञानप्रवाद नामक पंचम पूर्व है। वह मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इन पाँच सम्यग्ज्ञानोंका तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधि इन तीन अज्ञानोंका स्वरूप, संख्या, विषय और फलको लेकर कथन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पचास किन्तु 'पंचमरूवूण' कहनेसे एक कम एक करोड़ पद होते हैं। सत्यका प्रवाद अर्थात् कथन जिसमें हो वह सत्यप्रवाद पूर्व है। वह वचन गुप्ति, वचनके सस्कारके कारण, वचन प्रयोग, बारह भाषा, वक्ताके भेद, अनेक प्रकारका असत्य और

१. म मेलण स । २. म °लिदिवर ।

मदें तें दोडे असत्यनिवृत्तियुं मेणु मौनमुं वाग्गुप्तियुमें बुदक्कुं। उरःकंठ शिरोजिह्वामूलदंत-नासिकातालवोष्ठाख्यंगळष्टस्थानंगळुं स्पृष्टतेषत्स्पृष्टता विवृततेषद्विवृतता संवृतता रूपंगळप्प पंच-प्रयत्नंगळुं वाक्संस्कार कारणगळे बुवक्कुं। शिष्टदुष्टरूपमप्प वाक्प्रयोगमुं तल्लक्षणशास्त्र संस्कृतादि व्याकरणंगळुं वाक्प्रयोगमें बुदक्कुं। इदिर्वानिंदं माडल्पट्टुदें बनिष्टकथनरूपमभ्याख्यानमुं। परस्परविरोधकारणकलहवचनमुं परगे दोषसूचनपैशुन्यवचनमुं। धर्म्मार्थकाममोक्षाऽसंबधवचन- ५
रूपमवद्धप्रलापमुं इंद्रियविषयंगळोळु रत्युत्पादिकेयप्प वाग्रूपरीतिवचनमुं। अवरोळऽरत्युत्पादिका वाग्रूपारतिवचनमुं परिग्रहार्ज्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतु वाक्कुपधिवचनमें बुदक्कुं। व्यवहारदोळु वंचनाहेतुवाक् निकृतिवाक्कें बुदक्कुं। तपोज्ञानाधिकरोळमविनयहेतुवाक्कप्रणतिवागें बुदु अक्कुं। स्तेयहेतुवचनं मोषवागें बुदक्कुं। सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवागें बुदक्कुं। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवागें बुदक्कुमिंतु द्वादशभाषेगळे बुदक्कुं। १०

द्वींद्रियादिपंचेंद्रियपर्य्यंतमाद जीवंगळु व्यक्तवक्तृत्वपर्य्यायमनुळ्ळ-वक्तृगळप्पुवु। द्रव्य-क्षेत्रकालभावाश्रितमप्प बहुविधमसत्यवचनं मृषाभिधानमक्कुं। जनपदसत्यादिदशप्रकारमप्प सत्यं मुंपेळल्पट्ट लक्षणमुळ्ळुदक्कुमी सत्यप्रवाददोळु द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदंगळु षडुत्तरकोटियक्कु-

---

वक्तृभेदान् बहुविध मृषाभिधान दशविध सत्य च प्ररूपयति। तद्यथा-असत्यनिवृत्तिर्मौन वा वाग्गुप्तिः। उरःकण्ठशिरोजिह्वामूलदन्तनासिकातालवोष्ठाख्यानि अष्टौ स्थानानि। स्पृष्टतेषत्स्पृष्टताविवृततेषद्विवृततासवृतता- १५
रूपा पञ्च प्रयत्नाश्च वाक्सस्कारकारणानि। शिष्टदुष्टरूप प्रयोगः वाक्प्रयोग. तल्लक्षणशास्त्रं सस्कृतादि-व्याकरण वा। इदमनेन कृतमित्यनिष्टकथनरूपमभ्याख्यान। परस्परविरोधकारण कलहवचन। परदोषसूचन पैशुन्यवचनं। धर्मार्थकाममोक्षासबद्धवचनरूप अबद्धप्रलाप। इन्द्रियविषयेषु रत्युत्पादिका वाक् रतिवाक्। तेषु अरत्युत्पादिका वाक् अरतिवाक्। परिग्रहार्जनसरक्षणाद्यासक्तिहेतुर्वाक् उपधिवाक्। व्यवहारवञ्चनाहेतुर्वाक् निकृतिवाक्। तपोज्ञानादिपु अविनयहेतुर्वाक् अप्रणतिवाक्। स्तेयहेतुर्वाग् मोषवाक्। सन्मार्गोपदेशवाक् २०
सम्यग्दर्शनवाक्। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवाक्। एवं द्वादशभाषा। द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ता जीवा व्यक्ताव्यक्तवक्तृत्वपर्याया. वक्तार.। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रित बहुविधमसत्यवचनं मृपावाक्। जनपदसत्यादि-

---

दस प्रकारके सत्यका कथन करता है। इन सबका स्वरूप इस प्रकार है—असत्यसे निवृत्ति या मौनको वचन गुप्ति कहते हैं। उर, कण्ठ, शिर, जिह्वा मूल, दाँत, नाक, तालु, ओठ ये आठ स्थान है। स्पृष्टता, किंचित् स्पृष्टता, विवृतता, किंचित् विवृतता, संवृतता ये पाँच प्रयत्न है। २५
ये सब स्थान और प्रयत्न वचन संस्कारके कारण है। शिष्टरूप और दुष्टरूप वचनप्रयोग होता है। 'यह इसने किया है' ऐसा अनिष्ट वचन अभ्याख्यान है। परस्परमें विरोधका कारण वचन कलह वचन है। दूसरेके दोषको सूचन करना पैशून्य वचन है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-से असम्बद्ध वचन असम्बद्ध प्रलाप है। जो वचन इन्द्रियोंके विषयोंमें रति उत्पन्न करे वह रतिवाक् है। जो उनमें अरति उत्पन्न करे वह अरतिवाक् है। परिग्रहके अर्जन और संरक्षण- ३०
में आसक्ति उत्पन्न करनेवाले वचन उपधिवाक् है। व्यवहारमें छल-कपट करनेमें हेतु वचन निकृतिवाक् है। तपस्वी और ज्ञानी जनोंके प्रति अविनयमें हेतु वचन अप्रणतिवाक् है। चोरी करनेमें हेतु वचन मोषवाक् है। सन्मार्गका उपदेश करनेवाले वचन सम्यक्दर्शनवाक् है। मिथ्या मार्गका उपदेश करनेवाले वचन मिथ्यादर्शनवाक् है। इस प्रकार बारह प्रकार-की भाषा है। दोइन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीव, जिनमे वक्तृत्व पर्याय व्यक्त और ३५
अव्यक्त है वे वक्ता हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावकी अपेक्षा अनेक प्रकारका असत्य वचन

मेकं दोडे छज्जुदा छट्टे एदिदरिंदं षष्ठपूर्व्वदोळु द्विलक्षगुणितपंचाशल्लब्धमों दु कोटिप्रमितसंख्येयोळु षडच्युतत्वकथनदिंदं १०:०००००६।

आत्मनः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति आत्मप्रवादं सप्तमं पूर्व्वमदु। आतमन "जीवो कत्ताय वत्ताय पाणि भोत्ताय पोग्गळो। वेदो विह्णू सयंभू य सरीरी तह माण ओ। सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य सक्कुडो। असक्कुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य॥" इत्यादि स्वरूपमं वर्णिसुगुमदे तेंदोडे :—जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणान् धारयति जीविष्यति जीवितपूर्व्वश्चेति जीवः। व्यवहारनयेन शुभाशुभकर्म्म निश्चयनयेन चित्पर्य्यायान् करोतीति कर्त्ता। व्यवहारेण सत्यमसत्यं वक्तीति वक्ता निश्चयेनावक्ता। नयद्वयोक्तप्राणाः सत्यस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्म्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूपं भुंक्ते अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्म्मनोकर्म्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गलो। निश्चयेनापुद्गलः। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्व्वं वेत्ति जानातीति वेद.। व्यवहारेण स्वोपात्तदेह समुद्घाते सर्व्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्व्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः। यद्यपि व्यवहारेण कर्म्मवशाद्भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमतीति

दशप्रकारसत्य तत्प्रागुक्तलक्षणमिति। तत्र सत्यप्रवादे द्विलक्षगुणितपञ्चाशत्पदानि षड्भिरधिकानि। छज्जुदा छट्टे इति वचनात् षडुत्तरकोटिरित्यर्थ। १०००००००६। आत्मन प्रवाद प्ररूपणमस्मिन्निति आत्मप्रवाद सप्तम पूर्वं। तच्च आत्मन 'जीवो कर्त्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो। वेदो विण्हू सयम्भू य सरीरी तह माणवो॥ सत्ता जन्तू य माणी य मायी जोगी य सकुडो। असकुडो य खेत्तण्हू अन्तरप्पा तहेव य।' इत्यादिस्वरूप वर्णयति। तद्यथा—जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणाश्च धारयति। जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीव। व्यवहारनयेन शुभाशुभ कर्म निश्चयनयेन चित्पर्यायाश्च करोतीति कर्ता। व्यवहारनयेन सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता निश्चयेनावक्ता। नयद्वयोक्तप्राणा सन्ति अस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफल निश्चयेन स्वस्वरूप च भुङ्क्ते अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गल। निश्चयेनापुद्गल। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचर सर्व वेत्ति जानातीति वेद। व्यवहारेण स्वोपात्तदेह समुद्घाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णु। यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद्भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वय स्वस्मिन्नेव

सृषावाक् है। जनपदसत्य आदि दस प्रकारके सत्यके लक्षण योगमार्गणामें कह आये है। सत्य प्रवादमें दो लाख गुणित पचास तथा छह अधिक अर्थात् एक कोटि छह पद है। आत्माका जिसमें प्रवाद अर्थात् कथन है वह आत्मप्रवाद नामक सातवाँ पूर्व है। वह आत्माके स्वरूपका वर्णन करता है कि जीव कर्ता, वक्ता, प्राणी, भोक्ता, पुद्गल, वेदी, विष्णु, स्वयम्भू, शरीरी, मानव, सक्ता, जन्तु, मानी, मायी योगी, संकुट-असंकुट, क्षेत्रज्ञ तथा अन्तरात्मा है। इनका स्वरूप कहते है—जीव अर्थात् जीता है जो व्यवहारनयसे दस प्राणोंको और निश्चयनयसे केवलज्ञान, केवलदर्शन सम्यक्त्वरूप चेतन प्राणोका धारण करता है। तथा जो आगे जियेगा, पूर्वमे जिया है वह जीव है। व्यवहारनयसे शुभ-अशुभ कर्मको और निश्चयनयसे चित्पर्यायोंको करता है अतः कर्ता है। व्यवहार नयसे सत्य और असत्य बोलता है अतः वक्ता है। निश्चयनयसे अवक्ता है। दोनो नयोंसे कहे गये प्राणवाला होनेसे प्राणी है। व्यवहारनयसे शुभ-अशुभ कर्मोंके फलको भोक्ता है और निश्चयसे अपने स्वरूपका अनुभव करता है अत. भोक्ता है। व्यवहारनयसे कर्म और नोकर्म पुद्गलोंको पूरता और गलाता है अतः पुद्गल है। निश्चयसे अपुद्गल है। दोनों नयोसे लोक और अलोकमें रहने-

स्वयंभूः। व्यवहारेणौदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेनाशरीरः। व्यवहारेण मानवादिपर्य्यायपरिणतो मानवः। उपलक्षणात्। नारकस्तिर्य्यङ्देवश्च निश्चयेन मनौ ज्ञाने भवो मानवः। व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता। निश्चयेनासक्ता। व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारी नानायोनिषु जायत इति जंतुः। संसारीत्यर्थः। निश्चयेनाजंतुः। व्यवहारेण मानोऽहंकारोस्यास्तीति मानी निश्चयेनामानी। व्यवहारेण माया वंचनास्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी। व्यवहारेण योगः कायवाग्मनस्कर्म्मास्यास्तीति योगी। निश्चयेनायोगी। व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकसर्व्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटते संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुटः। समुद्घाते सर्व्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः। निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्प्पणाभावादनुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः। नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः व्यवहारेणाष्टकर्म्माभ्यंतरवर्त्तिस्वभावत्वात्। निश्चयेन चैतन्याभ्यंतरवर्त्तिस्वभावत्वाच्चांतरात्मा। इल्लि चशब्दंगळुक्तानुक्तसमुच्चया-

ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमति इति स्वयम्भू.। व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेनाशरीरः। व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानव', उपलक्षणान्नारक' तिर्यङ् देवश्च। निश्चयेन मनौ ज्ञाने भव. मानव। व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता। निश्चयेनासक्ता। व्यवहारेण चतुर्गतिससारे नानायोनिषु जायत इति जन्तुः संसारी इत्यर्थ. निश्चयेनाजन्तुः। व्यवहारेण मान. अहकारः अस्यास्तीति मानी, निश्चयेनामानी। व्यवहारेण माया वञ्चना अस्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी। व्यवहारेण योगः कायवाङ्मनःकर्मास्यास्तीति योगी, निश्चयेनायोगी। व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन सकुटति सकुचितप्रदेशो भवतीति सकुटः, समुद्घाते सर्वलोकं व्याप्नोतीत्यसकुट.। निश्चयेन प्रदेशसहारविसर्पणाभावादनुभय किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थ'। नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञ व्यवहारेण अष्टकर्माभ्यन्तरवर्तिस्वभावत्वात्, निश्चयेन चैतन्याभ्यन्तरवर्तिस्वभावत्वाच्च अन्तरात्मा। इति—यशब्दौ उक्तानुक्तसमुच्चयार्थौ। तत. कारणाद् व्यवहाराश्रयेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्या-

वाले त्रिकालवर्ती सब पदार्थोंको जानता है अतः वेत्ता या वेद है। व्यवहार नयसे अपने गृहीत शरीरको और समुद्घात दशामें सर्व लोकमें व्यापता है, निश्चयनयसे ज्ञानके द्वारा सबको 'वेवेष्टि' अर्थात् व्यापता है जानता है अतः विष्णु है। यद्यपि व्यवहारनयसे कर्मवश भव-भवमें परिणमन करता है तथापि निश्चयनयसे 'स्वयं' अपनेमें ही ज्ञान-दर्शनरूप स्वभावसे 'भवति' अर्थात् परिणमन करता है अतः स्वयम्भू है। व्यवहारनयसे औदारिक शरीरवाला होनेसे शरीरी है और निश्चयसे अशरीरी है। व्यवहारसे मानव आदि पर्यायरूप परिणत होनेसे मानव है, उपलक्षणसे नारक, तिर्यंच और देव है। निश्चयनयसे मनु अर्थात् ज्ञानमें रहता है अतः मानव है। व्यवहारसे अपने परिवार, मित्र आदि परिग्रहमें आसक्त होनेसे सक्ता है, निश्चयसे असक्ता है। व्यवहारसे चार गतिरूप संसारमें नाना योनियोंमें जन्म लेता है अतः जन्तु यानी संसारी है। निश्चयसे अजन्तु है। व्यवहारसे माया कषायसे युक्त होनेसे मायी है, निश्चयसे अमायी है। व्यवहारसे मन-वचन-कायकी क्रियारूप योगवाला होनेसे योगी है, निश्चयसे अयोगी है। व्यवहारसे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके सर्व जघन्य शरीरके परिमाणरूपसे 'संकुटति' संकुचित प्रदेशवाला होनेसे संकुट है। किन्तु समुद्घातसे सर्वलोकमें व्याप्त होनेसे असंकुट है। निश्चयसे प्रदेशोंके संकोच विस्तारका अभाव होनेसे अनुभय है अर्थात् मुक्तावस्थामें अन्तिम शरीरसे कुछ कम शरीर प्रमाण रहता है। दोनों नयोंसे क्षेत्र अर्थात् लोक-अलोक और अपने स्वरूपको जाननेसे क्षेत्रज्ञ है। व्यवहारसे आठ कर्मोंके अभ्यन्तरवर्ती स्वभाववाला होनेसे और निश्चयसे चैतन्यके अभ्यन्तरवर्ती

त्थंगळदु कारणदिंदं। व्यवहाराश्रयदिंदं कर्म्मनोकर्म्मरूपमूर्त्तद्रव्यानादिसंबंधदिंदं मूर्त्तनु निश्चयनयाश्रयदिनमूर्त्तमेवित्याद्यात्मधर्म्मंगळ समुच्चयं माडल्पडुगुमीयात्मप्रवाददोळु द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदंगळु षड्विंशतिकोटिगळप्पुवेंबुदत्थं। २६०००००० २६ को।

कर्म्मणः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति कर्म्मप्रवादमष्टमं पूर्व्वमदु। मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबंधोदयोदीरणासत्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्म्मस्वरूपं सांपरायिकेर्य्यापथतपस्याऽऽधाकर्म्मादियुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितनवतिपदंगळेककोटियुमशीतिलक्षंगळप्पुवेंबुदत्थं १८०००००० १८० ल। प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यानं नवमं पूर्व्वमदु नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावंगळनाश्रयिसि पुरुषसंहननबलाद्यनुसारदिंदं परिमितकालं सेणपरिमितकालं प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृत्तियनुपवासविधियं तद्भावनांगसुमं पंचसमिति त्रिगुप्त्यादिकमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदंगळु चतुरशीतिलक्षपदंगळप्पुवेंबुदत्थं ८४००००० ८४ ल। विद्यानामनुवादोऽनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वमदु। सप्तशतमंगुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्येगळुं रोहिण्यादिपंचशतमहाविद्येगळुमं तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमंत्रतंत्रपूजाविधानंगळुमं सिद्धमादविद्येगळ फलविशेषगळुमनेंदु महानिमित्तंगळुमनवावुवंदोडे अंतरिक्ष

दिसवन्धेन मूर्त निश्चयनयाश्रयेणामूर्त इत्यादय आत्मधर्मा समुच्चीयन्ते। तस्मिन्नात्मप्रवादे द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थं २६०००००००। कर्मण प्रवाद प्ररूपणमस्मिन्निति कर्मप्रवादमष्टम पूर्वं तच्च मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबन्धोदयोदीरणसत्त्वाद्यवस्थ ज्ञानावरणादिकर्मस्वरूप समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितनवतिपदानि एककोट्यशीतिलक्षाणीत्यर्थ. १८०००००। प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यान नवम पूर्वं। तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसहननबलाद्यनुसारेण परिमितकाल अपरिमितकालं वा प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृत्ति उपवासविधि तद्भावनाङ्ग पञ्चसमितित्रिगुप्त्यादिक च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदानि चतुरशीतिलक्षाणीत्यर्थं। ८४ ल। विद्याना अनुवाद अनुक्रमेण वर्णन यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशम पूर्वं, तच्च सप्तशतानि अङ्गुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्या. रोहिण्यादिपञ्चशतमहाविद्या तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमन्त्र-

स्वभाववाला होनेसे अन्तरात्मा है। 'इति और च' शब्द उक्त और अनुक्त अर्थके समुच्चयके लिए है। इससे व्यवहारनयसे कर्म-नोकर्मरूप मूर्त द्रव्य आदिके सम्बन्धसे मूर्तिक है और निश्चयनयसे अमूर्तिक है, इत्यादि आत्मधर्मका समुच्चय किया जाता है। उस आत्मप्रवादमें दो लाखसे गुणित तेरह सौ अर्थात् छब्बीस कोटि पद है। कर्मका प्रवाद अर्थात् कथन जिसमे हो वह कर्मप्रवाद नामक आठवाँ पूर्व है। वह मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे भिन्न, अनेक प्रकारके बन्ध उदय उदीरणा सत्ता आदि अवस्थाको लिये हुए ज्ञानावरण आदि कर्मोंके स्वरूपको तथा समवदान, ईर्यापथ, तपस्या, आधाकर्म आदिका कथन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित नव्वे अर्थात् एक कोटि इक्यासी लाख पद हैं। जिसमें 'प्रत्याख्यायते' अर्थात् सावद्य कर्मका निषेध किया गया है वह प्रत्याख्यान नामक नौवाँ पूर्व है। वह नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके आश्रयसे पुरुषके संहनन और बलके अनुसार परिमित काल या अपरिमितकालके लिए प्रत्याख्यान अर्थात् सावद्य वस्तुओंसे निवृत्ति, उपवासकी विधि, उसकी भावना, पाँच समिति, तीन गुप्ति आदिका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित बयालीस अर्थात् चौरासी लाख पद है। विद्याओंका अनुवाद अर्थात् अनुक्रमसे वर्णन जिसमे हो वह विद्यानुवाद पूर्व है। वह अंगुष्ठप्रसेना आदि सात सौ अल्पविद्याओं,

१. व साम्परायिकेर्या°।

भौमांगस्वरस्वप्नलक्षणव्यंजनच्छिन्ननामंगळुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचपंचाशत्पदंगळेककोटिदशलक्षंगळप्पुवेंबुदत्थं। ११० ल। ११०००००। कल्याणानां वादः प्ररूपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेकादशं पूर्व्वमदु। तीर्त्थकरचक्रधरबलदेववासुदेवादिगळ गर्भावतरणादिकल्याणंगळं महोत्सवंगळुमं तीर्त्थकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावना तपोविशेषाद्यनुष्ठानंगळं चंद्रसूर्य्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादियुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदंगळु षड्विंशतिकोटिपदंगळप्पुवेंबुदत्थं। २६ को २६०००००००। प्राणानामावादः प्ररूपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्व्वं मदु। कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्व्वेदमं भूतिकर्म्मजांगुलिकप्रक्रमं ईळापिंगलसुषुम्नादि बहुप्रकारप्राणापानविभागमं दशप्राणंगळुपकारकापकारकद्रव्यंगळुमं गत्याद्यनुसारदिं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचाशदुत्तरषट्शतपदंगळु त्रयोदशकोटिगळप्पुवेंबुदत्थं। १३ को १३०००००००।

क्रियादिभिर्न्नृत्यादिभिर्व्विशालं विस्तीर्णं शोभायमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशपूर्व्वमदु। संगीतशास्त्रच्छंदोलंकारादिद्वासप्ततिकळेगळं चतुःषष्टिस्त्रीगुणंगळुमं शिल्पादिविज्ञानंगळुमं चतुरशीतिगळुं गर्भाधानादिकंगळुमं अष्टोत्तरशतमं सम्यग्दर्शनादिगळुमं पंचविंशतियं देववंदनादि-

---

तन्त्रपूजाविधानानि सिद्धविद्याना फलविशेषान् अष्टमहानिमित्तानि, (तानि कानि ?) अन्तरीक्षभौमाङ्गस्वरस्वप्नलक्षणव्यञ्जनच्छिन्ननामानि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चपञ्चाशत्पदानि एककोटिदशलक्षाणीत्यर्थ॰। ११० ल। कल्याणाना वाद. प्ररूपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेकादशं पूर्वं, तच्च तीर्थकरचक्रधरबलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवादीना गर्भावतरणकल्याणादिमहोत्सवान् तत्कारणतीर्थकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावनातपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थ. २६ को.। प्राणाना आवादः प्ररूपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वं, तच्च कायचिकित्साद्यष्टाङ्गमायुर्वेद भूतिकर्मजांगुलिकप्रक्रम इलापिङ्गलासुषुम्नादिवहुप्रकारप्राणापानविभागं दशप्राणाना उपकारकापकारकद्रव्याणि गत्याद्यनुसारेण वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशदुत्तरषट्छतानि पदानि त्रयोदशकोट्य इत्यर्थः १३ को। क्रियादिभिः नृत्त्यादिभि, विशाल विस्तीर्णं शोभमान वा क्रियाविशाल त्रयोदशं पूर्वम्। तच्च संगीतशास्त्रछन्दोलङ्कारादिद्वासप्ततिकलाः चतु षष्टिस्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीतिगर्भा-

---

रोहिणी आदि पॉच सौ महाविद्याओंका स्वरूप, सामर्थ्य, साधन, मन्त्र-तन्त्र-पूजा विधान, सिद्ध विद्याओंका फल विशेष तथा आकाश, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न नामक आठ महानिमितोंका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित पचपन अर्थात् एक करोड़ दस लाख पद है। कल्याणोंका वाद अर्थात् कथन जिसमें है वह कल्याणवाद नामक ग्यारहवॉ पूर्व है। वह तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदिके गर्भमें अवतरण कल्याण आदि महोत्सवोंका, उसके कारण तीर्थंकरत्व आदि पुण्य विशेषमें हेतु सोलह भावना, तपोविशेष आदिके अनुष्ठान, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्रोंका गमन, ग्रहण, शकुन आदिके फल आदिका वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित तेरह सौ अर्थात् छब्बीस करोड़ पद है। प्राणोंका आवाद—कथन जिसमें है वह प्राणावाद नामक बारहवॉ पूर्व है। वह कायचिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, जननकर्म, जांगुलि प्रक्रम, गणित, इला, पिगला, सुपुम्ना आदि अनेक प्रकारके श्वास-उच्छ्वासके विभागका तथा दस प्राणोंके उपकारक-अपकारक द्रव्यका गति आदिके अनुसार वर्णन करता है। उसमें दो लाखसे गुणित छह सौ पचास अर्थात् तेरह करोड़ पद है। नृत्य आदि क्रियाओंसे विशाल अर्थात् विस्तीर्ण या शोभमान क्रियाविशाल नामक तेरहवॉ पूर्व है। वह संगीत शास्त्र, छन्द, अलंकार आदि बहत्तर कला, स्त्री सम्बन्धी चौसठ गुण, शिल्पादि विज्ञान, चौरासी गर्भाधान आदि क्रिया,

गळुमं नित्यनैमित्तिकक्रियेगळुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचाशदधिकचतुःशतपदंगळु नवकोटिगळप्पुवेंबुदत्थं ९ को ९०००००००। त्रिलोकानां बिंदवोऽवयवाः सारं च वर्ण्ययन्तेऽस्मिन्निति त्रिलोकबिंदुसारं चतुर्दशपूर्व्वमदु। त्रिलोकस्वरूपमं मूवत्तारु परिकर्म्ममं एंटु व्यवहारंगळुमं नाल्कुबीजगळुमं मोक्षस्वरूपम तद्गमनकारणक्रियेगळुमं मोक्षसुखस्वरूपमुमं वर्णिसुगुमल्लि द्विलक्षगुणितपंचविंशत्यधिकषट्शतपदंगळु द्वादशकोटिगळुं पंचाशल्लक्षंगळप्पुवे बुदत्थं १२५०००००००।

सामायियचउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं।
वेणयिय किरिकम्मं दस वेयालं च उत्तरज्झयणं ॥३६७॥

सामायिकचतुर्व्विंशतिस्तवं ततो वदना प्रतिक्रमणं। वैनयिकं कृतिकर्म्मदशवैकालिकं चोत्तराध्ययनं।

कप्पव्ववहारकप्पा कप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥३६८॥

कल्प्यव्यवहारं कल्प्याकल्प्यं महाकल्प्यं च पुंडरीकं। महापुंडरीक निषिद्धिकेति चतुर्दशांगबाह्यकं।

सामायिकमेंदुं चतुर्व्विंशतिस्तवनमेंदुं वंदनेयेंदुं प्रतिक्रमणमेंदुं वैनैकमेंदुं कृतिकर्म्ममेंदुं दशवैकालिकमेंदुं वुत्तराध्ययनमेंदुं कल्प्यव्यवहारमेंदुं कल्प्याकल्प्यमेंदुं महाकल्प्यमेंदुं पुंडरीकमेंदुं महापुंडरीकमेंदु निषिद्धिकेयुमेंदितंगबाह्यश्रुतं चतुर्दशविधमक्कुमल्लि सम् एकत्वेनात्मनि आयः आगमन। परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्यात्मनि प्रवृत्तिः समयः अयमहं ज्ञाता दृष्टा चेति। येंदितात्मविषयोपयोगमेंबुदत्थं एकेंदोडात्मनोव्वंगंये ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवमप्पुदरिंदं।

धानादिका अष्टोत्तरशतसम्यग्दर्शनादिका. पञ्चविंशतिं देववन्दनादिका नित्यनैमित्तिका. क्रियाश्च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चाशदधिकचतु शतपदानि नवकोट्य इत्यर्थ। ९ को। त्रिलोकाना बिन्दव अवयवा. सार च वर्ण्यन्ते अस्मिन्निति त्रिलोकबिन्दुसार चतुर्दशं पूर्वं तच्च त्रिलोकस्वरूप षट्त्रिंशत्परिकर्माणि अष्टौ व्यवहारान् चत्वारि बीजानि मोक्षस्वरूप तद्गमनकारणक्रिया मोक्षसुखस्वरूप च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपञ्चविंशत्यधिकषट्शतानि पदानि द्वादशकोटिपञ्चाशल्लक्षाणीत्यर्थ १२ को ५० ल ॥३६५-३६६॥

सामायिक चतुर्विंशतिस्तव ततो वन्दना प्रतिक्रमण वैनयिक कृतिकर्म दशवैकालिक उत्तराध्ययन कल्प्यव्यवहार कल्प्याकल्प्य महाकल्प्य पुण्डरीक महापुण्डरीक निपिद्धिका च इत्यङ्गबाह्यश्रुत चतुर्दशविधं भवति। तत्र सम एकत्वेन आत्मनि आय आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्ति समाय,

---

एक सौ आठ, सम्यग्दर्शन आदि पच्चीस क्रिया, तथा देववन्दना आदि नित्य-नैमित्तिक क्रियाओका वर्णन करता है। उसमें दो लाख गुणित चार सौ पचास अर्थात् नौ करोड़ पद हैं। तीनों लोकोंके विन्दु अर्थात् अवयव और सार जिसमें वर्णित है वह त्रिलोकबिन्दुसार नामक चौदहवाँ पूर्व है। वह तीनों लोकोंका स्वरूप, छत्तीस परिकर्म, आठ व्यवहार, चार बीज, मोक्षका स्वरूप, मोक्षमें गमनके कारण क्रिया, और मोक्ष सुखका स्वरूप कहता है। उसमे दो लाखसे गुणित छह सौ पचीस अर्थात् बारह कोटि पचास लाख पद है ॥३६५-६६॥

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, निपिद्धिका, इस प्रकार अंगबाह्य श्रुत चौदह प्रकारका होता है। 'सम' अर्थात् एकत्व रूपसे आत्मामें

अथवा सम् समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आय उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानमुं तत्प्रतिपादकं शास्त्रमुं सामायिकमेंबुदर्थं। नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदर्दिदं सामायिकं षड्विधमक्कुमल्लि इष्टानिष्टनामंगळोळु रागद्वेषनिवृत्तियु सामायिकाभिधानमुं मेणु नामसामायिकमक्कुं। मनोज्ञामनोज्ञस्त्रीपुरुषाद्याकारकाष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमेगळोळु रागद्वेषनिवृत्तियुं यिदु सामायिकमेंदितु स्थाप्यमानासद्भावस्थापनेयुमप्पक्षतादिपुंज मेणु स्थापनासामायिकमक्कुं। इष्टानिष्टंगळप्प चेतनाचेतनद्रव्यंगळोळु रागद्वेषनिवृत्तियुं सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकतच्छरीरादि मेणु द्रव्यसामायिकमक्कुं। ग्रामनगरवनादिक्षेत्रंगलिष्टानिष्टगळोळु रागद्वेषनिवृत्तिक्षेत्रसामायिकमक्कुं। वसंतादि ऋतुगळोळं शुक्लपक्षकृष्णपक्षंगळोळं दिवसवारनक्षत्रादिगळप्पिष्टानिष्टकालविशेषंगळोळं रागद्वेषनिवृत्तिकालसामायिकमक्कुं। जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपपर्य्यायक्के मिथ्यादर्शनकषायादिसक्लेशनिवृत्तियुं सामायिकशास्त्रोपयोगयुक्तज्ञायकनु तत्पर्य्यायपरिणतमप्प सामायिकं मेणु भावसामायिकमक्कुं। तत्कालसंबधिगळप्प चतुर्व्विंशतितीर्त्थंकरुगळ नामस्थापनाद्रव्यभावंगळनाश्रयिसि पंचमहाकल्याण-

अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेति आत्मविषयोपयोग इत्यर्थ, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकत्वसभवात्। अथवा सं समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आय उपयोगस्य प्रवृत्ति समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्यनैमित्तिकानुष्ठान तत्प्रतिपादक शास्त्र वा सामायिकमित्यर्थ। तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभाव भेदात्षड्विधम्। तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्ति सामायिकमित्यभिधान वा नाम सामायिकम्। मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्यकारासु काष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्ति। इद सामायिकमिति स्थाप्यमानं यत् किञ्चिद्वस्तु वा स्थापनासामायिकम्। इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्ति· सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकः तच्छरीरादिर्वा द्रव्यसामायिकम्। ग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु रागद्वेषनिवृत्ति· क्षेत्रसामायिकम्। वसन्तादिऋतुषु शुक्लकृष्णपक्षयोर्दिनवारनक्षत्रादिषु च इष्टानिष्टेषु कालविशेषेषु रागद्वेषनिवृत्ति. कालसामायिकम्। भावस्य जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्ति सामायिकशास्त्रोपयोगयुक्तज्ञायक तत्पर्यायपरिणतसामायिक वा भावसामायिकम्। तत्तत्कालसम्बन्धिना चतुर्विंशतितीर्थकराणा

'आय' अर्थात् आगमनको समाय कहते है। अर्थात् परद्रव्योंसे निवृत्त होकर आत्मामें प्रवृत्तिका नाम समाय है, यह मै ज्ञाता-दृष्टा हूँ इस प्रकारका आत्मविषयमें उपयोग समाय है. क्योंकि आत्मा ही ज्ञेय और वही ज्ञायक होता है। अथवा 'सं' यानी सम—राग-द्वेषसे अवाधित मध्यस्थ आत्मामें 'आय' अर्थात् उपयोगकी प्रवृत्ति समाय है। वह प्रयोजन जिसका है वह सामायिक है। नित्य-नैमित्तिक अनुष्ठान और उनका प्रतिपादक शास्त्र सामायिक है यह इसका अर्थ है। वह सामायिक नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे छह प्रकारकी है। इष्ट-अनिष्ट नामोंमें राग-द्वेषकी निवृत्ति अथवा सामायिक नाम नामसामायिक है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्त्री-पुरुष आदिके आकारोंमें काष्ठ, लेप्य और चित्र आदिसें अंकित प्रतिमाओंमें राग-द्वेष न करना, अथवा जिस-किसी वस्तुमें 'यह सामायिक है' इस प्रकार स्थापना करना स्थापनासामायिक है। इष्ट-अनिष्ट, चेतन-अचेतन द्रव्योंमें राग-द्वेषकी निवृत्ति अथवा सामायिक शास्त्रका ज्ञाता जो उसमें उपयोगवान् नहीं है, अथवा उसका शरीर आदि द्रव्यसामायिक है। इष्ट-अनिष्ट, ग्राम-नगर आदि क्षेत्रोंमें राग-द्वेष न करना क्षेत्रसामायिक है। वसन्त आदि ऋतु, शुक्ल-कृष्ण पक्ष, दिन, वार, नक्षत्रादि इष्ट-अनिष्ट काल विशेषोंमें राग-द्वेष न करना कालसामायिक है। भाव अर्थात् जीवादि तत्त्व विषयक उपयोगरूप पर्यायकी मिथ्यादर्शन कषाय आदि संक्लेशोंसे निवृत्ति, अथवा सामा-

चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्य्यपरमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्म्मोपदेशनादितीर्थकरत्वमहिमेय स्तुतियु चतुर्व्विंशतिस्तवनमेंबुदु । तत्प्रतिपादकशास्त्रमु चतुर्व्विंशतिस्तवनमेंदु पेळल्पट्टुदु । ततः परं एकतीर्थकरालंबनचैत्यचैत्यालयादिस्तुतिय वंदनेयेंबुदु तत्प्रतिपादकशास्त्रमुं वंदनेयेंदु पेळल्पट्टु । प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते इनेनेति प्रतिक्रमणं । दैवसिक रात्रिक पाक्षिक चातुर्म्मासिक सांवत्सरिकेर्य्यापथिकोत्तमार्त्थभेददिं सप्तविधमक्कुं । भरतादिक्षेत्रमं दुःषमादिकालमं षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदंगळुमनाश्रयिसि तत्प्रतिपादकमप्प शास्त्र प्रतिक्रमणमेंबुदक्कुं । विनयः प्रयोजनमस्येति वैनयिकमेंदु ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारविषयमप्प पंचविधविनयविधानम पेळ्गु ।

कृतेः क्रियायाः कर्म्म विधानमस्मिन् वर्ण्यत इति कृतिकर्म्म । ई कृतिकर्म्मशास्त्रमर्हत्सिद्धाचार्य्यबहुश्रुतसाधुगळमोदलाद नवदेवतावंदनानिमित्तमं आत्माधीनता प्रादक्षिण्य त्रिवारत्र्यवनति चतुःशिरोद्वादशावर्त्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानमं वर्णिसुगुं । विशिष्टाः कालाः विकालाः तेषु भवानि वैकालिकानि । दशवैकालिकानि वर्ण्यन्तेस्मिन्निति दशवैकालिकं । ई दशवैकालिक-

---

नामस्थापनाद्रव्यभावानाश्रित्य पञ्चमहाकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यपरमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्मोपदेशनादितीर्थकरत्वमहिमस्तुति चतुर्विंशतिस्तव तस्य प्रतिपादक शास्त्र वा चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते । तस्मात्पर एकतीर्थंकरालम्बना चैत्यचैत्यालयादिस्तुति वन्दना तत्प्रतिपादक शास्त्र वा वन्दना इत्युच्यते । प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमण तच्च दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसावत्सरिकैर्यापथिकौत्तमार्थिकभेदात्सप्तविध, भरतादिक्षेत्र दु षमादिकाल षट्सहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदश्च आश्रित्य तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रतिक्रमणम् । विनय प्रयोजनमस्येति वैनयिक तच्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारविषय पञ्चविधविनयविधान कथयति । कृते क्रियाया कर्म विधान अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म । तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादिनवदेवतावन्दनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतु शिरो - द्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधान च वर्णयति । विशिष्टा काला विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि

यिक शास्त्रमे उपयुक्त उसका ज्ञाता, अथवा सामायिक पर्यायरूप परिणत व्यक्ति भावसामायिक है । उस-उस काल सम्बन्धी चौबीस तीर्थंकरोके नाम, स्थापना, द्रव्य और भावको लेकर महाकल्याणक, चौतीस अतिशय, आठ महाप्रातिहार्य, परम औदारिक दिव्य शरीर, समवसरण सभा, धर्मोपदेशना आदिके द्वार, तीर्थंकरकी महिमाका स्तवन चतुर्विंशतिस्तव है । अथवा उसका कथन करनेवाला शास्त्र चतुर्विंशतिस्तव कहा जाता है । उसके पश्चात् एक तीर्थंकरको लेकर चैत्य-चैत्यालय आदिकी स्तुति वन्दना है । अथवा उसका प्रतिपादक शास्त्र वन्दना कहलाता है । जिसके द्वारा 'प्रतिक्रम्यते' अर्थात् प्रमादसे किये हुए दैवसिक आदि दोषोका विशोधन किया जाता है वह प्रतिक्रमण है । वह दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक और पारमार्थिकके भेदसे सात प्रकारका है । भरत आदि क्षेत्र, दुषमादि काल, छह संहननोंसे युक्त स्थिर-अस्थिर आदि पुरुषोंके भेदोंको लेकर प्रतिक्रमणका कथन करनेवाला शास्त्र भी प्रतिक्रमण है । विनय जिसका प्रयोजन है वह वैनयिक है । वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उपचारके भेदसे पाँच प्रकारकी विनयका कथन करता है । जिसमें कृति अर्थात् क्रियाकर्मका विधान कहा जाता है वह क्रियाकर्म है । उसमें अर्हन्त, सिद्ध-आचार्य, बहुश्रुत (उपाध्याय), साधु आदि नौ देवताओंकी वन्दनाके निमित्त आत्माधीनता (अपने अधीन होना), तीन बार प्रदक्षिणा, तीन बार नमस्कार, चार

शास्त्रं मुनिजनंगळाचरण गोचारविधियं पिंडशुद्धिलक्षणमं वर्णिसुगु। उत्तराण्यधीयंते पठ्यन्तेऽस्मिन्नित्युत्तराध्ययनं। ई उत्तराध्ययनशास्त्रं चतुर्व्विधोपसर्गगंगळ द्वाविंशतिपरीषहंगळ सहनविधानमं तत्फलमुमं यितु प्रश्नमादोडितुत्तरमेंदितुत्तरविधानमं वर्णिसुगुं। कल्प्यं योग्यं व्यवह्रियते अनुष्ठीयतेऽस्मिन्निति अनेनेति वा कल्प्यव्यवहारः। ई कल्प्यव्यवहारशास्त्रं साधुगळ योग्यानुष्ठानविधानमं अयोग्यसेवेयोळु प्रायश्चित्तमुमं वर्णिसुगुं। कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्यं तद्वर्ण्यतेऽस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यं। ई कल्प्याकल्प्यशास्त्रं द्रव्यक्षेत्रकाल भावंगळनाश्रयिसि मुनिगलिगिदु कल्प्यमिदकल्प्यमेंदु योग्यायोग्यविभागमं वर्णिसुगुं।

महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं। ई महाकल्प्यशास्त्रं जिनकल्पसाधुगळगे उत्कृष्टसंहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्त्तिगळगे योग्यमप्प त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानमं स्थविरकल्पिगळ दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कार सल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेषमुमं वर्णिसुगुं। पुंडरीकमेंब शास्त्रं भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिविमानगळोळुत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्ज्जर-

---

दश वैकालिकानि वर्ण्यन्तेऽस्मिन्निति दशवैकालिक तच्च मुनिजनानां आचरणगोचरविधिं पिण्डशुद्धिलक्षणं च वर्णयति। उत्तराणि अधीयन्ते पठ्यन्ते अस्मिन्निति उत्तराध्ययन तच्च चतुर्विधोपसर्गाणां द्वाविंशतिपरीषहाणां च सहनविधानं तत्फलं एवं प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति। कल्प्य योग्यं व्यवह्रियते अनुष्ठीयतेऽस्मिन्ननेनेति वा कल्प्यव्यवहार, स च साधूना योग्यानुष्ठानविधानं अयोग्यसेवायां प्रायश्चित्तं च वर्णयति। कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्यं, तद्वर्ण्यते अस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यम्। तच्च द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य मुनीनामिदं कल्प्यं योग्यं इदमकल्प्यं अयोग्यमिति विभागं वर्णयति। महता कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं शास्त्रं तच्च जिनकल्पसाधूनां उत्कृष्टसहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्तिना योग्य त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पानां दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेषं च वर्णयति। पुण्डरीकं नाम शास्त्र भावनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिविमानेषु उत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्जरासम्यक्त्वसंयमादिविधान तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेष च वर्णयति। महच्च तत्पुण्डरीकं तन्महापुण्डरीकं शास्त्रं

वार सिर नमाना, बारह आवर्त आदि रूप नित्य नैमित्तिक क्रिया विधानका वर्णन होता है। विशिष्ट कालोंको विकाल कहते हैं, उनमें होनेको वैकालिक कहते हैं। जिसमें दस वैकालिकोंका वर्णन हो वह दशवैकालिक है। उसमें मुनियोंका आचार, गोचरीकी विधि और भोजन शुद्धिका लक्षण कहा गया है। जिसमें उत्तरोंका अध्ययन हो वह उत्तराध्ययन है। उसमें चार प्रकारके उपसर्गों और बाईस परीषहोंके सहनेका विधान, उनका फल तथा इस प्रकारके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार होता है इसका कथन होता है। जो कल्प्य अर्थात् योग्यके व्यवहारका कथन करता है वह कल्प्यव्यवहार है। उसमें साधुओंके योग्य अनुष्ठानके विधानका और अयोग्यका सेवन होनेके प्रायश्चित्तका कथन होता है। जिसमें कल्प्य और अकल्प्यका कथन हो वह कल्प्याकल्प्य है। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आश्रयसे यह मुनियोंके योग्य और यह अयोग्य है ऐसा कथन करता है। महान् पुरुषोंका कल्प्य जिसमें हो वह महाकल्प्य शास्त्र है। उसमें जिनकल्पी साधुओंके उत्कृष्ट, संहनन आदि विशिष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको लेकर त्रिकाल योग आदि अनुष्ठानका तथा स्थविर कल्पी साधुओंकी दीक्षा, शिक्षा, गणका पोषण, आत्मसंस्कार, सल्लेखना, उत्तम स्थानगत उत्कृष्ट आराधना विशेषका कथन होता है। पुण्डरीक नामक शास्त्र भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें उत्पत्तिके कारण दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यक्त्व, संयम आदिका विधान तथा उस-उस उपपाद स्थानके वैभव विशेषको कहता है। महान्

रासम्यक्त्वसंयमादिविधानमं तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेषमुमं वर्णिसुगुं।

महापुंडरीकमेंब शास्त्रं महर्द्धिकरप्पेंद्रप्रतीद्रादिगळोळुत्पतिकारण तपोविशेषाद्याचारमं वर्णिसुगुं।

निषीधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञेयोळु कप्रत्ययमागुत्तिरलु निषिद्धिका। एंदितु प्रायश्चित्तशास्त्रमेंबुदर्त्थमदु प्रमाददोषविशुध्यर्त्थं बहुप्रकारमप्प प्रायश्चित्तमं वर्णिसुगुं। निशीतिका वा एंदितु क्वचित्पाठं काणल्पडुगुं।

इंतु चतुर्द्दशविधमप्प अगबाह्यश्रुतं परिभाविसल्पडुवुदु। अनंतरं शास्त्रकारं श्रुतज्ञानमाहात्म्यमं पेळ्दपं।

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाण ॥३६९॥

श्रुतं केवळं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात्। श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानम्।

श्रुतज्ञानमुं केवलज्ञानमुमेंबेरडुं ज्ञानंगळु बोधात् अरिविंनिंदं समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्य्यायपरिज्ञानदिंदं समानंगळेयप्पुवु। तु मत्ते इदु विशेषमुंटदे तेंदोडे परमोत्कर्षपर्य्यंतप्राप्तमादुदादोडं श्रुतकेवलज्ञानं सकलपदार्थंगळोळु परोक्षं अविशदमस्पष्टममूर्त्तंगळोळमर्त्थपर्य्यायंगळोळमुळिद सूक्ष्मांशंगळोळं विशदत्वदिंदं प्रवृत्यभावमप्पुदरिंदं। मूर्त्तंगळोळु व्यंजनपर्य्यायंगळप्प स्थूलांशगळप्प स्वविषयंगळोळु अवधिज्ञानादियंते साक्षात्करणाभावदिंदमुं सकलावरणवीर्य्यांतराय निरवशेषक्षयो-

---

तच्च महर्धिकेषु इन्द्रप्रतीन्द्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरण वर्णयति। निषेधन प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धि सज्ञाया कप्रत्यये निषिद्धिका प्रायश्चित्तशास्त्रमित्यर्थ, तच्च प्रमाददोषविशुद्धयर्थं बहुप्रकार प्रायश्चित्त वर्णयति। निसीतिका इति क्वचित्पाठो दृश्यते। एव चतुर्दशविध अङ्गबाह्यश्रुत परिभावनीयम् ॥३६७-३६८॥ अथ शास्त्रकार श्रुतज्ञानमाहात्म्य वर्णयति—

श्रुतज्ञान केवलज्ञान चेति द्वे ज्ञाने बोधात् समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानात् सदृशे समाने भवत तु-पुन अय विशेष। स क ? परमोत्कर्षपर्यन्य प्राप्तमपि श्रुतकेवलज्ञान सकलपदार्थेषु परोक्षं अविशद अस्पष्ट अमूर्तेषु अर्थपर्यायेषु अन्येषु सूक्ष्माशेषु विशदत्वेषु विशदत्वेन प्रवृत्यभवात्। मूर्तेष्वपि व्यञ्जनपर्यायेषु स्थूलाशेषु

पुण्डरीक शास्त्रको महापुण्डरीक कहते है। उसमें महर्धिक इन्द्र-प्रतीन्द्र आदिमें उत्पत्तिके कारण तपोविशेष आदि आचरणका कथन होता है। निषेधन अर्थात् प्रमादसे लगे दोषोंका निराकरण निषिद्धि है। संज्ञामें 'क' प्रत्यय करनेपर निषिद्धिका होता है, उसका अर्थ है प्रायश्चित्त शास्त्र। उसमें प्रमादसे लगे दोषोंकी विशुद्धिके लिए बहुत प्रकारके प्रायश्चित्तोंका वर्णन है। कहींपर 'निसीतिका' पाठ भी देखा जाता है। इस प्रकार चौदह प्रकारका अंगबाह्य श्रुत जानना ॥३६७-३६८॥

अब शास्त्रकार श्रुतज्ञानके माहात्म्यको कहते है—

श्रुतज्ञान और केवलज्ञान ये दोनो ज्ञान समस्त वस्तुओंके द्रव्य-गुण-पर्यायोंको जाननेकी अपेक्षा समान हैं। किन्तु इतना विशेष है कि परम उत्कर्ष पर्यन्तको प्राप्त भी श्रुतज्ञान समस्त पदार्थोंमें परोक्ष होता है, अस्पष्ट जानता है, अमूर्त अर्थ पर्यायोंमें तथा अन्य सूक्ष्म अंशोंमें स्पष्ट रूपसे उसकी प्रवृत्ति नहीं होती। मूर्त भी व्यंजन पर्यायोंको अपने विषयोंके

त्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं । समस्तत्वंदिदं विशदं स्पष्टमक्कुं । मूर्त्तामूर्त्तार्थव्यंजनपर्य्यायस्थूलसूक्ष्मांशंगळप्प सर्व्ववरोळु प्रवृत्ति संभविसुगुमप्पुदरिंदं । साक्षात्करणदिंदमुं अक्षमात्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्षं प्रत्यक्षं । उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्षं परोक्षमिति । एंदितु प्रत्यक्षपरोक्षशब्दनिरुक्तिसिद्धलक्षणभेददिंदमा श्रुतज्ञानकेवलज्ञानंगळगे सादृश्याभावमक्कुमंते समंतभद्रस्वामिगळिंदमुं पेळल्पट्टुदु । "स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्व्वतत्त्वप्रकाशने । भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवे" दें दितु । [आप्तमी.]

अनंतरं शास्त्रकारं पंचषष्टिगाथासूत्रंगळिंदमवधिज्ञानप्ररूपणेयं पेळलुपक्रमिसिदपं ।

अवहीयदित्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समये ।
भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणेत्ति णं बेंति ॥३७०॥

अवधीयत इत्यवधिः सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये । भवगुणप्रत्ययविहितं यदवधिज्ञानमितीदं ब्रुवंति ।

अवधीयते द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळिंदं परिमीयते पवणिसल्पडुगु मेंदितवधि येंबुददेकेंदोडे मतिश्रुतकेवलंगळंते द्रव्यादिगळिंदमपरिमितविषयत्वाऽभावमप्पुदरिंदं सीमाविषयज्ञानमेंदु समये परमागमदोळु भणितं पेळल्पट्टुदु । यत् आवुदोंदु तृतीयज्ञानं भवगुणप्रत्ययविहितं भवो नरकादिपर्य्यायः गुणः सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिः । भवश्च गुणश्च भवगुणौ तावेव प्रत्ययौ ताभ्यां कारणाभ्यां

स्वविषयेषु अवधिज्ञानादिव साक्षात्करणाभावाच्च । सकलावरणवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयोत्पन्न केवलज्ञान प्रत्यक्षं समस्तत्त्वेन विशद स्पष्टं भवति । मूर्तामूर्तार्थव्यञ्जनपर्यायस्थूलसूक्ष्माशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्तिसभवात् साक्षात्कारणाच्च । अक्ष आत्मानमेव प्रतिनियत परानपेक्षं प्रत्यक्ष, उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्ष परोक्षमिति निरुक्तिसिद्धलक्षणभेदात्तयो. श्रुतज्ञानकेवलज्ञानयो· सादृश्याभावात् । तथा चोक्त समन्तभद्रस्वामिभि —

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने । भेद साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम भवेत् ॥— [आप्तमी०] ॥३६९॥ अथ शास्त्रकार पञ्चषष्टिगाथासूत्रैः अवधिज्ञानप्ररूपणामुपक्रमते—

अवधीयते—द्रव्यक्षेत्रकालभावै परिमीयते इत्यवधिर्मतिश्रुतकेवलवद्द्रव्यादिभिरपरिमितविषयत्वाभावात् । यत्तृतीय सीमाविषय ज्ञान समये परमागमे वर्णित तदिदमवधिज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवन्ति । तत्कति-

---

स्थूल अंशको अवधिज्ञानकी तरह साक्षात्कार करनेमें असमर्थ है । किन्तु समस्त ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयसे उत्पन्न केवलज्ञान पूर्ण रूपसे स्पष्ट होता है । मूर्त अमूर्त, अर्थपर्याय, व्यंजनपर्याय, स्थूल अंश, सूक्ष्म अंश सभीमें उसकी प्रवृत्ति है और सभीको साक्षात् जानता है । अक्ष अर्थात् आत्मासे ही जो ज्ञान होता है, परकी अपेक्षा नही करता उसे प्रत्यक्ष कहते है । उपात्त इन्द्रियादि और अनुपात्त प्रकाशादि परकारणोंकी अपेक्षासे होनेवाला ज्ञान परोक्ष है । इस प्रकार निरुक्तिसे सिद्ध लक्षणोंके भेदसे श्रुतज्ञान और केवलज्ञानमे समानता नही है । स्वामी समन्तभद्रने भी अपने आप्तमीमांसामें कहा है—

स्याद्वाद अर्थात् श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों ही सर्व तत्त्वोंके प्रकाशक है किन्तु भेद यही है कि केवलज्ञान साक्षात् प्रत्यक्ष जानता है और श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है । जो इन दोनों ज्ञानोंमें-से एकका भी विषय नहीं है वह अवस्तु है ॥३६९॥

अब शास्त्रकार पैसठ गाथाओंसे अवधिज्ञानका कथन करते है—

'अवधीयते' अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके द्वारा जिसका परिमाण किया जाता है वह अवधि है । अर्थात् जैसे मति, श्रुत और केवलज्ञानका विषय द्रव्यादिकी अपेक्षा

विहितमुक्तं भवगुणप्रत्ययविहितं भवप्रत्ययत्वदिंदं गुणप्रत्ययत्वदिंदं पेळल्पट्टुदं तदिदमवधिज्ञानमिति। अतप्पिदनवधिज्ञानमेंदितु ब्रुवंति अर्हदादिगळु पेळ्वरु। सीमाविषयमनुळ्ळवधिज्ञानं भवप्रत्ययमेंदु गुणप्रत्ययमेंदितु द्विविधमक्कुमेंबुदुतात्पर्य्यं।

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थेवि सव्वअंगुत्थो।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिण्हंभवो ॥३७१॥

भवप्रत्ययकं सुरनारकाणां तीर्त्थेपि सर्व्वांगोत्थ। गुणप्रत्ययकं नरतिरश्चां शंखादिचिह्नभवं॥

भवप्रत्ययावधिज्ञानं देवर्कळोळं नारकरोळं चरमभवतीर्थंकरोळं संभविसुगुमदुवुमवरोळु सर्व्वांगोत्थमक्कुं। सर्व्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्य्यांतरायद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमेंबुदत्थं। गुणप्रत्ययावधिज्ञानं पर्य्याप्तमनुष्यर्गं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंचर्गं संभविसुगुमदुवुमवरोळु शंखादिचिह्नभवं नाभिप्रदेशदिंदं मेगण शंखपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्य्यांतरायकर्म्मद्वयक्षयोपशमोत्थमेंबुदत्थं। भवप्रत्ययावधिज्ञानदोळु दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावमादोडमदनपेक्षिसदे भवप्रत्ययत्वमरियल्पडुगुं। गुणप्रत्ययावधिज्ञानदोळु तिर्य्यग्मनुष्यभवसद्भावमादोडमदनपेक्षिसदे गुणप्रत्ययत्वमरियल्पडुगुं।

विध भवगुणप्रत्ययविहित—भव नरकादिपर्याय, गुण सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादि भवगुणौ प्रत्ययौ कारणे ताभ्यां विहितमुक्त भवगुणप्रत्ययविहित भवप्रत्ययत्वेन गुणप्रत्ययत्वेन अवधिज्ञान द्विविध कथितमित्यर्थ ॥३७०॥

तत्र भवप्रत्ययावधिज्ञान सुराणा नारकाणा चरमभवतीर्थकराणा च सभवति। तच्च तेषा सर्वांगोत्थं भवति। सर्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यान्तरायकर्मद्वयक्षयोपशमोत्थ भवतीत्यर्थ। गुणप्रत्ययं अवधिज्ञान नराणा पर्याप्तमनुष्याणा तिरश्चा च सज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्ततिरश्चा सभवति। तच्च तेषा शङ्खादिचिह्नभव भवति, नाभेरुपरि शङ्खपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यान्तराय - कर्मद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थ। भवप्रत्यये अवधिज्ञाने दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव भवप्रत्ययत्व ज्ञातव्यम्। गुणप्रत्ययेऽवधिज्ञाने तिर्यग्मनुष्यभवसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव गुणप्रत्ययत्व ज्ञातव्यम् ॥३७१॥

अपरिमित है वैसा इसका नहीं है। परमागममें जो तीसरा सीमा विषयक ज्ञान कहा है उसे अर्हन्त आदि अवधिज्ञान कहते हैं। भव अर्थात् नरकादि पर्याय और गुण अर्थात् सम्यग्दर्शन विशुद्धि आदि। भव और गुण जिनके कारण हैं वे भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय नामक अवधिज्ञान हैं। इस तरह अवधिज्ञानके दो भेद है ॥३७०॥

उनमें-से भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों, नारकियों और चरमशरीरी तीर्थंकरोंके होता है। तथा यह समस्त आत्माके प्रदेशोंमें वर्तमान अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय नामक दो कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है इसलिए इसे सर्वांगसे उत्पन्न कहा जाता है। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान पर्याप्त मनुष्योंके और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंके होता है। और वह उनके शंख आदि चिह्नोंसे उत्पन्न होता है। अर्थात् नाभिसे ऊपर शंख, पद्म, वज्र, स्वस्तिक, मच्छ, कलश आदि शुभ चिह्नोंसे युक्त आत्मप्रदेशोंमें स्थित अवधिज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है। भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी सम्यग्दर्शन, विशुद्धि आदि गुण रहते है फिर भी उसकी उत्पत्तिमें उन गुणोंकी अपेक्षा नहीं होती, मात्र भवधारण करनेसे ही अवधिज्ञान होता है इसीलिए उसे भवप्रत्यय कहते हैं। गुणप्रत्यय अवधिज्ञानमें यद्यपि मनुष्य और तिर्यंचका भव रहता है फिर भी अवधिज्ञानकी उत्पत्तिमें उसकी अपेक्षा

गुणपच्चइगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही ॥३७२॥

गुणप्रत्ययकः षोढा अनुगावस्थितप्रवर्द्धमानेतरे । देशावधिः परमावधिः सर्व्वावधिरिति च त्रिधावधिः ॥

आवुदों दु गुणप्रत्ययावधिज्ञानमदु अनुगमनुगामियें दुमवस्थितमें दु प्रवर्द्धमानमें दुं मूरुतेरनप्पुवु । इतरंगळु अननुगमननुगामियें दुमनवस्थितमें दुं हीयमानमुमे दितिवु मूरुतेरनप्पुवंतु कूडि अनुगामि अननुगामि अवस्थितमनवस्थित वर्द्धमानहीयमानमेंदितु षड्विधमक्कुमल्लि आवुदों दवधिज्ञानं तन्न स्वामियप्प जीवनं बळिसल्गुमदनुगामियें बुदक्कुमदुवुं क्षेत्रानुगामियें दुं भवानुगामियें दुं उभयानुगामियें दितु त्रिविधमक्कुमल्लि आवुदो दु तां पुट्टिद क्षेत्रदिंदमन्यक्षेत्रदोळु विहारिसुव जीवनं बळिसल्गुं । भवांतरदोळु बळिसल्लददु क्षेत्रानुगामियें बुदक्कुमावुदों दु तां पुट्टिद भवदिंदमन्यभवदोळं स्वस्वामियं बळिसल्गुमदु भवानुगामियें बुदक्कुमावुदों दु तां पुट्टिद क्षेत्रभवंगळेरडरत्तणिंदमन्यभरतैरावतविदेहादिक्षेत्रदोळं देवमनुष्यादिभवंगळोळं वर्त्तमानजीवमुं बळिसल्गुमदुभयानुगामियें बुदक्कुमावुदों दु तन्न स्वामियप्प जीवनं बळिसलुवुदल्लददननुगामियें बुदक्कुमदुवुं क्षेत्राऽननुगामियें दुं भवाननुगामियें दुमुभयाननुगामियें दुं त्रिविधमक्कुं । मल्लि आवुदो दु क्षेत्रांतरमं बळिसल्वुदल्लदु तां पुट्टिद क्षेत्रदोळे किडुगुं । भवांतरं बळिसल्गे मेण्माण्गे अदु क्षेत्रा-

---

यद्गुणप्रत्ययावधिज्ञान तदनुगाम्यननुगाम्यवस्थितमनवस्थितं प्रवर्धमानं हीयमानं चेति षड्विधम् । तत्र यदवधिज्ञान स्वस्वामिन जीवमनुगच्छति तदनुगामि । तच्च क्षेत्रानुगामि भवानुगामि उभयानुगामीति त्रिविधम् । यत् स्वोत्पत्तिक्षेत्रात् अन्यक्षेत्रे विहरन्तं जीवमनुगच्छति भवान्तर नानुगच्छति तत्क्षेत्रानुगामि भवति । यत् उत्पत्तिभवादन्यभवे स्वस्वामिनं अनुगच्छति तद्भवानुगामि भवति । यत्स्वोत्पत्तिक्षेत्रभवाभ्या अन्यत्र भरतैरावतविदेहादिक्षेत्रे देवमनुष्यादिभवे च वर्तमान जीवमनुगच्छति तदुभयानुगामि भवति । यदवधिज्ञान स्वस्वामिन जीव नानुगच्छति तदननुगामि । तदपि क्षेत्राननुगामि भवाननुगामि उभयाननुगामीति त्रिविधम् । तत्र यत्क्षेत्रान्तरं न गच्छति स्वोत्पत्तिक्षेत्रे एव विनश्यति भवान्तरं गच्छतु वा मा गच्छतु तत् क्षेत्राननुगामि । यद्भवान्तर नानुगच्छति स्वोत्पत्तिभव एव विनश्यति, क्षेत्रान्तरं गच्छतु वा मा वा गच्छतु

नहीं होती, केवल सम्यग्दर्शनादि गुणोंके कारण ही अवधिज्ञान प्रकट होता है इसलिए वह गुणप्रत्यय कहा जाता है ॥३७१॥

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान, अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित, अनवस्थित, वर्धमान, हीयमानके भेदसे छह प्रकारका है । उनमें-से जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवका अनुगमन करता है वह अनुगामी है । वह तीन प्रकारका है—क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और उभयानुगामी । जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्तिक्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें जानेवाले जीवके साथ जाता है, किन्तु भवान्तरमें साथ नहीं जाता वह क्षेत्रानुगामी है । जो उत्पत्तिक्षेत्रसे स्वामीका मरण होनेपर दूसरे भवमें भी साथ जाता है वह भवानुगामी है । जो अपने उत्पत्तिक्षेत्र और भवसे अन्यत्र भरत, ऐरावत, विदेह आदि क्षेत्रमें और देव, मनुष्य आदिके भवमें जीवका अनुगमन करता है वह उभयानुगामी है । जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवका अनुगमन नहीं करता वह अननुगामी है । वह भी क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामीके भेदसे तीन प्रकारका है । जो अवधि अन्य क्षेत्रमें नहीं जाता अपने उत्पत्तिक्षेत्रमें ही नष्ट हो जाता है,

ननुगामियें बुदक्कुमावुदो दु भवांतरमं बळिसल्वुदल्तु तां पुट्टिद भवदोळे केडुगुं। क्षेत्रांतरमं बळिसळ्गे मेण्माण्गे अदु भवाननुगामियें बुदक्कुमावुदोदु क्षेत्रांतरमं भवांतरमुमं बळिसल्वुदल्तु। स्वोत्पन्नक्षेत्रभवंगळोळे केडुगुमदुभयाननुगामियें बुदक्कुमावुदो दु हानियुं वृद्धियुं इल्लदे सूर्य्यमंडलदंतेकप्रकारमागिर्त्तिर्क्कुमदु अवस्थितावधियें बुदक्कुमावुदो दु ओम्मे पेर्च्चुगुमोम्मे कुंदुगुमोम्मे यवस्थितमागिर्क्कुमदनवस्थितावधिज्ञानमें बुदक्कु। मावुदो दु शुक्लपक्षद चंद्रमंडलदंते स्वोत्कृष्टपर्य्यंतं पेर्च्चुगुमदु वर्द्धमानदेशावधियें बुदक्कुं। आवुदो दु कृष्णपक्षद चंद्रमंडलदंते स्वक्षयपर्य्यंतं कुंदुगुमदु हीयमानदेशावधियेबुदक्कुमते सामान्यदिंदमवधिज्ञानं देशावधियें दुं दक्के परमावधियें दुं सर्व्वावधियुमेंदितु त्रिधा त्रिप्रकारमक्कुमिनितु गुणप्रत्ययमप्प देशावधियें षट्प्रकारमक्कुं परमावधिसर्व्वावधिगळल्तेंबुदर्त्थं।

भवपच्चइगो ओहो देसोही होदि परमसव्वोही।
गुणपच्चइगो णियमा देसोही वि य गुणे होदि ॥३७३॥

भवप्रत्ययावधिर्देशावधिर्भवति परमसर्व्वावधिः। गुणप्रत्ययौ नियमाद् भवतः देशावधिरपि च गुणे भवति॥

आवुदो दु पूर्व्वोक्तभवप्रत्ययावधियदुनियमादवश्यंभावात् देशावधियेयक्कुं। देवनारकरुगळ्गं गृहस्थतीर्त्थकरगेयुं परमावधियु सर्व्वावधियुं संभविसवप्पुदरिदं, परमावधियुं सर्व्वावधियुं नियमदिदं गुणप्रत्ययंळेयप्पुवेके दोडे संयमलक्षणगुणभवदोळा येरडक्कभावमप्पुदरिदं देशावधियुं-

---

तद्भवाननुगामि। यत् क्षेत्रान्तर भवान्तर च नानुगच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रभवयोरेव विनश्यति तत् क्षेत्रभवाननुगामि। यद्धानिवृद्धिभ्या विना सूर्यमण्डलवत् एकप्रकारमेव तिष्ठति तदवस्थितम्। यत् कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धीयते कदाचिदवतिष्ठते च तदनवस्थितम्। यत् शुक्लपक्षस्य चन्द्रमण्डलवत् स्वोत्कृष्टपर्यन्त वर्द्धते तद् वर्धमानम्। यत् कृष्णपक्षचन्द्रमण्डलवत् स्वक्षयपर्यन्त हीयते तद्धीयमान देशावधिज्ञान भवति। तथा सामान्येन अवधिज्ञानं देशावधि परमावधि सर्वावधिश्च इति त्रिधा त्रिप्रकार भवति। एव गुणप्रत्ययो देशावधि पोढा न परमावधिसर्वावधी इत्यर्थ ॥३७२॥

य पूर्वोक्तो भवप्रत्ययोऽवधि स नियमात्—अवश्यभावात् देशावधिरेव भवति देवनारकयोर्गृहस्थतीर्थकरस्य च परमावधिसर्वावध्योरसभवात्। परमावधि सर्वावधिश्च द्वावपि नियमेन गुणप्रत्ययावेव भवत

भवान्तरमे जाये या न जावे, वह क्षेत्राननुगामी है। जो अन्य भवमें साथ नही जाता अपने उत्पत्तिभवमें ही छूट जाता, अन्य क्षेत्रमें जाये या न जाये, वह भवाननुगामी है। जो न अन्य क्षेत्रमें साथ जाता है और न अन्य भवमे साथ जाता है अपने उत्पत्तिक्षेत्र और भवमें ही छूट जाता है वह क्षेत्र भवाननुगामी है। जो हानि-वृद्धिके बिना सूर्यमण्डलकी तरह एक रूप ही रहता है वह अवस्थित है। जो कभी बढता है, कभी घटता है, कभी तदवस्थ रहता है वह अनवस्थित है। जो शुक्लपक्षके चन्द्रमण्डलकी तरह अपने उत्कृष्टपर्यन्त बढता है वह वर्धमान है। जो कृष्णपक्षके चन्द्रमण्डलकी तरह अपने क्षयपर्यन्त घटता है वह हीयमान है। तथा सामान्यसे अवधिज्ञान देशावधि, परमावधि, सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकार है। इस प्रकार गुणप्रत्यय देशावधि छह प्रकारका है परमावधि सर्वावधि नही ॥३७२॥

पूर्वोक्त भवप्रत्यय अवधि नियमसे देशावधि ही होता है, क्योंकि देव, नारकी और गृहस्थ अवस्थामें तीर्थंकरके परमावधि सर्वावधि नहीं होते। परमावधि और सर्वावधि

गुणे दर्शनविशुद्ध्यादिलक्षणगुणसुंटागुत्तिरलेयक्कुं। मितु गुणप्रत्यंगळ्मूरुमवधिगळुं संभविसुववुं। भवप्रत्ययं देशावधिये यें दितु निश्चितमाय्तु।

देसोहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदम्मि वरं।
परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स ॥३७४॥

देशावधिरवरं नरतिर्य्यक्षु भवति संयते वरं। परमावधिः सर्व्वावधिश्चरमशरीरस्य विरतस्य ॥

देशावधिज्ञानद जघन्यं नररोळं तिर्य्यंचरोळं संयतरोळमसंयतरोळमक्कुं। देवनारकरोळप्पुदु एकदेशे देशावधिय सव्वोत्कृष्टं नियमदिदं मनुष्यगतिय सकलसयतरोळेयक्कु—। मितरगतित्रयदोळिल्लेकें दोडे महाव्रताभावमप्पुदरिंदं। परमावधिसर्व्वावधिगळेरडुं जघन्यदिंदमुमुत्कृष्टदिंदमुं मनुष्यगतियोळे चरमांगरप्प महाव्रतिगळ्गये संभविसुववु। चरमं संसारांतर्वर्त्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबंधिशरीरं वज्रऋषभनाराचसंहननयुक्तं यस्यासौ चरमशरीरः।

पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ।
मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

प्रतिपाती देशावधिरप्रतिपातिनौ भवतः शेषौ अहो। मिथ्यात्वमविरमणं न च प्रतिपद्यन्ते चरमद्विके ॥

सम्यक्त्वमुं चारित्रमुमेंबी येरडरिंदं बळिचे मिथ्यात्वाऽसंयमंगळप्राप्ति प्रतिपातमक्कुमदनुळ्ळुदं प्रतिपातियक्कुमितप्प प्रतिपाति देशावधियेयक्कुं। शेष परमावधि सर्व्वावधिगळेरडुम-

---

संयमलक्षणगुणाभावे तयोरभावात्। देशावधिरपि गुणे दर्शनविशुद्ध्यादिलक्षणे सति भवति। एवं गुणप्रत्ययास्त्रयोऽप्यवधयः संभवन्ति। भवप्रत्ययस्तु देशावधिरेवेति निश्चित जातम् ॥३७३॥

देशावधेर्ज्ञानस्य जघन्यं नरतिरश्चोरेव संयतासंयतयोः भवति, न देवनारकयोः। देशावधे सर्वोत्कृष्टं तु नियमेन मनुष्यगतिसकलसंयते एव भवति नेतरगतित्रये तत्र महाव्रताभावात्। परमावधिसर्वावधी द्वावपि जघन्येनोत्कृष्टेन च मनुष्यगतावेव चरमाङ्गस्य महाव्रतिन एव सभवत.। चरमं संसारान्तर्वर्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबन्धि शरीरं वज्रऋषभनाराचसहननयुतं यस्यासौ चरमशरीर. ॥३७४॥

सम्यक्त्वचारित्राभ्या प्रच्युत्य मिथ्यात्वासयमयो. प्राप्ति प्रतिपातः, तद्युतः प्रतिपाती स तु देशावधिरेव

नियमसे गुणप्रत्यय ही होते है। क्योंकि संयमगुणके अभावमें वे दोनों नहीं होते। देशावधि भी दर्शनविशुद्धि आदि गुणोंके होनेपर होता है। इस प्रकार गुणप्रत्यय तो तीनों भी अवधि होते है। किन्तु भवप्रत्यय देशावधि ही है यह निश्चित हुआ ॥३७३॥

देशावधिज्ञानका जघन्य भेद संयमी या असंयमी मनुष्यों और तिर्यंचोंके ही होता है, देवों और नारकियोंके नहीं होता। किन्तु देशावधिका सर्वोत्कृष्ट भेद नियमसे सकलसंयमी मनुष्यके ही होता है, शेष तीन गतियोंमें नहीं होता, क्योंकि वहाँ महाव्रत नहीं होते। परमावधि सर्वावधि जघन्य भी और उत्कृष्ट भी मनुष्यगतिमें ही चरमशरीरी महाव्रतीके ही होते है। चरम अर्थात् संसारके अन्तमें होनेवाले उसी भवसे मोक्षके कारण रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले जीवके होनेवाला वज्रवृषभनाराच संहननसे युक्त शरीर जिसका है उसीके होते हैं। वही चरमशरीरी है ॥३७४॥

सम्यक्त्व और चारित्रसे च्युत होकर मिथ्यात्व और असंयममें आनेको प्रतिपात कहते हैं। और जिसका प्रतिपात होता है वह प्रतिपाती है। देशावधि ही प्रतिपाती है।

प्रतिपातिगळेयप्पुवु। चरमद्विके परमावधिसर्व्वावधिद्विकदोळु जीवंगळु नियमदिंदं मिथ्यात्वमुमनविरमणमुमं न च प्रतिपद्यंते पोद्दुवुवरल्लरदु कारणदिंदमा येरडुमप्रतिपातिगळेयप्पुवदु कारणदिंदं देशावधिज्ञानं प्रतिपातियुमप्रतिपातियुमप्पुदेंबुदु सुनिश्चितं।

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि रूवि जाणदे ओही।
अवरादुक्कस्सो त्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति रूपि जानीते अवधिः। अवरादुत्कृष्टपर्य्यंतं विकल्परहितस्तु सर्व्वावधिः॥

अवरात् जघन्यविकल्पमोदल्गोंडु उत्कृष्टविकल्पपर्य्यंतमसंख्यातलोकमात्रविकल्पमनुळ्ळवधिज्ञानं द्रव्यमं क्षेत्रम कालमं भावमं प्रति प्रति प्रतिनियतसीमेयं माडि रूपि पुद्गलद्रव्यमं तत्संबधिसंसारिजीवद्रव्यमुमं जानीते प्रत्यक्षमागरिगुं। तु मत्ते सर्व्वावधिज्ञानं विकल्परहितं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितमक्कुमवस्थितैकरूपमुं हानिवृद्धिरहितमुं परमोत्कर्षप्राप्तमुमेंबुदर्थं। अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमसर्व्वोत्कृष्टमुमल्लिये संभविसुगुं। अदुकारणदिंदं देशावधि परमावधिगळ्गे जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पंगळु संभविसुगुमेंबुदु निश्चितमक्कुं।

णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगाज्जियं सविस्सचयं।
लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

नोकर्म्मौदारिकसंचयं मध्यमयोगार्ज्जितं सविस्रसोपचयं। लोकविभक्तं जानाति अवरावधिर्द्रव्यतो नियमात्॥

भवति। शेषौ परमावधिसर्वावधी द्वावपि अप्रतिपातिनावेव भवत, चरमद्विके—परमाधिसर्वावधिद्विके[1] जीवा. नियमेन मिथ्यात्व अविरमण च न प्रतिपद्यन्ते तत कारणात् तौ द्वावपि अप्रतिपातिनौ, देशावधिज्ञान प्रतिपाति अप्रतिपाति च इति निश्चितम् ॥३७५॥

अवरात् जघन्यविकल्पादारभ्य उत्कृष्टविकल्पपर्यन्त असख्यातलोकमात्रविकल्प अवधिज्ञान द्रव्य क्षेत्र काल भाव च प्रतीत्य—नियतसीमा कृत्वा रूपि पुद्गलद्रव्य तत्सबन्धि ससारिजीवद्रव्य च जानीते प्रत्यक्षतया अववुध्यते। तु—पुन सर्वावधिज्ञान जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहित अवस्थित हानिवृद्धिरहित परमोत्कर्षप्राप्तमित्यर्थ, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमसर्वोत्कृष्टस्य तत्रैव सभवात्, तत कारणाद् देशावधिपरमावध्योर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पा सभवन्तीति निश्चितं भवति ॥३७६॥

शेष परमावधि सर्वावधि दोनो अप्रतिपाती ही है। 'चरिमदुगे' अर्थात् परमावधि सर्वावधि जिनके होते हैं वे जीव मिथ्यात्व और अविरतिको प्राप्त नहीं होते। इस कारण वे दोनों अप्रतिपाती है और देशावधिज्ञान प्रतिपाती भी है अप्रतिपाती भी है, यह निश्चित हुआ ॥३७५॥

अवधिज्ञानके जघन्य भेदसे लेकर उत्कृष्ट भेद पर्यन्त असंख्यातलोक प्रमाण भेद हैं। वह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादाके अनुसार रूपी पुद्गल द्रव्य और उससे सम्बद्ध संसारी जीवोंको प्रत्यक्ष रूपसे जानता है। किन्तु सर्वावधिज्ञान जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदसे रहित है, अवस्थित है, उसमें हानि-वृद्धि नहीं होती। इसका अर्थ है कि वह परम उत्कर्षको प्राप्त है, क्योकि अवधिज्ञानावरणका सर्वोत्कृष्ट क्षयोपशम वहीं होता है। इससे यह निश्चित होता है कि देशावधि और परमावधिके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद होते हैं ॥३७६॥

---

१. ब °द्विको जीव।

देशावधिजघन्यज्ञानं द्रव्यतः द्रव्यदिंदं मध्यमयोगार्जितमप्प नोकर्म्मौदारिकसंचयमं द्वयर्द्ध-गुणहानिप्रमितसमयप्रबद्धसमूहरूपमं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसंयुक्तमं लोकदिंदं भागिसल्पट्टुदं नियमदिंदं तावन्मात्रमने जानाति प्रत्यक्षमागरिगुमदरिंदं किरिदनरियदेबुदर्थं । जघन्ययोगार्जित-मप्प नोकर्म्मौदारिकसंचयक्कल्पत्वमनरिवदक्कं सूक्ष्मत्वसंभवदिंदं । तद्ग्रहणदोळु तद्ज्ञानक्के शक्तिअभावमप्पुदरिंदं । उत्कृष्टयोगार्जितनोकर्म्मौदारिकसंचयक्कं स्थूलत्वमक्कुं तद्ग्रहणदोळु प्रतिषेधरहितत्वदिंदमदरिंदं नियमदिंदं मध्यमयोगार्जितमप्प नोकर्म्मौदारिकसंचयद्रव्यनियमं

पेळल्पट्टुदु स अ । १२–। १६ ख

≡

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥३७८॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये । अवरावगाहनमानं जघन्यमवधिक्षेत्रं तु ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन पुट्टिद तृतीयसमयदोळावुदोंदु पूर्व्वोक्तजघन्यावगाहनमानमदु तु मत्ते जघन्यदेशावधिज्ञानविषयमप्प क्षेत्रप्रमाणमक्कुं ६ । ८ । २२

अ
प १९ । ८९ । ८ । २२ । १९
अ अ अ

देशावधिजघन्यज्ञानं द्रव्यत मध्यमयोगार्जित नोकर्मौदारिकसचय द्वयर्धगुणहानिप्रमितसमयप्रबद्धसमूह-रूपं स्वयोग्यविस्रसोप चयपरमाणुसंयुक्तं लोकेन विभक्तं नियमेन तावन्मात्रमेव जानाति–प्रत्यक्षतया अवबुध्यते न ततोऽल्पमित्यर्थ. । जघन्ययोगार्जितस्य नोकर्मौदारिकसंचयस्य अल्पत्व ततोऽस्य सूक्ष्मत्वसभवात् । तद्ग्रहणे तज्ज्ञानस्य शक्त्यभावात् । उत्कृष्टयोगार्जितनोकर्मौदारिकसचयस्य स्थूलत्वं भवति तद्ग्रहणे प्रतिषेधाभावात् ।

तेन नियमान्मध्यमयोगार्जितनोकर्मौदारिकसचयो द्रव्यनियम. कथितः । स अ १२—१६ खं ॥३७७॥

≡

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पत्तितृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यावगाहन तत् तु–पुन. जघन्यदेशावधि-

---

मध्यम योगके द्वारा उपार्जित नोकर्म औदारिक शरीरके संचयको, जो डेढ गुण हानि प्रमाण समयबद्धोंका समूहरूप है और अपने योग्य विस्रसोपचयके परमाणुओंसे संयुक्त है उसमें लोकराशिसे भाग देनेपर जो एक भाग मात्र द्रव्य होता है उसे जघन्य देशावधि ज्ञान जानता है । उससे कमको नहीं जानता । जघन्य योगके द्वारा उपार्जित नोकर्म औदारिक शरीरका संचय उससे अल्प होनेसे सूक्ष्म होता है । उसको जाननेकी शक्ति इस ज्ञानकी नही है । और उत्कृष्ट योगसे उपार्जित नोकर्म औदारिकका संचय स्थूल होता है उसको जाननेका निषेध नहीं है । तथा विस्रसोपचय रहित सूक्ष्म होता है इसलिए उसको जाननेकी शक्ति नहीं है । इस प्रकार उक्त संचयके घनलोकके प्रदेश प्रमाण खण्ड करके उनमें-से एकखण्डरूप अतीन्द्रिय पुद्गल स्कन्धको सबसे जघन्य देशावधिज्ञान प्रत्यक्ष जानता है, इस प्रकार द्रव्यका नियम कहा है ॥३७७॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पत्तिके तीसरे समयमें जो जघन्य अवगाहनाका प्रमाण पहले कहा है वह जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका प्रमाण होता है । इतने

इनितु क्षेत्रदोळु पूर्व्वोक्तजघन्यद्रव्यंगळेनितोळवनितुमं जघन्यदेशावधिज्ञानमरिगुमल्लियं पोरगिर्द्दुदनरियदेंदितु क्षेत्रसीमे पेळल्पट्टुदु ।

अवरोहिखेत्तदीहं वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो ।
अण्णं पुण समकरणे अवरोगाहणपमाणं तु ॥३७९॥

अवरावधिक्षेत्रदैर्घ्यं विस्तारोत्सेधकं न जानीमः । अन्यत्पुनः समकरणे अवरावगाहनप्रमाणं तु ।

जघन्यावधिविषयक्षेत्रदैर्घ्यविस्तारोत्सेधप्रमाणमं नामरियेवु ईगळदरुपदेशाभावमप्पुदरिंदं । तु मत्ते परमगुरूपदेशपरंपरायातं मत्तों दुदु समकरणदोळु भुजकोटिवेदिगळ्गे हीनाधिकभावमिल्लदे समीकरणमागुतिरलु पुट्टिद क्षेत्रफलं जघन्यावगाहनप्रमाणं घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रमक्कुमेंबिदने बल्लेवु ।

अवरोगाहणमाणं उस्सेहंगुलअसंखभागस्स ।
सूइस्स य घणपदरं होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ॥३८०॥

अवरावगाहनमानमुत्सेधागुलासंख्यातभागस्य । सूच्याश्च घनप्रतरं भवति खलु तत् क्षेत्रसमकरणे ।

अंतादोडा सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्य्याप्तकन जघन्यावगाहनमेंतुटेंदितु प्रश्नमागुत्तिरलुत्तरवचनमिदु तज्जघन्यावगाहनमनियतसंस्थानमक्कुमादोडं क्षेत्रखंडनविधानदिंदं भुजकोटि वेदिगळ्गे समकरणमागुत्तिरलुत्सेधांगुलमं परिभाषानिष्पन्नव्यवहारसूच्यंगुलमनावुदानुमों द् संख्यातदिंद खंडिसि-

---

ज्ञानविषयभूतक्षेत्रप्रमाण भवति ६ । ८ । २२ । एतावति क्षेत्रे पूर्वोक्तजघन्यद्रव्याणि यावन्ति सति तावन्ति

अ अ
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ ९
अ अ अ

जघन्यदेशावधिज्ञान जानाति न तद्बहि स्थितानीति क्षेत्रसीमा कथिता ॥३७८॥

जघन्यावधिविषयक्षेत्रस्य दैर्घ्यविस्तारोत्सेधप्रमाण न जानीम । इदानी तदुपदेशाभावात् । तु पुनः परमगुरूपदेशपरम्परायात जघन्यावगाहनप्रमाण समकरणे-समीकरणे कृते सति घनाङ्गुलासख्यातैकभागमात्र भवति इत्यन्यत्पुनर्जानीम ॥३७९॥

तर्हि तत्सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहन कीदृग् अस्ति ? इति चेत्, तदवगाहन अनियतसंस्थानमस्ति तथापि क्षेत्रखण्डनविधानेन भुजकोटिवेधाना समकरणे सति उत्सेधाङ्गुलपरिभाषानिष्पन्नव्यवहार-

---

क्षेत्रमें पूर्वोक्त प्रमाणवाले जितने जघन्य द्रव्य होते है उन सबको जघन्य देशावधिज्ञान जानता है। उस क्षेत्रसे बाहर स्थितको नही जानता। इस प्रकार जघन्य देशावधिज्ञानके क्षेत्रकी सीमा कही ॥३७८॥

हम जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत क्षेत्रकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई नही जानते, क्योंकि इस कालमें उसका उपदेश नही प्राप्य है। किन्तु परम गुरुके उपदेशकी परम्परासे इतना जानते हैं कि जघन्य अवगाहनाके प्रमाणका समीकरण करनेपर क्षेत्रफल घनांगुलके असंख्यातवे भाग मात्र होता ॥३७९॥

प्रश्न होता है कि वह सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना कैसी है ? इसका उत्तर यह है कि उस जघन्य अवगाहनाका आकार नियत नहीं है। फिर भी क्षेत्र

देकभागमात्रभुजकोटिवेदिगळ अन्योन्यगुणकारोत्पन्नघनक्षेत्रं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं खलु परमागमदोळु स्फुटं प्रसिद्धमप्पुदु बक्कुं। तत्समानं जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रमक्कुमेंदितु तात्पर्य्यं। तन्न्यासमिदु $\frac{२}{अ}$ $\frac{२}{अ}$ — गुणिसिदोडे घनांगुलासंख्यातभागमात्रमक्कुं $\frac{६}{अ}$ च शब्ददिंद

$\frac{२}{अ}$ जघन्यावगाहनमुं जघन्यदेशावधिक्षेत्रमुमीप्रकारमप्पुदेंदितु समुच्चिसल्पट्टुदु। ५

अवरं तु ओहिखेत्तं उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा।
सुहुमोगाहणमाणं उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥३८१॥

जघन्यं त्ववधिक्षेत्रं उत्सेधांगुलं भवेद्यस्मात्। सूक्ष्मावगाहनमानमुपरि प्रमाणं त्वंगुलं।

तु मत्ते जघन्यदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रमावुदोंदु जघन्यावगाहनसमानं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं पेळल्पट्टुददुत्सेधांगुलमक्कुं। व्यवहारांगुलमनाश्रयिसि ये पेळल्पट्टुदु। प्रमाणात्मांगुलमनाश्रयिसि पेळल्पट्टुदिल्लदेकेंदोडे आवुदोंदु कारणदिंदं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकजघन्यावगाह- १०

सूच्यङ्गुलं असख्यातेन भक्त्वा तदेकभागमात्रभुजकोटिवेधानां अन्योन्यगुणनोत्पन्नघनाङ्गुलासंख्यातभागमात्र खलु परमागमे स्फुटं प्रसिद्धमागच्छति। तत्समानजघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रमित्यर्थः $\frac{२}{अ}$ । $\frac{२}{अ}$ । गुणिते घनाङ्गुलासंख्यातमात्रं भवति ६ ॥३८०॥ $\frac{६}{अ}$

तु—पुनः, जघन्यदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्र यज्जघन्यावगाहनसमान घनाङ्गुलासंख्यातभागमात्रमुक्त तदुत्सेधाङ्गुलं व्यवहाराङ्गुलमाश्रित्योक्त भवति न प्रमाणाङ्गुल नाप्यात्माङ्गुलमाश्रित्य। यस्मात्कारणात् १५

खण्डन विधानके द्वारा भुज, कोटि और वेधका समीकरण करनेपर, उत्सेधांगुलको असंख्यातसे भाजित करके एक भाग प्रमाण भुज कोटि और वेधको परस्परमें गुणा करनेपर घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रफल होता है। उसीके समान जघन्य देशावधिज्ञानका क्षेत्र है।

विशेषार्थ—आमने-सामने दो दिशाओंमें-से किसी एक दिशा सम्बन्धी प्रमाणको भुज २० कहते हैं। शेष दो दिशाओंमें-से किसी एक दिशा सम्बन्धी प्रमाणको कोटि कहते है। ऊँचाईके प्रमाणको वेध कहते है। व्यवहारमें इन्हें ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाई कहते है। यहाँ जघन्य क्षेत्रकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई एक सी नहीं है कमती-बढती है। किन्तु क्षेत्रखण्डन विधानके द्वारा समीकरण करनेपर ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाईका प्रमाण उत्सेधांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र होता है। उनको परस्परमें गुणा करनेपर घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण घनक्षेत्र- २५ फल होता है। इतना ही प्रमाण जघन्य अवगाहनाका है और इतना ही जघन्य देशावधिके क्षेत्रका है ॥३८०॥

जघन्य देशावधिज्ञानका विषय क्षेत्र जो जघन्य अवगाहनाके समान घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र कहा है वह उत्सेधांगुल व्यवहार अंगुलकी अपेक्षा कहा है, प्रमाणांगुल

नप्रमाणं जघन्यदेशावधिक्षेत्रमदु कारणदिंदं व्यवहारांगुलमनाश्रयिसिये पेळल्पट्टुदु। तज्जघन्यावगाहनमुं परमागमदोळु देहगेहग्रामनगरादिप्रमाणमुत्सेधांगुलदिंदमे यें दितु नियमितमप्पुदरिंदं व्यवहारांगुलाश्रितमे यक्कुं। मेले यावुदों दे डेयोळंगुलमावळिया एकभागमसंखेज्जमित्यादिगाथासूत्रोक्तकांडकगळोळु अंगुलग्रहणमल्लि प्रमाणांगुलमे ग्राह्यमक्कुमुत्तरोत्तर निर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्रंगळ्गे प्रमाणांगुलाश्रितत्वदिंदं।

अवरोहिखेत्तमज्झे अवरोही अवरदव्वमवगमइ।
तद्दव्वस्सवगाहो उस्सेहासंखघणपदरो ॥३८२॥

अवरावधिक्षेत्रमध्ये अवरावधिरवरद्रव्यमवगच्छति। तद्द्रव्यस्यावगाहः उत्सेधासंख्यघनप्रतरः।

जघन्यावधिक्षेत्रमध्यदोळिरुतिर्द्द पूर्व्वोक्तजघन्यद्रव्यमं जघन्यदेशावधिज्ञानमरियुं। तत् क्षेत्रमध्यदोळिरुतिर्द्द असंख्यातंगळनौदारिकशरीरसंचयलोकभक्तैकभागप्रमितखंडंगळननितुमनरियुमें बुदत्थं। तज्जघन्यपुद्गलस्कंधद मेले एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधंगळनरियुमेंबुदनिल्लि पेळल्वेडेकें दोडे सूक्ष्मविषयज्ञानक्के स्थूलावबोधनदोळु सुघटत्वमप्पुदरिंदं। द्रव्यावगाहक्षेत्रं जघन्यावधिविषयक्षेत्रसं नोडलसंख्येयगुणहीनमक्कुमादोडं उत्सेधघनांगुलासंख्यातभागमात्रमक्कुं। मदर

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनप्रमाणं जघन्यदेशावधिक्षेत्रं ततः कारणात्, देहगेहग्रामनगरादिप्रमाण उत्सेधाङ्गुलेनैवेति परमागमे नियमितत्वात् व्यवहाराङ्गुलमेवाश्रितं भवति। उपरि यत्र "अङ्गुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि सखेज्जो, इत्यादिगाथासूत्रोक्तकाण्डकेषु अङ्गुलग्रहण तत्र प्रमाणाङ्गुलमेव ग्राह्य, उत्तरोत्तरनिर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्राणा प्रमाणाङ्गुलाश्रितत्वात् ॥३८१॥

जघन्यावधिक्षेत्रमध्ये स्थितं पूर्वोक्त जघन्यद्रव्यं जघन्यदेशावधिज्ञान जानाति तत्क्षेत्रमध्यस्थितानि औदारिकशरीरसंचयस्य लोकविभक्तैकभागप्रमितखण्डानि असख्यातानि जानातीत्यर्थ। तज्जघन्यपुद्गलस्कन्धस्योपरि एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कन्धान् न जानातीति न वाच्य, सूक्ष्मविषयज्ञानस्य स्थूलावबोधने सुघटत्वात्। द्रव्यावगाहक्षेत्रं तु जघन्यावधिविषयक्षेत्रादसंख्यातगुणहीन भवति, तथाप्युत्सेधघनाङ्गुलासख्यात-

---

या आत्मांगुलकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना प्रमाण जघन्य देशावधिका क्षेत्र है। और परमागममें यह नियम कहा है कि शरीर, घर, ग्राम, नगर आदिका प्रमाण उत्सेधांगुलसे ही मापा जाता है। इसलिये व्यवहार अंगुलका ही आश्रय लिया है। आगे 'अंगुलमालियाए' आदि गाथासूत्रोंमें कहे गये काण्डकोंमें अंगुलका प्रमाण प्रमाणांगुलसे लिया है। उससे आगे भी जो हस्त, गव्यूति, योजन भरत आदि प्रमाण क्षेत्र कहा है वह सब प्रमाणांगुलसे ही लिया है॥३८१॥

जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रके मध्यमें स्थित पूर्वोक्त जघन्य द्रव्यको जघन्य देशावधिज्ञान जानता है। अर्थात् उस क्षेत्रके मध्यमें औदारिक शरीरके संचयको लोकसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण जो असंख्यात खण्ड स्थित हैं उनको जानता है। उस जघन्य पुद्गल स्कन्धसे ऊपर एक-दो आदि अधिक प्रदेशवाले स्कन्धोंको वह नहीं जानता ऐसा नहीं है। क्योंकि जो ज्ञान सूक्ष्मको जानता है वह स्थूलको जाननेमें समर्थ होता है। द्रव्यकी अवगाहनाका प्रमाण जघन्य अवधिके विषयभूत क्षेत्रके प्रमाणसे असंख्यात गुणाहीन

---

१ य, °तन्यसख्याखण्डानि जा°।

भुजकोटिवेदिगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळरियल्पडुवुवु २ २ ।
आआ आआ
२
आआ

आवलि असंखभागं तीद भविस्सं च कालदो अवरं ।
ओही जाणदि भावे काल असंखेज्जभागं तु ॥३८३॥

आवल्यसंख्यभागं अतीतं भविष्यं तं च कालतोवरावधिर्ज्जानाति भावे कालासंख्येय भागं तु । ५

कालदिंदं जघन्यावधिज्ञानं अतीत भविष्यत्कालमनावल्यसंख्यातभागमात्रमनरिगुं ८
अ
स्वविषयैकद्रव्यगतव्यंजनपर्य्यायंगळनावल्यसंख्यातैकभागमात्रपूर्व्वोत्तरंगळ नरिगुमेंबुदत्थं । एकें-दोडे व्यवहारकालक द्रव्यद पर्य्यायस्वरूपमल्लदन्यत् स्वरूपांतराभावमप्पुदरिंदं । भावे भावदोळु तु मत्ते कालासंख्येयभागं तज्जघन्यावधिविषयकालावल्यसंख्यातैकभागद असंख्येयभागमात्रमनरिगुं । इंतु जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यक्षेत्रकालभावं गळगे सीमाविभागमं पेळ्दु तद्देशावधिज्ञान- १०
विकल्पंगळं चतुर्व्विधविषयभेदर्दिदं पेळ्दपं ।

भागमात्रमेव भवति । तद्भुजकोटिबेधाः सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रा ज्ञातव्याः २ २ ॥३८२॥
आआ आआ
२
आआ

कालेन जघन्यावधिज्ञान अतीतभविष्यत्कालमावल्यसख्यातभागमात्रं जानाति ८ । स्वविषयैकद्रव्यगत-
अ
व्यञ्जनपर्यायान् पूर्वोत्तरान् तावतो जानातीत्यर्थ. । व्यवहारकालस्य द्रव्यस्य पर्यायस्वरूप विनाऽन्यस्वरूपान्त-राभावात् । भावे तज्जघन्यद्रव्यगतवर्तमानपर्याये तु पुनः कालासख्येयभागं तज्जघन्यावधिविषयकालस्यावल्य-सख्यातैकभागस्य असंख्यातैकभागमात्रं जानाति ८ । एवं जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यक्षेत्रकालभावाना सी- १५
आआ
माविभाग प्ररूप्येदानी द्वितीयादीन् देशावधिज्ञानविकल्पान् चतुर्विधविषयभेदानाह—

होता है । तथापि घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र ही होता है । उसके भुजा, कोटि और वेध सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र हैं ॥३८२॥

कालकी अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञान आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अतीत और अनागतकालको जानता है । अर्थात् अपने विषयभूत एक द्रव्यकी अतीत और अनागत २०
व्यंजनपर्यायोंको आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जानता है क्योंकि व्यवहारकालके और द्रव्यके पर्याय स्वरूपके बिना अन्य स्वरूप सम्भव नहीं है । भावकी अपेक्षा उस जघन्य द्रव्यगत वर्तमान पर्यायोंको कालके असंख्यातवें भाग जानता है अर्थात् जघन्य अवधिका विषय जो आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल है उसके असंख्यातवें भागमात्र अर्थपर्यायों-को जानता है ॥३८३॥ २५

इस प्रकार जघन्य देशावधिज्ञानके विषय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी सीमाका विभाग कहकर अब देशावधिज्ञानके द्वितीय आदि विकल्पोंके विषयभूत द्रव्यादिको कहते हैं—

अवरद्दव्वादुवरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो ।
सिद्धाणंतिमभागो अभव्वसिद्धादणंतगुणो ॥३८४॥

अवरद्रव्यादुपरितनद्रव्यविकल्पाय भवति ध्रुवहारः। सिद्धानंतैकभागोऽभव्यसिद्धादनंतगुण ॥

जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यदिदं मेलणनंतरदेशावधिज्ञानविकल्पविषयद्रव्यविकल्पसं तरत्तवेडि सिद्धानंतैकभागसुमभव्यसिद्धानंतगुणसुमप्प ध्रुवभागहारमरियल्पडुगुं ।

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे ।
समयपबद्धपमाणं जाणिज्जो ओहिविसयम्मि ॥३८५॥

ध्रुवहारकार्म्मणवर्गणागुणकारं कार्म्मणवर्गणां गुणिते । समयप्रबद्धप्रमाणं ज्ञातव्यमवधिविषये ॥

कार्म्मणवर्गणाया गुणकाराः कार्म्मणवर्गणागुणकाराः ध्रुवहाराश्चेते कार्म्मणवर्गणागुणकाराश्च ध्रुवहारकार्म्मणवर्गणागुणकारास्तान् । कार्म्मणवर्गणां च गुणितेऽवधिविषये समयप्रबद्धप्रमाणं भवतीति ज्ञातव्यं । गुण्यरूपदिनिर्द्द कार्म्मणवर्गणेगे गुणकाररूपदिनिर्द्दं ध्रुवहारंगळं कार्म्मणवर्गणेयुमं गुणिसुत्तिरलु अवधिविषयसमयप्रबद्धप्रमाणमक्कुमेंदु ज्ञातव्यमक्कुं ।

जघन्यदेशावधिविषयद्रव्यात उपरितनद्वितीयाद्यवधिज्ञानविकल्पविषयद्रव्याणि आनेतु सिद्धानन्तैकभाग, अभव्यसिद्धेभ्योऽनन्तगुण ध्रुवभागहार स्यात् ॥३८४॥

द्विरूपोनदेशावधिविकल्पमात्रध्रुवहाराद् गत्युत्पन्नेन कार्मणवर्गणागुणकारेण द्विरूपाधिकपरमावधिज्ञानविकल्पमात्रध्रुवहारसवर्गसमुत्पन्नकार्मणवर्गणा गुणिता सती अवधिविषये समयप्रबद्धमात्रप्रमाण स्यादिति

जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत द्रव्यसे ऊपर द्वितीय आदि अवधिज्ञानके भेदोंके विषयभूत द्रव्योंको लानेके लिए सिद्ध राशिका अनन्तवाँ भाग और अभव्य राशिसे अनन्तगुणा ध्रुवभागहार होता है ॥

विशेषार्थ—पूर्वपूर्व द्रव्यमें जिस भागहारका भाग देनेसे आगेके भेदके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण आता है वह ध्रुव भागहार है । जैसे जघन्य देशावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यमें भाग देनेसे जो प्रमाण आता है वह उसके दूसरे भेदके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण होता है ॥३८४॥

देशावधिज्ञानके विकल्पोंमें दो घटानेपर जितना प्रमाण रहे उतनी जगह ध्रुवहारोंको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जितना प्रमाण होता है उतना कार्मण वर्गणाका गुणकार होता है । और परमावधिज्ञानके विकल्पोंमें दो अधिक करनेपर जितना प्रमाण हो उतनी जगह ध्रुवहारोंको स्थापित करके परस्परमें गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो वह कार्मणवर्गणा होती है । कार्मणवर्गणाके गुणकारसे कार्मणवर्गणाको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अवधिज्ञानका विषय समयप्रबद्ध जानना । अर्थात् जो जघन्य देशावधिका विषय-

---

१ ध्रुवहारक्के सदृष्टि नवाक तत्प्रमाण मुदे पेळल्पडुगुमीग पेळ्वुदेके दोडे देशावधिय चरमद्रव्याविकल्पगळ विट्टु त्रिचरमदोळ्तोडगि प्रथमविकल्पपर्य्यंतमेकादचेकोत्तरक्रमदिनिळिदिळिदु बदु प्रथमविकल्पदोळु तावन्मात्रध्रुवहारगळि कार्म्मणवर्गणेय गुणियिसिद लब्धप्रमाणसमान प्रथमद्रव्यमेंबुदर्त्थं ॥

विशेषदिंदं ध्रुवहारप्रमाणमं पेळ्दपं :—

मणदव्ववग्गणाण वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो ।
अवरुक्कस्सविसेसा रूवहिया तव्वियप्पा हु ॥३८६॥

मनोद्रव्यवर्गणानां विकल्पानामनंतैकभागसमः स्फुटं ध्रुवहारः । अवरोत्कृष्टविशेषाः रूपाधिकास्तद्विकल्पाः खलु ॥ ५

ध्रुवहारप्रमाणसरियल्पडुगुमदें तेंदोडे मनोद्रव्यवर्गणेगळ विकल्पंगळिनितोळवनि ज १ ख

तदनंतैकभागदोडने ज १ समानमक्कुं । खलु स्फुटमागि । अंतादोडा मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पं-
ख ख

गळतामेनितप्पुवेंदोडे पेळल्पडुगुं । अवरोत्कृष्टविशेषाः रूपाधिकास्तद्विकल्पाः खलु जघन्यमनो-द्रव्यवर्गणेयनुत्कृष्टमनोद्रव्यवर्गणेयोळकळेदुळिद शेषदोळेकरूपं कूडुत्तिरला मनोद्रव्यवर्गणा-

विकल्पंगळप्पुवु । आदी । ज । अन्ते ज ख सुद्धे ज १ वड्ढिहिदे ज १ रूवसंजुदे ठाणा १०
ख ख ख १

ज ई स्थानविकल्पंगळनंतैकभागदोडने ज समानं ध्रुवहारप्रमाणमक्कुमेंबुदर्थमंतादोडा
ख ख ख

जघन्योत्कृष्टमनोद्रव्यवर्गणेगळ प्रमाणमेनितेंदोडे पेळ्दपं :—

अवरं होदि अणंतं अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं ।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ॥३८७॥

अवरो भवत्यनंतोऽनंतभागेनाधिक उत्कृष्ट, इति मनोभेदानामनंतैकभागो द्रव्ये ध्रुवहारः ॥ १५

ज्ञातव्यम् ॥३८५॥ विशेषेण ध्रुवहारप्रमाणमाह—

मनोद्रव्यवर्गणाया यावन्तो विकल्पास्तेषामनन्तैकभागेन समं संख्यया समानं खलु ध्रुवहारप्रमाणं

स्यात् । ते च विकल्पा' कति ? मनोवर्गणाजघन्य ज तदुत्कृष्टे ज ख विशोध्य शेषे ज रूपाधिकीकृते एतावन्त.
ख ख

ज खलु स्यु. ॥३८६॥ ते जघन्योत्कृष्टे प्रमाणयति—
ख

भूत द्रव्य कहा था उसे ही यहाँ समयप्रबद्धके रूपमें स्थापित किया है । इसमें ही ध्रुवहारका २०
भाग दे-देकर आगेके विकल्पोंके विषयभूत द्रव्य लायेंगे ॥३८५॥

सामान्य रूपसे ध्रुवहारका प्रमाण सिद्धराशिके अनन्तवें भाग कहा । अब विशेष रूपसे ध्रुवहारका प्रमाण कहते हैं—

मनोद्रव्यवर्गणाके जितने भेद हैं उनके अनन्तवें भागकी संख्याके बराबर ध्रुवहारका प्रमाण है । मनोवर्गणाके जघन्यको मनोवर्गणाके उत्कृष्टमें-से घटाकर जो प्रमाण शेष रहे २५
उसमें एक जोड़नेपर मनोवर्गणाके भेदोंका प्रमाण होता है ॥३८६॥

आगे मनोवर्गणाके जघन्य और उत्कृष्ट भेदका प्रमाण कहते हैं—

जघन्यमनोद्रव्यवर्गणाप्रमाणमनंत मदर । ज । अनंतैकभागदिनधिकमुत्कृष्टमनो-

द्रव्यवर्गणाप्रमाणमक्कु ज ख मितु मुंपेळ्द क्रमदिंदमादियंते सुद्धे इत्यादिविधानदिंदं तरल्पट्टु
ख

मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पंगळ ज १ अनंतैकभागदोडने ज १ अवधिविषयद्रव्यविकल्पंगळोळु पुगुव
ख ख ख

ध्रुवहारप्रमाणं समानमें दु निश्चयिसुवुदु ॥ अथवा :—

धुवहारस्स पमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
समयपबद्धणिमित्तं कम्मणवग्गणगुणादो दु ॥३८८॥

ध्रुवहारस्य प्रमाणं सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमपि । समयप्रबद्धनिमित्तं कार्म्मणवर्गणा-गुणात्तु ॥

होदि अणंतिमभागो तग्गुणगारोवि देसओहिस्स ।
दोऊणदव्वभेदपमाणं धुवहारसंवग्गो ॥३८९॥

भवत्यनंतैकभागस्तद्गुणकारोपि देशावधेर्द्विरूपोनद्रव्यभेदप्रमाणध्रुवहारसंवर्गः ॥

ध्रुवहारप्रमाणं सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमादोडमवधिविषयसमयप्रबद्धनिश्चयनिमित्तं कार्म्मणवर्गणागुणकारमं नोडलु तु मत्ते अनंतैकभागमक्कुमा कार्म्मणवर्गणागुणकारमुं देशावधि-ज्ञानद्विरूपोनद्रव्यविकल्पप्रमितध्रुवहारंगळ संवर्गमक्कुमा देशावधिज्ञानद्रव्यविकल्पंगळनितें दोडे पेळल्पडुगु ।

देशावधिद्रव्यविकल्परचनेयोळु त्रिचरमदेशावधिद्रव्यविकल्पदोळु गुण्यरूपकार्म्मणवर्गणेगे

मनोद्रव्यवर्गणाजघन्य अनन्तो भवति । तदनन्तैकभागेनाधिकमुत्कृष्ट भवति इत्येवमुक्तरीत्या मनोद्रव्य-
ज
वर्गणाविकल्पानामनन्तैकभाग ख ख अवधिविषयद्रव्यविकल्पेषु ध्रुवहारप्रमाणं ज्ञातव्यम् । अथवा—

ध्रुवहारप्रमाण सिद्धानन्तैकभागमात्रमपि अवधिविषयसमयप्रबद्धप्रमाणमानेतु उक्तस्य कार्मणवर्गणा-गुणकारस्य अनन्तैकभागमात्र स्यात् । स च गुणकारोऽपि कियान् । देशावधिज्ञानस्य द्विरूपोनद्रव्यभेदमात्र-

---

मनोवर्गणाका जघन्य भेद अनन्त प्रमाण है। अर्थात् अनन्त परमाणुओंके स्कन्ध-रूप जघन्य मनोवर्गणा है। उसमें अनन्तका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उसे उस जघन्य भेदमें जोड़नेपर उसीके उत्कृष्ट भेदका प्रमाण होता है। इस प्रकार मनोद्रव्य वर्गणाके विकल्पोके अनन्तवें भाग अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्योंके विकल्पोंमें ध्रुवहारका प्रमाण है ॥३८७॥

यद्यपि ध्रुवहारका प्रमाण सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग है किन्तु अवधिज्ञानके विषयभूत समयप्रबद्धका प्रमाण लानेके लिए पहले कहे कार्मणवर्गणाके गुणकारका अनन्तवाँ भाग है। और वह गुणकार देशावधिज्ञानके द्रव्यकी अपेक्षा भेदोंमें दो घटाकर जो प्रमाण शेष रहे उतनी जगह ध्रुवहारोंको रखकर परस्परमे गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उतना है। इतना प्रमाण कैसे कहा, सो कहते हैं—देशावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यकी रचनामें उत्कृष्ट

पोक्कध्रुवहारगुणकारमों दु तदनंतराधस्तनविकल्पदोळेरडु ध्रुवहारगुणकारंगळप्पुवी क्रमदिंदमिळिदिळिदु देशावधिजघन्यद्रव्यपर्य्यंतमविच्छिन्नरूपदिनेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदं पोक्क ध्रुवहारगुणकारंगळु सर्व्वजघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पदल्लि कार्म्मणवर्गणेगे पोक्क ध्रुवहारगुणकारंगळेनितप्पुवेंदोडे देशावधिद्रव्यसर्व्वविकल्पसंख्येयोळु ≡-६।२ द्विरूपहीनमात्रंगळप्पुवु संदृष्टि—

ग ग

व अवनितुमं परस्परसंवर्गं माडिदोडे गुण्यरूपकार्म्मणवर्गणेय गुणकारप्रमाण- ५
९
व
व ९
व ९ ९
व ९ ९ ९
व ९ ९ ९ ९
० ०
० २
० ——
व ≡६।२ ९
ग ग

मक्कुमी कार्म्मणवर्गणागुणकारदनंतैकभागं ध्रुवहारप्रमाणमेंबुदर्त्थमा गुण्यरूपकार्म्मणवर्गणेयुममी कार्म्मणवर्गणागुणकारमुमं गुणिसुत्तिरलु जघन्यदेशावधिज्ञानविषयत्वदिं पेळल्पट्ट नोकर्म्मौदारिक-

---

ध्रुवहारसंवर्गमात्र. स्यात् । कुतः ? तद्द्रव्यरचनायामस्या—

व त्रिचरमविकल्पादेकाद्येकोत्तरक्रमेण अधोऽधो गत्वा प्रथमविकल्पे कार्मणवर्गणाया. तावता ध्रुवहाराणा
९
व
व ९
ब ५ ९।
व ९ ९ ९।
व ९ ९ ९ ९।
०
० ०
० १— २
व ≡—६।२ ९
प ग
ग

गुणकारत्वेन सद्भावात् । गुण्यगुणकारे गुणिते प्रागुक्तो लोकविभक्तैकखण्डमात्रनोकर्मौदारिकसंचय एव १०

अन्तिम भेदका विषय कार्मणवर्गणामें एक बार ध्रुवहारका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है। उसके नीचे द्विचरम भेदका विषय कार्मणवर्गणा प्रमाण है। उनके नीचे त्रिचरम भेदका विषय कार्मणवर्गणाको एक बार ध्रुवहारसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। उसके नीचे चतुर्थ चरम भेदका विषय दो बार ध्रुवहारसे कार्मणवर्गणाको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इस प्रकार एक बार अधिक ध्रुवहारसे कार्मणवर्गणाको गुणा करते-करते दो कम देशावधिके द्रव्यभेद प्रमाण ध्रुवहारोंको परस्परमें गुणा करनेसे जो गुणकारका प्रमाण हुआ उससे कार्मणवर्गणाको गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही जघन्य देशावधिज्ञानके १५

संचयलोकविभक्तैखंडप्रमाणमेयक्कुमे दु निश्चयिसुवुदु स अ १२—१६ ख इन्नु देशावधिविषय-
≡

सर्व्वद्रव्यविकल्पंगळेनितेंदोडे पेळ्दपं :—

अंगुल असंखगुणिदा खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु ।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ ॥३९०॥

अंगुलासंख्यातगुणिताः क्षेत्रविकल्पाश्च द्रव्यभेदाः खलु । क्षेत्रविकल्पा अवरोत्कृष्टविशेषो भवेदत्र ।

सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणितक्षेत्रविकल्पंगळु देशावधिज्ञानविषयसर्व्वद्रव्यभेदंगळप्पुवु । खलु स्फुटमागि । अंतादोडा क्षेत्रविकल्पंगळ्तार्मनितेंदोडे अत्र इल्लि अवधिविषयदोळु क्षेत्रविकल्पाः क्षेत्रविकल्पंगळु अवरोत्कृष्टविशेषो भवेत् । जघन्यदेशावधिज्ञानविषय सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तक-
जघन्यावगाहप्रमितजघन्यक्षेत्रमनिद ६ । ८ । २२ नपर्वर्त्तितमं घनांगुलासंख्या-
अ
प १९ । ८९ । ८ । २२ । ७९
अ अ अ

तैकभागमात्रम ६ नुत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रंलोकप्रमित ≡ मदरोळकळेदुळिदुवेनितोळवनि-
प
अ

तेंयप्पुवु ≡ ६ इवं सूच्यंगुलासंख्यातर्दिदं गुणिसिलब्धराशियोळेकरूपं कूडुत्तिरलु देशावधिद्रव्य-
प
अ

विकल्पं गळप्पुवु ≡ – ६ । २ एकें दोडे देशावधि जघन्यद्रव्य विकल्पं मोदल्गोंडु ध्रुवहारभक्तै-
प अ
अ

स्यात् ।—स अ १२—१६ ख ३।८ ॥३८९॥ देशावधिद्रव्यविकल्पान् प्रमाणयति—
≡

सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागगुणितदेशावधिविषयसर्वक्षेत्रविकल्पा खलु तद्विषयद्रव्यविकल्पा भवन्ति, ते च क्षेत्रविकल्पा. अत्र देशावधिविषये अवरे जघन्यक्षेत्रे ६ तद्विषयोत्कृष्टक्षेत्रे ≡ विशोधिते शेषमात्रा भवन्ति≡–६
प प
अ अ

विषयभूत द्रव्यका प्रमाण है जो लोकसे भाजित नोकर्म औदारिक शरीरका संचय प्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट भेदसे लेकर जघन्य भेद पर्यन्त रचना कही है इससे इस प्रकार गुणकारका प्रमाण कहा है। यदि जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट भेदपर्यन्त रचनाकी जावे तो क्रमसे ध्रुवहारका भाग देते जाइए। अन्तिम भेदमे कार्मणवर्गणाको एक बार ध्रुवहारसे भाग देनेपर द्रव्यका प्रमाण आ जाता है ॥३८८-३८९॥

अब देशावधिके द्रव्यकी अपेक्षा विकल्प कहते है—

देशावधिके विषयभूत क्षेत्रकी अपेक्षा जितने विकल्प है उनको सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर देशावधिके विपयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद होते है।

कैकभागमात्रद्रव्यविकल्पंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडेनडदेकैकप्रदेशक्षेत्रवृद्धियागुत्तं पोगियुत्कृष्टदेशावधिय सर्व्वोत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रविकल्पं पुट्टिदागळु तदुत्कृष्टक्षेत्रं संपूर्णलोकमादुददु कारणदिंदं। आदिक्षेत्रमनंत्यक्षेत्रदोळ्कळेदु सूच्यंगुलासंख्यातदिंदं गुणिसि लब्धदोळोंदु रूपं कूडिदोडे देशावधिज्ञानविकल्पंगळ्

४	८
२ ४	७
४२	७
४२२	६
४२२२	६
४२२२२	५
४२२२२२	५
४२२२२२२	४
४२२२२२२२	४
द्रव्य	क्षेत्र

द्रव्यविकल्पंगळुमप्पुविवक्कंकसंदृष्टिदेशावधियुत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रंगळु इल्लि जघन्यक्षेत्रमनुत्कृष्टक्षेत्रदोळ्कळेदु शेषम ४ नंगुलासंख्यातकांडकमेर- ५

डरिंदं गुणिसि एकरूपं कूडिदोडे— ४।२ देशावधिसर्व्वद्रव्यविकल्पंगळप्पुवु ।९। 'आदौ अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा'। दिंदी स्थानविकल्पमं साधिसुव करणसूत्रक्के व्याख्यानं विरोधमागि बक्कुमेंदेनल्वेडेकेंदोडिल्लि चशब्दमनर्थकवचनमप्पुदरिनल्लि किंचिदिष्टज्ञापनमक्कुमदेंतेंदोडे ग्रंथकारं 'खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ' एंदु जघन्योत्कृष्टंगळं शेषेसुत्तिरलल्लि क्षेत्रविकल्पंगळेंदु पेळ्दोडल्लि कूडुवेकरूपं बेरिरिसि सूच्यंगुलासंख्यातदिंदं गुणिसि लब्धदोळारूपं कूडिदोडे द्रव्यविकल्पंगळ प्रमाणमप्पुदेंबी विशेषसूचकमक्कुं। १०

रूपयुतक्षेत्रविकल्पंगळं सूच्यंगुलासंख्यातदिंदं गुणिसिदोडे दृष्टेष्टविरोधमक्कुमदेंतेंदोडे

अंकसंदृष्टियोळु रूपयुतक्षेत्रविकल्पंगळय्दु ४ इवं कांडकमप्पेरडरिंदं गुणिसिदोडे पत्तु १०। इवु

एते एव सूच्यङ्गुलासख्यातेन गुणयित्वा एकरूपयुता. देशावधिसर्वद्रव्यविकल्पाः स्यु =—६।२ कुतः? (प ० ० ०

द्रव्यविकल्पंगळल्तु द्विरूपहीनद्रव्यविकल्पमात्रध्रुवहारसंवर्गमे वर्गणागुणकारमेंबल्लि येळु मादेंटक्के प्रसंगमक्कुमंतुमल्लदेयुं रूपयुतमल्लद क्षेत्रविकल्पमं । ४ । कांडकदिंदं गुणिसि लब्धदोळेकरूपं कूडिदोडे । ४ । २ । अदु देशावधिद्रव्यविकल्पप्रमाणमल्तु । द्विरूपोनद्रव्यविकल्पमात्र ध्रुवहारसवर्गमे वर्गणागुणकारमेंबल्लि एळुमादारक्के प्रसंगमक्कुंमप्पुदरिंदमन्तुमल्तु दृष्टविरोधमुमागमविरोधमुमप्पुदरिंदं रूपयुतमल्लद क्षेत्रविकल्पमं कांडकदिंदं गुणिसि लब्धदोळोंदु रूपं कूडिदोडे देशावधिद्रव्यविकल्पमो भत्तेयप्पुविदुनिर्ब्बाधबोधविषयमक्कुं । अंतादोडा जघन्योत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयजघन्योत्कृष्टक्षेत्रविकल्पंगळावुर्वेदोडे पेळ्दपं ।

अंगुलअसंखभागं अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो ।
इदि वग्गणगुणगारो असंख धुवहारसंवग्गो ॥३९१॥

अंगुलासंख्यातभागोऽवरः उत्कृष्टो भवेल्लोकः । इतिवर्गणागुणकारोऽसंख्यध्रुवहारसवर्गः । अंगुलासंख्यातभागः मुंपेळ्द घनांगुलासंख्यातैकभागमप्प लब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहप्रमाणमे अवरः जघन्यक्षेत्रविकल्पप्रमाणमक्कुमुत्कृष्टो भवेल्लोकः । उत्कृष्टक्षेत्रविकल्पं संपूर्णलोकप्रमाणमक्कु-। मिंतु वर्गणागुणकारमसंख्य ध्रुवहारसंवर्गप्रमितमक्कुं । द्विरूपोनदेशावधिज्ञानविषयसर्व्वद्रव्यविकल्प प्रमित ध्रुवहारसंवर्गजनितलब्धप्रमितं वर्गणागुणकारप्रमाणमे बुदत्थं ।

वर्धते अनेन क्रमेण लोकमात्रक्षेत्रोत्पत्तिपर्यन्त गमनिकासद्भावात् अवशिष्टप्रथमद्रव्यविकल्पस्य पश्चान्निक्षेपात् ॥३९०॥ ते जघन्योत्कृष्टक्षेत्रे सख्याति—

अवर जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहप्रमाणमिद-

$$६ । ८ । २२ \quad अ \quad १-$$
$$प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९$$
$$अ \quad अ \quad अ$$

अपवर्तित घनाङ्गुलासख्यातभागमात्र भवति ६ उत्कृष्ट लोक जगच्छ्रेणिघनो भवति इत्येव द्विरूपोनदेशावधि-

$$प$$
$$अ$$

सर्वद्रव्यविकल्पमात्रासख्यध्रुवहारसवर्ग एव कार्मणवर्गणागुणकार' स्यात् ॥३९१॥ अथ क्रमप्राप्त वर्गणाप्रमाणमाह—

भाग द्रव्यके विकल्प होने तक क्षेत्र एक प्रदेश अधिक उतना ही रहता है। उसके पश्चात् क्षेत्रमें पुनः एक प्रदेश बढता है। इस तरह प्रत्येक सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग द्रव्यके विकल्प होनेपर क्षेत्रमें एक-एक प्रदेशकी वृद्धि उत्कृष्ट क्षेत्र लोक पर्यन्त प्राप्त होने तक होती है। इसीसे क्षेत्रकी अपेक्षा विकल्पोंको सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर द्रव्यकी अपेक्षा विकल्प कहे है। इनमें पहला द्रव्यका भेद पीछेसे मिलाया वह अवशेष था अतः एकको मिलाना कहा ॥३९०॥

अब देशावधिके उन जघन्य और उत्कृष्ट क्षेत्रोंको कहते हैं—

जघन्य देशावधिका विषयभूत क्षेत्र सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना प्रमाण घनांगुलका असंख्यातवे भाग मात्र होता है। उत्कृष्ट क्षेत्र जगत् श्रेणिका घनरूप लोक-प्रमाण है। इस प्रकार देशावधिके समस्त द्रव्यकी अपेक्षा विकल्पोंमें दो कम करके

वग्गणरासिपमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तंपि ।
दुगसहियपरममेदपमाणवहाराणसंवग्गो ॥३९२॥

वर्गणाराशिप्रमाणं सिद्धानंतैकभागप्रमाणमात्रमपि । द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्गः ॥

वर्गणाराशिप्रमाणं इन्ना कार्म्मण वर्गणाराशिप्रमाणं तानें तुटें दोडे सिद्धानंतैकभागप्रमाण- ५
मात्रमपि सिद्धराश्यनंतैकभागप्रमाणमप्पुदंतादोडं द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्गः द्विरूपयुक्तपरमावधिज्ञानसर्व्वविकल्पंगळनितु ध्रुवहारंगळ संवर्गसंजनितलब्धप्रमितमक्कुमंतादोडा परमावधिज्ञानविकल्पंगळतावेनितें दोडे पेळदपं :—

परमावहिस्स भेदा सगओगाहणवियप्पहदतेऊ ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ॥३९३॥ १०

परमावधेर्भेदाः स्वावगाहनविकल्पहततैजसाः । इति ध्रुवहारं वर्गणागुणकारं वर्गणां जानीहि ॥

परमावधेर्भेदाः परमावधिज्ञानविकल्पगळु स्वावगाहनविकल्पहततैजसाः मुन्नं जीवसमासाधिकारदोळपेळल्पट्ट स्वकीयावगाहनविकल्पंगळिदं गुणिसल्पट्ट तेजस्कायिकजीवंगळ सख्यातराशियु तदवगाहन्नविकल्पंगळोळु सर्व्वजघन्यावगाहनमिदु ६।८।२२ तदुत्कृष्टा- १५

$$\text{प}\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,१९।७।\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,८।२२।१९$$

कार्मणवर्गणाराशिप्रमाण सिद्धराश्यनन्तैकभागमात्रमपि द्विरूपाधिकपरमावधिसर्वभेदमात्रध्रुवहार-सवर्गमात्र स्यात् व ॥३९२॥ ते भेदाः कति ? इति चेदाह—

परमावधिज्ञानस्य भेदा तेजस्कायिकावगाहनविकल्पैर्गुणिततेजस्कायिकजीवराशि= अ मात्रा भवन्ति

$$\text{अ}\,।\,\frac{\text{अ}}{\text{प}}\,।\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,।$$ ते अवगाहनविकल्पा प्राग्मत्स्यरचनायां तज्जघन्यमिदं ६।८।२२

$$\text{प}\,\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,१९।८।७।८।\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\,२२\,१९।$$

उतनी वार ध्रुवहारोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही कार्मण वर्गणाका २०
गुणकार होता है ॥३९१॥

अब क्रमानुसार वर्गणाका प्रमाण कहते हैं—

कार्मण वर्गणा राशिका प्रमाण सिद्ध राशिके अनन्तवें भाग है तथापि परमावधिके समस्त भेदोंमें दो मिलानेपर जितना प्रमाण हो उतनी वार ध्रुवहारोंको परस्परमे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है ॥३९२॥ २५

वे परमावधिके भेद कितने हैं, वह कहते हैं—

तैजस्कायिककी अवगाहनाके विकल्पोंसे तैजस्कायिक जीवराशिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने परमावधिके भेद हैं । तथा अग्निकायिककी जघन्य अवगाहनाके प्रमाण-

वगाहमिदु ६।८।८ आदौ अंते सुद्धे इत्यादि सूत्राभिप्रायदिंदं तरल्पट्टपवर्त्तितलब्धाव-
अ
प ६ ८ ८।१९
अ अ

गाहविकल्पंगळिनितप्पुवु ६ अ ई तेजस्कायिक सर्व्वावगाहनविकल्पराशियिदं गुणिसुत्तिरलावु-
प
अ

दों दु लब्धं तल्लब्धमात्रं परमावधिज्ञानविकल्पगळप्पुवु = ६ अ ई परमावधिज्ञानविकल्पराशियं
प
अ

द्विरूपयुक्तं माडि विरलिसि प्रतिरूपं ध्रुवहारमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु आवुदों दु लब्धमदु
५ कार्म्मणवर्गणाराशियक्कुं। व। इदि इंतु ध्रुवहारप्रमाणमुं वर्गणागुणकारप्रमाणमुं वर्गणाप्रमाणमु व्यक्तमागि मूरुं राशिगळुं पेळल्पट्टुवव नीनु जानीहि अरियें दु शिष्यसंबोधनं माडल्पट्टुदु।

देसोहि अवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं।
तदियादिवियप्पेसु वि असंखवारोत्ति एस कमो ॥३९४॥

देशावधेरवरद्रव्यं ध्रुवहारेणापहृते भवेद्द्वितीयं। तृतीयादिविकल्पेष्वपि असंख्यवारपर्य्यंत-
१० मेष क्रमः॥

देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्यमं स अ १२।१६ ख ध्रुवभागहारदिंदं भागिसिदेक-
=

भागं देशावधिज्ञानविषयद्वितीयद्रव्यविकल्पमक्कुं स ० अ १२।१६ ख तृतीयविकल्पंगळोळमी
= ९

तदुत्कृष्टे ६।८।८ विशोध्य शेषमपवर्त्य ६।अ एकरूपे निक्षिप्ते एतावन्त ६।अ।इत्येव
अ प प
प ६।८ ८।१९ अ अ
अ अ

ध्रुवहारप्रमाण वर्गणागुणकारप्रमाण वर्गणाप्रमाण च जानीहि ॥३९३॥

१५ यत्प्रागुक्त देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्य–स अ १२–१६ ख। ध्रुवहारेण एकेन भक्त द्वितीयदेशावधि-
=

को अग्निकायिककी उत्कृष्ट अवगाहनाके प्रमाणमें-से घटाकर जो शेष बचे उसमें एक जोड़ने-पर अग्निकायकी अवगाहनाके भेद होते हैं। इस प्रकार ध्रुवहारका प्रमाण, वर्गणाके गुणकारका प्रमाण और वर्गणाका प्रमाण जानना ॥३९३॥

जो देशावधिज्ञानका विषय जघन्य द्रव्य पहले कहा था, उसकी ध्रुवहारसे एक बार
२० भाग देनेपर देशावधिके दूसरे भेदका विषयभूत द्रव्य होता है। इसी प्रकार ध्रुवहारका

क्रमदिंदमसंख्यातवारंगळरियल्पडुवुवु । इंतसंख्यातवारं ध्रुवहारभक्तैकैकभागंगळागुत्तं पोपुवंतु पोगल्के :—

देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं ।
तेजोभासमणाणं वग्गणयं केवलं जत्थ ॥३९५॥

देशावधिमध्यभेदे सविस्रसोपचयतेजः कार्म्मणांगं । तेजोभाषामनसां वर्गणां केवलं यत्र ॥ ५

पस्सदि ओही तत्थ असंखेज्जाओ हवंति दीउवही ।
वासाणि असंखेज्जा होंति असंखेज्जगुणिदकमा ॥३९६॥

पश्यत्यवधिस्तत्रासंख्येया भवंति द्वीपोदधयः । वर्षाण्यसंख्येयानि भवंत्यसंख्येयगुणितक्रमाणि ॥

देशावधिमध्यभेदे देशावधिज्ञानमध्यमविकल्पदोळु यत्र आवुदानुमों देडेयोळु विस्रसोपचयसहितमप्प तैजसशरीरस्कंधमुमं कार्म्मणशरीरस्कंधमुमं विस्रसोपचयरहित केवलं तैजसवर्गणेयुमं भाषावर्गणेयुमं मनोवर्गणेयुमं पश्यत्यवधिः अवधिज्ञानं प्रत्यक्षमागरिदुमा येडेगळोळु क्षेत्रंगळसंख्यातद्वीपोदधिगळप्पुवु । कालंगळुमा येडेगळोळु असंख्यावर्षंगळप्पुवा द्वीपोदधिगळुं वर्षंगळुमसंख्यातंगळागुत्तमुं तैजसशरीरस्कंधस्थानं मोदल्गों डुत्तरोत्तरंगळसंख्यातगुणितक्रमंगळुमप्पुवु ।

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोपचयं ।
धुवहारस्स विभज्जं सव्वोही जाव ताव हवे ॥३९७॥

ततः कार्म्मणस्यैकसमयप्रबद्धं विविस्रसोपचयं । ध्रुवहारस्य विभाज्यं सर्व्वावधिर्य्यावत्तावद्भवेत् ॥

विषयद्रव्यं भवति—स a १२–१६ ख । एव तृतीयादिविकल्पेष्वपि असख्यातबारपर्यन्तमेप एव क्रम.
= ९
कर्तव्यः ॥३९४॥ तथा सति किं स्यादिति चेदाह—

देशावधिज्ञानमध्यमविकल्पेपु यत्र सविस्रसोपचयं तैजसशरीरस्कन्ध तदग्रे यत्र तादृश कार्मणशरीरस्कन्धं तदग्रे यत्र केवला विविस्रोपचया तैजसवर्गणा तदग्रे यत्र केवला भापावर्गणा तदग्रे केवला मनोवर्गणा च अवधिज्ञानं जानाति । तत्र पञ्चसु स्थानेपु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपोदधयः काला असंख्यातवर्पाणि च भवन्ति तथापि उत्तरोत्तरासख्यातगुणितक्रमाणि ॥३९५–३९६॥

भाग दूसरे भेदके विषयभूत द्रव्यमें देनेपर तीसरे भेदके विषयभूत द्रव्यका प्रमाण आता है। ऐसा ही क्रम असंख्यात बार पर्यन्त करना चाहिए ॥३९४॥

ऐसा करनेसे क्या होता है यह कहते हैं—

देशावधिज्ञानके मध्यम भेदोंमेंसे जहाँ देशावधिज्ञान विस्रसोपचय सहित तैजसशरीररूप स्कन्धको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचय सहित कार्मणस्कन्धको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचय रहित तैजस वर्गणाको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचय रहित भाषावर्गणाको जानता है, उससे आगे जहाँ विस्रसोपचयरहित मनोवर्गणाको जानता है वहाँ इन पाँचों स्थानोंमें क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र और काल असंख्यात वर्ष होता है। तथापि उत्तरोत्तर असंख्यात गुणितक्रम होता है। अर्थात् पहलेसे

ततः पश्चात् वळिकमा मनोवर्गणेयं ध्रुवहारदिंदं भागिसुत्त पोगलु केवलं विस्रसोपचय-रहितमप्प कार्म्मणैकसमयप्रबद्धमावुदो दंडेयोळपुट्टुगुमल्लिदत्तला कार्म्मणसमयप्रबद्धं ध्रुवहारक्के भाज्यराशियक्कुमन्नेवरमं दोडे सर्व्वावधिज्ञानमेन्नेवरमन्नेवरं ।

एदम्मि विभज्जंते दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं ।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ॥३९८॥

एतस्मिन् विभाज्यंते द्विचरमदेशावधौ वर्गणां । चरमे कार्म्मणस्यैकवर्गणामेकवारभक्तां तु ।

ई कार्म्मणसमयप्रबद्ध दोळु सर्व्वावधिपर्य्यंतमवस्थितभाज्यदोळु ध्रुवहार पुगुत्तं पोगळु द्विचरमदेशावधियोळु कार्म्मणवर्गणेयक्कुमा कार्म्मणवर्गणेयं तु मत्ते एकवार भक्तां ओंदु बारि ध्रुवहारभक्तलब्धमात्रमं चरमे कडेयोळु सर्व्वोत्कृष्टदेशावधिज्ञानं पश्यति प्रत्यक्षमागि काणुगुमरिगुं ।

अंगुल असंखभागे दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्मि ।
एगागासपदेसो वड्ढदि संपुण्णलोगोत्ति ॥३९९॥

अंगुलाऽसंख्यभागे द्रव्यविकल्पे गते तु पुनः क्षेत्रे । एकाकाशप्रदेशो वर्द्धते संपूर्णलोकपर्य्यंतं ।

सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रद्रव्यविकल्पंगळु सलुत्तं विरळु क्षेत्रदोळेकाकाशप्रदेशं पेच्चुंगुमी प्रकारदिंदमे सर्व्वोत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषय सर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रं संपूर्णलोकमक्कुमेन्नवरमन्नेवरं पेच्चुंगुं ।

आवलि असंखभागो जहण्णकालो कमेण समयेण ।
वड्ढदि देसोहिवरं पल्लं समऊणयं जाव ॥४००॥

आवल्यसंख्येयभागो जघन्यकालः क्रमेण समयेन वर्द्धते । देशावधिवरः पल्यं समयोनं यावत् ।

ततः पश्चात् ता मनोवर्गणा ध्रुवहारेण पुन पुनर्भक्त्वा यत्र विकल्पे विविस्रसोपचय कार्मणैकसमय-प्रबद्ध उत्पद्यते, तत उपरि स एव ध्रुवहारस्य भाज्य भवेत् यावत्सर्वावधिज्ञानं तावत् ॥३९७॥

एतस्मिन् कार्मणसमयप्रबद्धे विभज्यमाने सति द्विचरमे देशावधिविकल्पे कार्मणवर्गणैवावशिष्यते, तु-पुन , चरमे ध्रुवहारेण एकवारभक्तैव अवशिष्यते ॥३९८॥

सूच्यङ्गुलासख्येयभागमात्रेषु द्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकाकाशप्रदेशो वर्धते इत्यय क्रम. तावद्विधेय यावत् सर्वोत्कृष्टदेशावधिविषयक्षेत्र सम्पूर्णलोको भवति॥३९९॥

दूसरे, दसरेसे तीसरे, तीसरेसे चौथे और चौथेसे पाँचवे भेद सम्बन्धी क्षेत्र कालका परिमाण असंख्यात गुणा है ॥३९५-३९६॥

उसके पश्चात् उस मनोवर्गणाको ध्रुवहारसे बार-बार भाजित करते-करते जिस भेदमें विस्रसोपचयरहित कार्मणशरीरका एक समयप्रबद्ध उत्पन्न होता है। उसीमे आगे भी ध्रुवहारका भाग तबतक दिया जाता है जबतक सर्वावधिज्ञानका विषय आता है ॥३९७॥

इस कार्मण समयप्रबद्धमे ध्रुवहारसे भाग देनेपर देशावधिके द्विचरम भेदमें कार्मणवर्गणारूप द्रव्य उसका विषय होता है। और अन्तिम भेदमें ध्रुवहारसे एक बार भाजित कार्मणवर्गणा द्रव्य होता है ॥३९८॥

सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमात्र द्रव्यकी अपेक्षा भेदोंके होनेपर जघन्य क्षेत्रके ऊपर एक आकाशका प्रदेश बढता है। यह क्रम तबतक करना जबतक सर्वोत्कृष्ट देशावधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र सम्पूर्ण लोक हो ॥३९९॥

जघन्यदेशावधिज्ञानविषयमप्प जघन्यकालमावल्यसंख्येयभागमात्रमक्कु ८ सो जघन्यकालं
a
क्रमदिंद मेकैकसमयदिंदं पेच्चुत्तं पोकुमेन्नेवरं मुत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयमप्प कालं समयोनपल्यमात्रमक्कुमेन्नेवरं। प-१। इल्लि जघन्यकालद मेलेकैकसमयवृद्धिक्रममं तोरिदप।

अंगुल असंखभागं धुवरूवेण य असंख वारं तु।
असंखसंखं भागं असंखवारं तु अद्धुवगे ॥४०१॥
धुवअद्धुवरूवेण य अवरे खेत्तम्मि वड्ढिदे खेत्ते।
अवरे कालम्मि पुणो एक्केक्कं वड्ढदे समयं ॥४०२॥

अंगुलासंख्यभागं ध्रुवरूपेण च असंख्यवारं तु। असंख्यसंख्यभागं असंख्यवारं तु अध्रुवके।
ध्रुवाध्रुवरूपेणावरे क्षेत्रे वर्द्धिते क्षेत्रे। अवरस्मिन् काले पुनरेकैको वर्द्धते समयः।

मुंदे वक्ष्यमाणकांडकंगळं कटाक्षिसि कालवृद्धिविशेषमं ध्रुवाध्रुवरूपदिंदं पेळ्दपना कांडकंगळोळगे मोदल कांडकदोळु अंगुलासंख्यभागं ध्रुवरूपेण च घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रप्रदेशंगळु ध्रुवरूपदिंदं जघन्यक्षेत्रद मेले क्रमदिंदं पेच्चि पेच्चि जघन्यकालद मेलो दो दु समयं पेच्चुत्तं पेच्चुत्तं प्रथमकांडकचरमविकल्पपर्य्यंतं असंख्यवारं तु असंख्यातवारं पेच्चिदोडे असंख्यातसमयंगळु पेच्चुगुं। मदें तेंदोडे प्रथमकांडकदोळु जघन्यक्षेत्रमिदु ६ तत्कांडकोत्कृष्टक्षेत्रमिदु ६ आदियनंतदोळु
a ७
कळेदाडा शेषमा कांडकदोळु जघन्यक्षेत्रदमेळे पेच्चिद प्रदेशंगळ प्रमाणंगळप्पुवु ६a-७ मत्तमाकां-
७a

जघन्यदेशावधिविषयकालः आवल्यसंख्येयभाग ८ सोऽय क्रमेण ध्रुवाध्रुववृद्धिरूपेण एकैकसमयेन
a
तावद्वर्धते यावदुत्कृष्टदेशावधिविषय समयोनं पल्यं भवेत् प—१ ॥४००॥ अथ तावेव क्रमौ एकान्नविंशतिकाण्डकेषु वक्तुमनास्तावत्प्रथमकाण्डके गाथासार्धद्वयेनाह—

घनाङ्गुलासंख्यातैकभागं आवलिभक्तघनाङ्गुलमात्र ध्रुवरूपेण वृद्धिप्रमाणं स्यात् सा च वृद्धि.

जघन्य देशावधिका विषयभूत काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। यह क्रमसे ध्रुववृद्धि और अध्रुववृद्धिके रूपसे एक-एक समय करके तबतक बढ़ता है जबतक उत्कृष्ट देशावधिका विषय एक समय कम पल्य होता है ॥४००॥

आगे क्षेत्र और कालका क्रम उन्नीस काण्डकोंमें कहनेकी भावनासे शास्त्रकार प्रथम काण्डकको अढ़ाई गाथासे कहते हैं—

घनांगुलको आवलीसे भाग देनेपर घनांगुलका असंख्यातवाँ भाग होता है। उतना ही ध्रुवरूपसे वृद्धिका प्रमाण होता है। यह वृद्धि प्रथमकाण्डके अन्तिम भेद पर्यन्त असंख्यातवार होती है। पुनः उसी प्रथम काण्डकमें अध्रुववृद्धिकी विवक्षा होनेपर उस वृद्धिका प्रमाण घनांगुलका असंख्यातवाँ भाग और संख्यातवाँ भाग होता है। अध्रुव वृद्धि भी प्रथम काण्डकके अन्तिम भेद पर्यन्त असंख्यातवार होती है ॥४०१॥

उक्त ध्रुववृद्धिके प्रमाणसे या अध्रुववृद्धिके प्रमाणसे जघन्य देशावधिके विषयभूत क्षेत्रके ऊपर क्षेत्रके बढ़नेपर जघन्यकालके ऊपर एक-एक समय बढ़ता है।

विशेषार्थ—पहले कहा था कि द्रव्यकी अपेक्षा सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग भेद बीतनेपर क्षेत्रमें एक प्रदेश बढ़ता है। यहाँ कहते है कि जघन्य ज्ञानके विषयभूत क्षेत्रके ऊपर

डकदोळे जघन्यकालमिदु ८ तत्कांडकोत्कृष्टकालमिदु ८ आदियनंतदोळ्कळे दोडे शेषं तत्कांडक-
अ १
दोळु जघन्यकालद मेले पेर्च्चिद समयंगळ प्रमाणमप्पुदु ८ अ १ ई कालविशेषदिदं क्षेत्रविशेषमं
१ अ
भागिसुवुदेके दोडे जघन्यकालद मेले इनितु समयंगळु पेर्च्चिदागळा जघन्यक्षेत्रद मेलेनितु प्रदेशंगळु पेर्च्चिद वोंदु समयं पेर्च्चिदागळेनितु प्रदेशंगळु पेर्च्चुगुमेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र काल ८ अ १
१ अ
५ फलप्रदेश ६ अ ७ इच्छाकालसमय १ लब्धक्षेत्रप्रदेशंगळु ६ इंतावलिभक्तघनांगुलप्रमितक्षेत्र
७ अ ८
विकल्पंगळु ध्रुवरूपदिंदं नडेदु नडेदोंदोंदु समयवृद्धियागुत्तं पोगि प्रथमकांडकचरमविकल्पदोळु जघन्यकालद मेले पेर्च्चिद समयंगळिनितप्पुवु ८ अ ७ इवं तज्जघन्यकालदोळु कूडुवागळु
७ अ
समच्छेदं माडि ८ ७ आवळिगावळियं तोरि संख्यातरूपुगळ कूडिदोडिदु ८ अ अत्रत्यासंख्यात-
अ ७ ७ अ
१० भाज्यभागहारंगळं सरिगळिद शेषं संख्यातभक्तावलिप्रमितमक्कु ८ मत्तमोंदु समयवृद्धि-
अ
यादागळु क्षेत्रदोळु आवलिभक्तघनांगुलप्रमितप्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु पेर्च्चुत्तं विरलागळिनितु समयंगळु पेर्च्चिदल्लिगेनितु प्रदेशंगळु क्षेत्रदोलु पेर्च्चुववेंदितु त्रैराशिकमं माडि प्र = का स १ । फ । = प्रदेश ६ इ = का स ८ अ–७ लब्धक्षेत्रप्रदेशंगळु ६ अ–७ इवं जघन्यक्षेत्रदोळु कूडुवागळु संख्यातरूपु-
८ ७ अ अ ७
गळिदं समच्छेदं माडि ६ ७ घनांगुलक्के घनांगुलमं तोरि संख्यातरूपुगळं कूडिदोडिदु ६ अ अत्र-
अ ७ ७ अ
१५ त्यासंख्यातभाज्यभागहारंगळनपवर्त्तिसिद शेषं संख्यातभक्तघनांगुलप्रमितं चरमक्षेत्रविकल्प-
मक्कुं ६
७

इन्तु ध्रुवरूपवृद्धि विवक्षेयिं सर्व्वकांडकदोळं परिपाटिक्रमदिरियल्पडुगुमिन्नु ध्रुववृद्धि-विवक्षेयिंद तत्प्रथमकांडकदोळु असंख्यं संख्यं भागं असंख्यवार तु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रक्षेत्र प्रदेशंगळु जघन्यक्षेत्रद मेले पेर्च्चिदागळो दोंदु समयं जघन्यकालद मेले पेर्च्चुगुमंते घनांगुलासंख्या-
२० तैकभागमात्रक्षेत्रप्रदेशगळु पेर्च्चिदागळोंदुं समयं केळगण कालदमेले पेर्च्चुगुमितु ध्रुवाध्रुववृद्धि-गळु क्षेत्रदोळु तद्योग्यासंख्यातवारंगळागुत्तं विरलु कालदोळु सुंपेळ्दिनितु समयंगळु ८ अ–७
७ अ

प्रथमकाण्डकचरमविकल्पपर्यन्त असंख्यातवार भवति । तु–पुन, तत्रैव काण्डके अध्रुववृद्धिविवक्षाया तद्वृद्धि–प्रमाण घनाङ्गुलस्यासंख्यातैकभागमात्र संख्यातैकभागमात्र च स्यात् सापि तच्चरमपर्यन्तमसंख्यातवार भवति ॥४०१॥

तेन उक्तध्रुववृद्धिप्रमाणेन अध्रुववृद्धिप्रमाणेन वा जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रस्योपरि क्षेत्रे वर्धिते

एक-एक प्रदेश बढते-बढते घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रदेश बढनेपर जघन्य देशावधिके विषयभूत कालमे एक समयकी वृद्धि होती है। इस प्रकार क्षेत्रमे इतनी वृद्धि होनेपर कालमें एक समयकी वृद्धि आगे भी होती है इसे ध्रुववृद्धि कहते है। और पूर्वोक्त प्रकारसे ही कभी

जघन्यकालदोळु पेच्चुववी प्रथमकांडकक्केपरिपाटियिंदं ध्रुवाध्रुववृद्धिगळु देशावधिय सर्व्वक्षेत्रकालकांडकंगळोळु तत् क्षेत्रकालानुसारदिंदं संभविसुववल्लि क्षेत्रवृद्धिगळु ध्रुवरूपविवक्षेयिंदं तत्तत्कांडकदोळवस्थितरूपमक्कुमाध्रुववृद्धिविवक्षेयिंदं तत्तत्कांडकदोळु प्रथमकांडकं मोदलागि क्षेत्रानुसारमागि केलवेडेयोळु घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रं केलवेडेयोळु घनांगुलसंख्यातैकभागमात्रं केलवेडयोलु घनांगुलमात्रं केलवेडेयोळु संख्यातघनांगुलमात्रं केलवेडेयोळसंख्यातघनांगुलमात्रं केलवडेयोळु श्रेण्यसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळु श्रेणिसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळु श्रेणिमात्रं केलवेडेयोळु संख्यातश्रेणिमात्रं केलवेडेयोळसंख्यातश्रेणिमात्रं केलवेडेयोळं प्रतराऽसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळं प्रतरसंख्येयभागमात्रं केलवेडेयोळु प्रतरमात्रं केलवेडेयोळसंख्यातप्रतरमात्रं क्षेत्रप्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु पेच्चिदागळोंदोंदु समयदमधस्तनकालद मेले पेच्चुगुमितऽसंख्यातवारं पेच्चुगुमेंदु वक्तव्यमक्कुमदुकारणदिंदमुत्कृष्टक्षेत्रकालंगळुत्पत्तिगाळिवरोधिसल्पडवेंदितु सिद्धंगळु ।

संखातीदा समया पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय पढमादी कंडये वोच्छं ॥४०३॥

संख्यातीताः समयाः प्रथमे पर्व्वणि उभयतो वृद्धिः । क्षेत्रं कालमाश्रित्य प्रथमादिकांडकानि वक्ष्यामि ॥

प्रथमे पर्व्वणि मोदलकांडकदोळु संख्यातीताः समयाः असंख्यातसमयंगळु पूर्व्वोक्तप्रमितंगळु ८ a १ उभयतो वृद्धिः ध्रुवाध्रुवरूपदिंदं वृद्धियरियल्पडुगुं । क्षेत्रमुमं कालमुमनाश्रयिसि
१ a

जघन्यकालस्योपरि एकैक समयो वर्धते ॥४०२॥

एव सति प्रथमे पर्वणि काण्डके उभयतः ध्रुवरूपतोऽध्रुवरूपतो वा वृद्धि क्षेत्रवृद्धिः संख्यातीता समयाः जघन्यकालोनतदुत्कृष्टकालमात्रा स्यु. ८ । a−१ क्षेत्रवृद्धिस्तु तज्जघन्यक्षेत्रोनतदुत्कृष्टक्षेत्रमात्री ६ । a−१ इमौ
१ । a । १ । a
वृद्धिक्षेत्रकालौ जघन्यक्षेत्रकालाभ्या—६ । ८ समच्छेदेन ६ । १ । ८ । १ मेलयित्वा ६ । a । ८ । a अपवर्तितौ
a a a । १ । a । १ १ । a । १ । a
। ६ । ८ प्रथमकाण्डकचरमविकल्पविषयौ क्षेत्रकालौ स्यातां । इत परं क्षेत्रं काल चाश्रित्य प्रथमादीनि एकान्न-
१ । १

घनांगुलके असंख्यातवे भाग और कभी घनांगुलके संख्यातवें भाग प्रदेशोंकी वृद्धि होनेपर कालमें एक समयकी वृद्धिके होनेको अध्रुववृद्धि कहते हैं ॥४०२॥

इस प्रकार पहले काण्डकमें ध्रुवरूप और अध्रुवरूपसे एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते असंख्यात समयकी वृद्धि होती है। सो प्रथमकाण्डकके उत्कृष्टकालके समयोंमें-से जघन्यकालके समयोंको घटानेपर जो शेष रहे उतने असंख्यात समयोंकी वृद्धि प्रथम काण्डकमें होती है। इसी तरह प्रथमकाण्डकके उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशोंमेंसे उसके जघन्य क्षेत्रके प्रदेशोंको घटानेपर जो शेष रहे उतने प्रदेशप्रमाण प्रथम काण्डकपें क्षेत्र वृद्धि होती है। इन वृद्धिरूप क्षेत्र और कालको जघन्य क्षेत्र और जघन्य कालमें जोड़नेपर प्रथम काण्डकके अन्तिम विकल्पके क्षेत्र और काल होते है। अर्थात् वृद्धिरूप प्रदेशोंके परिमाणको जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भागमें मिलानेपर प्रथम काण्डकके अन्तिम भेदके क्षेत्रका प्रमाण होता है। इसी प्रकार वृद्धिरूप समयोके परिमाणको जघन्य काल आवलीके असंख्यातवे भागमें जोड़नेपर प्रथम काण्डक-

प्रथमादिकांडकंगळं पेळ्दपेनें बुदाचार्यन प्रतिज्ञेयक्कुं ।

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जा ।
अंगुलमावलियंतो आवलिय चांगुलपुधत्तं ॥४०४॥

अंगुलमावल्योर्भागोऽसंख्येयतोपि संख्येयः । अंगुलमावल्यंतः आवलिकं चांगुलपृथक्त्वं ॥

प्रथमकांडकदोळु जघन्यक्षेत्र कालंगळु घनांगुलावळिगळ असंख्यातैकभागमात्रंदिंदं मेले संख्येयो भागः क्षेत्रमुं कालमुं यथासंख्यमागि घनांगुलसंख्येयभागमुमावळि संख्येयभागमुमक्कु ६ ८ १ १

द्वितीयकांडकदोळु क्षेत्रं घनांगुलमक्कुं कालमावल्यंतमेयक्कुं । किंचिदूनावलि यें बुदर्त्थं । ६ । ८–। तृतीयकांडकदोळु आवलिरंगुलपृथक्त्वं घनांगुलपृथक्त्वमुमावलियमक्कुं । पृथक्त्व । ६८।

आवलियपुधत्तं पुण हत्थं तह गाउयं मुहूत्तं तु ।
जोयणमिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥४०५॥

आवलिपृथक्त्वं पुनर्हस्तस्तथा गव्यूतिर्म्मुहूर्त्तस्तु । योजनं भिन्नमुहूर्त्तः दिवसांतः पंचविंशतिस्तु ॥

चतुर्थकांडकदोळु पृथक्त्वावलियुमेकहस्तमुमक्कुं । हस्त १ । ८ । पृ । पंचमकांडकदोळु तथा गव्यूतिर्म्मुहूर्त्तांतः एकक्रोशमुमंतर्म्मुहूर्त्तमुमक्कुं । क्रो १ । का २ १–। षष्ठकांडकदोळु योजनंभिन्नमुहूर्त्तः एकयोजनमुं भिन्नमुहूर्त्तमुमक्कुं । यो १ । का = भिन्नमु १ ॥ सप्तमकांडकदोळु दिवसांतः पंचविंशतिस्तु किंचिदूनदिवसमुं पंचविंशतियोजनंगळुमक्कुं । यो २५ का = दि १ ।

विंशतिकाण्डकानि वक्ष्ये इत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥४०३॥

प्रथमकाण्डके क्षेत्रकालौ जघन्यौ घनाङ्गुलावल्योरसंख्यातैकभागौ ६ । ८ उत्कृष्टौ तयोः संख्येयभागौ
अ अ
६ । ८ द्वितीयकाण्डके क्षेत्र घनाङ्गुलम् । काल आवल्यन्त-किंचिदूनावलिरित्यर्थ ६ । ८–। तृतीयकाण्डके
१ । १
क्षेत्र घनाङ्गुलपृथक्त्व काल आवलिपृथक्त्व पृ ६ । ८ ॥४०४॥

चतुर्थकाण्डके काल आवलिपृथक्त्व । क्षेत्र एकहस्त । ह १ । ८ पृ । पञ्चमकाण्डके क्षेत्र एकक्रोश । काल अन्तर्मुहूर्त । क्रो १ । का २ १ । षष्ठकाण्डके क्षेत्रमेकयोजन, काल भिन्नमुहूर्त । यो १ का भिन्न मु० १–। सप्तमकाण्डके काल किंचिदूनदिवस क्षेत्र पञ्चविंशतियोजनानि यो २५ का दि १– ॥४०५॥

के अन्तिम भेदमें कालका प्रमाण होता है । आगे क्षेत्र और कालको लेकर उन्नीस काण्डक कहेंगे ऐसी प्रतिज्ञा आचार्यने की है ॥४०३॥

प्रथम काण्डकमें जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग और जघन्य काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है । उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुलका संख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट काल आवलीका संख्यातवाँ भाग है । द्वितीयकाण्डकमें क्षेत्र घनांगुल प्रमाण और काल कुछ कम आवली है । तीसरे काण्डकमें क्षेत्र घनांगुल पृथक्त्व प्रमाण है और काल आवली पृथक्त्व प्रमाण है ॥४०४॥

चतुर्थ काण्डकमें काल आवली पृथक्त्व और क्षेत्र एकहाथ प्रमाण है । पाँचवे काण्डकमें क्षेत्र एक कोस प्रमाण काल अन्तर्मुहूर्त है । छठे काण्डकमें क्षेत्र एक योजन और काल भिन्न मुहूर्त है । सप्तम काण्डकमें काल कुछ कम एक दिन और क्षेत्र पचीस योजन है ॥४०५॥

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुवलोए वासपुधत्तं च रुजगम्हि ॥४०६॥

भरतेऽर्द्धमासः साधिकमासश्च जंबूद्वीपे । वर्षं च मनुजलोके वर्षपृथक्त्वं च रुचके ॥

अष्टमकांडकदोळु भरतक्षेत्रमुमर्द्धमासमक्कुं । भर । अर्द्ध मा । नवमकांडकदोळु जंबूद्वीपमं साधिकमासमुमक्कुं । जं मा. १ । दशमकांडकदोळु मनुष्यलोकमुमेकवर्षमुमक्कुं । म ४५ ल । वर्ष १ । एकादशकांडकदोळु रुचकद्वीपमुं च वर्षपृथक्त्वमुमक्कुं । रु । व पृ ।

संखेज्जपये वासे दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
वासम्मि असंखेज्जे दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥४०७॥

संख्येयप्रमे वर्षे द्वीपसमुद्रा भवंति संख्येयाः । वर्षे असंख्येये द्वीपसमुद्रा असंख्येयाः ॥

द्वादशकांडकदोळु संख्येयमात्र द्वीपसमुद्रंगळु संख्यातवर्षंगळुमप्पुवु । द्वी=स=१ ॥ वर्ष १ । मेळे त्रयोदशादि कांडकंगळोळु तैजसशरीरादि द्रव्यविकल्पंगळोळु मुं पेळ्दऽसंख्यातद्वीपसमुद्रंगळु तत्कालंगळुमसंख्यातवर्षंगळुमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु । इंतु देशावधिज्ञानविषयंगळप्प द्रव्यक्षेत्रकालं भावंगळ एकान्नविंशतिकांडकंगळोळु चरमकांडक चरमद्रव्यक्षेत्रकालभावंगळु मुं पेळ्द ध्रुवहारैकवारभक्तकार्म्मणवर्गणेयुं व संपूर्णकमुं=समयोनैकपल्यमुं ॥ प १≡। यथाक्रम-
९

दिंदमप्पुवुमाद्यदेशावधिज्ञानविषय द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळगे सदृष्टि—

अष्टमकाण्डके क्षेत्र–भरतक्षेत्र, काल अर्धमास , भर अर्धमा =। नवमकाण्डके क्षेत्र जम्बूद्वीप., कालः साधिकमासः, ज =। मा १ । दशमकाण्डके क्षेत्रं मनुष्यलोकः कालः एकवर्ष., ४५ ल वर्ष १ । एकादशे काण्डके क्षेत्र रुचकद्वीपः, काल. वर्षपृथक्त्व रु । व पृ ॥४०६॥

द्वादशे काण्डके क्षेत्रं सख्येयद्वीपसमुद्राः । काल सख्यातवर्षाणि द्वी = स = १ वर्ष १ । उपरित्रयोदशादिषु काण्डकेषु तैजसशरीरादिद्रव्यविकल्पस्थानेषु क्षेत्राणि असख्यातद्वीपसमुद्रा. कालः असख्यातवर्षाणि उभयेऽपि असंख्यातगुणितक्रमेण भवन्ति । चरमकाण्डकचरमे द्रव्यं ध्रुवहारभक्तकार्मणवर्गणा व क्षेत्र संपूर्ण-
९

लोकः≡कालः समयोनपल्यं प—१ ॥४०७॥

अष्टमकाण्डकमें क्षेत्र भरतक्षेत्र और काल आधामास है। नौवें काण्डकमें क्षेत्र जम्बूद्वीप काल कुछ अधिक एक मास है। दसवें काण्डकमें क्षेत्र मनुष्य लोक, काल एक वर्ष है। ग्यारहवें काण्डकमें क्षेत्र रुचकद्वीप काल वर्षपृथक्त्व है ॥४०६॥

बारहवें काण्डकमें क्षेत्र संख्यात द्वीप-समुद्र और काल संख्यात वर्ष है। आगे तेरहवे आदि काण्डकोंमें जो तैजस शरीर आदि द्रव्यकी अपेक्षा स्थान कहे हैं, उनमें क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र है और काल असंख्यात वर्ष है। दोनों ही आगे-आगे क्रमसे असंख्यातगुने असंख्यातगुने होते हैं। अन्तके उन्नीसवे काण्डकमें द्रव्य तो कार्मणावर्गणामें ध्रुवहारका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है। क्षेत्र सम्पूर्ण लोक है और काल एक समय कम पल्य प्रमाण है ॥४०७॥

देशावधि संबंध

द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
व ९ व व ९ ९ ०	≡ ० ० ०	प १ ० ० ०	≡अ ० ० ०
कार्म्मसम कार्म्मसम	द्वीप अ ६	वर्ष अ ६	० ० ० ०
म ण व म ण व	द्वीप ए ५	वर्ष अ ५	० ० ० ०
भाषा प भाषा प	द्वीप अ ४	वर्ष अ ४	० ० ० ०
तेज वर्ग तेज वर्ग	द्वीप अ ३	वर्ष अ ३	० ० ० ०
कार्म्मण श कार्म्मण श	द्वीप अ २	वर्ष अ २	० ० ० ०
तेज०शरीर तेज० शरीर	द्वीप स ७	वर्ष अ १	० ० ० ०
		वर्ष स ७	० ० ०
	रुचक	वर्ष पृ	० ० ०
	मानस क्षे. ४५	वर्ष १	० ० ०
	जंबु द्वीप	मास १	० ० ०
	भरत	दिन १५	० ० ०
	यो २ ५	दिन १	० ० ०
	यो १	भिन्न १–	० ० ०
	क्रोश १	२१ झ १–	० ० ० ०
	हस्त १	पृ ८	० ० ० ०
	पृ ६	८	० ० ० ०
	० ६	० ८	० ० ० ०

द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
		० ०	
		० ०	०
	० ६	८	०
	० ७	७ ८ ८ ८ ८	०
	० ०	०	०
	० ०	० ए अ अ अ अ अ	
	० ०	० ८ ८ ८	
	० ०	० अ अ अ अ	
	० ०	० ८ ८	
	०	० अ अ अ	
स अ १२	१६ ख	० ० ८	
≡ ९		६ ८ अ	
स अ १२	१६ ख	अ अ अ	
≡			

काल विसेसेणवहिदखेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी ।
अद्धुववड्ढीवि पुणो अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥४०८॥

कालविशेषेणापहृतक्षेत्रविशेषो भवेत् ध्रुवा वृद्धिः । अध्रुववृद्धिरपि पुनरविरुद्धमिष्टकांडके ।

कालविशेशेणापहृतः क्षेत्रविशेषो ध्रुवा वृद्धिर्भवेत् । प्रथमकांडकदोळु जघन्यकालमं ८ ५
ə

तन्नुत्कृष्टकालदोळु ८ विशेषिसि ८ ə − १ अदरिंदं भागिसल्पट्ट क्षेत्रविशेषं जघन्यक्षेत्रमं ६
१ १ ə ə

तन्नुत्कृष्टक्षेत्रदोळु ६ शेषिसिदुदनिंद ६ ə−१ भागिसिद लब्ध ६ ə−१ मपवर्त्तितमिदु ६
१ १ ə १ ə ८ ə १ ८
१ ə

ध्रुवा भवेत् वृद्धि :। प्रथमकांडकदोळु ध्रुवरूपक्षेत्रवृद्धिप्रमाणमक्कुं। सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्र-द्रव्यविकल्पंगळवस्थितरूपदिंदं नडदोंदु प्रदेशं क्षेत्रदोळु पेच्चुगुमी क्रमदिंदमीयावलि भक्तघनांगुल-प्रमितप्रदेशंगळु जघन्यक्षेत्रदोळु पेच्चि कालदोळोंदु समयं जघन्यकालद मेले पेच्चुगुमितु तत्कांडक चरमपर्य्यंतं ध्रुवरूपदिंदं जघन्यकालद मेले पेच्चिद समयंगळिनितप्पुवु ८ ə १ इवं जघन्य- १०
१ ə

कालदोळु ८ समच्छेदं माडि कूडिदोडे प्रथमकांडक चरमदोळु आवलि संख्येयभागमक्कुमेंबुदर्थं ८
ə १

जघन्य क्षेत्रद मेले ६ पेच्चिद प्रदेशंगळुमिनितप्पुवु ६ ə १ इवं जघन्यक्षेत्रदोळु कूडिदोडे
ə १ ६

प्रथमकांडकचरमदोळु घनांगुलसंख्येयभागमात्रमक्कुं ६ इंतेल्ला कांडकंगळोळं ध्रुववृद्धियं
१

विवक्षितकाण्डके जघन्यक्षेत्रं स्वोत्कृष्टक्षेत्रे जघन्यकाल च स्वोत्कृष्टकाले विशोध्य शेषराशी क्षेत्र-कालविशेषौ स्याताम् । तत्र प्रथमकाण्डके कालविशेषेण ८ । ə−१ क्षेत्रविशेष. ६ । ə−१ भक्त्वा ६ ə−१ १५
१ । ə १ । ə १ ə ८ ə−१
१ ə

अपवर्तितः ६ ध्रुवावृद्धिर्भवेत् । सूच्यङ्गुलासख्येयभागमात्रद्रव्यविकल्पेषु अवस्थितरूपेण गतेषु एकप्रदेश. क्षेत्रे
८
वर्धते । अनेकक्रमेण आवलिभक्तघनाङ्गुलप्रमितप्रदेशा जघन्यक्षेत्रस्योपरि वर्धन्ते । तदा जघन्यकालस्योपरि एक. समयो वर्धते । एवं तत्काण्डकचरमपर्यन्त ध्रुवरूपेण जघन्यकालस्योपरि वर्धितसमयप्रमाणमिदम् । ८ ə−१
१ ə

विवक्षित काण्डकके अपने उत्कृष्ट क्षेत्रमें जघन्य क्षेत्रको और अपने उत्कृष्ट कालमें। जघन्य कालको घटानेपर जो शेष राशि रहती है उसको क्षेत्र विशेष और काल विशेष कहते २०
है। प्रथम काण्डकके कालविशेषसे क्षेत्रविशेषमें भाग देनेपर ध्रुववृद्धिका प्रमाण होता है। सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमात्र द्रव्यके विकल्पोंके बीतनेपर क्षेत्रमें एक प्रदेश बढ़ता है। इस क्रमसे जघन्य क्षेत्रके ऊपर आवलीसे भाजित घनांगुल प्रमाणप्रदेश जघन्य क्षेत्रके ऊपर बढ़ते हैं। इतने प्रदेश जघन्य क्षेत्रके ऊपर बढनेपर जघन्यकालके ऊपर एक समय बढ़ता है। इस प्रकार प्रथम काण्डकके अन्त पर्यन्त ध्रुववृद्धिसे जितने समय बढ़ें उन्हे जघन्यकालमें २५
मिलानेपर आवलीका संख्यातवाँ भाग प्रथम काण्डकका उत्कृष्ट काल होता है। इसी तरह जितने जघन्य क्षेत्रके ऊपर प्रदेश बढ़े उन्हें जघन्य क्षेत्रमें मिलानेपर घनांगुलका संख्यातवाँ

साधिसुवुदु । अध्रुववृद्धिरपि पुनरविरुद्धमिष्टकांडके अध्रुववृद्धियुं तन्न विवक्षितकांडकदोळ विरुद्धमागि ।

अंगुल असंखभागं संखं वा अंगुलं च तस्सेव ।
संखमसंखं एवं सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥४०९॥

अंगुलासंख्यातभागं संख्यं वा अंगुल च तस्यैव । संख्यमसंख्यं एवं श्रेणीप्रतरस्या ध्रुवके ॥

अध्रुववृद्धिविवक्षितमादोडे तत्कांडक क्षेत्रकालंगळऽविरुद्धमागि घनांगुलासख्यातैकभागमात्रमुं ६ मेणु घनागुल संख्यातैकभागमात्रमुं ६ मेणु घनांगुलमात्रमुं ६ संख्यातघनांगुलमात्रमुं
ə ३
६३ । असंख्यातघनागुलमात्रमुं । ६ ə । एवं इंतु श्रेणिगं प्रतरक्कमरियल्पडुगुमदेंते दोडे श्रेण्यसंख्येयभागमात्रमुं श्रेणिय संख्येयभागमात्रमुं श्रेणिमात्रमुं, संख्यातश्रेणिमात्रमुं ॥—१॥ असंख्यात
श्रेणिमात्रमुं ।—ə । असंख्येयभागप्रतरमात्रमुं ə प्रतरसंख्येयभागमात्रमुं ३ प्रतरमात्रमु = संख्यातप्रतरमात्रमु = १ असंख्यातप्रतरमात्रमुं = ə प्रदेशगळु पेच्चि पेच्चिकालदोळेकैक समयं पेच्चुगुमेंबुदध्रुववृद्धिक्रमं ।

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणेगिवारभाजिदे दव्वं ।
उक्कस्सं खेत्तं पुण लोगो संपुण्णओ होदि ॥४१०॥

कार्म्मणवर्गणां ध्रुवहारेणैकवारभाजिते द्रव्यमुत्कृष्टं क्षेत्रं पुनर्लोकः सपूर्णो भवति ॥

अत्र च जघन्यकाले ८ समच्छेदेन ६ । ३ । मिलिते प्रथमकाण्डकचरमे घनाङ्गुलसंख्येयभागो भवति ६ एवं
ə ə ३ ३
सर्वकाण्डकेषु ध्रुववृद्धि साधयेत् । अध्रुववृद्धिरपि विवक्षितकाण्डकेन तत्तत्क्षेत्रकालाविरोधेन वक्तव्या ॥४०८॥ तद्यथा—

घनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रा ६ वा घनाङ्गुलसंख्येयभागमात्रा ६ वा घनाङ्गुलमात्रा ६ वा
ə ३
संख्यातघनाङ्गुलमात्रा ६ ३ वा असंख्यातघनाङ्गुलमात्रा ६ ə एव श्रेणीप्रतरयोरपि, तथाहि—श्रेण्यसंख्येय—
भागमात्रा ə वा श्रेणिसंख्येयभागमात्रा ३ वा श्रेणिमात्रा —वा संख्यातश्रेणिमात्रा —३ वा असंख्यातश्रेणिमात्रा —ə वा प्रतरासंख्येयमात्रा = ३ वा प्रतरसंख्येयभागमात्रा = वा संख्यातप्रतरमात्रा = ३ वा
ə ३
असंख्यातप्रतरमात्रा = ə प्रदेशा वर्धित्वा वर्धित्वा काले एकैकसमयो वर्धते इत्यध्रुववृद्धिक्रम ॥४०९॥

भागप्रमाण उत्कृष्टक्षेत्र प्रथमकाण्डकका होता है । इसी प्रकार सब काण्डकोमे ध्रुववृद्धिका प्रमाण लाना चाहिए । अध्रुववृद्धि भी विवक्षित काण्डकमें उस-उस क्षेत्रकालका विरोध न करते हुए लानी चाहिए ॥४०८॥

वही कहते है—

घनागुलके असंख्यातवे भागमात्र अथवा घनांगुलके संख्यातवे भागमात्र, अथवा घनागुलमात्र, अथवा संख्यात घनांगुलमात्र, अथवा असंख्यात घनागुलमात्र, अथवा श्रेणीके असंख्यातवे भागमात्र, अथवा श्रेणीके संख्यातवे भागमात्र, अथवा श्रेणिप्रमाण, अथवा संख्यात श्रेणिमात्र, अथवा असंख्यात श्रेणिमात्र, अथवा प्रतरके असंख्यातवे भाग, अथवा प्रतरके संख्यातवे भाग अथवा प्रतरमात्र अथवा संख्यात प्रतरमात्र अथवा असंख्यात प्रतरमात्र प्रदेश बढ़ा-बढाकर कालमे एक-एक समय बढता है । इस प्रकार अध्रुववृद्धिका क्रम है॥४०९॥

कार्म्मणवर्गणेयनोम्मे ध्रुवहारदिंदं भागिसिदोडे देशावधिज्ञानदुत्कृष्टद्रव्यमक्कुं व
९
तदुत्कृष्टं क्षेत्रं मत्ते लोकदोळेनुं कोरतेयिल्लदे संपूर्णलोकमात्रमक्कुं।

पल्ल समऊणकाले भावेण असंखलोगसेत्ता हु।
दव्वस्स य पज्जाया वरदेसोहिस्स विसया हु ॥४११॥

पल्यं समयोनं काले भावेन असंख्य लोकमात्राः खलु। द्रव्यस्य च पर्य्यायाः वरदेशावधेर्विषयाः खलु ॥

कालदोळु देशावधिगुत्कृष्टं समयोनपल्यमात्रमक्कुं। प १। भावदिंदमसंख्यातलोकमात्रंगळु स्फुटमागि काल भाव शब्दद्वयवाच्यंगळुमा द्रव्यपर्य्यायंगळु वरदेशावधिज्ञानक्के विषयंगळप्पुवु। स्फुटमागि।=ə॥

काले चउण्ह उड्ढी कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य।
उड्ढीए दव्वपज्जय भजिदव्वा खेत्तकाला हु ॥४१२॥

काले चतुर्णा वृद्धिः कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्धिश्च। द्रव्यपर्य्याययोर्वृद्धौ भक्तव्यौ क्षेत्रकालौ ॥

आवागळोम्मे कालवृद्धियक्कुमागळु द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळनाल्कर वृद्धिगळक्कुं क्षेत्रवृद्धियागुत्तं विरलु कालमो दे भजनीयमक्कुं। द्रव्यभावंगळ वृद्धियोळु क्षेत्रकालद्वयवृद्धिगळु विकल्पनीयंगळप्पुवेंबुदु युक्तियुक्तमेयक्कुं।

कार्मणवर्गणा एकवार ध्रुवहारेण भक्ता देशावध्युत्कृष्टद्रव्य भवति व तदुत्कृष्टक्षेत्र पुनः सपूर्णलोको भवति=॥४१०॥
९

काले देशावधेरुत्कृष्ट समयोनपल्यं भवति प—१। भावेन पुनः असख्यातलोकमात्र भवति=ə कालभावशब्दद्वयवाच्यास्ते द्रव्यस्य पर्याया वरदेशावधिज्ञानस्य स्फुट विषया भवन्ति ॥४११॥

यदा कालवृद्धिस्तदा द्रव्यादीना चतुर्णा वृद्धयो भवन्ति। यदा क्षेत्रवृद्धिस्तदा कालवृद्धिः स्याद्वा न वेति भजनीया। यदा द्रव्यभाववृद्धी तदा क्षेत्रकालवृद्धी अपि भजनीये इत्येतत्सर्वं युक्तियुक्तमेव ॥४१२॥ अथ परमावधिज्ञानप्ररूपणमाह—

कार्मणवर्गणाको एक बार ध्रुवहारसे भाजित करनेपर देशावधिका उत्कृष्ट द्रव्य होता है और उत्कृष्ट क्षेत्र सम्पूर्ण लोक है ॥४१०॥

देशावधिका उत्कृष्ट काल एक समयहीन पल्य है और भाव असंख्यात लोकप्रमाण है। काल और भावशब्दसे द्रव्यकी पर्याय उत्कृष्टदेशावधिज्ञानके विषय होती है। ऐसा जानना।

विशेषार्थ—एक समयहीन एक पल्य प्रमाण अतीतकालमें हुई और उतने ही प्रमाण आगामी कालमें होनेवाली द्रव्यकी पर्यायोंको उत्कृष्ट देशावधि जानता है। भावसे असंख्यात लोकप्रमाण पर्यायोंको जानता है ॥४११॥

अवधिज्ञानके विषयमें जब कालकी वृद्धि होती है तब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चारोंकी वृद्धि होती है। जब क्षेत्रकी वृद्धि होती है तब कालकी वृद्धि भजनीय है, हो या न हो। जब द्रव्य और भावकी वृद्धि होती है तब क्षेत्र और कालकी वृद्धि भजनीय है। यह सब युक्ति युक्त ही है ॥४१२॥

---

१. स्वविषयस्कधगतानतवर्णादिविकल्पो भाव इति राजवार्त्तिके उक्तत्वात् द्रव्यस्य पर्य्याया एव कालभावशब्दवाच्या भूतभावि पर्य्यायाणा वर्त्तमानपर्य्यायाणा च कालभावत्वख्यापनात् इति टिप्पण।

अनंतरं परमावधिज्ञान प्ररूपणमं पेळ्दपं :—

देसावहिवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे णियमा ।
परमावहिस्स अवरं दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥४१३॥

देशावधिवरद्रव्यं ध्रुवहारेणापहृते भवेन्नियमात् । परमावधेरवरद्रव्यप्रमाणं तु जिनदिष्टं ॥

सर्व्वोत्कृष्टदेशावधिज्ञानविषयोत्कृष्टद्रव्यमं पूर्व्वोक्त ध्रुवहारैकवार भक्तकार्म्मणवर्गणा-
प्रमाणमं व ध्रुवहारदिदं भागिसुत्तिरलु व तु मत्ते परमावधिविषयजघन्यद्रव्यप्रमाणं नियमदिंद-
मक्कुमेंदु जिनरुळिदं पेळल्पट्टुदु । इन्ना परमावधियुत्कृष्टद्रव्यप्रमाणमं पेळ्दपं :—

परमावहिस्स भेदा सग ओगाहणवियप्पहदतेऊ ।
चरिमे हारपमाणं जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥४१४॥

परमावधेर्भेदाः स्वकावगाहनविकल्पहततेजसः । चरमे हारप्रमाणं ज्येष्ठस्य भवेत् द्रव्यं तु ॥

परमावधिज्ञानविकल्पंगळेनितप्पुवें दोडे स्वावगाहनविकल्पंगळिंदं गुणिसल्पट्ट तेजःस्कायिक-
जीवंगळ संख्ये यावत्तावत्प्रमाणंगळप्पुवु = a/p a ई परमावधिज्ञानसर्व्वविकल्पंगळोळु सर्व्वो-
त्कृष्टचरमविकल्पदोळु तु मत्ते द्रव्यमुत्कृष्टपरमावधिगे ध्रुवहारप्रमाणमेयक्कुं ॥ ९ ॥

सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो ।
गंगामहाणइस्स पवाहोव्व धुवो हवे हारो ॥४१५॥

सर्व्वावधेरेकः परमाणुः भवेन्निर्व्विकल्पः । सः गंगामहानद्याः प्रवाहवत् ध्रुवो भवेद्धारः ॥

देशावधेरुत्कृष्टद्रव्यमिद व तु—पुन ध्रुवहारेण भक्त तदा व परमावधिविषयजघन्यद्रव्य नियमेन भव-
तीति जिनैरुक्त ॥४१३॥ इदानी परमावधेरुत्कृष्टद्रव्यप्रमाणमाह—

परमावधिज्ञानविकल्पा स्वावगाहनविकल्पगुणिततेजस्कायिकजीवसख्या भवन्ति = a/p ६ । a । तेषु
पुन सर्वोत्कृष्टचरमविकल्पेषु पुन द्रव्य ध्रुवहारप्रमाणमेव ९ भवेत् ॥४१४॥

अब परमावधिज्ञानका कथन करते है—

देशावधिके उत्कृष्ट द्रव्यको ध्रुवहारसे भाग देनेपर परमावधिके विषयभूत जघन्य द्रव्यका प्रमाण होता है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥४१३॥

अब परमावधिके उत्कृष्ट द्रव्यका प्रमाण कहते है—

तेजस्कायिक जीवोंकी अवगाहनाके भेदोंसे तेजस्कायिक जीवोंकी संख्याको गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है उतने परमावधिज्ञानके भेद हैं। उनमे-से सबसे उत्कृष्ट अन्तिम भेदके विषयभूत द्रव्य ध्रुवहार प्रमाण ही होता है। अर्थात् ध्रुवहारका जितना परिमाण है उतने परमाणुओंके समूहरूप सूक्ष्म स्कन्धको जानता है ॥४१४॥

मत्तमा परमावधिसर्व्वोत्कृष्टद्रव्यमं ध्रुवहारप्रमितमं । ९ । तु मत्ते ध्रुवहारदिंदं भागिसिदोडे दे परमाणवक्कुमा द्रव्यं सर्व्वावधिज्ञानविषयद्रव्यमक्कुमा सर्व्वावधिज्ञानमुं निर्व्विकल्पमेयक्कुमितु देशावधिज्ञानविषयमप्प जघन्यद्रव्यराशियोळु मध्यमयोगार्जितनोकर्म्मौदारिकशरीरसंचयसविस्रसोपचयलोकविभक्तप्रमितद्रव्यस्कंधदोळु देशावधिज्ञानद्वितीयविकल्पं मोदल्गोंडु परमावधिज्ञानसर्व्वोत्कृष्टद्रव्यपर्य्यंतमदमोळ पोय्दु गंगानदीमहाप्रवाहमेंतु हिमाचलदोळपुट्टि पूर्व्वोदधिपर्य्यंतमविच्छिन्नरूपदिंदं परिदु पोगि तदुदधिप्रविष्टमादुदंते ध्रुवहारमुमविच्छिन्नरूपदिंदं प्रवेशिसि प्रवेशिसि परमाणुद्रव्यपर्य्यवसानमागि निंदुदेकेंदोडे विषयभूतपरमाणुवुं विषयियप्पसर्व्वावधिज्ञानमुं निर्व्विकल्पकंगळप्पुदरिंद ।

परमोहिदव्वमेदा जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति ।
तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ॥४१६॥

परमावधिद्रव्यभेदाः यावन्मात्राः खलु तावन्मात्रा भवंति । तस्यैव क्षेत्रकालविकल्पाः विषया असंख्यगुणितक्रमाः ॥

परमावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पंगळु यावन्मात्रंगळु तावन्मात्रंगळेयप्पुवु । परमावधिज्ञानविषयंगळप्प क्षेत्रविकल्पगळुं कालविकल्पंगळुं तावन्मात्रविकल्पंगळागुत्तलुं तंतम्म जघन्यविकल्पं मोदल्गोंडु तंतम्मुत्कृष्टपर्य्यंतमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवेंतप्पऽसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवेंदोडे पेळ्दपं ।

पुनस्तत्परमावधिसर्वोत्कृष्टं द्रव्यं ९ ध्रुवहारेणैकवारं भक्त एकपरमाणुमात्रं सर्वावधिज्ञानविषयं द्रव्यं भवति । तज्ज्ञानं निर्विकल्पकमेव स्यात् । स च ध्रुवहारः गङ्गामहानद्याः प्रवाहवद्भवति—यथा गङ्गामहानदीप्रवाहः हिमाचलादविच्छिन्नं प्रवह्य पूर्वोदधौ गत्वा स्थितस्तथायहा रोऽपि देशावधिविषयजघन्यद्रव्यात्परमावधिसर्वोत्कृष्टद्रव्यपर्यन्त प्रवह्य परमाणुपर्यवसाने स्थितः विषयस्य परमाणोः, विषयिणः परमावधेश्च निर्विकल्पकत्वात् ॥४१५॥

परमावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पा यावन्मात्राः तावन्मात्रा एव भवन्ति तस्य विषयभूतक्षेत्रकालविकल्पा । तावन्मात्रा अपि स्वस्वजघन्यात् स्वस्वोत्कृष्टपर्यन्तं असंख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥४१६॥ कीदृगसंख्यातगुणितक्रमा. ? इत्युक्ते प्राह—

उस परमावधिके सर्वोत्कृष्ट द्रव्यको एक बार ध्रुवहारसे भाग देनेपर एक परमाणु मात्र सर्वावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य होता है । यह ज्ञान निर्विकल्प ही होता है इसमें जघन्य-उत्कृष्ट भेद नहीं है । वह ध्रुवहार गंगा महानदीके प्रवाहकी तरह है । जैसे गंगा महानदीका प्रवाह हिमाचलसे अविच्छिन्न निरन्तर बहता हुआ पूर्व समुद्रमें जाकर ठहरता है वैसे ही यह ध्रुवहार भी देशावधिके विषयभूत जघन्य द्रव्यसे सर्वावधिके उत्कृष्ट द्रव्य पर्यन्त बहता हुआ परमाणुपर आकर ठहरता है । सर्वावधिका विषय परमाणु और सर्वावधि ये दोनों ही निर्विकल्प है ॥४१५॥

परमावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद कहे हैं उतने ही भेद उसके विषयभूत क्षेत्र और कालकी अपेक्षा होते है । फिर भी अपने-अपने जघन्यसे अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यन्त क्रमसे असंख्यात गुणित क्षेत्र व काल होते हैं ॥४१६॥

किस प्रकार असंख्यात गुणित होते है यह कहते है—

आवलिअसंखभागा इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ ।
देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे ।।४१७।।

आवल्यसंख्यभागा ईप्सितगच्छधनमानमात्राः । देशावधेः क्षेत्रे कालेऽपि च भवंति संवर्गे ।।

परमावधिज्ञानविषयंगळप्प क्षेत्रकालंगळु तंतम्म जघन्य मोदल्गोंडु असंख्यातगुणितक्रमदिंदं परमावधिज्ञानसर्व्वोत्कृष्टपर्य्यंतमविच्छिन्नरूपदिंदं नडेववंतु नडेव क्षेत्रकालविकल्पंगळावेडेयोळु विवक्षितंगळप्पुवल्लि देशावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रकालमात्रगुण्यंगळगे आवल्यसंख्यातभागगुणकारंगळु तद्विवक्षितगच्छधनमानमात्रंगळु संवर्गंगळागुत्तिरलु तावन्मात्राऽसंख्यातगुणितक्रमंगळ्दरियल्पडुवदेंतेंदोडे परमावधिज्ञानप्रथमविकल्पदोळु आवल्यसंख्यातभागगुणकारंगळु तद्गच्छसोंददर संकलितधनमात्रंगळु १२ अप्पुवेंदल्लियोंदोंदे गुणकारमक्कु ≡८ प– । ८
२१ a a

मते विवक्षितद्वितीयविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमानमात्रगळप्पुवु २३ मूरू मूरू गुणकार-
२१ ।

गळप्पुवु ≡a८८८ । प–१८८८ अंते विवक्षिततृतीयविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमानमात्रंगळ-
aaa aaa

प्पुवु ३ । ४ वेंदारारप्पुवु ≡८८८८८८ । प–१८८८८८८ मी प्रकारदिंदं विवक्षितचतुर्त्थविकल्प-
२ । १ aaaaaa aaaaaa

दोळु तद्गच्छसंकलनधनमानमात्रंगळप्पुवु ४ । ५ वेंदु पत्तुं पत्तुं गुणकारंगळप्पुवु
२ । १

≡८ । १० ष–१ । ८ । १० मिते पंचमविकल्पदोळु तद्गच्छसंकलनधनमात्रंगळप्पु २६ वेंदु
a a २१

परमावधेर्विवक्षितक्षेत्रविकल्पे विवक्षितकालविकल्पे च तद्विकल्प्यस्य यावत्सकलितधनं तावत्प्रमाणमात्रा आवल्यसंख्येयभागा परस्पर सवर्गे देशावधेरुत्कृष्टक्षेत्रे उत्कृष्टकालेऽपि च गुणकारा भवन्ति । ततस्ते गुणकारा प्रथमविकल्पे एक । द्वितीयविकल्पे त्रय । तृतीयविकल्पे षट् । चतुर्थविकल्पे दश । पञ्चमविकल्पे पञ्चदश एव

परमावधिके विवक्षित क्षेत्र और विवक्षित कालके भेदमें उस भेदका जितना संकलित धन हो, उतने प्रमाण आवलीके असंख्यातवे भागोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट कालमें गुणकार होते हैं । वे गुणकार प्रथम भेदमें एक, दूसरे भेदमें तीन, तीसरे भेदमें छह, चतुर्थ भेदमें दस, पंचम भेदमें पन्द्रह इस प्रकार अन्तिम भेद पर्यन्त जानना ।

विशेषार्थ—जिस नम्बरके भेदकी विवक्षा हो, एकसे लगाकर उस भेद पर्यन्तके एक-एक अधिक अंकोंको जोड़नेसे जो प्रमाण आवे उतना ही उसका संकलित धन होता है । जैसे प्रथम भेदमें एक ही अंक है अतः उसका संकलित धन एक जानना । दूसरे भेदमें एक और दोको जोडनेपर संकलित धन तीन होता है । तीसरे भेदमें एक, दो तीनको जोड़नेसे संकलित धन छह होता है । चौथे भेदमें उसमें चार जोडनेसे संकलित धन दस होता है । पाँचवे भेदमें पाँचका अंक और जोडनेसे संकलित धन पन्द्रह होता है । सो पन्द्रह जगह आवलीके असंख्यातवे भागोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो परिमाण हो वही पाँचवे भेदका गुणकार होता है । इस गुणकारसे उत्कृष्ट देशावधिके क्षेत्र लोकको गुणा करनेपर जो

पदिनैदु पदिनैदुं गुणकारंगळप्पुवु ८।१५ प-१।८।१५ ई प्रकारदिंदं षष्ठादिपरमावधि-
अ अ
चरमविकल्पपर्य्यंतं सैकपदाहतपददलचयाहतमात्रगुणकारंगळावल्यसंख्यातंगळु पूर्व्वोक्तगुण्यंगळगे गुणकारंगळप्पुवेंबी व्याप्तियरियल्पडुगुं।

मत्तमी गुणकारंगळुत्पत्तिक्रममं प्रकारांतरदिंदं पेळ्दपरु :—

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणसेत्ता।
उभये वि य गच्छस्स य धणमेत्ता होंति गुणगारा ॥४१८॥

गच्छसमा तात्कालिकातीते रूपोनगच्छधनमात्राः। उभयस्मिन्नपि गच्छस्य च धनमात्राः भवंति गुणकाराः॥

अथवा गच्छसमासगुणकाराः विवक्षितपदमात्रा गुणकारंगळु तात्कालिकातीते तद्विवक्षितस्थानानंतराधस्तनविकल्पदोळु रूपोनगच्छधनमात्राः तद्विवक्षितरूपोनगच्छधनमात्रंगळु उभयस्मिन् मिलिते ई रूपोनगच्छधनमात्रंगळु विवक्षितगच्छमात्रंगळुमं कूडुत्तिरलु गच्छस्य च धनमात्रा भवंति मुं पेळ्दंते विवक्षितगच्छधनमात्रंगळप्पुवु। अदेंतेंदोडे विवक्षितचतुर्थविकल्पदोळु गुणकाराः गुणकारंगळु गच्छसमाः विवक्षितगच्छसमानंगळु ४ तात्कालिकातीते तद्विवक्षितस्थानानंतराधस्तनविकल्पदोळु रूपोनगच्छधनमात्राः तद्विवक्षितरूपोनगच्छधन ४।४ मात्रंगळु ६ उभयस्मिन्मिलितेपि च ई रूपोनगच्छधनमात्रंगळं विवक्षितगच्छमात्रंगळुमं ४ कूडुत्तिरलु गच्छस्य धनमात्रा भवंति मुं पेळ्दंते विवक्षितगच्छधनमात्रंगळु पत्तु गुणकारंगलप्पुवु ८।१०।ष-१।८।१०
२ १ अ अ
अंते पंचमविकल्पदोळु गुणकाराः गुणकारगळु गच्छसमाः विवक्षितगच्छसमानंगळु ५ तात्कालिकातीते तद्विवक्षितस्थानानंतराधस्तनविकल्पदोळु रूपोनगच्छधनमात्राः तद्विवक्षितरूपोनगच्छधन ५।५ मात्रंगळुं १०। उभयस्मिन्मिलितेपि च ई रूपोनगच्छधनमात्रंगळ्कं १०। विवक्षितगच्छ
० १ १
मात्रंगळ्मं ५ कूडुत्तिरलु गच्छस्य च धनमात्रा भवंति मुंपेळ्दंते विवक्षितगच्छधनमात्रंगळु पदिनैदु

षष्ठादिचरमपर्यन्तं नेतव्यम् ॥४१७॥ पुनः प्रकारान्तरेण तानेव गुणकारान् उत्पादयति—

गच्छसमा —गच्छमात्रा. यथा चतुर्थविकल्पे चत्वार., तात्कालिकातीते च तृतीयविकल्पे रूपोनगच्छ-

---

प्रमाण आवे उतना परमावधिके पाँचवे भेदके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण होता है। तथा इसी गुणकारसे देशावधिके विषयभूत उत्कृष्ट काल एक समय हीन एक पल्यमें गुणा करनेपर पाँचवे भेदमें कालका परिमाण होता है। इसी तरह सब भेदोंमें जानना ॥४१७॥

पुनः प्रकारान्तरसे उन्हीं गुणकारोंको कहते हैं—

गच्छके समान धन और गच्छसे तत्काल अतीत जो विवक्षित भेदसे पहला भेद, सो विवक्षित गच्छसे एक कम गच्छका जो संकलित धन, इन दोनोंको मिलानेसे गच्छका संकलित धन प्रमाण गुणकार होता है। उदाहरण कहते हैं—जितनेवाँ भेद विवक्षित हो

गुणकारंगळप्पुवु ≡८।१५।प–१।८।१५। इतेल्लेडेयोळं व्याप्तियरियल्पडुगुं।
ə ə

परमावहिवरखेत्तेणवहिदउक्कस्स ओहिखेत्तं तु।
सव्वावहिगुणगारो काले वि असंखलोगो दु ॥४१९॥

परमावधिवरक्षेत्रेणापहृतोत्कृष्टावधिक्षेत्रं तु। सर्व्वावधिगुणकारः कालेप्यसंख्यातलोकस्तु।

परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणदिंदं अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रमं भागिसुत्तिरलावुदों दु लब्धमदु तु मत्ते सर्व्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रगुणकारमक्कुमावगुण्यक्किदुगुणकारमक्कुमेंदोडे परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रक्कक्कुमा गुण्यगुणकारंगळं गुणिसिद लब्धं सर्व्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रमक्कुमेंबुदत्थं। अंतादोडा अवधिनिबद्धोत्कृष्ट क्षेत्रप्रमाणमेनितेंदोडे।

घणलोगगुणसळागा वग्गट्ठाणा कमेण छेदणया।
तेजक्कायस्स ठिदी ओहिणिबद्धं च खेत्तं ॥
अज्झवसाणणिगोदसरीरे तेसु वि य कायठिदी जोगा।
अविभागपडिच्छेदो लोगेवग्गे असंखेज्जे।

एंबी यागमप्रमाणदिंदं घनघनाधारियोळपेळल्पट्ट अवधिनिबद्धोत्कृष्टमसंख्यातलोकसंवर्गसंजनितलब्धराशियक्कुमी राशियं परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रदिंद भागिसुत्तिरलु ≡≡ə≡ə≡ə≡ə≡ə लब्धं यावत्तावत्प्रमाण ≡ə≡ə गुणकारप्रमाणमक्कुमी ≡≡ə≡ə≡ə
गुणकारदिंदं परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रम ≡≡ə≡ə≡ə गुणिसिदोडे सर्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रमे अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रमक्कुमेंबुदर्थं ≡≡ə≡ə≡ə≡ə≡ə। तु मत्ते

घनमात्रा षट् ते उभये मिलित्वा गच्छधनमात्रा दशगुणकारा भवन्ति। एव सर्वबिकल्पेषु ज्ञातव्यम् ॥४१८॥

उत्कृष्टावधिक्षेत्र तावद् द्विरूपघनाघनधारायां लोकगुणकारशलाकावर्गशलाकार्धच्छेदशलाकातेजस्कायिकस्थित्यवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्राणा प्रत्येकमसख्यातवर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वात् पञ्चासख्यातलोकगुणितलोकमात्र तदेव परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणेन भक्त सत्—≡। ≡ə≡ə≡ə≡ə≡ə सर्वावधि- ≡। ≡ə≡ə≡ə

उसके प्रमाणको गच्छ कहते है। जैसे विवक्षित भेद चौथा सो गच्छका प्रमाण चार हुआ। और तत्काल अतीत तीसरा भेद तीन, उसका गच्छ धन छह हुआ। पहला गच्छ चार और यह छह मिलकर दस होते है। इतना ही विवक्षित गच्छ चारका संकलित धन होता है। यही चतुर्थ भेदका गुणकार होता है। इसी प्रकार सब भेदोंमें जानना ॥४१८॥

उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र कहते है। द्विरूपघनाघनधारामें लोक, गुणकारशलाका, वर्गशलाका, अर्धच्छेदशलाका, अग्निकायकी स्थितिका परिमाण और अवधिज्ञानके उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण, ये स्थान असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान जानेपर उत्पन्न होते है। इसलिए पाँच बार असंख्यात लोक प्रमाण परिमाणसे लोकको गुणा करनेपर सर्वावधिज्ञानके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण आता है। उसमें उत्कृष्ट परमावधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका भाग देनेपर जो परिमाण आवे वह सर्वावधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण लानेके लिए गुणकार होता है। इससे परमावधिज्ञानके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रको गुणा करनेपर सर्वावधिज्ञानके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण आता है। तथा सर्वावधिके

सर्व्वावधिज्ञानविषयकालदोळु परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टकालगुण्यक्केयुमसंख्यातलोकं । ≡ a गुणकारमक्कुमा परमावधिज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रकालंगळ प्रमाणंगळ्ता मेनितेंदोडे तदानयनविधानकरणसूत्रद्वयमं पेळ्दपं ।

इच्छिदरासिच्छेदं दिण्णच्छेदेहि भाजिदे तत्थ ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ॥४२०॥ ५

ईप्सितराशिच्छेदं देयच्छेदैर्भाजिते तत्र । लब्धमितदेयराशीनामभ्यासे ईप्सितो राशिः ।

इदु साधारणसूत्रमप्पुदरिंदमिल्लियंकसंदृष्टि मुन्नं तोरिसल्पडुगुमदें तेंदोडे परमावधिज्ञानविषयक्षेत्रकालगळोळावल्यसंख्यातभागगुणकारंगळु पूर्व्वोक्तक्रमदिंदं विवक्षितगच्छधनप्रमितंगळें बव्याप्तियुंटप्पुदरिंदं परमावधिज्ञान तृतीयविकल्पसं विवक्षितं माडिकोंडु ईप्सितराशियुसं बेसदछप्पण्णनं माडि २५६ अदक्के गुणकारभूतावल्यसंख्यातक्के चतुःषष्टि चतुर्थांशसं ६४/४ संदृष्टियं १०

माडिदोडावलियऽसंख्यातगुणकारंगळा तृतीयविकल्पदोळु गच्छधनप्रमितंगळप्पुवु ३।४ लब्ध २।१

धिविषयक्षेत्रानयने गुणकारो भवति ≡ a ≡ a अनेन परमावधिज्ञानविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्रे गुणिते सर्वावधिज्ञानविपयक्षेत्रं स्यात् इत्यर्थ. । तु—पुन. सर्वावधिविषयकालानयने परमावधिविषयसर्वोत्कृष्टकालस्य प—१ ≡a≡a≡a असख्यातलोकः ≡a गुणकारो भवति ॥४१९॥ तत्परमावधिविषयोत्कृष्टक्षेत्रकालप्रमाणानयनविधाने करणसूत्रद्वयमाह— १५

अस्य साधारणसूत्रत्वात् ईप्सितराशे. वेसदछप्पण्णस्य अर्धच्छेदाः अष्टौ ८ । एपु देयस्य आवल्यसख्येयभागसदृष्टिचतु षष्टिचतुर्थांशस्य ६४/४ अर्धच्छेदै. भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रैः ६—२ भाजितेषु सत्सु ८ तत्र यावल्लब्ध २ तावन्मात्रदेयराशीना ६४/६—२ ६४/४ अभ्यासे परस्परगुणने कृते सति ईप्सितराशिरुत्पद्यते । २५६ एवं पल्यसूच्यङ्गुलजगच्छ्रेणिलोकानामपीप्सितराशीनामर्धच्छेदेषु देयस्यावल्यसंख्येयभागस्यार्धच्छे-

---

विषयभूत कालका परिमाण लानेके लिए असंख्यात लोक गुणकार है । इस असंख्यात लोक २०
प्रमाण गुणकारसे परमावधिके विपयभूत सर्वोत्कृष्ट कालको गुणा करनेपर सर्वावधिज्ञानके विषयभूत कालका परिमाण होता है ॥४१९॥

अब परमावधिके विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट कालका प्रमाण लानेके लिए दो करणसूत्र कहते हैं—

यह करणसूत्र होनेसे सब जगह लग सकता है । इसका अर्थ—इच्छित राशिके २५
अर्धच्छेदोंको देयराशिके अर्धच्छेदोंसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसको एक-एक करके पृथक्-पृथक् स्थापित करे । और उस एक-एकके ऊपर जिस देयराशिके अर्धच्छेदोंसे भाग दिया था उसी देयराशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर इच्छितराशिका प्रमाण आता है । जैसे इच्छित राशि दो सौ छप्पन २५६ के अर्धच्छेद आठ ८ । देयराशि चौसठका चौथा भाग $\frac{६४}{४}$ सोलह । उसके अर्धच्छेद चार । क्योंकि भाज्यराशि चौसठके अर्धच्छेद छह है । ३०
उसमे-से भागहार चारके अर्धच्छेद दो घटानेसे शेष चार अर्धच्छेद बचते हैं । इन चार अर्धच्छेदोंका भाग आठ अर्धच्छेदोंमें देनेसे दो लब्ध आया । सो दोका विरलन करके एक-एकपर देयराशि चौसठके चतुर्थ भाग सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे इच्छितराशि

मारु ६। एतावन्मात्र गुणकारंगळप्पुवु ६४।६४।६४।६४।६४।६४ मिल्लि ईप्सित-
४ ४ ४ ४ ४ ४
राशिच्छेदं विवक्षितराशियदु बेसदछप्पण्णनदर च्छेदराशियेंदु ८। इदनु देयच्छेदैः देयमावल्यसं-
ख्यातक्कंसंदृष्टि ६४ इदरर्द्धच्छेदंगळेनितप्पुवेंदोडे भज्जस्सद्धच्छेदा भाज्यदर्द्धच्छेदंगळारु ६।
४
हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा हारदर्द्धच्छेदंगळिदं परिहीनगळादोडे। ६।२। नाल्कु। लद्धस्सद्धछेदा
५ तल्लब्धराशिगर्द्धच्छेदशलाकेगळप्पुवप्पुदरिदमी देयराशियर्द्धच्छेदंगळिदं भागंगोळुत्तिरलु ९ ८
६-२
लब्धं यावन्मात्र २ तावन्मात्रदेयरासीणब्भासे देयराशिगळगन्योन्याभ्यासमागुत्तिरलु ६४।६४
४ ४
तन्न विवक्षितराशियप्प बेसद छप्पण्णं पुट्टुगुमित। पल्य। सूच्यगुल। जगच्छ्रेणिलोकंगळीप्सित-
राशिगळादोडं तत्तर्द्धच्छेदंगळना देयमप्पावल्यसंख्यातदर्द्धच्छेदंगळिदं भागिसि
पल्यच्छेद सूच्यंगुलच्छेद जगच्छ्रेणीच्छेद लोकच्छेद तत्तल्लब्धमात्रमावल्यसंख्यातंगलं
छे छे छे वि वि छे छे ९
१६—४ १६—४ १६—छे छे ३ १।६—४
४
१० गुणिसुत्तिरलु तत्तत्पल्यसूच्यंगुल जगच्छ्रेणिलोकंगळुं पुट्टुगुमे दरिवुदु।

दिण्णच्छेदेणवहिदलोगच्छेदेण पदधणे भजिदे।
लद्धमिदलोगगुणणं परमावहिचरमगुणगारो ॥४२१॥

देयच्छेदनापहृत लोकच्छेदेन पदधने भक्ते। लब्धमितलोकगुणन परमावधिचरमगुणकारः।
देयच्छेदंगळिदं भागिसल्पट्ट लोकच्छेदंगळिदं ८ पदधने मुन्नं विवक्षित तृतीयपद
६—२
१५ धनमं ३।४ भजिदे भागिसुत्तिरलु ३।४ यल्लब्धं तल्लब्धमपवर्त्तितं मूरु ३। तावन्मात्र
२।१ २।१।८
६—२

दैर्भक्तेषु— पल्यच्छेद छे १६-४ | सूच्यङ्गुलच्छेद छे छे १६-४ | जगच्छ्रेणिच्छेद वि छे छे ३ १६-४ | लोकच्छेद वि छे छे ९ १६-४ | तत्र यल्लब्ध तत्तन्मात्रा-

वल्यसख्येयभागानामभ्यासे कृते ते पल्यादीप्सितराशय उत्पद्यन्ते ॥४२०॥

देयच्छेदभक्तलोकच्छेदै ८ पदधने विवक्षिततृतीयपदस्य धने ३।४ भक्ते ३।४
६-२ २।१ २।१।८
६-२

---

२५६ उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पल्य प्रमाण या सूच्यंगुल प्रमाण या जगतश्रेणी प्रमाण
२० अथवा लोकप्रमाण जो भी इच्छित राशि हो उसके अर्धच्छेदोंमें देयराशि आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेदोंसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसका एक-एकके रूपमें विरलन करके प्रत्येकके ऊपर आवलीका असंख्यातवाँ भाग रखकर परस्परमें गुणा करनेपर इच्छित राशि पल्य आदि उत्पन्न होती है ॥४२०॥

देयराशिके अर्धच्छेदोंका भाग लोकराशिके अर्धच्छेदोंमें देनेपर जो प्रमाण आवे

वेसदछप्पण्णंगळु संवग्गं माडिद लब्धं तृतीयपददोळु परमावधिक्षेत्रकालंगळगे गुणकारप्रमाणमक्कु ≡ ६५ । ≡ २५६ । ष—१ । ६५ = २५६ । मिते चरमदोळं देयमावल्यसंख्यातभागमक्कु ८/अ मी राशिगर्द्धच्छेदंगळोनितप्पुवें दोडे संख्यातरूपहीनावलिच्छेदमात्रंगळप्पुवु १६—४ वदें तेंदोडे—

विरळिज्जमाणराशी दिणस्सद्धच्छिदीहि संगुणिदे ।
अद्धच्छेदसळागा होंति समुप्पण्णरासिस्स । ५

एंदितावलियें बुदु परिमितासंख्यातजघन्यराशियं विरळिसि प्रतिरूपमा राशियने कोट्टु वग्गितसंवग्गं माडे संजनितराशियप्पुदरिंदमा परिमितासंख्यातजघन्यराशियर्द्धच्छेदंगळु संख्यातरूपंगळिंदं गुणिसल्पट्ट परीतासंख्यातजघन्यराशिप्रमाणमावलियर्द्धच्छेदंगळप्पुवु । १६ ।—७ । गुणिसिदोडे सव्वधारादि तद्योग्यधारिगळोळु परीतासंख्यातमध्यपतितासंख्यातराशियक्कुमदके संदृष्टि पदिनारुं १६ इदरोळु हारभूतासंख्यातार्द्धच्छेदंगळु संख्यातरूपंगळप्पुवुवं ४ कळेदोडे १० शेषमावल्यसंख्यातराशिगळर्द्धच्छेदंगळप्पुवु १६–४ । इंतु त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र वि छे ८/अ वि छे

≡

१ । ६–४

छे ९ । फ≡ । इ ≡ अ ६/प२/अ छे ८/अ ≡ अ ६/प१/अ ई त्रैराशिकमं कटाक्षिसि पेळ्दपं । देयच्छेदे-

---

यल्लब्धं तन्मात्र ३ वेसदछप्पणाना गुणने परस्परसवर्गसंजनितराशि तृतीयपदे परमावधिक्षेत्रकालयोर्गुणकारप्रमाण भवति≡ ६५ = २५६ । प–१ । ६५ = २५६ एव चरमेऽपि देयमावल्यसंख्येयभाग तस्य अर्धच्छेदा भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रत्वात् सख्यातरूपन्यूनपरीतासंख्यातमध्यमभेदमात्रा संदृष्ट्या एतावन्त. १६–४ एभि देयार्धच्छेदैर्भक्तेन लोकार्धच्छेदराशिना पदधने–परमावधिज्ञानचरमविकल्पसकलितसर्वधने भक्ते सति यल्लब्धं तन्मात्रलोकाना परस्परगुणने परमावधिचरमगुणकारो भवति । यद्येतावता देयरूपावल्यसख्येयभागाना दे ८/अ परस्परगुणने लोक उत्पद्यते फ ≡ तदा एतावता देयरूपावल्यसंख्येय-

प्र । वि छे छे ९
१६—४

उससे विवक्षित पदके संकलित धनमें भाग दे । उससे जो प्रमाण आवे उतनी जगह लोकराशिको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे वह विवक्षित पद सम्बन्धी क्षेत्र या कालका गुणकार होता है । इसी प्रकार परमावधिके अन्तिम भेदमें गुणकार जानना । जैसे देयराशि चौसठका चौथा भाग अर्थात् सोलह, उसके अर्धच्छेद चार, उसका भाग दो सौ छप्पनके अर्धच्छेद आठमें देनेपर दो लब्ध आया । उसका भाग विवक्षित पद तीनके संकलित धन छहमें देनेसे तीन आया । सो तीन जगह दो सौ छप्पन रखकर परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण होता है वही तीसरे स्थानमें गुणकार जानना । इसी तरह यथार्थमें देयराशि आवलीका असंख्यातवाँ भाग, उसके अर्धच्छेद आवलीके अर्धच्छेदोंमें-से भाजक असंख्यातके अर्धच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतने है । सो वे संख्यातहीन परीतासंख्यातके मध्यमभेद प्रमाण होते है । इनका भाग लोकराशिके अर्धच्छेदोंमें देनेपर जो प्रमाण आवे, उसका भाग परमावधिके विवक्षित भेदके संकलित धनमें देनेसे जो प्रमाण

नापहृतलोकच्छेदेन पदधने भक्ते। देयच्छेदंगळिदं भागिसल्पट्ट लोकच्छेदराशियिंदं प्रमाणराशियप्पुदरिंदं पदधने भक्ते इच्छाराशियप्प पदधनमं भागिसुत्तिरलु लब्धं यावत्तावत्प्रमितलोकंगळं वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु संजनितलब्धराशियदु ≡ ⌀ ≡ ⌀ ≡ ⌀ परमावधिज्ञानविषयमप्प चरमक्षेत्रदोळु गुण्यमागिर्द्द लोकक्कं गुणकारप्रमाणमक्कुं ≡ ≡ ⌀ ≡ ⌀ ≡ ⌀ कालदोळ पल्य—१ ≡ ⌀ ≡ ⌀ ≡ ⌀ इनितक्कु।

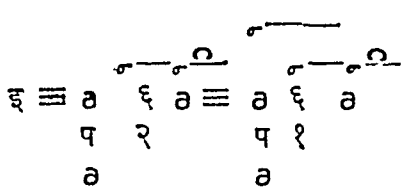
आवलि असंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया।
कालस्स जहण्णादो असंखगुणहीनमेत्ता हु ॥४२२॥

आवल्यसंख्यभागाः जघन्यद्रव्यस्य भवंति पर्य्यायाः। कालस्य जघन्यादसंख्यगुणहीनमात्राः खलु॥

आवल्यसंख्यातभागमात्रंगळु देशावधिज्ञानजघन्यद्रव्यद पर्य्यायंगळप्पुवादोडमा जघन्य-

---

भागाना—दे ८ परस्परगुणने कियन्तो लोका उत्पद्यन्ते इति त्रैराशिकलब्धमात्राणा
⌀



लोकाना ≡ ⌀ ≡ ⌀ ≡ ⌀ परमावधिविषयचरमक्षेत्रकालानयने लोकसमयोनपल्ययोर्गुणकारो भवति।≡ । ≡ ⌀ । ≡ ⌀ । ≡ ⌀ प—१ । ≡ ⌀ ≡ ⌀ ≡ ⌀ ॥४२१॥

आवल्यसंख्यातभागमात्रा देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्याया भवन्ति तथापि तद्विषयजघन्यकालात् ८
⌀

आवे, उतनी जगह लोकराशिको स्थापित करके परस्परमे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे सो उस भेदमें गुणकार होता है। उस गुणकारसे देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र लोकप्रमाणको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना उस भेदमें क्षेत्रका परिमाण होता है। तथा इसी गुणकारसे देशावधिके उत्कृष्ट काल समयहीन पल्यको गुणा करनेपर उसी भेदसम्बन्धी कालका परिमाण आता है। इसी तरह परमावधिज्ञानके अन्तिम भेदमें आवलीके असंख्यातवे भागके अर्धच्छेदोंका भाग लोकके अर्धच्छेदोंमें देनेसे जो प्रमाण आवे उसका भाग परमावधिज्ञानके अन्तिम भेदके संकलित धनमे देनेपर जो लब्ध आवे उतनी जगह लोकराशिको रखकर परस्परमे गुणा करनेपर परमावधिका अन्तिम गुणकार होता है। सो इस प्रकार त्रैराशिक करना—आवलीके असख्यातवे भागके अर्धच्छेदोंका लोकके अर्धच्छेदोंमे भाग देनेसे जो प्रमाण आता है उतने आवलीके असंख्यातवे भागोंको रखकर परस्परमे गुणा करनेसे यदि एक लोक होता है तो यहाँ अन्तिम भेदके संकलित धन प्रमाण आवलीके असख्यातवें भागोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे कितने लोक होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर जितना प्रमाण आवे उतने लोकप्रमाण अन्तिम भेदका गुणकार होता है। इससे देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र लोकको अथवा उत्कृष्टकाल समयहीन पल्यको गुणा करनेपर परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र और कालका परिमाण होता है ॥४२१॥

जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत द्रव्यकी पर्याय आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण

देशावधिज्ञानविषयजघन्यकालमं नोडलु ८ मसंख्यातगुणहीनमात्रंगळप्पुवु ८ स्फुटमागि।
अ आअ

सव्वोहित्तिय क्रमसो आवलियसंखभागगुणिदक्कमा।
दव्वाणं भावाणं पदसंखा सरिसगा होंति ॥४२३॥

सर्व्वावधिज्ञानपर्य्यंतं क्रमशः आवल्यसंख्यभागगुणितक्रमाः। द्रव्याणां भावानां पदसंख्याः सदृशाः भवंति ॥

देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्यदपर्य्यायंगळप्प भावंगळु जघन्यदेशावधिज्ञानं मोदल्गोंडु सर्व्वावधिज्ञानपर्य्यंतं क्रमदिंदं आवल्यसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवदु कारणमागि द्रव्यंगळगं भावंगलगं स्थानसंख्येगळु समानंगळेयप्पुवु।

अनंतरं नरकगतियोळ् नारकर्गवधिविषयक्षत्रमं पेळ्दपरु—

सत्तमखिदिम्मि कोसं कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव।
जाव य पढमे णिरये जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ॥४२४॥

सप्तमक्षितौ क्रोशः क्रोशस्याद्धं प्रवर्द्धते तावत्। यावत्प्रथमे नरके योजनमेकं भवेत्पूर्णं ॥

सप्तमक्षितिमाघवियोळु नारकर्गवधिविषयमप्प क्षेत्रमेकक्रोशमात्रमक्कुं। षष्टक्षितियोळु क्रोशार्द्धं पेच्चुगुं। पंचमक्षितियोळु मत्तमदं नोडे क्रोशार्द्धं पेच्चुगुं। चतुर्थक्षितियोलहर मेले क्रोशार्द्धं पेच्चुगुं। तृतीयक्षेत्रदोळदर मेले क्रोशार्द्धं पेच्चुगुं। द्वितीयपृथ्वियोळमंते क्रोशार्द्धं पेच्चुगुं। प्रथमक्षितियोळु क्रोशार्द्धं पेच्चि संपूर्ण योजनप्रमाणमक्कुं। मा क्रोश १।
म ३। अ। क्रोश २। अं क्रोश ५। मे क्रोश ३। वं क्रो ७। घ क्रो ४।
२ २ २

असंख्यातगुणहीनभावाः स्फुट भवन्ति ८ ॥४२२॥
अअ

देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्यायरूपभावाः जघन्यदेशावधित. सर्वावधिज्ञानपर्यन्तं क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितक्रमा स्यु। तेन द्रव्याणा भावाना च स्थानसख्या समाना एव ॥४२३॥ अथ नरकगतावधिविषयक्षेत्रमाह—

सप्तमक्षितौ अवधिविषयक्षेत्रं एकक्रोश। तत उपरि प्रतिपृथ्वि तावत् क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते यावत्प्रथमे

हैं। तथापि उसके विषयभूत जघन्य कालसे असंख्यातगुणा हीन हैं ॥४२२॥

देशावधिके विषयभूत द्रव्यके पर्यायरूप भाव जघन्य देशावधिसे सर्वावधिज्ञान पर्यन्त क्रमसे आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाणसे गुणित हैं। अर्थात् देशावधिके विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जहाँ जघन्य भेद है वहाँ ही द्रव्यके पर्यायरूप भावकी अपेक्षा आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण भावको जाननेरूप जघन्य भेद है। जहाँ द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद है वहीं भावकी अपेक्षा उस प्रथम भेदको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उस प्रमाण भावको जानने रूप दूसरा भेद है। इसी प्रकार सर्वावधिपर्यन्त जानना। इस तरह अवधिज्ञानके जितने भेद द्रव्यकी अपेक्षा है उतने ही भावकी अपेक्षा है। अतः द्रव्य और भावकी अपेक्षा स्थान संख्या समान है ॥४२३॥

अब नरकगतिमें अवधिज्ञानका विषयक्षेत्र कहते है—

सातवी पृथ्वीमें अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र एक कोस है। उससे ऊपर प्रत्येक

अनंतरं तिर्य्यंग्मनुष्यगतिगळोळवधिविषयक्षेत्रमं पेळ्दपं ।

तिरिए अवरं ओघो तेजालंबे (तेजोयंते) होदि उक्कस्सं ।
मणुए ओघं देवे जहाकमं सुणुह वोच्छामि ॥४२५॥

तिर्य्यञ्च्यवरमोघः तेजोऽवलंबे च भवत्युत्कृष्टं। मनुजे ओघः देवे यथाक्रमं श्रुणुत वक्ष्यामि ॥

तिर्य्यग्गतिय तिर्य्यंचरोळु देशावधिज्ञान जघन्यमक्कुं । मेले तेजः शरीरपर्य्यंतं सामान्योक्त द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळुत्कृष्टदिंदमल्लिपर्य्यंतं विषयमप्पुवु ।

मनुजरोळु देशावधिजघन्यं मोदल्गोंडु सर्व्वावधिज्ञानपर्य्यंतं सामान्योक्तसर्व्वमुमप्पुवु । देवगतियोळु देवर्क्कळगे यथाक्रमदिंदं पेळ्वें केळि :—

पणुवीसजोयणाइं दिवसंतं च म कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥४२६॥

पंचविंशतिर्य्योजनानि दिवसस्यांतश्च कुमारभौमानां । संख्येयगुणं क्षेत्रं बहुकःकालस्तु ज्योतिष्के ॥

भावनरोळं व्यंतरोळं जघन्यदिंदमिप्पत्तैदु योजनंगळुमोंदु दिनदोळगे विषयमक्कुं । ज्योतिष्करोळु भवनवासिव्यंतररुगळ जघन्यविषयक्षेत्रमं नोडलु सख्यातगुणितं क्षेत्रमक्कुं बहुकालमक्कुं ।

नरके योजनं सपूर्णं भवति ॥४२४॥ अथ तिर्यग्मनुष्यगत्योराह—

तिर्यग्जीवे देशावधिज्ञान जघन्यादारभ्य उत्कृष्टत तेज शरीरविषयविकल्पपर्यन्तमेव सामान्योक्ततद्द्रव्यादिविषय भवति । मनुजे देशावधिजघन्यादारभ्य सर्वावधिज्ञानपर्यन्त सामान्योक्त सर्वं भवति ॥४२५॥

देवगतौ यथाक्रम वक्ष्यामि श्रृणुत—

भावनव्यन्तरयोर्जघन्येन पञ्चविंशतियोजनानि किंचिदूनदिवसश्च विषयो भवति । ज्योतिष्के क्षेत्र ततः सख्यातगुण, कालस्तु बहुक' ॥४२६॥

पृथिवीमें आधा-आधा कोस बढता जाता है। इस तरह प्रथम नरकमें सम्पूर्ण योजन क्षेत्र होता है ॥४२४॥

अब तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें कहते हैं—

तिर्यंचजीवमें देशावधिज्ञान जघन्यसे लेकर उत्कृष्टसे तैजसशरीर जिस भेदका विषय है उस भेद पर्यन्त होता है। सामान्य अवधिज्ञानके वर्णनमें वहाँ तक द्रव्यादि विषय जो कहे हैं वे सब होते हैं। मनुष्यमें देशावधिके जघन्यसे लेकर सर्वावधिज्ञान पर्यन्त जो सामान्य कथन किया है वह सब होता है। आगे यथाक्रम देवगति मैं कहूँगा। उसे सुनो ॥४२५॥

अब देवगतिमें कहते हैं—

भवनवासी और व्यन्तरोंमें अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र जघन्यसे पचीस योजन है और काल कुछ कम एक दिन है। तथा ज्योतिषी देवोंमें क्षेत्र तो इससे संख्यातगुणा है और काल बहुत है ॥४२६॥

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुराणामसंख्येया कोटयः शेषज्योतिष्कांतानां । संख्यातीतसहस्रमुत्कृष्टावधीनां विषयस्तु ॥

असुररुगळिगुत्कृष्टक्षेत्रमसंख्यातकोटिगळक्कुं । शेषनवविधभावनदेवर्कळं व्यंतरज्योतिष्कदेवर्कळ्गुं असंख्यातसहस्रमुत्कृष्टावधिज्ञानविषयमक्कुं ।

असुराणमसंखेज्जा वरिसा पुण सेसजोइसंताणं ।
तस्संखेज्जदिभागं कालेण य होदि णियमेण ॥४२८॥

असुराणामसंख्येयानि वर्षाणि पुनः शेषज्योतिष्कांतानां । तत्संख्येयभागः कालेन च भवति नियमेन ॥

असुरकुलद भवनामररिगुत्कृष्टकालमसंख्येयवर्षंगळप्पुवु । तु मत्ते शेषनवविधभावनदेवर्कळ्गं व्यंतरज्योतिष्कदेवर्कळ्गं असुरकुलसंभूतर्गे पेळ्दकालमं नोडलु संख्यातैकभागमक्कुमुत्कृष्टकालं । व ० ।
१

भवणतियाणमधोधो थोवं तिरिएण होदि बहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी सुरगिरिसिहरोत्ति पस्संति ॥४२९॥

भवनत्रयाणामधोधः स्तोकं तिर्य्यग्बहुकं भवति तु ऊर्ध्वतो भवनवासिनः सुरगिरिशिखरपर्य्यंतं पश्यंति ॥

भवनत्रयामरर्गेल्लं केळगे केळगे अवधिविषयक्षेत्रं स्तोकस्तोकमक्कुं । तिर्य्यक्कागि बहुक्षेत्रं विषयमक्कुं । तु मत्ते भवनवासिदेवक्कळु तम्मिर्द्देडेयिंदंदि मेगे सुरगिरिशिखरपर्य्यंतम-

---

असुराणा उत्कृष्टविषयक्षेत्रं असख्यातकोटियोजनमात्रम् । शेषनवविधभावनव्यन्तरज्योतिष्काणां च असंख्यातसहस्रयोजनानि ॥४२७॥

असुरकुलस्योत्कृष्टकाल असंख्येयवर्षाणि पुन. शेषनवविधभावनव्यन्तरज्योतिष्काणा तस्य संख्यातैकभागः व ० ॥४२८॥
१

भवनत्रयामराणामधोधोऽवधिविषयक्षेत्रं स्तोक भवति । तिर्यग्रूपेण बहुकं भवति । तु–पुनः, भवनवासिनः

असुरकुमार जातिके भवनवासी देवोंके अवधिज्ञानका उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन प्रमाण है। शेष नौ प्रकारके भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषीदेवोंके असंख्यात हजार योजन है ॥४२७॥

असुरकुमारोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात वर्ष है। शेष नौ प्रकारके भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका काल उक्त कालके संख्यातवें भाग है ॥४२८॥

भवनवासी, व्यन्तरों और ज्योतिषी देवोंके नीचेकी ओर अवधिज्ञानका विषयक्षेत्र थोड़ा है किन्तु तिर्यक् रूपसे बहुत है। भवनवासी अपने निवासस्थानसे ऊपर मेरुपर्वतके

वधिदर्शनंदिदं काण्बरुं।

जघन्य	जघन्य	उ	उ
भवनव्यंतर	जोयिसि	असुर	भ ९। व्यं। जो
यो २५	२५१	को ०	१००० । ०
दि १	बहुकाल	व ०	व ० १

सक्कीसाणा पढमं विदियं तु सणक्कुमारमाहिदा।
तदियं तु वम्ह लांतव सुक्कसहस्सारया तुरियं ॥४३०॥

शक्रेशानौ प्रथमां द्वितीयां तु सनत्कुमारमाहेंद्रौ। तृतीया तु ब्रह्मलांतवौ शुक्रसहस्रारजौ तुर्य्यां ॥

सौधर्म्मैशानकल्पजरुगळु प्रथमपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु। सनत्कुमारमाहेंद्रकल्पसंभूतरु तु मत्ते द्वितीयपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु। ब्रह्मलातवकल्पजरु तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु। शुक्रशतारकल्पजरु चतुर्त्थपृथ्वीपर्य्यंतं काण्बरु।

आणदपाणदवासी आरण तह अच्चुदा य पस्संति।
पंचमखिदिपेरंतं छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥४३१॥

आनतप्राणतवासिनः आरणास्तथाऽच्युताश्च पश्यति पंचमक्षितिपर्य्यंतं षष्ठिं ग्रैवेयका देवाः॥

आनतप्राणतवासिगळु आरणाच्युतकल्पजरुमंते पंचमक्षितिपर्य्यंतं काण्बरु। नवग्रैवेयकदहमिंद्ररु षष्ठपृथ्वीपर्यंतं काण्बरु।

सव्वं च लोयनालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागं च ॥४३२॥

सर्वां च लोकनाडीं पश्यंत्यनुत्तरेषु ये देवाः। स्वक्षेत्रे स्वकर्म्मणि रूपगतमनंतभागं च॥

स्वकीयावस्थितस्थानादुपरि सुरगिरिशिखरपर्यन्त अवधिदर्शनेन पश्यन्ति ॥४२९॥

सौधर्मैशानजा प्रथमपृथ्वीपर्यन्त पश्यन्ति। सनत्कुमारमाहेन्द्रजा पुनर्द्वितीयपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति। ब्रह्मलान्तवजास्तृतीयपृथ्वीपर्यन्त पश्यन्ति। शुक्रशतारजा चतुर्थपृथ्वीपर्यन्त पश्यन्ति ॥४३०॥

आनतप्राणतवासिन. तथा आरणाच्युतवासिनश्च पञ्चमपृथ्वीपर्यन्तं पश्यन्ति, नवग्रैवेयकजा देवा. षष्ठपृथ्वीपर्यन्त पश्यन्ति ॥४३१॥

शिखरपर्यन्त अवधिदर्शनके द्वारा देखते है ॥४२९॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्गोंके देव अवधिज्ञानके द्वारा प्रथम नरक पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गोंके देव दूसरी पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ स्वर्गोंके देव तीसरी पृथ्वी पर्यन्त देखते है। शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार स्वर्गोंके देव चतुर्थ पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥४३०॥

आनत-प्राणत तथा आरण-अच्युत स्वर्गोंके वासी देव पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त देखते है तथा नौ ग्रैवेयकोंके देव छठी पृथ्वीपर्यन्त देखते हैं ॥४३१॥

सर्व्वलोकनाडिय नवानुद्दिशपंचानुत्तरविमानवासिगळप्पहमिंद्ररु काण्वरु अदेंतेंदोडे सौधर्म्मादिसमस्तदेवर्क्कळु मेगे स्वस्वस्वर्ग्गविमानध्वजदंडशिखरपर्य्यंत काण्वरु। नवानुद्दिशविमानवासिगळप्पहमिंद्ररुं पंचानुत्तरविमानवासिगळप्पहमिंद्ररुं मेले तं तम्म विमानशिखरं मोदल्गोंडु केळगेल्लिवरं वहिर्व्वातवलयमल्लिवरं पच्चविंशत्युत्तरचतुःशतधनूरहितैकविंशतियोजनरहितमप्पुदरिंदं किंचिदून चतुर्द्दशरज्वायतरज्जुविस्तारसर्व्वलोकनाडियनाउदोंदु अवधिदर्शनदिंदं काण्वरु। तदवधिदर्शनदिंदं यथासंख्यमागि साधिकत्रयोदशरज्जुगळमं किंचिदूनचतुर्द्दशरज्जुगळं काण्वरेंबुदर्थं। इदुवुं क्षेत्रपरिमाणनियामकमल्तु। तत्र तत्रतननियामकमक्कुमेकेंदोडे अच्युतकल्पपर्य्यंतमाद देवर्क्कळ्विहारमात्रदिंदमोंदानोंदेडेगे पोदर्ग्गळ्गे तावत्क्षेत्रदोळे तदवधिगुत्पत्यभ्युपगमदिंदं। स्वक्षेत्रे तंतम्म विषयक्षेत्रप्रदेशप्रचयदोळेकप्रदेश गळेयल्पडुवुदु। स्वकर्म्मणि तंतम्मवधिज्ञानावरणकर्म्मद्रव्यदोळेकवारं ध्रुवहारं दातव्यमक्कुमेन्नेवरं तत्प्रदेशप्रचयं परिसमाप्तियक्कुमन्नेवरमिदरिंदं तदवधिविषयद्रव्यभेदं सूचिसल्पट्टुदु। ईयर्त्थमने विशदं माडिदपं :—

नवानुदिशपञ्चानुत्तरेषु ये देवा., ते सर्वा लोकनालिं पश्यन्ति अयमर्थ.। सौधर्मादिदेवा· उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदण्डशिखरपर्यन्तं पश्यन्ति। नवानुदिशपञ्चानुत्तरदेवास्तु उपरि स्वस्वविमानशिखरमधो यावद्वहिर्वातवलय तावत् साधिकत्रयोदशरज्ज्वायता पञ्चविंशत्युत्तरचतु शतधनुरूनैकविंशतियोजनैर्न्यूनचतुर्दशरज्ज्वायता च रज्जुविस्तारा सर्वलोकनालिं पश्यन्तीति ज्ञातव्यम्। इद क्षेत्रपरिमाणनियामकं न किन्तु तत्रतत्रतनस्थाननियामक भवति कुतः ? अच्युतान्ताना विहारमार्गेण अन्यत्र गताना तत्रैव क्षेत्रे तदवध्युत्पत्त्यभ्युपगमात्। स्वक्षेत्रे स्वस्वविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचये एकप्रदेशोऽपनेतव्य। स्वकर्मणि स्वस्वावधिज्ञानावरणकर्मद्रव्ये एकवारं ध्रुवहारो दातव्य. यावत्प्रदेशप्रचयपरिसमाप्तिः स्यात्तावत्, अनेन तदवधिविषयद्रव्यभेदः सूचितः ॥ ४३२ ॥

नौ अनुदिशों और पाँच अनुत्तरोंमें जो देव हैं वे समस्त लोकनाली अर्थात् त्रसनालीको देखते हैं। सौधर्म आदिके देव अपने-अपने स्वर्गके विमानके ध्वजादण्डके शिखरपर्यन्त देखते हैं। नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तरोंके देव ऊपर अपने-अपने विमानके शिखरपर्यन्त और नीचे बाह्य तनुवातवलयपर्यन्त देखते हैं। सो अनुदिश विमानवाले तो कुछ अधिक तेरह राजू लम्बी एक राजू चौड़ी समस्त लोकनालीको देखते हैं और अनुत्तर विमानवाले चार सौ पचीस धनुप कम इक्कीस योजनसे हीन चौदह राजू लम्बी एक राजू चौड़ी समस्त त्रसनालीको देखते हैं। यह कथन क्षेत्रके परिमाणका नियामक नहीं है किन्तु उस-उस स्थानका नियामक है। क्योंकि अच्युत स्वर्ग तकके देव विहार करके जब अन्यत्र जाते हैं तो उतने ही क्षेत्रमें उनके अवधिज्ञानकी उत्पत्ति मानी गयी है। अर्थात् अन्यत्र जानेपर भी अवधिज्ञान उसी स्थान तक जानता है जिस स्थान तक उसके जाननेकी सीमा है। जैसे अच्युत स्वर्गका देव अच्युत स्वर्गमें रहते हुए पाँचवीं पृथ्वी पर्यन्त जानता है वह यदि विहार करके नीचे तीसरे नरक जावे तो भी वह पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त ही जानता है उससे आगे नहीं जानता। अस्तु, अपने क्षेत्रमें अर्थात् अपने-अपने विषयभूत क्षेत्रके प्रदेशसमूहमेंसे एक प्रदेश घटाना चाहिए और अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यमें एक वार ध्रुवहारका भाग देना चाहिए। ऐसा तबतक करना चाहिए जबतक प्रदेशसमूहकी समाप्ति हो। इससे देवोंमें अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यमें भेद सूचित किया है अर्थात् सब देवोंके अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य समान नहीं हैं ॥४३२॥

कप्पसुराणं सगसग ओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं ।
ओहीदव्वपमाणं संठाविय धुवहारेण हरे ॥४३३॥
सगसगखेत्तपदेससलायपमाणं समप्पदे जाव ।
तत्थतणचरिमखंडं तत्थतणोहिस्स दव्वं तु ॥४३४॥

कल्पसुराणां स्वकस्वकावधिक्षेत्रं विविस्रसोपचय—मवधिद्रव्यप्रमाणं सस्थाप्य ध्रुवहारेण हरेत् ॥

स्वस्वक्षेत्रप्रदेशशलाकाप्रमाणं समाप्यते यावत् । तत्रतनचरमखंड तत्रतनावधेर्द्रव्यं तु ।

कल्पजरप्प देवर्क्कळ स्वस्वावधिक्षेत्रमुमं विगतविस्रसोपचयावधिज्ञानावरणद्रव्यमुमं स्थापिसि—

=क्षेत्र३	=४क्षेत्र	=११	=६	=१५	=१८	=१९	=१०	=११	=१३	=१४-
३४३।२	३४३।	३४३७	३४३	३४३।२	३४३।	३४३।२	३४३	३४३	३४३	३४३
स०१२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२	स०१-२
७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४
द्रव्य	द्रव्य									

अमुमेवार्थं विशदयति—

कल्पवासिना स्वस्वावधिक्षेत्र विगतविस्रसोपचयावधिज्ञानावरणद्रव्य च सस्थाप्य—

=३	=४	=११	=६	=१५	=८	=१९	=१०	=११	=१३।	=१४-
३४३।२	३४३।	३४३।२	३४३।	३४३।२	३४३।	३४३।२	३४३	३४३।	३४३	३४३
स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-	स०१२-
७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४	७।४

इसी बातको आगे स्पष्ट करते हैं—

कल्पवासी देवोंके अपने-अपने अवधिज्ञानके क्षेत्रको और अपने-अपने विस्रसोपचय-रहित अवधिज्ञानावरण द्रव्यको स्थापित करके क्षेत्रमें से एक प्रदेश कम करना और द्रव्यमें एक बार ध्रुवहारका भाग देना। ऐसा तबतक करना चाहिए जबतक अपने-अपने अवधि-ज्ञानके क्षेत्र सम्बन्धी प्रदेशोंका परिमाण समाप्त हो। ऐसा करनेसे जो अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यका अन्तिम खण्ड शेष रहता है उतना ही उस अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यका परिमाण होता है।

विशेषार्थ—जैसे सौधर्म ऐशान स्वर्गवालोंका क्षेत्र प्रथम नरक पृथ्वीपर्यन्त कहा है। सो पहले नरकसे पहला दूसरा स्वर्ग डेढ़ राजू ऊँचा है। अतः अवधिज्ञानका क्षेत्र उनका एक राजू लम्बा-चौड़ा और डेढ़ राजू ऊँचा हुआ। इस घनरूप डेढ राजू क्षेत्रके जितने प्रदेश हो उन्हें एक जगह स्थापित करे। और जिस देवका जानना हो उस देवके अवधि-ज्ञानावरण कर्मद्रव्यको एक जगह स्थापित करे। इसमें विस्रसोपचयके परमाणु नही मिलाना। इस अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्यके परमाणुओंमें एक बार ध्रुवहारका भाग दे और प्रदेशोंमें-से एक कम कर दे। भाग देनेसे जो प्रमाण आया उसमें दुबारा ध्रुवहारका भाग दे

स्वविषयक्षेत्रदोळु ओंदु प्रदेशमं तेगदोम्मे ध्रुवहारदिंदं भागिसुवुदु । स्वस्वावधिविषयक्षेत्रप्रदेशप्रमाणं परिसमाप्तियक्कुमेन्नेवरमन्नेवरं ध्रुवहारदिंदं द्रव्यमं भागिसुवुदंतु भागिसुत्तिरलु तत्रतन चरमखंडं तत्रतनावधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणमक्कुं। स्वस्वावधिविषक्षेत्रप्रदेशप्रचयप्रमित ध्रुवहारंगळिंदं स्वस्वावधिज्ञानावरणद्रव्यमं विस्रसोपचयमं भागिसुत्तिरलु स्वस्वावधिज्ञानविषयद्रव्यमक्कुमेंबुदु तात्पर्य्यार्त्थं । ५

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जा ओ हु वस्सकोडीओ ।
उवरिमकप्पचउक्के पल्लासंखेज्जभागो दु ॥४३५॥

सौधर्मैशानानां असंख्येया. खलु वर्षकोट्यः । उपरितनकल्पचतुष्के पल्यासंख्यातभागस्तु ।

तत्तो लांतवकप्पप्पहुडी सव्वट्ठसिद्धिपेरंतं ।
किंचूणपल्लमेत्तं कालपमाणं जहाजोग्गं ॥४३६॥ १०

ततो लांतवकल्पप्रभृति सर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतं । किंचिदूनपल्यमात्रं कालप्रमाणं यथायोग्यं ।

सौधर्म्मैशानकल्पजग्गवधिज्ञानविषयकालमसंख्यात वर्षकोटिगळप्पुवु । वर्ष को ० । खलु स्फुटमागि । तु मत्ते उपरितनकल्पचतुष्के सनत्कुमार-माहेंद्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-कल्पचतुष्टयवासिदेवर्क्कळगे कालं यथायोग्यमप्पपल्यासंख्यातभागमात्रमक्कु प मेगे लांतवकल्पं मोदल्गोंडु सर्व्वार्त्थ-
०
सिद्धिपर्य्यंतं कल्पजग्गं कल्पातीतजग्गं कालं यथायोग्यमप्प किंचिदूनपल्यप्रमाणमक्कुं । १५

क्षेत्रे एकप्रदेशमपनीय द्रव्यमेकवारं ध्रुवहारेण भजेत् यावत्स्वस्वावधिक्षेत्रप्रदेशप्रमाण परिसमाप्यते तावत् । तत्रतनचरमखण्डं तत्रतनावधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणं भवति । स्वस्वावधिविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचयप्रमितध्रुवहारभक्तं विविस्रसोपचयस्वस्वावधिज्ञानावरणद्रव्य स्वस्वावधिविषयद्रव्यं स्यादित्यर्थ ॥४३३-४३४॥

सौधर्मैशानजानामवधिविषयकालः असंख्यातवर्षकोट्य· खलु वर्षको ० । तु-पुन , उपरितनकल्पचतुष्क-

---

और प्रदेशोंमें एक कम कर दें। इस तरह तबतक भाग दे जबतक सब प्रदेश समाप्त हों। २० अन्तिम भाग देनेपर जो सूक्ष्म पुद्गलस्कन्ध शेष रहे उतने प्रमाण पुद्गलस्कन्धको सौधर्म ऐशान स्वर्गका देव जानता है। इसी प्रकार सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देवोंके घनरूप चार राजू प्रमाण क्षेत्रके प्रदेशोंका जितना प्रमाण है उतनी बार उनके अवधिज्ञानावरण द्रव्यमें ध्रुवहारका भाग देते-देते जो प्रमाण रहे उतने परमाणुओंके स्कन्धको उनका अवधिज्ञान जानता है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्गके देवोंके साढ़े पाँच राजू, लान्तव-कापिष्ठवालोंके छह २५ राजू, शुक्र-महाशुक्रवालोंके साढे सात राजू, शतार-सहस्रारवालोंके आठ राजू, आनत-प्राणतवालोंके साढ़े नौ राजू, आरण-अच्युतवालोंके दस राजू, ग्रैवेयकवालोंके ग्यारह राजू, अनुदिशवालोंके कुछ अधिक तेरह राजू, अनुत्तर विमानवालोंके कुछ कम चौदह राजू क्षेत्रका परिमाण जानकर पूर्वोक्त विधान करनेपर उन देवोके अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यका परिमाण होता है। अर्थात् सबके अवधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रके प्रदेशोंका जो प्रमाण हो ३० उतनी बार अवधिज्ञानावरण द्रव्यमें ध्रुवहारका भाग देते-देते जो प्रमाण रहे उतने परमाणुओंके स्कन्धको वे-वे देव अवधिज्ञान द्वारा जानते है ॥४३३-४३४॥

सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके अवधिज्ञानका विषयभूत काल असंख्यात वर्ष कोटी है। उनसे ऊपर चार कल्पोंमें अर्थात् सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोके

जोइसियंताणोही खेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा ।
कप्पसुराणं च पुणो विसरित्थं आयदं होदि ॥४३७॥

ज्योतिष्कांतानामवधिक्षेत्राण्युक्तानि न भवंति घनप्रतराणि । कल्पसुराणां च पुनर्विसदृशमायतं भवति ॥

ज्योतिषिकांतानामुक्तान्यवधिक्षेत्राणि भावनव्यंतरज्योतिष्करिगेल्लगं पेरगे पेळल्पट्टवधिविषयक्षेत्रंगळु समचतुरस्र घनक्षेत्रंगळल्तु एकें दोडे अवर्गळवधिविषयक्षेत्रंगळगे सूत्रदोळु विसदृसत्वकथनमुंटप्पुदरिं । इदरिं पारिशेष्यदिं तद्योग्यस्थानदोळु नारकतिर्य्यंचरुगळवधिविषयक्षेत्रमे समघनक्षेत्रमे बुदत्थं । कल्पामरर्गेल्लं पुनः मत्तं तंतम्मवधिज्ञानविषयक्षेत्रं विसदृशमायतमक्कुं । आयतचतुरस्रक्षेत्रमे बुदर्त्थमवधिज्ञानं समाप्तमाय्तु ।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥४३८॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्द्धं चिंतितमनेकभेदगतं । मनःपर्य्यय इत्युच्यते यत् जानाति तत्खलु नरलोके ।

चिंतितं पेरदिदं चिंतिसल्पट्टुदं । अचिंतितं वा मुंदे चिंतिसल्पडुवुदं । मेणु अर्द्धचिंतितं चिंताविषयमं संपूर्णमागि चिंतिसदे अर्द्धं चिंतिसल्प डुवुदुमं । अनेकभेदगत इंतनेकप्रकारदिंदं पेरर मनदोळिर्द्दुदुं यत् आवुदो दु ज्ञानं जानाति अरिगुमा ज्ञानं खलु स्फुटमागि मनःपर्य्ययज्ञानमेंदितु

जाना यथायोग्य पल्यासख्यातभाग प तत उपरि लान्तवादिसर्वार्थसिद्धपर्यन्ताना यथायोग्य किंचिदूनपल्य
ə
प–॥४३५–४३६॥

ज्योतिष्कान्तत्रिविधदेवाना उक्तावधिविषयक्षेत्राणि समचतुरस्रघनरूपाणि न भवन्ति, सूत्रे तेषा विसदृशत्वकथनात् । अनेन पारिशेष्यात् तद्योग्यस्थाने नरनारकतिर्यगवधिविषयक्षेत्रमेव समघनमित्यर्थ । कल्पामराणा पुनर्विसदृशमायात आयतचतुरस्रमित्यर्थ ॥४३७॥

चिन्तित—चिन्ताविषयीकृत, अचिन्तित–चिन्तयिष्यमाण, अर्धचिन्तित–असपूर्णचिन्तित वा इत्यनेकभेदगत अर्थं परमनस्यवस्थित यज्ज्ञान जानाति तत् खलु मन पर्यय इत्युच्यते । तस्योत्पत्तिप्रवृत्ती नरलोके

देवोंके अवधिज्ञानका विषयभूत काल यथायोग्य पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। उनसे ऊपर लान्तव स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त देवोंके यथायोग्य कुछ कम पल्य प्रमाण हैं ॥४३५–४३६॥

ज्योतिषी देव पर्यन्त तीन प्रकारके देवोंके अर्थात् भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके जो अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र कहा है वह समचतुरस्र अर्थात् बराबर चौकोर घनरूप नहीं है क्योंकि आगममें उसकी लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई बराबर एक समान नहीं कही है। इससे शेष रहे जो मनुष्य नारक, तिर्यंच उनके अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र समान चौकोर घनरूप है यह अर्थ निकलता है। कल्पवासी देवोंके अवधिज्ञानका विषयक्षेत्र विसदृश आयत है अर्थात् लम्बा बहुत और चौड़ा कम है ॥४३७॥

॥ अवधिज्ञान प्ररूपणा समाप्त ॥

चिन्तित—जिसका पूर्वमें चिन्तन किया था। अचिन्तित—जिसका आगामी कालमें चिन्तन करेगा, अर्धचिन्तित—जिसका पूर्णरूपसे चिन्तन नहीं किया, इत्यादि अनेक प्रकार-

पेळल्पट्टुदु। नरलोके तदुत्पत्तिप्रवृत्तिगळेरडुं मनुष्यक्षेत्रदोळेयक्कुं। मनुष्यक्षेत्रदिंदं पोरगे मनःपर्य्ययज्ञानक्कुत्पत्तियुं प्रवृत्तियुमिल्लेंबुदत्थं।

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मन इत्युच्यते। मनः पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्य्ययः एंदितु परमनोगतार्थग्राहकं मनःपर्य्ययज्ञानमक्कुमा परमनोगतार्थमुं चिंतितमचिंतितमर्द्धचिंतितमेंदितनेकभेदमप्पुददं मनुष्यक्षेत्रदोळु मनःपर्य्ययज्ञानमरिगुमेंबुदं तात्पर्य्यं। ५

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्ति उजुमदी तिविहा।
उजु मणवयणे काये गदत्थविसयत्ति णियमेण ॥४३९॥

मनः पर्य्ययश्च द्विविधः ऋजुविपुलमती इति। ऋजुमतिस्त्रिविधः ऋजु मनोवचने काये गतार्थविषय इति नियमेन।

सामान्यदिंदं मनःपर्य्ययज्ञानमोंदु अदं भेदिसिदोड ऋजुमतिमनःपर्य्ययमेंदु विपुलमतिमनःपर्य्ययमेंदितु मनःपर्य्ययज्ञानं द्विविधमक्कुं। मल्लि ऋज्वी ऋजुकायवाक्मनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्व्वर्त्तिता निष्पन्ना मतिर्य्यस्य सः ऋजुमतिः स चासौ मनःपर्य्ययश्च ऋजुमतिमनःपर्य्ययः। विपुला कायवाग्मनस्कृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञाना निर्वृत्तिताऽनिर्व्वर्तिता कुटिला च मतिर्य्यस्य सः विपुलमतिः। स चासौ मनःपर्य्ययश्च विपुलमतिमनःपर्य्ययः। एंदितु निरुक्तिसिद्धंगळप्पुवल्लि ऋजुश्च विपुला च ऋजु विपुले। ते मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती। ऋजुमनोगतार्थविषयमनःपर्य्ययमेंदु ऋजुवचनगतार्थविषयमनःपर्य्ययमेंदुं ऋजुकायगतार्थविषयमनःपर्य्ययमुमेंदितु ऋजुमतिमनःपर्य्ययं नियम-

---

मनुष्यक्षेत्र एव न तद्बहिः। परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्यय. ॥४३८॥

स मनःपर्ययः सामान्येनैकोऽपि भेदविवक्षया ऋजुमतिमनःपर्ययः विपुलमतिमनःपर्ययश्चेति द्विविधः। तत्र ऋज्वी-ऋजुकायवाङ्मन.कृतार्थस्य—परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता-निष्पन्ना मतिर्यस्य स ऋजुमतिः स चासौ मन'पर्ययश्च ऋजुमतिमन.पर्ययः। विपुला कायवाग्मन'कृतार्थस्य—परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता अनिर्वर्तिता कुटिला च मतिर्यस्य स विपुलमतिः स चासौ मन.पर्ययश्च विपुलमतिमन पर्ययः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले ते मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती तौ च तौ मन पर्ययौ च ऋजुविपुलमतिमन'पर्ययौ। तत्र ऋजुमतिमनःपर्यय. ऋजुमनोगतार्थविपय., ऋजुवचनगतार्थविपय, ऋजुकायगतार्थविषयश्चेति नियमेन

का जो अर्थ दूसरेके मनमें स्थित है, उसको जो ज्ञान जानता है वह मनःपर्यय कहा जाता है। दूसरेके मनमें स्थित अर्थ मन हुआ, उसे जो जानता है वह मनःपर्यय है। इस ज्ञानकी उत्पत्ति और प्रवृत्ति मनुष्यक्षेत्रमें ही होती है, उसके बाहर नहीं ॥४३८॥

वह मनःपर्यय सामान्यसे एक होनेपर भी भेदविवक्षासे ऋजुमतिमनःपर्यय विपुलमतिमनःपर्यय इस तरह दो प्रकार है। सरल काय, वचन और मनके द्वारा किया गया जो अर्थ दूसरेके मनमें स्थित है उसको जाननेसे निष्पन्न हुई मति जिसकी है वह ऋजुमति है और ऋजुमति और मनःपर्यय ऋजुमतिमनःपर्यय है। तथा सरल अथवा कुटिल काय-वचन-मनके द्वारा किया गया जो अर्थ दूसरेके मनमें स्थित है उसको जाननेसे निष्पन्न या अनिष्पन्न मति जिसकी है वह विपुलमति है। विपुलमति और मनःपर्यय विपुलमति मनःपर्यय है। अथवा ऋजु और विपुला मति जिनकी है वे ऋजुमति, विपुलमति मनःपर्यय हैं। ऋजुमतिमनःपर्यय नियमसे तीन प्रकारका है—सरल मनके द्वारा चिन्तित मनोगत

दिदं त्रिविधमक्कुं ।

विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं ।
अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥४४०॥

विपुलमतिरपि च षड्धा ऋज्वनृजुवचनकायचित्तगतमर्थं जानाति यस्मात् शब्दार्थगताः खलु तयोरर्थाः ।

विपुलमतिमनःपर्य्ययमुं षट्प्रकारमप्पुददें तें दोडे ऋजुमनोगतार्थविषयमनःपर्य्ययमें दुं ऋजुवचनगतार्थविषयमनपर्य्ययमें दुं ऋजुकायगतार्थविषयमनःपर्य्ययमें दितु । अनृजुमनोगतार्थविषयमनःपर्य्ययमें दुं अनृजुवचनगतार्थविषयमनःपर्य्ययमें दुं अनृजुकायगतार्थविषयमनःपर्य्ययमें दितिल्लि । यस्मात् ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्थविषयत्वात्कारणात् । तयोरर्थाः आवुदो दु ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्थविषयत्वकारणदत्तणिंदमा ऋजुविपुलमतिमनःपर्य्ययंगळ अर्थाः विषयंगळु शब्दगतार्थंगळें दुं खलु स्फुटमागि द्विप्रकारंगळप्पुवु । अदे तें दोडे ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानं वोव्वं ऋजुमनदिदं निर्व्वर्त्तितमागि निष्पन्नमागि त्रिकालविषयंगळप्प पदार्थंगळं चिंतिसिदं । ऋजुवचनदिदं निष्पन्नमागि त्रिकालविषयंगळप्पर्थंगळं नुडिदं । ऋजुभूतकायदिदं निष्पन्नमागि त्रिकालविषयार्थंगळं कायव्यापारदिदं माडिदनवंमरेदु । कालांतरदिदं नेनेयलारदे बंदु बेसगोंडोडं बेसगोळदिद्दोडमरिगुं एंदितु शब्दगतार्थंगळुमर्थंगतार्थंगळु मेंदु द्विप्रकारंगळप्पुवु । विपुलमतिमनःपर्य्ययक्कर्कमिते ऋज्वनृजुमनोवचनकायगळिदं निर्व्वर्त्तितमागि निष्पन्नमागि त्रिकालविषयपदार्थंगळं चिंतिसिदुवं नुडिदुवं माडिदुवं मरेदु कालांतरदिदं नेनेयलारदे बंदु बेसगों-

---

त्रिविध ॥४३९॥

विपुलमतिमन पर्ययोऽपि यस्मात् ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्थं जानाति तस्मात्कारणात् ऋजुमनोगतार्थविषय. ऋजुवचनगतार्थविषय ऋजुकायगतार्थविषय अनृजुमनोगतार्थविषय अनृजुवचनगतार्थविषय. अनृजुकायगतार्थविषयश्चेति षोढा । तयो ऋजुविपुलमतिमन पर्ययो अर्था —विषया शब्दगता अर्थगताश्च स्फुटं भवन्ति । तद्यथा—कश्चिज्जीव ऋजुमनसा निर्वर्तित —निष्पन्न त्रिकालविषयपदार्थान् चिन्तितवान् ऋजुवचनेन निर्वर्तितस्तानुक्तवान् ऋजुकायेन निष्पन्नस्तान् कृतवान्, विस्मृत्य कालान्तरेण स्मर्तुमशक्त , आगत्य पृच्छति वा तूष्णी तिष्ठति तदा ऋजुमतिमन पर्ययज्ञान जानाति । तथा ऋज्वनृजुमनोवचनकायैर्निर्वर्तित·

अर्थको जाननेवाला, सरल वचनके द्वारा कहे गये मनोगत अर्थको जाननेवाला और सरलकायसे किये गये मनोगत अर्थको जाननेवाला ॥४३९॥

विपुलमति मनःपर्यय छह प्रकारका है—क्योंकि वह सरल और कुटिल मन-वचन-कायसे किये गये मनोगत अर्थको जानता है । अतः ऋजु मनोगत अर्थको विषय करनेवाला, ऋजु वचनगत अर्थको विषय करनेवाला, ऋजुकायगत अर्थको विषय करनेवाला तथा कुटिल मनोगत अर्थको विषय करनेवाला, कुटिल वचनगत अर्थको विषय करनेवाला, कुटिल कायगत अर्थको विषय करनेवाला इस तरह छह प्रकारका है । उन ऋजुमति और विपुलमति मन पर्ययके विषय शब्दगत और अर्थगत होते है । यथा—किसी सरलमनसे निष्पन्न व्यक्तिने त्रिकालवर्ती पदार्थोंके विषयमें चिन्तन किया, सरल वचनसे निष्पन्न होते हुए उन पदार्थोंका कथन किया और सरलकायसे निष्पन्न होकर उनको किया । फिर भूल गया, कालका अन्तराल पडनेपर स्मरण नहीं कर सका । आ करके पूछता है अथवा चुप बैठता है । तब ऋजुमति मन.पर्ययज्ञान जान लेता है । तथा सरल या कुटिल मन-वचन-

डोडं बेसगोळदिद्देंडे विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानमरिगुमेंदितिल्लियुं शब्दगतात्थंगळुमर्त्थगतात्थंगळुमेंदितु द्विप्रकारांगळप्पुवु ।

तियकालविसयरूविं चिंतंतं वट्टमाणजीवेण ।
उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ॥४४१॥

त्रिकालविषयरूपिणं चिंत्यमानं वर्त्तमानजीवेन । ऋजुमतिज्ञानं जानाति भूतभविष्यंतौ च विपुलमतिः ।

त्रिकालविषयपुद्गलद्रव्यमं वर्त्तमानजीवनिंदं चिंतिसल्पडुत्तिद्दुदं ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानमरिगुं । भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालविषयंगळप्प चिंतितमं चिन्तयिष्यमाणमं चिंत्यसानमं विपुलमतिः मनःपर्य्ययज्ञानमरिगुं ॥

सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही ।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥४४२॥

सर्व्वांगांगसंभवचिह्नादुत्पद्यते यथावधिः । मनःपर्य्ययश्च द्रव्यमनसः उत्पद्यते नियमात् ॥

सर्व्वांगदोळमंगसंभवशंखादिशुभचिह्नं गळोळं यथा यें तोगळवधिज्ञानं पुट्टुगुमंते मनःपर्य्ययज्ञानमुं द्रव्यमनदिदं पुट्टुगुं नियमदिदं । नियमशब्दं द्रव्यमनदोळल्लदे मत्तल्लियुमंगप्रदेशदोळु मनःपर्य्ययं पुट्टुदेंबवधारणार्त्थमक्कुं ॥

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसिय अट्ठच्छदारविंदं वा ।
अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंददो णियमा ॥४४३॥

हृदि भवति खलु द्रव्यमनो विकसिताष्टच्छदारविन्दवत् । अंगोपांगोदयात् मनोवर्गणास्कन्धतो नियमात् ॥

त्रिकालविषयपदार्थान् चिन्तितवान् वा उक्तवान् वा कृतवान् विस्मृत्य कालान्तरेण स्मर्तुमशक्तः आगत्य पृच्छति वा तूष्णी तिष्ठति तदा विपुलमतिमन.पर्ययज्ञान जानाति ॥४४०॥

त्रिकालविषयपुद्गलद्रव्यं वर्तमानजीवेन चिन्त्यमानं ऋजुमतिमन.पर्ययज्ञानं जानाति । भूतभविष्यद्वर्तमानकालविषयं चिन्तित चिन्तयिष्यमाण चिन्त्यमान च विपुलमतिमन पर्ययज्ञानं जानाति ॥४४१॥

सर्वाङ्गे अङ्गसंभवशङ्खादिशुभचिह्ने च यथा अवधिज्ञानमुत्पद्यते तथा मन.पर्ययज्ञान द्रव्यमनसि एवोत्पद्यते नियमेन नान्यत्राङ्गप्रदेशेषु ॥४४२॥

कायसे किये गये त्रिकालवर्ती पदार्थोंको विचार किया कहा या शरीरसे किया। पीछे भूल गया और समय बीतनेपर स्मरण नहीं कर सका। आकर पूछता है या चुप बैठता है तब विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी जानता है ॥४४०॥

त्रिकालवर्ती पुद्गल द्रव्य वर्तमान जीवके द्वारा चिन्तनवन किया गया हो तो उसे ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानता है। और त्रिकालवर्ती पुद्गलद्रव्य भूतकालमें चिन्तवन किया गया हो, भविष्यत् कालमें चिन्तन किया जानेवाला हो या वर्तमानमें चिन्तवन किया जाता हो तो उसे विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान जानता है ॥४४१॥

जैसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्वांगसे उत्पन्न होता है और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान शरीरमें प्रकट हुए शंख आदि शुभ चिह्नोंसे उत्पन्न होता है वैसे ही मनःपर्ययज्ञान द्रव्यमनसे ही उत्पन्न होता है ऐसा नियम है, शरीरके अन्य प्रदेशोंमें उत्पन्न नहीं होता ॥४४२॥

अंगोपांगोदयात्कारणात् अंगोपांगनामकर्म्मोदयकारणदिंदं मनोवर्गणास्कधंगळिंदं विकसिताष्टच्छदारविंददंते द्रव्यमनं हृदयदोळप्पुदु खलु स्फुटमागि ।

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा ।
वत्तत्ताभावादो मण मणपज्जं च तत्थ हवे ॥४४४॥

नो इंद्रियमिति सज्ञा तस्य भवेत् शेषेंद्रियाणामिव व्यक्तत्वाभावात् मनो मनःपर्य्ययश्च तत्र भवेत् ॥

मनः आ द्रव्यमनं शेषेंद्रियाणामिव स्पर्शनादीद्रियंगळगे तु संस्थाननिर्द्देशंगळगे व्यक्तत्वमुंटंते । तस्य आ द्रव्यमनक्के व्यक्तत्वाभावात् कर्णनासिकानयनादिवत् व्यक्तत्वाभावदिंदं नोइंद्रियमिति संज्ञा भवेत् । ईषदिंद्रियं नोइंद्रियमेंदितन्वत्यर्थमंज्ञेयुमक्कुं । तत्र आ द्रव्यमनदोळू मनः भावमनोज्ञानमुं मनःपर्य्ययश्च भवेत् मनःपर्य्ययज्ञानं पुट्टुगुं ।

मणपज्जवं च णाणं सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीणं ।
एगादिजुदेसु हवे वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ॥४४५॥

मनःपर्य्ययज्ञानं सप्तसु विरतेषु सप्तर्द्धीनामेकादियुतेषु भवेद् वर्द्धमानविशिष्टाचरणेषु ॥

सप्तसु विरतेषु प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायांतमाद सप्तगुणस्थानवर्त्तिगळप्प विरतरोळु सप्तर्द्धीनामेकादियुतेषु बुद्धितपोवैकुर्व्वणौषधरसबलाक्षीणमेंब सप्तऋद्धिगळोळेक द्वित्र्यादियुतरोळु वर्द्धमानविशिष्टाचरणेषु पेर्च्चुत्तिर्प्प विशिष्टाचारमनुळ्ळ महामुनिगळोळु मनःपर्य्ययश्च ज्ञानं भवेत् मनःपर्य्ययज्ञानं पुट्टदेंबुदु तात्पर्य्यं ।

इंदियणोइंदियजोगादि पेक्खित्तु उजुमदी होदि ।
णिरवेक्खिय विउलमदी ओहि वा होदि णियमेण ॥४४६॥

इंद्रियनोइंद्रिययोगादीनपेक्ष्य तु ऋजुमतिर्भवति । निरपेक्ष्य च विपुलमतिरवधिवद्भवति नियमेन ॥

अङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयकारणात् मनोवर्गणास्कन्धैर्विकसिताष्टच्छदारविन्दसदृश द्रव्यमनो हृदये उत्पद्यते स्फुटम् ॥४४३॥

तस्य द्रव्यमनस शेषस्पर्शनादीन्द्रियाणामिव स्थाननिर्देशाभ्या व्यक्तत्वाभावात् ईषदिन्द्रियत्वेन नोइन्द्रियमित्यन्वर्थनाम भवेत् । तत्र द्रव्यमनसि भावमनो मन पर्ययश्चोत्पद्यते ॥४४४॥

प्रमत्तादिसप्तगुणस्थानेषु बुद्धितपोविकुर्वाणौषधरसबलाक्षीणनामसप्तर्धिमध्ये एकद्वित्र्यादियुतेष्वेव वर्धमानविशिष्टाचरणेषु मन पर्ययज्ञान भवति, नान्यत्र ॥४४५॥

अंगोपांग नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणारूप स्कन्धोंके द्वारा हृदयस्थानमें मनकी उत्पत्ति होती है । वह खिले हुए आठ पाँखुड़ीके कमलके समान होता है ॥४४३॥

उस द्रव्यमनका नो इन्द्रिय नाम सार्थक है क्योंकि जैसे स्पर्शन आदि इन्द्रियोंका स्थान और विषय प्रकट है वैसा मनका नहीं है । इसलिए ईषत् अर्थात् किंचित् इन्द्रिय होनेसे उसका नाम नोइन्द्रिय है । उस द्रव्यमनमें भावमन और मन.पर्ययज्ञान उत्पन्न होते हैं ॥४४४॥

प्रमत्तसंयतसे क्षीणकषाय पर्यन्त सात गुणस्थानोंमें, बुद्धि-तप-विक्रिया-औषध-रस-बल और अक्षीण नामक सात ऋद्धियोंमें-से एक-दो-तीन आदि ऋद्धियोंके धारी तथा जिनका विशिष्ट चारित्र वर्धमान होता है उन महामुनियोंमें ही मनःपर्ययज्ञान होता है, अन्यत्र नहीं ॥४४५॥

स्पर्शनादींद्रियंगळुमं नोइंद्रियमुमं मनोवचनकाययोगमुमें दिवं तन्न परर संबंधिगळुमनपेक्षिसिये ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानं संजनिसुगुं। तु मत्ते इंद्रियनोइंद्रिययोगादिगळं स्वपरसंबंधिगळनपेक्षिसये विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानं चक्षुरिंद्रियमीगळें तु रसादिगळं परिहरिसि रूपमोंदने परिच्छेदिसुगुमंते मनःपर्य्ययज्ञानमुं भवविषयाशेषानंतपर्य्यायंगळं परिहरिसि आवुदों दु कारणदिदं भवसंज्ञितद्वित्रिव्यंजनपर्य्यायंगळं परिच्छेदिसुगुमदु कारणदिदंमिदवधिज्ञानदंते नियमदिदं संजनिसुगुं।

पडिवादी पुण पढमा अप्पडिवादी हु होदि बिदिया हु।
सुद्धो पढमो बोहो सुद्धतरो बिदियबोहो दु ॥४४७॥

प्रतिपाती पुनः प्रथमोऽप्रतिपाती खलु भवति द्वितीयः। शुद्धः प्रथमो बोधः शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु ॥

प्रथमः मोदल ऋजुमतिमनःपर्य्ययं प्रतिपाती प्रतिपातियक्कुं। प्रतिपतनं प्रतिपातः उपशांतकषायंगे चारित्रमोहोद्रेकदिदं प्रच्युतसंयमशिखरंगे प्रतिपातमक्कुं। क्षीणकषायंगे प्रतिपातकारणाभावदिदं अप्रतिपातमक्कुं। तदपेक्षेयिंदं प्रतिपातोऽस्यास्तीति प्रतिपाती। पुनः मत्ते द्वितीयः विपुलमतिमनःपर्य्ययं अप्रतिपाती खलु प्रतिपातरहितमक्कुं। न प्रतिपाती अप्रतिपाती। शुद्धः प्रथमो बोधः मोदल ऋजुमतिमनःपर्य्ययं विशुद्धबोधमक्कुं। प्रतिपक्षकर्म्मक्षयोपशममुंटागुत्तिरलु आत्मन प्रसादमं विशुद्धियें बुदु। तदस्यास्तीति विशुद्धः शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु। तु मत्ते अतिशयदिदं विशुद्धमक्कुं विपुलमतिमनःपर्य्ययं।

परमणसिट्ठियमट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय।
पच्छा पच्चक्खेण य उजुमदिणा जाणदे णियमा ॥४४८॥

परमनसि स्थितमर्थं इहामत्या ऋजुस्थितं लब्ध्वा। पश्चात्प्रत्यक्षेण च ऋजुमतिना जानीते नियमात् ॥

ऋजुमतिमन पर्यय. स्पर्शनादीन्द्रियाणि नोइन्द्रिय मनोवचनकाययोगाश्च स्वपरसंबन्धिनोऽपेक्ष्यैवोत्पद्यते। विपुलमतिमन.पर्ययस्तु अवधिज्ञानमिव ताननपेक्ष्यैवोत्पद्यते नियमेन ॥४४६॥

प्रथमः ऋजुमतिमन पर्यय. प्रतिपाती भवति। क्षीणकषायस्याप्यप्रतिपातेऽपि; उपशान्तकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्तत्सभवात्। पुन. द्वितीयो विपुलमतिमन.पर्यय अप्रतिपाती खलु। ऋजुमतिमन पर्ययो विशुद्धः, प्रतिपक्षकर्मक्षयोपशमे सति आत्मप्रसादरूपविशुद्धे. सभवात्। तु पुन. विपुलमतिमन.पर्यय. अतिशयेन विशुद्धो भवति ॥४४७॥

ऋजुमतिमनःपर्यय अपने और अन्य जीवोके स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ, मन, और मन-वचन-काय योगोंकी अपेक्षासे ही उत्पन्न होता है। और विपुलमतिमन.पर्यय अवधिज्ञानकी तरह उनकी अपेक्षाके बिना ही उत्पन्न होता है ॥४४६॥

प्रथम ऋजुमति मनःपर्यय प्रतिपाती होता है। जो ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी क्षपकश्रेणीपर आरोहण करके क्षीणकषाय हो जाता है यद्यपि वह वहाँसे गिरता नहीं है किन्तु जो उपशम श्रेणीपर आरोहण करके उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती होता है, चारित्रमोहका उद्रेक होनेसे उसका प्रतिपात होता है। किन्तु दूसरा विपुलमतिमनःपर्यय अप्रतिपाती है। ऋजुमति मनःपर्यय विशुद्ध है क्योंकि प्रतिपक्षी कर्मका क्षयोपशम होनेपर

परर मनदोळिर्द्दर्त्थमं ऋजुस्थितं ऋजु यथा भवति तथा स्थितं इहामदिणा ईहामतिज्ञानदिंदं मुन्नं लब्ध्वा पडेदु पश्चात् बळिकं ऋजुमतिना ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानदिंद प्रत्यक्षैण च प्रत्यक्षमागि मनःपर्य्ययज्ञानी जानीते अरिगुं नियमात् नियमदिंदं।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं।
ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४९॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्द्धचिंतितमनेकभेदगत। अवधिवद्विपुलमतिर्लब्ध्वा विजानाति पश्चात् ॥

चिंतितमुमचिंतितमुमं मेणर्द्धचिंतितमुमनितनेकभेददोळिर्द्द परकीयमनोगतार्त्थमं मुन्नं पडदु बळिकं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानमवधिज्ञानमंतंत प्रत्यक्षमागरिगुं।

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि जीवलक्खियं रूविं।
उजुविउलमदी जाणदि अवरवरं मज्झिमं च तहा ॥४५०॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति जीवलक्षितं रूपिणं। ऋजु-विपुलमती जानीतः अवरवरं मध्यमं च तथा ॥

द्रव्यं प्रति क्षेत्रं प्रति कालं प्रति भावं प्रति प्रत्येकं जीवलक्षितं जीवनिंदं चिंतिसल्पट्टुदं रूपिणं पुद्गलं पुद्गलद्रव्यमं तत्संबंधिजीवद्रव्यमं। अवरवरं जघन्यमुमनुत्कृष्टमुमं। तथा अंते मध्यमं च मध्यममुमं ऋजुविपुलमती ऋजुविपुलमतिमनःपर्य्ययंगळेरडुं जानीतःअरिववु।

परस्य मनसि ऋजुतया स्थितमर्थं ईहामतिज्ञानेन पूर्वं लब्ध्वा पश्चात् ऋजुमतिज्ञानेन प्रत्यक्षतया मन पर्ययज्ञानी जानीते नियमात् ॥४४८॥

चिन्तित अचिन्तित अथवा अर्धचिन्तितं इत्यनेकभेदगतं परमनोगतार्थं पूर्वं लब्ध्वा पश्चाद्विपुलमतिमनःपर्यय अवधिरिव प्रत्यक्ष जानाति ॥४४९॥

द्रव्य प्रति क्षेत्र प्रति काल प्रति भाव प्रति प्रत्येक जीवलक्षित—जीवचिन्तित, रूपि—पुद्गलद्रव्य तत्सबन्धिजीवद्रव्य च जघन्य उत्कृष्ट तथा मध्यम च ऋजुविपुलमतिमन पर्यंयौ जानीत ॥४५०॥

आत्माकी निर्मलता रूप विशुद्धिसे उत्पन्न होता है। किन्तु विपुलमतिमनःपर्यय अतिशय विशुद्ध होता है ॥४४७॥

दूसरेके मनमे सरलता रूपसे विचार किया गया जो अर्थ स्थित है उसे पहले ईहामतिज्ञानके द्वारा प्राप्त करके पीछे ऋजुमतिज्ञानसे मनःपर्ययज्ञानी नियमसे प्रत्यक्ष जानता है ॥४४८॥

चिन्तित, अचिन्तित, अथवा अर्धचिन्तित इत्यादि अनेक भेद रूप दूसरेके मनोगत अर्थको पहले प्राप्त करके पीछे विपुल मति मनःपर्यय अवधिज्ञानकी तरह प्रत्यक्ष जानता है ॥४४९॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको-लेकर जीवके द्वारा चिन्तित पुद्गल द्रव्य और उससे सम्बद्ध जीवद्रव्यको जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदको लिए हुए ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्यय जानते हैं ॥४५०॥

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु ।
चक्खिंदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥४५१॥

अवरं द्रव्यमौदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धस्तु । चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमुत्कृष्टं ऋजुमते भवेत् ।

ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानक्के विषयमप्प जघन्यद्रव्यमौदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्ध मक्कुं । स अ १६ ख । तु मत्ते । उत्कृष्टं द्रव्यं चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णद्रव्यमक्कुं । अदर प्रमाणमेनितेंदोडे त्रैराशिकदिंदं साधिसल्पडुगुं ।

आ त्रैराशिकविधानमेनितेंदोडे संख्यातघनांगुलप्रमितमौदारिकशरीरावगाहनप्रदेशंगळोळेल्लमेत्तलानुं सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धंगळोळेल्लमेत्तलानुं सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धंगळेयिसुवागळु चक्षुरिंद्रियाभ्यंतरनिर्वृत्तिप्रदेशप्रचयमिनितरोळिनितु द्रव्यंगळेयिसुगुमेंदितु त्रैराशिकमं माडि प्र ६ । १ । फ स अ १६ ख इ ६ प आद्यंतशब्दशं त्रैराशिकं

प १ १ अ प
अ अ

मध्यम नाम फलं भवेत् एंदु बंद लब्धं चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णद्रव्यमिदु ऋजुमतिमनःपर्य्ययक्कुत्कृष्टद्रव्यमक्कुं स अ १६ ख ६ प
अ
६ । १ प १ १ प

तत्र ऋजुमतिमनःपर्यय. जघन्यद्रव्य औदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं जानाति स अ १६ ख । तु—पुनः, उत्कृष्टद्रव्यं चक्षुरिन्द्रियनिर्जीर्णमात्र जानाति। तत्कियत् ? औदारिकशरीरावगाहने सख्यातघनाङ्गुले सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धो गलति तदा चक्षुरिन्द्रियाभ्यन्तरनिर्वृत्तिप्रदेशप्रचये कियदिति त्रैराशिकेन

प्र ६ १ । फ स अ १६ ख । इ ६ प लब्धमात्र भवति—स अ १६ ख । ६ । प ॥४५१॥
अ अ

प १ १ प
अ अ

६ १ प १ १ प
अ अ

ऋजुमति मनःपर्यय औदारिक शरीरके निर्जीर्ण समय प्रबद्धरूप जघन्य द्रव्यको जानता है और उत्कृष्टद्रव्यके रूपमें चक्षु इन्द्रियके निर्जीर्णद्रव्यको जानता है। वह कितना है सो कहते हैं—औदारिक शरीरकी अवगाहना संख्यात घनांगुल है। उसके विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीरके समय प्रबद्ध परमाणुओंकी निर्जरा होती है। तब चक्षु इन्द्रियकी अभ्यन्तर निर्वृत्तिके प्रदेश प्रचयमें कितनी निर्जरा हुई, ऐसा त्रैराशिक करनेपर जितना परिमाण आवे उतने परमाणुओंके स्कन्धको ऋजुमति उत्कृष्ट रूपसे जानता है ॥४५१॥

मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं ।
खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥४५२॥

मनोद्रव्यवर्गणानामनंतैकभागेन ऋजुमतेरुत्कृष्टं । खंडितमात्रं भवति खलु विपुलमतेरवरं द्रव्य ॥

मनोद्रव्यवर्गणैकानंतैकभागं ध्रुवहारप्रमाणमक्कु ज १ मी ध्रुवहार भागदिंदं ऋजुमति-
ख ख
पर्य्ययज्ञानविषयोत्कृष्टद्रव्यमं खंडिसुत्तिरलावुदो देकखंडं तावन्मात्रं खलु स्फुटमागि विपुलमतिमनः-
पर्य्ययज्ञानविषयजघन्यद्रव्यमक्कुं स अ १६ ख ६ प

६ । १ । प १ १ प ० ९
अ अ

अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारेणिगिवारं भजिदे विदियं हवे दव्वं ॥४५३॥

अष्टानां कर्म्मणां समयप्रबद्धो विविस्रसोपचयो । ध्रुवहारेणैकवारं भाजिदे द्वितीयं भवेद्द्रव्यं ।

ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्मसामान्यसमयप्रबद्धं विगतविस्रसोपचयमदेकवारं ध्रुवहारदिंदं
भागिसल्पडुतिरलेकखंडमात्रं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयद्वितीयद्रव्यविकल्पमक्कुं स अ–ख ख
९ अ अ

मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनन्तैकभागेन ध्रुवहारेण ज १ ऋजुमतिविषयोत्कृष्टद्रव्ये खण्डिते यावन्मात्र
ख ख
तत्स्फुट विपुलमतिविषयजघन्यद्रव्य भवति स अ १६ ख । ६ प ॥४५२॥
अ

६ १ प १ १ प । ९
अ अ

अष्टकर्मसामान्यसमयप्रबद्धे विविस्रसोपचये ध्रुवहारेण एकवार भक्ते यदेकखण्ड तद्विपुलमतिविषय-
द्वितीयद्रव्य भवति— स अ अ अ ख ख ॥४५३॥
९

मनोद्रव्य वर्गणाके विकल्पोंके अनन्तवे भागरूप ध्रुवहारसे ऋजुमतिके विषय उत्कृष्ट-द्रव्यमें भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना विपुलमतिके विषयभूत जघन्यद्रव्यका परिमाण होता है ॥४५२॥

आठों कर्मोंके विस्रसोपचय रहित सामान्य समय प्रबद्धमें ध्रुवहारसे एक बार भाग देनेपर जो एक खण्ड आता है वह विपुलमतिका विषय द्वितीयद्रव्य होता है ॥४५३॥

तब्बिदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं ।
धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥४५४॥

तद्द्वितीयं कल्पानामसंख्यातानां च समयसंख्यासमं ध्रुवहारेणापहृते भवति खलूत्कृष्टं द्रव्यं।

तं द्वितीयं विपुलमनःपर्य्ययज्ञानविषयद्वितीयद्रव्यविकल्पसं असंख्यातकल्पंगळ समयंगळ संख्यासमानध्रुवहारंगळिदं भागिसुत्तं विरलु यावत्प्रमाणं लब्धं तावत्प्रमाणं विपुलमतिमनःपर्य्यय- ५
ज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टद्रव्यविकल्पमक्कुं खलु स्फुटमागि स अ ख ख
९ क अ ९९९

गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ।
विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

गव्यूतिपृथक्त्वमवरमुत्कृष्टं भवति योजनपृथक्त्वं । विपुलमतेरवरं तस्य पृथक्त्वं खलु १०
नरलोकः ॥

ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यक्षेत्रं गव्यूतिपृथक्त्वमेरडुमूरु क्रोशंगळप्पुवु । क्रो २। ३। मदरुत्कृष्टक्षेत्रं योजनपृथक्त्वसप्ताष्टयोजनप्रमाणमक्कुं। यो ७। ८। विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञान विषयजघन्यक्षेत्रं तस्य पृथक्त्वमा योजनंगळ पृथक्त्वमष्टयोजननवयोजनप्रमाणमक्कुं। ८। ९। तदुत्कृष्टज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रं खलु स्फुटमागि। नरलोकः मनुष्यलोकमेनितनितु प्रमाणमक्कुं।

णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स । १५
जम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥४५६॥

नरलोक इति वचनं विष्कंभनियामकं न वृत्तस्य । यस्मात्तद्घनप्रतरं मनःपर्य्यायक्षेत्रमुद्दिष्टं ॥

विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणदोळु नरलोक इति वचनं नरलोकमेंबी शब्दं तन्मनुष्यक्षेत्रवृत्तविष्कंभनियामकमल्तेकेंदोडे यस्मात् आवुदोंदु कारणदिंदं तद्घनप्रतरमा

तस्मिन् विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्ये असंख्यातकल्पसमयसख्यैर्ध्रुवहारैर्भक्ते विपुलमतिविपय सर्वोत्कृष्ट- २०
द्रव्यं भवति— स अ अ अ ख ख ॥४५४॥
९। क अ ९ ९ ९

ऋजुमतिविपयजघन्यक्षेत्र गव्यूतिपृथक्त्व द्वित्रिक्रोशा. २। ३। उत्कृष्टं योजनपृथक्त्वं सप्ताष्टयोजनानि ७। ८। विपुलमतिविषयजघन्यक्षेत्रं योजनपृथक्त्वं अष्टनवयोजनानि। ८। ९। उत्कृष्टं स्फुटं नरलोक. ॥४५५॥

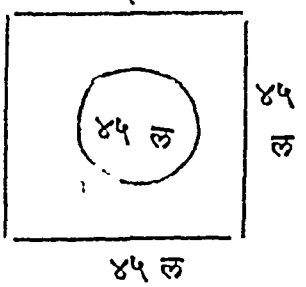
यद्विपुलमतिविपयोत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणे नरलोक इति वचनमुक्तं तत् तद्गतविष्कम्भस्य नियामकं निश्चायकं २५

विपुलमतिके विषयभूत उस दूसरे द्रव्यमें असंख्यात कल्पकालके समयोंकी संख्या जितनी है उतनी बार ध्रुवहारसे भाग देनेपर विपुलमतिके विषयभूत सर्व उत्कृष्टद्रव्य आता है ॥४५४॥

ऋजुमतिका विपयभूत जघन्य क्षेत्र गव्यूति पृथक्त्व अर्थात् दो-तीन कोस है। और उत्कृष्ट क्षेत्र योजन पृथक्त्व अर्थात् सात-आठ योजन है। विपुलमतिका विषयभूत जघन्य ३०
क्षेत्र योजन पृथक्त्व अर्थात् आठ-नौ योजन है और उत्कृष्टक्षेत्र मनुष्यलोक है ॥४५५॥

विपुलमतिका विषय उत्कृष्टक्षेत्रका कथन करते हुए जो मनुष्यलोक कहा है वह

मनुष्यक्षेत्रद समचतुरस्रघनप्रतरप्रमितं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयसर्व्वोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणमेंदु समुद्दिष्टं अनादिनिधनार्षदोळु पेळल्पट्टुदप्पुदे कारणमागि मानुषोत्तरपर्व्वताभ्यंतरविष्कंभं नाल्वत्तय्दुलक्षयोजनप्रमाणमदर समचतुरस्रक्षेत्रघनप्रतरप्रमाण कैकोळल्पडुवुदेकें दोडे आ मानुषोत्तरपर्व्वतदिंदं पोरगण नाल्कुं कोणंगळोळिर्द्द तिर्य्यंच्चरुममररुं चिंतिसिदुदं विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानमरिगुमप्पुदे कारणमागि ।



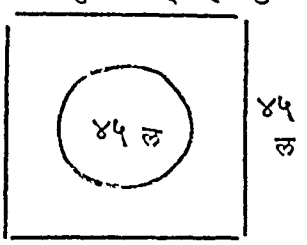
दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं ।
अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥४५७॥

द्वित्रिभवाः खलु जघन्यं सप्ताष्ट भवा भवंति उत्कृष्टं । अष्टनवभवाः खलु जघन्यमसंख्यातं विपुलोत्कृष्टं ॥

कालं प्रति ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यं द्वित्रिभवगळु खलु स्फुटमागि अप्पुवु उत्कृष्टदिंदं सप्तष्टभवंगळप्पुवु । विपुलमतिमनःपर्य्ययक्के जघन्यमष्टनवभवंगळुविषयमप्पुवु उत्कृष्टमसंख्यातसमयमप्पुदुमादोडं पल्यासंख्यातैकभागमात्रमक्कुं प

ə

भवति न तु वृत्तस्य । कुत ? यतस्तत्पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाण समचतुरस्रघनप्रतर मन पर्ययविपयोत्कृष्टक्षेत्र समुद्दिष्ट तत कारणात् तदपि कुत. ? मानुषोत्तराद्वहिश्चतु कोर्णस्थिततिर्यगमराणा परचिन्तिताना उत्कृष्टविपुलमते परिज्ञानात् ॥४५६॥



काल प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्य द्वित्रिभवा स्यु । उत्कृष्ट सप्ताष्टभवा स्यु । विपुलमतेर्विपयजघन्य अष्टनवभवा स्यु । उत्कृष्ट पल्यासख्यातैकभाग स्यात् प ॥४५७॥

ə

मनुष्यलोकके विष्कम्भका निश्चायक है गोलाईका नही । अर्थात् मनुष्यलोक तो गोलाकार है । वह नहीं लेना चाहिए । क्योंकि पैंतालीस लाख योजन प्रमाण समचतुरस्र घनप्रतर अर्थात् समान चौकोर घनप्रतर रूप मनःपर्ययका उत्कृष्ट विपयक्षेत्र कहा है । अर्थात् पैंतालीस लाख योजन लम्बा उतना ही चौड़ा लेना । क्योंकि मानुषोत्तर पर्वतके बाहर चारो कोनोंमें स्थित देवों और तिर्यंचोंके द्वारा चिन्तित अर्थको भी उत्कृष्ट विपुलमति जानता है ॥४५६॥

कालकी अपेक्षा ऋजुमतिका जघन्य विषय दो तीन भव होते है । और उत्कृष्ट सात-आठ भव होते हैं । विपुलमतिका जघन्य विषय आठ-नौ भव होते है और उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवाँ भाग है ॥४५७॥

आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं ।
तत्तो असंखगुणिदं असंखलोगं तु विउलमदी ॥४५८॥

आवल्यसंख्यभागो अवरश्च वरश्च वरोऽसंख्यगुणः ततोऽसंख्यगुणितः असंख्यलोकस्तु विपुलमतेः ॥

भावं प्रति वक्ति । ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यमावल्यसंख्यातैकभागमक्कुमुत्कृष्टमुमंते आवल्यसंख्यभागमक्कुमादोडे जघन्यम नोडलसंख्यातगुणमक्कुं । ततः आ ऋजुमतिमन.पर्य्ययज्ञानविषयोत्कृष्टभावप्रमाणमं नोडलु विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयजघन्यभावमसंख्यातगुणितमक्कुमा विपुलमतिमनःपर्य्ययज्ञानविषयोत्कृष्टभावं तु मत्ते असंख्यातलोकः असंख्यातलोकमात्रमक्कुं । ≡a ।

मज्झिमदव्वं खेत्तं कालं भावं च मज्झिमं णाणं ।
जाणदि इदि मणपज्जयणाणं कहिदं समासेण ॥४५९॥

मध्यमद्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च मध्यमज्ञानं जानाति । इतिमनःपर्य्ययज्ञानं कथितं समासेन ॥

ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानजघन्योत्कृष्टज्ञानंगळु विपुलमतिमनःपर्य्ययजघन्योत्कृष्टज्ञानंगळुं ई पेळल्पट्ट तंतम्मजघन्योत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावंगळनरिववुमा मध्यमज्ञानविकल्पंगळु तंतम्म मध्यमद्रव्यक्षेत्रकालं भावंगळनरिवंतु मनपर्य्ययज्ञानं संक्षेपदिंदं पेळल्पट्टुदु । तद्द्रव्यक्षेत्रकालभावंगळगे संदृष्टि :—

भावं प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्यं आवल्यसंख्यातैकभाग ८ । उत्कृष्टं तदालापमपि जघन्यादसख्यात-
a a a
गुण ८ a । तत. विपुलमतेर्विषयजघन्यमसख्यातगुणं ८ a a उत्कृष्टं तु पुन· असख्यातलोक. ।≡a॥४५८॥
a a a a a a
ऋजुविपुलमत्यो जघन्योत्कृष्टविकल्पौ उक्तस्वस्वजघन्योत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानीत· । मध्यमविकल्पास्तु स्वस्वमध्यमद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानन्ति इत्येव मन.पर्ययज्ञान सक्षेपेणोक्तम् ॥४५९॥

भावकी अपेक्षा ऋजुमतिका जघन्य विषय आवलीका असंख्यातवाँ भाग है । उत्कृष्ट भी उतना ही है किन्तु जघन्यसे असंख्यातगुणा है । उससे विपुलमतिका जघन्य विषय असंख्यातगुणा है और उत्कृष्ट असंख्यात लोक है ॥४५८॥

ऋजुमति और विपुलमतिके जघन्य और उत्कृष्ट भेद अपने-अपने जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावोंको जानते है । तथा मध्यमभेद अपने-अपने मध्यम क्षेत्र-काल-भावको जानते है । इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानका संक्षेपसे कथन किया ॥४५९॥

स अ ख ख ९ क अ ९। ९ ९ ० ० ० ० ० ० ० ० ० स अ ख ख स अ १६ ख ६ प अ ६। १। प ११। प ९ अ अ	४५००००० ० ० ० ० ० जोयण। ८। ९	प ० अ ० ० ० ० भव। ८। ९	भा≡ अ ० ० ० ८ अ अ अ अ अ	उत्कृष्ट विपुलमति जघन्य
स अ १६ ख ६ प अ ६। १। प। ११ प अ ० अ ० ० स अ १६ ख	जोयण। ७। ८ ० ० ० ० ० ० ० गाउय। २। ३	भव। ७। ८ ० ० ० ० ० ० ० भव २। ३	८ अ अ अ अ ० ० ० ० ८ अ अ अ	उत्कृष्ट ऋजुमति जघन्य ॥ ०
द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव	॥ ० ॥ ० ॥

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥४६०॥

संपूर्ण तु समग्रं केवलमसपत्नसर्व्वभावगत । लोकालोकवितिमिरं केवलज्ञानं मंतव्यं ॥

जीवद्रव्यद शक्तिगतज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळ्गेनितोळवनितुं व्यक्तिगे बंदु (धु) वप्पुदे कारणमागि संपूर्णमुं मोहनीयवीर्य्यांतरायनिरवशेषक्षयदिंदमप्रतिहतशक्तियुक्तत्वदिंदमुं निश्चलत्वदिंदमुं समग्रमुं इंद्रियसहायनिरपेक्षमप्पुदरिंदं केवलमुं । सपत्नंगळप्प घातिचतुष्टयप्रक्षयदिंदं क्रमकरणव्यवधानरहितमागि सकलपदार्थगतमप्पुदु कारणदिंदमसपत्नमुं लोकालोकंगळोळिवगततिमिरमुमितप्पुदु केवलज्ञानमे दु मतव्युं बगेयल्पडुवुदु ।

जीवद्रव्यस्य शक्तिगतसर्वज्ञानाविभागप्रतिच्छेदाना व्यक्तिगतत्वात्सपूर्णम् । मोहनीयवीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयादप्रतिहतशक्तियुक्तत्वात् निश्चलत्वाच्च समग्रम् । इन्द्रियसहायनिरपेक्षत्वात् केवलम् । घातिचतुष्टयप्रक्षयात् क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन सकलपदार्थगतत्वात् असपत्नम् । लोकालोकयोर्विगततिमिर तदिद केवलज्ञान

जीवद्रव्यके शक्तिरूप जो सब ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद है वे सब व्यक्त हो जानेसे केवलज्ञान सम्पूर्ण है । मोहनीय और वीर्यान्तरायका सम्पूर्ण क्षय होनेसे केवलज्ञानकी शक्ति बेरोक और निश्चल है इसलिए वह समग्र है । इन्द्रियोकी सहायता न लेनेसे केवल है । चार घातिया कर्मोंका अत्यन्त क्षय हो जानेसे तथा क्रम और इन्द्रियोंके व्यवधानसे रहित होनेके कारण समस्त पदार्थोंको जाननेसे असपत्न है । लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाला ऐसा यह केवलज्ञान जानना ॥४६०॥

अनंतरं ज्ञानमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं ।

चदुगदिमदिसुदबोहा पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा ।
संखेज्जा केवलिणो सिद्धादो होंति अदिरित्ता ॥४६१॥

चतुर्गतिमतिश्रुतबोधाः पल्यासंख्येयमात्राः खलु मनःपर्य्ययज्ञानिनः संख्येयाः केवलिनः सिद्धेभ्यो भवंत्यतिरिक्ताः ॥

चतुर्गतिय मतिज्ञानिगळुं श्रुतज्ञानिगळुं प्रत्येकं पल्यासंख्यातभागप्रमितरु स्फुटमागि । म । प । श्रु । प । मनःपर्य्ययज्ञानिगळु संख्यातप्रमितरेयप्पुवु । १ । केवलज्ञानिगळु सिद्धरं नोडे
ə
जिनर संख्येयिंदं साधिकरप्परु १ ।
३

ओहिरहिदा तिरिक्खा मदिणाणिअसंखभागगा मणुवा ।
संखेज्जा हु तदूणा मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधिरहितास्तिर्य्यंचो मतिज्ञान्यसंख्यभागप्रमिता मानवाः । संख्येयाः खलु तदूना मतिज्ञानिनो अवधिज्ञानिनः परिमाणं ॥

अवधिज्ञानरहिततिर्य्यंचरु मतिज्ञानिगळ संख्येयं नोडलसंख्यातभागप्रमितरप्परु प १ अवधि-
ə ə
रहितमनुष्यरु संख्यातप्रमितरप्परु- । १ । मी येरडु राशिगळिदं प १ हीनमप्प मतिज्ञानिगळ
ə १
ə

संख्ये अवधिज्ञानिगळ परिमाणमक्कु प ə
ə ə

मन्तव्यम् ॥४६०॥ अथ ज्ञानमार्गणाया जीवसंख्यामाह—

चतुर्गतेर्मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च प्रत्येक पल्यासंख्यातैकभागमात्रा. स्यु. स्फुटं म प श्रु प । मन पर्यय-
१ ə ə
ज्ञानिनः सख्याताः १ । केवलज्ञानिन' जिनसख्यया समधिकसिद्धराशि ३ ॥४६१॥

अवधिज्ञानरहिततिर्यञ्च मतिज्ञानिसख्याया असख्येयभाग प १ । अवधिरहितमनुष्याः सख्याताः १
ə ə

एतद्राशिद्वयोना मतिज्ञानसंख्यैव चतुर्गत्यवधिज्ञानपरिमाणं भवति प ə–१ ॥४६२॥
ə ə

अब ज्ञानमार्गणामें जीवोंकी संख्या कहते हैं—

चारों गतियोंमें मतिज्ञानी पल्यके असंख्यातवें भाग हैं और श्रुतज्ञानी भी पल्यके असंख्यातवें भाग हैं । मनःपर्ययज्ञानी संख्यात हैं । और केवलज्ञानी सिद्धराशिमें तेरहवे और चौदहवे गुणस्थानके जिनोंकी संख्या मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने हैं ॥४६१॥

अवधिज्ञानसे रहित तिर्यंच मतिज्ञानियोंकी संख्यासे असंख्यातवें भाग हैं । अवधिज्ञानसे रहित मनुष्य संख्यात हैं । मतिज्ञानियोंकी संख्यामें ये दोनों राशि घटा देनेपर चारों गतिके अवधिज्ञानियोंका प्रमाण होता है ॥४६२॥

पल्लासंखघणंगुलहदसेढितिरिक्खगदिविभंगजुहा ।
णरसहिदा किंचूणा चदुगदीवेभंगपरिमाणं ॥४६३॥

पल्यासंख्यातघनागुलहतश्रेणितिर्य्यग्गति विभंगयुताः । नरसहिताः किंचिदूना चतुर्गतिविभंगज्ञानिपरिमाणं ॥

पल्यासंख्यातघनागुलगुणित १ जगच्छ्रेणिमात्रं तिर्य्यंचविभंगज्ञानिगळप्परु –६ प नर- सहिता ई तिर्य्यंचविभंगज्ञानिगळोळु मनुष्यविभंगज्ञानिगळु संख्यातप्रमितरप्प १ रवर्गळं संख्येयं साधिकं साडि – १ प दी राशियमं सम्यग्दृष्टिगळिदं किंचिदूनघनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितसामान्यनारकर संख्येयमं ।–२–। सम्यग्दृष्टिगळिदं किंचिदून ज्योतिष्कर संख्येयं नोडि साधिकयुप्प देवगतिजर संख्येयमनितुं नाल्कुं गतिगळ विभंगज्ञानिगळ संख्येयं कूडिदोडे चतुर्गतिसमस्तविभंगज्ञानिगळ संख्येयक्कुं = १

४ । ६५–१

सण्णाणरासिपचयपरिहीणो सव्वजीवरासी हु ।
मदिसुद अण्णाणीणं पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४॥

सद्ज्ञानराशिपंचकपरिहीनः सर्व्वजीवराशिः खलु । मतिश्रुताज्ञानिना प्रत्येकं भवति परिमाणं ॥

पल्यासंख्यातघनाङ्गुलहतजगच्छ्रेणिमात्रतिर्यञ्च –६ प संख्यातमनुष्या १ सम्यग्दृष्ट्यूनघनाङ्गुलद्वितीय-

मूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रनारका.—२—सम्यग्दृष्ट्यूनज्योतिष्कसंख्यासाधिकदेवा १—मिलित्वा चतु- = १— ४ । ६५ = १

र्गतिविभङ्गज्ञानिसंख्या भवति १— = १— ॥४६३॥ ४ । ६५ = १

पल्यके असंख्यातवे भागसे गुणित घनागुलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो उतने तिर्यंच, संख्यात मनुष्य तथा घनांगुलके द्वितीय मूलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो उतने नारकियोंके प्रमाणमे-से सम्यग्दृष्टी नारकियोंका प्रमाण घटानेसे जो शेष रहे उतने नारकी तथा ज्योतिषी देवोंके परिमाणमे भवनवासी, व्यन्तर और वैमानिक देवोका प्रमाण मिलानेपर जो सामान्यदेव राशिका प्रमाण होता है उसमें सम्यक्दृष्टि देवोंका परिमाण घटानेपर जो शेष रहे उतने देव । इन सब तिर्यंच, मनुष्य, नारकी और देवोंके प्रमाणको जोड़नेपर चारो गतिके विभंगज्ञानियोंकी संख्या होती है ॥४६३॥

---

१. व °न साधिकज्यातिष्कसंख्यदेवा. ।

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानिगळ संख्येगळनप्पु राशिगळं कूडिदोडे केवलज्ञानिगळ संख्येय मेले साधिकमक्कु $\frac{1}{3}$ मी राशियं सर्व्वजीवराशियोळु १६ कलेयुत्तिरलुळिद शेषं १३– प्रत्येकं मत्यज्ञानिगळ संख्येयुं श्रुताऽज्ञानिगळ संख्येयुमक्कु १३।१३ । मितु पेळल्पट्ट संख्येगळ संदृष्टि चतुर्ग्गतियक्कु । मतिज्ञानिगळु १३–। चतुर्ग्गतियक्कु श्रुतज्ञानिगळु १३–। चतुर्गतिय विभंगज्ञानिगळु $=\overset{\text{III}}{१}$ ४।६५ = १ चतुर्ग्गतियमतिज्ञानिगळु प चतुर्ग्गतिय श्रुतज्ञानिगळु प चतुर्ग्गतिय अवधिज्ञानिगळु ५
अ अ
प $\overset{\text{०}}{\text{अ}}$ मनुष्यगतियमनःपर्य्ययज्ञानिगळु १ केवलज्ञानिगळु सिद्धरुं जिनरुं १ तिर्य्यग्गतिय विभंग-
३
ज्ञानिगळु ६ प मनुष्यगतिय विभंगज्ञानिगळु १ नारकविभंगज्ञानिगळु—२—। देवविभंगज्ञानि-
अ
गळु $=\overset{\text{I}}{१}$ संदृष्टिः—
४।६५=१

कुमति	कुश्रुत	विभंग	मति	श्रुत	अवधि	मनः	केवल	तिरि=विभंग ॥
१३–	१३–	$=\overset{\text{III}}{१}$ ४।६५=१	प अ	प अ	प अ	१	१ ३	– ६ प अ

मनु=विभंग	नारक=विभंग	देव=विभंग
१	—२—	$=\overset{\text{I}}{१}$ ४।६५=१

१०

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्र-वर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति जीव-तत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु द्वादशज्ञानमार्ग्गणामहाधिकारं समाप्तमाय्तु ॥

मत्यादिसम्यग्ज्ञानराशिपञ्चकेन साधिकेवलिराशिमात्रेण $\frac{1}{3}$ सर्वजीवराशि १६ हीनस्तदा १३–प्रत्येकं मतिश्रुताज्ञानिपरिमाण स्यात् ॥४६४॥ १५

मति आदि पाँच सम्यग्ज्ञानियोंकी संख्या केवलज्ञानियोंके संख्यासे कुछ अधिक है। इसको सर्वजीवराशिमें-से घटानेपर मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवका परिमाण होता है ॥४६४॥

गंभीररचनेगळ परिरंभणेयं विडिसि निरिसिदुदनेबुद प्रा-। रंभिसि गोम्मटवृत्ति सुधांभो-
ळियिनोडिगे मोहवज्राचलमं ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्ररचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु ज्ञानमार्गणाप्ररूपणानाम द्वादशोऽधिकार ॥१२॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से ज्ञानमार्गणा प्ररूपणा नामक बारहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

संयममार्गणा ॥१३॥

ज्ञानमार्गणा स्वरूपमं पेळ्दनंतरं संयममार्गणास्वरूपमं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपं—

वदसमिदिकसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारण-पालणणिग्गहचागजओ संजमो भणियो ॥४६५॥

व्रतसमितिकषायाणां दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानां । धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ॥

व्रतसमितिकषायदंडेंद्रियंगळेंबी अय्दु यथासंख्यमागि धारणपालननिग्रहत्यागजयं संयममेंबुदु परमागमदोळ्पेळ्ल्पट्टुदु । व्रतधारणं समितिपालनं कषायनिग्रहं दंडत्यागमिंद्रियजयमेंबी पंचप्रकारमनुळ्ळुदु संयममेंबुदर्थं । सम् सम्यग्यमनं संयमः एंदिंती निरुक्तिगनुरूपलक्षणं संयमक्के पेळल्पट्टुदेंबुदु तात्पर्य्यं ।

बादरसंजलणुदए सुहुमुदए समखए य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥४६६॥

बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मोदये उपशमे क्षये च मोहस्य । संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्न्निर्दिष्टः ॥

बादरसंज्वलनोदयदोळं सूक्ष्मलोभोदयदोळं मोहनीयकर्म्मोपशमदोळं क्षयदोळं नियमदिंदं संयमभावमक्कुमेंदु अर्हदादिगळिंदं पेळल्पट्टुदु ।

विश्व विमलयन्स्वीयैर्गुणैर्विश्वातिशायिभि. ।
विमलस्तीर्थकर्ता यो वन्दे तं तत्पदाप्तये ॥१३॥

अथ ज्ञानमार्गणा प्ररूप्येदानी सयममार्गणामाह—

व्रतसमितिकषायदण्डेन्द्रियाणा पञ्चाना यथासख्य धारणपालननिग्रहत्यागजया. संयमो भणितः । व्रतधारण समितिपालन कषायनिग्रह' दण्डत्याग इन्द्रियजय इति पञ्च धा संयम इत्यर्थः । स—सम्यक्, यमनं सयम ॥४६५॥

बादरसज्वलनोदये सूक्ष्मलोभोदये मोहनीयोपशमे क्षये च नियमेन सयमभाव. स्यात् । तथा हि—प्रमत्ता-

---

ज्ञानमार्गणाकी प्ररूपणा करके अब संयममार्गणाकी प्ररूपणा करते हैं—व्रत, समिति, कषाय, मन-वचन कायरूप दण्ड और इन्द्रियोंका यथाक्रम धारण, पालन, निग्रह, त्याग और जयको संयम कहा है । अर्थात् व्रतोंका धारण, समितियोंका पालन, कषायोंका निग्रह, दण्डोंका त्याग और इन्द्रियोंका जय इस प्रकार पाँच प्रकारका संयम है । 'सं' अर्थात् सम्यक्रूपसे यमको संयम कहते हैं ॥४६५॥

बादर संज्वलन कषायका उदय होते, सूक्ष्म लोभकषायका उदय रहते तथा मोहनीयका उपशम और क्षय होनेपर नियमसे संयमभाव होता है ऐसा जिनदेवने कहा है। इसका

प्रमत्ताप्रमत्तरोळु संज्वलनकषायंगळ्गे सर्वघातिस्पर्द्धकंगळुदयाभावलक्षणक्षयमुं उदयनिषेकद उपरितननिषेकंगळुदयाभावलक्षणमुपशममुमितु चारित्रमोहनीयक्षयोपशममुं बादरसंज्वलनदेशघातिस्पर्द्धकद्दके संयमाविरोधिंदमुदयदोळं सामायिकछेदोपस्थापनसंयमंगळप्पुवुमा गुणस्थानद्वयदोळे परिहारशुद्धिसंयममुमक्कुं। सूक्ष्मकृष्टिकरणानिवृत्तिपर्य्यंतं बादरसंज्वलनोदयदिंदमपूर्व्वानिवृत्तिकरणदोळं सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमंगळप्पुवु । सूक्ष्मकृष्टिरूपदिनिर्द्दं संज्वलनलोभोदयदिंद सूक्ष्मसांपरायसंयममक्कुं । चारित्रमोहनीयसर्व्वोपशमदिंदमुं यथाख्यातसंयममक्कुं । चारित्रमोहनीयनिरवशेषक्षयदिंदं यथाख्यातसंयमं क्षीणकषायादिगुणस्थानत्रयदोळं नियमदिंदमक्कुमेंदितु अर्हदादिगळिंद निरूपिसल्पट्टुदें बुदर्त्थमीयर्त्थमने मुंदणगाथासूत्रद्वयदिंदं विशदं माडिदपरु।

बादरसंजलणुदए बादरसंजमतियं खु परिहारो ।
पमदिदरे सुहुमुदए सुहुमो संजमगुणो होदि ॥४६७॥

बादरसंज्वलनोदये बादरसयमत्रयं खलु परिहारः। प्रमत्तेतरयोः सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः सयमगुणो भवति ॥

बादरसंज्वलनसंयमाविरोधिदेशघातिस्पर्द्धकोदयदोळु बादरंगळप्प सामायिकच्छेदोपस्थाप्नपरिहारविशुद्धिसंयमंगळे संयमत्रयमक्कुमल्लि परिहारविशुद्धिसयमं प्रमत्ताप्रमत्तरोळेयक्कुं उळिदेरडुमनिवृत्तिपर्य्यंतमप्पुवु । सूक्ष्मकृष्टिरूपसंज्वलनलोभोदयमागुत्तिरलु सूक्ष्मसांपरायसंयम-

---

प्रमत्तयो सज्वलनकषायाणा सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये उदयनिषेकादुपरितननिषेकाणा उदयाभावलक्षणे उपशमे बादरसज्वलनदेशघातिस्पर्धकस्य सयमाविरोधेनोदये सति सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसयमा भवन्ति, सूक्ष्मकृष्टिकरणानिवृत्तिपर्यन्त बादरसज्वलनोदयेनापूर्वानिवृत्तिकरणेऽपि सामायिकछेदोपस्थापनसयमौ भवत । सूक्ष्मकृष्टिगतसज्वलनलोभोदयेन सूक्ष्मसापरायसयम चारित्रमोहनीयसर्वोपशमेन उपशान्तकपाये निरवशेषक्षयेण क्षीणकषायादित्रये च यथाख्यातसंयमो भवतीत्यर्थ , इत्येतज्जिनैरेवोद्दिष्टम् ॥४६६॥ अमुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

बादरसज्वलनसयमाविरोधिदेशघातिस्पर्धकोदये बादर सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसयमत्रय भवति । तत्र परिहारविशुद्धि प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव, शेषद्वय अनिवृत्तिपर्यन्त भवति । सूक्ष्मकृष्टिगतसज्वलनलोभोदये

स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें संज्वलन कषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयका अभावरूप क्षय, तथा उदयरूप निषेकोंसे ऊपरके निषेकोंका उदयका अभावरूप उपशम तथा बादर संज्वलनके देशघाती स्पर्द्धकोंका संयमका विरोध न करते हुए उदय होनेपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि संयम होते हैं। किन्तु सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप अनिवृत्तिकरण गुणस्थान पर्यन्त बादर संज्वलन कषायका उदय होनेसे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें भी सामायिक और छेदोपस्थापना संयम होते है। सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त संज्वलन लोभका उदय होनेसे सूक्ष्म सम्पराय संयम होता है। सम्पूर्ण चारित्रमोहका उपशम होनेपर उपशान्तकषायमे और क्षय होनेपर क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थानोंमें यथाख्यातसंयम होता है ॥४६६॥

इसी अर्थको दो गाथाओंसे कहते हैं—

बादर संज्वलन कषायके देशघाती स्पर्धकोंका, जो सयमके विरोधी नहीं है, उदय होते हुए सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धि ये तीन संयम होते हैं। इनमें-से परिहारविशुद्धि तो प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमे ही होता है। शेष दोनों अनिवृत्तिकरण

गुणमक्कुं ।

जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदो वि य सो णियमा होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥४६८॥

यथाख्यातसंयमः पुनरुपशमाद्भवति मोहनीयस्य । क्षयतोपि च स नियमाद् भवति इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

यथाख्यातसंयमं मत्ते मोहनीयदुपशमदिंदमक्कुं । मोहनीयनिरवशेषक्षयदिंदमुं आ यथाख्यातसंयमं नियमदिंदमक्कुमेंदितु जिनरुगळिदं पेळल्पट्टुदु ।

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकसायुदयेण य असंजमो होदि णियमेण ॥४६९॥

तृतीयकषायोदयेन च विरताविरतगुणो भवेद्युगपत् । द्वितीयकषायोदयेन च असंयमो भवति नियमेन ॥

प्रत्याख्यानावरणतृतीयकषायोदयदिंदं विरताविरतगुणमोम्मो दलोळेयक्कुं । संयमुमसंयमुमोम्मो दलोळेयक्कुमदुकारणमागि सम्यग्मिथ्यादृष्टियंतंते देशसंयतनुंमिश्रसंयमियक्कुमेंबुदत्थं । द्वितीयकषायोदयदोळप्रत्याख्यानकषायोदयदोळसंयमं नियमदिंदं मक्कुं ।

संगहिय सयलसंजमएयजमणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजदो होदि ॥४७०॥

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यं । जीवःसमुद्वहन् सामायिकसंयमो भवति ॥

संगृह्य सकलसंयमं व्रतधारणादिपंचविधमप्पसंयममं युगपत्सर्वसावद्याद्विरतोस्मि यें दितु संग्रहिसि संक्षेपिसि एकयमं भेदरहितसकलसावद्यनिवृतिस्वरूपमप्प एकयमुमं अनुत्तरं असदृशं

सूक्ष्मसापरायसंयमगुणो भवति ॥४६७॥

स यथाख्यातसयम पुन. मोहनीयस्योपशमत. निरवशेषक्षयतश्च नियमेन भवतीति जिनैरुक्तम् ॥४६८॥

प्रत्याख्यानकषायोदयेन विरताविरतगुणो युगपद् भवति, संयमासंयमयोर्युगपत्सभवात् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिवद्देशसयतोऽपि मिश्रसंयमीत्यर्थ । अप्रत्याख्यानकषायोदये असयमो नियमेन भवति ॥४६९॥

सकलसयम—व्रतधारणादिपञ्चविध युगपत्सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति संगृह्य—सक्षिप्य, एकयम—भेदरहित-

---

पर्यन्त होते है । सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त संज्वलन लोभका उदय होते हुए सूक्ष्म साम्पराय नामक संयमगुण होता है ॥४६७॥

यथाख्यात संयम नियमसे मोहनीयके उपशमसे अथवा सम्पूर्ण क्षयसे होता है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥४६८॥

तीसरी प्रत्याख्यान कषायके उदयसे एक साथ विरतअविरतरूप गुण होता है क्योंकि संयम और असंयम एक साथ होते हैं । अर्थात् जैसे तीसरे गुणस्थानमें सम्यक्त्व और मिथ्यात्व मिले-जुले होते हैं वैसे ही देशसंयत नामक पंचम गुणस्थानमें संयम और असंयम मिला हुआ होता है । दूसरी अप्रत्याख्यान कषायके उदयमें नियमसे असंयम होता है ॥४६९॥

व्रतधारण आदि रूप पाँच प्रकारके सकल संयमको एक साथ 'मै समस्त सावद्यसे विरत हूँ' इस प्रकार संगृहीत करके एक यम रूपसे धारण करना सामायिक संयम है ।

मिगिलिनिल्लदुदं दुगम्य दुःखेन महता कष्टेन गम्यं प्राप्यं एवंविधमप्प सामायिकमं समुद्वहन् जीवः कैकोडु नडसुवंतप्पासन्नभव्यजीवं सामायिकसंयमी भवति। सामायिकः संयमोऽस्यास्मिन्वा सामायिकसंयमः सामायिकसंयममनुळ्ळ सामायिकसंयमनेंबनक्कुं।

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं।
पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ॥४७१॥

छित्वा च पर्य्यायं पुराणं यः स्थापयति आत्मानं। पञ्चयमे धर्म्मे स च्छेदोपस्थापको जीवः॥

छित्वा पुराणं पर्य्यायं सामायिकसंयतनागिद्दुं बळिक्कि सावद्यव्यापारंगळगे संदिर्द्धतप्पजीवं प्राक्तनसावद्यव्यापारपर्य्यायमं प्रायश्चित्तंगळिदं छित्वा च्छेदिसि यः आवनोव्वं आत्मानं तन्न पंचयमे धर्म्मे व्रतधारणादिपञ्चप्रकारसंयमरूपधर्म्मदोळु स्थापयति नेलेगोलिसुगुं सः जीवः आ जीवं च्छेदोपस्थापकः च्छेदोपस्थापनासयतनक्कुं। च्छेदेनोपस्थापन च्छेदोपस्थापन। प्रायश्चित्ताचरणेनोपस्थापनं च्छेदोपस्थापनं यस्य स च्छेदोपस्थापकः एंदितु निरुक्तिलक्षणसिद्धमक्कुं। अथवा प्रायश्चित्तंगळिदं ता माडिद दोषं पोगदोडे मुन्न ता माडिद तपमनादोषक्केतक्कुदं च्छेदिसि किरियनागि तन्नं मत्ता निरवद्यसंयमदोळु स्थापिसुवातनुं च्छेदोपस्थापनसंयतनक्कुं। स्वतपसि च्छेदे सति उपस्थापनं यस्यासौ च्छेदोपस्थापकः एंदितिल्लि अधिकरणव्युत्पत्तियक्कुं।

पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं।
पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ॥४७२॥

पञ्चसमितस्त्रिगुप्तः परिहरति सदापि यः खलु सावद्यं। पंचैकयमः पुरुषः परिहारसंयतः स खलु॥

सकलसावद्यनिवृत्तिरूप, अनुत्तर–असदृश, संपूर्ण, दुरवगम्य–दुःखेन प्राप्य तत्सामायिक समुद्वहन् जीव सामायिकसयम –सामायिकसयमसयुक्तो भवति ॥४७०॥

सामायिकसयतो भूत्वा प्रच्युत्य सावद्यव्यापारप्रतिपन्नो यो जीव पुराण–प्राक्तन सावद्यव्यापारपर्याय प्रायश्चित्तैश्छित्वा आत्मान व्रतधारणादिपञ्चप्रकारसयमरूपधर्मे स्थापयति स छेदोपस्थापनसयत स्यात्। छेदेन प्रायश्चित्ताचरणेन उपस्थापन यस्य स छेदोपस्थापन इति निरुक्ते। अथवा प्रायश्चित्तेन स्वकृतदोषपरिहाराय पूर्वकृततपस्तद्दोषानुसारेण छित्वा आत्मान तन्निरवद्यसयमे स्थापयति स छेदोपस्थापकसयत, स्वतपसि छेदे सति उपस्थापन यस्य स छेदोपस्थापन इत्यधिकरणव्युत्पत्ते ॥४७१॥

अर्थात् सामायिक संयम भेदरहित सकल पापोंसे निवृत्तिरूप है। यह अनुत्तर है अर्थात् इसके समान अन्य नहीं है, सम्पूर्ण है और दुरवगम्य है अर्थात् बड़े कष्टसे यह प्राप्त होता है। उस सामायिकको धारण करनेवाला जीव सामायिक संयमी होता है ॥४७०॥

सामायिक संयमको धारण करनेके पश्चात् उससे च्युत होकर सावद्य क्रियामें लगा जो जीव इस पुराने सावद्यव्यापाररूप पर्यायका प्रायश्चित्तके द्वारा छेदन करके अपनेको व्रतधारण आदि पाँच प्रकारके संयमरूप धर्ममें स्थापन करता है वह छेदोपस्थापना संयमवाला होता है। छेद अर्थात् प्रायश्चित्त करनेके द्वारा जिसका उपस्थापन होता है वह छेदोपस्थापन है ऐसी निरुक्ति है। अथवा प्रायश्चित्तके द्वारा अपने किये हुए दोषोंको दूर करनेके लिए पूर्वकृत तपको उसके दोषोंके अनुसार छेदन करके जो आत्माको निर्दोष संयममें स्थापित करता है वह छेदोपस्थापक संयमी है। अपने तपका छेद होनेपर जिसका उपस्थापन होता है वह छेदोपस्थापन है। इस प्रकार अधिकरणपरक व्युत्पत्ति है ॥४७१॥

पंचसमितयोऽस्यसंतीति पंचसमितः। पंचसमितियुक्तनुं तिस्रो गुप्तयोऽस्मिन्निति त्रिगुप्तः त्रिगुप्तिगळोळ्कूडिदनु सदापि सर्व्वदापि एल्ला कालमुं सावद्यं प्राणिवधमं परिहरति परिहरिसुगुं। यः आवनोव्वं पंचैकयमः पंचैकयमनुळ्ळ पुरुषः पुरुषनु सः आतं परिहारकसंयतः खलु परिहार-विशुद्धिसंयतनक्कुं स्फुटमागि।

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले। ५
पच्चक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥४७३॥

त्रिंशद्वर्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्त्थंकरमूले। प्रत्याख्यानं पठितः संध्योनद्विगव्यूति-विहारः॥

जन्मदोळु त्रिंशद्वर्षमनुळ्ळं सर्व्वदा सुखियप्पं बदु दीक्षेगोंडु वर्षपृथक्त्वं बरं तीर्त्थंकर श्रीपादमूलदोळु प्रत्याख्यानमेंबो भत्तनय पूर्व्वमं पठियिसिदातं परिहारविसुद्धिसंयममं कैकोंडु १० संध्यात्रयन्यूनसर्व्वकालदोळरडु क्रोशप्रमाणविहारमनुळ्ळं रात्रियोळ्विहाररहितनुं प्रावृट्काल-नियममिल्लदनुं परिहारविशुद्धिसंयमनक्कुं। परिहरणं परिहारः प्राणिवधान्निवृत्तिस्तेन परि-हारेण विशिष्टा शुद्धिर्य्यस्मिन् स परिहारविशुद्धिस्संयमो यस्य स परिहारविशुद्धिसंयमः एंदितु परिहारविशुद्धिसंयमंगे जघन्यकालमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमेकेंदोडे परिहारविशुद्धिसंयममं पोद्दि जघन्य-कालपर्य्यंतमिर्द्धन्यगुणस्थानमं पोद्दिदंगे तदंतर्म्मुहूर्त्तकालसंभवमक्कुमप्पुदरिंदं। उत्कृष्टदिंदमष्ट- १५ त्रिंशद्वर्षन्यूनपूर्व्वकोटिवर्षमक्कुमेकेंदोडे पुट्टिददिनं मोदल्गोंडु मूवत्तु वर्षबरं सर्व्वदा सुखियागि कालमं कळेदु संयममं पोद्दि मेले वर्षपृथक्त्वं बरं तीर्त्थंकरश्रीपादमूलदोळु प्रत्याख्यानामधेय-

---

पञ्चसमितिसमेत त्रिगुप्तियुतः सदापि प्राणिवध परिहरति, यः पञ्चाना सामायिकादीना मध्ये परिहार-विशुद्धिनामैकसंयमः पुरुषः सः परिहारविशुद्धिसयत. स्फुट भवति ॥४७२॥

जन्मनि त्रिंशद्वार्षिक. सर्वदा सुखी सन्नागत्य दीक्षा गृहीत्वा वर्षपृथक्त्वपर्यन्तं तीर्थंकरश्रीपादमूले २० प्रत्याख्यान नवमपूर्वं पठित. स परिहारविशुद्धिसयम स्वीकृत्य संध्यात्रयोनसर्वकाले द्विक्रोशप्रमाणविहारी रात्रौ विहाररहित. प्रावृट्कालनियमरहित' परिहारविशुद्धिसयतो भवति। परिहरण परिहार', प्राणिवधान्निवृत्तिः, तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिन् स परिहारविशुद्धि , स सयमो यस्य स परिहारविशुद्धिसयमः, तस्य जघन्यकालोन्त-र्मुहूर्त., जघन्येन तावत्कालमेव तत्र स्थित्वा गुणस्थानान्तरश्रयणात्। उत्कृष्ट. अष्टत्रिंशद्वर्षोनपूर्वकोटिः, उत्पत्ति-

---

जो पाँच समिति और तीन गुप्तियोंसे युक्त होकर सदा ही प्राणिवधसे दूर रहता है २५ वह सामायिक आदि पाँच संयमोंमें-से परिहारविशुद्धि नामक एक संयमको धारण करनेसे परिहारविशुद्धि संयमी होता है ॥४७२॥

जन्म से तीस वर्ष तक सर्वदा सुखपूर्वक रहते हुए उसे त्याग दीक्षा ग्रहण करके वर्षपृथक्त्वपर्यन्त तीर्थंकरके पादमूलमें जिसने प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्वको पढा है वह परिहारविशुद्धि संयमको स्वीकार करके सदा काल तीनों सन्ध्याओंको छोड़कर दो कोस ३० प्रमाण विहार करता है, रात्रिमें विहार नही करता, वर्षाकालमें उसके विहार न करनेका नियम नही रहता, वह परिहारविशुद्धि संयमी होता है। परिहरण अर्थात् प्राणिहिंसासे निवृत्तिको परिहार कहते है। उनसे विशिष्ट शुद्धि जिसमें है वह परिहारविशुद्धि है। वह संयम जिसके होता है वह परिहारविशुद्धि संयमी है। उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि कमसे कम इतने काल पर्यन्त ही उस संयममें रहकर अन्य गुणस्थानोंमें चला जाता ३५ है। उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम एक पूर्व कोटि है क्योंकि उत्पत्ति दिनसे लेकर तीस वर्ष

मनोंभत्तनेय पूर्व्वमं पठियिसि मत्ते परिहारविशुद्धिसंयममं पोद्दिदंगे तदुत्कृष्टकालं संभविसुगुमप्पुदरिंद। 'परिहारर्द्धिसमेतः षड्जीवनिकायसंकुले विहरन्। पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन'।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहुमसंपराओ जहखाएणूणवो किंचि ॥४७४॥

अणुलोभ वेदयमानो जीवः उपशमको वा क्षपको वा। स सूक्ष्मसांपरायो यथाख्यातेनोनः किंचित्॥

सूक्ष्मलोभकृष्टिगतानुभागमनावनोर्व्वननु भविसुत्तं जीवनु उपशमकनागलि मेणु क्षपकनागलि मेणु सः आ जीवं सूक्ष्मसांपरायनें बनक्कु। सूक्ष्मः सांपरायः कषायो यस्य स सूक्ष्मसांपरायः एंदी यन्वर्त्थनामविशिष्टमहामुनि यथाख्यातसंयमिगलोडने किंचिदूननक्कुं।

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि।
छदुमट्ठो व जिणो वा जहखादो संजदो सो दु ॥४७५॥

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्म्मणि मोहनीये छद्मस्थो वा जिनो वा यथाख्यातसंयतः स तु॥

अशुभमप्प मोहनीयकर्म्ममुपशातमागुत्तिरलु मेणु क्षीणमागुत्त विरलावनोव्वं छद्मस्थं उपशातकषायनागलि मेणु क्षीणकषायछद्मस्थनागलि मेणु जिनो वा सयोगकेवलियुमयोगकेवलियुं मेणागलि सः आ जीव तु मत्ते यथाख्यातसंयतनें बनक्कुं। मोहस्य निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्चा-

---

दिवसादारभ्य त्रिंशद्वर्षाणि सर्वदा सुखेन नीत्वा सयम प्राप्य वर्षपृथक्त्व तीर्थकरपादमूले प्रत्याख्यान पठितस्य तदङ्गीकरणात्॥

उक्त च—

परिहारर्धिसमेत षड्जीवनिकायसकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्र न लिप्यते पापनिवहेन ॥४७३॥

सूक्ष्मलोभकृष्टिगतानुभागमनुभवन् य उपशमक क्षपको वा स जीव सूक्ष्मसापराय स्यात्। सूक्ष्मसापराय कषायो यस्येत्यन्वर्थनामा महामुनि यथाख्यातसयमिभ्य. किंचिन्न्यूनो भवति ॥४७४॥

अशुभमोहनीयकर्मणि उपशान्ते क्षीणे वा य उपशान्तक्षीणकषायछद्मस्थ सयोगायोगजिनो वा, स, तु—पुन, यथाख्यातसयतो भवति। मोहस्य निरवशेषस्य उपशमात् क्षयाद्वा आत्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षण

सदा सुखसे वितांकर संयम धारण करके वर्षपृथक्त्व तक तीर्थंकरके पादमूलमे प्रत्याख्यान पढनेके पश्चात् परिहारविशुद्धि संयम स्वीकार करना होता है। कहा है—'परिहारविशुद्धि ऋद्धिसे संयुक्त जीव छह कायके जीवोसे भरे स्थानमें विहार करते हुए भी पाप समूहसे वैसे ही लिप्त नहीं होता जैसे कमलका पत्ता पानीमे रहते हुए भी पानीसे लिप्त नहीं होता' ॥४७३॥

सूक्ष्म कृष्टिको प्राप्त लोभ कषायके अनुभागको अनुभव करनेवाला उपशमक या क्षपक जीव सूक्ष्म साम्पराय होता है। सूक्ष्म साम्पराय अर्थात् कषाय जिसकी है वह सार्थक नामवाला महामुनि यथाख्यात संयमियोसे किंचित् ही हीन होता है ॥४७४॥

अशुभ मोहनीय कर्मके उपशान्त या क्षय हो जानेपर उपशान्त कषाय और क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ अथवा सयोगी और अयोगी जिन यथाख्यात संयमी होते है।

---

१. क °गलिंद किं°।

त्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं यथाख्यातं चारित्रमित्याख्यायते ।

पंचतिहिचउविहेहि य अणुगुणसिक्खावएहि संजुत्ता ।
उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ॥४७६॥

पंचत्रिचतुर्व्विधैश्च अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः । उच्यंते देशविरतः सम्यग्दृष्टयो झटित-कर्म्माणः ॥

पंचविधाणुव्रतंगळिंदं त्रिविधगुणव्रतंगळिंदं चतुर्व्विधशिक्षाव्रतंगळिंदं संयुक्तरप्प सम्यग्दृष्टि-गळु कर्म्मनिर्ज्जरेयोळ्कूडिदवर्गळु देशविरतरेंदु परमागमदोळ्पेळल्पट्टरु ।

दंसणवदसामायियपोसहसचित्तराइभत्ते य ।
बम्हारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥४७७॥

दर्शनिकव्रतिकसामायिकप्रोषधोपवाससचित्तविरत-रात्रिभक्तविरतब्रह्मचार्य्यारंभविरतपरि-ग्रहविरतानुमतिविरतोद्दिष्टविरताः देशविरता एते ॥

इल्लि नामैकदेशो नाम्नि वर्त्तते एंबी न्यायदिंदं छाये माडल्पट्टुदु । आ देशविरतभेदंगळप्पुवदंतेंदोडे दर्शनिकनुं व्रतिकनुं सामायिकनुं प्रोषधोपवासनुं सचित्तविरतनुं रात्रिभक्तविर-तनुं ब्रह्मचारियुं आरंभविरतनुं परिग्रहविरतनुमनुमतिविरतनुमुद्दिष्टविरतनुमेंदितिल्लि दर्शनिकनेबं ।

"पंचुंबरसहियाइं सत्तइ वसणाइ जो विवज्जेइ ।
सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावयो भणियो ॥" [वसु. श्रा ५७]

यथाख्यातचारित्रमित्याख्यायते ॥४७५॥

पञ्चत्रिचतुरणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्तसम्यग्दृष्टयः कर्मनिर्जरावन्तः ते देशविरताः इति परमागमे उच्यन्ते ॥४७६॥

अत्र नामैकदेशो नाम्नि वर्तते इति नियमाद् गाथार्थो व्याख्यायते । दर्शनिको, व्रतिकः, सामायिकः, प्रोषधोपवासः, सचित्तविरतः, रात्रिभक्तविरतः, ब्रह्मचारी, आरम्भविरतः, परिग्रहविरतः, अनुमतिविरतः, उद्दिष्टविरतश्चेत्येकादशैते विरतभेदाः । तत्र—"पञ्चुंबरसहियाइं सत्तइ वसणाणि जो विवज्जेई । सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ ।" (वसु श्रा ५७) इत्यादिलक्षणानि ग्रन्थान्तरेऽवगन्तव्यानि ॥४७७॥

समस्त मोहनीय कर्मके उपशम अथवा क्षयसे आत्मस्वभावकी अवस्थारूप लक्षणवाला यथाख्यात चारित्र कहलाता है ॥४७५॥

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतोंसे संयुक्त सम्यग्दृष्टी जो कर्मोंकी निर्जरा करते है उन्हें परमागममें देशविरत कहते है ॥४७६॥

यहाँ नामका एकदेश नामका वाचक होता है इस नियमके अनुसार गाथाका अर्थ कहते हैं—दर्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोपधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभक्तविरत, ब्रह्मचारी, आरम्भविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत और उद्दिष्टविरत ये ग्यारह देश-विरतके भेद हैं । पाँच उदुम्बरादिकके साथ सात व्यसनोंको जो छोड़ता है उस विशुद्ध सम्यक्त्वधारीको दर्शनिक श्रावक कहते हैं । इत्यादि इन भेदोंके लक्षण अन्य ग्रन्थोंसे जानना ॥४७७॥

संसारिराशिअविरतप्रमाणमक्कु :—

सामायिक	छेदोपस्थापन	परिहार	सूक्ष्म	यथाख्यात	देशसंय =	संय =
८९०९९१०३	८९०९९१०३	६९९७	८९७	८९९९९७	प ə ə ४ ə	१३ –

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणगळोळु त्रयोदशं संयममार्गणाधिकारं निगदितमाय्तु ॥

अविरत्ताना प्रमाण भवति । १३–॥४८१॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु सयममार्गणाप्ररूपणा नाम त्रयोदशोऽधिकार ॥१३॥

संसारी जीवोंकी राशिमें भाग देनेपर जो शेष रहे उतना ही असंयमियोंका प्रमाण होता है ॥४८१॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी वीस प्ररूपणाओंमें-से संयममार्गणा प्ररूपणा नामक तेरहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

१ म प्रतौ संदृष्टिर्नास्ति ।

दर्शन-मार्गणा ॥१४॥

संयममार्गणानंतरं दर्शनमार्गणेयं पेळ्दपं :—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समये ॥४८२॥

यत्सामान्यग्रहणं भावानां नैव कृत्वाऽऽकारमविशेष्यार्थान्दर्शनमिति भण्यते समये ॥

भावानां सामान्यविशेषात्मकबाह्यपदार्थंगळ आकारं नैव कृत्वा भेदग्रहणमं माडदे यत्सामान्यग्रहणं आवुदो दु स्वरूपमात्रमं कैकोळ्वुदद्दु दर्शनमेंदितु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ।

वस्तुस्वरूपमात्रग्रहणमें तेंदोडे अर्थान्विशेष्य बाह्यार्थंगळं जातिक्रियागुणप्रकारंगळिंदं विकल्पिसदे स्वपरसत्तावभासनं दर्शनमेंदितु पेळल्पट्टुदें बुदर्थ । मत्तमीयर्थमने विशदं माडिदपं—

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहण जीवेण य दंसणं होदि ॥४८३॥

भावानां सामान्यविशेषात्मकानां स्वरूपमात्रं यद्वर्णनहीनग्रहणं जीवेन च दर्शनं भवति ॥

सामान्यविशेषात्मकंगळप्प पदार्थंगळ आवुदो दु स्वरूपमात्रं विकल्परहितमागि जीवनिंदं स्वपरसत्तावभासनमदु दर्शनमेंबुदक्कुं । पश्यति दृश्यतेऽनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनमेंदितु कर्तृकरण-

---

अनन्तानन्दससारसागरोत्तारसेतुकम् ।
अनन्तं तीर्थकर्तारं वन्देऽनन्तमुदे सदा ॥१४॥

अथ सयममार्गणा व्याख्याय दर्शनमार्गणा व्याख्याति—

भावानां सामान्यविशेषात्मकबाह्यपदार्थाना आकारं—भेदग्रहणं, अकृत्वा यत्सामान्यग्रहण—स्वरूपमात्रावभासन तद् दर्शनमिति परमागमे भण्यते । वस्तुस्वरूपमात्रग्रहणं कथम् ? अर्थात्—बाह्यपदार्थान् अविशेष्य—जातिक्रियाग्रहणविकारैरविकल्प्य स्वपरसत्तावभासन दर्शनमित्यर्थ· ॥४८२॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

भावाना सामान्यविशेषात्मकपदार्थाना यत्स्वरूपमात्र विकल्परहित यथा भवति तथा जीवेन स्वपर-

---

संयममार्गणाको कहकर दर्शन मार्गणाको कहते हैं—

भाव अर्थात् सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंके आकार अर्थात् भेदग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण अर्थात् स्वरूपमात्रका अवभासन है, उसे परमागममें दर्शन कहते है । वस्तुस्वरूपमात्रका ग्रहण कैसे करता है ? अर्थात् पदार्थोंके जाति, क्रिया, गुण आदि विकारोंका विकल्प न करते हुए अपना और अन्यका केवल सत्तामात्रका अवभासन दर्शन है ॥४८२॥

इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—

सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंका विकल्परहित स्वरूपमात्र जैसा है वैसा जीवके साथ स्वपर सत्ताका अवभासन दर्शन है । जो देखता है, जिसके द्वारा देखा जाता है या देखना

भावसाधनं दर्शनमरियल्पडुवुदु ।

अनंतरं चक्षुर्दर्शन अचक्षुदर्शनंगळ स्वरूपमं पेळ्दपं :—

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं वेंति ।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खु त्ति ॥४८४॥

चक्षुषा यत्प्रकाशते दृश्यते तच्चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति । यः शेषेंद्रियप्रकाशो ज्ञातव्यः सोऽचक्षुर्दर्शनमिति ॥

नयनंगळावुदोंदु प्रतिभासिसुतमिर्द्दुदु काणल्पडुत्तिर्द्दुदु तद्विषयप्रकाशनमे चक्षुर्दर्शनमेंदितु गणधरदेवादिदिव्यज्ञानिगळु पेळ्वरु । शेषेंद्रियंगळावुदोंदु तोरुत्तिर्द्दुददु अचक्षुदर्शनमेंदितु ज्ञातव्यमक्कुं ।

परमाणु आदियाइं अंतिमखंधंति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ॥४८५॥

परमाण्वादिकान्यंतिमस्कंधपर्य्यंतानि मूर्त्तद्रव्याणि । तदवधिदर्शनं पुनर्यत्पश्यति तानि प्रत्यक्षं ॥

परमाणुवादियागि महास्कंधपर्य्यंतमप्प मूर्त्तद्रव्यंगळनितनितुमनावुदोंदु दर्शनं मत्ते प्रत्यक्षमागि काणुमदवधिदर्शनमेंबुदक्कुं ।

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ॥४८६॥

बहुविधबहुप्रकारा उद्योताः परिमिते क्षेत्रे । लोकालोकवितिमिरो यः केवलदर्शनोद्योतः ॥

सत्तावभासन तद्दर्शन भवति । पश्यति दृश्यते अनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनम् ॥४८३॥ अथ चक्षुरचक्षुर्दर्शने लक्षयति—

चक्षुषो —नयनयो सबन्धि यत्सामान्यग्रहण प्रकाशते पश्यति तद्वा दृश्यते जीवेनानेन कृत्वा तद्वा तद्विषयप्रकाशनमेव तद्वा चक्षुर्दर्शनमिति गणधरदेवादयो ब्रुवन्ति । यश्च शेषेन्द्रियप्रकाश स अचक्षुर्दर्शनमिति ॥४८४॥

परमाणोरारभ्य महास्कन्धपर्यन्त मूर्तद्रव्याणि पुन यद्दर्शन प्रत्यक्ष पश्यति तदवधिदर्शन भवति ॥४८५॥

मात्र दर्शन है ॥४८३॥

अब चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनके लक्षण कहते है—

दोनों नेत्र सम्बन्धी सामान्य ग्रहणको जो देखता है अथवा इस जीवके द्वारा देखा जाता है अथवा सामान्य मात्रका प्रकाशन दर्शन है, यह गणधरदेव आदि कहते है । शेष इन्द्रियोंका जो प्रकाश है वह अचक्षु दर्शन है ॥४८४॥

परमाणुसे लेकर महास्कन्ध पर्यन्त सब मूर्तिक द्रव्योंको जो प्रत्यक्ष देखता है वह अवधिदर्शन है ॥४८५॥

बहुविधंगळु बहुप्रकारंगळुमप्पबेळगुगलु चंद्रसूर्य्यरत्नादिप्रकाशंगळु लोकदोळपरिमितक्षेत्र दोळेयप्पुवाव बेळगुगळिंदं पवणिसल्पडद लोकालोकंगळोळावुदो दु विगततिमिरमप्पुदद्दु केवल-दर्शनोद्योतमक्कुं।

अनंतरं दर्शनमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं :—

जोगे चउरक्खाणं पच्चक्खाणं च खीणचरिमाणं ।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं व ॥४८७॥

योगे चतुरक्षाणां पंचाक्षाणां च क्षीणकषायचरमाणां । चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तयोर्ज्ज्ञानवत् ।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळु शक्तिचक्षुर्द्दर्शनिगळेंदुं व्यक्तिचक्षुर्द्दर्शनिगळेंदुं। चक्षुर्द्दर्शनिगळुसंख्येयोळु द्विप्रकारमप्परल्लि लब्ध्य-पर्य्याप्तकचतुरिंद्रियजीवंगळ संख्येयोळु पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ संख्येगे संयोगमागुत्तिरळु शक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयक्कुं। पर्य्याप्तकचतुरिंद्रियजीवंगळुसंपर्याप्तकपंचेंद्रियजीवंगळ संख्येयुमं संयोगमं माडुत्तिरळु व्यक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयक्कुं। तच्छक्तिव्यक्तिगतचक्षुर्द्दर्शनिगळ संख्येयंतप्पल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुवुददेंते दोडे द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवंगळगेल्लमोयावल्यसंख्यातभक्त-प्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरमात्रं फलराशियागुत्तिरलु चतुःपंचेन्द्रियद्वयक्केनितु जीवंगळक्कुमेंदु

बहुविधा —तीव्रमन्दमध्यमादिभावेन अनेकविधा. बहुप्रकाराश्चोद्योताः चन्द्रसूर्यरत्नादिप्रकारा लोके-परिमितक्षेत्रे एव भवन्ति तै· प्रकाशैरनुपमेय लोकालोकयोर्विगततिमिरो य. स केवलदर्शनोद्योतो भवति ॥४८६॥ अथ दर्शनमार्गणाया जीवसख्या गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्ट्यादय क्षीणकषायान्ताः शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिन· व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनश्च । तत्र लब्ध्यपर्याप्त-चतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रिया शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिन., पर्याप्तकचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रिया व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिन.। तद्यथा— द्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियप्रमाण सर्वं यद्यावल्यसख्यातभक्तप्रतराङ्गुलभाजितजगत्प्रतर तदा चतु पञ्चेन्द्रियप्रमाणं

तीव्र, मन्द, मध्यम आदिके भेदसे अनेक प्रकारके चन्द्र, सूर्य, रत्न आदि सम्बन्धी उद्योत परिमित क्षेत्रको ही प्रकाशित करनेवाले हैं। उन प्रकाशोंकी उपमा जिसे नहीं दी जा सकती ऐसा जो लोक-अलोक दोनोंको प्रकाशित करता है वह केवल दर्शनरूप उद्योत है ॥४८६॥

अब दर्शन मार्गणामें जीवोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त जीव दो प्रकारके हैं, शक्तिरूप चक्षुदर्शनवाले और व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनवाले। उनमें-से लब्ध्यपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तो शक्तिरूप चक्षुदर्शनवाले है और पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय व्यक्तिरूप चक्षुदर्शन वाले है। यदि दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण आवलीके असंख्यातवे भागसे भाजित प्रतरांगुल और उससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण है तो चतुरिन्द्रिय

---

१ भेदेनानेकप्रकारा उद्योता· प्रकाशविशेषा लोके परिमितक्षेत्र एव प्रकाशते। यो लोकालोकयो. सर्वसामान्याकारे वितिमिरः क्रमकरणव्यवधानराहित्येन सदावभासमानः स केवलदंशनाख्य उद्योतो भवति इतोऽग्रेऽयमपि पाठो दृश्यते बपुस्तके।

त्रैराशिकं माडि प्र ४ । प = इ । २ बंदलब्धदोळु पर्य्याप्तकरं किंचिदूनं माडिदोडदु शक्तिगतचक्षु-
४
२ अ
अ

र्दर्शनिगळ सख्येयक्कु = । २— मिंते व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिगल्ग त्रैराशिकमं माळ्पागळोंदु
४ ।
२ ४
अ

विशेषमुंटदावुदेंदोडे फलराशित्रसपर्य्याप्तराशियक्कु प्र =४ प = इ । २ । मी बंद लब्धं व्यक्ति-
४
५

गतचक्षुर्दर्शनिगळ संख्येयक्कु = । २ अवधिदर्शनिगळ संख्येयवधिज्ञानिगळ प्रमाणमेनितनिते-
४ । ४
५

यक्कुं प अ केवलदर्शनिगळसंख्ये केवलज्ञानिगळसंख्येयेनितनितेयक्कुं १ ।
ए अ ३

कियत् ? इति त्रैराशिके कृते प्र ४ । फ = । इ २ लब्ध पर्याप्तकसख्यया किंचिदून शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसख्या
४
२
अ

भवति = । २ = द्वितीयत्रैराशिके फलराशि त्रसपर्याप्तकराशि प्र ४ । फ = । इ २ लब्ध व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसख्या
४ । ४ ४
२ ५
अ

भवति = २–अवधिदर्शनराशिरवधिज्ञानराशिवत् प अ—१ केवलदर्शनिसख्या केवलज्ञानिसख्यावत् १ ॥४८७॥
४ । ४ अ अ ३
५

पचेन्द्रियका कितना परिमाण है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि चार, फलराशि
१० त्रसजीवोंका प्रमाण, इच्छाराशि दो। सो इच्छाराशिको फलराशिसे गुणा करके प्रमाणराशि-
से भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय जीवराशि है। उसमें-से पर्याप्त
जीवोंके प्रमाणको घटानेपर जो प्रमाण आवे उसमें-से कुछ घटानेपर, क्योंकि दोइन्द्रिय
आदि क्रमसे घटते हुए शक्तिगत चक्षुदर्शनवालोंका प्रमाण जानना। इसी तरह त्रसपर्याप्त
जीवोंके प्रमाणको चारसे भाग देकर दोसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उसमे-से कुछ
१५ कम करनेपर व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनवालोंका प्रमाण होता है। अवधिदर्शनी जीवोंका प्रमाण
अवधिज्ञानियोंके प्रमाणके समान जानना। और केवल दर्शनी जीवोंका प्रमाण केवलज्ञानी
जीवोंके परिमाणके समान जानना ॥४८७॥

एइंदियपहुडीणं खीणकसायंतणंतरासीणं ।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ॥४८८॥

एकेंद्रियप्रभृतीनां क्षीणकषायांताऽनंताराशीनां योगो चक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणं ।
एकेद्रियप्रभृति क्षीणकषायांताऽनंतानंतजीवंगलयोगं अचक्षुर्दर्शनजीवंगळ प्रमाणमक्कुं।१३।

शक्तिचक्षु	व्यक्तिचक्षु	अचक्षु	अवधिदर्शन	केवलदर्शन
=	२	१ ३	५ ⌐—	७
४ २—	४	०	० ०	३
२ ४	५		०	
०				

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु मंडलाग्र्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीसदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजित ललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु चतुर्दशं दर्शनमार्गणाधिकारं निगदितमाय्तु ।

एकेन्द्रियप्रभृतिक्षीणकषायान्तानन्तानन्तजीवाना योग अचक्षुर्दर्शनजीवप्रमाण भवति १३–॥४८८॥

एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त अनन्त जीवोंका जो योग है उतना अचक्षुदर्शनी जीवोंका प्रमाण है ॥४८८॥

इस प्रकार सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र रचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी केशववर्णी रचित कर्नाटक वृत्ति अनुसारिणी हिन्दी टीकामे जीवकाण्डके अन्तर्गत दर्शन मार्गणा प्ररूपणा नामक चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ ॥१४॥

लेश्या-मार्गणा ॥१५॥

दर्शनमार्गणानंतरं लेश्यामार्गणेयं पेळलुपक्रमिसि निरुक्तिपूर्व्वकं लेश्येगे लक्षणमं पेळ्दपं—

लिंपइ अप्पीकीरई एदीए णियअप्पुण्णपुण्णं च ।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८९॥

लिंपत्यात्मीकरोत्येतया निजाऽपुण्यं पुण्यं च जीव इति भवति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ।

द्रव्यलेश्येयें दुं भावलेश्येयें दुं लेश्ये द्विप्रकारमप्पुदल्लि । भावलेश्यापेक्षेयिंदं लिंपत्यात्मीकरोति निजापुण्यं पुण्यं च जीव एतयेति लेश्या । लेश्यागुणज्ञायकाऽऽख्याता भवति । जीवं निजपापमुमं पुण्यमुमं लिंपति तन्नं पोरेगुं आत्मीकरोति तन्नवागि माळ्पनिदरिंदमेंदितु लेश्या लेश्ये दु लेश्यागुणमनरिव श्रुतज्ञानिगळप्प गणधरदेवादिगळिंदं पेळल्पट्टुदक्कुं । अनया कर्म्मभिरात्मानं लिंपतीति लेश्या । कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या । कषायाणामुदयेनानुरंजिता कमप्यतिशयांतरमुपनीता भवतीत्यर्थः । ई यर्थमने विशदमागि माडिदपरु ।

य सद्धर्मसुधावर्षैर्भव्यसस्यानि प्रीणयन् ।
नीतवान् स्वेष्टसिद्धिं त धर्मनाथधन भजे ॥१५॥

अथ लेश्यामार्गणा वक्तुमना निरुक्तिपूर्वक लेश्यालक्षणमाह—

लेश्या द्रव्यभावभेदाद् द्वेधा । तत्र भावलेश्या लक्षयितु इद सूत्रम् । लिम्पति—आत्मीकरोति निजमपुण्यं पुण्य च जीव एतयेति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकैर्गणधरदेवादिभिराख्याता । अनया कर्मभिरात्मान लिम्पतीति लेश्या । कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या कषायाणामुदयेन अनुरञ्जिता कमप्यतिशयान्तरमुपनीता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या ॥४८९॥ अमुमेंवार्थं स्पष्टयति—

लेश्या मार्गणाको कहनेकी भावनासे निरुक्तिपूर्वक लेश्याका लक्षण कहते है—

लेश्या द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारकी है । उनमें-से भावलेश्याका लक्षण कहनेके लिए यह सूत्र है । 'लिम्पति' अर्थात् इसके द्वारा जीव अपने पुण्य-पापको अपनाता है, लेश्याका यह लक्षण लेश्याके गुणोंके ज्ञाता गणधर देव आदिने कहा है । जिसके द्वारा जीव आत्माको कर्मोंसे लिप्त करता है वह लेश्या है । कषायके उदयसे अनुरंजित मन वचन कायकी प्रवृत्ति लेश्या है । अथवा कषायोंके उदयसे अनुरंजित अर्थात् किसी भी अतिशयान्तरको प्राप्त योग प्रवृत्ति लेश्या है ॥४८९॥

इसीको स्पष्ट करते हैं—

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥४९०॥

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति । ततो द्वयोः कार्य्यं बंधचतुष्कं समुद्दिष्टं ॥

कायवाङ्मनःप्रवृत्तियं लेश्ये येंबुददुवुं कषायोदयानुरंजितमक्कुं । तंतः अदु कारणदत्तणिंदं द्वयोः कार्य्यं योगकषायंगळ कार्य्यमप्प बंधचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपबंधचतुष्टयं लेश्येय कार्य्यमक्कुमेंदु समुद्दिष्टं परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु । योगदिंदं प्रकृतिप्रदेशबंधमक्कुं । कषायदिंदं स्थित्यनुभागबंधमक्कुमप्पुदरिंदं कषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिये लेश्येयप्पुदरिंदमा लेश्येयिंदं चतुर्व्विधबंधं युक्तियुक्तमेयक्कुमेंबुदु तात्पर्य्यं ।

लेश्यामार्गणेगधिकारनिर्द्देशमं माडिदपं गाथाद्वयदिंदं :—

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो ॥४९१॥
अंतरभावप्पबहू अहियारा सोलसा हवंतित्ति ।
लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहि बोच्छामि ॥४९२॥

निर्द्देशवर्णपरिणामसंक्रमकर्म्मलक्षणगतयश्च । स्वामी साधनसंख्याक्षेत्र स्पर्शं ततः कालः ॥
अंतरभावाल्पबहवोऽधिकाराः षोडश भवंतीति । लेश्यानां साधनार्थं यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ॥

निर्द्देशमुं वर्णमुं परिणाममुं संक्रममुं कर्म्ममुं लक्षणमुं गतियुं स्वामियुं साधनमुं संख्येयुं क्षेत्रमुं स्पर्शमुं बळिक्कं कालमुं अंतरमुं भावमुं अल्पबहुत्वमुमेंदितु अधिकारंगळ्पदि-

---

कायवाङ्मन'प्रवृत्तिः लेश्या, सा च कषायोदयानुरञ्जितास्ति ततः कारणात् द्वयो.—योगकषाययो. कार्यं बन्धचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूप तद् लेश्याया एव स्यादिति परमागमे समुद्दिष्टम् । योगात् प्रकृतिप्रदेशबन्धौ कषायस्योदयाच्च स्थित्यनुभागबन्धौ स्याताम् । तेन कषायोदयानुरञ्जितयोगप्रवृत्तिलक्षणया लेश्यया चतुर्विधबन्धो युक्तियुक्त एवेत्यर्थः ॥४९०॥ अथ गाथाद्वयेन अधिकारान्निर्दिशति—

निर्देश वर्ण. परिणामः सक्रम. कर्मलक्षण गति' स्वामी साधन संख्या क्षेत्र स्पर्शः तत कालः

काय, वचन और मनकी प्रवृत्ति लेश्या है । वह मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति कषायके उदयसे अनुरंजित है । इस कारणसे दोनों योग और कषायोंका कार्य प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चार बन्ध लेश्याके ही कार्य परमागममें कहे है । योगसे प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध और कषायके उदयसे स्थितिबन्ध अनुभागबन्ध होते है । इसलिए कषायके उदयसे अनुरंजित योगप्रवृत्ति जिसका लक्षण है उस लेश्यासे चार प्रकारका बन्ध कहना युक्तियुक्त ही है ॥४९०॥

दो गाथाओं से अधिकारोंको कहते हैं—

निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामी, साधन, संख्या, क्षेत्र, स्पर्श,

---

१. म तत आलेश्येयिंदं । २ म चतुष्टयमक्कुमेदु ।

नारप्पुवेकेंदोडे लेश्यानां साधनार्थं लेश्येगळ भेदप्रभेदंगळं साधिससल्वेडि अदुकारणमागि तैरधिकारैः आपदिनारुमधिकारंगळिंदं यथाक्रमं क्रममनतिक्रमिसदे लेश्येयं वक्ष्यामि पेळ्वें ॥

किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥४९३॥

कृष्णा नीला कापोती तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च । लेश्यानां निर्देशाः षट् चैव भवंति नियमेन ॥

कृष्णलेश्येयेंदु नीललेश्येयेंदुं कपोतलेश्येयेंदुं तेजोलेश्येयेंदु पद्मलेश्येयेंदुं शुक्ललेश्येयेंदुमितु लेश्येगळ निर्द्देशंगळारेयप्पुवु । नियमदिंद । इल्लि षट्चैव एंदितु नैगमनयाभिप्रायदिंदं पेळल्पट्टुदु । पर्य्यायवृत्तियिंदं मत्तमसंख्येयलोकमात्रंगळु लेश्येगळप्पुवे दितु नियमशब्दंदिंदं सूचिसल्पट्टुदु । निर्द्देशं निगदितमाय्तु ॥

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ॥४९४॥

वर्णोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या । सा षोढा कृष्णादयोऽनेकभेदाः स्वभेदेन ॥

वर्णनामकर्म्मोदयदिंद जनितः पुट्टल्पट्ट शरीरवर्णस्तु शरीरदवर्णं द्रव्यतो लेश्या द्रव्यदिंदं लेश्येयक्कुमा द्रव्यलेश्येयुं षोढा षट्प्रकारमक्कुमा षट्प्रकारंगळुं कृष्णादयः कृष्णादिगळक्कुं । अनेकभेदाः स्वभेदेन स्वस्वभेदाः स्वभेदाः तैः स्वभेदैरनेकभेदाः स्युः तंतम्म भेदंदिंदमनेकभेदगळप्पुवदेंतेंदोडे ॥

अन्तर भाव अल्पबहुत्व चेति षोडशाधिकारा लेश्याभेदप्रभेदसाधनार्थं भवन्तीति तैर्यथाक्रम लेश्या वक्ष्यामि ॥४९१-४९२॥

कृष्णलेश्या नीललेश्या कपोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या चेति लेश्यानिर्देशा'-लेश्यानामानि षडेव भवन्ति नियमेन । अत्र एवकारेणैव नियमस्य अवगमात् पुनरनर्थक नियमशब्दोपादान नैगमनयेन लेश्या षोढा पर्यायार्थिकनयेन असख्यातलोकधेत्याचार्यस्य अभिप्राय ज्ञापयति ॥४९३॥ इति निर्देशाधिकार ।

वर्णनामकर्मोदयजनितशरीरवर्णस्तु द्रव्यलेश्या भवति । सा च षोढा-षट्प्रकारा । ते च प्रकारा कृष्णादय स्वस्वभेदैरनेकभेदा स्यु ॥४९४॥ तथाहि—

काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व ये सोलह अधिकार लेश्याके भेद-प्रभेदोंके साधनके लिए हैं । उनके द्वारा क्रमानुसार लेश्याको कहूँगा ॥४९१-९२॥

कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कपोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ये छह ही लेश्याओंके नाम नियमित है । यहाँ एवकार (ही) से ही नियमका ज्ञान हो जानेसे पुनः नियम शब्दका ग्रहण निरर्थक ही है । अतः वह नैगम नयसे लेश्या छह है और पर्यायार्थिकनयसे असंख्यातलोक हैं, इस आचार्यके अभिप्रायको सूचित करता है ॥४९३॥ निर्देशाधिकार समाप्त हुआ ।

वर्णनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न शरीरका वर्ण तो द्रव्य लेश्या है । उसके भी छह भेद है । वे कृष्ण आदि भेद अपने-अपने अवान्तर भेदोंसे अनेक भेद वाले है ॥४९४॥

छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसंखसंणिहा वण्णे ।
संखेज्जाऽसंखेज्जाऽणंतवियप्पा य पत्तेयं ॥४९५॥

षट्पदनीलकपोतसुहेमांबुजशंखसन्निभा वर्णे । संख्येयासंख्येया अनंतविकल्पाश्च प्रत्येकं ॥

तुंबिय, नीलरत्नद, कपोतपक्षिय, सुहेमद, अंबुजद, शंखद सन्निभंगळु यथाक्रमदिंदमप्पुवु । कृष्णलेश्यादिगळु वर्ण्णदोळु यिंद्रियव्यक्तिगळिंदं प्रत्येकं संख्यातंगळप्पुवु । कृ १ नी १ क १ ते १ प १ शु १ ॥ स्कंधभेददिंदं प्रत्येकमसंख्यातंगळप्पुवु । कृ अ नील अ क अ ते अ प अ शु अ ॥ परमाणुभेददिंदं प्रत्येकमनंतानंतगळप्पुवु । कृ ख नी ख क ख ते ख प ख शु ख ॥

णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हु तिसुरणरतिरिये ।
उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा ॥४९६॥

नारकाः कृष्णाः कल्पजा भावानुगता खळु त्रिसुरनरतिर्य्यक्षु । उत्तरदेहे षट्कं भोगे रविचंद्रहरितांगाः ॥

नारकरेल्लरुं कृष्णरुगळेयप्परु कल्पजरेल्लरु भावलेश्यानुगतरप्परु । भवनत्रयदेवर्क्कळुं मनुष्यरुं तिर्य्यंचरुगळुं उत्तरदेहंगळु देवर्क्कळ वैकुर्व्वण शरीरंगळु अवुं षड्वर्णंगळप्पुवु यथाक्रममुत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिजरप्प नरतिर्य्यंचरुगळ शरीरंगळु रविचंद्रहरिद्वर्णंगळप्पुवु ॥

कृष्णादिलेश्या. वर्णे षट्पद–नीलरत्न–कपोत–सुहेम–अम्बुज–शङ्खसनिभा भवन्ति । पुनस्ता इन्द्रियव्यक्तिभि: प्रत्येकं सख्याताः कृ १ । नी १ । क १ । ते १ । प १ । शु १ । स्कन्धभेदेनासंख्याताः कृ अ । नी अ क अ । ते अ । प अ । शु अ । परमाणुभेदेन अनन्तानन्ताश्च[1] भवन्ति । कृ ख । नी ख । क ख । ते ख । प ख । शु ख ॥४९५॥

नारका. सर्वे कृष्णा एव, कल्पजाः सर्वे स्वस्वभावलेश्यानुगा एव । भवनत्रयदेवा. मनुष्यास्तिर्यञ्चो देवविकुर्वणदेहाश्च सर्वे षड्वर्णा. । उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिजनरतिर्यञ्च. क्रमशः रविचन्द्रहरिद्वर्णा एव ॥४९६॥

वर्णके रूपमें कृष्ण आदि लेश्या भौरे, नीलम, कबूतर, स्वर्ण, कमल और शंखके समान होती हैं । अर्थात् भौरेके समान जिनके शरीरका रंग काला है, उनके द्रव्यलेश्या कृष्ण है । नीलमके समान नील रंग वालोंकी द्रव्यलेश्या नील होती है । कबूतरके समान शरीरके वर्णवालोंकी द्रव्यलेश्या कापोत होती है । स्वर्णके समान पीत वर्ण वालोंकी द्रव्यलेश्या पीत होती है । कमलके समान शरीरके वर्णवालोंकी द्रव्यलेश्या पद्म होती है । और जिनका शरीरका रंग शंखके समान सफेद होता है उनकी द्रव्यलेश्या शुक्ल होती है । इन्द्रियोंके द्वारा प्रतीत होनेकी अपेक्षा प्रत्येक लेश्याके सख्यात भेद होते है । स्कन्धोंके भेदसे असंख्यात भेद है और परमाणुओंके भेदसे अनन्त भेद है ॥४९५॥

सब नारकी कृष्णवर्ण ही होते है । सब कल्पवासी देव अपनी-अपनी भावलेश्याके अनुसार ही द्रव्यलेश्यावाले होते है । अर्थात् जैसी उनकी भावलेश्या होती है उसीके अनुसार उनके शरीरका वर्ण होता है । भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषीदेव, मनुष्य, तिर्यंच और देवोंके विक्रियासे बना शरीर ये सब छहों वर्णवाले होते हैं । उत्तम, मध्यम और जघन्य

---

१. ब अनन्ताश्च ।

बादरआऊतेऊ सुक्कातेऊ य वाउकायाणं ।
गोम्मुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णा य ॥४९७॥

बादराप्कायिकतेजस्कायिकाः शुक्लास्तेजसश्च वातकायाना । गोमूत्रमुद्गवर्णौ क्रमशोऽव्यक्तवर्णाश्च ॥

बादराप्कायिकतेजस्कायिकंगळु यथाक्रमदिंदं शुक्लाः शुक्लवर्णंगळु तेजसश्च पीतवर्णंगळुमप्पुवु । वातकायंगळ शरीरवर्णंगळु घनोदधिघनानिलंगळगे गोमूत्रमुद्गवर्णगळु यथाक्रमदिंदमप्पुवु । तनुवातकायिकंगळ शरीरवर्णमव्यक्तवर्णमक्कुं ॥

सव्वेसि सुहुमाणं कावोदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥४९८॥

सर्व्वेषां सूक्ष्माणां कापोताः सर्व्वविग्रहे शुक्लाः । सर्व्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥

सर्वसूक्ष्मजीवंगळ देहंगळु कपोतवर्णदेहंगळेयप्पुवु सर्वजीवगळु विग्रहगतियोळु शुक्लवर्णंगळेयप्पुवु । सर्वजीवंगळु शरीरपर्य्याप्तिनेरिवन्नेवरं कपोतवर्णंरेयप्परु नियमदिंदं ॥ वर्णाधिकारं द्वितीयं ॥ अनंतरं लेश्यापरिणामाधिकारमं गाथापंचकदिंदं पेळ्दपं:—

लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ॥४९९॥

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति । तत्र क्लिष्टान्यशुभानि शुभानि विशुद्धानि तदालापानि ।

बादरातेजस्कायिकौ क्रमेण शुक्लपीतवर्णावेव, वातकायिकेषु घनोदधिवातघनवातशरीराणि क्रमेण गोमूत्रमुद्गवर्णानि तनुवातशरीराणि अव्यक्तवर्णानि ॥४९७॥

सर्वसूक्ष्मजीवदेहा कपोतवर्णा एव । सर्वे जीवा विग्रहगतौ शुक्लवर्णा एव । सर्वे जीवा. स्वस्वपर्याप्तिप्रारम्भप्रथमसमयाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तिपर्यन्त कपोतवर्णा एव नियमेन ॥४९८॥ इति वर्णाधिकार. । अथ परिणामाधिकार गाथापञ्चकेनाह—

भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यंच क्रमसे सूर्यके समान, चन्द्रमाके समान तथा हरित वर्णवाले होते है ॥४९६॥

बादर तैजस्कायिक और बादर जलकायिक क्रमसे पीतवर्ण और शुक्लवर्ण ही होते है। बादरवायुकायिकोंमें घनोदधि वातका शरीर गोमूत्रके समान वर्णवाला है। घनवातका शरीर मूँग के समान वर्णवाला है और तनुवातके शरीरका वर्ण अव्यक्त है ॥४९७॥

सब सूक्ष्मजीवोका शरीर कपोतके समान वर्णवाला ही होता है। सब जीवोंका विग्रहगतिमें शुक्लवर्ण ही होता है। सब जीव अपनी-अपनी पर्याप्तिके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयसे लेकर शरीरपर्याप्तिकी पूर्णता पर्यन्त कपोतवर्ण ही नियमसे होते हैं ॥४९८॥

वर्णाधिकार समाप्त हुआ । आगे पाँच गाथाओंसे परिणामाधिकार कहते है—

कषायगतोदयस्थानंगळु असंख्यातलोकमात्रंगळप्पुववरोळु संक्लेशस्थानगळप्प अशुभलेश्यास्थानंगळु तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागंगळागुत्तलुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । तदेकभागमात्रंगळुमवुंडं शुभलेश्याविशुद्धिस्थानंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । संक्ले । ≡ a । ८ विशु≡a १ ।
९ ९

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥५००॥ ५

तीव्रतमानि तीव्रतराणि तीव्राण्यशुभानि शुभानि तथा मंदानि । मंदतराणि मंदतमानि षट्स्थानगतानि खलु प्रत्येकं ।

मुन्नं पेळ्द असंख्यातलोकबहुभागमात्रंगळप्प अशुभलेश्या संक्लेशस्थानंगळु कृष्णनीलकपोतभेदंदिंदं त्रिप्रकारं गळप्पुवल्लि कृष्णलेश्यातीव्रतमसंक्लेशस्थानंगळु सामान्याशुभसंक्लेशस्थानंगळ ≡a ८ निवं मत्तं तद्योग्यासंख्यातलोकदिंदं खंडिसिदल्लि बहुभागमात्रस्थानं- १०
९
गळप्पुवु ≡a । ८ । ८ । नीललेश्यातीव्रतरसंक्लेशस्थानंगळु तदेकभागबहुभागमात्रंगळ-
९ । ९
प्पुवु ≡a । ८ ८ । कपोतलेश्यातीव्रसंक्लेशस्थानंगळु तदेकभागमात्रंगळप्पुवु ≡a । ८ । १
९ ९ ९ ९ ९ १
मत्तं शुभलेश्याविशुद्धिस्थानंगळु मुंपेळ्द असंख्यातलोकभक्तैकभागमात्रंगळोळु ≡a १ तेजोलेश्या-
९

कषायगतोदयस्थानानि असख्यातलोकमात्राणि भवन्ति । तेषु सक्लेशस्थानानि अशुभलेश्यास्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यपि असंख्यातलोकमात्राण्येव । तदेकभागमात्राणि शुभलेश्याविशुद्धिस्थानान्यप्यसख्यातलोकमात्राण्येव । संक्ले ≡a । ८ । विशु ७ ≡ a । १ ॥४९९॥ १५
९ ९

प्रागुक्तासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि अशुभलेश्यासंक्लेशस्थानानि कृष्णनीलकपोतभेदास्त्रिविधानि । तत्र कृष्णलेश्यातीव्रतमसक्लेशस्थानानि सामान्याशुभसंक्लेशस्थानेषु≡ a । ८ तद्योग्यासख्यातलोकभक्तेषु बहुभाग-
९
मात्राणि≡ a । ८ । ८ । नीललेश्यातीव्रतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि≡ a । ८ । ८ । कपोत-
९ ९ ९ । ९ । ९
लेश्यातीव्रसंक्लेशस्थानानि तदेकभागमात्राणि ≡ a । ८ । १ पुन. शुभलेश्याविशुद्धिस्थानेषु पूर्वोक्तासंख्यात- २०
९ । ९ । ९

कषायोंके अनुभागरूप उदय स्थान असंख्यात लोक मात्र होते है। उनमें यथायोग्य असंख्यात लोकसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण संक्लेश स्थान है, वे भी असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं। और शेष एक भाग प्रमाण विशुद्धिस्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक मात्र है। संक्लेशस्थान तो अशुभ लेश्याओंके स्थान हैं और विशुद्धि स्थान शुभ लेश्याओंके स्थान है ॥४९९॥ २५

पहले कहे असंख्यात लोकके बहुभाग मात्र अशुभ लेश्या सम्बन्धी स्थान कृष्ण, नील, कपोतके भेदसे तीन प्रकारके हैं। उन सामान्य अशुभ लेश्या सम्बन्धी स्थानोंमें यथायोग्य असंख्यातलोकसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण कृष्णलेश्या सम्बन्धी तीव्रतम कषायरूप संक्लेश स्थान है। शेष रहे एक भागमें पुनः असंख्यात लोकसे भाग देनेपर बहुभाग मात्र

मंदसंक्लेशस्थानंगळु तदसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रंगळप्पुवु ≡अ ८ पद्मलेश्याविशुद्धिस्थानंगळु
९९
मंदतरसंक्लेशस्थानंगळु तदेकभागबहुभागमात्रंगळप्पुवु ≡ अ ८ शुक्ललेश्याविशुद्धिस्थानंगळु
९९९
मंदतमसंक्लेशस्थानंगळु शेषैकभागमात्रगळप्पुवु ≡ अ १ ई कृष्णलेश्यादियादारु स्थानंगळोळु
९९९
प्रत्येकमशुभंगळोळुत्कृष्टदिंदं जघन्यपर्य्यंतं शुभंगळोळं जघन्यदिंदमुत्कृष्टपर्य्यंतमसंख्यातलोकमात्र-
५ षट्स्थानपतितहानिवृद्धियुक्तस्थानंगळप्पुवु खलु नियमदिंदं।

असुहाण वरमज्झिमअवरंसे किण्हणीलकाउतिए।
परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स ॥५०१॥

अशुभाना वरमध्यमावरांशे कृष्णनीलकपोतत्रये परिणमति क्रमेणात्मा परिहानितः संक्लेशस्य।

१० कृष्णनीलकपोतत्रिस्थानगळ अशुभंगळप्पुत्कृष्टमध्यमजघन्यांशगळोळु जीवं संक्लेशहानि-यिंदं क्रमदिंद परिणमिसुगु।

लोकभक्तैकभागमात्रेषु ≡ अ । १ तेजोलेश्यामन्दसक्लेशस्थानानि तदसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि≡ अ । ८
९ ९ । ९
पद्मलेश्याविशुद्धिस्थानानि मन्दतरसक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि≡ अ । ८ शुक्ललेश्याविशुद्धि-
९ । ९ । ९
स्थानानि मन्दतमसक्लेशस्थानानि शेषैकभागमात्राणि≡ अ । १ । एतेषु कृष्णलेश्यादिषट्स्थानेषु प्रत्येकमशुभेषु
९ । ९ । ९
१५ उत्कृष्टाज्जघन्यपर्यन्त शुभेषु च जघन्यादुत्कृष्टपर्यन्त असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितहानिवृद्धिस्थानानि भवन्ति खलु–नियमेन ॥५००॥

कृष्णनीलकपोतत्रिस्थानेषु अशुभरूपोत्कृष्टमध्यमजघन्यांशेषु जीव संक्लेशहानितः क्रमेण परिण-मति ॥५०१॥

नीललेश्या सम्बन्धी तीव्रतर सक्लेश स्थान हैं। शेष रहे एक भाग प्रमाण कपोतलेश्या
२० सम्बन्धी तीव्र संक्लेश स्थान हैं। पहले कषायोंके उदय स्थानोंमें असंख्यात लोकसे भाग देकर जो एक भाग प्रमाण शुभ लेश्या सम्बन्धी स्थान कहे थे वे तेज, पद्म और शुक्लके भेदसे तीन प्रकारके है। उनमें असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण तेजोलेश्या सम्बन्धी मन्द संक्लेश स्थान हैं। शेष बचे एक भागमें पुनः असंख्यात लोकसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण पद्मलेश्या सम्बन्धी मन्दतर संक्लेशस्थान हैं। शेष रहे एक भाग प्रमाण शुक्ल लेश्या
२५ सम्बन्धी मन्दतम संक्लेश स्थान हैं। इन कृष्णलेश्या आदि सम्बन्धी छह स्थानोंमें-से प्रत्येकमें अशुभमें तो उत्कृष्टसे जघन्य पर्यन्त और शुभ लेश्याओंमें जघन्यसे उत्कृष्ट पर्यन्त असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान पतित हानि-वृद्धि स्थान नियमसे होते है ॥५००॥

यदि जीवके संक्लेश परिणामोंमें हानि होती है तो वह अशुभ कृष्ण नील और कपोत लेश्याओंके उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य अंशोंमें क्रमसे परिणमन करता है अर्थात् उस लेश्याके
३० उत्कृष्ट अंशसे मध्यममें और मध्यमसे जघन्यरूप परिणमन करता है ॥५०१॥

काऊ णीलं किण्हं परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा ।
एवं किलेसहाणीवड्ढीदो होदि असुहतियं ॥५०२॥

कपोतं नीलं कृष्णं परिणमति क्लेशवृद्धित आत्मा । एवं क्लेशहानिवृद्धितोऽशुभत्रयं भवति ।

संक्लेशवृद्धियिंदमात्मं कपोतनीलकृष्णलेश्यारूपसें तप्पुदंते परिणमदि परिणमिसुगुमितु संक्लेशहानिवृद्धिगळिंदमशुभत्रयरूपनक्कुं ।

तेऊ पम्मे सुक्के सुहाणमवरादि अंसगे अप्पा ।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि ॥५०३॥

तेजसि पद्मे शुक्ले शुभानामवराद्यंशके आत्मा विशुद्धेश्च वृद्धितो हानितोऽन्यथा भवति ।

शुभंगळप्प तेजःपद्मशुक्ललेश्येगळ जघन्याद्यंशंगळोळात्मं विशुद्धिवृद्धियिंदं भवति परिणमिसुगुं । हानितोऽन्यथा भवति विशुद्धिय हानियिंदं शुक्ललेश्योत्कृष्टं मोदल्गोंडु तेजोलेश्याजघन्यांशपर्य्यंतं भवति परिणमिसुगुं । संदृष्टि :—

अशुभलेश्या	स्थानानि ९ ≡ ८	सव्वंधनं ≡ ८	शुभलेश्या	स्थानानि	९ ≡ १
तीव्रतमकृष्ण	तिव्वतरणील	तिव्वकओत	मंदतेज	मंदतरपद्म	मंदतमशुक्ल
उ ०००००ज	उ ०००००ज	उ ०००००ज	ज००००० उ	ज००००० उ	ज००००० उ
≡८८८ ९९	≡८।८।८ ९९९	≡८।८।१ ९९९	≡८८। ९९	≡८८ ९९९	≡८।१ ९९९

परिणामाधिकारं तृतीयं समाप्तमाय्तु ।

अनंतरं संक्रमणाधिकारमं गाथात्रयदिंदं स्वस्थानपरस्थानसंक्रमणमनि परिणामपरावृत्तिरचनेयं कटाक्षिसिकोंडु पेळ्दपं ।

सक्लेशवृद्धयात्मा कपोतनीलकृष्णलेश्यारूपेण परिणमति इति संक्लेशहानिवृद्धिभ्यामशुभत्रयरूपो भवति ॥५०२॥

शुभाना तेज पद्मशुक्ललेश्याना जघन्याद्यशेषु आत्मा विशुद्धिवृद्धितो भवति परिणमति, हानितोऽन्यथा शुक्लोत्कृष्टात्तेजोजघन्याशपर्यन्त परिणमति ॥५०३॥ इति परिणामाधिकारः । उक्तपरिणामपरावृत्तिरचना मनसिकृत्य सक्रमणाधिकार गाथात्रयेणाह—

तथा संक्लेश परिणामोंमें वृद्धि होनेसे कपोत, नील और कृष्ण लेश्यारूपसे परिणमन करता है । इस प्रकार संक्लेश परिणामोंमें हानि, वृद्धि होनेसे तीन अशुभ लेश्या रूपसे परिणमन करता है ॥५०२॥

शुभ तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अंशोंमें आत्मा विशुद्धिकी वृद्धिसे परिणमन करता है । और विशुद्धिकी हानिसे अन्यथा अर्थात् शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे तेजोलेश्याके जघन्य अंश तक परिणमन करता है ॥५०३॥

इस प्रकार परिणामाधिकार समाप्त हुआ ।

उक्त परिणामोंके परिवर्तनकी रचनाको मनमें रखकर तीन गाथाओंसे संक्रमण अधिकारको कहते हैं—

संकमणं सट्ठाणपरट्ठाणं होदित्ति किण्हसुक्काणं ।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभयेवि ॥५०४॥

संक्रमणं स्वस्थान परस्थानं भवति । कृष्णशुक्लयोः । वृद्धचोः खलु स्वस्थानमुभयं हानौ शेषोभयेपि ॥

संक्रमणं स्वस्थानसंक्रमणमेंदुं परस्थानसंक्रमणमेंदुं द्विप्रकारमक्कुमल्लि कृष्णशुक्लयोः कृष्णशुक्ललेश्याद्वयद वृद्धचोः वृद्धिगळोळु स्वस्थानसंक्रमणमेयक्कुं खलु नियमदिंद । आकृष्णशुक्ललेश्येगळु हानौ हानियोळु उभयं स्वस्थानसंक्रमणमुं परस्थानसंक्रमणमुमेंबेरडुमक्कुं । शेषोभयेपि शेषनीलपद्मकपोततेजोलेश्याचतुष्टयंगळु हानियोळं वृद्धियोळं अपि अपिशब्ददिंदं स्वस्थानसंक्रमणमुं परस्थानसंक्रमणमुमेंबेरडुमक्कुं ॥

लेस्साणुक्कस्सादो वरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ॥५०५॥

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिरवरस्मादवरवृद्धिः, स्वस्थाने अवरस्माद्धानिर्नियमात्परस्थाने ॥

सक्रमण—स्वस्थानसक्रमण परस्थानसक्रमण चेति द्विविधम् । तत्र कृष्णशुक्ललेश्याद्वयस्य वृद्धौ स्वस्थानसक्रमणमेव खलु—नियमेन, हानौ पुन स्वस्थानसक्रमणं परस्थानसक्रमण चेत्युभय भवति । शेषनीलपद्मकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्य हानौ वृद्धौ च अपिशब्दादुभयसक्रमण भवति ॥५०४॥

संक्रमणके दो प्रकार हैं—स्वस्थान संक्रमण और परस्थान संक्रमण । उनमे-से कृष्ण-लेश्या और शुक्ल लेश्याका वृद्धिमें नियमसे स्वस्थान संक्रमण ही होता है । हानिमें स्वस्थान और परस्थान दोनों होते हैं । शेष नील, कपोत, तेज, पद्म लेश्याओंमें हानि और वृद्धिमे दोनों संक्रमण होते हैं ॥५०४॥

विशेषार्थ—एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेको संक्रमण कहते हैं । यदि वह उसी लेश्यामे होता है तो स्वस्थान संक्रमण है और यदि एक लेश्यासे दूसरीमें होता है तो परस्थान संक्रमण है । वृद्धिमें कृष्ण और शुक्ल लेश्यामें स्वस्थान संक्रमण ही होता है क्योंकि संक्लेशकी वृद्धि कृष्ण लेश्याके उत्कृष्ट अंश पर्यन्त ही होती है तथा विशुद्धिकी वृद्धि शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंश तक ही होती है । अतः जो जीव कृष्ण लेश्या या शुक्ल लेश्यामें वर्तमान है वह संक्लेश या विशुद्धिकी वृद्धिमे उन्हीं लेश्याओके उत्कृष्ट अंशमें जायेगा । किन्तु हानिमें दोनों संक्रमण होते हैं । क्योंकि उत्कृष्ट कृष्ण लेश्यासे संक्लेशकी हानि होनेपर उसी लेश्याके उत्कृष्टसे मध्यममे और मध्यमसे जघन्य अंशमें आता है और जघन्य अंशसे भी हानि होनेपर नील लेश्यामे चला जाता है । इसी तरह विशुद्धिकी हानि होनेपर शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मध्यममे और मध्यमसे जघन्य अंशमें आता है । तथा और भी हानि होनेपर पद्म लेश्यामें जाता है । इस तरह हानिमे दोनों संक्रमण होते हैं । शेष मध्यकी चारों ही लेश्याओंमे हानि वृद्धि दोनोंमे ही दोनों संक्रमण होते हैं ॥५०४॥

लेश्यानां कृष्णादिसव्वंळेश्येगळ उत्कृष्टात् उत्कृष्टदत्तणिदं अनंतरस्वलेश्यास्थानविकल्पदोळु अवरहानिः अनंतैकभागहानियक्कुं । एकें दोडुत्कृष्टलेश्योदयस्थानकमप्पुदरिंदमनंतरोव्वंकस्थानदोळनंतैकभागहानियक्कुमप्पुदरिंदं । अवरस्मात्[1] सर्वलेश्येगळ जघन्यस्थानदत्तणिदं स्वस्थाने स्वस्थानदोळु अवरवृद्धिः अनंतभागवृद्धिये अक्कुमेकें दोडे लेश्याजघन्यस्थानंगळनितुमष्टांकंगळप्पुदरिंदमनंतरस्थानंगळोळु अनंतभागवृद्धिये नियमदिंदमक्कुमेकें दोडा जघन्यमा षट्स्थानादियप्पुदरिंदं । उत्तरस्थानमनंतैकभागवृद्धिस्थानमक्कुमप्पुदरिंदं । अवरस्मात् सर्व्वलेश्येगळ जघन्यस्थानदत्तणिदं परस्थाने परस्थानसंक्रमणदोळु अनंतरस्थानदोळु हानिः[2] अनंतगुणहानिये नियमाद् भवति नियमदिमक्कुमेकेदोडे शुक्ललेश्याजघन्यदिंदमनंतरपद्मलेश्यास्थानदोळनंतगुणहानि नियमदिमें तक्कुमंते कृष्णालेश्याजघन्यदिंदमनंतरनीललेश्यास्थानदोळमनंतगुणहानियक्कुमितेल्ला लेश्येगळागमक्कुं ॥

संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा ।
परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥५०६॥

संक्रमणे षट्स्थानानि हानिषु वृद्धिषु भवंति तन्नामानि । परिमाणं च पूर्व्वमुक्तक्रमो भवति श्रुतज्ञाने ॥

ई संक्रमणदोळु हानिगळोळं वृद्धिगळोळं षड्वृद्धिगळुं षड्हानिगळुं मप्पुवु । तद्वृद्धिहानिगळ पेसर्गळुमवर प्रमाणंगळुमं मुन्नं श्रुतज्ञानमार्गणेयोळपेळ्द क्रममेयक्कुमें दरिवुददें तें दोडे अनंत-

---

कृष्णादिसर्वलेश्योत्कृष्टादनन्तरस्वलेश्यास्थानविकल्पे अवरहानिः अनन्तैकभागहानिर्भवति, कुतः ? तदनन्तरस्योर्वङ्कात्मकत्वात् । सर्वलेश्याना जघन्यात्पुनः स्वस्थाने अवरवृद्धिः अनन्तैकभागवृद्धिरेव भवति । कुतः ? तज्जघन्यानामष्टाकरूपत्वात् । सर्वलेश्याजघन्यस्थानात् परस्थानसक्रमणेऽनन्तरस्थाने अनन्तगुणहानिरेव नियमाद्भवति । कुतः ? शुक्ललेश्याजघन्यादनन्तरपद्मलेश्यास्थानवत्कृष्णलेश्याजघन्यादनन्तरनीललेश्यास्थानेऽपि तद्धानेरेव संभवात् । एव सर्वलेश्याना भवति ॥५०५॥

अस्मिन् संक्रमणे हानिषु वृद्धिषु च षड्वृद्धयः षड्ढानयश्च भवन्ति । तासा नामानि प्रमाणानि च पूर्वं

कृष्ण आदि सब लेश्याओंके उत्कृष्ट स्थानमें जितने परिणाम होते हैं उनसे उत्कृष्ट स्थानके समीपवर्ती उसी लेश्याके स्थानमें 'अवरहानि' अर्थात् उत्कृष्ट स्थानसे अनन्त भाग हानिको लिये हुए परिणाम होते हैं क्योंकि उत्कृष्टके अनन्तरवर्ती परिणाम उर्वंकरूप होता है और अनन्त भागकी संदृष्टि उर्वंक है। तथा सब लेश्याओंके जघन्य स्थानसे उसी लेश्यामें उसके समीपवर्ती स्थानमें अनन्तवे भागवृद्धि ही होती है क्योंकि उनके जघन्य अष्टांकरूप होते है। सब लेश्याओंके जघन्य स्थानसे परस्थानसंक्रमण होनेपर उसके अनन्तरवर्ती स्थानमें अनन्त गुणहानि ही नियमसे होती है। क्योंकि शुक्ललेश्याके जघन्य स्थानके अनन्तर जो पद्मलेश्याका उत्कृष्ट स्थान है उसीकी तरह कृष्णलेश्याके जघन्य स्थानके अनन्तर जो नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान है उनमें भी अनन्त गुणहानि ही सम्भव है। इसी प्रकार सब लेश्याओंमे जानना ॥५०५॥

इस संक्रमणमें हानि और वृद्धिमें छह हानियाँ और छह वृद्धियाँ होती हैं। उनके

---

१. म अकस्मात् अवरवृद्धि स. । २. म हानिः हानिये ।

भागमसंख्यातभाग संख्यातभागं संख्यातगुणमसंख्यातगुणमनंतगुणमेंब हानिवृद्धिगळ नामंगळुमुत्कृष्टसंख्यातमुमसंख्यातलोकमुं सर्व्वजीवराशियुमेंब प्रमाणंगळु भागक्रमदोळं गुणितक्रमदोळमिवेयप्पुवेंदु श्रुतज्ञानमार्गणेयोळु पेळ्दं क्रममिल्लियुमरियल्पडुगुमेंबुदु तात्पर्य्यं ॥ नाल्कनेय संक्रमणाधिकारंतिद्दुंदु ॥ अनंतरं कर्म्माधिकारमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं :—

५ श्रुतज्ञानमार्गणाया उक्तक्रमेणैव भवन्ति । तत्र अनन्तभाग असख्यातभाग सख्यातभाग संख्यातगुण असख्यातगुण अनन्तगुणश्चेति नामानि । उत्कृष्टसख्यातमसख्यातलोक सर्वजीवराशिश्चेति भागक्रमे गुणितक्रमे च प्रमाणानि भवन्ति ॥५०६॥ इति सक्रमणाधिकारश्चतुर्थ. ॥ अथ कर्माधिकारं गाथाद्वयेनाह—

नाम और उनका प्रमाण पहले श्रुतज्ञानमार्गणामें जैसा कहा है वैसा ही जानना। उनके नाम अनन्तभाग, असंख्यात भाग, संख्यात भाग, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनन्त १० गुण हैं। उनका प्रमाण जीवराशि, असंख्यात लोक और उत्कृष्ट संख्यात क्रमसे है। यह भाग और गुणेका प्रमाण है ॥५०६॥

विशेषार्थ—अनन्त भाग, असंख्यात भाग, संख्यात भाग, संख्यात गुण, असंख्यात गुण, अनन्त गुण ये छह स्थानोके नाम हैं। इनका प्रमाण गुणकार और भागहारमें पूर्ववत् जानना। पूर्वमें वृद्धिका अनुक्रम कहा है हानिमें उससे उलटा अनुक्रम है। वही कहते है। १५ कपोतलेश्याके जघन्यसे लगाकर कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट पर्यन्त विवक्षा हो तो क्रमसे संक्लेशकी वृद्धि होती है। यदि कृष्णलेश्याके उत्कृष्टसे लगाकर कपोतलेश्याके जघन्य पर्यन्त विवक्षा हो तो संक्लेशकी हानि होती है। तथा पीतके जघन्यसे लगाकर शुक्लके उत्कृष्ट पर्यन्त विवक्षा हो तो क्रमसे विशुद्धिकी वृद्धि होती है। यदि शुक्लके उत्कृष्टसे लगाकर पीतके जघन्य पर्यन्त विवक्षा हो तो क्रमसे विशुद्धिकी हानि होती है। सो वृद्धिमें षट्स्थानपतित वृद्धि और २० हानिमें षट्स्थानपतित हानि जानना।

पूर्वमें कहा था कि सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र बार अनन्त भागवृद्धि होनेपर एक बार अनन्त गुणवृद्धि होती है। उसमें अनन्त गुणवृद्धिरूप स्थान नवीन षट्स्थान पतित वृद्धिका प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है। उसके पहले जो अनन्त भाग वृद्धिरूप स्थान है वह विवक्षित षट्स्थानपतित वृद्धिका अन्तस्थान है। नवीन षट्स्थानपतित वृद्धिके अनन्त २५ गुणवृद्धिरूप प्रथम स्थानके आगे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र अनन्त भागवृद्धिरूप स्थान होते हैं उसके आगे पूर्वोक्त अनुक्रम जानना।

यहाँपर कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट स्थान षट्स्थानपतितका अन्त स्थानरूप होनेसे पूर्वस्थानसे अनन्तभाग वृद्धिरूप है। और कृष्णलेश्याका जघन्य स्थान षट्स्थान पतितका प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है। उसके पूर्व नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान उससे अनन्त गुण वृद्धि- ३० रूप है। तथा कृष्णलेश्याके जघन्यका समीपवर्ती स्थान उस जघन्य स्थानसे अनन्त भाग वृद्धिरूप है। हानिकी अपेक्षा कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट स्थानसे उसके समीपवर्ती स्थान अनन्त भाग हानिको लिये है। कृष्णलेश्याके जघन्य स्थानसे नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान अनन्त गुण हानिको लिये है। इसी प्रकार अन्य स्थानोंमें भी जानना ॥५०६॥

चतुर्थ संक्रमण अधिकार समाप्त हुआ। अब कर्माधिकार दो गाथाओंसे कहते हैं—

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्टारण्णमज्झदेसम्मि ।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति ॥५०७॥

पथिका ये षट्पुरुषाः परिभ्रष्टाः अरण्यमध्यदेशे, फलभरितमेकं वृक्षं प्रेक्ष्य ते विचिंतयंति ॥

णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइ इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ॥५०८॥ ५

निर्म्मूलस्कंधशाखोपशाखाश्छित्वा उच्चित्य पतितानि । खादितुं फलानीति यन्मनसा वचन भवेत्कर्म्म ॥

मुंपेळ्द पथिकरवरुं तोळळुत्तमरण्यमध्यदोळोंदु फलभरितमाकंदवृक्षमं कंडु तत्फलभक्षणोपायमं कृष्णलेश्यादिपरिणामजीवंगळितेंदु चिंतिसिदपरु । मरनं निर्म्मूलमप्पंतु कडिदुं, स्कंधमने कडिदुं, शाखेयने कडिदुं, उपशाखेयने कडिदुं, मरनं नोयिसदे पण्गळने तिरिदु, इल्लि बिद्दिद्दुव्वने मेलुवेमें बितावुदोंदु मनदिनाळापमदा कृष्णलेश्यादि षट्प्रकारद जीवंगळ्गे यथाक्रमदिदं कर्म्ममेंबुदक्कुं । अयिदनेयक कर्म्माधिकारं तीर्द्दुदु ॥ १०

अनतरं लक्षणाधिकारमं गाथानवकदिदं पेळ्दपं ॥

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०९॥ १५

चंडो न मुंचति वैरं भंडनशीलश्च धर्म्मदयारहितः । दुष्टः न चैति वशं लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ॥

चंडः तीव्रकोपनुं न मुंचति वैरं वैरमं बिडुवनल्लं । भंडनशीलश्च युद्धशीळनुं धर्म्मदयारहितः धर्म्ममुं दयेयुमिल्लदनुं दुष्टः दुष्टनुं न चैति वशं वशवर्त्तियप्पनुमल्लं । एतल्लक्षणं इंतप्प लक्षणमनुळं तु

कृष्णाद्येकैकलेश्यायुक्तषट्पथिकाः पुरुषा. पथ. परिभ्रष्टा. अरण्यमध्यदेशे फलभरितमेक वृक्ष दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति । तत्र आद्य —वृक्षं निर्मूल छित्त्वा, अन्य. स्कन्धं छित्त्वा, पर शाखा छित्त्वा, अन्यः उपशाखा छित्त्वा, परो वृक्षावाध फलान्येव छित्त्वा, अन्य. पतितान्येव गृहीत्वा च फलान्यद्मीति यन्मन पूर्वकं वच. तत्क्रमशस्तासा कर्म भवति ॥५०७-५०८॥ इति कर्माधिकार. ॥ अथ लक्षणाधिकार गाथानवकेनाह—

चण्डनस्तीव्रकोपन. वैरं न मुञ्चति, भण्डनशीलश्च युद्धशीलश्च धर्मदयारहित. दुष्ट निर्दयो वश नैति

कृष्ण आदि एक-एक लेश्यावाले छह पथिक मार्ग भूल गये । वनके मध्यमें फलोंसे लदे हुए एक वृक्षको देखकर वे विचार करते है—कृष्णलेश्यावाला विचारता है कि वृक्षको जड़से उखाड़कर इसके फल खाऊँगा । नीललेश्यावाला विचारता है कि इस वृक्षके स्कन्धको काटकर फल खाऊँगा । कपोतलेश्यावाला विचारता है, इसकी बड़ी डाल काटकर फल खाऊँगा । तेजो लेश्यावाला विचारता है इसकी छोटी डाल काटकर फल खाऊँगा । पद्मलेश्यावाला विचारता है वृक्षको हानि न पहुँचाकर केवल फल ही तोड़कर खाऊँगा । शुक्ललेश्यावाला विचारता है गिरे हुए फलोंको ही खाऊँगा । इस प्रकार मनपूर्वक जो वचन होता है वह क्रमसे उन लेश्याओंका कार्य होता है ॥५०७-५०८॥

अब नौ गाथाओंसे लक्षणाधिकार कहते हैं—

तीव्र क्रोधी हो, वैर न छोड़े, लड़ाई-झगड़ा करनेका स्वभाव हो, दया-धर्मसे रहित

मत्ते कृष्णलेश्येयनुळ जीवनक्कुं ॥

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।
माणी माई य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५१०॥

मंदो बुद्धिविहीनो निर्व्विज्ञानी च विषयलोलश्च । मानी मायी च तथा आलस्यश्चैव भेद्यश्च ॥

मंदः स्वच्छंदसंज्ञिकनुं क्रियेगळोळुमंदं मेणु बुद्धिविहीनः वर्त्तमानकार्य्यानभिज्ञनुं । निर्व्विज्ञानी च विज्ञानविहीननुं । विषयलोलश्च विषयंगळोळु स्पर्शादिबाह्येंद्रियात्थंगळोळु लंपटनुं । मानी अहंकारियुं । मायी च कुटिलवृत्तियुं तथा आलस्यश्चैव क्रियेगळोळु कर्त्तव्यंगळोळु कुंठनुं । भेद्यश्च परेरिंदमोळगरियल्पडुवनुमेंदिनितुं कृष्णलेश्येय जीवलक्षणमक्कुं ॥

णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य ।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ॥५११॥

निद्रावंचनाबहुलः धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च । लक्षणमेतद् भणितं समासतो नीललेश्यस्य ॥

निद्राबहुलनु वंचनाबहुलनुं धनधान्यंगळोळु तीव्रसंज्ञेयनुळनुं धनधान्यगळोळुतीव्रसंज्ञेयनुळनु एंदिंती लक्षणं संक्षेपदिंदं नीललेश्ययेयनुळ जीवंगे पेळल्पट्टुदु ॥

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो ।
असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं बहुसो ॥५१२॥

रोषति निंदत्यन्यान् दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः । असूयति परिभवति परं प्रशंसयेदात्मानं बहुशः ।

एतल्लक्षण तु-पुन कृष्णलेश्यस्य भवति ॥५०९॥

मन्द-स्वच्छन्दक्रियासु मन्दो वा, बुद्धिविहीन वर्तमानकार्यानभिज्ञ, निर्विज्ञानी च-विज्ञानरहितश्च विषयलोलश्च-स्पर्शादिबाह्येन्द्रियार्थेषु लम्पटश्च, मानी-अभिमानी, मायी च-कुटिलवृत्तिश्च तथा आलस्यश्चैव-क्रियासु कर्तव्येषु कुण्ठश्चैव भेद्यश्च परेणानवबोध्याभिप्रायश्च एतदपि कृष्णलेश्यस्य लक्षण भवति ॥५१०॥

निद्राबहुल. वञ्चनबहुल. धनधान्येषु तीव्रसज्ञश्च इत्येतल्लक्षण सक्षेपेण नीललेश्यस्य भणितम् ॥५११॥

हो, दुष्ट और निर्दय हो, किसीके वशमें न आता हो, ये कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥५०९॥

स्वच्छन्द अथवा कार्य करनेमें मन्द हो, बुद्धिहीन हो—वर्तमान कार्यको न जानता हो, अज्ञानी हो, स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके विषयमें लम्पट हो, अभिमानी हो, कुटिल वृत्तिवाला मायाचारी हो, कर्तव्य कर्ममें आलसी हो, दूसरोंके द्वारा जिसका अभिप्राय न जाना जा सके ये सब भी कृष्ण लेश्याके लक्षण है ॥५१०॥

बहुत सोता हो, दूसरोंको खूब ठगता हो, धन्य-धान्यकी तीव्र लालसा हो ये संक्षेपसे नीललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥५११॥

पेररं कोपिसुगुं बहुप्रकारदिंदं पेररं निंदिसुगुं। बहुप्रकारदिंदं पेररं दूषिसुगुं। शोकबहुलनुं भयबहुलनुं परनं सैरिसनु परनं परिभविसुगुं तन्न बहुप्रकारदिंदं प्रशंसेयं माडिकोळ्गुं।

ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पिव परं पि मण्णंतो।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि वड्ढिं वा ॥५१३॥

न च विश्वसिति परं सः आत्मानमिव परमपि मन्यमानः। तुष्यत्यभिष्टुवतो न च जानाति हानिं वृद्धिं वा।

सः अंतप्प जीवं परनं नंबुवनल्लं तन्नंतेये एंदु परनं बगेगुं। तन्न पोगळुत्तिरलु संतोषिसुगुं तनगं परगं हानियुमं वृद्धियुमं न जानाति अरियं।

मरणं पत्थेइ रणे देइ सुबहुगंपि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥५१४॥

मरणं प्रार्थयति रणे ददाति सुबहुकमपि स्तुवतः। न गणयति कार्य्याकार्य्यं लक्षणमेतत्कपोतलेश्यस्य।

काळगदोळु मरणमं बयसुगुं स्तुतिमाळ्पंगे बहुधनमनीगुं। कार्य्यमुमनकार्य्यमुमं गणिइसुवनल्लनितिदु कपोतलेश्येयमनुळ्ळंगे लक्षणमक्कुं।

जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥५१५॥

जानाति कार्य्याकार्य्यं सेव्यमसेव्यं च सर्व्वसमदर्शी। दयादानरतश्च मृदुर्ल्लक्षणमेतत्तेजोलेश्यस्य।

परस्मै कुप्यति, बहुधा पर निन्दति, बहुधा परं दुष्यति, च शोकबहुल, भयबहुल, परं न सहते पर परिभवति आत्मान बहुधा प्रशसति ॥५१२॥

स परं न प्रत्येति—न विश्वसिति आत्मानमिव परमपि मन्यमान अभिष्टुवत. परस्योपरि तुष्यति स्वपरयोर्हानिवृद्धी न च—नैव जानाति ॥५१३॥

रणे मरणं प्रार्थयते, स्तुतिं कुर्वतो बहुधन (स्तूयमानस्तु बहुकमपि धन) ददाति, कार्यमकार्यं च न गणयति इत्येतत्कपोतलेश्यस्य लक्षण भवति ॥५१४॥

दूसरोंपर बहुत क्रोध करता हो, दूसरोंकी बहुत निन्दा करता हो, दूसरोंको बहुधा दोष लगाता हो, बहुत शोक करता हो, बहुत डरता हो, दूसरोंको अच्छा न देख सकता हो, अन्यकी निन्दा और अपनी बहुत प्रशंसा करता हो, दूसरोंका विश्वास न करता हो, दूसरोंको भी अपनी ही तरह अविश्वास करनेवाला मानता हो, प्रशंसा करनेवालेपर परम प्रसन्न हो, अपनी और परकी हानि-वृद्धिकी परवाह न करता हो, युद्धमें मरनेको तैयार हो, अपनी स्तुति करनेवालेको बहुत कुछ दे डालता हो, कार्य-अकार्यको न जाने, ये सब कपोतलेश्यावालेके लक्षण है ॥५१२-५१४॥

---

१. म. धनमं कुडुग। २. म. समदंसी। ३. ब. अन्यस्मै रुष्यति।

कार्य्यमुमनकार्य्यमुमं सेव्यमुमनसेव्यमुमनरिगुं। सर्व्वसमदर्शियुं दयेयोळं दानदोळं प्रीतियनुळ्ळनु मनोवचनकायंगळोळु मृदुवुं एंबिदु तेजोलेश्येयनुळ्ळंगे लक्षणमक्कुं।

चागी भद्दो चोक्खो उज्जुवकम्मो य खमदि बहुगंपि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥५१६॥

त्यागी भद्रः सौकर्य्यशीलः उद्युक्तकर्म्मा च क्षमते बहुकमपि साधुगुरुपूजारतो लक्षणमेतत्पद्मलेश्यस्य।

त्यागियुं भद्रपरिणामियुं सौकर्य्यशीलनुं शुभोद्युक्तकर्म्मनुं कष्टानिष्टंगळं पलवं सैरिसुवनुं मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतनुमेंबिदु पद्मलेश्येयनुळ्ळंगे लक्षणमक्कुं।

ण य कुणइ पक्खवायं णवि य णिदाणं समो य सव्वेसि।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥५१७॥

न च करोति पक्षपातं नापि निदानं समश्च सर्व्वेषां न स्तश्च रागद्वेषौ स्नेहोपि च शुक्ललेश्यस्य।

पक्षपातमं माडं। निदानमुमं माडं। सर्व्वजनंगळ्गे समनप्पं। रागद्वेषमेंबेरडुमिष्टानिष्टंगळोळिल्लदनुं। पुत्रकलत्रादिगळोळु स्नेहमुमिल्लदनुं इदु शुक्ललेश्येय जीवंगे लक्षणमक्कुं। आरनेय लक्षणाधिकारं तिद्दुंदु। अनतरं गत्यधिकारमं येकादशगाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपं।

कार्यमकार्य च सेव्यमसेव्य च जानाति, सर्वसमदर्शी दयाया दाने च प्रीतिमान्, मनोवचनकायेषु मृदु इत्येतत्तेजोलेश्यस्य लक्षण भवति ॥५१५॥

त्यागी भद्रपरिणामी सौकर्यशील शुभोद्युक्तकर्मा च कष्टानिष्टोपद्रवान्[3] सहते, मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतिमान् इत्येतत्पद्मलेश्यस्य लक्षण भवति ॥५१६॥

पक्षपात निदान च न करोति सर्वजनाना समानश्च इष्टानिष्टयो रागद्वेषरहित पुत्रमित्रकलत्रादिषु स्नेहरहित इत्येतत् शुक्ललेश्यस्य लक्षण भवति ॥५१७॥ इति लक्षणाधिकार षष्ठ. ॥ अथ गत्यधिकार एकादशभि गाथासूत्रैराह—

कार्य-अकार्यको तथा सेवनीय-असेवनीयको जानता हो, सबको समान रूपसे देखता हो, दया और दानमें प्रीति रखता हो, मन-वचन-कायसे कोमल हो ये तेजोलेश्याके लक्षण हैं ॥५१५॥

त्यागी हो, भद्र परिणामी हो, सरल स्वभावी हो, शुभ कार्यमें उद्यमी हो, कष्ट तथा अनिष्ट उपद्रवोंको सह सकता हो, मुनिजन और गुरुजनकी पूजामे प्रीति रखता हो, ये पद्मलेश्यावालेके लक्षण है ॥५१६॥

न पक्षपात करता हो, न निदान करता हो, सबमें समान भाव रखता हो, इष्ट-अनिष्टमे राग-द्वेप न करता हो, पुत्र, मित्र, स्त्रीमें रागी न हो, ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण है ॥५१७॥

छठा लक्षणाधिकार समाप्त।

---

१ म गलोलेल्लवु। २ म °ल्ल यिदु। ३. ब °नपि क्षमते।

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥५१८॥

लेश्यानां खल्वंशाः षड्विंशतिर्भवंति तत्र मध्यमगाः । आयुर्बंधनयोग्याः अष्टाऽष्टापकर्ष-कालभवाः ।

शिला भेदसमान	पृथ्वी भेदसमान	धूळीरेखासमान	जल रेखासमान
उ ०००००० ज	उ ००००००००० ज	उ ०००००००००० ज	उ ०००००० ज
	कउ	तेउ	
कृ १	१।२।३।४।५।६।	६।५।४।३।२।१।	शु १
० ।१	१।१।१।४।४।४	४।१।१।१।०।०।	०
	२।	३	
	३	२० श ८	

आरुं लेश्येगळगे अंशंगळनितुं कूडि षड्विंशतिगळप्पुवु २६ । अदें तेंदोडे कृष्णाद्यशुभलेश्या-त्रयक्क जघन्यमध्यमोत्कृष्टंगळु प्रत्येकं मूरुमूरागलोंभतंशंगळप्पुवु । शुक्ललेश्यादि शुभलेश्यात्रय-क्कमंतेयोंभतंशंगळप्पुवु–। मा कपोतलेश्येय उत्कृष्टांशदिंदं मुंदे तेजोलेश्येय उत्कृष्टांशदिंदं पिंदे कषायोदयस्थानंगळ नडु

लेश्या
४।५।६।६।५।४
४।४।४।४।१।१
स्थिति

वणारुं लेश्येगल यथासंभवंगळायुर्बंधयोग्यमध्यमां-

षड्लेश्यानामशा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादष्टादश । पुन. कपोतलेश्योत्कृष्टाशादग्रे तेजोलेश्योत्कृष्टाशात्प्राक्-कषायोदयस्थानेषु मध्यमाशा आयुर्बन्धयोग्या अष्टौ । एव षड्विंशतिर्भवन्ति । तेषु—

शिला	पृथ्वी	धूलि	जल
उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ०००००० ज
कृ १	१ २ ३ ४ ५ ६	६ ५ ४ ३ २ १	शु १
० १	१ १ १ ४ ४ ४	४ १ १ १ ० ०	०
	२	३ ०	
	३	२	
	० ० ० ०	० ० ० ०	
	मध्यमाशाः		

मध्यमा अष्टौ अष्टापकर्षकाले संभवन्ति । तद्यथा–भुज्यमानायुरपकृष्यापकृष्य परभवायुर्बध्यते इत्यपकर्षः । अपकर्षणा[1] स्वरूपमुच्यते-कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याणा भुज्यमानायुर्जघन्यमध्यमोत्कृष्ट विवक्षितमिद ६५६१ अत्र

छह लेश्याओंके उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्यके भेदसे अठारह अंश होते हैं। पुनः कपोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे आगे और तेजोलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे पहले कषायके उदयस्थानोंमें आठ मध्यम अंश हैं जो आयुबन्धके योग्य होते हैं। इस प्रकार छब्बीस अंश होते हैं। आठ मध्यम अंश अपकर्ष कालमें होते हैं। जो इस प्रकार हैं—भुज्यमान अर्थात् वर्तमानमें जिसे भोग रहे हैं उस आयुका अपकर्षण कर-करके परभवकी आयुका बन्ध

१. ब. तत्स्वरूप ।

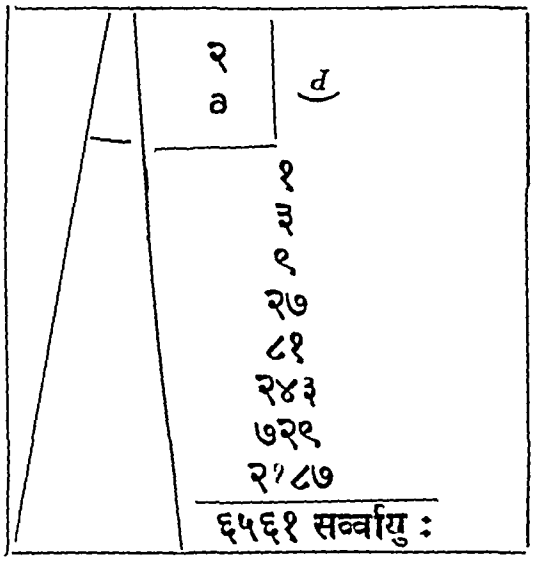
शंगळे दु । ८ । अंतु लेश्यांशंगळनितुं षड्विंशत्यंशगलप्पुववरोळा मध्यमांशगळप्पायुर्ब्बंधयोग्यांशंगळे दुमष्टापकर्षकालसंभवंगळप्पुवदं तें दोडे भुज्यमानायुष्यमनपकर्षिसियपकर्षिसि परायुष्यमं कट्टुवुदनपकर्षमें बुदु पूर्वायुरपकृष्यापकृष्यैव परायुर्ब्बध्यत इति अपकर्षः एंदिती निरुक्तिलक्षणसिद्धमप्पुदरिंदमी येटुमपकर्षंगळ्गे स्वरूपमे तें दोडोव्वं कर्म्मभूमिजं मनुष्यनागल्मेणित्यंचनागलु भुज्यमानायुष्यं जघन्यमध्यमोत्कृष्टमं विवक्षितमनदं ६५६१ त्रिभागं माडिदेकभागद २१८७ प्रथमसमयं सोदल्गोंडंतर्म्मुहुर्त्तकालमायुबंधयोग्यमक्कुमल्लि परभवायुष्यमं कट्टुगुमल्लि कट्टिदोडे अदं त्रिभागं माडिदेकभागद ७२९ प्रथमकालदंतर्म्मुहूतदोळु बंधमिल्लदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागद २४३ प्रथमकालांतर्म्मुहूर्त्तदोळ्कट्टदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागद ८१ प्रथमकालदोळ्बंधमिल्लिदोडदं त्रिभाग माडिदेकभागद २७ प्रथमसमयदोळु परभवायुष्यमं कट्टल्मोदल्गोळ्ळदिद्दोंडद त्रिभाग माडिदेकभागद ९ प्रथमांतर्मुहूर्त्तक्के परभवायुष्यमं कट्टदोडदं त्रिभागं माडिदेकभागदोळु ३ । प्रथमकालदोळ्कट्टदिद्दोंडदं त्रिभागं माडिदेकभागद १ प्रथमकालदोळु परभवायुष्यमं कट्टुगुमितुंटेयपकर्षंगळुप्पुवा एटनेय अपकर्षदोळायुर्ब्बंधमक्कुमेंब नियममुमिल्लं । मत्तपकर्षमुमिल्लमंतादोडायुर्बंधमें तक्कुमे दोडे आ आ सक्षेपाद्धे भुज्यमानायुष्यदोळुळिदुदें बागळ्परभवायुष्मंतर्म्मुहूर्त्तमात्रसमयप्रबद्धगळनियमदिदं कट्टि समाप्तमागले वेळ्कुमे बिदु नियममक्कुमे दरिवुदु । आ संक्षेपाद्धि यें बदुं भुज्यमानायुष्यद कडेयोळावल्यसख्यातैकभागमक्कुं ।

भागद्वयेऽतिक्रान्ते तृतीयभागस्य २१८७ प्रथमान्तर्मुहूर्त परभवायुर्बन्धयोग्य , तत्र न बद्धं तदा, तदेकभागतृतीयभागस्य ७२९ प्रथमान्तर्मुहूर्त । तत्रापि न बद्धं तदा तदेकभागतृतीयभागस्य २४३ प्रथमान्तर्मुहूर्त । एवमग्रे नेतव्यमष्टवार यावत् । इत्यष्टौवापकर्षा । नाष्टमापकर्षेऽप्यायुर्बन्धनियम , नाप्यन्योऽपकर्ष तर्हि आयुर्बन्ध कथं ? असक्षेपाद्धा भुज्यमानायुषोऽन्त्यावल्यसख्येयभाग तस्मिन्नवशिष्टे प्रागेव अन्तर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् परभवायुर्नियमेन बद्ध्वा समाप्नोतीति नियमो ज्ञातव्य —

होता है इसे ही अपकर्ष कहते हैं। अपकर्षोंका स्वरूप कहते हैं—किसी कर्मभूमिके तिर्यंच या मनुष्योंकी भुज्यमान आयु जघन्य अथवा मध्यम अथवा उत्कृष्ट ६५६१ पैंसठ सौ इकसठ वर्ष है। इसमें-से दो भाग बीतनेपर तृतीय भाग इक्कीस सौ सत्तासी २१८७ का प्रथम अन्तर्मुहूर्त परभवकी आयुबन्धके योग्य है। यदि उसमें बन्ध नहीं हुआ तो उस इक्कीस सौ सत्तासीके दो भाग बीतनेपर तृतीय भाग सात सौ उनतीस ७२९ का प्रथम अन्तर्मुहूर्त परभवकी आयुबन्धके योग्य होता है। उसमें भी यदि बन्ध नहीं हुआ तो सात सौ उनतीसमें-से दो भाग बीतनेपर तीसरे भाग दो सौ तैंतालीसका प्रथम अन्तर्मुहूर्त आयुबन्धके योग्य है। इसी प्रकार आगे-आगे आठ बार तक ले जाना चाहिए। इस प्रकार आठ ही अपकर्ष होते है। आठव अपकर्षमे भी आयुबन्ध नियमसे नही होता और अन्य अपकर्ष भी नहीं होता। तब आयुबन्ध कैसे होता है? उत्तर है–'आसंक्षेपाद्धा' अर्थात् भुज्यमान आयुके अन्तिम आवलीका असंख्यातवाँ भाग अवशेष रहनेसे पहले ही अन्तर्मुहूर्त मात्र समयप्रबद्धोंको लेकर परभवकी आयु नियमसे बाँधकर समाप्त करता है यह नियम जानना। यहाँ विशेष

---

१ व °कर्षेणायु° ।



इल्लि बिशेषनिर्णयं माडल्पडुगुमदें तें दोडे आवनोव्वं सोपक्रमायुष्यनप्प जीवं सोपक्रमायुष्यनें दें बुदेनें दोडे कदलीघातायुष्यमनुळ्ळनें बदर्त्थमदु कारणमागि देवनारकरुं भोगभूमिजरुमनुपक्रमायुष्यरें बुदर्त्थं । आ सोपक्रमायुष्यजीवंगळु तंतम्म भुज्यमानायुष्यस्थितियोळु द्वित्रिभागमतिक्रांतमागुत्तिरलु शेषत्रिभागद प्रथमसमयं मोदल्गोंडु अंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं परभवायुर्ब्बंधप्रायोग्यरप्परु । मुंपेळ्दा संक्षेपाद्धिपर्य्यंतमल्लि आयुस्तोकबंधाद्धा कालाभ्यंतरदोळायुर्बंधप्रायोग्यपरिणामंगळिंद केलवु जीवंगळु अष्टवारंगळं केलवु जीवंगळु सप्तवारंगळं केलवु जीवंगळु षड्वारंगळं केलवु जीवंगळु पंचवारंगळं केलवु जीवंगळ् चतुर्व्वारंगळं केलवु जीवंगळु त्रिवारंगळं केलवु जीवगळु द्विवारंगळं केलवु जीवंगळेकवारंगळं परिणमिसुववेकें दोडे स्वभावदिंदमेतद्बंधप्रायोग्यपरिणमनमा जीवंगळगे कारणांतरनिरपेक्षमें बुदर्त्थं । संदृष्टिरचने ॥

२
०
१
३
९
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

अत्र विशेषनिर्णयः क्रियते । सोपक्रमायुष्काः कदलीघातायुष्काः; तेन देवनारकभोगभूमिजा अनुपक्रमायुष्का भवन्ति । सोपक्रमायुष्का उक्तरीत्या आयुर्बध्नन्ति । तत्रायुस्तोकबन्धाद्धाभ्यन्तरे तद्योग्यपरिणामैः केचिदष्टवारं केचित्सप्तवारं केचित् षड्वार केचित्पञ्चवारं केचित् चतुर्वारं केचित्त्रिवारं केचिद् द्विवारं केचिदेकवारं परिणमन्ति । स्वभावादेव तद्बन्धप्रायोग्यपरिणमनं जीवाना कारणान्तरनिरपेक्षमित्यर्थः । सदृष्टिः—

निर्णय करते है । जिनका विषादिके द्वारा कदलीघातमरण होता है वे सोपक्रम आयुवाले होते हैं । अतः देव, नारकी और भोगभूमिया निरुपक्रम आयुवाले होते हैं । सोपक्रम आयुवाले उक्त रीतिसे आयुबन्ध करते है । उन अपकर्षोंमें आयुबन्धके कालमें आयुबन्धके योग्य परिणामोंसे कोई आठ बार, कोई सात बार, कोई छह बार, कोई पाँच बार, कोई चार बार, कोई तीन बार, कोई दो बार, कोई एक बार परिणमन करते हैं । अपकर्ष कालमें ही जीवोंके आयुबन्धके योग्य परिणमन स्वभावसे होता है । उसका कोई अन्य कारण नहीं है । आयुके

अष्टापकर्ष							
ज०० उ ८।८।८	सप्तापकर्ष						
ज०० उ ८।७।७	ज०० उ ७।७।७	षडपकर्ष					
ज०० उ ८।६।६	ज०० उ ७।६।६।	ज०० उ ६।६।६।	पंचापकर्ष				
ज०० उ ८।५।५।	ज०० उ ७।५।५।	ज०० उ ६।५।५।	ज०० उ ५।५।५।	चतुरपकर्ष			
ज०० उ ८।४।४।	ज०० उ ७।४।४।	ज०० उ ६।४।४।	ज०० उ ५।४।४।	ज०० उ ४।४।४।	त्रिकापकर्ष		
ज०० उ ८।३।३।	ज०० उ ७।३।३।	ज०० उ ६।३।३।	ज०० उ ५।३।३।	ज०० उ ४।३।३।	ज०० उ ३।३।३।	द्विकापकर्ष	
ज०० उ ८।२।२।	ज०० उ ७।२।२।	ज०० उ ६।२।२।	ज०० उ ५।२।२।	ज०० उ ४।२।२।	ज०० उ ३।२।२।	ज०० उ २।२।२।	एकापकर्ष
ज०० उ ८।१।१	ज०० उ ७।१।१।	ज०० उ ६।१।१।	ज०० उ ५।१।१	ज०० उ ४।१।१	ज०० उ ३।१।१	ज०० उ २।१।१	ज०० उ १।१।१

तृतीयभागप्रथमसमयदोळाक्कें लंबरिंद परभवायुष्यबधप्रारब्धमादोडवर्गळंतर्म्मुहूर्त्तदोळे बंधमं निष्ठापिसुवरु अल्लदोडे द्वितीयवारदोळु सर्वायुष्यदोळु नवमांशमवशेषमादल्लियुं परभवायुबंधप्रायोग्यरप्परु। अथवा तृतीयवारदोळु सर्वायुस्थितियोळु सप्तविंशतिभागावशेषमादल्लियुं परभवायुब्बंधप्रायोग्यरप्परितु शेषत्रिभागत्रिभागावशेषमागुत्तिरलु परभवायुब्बंधप्रायोग्यरप्परेंदितु नड-

अष्टापकर्ष ज उ	सप्तापकर्ष ज उ	षष्ठापकर्ष ज उ	पचापकर्ष ज उ	चतुरपकर्ष ज उ	त्र्यपकर्ष ज उ	द्व्यपकर्ष ज उ	एकापकर्ष ज उ
८ ८ ८	७ ७ ७	६ ६ ६	५ ५ ५	४ ४ ४	३ ३ ३	२ २ २	१ १ १
८ ७ ७	७ ६ ६	६ ५ ५	५ ४ ४	४ ३ ३	३ २ २	२ १ १	
८ ६ ६	७ ५ ५	६ ४ ४	५ ३ ३	४ २ २	३ १ १		
८ ५ ५	७ ४ ४	६ ३ ३	५ २ २	४ १ १			
८ ४ ४	७ ३ ३	६ २ २	५ १ १				
८ ३ ३	७ २ २	६ १ १					
८ २ २	७ १ १						
८ १ १							

२५ तृतीयभागप्रथमसमये यै. परभवायुर्बन्ध ते अन्तर्मुहूर्ते एव बन्ध निष्ठापयन्ति। अथवा द्वितीयवारे सर्वायुर्नवमाशावशेषेऽपि तद्बन्धप्रायोग्या भवन्ति। अथवा तृतीयवारे सर्वायु सप्तविंशतिभागावशेषेऽपि प्रायोग्या

तीसरे भागके प्रथम समयमें जिन्होंने परभवकी आयुके बन्धका प्रारम्भ किया वे अन्तर्मुहूर्त-में ही बन्धको पूर्ण करते हैं। अथवा दूसरी बार पूरी आयुका नौवाँ भाग शेष रहनेपर भी आयुबन्धके योग्य होते हैं। अथवा तीसरी बार पूरी आयुका सत्ताईसवाँ भाग शेष रहनेपर ३० भी आयुबन्धके योग्य होते हैं। इस प्रकार आठ अपकर्ष पर्यन्त जानना। किन्तु प्रत्येक

सल्पडुवुदु। यावदष्टमापकर्षमन्नेवरं त्रिभागावशेषमागुत्तिरलायुष्यमं कट्टुवरें दे बेकांतमिल्लें दु दु आ आ एडेयोळु परभवायुब्बंधप्रायोग्यरप्परें दु पेळल्पट्टुदक्कुं। निरुपक्रमायुष्यरुगळनपवर्त्तितायुष्यरु मत्ते देवनारकरु भुज्यमानायुष्य षण्मासावशेषमागुत्तिरलु परभवायुबंधप्रायोग्यरप्परुमल्लियुमष्टापकर्षगळप्पुवु। समयाधिकपूर्व्वकोटियं मोदल्माडि त्रिपलितोपमायुष्यपर्य्यंतमादसंख्यातासंख्यातवर्षायुष्यरुगळप्प तिर्य्यग्मनुष्यभोगभूमिजरुगळुं निरुपक्रमायुष्यरें दु कैकोळ्वुदु।

इल्लि अष्टापकर्षमं माडि परभवायुबंधमं माळ्प जीवंगळु सर्वतः स्तोकंगळु अवं नोडळु सप्तापकर्षंगळिंदमायुबंधमंमाळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु षडपकर्षंगळिंदमायुब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु पंचापकर्षंगळिंदमायुब्बंधमं माळ्प जीवंगळु सख्यातगुणंगळवं नोडलु चतुरपकर्षंगळिंदमायुब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु त्र्यपकर्षंगळिंदमायुब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळवं नोडलु द्व्यपकर्षंगळिंदमायुब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळु अवं नोडलेकापकर्षंदिंदमायुब्बंधमं माळ्प जीवंगळु संख्यातगुणंगळप्पुववक्के संदृष्टिरचने।

१३–१–१	१३–१–१	१३–१–१	१३–१–१	१३–१–१	१३–१–१	१३–१–१	१३–१–१
१	१ १	१ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १ १	१ १ १ १ १ १ १ १
१	२	३	४	५	६	७	८

भवन्ति। एवमष्टमापकर्षपर्यन्त ज्ञातव्य। [1]त्रिभागत्रिभागावशेषे सत्यायुर्बध्नन्ति एव इत्येकान्तो नास्ति तत्र तत्र परभवायुर्बन्ध प्रायोग्या भवन्तीति कथित भवति। निरुपक्रमायुष्काः अनपवर्तितायुष्का देवनारका भुज्यमानायुषि षड्मासावशेषे सति परभवायुर्बन्धप्रायोग्या भवन्ति। अत्राप्यष्टापकर्षा. स्यु। समयाधिकपूर्वकोटिप्रभृतित्रिपलितोपमपर्यन्त सख्यातासख्यातवर्षायुष्कभोगभूमितिर्यग्मनुष्या अपि निरुपक्रमायुष्का इति ग्राह्यम्। अत्र च अष्टापकर्षे परभवायुर्बन्ध कुर्वाणा जीवा. सर्वत. स्तोकाः, तत. सप्तापकर्षैः कुर्वाणा. सख्यातगुणा। तत.

विभागके शेष रहनेपर आयुबन्ध करते ही है ऐसा एकान्त नही है। हाँ, त्रिभागोंमें आयुबन्धके योग्य होते है। निरुपक्रम आयुवाले देव और नारकी भुज्यमान आयुमें छह मास शेष रहनेपर परभवकी आयुबन्धके योग्य होते हैं। यहाँ भी छह महीनेमें त्रिभाग करके आठ अपकर्ष होते है। उनमें ही आयुबन्ध होता है। एक समय अधिक एक पूर्व कोटिसे लेकर तीन पल्य पर्यन्त संख्यात और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिया, तिर्यंच और मनुष्य भी निरुपक्रम आयुवाले होते हैं। इनके आयुका नौ मास शेष रहनेपर आठ अपकर्षके द्वारा परभवके आयुका बन्ध होनेके योग्य है। इतना ध्यानमें रखना चाहिए कि जिस गतिसम्बन्धी आयुका बन्ध प्रथम अपकर्षमें होता है पीछे यदि द्वितीयादि अपकर्षोंमें आयुका बन्ध होता है तो उसी गतिसम्बन्धी आयुका बन्ध होता है। यदि प्रथम अपकर्षमें आयुका बन्ध नहीं होता तो दूसरे अपकर्षमें जिस-किसी आयुका बन्ध होता है, तीसरे अपकर्षमें यदि बन्ध हो तो उसी आयुका बन्ध होता है। इस प्रकार कितने ही जीवोंके आयुका बन्ध एक ही अपकर्षमें होता है, कितनोंके दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात या आठ अपकर्षोंमें होता है। यहाँ आठ अपकर्षोंके द्वारा परभवकी आयुका बन्ध करनेवाले जीव सबसे थोड़े होते

१. ब. त्रिभागावशेषे।

मत्तेंटपकर्षंगळिदमायुर्बंधमं माळ्पंगे अष्टमापकर्षदोळायुर्बंधाद्धि जघन्यं स्तोकमक्कु।२१। मदरुत्कृष्टबंधाद्धि विशेषाधिकमक्कु २१।५ मदं नोडलं मत्तेयुमष्टापकर्षंगळिदमायुब्बंधम
४
माळपंगे सप्तमापकर्षदोळायुब्बंध जघन्याद्धि संख्यातगुणमक्कु २१५४ मदं नोडलदरुत्कृष्टबंधाद्धा
४
विशेषाधिकमक्कु २१।५।४।५। मदं नोडलु सप्तापकर्षदोळायुब्बंधमं माळ्पगे सप्तमापकर्ष-
४।४
दोळायुब्बंधजघन्याद्धि संख्यातगुणमकु २१।५।४।५।४ मदं नोडलदरुत्कृष्टं विशेषाधिकमक्कु
४।४
२१।५।४।५।४।५ मदं नोडलुमष्टापकर्षंगळिद मायुब्बंधमं माळ्पन षष्ठापकर्षदोळायुर्बंधाद्धि
४।४।४
जघन्यं संख्यातगुणमक्कु २७।५।४५।४।५४ मदं नोडलदरुत्कृष्टं विशेषाधिकमक्कु
४४४
२१।५।४।५।४।५।४।५ मदं नोडलु सप्तापकर्षंगळिदमायुर्बंधमं माळ्पन षष्ठापकर्षदोळु
४४४४

षडपकर्षे. कुर्वाणा सख्यातगुणा । तत पञ्चापकर्षे कुर्वाणा संख्यातगुणा । ततश्चतुरपकर्षे कुर्वाणा संख्यातगुणा । ततस्त्र्यपकर्षे कुर्वाणा. सख्यातगुणा । ततो द्व्यपकर्षाभ्या कुर्वाणा संख्यातगुणा. । तत. एकापकर्षेण कुर्वाणा. सख्यातगुणा । सदृष्टि —

१३—१—१	१३—१—१	१३—१—१	१३—१-१	३१—१—१	१३—१—१	१३—१—१	१३—१—१
१११११११११	१११११११११	१११११११	१११११११	१११११	१११११	१११	१
८	७	६	५	४	३	२	१

पुनरष्टापकर्षैरायुर्बध्नतोऽष्टमापकर्षे आयुर्बन्धाद्धाजघन्य स्तोक २१। ततस्तदुत्कृष्ट विशेषाधिक २१५।
४
ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नत सप्तमापकर्षे आयुर्बन्धाद्धाजघन्य संख्यातगुणं २१।५४। ततस्तदुत्कृष्टं विशेषा-
४
धिक २१।५।४।५। तत सप्तापकर्षैरायुर्बध्नत सप्तमापकर्षे आयुर्बन्धाद्धा जघन्यं सख्यातगुण २१।५।४।५।४
४।४ ४।४
ततस्तदुत्कृष्ट विशेषाधिक २१।५।४।५।४।५। ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नत षष्ठापकर्षे आयुर्बन्धाद्धा
४।४।४

हैं। सात अपकर्षोंमे आयुबन्ध करनेवाले उनसे संख्यात गुणे है। छह अपकर्षोंमे करनेवाले उनसे भी संख्यातगुणे हैं। पाँच अपकर्षोंमे करनेवाले उनसे भी संख्यातगुणे है। चार अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। तीन अपकर्षोंमें करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। दो अपकर्षोंमे करनेवाले उनसे संख्यातगुणे है और एक अपकर्षमे करनेवाले उनसे संख्यातगुणे हैं। आठ अपकर्षोंके द्वारा आयुका बन्ध करनेवाले जीवके आठवे अपकर्षमे आयुबन्धका जघन्यकाल थोड़ा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। आठ अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके सातवे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे सात अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके सातवें अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे आठ अपकर्षों

आयुब्बंधमं माळ्प जघन्याद्धि संख्यातगुणमक्कु २१।५।४।५।४।५।४।५।४ मदं
४।४।४।४
नोडलदरुत्कृष्टं विशेषाधिकमक्कु २१।५।४।५।४।५।४।५।४५ मदं नोडलुं षडपकर्ष-
४४४४४
गळिदमायुब्बंधमं माळ्पन षष्ठापकर्षदोळायुबंधम माळ्पंगे जघन्यबंधाद्धि संख्यातगुणमक्कुं
२१।५।४।५।४।५।४।५।४।५।४ मदं नोडलदरुत्कृष्टबंधाद्धि विशेषाधिकमक्कु—
४४४४४
२१।५।४।५।४।५।४।५।४।५।४।५ मी प्रकारदिंदमेकापकर्षदुत्कृष्टपर्य्यंतं
४।४।४।४।४।४। ५

नडसल्पडुगुमंतु नडसुत्तिरलु आयुबंधाद्धि विकल्पंगळेप्पत्तेरडप्पुवु—। ७२। मितायुब्बंधयोग्यंगळु

जघन्य सख्यातगुण २१।५।४।५।४।५।४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २१।५।४।५।४।५।४।५। ततः
४।४।४ ४।४।४।४

सप्तापकर्षैरायुर्बध्नत षष्ठापकर्षे आयुर्बन्धाद्धा जघन्यं सख्यातगुण २१।५।४।५।४।५।४।५।४
४।४।४।४

ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिक—२१।५।४।५।४।५।४।५।४।५ तत. षडपकर्षैरायुर्बध्नत षष्ठापकर्षे
४।४।४।४।४

आयुर्बन्धाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं—२१।५।४।५।४।५।४।५।४।५।४ ततस्तदुत्कृष्ट विशेषा- १०
४।४।४।४।४

द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके छठे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे सात अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके छठे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उसका उत्कृष्ट काल विशेष अधिक है। उससे छह अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्ध करनेवाले जीवके छठे अपकर्षमें आयुबन्धका जघन्य काल संख्यातगुणा है। उससे उत्कृष्ट काल विशेष १५ अधिक है। इस प्रकार एक अपकर्षके उत्कृष्ट पर्यन्त ले जानेपर बहत्तर ७२ विकल्प होते है ॥५१८॥

विशेषार्थ—ऊपर टीकामें इन बहत्तर भेदोंकी रचना दिखायी है। उसमें आठ अपकर्षोंके द्वारा आयुबन्धकी रचनामें पहली पंक्तिके कोठोंमें जो आठ-आठका अंक रखा है वह यह बतलाता है कि यहाँ आठ अपकर्षोंके द्वारा आयु बाँधनेवालोंका ग्रहण जानना। दूसरी- २० तीसरी पंक्तिमें जो आठसे लेकर एक तक अंक लिखे है, उनसे यह बतलाया है कि आठ अपकर्षोंके द्वारा बन्ध करनेवाले जीवके आठवें आदि अपकर्षोंका ग्रहण किया गया है। जिसमें-से दूसरी पंक्तिमें जघन्य कालको लेकर और तीसरी पंक्तिमें उत्कृष्ट कालको लेकर ग्रहण किया है। इसी प्रकार सातसे लेकर एक अपकर्ष तक आयुबन्धकी रचनाका अर्थ जानना। आठों रचनाओंके दूसरी और तीसरी पंक्तिके सब कोठे जिनके ऊपर ज और उ २५ लिखा है बहत्तर है। इन बहत्तर स्थानोंमें आयुबन्धके कालका अल्पबहुत्व इस प्रकार जानना। विवक्षित जघन्यमें संख्यातका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उतना विशेषका प्रमाण जानना। उसको जघन्यमें जोड़नेपर उत्कृष्टका प्रमाण होता है, उत्कृष्टसे आगेका जघन्य संख्यातगुणा जानना। सामान्यसे सबका काल अन्तर्मुहूर्त है।

लेश्यामध्यमांशंगळे टप्पुवष्टापकर्षंगळिनवरुत्पत्तिक्रममं पेळ्दनंतरं शेषाष्टादशांशंगळु चतुर्गति-गमनकारणंगळे दु पेळ्दपं ।

सेसट्ठारस अंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति ।
सुक्कुक्कस्ससमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥५१९॥

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवंति । शुक्लोत्कृष्टांशमृताः सर्व्वार्त्थं यांति खलु जीवाः ।

आयुर्ब्बंधनयोग्यलेश्यामध्यमांशंगळनेटं कळेदुळिदष्टादशलेश्याशंगळु चतुर्गतिगमनकारणं गळप्पुववरोळु शुक्ललेश्योत्कृष्टांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सर्व्वार्त्थसिद्धीद्रकदोळु यांति पुट्टुवरु खलु नियमदिंदं ।

अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।
आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥५२०॥

अवरांशमृता भवंति शतारद्विके मध्यमांशेन मृताः । आनतकल्पादुपरि सर्व्वार्त्थादिमके भवंति ।

शुक्ललेश्या जघन्यांशदिंदं मृतराद जीवंगळु शतारसहस्रारकल्पद्विकदोळु भवंति पुट्टुवरु । शुक्ललेश्यामध्यमांशदिंद मृतराद जीवगळु आनतकल्पदिंदं मेले सर्व्वार्त्थसिद्धीद्रकक्कादियागिर्द्द विजयादिविमानावसानमादुदवरोळु यथासंभवमागि भवंति पुट्टुवरु ।

पम्मुक्कस्ससमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।
अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिंदं ॥५२१॥

पद्मोत्कृष्टांशमृताः जीवा उपयाति खलु सहस्रार । अवराशमृता जीवाः सनत्कुमारं च माहेंद्रं ॥

धिक २१ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ एवमेकापकर्षस्योत्कृष्टपर्यन्त नीते द्वासप्तति-
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४
विकल्पा भवन्ति ७२ एवमायुर्बन्धयोग्ये लेश्यामध्यमाशानामष्टानामष्टापकर्षैरुत्पत्तिक्रम उक्त. ॥५१८॥

तेभ्यो मध्यमाशेभ्य शेषा अष्टादशाशा चतुर्गतिगमनकरणानि भवन्ति । तेषु मध्ये शुक्ललेश्योत्कृष्टाशेन मृता जीवा सर्वार्थसिद्धीन्द्रके यान्ति—उत्पद्यन्ते खलु नियमेन ॥५१९॥

शुक्ललेश्याजघन्याशेन मृता जीवा शतारसहस्रारकल्पद्विके भवन्ति—उत्पद्यन्ते । शुक्ललेश्यामध्यमांशेन मृता जीवा आनतकल्पादुपरिसर्वार्थसिद्धीन्द्रकस्यादिमविजयादिविमानपर्यन्तेषु यथासभवमुत्पद्यन्ते ॥५२०॥

इस प्रकार आयुबन्धके योग्य लेश्याके आठ मध्यम अशोंकी आठ अपकर्षोंके द्वारा उत्पत्तिका क्रम कहा ॥५१८॥

उन मध्यम अंशोंसे शेष रहे अठारह अंश चारों गतियोंमें गमनके कारण होते हैं। उनमे-से शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमानमें नियम-से उत्पन्न होते है ॥५१९॥

शुक्ललेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव शतार सहस्रार कल्पोंमें उत्पन्न होते हैं। शुक्ल-लेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव आनतकल्पसे ऊपर और सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रकके विजयादि विमान पर्यन्त यथासम्भव उत्पन्न होते है ॥५२०॥

पद्मलेश्योत्कृष्टांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सहस्रारमुपयांति सहस्रारकल्पदोळु पुट्टुवरु खलु स्फुटमागि। पद्मलेश्याजघन्यांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सनत्कुमारं च माहेंद्रमुपयांति सनत्कुमार कल्पदोलं माहेंद्रकल्पदोलं पुट्टुवरु।

मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥५२२॥

मध्यमांशेन मृताः तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः सानत्कुमारमाहेंद्रांतिमचक्रेंद्रकश्रेण्यां।

पद्मलेश्यामध्यमांशदिंदं मृतराद जीवंगळु तन्मध्यं ंयांति सहस्रारकल्पदिंदं केळगे सानुत्कुमारमाहेंद्रकल्पंगळिंदं मेले यथासंभवरागि पुट्टुवरु। तेजोलेश्योत्कृष्टांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पंगळ चरमपटलचक्रेंद्रकप्रणिधिगतश्रेणीबद्धविमानंगळोळ्पुट्टुवरु।

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडुम्मि सेढिम्मि।
मज्झिम अंसेण मुदा विमलविमानादिबलभद्दे ॥५२३॥

अवरांशमृताः सौधर्म्मैशानादिभूतऋत्वींद्रके श्रेण्यां। मध्यमांशेन मृताः विमलविमानादिबलभद्रे।

तेजोलेश्याजघन्यांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सौधर्मैशानकल्पंगळादिभूतऋत्वींद्रकदोळं श्रेणीबद्धदोळं पुट्टुवरु। तेजोलेश्यामध्यमांशदिंदं मृतराद जीवंगलु सौधर्मैशानकल्पद्वितीयपटलदिंद्रकं विमलविमानमदु मोदलागि सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पंगळ द्विचरमपटलदिंद्रकं बलभद्रविमानमक्कु मल्लि पर्य्यंतं पुट्टुवरु।

पद्मलेश्योत्कृष्टाशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पमुपयान्ति खलु स्फुटम्। पद्मलेश्याजघन्याशेन मृता जीवाः सानत्कुमारं माहेन्द्रं चोपयान्ति ॥५२१॥

पद्मलेश्यामध्यमाशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पादधः सानत्कुमारमाहेन्द्रद्वयादुपरि यथासंभवमुत्पद्यन्ते। तेजोलेश्योत्कृष्टाशेन मृता जीवा सानत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोश्चरमपटलचक्रेन्द्रकप्रणिधिगतश्रेणीबद्धविमानेषूत्पद्यन्ते ॥५२२॥

तेजोलेश्याजघन्याशेन मृता जीवाः सौधर्मैशानकल्पयोरादिभूतऋत्विन्द्रके श्रेणीबद्धे चोत्पद्यन्ते। तेजोलेश्यामध्यमाशेन मृता जीवा सौधर्मैशानकल्पद्वितीयपटलस्येन्द्रक विमलनामकमादिं कृत्वा सानत्कुमारमाहेन्द्रद्विचरमपटलस्येन्द्रकं बलभद्रनामक तत्पर्यन्तम् उत्पद्यन्ते ॥५२३॥

पद्मलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सहस्रारकल्पमें उत्पन्न होते हैं। पद्मलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें उत्पन्न होते हैं ॥५२१॥

पद्मलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव सहस्रारकल्पसे नीचे और सानत्कुमार माहेन्द्रसे ऊपर यथासम्भव उत्पन्न होते है। तेजोलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सानत्कुमार माहेन्द्र कल्पके अन्तिम पटल चक्रेन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंमें उत्पन्न होते है ॥५२२॥

तेजोलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव सौधर्म ऐशान कल्पके प्रथम ऋतु नामक इन्द्रकके श्रेणिबद्ध विमानोंमें उत्पन्न होते है। तेजोलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव सौधर्म ऐशान कल्पके द्वितीय पटलके विमल नामक इन्द्रकसे लेकर सानत्कुमार माहेन्द्रके द्विचरम पटलके बलभद्र नामक इन्द्रक पर्यन्त उत्पन्न होते है ॥५२३॥

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२४॥

कृष्णवराशेन मृताः अवधिस्थाने अवरांशमृताः । पंचमचरमतिमिश्रे मध्ये मध्येन जायंते ॥५२४॥

कृष्णलेश्योत्कृष्टांशदिंद मृतराद जीवंगळु सप्तमपृथ्वियोळोंदे पटलमक्कुमदरवधिस्थानेंद्रकविलदोळु जायंते पुट्टुवरु । कृष्णलेश्याजघन्यांशदिंदं मृतराद जीवंगळु पंचमपृथ्विय चरमपटलद तिमिश्रेंद्रकबिलदोळु जायंते पुट्टुवरु । कृष्णलेश्यामध्यमांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सप्तमपृथ्विय अवधिस्थानेंद्रकद[1] चतुःश्रेणिबद्धंगळोळं आ बिलदिंदं मेलण षष्ठपृथ्विमघवियेंबुददर पटलत्रयंगलोळु तत्तद्योग्यमागि जायंते पुट्टुवरु ।

णीलुक्कस्संसमुदा पंचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२५॥

नीलोत्कृष्टांशमृताः पंचम अंध्रेंद्रके अवरमृताः । बालुकासंप्रज्वलिते मध्ये मध्येन जायंते ॥

नीललेश्योत्कृष्टांशदिंदं मृतराद जीवंगळु पंचमपृथ्वियपटलपंचकदोळु द्विचरमपटलद अंध्रेंद्रकबिलदोळु जायंते पुट्टुवरु । पंचमपटलदोळं केलंबरु पुटटुवरदु कारणमागि पंचमारिष्टेयोळु चरमपटलदोळु कृष्णलेश्याजघन्याशदिंदं नीललेश्योत्कृष्टाशदिंदमुं, मृतराद केलवु जीवंगळु पुट्टुवरेंबी विशेषमरियल्पडुगुं । नीललेश्याजघन्यांशदिंदं मृतराद जीवंगळु वालुकाप्रभेयनवपटलं-

---

कृष्णलेश्योत्कृष्टाशेन मृता जीवा सप्तमपृथिव्यामेकमेव पटल तस्यावधिस्थानेन्द्रके जायन्ते । कृष्णलेश्याजघन्याशेन मृता जीवा पञ्चमपृथ्वीचरमपटलस्य तिमिस्रेन्द्रके जायन्ते । कृष्णलेश्यामध्यमाशेन मृता जीवा तदवधिस्थानेन्द्रकस्य चतु श्रेणीबद्धेषु षष्टपृथ्वीपटलत्रये पञ्चमपृथ्वीचरमपटले च तत्तद्योग्यतया जायन्ते ॥५२४॥

नीललेश्योत्कृष्टाशेन मृता जीवा पञ्चमपृथ्वीद्विचरमपटलस्यान्ध्रेन्द्रके जायन्ते । केचित् पञ्चमपटलेऽपि जायन्ते । ततोऽरिष्टाचरमपटले कृष्णलेश्याजघन्याशेन नीललेश्योत्कृष्टाशेनापि मृता केचिज्जीवा उत्पद्यन्ते ।

कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव सातवी पृथिवीमें एक ही पटल है उसके अवधिस्थान नामक इन्द्रक विलमे उत्पन्न होते हैं । कृष्णलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव पाँचवीं पृथ्वीके अन्तिम पटल सम्बन्धी तिमिस्र नामक इन्द्रक विलमें उत्पन्न होते हैं । कृष्णलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव अवधिस्थान नामक इन्द्रकके चारों दिशा सम्बन्धी श्रेणीवद्ध विलोमें, छठी पृथ्वीके तीनों पटलोंमे और पाँचवीं पृथ्वीके अन्तिम पटलमे अपनी-अपनी योग्यतानुसार उत्पन्न होते है ॥५२४॥

नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव पाँचवीं पृथ्वीके द्विचरम पटलके आन्ध्रेन्द्रकमें उत्पन्न होते हैं । कोई-कोई पाँचवे पटलमे भी उत्पन्न होते है । अरिष्ट पृथ्वीके अन्तिम पटलमें कृष्णलेश्याके जघन्य अंशसे और नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशसे भी मरे कोई-कोई जीव उत्पन्न होते हैं इतना विशेष जानना । नीललेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव बालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वीके नौ पटलोंमें-से अन्तिम पटल सम्बन्धी संप्रज्वलित इन्द्रकमे उत्पन्न

---

१ म °क विलदिंद मेले षष्टपृथ्वि मघवियोलु पचमपृथ्वि, अरिष्टेयेबुददर पटल पंचकदोलु चरमपटलदिंद केलगे पष्ठ ।

गळोळु चरमपटलद सप्रज्वलितेंद्रकबिलिबदोळु जायंते पुट्टुवरु। नीललेश्यामध्यमांशदोळु मृतराद जीवंगळु तृतीयपृथ्विमेघेयनवपटलद संप्रज्वलितेंद्रकबिलदिंदं केलगे चतुर्त्थपृथ्वि अंजनेय पटलसप्तकंगळोळु पंचमपृथ्विअरिष्टेय पटलपंचकंगळोळु चतुर्त्थपटलद अंधेंद्रकबिलदिलिंदं मेले सध्यदोळु यथायोग्यमागि जायंते पुट्टुवरु।

वरकाओदंसमुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स। ५
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते ॥५२६॥

उत्कृष्टकपोतांशमृताः संज्वलितं यांति तृतीयनरकस्य। सीमंतं अवरमृताः मध्ये मध्येन जायंते॥

कपोतलेश्योत्कृष्टांशदिंदं मृतराद जीवंगळु तृतीयपृथ्विमेघेय नवपटलंगळोळु द्विचरमाष्टमपटलद संज्वलितेंद्रकदोळ्पुट्टुवरु। केलंबरुगलु चरमसंप्रज्वलितेंद्रकबिलदोळं पुट्टुवरेंबी १० विशेषमरियल्पडुगुं। कापोतलेश्याजघन्यांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सीमंतं यांति घर्म्मेय प्रथमपटलद सीमंतेंद्रकबिलदोळ्पुट्टुवरु।

कापोतलेश्यामध्यमांशदिंदं मृतराद जीवंगळु सीमंतेंद्रकदिंद केळगण पन्नेरडु पटलंगळोळं मेघेय द्विचरमसंज्वलितेंद्रकबिलदिंद मेलण पटलंगळोळेळरोळु द्वितीयपृथ्विवंशेय पन्नोंदु पटलंगळोळं यथायोग्यमागि पुट्टुवरु। १५

इति विशेषो ज्ञातव्यः। नीललेश्याजघन्याशेन[२] मृता जीवाः बालुकाप्रभानवपटलेषु चरमपटलस्य संप्रज्वलितेन्द्रके जायन्ते। नीललेश्यामध्याशेन मृता जीवा' तृतीयपृथ्वीनवमपटलस्य संप्रज्वलितेन्द्रकादधश्चतुर्थपृथ्वीपटलसप्तके पञ्चमपृथ्वीचतुर्थपटलस्यान्ध्रेन्द्रकादुपरि यथायोग्यं जायन्ते॥५२५॥

कापोतलेश्योत्कृष्टाशेन मृता जीवाः तृतीयपृथ्वीनवपटलेषु द्विचरमाष्टमपटलस्य सज्वलितेन्द्रके उत्पद्यन्ते। केचित् चरमसप्रज्वलितेन्द्रकेऽपीति विशेषोऽवगन्तव्यः। कापोतलेश्याजघन्याशेन मृता जीवा' घर्माप्रथमपटलस्य २० सीमन्तेन्द्रके उत्पद्यन्ते। कापोतलेश्यामध्यमाशेन मृता जीवा' सीमन्तेन्द्रकादधस्तनद्वादशपटलेषु मेघाया द्विचरमसज्वलितेन्द्रकादुपरितनसप्तमपटलेषु[३] द्वितीयपृथ्व्येकादशपटलेषु च यथायोग्यमुत्पद्यन्ते॥५२६॥

होते है। नीललेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव तीसरी पृथ्वीके नौवें पटलके संप्रज्वलित इन्द्रक विलेसे नीचे और चतुर्थ पृथ्वीके सातों पटलोंमें तथा पंचम पृथ्वीके चतुर्थ पटल सम्बन्धी आन्ध्रेन्द्रकसे ऊपर यथायोग्य उत्पन्न होते हैं॥५२५॥ २५

कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे जीव तीसरी पृथ्वीके नौ पटलोंमें-से द्विचरम आठवें पटलके संज्वलित इन्द्रक विलेमें उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई अन्तिम संप्रज्वलित इन्द्रकमें भी उत्पन्न होते हैं यह विशेष जानना। कापोतलेश्याके जघन्य अंशसे मरे जीव घर्मा नामक प्रथम पृथ्वीके प्रथम पटल सम्बन्धी सीमन्त इन्द्रकमें उत्पन्न होते हैं। कापोतलेश्याके मध्यम अंशसे मरे जीव सीमन्त इन्द्रकसे नीचेके बारह पटलोंमें मेघा नामक तीसरी पृथ्वीके ३० द्विचरम संज्वलित इन्द्रकसे ऊपरके सात पटलोंमें और दूसरी पृथ्वीके ग्यारह पटलोंमें यथायोग्य उत्पन्न होते है॥५२६॥

---

१ म °लेगलेलरोलं। २ जघन्याशेनापि मृता.। मु.। ३. ल. संप्रज्व°।

किण्हचउक्काणं पुण मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये ।
पुढवी-आउवणप्फइजीवेसु हवंति खलु जीवा ॥५२७॥

कृष्णचतुष्काणां पुनः मध्यमाशमृताः खलु भवनगादित्रये । पृथिव्यप्वनस्पतिजीवेषु भवंति खलु जीवाः ॥

कृष्णनीलकापोततेजोलेश्याचतुष्टयद मध्यमांशंगळिंदं मृतराद कर्म्मभूमितिर्य्यग्मनुष्यरुं भोगभूमितिर्यग्मनुष्यरुं भवनत्रयदोळु भवंति परिणमंति पुट्टुवरु । खलु यथायोग्यमागि भोगभूमिजतिर्य्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळु तेजोलेश्यामध्यमांशदिंदं मृतरादवर्गळु भवनत्रयदोळु पुट्टुव कारणदिंदं तेजोलेश्यासंभवमुमरियल्पडुगुं । तु मत्ते कृष्णादिचतुर्लेश्यामध्यमांशंगळिंदं मृतराद तिर्य्यग्मनुष्यरुं भवनवानज्योतिषिकरुं सौधर्म्मैशानकल्पजरुगळुमप्प मिथ्यादृष्टिजीवंगळु बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायिकजीवगळोळं बादरपर्य्याप्ताप्कायिकजीवंगळोळं पर्य्याप्तवनस्पतिकायिकजीवगळोळं भवंति—परिणमंति पुट्टुवरु । भवनत्रयादि जीवंगळपेक्षेइनिल्लियुं तेजोलेश्यासंभवमरियल्पडुगुं ।

किण्हतियाणं मज्झिमअसंमुदा तेउवाउवियलेसु ।
सुरणिरया सगलेस्सहि णरतिरियं जांति सगजोगं ॥५२८॥

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृताः तेजोवायुविकलेषु । सुरनारकाः स्वलेश्याभिर्नरतिरश्चो यांति स्वयोग्यं ॥

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयंगळ मध्यमांशदिंदं मृतराद तिर्य्यग्मनुष्यरुगळु तेजस्कायिकवायुकायिकविकलत्रय असंज्ञिपंचेंद्रियसाधारणवनस्पतिगळेंबी जीवंगळोळु जाति जायंते पुट्टुवरु ।

अत्र पुन शब्दो विशेषप्ररूपकोऽस्ति । तेन कृष्णादित्रिलेश्यामध्यमाशमृता कर्मभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टय तेजोलेश्यामध्यमाशमृता भोगभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टयश्च भवनत्रये खलु उत्पद्यन्ते इति ज्ञातव्यम् । तु पुन, कृष्णादिचतुर्लेश्यामध्यमाशमृततिर्यग्मनुष्यभवनत्रयसौधर्मैशानमिथ्यादृष्टय वादरपर्याप्तपृथ्व्यप्कायिकेषु पर्याप्तवनस्पतिकायिकेषु चोत्पद्यन्ते । भवनत्रयाद्यपेक्षया अत्रापि तेजोलेश्यासभवो बोद्धव्य ॥५२७॥

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयस्य मध्यमाशमृततिर्यग्मनुष्या तेजोवायुविकलत्रयासज्ञिसाधारणवनस्पतिजीवेषु

इस गाथामें 'पुनः' शब्द विशेष कथनका सूचक है । अतः कृष्ण आदि तीन लेश्याओंके मध्यम अंशसे मरे कर्मभूमिके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य तथा तेजोलेश्याके मध्यम अंशसे मरे भोगभूमि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी-देवोंमे उत्पन्न होते हैं यह जानना । तथा कृष्ण आदि चार लेश्याके मध्यम अंशसे मरे तिर्यंच, मनुष्य, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशान स्वर्गके देव ये सब मिथ्यादृष्टि वादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिकोंमे उत्पन्न होते है । भवनत्रिककी अपेक्षा यहाँ भी तेजोलेश्या सम्भव है यह जानना ॥५२७॥

कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओंके मध्यम अंशसे मरे तिर्यंच और मनुष्य तेजः-

---

१. क पर्याप्तवादरप्रत्येकवन° । २. म °त्रयगलेंवी । ३ व. अत्रापि तेजोलेश्या भवनत्रयाद्यपेक्षयैव । ४ व °वयम° ।

भवनत्रयं मोदलागि सर्व्वार्थसिद्धिजघंसानमाद सुररुं घर्म्मे मोदलागि अवधिस्थानावसानमाद नारकरुं स्वस्वलेश्यानुगमप्प नरत्वमुमं तिर्य्यक्त्वमुमं यांति येय्दुवरु। एळनेय गत्यधिकारं तिद्दुं ॥

अनंतरं स्वाम्याधिकारमं गाथासप्तकदिंदं पेळ्दपं—

काऊ काऊ काऊ णीला णीला य णीलकिण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥५२९॥

कापोती कापोती तथा कापोती नीले नीला च नीलकृष्णे च। कृष्णा च परमकृष्णा लेश्याः प्रथमादिपृथ्वीनां ॥

घर्म्मादिसप्तपृथ्विगळ नारकरुगे यथासंख्यमागि घर्म्मेय नारकरुगे कपोतलेश्याजघन्यमक्कुं। वंशेयनारकरुगे कपोतलेश्यामध्यमांशमक्कुं। मेघेय नारकरुगे कपोतलेश्योत्कृष्टमुं नीललेश्याजघन्यांशमुमक्कुं। अंजनेय नारकरुगे नीललेश्यामध्यमांशमक्कुं। अरिष्टेय नारकरुगे नीललेश्योत्कृष्टमुं कृष्णलेश्याजघन्यांशमुमक्कुं। मघविय नारकरुगे कृष्णलेश्यामध्यांशमक्कुं। माघविय नारकरुगे कृष्णलेश्योत्कृष्टांशमुमक्कुं।

णरतिरियाणं ओघो इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स ।
सण्णि-अपुण्णगमिच्छे सासणसम्मे वि असुहतियं ॥५३०॥

नरतिरश्चामोघ एकविकले तिस्रः चतस्रोऽसंज्ञिनः संज्ञ्यपूर्णमिथ्यादृष्टौ सासादनसम्यग्दृष्टावप्यशुभत्रयी ॥

नरतिरश्चामोघः नरतिर्य्यंचरुगळगे प्रत्येकं सामान्योक्त षड्लेश्येगळप्पुवरोळु तिर्य्यंचरोळु एकविकलेषु एकेंद्रियजीवंगळगं विकलत्रयजीवंगळगं तिस्रः कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमेयक्कुं।

उत्पद्यन्ते। भवनत्रयादि सर्वार्थसिद्ध्यन्तसुराः धर्माद्यवधिस्थानान्तनारकाश्च स्वस्वलेश्यानुग नरतिर्यक्त्व यान्ति ॥५२८॥ इति गत्यधिकार.॥ अथ स्वाम्यधिकार गाथासप्तकेनाह—

प्रथमादिपृथ्वीनारकाणा च लेश्योच्यते–तत्र घर्माया कापोतजघन्याशः। वंशाया कापोतमध्यमाशः। मेघाया कापोतोत्कृष्टाशनीलजघन्याशौ। अजनाया नीलमध्यमाश। अरिष्टाया नीलोत्कृष्टाशकृष्णजघन्याशौ। मघव्या कृष्णमध्यमाश'। माघव्या कृष्णोत्कृष्टाशः ॥५२९॥

नरतिरश्चा प्रत्येक ओघ. सामान्योत्कृष्टषट्लेश्या स्यु.। तत्र एकेन्द्रियविकलत्रयजीवेषु तिस्र कृष्णा-

---

कायिक, वायुकायिक, विकलत्रय, असंज्ञिपंचेन्द्रिय और साधारण वनस्पति जीवोंमें उत्पन्न होते है। भवनत्रिकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव और घर्मा पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तकके नारकी अपनी-अपनी लेश्याके अनुसार मनुष्य और तिर्यंच होते है ॥५२८॥

गतिअधिकार समाप्त हुआ।

आगे सात गाथाओंसे स्वामी अधिकार कहते है—

प्रथम पृथ्वी आदिके नारकियोंको लेश्या कहते हैं—घर्मामें कपोतलेश्याका जघन्य अंश है। वंशामें कपोतका मध्यम अंश है। मेघामें कपोतका उत्कृष्ट अंश और नीलका जघन्य अंश है। अंजनामें नीलका मध्यम अंश है। अरिष्टामें नीलका उत्कृष्ट अंश और कृष्णका जघन्य अंश है। मघवीमें कृष्णका मध्यम अंश है। माघवीमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है ॥५२९॥

मनुष्यों और तिर्यंचोंमें-से प्रत्येकमें 'ओघ' अर्थात् सामान्यसे छहो लेश्या होती है।

चतस्रोऽसंज्ञिनः असंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवंगे कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमुं तेजोलेश्ययुमक्कुमेकें दोडा असंज्ञिजीवं कपोतलेश्ययिंद मृतनागि घर्मे योळपुट्टुगुं। तेजोलेश्ययिंदं मृतनागि भवनव्यंतरदेवगतिद्वयदोळपुट्टुगुमशुभलेश्यात्रयदिंदं मृतनागि नरतिर्य्यग्गतिद्वयदोळपुट्टुवनप्पुदरिंदं। संज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्टौ संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकनोळं मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकनोळं अपि शब्ददिंदमसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकनोळं सासादनसम्यग्दृष्टौ निवृत्त्यपर्याप्तकसासादननोलमासासादननु।

[[1]णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू। एंदु,
"णहि सासादणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे ॥" एंदितु]

लब्ध्यपर्य्याप्तकरोळं साधारणजीवंगळोळं नारकरोळं सूक्ष्मजीवंगळोळं तेजस्कायिकगळोळं वातकायिकगळोळं सभविसनप्पुदरिंदं भवनत्रयापर्य्याप्तकरोळं शेषतिर्य्यग्मनुष्यरोळ संभविसुगुमा निर्वृत्यपर्य्याप्तकसासादननोळं अशुभत्रयी कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयमेयक्कुं। तिर्य्यग्मनुष्योपशमसम्यग्दृष्टिगळु तत्कालाभ्यंतरदोळु सुष्ठु संक्लिष्टरादोडमवर्गळगे देशसंयतरोळे तंतें कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयंगळागवेंदितु तद्विराधकसासादननोळु पर्य्याप्तविषयदोळशुभलेश्यात्रयमेयक्कुमे दरिवुदु।

भोगापुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे णियमा।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ॥५३१॥

भोगापूर्णसम्यग्दृष्टौ कापोतस्य जघन्यं भवेन्नियमात्। सम्यग्दृष्टौ वा मिथ्यादृष्टौ वा पर्य्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः॥

द्यशुभलेश्या एव। असज्ञिपर्याप्तस्य तत्त्रय तेजोलेश्या च, कुत ? तस्य कपोतमृतस्य घर्मायां तेजोमृतस्य भवनव्यन्तरयोरशुभत्रयमृतस्य सज्ञिनरतिर्यग्गत्योश्च उत्पादात्। सज्ञिलब्ध्यपर्याप्तकतिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टौ अपिशब्दादसज्ञिलब्ध्यपर्याप्तके तिर्यग्मनुष्यभवनत्रयनिर्वृत्यपर्याप्तकसासादने च कृष्णाद्यशुभत्रयमेव। तिर्यग्मनुष्योपशमसम्यग्दृष्टीना सम्यक्त्वकालाभ्यन्तरे सुष्ठु सक्लशेऽपि देशसयतवत् तत्त्रय नास्ति तथापि तद्विराधकसासादनापर्याप्तानामस्तीति ज्ञातव्यम् ॥५३०॥

उनमें-से एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवोंमें कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या ही होती है। असज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके कृष्णादि तीन और तेजोलेश्या होती है। क्योकि यदि वह कपोतलेश्यासे मरता है तो घर्मा नरकमें उत्पन्न होता है। तेजोलेश्यासे मरता है तो भवनवासी और व्यन्तरोंमे उत्पन्न होता है। और यदि तीन अशुभ लेश्याओंसे मरता है तो मनुष्यगति, तिर्यंच गतिमे उत्पन्न होता है। संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टिमें 'अपि' शब्दसे असंज्ञी लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यचमें तथा सासादन गुणस्थानवर्ती निवृत्यपर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य और भवनत्रिकमे कृष्णादि तीन अशुभलेश्या ही होती हैं। उपशम सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्योंके सम्यक्त्वकालके भीतर अतिसंक्लेशमें भी देशसंयतकी तरह तीन अशुभ लेश्या नहीं होती है। तथापि उपशम सम्यक्त्वके विराधक सासादन सम्यग्दृष्टिके अपर्याप्त अवस्थामे अशुभ लेश्या होती है ॥५३०॥

---

१. म प्रतौ कोष्ठान्तर्गतपाठो नास्ति।

निर्वृत्यपर्य्याप्तकनप्प भोगभूमिजसम्यग्दृष्टियोळु कापोतस्य जघन्यं कापोतलेश्याजघन्यांशमक्कुमेकेंदोडे कर्म्मभूमिजरप्प नरतिर्य्यंचरु प्राग्बद्धायुष्यरु पश्चात् क्षायिकसम्यक्त्वमनागलु वेदकसम्यक्त्वमनागलु स्वीकरिसि तदत्यजनदिंदं[1] तत्रोत्पत्तिसंभवमप्पुदरिंदं तद्योग्यसंक्लेशपरिणामपरिणतरेंबुदर्त्थं ।

आ भोगभूमियोळु पर्य्याप्तियिंदं मेले सम्यग्दृष्टियोळं मेणुमिथ्यादृष्टियोळं मेणु शुभलेश्यात्रयमेयक्कुं ।

अयदोत्तिछलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।
तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५३२॥

असंयतपर्य्यंतं षड्लेश्याः शुभत्रयलेश्याः खलु देशविरतत्रये ततः शुक्ललेश्याऽयोगिस्थानमलेश्य तु ।

असंयतपर्य्यंतं दोलुं, नाल्कुं गुणस्थानंगळोळारुं लेश्यगळप्पुवु । देशविरतादित्रयदोळु शुभलेश्यात्रयमक्कु । ततः मेले सयोगकेवलिपर्य्यंतमारु गुणस्थानंगळोळु शुक्ललेश्ययेयोदेयक्कुं । अयोगिगुणस्थानं लेश्यारहितमक्कुमेकेंदोडे योगकषायरहितमप्पुदरिंदं ।

णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया ।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खोत्ति तहिं हवे लेस्सा ॥५३३॥

नष्टकषाये लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात् । अथवा योगप्रवृत्तिर्मुख्येति तस्मिन्भवेल्लेश्या ।

भोगभूमौ निर्वृत्यपर्याप्तकसम्यग्दृष्टौ कपोतलेश्याजघन्याशो भवति । कुत[1] ? कर्मभूमिनरतिरश्चा प्राग्बद्धायुषा क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा स्वीकृते तदन्यजघन्येन तत्रोत्पत्तिसभवात्—तद्योग्यसंक्लेशपरिणामपरिणता इत्यर्थ । तस्या पर्याप्तेरुपरि सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा शुभलेश्यात्रयमेव ॥५३१॥

असयतान्तचतुर्गुणस्थानेषु षड्लेश्या. खलु । देशविरतादित्रये शुभलेश्यात्रयमेव । तत. उपरि सयोगपर्यन्त षड्गुणस्थानेषु एका शुक्ललेश्यैव । अयोगिगुणस्थान अलेश्य लेश्यारहितं तत्र योगकषाययोरभावात् ॥५३२॥

भोगभूमिमें निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टिमें कपोतलेश्याका जघन्य अंश होता है। क्योंकि जिस कर्मभूमिया तिर्यंच अथवा मनुष्यने पहले तिर्यंच या मनुष्य आयुका बन्ध किया, पीछे क्षायिक सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्वको स्वीकार करके मरा तो उसकी उत्पत्ति वहाँ कपोतलेश्याके जघन्य अंशसे होती है। अर्थात् उसके योग्य संक्लेश परिणाम होते है। पर्याप्त होनेपर भोगभूमिमें सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि, तीन शुभ लेश्या ही होती है ॥५३१॥

असंयत पर्यन्त चार गुणस्थानोंमें छहो लेश्या होती हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें तीन शुभ लेश्या ही होती है। उससे ऊपर सयोगकेवली पर्यन्त छह गुणस्थानोंमें एक शुक्ललेश्या ही होती है। अयोगि गुणस्थानमें लेश्या नहीं होती क्योंकि वहाँ योग और कषायका अभाव है ॥५३२॥

---

१. ब. °जनेन । 'तदत्यजन'—कर्नाटवृतौ ।

उपशांतकषायादिगुणस्थानत्रयदोळु कषायोदयरहितमागुत्तिरलुमवरोळु पेळल्पट्ट आवुदो दु लेश्येयदु । तु मत्ते भूतपूर्व्वगतिन्यायात् उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थनोळं क्षीणकषायवीतरागच्छद्मस्थनोळं सयोगिकेवलिजिननोळं भूतपूर्व्वगतिन्यायदिंदमेयक्कुमथवा योगप्रवृत्तिर्मुख्येति योगप्रवृत्तिर्लेश्या येंदितु योगप्रवृत्तिप्रधानत्वदिंदं तस्मिन्भवे लेश्यातदकषायरोळमितु लेश्यासंभवमक्कु ।

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाण ॥५३४॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयो', षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च इतश्चतुर्दशाना लेश्या भावनादिदेवानां ।

तेऊ तेऊ तह तेऊपम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा ॥५३५॥

तेजस्तेजस्तथा तेजःपद्मे पद्मा च पद्मशुक्ले च । शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रया पूर्णके अशुभाः ।

भवनत्रयद भवनादित्रिधामरग्गं पर्य्याप्तापेक्षेयिं तेजोलेश्याजघन्यमक्कु । सौधर्मेशानद्वयद वैमानिकग्गं तेजोलेश्यामध्यमांशमक्कुं । सनत्कुमारमाहेद्रद्वयद कल्पजग्गं तेजोलेश्योत्कृष्टांशमुं पद्मलेश्याजघन्यमुमक्कु । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रंगळे बारुकल्पगळ कल्पजग्गं पद्मलेश्यामध्यमांशमक्कुं । शतारसहस्रारकल्पद्वयद वैमानिकग्गं पद्मलेश्योत्कृष्टमुं शुक्ललेश्याजघन्यमुमक्कुं । आनतप्राणत आरणाच्युतगळु नवग्रैवेयकंगळुमे दितु पदिमूरर सुरग्गं शुक्ललेश्यामध्यमांशमक्कुमिल्लिदं मेले अनुदिशानुत्तरविमानंगळ्पदिनाल्कर कल्पातीतजग्गं शुक्ललेश्योत्कृष्टाश-

---

उपशान्तकषायादिनष्टकषायगुणस्थानत्रये कषायोदयाभावेऽपि या लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायादेव । अथवा योगप्रवृत्तिर्लेश्येति योगप्रवृत्तिप्राधान्येन तत्र लेश्या भवति ॥५३३॥

भवनत्रयादिदेवाना लेश्योच्यते । तत्र पर्याप्तापेक्षया भवनत्रयस्य तेजोजघन्याश । सौधर्मैशानयो. तेजोमध्यमाश । सानत्कुमारमाहेन्द्रयो तेजउत्कृष्टाशपद्मजघन्याशौ । ब्रह्मब्रह्मोत्तरादिषट्कस्य पद्ममध्यमाश । शतारसहस्रारयो पद्मोत्कृष्टाशशुक्लजघन्याशौ । आनतादिचतुर्णा नवग्रैवेयकाणा च शुक्लमध्यमाश । अत उपरि

उपशान्त कषाय आदि तीन गुणस्थानोंमे यद्यपि कषायका उदय नही है और बारहवें-तेरहवेमे तो कषाय नष्ट ही हो गयी है । फिर भी वहाँ जो लेश्या कही जाती है वह भूतपूर्व गतिन्यायसे ही कही जाती है । अथवा योगकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते है और योगकी प्रवृत्तिकी प्रधानता है इसलिए वहाँ लेश्या है ॥५३३॥

भवनत्रय आदि देवोके लेश्या कहते हैं । पर्याप्तकी अपेक्षा भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके तेजोलेश्याका जघन्य अंश है । सौधर्म ऐशानमे तेजोलेश्याका मध्यम अंश है । सानत्कुमार माहेन्द्रमे तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्याका जघन्य अश है । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर आदि छह स्वर्गोंमें पद्मलेश्याका मध्यम अंश है । शतार-सहस्रारमे पद्मका उत्कृष्ट अश और शुक्लका जघन्य अंश है । आनत आदि चार स्वर्गोंमे और नौ ग्रैवेयकोंमे शुक्लका मध्यम अंश है । उससे ऊपर अनुदिश और अनुत्तर सम्बन्धी चौदह विमानोंमे

मक्कुं। भवनत्रयद निर्वृत्यपर्य्याप्तकर्ग्गं अशुभलेश्यात्रयमेयक्कुमिदरिंदमे शेषवैमानिकनिर्वृत्यपर्य्याप्तकर्ग्गं पर्य्याप्तकर्ग्गं ततम्म लेश्यैगळेयप्पुवेंदु सूचितमरियल्पडुगुं। एंटनेय स्वाम्यधिकारं तीर्द्दुदु। अनंतरं साधनाधिकारमनोंदे गाथासूत्रदिंदं पेळ्दपं।

वण्णोदयसंपादिद सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो ॥५३६॥ ५

वर्णोदयसंपादितशरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या। मोहोदयक्षयोपशमोपशमक्षयजीवस्पंदनं भावः॥

वर्णनामकर्म्मोदयसंपादितसंजनितशरीरवर्णमदु द्रव्यलेश्येयक्कुं। असंयतरोळु मोहोदयदिंदं देशविरतत्रयदोळु मोहक्षयोपशमदिंदं उपशमकरोळु मोहोपशमदिंदं क्षपकरोळु मोहक्षयदिंदं संजनितसंस्कारं जीवस्पंदमेंदु ज्ञेयमक्कुमदु भावलेश्येयक्कु। मा जीवनपरिणामप्रदेशस्पंदनदिंद १० भावलेश्ये माडल्पट्टुदेंबुदर्त्थं। अदु कारणदिंदं योगकषायंगळिंदं भावलेश्ये एंदितु पेळल्पट्टुदक्कुं। ओंभत्तनेय साधनाधिकारं तिर्द्दुदु॥

अनंतरं संख्याधिकारमं गाथा षट्कदिंदं पेळ्दपं :—

अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानाना शुक्लोत्कृष्टाशो भवति। भवनत्रयदेवाः अपर्याप्तकाले अशुभत्रिलेश्या एव, अनेन वैमानिका अपर्याप्तिकाले स्वस्वलेश्या एवेति सूचितं ज्ञातव्यम् ॥५३४–५३५॥ इति स्वाम्यधिकारोऽष्टम.॥ १५
अथ साधनाधिकारमाह—

वर्णनामकर्मोदयेन सपादित-सजनित शरीरवर्णो द्रव्यलेश्या भवति। असयतान्तगुणस्थानचतुष्के मोहस्य उदयेन, देशविरतत्रये क्षयोपशमेन, उपशमके उपशमेन, क्षपके क्षयेण च संजनितसस्कारो जीवस्पन्दनसज्ञ स भावलेश्या जीवपरिणामप्रदेशस्पन्दनेन कृतेत्यर्थ.। तेन कारणेन योगकषायाभ्या भावलेश्येत्युक्तम्॥५३६॥ इति साधनाधिकारो नवम ॥ अथ सख्याधिकार गाथाषट्केनाह— २०

शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंश होता है। भवनत्रिकके देव अपर्याप्त अवस्थामें तीन अशुभ लेश्यावाले ही होते हैं। इससे यह सूचित किया जानना कि वैमानिक देवोंके अपर्याप्तकालमें अपनी-अपनी लेश्या ही होती है ॥५३४–५३५॥

आठवाँ स्वामिअधिकार समाप्त हुआ।

अब साधनाधिकार कहते हैं— २५

वर्णनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ शरीरका वर्ण द्रव्यलेश्या है। असंयत पर्यन्त चार गुणस्थानोंमें मोहके उदयसे, देशविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें मोहनीयके क्षयोपशमसे, उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें मोहनीयके उपशमसे, क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें मोहनीयके क्षयसे जो संस्कार उत्पन्न होता है जिसे जीवका स्पन्द कहते है वह भावलेश्या है। अर्थात् जीवके परिणामों और प्रदेशोंका चंचल होना भावलेश्या है। परिणामोंका ३० चंचल होना कषाय है और प्रदेशोंका चंचल होना योग है। इसीसे योग और कषायसे भावलेश्या कही है ॥५३६॥

नौवाँ साधनाधिकार समाप्त हुआ।

आगे छह गाथाओंसे संख्याअधिकार कहते है—

किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।
हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥५३७॥

कृष्णादिराशिमावल्यसख्यातभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते। हीनक्रमात् कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ॥

कृष्णादिराशि कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयजीवसामान्यराशियं शुभलेश्यात्रयजीवराशिहीनसंसारिराशियं १३–। आवल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा आवल्यसंख्यातैकभागदिदं भागिसि १३–
९ ९
बहुभागम १३–८ प्रविभक्ते मूरु लेश्येगळ्गे समानमागि मूररिंदं भागिसिकोट्टु १३–८।१३–८।१३–८
९ ९।३ ९।३ ९।३
शेषैकभागमं मत्तमावल्यसंख्यातदिंदं खंडिसि बहुभागमं कृष्णलेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं मत्तमावल्यसख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं नीललेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं कपोतलेश्येगे कोट्टोडा मूरु राशिगळितिक्कुं | १३–८ | १३–८ | १३–८ | ई मूरु राशिगळं समच्छेदं माडिदोडितिक्कुं
९।३ ९।३ ९।३
१३–८ १३–८ १३–८
९।९ ९९९ ९९९

कृष्ण १३–८६४ | नील १३–६७२ | कपोत १३–६५१ | ई मूरु राशिगळु किंचिदूनत्रिभागं-
९।९।९।३ ९।९।९।३ ९।९।९।३
गळागुत्तं किंचिदूनक्रममप्पुवु | कृ १३– | नी १३– | क १३– | इंतु कृष्णलेश्याद्यशुभलेश्या-
३– ३। ३।
त्रयजीवंगळ्गे द्रव्यतः प्रमाणं पेळल्पट्टुदु । मत्त वा अथवा काल वा आश्रित्य द्रव्याणि भक्तव्यानि

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयजीवसामान्यराशि शुभलेश्यात्रयजीवराशिहीनससारिराशिमात्र १३– आवल्यसख्यातेन भक्त्वा १३–बहुभाग १३– ८ त्रिभिर्भक्त त्रिस्थाने देय – १३– ८, १३– ८, १३– ८, शेषैकभागे
९ ९ ९।३, ९।३, ९।३,

पुनरावल्यसख्यातेन भक्ते बहुभाग कृष्णलेश्याया देय । शेषैकभागे पुनरावल्यसख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्याया देय । शेषैकभागे कपोतलेश्याया दत्ते त्रयो राशयोऽमी—१३– ८, १३– ८, १३– ८,
९।३, ९।३, ९।३,
१३– ८, १३– ८। १३– १
९।९। ९।९।९। ९९९

समच्छेदेन मिलिता —कृ १३– ८ ६४, नी १३– । ६७२, क १३– । ६५१, किंचिदूनक्रमा
९।९।९।३, ९।९।९ ३, ९।९।९।३,

भवन्ति– कृ १३– । नी १३– । क १३– इति कृष्णादित्रिलेश्याजीवाना द्रव्यत प्रमाणमुक्तम् । पुन –वा अथवा
। ॥
३– ३– ३–

संसारी जीवराशिमे-से तीन शुभलेश्यावाले जीवोंकी राशि घटानेपर जो शेष रहे उतना कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यावाले जीवोकी सामान्यराशि होती है। उस राशिको आवलीके असंख्यातवे भागसे भाजित करके बहुभागको तीन समान भागोंमें विभाजित करके एक-एक भाग तीनो लेश्यावालोको दे दो। शेष एक भागमे पुनः आवलीके असंख्यातवे भागसे भाग देकर बहुभाग कृष्णलेश्याको दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवे भागसे भाग देकर बहुभाग नीललेश्याको दो। शेष एक भाग कपोतलेश्याको दो। अपने-अपने

कालसंचयदिंदं द्रव्यतः प्रमाणमरियल्पडुगुमदें तेंदोडे ई मूरुमशुभलेश्येगळ कालं कूडि सामान्यदिंदमंतर्मुहूर्त्तमात्रमक्कु ॥ २१ । मिदनावल्यसंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं समभागं माडि मूररिंदं भागिसि कृष्णनीलकपोतंगळगे कोट्टु मिक्केक कालभागमं मत्तमावलियसंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं कृष्णलेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं मत्तमावल्यसंख्यातभागदिंदं खंडिसि बहुभागमं नीललेश्येगे कोट्टु शेषैकभागमं कपोतलेश्येगे कोट्टोडा मूरुं कालंगळितिर्प्पुवु । ५

कृ	नी	कपोत	प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंड इत्यादियिं
२१।८६४	२१६७२	२१६५१	
९।९।९।३	९।९।९।३	९।९।९।३	

मूरुं राशिगळं कूडिदोडिदु २।१।२१८७ इदर भाज्यभागहारंगळं सरियेंदर्पत्तिसिदोडिदु २१ इंतु ९।९।९।३

त्रैराशिकं साडल्पडुगुं प्र २१ फ १३–। इ २१८६४ बंद लब्धं कृष्णलेश्याजीवंगळ प्रमाणमक्कुं ९।९।९।३

१३–८६४ इदनपवर्त्तिसिदोडे किंचिदूनत्रिभागमक्कुं कृ १३– | नी १३–कपो १३ इंतु काल-
९ ९ ९।३ ३– | ३ ३

कालमाश्रित्य द्रव्याणि भक्तव्यानि । तद्यथा—कृष्णनीलकपोतलेश्याः संस्थाप्य तासा कालो मिलित्वापि १०
अन्तर्मुहूर्त्तः २ १ आवल्यसख्यातेन भक्ते बहुभाग. त्रिभिर्भक्त्वा प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभाग. कृष्णलेश्याया देयः । शेषैकभागे पुनः आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्याया देय ।
शेषैकभागे कपोतलेश्यायां दत्ते त्रयो राशय एवं– कृ २ १ । ८६४, नी २ १ । ६७२,
९।९।९ ।३, ९।९।९ । ३,
क २ १ । ६५१, एषा योग २ १ २१८७ अपवर्तितः २ १ । अधुना त्रैराशिकं प्र २ १ । फ १३–
९।९।९।३, ९।९।९।३
इ २ १ । ८६४ लब्धं कृष्णलेश्याजीवप्रमाणं १३—८६४ अपवर्तिते किंचिदूनत्रिभागो भवति एवं नील- १५
९।९।९।३ ९।९।९ ३

समान भागोंमें इन भागोंको जोड़नेपर कृष्ण आदि लेश्यावाले जीवोंकी संख्या होती है। यह क्रमसे कुछ-कुछ कम होती है। इस प्रकार कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंका द्रव्यकी अपेक्षा प्रमाण कहा। अथवा कालका आश्रय लेकर द्रव्योंका विभाग करना चाहिए। वह इस प्रकार है—कृष्ण, नील और कपोतलेश्याको स्थापित करो। उनका काल मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त है। उस कालको आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभागको तीनसे २०
विभाजित करके प्रत्येक लेश्यामें एक-एक भाग दो। शेष एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग कृष्णलेश्यामें दो। पुनः शेष एक भागमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दो। बहुभाग नीललेश्यामें दो। शेष एक भाग कपोतलेश्याको दो। तीनोंको मिले दोनों भागोंको जोड़नेपर प्रत्येक लेश्याका अपना-अपना कालका प्रमाण होता है। अब त्रैराशिक करो। तीनों लेश्याओंका सम्मिलित काल तो प्रमाण राशि। अशुभ लेश्या- २५
वाले जीवोंका प्रमाण कुछ कम संसारी जीवराशि मात्र फलराशि। कृष्णलेश्याके कालका प्रमाण इच्छाराशि। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्ध-राशि प्रमाण कृष्णलेश्यावालोंकी राशि जानना। सो कुछ कम तीनका भाग अशुभ लेश्यावाले

संचयमनाश्रयिसि द्रव्यतः प्रमाणं पेळल्पट्टुदु ।

खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।
कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ॥५३८॥

क्षेत्रतोऽशुभत्रयाः अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः । कालादतीतादनंतगुणाः क्रमाद्धीनाः ॥

क्षेत्रप्रमाणदिंदं अशुभत्रया जीवाः अशुभलेश्यात्रयद जीवंगळु अणंतळोगा अनंतलोक

प्रमितंगळागुत्तं क्रमदिंदं परिहीनंगळप्पुवु किंचिदूनक्रमंगळप्पुवु क्षेत्र कृ = ख नी ख – क ख = इल्लियुं त्रैराशिकं माडल्पडुगुं प्र = फ श १ । इ १३ लब्ध शला । ख । प्रमा श १ । फ = इ ख ।

लब्ध = व । कालादतीतात् कालप्रमाणदिंदं अशुभलेश्यात्रय जीवंगळु अतीतकालम नोडलु अनंतगुणिताः अनंतगुणितंगळागुत्तलुं क्रमाद्धीनाः क्रमहीनगळप्पुवु । का । कृ । अ ख । नी अ ख – का अ ख = इल्लियुं त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । प्र अ । फ अ १ । इ १३ – लब्ध शलाका । ख । मत्तं

प्र श १ । फ अ । इ । श ख । लब्ध अ ख ।

कपोतयोरपि ज्ञातव्यम् । कृ १३–। नी १३–। क १३–। इति कालसचयमाश्रित्य द्रव्यत प्रमाणमुक्तम् ॥५३७॥

क्षेत्रप्रमाणेन अशुभत्रिलेश्याजीवा. अनन्तलोका अपि क्रमेण परिहीना किंचिदूनक्रमा भवन्ति । कृ = ख । नी = ख- । क = ख = । अत्र त्रैराशिक प्र = फ श १ । इ १३– लब्धशलाका ख । पुन प्र । श १ । फ = । इ श ख । लब्ध = ख । कालप्रमाणेनाशुभत्रिलेश्या जीवा अतीतकालादनन्तगुणिता अपि क्रमहीना भवन्ति । का कृ अ ख । नी अ ख– । क अ ख =। अत्रापि त्रैराशिक–प्र अ फ श । १ इ १३– लब्धशलाका ख । पुन प्र श १ । फ अ । इ श ख । लब्ध अ ख ॥५३८॥

जीवोंके प्रमाणमें देनेपर जो लब्ध आवे उतना है । इसी तरह नील और कापोतलेश्यावालोका प्रमाण लाना चाहिए । इस तरह कालकी अपेक्षा अशुभलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा ॥५३७॥

क्षेत्रप्रमाणकी अपेक्षा तीन अशुभलेश्यावाले जीव अनन्तलोक प्रमाण हैं किन्तु क्रमसे कुछ-कुछ हीन है । यहाँ प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छा राशि अपने-अपने जीवोंका प्रमाण । ऐसा करनेपर लब्धराशि मात्र अनन्त शलाका हुई । तथा प्रमाण एक शलाका, फल एक लोक, इच्छा अनन्त शलाका । ऐसा करनेपर लब्धराशि अनन्त लोकमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है । तथा काल प्रमाणसे तीन अशुभ लेश्यावाले जीव अतीतकालके समयोंसे अनन्तगुणे हैं । किन्तु क्रमसे हीन हैं । यहाँ भी त्रैराशिक करना । प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छराशि अपने-अपने जीवोंका प्रमाण । ऐसा करनेपर लब्धराशिमात्र अनन्त शलाका हुई । फिर प्रमाण एक शलाका, फल एक अतीत काल, इच्छा अनन्त शलाका । ऐसा करनेपर लब्धराशि अनन्त अतीतकाल प्रमाण कृष्णादि लेश्यावाले जीव होते है ॥५३८॥

केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा ।
तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा ॥५३९॥

केवलज्ञानानंतैकभागाः भावात् कृष्णत्रयजीवाः । तेजस्त्रयोऽसंख्येयाः संख्यासंख्यातभाग-क्रमाः ॥

भावप्रमाणदिंदं कृष्णादित्रयलेश्याजीवंगळु प्रत्येकं केवलज्ञानानतैकभागमात्रंगळप्पुवता- ५
गुत्तलुं किंचिदूनक्रमंगळेयप्पुवु । भा । कृ । के । नी ख । क । के = इल्लियुं त्रैराशिकं माडल्पडुगुं
ख ख

प्र १३ − फ श १ । इ के । लब्ध श के मत्तं प्र के फ के । इ श १ लब्ध के । तेजोलेश्यादि-
३ − १३ − १३ − ख
३ ३ −

त्रयजीवंगळु द्रव्यप्रमाणदिंदमसंख्यातंगळप्पुवुमंतागुत्तं संख्यातभागमुमसंख्यातभागक्रममुमप्पुवु ।
≐
ते = अ अ १ । प अ अ । शु अ ।

जोइसियादो अहिया तिरिक्खसण्णिस्स संखभागो दु । १०
सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं ॥५४०॥

ज्योतिषिकादधिकास्तिर्य्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु । सूच्यंगुलस्य चासंख्यभागस्तु तेजस्त्रयः ॥

भावप्रमाणेन कृष्णादिलेश्या जीवा. प्रत्येकं केवलज्ञानानन्तैकभागमात्राः अपि किंचिदूनक्रमा भवन्ति ।
भा कृ के । नी के− । क के = । अत्रापि त्रैराशिकं प्र १३− । फ श १ । इ के । लब्ध के अपवर्तिते ख । पुनः
ख ख ख ३− १३−
३−

प्र श ख । फ के । इ श १ । लब्ध के । तेजोलेश्यादित्रयजीवाः द्रव्यप्रमाणेन असंख्याता अपि सख्यातासख्यात- १५
ख
भागक्रमा भवन्ति । ते अ अ १ । प अ अ । शु अ ॥५३९॥

भावप्रमाणकी अपेक्षा प्रत्येक कृष्णादि लेश्यावाले जीव केवलज्ञानके अनन्तवें भाग-मात्र होनेपर भी क्रमसे कुछ हीन होते है । यहाँ भी त्रैराशिक करना । प्रमाणराशि अपने-अपने लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान । ऐसा करनेपर लब्धराशिमात्र अनन्त प्रमाण हुआ । पुनः इसीको प्रमाणराशि, फलराशि एक २०
शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान करनेपर केवलज्ञानके अनन्तवे भाग मात्र कृष्णादि लेश्या-वाले जीवोंका प्रमाण होता है । तेजोलेश्या आदि तीन शुभ लेश्यावाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात होनेपर भी तेजोलेश्यावालोंके संख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले और पद्मलेश्या-वालोंके असंख्यातवे भाग शुक्ललेश्यावाले हैं ॥५३९॥

तेजोलेश्याजीवंगळु ज्योतिषिकजीवराशियं नोडलु साधिकमप्परदं तंदोडे ज्योतिष्करुं भवनवासिगळुं व्यंतररुं सौधम्मद्वयकल्पजरुं संज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळोळु केलवु जीवंगळुं मनुष्यरोळ् केलवु जीवंगळुं एंदितारुप्रकारद जीवराशिगळ कूडिदोडे तेजोलेश्या जीवंगळप्पुवल्लि ज्योतिष्करु पण्णट्ठिप्रमितप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितरप्परु ४। ६५= भवनवासिगळु घनांगुलप्रथममूल-गुणितजगच्छ्रेणीमात्ररप्परु ।-१ । व्यंतररु त्रिशतयोजनभक्तजगत्प्रतरप्रमितरप्परु । ४६५=८१=१० सौधर्म्मद्वयद कल्पजरु घनांगुलतृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितरप्परु ।—३ ॥ संज्ञिपंचेंद्रियतेजो-लेश्याजीवंगळु :—

"जोइसियवाणजोणिणितिरिक्खपुरिसा य सण्णिणो जीवा ।
तत्तेउपम्मलेस्सा संखगुणूणा कमेणेदे ॥"

एंदितु पंचेंद्रियसंज्ञिजीवराशियं नोडलु संख्यातगुणहीनरप्परु ४। ६५=१ १ १ ११ मनुष्यरुं संख्यातरप्परितीयारुं राशिगळुं कूडिदोडे ज्योतिषिकरं नोडलु साधिकमक्कु ४। ६५=१ विंतु-क्षेत्रप्रमाणदिंद तेजोलेश्याजीवंगळ्गेळेपट्टुवु । पद्मलेश्येय जीवंगळुमा तेजोलेश्याजीवंगळं नोडलुं संख्यातगुणहीनमागियुं संज्ञितेजोलेश्याजीवंगळं नोडलु सख्यातगुणहीनरप्परुमा राशियोळु पद्म-लेश्येय कल्पजरुमं मनुष्यरुमं साधिकं माडिदोडे प्रतरासंख्येयभागमेयक्कु । संदृष्टि—

तेजोलेश्याजीवा. ज्योतिष्कजीवराशित साधिका भवन्ति । ४। ६५=१ । कथ ? पण्णट्ठिप्रतराङ्गुल-भक्तजगत्प्रतरमात्रज्योतिष्क- ४। ६५= घनाङ्गुलप्रथममूलगुणितजगच्छ्रेणिभावना -१ त्रिशतयोजन-कृतिभक्तजगत्प्रतरमात्रव्यन्तरा. ४। ६५=८१। १० ० घनाङ्गुलतृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रसौधर्मद्वयजा.- ३ पञ्चसंख्यातपण्णट्ठीप्रतराङ्गुलभक्तजगत्प्रतरमात्रतादृक्सज्ञितिर्यंच ४। ६५=११११११ तादृशसख्यातमनुष्या एतेषा मिलितत्वात् । पद्मलेश्याजीवा तेजोलेश्येभ्य सख्यातगुणहीनत्वेऽपि सज्ञितिर्यक्तेजोलेश्येभ्योपि

तेजोलेश्यावाले जीव ज्योतिषी देवोंकी राशिसे कुछ अधिक होते है । इसका हेतु यह है कि पैसठ हजार पाँच सौ छत्तीस प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो लब्ध आवे उतने तो ज्योतिषी देव है । घनांगुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण भवनवासी देव है । तीन सौ योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरमे देनेसे जो लब्ध आवे उतने व्यन्तर देव है । घनांगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित जगत्श्रेणिमात्र सौधर्म ऐशान स्वर्गके देव है । पाँच वार संख्यातसे गुणित पण्णट्ठि (६५५३६) प्रमाण प्रतरांगुलसे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंच हैं । तथा संख्यात तेजोलेश्यावाले मनुष्य । इन सबको जोड़नेसे जो प्रमाण हो उतने तेजोलेश्यावाले जीव हैं । पद्मलेश्यावाले जीव तेजोलेश्यावाले जीवोसे

---

१ म °रोलेल्लवु । २ ब सख्याततादृग्म° । ३ ब. °हीना अपि ।

इंतु क्षेत्रप्रमाणदिंदं पद्मलेश्येय जीवंगळु पेळल्पट्टुवु। शुक्ल-
४। ६५ = १ १ १ १ १ १
लेश्याजीवंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रमप्परु २ सू। इंतु तेजोलेश्यादिशुभलेश्याजीवंगळु
अ
क्षेत्रप्रमाणदिंदं पेळल्पट्टरु।

बेसदछप्पण्णंगुल कदिहिद पदरं तु जोइसियमाणं।
तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ॥५४१॥

षट्पंचाशदधिकद्विशतांगुलकृतिहृतप्रतरस्तु ज्योतिष्काणां मानं। तस्य च संख्येयं तिर्य्यक्-संज्ञिनां मानं॥

इल्लि तेजोलेश्याजीवंगळ प्रमाणम पद्मलेश्याजीवंगळ प्रमाणमं पेरगणनंतरसूत्रदोळ्पेळ्दुदं विशदं माडल्वेडि ज्योतिष्कर प्रमाणुमं संज्ञिजीवंगळ प्रमाणमुमनी सूत्रदिं पेळ्दपरल्लि ज्योतिष्क प्रमाणमं षट्पंचाशदुत्तरद्विशतांगुलकृतिहृतजगत्प्रतरप्रमितमक्कुं।

संज्ञिजीवंगळ प्रमाणमुमदर संख्येय भागमक्कु॥ ४। ६५ = ४। ६५ = १

तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का।
ओहि असंखेज्जदिमा तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

तेजोद्वयमसंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागाः शुक्लाः। अवधेरसंख्यभागास्तेजस्त्रयो भावतो भवंति॥

सख्यातगुणहीना भवन्ति। पद्मलेश्यातिर्यग्राशौ स्वकल्पजमनुष्यै. साधिकमात्रत्वात्-
सदृष्टिः== ॥ शुक्ललेश्या जीवा. सूच्यङ्गुलासख्यातैकभागमात्रा भवन्ति।
४। ६५ = १ १ १ १ १ १
२ सू इति तेजस्त्रयजीवा. क्षेत्रप्रमाणेनोक्ताः ॥५४०॥
अ १
प्रागुक्तं तेज'पद्मलेश्याजीवप्रमाण स्पष्टीकर्तुमाह—ज्योतिष्कप्रमाण बेसदछप्पण्णङ्गुलकृतिभक्तजगत्प्रतर-
मात्रं = सज्ञितिर्यक्प्रमाणं च तत्सख्येयभाग. = ॥५४१॥
४।६५= ४।६५=१

संख्यातगुणा हीन होनेपर भी तेजोलेश्यावाले संज्ञि तिर्यंचोंसे भी संख्यातगुणा हीन होते हैं क्योंकि पद्मलेश्यावाले तिर्यंचोंकी राशिमें पद्मलेश्यावाले कल्पवासीदेव और मनुष्योंका प्रमाण मिलनेसे पद्मलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण होता है। शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागमात्र होते है। इस प्रकार क्षेत्र प्रमाणसे तीन शुभलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा ॥५४०॥

पहले जो तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंका प्रमाण कहा उसे स्पष्ट करते है—ज्योतिष्कदेवोंका प्रमाण दो सौ छप्पन अंगुलके वर्गसे अर्थात् पण्णट्ठी प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है और इनके संख्यातवें भाग संज्ञी तिर्यंचोंका प्रमाण है ॥५४१॥

तेजोलेश्याजीवंगळु पद्मलेश्याजीवंगलुं प्रत्येकमसंख्येयकल्पगळागुत्तं तेजोलेश्याजीवंगळ नोडलु पद्मलेश्याजीवगळु संख्यातगुणहीनंगळप्पुवु । ते क ९ । पद्म क ə । शुक्लाः शुक्ललेश्याजीवंगळु पल्यासंख्येयभागाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु प इतु कालप्रमाणदिंदं शुभलेश्यात्रयजीवंगळु ə पेळल्पट्टुवु । अवधेरसंख्येयभागास्तेजस्त्रयो भावतो भवंति अवधिज्ञानविकल्पंगळ असंख्येयभागगळु प्रत्येकमागुत्तमा मूरु लेश्येगळ जीवगळु संख्यातगुणहीनंगळुमसंख्यातगुणहीनंगळुमप्पुवु । ते ओ(९)। ə

प ओ (९)। शु ओ (९) इंतु भावप्रमाणदिंदं शुभलेश्यात्रयजीवंगळु पेळल्पट्टुवु :—
ə ə ९ ə

१३ – कृ ३ –	१३ – नी ३।	१३ – क ३।	ते ə ə ९	प ə ə शु ə
≡ख	≡ख –	≡ख =	≡ ९ ४६५९	≡ २ ४६५ = ९।९।९।९।९।९।९। सू ə
अ ख	अ ख	अ ख =		क ə प ə
के ख	के ख	के ख		ओ ९ ə ओ ə ९ ə

इंतु पत्तनेय संख्याधिकारंतिद्दुर्दु ।

अनंतरं क्षेत्राधिकारमं पेळदपं :—

तेजोद्वयजीवा प्रत्येकमसख्येयकल्पा अपि तेजोलेश्येभ्य पद्मलेश्या सख्यातगुणहीना ते क ə ९। प क ə। शुक्ललेश्या पल्यासख्यातैकभागमात्रा भवन्ति प इति कालप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ता । ə

तेजस्त्रयजीवा प्रत्येक अवधिज्ञानविकल्पानामसख्येयभागा तथापि सख्यातासख्यातगुणहीना भवन्ति ते ओ प ओ शु ओ इति भावप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ता ॥५४२॥ इति सख्याधिकार ॥
ə ə ९ ə ९ ə

अथ क्षेत्राधिकारमाह—

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्पप्रमाण है फिर भी तेजोलेश्यावालोंसे पद्मलेश्यावाले संख्यातगुणा हीन है । शुक्ललेश्यावाले पल्यके असख्यातवें भाग मात्र होते है । इस प्रकार काल प्रमाणसे तीन शुभलेश्यावाले जीवोका प्रमाण कहा । तेजोलेश्या आदि तीन लेश्यावाले जीव प्रत्येक अवधिज्ञानके भेदोंके असंख्यातवे भाग है तथापि तेजोलेश्यावालोसे पद्मलेश्यावाले संख्यातगुणे हीन है और पद्मलेश्यावालोंसे शुक्ललेश्यावाले असंख्यातगुणे हीन है । इस प्रकार भावप्रमाणसे तीन शुभलेश्यावाले जीवोका प्रमाण कहा ॥५४२॥

इस प्रकार सख्याधिकार समाप्त हुआ । अब क्षेत्राधिकार कहते है—

---

१ म प्रतौ सदृष्टिर्न ।

सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं ।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

स्वस्थाने समुद्घाते उपपादे सर्व्वलोकोऽशुभानां । लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रितये ॥

अशुभानां कृष्णनीलकापोताशुभलेश्यात्रयद स्वस्थानदोळं समुद्घातदोळं उपपाददोळमितु त्रिस्थानकदोळं क्षेत्रं सव्वलोकसेयक्कुं ≡। तेजस्त्रितये तेजःपद्मशुक्लशुभलेश्यात्रयद स्वस्थानदोळं समुद्घातदोळ उपपाददोळमिंती त्रिस्थानदोळं तु मत्ते क्षेत्रं क्षेत्रवु लोकस्यासंख्येयभागः सव्वलोकद असंख्यातैकभागमक्कुमितु सामान्यदिंदमशुभलेश्येगळगं शुभलेश्यगळगं त्रिस्थानकदोळु क्षेत्रं पेळल्पट्टुदु । विशेषदिंदं षड्लेश्यगळगे दशस्थानंगळोळु क्षेत्रं पेळल्पडुगुमल्लि क्षेत्रमेंबुदेनेंदोडे विवक्षितलेश्याजीवंगळिंदं वर्त्तमानकालदोळु विवक्षितपदविशिष्टत्वदिंदमवष्टब्धाकाशप्रदेशंगळं क्षेत्रमेंबुदर्थमेंबुदिल्लि सामान्यदिंदं स्वस्थानमुं समुद्घातमुमुपपादमुमेंदु त्रिपदंगळोळु लेश्येगळगे क्षेत्रं पेळल्पट्टुदु । विशेषदिंदं दशस्थानंगळोळु षट्लेश्येगळगें क्षेत्रं पेळल्पडुगुमल्लि स्वस्थानं सामान्यदिंदमो डदं भेदिसिदोडे स्वस्थानस्वस्थानमेंदुं विहारवत्स्वस्थानमेंदु द्विविधमक्कुं ।

सामान्यदिंदं समुद्घातमो दं भेदिसिदोडे वेदनासमुद्घातमेंदुं कषायसमुद्घातमेंदुं वैक्रियिकसमुद्घातमेंदुं मारणांतिकसमुद्घातमेंदुं तेजःसमुद्घातमेंदुमाहारकसमुद्घातमेंदुं केवलिसमुद्घातमेंदितु समुद्घातं सप्तविधमक्कुमुपपादमेकप्रकारमेयक्कुं ।

विवक्षितलेश्याजीवैर्वर्तमानकाले विवक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाश. क्षेत्रम् । तच्च स्वस्थाने समुद्घाते उपपादे च त्र्यशुभलेश्याना सर्वलोक ≡ । तेजोलेश्यादित्रयस्य तु पुन लोकस्यासख्यातैकभाग सामान्येन भवति विशेषेण तु तत्र दशपदेषूच्यते । तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थान, विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्र तद्विहारवत्स्वस्थानमिति स्वस्थान द्वेधा । वेदनादिवशेन निजशरीराज्जीवप्रदेशाना बहि.प्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्घात । स च वेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकतैजसाहारककेवलिभेदात् सप्तधा । परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपाद इति दशपदानि । तेषु स्वस्थानस्वस्थाने वेदनासमुद्घाते कषायसमुद्घाते मारणान्तिकसमुद्घाते उपपादे चेति पञ्चपदेषु कृष्णलेश्याजीवक्षेत्र सर्वलोकः ≡।

विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान कालमें विवक्षित स्वस्थानादि पदसे विशिष्ट होते हुए जितने आकाशमें पाये जाते है उसका नाम क्षेत्र है । वह क्षेत्र स्वस्थान, समुद्घात और उपपादमें तीन अशुभ लेश्यावालोंका सर्वलोक है । तेजोलेश्या आदि तीनका क्षेत्र सामान्यसे लोकका असंख्यातवाँ भाग है । विशेष रूपसे दस स्थानोंमें कहते है—स्वस्थानके दो भेद हैं—स्वस्थानस्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान । उत्पन्न होनेके ग्राम-नगर आदि क्षेत्रको स्वस्थानस्वस्थान कहते है । और विवक्षित पर्यायसे परिणत होते हुए परिभ्रमण करनेके उचित क्षेत्रको विहारवत्स्वस्थान कहते है । वेदना आदिके कारणसे अपने शरीरसे जीवके प्रदेशोंके उसके योग्य बाह्य प्रदेशमें फैलनेको समुद्घात कहते हैं । उसके सात भेद है—वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली समुद्घात । पूर्वभवको छोड़कर उत्तरभवके प्रथम समयमें प्रवर्तनको उपपाद कहते है । इस प्रकार ये दस स्थान है । उनमें-से स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद इन पाँच पदोंमें कृष्णलेश्यावाले जीवोंका क्षेत्र सर्वलोक है । अब

इंतु विशेषदिंदं दशपदंगळप्पुवल्लि स्वस्थानस्वस्थानमेंबुदेनेंदोडे उत्पन्नपुरग्रामादि क्षेत्रं स्वस्थानस्वस्थानमेंबुदु, विवक्षितपर्य्यायपरिणतनिदं परिभ्रमिसल्कुचितक्षेत्रं विहारवत्स्वस्थानमेंबुदु। वेदनादिवशदिंदं निजशरीरदत्तणिदं जीवप्रदेशंगळ्गे बहिःप्रदेशदोळु तत्प्रायोग्यविसर्प्पणं समुद्घातमेंबुदु। परित्यक्तपूर्व्वभवंगे उत्तरभवप्रथमसमयदोळु प्रवर्त्तनमनुपपादमेंबुदु। इंती स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळु स्वस्थानस्वस्थानदोळं वेदनासमुद्घातदोळं कषायसमुद्घातदोळं मारणांतिकसमुद्घातदोळमुपपाददोळमिंती पंचपदंगळोळं कृष्णलेश्याजीवंगळ्गे क्षेत्रं सर्व्वलोकमेयक्कुं=सीयद्दु पदंगळोळं मुन्नं सख्याधिकारदोळपेळ्द कृष्णलेश्याजीवंगळु सर्व्वसंसारिजीवराशिय किंचिदूनत्रिभागंगळप्पुववं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागगळु स्वस्थानस्वस्थानदोळप्पुवेंदु कोट्टु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं वेदनासमुद्घातदोळप्पुवेंदु कोट्टु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागम कषायसमुद्घातपददोळित्तु शेषैकभागमं फलराशियं माडि एकनिगोदजीवन एकभवायुःस्थितिप्रमाणमुच्छ्वासाष्टादशैकभागमक्कुमदुवुमंतर्म्मुहूर्त्तमेयक्कु २१ ॥ मा कालमं प्रमाणराशियं माडिवों दु समयमनिच्छाराशियं माडि प्र २१। प १३-१। इ स १ बंद लब्धमात्रं कृष्णलेश्याजीवंगळु उपपादपददोळप्पुवु १३

३-५। ५। ५ ३-५। ५५। २१

तत्र कृष्णलेश्याजीवराशि १३- सख्यातेन भक्त्वा बहुभाग १३-।४ स्वस्थानस्वस्थाने देय.। शेषैकभागस्य
३- ३-।५।

सख्यातभक्तबहुभाग १३-।४ वेदनासमुद्घाते देय । शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभाग -१३-।४ कषा-
३-।५।५ ३-५।५।५।

यसमुद्घाते देय । शेषैकभाग फलराशि कृत्वा, एकनिगोदभवायुरुच्छ्वासाष्टादशैकभागान्तर्मुहूर्तं २१ प्रमाणराशि कृत्वा एल सलयमिच्छाराशिकृत्वा प्र २१ फ १३-१। इ स १ लब्धमुपपादपदे देय १३ एतस्मिन्नेव
३-५५।५ ३-५।५।५।२१

पुन. मारणान्तिकसमुद्घातकालान्तर्मुहूर्तेन गुणिते प्र स १। फ १३-। इ २१। लब्ध मूलराशिसख्यातै-
३-।५।५५।२१

=

कभाग मारणान्तिकसमुद्घाते दद्यात् १३—पुन.कृष्णलेश्यात्रय सपर्याप्तराशि ४। ३- सख्यातेन भक्त्वा बहु-
३-१ ५-

इन जीवोंका प्रमाण कहते हैं—कृष्णलेश्यावाले जीवोकी पूर्वोक्त संख्यामें संख्यातसे भाग देकर वहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थानवाले है। शेप एक भागमें संख्यातसे भाग देनेपर जो बहुभाग आवे उतने वेदना समुद्घातवाले हैं। शेप एक भागमे पुनः संख्यातसे भाग देनेपर जो वहुभाग आवे उतने कषाय समुद्घातवाले जीव हैं। शेष एक भागको फलराशि वनाकर और एक निगोदियाकी आयु उच्छ्वासके अठारहवे भाग प्रमाण अन्तर्मुहूर्त, उसके समयोंको प्रमाणराशि वनाकर तथा एक समयको इच्छाराशि करके फलको इच्छाराशिसे गुणा कर उसमे प्रमाणराशिका भाग देनेसे जितना प्रमाण आवे उतने जीव उपपादवाले हैं। उपपादवाले जीवोके इस प्रमाणको मारणान्तिक समुद्घातके काल अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने मूलराशिके सख्यातवे भाग जीव मारणान्तिक समुद्घातवाले हैं। ये जीव सर्वलोकमें पाये जाते हैं इससे इनका क्षेत्र सर्वलोक है। पुनः कृष्णालेश्यावाले पर्याप्त-

मीयुपपादपद कृष्णलेश्याजीवंगळ संख्येयं फल राशियं माडि मारणांतिकसमुद्घातकालप्रमाणमंत-
र्म्मुहूर्त्तमदनिच्छाराशियं माडि गुणियिसुत्तं विरलु प्र स १ फ = १३ − इच्छे २७। लब्ध-
३—५।५५।२१
राशियं मूलराशिय संख्यातैकभागमक्कुमा मारणांतिकसमुद्घातपददोळु कृष्णलेश्याजीवंगळप्पुवु
१३ मत्तं कृष्णलेश्यात्रसपर्य्याप्तराशियं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं =४ स्वस्थान-
३—१ ३—४।५
५
स्वस्थानदोळित्तु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं =४ विहारवत्स्वस्थान- ५
३—४।५।५
५—
पददोळित्तु शेषैकभागमं ४। ३—।५।५ शेषपदंगळोळु यथायोग्यमागि दातव्यमप्पुदु।
५
त्रसपर्य्याप्तमध्यमावगाहनजनितसंख्यातघनांगुलंगळं फलराशियंमाडि विहारवत्स्वस्थानकृष्णलेश्या-
जीवराशियनिच्छाराशियं माडि प्र १ फ ६१ इ =४ लब्धराशियनपवर्त्तसिदोडे संख्यात-
३—४।५।५
सूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरमात्रं विहारवत्स्वस्थानदोळु क्षेत्रमक्कुं। = सू २१। मत्तं पल्यासंख्यात-

---

=४ ==४
भागः—४। ३—५। स्वस्थानस्वस्थानेऽस्तीति देयः। शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागो ४। ३-५।५ विहार- १०
५— ५—

= १
वत्स्वस्थाने देयः। शेषैकभाग ४। ३ ५। ५ शेषपदेषु यथायोग्यं पतितोऽस्तीति ज्ञातव्यः। त्रसपर्याप्तमध्य-
५—

मावगाहन संख्यातघनाङ्गुलं फलराशिं कृत्वा विहारवत्स्वस्थानकृष्णलेश्याजीवराशिमिच्छां कृत्वा—

प्र १। फ ६ १। इ =४
४। ३—५।५ लब्धमपवर्तित सख्यातसूच्यङ्गुलगुणितजगत्प्रतरो विहारवत्स्वस्थाने क्षेत्र
५—

त्रस जीवोंके प्रमाणको संख्यातसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थानवाले जीव हैं। शेष एक भागमें संख्यातका भाग देकर बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानवाले जीव १५
हैं। शेष एक भाग रहा सो शेष स्थानोंमें यथायोग्य जानना। त्रसपर्याप्त जीवोंकी मध्यम अवगाहनाके अनेक प्रकार है। उसे बराबर करनेपर एक त्रसपर्याप्त जीवकी मध्यम अवगाहना संख्यात घनांगुल है। उसे फलराशि करके और विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा कृष्णलेश्यावाले जीवोंकी राशिको इच्छाराशि करो। तथा एक जीवको प्रमाणराशि करो। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर संख्यात सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर २०
प्रमाण विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र आता है।

---

१. म °भागसख्यात पहुभाग°। २. म °व्यंगलप्पुवु। ३. ब. °ति ज्ञातव्यः।

मात्रघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणीमात्रकृष्णलेश्यावैक्रियिकराशिय —६ प संख्यातदिंदं भागिसि
३ अ
बहुभागमं —६ प ४ स्वस्थानस्वस्थानदोळित्तु मत्तमिते शेषद शेषद संख्यातद बहुभाग-
३—अ ५
बहुभागंगळं विहारवत्स्वस्थानदोळं —६ प ४ वेदनासमुद्घातदोळं —६ प ४
अ अ
३—५।५ ३—५।५५
कषायसमुद्घातदोळं —६ प ४ दातव्यगळप्पुवु शेषैकभागं वैक्रियिकसमुद्घातदोळुदातव्य-
अ
३-।५५५५
मक्कुं -६ प १ मिवं यथायोग्यवैकुर्व्वणावगाहनोत्पन्न संख्यातघनांगुलंगळिंदं गुणिसुत्त
अ
३-।५५५५
विरलु घनांगुलवर्गगुणितासंख्यातश्रेणीमात्र वैक्रियिकसमुद्घातपददोळु क्षेत्रमक्कुं ।=अ ६।६।
इंती दशपदंगळ रचनासंदृष्टियं स्थापिसि रचनेयिदु :

भवति = सू २ १। पुन. पल्यासंख्यातमात्रघनाङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणि कृष्णलेश्यावैक्रियिकराशि — ६ प असंख्यातेन
३-अ
भक्त्वा बहुभाग[1] — ६ प ४ स्वस्थानस्वस्थाने[2] दत्त्वा शेषशेषस्य सख्यातबहुभागसख्यातबहुभागो विहार-
३-अ।५
वत्स्वस्थाने—६ प ४ वेदनासगुद्घाते — ६ प ४ कषायसमुद्घाते च ६।प ४ पतितोऽस्तीति-
३- अ ५ ५ ३- अ ५ ५ ५ ३-अ५५५५
ज्ञात्वा शेषैकभागो वैक्रियिकसमुद्घाते देय —६ प।१ अयमेव यथायोग्यवैगुर्वाणावगाहनोत्पन्नसख्यात-
३- अ ५ ५ ५ ५
घनाङ्गुलैर्गुणित —घनाङ्गुलवर्गगुणितासख्यातश्रेणिमात्र वैक्रियिकसमुद्घाते क्षेत्र भवति—अ ६।६। पुन
सामान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पञ्च सस्थाप्यालाप क्रियते—

वैक्रियिक समुद्घातमें क्षेत्र घनांगुलके वर्गसे गुणित असंख्यात जगतश्रेणि प्रमाण है। वह इस प्रकार है—कृष्णलेश्यावाले वैक्रियिक शक्तिसे युक्त जीवोंके प्रमाणको संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव स्वस्थानस्वस्थानमें हैं। शेष एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव विहारवत्स्वस्थानमें है। शेष एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव वेदना समुद्घातमें है। शेष एक भागमें संख्यातसे भाग दो। बहुभाग प्रमाण जीव कषाय समुद्घातमें है। शेष एक भाग प्रमाण जीव वैक्रियिक समुद्घातमें हैं। इस प्रकार जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवोंका प्रमाण है उसको ही यथायोग्य एक जीव सम्बन्धी वैक्रियिक समुद्घातके क्षेत्र संख्यात घनांगुलसे गुणा करनेपर घनांगुलके वर्गसे गुणित असंख्यात श्रेणिमात्र वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र होता है।

---

१ व °भाग। २ व °नेऽस्तीतिज्ञात्वाशे°।

क्षे	स्वस्थान स्वस्थान	विहार	वेदना-समुद्घात	कषाय समुद्घात	वैक्रियिक समुद्घात	मारणांति समुद्घात	तेज	आ	के	उपपाद	सामान्यलोक=
कृ	=१३-४ ३-५	=४।६७ ४।५५ ५-	=१३-४ ३-५५	=१३-४ ३-५५५	-६पा६७ ə ३-५५५५	=१३- ३-७	०	०	०	१३-= ३-२७।७	अधोलोक=४ ७
नी	=१३-४ । ३ ५	=४।६७ । ३४।५५ ५-	=१३-४ । ३।५।५	=१३-४ । ३-५५५	-६पा६७ ə । ə५५५५	=३- ३ ७	०	०	०	१३-= । ३२७।७	ऊर्ध्वलोक=३ ७ तिर्य्यग्लोक=१० ४९
क	=१३-४ ॥ ३-५	= ४।६७ ॥ ३४५५ ५-	=१३-४ । ३।५५	=१३-४ ॥ ३-५५५	-६पा६७ ə ॥ ३५५५५	=१३- ॥ ३ ७	०	०	०	१३-= ॥ ३२७।७	मनुष्यलोक

मत्तं सामान्यलोकमं अधोलोकमुमनूर्ध्वलोकमुमं तिर्य्यग्लोकमुमं मनुष्यलोकमुमं संस्थापिसि-
बळिक माळापं माडल्पडुगुमदें तेंदोडे स्वस्थानस्वस्थान - वेदनाकषाय - मारणांतिकोपपादंगळें ब
पंचपदंगळोळु कृष्णलेश्याजीवंगळु कियत्क्षेत्रदोळिरुत्तविर्प्पुवें दोडुत्तरं कुडल्पडुगुं सर्व्वलोकदोळि-
रुत्तिर्प्पुवु विहारवत्स्वस्थानदोळु कृष्णलेश्याजीवंगळु कियत्क्षेत्रदोळिरुत्तिर्प्पुवें दोडुत्तरं पेडल्पडुगुं
सामान्यदि मूरुं लोकंगळ असंख्यातैकभागदोळं तिर्य्यग्लोकद संख्येयभागदोळेसिरुत्तिर्प्पुवेके दोडे
एकलक्षयोजनोत्सेधमं नोडलेकजीवशरीरोत्सेधक्के सख्यातगुणहीनत्वदिंदं मनुष्यलोकमं नोडलुम-
संख्यातगुणक्षेत्रदोळिरुतिर्प्पुवु । वैक्रियिकपददोळु कृष्णलेश्येय जीवंगळु एनितु क्षेत्रंगळोळिरुतिर्प्पु-
वें दोडे सामान्यदि नाल्कुं लोकंगळऽसंख्यातैकभागदोळं मनुष्यलोकमं नोडलुमसंख्यातगुणक्षेत्रदोळि-

तद्यथा—कृष्णलेश्याजीवाः स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणान्तिकोपपादपदेषु कियत्क्षेत्रे तिष्ठन्ति ? सर्वलोके तिष्ठन्ति । विहारवत्स्वस्थानपदे पुन. सामान्यादिलोकत्रयस्यासंख्यातैकभागे तिर्यग्लोकस्य लक्षयोजनोत्सेधादेकजीवशरीरोत्सेधस्य सख्यातगुणहीनत्वात् सख्यातैकभागे मनुष्यलोकादसख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति । वैक्रियिकसमुद्घातपदे च सामान्यादिचतुर्लोकानामसख्यातैकभागे मनुष्यलोकादसंख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति ।

पुनः सामान्य लोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक और मनुष्यलोक इन पांचकी स्थापना करके कथन करते हैं—कृष्णलेश्यावाले जीव स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद स्थानोंमें कितने क्षेत्रमें रहते है ? सर्वलोकमें रहते हैं। किन्तु विहारवत्स्वस्थानमें सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोकके असंख्यातवे भागमें रहते है। तिर्यक्लोक एक लाख योजन ऊँचा होनेसे तथा एक जीवके शरीरकी ऊँचाई उससे संख्यातगुणा हीन होनेसे तिर्यक्लोकके संख्यातवे भागमें रहते है। तथा मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते हैं। वैक्रियिक समुद्घात स्थानमें जीव सामान्य आदि चार लोकोंके असंख्यातवें

१. म दोलिर्प्पुवेकेदोडे ।

रुत्पिपुवेके दोडसंख्यातघनांगुलवर्गमात्रजगच्छ्रेणीमात्रं तज्जीवक्षेत्रमप्पुदरिंदं । ई प्रकारदिं नीललेश्येगं कापोतलेश्येगं वक्तव्यमक्कुं ।

मत्तं तेजोलेश्या राशियं $\frac{\text{।।।}}{=}$ १ $\frac{\text{।}}{\text{(१)}}$ संख्यातदिंदं भागिसि बद बहुभागमं स्वस्थानस्व-

४ ६५ = १

स्थानदोळित्तु शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं विहारवत्स्वस्थानदोळित्तु

$\frac{\text{।}}{\text{(७)}}$

$\frac{\text{।}}{\text{।।।}}$ १ । ४ शेषैकभागम मत्तं सख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं वेदनासमुद्घातदोळित्तु—

४।६५ = १५५

$\frac{\text{—}}{\text{(७)}}$

$\frac{\text{—}}{\text{।।।}}$ १ । ४ शेषैकभागमं मत्तं संख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं कषायसमुद्घात दोळित्तु—

४६५ = १ ५५५

$\frac{\text{।}}{\text{(७)}}$

$\frac{\text{।}}{\text{।।।}}$ १ । ४ शेषैकभागमं वैक्रियिकपददोळीवुदु ।—

४६५=१ ५५५५

कुतः ? असख्यातघनाङ्गुलवर्गमात्रजगच्छ्रेणीना तत्क्षेत्रत्वात् । एवं नीलकपोतयोरति वक्तव्यम् । पुनस्तेजोलेश्या

जीवराशि $= \frac{\text{।।।}}{=}$ १ सख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभाग स्वस्थानस्वस्थाने—

४ । ६५=१

$\frac{\text{।।।}}{=}$ १ ४ विहारवत्स्वस्थाने ४ । ६५=१ ५

$\frac{\text{।।।}}{=}$ १ ४ ४ । ६५=१ । ५ । ५ ।

वेदनासमुद्घाते— $\frac{\text{।।।}}{=}$ १ ४ ४ । ६५=१ । ५ । ५ । ५

भागमें और मनुष्यलोकसे असंख्यातगुणे क्षेत्रमें रहते है । क्योंकि वैक्रियिक समुद्घातवालों-का क्षेत्र असंख्यात घनांगुलके वर्गसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण है । इसी प्रकार नील और कपोतलेश्याका भी कहना चाहिए ।

अब तेजोलेश्याका क्षेत्र कहते है—तेजोलेश्यावाले जीवोंकी राशिमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग विहारवत्स्वस्थानमें जानना । शेष रहे एक भागमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग वेदना समुद्घातमें जानना । पुनः शेष रहे एक भागमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग कपाय समुद्घातमें जानना । शेष रहा एक भाग सो वैक्रियिक समुद्घातमें जानना । इस

$\sqrt{\frac{1}{(७)}}$ $\sqrt{\frac{}{}}$ $\frac{}{}$

।।। ७ इल्लि सप्तधनुरुत्सेधमुं ७ तद्दशमभागमुखविस्तारमुं ७ अप्प देवावगाहनंगळोळुः
= १०
४।६५=७५५५५

"वासो तिगुणो परिही वासचउत्थाहदो दु खेत्तफळं, ७।३।७।७ खेत्तफळं वेहगुणं
१०।१०।४
७।३।७।७ खादफळं होइ सव्वत्थ।"
१०।१०।४

एंदी देवावगाहनमं घनात्मकगळप्प धनुगळ[1]मंगुळंगळं माडल्वेडि तोंभत्तारर घनात्मकदिंदं गुणिसि मत्तमायंगुलंगळं प्रमाणांगुलंगळं माडल्वेडि पंचशतदिंदं घनात्मकदिंदं भागिसि स्थापिसि— ५
७।३।७।७।९६।९६।९६ अपवर्त्तसिदोडे देवावगाहनं प्रमाणघनांगुलसंख्यातैकभाग-
१०।१०।४।५००।५००।५००

$\sqrt{\frac{1}{(७)}}$

।।। $\sqrt{\frac{1}{}}$

मक्कुमदरिंदं स्वस्थानस्वस्थानराशियं गुणियिसि = १।४।६। मत्तमी येकावगाहनद एकादि-
४।६५।=७५७

।
।।। १—
= ७ ४
४।६५=७।५।५।५।५

कषायसमुद्घाते च दत्त्वा शेषैकभागो वैक्रियिकसमुद्घाते देय.

।
।।। १—
= ७ १
४।६५=७।५।५।५।५

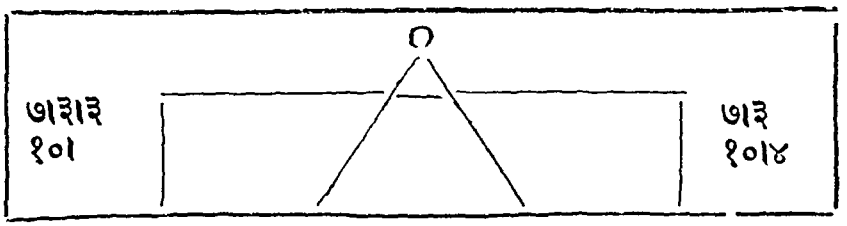
तत्र स्वस्थानस्वस्थानराशिः सप्तधनुरुत्सेध ७ तद्दशाशमुखविस्तारविस्तार ७
१०
देवावगाहनेन वासोत्तिगुणेत्याद्यानीतधनूरूपखातफलेन ७।३।७।७ घनाङ्गुलीकर्तुं षण्णवतिघनगुणितेन पुनः १०
१०।१०।४
प्रमाणाङ्गुलीकर्तुं पञ्चशतघनभक्तेन ७।३।७।७।९६।९६।९६। अपवर्तिते जातघनाङ्गुल-
१०।१०।४। ५००।५००।५००

प्रकार जीवोंका प्रमाण कहा। स्वस्थानस्वस्थान अपेक्षा क्षेत्रका प्रमाण लानेके लिए कहते है—तेजोलेश्या मुख्य रूपसे भवनत्रिक आदि देवोंमें होती है। उनमें एक देवकी अवगाहना-का प्रमाण सात धनुष ऊँचा और सात धनुषके दसवें भाग चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल लानेके लिए सात धनुषके दसवे भाग चौड़ाईको तिगुना करनेपर परिधि होती है क्योंकि चौड़ाईसे तिगुनी परिधि कही है। इस परिधिको चौड़ाईके चतुर्थ भागसे गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है। इसकी ऊँचाई सात धनुषसे गुणा करनेपर घनरूप क्षेत्रफल होता है। घनरूप राशिके गुणकार भागहार घनरूप ही होते है। सो यहाँ घनांगुल करनेके लिए एक धनुषके छियानवे अंगुल होते है अतः घनरूप क्षेत्रफलको छियानवेके घनसे गुणा करना। यहाँ कथन प्रमाणांगुलसे है और देवोंके शरीरका प्रमाण उत्सेधांगुलसे होता है अतः पाँच सौके घनसे भाग

---

१. म°गलुमनंगुलं°।

प्रदेश विसर्प्पणक्रमदिंद वृद्धियुत्कृष्टदिंदं त्रिगुणितविस्तारदिंदं पुट्टिद राशि[1] मूलराशियं नोडलु नवगुण-
१।२
मक्कु ६।६।६।००।६।९ मा[2] नवगुणमूलराशियं मुखभूमि समासार्द्धं मध्यफलमें—
७ ७७ ७



दु मुखं शून्यमक्कुमेकें दोडे द्वितीयविकल्पं मोदल्गोंडु प्रदेशवृद्धिक्रममप्पुदरिंदमा शून्यमं कूडिद-
ळियिसिदोडे समीकरणदिं पुट्टिद मध्यमावगाहनं नवार्द्धघनांगुलसंख्यातैकभागमक्कुमदरिंदं वेदना-
III I
समुद्घातराशियमं कषायसमुद्घातराशियुमं गुणिसुवुदु वेद = १४६।९ कषाय
४।६५=५५५२
III I
= १४६।९ मत्तं संख्यातयोजनाययमुं सूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेधमुमागि मूल-
४।६५।५५५।२

सख्येयभागेन ६ हतस्तत्क्षेत्र स्यात् । वेदनाकषायराशी द्वौ तत्समुद्घातयोर्मूलशरीरात्प्रदेशोत्तरवृद्धया उत्कृष्ट-
१
विकल्पस्य त्रिगुणितव्यासस्य वासो त्तिगुणो परिहीत्याद्यानीत—७।३।३।७।३।७ घनफलस्य नव-
१०।१०।४

देना। ऐसा करनेसे प्रमाणरूप घनागुलके संख्यातवें भाग एक देवके शरीरकी अवगाहन हुई। इस अवगाहनासे पहले जो स्वस्थानस्वस्थानमें जीवोंका प्रमाण कहा था उसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना स्वस्थानस्वस्थानका क्षेत्र जानना।

वेदना समुद्घात और कषाय समुद्घातमें आत्माके प्रदेश मूल शरीरसे बाहर निकलकर एक प्रदेश क्षेत्रको रोके या एक-एक प्रदेश बढते-बढते उत्कृष्ट क्षेत्रको रोके तो चौड़ाईमें मूल शरीरसे तिगुने क्षेत्रको रोकते है और ऊँचाई मूल शरीर प्रमाण ही है। इसका घनरूप क्षेत्रफल करनेपर मूल शरीरके क्षेत्रफलसे नौगुणा क्षेत्रफल होता है। सो जघन्य एक प्रदेश और उत्कृष्ट मूल शरीरसे नौगुणा क्षेत्र हुआ। इनका समीकरण करनेसे एक जीवके मूलशरीरसे साढ़े चार गुना क्षेत्र हुआ। शरीरका प्रमाण पहले घनांगुलके संख्यातवें भाग कहा था। सो उसे साढ़े चार गुना करनेपर एक जोव सम्बन्धी क्षेत्र होता है। उससे वेदना समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर वेदना समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। तथा कषाय समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणसे गुणा करनेपर कषाय समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। विहार करते हुए देवोंके मूलशरीरसे बाहर आत्माके प्रदेश फैले तो वे प्रदेश एक जीवकी अपेक्षा सख्यात योजन तो लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण चौड़े व ऊँचे क्षेत्रको रोकते है। उसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है। इससे पूर्वमें कहे विहारवत्स्वस्थानवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर सब जीवोके विहारवत्स्वस्थान

---

१ म राशि ७।३।३।७।३।७ मूल°। २ म मा मूल°।
१०।१०।४

शरीरदिंदं पोरमट्टु निस्सिद्धात्मप्रदेशावष्टब्धक्षेत्रजनित २।२ संख्यातघनांगुलदिंदं विहारवत्स्व-
१।१
यो १

स्थान-राशियं गुणिसुदु = ११४।६७ स्वस्वेच्छावशदिंदं विगुर्व्विसिद
४।६५=७५५

गजादिशरीरावगाहनोपलब्धसंख्यातघनांगुलदिंदं वैक्रियिक समुद्घातराशियं गुणिसुवुदु—
= १।६।७ इंतु गुणिसुत्तं विरलु तंतम्म क्षेत्रमक्कुं। मत्तं व्यंतरराशियं
४६५=७५५५५

एकदेवस्थितिप्रमाणसंख्यातवर्ष । १०००० । शुद्धशळाकेगळ्पूर्व्वोक्तंगळिंदं अ ११ भा १२= ५
गि सुवुदंतु भागिसुत्तं विरलेकसमयदोळु म्रियमाणराशियक्कु = मदरोळु
४६५=८१।१०।अ११

ऋजुगतिय जीवंगळ तेगेयल्वेडि पल्यासंख्यातैकभागदिंदं भागिसि एकभागमं कळेदोडे बहुभागं

विग्रहगतिय जीवंगळप्पुवु ४६५=८१।१०।अ११ प अवरोळु मारणांतिकसमुद्घातरहित-
अ
प
अ

गुणितमात्रत्वात् सर्वविकल्पसमीकरणलब्धेन तदर्धमात्रेण ६ । ९ हतौ तत्क्षेत्रेस्याताम्। विहारवत्स्वस्थानराशिः
१ । २
संख्यातयोजनायामसूच्यङ्गुलसंख्येयभागविष्कभोत्सेधक्षेत्र[1] २ । २ जनितसंख्यातघनाङ्गुलै. ६ १ हतस्तत्क्षेत्र १०
१ १
यो १

स्यात्। वैक्रियिकसमुद्घातराशि· स्वेच्छावशाद्विकुर्वितगजादिशरीरावगाहनोत्पन्नसंख्यातघनाङ्गुलैः ६ १ हतस्तत्क्षेत्र स्यात्। व्यन्तरराशि. एकदेवस्थितिप्रमाणसंख्यातवर्ष-१०००० शुद्धशलाकाभिः अ १ १ भक्ते. एकसमये म्रियमाणराशिः स्यात् = ० अत्र ऋजुगतिजीवानपनेतु पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभाग
४।६५=८१।१०।अ १ १

सम्बन्धी क्षेत्रका प्रमाण आता है। वैक्रियिक समुद्घातके सम्बन्धमें यह ज्ञातव्य है कि देवोंके मूलशरीर तो अन्य क्षेत्रमें रहते हैं और विहार करते हुए विक्रियारूप शरीर अन्य १५
क्षेत्रमें होते हैं। दोनोंके बीचमें आत्माके प्रदेश सूच्यंगुलके संख्यातवे भागमात्र ऊँचे चौड़े फैले है। और ऊपर मुख्यताकी अपेक्षा संख्यात योजन लम्बे कहे है। तथा देव अपनी इच्छावश हाथी, घोड़ा इत्यादि रूप विक्रिया करते है। उसकी अवगाहना एक जीवकी अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है। इससे पूर्वमें कहे वैक्रियिक समुद्घात करनेवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर सर्वजीव सम्बन्धी वैक्रियिक समुद्घातमें क्षेत्रका परिमाण आता २०
है। पीतलेश्यावालोमें व्यन्तर देवोंका मरण अधिक होता है अतः उनकी मुख्यतासे यहाँ मारणान्तिक समुद्घात सम्बन्धी कथन करते है। व्यन्तर देवोंकी संख्यामें एक व्यन्तर देवकी

---

१. ब °त्सेधमूलशरीराद् बहिर्निसृतात्मप्रदेशावष्टब्धक्षेत्र २ २ जनितसख्यातघनाङ्गुलै ६ १ हतस्तक्षेत्रं।
१ १

जीवंगळं तेगेयल्वेडि पल्यासंख्यातदिंदं भागिसि एकभागमं कळेदु बहुभागं मारणांतिकसमुद्घात-

$$= \overset{\frown}{\underset{\circ}{\text{प}}} \quad \overset{\frown}{\text{प}}$$
$$\text{अ} \quad \text{अ}$$

सहितजीवंगळप्पुवु । ४।६५ = । ८१।१० । अ१२ प प मत्तवरोळु समीपमारणांतिकसमुद्घातजीवं-
$$\text{अ} \quad \text{अ}$$

गळं कळेयल्वेडि पल्यासंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमं कळेदु शेषैकभागं दूरमारणांतिकसमुद्घात-

$$= \overset{\frown}{\underset{\circ}{\text{प}}} \quad \overset{\frown}{\text{प}} \quad \text{१}$$
$$\text{अ} \quad \text{अ}$$

जीवगळप्पुवु ४।६५ = । ८१ । १० । अ१२ ई राशियं मारणांतिकसमुद्घातकालांतर्मु-
$$\text{प} \quad \text{प} \quad \text{प}$$
$$\text{अ} \quad \text{अ} \quad \text{अ}$$

५ हूर्तदोळु संभविसुव शुद्धशलाकेगळनिच्छाराशियं माडि मारणातिकसमुद्घातजीवंगळं

फलराशियं माडि एकसमयमं प्रमाणराशियं माडि प्र स १ । फ = $\overset{\frown}{\underset{\circ}{\text{प}}} \quad \overset{\frown}{\text{प}} \quad \text{१}$
४।६५। = ८ १।१०।अ१२ प प प
अ अ अ

इ २१ बंद लब्धं[1] समस्तमारणांतिकसमुद्घातजीवंगळप्पुवु ४६५।८१।१०।अ१२१२ $\overset{\frown}{\text{प}} \quad \overset{\frown}{\text{प}} \quad \text{१।अ१}$
अ अ
प प प
अ अ अ

त्यक्त्वा शेषबहुभागो विग्रहगतिजीवराशिर्भवति= $\overset{\frown}{\underset{\circ}{\text{प}}}$ अत्र मारणान्तिकसमु-
अ
४ । ६५ = ८१ । १० । अ १ १ प
अ

द्घातरहितानपनेतुं पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभाग त्यक्त्वा शेषबहुभागो मारणान्तिकसमुद्घातजीवराशिर्भवति—

१० = $\overset{\frown}{\underset{\circ}{\text{प}}} \quad \overset{\frown}{\underset{\circ}{\text{प}}}$ अत्र समीपमारणान्तिकसमुद्घातजीवानपनेतु पल्यासंख्यातेन भक्त्वा
अ अ
४ । ६५ = ८१ । १० अ १ १ प प
अ अ

संख्यात वर्ष—दस हजार वर्षकी स्थितिके समयोंकी संख्यासे भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे उतने जीव एक समयमें मरते है। इन मरनेवाले जीवोंकी संख्यामें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण जीवोंकी ऋजुगति होती है और शेष बहुभाग प्रमाण जीव विग्रह गतिवाले होते हैं। विग्रहगतिवाले जीवोंके प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागसे १५ भाग दे। एक भाग प्रमाण जीवोंके मारणान्तिक नहीं होता, बहुभाग प्रमाण जीवोंके मारणान्तिक समुद्घात होता है। मारणान्तिक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणमें पल्यके असख्यातवें भागसे भाग दे। बहुभाग प्रमाण समीप क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्घात करने-

---

१ म सर्वमा°।

ई राशियं रज्जुसंख्यातैकभागायामसूच्यंगुलसंख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधक्षेत्रद २ २ घनफलभूत-
१ १
१

प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितजगच्छ्रेणिसंख्यातैकभागदिदं गुणिसुत्तं विरलु मारणांतिकसमुद्घात-

क्षेत्रमक्कुं ४।६५=।८१।१०।१११ प प ।१-४ मत्तं द्वादश योजनायामनवयोजनविष्कंभ-
। ।
प प प १११
। । ।

सूच्यंगुलसंख्यातैकभागोत्सेध २ ९ क्षेत्रघनफलससंख्यातघनांगुलप्रमितमं संख्यातजीवंगळिंदगुणि-
१
यो १२

बहुभागं त्यक्त्वा एकभागो दूरमारणान्तिकजीवराशिर्भवति—= प प १ ५
। । ०
४।६५=८१।१०।। १ १ प प प
। । ।

अस्मिन्मारणान्तिकसमुद्घातकालान्तर्मुहूर्तसंभविशुद्धशलाकाभि । १ संगुण्य एकसमयेन भक्ते सर्वदूरमारणान्ति-

कसमुद्घातजीवप्रमाणं भवति ।= प प १।। १ अस्मिन् रज्जुसंख्यातैकभागाया-
। । ०
४।६५=८१।१०।। १ १ प प प
। । ।

मसूच्यङ्गुलसंख्यातैकभागविष्कम्भोत्सेधक्षेत्रस्य २।२ घनफलेन प्रतराङ्गुलसंख्यातैकभागगुणितजगच्छ्रेणि-
१।१
७।१

संख्यातैकभागेन— ४ गुणिते दूरमारणान्तिकसमुद्घातस्य क्षेत्र भवति—
७।१।१

वाले जीव है और एक भाग प्रमाण दूरवर्ती क्षेत्रमें समुद्घात करनेवाले जीव है । मारणा- १०
न्तिक समुद्घातका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है । दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंकी राशिमें अन्तर्मुहूर्तके समयोंसे गुणा करनेपर सब दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले एक जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर फैले तो मुख्य रूपसे एक राजूके संख्यातवें भाग लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण चौड़े व ऊँचे क्षेत्रको रोकते है। इसका घनक्षेत्रफल प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे १५
जगतश्रेणिके संख्यातवे भागको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इससे दूर मारणा-न्तिक समुद्घात करनेवाले सब जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर सब जीवोंके दूर मारणा-न्तिक समुद्घातका क्षेत्र होता है। अन्य मारणान्तिक समुद्घातका क्षेत्र थोड़ा होनेसे मुख्य रूपसे इसीका ग्रहण किया है। तैजस समुद्घातमें आत्मप्रदेश शरीरसे बाहर निकलनेपर बारह योजन लम्बे, नौ योजन चौड़े और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण ऊँचे क्षेत्रको २०
रोकते है। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है। इससे तैजस समुद्घात

सुत्तिरलु तेजःसमुद्घातक्षेत्रमक्कुं[1] ६२।७। मत्तं सूच्यंगुलसंख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधमुं संख्यात-योजनायामक्षेत्रघनफलमं २ २ लब्धसंख्यातघनांगुलप्रमितम संख्यातजीवंगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु
१ १
यो १

आहारसमुद्घातक्षेत्रमक्कुं ६।१।१।

मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखाय विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ॥५४४॥

ई सूत्राभिप्रायमे ते दोडे उपपादक्षेत्रमं तरल्वेडि सौधर्मेशानकल्पद्वयद जीवराशिघनांगुल-तृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितमक्कु ३ ॥

ई राशियं पल्यासंख्यातदिंदं खंडिसिदेकभागं प्रतिसमय म्रियमाणराशियक्कुं –३ मत्तमदं
प
अ

– प। प। १। अ १। — ४ पुनर्द्वादशयोजनायामनवयोजनविष्कंभसूच्यङ्गुल-
अ अ ७।१ १

१० ४।६५=८१। १०। अ १ १। प प प
अ अ अ

संख्यातैकभागोत्सेध २।९ यो क्षेत्रघनफल संख्यातघनाङ्गुलप्रमित ६ १ संख्यातजीवैर्गुणित तैजससमुद्घातक्षेत्रं
१।
यो १२

भवति।६।१।१। पुन सूच्यङ्गुलसंख्यातैकभागविष्कम्भोत्सेधसंख्यातयोजनायामक्षेत्रस्य २।२ घनफल
१।१
यो १

संख्यातघनाङ्गुलप्रमितं ६ १ संख्यातजीवैर्गुणित आहारकसमुद्घातक्षेत्र भवति ६ १।१ ॥५४३॥

अस्यार्थ उपपादक्षेत्रमानेतु सौधर्मद्वयजीवराशौ घनाङ्गुलतृतीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमिते – ३ पल्या-

---

१५ करनेवालोंके प्रमाण संख्यातको गुणा करनेपर तैजस समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। आहारक समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश शरीरसे बाहर निकलनेपर संख्यात योजन प्रमाण लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग चौड़े ऊँचे क्षेत्रको रोकते है। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात घनांगुल होता है। इससे आहारक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाण संख्यातको गुणा करनेपर आहारक समुद्घातका क्षेत्र होता है ॥५४३॥

२० इस गाथाका अभिप्राय उपपादक्षेत्र लाना है। पीतलेश्यावाले सौधर्म ईशानवर्ती जीव मध्यलोकसे दूर क्षेत्रवर्ती है। अतः उनके कथनमें क्षेत्रका परिमाण बहुत आता है। अतः

---

१ म ६७।७।

पल्यासंख्यातदिंदं खंडिसिद बहुभागं विग्रहगतियोळप्पुवु $-३\,\frac{प}{प\,प\,अ\,अ}$ मत्तमिदं पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिद बहुभागंगळु मारणांतिकसमुद्घातमुळ्ळवप्पुवु $-३\,\frac{प}{प\,प\,अ\,अ}\,\frac{प}{प\,अ}$ इवर पल्यासंख्यातैकभाग-मात्रंगळु दूरमारणांतिकसमुद्घातजीवंगळप्पुवु $-३\,\frac{प}{प\,प\,अ\,अ}\,\frac{प}{प\,अ}$ ई दूरमारणांतिकसमुद्घातजीव-राशिय द्वितीयदीर्घदंडस्थितमारणांतिकपूर्व्वोपपादजीवागमनार्त्थं पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिदेक-भागमुपपादजीवंगळप्पुवु $-३\,\frac{प}{प\,प\,प\,प\,अ\,अ\,अ\,अ}\,\frac{प}{प\,अ}$ ईयुपपादजीवराशियं समीकरणकृततिर्य्यग्जीवमुखप्रमाण- ५

सख्यातेन भक्ते एकभाग प्रतिसमय म्रियमाणराशिर्भवति—$३\,\frac{प}{अ}$ तस्मिन् पल्यासख्यातेन भक्ते बहुभागो विग्रहगतौ भवति—$३\,\frac{प}{प\,प\,अ\,अ}$ तस्मिन् पल्यासंख्यातेन भक्ते बहुभागो मारणान्तिकसमुद्घाते भवति —$३\,\frac{प}{प\,प\,प\,अ\,अ\,अ}\,\frac{प}{अ}$ अस्य पल्यासख्यातैकभागो दूरमारणान्तिके जीवा भवन्ति —$३।\,\frac{प}{प\,प\,प\,प\,अ\,अ\,अ\,अ}\,\frac{प}{अ}\,१$ अस्मिन् द्वितीयदीर्घदण्डस्थितमारणान्तिकपूर्वोपपादजीवानानेतु पल्यासख्यातेन भक्ते एकभाग उपपादजीव-

---

उनकी मुख्यतासे कहते है। सो सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंकी राशि घनांगुलके तीसरे वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण है। इसमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण प्रतिसमय मरनेवाले जीवोंकी राशि होती है। उसमें पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवाले जीवोंका प्रमाण होता है। उस प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग देनेपर बहुभाग प्रमाण मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंका प्रमाण होता है। उसमें पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण दूर मारणान्तिक करनेवाले जीव होते हैं। इसमें द्वितीय दीर्घदण्डमें स्थित मारणान्तिक समुद्-घातसे पूर्व होनेवाले उपपादसे युक्त जीवोंका प्रमाण लानेके लिए पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग देनेपर एक भाग प्रमाण उपपाद जीवोंका प्रमाण होता है। यहाँ तिर्यंचोंके उत्पन्न होने- १० १५

संख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधद्वचर्द्धरज्वायतक्षेत्र २१ २१ घनफलदिंद सख्यातप्रतरांगुलगुणित-
३
२

द्वचर्द्धरज्जुगळिंद – ३।४१ गुणिसुत्त विरलु उपपादक्षेत्रमक्कुं – ३ प प – ३।४१ पद्म-
७२ अ अ
प प प प प प।७२
अ अ अ अ अ

लेश्येयोळु पद्मलेश्याजीवराशिय सख्यातदिंद भागिसि बहुभागम स्वस्थानस्वस्थानपददोळित्तु
=४ शेषैकभागम मत्त सख्यातदिंदं भागिसि बहुभागम विहारवत्स्वस्थानदोळित्तु
४।६५ = १।६।५
५ =४। शेषैकभागम मत्तं सख्यातदिंद भागिसि बहुभागमं वेदनासमुद्घातपद-
४।६५ = १।६।५।५
दोळित्तु =४ शेषैकभागमं कषायसमुद्घातपददोळित्तु =१
४।६।५ = १६।५।५।५ ४।६५ = १६।५।५।५
बळिकमल्लि प्रथमराशिय द्वितीयं द्वितीयराशियुमं क्रोशायाम तन्नवमभागमुखविष्कंभतिर्य्यग्जीवा-

---

राशिर्भवति—३ । प प १ १ अस्मिन् समीकरणकृततिर्यग्जीवमुखप्रमाणसख्यातसूच्यङ्गुलविष्कम्भोत्से-
अ अ
प प प प प
अ अ अ अ अ
धद्वचर्धरज्ज्वायतक्षेत्रघनफलेन २ १ । २ १ सख्यातप्रतरांङ्गुलगुणितद्वयर्धरज्जुप्रमितेन —३ । ४ । १ गुणिते
—३ ७ । २
७ । २
१० उपपादक्षेत्र भवति—३ प प – ३ । ४ । १ । पद्मलेश्याया तज्जीवराशे सख्यातभक्तबहुभाग स्वस्थान-
अ अ ७ २
प प प प प
अ अ अ अ अ
॥
स्वस्थाने देय = ४ शेषैकभागस्य सख्यातभक्तबहुभागो विहारवत्स्वस्थाने देय —
४।६५ = १ ६ । ५
॥ ॥
= ४ शेषैकभागस्य सख्यातभक्तबहुभागो वेदनासमुद्घाते देय = ४
४।६५ = १ ६ । ५ । ५ ४।६५=१६ । ५ । ५ । ५

की मुख्यतासे एक जीव सम्बन्धी प्रदेश फैलनेकी अपेक्षा डेढ राजू लम्बा संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा ऊँचा क्षेत्र है। इसका घनक्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुलसे डेढ राजूको गुणा करने-
१५ पर जो प्रमाण है उतना है। इससे उपपाद जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर उपपाद सम्बन्धी क्षेत्र आता है। यह पीतलेश्यामें क्षेत्रका कथन किया। अब पद्मलेश्यामे करते है—

पद्मलेश्यावाले जीवोंकी संख्यामें संख्यातका भाग देकर बहुभाग स्वस्थानस्वस्थानमे जानना। एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग विहारवत्स्वस्थानमे जानना। शेष एक भागमें संख्यातसे भाग देकर बहुभाग वेदना समुद्घातमें जानना। शेष रहा एक

वगाहनमं वासो तिगुणो परिहीत्यादि २०००/९ | ३ | २०००/९ २०००/९।४ लब्धं संख्यातघनांगुलंगळिंदं गुणिसि स्व = स्व = =४।६१/४।६५=१।६।५ विहारवत्स्वस्थान =४।६।१/४।६५=१।६।५५ मत्तमान वार्द्धमात्रदिंदं ६१।९/२ तृतीयचतुर्त्थराशिगळुमं गुणियिसु वेद =४६।७१९/४।६५=१।६।५।५।५ कषा =६।१।९/२ इंतु गुणिसुत्तं विरलु स्वस्थानस्वस्थानादि चतुःपदंगळोळु ४।६५=१।६।५।५।५।२ क्षेत्रंगळप्पुवु। मत्तं सनत्कुमारमाहेंद्र देवराशियं निजैकादशमूलभाजितजगच्छ्रेणिप्रमितमं संख्यातदिंदं भागिसि बहुबहुभागम स्वस्थानस्वस्थानदोळित्तुदेंदरिवुदु —४/११/५ शेषैकभागमं संख्यातदिंदं खंडिसिद बहुभागमं विहारवत् स्वस्थानदोळित्तुदेंदरिवुदु —४/११।५।५ शेषैकभाग कषायसमुद्घाते देय = १/४।६५=१।६।५।५। तत्र प्रथमद्वितीयराशी क्रोशायामतन्नवमभागमुखविष्कम्भतिर्यग्जीवावगाहनेन वासो तिगुणो परहीत्याद्या २०००।३।२०००/९।२०००/९।४ नीतसंख्यातघनाङ्गुलेन।६१।गुणयेत्। स्व स्व= ४।६१/४।६५=१।६।५ वि =४।६१/४।६५=१।६।५।५ तृतीयचतुर्थराशी च तन्नवार्धमात्रेण ६१।९/२ गुणयेत्। वेद =४।६१।९/२ ४।६५=१।६।५५५ कषा =६१।९/२ ४।६५=१।६।५।५।५ तथा सति स्वस्थानादिचतु पदेषु क्षेत्राणि भवन्ति। पुनः सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवराशौ निजैकादशमूलभाजितजगच्छ्रेणिप्रमिते ११ संख्यातेन भक्तभक्तस्य बहुभागबहुभाग —४ स्वस्थानस्वस्थाने ११।५। —४ विहारवत्स्वस्थाने ११।५।५

भाग कषाय समुद्घातका जानना। इस प्रकार जीवोंकी संख्या जानना। पद्मलेश्यावाले तिर्यंच जीवोंकी अवगाहना बहुत है। अतः यहाँ उनकी मुख्यतासे क्षेत्रका कथन करते हैं— स्वस्थान-स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थानमें एक तिर्यंच जीवकी अवगाहना एक कोस लम्बी और उसके नौवें भाग मुखका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल 'वासोतिगुणो परिही' इत्यादि सूत्रके अनुसार संख्यात घनांगुल होता है। इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवोंकी संख्याको गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान सम्बन्धी क्षेत्र होता है। इसे विहारवत्स्वस्थानवाले जीवोंकी संख्यासे गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थानका क्षेत्र होता है। उक्त अवगाहनासे पूर्वोक्त प्रकारसे साढ़े चार गुना क्षेत्र एक जीवकी अपेक्षा वेदना और कषाय समुद्घातमें होता है। इससे पूर्वोक्त वेदना और कषाय समुद्घातवाले जीवोंकी संख्यामें गुणा करनेसे वेदना और कषाय समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र होता है।

वैक्रियिक समुद्घातमें पद्मलेश्यावाले जीव सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गमें बहुत हैं इसलिए उनकी अपेक्षा कथन करते है—सानत्कुमार माहेन्द्रमे देवोंकी संख्या जगतश्रेणीके

वेदनासमुद्घातपददोळं दरिवुदु −४ शेषैकभाग संख्यातबहुभागं कषायसमुद्घातपददोळं-
११।५।५।५।
दरिवुदु −४ शेषैकभागं वैक्रियिकसमुद्घातपददोळक्कु −१ मा राशि-
११।५।५।५।५ ११।५।५।५।५

यना जीवंगळु विगुर्व्विसिद गजादिशरीरावगाहनसंख्यातघनागुलंगळिं गुणिसुत्तं विरलु वैक्रियिक-समुद्घातपददोळु क्षेत्रमक्कु −६१ मी राशियने "मरदि असखेज्जदिमं तस्सासंखाय
११।५५५५

विग्गहे होति तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं॥" एंदितु पल्यासंख्यातभागादिदं भागिसुत्तं विरलैकभागं प्रतिसमयं म्रियमाणजीवप्रमाणमक्कु = १ मत्त पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिद बहु-
११।प
अ

भागं विग्रहगतिय जीवप्रमाणमक्कुं — प मत्तमिदं पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिद बहुभागं मारणां-
अ
११ प प
अ अ

—४ —४
वेदनासमुद्घाते ११।५।५।५ कषायसमुद्घाते च पतितोऽस्तीति ज्ञात्वा ११।५।५।५।५ शेषैकभागो
—१
वैक्रियिकसमुद्घाते देय ११।५५५५ अस्मिन् तज्जीवविकुर्वितगजादिशरीरावगाहनसंख्यातघनाङ्गुलैर्गुणिते
—६१
तत्समुद्घातक्षेत्रं भवति ११।५५५५ पुनस्तस्मिन्नेव सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवराशौ—

मरदि असखेज्जदिम तस्सासंखा य विग्गहे होति। तस्सासंख दूरे उववादे तस्स खु असख॥

—१
इति पल्यासंख्यातभक्तैकभाग प्रतिसमय म्रियमाणजीवप्रमाण भवति ११।प। पुनः पल्यासंख्यातभक्त-
—प
बहुभागो विग्रहगतिजीवप्रमाण भवति — प पुन पल्यासंख्यातभक्तबहुभागो मारणान्तिकसमुद्घातजीवप्रमाण
११।अ।
प प
अ अ

ग्यारहवे वर्गमूलसे जगतश्रेणिको भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी है। इस राशिमे संख्यातसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थानमें जीव जानना। शेष रहे एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग विहारवत्स्वस्थानमे जीव जानने। शेष रहे एक भागमें पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग वेदना समुद्घातमें जानना। शेष रहे एक भागमे पुनः संख्यातसे भाग देकर बहुभाग कषाय समुद्घातमे जानना। शेष रहे एक भाग प्रमाण वैक्रियिक समुद्घातमे जीव जानना। इतने-इतने जीव इनमे होते है। इन वैक्रियिक समुद्-घातवाले जीवोंके प्रमाणको एक जीव सम्बन्धी हाथी-घोड़ेरूप विक्रियाकी अवगाहना संख्यात घनांगुलसे गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र आता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपादमें भी क्षेत्र सानत्कुमार माहेन्द्रकी अपेक्षासे बहुत है अतः इनका कथन भी उनकी ही अपेक्षा करते है—

तिकसमुद्घातमुळ्ळ जीवप्रमाणमक्कुं — $\frac{\overset{\circ}{\text{प}}}{\text{अ}} \; \frac{\overset{\circ}{\text{प}}}{\text{अ}}$ मत्तमिदं पल्यासंख्यातदिंदं भागिसिदेकभागं

$$\frac{\overset{\circ}{\text{प}}}{\text{अ}} \; \frac{\overset{\circ}{\text{प}}}{\text{अ}}$$

$$\text{११ । प प प}$$

$$\text{अ अ अ}$$

दूरमारणांतिकसमुद्घातजीवप्रमाणमक्कुं — $\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$ मत्तं पल्यासंख्यातदिंदमी राशियं भागि-

$$\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$$

$$\text{११ प प प प}$$

$$\text{अ अ अ अ}$$

सुत्तंविरलु तदेकभागमुपपाददंडस्थितजीवप्रमाणमक्कुं — $\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$ मी येरडु राशिगळं त्रिर-

$$\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$$

$$\text{११ । प प प प प}$$

$$\text{अ अ अ अ अ}$$

ज्वायत सूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेधद सनत्कुमारमाहेंद्रकल्पजदेवर्क्कळिंदं क्रियमाणमारणां-
तिकदंडक्षेत्रघनफलदिंदं प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितरज्जुत्रयमात्रदिंदं मारणांतिकसमुद्घातजीव- ५

अ $\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$

११

प प

अ अ

पुन पल्यासख्यातभक्तैकभागो दूरमारणान्तिकसमुद्घातजीवप्रमाणं — $\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$ १

११

प प प प

अ अ अ अ

पुनः

पल्यासंख्यातभक्तैकभाग उपपाददण्डस्थितजीवप्रमाणं — $\frac{\text{प}}{\text{अ}} \; \frac{\text{प}}{\text{अ}}$

११

प प प प प

अ अ अ अ अ

अत्र दूरमारणान्तिकराशौ त्रिरज्ज्वा-

यतसूच्यङ्गुलसख्यातभागविष्कम्भोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयदेवै. क्रियमाणमारणान्तिकदण्डस्य घनफलेन प्रतराङ्गुल-

---

'मरदि असंखेज्जदिमं' इत्यादि गाथासूत्रके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके देवोंके प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग दें। एक भाग प्रमाण देव प्रतिसमय मरते १० हैं। इस राशिमें भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवाले जीव होते है। इस राशिको पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग दे। बहुभाग प्रमाण मारणान्तिक समुद्घातवाले जीव है। इस राशिको भी पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग दे। एक भाग प्रमाण दूर मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव है। इस राशिको भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग प्रमाण उपपाददण्डस्थित जीवोंका प्रमाण है। सानत्कुमार १५ माहेन्द्रके देवोंके द्वारा किये गये मारणान्तिक दण्डका क्षेत्र तीन राजू लम्बा और सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग चौड़ा व ऊँचा है। उसका घनक्षेत्रफल प्रतरांगुलके संख्यातवें भागसे तीन राजुको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इस घनक्षेत्रफलसे दूर मारणान्तिक समुद्-घातवाले जीवोंकी राशिमें गुणा करनेपर मारणान्तिक समुद्घातमें क्षेत्रका प्रमाण होता

१. ब °सति तच्चतु.°।

२०

राशियं गुणिसिदोडे तन्मारणांतिकसमुद्घातपददोळु क्षेत्रमक्कुं — प प । १ ७ ३ । ४ मत्तं
अ अ
११ प प प प प
अ अ अ अ

त्रिरज्वायतसंख्यातसूच्यंगुलविष्कभोत्सेधद सनत्कुमारद्वयमं कुरुत्तु तिर्य्यग्जीवंगळिदं मुक्तोपपाददंड-क्षेत्रघनफलदिदं संख्यातप्रतरांगुलहृतत्रिरज्जुमात्रंगळिद गुणिसिदोडे उपपाददोळु क्षेत्रमक्कुं

— प प । १ । ३ । ४ । १ तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं—क्षेत्रगळु तेजो-
अ अ
११ प प प प प
अ अ अ अ अ

५ लेश्ययोळु पेळ्दंते संख्यातघनांगुलगुणितसंख्यातजीवप्रमाणराशिगळप्पुवु तै १ । ६ । १ । आहार १ । ६ । १ । मत्तं शुक्ललेश्ययोळु—शुक्ललेश्याजीवराशियं पल्यासंख्यातप्रमितमं संख्यातदिंद

सख्यातैकभागगुणितरज्जुत्रयेण — ३ । ४ गुणिते तत्क्षेत्र स्यात्— प प ७ । ३ । ४ पुन उपपाददण्डराशौ
७ १ ११ अ अ १
प प प प
अ अ अ अ

त्रिरज्ज्वायतसख्यातसूच्यङ्गुलविष्कम्भोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयं प्रति तिर्यग्जीवमुक्तोपपाददण्डस्य घनफलेन

सख्यातप्रतराङ्गुलहतत्रिरज्जुमात्रेण—३ । ४ १ गुणिते तत्तत्क्षेत्र भवति— प प — ३ । ४ १
७ ११ । अ अ ७
प प प प प
अ अ अ अ अ

१० तैजसाहारकसमुद्घातयो क्षेत्र तेजोलेश्यावत्सख्यातघनाङ्गुलगुणितसख्यातजीवराशिर्भवति—
१ ६ १ । १ ६ १ पुन शुक्ललेश्याया तज्जीवराशि पल्यासख्यातभाग सख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागबहुभाग स्वस्थानस्वस्थाने प ४ विहारवत्स्वस्थाने प । ४ वेदनासमुद्घाते प ४ कषायसमुद्घाते च प ४ दत्वा शेषैकभाग
अ ५ अ ५ ५ अ ५ ५ ५ अ ५ ५ ५ ५

है। उपपादमें तिर्यंच जीवोंके द्वारा सानत्कुमार माहेन्द्रमें उत्पन्न होनेके लिए किया गया उपपादरूप दण्ड तीन राजू लम्बा और संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़ा व ऊँचा है। इसका
१५ घनक्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुलसे गुणित तीन राजू मात्र होता है। इससे उपपादवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर उपपाद सम्बन्धी क्षेत्रका प्रमाण होता है। तैजस और आहारक समुद्घातमे क्षेत्र जैसे तेजोलेश्याके कथनमें कहा है वैसे ही यहाँ भी संख्यात घनांगुलसे गुणित संख्यात जीव राशि प्रमाण जानना। आगे शुक्ललेश्यामें क्षेत्र कहते है—
शुक्ललेश्यावाले जीवोंकी राशिमें पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग देकर बहुभाग स्वस्थान-
२० स्वस्थानवाले जीव है शेष एक भागमें पल्यके असख्यातवे भागसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानमे जीव हैं। इस तरह शेष रहे एक-एक भागमें पल्यके असंख्यातवे भागसे भाग देकर बहुभाग प्रमाण जीव क्रमसे वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घातमें जानना।

---

१. म कृष्ण ।

भागिसि भागिसि बहुभागबहुभागंगळं स्वस्थानस्वस्थानदोळं प ४ विहारवत् स्वस्थानदोळं
ə ५
प ४ वेदनासमुद्घातदोळं प ४ कषायसमुद्घातदोळं प ४ कोट्टु शेषैकभागमं
ə ५५ ə ५५५ ə ५५५५
वैक्रियिकसमुद्घातदोळीवुदु प १ बळिक्कमी पंचराशिगळोळु प्रथमराशियं तृतीयराशियं
ə ५५५५
चतुर्थराशियुमं यथासंख्यमागि त्रिहस्तोत्सेध तद्दशमभागमुखव्यासदिंदं "व्यासत्रिगुणः
परिधिर्व्यासचतुर्थाहतस्तु क्षेत्रफलम् । क्षेत्रफलं वेदगुणं खातफलं भवति सर्व्वत्र ।" एंदी
सूत्राभिप्रायदिंदं ह । ३ । ३ । ह ३ । ह ३ जनितदेवावगाहनप्रमाणवृंदांगुलसंख्यातैकभागदिंदं
१० । १० । ४
मत्तं नवार्द्धघनांगुलसंख्यातभागदिंदं मत्तं तावन्मात्रदिंदं गुणिसिदोडे यथाक्रमदिं
स्वस्थानपरस्थानवेदनासमुद्घातकषायसमुद्घातक्षेत्रंगळप्पुवु । स्व = स्व = प ४ । ६ वेद
ə ५ । ९
प ४ । ६ । ९ कषाय— प ४ । ६ । ९ मत्तं विहारवत्स्वस्थानद्वितीयपदजीवराशियसंख्यात-
ə ५५५९।२ ə ५५५५९ । २
योजनायामसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेध २९ २९ क्षेत्रघनफलं संख्यातघनांगुलगळिंदं गुणिसि-
यो ९

वैक्रियिकसमुद्घाते दद्यात्—प १ अत्र प्रथमराशौ त्रिहस्तोत्सेधतद्दशमभागमुखव्यासैकदेवावगाहनस्य
ə ५ ५ ५ ५
वासो तिगुणो परिहीत्याद्यानीत ह ३ । ३ ह । ३ ह ३ घनफलेन घनाङ्गुलसंख्यातैकभागेन ६ पुनस्तृतीयराशौ
१० । १० । ४ । ९
नवार्धघनाङ्गुलसख्यातभागेन ६ । ९ पुनश्चतुर्थराशौ तावतैव च ६ । ९ गुणिते सति क्रमेण
९ । २ ९ । २
स्वस्थानस्वस्थानवेदनासमुद्घातक्षेत्राणि भवन्ति—स्व = प । ४ । ६ वेद =प ४ । ६ । ९ कषा
ə ५ । ९ ə ५ ५ ५ ९ । २
= प ४ ६ । ९ पुनः द्वितीयराशौ संख्यातयोजनायामसूच्यङ्गुलसंख्यातभागविष्कम्भोत्सेध—२९ । २९
९ ५ ५ ५ ५ ९ २ यो ९

शेष एक भाग प्रमाण जीव वैक्रियिक समुद्घातमें जानना। शुक्ललेश्यावाले देवोंकी मुख्यता होनेसे एक देवकी अवगाहना तीन हाथ ऊँची और उसके दसवें भाग मुखकी चौड़ाई है। 'वासो तिगुणो परिही' इत्यादि सूत्रके अनुसार क्षेत्रफल घनांगुलका संख्यातवाँ भाग होता है। इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान सम्बन्धी क्षेत्रका परिमाण होता है। एक जीवका मूलशरीरकी अवगाहनासे साढ़े चार गुणा क्षेत्र वेदना तथा कषाय समुद्घातमें होता है। इस साढ़े चार गुणा घनांगुलके संख्यातवें भागसे वेदना और कषाय समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर वेदना और कषाय समुद्घातमें क्षेत्र होता है। एक देवके विहार करते हुए अपने मूलशरीरसे बाहर निकल उत्तर विक्रियासे उत्पन्न हुए शरीर पर्यन्त आत्माके प्रदेश संख्यात योजन लम्बे और सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग चौड़ा व ऊँचा क्षेत्र रोकते हैं। इसका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल होता है। इससे विहारवत्स्वस्थान जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर

दोडे द्वितीयपददोळु क्षेत्रमक्कुं प ४।६।१ वैक्रियिकसमुद्घातपंचमजीवराशियं स्वस्वयोग्य-
अ ५५
मागिविर्गुव्विसिद शरीरावगाहनंगळिंदं लब्धसंख्यातघनांगुलंगळिंदं गुणिसिदोडे वैक्रियिकसमुद्घात-
पददोळु क्षेत्रमक्कुं प ६ १ मत्तं मारणांतिकसमुद्घातषष्ठपददोळु रज्जुषट्कायामसूच्यंगुल-
अ ५५५५
संख्यातभागविष्कंभोत्सेध २ २ क्षेत्रघनफलमिदे —६।४ कजीवप्रतिबद्धमक्कुमी क्षेत्रमु-
१ १ ७।१
७ ६

५ मानतादिदेवरुगळ्गे मनुष्यरोळेंयुत्पत्तिनियममप्पुदरिंदं च्युतकल्पदोळु संख्यातजीवंगळे मरण-
मनेय्दुवुदु कारणमागि संख्यातजीवंगळिंदं गुणिसिदोडे मारणांतिकसमुद्घातक्षेत्रपदमक्कुं
१ ७।६।४ तैजससमुद्घातपददोळं आहारकसमुद्घातपददोळं पद्मलेश्येयोळ्पेळ्दंते क्षेत्रंगळप्पुवु
१ १
तै १।६।१ ।आ १।६।१। केवलिसमुद्घातपददोलु क्षेत्रं पेळल्पडुगु मदं तंदोडल्लि दंडसमु-

---

क्षेत्रघनफलसख्यातघनाङ्गुलै ६ १ गुणिते विहारवत्स्वस्थाने क्षेत्र भवति प ।४। ६ १ । पुन. पञ्चमराशौ
अ ५ ५ ।

१० स्वस्वयोग्यतया विकुर्वितशरीरावगाहलब्धसख्यातघनाङ्गुलै. ६ १ गुणिते वैक्रियिकसमुद्घातपदे क्षेत्र
भवति प । ६ १
अ ५ । ५ । ५ ५

पुन रज्जुषट्कायामसूच्यङ्गुलसख्यातभागविष्कम्भोत्सेध २ । २ क्षेत्रघनफलमेकजीवप्रतिबद्धं भवति
१ १
७ ६

— ६ । ४ अस्मिन्नानतादिदेवाना मनुष्येष्वेवोत्पत्तेस्तत्र सख्यातैरेव म्रियमाणैर्गुणिते मारणान्तिकसमुद्घातक्षेत्र
७ । १

भवति १ । ७ ६ । ४ तैजसाहारकसमुद्घातक्षेत्र पद्मलेश्यावत् ।—तै १ । ६ १ । आ १ । ६ १ केवलि-
१

---

१५ विहारवत्स्वस्थान सम्बन्धी क्षेत्र होता है। तथा अपने-अपने योग्य विक्रियारूप बनाये गये हाथी आदिके शरीरकी अवगाहना संख्यात घनांगुल है। उससे वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवोंके प्रमाणको गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घातमें क्षेत्रका प्रमाण आता है। शुक्ललेश्या आनतादि स्वर्गोंमें होती है। सो आरण अच्युतकी मुख्यतासे वहाँसे मध्यलोक छह राजू है। अतः वहाँसे मारणान्तिक समुद्घात करनेपर एक जीवके प्रदेश छह राजू लम्बे और
२० सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग चौड़े-ऊँचे होते है। उसका जो क्षेत्रफल एक जीवकी अपेक्षा हुआ उसको संख्यातसे गुणा करना, क्योंकि आनतादिकसे मरकर देव मनुष्य ही होता है। इसलिए मारणान्तिक समुद्घातवाले जीव संख्यात ही होते है। अतः संख्यातसे गुणा करनेपर मारणान्तिक समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र आता है। तैजस और आहारक समुद्घात सम्बन्धी क्षेत्र पद्मलेश्यामें जैसा कहा है वैसा ही जानना। अब केवलि समुद्घातमें क्षेत्र कहते हैं—

---

२५ १. म तपदक्षेत्रमं ।

द्घातमं दुं कवाटसमुद्घातमें दुं प्रतरसमुद्घातमं दुं लोकपूरणसमुद्घातमें दिंतु केवलिसमुद्घातं चतुः-
प्रकारमक्कुमल्लि स्थितदंडमें दुमुपविष्टदंडमें दु दंडं द्विविधमक्कुं। पूर्व्वाभिमुखोत्तराभिमुखस्थितक-
वाटद्वयमें दु, पूर्व्वाभिमुखोत्तराभिमुखोपविष्टकवाटद्वयमें दिंतु कवाटसमुद्घातं चतुःप्रकारमक्कुं।
प्रतरसमुद्घातमेकप्रकारमेयक्कुं। लोकपूरणसमुद्घातमुमेकप्रकारमेयक्कुमवरोळु प्रथमो-
द्दिष्टस्थितदंडसमुद्घातमें तें दोडे वातवलयरहितत्वदिंदं किंचिदून चतुर्द्दशरज्जुत्तुंगद्वादशांगुलरुंद्रक्षेत्रं ५
वासो तिगुणो परिहीत्यादि १२। ३ १२।-१४- ॥=॥ लब्धं षोडशाभ्यधिकद्विशतप्रतरांगुलप्रमित-
४। ७

जगच्छ्रेणिमात्रमक्कु —४। २१६ मिदं जीवगुणकारदिंदं गुणिसुतं विरलु ४० अष्टसहस्रषट्शतचत्वा-
रिंशत् प्रतरांगुलसंगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं स्थितदंडसमुद्घातक्षेत्रमक्कुं ॥—४। ८६४०। ई क्षेत्रमने
नवगुणं माडिदोडे षष्टिसमधिकसप्तशतसमन्वितसप्तसप्ततिसहस्रमात्रप्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्र-
मुपविष्ट दंडसमुद्घातक्षेत्रमक्कु—४। ७७७६०। किंचिदूनचशुर्द्दशरज्वायामसप्तरज्ज्जुविष्कंभद्वा- १०
दशांगुलरुंद्रक्षेत्रफलमं जीवगुणकारदिंदं ४० गुणिसुत्तं विरळु नवशतषष्टिमूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतर-
प्रमितं पूर्व्वाभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रमक्कु = सू २। ९६० ॥ मी क्षेत्रमे त्रिगुणित

समुद्घात दण्डकवाटप्रतरलोकपूरणभेदाच्चतुर्धा। दण्डसमुद्घात. स्थितोपविष्टभेदाद्द्वेधा। कवाटसमुद्घातोऽपि पूर्वाभिमुखोत्तराभिमुखभेदाभ्या स्थित. उपविष्टश्चेति चतुर्धा। प्रतरलोकपूरणसगुद्घातावेकैकावेव। तत्र वातवलयरहितत्वात् किंचिदूनचतुर्दशरज्जूत्तुगद्वादशाङ्गुलव्रंक्षेत्रस्य वासो तिगुणो परिहीत्यागत १५
१२। ३। १२।—१४—षोडशाभ्यधिकद्विशतप्रतराङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्र —४। २१६ जीवगुणकारेण ४०
४ ७
गुणितं, अष्टसहस्रषट्शतचत्वारिंशत्प्रतराङ्गुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं स्थितदण्डसमुद्घातक्षेत्रं—४। ८६४० एतदेव नवगुणित सप्तसप्ततिसहस्रसप्तशतषष्टिप्रतराङ्गुलहतजगच्छ्रेणिमात्रमुपविष्टदण्डसमुद्घातक्षेत्रं भवति— ४। ७७७६० किंचिदूनचतुर्दशरज्ज्वायामसप्तरज्जुविष्कम्भद्वादशाङ्गुलरुद्रक्षेत्रफल जीवगुणकारेण ४० गुणित

केवलि समुद्घात दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे चार प्रकारका है। २०
दण्ड समुद्घात स्थित और उपविष्टके भेदसे दो प्रकारका है। कपाट समुद्घात भी पूर्वाभि-
मुख, उत्तराभिमुखके भेदसे तथा स्थित और उपविष्टके भेदसे चार प्रकारका है। प्रतर और
लोकपूरण समुद्घात एक-एक ही है। उनमें-से स्थितदण्ड समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश
वातवलयसे रहित होनेसे कुछ कम चौदह राजू ऊँचे और बारह अंगुल प्रमाण चौड़े गोला-
कार होते है। 'वासो तिगुणो परिही' इस सूत्रके अनुसार इसका क्षेत्रफल दो सौ सोलह २५
प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण होता है, क्योंकि बारह अंगुल गोल क्षेत्रका क्षेलफल
एक सौ आठ प्रतरांगुल होता है, उसको ऊँचाई दो श्रेणिसे गुणा करनेपर इतना ही होता है।
एक समयमें इस समुद्घातवाले जीव चालीस होते हैं अतः इसे चालीससे गुणा करनेपर आठ
हजार छह सौ चालीस प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण स्थितदण्ड समुद्घात सम्बन्धी
क्षेत्र होता है। इसको नौसे गुणा करनेपर सतहत्तर हजार सात सौ साठ प्रतरांगुलसे गुणित
जगतश्रेणिप्रमाण उपविष्ट दण्ड समुद्घात क्षेत्र होता है, क्योंकि स्थित दण्ड समुद्घातमें बारह ३०
अंगुल चौड़ाई कही है। उपविष्टमें उससे तिगुनी चौड़ाई होनेसे क्षेत्रफल नौगुणा होता है

---

१. म. प्रमितजगच्छ्रेणिमात्रमक्कु—४। २१६। तिसहस्रससप्तशत्रमात्रप्रतरागुलगुणित। जग°।

मांडुवुदादोडे अशीत्युत्तराष्टशतद्विसहस्रसूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरमात्रं निष्षण्णपूर्व्वाभिमुखकवाट-समुद्घातक्षेत्रमक्कुं = सू २। २८८०। किंचिदूनचतुर्द्दशरज्जुदीर्घं पूर्व्वापरदिंदं सप्तैकपञ्चैकरज्जु विष्कंभ द्वादशांगुलरुंद्रसमीकृतक्षेत्रफलं मुख -१। भूमि-७ जोग ८ दळे-४ प-७ गुणिदे = ४ पदधणं

होदि एंदिदधोलोकक्षेत्रफलमक्कुं =४। मत्तं। मुख-१ भूमि-५ जोग-६ दळे-३ पद-७ गुणिदे=२१ पदधणं होदि। अपवर्त्तितं = ३ इदं द्विगुणिसिदोडूर्ध्वलोकक्षेत्रफलमक्कुमीयूर्ध्वलोकक्षेत्रफल-मुमं = ३ अधोलोकक्षेत्रफलमुम = ४ कूडि जगत्प्रतरमितमक्कुमद द्वादशांगुलरुंद्रदिंद गुणि-सिदो = १२ डेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रमक्कुमदं जीवगुणकारदिंद ४०गुणिसिदोडे चतुःशताशीति सूच्यंगुल-गुणितजगत्प्रतरमात्रमुत्तराभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रमक्कु = सू २। ४८०। मिदं त्रिगुणितं माडिदोडे चत्वारिंशदुत्तरचतुःशतैकसहस्रसूच्यंगुलसंगुणितजगत्प्रतरमात्रमुत्तराभिमुखासीनकवाट-समुद्घातक्षेत्रमक्कुं = सू २। १४४०। ई कवाटसमुद्घातक्षेत्रम नोडलसंख्यातगुणमप्पुदु सर्व्व-लोकमं नोडलुमसंख्यातभागहीनमुमप्पुदु प्रतरसमुद्घातक्षेत्रमक्कुमदं तें दोडे :—

नवशतपष्टिसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतर पूर्वाभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्र भवति—= सू २। ९६० एतदेव त्रिगुणित द्विसहस्राष्टशताशीतिसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतर निषण्णपूर्वाभिमुखकवाटसमुद्घातक्षेत्र भवति सू २। २८८० किंचिदूनचतुर्दशरज्जुदीर्घस्य पूर्वापरेण सप्तैकपञ्चैकरज्जुविष्कम्भस्य मुख—१ भूमि—जोग—८ दले ७ ७७ ७ —४ पद—गुणिदे = ४ पदधण होदीत्यधोलोकफल = ४ मुख—१ भूमि—५ जोग—६ दले—३ पद— ७ ७७ ७ ७ ७ ७ ७ ७ ७७ २ गुणिदे = २१ पदधण होदीत्यपवर्त्य = ३ द्विहते ऊर्ध्वलोकफल = ३ अस्मिन्नधोलोकफले मिलिते जगत्प्र- ७७। २ ७ २ ७ तरद्वादशाङ्गुल रुद्रेण गुणित = १२ एकजीवप्रतिबद्ध तदेव जीवगुणकारेण ४० गुणित चतु शताशीतिसूच्यङ्गु-लहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्र भवति = सू २। ४८० एतदेव त्रिहत एकसहस्रचतु-

---

इससे नौसे गुणा किया है। पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण अर्थात् कुछ कम चौदह राजू लम्बे है। उत्तर-दक्षिण दिशामें लोककी चौडाई सात राजु, सो उतने चौड़े है। बारह अंगुल प्रमाण पूरब पश्चिममे ऊँचे हैं। इसका क्षेत्रफल चौवीस अंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। चूँकि एक समयमें इस समुद्घात करनेवाले जीवोंका प्रमाण चालीस है अतः चालीससे गुणा करनेपर नौ सौ साठ सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातका क्षेत्र होता है। इसीको तिगुणा करनेपर दो हजार आठ सौ अस्सी सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातका क्षेत्र होता है। उत्तराभिमुख स्थित कपाट समुद्घातमें एक जीवके प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण अर्थात् कुछ कम चौदह राजू प्रमाण लम्बे होते है। और पूरब-पश्चिममें लोककी चौड़ाई प्रमाण चौड़े होते हैं। सो लोक

---

१. म. माडुदादोडे।

सत्तासीदिचतुस्सदसहस्सतिसीदिलक्खउणवीसं ।
चउवीसधियं कोडीसहस्सगुणिदं तु जगपदरं ॥
सट्ठीसत्तसएहिं णवयसहस्सेगलक्खभजिदं तु ।
सव्वं वादारुद्धं गुणिधं भणिदं समासेण ॥ —त्रिलोक. १३९-१४० गा. ।

एंदी सूत्रद्वयदिंदं पेळल्पट्ट सर्व्ववातावरुद्धक्षेत्रयुतियं = १०।२४१९८३४८७ सर्व्वलोका- १०।९७ २० संख्यातैकभागमं ≡ १ कळेदुळिद सर्व्वलोकमेकजीवप्रतिबद्धप्रतरसमुद्घातक्षेत्रमक्कु ≡ ० — लोकपूरणसमुद्घातदोळमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रमुं सर्व्वलोकमक्कु = । मिल्लि आरोह-

शतचत्वारिंशत्सूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखासीनकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति = सू २ । १४४० प्रतर-समुद्घातस्य बहिर्वातत्रयाभ्यन्तरे सर्वलोके व्याप्तत्वात् तद्वातक्षेत्रफलेन लोकासंख्यातैकभागेन ≡ । १ ऊनं लोकमात्रमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्र भवति ≡ ० लोकपूरणसमुद्घाते एकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रं सर्वलोको भवति ≡ अत्र

अधोलोकके नीचे सात राजू चौड़ा है। क्रमसे घटते-घटते मध्यलोकमें एक राजू चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल निकालनेके लिए करणसूत्रके अनुसार मुख एक राजू, भूमि सात राजू दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए। उसका आधा चारको अधोलोककी ऊँचाई सातसे गुणा करनेपर अठाईस राजू अधोलोकका प्रतररूप क्षेत्रफल होता है। मध्यलोकमें एक राजू चौड़ा है। वहाँसे बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मस्वर्गके निकट पाँच राजू चौड़ा है। सो यहाँ मुख एक राजू, भूमि पाँच राजू। दोनोंको जोड़नेपर छह हुए। उसका आधा तीनसे मध्य लोकसे ब्रह्मस्वर्ग तक की ऊँचाई साढ़े तीन राजूसे गुणा करनेपर आधे ऊर्ध्वलोकका क्षेत्रफल साढ़े दस राजू होता है। इतना ही क्षेत्रफल ऊपरके आधे ऊर्ध्वलोकका होता है। इसमें अधोलोक-का फल मिलानेपर जगत्प्रतर होता है। बारह अंगुल प्रमाण उत्तर-दक्षिण दिशामें ऊँचा है। सो जगत्पतरको बारह सूच्यंगुलसे गुणा करनेपर एक जीव-सम्बन्धी क्षेत्र बारह अंगुल गुणित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। इसको चालीससे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी अंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख कपाट समुद्घातका क्षेत्र होता है। स्थितमें ऊँचाई बारह अंगुल कही, उपविष्टमें (बैठनेपर) उससे तिगुणी छत्तीस अंगुल ऊँचाई होती है। अतः उक्त प्रमाणको तीनसे गुणा करनेपर एक हजार चार सौ चालीस सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख बैठे हुए कपाट समुद्घातसम्बन्धी क्षेत्र होता है। प्रतरसमुद्घातमें तीन वातवलयको छोड़कर सर्वलोकमें प्रदेश व्याप्त होते है। सो तीन वातवलयका क्षेत्रफल लोक-का असंख्यातवाँ भाग है। इसे लोकमें घटानेपर जो शेष रहे उतना एक जीव सम्बन्धी

१. ब. °मुखस्थितक ।

कावरोहकदंडद्वयदोळं कवाटचतुष्टयदोळं प्रत्येकमुत्कृष्टदिंदं विंशतिविंशतिप्रमितजीवंगळु घटिइसुवरेंदु जीवगुणकारं ४० नाल्वत्तक्कुमे दु कैकोळल्पडुवुदु ।

सुक्कस्स समुग्घादे असंख भागा य सव्वलोगो य ॥५४४॥

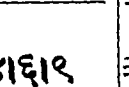
एंदितु सूत्रार्द्धदोळु केवलिसमुद्घातापेक्षेयिंदं लोकासंख्यातबहुभागेगळुं लोकमुं शुक्ललेश्येगे क्षेत्रमेंदु पेळल्पट्टुदु । रज्जुषट्कायामसंख्यातसूच्यगुलविष्कंभोत्सेधदुपपाद दंडतिर्य्यंचप्रतिबद्धमप्प संख्यातप्रतरांगुलगुणितरज्जुषट्कमात्रमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रमक्कु मा क्षेत्रमुमच्युतकल्पदोळु संख्यातजीवंगळे सावुवुवनिते तिर्य्यग्जीवंगळल्लि पुट्टुववेंदितु संख्यातजीवंगळिंदं गुणिसिदोडे उपपादसर्व्वक्षेत्रमक्कुं- १—६।४।१ मत्तमी शुभलेश्येगळिल्लियुं सर्व्वत्र गुणकारभागहारंगळं निरीक्षिसि-
७
यपवर्त्तिसि पंचलोकंगळं स्थापिसियवरमेलेयाळापं माडल्पडुगुं । पनो दनेयक्षेत्राधिकारतीद्दुंदु ।

आरोहकावरोहकदण्डद्वयकवाटचतुष्के प्रत्येकमुत्कृष्टतो विंशतिविंशतिजीवसभवाज्जीवगुणकार ४० चत्वारिंशत् ।

इति सूत्रार्धेन केवलिसमुद्घातापेक्षया लोकस्यासख्यातबहुभागा लोकश्च शुक्ललेश्याक्षेत्रमुक्त रज्जुषट्कायामसख्यातसूच्यङ्गुलविष्कम्भोत्सेधैकतिर्यग्प्रतिबद्धोपपाददण्डक्षेत्रफल सख्यातप्रतराङ्गुलहृतरज्जुषट्कमात्रम् । अच्युतकल्पे सख्यातानामेव मरणात् तावतामेव तत्रोत्पत्ते सख्यातेन गुणित उपपादपदसर्वक्षेत्र भवति १—। ६ । ४ १ अत्रापि प्राग्वत् सर्वत्र गुणकारभागहारानपवर्त्य पञ्चलोकान् सस्थाप्य आलाप.
७
कर्तव्य ॥५४४॥ इति क्षेत्राधिकार.'॥ अथ स्पर्शाधिकारं सार्धगाथाषट्केनाह—

प्रतरसमुद्घातमें क्षेत्र होता है । लोकपूरण समुद्घातमें सर्वलोकमें प्रदेश व्याप्त होते है । अतः लोकपूरणमें लोकप्रमाण एक जीव सम्बन्धी क्षेत्र होता है । प्रतर और लोकपूरणमें बीस जीव तो करनेवाले और बीस जीव संकोचनेवाले होनेसे एक समयमें चालीस जीव समुद्घात करनेवाले होते हैं । किन्तु क्षेत्र सबका पूर्वोक्त ही रहता है अतः चालीससे गुणा नहीं किया । दण्ड और कपाटमें भी बीस-बीस जीव करनेवाले और समेटनेवाले होनेसे चालीस होते है किन्तु इनका क्षेत्र भिन्न-भिन्न भी होता है इससे वहाँ एक जीव सम्बन्धी क्षेत्रको चालीससे गुणा किया है । यह संख्या उत्कृष्ट है ॥५४४॥

इस आधे गाथासूत्रसे केवली समुद्घातकी अपेक्षा लोकका असंख्यात बहुभाग और सर्व लोक शुक्ललेश्याका क्षेत्र कहा है । उपपादमें मुख्य रूपसे अच्युत स्वर्गकी अपेक्षा एक जीवके प्रदेश छह राजू लम्बे और असंख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़े व ऊँचे होते हैं । अच्युत स्वर्गमें एक समयमें संख्यात ही उत्पन्न होते हैं और संख्यात ही मरते है । अतः संख्यात प्रतरांगुलसे गुणित छह राजू मात्र उपपाददण्ड क्षेत्रफलको संख्यातसे गुणा करनेपर उपपादका सर्व क्षेत्र होता है । यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार पाँच लोकोंकी स्थापना करके गुणकार भागहारका यथायोग्य अपवर्तन करके कथन करना चाहिए । क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ ॥

क्षे	स्वस्थानस्वस्थान	विहा.स्वस्थान	वेदना समुद्घात	कषाय समुद्घात	वैक्रि समुद्घात	मारणांति समुद्घात	तैजस	आहार.
ते	 १।४।६ ४६५=७।५।७	 १।४।६।७ ४।६५=७।५५	 १।४।६।९ ७२ ४६५=७५५५	 १।४।६।९ ७२ ४६५=७५५५५	 १।४।६।७ ४।६।५=७।५५५५	 प प १ə७–४ ə ə ७७७ ४६५=८१।१०३७ प प प ə ə ə	७।६७	७६७
प	=६७।४ ४।६५=७६५	=४।६७ ४।६५=७६५५	=४६।७।९ ४।६५=७६५५५२	=६।७।९ ४।६५=७६।५५५२	–६७ ११।५५५५	प प १ ३।४ ə ə ११ प प प प ७ ə ə ə ə	७।६७	७६७
शु	प ४।६ ə ५।७	प ४।६७ ə ५५	प ४।६९ ə ५५५७२	प ४।६।९ ə ५५५५।७२	प ६७ ə ५५५५	७–६।४ ७ ७	७।६७	७६७

केवलि स वं	उपपाद				
	७ २ ३।४७				
	३।४।७				७–६४।७ ७
स्थित दंड	पू स्थि = क =	उत्थित क=	प्रतर ≡ ०		
–४।८६४०	=सू २।९६०	=२।४८०			
आसीन दड	पू आसीन क	आसीन क	लोकपूर		
५ —४।७७६०	=सू२।२८८०	=२।१४४०	≡		

स्पर्शाधिकारमं सार्द्धगाथाषट्कदिंदं पेळ्दपं :—

फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥५४५॥

स्पर्शः सव्वलोकत्रिस्थाने अशुभलेश्यानां ॥

अशुभलेश्यात्रयक्के स्वस्थानमेंदुं समुद्घातमेंदुं उपपादमेंदितु सामान्यदिंदं त्रिस्थानमक्कु-
१० मल्लिया त्रिस्थानदोळं स्पर्शः स्पर्श सर्व्वलोकः सर्व्वलोकमक्कुं ।≡ विशेषदिं स्वस्थानस्वस्थानादि-दशपदंगळोळं स्पर्श पेळल्डुगुं ।

स्पर्शमेंबुदेनेंदोडे स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळु विवक्षितपदपरिणतंगळप्प जीवंगळिंदं वर्त्तमानक्षेत्रसहितमागियतीतकालदोळु स्पृष्टक्षेत्रं स्पर्शमेंबुदक्कुमल्लि अन्नेवरं कृष्णलेश्याजीवंगळ्गे स्वस्थानस्वस्थानवेदना कषाय मारणान्तिक उपपादमेंब पंचपदंगळोळु स्पर्श सर्व्वलोकमक्कुं≡विहार-

१५ अशुभलेश्यात्रयस्य स्वस्थानसमुद्घातोपपादसामान्यस्थानत्रये स्पर्श विवक्षितपदपरिणतैर्वर्तमानक्षेत्र-सहितातीतकालस्पृष्टक्षेत्रलक्षण सर्वलोक ≡ विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते । तत्र कृष्णलेश्याजीवाना स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणान्तिकोपपादेषु पञ्चपदेषु सर्वलोक ≡विहारवत्स्वस्थाने सख्यातसूच्यङ्गुलो-

आगे साढ़े छह गाथाओंसे स्पर्शाधिकार कहते हैं—

क्षेत्रमें तो केवल वर्तमान कालमें रोके गये क्षेत्रका ही ग्रहण होता है किन्तु स्पर्शमें वर्तमान क्षेत्र सहित अतीत कालमें स्पृष्ट क्षेत्रका ग्रहण होता है । अतः तीन अशुभ लेश्याओंका
२० स्पर्श स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद इन तीन सामान्य स्थानोमें सर्वलोक होता है । विशेष रूपसे दस स्थानोंमें कहते है—उनमें-से स्वस्थान स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक और उपपाद इन पॉच स्थानोंमें कृष्णलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सर्वलोक है । विहारवत्स्वस्थानमें एक राजू लम्बा व चौड़ा और संख्यात सूच्यंगुल ऊँचा तिर्यक् लोक

वत् स्वस्थानदोळु संख्यातसूच्यंगुलोत्सेधरज्जुप्रतरमात्रतिर्य्यग्लोकक्षेत्रफलं संख्यातसूच्यंगुलगुणित-
जगत्प्रतरमात्रस्पर्शनमक्कुं ४९ सू २ १ सुरशैलमूलं मोदल्गोंडु सहस्रारपर्य्यंतं त्रसनाळियोळु
वातपुद्गलंगळु संच्छन्नमागिरुतिक्कुमल्लिसर्व्वत्रातीतकालदोळु बादरवातकायिकंगळु विकुर्व्वि-
सुववेंदितु रज्जुविस्तारविष्कंभपंचरज्जूदयक्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं स्पर्शमक्कु =५ तैजस-
३४३
समुद्घाताहारकसमुद्घातकेवलिसमुद्घातपदत्रयंगळु[1] वि कृष्णादिलेश्येगळोळु संभविसवु। इल्लियुं ५
पंचलोकंगलं संस्थापिसि

सामान्यलोक≡	यवरमेलेळ्यलापं माडल्पडुगुं
अधोलोक≡ ४	
७	
ऊर्ध्वलोक≡ ३	
७	
तिर्य्यग्लोक≡ १ ल	
४९	
मनुष्यलोक ६७	

स्प	स्व=स्व	वि=स	वे	क	वै	मा	ते	आ	के	उ	प
कृ	≡	=२७	≡	≡	≡ ५	≡	०	०	०	≡	
		४९			३४३						
नी	≡	=२७	≡	≡	≡ ५	≡	०	०	०	≡	
		४९			३४३						
क	≡		≡	≡	≡ ५	≡	०	०	०	≡	
					३४३						

स्वस्थानस्वस्थान वेदना कषाय मारणांतिकोपपादमेंब पंचपदंगळोळु कृष्णलेश्याजीवंगळिंदं कियत्
क्षेत्रं स्पृष्टं सर्व्वलोकं विहारवत्स्वस्थानदोळु कृष्णलेश्याजीवंगळिंदंकियत् क्षेत्रं स्पृष्टं सामान्यलोक
मोदलागि मूरुं लोकंगळ असंख्यातैकभागं तिर्य्यग्लोकद संख्यातैकभागमेकेंदोडे लक्षयोजनप्रमाण-
तिर्य्यग्लोकबाहल्यदत्तणिंदं विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रोत्सेधक्के संख्यातगुणहीनत्वदिंदं मनुष्यलोकमं १०

त्सेधरज्जुप्रतर २ १ तिर्यग्लोकक्षेत्रफल सख्यातसूच्यङ्गुलहतजगत्प्रतर स्यात् = सू २ १ वैक्रियिकसमुद्घाते
७ ४९
७

सुरशैलमूलादारभ्य सहस्रारपर्यन्तत्रसनाल्या वातपुद्गलानां संच्छन्नरूपेण अवस्थानात्। तत्र सर्वत्रातीतकाले
वादरवातकायिकाना विकुर्वणाद् रज्जुव्यासायामपञ्चरज्जूदय —क्षेत्रफल लोकसख्यातभागमात्रं
७ । ५ । ७
७

क्षेत्र है। इसका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलसे गुणित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। वही विहार-
वत्स्वस्थानमें स्पर्श जानना। वैक्रियिक समुद्घातमें मेरुके मूलसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त १५
त्रसनालीमें वायुकायरूप पुद्गल संच्छन्न रूपसे भरे हैं। वायुकायिक जीवोंमें विक्रिया पायी
जाती है। सो अतीत कालकी अपेक्षा वहाँ सर्वत्र विक्रियाका सद्भाव है। अतः एक राजू

---

१. म °लु निकृष्टले°।

नोडलुमसंख्यातगुणं क्षेत्रं स्पृष्टं वैक्रियिकपददोळु कृष्णलेश्याजीवंगळिंदं कियत् क्षेत्रं स्पृष्टं मूरुं लोकंगळ सख्यातैकभागं। तिर्य्यंग्लोकमुमं मनुष्यलोकमुमं नोडलुमसंख्यातगुणं क्षेत्रं स्पृष्टं। इंते नीललेश्ययोळ कपोतलेश्ययोळं वक्तव्यमक्कुं।

तेजोलेश्यात्रिस्थानदोळु सामान्यदिंदं स्पर्शमं पेळ्दपं गाथाद्वयदिंदं :—

तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु।
अड चोद्दस भागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥५४६॥

तेजोलेश्यायाः स्वस्थाने लोकस्यासंख्यभागमात्रं तु। अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥

तेजोलेश्यय स्वस्थानदोळु स्पर्शं स्वस्थानस्वस्थानापेक्षेयिं लोकद असंख्यातभागमात्रमक्कुं। तु मत्ते अष्टचतुर्दशभागंगळु मेणु किंचिदूनंगळप्पुवु नियमदिंद विहारवत्स्वस्थानादिचतुःपदंगळं विवक्षिसि :—

एवं तु समुद्घादे नवचोद्दसभागयं च किंचूणं।
उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किचूणं ।.५४७॥

एवं तु समुद्घाते नव चतुर्दशभागकं च किंचिदून। उपपादे प्रथमपदं द्वयर्द्धचतुर्दशभागः किंचिदूनः ॥

समुद्घातदोळं स्वस्थानदोळपेळ्दंते किंचिदून अष्टचतुर्दशभागमुं किंचिदूननवचतुर्दशभागमु स्पर्शमक्कुं। मारणांतिकसमुद्घातापेक्षेयिंदं उपपाददोळु प्रथमपद द्वयर्द्धचतुर्दशभागं किंचिदूनं स्पर्शमक्कु इंतु सामान्यदिंदं तेजोलेश्ययगे त्रिस्थानदोळु स्पर्शं पेळल्पट्टुदु ।

भवति = ५ अत्र तैजसाहारककेवलिसमुद्घाता पुन न सभवन्ति। अत्रापि पञ्च लोकान् सस्थाप्य आलाप ३४३
कर्तव्य। एव नीलकपोतयोरपि वक्तव्यम् ॥५४५॥ अथ तेजोलेश्याया गाथाद्वयेनाह—

तेजोलेश्याय स्वस्थाने स्पर्श स्वस्थानात् स्वस्थानापेक्षया लोकस्यासख्येयभाग.। तु—पुन, अष्टचतुर्दशभागा अथवा किंचिदूना भवन्ति नियमेन विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ॥५४६॥

समुद्घाते स्वस्थानवत् किंचिदूनाष्टचतुर्दशभाग किंचिदूननवचतुर्दशभागश्च स्पर्शो भवति मारणान्तिकसमुद्घातापेक्षया। उपपादपदे द्वयर्धचतुर्दशभाग किंचिदून इति सामान्येन तेजोलेश्यायास्त्रिस्थाने स्पर्श

लम्बा-चौडा तथा पाँच राजू ऊँचा क्षेत्र हुआ। उसका क्षेत्रफल लोकके संख्यातवें भाग हुआ। वही वैक्रियिक समुद्घातमें स्पर्श जानना। इस कृष्णलेश्यामें आहारक, तैजस और केवलि समुद्घात नहीं होते। यहाँ भी पाँच लोकोंकी स्थापना करके यथासम्भव गुणकार भागहार जानना। कृष्णलेश्याकी ही तरह नीललेश्या और कपोतलेश्यामें भी कथन करना ॥५४५॥

तेजोलेश्यामें दो गाथाओंसे कहते है—

तेजोलेश्याका स्वस्थानमें स्पर्श स्वस्थानस्वस्थान अपेक्षा लोकका असंख्यातवाँ भाग है। और विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा नियमसे त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम आठ भाग स्पर्श होता है ॥५४६॥

समुद्घातमें स्वस्थानकी तरह त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम आठ भाग स्पर्श है। मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम नौ भाग प्रमाण

विशेषदिंदं स्वस्थानस्वस्थानादिदशपदंगळोळु स्पर्शं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे तिर्य्यग्लोकद रज्जुप्रतरक्षेत्रदोळु $\overline{\square}_{7}$ जलचरसहितंगळप्प लवणोदकालोदस्वयंभूरमणसमुद्रमेंबी समुद्रत्रय-

रहितसर्व्वसमुद्रक्षेत्रफलमं कळेयुत्तिरलु शेषक्षेत्रं शुभत्रयलेश्यास्वस्थानस्वस्थानस्पर्शक्षेत्रमक्कुं। तदानयनक्रमं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे जंबूद्वीपमादियागि स्वयंभूरमणसमुद्रपर्य्यंतमाद सर्व्वद्वीपसमुद्रंगळु द्विगुणद्विगुण विस्तीर्णंगळागिरुतिर्प्पुवु १ ल। २ ल। ४ ल। ८ ल। १६ ल। ३२ ल। ६४ ल। १२८ ल। २५६ ल। ५१२ ल। इल्लि लक्षयोजनविष्कंभमप्प जंबूद्वीपसूक्ष्मक्षेत्रफलं :—

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चउरेक्क पंच सुण्णं च।
जंबूदीवस्सेदं गुणिदफळं होदि णादव्वं॥

७९०५६९४१५० एतावन्मात्रं जंबूद्वीपगुणितफलमक्कुमिदनोंदु खंडमेंदु माडल्पडुवुदु। १। मत्तं लवणसमुद्रदोळु तत्प्रमाणखंडंगळु चतुर्व्विंशतिगळप्पुवु। २४। धातकीषंडद्वीपदोळु चतुरुत्तरचत्वारिंशच्छतप्रमितंगळप्पुवु। १४४।

कालोदकसमुद्रदोळु षट्छतद्वासप्ततिप्रमाणंगळप्पुवु ६७२। पुष्करवरद्वीपदोळु अशीत्युत्तरष्टाविंशतिशतप्रमितंगळप्पुवु २८८०। तत्समुद्रदोळु एकादशसहस्रनवशतचतुःप्रमितखंडंगळप्पुवु

उक्तः। विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते—तिर्यग्लोकस्य रज्जुप्रतरस्य क्षेत्रे $\overline{\square}_{7}$ जलचरसहितलवणोदककालोदक-

स्वयंभूरमणसमुद्रेभ्य. शेषसर्वसमुद्रक्षेत्रफलेऽपनीते शेष शुभत्रयलेश्या[1]स्वस्थानस्वस्थाने स्पर्शो भवति। तद्यथा जम्बूद्वीपादय स्वयभूरमणसमुद्रपर्यन्ता. सर्वे द्वीपसमुद्राः द्विगुणद्विगुणविस्ताराः सन्ति। तत्र लक्षयोजनविष्कम्भो जम्बूद्वीप तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलं—

सत्तणवसुण्णपंचयछण्णवचउरेक्कपचसुण्ण च।

इत्येतावत् ७९०५६९४१५० इदमेकखण्डं कृत्वा लवणसमुद्रे तादृशानि चतुर्विंशति २४। धातकीखण्डे शतचतुश्चत्वारिंशत् १४४। कालोदके समुद्रे षट्शतद्वासप्ततिः ६७२। पुष्करद्वीपे द्विसहस्राष्टशताशीतिः।२८८०।

स्पर्श है। उपपादस्थानमें त्रसनालीके चौदह भागोंमें-से कुछ कम डेढ भाग प्रमाण स्पर्श है। यह सामान्यसे तेजोलेश्याके तीन स्थानोंमें स्पर्श कहा। विशेषसे दस स्थानोंमें स्पर्श कहते है—तिर्यग्लोक एक राजू लम्बा व चौड़ा है। इसमें लवणोदक, कालोदक और स्वयम्भूरमण समुद्रमें ही जलचर जीव पाये जाते हैं शेष समुद्रोंमें नहीं। सो तिर्यग्लोकके क्षेत्रमें-से जिन समुद्रोंमें जलचर जीव नहीं है उन समुद्रोंका क्षेत्रफल घटानेपर जितना शेष रहे उतना तीन शुभ लेश्याओंका स्वस्थानस्वस्थानमें स्पर्श जानना। उसीको कहते है— जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त सब द्वीपसमुद्र दूने-दूने विस्तारवाले है। उनमें-से जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। उसका सूक्ष्म क्षेत्रफल इस प्रकार है—सात नौ शून्य पाँच छह नौ चार एक पाँच और शून्य ७९०५६९४१५०। इसे एक खण्ड मानकर लवण समुद्रमें इतने

---

१ ब. °याः स्वस्थाने।

११९०४। वारुणिवरद्वीपदोळु चतुरशीतित्रिशताष्टचत्वारिंशत्सहस्रंगळप्पुवु ४८३८४। तत्समुद्रदोळु द्वासप्तत्युत्तर पंचनवतिसहस्रैकलक्षप्रमितंगळप्पुवु १९५०७२। क्षीरवरद्वीपदोळु सप्तलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतषष्टिमात्रंगळप्पुवु ७८३३६०। तदर्णवदोळु एकत्रिंशल्लक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रपंचशतचतुरशीतिप्रमितंगळप्पुवु। ३१३९५८४। एवं स्वयंभूरमणसमुद्रपर्य्यंतं नेतव्यंगळप्पुवु।

५ ३१३९५८४। स ई खंडगळं साधिसुवकरण सूत्रत्रयं :—
७८३३६०। क्षे
१९५०७२। स
४८३८४ वा
११९०४। स
१० २८८०। घ
६७२। स
१४४। दा
२४ ल ल
१। ज

१५ बाहिरसूईवग्गं अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणं।
जंबूवासविभत्ते तत्तियमेत्ताणि खडाणि ॥ —त्रि सा. ३१६ गा.।

बाहिरसूई ५ ल। वग्गं ५ ल। ५ ल। गुणिते। २५ ल ल। अब्भंतरसूइ १ ल। वग्ग १ ल। १ ल। परिहीणं। २४। ल ल। जंबूवास १ ल ल। विभत्ते २४ ल ल तत्तियमेत्ताणि १ ल ल

खंडाणि २४।

२० रूऊण सला बारस सळागगुणिदे दु वळयखंडाणि।
बाहिर सूइ सलागा कदी तदंता खिला खंडा ॥

तत्समुद्रे एकादशसहस्रनवशतचत्वारि ११९०४। वारुणीद्वीपे अष्टचत्वारिंशत्सहस्रत्रिशतचतुरशीति ४८३८४। तत्समुद्रे एकलक्षपञ्चनवतिसहस्रद्वासप्तति १९५०७२। क्षीरवरद्वीपे सप्तलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतषष्टि ७८३३६०। तदर्णवे एकत्रिंशल्लक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रपञ्चशतचतुरशीति। ३१३९५८४ एव स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यन्तमानेत-
२५ व्यानि। तदानयनसूत्रत्रय वाहिरसूई ५ ल, वर्ग्ग ५ ल ५ ल, गुणिते पच्चीस ल ल, अब्भन्तरसुई १ ल,दग्ग १ ल १ ल, गुणिते लल परिहीण २४ ल ल, जबूवास १ ल ल, विभक्ते २४। ल ल अपवर्तिते तत्तियमेत्ताणि १। ल ल

प्रमाण वाले चौवीस खण्ड होते हैं। धातकी खण्डमे एक सौ चवालीस खण्ड होते है। कालोद समुद्रमे छह सौ वहत्तर खण्ड होते है। पुष्कर द्वीपमे दो हजार आठ सौ अस्सी खण्ड होते है। पुष्कर समुद्रमे ग्यारह हजार नौ सौ चार खण्ड होते हैं। वारुणी द्वीपमें अड़तालीस
३० हजार तीन सौ चौरासी खण्ड होते हैं। वारुणी समुद्रमें एक लाख पनचानवे हजार वहत्तर खण्ड होते हैं। क्षीरवर द्वीपमें सात लाख तिरासी हजार तीन सौ साठ खण्ड होते है। क्षीरवर समुद्रमें इकतीस लाख उनतालीस हजार पॉच सौ चौरासी खण्ड होते है। इस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त लाना चाहिए। इसके लानेके लिए तीन सूत्र हैं। तदनुसार लवणसमुद्रकी वाह्य सूची पॉच लाख योजन, उसका वर्ग पचीस लाख लाख योजन। लवण
३५ समुद्रकी अभ्यन्तर सूची एक लाख योजन। उसका वर्ग एक लाख लाख योजन। घटानेपर

रूऊणसळा २ । बारस । १२ । सळाग २ । गुणिदे दु २ । १२ । २ । वळयखंडाणि ।
= =
२४ । बाहिरसूइ सळागा ५ कदी २५ । तदंताखिळा खंडा ।

बाहिरसूईवलयवासूणा चउगुणिट्ठवासहदा ।
इगिलक्खवग्गभजिदा जंबूसमवलयखंडाणि ॥ —त्रि सा. ३१८ गा ।

बाहिरसूई ५ ल । वळयं । वास २ ल । ऊणा ३ ल । चउगुण ३ ल । ४ । इट्ठवास २ ल । हदा २४ ल ल । इगिलक्खवग्ग १ ल ल भजिदा २४ ल ल जंबूसमवलयखंडाणि २४ । इल्लि
१ ल ल

सर्व्वद्वीपखंडंगळं बिट्टु समुद्रखंडंगळने याय्तु को डु प्रकृतं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे लवणसमुद्रदोळु जंबूद्वीपोपमानखंडंगळु चतुर्व्विंशतिप्रमितग २४ । ळवनों दु लवणसमुद्रखंडमें दु साडि १ । या चतुर्व्विंशतिखंडंगळिंदं काळोदकसमुद्रद जंबूद्वीपसमानद सर्व्वखंडंगळं भागिसिदोडे ६७२ लवण-
२४

समुद्रोपमानलब्धखंडंगळप्पुवुविप्पत्तेदु २८ । मत्तमा चतुर्व्विंशतिखंडंगळिंदं पुष्करसमुद्रद जंबूद्वीप-

---

खण्डाणि २४ । रूऊणसला २ वारस १२ सलाग २ । गुणिदे दु २ १२ । २ वलयखण्डाणि २४ । वाहिरसुई सलागा ५ कदी २५ तदन्ताखिलाखण्डा । वहिरसूई ५ ल वलयव्वासू २ ल, णा ३ ल, चउगुणिट्ठवास ४२ ल, हदा २४ ल ल, इगिलक्खवग्गभजिदा २४ ल ल जम्बूसमवलयखण्डाणि २४ । अत्र सर्वद्वीपखण्डानि
१ ल ल

त्यक्त्वा सर्वसमुद्रखण्डेषु जम्बूद्वीपसमचतुर्विंशतिखण्डैर्भक्तेषु लवणसमुद्रे लवणसमुद्रसमखण्डमेकं १ । कालोदकखण्डेषु भक्तेषु ६७२ अष्टाविंशति २८ । पुष्करसमुद्रखण्डेषु भक्तेषु ११९०४ चतुःशतषण्णवति ४९६,
२४ २४

शेष रहे चौबीस लाख लाख योजन । इस तरह बाह्य सूचीके वर्गमें-से अभ्यन्तर सूचीके वर्गको घटाना । फिर उसे जम्बूद्वीपके व्यास लाख योजनके वर्गसे भाग देनेपर चौबीस लब्ध आया । उतने ही खण्ड लवणसमुद्रमें होते है । तथा लवणसमुद्रका व्यास दो लाख होनेसे उसकी शलाका दो है । उसमें-से एक घटानेपर एक रहा । उसको बारह और शलाका दोसे गुणा करनेपर चौबीस वलयखण्ड होते हैं । तथा लवणसमुद्रकी बाह्य सूची पाँच लाख योजन है अतः शलाकाका प्रमाण पाँच, उसका वर्ग पचीस । सो लवण समुद्र पर्यन्त पचीस खण्ड होते है । तथा लवण समुद्रकी बाह्य सूची पाँच लाख योजन, उसमें-से उसका व्यास दो लाख योजन घटानेपर तीन लाख शेष रहे । इनको चौगुणे व्यास आठ लाख योजनसे गुणा करनेपर चौबीस लाख हुए । इसमें एक लाखके वर्गसे भाग देनेपर चौबीस आये । उतने ही जम्बूद्वीपके समान वलयाकार खण्ड लवण समुद्रमें होते है ।

सो यहाँ सर्वद्वीप सम्बन्धी खण्डोंको छोड़कर सर्वसमुद्र सम्बन्धी खण्ड ही लेना । तथा जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्डोंका भाग समुद्रके खण्डोंमें देना । तब लवणसमुद्रमें लवणसमुद्रके समान एक खण्ड होता है । कालोदके छह सौ बहत्तर खण्डोंमें चौबीससे भाग देनेपर कालोद समुद्रमें लवणसमुद्रके समान अठाईस खण्ड होते है । पुष्कर समुद्रके ग्यारह

---

१. ब कालोदके अष्टावि° । २. ब. °समुद्रे चतु ।

समानखंडंगळं पेवणिसुत्तं विरलु पुष्करसमुद्रखंडंगळु षण्णवत्युत्तरचतुःशतप्रमितंगळप्पुवु ४९६। मत्तमा चतुर्व्विंशतिखंडंगळिदं वारुणिसमुद्रद जंबूद्वीपसमानसर्व्वखंडंगळं प्रमाणिसुत्तं विरलु १९५०७२ अष्टाविंशतिशतोत्तराष्टसहस्रप्रमितंगळप्पुवु ८१२८। मत्तमा चतुर्व्विंशतिखंडंगळिदं
२४
क्षीरसमुद्रद जंबूद्वीपसदृक्षखंडगळ ३१३९५८४ प्रमाणिसुत्तं विरलु मेकलक्षत्रिंशत्सहस्राष्टशत-
२४
षोडशप्रमितखंडंगळप्पुवु १३०८१६।

ई प्रकारदिंदमरिदु स्वयंभूरमणसमुद्रपर्य्यंतं नडसल्पडुवुवु १३०८१६ मत्तमल्लि
८१२८
४९६
२८
१

सर्व्वत्र प्रभवोत्तरोत्पत्तिनिमित्तमेकादिचतुर्ग्गुणोत्तरमवरप्रमाणऋणखंडगळं प्रक्षेपिसुत्तं विरलु द्व्यादिषोडशोत्तरगुणसंकलितक्रममागि नडेवुवल्लि प्रकृतक्षेत्रफलसमुत्पत्तिनिमित्तं पुष्करसमुद्रद-

	धन	ऋण
	वि १ छे ३ छे ३ / २	वि १ छे ३ छे ३ / २
क्षी	२। १६। १६। १६। १६	१ ४ ४ ४ ४
वा	२। १६। १६। १६।	१ ४ ४ ४
पु	२। १६। १६।	१ ४ ४
का	२। १६। का ल	१ ४।
ल	२। १	१

द्विगुणषोडशवर्ग्गखंडप्रमाण माडि

वारुणीसमुद्रखण्डेषु भक्तेषु-१९५०७२ अष्टसहस्रैकशताष्टाविंशति ८१२८। क्षीरसमुद्रखण्डेषु भक्तेषु
२४
३१३९५८४ एकलक्षत्रिंशत्सहस्राष्टशतषोडश १३०८१६ एव स्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्त गन्तव्य १३०८१६ पुनरत्र
२४ ८१२८
४९६
२८
१

सर्वत्रैकादिचतुर्गुणोत्तरक्रमेण ऋणे प्रक्षिप्ते द्व्यादिषोडशोत्तरगुसंकलितक्रमो गच्छति—

०	०	
। ३	। ३	०
वि– १ छे छे ३	वि– १ छे छे ३	०
३ २	३	०

हजार नौ सौ चार खण्डोंमें चौबीससे भाग देनेपर चार सौ छियानबे खण्ड होते है। वारुणी समुद्रके खण्ड एक लाख पिचानवे हजार बहत्तरमें चौबीससे भाग देनेपर आठ हजार एक सौ अठाईस खण्ड होते हैं। क्षीर समुद्रके खण्ड इकतीस लाख उनतालीस हजार पाँच सौ चौरासीमें चौबीससे भाग देनेपर एक लाख तीस हजार आठ सौ सोलह खण्ड होते हैं।

१ म परसुत्त। २. व समुद्रे अष्ट°। ३ व. समुद्रे एकलक्ष°।

षोडशवर्गखंड गुणोत्तरमक्कुं। मत्ते सर्व्वद्वीपसागरंगळनर्द्धिसुत्तं विरलु सर्व्वसमुद्रप्रमाणमक्कुमल्लि लवणोदकालोदस्वयंभूरमणसमुद्रशलाकात्रयमं कळेदोडे प्रकृतगच्छमक्कुमीयाद्युत्तरगच्छंगळिंदं:—

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूव परिहीणे।
रूऊणगुणेणहिये मुहेण गुणियंमि गुणगणियं॥

२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षी
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वा
२	१६	१६			१	४	४			पु
२	१६				१	४				का
२	१				१					ल
धन					ऋण					

अत्र प्रकृतक्षेत्रफलोत्पत्तिनिमित्तं पुष्करसमुद्रस्य द्विगुणषोडशवर्गखण्डानि[1] आदिः षोडशगुणोत्तरसर्वद्वीप- ५
समुद्रसंख्यार्धं समुद्रत्रयशलाकोनं गच्छः धनमानीयते। 'पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियं,' अत्र गच्छो द्वीपसागर-

इस प्रकार स्वयंभूरमण पर्यन्त जानना चाहिए। सो सर्वत्र एकको आदि लेकर चतुर्गुणा उत्तरोत्तर ऋण और दो को आदि लेकर सोलहगुणा उत्तरोत्तर घन करनेसे लवण समुद्र समान खण्ड आते हैं।

लवण समुद्र समान खण्डोंका प्रमाण लानेके लिए रचना— १०

समुद्र	धनराशि					ऋणराशि				
क्षीरवर	२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४
वारुणीवर	२	१६	१६	१६		१	४	४	४	
पुष्कर	२	१६	१६			१	४	४		
कालोद	२	१६				१	४			
लवणोद	२	१				१				

यहाँ दो आदि सोलह सोलह गुणा तो धन जानना और एक आदि चौगुना चौगुना ऋण जानना। धनमें से ऋणको घटाने पर जो प्रमाण रहे उतने ही लवण समुद्र समान खण्ड जानना। जैसे प्रथम स्थानमें धन दो और ऋण एक। सो दो में-से एक घटाने पर एक रहा।

१. ब °वर्गः आदिः। १५

मेंवी गुणसंकलनसूत्रेष्टदिंदं धनमं तंदु चतुर्व्विंशतिखंडंगळिदं जंबूद्वीपक्षेत्रफलदिंदमं गुणियिसियपर्वात्तिसि पूर्व्वं निक्षिप्तसख्यातसूच्यंगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रऋणसंकलितधनमं किंचिदूनं माडुत्तिरलु दगरयभाजित १२३९ जगत्प्रतरमात्रं ऋणक्षेत्रमक्कु ± १ मिदें तादुदे तें-
१२६९
दोडे पेळल्पडुगुं।

इल्लि गच्छप्रमाणं द्वीपसागरंगळ [1]संख्यार्धमेयप्पुदरिंदं गुणोत्तरद १६ मूलमे ग्राह्यमक्कु ४। मदुकारणदिंदं। पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियं एदु गच्छमात्रद्विकगळ वर्ग्गितसंवर्ग्गं माडिदोडे

सख्यार्धमिति गुणोत्तरस्य १६ मूल ४ गृहीत्वा गच्छतात्रद्विकद्वयेषु परस्पर गुणितेषु रज्जुवर्ग. स्यात्।= = ७।७

सो लवण समुद्रमें एक खण्ड हुआ। दूसरे स्थानके दो को सोलहसे गुणा करने पर बत्तीस धन हुआ। और एकको चारसे गुणा करने पर चार ऋण हुआ। बत्तीसमें-में चार घटाने पर अठाईस रहा। सो दूसरे कालोदक समुद्रमें लवण समुद्र समान अठाईस खण्ड है। तीसरे स्थानके बत्तीसको सोलहसे गुणा करनेपर पाँचसौ बारह धन हुआ। और चारको चारसे गुणा करनेपर सोलह ऋण हुआ। पाँच सौ बारह में से सोलह घटाने पर चार सौ छियानवे रहे। सो इतने ही पुष्कर समुद्रमें लवण समुद्र समान खण्ड है। अब जलचर रहित समुद्रोका क्षेत्रफल कहते हैं—

जो द्वीप समुद्रोंका प्रमाण है उसमें-से यहाँ समुद्रोंका ही ग्रहण होनेसे आधा करें। उसमें-से जलचर सहित तीन समुद्र घटानेपर जलचर रहित समुद्रोंका प्रमाण होता है। वही यहाँ गच्छ जानना। सो दो आदि सोलह सोलह गुणा धन कहा था। सो जलचररहित समुद्रोंके धनमें कितना क्षेत्रफल हुआ उसे कहते है—

'पदमेत्ते गुणयारे' सूत्रके अनुसार गच्छ प्रमाण गुणकारको परस्परमें गुणा करके उसमे-से एक घटाओ। तथा एक हीन गुणकारके प्रमाणसे भाग दो। तथा मुख अर्थात् आदिस्थानसे गुणा करो। तब गुणकाररूप राशिमें सबका जोड़ होता है। यहाँ गच्छका प्रमाण तीन कम द्वीपसागरके प्रमाणसे आधा है। सो सब द्वीप समुद्रोंका प्रमाण कितना है यह कहते हैं—

एक राजूके जितने अर्द्धच्छेद है उनमें एक लाख योजनके अर्द्धच्छेद, एक योजनके साठ लाख अडसठ हजार अंगुलोंके अर्द्धच्छेद और सूच्यंगुलके अर्धच्छेद तथा मेरुके ऊपर प्राप्त हुआ एक अर्धच्छेद, इतने अर्धच्छेद घटानेपर जितना शेष रहे उतने सब द्वीप समुद्र हैं। और गुणोत्तरका प्रमाण सोलह है। सो गच्छ प्रमाण गुणोत्तरको परस्परमें गुणा करो। सो एक राजूकी अर्धच्छेद राशिसे आधे प्रमाण मात्र स्थानोंमे सोलह-सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेसे राजूका वर्ग होता है। सो कैसे है यह कहते हैं—

१ म सख्यातमेयप्पुद°।

रज्जुवग्गं पुट्टुगुं। रूवपरिहीणे। रूपमेकप्रदेशमर्दीरदं हीनमादोडिदु $\overline{\overline{७}}$। $\overline{\overline{७}}$ रूऊणगुणेणहिये $\overline{\overline{७}}$। $\overline{\overline{७}}$। १५ मुहेण गुणियम्मि गुणगणियं $\overline{\overline{=}}$ २। १६। १६ मुखं पुष्करसमुद्रमक्कु। मत्तमिदं संकलितधनमं चतुर्विंशतिखंडंगळिदमुं जंबूद्वीपक्षेत्रफलदिंदमुं योजनांगुलंगळ वर्गदिंदमुं

रूवपरिहीणे $\overline{\overline{०}}$ = ७७ रूऊणगुणेणहिये $\overline{\overline{०}}$ = ७७। १५ मुहेण गुणयम्मि गुणगणिय = २। १६। १६ पुनरिदं चतुर्विंशति- ७। ७। १५

विवक्षित गच्छके आधा प्रमाणमात्र विवक्षित गुणकारको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही प्रमाण विवक्षित गच्छ प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकारका वर्गमूल रखकर परस्परमें गुणा करनेपर होता है। जैसे विवक्षित गच्छ आठके आधे प्रमाण चार जगह विवक्षित गुणकार नौको रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं। वही विवक्षित गच्छमात्र आठ जगह विवक्षित गुणकार नौका वर्गमूल तीन रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं।

इसी प्रकार यहाँ विवक्षित गच्छ एक राजूके अर्धच्छेदके अर्धच्छेद प्रमाण मात्र जगह सोलह-सोलह रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही राजूके अर्धच्छेद मात्र सोलहका वर्गमूल चार-चार रखकर परस्परमें गुणा करनेपर प्रमाण होता है। सो राजूके अर्धच्छेद मात्र जगह दो-दो रखकर गुणा करनेपर राजू होता है और उतनी ही जगह दो-दो बार दो रखकर परस्परमें गुणा करनेपर राजूका वर्ग होता है। सो जगत्प्रतरको दो बार सातका भाग देनेपर इतना ही होता है। उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एक हीन गुणकारके प्रमाण पन्द्रहसे भाग दे। यहाँ आदिमें पुष्कर समुद्र है उसमें लवणसमुद्र समान खण्डोंका प्रमाण दोको दो बार सोलहसे गुणा करे जो प्रमाण हो उतना है, वही मुख है। उससे गुणा करे। ऐसा करनेपर एक हीन जगत्प्रतरको दो सोलह-सोलहका गुणकार और सात सात पन्द्रहका भागहार हुआ। अथवा राजूके अर्धच्छेद प्रमाण सोलहका वर्गमूल चार-को रखकर परस्परमें गुणा करनेसे भी राजूका वर्ग होता है। अथवा राजूके अर्धच्छेद प्रमाण स्थानोंमें दो-दो रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेसे राजूका प्रमाण होता है और राजू प्रमाण स्थानोंमें दो-दो रखकर परस्परमें गुणा करनेसे राजूका वर्ग होता है। सो ही जगत्प्रतरमें दो बार सातसे भाग देनेपर भी इतना ही होता है। इसमें एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसे एक हीन गुणकार पन्द्रहसे भाग दो। इसको मुखसे गुणा करो। सो यहाँ आदिमें पुष्कर समुद्र है उसमें लवणसमुद्रके समान खण्डोंका प्रमाण दोको दो बार सोलहसे गुणा करो २×१६×१६ उतना है। वही यहाँ मुख है उसीसे गुणा करो। ऐसा करनेसे एक कम जगत्प्रतरको दो, सोलह-सोलहसे गुणा और सात, सात, पन्द्रहसे भाग हुआ यथा $=\frac{२\times१६\times१६}{७।७।१५}$। एक लवण समुद्रमें जम्बूद्वीपके समान चौबीस खण्ड होते हैं। अतः इस राशिमें चौबीससे गुणा करना। और जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे गुणा करना। एक योजनके सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते है। यहाँ राशि वर्गरूप है और वर्गराशिका भागहार

प्रतरांगुलदिंदं गुणिसि बळिक्कं :—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

एंदु लक्षयोजनच्छेदमात्रद्विकद्वयंगळ संवर्ग्गजनितलक्षयोजनवर्ग्गदिंदमुं येकयोजनांगुलच्छेद-मात्रद्विकद्वयसंवर्ग्गजनितएकयोजनांगुलंगळ वर्ग्गदिंदमुं मेरुमध्यच्छेदमोंदर द्विकवर्ग्गदिंदमु जलचरसहितसमुद्रत्रयशलाकात्रयद गुणोत्तरगुणितघनप्रमितदिंदमुं १६ । १६ । १६ गुणिसल्पट्ट प्रतरांगुलदिंदं भागिसि भाज्यभागहारंगळं निरीक्षिसि :—

जम्बूद्वीपक्षेत्रफलयोजनाङ्गुलवर्गप्रतराङ्गुलैः सगुण्य पश्चात्—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।

इति लक्षयोजनछेदमात्रद्विकद्वयैर्जातलक्षयोजनवर्गेण एकयोजनाङ्गुलछेदमात्रद्विकद्वयैर्जनितैकयोजनाङ्गुलवर्गेण मेरुमध्यच्छेदस्य द्विकवर्गेण जलचरसमुद्रशलाकात्रयस्य गुणोत्तरघनेन च १६ । १६ । १६ हतप्रतराङ्गुलेन

गुणकार वर्गरूप होता है अतः सात लाख अड़सठ हजारका दो बार गुणा करना होता है। सूच्यंगुलके वर्गको प्रतरांगुल कहते है अतः इतने प्रतरांगुलोंसे उक्त राशिको गुणा करना। पश्चात् 'विरलिदरासीदो' इत्यादि करणसूत्रके अनुसार द्वीप समुद्रोंके प्रमाणमें-से राजूके अर्धच्छेदोंमें-से जितने अर्धच्छेद घटाये हैं उनके आधे प्रमाणमात्र गुणकार सोलहको परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उसे उक्त राशिका भागहार जानना। सो यहाँ जिसका आधा ग्रहण किया उस सम्पूर्ण राशि प्रमाण सोलहके वर्गमूल चारको परस्परमें गुणा करनेसे भी वही राशि आती है। सो अपने अर्धच्छेद प्रमाण दो-दोके अंकोंको परस्परमें गुणा करनेसे विवक्षित राशि होती है। यहाँ चार कहे है अतः उतने ही मात्र दो बार दो-दोके अंकोंको परस्परमें गुणा करनेसे विवक्षित राशिका वर्ग आता है। तदनुसार यहाँ लाख योजनके अर्धच्छेद प्रमाण दो बार दो-दोके अंकोंको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे एक लाखका वर्ग आता है। एक योजनके अंगुलके अर्धच्छेद मात्र दो बार दो-दोको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे एक योजनके अंगुल सात लाख अड़सठ हजारका वर्ग आता है। मेरुके ऊपर आनेवाले एक अर्धच्छेद मात्र दो दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे चार हुआ। सूच्यंगुलके अर्धच्छेदमात्र दो-दोको रखकर परस्परमें गुणा करनेसे प्रतरांगुल हुआ। ये सब भागहार होते हैं। तथा जलचरवाले तीन समुद्र गच्छमें-से कम किये है अतः गुणोत्तर सोलहका तीन बार भाग होता है। इस प्रकार जगत्प्रतरमें प्रतरांगुल, दो, सोलह, चौबीस और सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख, चौरानवे हजार, एक सौ पचास तथा सात लाख अड़सठ हजार, सात लाख अड़सठ हजार तो गुणकार हुआ। तथा प्रतरांगुल, सात, सात, पन्द्रह, एक लाख, एक लाख, तथा सात लाख अड़सठ हजार, सात लाख अड़सठ हजार और चार और सोलह-सोलह-सोलह भागहार हुआ। इनमें-से प्रतरांगुल, दो बार सोलह, दो बार सात लाख अडसठ हजार ये गुणकार और भागहारमें समान है अतः इनका अपवर्तन हो जाता है। गुणकारमें दो और चौबीसको परस्परमें गुणा करनेसे अड़तालीस होते है, तथा भाग-

---

१. म छेदगल ।

=४।२।१६।१६।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८०००
४।७। ७।१५।१ ल।१ ल।७६८०००।७६८०००।४।१६।१६।१६

अपवर्त्तितं =७९०५६९४१५० हारंगळं गुणिसिदोडिदु =७९०५६९४१५० इदनपवर्त्तिसुव
७।७।१ ल १ ल।४।५ ९८०००००००००००

क्रमदिं तंदोडे भाज्यदिं भागहारमं भागिसिद शेषमे भागहारमक्कुं मंतु भागिसुत्तिरलु दगरय भक्त-
जगत्प्रतरप्रमितमक्कु $\frac{1}{12}$।१। ई संकलनधनदोळिर्प्प ऋणं पदमेंते इत्यादिइंदं गच्छार्द्धनिमित्तं
१२।३९

गुणोत्तरद मूलं ग्राह्यमप्पुदरिंदं गुणोत्तरं नाल्कदर मूलमेरडरिंदं रज्जुछेदंगळ विरळिसि वर्गित- ५
संवर्गं माडिदोडे रज्जु पुट्टुगुं। रूवपरिहीणे रूपमेकप्रदेशमदरिंदं परिहीन माडिदोडिदु $\overline{७}$ रू
ऊणगुणेणहिए $\overline{७}$।३ मुहेण गुणियंमि गुणगणियं। मुखं पुष्करसमुद्रमप्पुदरिं पदिनाररिं गुणिसि-
दोडिदु $\overline{०}$ १६ इदं चतुर्विंशतिखंडगळिदमुं जंबूद्वीपक्षेत्रफलदिंदमुं एकयोजनांगुलंगळ
७ ३

भक्त्वा भाज्यभागहारान् निरीक्ष्य=४।२।१६।१६।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८०००
४।७।७।१५।१ल।१ल।७६८०००।७६८००।४।१६।१६।१६

अपवर्त्य =७९०५६९४१५० हारान् परस्पर गुणयित्वा =७९०५६९४१५० १०
७।७।१ ल।१ ल।४।५ ९८०००००००००००

भक्ते साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतर स्यात् = १। अत्रत्य ऋणमानीयते 'पदमेते गुणयारे अण्णोण्ण गुणिय' अत्रापि
१२३९

गच्छार्धत्वाद् गुणोत्तरचतुष्कस्य मूलं गृहीत्वा गच्छमात्रद्विकेषु परस्पर गुणितेषु रज्जु—रूवपरिहीणे—रूऊण
७ $\overline{०}$ ७

हारमे पन्द्रह और सोलहको परस्परमें गुणा करनेसे दो सौ चालीस होते है। इसे अड़तालीस-
से अपवर्तित करनेपर भागहारमें पाँच रहे। इस प्रकार करनेसे स्थिति इस प्रकार रही—

$= \frac{४।२।१६।१६।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८०००}{४।७।७।१५।१ ल.,\ १ल.।७६८०००।७६८०००।४।१६।१६।१६}$ अपवर्तन करनेपर १५

$\frac{७९०५६९४१५०}{७।७।१ल.।१ ल.।४।५।}$ सब भागहारोंको परस्परमें गुणा करनेपर और उनको गुणकारके अंकोंसे
भाग देनेपर धनराशिमें सर्वक्षेत्र फल 'साधिक धगरय' अर्थात् कुछ अधिक बारह सौ
उनतालीससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण होता है। अब ऋण लाना है। सो जलचर सहित
समुद्रोंका ऋणरूप क्षेत्रफल लाते है—'पदमेत्ते गुणयारे' इत्यादि सूत्रके अनुसार गच्छमात्र
गुणकार चारका परस्परमें गुणा करना चाहिए। सो राजूके अर्धच्छेदोंके आधे प्रमाण चारको २०
परस्परमें गुणा करनेसे एक राजू होता है। यहाँ गच्छ सर्वद्वीप समुद्रोंके प्रमाणसे आधा है।
अतः गुणकार चारका वर्गमूल दो ग्रहण करना। सम्पूर्ण गच्छमें एक राजूके अर्धच्छेद कहे
है। अतः एक राजूके अर्धच्छेद मात्र दोको परस्परमें गुणा करनेसे एक राजूका प्रमाण होता
है वह जगतश्रेणीका सातवाँ भाग है। उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एकहीन
गुणकार तीनसे भाग दें। तथा पुष्कर समुद्रकी अपेक्षा आदि स्थानमें प्रमाण सोलह है २५

वर्गदिंदमुं प्रतरांगुलदिंदमुं गुणिसि बळिक्कं "विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि। तेसि अण्णोण्णहदे हारो उप्पण्णरासिस्स" एंदु ओंदु लक्षयोजनंगळिंदमुं एकयोजनांगुलंगळिंदमुं मेरुमध्यच्छेददद्विकदिंदमुं जलचरसहितसमुद्रशलाकात्रयजनितगुणोत्तरघनदिंदमुं । ४ । ४ । गुणिसल्पट्ट सूच्यगुलं भागहारमक्कु १६ । ४ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८००० मिदन-
७३ । २ । १ ल । ७६८००० । २ । ४ । ४ । ४ ।

५ पर्वत्तिसिदोडे सख्यातसूच्यंगुलप्रमितजगच्छ्रेणिगळप्पुववु २७ किंचिदूनं माडिदोडिदु =१
१२३९

गुणेण हिये – ३ मुहेण १६ । गुणयम्मि गुणगणिय – ३ । १६ । इद चतुर्विंशतिखण्डजम्बूद्वीपक्षेत्रफलैकयोज-
७ ७

नाङ्गुलवर्गप्रतराङ्गुलै संगुण्य पश्चात्—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूपाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति लक्षयोजनैरेकयोजनाङ्गुलैर्मेरुच्छेदस्य[1] द्विकेन समुद्रशलाकात्रयजगुणोत्तरघनेन च । ४ । ४ । ४ ।

हतसूच्यङ्गुलेन भक्त्वा—— । १६ । ४ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८००० अपवर्तिते सख्यात-
७ ३ । २ । १ ल । ७६८००० । २ । ४ । ४ । ४

सूच्यङ्गुलप्रमितजगच्छ्रेणिमात्र भवति – २ ७ । अनेन किंचिदूनित = १ पूर्वोक्तं साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरमात्र
१२३९

उससे गुणा करे। ऐसा करनेसे एक कम जगतश्रेणिको सोलहका गुणकार व सात और तीनका भागहार हुआ। इसको पूर्वोक्त प्रकारसे चौबीस खण्ड, जम्बूद्वीपके क्षेत्रफल रूप योजनोंके प्रमाण और एक योजनके अंगुलोंके वर्ग तथा प्रतरांगुलोंसे गुणा करो। पश्चात् 'विरलितरासीदो' इत्यादि सूत्रके अनुसार गच्छमेंसे जितने राजूके अर्धच्छेद घटाये है उसका आधा प्रमाण चारके अंकोंको परस्परमें गुणा करनेसे जो प्रमाण हो उतना भागहार जानना। जिस राशिका आधा प्रमाण लिया उस राशिमात्र चारके वर्गमूल दोको परस्परमें गुणा करनेपर एक लाख योजनके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे एक लाख हुए। एक योजनके अंगुलोंके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे सात लाख अड़सठ हजार अंगुल हुए। मेरुके मध्यमें एक अर्धच्छेदके दूने दो हुए। सूच्यंगुलके अर्धच्छेद प्रमाण दुओंको परस्परमें गुणा करनेसे सूच्यंगुल हुआ। ये सब भागहार हुए। तीन समुद्र घटाये थे सो तीन बार गुणोत्तर चारका भी भागहार जानना। इस तरह एकहीन जगतश्रेणिको सोलह, चार, चौबीस, और सात सौ नब्बे करोड़ छप्पन लाख चौरानवे हजार एक सौ पचास तथा सात लाख अड़सठ हजार और सात लाख अडसठ हजारका तो गुणकार हुआ। तथा सात, तीन, और सूच्यंगुल और एक लाख, और सात लाख अड़सठ हजार तथा दो, चार, चार, चारका भागहार हुआ।

१ हीन ज. श्रे.।१६।४।२४।७९०५६९४१५०।७६८०००।७६८०००
७।३।२।१ ल.।७६८०००।२।४।४।४ । अपवर्तन करनेपर संख्यात-

---

१. व मेरुमवध्यच्छे[2] ।

पूर्व्वोक्तदगरय भक्तजगत्प्रतरमात्रऋणक्षेत्रं सिद्धमादुदारुणक्षेत्रमं रज्जुप्रतरमात्रक्षेत्रदोळु = सम-
४९
च्छेदं माडिकळिदोडे शेषमिदु =११९० इदंनपवर्त्तिसलेंदु भाज्यदिं भागहारमं भागिसिदोडे
४९।१२३९

साधिककाम ५१ भक्तजगत्प्रतरमात्रं विवक्षितक्षेत्रद तलस्पर्शमक्कुं =१ इदनूर्ध्वस्पर्शग्रहणार्त्थ-
१
५१

मागि जीवोत्सेधजनितसंख्यातसूच्यंगुलंगळिदं गुणिसिदोडे शुभलेश्यगळगे स्वस्थानस्वस्थानस्पर्श-
मक्कुं =२१ इदं कटाक्षिसि तेजोलेश्येगे स्वस्थानस्वस्थानापेक्षेयिंदं लोकासंख्यातभागं स्पर्शमेंदु ५
५ १

पेळल्पट्टुदु। विहारवत् स्वस्थानदोळं वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातदोळं तेजोलेश्येगे अष्टचतु-
र्द्दशभागंगळ् किंचिदूनंगळागि ८ = प्रत्येकं नाल्कैदेयोळुमक्कुमी किंचिदूनाष्टचतुर्द्दशभागं
१४

ऋणक्षेत्र सिद्धम्। इद रज्जुप्रतरे = समच्छेदेनापनीय = ११९० अपवर्तनार्थं भाज्येन भागहारं भक्त्वा
४९ ४९ । १२३९

साधिककाम ५१ भक्तजगत्प्रतरं विवक्षितक्षेत्रस्य तलस्पर्शो भवति = १। इदमूर्ध्वस्पर्शग्रहणार्थं जीवोत्सेधजनित-
१
५१

सख्यातसूच्यङ्गुलैर्गुणित शुभलेश्याना स्वस्थानस्वस्थानस्पर्शो भवति = २१। इदं दृष्ट्वा तेजोलेश्यायाःस्वस्थान- १०
१
५१

स्वस्थानापेक्षया लोकासख्येयभागः स्पर्श इत्युक्तम्। विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घाते च
तेजोलेश्याया अष्टचतुर्दशभागः किंचिदून स्यात्। ८– कुत ? सनत्कुमारमाहेन्द्रजाना तेजोलेश्योत्कृष्टाशाना
१४

सूच्यंगुलसे गुणित जगतश्रेणि मात्र क्षेत्रफल हुआ। इसे पूर्वोक्त धनराशिरूप क्षेत्रफलमें-से घटाना चाहिए। सो किंचित्हीन साधिक बारह सौ उनतालीससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण सर्वजलचर रहित समुद्रोंका ऋणरूप क्षेत्रफल हुआ। इसको एक राजू लम्बा चौड़ा तथा १५
जगत्प्रतरका उनचासवाँ भाग मात्र रज्जू प्रतरक्षेत्रमें-से समच्छेद करके घटाइए। तब जगत्प्रतरमें ग्यारह सौ नब्बेका गुणकार और उनचास गुणा बारह सौ उनतालीसका भागहार हुआ। $\frac{\text{ज. प्र.}\times ११९०}{४९\times १२३९}$। अपवर्तन करनेके लिए भाज्यसे भागहारमें भाग देनेपर साधिक इक्यावनसे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्रका प्रतररूप तलस्पर्श होता है। इसको ऊँचाईका स्पर्श ग्रहण करनेके लिए जीवोंकी ऊँचाईके प्रमाण संख्यात सूच्यंगुलसे २०
गुणा करनेपर कुछ अधिक इक्यावनसे भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगत्प्रतर मात्र शुभलेश्याओंका स्वस्थान-स्वस्थान सम्बन्धी स्पर्श होता है। इसको देखकर तेजोलेश्याका स्वस्थान-स्वस्थानकी अपेक्षा स्पर्श लोकका असंख्यातवाँ भाग मात्र कहा है।

त्रैराशिकसिद्धमक्कुमदे तेंदोडे सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पजदेवर्क्कळगे तेजोलेश्योत्कृष्टांशं संभविसुगुमप्पुदरिंदमवर्गळगे विहारं मेगच्युतकल्पपर्य्यंतमक्कुं केळगे तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतमक्कुमदु कारणमागि अष्टरज्जूत्सेधमुं एकरज्जुप्रतरमुमक्कु ≡८= मंतागुत्तं विरलुं तृतीयपृथ्विय पटल-
३४३
रहिताधस्तनसहस्रयोजनदिंदं किंचिदूनाष्टरज्जूत्सेधमक्कु प्र≡१४ फ श १ । इ ≡८- लब्धं
३४३ ३४३

किंचिदूनाष्टचतुर्द्दशभागमक्कुमेंदरिवुदु । भवनत्रयसंभूतवर्ग्गमितेयक्कुमेकेंदोडे :—

"भवणतियाण विहारो णिरयति सोहम्मजुगळ पेरंतं ।
उवरिमदेवपयोगेणच्चुदकप्पोत्ति णिद्दिट्ठो ॥"

एंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंद भवनत्रयसजातवर्ग्गोल्लं केळगे तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं मेगे सौधर्म्मयुगलपर्य्यंतं स्वैरविहारमक्कुं । मेगणदेवप्रयोगदिंदमच्युतकल्पपर्य्यंतं विहारमक्कुं । मारणसमुद्घातपददोळु तेजोलेश्येगे किंचिदूननवचतुर्द्दशभागक्षेत्रं स्पर्शमक्कुमेकेंदोडे तेजोलेश्याजीवंगळु भवनत्रयसंभूतर्मेण् सौधर्म्मेशानसानत्कुमारमाहेंद्रकल्पजर्म्मेण् तृतीयपृथ्वीयोळिर्द्दवर्ग्गळगे ईषत्प्राग्भाराष्टम-

---

उपर्यधोऽच्युतान्ततृतीयपृथ्व्यन्तं विहारसभवात् । पृथ्वीपटलरहिताधस्तनयोजनानामपनयनात् प्र≡१४
३४३
फ श १ इ≡८—इति त्रैराशिकलब्धस्य च तत्प्रमाणत्वात् । अथवा भवनत्रयस्य उपर्यध स्वैरं सौधर्मद्वयतृतीय-
३४३
पृथ्व्यन्त देवप्रयोगेन अच्युतान्त च विहारसद्भावात् तावान् सभवति । मारणान्तिकसमुद्घाते तेजोलेश्याया किंचिदूननवचतुर्दशभाग भवनत्रयसौधर्मचतुष्कजाना तृतीयपृथिव्या स्थित्वा अष्टमपृथ्वीसबन्धिवादरपर्याप्तपृथ्वीकायेषु उत्पत्तु मुक्ततत्समुद्घातदण्डाना संभवति । ९—तैजसाहारकसमुद्घाते सख्यातघनाङ्गुलानि ६ १ केवलिसमुद्घा-
१४

तेजोलेश्याका विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घातमे स्पर्श कुछ कम चौदह भागमें आठ भाग है। सो कैसे हैं यह बतलाते है—सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गके उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपर सोलहवें अच्युत स्वर्ग पर्यन्त गमन करते है और नीचे तीसरी नरक पृथ्वीपर्यन्त गमन करते है। अच्युतस्वर्गसे तीसरा नरक आठ राजू हैं। इससे चौदह भागमें-से आठ भाग कहे है। तथा तीसरी पृथ्वीकी मोटाईमें जहाँ नरकपटल नहीं है उस हजार योजनको कम करनेसे कुछ कम कहा है। जो चौदह घनरूप राजूकी एक शलाका हो तो आठ घनरूप राजूकी कितनी शलाका होगी ऐसा त्रैराशिक करनेपर आठ वटे चौदह आता है। अथवा भवनत्रिकदेव स्वयं तो ऊपर सौधर्म ऐशान स्वर्ग पर्यन्त और नीचे तीसरे नरक पर्यन्त गमन करते है। दूसरे देव द्वारा ले जानेपर सोलहवें स्वर्गपर्यन्त विहार करते है। इससे भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श है। तेजोलेश्याका स्पर्श मारणान्तिक समुद्घातमे चौदह भागमे-से कुछ कम नौ भाग प्रमाण होता है। वह इस प्रकार है—भवनत्रिकदेव अथवा सौधर्मादि चार स्वर्गोंके वासी देव तीसरे नरक गये। वहाँ ही मारणान्तिक समुद्घात किया, और ऊपर आठवीं पृथ्वीमे बादर पृथ्वीकायमे उत्पन्न होनेके लिए वहाँ तक प्रदेशोंका विस्तार किया। उस आठवीं पृथ्वीसे तीसरा नरक नौ राजू है तथा पूर्ववत् तीसरी पृथ्वीकी पटलरहित मोटाई कम करनेसे कुछ कम नव

पृथ्वीय बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायंगळोळु पुट्टल्दे डि मुक्तमारणांतिकसमुद्घातदंडमनुळ्ळरोळु किंचिदून-नवचतुर्द्दश भागं स्पर्शसंभवमप्पुदरिदं तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं तेजोलेश्येगे स्पर्शं प्रत्येकं संख्यातघनांगुलप्रमितमक्कुं। केवलिसमुद्घातं तेजोलेश्ययोळसंभवमप्पुदरिनापददोळिल्ल। उपपादपददोळु तेजोलेश्येगे प्रथमपदं स्पर्शं किंचिदूनद्व्यर्द्धचतुर्द्दशभागमक्कुमेकेंदोडे तेजोलेश्ययं उपपादपरिणतजीवंगळिंदं सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पपर्य्यंतं क्षेत्रं स्पृष्टमप्पुदंतागुत्तं त्रिरज्जूत्सेधमदक्के किंचिदूनत्रिचतुर्द्दशभागमागदे द्व्यर्द्धचतुर्द्दशभागप्ररूपणमाचार्य्यांतराभिप्रायदिंदं मादुदवर्गंळ पक्ष-दोळु सौधर्म्मैशानकल्पद्वयदिंद मेगे संख्यातयोजनंगळिंदं पोगि सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पप्रारंभमागि द्व्यर्द्धरज्जूदयदोळु परिसमाप्तियक्कुमा चरमदोळु तेजोलेश्याजीवंगळु एनिल्लवे एंदोडिल्ल, तत्कल्पद्वयाधस्तनविमानंगळोळे तेजोलेश्यासंभवमेंबुपदेशमवर्गंळ पक्षदोळप्पुदरिंदं, अथवा चित्रावनियोळिर्द्द तिर्य्यग्मनुष्यरुगळिगे ईशानपर्य्यंतमुपपादसंभवदिंदं। च शब्ददिंदं तेजोलेश्योत्कृष्टमृत-रुगळिगे सनत्कुमारमाहेंद्रांतिमचक्रेंद्रकप्रणिधियोळुमुपपादमेंदाक्के लंबरु पेळ्दवरवर्गंळभिप्रायदिंदं

यथासंभवमागि इदुवु ३– संभविसुगुमेर्दारिंद ३–२ दनियममक्कुं॥
१४ १४२

तोऽत्र न सभवति। उपपादपदे किंचिदूनद्व्यर्धचतुर्दशभागः। ननु तेजोलेश्यतत्पदपरिणतै. सानत्कुमारमाहेन्द्रान्तं क्षेत्रे स्पृष्टे त्रिरज्जूत्सेधात् किंचिदूनत्रिचतुर्दशभागः कथ नोच्यते सौधर्मद्वयादुपरि सख्यातयोजनानि गत्वा सानत्कुमारद्वयप्रारम्भो द्व्यर्धरज्जूदये परिसमाप्तिः तच्चरमे च तेजोलेश्या नास्तीति केषाचिदुपदेशाश्रयणात् चित्रास्थिततिर्यग्मनुष्याणा ईशानपर्यन्तमुपपादसंभवाद्वा। चशब्दात्तेजोलेश्योत्कृष्टाशभूताना सनत्कुमारमाहेन्द्रा-न्तिमचक्रेन्द्रकप्रणिधावुपपाद वदता अभिप्रायेण यथासंभवं तस्यापि सभवादनियम॰ ॥५४७॥

बटे चौदह स्पर्श होता है। तैजस समुद्घात और आहारक समुद्घातमें संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श है। तेजोलेश्यामें केवलि समुद्घात नहीं होता। उपपाद स्थानमें चौदह राजूमें-से डेढ़ राजूसे कुछ कम स्पर्श होता है।

शंका—तेजोलेश्यावाले जीव उपपाद करते हुए सानत्कुमार माहेन्द्रके अन्त तक क्षेत्र-का स्पर्श करते है और सानत्कुमार माहेन्द्रके अन्त तक तीन राजूकी ऊँचाई है अतः चौदह राजूमें-से कुछ कम तीन राजू स्पर्श क्यों नहीं कहा?

समाधान—सौधर्म ऐशान स्वर्गसे ऊपर संख्यात योजन जाकर सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंके प्रारम्भमें डेढ राजूकी ऊँचाई समाप्त होती है। उसके आगे डेढ राजू जानेपर सानत्कुमार माहेन्द्रका अन्तिम पटल है। उसमें तेजोलेश्या नहीं है ऐसा किन्ही आचार्योंका उपदेश है। उसीके अनुसार उक्त कथन किया है। अथवा चित्रा पृथ्वीपर स्थित तिर्यंच और मनुष्योंका उपपाद ऐशान स्वर्ग पर्यन्त होता है। इससे किंचित् न्यून डेढ़ राजु मात्र स्पर्श कहा है। गाथामें आये 'च' शब्दसे तेजोलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे मरे हुओंका उपपाद सानत्कुमार माहेन्द्रके अन्तिम चक्रनामा इन्द्रकके श्रेणीबद्ध विमानोंमें होता है ऐसा कहने-वाले आचार्योंके अभिप्रायसे यथासम्भव तीन भाग भी स्पर्श सम्भव होनेसे कोई नियम नहीं है ॥५४७॥

---

१. म °योलार्क्केलंबर्। २ म °रिदुवदनि°।

पद्मलेश्येयजीवंगळगे स्पर्शं पेळल्पडुगुं :—

पम्मस्स य सट्ठाणसमुद्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।
अडचोद्दस भागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥५४८॥

पद्मलेश्यायाः स्वस्थानसमुद्घातद्विकेषु भवति प्रथमपदं । अष्टचतुर्दश भागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥

पद्मलेश्याजीवगळगे वाशब्ददिंदं स्वस्थानस्वस्थानपददोळुमुंपेळ्द लोकासंख्यातैकभागं स्पर्शमक्कुं = २१ विहारदत्स्वस्थानदोळु प्रथमपदं स्पर्श किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागमक्कुमंते वेदना-
५१
कषायवैक्रियकसमुद्घातपदंगळोळमष्टचतुर्दशभागं किंचिदूनमागियक्कुं । मारणातिकसमुद्घात-दोळं किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागमेयक्कुमेकेंदोडे पद्मलेश्याजीवंगळु पृथिव्यब्वनस्पतिगळोळु पुट्टरप्पु-दरिंदं । तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं पद्मलेश्याजीवगळगे प्रत्येकं संख्यातघनांगुलमे स्पर्शमक्कुं केवलिसमुद्घातमा लेश्याजीवंगळोळ संभवमप्पुदरिंदमिल्लि :—

उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं देसूणं ।

उपपादे प्रथमपदं पंचचतुर्दशभागा देशोनाः ।

उपपाददोळु प्रथमपदं स्पर्श शतारसहस्रारपर्य्यंतं पद्मलेश्याजीवं संभवमप्पुदरिं पंचचतुर्दश-भागंगळु किंचिदूनंगळप्पुवु ५–। शुक्ललेश्याजीवंगळगे स्पर्शमं पेळ्दपं :—
१४
सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोद्दसा हीणा ॥५४९॥

शुक्ललेश्यायाः त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दश भागाः हीनाः ॥

पद्मलेश्याना वाशब्दात्स्वस्थानस्वस्थानपदे प्रागुक्तलोकासख्यातैकभाग स्पर्शो भवति=२१ । विहारव-
।
५१
त्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातेषु च किंचिदूनाष्टचतुर्दशभाग । मारणान्तिकसमुद्घातेऽपि तथैव पद्मलेश्यजीवाना पृथिव्यब्वनस्पतिपूत्पत्तिसभवात् । तैजसाहारकसमुद्घातया सख्यातघनाङ्गुलानि ६ १ केवलिसमुद्घातोऽत्र नास्ति ॥५४८॥

उपपादपदे स्पर्श. शतारसहस्रारपर्यन्त पद्मलेश्यासभवात् पञ्चचतुर्दशभागा किंचिदूना भवन्ति । ५ –।
१४

पद्मलेश्यावाले जीवोंका स्वस्थानस्वस्थानपदमें पूर्वोक्त प्रकारसे लोकका असख्यातवाँ भाग स्पर्श होता है । विहारवत्स्वस्थानमें और वेदना कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घातोंमें कुछ कम आठ भाग स्पर्श होता है । मारणान्तिक समुद्घातमें भी चौदहमें-से कुछ कम आठ भाग स्पर्श होता है क्योंकि पद्मलेश्यावाले जीव पृथिवीकाय, जलकाय और वनस्पतिकायमें उत्पन्न होते है । तैजस और आहारक समुद्घातमें स्पर्श संख्यात घनांगुल है । केवली-समुद्घात इस लेश्यामें नहीं होता ॥५४८॥

पद्मलेश्यावालोंका उपपाद शतार सहस्रार स्वर्गपर्यन्त सम्भव होनेसे उपपादपदमें स्पर्श चौदह भागोंमें-से कुछ कम पाँच भाग होता है ।

शुक्ललेश्याजीवंगळ्गे स्वस्थानस्वस्थानदोळु मुन्नं तेजोलेश्ययोळ्पेळ्द लोकासंख्यात भागमक्कुं = २१ विहारवत्स्वस्थानमादियागि वेदनाकषायवैक्रियिकमारणांतिकसमुद्घात-
५१
पर्य्यंतं पंचपदंगळोळु प्रथमपदं स्पर्श देशोन षट्चतुर्दशभागं प्रत्येकमक्कुं। तैजससमुद्घातदोळं आहारकसमुद्घातदोळं प्रथमपदं स्पर्श प्रत्येकं संख्यातघनांगुलप्रमितमक्कु। ६१ ॥ केवलिसमुद्घात-पददोळ्पेळ्दपं।

णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा।
सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥५५०॥

विशेषोऽस्ति समुद्घाते च संख्यातीता भवंति भागा वा। सर्व्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवति इति निर्दिष्टः॥

केवलिसमुद्घातदोळुविशेषमुंटदादुदेंदोडे स्वस्थानदोळं विहारमक्कुं दंडसमुद्घातदोळु स्पर्श क्षेत्रदोळ्पेळ्दंते संख्यातप्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रमक्कु। १॥ मिदनारोहणावतरण-विवक्षेयिंदं द्विगुणिसिदोडे दंडसमुद्घातदोळु स्पर्शमक्कुं—४। १। २। पूर्व्वाभिमुखस्थितोपविष्ट-कवाटसमुद्घातदोळु स्पर्श संख्यातसूच्यंगुलप्रमितजगत्प्रतरमक्कु = २१। मदनारोहणावरोहण-निमित्तं द्विगुणिसिदोडे पूर्व्वाभिमुखस्थितोपविष्टकवाटसमुद्घातारोहणावतरणस्पर्शमक्कुं =२१२।

शुक्ललेश्याजीवाना स्पर्श. स्वस्थानस्वस्थाने तेजोलेश्यावल्लोकासंख्यातैकभागः = २ १ विहारवत्स्वस्थाने
।
५१
वेदनाकषायवैक्रियिकमारणान्तिकसमुद्घातेषु च देशोनषट्चतुर्दशभागः ६— तैजसाहारकसमुद्घातयो. सख्यात-
१४
घनाङ्गुलानि ६ १ ॥५४९॥

केवलिसमुद्घाते विशेषः, स क' ? दण्डसमुद्घाते स्पर्श. क्षेत्रवत् संख्यातप्रतराङ्गुलहतजगच्छ्रेणिः — ४। १ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणदण्डयोर्भवति। — ४। १। २। पूर्वाभिमुखस्थितोपविष्टकवाट-समुद्घाते सख्यातसूच्यङ्गुलमात्रजगत्प्रतर. = २ १ स च द्विगुणित आरोहणावरोहणयोर्भवति = २ १। २

शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्श स्वस्थान-स्वस्थानमें तेजोलेश्याकी तरह लोकका असंख्यातवाँ भाग है। विहारवत्स्वस्थानमें वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातमें चौदह भागोंमें-से कुछ कम छह भाग स्पर्श है। तैजस और आहारक समुद्घातमें संख्यात घनांगुल स्पर्श है ॥५४९॥

केवली समुद्घातमें विशेष है। वह इस प्रकार है—दण्डसमुद्घातमें स्पर्श क्षेत्रकी तरह संख्यात प्रतरांगुलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाण है। सो वह विस्तारने और संकोचनेकी अपेक्षा दूना होता है। पूर्वाभिमुख स्थित या बैठे हुए कपाट समुद्घातमें संख्यात सूच्यंगुल
९८

स्प	स्व =	वि =	वे	क	वै	मा	ते	आ	केवलि समुद्घात	उपपाद	
ते	= २१ ५१	८ = १४	८ = १४	८ – १४	८– १४	८– १४	६१	६१			३– २८
प	= २१ ५१	८ – १४	८ – १४	८ – १४	८– १४	८– १४	६१	६१			५– १४
शु	= २१ ५१	६ – १४	६ – १४	६ – १४	६– १४	६– १४	६१	६१	दं -४१।२	पू=क= =२१।२ उ=क= =२१।२ ≡ a प्र a ओ ≡	६– १४

मत्तं अतेयुत्तराभिमुखस्थितोपविष्टकवाटसमुद्घातदोळु स्पर्श आरोहणावतरणविवक्षेयिंदं द्विगुणसंख्यातसूच्यंगुलप्रमितजगत्प्रतरसात्रमक्कुं । = २१२ । प्रतरसमुद्घातदोळु स्पर्शं लोकासंख्यात बहुभागमक्कु ≡ a मेकेंदोडे वातावरुद्धक्षेत्रदिंदं लोकासंख्यातैक ≡ १ भागदिंदं हीनमादुदप्पुदरिंदं । लोकपूरणसमुद्घातदोळु सर्व्वलोकं ≡ स्पर्शमक्कुमेंदु पेळल्पट्टुदु । खलु नियमदिंदं उपपाददोळु स्पर्शं किंचिदून षट्चतुर्द्दशभागमक्कु ६– मेकेंदोडे शुक्ललेश्ययोळु आरणाच्युतावसानं विवक्षितमप्पुदरिंदं पन्नेरडनेय स्पर्शाधिकारंतीद्दुदु ।

अनंतरं कालाधिकारमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं ।—

कालो छल्लेस्साणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।
अंतोमुहुत्तमवरं एयं जीवं पडुच्च हवे ॥५५१॥

कालः षड्लेश्यानां नानाजीवं प्रतीत्य सर्व्वाद्धा । अंतर्म्मुहूर्तोऽवरः एकं जीवं प्रतीत्य भवेत् ॥

तथैवोत्तराभिमुखस्थितोपविष्टकवाटस्यापि = २ १ । २ प्रतरसमुद्घाते लोकासंख्यातबहुभाग ≡a । वातावरुद्धक्षेत्रेण लोकसंख्यातैक ≡ १ भागेन न्यूनत्वात् । लोकपूरणसमुद्घाते सर्वलोक ≡ खलु नियमेन । उपपादपदे किंचिदून- षट्चतुर्दशभाग ६– आरणाच्युतावसानस्यैव विवक्षितत्वात् ॥ ५५० ॥ इति स्पर्शाधिकार । अथ कालाधिकार गाथाद्वयेनाह—

मात्र जगत्प्रतर प्रमाण है । वह भी विस्तारने और संकोचनेकी अपेक्षा दूना होता है । ऐसा ही उत्तराभिमुख स्थित और उपविष्ट कपाट समुद्घातका भी होता है । प्रतर समुद्घातमें लोकका असंख्यात बहुभाग प्रमाण स्पर्श है क्योंकि वातवलयके द्वारा रोका गया क्षेत्र लोकका असंख्यातवाँ भाग है और वह भाग प्रतर समुद्घातमें नहीं आता । लोकपूरण समुद्घातमें नियमसे सर्वलोक स्पर्श है । उपपाद पदमें चौदह भागोंमें-से कुछ कम छह भाग स्पर्श है क्योंकि यहाँ आरण-अच्युत पर्यन्तकी ही विवक्षा है ॥५५०॥

कृष्णलेश्याप्रभृति षड्लेश्येगळगं कालं नानाजीवापेक्षेयिंदं सर्व्वाद्धियक्कुमेकजीवापेक्षेयिंदं जघन्यकालमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं।

उवहीणं तेत्तीसं सत्तर सत्तेव होंति दो चेव।
अट्ठारस तेत्तीसा उक्कस्सा होंति अदिरेया ॥५५२॥

उदधीनां त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश सप्तैव भवंति द्वावेवाष्टादश त्रयस्त्रिंशत् उत्कृष्टा भवंत्यतिरेकाः॥ ५

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळु ३३। सप्तदशसागरोपमंगळु १७। सप्तसागरोपमंगळु ७। यथासंख्यमागि कृष्णलेश्याप्रभृत्यशुभलेश्यात्रयंगळ्गुत्कृष्टकालंगळप्पुवु। तेजोलेश्याप्रभृति शुभलेश्यात्रयंगळ्गे यथासंख्यमागियुत्कृष्टकालमेरडुसागरोपमंगळुं पदिनेंटु सागरोपमंगळुं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळुं साधिकमधिकमागप्पुवेंतेंदोडे षड्लेश्येगळ्गे व्याघातविषयविवक्षेयिंदं जघन्यकालमंतर्म्मुहूर्त्तंगळिंदं समधिकमाद कृष्णलेश्याप्रभृतिषड्लेश्येगळोळु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमादिगळुत्कृष्टकालंगळप्पुवुवितेकेरडेरडुमंतर्म्मुहूर्त्तंगळिंदं समधिकंगळादुवेंदोडे नारकदेवभवंगळत्तणिंदं पूर्व्वभवचरमकालदोळं उत्तरभवप्रथमसमयदोळमंतर्म्मुहूर्त्तांतर्म्मुहूर्त्तकालमा लेश्येगळेयप्पुदरिंदं मत्तमिल्लिविशेषमुंटदावुदेंदोडे तेजःपद्मलेश्येगळ्गं किंचिदून सागरोपमार्द्धमतिरेकमक्कुमेकेंदोडे सौधर्म्मकल्पं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतं स्वस्वोत्कृष्टस्थितिगळ मेले घातायुष्कजीवापेक्षेयिंदमंतर्म्मुहूर्तोनार्द्धसागरोपमं सम्यग्दृष्टिगळ्गे पळितोपमासंख्यातैकभागं मिथ्यादृष्टिगळ्गभ्यधिकमक्कुमप्पुदरिंदं संदृष्टिः— १०

कृष्णादिषड्लेश्यानां कालः नानाजीवं प्रति सर्वाद्धा सर्वकालः। एकजीवं प्रति जघन्येन अन्तर्मुहूर्तो भवति ॥५५१॥

उत्कृष्टस्तु सागरोपमाणि कृष्णायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। नीलायाः सप्तदश १७। कपोतायाः सप्त ७। तेजोलेश्याया द्वे २। पद्माया अष्टादश १८। शुक्लायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। साधिकानि भवन्ति अव्याघातविषये। तदाधिक्यं तु देवनारकभवेभ्य[1] पूर्वभवचरमान्तर्मुहूर्तः उत्तरभवप्रथमान्तर्मुहूर्तश्च पण्णा। तेजःपद्मयोः पुनः किंचिदूनसागरोपमार्धमपि, कुतः सौधर्मादिसहस्रारपर्यन्त स्वस्वोत्कृष्टस्थितेरुपरि घातायुष्कस्य सम्यग्दृष्टेरन्त- २०

इस प्रकार स्पर्शाधिकार समाप्त हुआ। अब दो गाथाओंसे कालाधिकार कहते हैं— कृष्ण आदि छह लेश्याओंका काल नाना जीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल है और एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥५५१॥

उत्कृष्टकाल कृष्णका तैंतीस सागर है, नीलका सतरह सागर है, कपोतका सात सागर है, तेजोलेश्याका दो सागर है। पद्मका अठारह सागर है और शुक्लका तैंतीस सागर है। यह काल कुछ अधिक-अधिक होता है। इसका कारण यह है कि यह काल देव और नारकियोंकी अपेक्षा कहा है। सो उनके पूर्वभवके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें और उत्तरभवके प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें वही लेश्या होती है इस तरह छहो लेश्याओंका उक्त काल दो-दो अन्तर्मुहूर्त अधिक होता है। किन्तु तेजोलेश्या और पद्मलेश्यामें कुछ कम आधा सागर भी अधिक होता है क्योंकि घातायुष्क सम्यग्दृष्टिके सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्गपर्यन्त अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर प्रमाण स्थिति अधिक होती है। और मिथ्यादृष्टिके पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक होती है।

१. व °भवात्पूर्वोत्तरभवयोः चरमप्रथमान्तर्मुहूर्तौ षण्णा।

कृ=कृ=	नी	क	ते	प	शु
उ २१२ सा ३ ३	२१।२ सा १७	२१।२ सा ७	२१।२ सा ५ – २	२१।२ सा ३७– २	२१।२ सा ३ ३
ज २ १	२१	२१	२१	२१	२१
णाणा जीवाणं	सव्व	काळो ।			।०।०॥

परिमूरनेय कालाधिकारं तीर्द्दुदु ।

अनंतरमंतराधिकारमं गाथाद्वयदिंद पेळ्दपं :—

अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥५५३॥

अंतरमवरोत्कृष्टं कृष्णत्रयाणा मुहूर्त्तोंतस्तु । उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टं ॥

तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्सविरहकालो दु ।
पोग्गलपरियट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ॥५५४॥

तेजस्तिसृणामेवं विशेषोऽस्ति उत्कृष्टविरहकालस्तु । पुद्गलपरिवर्त्तनान्यसंख्येयानि भवंति नियमेन ॥

अंतरमे बुदेनेंदोडे विरहकालमेंबुदर्त्थमल्लि कृष्णादिलेश्यात्रयक्कं जघन्यातरमंतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमुत्कृष्टातरमा लेश्यात्रयक्कं प्रत्येकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं साधिकमक्कुमेंदितु परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदर्देतेंदोडे कृष्णलेश्ययोळं तत्रोत्पत्तिक्रममिदु पूर्व्वकोटिवर्षायुष्ममनुळ्ळ मनुष्यं

र्मुहूर्तोनार्धसागरोपमेण मिथ्यादृष्टेस्तु पल्यासंख्यातैकभागेन चाधिक्यात् ॥५५२॥ इति कालाधिकारः । अथान्तराधिकारं गाथाद्वयेनाह—

अन्तरं विरहकालः कृष्णादित्रयस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि साधिकानि

विशेषार्थ—वैसे सौधर्म-ऐशानमें उत्कृष्ट आयु दो सागर होती है किन्तु आयुका अपवर्तन घात करनेवाले सम्यग्दृष्टीके अन्तर्मुहूर्त कम ढाई सागर आयु होती है । इसी तरह सहस्रार स्वर्गपर्यन्त जानना क्योंकि घातायुष्ककी उत्पत्ति सहस्रार स्वर्गपर्यन्त ही होती है । इसी प्रकार घातायुष्क मिथ्यादृष्टिके पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर आदिकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ॥५५२॥

कालाधिकार समाप्त हुआ । अब दो गाथाओंसे अन्तराधिकार कहते हैं—

अन्तर विरहकालको कहते हैं । कृष्ण आदि तीन लेश्याओंका जघन्य अन्तर-अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । वह इस प्रकार होता है—एक पूर्वकोटि

गर्भाद्यष्टवर्षचरमदोळंतर्म्मुहूर्त्तषट्कमुळिदुदे बागळु कृष्णलेश्येयोळे अंतर्म्मुहूर्त्तकालदोळिद्दु-नीललेश्येयं पोर्द्दिदं। तदा कृष्णलेश्यांतरं प्रारब्धमादुदु। आ नीललेश्येयोळंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमिद्दु कपोतलेश्येयं पोर्द्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमिद्दु। तेजोलेश्येयं पोर्द्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु पद्मलेश्येयं पोर्द्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु शुक्ललेश्येयं पोर्द्दिदनल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु अष्टवर्ष-चरमसमयदोळु संयममं कैकोंडु देशोनपूर्व्वकोटिवर्षं सयममननुपालिसि सर्व्वार्त्थसिद्धियोळपुट्टि अल्लिय त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितियं समाप्तिमाडि बंदु मनुष्यनागि तद्भवप्रथमसमयं मोदल्गोंडु अंतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं शुक्ललेश्येयोळिद्दु पद्मलेश्येयं पोर्द्दि अल्लियुमतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतमिद्दु तेजोलेश्येयं पोर्द्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु कपोतलेश्येयं पोर्द्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तकालमिद्दु नीललेश्येयं पोर्द्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दु कृष्णलेश्येयं पोर्द्दिदनितुदशांतर्म्मुहूर्त्तगळिनभ्यधिक अष्टवर्षोनपूर्व्वकोटिवर्षाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळु कृष्णलेश्येयोळंतरमक्कुं मितें नीलकपोत-लेश्येगळमंतरं पेळल्पडगुमिदु विशेषं नीललेश्येयोळष्टांतर्म्मुहूर्त्तगळु कपोतलेश्येयोळु षडंत-र्म्मुहूर्त्तंगळभ्यधिकंगळेंदु वक्तव्यमक्कुं। तेजोलेश्येयोळुत्कृष्टांतोत्पत्तिक्रममिदु। कश्चिज्जीवं मनुष्यं तिर्य्यंचं मेणु तेजोलेश्यैयिंदं बंदु कपोतलेश्येयं पोर्द्दिदं तदा तेजोलेश्येयंतरं प्रारब्धमादुदु पश्चात् कपोतनीलकृष्णलेश्येगळोळु प्रत्येकमतमुहुर्त्तांतर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दु एकेंद्रियजीवनादनल्लि आवलिय संख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरिवर्त्तनंगळं परिभ्रमिसि विकलेंद्रियजीवनादनल्लि संख्यातसहस्रवर्ष-

---

भवन्तीति निर्दिष्टम्। तत्र कृष्णाया पूर्वकोटिवर्षायुर्मनुष्यो गर्भाद्यष्टवर्षचरमेऽन्तर्मुहूर्तषट्के अवशिष्टे कृष्णा गत, अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा नीला गतस्तदा कृष्णान्तर प्रारब्धम्। तत. नीला कपोता तैजसी पद्मा शुक्ला च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अष्टवर्षचरमसमये सयम स्वीकृत्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि प्रतिपाल्य सर्वार्थसिद्धि गत.। तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि नीत्वा मनुष्यो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयादन्तर्मुहूर्तं शुक्ला पद्मा तैजसी कपोता नीला च प्रत्येक स्थित्वा कृष्णा गच्छति। इति दशान्तर्मुहूर्ताधिकानि अष्टवर्षोनपूर्वकोटिवर्षाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टान्तरं भवति। एव नीलकपोतयोरपि किन्तु अधिकान्तर्मुहूर्ता नीलायामष्टौ, कपोताया षडेव भवन्ति। तेजोलेश्याया कश्चिन्मनुष्यः तिर्यग् वा स्थित्वा कपोता गतस्तदा तेजोलेश्यान्तर प्रारब्धम्। पश्चात्कपोतनील-कृष्णलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा एकेन्द्रियो भूत्वा आवल्यसख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि भ्रान्त्वा

वर्षकी आयुवाला मनुष्य गर्भसे लेकर आठ वर्षकी आयु पूरी होनेमें जब छह अन्तर्मुहूर्त शेष रहे तो कृष्णलेश्यामें चला गया। अन्तर्मुहूर्त तक रहकर नीललेश्यामें चला गया। तब कृष्ण-लेश्याका अन्तर प्रारम्भ हुआ। उसके पश्चात् नील, कापोत, तेज, पद्म, शुक्लमें-से प्रत्येकमें अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर आठ वर्षोंके अन्तिम समयमें संयमी हो गया। कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष तक संयमका पालन करके मरकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ। वहाँ तैंतीस सागर बिताकर मनुष्य हुआ। मनुष्यभवके प्रथम समयसे शुक्ल, पद्म, तेज, कापोत और नीलमें-से प्रत्येकमें अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता हुआ कृष्णलेश्यामें चला जाता है। इस प्रकार दस अन्तर्मुहूर्त अधिक और आठ वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष अधिक तैंतीस सागर कृष्ण-लेश्याका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी तरह नील और कपोतका भी उत्कृष्ट अन्तर होता है। किन्तु अधिक अन्तर्मुहूर्त नीलमें आठ और कपोतमें छह ही होते है। कोई मनुष्य या तिर्यंच तेजोलेश्यामें रहकर कपोतलेश्यामें चला गया। तेजोलेश्याका अन्तर प्रारम्भ हो

गळनिद्दुबंदु पर्चेंद्रियजीवनादनल्लि भवप्रथमसमयप्रभृतिकृष्णनीलकपोतलेश्यंगळोळु प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त्तातर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दुं बंदु तेजोलेश्येय पोद्दिदनितु षडतर्म्मुहूर्त्तंगळिंदमधिकमप्प सख्यातसहस्रवर्षंगळिनभ्यधिकमप्पावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तंगळु तेजोलेश्ययोळुत्कृष्टांतरमक्कुं। पद्मलेश्ययोळंतरं पेळल्पडुगुं। कश्चिज्जीवनु पद्मलेश्ययिं बंदु तेजोलेश्ययं पोद्दिदनागळु पद्मलेश्येगतरं प्रारंभमादुदु। आ तेजोलेश्ययोळंतर्म्मुहूर्त्तकालमिद्दुं सौधर्मकल्पद्वयदोळु पल्यासख्यातैकभागाभ्यधिकद्विसागरोपमस्थितिकदेवनागियल्लि बळिक्कि बदू मुन्निनंते एकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियजीवंगळोळु पुट्टि क्रमदिदं आवलियसख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनंगळ संख्यातसहस्रवर्षंगळनिद्दुं पंचेंद्रियदोळुद्भविसिद प्रथमसमयं मोदल्गोंडु कृष्णनीलकपोततेजोलेश्ययेगळोळंतर्म्मुहूर्त्तातर्म्मुहूर्त्तंगळनिद्दुं पद्मलेश्ययं पोद्दिदं इंतु पंचांतर्म्मुहूर्त्तंगळिंदमधिकमाद संख्यातसहस्रवर्षंगळिनधिकमप्प पल्यासंख्यातैकभागाभ्यधिकसागरोपमद्वयाभ्यधिकमप्पावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनंगळु पद्मलेश्ययोळुत्कृष्टांतरमक्कुं। शुक्ललेश्ययोळुमिते वक्तव्यमक्कुमादोडमिदु विशेषं। शुक्ललेश्ययिंद बंदु पद्मलेश्ययं पोद्दियल्लियंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दुं तेजोलेश्ययं पोद्दि अल्लियुमंतर्म्मुहूर्त्तमिद्दुं मुन्निनंते सौधम्मद्वयदोळु पल्यासख्यातैकभागादिदमधिकमप्प सागरोपमद्वयमनल्लिय स्वस्थितियनिद्दुं बळिक्कि एकेंद्रियंगळोळावल्यसख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनंगळं

विकलेन्द्रियो भूत्वा सख्यातसहस्रवर्षाणि भ्रान्त्वा पञ्चेन्द्रियो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयात्कृष्णनीलकपोतलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तेजोलेश्या गच्छति। इति षडन्तर्मुहूर्तसख्यातसहस्रवर्षाधिकपल्यासख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनान्युत्कृष्टान्तर भवति। पद्माया कश्चित्स्थित्वा तेजोलेश्या गतस्तदा पद्मान्तर प्रारब्ध तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा सौधर्मद्वये पल्यासख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वय स्थित च्युत्वा प्राग्वदेकविकलेन्द्रियेषु क्रमेणावल्यसख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनसंख्यातसहस्रवर्षाणि स्थित्वा पञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पद्मा गच्छति। इति पञ्चान्तर्मुहूर्तसख्यातसहस्रवर्षपल्यासख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्यसख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टान्तरं भवति। एव शुक्लायामपि, किन्तु शुक्लात पद्मा

गया। पश्चात् कपोत, नील और कृष्णलेश्यामें एक-एक अन्तर्मुहूर्त रहकर एकेन्द्रिय हो गया। आवलीके असंख्यातवे भागमात्र पुद्गल परावर्तन काल एकेन्द्रियोंमें भ्रमण करके विकलेन्द्रिय हुआ। विकलेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्ष तक भ्रमण करके पंचेन्द्रिय हुआ। पंचेन्द्रियके भवके प्रथम समयसे कृष्ण, नील, कापोतलेश्यामें एक-एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर तेजोलेश्यामें चला जाता है। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्त संख्यात हजार वर्ष तथा आवलीके असंख्यातवे भाग मात्र पुद्गल परावर्तन तेजालेश्याका उत्कृष्ट अन्तर है। पद्मलेश्यामें रहकर कोई जीव तेजोलेश्यामें चला गया। तब पद्मलेश्याका अन्तर प्रारम्भ हुआ। वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक रहकर सौधर्म युगलमें पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर तक रहा। वहाँसे च्युत होकर पहलेकी तरह एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियोंमें क्रमसे आवलीके असंख्यातवे भाग मात्र पुद्गल परावर्तन तथा संख्यात हजार वर्ष तक रहकर पंचेन्द्रिय हुआ। भवके प्रथम समयसे कृष्ण, नील, कपोत और तेजोलेश्यामें एक-एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर पद्मलेश्यामें जाता है। इस प्रकार पाँच अन्तर्मुहूर्त संख्यात हजार वर्ष, पल्यके असंख्यातवे भाग अधिक दो सागर, आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गल परावर्तन

माडि बंदु विकलत्रयदोळपुट्टि संख्यातसहस्रवर्षंगळनिर्द्दु बंदु पंचेंद्रियजीवनागि तद्भवप्रथम समयं मोदल्गोंडु कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्येगळोळु प्रत्येकमंतर्म्मुहूर्त्तमंतर्म्मुहूर्त्तंगळनिर्द्दु शुक्ललेश्येयं पोद्दिदोडुत्कृष्टांतरं शुक्ललेश्येगे सप्तांतर्म्मुहूर्त्ताधिकसंख्यातवर्षसहस्राधिकमप्प पळितोपमा संख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयाभ्यधिकावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्त्तनप्रमितमक्कुं।

अंत=कृ	नील	कपोत	तेजो	पद्मलेश्या	शुक्ललेश्या
२१।१० अ पू–व ८ सा ३३	२१।८ पू व ८ सा ३३	२१।६ पू व–८ सा ३ ३	२१।६ व ७००० पु द २ अ अ	२१।५ व ७००० प सागरोप २ अ पुद्गल प २ अ	२१।७ व ७००० प सागरोप १ अ पुद्गल परा २ अ
ज २१	२१	२१	२१	२१	२१

पदिनाल्कनेय अंतराधिकारंतिर्द्दुदु।

अनंतरं भावाधिकारमुम अल्पबहुत्वाधिकारमुमंनोंदे सूत्रदिंद पेळदपं :—

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु।
दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ॥५५५॥

भावतः षड्लेश्या औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु। द्रव्यप्रमाणे सिद्धं इति लेश्या वर्णिता भवंति ॥

तैजसी च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा प्राग्वत् सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकद्विसागरोपमस्थितिं एकेन्द्रियेण आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि विकलेन्द्रियेषु सख्यातसहस्रवर्षाणि च नीत्वा पञ्चेन्द्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेज पद्मलेश्यासु एकैकान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा शुक्ला गच्छति तदासमान्तर्मुहूर्तसख्यातवर्षसहस्रपलितोपमासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्य- सख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टान्तर भवति ॥५५३–५५४॥ इत्यन्तराधिकार. ॥१३॥ अथ भावाल्पबहुत्वाधिकारावाह—

इतना उत्कृष्ट अन्तर पद्मलेश्याका होता है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें भी जानना। किन्तु शुक्लसे पद्म और तेजमें एक-एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर पहलेकी तरह सौधर्म युगलमें पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरकी स्थिति बिताकर एकेन्द्रियोंमें आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परावर्तन और विकलेन्द्रियोंमें संख्यात हजार वर्ष बिताकर पंचेन्द्रिय होता है। वहाँ भवके प्रथम समयसे कृष्ण, नील, कपोत, तेज, और पद्मलेश्यामें एक अन्तर्मुहूर्त ठहरकर शुक्ललेश्यामें जाता है। तब सात अन्तर्मुहूर्त, संख्यात हजार वर्ष, पल्यके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर, और आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गल परावर्तन उत्कृष्ट अन्तर होता है ॥५५४॥

भावदिंदमारु लेश्यगळु मौदयिकंगळेयप्पुवेके दोडे कषायोदयावष्टंभसंभूतयोगप्रवृत्ति लक्षणंगळप्पुदरिंदं। तु मत्ते अल्पबहुत्वमुं मुन्नं संख्याधिकारदोळपेळ्द द्रव्यप्रमाणदोळे सिद्धमक्कुमेकें दोडा द्रव्यप्रमाणदोळु सर्व्वतः स्तोकंगळु शुक्ललेश्याजीवंगळसंख्यातंगळु। अ। अव नोडल्पद्मलेश्याजीवंगळुमसंख्यातगुणितंगळप्पु अ अ वव नोडल्केतेजोलेश्याजोवंगळु संख्यातगुणितंगळप्पु अ अ १ ववं नोडल्कपोतलेश्याजीवगळनंतानंतगुणितगळु १३– ववं नोडलु नीललेश्याजीवंगळप्पु
३
१३ – ववं नोडलु कृष्णलेश्याजीवंगळसाधिकंगळप्पु १३ – वे दितु सिद्धंगळितारु लेश्यगळपदि-
३ – ३ –
नारुमधिकारंगळिंदं वर्णितंगळप्पुवु।

अनंतरं लेश्यारहितजीवंगळं पेळ्दपं :—

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणिग्गया अणंतसुहा।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेदव्वा ॥५५६॥

कृष्णादिलेश्यारहिताः संसारविनिर्गताः अनंतसुखाः। सिद्धिपुरं संप्राप्ता अलेश्यास्ते मतव्याः॥

भावेन षडपि लेश्या. औदयिका एव भवन्ति। कुत ? कषायोदयावष्टम्भसभूतयोगप्रवृत्तेरेव तल्लक्षणत्वात्। तु–पुन, तासामल्पबहुत्वं पूर्वसख्याधिकारे द्रव्यप्रमाणे एव सिद्धम्। तथाहि–शुक्ललेश्याजीवा सर्वत स्तोका अप्यसंख्याता अ। तेभ्य पद्मलेश्या असख्यातगुणा अ अ। तेभ्यस्तेजोलेश्या सख्यातगुणा अ अ १।
।
तेभ्य कपोतलेश्या अनन्तानन्तगुणा. १३–तेभ्य नीललेश्या साधिका. १३। तेभ्य कृष्णलेश्या. साधिका
॥ ।
३– ३
१३– । इति षडपि लेश्या षोडशाधिकारैर्वर्णिता भवन्ति ॥५५५॥ अथालेश्यजीवानाह—
३–

अन्तराधिकार समाप्त हुआ। अब भाव और अल्पबहुत्व अधिकार कहते हैं—

भावसे छहों लेश्या औदयिक ही होती है, क्योंकि कपायके उदयसे संयुक्त योगकी प्रवृत्ति ही लेश्याका लक्षण है। उनका अल्पबहुत्व तो पहले संख्या अधिकारमें जो द्रव्यप्रमाण कहा है उसीसे ही सिद्ध है, जो इस प्रकार है—शुक्ललेश्यावाले जीव सबसे थोड़े होनेपर भी असंख्यात हैं। उनसे पद्मलेश्यावाले जीव असंख्यातगुणे है। उनसे तेजोलेश्यावाले जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे कपोतलेश्यावाले जीव अनन्तानन्तगुणे है। उनसे नील लेश्यावाले जीव कुछ अधिक हैं। उनसे कृष्णलेश्या वाले जीव कुछ अधिक है। इस प्रकार सोलह अधिकारोंसे छहों लेश्याका वर्णन किया॥५५५॥

अब लेश्यारहित जीवोंको कहते हैं—

आवुवु केलवु जीवंगळ्गे कषायस्थानोदयंगळुं योगप्रवृत्तियुमिल्लमा जीवंगळु कृष्णादिलेश्यारहितरप्परु। संसारविनिर्ग्गताः अदुकारणदिंदं पंचविधसंसारवाराशिविनिर्ग्गतरुं अनंतसुखाः अतींद्रियानंतसुखसंतृप्तरुं सिद्धिपुरं संप्राप्ताः स्वात्मोपलब्धि लक्षणसिद्धियेंब पुरमं पोर्द्दल्पट्टरुं अलेश्यास्ते मंतव्याः अतप्प जीवंगळु लेश्यारहिताऽयोगिकेवलिगळुं सिद्धपरमेष्ठिगळुमेंबरिंदु बगेयल्पडुवरु। ५

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिगळुं श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितगोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु पंचदशं लेश्यामार्गणामहाधिकारं निगदितमाय्तु ॥

ये जीवा. कषायोदयस्थानयोगप्रवृत्यभावात् कृष्णादिलेश्यारहिता. तत एव पञ्चविधसंसारवाराशिविनिर्गता अतीन्द्रियानन्तसुखसतृप्ता. स्वात्मोपलब्धिलक्षणं सिद्धिपुर सप्राप्ता. ते अयोगकेवलिनः सिद्धाश्च अलेश्या जीवा इति ज्ञातव्या ॥५५६॥ १०

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्ररचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां
जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु लेश्याप्ररूपणा नाम
पञ्चदशोऽधिकार ॥१५॥ १५

जो जीव कषायोंके उदयस्थानसे युक्त योगोंकी प्रवृत्तिके अभावसे कृष्ण आदि लेश्याओंसे रहित हैं और इसीसे पाँच प्रकारके संसार समुद्रसे निकल गये है, अतीन्द्रिय अनन्तसुखसे तृप्त है, तथा अपने आत्माकी उपलब्धि लक्षणवाले मुक्तिनगरको प्राप्त हो चुके है वे अयोगकेवली और सिद्ध जीव लेश्यासे रहित जानना ॥५५६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से लेश्यामार्गणा प्ररूपणा नामक पन्द्रहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥ २०, २५

भव्यमार्गणाधिकार ॥१६॥

अनंतरं भवमार्गणाधिकारमं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपं :—

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ॥५५७॥

भव्या सिद्धिर्य्येषां ते भव्यसिद्धाः अथवा भाविनी सिद्धिर्य्येषां ते भव्यसिद्धाः । तद्विपरीता अभव्याः संसारतो न सिद्धचंति ॥

मुंदे संभविसुवंतप्प अनंतचतुष्टयस्वरूपयोग्यतेयाक्के लंबरुगळिगभंव्यसिद्धरु । तद्विपरीतलक्षणमनुळ्ळ जीवंगळऽभव्यरु । अदु कारणमागि अभव्यजीवंगळु ससारदत्तणिदं पिंगि सिद्धियं पडेयल्पडुवरु ।

भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमो णियमा ताणं कणयोवलाणमिव ॥५५८॥

भव्यत्वस्य योग्याः ये जीवास्ते भवति भव्यसिद्धाः । न खलु मलविगमो नियमास्तेषां कनकोपलानामिव ॥

यस्य नाम्नापि नश्यन्ति निश्शेषानिष्टराशय ।
फलन्ति वाञ्छितार्थाश्च शान्तिनाथ तमाश्रये ॥१६॥

अथ भव्यमार्गणाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह—

भव्या भवितु योग्या भाविनी वा सिद्धि' अनन्तचतुष्टयरूपस्वस्वरूपोपलब्धिर्येषा ते भव्यसिद्धा । अनेन सिद्धेर्लब्धियोग्यताभ्या भव्याना द्वैविध्यमुक्तम् । तद्विपरीता उक्तलक्षणद्वयरहिता', ते अभव्या भवन्ति । अतएव ते अभव्या न सिद्धचन्ति ससारान्नि सृत्य सिद्धिं न लभन्ते ॥५५७॥ एव द्विविधानामपि भव्याना सिद्धिलाभप्रसक्तौ तद्योग्यतामात्रवतामुपपत्तिपूर्वक ता परिहरति—

अब चार गाथाओंसे भव्य मार्गणाधिकारको कहते है—

भव्य अर्थात् होनेके योग्य अथवा जिनकी सिद्धि—अनन्त चतुष्टयरूप आत्मस्वरूपकी उपलब्धि भाविनी—होनेवाली है वे जीव भव्यसिद्ध होते है। इससे सिद्धिकी प्राप्ति और योग्यताके भेदसे भव्योंके दो भेद कहे हैं। उक्त दोनों लक्षणोंसे रहित जीव अभव्य होते है। वे संसारसे निकलकर सिद्धिको प्राप्त नही होते ॥५५७॥

इस प्रकार दोनों ही प्रकारके भव्योको मुक्तिलाभका प्रसंग प्राप्त होनेपर जिनके मात्र सिद्धि प्राप्तिकी योग्यता है, उपपत्तिपूर्वक उनको मुक्ति प्राप्तिका निषेध करते है—

सम्यग्दर्शनादिसामग्रियनेयिदियनंतचतुष्टयस्वरूपतेयिदं परिणमिसल्के योग्यरप्प जीवंगळु-नियमदिंदं भव्यसिद्धरुगळप्परवर्गळगे मलविगमदोळु नियमदिंल्ल । कनकोपलंगळगे तंते केलवु-जीवंगळु भव्यरुगळागियु रत्नत्रयप्राप्तिरूपसप्प स्वसामग्रियं पडेयलारदिरुत्तिर्प्पुवु । अभव्यसमानरप्प भव्यजीवंगळुमोळवे बुदत्थं ।

ण य जे भव्वाऽभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा ।
ते जीवा णादव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥५५९॥

न च ये भव्याः अभव्याश्च मुक्तिसुखाः अपगतानंतसंसाराः ते जीवा ज्ञातव्याः नैव च भव्या अभव्याश्च ॥

आक्के लंबरु जीवंगळु भव्यरुगळुमल्तु अभव्यरुगळुमल्तु मुक्तिसुखाः कृत्स्नकर्म्मक्षयदोळं घातिकर्म्मक्षयदोळं संजनितातींद्रियानंतसुखमनुळ्ळरु अतीतानंतसंसाराः परिगिक्कलपट्ट संसार-मनुळ्ळ ते जीवाः आ जीवंगळु नैव भव्याः भव्यरुगळुमल्तु नैवाभव्याश्च अभव्यरुगळमल्तु ज्ञातव्याः एंदितरियल्पडुवरु ।

अनतरं भव्यमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं :—

अवरो जुत्ताणतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं ।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥५६०॥

अवरो युक्तानंतो भव्यराशेर्भवति परिमाणं । तेन विहीनः सर्व्वः संसारी भव्यराशेः । युक्तानंतजघन्यराशिप्रमाणमभव्यराशिय परिमाणमक्कुं । ज जु अ । मा अभव्यराशिहीनसर्व्वसंसारि·

ये भव्यजीवा. भव्यत्वस्य सम्यग्दर्शनादिसामग्री प्राप्यानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमनस्य योग्या. केवलयोग्यतामात्रयुक्ताः ते भवसिद्धा ससारप्राप्ता एव भवन्ति । कुत. ? तेषा मलस्य विगमे विनाशकरणे केषाचित्कनकोपलानामिव नियमेन सामग्री न सभवतीति कारणात् ॥५५८॥

ये जीवा न च भव्या नाप्यभव्याः मुक्तिसुखाः अतीतानन्तससाराः ते जीवा नैव भव्या भवन्ति, नाप्यभव्या भवन्ति इति ज्ञातव्याः ॥५५९॥ अत्र जीवसख्यामाह—

जघन्ययुक्तानन्तोऽभव्यराशिपरिमाण भवति । ज जु अ । तेन अभव्यराशिनोन. सर्वससारिराशि.

जो भव्यजीव भव्यत्वके अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि सामग्रीको प्राप्त करके अनन्त-चतुष्टय स्वरूपसे परिणमनके योग्य है अर्थात् केवल योग्यतामात्र रखते है वे भवसिद्ध संसारी ही होते है । क्योंकि जैसे कुछ स्वर्णपाषाण ऐसे होते है जिनका मल दूर करना शक्य नही होता उस प्रकारकी सामग्री नहीं मिलती, उसी तरह उनके भी मलको विनाश करनेवाली सामग्री नियमसे नही मिलती ॥५५८॥

जो जीव न तो भव्य है और न अभव्य हैं, क्योंकि उन्होंने मुक्तिसुख प्राप्त कर लिया है और उनका अनन्त संसार अतीत हो चुका है । वे जीव न तो भव्य है और न अभव्य हैं ॥५५९॥

इनमें जीवोंकी संख्या कहते है—

अभव्यराशि जघन्य युक्तानन्त परिमाणवाली होती है । भव संसार राशिमें-से

---

१. म °ममिल्लदिरुत्तिरलु कन° ।

राशि भव्यराशिय परिमाणमक्कुं १३-। इल्लि ससारिजीवंगळ परिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं। परिवर्त्तनं परिभ्रमणं संसरणमेंदनर्त्थातरमक्कुमदुवु द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेददिं पंचविधमक्कुमल्लि द्रव्यपरिवर्त्तन नोकर्म्मकर्म्मपरिवर्त्तनभेदर्दिदं द्विविधमदक्कुमल्लि। नोकर्म्मपरिवर्त्तनमें बुदु मूरुं शरीरंगळुगरुं पर्य्याप्तिगळगे योग्यंगळप्पुवावु केलवु पुद्गलंगळु वोर्व्वजीवनिंदमों दु समयदोळु कैकोळल्पट्ट स्निग्धरूक्षवर्णगंधादिगळिंदं तीव्रमंदमध्यमभावदिदमु यथास्थितंगळु द्वितीयादिसमयगळोळु निर्ज्जीर्णंगळु। अगृहीतगळनंतवारंगळं कळेदु मिश्रकंगळनू अनंतवारंगळं कळेदु मध्यदोळु गृहीतगळनुमनंतवारंगळं परिगिक्कि आपुद्गलंगळे आ प्रकारदिदमे आ जीवन नोकर्म्मभावमनेय्दल्पडुववेन्नेवरमा समुदितं कालं नोकर्म्मद्रव्यपरिवर्त्तनमक्कुमदें तेंदोडा पुद्गलपरिवर्त्तनकालं अगृहीतग्रहणाद्धियेंदुं मिश्रग्रहणाद्धियेंदु त्रिविधमक्कुमल्लि विवक्षितनोकर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनमध्यदोळु अगृहीतंगळग्रहणकालमनगृहीतग्रहणाद्धियेंबुदु गृहीतंगळग्रहणकालं गृहीतग्रहणाद्धियेंबुदु। युगपदुभयग्रहणकालं मिश्रग्रहणाद्धियेंबुदक्कुमिवेल्लर परिवर्त्तनकममिदु। विवक्षितनोकर्म्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयं मोदल्गों दु निरंतरमगृहीतंगळननंतवारंगळकळेदोम्मे मिश्रग्रहणमक्कुं मत्तम-

भव्यराशिप्रमाण भवति १३—अत्र ससारिणा परिवर्तनमुच्यते। परिवर्तन परिभ्रमण ससार इत्यनर्थान्तरम्। तत् द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेदात्पञ्चधा। तत्र द्रव्यपरिवर्तन कर्मनोकर्मभेदाद्द्वेधा। तत्र नोकर्मपरिवर्तन नाम शरीरत्रयस्य षट्पर्याप्तीना च योग्या पुद्गला केनचिज्जीवेन एकस्मिन् समये गृहीता स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभि तीव्रमन्दमध्यमभावेन यथावस्थिता द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णा, अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकाननन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताननन्तवारानतीत्य त एव पुद्गला तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभाव गच्छेयुस्तावान् समुदितकालो नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन भवति। तद्यथा—तत्पुद्गलपरिवर्तनकालोऽगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणाद्धा मिश्रग्रहणाद्धेति त्रिविध। तत्र अगृहीतग्रहणकाल अगृहीतग्रहणाद्धा। गृहीतग्रहणकालो गृहीतग्रहणाद्धा, युगपदुभयग्रहणकालो मिश्रग्रहणाद्धा। तेषा परिवर्तनक्रमोऽय विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयादारभ्य निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं, पुन निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहण

अभव्यराशिका परिमाण घटानेपर भव्यराशिका प्रमाण होता है। यहाँ संसारी जीवोंके परिवर्तन कहते हैं। परिवर्तन परिभ्रमण और संसार ये शब्द एकार्थक है। परिवर्तन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावके भेदसे पाँच प्रकारका है। उनमे-से द्रव्यपरिवर्तन कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है। नोकर्म परिवर्तन इस प्रकार होता है—तीन शरीर छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल किसी जीवने एक समयमे ग्रहण किये। स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध आदि तथा तीव्र, मन्द या मध्यम भावसे जैसे ग्रहण किये दूसरे आदि समयोंमें उनकी निर्जरा हो गयी। उसके पश्चात् अनन्त वार अगृहीतको ग्रहण करके छोड़े, अनन्त वार मिश्रको ग्रहण करके छोड़े। मध्यमें अनन्त वार गृहीतको ग्रहण करके छोड़े। तब वे ही पुद्गल उसी प्रकारसे उसी जीवके नोकर्म भावको जब प्राप्त हों उतना सब काल नोकर्म द्रव्य परिवर्तन होता है।

पुद्गल परिवतनका काल अगृहीतग्रहणाद्धा, गृहीत ग्रहणाद्धा ओर मिश्र ग्रहणाद्धाके भेदसे तीन प्रकार है। अगृहीत ग्रहणके कालको अगृहीत ग्रहणद्धा कहते है। गृहीतग्रहणके कालको गृहीत ग्रहणद्धा कहते हैं और एक साथ गृहीत और अगृहीतके ग्रहणकालको मिश्रगृहणद्धा कहते है। उनके परिवर्तनका क्रम इस प्रकार है—विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तनके प्रथम समयसे लेकर निरन्तर अनन्त वार अगृहीतको ग्रहण करके एक वार मिश्रको ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर अनन्त वार अगृहीतको ग्रहण करके एक वार मिश्रको

गृहीतंगळननंतवारंगळं पेरगिक्कियोनिकर्म्म मिश्रग्रहणमक्कुमितनंतंगळु मिश्रग्रहणंगळप्पुवु। बळिक्कं निरंतरमवगृहीतंगळननंतवारंगळ कळेदोम्मे गृहीतग्रहणमक्कुमिते गृहीतंगळुमनंतंगळागुत्तं विरलु प्रथमपरिवर्त्तनमक्कुममल्लिदं बळिक्कं निरंतरंमिश्रकंगलमनंतवारंगलकलिदुवोम्मे गृहीतग्रहणमक्कुं मत्त मिश्रकंगळननंतवारंगळं पेरगिक्कियोम्मे अगृहीतग्रहणमक्कुमितनंतंगळु अगृहीतग्रहणंगळप्पुवु। मुंदे मत्तं निरंतरंमागि मिश्रकंगळननंतंगळं कळियिदोम्मे गृहीतग्रहणमक्कुं मिते गृहीतंगळुमनंतंगळागुत्तं विरलु द्वितीयपरिवर्त्तनमक्कुं।

मत्तमल्लि बळिक्कं निरंतरमागि मिश्रकंगळननंतवारंगळं पेरगिक्किदोम्मे गृहीतग्रहणमक्कुं। मत्तं निरंतरमिश्रकंगळननंतवारंगळं कळेदोम्मे गृहीतग्रहणमक्कुमितु गृहीतग्रहणंगळुमनंतंगळप्पुवुमल्लिबळिक्कं निरंतरमागि मिश्रकंगळननंतवारंगळं कळेदोम्मे अगृहीतग्रहणमक्कुमितु अगृहीतग्रहणंगळोळमनंतंगळागुत्तं विरलु तृतीयपरिवर्त्तनमक्कुं। अल्लि बळिक्कं निरंतरं

पुन निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रगहणम्। एवमनन्तानि मिश्रग्रहणानि। तत निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृत् गृहीतग्रहणम्। एवं गृहीतेष्वपि अनन्तेपु जातेषु प्रथमपरिवर्तन भवति। ततोऽग्रे निरन्तरं मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम्। पुन निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम्। एवमनन्तानि अगृहीतग्रहणानि। तत निरन्तरं मिश्रकानन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणम्। एव गृहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु द्वितीयपरिवर्तन भवति। ततोऽग्रे निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणम्। पुन निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृद्गृहीतग्रहणम्। एव गृहीतग्रहणानि अनन्तानि। ततः निरन्तर मिश्रकाननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम्। एवमगृहीतग्रहणेष्वप्यनन्तेपु जातेषु तृतीयपरिवर्तन भवति।

ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार मिश्रको ग्रहण करता है। उसके पश्चात् निरन्तर अनन्तवार अगृहीतको ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार गृहीतका भी ग्रहण अनन्त बार होनेपर प्रथम परिवर्तन होता है। इसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

० ० +	० ० +	० ० +	० ० +	० ० +	० ० +
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + १
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

इसमें अगृहीतका चिह्न शून्य है, मिश्रका हंसपद है और गृहीतका एक अंक है। दो बार अनन्त बारका सूचक है। प्रथम परावर्तनसे मतलब है प्रथम पंक्तिके कोठोंकी समाप्ति हो गयी, अब आगे चलिए।

आगे निरन्तर अनन्त बार मिश्रको ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। इस तरह अनन्त बार अग्रहीतका ग्रहण करता है। उसके पश्चात् निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार गृहीतका ग्रहण होनेपर द्वितीय परिवर्तन होता है। आगे निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार गृहीतका ग्रहण करता है। पुनः निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार गृहीतको ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार गृहीतको ग्रहण करता है। फिर निरन्तर मिश्रको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अगृहीतका ग्रहण अनन्त बार होनेपर तृतीय परिवर्तन होता है। आगे निरन्तर गृहीतको अनन्त बार ग्रहण करके एक बार

गृहीतंगळनंतवारंगळं कळिपियोम्मे मिश्रग्रहणमक्कुं। मत्तं गृहीतंगळनतंवारंगळ पेरगिक्किकयोम्मे मिश्रग्रहणमक्कुं मितु मिश्रग्रहणंगळुमनंतगळक्कुमल्लि बळिक निरंतरं गृहीतंगळननतंगळं पेरगिक्किकयोम्मे अगृहीतग्रहणमक्कुमितु अगृहीतंगळोलमनंतंगळागुत्तं विरलु चतुर्त्थपरिवर्त्तनमक्कं। तदनंतरसमयदोळु विवक्षितनोकर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनप्रथमसमयगृहीतगळु द्वितीयादिसमयं निर्ज्जीर्णगळावुवु केलवु नोकर्म्मसमयप्रबद्धपुद्गलंगळु अवेतादृशंगळे शुद्धंगळु वंदु पोद्दुववु अदिदेल्लमुं कूडि नोकर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनमक्कुं। कर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुमोंदु समयदोळोर्व्वजीवनिंदमष्टविधकर्म्मभावदिंदमावुवुकेलवु कैकोळल्पट्टुवु समयाधिकावलिकालप्रमितमं[२] आबाधेयं कळेदु द्वितीयादिसमयंगळोळु निजीर्णंगळु पूर्व्वोक्तक्रमदिदमे अवे आ प्रकारदिंदमे आ जीवंगे कर्म्मरूपतेयनेय्दुववु एन्नेवरमनितु कालं कर्म्मपुद्गलपरिवर्त्तनमक्कुं उळिदंतेल्ला विशेषमुं नोकर्म्मपरावर्तनदोळपेळदंतेयक्कुमी यरडुं पुद्गलपरिवर्त्तनंगळगे कालंगळेरडुं समानंगळेयप्पुविल्लि अगृहीतग्रहणकालमनंतमागियुं सर्व्वतः स्तोकमक्कुमेकें दोडे विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारंगळनुळ्ळ पुद्गलंगळगे बहुवारं ग्रहणं घटिसदु कारणमागि इदरिंदं विवक्षितपुद्गलपरिवर्त्तनमध्यदोळु

ततोऽग्रे निरन्तर गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणम्। पुन गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणम्। एव मिश्रग्रहणानि अनन्तानि। तत निरन्तर गृहीताननन्तवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणम्। एवमग्रहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु चतुर्थपरिवर्तन भवति। तदनन्तरसमये विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयगृहीता अनन्ता द्वितीयादिसमयनिर्जीर्णा ये नोकर्मसमयप्रबद्धपुद्गलास्त एव तादृशा एव शुद्धा आगत्य आश्रयन्ति तदेतत्सर्वं मिलित नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन भवति। कर्मपुद्गलपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये केनचिज्जीवेन अष्टविधकर्मभावेन ये गृहीता समयाधिकावलिकालमतीत्य द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णा:। पूर्वोक्तक्रमेणैव त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य कर्मभाव प्राप्तुवन्ति तावत्काल कर्मपुद्गलपरिवर्तन भवति। शेषसर्वविशेषो नोकर्मपरिवर्तनवत् ज्ञातव्य। अनयो कालौ समानौ। अत्रागृहीतग्रहणकाल अनन्तोऽपि सर्वत स्तोक.। कुत, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसस्कारपुद्गलाना बहुवारग्रहणाघटनात्। अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये गृहीतानामेव बहुवारगहणं

मिश्रको ग्रहण करता है। पुनः गृहीतको अनन्त वार ग्रहण करके एक बार मिश्रको ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त वार मिश्रको ग्रहण करता है। पुन निरन्तर गृहीतको अनन्त वार ग्रहण करके एक बार अगृहीतका ग्रहण करता है। इस प्रकार अनन्त बार अगृहीतका ग्रहण करनेपर चतुर्थ परिवर्तन होता है। उसके अनन्तर समयमे विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तनके प्रथम समयमे जो अनन्त नोकर्म समयप्रबद्ध पुद्गल ग्रहण किये थे और द्वितीयादि समयमे जिनकी निर्जरा कर दी गयी थी, वे ही नोकर्म पुद्गल उसी रूपमे ग्रहण किये जाते है तो यह सब मिलकर नोकर्म पुद्गल परिवर्तन होता है।

अब कर्मपुद्गलपरिवर्तन कहते है—एक समयमें किसी जीवने आठ कर्मरूपसे जो पुद्गल ग्रहण किये और एक समय अधिक आवलीके बीतनेपर द्वितीयादि समयोमे उनकी निर्जरा कर दी। पूर्वोक्त क्रमसे वे ही पुद्गल उसी प्रकारसे उसी जीवके कर्मपनेको प्राप्त हो तबतकका काल कर्मपुद्गलपरावर्तन कहलाता है। शेष सब विशेष कथन नोकर्म परिवर्तनकी तरह जानना। इन दोनो परिवर्तनोके काल समान है। यहाँ अगृहीत ग्रहणकाल अनन्त होनेपर भी सबसे थोड़ा है। क्योंकि जिन पुद्गलोंका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका संस्कार नष्ट हो

---

१ म °मितु गृहीतग्रहणगलु। २. म °म कलिदु।

गृहीतंगळगंये बहुवारग्रहणं संभविसुगुमेंदितु पेळल्पट्टुदक्कुं ॥ उक्तं च :—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ [ ]

सूक्ष्मस्थितिसंयुक्तं आसन्नं कर्म्मनिर्ज्जरामुक्तं । प्रायेणैति ग्रहणं द्रव्यमनिर्दिष्टसंस्थानमिति ॥

अल्पस्थितिसंयुक्तमुं जीवप्रदेशंगळोळिरुतिर्द्दुदु कर्म्मनिर्ज्जरेयिंदं कर्म्मस्वरूपमं बिडल्पट्टुदुं इंतप्प पुद्गलद्रव्यमनिर्द्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्त्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपमल्लदुदु जीवनिंदं प्रचुरवृत्तियिंदं स्वीकरिसलुपडुगुमेकेंदोडे द्रव्यादिचतुर्व्विधसंस्कारसंपन्नमप्पुदरिंदं । अगृहीतग्रहणकालमं नोडलु मिश्रग्रहणकालमनंतगुणमक्कु । ख ख । मदं नोडलु जघन्यगृहीतग्रहणकालमनंतगुणमक्कु । ख ख ख । मद नोडलु जघन्यपुद्गलपरिवर्त्तनकालं विशेषाधिकमक्कुमधिकप्रमाणमिदु ख ख ख ख

इदनपवर्त्तिसि इल्लि कूडिदोडिदु ज = घ ख ख ख । अदं नोडलुत्कृष्ट गृहीतग्रहणकालमनंतगुणमक्कु । ख ख ख ख । मदं नोडलुत्कृष्टपुद्गलपरावर्त्तनकालं विशेषाधिकमक्कुमा विशेषप्रमाणमिदु ख ख ख ख इदनपवर्त्तिसि कूडिदोडिदु । ख ख ख ख । इल्लि अगृहीतमिश्रग्रहणकालंगळगे ख

सभवतीत्युक्तं भवति । उक्तं च—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्ण कम्मणिज्जरामुक्क ।
पाएण एदि गहण दव्वमणिद्दिट्ठसठाणं ॥ १ ॥ [ ]

अल्पस्थितिसंयुक्त जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्जरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपरहित जीवेन प्रचुरवृत्त्या स्वीक्रियते । कुत. ? द्रव्यादिचतुर्विधसस्कारसंपन्नत्वात् । अगृहीतग्रहणकालात् मिश्रग्रहणकालोऽनन्तगुण: । ख ख । ततो जघन्यगृहीतग्रहणकालोऽनन्तगुण' । ख ख ख । ततो जघन्यपुद्गलपरिवर्तनकालो विशेषाधिक. । अधिकप्रमाणमिदं ख ख ख अपवर्त्य तत्र निक्षिप्ते ख

१— १—
एव ज = पु । ख ख ख ततः उत्कृष्टगृहीतग्रहणकाल: अनन्तगुण: ख ख ख ख । तत उत्कृष्टपुद्गलपरावर्तनकालो

चुका है उनका बहुत बार ग्रहण नहीं होता है । इससे यह कहा गया है कि विवक्षित पुद्गलपरावर्तनके मध्यमें गृहीतोंका ही बहुत बार ग्रहण होता है। कहा भी है—जो कर्मरूप परिणत पुद्गल थोड़ी स्थितिको लिये हुए जीवके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह रूपसे स्थित होते है और निर्जराके द्वारा कर्मरूपसे छूट जाते है, जिनका आकार कहनेमें नहीं आता तथा विवक्षित परावर्तनके प्रथम समयमें जो स्वरूप कहा है उस स्वरूपसे रहित हो वे ही जीवके द्वारा अधिकतर ग्रहण किये जाते है । क्योंकि वे द्रव्यादि रूप चार प्रकारके संस्कारसे युक्त होते है ।

अगृहीत ग्रहणके कालसे मिश्र ग्रहणका काल अनन्तगुणा है । उससे गृहीत ग्रहणका जघन्य काल अनन्तगुणा है । उससे पुद्गल परिवर्तनका जघन्य काल विशेष अधिक है । जघन्य गृहीत ग्रहण कालको अनन्तसे भाजित करनेपर जो प्रमाण आवे उतना उसमें जोड़नेपर जघन्यपुद्गल परिवर्तन काल होता है । उससे उत्कृष्ट गृहीतग्रहणका काल अनन्तगुणा

जघन्योत्कृष्टभावमिल्लमें दितवधरिसल्पडुवुदेकें दोडेतद्विध परमगुरूपदेशाभावमप्पुदरिंदं संदृष्टि :—

ज=घ। ख ख ख उ घ ख ख ख ख
ज=गृ। ख ख ख उ=कृ ख ख ख ख
मिश्र। ख ख मिश्र ख ख
अगृ। ख अगृ। ख

इल्लि अगृहीतक्के सदृष्टिशून्यं मिश्रक्के हंसपदं गृहीतक्कंकमल्लियुं शून्यद्वयमुं हंसपदद्वयमुं। अंकद्वयमुं क्रमदिंदनंतगळप्प अगृहीतवारंगळगं मिश्रवारगळ्गं गृहीतवारगळ्गं संदृष्टियक्कुं :—

० ०+	० ०+	० ० १	० ०+	० ०+	० ० १
+०+०	+०+०	+०+१	+०+०	+०+०	+०+१
+०+१	+०+१	+०+०	+०+१	+०+१	+०+०
११+	११+	११०	११+	११+	११०

इल्लिगुपयोगियक्कु मी गाथासूत्रं :—

अगहिदमिस्स य गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च।
मिस्सं गहिदागहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ॥

विशेषाधिक। तद्विशेषप्रमाणमिद ख ख ख ख$^{१-}_{ख}$, अपवर्त्य निक्षिप्ते एव ख ख ख ख। अत्रागृहीतमिश्रग्रहण-कालयोर्जघन्योत्कृष्टभावौ न इत्यवधार्यम्। तथाविधपरमगुरूपदेशाभावात्। सदृष्टि

उ=गृ=ख ख ख ख$^{१-}_{ख}$		उ=पु=ख ख ख$^{१-}_{ख}$	
ज=गृ=ख ख ख		ज=पु=ख ख ख	
मिश्र	ख ख	०	
अगृहीत	ख	०	

अत्रागृहीतस्य सदृष्टि शून्य मिश्रस्य हंसपद, गृहीतस्याक, अनन्तवारस्य द्विचार'। तत्सदृष्टि —

० ०+	० ०+	० ० १	० ०+	० ०+	० ० १
+ +०	+ +०	+ +१	+ +०	+ +०	+ +१
+ +१	+ +१	+ +०	+ +१	+ +१	+ +०
१ १+	१ १+	१ १०	१ १+	१ १+	१ १०

अत्रोपयोगिगाथासूत्र—

अगहिदमिस्स गहिद मिस्समगहिद तहेव गहिद च।
मिस्स गहिदमगहिद गहिद मिस्स अगहिद च ॥२॥

है। उससे उत्कृष्ट पुद्गलपरावर्तन काल विशेष अधिक है। उत्कृष्ट गृहीत ग्रहणकालमें अनन्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहणकालमें मिलानेपर उत्कृष्ट पुद्गलपरावर्तन काल होता है। यहाँ अगृहीत ग्रहणकाल और मिश्रग्रहण कालमें जघन्य और उत्कृष्टपना नही है ऐसा जानना क्योंकि उस प्रकारके उपदेशका अभाव है। यहाँ उपयोगी गाथाका अर्थ इस प्रकार है जो द्रव्य परिवर्तनमें स्पष्ट कर आये है कि पहला अगृहीतमिश्र गृहीत, दूसरा मिश्र अगृहीत गृहीत, तीसरा मिश्र गृहीत अगृहीत और चतुर्थ गृहीत मिश्र अगृहीत है इस क्रमसे ग्रहण करता है।

१ १ ० ० "सर्व्वेपि पुद्गलाः खल्वेकेनाप्तोज्झिताश्च जीवेन। असकृदनंतकृत्वः पुद्गल-
+ ० १ +
० + + १
परिवर्त्तसंसारे।"

क्षेत्रपरिवर्त्तनमुं स्वक्षेत्रपरिवर्तनमेंदु परक्षेत्रपरिवर्तनमेंदितु द्विविधमक्कुमल्लि। स्वक्षेत्र-परिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं। वों दानुमोर्व्व जीवं सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनदिंदं पुट्टिदातं स्वस्थितियं
१ जीविसि मृतनागि मत्तं प्रदेशोत्तरावगाहनदिंदं पुट्टि इंतु द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमदिंदं महामत्स्याव- ५
१८
गाहनपर्य्यंतंगळु संख्यातघनांगुल ६१ प्रमितावगाहन विकल्पंगळा जीवनिंदमे येनेवरं स्वीकरि-सल्पडुवुवदेल्लं कूडि स्वक्षेत्रपरिवर्त्तनमक्कुं। परक्षेत्रपरिवर्त्तनमेंतेदोडे सूक्ष्मनिगोदजीवनऽपर्य्याप्तकं सर्व्वजघन्यावगाहनशरीरमनुळ्ळं लोकमध्याष्टप्रदेशंगळं तन्न शरीरमध्याष्टप्रदेशंगळं साडि पुट्टि क्षुद्रभवकालमं जीविसि मृगनागि आजीवेन मत्तमा अवगाहनदिंदमेरडु वारंगक्कुमंते मूरु वारंगळुमंते

अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं १०

सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु एकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन।
ह्यसकृत्त्वनन्तकृत्वा पुद्गलपरिवर्तससारे॥

१ + ० क्षेत्रपरिवर्तनमपि स्वपरभेदाद्द्वेधा तत्र स्वक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः सूक्ष्मनिगोदजघ-
+ १ ०
+ ० १
० + १

न्यावगाहनेनोत्पन्न स्वस्थितिं १ जीवित्वा मृतः पुनः प्रदेशोत्तरावगाहनेन उत्पन्न। एवं द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमेण
१८
महामत्स्यागाहनपर्यन्ता. सख्यातघनाङ्गुल ६ १ प्रमितावगाहनविकल्पाः तेनैव जीवेन यावत्स्वीकृताः तत् १५
सर्वं समुदित स्वक्षेत्रपरिवर्तनं भवति। परक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—सूक्ष्मनिगोदः अपर्याप्तक सर्वजघन्यावगाहनशरीरः लोकमध्याष्टप्रदेशान् स्वशरीरमध्याष्टप्रदेशान् कृत्वा उत्पन्न.। क्षुद्रभवकाल जीवित्वा मृत.। स एव पुनस्तेनैव

उपयोगी आर्याच्छन्दका अर्थ—पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें एक जीवने अनन्त बार सब पुद्गलोंको ग्रहण करके छोड़ दिया है।

क्षेत्रपरिवर्तन भी स्व और परके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें-से स्वक्षेत्रपरिवर्तनको २०
कहते है—कोई जीव सूक्ष्मनिगोदकी जघन्य अवगाहनासे उत्पन्न हुआ। अपनी स्थिति श्वासके अठारहवें भाग प्रमाण जीवित रहकर मर गया। पुनः एकप्रदेश अधिक उसी अवगाहनासे उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार दो आदि प्रदेश अधिक अवगाहनाके क्रमसे महामत्स्यकी अवगाहना पर्यन्त संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहनाके विकल्प उसी जीवने जबतक धारण किये वह सब मिलकर स्वक्षेत्र परिवर्तन होता है। २५

अब परक्षेत्र परिवर्तनको कहते है—सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक सबसे जघन्य अवगाहनावाले शरीरके साथ लोकके आठ मध्य प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य आठ प्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ। क्षुद्रभव काल तक जीकर मरा। वही पुनः उसी अवगाहनाके साथ दुवारा, तिबारा, चौबारा उत्पन्न हुआ। इस प्रकार घनांगुलके असंख्यातवें भाग बार वहीं उत्पन्न हुआ। पुनः एक-एक प्रदेश बढ़ाते-बढ़ाते समस्त लोकको अपना जन्मक्षेत्र बना लेता ३०
१००

नाल्कु वारियुमंते इं तेन्नवर घनांगुलासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशंगळु अनितु वारंगळं नल्लिये जनिसि मत्तमेकैकप्रदेशाधिकभावदिदं सर्व्वलोकमुं तनगे जन्मक्षेत्रभावमनेय्दिसल्पट्टुदक्कुमेन्नेवरमनितुकालमेल्ल कूडि परक्षेत्रपरिवर्त्तनमक्कुमिल्लिगुपयोगियप्प श्लोक :—

सर्व्वत्र जगत्क्षेत्रे प्रदेशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो वंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्रसंसारदोळु वंभ्रमिसुवंतप्प जीवनिंदं जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रदोळु स्वशरीरावगाहरूपदिंद मुट्टल्पडद प्रदेशमिल्ल । अवगाहनंगळु बहुवार कैकोळल्पडदुवुमिल्लि । कालपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं । उत्सर्प्पिणिय प्रथमसमयदोळु पुट्टिदनावनानुमोर्व जीवं स्वायुः परिसमाप्तियोळु मृतनागि मत्तमा जीवने द्वितीयोत्सर्प्पिणिय द्वितीयसमयदोळ्पुट्टि स्वायुःक्षयवशदिंदं मृतनागि आ जीवने मत्तमा तृतीयोत्सर्प्पिणिय तृतीयसमयदोळु पुट्टि मृतनागि मत्तमा चतुर्थोत्सर्प्पिणिय चतुर्थसमयदोळ्पुट्टिर्दनितु क्रमदिंद मुत्सर्प्पिणियसमाप्तमक्कुमंते अवसर्प्पिणियुं समाप्तमादुदक्कुमितु जन्मनैरंतर्यं पेळल्पट्टुदु । मरणक्रमते नैरतर्य्यं कैकोळल्पडुगुमिदेल्लम कूडि कालपरिवर्त्तनमक्कुं ।

अवगाहनेन द्विवार तथा त्रिवार तथा चतुर्वार एव यावत् घनाङ्गुलासख्येयभाग' तावद्वारं तत्रैवोत्पन्न., पुन' एकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वलोक स्वस्वजन्मक्षेत्रभाव नयति । तदेतत्सर्वं परक्षेत्रपरिवर्तन भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्त—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जन्तुनाऽक्षुण्ण ।
अवगाहनानि बहुशो वभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्रसंसारे वम्भ्रमता जीवेन जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रे स्वशरीरावगाहनरूपेणास्पृष्टप्रदेशो नास्ति । अवगाहनानि बहुवार यानि न स्वीकृतानि तानि न सन्ति ।

कालपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीव उत्सर्पिणीप्रथमसमये जातः स्वायु.परिसमाप्तौ मृत , पुनर्द्वितीयोत्सर्पिणीद्वितीयसमये जात स्वायु परिसमाप्त्या मृत' । पुन तृतीयोत्सर्पिणीतृतीयसमये जात तथा मृत , पुन चतुर्थोत्सर्पिणीचतुर्थसमये जात । अनेन क्रमेण उत्सर्पिणी समाप्नोति तथैवावसर्पिणीमपि समाप्नोति एव

है । यह सब परक्षेत्र परिवर्तन है । इस विषयमें उपयोगी आर्याच्छन्दका अभिप्राय इस प्रकार है—क्षेत्र संसारमें भ्रमण करते हुए इस जीवने बहुत-सी अवगाहनाओंके द्वारा समस्त जगत्के क्षेत्रको अपना जन्मस्थान बनाया, कोई क्षेत्र उत्पन्न होनेसे शेष नहीं रहा । ऐसी कोई अवगाहना नहीं रही जो अनेक बार धारण नही की ।

कालपरिवर्तन कहते है—कोई जीव उत्सर्पिणी कालके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ और अपनी आयु समाप्त होनेपर मर गया । पुन' दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमे उत्पन्न हुआ और अपनी आयु समाप्त होनेसे मर गया । पुन तीसरी उत्सर्पिणीके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ और उसी प्रकार आयु समाप्त होनेपर मरा । पुनः चतुर्थ उत्सर्पिणीके चतुर्थ समयमे उत्पन्न हुआ । इसी क्रमसे उत्सर्पिणीके सब समयोंमें उत्पन्न होकर उत्सर्पिणीको समाप्त करता है तथा इसी क्रमसे अवसर्पिणी कालके सब समयोंमें उत्पन्न होकर अवसर्पिणी समाप्त करता है । इस प्रकार निरन्तर जन्म लेनेका कथन किया । इसी प्रकार क्रमसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सब समयोंमें मरण भी करना चाहिए । यह सब काल-

इल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तं :—

उत्सर्प्पणावसर्प्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन्कालसंसारे ॥

उत्सर्प्पणावसर्प्पणगळ समयमालेयोळेनितोळवनितु समयंगळोळु यथाक्रमदिं पुट्टिदनुं पो[द]दिदनुमनंतवारं कालसंसारदोळु परिभ्रमिसुत्तं जीवनुं ।

भवपरिवर्त्तनं पेळल्पडुगुं—नरकगतियोळु सर्वजघन्यायुर्द्दशवर्षसहस्रप्रमितमक्कु मंतप्पायुष्यदिंदमल्लिये पुट्टि पोरमट्टु मत्तं संसारदोळु परिभ्रमिसि या जघन्यायुष्यदिंदमल्लिये पुट्टिदनितु दशवर्षसहस्रंगळ समयंगळेनितोळवनितु वारंगळनल्लिये पुट्टिदनुं मृतमादनुं । बळिकेकैकसमयाधिकभावदिंदं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमंगळु समाप्तं माडल्पट्टुदु । बळिक्कमा नरकगतियिंदं बंदु तिर्य्यग्गतियोळु अंतर्म्मुहूर्त्तजघन्यायुष्यदिंदं पुट्टि मुन्निनंतेयंतर्म्मुहूर्त्तसमयंगळेनितोळवनितु वारं पुट्टि मेले समयाधिकभावदिंदं त्रिपल्योपमंगळुमा जीवनिंदं परिसमाप्तं माडल्पट्टुविते । मनुष्यगतियोळं त्रिपल्योपमंगळा जीवनिंदमे परिसमाप्तं माडल्पडुवुवु । नरकगतियोळेंदंते देवगतियोळं दशवर्षसहस्रसमयसमाप्तियिंदं मेले समयोत्तरक्रमायुष्यनागुत्तमेकत्रिंशत्सागरोपमंगळु परि-

---

जन्मनैरन्तर्यमुक्त । मरणस्याप्येव नैरतर्यं ग्राह्य । तदेतत्सर्वं कालपरिवर्तन भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥

उत्सर्पणावसर्पणयो' सर्वसमयमालाया क्रमेण उत्पन्नः मृतश्च अनन्तवारकालसंसारे परिभ्रमन् जीवः ।

भवपरिवर्तनमुच्यते—नरकगतौ सर्वजघन्यायुर्दशसहस्रवर्षाणि तेनायुषा तत्रोत्पन्न. पुन. ससारे भ्रान्त्वा तेनैव आयुषा तत्रैवोत्पन्नः । एवं दशसहस्रवर्षसमयवारं तत्रैवोत्पन्नो मृत. । पुनः एकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यन्ते । पश्चात् तिर्यग्गतौ अन्तर्मुहूर्तायुषा उत्पन्न' प्राग्वत् अन्तर्मुहूर्तसमयवारमुत्पन्न उपरिसमयाधिकभावेन त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यन्ते । एव मनुष्यगतावपि त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यन्ते । नरकगतिवद्देवगतावपि दशसहस्रवर्षसमयसमासेरुपरि समयोत्तरक्रमेण एकत्रिंश-

---

परिवर्तन है । इस विषयमें उपयोगी आर्यावृत्तका आशय इस प्रकार है—काल संसारमें अनन्त बार भ्रमण करता हुआ जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके सब समयोंमें क्रमसे उत्पन्न हुआ और मरा ।

भवपरिवर्तन कहते है—नरकगतिमें सबसे जघन्य आयु दस हजार वर्ष है । उस आयुसे नरकमें उत्पन्न हुआ । पुनः संसारमें भ्रमण करके उसी आयुसे वही उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दस हजार वर्षके समयोंकी जितनी सख्या है उतनी बार वही उत्पन्न हुआ और मरा । पुनः एक-एक समय बढाते-बढाते तैतीस सागर पूर्ण किये । फिर तिर्यंचगतिमें अन्तर्मुहूर्तकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ । पहलेकी तरह अन्तर्मुहूर्तके जितने समय है उतनी बार अन्तर्मुहूर्तकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ । फिर एक-एक समयकी आयु बढ़ाते-बढाते उसी जीवने तीन पल्य तक सब आयु भोग डाली । इसी प्रकार, मनुष्यगतिमें भी उसी जीवने तीन पल्य तककी सब आयु भोगकर समाप्त की । नरकगतिकी तरह देवगतिमें भी दस हजार वर्षके समयप्रमाण दस हजार वर्षकी आयुसे उत्पन्न होकर उसे भोगनेके पश्चात् एक-एक समयकी आयु क्रमसे बढाते-बढाते इकतीस सागरकी आयु पूर्ण की । इस प्रकार भ्रमण करनेके पश्चात् आकर पुनः पूर्वोक्त जघन्यस्थितिवाला नारकी होकर नया भवपरिवर्तन

समाप्तिमाडल्पट्टुवितु परिभ्रमिसि बंदा जीवं पूर्व्वोक्तजघन्यस्थितियनारकनादनितदेल्लमेकभवपरिवर्त्तनमक्कुं। इल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तं।—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः॥

नरकजघन्यायुष्य मोदल्गोंडु मेरो युपरिग्रैवेयकावसानमादायुष्यस्थितिगळोळु मिथ्यात्वोदयदोळकूडिदजीवनिंदं भवस्थितिगळनुभविसल्पट्टुवु बहुवार हि स्फुटमागि। भावपरिर्त्तनं पेळल्पडुगुंः—

पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तकं मिथ्यादृष्टि यावनानुमोर्व्व जीवं स्वयोग्यसर्व्वजघन्यज्ञानावरणप्रकृतिस्थितियनंतकोटिकोटियं माळ्कुमा जीवंगे कषायाध्यवसायस्थानंगळसंख्यातलोकप्रमितगळु षट्स्थानपतितंगळा जघन्यस्थितिगे योग्यंगळप्पुवल्लि सर्व्वजघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थाननिमित्तगळु अनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवितु सर्व्वजघन्यस्थितियनु सर्व्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानमं सर्व्वजघन्यमनुभागबंधाध्यवसायस्थानमुमं पोर्द्दिदगे तद्योग्यसर्व्वजघन्यं योगस्थानमक्कुमा स्थितिकषायाध्यवसायानुभागस्थानंगळगे द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धियुक्तं योग-

---

त्सागरोपमाणि परिसमाप्यन्ते। एव भ्रान्त्वागत्य पूर्वोक्तजघन्यस्थितिको नारको जायते। तदा तदेतत्सर्वं भवपरिवर्तन भवति। अत्रोपयोग्यार्यावृत्त—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुश॥

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानायुष्या स्थितौ मिथ्यात्वोदयाश्रितजीवेन भवस्थतयोऽनुभविता बहुवार स्फुटम्।

भावपरिवर्तनमुच्यते—कश्चित्पञ्चेन्द्रियसज्ञिपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिर्जीव स्वयोग्यसर्वजघन्या ज्ञानावरणप्रकृतिस्थिति अन्त.कोटाकोटिप्रमिता बध्नाति। सागरोपमैककोट्या उपरि द्विवारकोट्या मध्य अन्त कोटाकोटिरित्युच्यते। तस्य जीवस्य कषायाध्यवसायस्थानानि असख्येयलोकप्रमितानि पट्स्थानपतितानि जघन्यस्थितियोग्यानि। तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तानि अनुभागाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि। एव सर्वजघन्यस्थिति सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थान सर्वजघन्यानुभागबन्धाध्यवसायस्थान च प्राप्तस्य तद्योग्यसर्वजघन्य योगस्थान भवति। तेषामेव स्थितिकषायाध्यवसायानुभागस्थानाना द्वितीय असंख्येय-

---

प्रारम्भ करता है। तब यह सब भवपरिवर्तन होता है। इस विषयमें उपयोगी आर्याच्छन्दका अभिप्राय—मिथ्यात्वके उदयसे जीवने नरककी जघन्य आयुसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तककी आयुप्रमाण भवस्थितियाँ अनेक बार भोगी।

भावपरिवर्तन कहते है—कोई पचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीव अपने योग्य सबसे जघन्य ज्ञानावरणकर्मकी अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिका बन्ध करता है। एक कोटि सागरके ऊपर और कोटाकोटी सागरके मध्यको अन्त.कोटिकोटी सागर कहते है। उस जीवके जघन्यस्थितिबन्धके योग्य छह प्रकारकी हानिवृद्धिको लिये असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसाय स्थान होते है। तथा सर्वजघन्य कषायाध्यवसाय स्थानमें निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान होते है। इस प्रकार सबसे जघन्य स्थिति, सबसे जघन्य कषायाध्यवसाय स्थान और सबसे जघन्य अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानको प्राप्त जीवके उसके योग्य सबसे जघन्य योगस्थान होता है। पुन. उन्ही स्थिति, कषायाध्यवसाय और अनुभागस्थानोंका असंख्यात भागवृद्धिको लिये हुए दूसरा योगस्थान

स्थानमक्कुमितसंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धियेंब चतुःस्थानवृद्धिपतितंगळु श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितंगळप्पुवंते आ स्थितियने या कषायाध्यवसायस्थानमने प्रतिपद्यमानंगे द्वितीयमनुभागबंधाध्यवसायस्थानमक्कुमदक्के योगस्थानंगळु पूर्व्वोक्तंगळेयरियल्पडुवुवु।

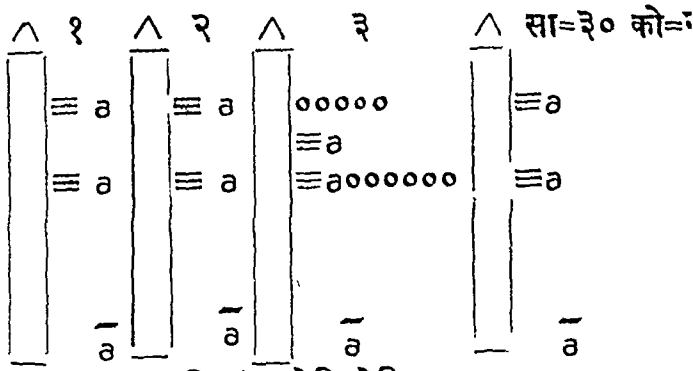
इंतु तृतीयादिगळोळमनुभागाध्यवसायस्थानंगळोळु असंख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्य्यंतप्रत्येकं योगस्थानंगळु नडसल्पडुवुवुमिता स्थितिने प्रतिपद्यमानंगे द्वितीयस्थितिबंधाध्यवसायस्थानमक्कुमदक्के अनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळुं योगस्थानंगळुमुंनिनंतेयरियल्पडुवंवितु तृतीयादिस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळोळसंख्यातलोकमात्रपरिसमाप्तिपर्य्यंतमा वृत्तिक्रममरियल्पडुगुः—

भागयुक्तं योगस्थान भवति। एवमसख्यातभागवृद्धि-सख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्धचाख्यचतु'स्थानवृद्धिपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति। तथा तामेव स्थिति तदेव कषायाध्यवसायस्थानमास्कन्दतो द्वितीयमनुभागबन्धाध्यवसायस्थान भवति। तस्यापि योगस्थानानि पूर्वोक्तान्येव ज्ञातव्यानि। एव तृतीयादिष्वपि अनुभागाध्यवसायस्थानेपु असख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्यन्तेषु प्रत्येक योगस्थानानि नेतव्यानि। एव तामेव स्थिति बध्नतो द्वितीय कषायाध्यवसायस्थान भवति। तस्यापि अनुभागवन्धाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च प्राग्वत् ज्ञातव्यानि। एव तृतीयादिकषायाध्यवसायस्थानेपु असख्यातलोकमात्रपरिसमाप्तिपर्यन्तेपु आवृत्तिक्रमो ज्ञातव्य। तत' समयाधिकस्थितेरपि स्थितिवन्धाध्यवसायस्थानानि प्राग्वत् असख्येयलोकमात्राणि भवन्ति। एव समयाधिकक्रमेण उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त त्रिशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितस्थितेरपि स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि अनुभागवन्धाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च ज्ञातव्यानि। एव मूलप्रकृतीना उत्तरप्रकृतीना च परिवर्तनक्रमो ज्ञातव्य.। तदेतत्समुदित भावपरिवर्तन भवति। सदृष्टि.—

होता है। इस प्रकार असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि नामक चतुःस्थान वृद्धिको लिये हुए श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होते है। इन समस्त योगस्थानोके समाप्त होनेपर वही स्थिति, वही कपायाध्यवसाय स्थानको प्राप्त जीवके द्वितीय अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होता है। उसके भी योगस्थान पूर्वोक्त ही जानना। इस प्रकार तृतीय आदि असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थानोंके भी समाप्ति पर्यन्त प्रत्येक अनुभागस्थानके साथ सब योगस्थान लगाना चाहिए। उनके भी समाप्त होनेपर उसी स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके दूसरा कषायाध्यवसायस्थान होता है। उसके भी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान पूर्वकी तरह जानना। इस प्रकार तृतीय आदि असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थानोंकी समाप्ति पर्यन्त अनुभागस्थानों और योगस्थानोंकी आवृत्ति करना चाहिए। इस प्रकार सबसे जघन्य स्थितिके साथ सबकी आवृत्ति होनेपर एक समय अधिक अन्तःकोटाकोटीकी स्थिति बाँधता है। उसके भी कषायाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान योगस्थान जानना। इस प्रकार एक-एक समय अधिकके क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तीस कोटा-कोटी सागर प्रमाण स्थितिके भी स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान जानना। इसी प्रकार आठो मूल कर्मों और उनकी उत्तर प्रकृतियोंका भी परिवर्तनक्रम जानना। यह सब मिलकर भाव परिवर्तन है।

सा = अं = को २
कषायज. ०००≡अ०००००० उ
अनुभागज ०००≡अ००००० उ
योगस्थानज. ०००≡अ०००० उ

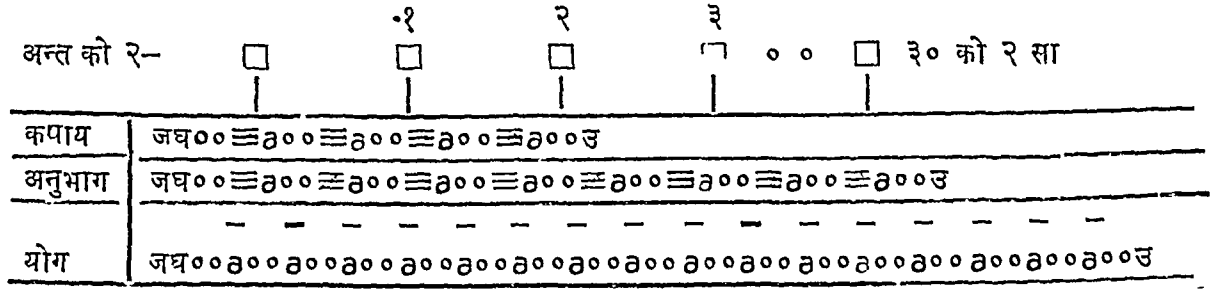
आबाध कालसूचनार्थं दंडस्तस्योपरिस्थितत्रिकोण. तद्ज्ञानावरणद्रव्यनिषेकविन्यासः।



एकसमयाद्यधिकांतःकोटिकोटिरचना

सी पेळल्पट्ट जघन्यस्थितिय समयाधिक्रमप्पुदर स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु मुंनिनंतसंख्यातलोकमात्रमक्कुमिनु समाधिकक्रमदिंदमुत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतं त्रिंशत्सागरोपमकोटिकोटिप्रमितस्थितिय स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु अनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळु योगस्थानंगळुमरियल्पडुवंतेल्ला मूलप्रकृतिगळगमुत्तरप्रकृतिगळगं परिवर्त्तनक्रममरियल्पडुगुमितदेल्लं कूडि भावपरिवर्त्तनमक्कुमिल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तं :—

सर्व्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबधयोग्यानि।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे॥



अत्रोपयोग्यार्यावृत्त—

विशेषार्थ—योगस्थान, अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान, कषायाध्यवसायस्थान और स्थितिस्थानोके परिवर्तनसे भावपरिवर्तन होता है। आत्माके प्रदेशोके परिस्पन्दको योग कहते है। यह प्रकृतिवन्ध और प्रदेशबन्धमे कारण होता है। इन योगोंके जघन्य आदि स्थानोको योगस्थान कहते है। जिन कषाययुक्त परिणामोसे कर्मोंमें अनुभागबन्ध होता है उनके जघन्य आदि स्थान अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान है। जिन कषाय परिणामोसे स्थितिवन्ध होता है उनके जघन्य आदि स्थान कषायाध्यवसायस्थान है इन्हीको स्थितिवन्धाध्यवसायस्थान भी कहते है। कर्मोंकी स्थितिके जघन्यादि स्थानोंको स्थितिस्थान कहते है। एक-एक स्थितिभेदके वन्धके कारण असख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसायस्थान होते है। एक-एक कषायाध्यवसायस्थानके असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होते है। एक-एक अनुभागवन्धाध्यवसायस्थानके जगतश्रेणिके असंख्यातवे भाग योगस्थान होते है।

इस परिवर्तनके सम्बन्धमें उपयोगी आर्याच्छन्दका अभिप्राय इस प्रकार है—

समस्तप्रकृतिस्थितिअनुभागप्रदेशबंधयोग्यंगळप्प स्थितिबंधाध्यवसायानुभागबंधाध्यवसाय-योगस्थानंगळेनितोळवनितुं पृथ्वियोळु भावसंसारदोळतोळल्व जीवनिदमनुभविसल्पट्टवु। इल्लि स्थितिबंधाध्यवसायजघन्य मोदल्गोंडुत्कृष्टपर्य्यंतमंते अनुभागबधाध्यवसायजघन्यस्थानमोदल्गोंडुत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं योगस्थानंगळ जघन्यं मोदल्गोंडुत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं सर्व्वजघन्यस्थितिसंबंधिगळमोदलागि सर्व्वोत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतं तत्तत्संबंधिगळ स्थापिसि अक्षसंचारक्रमदिदं भावसंसारदोळनुभविसल्पट्ट स्थितिबंधाध्यवसायादिगळमं साधिसुवुदें बुदत्थं।

इल्लि एकपुद्गलपरिवर्त्तनकालमनंतमक्कुमदं नोडलु क्षेत्रपरिवर्त्तनकालमनंतगुणं अदं नोडलु कालपरिवर्त्तनवारंगळनंतगुणमदं नोडलु भवपरिवर्त्तनकालमनंतगुणमदं नोडलुं भावपरिवर्त्तनकालमनंतगुणमक्कुमिल्लि संदृष्टिरचनेयिदु :—भाव। ख ख ख ख ख

भव। ख ख ख ख

काल। ख ख ख

क्षेत्र। ख ख

द्रव्य। ख

ओव्वं जीवंगे अतीतकालदोळु भावपरिवर्त्तनवारंगळु अनंतंगळु। ख। अवं नोडलु भवपरिवर्त्तनवारंगळनंतगुणंगळवं नोडलु कालपरिवर्त्तनवारंगळु अनंतगुणंगळवं नोडलु क्षेत्रपरिवर्त्तनवारंगळु अनंतगुणंगळवं नोडलु द्रव्यपरिवर्त्तनवारंगळनंतगुणंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धयोग्यानि।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे॥

अत्र स्थितिबन्धाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यन्तानि पुनः अनुभागबन्धाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यन्तानि योगस्थानजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यन्तानि च सर्वजघन्यस्थितिसबन्धीनि आदिं कृत्वा सर्वोत्कृष्टस्थितिपर्यन्त तत्तत्सबन्धीनि संस्थाप्य अक्षसचारक्रमेण भावससारे अनुभूतस्थित्यादिस्थितिबन्धाध्यवसायादीन् साधयेदित्यर्थं। अत्रैकपुद्गलपरावर्तनकाल अनन्त.। तत. क्षेत्रपरिवर्तनकालः अनन्तगुणः। अत कालपरिवर्तनकालः अनन्तगुण, ततो भवपरिवर्तनकाल अनन्तगुणः। ततो भावपरिवर्तनकालः अनन्तगुण.। सदृष्टिः—

भाव ख ख ख ख ख
भव ख ख ख ख
काल ख ख ख
क्षेत्र ख ख
द्रव्य ख

एकजीवस्य अतीतकाले भावपरिवर्तनवारा अनन्ताः। तेभ्यः भवपरिवर्तनवारा अनन्तगुणा.। तेभ्य क्षेत्रपरिवर्तनवारा अनन्तगुणा.। तेभ्य द्रव्यपरिवर्तनवारा अनन्तगुणाः। सदृष्टि —

'भावसंसारमें भ्रमण करते हुए जीवने सब प्रकृतियोंके स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके योग्य स्थानोंका अनुभव किया।'

सबसे जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त तत्सम्बन्धी स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान और योगस्थान जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त स्थापित करके जैसे पहले प्रमादोंमें अक्षसंचार कहा है उसी क्रमसे भावसंसारमें अनुभूत स्थिति आदि सम्बन्धी स्थिति बन्धाध्यवसाय आदिको साधना चाहिए।

यहाँ एक पुद्गलपरावर्तन काल सबसे थोडा अर्थात् अनन्त है। उससे क्षेत्रपरिवर्तन काल अनन्त गुणा है। उससे कालपरिवर्तनका काल अनन्त गुणा है। उससे भवपरिवर्तनका काल अनन्त गुणा है। उससे भावपरिवर्तनकाल अनन्त गुणा है। इसीसे एक जीवके अतीत

द्रव्य, ख ख ख ख ख
क्षेत्र, ख ख ख ख
काल, ख ख ख
भव, ख ख
भाव, ख

इल्लिगुपयोगियप्पार्य्यावृत्तमिदु ।

"पचविधे संसारे कर्म्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः ।
मार्ग्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यमहावादवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणेयोळु षोडशं भव्यमार्ग्गणाधिकार व्याकृतमाय्तु ॥

द्रव्य ख ख ख ख ख
क्षेत्र ख ख ख ख
काल ख ख ख
भव ख ख
भाव ख

अत्रोपयोगि आर्यावृत्तमाह—

पञ्चविधे ससारे कर्मवशाज्जैनदर्शित मुक्ते ।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादु खाकुले भ्रमति ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रकृताया गोम्मटसारपञ्चसग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु भव्यमार्गणाप्ररूपणानाम षोडशोऽधिकार ॥१६॥

कालमें भावपरिवर्तन सबसे थोड़े हुए अर्थात् अनन्त बार हुए। उनसे भवपरिवर्तन अनन्त गुणी बार हुए।

उनसे कालपरिवर्तन अनन्तगुणी बार हुए। क्षेत्रपरिवर्तन उससे भी अनन्तगुणी वार हुए और द्रव्यपरिवर्तन उनसे अनन्त गुणी वार हुए। यहाँ उपयोगी आर्याछन्दका अभिप्राय कहते है—जिनमतके द्वारा दिखाये गये मुक्तिके मार्गका श्रद्धान न करता हुआ प्राणी अनेक प्रकारके दु खोंसे भरे पाँच प्रकारके संसारमें भ्रमण करता है।

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी- के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी सस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी प टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामे जीवकाण्डके अन्तर्गत भव्य प्ररूपणाओंमें-से भव्यमार्गणा प्ररूपणा नामक सोलहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणा ॥१७॥

अनंतरं सम्यक्त्वमार्गणाप्ररूपणमं पेळ्दपं :—

छप्पंचणवविहाणं अट्ठाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥५६१॥

षट्पंचनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानां । आज्ञयाधिगमेन च श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वं ॥

द्रव्यभेदर्दिद षड्विधंगळप्प अस्तिकायभेदर्दिदं पंचविधंगळप्प पदार्थभेदर्दिदं नवविधंगळप्प सर्व्वज्ञवीतरागभट्टारकरुगळिद पेळल्पट्ट जीवादिवस्तुगळ श्रद्धानं रुचिः सम्यक्त्वमक्कुमा श्रद्धानमावतेरदिदमे दोडे आज्ञेयिदमाज्ञेयं बुदे तें दोडे "प्रमाणादिभिर्विना आप्तवचनाश्रयेणैष निर्णय आज्ञा" एंदे दाज्ञेयिद मेणधिगमदिदमधिगमं बुदे तें दोडे "प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारैर्विशेषनिर्णयोऽधिगमः" एंदितप्पधिगमनदिदं जिनवरोपदिष्ट जीवादिवस्तुश्रद्धानं सम्यक्त्वमक्कुमा सम्यक्त्वमुं

सरागवीतरागात्मविषयत्वात् द्विधा स्मृतं ।
प्रशमादिगुणं पूर्व्वं परं चात्मविशुद्धितः ॥" —[सो. उ. २२७ श्लो]

कुन्थ्वादिजन्मिना जन्मजरामृत्युविनाशिने ।
सद्बोधसिन्धुचन्द्राय नमः कुन्थुजिनेशिने ॥१७॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणामाह—

द्रव्यभेदेन षड्विधाना अस्तिकायभेदेन पञ्चविधाना पदार्थभेदेन नवविधाना च सर्वज्ञोक्तजीवादिवस्तूना श्रद्धानं रुचि सम्यक्त्वम् । तच्छ्रद्धान आज्ञया प्रमाणादिभिर्विना आप्तवचनाश्रयेण[1] ईषन्निर्णयलक्षणया, अथवा अधिगमेन प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारै. विशेषनिर्णयलक्षणेन भवति ।

सरागवीतरागात्मविषयत्वाद् द्विधा स्मृतम् । प्रशमादिगुण पूर्वं पर चात्मविशुद्धिजम् ॥१॥

सम्यक्त्व मार्गणाका कथन करते है—

द्रव्यभेदसे छह प्रकारके, पंचास्तिकायके भेदसे पाँच प्रकारके और पदार्थभेदसे नौ प्रकारके जो जीव आदि वस्तु सर्वज्ञदेवने कहे है, उनका श्रद्धान रुचि सम्यक्त्व है। उनका श्रद्धान आज्ञासे अर्थात् प्रमाण आदिके बिना आप्तके वचनोंके आश्रयसे किंचित् निर्णयको लिये हुए होता है अथवा प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोगके द्वारा विशेष निर्णयरूप अधिगमसे होता है। सरागी आत्मा और वीतरागी आत्माके सम्बन्धसे सम्यग्दर्शनके दो भेद है—सराग और वीतराग। सराग सम्यग्दर्शनके गुण प्रशम संवेग अनुकम्पा आदि है और वीतराग सम्यग्दर्शन आत्माकी विशुद्धिरूप होता है। आप्तमें, व्रतमें, श्रुतमें और तत्त्वमें जो चित्त 'ये है' इस प्रकारके भावसे युक्त होता है उसे आस्तिकोंने सम्यक्त्वसे

---

१. व प्रवचनाश्रयेण ।

तत्सम्यक्त्वं सरागवीतरागात्मविषयत्वदिंदं द्विप्रकारदरिमे यल्पडुगुं। पूर्व्वं मोदल सरागात्मविषयसम्यक्त्वं प्रशमादिगुणं प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याभिव्यक्तियोळकूडिदुदु। परं द्वितीयं वीतरागात्मविषयसम्यक्त्वं आत्मविशुद्धितः प्रतिपक्षप्रक्षयजनितजीवविशुद्धियिदमादुदु। आस्तिक्यमें बुदेनें दोडे :—

'आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतं।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ॥ —[सो उ २३१ श्लो]

अथवा तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं अथवा तत्वरुचिः सम्यक्त्वं ॥

"प्रदेशप्रचयात्कायाः द्रवणात् द्रव्यनामकाः।
परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थास्तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥" —[ ]

एंदितिदु सामान्यदिं पञ्चास्तिकायषड्द्रव्य नवपदार्थंगळगे लक्षणमक्कुं।

अनंतरं षड्द्रव्यंगळगधिकारनिर्द्देशम माडिदप :—

छद्दव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो।
अत्थणखेत्तं संखा ठाणसरूवं फलं च हवे ॥५६२॥

षड्द्रव्येषु च नामानि उपलक्षणानुवादः आसने कालः। आसनक्षेत्रं संख्यास्थानस्वरूपं फलं च भवेत् ॥

षड्द्रव्यंगळोळु नामंगळुमुपलक्षणानुवादमुं स्थितियुं क्षेत्रमुं संख्येयुं स्थानस्वरूपमुं फलममेंदितु सप्ताधिकारंगळप्पुवु।

'यथोद्देशस्तथा निर्द्देशः' एंबी न्यायदिंदं प्रथमोद्दिष्ट नामाधिकारमं पेळदपं :—

आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतम्। आस्तिक्यमास्तिकैरुक्त सम्यक्त्वेन युते नरे ॥२॥

अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्। अथवा तत्त्वरुचि सम्यक्त्वम्।

प्रदेशप्रचयात्काया द्रवणाद् द्रव्यनामका। परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्था तत्त्वं वस्तुस्वरूपत ॥१॥

इति सामान्येन पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थाना लक्षणम् ॥५६१॥ अथ षड्द्रव्याणामधिकारान्निर्दिशति—

षड्द्रव्येषु नामानि उपलक्षणानुवाद स्थिति क्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूप फल चेति सप्ताधिकारा भवन्ति ॥५६२॥ अथ प्रथमोद्दिष्टनामाधिकारमाह—

युक्त मनुष्यका आस्तिक्य गुण कहा है। अथवा तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते है अथवा तत्त्वोंमें रुचिको सम्यक्त्व कहते है। प्रदेशोंके समूह रूप होनेसे काय कहलाते है। गुण और पर्यायोको प्राप्त करनेसे द्रव्य नामसे कहे जाते हैं। जीवके द्वारा जाननेमें आनेसे अर्थ कहलाते हैं और वस्तुस्वरूपके कारण तत्त्व कहलाते हैं। यह सामान्यसे पाँच अस्तिकाय, छह द्रव्य और नौ पदार्थोंका लक्षण है ॥ ५६१ ॥

छह द्रव्योंके अधिकारोंको कहते है—

छह द्रव्योंके सम्बन्धमे नाम, उपलक्षणानुवाद, स्थिति, क्षेत्र, संख्या, स्थान, स्वरूप और फल ये सात अधिकार होते है ॥ ५६२ ॥

प्रथम उद्दिष्ट नाम अधिकार को कहते हैं—

जीवाजीवं दव्वं रूवारूविति होदि पत्तेयं ।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया ॥५६३॥

जीवाजीवद्रव्ये रूपारूपिणेति भवतः प्रत्येकं । संसारस्था रूपाः रूपाण्येषां संतीति रूपाः कर्म्मविमुक्ता अरूपगताः ॥

सामान्यदिंदं संग्रहनयापेक्षेयिंदं द्रव्यमो दु । अदं भेदिसिदोडे जीवद्रव्यमें दु अजीवद्रव्यमें दु द्विविधमक्कुमल्लि जीवद्रव्यं रूपि जीवद्रव्यमें दुमरूपिजीवद्रव्यमें दुं द्विविधमप्पुवल्लि संसारस्थंगळु रूपिजीवद्रव्यंगळप्पुवु । कर्म्मविमुक्तसिद्धपरमेष्ठिजीवंगळु अरूपगतजीवद्रव्यंगळप्पुवु । अजीवद्रव्यमुं रूप्यजीवद्रव्यमें दुमरूप्यजीवद्रव्यमें दु द्विविधमक्कु ।

अज्जीवेसु य रूवी पोग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि ।
आगासं कालो वि य चत्तारि अरूविणो होंति ॥५६४॥

अजीवेषु च रूपीणि पुद्गलद्रव्याणि धर्म्मं इतरोपि च । आकाशं कालोपि च चत्वार्यरूपीणि भवंति ॥

अजीवद्रव्यंगळोळु पुद्गलद्रव्यंगळु रूपिद्रव्यंगळप्पुवु । इल्लि

"वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् ।
कुर्व्वंति स्कधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ॥" [ ]

एंदितु परमाणुगळगं पुद्गलत्वमुंटागुत्तं विरलु द्विप्रदेशादि स्कंधंगळगेये ग्रहणमक्कुमेकें दोडे प्रदेशपूरणगलनरूपदिंदं द्रवति द्रोष्यंति अदुद्रवन्निति पुद्गलद्रव्यमें दितु द्वयणुकादिस्कंधंगळगेये पुद्गलशब्दवाच्यत्वं यथावत्तागि संभविसुगुमप्पुदरिंदं परमाणुविगे "षट्केन युगपद्योगात्परमाणोः

सामान्येन सग्रहनयापेक्षया द्रव्यमेकम् । तदेव भेदविवक्षया जीवद्रव्य अजीवद्रव्यं च । तत्र जीवद्रव्य रूप्यरूपि च । तत्र संसारस्था. रूपिणः, कर्मविमुक्ताः सिद्धा अरूपिणो भवन्ति । अजीवद्रव्यमपि रूप्यरूपि च ॥५६३॥

अजीवेषु पुद्गलद्रव्याणि रूपीणि भवन्ति धर्मद्रव्यं तथा अधर्मद्रव्यं आकाशद्रव्य कालद्रव्यं चेति चत्वारि अरूपीणि भवन्ति । अत्र "वर्णगन्धरसस्पर्शैं पूरण गलन च यत् । कुर्वन्ति स्कन्धवत् तस्मात्पुद्गला. परमाणवः" इत्येवं परमाणूना पुद्गलत्वे द्वयणुकादीनामेव कथं ? प्रदेशपूरणगलनरूपेण द्रवन्ति द्रोष्यन्ति अदुद्रवन्निति ब्रूम. । ननु—

सामान्यसे संग्रहनयकी अपेक्षा द्रव्य एक है। भेदविवक्षासे दो प्रकारका है—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। उसमें जीव द्रव्यके दो प्रकार है—रूपी और अरूपी। संसारी जीव रूपी है और कर्मोंसे मुक्त सिद्ध अरूपी है। अजीव द्रव्य भी रूपी और अरूपी होता है ॥ ५६३ ॥

अजीवोंमें पुद्गल द्रव्य रूपी होते है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चार अरूपी है।

शंका—कहा है कि 'परमाणु स्कन्धकी तरह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शके द्वारा पूरण गलन करते है अतः वे पुद्गल है' इस प्रकार परमाणुको पुद्गल कहनेपर द्वयणुक आदिमें पुद्गलपना कैसे घटित होता है ?

समाधान—द्वयणुक आदि प्रदेशोके पूरण गलन रूपके द्वारा अन्य परमाणुओंको प्राप्त

षडंशता । षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकम् ॥" [ ] एंदितु पूर्व्वपक्षमं माडुत्तिरलु द्रव्यार्थिकनयदिंदं निरशत्वमुं पर्य्यायार्थिकनयदिंदं षडशतेयक्कुमें दितु परिहार पेळल्पट्टुदु ।

"आद्यंतरहितं द्रव्य विश्लेषरहितांशक ।
स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणु प्रचक्षते ॥" [ ]

आद्यंतरहित आदियुमवसानमुमिल्लदुदुं द्रव्य गुणपर्य्यायगळनुळ्ळुदु विश्लेषरहिताशक बेक्केंय्यलिल्लद अंशमनुळ्ळुदुं स्कंधोपादानं स्कंधक्के कारणमप्पुदुं अत्यक्षं इंद्रियविषयमल्लदुदुं परमाणु प्रचक्षते परमाणुवेंदुवक्तव्यमागि परमागमज्ञरु पेळ्वरु । नामाधिकार तिद्दुंदु ।

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु ।
गदिठाणोग्गहवट्टणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ॥५६५॥

उपयोगो वर्णचतुष्कं लक्षणमिह जीवपुद्गलयोस्तु । गतिस्थानावगाहवर्त्तनक्रियोपकारस्तु धर्म्मचतुर्ण्णा ॥

उपयोगमुं वर्ण्णचतुष्कमुं यथासंख्यमागिह परमागमदोळु जीवगळगं पुद्गलंगळगं लक्षणमक्कुं । तु मत्ते गतिस्थानावगाहवर्त्तनक्रियेगळेंबुपकारगळु तु मत्ते यथासंख्यमागि धर्म्माधर्म्माकाशकालगळे ब नाल्कुं द्रव्यंगळ लक्षणमक्कुं ।

षट्केन युगपद्योगात् परमाणो षडशता ।
षण्णा समानदेशित्वे पिण्ड स्यादणुमात्रकम् ॥

सत्य[2], द्रव्यार्थिकनयेन निरशत्वेऽपि परमाणो पर्यायार्थिकनयेन षडशत्वे दोषाभावात् ।

आद्यन्तरहित द्रव्य विश्लेषरहिताशकम् ।
स्कन्धोपादानमत्यक्ष परमाणु प्रचक्षते ॥

॥५६४॥ इति नामाधिकार ।

उपयोग जीवाना, तु-पुन. वर्णचतुष्क पुद्गलाना, इह परमागमे लक्षण भवति । गतिस्थानावगाहनवर्तनक्रियाख्या उपकारा' । तु-पुन यथासख्य धर्माधर्माकाशकालाना लक्षण भवति ॥५६५॥

करते है, प्राप्त करेंगे और पहले प्राप्त कर चुके है इस व्युत्पत्तिके अनुसार द्वयणुकादिमें भी पुद्गलपना घटित होता है ।

शंका—यदि परमाणु एक साथ छह दिशामे छह परमाणुओसे सम्बन्ध करता है तो परमाणु छह अंशवाला सिद्ध होता है । यदि छहों समान देश वाले माने जाते है तो छह परमाणुओंका पिण्ड परमाणु मात्र सिद्ध होता है ?

समाधान—आपका कथन यथार्थ है, द्रव्यार्थिकनयसे यद्यपि परमाणु निरंश है किन्तु पर्यायार्थिकनयसे उसके छह अंशवाला होनेमे कोई दोप नहीं है। जो द्रव्य आदि और अन्तसे रहित है, जिसके अंश कभी भी अलग नही होते, जो स्कन्धका उपादान कारण तथा अतीन्द्रिय है उसे परमाणु कहते है ॥ ५६४ ॥

इस प्रकार नामाधिकार समाप्त हुआ ।

परमागममें जीवका लक्षण उपयोग और पुद्गलोका लक्षण वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श कहा है। तथा यथाक्रमसे गतिरूप उपकार, स्थानरूप उपकार, अवगाहनरूप उपकार और वर्तनाक्रियारूप उपकार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्यका लक्षण है ॥५६५॥

---

१. म परमागम पेव्वुदु । २. ब सत्य पर्या° ।

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पोग्गलाणमेव हवे ।
धम्मतिये ण हि किरिया मुक्खा पुण साधगा होंति ॥५६६॥

गतिस्थानावगाहक्रियाः जीवानां पुद्गलानामेव भवेयुः । धर्म्मत्रये न हि क्रियाः मुख्या पुनः साधका भवंति ॥

गतिस्थानावगाहक्रियेगळे बी मूरुं जीवंगळगं पुद्गलंगळगेयप्पुवु । धर्म्मत्रये धर्म्माधर्म्माकाशंगळे बी मूरुं द्रव्यंगळोळु न हि क्रिया क्रियेयिल्लेकेंदोडे स्थानचलनमुं प्रदेशचलनमुमिल्लमप्पुदरिंदं । पुनः मत्तेनेंदोडे धर्म्मादिद्रव्यंगळु गत्यादिगळगे मुख्यसाधकंगळप्पुवु अदेंतेदोडे :—

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा ।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होति ॥५६७॥

गच्छतः पंथाः तिष्ठतः आसनं निवसकस्य वसतिरिव गतिस्थानावगाहकरणे धर्म्मत्रयं साधकं भवति ॥

नडेवगे बट्टियं कुल्लिर्प्पवंगासनमुं इर्प्पवंगे निवासमुमेंदितु गतिस्थानावगाहकरणदोळु साधकंगळप्पुवंते धर्म्मत्रयमुं गमनादिकरणदोळु साधकमक्कुं । कारणमक्कुमेंबुदत्थं ।

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य वट्टंति सव्वदव्वाणि ॥५६८॥

वर्त्तनाहेतुः कालो वर्त्तनगुणोपि च द्रव्यनिचयेषु । कालाधारेणैव वर्त्तंते सर्व्वद्रव्याणि ॥

[1]णिजंतमप्प वृतू ई धातुविनत्तणिदं कर्म्मदोळं भेण्भावदोळं स्त्रीलिंगदोळं वर्त्तना एंदितु शब्दस्थितियक्कु । वर्त्यते वर्त्तनमात्रं वा वर्त्तना । धर्म्मादिद्रव्यंगळ्गे स्वपर्यायनिवृत्तियं कुरुत्तु

गतिस्थानावगाहनक्रियास्तिस्रः जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति, धर्माधर्माकाशेषु क्रिया नहि स्थानचलनप्रदेशचलनयोरभावात् । किं तर्हि ? धर्मादिद्रव्याणि गत्यादीना मुख्यसाधिकानि भवन्ति ॥५६६॥ तद्यथा—

गच्छतः पन्था., तिष्ठत आसने, निवसतो निवासो, यथा गतिस्थानावगाहकरणे साधका भवन्ति तथा धर्मादित्रयमपि साधक कारणमित्यर्थ. ॥५६७॥

णिजन्तात् वृतूङ्धातो कर्मणि भावे वा वर्तनाशब्दव्यवस्थितिः वर्त्यते वर्तनमात्र वेति । धर्मादि-

---

गति, स्थिति और अवगाह ये तीन क्रियाएँ जीव और पुद्गलमें ही होती है । धर्म, अधर्म और आकाशमें क्रिया नहीं है क्योंकि न तो ये अपने स्थानको छोड़कर अन्य स्थानमें जाते है और न इनके प्रदेशोंमें ही चलन होता है । किन्तु ये धर्मादि द्रव्य, गति आदि क्रियाओंमें मुख्य साधक होते है ॥ ५६६ ॥

वही कहते है—

जैसे जाते हुएको मार्ग, बैठनेवालेको आसन, निवास करनेवालेको निवासस्थान, चलने, ठहरने, अवगाह करनेमें साधक होता है उसी तरह धर्मादि तीन द्रव्य भी सहायक कारण होते है ॥ ५६७ ॥

णिजंत वृतूञ् धातुसे कर्ममें अथवा भावमें वर्तना शब्द निष्पन्न होता है । सो वर्त्त या वर्तन मात्र वर्तना है । धर्मादि द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायोंकी निर्वृतिके प्रति स्वयं ही

---

१. म वृत्तिगे णिजंतदत्तणिद ।

तम्मिदमे वर्त्तिसुत्तिर्प्पवक्के बाह्योपग्रहमिल्लदे तद्वृत्त्यसंभवमप्पुदरिंदमा द्रव्यंगळ प्रवर्त्तनोपलक्षितं कालमेंदितु माडिवर्त्तने कालदुपकारमक्कुमेंदरियल्पडुवुदु। इल्लि णिच्चिगर्त्थमावुदेंदोडे वर्त्तते द्रव्यपर्य्यायस्तस्य वर्त्तयिता कालः एंदितु कालक्कर्त्थमादोडे कालक्के क्रियावत्वमागि बक्कुमेंतीगळु अधीते शिष्यः उपाध्यायोध्यापयति एंबंते कर्तृत्वमक्कुमेंदोडिल्लि दोषमिल्लेकेंदोडे निमित्तमात्रमादोडं हेतुकर्तृव्यपदेशं काणल्पट्टुदुं। ये तीगळु कारिषोग्निरध्यापयति एंदितु कालक्के हेतुकर्तृतेयक्कुमंतादोडा कालमेंतु निश्चयिसल्पडुगुमेंदोडे समयाधिकक्रियाविशेषंगळगं समयादिनिर्व्वर्त्यंगळप्प पाकादिगळगं समयमेंदुं पाकमेंदितित्येवमादि स्वसंज्ञारूढिसद्भावदोळ समयः कालः ओदनपाककालः एंदितध्यारोपिसल्पडुत्तिर्द्दुदावुदोंदु कालव्यपदेशनिमित्तमप्प मुख्यकालदस्तित्वमं पेळ्गुमेकेंदोडे गौणक्के मुख्यापेक्षत्वमुंटप्पुदरिंदं। षड्द्रव्यगळवर्त्तनाकारण मुखकालमक्कुमा वर्त्तनगुणमुं द्रव्यनिचयंगळोळे अक्कुमतादोडमा कालाधारदिंदमे सर्व्वद्रव्यंगळुं वर्त्तंते। परिणमंति स्वपर्य्यायगळिंदं परिणमिसुतिर्प्पवु खलु नियमदिंदं इल्लि खलुशब्दमवधारणार्त्थमक्कुं। इदरिंदं कालक्के परिणामक्रियापरत्वापरत्वोपकारगळुं पेळल्पट्टवु।

द्रव्याणा स्वपर्यायनिर्वृत्ति प्रति स्वयमेव वर्तमानाना बाह्योपग्रहाभावे तद्वृत्त्यसभवात् तेषा प्रवर्तनोपलक्षित काल इति कृत्वा वर्तना कालस्य उपकारो ज्ञातव्य। अत्र णिचोऽर्थ क ? वर्तते द्रव्यपर्याय तस्य वर्तयिता काल इति। तदा कालस्य क्रियावत्त्व प्रसज्यते अधीते शिष्य, उपाध्यायोऽध्यापयतीत्यादिवत्, तन्न—निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृत्वदर्शनात् कारीषोऽग्निरध्यापयतीत्यादिवत्। तर्हि स कथ निश्चीयते ? समयादिक्रियाविशेषाणा समय इत्यादे समयादिनिर्वर्त्यपाकादीना पाक इत्यादेश्च स्वसज्ञाया रूढिसद्भावेऽपि तत्र काल इति यदध्यारोप्यते तन्मुख्यकालास्तित्व कथयति गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् इति षड् द्रव्याणा वर्तनाकारण मुख्यकाल'। वर्तनगुणो द्रव्यनिचये एव, तथा सति कालाधारेणैव सर्वद्रव्याणि वर्तन्ते स्वस्वपर्यायै परिणमन्ति खलु नियमेन। अत्र खलुशब्दोऽवधारणार्थ, अनेन कालस्यैव परिणामक्रियापरत्वापरत्वोपकारौ उक्तौ। तौ तु जीवपुद्गलयोर्दृश्येते धर्मादि—अमूर्तद्रव्येषु कथं ? इति चेदाह—

वर्तन करते है किन्तु बाह्य उपकारके बिना वह सम्भव नही है अत उनकी वर्तनामे जो निमित्त मात्र होता है वह काल है। ऐसा करके वर्तना कालका उपकार जानना। यहाँ णिच् प्रत्ययका अर्थ है—द्रव्यकी पर्याय वर्तन करती है उसका वर्तन करानेवाला काल है।

शका—तब तो कालको क्रियावान् होनेका प्रसग आता है। जैसे शिष्य पढता है और उपाध्याय पढाता है ?

समाधान—नही, क्योंकि निमित्त मात्रमे भी हेतुकर्तापना देखा जाता है, जैसे (रात्रिके समयमे) कण्डेकी आग पढाती है।

शंका—उस कालके अस्तित्वका निश्चय कैसे होता है ?

समाधान—समय, घड़ी, मुहूर्त आदि जो क्रिया विशेष है उनमें जो समय आदिका व्यवहार किया जाता है, समय आदिसे होनेवाले पकाने आदिको जो समयपाक इत्यादि कहा जाता है इन रूढ संज्ञाओमें जो कालका आरोप है वह मुख्य कालके अस्तित्वको कहता है क्योकि उपचरित कथन मुख्य कथनकी अपेक्षा रखता है। इस प्रकार छह द्रव्योंकी वर्तनाका कारण मुख्यकाल है। यद्यपि वर्तना गुण द्रव्यसमूहमे ही वर्तमान है उन्हीमे वह शक्ति है तथापि कालके आधारसे ही सब द्रव्य वर्तन करते है अर्थात् अपनी-अपनी पर्याय रूपसे परिणमन करते है। यहाँ खलु अवधारणार्थक है। इससे परिणाम क्रिया और परत्व,

जीवपुद्गलंगळोळु परिणामादिपरत्वापरत्वंगळु काणल्पडुगुं । धर्म्माद्यमूर्त्तद्रव्यंगळोळु परिणामादिगळे तें दोडे पेळ्दपं :—

धम्माधम्मादीणं अगुरुगलहुगं तु छहिहि वड्ढीहिं ।
हाणीहि वि वड्ढंतो हायंतो वट्टदे जम्हा ॥५६९॥

धर्म्माधर्म्मादीनां अगुरुलघुकस्तु षड्भिरपि वृद्धिभिर्हानिभिरपि वर्द्धमानो हीयमानो वर्त्तते यस्मात् ॥

आवुदो दु कारणदिंदं धर्म्माधर्म्मादिद्रव्यंगळ अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदंगळु स्वद्रव्यत्वक्के निमित्तमप्प शक्तिविशेषंगळु षड्वृद्धिगळिंदं षड्हानिगळिंदं वर्द्धमानंगळु हीयमानंगळुमागुत्तं परिणमिसुववु । कारणं मुख्यकालमेयक्कुं ।

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहि ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदू ॥५७०॥

न च परिणमति स्वयं सः न च परिणामयति अन्यदन्यैः । विविधपरिणामिकानां भवति हु कालः स्वयं हेतुः ॥

सः कालः आ कालं न च परिणमति संक्रमविधानदिदं स्वकीयगुणंगळिंदं अन्यद्रव्यदोळ्परिणमिसदु । मेंतीगळु परद्रव्यगुणंगळ्गे तन्नोळु संक्रमदिदं परिणमनमिल्लंते मत्तं हेतु कर्तृत्वदिंदं अन्यद्रव्यमनन्यगुणंगळोळ्कूडि न च परिणमयति परिणमनमं माडिसदु । मत्तेनें दोडे विविधपरिणामिकानां विविधपरिणामिगळप्प द्रव्यंगळ परिणमनक्के कालं ताने उदासीननिमित्तमक्कुं ।

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणए होदि खणमेत्तं ॥५७१॥

कालमाश्रित्य द्रव्य स्वस्वपर्य्यायपरिणतं भवति । पर्य्यायावस्थानं शुद्धनये भवति क्षणमात्रं ॥

यत. धर्माधर्मादीना अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदा स्वद्रव्यत्वस्य निमित्तभूतशक्तिविशेषा. षड्वृद्धिभिर्वर्धमाना षड्ढानिभिश्च हीयमाना परिणमन्ति तत. कारणात्तत्रापि च मुख्यकालस्यैव कारणत्वात् ॥५६९॥

स काल सक्रमविधानेन स्वगुणैरन्यद्रव्ये न परिणमति । न च परद्रव्यगुणान् स्वस्मिन् परिणामयति । नापि हेतुकर्तृत्वेन अन्यद् द्रव्यम् अन्यगुणै. सह परिणामयति । कि तर्हि ? विविधपरिणामिकाना द्रव्याणा परिणमनस्य स्वयमुदासीननिमित्त भवति ॥५७०॥

अपरत्व उपकार कालके ही कहे है । और ये जीव और पुद्गलमें ही देखे जाते है ॥५६८॥

तब धर्मादि अमूर्तद्रव्योंमें वर्तना कैसे होती है यह बतलाते है—

यतः धर्म, अधर्म आदिमें अपने द्रव्यत्वमें निमित्त भूत शक्ति विशेष अगुरुलघु नामक गुणके अविभागी प्रतिच्छेद छह प्रकारकी वृद्धिसे वर्धमान और छह प्रकारकी हानिसे हीयमान होकर परिणमन करते है। इस कारणसे वहाँ भी मुख्य काल ही कारण है ॥५६९॥

वह काल संक्रमविधानके द्वारा अपने गुणोंसे अन्य द्रव्यके रूपमें परिणमन नहीं करता। और अन्य द्रव्यके गुणोंको अपने रूपमें भी नही परिणमाता। हेतुकर्ता होकर अन्य द्रव्यको अन्य द्रव्यके गुणोंके साथ भी नहीं परिणमाता। किन्तु अनेक रूपसे स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्योंके परिणमनमें उदासीन निमित्त होता है ॥ ५७० ॥

कालमनाश्रयिसि जीवादिसर्व्वद्रव्य स्वस्वपर्य्यायपरिणतमक्कुं । आ पर्य्यायावस्थानमुं ऋजुसूत्रनयदोळु येकसमयमेयक्कुमर्थपर्य्यायापेक्षेयिंदं ।

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो ।
ववहार अवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ॥५७२॥

व्यवहारश्च विकल्पो भेदश्च तथा पर्य्याय इत्येकार्थः । व्यवहारावस्थानस्थितिः खलु व्यवहारकालस्तु ॥

व्यवहारमेंदोडं विकल्पमेंदोडं भेदमेंदडमंते पर्य्यायमेंदोडमेकार्थमक्कुमल्लि व्यंजनपर्य्यायापेक्षेयिंद व्यवहारावस्थानस्थितिः व्यवहारमेंदोडे पर्य्यायमेंदु पेळ्दुदरिंदमा पर्य्यायद अवस्थानदिंदं वर्त्तमानतेयिंदमावुदो दु स्थितियदु तु मत्ते व्यवहारकालः व्यवहारकालमेंबुदक्कुं ।

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओत्ति ।
दोण्णमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥५७३॥

अवरा पर्य्यायस्थितिः क्षणमात्रा भवति सैव समय इति । द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणो भवेत्स तु ॥

द्रव्यंगळ पर्य्यायंगळगे जघन्यस्थिति क्षणमात्रमक्कुमा स्थितिये समयमेंब संज्ञेयुळ्ळुदक्कुं । सः आ समयमुं तु मत्ते गमनपरिणतंगळप्परडुं परमाणुगळ परस्परातिक्रमकालप्रमाणमक्कुमिल्लि गुपयोगियप्प गाथासूत्रमिदु :—

णभएयपएसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालो ॥

कालमाश्रित्य जीवादि सर्वद्रव्य स्वस्व-पर्यायपरिणत भवति । तत्पर्यायावस्थान ऋजुसूत्रनयेन एकसमयो भवति अर्थपर्यायापेक्षया ॥५७१॥

व्यवहार विकल्प भेद तथा पर्याय इत्येकार्थ. तु पुन. तत्र व्यञ्जनपर्यायस्य अवस्थानतया स्थिति सैव व्यवहारकालो भवति ॥५७२॥

द्रव्याणा जघन्या पर्यायस्थिति क्षणमात्र भवति । सा च समय इत्युच्यते । स च समय द्वयोर्गमनपरिणतपरमाण्वो' परस्परातिक्रमकालप्रमाण स्यात् ॥५७३॥ अत्रोपयोगिगाथाद्वय—

णभएयपएसत्थो परमाणू मन्दगइपवट्टतो ।
वीयमणंतरखेत्त जावदिय जादि त समयकालो ॥१॥

कालका आश्रय पाकर जीव आदि सब द्रव्य अपनी-अपनी पर्याय रूपसे परिणमन करते है । उस पर्यायके ठहरनेका काल ऋजू सूत्रनयसे अर्थपर्यायकी अपेक्षा एक समय होता है ॥ ५७१ ॥

व्यवहार, विकल्प, भेद तथा पर्याय ये सब एक अर्थवाले हैं । अर्थात् इन शब्दोंका अर्थ एक है । उनमें-से व्यंजन पर्यायकी वर्तमान रूपसे स्थिति व्यवहार काल है ॥५७२॥

द्रव्योंकी पर्यायकी जघन्य स्थिति क्षण मात्र होती है उसको समय कहते है । गमन करते हुए दो परमाणुओंके परस्परमें अतिक्रमण करनेमें जितना काल लगता है उतना ही समयका प्रमाण है ॥ ५७३ ॥

आकाशद एकप्रदेशदोळिर्द्द परमाणु मदगतियिंदं परिणतमादुदु द्वितीयमनंतरक्षेत्रमं यावद्याति यिनितु पोळ्तगेय्दुगुमदु समयमेंब कालमक्कुमा नभः प्रदेशमें बुदें तेंदोडे :—

जेत्ति वि खेत्तमेत्तं अणुणा रुंदं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥ [ ]

आवुदों दु परमाणुविंगे अपरापरकारणं पिंदु मुंदुमें बी व्यवस्थितिगे निमित्तमप्प गगनद्रव्यमनितु क्षेत्रमात्रं परमाणुविंदं व्यापिसल्पट्टुदु खु स्फुटमागि सः अदु प्रदेशो भणितः प्रदेशमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

अनंतरं व्यवहारकालमं पेळ्दपं :—

आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्थुस्सासो थोवो सत्तत्थोवो लवो भणियो ॥५७४॥

आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः । सप्तोच्छ्वासा स्तोकः सप्तस्तोका लवो भणितः ॥

आवळि यें बुदु असंख्यातसमयंगळनुळ्ळुदेकें दोडे युक्तासंख्यातजघन्यराशिप्रमाणमप्पुदरिंदं । संख्यातावलिसमूहमुच्छ्वासमेंबुदक्कुमाउच्छ्वासमें तप्परोळें दोडे :—

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासो णिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥ [ ]

आकाशस्य एकप्रदेशस्थितपरमाणुः मन्दगतिपरिणतः सन् द्वितीयमनन्तरक्षेत्रं यावद्याति स समयाख्यकालो भवति ॥१॥ स च प्रदेश· कियान्—

जेत्तीवि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥२॥

यस्य परमाणो· अपरपरकारण गगनद्रव्यं यावत्क्षेत्रमात्रं परमाणुना व्याप्तं स्फुटं स प्रदेशो भणितः ॥२॥ अथ व्यवहारकालमाह—

जघन्ययुक्तासंख्यातसमयराशिः आवलिः । संख्यातावलिसमूह उच्छ्वासः । स च किंरूपः ?

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥१॥

यहाँ उपयोगी दो गाथाओंका अर्थ इस प्रकार है—

आकाशके एक प्रदेशमें स्थित परमाणु मन्द गतिसे चलता हुआ अनन्तरवर्ती दूसरे प्रदेशपर जितनी देर में जाता है वह समय नामक काल है। वह प्रदेश कितना है यह कहते हैं—आकाशके जितने क्षेत्रको एक परमाणु रोकता है उसे प्रदेश कहते हैं। वह दूर और निकट व्यवहारमें कारण होता है ।

आगे व्यवहार कालको कहते हैं—

जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समयोंके समूहका नाम आवली है। संख्यात आवलीके समूहका नाम उच्छ्वास है। वह सुखी, निरालसी और नीरोगी जीवका उच्छ्वास-

आढ्यनप्प सुखितनप्प अनालस्यनप्प निरुपहतनप्प जीवंगक्कुमावुदो दुच्छ्वासनिश्वासमदो दु प्राणमेंदितु पेळल्पट्टुदु । सप्तोच्छ्वासमो दु स्तोकमक्कुं । सप्तस्तोकंगळो दु लवमें बुदक्कुं ।

अट्ठत्तीसद्धलवा नाली वे नालिया मुहुत्त तु ।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥५७५॥

अष्टात्रिंशदर्द्धलवाः नाडी द्वे नाडिके मुहूर्त्तस्तु । एकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्त्तस्ततः शेषः ॥

मूवत्तेरडुवरे लवेगळु घळिगे येंबुदक्कुं । द्विघळिगेगळो दु मुहूर्त्तमक्कुं । तु मत्ते एकसमयदिंद हीनमाद मुहूर्त्तं भिन्नमुहूर्त्तमंतर्म्मुहूर्त्तमुत्कृष्टमक्कुं । ततः मुंदे द्विसमयोनाडद्यावल्यसंख्यातैकभागपर्य्यंतमाद शेषंगळनितुमंतर्म्मुहूर्त्तंगळेंयप्पुवु ।

इल्लिगुपयोगियप्प गाथासूत्रमिदु :—

ससमयमावळि अवरं समऊण मुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्प वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥ [ ]

समयाधिकावलि जघन्यांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं । समयोनमुहूर्त्तमुत्कृष्टांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुं । मध्यदसंख्यातविकल्पम मध्यमांतर्म्मुहूर्त्तंगळेंदिदनरि ।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु ।
संखेज्जासंखेज्जाणंततवो होदि ववहारो ॥५७६॥

दिवसः पक्षो मास ऋतुरयनं वर्षमेवमादिः खलु । संख्यातासंख्यातानंततो भवति व्यवहारः ॥

सुखिन अनलसस्य निरुपहतस्य यो जीवस्य उच्छ्वासनिश्वास स एव एक. प्राण उक्तो भवेत् । सप्तोच्छ्वासा स्तोक । सप्तस्तोका लव ॥५७४॥

सार्धाष्टा त्रिंशल्लवा नाली घटिका । द्वे नाल्यौ मुहूर्तः । स चैकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्त, उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त इत्यर्थ । ततोऽग्रे द्विसमयोनाद्या आवल्यसख्यातैकभागान्ता' सर्वेऽन्तर्मुहूर्ता ॥५७५॥ अत्रोपयोगि गाथासूत्रम्—

ससमयमावलि अवर समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्स ।
मज्झासखवियप्प वियाण अन्तोमुहुत्तमिण ॥१॥

ससमयाधिकावलि' जघन्यान्तर्मुहूर्त समयोनमुहूर्त. उत्कृष्टान्तर्मुहूर्त । मध्यमा असख्यातविकल्पा मध्यमान्तर्मुहूर्ता', इति जानीहि ॥१॥

निश्वास होता है । उसीको प्राण कहते है । सात उच्छ्वासका एक स्तोक और सात स्तोकका एक लव होता है ॥ ५७४ ॥

साढ़े अड़तीस लवकी एक नाली होती है उसे घटिका कहते है । दो नालीका मुहूर्त होता है । एक समयहीन मुहूर्तको भिन्न मुहूर्त कहते हैं यह उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इससे आगे दो समयहीन आदिसे लेकर आवलीके एक असंख्यात भाग पर्यन्त सब अन्तर्मुहूर्त होते हैं ॥ ५७५ ॥

यहाँ उपयोगी गाथा सूत्रका अर्थ इस प्रकार है—

दिवसमेंदुं पक्षमेंदुं मासमेंदुं ऋतुमेंदुमयनमेंदुं वर्षमेंदित्यवमादिगळु स्फुटमागि आवल्यादिभेदर्दिदं संख्यातासंख्यातानंतपर्य्यंतं यथासंख्यमागि श्रुतावधिकेवलज्ञानविषयतेयिंदं विकल्पंगळप्पुववेल्लं व्यवहारकालमक्कुं।

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्मि जाणिदव्वो दु ।
जोइसियाणं चारे ववहारो खलु समाणोत्ति ॥५७७॥

व्यवहारः पुनः कालो मनुष्यक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु। ज्योतिष्काणां चारे व्यवहारः खलु समान इति ॥

व्यवहारकालमेंबुदु मत्ते मनुष्यक्षेत्रदोळु ज्ञातव्यमक्कुमेकेंदोडे ज्योतिष्कचारदोळु व्यवहारकालं तु मत्ते खलु स्फुटमागि समानमेंदितिदु कारणमागि।

ववहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ॥५७८॥

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्त्तमानो भविष्यंस्तु। अतीतः संख्यातावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ॥

व्यवहारकालमेंबुदु मत्ते त्रिविधमक्कुं। अतीतकालमेंदुं वर्त्तमानकालमेंदुं भविष्यत्कालमेंदितु। अल्लि अतीतकालप्रमाणं तु मत्ते संख्यातावलियिंदं गुणिसल्पट्ट सिद्धरुगळ प्रमाणमेनितनितेयक्कुमेकेंदोडे त्रैराशिक सिद्धमप्पुदरिंदमा त्रैराशिकमे तेंदोडे अरुनूर एंटु जीवंगळु मुक्तिगे सलुत्तिरलु अर्धदिगळमेलेंदु समयकालमागुत्तिरलु सर्व्वजीवराशिय अनंतैकभागमात्रमप्प जीवंगळु

दिवसः पक्ष. मास. ऋतुः अयनं वर्ष इत्यादय. स्फुट आवल्यादिभेदतः सख्यातासंख्यातानन्तपर्यन्त क्रमशः श्रुतावधिकेवलज्ञानविषयविकल्पा. सर्वे व्यवहारकालो भवति ॥५७६॥

व्यवहारकालः पुनः मनुष्यक्षेत्रे स्फुटं ज्ञातव्य.। कुतः ? ज्योतिष्काणा चारे स समान इति कारणात् ॥५७७॥

व्यवहारकालः पुनस्त्रिविधः अतीतोऽनागतो वर्तमानश्चेति। तु–पुन. अत्रातीतः संख्यातावलिगुणितसिद्धराशिर्भवति, कुतः ? अष्टोत्तरषट्छतजीवाना मुक्तिगमनकालोऽष्टसमयाधिकषण्मासाः तदा, सर्वजीवराश्य-

---

एक समय अधिक आवली जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। एक समय कम मुहूर्त उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। दोनोंके मध्यमें असंख्यात भेद है वे सब अन्तर्मुहूर्त जानना।

दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष इत्यादि आवली आदिसे लेकर संख्यात, असंख्यात अनन्तपर्यन्त क्रमसे श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और केवलज्ञानके विषयभूत सब विकल्प व्यवहार काल हैं ॥५७६॥

व्यवहारकाल मनुष्यलोकमें ही जाना जाता है क्योंकि ज्योतिषी देवोंके चलनेसे ही व्यवहारकाल निष्पन्न होता है अतः ज्योतिषी देवोंके चलनेका काल और व्यवहार काल दोनों समान हैं ॥ ५७७ ॥

व्यवहारकाल तीन प्रकारका है—अतीत, अनागत और वर्तमान। अतीतकाल संख्यात आवलीसे गुणित सिद्धराशि प्रमाण है। क्योंकि छह सौ आठ जीवोंके मुक्ति जानेका काल आठ समय अधिक छह मास है। तब समस्त जीव राशिके अनन्तवें भाग मुक्त जीवोंका

मुक्तिगे संद कालमेतप्पुवेंदितु त्रैराशिकं माडि प्र । ६०८ फल मासं ६ । इ ३ बंद लब्धं संख्याता-वलिहतसिद्धराशिप्रमाणमप्पुदरिंदं ।

समयो हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपोग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥५७९॥

समयः खलु वर्त्तमानो जीवात्सर्व्वपुद्गलादपि च । भावी अनंतगुणित इति व्यवहारो भवेत्कालः ॥

वर्त्तमानकालमेकसमयमेयक्कुं । सर्व्वजीवराशियं नोडलुं सर्व्वपुद्गलराशियं नोडलु भावी भविष्यत्कालमनतगुणितमक्कुमितु व्यवहारकालं त्रिविधमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

कालोत्ति य ववएसो सब्भावपरूपओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥५८०॥

काल इति व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः । उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥

कालमे बी यभिधानं मुख्यकालसद्भावप्ररूपक । मुख्यकालास्तित्वमं पेळ्गु एंतेदोडे मुख्यविल्लदिरुत्तिरलु गौणक्कभावमक्कुमें तीगळु सिंहक्कभावमागुत्तिरलु वटुः सिंहः एंबिदक्कभाव-प्रतीति न्यायमिल्लिगमंतुटेयक्कुमप्पुदरिंदमा मुख्यकालं नित्यमुं उत्पन्नप्रध्वंसियक्कुं येकें दोडे द्रव्यत्वदिंद मुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तमप्पुदरिंदमपरव्यवहारकालं वर्त्तमानकालापेक्षेयिंदमुत्पन्नप्रध्वंसि-

---

नन्तैकभागमुक्तजीवाना कियान् ? इति त्रैराशिकागतस्य तत्प्रमाणत्वात् । प्र ६०८ फ मा ६ इ ३ लब्ध ३ । २ १ ॥५७८॥

वर्तमानकाल खल्वेकसमय भावी सर्वजीवराशित सर्वपुद्गलराशितोऽप्यनन्तगुण , इति व्यवहारकाल. त्रिविधो भणित ॥५७९॥

काल इति व्यपदेशो मुख्यकालस्य सद्भावप्ररूपक मुख्याभावे गौणस्याप्यभावात् सिहाभावे वटु सिह इत्यादिवत् । स च मुख्य नित्योऽपि उत्पन्नप्रध्वसी भवति द्रव्यत्वेन उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वात् । अपर

कितना काल होगा । इस प्रकार त्रैराशिक करना । सो प्रमाण राशि छह सौ आठ, फल राशि छह महीना आठ समय । इच्छाराशि सिद्धोंकी संख्या । फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके उसमे प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्धराशि संख्यात आवलीसे गुणित सिद्ध-राशि आती है । वही अतीत कालका परिमाण है ॥ ५७८ ॥

वर्तमान कालका परिमाण एक समय है । भाविकाल सर्व जीवराशि और सर्व पुद्गलोंसे भी अनन्त गुणा है । इस प्रकार व्यवहार काल तीन प्रकारका कहा ॥ ५७९ ॥

लोकमे जो 'काल' ऐसा व्यवहार है वह मुख्यकालके सद्भावको कहता है क्योकि मुख्यके अभावमें गौण व्यवहार भी नहीं होता । जैसे सिहके अभावमें यह बालक सिह है ऐसा कहनेमें नहीं आता । वह मुख्यकाल नित्य होनेपर भी उत्पत्ति और व्ययशील है क्योकि द्रव्य होनेसे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे युक्त है । दूसरा व्यवहारकाल वर्तमानकी अपेक्षा उत्पादव्ययशील है और अतीत-अनागतकी अपेक्षा दीर्घकाल तक स्थायी होता है । इस विषय-में उपयोगी श्लोक इस प्रकार है—

युमतीतानागतकालापेक्षेयिंदं दीर्घांतरस्थायियुमक्कुमिल्लिगुपयोगिश्लोकमिदु :—

"निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
बहिर्न्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्वदर्शिभिः ॥" [ ]

उपलक्षणानुवादाधिकारंतिद्दुदु ।

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकाल अट्ठपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ॥५,८१॥

षड्द्रव्यावस्थानं सदृशं त्रिकालार्त्थपर्य्यायान् । व्यंजनपर्य्यायान्वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ॥

षड्द्रव्यंगळगमवस्थानं सदृशमेयक्कुमेकें दोडे त्रिकालार्त्थपर्य्यायंगळमं मेणु व्यंजनपर्य्यायंगळमं कूडिदोडे या षड्द्रव्यंगळगे स्थितियक्कुमप्पुदरिंदं अर्त्थव्यंजनपर्य्यायंगळे बुवुमें तुटें दोडे "सूक्ष्माः अवाग्गोचराः अचिरकालस्थायिनोऽर्त्थपर्य्यायाः, स्थूलाः वाग्गोचराः चिरकालस्थायिनो व्यंजनपर्य्यायाः" एंदितप्प लक्षणमनुळ्ळुवप्पुवु ।

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥५८२॥

एकस्मिन् द्रव्ये ये अर्त्थपर्य्यायाः व्यंजनपर्य्यायाश्चापि । अतीतानागतभूताः तावत्तद्भवति द्रव्यम् ॥

व्यवहारकालः वर्तमानापेक्षया उत्पन्नप्रध्वसी अतीतानागतापेक्षया दीर्घान्तरस्थायी भवति । अत्रोपयोगी श्लोकः—

निमित्तमान्तरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता ।
वहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥१॥

इत्युपलक्षणानुवादाधिकार ॥५८०॥

षड्द्रव्याणा अवस्थानं सदृशमेव भवति त्रिकालभवेषु सूक्ष्मावाग्गोचराचिरस्थाप्यर्थपर्यायेषु तद्विपरीतलक्षणव्यंजनपर्यायेषु वा मिलितेषु तेषा स्थितत्वात् ॥५८१॥ इदमेव समर्थयति—

वस्तुमें रहनेवाली योग्यता तो अन्तरंग निमित्त है और निश्चय काल बाह्य निमित्त है ऐसा तत्त्वदर्शियोंने निश्चित किया है ॥ ५८० ॥

उपलक्षणानुवाद अधिकार समाप्त हुआ ।

छहों द्रव्योंका अवस्थान—ठहरनेका काल बराबर एक समान है क्योंकि तीनों कालोंमें होनेवाली सूक्ष्म, वचनके अगोचर और क्षणस्थायी अर्थपर्याय तथा उनसे विपरीत लक्षणवाली व्यंजन पर्यायोंके मिलनेपर उन द्रव्योंकी स्थिति होती है ॥ ५८१ ॥

इसीका समर्थन करते है—

वों दु द्रव्यदोळावु केलवुवर्त्थपर्य्यायंगळुं व्यंजनपर्य्यायंगळुमतीतानागतकालंगळोळ्वर्त्तिसुवुदु वर्त्तिसल्पडुववुमपि शब्दादिदं वर्त्तमानपर्य्यायववेल्लमुं कूडि तत् अदु द्रव्यं भवति द्रव्यमक्कुं स्थित्यधिकारंतिद्दुंदु ।

आगासं वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि वहिं ।
वावी धम्माधम्मा अवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥५८३॥

आकाशं विवर्ज्य सर्व्वे लोके चैव न संति वहिः । व्यापिनौ धर्म्माधर्म्मौ अवस्थितौ अचलितौ नित्यौ ॥

आकाशद्रव्यं पोरगागि शेषद्रव्यगळनितुं लोकदोळेयप्पवु । लोकदिं पोरगिल्ल । आ द्रव्यंगळोळु धर्म्माधर्म्मद्रव्यंगळेरडुं व्यापिगळेकेंदोडे लोकप्रदेशंगळेनितोळवनितं व्यापिसिद्दुवु तिलेदोळु तैलमेंतंते । अवस्थितौ स्थानचलनरहितंगळप्पुदरिंदमवस्थितंगळु, अचलितौ प्रदेशचलनरहितगळप्पुदरिंदमचलितंगळु, त्रिकालदोळं नाशरहितंगळप्पुदरिंद नित्यौ नित्यंगळप्पुवु । इल्लिगुपयोगियप्प श्लोकमिदु :—

"औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारः त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ॥ [ ]

एकस्मिन् द्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यञ्जनपर्यायाश्च अतीतानागता अपिशब्दाद्वर्तमानाश्च सन्ति तावत् तद् द्रव्य भवति ॥५८२॥ इति स्थित्यधिकार ॥

आकाश विवर्ज्य शेषसर्वद्रव्याणि लोके एव सन्ति न तद्वहि । तेषु धर्माधर्मौ व्यापिनौ सर्वलोकव्याप्तत्वात् तिले तैलवत् , अवस्थितौ स्थानचलनाभावात् , अचलितौ प्रदेशचलनाभावात् , नित्यौ त्रैकाल्येऽपि विनाशाभावात् । अत्रोपयोगी श्लोक —

औपश्लेषिकवैपयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविध प्रोक्त कटाकाशतिलेषु च ॥५८३॥

एक द्रव्यमें जितनी अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थपर्याय तथा व्यंजनपर्याय होती है उतना ही वह द्रव्य होता है ॥५८२॥ स्थिति अधिकार पूर्ण हुआ ।

आकाशको छोड़कर शेष सब द्रव्य लोकमें ही हैं, बाहर नहीं हैं । उनमें धर्म और अधर्म तिलोंमें तेलकी तरह सब लोकमें व्याप्त होनेसे व्यापी हैं । तथा अवस्थित है क्योंकि अपने स्थानसे विचलित नहीं होते । प्रदेशों मे हलन-चलन न होने से अचलित है और तीनों कालोंमें भी विनाश न होनेसे नित्य हैं । इस विषयमे उपयोगी श्लोक—आधार तीन प्रकारका कहा है—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक । इसके तीन उदाहरण हैं—चटाई, आकाश और तेल । अर्थात् चटाईपर बालक सोता है, यहाँ चटाई औपश्लेषिक आधार है । आकाश में पदार्थ स्थित हैं, यहाँ आकाश वैषयिक आधार है । तिलोंमें तेल यहाँ अभिव्यापक आधार है । इसी तरह लोकाकाशमे धर्म-अधर्म व्यापी है यहाँ अभिव्यापक आधार है ॥५८३॥

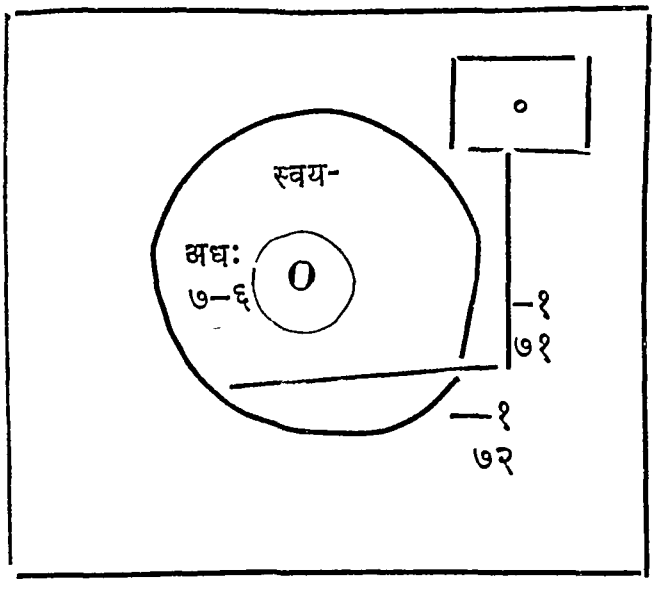
लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुडिं तु सव्वलोगोत्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावदो जीवो ॥५८४॥

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्व्वलोकपर्य्यंतमात्मप्रदेशविसर्प्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यावगाहं मोदल्गों डु महामत्स्यावगाहपर्यंतं प्रदेशोत्तरवृद्धि-

क्रमंगळप्पुवु ६ ६ ६०००६१११११ वेदनायुतंगे एकप्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमदिंदं जघन्यदिंदं मेले ५
प अ । अ
अ
नडदुत्कृष्टं त्रिगुणितमक्कुं ६ १ १ १ १ १ ३ । मेले मत्ते मारणांतिकसमुद्घातजघन्यं मोदल्गों डु

६ १ १ १ १ १ ३ पदेशोत्तरक्रमदिंदं नडेदुत्कृष्टंस्वयंभूरमणसमुद्रबहिस्थितस्थंडिलक्षेत्रदोळिर्द्द महा-
मत्स्यसंबंधि सप्तमपृथ्विय महारौरवनामश्रेणीबद्धरुं कुरुत्तु मारणांतिकसमुद्घातदंडमुत्कृष्टमक्कुं
१५ । ४१ मी क्षेत्रक्के संदृष्टि :—
१ २



सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यात्मप्रदेशोत्तरेषु महामत्स्यपर्यन्तेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु वेदनासमुद्घातस्य १०
त्रिगुणव्यासमहामत्स्यपर्यन्तेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु स्वयंभूरमणसमुद्रबाह्यस्थण्डिलक्षेत्रस्थितमहामत्स्येन सप्तम-
पृथ्वीमहारौरवनामाश्रेणीबद्ध प्रति मुक्तमारणान्तिकसमुद्घातस्य पञ्चशतयोजनतदर्धविष्कम्भोत्सेधैकार्धषड्रज्ज्वा-
यतप्रथमद्वितीयतृतीयचक्रोत्कृष्टपर्यन्तेषु तदुपरिलोकपूरणपर्यन्तेषु च अवगाहनविकल्पेषु आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे

सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनासे लेकर एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते महामत्स्यपर्यन्त उत्कृष्ट अवगाहना होती है। उससे ऊपर एक-एक प्रदेश बढ़ते हुए वेदना १५
समुद्घातवालेका क्षेत्र महामत्स्यकी अवगाहनासे तीन गुणा लम्बा, चौड़ा होता है पुनः एक-एक प्रदेश बढ़ते हुए स्वयंभूरमण समुद्रके बाहर स्थण्डिलक्षेत्रमें रहनेवाला महामत्स्य सप्तम पृथ्वीके महारौरव नामक श्रेणीबद्ध बिलेकी ओर मारणान्तिक समुद्घात करता है तब पाँच सौ योजन चौड़ा, अढ़ाई सौ योजन ऊँचा तथा प्रथम मोड़ेमें एक राजू, दूसरेमें आधा राजू और तीसरेमें छह राजू लम्बा उत्कृष्टक्षेत्र होता है। उसके ऊपर केवलिसमुद्घातमें लोकपूरण २०

इल्लि प्रथमवक्रदर्धं रज्जुवनू द्वितीयवक्रदरज्जुवनू कूडिदोडिदु –३ केळगण तृतीयवक्रदारुं १२

रज्जुगळोळकूडिदोडिदु वे ५ ० २१ व्या ५०० २१ इंतु संख्यातप्रतरांगुलगुणितम १ १५ प्पेळ्वरे रज्जुगळप्पुवु। इंते यथासंभवमागि मेले केवलिसमुद्घातददंडकवाटप्रतरलोकपूरणदोळु सर्व्वलोकमक्कुमिल्लि पर्य्यंत=मात्मप्रदेशविसर्प्पणसंहारदोळु जीवद्रव्यं व्यापृतमक्कुं।

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा।
एक्केक्को दु पदेसो कालाणूणं धुवो होदि ॥५८५॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशादयो भवंति भजनीयाः। एकैकस्तु प्रदेश कालाणूनां ध्रुवं भवति ॥

पुद्गलद्रव्यंगळगे पुनः मत्तेएकप्रदेशमादियागि द्व्यणुकादिपुद्गलस्कधंगळगे यथासंभवमागि[1] प्रदेशंगळु विकल्पनीयंगळप्पुवु। अदें तेंदोडे द्व्यणुकमेकप्रदेशदोळं मेणु द्विप्रदेशदोळमिक्कु। त्र्यणुकमेकप्रदेशदोळं द्विप्रदेशदोळं त्रिप्रदेशदोळं मेणिक्कुमित्यादि कालाणुगळगे तु मत्ते ओंदक्कोंदे प्रदेशक्रम ध्रुवं नियमदिंदमक्कुं।

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा।
लोगागासेव ठिदी एक्कपदेसो अणुस्स हवे ॥५८६॥

संख्येयाऽसंख्येयाऽनंता वा भवति पुद्गलप्रदेशाः। लोकाकाश एव स्थितिः एकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ॥

द्व्यणुकादिपुद्गलस्कंधंगळु संख्यातासंख्यातानंतपरमाणुगळनुळ्ळवप्पुवु। अंतादोडं लोकाकाशदोळ वक्कं स्थितियक्कुमणुविगोंदे प्रदेशमक्कुं।

सति जीवद्रव्य व्यापृतं प्रवृत्त भवति, सर्वावगाहनोपपादसमुद्घातानामस्य सभवात् ॥५८४॥

पुद्गलद्रव्याणा पुन एकप्रदेशादयो यथासभव भजनीया भवन्ति। तद्यथा—द्व्यणुक एकप्रदेशे द्विप्रदेशे वा तिष्ठति। त्र्यणुक एकप्रदेशे द्विप्रदेशे त्रिप्रदेशे वा तिष्ठतीति। तु-पुन कालाणूना एकैकस्य एकैकप्रदेशक्रमो ध्रुवो भवति ॥५८५॥

द्व्यणुकादय पुद्गलस्कन्धा संख्यातासख्यातानन्तपरमाणव तथापि लोकाकाश एव तिष्ठन्ति। अणोरेक एव प्रदेशो भवेत् ॥५८६॥

पर्यन्त क्षेत्र होता है। इस प्रकार अपने प्रदेशोंके संकोच विस्तारसे जीवद्रव्यका क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भागसे लेकर सर्वलोक पर्यन्त होता है क्योंकि जीवके सब अवगाहना, उपपाद और समुद्घातके भेद होते हैं ॥५८४॥

पुद्गल द्रव्योंका क्षेत्र एक प्रदेशसे लेकर यथायोग्य भजनीय होता है। यथा—द्व्यणुक एक प्रदेश अथवा दो प्रदेशमें रहता है। त्र्यणुक एक प्रदेश, दो प्रदेश अथवा तीन प्रदेशमें रहता है। और कालाणु लोकाकाशके एक-एक प्रदेशमें एक-एक करके ध्रुव रूपसे रहते हैं ॥५८५॥

द्व्यणुक आदि पुद्गल स्कन्ध संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओंके समूह रूप हैं फिर भी लोकाकाशमे ही रहते हैं। परमाणु एक ही प्रदेशी होता है ॥५८६॥

---

१. म °मागि विक°।

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहि फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं अण्णेहि विवज्जियं होदि ॥५८७॥

लोकाकाशप्रदेशाः षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति । सर्व्वमलोकाकाशमन्यैर्व्विवर्ज्जितं भवति ॥

लोकाकाशप्रदेशंगळंगनितोवनितुं षड्द्रव्यंगळिंद सर्व्वदा स्फुटंगळप्पुवु । आलोकाकाशंगळे-नितोळवनितुं अन्यद्रव्यंगळिंदं विवर्ज्जितंगळप्पुवु । क्षेत्राधिकारंतिद्दुदु । ५

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ॥५८८॥

जीवाः अनंतसंख्याः अनंतगुणाः पुद्गलाः खलु ततस्तु । धर्म्मत्रयमेकैकं लोकप्रदेशप्रमा कालः ॥

सर्व्वजीवंगळु द्रव्यप्रमाणदिंदमनंतंगळप्पुवु । पुद्गलंगळु सर्व्वजीवराशियं नोडलुमनंतानंत-गुणितंगळु । धर्म्माधर्म्माकाशद्रव्यंगळों दोदेयप्पुवु एकें दोडखंडद्रव्यंगळप्पुदरिंदं । लोकप्रदेशंगळेनितो-ळवनिते कालाणुगळप्पुवु । १०

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेदव्वा ॥५८९॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैकस्मिन् ये स्थिताः खलु एकैके । रत्नानां राशिरिव ते कालाणवो मंतव्याः ॥ १५

एकैकलोकाकाशप्रदेशंगळोळु आवुवु कलवु इरत्पट्टुवु वों दों दुगळागि रत्नंगळ राशियें तु भिन्न-भिन्नव्यक्तियिंदिर्प्पुवंते अवु कालाणुगळें दु बग यल्पडुवुवु ।

लोकाकाशप्रदेशाः सर्वे षड्द्रव्यैः सर्वदा स्फुटा भवन्ति । अलोकाकाशः सर्वोऽपि अन्यद्रव्यैर्विवर्जितो भवति ॥५८७॥ इति क्षेत्राधिकारः ॥ २०

सर्वे जीवा द्रव्यप्रमाणेन अनन्ताः स्यु' । तेभ्यः पुद्गलाणवः खलु अनन्तगुणाः । तु–पुनः धर्माधर्माकाशाः एकैक एव अखण्डद्रव्यत्वात् । कालाणवो लोकप्रदेशमात्रा. ॥५८८॥

एकैकलोकाकाशप्रदेशे ये एकैके भूत्वा रत्नाना राशिरिव भिन्नभिन्नव्यक्त्या तिष्ठन्ति ते कालाणवो मन्तव्याः ॥५८९॥

लोकाकाशके सब प्रदेश सर्वदा छह द्रव्योंसे व्याप्त रहते हैं। और अलोकाकाश पूराका पूरा अन्य द्रव्योंसे रहित होता है ॥५८७॥ क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ । २५

द्रव्यप्रमाणसे सब जीव अनन्त हैं। उनसे पुद्गल परमाणु अनन्त गुणे हैं। धर्म-अधर्म और आकाश अखण्ड द्रव्य होनेसे एक-एक हैं। कालाणु लोकाकाशके प्रदेश जितने है उतने है ॥५८८॥

एक-एक लोकाकाशके प्रदेशपर जो एक-एक स्थित है जैसे रत्नोंकी राशिमें प्रत्येक रत्न भिन्न-भिन्न होता है, वे कालाणु जानना ॥५८९॥ ३०

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा ॥५९०॥

व्यवहारः पुनः कालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः । ततोऽनंतगुणिताः आकाशप्रदेशपरिसंख्याः ॥

व्यवहारकालमेंबुदु मत्ते पुद्गलद्रव्यमं नोडलुमनंतगुणमात्रमक्कुमदं नोडलुमनंतगुणंगळाकाशद्रव्यद प्रदेशपरिसंख्येगळु ।

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणु अवट्ठिदं खेत्तं ॥५९१॥

लोकाकाशप्रदेशाः धर्म्माधर्म्मेकजीवप्रदेशाः सदृशाः खलु प्रदेशः पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रं ॥

लोकाकाशप्रदेशंगळुं धर्म्मद्रव्यप्रदेशंगळुमधर्म्मद्रव्यप्रदेशंगळुमेकजीवप्रदेशंगळुं सदृशगळप्पुवु खलु स्फुटमागि । ई नाल्कुं द्रव्यंगळ प्रदेशंगळु प्रत्येकं जगच्छ्रेणीघनप्रमितंगळप्पुवु । प्रदेशमेंबुदेनितु प्रमाणमेंदोडे पुनः मत्ते पुद्गलपरमाण्ववष्टब्ध क्षेत्रमेनिते प्रमाणमक्कुमदुकारणदिंदं जघन्यक्षेत्रमं जघन्यद्रव्यमुमविभागिगळप्पुवु । संदृष्टि :—

	जीव	पुद्गल	घ.	अ.	लो =	मु का	व्य-का	अलोकाकाश
द्र	१६	१६ ख	१	१	१	≡	१६ ख ख	१६ ख ख ख
क्षे	≡ख	≡ख ख	≡	≡	≡	≡	≡ख ख ख	≡ ख ख ख ख
का	अ=ख	अ ख ख	क अ	क अ	क अ	क अ	अ ख ख ख	अ ख ख ख ख
भा	के ४ ख ख ख ख	के ३ ख ख ख	ओ. अ	ओ अ	ओ अ	ओ अ	के ख ख	के १ ख

व्यवहारकाल पुन पुद्गलद्रव्यादनन्तगुण. । ततोऽनन्तगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥५९०॥

लोकाकाशप्रदेशा धर्मद्रव्यप्रदेशा अधर्मद्रव्यप्रदेशा एकैकजीवद्रव्यप्रदेशाश्च सदृशा खलु सख्यया समाना एव प्रत्येकं जगच्छ्रेणिघनमात्रत्वात् । प्रदेशप्रमाण पुन पुद्गलपरमाण्ववष्टब्धक्षेत्रमात्र भवति । तेन जघन्यक्षेत्र

व्यवहारकाल पुद्गल द्रव्यसे अनन्तगुणा है। और उससे अनन्तगुणी आकाशके प्रदेशोंकी संख्या है ॥५९०॥

लोकाकाशके प्रदेश, धर्मद्रव्यके प्रदेश, अधर्मद्रव्यके प्रदेश और एक-एक जीवद्रव्यके प्रदेश संख्याकी दृष्टिसे समान ही हैं क्योंकि प्रत्येकके प्रदेश जगत्श्रेणिके घन प्रमाण है। पुद्गलका परमाणु जितने क्षेत्रको रोकता है उतना ही प्रदेशका प्रमाण है। अतः जघन्यक्षेत्र अर्थात् प्रदेश और जघन्यद्रव्य परमाणु अविभागी है उनका विभाग नहीं हो सकता। अब

१. म °क्षेत्रमेनितनिते । २. म °गियप्पुवु ।

क्षेत्रप्रमाणदिं षड्द्रव्यंगळ प्रमाणं पेळल्पडुगुं। जीवद्रव्यंगळु प्र=फ श १ इ १६ लब्ध शला १६ प्र श १। फ = इ श १६ लब्धं लोकमुमं जीवराशियुमनपवर्त्तिसिदोडिदनंत। ख।
= =
मिदरिंदं फलराशियप्प लोकमं गुणिसिदोडे अनंतलोकप्रमितंगळप्पुवु। = ख। पुद्गलंगळुमनंत-गुणितंगळप्पुवु।=ख ख। धर्म्मद्रव्यमुमधर्मद्रव्यमुं लोकाकाशद्रव्यमुं कालद्रव्यमुं नाल्कु प्रत्येकं लोक-
= =
मात्रप्रदेशंगळप्पुवु = व्यवहारकालं पुद्गलद्रव्यमं नोडलनंतगुणितलोकप्रमितमक्कु। ख ख ख। ५
मदं नोडलुमलोकाकाशप्रदेशंगळु अनंतगुणितलोकमात्रमक्कुं = ख ख ख ख। कालप्रमाणदिंदं षड्द्रव्यंगळगे प्रमाणं पेळल्पडुगुं।

जीवद्रव्यंगळु प्र=अ। फल श १ इ १६। लब्धशला १६। प्र श १ फ अ। इ १६ लब्धम-
= अ अ
तीतकालमुमं जीवराशियुमनपवर्त्तिसिदोडिदु। ख। ईयनंतदिंदं फलराशियनतीतकालमं गुणिसि-दोडनंतातीतकालप्रमाणंगळप्पुवु। अ। ख। पुद्गलंगळुं व्यवहारकालंगळुमलोकाकाशमुमनंत- १०
गुणितक्रमदिंदमतीतकालानंतगुणितंगळप्पुवु। पु अ। ख ख। व्य=का अ। ख ख ख। अलोका-

---

जघन्यद्रव्य चाविभागिनी स्त। अथ क्षेत्रप्रमाणेन षट्द्रव्याणि मीयन्ते – जीवद्रव्याणि प्र =। फ श १, इ १६ लब्ध शला १६। प्र श १ फ = इ श १६ लोकजीवराश्यपवर्तनेऽनन्तः। ख। अनेन फलराशि–लोके
= =
गुणिते अनन्तलोका भवन्ति = ख। पुद्गला –अनन्तगुणा = ख ख। धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं लोकाकाशद्रव्यं कालद्रव्यं च लोकमात्रप्रदेश। =। व्यवहारकालः पुद्गलद्रव्यादनन्तगुणः = ख ख ख। ततोऽलोकाकाश- १५
प्रदेशा अनन्तगुणा. = ख ख ख ख। कालप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प्र। अ १। फ श १। इ १६। लब्धशलाका १६। प्र श १ फ अ। इ १६। अतीतकालजीवराश्यपवर्तने। ख। अनेन फलराश्यतीतकाले गुणिते अनन्ता
अ अ
अतीतकाला भवन्ति। अ ख। पुद्गलो व्यवहारकालोऽलोकाकाशप्रदेशाश्च अनन्तगुणितक्रमेण अनन्तातीत-[1]

क्षेत्रप्रमाणसे छहों द्रव्योंका माप करते है—जीवद्रव्य अनन्तलोक प्रमाण है। अर्थात् लोकाकाशके प्रदेशोंसे अनन्तगुने है। इसके लिए त्रैराशिक करना—प्रमाणराशि लोक, फलराशि २०
एक शलाका, इच्छाराशि जीवद्रव्यका प्रमाण। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर शलाकाराशिका परिमाण आया। पुनः प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि लोक, इच्छाराशि पूर्वशलाका प्रमाण। सो पूर्वशलाका प्रमाण जीवराशिको लोकका भाग देनेपर अनन्त पाये वही यहाँ शलाका प्रमाण जानना। इस अनन्तको फलराशि लोकसे गुणा करके प्रमाणराशि एक शलाकासे भाग देनेपर लब्ध अनन्तलोक आया। इसीसे जीवद्रव्यको अनन्त- २५
लोक प्रमाण कहा है। इसी प्रकार कालप्रमाण आदिमें भी त्रैराशिक द्वारा जान लेना चाहिए।

जीवोंसे पुद्गल अनन्तगुणे है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य लोकमात्र प्रदेशवाले है। व्यवहारकाल पुद्गल द्रव्योंसे अनन्तगुणा है। उससे अलोकाकाशके प्रदेश अनन्तगुणे है। आगे कालप्रमाणसे जीवद्रव्योंका प्रमाण कहते है—प्रमाणराशि अतीत-

---

१. ब °ता जी अतीतकाला। ३०

काश । अ । ख ख ख ख । धर्म्माधर्म्म लोकाकाशकालद्रव्यंगळु प्र । फ १ । प श १ । इ लब्धशलाके
प १ प्र श १ फ क इ । श प १ लब्धं संख्यातपल्यंगळुमं लोकमुमनपवर्त्तिसिदोडे इदु अ ।
इदरिंदं कल्पम फलराशियं गुणिसुत्तिरलु प्रत्येकमसंख्यातकल्पंगळप्पुवु । क अ । क अ । क अ ।
क अ । भावप्रमाणदिंद षड्द्रव्यंगळ्गे प्रमाणमं [1]पेळगुं । जीवद्रव्यंगळु प्र १६ । फ श १ । इ । के ।
लब्धशलाकेगळु के इदनपवर्त्तिसिदोडे । ख । प्र । ख । इनितु शलाकेगळ्गे केवलज्ञानमागलु ।
१६
प । के । वों दु शलाकेगेनितेंदु । इ श । १ । बंद लब्धं केवलज्ञानानंतैकभागमात्रंगळप्पुवु । वता-
दोडं पुद्गलकालालोकाकाशंगळं कुरुत्तु भागहारभूत[2]तानंतंगळु नाल्कप्पुवु के पुद्गलंगळ-
ख ख ख ख
नंतगुणितगळु के व्यवहारकालमनंतगुणितमक्कु के मलोकाकाशमनंतगुणं के
ख ख ख ख ख ख

काला भवन्ति । पु अ ख ख । व्य = का अ ख ख ख । अलोक अ ख ख ख ख । धर्माधर्मलोकाकाशकाल-
द्रव्याणि प्र । प १ फ श १ इ ≡ लब्धशलाका—५ ≡ प्र श १ फ क । इ श अ सख्यातपल्य-
प १
लोकापवर्तने । अ । अनेन कल्पफलराशौ गुणिते प्रत्येक असख्यातकल्पा भवन्ति क अ । क अ । क अ । क अ ।
भावप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प्र १६ फ श १ इ के लब्धशलाका के अपवर्तिते ख । प्र ख एतावच्छलाकाभि
१६
केवलज्ञान क के तदैकशलाकया इ श १ किमिति लब्ध केवलज्ञानानन्तैकभागमपि पुद्गलकालालोकाकाशा-
पेक्षया चतुरनन्तभागहार भवति के पुद्गला के व्यवहारकाल के अलोकाकाश के
ख ख ख ख ख ख ख ख ख

---

१५ काल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवोंका परिमाण । सो लब्धराशि अनन्त शलाका हुई । पुनः प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि अतीतकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण । सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर लब्धराशि प्रमाण अतीतकालसे अनन्त-गुणा जीवोंका प्रमाण होता है । इनसे पुद्गलद्रव्य व्यवहारकालके समय और अलोकाकाशके प्रदेश क्रमसे अनन्तगुणे होते हुए अनन्त अतीतकाल प्रमाण होते है । पुनः धर्मादिका प्रमाण
२० कहते हैं—प्रमाणराशि कल्पकाल, फल एक शलाका, इच्छा लोक प्रमाण । ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्ध असंख्यात शलाका हुई । पुनः प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि कल्पकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण । ऐसा करनेपर लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश और काल ये चारोंको जानना । अर्थात् बीस कोड़ा-कोड़ी सागरके संख्यात पल्य होते है । उतना एक कल्पकाल है इससे असंख्यातगुणे धर्म, अधर्म, लोकाकाश और
२५ कालके प्रदेश है । अब भावप्रमाणसे जीवद्रव्योंको बतलाते है—प्रमाणराशि जीवद्रव्यका प्रमाण, फलराशि एकशलाका इच्छाराशि केवलज्ञान । लब्धप्रमाण अनन्त शलाका । पुनः प्रमाणराशि शलाकाप्रमाण । फलराशि केवलज्ञान, इच्छाराशि एक शलाका । सो लब्धराशि प्रमाण केवल ज्ञानके अनन्तवें भाग जीवद्रव्य जानने । वे पुद्गल, काल और अलोकाकाशकी अपेक्षा चार वार अनन्तका भाग केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंमें देनेसे जो प्रमाण आवे

---

३० १. म पेलप्पडुगु । २. म °भूतानत ।

धर्म्माधर्म्मालोकाकाशकालद्रव्यंगळु प्र≡फ श १ । इ≡अ । लब्ध शलाके ≡ अ इल्लियु भागहार-
≡
भूतलोकमुमं अवधिज्ञानविकल्पंगळप्प भाज्यभूतासंख्यातलोकमुमनपवर्त्तिसिदोडिदु अ । मत्तं प्र श अ । फ । ओ । इ । श । १ । लब्धमवधिज्ञानविकल्पासंख्यातैकभागप्रमितं प्रत्येकमप्पुवु ओ । ओ । ओ । ओ इंतु संख्याधिकारंतिद्दुदु ।
अ अ अ अ

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिया पदेसावि ।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा ॥५९२॥

सर्व्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि । रूपिणो जीवाश्चलिताः त्रिविकल्पा भवंति प्रदेशाः ॥

सर्व्वमरूपि द्रव्यं मुक्तजीवद्रव्यमुं धर्म्मद्रव्यमुमधर्म्मद्रव्यमुमाकाशद्रव्यमुं कालद्रव्यमुमेंबी अरूपिद्रव्यंगळनितुं अवस्थितं स्थानचलनमिल्लदुवप्पुदरिंदमवस्थितंगळप्पुवु । प्रदेशा अपि अवर प्रदेशंगळुं अचलिताः अचलितंगळप्पुवु । रूपिणो जीवाः रूपिजीवंगळु चलिताः चलितंगळप्पुवु—। मवर प्रदेशंगळु त्रिविकल्पा भवंति खलु । विग्रहगतियोळु चलितंगळु अयोगिकेवलियोळचलितंगळु शेषजीवंगळ अष्टप्रदेशंगळचलितंगळु ।

शेषप्रदेशंगळु चलितंगळप्पुवितु चलितमुमचलितमुं चलिताचलितमुमेंदितु प्रदेशंगळु त्रिविकल्पंगळप्पुवु ।

धर्माधर्मलोकाकाशकालद्रव्याणि । प्र ≡ । फ श १ । इ ≡ अ लब्धशलाका ≡ अ भागहारभूतलोकेन भाज्ये
≡
अवधिविकल्पासख्यातलोके अपवर्तिते । अ । पुन' प्र श अ । फ ओ । इ श १ लब्धोऽवधिविकल्पासख्यातैकभाग. प्रत्येकं भवति ओ ओ ओ ओ ॥ इति संख्याधिकार. ॥५९१॥
अ अ अ अ

अरूपि द्रव्यं मुक्तजीवधर्माधर्माकाशकालभेद सर्वं अवस्थितमेव स्थानचलनाभावात् । तत्प्रदेशा अपि अचलिता. स्यु । रूपिणो जीवाश्चलिता भवन्ति । तत्प्रदेशा खलु त्रिविकल्पाः विग्रहगतौ चलिता , अयोगकेवलिन्यचलिता. शेषजीवानामष्टप्रदेशा. अचलिता. शेषाः चलिताः ॥५९२॥

उतने (जीवद्रव्य) है । उनसे अनन्तगुणे पुद्गल है । पुद्गलोंसे अनन्तगुणे कालके समय है, उनसे अनन्तगुणे अलोकाकाशके प्रदेश है। वे भी केवलज्ञानके अनन्तवे भाग ही हैं। धर्मादिका प्रमाण लानेके लिए प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छा अवधिज्ञानके विकल्प। लब्धप्रमाण असंख्यात शलाका हुई। पुनः प्रमाणराशि असंख्यात शलाका, फलराशि अवधिज्ञानके विकल्प, इच्छाराशि एक शलाका। ऐसा त्रैराशिक करनेपर अवधिज्ञानके विकल्पोंके असंख्यातवे भाग धर्म, अधर्म, लोकाकाश, कालमें-से प्रत्येकके प्रदेशोंका प्रमाण होता है ॥५९१॥ संख्याधिकार समाप्त हुआ ।

सब अरूपी द्रव्य—मुक्तजीव, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश, काल अवस्थित ही है, वे अपने स्थानसे चलते नही है। उनके प्रदेश भी अचल है। रूपी जीव चलते हैं उनके प्रदेश तीन प्रकारके होते है—विग्रह गतिमें प्रदेश चल ही होते है ।

अयोगकेवली अवस्थामें अचल ही होते हैं। शेष जीवोंके आठ प्रदेश अचल और शेष प्रदेश चल होते है ॥५९२॥

पोग्गलदव्वंहि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु ।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचला होंति हु पदेसा ॥५९३॥

पुद्गलद्रव्ये अणवः संख्यातादयो भवंति चलिताः खलु । चरममहास्कंधे च चलाचला भवंति प्रदेशाः ॥

पुद्गलद्रव्यदोळु अणुगळुं द्व्यणुकादि संख्यातासंख्यातानंतपरमाणुस्कंधंगळुं चलितंगळु खलु स्फुटमागि, चरममहास्कंधदोळं प्रदेशाः परमाणुगळु चलाचला भवंति चलाचलंगळप्पुवु ।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्झगेहि अंतरिया ।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा ॥५९४॥

अणुसंख्यातासंख्यातानंताश्चाग्राह्यैरंतरिताः आहारतेजोभाषामनःकार्म्मण ध्रुवस्कंधाः ॥

सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेह धुवसुण्णा ।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभा महक्खंधा ॥५९५॥

सांतरणिरंतरेण च शून्य प्रत्येकदेहध्रुवशून्यानि । बादरनिगोदशून्यानि सूक्ष्मनिगोदाः नभांसि महास्कंधाः ॥

अणुवग्गणेगळें[1]दुं संख्याताणुसमूहवग्गणेगळें[2]दुमसंख्याताणुसमूहवग्गणेगळे[3]दु मनंतपरमाणुसमूहवग्गणेगळें[4]दु आहारवग्गणेगळें[5]दु मी याहारवग्गणे मोदलादुमेल्लमुमनंतपरमाणुस्कंधंगळेयप्पुवु-। मग्राह्यवग्गणेगळें[6]दु तैजसशरीरवग्गणेगळें[7]दु मग्राह्यवग्गणेगळें[8]दु भाषावग्गणेगळें[9]दु मग्राह्यवग्गणेगळें[10]दु मनोवग्गणेगळें[11]दु मग्राह्यवग्गणेगळें[12]दु कार्म्मणवग्गणेगळें[13]दु ध्रुववग्गणेगळें[14]दु सांतरणिरंतरवग्गणेगळें[15]दु शून्यवग्गणेगळें[16]दु प्रत्येकशरीरवग्गणेगळें[17]दु ध्रुवशून्यवग्गणेगळें[18]दु बादरनिगोदवग्गणेगळें[19]दु शून्यवग्गणेगळें[20]दु सूक्ष्मनिगोदवग्गणेगळें[21]दु नभोवग्गणेगळें[22]दु महास्कंधवग्गणेगळें[23]दितु पुद्गलवग्गणेगळु त्रयो-

पुद्गलद्रव्ये अणव द्व्यणुकादिसख्यातासख्यातानन्ताणुस्कन्धाश्चलिता खलु स्फुटम् । चरममहास्कन्धे च प्रदेशा परमाणव चलाचला भवन्ति ॥५९३॥

अणुवर्गणा सख्याताणुवर्गणा असख्याताणुवर्गणा अनन्ताणुवर्गणा आहारवर्गणा अग्राह्यवर्गणा तैजसशरीरवर्गणा अग्राह्यवर्गणा भाषावर्गणा अग्राह्यवर्गणा मनोवर्गणा अग्राह्यवर्गणा कार्मणवर्गणा ध्रुववर्गणा सान्तरनिरन्तरवर्गणा शून्यवर्गणा प्रत्येकशरीरवर्गणा ध्रुवशून्यवर्गणा बादरनिगोदवर्गणा शून्यवर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणा नभोवर्गणा महास्कन्धवर्गणा चेति पुद्गलवर्गणा. त्रयोविंशतिभेदा भवन्ति । अत्रोपयोगी श्लोक —

पुद्गल द्रव्यमें परमाणु और द्व्यणुक आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओंके स्कन्ध चलित होते है । अन्तिम महास्कन्धमें प्रदेश चल-अचल है ॥५९३॥

अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसशरीरवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सान्तरनिरन्तरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा, महास्कन्धवर्गणा ये तेईस प्रकारकी पुद्गलवर्गणाएँ होती है । इस विषयमें उपयोगी श्लोक

विंशतिभेदंगळप्पुवु । इल्लिगुपयोगिश्लोकमिदु :—

"मूर्त्तिमत्सु पदार्त्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलाः ।
अकर्म्मकर्म्म नोकर्म्मजातिभेदेषु वर्ग्गणाः ॥" [ ]

मूर्त्तिमंतंगळप्प पदार्त्थंगळोळं संसारिजीवनोळं पुद्गल[1]शब्दं, अकर्म्मजातिगळोळं कर्म्मजातिगळोळं नोकर्म्मजातिगळोळं वर्ग्गणे[2] यें[ब] शब्दं वर्त्तिसुगुं । इल्लियणुवर्ग्गणेगळु सुगमंगळु । संख्याताणुसमूह वर्ग्गणेगळु द्व्यणुक त्र्यणुकं मोदलादसदृश धनिकंगळु मेले मेलेकैक परमाणुविंदधिकंगळु नडदु चरमदोळु संख्यातोत्कृष्टप्रमितपरमाणुस्कंधंगळु सदृशधनिकंगळु तद्योग्यंगळप्पुवु उ १५ । १५ । १५ । असंख्यातवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेगळु सदृशधनिकंगळु । परि-

०

० ३ । ३ । ३ । ३ । ३ । ३

ज २ । २ । २ । २ । २

अणु १ । १ । १ । १ । १ । १

मितासंख्यातजघन्याराशिप्रमितपरमाणुस्कंधंगळप्पुवु । मेलेकैकपरमाणुचयक्रमदिंदं पोगि चरमदोळु द्विकवारासंख्यातोत्कृष्टराशिप्रमितपरमाणुगळ स्कंधंगळु सदृशधनिकंगळप्पुवु

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गल. ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेपु वर्गणा ॥१॥

मूर्तिमत्सु पदार्थेपु ससारिजीवे च पुद्गलशब्दो वर्तते । अकर्मजातिषु कर्मजातिषु नोकर्मजातिषु च वर्गणाशब्दो वर्तते । अत्राणुवर्गणा (सुगमा) एकैकपरमाणुरूपा स्यात् १ । १ । १ । १ । १ । अणुवर्गणा । सख्याताणुवर्गणा द्व्यणुकादय एकैकाण्वधिका', उत्कृष्टसंख्याताणुकस्कन्धपर्यन्ता.—

उ १५ । १५ । ०० १५

० ० ०

० ० ०

म ३ ३ ०० ३

ज २ २ ०० २

असख्याताणुवर्गणा जघन्यपरिमितासख्याताणुकादयः एकैकाण्वधिका उत्कृष्टद्विकवारासंख्याताणुस्कन्धपर्यन्ता·—

है—पुद्गल शब्द मूर्तिमान् पदार्थोंका और संसारी जीवोका वाचक है। और वर्गणाशब्द अकर्मजातिके, कर्म जातिके और नोकर्मजातिके पुद्गलोंको कहता है ।

इनमें-से अणुवर्गणा सुगम है । एक-एक परमाणुको अणुवर्गणा कहते है । अन्य बाईस वर्गणाओंमें भेद है सो उनमें जघन्य और उत्कृष्ट भेद कहते है । द्वयणुकसे लेकर एक-एक परमाणु बढते-बढ़ते उत्कृष्ट संख्यात परमाणुओंके स्कन्ध पर्यन्त संख्याताणुवर्गणा है । उसमें जघन्य दो अणुओंका स्कन्ध है और उत्कृष्ट-उत्कृष्ट संख्यात अणुओंका स्कन्ध है । जघन्य परिमितासंख्यात परमाणुओंसे लेकर एक-एक अणु बढते-बढ़ते उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणुओंके स्कन्ध पर्यन्त असंख्याताणुवर्गणा है । यहाँ जघन्य परीतासंख्यात परमाणुओंका स्कन्ध है और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणुओंका स्कन्ध है । संख्याताणुवर्गणा और असंख्याताणुवर्गणामें विवक्षितवर्गणाको लानेके लिए गुणकार नीचेकी वर्गणासे विवक्षित-

१ म पुद्गलंगलु । २. म °णेगलेंबुवप्पुवु ।

उ २५५ । २५५ । ० । २५५ ई संख्यातासंख्यातवर्गणेगळोळु तंतम्मघस्तनराशियिंदमनंतरो-
०

म १६ १६ ०० १६
ज १६ । १६ । ०० । १६

परितनराशिगळं भागिसिदोडावुदो दु लब्धमदु विवक्षितवर्गणेयो गुणकारमक्कुमदं तंदोडे सख्यात-वर्गणेगळोळु जघन्यवर्गणेयिंद २ मुपरितनराशियं ३ भागिसि ३ बंद लब्धं द्वितीयवर्गणेयोळु
२
गुणकारमक्कुं गुण्यं जघन्यवर्गणेयक्कु २३ मिदनपवर्त्तिसिदोडे त्र्यणुकमक्कु–३ । मते द्विचरम-
२
वर्गणेयिंदं चरमवर्गणेय भागिसिदोडिदु १५ चरमवर्गणेयोळु गुणकारमक्कुं । गुण्यं द्विचरम-
१४
वर्गणेयक्कु १४ १५ मिदनपवर्त्तिसिदोडे चरमवर्गणेयक्कु–१५ । मिंते असंख्यातवर्गणेगळोळं
१४
द्विचरमवर्गणेयिंदमुपरितनचरमवर्गणेयं भागिसिदोडे चरमदोळु गुणकारमक्कुं गुण्यं द्विचरम-वर्गणेयक्कु २५४ । २५५ मिदनपवर्त्तिसिदोडे चरमवर्गणेयक्कुं । २५५ । इल्लियों दु परमाणुवं
२५५
कूडिदोडे अनंतवर्गणेगळोळु जघन्यवर्गणे परिमितानंतजघन्यराशिप्रमाणमक्कुमेकें दोडे द्विकवारा-
सख्यातोत्कृष्टदोळों दु रूपं कूडिदोडे या स्कंधमनंतवर्गणेगळोळु जघन्यवर्गणेयप्पुदरिंदं । आ जघन्यानंतवर्गणेय मेलेकैंक परमाणुविंदमधिकगळागुत्तं पोगि तदुत्कृष्टवर्गणे तज्जघन्यमं नोडल-नतगुणितमक्कु उ २५६ ख मेलेयाहारजघन्यसदृशवर्गवर्गणेगळु एकपरमाणुविंदमधिकंगळ-
०
ज २५६

उ २५५ । २५५ ० ० २५५
० ० ०
० ० ०

म १६ । १६ । ० ० १६
ज १६ । १६ । ० ० १६

अत्र सख्याताणुवर्गणासु असंख्याताणुवर्गणासु च विवक्षितवर्गणामानेतु गुणकार. तदधस्तनवर्गणाया अधस्तन-वर्गणाभक्तविवक्षितवर्गणामात्र यथा त्र्यणुकमानेतु द्वचणुकस्य द्वचणुकभक्तत्र्यणुकमात्र २ । ३ तदनन्तरोपरि-
२

---

१५ वर्गणामें भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना है । जैसे त्र्यणुक लानेके लिए द्वयणुकका गुणकार द्वयणुकसे त्र्यणुकमें भाग देनेपर जितना प्रमाण आवे उतना है । उसके अनन्तर उत्कृष्ट असंख्याताणुवर्गणामें एक परमाणु अधिक होनेपर अनन्ताणुवर्गणाका जघन्य होता है । उसे सिद्धराशिके अनन्तवे भाग प्रमाण अनन्तसे गुणा करनेपर अनन्ताणुवर्गणाका उत्कृष्ट होता है । उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी आहारवर्गणाका जघन्य होता है । उसमें
२० सिद्धराशिके अनन्तवे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे जघन्यमें मिलानेपर आहारवर्गणा

प्पुवुत्कृष्टं। तज्जघन्यानंतैकभागदिं विशेषाधिकमक्कुं $\overset{\circ}{\text{उ}}\overline{\text{२५६ ख ख}}$ मेलणऽग्राह्यवर्गणेगळोळु
आ ०

$\overset{\circ}{\text{ज}}\overline{\text{२५६ ख}}$

जघन्यमेकपरमाणुविंदमधिकमक्कुं। तदुत्कृष्टं जघन्यमं नोडलनंतगुणितमक्कु :—

$\overset{\circ}{\text{उ}}\overline{\text{२५६ ख}}$ $\overset{\circ}{\text{१}}\overline{\text{ख ख}}$ तदनंतरोपरितनतेजःशरीरवर्गणेगळोळु जघन्यवर्गणे एकपरमाणु-
अग्रा ०

$\overset{\circ}{\text{ख}}$

$\overset{\circ}{\text{ज}}\overline{\text{२५६ ख}}$ १ ख

विंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागदिंदं विशेषाधिकमक्कुं $\overset{\circ}{\text{उ}}\overline{\text{२५६ ख}}$ १ $\overset{\circ}{\text{ख}}$ १ $\overset{\circ}{\text{ख ख}}$
तेज ०

$\overset{\circ}{\text{जघ}}\overline{\text{२५६ ख}}$ १ $\overset{\circ}{\text{ख}}$ १ ख

तनमनन्तवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं $\overset{\circ}{\text{उ}}\overline{\text{२५६ ख}}$ तदनन्तरोपरितनाहारवर्गणाजघन्य- ५

$\overset{\circ}{\text{ज}}\overline{\text{२५६}}$

मेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं $\overset{\circ}{\text{उ}}\overline{\text{२५६ ख}}$ $\overset{\circ}{\text{ख}}$ तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणु-
ख

आहा ०

$\overset{\circ}{\text{ज}}\overline{\text{२५६ ख}}$

नाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं— $\overset{\circ}{\text{उ}}\overline{\text{२५६ ख}}$ १ $\overset{\circ}{\text{ख ख}}$ तदनन्तरोपरितनतेजःशरीरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं
ख

अगेज्ज ०

ज $\overset{\circ}{\text{२५६ ख}}$ १ $\overset{\circ}{\text{ख}}$
ख

उत्कृष्ट होता है। उत्कृष्ट आहारवर्गणामें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्य-
वर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देकर जो लब्ध आवे उसे
उसीमें मिला देनेपर अग्राह्यवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। इसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे १०

नंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदमधिकमक्कुं । तदुत्कृष्टं तज्जघन्यसं

नोडलनंतगुणमक्कुं उ २५६ ख १ ख १ ख ख ख तदनंतरोपरितनभाषावर्गणे-
अग्रा ०
ख ख

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख

गळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं, तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागदिं विशेषाधिकमक्कुं

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख ख तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणेगळोळु जघन्य-
भाषा ०
ख ख ख

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख

---

५ तदुत्कृष्ट तदनन्तैकभागेनाधिक—उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख
० ख ख
तेजो ०

ज २५६ ख १ ख १ ख
ख

तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तगुणं—उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख ख ।
० ख ख
अगेज्ज ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख

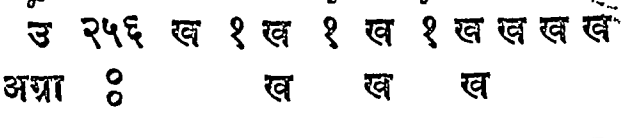
तदनन्तरोपरितनभाषावर्गणाजघन्य एकाणुनाधिक तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिक—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
० ख ख ख
भाषा ०

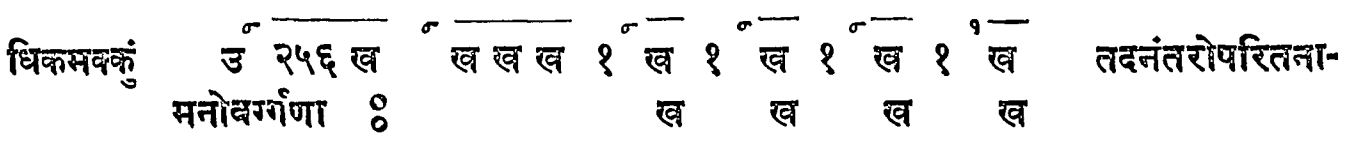
ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख
ख ख

ऊपरकी तैजसशरीरवर्गणाका जघन्य होता है। उसमे सिद्धराशिके अनन्तवे भागसे भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर तैजसशरीरवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक
१० परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्यवर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि-के अनन्तवे भागसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर

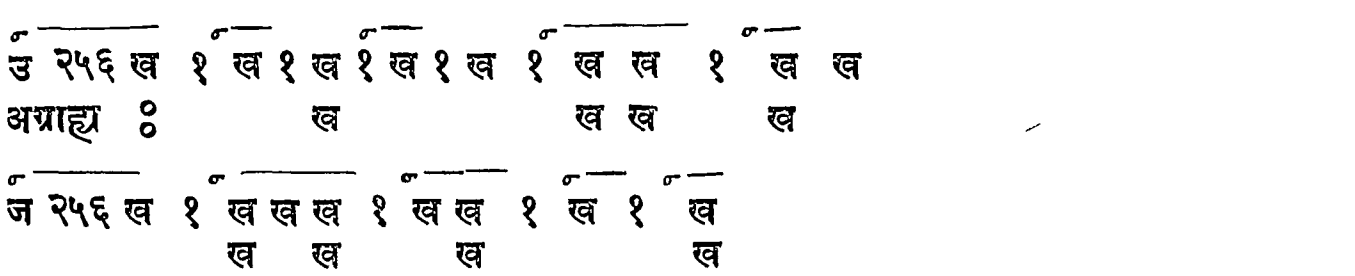
मेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टमनंतगुणितमक्कुं



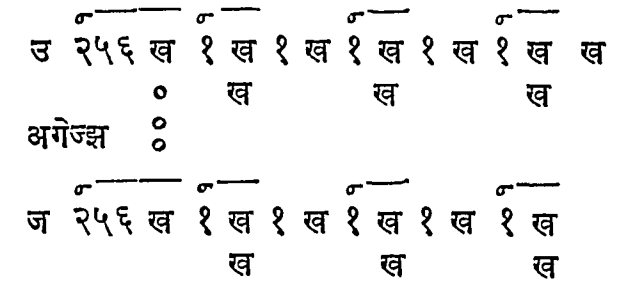
तदनंतरोपरितनमनोवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टमनंतैकभागदिं विशेषाधिकमक्कुं



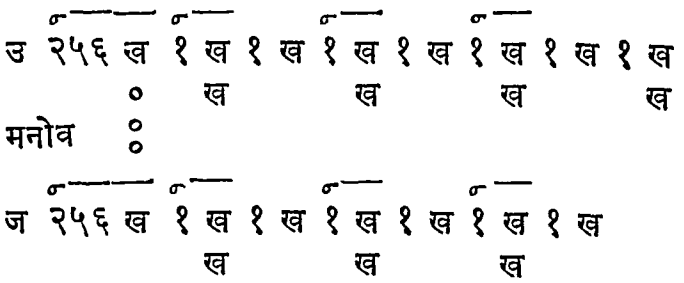
ग्राह्यवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टं तज्जघन्यमं नोडलनंतगुणितमक्कुं:—



तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्य एकाणुनाधिक तदुत्कृष्ट ततोऽनन्तगुण— ५



तदनन्तरोपरितनमनोवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिक तदुत्कृष्टं तदनन्तैकभागेनाधिकं—

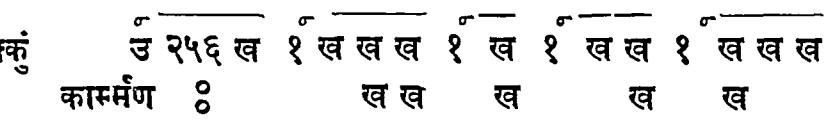


तदनन्तरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्ट ततोऽनन्तगुणं—

उससे ऊपरकी भाषा वर्गणाका जघन्य है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्यवर्गणाका जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट होता है। उसमें १० एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी मनोवर्गणाका जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशिके

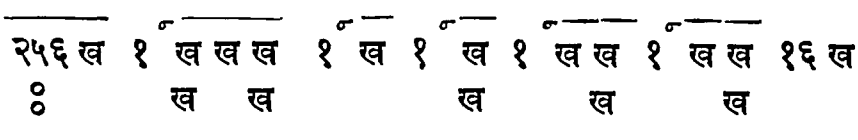
तदनंतरोपरितनकार्म्मणवर्गणाजघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं । अदरुत्कृष्टं तदनंतैकभागदिंदं

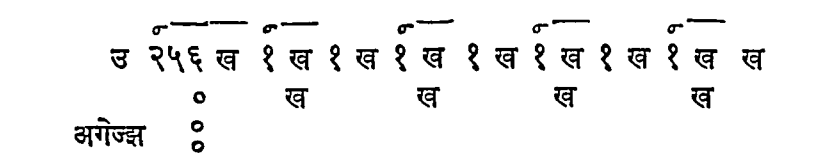
विशेषाधिकमक्कुं



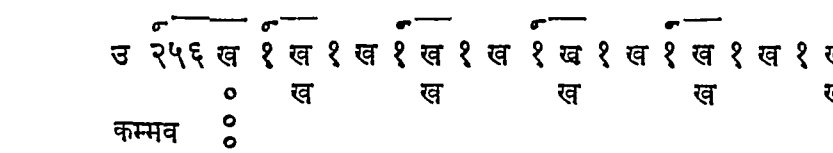
तदनंतरोपरितनध्रुववर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं तदुत्कृष्टमनंतजीवराशिगुणित-

मक्कुं :—

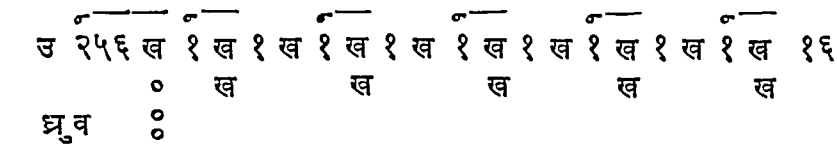




५ तदनन्तरोपरितनकार्मणवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिक तदुत्कृष्ट तदनन्तैकभागेनाधिक—



तदनन्तरोपरितनध्रुवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिक तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तजीवराशिगुण—



अनन्तवे भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिला देनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उससे एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी अग्राह्यवर्गणाका जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट है। उससे एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी कार्मणवर्गणा-
१० का जघन्य है। उसमें सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर उसका उत्कृष्ट होता है। उससे एक परमाणु अधिक उससे ऊपरकी ध्रुववर्गणाका

तदनंतरोपरितनसांतरनिरंतरवर्गणेगळोळु जघन्यमेकपरमाणुविंदधिकमक्कुं । तदुत्कृष्ट तज्जघन्यमं नोडलनंतजीवराशिगुणितमक्कुमदक्के संदृष्टि :—

उ २५६ ख १ ख ख ख ख ख ख १ ख ख ख १६ ख १६ ख
सांतर नि ० ख ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख १ ख ख ख १ ख १ ख ख ख १६ ख
ख ख ख ख ख

इल्लि विशेषं पेळल्पडुगुं । परमाणुवर्गणे मोदल्गोंडु ई सांतरनिरंतरवर्गणेगळ उत्कृष्टवर्गणे पर्य्यंतं पदिनैदुं वर्गणेगळ सदृशधनिकवर्गणेगळु अनंतपुद्गलवर्गमूलमात्रंगळप्पुवु । पु=मुखवंतागुत्तं विशेषहीनक्रमंगळप्पुवल्लि प्रतिभागहारं सिद्धानंतैकभागमक्कुमेंबिदु तदनंतरोपरितनशून्यवर्गणेगळोळु जघन्यमेकरूपाधिकमक्कुमुत्कृष्टमनंतजीवराशि गुणितमक्कुं :— ५

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख ख ख ख ख १ ख ख १६ ख १६ ख १६ ख
शून्य ० ख ख ख ख ख

ज २५६ ख १ ख ख ख १ ख ख १ ख ख १ ख ख १ १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

विंतु पदिनारुं वर्गणेगळेकप्रकारदिंदं सिद्धंगळप्पुवु ।

तदनन्तरोपरितनसान्तरनिरन्तरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तजीवराशिगुण—

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख
सान्तर ०
निरन्तर ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

अत्रायं विशेषः—परमाणुवर्गणामादिं कृत्वा सान्तरनिरन्तरवर्गणापर्यन्तं पञ्चदशवर्गणाना सदृशधनिकानि अनन्तगुणपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि विशेषहीनक्रमाणि भवन्ति । तत्र प्रतिभागहारः सिद्धानन्तैकभागः । तदनन्तरोपरितनशून्यवर्गणाजघन्यं एकरूपाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनन्तजीवराशिगुणं— १०

जघन्य है । उसे अनन्तजीवराशिसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है । उससे एक परमाणु अधिक उससे ऊपरकी सान्तरनिरन्तरवर्गणाका जघन्य है । उसे अनन्तजीवराशिसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है । यहाँ इतना विशेष है कि परमाणुवर्गणासे लेकर सान्तरनिरन्तरवर्गणा पर्यन्त पन्द्रह वर्गणाओंका समानधन अनन्तगुणे पुद्गलोंके वर्गमूल प्रमाण होनेपर भी क्रमसे विशेषहीन है । उनका प्रतिभागहार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है । १५

तदनंतरोपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणे पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे ओर्व्व जीवन वोंदु देहदोळुपचितकर्म्मनोकर्म्मस्कंधं प्रत्येकशरीरवर्गणेयेंबुदक्कुमदर जघन्यवर्गणे यावजीवनोळक्कुमेंदोडे आवनोर्व्व क्षपितकर्म्मांशलक्षणदिंदं बंदु पूर्व्वकोटिवर्षायुर्म्मनुष्यजीवंगळोळपुट्टि मनुष्यनागियंतर्म्मुहूर्त्ताधिकाऽष्टवर्षंगळिंदं मेले सम्यक्त्वमुमं संयममुमं युगपत्स्वीकरिसि सयोगकेवलियादोंडदेशोनपूर्व्वकोटियं औदारिकतैजसशरीरंगळ अस्थितिगणनेयोळु निर्ज्जरेयं माडि कार्म्मणशरीरक्कं गुणश्रेणिनिर्ज्जरेयं माडि चरमसमयभव्यसिद्धमप्प चरमसमयदयोगिकेवलिगे त्रिशरीरसचयं नामगोत्रवेदनीयंगळ मेले आयुरौदारिकतैजसशरीरंगळिनधिकमाद त्रिशरीरसचयं प्रत्येकशरीरजघन्यवर्गणेयक्कुं । तदुत्कृष्टवर्गणासंभवमावंडेयोळेंदेंडे नंदीश्वरद्वीपद अकृत्रिममहाचैत्यालयंगळ धूपघटगळोळं स्वयंभूरमणद्वीपदकर्म्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रदोळु नेगेवकाळिकच्चुगळोळं बादर-

---

उ २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख १६ ख १६ ख
० ख ख ख ख ख
सुण्णव ०

ज २५६ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १ ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

षोडशवर्गणा एव सिद्धा । तदनन्तरोपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणा तु एकजीवस्य एकदेहोपचितकर्मनोकर्मस्कन्ध । तत्र कश्चिज्जीव क्षपितकर्मांशलक्षण पूर्वकोटिवर्षायु. मनुष्यो भूत्वा अन्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसयमौ युगपत् स्वीकृत्य सयोगकेवली जात देशोनपूर्वकोटिपर्यन्तमौदारिकतैजसशरीरयोरवस्थितिगणनया निर्जरा कुर्वन् कार्मणशरीरस्य च गुणश्रेणिनिर्जरा कुर्वन् चरमसमयायोगिकेवली स्यात् । तस्यायु औदारिकतैजसशरीराधिकनामगोत्रवेदनीयरूपत्रिशरीरसंचय तज्जघन्य भवति । नन्दीश्वरद्वीपस्य अकृत्रिममहाचैत्यालयाना धूपघटेषु स्वयंभूरमणद्वीपसभूतदवाग्निषु च बादरपर्याप्ततैजस्कायिका. एकबन्धनबद्धा असख्यातावलिवर्गमात्रा

उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तरवर्गणामे एक परमाणु अधिक होनेपर उससे ऊपरकी शून्यवर्गणाका जघन्य होता है। उसे अनन्तगुणित जीवराशिके प्रमाणसे गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार सोलह वर्गणा सिद्ध हुई। उससे ऊपर प्रत्येक शरीर वर्गणा है। एक जीवके एक शरीरके विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्मके स्कन्धको प्रत्येक शरीरवर्गणा कहते हैं। शून्यवर्गणाके उत्कृष्टसे एक परमाणु अधिक जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा होती है। जिसके कर्मके अंश क्षयरूप हुए है ऐसा कोई क्षपितकर्मांश जीव एक पूर्वकोटि वर्ष आयु लेकर मनुष्य जन्म धारण करके अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ स्वीकार करके सयोगकेवली हुआ। वह कुछ कम एक पूर्व कोटी पर्यन्त औदारिक शरीर और तैजसशरीरकी अवस्थिति गणनाके अनुसार निर्जरा करता हुआ और कार्मणशरीरकी गुणश्रेणिनिर्जरा करता हुआ अयोगकेवलीके चरमसमयको प्राप्त हुआ। उसके आयुकर्म औदारिक और तैजस शरीरके साथ नाम गोत्र वेदनीय कर्मके परमाणुओंका समूह रूप जो तीन शरीरोंका स्कन्ध होता है वह जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा है। इस जघन्यको पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। नन्दीश्वर द्वीपके अकृत्रिम महाचैत्यालयोंके धूपघटोंमें और स्वयम्भूरमणद्वीपमें उत्पन्न दवाग्निमें असंख्यात

पर्य्याप्ततेजस्कायिकजीवंगळेकबंधनबद्धंगळऽसंख्यातावलिवर्ग्गप्रमितंगळवरोळु गुणितकर्म्मांशगळप्प जीवंगळु यदि सुष्ठु बहुकंगळप्पुवादोडमावल्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवुळिदवेल्लम गुणितकर्म्मांशंगळेयप्पुवा गुणितकर्म्मांशंगळेकबंधनबद्धंगळ् बादरपर्य्याप्ततेजस्कायिकंगळ सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयं औदारिकतैजसकार्म्मणशरीरसंचयं प्रत्येकदेहोत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुं :—

उ स ३२ $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ ख ख १२ $\frac{\text{॥}}{\text{ा}}$ १६ ख $\frac{\text{ा}}{\text{८}}$ ई प्रत्येकशरीरोत्कृष्टवर्ग्गणेये रूपाधिकमादोडे ५
प्रत्येक शरीर $\frac{\text{०}}{\text{ा}}$

ज स $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ ख १२ – १६ ख $\frac{\text{।।।}}{\text{३}}$

ध्रुवशून्यवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयक्कुं। बादरनिगोदजघन्यवर्ग्गणेयावेडेयोळसंभविसुगुमेंदोडे—

आवनोव्वं क्षपितकर्म्मांशलक्षणदिंदं बंदु पूर्व्वकोटिवर्षायुर्म्मनुष्यनागि पुट्टि गर्भाद्यष्टवर्षमंतर्म्मुहूर्त्ताधिकंगळमेले सम्यक्त्वसुमं संयमसुमं युगपत्कैकोंडु कर्म्मक्कुत्कृष्टगुणश्रेणिनिर्ज्जरेय देशोनपूर्व्वकोटिवर्षंबरं माडियंतर्म्मुहूर्त्तावशेषदोळु सिद्धितव्यनेंदितु क्षपकश्रेणियनेरिदोनुत्कृष्टकर्म्मनिर्ज्जरेयं क्रियमाणं क्षीणकषायनादोनातंगे शरीरदोळु जघन्यादिदमुत्कृष्टदिंदमुमेकबंधनबद्धंगळप्प १०

तेषु गुणितकर्मांशा. सुष्ठु बहुत्वेऽपि आवल्यसंख्यातैकभागमात्रा. ८ तेषा सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयस्तदुत्कृष्टं

भवति— उ स ३२ $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ ख ख १२– $\frac{\text{॥}}{\text{ा}}$ १६ ख $\frac{\text{ा}}{\text{८}}$ इदमेव रूपाधिकं ध्रुवशून्यवर्गणाजघन्य
$\frac{\text{०}}{\text{ा}}$
पत्तेयशरीर $\frac{\text{०}}{\text{०}}$

ज स $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ $\frac{\text{ा}}{\text{ा}}$ ख ख १२– $\frac{\text{।।।}}{\text{१६}}$ ख ३

भवति। कश्चित् क्षपितकर्मांशलक्षणो जीवः पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अन्तर्मुहूर्ताधिकगर्भाद्यष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य कर्मणामुत्कृष्टगुणश्रेणिनिर्जरा देशोनपूर्वकोटिवर्षपर्यन्तं कुर्वन् अन्तर्मुहूर्ते सिद्धितव्यमास्ते तदा क्षपकश्रेण्यारूढः उत्कृष्टकर्मनिर्जरा कुर्वन् क्षीणकषायो जात, तच्छरीरे जघन्येन उत्कृष्टेन १५

आवलीके वर्ग प्रमाण बादर पर्याप्त तैजस्कायिक जीवोंके शरीरोंका एक स्कन्ध रूप हैं। उनमें गुणित कर्मांश जीव बहुत अधिक होनेपर भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र हैं। उनका औदारिक तैजस कार्मणशरीरोंका विस्रसोपचयसहित उत्कृष्ट संचय उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा होती है। इस जघन्यको सब मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रमाणको असंख्यात लोकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे २० उससे गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है। उससे एक परमाणु अधिक बादरनिगोद वर्गणा है। बादर निगोदिया जीवोंके विस्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म परमाणुओंके एक स्कन्धको बादरनिगोदवर्गणा कहते है। वह कहाँ पायी जाती है यह कहते है—क्षपितकर्मांश लक्षणवाला कोई जीव एक पूर्वकोटि वर्षकी आयुवाला मनुष्य हुआ। अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ धारण करके कुछ कम पूर्व कोटिवर्ष पर्यन्त कर्मोंकी २५ उत्कृष्ट गुणश्रेणि निर्जरा करते हुए जब सिद्ध पद प्राप्त करनेमें अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहा तब

पुळविगळु आवल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळेयप्पुवेकेंदोडेल्ला स्कंधंगळोळमसंख्यातलोकमात्रपुळविगळें बुदिल्लेकेंदोडे तद्विधप्ररूपणाभावमप्पुदरिंदं । तदावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुळविगळोळिर्द्द निगोदशरीरंगळु त्रैराशिकसिद्ध प्र पु १ फ≡अ इ पु ८/अ लब्धप्रमितंगळप्पु ≡अ ८/अ विल्लि । प्र । शरी १ । फ जी १३-९/५ ≡अ ८/अ इ श लब्धं बादरनिगोदजीवंगळिवु क्षीणकषायन शरीरस्थंगळप्पुवु १३-९/५ ≡अ ८/अ ई जीवंगळोळु क्षीणकषायन प्रथमसमयदोळु अनंतबादरनिगोद जीवंगळु मृतंगळप्पुवु । द्वितीयसमयदोळु प्रथमसमयदोळ्मृतमाद जीवराशियनावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसिदेकभागमात्रविशेषाधिकंगळु मृतरप्पुवु ।

इंतु विशेषाधिकक्रमदिंदं मृतमप्पुवेन्नेवरमावलिपृथक्त्वमन्नेवरमल्लि बळिकमावलिसंख्यातैकभागविशेषाधिकक्रमदिंदं मृतंगळप्पु वेन्नेवरं क्षीणकषायगुणस्थानकालमावल्यसंख्यातैकभागमात्रावशेषमक्कुमन्नेवरमल्लिवं बळिकमुपरितनानंतरसमयदोळु पळितोपमासंख्येयभागगुणितजीवंगळु मृतंगळप्पुवल्लिद मेले संख्यातपल्यगुणितक्रमदिंदं मृतंगळप्पुवेन्नेवरं क्षीणकषायचरम·

च एकबन्धनबद्धपुलवय आवल्यसंख्यातैकभागमात्रा सन्ति । कुत. ? सर्वस्कन्धेषु असख्यातलोकमात्रतत्प्ररूपणाभावात् तदावल्यसख्यातैकभागपुलवीस्थितनिगोदशरीराणि प्र पु १ । फ ≡ अ । इ पु ८/अ इति त्रैराशिकसिद्धानि एतावन्ति ≡ अ ८/अ एतेषु पुनः प्र श १ । फ जी १३—९/५ ≡ अ ८/अ इ शरी ≡ अ ८/अ इति त्रैराशिकलब्धा १३—९/५ ≡ अ ८/अ बादरनिगोदजीवा एतावन्त. । एतेषु क्षीणकषायप्रथमसमये अनन्ता म्रियन्ते । द्वितीयसमयेऽनन्तमृतराशिमावल्यसख्यातेन भक्त्वा एकभागाधिका म्रियन्ते । एवमावलिपृथक्त्वे गते आवलिसख्यातैकभागाधिकक्रमेण म्रियन्ते यावत्तद्गुणस्थानकाल आवल्यसंख्यातैकभागमात्रोऽवशिष्यते । तदनन्तरसमये पलितो-

---

क्षपक श्रेणिपर आरोहण करके कर्मोंकी उत्कृष्ट निर्जरा करता हुआ क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती हुआ। उसके शरीरमें जघन्य और उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुलवी एक बन्धनबद्ध होती है। क्योंकि सब स्कन्धोंमें पुलवी असंख्यातलोकमात्र कहे है। एक-एक पुलवीमें असंख्यातलोकप्रमाण शरीर होते है। एक-एक शरीरमें सिद्धराशिसे अनन्तगुणे और संसार राशिके अनन्तवें भाग जीव होते हैं। सो आवलीके असंख्यातवें भागको असंख्यातलोकसे गुणा करनेपर शरीरोंका प्रमाण होता है। उस शरीरोंके प्रमाणको एक शरीरमें रहनेवाले निगोदिया जीवोंके प्रमाणसे गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो उतना एक स्कन्धमें निगोदिया जीवोंका प्रमाण जानना। इनमें-से क्षीणकषाय गुणस्थानके प्रथम समयमें अनन्त जीव स्वयं आयु पूरी होनेसे मरते है। दूसरे समयमें पहले समयमें मरे हुए जीवोके प्रमाणमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर जो प्रमाण आवे उतने अधिक जीव मरते है।

समयमन्नेवरमिल्लियावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुळविगळोळु पृथक् पृथगसंख्यातलोकमात्रशरीरं-गळिदं समाकीर्णंगळोळु पल्यासंख्यातैकभागमृतजीवंगळ प्रमाणदिंदं हीनमागि स्थिताऽऽगुणित कर्म्मांशानंतानंतजीवंगळ अनंतानंतविस्रसोपचयसहितत्रिसरीरसंचयं सर्व्वजघन्यबादरनिगोदवर्गणेयक्कु वी बादरनिगोदजघन्यवर्गणेये एकपरमाणुविंदं हीनमादुदादोडा उत्कृष्टध्रुवशून्यवर्गणेयक्कुं

उ = स ā ā ख ख १२–१६ ख १३ ≡ ā ८ प बादरनिगोदोत्कृष्टवर्गणेयावेडेयोळु संभवि- ५
ā प ā

ध्रुवशून्यवर्गणा ० ९ ≡ ā ५ ā

ज स ३२ ā ā ख ख १२ १६ ख ८
ā

सुगुमेकें दोडे कर्म्मभूमिप्रतिबद्धस्वयंभूरमणद्वीपद मूलकादिशरीरंगळोळेकबंधनबद्धंगळप्प जगच्छ्रे-

---

पमासख्यातैकभागगुणा भ्रियन्ते। तत. संख्यातपल्यगुणितक्रमेण भ्रियन्ते, यावत्क्षीणकषायचरमसमयस्तावत्। तत्रावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु पृथक्पृथगसंख्यातलोकमात्रशरीराकीर्णेषु पल्यासंख्यातैकभागमृतजीवप्रमाणेनोना गुणितकर्मांशानन्तानन्तजीवानामनन्तानन्तविस्रसोपचयसहितत्रिशरीरसंचयो जघन्यबादरनिगोदवर्गणा भवति इयमेवैकाणुना हीना सती उत्कृष्टध्रुवशून्यवर्गणा भवति— १०

उ ० स ā ā ख ख १२—१६ ख १३— । ≡ ā ८ प
० ā ā
ध्रुवसुण्णा ० ९ ≡ ā ५ प
०
ā

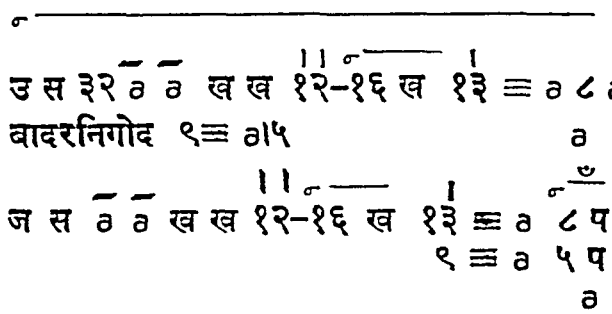
ज ० स ३२ ā ā ख ख १२—१६ ख ८
ā

स्वयंभूरमणद्वीपस्य मूलकादिशरीरेष्वेकबन्धनबद्ध जगच्छ्रेण्यसंख्येयभागमात्रपुलविषु स्थिताना गुणित-

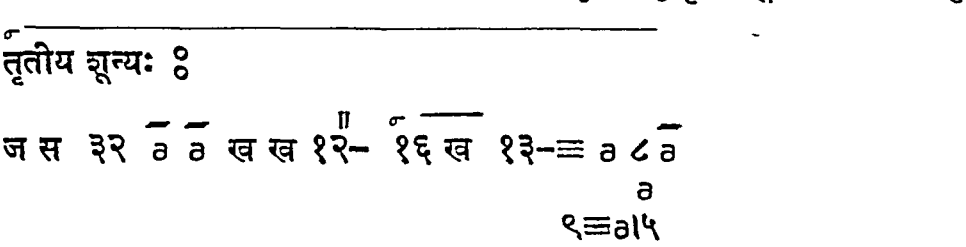
---

इस प्रकार क्षीणकषाय गुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर आवली पृथक्त्वकाल तक आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक जीव प्रतिसमय क्रमसे तबतक मरते है जबतक क्षीण-कषाय गुणस्थानका काल आवलीके असंख्यातवे भाग मात्र शेष रहता है। उसके अनन्तर समयमें पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणित जीव मरते हैं। उसके पश्चात् पूर्व-पूर्व समयमें मरे १५ जीवोंको संख्यात पल्यसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने जीव क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयपर्यन्त प्रति समय मरते है। सो अन्तके समयमें अलग-अलग असंख्यातलोक मात्र शरीरोंसे युक्त आवलीके असंख्यातवें भाग पुलवियोंमें जो गुणितकर्मांश जीव मरे उनसे हीन शेष जो अनन्तानन्त जीव गुणित कर्मांश रहे उनके विस्रसोपचय सहित जो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरके परमाणुओंका स्कन्ध वह जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है। इसमें २०

ण्यसंख्येयभागमात्र पुळविगळोळिरुतिर्द्द गुणितकर्म्मांशानंतानंतजीवंगळ सविस्रसोपचय त्रिशरीर-संचयमं कोळुत्तिरलक्कुं :—

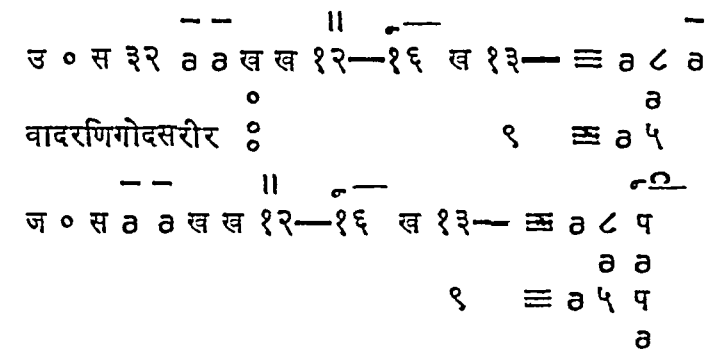


ई बादरनिगोदोत्कृष्टवर्गणेयोळेकरूपमनधिकं माडुत्तिरलु तृतीयशून्यवर्गणेगळोळु जघन्यवर्गणेयक्कुं

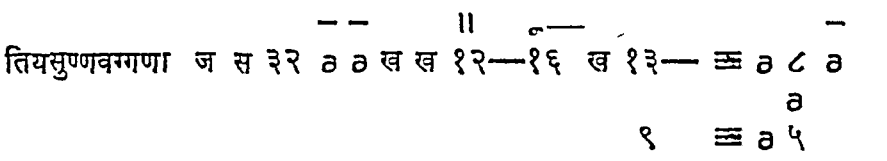


५ सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणेयावेडेयोळु संभविसुगुमेंदोडे जलदोळु स्थलदोळमाकाशदोळमेणु

कर्मांशानन्तानन्तवादरनिगोदजीवाना सविस्रसोपचयत्रिशरीरसचय. उत्कृष्टवादरनिगोदवर्गणा भवति—



इयमेकरूपाधिका तृतीयशून्यवर्गणाजघन्यं भवति—



एक परमाणु हीन करनेपर उत्कृष्ट ध्रुव शून्यवर्गणा होती है। तथा इस जघन्यको जगत् श्रेणिके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा होती है। स्वयम्भूरमणद्वीपमें जो मूलक आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतियोंके शरीर हैं उनमे एक बन्धनबद्ध
१० जगत्श्रेणिके असंख्यातवे भागप्रमाण पुलवियोंमें रहनेवाले गुणितकर्मांश अनन्तानन्त वादरनिगोद जीवोंका जो विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्मणशरीरका उत्कृष्ट संचय है

एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुळविगळोळिरुत्तिर्द्द क्षपितकर्मांशानंतानंतसूक्ष्मनिगोदंगळ सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयमं कोळुत्तिरलक्कु

सूक्ष्मनिगोद

ज स अ अ ख ख १२- १६ ख १३।८≡१।२।८-८२ अ
९≡अ ५- अ अ

इदरोळेकरूपं कळेयुत्तिरलु तृतीयशून्यवर्गणेगळोळु उत्कृष्टवर्गणेयक्कुं :—

२

उ स अ अ ख ख १२ १६ ख १३ — ८ ≡ अ ८ २ अ इल्लिबोधकनिंतेंदं बादरनिगोदोत्कृष्ट-
अ अ

तृतीयशून्यवर्ग ९ ≡ अ ५

वर्गणेयोळु पुळविगळु श्रेण्यसंख्येयभागमात्रंगळु जघन्यसूक्ष्मनिगोदवर्गणेयोळु पुळविगळु आवल्य-संख्यातैकभागमात्रंगळदुकारणमागियुत्कृष्टबादरनिगोदवर्गणेयिंदं केळगे सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणेया- ५
गलेवेळकुमेंदनेंदोडिदु दोषमल्तेकेंदोडे बादरनिगोदवर्गणेगळ निगोदशरीरंगळं नोडलु सूक्ष्म-निगोदवर्गणाशरीरंगळ्गे सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रगुणकारोपलंभमप्पुदरिंदं । सूक्ष्मनिगोद-

जले स्थले आकाशे वा एकबन्धनबद्धावल्यसख्यातैकभागपुलविषु स्थितानां क्षपितकर्मांशानन्तानन्तसूक्ष्म-निगोदाना सविस्रसोपचयत्रिशरीरसचयः सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणा भवति ।

ज स अ अ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ अ २ ८ अ इयमेकरूपोना तृतीयशून्यवर्गणोत्कृष्टं भवति— १०
९ ≡ अ ५ अ अ

तिय उ ० स अ अ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ अ २ ८ अ । ननु बादरनिगोदवर्गणोत्कृष्टे पुलवयः
सुण्णवग्गणा ९ ≡ अ ५ अ अ

श्रेण्यसख्येयभागः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्ये तु आवल्यसंख्यातैकभागः तेन तदधोऽनेन भाव्यम् इति, तन्न—बादर-निगोदवर्गणानिगोदशरीरेभ्यः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाशरीराणा सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागगुणकारोपलम्भात् । सूक्ष्म-

वह उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा है। उसमें एक परमाणु अधिक होनेपर तीसरी शून्यवर्गणा-का जघन्य होता है। वह कैसे है सो कहते है—जल-थल अथवा आकाशमें एकबन्धनबद्ध १५
आवलीके असंख्यातवे भाग पुलवियोंमें क्षपितकर्मांश अनन्तानन्त सूक्ष्मनिगोद जीव रहते हैं उनके विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्मणशरीरका संचय सूक्ष्मनिगोद जघन्य वर्गणा है। उसमें एक परमाणु हीन करनेपर तीसरी शून्यवर्गणाका उत्कृष्ट होता है।

शंका—बादरनिगोदवर्गणाके उत्कृष्टमें पुलवियाँ श्रेणिके असंख्यातवें भाग कही हैं और सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके जघन्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग कही है। अतः बादरनिगोद २०
वर्गणासे पहले सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होनी चाहिए। क्योंकि पुलवियोंका प्रमाण बहुत होनेसे परमाणुओंका प्रमाण बहुत होना सम्भव है ?

१० म चोदकं ।

दुत्कृष्टवर्गणेयं संभवमावेडेयोळक्कुमेंदोडे महामत्स्यशरीरदोळु एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभाग-मात्रपुळविगळोळिरुतिर्द गुणितकर्मांशानंतानंतजीवंगळसविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयमं ग्रहि-

सुत्तिरलक्कुं :— उ स ३२ $\frac{\overline{अ}}{अ}$ $\frac{\overline{अ}}{अ}$ ख ख १२- $\frac{\overline{\overline{१६}}}{\parallel}$ ख १३-८ ≡ अ ८ सू २ $\frac{अ}{अ}$

सूक्ष्मनिगोद ९ ≡ अ ५

मेलणेरडुंवर्गणेगळु सुगमंगळदेंतेंदोडे सूक्ष्मनिगोदुत्कृष्टवर्गणेयोळेकरूपं कूडिदोडे नभोवर्गणे-गळोळु जघन्यवर्गणेयक्कुं :—

ज स ३२ $\frac{\overline{अ}}{अ}$ $\frac{\overline{अ}}{अ}$ ख ख १२- $\frac{\overline{\overline{१६}}}{\parallel}$ ख १३-८ ≡ अ ८ सू २ $\frac{\overline{अ}}{अ}$

नभोवर्गणा ९ ≡ अ ५

ई जघन्यवर्गणेयं प्रतरासंख्येयभागदिंदं गुणिसुत्तिरलु नभोवर्गणगळोळुत्कृष्टवर्गणेयक्कुं :—

उ स ३२ $\frac{\overline{अ}}{अ}$ $\frac{\overline{अ}}{अ}$ ख ख १२- $\frac{\overline{\overline{१६}}}{\parallel}$ ख १३-८≡ अ ८ सू २ अ अ

नभोवर्गणा ९ ≡ अ ५

निगोदवर्गणोत्कृष्ट महामत्स्यशरीरे एकबन्धनबद्धावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुलविस्थितगुणितकर्मांशानन्तानन्त-जीवाना सविस्रसोपचयत्रिशरीरसचयो भवति—

सुहमणि उ ० स ३२ $\frac{अ}{अ}$ $\frac{अ}{अ}$ ख ख १२—$\frac{\overline{१६}}{\parallel}$ ख १३— ८ ≡ अ ८ सू २ $\frac{अ}{अ}$

९ ≡ अ ५

इदं एकरूपयुत नभोवर्गणाजघन्य भवति—

णभवग्ग ज स ३२ $\frac{अ}{अ}$ $\frac{अ}{अ}$ ख ख १२—$\frac{\overline{१६}}{\parallel}$ ख १३—८ ≡ अ ८ सू २ $\frac{अ}{अ}$

९ ≡ अ ५

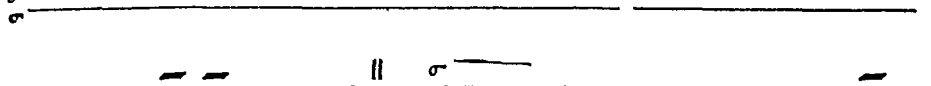
इद प्रतरासख्येयभागगुणित नभोवर्गणोत्कृष्ट भवति—

णभवग्ग उ स ३२ $\frac{अ}{अ}$ $\frac{अ}{अ}$ ख ख १२—$\frac{\overline{१६}}{\parallel}$ ख १३—८ ≡ अ ८ सू २ $\frac{अ}{अ}$ $\frac{अ}{अ}$

९ ≡ अ ५

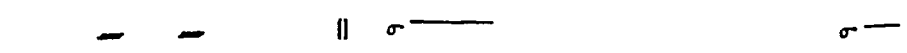
समाधान—नहीं, क्योंकि बादरनिगोदवर्गणाके शरीरोंसे सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके शरीरो-का प्रमाण सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे वहाँ जीव भी बहुत है। अतः उन जीवोंके तीन शरीर सम्बन्धी परमाणु भी बहुत हैं। जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणाको पल्यके

ई नभ उत्कृष्टवर्ग्गणेयोळेकरूपं कूडुत्तिरलु महास्कंधवर्ग्गणेगळोळु जघन्यवर्ग्गणेयक्कुं :—



ज स ३२ अ अ ख ख १२– १६ ख १३– ८ ≡ अ ८ सू २ अ अ
महास्कंधवर्ग्गणा ९≡ अ ५ अ अ

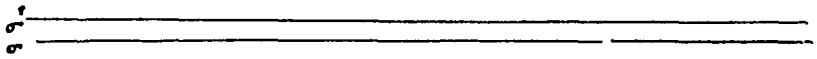
ई महास्कंधदजघन्यवर्ग्गणेयोळु तज्जघन्यराशियं पल्यासंख्यातदिंदं खंडिसिदेकभागमं कूडुत्तिरलु महास्कंधवर्ग्गणेगळोळुत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुं अप्पुदरिंदं :—



उ स ३२ अ अ ख ख १२– १६ ख १३–८ ≡ अ ८–सू २ अ प
अ अ अ
महास्कंध ९ ≡ अ ५ अ

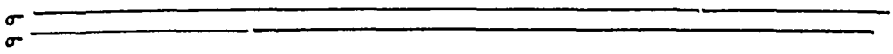
इंतेकश्रेणियनाश्रयिसि त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळ्पेळल्पट्टुवु ।

अत्रैकरूपे युते महास्कन्धवर्गणाजघन्यं भवति— ५



महास्कन्ध ज स ३२ अ अ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ अ ८ सू २ अ अ
अ अ
९ ≡ अ ५

अत्र अस्यैव पल्यासंख्यातैकभागे युते महास्कन्धवर्गणोत्कृष्टं भवति—



महास्कन्ध उ स ३२ अ अ ख ख १२—१६ ख १३—८ ≡ अ ८ सू २ अ अ प
अ अ अ
९ ≡ अ ५ प
अ

एवमेकश्रेणिमाश्रित्य त्रयोविंशतिवर्गणा उक्ताः ॥५९४–५९५॥

असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है। सो कैसे, यह कहते है—

महामत्स्यके शरीरमें एक बन्धनबद्ध आवलीके असंख्यातवे भागमात्र पुलवियोंमें स्थित गुणितकर्मांश अनन्तानन्त जीवोंके विस्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्मण शरीरोंके परमाणुओंका स्कन्ध है वही उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है। उसमें एक परमाणु अधिक करनेपर नभोवर्गणाका जघन्य होता है। इसको जगत्प्रतरके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर नभोवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। उसमें एक बढ़ानेपर महास्कन्धवर्गणाका जघन्य होता है। इसमें उसीका पल्यका असंख्यातवाँ भाग बढानेपर महास्कन्धवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार एक श्रेणिके रूपमें तेईस वर्गणा कहीं ॥५९४–५९५॥

उक्तार्त्थोपसंहारमं माडुत्तं त्रयोविंशतिवर्गणेगळगेजघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्य भेदमुमं तदल्पबहुत्वमुमं गाथाषट्कदिंदं पेळ्दपं :—

परमाणुवग्गणाम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहाक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं ॥५९६॥

परमाणुवर्गणायां नावरोत्कृष्टं च शेषकेऽस्ति । ग्राह्यमहास्कंधानां वरमधिकं शेषकं गुणितं ॥

परमाणुवर्गणेयोळु जघन्योत्कृष्टविशेषमिल्लेकेंदोडे परमाणुगळु निर्व्विकल्पंगळप्पुदरिंदं शेषसंख्यातवर्गणादि महास्कंधावसानमाद द्वाविंशतिवर्गणेगळोळु जघन्योत्कृष्टादिविशेषं अस्ति उंदु । आ द्वाविंशतिवर्गणेगळोळू ग्राह्यमहास्कंधानां आहारतेजोभाषामनःकार्म्मणवर्गणेगळु ग्राह्यमेंबुदक्कुमवरुत्कृष्टवर्गणेगळुं महास्कंधोत्कृष्टवर्गणेयुमेंबीयारु वर्गणेगळु तंतम्म जघन्यमं नोडलु विशेषाधिकंगळु, बुळिद पदिनारुं वर्गणेगळुत्कृष्टवर्गणेगळु तंतम्म जघन्यमं नोडलु गुणितंगळप्पुवु ।

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ॥५९७॥

सिद्धानामनंतैकभागः प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थं । पल्यासंख्येयभागोतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थं ॥

ई ग्राह्यवर्गणापंचकोत्कृष्टवर्गणानिमित्तमागि प्रतिभागहारं सिद्धानंतैकभागमात्रमक्कुमा भागहारदिंदं तंतम्म जघन्यमं भागिसिदेकभागमना जघन्यद मेले कूडिदोडे तंतम्मुत्कृष्टवर्गणेगळप्पुवेंबुदर्त्थं । अंतिममहास्कंधोत्कृष्टवर्गणानिमित्तमागि प्रतिभागहारं पल्यासंख्यातैकभागमात्रमक्कुमावल्यासंख्यातैकभागदिंदं जघन्यवर्गणेयं भागिसिदेकभागमना जघन्यदोळु कूडिदोडे

उक्तार्थमुपसहरन् तासामेव जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यानि तदल्पबहुत्व च गाथाषट्केनाह—

परमाणुवर्गणाया जघन्योत्कृष्टे न स्त', अणूना निर्विकल्पकत्वात् शेषद्वाविंशतिवर्गणाना तु स्त । तत्र ग्राह्याणा आहारतेजोभाषामन कार्मणवर्गणाना महास्कन्धवर्गणायाश्च उत्कृष्टानि स्वस्वजघन्याद्विशेषाधिकानि शेषषोडशवर्गणाना गुणितानि भवन्ति ॥५९६॥

तत्र पञ्चग्राह्यवर्गणानामुत्कृष्टनिमित्त प्रतिभागहार सिद्धानन्तैकभाग, तेन स्वस्वजघन्य भक्त्वा तत्रैव निक्षिप्ते स्वस्वोत्कृष्ट भवतीत्यर्थ । अन्तिममहास्कन्धोत्कृष्टनिमित्तं प्रतिभागहार पल्यासख्या-

---

उक्त कथनका उपसहार करते हुए उन्हीं वर्गणाओंके जघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और अजघन्य भेदों तथा अल्पबहुत्वको छह गाथाओंसे कहते हैं—

परमाणुवर्गणामे जघन्य-उत्कृष्ट भेद नहीं है क्योंकि परमाणु निर्विकल्प—भेद रहित होते हैं । शेष बाईस वर्गणाओंमें तो जघन्य-उत्कृष्ट है । उनमें-से जो ग्राह्यवर्गणा, आहार-वर्गणा, तैजसशरीरवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्मणवर्गणा तथा महास्कन्धवर्गणा हैं इनके उत्कृष्ट अपने-अपने जघन्यसे विशेष अधिक हैं, शेष सोलह वर्गणाओंके गुणित हैं ॥५९६॥

उनमे-से पाँच ग्राह्यवर्गणाओंका उत्कृष्ट लानेके लिए प्रतिभागहार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है । उससे अपने-अपने जघन्यमें भाग देकर जो लब्ध आवे उसे उसी

तन्महास्कंधोत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कुमेंबुदत्थं ।

संखेज्जासंखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्झेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥५९८॥

संख्यातासंख्यातयोर्व्वर्ग्गणयोर्ग्गुणकारौ तौ तु भवतः खलु अनंते । चतुर्ष्वग्राह्येष्वपि सिद्धानामनंतैकभागः ॥ ५

संख्यातवर्ग्गणेयोळं असंख्यातवर्ग्गणेयोळं तंतम्मुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तमागि गुणकारं यथासंख्यमागि तु मत्ते तौ आ संख्यातमुमसंख्यातमुं भवतः अप्पुवु । अदंतेंदोडे संख्यातवर्ग्गणाजघन्यराशियनुत्कृष्टसंख्यातार्द्धदिंदं गुणिसिदोडे संख्यातोत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कु २१५ अपवर्त्तितमिदु
२
१५ । असंख्यातवर्ग्गणाजघन्यराशियं परिमितासंख्यातजघन्यमं तद्राशिविभक्तद्विकवारासंख्यातोत्कृष्टराशियिंदं गुणिसुत्तिरलु तदुत्कृष्टवर्ग्गणेयक्कु १६।२५५ मपवर्त्तितमिदु २५५ । अनंतदोळम- १०
१६
ग्राह्यचतुष्टयदोळं तदुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तं गुणकारं सिद्धानंतैकभागमात्रमक्कुमा गुणकारदिंदं तंतम्म जघन्यवर्ग्गणेयं गुणिसुत्तिरलु तंतम्मुत्कृष्टवर्ग्गणेगळप्पुवेंबुदत्थं ।

जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ॥५९९॥

जीवादनंतगुणो ध्रुवादितिसृणां असंख्यातभागस्तु पल्यस्य ततस्ततोऽसंख्यलोकापहृत- १५
मिथ्यादृष्टिः ॥

तैकभागः ॥५९७॥

तु–पुनः सख्यातासंख्यातवर्गणयोरुत्कृष्टार्थं स्वस्वजघन्यस्य गुणकारः स संख्यातवर्गणाया स्वजघन्यभक्त-

स्वोत्कृष्टमात्रसंख्यात· १५ असख्यातवर्गणाया स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रासंख्यातो भवति २५५ ताभ्यां
२ १६
स्वस्वजघन्य गुणयित्वा २ । १५ । १६ । २५५ अपवर्तिते १५ । २५५ खलु स्फुटं तयोरुत्कृष्टे स्याताम् इत्यर्थः । २०
२ १६
अनन्तवर्गणाया अग्राह्यवर्गणाचतुष्के च उत्कृष्टार्थं गुणकार· सिद्धानन्तैकभागः ॥५९८॥

जघन्यमें मिलानेपर अपना-अपना उत्कृष्ट होता है। अन्तिम महास्कन्धका उत्कृष्ट लानेके लिए भागहार पल्यका असंख्यातवाँ भाग है ॥५९७॥

संख्याताणुवर्गणा और असंख्याताणुवर्गणामें अपने-अपने उत्कृष्टमें अपने-अपने जघन्यसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना ही गुणकार होता है। उनसे अपने-अपने जघन्यको गुणा करनेपर अपना-अपना उत्कृष्ट होता है। अनन्ताणुवर्गणा और चार अग्राह्य- २५
वर्गणामें उत्कृष्ट लानेके लिए गुणकार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है ॥५९८॥

सर्व्वजीवराशियं नोडलनंतगुणितमप्प गुणकारं ध्रुवादि मूरु वर्ग्गणेगळुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्त-गुणकारप्रमाणमक्कुमा गुणकारदिंदं तंतम्म जघन्यवर्ग्गणेयं गुणिसुत्तं विरलु तंतम्मुत्कृष्टवर्ग्गणेगळप्पुवेंबुदत्थं। तु मत्ते ततः अल्लिदं मेलण प्रत्येकशरीरवर्ग्गणेगळुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तमागि गुणकारं पल्यासंख्यातैकभागमक्कुमा गुणकारगुणित तज्जघन्यवर्ग्गणेये प्रत्येकशरीरवर्ग्गणोत्कृष्ट-
५ वर्ग्गणेयक्कुमेंबुदर्थमिल्लि पल्यासंख्यातैकभागगुणकारमेंतेंदोडे :—प्रत्येकशरीरस्थजीवकार्म्मण-शरीरसमयप्रबद्ध गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धमप्पुदरिंदमुत्कृष्टयोगार्ज्जितमप्पुदरिंदं। तज्जघन्य-समयप्रबद्धमं नोडलु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमक्कुमदक्के संदृष्टि द्वात्रिंशदंकमक्कुमप्पुदरिंदं तज्जघन्यवर्ग्गणेयं तद्गुणकारदिंदं गुणिसुत्तिरलु तदुत्कृष्टवर्ग्गणेययक्कुमेंबुदर्त्थं। ततः इल्लिदं मेलण ध्रुवशून्यवर्ग्गणेगळोळु तदुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तगुणकारमसंख्यातलोकविभक्तसर्व्वमिथ्यादृष्टि-
१० राशियक्कु १ ३ ≡ a मी गुणकारदिंदं गुणिसिद तज्जघन्यराशि ध्रुवशून्यवर्ग्गणोत्कृष्ट-
९ ≡ a ५
वर्ग्गणाप्रमाणमेंबुदर्त्थं।

सेढीसूईपल्लाजगपदरासंखभागगुणगारा।
अप्पप्पण अवरादो उक्कस्सा होंति णियमेण ॥६००॥

श्रेणीसूचीपल्यजगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः। स्वस्वावरायाः उत्कृष्टा भवंति नियमेन॥

१५ श्रेण्यसंख्यातैकभागमुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमुं पल्यासंख्यातैकभागमुं जगत्प्रतरासंख्यातैक-भागमुं यथासंख्यमागि बादरनिगोदशून्य—सूक्ष्मनिगोदनभोवर्ग्गणेगळुत्कृष्टवर्ग्गणानिमित्तगुणकारं-गळप्पुवु।

सर्वजीवराशितोऽनन्तगुणो ध्रुवादितिसृणा वर्गणाना उत्कृष्टनिमित्त गुणकारो भवति। तु पुनः तदुपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणोत्कृष्टनिमित्त पल्यासख्यातैकभाग। कुत ? प्रत्येकशरीरस्थकार्मणसमयप्रबद्धाना
२० गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धत्वेन जघन्यसमयप्रबद्धात् छेदासख्येयगुणितत्वात्। ततसंदृष्टि. द्वात्रिंशत्। तया जघन्ये गुणिते तदुत्कृष्ट भवतीत्यर्थ। तत ध्रुवशून्यवर्गणोत्कृष्टनिमित्त गुणकार असख्यातलोकभक्तसर्वमिथ्या-दृष्टिराशि १३— ≡ a ॥५९९॥
९ ≡ a ५

श्रेणिसूच्यङ्गुलपल्यजगत्प्रतराणामसख्यातैकभागा. क्रमश' वादरनिगोदशून्यसूक्ष्मनिगोदवर्गणोत्कृष्ट-निमित्त गुणकारा भवन्ति। तत्र शून्यवर्गणाया सूच्यङ्गुलासंख्यातगुणकारस्तु सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्ये रूपोने

---

२५ ध्रुव आदि तीन वर्गणाओंके उत्कृष्टके लिए गुणकार समस्त राशिसे अनन्तगुणा है। उससे ऊपरकी प्रत्येक शरीरवर्गणाका उत्कृष्ट लानेके लिए पल्यका असंख्यातवाँ भागमात्र गुणकार है। क्योंकि प्रत्येक शरीरवर्गणामें जो कार्मण शरीरके समयप्रबद्ध हैं वे गुणित-कर्मांश जीवसम्बन्धी है अतः जघन्य समयप्रबद्धसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणे है। उसकी संदृष्टि बत्तीस है। उससे जघन्यमें गुणा करनेपर उसका उत्कृष्ट होता है। ध्रुव-शून्यवर्गणाके उत्कृष्टके लिए गुणकार सब मिथ्यादृष्टियोंकी राशिमें असंख्यातलोकसे भाग
३० देनेपर जो प्रमाण आवे उतना है ॥५९९॥

बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा और नभोवर्गणाके उत्कृष्ट लानेके लिए गुणकार क्रमसे श्रेणिका असंख्यातवाँ भाग, सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग, पल्यका

आ गुणकारंगळिदं तंतम्म जघन्यवर्ग्गणेयं गुणिसिदोडे तंतम्मुत्कृष्टवर्ग्गणेगळप्पुवेबुदर्त्थ-मवरोळु शून्यवर्ग्गणेयोळु सूच्यंगुलासंख्यातगुणकारमेंतेंदोडे :—सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्ग्गणेयोळुळ्ळ सूच्यंगुलासंख्यातं तद्वर्ग्गणेयोळेकरूपहीनमागि शून्यवर्ग्गणोत्कृष्टवर्ग्गणेयादुदप्पुदरिना गुणकारं तज्जघन्यदोळिल्लप्पुदरिंदं सूक्ष्मनिगोदवर्ग्गणेयोळु पल्यासंख्यातगुणकारमेंतेंदोडे गुणितकर्म्मांश-जीवप्रतिबद्धसमयप्रतिबद्धमुत्कृष्टयोगार्जितमप्पुदरिंदं पल्यच्छेदासंख्यातैकभागं गुणकारमप्पुदरिंद । ५

इंतु त्रयोविंशतिवर्ग्गणेगळेकश्रेण्याश्रितंगळु पेळल्पट्टुविन्नु नानाश्रेणियनाश्रयिसि पेळल्प-ट्टुपुवदेंतेंदोडे :—परमाणुवर्ग्गणे मोदलगोंडु सांतरनिरंतरवर्ग्गणोत्कृष्टवर्ग्गणावसानमाद वर्ग्गणे-गळ सदृशधनिकवर्ग्गणेगळु अनंतपुद्गलवर्ग्गमूलमात्रंगळागुत्तलु मेले मेले विशेषहीनंगळप्पुवल्लि प्रतिभागहारं सिद्धानंतैकभागमक्कुं । प्रत्येकदेहजघन्यसदृशधनिकंगळु वर्त्तमानकालदोळु क्षपितकर्म्मां-शलक्षणदिंदं बंदयोगिचरमसमयदोळु नाल्केयप्पुवु । ४ । वुत्कृष्टवर्ग्गणेगळु वर्तमानकालदोळु १०
एनितु संभविसुगुमेंदोडे स्वयंभूरमणद्वीपदकाळिकच्चु मोदलादवरोळु आवल्यसंख्यातैकभाग-मात्रंगळु संभविसुववु । बादरनिगोदजघन्यवर्ग्गणेगळु वर्त्तमानकालदोळेनितु संभविसुगुमेंदोडे क्षीणकषायचरमसमयदोळु नाल्केयप्पुवु । तदुत्कृष्टवर्ग्गणेगळु महामत्स्यादिगळोळु आवल्य-

---

सति तदुत्कृष्टसभवात् । सूक्ष्मनिगोदवर्गणाया पल्यासंख्यातगुणकारोऽपि तत्समयप्रबद्धाना गुणितकर्मांशजीवप्रति-बद्धत्वात् । एवं त्रयोविंशतिवर्गणा एकश्रेण्याश्रिताः कथिता । इदानी नानाश्रेणीराश्रित्योच्यन्ते—तद्यथा— १५
परमाणुवर्गणातः सातरनिरन्तरोत्कृष्टावसानवर्गणाना सदृशधनिकानि अनन्तपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि उपर्युपरि विशेषहीनानि भवन्ति । तत्र प्रतिभागहारः सिद्धानन्तैकभाग । प्रत्येकदेहजघन्यसदृशधनिकानि वर्तमानकाले क्षपितकर्मांशलक्षणेनागत्य अयोगिचरमसमये चत्वारि । उत्कृष्टानि स्वयम्भूरमणद्वीपस्य दावानलादिषु आवल्य-सख्यातैकभागमात्राणि वादरनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले क्षीणकषायचरमसमये चत्वारि तदुत्कृष्टानि

असंख्यातवाँ भाग और जगत्प्रतरका असंख्यातवाँ भाग होता है, यहाँ जो शून्यवर्गणामें २०
सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुणकार कहा है उसका कारण यह है कि सूक्ष्मनिगोदवर्गणाके जघन्यमें एक घटानेपर शून्यवर्गणाका उत्कृष्ट होता है। सूक्ष्मनिगोद वर्गणामें गुणकार पल्यके असंख्यातवें भाग कहा है सो उसके समयप्रबद्ध गुणित कर्मांश जीवसे सम्बद्ध होनेसे कहा है। इस प्रकार एक श्रेणि रूपसे तेईस वर्गणाएँ कहीं। अब नाना श्रेणियोंको लेकर कहते हैं— २५

अर्थात् जो ये वर्गणा कही है वे लोकमें वर्तमान कोई एक कालमें कितनी-कितनी पायी जाती है, यह कहते है—परमाणुवर्गणासे लेकर सान्तनिरन्तरवर्गणा पर्यन्त पन्द्रह वर्गणाएँ समानधनवाली है। ये पुद्गल द्रव्यराशिके वर्गमूलको अनन्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी-उतनी लोकमें पायी जाती है किन्तु आगे-आगे कुछ-कुछ कम होती जाती है। इनमें प्रति भागहार सिद्धराशिका अनन्तवाँ भाग है अर्थात् जितनी अणुवर्गणाएँ हैं उनमें ३०
सिद्धराशिके अनन्तवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना अणुवर्गणाके परिमाणमें घटानेपर जो प्रमाण शेष है उतनी संख्याताणुवर्गणा जगत्में होती हैं। इसी प्रकार आगे जानना। किन्तु सामान्यसे प्रत्येक पृथक्-पृथक् वर्गणाका प्रमाण अनन्त पुद्गल राशिका वर्गमूल मात्र है। प्रत्येक शरीरवर्गणाका जघन्य वर्तमानकालमें क्षपितकर्मांशरूपसे आकर अयोगकेवलीके अन्त समयमें पाया जाता है सो उत्कृष्टसे चार है। उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा ३५

संख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणेगळु सदृशधनिकंगळु जलदोळं स्थलदोळमाकाशदोळं मेणु आवल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । उत्कृष्टवर्गणेगळु सूक्ष्मनिगोदसंबंधिगळु तु मत्ते वर्त्तमानकालदोळु महामत्स्यंगळोळावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । ई मूरु सचित्तवर्गणेगळोळु जघन्यानुत्कृष्टवर्गणेगळु वर्त्तमानकालदोळसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । महास्कंधवर्गणेगळु वर्त्तमानकालदोळु तु मत्ते एकमेयक्कुं । महास्कंधमें बुदावुदें दोडे भवनंगळुं विमानंगळुमष्टपृथ्विगळु मेरुगळुं कुलशैलादिगळ्गेकीभावमक्कुमदाव तेरदिंदमसंख्यातयोजनंगळनंतरिसिद्दवक्कें कत्वमें दोडे एकबंधनबद्धसूक्ष्मपुद्गलस्कंधंगळिंदं समवेतंगळ्गंतराभावमक्कुमप्पुदरिंदं ।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा पोग्गलदव्वा हु जिणादिट्ठा ॥६०१॥

अधस्तनोत्कृष्टाः पुना रूपाधिका उपरितनजघन्याः खलु । इति त्रयोविंशतिविकल्पाः पुद्गलद्रव्याणि खलु जिनदृष्टानि ॥

ई त्रयोविंशतिवर्गणेगळोळु परमाणुवर्गणेयुळियलुळिद द्वाविंशतिवर्गणेगळ अधस्तनोत्कृष्टवर्गणेगळु रूपाधिकमादुवादोडे तत्तदुपरितनवर्गणेगळजघन्यवर्गणेगळप्पुवु खलु नियमदिंदमितु त्रयोविंशतिवर्गणाविकल्पंगळु पुद्गलद्रव्यंगळेंदु जिनरुगळिंदं पेळल्पट्टुवु खलु स्फुट-

महामत्स्यादिषु आवल्यसख्यातैकभाग । सूक्ष्मनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले जले स्थले आकाशे वा आवल्यसख्यातैकभाग । उत्कृष्टान्यपि महामत्स्येषु तदालापानि । अस्मिन् सचित्तवर्गणात्रये अजघन्यानुत्कृष्टानि वर्तमानकाले असख्यातलोकमात्राणि भवन्ति । महास्कन्धवर्गणा वर्तमानकाले एका सा तु भवनविमानाष्टपृथ्वीमरुकुलशैलादीनामेकीभावरूपा । कथ संख्यातासख्यातयोजनान्तरितानामेकत्व ? एकबन्धनबद्धसूक्ष्मपुद्गलस्कन्धै समवेतानामन्तराभावात् ॥६००॥

त्रयोविंशतिवर्गणासु अणुवर्गणात शेषाणा अधस्तनवर्गणोत्कृष्टानि रूपाधिकानि भूत्वा तदुपरितनवर्गणाना जघन्यानि भवन्ति खलु नियमेन इति त्रयोविंशतिवर्गणाविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि जिनैरुक्तानि

स्वयम्भूरमण द्वीपके दावानल आदिमें आवलीके असंख्यातवे भागमात्र पायी जाती है। बादरनिगोदवर्गणाका जघन्य वर्तमानकालमें क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें चार पाया जाता है। उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा महामत्स्य आदिमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण पायी जाती है। सूक्ष्मनिगोदवर्गणाका जघन्य वर्तमानकालमें जल, स्थल अथवा आकाशमें आवलीके असंख्यातवें भाग पाया जाता है। उसका उत्कृष्ट भी महामत्स्योंमें आवलीके असंख्यातवे भाग पाया जाता है। प्रत्येक शरीर, बादरनिगोद और सूक्ष्मनिगोद इन तीन सचेतन वर्गणाओंमें अजघन्य और अनुत्कृष्ट अर्थात् मध्यमभेद वर्तमानकालमें असंख्यात लोकमात्र पाये जाते हैं। वर्तमानकालमें महास्कन्धवर्गणा एक है वह भवनवासियोके भवन, देवोंके विमान, आठ पृथिवियाँ, सुमेरु कुलाचल आदिका एक स्कन्धरूप है।

शंका—उनमे तो संख्यात-असंख्यात योजनका अन्तराल है वे एक कैसे है ?

समाधान—उनके मध्यमें जो सूक्ष्म पुद्गल स्कन्ध है वे सब उक्त विमानादिके साथ एक बन्धनमें बद्ध होनेसे उनमें अन्तराल नहीं है ॥६००॥

तेईस वर्गणाओमें अणुवर्गणाको छोड़कर शेष नीचेकी वर्गणाओंके उत्कृष्टमें एक अधिक करनेसे नियमसे ऊपरकी वर्गणाओंके जघन्य होते है। इस प्रकार जिनदेवने तेईस

मागि। ई त्रयोविंशतिवर्गणेगळोळु प्रत्येकवर्गणेयुं बादरनिगोदवर्गणेयुं सूक्ष्मनिगोदवर्गणेयु-मेंबी मूरुं वर्गणेगळु सचित्तवर्गणेगळवरोळु अयोगिचरमसमयदोळु प्रथमप्रत्येकशरीरवर्गणेयोळु जघन्यवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिंदं चतुष्टयमक्कुं द्वितीयवर्गणेयोळु द्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि भवंति इंतवस्थितक्रमदिंदमनंतवर्गणेगळु सलुत्तंविरलु बळिक्कल्लि मेले आवुदो दनंतरवर्गणेया वर्गणेयोळु द्रव्यंगळु स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन पंच भवंति सदृशधनिकानि। इंतवस्थितक्रमदिंदमनंतवर्गणेगळु सलुत्तं विरलु बळिक्कमावुदो दनंतरवर्गणेयदरोळु वर्गणेगळु कथंचिदुंटु कथंचिदिल्लि येत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडा-गळु एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिंदं सदृशधनिकंगळु षड्जीवंगळप्पुवी क्रमदिंदं सप्ताष्ट-सप्तषट्पंचचतुस्त्रिद्विसदृशधनिकवर्गणेगळु संभविसुववु। ई यभिप्रायव मध्यप्ररूपणे भव्यसिद्ध-प्रायोग्यस्थानंगळोळु गृहीतव्यमक्कु-। मल्लिदं मेले यावुदोदनंतरवर्गणेयदु संसारिजीवप्रायोग्य-वर्गणेयक्कुमदरोळु वर्गणेगळु कथंचिदुंटु कथंचिदिल्ल एत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळु एकं मेणु द्वयं

खलु स्फुटम्। तासु प्रत्येकबादरनिगोदसूक्ष्मनिगोदवर्गणाः तिस्रः सचित्ता.। तत्र अयोगिचरमसमये प्रत्येकशरीर-जघन्य स्यादस्ति स्यान्नास्ति ? यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि। तथा तद्द्वितीय-वर्गणाद्रव्य स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि इत्यवस्थितक्रमेणा-नन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्य स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वय वा त्रयं वा उत्कृष्टेन पञ्च इत्यवस्थितक्रमेण अनन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्यं कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति। यद्यस्ति तदा एक वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन षट् अनेन क्रमेण सप्ताष्ट सप्तषट् पञ्चचतुस्त्रिद्विसदृशधनिकानि भवन्ति। इयं यवमध्यप्ररूपणा भव्यसिद्धप्रायोग्यस्थानेषु ग्राह्या। अनन्तरवर्गणा सा संसारिजीवप्रायोग्या तद् द्रव्य कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एक वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसख्यातैकभागः इत्यवस्थित-

---

वर्गणाके भेद लिये हुए पुद्गल द्रव्योंका कथन किया है। उनमें प्रत्येक शरीर, बादरनिगोद और ये तीन वर्गणा सचित्त है। उनका विशेष कहते है—उनमें-से अयोगकेवलीके अन्तिम समयमें पायी जानेवाली जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा लोकमें होती भी है और नही भी होती। यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे चार तक होती है। उस जघन्य वर्गणासे एक परमाणु अधिक द्वितीय प्रत्येक शरीरवर्गणा होती भी है और नहीं भी होती। यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे चार होती है। इसी अवस्थित क्रमसे एक-एक परमाणु बढाते-बढ़ाते अनन्त वर्गणाओंके होनेपर उसके अनन्तर एक परमाणु अधिक वर्गणा लोकमे होती भी है और नहीं भी होती। यदि है तव एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे पॉच होती हैं। इसी अवस्थित क्रमसे एक-एक परमाणु बढ़ाते-बढाते अनन्त वर्गणाएँ वीतनेपर पुनः एक परमाणु अधिक वर्गणा होती भी है और नही भी होती। यदि है तव एक या दो या तीन वा उत्कृष्टसे छह होती हैं। इसी क्रमसे अनन्तवर्गणा पर्यन्त उत्कृष्ट सात, आठ, सात, छह, पॉच, चार, तीन-दो वर्गणा लोकमे समान परमाणुओंके परिमाणको लिये हुए होती है। यह यवमध्यप्ररूपणा मोक्ष जानेवाले भव्य जीवोंके योग्य स्थानोंमें ग्रहण करनेके योग्य है। अव जो अनन्तरवर्गणा संसारि जीवोंके योग्य हैं उसे कहते है। पूर्वमे कही प्रत्येक

मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळु सदृशधनिकंगळु संभविसुवंतवस्थितक्रमदिंदमनंतवर्ग्गणेगळु सलुत्तं विरलु बळिकमावुदो दनंतवर्ग्गणेयदरोळु वर्ग्गणेगळु कथंचिदुदु कथंचिदिल्ल एत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळु एकं मेणु द्वय मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रगळु सदृशधनिकंगळु घटियिसुगुमंतु घटिसुदो दं विशेषमुंटावुदे दोडे पूर्व्ववर्ग्गणेगळ

५ नोडलिवेकवर्ग्गणेयिंदं विशेषाधिकंगळप्पुवु $\frac{८}{a}$

मत्तमी विधानदिंदमेयनंतवर्ग्गणेगळु नडेववु । मत्तावुदो दनंतरोपरितनवर्ग्गणेगळोळधस्तनाधस्तनवर्ग्गणेगळं नोडळेकैकवर्ग्गणेगळिंदं विशेषाधिकंगळप्पुवितु । ई विधानदिंदं नडसल्पडुवुदन्नेवरं यवमध्यमन्नेवरं मत्ता यवमध्यवर्ग्गणेगळु क्वचिदस्ति क्वचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वय मेणु त्रयं मेणु उत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवंतागुत्तलुं पूर्व्वोक्तक्रमदिंदमनंतराधस्तन सदृशधनिकवर्ग्गणेगळं नोडलेकवर्ग्गणेयिंदं विशेषाधिकंगळप्पुवु मत्तमिवुमनंतवर्ग्गणेगळवस्थितक्रमदिंदं नडेववु । बळिक्क अल्लिदं मेले यावुदो दनंतरवर्ग्गणेयद्रु स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पु-

---

क्रमेण अनन्तरवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्य कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वय वा त्रय उत्कृष्टेन आवल्यसख्यातैकभाग । अयं पूर्वस्मादेकरूपाधिक - $\frac{२}{a}$ एवमनन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरोपरितनवर्गणासु अधस्तनाधस्तनवर्गणाभ्य एकैकाधिका भवन्ति । एव यावत् यवमध्यं तावन्नेतव्यम् । यवमध्यवर्गणासदृशधनिकद्रव्य क्वचिदस्ति क्वचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एक वा द्वय वा त्रय वा उत्कृष्टेन आवल्यसख्यातैकभाग. । अय ततोऽप्येकरूपाधिकः । एवमनन्तवर्गणा अतीत्य अनन्तरवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति, यद्यस्ति तदा एक वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसख्यातैकभाग । अयं पूर्वस्मादेकरूपहीन. । एव यावदुत्कृष्टा प्रत्येकवर्गणा तावन्नेयम् । तदुत्कृष्टमपि स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एक वा द्वय वा त्रय वा उत्कृष्टेन

वर्गणासे एक परमाणु अधिक जो प्रत्येक वर्गणा है वह लोकमें होती भी है और नहीं भी होती। यदि है तब एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवे भाग होती है। इसी क्रमसे एक-एक परमाणु बढाते-बढाते अनन्त वर्गणा बीतनेपर उससे एक परमाणु अधिक अनन्तरवर्गणा कथंचित् है, कथंचित् नही है। यदि है तब एक या दो या तीन उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवे भाग होती है। पहलेसे इसका प्रमाण एक अधिक है। इस प्रकार अनन्त वर्गणा बीतनेपर अनन्तरकी ऊपरकी वर्गणाओंमें नीचे-नीचेकी वर्गणासे एक-एक अधिक परमाणु होता है। इस प्रकार जबतक यवमध्य आये तब तक ले जाना चाहिए। यवमध्यमें जितने परमाणुओंके स्कन्धरूप प्रत्येक वर्गणा होती है उतने-उतने परमाणुओंके स्कन्धरूप प्रत्येक वर्गणा लोकमें होती भी हैं या नहीं भी होतीं ? यदि हैं तो एक या दो या तीन उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण होती हैं। यह उससे भी एक अधिक है। ऐसे अनन्त वर्गणा बीतनेपर अनन्तर जो वर्गणा है वह कथंचित् है कथंचित् नहीं है। यदि है तो एक दो या तीन या उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवे भाग है।

वंतागुत्तलुं पूर्व्ववर्ग्गणेयं नोडलेकवर्ग्गणेयिंदं विशेषहीनंगळप्पुविंतेन्नेवरमुत्कृष्टप्रत्येकसदृशधनिक-वर्ग्गणेगळन्नेवरं आ उत्कृष्टप्रत्येकवर्ग्गणेयोळु वर्ग्गणेगळु स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागंगळु संभविसुवंतु ज्ञातव्यमक्कुं। एंतो प्रत्येकवर्ग्गणे भव्यसिद्धरुमभव्यसिद्धरुमनाश्रयिसि पेळल्पट्टुदंते बादरनिगोदवर्ग्गणेयोळं पेळल्पट्टुवुदु बेरेपेळ्केयिल्ल सूक्ष्मनिगोदवर्ग्गणेयोळेकें दोडे जलस्थलाकाशादिगळोळु सर्व्वजघन्यसूक्ष्मनिगोद-वर्ग्गणेयोळु वर्ग्गणेगळु कथंचिदुंदु कथंचिदिल्ल। एत्तलानुमुंटक्कुमप्पोडागळेकं मेणु द्वयं मेणु त्रयं मेणुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुविन्तभव्यसिद्धप्रायोग्यप्रत्येकशरीरंगळ्गे पेळल्पट्ट विधानदिंदं नडसल्पडुवुदेन्नेवरं यवमध्यमन्नेवरं मायवमध्यदोळमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळु सदृशधनिकंगळप्पुवु। मत्तं प्रत्येकशरीरवर्ग्गणाविधानदिंदं मेले नडसल्पडुवुदेन्नेवरमुत्कृष्टसूक्ष्म-

---

आवल्यसंख्यातैकभाग इति प्रत्येकवर्गणा भव्यसिद्धान् अभव्यसिद्धाश्च आश्रित्योक्ता। एव वादरनिगोदवर्गणा-यामपि वक्तव्यं, पृथक् कथनं नास्ति। सूक्ष्मनिगोदवर्गणाया तु जलस्थलाकाशादिषु सर्वजघन्यं कथञ्चिदस्ति कथञ्चिन्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वय वा त्रयं वा उष्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभाग· एवमभव्यसिद्धप्रायोग्य-प्रत्येकशरीरवन्नेतव्य यावत् यवमध्यं तावत्। तत्रापि आवल्यसंख्यातैकभागसदृशधनिकानि भवन्ति। पुनः प्रत्येकवर्गणावन्नेतव्य यावत्तद्वर्गणोत्कृष्ट तावत्। तदपि एकं वा द्वय वा त्रय वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैक-

---

यह प्रमाण यवमध्य सम्बन्धी पूर्व प्ररूपणासे एक हीन है। इस प्रकार उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर-वर्गणा तक ले जाना चाहिए। अर्थात् एक परमाणुके बढनेसे एक वर्गणा होती है। सो अनन्त-अनन्त वर्गणा होनेपर उत्कृष्टमें-से एक घटाना। उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा पर्यन्त ऐसा करना चाहिए। उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा भी लोकमें कथंचित् है कथंचित् नहीं है। यदि है तब एक या दो या तीन या उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवे भाग होती है। इस प्रकार भव्य-अभव्य जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक वर्गणा कही। इसी प्रकार बादरनिगोद वर्गणाका भी कथन करना चाहिए। उसमें कुछ विशेष कथन नही है। जैसे प्रत्येक वर्गणामें अयोगीके अन्त समयमें सम्भव जघन्य वर्गणाको लेकर भव्योंकी अपेक्षा कथन किया है वैसे ही यहाँ क्षीणकषायके अन्त समयमें सम्भव उसके शरीरके आश्रित जघन्यबादरनिगोद वर्गणाको लेकर भव्योंकी अपेक्षा कथन जानना। सामान्य संसारीकी अपेक्षा दोनों स्थानोंमें समानता सम्भव है। आगे सूक्ष्मनिगोदवर्गणाका कथन करते है।

यहाँ भव्यकी अपेक्षा कथन नहीं है। अतः सूक्ष्म निगोदवर्गणा लोकमें हों भी न भी हों। यदि होती है तो एक, दो या तीन उत्कृष्टसे आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। आगे जैसे संसारियोंकी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणाका कथन किया वैसे ही यवमध्य पर्यन्त अनन्तानन्त वर्गणा होनेपर उत्कृष्टमें एक-एक बढ़ाना। पीछे उत्कृष्ट सूक्ष्म वर्गणा पर्यन्त एक-एक घटाना। सामान्यसे सर्वत्र उत्कृष्टका प्रमाण आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। यहाँ सर्वत्र अभव्य सिद्धोंके योग्य प्रत्येक बादर सूक्ष्म निगोदवर्गणाकी यवाकार प्ररूपणामें गुणहानिका गच्छ जीवराशिसे अनन्तगुणा जानना। नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण यवमध्यमें ऊपर और नीचे आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण जानना। इसका अभिप्राय यह है कि संसारी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणामें जो यवमध्य प्ररूपणा कही है उसमें लोकमें पाये जानेकी अपेक्षा जितने एक-एक परमाणु बढ़ने

निगोदवर्गणावसानमन्नेवरमा उत्कृष्टसूक्ष्मनिगोदवर्गणेयोळु वर्गणेगळु येनितु संभविसुगुमे दोडे दु मेणु यरडु मेणु मूरुत्कृष्टदिंदमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवल्लि सर्व्वत्राभव्यसिद्धप्रायोग्ययव-मध्यंगळोळु गुणहान्यध्वानं सर्व्वजीवंगळं नोडलनंतगुणितमक्कुं १६ ख नानागुणहानिशलाकेगळु यवमध्यदत्तणिंद केळगेयुं मेगेयुमावल्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु ८।

ə

५ पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥६०२॥

पृथ्वी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयः कर्म्मपरमाणुः षड्विधभेद भणितं पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ॥

पृथ्वियें दुं जलमें दुं छायेयें दुं चक्षुरिंद्रियविषयवर्ज्जितशेषेंद्रियचतुष्टयविषयमें दुं कर्म्ममें दुं
१० परमाणुमें दितु पुद्गलद्रव्य षट्प्रकारममुळ्ळुदे दु जिनवररिंदं भणित निरूपिसल्पट्टुदु ।

भागो भवति । तत्र सर्वत्र अभव्यसिद्धप्रायोग्ययवमध्येषु गुणहान्यध्वान सर्वजीवेभ्योऽनन्तगुण १६ ख नानागुण-हानिशलाकायवमध्यादध. उपर्यपि आवल्यसख्यातैकभाग' ८ ॥६०१॥

ə

पृथ्वी जल छाया चक्षुर्वर्जितशेषचतुरिन्द्रियविषयः कर्मपरमाणुश्चेति पुद्गलद्रव्य षोढा जिन-वरैर्भणितम् ॥६०२॥

---

१५ रूप जो वर्गणा भेद है उन भेदोंका प्रमाण तो द्रव्य है। और जिन वर्गणाओंमें उत्कृष्ट पानेकी अपेक्षा समानता पायी जाती है उनका समूह निषेक है और उनका जो प्रमाण है वह स्थिति है। तथा एक गुणहानिमें निषेकोंका जो प्रमाण है वह गुणहानिका गच्छ है। उसका प्रमाण जीवराशिसे अनन्त गुना है। तथा यवमध्यके ऊपर और नीचे जो गुणहानिका प्रमाण है वह नाना गुणहानि है। सो प्रत्येक आवलीका असंख्यातवाँ भाग मात्र है।

२० इस प्रकार द्रव्यादिका प्रमाण जानकर जैसे निषेकोंमें द्रव्यका प्रमाण लानेका विधान है वैसे ही उत्कृष्ट पानेकी अपेक्षा समानरूप वर्गणाओंका प्रमाण यवमध्यसे ऊपर और नीचे चय घटता क्रम लिये जानना।

शंका—यहाँ तो प्रत्येक आदि तीन सचित्त वर्गणाओके अनन्त भेद कहे और एक-एक भेदरूप वर्गणा लोकमें आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण सामान्य रूपसे कही। किन्तु
२५ पहले मध्यभेदरूप सचित्त वर्गणा सब असंख्यात लोक प्रमाण ही कही है। सो उत्कृष्ट और जघन्यको छोड़ सब भेद मध्य भेदोंमें आ जाते है वहाँ ऐसा प्रमाण कैसे सम्भव है ?

समाधान—यहाँ सब भेदोंमें ऐसा कहा है कि होते भी है, नहीं भी होते। यदि होते है तो एक दो आदि उत्कृष्ट आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण होते है। सो यह कथन नाना कालकी अपेक्षा है, किसी एक वर्तमान कालकी अपेक्षा वर्तमान कालमें सब मध्यभेद-
३० रूप प्रत्येकादि वर्गणा असंख्यात लोक प्रमाण ही पायी जाती है। अधिक नहीं। उनमें-से किसी भेदरूप वर्गणाकी नास्ति ही है और किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाणसे पायी जाती है। तथा किसी भेदरूप वर्गणा उत्कृष्ट प्रमाणको लिये हुए पायी जाती है।

इस प्रकार तेईस वर्गणाओंका कथन किया ॥६०१॥

पृथ्वी, जल, छाया, चक्षुको छोड़ शेष चार इन्द्रियोका विषय और कार्माणस्कन्ध
३५ तथा परमाणु इस प्रकार जिनेन्द्र देव पुद्गल द्रव्यके छह भेद कहे है ॥६०२॥

बादरबादरबादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ॥६०३॥

बादरबादरं बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च। सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं धरादिकं भवति षड्भेदं ॥

पृथ्विरूपपुद्गलद्रव्यमं बादरबादरमेंबुदु। छेदिसल्कं भेदिसल्कं अन्यत्रमोय्वडं शक्यमप्पुदु बादरबादरमेंबुदर्त्थं। जलमं बादरमेंबुदु। आवुदोंदु छेदिसल्कं भेदिसल्कं अशक्यमन्यत्रमोय्वडे शक्यमदु बादरमेंबुदर्त्थं। छायेयं बादरसूक्ष्ममेंबुदु। आवुदोंदु छेदिसल्कं भेदिसल्कदुमन्यत्रमोय्वड-शक्यमप्पुददु बादरसूक्ष्ममेंबुदर्त्थं। आवुदोंदु चक्षुरिंद्रियरहितशेषचतुरिंद्रियविषयमप्प बाह्यार्त्थमदं सूक्ष्मस्थूलमेंबुदु। कर्म्ममं सूक्ष्ममेंबुदु। आवुदोंदु द्रव्यं देशावधिपरमावधिविषयमदु सूक्ष्ममेंबुदर्त्थं। परमाणुवं सूक्ष्मसूक्ष्ममेंबुदु। आवुदोंदु पुद्गलद्रव्यमदु सर्व्वावधिविषयमेयादोडे सूक्ष्मसूक्ष्ममें-बुदर्त्थं।

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ॥६०४॥

स्कंधं सकलसमर्त्थं तस्य चार्द्धं भणंति देश इति। अर्द्धार्द्धं च प्रदेशः अविभागी चैव परमाणुः ॥

स्कंधमेंबुदु सर्व्वांशंगळिदं संपूर्णमक्कुमदरर्द्धमं देशमेंदितु पेळ्वरु। अर्द्धस्यार्द्धमर्द्धार्द्धमदं प्रदेशमेंदु पेळ्वरु। अविभागियप्पुदरिंदं परमाणुवेंदु पेळ्वरु गणधरादिपरमागमज्ञानिगळु। इंतु स्थानस्वरूपाधिकारंतिर्द्दुदु।

पृथ्वीरूपपुद्गलद्रव्य वादरवादरं छेत्तु भेत्तु अन्यत्र नेतु शक्यं तद्वादरवादरमित्यर्थ.। जलं वादरं, यच्छेत्तु भेत्तुमशक्य, अन्यत्र नेतु शक्यं तद्वादरमित्यर्थः। छाया वादरसूक्ष्मं यच्छेत्तु भेत्तुमन्यत्र नेतुमशक्यं तद्वादरसूक्ष्ममित्यर्थ । यः चक्षुर्वर्जितचतुरिन्द्रियविषयो बाह्यार्थः तत्सूक्ष्मस्थूलम्। कर्म सूक्ष्मं, यद्द्रव्यं देशा-वधिपरमावधिविषय तत्सूक्ष्ममित्यर्थः। परमाणुसूक्ष्मसूक्ष्मं तत्सर्वावधिविषयं तत्सूक्ष्मसूक्ष्ममित्यर्थ ॥६०३॥

स्कन्ध सर्वांशसंपूर्णं भणन्ति तदर्धं च देश, अर्धस्यार्धं प्रदेशं अविभागिभूतं परमाणुम् ॥६०४॥ इति स्थानस्वरूपाधिकार ।

पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादर-बादर है। जिसका छेदन-भेदन किया जा सके, जिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाया जा सके वह बादर-बादर है। जिसका छेदन-भेदन तो न हो सके किन्तु अन्यत्र ले जाया जा सके वह बादर है। छाया बादरसूक्ष्म है। जो छेदन-भेदन और अन्यत्र ले जानेमें अशक्य हो वह बादर सूक्ष्म है। जो चक्षुको छोड़ शेष चार इन्द्रियोंका विषय बाह्य पदार्थ है वह सूक्ष्म स्थूल है। कर्मस्कन्ध सूक्ष्म है। जो द्रव्य देशावधि और परमावधिज्ञानका विषय होता है वह सूक्ष्म है। परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म है। जो सर्वावधिज्ञानका विषय है वह सूक्ष्मसूक्ष्म है ॥६०३॥

जो सब अंशोसे पूर्ण हो उसे स्कन्ध कहते है। उसके आधेको देश कहते हैं। और आधेके आधेको प्रदेश कहते है। जिसका विभाग न हो सके वह परमाणु है ॥६०४॥

स्थानाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. म चक्षुरिंद्रियविषयवर्ज्ज नार्लिकद्रियविषयमप्प ।

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्मतियं ।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ॥६०५॥

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवति धर्म्मत्रयं । वर्त्तनक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ॥

देशांतरप्राप्तिहेतुवं गतियें बुदु । तद्विपरीतमं स्थानमें बुदु । अवकाशदानमनवगाहमें बुदु । गतिक्रियावंतंगळप्पजीवपुद्गलंगळ गतिक्रियासाधनभूतं धर्म्मद्रव्यमक्कुं । मत्स्यगमनक्रियेयोळु जलमें तंते । स्थानक्रियावतंगळप्प जीवपुद्गलंगळ स्थानक्रियासाधनभूतमधर्म्मद्रव्यमक्कुं पथिकजनंगळ स्थानक्रियेयोळु च्छाये यें तंतें ।

अवगाहक्रियावंतगळप्प जीवपुद्गलादिद्रव्यंगळ अवगाहक्रियेयोळु साधनभूतमाकाशद्रव्यमक्कुमिप्पंगे वसति यें तंते, इल्लियें दपं क्रियावंतंगळप्प अवगाहिजीवपुद्गलंगळगे अवकाशदानं युक्तमक्कुमितरधर्म्मादिद्रव्यंगळु निष्क्रियंगळुं नित्यसंबंधंगळुमवक्के तवगाहदानमें दोडंतल्तु येक्कें दोडुपचारदिंद तत्सिद्धियक्कुमप्पुदरिंदं । यें तीगळु गमनाभावमागुत्तिरलुं सर्व्वगतमाकाशमें दितु पेळल्पट्टुदु सर्व्वत्र सद्भावमप्पुदरिंदमंते धर्म्मादिगळगे अवगाहनक्रियाभावदोळं सर्वत्र व्याप्तिदर्शनदिंदमवगाहमेंतुपचरिसल्पट्टुदु । मत्तमें दपमे त्तलानुमवकाशदानमाकाशक्के स्वभावमा-

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गति । तद्विपरीत स्थानम् । अवकाशदानमवगाहः । गतिक्रियावतोर्जीवपुद्गलयो तत्क्रियासाधनभूत धर्मद्रव्य मत्स्याना जलमिव । स्थानक्रियावतोर्जीवपुद्गलयो. तत्क्रियासाधनभूतमधर्मद्रव्यं पथिकाना छायेव । अवगाहनक्रियावता जीवपुद्गलादीना तत्क्रियासाधनभूतमाकाशद्रव्यं तिष्ठतो वसतिरिव । ननु क्रियावतोरवगाहिजीवपुद्गलयोरेवावकाशदान युक्त धर्मादीना तु निष्क्रियाणा नित्यसंबद्धाना तत् कथ ? इति तन्न उपचारेण तत्सिद्धे । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् तथा धर्मादीना अवगाहनक्रियाया अभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनात् अवगाह इत्युपचर्यते ॥

एक देशसे दूसरे देशको प्राप्त होनेमे जो कारण है वह गति है। उससे विपरीत स्थान है। अवकाशदानको अवगाह कहते हैं। जैसे मत्स्योंको गमनमें सहायक जल है वैसे ही गतिरूप क्रिया करते हुए जीव और पुद्गलोंकी गतिक्रियामें सहायक धर्मद्रव्य है। जैसे छाया पथिकोंके ठहरनेका साधन है वैसे ही ठहरने रूप क्रिया परिणत जीव पुद्गलोको ठहरने रूप क्रियामें साधन अधर्म द्रव्य है। जैसे निवास करनेवालोको वसतिका साधनभूत है वैसे ही अवगाहन क्रियावाले जीव पुद्गल आदिको उस क्रियामे साधनभूत आकाशद्रव्य है।

शंका—क्रियावान् अवगाही जीव और पुद्गलोंको ही अवकाश देना युक्त है। धर्म आदि तो निष्क्रिय हैं, नित्य सम्बद्ध है उन्हें अवकाशदान कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसा कथन उपचारसे किया गया है। जैसे आकाशमे गमनका अभाव होनेपर भी उसे सर्वगत कहा जाता है क्योकि वह सर्वत्र पाया जाता है। वैसे ही धर्मादिमें अवगाह क्रिया न होनेपर भी समस्त लोकाकाशमे व्याप्त होनेसे अवगाहका उपचार किया जाता है।

दोडे वज्रादिगळिंदं लोष्टादिगळगे भित्त्यादिगळिंदं गवादिगळगेयुं व्याघातमेय्यदल्पडदे काणल्पट्टु-दल्ते व्याघातमदु कारणदिंदमी याकाशक्कवगाहदानं कुंदल्पडुगुमेंदितेनल्वेडेकेंदोडे दोषमल्तप्पुदे कारणमागि।

अदेंतेंदोडे स्थूलंगळप्प वज्रलोष्टादिगळगे परस्परव्याघातमेंदितिदक्के अवकाशदानसामर्थ्यं कुंदल्पडदल्लि अवगाहिगळगेये व्याघातमप्पुदरिंदं वज्रादिगळगे मत्ते स्थूलंगळप्पुदरिंदं परस्परं प्रत्यवकाशदानमं माळ्पुवल्लवेंदेंदितु दोषक्कवकाशमिल्ल। आवुवु केलवु पुद्गलंगळु सूक्ष्मंगळवु परस्परं प्रत्यवकाशदानमं माळ्पुवु येत्तलानुमितादोडे इदाकाशक्कसाधारणलक्षणं मत्तेकेंदोडे :— इतरद्रव्यंगळगं तत्सद्भावमप्पुदरिंदमेंदितेनल्वेडेकेंदोडे सर्व्वपदार्थंगलो साधारणावगाहनहेतुत्वमी याकाशक्कसाधारणलक्षणमेंदितु दोषमिल्ल। अलोकाकाशदोळु अवगाहदानमिल्लप्पुदरिंदमभाव-मक्कुमेंदेत्तलानुमेंबोडयुक्तमेकेंदोडे स्वभावपरित्यागमिल्लमप्पुदरिंदं। वर्त्तनक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु। जीवादिवर्त्तनक्रियावंतंगळप्प द्रव्यंगळ वर्त्तनक्रियासाधनभूतं तु मत्ते नियमदिंदं कालद्रव्यमक्कुं।

अथ यदि अवकाशदानं आकाशस्य स्वभावस्तदा वज्रादिभिर्लोष्टादीना भित्त्यादिभिर्गवादीना च व्याघातो माभूत्, दृश्यते च व्याघात.। तेन आकाशस्य अवगाहदान हीयते इति नाशङ्कनीय, वज्रलोष्टादीनां स्थूलत्वाद् व्याघातेऽपि अवगाहिनामेव व्याघातात् तस्य अवगाहदानसामर्थ्यह्रासाभावात्। सूक्ष्मपुद्गलाना परस्परं प्रत्यवकाशदानकारणात्। यद्येव तर्हि आकाशस्य तदसाधारणलक्षणं न इतरद्रव्याणामपि तत्सद्भावात् इति न मन्तव्य, सर्वपदार्थाना साधारणावगाहनहेतुत्वस्यैव आकाशस्यासाधारणलक्षणत्वात्। तर्हि अलोकाकाशे अवगाहनदानाभावात् अभावः स्यात् ? तदपि न, स्वभावपरित्यागाभावात्। तु—पुन. द्रव्याणा वर्तनाक्रिया-साधनभूत नियमेन कालद्रव्यं भवति ॥

शंका—अवकाश देना आकाशका स्वभाव है तो वज्र आदिसे लोष्ठ आदिका और दीवार आदिसे गाय आदिका व्याघात—टक्कर नहीं होना चाहिए। किन्तु व्याघात देखा जाता है अतः आकाशके अवगाह देनेकी बात नहीं घटती ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए; क्योंकि वज्र, लोष्ठ आदि स्थूल हैं उनका व्याघात होनेपर अवगाहियोंमें ही व्याघात हुआ। इससे आकाशके अवकाशदानकी शक्तिमें कोई कमी नहीं आती; क्योंकि सूक्ष्म पुद्गल परस्परमें भी एक दूसरेको अवकाश देते हैं, किन्तु स्थूलोंमें ऐसा सम्भव नहीं है।

शंका—यदि सूक्ष्म पुद्गल भी परस्परमें अवकाशदान करते है तो अवकाश देना आकाशका असाधारण लक्षण नहीं हुआ; क्योंकि यह लक्षण अन्य द्रव्योंमें भी पाया जाता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है; क्योंकि सब पदार्थोंको अवगाह देनेमें साधारण कारण होना ही आकाशका असाधारण लक्षण है।

शंका—तब अलोकाकाशमें तो आकाश किसीको अवकाश दान नहीं करता अतः वहाँ उसका अभाव मानना होगा।

समाधान—ऐसा कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। तथा द्रव्योंकी वर्तनाक्रियामें साधनभूत नियमसे कालद्रव्य है ॥६०५॥

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पोग्गलाणि पुणो ।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण ॥६०६॥

अन्योन्योपकारेण च जीवा वर्त्तंते पुद्गलाः पुनः । देहादीनां निर्वर्त्तनकारणभूताः खलु नियमेन ॥

अन्योन्योपकारदिंदं स्वामिभृत्यनाचार्य्यशिष्यनें दितेवमादिभावदिंदं वर्त्तनं परस्परोपग्रहमक्कुं । अन्योन्योपकारमेंबुदक्कुमेंबुदर्थमदेतेंदोडे स्वामि यें बं भृत्यरुगळगे वित्तत्यागाद्युपकारदोळु वर्त्तिसुगुं । भृत्यरुगळु हितप्रतिपादनदिंदमुपहितप्रतिषेधनदिंदमुं वर्त्तिसुवरु । आचार्य्यनुमुभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनदिंदं तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठानदिंदमुं शिष्यरुगल्गुपकारदोलु वर्तिसुगुं । शिष्यरुगळुं तदानुकूल्यवृत्तियिंदमुपकाराधिकारंगळोळु वर्त्तिसुगुं । इंतन्योन्योपकारदिंद जीवंगळु वर्त्तिसुववु । च शब्ददिंदमनुपकारदिंदमुं वर्त्तिपुवु । अनुभयदिंदमुं वर्त्तिपुवु । पुद्गलाः पुनर्देहादीनां खलु निर्वर्त्तनकारणभूताः नियमेन पुद्गलंगळु मत्ते जीवंगळ देहादिगलनिर्वर्त्तनकारणभूतंगळप्पुवल्लि-देहग्रहणदिंदं कर्म्मनोकर्म्मंगळगे ग्रहणमक्कुं । नोकर्म्मकर्म्मवाग्मनउच्छ्वासनिःश्वासंगळ निर्वर्त्तनकारणभूतंगळु नियमदिंदं पुद्गलंगळप्पुवें बुदर्थमिल्लि पूर्व्वपक्षमं माडिदपं कर्म्ममपौद्गलिकमेकें दोडे अनाकारत्वदिंदं । आकारवंतंगळप्पौदारिकादिगळगे पौद्गलिकत्वं युक्तमें दितिदक्कुत्तरमंतल्तेकें दोडे कर्म्ममुं पौद्गलिकमेयक्कुं तद्विपाकक्के मूर्त्तिमत्सबंधनिमित्तत्वदिंदं काणल्पट्टुदु व्रीह्यादिगळगे उदकादिद्रव्यसंबंधप्रापितपरिपाकंगळगे पौद्गलिकत्वमंते कार्म्मणमुं लगुडकंटकादिमूर्त्तिमद्द्रव्योप-

अन्योन्यमुपकारेण जीवा वर्तन्ते यथा स्वामी भृत्य वित्तत्यागादिना, भृत्यस्त हितप्रतिपादनाहितप्रतिषेधादिना, आचार्य. शिष्य उभयलोकफलप्रदोपदेशक्रियानुष्ठानाभ्या, शिष्यस्त आनुकूल्यवृत्युपकाराधिकारै., चशब्दात् अनुपकारानुभयाभ्यामपि वर्तन्ते । पुद्गला पुन देहादीना कर्मनोकर्मवाङ्मनउच्छ्वासनिश्वासाना निर्वर्तनकारणभूता खलु नियमेन भवन्ति । ननु कर्मापौद्गलिक अनाकारत्वात्—आकारवतामौदारिकादीनामेव तथात्वं युक्तमिति तन्न, कर्मापि पौद्गलिकमेव लगुडकण्टकादिमूर्तद्रव्यसबन्धेन पच्यमानत्वात् । उदकादिमूर्तद्रव्यसबन्धेन व्रीह्यादिवत् । वाक् द्वेधा द्रव्यभावभेदात् । तत्र भाववाग् वीर्यान्तरायमतिश्रुतावरणक्षयोप-

जीव परस्परमे एक दूसरेका उपकार करते है । जैसे स्वामी अपने धन आदिके द्वारा सेवकका उपकार करता है और सेवक हितकी बात कहने तथा अहितसे रोकने आदिके द्वारा स्वामीका उपकार करता है । गुरु इस लोक और परलोकमें फल देनेवाले उपदेश तथा क्रियाके अनुष्ठान द्वारा शिष्यका उपकार करता है और शिष्य गुरुके अनुकूल रहकर उनका उपकार करता है । पुद्गल शरीर आदि तथा कर्म-नोकर्म, वचन, मन, उच्छ्वास, निश्वास आदिकी रचनामे नियमसे कारण होते है ।

शका—कर्म पौद्गलिक नहीं है क्योंकि उसका कोई आकार नहीं है । आकारवाले जो औदारिक आदि शरीर हैं उन्हें ही पौद्गलिक मानना युक्त है ?

समाधान—नही, कर्म भी पौद्गलिक ही है क्योंकि लाठी, काँटा आदि मूर्तद्रव्यके सम्बन्धसे ही फल देता है जैसे पानी आदि मूर्तद्रव्यके सम्बन्धसे पकनेवाले धान मूर्त है ।

द्रव्य और भावके भेदसे वाक् दो प्रकार की है । भाववाक् वीर्यान्तराय, मतिज्ञाना-

पातमागुत्तं विरलु विपच्यमानत्वदिंदं पौद्गलिकमेंदे निश्चैसल्पडुवुदु। वाग् द्विप्रकारमक्कुं द्रव्यवाक् भाववाक्केंदितल्लि भाववाक्केंबुदु वीर्य्यांतरायनतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामलाभनिमित्तत्वदिंदं पौद्गलिकेयक्कुमेकेंदोडे तदभावमागुत्तिरलु तद्वृत्त्यभावमप्पुदरिंदं। तत्सामर्थ्योपेतत्वदिंदं क्रियावंतनप्पात्मनिंदं प्रेर्य्यमाणंगळप्प पुद्गलंगळु वाक्त्वदिंदं परिणमिसुवरेंदितु द्रव्यवाक्कुं पौद्गलिकेयक्कुं मेकेंदोडे श्रोत्रेंद्रियविषयत्वदिंदं इतरेंद्रियविषयमेनु कारणमागदेंदोडे तद्ग्रहणायोग्यत्वदिंदं घ्राणग्राह्यगंधद्रव्यदोळु रसाद्यनुपलब्धियंते, अमूर्त्तं वाक्के देत्तलानुमेंबेयप्पोडे युक्तमल्तेकेंदोडे मूर्त्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनदिंदं मूर्त्तिमत्त्व सिद्धियप्पुदरिंदं।

मनमुं द्विप्रकारमक्कुं द्रव्यभावभेदंदिंदल्लि भावमनस्सेंबुदु लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलालंबनदिंदं पौद्गलिकमक्कुं। द्रव्यमनमुं ज्ञानावरणवीर्य्यांतरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्ययगळप्प गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखमप्पात्मंगनुग्राहकपुद्गलंगळुमनस्त्वदिंदं परिणतंगळेंदितु पौद्गलिकमक्कुं। वोर्व्वनेंदपं :—मनं द्रव्यांतरं रूपादिपरिणमनविरहितमणुमात्र-

---

शमाङ्गोपाङ्गनामकर्मलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिका तदभावे तद्वृत्त्यभावात्। तत्सामर्थ्योपेतत्वेन क्रियावतात्मना प्रेर्यमाणपुद्गला वाक्त्वेन परिणमन्तीति द्रव्यवागपि पौद्गलिकैव श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात्। इतरेन्द्रियविषयापि कुतो न स्यात् तद्ग्रहणायोग्यत्वात् घ्राणगाह्ये गन्धद्रव्ये रसयाद्यनुपलब्धिवत्। अमूर्ता वाग् इत्यप्ययुक्तं मूर्तैर्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनात् मूर्तत्वसिद्धे। मनोऽपि तथा द्वेधा। तत्र भावमनः लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलालम्बनात् पौद्गलिकम्। द्रव्यमनोऽपि ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामकर्मलाभप्रत्ययगुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकपुद्गलाना तथात्वेन परिणमनात् पौद्गलिकम्। कश्चिदाह—मन द्रव्यान्तर रूपादिपरिणमनविरहितमणुमात्रं, पौद्गलिकं न। आचार्य आह—तेन आत्मन.

वरण और श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामक कर्मके उदयके निमित्तसे होनेसे पौद्गलिक है। उसके अभावमें भाववचन—बोलनेकी शक्ति नहीं होती। भाववचनकी शक्तिसे युक्त क्रियावान् आत्माके द्वारा प्रेरित पुद्गल वचन रूप परिणत होते है इसलिए द्रव्यवाक् भी पौद्गलिक ही है क्योंकि श्रोत्र इन्द्रियका विषय है।

शंका—जब वचन पौद्गलिक है तो अन्य इन्द्रियोंका भी विषय क्यो नही है?

समाधान—वह अन्य इन्द्रियोसे ग्रहण करनेके अयोग्य है। जैसे घ्राण इन्द्रियसे ग्राह्य सुगन्धित द्रव्यमें रसना आदि इन्द्रियोकी प्रवृत्ति नहीं होती।

वचन अमूर्तिक है ऐसा कहना भी अयुक्त है क्योकि मूर्त इन्द्रियके द्वारा शब्दका ग्रहण होता है, मूर्त दीवार आदिसे रोका जाता है, मूर्त पदार्थसे टकराता है तथा बहुत तीव्र शब्दसे मन्द शब्द दब जाता है इससे वचन मूर्तिक सिद्ध होता है। मन भी दो प्रकारका है—भावमन और द्रव्यमन। भावमन लब्धि और उपयोग लक्षणवाला है। वह पुद्गलके अवलम्बनसे होता है। इसलिए पौद्गलिक है। द्रव्यमन भी पौद्गलिक है क्योंकि ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायके क्षयोपशम तथा अंगोपांग नामकर्मके उदयसे जब आत्मा गुण-दोषके विचार, स्मरण आदिके अभिमुख होता है तो उसके उपकारी पुद्गल मन रूपसे परिणमन करते है इसलिए पौद्गलिक है। किसीका कहना है—मन एक पृथक् द्रव्य है उसमें रूपादि

मदक्के पौद्गलिकत्वमयुक्तमेंदितु येंदोडाचार्य्यनेंदपं—आ इंद्रियदोडनात्मंगे संबंधमुंटो मेणु संबंधमिल्लमो ? येत्तलानुं संबधमिल्लेंबेयप्पोडदल्तेकेंदोडे आत्मंगुपकारमागल्वेळ्कुमाउपकारमं माडदु इंद्रियक्कं साचिव्यमं सचिवत्वमुम माडदु अथवा संबंधमुंटेंबेयप्पोडे एकप्रदेशसंबंधमप्पुदरिंदमा अणुवुमितरप्रदेशगळोळुपकारमं माडदु। अदृष्टवशादिना मनक्कलातचक्रदंते परिभ्रमणमुंटे बेयप्पोडदुवुं संभविसदेकेंदोडे अणुमात्रक्के तत्सामर्थ्याभावमप्पुदरिंदं।

अमूर्त्तनप्पात्मंगे निष्क्रियंगे अदृष्टमप्प गुणमन्यत्रक्रियारंभदोळु समर्थमल्तु अहंगे काणल्पट्टुदु। वायुद्रव्यविशेषं क्रियावंतमुं स्पर्शनवंतमुं प्राप्तमादुदु वनस्पतियोळु परिस्पदहेतुवक्कुं तद्विपरीतलक्षणमी यणुमेंदितु क्रियाहेतुत्वाभावमक्कुं। दीर्यांतरायज्ञानावरणक्षयोपमागोपांगनामोदयापेक्षदिदमात्मनिंदुदस्यमानकण्यमप्प वायुउच्छ्वासलक्षणमप्पुदु प्राणमेंदु पेळल्पट्टुदु। आ वायुविदमेयात्मगे पोरगण वायुवनभ्यंतरीक्रियमाणनिश्वासलक्षणमपानमेंदु पेळल्पट्टुदु। इंता येरडुमात्मगे अनुग्राहिगळप्पुवेकेंदोडे जीवितहेतुत्वदिंदमा मनःप्राणापानंगळ्गे मूर्त्तिमत्वमरियल्पडुवुदेकेंदोडे प्रतिघातादिदर्शनदिंदं प्रतिभयहेतुगळप्पऽशनिपातादिगळिंद मनक्के प्रतिघात काणल्पट्टुदु। सुरादिगळि स्वादिगळिंदमप्प पूतिगंधिप्रतिभयदिंद हस्ततलपुटादिगळिंदमास्यसवरणदिंदं

सम्बन्ध स्यात् न वा ? यदि न, तन्न आत्मन उपकारेण भाव्यं तन्नोपकुर्वीत, इन्द्रियस्य साचिव्य सचिवत्व न कुर्यात्। अथ स्यात्, तदा एकदेशसम्बन्धेन सोऽणु इतरप्रदेशेषु नोपकुर्यात्। अथादृष्टवशेन तस्यालातचक्रवत्परिभ्रमण तदप्यसभाव्यं, अणुमात्रस्य तत्सामर्थ्याभावात्, अमूर्तस्य आत्मनो निष्क्रियस्यादृष्टगुण अन्यत्र क्रियारम्भे समर्थो न। वायुद्रव्य हि क्रियावत् स्पर्शवत् प्राप्तवनस्पतौ परिस्पन्दहेतु तद्विपरीतलक्षणोऽयमणुस्तादृक् क्रियाहेतुर्न स्यात्। वीर्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपागनामोदयापेक्षेणात्मनोदस्यमानकण्ठ्यवायु उच्छ्वासलक्षण. स प्राण.। तेनैव वायुना आत्मनो बाह्यवायुरभ्यन्तरीक्रियमाणो निश्वासलक्षण अपान। तौ च आत्मनोऽनुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात्, ते च मन प्राणापाना मूर्तिमन्त, मनस प्रतिभयहेत्वशनिपातादिभि

नहीं है तथा वह परमाणु बराबर है, पौद्गलिक नहीं है। आचार्य कहते है—उस अणुरूप मनका सम्बन्ध आत्माके साथ है या नहीं है। यदि नही है तो वह आत्माका उपकार नहीं कर सकता और न इन्द्रियोंकी ही सहायता कर सकता है। यदि सम्बन्ध है तो उस अणुरूप मनका सम्बन्ध आत्माके एक देशके साथ ही हो सकता है और ऐसी स्थितिमें वह अन्य प्रदेशोमे उपकार नहीं कर सकता। यदि कहोगे कि अदृष्टवश वह अणुरूप मन समस्त आत्मामे अलातचक्रकी तरह भ्रमण करता है इससे उसका सर्वत्र सम्बन्ध होता है। तो वह भी सम्भव नहीं है क्योंकि अणुमात्र मनमे ऐसी सामर्थ्यका अभाव है। तथा अमूर्त और क्रियारहित आत्माका गुण अदृष्ट अन्यमें क्रिया करानेमे समर्थ नहीं है। वायु क्रियावान् और स्पर्शवान् होनेसे प्राप्त वृक्षादिमें हलनचलन करनेमें कारण होती है। किन्तु यह अणुरूप मन तो उससे विपरीत लक्षणवाला है इसलिए उस प्रकारकी क्रियामें हेतु नहीं हो सकता। वीर्यान्तराय और ज्ञानावरणके क्षयोपशम और अंगोपांग नामकर्मके उदयकी अपेक्षासे आत्माके द्वारा जो अन्दरकी वायु बाहर निकाली जाती है उसे उच्छ्वास रूप प्राण कहते हैं। और उसी आत्माके द्वारा जो बाहरकी वायु भीतरकी ओर ली जाती है उसे निश्वास रूप अपान कहते है। ये प्राण अपान भी आत्माके उपकारी है क्योकि उसके जीवनमें हेतु होते हैं। वे मन, प्राण अपान मूर्तिमान है क्योंकि भयके हेतु वज्रपात आदिसे मनका, और

प्राणापानंगळ्गे प्रतिघातं पडेयल्पट्टुदु, श्लेष्मदिंदं मेणु अभिभवं काणल्पट्टुदु। अमूर्त्तंक्के मूर्त्तिमत्तुगळिंदभिघातादिगळागवु। अदु कारणदिंदमे आत्मास्तित्वसिद्धियक्कुमें तीगळेल्लियानुं प्रतिमाचेष्टितं प्रयोक्तृलिंगस्तित्वमनरिपुगुमंते प्राणापानादिव्यापारमुं क्रियावंतनप्पात्मनं साधिसुगुमिवल्लदेयुं मत्तं केलवुं जीवितमरणसुखदुःखनिर्व्वर्त्तनकारणभूतंगळु पुद्गलंगळप्पुवु। सदसद्वेद्योदयमंतरंगहेतुवुंटागुत्तिरलु बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशदिंदमुत्पद्यमानप्रीतिपरितापरूपपरिणामं सुखदुःखमें दु पेळल्पट्टुदु। भवधारणकारणायुराख्यकर्म्मोदयदिंदं भवस्थितियं धरिसिद जीवक्के पूर्व्वोक्तप्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदं जीवितमें दु पेळल्पट्टुदु, तदुच्छेदं मरणमें दु पेळल्पट्टुदु। ई सुखादिगळु जीवक्के पुद्गलंगळिंदमे संभविसुववु। मूर्त्तिमद्धेतु सन्निधानमागुत्तिरलु तदुत्पत्तियुंटप्पुदरिंदं। केवलं जीवंगळ शरीरादिनिर्व्वर्त्तनकारणभूतंगळु पुद्गलंगळें बुदिल्ल। पुद्गलक्कं पुद्गलंगळु निर्व्वर्त्तनहेतुगळप्पुवु। कांस्यादिगळ्गे भस्मादिगळिंदं जलादिगळ्गे कतकादिगळिंदं अयःप्रभृतिगळ्गे जलादिगळिंदं उपकारं माडल्पट्टुदु काणल्पडुगुमप्पुदरिंदं। इंतु औदारिकवैक्रियिक आहारकशरीरनामकर्म्मोदयदिंदमा मूरुं शरीरंगळु मुच्छ्वासनिश्वासमुमाहारवर्गणेयिनप्पुवु। तैजसशरीरनामकर्म्मोदयदिंदं तेजोवर्गणेयिंदं तैजसशरीरमक्कुं। कार्म्मणशरीरनाम-

---

प्राणापानयोश्च श्वादिपूतिगन्धिप्रतिभयेन हस्ततलपुटादिभिरास्यसंवरणेन श्लेष्मणा वा प्रतिघातदर्शनात्, अमूर्तस्य मूर्तिमद्भिस्तदसंभवाच्च। तत एव प्राणापानादिव्यापारादात्मनोऽस्तित्वसिद्धि प्रयोक्तुरभावे प्रतिमाचेष्टितस्येव आत्माभावे तदघटनात्। तथा सदसद्वेद्योदयान्तरङ्गहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशेन उत्पद्यमानप्रीतिपरितापरूपपरिणामौ सुखदुःखे। आयुरुदयेन भवस्थितिं बिभ्रत. प्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितं, तदुच्छेदो मरणम्। तान्यपि पौद्गलिकानि मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्तिसंभवात्। न केवल जीवशरीरादीनामेव निर्वर्तनकारणभूता पुद्गलाः पुद्गलादीनामपि कास्यादीना भस्मादीभि जलादीना कतकादिभिः अय.प्रभृतीना जलादिभिश्च उपकारदर्शनात्। एवमौदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मोदयात् आहारवर्गणायातानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च। तैजसनामकर्मोदयात् तेजोवर्गणया तैजसशरीरम्।

दुर्गन्ध आदिके भयसे हथेली आदिसे मुखको बन्द कर लेनेसे तथा जुकामसे प्राण अपानका प्रतिघात देखा जाता है। अमूर्तका मूर्तिमानके द्वारा प्रतिघात सम्भव नही है। उसी प्राण अपान आदि की क्रियासे आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि होती है। जैसे प्रयोक्ताके अभावमें यन्त्रादि मशीनमें क्रिया सम्भव नही है। तथा साता-असाता वेदनीयके उदयरूप अन्तरंग कारणके होनेपर बाह्य द्रव्यादिके परिपाकके निमित्तसे जो. प्रीतिरूप या सन्तापरूप परिणाम उत्पन्न होता है उसे सुख और दुःख कहते है। आयुकर्मके उदयसे भवमें स्थिति करते हुए श्वास-उच्छ्वास आदि क्रिया विशेषका होते रहना जीवन है और उसका छेद होना मरण है। ये भी पौद्गलिक है क्योंकि मूर्तिमान् कारणोंके होनेपर सुखादिकी उत्पत्ति होती है। पुद्गल केवल जीवोंके ही शरीरादिकी रचनामें कारण नही है पुद्गल पुद्गलोंका भी उपकार करते है। भस्मसे कांसीके बरतन आदि, निर्मली आदिसे जलादि तथा जलादिसे लोहा आदि स्वच्छ होते हैं। इसी प्रकार औदारिक, वैक्रियिक और आहारक नामकर्मके उदयसे आहारवर्गणाके रूपमें आये तीन शरीर और उच्छ्वास-निश्वास, तैजस नामकर्मके उदयसे

कर्म्मोदयदिद कार्म्मणवर्गणेयिंदं कार्म्मणशरीरमक्कुं। स्वरनामकर्म्मोदयदिद भाषावर्गणेयिंद वचनमक्कुं। नोइंद्रियावरणक्षयोपशमोपेतमप्प संज्ञिजीवक्कंगोपागनामोदयदिंदं मनोवर्गणेयिंदं द्रव्यमनमक्कुमेंबुदत्थं। ई यर्त्थम मुदण सूत्रद्वयदिदं पेळ्दप।

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधा दु तेजंगं ॥६०७॥

आहारवर्गणायास्त्रीणि शरीराणि भवति उच्छ्वासो। निश्वासोपि च तेजोवर्गणास्कंधात्तैजसांगं॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकमेंबी मूरु शरीरंगळु उच्छ्वासनिश्वासंगळुमाहारवर्गणेयिंदमप्पुवु। तेजोवर्गणास्कंधदिद तैजसशरीरमक्कुं।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं तु कम्मादो।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६०८॥

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषामनस्तु कार्म्मणात्। अष्टविधकर्म्मद्रव्यं भवतीति जिनैर्न्निर्दिष्टं॥

भाषावर्गणास्कंधगळिंदं चतुर्विधभाषेयक्कुं। मनोवर्गणास्कंधगळिंदं द्रव्यमनमक्कुं। कार्म्मणवर्गणास्कंधगळिंदं अष्टविधकर्म्मद्रव्यमक्कुमेंदितु जिनस्वामिगळिंद पेळल्पट्टुदु।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्य य कारणं तु एयादी।
संखेज्जाऽसंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा ॥६०९॥

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं बंधस्य कारण त्वेकादयः। सख्येयाऽसंख्येयानतविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः॥

कार्मणनामकर्मोदयात् कार्मणवर्गणया कार्मणशरीरम्। स्वरनामकर्मोदयाद् भाषावर्गणया वचन, नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमोपेतसज्ञिनोऽङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयात् मनोवर्गणया द्रव्यमनश्च भवतीत्यर्थ ॥६०६॥ अमुमेवार्थं सूत्रद्वयेनाह—

औदारिकवैक्रियिकाहारकनामानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च आहारवर्गणया भवन्ति। तेजोवर्गणास्कन्धै तेज शरीर भवति ॥६०७॥

भाषावर्गणास्कन्धैश्चतुर्विधभाषा भवन्ति। मनोवर्गणास्कन्धै द्रव्यमन, कार्मणवर्गणास्कन्धैरष्टविध कर्मेति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥६०८॥

तैजस वर्गणासे तैजस शरीर, कार्मण नामकर्मके उदयसे कार्मणवर्गणासे कार्मणशरीर, स्वरनामकर्मके उदयसे भाषावर्गणासे वचन और नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे युक्त संज्ञीके अंगोपांगनामकर्मके उदयसे मनोवर्गणासे द्रव्यमन बनता है ॥६०६॥

इसी अर्थको दो गाथाओंसे कहते है—

आहारवर्गणासे औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर और उच्छ्वास-निश्वास होते है। तैजसवर्गणाके स्कन्धोसे तैजसशरीर होता है ॥६०७॥

भाषावर्गणाके स्कन्धोसे चार प्रकारकी भाषा होती है। मनोवर्गणाके स्कन्धोंसे द्रव्यमन होता है और कार्मणवर्गणाके स्कन्धोसे आठ प्रकारके कर्म होते है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥६०८॥

बाह्याभ्यंतरकारणावशदिंदं स्नेहपर्य्यायाविर्भावदिंदं स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्धः स्निग्धस्य भावःस्निग्धत्वं। चिक्कणलक्षणपर्य्यायमेंबुदर्त्थं। तोयाजागोमहिष्युष्ट्रिकाक्षीरघृतंगळोळु स्निग्धगुणमेंतु प्रकर्षाप्रकर्षदिंदं वर्त्तिसुगुं। रूक्षणाद्रूक्षस्तस्य भावः रूक्षत्वं। आवुदोंदु चिक्कणलक्षणपर्य्यायमदर विपरीतपरिणामं रूक्षत्वमेंबुदर्त्थं। पांसुकणिकाशर्कराादिगळोळु रूक्षगुणमेंतु काणल्पट्टुदंते परमाणुगळोळं स्निग्धरूक्षगुणंगळ वृत्तियुं प्रकर्षाप्रकर्षदिंदमनुमानिसल्पडुगुं। स्निग्धत्वमुं रूक्षत्वमुं द्व्यणुकादिपर्य्यायपरिणमनरूपबंधक्के कारणमक्कुं। च शब्ददिंद विश्लेषक्कंयुं कारणमक्कुं। स्निग्धगुणपरिणतपरमाणुगळ्गं रूक्षगुणपरिणतपरमाणुगळ्गं परस्परश्लेषलक्षणबंधमागुत्तिरलु द्व्यणुकस्कंधमक्कुमेंबुदर्त्थमितु संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशस्कंधं योजिसल्पडुवुदु। अल्लि स्नेहगुणमेकद्वित्रिचतु संख्येयासंख्येयानंतविकल्पमक्कुमा प्रकारदिंदमे रूक्षगुणमक्कुं। संदृष्टिः—

७ ७ ०० ० ०० ७ ०० ७ ५ ४ ३ २ १	
७ ७ ०० ० ०० ७ ०० ७ ५ ४ ३ २ १	

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावेन स्निह्यतेस्मेति स्निग्ध, तस्य भाव स्निग्धत्वं चिक्कणत्वमित्यर्थः। रूक्षणात् रूक्ष., तस्य भावो रूक्षत्वं चिक्कणत्वाद्विपरीततेत्यर्थ'। स्निग्धत्वं तोयाजागोमहिष्युष्ट्रिकाक्षीरघृतादिषु, रूक्षत्व च पाशुकणिकाशर्करादिषु प्रकर्षाप्रकर्षभावेन दृश्यते तथा परमाणुष्वपि। ते स्निग्धत्वरूक्षत्वे द्व्यणुकादिपर्यायपरिणमनरूपबन्धस्य चशब्दाद्विश्लेषस्य च कारणे भवतः। स्निग्धगुणपरिणतपरमाणो' रूक्षगुणपरिणतपरमाणो स्निग्धरूक्षगुणपरिणतपरमाण्वोश्च परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवतीत्यर्थ.। एव सख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशस्कन्धोऽपि योज्य। तत्र स्नेहगुण. एकद्वित्रिचतु संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पो भवति तथा रूक्षगुणोऽपि ॥६०९॥

बाह्य और अभ्यन्तर कारणके वशसे स्नेह पर्यायके प्रकट होनेसे स्नेहपन होना स्निग्ध है। उसके भावको स्निग्धता कहते है जिसका अर्थ चिक्कणता है। रूखापनसे रूक्ष है। उसका भाव रूक्षता है। उसका अर्थ चिक्कणतासे विपरीत होना है। जल तथा बकरी, गाय, भैंस, ऊँटनीके दूध-घी आदिमें स्निग्धता व धूलि, रेत, बजरी आदिमें रूक्षता हीनाधिक रूपसे देखी जाती है। इसी तरह परमाणुओंमें भी होती है। वह स्निग्धता और रूक्षता द्व्यणुक आदि पर्याय परिणमनरूप बन्धका और 'च' शब्दसे बन्धके भेदनका कारण है। स्निग्धगुणरूप परिणत दो परमाणुके रूक्षगुणरूप परिणत दो परमाणुके और एक स्निग्ध तथा एक रूक्षगुणरूप परिणत परमाणुके परस्परमें मिलने रूप बन्धके होनेपर द्व्यणुक स्कन्ध बनता है। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी जानना। उनमें-से स्नेहगुण एक, दो, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रकारका होता है। इसी तरह रूक्षगुण भी होता है ॥६०९॥

---

१२. म °गुणं।

एयगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं विगुणतिगुणसंखेज्जाऽ ।
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ॥६१०॥

एकगुणस्तु जघन्यं स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयासंख्येयानंतगुणो भवति तथा रूक्षभावश्च ॥

आ स्निग्धत्वगुणवलियोळु तु मत्तं एकगुणमप्प स्निग्धत्वं जघन्यमक्कुमदादियागि द्विगुण-त्रिगुण संख्येयासंख्येयानंतगुणमक्कुमंते रूक्षत्वमुमरियल्पडुगुं ।

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्हि ठिया ।
जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥६११॥

एवं गुणसंयुक्ताः परमाणवः आदिवर्गणायां स्थिताः । योग्यद्विकानां बंधे द्वयोर्बंधो भवेन्नियमात् ॥

ई पेळल्पट्ट स्निग्धरूक्षगुणसंयुक्तंगळप्प परमाणुगळु मोदल अणुवर्गणेयोळिरुत्तिरल्पट्टुवु । योग्यद्विकंगळगे बंधमप्पेडेयोळा एरडक्कं बंधं नियमदिंदमक्कुं । स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तमप्प बंधमविशेषदिंद प्रसक्तमादोडे अनिष्टगुणनिवृत्तिपूर्व्वकं विधियिसिदपरु ।

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति रुक्खरुक्खा य पोग्गला ।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥६१२॥

स्निग्धस्निग्धा न बध्यंते रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः । स्निग्धरूक्षाश्च बध्यंते रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः ॥

स्निग्धगुणपुद्गलंगळोडने स्निग्धगुणपुद्गलगळु बंधमागल्पडवु । रूक्षगुणपुद्गलंगळोडने रूक्षगुणपुद्गलंगळुमते बंधमागल्पडवु । इदुत्सर्गविधियक्कुमेकें दोडे विशेषविधियुं मुंदे पेळल्पट्ट-पुदप्पुदरिंदं स्निग्धगुणपुद्गलंगळोडने रूक्षगुणपुद्गलंगळु बंधमागल्पडुवुवतप्प पुद्गलंगळु रूपि-

---

स्निग्धगुणावल्या तु पुन एकगुण स्निग्धत्व जघन्य स्यात् । तदादि कृत्वा द्विगुणत्रिगुणसख्येयासख्येयानन्तगुण भवति तथा रूक्षत्वमपि ॥६१०॥

एव स्निग्धरूक्षगुणसयुक्ता परमाणव अणुवर्गणाया तिष्ठति योग्यद्विकाना बन्धस्थाने तयोरेव द्वयोर्बन्धो नियमेन भवति ॥६११॥ स्निग्धरूक्षगुणनिमित्त बन्धस्याविशेषेण प्रसक्तावनिष्टगुणनिवृत्तिपूर्वक विधि करोति—

स्निग्धगुणपुद्गलै स्निग्धगुणपुद्गला न बध्यन्ते । तथा रूक्षगुणपुद्गलै रूक्षगुणपुद्गला न बध्यन्ते, अयमुत्सर्गविधि । विशेषविधेर्वक्ष्यमाणत्वात् । स्निग्धगुणपुद्गलै रूक्षगुणपुद्गला बध्यन्ते ते च पुद्गला

स्निग्ध गुणकी पंक्तिमें एक गुण स्निग्धताको जघन्य कहते हैं । उससे लेकर दो गुण, तीन गुण, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनन्त गुण रूप स्निग्ध गुण होता है । इसी प्रकार रूक्षगुण भी जानना ॥६१०॥

इस प्रकारके स्निग्ध और रूक्षगुणोंसे सयुक्त परमाणु अणुवर्गणामें विद्यमान हैं । उनमें-से योग्य दो परमाणुओंके बन्धस्थानको प्राप्त होनेपर उन्हीं दोका बन्ध होता है ॥६११॥

स्निग्ध और रूक्ष गुणके निमित्तसे सर्वत्र बन्धका प्रसंग प्राप्त होनेपर अनिष्ट गुणवालोंके बन्धका निषेध करते हुए बन्धका विधान करते है—स्निग्धगुण युक्त पुद्गलोंके साथ स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता । तथा रूक्ष गुण युक्त पुद्गलोंके साथ रूक्ष गुण युक्त

गळुमरूपिगळुमेंब पेसरनुळ्ळवप्पुवु । आ रूप्यरूपिगळं पेळ्दपं :—

णिद्धिदरोलीमज्झे विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं ।
रूवित्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवित्ति ॥६१३॥

स्निग्धेतरावलिमध्ये विसदृशजात्याः समगुण एकः । रूपीति संज्ञा भवति शेषानंताः अरूपिण इति ॥ ५

स्निग्धरूक्षगुणावळिगळ मध्यदोळु विसदृशजातियप्पुदरसमानगुणमनुळ्ळदो[1]दे रूपियेंदितु संज्ञेयनुळ्ळुदक्कुमदल्लदुळिदेल्ला विकल्पंगळुमदक्करूपिगळेंदितु संज्ञेगळप्पुवु । अदे तेंदोडे :—

दोगुणणिद्धाणुस्स य दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवो ।
इगितिगुणादि अरूवी रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे ॥६१४॥

द्वितीयो गुणो यस्य अथवा द्वौ गुणौ यस्य यस्मिन् वा स द्विगुणः स्निग्धाणोश्च द्विगुण- १०
रूक्षार्णुर्भवेद्रूपी । एकत्रिगुणादयोऽरूपिणः रूक्षस्यापि तद्वदिति जानीहि ॥

द्वितीयगुणमनुळ्ळ अथवा येरडुगुणमनुळ्ळ स्निग्धगुणाणुविंगे विसदृशजातियप्प द्विगुण-रूक्षाणु रूपियेंदु पेसरनुळ्ळुदक्कुमुळिदेकत्रिगुणादिसर्व्वरूक्षाणुगळु अरूपिगळेंदु पेसरक्कुमी प्रकारदिंदं द्विगुणरूक्षाणुविंगे द्विगुणस्निग्धाणुरूपियक्कुमदल्लदुळिदेकत्रिगुणादिसर्व्वस्निग्धाणु विकल्पंगळनंतगळऽरूपिगळेंदु एले शिष्य ! नीनरि । १५

रूपीत्यरूपीतिनामानो भवन्ति ॥६१२॥ तानेव लक्षयति—

स्निग्धरूक्षगुणावल्योर्मध्ये विसदृशजाते. समानगुण. एक रूपीति संज्ञो भवति । शेषाः सर्वे अरूपीति संज्ञा भवन्ति ॥६१३॥ तदेवोदाहरति—

द्वितीयो गुणो द्वौ गुणौ वा यस्य यस्मिन् वा द्विगुण' तस्य द्विगुणस्य स्निग्धाणो द्विगुणरूक्षाणुः रूपीतिनामा भवेत् । शेषैकत्रिगुणादय सर्वे रूक्षाणवः अरूपीतिनामानो भवन्ति । एव द्विगुणरूक्षाणोर्द्विगुण- २०
स्निग्धाणुः रूपी शेषैकत्रिगुणादिसर्वस्निग्धाणवः अरूपीति नामानः इति जानीहि ॥६१४॥

पुद्गलोका बन्ध नही होता । यह कथन सामान्य है । विशेष विधि कहेंगे । स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलोंके साथ रूक्षगुण युक्त पुद्गल बँधते है । और उन पुद्गलोंका नाम रूपी और अरूपी है ॥६१२॥

उन्हींका लक्षण कहते है— २५

स्निग्धगुण और रूक्षगुणोंकी पंक्तियोंके मध्यमें विजातिके समान गुणवाले एक परमाणुको रूपी नामसे कहते हैं । शेष सबकी अरूपी संज्ञा है ॥६१३॥

उसीका उदाहरण देते है—

जिसका दूसरा गुण है या जिसमें दो गुण है उसे द्विगुण कहते हैं । उस दो गुण स्निग्धवाले परमाणुका दो गुण रूक्षवाला परमाणु रूपी कहलाता है । शेष एक, तीन आदि ३०
रूक्ष गुणवाले सब परमाणु अरूपी नामवाले होते है । इसी प्रकार दो गुण रूक्षवाले परमाणुका दो गुण स्निग्धवाला परमाणु रूपी है । शेष एक, तीन आदि गुणवाले सब स्निग्ध परमाणु अरूपी जानना ॥६१४॥

---

१. म संज्ञियक्कु । २. म पेसरक्कु ।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स रुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥६१५॥

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन। स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बंधो जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ॥

स्निग्धपरमाणुविंगे द्विगुणाधिकस्निग्धपरमाणुविनोडने बंधमक्कुमंते रूक्षाणुविंगे द्विगुणाधिकरूक्षाणुविनोडने बंधमक्कुं। स्निग्धाणुविंगे द्विगुणाधिकरूक्षाणुविनोडने बंधमक्कुमल्लि स्निग्धरूक्षगुणंगळ परमाणुगळोळु जघन्यमप्पेकगुणयुतपरमाणुगळं वर्ज्जिसि शेषसमस्निग्धधारियोळं समरूक्षधारियोळं विषमस्निग्धधारियोळं विषमरूक्षधारियोळं तंतम्म तदनंतरोपरितनद्व्यधिकस्निग्धरूक्षंगळ्गे बंधमक्कुं। संदृष्टिः—

स्नि	०	२	४	६	८	१०	१२	००७००a०० ख
रू	०	२	४	६	८	१०	१२	००७००a०० ख
स्नि	०	३	५	७	९	११	१३	००७००a०० ख
रू	०	३	५	७	९	११	१३	००७००a०० ख

इल्लि सदृशगुणयुक्तरूपियोडने रूपिगे बंधमिल्ल। समगुणयुक्तंगळिगे विषमगुणयुक्तंगळोडने बंधमिल्लेंबी विशेषमरियल्पडुगुमेकेंदोडे अवरोळु द्व्यधिकत्वं घटियिसदप्पुदरिंदं।

स्निग्धाणो. द्विगुणाधिकस्निग्धाणुना बन्धो भवति। तथा रूक्षाणो द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बन्धो भवति। स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बन्धो भवति। तत्र स्निग्धरूक्षगुणपरमाणुषु जघन्य एकगुणंपरमाणु वर्जयित्वा शेषाणा समस्निग्धरूक्षधारयोर्विषमस्निग्धरूक्षधारयोश्च स्वस्वतदनन्तरोपरितनद्व्यधिकस्निग्धरूक्षाणूना बन्धो भवति। अत्र सदृशगुणरूपिणा रूपिण, समगुणाना विषमगुणैश्च बन्धो नेति विशेषो ज्ञातव्य, तेषु द्व्यधिकगुणत्वाभावात् ॥६१५॥

स्निग्ध परमाणुका दो गुण अधिक स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध होता है। उसी प्रकार रूक्ष परमाणुका दो गुण अधिक रूक्ष परमाणुके साथ बन्ध होता है। स्निग्ध परमाणुका दो गुण अधिक रूक्ष परमाणुके साथ बन्ध होता है। उन स्निग्ध गुणवाले और रूक्ष गुणवाले परमाणुओंमें जघन्य एक गुणवाले परमाणुको छोड़कर शेष समस्निग्ध धारा और सम रूक्ष धारामें तथा विषम स्निग्ध धारा और विषम रूक्ष धारामें अपने-अपनेसे अनन्तरवर्ती दो अधिक स्निग्ध और रूक्ष गुणवाले परमाणुओका बन्ध होता है। यहाँ इतना विशेष जानना कि सदृश गुणवाले रूपीका सदृश गुणवाले रूपीके साथ तथा समगुणवालोंका विषम गुणवालोंके साथ बन्ध नही होता। अर्थात् दोका दो गुणवालेके साथ या दो गुणवालेका पाँच गुणवालेके साथ बन्ध नहीं होता क्योंकि यहाँ दो अधिक गुणका अभाव है ॥६१५॥

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदीदुउत्तरा होंति ।
उभयेवि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ॥६१६॥

स्निग्धेतरयोः समविषमौ द्वित्र्यादिद्व्युत्तरौ भवतः । उभयस्मिन्नपि च समविषमौ सदृशेतरौ भवतः प्रत्येकं ॥

स्निग्धरूक्षगुणंगळ समपंक्तिद्वयांकंगळुं विसमपंक्तिद्वयांकंगळं प्रत्येकं द्वित्र्यादिद्व्युत्तरंगळप्पुवा उभयदोळं समविषमौ रूप्यरूपिगळु सदृशांकंगळुमसदृशांकंगळुमप्पुवदेंतेंदोडे :—स्निग्धरूक्षसमांकपंक्तिद्वयद एरडक्केरडु नाल्कक्के नाल्कु आरक्कारु एंटक्केंटु पत्तक्के पत्तु पन्नेरडक्के पन्नेरडु मोदलागि संख्याताऽसंख्यातानंतगुणयुतंगळु रूपिगळु परस्परं, आ स्निग्धरूक्षविषमांकपंक्तिद्वयद मूरक्के मूरु, अय्दक्कय्दु, एळक्केळु, ओंभतक्के वोंभतु, पन्नोंदक्के पन्नोंदु, पदिमूरके पदिमूरु इवु मोदलागि संख्याताऽसख्यातानंतगुणंगळु परस्परं रूपिगळुमी सदृशंगळिगतरंगळु । एरडुनाल्कारेंटु पत्तु पन्नेरडु मोदलागि संख्यातासंख्यातानंतंगळेल्लमरूपिगळु । मूरैदेळु ओंभत्तु पन्नोंदु पदिमूरु मोदलागि संख्यातासंख्यातानंतंगळेल्लमरूपिगळु । प्रत्येकं स्निग्धदोळं रूक्षदोळं रूपिगळगे बंधमिल्ल । तत्त्वार्थदोळमंते "गुणसाम्ये सदृशानामे"दितु पेळल्पट्टुदु ।

अरूपिगळगे बधमुंटु स्वस्थानदोळं परस्थानदोळं ई यर्थमने प्रकारांतरदिदं पेळ्दपरु :—

स्निग्धरूक्षगुणाना समपंक्तिद्वयाङ्का. विषमपक्तिद्वयाङ्काश्च प्रत्येकं द्वित्र्यादिद्व्युत्तरा भवन्ति । ते उभयेऽपि अंकाः समविषमा. रूप्यरूपिण. सदृशाङ्काः असदृशाङ्का भवन्ति । यथा स्निधरूक्षसमाङ्कपंक्तयोः द्वयस्य द्वयं चतुष्कस्य चतुष्क षट्कस्य षट्कं अष्टकस्य अष्टक दशकस्य दशकं द्वादशकस्य द्वादशकं एवमादिसख्यातासंख्यातानन्तगुणयुता., तद्विषमाङ्कपङ्क्तयोः त्रयस्य त्रयं पञ्चकस्य पञ्चकं सप्तकस्य सप्तकं नवकस्य नवकं एकादशकस्य एकादशक त्रयोदशकस्य त्रयोदशक एवमादिसंख्यातासख्यातानन्तगुणयुताश्च परस्परं रूपिणः । शेषाः द्वित्रिचतुःषडष्टदशद्वादशादिसंख्यातासख्यातानन्ताः । त्रिपञ्चसप्तनवैकादशत्रयोदशादिसंख्यातासंख्यातानन्ताश्चारूपिण. । प्रत्येक स्निधे रूक्षे च रूपिणा बन्धो नास्ति । तत्त्वार्थेऽपि 'गुणसाम्ये सदृशाना' इति तथैव वचनात् । अरूपिणा बन्धः स्यात् स्वस्थाने परस्थानेऽपि ॥६१६॥ अमुमेवार्थं प्रकारान्तरेणाह—

स्निग्ध और रूक्ष गुणवालोंमें-से प्रत्येकमें दोको लेकर दो गुण अधिक होनेपर समपंक्ति और तीनको लेकर दो गुण अधिक होनेपर विषम पंक्ति होती है। वे दोनों ही सम और विषम रूपी और अरूपी होते है। जैसे स्निग्ध और रूक्ष सम अंकवाली पंक्तियोंमें दो का दो, चारका चार, छहका छह, आठका आठ, दसका दस, बारहका बारह रूपी है। इसीप्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुण पर्यन्त जानना। विषम अंकवाली पंक्तियोंमें तीनका तीन, पाँचका पाँच, सातका सात, नौका नौ, ग्यारहका ग्यारह, तेरहका तेरह, इसी तरह संख्यात, असंख्यात और अनन्त गुणवाले परमाणु परस्परमें रूपी है। इनके सिवाय शेष अरूपी है। प्रत्येक स्निग्ध और रूक्षमें रूपीका बन्ध नहीं होता है। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है कि गुणोंकी समानतामें सदृशोंका बन्ध नही होता। अरूपियोंका बन्ध स्वस्थानमें अर्थात् स्निग्धका स्निग्धके साथ, रूक्षका रूक्षके साथ और परस्थानमें अर्थात् स्निग्धका रूक्षके साथ या रूक्षका स्निग्धके साथ बन्ध होता है ॥६१६॥

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसणंतरदुगाण बंधो दु ।
णिद्धे लुक्के वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ ॥६१७॥

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनंतरद्विकानां बधस्तु । स्निग्धे रूक्षेपि तथा वि जघन्योभयस्मिन्नपि सर्व्वत्र ॥

स्निग्धे स्निग्धदोळं रूक्षेपि रूक्षदोळं द्वित्रिप्रभवमुं द्व्युत्तरमागि नडेववरोळु उपरितनानंतरद्विकगळगे स्निग्धद नाल्कक्कं रूक्षद नाल्कक्कं स्निग्धदेरडरोळं रूक्षदेरडरोळं बंधमक्कुं। स्निग्धदैदक्कं रूक्षदयिदक्क स्निग्धद मूररोळं रूक्षद मूररोळं बंधमक्कु । मितागुत्तिरलु जघन्यगुणयुतदोळं बधप्रसंगमादोडे जघन्यवर्ज्जितमप्पुभयदोळु स्निग्धरूक्षद्वयदोळु सर्वत्र बंधमरियल्पडुगुमेंबुदत्थं ।

णिद्धदरवरगुणाणू सपरट्ठाणे वि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंगहेदुहि गुणंतरं संगदे एदि ॥६१८॥

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेपि नैति बंधार्थं । बाह्याभ्यंतरहेतुभ्यां गुणांतरं संगते एति ॥

स्निग्धजघन्यगुणाणुवु रूक्षजघन्यगुणाणुवुं स्वस्थानदोळ परस्थानदोळ बंधनिमित्तमागि सल्लदु । बाह्याभ्यंतरहेतुगळिंद गुणांतरमं पोंद्दि बंधक्के सल्गुं । तत्वार्थदोळं "न जघन्यगुणाना" मेंदितु पेळल्पट्टुदु ।

स्निग्धे रूक्षेऽपि द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरक्रमेण गच्छन्ति तेषु उपरितनानन्तरद्विकाना स्निग्धचतुष्कस्य रूक्षचतुष्कस्य च स्निग्धद्वये रूक्षद्वये च बन्ध स्यात् । स्निग्धपञ्चकस्य रूक्षपञ्चकस्य च स्निग्धत्रये रूक्षत्रये च बन्ध. स्यात् । एव जघन्यगुणयुतेऽपि बन्धप्रसक्तौ जघन्यवर्जिते उभयत्र स्निग्धरूक्षद्वये सर्वत्र बन्धो ज्ञातव्य इत्यर्थ ॥६१७॥

स्निग्धजघन्यगुणाणु रूक्षजघन्यगुणाणुश्च स्वस्थाने परस्थानेऽपि बन्धाय योग्यो न, बाह्याभ्यन्तरहेतुभिर्गुणान्तर प्राप्तस्तु योग्य स्यात् । तत्त्वार्थेऽपि 'न जघन्यगुणाना' इत्युक्तत्वात् ॥६१८॥

इसीको अन्य प्रकारसे कहते है—

स्निग्ध और रूक्षमें भी दोको आदि लेकर तथा तीनको आदि लेकर दो-दो बढते जाते है। उनमें ऊपरके अनन्तरवर्ती दोका बन्ध होता है। जैसे चार गुण स्निग्धवालेका दो गुण स्निग्धवाले दो गुण रूक्षवालेके साथ तथा चार गुण रूक्षवालेका दो गुण रूक्षवाले या दो गुण स्निग्धवालेके साथ बन्ध होता है। इसी तरह पाँच गुण स्निग्ध या पाँच गुण रूक्षवालेका तीन गुण स्निग्ध या तीन गुण रूक्षवालेके साथ बन्ध होता है। इस प्रकार एक अंशयुक्त जघन्य गुणवालोंका भी बन्ध प्राप्त होनेपर निषेध करते हैं कि जघन्यको छोडकर स्निग्ध और रूक्ष दोनोंमें सर्वत्र बन्ध जानना ॥६१७॥

जघन्य स्निग्ध गुणवाला या जघन्य रूक्ष गुणवाला परमाणु स्वस्थान और परस्थानमे भी बन्धके योग्य नहीं है। वही परमाणु बाह्य और अभ्यन्तर कारणोंसे यदि अधिक गुणवाला होता है तो बन्धके योग्य होता है। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है कि जघन्य गुणवालोंका बन्ध नहीं होता ॥६१८॥

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥६१९॥

स्निग्धेतरगुणा अधिकाः हीनं परिणमयंति बधे । संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशानां स्कंधानां ॥

संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशंगळनुळ्ळ स्कंधंगळ मध्यदोळु स्निग्धगुणस्कंधंगळु रूक्षगुणस्कंधंगळुं अधिकाः एरडुगुणंगळिनधिकमप्पुवु । बंधे बंधमप्पागळु हीनं हीनस्कंधमं परिणमयंति पिडिदु कोंडु बंधक्के बरिसुववु । तत्त्वार्थदोळमिते "बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ भवतः एंदितु काणल्पडुगुं षड्द्रव्यंगळचरमफलाधिकारं तिद्दुंदु ।

अनंतरं पचास्तिकायंगळं पेळदपं :—

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसंण्णिदं होदि ।
काले पदेसपचयो जम्हा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६२०॥

द्रव्यं षट्कमकालं पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति । काले प्रदेशप्रचयो यस्मान्नास्तीति निर्दिष्टं ॥

मुन्नं पेळल्पट्ट द्रव्यषट्कमे कालद्रव्यदिंदं रहितमादोडे पंचास्तिकायमेंब संज्ञेयनुळ्ळुदक्कुदेकेंदोडे काले कालद्रव्यदोळु प्रदेशप्रचयमावुदोंदु कारणदिंदमिल्लमदु कारणदिंदमितु प्रदेशप्रचयमनुळ्ळुवस्तिकायगळेंदु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ।

अनंतरं नवपदार्थंगळं पेळदपं :—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंतित्ति ॥६२१॥

नव पदार्थाः जीवाजीवास्तेषां पुण्यपापद्वयमास्रवसंवरनिर्ज्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ॥

संख्यातासख्यातानन्तप्रदेशस्कन्धाना मध्ये स्निग्धगुणस्कन्धाः रूक्षगुणस्कन्धाश्च द्विगुणाधिकाः ते बन्धे हीनगुणस्कन्ध परिणामयन्ति । तत्त्वार्थेऽपि "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च" इत्युक्तत्वात् ॥६१९॥ इति फलाधिकारः । अथ पञ्चास्तिकायानाह—

प्रागुक्तद्रव्यषट्क अकाल कालद्रव्यरहितं पञ्चास्तिकायसज्ञक भवति, कुतः ? कालद्रव्ये प्रदेशप्रचयो यतो नास्ति ततः कारणात् इति प्रदेशप्रचययुता अस्तिकाया इत्युक्तं परमागमे ॥६२०॥ अथ नवपदार्थानाह—

संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी स्कन्धोंके मध्यमें दो अधिक गुणवाले स्निग्ध स्कन्ध या रूक्ष स्कन्ध बन्धके होनेपर हीन गुणवाले स्कन्धको अपने रूप परिणमाते हैं। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है कि बन्धके होनेपर अधिक गुणवाला परिणामक होता है ॥६१९॥

इस प्रकार फलाधिकार समाप्त हुआ ।

अब पाँच अस्तिकायोंको कहते है—

पहले कहे गये छह द्रव्योंमें-से कालद्रव्यको छोड़कर पंचास्तिकाय कहलाते है । क्योंकि कालद्रव्यमें प्रदेशोंका प्रचय नहीं है अर्थात् कालाणु एकप्रदेशी होता है । और परमागममें प्रदेशसमूहसे युक्तको अस्तिकाय कहा है ॥६२०॥

नौ पदार्थोंको कहते है—

जीवाजीवाः जीवगळुमजीवंगळु तेषां अवर पुण्यपापद्वयं पुण्यमुं पापमुमेबेरडुं आस्रवसंवर-निर्ज्जरावंधमोक्षाः आस्रवमुं संवरमु निर्ज्जरयुं बंधमुं मोक्षमुमें दितु नवपदार्त्थंगळप्पुवुं। पदार्त्थ-शब्दं सर्व्वत्र संबंधिसल्पडुगु। जीवपदार्त्थः अजीवपदार्त्थः इत्यादि।

जीवदुगं उत्तत्थं जीवा पुण्णा हु सम्मगुण सहि दा।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति ॥६२२॥

जीवद्वयमुक्तार्त्थं जीवाः पुण्याः खलु सम्यक्त्वगुणसहिताः। व्रतसहिताः अपि च पापास्त-द्विपरीता भवंतीति॥

जीवपदार्त्थमुमजीवपदार्त्थमुं मुन्नं जीवसमासेयोळं षड्द्रव्याधिकारदोळं पेळ्दुदेयक्कुं। सम्यक्त्वगुणयुक्तजीवंगळु व्रतयुक्तजीवंगळुं पुण्यजीवंगळप्पुवु। तद्विपरीतंगळु तद्व्रयरहितंगळुं पाप-जीवंगळेदरियल्पडुवुवु खलु नियमदिंदं। चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु जीवसंख्येयं पेळुत्तं मिथ्यादृष्टि-गळुं सासादनरुं पापजीवंगळें दु पेळ्दपं :—

मिच्छाइट्ठी पावाणंताणंता य सासणगुणा वि।
पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टयः पापाः अनंतानंताश्च सासादनगुणा अपि। पल्यासंख्येयभागाः अनंतानुबंधि अन्यतरोदयमिथ्यागुणाः॥

पापरूपरुगळप्प मिथ्यादृष्टिजीवंगळु किंचिदून संसारिराशिप्रमाणरप्परेकें दोडे सासादनादि-तरगुणस्थानजीवसंख्येयिंद हीनरप्पुदरिंदं। अदु कारणदिंदमनंतानंतगळप्पुवु॥ १३॥ सासादनगुण-

---

जीवा अजीवा. तेषा पुण्यपापद्वय आस्रव संवरो निर्जरा बन्धो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवन्ति। पदार्थशब्द सर्वत्र सम्बन्धनीय,-जीवपदार्थ. अजीवपदार्थ इत्यादि ॥६२१॥

जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्वं जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवा' सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्यु। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु-नियमेन ॥६२२॥ चतुर्दशगुणस्थानेषु जीवसख्या मिथ्या-दृष्टिसासादनौ च पापजीवाविति आह—

मिथ्यादृष्टय. पापा—पापजीवा। ते चानन्तानन्ता एव इतरगुणस्थानजीवसंख्योनससारिमात्रत्वात्

जीव, अजीव, उनके पुण्य और पाप दो तथा आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नौ पदार्थ होते हैं। पदार्थ शब्द प्रत्येकके साथ लगाना चाहिए। जैसे जीव-पदार्थ, अजीवपदार्थ इत्यादि ॥६२१॥

पहले जीवसमासमे तथा छह द्रव्योंके अधिकारमें जीवपदार्थ और अजीवपदार्थका कथन कर दिया है। जो जीव सम्यक्त्वगुणसे युक्त है और व्रतोंसे युक्त हैं वे जीव पुण्यरूप होते है। उनसे विपरीत लक्षणवाले अर्थात् जो न सम्यक्त्वयुक्त है और न व्रतोंसे युक्त है वे नियमसे पापरूप हैं ॥६२२॥

आगे चौदह गुणस्थानोमें जीवोंकी संख्या और मिथ्यादृष्टि तथा सासादन गुणस्थान-वाले जीवोंको पापी कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव पापी हैं और वे अनन्तानन्त है, क्योंकि संसारी जीवोकी राशिमें-से शेष तेरह गुणस्थानवर्ती जीवोकी संख्या घटानेपर मिथ्यादृष्टि जीवोकी सख्या होती है।

मनुळ्ळ जीवंगळु पापजीवंगळप्पुवनंतानुबंध्यन्यतरोदयमिथ्यागुणयुतरप्पुदरिनवुवुं पल्यासंख्यातैक-
भागप्रमाणमप्पुवु प
अ अ ४

मिच्छा सावयसासणमिस्सा विरदा दुवारणंता य ।
पल्लासंखेज्जदिमसंखगुणं संखगुणमसंखेज्जगुणं ॥६२४॥

मिथ्यादृष्टिश्रावकसासादनमिश्राविरताः द्विकवारानंताश्च । पल्यासंख्यातैकभागोसंख्येयगुणःऽ ५
संख्येयगुणोऽसंख्येयगुणः ॥

मिथ्यादृष्टिजीवंगळु किंचिदूनसंसारिराशिप्रमितमप्पुदरिंदमनंतानंतगळप्पुवु ॥ १३—॥ देश-
संयतरुगळु पदिमूरुकोटि मनुष्य देशसंयतरिनधिकमप्प तिर्य्यग्गतिजरु पल्यासंख्यातैकभागप्रमित-
रप्परु प । धन १३ को । सासादनरुगळु मनुष्यगतिजद्विपंचाशत्कोटिसासादनरिंदमधिकमप्प
अ अ ४ । अ
इतरगतित्रयजसासादनरनितुं देशसंयतरं नोडलुं असंख्यातगुणमप्परु प धन ५२ को ई सासादनर
अ अ ४
संख्येयं नोडलुं मनुष्यगतिजमिश्ररिंदं नूर नाल्कु कोटिगळिंदमधिकमप्प त्रिगतिजमिश्ररु संख्यात-
गुणमप्परु प धन १०४ को ई मिश्रगुणस्थानवर्त्तिजीवंगळं नोडलु मनुष्यगतिजासंयतरिंदमेळु
अ अ
नूरु कोटिगळिंदमधिकमप्प त्रिगतिजासंयतरुमसंख्यातगुणरप्परु प धन ७०० को
अ

१३– । सासादनगुणा अपि पापाः अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदयेन प्राप्तमिथ्यात्वगुणत्वात् पल्यासंख्यातैकभागमात्रा
भवन्ति प ॥६२३॥
अ अ ४

मिथ्यादृष्टयः किंचिदूनसंसारित्वादनन्तानन्ताः १३– । देशसंयताः त्रयोदशकोटिमनुष्याधिकतिर्यञ्चः
पल्यासंख्यातैकभागमात्राः– प धन १३ को । तेभ्यः द्विपञ्चाशत्कोटिमनुष्याधिकेतरत्रिगतिसासादनाः असंख्यात-
अ अ ४ अ
गुणाः प धन ५२ को । तेभ्य चतुरुत्तरशतकोटिमनुष्याधिकत्रिगतिमिश्रा. संख्यातगुणा. प धन १०४ को ।
अ अ अ अ अ
तेभ्यः सप्तशतकोटिमनुष्याधिकत्रिगत्यसयता असंख्यातगुणा प धन ७०० को ॥६२४॥
अ

सासादनगुणस्थानवाले भी पापी है क्योंकि अनन्तानुबन्धीकषायकी चौकड़ीमें-से किसी भी
एक क्रोधादिका उदय होनेसे मिथ्यात्वगुणस्थानको प्राप्त होते है। उनकी संख्या पल्यके
असंख्यातवें भाग है ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टि कुछ कम संसारी राशि प्रमाण होनेसे अनन्तानन्त हैं। देश संयत गुण-
स्थानवाले तेरह कोटि मनुष्य तथा पल्यके असंख्यातवें भागमात्र तिर्यंच हैं। उनसे बावन
कोटि मनुष्य तथा शेष तीन गतिके सब सासादनगुणस्थानवाले असंख्यातगुणे है। उनसे
एक सौ चार कोटि मनुष्य और शेष तीन गतिके सब मिश्र गुणस्थानवाले संख्यातगुणे हैं।
उनसे सात सौ कोटि मनुष्य और शेष तीन गतिके अविरत गुणस्थानवाले सब असंख्यात-
गुणे हैं ॥६२४॥

तिरधियसयणवणवुदी छण्णवुदी अप्पमत्त वे कोडी ।
पंचेव य तेणवुदी णवट्ठविसयंच्छउत्तरं पमदे ॥६२५॥

त्रिभिरधिकशतं नवनवतिः षण्णवतिरप्रमत्त द्विकोटि पंचैव च त्रिनवतिर्न्नवाष्टद्विशते षडुत्तरं प्रमत्ते ॥

प्रमत्तरोळु संख्ये अय्दु कोटियुं तो भत्तमूरुलक्षेयुं तो भत्तेंदु सासिरद इन्नूरारुगळक्कुं ॥ ५९३९८२०६ ॥ अप्रमत्तरोळु संख्ये येरडुकोटियुं तों भत्तारु लक्षेयुं तों भत्तों भत्तु सासिरद नूर मूरुगळप्पुवु ॥ २९६९९१०३ ॥

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई ।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ॥६२६॥

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तरमस्तपंचकं केचित् । उपशमकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणं ॥

केलंबराचार्य्यरुगळु उपशमकरप्रमाणमं त्रिशतमेंदु पेळ्वरु । मत्तं केलंबराचार्य्यरुगळु चतुरुत्तरत्रिशतमेंदु पेळ्वरु । मत्तं केलंबराचार्य्यरुगळु अय्दु गुंदिद चतुरुत्तरत्रिशतमेंदु पेळ्वरु ॥ २९९ ॥ व ओंदु गुंदे मूनूरेंबुदर्त्थं । क्षपकर प्रमाणम तद्द्विगुणम नीनरियेंदु शिष्यसंबोधनमक्कुमी संख्येगळोळु प्रवाह्योपदेशमप्प संख्येयं निरंतराष्टसमयंगळोळु विभागिसि पेळदपं :—

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं ।
अडदालं चउवण्णं चउवण्णं होंति उवसमगे ॥६२७॥

षोडशकं चतुर्व्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत्तथा च द्विचत्वारिंशदष्टचत्वारिंशच्चतुःपंचाशच्चतुःपंचाशद्भवंत्युपशमके ॥

प्रमत्ते पञ्चकोट्य त्रिनवतिलक्षाण्यष्टानवतिसहस्राणि द्विशत षट् च भवन्ति । ५, ९ ३, ९ ८, २०६ । अप्रमत्ते द्विकोटिषण्णवतिलक्षनवनवतिसहस्रैकशतत्रयो भवन्ति । २, ९६, ९९, १०३ ॥६२५॥

केचिदुपशमकप्रमाण त्रिशत भणन्ति । केचिच्च चतुरुत्तरत्रिशत भणन्ति । केचित् पुन पञ्चोनचतुरुत्तरत्रिशत भणन्ति । एकोनत्रिंशतमित्यर्थ. । क्षपकप्रमाण ततो द्विगुण जानीहि ॥६२६॥ अत्र प्रवाह्योपदेशसख्या निरन्तराष्टसमयेषु विभजति—

प्रमत्तगुणस्थानमें पाँच कोटि तिरानवे लाख, अट्ठानवे हजार दो सौ छह ५९३९८२०६ जीव है । तथा अप्रमत्तगुणस्थानमे दो कोटि छियानवे लाख, निन्यानवे हजार एक सौ तीन २९६९९१०३ जीव हैं ॥६२५॥

आठवे, नौवे, दसवे, ग्यारहवे गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणिवालोका प्रमाण कोई आचार्य तीन सौ कहते है, कोई आचार्य तीन सौ चार कहते है और कोई आचार्य तीन सौ चारमें पाँच कम अर्थात् दो सौ निन्यानवे कहते हैं । तथा आठवे, नौवे, दसवे और बारहवें गुणस्थान सम्बन्धी क्षपकश्रेणिवाले जीवोंका प्रमाण उपशमवालोसे दूना जानना ॥६२६॥

आचार्य परम्परासे आगत प्रवाही उपदेश तीन सौ चारकी संख्याका निरन्तर आठ समयोंमे विभाग करते हैं—

उपशमकरोळु षोडशमुं चतुर्व्विंशतियुं त्रिंशतियु षट्त्रिंशतियुं द्विचत्वारिंशतियुं अष्टचत्वारिंशतियुं चतुःपंचाशतियुं चतुःपंचाशतियुं निरंतराष्टसमयंगळोळप्पुवु । १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ ।

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी ।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ॥६२८॥

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत् षष्टि र्द्वासप्ततिश्चतुरशीतिः । षण्णवतिरष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतक्षपकेषु ॥

क्षपकरोळु निरंतराष्टसमयंगळोळु उपशमकर संख्येयं नोडलु द्विगुणमागि द्वात्रिंशदादिगळप्पुवु । ३२ । ४८ । ६० । ७२ । ८४ । ९६ । १०८ । १०८ ॥ ई संख्येयं निरंतराष्टसमयंगळोळु समीकरणविधानदिंदं क्षपकरु । आदि ३४ । उत्तरं १२ । गच्छे ८ । पदमेगेण विहीणमित्यादि संकलनसूत्रदिंदं तरल्पट्ट लब्धप्रमितरु अष्टोत्तरषट्शतमप्परु । ६०८ ॥ उपशमकरुं । आदि १७ । उत्तरं । ६ । गच्छ ८ । इल्लियुं आ सूत्रदिंद तरल्पट्ट लब्धप्रमितरु चतुरुत्तरत्रिशतरप्परु । ३०४ ॥

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं ।
संखा जोगिजिणाणं पंचसयबिउत्तरं वंदे ॥६२९॥

अष्टैव शतसहस्राणि अष्टानवतिस्तथा सहस्राणां । संख्या योगिजिनानां पंचशतं द्व्युत्तरं वंदे ॥

उपशमके पोडश चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत् चतुःपञ्चाशत् चतुःपञ्चाशत् निरन्तराष्टसमयेषु भवन्ति । १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ ॥६२७॥

क्षपके निरन्तराष्टसमयेषु उपशमकेभ्यो द्विगुणत्वात् द्वात्रिंशत् अष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिः चतुरशीति षण्णवतिः अष्टोत्तरशतं अष्टोत्तरशतं भवन्ति । इमामेव सख्या निरन्तराष्टसमयेषु समीकरणविधानेन आदि ३४ उत्तर. १२ गच्छः ८ पदमेगेण विहीणमित्यादिनानीतधनम् । क्षपका अष्टोत्तरषट्छतं भवन्ति । ६०८ । उपशमका आदिः १७ उत्तरः ६ गच्छः ८ धन चतुरुत्तरत्रिशतं ३०४ भवन्ति ॥६२८॥

उपशमश्रेणिपर निरन्तर चढ़नेवाले जीवोंकी आठ समयोंमें संख्या क्रमसे सोलह, चौबीस, तीस, छत्तीस, बयालीस, अड़तालीस, चौवन, चौवन होती है ॥६२७॥

क्षपकश्रेणिकी संख्या उपशमवालोंसे दुगुनी होती है इसलिए निरन्तर आठ समयोंमें क्षपकश्रेणि चढ़नेवालोंकी संख्या क्रमसे बत्तीस, अड़तालीस, साठ, बहत्तर, चौरासी, छियानवे, एक सौ आठ, एक सौ आठ होती है। इसी संख्याको निरन्तर आठ समयोंमें समीकरण विधानके द्वारा बराबर करके पहले समयमें चौंतीस, फिर आठ समयोंमें बारह-बारह अधिक करनेसे आदिधन चौंतीस, उत्तर बारह और गच्छ आठ, इसको 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि सूत्रके अनुसार गच्छ आठमें एक घटानेसे सात रहे, दोका भाग देनेसे साढ़े तीन रहे। उत्तर बारहसे गुणा करनेपर बयालीस हुए। इसमें आदिधन चौंतीस जोड़नेसे छियत्तर हुए। इसे गच्छ आठसे गुणा करनेसे छह सौ आठ हुए। ये सब क्षपकोंका जोड़ होता है। इसी तरह उपशमश्रेणिवालोंका आदिधन सतरह, उत्तर छह, गच्छ आठका धन उससे आधा तीन सौ चार होता है ॥६२८॥

सयोगिजिनरुगळसंख्ये लक्षाष्टकमुमष्टानवतिसहस्रंगळुं द्वयुत्तरपंचशतप्रमितमक्कु । ८९८५०२ । मिनिबरं सर्व्वदा वंदिसुवें । इल्लि निरंतर अष्टसमयंगळोळु संचिसल्पट्ट सयोगजिनरुगळाचार्य्यांतरापेक्षेयिंदं सिद्धांतवाक्यदोळु "छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवळमुप्पाययंति । दोसु समयेसु दोण्णि जीवा केवळमुप्पाययंति एवमट्ठसमयसंचिदजीवा बावीसा हवंति" यें दितु पेळल्पट्टवारु समयंगळोळु मूरु मूरुमेरडु समयगळोळयरडेरडागलु जिनरुगळुं मोक्षगामिगळुमरुदिंगळ मेळें दु समयगळोळेनिबरप्परेंबी विशेषकथनदोळु त्रैराशिकषट्कमक्कुमदें तेंदोडे संदृष्टि :—

प्र के २२	फ का ८/६	इ के = ८९८५०२	लब्ध मिश्रकाल ८ लब्ध का ४०८४१।६
प्र का ८/६	फ स ८ ।	इ का ४०८४१।८।/६	लब्ध समयाशुद्धा ३२६७२८
प्र स ८	फ के २२	इ स ३२६७२८ ॥	लब्ध केवलिन : लब्ध के ८९८५०२
प्र स ८	फ के ४४	इ स ३२६७२८ । /२	लब्ध ८९८५०२
प्र स ८	फ के ८८	इ स ३२६७२८ /२।२	लब्ध के ८९८५०२
प्र स ८	फ के १७६	इ स ३२६७२८ /२।२।२	लब्ध के ८९८५०२

सयोगिजिनसंख्या अष्टलक्षाष्टनवतिसहस्रद्व्युत्तरपञ्चशतानि ८, ९ ८, ५०२ तान् सदा वन्दे । अत्र निरन्तराष्टसमयेषु सचितसयोगिजिना आचार्यान्तरापेक्षया सिद्धान्तवाक्ये—वसुसुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययन्ति, दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययन्ति एवमट्ठसमयसचिदजीवा बावीसा हवन्तीति विशेषकथने त्रैराशिकषट्कम् । तद्यथा—प्र के २२ । फ का ८/६ । इ के ८, ९ ८, ५०२ । ल का ४०८४१, ८/६ । पुन प्र का ८/६ । फ स ८ । इ का ४०८४१, ८/६ । ल स ३, २६, ७२८ । पुन प्र स ८ । फ के २२ । इ ३,

सयोगी जिनोंकी संख्या आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो है उन्हें सदा नमस्कार करता हूँ । यहाँ निरन्तर आठ समयोंमें सचित सयोगि जिनोंकी संख्या अन्य आचार्यकी अपेक्षा सिद्धान्तमें इस प्रकार कही है—छह शुद्ध समयोंमें तीन-तीन जीव केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं और दो समयोंमे दो-दो जीव केवलज्ञानको उत्पन्न करते है । इस प्रकार आठ समयोंमें संचित जीव बाईस होते है । यहाँ विशेष कथन छह त्रैराशिकोंके द्वारा करते है—

१. यदि बाईस केवली छह मास आठ समयमें होते हैं तो आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो केवली कितने कालमे होंगे ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि २२ केवली, फलराशि छह मास आठ समयकाल, इच्छाराशि आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो केवली । सो प्रमाणका भाग इच्छाराशिमें देनेसे चालीस हजार आठ सौ इकतालीस आये । इस संख्याको छह मास आठ समयसे गुणा करनेपर कालका प्रमाण आता है । २ छह मास

[1]इंतिदो दु पक्षांतरमरियल्पडुगु । अनंतरमेक समयदोळु युगपत्संभविसुव क्षपकर विशेषसंख्येयुमनुपशमकर विशेषसंख्येयुमं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपरु ।

होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥६३०॥

भवंति क्षपकाः एकस्मिन्समये बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च । उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमिताः स्वर्गतश्च च्युताः ॥

पत्तेयबुद्धतित्थयरित्थिणवुंसयमणोहिणाणजुदा ।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥६३१॥

प्रत्येकबुद्धतीर्थंकरस्त्रीनपुंसकमनोवधिज्ञानयुताः । दश षट्क विंशति दश विंशत्यष्टाविंशतिः यथाक्रमशः ॥

२६, ७२८ ल । के ८, ९८, ५०२ । तथा प्र स ८ । फ के ४४ । इ ३, २६, ७२८ ल । के ८, ९८, ५०२ तथा प्र स ८ । फ के ४४ । इ ३, २६, ७२८ । ल के ८, ९८, ५०२ । तथा प्र स ८ । फ के ८८ ।
२ २ २

आठ समयमें निरन्तर केवली उत्पन्न होनेका काल आठ समय है तो पूर्वोक्त कालमें कितने समय हैं ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि छह मास आठ समय, फलराशि आठ समय, इच्छाराशि छह मास आठ समयसे गुणित चालीस हजार आठ सौ इकतालीस । यहाँ प्रमाणराशिके कालसे इच्छाराशिके कालका अपवर्तन करके फलराशिके आठ समयोंसे इच्छाराशि ४०८४१ को गुणा करनेपर तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाईस समय होते हैं। ३-६ आठ समयोंमें विभिन्न आचार्योंके मतसे बाईस या चवालीस या अठासी या एक सौ छियत्तर जीव केवलज्ञानको उत्पन्न करते हैं तो पूर्वोक्त तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अठाईस समयोंमें अथवा उससे आधे अथवा चौथाई अथवा आठवें भाग समयोंमें कितने जीव केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं इस प्रकार चार त्रैराशिक करना । इन चारोंमें प्रमाणराशि आठ समय है । फलराशि २२, ४४, ८८ और १७६ पृथक्-पृथक् है । तथा इच्छाराशि तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अठाईस, उसका आधा, उसका चौथाई और उसका आठवाँ भाग पृथक्-पृथक् है । सर्वत्र फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्ध

---

१. गुणितक्रमः समीचीन. प्रयोजनं वावबुध्यते । अरुदिंगळ मेलेंटुसमयदोळगे केवलज्ञानमं पडेव जीवंगळु जघन्य ७२६ दिंदविप्पत्तेरडनुत्कृष्टदिनेंटु लक्षवु तोंभत्तेटु सावि रदैनूररडु मध्यनानाभेदमदरोळु नात्तनाल्कें ४४ भत्तें ८८ टु नूरिप्पत्तारेंब मूरु विकल्पमं जघन्यमुम फलराशिय माडिदरु मूरुमध्यमविकल्पद इच्छाराशिय हारवें तंदोडे इल्लिय फलराशिय इच्छाराशिय माडि अरुदिंगळ मेलेंटु समयंगळं फलराशिय माडि उत्कृष्टकेवलिसख्येयं इच्छाराशियं माडलक्कु । बंद लब्ध १६३६४ यी राशियनेरडरिं गुणिसियेरडरिं भागिसिदडे इंतक्कु ३२६७२८ = इदु प्रतिपद = ॥
२

जेट्ठावरबहुमज्झिम ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥६३२॥

ज्येष्ठावरबहुमध्यमावगाहनकाः द्वित्रिचतुरष्टैव। युगपद्भवंति क्षपकाः उपशमकाः अर्द्धमेतेषां॥

बोधितबुद्धरु क्षपकरेकसमयदोळु युगपन्नूरेंदु उपशमकरु तदर्द्धमप्परु १०८ पुंवेदिगळु
५४
क्षपकरु नूरेंदुपशमकरु तदर्द्धमप्परु । १०८ स्वर्गच्युतरिंदं बंद क्षपकरु युगपन्नूरेंदुपशमकरु तदर्द्ध-
५४

इ ३, २६, ७२८ । ल के ८, ९८, ५०२ । तथा प्र स ८ । फ के १७६ । इ ३, २६, ७२८ । ल के ८, ९८,
२ २ २ । २।२
५०२ । इदमेकपक्षान्तरम् ॥६२९॥ अथैकसमये युगपत्सभवती क्षपकोपशमकविशेषसख्या गाथात्रयेणाह—

युगपदुत्कृष्टेन एकसमये बोधितबुद्धा पुवेदिन स्वर्गच्युताश्च प्रत्येक क्षपका अष्टोत्तरशतम् उपशम-

आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो आता है। नीचे इन छह त्रैराशियोंको अंकित किया जाता है—

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धराशि
केवली २२	काल छह मास ८ समय	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ × छह मास आठ समय
काल छह मास ८ समय	समय ८	काल ४०८४१ × छहमास आठ समय	समय ३२६७२८
समय ८	केवली २२	समय ३२६७२८	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८ का आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८ का चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ का आठवाँ भाग	केवली ८९८५०२

आगे एक समयमें एक साथ होनेवाली क्षपकों और उपशमकोंकी विशेष संख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

एक साथ उत्कृष्टसे एक समयमें बोधित बुद्ध क्षपक, पुरुषवेदी क्षपक, और स्वर्गसे च्युत होकर मनुष्य जन्म लेकर क्षपकश्रेणी चढनेवाले प्रत्येक एक सौ आठ, एक सौ आठ

मप्पुरु १०८ प्रत्येकबुद्धरु क्षपकरु पत्तुपशमकरप्पवरु १० तीर्त्थकररु क्षपकररुवरुपशमकरु
५४ ५
मूवरु ६ स्त्रीवेदिक्षपकरुमिप्पत्तुपशमकर्प्पदिंबरु २० नपुंसकवेदिगळु क्षपकरु पदिंबरवरर्द्ध-
३ १०
मुपशमकरु १० मनःपर्य्ययज्ञानिगळु क्षपकरुगळिप्पत्तु तदर्द्धमुपशमकरु २० अवधिज्ञानिगळु
५ १०
क्षपकरुगळिप्पत्तेंदुमुपशमकरुगळु तदर्द्धमप्परु २८ उत्कृष्टावगाहनयुतक्षपकरुगळीर्व्वरुपशमक-
१।४
नोर्व्वने २ जघन्यावगाहनयुतक्षपकरु नाल्वरुपशमकरीर्व्वरु ४ बहुमध्यमावगाहनयुतक्षपक- ५
१ २
रेण्बरुपशमकर्न्नाल्वरु ८ मितेल्ला क्षपकरु ४३२। उपशमकरु २१६।
४

अनंतरं अयोगिजिनरसंख्येयं कंठोक्तमागि पेळ्दुदिल्लप्पुदरिंदं प्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु अयोगकेवलिभट्टारकावसानमाद समस्तसंयमिगळ संख्येयं पेळ्दडदरोळु सयोगकेवलिपर्य्यंतं कंठोक्तमागि पेळल्पट्ट संयमिगळ संख्येयं कूडि कळेदोडे शेषमयोगिकेवलिगळ संख्येयक्कुमेंबुदं मनदोळिरिसि संयमिगळ सर्व्वसंख्येयं पेळ्दपं :— १०

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ॥६३३॥

सप्ताद्यष्टांतान् षण्णवमध्यांश्च संयुतान्सर्व्वान् । अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्धया नमस्यामि ॥

सप्तांकमादियागि अष्टांकमवसानमागि षण्णवांकंगळं मध्यमागुळ्ळ त्रिहीननवकोटिसंयतरुगळनंजलिमौळिकहस्तनागि मनोवाक्कायशुद्धिगळिंदं वंदिसुवें ॥ एंदितु सर्व्वसंयमिगळ संख्येयो १५

कास्तदर्धं भवन्ति । पुन प्रत्येकबुद्धाः तीर्थङ्करा. स्त्रीवेदिन नपुसकवेदिन. मन.पर्ययज्ञानिन' अवधिज्ञानिनः उत्कृष्टावगाहा. जघन्यावगाहा. बहुमध्यमावगाहाश्च क्षपका. क्रमशः दश षट्विंशति. दश विंशति. अष्टाविंशतिः द्वौ चत्वारः अष्टौ, उपशमकाः तदर्ध भवन्ति । सर्वे मिलित्वा क्षपकाः ४३२ । उपशमका २१६ ॥६३०–६३२॥
अथ सर्वसयमिसंख्यामाह— २०

आदौ सप्ताङ्क अन्तेऽष्टाङ्क च लिखित्वा तयोर्मध्ये च षट्सु नवाङ्केषु लिखितेषु संजनितन्यूननवकोटिसख्यामात्रान् सर्वसयतान् अञ्जलिमौलिकहस्तोऽहं मनोवाक्कायशुद्धया नमस्यामि । ८९९९९९९७ । अत्र च

होते है। और उपशमक इनसे आधे अर्थात् चौवन-चौवन होते है। पुनः क्षपकश्रेणीवाले प्रत्येकबुद्ध दस, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी बीस, नपुंसकवेदी दस, मनःपर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अट्ठाईस, उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो, जघन्य अवगाहनावाले चार, बहुमध्यम २५
अवगाहनावाले आठ एक समयमें उत्कृष्ट रूपसे होते है। उपशमक इनसे आधे होते है। सो उक्त सब क्षपकोंकी संख्या मिलकर चार सौ बत्तीस होती है और उपशमकोंकी दो सौ सोलह ॥६३०–६३२॥

आगे सब संयमियोंकी संख्या कहते हैं—

सातका अंक आदिमे और अन्तमें आठका अंक लिखकर दोनोंके मध्यमें छह नौके ३०

८९९९९९९७ छिदरोळु प्रमत्तादिसयोगिकेवल्यवसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळ संख्येयनें तु कोटियुं तों भत्तो भत्तु लक्षमुं तों भत्तों भत्तु सासिरद मुन्नूरतों भत्तों भत्तं ८९९९९३९९ कळेयुत्तिरलु शेषमयोगिकेवलिगलसख्य येरडुगुंदिदरुनूरवक्कु ५९८ ॥ मिंती पदि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु पेळ्द संख्येमे संदृष्टिरचनेयिदु :—

मि	५९८	८९९५०२	५९८	२९९१०	२९९१५९८॥	२९९१५९८॥	२९९१५९८॥	२९९९९१०३	५९३९८२०६	प ० ४ ० ॥ १३ क्रि ०	प ७०० क्रो ०	प १०४ क्रो ०	प ५२ क्रो ०	१३॥
मि	क ०	क ०	क्रि ०	क ०	क ०	क ०	क ०	क ०	क ०	क ०	क ०	मि ०	मा	मि

अनंतरं चतुर्गतिगळोळु मिथ्यादृष्टि सासादनमिश्रासंयतर संख्येयं साधिसुव पल्यद भागहारविशेषगळं पेळ्दपं :—

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ॥६३४॥

ओघासंयतमिश्रकसासादनसम्यग्दृष्टीनां भागहारा ये । रूपोनावल्यसंख्यातेनेह विभज्य तत्र निक्षिप्ते ॥

देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणि अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाण अवहारा ॥६३५॥

देवानामवहारा भवंति असंख्येन तानपहृत्य तत्रैव च निक्षिप्ते सौधर्म्मैशानावहाराः ॥

प्रमत्तादिसयोग्यवसानसख्याया ८९९९९३९९ अपनीताया शेषं द्वयूनषट्छत अयोगिसंख्या भवति । ५९८ ॥६३३॥ अथ चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासयतसख्यासाधकपल्यभागहारविशेषानाह—

अंक लिखनेपर ८९९९९९९७ तीन कम नौ करोड़ संख्या प्रमाण सब संयमियोंको मै हाथोंकी अंजलि मस्तकसे लगाकर मन, वचन, कायकी शुद्धिसे नमस्कार करता हूँ। यहाँ प्रमत्त गुणस्थानसे लेकर सयोग केवली पर्यन्त संख्या ८९९९९३९९ है। इस संख्याको सब संयमियोंकी संख्यामें घटानेपर शेष दो कम छह सौ ५९८ अयोगियोंकी संख्या होती है ॥६३३॥

आगे चारों गतिके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, मिश्र और असंयतसम्यग्दृष्टियोंकी संख्याके साधक पल्यके भागहार विशेषोंको कहते हैं—

गुणस्थानदोळपेळ्द असंयतसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिगळेंबी मूरुं गुणस्थानंगळ आवुवु केलवु पल्यक्के पोक्क भागहारंगळ अ आ वुरूपोनावल्यसंख्यातदिंदं
मि आ आ
सा आ आ ४
आ-१ । भागिसि भागिसि तंतम्म हारदोळे कूडल्पट्टुवादोडे देवोघदोळु तंतम्म भागहारंगळप्पुवु । मत्तमी देवसामान्यगुणस्थानत्रयभागहारंगळं रूपोनावल्यसख्यातदिंदं भागिसि

अ आ आ
आ-१
मि आ आ आ
आ-१
सा आ आ ४ आ
आ-१

भागिसिदेकभागमं तंतम्म हारंगळोळु प्रक्षेपिसुत्तं विरलु सौधर्मैशानकल्पद्वयद असंयतमिश्रसासादनरुगळ भागहारंगळप्पुवु । सौधर्म्मकल्पद्वयद असंयतन भागहारंगळु प मिश्रभागहारंगळु ५
आ आ आ
आ-१आ-१

प सासादनर भागहारंगळु प अनंतरमी सौधर्म्मकल्पद्वयासंयतादि सासादनगुण-
आ आ आ आ आ आ ४ आ आ
आ-१आ-१ आ-१आ-१

गुणस्थानोक्ताः असयतसम्यग्मिथ्यादृष्टिसासादनाना ये पल्यासंख्यातप्रविष्टभागहाराः अ आ
मि आ आ
सा आ आ ४
एतेषु रूपोनावल्यसंख्यातेन आ-१ भक्त्वा एतेष्वेव निक्षिप्तेषु देवौघे स्वस्वभागहारा भवन्ति । एतान् पुनः रूपोनावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकैकभागे स्वस्वहारे प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानासयत- १०
अ आ आ
आ-१
मि आ आ आ
आ-१
सा आ आ ४ आ
आ-१

गुणस्थानोंमें जीवोंकी संख्या कहते हुए पूर्वमें जो असंयत, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनोंके पल्यके भागहार कहे हैं उनमें एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उन्हें उन्हीं भागहारोंमें मिलानेसे देवगतिमें अपना-अपना भागहार होता है । इन भागहारोंको पुनः एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर-एक-एक भाग अपने-अपने भागहारमें मिलानेपर सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें असंयत मिश्र और सासादनोंके भागहार होते है । १५

विशेषार्थ—पहले असंयतगुणस्थानमें भागहारका प्रमाण एक बार असंख्यात कहा था । उसे एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उसे उस भागहारमें मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना देवगतिसम्बन्धी असंयतगुणस्थानका भागहार जानना । इस भागहारका भाग पल्यमें देनेसे जो प्रमाण आवे उतने देवगतिमें असंयतगुणस्थानवर्ती जीव हैं । मिश्रमें दो वार असंख्यातरूप और सासादनमें दो वार २०

स्थानावसानमाद गुणस्थानत्रयदोळु आवुदोदु सासादनर हारमदं नोडलु मुंदल्लेतेडेयोळं असंयत-मिश्रर हारंगळु संख्यातगुणितक्रमंगळ्, सासादनर हारंगळु संख्यातगुणगळप्पुवु।

सप्तमपृथ्विय गुणस्थानत्रयपर्य्यंतमें बी व्याप्तियं पेळ्दपं :—

सोहम्मसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा ॥६३६॥

सौधर्म्मसासादनहारमसंख्येन च सख्यरूपसंगुणिते। उपर्य्यसयतमिश्रसासादनसम्यग्दृष्टीनामवहाराः॥

सौधर्म्मकल्पद्वयदसासादन सम्यग्दृष्टिगळ भागहारम $\frac{a}{a-1}$ निदनसंख्यातदिंदं च शब्ददिंदं मत्तमसंख्यातदिंदं संख्यातरूपुगळिंद गुणितं माडुत्तिरलु यथासंख्यमागि मेले सानत्कुमारद्वयदोळऽसंयतादि अधस्तनगुणस्थानत्रयद हारंगळप्पुवु। सानत्कुमारद्वयद असंयतहारंगळु $\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}$ मिश्रहारंगळु $\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}$ सासादनर हारंगळु $\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}$

अनंतरमी गुणितक्रमदव्याप्तियं पेळ्दपं :—

मिश्रसासादनाना भागहारा भवन्ति

$\frac{a}{a-1}$, $\frac{a}{a-1}$ $\frac{a}{a-1}$, $\frac{a}{a-1}$ $\frac{a}{a-1}$, $\frac{a}{a-1}$

तत्सौधर्मद्वैयसासादनभागहारे $\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}$ असख्यातेन चशब्दात् पुनरसख्यातेन सख्यातरूपैश्च गुणिते यथासख्यमुपरिसानत्कुमारद्वये असख्यातमिश्रसासादनहारा भवन्ति। $\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}$ $\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}\times\frac{a}{a-1}$ ॥६३६॥ अथास्य गुणितक्रमस्य व्याप्तिमाह—

असंख्यात और एक वार संख्यातरूप भागहार कहा था। उसको एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना-उतना उनमें मिलानेपर देवगतिमें मिश्र तथा सासादनगुणस्थानवालोंका प्रमाण लानेके लिए भागहार होता है। देवगतिमें असंयत मिश्र और सासादनके लिए जो-जो भागहारका प्रमाण कहा उसे एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना-उतना उन-उन भागहारोंमें मिलानेसे सौधर्म ऐशान स्वर्गमें अविरत मिश्र और सासादनसम्बन्धी भागहार होता है ॥६३४-६३५॥

सौधर्म और ऐशानमें सासादनका जो भागहार है उससे असख्यातगुणा भागहार सानत्कुमार, माहेन्द्र स्वर्गसे असंयतसम्बन्धी है। 'च' शब्दसे इस असंयतके भागहारसे असंख्यातगुणा मिश्रगुण सम्बन्धी भागहार है और उससे संख्यातगुणा सासादनसम्बन्धी भागहार है ॥६३६॥

आगे इस गुणितक्रमकी व्याप्ति कहते हैं—

सोहम्मादासारं जोइसवणभवणतिरियपुढवीसु ।
अविरदमिस्सेऽसंखं संखासंखगुण सासणे देसे ॥६३७॥

सौधर्म्मादासहस्रारं ज्योतिषिकवानभावनतिर्य्यक्पृथ्वीषु । अविरतमिश्रेऽसंख्ये संख्य असंख्यगुणं सासादने देशसंयते ॥

सौधर्म्मद्वयदत्तणिदं मेळे सानत्कुमारकल्पद्वयं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतं कल्पद्वयपंचकदोळं ज्योतिषिकवानभावनतिर्य्यंच प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्त्थपंचमषष्ठसप्तमपृथ्वियेंबी षोडश स्थानदोळमवितरोळं मिश्ररोळमसंख्यातगुणितक्रममक्कुं । सासादनरोळुसंख्यातगुणमक्कु । तिर्य्यंचदेशसंयतरोळसंख्यातगुणमक्कुमदं तेंदोडेमुं पेळ्द सानत्कुमारकल्पद्वयद सासादनहारमं नोडलु ब्रह्मकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुण $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,a}{a-१a-१}$ मदं नोडलु मिश्रहारमसंख्यातगुण $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,a\,a}{a-१a-१}$ मदं नोडलु सासादनर हारं संख्यातं गुणमक्कु $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,a\,a\,४}{a-१a-१}$ मदं नोडलु लांतवकल्पद्वयदऽसंयतहारमसंख्यातगुण $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,।\,२\,।\,a}{a-१a-१}$ मदं नोडलु मिश्रर हारमसंख्यातगुण $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,।\,२\,।\,a\,a}{a-१a-१}$ मदं नोडलु सासादनहारं संख्यातगुण मक्कु $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,।\,२\,।\,a\,a\,४}{a-१a-१}$ मदं नोडलु शुक्रकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,।\,३\,।\,a}{a-१a-१}$ मदं नोडलु मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,।\,३\,।\,a\,a}{a-१a-१}$ मदं नोडलु तत्रत्य सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु $\frac{a\,a\,a\,a\,४\,a\,a\,४\,।\,३\,a\,a\,४}{a-१a-१}$ मदं नोडलु

सौधर्मद्वयादुपरि सानत्कुमारादिसहस्रारपर्यन्तं पञ्चयुग्मेषु ज्योतिष्कवानभावनतिर्यक्सप्तपृथ्वीषु चेति षोडशस्थानेषु अविरते मिश्रे त्वसख्येयगुणितक्रम. सासादने संख्यातगुणितक्रमः, तिर्यग्देशसयते असंख्यातगुणितक्रमश्च भवति । तथाहि—उक्तसानत्कुमारद्वयसासादनहारात् ब्रह्मद्वयस्य असयतहारोऽसंख्यातगुणः । ततो मिश्रहारोऽसख्यातगुण । तत सासादनहार. सख्यातगुण' । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिश्चतुरङ्क. । ततः लान्तवद्वये असयतहारः असख्यातगुण । ततः मिश्रहार. असख्यातगुण' । ततः सासादनहारः सख्यातगुण' । ततः शुक्रद्वये-

---

सौधर्मसे ऊपर सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार पर्यन्त पाँच स्वर्ग युगलोंमें और ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी, तिर्यंच, और सात नरक इन सोलह स्थानोंमें अविरत और मिश्रमें असंख्यात गुणितक्रम जानना । सासादनमें संख्यात गुणितक्रम जानना । और तिर्यंच सम्बन्धी देशसंयत गुणस्थानमें असंख्यात गुणितक्रम जानना । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सानत्कुमार, माहेन्द्रमें जो सासादनका भागहार कहा उससे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । यहाँ संख्यातकी संदृष्टि चारका अंक ४ है । उससे लान्तवकापिष्ठमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे शुक्र महाशुक्रमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है । उससे शतारसहस्रारमें असंयतका भागहार

शतारकल्पद्वयासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ४ ə मदं नोडलु तन्मिश्रहारम-
ə − ə१ − १
संख्यातमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ४ ə ə मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु
ə − १ə − १
ə ə ə ə ४ ə ə ५ । ४ ə ə ४ मदं नोडलु ज्योतिषिकाअसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु
ə − १ə − १
ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ५ ə मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ५ ə ə
ə − १ə − १ ə − १ə − १
५ मदं नोडलु तत्रत्य सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ५ ə ə ४ मदं नोडलु
ə − १ə − १
व्यंतरासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ६ ə मद नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यात-
ə − १ə − १
गुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ६ ə ə मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु
ə − १ə − १
ə ə ə ə४ə ə४।६ə ə४ मदं नोडलु भवनवासिकासंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ७ ə
ə−१ə−१ ə − १ə − १
मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ ७ ə ə मदं नोडलु तत्रत्यसासा-
ə − १ə − १
१० दनहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ७ । ə ə ४ मदं नोडलु तिर्य्यंचासंयतहारम-
ə − १ə − १
संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ८ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु
ə − १ə − १
ə ə ə ə ४ ə ə ४ । ८ ə ə मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə४ə ə४८ । ə ə४
ə − १ə − १ ə − १ə − १
मदं नोडला तिर्य्यग्देशसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कुं तिर्य्यग्देशसंयतर (हारं नोडलु) प्रथमपृथ्विनारका-

ऽसयतहार असख्यातगुण । ततो मिश्रहार' असंख्यातगुण. । तत. सासादनहार' सख्यातगुणः । तत शतारद्वये-
ऽसंयतहार असख्यातगुण. । तत मिश्रहार असख्यातगुण । तत सासादनहार संख्यातगुण । तत ज्योति-
१५ ष्कासयतहारः असख्यातगुण । तत. मिश्रहार. असख्यातगुणः । तत सासादनहार. सख्यातगुण. । तत.
व्यन्तरासयतहार असंख्यातगुण । तत मिश्रहार' असख्यातगुणः । तत सासादनहारः सख्यातगुण' । तत
भवनवास्यसयतहार असख्यातगुण । तत. मिश्रहार असख्यातगुण । तत. सासादनहार सख्यातगुण ।
ततस्तिर्यगसयतहार असख्यातगुण । तत मिश्रहार असख्यातगुण । सासादनहार. सख्यातगुण । ततस्ति-

असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका
२० भागहार संख्यातगुणा है। उससे ज्योतिषीदेवोंमे असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे व्यन्तरोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे भवनवासियोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका
२५ भागहार संख्यातगुणा है। उससे तिर्यंचोंमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है । उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे तिर्यंचोंमें ही देशसंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। जो तिर्यंचोंमें देशसंयतका भागहार

संयतहारमुमसंख्यातगुणमक्कुं $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ ९ a}}{\text{a - १a - १}}$ प्रथमपृथ्वि = असंयताहार

a a a a ४ a a ४ । ९ । a मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ९ । a a}}{\text{a - १a - १}}$

मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । ९ a a ४}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु

द्वितीयपृथ्विय असयतहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १० । a ।}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु

तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १० । a a}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु तत्रत्यसासादन- ५

हारं संख्यातगुणमक्कुं $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १० । a a ४ ।}}{\text{a - a१ - १}}$ मदं नोडलु तृतीयधराऽसंयत-

हारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । ११ a ।}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुण-

मक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ ११ a a}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु तत्रत्य सासादनहारं संख्यातगुणमक्कु

$\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । ११ a a ४}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु चतुर्त्थभूनारकाऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु

a a a a ४ a a ४ । १२ । a मदं नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १२ । a a}}{\text{a - १a - १}}$ १०

मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १२ । a a ४}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु

पंचमधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कुं $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १३ । a}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु तन्मिश्रहारम-

संख्यातगुणमक्कु $\frac{\text{a a a a ४ a a ४ । १३ । a a}}{\text{a - १a - १}}$ मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुण-

---

र्यग्देशसंयतहार॰ असख्यातगुण.। अयमेव प्रथमपृथिव्यसयतस्यापि हार॰। तत. मिश्रहारः असंख्यातगुणः। तत सासादनहार. संख्यातगुण। ततः द्वितीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। तत. मिश्रहारः असंख्यात- १५
गुण। तत सासादनहार संख्यातगुण.। तत तृतीयपृथिव्यसयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असख्यातगुणः। तत. सासादनहारः संख्यातगुण॰। तत चतुर्थपृथिव्यसयतहारः असंख्यातगुण.। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुण॰। तत सासादनहार संख्यातगुणः। ततः पञ्चमधरासंयतहारः असंख्यातगुण। ततः मिश्रहार.

है वही भागहार प्रथम नरकमें असंयतका भी है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे दूसरे नरकमें असंयतका भागहार २०
असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे तीसरे नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे चौथे नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यात-
गुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे पंचम नरकमें असंयत २५
भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका

मक्कु $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ |\ 13\ a\ a\ 4}{a-1a-1}$ मदं नोडलुं षष्ठधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कुं।

$\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a\ a\ 4\ |\ 14\ a}{a-1a-1}$ मद नोडलु तन्मिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{aaaa4\ a\ a\ 4\ |\ 14\ a\ a}{a-1a-1}$

मदं नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुणमक्कुं $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a\ a\ 4\ |\ 14\ |\ a\ a\ 4}{a-1a-1}$ मदं नोडलु

सप्तमधराऽसंयतहारमसंख्यातगुणमक्कु $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a\ a\ 4\ |\ 15\ a}{a-1a-1}$ मदं नोडलु तन्मिश्रहारम-

संख्यातगुणमक्कु $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a\ a\ 4\ |\ 15\ |\ a\ a}{a-1a-1}$ मद नोडलु तत्रत्यसासादनहारं संख्यातगुण-

मक्कु $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ aa\ 4\ |\ 15\ |\ a\ a\ 4}{a-1\ a-1}$ मनंतरमानतादिगळोळु हारमं पेळ्दपं :—

चरमधरासाणहरा आणदसम्माण आरणप्पहुडिं ।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसंखसंखगुणहारा ॥६३८॥

चरमधरासासादनहाराः आनतसम्यग्दृष्टिनामारणप्रभृत्यतिमग्रैवेयकांतं सम्यग्दृष्टीनाम-संख्यसख्यगुणहाराः ॥

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ॥६३९॥

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुदिशानां विजयादिसम्यग्दृष्टीनां सख्यगुणः आनतमिश्रेऽसंख्यगुणः ॥

असख्यातगुण.। तत सासादनहार सख्यातगुण'। तत षष्ठधरासयतहार. असख्यातगुण । तत मिश्रहार असख्यातगुण । तत सासादनहार सख्यातगुण.। तत' सप्तमधरासयतहारः असख्यातगुण । तत मिश्रहार असख्यातगुण । तत सासादनहार सख्यातगुण ॥६३७॥ अथानतादिषु गाथात्रयेणाह—

तत्सप्तमपृथ्वीसासादनहारात् आनतद्वयासंयतहार. असख्यातगुण । तत आरणद्वयाद्यन्तिमग्रैवेयकान्तदशपदासयताना दशहारा सख्यातगुणक्रमा' स्यु । अत्र सख्यातस्य संदृष्टि पञ्चाङ्क ॥६३८॥

ततोऽन्तिमग्रैवेयकासयतहारात् आनतद्वयादितदुक्तैकादशपदमिथ्यादृष्टीना एकादशहारा सख्यातगुणितक्रमा । अत्र सख्यातस्य सदृष्टि षडङ्क । तत तदन्तिमग्रैवेयकवामहारात् नवानुदिशविजयादिचतुर्विमाना-

---

भागहार संख्यातगुणा है। उससे छठी पृथ्वीमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। उससे सातवें नरकमें असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे सासादनका भागहार संख्यातगुणा है ॥६३७॥

आगे आनतादिमें तीन गाथाओंसे कहते है—

सप्तम पृथ्वीसम्बन्धी सासादनके भागहारसे आनत-प्राणत सम्बन्धी असंयतका भागहार असंख्यातगुणा है। उससे आरण-अच्युतसे लेकर अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त दस स्थानोंमें असंयतोंका भागहार क्रमसे संख्यातगुणा संख्यातगुणा है। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि पाँचका अंक है ॥६३८॥

उस अन्तिम ग्रैवेयक सम्बन्धी असंयतोंके भागहारसे आनत-प्राणत युगलसे लेकर

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ॥६४०॥

ततः संख्येयगुण. सासादनसम्यग्दृष्टीनां भवति संख्यगुणः । उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचत्वारः संदृष्टिः ॥ गाथा त्रितयं ॥

सप्तमपृथ्विसासादनसम्यग्दृष्टिय हारंगळु आनतकल्पद्वयसम्यग्दृष्टिगळगेयुं आरण अच्युतकल्पद्वयप्रभृत्यंतिमग्रैवेयकपर्य्यंतमाद सम्यग्दृष्टिगळगमुमसंख्यातगुणमुं संख्यातगुणमुं यथासंख्यमागियप्पुवदें तें दोडे सप्तमपृथ्विसासादनसम्यग्दृष्टिय हारमं नोडलु आनतकल्पद्वयासंयतहारसंख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ ə / ə − १ ə − १ मदं नोडलु आरणाच्युतकल्पद्वयाऽसंयतसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ । ə ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलु अधस्तनाधस्तनदनवग्रैवेयकसम्यग्दृष्टियहारं संख्यातगुणमक्कुं ə ə ə ə ४ । ə ə ४ । १६ ə । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलु अधस्तनमध्यमग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कुं । ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलुमधस्तनोपरितनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ ə । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलुमध्यमाधस्तनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ ə । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलु मध्यम मध्यमग्रैवेयक सम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ ə । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलु मध्यमोपरितनसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ । ə । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलुपरितनाधस्तनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलुपरितनमध्यमग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारं संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ । ə । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १ मदं नोडलुपरितनोपरितनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहार संख्यातगुणमक्कु ə ə ə ə ४ ə ə ४ । १६ । ə । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ / ə − १ ə − १

संयतहारौ द्वौ संख्यातगुणक्रमौ । अत्र सख्यातस्य सदृष्टि. सप्ताङ्कः । तत. विजयाद्यसयतहारादानतद्वयमिश्रहारः असख्यातगुण. ॥६३९॥

तदानतद्वयमिश्रहारात् आरणद्वयादितद्दशपदमिश्रहारा. संख्यातगुणक्रमा· । अतः सख्यातस्य संदृष्टिः

अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त ग्यारह स्थानोमे मिथ्यादृष्टियोंके ग्यारह भागहार क्रमसे संख्यातगुणे हैं । यहाँ संख्यातकी संदृष्टि छहका अंक है । उस अन्तिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिथ्यादृष्टियोंके भागहारसे नौ अनुदिश और विजयादि चार विमानोंमें असंयतोंके दो भागहार संख्यातगुणे संख्यातगुणे है । यहाँ संख्यातकी संदृष्टि सातका अंक है । विजयादि सम्बन्धी असंयतके भागहारसे आनत-प्राणत सम्बन्धी मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है ॥६३९॥

आनत-प्राणत सम्बन्धी मिश्रके भागहारसे आरण-अच्युतसे लेकर अन्तिम ग्रैवेयक

ततस्तेषामुक्ताना वामानामनुद्दिशानां विजयादिसम्यग्दृष्टीनां संख्यगुणः एंदितुपरितनो-परितनग्रैवेयकसम्यग्दृष्टिहारमं नोडलु आनतकल्पद्वयं मोदलगोंडुपरितनोपरितनग्रैवेयकपर्य्यंतमाद पन्नोंदु स्थानद वामरुगळ हारंगळु संख्यातगुणक्रमगळप्पुवल्लि आनतकल्पद्वयवामरुगळ हारं संख्यातगुणमक्कु ३ ५ । १० । ६ । मदं नोडलु आरणाच्युतवामरुगळ हारं संख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १० । ६ । ६ मदं नोडलधस्तनाधस्तन ग्रैवेयकवामरुगळ हारं संख्यातगुणमक्कुं ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । अदं नोडलु अधस्तनमध्यमग्रैवेयकवामहार संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६।६ । मदं नोडलु अधस्तनोपरितनग्रैवेयक वाम हारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । मदं नोडलुमध्यमाधस्तनग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ मद नोडलु मध्यममध्यमग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ मद नोडलु मध्यमोपरितनग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । मदं नोडलुपरिमाधस्तनग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । मदं नोडलु उपरिममध्यग्रैवेयकवामहारं सख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १० । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । ६ । मदं नोडलुपरिमोपरिमग्रैवेयकवामहारं संख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १०।६।६।६।६।६।६।६।६।६।६।६। मदं नोडलु अनुदिशविमानगळ सम्यग्दृष्टिगळ हारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ११ ।७।। मदं नोडलु विजयादिचतुर्व्विमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळहारं संख्यातगुणमक्कुं ३ ।५।१०।६।११।७।७। मदं नोडलु आनतमिश्रेऽसंख्यातगुणः आनतकल्पद्वयमिश्रहारमसंख्यातगुणमक्कुं । ३ । ५।१०।६।११।७ । २ । ३ ॥ तत उपरि आरणाच्युतकल्पद्वयमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कुं । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ ॥ मदं नोडलुमधस्तनाधस्तनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलुमधस्तनोपरितनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ । ८ । ८ । ८ मदं नोडलुमाधस्तनोपरितन-ग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ॥ मद नोडलु मध्यममध्यमग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु ३।५।१०।६।११।७।२।३।८।८।८।८।८।८॥ मदं नोडलु मध्यमोपरितनग्रैवेयकमिश्रहारं सख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । मदं नोडलु उपरितनाधस्तनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलु उपरितन-मध्यमग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ ।२।३।८।८।८।८।८।८।८।८।८॥ मदं नोडलुमुपरितनोपरितनग्रैवेयकमिश्रहारं संख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ३ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलु सासादनसम्यग्दृष्टीनां संख्यगुणः एंदितु आनतकल्पद्वयसासादनहार संख्यातगुणमक्कुं । ३ । ५ । १० । ६ । ११ । ७ ।२।३।८।१०।४ ॥ अदं नोडलु आरणाच्युतकल्पद्वयसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु ।३।५।१०।६।११।७।२।३।८।१०।४।४॥ मदं नोडलु प्रथमग्रैवेयकसासादनहारं सख्यातगुणमक्कु । ३ । ५ । १० । ६ ।११।७।२।३।८।१०।४।४।४

अष्टाङ्क । तत तदन्तग्रैवेयकमिश्रहारात् आनताद्येकादशपदाना सासादनहारा सख्यातगुणक्रमा । अत्र सख्यातस्य

पर्यन्त दस स्थानोंमें मिश्रगुणस्थानसम्बन्धी भागहार क्रमसे संख्यातगुणा संख्यातगुणा है। यहाँ सख्यातकी संदृष्टि आठका अंक है। अन्तिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिश्रके भागहारसे

---

१. म उपरिमोपरिम° । २. म °नमध्यमग्रैवेयक° ।

मदं नोडलु द्वितीयग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ४ । ४ । ४ ॥ मदं नोडलु तृतीयग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ॥ मदं नोडलु चतुत्थग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ॥ मदं नोडलु पंचमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ॥ मदं नोडलु षष्ठग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ । ८ ॥ मदं नोडलु सप्तमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ॥ मदं नोडलु अष्टमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ॥ मदं नोडलु नवमग्रैवेयकसासादनहारं संख्यातगुणमक्कु । ə । ५ । १० । ६ । ११ । ७ । २ । ə । ८ । १० । ४ । ११ ॥ मी पेळल्पट्ट स्थानदोळु क्रमदिंदमय्दु । ५ । मारु । ६ । मेळु । ७ । मंटु । ८ । नाल्कु । ४ । संख्यातक्के संदृष्टिगळेंदरिवुदु ।

सगसग अवहारेहि पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ॥६४१॥

स्वस्वावहारैः पल्ये भक्ते भवंति स्वस्वराशयः । स्वस्वगुणप्रतिपन्ने स्वस्वराशिष्वपनीते वामाः ॥

तंतम्म हारंगळिंदमी पेळल्पट्टवरिंदं पल्यं भागिसल्पडुत्तिरलु तंतम्म राशिगळप्पुवु । तंतम्म स्थानद गुणप्रतिपन्नरं सासादनमिश्रासंयतदेशसंयतरं कूडि तंतम्म राशियोळकळियुत्तिरलु तंतम्म स्थानदोळु मिथ्यादृष्टिगळप्परु । अदेंतेंदोडे सामान्यगुणस्थानद गुणप्रतिपन्नरिंदं हीनमाद वामरु किंचिदूनसर्व्वसंसारिराशियक्कु । १३–। देवौघगुणप्रतिपन्नरिंदं हीनमाद वामरुगळु किंचिदूनदेवौघमक्कुं ७– सौधर्म्मकल्पद्वयदोळु गुणप्रतिपन्नरिंदं हीनघनांगुलतृतीयमूलगुणजगच्छ्रेणि-
४ । ६५ । = ७

सदृष्टिश्चतुरङ्क । एतेषूक्तपञ्चस्थलेषु सख्याताना सदृष्टयः क्रमश पञ्चषट्सप्ताष्टचतुरङ्का ज्ञातव्याः ॥६४०॥

प्रागुक्तैः स्वस्वहारै पल्ये भक्ते सति स्वस्वराशयो भवन्ति । स्वस्वस्थानस्य गुणप्रतिपन्नेषु सासादनमिश्रासंयतदेशसंयतेषु मेलयित्वा स्वस्वराशावपनीतेषु शेषस्वस्वस्थाने मिथ्यादृष्टयो भवन्ति । तत्र सामान्ये किंचिदूनससारी १३– देवौघे किंचिदूनतद्राशिः– ७– सौधर्मद्वये किंचिदूना घनाङ्गुलतृतीयमूल-
४ । ६५=७

आनत आदि ग्यारह स्थानोंमें सासादनका भागहार क्रमसे संख्यातगुणा संख्यातगुणा है। यहाँ संख्यातकी संदृष्टि चारका अंक है। ऊपर कहे इन पाँच स्थानोंमें संख्यातोंकी संदृष्टि क्रमसे पाँच, छह, सात, आठ और चारका अंक जानना ॥६४०॥

पहले कहे अपने-अपने भागहारोंसे पल्यमें भाग देनेपर अपनी-अपनी राशि होती है। अपने-अपने स्थानके सासादन, मिश्र, असंयत और देशसंयतोंको जोड़नेपर जो राशि हो उसे अपनी-अपनी राशिमें घटानेपर जो शेष रहे उतना अपने-अपने स्थानमें मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण होता है। सो सामान्यसे मिथ्यादृष्टि कुछ कम संसारीराशि प्रमाण है। सामान्य-

प्रमितं वामरप्परु।-३-। सनत्कुमारकल्पद्वयदोळु गुणप्रतिपन्नरिदं किंचिदूनैकादशजगच्छ्रेणिमूल-भक्त जगच्छ्रेणिप्रमितंवामरप्परु। किंचिदूनक्किल्लि हारंगळु साधिकगळेंदु निश्चैसुवदू $\frac{1}{11}$ ब्रह्मकल्प-द्वयवामरु निजनवममूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनं वामरप्परु ९ लातवकल्पद्वयदोळु निजसप्तम-मूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनमागि वामरप्परु $\frac{1}{7}$ शुक्रकल्पद्वयदोळु निजपंचममूलभक्तजग-च्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनमागि वामरप्परु। ५। शतारकल्पद्वयदोळु निजचतुर्त्थमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं किंचिदूनमागि वामरप्परु $\frac{1}{4}$। ज्योतिष्करोळु गुणप्रतिपन्नरिदं किंचिदूनमागि पण्णट्ठिमात्र प्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरमात्रं वामरप्परु $\frac{\overline{=}}{4}$। $\frac{1}{65}$= व्यंतररोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयहीन संख्यातप्रतरांगुल भक्तजगत्प्रतरमात्रं वामरप्परु। $\frac{\overline{=}}{4}$। ६५=८ $\frac{1}{1\ 0}$। भवनवासिगरोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयहीनघनागुलप्रथममूलमात्रं जगच्छ्रेणिप्रमितं वामरुगळप्परु -१-। तिर्य्यंचरोळु गुणप्रतिपन्नराशिचतुष्टयविहीनसकलसंसारिराशितत्प्रत्यवामरुगळप्परु १३-। प्रथमपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयहीनघनागुलद्वितीयमूलगुणजगच्छ्रेणियोळु साधिकद्वादशांशविहीनमात्रं वामरु-गळप्परु —२-$\frac{1}{12}$। द्वितीयपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीन निजद्वादशमूलभक्तजगच्छ्रेणि-मात्रं वामरुगळप्पु $\frac{1}{12}$ तृतीयपृथ्वियोळु निजदशममूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं गुणप्रतिपन्नरु गळिंदं किंचिदूनमक्कु $\frac{1}{10}$ चतुर्त्थपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नरुगळिंदं विहीन $\frac{2}{}$ निजाष्टममूल

जगच्छ्रेणि । सनत्कुमारद्वयादिपञ्चयुग्मेषु किंचिदूना क्रमशो निजैकादशमनवमसप्तमपञ्चमचतुर्थमूलभक्तजगच्छ्रेणि', ऊनतात्र हाराधिका ज्ञेया। ज्योतिष्के पण्णट्ठिप्रतराङ्गुलभक्त व्यन्तरसख्यातप्रतराङ्गुलभक्तश्च जगत्प्रतर. किंचिदून । भवनवासिषु किंचिदूना घनाङ्गुलप्रथममूलहतजगच्छ्रेणि । तिर्यक्षु किंचिदून सर्वतिर्यग्राशि १३-। प्रथमपृथिव्या किंचिदूना घनाङ्गुलद्वितीयमूलगुणहतजगच्छ्रेणि. साधिकद्वादशाशोना $-२=\frac{1}{12}$ । द्वितीयादि-

---

देवोंमें कुछ कम देवराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टि होते हैं। सौधर्मयुगलमे घनांगुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाणमे-से कुछ कम मिथ्यादृष्टियोका प्रमाण है। सानत्कुमार आदि पाँच युगलोंमे क्रमसे जगतश्रेणिके ग्यारहवे, नौवे, सातवे, पाँचवे और चौथे वर्गमूल-का भाग जगतश्रेणिमें देनेसे जो प्रमाण आवे उसमे कुछ-कुछ कम मिथ्यादृष्टियोका प्रमाण है। यहाँ कमीका कारण भागहारकी अधिकता जानना। ज्योतिषीदेवोंमें पण्णट्ठिप्रमाण प्रतरांगुलसे और व्यन्तरोंमें संख्यात प्रतरांगुलसे जगत्प्रतरमे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमे कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। भवनवासियोंमें घनागुलके प्रथम वर्गमूलसे गुणित जगतश्रेणि प्रमाणमें कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। तिर्यंचोंमे कुछ कम सर्व-तिर्यंचराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टि हैं। प्रथम पृथिवीमे घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे कुछ अधिक बारहवे भागसे हीन जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने सब नारकी हैं उनसे कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियोंमे क्रमसे जगतश्रेणिके बारहवे,

भक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्परु $\frac{\text{I}}{८}$ । पंचमपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीननिज-षष्ठमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्परु । $\frac{\text{I}}{६}$ । षष्ठपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीननिज-तृतीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्पुरु $\frac{}{३}$ । सप्तमपृथ्वियोळु गुणप्रतिपन्नराशित्रयविहीन-निजद्वितीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्रं वामरुगळप्परु । $\frac{}{२}$ । आनतादिगळोळु कंठोक्तमागि पेळल्-पट्टरु । सर्व्वार्त्थसिद्धिविमानाहमिंद्ररु असंयतसम्यग्दृष्टिगळु । 'तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसी पमाणादो' एंदितु संख्यातमप्परु ४२ = ४२ = ४२=३ । ३ । ७॥ मनुष्यगतियोळु देशसंयतादिगळं पेळ्दपं :—

तेरसकोडीदेसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा ।
मिस्सावि य तद्दुगुणा असंजदा सत्तकोडिसया ॥६४२॥

त्रयोदशकोटयो देशसंयते द्विपंचाशत्कोटयः सासादने ज्ञातव्याः । मिश्राश्चापि तद्द्विगुणा भवंति असंयताः सप्तकोटिशताः ॥

मनुष्यगतियोळु देशसंयतरु पदिमूरु कोटिगळप्परु । १३ को । सासादनरु द्विपंचाशत्कोटि-गळप्परु । ५२ को । मिश्ररुगळु तद्द्विगुणमप्परु १०४ को । असंयतसम्यग्दृष्टिगळु सप्तकोटिशत-प्रमितरप्परु ७०० को । प्रमत्तादिसंख्ये मुन्नमे पेळल्पट्टुदु ।

पृथ्वीषु किंचिदूना क्रमशो निजद्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिः । आनतादिषु कण्ठोक्त्योक्ता । सर्वार्थसिद्धावहमिन्द्रा असयता एव । ते च मानुषीप्रमाणात्त्रिगुणाः सप्तगुणा वा भवन्ति ॥६४१॥ मनुष्यगतावाह—

देशसंयते त्रयोदशकोट्यो मन्तव्याः । १३ को । सासादने द्विपञ्चाशत् कोट्यः ५२ को । मिश्रे ततो द्विगुणा १०४ को । असंयते सप्त शतकोट्यः ७०० को । प्रमत्तादीना संख्या तु प्रागुक्ता ॥६४२॥

दसवें, आठवें, छठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूलका भाग जगतश्रेणिमें देनेसे जो-जो प्रमाण आवे उसमें कुछ-कुछ कम मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण है । यहाँ जो अपनी-अपनी समस्त राशि-में कुछ कम किया है सो दूसरे आदि गुणस्थानवाले जीवोंके प्रमाणको घटानेके लिए किया है क्योंकि मिथ्यादृष्टियोंकी तुलनामें उनका परिमाण बहुत अल्प है । आनतादिमें मिथ्यादृष्टियोंका प्रमाण पहले कहा ही है । सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र असंयत सम्यग्दृष्टि ही है । मानुषियोंके प्रमाणसे उनका प्रमाण तिगुना और किन्हींके मतसे सात गुणा कहा है ॥६४१॥

मनुष्यगतिमें कहते हैं—

मनुष्य देशसंयत गुणस्थानमें तेरह कोटि जानना । सासादनमें बावन कोटि जानना । मिश्रमें उससे दुगुने अर्थात् एक सौ चार कोटि जानना । असंयतमें सात सौ कोटि जानना । प्रमत्त आदिकी संख्या पहले कही है ॥६४२॥

जीविदरे कम्मचये पुण्णं पावोत्ति होदि पुण्णं तु ।
सुहपयडीणं दव्वं पावं असुहाण दव्वं तु ॥६४३॥

जीवेतरस्मिन् कर्म्मचये पुण्यं पापमिति भवति पुण्यंतु । शुभप्रकृतीनां द्रव्यं पापमशुभानां द्रव्यं तु ॥

जीवपदार्त्थमं पेळ्वल्लि सामान्यदिंदं गुणस्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्त्तिगळुं सासादनगुणस्थानवर्त्तिगळुं पापजीवंगळु । मिश्रगुणस्थानवर्त्तिगळु पुण्यपापमिश्रजीवंगळेकें दोडे सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रपरिणामिगळप्पुदरिंदमसंयतगुणस्थानवर्त्तिगळु पुण्यजीवगळेकें दोडे सम्यक्त्वसंयुक्तजीवंगळप्पुदरिंदं देशसंयतगुणस्थानवर्त्तिगळुं सम्यक्त्वमुमेकदेशव्रतंगळोळु कूडिदवप्पुदरिंदं पुण्यजीवंगळप्परु । प्रमत्ताद्ययोगिकेवलिगुणस्थानवर्त्तिगळनितुं पुण्यजीवंगळें दितु पेळ्दनंतरमजीवपदार्त्थमं पेळ्वल्लि कर्म्मचयदोळु कार्म्मणस्कंधदोळु पुण्यमें दुं पापमें दुमजीवपदार्त्थमेरडु भेदमक्कुमल्लि पुण्यमें बुदावुदे दोडे मत्ते शुभप्रकृतिगळ द्रव्यमक्कुमा शुभप्रकृतिगळावुवेंदोडे सद्वेद्यमुं शुभायुष्यंगळुं शुभनामकर्म्मप्रकृतिगळुमुच्चैर्गोत्रमें बिवु शुभप्रकृतिगळें बुवक्कुं । पापमें बुदावुदें दोडे अशुभकर्म्मप्रकृतिगळ द्रव्यमक्कुमा अशुभप्रकृतिगळेंबुवावुवें दें दोडे अतोन्यत्पापमें बी सूत्राभिप्रायदिंदमसद्वेद्यमुं नरकायुष्यमुं नीचैर्गोत्रमुमशुभनामकर्म्मप्रकृतिगळुमें बिवशुभप्रकृतिगळेबुवक्कु ।

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ॥६४४॥

आस्रवसंवरद्रव्यं समयप्रबद्धस्तु निर्ज्जराद्रव्यं । ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ॥

जीवपदार्थप्रतिपादने सामान्येन गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टय सासादनाश्च पापजीवा. । मिश्रा पुण्यपापमिश्रजीवा सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रपरिणामपरिणतत्वात् । असयता सम्यक्त्वेन, देशसयता सम्यक्त्वेन देशव्रतेन च प्रमत्तादय सम्यक्त्वेन व्रतेन च युतत्वात् पुण्यजीवा एव इत्युक्ता । अनन्तर अजीवपदार्थप्ररूपणे कर्मचये—कार्मणस्कन्धे पुण्य पापमिति अजीवपदार्थो द्वेधा । तत्र शुभप्रकृतीना सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणा द्रव्य पुण्यं भवति । अशुभाना असद्वेद्यादिसर्वाप्रशस्तप्रकृतीना द्रव्य तु पुन' पाप भवति ॥६४३॥

जीवपदार्थ सम्बन्धी सामान्य कथनके अनुसार गुणस्थानोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादन तो पापी जीव हैं। मिश्रगुणस्थानवाले पुण्यपापरूप मिश्र जीव है क्योंकि उनके सम्यक् मिथ्यात्वरूप मिश्र परिणाम होते है। असयत सम्यक्त्वसे युक्त हैं, देशसंयत सम्यक्त्व और देशव्रतसे युक्त है इसलिए ये तो पुण्यात्मा जीव ही हैं और प्रमत्तादि तो पुण्यात्मा है ही। इसके अनन्तर अजीव पदार्थका प्ररूपण करते है—कार्मण-स्कन्ध पुण्यरूप भी होता है और पापरूप भी होता है इस प्रकार अजीव पदार्थके दो भेद है। उनमें सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम और उच्चगोत्र ये शुभ प्रकृतियाँ है इनका द्रव्य पुण्यरूप है। असातावेदनीय आदि सब अप्रशस्त प्रकृतियोंका द्रव्य पाप है ॥६४३॥

आस्रवद्रव्यमुं संवरद्रव्यमुं प्रत्येकं समयप्रबद्धमक्कुं निर्ज्जराद्रव्यमुं तु मत्ते समयप्रबद्धमं नोडलुमसंख्यातगुणितमुत्कृष्टमक्कुं नियमदिंदं ।

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ॥६४५॥

बंधः समयप्रबद्धः किंचिदूनद्वयर्द्धमात्रगुणहानिर्म्मोक्षश्च भवत्येवं श्रद्धातव्यास्तु तत्वार्थाः ॥ ५

तु मत्ते बंधमुं समयप्रबद्धमेयक्कुं । मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुवेंदितु तत्वार्थंगळु श्रद्धातव्यंगळप्पुवु ।

अनंतरं सम्यक्त्वभेदमं पेळ्दपं :—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तक्खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ॥६४६॥ १०

क्षीणे दर्शनमोहे यच्छ्रद्धानं भवति सुनिर्म्मलं । तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्म्मक्षपणहेतुः ॥

मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिगळुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं करणलब्धिपरिणामसामर्थ्यदिंदं क्षीणमागुत्तं विरलु आवुदो दु श्रद्धानं सुनिर्म्मलमक्कुमदु क्षायिकसम्यग्दर्शनमेंबुदक्कुमा क्षायिकसम्यग्दर्शनं नित्यं नित्यमक्कुमेकेंदोडे प्रतिपक्षकर्म्मप्रक्षयदिंदं पुट्टिदात्मगुणविशुद्धिरूपसम्यग्दर्शनमक्षयमप्पुदरिदं प्रतिसमयं गुणश्रेणिकर्म्मनिर्ज्जराकारणमक्कुमंते पेळल्पट्टुदु । १५

दंसणमोहक्खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिच्छदि तुरिय भवं ण विणस्सदि सेस सम्मं व ॥

आस्रवद्रव्यं संवरद्रव्यं च समयप्रबद्ध. । निर्जराद्रव्यं तु पुनः उत्कृष्ट समयप्रबद्धान्नियमेनासंख्यातगुणं भवति ॥६४४॥

तु—पुन. बन्धोऽपि समयप्रबद्ध एव । मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं भवतीति एवं तत्त्वार्थाः श्रद्धातव्याः ॥६४५॥ अथ सम्यक्त्वभेदमाह— २०

मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतित्रये अनन्तानुबन्धिचतुष्टये च करणलब्धिपरिणामसामर्थ्यात् क्षीणे सति यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति तत्क्षायिकसम्यग्दर्शनं नाम । तच्च नित्यं स्यात् प्रतिपक्षप्रक्षयोत्पन्नात्मगुणत्वात् । पुनः प्रतिसमयं गुणश्रेणिनिर्जराकारणं भवति । तथा चोक्तं—

आस्रवद्रव्य और संवरद्रव्य प्रबद्ध प्रमाण है। किन्तु उत्कृष्ट निर्जराद्रव्य समयप्रबद्धसे २५
नियमसे असंख्यातगुणा होता है ॥६४४॥

बन्धद्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण ही है । और मोक्षद्रव्य किंचित् हीन डेढ गुण हानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है । इस प्रकार तत्त्वार्थोंका श्रद्धान करना चाहिए ॥६४५॥

आगे सम्यक्त्वके भेद कहते हैं—

करणलब्धि रूप परिणामोंकी सामर्थ्यसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ३०
प्रकृति इन तीन दर्शनमोहके तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभके क्षय होनेपर जो अत्यन्त निर्मल श्रद्धान होता है उसका नाम क्षायिक सम्यग्दर्शन है। वह नित्य है; क्योंकि प्रतिपक्षी कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेके साथ आत्माका गुण है। तथा प्रतिसमय गुणश्रेणि

दर्शनमोहं क्षपिसल्पडुत्तिरलु तद्भवदोळे सिद्धिसुगुं मेणु तृतीयचतुर्त्थभवंगळोळु कर्म्मक्षयमं माळ्कुं। नाल्कनेय भवमनतिक्रमिसुवुदल्ल शेषसम्यक्त्वगळंते किंडुवुदुमल्लमदु कारणदिदं नित्यमेंदु पेळल्पट्टुदु साद्यक्षयानंतमेंबुदर्त्थमनतरमीयर्त्थमने पेळ्दपं :—

वयणेहि वि हेदूहि वि इंदियभयआणएहि रूवेहिं ।
वीभच्छजुगुंछाहि य तेलोक्केण वि ण चालेज्जो ॥६४७॥

वचनैरपि हेतुभिरपीद्रियभयानकैः रूपैः। बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चालनीयं ॥

कुत्सितोक्तिर्गळिंदमुं कुहेतुदृष्टांतंगळिंदमुं इंद्रियंगळ्ग भयंकरंगळिंदमुं विकृतवेषंगळिंदमुं वीभत्स्यंगळर्त्तिणिंदप्प जुगुप्सिगळिंदमुं किं बहुना त्रैलोक्येनापि सूरुं लोकादिदमुं क्षायिकसम्यक्त्वं चलिसल्पडदु। अंतप्प क्षायिकसम्यग्दर्शनमार्ग्गक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥६४८॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्म्मभूमिजातस्तु मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्व्वत्र ॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभकं मत्तं कर्म्मभूमिजनक्कुमिल्लियुं मनुष्यनेयक्कुमादोडं केवलिश्रीपादमूलदोळु दर्शनमोहक्षपणाप्रारभमं माळ्कु। चतुर्ग्गतिगळोळेल्लियादोडं निष्ठापिसुगु।

अनंतरं वेदकसम्यक्त्वस्वरूपमं पेळ्दपं—

दर्शनमोहे क्षपिते सति तस्मिन्नेव भवे वा तृतीयभवे वा चतुर्थभवे कर्मक्षय करोति चतुर्थभवं नातिक्रामति। शेषसम्यक्त्ववन्न विनश्यति। तेन नित्यमित्युक्तं। साद्यक्षयानन्तमित्यर्थ। अमुमेवार्थमाह—

कुत्सितोक्तिभि.—कुहेतुदृष्टान्तैः इन्द्रियभयोत्पादकविकृतवेषैः वीभत्स्यवस्तूत्पन्नजुगुप्साभि किं बहुना त्रैलोक्येनापि क्षायिकसम्यक्त्वं न चालयितु शक्यम् ॥६४७॥ तत्सम्यग्दर्शन कस्य भवेत् ? इति चेदाह—

दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भकः कर्मभूमिज एव सोऽपि मनुष्य एव तथापि केवलिश्रीपादमूले एव भवति। निष्ठापकस्तु सर्वत्र चतुर्गतिषु भवति ॥६४८॥ अथ वेदकसम्यक्त्वस्वरूपमाह—

निर्जराका कारण होता है। कहा है—दर्शन मोहका क्षय होनेपर उसी भवमे या तीसरे अथवा चौथे भवमें कर्मोंका क्षय करके मुक्ति प्राप्त करता है। चतुर्थ भवका अतिक्रमण नहीं करता। और न अन्य सम्यक्त्वोंकी तरह नष्ट ही होता है। इसीसे इसे नित्य कहा है। अर्थात् यह सादि अक्षयानन्त होता है ॥६४६॥

इसी बातको कहते हैं—

कुत्सित वचनोंसे, मिथ्याहेतु और दृष्टान्तोंसे, इन्द्रियोंको भय उत्पन्न करनेवाले भयंकर रूपोंसे, घिनावनी वस्तुओंसे उत्पन्न हुई ग्लानिसे, बहुत कहनेसे क्या, तीनों लोकोंके द्वारा भी क्षायिक सम्यक्त्वको विचलित नहीं किया जा सकता ॥६४७॥

वह क्षायिक सम्यग्दर्शन किसके होता है यह कहते हैं—

दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य ही केवलीके पादमूलमे ही करता है। किन्तु निष्ठापक चारों गतियोमे होता है ॥६४८॥

आगे वेदक सम्यक्त्वका स्वरूप कहते हैं—

---

१. म °मल्तदु।

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥६४९॥

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्त्थश्रद्धानं । चलमलिनमगाढं तद्वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥

दर्शनमोहनीयमप्प सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमागुत्तिर्द्दोडमावुदो दु तत्त्वार्थश्रद्धानं पुट्टुगुमदु चलमलिनमगाढमक्कुमदं वेदकसम्यक्त्वमें दितु एले शिष्यने नीनरि । ५

अनंतरमुपशमसम्यक्त्वस्वरूपमुमं तत्सामग्रिविशेषमुमं गाथात्रयदिदं पेळ्दपं :—

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६५०॥

दर्शनमोहोपशमतः उत्पद्यते यत्पदार्त्थश्रद्धानं । उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमं ॥

अनंतानुबंधिचतुष्टयोदयाभावलक्षणाप्रशस्तोपशमदिंदं दर्शनमोहत्रयप्रशस्तोपशमदिंदं प्रसन्न- १०
मलपंकतोयसमानमप्पुदावुदो दु पदार्त्थश्रद्धानं पुट्टुगुमदु उपशमसम्यक्त्वमें दु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ।

खयउवसमियविसोही देसणपाओग्गकरणलद्धी य ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६५१॥

क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशना प्रायोग्यकरणलब्धयश्चतस्रः सामान्याः करणलब्धिः पुनः १५
सम्यक्त्वे भवति ॥

क्षयोपशमदोळादलब्धियुं विशुद्धिलब्धियुं देशनाप्रायोग्यकरणलब्धिगळुमें दितु लब्धि-
पंचकमुपशमसम्यक्त्वदोळप्पुववरोळु मोदल नाल्कु लब्धिगळु भव्यनोळमभव्यनोळमप्पुवप्पुदरिंदं

दर्शनमोहनीयस्य सम्यक्त्वप्रकृतेः उदये सति यत्तत्त्वार्थश्रद्धानं चल मलिनं अगाढं वोत्पद्यते तद्वेदक-
सम्यक्त्वमिति जानीहि ॥६४९॥ अथोपशमसम्यक्त्वस्वरूपं तत्सामग्रीविशेष च गाथात्रयेण आह— २०

अनन्तानुबन्धिचतुष्कस्य दर्शनमोहत्रयस्य च उदयाभावलक्षणाऽप्रशस्तोपशमेन प्रसन्नमलपङ्कतोयसमानं
यत्पदार्थश्रद्धानमुत्पद्यते तदिदमुपशमसम्यक्त्वं नाम ॥६५०॥

क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यताकरणनाम्न. पञ्चलब्धय. उपशमसम्यक्त्वे भवन्ति । तत्र आद्याः

दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल, मलिन
वा अगाढ़ होता है उसे वेदक सम्यक्त्व जानो ॥६४९॥ २५

उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप और उसकी विशेष सामग्री तीन गाथाओंसे कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और दर्शन मोहकी मिथ्यात्व, सम्यक्-
मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन तीनके उदयका अभाव लक्षणरूप प्रशस्त उपशमसे
मलपंक नीचे बैठ जानेसे निर्मल हुए जलकी तरह जो पदार्थ श्रद्धान उत्पन्न होता है उसका
नाम उपशम सम्यक्त्व है ॥६५०॥ ३०

क्षायोपशमिकलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि ये
पाँच लब्धियाँ उपशमसम्यक्त्व होनेसे पूर्व होती है। इनमें-से आदिकी चार लब्धियाँ सामान्य

साधारणंगळेप्पुवु । करणलब्धि भव्यनोळेयप्पुदरिंदं सम्यक्त्वग्रहणदोळं चारित्रग्रहणदोळमक्कु ।

अनंतरमी युपशमसम्यक्त्वमं कैकोंब जीवनं पेळदपरु :—

चउगइ भव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।
जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमइ ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञिपर्य्याप्तः शुद्धश्च साकारः । सल्लेश्यो जागरिता सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥

चतुर्गतियभव्यनुं संज्ञियुं पर्य्याप्तकनुं विशुद्धनुं भेदग्रहणमाकारमेंबुददरोळ्कूडिदनुमप्पुदरिंदं साकारनुं स्त्यानगृद्ध्यादिनिद्रात्रयरहितनुं भावशुभलेश्यात्रयदोळन्यतमलेश्यायुतनुं करणलब्धिपरिणतनुमितप्प जीवं यथासंभवमप्प सम्यक्त्वमं पोद्दुगुं ।

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥६५३॥

चतुर्णा क्षेत्राणामायुर्बंधेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ॥

नारकायुष्यमुम तिर्य्यगायुष्यमुमं मनुष्यायुष्यमुमं देवायुष्यमुमं परभवायुष्यंगळं कट्टिद बद्धायुष्यरुगळप्प जीवंगळु सम्यक्त्वमं स्वीकरिसुवरल्लि दोषमिल्लमणुव्रतमहाव्रतंगळं पडेयल्के नेरेयरल्लि, देवायुर्बंधमाद जीवंगळु अणुव्रतमहाव्रतंगळं स्वीकरिसुवरु ।

चतस्रोऽपि सामान्या भव्याभव्ययो संभवात् । करणलब्धिस्तु भव्य एव स्यात् तथापि सम्यक्त्वग्रहणे चारित्रग्रहणे च ॥६५१॥ अथोपशमसम्यक्त्वग्रहणयोग्यजीवमाह—

य चतुर्गतिभव्य सज्ञो पर्याप्तक विशुद्ध आकारेण भेदग्रहणेन सहित स्त्यानगृद्ध्यादिनिद्रात्रयरहित भावशुभलेश्यात्रये अन्यतमलेश्य करणलब्धिपरिणत स जीवो यथासभव सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥६५२॥

चतुर्णा परभवायुषा एकतमबन्धेन जातबद्धायुष्कस्य सम्यक्त्वं भवत्यत्र दोषो नास्ति । अणुव्रतमहाव्रतानि तु एक बद्धदेवायुष्क मुक्त्वा नान्ये लभन्ते ॥६५३॥

है भव्य और अभव्य दोनोंके होती है । किन्तु अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण परिणाम रूप करणलब्धि भव्यके ही होती है । वह भी सम्यक्त्व और चारित्र ग्रहणके समय होती है ॥६५१॥

उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके योग्य जीवको कहते है—

जो चारों गतियोंमें-से किसी भी गतिमें वर्तमान है किन्तु भव्य, पर्याप्तक, विशुद्ध, साकार उपयोगवाला, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंसे रहित अर्थात्, तीन शुभ भाव लेश्याओंमें-से किसी एक लेश्याका धारक और करणलब्धि रूप परिणत होता है वह जीव यथासम्भव सम्यक्त्वको प्राप्त करता है ॥६५२॥

परभव सम्बन्धी चारों आयुओंमें-से किसी भी एक आयुका बन्ध कर लेनेपर जो जीव बद्धायु हो गया है उसके सम्यक्त्व उत्पन्न होनेमें कोई दोष नहीं है । किन्तु अणुव्रत और महाव्रत एक बद्धदेवायु—जिसने परभव सम्बन्धी देवायुका बन्ध किया है—को छोड़कर अन्य आयुका बन्ध कर लेनेवाले बद्धायुष्कके नही होते ॥६५३॥

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो ।
सो सासणोत्ति णेयो पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५४॥

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः । सासादन इति ज्ञेयः पंचमभावेन संयुक्तः ॥

आवनोर्व्वं जीवनु सम्यक्त्वदिंदं बळिक्कि मिथ्यात्वमं पोर्द्ददन्नेवरमिर्प्पवन्नेवरमा जीवं सासादननेंदितरियल्पडुवं । दर्शनमोहनीयोदयोपशमादिनिरपेक्षापेक्षेयिंदं पारिणामिकभावदोळ्कूडिदनुमप्पनेकें दोडे चारित्रमोहनीयापेक्षेयिनातंगौदयिकभावमप्पुदरिंदं ।

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छोत्ति णायव्वो ॥६५५॥

श्रद्धानाश्रद्धानं यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु । विरताविरतेन समः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ।

जीवादिपदार्थंगळोळु आवनोर्व्वजीवंगे श्रद्धानमुमश्रद्धानमुमोम्मोंदलोळे संयतासंयतंगंतु संयममुमसंयममुमोम्मोंदलोळेयक्कुमंते । मिश्रनोळु तत्वार्थश्रद्धानमुमतत्वार्थश्रद्धानमुमोम्मोंदलोळेयक्कुमप्पुदरिंना जीवं सम्यग्मिथ्यादृष्टियेंदितरियल्पडुवं ।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥६५६॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्धधाति । श्रद्धधात्यसद्भावमुपदिष्टं वाऽनुपदिष्टं ॥

मिथ्यादृष्टिजीवं उपदेशं गेय्यल्पट्टाप्तागमपदार्थंगळं नंबुवनल्लं । उपदेशं गेयल्पट्टुमनुपदेशं गेय्यल्पडदुदुमनसद्भावमननाप्तागमपदार्थंगळं नंबुवं ।

यो जीवः सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं यावन्न प्राप्तः तावत् सासादन इति ज्ञेय स च दर्शनमोहनीयस्यैवापेक्षया पारिणामिकभावेन सहित', चारित्रमोहनीयापेक्षया तस्यौदयिकभावसद्भावात् ॥६५४॥

जीवादिपदार्थेषु यस्य जीवस्य श्रद्धानमश्रद्धान च युगपदेव देशसंयमस्य संयमासंयमवद्भवति स जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥६५५॥

मिथ्यादृष्टिर्जीव' उपदिष्टान् आप्तागमपदार्थान् न श्रद्दधाति । उपदिष्टान् अनुपदिष्टाश्च असद्भावान् अनाप्तागमपदार्थान् श्रद्दधाति ॥६५६॥ अथ सम्यक्त्वमार्गणाया जीवसंख्या गाथात्रयेणाह—

जो जीव सम्यक्त्वसे गिरकर जबतक मिथ्यात्वको प्राप्त नहीं होता तबतक उसे सासादन जानना। वह दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा ही पारिणामिक भाववाला होता है। चारित्र मोहनीयकी अपेक्षा तो अनन्तानुबन्धीका उदय होनेसे औदयिक भाववाला है॥६५४॥

जैसे देशसंयमीके एक साथ संयम और असंयम दोनों होते हैं वैसे ही जिस जीवके जीवादि पदार्थोंमें श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों ही एक साथ होते हैं वह जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि जानना ॥६५५॥

मिथ्यादृष्टि जीव जिन भगवान्के द्वारा कहे गये आप्त, आगम और पदार्थोंका श्रद्धान नहीं करता। किन्तु कुदेवोंके द्वारा उपदिष्ट और अनुपदिष्ट असमीचीन मिथ्या आप्त, मिथ्या आगम और मिथ्या पदार्थोंका श्रद्धान करता है ॥६५६॥

अनंतरं सम्यक्त्वमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपं—

वासपुधत्ते खयिया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे ।
तो संखपल्लठिदिए केवडिया एवमणुपादे ॥६५७॥

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः संख्येया भवंति सौधर्म्मे । तर्हि संख्यपल्यस्थितिके कियन्त एवमनुपाते ॥

वर्षपृथक्त्वदोळु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळु संख्यातप्रमितरु सौधर्म्मकल्पद्वयदोळु पुट्टुवरंतादोडे संख्यातपल्यस्थितिकनोळु एनिबरु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परेंदितनुपातत्रैराशिकमं माडुत्तिरलु प्रवर्ष ७ फ । क्षा= ७ । इ । प ७ । वंद लब्धमेनितक्कुमेंदोडे :—

८

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदगुवसमया ।
आवलि असंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ॥६५८॥

संख्यातावलिहृतपल्याः क्षायिकाः ततश्च वेदकोपशमकाः । आवल्यसंख्यगुणिताः असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ॥

संख्यातावलिगळिंदं भागिसल्पट्ट पल्यप्रमितरु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु प मा क्षायिक-
२७
सम्यग्दृष्टिगळं नोडलु वेदकसम्यग्दृष्टिगळुमुपशमसम्यग्दृष्टिगळुं क्रमदिंदमावल्यसंख्यातगुणित-
प्रमाणरुमसंख्यातगुणहीनरुमप्परु वे प ० उ = प
२१० २१०

यदि वर्षपृथक्त्वे क्षायिकसम्यग्दृष्टय सख्याता सौधर्मद्वये उत्पद्यन्ते तर्हि सख्यातपल्यस्थितिके कति इत्यनुपाते त्रैराशिके कृते त्रवर्ष ७ फ क्षा = १ । इ प १ लब्धा ॥६५७॥

८

सख्यातावलिभक्तपल्यमात्रका क्षायिकसम्यग्दृष्टयो भवन्ति प । तेभ्य वेदकोपशमसम्यग्दृष्टय क्रमेण
२१
आवल्यसख्यातगुणितासख्यातगुणहीना भवन्ति । वे = प ० उ = प ॥६५८॥
२१ २१०

सम्यक्त्वमार्गणामें जीवोंकी संख्या तीन गाथाओंसे कहते हैं—

यदि वर्षपृथक्त्व कालमें सौधर्मयुगलमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यात उत्पन्न होते हैं तो संख्यात पल्यकी स्थितिमें कितने उत्पन्न होते हैं ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि वर्षपृथक्त्व, फलराशि संख्यात जीव और इच्छाराशि संख्यात पल्य । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमे प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आया वह कहते हैं ॥६५७॥

संख्यातआवलीसे भाजित पल्यप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंकी संख्याको आवलीके असंख्यातवे भागसे गुणा करनेपर वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी संख्या होती है । तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणे हीन उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं ॥६५८॥

पल्लासंखेज्जदिमा सासणमिच्छा य संखगुणिदा हु ।
मिस्सा तेहि विहीणो संसारी वामपरिमाणं ॥६५९॥

पल्यासंख्यातैकभागाः सासादनमिथ्यादृष्टयश्च संख्यातगुणिताः खलु । मिश्राः तैर्व्विहीनः संसारी वामपरिमाणं ॥

पल्यासंख्यातैकभागप्रमितरु सासादनमिथ्यारुचिगळप्परु प मा सासादनरं नोडलु
ə ə ४
सम्यग्मिथ्यादृष्टिगळु संख्यातगुणितमात्ररप्परु प स्फुटमागि ई राशिपञ्चकविहीनसंसारिराशि-
ə ə
वामरुगळ प्रमाणमक्कुं । वा १३̄ - ।

नवपदार्त्थंगळ प्रमाणं पेळल्पडुगुं । जीवंगळु । १६ अजीवंगळु पुद्गलंगळु सर्व्वजीवराशियं नोडलनंतगुणमक्कुं । १६ ख । धर्म्मद्रव्यमों दु १ । अधर्म्मद्रव्यमों दु १ । आकाशद्रव्यमों दु १ । काल-द्रव्यं जगच्छ्रेणिघनप्रमितमक्कु ≡ मितजीवं गुंदि साधिकपुद्गलराशिप्रमितमक्कुं ३ पुण्यजीवं-
≡
१६ ख
गळु असंयतरुं देशसंयतरुं कूडि प्रमत्ताद्युपरितनगुणस्थानवर्त्तिगळं संख्यातदिंदं साधिकरप्परु
प ə ə ४ अजीवपुण्यं द्वयर्द्धगुणहानिसंख्यातैकभागमक्कु स ə -१२-१ पापजीवंगळु
ə ə ə ४ ३

साधिकसिद्धराशिविहीन संसारिराशिप्रमाणमप्परु १३̄ । अजीवपापं द्वयर्द्धगुणहानिसंख्यातबहु-

---

पल्यासंख्यातैकभागमात्राः सासादनमिथ्यारुचयः प तेभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः सख्यातगुणाः प
ə ə ४ ə ə
स्फुट एतद्राशिपञ्चकोनससाररराशिर्वामपरिमाणं भवति वा १३—नवपदार्थप्रमाणमुच्यते—

जीवाः १६ अजीवेषु पुद्गला. सर्वजीवराशितोऽनन्तगुणाः १६ ख । धर्मद्रव्यमेकं । अधर्मद्रव्यमेकं । आकाशद्रव्यमेकं । कालद्रव्यं जगच्छ्रेणिघनमात्रं । ≡ । एवमजीवपदार्थो मिलित्वा साधिकपुद्गलराशिमात्र·
३ ३
≡ ३
१६ ख । पुण्यजीवा असयतदेशसंयतान्मेलयित्वा तत्र प्रमत्तादीना सख्याते युते एतावन्त· प ə ə ४ अजीव-
ə ə ə ४
पुण्यं द्वयर्धगुणहानिसंख्यातैकभागः स ə १२—१ पापजीवाः साधिकपुण्यजीवसिद्धराशिविहीनसंसारिराशिः १३—।
३

पल्यके असंख्यातवें भाग सासादन होते है जिनकी रुचि मिथ्या होती है। उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणे हैं। संसारी जीवोंकी राशिमेंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन और मिश्र इन पाँचकी राशियोंको घटानेपर मिथ्या-दृष्टियोंका परिमाण होता है। अब नौ पदार्थोंका परिमाण कहते है—जीव अनन्त हैं। अजीवोंमें पुद्गल समस्त जीवराशिसे अनन्तगुणा है। धर्मद्रव्य एक है। अधर्मद्रव्य एक है। आकाशद्रव्य एक है। कालद्रव्य जगतश्रेणिके घन अर्थात् लोकप्रमाण है। इस प्रकार अजीव पदार्थ सब मिलकर साधिक पुद्गलराशिप्रमाण है। असंयत और देशसंयतोंके प्रमाणको प्रमत्त आदिके प्रमाणमें मिलानेपर पुण्य जीवोंका प्रमाण होता है। डेढ गुण-हानि प्रमाण

भागमात्रमक्कुं स $\frac{\circ}{१२}$ १ आस्रवपदार्थं समयप्रबद्धप्रमाणमक्कुं स अ संवरद्रव्यमुं समयप्रबद्ध-
१
प्रमितमक्कुं। स अ। निर्ज्जराद्रव्यमिदु स अ $\frac{१२।६४}{प।८५}$ वंधद्रव्यं समयप्रबद्धमक्कुं। स अ मोक्षद्रव्यं
अ
द्वयर्द्धगुणहानिप्रमितमक्कुं स अ १२-। संदृष्टि :—

सामान्यजीव १६ अजी=सा ३ ≡ १६ ख बंध स अ

५ पुण्यजीव अ प अ अ ४ / १ १ १ ४ पु स अ १२।१ / अ मोक्ष सं अ १२

पापजीव १३ = पाप अ $\frac{\circ}{१२-१}$ / आस्र स अ / संव स अ / निर्ज्ज स अ १२=$\frac{६४}{प।८५।}$ / अ

अजीवपाप द्वयर्धगुणहानिसख्यातवहुभाग स अ $\frac{\circ}{१२-१}$ आस्रवपदार्थ. समयप्रवद्धः स अ। संवरद्रव्य
१
समयप्रवद्ध स अ। निर्जराद्रव्यमेतावत्- स अ $\frac{१२-।६४}{ऊ प ८५}$ वन्धद्रव्यं समयप्रवद्धः स अ। मोक्षद्रव्य
अ
किंचिदूनद्वयर्धगुणहानि स अ १२- ॥६५९॥

---

१० समय प्रवद्धोंमें-से संख्यातवें भाग अजीवपुण्यका परिमाण है। संसारी राशिमें-से मिश्रकी अपेक्षा कुछ अधिक पुण्यजीवोंके प्रमाणको घटानेसे पापजीवोंका प्रमाण होता है। डेढ गुण-हानिप्रमाण समयप्रवद्धोंमेसे संख्यात वहुभाग अजीवपापका परिमाण है। आस्रव पदार्थ समयप्रवद्ध प्रमाण है। संवर द्रव्य समयप्रवद्ध प्रमाण है। निर्जराद्रव्य गुणश्रेणि निर्जराके उत्कृष्ट द्रव्यप्रमाण है। वन्धद्रव्य समयप्रवद्धप्रमाण है। मोक्षद्रव्य कुछ कम डेढ गुणहानि-
१५ प्रमाण है ॥६५९॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्र-वर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितगोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्त्व-प्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशतिप्ररूपणंगळोळु सप्तदशं सम्यक्त्वमार्गणामहाधिकारं व्याकृतमाय्तु ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्व-प्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु सम्यक्त्वमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तदशोऽधिकारः ॥१७॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा नामक सत्रहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

संज्ञिमार्गणा ॥१८॥

अनंतरं संज्ञिमार्गणाधिकारमं पेळ्दपं :—

णोइंदिय आवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदि अवबोहो ॥६६०॥

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जनितबोधनं संज्ञा । सा यस्य स तु संज्ञी इतरः शेषेंद्रियाव-
५ बोधः ॥

नोइंद्रियं मनस्तदावरणक्षयोपशमं संज्ञेयेंबुदक्कुं । तज्जनितबोधनं मेणु संज्ञेयेंबुदक्कुमा संज्ञे यावनोव्वं जीवंगुटक्कुमा जीवं संज्ञि येंबुदक्कुमितरनप्पसज्ञिजीवं शेषेंद्रियंगळिदमरिवनुळ्ळनक्कुं ।

सिक्खकिरियुवदेशालावग्गाहिमणोवलंबेण ।
१० जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीयो असण्णी दु ॥६६१॥

शिक्षाक्रियोपदेशाळापग्राहि मनोवलंबेन । यो जीवः स संज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ॥

हिताहितविधिनिषेधात्मिका शिक्षा तद्ग्राही कश्चिन्मनुष्यादिः, करचरणचालनादिरूपा क्रिया । तद्ग्राही कश्चिदुक्षादिः, चर्म्मपुत्रिकादिनोपदिश्यमानवधविधानादिरुपदेशस्तद्ग्राही कश्चिद्-गजादिः । श्लोकादिपाठः आलापस्तद्ग्राही कश्चिच्चकोरराजकीरादिः । एंदितु मनोवलंबनदिंदं
१५ शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राहकमावुदों दु जीवमदु संज्ञेयेंबुदक्कुं । तद्विपरीतलक्षणमनुळ्ळुदसंज्ञि-

---

निरस्तारिरजोविघ्नो व्यक्तानन्तचतुष्टयः ।
शतेन्द्रपूज्यपादाब्ज. श्रिय दद्यादरो जिन. ॥१८॥

अथ सज्ञिमार्गणामाह—

नोइन्द्रिय मन तदावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधन वा सज्ञा सा विद्यते यस्य स संज्ञी इतर. असज्ञी
२० शेषेन्द्रियज्ञान ॥६६०॥

हिताहितविधिनिषेधात्मिका शिक्षा । करचरणचालनादिरूपा क्रिया । चर्मपुत्रिकादिनोपदिश्यमानवध-विधानादिरुपदेश. । श्लोकादिपाठ आलाप. । तद्ग्राही मनोवलम्बेन यो मनुष्य. उक्षगजराजकीरादिजीव. स

संज्ञिमार्गणाको कहते है—

नोइन्द्रिय मनको कहते हैं । नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमको अथवा उससे उत्पन्न हुए
२५ ज्ञानको संज्ञा कहते है । जिसके वह संज्ञा है वह संज्ञी है । मनके सिवाय अन्य इन्द्रियोंके ज्ञानसे युक्त जीव असज्ञी होता है ॥६६०॥

हितका विधान और अहितका निषेध जो करती है वह शिक्षा है । हाथ-पैरके संचालनको क्रिया कहते है । चमड़ेकी पेटी आदिके द्वारा हिसादि करनेके उपदेश देनेको उपदेश कहते है । श्लोक आदि पढनेको आलाप कहते है । जो मनुष्य या बैल, हाथी, तोता

---

३० १. म सज्ञिय जसमासज्ञिया ।

जीवमें बुदक्कुं ।

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो ॥६६२॥

मीमांसति यः पूर्व्वं कार्य्यमकार्य्यं च तत्त्वमितरंच । शिक्षते नाम्नैति च समनाः अमनाश्च विपरीतः ॥

यः आवनोव्वं पूर्व्वं मुन्नमे कार्य्याकार्य्यमं मीमांसति अरियलच्छैसुगुं । तत्वमितरं च शिक्षते तत्वमुममतत्वमुमनरिहिसुव शास्त्रंगळोळु प्रवर्तिसुगुं नाम्नैति च पेसरिंदं कैरेदोडे बक्कुं आ जीवं समनाः समनस्कनक्कुं । विपरीतश्च विपरीतलक्षणममनुळ्ळुदु अमनाः अमनस्कजीवमक्कुं ।

संज्ञिमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं :—

देवेहि सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ॥६६३॥

देवैः सातिरेको राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणं । तेनोनः संसारी सर्व्वेषामसज्ञिजीवानां ॥

चतुर्णिकायामरसामान्यराशि साधिकमादोडे संज्ञिजीवंगळ परिमाणमक्कु $= \frac{\text{॥ ०}}{४ । ६५ = १}$ मी राशियिंदं विहीनमप्प संसारिराशि सर्व्व असंज्ञिजीवंगळ परिमाणमक्कुं । १३– ।

संज्ञी नाम । तद्विपरीतलक्षणः तु पुनः असंज्ञीनाम ॥६६१॥

यः पूर्वं कार्यमकार्यं च मीमासति । तत्त्वमितरच्च शिक्षते । नाम्ना आहूत आयाति स जीवः समनाः समनस्को भवति । तद्विपरीतलक्षण. अमना. अमनस्को भवति ॥६६२॥ अत्र जीवसख्यामाह—

चतुर्निकायामरराशिः साधिकः संज्ञिप्रमाण भवति $= \frac{\text{॥}}{४ । ६५ = १}$ तेनोनः सर्वसंसारिराशिः सर्वासज्ञिपरिमाणं भवति १३– ॥६६३॥

आदि ज़ीव मनके द्वारा शिक्षा आदि ग्रहण करते है वे संज्ञी है । जो ऐसा नहीं कर सकते वे असंज्ञी हैं ॥६६१॥

जो पहले कार्य-अकार्यका विचार करता है, तत्त्व और अतत्त्वको सीखता है, नाम लेकर पुकारनेपर चला आता है वह जीव मनसहित है । जो ऐसा नही कर सकता वह मनरहित है ॥६६२॥

चार प्रकारके देवोंका जितना प्रमाण है उससे कुछ अधिक संज्ञी जीवोंका प्रमाण है । सब संसारीराशिमें-से संज्ञी जीवोंके प्रमाणको घटानेपर समस्त असंज्ञी जीवोंका परिमाण होता है ॥६६३॥

---

१. म करवोडे ।

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्वं वंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु भूमंडलाचार्य्यवर्य्यंमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकाडविंशतिप्ररूपणंगळोळु अष्टदशसज्ञिमार्गणाधिकारं व्याख्यातमादुदु ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु सज्ञिमार्गणाप्ररूपणा नाम अष्टादशोऽधिकार ॥१८॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी- के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी सस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी प टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत भव्य प्ररूपणाओंमें-से संज्ञिमार्गणा प्ररूपणा नामक अठारहवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

आहार मार्गणा ॥१९॥

अनंतरं आहारमार्गणेयं पेळ्दपं :—

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम ॥६६४॥

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानां । नोकर्म्मवर्गणानां ग्रहणमाहारो नाम ॥

औदारिकवैक्रियिक आहारकशरीरनामकर्म्मप्रकृतिगळोळों दानुमों[1]दुदयमनेय्दुत्तिरलंतप्पुदरुदयदिंदमा शरीरमुं वचनमुं द्रव्यमनमुमेंबी नोकर्म्मवर्गणेगळ्गे ग्रहणमाहारमेंबुदक्कुं ।

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं तम्हा आहारयो भणिदो ॥६६५॥

आहरति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्गणाश्च । भाषामनसोर्नियतं तस्मादाहारको भणितः ॥

औदारिकवैक्रियिक आहारकंगळेंब मूरुं शरीरंगळोळुदयक्के बंद एकतमशरीरवर्गणेगळ्मं भाषामनोवर्गणेगळ्मं नियतं नियतमेंतप्पुदंते नियतजीवसमासदोळं नियतकालदोळं देहभाषामनोवर्गणेगळं नियतमेहेंगेहंगे आहरति आहरिसुगुमेंदितु[2] आहारकनेंदु परमागमदोळ्पेळल्पट्टं ।

मल्लिफुल्लवदामोदो मल्लो मोहारिमर्दने ।
बहिरन्तःश्रियोपेतो मल्लिः शल्यहरोऽस्तु नः ॥१९॥

अथाहारमार्गणामाह—

औदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मान्यतमोदयेन तच्छरीरवचनद्रव्यमनोयोग्यनोकर्मवर्गणानां ग्रहणं आहारो नाम ॥६६४॥

औदारिकादित्रिशरीराणा उदयागतैकतमशरीरवर्गणाः भाषामनोवर्गणाश्च नियतजीवसमासे नियतकाले च नियतं यथा भवति तथा आहरति इत्याहारको भणितः ॥६६५॥

आहार मार्गणाको कहते हैं—

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक नामकर्ममें-से किसी एकके उदयसे उस शरीर, वचन और द्रव्यमनके योग्य नोकर्मवर्गणाओंके ग्रहणका नाम आहार है ॥६६४॥

औदारिक आदि तीन शरीरोंमें-से उदयमें आये किसी शरीरके योग्य आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणाको नियत जीवसमासमें और नियत कालमें नियत रूपसे सदा ग्रहण करता है इसलिए आहारक कहते है ॥६६५॥

---

१. म दुदयमनेय्दिदतप्पुरुदयदिंदमा । २. म °दिताहारनेदु ।

विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥६६६॥

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घातवंतोऽयोगी च सिद्धाश्चानाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥

विग्रहगतियं पोर्द्दिद जीवंगळु प्रतरलोकपूरणसमुद्घातसयोगकेवलिगळुमयोगकेवलिगळुं सिद्धपरमेष्ठिगळुमनाहारकमप्परु । शेषजीवंगळेनितोळवनितुमाहारकरेयप्परु । समुद्घातमेनितें दोडे पेळ्दपरु ।

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ॥६६७॥

वेदनाकषायवैगुर्व्विकाश्च मारणांतिकः समुद्घातश्च । तेजः आहारः षष्ठः सप्तमः केवलिनां तु ॥

वेदनासमुद्घातमे दुं कषायसमुद्घातमें दुं वैगूर्व्विकसमुद्घातमें दुं मारणांतिकसमुद्घातमें दुं तैजससमुद्घातमें दुमाहारकसमुद्घातमें दु केवलिसमुद्घातमें दुं विंतु सप्तसमुद्घातंगळप्पुवु ।

अनंतरं समुद्घातमें बुदेनें दोडे पेळ्दपं :—

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ॥६६८॥

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य । निर्गमनं देहाद् भवति समुद्घातनाम तु ॥

मूलशरीरमं बिडदे कार्म्मणतैजसोत्तरदेहदजीवप्रदेशप्रचयक्के शरीरदिं पोरगल्गे निर्गमनं समुद्घातमें बुदक्कुं

विग्रहगत्याश्रितचतुर्गतिजीवा. प्रतरलोकपूरणसमुद्घातपरिणतसयोगिजिना अयोगिजिना. सिद्धाश्च अनाहारा भवन्ति । शेषजीवा सर्वेऽपि आहारका एव भवन्ति ॥६६६॥ समुद्घात कतिधा ? इति चेदाह—

समुद्घात· वेदनाकषायवैगूर्विकमारणान्तिकतैजसाहारककेवलिसमुद्घातभेदात् सप्तधा भवति ॥६६७॥

स च किरूप. ? इति चेदाह—

मूलशरीरमत्यक्त्वा कार्मणतैजसरूपोत्तरदेहयुक्तस्य जीवप्रदेशप्रचयस्य शरीराद्बहिर्निर्गमनं तत् समुद्घातो नाम भवति ॥६६८॥

विग्रहगतिमें आये चारों गतियोंके जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करनेवाले सयोगी जिन, और सिद्ध अनाहारक है । शेष सब जीव आहारक हैं ॥६६६॥

समुद्घातके भेद कहते है—

वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहार और केवली समुद्घातके भेदसे समुद्घात सात प्रकारका होता है ॥६६७॥

समुद्घातका स्वरूप कहते हैं—

मूल शरीरको छोड़कर कार्मण और तैजस रूप उत्तर शरीरसे युक्त जीवके प्रदेश समूहका शरीरसे बाहर निकलना समुद्घात है ॥६६८॥

---

१. ब कति चे° ।

आहारमारणंतियदुगं पि णियमेण एगदिसिगंतु ।
दसदिसिगदा हु सेसा पंचसमुग्घादया होंति ॥६६९॥

आहारमारणांतिकसमुद्घातद्वयमेकदिशिकं तु । दशदिग्गताः खलु शेषाः पंचसमुद्घाता भवंति ॥

आहारकसमुद्घातमुं मारणांतिकसमुद्घातमें बेरडुं समुद्घातंगळेकदिशिकंगळप्पुवु । शेष- ५
वेदनासमुद्घातादिपंचसमुद्घातंगळु दशदिग्गतंगळप्पुवु ।

आहारानाहारकालमं पेळ्दपं :—

अंगुलअसंखभागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो ।
कम्मम्मि अणाहारो उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥६७०॥

अंगुलासंख्यातभागः काल आहारस्योत्कृष्टः । कार्म्मणे अनाहारः उत्कृष्टस्त्रयः समयाः खलु ॥ १०

सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रकालमाहारकुत्कृष्टमक्कुं । त्रिसमयोनोच्छ्वासाष्टादशैकभाग-
मात्रकालं जघन्यमक्कुं । कार्म्मणकायदोळु अनाहारकुत्कृष्टकालं मूरु समयंगळप्पुवु । जघन्यकाल-
मेकसमयमक्कु आहार अनाहार

स
उ सू २ जघ १—१ उत्कृष्ट सम ३ ज = स १
अ १८

अनंतरमाहारमार्गणेयोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं । १५

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिदसंसारी सव्वो आहारपरिमाणं ॥६७१॥

कार्म्मणकाययोगिनो भवत्यनाहारकाणां परिमाणं । तद्विरहितसंसारी सर्व्वः आहारक-
परिमाणं ॥

आहारमारणान्तिकसमुद्घातद्वयमेव एकदिग्गतं भवति तु— पुनः शेषाः पञ्चसमुद्घाताः दशदिग्गता २०
भवन्ति ॥६६९॥ आहारानाहारकालमाह—

आहारकाल· उत्कृष्ट सूच्यङ्गुलासंख्यातैकभागः २ । जघन्य. त्रिसमयोनोच्छ्वासाष्टादशैकभाग. ।
अ

अनाहारकालः कार्मणकाये उत्कृष्ट· त्रिसमयः । जघन्यः एकसमयः । खलु—स्फुटं ॥६७०॥ अथात्र जीव-
सख्यामाह—

आहारक और मारणान्तिक ये दो समुद्घात ही एक दिशामें गमन करते हैं । किन्तु २५
शेष पाँच समुद्घात दसों दिशाओंमें गमन करते हैं ॥६६९॥

आगे आहार और अनाहारका काल कहते है—

आहारका उत्कृष्टकाल सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग है । जघन्यकाल तीन समय कम
उच्छ्वासका अठारहवाँ भाग है । अनाहारका काल कार्मणकायमें उत्कृष्ट तीन समय और
जघन्य एक समय है ॥६७०॥ ३०

इनमें जीवोंकी संख्या कहते है—

कार्म्मणकाययोगिगळ्ळु अनाहारकरपरिमाणमक्कुं । तद्राशिविरहितमप्प संसारिराशि आहारकर परिमाणमक्कुमवर्तेंदोडे कार्म्मणकाययोगकालं समयत्रयमक्कुं । औदारिकमिश्रकालमंतम्मुंहूर्त्तमक्कुं । तत्कायकालं संख्यातगुणमक्कुं । कूडि त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितांतम्मुंहूर्त्तमक्कु ३ मिदु प्रक्षेपकयोगमक्कुमंतागुत्तं विरलु 'प्रक्षेपकयोगोद्धृतमिश्रपिंडः

$$\frac{\text{२ १ ४}}{}$$

प्रक्षेपकाणां गुणको भवेत्सः । यें बी सूत्राभिप्रायदिंदं त्रैराशिकं माडल्पडुगुं । प्र $\frac{३}{\text{२ १}}$ । ५ । फ १३- । इ स ३ । लब्धमनाहारकर प्रमाणमक्कुं । १३—। ३ मत्तं प्र $\frac{३}{\text{२ १}}$ । ५ । फ १३- । इ $\frac{३}{\text{२ १}}$ । ५ । लब्धमाहारकर प्रमाणमक्कुं १३- । $\frac{३}{\text{२ १}}$ । ५ वैक्रियिकाहारकंगळ्गं यथायोग्यमरियल्पडुगुं ।

कार्मणकाययोगिजीवराशिः अनाहारकपरिमाण भवति । तद्विरहितसंसारिराशिः आहारकपरिमाणं भवति । तद्यथा—योगकाल. कार्मणस्य त्रिसमया' । औदारिकमिश्रस्य अन्तर्मुहूर्त' । औदारिकस्य तत सख्यातगुणः । मिलित्वा त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितान्तर्मुहूर्त' । ३- १- "प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिण्डः प्रक्षेपकाणा $\frac{\text{२ १ ४}}{}$ गुणको भवेदिति प्र $\frac{३}{\text{२ १}}$ ५ । फ १३- । इ स ३ । लब्धमनाहारकजीवप्रमाण १३- ३ पुन. $\frac{३}{\text{२ १}}$ । ५ । फ १३- । इ $\frac{३-}{\text{२ १}}$ । ५ । लब्धमाहारकजीवप्रमाण १३- । $\frac{३-}{\text{२ १}}$ । ५ वैक्रियिकाहारकयोर्यथायोग्यं ज्ञातव्यम् ॥६७१॥

योगमार्गणामें कार्मणकाय योगियोंका जितना प्रमाण कहा है उतना ही अनाहारकोंका प्रमाण है । संसारीराशिमें-से अनाहारकोंका प्रमाण घटानेपर आहारकोंका परिमाण होता है । जो इस प्रकार है—कार्मणयोगका काल तीन समय है । औदारिक मिश्र काययोगका काल अन्तर्मुहूर्त है । औदारिक काययोगका काल उससे संख्यातगुणा है । सब मिलानेपर तीन समय अधिक संख्यात गुणित अन्तर्मुहूर्त काल होता है । करण सूत्रमें कहा है प्रक्षेपको मिलाकर मिले हुए पिण्डसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रक्षेपकसे गुणा करनेपर अपना-अपना प्रमाण होता है । सो उक्त तीनों योगोंके कालोंको मिलानेपर तीन समय अधिक संख्यात अन्तर्मुहूर्त काल हुआ । इसका भाग कुछ हीन संसारीराशिमें देनेपर जो प्रमाण आवे उसे तीनसे गुणा करनेपर अनाहारक जीवोंका प्रमाण होता है । शेष सब संसारी आहारक जीव हैं । वैक्रियिक और आहारकवालोंका यथायोग्य जानना । उनके अल्प होनेसे यहाँ उनकी मुख्यता नहीं है ॥६७१॥

इंतु श्रीमदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यवर्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांत-चक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति-जीवतत्वप्रदीपिकेयोळु जीवकांडविंशति प्ररूपणंगळोळु एकान्नविंशति माहारमार्गणाधिकारं निरूपितमाय्तु । ५

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिका-ख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु आहारमार्गणाप्ररूपणानामैकान्नविंशोऽधिकार. ॥१९॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से आहारमार्गणा प्ररूपणा नामक उन्नीसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥ १०

१५

उपयोगाधिकारः ॥२०॥

अनंतरंसुपयोगाधिकारमं पेळ्दपं :—

वत्थुणिमित्तं भावो जादो जीवस्स जो दु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो सायारो चेव णायारो ॥६७२॥

वस्तुनिमित्तं भावो जातो जीवस्य यस्तूपयोगः । स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चैवानाकारः ॥

वसतो गुणपर्य्यायावस्मिन्निति वस्तु—ज्ञेयपदार्थस्तद्ग्रहणाय प्रवृत्तं ज्ञानं वस्तुनिमित्तं भावः अर्थग्रहणव्यापार इत्यर्थः । अर्थप्रकाशननिमित्तमागि जात. प्रवृत्तमप्प जीवस्य जीवन यस्तु आवुदोंदु भावः परिणामः । क्रियाविशेषमदुपयोगमेंबुदु, अदु मत्ते साकारोपयोगमे दुमनाकारोपयोगमेंदु द्विप्रकारमे दे ज्ञातव्यमक्कु ।

अनंतर साकारोपयोगमेंदु प्रकारमेंदु पेळ्दपं —

णाणं पंचविहंपि य अण्णाणतियं च सागरुवजोगो ।
चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥६७३॥

ज्ञानं पंचविधमपि च अज्ञानत्रयं च साकारोपयोगः । चतुर्द्दर्शनमनाकारः सर्व्वे तल्लक्षणा जीवाः ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलमेंब सम्यग्ज्ञानपंचकमुं कुमतिकुश्रुतविभंगमेंब मूरु तेरदज्ञानमुं साकारोपयोगमेंबुदक्कुं । चक्षुर्द्दर्शनमचक्षुदर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमेंबी नाल्कुं दर्शनमना-

---

सुव्रत सुव्रतै सेव्य सुव्रत सुव्रताय स ।
प्राप्तार्हन्त्यपदो दद्यात् स्वकीया सुव्रतश्रियम् ॥२०॥

अथोपयोगाधिकारमाह—

वसत गुणपर्यायो अस्मिन्निति वस्तु ज्ञेयपदार्थ – तद्ग्रहणाय जात –प्रवृत्त यो भाव –परिणाम. क्रियाविशेष जीवस्य स उपयोगो नाम । स च साकारोऽनाकारश्चेति द्वेधा ज्ञातव्य ॥६७२॥ अथ साकारोपयोगोऽष्टधा इत्याह—

मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानानि कुमतिकुश्रुतविभङ्गाज्ञानानि च साकारोपयोग । चक्षुरचक्षुर-

---

उपयोगाधिकार कहते हैं—

जिसमें गुण और पर्यायोंका वास है वह वस्तु अर्थात् ज्ञेय पदार्थ है । उसको ग्रहण करनेके लिए जीवका जो भाव अर्थात् परिणाम होता है वह उपयोग है । वह दो प्रकारका है—साकार और अनाकार ॥६७२॥

आगे उनके भेद कहते हैं—

मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल ये पाँच ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग ये

कारोपयोगमें बुदक्कुं। सर्व्वे जीवाः सर्व्वजीवंगळु तल्लक्षणंगळे ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणंगळेयप्पुवु-मेकें दोडे लक्षणक्के अव्याप्तियुमतिव्याप्तियुमसंभवियुमें बी दोषत्रयरहितत्वदिंदं।

मदिसुदओहिमणेहि य सगसगविसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो दु सायारो ॥६७४॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यायैश्च स्वस्वविषये विशेषविज्ञानमंतर्म्मुहूर्तकाल उपयोगः स तु साकारः॥ ५

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळिंदं तंतम्मविषयदोळु विशेषविज्ञानमंतर्म्मुहूर्त्तकालमर्त्थ-ग्रहणव्यापारलक्षणमुपयोगमक्कुमदु तु मत्ते साकारोपयोगमें बुदक्कुं।

इंदियमणोहिणा वा अट्ठे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो ॥६७५॥

इंद्रियमनोभ्यां अवधिना वार्थानविशेषित्वा यद्ग्रहणमंतर्म्मुहूर्त्तकाल उपयोगः सोनाकारः॥ १०

चक्षुरिंद्रियदिंदमुं मनमचक्षुरिंद्रियमप्पुदरिंदमचक्षुर्दर्शनदिंदमुमवधिदर्शनदिंदमुं वा शब्दमुं समुच्चयार्थमक्कुं। जीवाद्यर्थंगळं विकल्पिसदे निर्व्विकल्पदिंदमावुदो दु ग्रहणमंदतर्म्मुहूर्त्तकालं सामान्यार्थग्रहणव्यापारलक्षणमुपयोगमदनाकारोपयोगमें बुदक्कुं॥

अनंतरमुपयोगाधिकारदोळु जीवसंख्येयं पेळ्दपं।—

णाणुवजोगजुदाणं परिमाणं णाणमग्गणं व हवे। १५
दंसणुवजोगियाणं दंसणमग्गणपउत्तक्कमो ॥६७६॥

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्ग्गणायामिव भवेत्। दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्ग्गणा-प्रोक्तक्रमः॥

वधिकेवलदर्शनानि अनाकारोपयोगः। सर्वे जीवाः तज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा एव तल्लक्षणस्याव्याप्त्यतिव्याप्त्य-सभवदोषाभावात् ॥६७३॥ २०

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानैः स्वस्वविषये विशेषविज्ञानं अन्तर्मुहूर्तकाल अर्थग्रहणव्यापारलक्षण उपयोगः, स तु साकारोपयोगो नाम ॥६७४॥

चक्षुर्दर्शनेन वा शेषेन्द्रियैर्मनसा च इत्यचक्षुर्दर्शनेन वा अवधिदर्शनेन वा यज्जीवाद्यर्थान् अविशेषित्वा निर्विकल्पेन ग्रहण सोऽन्तर्मुहूर्तकालः अनाकारोपयोगो नाम ॥६७५॥ अथात्र जीवसंख्यामाह—

तीन अज्ञान साकार उपयोग हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये २५
अनाकार उपयोग है। सब जीव ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणवाले है। जीवके इस लक्षणमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोष नहीं है ॥६७३॥

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानोके द्वारा अपने-अपने विषयमें जो विशेष ज्ञान होता है। अन्तर्मुहूर्तकालको लिये हुए अर्थको ग्रहण करने रूप व्यापार जिसका लक्षण है वह उपयोग साकार उपयोग है ॥६७४॥ ३०

चक्षुदर्शन अथवा शेष इन्द्रिय और मनरूप अचक्षुदर्शन, अथवा अवधि दर्शनके द्वारा जीवादि पदार्थोंका विशेष न करके जो निर्विकल्प रूपसे ग्रहण होता है वह अनाकार उपयोग है। उसका काल भी अन्तर्मुहूर्त है ॥६७५॥

इनमें जीव संख्या कहते हैं—

---

१. °ण व उ° । मु.। ३५

ज्ञानोपयोगयुक्तरुगळ परिमाणं ज्ञानमार्गणेयोळु पेळदंतेयक्कुं। दर्शनोपयोगिगळ परिमाणं दर्शनमार्गणेयोळु पेळ्द क्रममेयक्कुमदेंतेंदोडे कुमतिज्ञानिगळु किंचिदून संसारिराशिप्रमाणमक्कुं।

१३—कुश्रुतज्ञानिगळुमनिबरेयक्कुं ।१३–।। विभंगज्ञानिगळु $=\frac{\text{।।।}}{\text{४।६५=१}}$ मतिज्ञानिगळु प/अ श्रुतज्ञानिगळु प/अ अवधिज्ञानिगळु प/अ अ मनःपर्य्ययज्ञानिगळु १ केवलज्ञानिगळु १/३ तिर्य्यंचविभग-

५ ज्ञानिगळु—६ प/अ मनुष्यविभंगज्ञानिगळु । १ । नारकविभगज्ञानिगळु –२– देवविभंगज्ञानिगळु $=\frac{\text{।}}{\text{४।६५=१}}$ शक्ति चक्षुदर्शनिगळु । प्र । बि । ति । च । प । ४ । फ । $\frac{=}{\text{अ}}$ इ च । पं । २ । लब्ध त्रस-

---

ज्ञानोपयोगिप्रमाण ज्ञानमार्गणावत् । दर्शनोपयोगिप्रमाण दर्शनमार्गणावत् भवेत् । तद्यथा–कुमतिज्ञानिन.

कुश्रुतज्ञानिनश्च किंचिदूनससारिराशि १३– विभङ्गज्ञानिन. $=\frac{\text{।।।}}{\text{४६५=१}}$ । मतिज्ञानिन. प/अ श्रुतज्ञानिन. प/अ अवधिज्ञानिन. प/अ अ मन पर्ययज्ञानिन १ केवलज्ञानिन. १/३ तिर्यग्विभङ्गज्ञानिन – ६ प/अ मनुष्यविभङ्गज्ञानिनः

१० १ नरकविभङ्गज्ञानिन – २ – देवविभङ्गज्ञानिनः $=\frac{\text{॥}}{\text{४। ६५=१}}$ । शक्तिचक्षुर्दर्शनिन प्र–वि । ति । च । प ।

ज्ञानोपयोगवाले जीवोंका प्रमाण ज्ञानमार्गणाके समान है और दर्शनोपयोगवाले जीवोंका प्रमाण दर्शनमार्गणाके समान है। जो इस प्रकार है—कुमतिज्ञानी और कुश्रुतज्ञानियोका प्रमाण कुछ कम संसारीराशि है। विभंगज्ञानी पूर्ववत् जानना। मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी प्रत्येक पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। अवधिज्ञानी पूर्ववत् जानना। मनःपर्ययज्ञानी
१५ संख्यात हैं। केवलज्ञानी सिद्धराशिसे अधिक है। तिर्यंच विभंगज्ञानी पल्यके असंख्यातवे भागसे गुणित घनांगुलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने हैं। विभंगज्ञानी मनुष्य संख्यात है। विभंगज्ञानी नारकी घनांगुलके दूसरे वर्गमूलसे जगतश्रेणिको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने है। देवविभंगज्ञानी सम्यग्दृष्टियोंकी संख्यासे हीन ज्योतिष्कदेवोंसे अधिक हैं। शक्तिरूप और व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनीका परिमाण गाथा

---

२० १. म मनिवरेयक्कु ।

राशि शक्ति चक्षुर्दर्शनिगळु = २ / ४।४ व्यक्ति चक्षुर्दर्शनिजीवंगळु । प्र १ फ = ४ / ५ इ । २ लब्ध = २ / ४४ / ५

अचक्षुर्दर्शनिगळु १३—अवधिदर्शनिगळु प / ० / ० केवलदर्शनिगळु ३–॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुभूमंडलाचार्य्यवर्य्यमहावादवादीश्वरराय वादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति जीवतत्व प्रदीपिकेयोळु विंशमुपयोगाधिकारं निगदितमादुदु ॥

---

४ । फ = । इ च । पं । २ । इति त्रैराशिकलब्धमात्रा - / ४ = २ = व्यक्तिचक्षुर्दर्शिनि- प्र – ४ । फ = इ २ / ४ / ५ / १ / ।

इति त्रैराशिकलब्धमात्राः = २ / ४ ५ ४ – अचक्षुर्दर्शिनः १३– अवधिदर्शिनः प / ० / ० केवलिदर्शिनः सि ३ ॥६७६॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु उपयोगमार्गणाप्ररूपणा नाम विंशोऽधिकारः ॥२०॥

---

४८७ की टीकामें कहा है। अवधिदर्शनवालोंका परिमाण अवधिज्ञानियोंके समान और केवलदर्शनियोंका परिमाण केवलज्ञानियोंके समान जानना। एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त अनन्तानन्त जीवराशि प्रमाण अचक्षुदर्शनी हैं ॥६७६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी- के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत भव्य प्ररूपणाओंमें-से उपयोगमार्गणा प्ररूपणा नामक बीसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

ओघादेशप्ररूपणाधिकारः ॥२१॥

अनंतरमुक्तविंशतिप्ररूपणेगळं यथासंभवमागि गुणस्थानंगळोळं मार्गणास्थानंगळोळं प्रत्येकं पेळ्दपं–

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविद्व्वा ओघादेसेसु पत्तेयं ॥६७७॥

गुणजीवाः पर्य्याप्तयः प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणा उपयोगे योग्याः प्ररूपयितव्याः ओघादेशेषु प्रत्येकं ॥

गुणस्थानमार्गणास्थानंगळोळु प्रत्येकं । गुणस्थानंगळुं जीवसमासेगळुं पर्य्याप्तिगळुं प्राणंगळुं संज्ञेगळुं मार्गणेगळुमुपयोगंगळुमे दीविंशतिप्रकारंगळु प्ररूपिसल्पडुववु । यथायोग्यमागि ।

अदं ते दोडे—

चउ पण चोद्दस चउरो णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेदिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥६७८॥

चतुः पंच चतुर्दश चत्वारि नरकादिषु चतुर्दश तु पंचाक्षे । त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं ॥

नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळोळु यथासंख्यमागि नाल्कुमय्दुं पदिनाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवदे ते दोडे—नरकगतियोळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतगुणस्थानचतुष्टयमक्कुं । तिर्य्यग्गतियोळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रऽसयतदेशसंयतगुणस्थानपंचकमक्कुं । मनुष्यगतियोळु सामान्य-

---

नमिर्नमत्सुराधीशोऽनन्तज्ञानादिवैभव ।
हतघातिव्रजो जीयाद्द्यान्न शाश्वत पदम् ॥

अथोत्तरमभिधेय ज्ञापयति—

उक्तविंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्रत्येक गुणस्थानानि जीवसमासा. पर्याप्तय. प्राणा. संज्ञा , मार्गणा उपयोगाश्च यथायोग्य प्ररूपयितव्या ॥६७७॥ तद्यथा—

नारकादिगतिषु क्रमेण गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टयादीनि चत्वारि पञ्च चतुर्दश चत्वारि भवन्ति । इन्द्रियमार्गणाया पञ्चेन्द्रिये तु पुन कायमार्गणाया त्रसकाये च, चतुर्दश, शेषेन्द्रियकायेषु एक मिथ्यादृष्टिगुणस्थान । जीवसमासास्तु नरकगतौ सज्ञिपर्याप्तनिवृत्यपर्याप्तौ द्वौ । तिर्यग्गतौ चतुर्दश । मनुष्यगतौ सज्ञिपर्याप्ता-

---

बीस प्ररूपणाओंका कथन करनेके पश्चात् जो कुछ अभिधेय है उसे कहते है—

ऊपर कही बीस प्ररूपणाओंमें-से गुणस्थान और मार्गणास्थानमें गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोगोंका यथायोग्य प्ररूपणा करना चाहिये ॥६७७॥

वही कहते है—

गतिमार्गणामें क्रमसे गुणस्थान, मिथ्यादृष्टि आदि नरक गतिमें चार, तिर्यंचगतिमें पाँच, मनुष्यगतिमें चौदह और देवगतिमें चार होते हैं। इन्द्रियमार्गणामें, पंचेन्द्रियमें, और कायमार्गणामें त्रसकायमें चौदह गुणस्थान होते है। शेष एकेन्द्रियादिमें और स्थावरकायमें

चतुर्दश गुणस्थानंगळनितुं संभविसुगुं। देवगतियोळु नरकगतियोळंतंते मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतगुणस्थानचतुष्टयं संभविसुगुं। इंद्रियमार्गणेयोळु पंचेंद्रियक्के चतुर्दशगुणस्थानंगळनितुं संभविसुगुं। कायमार्गणेयोळु त्रसकायक्केयुं चतुर्दशगुणस्थानंगळनितुं संभविसुगुं। शेषेंद्रियकायंगळोळु प्रत्येकमों दों दु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमक्कुं।

	न	ति	म	दे	ए	वि	ति.	च.	पं.	पृ.	अ.	ते.	वा.	व.	त्र.
गुण	४	५	१४	४	२	१	१	१	१४	२	१	१	१	१	१४
जीव	२	१४	२	२	४	२	२	२	२	४	४	४	४	४	१०

नरकगतियोळुसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु। तिर्य्यग्गतियोळु एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियअसंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु। मनुष्यगतियोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळुमेरडेयप्पुवु। देवगतियोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्त निवृत्त्यपर्य्याप्त जीवसमासेगळेरडेयप्पुवु। इंद्रियमार्गणेयोळेकेंद्रियदोळु बादरसूक्ष्मेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासगळु नाल्कप्पुवु। द्वींद्रियदोळु द्वींद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळु येरडेयप्पुवु। त्रींद्रियदोळु त्रींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु। चतुरिंद्रियदोळु चतुरिंद्रियपर्य्याप्तपर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु। पंचेंद्रियदोळु संज्ञसंज्ञिपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळु नाल्कप्पुवु। कायमार्गणेयोळु पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकपंचकदोळु एकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्य्याप्त अपर्याप्तजीवसमासेगळु प्रत्येकं नाल्कुनाल्कप्पुवु। त्रसकायिकंगळोळु द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु पत्तु संभविसुववु

गतिमार्गणायां	इंद्रिय मार्गणायां	कायमार्गणायां
न। ति। म। दे।	ए। बी। ती। च। पं।	पृ। अ। ते। वा। व। त्र।
४। ५। १४। ४।	१। १। १। १। १४।	१। १। १। १। १। १४।
२। १४। २। २।	४। २। २। २। ४।	४। ४। ४। ४। ४। १०

पर्याप्तौ द्वौ। देवगतौ नरकगतिवद्द्वौ। इन्द्रियमार्गणाया एकेन्द्रिये बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः। द्वीन्द्रिये त्रीन्द्रिये चतुरिन्द्रिये च तत्तत्पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ द्वौ। पञ्चेन्द्रिये संज्ञ्यसज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः। कायमार्गणाया पृथ्व्यादिपञ्चसु एकेन्द्रियवत् चत्वार. चत्वार, त्रसे शेषा दश ॥६७८॥

एक मिथ्यादृष्टिगुणस्थान होता है। जीवसमास नरकगतिमें संज्ञिपर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त दो होते हैं। तिर्यंचगतिमें चौदह होते है। मनुष्यगतिमें संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त दो होते हैं। देवगतिमें नरकगतिके समान दो होते है। इन्द्रियमार्गणामें एकेन्द्रियमें बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रियके पर्याप्त और अपर्याप्त होनेसे चार होते हैं। दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमें अपने-अपने पर्याप्त और अपर्याप्त होनेसे दो-दो होते हैं। पंचेन्द्रियमें संज्ञी-असंज्ञीके पर्याप्त-अपर्याप्तके भेदसे चार है। कायमार्गणामें पृथिवीकायिक आदि पाँच कायोंमें एकेन्द्रियकी तरह चार-चार जीवसमास होते है। त्रसमें शेष दस जीवसमास होते हैं ॥६७८॥

मज्झिमचउमणवयणे सण्णिप्पहुडिं तु जाव खीणोत्ति ।
सेसाणं जोगित्ति य अणुभयवयणं तु वियलादो ॥६७९॥

मध्यमचतुर्म्मनोवचनेषु संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् । क्षीणकषायस्तावत्पर्य्यंतं शेषाणां योगिपर्य्यंतं च अनुभयवचनं तु विकलात् ॥

मनोवचनयोगंगळोळु मध्यमंगळप्प असत्यमनोयोगमुभयमनोयोगमसत्यवचनयोगमुभयवचनयोगमेवी नाल्करोळं मिथ्यादृष्टिसंज्ञिपंचेंद्रियमादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमप्प पन्नेरडुं पन्नेरडु गुणस्थानंगळुमो दो दे सज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेगळु प्रत्येकमप्पुवु । शेषसत्यमनोयोगदोळुमनुभयमनोयोगदोळं सत्यवचनयोगदोळं संज्ञिपचेंद्रियपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिमूरुं गुणस्थानंगळुं पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तजीवसमासेगळो दो दुं प्रत्येकमप्पुवु । अनुभयवचनयोगदोळु विकलत्रयमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतमाद पदिमूरुं गुणस्थानंगळुं द्वीद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञिपचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासगळुमय्दप्पुवु :— मनोयोग वाग्योग

	स । अ । उ । अ	स । अ । उ । अ
गु	१३ । १२ । १२ । १३	१३ । १२ । १२ । १३
जी-	१ । १ । १ । १ ।	१ । १ । १ । ५

ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगित्ति ।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ॥६८०॥

औदारिकः पर्य्याप्ते स्थावरकायादि यावद्योगिपर्य्यंतं । तन्मिश्रः अपर्य्याप्ते चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ॥

औदारिककाययोगमेंकेंद्रियस्थावरकायपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिपर्य्यंतमाद पदिमूरुं गुणस्थानंगळक्कुमल्लि एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वींद्रियत्रीद्रियचतुरिंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेगळुमेलप्पुवु । ७ । औदारिकमिश्रयोगमपर्य्याप्तचतुर्गुणस्थानंगळोळु

मध्यमेषु असत्योभयमनोवचनयोगेषु चतुर्षु सज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि द्वादश । तु—पुनः सत्यानुभयमनोयोगयो सत्यवचनयोगे च सज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगान्तानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति । जीवसमास सज्ञिपर्याप्त एवैक । अनुभयवचनयोगे तु गुणस्थानानि विकलत्रयमिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश । जीवसमासा द्वित्रिचतुरिन्द्रियसज्ञसज्ञिपर्याप्ता पञ्च ॥६७९॥

औदारिककाययोग एकेन्द्रियस्थावरकायपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्तत्रयोदशगुणस्थानेषु भवति ।

मध्यम अर्थात् असत्य और उभय मनोयोग और वचन योग इन चारमें संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त बारह गुणस्थान होते हैं। तथा सत्य और अनुभय मनोयोग और सत्यवचनयोगमें संज्ञिपर्याप्त मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरह गुणस्थान होते हैं। जीवसमास एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है। अनुभयवचनयोगमें विकलत्रय मिथ्यादृष्टिसे लेकर तेरह गुणस्थान होते हैं। जीवसमास दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय संज्ञि-असंज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्त रूप पाँच होते हैं ॥६७९॥

औदारिक काययोग एकेन्द्रिय स्थावरकाय पर्याप्त मिथ्यादृष्टीसे लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरह गुणस्थानोंमें होता है। औदारिक मिश्रकाययोग नियमसे अपर्याप्त अवस्थामें

नियमदिंदमक्कुमा नाल्कुमपर्य्याप्तगुणस्थानंगळावुवेंदोडे पेळ्दपं :—

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णरतिरिये वि य दोण्णि वि होंतित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६८१॥

मिथ्यादृष्टौ सासादनसम्यग्दृष्टौ पुंवेदासंयते कवाटयोगिनि नरतिरश्चि च द्वावपि भवत इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं पुंवेदोदयासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं कवाटसमुद्घातसयोगकेवलिगुणस्थानदोळमितु मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळमा यरडुमौदारिककाययोगमुं तन्मिश्रकाययोगमुमप्पुवेंदितु वीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुदु । मत्तमौदारिकमिश्रकाययोगदोळु एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियापर्य्याप्तजीवसमासासप्तकमुं सयोगिकेवलियोळु कवाटसमुद्घातदोळु औदारिकमिश्रयोगमक्कुमेंदु कूडि जीवसमासाष्टकमक्कुं

औ	मिश्र
१३	४
७	८

वेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुरणिरयचउट्ठाणे मिस्से ण हि मिस्सजोगो दु ॥६८२॥

वैगुर्व्वः पर्याप्ते इतरस्मिन् खलु भवति तस्य मिश्रस्तु । सुरनारकचतुःस्थाने मिश्रे न हि मिश्रयोगस्तु ॥

वैक्रियिककाययोग पंचेंद्रियपर्य्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतगुणस्थानचतुष्टयदोळक्कुं । तन्मिश्रयोगं देवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनासंयतगुणस्थानत्रयदोळमक्कुं । वैक्रियिक-

---

तन्मिश्रयोगः अपर्याप्तचतुर्गुणस्थानेष्वेव नियमेन ॥६८०॥ तेषु केषु ? इति चेदाह—

मिथ्यादृष्टौ सासादने पुंवेदोदयासंयते कपाटसमुद्घातसयोगे, चैतेषु अपर्याप्तचतुर्गुणस्थानेषु स औदारिकमिश्रयोगः स्यादित्यर्थः । तौ योगौ द्वावपि नरतिरश्चोरेवेति सर्वज्ञैरुक्तम् । जीवसमासा औदारिकयोगे पर्याप्ताः सप्त । तेन मिश्रयोगे अपर्याप्ताः सप्त । सयोगस्य चैक. एवमष्टौ ॥६८१॥

वैक्रियिककाययोग. पर्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु भवति खलु स्फुटम् । तु—पुन.

चार गुणस्थानोंमें होता है ॥६८०॥

किन गुणस्थानोंमें होता है यह कहते है—

मिथ्यादृष्टिमें, सासादनमें, पुरुषवेदके उदय सहित असंयतमें और कपाट समुद्घात सहित सयोगकेवलीमें इन चार अपर्याप्त अवस्था सहित गुणस्थानोंमें औदारिकमिश्रयोग होता है । औदारिक और औदारिकमिश्र ये दोनों भी योग मनुष्य और तिर्यंचोंमें ही सर्वज्ञदेवने कहे है। औदारिक योगमें सात पर्याप्त जीवसमास होते हैं। अतः औदारिक मिश्र योगमें सात अपर्याप्त जीवसमास होते है और सयोगकेवलीके एक जीवसमास होता है इस तरह आठ जीवसमास होते है ॥६८१॥

वैक्रियिक काययोग पर्याप्त देव नारकियोंके मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें होता है । वैक्रियिक मिश्रकाय योग मिश्रगुणस्थानमें तो नहीं होता, अतः देवनारकियोंके

काययोगदोळु पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तजीवसमासमो देयक्कुं। तन्मिश्रदोळु संज्ञिपंचेंद्रियनिवृत्त्यपर्य्याप्त-जीवसमासमो देयक्कुं वै मि
४। ३।
१ १।

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो ॥६८३॥

आहारः पर्य्याप्ते इतरस्मिन् खलु भवति तस्य मिश्रस्तु। अंतर्मुहूर्त्तकाले षष्ठगुणे भवति आहारः॥

आहारककाययोगसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तषष्ठगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तसंयतनोळक्कुमाहारककाययोग-कालमुमुत्कृष्टदिंदमुं जघन्यदिंदमुमंतर्म्मुहूर्त्तकालदोळेयक्कुं। तन्मिश्रकाययोगमुं तद्गुणस्थान-दोळे प्रमत्तगुणस्थानदोळे अंतर्म्मुहूत्तकालदोळेयक्कुमदु कारणमागियाहारककाययोगदोळो दे गुणस्थानमुमो दे जीवसमासेयुमक्कुं। तन्मिश्रदोळमंते वो देगुणस्थानमुमो दे जीवसमासमुमक्कुं।

आहारककाययोगदोळु गु १। मि गु १
जी १। जी १

ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं।
चदुगदिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ॥६८४॥

औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्म्मणं। चतुर्गतिविग्रहकाले योगिनः प्रतर-लोकपूरणे॥

औदारिकमिश्रकाययोगदोळपेळ्दंते चतुर्गुणस्थानंगळोळु कार्म्मणकाययोगमक्कुं मदुवु चतुर्गतिविग्रहकालदोळं सयोगकेवलिय प्रतरलोकपूरणसमुद्घातकालदोळमक्कुमदु कारणमागि कार्म्मणकाययोगदोळु मिथ्यादृष्टिसासादनाऽसयतसम्यग्दृष्टि समुद्घातसयोगिभट्टारकरेंब गुण-

---

तन्मिश्रयोग मिश्रगुणस्थाने तु न हीति कारणात् देवनारकमिथ्यादृष्टिसासादनासयतेष्वेव भवति। जीवसमास. तयो क्रमेण सज्ञिपर्याप्त तन्निर्वृत्त्यपर्याप्त एकैक ॥६८२॥

आहारककाययोग सज्ञिपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अन्तर्मुहूर्तकाले एव भवति। तन्मिश्रयोग इतरस्मिन् सज्ञ्यपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने खलु जघन्योत्कृष्टेन तावत्काले एव भवति। तेन तयोर्योगयोस्तदेव गुणस्थान जीवसमास स एव एकैक. ॥६८३॥

औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणकाययोग स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोक-

---

मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतगुणस्थानोंमे ही होता है। जीवसमास उनमे-से वैक्रियिकमें संज्ञीपर्याप्त और वैक्रियिकमिश्रमे संज्ञीअपर्याप्त होता है ॥६८२॥

आहारक काययोग संज्ञीपर्याप्त छठे गुणस्थानमें जघन्य और उत्कृष्टसे अन्तमुहूर्त कालमें ही होता है। आहारमिश्रकाययोग संज्ञिअपर्याप्त अवस्थामे छठे गुणस्थानमें जघन्य उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्तकालमें ही होता है। अतः उन दोनोमें एक छठा ही गुणस्थान होता है। तथा जीवसमास भी वही संज्ञीपर्याप्त और संज्ञीअपर्याप्त एक-एक ही होता है ॥६८३॥

औदारिकमिश्रकी तरह कार्मणकाययोग चार गुणस्थानोंमें होता है। सो वह चार गति सम्बन्धी विग्रहगतिके कालमे और सयोगकेवलीके प्रतर और लोकपूरण समुद्घातके

स्थानचतुष्टयमुं एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळु उत्तरभवशरीरग्रहणार्थं स्वस्वयोग्यचतुर्गतिगळगे पोपुदं विग्रहगतियें बुदा विग्रहगतियोळप्प अपर्य्याप्तजीवसमासिगळेळुं प्रतरसमुद्घातलोकपूरणसमुद्घातसमयत्रयवर्त्तिसयोगिभट्टारकन कार्म्मणकाययोगाऽपर्य्याप्तजीवसमासेगूडि कार्म्मणकाययोगदोळें दु जीवसमासेगळप्पुवु का=

गु ४
जी ८

थावरकायप्पहुडी संढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्सय पढमो भागोत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६८५॥

स्थावरकायप्रभृति षंढः शेषाः असंज्ञ्यादयश्च । अनिवृत्तेः प्रथमभागपर्य्यंतं जिनैर्निर्दिष्टं ॥

वेदमार्गणेयोळु स्थावरकायदोळु मिथ्यादृष्टिप्रभृतियागि षंढवेदिगळनिवृत्तिकरणगुणस्थानपंचभागंळोळु प्रथमसवेदभागपर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानं गळोळप्पुवु । अदु कारणमागि नपुंसकवेददोळु गुणस्थाननवकमुं एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तजीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । शेषस्त्रीवेदिगळुं पुंवेदिगळुं संज्ञ्यसंज्ञिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडऽनिवृत्तिकरणगुणस्थानद तंतम्म सवेदभागपर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानंगळोळप्पुवु । अदु कारणमागि स्त्रीवेददोळं पुंवेददोळमों भत्तुमभों बत्तुं गुणस्थानंगळुं । संज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु नाल्कु नाल्कुमप्पुवु न । स्त्री । पुं
९ । ९ । ९ ।
१४ ४ ४

थावरकायप्पहुडी अणियट्टीवितिचउत्थभागोत्ति ।
कोहतियं लोहो पुण सुहुमसरागोत्ति विण्णेयो ॥६८६॥

स्थावरकायप्रभृत्यनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्थभागपर्य्यंतं । क्रोधत्रयं भवति लोभः पुनः सूक्ष्मसरागपर्य्यंतं विज्ञेयः ॥

पूरणकाले च भवति तेन तत्र गुणस्थानानि जीवसमासाश्च तद्वत् चत्वारि अष्टौ भवन्ति ॥६८४॥

वेदमार्गणाया षण्ढवेद. स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्त भवति तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासाश्चतुर्दश । शेषस्त्रीपुवेदौ सञ्यसञ्जिमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्वस्वसवेदभागपर्यन्त भवत. तेन तयोर्गुणस्थानानि नव नव । जीवसमासाः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः इति जिनैरुक्तम् ॥६८५॥

कालमें होता है । इससे उसमे गुणस्थान और जीवसमास. उसीकी तरह क्रमसे चार और आठ होते है ॥६८४॥

वेदमार्गणामें नपुंसकवेद स्थावरकायसम्बन्धी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेदभागपर्यन्त होता है । अतः उसमें नौ गुणस्थान होते है । जीवसमास चौदह होते है । शेष स्त्रीवेद और पुरुषवेद संज्ञी-असंज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके अपने-अपने सवेद भागपर्यन्त होते है । इससे उनमें नौ-नौ गुणस्थान होते है । तथा जीवसमास संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त, अपर्याप्त चार होते है ऐसा जिनदेवने कहा है ॥६८५॥

कषायमार्गणेयोळु क्रोधमानमायाकषायत्रयंगळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडनिवृत्तिकरणगुणस्थानद्वित्रिचतुर्त्थभागपर्य्यंतमाद गुणस्थाननवकदोळप्पुवु। अदु कारणमागि क्रोधादिकषायत्रयदोळु प्रत्येकमों भत्तुमों भत्तु गुणस्थानंगळुमेकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुरसज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु पदिनालकुं पदिनालकुमप्पुवु। लोभकषायदोळमंते स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्य्यंतमाद गुणस्थानदशकमुं क्रोधादिगळगे पेळ्दंत चतुर्द्दशजीवसमासेगळुमप्पुवेंदु

क्रो।	मा।	मा।	लो
९	९	९	१०
१४	१४	१४	१४

परमागमदोळरियल्पडुवुवु।

थावरकायप्पहुडी मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु।
सण्णीपुणप्पहुडी सासणसम्मोत्ति णायव्वो ॥६८७॥

स्थावरकायप्रभृति मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु। संज्ञीपूर्णप्रभृति सासादनसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतं ज्ञातव्यं॥

ज्ञानमार्गणेयोळु मतिश्रुताज्ञानद्वयं स्थावरकायमिथ्यादृष्टिप्रभृतिसासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतमेरडेरडुगुणस्थानदोळप्पुदु। एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुः पंचेंद्रियसंज्ञिसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळु प्रत्येकं पदिनालकु पदिनालकुमप्पुवु। विभंगज्ञानमुं संज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्टियादियागि सासादनसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतमेरडुगुणस्थानदोळप्पुदु। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयोंदेयप्पुदु। एंदितु परमागमदोळरियल्पडुवुदु।

कषायमार्गणाया क्रोधमानमाया स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणद्वित्रिचतुर्भागान्तम्। लोभ पुन सूक्ष्मसापरायान्तम्। तेन क्रोधत्रये गुणस्थानानि नव लोभे दश ज्ञेयानि। जीवसमासा सर्वत्र चतुर्दशैव॥६८६॥

ज्ञानमार्गणाया मतिश्रुताज्ञानद्वय स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनान्त ज्ञातव्य तेन तत्र गुणस्थाने द्वे। जीवसमासाश्चतुर्दश। तु-पुन विभङ्गज्ञानं सज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनान्तं तत्र गुणस्थाने द्वे। जीवसमास सज्ञिपर्याप्त एवैक॥६८७॥

कषायमार्गणामे क्रोध, मान, माया, स्थावरकायमिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके क्रमसे दूसरे, तीसरे और चौथे भागपर्यन्त होते है। लोभ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानपर्यन्त होता है। इससे क्रोध, मान, मायामें नौ और लोभमें दस गुणस्थान होते है। जीवसमास सर्वत्र चौदह होते है॥६८६॥

ज्ञानमार्गणामे कुमति, कुश्रुतज्ञान स्थावरकायमिथ्यादृष्टिसे लेकर सासादनपर्यन्त जानना। इससे उनमें दो गुणस्थान होते है। जीवसमास चौदह होते है। विभंगज्ञान संज्ञिपर्याप्त मिथ्यादृष्टिसे लेकर सासादन पर्यन्त जानना। इससे उसमें भी दो गुणस्थान होते है। जीवसमास एक संज्ञीपर्याप्त ही होता है॥६८७॥

---

१. म °दोल्पेलल्पडुवुवु।

सण्णाणतिगं अविरदसन्मादी छट्ठगादि मणपज्जो ।
खीणकसायं जाव दु केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥६८८॥

सज्ज्ञानत्रिकमसंयतसम्यग्दृष्ट्यादि षष्ठकादि मनःपर्य्ययः क्षीणकषायं यावत् केवलज्ञानं जिनेसिद्धे ॥

मतिश्रुतावधि सम्यज्ञानत्रितयमसंयतसम्यग्दृष्ट्यादिक्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंत मो भत्तु गुणस्थानंगळोळप्पुदु । संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेरडप्पुवु । मनःपर्य्ययज्ञानं षष्ठगुणस्थानवर्त्ति प्रमत्तसंयतनादियागि क्षीणकषायपर्य्यंतमेळु गुणस्थानदोळप्पुदु । संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमो देयक्कुं । केवलज्ञानं सयोगिकेवलियोळमयोगिकेवलियोळं सिद्धरोळमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमुं समुद्घातजिननल्लि औदारिकमिश्रमुं कार्म्मणकाययोगमुमुळ्ळुदरिंदमपर्य्याप्तजीवसमासमुं कूडि जीवसमासद्वयं संभविसुगुं—

कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । के
२ । २ । २ । ९ । ९ । ९ । ७ । २
१४ । १४ । १ । २ । २ । २ । १ । २

अयदोत्ति हु अविरमणं देसे देसो पमत्तइदरे य ।
परिहारो सामाइयच्छेदो छट्ठादि थूलोत्ति ॥६८९॥

असयतपर्य्यंतमविरमणं देशे देशः प्रमत्ते इतरस्मिन्श्च । परिहारः सामायिकच्छेदोपस्थापनौ षष्ठादिस्थूलपर्य्यंतं ॥

सुहुमो सुहुमकसाए संते खीणे जिणे जहक्खादं ।
संजममग्गणभेदा सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६९०॥

सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये शांते क्षीणे जिने यथाख्यातः । संयममार्गणाभेदाः सिद्धे न संति इति निर्दिष्टं ॥

संयममार्ग्गणेयोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळविरमणमक्कुमल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासंगळुमप्पुवु । देशसंयतगुणस्थानदोळु देश-

---

मत्यादिसम्यग्ज्ञानत्रयं असंयतादिक्षीणकषायान्त तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्त्यापर्याप्तौ द्वौ । मन पर्ययज्ञानं षष्ठादिक्षीणकषायान्त तेन तत्र गुणस्थानानि सप्त जीवसमास सज्ञिपर्याप्त एवैकः । केवलज्ञानं सयोगायोगयोः सिद्धे च । तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्तसयोगापर्याप्तौ द्वौ ॥६८८॥

सयममार्गणाया अविरमणं मिथ्यादृष्ट्याद्यसयतान्तचतुर्गुणस्थानेषु । तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । देशसयम·

मति आदि तीन सम्यग्ज्ञान असंयतसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त होते हैं इससे उनमें नौ गुणस्थान होते हैं । जीवसमास संज्ञिपर्याप्त अपर्याप्त दो होते हैं । मनःपर्ययज्ञान छठे गुणस्थानसे क्षीणकषाय पर्यन्त होता है अतः उसमें सात गुणस्थान होते हैं और जीवसमास एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है । केवलज्ञान सयोगी, अयोगी और सिद्धोंमें होता है । उसमें संज्ञी पर्याप्त तथा समुद्घातगत सयोगीकी अपेक्षा संज्ञी अपर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं ॥६८८॥

संयममार्गणामें असंयम मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतपर्यन्त चार गुणस्थानोंमें होता

संयतमुमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमो देयक्कुं। सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमंगळे-रडुं प्रत्येकं प्रमत्त संयतगुणस्थानमादियागऽनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्य्यंत नाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंग-ळप्पुवल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमुं आहारकापर्य्याप्तजीवसमासमुमितेरडेरडु जीवसमासं-गळप्पुवु। परिहारविशुद्धिसंयमं प्रमत्तसयतरोळमप्रमत्तसंयतरोळमक्कुमल्लि संज्ञिपचेंद्रियपर्य्याप्त-
५ जीवसमासमो दे यक्कुमेकेंदोडे परिहारविशुद्धिसंयमऋद्धियुमाहारकऋद्धियुमोव्वंनोळे संभविस-वप्पुदरिंद। सूक्ष्मसापरायसंयमं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळेयक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीव-समासमो देयक्कुं। यथाख्यातचारित्रमुपशांतकषायगुणस्थानदोळ क्षीणकषायगुणस्थानदोळ सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळमयोगिकेवलिगुणस्थानदोळमितु नाल्कुं गुणस्थानगळोळमक्कुमल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमुं समुद्घातकेवलिय अपर्य्याप्तजीवसमासमुं कूडि जीवसमासद्वय-
१० मक्कुं। संयममार्गणाभेदंगळु सिद्धपरमेष्ठिगळोळु संभविसुववल्तेंदु परमागमदोळपेळल्पट्टुदु।

अ।	दे।	सा।	छे।	प।	सू।	य।
४।	१।	४।	४।	२।	१।	४।
१४।	१।	२।	२।	१।	१।	२।

चउरक्खथावरविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहोत्ति।
चक्खु अचक्खू ओही जिणसिद्धे केवलं होदि ॥६९१॥

चतुरिंद्रियस्थावराविरतसम्यग्दृष्टितः क्षीणमोहपर्य्यंतं। चक्षुरचक्षुरवधयो जिनसिद्धे केवलं भवति॥

---

१५ देशसयतगुणस्थाने तत्र जीवसमास सज्ञिपर्याप्त एव। सामायिकछेदोपस्थापनौ प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणान्त-चतुर्गुणस्थानेषु। तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्ताहारकपर्याप्तौ द्वौ। परिहारविशुद्धिसयम प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव। तत्र जीवसमास सज्ञिपर्याप्त एव तेन सह आहारकर्द्धेरेकत्वासभवात्। सूक्ष्मसापरायसयम सूक्ष्मसाप-रायगुणस्थाने तत्र जीवसमास. सज्ञिपर्याप्त'। यथाख्यातचारित्र उपशान्तकषायादिचतुर्गुणस्थानेषु तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्तसमुद्घातकेवल्यपर्याप्तौ द्वौ। संयममार्गणाभेदा सिद्धे न सतीति परमागमे
२० निर्दिष्टम् ॥६८९-६९०॥

है उसमे चौदह जीवसमास होते हैं। देशसंयम देशसंयत गुणस्थानमें होता है उसमे जीव-समास एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है। सामायिक और छेदोपस्थापना प्रमत्तसे लेकर अनि-वृत्तिकरणपर्यन्त चार गुणस्थानोंमे होते हैं। उनमे जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और आहारक मिश्रकी अपेक्षा संज्ञिअपर्याप्त होते हैं। परिहारविशुद्धिसयम प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें
२५ ही होता है। उसमे जीवसमास संज्ञिपर्याप्त ही होता है क्योंकि परिहारविशुद्धि संयमके साथ आहारकऋद्धि नहीं होती। सूक्ष्मसाम्परायसंयत सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें होता है। उसमे जीवसमास संज्ञिपर्याप्त ही होता है। यथाख्यातचारित्र उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानोंमे होता है। उसमे जीवसमास संज्ञिपर्याप्त तथा समुद्घात केवलीकी अपेक्षा अपर्याप्त इस तरह दो होते हैं। संयममार्गणाके भेद सिद्धोंमें नहीं होते ऐसा परमागममें
३० कहा है ॥६८९-६९०॥

दर्शनमार्गणेयोळु चक्षुर्दर्शनं चतुरिंद्रियमिथ्यादृष्टि मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्यंतं पन्नेरडु गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि चतुरिंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळारप्पुवु। अचक्षुर्दर्शनं स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं पंनेरडुं गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि पदिनाल्कु जीवसमासेगळप्पुवु। अवधिदर्शनमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमोंभत्तु गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासेगळेरडेयप्पुवु। केवलदर्शनं सयोगिकेवलियुमयोगिकेवलिगळेंबेरडुं गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयुं समुद्घातकेवलिय अपर्य्याप्तजीवसमासमुमितेरडु जीवसमासेगळप्पुवु— च। अ। अ। के। गुणस्थानातीतरप्प सिद्धरोळं केव-
१२। १२। ९। २।
६। १४। २। २। लदर्शनमक्कुं॥

थावरकायप्पहुडी अविरदसम्मोत्ति असुहतियलेस्सा।
सण्णीदो अपमत्तो जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥६९२॥

स्थावरकायप्रभृत्यविरतसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतमशुभत्रयलेश्याः। संज्ञितोऽप्रमत्तं यावत् शुभत्रयलेश्याः॥

लेश्यामार्गणेयोळु अशुभत्रयलेश्येगळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं नोल्कुं गुणस्थानंगळोळु संभविसुववल्लि एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तभेदविभिन्नजीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु। तेजःपद्मलेश्येगळु संज्ञिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि अप्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतमेळुं गुणस्थानंगळोळप्पुवल्लि संज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडेरडप्पुवु।

दर्शनमार्गणाया चक्षुर्दर्शनं चतुरिन्द्रियमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तं। तत्र जीवसमासा. चतुरिन्द्रियसञ्यसञ्जिपर्याप्तापर्याप्ताः षट्। अचक्षुर्दर्शनं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तं तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश। अवधिदर्शन असयतादिक्षीणकषायान्तं तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ। केवलदर्शनं सयोगायोगगुणस्थानयो. तत्र जीवसमासौ केवलज्ञानोक्तौ द्वौ। सिद्धेऽपि केवलदर्शनं भवति।

लेश्यामार्गणाया अशुभलेश्यात्रय स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतान्तं तत्र जीवसमासाः चतुर्दश। तेज.पद्मलेश्ये सञ्जिमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्त तत्र जीवसमासौ सञ्जिपर्याप्तापर्याप्तौ ॥६९२॥

दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास चौइन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेदसे छह होते है। अचक्षुदर्शन स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास चौदह होते हैं। अवधिदर्शन असंयतसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त होते है। केवलदर्शन सयोगी-अयोगी गुणस्थानोंमें होता है। उसमें दो जीवसमास होते है जो केवलज्ञानमें होते हैं। सिद्धोंमें भी केवलदर्शन होता है ॥६९१॥

लेश्यामार्गणामें तीन अशुभ लेश्या स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत गुणस्थान पर्यन्त होती है उनमें जीवसमास चौदह हैं। तेजोलेश्या और पद्मलेश्या संज्ञिमिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त होती हैं। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और संज्ञिअपर्याप्त होते हैं ॥६९२॥

णवरि य सुक्का लेस्सा सजोगिचरिमोत्ति होदि णियमेण ।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥६९३॥

विशेषोस्ति शुक्ललेश्या सयोगचरमपर्य्यंतं भवति नियमेन । गतयोगेऽपि सिद्धे लेश्या न संतीति निर्दिष्टं ॥

शुक्ललेश्येयोळु विशेषमुंटावुदेंदोडे शुक्ललेश्यासंज्ञिपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिमूरुं गुणस्थानंगळोळप्पुदुं बुदल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासमुं समुद्घातकेवलिय औदारिकमिश्रकार्म्मणकाययोगकालकृतापर्य्याप्तजीवसमासमुं कूडि जीवसमासद्वयमक्कुं नियमदिंदं ।

कृ ।	नी ।	क ।	ते ।	प ।	शु	गतयोगरप्प अयोगिकेवलि-
४ ।	४ ।	४ ।	७ ।	७ ।	१३	
१४ ।	१४ ।	१४ ।	२ ।	२ ।	२	

गळोळं सिद्धपरमेष्ठिगळोळं लेश्येगळिल्लमेंदितु परमागमदोळ्पेळल्पट्टुदु ।

थावरकायप्पहुडी अजोगिचरिमोत्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे अभव्वसिद्धा हवंतिति ॥६९४॥

स्थावरकायप्रभृत्ययोगिचरमसमयपर्य्यंतं भवंति भव्यसिद्धाः । मिथ्यादृष्टिस्थाने अभव्यसिद्धा भवंतीति ॥

भव्यमार्गणेयोळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि अयोगिकेवलिचरमगुणस्थानपर्य्यंत पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु भव्यसिद्धरुगळप्परल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासेगळप्पुवु । अभव्यसिद्धरुगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोंदरोळेयप्परु । अल्लि पदिनाल्कुं जीवसमासेगळप्पुवु

भ ।	अ
१४ ।	१
१४ ।	१४

मिच्छो सासणमिस्सो सगसगठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तोत्ति ॥६९५॥

मिथ्यादृष्टिः सासादनो मिश्रः स्वस्वस्थाने भवति असंयतात्प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकमप्रमत्तपर्य्यंतं ॥

शुक्ललेश्यायां विशेष । स क ? सा लेश्या सज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्त भवति तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वावेव नियमेन केवल्यपर्याप्तस्य अपर्याप्ते एवान्तर्भावात् । अयोगिजिने सिद्धे च लेश्या न सन्तीति परमागमे प्रतिपादितम् ॥६९३॥

भव्यमार्गणाया भव्यसिद्धा स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्ययोगान्त भवन्ति । अभव्यसिद्धा मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव भवन्ति इत्युभयत्र जीवसमासाश्चतुर्दश ॥६९४॥

शुक्ललेश्यामें विशेष है । वह संज्ञिमिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगीपर्यन्त होती है । उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और संज्ञिअपर्याप्त दो ही नियमसे होते है । केवलिसमुद्घातगत अपर्याप्तका अन्तर्भाव अपर्याप्तमे ही हो जाता है । अयोग केवली और सिद्धोंमे लेश्या नहीं होती ऐसा परमागममें कहा है ॥६९३॥

भव्यमार्गणामे भव्य स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेवली पर्यन्त होते हैं । अभव्य मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं । दोनोंमे जीवसमास चौदह ही होते हैं ॥६९४॥

सम्यक्त्वमार्गणेयोळु मिथ्यादृष्टियुं सासादननुं मिश्रनुं तंतम्म गुणस्थानदोळेयक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टियोळु पदिनाल्कु जीवसमासेगळप्पुवु। सासादनोळु येकेंद्रियबादरापर्य्याप्त द्वींद्रियापर्य्याप्त त्रींद्रियापर्य्याप्तचतुरिंद्रियापर्य्याप्तं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तापर्याप्ता संज्ञिपंचेंद्रियापर्य्याप्तजीवसमासेगळेळप्पुवु । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकनप्प सासादननुमोंळनें बाचार्य्यापेक्षेयिंदं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयुं देवापर्य्याप्तजीवसमासेयुमेरडप्पुवु । मिश्रनोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासेयों देयक्कुं । प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुं वेदकसम्यक्त्वमुमसंयतसम्यग्दृष्टियागियागऽप्रमत्तपर्य्यंतं नाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळप्पुवु । अल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु मरणमिल्लप्पुदरिंदं संज्ञिपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवसमासेयों देयक्कुं । वेदकसम्यक्त्वदोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासेगळेरडप्पुवेकेंदोडे घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तनुं भवनत्रयवर्ज्जितदेवापर्य्याप्तनुं भोगभूमिजमनुष्यतिर्य्यंचापर्य्याप्तनुं वेदकसम्यग्दृष्टियोळनप्पुदरिंदं ।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वक्के पेळ्दपं ।

बिदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति ।
खइगं सम्मं च तहा सिद्धोत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥६९६॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यग्दृष्ट्याद्युपशांतमोहगुणस्थानपर्य्यंतं क्षायिकसम्यक्त्वं च तथा सिद्धपर्य्यंत जिनैर्निर्दिष्टं ॥

सम्यक्त्वमार्गणाया मिथ्यादृष्टिः सासादनः मिश्रश्च स्वस्वगुणस्थाने एव भवति। तत्र मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश। सासादने बादरैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियसंज्ञ्यसञ्ज्ञिपर्याप्तसंज्ञिपर्याप्ताः सप्त। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकस्य सासादनत्वप्राप्तिपक्षे च संज्ञिपर्याप्तदेवापर्याप्तावपि[1] द्वौ। मिश्रे सज्ञिपर्याप्तः। प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वे द्वे असंयताद्यप्रमत्तान्त स्तः। तत्र जीवसमासः प्रथमोपशमसम्यक्त्वे मरणाभावात् संज्ञिपर्याप्त एवैकः। वेदकसम्यक्त्वे सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। घर्मानारकस्य भवनत्रयवर्जितदेवस्य भोगभूमिनरतिरश्चोश्च अपर्याप्तत्वेऽपि तत्संभवात् ॥६९५॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वस्याह—

सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यादृष्टि, सासादन, और मिश्र अपने-अपने गुणस्थानमें होते है। मिथ्यादृष्टिमें जीवसमास चौदह होते है। सासादनमें बादर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञिअपर्याप्त तथा संज्ञिपर्याप्तअपर्याप्त ये सात जीवसमास होते है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी विराधना करके सासादनको प्राप्त होनेके पक्षमें संज्ञिपर्याप्त और देवअपर्याप्त दो जीवसमास होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें संज्ञिपर्याप्त जीवसमास होता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व और वेदकसम्यक्त्व असंयतसे अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त होते है। प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें मरणका अभाव होनेसे जीवसमास एक संज्ञिपर्याप्त ही है। वेदक सम्यक्त्वमें संज्ञिपर्याप्त, अपर्याप्त दो होते हैं। क्योंकि घर्मा नामक प्रथम नरकमें भवनत्रिकको छोड़कर देवोंमें और भोगभूमिया मनुष्य तथा तिर्यंचोंमें अपर्याप्त दशामें भी वेदक सम्यक्त्व होता है ॥६९५॥

द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको कहते हैं—

---

१. मु. °सावितिद्वौ ।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंयताद्युपशान्तकषायगुणस्थानपर्य्यंतमेंदु गुणस्थानंगळोळक्कुमल्लि-युपशमश्रेण्यवरोहणदोळऽप्रमत्तप्रमत्तदेशसंयतासंयतरोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमें दरिवुदेकें-दोडे उपशमश्रेण्यारोहणावरोहणकालमं नोडलु तदुपशमसम्यक्त्वकालं संख्यातगुणमक्कुमेत्तलानुं चारित्रावरणोदयदिंदं देशसंयतासंयतरोळु पतनमुटप्पुदरिंदं। अल्लि सज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमा-
५ सेयु देवासंयतापर्य्याप्तजीवसमासेयुमितेरडु जीवसमासेगळप्पुवु। क्षायिकसम्यक्त्वमसंयतादियुम-योगिकेवलिगुणस्थानमवसानमागि पंनों दुं गुणस्थानंगळोळप्पुदल्लि। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तभुज्य-मानजीवसमासेयुं बद्धायुष्यापेक्षेयिंदं घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तनु भोगभूमिजमनुष्यतिर्य्यंचासंयता-पर्य्याप्तरुं देवासंयतापर्याप्तनु संभविसुगुमप्पुदरिनपर्य्याप्तजीवसमासेयुमितेरडुजीवसमासे-गळप्पुवु। संदृष्टिरचने :—

मि	सा	मि	द्वि	उ	प्र	वे	क्षा	गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळं
१	१	१	८ ।	४	४	११		
१४	७ ।	१	२ ।	१	२	२		

१० क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुमेंदितु जिनस्वामिगळिंदं पेळल्पट्टुदु ॥

सण्णी सण्णिप्पहुडी खीणकसाओत्ति होदि णियमेण।
थावरकायप्पहुडी असण्णित्ति हवे असण्णी दु ॥६९७॥

संज्ञी संज्ञिप्रभृति क्षीणकषायपर्य्यंतं भवति नियमेन। स्थावरकायप्रभृति असंज्ञिपर्य्यंतं भवेदसंज्ञी तु ॥

१५ संज्ञिमार्गणेयोळु संज्ञिजीवं संज्ञिमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि क्षीणकषायगुणस्थान-पर्य्यंतं पन्नेरडुं गुणस्थानंगळोळप्पुदु अल्लि संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासद्वयमक्कुं। तु मत्ते असंज्ञिजीवस्थावरकायमिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि पंचेंद्रियासंज्ञिमिथ्यादृष्टिपर्य्यंतं मिथ्या-

---

द्वितीयोपशमसम्यक्त्व असयताद्युपशान्तकषायान्त भवति। अप्रमत्ते उत्पाद्य उपरि उपशान्तकषायान्त गत्वा अधोवतरणे असयतान्तमपि तत्संभवात्। तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्तदेवासयतापर्याप्तौ द्वौ। क्षायिक-
२० सम्यक्त्व असंयताद्ययोगान्तम्। तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्त बद्धायुष्कापेक्षया घर्मानारकभोगभूमिनरतिर्यग्वैमानिकापर्याप्तश्चेति द्वौ। सिद्धेऽपि क्षायिकसम्यक्त्व स्यादिति जिनैरुक्तम् ॥६९६॥

सज्ञिमार्गणाया सज्ञिजीव सज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्त भवति तत्र जीवसमासौ सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असंयतसे उपशान्तकषाय गुणस्थानपर्यन्त होता है; क्योंकि अप्रमत्त गुणस्थानमें इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके ऊपर उपशान्तकषाय पर्यन्त
२५ जाकर नीचे उतरनेपर असंयत पर्यन्त भी उसका अस्तित्व रहता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त तथा देव असंयत अपर्याप्त दो होते है। क्षायिक सम्यक्त्व असंयतसे अयोगी पर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त होता है। किन्तु परभवकी आयु बाँधनेकी अपेक्षा प्रथम नरक, भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंच और वैमानिक सम्बन्धी अपर्याप्त होनेसे दो होते है। सिद्धोंमें भी क्षायिक सम्यक्त्व जिनदेवने कहा है ॥६९६॥

३० संज्ञीमार्गणामें संज्ञीजीव संज्ञिमिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त होता है। उसमें जीवसमास संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त दो होते है। असंज्ञीजीव स्थावरकायसे

दृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुमल्लि संज्ञिजीवसंबंधिपर्य्याप्तापर्याप्तजीवसमासद्वयमुळियलुळिद द्वादशजीवसमासेगळनितुमप्पुवु नियमदिंदं सं । अ
१२ । १ ।
२ । १२ ।

थावरकायप्पहुडो सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी ।
कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धे वि णायव्वो ॥६९८॥

स्थावरकायप्रभृति सयोगिचरमपर्य्यंतं भवत्याहारी । कार्म्मणे अनाहारी अयोगिसिद्धेपि ज्ञातव्यः ॥

आहारमार्गणेयोळु स्थावरकायमिथ्यादृष्टियादियागि सयोगकेवलिपर्य्यंतं पदिमूलं गुणस्थानंगळोळाहारिगळोळु आहारियक्कुमल्लि सर्व्वमुं जीवसमासेगळु पदिनाल्कुमप्पुवु । विग्रहगतिकार्म्मणकाययोगद मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानत्रयमुं प्रतरलोकपूरणसमुद्घातसयोगिगुणस्थानमुमयोगिगुणस्थानमुमितुगुणस्थानपंचकदोळमनाहारियक्कुमल्लि एकेंद्रियबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तजीवसमासद्वयमुं द्वित्रिचतुरिंद्रियापर्य्याप्तजीवसमासत्रयमुं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तद्वयमुमसंज्ञ्यपर्य्याप्तजीवसमासेयुमितु जीवसमासाष्टकमक्कुं आ । अ अनंतरं गुण-
१३ । ५
१४ । ८

स्थानंगळोळु जीवसमासयं पेळदपरु :—

मिच्छे चोद्दसजीवा सासण अयदे पमत्तविरदे य ।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णी पुण्णो दु खीणोत्ति ॥६९९॥

मिथ्यादृष्टौ चतुर्दशजीवाः सासादने अयते प्रमत्तविरते च । संज्ञिद्वयं शेषगुणे संज्ञिपूर्णस्तु क्षीणकषायपर्य्यंतं ॥

द्वौ । तु—पुन. असज्ञिजीव. स्थावरकायाद्यसज्ञ्यन्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव स्यान्नियमेन तत्र जीवसमासा द्वादश सज्ञिनो द्वयाभावात् ॥६९७॥

आहारमार्गणाया स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगान्त आहारी भवति । तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगाना कार्मणयोगावसरे अयोगिसिद्धयोश्च अनाहारो ज्ञातव्य । तत्र जीवसमासा अपर्याप्ताः सप्त । अयोगस्य चैक ॥६९८॥ अथ गुणस्थानेषु जीवसमासानाह—

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है । नियमसे उसमें बारह जीवसमास होते है क्योंकि संज्ञी सम्बन्धी दो जीवसमास नही होते ॥६९७॥

आहारमार्गणामें स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवलिपर्यन्त आहारी होता है । उसमें जीवसमास चौदह होते है । मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, और सयोगकेवली के कार्मणयोगके समय तथा अयोगी और सिद्धोंमें अनाहारी जानना । उसमें जीवसमास अपर्याप्त सम्बन्धी सात होते हैं और अयोगीके एक पर्याप्त होता है ॥६९८॥

अब गुणस्थानोंमें जीवसमासोंको कहते है—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पदिनाल्कुं जीवसमासेगप्पुवु। सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रमत्तविरतनोळं च शब्ददिंदं सयोगकेवलिगुणस्थानदोळमिंतु नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासद्वयं प्रत्येकमक्कुं। शेषमिश्रदेशसंयताप्रमत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायगुणस्थानाष्टकदोळमपि-शब्ददिंदमयोगिगुणस्थानदोळमिंतु नवगुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसमासमेयोंदेयक्कुं :—

मि। सा। मि। अ। दे। प्र। अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। स। अ
१४। २। १। २। १। २। १। १। १। १। १। १। १। २। १

अनंतरं मार्गणास्थानंगळोळु जीवसमासेय सूचिसिदपं :—

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसेसु जाण दोदो दु।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ॥७००॥

तिर्य्यग्गतौ चतुर्दश भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु। मार्गणास्थानस्यैवं ज्ञेयानि समासस्थानानि ॥

तिर्य्यग्गतियोळु जीवसमासंगळु पदिनाल्कुमप्पुवु। शेषनारकदेवमनुष्यगतिगळोळु प्रत्येकं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तापर्य्याप्तजीवसमासद्वयमक्कुं। तु मत्ते एवमी प्रकारदिंद मार्गणास्थानंगळोळितोळवनितक्कुं। जीवसमासस्थानंगळु यथायोग्यमागि मुपेळ्द क्रमदिनरियल्पडुवुवु।

अनंतर गुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्तिप्राणंगळं निरूपिसिदपरु :—

पज्जत्ती पाणावि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्मि।
तहि वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ॥७०१॥

पर्य्याप्तयः प्राणाः अपि च सुगमाः भावेंद्रियं न योगिनि। तस्मिन्वागुच्छ्वासायुः कायास्त्रिकद्विकमयोगिनः आयुः ॥

मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश, सासादने अविरते प्रमत्ते चशब्दात् सयोगे च सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। शेषाष्टगुणस्थानेषु 'तु'शब्दात् अयोगे च सज्ञिपर्याप्त एवैक ॥६९९॥ अथ मार्गणास्थानेषु तान् सूचयति—

तिर्यग्गतौ जीवसमासाश्चतुर्दश भवन्ति शेषगतिषु सज्ञपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। तु-पुनः सर्वमार्गणास्थानाना यथायोग्य प्रागुक्तक्रमेण जीवसमासा ज्ञातव्या ॥७००॥ अथ गुणस्थानेषु पर्याप्तिप्राणानाह—

मिथ्यादृष्टिमे चौदह जीवसमास होते हैं। सासादन, अविरत, प्रमत्त और च शब्दसे सयोगीमें संज्ञिपर्याप्त और अपर्याप्त दो जीवसमास होते है। शेष आठ गुणस्थानोंमें और अपि शब्दसे अयोगकेवलीमें एक संज्ञिपर्याप्त ही होता है ॥६९९॥

अब मार्गणाओमे जीवसमास कहते हैं :—

तिर्यंचगतिमें चौदह जीवसमास होते है। शेष गतियोंमें संज्ञीपर्याप्त, अपर्याप्त दो जीव-समास होते हैं। इस प्रकार सब मार्गणास्थानोमें यथायोग्य पूर्वोक्त क्रमसे जीवसमास जानना ॥७००॥

गुणस्थानोंमें पर्याप्ति और प्राण कहते हैं—

---

१ मु °षु अपित्रयदात्।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्तिगळुं प्राणंगळुं पृथक्कागि पेळल्पडवेकेंदोडे सुगमंगळप्पुदरिंदमदंतेंदोडे क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमारु-पर्य्याप्तिगळं दशप्राणंगळुमप्पुवु। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु भावेंद्रियमिल्ल। द्रव्येंद्रियापेक्षेयिनारुं पर्य्याप्तिगळोळवु वाग्बलप्राणमुमुच्छ्वासनिश्वासप्राणमुमायुःप्राणमुं कायबलप्राणमेंबी नाल्कुं प्राणंगळप्पुवु। उळिदिंद्रिय प्राणंगळय्दुं मनोबलप्राणमुं संभविसवु। आ सयोगकेवलिगे वाग्योगं निलुत्तिरलु मूरु प्राणंगळप्पुवु। उच्छ्वासनिःश्वासमुपरतमागुत्तिरलुमेरडेप्राणंगळप्पुवु। अयोगि भट्टारकनोळ् आयुष्यप्राणमोंदेयक्कुं। पूर्व्वसंचितनोकर्म्मकर्म्मसंचयं प्रतिसमयमेकैकनिषेकस्थिति-गळिंदि चरमसमयदोळु किंचिन्न्यूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रनोकर्म्मसंचयमुं कर्म्मसंचयमुमुदयिसि द्रव्यार्थिकनयापेक्षेयिंदमयोगिचरमसमयदोळु कर्म्ममुं नोकर्म्ममुं केट्टवु पर्य्यायार्थिकनयापेक्षेयिन-नंतरसमयदोळिकडुत्तिरलु लोकाग्रनिवासि सिद्धपरमेष्ठियप्पनेंबुदु तात्पर्य्यं।

अनंतर गुणस्थानंगळोळु संज्ञेगळं पेळ्दपरु :—

छट्ठोत्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ ॥७०२॥

षष्ठपर्य्यंतं प्रथमसंज्ञा सकार्य्या शेषाश्च कारणापेक्षाः। अपूर्व्वप्रथमानिवृत्ति सूक्ष्मपर्य्यंतं क्रमेण शेषाश्च ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि प्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतमूरुं गुणस्थानंगळोळु सकार्य्यमप्पा-हारादिचतुःसंज्ञेगळुमप्पुवा षष्ठनल्लि आहारसंज्ञे व्युच्छित्तियायतु। उपरितनगुणस्थानदोळऽभावमं

चतुर्दशगुणस्थानेषु पर्याप्तय. प्राणाश्च पृथक् नोच्यन्ते सुगमत्वात्। तथाहि—क्षीणकषायपर्यन्त षट्पर्याप्तयः दश प्राणा। सयोगजिने भावेन्द्रिय न, द्रव्येन्द्रियापेक्षया षट्पर्याप्तयः वागुच्छ्वासनिश्वासायु-कायप्राणाश्चत्वारि भवन्ति। शेषेन्द्रियमन.प्राणा षट् न सन्ति। तत्रापि वाग्योगे विश्रान्ते त्रयः। पुनः उच्छ्वासनिश्वासे विश्रान्ते द्वौ। अयोगे आयु प्राण एकः। प्राक्सचितनोकर्मकर्मसचय प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गलन् किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रो द्रव्यार्थिकनयेन अयोगिचरमे विनश्यति पर्यायार्थिकनयेन अनन्तरसमये एवेति तात्पर्यम् ॥७०१॥ अथ गुणस्थानेषु सज्ञा आह—

मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तान्तं सकार्या आहारादिचतस्रः संज्ञा भवन्ति। षष्ठगुणस्थाने आहारसंज्ञा

चौदह गुणस्थानोंमें पर्याप्ति और प्राण पृथक् नहीं कहे हैं क्योकि सुगम है। यथा— क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त छह पर्याप्तियाँ और दस प्राण होते है। सयोगकेवलीमें भावेन्द्रिय नहीं है। उनके द्रव्येन्द्रियकी अपेक्षा छह पर्याप्तियाँ है और वचनबल, उच्छ्वास-निश्वास, आयु और कायबल ये चार प्राण होते है। शेष इन्द्रियाँ और मन ये छह प्राण नहीं है। उन चार प्राणोंमें-से भी वचनयोगके रुक जानेपर तीन रहते है, पुनः उच्छ्वास-निश्वासका निरोध होनेपर दो रहते हैं। अयोगकेवलीके एक आयुप्राण होता है। पूर्व संचित कर्म-नोकर्मका संचय प्रतिसमय एक-एक निषेक गलते-गलते किंचित् न्यून डेढ गुणहानि प्रमाण रहता है। सो द्रव्यार्थिक नयसे तो अयोगीके अन्तिम समयमें नष्ट होता है और पर्यायार्थिक नयसे अनन्तर समयमें नष्ट होता है ॥७०१॥

गुणस्थानोंमें संज्ञा कहते है—

मिथ्यादृष्टिसे लेकर प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त आहार आदि चारों संज्ञाएँ कार्यरूपमें

व्युच्छित्तियें बुदु, मेले अप्रमत्तादिगळोळु कारणास्तित्वापेक्षेयिंदं। अपूर्वकरणपर्य्यंतं भयमैथुनपरिग्रह संज्ञेगळु कार्य्यरहितंगळप्पुवु। आ अपूर्व्वकरणनोळु भयसंज्ञे व्युच्छित्तियादुदु अनिवृत्तिकरणप्रथमभागं सवेदभागे आ भागे पर्य्यंत कार्य्यरहितगळप्प मैथुनपरिग्रहसंज्ञेगळप्पुवु। आ अनिवृत्तिकरणप्रथमभागकालदोळु मैथुनसंज्ञे व्युच्छित्तियादुदु। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु परिग्रह संज्ञे व्युच्छित्तियादुदु। मेले उपशांतादिगुणस्थानंगळोळु कार्य्यरहितमादोडं संज्ञेगळिल्ल एकेंदोडे "कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः" एंबी न्यायदिंदं संज्ञेगळभावमक्कुं :—

मि। सा। मि। अ। दे। प्र। अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। स। अ।
४। ४। ४। ४। ४। ४। ३। ३। २। १। ०। ०। ०। ०।

मग्गण उवजोगावि य सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो।
गदियादिसु मिच्छादी परूविदे रूविदा होंति ॥७०२॥

मार्गणोपयोगा अपि च सुगमाः पूर्व्वं प्ररूपितत्वात्। गत्यादिषु मिथ्यादृष्टयादौ प्ररूपिते रूपिता भवंति ॥

गुणस्थानंगळ मेले मार्गणेगळुमं उपयोगमुमं पेळ्वातं सुगममेंदु पेळ्वुदिल्लदेकेंदोडे पूर्व्वमुन्नं प्ररूपितमप्पुदरिंदं। आवेडेयोळु प्ररूपितमादुदेंदोडे गत्यादिमार्गणास्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळुं जीवसमासेगळुं पेळल्पट्टवदु कारणमागियल्लि पेळल्पडुत्तिरलिल्लियुं पेळल्पट्टवेयप्पुवे दरिवुदु। आदोडं मंदबुद्धिगळनुग्रहार्त्थं पेळ्दपेमुदेंतेंदोडे :—नरकादिगतिनाम-

---

व्युच्छिन्ना। शेषास्तिस्र अप्रमत्तादिषु कारणास्तित्वापेक्षया अपूर्वकरणान्त कार्यरहिता भवन्ति। तत्र भयसज्ञा व्युच्छिन्ना। अनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागान्त कार्यरहिते मैथुनपरिग्रहसज्ञे स्त। तत्र मैथुनसज्ञा व्युच्छिन्ना। सूक्ष्मसापराये परिग्रहसज्ञा व्युच्छिन्ना। उपरि उपशान्तादिषु कार्यरहिता अपि सज्ञा न सति कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् ॥७०२॥

गुणस्थानेषु मार्गणा उपयोगाश्च वक्तु सुगमा इति नोच्यन्ते पूर्वं प्ररूपितत्वात्। क्वेति चेत्? मार्गणासु गुणस्थानजीवसमासेषु उक्तेषु उक्ता भवन्ति। तथापि मन्दबुद्धयनुग्रहार्थमुच्यन्ते तद्यथा—

रहती है। छठे गुणस्थानमें आहार संज्ञाका विच्छेद हो जाता है। शेष तीन संज्ञा अप्रमत्त आदिमें कारणका सद्भाव होनेसे है वैसे कार्यरहित है। अपूर्वकरणमें भय संज्ञाका विच्छेद हो जाता है। अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भाग पर्यन्त कार्यरहित मैथुन और परिग्रह संज्ञा रहती है। वहाँ मैथुन संज्ञाका विच्छेद हो जाता है। सूक्ष्म साम्परायमें परिग्रह संज्ञाका विच्छेद हो जाता है। ऊपर उपशान्त कषाय आदिमें कार्यरहित भी संज्ञा नही है क्योंकि कारणके अभावमें कार्यका भी अभाव हो जाता है ॥७०२॥

गुणस्थानोंमें मार्गणा और उपयोगका कथन सरल होनेसे नहीं कहा है। पहले कह आये है क्योंकि मार्गणाओंमें गुणस्थान और जीवसमासके कहनेसे उनका कथन हो जाता है। फिर भी मन्द बुद्धियोंके अनुग्रहके लिए कहते है—

कर्म्मोदयजनितनारकापर्य्यायंगळे गतिगळप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्त नारकरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्त तिरियंचरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तदेवर्क्कळुमितु नाल्कुं गतिजीवरुमप्परु। सासादनगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तनारकरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं पर्य्याप्तापर्य्याप्तदेवर्क्कळुमप्परु। मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तनारकरुं पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं पर्य्याप्तमनुष्यरु पर्य्याप्तदेवर्क्कळुमप्परु। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु घर्म्मेय पर्य्याप्तापर्य्याप्तनारकरुळिद षड्भूमिगळ पर्य्याप्तनारकरु भोगभूमिजपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं कर्म्मभूमिय पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं भोगभूमिजपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं कर्म्मभूमिजपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुं भवनत्रयवर्ज्जितपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तदेवर्क्कळुं भवनत्रयपर्य्याप्तदेवर्क्कळुं संभविसुवरु। देशसंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तकर्म्मभूमिजतिर्य्यंचरुं मनुष्यरुं संभविसुवरु। प्रमत्तगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तमनुष्यरुमाहारकऋद्धिप्राप्तप्रमत्तापेक्षेयिंदमाहारकशरीरपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुमोळरु।

अप्रमत्तगुणस्थानं मोदलगोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमारु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पर्य्याप्तमनुष्यनेयक्कुं। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तमनुष्यरेयप्परु। समुद्घातकेवल्यपेक्षेयिंदं औदारिकमिश्रकाययोगिगळुं कार्म्मणकाययोगिगळप्प अपर्य्याप्तमनुष्यरुमप्परु। अयोगिकेवलि गुणस्थानदोळु पर्य्याप्तमनुष्यरेयप्परु।

मि।	सा।	मि।	अ।	दे।	प्र।	अ।	अ।	अ।	सू।	उ।	क्षी।	स।	अ।
४।	४।	४।	४।	२।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	१।

नरकादिगतिनामोदयजनिता नारकादिपर्यायाः गतयः। तेन मिथ्यादृष्टौ नारकादयः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। सासादने नारकाः पर्याप्ता, शेषाः उभये। मिश्रे सर्वे पर्याप्ता एव। असंयते घर्मानारकाः उभये, शेषनारका पर्याप्ता एव। भोगभूमितिर्यग्मनुष्या कर्मभूमिमनुष्या वैमानिकाश्च उभये। कर्मभूमितिर्यञ्चो भवनत्रयदेवाश्च पर्याप्ता एव। देशसंयते कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याः पर्याप्ताः। प्रमत्ते मनुष्याः पर्याप्ताः, साहारकर्द्धयस्तु उभये। अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्ता पर्याप्ता। सयोगिनि[1] उभये। अयोगिनि[2] पर्याप्ता एव।

नरक आदि गतिनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई नरकादि पर्यायोंको गति कहते है। इससे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नारक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त होते है। सासादनमें नारकी पर्याप्त ही होते हैं शेष तिर्यंच आदि पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते है। मिश्रगुणस्थानमें सब पर्याप्त ही होते है। असंयत गुणस्थानमें प्रथम नरकके नारकी पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते है। शेष नारकी पर्याप्त ही होते हैं। भोगभूमिके तिर्यंच मनुष्य, कर्मभूमिके मनुष्य और वैमानिक पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनों होते हैं। कर्मभूमिके तिर्यंच और भवनत्रिकके देव पर्याप्त ही होते हैं। देशसंयतमें कर्मभूमिके तिर्यंच और मनुष्य पर्याप्त ही होते हैं। प्रमत्त गुणस्थानमें मनुष्य पर्याप्त ही होते है। आहारक ऋद्धिवाले पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों होते है। अप्रमत्तसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त पर्याप्त होते है। सयोगीमें दोनों होते है। अयोगीमें पर्याप्त ही होते हैं।

---

१. ब सयोगिन उ°। २ ब अयोगिन।

एकेंद्रियादिजातिनामकर्म्मोदयजनितजीवपर्य्यायिंक्किंद्रियव्यपदेशमक्कुमा यिंद्रियमार्गणेगळेकेंद्रियादिपंचप्रकारमप्पुवु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तैकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियंगळय्दुमप्पुवु।

सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु एकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्य्यंतमादय्दुमपर्य्याप्तजीवंगळुं पर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळुमप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमो देयक्कुं। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्ताऽपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवगळेयप्पुवु। देशसंयतगुणस्थानदोळु पर्याप्तपंचेंद्रियमो देयक्कुं। प्रमत्तगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमो देयक्कुमल्लि आहारकऋद्धियुक्तनोळु तद्ऋद्धयपेक्षेयिंदं पर्य्याप्तापर्य्याप्ताहारकशरीरपंचेंद्रियमुमक्कुं। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मेले क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं आरु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पर्य्याप्तपंचेंद्रियमेयक्कु। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमेयक्कुमल्लि समुद्घातकेवल्यपेक्षेयिंदं मुं पेळ्दंतऽपर्य्याप्तपंचेंद्रियमुमक्कुं। अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियमेयक्कुं—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
५	५	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
					२								

पृथ्वीकायादिविशिष्टैकेंद्रियजातिस्थावरनामकर्म्मोदयदिंदमुं त्रसनामकर्म्मोदयदिंदमुमाद जीवपर्य्यायक्कें कायत्वव्यपदेशमक्कुमा कायत्वमुं पृथ्विकायिकमुमप्कायिकमुं तेजस्कायिकमुं वातकायिकमुं वनस्पतिकायिकमुमेदुं त्रसकायिक मेंदितु षड्भेदमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्याप्तषड्जीवनिकायमक्कुं। सासादनगुणस्थानदोळु बादरपृथ्विअब्वनस्पत्यपर्याप्तकायिकंगळु द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियासंज्ञि अपर्य्याप्तत्रसकायिकंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्याप्तत्रसकायिकंगळुमितु षड्जीव-

---

एकेन्द्रियादिजातिनामोदयजनितजीवपर्याय' इन्द्रिय, तन्मार्गणा' एकेन्द्रियादय पञ्च। ताः मिथ्यादृष्टौ पर्याप्तापर्याप्ता' पञ्च। सासादने अपर्याप्ता पञ्च पर्याप्तपञ्चेन्द्रियश्च। मिश्रे पर्याप्तपञ्चेन्द्रिय एव। असंयते स उभय। देशसयते पर्याप्तः। प्रमत्ते पर्याप्त। साहारकर्धिस्तूभय'। अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु पर्याप्त एव। सयोगे पर्याप्तः। समुद्घाते तूभय। अयोगे पर्याप्त एव।

पृथ्वीकायादिविशिष्टैकेन्द्रियजातिस्थावरनामोदयत्रसनामोदयजा षड्जीवपर्याया काया.। ते मिथ्यादृष्टौ पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। सासादने बादरपृथ्व्यब्वनस्पतिस्थावरकाया द्वित्रिचतुरिन्द्रियाऽसज्ञित्रसकायाश्चा-

---

एकेन्द्रिय आदि जातिनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई जीवकी पर्याय इन्द्रिय है। उसकी मार्गणा एकेन्द्रिय आदि पाँच है। वे पाँचों मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पर्याप्त-अपर्याप्त होते है। सासादनमें अपर्याप्त तो पाँचों हैं पर्याप्त एक पंचेन्द्रिय ही है। मिश्रमें पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही है। असंयतमें पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों है। देशसंयतमें पर्याप्त है। प्रमत्तमें पर्याप्त है आहारक ऋद्धिवाला दोनों है। अप्रमत्तसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त पर्याप्त ही है। सयोगकेवलीमें पर्याप्त है किन्तु समुद्घातमें दोनों है। अयोगीमें पर्याप्त ही है।

पृथ्वीकाय आदि विशिष्ट एकेन्द्रियादि जाति और स्थावर नामकर्म तथा त्रसनामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुई छह जीवपर्यायोंको काय कहते हैं। वे मिथ्यादृष्टिमें पर्याप्त और अपर्याप्त होते है। सासादनमें बादर पृथिवी जल और वनस्पति स्थावरकाय तथा दोइन्द्रिय,

निकायमप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कुं। असंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तापर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कुं। देशसंयतगुणस्थानदोळु पर्याप्तसज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कु। प्रमत्तगुणस्थानदोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तत्रसकायिकमक्कुमल्लियाहारकऋद्धिप्राप्तनोळु आहारकशरीरपंचेंद्रियपर्याप्तापर्य्याप्तत्रसकायिकमक्कु। अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमारुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमेयक्कुं। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायिकमक्कुमल्लि समुद्घातसयोगकेवलिभट्टारकनोळु औदारिकमिश्रयोगमुं कार्म्मणकाययोगमुमुळ्ळुदरिंदमपर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमुमक्कुं। अयोगिकेवलिभट्टारकनोळुपर्य्याप्तपंचेंद्रियत्रसकायिकमक्कुं—

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ ।
६ । ६ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ ।

पुद्गलविपाकिशरीरांगोपांगनामकर्म्मोदयंगळिंदं मनोवचनकाययुक्तमप्प जीवक्के कर्म्मनोकर्म्मागमनकारणमप्पुदावुदोंदु शक्ति जीवप्रदेशपरिस्पंदसंभूतमदु योगमेंबुदक्कुमदु मनोवचनकायप्रवृत्तिभेदिंदं त्रिविधमक्कुमल्लि वीर्य्यांतरायनोइंद्रियावरणक्षयोपशमदिंदमंगोपांगनामकर्म्मोदयदिंदं मनःपर्य्याप्तियुक्तंगे मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळगे अष्टच्छदारविंदाकारदिंदं हृदयदोळु निर्म्माणनामकर्म्मोदयसंपादितद्रव्यमनः पद्मपत्रंगळगळोळु नोइंद्रियक्षयोपशमजीवप्रदेशप्रचयदोळु लब्ध्युपयोगलक्षणभावेंद्रियं मनमेंबुदक्कुमा मनोव्यापारमं मनोयोगमेंबुदा मनोयोगमुं सत्याद्यर्थं

पर्याप्ताः सज्ञित्रसकायः उभयश्चेति षड्जीवनिकायः। मिश्रे सज्ञिपञ्चेन्द्रियत्रसकायपर्याप्त एव। असयते उभय, देशसंयते पर्याप्त एव। प्रमत्ते पर्याप्तः। साहारकर्धिस्तूभय.। अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु पर्याप्त एव। सयोगे पर्याप्त'। ससमुद्घाते तूभय.। अयोगे पर्याप्त एव।

पुद्गलविपाकिशरीराङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयै मनोवचनकाययुक्तजीवस्य कर्मनोकर्मागमकारणा या शक्तिः तज्जनितजीवप्रदेशपरिस्पन्दन वा योग. स च मनोवचनकायवृत्तिभेदात्त्रेधा। तत्र वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमेन अङ्गोपाङ्गनामोदयेन च मनःपर्याप्तियुक्तजीवस्य मनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाना अष्टच्छदारविन्दाकारेण हृदये निर्माणनामोदयसंपादितं द्रव्यमन.। तत्पत्राग्रेषु नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमयुक्तजीवप्रदेशप्रचये

तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय अपर्याप्त होते है। संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय दोनों होते है। इस प्रकार इस गुणस्थानमें छहो जीवनिकाय होते हैं। मिश्रमें संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय पर्याप्त ही है। असंयतमें दोनों है। देशसंयतमें पर्याप्त ही है। प्रमत्तमें पर्याप्त है। आहारक ऋद्धि सहित होनों है। अप्रमत्तसे क्षीणकषायपर्यन्त दोनों है। सयोगीमें पर्याप्त है। समुद्घातमें दोनों है। अयोगीमें पर्याप्त ही है।

पुद्गलविपाकी शरीर और अंगोपांग नामकर्मके उदयके साथ मन-वचन-कायसे युक्त जीवके कर्म-नोकर्मके आनेमें कारण जो शक्ति है अथवा उसके द्वारा होनेवाला जो जीवके प्रदेशोंका चलन है वह योग है। वह मन-वचन-कायकी प्रवृत्तिके भेदसे तीन प्रकारका है। वीर्यान्तराय और नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे तथा अंगोपांगनाम कर्मके उदयसे मनःपर्याप्तिसे युक्त जीवके मनोवर्गणारूपसे आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका आठ पांखुडीके कमलके आकारसे हृदयमें निर्माणनाम कर्मके उदयसे रचा गया द्रव्यमन है। उन पाँखुड़ीके अग्रभागोंमें

विषयभेददिं चतुर्व्विधमक्कुं। भाषापर्य्याप्तियोळ्कूडिद जीवक्के शरीरनामकर्म्मोदयदिंदं स्वरनामकर्म्मोदयसहकारिकारणदिंदं भाषावर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळगे चतुर्व्विधभाषारूपदिंदं परिणमनं वाग्योगमक्कुमदु सत्याद्यर्थवाचकत्वदिंदं चतुर्व्विधमक्कुमौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्म्मोदयंगळिंदमाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळगे निर्म्माणनामकर्म्मोदयनिर्म्मापित तत्तच्छरीरपरिणमनपरिणतियोळु पुट्टिद जीवप्रदेशपरिस्पंदमौदारिकादिकाययोगमक्कुं। तच्छरीरपर्य्याप्तिकालं समयोनांतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं तन्मिश्रकाययोगमक्कुमवक्के मिश्रत्वव्यपदेशमेंते दोडे औदारिकादिनोकर्म्मशरीरवर्गणेगळनाहरिसुवल्लि स्वतः सामर्त्थ्याऽसंभवमप्पुदरिंदं कार्म्मणवर्गणासव्यपेक्षमप्पुदरिंद मिश्रव्यपदेशमक्कुं। विग्रहगतियोळु औदारिकादिनोकर्म्मवर्गणेगळनाहार मागुत्तिरलु कार्म्मणशरीरनामकर्म्मोदयदिंद कार्म्मणवर्गणायातपुद्गलस्कंधंगळगे ज्ञानावरणादिकर्म्मपर्य्यायदिंदं जीवप्रदेशंगळोळु बंधप्रघट्टदोळु पुट्टिद जीवप्रदेशपरिस्पंदं कार्म्मणकाययोगमेंबुदनितुं कूडि योगंगळु पदिनैदप्पुवु ॥

लब्ध्युपयोगलक्षण भावमन तद्व्यापारो मनोयोग'। स च सत्याद्यर्थविषयभेदाच्चतुर्धा। भाषापर्याप्तियुक्तजीवस्य शरीरनामोदयेन स्वरनामोदयसहकारिकारणेन भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धाना चतुर्विधभाषारूपेण परिणमन वाग्योग। सोऽपि सत्याद्यर्थवाचकत्वेन चतुर्धा। औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामोदयै आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाना निर्माणनामोदयनिर्मापिततत्तच्छरीरपरिणमनपरिणतौ उत्पन्नजीवपरिस्पन्द औदारिकादिकाययोग'। तत्तच्छरीरपर्याप्तिकाले समयोनान्तर्मुहूर्तपर्यन्त तत्तन्मिश्रकाययोग.। अस्य च मिश्रत्वव्यपदेश. औदारिकादिनोकर्मशरीरवर्गणाहरणे स्वत सामर्थ्याभावेन कार्मणवर्गणासव्यपेक्षत्वात्। विग्रहगतौ औदारिकादिनोकर्मवर्गणाना अनाहरणे सति कार्मणशरीरनामोदयेन कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाना ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायेण जीवप्रदेशेषु बन्धप्रघट्टके उत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पन्द कार्मणकाययोग, एव योगा पञ्चदश ॥७०३॥

जो नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे युक्त जीवप्रदेश है उनमे लब्धि उपयोग लक्षणवाला भावमन है। उसके व्यापारको मनोयोग कहते हैं। वह सत्य-असत्य आदि अर्थविषयक भेदसे चार प्रकारका है। भाषा पर्याप्तिसे युक्त जीवके शरीर नाम कर्मके उदयसे और स्वर नाम कर्मके उदयकी सहायतासे भाषावर्गणाके रूपमें आये हुए पुद्गल स्कन्धोंका चार प्रकारकी भाषाके रूपसे परिणमन वचनयोग है। वह भी सत्य आदि अर्थका वाचक होनेसे चार प्रकारका है। औदारिक, वैक्रियिक, और आहारक शरीरनाम कर्मके उदयसे आहार वर्गणाके रूपमें आये पुद्गल स्कन्धोका निर्माणनाम कर्मके उदयसे रचित उस-उस शरीररूप परिणमन होनेपर जो जीवमें परिस्पन्द होता है वह औदारिक आदि काययोग है। उस-उस शरीर पर्याप्तिके कालमें एक समय हीन अन्तर्मुहूर्त काल तक औदारिक आदि मिश्रकाययोग होता है। इसको मिश्र कहनेका कारण यह है कि औदारिक आदि नोकर्म शरीर वर्गणाओंके आहरणमें स्वयं समर्थ न होनेसे कार्मणवर्गणाकी अपेक्षा करता है। विग्रहगतिमें औदारिक आदि नोकर्म वर्गणाओंका ग्रहण न होनेपर कार्मण शरीर नामकर्मके उदयसे कार्मणवर्गणा रूपसे आये पुद्गल स्कन्धोंका ज्ञानावरण आदि कर्मपर्याय रूपसे जीवके प्रदेशोंमें बन्ध होनेपर उत्पन्न हुआ जीवके प्रदेशोका हलन-चलन कार्मण काययोग है। इस प्रकार योग पन्द्रह होते है ॥७०३॥

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एक्कारा ।
जोगिम्मि सत्त योगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥७०४॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव षष्ठे एकादश । योगिनि सप्तयोगाः अयोगिस्थानं भवेत् शून्यं ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु आहारकाहारकमिश्रकाययोगिगळं वर्ज्जिसि शेषत्रयोदशयोगयुक्तरप्परु । सासादनगुणस्थानदोळं अंते पदिमूरु योगयुक्तजीवंगळप्पुवु । मिश्रगुणस्थानदोळु सत्तमापदिमूरुं योगंगळोळमौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकार्म्मणकाययोगंगळं कळेदु शेष पत्तुं योगयुक्तजीवंगळप्पुवु । असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानदोळु सासादनदोळपेळ्दंते पदिमूरुं योगयुक्तजीवंगळप्पुवु । देशसंयताप्रमत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायगुणस्थानसप्तकरोळु मनोवाग्योगिगळेण्बरु मौदारिककाययोगिगळुमेंतु ओंभत्तु योगिगळप्परु ।

प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु आहारकाहारकमिश्रयोगिगळं कूडुत्तिरलु पन्नोंदु योगयुक्तजीवंगळप्पुवु । सयोगभट्टारकरोळु सत्यानुभयमनोवाग्योगगळु नाल्कुमौदारिकमौदारिकमिश्रकार्म्मणकाययोगमुमेंतु सप्तयोगयुक्तरप्परु । अयोगिकेवलिभट्टारकनोळु योगं शून्यमक्कुं—

मि ।	सा ।	मि ।	अ ।	दे ।	प्र ।	अ ।	अ ।	अ ।	सू ।	उ ।	क्षी ।	स ।	अ ।
१३ ।	१३ ।	१० ।	१३ ।	९ ।	११ ।	९ ।	९ ।	९ ।	९ ।	९ ।	९ ।	७ ।	० ।

मोहनीयप्रकृतिगळोळु नोकषायभेदंगळप्पस्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयंगळिंदं स्त्रीपुंनपुंसकवेदिगळप्परु । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं मूरुंवेदिगळप्परु । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानद्वितीयभागं मोदल्गोंडयोकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतमवेदिगळप्परु—

मि ।	सा ।	मि ।	अ ।	दे ।	प्र ।	अ ।	अ ।	अ ।	सू ।	उ ।	क्षी ।	स ।	अ ।
३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	० ।	० ।	० ।	० ।	० ।

उक्तपञ्चदशयोगेषु मध्ये मिथ्यादृष्टिसासादनासयतेषु त्रयोदश त्रयोदश भवन्ति आहारकतन्मिश्रयो. प्रमत्तादन्यत्राभावात् । मिश्रगुणस्थाने तेष्वपर्याप्तयोगत्रय नेति दश । उपरि क्षीणकषायान्तेषु सप्तसु तत्रापि वैक्रियिकयोगाभावात् नव । प्रमत्तसयते एकादश आहारकतन्मिश्रयोगयोरत्र पतितत्वात् । सयोगे सत्यानुभयमनोवाग्योगा' औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगाश्चेति सप्त । अयोगिजिने योगो नेति शून्यम् ।

स्त्रीपुन्नपुसकवेदोदयै तत्तन्नामवेदा भवन्ति ते त्रयोऽपि अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यन्तं न तत उपरि ।

उक्त पन्द्रह योगोंमें-से मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयतोंमें तेरह-तेरह योग होते हैं। क्योंकि आहारक आहारक मिश्रयोग प्रमत्तगुणस्थानसे अन्यत्र नहीं होते। मिश्रगुण स्थानमें उनमें तीन अपर्याप्त योग न होनेसे दस योग होते हैं। मिश्रगुणस्थानमें उनमें-से तीन अपर्याप्त योग न होनेसे दस योग होते है। ऊपर क्षीणकषाय पर्यन्त सात गुणस्थानोंमें वैक्रियिक काययोगके न होनेसे नौ योग होते है। प्रमत्तसंयतमें आहारक आहारक मिश्रके होनेसे ग्यारह योग होते हैं। सयोगकेवलीमें सत्य, अनुभय, मनोयोग और वचनयोग तथा औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काययोग इस तरह सात होते हैं। अयोगकेवलीमें योग नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयसे उस-उस नामवाले वेद होते है। वे तीनों ही अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त होते है, ऊपर नहीं होते। अनन्तानुबन्धी

चारित्रमोहनीय भेदंगळप्प क्रोधचतुष्कमानचतुष्कमायाचतुष्कलोभचतुष्कंगळे यथायोग्यमागुदयमागुत्तिरलु क्रोधिगळुं मानिगळु मायिगळु लोभिगळुमप्परु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु चतुर्गतिय नानाक्रोगळु मानिगळु मायिगळु लोभिगळुमप्परु। सासादनगुणस्थानदोळं चतुर्गतिय नानाक्रोधिमानिमायिलोभिगळप्परु। मिश्रगुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिकषायिगळु नाल्वरुळियलुळिद क्रोधत्रयजीवंगळु मानत्रयजीवंगळु मायात्रयजीवंगळु लोभत्रयजीवंगळुमप्परु। असंयतगुणस्थानदोळं मिश्रगुणस्थानदोळपेळ्दंतेयप्परु। देशसंयतगुणस्थानदोळप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयरहितमागि क्रोधद्वययुतरुं मानद्वययुतरुं मायाद्वययुतरुं लोभद्वययुतरुमप्परु। प्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडनिवृत्तिकरणगुणस्थानद्वितीयभागिपर्य्यंतं संज्वलनक्रोधिगळप्परु। तृतीयभागिपर्य्यंतं संज्वलनमानिगळप्परु। चतुर्त्थभागिपर्य्यंतं संज्वलनमायिगळप्परु। पंचमभागिपर्य्यंतं संज्वलनबादरलोभिगळप्परु। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु सूक्ष्मसंज्वलनलोभिगळप्परु। मेलेल्लरुमकषायिगळप्परु :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
४	४	४	४	४	४	४	४	४	१	०	०	०	०
								३					
								२					
								१					

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणक्षयोपशमदिंदं पुट्टिद सम्यग्ज्ञानचतुष्टयमुं केवलज्ञानावरण निरवशेषक्षयदिनाद केवलज्ञानमुमितैदुं सम्यग्ज्ञानंगळु मिथ्यात्वकर्म्मोदयदोळ्कूडिद मतिश्रुतावधिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितमज्ञानंगळप्प कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानमेंदितज्ञानत्रयं गूडि मिथ्याज्ञानिगळुं सम्यग्ज्ञानिगळुमेंदु प्रकारमप्परु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिगळु मूवरुमप्परु। सासादनगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वसंयमप्रतिबंधकमप्प अनंतानुबंध्यऽन्यतमो-

---

क्रोधादीना चतुष्कचतुष्कस्य यथायोग्योदये सति क्रोधमानमायालोभा भवन्ति। ते च मिथ्यादृष्टौ सासादने च चत्वारश्चत्वार। मिश्रासयतयोर्विना अनन्तानुबन्धिनस्त्रयस्त्रय.। देशसयते विना अप्रत्याख्यानकषायान् द्वौ द्वौ। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणद्वितीयभागपर्यन्तं सज्वलनक्रोध। तृतीयभागपर्यन्त मान। चतुर्थभागपर्यंत माया। पञ्चमभागपर्यन्त बादरलोभ। सूक्ष्मसापराये सूक्ष्मलोभ। उपरि सर्वेऽपि अकषाया एव।

मतिश्रुतावधिमन पर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमेन तत् सम्यग्ज्ञानचतुष्क। केवलज्ञानावरणनिरवशेषक्षयेण च केवलज्ञान, मिथ्यात्वोदयसहचरित मतिश्रुतावधिज्ञानावरणक्षयोपशमेन कुमतिकुश्रुतविभङ्गज्ञानानि च

आदि चारके क्रोधादि चतुष्कका यथायोग्य उदय होनेपर क्रोध, मान, माया, लोभ होते है। वे मिथ्यादृष्टि और सासादनमें चार चार होते है। मिश्र और असंयतमे अनन्तानुबन्धीके बिना तीन-तीन होते है। देशसंयतमें अप्रत्याख्यान कषायोंके बिना दो-दो होते है। प्रमत्तसे अनिवृत्तिकरणके द्वितीय भाग पर्यन्त संज्वलन-क्रोध होता है। तृतीय भाग पर्यन्त मान, चतुर्थभाग पर्यन्त माया, पंचमभाग पर्यन्त बादर लोभ रहता है। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभ होता है। ऊपर सब अकषाय ही होते है।

मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे चारों सम्यग्ज्ञान होते हैं। केवल ज्ञानावरणके सम्पूर्णक्षयसे केवलज्ञान होता है। मिथ्यात्वका उदय रहते हुए मति-श्रुत-अवधिज्ञानावरणोके क्षयोपशमसे कुमति, कुश्रुत

दयजनितमिथ्यादृष्टियेयप्प सासादननोळं कुमतिकुश्रुतविभंगंगळप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु मिश्रमतिश्रुतावधिज्ञानंगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टियोळु आद्यसम्यग्ज्ञानत्रितयमक्कुं। देशसंयतनोळं आद्यसम्यग्ज्ञानत्रितयमुमक्कुं। प्रमत्तादिक्षीणकषायपर्य्यंतमाद्यसम्ज्ञानचतुष्टयमुमक्कुं सयोगिकेवलियोळमयोगिकेवलियोळमो देकेवलज्ञानमक्कुं—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	१	१

संज्वलनकषायनोकषायंगळुमंदोदयदिंदं संयमपरिणाममक्कुमदुवुं व्रतधारण समितिपालन- ५
कषायनिग्रहदंडत्यागेंद्रियजयस्वरूपमक्कुमिदु सामान्यदिंदं सामायिकसंयममो देयक्कुमदं तदोडे सर्व्वसावद्याद्विरतोस्मि येंबुदरोळेल्ला संयमंगळंतर्भावमुंटप्पुदरिंदं। विशेषदिंदमसंयममेंदुं देशसंयममेंदुं सामायिकसंयममेंदुं च्छेदोपस्थापनसंयममेंदु सूक्ष्मसांपरायसंयममेंदुं यथाख्यातसंयममेंदितु संयमं सप्तविधमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं असंयममक्कुं। देशसंयतगुणस्थानदोळु देशसंयममक्कुं। प्रमत्तगुणस्थानमादियागि अनिवृत्तिकरण- १०
गुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं गुणस्थानदोळु प्रत्येकं सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमगळेरडप्पुवु। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वयदोळे परिहारविशुद्धिसंयममक्कुं। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळे सूक्ष्मसांपरायसंयममक्कुमुपशांतकषायक्षीणकषायसयोगाऽयोगिगुणस्थानचतुष्टयदोळु प्रत्येकं यथाख्यातसंयममो देयप्पुदु—

मिलित्वा अष्टौ। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुज्ञानत्रयम्। मिश्रे तदेव मिश्रितम्। असंयते देशसंयते वा आद्यं १५
सम्यग्ज्ञानत्रयम्। प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तमाद्य सम्यग्ज्ञानचतुष्कम्। सयोगायोगयोरेकं केवलज्ञानमेव।

सज्वलननोकषायमन्दोदयेन व्रतधारणसमितिपालनकषायनिग्रहदण्डत्यागेन्द्रियजयरूपसंयमभावो भवति। स च सामान्येन सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति गृहीत. सामायिकनामैक.। विशेषेण असयमदेशसंयमसामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापराययथाख्यातभेदात्सप्तधा। तत्र असंयतान्तमसंयम'। देशसंयते देशसंयमः। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणान्त सामायिकछेदोपस्थापनौ। प्रमत्ताप्रमत्तयो. परिहारविशुद्धिरपि। सूक्ष्मसापराये २०
सूक्ष्मसांपरायसंयमः। उपशान्तकषायादिषु यथाख्यातः।

और विभंगज्ञान होते हैं। सब मिलकर आठ है। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि और सासादनमें तीन अज्ञान होते हैं। मिश्रमें तीनों मिश्र रूप होते हैं। असंयत और देशसंयतमें आद्य तीन सम्यग्ज्ञान होते हैं। प्रमत्तसे क्षीणकषायपर्यन्त आदिके चार सम्यग्ज्ञान होते है। सयोग-अयोगमें एक एक केवलज्ञान होता है।

संज्वलन और नोकषायके मन्द उदयसे व्रतोंका धारण, समितियोंका पालन, कषायोंका निग्रह, दण्डोंका त्याग और इन्द्रियजयरूप संयमभाव होता है। वह सामान्यसे 'सब पाप-कार्योंसे विरत होता हूँ' इस प्रकार ग्रहण करनेपर सामायिकसंयम नाम पाता है। विशेषसे असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथा-ख्यातके भेदसे सात प्रकारका है। असंयत गुणस्थान पर्यन्त असंयम होता है। देशसंयतमें देशसंयम है। प्रमत्तसे अनिवृत्तिकरण पर्यन्त सामायिक और छेदोपस्थापना होते है। प्रमत्त और अप्रमत्तमें परिहारविशुद्धि भी होता है। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म साम्पराय संयम होता है। उपशान्तकषाय आदिमें यथाख्यात होता है।

---

१. म °मेकेदोडे। २. ब असयतदेशसयतयोश्चाद्य।

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
					२	२							
१	१	१	१	१	१	१	२	२	१	१	१	१	१

चक्षुर्दर्शनावरणीयमचक्षुर्दर्शनावरणीयमवधिदर्शनावरणीयमेंबी मूरुं दर्शनावरणीयकर्म्म-प्रकृतिगळ क्षयोपशमगळिंद यथासंख्यमागि चक्षुर्दर्शनमुमचक्षुर्दर्शनमुमवधिदर्शनमेंब मूरुं दर्शनगळप्पुवु। केवलदर्शनावरणीयकर्म्मप्रकृति निरवशेषक्षयदिंदं क्षायिककेवलदर्शनमुमक्कुमितु दर्शनचतुष्टयमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि मिश्रगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकं चक्षुदर्शनमुमचक्षुर्दर्शनमुमेंबेरडुं दर्शनंगळक्कुं। मिश्रनोळु मत्ते मिश्रावधिदर्शनमुमक्कुमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतमोंभत्तु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं चक्षुर्दर्शनमुमचक्षुर्दर्शनमुमवधिदर्शनमुमेंब मूरुं दर्शनमक्कुं। सयोगिभट्टारकरोळमयोगकेवलिभट्टारकरोळं गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळं केवलदर्शनमक्कुं

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ	सि
२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	१	१	१

कषायोदयंगळिननुरंजिसल्पट्ट मनोवाक्कायप्रवृत्तियं लेश्येयेंबुदुमदऽशुभलेश्ययेंदु शुभलेश्ययेंदुं द्विविधमक्कमल्लि अशुभलेश्ययुं कृष्णनीलकपोतभेदंदिदं त्रिविधमक्कुं। शुभलेश्ययुं तेजः पद्मशुक्लभेदंदिदं त्रिविधमक्कुमितु षड्लेश्ययेगळप्पुवु।

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं षड्लेश्ययेगळप्पुवु। देशसयतगुणस्थानं मोदल्गोंडु अप्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतं मूरुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं मूरु शुभलेश्ययेगळप्पुवु। अपूर्व्वकरणगुणस्थानमोदल्गोंडु सयोगिकेवलि भट्टारकपर्य्यंत

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयक्षयोपशमै केवलदर्शनावरणीयनिरवशेषक्षयेण तानि चत्वारि दर्शनानि स्यु। तत्र मिश्रगुणस्थानान्त चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयम्। असयतादिक्षीणकषायान्त चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रयम्। सयोगायोगयो सिद्धे चैक केवलदर्शनम्।

कषायोदयानुरञ्जितमनोवाक्कायप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभभेदाद्द्वेधा। तत्र अशुभा कृष्णनीलकपोतभेदात् त्रेधा। शुभापि तेज पद्मशुक्लभेदात्त्रेधा। असयतान्त षडपि। देशसयतादित्रये शुभा एव। अपूर्वकरणादिसयोगान्त शुक्लैव। अयोगे योगाभावात् लेश्या नास्ति।

सामग्रीविशेषै. रत्नत्रयानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमितु योग्यो भव्य। तद्विपरीतोऽभव्य। तौ च

चक्षु-अचक्षु और अवधिदर्शनावरणोंके क्षयोपशमसे तथा केवल दर्शनावरणके सम्पूर्ण क्षयसे चारों दर्शन होते हैं। उनमें-से मिश्र गुणस्थान पर्यन्त चक्षु और अचक्षु दर्शन होते हैं। असंयतसे क्षीणकषायपर्यन्त चक्षु, अचक्षु, अवधि तीन दर्शन होते है। संयोग, अयोग और सिद्धोंमे एक केवलदर्शन होता है। कषायके उदयसे अनुरंजित मन-वचन-कायकी प्रवृत्ति लेश्या है। वह शुभ और अशुभके भेदसे दो प्रकार है। उनमें-से अशुभ कृष्ण, नील, कापोतके भेदसे तीन प्रकार है। शुभ भी तेज, पद्म, शुक्लके भेदसे तीन प्रकार है। असंयत पर्यन्त छहों लेश्या होती हैं। देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें शुभलेश्या ही होती है। अपूर्वकरणसे सयोगी पर्यन्त शुक्ललेश्या ही होती है। अयोगीमें योगका अभाव होनेसे लेश्या नहीं है। सामग्री विशेषके द्वारा रत्नत्रय और अनन्तचतुष्टयस्वरूपसे परिणमन करनेके जो योग्य

गुणस्थानषट्कदोळु प्रत्येकमो दे शुक्ललेश्येयक्कुमयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु योगमिल्लप्पुदरिं लेश्येयुमिल्ल मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ सामग्री-
६ । ६ । ६ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ०

विशेषंगळिंद सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रंगळिंदमनंतज्ञानानंतदर्शन अनंतवीर्य्यानंतसुखस्वरूपनागि परिणमिसल्के योग्यमप्पजीवं भव्यनें बनक्कुमदरविपरीतमभव्यनें बनक्कुमितु भव्याभव्यभेदर्दि जीवराशि द्विविधमक्कुं । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं भव्यजीवंगळुमभव्यजीवंगळुमप्पुववरोळु अभव्यजीवंगळेल्ल कूडि परीतानंतजघन्यराशियं विरळिसि तद्राशियने रूपं प्रतिकोट्टु वर्गितसंवर्गं माडि पुट्टिद राशि युक्तानंतजघन्यमक्कुमा राशिप्रमाणमभव्यजीवराशिप्रमाणमक्कुमुळिद मिथ्यादृष्टिगळनितुं भव्यजीवजातिगळक्कुमादोडं आसन्नभव्यरुं दूरभव्यरुमभव्यसमंभव्यरुमप्परु । सासादनगुणस्थानं मोदल्गों डु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यन्तं यत्तोंदु गुणस्थानंगळोळु भव्यजीवंगळेयप्पुवु । सयोगकेवलिभट्टारक अयोगकेवलिभट्टारकरुं भव्यरुमभव्यरुमल्तु :—

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी ।
२ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ ।

क्षयोपशमलब्धिमोदलागि करणलब्धिपर्य्यंतमाद परिणामपरिणतनागि अनिवृत्तिकरणपरिणामचरमसमयदोळु अनादिमिथ्यादृष्टियाद पक्षदोळु अनंतानुबंधिचतुःकषायंगळुमं दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वकर्म्मप्रकृतियुमनुपशमिसि तदनंतर समयदोळु मिथ्यात्वकर्म्मप्रकृत्यंतरायामांतर्म्मुहूर्त्तकालप्रथमसमयदोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकररिसि असंयतनक्कुं । मेण प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं देशव्रतमुमं युगपत्स्वीकरिसि देशसंयतनक्कुमथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं महाव्रतमुमं युगपत्स्वीकरिसि अप्रमत्तसंयतनक्कुमिवर्गळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गों डु गुणसंक्रमविधानदिंदं मिथ्यात्वप्रकृतिद्रव्यमुदयक्के बारदंतुपशमिसिद्दुदं गुणसंक्रमण भागहारदिंदमपकर्षिसिकों डु

मिथ्यादृष्टौ द्वौ । तत्र अभव्यराशिः जघन्ययुक्तानन्तमात्रः तेनोनः सर्वसंसारी भव्यराशिः । स च आसन्नभव्यः दूरभव्यः अभव्यसमभव्यश्चेति त्रेधा । सासादनादाक्षीणकषायान्तं भव्य एव । सयोगायोगयोर्भव्याभव्यव्यपदेशो नास्ति ।

क्षयोपशमादिपञ्चलब्धिपरिणामपरिणतः अनिवृत्तिकरणचरमसमये अनादिमिथ्यादृष्टिः अनन्तानुबन्धिनो मिथ्यात्व चोपशमय्य तदनन्तरसमये मिथ्यात्वान्तरायामान्तर्मुहूर्तप्रथमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्राप्य असंयतो भवति । अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वदेशव्रते युगपत्प्राप्य देशसयतो भवति । अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वमहाव्रते

हो वह भव्य है । उससे विपरीत अभव्य है । मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दोनों होते हैं । अभव्यराशि युक्तानन्त प्रमाण है । उससे हीन सब संसारी भव्यराशि है । भव्यके तीन भेद है— आसन्नभव्य, दूरभव्य, और अभव्यके समान भव्य । सासादनसे क्षीणकषाय पर्यन्त भव्य ही होते हैं । सयोगी और अयोगी न भव्य हैं, न अभव्य । क्षयोपशम आदि पाँच लब्धिरूप परिणामोंसे परिणत हुआ अनादिमिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्वका उपशम करके उससे अनन्तर समयमें मिथ्यात्वके अन्तरायाम सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तके प्रथम समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके असंयत होता है । मिथ्यात्वके ऊपर और नीचेके निषेकोंको छोड़कर अन्तर्मुहूर्तके समय प्रमाण बीचके निषेकोंका अभाव करनेको अन्तर कहते हैं । यह अनिवृत्तिकरणमें ही होता है । अस्तु, अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व और देशव्रत एक साथ प्राप्त करके देशसंयत होता है । अथवा

मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपदिंदमसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तकालं त्रिप्रकृतिगळं माळ्कु। मिथ्यात्वमं मिथ्यात्वमागियेंतु माळ्कुमेंदोडे पूर्व्वस्थितियं नोडलतिच्छापनावलिमात्रस्थितिह्रासमं माळ्कुमेंबुदत्थं। अनंतरमा प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालदोळु अप्रमत्तंगे प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसंख्यातसहस्रंगळप्पुवप्पुदरिंदं प्रमत्तगुणस्थानदोळं प्रथमोपशमसम्यक्त्वसंभवमरियल्पडुगुं। आ नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळु तत्सम्यक्त्वकालमंतर्म्मुहूर्त्तदोळु षडावलिकालावशेषमादागळुत्कृष्टदिंदमनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानकालमारावलिप्रमाणमक्कुं। जघन्यदिनेकसमयमक्कुं। मध्यमसंख्यातविकल्पमक्कुं। एत्तलानुं भव्यतागुणविशेषदिंदं सम्यक्त्वविराधनेयं इल्लदिद्दोडे तद्गुणस्थानस्थानकालं संपूर्णमागुत्तिरलु सम्यक्त्वप्रकृतियुदयिसि वेदकसम्यग्दृष्टिगळ नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळप्परु। अथवा मिश्रप्रकृत्युदयदिंदमा नाल्वरुं मिश्ररप्परु। मिथ्यात्वकर्म्मोदयमादुदादोडा नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु मिथ्यादृष्टिगळप्परु। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळु विशेषमुंटदावुदेंदोडे उपशमश्रेण्यारोहणार्त्थं सातिशयाप्रमत्तगुणस्थानवर्त्तिवेदकसम्यग्दृष्टिकरणत्रयपरिणामसामर्त्थ्यदिंदमनंतानुबंधि कषायंगळगे प्रशस्तोपशममिल्लप्पुदरिंदमप्रशस्तोपशमदिंदमधस्तननिषेकंगळनुत्कर्षिसि मेणु विसंयोजिसि केडिसि दर्शनमोहत्रयक्कंतर करणदिंदमंतरमं माडि उपशमविधानदिंदमुपशमिसि अनंतरप्रथमसमयदोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि उपशम श्रेणियं क्रमदिनेरुगु मेरियुपशांतकषायगुणस्थानदोळमंतर्म्मुहूर्त्तकालमिर्द्दिळिवडं क्रमदिंदमिळिदु अप्रमत्तगुणस्थानमं पोंद्दि भव्यजीवं प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्रंगळं द्वितीयोपशम

युगपत्प्राप्य अप्रमत्तसयतो भवति। ते त्रयोऽपि तत्प्राप्तिप्रथमसमयमादिं कृत्वा गुणसक्रमणविधानेन मिथ्यात्वद्रव्य गुणसक्रमणभागहारेण अपकृष्यापकृष्य मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण असख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण अन्तर्मुहूर्तं काल त्रिधा कुर्वन्ति। मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु पूर्वस्थितौ अतिस्थापनावलिमात्रमूनयन्तीत्यर्थ। तदप्रमत्तस्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसख्यातसहस्रसभवात् प्रमत्तेऽपि तत् सम्यक्त्वं स्यात्। ते अप्रमत्तसयत विना त्रय एव तत्सम्यक्त्वकालान्तर्मुहूर्ते जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन च षडावलिमात्रेऽवशिष्टे अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदये सासादना भवन्ति। अथवा ते चत्वारोऽपि यदि भव्यतागुणविशेषेण सम्यक्त्वविराधका न स्यु. तदा तत्काले सपूर्णे जाते सम्यक्त्वप्रकृत्युदये वेदकसम्यग्दृष्टय. वा मिश्रप्रकृत्युदये सम्यग्मिथ्यादृष्टय वा मिथ्यात्वोदये

प्रथमोपशमसम्यक्त्व और महाव्रतोंको एक साथ प्राप्त करके अप्रमत्तसंयत होता है। वे तीनों भी उसकी प्राप्तिके प्रथम समयसे लेकर गुणसंक्रमण विधानके द्वारा मिथ्यात्वके द्रव्यको गुणसंक्रमण भागहारके द्वारा घटा-घटाकर मिथ्यात्व मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे अन्तर्मुहूर्तकाल तक तीन रूप करता है। इनका द्रव्य उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा हीन होता है। मिथ्यात्वका मिथ्यात्वकरण तो पूर्वस्थितिमें अतिस्थापनावली मात्र कम करता है। जो अप्रमत्तमें जाता है वह अप्रमत्तसे प्रमत्तमें और प्रमत्तसे अप्रमत्तमें संख्यात हजार बार आता-जाता है अतः प्रमत्तमें भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। अप्रमत्तसंयतके बिना शेष तीनों ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त कालमें जघन्यसे एक समय उत्कृष्टसे छह आवली काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभमें-से किसी भी एकका उदय होनेपर सासादन होते हैं। अथवा वे चारों भी यदि भव्यत्वगुणकी विशेषतासे सम्यक्त्वकी विराधना नहीं करते तो उस सम्यक्त्व काल पूर्ण होनेपर सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयमें वेदक सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं या मिश्र प्रकृतिके उदय होनेपर सम्यक्मिथ्यादृष्टि होते हैं अथवा

सम्यग्दृष्टियागिद्दुं माळ्कुमथवा केळगे देशसंयमगुणस्थानमं पोद्दि द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टियागिक्कुं मथवा, असंयतगुणस्थानमं पोद्दि असंयतसम्यग्दृष्टियागिक्कुमथवा मरणमादोडे देवाऽसंयतनक्कुं। मेणु मिश्रप्रकृत्युदयदिंदं मिश्रनक्कु । मनंतानुबंधिकषायोदयदिदं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकं सासादननुमोळनेंबाचार्य्यपक्षदोळु सासादननुमक्कुमथवा मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिदं मिथ्यादृष्टियुमक्कुमेंबी विशेषं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळरियल्पडुगुं । क्षायिकसम्यक्त्वमसंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु वेदकसम्यग्दृष्टिगळकर्म्मभूमि जरुमप्परवर्गळगक्कुमवर्गळं केवलि श्रुतकेवलिद्वय श्रीपादपार्श्वदोळु सप्तप्रकृतिगळं निरवशेषं कोडिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु । मानुषियरुमसंयतसम्यग्दृष्टिगळु देशव्रतिकेयरुमुपचारमहाव्रतिकेयरु केवलिद्वयपादमूलदोळु सप्तप्रकृतिगळं क्षपियिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु । मितु सम्यक्त्वं सामान्यदिदमोंदु विशेषदिदं मिथ्यात्व सासादनमिश्रउपशमवेदकक्षायिकमेंदितु षड्विधमक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यारुचियक्कुं। सासादननोळमा सासादनरुचियक्कुं। मिश्रगुणस्थानदोळु मिश्ररुचियक्कुं। असंयतगुणस्थानमादियागिअप्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमुपशमवेदकक्षायिकंगळ्मूरुं सम्यक्त्वंगळप्पुवु ।

अपूर्व्वकरणगुणस्थानं मोदलागि उपशांतकषायगुणस्थानपर्य्यंतमुपशमश्रेणियोळु नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकमुपशमसम्यक्त्वमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुमेरडुं संभविसुवु । क्षपकश्रेणियोळु

मिथ्यादृष्टयो भवन्ति । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे विशेषः । स कः ? उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तवेदकसम्यग्दृष्टि. करणत्रयपरिणामसामर्थ्यात् अनन्तानुबन्धिना प्रशस्तोपशमं विना अप्रशस्तोपशमेन अधोनिषेकानुत्कृष्य वा विसयोज्य क्षपयित्वा दर्शनमोहत्रयस्य अन्तरकरणेन अन्तरं कृत्वा उपशमविधानेन उपशमय्य अनन्तरप्रथमसमये द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उपशमश्रेणिमारुह्य उपशान्तकषायं गत्वा अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा क्रमेण अवतीर्य अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि करोति । वा अधः देशसयतमो भूत्वा आस्ते । वा असयतो भूत्वा आस्ते । वा मरणे देवासंयत. स्यात् वामिश्रप्रकृत्युदये मिश्र. स्यात् । अनन्तानुबन्ध्यन्यतमोदये द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं विराधयतीत्याचार्यपक्षे सासादन. स्यात् वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टि. स्यात् इति । क्षायिकसम्यक्त्वं तु असयतादिचतुर्गुणस्थानमनुष्याणा असंयतदेशसयतोपचारमहाव्रतमानुषीणा

मिथ्यात्वका उदय होनेपर मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें विशेष कथन है। उपशम श्रेणीपर आरोहण करनेके लिए सातिशय अप्रमत्तवेदक सम्यग्दृष्टि तीन करणरूप परिणामोंकी सामर्थ्यसे अनन्तानुबन्धी कषायोंका प्रशस्त उपशमके बिना अप्रशस्त उपशमके द्वारा नीचेके निषेकोंको उत्कर्षणके द्वारा ऊपरके निषेकोंमें स्थापित करता है अथवा विसंयोजन द्वारा अन्य प्रकृतिरूप परिणमाता है। इस तरह उनका क्षपण करके दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका अन्तरकरणके द्वारा अन्तर करके उपशम विधानके द्वारा उपशम करता है। तदनन्तर प्रथम समयमें द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होकर उपशम श्रेणीपर चढ़ता है। और उपशान्त कषाय तक जाकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक ठहरकर क्रमसे उतरता हुआ अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त करके हजारो बार सातवेंसे छठेमें और छठेसे सातवेंमें आता-जाता है। अथवा नीचे उतरकर देशसंयमी या असंयमी हो जाता है। अथवा मरणकाल आनेपर असंयतदेव हो जाता है अथवा मिश्र प्रकृतिके उदयमें मिश्रगुणस्थानवर्ती हो जाता है। जिन आचार्योंका मत है कि अनन्तानुबन्धीका उदय होनेपर द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी विराधना करता है उनके मतसे सासादन हो जाता है। अथवा मिथ्यात्वके उदयमें मिथ्यादृष्टि

---

१. म जरुगलक्कुमग्गुलु° ।

अपूर्व्वकरणगुणस्थानं मोदलागि सिद्धपरमेष्ठिगळपर्य्यंतं क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुं :—

मि ।	सा ।	मि ।	अ ।	दे ।	प्र ।	अ ।	अ ।	अ ।	सू ।	उ ।	क्षी ।	स ।	अ ।	सि
१ ।	१ ।	१ ।	३ ।	३ ।	३ ।	३ ।	१[२] ।	१[२] ।	१[५] ।	२ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१

नो इंद्रियावरणक्षयोपशममुतज्जनितबोधनमुं संज्ञेयेंबुदक्कुं अदनुळ्ळुदसंज्ञि एंबुदक्कुमितरेंद्रियज्ञानमनुळ्ळुदसंज्ञियेंबुदक्कुमितु सज्ञियुमसंज्ञियुमेंबेरडु प्रकारद जीवंगळोळु संज्ञिजीवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं पन्नेरडु गुणस्थानंगळोळक्कुं। असंज्ञिजीवं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळेयक्कु । सयोगिकेवलिभट्टारकरुमयोगिकेवलिभट्टारकरुं नोइंद्रियेंद्रियज्ञानरहितरप्पुदरिंदं संज्ञिगळुमसंज्ञिगळुमल्तु :—

मि ।	सा ।	मि ।	अ ।	दे ।	प्र ।	अ ।	अ ।	अ ।	सू ।	उ ।	क्षी ।
२ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।	१ ।

शरीरांगोपांगनामकर्मोदयजनितशरीरवचनचित्तनोकर्म्मवर्गणाग्रहणमाहारमेंबुदक्कुं। विग्रहगतियोळु समुद्घातकेवलिगुणस्थानदोळमयोगिकेवलिगुणस्थानदोळुं सिद्धपरमेष्ठिगळोळं शरीरांगोपांगनामकर्म्मोदयमिल्लप्पुदरिंदं "कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः एंबी न्यायदिंदमनाहारमक्कुमिताहारानाहारंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळरडुमक्कुं। सासादनगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळमाहारानाहारमेरडुमक्कु मुळिद मिश्रगुणस्थानं मोदलागि ओंभत्तुगुण-

---

च कर्मभूमिवेदकसम्यग्दृष्टीनामेव केवलिश्रुतकेवलिद्वयश्रीपादोपान्ते सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति। तत्सम्यक्त्वं सामान्येन एक, विशेषेण मिथ्यात्वसासादनमिश्रोपशमवेदकक्षायिकभेदात् पोढा। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्व। सासादने सासादनत्वम्। मिश्रे मिश्रत्व। असंयतादि अप्रमत्तान्तेषु उपशमवेदकक्षायिकानि अपूर्वकरणाद्युपशान्तकषायान्तेषु उपशमश्रेणौ वा औपशमिकक्षायिके क्षपकश्रेणावपूर्वकरणादिसिद्धपर्यन्तमेक क्षायिकमेव।

नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधन च सज्ञा सा अस्य अस्तीति सज्ञी। इतरेन्द्रियज्ञानोऽसज्ञी। तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्त सज्ञी। असंज्ञी मिथ्यादृष्टावेव। सयोगायोगयोर्नोइन्द्रियेन्द्रियज्ञानाभावात् सज्ञ्यसज्ञिव्यपदेशो नास्ति।

शरीराङ्गोपाङ्गनामोदयजनित शरीरवचनचित्तनोकर्मवर्गणाग्रहणमाहार। विग्रहगतौ प्रतरलोकपूरण-

---

हो जाता है। क्षायिक सम्यक्त्व तो असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्योंके असंयत, देशसंयत या औपचारिक महाव्रती मानुषियोंके जो कर्मभूमिके जन्मा वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं उनके ही केवली श्रुतकेवलीके चरणोंके समीपमें सात प्रकृतियोंका पूर्ण क्षय होनेपर होता है। वह सम्यक्त्व सामान्यसे एक है। विशेष मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, उपशम, वेदक और क्षायिकके भेदसे छह भेदरूप है। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व होता है। सासादनमें सासादन और मिश्रमें मिश्र होता है। असंयतसे अप्रमत्तपर्यन्त उपशम, वेदक और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं। अपूर्वकरणसे उपशान्त कषाय पर्यन्त उपशमश्रेणीमें औपशमिक और क्षायिक होते हैं। क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणसे लेकर तथा सिद्ध पर्यन्त क्षायिक ही होता है।

नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशम और उससे होनेवाले ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। वह जिसके हो वह संज्ञी है। जो मनके सिवाय अन्य इन्द्रियोंसे ही जानता है वह असंज्ञी है। मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त संज्ञी होता है। असंज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है। सयोगी और अयोगी मनसे नहीं जानते इससे न वह संज्ञी कहे जाते हैं और न असंज्ञी।

---

१. म °स्थानादि ओभत्तु ।

स्थानंगळोळं आहारमो देयक्कुं। अयोगिकेवलिभट्टारकरोळं गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळमनाहारमेयक्कुं :—

मि।	सा।	मि।	अ।	दे।	प्र।	अ।	अ।	अ।	सू।	उ।	क्षी।	स।	अ।	सि
२।	२।	१।	२।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	१।	२।	१।	१

अनंतरं गुणस्थानंगळोळुपयोगमं पेळ्दपं :—

दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा।
सत्तुवजोगा सत्तसु दो चेव जिणे य सिद्धे य ॥७०५॥

द्वयोः पंच च षट् चैव द्वयोः मिश्रे भवंति व्यामिश्राः। सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वावेव जिनयोः सिद्धे च ॥

गुणपर्य्ययवद्वस्तुग्रहणव्यापारमुपयोगमें बुदक्कुं। ज्ञानमं वस्तु पुट्टिसुदल्तुमते पेळल्पट्टुदु।

स्वहेतुजनितोप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेत्वर्थं परिच्छेद्यात्मकं स्वतः ॥ [ ]

'नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्'। [परी० मु०] एंदितु अंतप्पुपयोगं ज्ञानोपयोगमे दुं दर्शनोपयोगमेंदुं द्विविधमक्कुमल्लि कुमति कुश्रुत विभंग मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानमेंदु ज्ञानोपयोगमेंदु तेरनवक्कुं। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनमेंदु दर्शनोपयोगं नाल्कु तेरनक्कुं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु कुमतिकुश्रुतविभंगमेंब मूरुं ज्ञानोपयोगंगळुं चक्षुरचक्षुर्दर्शनमेंबरडुं दर्शनोपयोगंगळुमितु अय्दुमुपयोगंगळप्पुवु। सासादनगुणस्थानदोळमंते अय्दुमुपयोगंगळप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळु मतिश्रुतावधिचक्षुरचक्षुरवधिगळ बारु मिश्रोपयोगंगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टि-

---

सयोगे अयोगे सिद्धे च अनाहार। तेन मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगेषु तौ द्वौ शेषनवस्वाहारः। अयोगिसिद्धे वा अनाहारः ॥७०४॥ गुणस्थानेषु उपयोगमाह—

गुणपर्ययवद्वस्तु तद्ग्रहणव्यापार उपयोगः। ज्ञानं न वस्तूत्थं तथा चोक्तं—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥१॥

"नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात् तमोवत् इति"। स चोपयोगः ज्ञानदर्शनभेदाद्द्वेधा। तत्र ज्ञानोपयोगः कुमतिकुश्रुतविभंगमतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानभेदादष्टधा। दर्शनोपयोगः चक्षुरचक्षुरवधि-

---

शरीर और अंगोपांग नामकर्मसे उत्पन्न शरीर वचन और मनके योग्य नोकर्म वर्गणाओंके ग्रहणको आहार कहते हैं। विग्रहगतिमें प्रतर और लोकपूरण समुद्घात सहित सयोगीमें, अयोगी और सिद्ध अनाहारक है। अतः मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत और सयोगकेवलीमें प्रतर लोकपूरणवाले अनाहारक हैं। शेष नौ गुणस्थानोंमें आहार है। अयोगकेवली और सिद्ध अनाहारक हैं ॥७०४॥

गुणस्थानोंमें उपयोग कहते हैं—

गुणपर्यायसे जो युक्त है वह वस्तु है। उसको ग्रहण करनेरूप व्यापारका नाम उपयोग है। ज्ञान वस्तुसे उत्पन्न नहीं होता। कहा है—जैसे अर्थ अपने कारणसे उत्पन्न होता है, आप स्वतः ही ज्ञानका विषय होनेके योग्य होता है। उसी प्रकार ज्ञान अपने कारणसे उत्पन्न होता है और स्वतः अर्थको जाननेरूप होता है॥ और कहा है—अर्थ और प्रकाश ज्ञानके कारण नहीं

गुणस्थानदोळु मतिश्रुतावधिज्ञानंगळुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनंगळुमिंतारुमुपयोगंगळप्पुवु। देशसंयतगुणस्थानदोळमसंयतगे पेळ्दंतारुमुपयोगंगळप्पुवु। प्रमत्तगुणस्थानदोळु मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमुमिंतुपयोगसप्तकमुमक्कुमंते अप्रमत्तगुणस्थानादिक्षीणकषायपर्य्यंतं प्रत्येकमुपयोगसप्तकमक्कु। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळं सिद्धपरमेष्ठिगळोळं केवलज्ञानोपयोगमुं केवलदर्शनोपयोगमुमेरडुं युगपत्संभविसुगुं :—

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ । सि ।
५ । ५ । ६ । ६ । ६ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । ७ । २ । २ । २ ।

इतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरुभूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्ति-श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु ओघादेशगळोळु विंशतिप्ररूपणाधिकारं प्ररूपितमाय्यतु ॥

केवलदर्शनभेदाच्चतुर्धा। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयो कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनाख्या. पञ्च। मिश्रे मतिश्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनाख्या मिश्रा षट्। असयतदेशसयतयो त एव षड्मिश्रा। प्रमत्तादिक्षीणकषायान्तेषु त एव मन पर्ययेण सह सप्त। सयोगे अयोगे सिद्धे च केवलज्ञानदर्शनाख्यौ द्वौ ॥७०५॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्याया जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणानिरूपणानामैकविंशोऽधिकार. ॥२१॥

हैं क्योंकि वे ज्ञेय हैं जैसे अन्धकार ज्ञानका कारण नहीं है। वह उपयोग ज्ञान और दर्शनके भेदसे दो प्रकार है। उनमें ज्ञानोपयोग कुमति, कुश्रुत, विभंग, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानके भेदसे आठ प्रकारका है। दर्शनोपयोग चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवलदर्शनके भेदसे चार प्रकारका है। मिथ्यादृष्टि और सासादनमें कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान और चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ये पाँच उपयोग होते है। मिश्र गुणस्थानमे, मति, श्रुत, अवधिज्ञान और चक्षु, अचक्षु अवधिदर्शन ये छह मिले हुए सम्यक्मिथ्यात्वरूप होते हैं। असंयत और देशसंयतमे वे ही छह उपयोग सम्यक्रूप होते हैं। प्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त वे ही मनःपर्ययके साथ मिलकर सात उपयोग होते हैं। सयोगी अयोगी, और सिद्धोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन दो उपयोग होते हैं ॥७०५॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डकी बीस प्ररूपणाओंमें-से ओघादेशमार्गणा प्ररूपणा नामक इक्कीसवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥

आलापाधिकारः ॥२२॥

अनंतरमालापाधिकारमं पेळलुपक्रमिसुत्तमिष्टदेवतानमस्काररूपपरममंगलमनंगीकरि सुत्तं गुणस्थानदोळं मार्गणास्थानदोळं विंशतिभेदंगळगे प्राग्योजितंगळगालापत्रयमं पेळ्दपें दाचार्यं प्रतिज्ञेयं माडिदपं :—

गोदमथेरं पणमिय ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं वोच्छामि जहाकमं सुणुह ॥७०६॥

गौतमस्थविरं प्रणम्य ओघादेशेषु विंशतिभेदानां । योजितानामालापं वक्ष्यामि यथाक्रम श्रुणुत ॥

विशिष्टा गौर्भूमिर्गौतमा अष्टमपृथ्वी सा स्थविरा नित्या यस्य सिद्धपरमेष्ठिसमूहस्य स गौतमस्थविरः गौतमस्थविरः गौतमस्थविर एव गौतमस्थविरस्तं । अथवा गौतमो गौतमस्वामी स्थविरो यस्यासौ गौतमस्थविरः श्रीवीरवर्द्धमानस्वामी तं । अथवा विशिष्टा गौर्वाणी[1] गौतम सर्व्वज्ञभारती तां वेत्ति अधीते वा गौतमः । स चासौ स्थविरश्च गौतमस्थविरः गौतमस्वामी तं प्रणम्येत्यर्थः । सिद्धपरमेष्ठिसमूहमं श्रीवीरवर्द्धमानस्वामियुमं मेणु गौतमगणधरस्वामियुमं नमस्कारमं माडि गुणस्थानमार्गणास्थानंगळोळु मुंनं योजिसल्पट्ट विंशतिप्रकारंगळगालापमं सामान्यपर्य्याप्तापर्य्याप्तमेंब त्रिप्रकाराळापमं यथाक्रमदिंदं पेळ्दपे केळिमें दाचार्य्य शिष्यरं शिक्षिसिदिपं । अदें तेंदोडे :—

नेमिं धर्मरथे नेमिं पूज्यं सर्वनरामरैः ।
वहिरन्त श्रियोपेत जिनेन्द्र तच्छ्रिये श्रये ॥२२॥

अथालापाधिकारं स्वेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं वक्तु प्रतिजानीते—

विशिष्टा गौर्भूमि गोतमा—अष्टमपृथ्वी सा स्थविरा नित्या यस्य स गोतमस्थविरः सिद्धसमूहः, गोतमस्थविर एव गौतमस्थविरः त अथवा गौतम गौतमस्वामी स्थविरो यस्यासौ गौतमस्थविरः श्रीवर्धमानस्वामी तं । अथवा विशिष्टा गौ वाणी यस्यासौ गोतम गोतम एव गौतम स चासौ स्थविरश्च गौतमस्थविरः तं प्रणम्य गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्राग् योजिताना विंशतिप्रकाराणा आलापं यथाक्रम वक्ष्यामि ॥७०६॥ तद्यथा—

अपने इष्टदेवको नमस्कारपूर्वक आलापाधिकारको कहनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—विशिष्ट 'गौ' अर्थात् भूमि गोतमा अर्थात् आठवी पृथ्वी वह जिसकी स्थविर अर्थात् नित्य है वह गोतमस्थविर अर्थात् सिद्ध समूह । अथवा गौतम स्वामी जिसके गणधर हैं वे वर्धमान स्वामी, अथवा जिसकी गौ अर्थात् वाणी विशिष्ट है उन गौतमस्थविरको नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें पूर्वयोजित वीस प्रकारके आलापोंको यथाक्रम कहूँगा ॥७०६॥

---

१. म °र्वाणी यस्यासौ गौतमः । गौतम एव गौतमः स चासौ ।

ओघे चोद्दसठाणे सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे अणियट्टीपंचभागे य ॥७०७॥

ओघे चतुर्दशस्थाने सिद्धे विंशतिविधानमालापाः । वेदकषायविभिन्नेऽनिवृत्तिपंचभागेषु च ॥

गुणस्थानदोळं चतुर्दशमार्गणास्थानदोळं प्रसिद्धदोळु विंशतिविधंगळप्प गुणजीवेत्यादिगळगे सामान्यं पर्य्याप्तमपर्य्याप्तमेंब मूरुतेरदाळापंगळप्पुवु । वेदकषायंगळिंदं भेदमनुळ्ळ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपचभागेगळोळं पृथगाळापगळप्पुवेकेंदोडे अनिवृत्तिकरणपंचभागेगळोळु सवेदावेदादि विशेषंगळंटप्पुदरिंदं ।

अनंतर गुणस्थानगळोळु आळापमं पेळ्दपं :—

ओघेमिच्छदुगेवि य अयदपमत्ते सजोगठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा ससेसिक्को हवे णियमा ॥७०८॥

ओघे मिथ्यादृष्टिद्विकेपि च असंयते प्रमत्ते सयोगस्थाने । त्रय एवाळापाः शेषेष्वेको भवेन्नियमात् ॥

गुणस्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानद्वयदोळं असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रमत्तसयतगुणस्थानदोळं सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु प्रत्येकं सामान्यं पर्य्याप्तापर्य्याप्तमेंब मूरु माळापंगळप्पुवु । शेषनवगुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्ताळापमो देयक्कुं :—

मि । सा । मि । अ । दे । प्र । अ । अ । अ । सू । उ । क्षी । स । अ ।
३ । ३ । १ । ३ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । ३ । १ ।

अनंतरमीयर्त्थमने विशदं माडिदपं :—

गुणस्थाने चतुर्दशमार्गणास्थाने च प्रसिद्धे विंशतिविधाना गुणजीवेत्यादीना सामान्यपर्याप्तापर्याप्तास्त्रय आलापा भवन्ति । तथा वेदकपायविभिन्नेषु अनिवृत्तिकरणपञ्चभागेषु अपि पृथक्पृथग्भवन्ति ॥७०७॥ तत्र गुणस्थानेष्वाह—

गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टिसासादनयो असयते प्रमत्ते सयोगे च प्रत्येक त्रयोऽपि आलापा भवन्ति । शेषनवगुणस्थानेषु एक पर्याप्तालाप एव नियमेन ॥७०८॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

प्रसिद्ध गुणस्थान और चौदह मार्गणास्थानमें 'गुणजीवा' इत्यादि बीस पुरूपणाओंके सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त ये तीन आलाप होते हैं । तथा वेद और कपायसे भेदरूप हुए अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें भी आलाप पृथक्-पृथक् होते हैं ॥७०७॥

गुणस्थानोंमें आलाप कहते हैं—

गुणस्थानोंमे-से मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगीमे-से प्रत्येकमें तीनों ही अलाप होते है, शेप नौ गुणस्थानोंमें एक पर्याप्त आलाप ही नियमसे होता है ॥७०८॥

---

१. म सेसेसेक्को ।

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिण्णि आलावा ।
दुवियप्पमपज्जत्तं लद्धी णिव्वत्तगं चेदि ॥७०९॥

सामान्यपर्य्याप्तमपर्य्याप्तं चेति त्रय एवालापाः । द्विविकल्पमपर्य्याप्तं लब्धिर्न्निवृत्तिश्चेति ॥

सामान्यमेंदु पर्य्याप्तमेंदुमपर्य्याप्तमेंदितु आळापंगळु मूरप्पुवल्लि अपर्य्याप्तालापं लब्ध्यपर्य्याप्तं निवृत्यपर्य्याप्तमेंदितु द्विविकल्पमक्कुं । ५

दुविहंपि अपज्जत्तं ओघे मिच्छेव होदि णियमेण ।
सासण अयदपमत्ते णिव्वत्ति अपुण्णगं [1]होदि ॥७१०॥

द्विविधमप्यपर्य्याप्तं ओघे मिथ्यादृष्टावेव भवति नियमेन । सासादनासंयतप्रमत्ते निवृत्यपर्य्याप्तं [2]भवति ॥

द्विप्रकारमनुळळऽपर्य्याप्तं ओघदोळु सामान्यदोळु मिथ्यादृष्टियोळेयक्कु नियमदिंदं । १०

सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळमी मूरुं गुणस्थानंगळोळु नियमदिंदं निवृत्यपर्य्याप्तमेयक्कुं ।

जोगं पडि जोगिजिणे होदि हु णियमा अपुण्णगत्तं तु ।
अवसेसणवट्ठाणे पज्जत्तालावगो एक्को ॥७११॥

योगं प्रति योगिजिने भवति खलु नियमादपूर्णकत्वं तु । अवशेषं नवस्थाने पर्य्याप्तालापक १५
एकः ॥

योगमं कुरुत्तु सयोगिकेवलिभट्टारकजिननोळु खलु स्फुटमागि अपूर्णकत्वमपर्य्याप्तकत्वमक्कुं । तु मत्तं अवशेष नवगुणस्थानंगळोळु पर्य्याप्तालापमो देयक्कुं ।

अनंतरं चतुर्द्दश मार्ग्गणास्थानंगळोळालापमं पेळलुपक्रमिसि मोदलोळु गतिमार्ग्गणेयोळु पेळ्दपं :— २०

ते आलापाः सामान्य. पर्याप्तः अपर्याप्तश्चेति त्रयो भवन्ति । तत्रापर्याप्तालापः लब्ध्यपर्याप्तः निर्वृत्त्यपर्याप्तश्चेति द्विविधो भवति ॥७०९॥

स द्विविधोऽपि अपर्याप्तालाप सामान्यमिथ्यादृष्टावेव भवति नियमेन । सासादनासंयतप्रमत्तेषु नियमेन निर्वृत्त्यपर्याप्तालाप एव भवति ॥७१०॥

योगमाश्रित्यैव सयोगिजिने नियमेन खलु अपर्याप्तकत्वं भवति । तु–पुनः अवशेषनवगुणस्थानेषु एकः २५
पर्याप्तालाप ॥७११॥ अथ चतुर्दशमार्गणास्थानेषु आह—

इसी अर्थको स्पष्ट करते है—

वे आलाप सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त इस तरह तीन हैं । उसमें-से अपर्याप्त आलापके भेद दो हैं—लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त ॥७०९॥

वह दोनों ही प्रकारका अपर्याप्त आलाप नियमसे सामान्य मिथ्यादृष्टिमें ही होता ३०
है । सासादन, असंयत और प्रमत्तमें नियमसे निर्वृत्यपर्याप्त आलाप ही होता है ॥७१०॥

सयोगी जिनमें नियमसे योगकी अपेक्षा ही अपर्याप्त आलाप होता है । शेष नौ गुणस्थानोंमें एक पर्याप्त आलाप ही होता है ॥७११॥

चौदह मार्गणास्थानोंमें कहते है—

---

१. म चेदि । २. म चेति ।

 ३५

सत्तण्हं पुढवीणं ओघेमिच्छे य तिण्णि आलावा ।
पढमाविरदेवि तहा सेसाणं पुण्णमालावो ॥७१२॥

सप्तानां पृथ्वीनामोघे सामान्ये मिथ्यादृष्टौ च त्रय आलापाः । प्रथमाविरतेऽपि तथा शेषाणां पूर्णालापः ॥

सामान्यदिदं सप्तपृथ्विगळ साधारणमिथ्यादृष्टियोळु मूरुमाळापंगळप्पुवु । प्रथमपृथ्विय अविरतसम्यग्दृष्टियोळमंते मूराळापंगळप्पुवुवेकेंदोडे प्रथमनरकमं बद्धायुष्यनप्प वेदकसम्यग्दृष्टियुं क्षायिकसम्यग्दृष्टियुं पुगुगुसप्पुदरिंदं शेषर्गे प्रथमपृथ्विय सासादनमिश्रर्गे द्वितीयादि पृथ्विकगळ सासादनमिश्रासंयतर्गे युं पर्य्याप्तालापमो देयक्कुं । उळिदारुं नरकंगळोळु सम्यग्दृष्टि पुगनें बुदत्थं ।

तिरियचउक्काणोघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव ।
णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसेवि पुण्णो दु ॥७१३॥

तिरश्चां चतुर्णामोघे मिथ्यादृष्टिद्विके अविरते च त्रय एव । विशेषोऽस्ति योनिमत्यसंयते पूर्णः शेषेऽपि पूर्णस्तु ॥

तिर्य्यग्गतियोळु पंचगुणस्थानंगळोळु सामान्यतिर्य्यंचरुगळुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुगळुं पर्याप्ततिर्य्यंचरुगळुं योनिमतितिर्य्यंचरुगळुं इंतु नाल्कुं तेरद तिर्य्यंचरुगळगे साधारणदिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनगुणस्थानदोळमसयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं प्रत्येकं मूरुमाळापंगळप्पुवल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे योनिमतियसंयतगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तालापमेयक्कुमेकेंदोडे बद्धतिर्य्यगायुष्यरप्प सम्यग्दृष्टिगळु योनिमतिगळुं षंढरुमागि पुट्टरप्पुदरिंदं शेषमिश्रदेशसंयतगुणस्थानद्वयदोळु पर्य्याप्तालापमेयक्कुं :—

नरकगतौ सामान्येन सप्तपृथ्वीमिथ्यादृष्टौ त्रय आलापा स्युः । तथा प्रथमपृथ्व्यविरतेऽपि त्रय आलापा स्युः । बद्धनरकायुर्वेदकक्षायिकसम्यग्दृष्ट्योस्तत्रोत्पत्तिसभवात् शेषपृथ्व्यविरतानामेक पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्ते. ॥७१२॥

तिर्यग्गतौ पञ्चगुणस्थानेषु सामान्यपञ्चेन्द्रियपर्याप्तयोनिमत्तिरश्चा चतुर्णां साधारणेन मिथ्यादृष्टिसासादनासयतेषु प्रत्येक त्रय आलापा भवन्ति । तत्राय विशेष —योनिमदसयते पर्याप्तालाप एव । बद्धायुष्कस्यापि सम्यग्दृष्टे. स्त्रीषण्डयोरनुत्पत्ते । तु—पुन शेषमिश्रदेशसयतयोरपि पर्याप्तालाप एव ॥७१३॥

नरकगतिमें सामान्यसे सातो पृथ्वीके मिथ्यादृष्टिमें तीनों आलाप होते हैं । तथा प्रथम पृथ्वीमें अविरतमें भी तीनों आलाप होते हैं क्योंकि जिन्होंने पहले नरकायुका बन्ध किया है वे वेदक सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते है । शेष पृथिवियोंमें अविरतोंके एक पर्याप्त आलाप ही होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर उनमें जन्म नहीं लेता ॥७१२॥

तिर्यंचगतिमें पाँच गुणस्थानोमें सामान्यतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पर्याप्ततिर्यंच और योनिमतीतिर्यंच इन चारोंके सामान्यसे मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थानोंमे-से प्रत्येकमें तीन आलाप होते हैं । किन्तु इतना विशेष है कि असंयतमें योनिमतीतिर्यंचमें पर्याप्त आलाप ही होता है, क्योंकि जिसने परभवकी आयुका बन्ध किया है वह सम्यग्दृष्टि

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण आलावो ।
मूलोघं मणुसतिये मणुसिणि अयदम्मि पज्जत्तो ॥७१४॥

तिर्य्यग्लब्ध्यपर्य्याप्ते एकोऽपूर्णालापः मूलौघो मनुष्यत्रये मानुष्यसंयते पर्य्याप्तः ॥

तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तनोळु अपर्य्याप्तालापमो देयक्कुं। मनुष्यगतियोळ्पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तमनुष्ययोनिमतिमनुष्यमेंबी मनुष्यत्रयद प्रत्येकं पदिनाल्कुं पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु मुंपेळ्दाळापं मूलौघमेयक्कुमादोडं योनिमत्यसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तालापमेयक्कुमेकेंदोडे कारणं मुन्नं तिर्य्यग्गतियोळु पेळ्दुदेयक्कुं। मत्तों दु विशेषमुंटदावुदेंदोडे असंयतयोनिमतितिर्य्यंचेयरुमसंयतयोनिमतिमानुषियुं प्रथमोपशमवेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टिगळुमोळरप्पुदरिं। भुज्यमानपर्य्याप्तालापमेयक्कुं। योनिमतिमनुष्यरुगळय्दु गुणस्थानंगळेयप्पुदरिंदमुपशमश्रेण्यवतरणदोळमा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमिल्ल एकेंदोडवर्गे श्रेण्यारोहणमे घटिसदप्पुदरिंदं ॥

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण ।
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥७१५॥

मानुषि प्रमत्तविरते आहारद्वयं नास्ति तु नियमेन। अपगतवेदायां मानुष्यां संज्ञा भूतगतिमाश्रित्य ॥

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तके एकः अपर्याप्तालाप एव। मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तयोनिमन्मनुष्येषु प्रत्येकं चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवत् मूलौघः स्यात् तथापि योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव। कारणं प्रागुक्तमेव। पुनरयं विशेषः—असंयततैरश्चचा प्रथमोपशमकवेदकसम्यक्त्वद्वय, असयतमानुष्या प्रथमोपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वत्रय च संभवति तथापि एको भुज्यमानपर्याप्तालाप एव। योनिमतीना पञ्चगुणस्थानादुपरि गमनासंभवात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नास्ति ॥७१४॥

स्त्री और नपुंसकोंमें उत्पन्न नहीं होता। तथा शेष मिश्र और देश संयत गुणस्थानोंमें भी एक पर्याप्त आलाप ही होता है ॥७१३॥

तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमें एक अपर्याप्त आलाप ही होता है। मनुष्यगतिमें सामान्य, पर्याप्त और योनिमत मनुष्योंमें-से प्रत्येकमें चौदह गुणस्थानोंमें गुणस्थानवत् जानना। फिर भी योनिमत मनुष्यके असंयत गुणस्थानमें एक पर्याप्त आलाप ही होता है। कारण पहले कहा ही है। पुनः इतना विशेष और है कि असंयत गुणस्थानमें तिर्यंचीके प्रथमोपशम और वेदक दो ही सम्यक्त्व होते हैं। और मानुषीके प्रथमोपशम, वेदक तथा क्षायिक तीन सम्यक्त्व होते है। तथापि एक भुज्यमान पर्याप्त आलाप ही है। योनिमती पंचम गुण स्थानसे ऊपर नही जाती इसलिए उसके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता ॥७१४॥

---

१. म °सालापमेयक्कुमुपशमश्रेण्यवतरणदोलु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं योनिमतिगलय्दु गुणस्थानं गलेयप्पुदरिंदमा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमिल्ल ।

द्रव्यपुरुषनुं भावस्त्रीयुमप्प प्रमत्तविरतनोळु तु मत्ते आहारकाहारकांगोपांगनामकर्म्मोदयं नियमदिंदमिल्लं। तु शब्ददिनऽशुभवेदोदयदोळुमनःपर्य्ययज्ञानमुं परिहारविशुद्धिसंयममुं घटिसवु। भावमानुषियोळु चतुर्द्दशगुणस्थानंगळु घटिसुववल्लदे द्रव्यमानुषियोळय्दे गुणस्थानंगळेंदरिवुदु। अपगतवेदनप्प अनिवृत्तिकरणमानुषियोळु संज्ञा। कार्य्यरहितमैथुनसंज्ञेयुं। भूतपूर्वगतिन्यायमनाश्रयिसियक्कुं। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमुमं मनःपर्य्ययज्ञानियोळ्दुं। परिहारविशुद्धिसंयमिगळोळं आहारकऋद्धिप्राप्तरोळं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमिल्लेकेंदोडे मूवत्तुं वर्षंगळिल्लदे परिहारविशुद्धिसंयमक्कं संभवाभावमप्पुदरिंदं तावत्कालमुपशमसम्यक्त्वक्कवस्थानमिल्लप्पुदरिंदं आउदों दु। परिहारविशुद्धिसंयमदोडने उपशमसम्यक्त्वक्कुपलब्धियक्कुंमप्पोडे। परिहारविशुद्धिसंयममं बिडदिर्द्दंतप्पंगे उपशमश्रेण्यारोहणात्थं दर्शनमोहनीयक्के उपशमनमुं संभविसुवुदल्तु। हेंगे परिहारविशुद्धिसंयमदोडनुपशमश्रेणियोळ्, द्वितीयोपशमक्के संयोगमक्कुं॥

णरलद्धि अपज्जत्ते एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो।
लेस्साभेदविभिण्णा सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा ॥७१६॥

नरलब्ध्यपर्य्याप्ते एकस्त्वपूर्णालापः। लेश्याभेदविभिन्नानि सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि॥

द्रव्यपुरुषभावस्त्रीरूपे प्रमत्तविरते आहारकतदङ्गोपाङ्गनामोदयो नियमेन नास्ति। तुशब्दात् अशुभवेदोदये मन.पर्ययपरिहारविशुद्धी अपि न। भावमानुष्या चतुर्दशगुणस्थानानि, द्रव्यमानुष्या पञ्चैवेति ज्ञातव्य। अपगतवेदानिवृत्तिकरणमानुष्या कार्यरहितमैथुनसज्ञा भूतपूर्वगतिन्यायमाश्रित्य भवति। द्वितीयोपशमसम्यक्त्व मन पर्ययज्ञानिनि स्यात्। न चाहारकर्द्धिप्राप्तेनापि परिहारविशुद्धौ त्रिंशद्वर्षैर्विना तत्संयमस्यासभवात् तत्सम्यक्त्वस्य तु तावत्काल अनवस्थानात्। अत्यक्ततत्संयमस्य उपशमश्रेणिमारोढुमपि दर्शनमोहोपशमाभावाच्च तद्द्वयसयोगाघटनात् ॥७१५॥

द्रव्यसे पुरुष और भावसे स्त्रीरूप प्रमत्त विरतमें आहारक शरीर और आहारक अगोपागका उदय नियमसे नहीं होता। 'तु' शब्दसे अशुभ वेद स्त्री और नपुंसकके उदयमें मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धि संयम भी नहीं होते। भावमानुषीके चौदह गुणस्थान होते हैं और द्रव्यमानुषीके पाँच ही जानना। वेद रहित अनिवृत्तिकरणमें मानुषीके कार्य रहित मैथुन संज्ञा भूतपूर्वगति न्यायकी अपेक्षा कही है अर्थात् वेदरहित होनेसे पहले मैथुन संज्ञा थी इस अपेक्षा कही है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व और मनःपर्ययज्ञान जो आहारक ऋद्धिको प्राप्त हैं अथवा परिहार विशुद्धि संयमवाले हैं उनके नहीं होते। क्योंकि तीस वर्षकी अवस्था हुए विना परिहार विशुद्धि संयम नहीं होता और प्रथमोपशम इतने काल तक रहता नहीं है तथा परिहारविशुद्धि संयमको त्यागे विना उपशम श्रेणिपर आरोहण भी नहीं होता और दर्शन मोहका उपशम भी नहीं होता अतः द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी नहीं होता॥७१५॥

---

१. म सुवुदल्तावुदोदु परि°। २. म °योलेरउक्क सयोगमिल्लप्पुदरिंद।

मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तकनोळु अपूर्णालापमो दे यक्कुं। लेश्येगळिदं माडल्पट्ट भेदंगळिदं विभिन्नंगळप्प देवर्क्कळ स्थानंगळु सप्तविकल्पंगळप्पुवु। अदेतेदोडे :—

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां इतश्चतुर्दशानां लेश्याः भवनादिदेवानां ॥ ५

भवनत्रयदेवर्क्कळगं सौधर्म्मैशानकल्पजग्गं सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पजग्गं ब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्टशुक्रसहाशुक्रषट्कल्पजग्गं शतारसहस्रारकल्पद्वयजग्गं आनतप्राणतारणाच्युतकल्पनवग्रैवेयककल्पातीतजग्गं अल्लिदं मेलण अनुदिशानुत्तरचतुर्द्दशविमानसंभूतग्गंगितु सप्तस्थानंगळ देवर्क्कळगे लेश्येगळ्पेळल्पट्टप्पुवु ॥

तेऊ तेऊ तह तेऊ पम्मपम्मा य पम्मसुक्का य। १०
सुक्का य परमसुक्का लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥

तेजस्तेजस्तथा तेजः पद्मे पद्मं च पद्मशुक्ले च। शुक्ला च परमशुक्ला लेश्या भवनादिदेवानां ॥

मुंपेळ्द सप्तस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि भवनत्रयादिस्थानंगलोळु तेजोलेश्येयजघन्यांशमुं तेजोलेश्येयमध्यमांशमुं तेजोलेश्येय उत्कृष्टांशमुं पद्मलेश्येय जघन्यांशमेरडुं पद्मलेश्येय मध्यमांशमुं पद्मलेश्येय उत्कृष्टांशमुं शुक्ललेश्येय जघन्यांशमुमेरडुं शुक्ललेश्येय मध्यमांशमुं शुक्ललेश्येयुत्कृष्टांशमुं भवनत्रयादिदेवर्क्कळ लेश्येगळप्पुवु ॥ १५

सव्वसुराणं ओघे मिच्छदुगे अविरदेय तिण्णेव।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ॥७१७॥

सर्व्वसुराणामोघे मिथ्यादृष्टिद्वये अविरते च त्रय एव। नवमस्ति भवनत्रयकल्पस्त्रीणां च चाविरते पूर्णः ॥ २०

तु–पुनः, मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते एक लब्ध्यपर्याप्तालाप एव। लेश्याभेदविभिन्नदेवस्थानानि सप्तविकल्पानि भवन्ति तद्यथा—

तिण्हं दोण्ह दोण्हं छण्ह दोण्हं च तेरसण्ह च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाण ॥१॥ २५
तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा ॥२॥

भवनत्रय–सौधर्मद्वय–सानत्कुमारद्वय–ब्रह्मपट्क–शतारद्वय–आनतादित्रयोदश–उपरितनचतुर्दशविमानजानां क्रमश तेजोजघन्याशतेजोमध्यमाश-तेज उत्कृष्टाश-पद्मजघन्याश-पद्ममध्यमाश-पद्मोत्कृष्टाश-शुक्लजघन्याश-शुक्लमध्यमाश–शुक्लोत्कृष्टाशा भवन्ति ॥७१६॥ ३०

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है। लेश्याभेदसे देवोंके सात स्थान होते हैं। भवनत्रिक, सौधर्मयुगल, सनत्कुमार युगल, ब्रह्म आदि छह स्वर्ग, शतार युगल, आनतादि तेरह और ऊपरके चौदह विमानवालोंके क्रमसे तेजोलेश्याका जघन्य अंश, तेजोलेश्याका मध्यम अंश, तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्याका जघन्य अंश, पद्मलेश्याका मध्यम अंश, पद्मलेश्याका उत्कृष्ट अंश और शुक्लका जघन्य अंश, शुक्लका मध्यम अंश तथा शुक्लका उत्कृष्ट अंश होता है ॥७१६॥ ३५

सण्णी ओघे मिच्छे गुणपडिवण्णे य मूल आलावा ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२०॥

सञ्ज्ञोघे मिथ्यादृष्टौ गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः । लब्ध्यपर्य्याप्त एकोऽपर्य्याप्तो भवत्यालापः ॥

संज्ञिपंचेंद्रियसामान्यदोळु गुणस्थानपंचकमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मूलालापंगळु मूरुमप्पुवु । गुणप्रतिपन्नरप्प सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमसंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळं मूलालापंगळु सामान्यपर्य्याप्तनिवृत्यपर्य्याप्तमेंबमूरुमालापंगळप्पुवु । मिश्रदेशसंयतगुणप्रतिपन्नरोळु मूलालापमो दे पर्य्याप्तालापमक्कुं । संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तनोळु लब्ध्यपर्य्याप्तालापमो देयक्कुं ।

अनंतरं कायमार्गणेयोळापमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं ।

भू आउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि ।
ताणं थूलिदरेसु वि पत्तेगे तद्दुभेदेवि ॥७२१॥

भूवप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदे त्रयः । तेषां स्थूलेतरेष्वपि प्रत्येके तद्द्विभेदेपि ॥

तसजीवाणं ओघे मिच्छादिगुणेवि ओघआलाओ ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥७२२॥

त्रसजीवानामोघे मिथ्यादृष्टिगुणेपि ओघालापः । लब्ध्यपर्य्याप्ते एकोऽपर्य्याप्तो भवत्यालापः ॥

सज्ञिसामान्ये पञ्चगुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ मूलालापास्त्रयो भवन्ति । गुणप्रतिपन्नेषु तु सासादनाऽसंयतयोः सामान्यपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्ताः मूलालापास्त्रयो भवन्ति । मिश्रदेशसंयतयोरेक' पर्याप्त एव मूलालाप' । संज्ञिलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप. ॥७२०॥ अथ कायमार्गणाया गाथाद्वयेनाह—

पृथ्व्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदेषु तद्बादरसूक्ष्मेषु च प्रत्येकवनस्पतौ तत्प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदयोश्च आलापत्रयमेव । त्रसजीवाना सामान्येन चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवदालापा भवन्ति विशेषाभावात् । पृथ्व्यादित्रसातलब्ध्यपर्याप्तेषु एक लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥७२१–७२२॥ अथ योगमार्गणायामाह—

सामान्य संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचके पाँच गुणस्थान होते हैं । उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें तीन मूल आलाप होते हैं । जो ऊपरके गुणस्थानोंमें चढ़े हैं उनके सासादन और असंयतमें सामान्य पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त तीन मूल आलाप होते हैं । मिश्र और देश संयतमें एक पर्याप्त ही मूल आलाप है । संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तमें एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप है ॥७२०॥

कायमार्गणामें दो गाथाओंसे कहते हैं—

पृथिवी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद, इनके बादर और सूक्ष्म-भेदोंमें प्रत्येक वनस्पति और उसके प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेदोंमें तीन ही आलाप होते है । त्रसजीवोंके सामान्यसे चौदह गुणस्थानोंमें गुणस्थानकी तरह आलाप होते हैं कोई विशेष बात नहीं है । पृथ्वी आदि त्रसपर्यन्त लब्ध्यपर्याप्तोंमें एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है ॥७२१–७२२॥

योगमार्गणामें कहते हैं—

पृथ्विकायिकदोळमप्कायिकदोळं तेजस्कायिकदोळं वायुकायिकदोळं नित्यनिगोदजीवंगळोळं चतुर्गतिनिगोदजीवंगळोळं इवर बादरसूक्ष्मभेदंगळोळं प्रत्येकवनस्पतियोळं तद्भिदमप्प ।

प्रतिष्ठितप्रत्येकदोळं अप्रतिष्ठितप्रत्येकदोळं ओघदोळु साधारणालापत्रयमक्कुं । त्रस जीवंगळ सामान्यदोळु गुणस्थानंगळ्पदिनाल्कप्पुवल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु गुणस्थानदोळ्पेळ्दंते आळापंगळप्पुवु । विशेषमिल्ल । पृथ्विकायिकादित्रसकायिकजीवपर्य्यंतमाद लब्ध्यपर्य्याप्तरोळु लब्धिअपर्य्याप्तालापमो दे यक्कुं ।

अनंतरं योगमार्गणेयोळु आलापमं पेळ्दपं :—

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ ।
मिस्सचउक्करस पुणो सगएक्क अपुण्ण आलाओ ॥७२३॥

एकादशयोगानां पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः । मिश्रचतुष्कस्य पुनः स्वकैकोऽपूर्णः आलापः ॥

पर्य्याप्तिगे संद मनोवाग्योगगळेंटु औदारिकवैक्रियिकाहारकंगळेंब मूरुमितु पन्नोंदु योगंगळगे स्वस्वपूर्णालापमो दो दे यक्कुमदंतेंदोडे सत्यासत्योभयानुभयमनः पर्य्याप्ताळापमुं सत्यासत्योभयानुभयभाषापर्य्याप्ताळापमुं औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरपर्य्याप्ताळापमुं तंतम्म वोदोदेयागि पन्नोदुयोगंगळोळु पन्नोदे पर्य्याप्ताळापमप्पुवेंबुदत्थं । मिश्रचतुष्कयोगक्के मत्ते स्वस्वापर्य्याप्तालापमोदोदेयक्कुमौदारिकापर्य्याप्तवैक्रियिकापर्य्याप्तआहारकापर्य्याप्त कार्म्मकायापर्य्याप्तमेंबाळापचतुष्टयं यथासंख्यमागोदोंदे पेळल्पडुवुवेंबुदत्थं ॥

अनंतरं वेद मार्गणादियाहारमार्गणापर्य्यंतमाद पत्तुं मार्गणेगळोळाळापक्रमं तोरिदपं ॥

वेदादोहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ ।
णवरि य संढित्थीणं णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥७२४॥

वेदाहारपर्य्यंतं च स्वगुणस्थानानामोघ आळापः । नवमस्ति च षंढस्त्रीणां नास्त्याहारकयोर्द्विकं ॥

वेदमार्गणेमोदल्गोंडु आहारमार्गणेपर्य्यंतमाद पत्तुं मार्गणेगळोळु तंतम्ममार्गणेगळ गुणस्थानंगळगे सामान्यदिदं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दाळापक्रममेयक्कुमादोडमोंदु नवीनमुंटदावुदेंदोडे भावषंढरुं द्रव्यपुरुषरुं भावस्त्रीयरु द्रव्यपुरुषरुगळप्प वेदमार्गणेय सवेदानिवृत्तिकरणपर्य्यंतमाद

पर्याप्तिगताना चतुर्मनश्चतुर्वागौदारिकवैक्रियिकाहारकैकादशयोगाना स्वस्वपूर्णालापो भवति यथा सत्यमनोयोगस्य सत्यमन पर्याप्तालाप । मिश्रयोगचतुष्कस्य पुन स्वस्वैकापर्याप्तालापो भवति । यथा औदारिकमिश्रस्य औदारिकापर्याप्तालाप ॥७२३॥ अथ शेषमार्गणासु आह—

वेदाद्याहारान्तदशमार्गणासु स्वस्वगुणस्थानानामालापक्रम सामान्यगुणस्थानवद्भवति किन्तु भावषण्ढ-

---

पर्याप्त अवस्थामें होनेवाले चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक काययोग इन ग्यारह योगोंमें अपना-अपना पर्याप्त आलाप होता है । जैसे सत्यमनोयोगके सत्यमन पर्याप्त आलाप होता है । चार मिश्रयोगोंमे अपना-अपना एक अपर्याप्त आलाप होता है । जैसे औदारिकमिश्रके औदारिक अपर्याप्त आलाप होता है ॥७२३॥

शेष मार्गणाओंमें कहते है—

वेदसे लेकर आहारमार्गणा पर्यन्त दस मार्गणाओंमें अपने-अपने गुणस्थानोंका आलापक्रम सामान्य गुणस्थानकी तरह होता है । किन्तु भावसे नपुंसक द्रव्यसे पुरुष और भावसे

गुणस्थानंगळोळु षष्ठगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तसयतनोळाहारक आहारकमिश्रमें बाळापद्वयमं पेळ्दुकोळ्ळ्वेडेकेंदोडा गुणस्थानदोळु अशुभवेदोदयमुळ्ळरोळाहारर्द्धि संभविसदप्पदरिंदं हत्थपमाणं पसत्थुदयमेंदाहारकशरीरदोळु प्रशस्तप्रकृतिगळुदयनियममुंटप्पुदरिंदं। वेदमार्गणेयोळनिवृत्तिकरणसवेदभागिपर्य्यंतमोंभत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मेलण नाल्कुमवेदभागिपर्य्यंतं कषायमार्गणेय क्रोधदोंभत्तुं मानदोंभत्तुं मायेयोंभत्तुं बादरलोभदोंभत्तुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागिर्द्द गुणस्थानंगळोळं सूक्ष्मलोभक्के सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळं ज्ञानमार्गणेय कुमतिज्ञानदेरडुं कुश्रुतज्ञानदेरडुं विभंगज्ञानदेरडुं मतिज्ञानदोंभत्तुं श्रुतज्ञानदोंभत्तुं अवधिज्ञानदोंभत्तुं मनःपर्य्ययज्ञानदेळ्ळुं केवलज्ञानदेरडुं गुणस्थानंगळोळु। संयममार्गणेय असंयमद नाल्कुं देशसंयमदोंदुं सामायिकद नाल्कुं छेदोपस्थापनद नाल्कुं परिहारविशुद्धि संयमदेरडुं सूक्ष्मसांपरायसंयमदोंदुं यथाख्यातसंयमद नाल्कुं गुणस्थानंगळोळं दर्शनमार्गणेय चक्षुर्द्दर्शनद पन्नेरडु गुणस्थानंगळोळमचक्षुर्द्दर्शनद पन्नेरडुं अवधिदर्शनदोंभत्तुं केवलदर्शनदेरडुं गुणस्थानंगळोळं लेश्यामार्गणेय कृष्णनीलकपोतंगळनाल्कुं नाल्कुं गुणस्थानंगळोळं तेजःपद्मंगळेळुं गुणस्थानंगळोळं शुक्ललेश्येय पदिमूरुं गुणस्थानंगळोळं भव्यमार्गणेयोळु भव्यन पदिनाल्कुमभव्यनदोंदु गुणस्थानंगळोळं सम्यक्त्वमार्गणेय मिथ्यात्वदोंदुं सासादननन्नोंदुं मिश्रन तन्नोंदुं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदेंदुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वदनाल्कुं वेदकसम्यक्त्वद नाल्कुं क्षायिकसम्यक्त्वद पन्नोंदुं गुणस्थानंगळोळं संज्ञिमार्गणेयोळु संज्ञिय

द्रव्यपुरुषे भावस्त्रीद्रव्यपुरुषे च प्रमत्तसयते आहारकतन्मिश्रालापौ न। 'हत्थपमाणं पससत्थुदयं' इत्याहारकशरीरे प्रशस्तप्रकृतीनामेवोदयनियमात्। वेदानामनिवृत्तिकरणसवेदभागान्तेषु क्रोधमानमायावादरलोभाना अवेदचतुर्भागान्तेषु सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसापराये। ज्ञानमार्गणाया कुमतिकुश्रुतविभङ्गानां द्वयोः, मतिश्रुतावधीनां नवसु, मन.पर्ययस्य सप्तसु, केवलज्ञानस्य द्वयोः, असंयमस्य चतुर्षु, देशसंयमस्य एकस्मिन्, सामायिकछेदोपस्थापनयोश्चतुर्षु, परिहारविशुद्धेर्द्वयो, सूक्ष्मसापरायस्य एकस्मिन्, यथाख्यातस्य चतुर्षु, चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः द्वादशसु, अवधिदर्शनस्य नवसु, केवलदर्शनस्य द्वयोः, कृष्णनीलकपोतानां चतुर्षु, तेज.पद्मयोः सप्तसु, शुक्लायास्त्रयोदशसु, भव्यमार्गणाया भव्यस्य चतुर्दशसु, अभव्यस्य एकस्मिन्, सम्यक्त्वमार्गणाया मिथ्यात्वसासादनमिश्राणामेकैकस्मिन्, द्वितीयोपशमस्य अष्टसु, प्रथमोपशमवेदकयोश्चतुर्षु, क्षायिकस्य एकादशसु, संज्ञिनो-

---

स्त्री द्रव्यसे पुरुषके प्रमत्तसंयतमें आहारक-आहारक मिश्र आलाप नहीं होते क्योंकि 'हत्थपमाणं पसत्थुदयं' इस आगम प्रमाणके अनुसार आहारक शरीरमें प्रशस्त प्रकृतियोंके ही उदयका नियम है। वेद अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त होते हैं। क्रोध, मान, माया, बादर लोभ अनिवृत्तिकरणके वेदरहित चार भागपर्यन्त क्रमसे होते हैं। सूक्ष्मलोभ सूक्ष्मसाम्परायमें होता है। ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत और विभंगके दो गुणस्थान हैं। मतिश्रुतअवधिके नौ गुणस्थान हैं। मनःपर्ययके सात गुणस्थान हैं। केवलज्ञानके दो गुणस्थान हैं। असंयतके चार गुणस्थान हैं, देशसंयतका एक गुणस्थान है। सामायिक छेदोपस्थापनाके चार गुणस्थान हैं। परिहारविशुद्धिके दो, सूक्ष्मसाम्परायका एक, यथाख्यातके चार, चक्षुदर्शन-अचक्षुदर्शनके बारह, अवधिदर्शनके नौ, केवलदर्शनके दो, कृष्ण-नील-कपोत लेश्याके चार, तेज और पद्मके सात, शुक्ललेश्याके तेरह, भव्यमार्गणामें भव्यके चौदह, अभव्यका एक, सम्यक्त्वमार्गणामें मिथ्यात्व सासादन मिश्रका एक-एक गुणस्थान है। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वके आठ, प्रथमोपशम और वेदकके चार, क्षायिक सम्यक्त्वके ग्यारह, संज्ञीके

पन्नेरडुं असंज्ञियदोंदुं गुणस्थानंगळोळं आहारमार्गणेयोळु आहारद पदिमूरुमनाहारदोंदु गुणस्थानंगलोलं सामान्यदिदं गुणस्थानंगळोळु पेळ्द क्रमदिदमालापंगळं पेळ्दु कोळ्गे ॥

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया ।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥७२५॥
भव्वा सम्मत्तावि य सण्णी आहारगा य उवजोगा ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदायं ॥७२६॥

गुणजीवाः पर्य्याप्तयः प्राणाः संज्ञा गतीन्द्रियाणि कायाः । योगा वेदकषाया ज्ञानयमा दर्शनानि लेश्याः ॥

भव्याः सम्यक्त्वानि च संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगाः । योग्याः प्ररूपयितव्याः ओघादेशेषु समुदायं ॥

पदिनाल्कु गुणस्थानंगळुं सूलपर्य्याप्तजीवसमासंगळेळुं सूलापर्य्याप्तजीवसमासंगळेळुं संज्ञिपंचेंद्रियजीवसंबंधिपर्याप्तिगळारुमपर्य्याप्तिगळारुं । असंज्ञिजीवसंबंधिगळु विकलत्रयजीवसंबंधिगळुमप्प पर्य्याप्तिगळय्दुमपर्याप्तिगळय्दुं । एकेंद्रियसंबंधिपर्य्याप्तिगळु नाल्कुमपर्य्याप्तिगळु नाल्कुं संज्ञिपंचेंद्रिय पर्य्याप्तिजीवसंबंधिप्राणंगळु पत्तु । तदपर्य्याप्तजीवसंबंधिप्राणंगळेळुं असंज्ञिपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवसंबंधिप्राणंगळोंभत्तुं तदपर्य्याप्तप्राणंगळेळुं चतुरिंद्रियपर्य्याप्तजीवसंबंधिप्राणंगळेंटुं । तदपर्य्याप्तप्राणंगळारु पर्य्याप्तत्रीद्रियजीवसंबधिप्राणंगळेळुं ७। तदपर्याप्तप्राणंगळैय्दुं पर्य्याप्तद्वीद्रियजीवसंबधिप्राणंगळारुं। तदपर्य्याप्तप्राणंगळु नाल्कुं। पर्य्याप्तैकेंद्रियजीवसबंधिप्राणंगळु नाल्कुं। तदपर्य्याप्तजीवसंबंधिप्राणंगळु मूरुं। पर्य्याप्तसयोगिकेवळिभट्टारकसंबंधिप्राणंगळु नाल्कुमवावुवेंदोडे वाक्कायायुरुच्छ्वासनिःश्वासंगळ्वकुमा। गुण-

---

द्वादशसु, असज्ञिन एकस्मिन्, आहारकस्य त्रयोदशसु अनाहारकस्य पञ्चसु च गुणस्थानेषु सागान्यगुणस्थानोक्तक्रमेणालाप कर्तव्य ॥७२४॥

गुणस्थानानि चतुर्दश, मूलजीवसमासा. पर्याप्ता सप्त । अपर्याप्ता सप्त । सज्ञिन पर्याप्तय. षट् अपर्याप्तय षट् । असज्ञिनो विकलत्रयस्य च पर्याप्तय. पञ्च अपर्याप्तय पञ्च । एकेन्द्रियस्य पर्याप्तय चतस्र अपर्याप्तय चतस्र । प्राणा सज्ञिनो दश तदपर्याप्तस्य सप्त । असज्ञिन नव तदपर्याप्तस्य सप्त, चतुरिन्द्रियस्य अष्टौ तदपर्याप्तस्य षट्, त्रीन्द्रियस्य सप्त तदपर्याप्तस्य पञ्च, द्वीन्द्रियस्य षट् तदपर्याप्तस्य चत्वार, एकेन्द्रियस्य चत्वार तदपर्याप्तस्य त्रय. । सयोगकेवलिन चत्वार वाक्कायायुरुच्छ्वासनिश्वासाख्या । तस्यैव

बारह, असंज्ञीका एक, आहारकके तेरह और अनाहारकके पाँच गुणस्थानोंमें सामान्य गुणस्थानोंमें कहे गये क्रमके अनुसार आलाप कर लेना चाहिए ॥७२४॥

गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह उनमें सात पर्याप्त, सात अपर्याप्त, संज्ञीके पर्याप्त अवस्थामें छह पर्याप्तियाँ और अपर्याप्त अवस्थामें छह अपर्याप्तियाँ, इसी प्रकार असंज्ञी और विकलत्रयके पाँच पर्याप्तियाँ, पाँच अपर्याप्तियाँ। एकेन्द्रियके चार पर्याप्तियाँ, चार अपर्याप्तियाँ, प्राण संज्ञीके दस, संज्ञी अपर्याप्तकके सात, असंज्ञीके नौ, असंज्ञी अपर्याप्तके सात, चतुरिन्द्रियके आठ, अपर्याप्तके छह, तेइन्द्रियके सात, अपर्याप्तके पाँच, दोइन्द्रियके छह उसी अपर्याप्तके चार, एकेन्द्रियके चार उसी अपर्याप्तके तीन। सयोगकेवलीके चार प्राण वचन, काय, आयु, उछ्वास-निश्वास, उसीके पुनः मिश्रकाय और आयु।

स्थानदोळे मिश्रकाय प्राणंगळेरडुं अयोगिकेवलिगुणस्थानदायुष्प्राणमों दुं नाल्कुं संज्ञेगळु नाल्कु गतिगळु अय्दुमिंद्रियंगळु । आरुकायंगळु पर्य्याप्तयोगंगळपनों दुं । अपर्य्याप्तयोगंगळु नाल्कुं मूरुवेदंगळु नाल्कुं कषायंगळु एंदु ज्ञानंगळु एळु संयमंगळु नाल्कुं दर्शनंगळु आरुं लेश्यगळुं यरडुं भव्यंगळु आरुं सम्यक्त्वगळु येरडुं संज्ञेगळु यरडुमाहारंगळुं । पन्नेरडुमुपयोगंगळुं एंबी समुच्चयं गुणस्थानंगळोळं मार्गणास्थानंगळोळं यथायोग्यंगळागि प्ररूपिसल्पडुवुवल्लि [1]संदृष्टि :— ५

गु । ५ । जी । ७ । अ ७ । प ६ प्राणंगलु १० । ७ । ९ । ७ । ८ ।
१४ । अ । ६ । प ५ । अ ५ । प ४
६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । ४ । स २ । अ १ । संज्ञेगळुनाल्कु ४ । गतिगळु नाल्कु ४ । इंद्रिय ५ । काय ६ । यो ११ । ४ । वे ३ । क । ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥

जीवसमासेयोळु विशेषमं पेळ्दपं :—

ओघे आदेसे वा सण्णी पज्जंतगा हवे जत्थ । १०
तत्थ य उणवीसंता इगिबितिगुणिदा हवे ठाणा ॥७२७॥

ओघे आदेशे वा संज्ञिपर्य्यंता भवेयुर्य्यत्र तत्र चैकान्नविंशत्यंता एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः-स्थानानि ॥

सामान्यदोळं विशेषदोळं संज्ञिपर्य्यंतमाद मूलजीवसमासंगळावेडेयोळु पेळल्पडुगुमल्लि एकान्नविंशतिअंतमाद उत्तरजीवसमासस्थानविकल्पंगळु एकद्वित्रिगुणितमादोडे सर्व्वजीवसमास- १५
॥
स्थानविकल्पंगळप्पुवु । सा १ । त्र १ । स्था १ । ए १ । वि १ । सं १ । ए १ । वि १ । अ १ । सं १ ।

पुन. मिश्रकायायुपी, अयोगस्य आयुर्नामैकः । संज्ञाश्चतस्र , गतयः चतस्र., इन्द्रियाणि पञ्च, काया षट्, योगा. पर्याप्ता एकादश, अपर्याप्ताश्चत्वार., वेदा. त्रय , कषायाश्चत्वार., ज्ञानानि अष्टौ, संयमाः सप्त, दर्शनानि चत्वारि, लेश्याः षट्, भव्यद्वयं, सम्यक्त्वानि षट्, सज्ञिद्वयं आहारद्वय उपयोगा द्वादश-एते सर्वे समुच्चयं गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च यथायोग्य प्ररूपयितव्या ॥७२५–७२६॥ जीवसमासेपु विशेषमाह— २०

सामान्ये विशेषे वा सज्ञिपर्यन्ता मूलजीवसमासा यत्र निरूप्यन्ते तत्र एकान्नविंशत्यन्ता उत्तरजीव-समासस्थानविकल्पा एकद्वित्रिगुणिता संत, सर्वजीवसमासस्थानविकल्पा भवन्ति ।

अयोगीके एक आयुप्राण है । संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रियाँ पाँच, काय छह, पर्याप्तयोग ग्यारह, अपर्याप्त चार, वेद तीन, कपाय चार, ज्ञान आठ, संयम सात, दर्शन चार, लेश्या छह, भव्य-अभव्य, सम्यक्त्व छह, संज्ञी-असंज्ञी, आहारक-अनाहारक, उपयोग बारह । ये २५
सब गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें यथायोग्य प्ररूपणीय हैं ॥७२५–७२६॥

जीवसमासोंमें विशेष कहते है—

गुणस्थानों या मार्गणाओंमें जहाँ संज्ञीपर्यन्त मूल जीवसमास कहे जायें वहाँ उन्नीस पर्यन्त उत्तर जीवसमास स्थानके विकल्पोंको एक सामान्य, दो पर्याप्त-अपर्याप्त और तीन

---

१. म गु. जी. प ६ । ६ ।
१४ । ७ । ७ । ५ ५ । ३०

॥ ॥
ए १ । बि १ । ति १ । च १ । पं १ । पृ १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । त्र १ । पृ १ । अ १ ।
॥ ॥
ते १ । वा १ । व १ । वि १ । स १ । पृ १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । वि १ । अ १ । सं १ ।
पृ १ । अ १ । ते १ । वा १ । व १ । बि १ । ति १ । च १ । प १ । पृ १ । अ १ । ते १ । वा १ ।
॥
व १ । बि १ । ति १ । च १ । अ १ । सं १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । त्र १ । पृ २ ।
॥ ॥
अ २ । ते २ । वा २ । व २ । वि १ । स १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । वि १ । सं १ ।
॥
पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । व २ । बि १ । ति १ । च १ । पं १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ ।
॥
व २ । बि १ । ति १ । च १ । ति १ । च १ । अ १ । सं १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । नि २ ।
॥
च २ । प्र १ । वि १ । अ १ । सं १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र १ । वि १ ।
॥
ति १ । च १ । पं १ । पृ २ । अ २ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र १ । वि १ । ति १ । च १ ।
॥
अ १ । सं १ । पृ २ । अ १ । ते २ । वा २ । नि २ । च २ । प्र २ । बि १ । ति १ । च १ ।
॥
अ १ । सं १ ॥

[1]१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ ॥ गुणकारसामान्यर्दिदमों[1]दु १ । युति १९० । [2]२ । ४ । ६ । ८ । १० । १२ । १४ । १६ । १८ । २० । २२ । २४ । २६ । २८ । ३० । ३२ । ३४ । ३६ । ३८ ॥ गुणकाररयुति ३८० । [3]३ । ६ ।

सा १ त्र १ स्था १ ए १ वि १ स १ ए १ वि १ । अ १ स १ ए १ वि १ ति १ च १ प १ पृ १
अ १ ते १ वा १ व १ त्र १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ स १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ।
अ १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ प १ । पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १
च १ अ १ स १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ त्र १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ स १ । पृ २ अ २
ते २ वा २ व २ वि १ अ १ स १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ प १ । पृ २ अ २
ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ अ १ पं १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ अ १
स १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ प १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २
च २ प्र १ वि १ ति १ च १ अ १ स १ । पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र २ वि १ ति १ च १
अ १ स १ । १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ । गुणकार सामान्यत

सामान्य पर्याप्त-अपर्याप्तसे गुणा करनेपर समस्त जीवसमास स्थानके विकल्प होते हैं। एकसे लेकर उन्नीस तकके विकल्पोंको एकसे गुणा करनेपर उतने ही रहते है १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९। इन सबका जोड़ १९०

---

१ इवु पर्य्याप्तगलोदे भेदवु । २ पर्य्यासापर्याप्तभेदर्दि द्विगुणगलु । ३. इवु पर्य्याप्तनिवृत्यपर्य्याप्त-लब्ध्यपर्य्याप्तभेदर्दित्रिगुणितगलु ।

९।१२।१५।१८।२१।२४।२७।३०। ३३।३६।३९। ४२।४५। ४८।५१। ५४। ५७ ॥ गुणकार ३ युति ५७० ॥ इंतु गुणस्थानंगळोळु मार्गणास्थानंगळोळं विंशतिविधं गळु योजिसल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयडणसमत्थं ।
णमियूण गोदममहं सिद्धांतालावमणुवोच्छं ॥७२८॥ ५

वीरमुखकमलनिर्गतसकलश्रुतग्रहणप्रतिपादनसमर्थं । नत्वा गौतममहं सिद्धांताळापमनुवक्ष्यामि ॥

सूत्रसूचितंगळप्प विंशतिविधंगळाळापनिरूपणे माडल्पडुवल्लि मोदळोळं गुणस्थानदिंदं येळल्पडुगुमदें तेंदोडे पदिनाल्कु गुणस्थानवर्त्तिगळुं गुणस्थानातीतरुगळुमोळरु । पदिनाल्कुं जीवसमासंगळनुळरुमतीतजीवसमासरुगळुमोळरु षट्पर्य्याप्तिगळोळ्कूडिदरुं । षडपर्य्याप्तियुक्तरुं १० पंचपंचपर्य्याप्त्यपर्य्याप्तियुक्तरुं । चतुश्चतुःपर्य्याप्त्यपर्य्याप्तियुक्तरुगळुमोळरु । अतीतपर्य्याप्तरुगळुमोळरु । दशप्राण । सप्तप्राण । नवप्राण । नवप्राण । सप्तप्राण । अष्टप्राण । षट्प्राण । सप्तप्राण । पंचप्राण । षट्प्राण । चतुःप्राण । चतुःप्राण । त्रिप्राण । चतुःप्राण । द्विप्राण । एकप्राण । युतरुमतीतप्राणरुगळुमोळरु । चतुर्व्विधसंज्ञायुक्तरुं । क्षीणसंज्ञरुगळुमोळरु । चतुर्गतिजीवंगळुं सिद्धगतिजीवंगळुमोळरु । १५

एकेंद्रियादिपंचजातियुतजीवंगळुमतीतजातिगळुमोळरु । पृथ्वीकायिकादिषट्कायिकंगळुमतीतकायिकंगळुमोळरु । पंचदशयोगयुक्तरुमयोगरुगळुमोळरु । त्रिवेदिगळुमपगतवेदगळुमोळरु ।

एक १। युतिः १९०। २ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ ३४ ३६ ३८
गुणकार २ युति. ३८०। ३ ६ ९ १२ १५ १८ २१ २४ २७ ३० ३३ ३६ ३९ ४२ ४५ ४८ ५१ ५४ ५७
गुणकार. ३। युति. ५७० ॥७२७॥ इतोऽग्रे गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च ते गुणजीवेत्यादिविंशतिभेदा २० योज्यन्ते तद्यथा—

तत्र गुणस्थानेषु यथा तावच्चतुर्दशगुणस्थानजीवाः तदतीताश्च सन्ति । चतुर्दशजीवसमासास्तदतीताश्च सति । षट् षट् पञ्च पञ्चचतुश्चतु पर्याप्त्यपर्याप्तिजीवाः तदतीताश्च सति । दशसप्तनवसप्ताष्टषट्सप्तपञ्चषट्चतुश्चतुस्त्रिचतुर्द्वयेकप्राणाः तदतीताश्च सति । चतु.संज्ञा. तदतीताश्च सति । चतुर्गतिका सिद्धाश्च सति ।

होता है। इन्हें दोसे गुणा करनेपर सबका जोड़ ३८० होता है और तीनसे गुणा करनेपर २५ सबका जोड़ ५७० होता है ॥७२७॥

यहाँसे आगे गुणस्थानोंमें और मार्गणाओंमें गुणस्थान जीवसमास इत्यादि बीस भेदोंकी योजना करते हैं—

वर्धमान स्वामीके मुखरूपी कमलसे निकले सकलश्रुतको ग्रहण और प्रकट करनेमें समर्थ गौतम स्वामीको नमस्कार करके सिद्धान्तालापको कहूँगा। ३०

गुणस्थानोंमें जैसे चौदह गुणस्थानवर्ती जीव हैं। गुणस्थानसे रहित सिद्ध हैं। चौदह जीवसमाससे युक्त जीव हैं उनसे रहित जीव है। छह-छह, पाँच-पाँच, चार-चार पर्याप्ति और अपर्याप्तिसे युक्त जीव हैं और उनसे रहित जीव है। दस सात, नौ सात, आठ छह, सात पाँच, छह चार, चार तीन, चार दो और एक प्राणके धारी जीव हैं और उनसे रहित जीव है। चार संज्ञावाले और उनसे रहित जीव है। चार गतिवाले और गतिरहित सिद्ध ३५

चतुःकषायिगळुमकषायरुमोळरु। अष्टज्ञानिगळुमोळरु। सप्तसंयमरुगळुमतीतसंयमरुगळुमोळरु। चतुर्दर्शनिगळुमोळरु। द्रव्यभावभेदषड्लेश्यरुगळुमलेश्यरुगळुमोळरु। भव्यसिद्धरुगळुमभव्यसिद्धरुगळुमतीतभव्याभव्यसिद्धरुगळमोळरु। षड्विधसम्यक्त्वयुक्तरुगळुमोळरु। संज्ञिगळुमसंज्ञिगळुमतिक्रांतसंज्ञ्यसंज्ञिगळुमोळरु। आहारिगळुमनाहारिगळुमोळरु। साकारोपयोगयुक्तरुगळुमनाकारोपयोगयुक्तरुं। युगपत्साकारानाकारयोगयुक्तरुगळुमोळरु। इन्तु पर्याप्तविशिष्टगुणस्थानालापं विवक्षितमागलु पदिनाल्कुं गुणस्थानिगळुमोळरु। अतीतगुणस्थानरिल्लेकेंदोडेपर्य्याप्तरोळु तदालापासंभवप्पुदरिंदं। पर्य्याप्तगुणस्थानिगळ्गे। गु१४। जी७। प ६। ५। ४। प्रा१०। ९। ८। ६। ७। ४। ४। १। सं४। ग४। इ५। का६। यो११। वे३। क४। ज्ञा८। सं७। द४ ले ६ भ ६ भा २। सं ६। स २। आ २। उ १२। अपर्य्याप्तगुणस्थानिगळ्गे। गु ५। मि। सा। अ। प्र। सयोगी। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। स ४। ग ४। इं ५। का ६। योग ४। औ मि। वै मि। आ मि। कार्म्मण। वे ३। कषा ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ।

पञ्चजातयः तदतीताश्च सति। षट्कायिकास्तदतीताश्च संति। पञ्चदशयोगा अयोगाश्च सति। त्रिवेदा. तदतीताश्च सति। चतु कषाया अकषायाश्च सति। अष्टज्ञानाः सति। सप्तसंयमास्तदतीताश्च सति। चतुर्दर्शना सति। द्रव्यभावषट्लेश्याः अलेश्याश्च सति। भव्यसिद्धा अभव्यसिद्धा. अतीततद्भावाश्च सति। षट्सम्यक्त्वाश्च सति। सज्ञिनोऽसज्ञिनोऽतीततद्भावाश्च सति। आहारिणोऽनाहारिणश्च सति। साकारोपयोगा अनाकारोपयोगा युगपदुभयोपयोगाश्च सति। अथ पर्याप्तिविशिष्टगुणस्थानालाप उच्यते-तत्र चतुर्दशगुणस्थानिन सति न च तदतीता. पर्याप्तेषु तदालापासभवात्—

पर्याप्तगुणस्थानिना गु १४। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ ४ १। स ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। स ७। द ४। ले ६। भ २। स ६। सं २। आ १। भा ६ उ १२। अपर्याप्तगुणस्थानिना गु ५ मि सा अ प्र स। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २। स ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ४ औमि वैमि आमि कार्म। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु कु म श्रु अ के।

हैं। पाँच जातिवाले और उनसे रहित जीव हैं। छह कायिक जीव और उनसे रहित जीव है। पन्द्रह योगवाले जीव और योगरहित जीव हैं। तीन वेदवाले जीव और उनसे रहित जीव हैं। चार कषायवाले जीव और कषायरहित जीव हैं। आठ ज्ञानवाले जीव हैं। ज्ञानरहित जीव नहीं है। सात संयमसे युक्त जीव और उनसे रहित जीव है। चार दर्शनवाले जीव हैं। दर्शनसे रहित जीव नहीं है। द्रव्य भाव रूप छह लेश्यासे युक्त जीव और उनसे रहित जीव है। भव्यसिद्ध अभव्यसिद्ध जीव है और उन दोनो भावोंसे रहित जीव हैं। छह सम्यक्त्वयुक्त जीव हैं। सम्यक्त्व रहित जीव नहीं हैं। संज्ञी और असंज्ञी जीव तथा दोनोंसे रहित जीव है। आहारी और अनाहारी जीव हैं। साकार उपयोगी, अनाकार उपयोगी और एक साथ दोनों उपयोगवाले जीव हैं। आगे गुणस्थान और मार्गणास्थानमे यथायोग्य वीस प्ररूपणा कहते है—

विशेष सूचना—टीकाकारने गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें वीस प्ररूपणाओंका निरूपण साकेतिक अक्षरोंके द्वारा किया है। उन्हें आगे अन्तमें नकशों द्वारा अंकित किया गया है।

के। सं ४। अ। सा। छे। यथा। द ४ ले २ क। शु॥
भा ६

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदं सव्वविग्गहे सुक्का।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा॥

भ २। सं ५। मिश्ररुचिरहित सं २। आ २। उ १०। विभंग ज्ञानसहित मिथ्यादृष्टिगुण-स्थानवर्त्तिगळगे गु १। जी १४ प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। आहारकद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं। १। अ। द २। ले ६ भ २। सं १। मि। सं २। आ २। भा ६ उ ५। पर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४॥

सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले द्र ६। भा ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥ अपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे गु १। मि। जि ७। पर्य्या। ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं। ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि वै मि। कार्म्म। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क। भा ६ शु। भ २। स १। मि। सं २। आ २। उ ४॥

सासादनगुणस्थावर्त्तिगळगे गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। त्र। यो १३। म ४। वा ४। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द। २ ले ६ द्र भ १। सं १। सा सा। सं १। आ २। ६ भा

सं ४ अ सा छे यथा। द ४ ले २ क शु।
भा ६

भ २। स ५। मिश्रं न हि, सं २। आ २ उ १०। विभङ्गमन.पर्ययौ नहि, सामान्यमिथ्यादृष्टीना। गु १। जी १४। प ६। ६ ५ ५ ४ ४। प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३ आहारकद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द १। ले ६। भ २ स १ भा ६ मि। स २। आ २। उ ५। तत्पर्याप्ताना गु १। जी ७। प। ६ ५ ४ प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४। स ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। आ। द २। ले ६। भ २। भा ६ स १ मि। सं २। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो २। औमि। वैमि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २ ले २। क। शु। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४। सासादनाना—गु १ सासा। जी २ प। अ। भा ६ प ६। ६। प्रा। १० ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १। यो १३। म ४। वा ४। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु, कु, वि। स १ अ। द २ ले ६। भ १। स १ सासा। स १ आ २। भा ६

उ ५ । पर्य्याप्तकसासादनगुणस्थानवर्तिगळ्गे । गु १ । सा सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । मि । सं १ । अ । द २ ले ६ । भ १ । सं १ । सा सा । सं १ । आ १ । उ ५ ।
भा ६

अपर्य्याप्तकसासादनगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे । गु १ । अ । प । ६ । अ । प्रा ७ । अ सं ४ ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं । अ द २ ले २ । क । शु । भ १ । सं १ । या सा । पं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मि म । मि श्र । मि अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ भ १ । सं १ ।
२ ६

मिश्ररुचि । स १ । आ १ उ ६ ॥

असंयतगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे । गु १ । अ । सं । जी २ । प । अ । प ६ ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । प । का १ त्र । यो १३ । म ४ । व ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ ॥ ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे ।
भा ६

क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

असंयतगुणस्थानवर्त्तिपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ ।
भा ६

सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ उ ६ ॥

उ ५ । तत्पर्याप्ताना–गु १ सासा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ प । का १ त्र । यो १० म ४ । वा ४ । औका १ । वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ ।
भा ६

स १ सासा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना गु १ । सासा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इ १ प । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टीना गु १ मिश्र । जी
भा ६

१ प । प ६ प । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इ १ प । का १ त्र । यो १० । म ४ वा ४ औका १ वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्ररुचि । स १ । आ १ । उ ५ ।
भा ६

असयताना–गु १ अ स । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इ १ प । का १ त्र । यो १३ म ४ वा ४ औ २ वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ ।
भा ६

भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्ताना–गु १ अ । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ प । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औका १, वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म

असंयतगुणस्थानवर्त्ति अपर्य्याप्ता संयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । अ सं । जी १ । अ । प । ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । को । वे २ । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ ले २ क । शु । भा ६ भ १ । सं ३ । उ वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

देशसंयतगुणस्थानवर्त्तिगळ्गे गु १ । देश । जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । देश । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

प्रमत्तगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तंगे । गु १ । प्र । जी २ । प । अ । प ६ । ६ प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । औ । का १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म ४ । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

अप्रमत्तगुणस्थानवर्त्ति अप्रमत्तंगे गु १ । अ प्र जी १ । प । प ६ । प । प्रा १० । सं ३ । भ । मै । प । कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः एंदु सदसद्वेद्यंगळिगे प्रमत्तनोळुदीरणे व्युच्छित्तियादुदमप्पुदरिंदमाहारसंज्ञे अप्रमत्तनोळु संभविसदु । ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

अपूर्व्वकरणगुणस्थानवर्त्तिगळिगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ ।

श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ भा ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—

गु १ असं । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ प । का १ त्र । यो ३ । औमि वैमि का । वे २ न पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स ३ उ भा ६ वे क्षा । स १ । आ २ । उ ६ । देशसयतानां—गु १ देश । जी १ प । प ६ प । प्रा १० प । स ४ । ग २ ति म । इं १ प । का १ त्र । यो ९ । म ४, वा ४, औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ देश । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ भा ६ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औका १, आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे भा ३ क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां—गु १ अप्र । जी १ । प ६ प । प्रा १० । सं ३—भ मै प । कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् सदसद्वेद्यानुदीरणात् अत्र आहारसंज्ञा नहि । ग १ म । इ १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ । औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भा ३ भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणाना—गु १ अपू । जी १ । प ६ । प्रा १० ।

म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्त्तिप्रथमभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । स २ । मै । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । स १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्त्तिद्वितीयभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जि १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । प । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । स । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

तृतीयभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स १ । प । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

चतुर्त्थभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । प । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । ज्ञान ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

पंचमभागानिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । प । ग १ । म । इं १ । प ० । का १ । त्र । यो ९ । वे ० । क १ । लो । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

स ३ । ग १ म । इ १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स २ । उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागवर्तिना—गु १ अनिवृत्ति ।
भा १
जी १ । प ६ । प्रा १० । स २ मै प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । स २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तद्द्वितीयभागवर्तिना—गु १ अनि ।
भा १
जी १ । प ६ । प्रा १० । स १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । स २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागवर्तिना—गु १
भा १
अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । स १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागवर्तिना—गु १ अनि ।
भा १
जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । ज्ञा ४ । स २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचमभागवर्तिना—गु १ अनि । जी १ ।
भा १
प ६ । प्रा १० । स १ प । ग १ म । इं १ प । का १ त्र । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ सा

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्त्तिसूक्ष्मसांपरायंगे गु १ । सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । प । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । कषा १ । ज्ञा ४ ॥ सं १ । सू । द ३ । लेश्ये ले ६ भा १ सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

उपशांतकषायगुणस्थानवर्त्तिउपशांतकषायंगे । गु १ । उ प । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ० । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ । यथा । द ३ । ले ६ भा १ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

क्षीणकषायगुणस्थानवर्त्तिक्षीणकषायंगे । गु १ । क्षी । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ० । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ ॥ सं १ । यथा । द ३ । ले ६ भा १ भ १ । सं १ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सयोगिकेवलिगुणस्थानवर्त्ति सयोगकेवलिभट्टारकंगे गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा ४ । २ । स ० । ० । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ७ । म २ । व २ । औ २ । का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं १ । यथा । द १ । के ले ६ भा १ भ १ । सं १ । क्षा । सं । ० । आ २ । उ २ ॥

अयोगिकेवलिगुणस्थानवर्ति अयोगकेवलिभट्टारकंगे । गु १ । अयो । जी १ । प ६ । प्रा १ । आयुष्य । सं । ० । ग १ । म १ । इं १ । प ० । का १ । त्र । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं १ । यथा । द १ के ले ६ भा ० भ १ ॥ सं १ । क्षा । सं । ० । आ १ । अनाहार । उ २ ॥

अतीतगुणस्थानसिद्धपरमेष्ठिगळ्गे । गु ० जी ० प ० । प्रा ० सं । ० । ग १ । सिद्धिगति ।

छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । सूक्ष्मसापरायाणा—गु १ सू । जी १ । भा १
प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । ज्ञा ४ । स १ सू । द ३ ।
ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । उपशान्तकषायाणा—गु १ उप । जी १ । प ६ ।
भा १
प्रा १० । स ० । ग १ म । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । स १ यथा । द ३ । ले ६ । भा १
भ १ । स २ । उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । क्षीणकषायाणा—गु १ क्षी । जी १ । प ६ । प्रा १० ।
सं ० । ग १ म । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । स १ यथा । द ३ । ले ६ । भ १ ।
भा १
स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । सयोगकेवलिना—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा ४ २ । स ० ग १ म ।
इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औ २ का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । स १ यथा । द १ के ।
ले ६ । भ ० । स १ क्षा । सं ० । आ २ । उ २ । अयोगकेवलिना—गु १ अयो । जी १ । प ६ । प्रा १ ।
भा १
आयुष्य । सं ० । ग १ म । इं १ प । का १ त्र । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । स १ यथा । द १ के ।
ले ६ । भ ० । स १ क्षा । स ० । आ १ अनाहार । उ २ । गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठिना—गु ० जी ० ।
भा ०

इं । ० । का ० । यो ० । वे । ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं । ० । द १ । के । ले ० । भ । ० । सं १ । क्षा । सं । ० । आ १ । अनाहार । उ २॥

आदेशदोळु गत्यनुवाददोळु नारकरुगळगे सामान्याळापं पेळल्पडुवल्लि । गु ४ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । नरकगति । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । वै २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ३[1] भा ३ भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ९॥

सामान्यपर्य्याप्तनारकरगे गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । षं ० । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले १ कृ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । उ ९॥ भा ३

सामान्यनारकापर्याप्तकरगे गु २ मि । अ । जी २ । प ६ । प्रा ७ । स ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो २ । वै । मि । का॥ वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क । शु । भ २ । सं ३ । मि । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८॥ भा ३

सामान्यनारकमिथ्यादृष्टिगळगे गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ३ भा ३ भ २ । सं १ । मि । सं १ आ २ । उ ५॥

प ० । प्रा ० । स ० । ग ० । इ ० । का ० । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । स ० । द १ के । ले ० । भ ० । स १ क्षा । स ० । आ १ अनाहार । उ २ ।

आदेशे गत्यनुवादे नारकाणा—गु ४ । जी २ प अ । प ६ । ६ प्रा १० ७ । स ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो ११ । म ४ वा ४ वै २ का १ । वे १ पं । क ४ । ज्ञा ६ कु, कु, वि म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले ३ । पर्याप्तेरुपरि कृष्णलेश्या एकैव अपर्याप्तकाले कपोतलेश्या विग्रहगतौ शुक्ललेश्या भा ३

इति द्रव्यलेश्यात्रय । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । क्षा २ । उ ९ । तत्पर्याप्ताना—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले १ कृ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ९ । भा ३

तदपर्याप्ताना—गु २ । मि अ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो २ वैमि क । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । स १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ३ मि वे क्षा । भा ३ स १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृष्टीना—गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग १ न । इ १ । का १ । योग ११ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ । ले ३ । भ २ । स १ भा ३

---

१. कृष्ण कपोत शुक्ल ।

सामान्यनारकपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ मि । जी १ । पर्य्या । ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । वै । का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ ले १ कृ भ २ । सं १ । मिथ्यारुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ३

सामान्यनारकापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ नरक । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ षं ० । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु भ २ । स १ । मिथ्यारुचि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अ शु

सामान्यनारकसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । व ४ । वै का १ । वे षं ० । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं । १ । अ । द २ ले १ कृ भ १ । सं १ । सासादनरुचि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ३

नारकसामान्यमिश्रंगे । गु १ । जि १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्र । स १ । अ । द ३ । ले १ कृ भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

नारकसामान्यासंयतंगे । गु १ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । व ४ । वै २ का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ३ । कृ । क । शु । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ३ अ शु

मि । स १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४, वा ४, वैका १ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ३ । कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ ।
भा ३
भ २ । स १ मिथ्यारुचि । स १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो २ । वै मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ ले २ । कृ शु भ २ । स १ मिथ्यारुचि । स १ । आ २ । उ ४ । सासादनाना—गु १ सा । जी १ प
भा ३
प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ म ४, वा ४, वै का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ । भ १ । स १ सासादनरुचि । सं १ । आ १ उ ५ । मिश्राणा—
भा ३
गु १ मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ मिश्राणि स १ अ । द २ । ले १ कृ । भ १ । स १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ असयताना—गु १ ।
भा ३
जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४, वा ४ वै २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ ले ३ कृ क शु भ १ । स २ उ, वे क्षा । सं १ ।
भा ३ अशुभ

सामान्यनारकपर्य्याप्तासंयतगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म । श्रु । अ । सं १ अ । द ३ । ले १ भ १ । सम्य ३, भा ३

उ । वे । क्षा । स १ । आ १ । उ प ६ ॥

सामान्यनारकाऽपर्य्याप्तासयतगे । गुण १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ । षं ० । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । स १ । अ । द ३ ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे क्षा ॥ सं १ । आ २ । उ ६ ॥ भा १ कपो

घर्म्मेय सामान्यनारकगे । गु ४ । जी २ । प । अ । प । ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । वै २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ ले ३ कृ । क । शु । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ ९ ॥ भा १

घर्म्मेय सामान्यनारकपर्य्याप्तकर्गे । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । वै का १ । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । अ । द ३ । ले १ कृ भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ ९ ॥ भा १ कृ

घर्म्मेय सामान्यनारकापर्य्याप्तगे । गु २ । मि । अ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का । वे १ । ष ० । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ३ । मि । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥ भा १ क

आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्ताना—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ अ । द ३ । ले १ कृ । भ १ । स ३ । उ वे क्षा । स १ । भा ३ अ

आ १ । उ ६ । तद्पर्याप्ताना—गु १ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो २ । वैमि का । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ३ म, श्रु, अ । स १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ स २ वे । भा ३ अशुभ

क्षा । स १ । आ २ । उ ६ । घर्मानारकाणा—गु ४ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो ११ । म ४ वा ४ वै २ का १ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । स १ अ । द ३ । ले ३ क क शु । भ २ स ६ । स १ आ २ । उ ९ । तत्पर्याप्ताना—गु ४ । जी १ प । प ६ । भा १ क

प्रा १० । स ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ वा ४ वै का १ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ६ । स १ अ । द ३ । ले १ कृ । भ २ । स ६ । स १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्ताना—गु २ मि अ । जी १ भा १ क

अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ न । इ १ । का १ । यो २ वैमि । का । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ५ । कु कु म श्रु अ । स १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ३ मि वे क्षा । स १ । आ २ । उ ८ । भा १ क

घम्मेंय मिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। न। इं १। का १। यो ११। म ४। व ४। वै २। का १। वे १। ष ०। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ३ कृ क शु भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ५॥

भा १ क

घम्मेंय नारकपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। न। इं १। का १। यो ९। म ४। वा ४। वै का १। वे १। ष ०। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं। १। अ। द २। ले १ भ २। सं १। मिथ्यारुचि। सं १। आ १। उ ५॥

भा १ क

घम्मेंयनारकापर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। अ प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वै मि। का। वे १। क षा ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले

भा १ क

२ क शु। भ २। सं १। स १। आ २। उ ४। कु। कु। च। अ॥

घम्मेंय पर्य्याप्तसासादनंगे गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। द २। ले १ कृ भ १। स १। सं। आ

भा १ क

१ उ ५॥ कु। कु। वि। च। अ॥

घम्मेंय मिश्रंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २ ले १ कृ भ १। सं १। स १। आ १। उ ५।

भा १ क

घम्मेंय असंयतंगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १।

तन्मिथ्यादृशा—गु १ जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इ १। का १। यो ११। म ४ वा ४ वै २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ३ कृ क शु। भ २। स १

भा १ क

मि। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ न। इ १। का १। यो ९। म ४, वा ४। वै का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले १ कृ।

भा १ क

भ २। स १ मिथ्यारुचिः। स १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २। वैमि का। वे १। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १। सं १। आ २। उ ४ कु कु च अ। सासादनानां—गु १। जी १। प ६।

भा १ क

प्रा १०। सं ४। ग १। इ १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १। द २। ले १ कृ। भ १। स १। सं १। आ १। उ ५ कु कु वि च अ। मिश्राणां—गु १। जी १। प ६।

भा १ क

प्रा १०। स ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १। द २। ले १ कृ। भ १। स १। स १। आ १। उ ५। असयतानां—गु १ जी २। प ६ ६। प्रा १० ७।

भा १ क

यो ११ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । द ३ ले ३ कृ क शु भ १ । सं ३ । उ
भा १ क
वे क्षा ॥ सं १ । आ २ । उ ६ ॥

घर्म्मेंय पर्य्याप्तनारकाऽसंयतगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो न । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले १ कृ भ १ । सं ३ । उ वे । क्षा ॥ सं १ ।
भा १ क
आ १ । उ ६ ॥

घर्म्मेंय नारकापर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि का । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ क

द्वितीयादि पृथ्वियनारकसामान्यक्के । गु ४ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं १ । द ३ । च । अ । अ ले ३
भा १

स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण भावापेक्षया एका । द्रव्यापेक्षया । कृ क शु । भ २ । सं ५ । उ । वे मि । सा । मि । सं १ । आ २ । उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

द्वितीयादिपृथ्विगळ नारकपर्य्याप्तग्गें । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं १ । द ३
ले १ कृ भ २ । सं ५ । उ । वे । मि । सा । मि । सं १ । आ १ । उ १ भावापेक्षयास्वस्वभूम्यनतिक्रमेण
९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

सं ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ११ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ । द ३ । ले ३ कृ क शु ।
भा १ क
भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्ताना—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ । द ३ । ले १ कृ । भ १ । स ३ उ, वे,
भा १ क
क्षा, सं १ आ १, उ ६ तदपर्याप्ताना—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १, इं १, का १, यो २ वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा ३, म श्रु अ, स १, द ३, ले २ क शु, भ १, स २ वे क्षा, सं १,
भा १ क
आ २, उ ६, द्वितीयादिपृथ्वीनारकाणा—गु ४, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इ १, का १, यो ११, वे १, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, स १, द ३ च अ अ, ले ३ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण भावापेक्षया
भा ३
एका द्रव्यापेक्षया कृ क शु, भ २, स ५ उ वे मि सा मि, स १, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्ताना—गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १ का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, स १, द ३, ले १ कृ भ २, स ५ उ वे मि सा मि स १, आ १, उ ९ म
भा १ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण

द्वितीयादिपृथ्विनारकापर्य्याप्तगें । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । द २ ले २ क शु
१ भा स्वस्वयोग्या
भ २ । सं १ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

द्वितीयादिपृथ्वीनारकसामान्यमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । अ प्रा १० ॥ ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । वै २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ ले ३ कृ क शु भ २ ।
भा स्वयोग्य
सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥

द्वितीयादिपृथ्वीनारकपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । द २ ले १ कृ
१ भा स्वयोग्या
भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

द्वितीयादिपृथ्वियनारकापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । द २ ले २ । क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
१ स्वस्वयोग्या

द्वितीयादि पृथ्वियनारकसासादनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । कषा ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । द २ ले १ कृ भ १ । सं १ ।
१ स्वस्वयोग्या
सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

श्रु अ कु कु वि च अ अ, तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ
भा १ स्वस्वयोग्या
२, उ ४ कु कु च अ, तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ न, इं १, का १, यो ११ म ४, वा, ४, वै २ का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ३ कृ क शु भ २ स १ मि सं १ आ २ १, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, भा १ स्वस्वयोग्य
प्रा १०, सं ४, ग १ इ १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १, द २, ले १ कृ,
भा १ स्वस्वयोग्या
भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १, इं १, का १, यो २, मि का, वे १, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १, द २, ले २ क शु, भ २ स १ मि,
भा १ स्वस्वयोग्या
सं १, आ २, उ ४, तत्सासादनानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १, द २, ले १ कृ, भ १, स १, सा, सं १, आ १, उ ५
भा १ स्वस्वयोग्या

द्वितीयापृथ्वीनारकसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । गति १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ ॥ सं १ । द २ । ले १ भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

द्वितीयादिपृथ्वीनारकाऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । १ भ १ । सं २ । उ । वे । सं १ आ । १ । उ ६ । म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥

तिर्य्यंचरु पंचप्रकारमप्परवरोळु सामान्यतिर्य्यंचरुगळ्गे । गु ५ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ६ । ५ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति १ । इं ५ । का ६ । यो ११ । म ४ । व ४ । औ २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं २ । अ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ द्रव्यदोळु भावदोळं भ २ । सं ६ । भा ६ उ । वे । क्षा । मि । सा । मि । सं २ । आ २ । उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

तिर्य्यंच सामान्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे । गु ५ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । सं ४ । ग १ । ति । इं ५ । का ६ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । सं २ । द ३ । ले ६ भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ ९ ॥

तिर्य्यंचसामान्यापर्य्याप्तकरुगळ्गे । गु ३ । मि । सा । अ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इ ५ । का ६ । यो २ । मिश्रका । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । कु । कु । सं १ अ । द ३ । च । अ । अ ले शु भ २ । सं ४ । मि । सा । भा ३ अशु

तत्सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले १, भ १, स १, मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, तदसंयताना गु १, जी १, प ६, प्रा १०, भा १ स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १, अ, द ३, च अ अ । ले १ भ १ भा १ स २ उ वे, स १ आ १ उ ६ म श्रु अ च अ अ ।

पञ्चविधतिर्यक्षु सामान्याना—गु ५ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ । वे ३ । का ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । स २ अ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ उ वे क्षा मि सा मि । स २ । भा ६ आ २ । उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु ५ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ । ४ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ २ । भा ६ स ६ । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इ ५ । का ६ । यो २ मिश्र का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । स १ । अ ।

क्षा। वे। सं २। आ २। उ ८। म। श्रु। अ। कु। कु। च। अ। अ॥

तिर्य्यंचसामान्यमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग १। इं ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ५। कु। कु। वि। च। अ॥

तिर्य्यंचसामान्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। लें ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

तिर्य्यंचसामान्यापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग १। ति। इं ५। काय ६। यो २। मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु भा ३ अशु भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४। कु। कु। च। अ॥

तिर्य्यंचसामान्यसासादनंगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७॥ सं ४। ग १। ति। इ १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ १। सं १। सा। सं १। आ २। उ ५। कु। कु। वि। च। अ॥

तिर्यंचसामान्यसासादनपर्य्याप्तंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं। १। अ। द २। ले ६ भ १। सं १।

द ३ च अ अ। ले २ क शु भा ३ अशुभ भ २। स ४ मि सा क्षा वे। सं २। आ २। उ ८। म श्रु अ कु कु च अ अ। तन्मिथ्यादृशा—गु १। जी १४। प ६ ६ ५ ५ ४ ४ प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ स ४। ग १। इ ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ च अ। ले ६। भा ६ भ २। स मि, स २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ। तत्पर्याप्ताना—गु १, जी ७, प ६ ५ ४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो ९, वे ३। क ४ ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ भा ६ भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो २ मि का, वे ३, का ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २, क शु, भा ३ अशुभ भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ४ कु कु च अ, तत्सासादनाना—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ ति, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४। ज्ञा ३, स १, द २, ले ६, भा ६ भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ पं,

सं १ । आ १ । उ ५ ॥

सामान्यतिर्य्यंचापर्य्याप्तसासादनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । औ मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । भा ३ अशुभ

सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ कु । कु । च । अ ॥

सामान्यतिर्य्यंचसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ भा ६ भ १ । सं १ । सं १ आ १ । उ ५ ॥

सामान्यतिर्य्यंचासंयतंगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भा ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

सामान्यतिर्यंचासंयतपर्याप्तंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले ६ भा ६ भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

सामान्यतिर्य्यंचापर्य्याप्तासंयतंगे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । गति १ । इं १ । का १ । यो २ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क । शु । भ १ । सं २ । क्षा । वे । सं १ । आ २ । उ ६ ॥ भा १ क

का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६ भा ६, भ १, स १, स १, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना गु १, जी १, प ६, प्रा ७, स ४, ग १, इ १, का १, यो २ औ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले २ क शु, भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ४, कु कु च अ । सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १, जी १, भा ३ अशुभ प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६ भा ६ भ १, स १, स १, आ १, उ ५ । असयताना—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १, द ३, ले ६ भा ६, भ १, स ३, स १, आ १, उ ६, तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १, इ १, का १, यो २, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ शु क, भा १ क

सामान्यतिर्य्यंचदेशसंयतगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। दे। द ३ ले ६ भ १। सं २। उ। वे। भा शु भ
सं १। आ १। उ। ६। म। श्रु। अ। च। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचगर्गे। गु ५। जी ४॥ पंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्ताऽपर्य्याप्त॥ प ६। ६। प्रा १०। ७। ९। ७। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। त्र। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। सं २। अ दे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ २। सं ६। उ। वे। क्षा। मि। सा। मि। सं २। आ २। उ ९। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। च। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचपर्य्याप्तकगर्गे। गु ५। जी २। प ६। ५। प्रा १०। ९। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ६। सं २। अ। दे। द ३। च। अ। अ। ले ६ भ २। सं ६। उ। वे। क्षा। मि। सा। मि। सं २। आ १। उ ९॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंचापर्य्याप्तकगर्गे। गु ३। मि। सा। अ। जीव २। प ६। ५। अ। प्रा ७। ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। कु। कु। सं १ अ। द ३। च। अ। अ। ले २ कु। शु। भ २। सं ४। वे। क्षा। मि। सा। भा ३
सं २। आ २। उ ८। म। श्रु। अ। कु। कु। च। अ। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्मिथ्यादृष्टिगर्ग। गु १। जी ४। संज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त। असंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त। प ६। ६। ५। ५। प्रा १०। ७। ९। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६ भ २। सं १। मि। सं। २। आ २। उ ५॥

भ १, स २ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६ देशसंयताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १, स २ उ वे, सं १, आ १, भा ३ शुभ
उ ६ म श्रु अ च अ अ, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां—गु ५, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १ ति, इ १ प, का १ त्र, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ६, उ वे क्षा मि सा मि, सं २, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, भा ६
तत्पर्याप्ताना—गु ५, जी २, प ६ ५, प्रा १० ९, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ६, स २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६। भ २, स ६ उ वे क्षा मि सा मि, स २, आ १, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, भा ६
तदपर्याप्ताना—गु ३ मि सा अ, जी २, प ६ ५ अ, प्रा ७ ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु, स १ आ, द ३ च अ अ। ले २ क शु, भ २, स ४ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ, भा ३ अशुभ
मिथ्यादृशा—गु १, जी ४, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १ भा ६

पंचेंद्रियतिर्य्यग्मिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकस्यं । गु १ । जी २ । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो । ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥
६

पंचेंद्रियापर्य्याप्ततिर्य्यग्मिथ्यादृष्टिगस्यं । गु १ । जी २ । सं १ । प ६ । सं । अ । अ । अ । ५ । ५ । प्रा सं ७ । असंज्ञि = अ ७ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ । क शु । भ २ । स १ । मि । सं २ । भा ३ अ
आ २ । उ ४ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यक्सासादनस्यं । गु १ । जी २ । सं = प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सा । ६
सं १ । आ २ । उ ५ । । कु । कु । वि । च अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंक्पर्य्याप्तसासादनस्यं । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सा । सं १ । ६
आ १ । उ ५ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यक्सासादनापर्य्याप्तस्यं । गु १ । जी १ । प ६ । । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ त्र । यो २ । मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च अ । ले २ क श भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥
भा ३ अ शु भ

पंचेंद्रियतिर्य्यग्मिश्रस्यं । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ ।

मि, स २, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० ९, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २ स १ मि, स २, आ १, उ ५, भा ६

तदपर्याप्तानां—गु १ जी २ स अ, प स ६ अ ५, प्रा स ७, अ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भ २, स १, स २, आ २, उ ४, भा ३ अशुभ

सासादनानां—गु १, जी २ स प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, स ४, ग १, इ १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, भा ६
जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, भा ६
स १ सा, स १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६, प्रा ७, स ४, ग १, इ १, का १ त्र, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, भा ३ अशु
आ २, उ ४ कु कु च अ, मिश्राणां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९,

यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मत्यादिमिश्रत्रयं। सं १। अ। द २। च। अ ले ६ भ १। स १
६
मिश्र सं १। आ १। उ ५॥

मत्यादिमिश्रत्रयं चक्षुरचक्षुः॥ पंचेंद्रिय्यंगसंयतंगे। गु १। जी २। प ६। अ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सम्यग्ज्ञानत्रयं सं १। अ। द ३ ले ६ भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥ म। श्रु। अ। च। अ। अ॥ ५
६

पंचेंद्रियतिर्य्यंगसंयतपर्य्याप्तंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १।
६
आ १। उ ६॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंगपर्य्याप्तासंयतंगे। गु १। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १। त्र। यो २। मिश्र। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। १०
म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ ले २ क शु भ १। सं २। क्षा। वे। सं १।
भा १ क
आ २। उ ६। म। श्रु। अ। च। अ। अ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्देशसंयतंते। गु १। जी १। प ६। प्रा १०॥ सं ४। ग १। ति। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। देशसंयम। द ३ ले ६ भ १। सं २।
=
भा ३
उ। वे। सं १। आ १। उ ६। म। श्रु। अ। अ। च। अ। अ॥ १५
=
पंचेंद्रियतिर्य्यंक्पर्य्याप्तकग्गें पंचेंद्रियतिर्य्यंचग्गें पेळ्दंते पेळ्दुकोळ्ग॥

वे ३, क ४, ज्ञा ३ मत्यादिमिश्रत्रयं, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५,
भा ६
मत्यादिमिश्रत्रयं चक्षुरचक्षुश्च। असंयताना—गु १, जी २, प ६, अ ६, प्रा १०, अ प्रा ७, सं ४,
ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३।
भा ६
सं १। आ २। उ ६ म श्रु अ च अ अ। तत्पर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। २०
इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। स १ अ। द ३। ले ६ भ १। स ३ उ वे क्षा। स १।
भा ६
आ १। उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १ जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४। ग १ ति, इं १ प, का १ त्र,
यो २ मि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ १ स २ क्षा वे,
भा १ क
सं १, आ २, उ ६ म श्रु अ च अ अ, देशसंयताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १० सं ४, ग १ ति, इं १,
प १, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ दे, द ३, ले ६ भ १, स २ उ वे, स १, आ १, उ ६ २५
भा ३ शु
म श्रु अ च अ अ, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्ताना-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वद्वक्तव्यम्।

पंचेंद्रियतिर्य्यंचयोनिमतिजीवंगळ्गे गु ५ । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त भेदर्विं । प ६ । ।६।सं ५ । ५ । अ । सं । प्रा १० । ७ । संज्ञि ९ । ७ । असंज्ञि । सं । ४ । ग १ । इं १ । का १ । योग ११ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं २ । अ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ । सं ५ । उ । वे । मि । सा । मि । सं २ । आ २ । उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

तिर्य्यग्योनिमतिपर्य्याप्तंजीवंगळ्गे । गु ५ । जी २ । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । सं ९ । अ । स ४ । ग १ । ति । इं १ । प । का १ । त्र । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । सं २ । अ । दे । द ३ । ले ६ भ २ । सं । ५ । उ वे । मि । सा । मि । सं २ । आ १ । उ ९ । सं ३ । मि ३ । द ३ । तिर्य्यंक्पंचेंद्रिययोनिमत्यपर्य्याप्तग्गें ॥ गु २ । मि । सा । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्ता संज्ञ्यऽपर्य्याप्त । प ६ । सं । अ । ५ । अ । प्रा ७ । अ ७ । अ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । पं । का १ । त्र ॥ यो २ । मिश्र । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ ले २ क शु भ २ । स २ । मि । सा । सं २ । आ २ । उ ४ । भा ३ अ शु । कु । कु । च । अ ॥

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिमिथ्यादृष्टिगे । गु १ । मि । जी ४ । संज्ञ्यऽसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ६ । ६ । ५ । ५ । असंज्ञि । प्रा १० । ७ । सज्ञि ९ । ७ । असंज्ञि । सं ४ । ग १ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मिथ्यात्व । सं २ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥

तिर्यग्योनिमतीना—गु ५, जी ४ संज्ञ्यसज्ञिपर्याप्तापर्याप्तभेदतः प ६ ६ स, ५ ५ अ स, प्रा १० ७ सज्ञि ९ ७ असज्ञि, स ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, स २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्रा, सं २, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २ स अ, प ६ ५, प्रा १० सं, ९ अ, स ४, ग १ ति, इ १ प, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, स २ अ दे, द ३, ले ६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्रा., स २, आ १, उ ९ स ३ मि ३ द ३, तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी २ सज्ञ्यसज्ञिपर्याप्तौ, प ६ अ ५ अ, प्रा ७ अ, ७ अ, स ४, ग १ ति, इ १ प, का १ त्र, यो २ मिश्र का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स २ मि सा, स २, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ४ सज्ञ्यसज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता, प ६ ६ सज्ञि, ५ ५ असज्ञि, प्रा १० ७ स, ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १ ति, इ १ प, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ आ, द २, ले ६, भ २, स १

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । संज्ञिपर्य्याप्तासंज्ञिऽपर्य्याप्त । प ६ ॥ संज्ञिपर्य्याप्तिगळु ५ ॥ असंज्ञिपर्य्याप्तिगळु प्रा १० । संज्ञि । ९ । असंज्ञि । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥
६

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्तासंज्ञ्यपर्य्याप्त । प ६ । संज्ञ्यपर्य्याप्तिगळु । ५ । असंज्ञ्यपर्य्याप्तिगळु प्रा ७ । संज्ञि ७ । असंज्ञि । सं ४ ॥ ग १ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो २ । मिश्र । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । स २ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥
भा ३ अशु

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिसासादनंग । गु १ । सा । जी २ । सं । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥ ० ॥
६

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमतिसासादनपर्य्याप्तकंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
६

पंचेंद्रियतिर्य्यग्योनिमत्यपर्य्याप्तसासादनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का । यो २ । मिश्र । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ ले २ क शु भ १ । सं १ । सं १ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥
भा ३ अशुभ

मिथ्यात्व, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी २ संज्ञसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञि ५ असज्ञि, प्रा १० सं, ९ असज्ञि, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी २ सज्ञ-
६
सज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञ्यपर्याप्तयः, ५ असंज्ञ्यपर्याप्तय., प्रा ७ सं, ७ असंज्ञि, स ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र, का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि,
भा ३ अशु
सं २, आ २, उ ४, कु कु च अ, सासादनानां—गु १ सा, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १ ति, इ १ पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा,
६
स १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६ भ १, स १, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ ।
६
प ६ । प्रा ७, सं ४, ग १, इ १, का १, यो २ मि का, बे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २,

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमतिमिश्रंगे। गु १। मिश्र। जी १। पं=। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ १। सं १। मिश्र। स १। आ १। उ ५॥
६

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमत्यसंयतंग। गु १। अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ भ १। सं २। उ। वे। सं १। आ १। उ ६॥
६

पंचेंद्रियतिर्य्यंग्योनिमतिसंयतासंयतंगे। गु १। दे। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३ ले ६ भ १। सं २। उ। वे। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

तिर्य्यक्पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकग्गें। गु १। मि। जी २। सं=। अ। प ६। ५। प्रा ७। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मिश्र। का। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २ ले २ क शु भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४॥
भा ३ अशु

मनुष्यरु चतुर्व्विकल्पमप्परु। अल्लि सामान्यमनुष्यग्गें। गु १४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो १३। वैक्रियिकद्वयरहितं। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६ भ २। सं ६। सं १। आ २। उ १२॥
६

सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तकग्गें। गु १४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इ १।

ले २ क शु, भ १, स १, स १, आ २, उ ४, कु कु च अ, मिश्राणा—गु १ मिश्र, जी १ स प, प ६, भा ३ अशुभ

प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं,
६

स १, आ १ उ ५, असयताना—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, स ४ ग १, इ १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द ३, ले ६ भ १, स २ उ वे, स १, आ १, उ ६, सायतासायताना—गु १
६

दे, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ दे, द ३, ले ६, भ १ स २ उ वे, स १, आ १, उ ६, तिर्यक्पञ्चेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्ताना—गु १ मि, जी २ स, अ, भा ३

प ६ ५, प्रा ७ ७, स ४, ग १, इ १, का १, यो २ मिश्र का, वे १ ष, क ४, ज्ञा २ कु कु। स १ अ, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ४, चतुर्विधमनुष्येषु सामान्याना—गु १४, जी २, भा ३ अशुभ

प ६ ६, प्रा १०, ७, स ४, ग १, इ १, का १, यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६ भ २, स ६, स १, आ २, उ १२, तत्पर्याप्ताना—गु १४, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, भा ६

का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६ भ २। सं ६। स १।
६
आ २। उ १२॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तकगे। गु ५। मि। सा। अ। प्र। स। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ३। औदारिकमिश्र आहारकमिश्र कार्म्मण। वे ३। क ४। ज्ञा ६। म श्रु। अ। के। कु। कु। सं ४। अ। सा। छे। यथाख्यात। द ४। ले क शु भ २। ५
भा ६
सं ४। मि। सा। वे। क्षा। सं १। आ २। उ १०॥ कु। कु। म। श्रु। अ। के। च। अ। अ। के॥

सामान्यमनुष्यमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। म ४। व ४। औ २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। च। अ ले ६ भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ५॥ १०
६

सामान्यमनुष्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २ ले ६ भ २। सं १।
६
मि। सं १। आ १। उ ५॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। अ प्रा ७। असं ४। ग १। म। इं। पं। का १। त्र। यो २। औ मि का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। द २ १५
ले २। क। शु। भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥
भा ३। अशुभ

ग १, इ १, का १, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, स १, आ २, उ १२,
भा ६
तदपर्याप्ताना—गु ५, मि सा अ प्र स, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १, इं १, का १, यो ३, औमि आमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, स ४ अ सा छे यथाख्यात, द ४, ले २ क शु, भ २,
भा ६
स ४ मि सा वे क्षा, स १ आ २, उ १० कु कु म श्रु अ के च अ अ के, तन्मिथ्यादृशा—गु १, जी २, प ६ २०
६, प्रा १० ७, स ४, ग १, इं १, का १, यो ११ म ४ वा ४ औ २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, स १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०,
६
स ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि.
भा ६
स १, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १ जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो २ औमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १, आ २, उ ४। २५
भा ३ अशुभ

सामान्यमनुष्यसासादनगे। गु १ सा। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १। पं का १ त्र। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २ ले ६ भ १ सं १। सा। सं १। आ २। उ ५॥

सामान्यमनुष्यसासादनपर्य्याप्तकर्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। म। इं पं १। का १। त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६ भ १। सं १। सं १। आ १। उ ५॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तसासादनगे। गु १। सा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इ १। का १। यो २। औ। मिश्र। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले। क। शु। भ १। सं १। सा। सं १। आ २। उ ४॥
भा ३ अशुभ

सामान्यमनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिगे। गु १। मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। गति १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६ भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

सामान्यमनुष्यासंयतगे। गु १। अ। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले ६ भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥

सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तासंयतगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ भ १। सं ३। उ। वे। क्षा।

सासादनाना—गु १ सा। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग १ म। इ १ प। का १० त्र। यो ११। वे ३। क ४ ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १, स १ सा, स १। आ २। उ ५। भा ६

तत्पर्याप्ताना गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। स ४, ग १ म, इ १ प। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले ६, भ १। स १ सा। सं १, आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु भा ६
१ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग १। इ १। का १। यो २ मि का। वे ३। क ४। ज्ञा २। स १, द २ ले २ क शु, भ १, स १ सा स १, आ २ उ ४, सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १, प ६, भा ३ अशु
प्रा १०, स ४, ग १ म, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १, द २। ले ६, भ १ स १ भा ६
मिश्र। स १। आ १। उ ५। असंयताना—गु १ अस। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग १। इ १। का १। यो ११ वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ - द ३, ले ६। भ १, स ३, म १, आ २, उ ६, तत्प- ६
र्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इ १ प, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ,

सं १ । आ १ । उ ६ । म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्यापर्य्याप्तासंयतगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । मि । का । वे १ । पु । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ६

सामान्यमनुष्यसंयतासंयतगे गु १ । जी १ । प ६ । । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । ५
भा ३ शुभ
आ १ । उ ६ ॥

सामान्यमनुष्यप्रमत्तगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म् । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । व ४ । औ का १ । आ २ । वे ३ ॥ द्रव्यादिदं पुंवेदी । भावापेक्षे-यिदं स्त्रीपुन्नपुंसक । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । १०
भा ३ शुभ
म । श्रु । अ । म । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्यप्रमत्तपर्य्याप्तगें । गु १ । प्र जी १ । प । ६ । प । प्रा १० । प । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ ।
भा ३ शु
वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । म । श्रु । अ । म । च । अ । अ ॥ १५

सामान्यमनुष्यप्रमत्तापर्य्याप्तकगें गु । १ । जी १ अ । प ६ । अ । । प्रा । ७ । अ । सं ४ ।

द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ । तदपर्याप्ताना—गु १ अ । जी १, ६ प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इ १ प । का १ त्र । यो २ मि का । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु, भ १ । स २ वे क्षा । स १ । आ २, उ ६ । सयतासंयताना—
भा ६
गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ प । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । २०
स १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्ताना—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा
भा ३ शुभ
१० ७ । स ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ प ४ वा ४ औ १ आ २ । वे ३ । द्रव्यपुवेदिन. भावापेक्षया त्रिवेदिन. इत्यर्थः । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ
भा ३ शुभ
७ म श्रु अ म च अ अ । तत्पर्याप्ताना—गु १ प्र । जी १ प । प ६ प । प्रा १० प । सं ४ । ग १ म । इ १ प । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औ १ आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द २५
३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ म श्रु अ म च अ अ । तदपर्याप्ताना—गु
भा ३ शु

ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १ । आ मि=॥ वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले १ क भ १ । सं २ । वेक्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ।
भा ३ शु
म । श्रु । अ । च । अ । अ ॥

सामान्यमनुष्याप्रमत्तग्गे । गु १ । जि १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । आहारसंज्ञेइल्लेकं दोडे प्रमत्तनोळे असातसातावेदोदीरणंगे व्युच्छित्तियुंटप्पुदरिदं । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

मनुष्यसामान्यापूर्व्वकरणंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ३ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । द्वितीयोपशम-
भा १ शु
क्षायिकंगळु । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यप्रथमभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ प ६ । प्रा १० । सं २ । मै । प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । स २ ।
भा १
उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

द्वितीयभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । स २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा ।
भा १
सं १ । आ १ । उ ७ ॥

सामान्यमनुष्यतृतीयभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह ।

---

१ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ म । इ १ प । का १ त्र । यो १ आ मि । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स २ सा छे । द ३ च अ अ । ले १ क भ १ । स २ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ६ म श्रु
भा ३ शु
अ च अ अ । अप्रमत्ताना—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ३ आहारसज्ञा नहि सातासातानुदीरणात् । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । स ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ
६
१ । उ ७ । अपूर्वकरणाना—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ३ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ द्वितीयोपशमक्षायिकौ । स १ । आ १ ।
भा १
उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स २ मै प । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । स २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । स १ । आ १ । उ ७ ।
भा १
द्वितीयभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स १ परिग्रह । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागे—
भा १

ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । मा । मा । लो । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ भ १ । स २ । उ । क्षा । । सं १ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

सामान्यमनुष्यचतुर्थभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ । माया । लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । स १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

सामान्यमनुष्यपंचमभागानिवृत्तिगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । लोभ । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

सामान्यमनुष्यसूक्ष्मसांपरायंगे गु १ । सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । परिग्रह । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । लो । ज्ञा ४ । सं १ । सू । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

सामान्यमनुष्योपशांतकषायंगे । गु १ । उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं । ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ । यथाख्यात । द ३ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

सामान्यमनुष्यक्षीणकषायंगे । गु १ । जी १ । । प ६ । प्रा १० । सं । ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ । यथाख्यात । द ३ । ले ६ भ १ । सं १ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १

गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स १ परिग्रह. । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ मा माया लो । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागे—
भा १

गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रह. । ग १ । इं । का १ । यो ९ । वे ० । क २ मा लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचमभागे—गु १ । जी १ । प ६ ।
भा १

प्रा १० । स १ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ १ ।
१

स २ । सं १ । आ १ । उ ७ । सूक्ष्मसापराये—गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रह. । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । स १ सू । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ ।
भा १

आ १ । उ ७ । उपशातकषाये—गु १ उ । जो १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । स १ यथाख्यात. । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा १

क्षीणकषाये गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ ।

सामान्यमनुष्यसयोगकेवलिगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा ४। २। सं। ०। ग १। इं १। का १। यो ७। म २। वा २। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। सं १। द १। ले ६ भ १। सं १। ०। आ २। उ २
भा १

सामान्यमनुष्यायोगिकेवलिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १। आयुष्य। सं। ०। ग १। इं १। का १। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १। सं १। द १। ले ६ भ १। सं १। सं। ०। भा ०
अनाहार। उ २॥

पर्य्याप्तमनुष्यर्गे सूलोघं वक्तव्यमक्कुं। मानुषियर्ग्गे। गु १४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ०। संज्ञारहितरुं। ग १। इं १। का १। यो। ११। ०। अयोगिगळु। वे १। ०। वेदरहितरु। क ४। कषायरहितरुं। ज्ञा ७। म। श्रु। अ। म। के। कु। कु। वि। सं ६। अ। दे। सा। छे। सू य। द ४। च। अ। अ। के। ले ६ लेश्यारहितरुं। भ २। सं ६। सं १। ६
। ०। रहितसंज्ञित्वरुं। आ २। उ ११॥

मनःपर्य्ययज्ञानोपयोगरहितरुं॥ पर्य्याप्तमानुषियर्ग्गे। गु १४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ०। संज्ञारहितरुं। ग १। इं १। का १। यो ९। ०। योगरहितरु। वे १। स्त्री ०॥ वेदरहितरुं। क ४। ०। कषायरहितरुं। ज्ञा ७। सं ६। द ४। ले ६ अलेश्यरुं। भ २। सं ६। ६
सं १। ०। संज्ञित्वशून्यरुं। आ २। उ ११॥

स १ यथाख्यात। द ३। ले ६। भ १। स १ क्षा। स १। आ १। उ ७। सयोगिजिने—गु १। जी २। १
प ६ ६। प्रा ४ २। स ०। ग १। इ १। का १। यो ७ म २ वा २ औ २ का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। स १। द १। ले ६। भ १। स १। सं ०। आ २। उ २। अयोगिजिने—गु १। जी १। प ६। प्रा भा १
१ आयुष्य। स ०। ग १। इ १। का १। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १। स १। द १। ले ६। भ १। भा ०
स १। स ०। आ १ अनाहार। उ २। पर्याप्तामनुष्याणा मूलौघो वक्तव्यः। मानुषीणा[1]—गु १४। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४ शून्य च। ग १। इ १। का १। यो ११ शून्य च। वे १। क ४ शून्य च। ज्ञा ७ म श्रु अ के कु कु वि। स ६ अ दे सा छे सू य। द ४ च अ अ के। ले ६ शून्यं च। भ २। स ६। ६
स १ शून्य च। आ २। उ ११ मन पर्ययो नहि।

तत्पर्याप्ताना—गु १४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४ शून्यं च। ग १। इ १। का १। यो ९ शून्य च। वे १ स्त्री शून्यं च। क ४ शून्यं च। ज्ञा ७। स ६। द ४। ले ६ शून्य च। भ २। स ६। स ६

---

१ भावस्त्रीणा।

मनःपर्य्ययज्ञानोपयोगं । स्त्रीवेदगळप्प सक्लिष्टरोळु संभविसदप्पुदरिंदं । अपर्य्याप्तमानुषि-
यर्गे । गु २ । मि । सा । सयोग । जी १ । प ६ । अ प्रा ७ ॥ अ । सं ४ । ० । संज्ञारहितरु ।
ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । ० । अयोगरुं । वे १ । स्त्री । ० । अवेदरुं । क ४ । ० ।
अकषायरुं । ज्ञा ३ । कु । कु । के । सं २ । अ । यथाख्यातमुं । द ३ । अ । च । के । ले २ । क । शु
भा ४ अ ३ शु १
भ २ । सं ३ । मि । सा । क्षा । सं । १ । ० । संज्ञित्वशून्यरुं । आ २ । उ ६ । कु । कु । के । ५
च । अ । के ॥

मानुषिसिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का
१ । यो ११ । वै २ । आ २ । शून्यं । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । आ । द
२ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥
६

पर्य्याप्तमानुषिमिथ्यादृष्टिर्गे—गु १ । मि जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । १०
का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ ।
६
सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

अपर्य्याप्तमानुषिमिथ्यादृष्टिगे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ ।
का १ । यो २ । मि । का । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क । शु । भ २ ।
भा ३ अशुभ
सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ १५

मानुषिसासादनंगे—गु १ । सा । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ ।
का १ । यो ११ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ ।
६

---

१ शून्यं च । आ २ । उ ११ । मन पर्ययः स्त्रीवेदिषु नहि संक्लिष्टपरिणामित्वात् । तदपर्याप्ताना—गु ३ मि
सा सयोग. । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का शून्यं च ।
वे १ स्त्री । शून्य च । क ४ । शून्य च । ज्ञा ३ कु कु के । सं २ अ य । द ३ च अ के । ले २ क शु २०
भा ४ अ शु ३ शु १
भ २ । स ३ मि सा क्षा । सं १ शून्यं च । आ २ । उ ६ कु कु के च अ के । मानुषीमिथ्यादृशा—गु १ ।
जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयं नहि । वे १
स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५
६
कु कु वि च अ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ ।
वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ । २५
६
तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ यो २ मि का । वे
१ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासा-
३ अशुभ
दनाना—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ स्त्री ।

सं १ । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

मानुषि सासादनपर्य्याप्तिकेगे । गु १ । सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सं १ । आहा १ । उ ५ ॥

मानुषिसासादनापर्य्याप्तिगे । गु १ । सा । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ॥

मानुषिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

मानुष्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । स १ । आ १ । उ ६ ॥

मानुषिदेशसंयतंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । का १ । इं १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मानुषिप्रमत्तसंयतगें । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ ॥

क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ । द २ । ले ६ भ १ । स १ सा । स १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्त-

सासादनाना—गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । स १ । आ १ । । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ सा । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो २ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । स १ सा । स १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृष्टे —गु १ मिश्रं । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्र । स १ । आ १ । उ ५ । असयताना—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । आ १ । उ ६ । देशसयतस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इं १ । का १ ।

स्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयंगळिदं। आहारद्विकं मनःपर्य्ययज्ञानं परिहारविशुद्धिसंयममुमिल्ल। सं २। सा छे। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

मानुष्यप्रमत्तसंयतरुगे। गु १। जि १। प ६। प्रा १०। सं ३। आहारसंज्ञे शून्यं। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क १। ज्ञा ३। सं २। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १।
भा ३
आ १। उ ६॥ ५

मानुष्यपूर्व्वकरणरुगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं २। सा छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २।
भा १
उ। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिप्रथमभागानिवृत्तिगरुगे।। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं २। मैथु। प। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं २। सा। छे। द ३। ले ६ भ १। १०
भा १
सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिद्वितीयानिवृत्तिगळरुगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ४। ज्ञा १। सं २। द ३। ले ६। भ १। सं २। उ क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा १

यो ९। वे १ स्त्री। क ४। ज्ञा ३। सं १ दे। द ३। ले ६ भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६।
भा ३ अशु
प्रमत्तस्य—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इ १। का १। यो ९, वे १ स्त्री, क ४, १५
ज्ञा ३, स्त्रीनपुसकोदये आहारकद्विमन.पर्ययपरिहारविशुद्धयो नहि स २ सा छे, द ३। ले ६, भ १, स ३
३
उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६, अप्रमत्तस्य—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ३ आहारसंज्ञा नहि, ग १, इ १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं २, द ३, ले ६। भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, अपूर्व-
भा ३
करणाना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ३, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६। भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६; अनिवृत्ते प्रथमभागे—गु १, जी १, २०
भा १
प ६, प्रा १०, सं २ मै प, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं २ सा छे, द ३, ले ६।
भा १
भ १, स २ उ क्षा, सं १। आ १। उ ६, द्वितीयभागे—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स १ परिग्रह. ग १, इ १, का १, यो ९, वे ०, क ४, ज्ञा ३, सं २, द ३, ले ६। भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६,
भा १

मानुषितृतीयभागानिवृत्तिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ३। मा। या। लो। ज्ञा ३। सं २। सा। छे। द ३। ले ६ भ १। भा १ सं २। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिचतुर्त्थभागानिवृत्तिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। स १। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क २। या। लो। ज्ञा ३। सं २। द ३। ले ६। भ १। सं २। सं १। भा १ आ १। उ ६॥

मानुषिपंचमभागानिवृत्तिगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। परिग्रह। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क १। वा=। लो। ज्ञा ३। सं २। सा। छे। द ३। ले ६ भा १ भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

मानुषिसूक्ष्मसांपरायंगे। गु १। सू। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। परिग्रह। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क १। सू=लो। ज्ञा ३। सं १। सू। द ३। ले ६। भ १। सं २। भा १ उ। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

मानुष्युपशांतकषायंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं। ०। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ३। सं १। यथा। द ३। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। भा १ आ १। उ ६॥

तृतीयभागे—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। ग १। इ १। का १। यो ९। वे १। क ३। मा माया लो। ज्ञा ३। स २ सा छे। द ३। ले ६। भ १। स २। सं १। आ १। उ ६। चतुर्थ-भा १ भागे—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। स १। परि। ग १। इ १। का १। यो ९। वे ०। क २ मा लो। ज्ञा ३। स २ सा छे। द ३ ले ६। भ १। स २। स १। आ १। उ ६। पचमभागे—गु १। जी १। भा १ प ६। प्रा १०। स १ प। ग १। इ १। का १। यो ९। वे ०। क १ वा लो। ज्ञा ३। स २ साछे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। स १। आ १। उ ६। सूक्ष्मसापरायस्य—गु १ सू। जी १। प ६। १ प्रा १०। स १ परिग्रह। ग १। इ १। का १। यो ९। वे ०। क १। सू लो। ज्ञा ३। स १ सू। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। स १। आ १। उ ६। उपशातकषायस्य—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। भा १ स ०। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ३। सं १ य। द ३। ले ६। भ १। स १ क्षा। भा १

मानुषिक्षीणकषायंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ । सं १ । यथा । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ६ ।

मानुषिसयोगकेवलिगे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा ४ । २ । अ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ । म २ । व २ । औ २ । का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं १ । यथा । द १ । के ले ६ । भ १ । सं १ । क्षा । सं ० । आ २ । उ २ । के । के ॥
भा १

मानुषिअयोगिकेवलिजिनंगे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ । आयुष्य । सं ० । ग १ । इं । ० । का १ । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ । सं १ । द १ । ले ६ भ १ । सं १ । क्षा । सं । ० ।
भा ०
आ १ । अनाहार । उ २ । के ॥

मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तकरगं । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । षंढ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । असंयम । द २ । च । अ । ले २ क । शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशुभ

इंतु मनुष्यगति समाप्तमावुदु ॥
देवगतियोळु देवर्कळगे पेळल्पडुवल्लि । गु ४ । जी २ । प ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । वै २ । का १ । वे २ । स्त्री । पुं ० । क ४ । ज्ञा ६ । म श्रु अ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ ।
भा ६
उ ९ । म । श्रु । अ । कु । कु । वि । च । अ । अ ॥

स १ । आ १ । उ ६ । क्षीणकषायस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इ १ । का १ यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ सं १ य । द ३ ले ६ । भ १ । स १ यथा । सं १ । आ १ । उ ६ । संयोगस्य—
भा १
गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा ४ २ । स ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औं २ । का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । के । सं १ य । द १ के । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । स १ । आ २ । उ २ के के ।
भा १
अयोगस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ आयु. । स ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । स १ । द १ ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं ० । आ १ अनाहार । उ २ के के । मनुष्यलब्ध्य-
भा ०
पर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे १ प । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ ।
भा ३ अशुभ
आ २ । उ ४ । देवगतौ—गु ४ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ । वा ४ २ । का १ वै । वे २ स्त्री पु । क ४ । ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि । सं १ अ । द ३

देवसामान्यपर्य्याप्तकगर्गे । । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । दे १ । इं १ । का १ । त्र । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । भा ३ आ १ । उ ९ ॥

देवसामान्यापर्य्याप्तकगर्गे । गु ३ । मि । सा । अ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो २ । मि । का । वे २ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । कु । कु । स १ । द ३ ले २ क । शु । भ २ । सं ५ । उ । वे । क्षा मि । सा । सं १ । आ २ । उ ८ । म । श्रु । अ । भा ६ कु । कु । च । अ । अ ॥

देवसामान्यमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥ भा ६

देवसामान्यमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकगर्गे । गु १ । मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । भा ३ सं १ । आ १ । उ ५ ॥

देवसामान्यापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ । क शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । ऊ ४ ॥ भा ६

च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ । स १ । आ २ । उ ९ । म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां— ६ गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ दे । इ १ प । का १ त्र । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ । स १ अ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । स १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी १ भा ३ अ । प ६ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु । स १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ उ वे क्षा मि सा । स १ । आ २ । उ ८ म श्रु अ कु भा ६ कु च अ अ । मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ । भा ६ अ २ । उ ५ कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ । इ १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ । आ १ । भा ३ शुभ उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि

देवसामान्यसासादनंगे। गु १। सा। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २ ले ६। भ १। भा ६ स १। सा। सं १। आ २। उ ५॥

देवसामान्यसासादनपर्य्याप्तकर्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सा। सं १। भा ३ शु आ १। उ ५॥

देवसामान्यसासादनापर्य्याप्तकर्गे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क। शु। भ १। भा ६ सं १। सा। सं १। आ २। ऊ ४॥

देवसामान्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। भा ३ आ १। उ ५॥

देवसामान्यासंयतर्गे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। स। श्रु। अ। सं। अ। द ३। ले ६ भ १। सं ३। भा ३ सं १। आ २। उ ६॥

का। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ४ भा ६

कु कु च अ। सासादनाना—गु १ सा। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इ १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २ ले ६ । भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५। भा ६

तत्पर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। स ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना गु १ जी १ अ। भा ३ शु प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इ १। का १। यो २ मि का। वे २। क ४। ज्ञा २। स १। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। ६ स ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स १ भा ३ मिश्र। सं १। आ १। उ ५। असयताना—गु १। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इ १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ ले ६। भ १। स ३। स १। आ २।

देवसामान्यासंयतपर्याप्तकस्य। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

देवसामान्यासंयतापर्य्याप्तकस्य। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे १। पु०। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले २ क शु भा ३ शु भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥

भवनत्रयदेवस्यैव। गु ४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३। ले ६ भा ४ भ २। सं ५। उ। वे। मि। सा। मि। सं १। आ २। उ ९। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। च। अ। अ॥

भवनत्रयपर्य्याप्तदेवस्यैव। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। कु। कु। वि। सं १। द ३। ले ६ भा १ भ २। सं ५। उ। वे। मि। सा। मि। सं १। आ १। उ ९॥

भवनत्रयापर्य्याप्तदेवस्यैव। गु २। मि। सा। जी १। प ६। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। मि। का। वे। २। क ४। ज्ञा २। स १। द २। ले २ क शु भा ३ अ शु भ २। सं २। मि। सा। सं १। आ २। उ ४॥

उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। स ४। ग १। इ १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। स १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ जी १ भा ३ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग १। इ १। यो २ मि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३। स १। द ३। ले २ क शु। भ १। स ३। स १। आ २। उ ६। भवनत्रयदेवानां—गु ४। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। भा ३ शुभ स ४। ग १। इ १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ६। स १। द ३। ले ६। भ २। स ५ उ वे भा ४ मि सा मि। स १। आ २। उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ। तत्पर्याप्तानां—गु ४। जी १। प ६। प्रा १०। स ४। ग १। इ १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि। स १। द ३ च अ अ। ले ६ भ २। स ५ उ वे मि सा मि। स १ आ १। उ ९। तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा। जी १ १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग १। इ १। का १ यो २ मि का। वे २। क ४। ज्ञा २। स १। द २। ले २ क शु। भ २। स २ मि सा। स १। आ २। उ ४। भा ३ अशु

भवनत्रयमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। मि। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ २। सं १। मि। सं १। भा ४ आ २। उ ५॥

भवनत्रयपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। का ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ २। स १। मि। सं १। भा १ आ १। उ ५॥

भवनत्रयापर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २। क शु भ २। सं १। मि। सं १। भा ३ अ शु आ २। उ ४॥

भवनत्रयसासादनंगे गु १। सा। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६ भ १। सं १। सा। सं १। भा ४ आ २। उ ५॥

भवनत्रयसासादनपर्य्याप्तकग्गें। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ १। सं १। सा। सं १। भा १ आ २। उ ५॥

भवनत्रयसासादनापर्य्याप्तकग्गें। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वे २। क ४। ज्ञा २। सं १। द २। ले २ क शु भ १। सं १। सा। भा ३ अशुभ सं १। आ २। उ ४॥

मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १ जी १, प ६, प्रा १०, भा ४ स ४, ग १, इं १ का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३ ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, १ तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ ७, प्रा १० अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४, सासादनाना—गु १ सा, जी २, भा ३ अशु प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इ १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६ भ १, भा ४ स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, स १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १, भा १ जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, च अ,

भवनत्रयसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २। ले ६ भ १। सं १। मिश्र। सं १। भा १ आ १। उ ५॥

भवनत्रयासंयतग्गें॥ गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले ६ भ १। सं २। उ। वे। सं १। आ १। उ ६॥ भा १

सौधर्म्मैशानदेवर्क्कळ्गे। गु ४। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३ ले ३ पी। प। शु। भ २। स ६। भा १ सं १। आ २। उ ९॥

सौधर्म्मद्वयपर्य्याप्तदेवर्क्कळ्गे। गु ४। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे २। क ४। ज्ञा ६। सं १। द ३। ले १ ते भ २। सं ६। सं १। १ आ १। उ ९॥

सौधर्म्मद्वयापर्य्याप्तदेवर्क्कळ्गे। गु ३। मि। सा। अ। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २। वे २। क ४। ज्ञा ५। कु। कुं। म। श्रु। अ। सं १। द ३ ले २ भ २। सं ५। उ। वे। क्षा। मि। सा। सं १। आ २। उ ८। म। श्रु। अ। भा १ कु। कु। च। अ। अ॥

सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११। वे २। क ४। ज्ञा ३। सं १। द २ ले ३ भ २। सं १। मि। भा १ सं १। आ २। उ ५॥

ले २ क शु भ १, स १ सा, सं १ आ २, उ ४, सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, भा ३ अशु

इ १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ४, स १, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५, भा १

असयताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, स १, द ३, ले ६, भ १, स २ उ वे, स १, आ १, उ ६, सौधर्मैशानदेवाना—गु ४, जी २, प ६, प्रा १० ७, भा १

स ४, ग १, इ १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ६, स १ द ३, ले ३ पी क शु, भ २, स ६, सं १, भा १ ते

आ २, उ ९, तत्पर्याप्ताना—गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ६, स १, द ३ ले १ ते, भ २, स ६, स १, आ १, उ ९, तदपर्याप्ताना—गु ३ मि स अ, जी १, भा १

प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १, इ १, का १, यो २, वे २, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं १, द ३, ले २, भ २, स ५ उ वे क्षा मि सा, स १, आ २ उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ, मिथ्यादृष्टीना—गु १, भा १

सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकस्यं । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले १ भ २ । सं १ । मि । सं १ । भा १ आ १ । उ ५ ॥

सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टि अपर्य्याप्तकस्यं । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ भ २ । सं १ । मि । सं १ । भा १ आ २ । उ ४ ॥

सौधर्म्मद्वयसासादनस्यं । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ ॥ सं १ । द २ ले ३ भ १ । सं १ । सा । सं १ । भा १ आ २ । उ ५ ॥

सौधर्मद्वयपर्याप्तसासादनस्यं । गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले १ भ १ । सं १ । सं १ । आ १ । उ ५ ॥ भा १

सौधर्म्मद्वयसासादनापर्य्याप्तकस्यं । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ क शु भ १ । भा १ सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥

सौधर्म्मद्वयसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ ले १ ते भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । भा १ आ १ । उ ५ ॥

जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, स ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ३, भा १ भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले १, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ १, तदपर्याप्ताना— भा १ गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २, भा १ भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४, सासादनाना—गु १, जी २, प ६, ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इ १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ३, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना— भा १ गु १ सा, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, स १, द २, ले १, १ भ १, स १, स १, आ १, उ ५, तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४, भा १ सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १,

सौधर्म्मद्वयासंयतरग्गे । गु १ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले ३ ते क । शु १ भ १ । सं ३ । उ । भा १ ते वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

सौधर्म्मद्वयपर्य्याप्तासंयतरग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ ले १ भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥ भा १

सौधर्म्मद्वयापर्य्याप्तासंयतरग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । पु० । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले २ क शु भा १ ते भ १ । सं ३ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

अपर्य्याप्तकालदोळुपशमसम्यक्त्वमेंतु संभविसुगुमेंदोडे पेळल्पडुगुं । श्रेणियिंदमवतीर्णरुगळ्गे असंयतादिचतुर्गुणस्थानंगळोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमुंटप्पुदरिंदं अल्लि मध्यमतेजोलेश्येयोळु कालंगेय्दु सौधर्म्मद्वयदेवर्कळोळु उत्पन्नरग्गे अपर्य्याप्तकालदोळुपशमसम्यक्त्वमं पडेयल्पडुगुमेकेंदोडे :—

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥
तेऊ तेऊ तह तेउ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का लेस्सा भवणादिदेवाण ॥

इत्यादिसूत्रसूचितक्रमदिंदमल्लपर्य्याप्तकालदोळुपशमसम्यक्त्वास्तित्वमरियल्पडुगुं । असयतसम्यग्दृष्टिगे स्त्रीवेददोळु उत्पत्तिसंभविसदेंदितु आतंगे पर्य्याप्ताळापमोंदे वक्तव्यमक्कुमल्लि क्षायिकसम्यक्त्वमुमिल्लेकेंदोडे देवगतियोळु दर्शनमोहनीयक्षपणाभावमप्पुदरिंदनिते विशेषमरियल्पडुगुं ।

द २ ले १ ते, भ १, स १ मिश्रं, स १, आ १, उ ५, असयताना—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, स ४, १
ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द ३, ले ३ ते क शु, भ १ स ३ उ वे क्षा, सं १, भा १ ते
आ २, उ ६, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १, इ १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३, स १, द ३, ले १, भ १, स ३, स १, आ १, उ ६, तदपर्याप्ताना—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, भा १
सं ४, ग १, इ १, का १, यो २ मि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३, स १, द ३, ले २ क शु भ १, स ३ सं १, भा १ ते
आ २, उ ६, वैमानिकेषु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागवर्जितोपशमश्रेण्यारोहकावरोहकाणा तदवतीर्णचतुरसयतादीना च तत्सम्यक्त्वमृताना तत्तल्लेश्यया तत्रोत्पत्तेरपर्याप्तकाले संभवति, असयतस्त्रीणामेकपर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टीना तत्रानुत्पत्ते, पर्याप्तकर्मभूमिमनुष्याणामेव दर्शनमोहक्षपणाप्रारभसभवेऽपि तन्निष्ठापकाना चतुर्गतिपूत्पत्तेः, क्षायिकसम्यक्त्वमत्र संभवतीति विशेषः स्मर्तव्यः ।

सानत्कुमारमाहेंद्रदेवर्क्कळगे । गु ४ । जी २ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ । पुंस्त्रीवेदिगळगे सौधर्म्मद्वयदोळे उत्पत्तियप्पुदरिंदं । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । द ३ । ले ४ ते प क १ शु १ भ २ । सं ६ । उ । वे । क्षा । मि । सा । मि । सं १ । भा २ । ते प आ २ । उ ९ ॥

सानत्कुमारद्वयदेवपर्य्याप्तर्गगे । गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । द ३ । ले २ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ ९ ॥
२

सानत्कुमारद्वयदेवापर्य्याप्तकर्गगे । । गु ३ । मि । सा । अ । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । त्र । यो २ । वै० मिश्र १ । का १ । वे १ । पुं० । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥
२

संप्रति मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयतसम्यग्दृष्टि तावच्चतुर्गुणस्थानंगळगे सौधर्म्मपुंवेदभंगं वक्तव्यमक्कुं । ई प्रकारदिंदं मेलेयुं तंतम्मलेश्यानुसारदिंदं वक्तव्यमक्कुं । अनुदिशानुत्तरविमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळगे सम्यक्त्वत्रयाळापं कर्त्तव्यमक्कुमल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे उपशमसम्यक्त्वमं बिट्टु पर्य्याप्तकालदोळु वेदकक्षायिकसम्यक्त्वद्वयमे वक्तव्यमक्कुं । इंतु देवगति समाप्तमादुदु ॥

सिद्धगतियोळु सिद्धर्गगे तंते वक्तव्यमक्कुं । विशेषमुंटावुदेंदोडे अस्ति सिद्धगतिस्तत्र केवलज्ञानकेवलदर्शनक्षायिकसम्यक्त्वसनाहारमुपयोगद्वयमुंटु शेषाळापमिल्ल एकेंदोडे सिद्धरुगळगे एकेंद्रियादिजातिनामकर्म्मोदयाभावमप्पुदरिंदं । इंतु गतिमार्गणेसमार्गणे समाप्तमाय्तु ।

सनत्कुमारमाहेन्द्रदेवानां—गु ४, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, स ४, ग १, इ १, का १, यो ११, वे १ पु कल्पस्त्रीणा सौधर्मद्वय एवोत्पत्ते, क ४, ज्ञा ६, सं १, द ३, ले ४ ते प क शु, भ २, स ६ उ वे क्षा मि सा मि, सं १, आ २, उ ९, तत्पर्याप्तानां—गु ४, जी १, प ६, प्रा १० भा २ ते प, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, का ४, ज्ञा ६, सं १, द ३, ले २, भ २, स ६, सं १, आ १, उ ९ ।
२

तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा १० ७ अ, सं ४, ग १ दे, इं १ पं, का १ त्र, यो २ वै मि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स १, आ २, उ ८, तन्मिथ्यादृष्ट्याद्यसयतान्तानां सौधर्मपुवेदवद्वक्तव्यं एवमुपर्यपि स्वस्वलेश्यानुसारेण योज्यं, अनुदिशानुत्तरविमानजानामसंयतालाप एव तत्राप्ययं विशेष, पर्याप्तकाले वेदकक्षायिकसम्यक्त्वद्वयमेव, सिद्धगतौ सिद्धानां यथासम्भवं वक्तव्यं, अस्ति सिद्धगतिस्तत्र केवलज्ञानदर्शनक्षायिकसम्यक्त्वानाहारोपयोगद्वयेभ्यः शेषालापो नास्ति सिद्धानामेकेन्द्रियादिनामोदयाभावात्, गतिमार्गणा गता ।
२

इंद्रियानुवाददोळु मूलौघालापमक्कुं। सामान्यैकेंद्रियंगळ्गे पेळल्पडुवल्लि। गु १। मि। जी ४। वा। सू=। प। अ। प ४। ४। प्रा ४। ३। सं ४। ग १। ति। इं १। ए। का ५। त्रसरहितमागि योग ३। औदारिक तन्मिश्रकार्म्मण। वे १। षंढ। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द १। अचक्षु। ले ६। भ २। स १। मि। सं। अ १। आ २। उ ३। कु। कु। अचक्षु।
भा ३ अशुभ

सामान्यैकेंद्रिय पर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जि २। बा० सू०। प ४। प्रा ४। ए। का उ। आयुः। सं ४। ग १ ति। इं १। ए। का ५॥ त्रसरहितमागि। यो १। औ का वे १। षंढ। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द १। अचक्षु ले ६। भ २। सं १। मि। सं १।
भा ३ अशु
असंज्ञि। आ। उ ३। कु। कु। अचक्षुदर्शन॥

सामान्यैकेंद्रियापर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जी २। बा। अ० सू अ। प ४। अ प्रा ३। अ सं ४। ग १। ति इं १। ए। का ५। यो २। मि। का। वे १। ष०। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द १। अचक्षु ले २ क शु भ २। सं १। मि। सं १। अ सं। आ २। उ ३।
भा ३ अशु
कु। कु। अच॥

बादरैकेंद्रियंगळ्गे। गु १। मि। जी २। प। अ। प ४। ४। प्रा ४। ३। सं ४। ग १। ति। इं १। ए। का ५। यो ३। औ। मि। का। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द १। अ च। ले ६। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ३॥
भा ३ अशु

बादरैकेंद्रिय पर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जी १। प ४। प्रा ४। स ४। ग १। ति इं १। ए। का ५ यो १। औ काय। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अ च ले ६ भ २।
भा ३ अशु
सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ १। उ ३॥

इन्द्रियानुवादे मूलौघ —तत्र सामान्यैकेन्द्रियाणा—गु १ मि, जी ४ वा सू प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५ त्रसोनहि, यो ३ औदारिकतन्मिश्रकार्मणा', वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द १ अ, ले ६ भ २, स १ मि, स १ असज्ञा, आ २, उ ३ कु कु अचक्षु । तत्पर्याप्तानाम—गु १ मि,
भा ३ अशु
जी २ वा प सू प, प ४ ए, प्रा ४ ए का उ आयु, स ४, ग १ ति, इ १ ए, का ५, त्रसो नहि, यो १ औ, वे १ स, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द १ अच, ले ६ भ २, स १ मि, स १ असज्ञी, आ १, उ ३ कु कु
भा ३ अशु
अचक्षुर्दर्शन, तदपर्याप्तानाम—गु १ मि, जी २ वा अ सू अ, प ४ अ, प्रा ३ अ, सं ४, ग १ ति, इ १ ए, का ५, यो २ मि का, वे १ प, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु, भ २, स १ मि,
३ अ शु
सं १ असज्ञी, आ २, उ ३ कु कु अच, बादराणा—गु १ मि, जी २ प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, स ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो ३ औ मि का, वे १ प, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द १ अच, ले ६, भ २,
३ अशु
स १ मि, सं १ असज्ञी, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानाम—गु १ मि, जी १ प, प ४, प्रा ४, स ४, ग १ ति, इं १

बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ४ । अ । प्रा ३ । ए । का । आ । सं ४ । ग १ । ति । इ १ । का ५ । यो २ । मि । का । वे । १ । ष ० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अ

इंतु बादरपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयसहितर्गे आलापत्रयं पेळल्पट्टुदपर्य्याप्तनामकर्मोदयसहित बादरैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकर्गे पेळल्पडुवल्लि बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तालापपंतालापमक्कुं ॥ ५

सूक्ष्मैद्रियंगलगे । गु १ । मि । जी २ । प । अ प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । स ४ । ग १ । इं १ । ए । का ५ । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच । ले २ क शु एकें दोडे :—
भा ३ अशु

सव्वेसिं सुहुमाणं काओदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥ १०

एंब नियममुंटप्पुदरिंद । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥

सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी १ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ । इं १ । का ५ । यो १ । औ का । वे १ । ष ९ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च । ले ६ क भ २ ।
भा ३
सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ १ । उ ३ ॥

ए, का ५, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ ३ अशु १५

असंज्ञी, आ १, उ ३, तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी १ अ, प ४ अ, प्रा ३ ए का आ, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो २ मि का, वे १ प, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १
भा ३ अशु

असज्ञी, आ २, उ ३, एवं बादरपर्याप्तानामोदयानामेकेन्द्रियाणामुक्तं, अपर्याप्तनामोदयाना तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तु तदपर्याप्तवद्योज्य,

सूक्ष्माणा—गु १ मि, जी २ प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो ३ औ २ का १, वे १ पं, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द १ अच, ले २ क शु २०

भा ३ अशु—कुतः ?

सव्वेसिं सुहुमाण काओदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ॥१॥
सर्वेषा सूक्ष्माणा कापोता सर्वविग्रहे शुक्ला ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥१॥ २५

भ २, स १ मि, सं १ असज्ञि, आ २, उ ३, तत्पर्याप्ताना—गु १, जी १, प ४, प्रा ४, सं ४, ग १, इं १, का ५, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अचक्षु, ले १ क, भ २, सं १ मि, स १ असंज्ञी,
भा ३ अशु

सूक्ष्मैकेंद्रियाऽपर्य्याप्तकरगे । गु १ । जी १ । प ४ । अ । प्रा ३ । ए । का । आ । सं ४ । ग १ । इं १ । का ५ । यो २ । मि । का । वे १ । षं ० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥
भा ३

इंतु पर्य्याप्तनामकर्म्मोदय सहितरप्प सूक्ष्मैकेंद्रिय निर्वृत्यपर्य्याप्तकरगे आलापत्रयं पेळल्पट्टुदु ।

सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तनामकर्म्मोदयसहितरगे ओंदे अपर्य्याप्तालापं वक्तव्यमक्कुमदुवुं सूक्ष्मकेंद्रियापर्य्याप्तालापदंतक्कु । विशेषमिल्ल ॥

द्वींद्रियंगळगे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ५ । ५ । प्रा ६ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । द्वि । का १ । त्र । यो ४ । औ २ । वा १ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । स १ । अ । द १ । अ च । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अ शु

द्वींद्रियपर्य्याप्तकरगे । गु १ । जी १ । प ५ । प्रा ६ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । वा १ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ १ । उ ३ ॥
भा ३

द्वीद्रियापर्य्याप्तकरगे । गु १ । जी १ । अ । प ५ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । द्वी । का १ । त्र । यो २ । मि । का । वे १ । ष० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ । च । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अ शु

द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तंगो दे अपर्य्याप्तालापं माडल्पडुगे । त्रीद्रियंगळगे गु १ । जी २ । प ५ । ५ । प्रा ७ । ५ । स ४ । ग १ ति । इं १ त्रि । का १ त्र यो ४ । औ २ वा १ । का । १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ । च । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ २ । उ ३ ॥
भा ३

आ १, उ ३ । तदपर्याप्ताना–गु १, जी १, प ४ अ, प्रा ३ ए का आ, सं ४, ग १, इ १, का ५, यो २ मि का, वे १ ष, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ च अक्षु, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १ अ, आ १, उ ३ ।
भा ३ अशु

तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तदपर्याप्तवत्, द्वीन्द्रियाणा–गु १ मि, जी २ प अ, प ५ ५, प्रा ६, ४, सं ४, ग १ ति, इं १ द्वी, का १ त्र, यो ४, औ २, वाक् १, का १ वे १ ष, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ च अ, ले ६, भ २,
भा ३ अशु

स १ मि, स १ असज्ञी, आ २, उ ३ । तत्पर्याप्ताना–गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ६, सं ४, ग १ ति, इ १ द्वी, का १ त्र, यो २, वा १, का १, वे १ ष, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि,
भा ३

स १ अ, आ १, उ ३ । तदपर्याप्ताना–गु १, जी १, प ५ अ, प्रा ४ अ, स ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ ष, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द १ अ च, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १, आ २, उ ३ ।
भा ३ अ शु

तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तदपर्याप्तवत्, त्रीन्द्रियाणा–गु १, जी २, प ५ ५, प्रा ७ ५, स ४, ग १ ति, इ १ त्री, का १ त्र, यो ४ औ २ वा १ का १, वे १ ष, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द १ अ च, ले ६, भ २,
भा ३

त्रींद्रियपर्य्याप्तकरुगे । गु १ । जी १ । त्री । प । प ५ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । त्री । का १ । त्र । यो २ । औ । वा । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ द १ । अच । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ १ । उ ३ ॥
भा ३

त्रींद्रियापर्य्याप्तरुगे । गु १ । जी १ । प ५ । अ प्रा ५ । अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ द १ । अच । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ २ । उ ३ ॥
भा ३ अशु

त्रींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकरुगेयुमी प्रकारदिंदमो देआळापमक्कुं ॥ चतुरिंद्रियरुगळगे । गु १ । मि । जी २ । प । अ प ५ । ५ । प्रा ८ । ६ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । चतुरिंद्रिय । का १ त्र । यो ४ । औ २ । वा १ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च अ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ २ । उ ४ ॥
भा ३

चतुरिंद्रियपर्य्याप्तकरुगे । गु । मि । जी १ । च । प ५ । प्रा ८ । च ४ । वा १ । का १ । उ १ । आ १ । सं ४ । ग १ । इं १ । च । का १ । त्र । यो २ । औदारिक का १ । वा १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ द्रव्य भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ १ । ऊ ४ ॥
भा ३ । अ शु

चतुरिंद्रियापर्य्याप्तकरुगे । गु १ । जी १ । प ५ । अ । प्रा ६ । च ४ । का १ । आ १ । सं ४ । ग १ । इं १ । च । का १ । यो २ । मि । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । ऊ ४ ॥
भा ३ अशु

इंतु आळापत्रयं पेळल्पट्टुदु ॥

स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ३ । तत्पर्याप्ताना–गु १ मि, जी १ त्री प, प ५, प्रा ७, सं ४, ग १ ति, इ १ त्री, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले ६, भ २, स १
भा ३
मि, स १ अ, आ १, उ ३ । तदपर्याप्ताना–गु १, जी १, प ५ अ, प्रा ५ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २,
भा ३ अ शु
उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तदपर्याप्तवत्, चतुरिन्द्रियाणा–गु १ मि, जी २ प अ, प ५ ५, प्रा ८, ६, सं ४, ग १, इं १ चतुरि, का १ त्र, यो ४ औ २ वा १ का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६,
भा ३
भ २, स १ मि, स १ अ, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना–गु १ मि, जी १ च प, प ५, प्रा ८ च ४ वा १ का १ औ १ आ १, स ४, ग १ ति, इं १ च, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ४ । तदपर्याप्ताना–गु १, जी १ अ, प ५ अ,
भा ३
प्रा ६ अ, च ४, का १ आ १, सं ४, ग १, इं १ च, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १

चतुरिंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकंगों दे अपर्य्याप्तालापं वक्तव्यमक्कुमिदरंते । विशेषमिल्ल । पंचेंद्रियंगळ्गे । गु १४ । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ६ । ६ । प ५ ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सयोगि ४ । २ । अयोग प्रा १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥
६

पंचेंद्रियपर्य्याप्तकर्गे गु १४ । जी २ । सं अ । प ६ । सं ५ । अ । प्रा । १० । सं । ९ । अ । सं । ४ सयोगि । १ । अयोगि । सं ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । औ । वै । आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥
६

पंचेंद्रियापर्य्याप्तकर्गे । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । सयोग । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्त असंज्ञ्यपर्य्याप्त । प ६ । सं ५ । अ । असंज्ञि । प्रा ७ । संज्ञि ७ । असंज्ञि २ । सयोग । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ४ । औ मि १ । वै मिश्र १ । आहा मि १ । कार्म्म १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । म । श्रु । अ । के । कु । कु । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ । च । अ । अ । के । ले २ क । शु भ २ । सं ५ । उ । वे । क्षा । मि । सा । सं २ । आ २ । उ १० ॥
भा ६

पंचेंद्रियमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ४ । सज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त असंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयवर्जि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ भ २ । सं १ ।
६

मि । सं २ । आ २ । उ ५ । कु । कु । वि । च । अ ॥

अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १ अ, आ २, उ ४ । तल्लब्ध्यपर्याप्तस्य तदपर्याप्तवत्,
भा ३ अशु

पचेन्द्रियाणा–गु १४, जी ४, सज्ञसज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता , प ६ ६, प्रा १० ७, ९, ७, सयोगस्य ४, २, अयोगस्य १, स ४, ग ४, इ १ प, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, स २,
भा ६

आ २, उ १२ । तत्पर्याप्ताना–गु १४, जी २ स, अ, प ६ स, ५ अ, प्रा १० स, ९ अ स, ४ सयो, १ अयो, स ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ वा ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, स २, आ २, उ १२ । तदपर्याप्ताना–गु ५ मि सा अ प्र स, जी २ सज्ञसज्ञिपर्याप्तौ ।
६

प ६ अ, स ५ असज्ञी, प्रा ७ सज्ञि ७ अ सज्ञि २ सयोग, सं ४, ग ४, इ १ प, का १ त्र, यो ४ औमिआहारकमिश्र-वै-मिश्र-कार्मणा, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, सं ४ अ स छे यथा, द ४ च अ अ के, ले २ क शु, भ २, स ५ उ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ १० । मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ४
भा ६

संज्ञसज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता , प ६ ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, स ४ ग ४, इं १ प, का १ त्र यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि
६

पंचेंद्रियमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी २ । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ । वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥
६

पंचेंद्रियमिथ्यादृष्टयपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी २ । सं १ । अ १ । प ६ । अ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । अ । च । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । ऊ ४ ॥
भा ६ । अ शु

सासादनसम्यग्दृष्टिमोदलादयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमो प्रकारदिं संज्ञिपंचेंद्रियंगळ-सकलाळापंगळु वक्तव्यंगळप्पुवु ॥

असंज्ञिपंचेंद्रियंगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । असंज्ञिपर्य्याप्तापर्याप्त । प ५ । ५ । प्रा ९ । ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ४ ॥ औ २ का १ । अनुभयवचन । १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ४ ॥
भा ३ अशुभ

असंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । प ५ । प्रा ७ । ९ । सं ४ । ग १ । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । औ का १ । अनुभयवचन । १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ १ । उ ४ ॥
भा ३

पंचेंद्रियासंज्ञ्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । प ५ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । औ मि १ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु भ १ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ि । आ २ । उ ४ ॥
भा ६ अशु

च अ । तत्पर्याप्ताना–गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १०, ९, सं ४, ग ४, इ १, का १ यो १० म ४ वा ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ १,
६
उ ५ । तदपर्याप्ताना–गु १, जी २, संज्ञ्यपर्याप्तौ, प ६ अ, ५ अ, प्रा ७ ७ अ, स ४, ग ४, इं १ प, का १ त्र, यो ३ आ मि, वै मि, कार्म्मण, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि,
भा ६
स २, आ २, उ ४ ।

सासादनादीना गुणस्थानवत्, असज्ञिना—गु १ मि, जी २ तत्पर्याप्तापर्याप्तौ, प ५ ५, प्रा ९ ७, स ४, ग १ ति, इं १ प, का १ त्र, यो ४ औ २ का १ अनुभयवचन १, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ९,
भा ३ अशु
स ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ १ अनुभयवाक् १, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले ६,
भा ४
भ २, स १ मि, स १ अस, आ १, उ ४ । तदपर्याप्ताना–गु १ मि, जी १, प ५ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु भ २,
भा ३

संप्रतिसामान्यपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी २ । संज्ञ्यपर्य्याप्तासंज्ञ्यपर्य्याप्त । प ६ । अ । सं ५ । अ । अ । प्रा ७ । सं । अ । ७ । अ । अ । स ४ । ग २ ति । म । इं १ । प । का १ । त्र । यो २ । औमि १ । का १ । वे १ । ष० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । च । अ ले २ क । शु भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । ऊ ४ ॥

भा ३ अशु

संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी १ । म० अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । स ४ । ग २ ति । म । इं १ । प । का १ । त्र । यो २ । औ मि । का १ । वे १ । ष० । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । संज्ञि । आ २ । ऊ ४ ॥

भा ३ अशु

असंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । मि । जी १ । प ५ । अ । प्रा ७ । अ सं ४ । ग १ ति । इं १ । पं । का १ । त्र । यो २ । औ मि । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । स १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असंज्ञि । आ २ । उ ४ ॥

भा ३ अशु

अनिंद्रियरुगळ्गे सिद्धगतियोळ्पेळ्दंतयक्कुमेकेंदोडे सिद्धरुगळ्गे एकेंद्रियादिनामकर्म्मोदयाभावमप्पुदरिंदमतीद्रियमार्ग्गणे समाप्तमादुदु ॥

कायानुवाददोळु । गु १४ । जी ५७ । ९८ । ४०६ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । ४ । २ । १ । सं ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । स ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥

६

स १ मि, स १ असज्ञी, आ २, उ ४ । पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्ताना—गु १ मि, जी २ सज्ञसज्ञपर्याप्तौ, प ६ अ, स ५ अ अ, प्रा ७ स अ, ७ अ अ, स ४, ग २ ति म, इ १ प, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे १ प, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ४ ।

भा ३ अशु

तत्सज्ञिना—गु १ मि, जी १ प अ, प ६ प, प्रा ७ अ अ, स ४, ग २ ति म, इ १ प, का १ त्र, यो २, औमि का, वे १ प, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १ संज्ञी, आ २, उ ४ ।

भा ३ अशु

तदसज्ञिना—गु १ मि, जी १, प १ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ ति, इ १ प, का १ त्र, यो २ औमि का, वे १ प, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, स १ अ, आ २, उ ४ ।

भा ३ अशु

अतीन्द्रियाणा सिद्धगतिवत् । इति इन्द्रियमार्गणा गता ।

कायानुवादे—गु १४, जी ५७ ९८ ४०६, प ६ ६, ५ ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९ ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४ ३, ४ २ १, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६, भ २ स

६

६, स २, आ २, उ १२ ।

षट्कषायसामान्यपर्य्याप्तकरुगे । गु १४ । जी १९ । ३७ । १८६ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । सयोगि । ४ । ४ । अयोगि १ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । मिश्र-चतुष्कहीनं । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १२ ॥
६

षट्कषायसामान्यापर्य्याप्तकरुगे । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । सयो । जी ३८ । ६१ । २२० । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । स ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । मिश्र चतुष्टयं । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ ॥ मनःपर्य्ययविभंगरहितं । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ ले २ क शु भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ १० । ज्ञा ६ । द ४ ॥
भा ६

मिथ्यादृष्टिप्रभृतिगळ्गे मूलौघभंगमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टि त्रिविधरुगळ्गे कायानुवाददल्लि मूलौघदोळु पेळ्दजीवसमासगळु वक्तव्यंगळप्पुवु । नास्त्यन्यत्र विशेषः ॥

पृथ्वीकायंगळ्गे । गु १ । जी ४ । बादरपर्य्याप्तापर्य्याप्तसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ सं । द १ । अच । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥
भा ३

पृथ्वीकायपर्य्याप्तकरुगे । गु १ । जी २ । बा । सू । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । ए । का १ पृ । यो २ । औ का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले ६
भा ३
भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । स । आ १ । उ ३ ॥

तत्पर्याप्ताना—गु १४ । जी १९ । ३७ । १८६ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । ४ । १ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । मिश्रत्रयकार्मणाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । तदपर्याप्ताना—गु ५ मि सा अ प्र स ।
६
जी ३८ । ६१ । २२० । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ । सं ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो ४ त्रयो मिश्रा. कार्मणश्च । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ मन पर्ययविभगाभावात् । स ४ अ सा छे यथा । द ४ । ले २ क शु ।
भा ६
भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । स २ । आ २ । उ १० ज्ञा ६ द ४ । मिथ्यादृष्ट्यादीना मूलौघ. किन्तु सामान्यादित्रिविधमिथ्यादृष्टीनामेव कायानुवादमूलौघोक्तजीवसमासा वक्तव्याः । अन्यत्र विशेषो नास्ति ।

पृथ्वीकायिकाना—गु १ । जी ४ बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ता. । प ४ ४ । प्रा ४ । ३ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ पृ । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले ६
३
भ २ । स १ मि । स १ अस । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ वा सू । प ४ । प्रा ४ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ पृ । यो १ औ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच ।

पृथ्वीकायापर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । जी २ । बा ० अ । सू ० अ । प ४ । अ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो २ । औ मि । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥

भा ३ अशु

बादरपृथ्वीकायिकंगळ्गे । गु १ । जी २ । प । अ । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो ३ । औ २ । का । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । उ ३ ॥

भा ३ अशु

बादरपृथ्वीकायपर्य्याप्तकर्ग्ग । गु १ । मि । जी १ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ । ति । इं १ । ए । का १ । पृ । यो १ । औ । वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ सं । द १ । अ च । ले ६ भ २ । स १ । मि । सं १ । अ । आ १ । उ ३ ॥

भा ३

बादरापर्य्याप्तपृथ्वीकायंगळ्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ४ । अ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ । ए । का १ पृथ्वी । यो २ । मि । का वे १ । षं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । असं । द १ । अच । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । उ ३ ॥

भा ३ अशु

बादरपृथ्वीकायलब्ध्यपर्य्याप्तकर्गे अपर्य्याप्तकंगे पेळ्दंते पेळ्वुकोळ्गे । सूक्ष्मपृथ्वीकायंगे सूक्ष्मैकेंद्रियदते पेळ्दुकोळ्गे । अल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे सूक्ष्मपृथ्वीकायंगे दिताळापमं माळ्के । अप्कायिकंगळ्गे पृथ्वीकायिकंगळ्गे पेळदंते पेंळ्वुकोंबुदु । विशेषमुंटदावुदेंदोडे द्रव्यदिंद बादरपर्य्याप्तियोळु शुक्ललेश्ययय्क्कुं । तेजस्कायिकंगळ्गे लेश्येयोळभेदमंटावुदेंदोडे द्रव्यदिंदं सूक्ष्मुंगळ्गे

ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु १ । जी २ वा अ सू अ । प ४
भा ३
अ । प्रा ३ अ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ पृ । यो २ औमि का । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । स १
अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ २ । उ ३ । तद्बादराणा—गु १ । जी २
भा ३ अशु
प अ । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ पृ । यो ३ औ २ का १ । वे १ ष । क ४ ।
ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले ६ भ २ । स १ मि । स १ अस । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १
भा ३ अशु
मि । जी १ । प ४ । प्रा ४ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ पृ । यो १ औ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा
२ । स १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु १
भा ३
मि । जी १ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ पृ । यो २ मि का । वे १ ष ।
क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स १ अस । आ २ । उ ३ ।
भा ३ अशु
तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तदपर्याप्तवत् । तत्सूक्ष्माणा सूक्ष्मैकेन्द्रियवत् । अप्कायिकाना पृथ्वीकायिकवत् । किन्तु द्रव्यतो बादरपर्याप्ते शुक्ला तेजस्कायिकेपु सूक्ष्माणा पर्याप्तमिश्रकालयो कपोता । बादराणा पर्याप्तकाले

कपोतमे बादरंगळगे पर्य्याप्तियोळु पीतवर्णमे उभयक्कं। विग्रहगतियोळु शुक्लमे। वातकायिकंगळगेयुमपर्य्याप्तकालदोळु गोमूत्रमुद्गाव्यक्तवर्णमक्कुं। वनस्पतिकायिकंगळगे। गु १। जी १२॥

प्रतिष्ठितप्रत्येक पर्य्याप्तापर्य्याप्त अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्य्याप्तापर्य्याप्त ४। नित्यनिगोदबादरसूक्ष्मचतुर्गतिनिगोदबादरसूक्ष्मंगळंतु ४ क्कं पर्य्याप्तापर्य्याप्तभेदर्दिदमेंटुकूडि पन्नेरडु। प ४। ४। प्रा ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं १। ए। का १। वन। यो ३। औ। का मि। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द १। अच। ले ६ भ २। सं १। मि। सं १ अ सं। आ २। उ ३॥
भा ३

वनस्पतिपर्य्याप्तकंगे। गु १। जी ६। प्र। अ। नित्यनिगोद बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तचतुर्गतिनिगोदबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तंगळु प ४। प्रा ४। सं ४। ग १ ति। इं १। ए। का १। वन। यो १। औ। वे १। षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १। अच। ले ६ भ २। सं १ मि। सं १। अ। आ १। उ ३॥
भा ३

वनस्पतिकायिकापर्याप्तकग्गें। गु १। मि। जी ६। अ। प ४ अ। प्रा ३। अ। सं ४। ग। ति १। इं १। ए। का १ वन। यो २। मि का। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले २ कशु भ २। सं १ मि। सं १। अ सं। आ २। उ ३॥
भा ३ अशु

प्रत्येकवनस्पतिगळगे। गु १ मि। जी ४। प्रति। अप्रति। प। अ। प ४। ४। प्रा ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ वन। यो ३। औ २। का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६ भ २। सं १ मि। सं १। अ सं। आ २। उ ३॥
भा ३

पीता। उभयविग्रहगतौ शुक्ला। वातकायिकाना अपर्याप्तकाले कपोता। विग्रहगतौ शुक्ला। पर्याप्तकाले गोमूत्रमुद्गाव्यक्तवर्णा।

वनस्पतिकायिकाना—गु १। जी १२ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ता.। प ४ ४। प्रा ४ ३। स ४। ग १ ति। इ १ ए। का १ व। यो ३ औ २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। स १ अ। द १ अच। ले ६। भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ३। तत्पर्याप्ताना—
३
गु १। जी ६ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः। प ४। प्रा ४। स ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो १ औ। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६। भ २।
३
स १ मि। सं १ अ। आ १। उ ३। तदपर्याप्ताना—गु १ मि। जी ६ अ। प ४ अ। प्रा ३ अ। स ४। ग १ ति। इ १ ए। का १ व। यो २ मि का। वे १ ष। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६
३
भ २। स १ मि। स १ अ। आ २। उ ३। प्रत्येकाना—गु १ मि। जी ४ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ। प २ अ २। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो ३ औ २ का १। वे १ षं।

प्रत्येकशरीरवनस्पतिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी २ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ भ २ । भा ३ सं १ । मि । सं १ । अ सं । आ २ । उ ३ ॥

प्रत्येकशरीरापर्य्याप्तवनस्पतिगे । गु १ मि । जी १ । प ४ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो २ । मि । का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले २ क शु भ २ । सं १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ ॥ भा ३ अ शु

इंतु निर्वृत्यपर्य्याप्तकर्गर्गे आलापत्रयं पेळल्पट्टुवु । लब्ध्यपर्य्याप्तकर्गर्गे यो दे आळापमक्कुमदुवुं प्रत्येकबादरनिगोदप्रतिष्ठितंगळ्गे तु पेळ्दंते वक्तव्यमक्कुं ॥

साधारणवनस्पतिगळ्गे गु १ मि । जी ८ ॥ नित्यचतुर्गतिबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ ॥ भा ३

साधारणवनस्पतिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ४ । नित्यचतुर्गतिबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकरु । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अ च । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । अ । आ १ । उ ३ ॥ भा ३

क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ अस । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना— ३ गु १ मि । जी २ । प ५ ४ । प्रा ४ स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ असं । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु ३ १ । जी २ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स १ अस । आ २ । उ ३ । ३

तल्लब्ध्यपर्याप्ताना तन्निर्वृत्यपर्याप्तवत् ।

साधारणाना—गु १ मि । जी ८ वादरसूक्ष्मनित्येतरनिगोदा पर्याप्तापर्याप्ता । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी ४ वादरसूक्ष्म- ३ नित्यचतुर्गतिनिगोदा पर्याप्ताः । प ४ । प्रा ४ । स ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ प । क ४ । ज्ञा २ । स १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ १ । उ ३ । ३

साधारणवनस्पत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे । गु १ । जी ४ । नित्यचतुर्गतिबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकरु । प ४ । अ । प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ । साधारणवनस्पति । यो २ । मि १ । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अचक्षु ले २ भ २ । स १ । मि । सं १ । भा ३

असंज्ञि । आ २ । उ ३ ॥

साधारणबादरवनस्पतिगळ्गे । गु १ । मि । जी ४ । नित्यचतुर्गतिपर्य्याप्तापर्य्याप्तकरु । प ४ । ४ । प्रा ४ । ३ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो ३ । औ २ । का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ अच । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ । असं । आ २ । उ ३ ॥ भा ३

साधारणबादरपर्य्याप्तकरुगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । नित्यचतुर्गतिपर्य्याप्तकरु । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो १ । औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं १ अ सं । आ १ । उ ३ ॥ भा ३

साधारणबादरापर्य्याप्तकरुगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । साधारणबादरनित्यचतुर्गति अपर्य्याप्तकरु । प ४ । अ प्रा ३ । अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ वन । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द १ । अच ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं १ । भा ३ अशु

असं । आ २ । उ ३ ॥

इंतु साधारणबादरवनस्पतिगे आलापत्रयं पेळल्पट्टुदु । आ लब्ध्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे ओंदोंदे आळापमक्कुं । साधारणसर्व्वसूक्ष्मंगळ्गे सूक्ष्मपृथ्वीकायंगळ्गे पेळ्दंते पेळ्दुकोंबुदु । अल्लि विशेष-

---

तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदा अपर्याप्ताः । प ४ अ । प्रा ३ । सं ४ । ग १ ति । इ १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ ष । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ । भ २ । स १ मि । सं १ अस । आ २ । उ ३ । तद्बादराणां—गु १ मि । जी ४ नित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ता । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ प । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ । नित्यचतुर्गतिपर्याप्तौ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्ताना—गु १ जी २ । बादरनित्यचतुर्गती अपर्याप्तौ । प ४ अ । प्रा ३ अ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स १ अ । आ २ । उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तन्निर्वृत्यपर्याप्तवत् । भा ३ अशु

साधारणसर्वसूक्ष्माणा सूक्ष्मपृथ्वीकायवत् । किंतु जीवसमासाश्चत्वारः नित्यनिगोदानां चतुर्गतिनिगोदाना च

मावुदेंदोडे नाल्कु जीवसमासेगळ्गं सूक्ष्मसाधारणवनस्पतिगे दितु वक्तव्यमक्कुं। मुळिदंते निर्व्विशेषमक्कुं। चतुर्गति निगोदंगळ्ग साधारणवनस्पतिगे पेळ्द क्रममेयक्कुं। नित्यनिगोदंगळ्गमुमा क्रममेयक्कुं। अल्लिगुपयोगिगाथा :—

पुढवीआदिचउण्णं केवळिआहारदेवणि रयंगा।
अपदिट्ठिदा हु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥

त्रसकायंगळ्गे। गु १४। जी १०। बि। ति। च सं पं। अ पं प ६। ६। ५। ५।
२ २ २ २ २
प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। २। १। सं ४। ग ४। इ ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६ भ २। सं ६। सं २।
६
आ २। उ १२॥

त्रसपर्याप्तकग्गं। गु १४। जी ५ बि। ति। च। पं सं। पं अ। प ६। ५। प्रा १०। ९।
१ १ १ १ १
८। ७। ६। ४। १। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४ ले ६ भ २। सं ६। सं २। आ २। उ १२। त्रसाऽपर्य्याप्तकग्गं गु ५।
६
मि। सा। अ। प्र। स यो। जी ५ बि। ति। च। पं सं। अ सं प ६। अ ५। अ प्रा। ७।
१ १ १ १ १
७। ६। ५। ४। २। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो ४। मिश्रत्रयकार्म्मणयोगंगळु। वे ३। क ४। ज्ञा ६। म। श्रु। अ। के। कु। कु। सं ४। अ। सा। छे।

साधारणवत्। अत्रोपयोगिगाथा—

पुढवीयादिचउण्ह केवलिआहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदा हु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥१॥

त्रसकायाना—गु १४। जी १० वि ति च स असं। पं ६ ६। ५ ५। प्रा १० ७। ९। ७। ८। ६।
२ २ २ २ २
७ ५ ६ ४। ४। २। १। स ४। ग ४। इ ४ वि ति च प। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। स ६। स २। आ २। उ १२। तत्पर्याप्ताना—गु १४। जी ५। वि ति च
६ १ १ १
स असं। प ६ ५। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ १। स ४ ग ४। इ ४ वि ति च पं। का १ त्र। यो ११। वे ३।
१ १
क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। स ६। सं २। आ २। उ १२। तदपर्याप्ताना—गु ५ मि
६
सा अ प्र स। जी ५ वि ति च स असं। प ६ अ। ५ अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। २। स ४। ग ४। इ ४ वि ति च पं। का १ त्र। यो ४ मिश्रा. ३ कार्मण.। वे ३। क ४। ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु।
१ १ १ १

यथा। द ४ ले २ क शु भ २। सं ५। मि। सा उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ १०॥
भा ६

त्रसमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि।। जी १०। । बि। ति। च। सं। अ। प ६। ६।
२ २ २ २ २

५। ५। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ४। का १ त्र। यो १३।
आहारद्वयवर्ज्जितमागि। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द। २ ले ६ भ २।
६

सं १। मि। सं २। आ २। उ ५॥ ५

त्रसपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ५। बि। ति। च। पं। अ प ६। ५।
१ १ १ १ १

प्रा १०। ९। ८। ७। ६। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं। का १ त्र। यो १०।
१ १ १ १

म ४। वा ४। औ १। वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६ भ २। सं मि।
६

सं २। आ १ उ ५॥

त्रसाऽपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ५। बि। ति। च। सं। अ प ६। ५। १०
१ १ १ १ १

अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। सं ४। ग ४। इं ४। बि। ति। च। पं का १। त्र। यो ३।
१ १ १ १

औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु भ २। सं १।
भा ६

मि। सं २। आ २। उ ४॥

सासादनसम्यग्दृष्टिप्रभृतियागि अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं॥

सं ४ अ सा छे य। द ४। ले २ क शु। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा। सं २। आ २। उ १०। १५
भा ३

मिथ्यादृशां—गु १ मि। जी १० वि ति च सं असं। प ६ ६। ५ ५। प्रा १० ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५,
२ २ २ २ २

६, ४, सं ४, ग ४, इं ४, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वयं नहि। वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ।
द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी ५ वि ति च सं अ।
१ १ १ १ १

प ६। ५, प्रा १० ९ ८ ७, ६, सं ४। ग ४, इं ४, वि ति च पं। का १ त्र, यो १० म ४ वा ४ औ १
१ १ १ १

वै १। वे ३. क ४. ज्ञा ३. स १. अ. द २. ले ६। भ २. स १ मि. सं २. आ १, उ ५ तदपर्याप्तानां— २०
६

गु १ मि जी ५ वि ति च सं अ। प ६. ५ अ प्रा ७. ७. ६. ५. ४. सं ४ ग ४. इं ४ वि ति च पं का १ त्र.
१ १ १ १ १ १ १ १ १

यो ३ औ मि १ वै मि १ का १ वे ३ क ४. ज्ञा २. स १ अ. द २. ले २ क शु। भ २. स १ मि. सं २.
भा ६

अकायरुगळ्गे। गु ०। जी ०। प ०। प्रा ०। सं।०॥ ग १। सिद्धगति। का ०। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के ०। सं ०। द १ के ०। ले ०। भ ०। सं १। क्षा। सं।०। आ १। अनाहार। उ २॥

त्रसलब्ध्यपर्य्याप्तकरुगें। गु १। मि। जी ५। बि। ति। च। पं। अ प ६। ५। प्रा ७। १ १ १ १ १
५ ७। ६। ५। ४। स ४। ग २ ति। म। इं ४। बि। ति। च। प का १। त्र। यो २। औ १ १ १ १
मि। का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द च। अ। ले २ क शु भ २। सं १ मि। भा ३ अ शु
स २। आ २। उ ४। इंतु कायमार्गणे समाप्तमादुदु॥

योगानुवाददोळु मूलौघभंगमक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे त्रयोदशगुणस्थानंगळप्पुवु। मनोयोगिगळ्गे। गु १३। जी १। पं ०। प १। प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इ १। का १। त्र। यो ४।
१० नाल्कुं मनोयोग। वे ३। क ४। ज्ञा ८। स ७। द ४ ले ६ भ २। स ६। सं १। भा ६
आ १। उ १२॥

मनोयोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १ मि। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ४। नाल्कुं मनोयोगंगळुं। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २ ले ६ भ २। भा ६
सं १। मि। सं १। आ १। उ ५॥

१५ मनोयोगिसासादनंगे। गु १। सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो ४। मनोयोगंगळु। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। स १। अ। द २ ले ६ भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥
६

आ २ उ ४। नामादनाद्ययोगातेषु मूलौघवत्, अकायाना—गु०, जी०, प०, प्रा०, स० ग १ सिद्धगति, इ०, का०, यो०, वे०, क०, ज्ञा १ के, सं० द० ले०, भ०। स १ क्षा, स० आ १ अनाहार, उ २, तल्लब्ध्य-
२० पर्याप्तानाम्—गु १, जी ५ वि ति च स अ प ६, ५ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, स ४, ग २ ति म, इ ४ १ १ १ १ १
वि ति च प। का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे १ पं, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु। भा ३ अशु
१ १ १ १
भ २। न १ मि। स २। आ २। उ ४। कायमार्गणा गता।

योगानुवादे मूलौघ किंतु गुणस्थानानि त्रयोदशैव, मनोयोगिना—गु १३, जी १, प प, प ६, प्रा १०, ग ४। ग ४, इ १, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६ भ २, म ६, स १ आ १, ६
२५ उ १२। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १, प ६, प्रा १०, म ४, ग ४, इ १, का १, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २ ले ६ भ २, न १ मि, स १, आ १, उ ५। तत्सासादनस्य—गु १ सा, जी १, प ६, ६
प्रा १०। न ४। ग ४। इ १ प, का १ त्र। यो ४ म। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ।

मनोयोगिमिश्रगे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । मनो । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

मनोयोगि असंयतगे गु १ । असं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ । मनो । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भा ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मनोयोगिदेशसंयतगे । गु १ । दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । का १ । यो ४ । मनो । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ देश । द ३ ले ६ भा ३ । शु भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

मनोयोगिप्रमत्तगे । गु १ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ४ । मनोयोग । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भा ३ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

मनोयोगि अप्रमत्तप्रभृति सयोगकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । सर्वत्रनाल्कुं मनोयोगंगळु सयोगरोळु सत्यानुभयमनोयोगद्वयं सत्यमनोयोगिमिथ्यादृष्टिप्रभृतिसयोगकेवलिपर्य्यंतं मनोयोगि भगवक्तव्यमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे सत्यमनोयोगमो दे वक्तव्यमक्कुं । ई प्रकारमे अनुभयमनोयोगिगळगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे अनुभयमनोयोगमो देयक्कुमेबुदु ॥

द २, ले ६ । भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५ । तन्मिश्रस्य—गु १ मिश्र जी १ । प ६, प्रा १०, स ४, ग ४, इं १ प, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द २, ले ६ । भ १ । स १ मिश्र, सं १, आ १ । उ ५ । तदसयतस्य—गु १ अ, जी १, प ६ । प्रा १०, सं ४, ग ४, इ १ पं, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ । तद्देशसयतस्य—गु १ दे, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग २ ति म, इ १ पं, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ दे, द ३ च अ अ, ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ६ । तत्प्रमत्तस्य—गु १ प्र, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ म, इं १ प, का १ त्र, यो ४ म, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा । स १, आ १ । उ ७ । तदप्रमत्तादिसयोगात मूलौघ किंतु सर्वत्र मनोयोगाश्चत्वारः सयोगे सत्यानुभयौ द्वौ सत्यानुभयमनोयोगिना मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगात मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने स्वस्वनामैकः ।

असत्यमनोयोगिगळ्गे । गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १ । असत्यमनोयोग वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । द ३ । ले ६ भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं १ भा ६

आ १ । उ १० ॥

मिथ्यादृष्टिप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतमसत्यमनोयोगिगळ्गमुभयमनोयोगिगळ्गं स्वस्वयोगमे वक्तव्यमक्कुं इनिते विशेषमक्कुं ॥

वाग्योगिगळ्गे । गु १३ । जी ५ । बि । ति । च । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ त्र । यो ४ । वचनयोगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ १ । उ १२ ॥ ६

वाग्योगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ५ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ । त्र । यो ४ ॥ वाग्योगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ । अ । द २ । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥ ६

सासादनप्रभृतिसयोगकेवलिपर्य्यंतं मनोयोगिभंगं वक्तव्यमक्कुं । विशेषमिदु नाल्कुवाग्योगंगळेंदु वक्तव्यमक्कुं । सयोगरिगेयुं एल्लेल्लि मनोयोगं पेळल्पट्टुदल्लल्लि वाग्योगं वक्तव्यमक्कुं ॥

कायय्योगिगळ्गे । गु १३ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ८ । ३ । ४ । २ ॥ सयोगिकेवलि । स ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ७ ॥ काययोगंगळु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । ६

आ २ । उ १२ ॥

असत्यमनोयोगिना—गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इ १ । का १ । यो १ असत्यमन । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म । स ७ अ दे सा छे प सू यथा । द ३ । ले ६ भ २ । ६

स ६ मि सा मि उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ १० । तन्मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायात योज्य । उभयमनोयोगिनामप्येवं । स्वस्वयोग एव वक्तव्य ।

वाग्योगिना—गु १३ । जी ५ वि ति च स अ । प ६ ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इ ४ । का १ त्र । यो ४ । वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । ६

स ६ । स २ । आ १ । उ १२ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि । जी ५ । प ६ प । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । का १ त्र । यो ४ वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । ६

स १ मि । स २ । आ १ । उ ५ । सासादनादिसयोगात मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने वाग्योगो वक्तव्य ।

काययोगिना—गु १३ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ४ ६ ४ ४ ३ ४ २ । स ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो ७ कायस्य । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । ६

काययोगिपर्य्याप्तकर्गे । गु १३ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ । वै । आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ १ । आहारकरु । उ १२ ॥
६

अपर्य्याप्तकाययोगिगळ्गे । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । स । जी ७ । अ । प । ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । अ । श्रु । अ । के । सं ४ । अ १ । सा १ । छे १ । यथा १ । द ४ । ले २ । क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । ऊ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ १० ॥
भा ६

काययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ५ ॥ आहार-द्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ५ ॥
६

काययोगिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो २ । औ । वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥
६

काययोगिमिथ्यादृष्टयपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ । मि । वै । मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

सं २ । आ २ । उ १२ । तत्पर्याप्ताना—गु १३ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । स २ । आ १ आहारक. । उ १२ । तदपर्याप्ताना—गु ५ मि सा अ प्र स । जी
६
७ अ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ । स ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु कु म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि
भा ६
सा उ वे क्षा । स २ । आ २ । उ १० । तन्मिथ्यादृशा—गु १ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ५ आहारकद्वय नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा
६
१० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ । जी ७ ।
६
प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ ।

कायय्योगिसासादनंगे। गु १। सासा। जी २ प अ। प ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ५। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥
६

कायय्योगिसासादनपर्य्याप्तकर्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २। औ। वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६ भ १। स १। सा। सं १। आ १। उ ५॥
६

कायय्योगिसासादनापर्य्याप्तगे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। सं ४। ग ३। म। ति। दे। णिरयं सासणसम्मो ण गच्छ दे। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥
भा ६

कायय्योगिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इं १। का १। यो २। औ। वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥
६

कायय्योगिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ५। औ २। वै २। का १। वे ३। क ४ ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६ भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ६॥
६

ज्ञा २। स १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। स २। आ २ उ ४। तत्सासादनाना—गु १ सा।
भा ६

जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग ४। इ १। का १। यो ५ औ २ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। स १ अ। आ २। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १। जी १।
६

प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इ १। का १ यो २ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। स १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। स १। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७।
६

स ४। ग ३ म ति दे। णिरय सासणसम्मो ण गच्छदीति वचनात्। इ १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क ४। ज्ञा २। स १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। स १। आ २। उ ४। सम्यग्-
भा ६

मिथ्यादृशा—गु १ मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इ १। का १। यो २ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। स १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ मिश्र। स १ अ। आ १। उ ५। असयताना—
६

गु १ अ। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग ४। इ १। का १। यो ५ औ २। वै २। का १। वे ३।

काययोगिपर्य्याप्तासंयतगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २। औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १ उ ६॥

काययोगिअपर्य्याप्तासंयतगे। गु १। जी १। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे २। षं। पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥

काययोगिदेशव्रतिगळगे। गु १। दे। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। म। ति। इं १। का १। यो १। औ का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। दे। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

काययोगिप्रमत्तसंयतग्गं। गु १। प्र। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १ पं। का १ त्र। यो ३। औ का १। आहारक २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

काययोगिअप्रमत्तसंयतगे। गु १। अ प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। आहाररहित। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। द ३। ले ६। भ १। सं ३। आ १। उ ७॥

क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १ आ २। उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इ १। का १। यो २ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्ताना—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे २ षं पु। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। देशव्रतिनां—गु १ दे। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ म ति। इं १। का १। यो १ औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ दे। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। प्रमत्ताना—गु १ प्र। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औ १ आहा २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। स १। आ १। उ ७। अप्रमत्ताना—गु १ अप्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३ आहारसंज्ञा नहि। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औ। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। द ३।

काययोगि अपूर्व्वकरणप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं काययोगिगळ्गे मूलौघभंगमक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे औदारिककाययोगमे वक्तव्यमक्कुं। काययोगि सयोगकेवलिगळ्गे। गु १। स के। जी २। प। अ। प ६। प ६। प्रा ४। २। सं। ०। ग १। म। इं १ पं। का १। त्र। यो ३। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १ के। ले ६ भ १। सं १। क्षा। भा १ सं। ०। आ २। उ २। के। के॥

औदारिककाययोगिगळ्गे। गु १३। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। ४। सं ४। ग २। म। ति। इं ५। का ६। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ १२॥

औदारिककाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग २। ति। म। इं ५। का ६। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

औदारिककाययोगिसासादनंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। म। ति। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥

औदारिककाययोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १ मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

ले ६। भ १। स ३। स १। आ १। उ ७। अग्रेऽपूर्वकरणात् क्षीणकषायपर्यंत मूलौघवत् किंतु औदारिकयोग एव वक्तव्य।

सयोगकेवलिना—गु १ सा, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा ४ २ स ०, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो ३ औ २ का १, वे ० क ०, ज्ञा १ के, सं १ यथा, द १ के, ले ६। भ १ स १ क्षा, स ०, आ २, उ २ के के। औदारिकयोगिना—गु १३, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, ४, स ४, ग २ म ति, इ ५, का ६, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, स ७, द ४, ले ६। भ २, स ६, स २, आ १, उ १२। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ७, प ६ ५ ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, स ४, ग २ ति म, इ ५, का ६, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६। भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ५। तत्सासादनाना—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग २ म ति, इं १ प, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ अ द २, ले ६, भ १, स १ सा, स १, आ १, उ ५, सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्र,

औदारिककाययोगिअसंयतसम्यग्दृष्टिगे। गु १। अ। जी १। पंचि। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६ । भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
६

औदारिककाययोगि देशव्रतिगळ्गे। गु १। दे। जी १। पं प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। औ का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। दे। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥ ५
भा ३

प्रमत्तसंयतप्रभृति सयोगिकेवलिपर्य्यंतं काययोगिभंगं वक्तव्यमक्कुं विशेषमावुदेंदोडे सर्व्वत्रौदारिककाययोगमो दे वक्तव्यमक्कुं॥

औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे। गु ४। मि। सा। अ। सयो। जी ७। अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग २। म। ति। इं ५। का ६। यो १। औ मि। वे ३। क ४। ज्ञा ६। विभंगमनःपर्य्ययरहितं। सं २। अ। यथा। द ४। ले १ क। भ २। १०
भा ६
सं ४। मि। सा। वे। क्षा। सं २। आ १। उ १०॥

औदारिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १ मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग २। ति। म। इं ५। का १। यो १। औ मि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले १ क। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ४॥ १५
भा ३

औदारिकसासादनमिश्रगें। गु १। सासा। जी १। सं। पं। अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १। त्र। यो १। औ मि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ।

जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इ १, का १ त्र। यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६। भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५, असंयताना—गु १ अ, जी १ प प, प ६, प्रा १०,
६
सं ४, ग २ ति म, इ १ पं, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द ३, ले ६। भ १, स ३, २०
६
सं १, आ १, उ ६, देशव्रताना—गु १ दे, जी १ प प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इ १ प, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३ ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, प्रमत्तात्संयोगातं
३
काययोगिवत् किंतु सर्वत्र औदारिकयोग एव वक्तव्यः।

औदारिकमिश्रयोगिना—गु ४ मि सा अ स। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग २ ति म। इं ५। का ६। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा ६, विभंगमनःपर्ययाभा- २५
वात्। सं २ अ य। द ४। ले १ क। भ २। स ४ मि सा वे क्षा। सं २। आ १। उ १०। तन्मिथ्यादृशा
भा ६
गु १ मि। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग २ ति म। इं ५। का ६। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले १। भ २। स १ मि। स २। आ १।
भा ३
उ ४। तत्सासादनाना—गु १ सा। जी १ सं अ। प ६ अ। प्रा ७। सं ४। ग २ ति म। इ १ प।

द २। ले १। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ४॥
भा ३

औदारिकमिश्रकाययोगि असंयत सम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी १ अ। प ६। प्रा ७। अ। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १। त्र। यो १। औ मि। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले १ क। भ १। सं २। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ६

औदारिकमिश्रकाययोगिसयोगिकेवलिगळ्गे। गु १। जी १। अ। प ६। प्रा २। का १। आयुः १। सं। ०। ग १। म। इं १ प। का १ त्र। यो १। औ मि। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १। के। ले १ क। भ १। सं १। क्षा। सं। ०। आ १। उ २॥
भा १ शु

वैक्रियिककाययोगिगळ्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६ भ २। सं ६। मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ९॥
भा ६

वैक्रियिक काययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १ अ। द २। ले ६। सं १। मि। सं १। आ १। उ ५॥
६

वैक्रियिककाययोगिसासादनग्गं। गु १। सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। न दे। इं १ पं। का १। त्र। यो १। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

का १ त्र। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। स १ अ। द २। ले १। भ १। स १ सा। स १।
भा ३ अशुभ
आ १। उ ४। तदसंयताना—गु १ अ। जी १ अ प। पं ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग २ ति म। इ १ प। का १ त्र। यो १ औमि। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले १ क। भ १। स २ वे क्षा।
भा ६
स १। आ १। उ ६। तत्सयोगिना—गु १। जी १ अ। प ६। प्रा २ का १ आ १। सं ०। ग १ म। इ १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। स १ य। द १ के। ले १ क। भ १।
१ शु
स १ क्षा। स ०। आ १। उ २। वैक्रियिकयोगिना—गु ४ मि सा मि अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। स ४। ग २ न दे। इ १ प। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। स १। द ३। ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा। स १। आ १। उ ९। तन्मिथ्यादृशा—गु १। जी १।
६
प ६। प्रा १०। स ४। ग २ न दे। इ १ प। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। स १। आ १। उ ६। तत्सासादनाना—गु १ सा। जी १।
६

वैक्रियिककाययोगिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ न दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । वै । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ४ ॥
भा ६

वैक्रियिककाययोगि असंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । अ सं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । न दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । वै का । वे ३ । का ४ । ज्ञा ३ । म श्रु अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळ्गे । गु ३ । मि । सा । अ । जी १ । प ६ । अ । प्राण ७ । अ । सं ४ । ग २ । न दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । वै मि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले १ । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ८ ॥
भा ६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ६ । अ । सं ४ । ग २ । न दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । वै मि । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ द २ । ले १ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ४ ॥
भा ६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ देव । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १ । वै मि । वे २ । क ४ । ज्ञा २ ।

प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ न दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तत्सम्यग्मिथ्यादृशा— गु १ मिश्रं ।
६

जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग २ न दे । इ १ प । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ । ले ६ भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । तदसंयताना—गु १ अ ।
६

जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग २ न दे । इ १ पं । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । आ १ । उ ६ । तन्मिश्रयोगिना—गु १ मि
६

सा अ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ न दे । इ १ पं । का १ त्र, यो १ वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले १ क, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ८ ।
भा ६

तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग २ न दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १ वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले १ । भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ४ । तत्सासादनाना—गु १ सा,
६

जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ दे, इं १ प, का १ त्र, यो १ वैमि, वे २, क ४, ज्ञा २, स १ अ,

स १ । अ । द २ । ले १ क । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ४ ॥
भा ६

वैक्रियिकमिश्रकाययोगि असंयतसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । न दे । इ १ । पं । का १ त्र । यो १ । वैं मि । वे २ षं पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले १ क । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ४

आहारककाययोगिगळगे । गु १ । प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । अ । इ १ । पं । का १ त्र । यो १ । आ का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले शु १ । भ १ । सं २ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

आहारकमिश्रकाययोगिगळगे । गु १ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १ । आ मि । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले १ क भ १ । सं २ । वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३ शु

कार्म्मणकाययोगिगळगे । गु ४ । मि । सा । अ । सयो । जी ७ । अ । प ६ । अ ५ । अ ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । २ । सं ४ । इं ५ । का ६ । यो १ । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । म । श्रु । अ । के । सं २ । अ । यथा । द ४ । च अ । अ । के । ले १ शु भ २ ।
भा ६
सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । अनाहार । उ १० ॥

कार्म्मणकाययोगिमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १ । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु ।

द २, ले १ क । भ १, स १ सा । स १, आ १, उ ४ ।
भा ६

तदसयताना—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग २ न दे, इ १ प, का १ त्र, यो १ वैमि, वे २ ष पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ । द ३, ले १ क । भ १ । स ३, उ वे क्षा,
भा ४ शु ३ क १
स १, आ १, उ ६ । आहारकयोगिना—गु १ प्र, जी १ । प ६, प्रा १०, स ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र । यो १ आ, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स २ सा छे, द ३, ले १ शु, भ १, स २ वे क्षा, स १,
भा ३
आ १, उ ६ । तन्मिश्रयोगिना—गु १ प्र, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो १ आमि, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स २ सा छे, द ३ च अ अ, ले १ क । भ १, स २ वे क्षा,
भा ३
स १ आ १, उ ६ । कार्मणयोगिना—गु ४ मि सा अ स, जी ७ अ, प ६ अ, ५ अ, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, २, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो १ का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, स २ अ य, द ४ च अ अ के, ले १ शु । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स २, आ १ अनाहार, उ १० । तन्मिथ्यादृशा—
भा ६
गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो १ का, वे ३,

सं १ । अ । द २ । च । अ । ले १ शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । अनाहार । उ ४ ॥
भा ६

कार्म्मणकाययोगिसासादनसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । सासा । जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १ । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ अ । द २ । ले १ शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । अनाहार । उ ४ ॥
भा ६

कार्म्मणकाययोगिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । अ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १ । का । वे २ । ब पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । । अ । सं । द ३ । ले १ शु । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । अनाहार । उ ६ ॥
भा ६

कार्म्मणकाययोगि सयोगिकेवलिगळगे । गु १ । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा २ । का । आ । सं । ० । ग १ । म । इं १ । पं का १ त्र । यो १ । का । वे ० । क ४ । ज्ञा १ । के । सं १ । यथा । द १ । के । ले १ शु । भ १ । सं १ । क्षा । सं । ० । आ १ । अनाहार उ २ ।
भा १
के । के ॥ यितु योगमार्गणे समाप्तमादुदु ॥

वेदमार्गणानुवाददोळु मूलौघदोळे तंते ज्ञातव्यमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे नवगुणस्थानंगळेंदु वक्तव्यमक्कुं । स्त्रीवेदिगळगे । गु ९ । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तकरु । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । म । ति । दे । इं १ । प । का १ त्र । यो १३ ॥ आहारकद्वयरहित । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ सं ४ । अ । दे । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ ।
६
आ २ । उ ९ ॥

क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले १ शु, भ २, स १ मि, स २, आ १ अनाहारः, उ ४ ।
भा ६

तत्सासादनाना—गु १ सा, जी १, प ६, प्रा ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इ १, का १, यो १ का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २, ले १ शु, भ १, स १ सा, सं १ । आ १ अना, उ ४ । तदसंयताना—गु १
भा ६

अ, जी १ । प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इ १, का १, यो १ का, १ वे २ षं पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ ले १ शु । भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १ अना । उ ६ । तत्सयोगिना—गु १ सयोगी,
भा ६

जी १ अ, प ६ अ, प्रा २ का, आ, स ०, ग १ म, इ १, का १ त्र, यो १ का, वे ० । क ० । ज्ञा १ के, सं १ य, द १ के, ले १ शु, भ १, स १ क्षा, सं ०, आ १ अना, उ २ के के, योगमार्गणा गता । वेदमार्गणानुवादे
भा १
मूलौघवत् किंतु गुणस्थानानि नवैव ।

तत्र स्त्रीवेदिना—गु ९ । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वय नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ ९ ।
६

स्त्रीवेदिपर्य्याप्तकगर्गे । गु ९ । जी २ । सं । । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ वै । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं ४ । अ । दे । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ ॥

स्त्रीवेदियपर्य्याप्तकगर्गे । गु २ । मि । सा । जी २ । संज्ञयसंज्ञयपर्य्याप्तक । प ६ । ५ । अ प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औमि १ । वै मि । का १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ च । अ । ले २ क शु । भा ३ अ शु । भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ २ । उ ४ । कु । कु । च । अ ॥

स्त्रीवेदिमिथ्यादृष्टिगर्गे । गु १ । मि । जी ४ । संज्ञयसंज्ञियपर्य्याप्तकापर्य्याप्तक । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारकद्वयरहित वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ सं । द २ । ले ६ । भ २ । स १ । मि । सं २ । आ २ । उ ५ ॥

स्त्रीवेदिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकगर्गे । गु १ । जी २ । संज्ञिपर्य्याप्तासंज्ञिपर्य्याप्तक । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इ १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ । वै । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ सं । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

स्त्रीवेदिमिथ्यादृष्टिअपर्य्याप्तकगर्गे । गु १ । मि । जी २ । संज्ञयपर्य्याप्तासंज्ञयपर्य्याप्त । प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । स ४ । ग ३ । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ । मि । वै मि ।

तत्पर्याप्ताना—गु ९ । जी २ स अ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । स ४ । ग ३ ति म दे । इ १ प । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । स ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । स २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्ताना—गु २ मि सा । जी २ सञ्यसञ्यपर्याप्तौ । प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । स ४ । ग ३ ति म दे । इ १ प । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भा ३ अशु । भ २ । स २ मि सा । स २ । आ २ । उ ४ कु कु च अ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि । जी ४ सञ्यसञ्जिपर्याप्तापर्याप्ता । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । इ १ प । का १ त्र । यो १३ आहारकद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ ।

तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ सञ्यसञ्जिपर्याप्तौ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । स ४ । ग ३ ति म दे । इ १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ । स २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी २ संज्ञयसञ्यपर्याप्तौ ।

का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ ले २ क शु भ २ ।
भा ३ अ शु
सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

स्त्रीवेदिसासादनर्गे । गु १ । सासा । जी २ । पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्त । प ६ । प ६ ।
प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित ।
वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ सं १ । सासा । ५
६
सं १ । आ २ । उ ५ ॥

स्त्रीवेदिसासादनपर्याप्तकर्गे । गु १ । सासा । जी १ । संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तक । प ६ ।
प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ । वै ।
वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ भ १ । सं १ ।
६
सासा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥ १०

स्त्रीवेदिसासादनाऽपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सासा । जी १ । स पं अ ० प ६ । अ । प्रा ७ ।
अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे १ ।
स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु । भ १ । सं १ ।
भा ३ अशु
सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥

स्त्रीवेदिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । १५
ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । योग १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ । स्त्री ।
क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र ।
६

प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री ।
क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ ।
भा ३ अशु
तत्सासादनाना—गु १ सा । जी २ सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग ३ ति म दे । इं १ २०
पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ ।
६
भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानाना—गु १ सा । जी १ संज्ञिपर्याप्त. । प ६ । प्रा १० ।
सं ४ । ग ३ ति म दे । इ १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३
कु कु वि । स १ अ, द २ च अ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानाना—गु
६
१ सा । जी १ सं अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का । २५
वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४,
भा ३ अशु
सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्र, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म
४ व ४ औ वै । वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्र,
६

सं १ । आ १ । उ ५ ॥

स्त्रीवेदिअसंयतंगे । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । अ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

स्त्रीवेदिदेशव्रतिकंगे । गु १ । दे । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग २ ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । व ४ । औ १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

स्त्रीवेदप्रमत्तंगे । गु १ । प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । व ४ । औ १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । स्त्रीवेदिगळप्प संक्लिष्टरोळु मनःपर्य्ययज्ञानमिल्ल । सं २ । सा छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

स्त्रीवेदि अप्रमत्तंगे । गु १ । अ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । आहाररहित । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । व ४ । औ १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । मनःपर्य्ययमिल्ल । सं २ । सा । छे । । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

स्त्रीवेदि अपूर्व्वकरणंगे । गु १ । अपूर्व्व । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । म ४ । व ४ । औ १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु ।

स १, आ १ उ ५, असंयतानां—गु १ अ । जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४, ग ३ ति म दे, इ १, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा । स १, आ १, उ ६ । देशव्रतिना—गु १ दे, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४, व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६, प्रमत्ताना—गु १ प्र, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सक्लिष्टत्वात् मन पर्ययो नहि, स २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६ । अप्रमत्ताना—गु १ अप्र, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३ आहारसज्ञा नहि, ग १ म, इ १ पं । का १ त्र, यो ९, म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ मन पर्ययज्ञानं नहि, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६ । भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १ । उ ६ । अपूर्वकरणाना—गु १ अपू, जी १, प ६, प्रा १०,

अ । सं २ । सा छे । द ३ च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १

स्त्रीवेदि अनिवृत्तिकरणंगे । गु १ । अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं २ । मै । प । ग १ म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । व ४ । औ १ । वे १ । स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं २ । सा छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १

पुंवेदिगळ्गे । गु ९ । जी ४ । संज्ञ्यसंज्ञिपर्य्याप्तापर्य्याप्तकरु । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ५
७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे १ । पुं । क ४ ।
ज्ञा ७ । केवलज्ञानरहित । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ २ ।
६

सं ६ । सं २ । आ २ । उ १० ॥

पुंवेदिपर्य्याप्तकंगे । गु ९ । जी २ । सं । अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ ति । म ।
दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । आ १ । वे १ । पुं । क ४ । १०
ज्ञा ७ । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ ।
६

आ १ । उ १० ॥

पुंवेदि अपर्य्याप्तकंगे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी २ । प ६ । ५ । प्रा ७ । ७ । सं ४ ।
ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । का । वे १ । पुं । क ४ ।
ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं । अ । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु भ २ । १५
भा ६

सं ५ । मि सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ८ ॥

सं ३, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं २ सा छे,
द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६ । अनिवृत्तिकरणाना—गु १ अनि, जी १,
१

प ६, प्रा १०, म २ मै प, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री । क ४, ज्ञा ३
म श्रु अ, स २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६ । पुवेदिना—गु ९, २०
१

जी ४ संज्ञ्यसज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ प, का १ त्र,
यो १५, वे १ पु, क ४, ज्ञा ७ केवलज्ञानं नहि, स ५ अ दे सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६, भा २, स ६,
६

सं २, आ २, उ १० । तत्पर्याप्ताना—गु ९, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० ९ । सं ४, ग ३ ति म दे,
इं १ प । का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ वै आहा । वे १ पु । क ४, ज्ञा ५, सं ५ अ दे सा छे प, द ३
च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६, सं २ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्ताना—गु ४ मि सा अ प्र, जी २, २५
६

प ६ ५ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १, यो ४ औमि वैमि आमि का । वे १ पु, क ४,
ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे, द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २,
भा ६

आ २ । उ ८ ।

पुंवेदिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी ४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ । मि । सं २ । आ २ । उ ५ ॥
६

पुंवेदिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ उ ५ ॥
६

पुंवेदिमिथ्यादृष्टिअपर्य्याप्तकंगे । गु १ । मि । जी २ । प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ३ । औमि । वैमि । का । वेद १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा १

पुवेदिसासादनप्रभृति प्रथमानिवृत्तिपर्य्यंतं मूलौघभंग वक्तव्यमक्कुमल्लि विशेषमावुदेंदोडे : सर्व्वत्र पुंवेदमो दे वक्तव्यमक्कुं । सासादनमिश्रासंयतर्गे गतित्रयं वक्तव्यमक्कुं । देशसंयतर्गे गतिद्वयं वक्तव्यमक्कुमन्यत्र विशेषमिल्ल । नपुंसकवेदिगळ्गे । गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं ४ । अ । दे । सा । छे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ ९ ॥
६

नपुंसकवेदिपर्य्याप्तकंगे । गु ९ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ षं ।

तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ४, प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, स ४, ग ३ ति म दे, इं १प, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २,
६
स १ मि, स २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी २, प ६ ५, प्रा १०, ९, स ४, ग ९ ति म दे, इ १' का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १पु, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ २,
६
स १ मि, स २, आ २, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी २, प ६, ५, अ, प्रा ७, ७, स ४, ग ३ ति म दे, इ १ प, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ । ले २ क शु, भ २,
भा ६
स १ मि, स २, आ २, उ ४ । तत्सासादनात् प्रथमानिर्वृत्तिपर्यंत मूलौघ. अत्र सर्वत्र पुवेदो वक्तव्य. सासादनमिश्रासयताना गतित्रय । देशसंयतस्य गतिद्वय, अन्यत्र विशेषो नास्ति ।

नपुसकवेदिना—गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । स ४, ग ३ न ति म, इ ५, का ६ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ ष, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, स ४ अ दे सा छे, द ३ च अ अ, ले ६ भ २, स ६, स २, आ २, उ ९ । तत्पर्याप्ताना—गु ९, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४ । ग ३ न ति म, इ ५, का ६, यो

क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं ४। अ। दे। सा। छे। द ३। च। अ। अ ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ ९॥

नपुंसकवेदिअपर्य्याप्तकगुणे। गु ३। मि। सा। अ। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो ३। औमि। वैमि। का। वे १। षं। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भा ३ अशु भ २ सं। ४। मि। सा। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ८॥

नपुंसकवेदिमिथ्यादृष्टिगुणे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो १३। आहारकद्वयवर्जित। वे १। नपुं। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ५॥

नपुंसकवेदिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकगुणे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो १०। म ४। व ४। औ। वै। वे १ षं। क ४ ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

नपुंसकमिथ्यादृष्टि अपर्य्याप्तकगुणे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का ४। वे १

---

१० म ४ व ४ औ १ वै १, वे १ ष, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं ४ अ दे सा छे, द ३ च अ अ, ले ६। भ २, स ६, सं २, आ १, उ ९। तदपर्याप्ताना—गु ३ मि सा अ, जी ७, प ६ ५,४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३। ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, स ४। ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, स १ अ, द ३ अ च अ, ले २ क शु भ २, स ४ मि सा वे क्षा, स २, आ २, उ ८। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयं नहि, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, स २, आ २ उ ५। तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८ ७ ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २। ले ६। भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ३ न ति म, इं ५, का ६,

षं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २। सं १ मि। सं २। आ २। उ ४।
भा ३ अशु

नपुंसकसासादनंगे। गु १। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १२। म ४। व ४ औ २। वै १। कार्म्मण का १। वे १ नपुं। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ । भ १। सं १। सासा। सं १।
६

आ २। उ ५॥

नपुंसकवेदिसासादनपर्य्याप्तकंगे। गु १। सा।। जी १। प ६। प्रा १०।। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं १। पं। का १। त्र। यो १०। म ४। व ४। औ १। वै १। वे १ नपुं। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सा। सं १।
६

आ १। उ ५॥

नपुंसकवेदिसासादनापर्य्याप्तकंगे। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग २ ति। म। इं १। का १। यो २। औ मि। का। वे नपुं। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। च। अ। ले २ क शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥
भा ३ अशु

नपुंसकवेदिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मिश्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। न। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। व ४। औ का। वै का। वे १ नपुं। क ४। ज्ञा ३ कु। कु। वि। स १। अ। द २। च। अ। ले ६। भ १। सं १ मिश्र। सं १। आ १।
६

उ ५॥

यो ३ औमि वैमि का, वे १ ष, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले २ क, शु भ २, स १ मि, सं २, आ २,
भा ३ अशु
उ ४, तत्सासादनाना—गु १। जी २, स प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, स ४, ग ३ न ति म, इ १ प, का १ त्र, यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४,
६
ग ३ न ति म, इ १ प, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औका वैका, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा, स १, आ १, उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ।
६
प्रा ७ अ, स ४, ग २ ति म, इ १, का १, यो २ औमि का, वे १ न, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु। भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ४। तत्सम्यग्मिथ्यादृष्टीना—गु १ मिश्र, जी १ प,
भा ३ अशु
प ६, प्रा १०, स ४, ग ३ न ति म, इ १ प, का १ त्र, यो १० म ४, व ४ औ १ वै १, वे १ न, क ४,

नपुंसकवेदिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । न ति । म । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । का १ । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

नपुंसकवेदि असंयतपर्य्याप्तकंगे । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ १ । वै १ । वे १ । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

नपुंसकवेदिअपर्य्याप्तासंयतंगे । गु १ । अ । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । न । इं १ । का १ । यो २ । वैमि १ । का १ । वे १ । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । क्षा । वे । सं १ । आ २ । उ ६ ॥ भा १ अ शु

नपुंसकवेदिदेशव्रतिगळ्गे । गु १ । दे । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे १ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । स । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥ भा ३ शु

नपुंसकवेदिप्रमत्तप्रभृतिप्रथमभागानिवृत्तिपर्य्यंतं स्त्रीवेदिगळ भंगमक्कुं विशेषमावुदेंदोडे सर्व्वत्र नपुंसकवेदमेंदे वक्तव्यमक्कुं ॥

ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, स १, आ १, उ ५ । तदसंयतानां—
६

गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, स ४, ग ३ न ति म, इं १ प, का १ त्र, यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ २, उ ६ । तत्पर्याप्ताना–गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म । इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे १ न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ । भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ । तदपर्याप्ताना–गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतिना–गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तात् प्रथम-

भा ३ शु भा ३ अशुभ

भागानिवृत्यंतं स्त्रीवेदिवत् किंतु वेदस्थाने नपुंसकवेद एव ।

अपगतवेदमार्गे । गु ६ । अ । सू । उ । खी । स । अ । जी २ । प अ । प ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं १ । परि । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ २ । का १ । वे ० । क ४ । २ । १ । लो । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ४ । सा । छे । सू । यथा १ । द ४ । च । अ । अ । के । ले ६ । भ १ । सं २ । उ । क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ ॥
भा ६

इंती द्वितीयभागानिवृत्तिप्रभृति सिद्धपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । मिंतु वेदमार्गणे समाप्तमादुदु ॥

कषायानुवाददोळु ओघाळापं मूलौघभंगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे दशगुणस्थानंगळप्पुवु । क्रोधकषायिगळगे । गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १५ । वे ३ । क १ । क्रो । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ५ अ । दे । सा १ । छे १ । प १ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ १० ॥
६

क्रोधकषायिपर्य्याप्तकर्गे । गु ९ । जी प ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । आ का १ । वे ३ । क १ । क्रो । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । स ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १० ॥
६

क्रोधकषायिकापर्य्याप्तकर्गे गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । अ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । औमि । वैमि । आमि । का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । च ।

अपगतवेदाना—गु ६ अनि, सू, उ, क्षी, स, अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ४, २, १, स १ परि, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ २ का १, वे ०, क ४, ३, २, १ लो । ज्ञा ५ म श्रु अ म के, स ४ सा छे सू य, द ४ च अ अ के, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, स १, आ, २, उ ९ ।
भा १

द्वितीयभागानिवृत्तित सिद्धपर्यंत मूलौघो भवति, वेदमार्गणा गता ।

कषायानुवादे ओघ तद्यथा–क्रोधिना—गु ९, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६ ७ ५ ६, ४, ४ ३, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म, स ५ अ दे सा छे य, द ३ च अ अ, ले ६ भ २, स ६, सं २, आ २, उ १० । तत्पर्याप्ताना—गु ९,
६

जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४ इ ५, का ६, यो ११, म ४, व ४, औ वै आ, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म, स ५ अ दे सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ६,
६

स २, आ १, उ १० । तदपर्याप्ताना—गु ४ मि सा अ प्र । जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३ अ, सं ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ५ कु कु

अ। अ। ले २ क शु। भ २। सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ८॥
भा ६

क्रोधकषायिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। आहारद्वय-रहित। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६ । भ २।
६
सं १। मि। सं २। आ २। उ ५॥ ५

क्रोधकषायिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ७। प। प ६। ५। ४। प। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ। वै। वे ३। क १। क्रो। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६। भ २। सं १। मि।
६
सं २। आ १। उ ५॥

क्रोधकषायिमिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। १०
७। ६। ५। ४। ३। अ। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। । वै मि। का। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं २।
भा ६
आ २। उ ४॥

क्रोधकषायिसासादनंगे। गु १। सा। जी २। प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो १३। हारद्वयवर्ज्जित। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३। कु। कु। १५
वि। सं १। अ। द २। ले ६ । भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥
६

म श्रु अ, सं ३ अ सा छे, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २
भा ६
आ २, उ ८। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६। यो १३ आहारद्वयं नहि, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ। ले ६। भ २। स १ मि। स २। आ २। उ ५। तत्पर्याप्ताना—गु १ मि। जी ७। प ६। २०
भा ६
५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ च अ। ले ६। भ २। स १ मि। सं २।
६
आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ मि। जी ७ अ। प ६ ५ ४ अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३ अ। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा २ कु कु। स १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४। तत्सासादनाना—गु १ सा। २५
भा ६
जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। स ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५।
६

क्रोधकषायिसासादनपर्य्याप्तकंग । गु १ । सासा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ । वै । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
६

क्रोधकषायिसासादनापर्य्याप्तकंगे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । नरकगतिवर्ज्जित । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

क्रोधकषायिसम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ । त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । मिश्र सं १ । द २ । ले ६ ।
६
भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

क्रोधकषायिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क १ । क्रो । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ ।
६
आ २ । उ ६ ॥

क्रोधकषायि असंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
६

तत्पर्याप्ताना–गु १ सा । जी १ प । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इ १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ १ । स १ सा ।
६
स १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग ३ नरकगतिर्नहि । इ १ प । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा २ । स १ अ । द २ । ले २ । भ १ । स १ सा । स १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्र, जी १ प । प ६ ।
६
प्रा १० । स ४ । ग ४ । इ १ । का १ त्र । यो १० औ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ मिश्राणि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्र । स १ । आ १ । उ ५ । असयताना—गु १ अ । जी २ प अ । प ६
६
६ । प्रा १० ७ । स ४ । ग ४ । इ १ प । का १ त्र । यो १३ आहारद्वय नहि । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ २ । उ ६ ।
६
तत्पर्याप्ताना–गु १ अ । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ प । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ ।
६

क्रोधकषायिअपर्य्याप्तासंयतगे। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे २। पुं। नपुं। क १ क्रो। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ६॥

भा ६

क्रोधकषायिदेशव्रतिकंगे। गु १। दे। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। दे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥

भा ६

क्रोधकषायिप्रमत्तसंयतगे। गु १। प्र। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११। म ४। वा ४। औ १। आ २। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

भा ३

क्रोधकषायाऽप्रमत्तगे। गु १ अप्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। भ। मै। प। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

भा ३

क्रोधकषायिअपूर्व्वकरणंगे। गु १ अपू। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ३। भ। मै। प। ग १। म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं २। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

भा १

उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे २ पु न। क १ क्रो। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु।

भा ६

भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६। देशव्रतानां—गु १ दे। जी १ प। प ६। प्रा १०। म ४। ग २ ति म। इं १ प। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ दे। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। प्रमत्तानां—गु १ प्र। जी २ प अ। प ६ ६।

३

प्रा १० ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११ म ४। व ४। औ १। आ २। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७।

३

अप्रमत्तानां—गु १ अप्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३ भ मै प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। स ३ सा छे प। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १।

३

उ ७। अपूर्वकरणानां—गु १ अपू। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ३ भ मै प। ग १ म। इं १ प। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स २ उ

१

क्रोधकषायिप्रथमानिवृत्तिकरणंगे। गु १। अनि। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं २। मै। प। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं २। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

क्रोधकषायिद्वितीयभागानिवृत्तिकरणंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। प। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १ क्रो। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं २। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

ई प्रकारदिंदमे मानमायाकषायंगळगे मिथ्यादृष्टिप्रभृति अनिवृत्तिकरणपर्यंतं वक्तव्यमक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे एल्लि एल्लि क्रोधकषायमल्लल्लि मानमायाकषायंगळु वक्तव्यंगळप्पुवु। लोभकषायदक्कुं क्रोधकषायभंगमेयक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे ओघालापदोळु दश गुणस्थानंगळे दु वक्तव्यमक्कुमारु संयमगळुं लोभकषायमो दे वक्तव्यमक्कु॥

अकषायरुगळगे। गु ४। उ। क्षी। स। अ। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ४। २। १। सं। ०। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ११। म ४। वा ४। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं १। यथा। द ४। च। अ। अ। के। ले ६। भ १।
भा १
सं २। उ। क्षा। सं १। आ २। उ ९॥

अकषायसामान्यं पेळल्पट्टुदु। विशेषदिंदमुपशांतकषायप्रभृति सिद्धपरमेष्ठिगळपर्य्यंतं सामान्यभंगगळप्पुवु। इंतु कषायमार्गणे समाप्तमादुदु॥

ज्ञानानुवाददोळु ओघालापंगळु मूलौघभंगगळप्पुवु। कुमतिकुश्रुतज्ञानिगळगे। गु २। मि। सा। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४।

क्षा। स १। आ १। उ ७। अनिवृत्तिकरणाना प्रथमभागे—गु १ अनि। जी १ प। प ६। प्रा १०। स २ मै प। ग १ म। इं १ प। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६, भ १। स २ उ क्षा। स १। आ १। उ ७। द्वितीयभागे—गु १। जी १।
१
प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ प। स २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। स १। उ ७। एव माननायोरपि स्वस्वानि-
१
वृत्तिभागपर्यंत वक्तव्य किंतु क्रोधस्थाने तत्तन्नामकषाय, तथा लोभस्यापि, किंतु गुणस्थानानि दश।

अकषायिणा—गु ४ उ क्षी सा अ, जी २, प ६ ६, प्रा १० ४ २ १, स ०, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ २ का १, वे ०, क ०, ज्ञा ५, म श्रु अ म के, स १ य, द ४ च अ अ के, ले ६। भ १, स २ उ क्षा, स १, आ २, उ ९। इद सायान्यकथन विशेषेण उपशातकषायात्सिद्धपर्यंत
१
सामान्यभगो भवति। कषायमार्गणा गता ज्ञानानुवादे ओघालापा भवति।

कुमतिकुश्रुताना—गु २ मि सा, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४

३।सं ४।ग ४।इं ५।का ६।यो १३।वे ३।क ४।ज्ञा २।सं १ अ।द २। ले ६। भ २।सं २।मि।सा।सं २।आ २।उ ४॥
६

कुमतिकुश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तकर्गे। गु २।मि।सा। जी ७।प।प ६।५।४। प्रा १०। ९।८।७।६।४।सं ४।ग ४।इं ५।का ६।यो १०।म ४।वा ४।औ का १। वै का १। वे ३।क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २।च।अ। ले ६। भ २।सं २।मि। सा।सं २।आ १।उ ४॥
६

कुमतिकुश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तकर्गे। गु २।मि।सा। जी ७। अ।प ६।५।४। अ। प्रा ७।७। ६।५। ४।३।सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औमि। वैमि। का। वे ३। क ४।ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २।सं २। मि।सा।सं २। आ २।उ ४॥
भा ६

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १।मि। जी १४।प ६।६। ५।५। ४। ४। प्रा १०।७।९।।७।८।६।७। ५। ६।४। ४।३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ।द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २। आ २।उ ४॥
६

कुमतिकुश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तकर्गे। गु २। मि।सा। जी ७।प। प ६।५।४। प्रा १०। ९।८।७।६। ४।सं ४।ग ४।इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३।क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २।च।अ। ले ६। भ २। सं २। मि। सा। सं २। आ १। उ ४॥
६

३, सं ४। ग ४, इ ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स २ मि सा, सं २, आ २, उ ४। तत्पर्याप्ताना–गु २ मि सा, जी ७ प, प ६ ५ ४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २, कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स २ मि सा, सं २, आ १, उ ४। तदपर्याप्ताना–गु २ मि सा, जी ७ अ, प ६ ५ ४, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु। भ २, स २ मि सा, सं २, आ २, उ ४। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४, ग ४, इ ५, का ६, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४। तत्पर्याप्तानां— गु १ मि, जी ७ प, प ६ ५ ४ प, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १०, म ४ व ४ औ १ वे १, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २। स १ मि, सं २, आ १,
६

कुमतिकुश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तकर्गे । गु २ । मि । सा । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं २ । मि । सा । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । आहारकद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । स १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिमिथ्यादृष्टिअपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिसासादनर्गे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयवर्जितं । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ उ ४ ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानिसासादनपर्य्याप्तकर्गे गु १ । सासा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ४ ॥

उ ४ । तदपर्याप्ताना–गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्सासादनाना–गु १ सा, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, स ४, ग ४, इ १ प, का १ त्र, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं । वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, द २ च अ, ले ६, भ १ । स १ सा, स १, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४, ग ४, इ १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा,

कुमतिकुश्रुतज्ञानिसासादनापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सास । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥

भा ६

विभंगज्ञानिगळ्गे । गु २ । मि । सा । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा १ । विभंग । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं २ । मि । सा । सं १ । आ १ । उ ३ ॥

६

विभंगज्ञानिमिथ्यादृष्टिगळ्ग । गु १ । मि । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा १ । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ३ ॥

६

विभंगज्ञानिसासादनंगे । गु १ । सासा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा १ । विभंग । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ १ । उ ३ ॥

६

मतिश्रुतज्ञानिगळ्गे । गु ९ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । म । श्रु । सं ७ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

६

सं १, आ १, उ ४, तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २, ले २ क शु । भ १, स १ सा,

भा ६

सं १, आ २, उ ४ । विभंगज्ञानिना—गु २ मि सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभगः । सं १ अ, द २, ले ६ । भ २,

६

स २ मि सा, स १, आ १, उ ३ वि च अ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ प, का १ त्र, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा १, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ

६

१, उ ३ । तत्सासादनाना—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभग. । स १ अ, द २, ले ६ । भ १, स १ सा, स १, आ १, उ ३ ।

६

मतिश्रुताना—गु ९, जी २ प अ । प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४ । इं १ । का १ त्र, यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ म श्रु । सं ७ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १, आ २ । उ ५ ।

६

मतिश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तकस्य। गु ९ जी १। प। प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इं १। का १ त्र। यो ११। म ४। व ४। औ का १। वै का १। आ का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। म। श्रु। सं ७। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ५॥

मतिश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तकस्य। गु २। असंयत। प्रमत्त। जी १। अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो ४। औ मि। वै मि। आ मि। कार्म्मण। वे २। पुं। नपुं। क ४। ज्ञा २। म। श्रु। सं ३। अ। सा। छे। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ५॥

मतिश्रुतज्ञानिअसंयतस्य। गु १। असं। जी १। प। अ। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १। त्र। यो १३। आहारद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा २। म। श्रु। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ५॥

मतिश्रुतज्ञानिपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा २। म। श्रु। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ५॥

मतिश्रुतज्ञानिअपर्य्याप्तासंयतस्य। गु १। अ। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे २। पुं। नपुं। क ४। ज्ञा २। म। श्रु। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २ उ ५॥

तत्पर्याप्ताना—गु ९। जी १ प। प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इं १। का १। यो ११ म ४ व ४ औ वै आ। वे ३। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स ७। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु २ असयतः प्रमत्त। जी १ अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४, इ १ प। का १ त्र। यो ४ औमि वैमि आमि का। वे २ पुं न। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स ३ अ सा छे। द ३ च अ अ। ले २ क शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। स १। आ २। उ ५। तदसयताना—गु १ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इ १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वय नहि। वे ३। क ४, ज्ञा २ म श्रु, सं १ अ। द ३ च अ अ, ले ६, भ १ स ३ उ वे क्षा, सं १, अ २, उ ५।

तत्पर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४, ग ४, इ १ पं, का १ त्र, यो १०, म ४, व ४, औ १, वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २, म श्रु, स १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ अ। प ६। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इ १ पं। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे २ पु न। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु।

देशव्रतिप्रभृति क्षीणकषायपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे आभिनिबोधश्रुतज्ञानंगळगेंदु वक्तव्यमक्कुं। अवधिज्ञानक्कमी प्रकारमेयक्कुं। विशेषमावुदे दोडे अवधिज्ञानमोंदेयेंदु वक्तव्यमक्कुं। मतिश्रुतज्ञानंगळेरडुं निरुद्धंगळा गुत्तिरलु मतिज्ञानश्रुतज्ञानद्वयमुं मतिश्रुतावधिज्ञानत्रयमुं मतिश्रुतमनःपर्य्ययत्रयमुं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानचतुष्टयमुमप्पुवु।

मनःपर्य्ययज्ञानिगळगे। गु ७। प्र अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १। पं। का १। त्र। यो ९। वे १। पुं। क ४। ज्ञा १। स। सं ४। सा। छ। सू। यथा। मनःपर्य्ययज्ञानिगळगे परिहारविशुद्धिसंयममिल्ल। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ४। म। च। अ। अ॥ इंतीक्षीणकषायपर्य्यंतं नडसल्पडुवुदु॥

भा ३

केवलज्ञानिगळगे। गु २। सयोग। अयोग। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा ४। २। १। सं। ०। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ७। म २। व २। औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १ के। ले ६। भ १। सं १ क्षा। सं। ०। आ २। उ २॥

भा १

सयोगाऽयोगिसिद्धपरमेष्ठिगळगे मूलौघमे वक्तव्यमक्कु। इंतु ज्ञानमार्गणे समाप्तमादुदु॥

संयमानुवाददोळु। गु ९। प्र। अ। अ। अ। सू। उ। क्षी। स। अ। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १३। वै २। द्वयरहितं। वे ३। क ४। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं ५। सा। छे। प। सू। यथा। द ४। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ९॥

भा ३

प्रमत्तसंयतंगे। गु १। प्र। जी। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ११। म ४। वा ४। औ का १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४।

भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। देशव्रतात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघभंगो भवति किंतु ज्ञानस्थाने मतिश्रुते वक्तव्ये। अवधेरपि एव, ज्ञानस्थाने अवधिर्वक्तव्यः। वा मतिश्रुते निरुद्धे। मतिश्रुतावधित्रयं वा मतिश्रुतमन पर्ययत्रयं वा मतिश्रुतावधिमन.पर्ययचतुष्टयं वक्तव्यं।

मनःपर्ययज्ञानिनां—गु ७ प्र अ अ अ सु उ क्षी। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे १ पुं। क ४। ज्ञा १ म, सं ४ सा छे सू य परिहारविशुद्धिर्नहि, द ३ च अ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, स १। आ १। उ ४। सयोगायोगसिद्धेषु मूलौघः, ज्ञानमार्गणा गता,
३

संयमानुवादे—गु ९ प्र अ अ अ, सू उ क्षी स अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग १ म। इ १ पं। का १ त्र। यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ५ म श्रु अ म के। सं ५ सा छे प सू य। द ४। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ९। प्रमत्तानां—गु
३
१ प्र। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं, का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ

म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । च । अ । अ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ । वे ।
भा ३
क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

अप्रमत्तसंयतंगे । गु १ । अ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । आहारसंज्ञारहित । ग १ म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञान ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

अपूर्व्वकरणप्रभृति अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभगमक्कुं । सामायिकसंयतंगे । गु ४ । प्र । अ । अ । अ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं १ । सामायिक । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

अनिवृत्तिपर्य्यंतमूलौघभंगमक्कुं । छेदोपस्थापनसंयमक्कुमी प्रकारमे वक्तव्यमक्कुं ॥

परिहारविशुद्धिसंयमिगळगे गु २ । प्र । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । परिहारविशुद्धि । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । स २ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

प्रमत्ताप्रमत्तपरिहारविशुद्धिसंयतरुगळगे पेळल्पडुवल्लि ओघभंगमेयक्कुं । सूक्ष्मसांपरायसंयमक्के मूलौघभंगमेयक्कुं । यथाख्यातसंयमिगळगे । गु ४ । उ । क्षी । स । अ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं । ० । ग १ । म । इं पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ ।

---

१ आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । स ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३
६
उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्ताना—गु १ अप्र । जी १ प । प ६ । प्रा १० । स ३ । आहार-सज्ञा नहि । ग १ म । इं १ प । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । स ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणादयोगिपर्यंत मूलौघभगो भवति ।
३

सामायिकसयताना—गु ४ प्र अ अ अ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ म । इ १ प । का १ त्र । यो ११ । म ४ व ४ औ १ आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । स १ सामयिकं । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिपर्यंत
३
मूलौघभगो भवति । छेदोपस्थापनसयतानामप्येव ।

परिहारविशुद्धिसयमिना—गु २ प्र अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग १ म । इ १ प । का १ त्र । यो ९ । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ परि । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ ।
३
स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तत्प्रमत्ताप्रमत्ताना सूक्ष्मसापरायसंयताना च मूलौघभग ।

यथाख्यातसयमिना—गु ४ उ क्षी स अ । जी २ प । अ । प ६ ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । स ० ।

औ २। का १। वे ०। क ०। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं १। यथा। द ४। ले ६। भा १
भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ २। उ ९॥

उपशांतकषायप्रभृति अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं। देशसंयमक्के ओघभंगमेयक्कुं।

असंयमरुगळ्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। आहारकद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ २। उ ९॥
६

असंयसिपर्य्याप्तकर्गे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी ७। प। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ २। सं ६। ६
मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। उ ९॥

असंयमि अपर्य्याप्तकंगे। गु ३। मि। सा। अ। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। । ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भा ६ भ २। सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ८॥

मिथ्यादृष्टिप्रभृति असंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं। इंतु संयममार्गणे समाप्तमादुदु॥

ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ २ का १। वे ०। क ०। सा ५ म श्रु अ म के। सं १ य। द ४। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। स १। आ २। उ ९। उपशातकषायादयोगपर्यंतं देश-
१
संयताना च मूलौघभंगः।

असंयतानां—गु ४ मि सा मि अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। इ ५। का ६। यो १३ आहारद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ २। स ६। सं २। आ २। उ ९। तत्पर्याप्ताना-
६
गु ४ मि सा मि अ। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा। सं २। आ १। उ ९। तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ।
६
जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क ४। ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ। स १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु। भा ६ भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स २, आ २, उ ८। मिथ्यादृष्टितोऽसंयतातं मूलौघभगो भवति, सयममार्गणा गता। दर्शनानुवादे ओघालापो भवति—

दर्शनानुवाददोळु ओघाळापं मूलौघभंगमक्कुं । चक्षुदर्शनिगळगे । गु १२ । जी ६ । सं अ च
२ २
प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलज्ञानरहित । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । दर्श १ । च । ले ६ भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ ८ ॥
६

चक्षुदर्शनिपर्य्याप्तकगे । गु १२ । जी ३ । सं । अ । च । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । सं ४ ।
१ १ १
ग ४ । इं २ पं च । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । म । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । द १ । च । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ ८ ॥
६

चक्षुर्दर्शनिअपर्य्याप्तकंगे । । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी ३ । सं अ च प ६ । ५ । अ ।
१ १ १
प्रा ७ । ७ । ६ । अ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द १ च । ले २ क शु । भ २ ।
भा ६
स ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ६ ॥

चक्षुर्दर्शनिमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ मि । जी ६ । सं अ च प ६ । ६ । ५ । ५ । प्रा १० ।
२ २ २
७ । ९ । ७ । ८ । ६ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ अ । द १ । च । ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
६
आ २ । उ ४ ॥

चक्षुर्दर्शनिना—गु १२, जी ६, स अ च । प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, स ४,
२ २ २
ग ४ । इं २ च, प, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७, कु कु वि म श्रु अ म, स ७ अ; दे, सा, छे, प, सू, य । द १ चक्षु, ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २, आ २, स ८ । तत्पर्याप्तानां—
६
गु १२, जी ३ सं अ च, प ६, ५, प्रा १०, ९, ८, स ४, ग ४ । इ २ प च, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म, स ७ अ दे सा छे प सू य, द १ च । ले ६ ।
६
भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २ । आ १ । उ ८ । तदपर्याप्तानां—गु ४ मि, सा, अ, प्र । जी ३ सं अ च । प ६, ५, अ, पा ७ ७, ६ अ, स ४, ग ४, इं २ प च । का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का,
१ १ १
वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । स ३ अ, सा छे द १ च । ले २ क शु । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा,
भा ६
सं २ । आ २ । उ ६ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ६ स अ च । प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९,
२ २ २

चक्षुर्दर्शनिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकरुगे । गु १ । जी ३ । सं पं । अ प । च प । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो १० । म ४ । व ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द १ । च ले ६ भ २ । सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ४ ॥

चक्षुर्दर्शनिअपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ मि । जी ३ । सं । अ । अ । अ । च । अ । प प ६ । ५ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । इं २ । पं । च । का १ त्र । यो ३ औमि । वैमि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ च । ले २ क शु भ २ । सं १ मि । सं २ । आ २ । उ ३ ॥

चक्षुर्दर्शनिसासादनप्रभृति क्षीणकषायपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं । विशेषमावुदेंदोडे चक्षुर्दर्शनिगे दितु वक्तव्यमक्कुं ।

अचक्षुदर्शनिगळगे । गु १२ । जी १४ । । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलरहितं । सं ७ । अ । दे । सा । छे । प । सू । यथा । द १ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ २ । उ ८ ॥

अचक्षुर्दर्शनिपर्य्याप्तकरुगे । गु १२ । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलज्ञानरहित । सं ७ । द १ अचक्षु । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं २ । आ १ । उ ८ ॥

७, ८, ६, सं ४, ग ४, इं २ पं च, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वय नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १ अ, द १ च । ले ६ । भ २ । स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी ३ सप, अप, च प, प ६, ५, प्रा १०, ९, ८, सं ४, ग ४, इं २ प च, का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ च । ले ६ । भ २, स १ मि, सं २ । आ १ । उ ४ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी ३ संअ अअ चअ, प ६ ५, प्रा ७, ७, ६, सं ४, ग ४, इ २ प च, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द १ च, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ३ ।

तत्सासादनात् क्षीणकषायात मूलौघभंग. किंतु दर्शनस्थाने एकं चक्षुर्दर्शनमेव वक्तव्यं ।

अचक्षुर्दर्शनिना——गु १२, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७, ९ ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ३, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवल नहि, सं ७ अ दे सा छे प सू य, द १ अ, ले ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ ८ । तत्पर्याप्ताना—गु १२, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं

अचक्षुर्दर्शनिअपर्य्याप्तकरगे । गु ४ मि । सासा । अ । प्र । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । ३ अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ । औ मि वै मि । आ मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द १ । अच । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ६ ॥
भा ६

अचक्षुर्दर्शनिमिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द १ । अच ले ६ । भ २ ।
६
सं १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥

अचक्षुर्दर्शनिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकरगे । गु १ । मि । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द १ अ च । ले ६ । भ २ । सं १ मि ।
६
सं २ । आ १ । उ ४ ॥

अचक्षुर्दर्शनिमिथ्यादृष्टचपर्य्याप्तकरगे । गु १ मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द १ । अच । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं २ ।
भा ६
आ २ । उ ३ ॥

अचक्षुर्दर्शनिसासादनप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं अचक्षुर्दर्शनिगळगे दु वक्तव्यमक्कुं ।

नहि, सं ७, द १ अ, ले ६ । भ २, स ६, स २, आ १, उ ८ । तदपर्याप्ताना—गु ४ मि सा अ प, जी
६
७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५, कु कु म श्रु अ, स ३ अ, सा, छे । द १ अ, ले २ क शु । भ २, स ५ मि सा उ वे
भा ६
क्षा, सं २, आ २, उ ६ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, स ४, ग ४ । इ ५, का ६, यो १३ आहारद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि ।
६
जी ७ प, प ६ । ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३ । क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द १ अ, ले ६ । भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ४ ।
६
तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द १ अ, ले २ क शु । भ २, स १ मि, स २,
भा ६
आ २ उ ३ । तत्सासादनात् क्षीणकषायातं यथायोग्यं योज्य ।

अवधिदर्शनिगळगे। गु ९। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ७। द १। अवधिदर्शन। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे क्षा। सं १। आ २। उ ५॥
६

अवधिदर्शनिपर्य्याप्तकरुगे। गु ९। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो ११। म ४। व ४। औ का। वै का। आ का। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ७। द १। अवधि। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ५॥
६

अवधिदर्शनिअपर्य्याप्तकरुगे। गु २। अ। प्र। जी १। प ६। अप्रा ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ४। औ मि। वै मि। आ मि। का। वे २। पुं। षं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं ३। अ। सा। छे। द १ अवधि। ले २। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ४॥
भा ६

"असंयतप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं अवधिज्ञानक्के पेळ्दंते वक्तव्यमक्कुं। केवलदर्शनिगे केवलदर्शनिगे केवलज्ञानिगे पेळ्दंते वक्तव्यमक्कुं। इंतु दर्शनमार्गणे समाप्तमादुदु॥

लेश्यानुवाददोळु गुणस्थानालापं मूलौघदंतक्कुं। विशेषमावुदेंदोडे अयोगिगुणस्थानमिल्ल।
कृष्णलेश्याजीवंगळगे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ २।
भा १ कृ
सं ६। मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं २। आ २। उ ९॥

कृष्णलेश्ययपर्य्याप्तकरुगे। गु ४। मि। सा। मि। अ। जी ७। प। प ६। ५। ४।

अवधिदर्शनिना—गु ९, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४। ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु ९, जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४, ग ४, इ १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४, व ४, औ १, वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, स ७, द १ अ, ले ६। भ १। स ३, सं १, आ १, उ ५। तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७, सं ४, ग ४, इं ५, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ पु न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स ३ अ सा छे, द १ अ, ले २, भ २, स ३, सं १। आ २, उ ४। असंयतात् क्षीणकषायातं अवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिना केवलज्ञानिवत्। दर्शनमार्गणा गता। लेश्यानुवादे गुणस्थानालापो मूलौघवत्। अयोगिगुणस्थानं नास्ति।

कृष्णलेश्याना—गु ४ मि सा मि अ। जी १४। प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ९। तत्पर्याप्तानां—
भा १ कृ

प्रा १०।९।८।७।६।४। सं ४। ग ३। म। ति। न। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। । ज्ञा ६। कु। कु। वि। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ २। सं ६। मि। सा। मि। उ। वे। क्षा। सं २।
भा १ कृ
आ १। उ ९॥

कृष्णलेश्याऽपर्य्याप्तकर्गे। गु ३। मि। सा। अ। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा ५। कु। कु। म। श्रु। अ। स १ अ। द ३। ले २ क शु। भ २। सं ३। मि।
भा १ कृ
सा। वे। पंचमादिपृथ्विगळिदं बर्प्प असंयतनोळु वेदक संभविसुगुं। सं २। आ २। उ ८॥

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८ ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं २।
भा १ कृ
आ २। उ ५॥

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जी ७। प। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४ सं ४। ग ३। न। ति। म। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १।
भा १ कृ
मि। सं २। आ १। उ ५॥

कृष्णलेश्यामिथ्यादृष्टयपर्य्याप्तकर्गे। गु १। मि। जी ७। अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ६। ५। ४। ३। अ। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४।

गु ४ मि सा मि अ, जी ७ प, प ६, ५, ४, प, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, स ४, ग ३ म ति न, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, स १ अ, द ३, च अ अ, ले ६,
भा १ कृ
भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २, आ १, उ ९। तदपर्याप्ताना—गु ३ मि सा अ, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले २ क शु। भ २, स ३, मि सा वे, पचमादिपृथ्व्यागतासयतेषु वेदक-
भा १ कृ
सम्यक्त्वसभवात्, सं २, आ २, उ ८। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३। स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो १३। वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ५। तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७ प, प ६, ५,
कृ १
४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, स ४, ग ३ न ति म, इ ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६। भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी
भा १ कृ
७ अ, प ६, ५, ४ अ। प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३ अ, स ४, ग ४। इ ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का,

ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं २। आ २। उ ४॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यासासादनंगे। गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १३। आहारद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यासासादनपर्य्याप्तकरगे। गु १। सा। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ न। ति। म। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ५॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यासासादनापर्य्याप्तकरगे। गु १। सा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्यामिश्रंग। गु १ मिश्र। जी १ प। प ६। प। प्रा १०। सं ४। ग ३। न। ति। म। देवगतियोळु कृष्णलेश्ये पर्य्याप्तकंगे संभविसदु। अपर्य्याप्तकालदोळिमश्रनिल्ल। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मिश्रज्ञानंगळु। सं १। अ। द २। च। अ। ले ६। भ १। सं १। मिश्ररुचि। सं १। आ १। उ ५॥
भा १ कृ

कृष्णलेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ सं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। न। ति। म। कृष्णलेश्याऽसंयतंगे। देवगति संभविसदु। इं १ पं। का १ त्र।

वे ३, क ४, ज्ञा २, कु कु, स १। स १ अ, द २, ले २ क शु। भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४।
भा १ कृ

तत्सासादनाना—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २,
भा १ कृ

उ ५। तत्पर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र. यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ, द २, ले ६। भ १, सा १ सा, सं १, आ १,
भा १

उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, च अ ले २ क शु। भ १, स १ सा,
भा १ कृ

सं १, आ २, उ ४। तन्मिश्राणा—गु १ मिश्र, जी १ पं, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, देवगतौ पर्याप्ते कृष्णलेश्या अपर्याप्ते मिश्रगुणस्थानं च नहि। इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५। तदसंयताना—
भा १ कृ

गु १ असं। जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ न ति म तेषां देवगतिर्नहि। इं १ पं, का १ त्र,

यो १२ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै का १ । कार्म्मण १ । कृष्णलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टि भवनत्रयदोळं पुट्टनप्पुदरिंदं वैक्रियिकमिश्रमिल्ल । अथवा घर्म्मेयं बिट्टु मिक्क नरकंगळोळं पुट्टनप्पुदरिंदमंतु वैक्रियिकमिश्रमिल्ल । घर्म्मेयोळपुट्टुवडं कपोतलेश्याजघन्याशदिंदमल्लदे कृष्णलेश्ययिंदं पुट्टलु संभावनेयिल्लप्पुदरिंदमंतु वैक्रियिकमिश्रयोगं संभविसदु । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

भा १ कृ

कृष्णलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकग्गें । गु १ । अस । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इ १ । प । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै १ । क ४ । ज्ञा ३ । म श्रु । अ । स १ । अ । द ३ च । अ । अ । ले ६ । भ १ । स ३ । उ । वे । क्षा ।

भा १ कृ

सं १ । आ १ । उ ६ ॥

कृष्णलेश्यासंयतापर्य्याप्तकग्गें । गु १ । अ सं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । औ मि । का १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ ० । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । वेदक । स १ ।

भा १ कृ

आ २ । उ ६ ॥

नीललेश्येगे कृष्णलेश्ययोळपेळ्दंते पेळ्दु कोळ्गे । विशेषमावुदेंदोडे सर्व्वत्र नीललेश्येंदु वक्तव्यमक्कुं । कपोतलेश्याजीवंगळ्गे । गु ४ । मि । सा । मि । अ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । म ४ । व ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । च । अ । अ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा ।

भा १ कृ

सं २ । आ २ । उ ९ ॥

यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १ तेषा सम्यग्दृष्टित्वात् भवनत्रयद्वितीयादिपृथ्वीष्वनुत्पत्ते । घर्मोत्पन्नाना तु कपोतलेश्या जघन्याशित्वाद्वैक्रियिक मिश्रयोगो नहि । वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ । भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ २, उ ६ । तत्पर्याप्ताना—गु १ अस, जी १ प, प ६,

भा १ कृ

प्रा १०, स ४, ग ३ न ति म, इ १ प, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६ । तदपर्याप्ताना—गु १ अस, जी

भा १ कृ

१ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ म, इ १ प । का १ त्र, यो २ औमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले २ क शु । भ १, स १ वे, स १, आ २, उ ६ । नीललेश्याना कृष्णलेश्यावद्वक्तव्य ।

भा १ कृ

कपोतलेश्याना—गु ४ मि सा मि अ, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, स १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ । भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २, आ २, उ ९ ।

भा १ क

कपोतलेश्या पर्य्याप्तकरुगे । गु ४। मि । सा । मि । अ । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । अशुभलेश्याऽपर्य्याप्तकंगे देवगति संभविसदु । भवनत्रयादिदेवकंळनितुं पर्य्याप्तकालदोळु शुभलेश्यरेयप्पुदरिंदं । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु । कु । वि । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । मि । सा । मि । उ । वे । क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ ॥ ५

भा १

कपोतलेश्या अपर्य्याप्तकरुगे । गु ३ । मि । सा । अ । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । । म । श्रु । अ । सं । अ । द ३ । च । अ । अ । ले २ क शु ।

भा १ क

भ २ । सं २ । मि । सा । वे । क्षा । सं २ । आ २ । उ ८ ॥

कपोतलेश्यामिथ्यादृष्टिगळगे । गु १ । मि । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । १०

भा १ क

आ २ । उ ५ ॥

कपोतलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकरुगे । गु १ । मि । जी ७ । प । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं ५ । का ६ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ २ । १५

भा १ क

सं १ । मि । सं २ । आ १ । उ ५ ॥

तत्पर्याप्ताना–गु ४ मि सा मि अ, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, देवगतिर्नहि भवनत्रयदेवानामपि पर्याप्तकाले शुभलेश्यत्वात्, इ ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले ६ । भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ १, २०

भा १ क

उ ९ । तदपर्याप्ताना—गु ३ मि सा अ, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ । प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, स १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ २, स ४ मि सा वे क्षा, सं २, आ २, उ ८ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी १४, प

भा १ क

६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ । भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । २५

भा १ क

तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म, इ ५, का १, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २ च अ, ले ६ । भ २,

भा १ क

कपोतलेश्यामिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकस्थानं । गु १ मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । स ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ । क शु । भ २ । स १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । सा सा । जी २ । प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासासादनपर्य्याप्तकस्थानं । गु १ । सा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले ६ । भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासासादनापर्य्याप्तकस्थानं । गु १ । सा । जी १ । अ । प । ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासादनरुचि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा १ क

कपोतलेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । देवगतियोळशुभलेश्ये पर्य्याप्तकगे संभविसदु । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्रज्ञानंगळु । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा १ क

स १ मि, स २, आ १, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी ७ अ, प ६, ५, ४, अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, स ४, ग ४, इ ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १, स १ अ, द २, ले २ क
भा १ क
शु । भ २, स १ मि, स २, आ २, उ ४ । तत्सासादनाना—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, स ४, ग ४, इ १ प, का १ त्र, यो १३, वे ३ क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, स १ अ, द २ च अ, ले ६ ।
क १
भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इ १ प, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ सा, स १, आ १, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ,
भा १ क
स ४, ग ३ ति म दे, इ १ प, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, स १, आ २, उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्र, जी १ प,
भा १ क
प ६, प्रा १०, स ४, ग ३ न ति म, देवगतिर्नहि, इ १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३,

कपोतलेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । औ २ । वै २ । म ४ । वा ४ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥

भा १ क

कपोतलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । न ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । वै का । औ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

भा १ क

कपोतलेश्याऽसंयताऽपर्य्याप्तकंगे । गु १ । असं । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ । न । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे २ । पुं । नपुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं २ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ ॥

भा १ क

तेजोलेश्याजीवंगळ्गे । गु ७ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । अ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । म ति दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलरहित । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १० ॥

भा १ ते

तेजोलेश्यापर्य्याप्तकरुगें । गु ७ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै १ । आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । केवलरहित । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १० ॥

भा १ ते

क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५ । असंयताना—

भा १ क

गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ २,

भा १ क

उ ६ । तत्पर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १,

भा १ क

अ १, उ ६ । तदपर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग ३ न ति म, इ १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे २, पु न, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द ३, ले २ क शु । भ १, स २

भा १ क

वे क्षा । स १, आ २, उ ६ । तेजोलेश्याना—गु ७, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं नहि, स ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ २,

भा १ ते

स ६, स १, आ २, उ १० । तत्पर्याप्ताना—गु ७, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे,

तेजोलेश्याऽपर्य्याप्तकगर्गे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वैमि आमि । का । वे २ । स्त्री । पुं । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । ले ६ क शु । भा १ ते । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥

तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिगर्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वै मि । कार्म्मण । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ श २ । सं १ । भा १ ते । मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकगर्गे । गु १ । मि । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु वि । सं १ । द २ । ले ६ । भ २ । सं मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥ भा १ ते

तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टि अपर्य्याप्तकगर्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो २ । वै मि । का । वे २ । स्त्री । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ भा १ ते

तेजोलेश्यासासादनसम्यग्दृष्टिगर्गे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति म दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ ।

इ १ प, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवल नहि, स ५ अ दे सा छे प, द ३ । ले ६ । भ २, स ६, स १, आ १, उ १० । तदपर्याप्ताना—गु ४ । मि सा अ प्र, जी १ अ, प ६ अ, भा १ ते प्रा ७ अ, स ४, ग २ म दे, इ १ प, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ स्त्री पु, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, स ३ अ सा छे, द ३, ले २ क शु, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स १, आ २, उ ८ । भा १ ते तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी २ प, अ, प ६ ६, प्रा १० ७, स ४, ग ३ ति म दे, इ १ प, का १ त्र, यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६ । भ २, स १ मि, भा १ ते स १, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्ताना— गु १ मि, जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४, ग ३ ति म दे, इ १ प, का १ त्र यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ । भ २ । स १ भा १ ते मि । स १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग १ दे । इं १ प । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे २ स्त्री पु । क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । स १ । आ २ । उ ४ । सासादनाना—गु १ सा । जी २ प अ । प ६ ६ । भा १ ते

का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १।
भा १ ते
सासादनरुचि। सं १। आ २। उ ५॥

तेजोलेश्यासासादनपर्य्याप्तकस्य। गु १। सा। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति म दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥

तेजोलेश्यासासादनापर्य्याप्तकस्य। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो २ वै मि। का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ २। उ ४॥
भा १ ते

तेजोलेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्य। गु १। मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। भा १ ते
सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

तेजोलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्य। गु १। अ सं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥
भा १ ते

तेजोलेश्यापर्य्याप्तासंयतस्य। गु १। असं। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३।

प्रा १० ७। स ४। ग ३ ति म दे। इं १ प। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५।
भा १ ते
तत्पर्याप्ताना—गु १ सा। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा।
भा १ ते
सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग १ दे। इं १ पं। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे २ स्त्री पु। क ४। ज्ञा २। स १ अ। द २। ले २ क शु।
भा १ ते
भ १। स १ सा। स १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६। प्रा १०। स ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ वै औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ मिश्र। सं १। आ १। उ ५। असंयताना—गु १ अ। जी २ प। अ। प ६ ६।
भा १ ते
प्रा १० ७। स ४। ग ३ ति म दे। इं १ प। का १ त्र। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा
भा १ ते

ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ ॥ औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १ ते

तेजोलेश्याअपर्य्याप्तासंयतगुणे । गु १ । अ । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं १ । का १ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले २ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा १ ते

तेजोलेश्यादेशव्रतिगळ्गे । गु १ । दे । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा १ ते

तेजोलेश्या-प्रमत्तगुणे । गु १ प्र । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । स ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । भा १ ते
सं ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥

तेजोलेश्याऽप्रमत्तगुणे । गु १ । अ प्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १ ते

---

१० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इ १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । आ १ । उ ६ ।
भा १ ते

तदपर्याप्ताना—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इ १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द ३ । ले २ । भ १ । स ३ । स १ । भा १ ते
आ २ । उ ६ । देशव्रतिना—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग २ ति म । इ १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । स १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । भा १ ते
आ १ । उ ६ । प्रमत्ताना—गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । स ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । आ १ । भा १ ते
उ ७ । अप्रमत्ताना—गु १ अ प्र । जी १ प । प ६ । प्रा १० । स ३ । ग १ म । इ १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । स ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । भा १ ते

पद्मलेश्याजीवंगळ्गे । गु ७ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १० ॥

भा १ पद्म

पद्मलेश्यापर्य्याप्तकर्गे । गु ७ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ । अ । दे । सा । छे । प । द ३ । । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १० ॥

भा १ पद्म

पद्मलेश्याऽपर्य्याप्तकर्गे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । का । आ मि । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥

भा १ पद्म

पद्मलेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥

भा १ प

पद्मलेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तंगे गु १ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । उ ५ ॥

भा १ प

आ १ । उ ७ । पद्मलेश्याना—गु ७ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । स ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ ।

भा १ प

स १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्ताना—गु ७ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । स ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ ।

भा १ प

भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्ताना—गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं १ ।

भा १ प

आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इ १ । का १ । यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ प । प ६ ।

भा १ प

प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ ।

पद्मलेश्यामिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकस्य। गु १। मि। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। दे। इं १। का १। यो २। वैमि। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥
भा १ प

पद्मलेश्यासासादनस्य। गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १२। म ४। वा ४। औ का १। वै का २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सा। सं १। आ २। उ ५॥
भा १ प

पद्मलेश्यासासादनपर्य्याप्तकस्य। गु १। सा। जी १। प। प ६। ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥
भा १ प

पद्मलेश्यासासादनाऽपर्य्याप्तकस्य। गु १। सा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग १। दे। इं १। का १। यो २। वैमि। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ १। सं १। सं १। आ २। उ ४॥
भा १ प

पद्मलेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिनः। गु १। मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मिश्र। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्ररुचि। सं १। आ १। उ ५॥
भा १ प

ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १
भा १ प
मि। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग १ दे। इं १ प। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ४।
भा १ प
तत्सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इ १। का १। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले ६। भ १।
भा १
स १ सा। स १ अ। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ सा। जी १। प। प ६। प्रा १०। स ४। ग ३ ति म दे। इ १। का १। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। स १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा।
भा १ प
जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ दे। इ १। का १। यो २ वैमि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा २ कु कु। स १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। स १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशां—
भा १ प
गु १ मिश्रं। जी १। प ६, प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इ १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३

पद्मलेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। प। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १३। आहारद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। भा १ प
आ २। उ ६॥

पद्मलेश्याऽसंयतपर्य्याप्तकग्गें। गु १। अ। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। योग १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥ भा १ प

पद्मलेश्याऽसंयताऽपर्य्याप्तकग्गें। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग २। म। दे। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे १। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ २। उ ६॥ भा १ प

पद्मलेश्यादेशव्रतिगळ्गे गु १। देश। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २। म। ति। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। देश। द ३। ले ६। भ १। भा १ प
सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

पद्मलेश्या-प्रमत्तसंयतग्गें। गु १। प्र। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। गति १। म। इ १। का १। यो ११। म ४। वा ४। औ का १। आ का २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। भा १ प
सं १। आ १। उ ७॥

मिश्राणि, सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ मिश्र। स १। आ १, उ ५। असयताना—गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १। यो १३ आहारकद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। स ४, ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औका वैका। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तद्-पर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग २ म दे, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३। ले २ क शु, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २ उ ६। देशव्रताना—गु १ दे। जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १। का १। यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे, द ३। ले ६। भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६। प्रमत्ताना—गु १ प्र, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ म, इं १, का १। यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २, वे ३, क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। स ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ २। स ३ उ वे क्षा,

पद्मलेश्येय अप्रमत्तगर्गे । गु १ । अ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । गति १ । म । इं १ । पं । का १ । त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा १ प

शुक्ललेश्याजीवंगळ्गे । गु १३ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । ४ । २ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ २ । उ १२ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्यापर्याप्तकगर्गे । गु १३ । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । ४ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इ १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ द ४ । च । अ । अ । के । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १२ ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्या अपर्य्याप्तकगर्गे । गु ५ । मि । सा । अ । प्र । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । २ । सं ४ । ग २ । म । दे । इं । का १ । यो ४ । औ मि । वै मि । का । आ । मि । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा ६ । सं ४ । अ । सा । छे । य । द ४ । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ १० ॥
भा १ शु

शुक्ललेश्यामिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का २ । कार्म्म का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ । मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
भा १ शु

स १, आ १ । उ ७ । अप्रमत्ताना—गु १ अप्र, जी १ प, प ६ । प्रा १०, स ३, ग १ म । इं १ प । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ ।
भा १ प

भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ७ । शुक्ललेश्याना—गु १३ । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सयोग ४ । २ । स ४ । ग ३ ति म दे, इ १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । स ७ । द ४, ले ६ । भ २ । स ६ । स १, आ २, उ १२ । तत्पर्याप्ताना—गु १३ । जी १ प, प ६,
भा १ शु

प्रा १० ४, स ४, ग ३ ति म दे, इ १, का १, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १, आ १ । वे ३, क ४, ज्ञा ८ । स ७, द ४ च अ अ के, ले ६ । भ २, स ६, स १ । आ १, उ १२ । तदपर्याप्ताना—गु ५, मि सा अ प्र स,
भा १ शु

जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७, २, स ४, ग २ म दे, इ १, का १ यो ४ औमि वैमि आमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा ६, स ४ अ सा छे य, द ४ ले २ क शु । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स १, आ २, उ १० ।
भा १ शु

तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, स ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १,
भा १ शु

शुक्ललेश्यामिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ १ । भा १ शु उ ५ ॥

शुक्ललेश्यामिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । अ । ६ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वै मि १ । का १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि सं १ । आ २ । उ ४ ॥ भा १ शु

शुक्ललेश्यासासादनर्गे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १२ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सासा । भा १ शु सं १ : आ २ । उ ५ ॥

शुक्ललेश्यापर्य्याप्तसासादनसम्यग्दृष्टिगळगे । गु १ । सासा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वैक्रि का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा सं १ । भा १ शु आ १ । उ ५ ॥

शुक्ललेश्यासासादनापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ । यो २ । वै मि । का १ । वे १ । पुं । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ भा १ शु

आ २, उ ५ । तत्पर्याप्ताना—गु १ मि, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १, सं १, भा १ शु

आ १, उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि, जी १ अ, प ६ । प्रा ७, सं ४, ग १ दे । इं १, का १, यो २, वैमि का, वे १ पु, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २, ले २ क शु । भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४ । भा १ शु

सासादनाना—गु १ सा, जी २ प, अ, प ६, ६, प्रा १०, ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २ । ले ६ । भा १ शु

भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इ १, का १, यो १० म ४, व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, । द २, ले ६, भा १ शु

भ १, स १ सा, सं १, आ १,। उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, स ४, ग १ दे, इं १, का १ । यो २ वैमि का । वे १ पुं, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ द २, ले २ क शु । भा १ शु

शुक्ललेश्यासम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १ मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मिश्र। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥

भा १ शु

शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे गु १। असं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १३। आहारद्वयवर्ज्जित वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १।

भा १ शु

आ २। उ ६॥

शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्गे। गु १। असं। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १।

भा १ शु

आ १। उ ६॥

शुक्ललेश्याऽसंयतसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तकर्गे। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ प्रा ७। सं ४। ग २। म। दे। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १।

भा १ शु

आ २। उ ६॥

शुक्ललेश्यादेशव्रतिगळ्गे गु १। देश। जी। १। प ६। प्रा १०। सं ४ ग २। ति। म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। देश। द ३। ले ६।

भा १ शु

भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥

भ १, स १ सा। स १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशा—गु १ मिश्र। जी १ प। प ६। प्रा १०। स ४। ग ३ ति म दे। इ १। का १, यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि। स १ अ। द २। ले ६। भ १, स १ मिश्र। स १। आ १। उ ५। असयताना—गु १ अ। जी २ प

भा १ शु

अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। स ४, ग ३ ति म दे। इ १, का १। यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १ अ। द ३, ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २।

भा १ शु

उ ६। -तत्पर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इ १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३।

भा १ शु

स १। आ १। उ ६। तदपर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग २ म दे। इ १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १ अ। द ३। ले २ क। शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। स १। आ २। उ ६। देशव्रताना—गु १ दे। जी १ प।

भा १ शु

प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति म, इ १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ।

शुक्ललेश्याप्रमत्तसंयतगें। गु १। प्र। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। म। इं १। का १। यो ११। म ४। वा ४। औ का १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ७॥
भा १ शु

शुक्ललेश्याअप्रमत्तसंयतंगे। गु १। अ प्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। भा १ शु
सं ३। सं १। आ १। उ ७॥

शुक्ललेश्या अपूर्व्वकरणप्रभृतिसयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं ओघभंगमेयक्कुं। अलेश्यरप्प अयोगकेवलिसिद्धपरमेष्ठिगळिगे ओघभंगमक्कुं। इंतु लेश्यामार्गणे समाप्तमादुदु॥

भव्यानुवाददोळु भव्यरुगळगे ओघभंगमक्कुं। मभव्यसिद्धरुगळगे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८ ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। अभव्य। सं १। मिथ्या। सं २। आ २। उ ५॥
६

अभव्यपर्य्याप्तकरगें। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। अभव्य। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥
भा ६

सं १ दे। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। प्रमत्ताना—गु १ प्र। जी २ प। अ।
भा १ शु
प ६ ६। प्रा १०, ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो ११ म ४ व ४ औ १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। स ३। सा छे प, द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ७। अप्रमत्ताना—गु १
भा १ शु
अ प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३। स १। आ १। उ ७। अपूर्वकरणात्सयोगपर्यंताना अलेश्यायोगि-
भा १ शु
सिद्धाना च ओघमंगो भवति। लेश्यामार्गणा गता।

भव्यानुवादे भव्यानामोघभंग.। अभव्याना—गु १ मि। जी १४ प ६ ६ ५ ५ ४ ४। प्रा १० ७ ९ ७, ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १३। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। स १ अ। द २। ले ६। भ १ अ। स १ मि। सं २। आ २। उ ५। तत्पर्याप्ताना—गु १ मि।
६
जी ७। प ६ ५ ४। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १ अ। स १ मि। सं २। आ १।
६

अभव्यापर्य्याप्तकर्गे । गु १ । मि । जी ७ । अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । अ । सं ४ । ग ४ इं ५ । का ६ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । अभव्य । सं १ । मि । सं २ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

भव्यरुमभव्यरुमल्लद सिद्धपरमेष्ठिगळगे गुणस्थानातीतर्गे मुं पेळ्दतेयक्कुं । इंतु भव्यमार्गणे समाप्तमादुदु ॥

सम्यक्त्वानुवाददोळु सम्यग्दृष्टिगळगे । गु ११ । असंयतादि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ ॥
भा ६

सम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । ४ । १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । व ४ । औ का । वै का । आ का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । म । श्रु । अ । म । के । सं ७ । द ४ । ले ६ भ १ । सं ३ । उ वे । क्षा । सं १ । आ १ । उ ९ ॥
भा ६

सम्यग्दृष्टि अपर्य्याप्तकर्गे । गु ३ । अ । प्र । सयो । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ २ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ४ । औ मि । वै मि । आ मि । कार्म्म । वे २ । न पुं । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । के । सं ४ । अ । सा । छे । यथा । द ४ च । अ । अ के । ले २ शु क । भ १ । सं ३ । उ । वे । क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ॥
भा ४ क ते प शु

असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति अयोगिकेवलिपर्य्यंतं मूलौघभगमक्कुं ॥

उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी ७ अ । प ६ ५ ४ अ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ अ । स ४ । ग ४ । इ ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । स १ अ । द २ । ले २ क शु ।
भा ६
भ १ अ । स १ मि । स २ । आ २ । उ ४ । भव्याभव्यलक्षणरहितसिद्धाना प्राग्वत् । भव्यमार्गणा गता ।

सम्यक्त्वानुवादे सम्यग्दृष्टीना—गु ११ असयतादीनि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ४ २ १ । स ४, ग ४, इ १ प, का १ त्र, यो १५ । वे ३, क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ म के, स ७, द ४ ले ६, भ १,
भा ६
स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ९ । तत्पर्याप्ताना—गु ११, जी १, प ६ ४, प्रा १० ४ १, स ४, ग ४, इ १, का १, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३ । क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ म के, सं ७ । द ४, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ । तदपर्याप्ताना—गु ३ अ प्र स । जी १ अ ।
६
प ६ अ । प्रा ७ अ । २ । सं ४ । ग ४ । इ १ प । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे २ न पु । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ के । स ४ अ सा छे य । द ४ च अ अ के । ले २ क शु । भ १ । स ३ उ वे
भा ४
क्षा । स १ । आ २ । उ ८ । असयतादयोगिपर्यंतं मूलौघभग ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु ११। जी २। प ६। ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ५। सं ७। द ४। ले ६। भा ६ भ १। सं १। सं १। आ २। उ ९॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकरुगें। गु ११। जी १। प ६। प्रा १०। ४। १। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ११। म ४। वा ४। औ का १। वै का १। आ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ५। म। श्रु। अ। म। के। सं ७। द ४। ले ६ भा ६ भ १। सं १। क्षा। सं १। आ १। उ ९॥

क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तकरुगें। गु ३। अ। प्र। सयो। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। २। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ४। औ मि। वै मि। आ मि। कार्म्म। वे २। न। पुं। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। के। सं ४। अ। सा। छे। यथा। द ४। च। अ। अ। के। ले २ क शु। भ १। सं १। क्षा। सं १। आ २। उ ८॥ भा ६

क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंयतरुगे। गु १। अ। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १३। आहारद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भा ६ भ १। सं १। क्षा। सं १। आ २। उ ६॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकासंयतरुगें। गु १। असं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले ६। भा ६ भ १। सं १। क्षा। स। सं १। आ १। उ ६॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टीना—गु ११। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७ ४ २ १। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ५। सं ७। द ४। ले ६। भा ६ भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ९। तत्पर्याप्तानाना—गु ११। जी १। प ६। प्रा १० ४ १। सं ४। ग ४। इं १। का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३। क ४। ज्ञा ५ म श्रु अ म के। सं ७। द ४। ले ६। भा ६ भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ९। तदपर्याप्तानाना—गु ३ अ प्र स। जी १ अ। प ६। प्रा ७, २। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ४। औमि वैमि आमि का। वे २ न, पु। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ के। सं ४ अ सा छे य। द ४ च अ अ के। ले २ क शु। भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ८। तदसंयतानाना—गु १ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६। भा ६ भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानाना—गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६।

क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यसंयतापर्य्याप्तकस्य। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो ३। औ मि। वै मि। का। वे २। न। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। च। अ। अ। ले २ क शु। भ १। सं १। भा ४ क ते प शु
क्षा। सं १। आ २। उ ६॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशव्रतिगळ्गे। गु १। देश। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। वा ४। औ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। दे। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं १। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥ भा ३

क्षायिकसम्यग्दृष्टिप्रमत्तप्रभृति सिद्धपर्य्यंतमोघभंगमक्कुं॥

वेदकसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु ४। अ। दे। प्र। अ। जी २ प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ५। अ। दे। सा। छे। प। द ३। ले ६ भ १। सं १। वेदक। सं १। आ २। उ ७॥ भा ६

वेदकसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकस्य। गु ४। अ। दे। प्र। अ। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ११। म ४। वा ४। औ १। वै १। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ५। अ। दे। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं १। वेदक। सं १। आ १। उ ७॥ भा ६

वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्य्याप्तकस्य। गु २। असं। प्रम। जी १ अ। प ६। अ। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ४। औ मि। वै मि। आ मि का। वे २। न। पुं। क ४। ज्ञा ३। म श्रु अ। सं ३ अ। सा। छे। द ३। ले ६। भ १। सं १। वेदक। सं १। आ २। उ ६॥ भा ६

भ १। स १ क्षा। स १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग ४। इ १ प। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे २ न पु। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु। भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ६। तद्देशव्रतानां— भा ४ क ते प शु
गु १ दे। जी १ प। प ६। प्रा १०। स ४। ग १ म। इ १ प। का १ त्र। यो ९ म ४। व ४। औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १ दे। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। भा ३
उ ६। प्रमत्तात्सिद्धपर्यंत ओघभगो भवति।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां—गु ४ अ दे प्र अ। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग ४। इ १ पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ५ अ दे सा छे प। द ३। ले ६। भ १। ६
स १ वे। स १। आ २। उ ७। तत्पर्याप्तानां—गु ४ अ दे प्र अ। जी १ प, प ६, प्रा १०, स ४। ग ४, इ १, यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, स ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, स १, आ १, उ ७। तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६, प्रा ७, ६

वेदकसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । असं । जी २ प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वे । सं १ । आ २ । भा ६ उ ६ ॥

वेदकसम्यग्दृष्ट्यसंयतपर्य्याप्तकर्ग्गे । गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । असंयम । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वे । सं १ । आ १ । उ ६ ॥ भा ६

वेदकसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे । गु १ । अ । जी १ । अ । प ६ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे २ । षं । पुं । क ४ । ज्ञा ३ । म । श्रु । अ । सं १ । अ । द ३ । ले २ । भ १ । सं १ । वे । सं १ । आ २ । उ ६ ॥ भा ६

वेदकसम्यग्दृष्टिदेशव्रतिगळ्गे । गु १ । देश । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । देश । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वे । सं १ । आ १ । उ ६ ॥ भा ३

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रसत्तग्गे । गु १ । प्रम । जी २ । प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ । म । इं १ । पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ १ । आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । सं ३ । सा । छे । प । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । वेद । भा ३ सं १ । आ १ । उ ७ ॥

स ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ न पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं ३ अ सा छे, द ३, ले २, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६ । तदसंयतानां—गु १ अ, जी २ प, अ प ६, ६ । ६

प्रा १०, ७ सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ २, उ ६ । तत्पर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ प, प ६, ६

प्रा १०, सं ४, ग४, इं १, का १ त्र, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६ । तदपर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ अ । प ६ अ, ६

प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे २ ष पु, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले २ क शु, भ १, स १ वे, स १, आ २, उ ६ । देशव्रताना—गु १ दे, जी १ प, प ६, प्रा १०, भा ६

सं ४, ग २ ति म, इ १ प, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३ ले ६, ३

भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६ । प्रमत्ताना—गु १ प्र, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ म, इ १ प, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ १, आ २, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प,

वेदकसम्यग्दृष्टयप्रमत्तसंयतगर्गे। गु १। अप्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं १। वे। सं १। आ १। उ ७॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु ८। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १२। म ४। वा ४। औ का १। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ६। अ। दे। सा। छे। सू। य। द ३। लें ६। भ १। सं १ उ। सं १। आ २। उ ७॥
भा ६

उपशमसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकर्गे। गु ८। अ। दे। प्र। अ। अ। सू। उ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। व ४। औ का १। वै का १। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। स ६। अ। दे। सा। छे। सू। य। द ३। ले ६। भ १। भा ६
सं १। उ। सं १। आ १। उ ७॥

उपशमसम्यग्दृष्टयपर्य्याप्तकर्गे। गु १। असंयत। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। सं ४। ग १। दे। इं १। का १। यो २। वै मि। का। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं १। उ। सं १। आ २। उ ६॥
भा ३ शुभ

उपशमसम्यग्दृष्टयसंयतगर्गे। गु १। असंयत। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १२। म ४। वा ४। औ का १। वै २। का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म श्रु। अ। स १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं १। उ। सं १। आ २। उ ६॥
भा ६

द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७। अप्रमत्ताना—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, स ३, ग १ म, इ १ पं, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, स ३ सा छे प, द ३, ले ६। भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७। उपशमसम्यग्दृष्टीना—गु ८, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, स ४, ग ४, इ १। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ६ अ दे सा छे सू य। द ३। ले ६। भ १। स १ उ। सं १। आ २। उ ७। तत्पर्याप्ताना—गु ८ अ दे प्र अ अ अ सू उ। जी १। प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। स ६ अ दे सा छे सू य। द ३। ले ६। भ १। स १ उ। सं १। आ १। उ ७। तदपर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७। सं ४। ग १ दे। इं १। का १। यो २ वैमि का। वे १ पु। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ १। स १ उ। स १। आ १। उ ६। असयताना—गु १ अ। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग ४। इ १। का १। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। द ३। ले ६। भ १। स १ उ। स १। आ २। उ ६।

उपशमसम्यग्दृष्ट्यसंयतपर्य्याप्तकरुगें । गु १ । अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ६

उपशमसम्यग्दृष्ट्यसंयतापर्य्याप्तकरुगें । गु १ । अ । जी १ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ । दे । इं १ । का १ त्र । यो २ । वै मि १ । का १ । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ २ । उ ६ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिदेशव्रतिगळ्गे । गु १ । दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ । ति । म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । व ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । दे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ६ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिप्रमत्तरुगे । गु १ । प्रम । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । व ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । म । श्रु । अ । म । स २ । सा । छे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा ३

उपशमसम्यग्दृष्टिअप्रमत्तसंयतरुगें । गु १ । अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा । छे । द ३ । ले ६ । भ १ । सं १ । उ । सं १ । आ १ । उ ७ ॥
भा २

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्व्वकरणप्रभृति उपशांतकषायछद्मस्थवीतरागपर्य्यंतं ओघभंगमक्कुं । मिश्याद्दष्टिसासादनमिश्ररुचिगळ्गे ओघभंगमेयप्पुदु । इंतु सम्यक्त्वमार्गणे समाप्तमादुदु ॥

तत्पर्याप्ताना–गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । स १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ ।
६

तदपर्याप्ताना–गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे १ पु । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ ।
भा ३

देशव्रताना–गु १ दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ ।
३

प्रमत्ताना–गु १ प्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ । औ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३

अप्रमत्ताना–गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ३ । ग १ म । इं १ । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३

अपूर्वकरणादुपशातकषायपर्यंतमोघभग. । तथा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुचीनामपि । सम्यक्त्वमार्गणा गता ।

संज्ञानुवाददोळु । संज्ञिगळ्गे । गु १२ । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं । ४ ग ४ । इं १ । का १ । यो १५ । । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ । भ २ । भा ६ सं ६ । सं १ । आ २ । उ १० ॥

संज्ञिपर्य्याप्तकर्गे । गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । आ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ । भ २ । सं ६ । सं १ । आ १ । उ १० ॥ भा ६

संज्ञपर्य्याप्तकर्गे । गु ४ । मि । सा । अ । प्र । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ । औ मि १ । वै मि १ । आ मि १ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । कु । कु । म । श्रु । अ । सं ३ । अ । सा । छे । द ३ । ले २ क शु । भ २ । सं ५ । मि । सा । उ । भा ६ वे । क्षा । स १ । आ २ । उ ८ ॥

सज्ञिमिथ्यादृष्टिगळ्गे । गु १ । मि । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । आहारद्वयरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ ॥ भा ६

संज्ञिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकर्गे गु १ । मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ २ । सं १ । मि । सं । आ १ । उ ५ ॥ ६

सज्यनुवादे सज्ञिना–गु १२ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इ १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । स ७ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । स १ । आ २ । उ १० । ६

तत्पर्याप्ताना–गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इ १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । स ७ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । स १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्ताना– ६

गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । स ३ अ सा छे । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । स १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृशा–गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इ १ । का १ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । स १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्ताना–गु १ मि । जी १ । प ६ । भा ६ ६

प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।

संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यपर्य्याप्तकगे । गु १ । मि । जी १ । अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो ३ । औ मि १ । वै मि १ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । च । अ । ले २ क शु । भ २ । सं १ । मि । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

संज्ञिसासादनगे । गु १ । सासा । जी २ । प । अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १३ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ५ ॥
भा ६

संज्ञिपर्य्याप्तकसासादनगे । गु १ । सासा । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । पं । का १ त्र । यो १० । म ४ । वा ४ । औ का १ । वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । कु । कु । वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भ १ । सं १ । सा । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ६

संज्ञिसासादनसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तकगे । गु १ । सासा । जी १ । अ । प ६ । अ । प्रा ७ । अ । सं ४ । ग ३ । ति । म । दे । इं १ । का १ । यो ३ । औ मि । वै मि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । कु । कु । सं १ । अ । द २ । ले २ क शु । भ १ । सं १ । सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥
भा ६

संज्ञिमिश्रगे । गु १ । मिश्र । जी १ । प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० । म ४ । व ४ । औ का १ । वै का १ । आहारकद्वयमिश्रद्वय-कार्म्मणरहित । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । मिश्र । सं १ । अ । द २ । ले ६ । भ १ । सं १ । मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ ॥
भा ६

सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । स १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ मि । जी १ अ ।
६
प ६ । प्रा ७ । स ४ । ग ४ । इं १ प । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु ।
सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ ।
६
प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १ । वे ३ ।
क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । स १ । आ २ । उ ५ ।
६
तत्पर्याप्ताना—गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । स ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४
औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ ।
६
आ १ । उ ५ । तदपर्याप्ताना—गु १ सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ ।
का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ । भ १ । स १ सा ।
६
सं १ । आ २ । उ ४ । मिश्राणा—गु १ मिश्र । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ ।
यो १० । औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्रकार्मणाहारकद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ मिश्राणि । सं १ अ ।

संज्ञ्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १३। आहारद्वयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥

भा ६

संज्ञिपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। अ सं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। काय १। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। आ १। उ ६॥

भा ६

संज्ञपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्ग। गु १। असं। जी १। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३। औ मि। वै मि। कार्म्म। वे २। न पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले २ क शु। भ १। सं ३। सं १। आ २। उ ६॥

भा ६

संज्ञिदेशव्रतिप्रभृतिक्षीणकषायपर्य्यंतं मूलौघभंगमक्कुं।

असंज्ञिगळ्गे। गु १ मि। जी १२। संज्ञिद्वयरहित प ५। ५। ४। ४। प्रा ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो ४। औ २। का १। अनुभयवाग्योग १। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले ६। भ २।

भा ४ अशुभ। ते

सं १। मि। सं १। आ २। उ ४॥

असंज्ञिपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ६। अ। संज्ञपर्य्याप्तरहित प ५। ४। प्रा ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १। ति। इं ५। का ६। यो २। औ का १। अनुभयवचन। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले ६। भ २। सं १। मि। सं १।

भा ३। अशुभ। ते १

असंज्ञित्वं। आ १। उ ४॥

द २। ले ६। भ १। स १ मिश्र। स १। आ १। उ ५। असयताना—गु १ अ। जी २ प अ। प ६।

६

६। प्रा १०। ७। स ४। ग ४। इं १। का १। यो १३ आहारकद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १ अ। जी १।

६

प ६। प्रा १०। स ४। ग ४। इ १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। स १। आ १। उ ६। तदपर्याप्ताना—गु १ अ। जी १ अ।

६

प ६। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का क वे २ पु। न। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु। भ १। स ३। स १। आ २। उ ६। देशव्रतात्क्षीणकषाय-

भा ६

पर्यंतं मूलौघभग।

असज्ञिना—गु १ मि। जी १२ सज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ नहि। प ५ ५। ४ ४। प्रा ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। स ४। ग १ ति। इ ५। का ६। यो ४। औ २। का १ अनुभयवचन। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २ ले ६। भ १। स १ मि। स १। आ २। उ ४।

भा ४ अ ३ शु १

असंज्ञिपर्य्याप्तकंगे। गु १। मि। जी ६। अ। प ५। ४। अ प्रा ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो २। औ मि। का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १। अ। द २। ले २ क शु। भ २। सं १। मि। सं १। असंज्ञि। आ २। उ ४॥
भा ३ अशु

संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशरहितसयोगायोगि सिद्धरुगळगे मूलौघभंगमक्कुं। इंतु संज्ञिमार्गणे समाप्तमादुदु॥ ५

आहारानुवाददोळु आहारिगळगे। गु १३। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। ४। २। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १४। कार्म्मणकाययोगरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ १२॥
६

आहारिपर्य्याप्तकर्गे। गु १३। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ११। म ४। वा ४। औ का। वै का। आ का। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले ६। भ २। सं ६। सं २। आ १। उ १२॥ १०
भा ६

आहारिअपर्य्याप्तकंगे। गु ५। मि। सा। अ। प्र। सयो। जी ७। अ। प ६। ५। ४। अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३। औ मि। वै मि। आ मि। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ। के। सं ४। अ। सा। छे। यथा। द ४। ले १ कं। भ २। सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। उ १०॥ १५
भा ६

तत्पर्याप्ताना–गु १ मि। जी ६ संज्ञिपर्याप्तो नहि। प ५। ४। प्रा ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १ ति। इ ५। का ६। यो २ औ। अनुभयवचनं। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १
भा ४ अ ३ शु १
मि। सं १ अ। आ १। उ ४। तदपर्याप्ताना–गु १ मि। जी ६ अ। प ४ अ। प्रा ७। ६। ५। ४। ३। स ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो २ औमि का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। २०
भा ३ अशु
भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ४। संज्ञासज्ञिव्यपदेशरहिताना सयोगायोगिसिद्धानां मूलौघभंगः। सज्ञिमार्गणा गता।

आहारानुवादे आहारिणा–गु १३, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, ४, २, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १४ कार्मणो नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२। तत्पर्याप्ताना–गु १३, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, २५
६
६, ४, ४, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६,
६
भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२। तदपर्याप्ताना–गु ५ मि सा अ प्र स, जी ७ अ, प ६, ५, ४, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, २, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि आमि, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, स ४ अ सा छे यथा, द ४, ले १ क, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ १, उ १०।
भा ६

आहारिमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। मि। जी १४। प ६। ६। ५। ५। ४। ४। प्रा १०। ७। ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १२। आहारकद्वयरहित। कार्म्मणरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भा ६ भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

आहारिमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। जी ७। प। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १०। आहारद्वयमिश्रयोगत्रयरहित। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भा ६ भ २। सं १। मि। सं २। आ १। उ ५॥

आहार्य्यपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळगे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो २। औमि। वैमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १ अ। द २। ले १ क। भ २। सं १ मि। सं २। आ १। उ ४॥ भा ६

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टिगळगे। गु १। सासा। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १२। म ४। वा ४। औ २ वै २। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥ भा ६

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। सासा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। कु। कु। वि। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ५॥ भा ६

मिथ्यादृष्टीना–गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ३, म ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १२ आहारद्वयकार्मणाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ५। तत्पर्याप्ताना–गु १ मि, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० आहारकद्वयमिश्रत्रयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ५। तदपर्याप्ताना–गु १ मि, जी ७, प ६, ५, ४, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो २ औमि वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले १ क, भ २, स १ मि, स २, आ १, उ ४। सासादनाना–गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ २, वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ सा, सं १, आ १, उ ५। तत्पर्याप्ताना–गु १ सा, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग ४, इ १, का १, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, स १ अ, द २,

आहारिसासादनसम्यग्दृष्टिअपर्य्याप्तकंगे। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। का १। यो २। औ मि। वै मि। वे ३। क ४। ज्ञा २ सं १ अ। द २। ले १ क। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। उ ४॥
भा ६

आहारिमिश्रंगे। गु १। मिश्र। जी १। प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। मिश्र। सं १। अ। द २। ले ६। भ १। सं १। मिश्र। सं १। आ १। उ ५॥
भा ६

आहारिअसंयतसम्यग्दृष्टिगळगे। गु १। असं। जी २। प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १२। म ४। वा ४। औ २। वै २। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। उ। वे। क्षा। सं १। आ १। उ ६॥
भा ६

आहार्य्यसंयतसम्यग्दृष्टिपर्य्याप्तकंगे। गु १। असं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो १०। म ४। वा ४। औ का। वै का। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा ६

आहार्य्यसंयतसम्यग्दृष्ट्यपर्य्याप्तकंगे। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २। औ मि। वै मि। वे २। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले १ क। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा ६

ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५। तदपर्याप्ताना—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो २ औमि वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले १ क, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ४। मिश्राणा—गु १ मिश्रं, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५। असंयताना—गु १ अ, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४, व ४ औ २ वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६। तत्पर्याप्ताना—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६।

तदपर्याप्ताना—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो २ औमि वैमि, वे २ पुं, न, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द ३ त्र अ अ, ले १ क, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६।
भा ६

आहारिदेशसंयतगे। गु १। देश। जी १। प ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग २। ति। म। इं १। का १। यो ९। म ४। वा ४। औ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। देश। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

आहारिप्रमत्तसंयतगे। गु १। प्र। जी २ प। अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो ११। म ४। वा ४। औ १। आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४। म। श्रु। अ। म। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ७॥
भा ३

आहार्य्यप्रमत्तसंयतगे। गु १। अ प्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १। म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३। सा। छे। प। द ३। ले ६। भ १। सं ३।
भा ३
सं १। आ १। उ ७॥

आहार्य्यपूर्व्वकरणगे। गु १ अपू। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २। सा। छे। द ३। ले ६। भ १। सं २।
भा १
उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

आहारिप्रथमभागानिवृत्तिगळगे। गु १। अनि। जी १। प ६। प्रा १०। सं २। मै। प॥ ग १। म। इ १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २। सा। छे। द ३। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

शेषचतुरनिवृत्तिकरणगगें ओघभंगमक्कुं॥

आहारिसूक्ष्मसांपरायसंयतगे। गु १। सू। जी १। प ६। प्रा १०। सं १। परिग्रह। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १। सूक्ष्मलोभ। ज्ञा ४। सं १। सू। द ३।

देशव्रताना–गु १, जी १, प ६, प्रा १०, स ४, ग २ ति म, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, स १ दे, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, स १, आ १, उ ६। प्रमत्ताना–गु १ प्र, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १ म, इं १, का १, यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, स ३ सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ७। अप्रमत्ताना–गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३, ग १ म, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, स ३ सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ७। अपूर्वकरणाना–गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३, ग १ म, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, स २ सा छे, द ३, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। अनिवृत्तीना प्रथमभागे—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं २ मै प, ग १ म, इ १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं २ सा छे, द ३, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, स १, आ १, उ ७। शेषचतुर्भागेष्वोघभग, सूक्ष्मसापरायाणा–गु १ सू, जी १, प ६, प्रा १०, स १ प, ग १, इ १, का १, यो ९ वे ०, क १, सूक्ष्मलोभ., ज्ञा ४, स १

ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

आहार्य्युपशांतकषायवीतरागछद्मस्थगे। गु १। उप। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो ९। म ४। वा ४। औ का १। वे ०। क ०। ज्ञा ४। म श्रु। अ। म। सं १। यथा। द ३। च। अ। अ। ले ६। भ १। सं २। उ। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥
भा १

आहारिक्षीणकषायछद्मस्थवीतरागगे। गु १। क्षीण। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। योग ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १। यथा। द ३। ले ६। भा १ भ १। सं १। क्षा। सं १। आ १। उ ७॥

आहारिसयोगकेवलिभट्टारकगे। गु १ सयोग के। जी २। प। अ। प ६। ६। प्रा ४। २। सं ०। ग १। म। इं १। पं। का १। त्र। यो ६। म २। वा २। औ २। वे ०। क ०। ज्ञा १। के। सं १। यथा। द १ के। ले ६। भ १। सं १। क्षा। सं ०। आ १। उ २॥
भा १

ई प्रकारदिंदं सयोगकेवलिभट्टारकगे पर्य्याप्तापर्य्याप्तालापद्वयं वक्तव्यमप्पुदु॥

अनाहारिगळगे। गु ५। मि सा। अ। सयोग अयोगि। जी। ८। एकेंद्रियबादरसूक्ष्मद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिगळेंब अपर्य्याप्तकरु अयोगिकेवलिरहितमागि। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। १। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १। कार्म्मण। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु। कु। म। श्रु। अ। के। सं २। असंयममुं यथाख्यातमुं। द ४। ले १ शु। भ २। भा ६ सं ५। मि। सा। उ। वे। क्षा। सं २। आ १। अनाहार उ १०॥

सू, द ३, ले ६, भ १, स २, उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। उपशातकषायाणा-गु १ उ, जी १, प ६, १
प्रा १०, स ०, ग १ म, इं १, का १, यो ९ म ४ व ४ औ, वे ०, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं १ य, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ७। क्षीणकपायाणा—गु १ क्षी, जी १, प ६, १
प्रा १०, स ४, ग १ म, इं १, का १ त्र, यो ९, वे ०, क ०, ज्ञा ४, सं १ य, द ३, ले ६, भ १, स १ क्षा, १
स १, आ १, उ ७। सयोगिकेवलिना—गु १ सयो, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा ४, २, सं ०, ग १ म, इं १, का १ त्र, यो ६ म २ व २ औ २, वे ०, क ०, ज्ञा १ के, स १ य, द १ के, ले ६, भ १, स १ क्षा, १
सं ०, आ १, उ २। एषामपर्याप्तालापोऽपि वक्तव्यः।

अनाहारिणां—गु ५ मि सा अ स अ, जी ८ सप्ताऽपर्याप्ता एकोऽयोगिनः, प ६, ५, ४, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ १, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १, वे १, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, सं २ अ य, द ४,

अनाहारकमिथ्यादृष्टिगळ्गे। गु १। मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १। कार्म्म। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले १ शु। भ २। सं १। मि। सं २। आ १। अनाहार उ ४॥
भा ६

अनाहारिसासादनसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। सासा। जी १। अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ३। ति। म। दे। इं १। पं। का १ त्र। यो १। कार्म्मणकाय। वे ३। क ४। ज्ञा २। कु। कु। सं १। अ। द २। ले १। शु। भ १। सं १। सासा। सं १। आ १। अनाहार। उ ४॥
भा ६

अनाहारि असंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे। गु १। असं। जी १। अ। प ६। अ। प्रा ७। अ। सं ४। ग ४। इं १। पं। का १ त्र। यो १। कार्म्मणकाय। वे २। षं। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं १। अ। द ३। ले १ शु। भ १। सं ३। सं १। आ १। अनाहार। उ ६॥
भा ६

अपर्य्याप्तकत्वंदिदमुं प्रमत्तसंयतंगे। गु १। जी १। प ६। प्रा ७। सं ४। ग १ म। इं १। पं। का १ त्र। यो १। आहारमिश्रमप्पुदरिंदमौदारिकापेक्षेयिननाहारियक्कुं। वे १। पुं। क ४। ज्ञा ३। म। श्रु। अ। सं २। सा। छे। द ३। ले १ क। भ १। सं ३। सं १। आ १। उ ६॥
भा ३

अनाहारिसयोगिकेवलिगळ्गे। गु १ सयोग। जी १। अ। प ६। अ प्रा २। कायबल। आयुष्य। सं। ०। ग १। म। इं। पं। का १ त्र। यो १। कार्म्मण। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १। यथा। द १ के। ले १। भ १। सं १। क्षा। सं ०। आ १। अनाहार। उ २॥
भा १

ले ६, भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, स २, आ १, उ १०। तन्मिथ्यादृशा—गु १ मि, जी ७, प ६ ५ ४, भा ६

प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३। स ४। ग ४। इ ५। का ६। यो १ का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। स १ अ। द २। ले १ शु। भ २। स १ मि। स २। आ १ अ। उ ४। सासादनाना—गु १ सा। जी १ अ।
भा ६

प ६। प्रा ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इ १ प। का १ त्र। यो १ का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। स १ अ। द २। ले १ शु। भ १। स १ सा। सं १ अ। आ १ अ। उ ४। असंयताना—गु १ अ।
भा ६

जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। स ४। ग ४। इं १ प। का १ त्र। यो १ का। वे २ पु। पं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। स १। द ३। ले १ शु। भ १। स ३। स १। आ १ अ। उ ६। प्रमत्ताना—
भा ६

गु १ प्र। जी १। प ६। प्रा ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो १ आमि तेन औदारिकापेक्षया-ऽनाहार वे १ पु। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं २ सा छे। द ३। ले १ क। भ १। स २। सं १।
भा ३

आ १। उ ६। सयोगिकेवलिना—गु १ स। जी १ अ। प ६ अ। प्रा २। कायवलं। आयुष्यं। सं ०। ग १ म। इ १ पं। का १ त्र। यो १ का। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। स १ य। द १ के। ले।
भा १

अयोगिकेवलिभट्टारकंगे। गु १ अयो। जी १। प। प ६। प्रा १। आयुष्य। सं०। ग १। म। इं १। पं। का १ त्र। यो०। वे०। क०। ज्ञा १ के। सं १ यथा। द १ के। ले ६। भा० भ १। सं १। क्षा। सं १। आ १ अनाहार। उ २॥

अनाहारि सिद्धपरमेष्ठिगळ्गे। गु०। जी०। प०। प्रा०। गति १ सिद्धगति। इं०। का०। यो०। वे०। क०। ज्ञा १। के। सं०। द १ के। ले०। भ०। सं १। क्षा। सं०। आ १। अनाहार। उ २॥

---

१ भ १। स १ क्षा। सं०। आ १ अ। उ २। अयोगकेवलिनां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १ आयु.। सं०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो०। वे०। क०। ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। ले ६। भा० भ १। स १ क्षा। सं०। आ १ अ। उ २। सिद्धाना—गु०। जी०। प०। प्रा०। सं०। ग १ सिद्धगतिः। इं०। का०। यो०। वे०। क०। ज्ञा १ के। सं०। द १ के। ले०। भ०। स १ क्षा। स०। आ १ अ। उ २॥ ७२८॥

[ऊपर कर्नाटक टीका और तदनुसारी संस्कृत टीकामे गुणस्थानो और मार्गणास्थानोमें बीस प्ररूपणाओका कथन साकेतिक अक्षरोके द्वारा किया है। उन सकेतोको समझ लेनेसे उक्त प्ररूपणाओंको समझ लेना सरल है।

प्ररूपणा और उनके संकेत अक्षर इस प्रकार है।

गु (गुणस्थान १४) जी (जीवसमास १४) प (पर्याप्ति ६) प्रा (प्राण १०) सं (संज्ञा ४) ग (गति ४) इं (इन्द्रिय ५) का (काय ६) यो (योग १५) वे (वेद ३), क (कषाय ४) ज्ञा (ज्ञान ८) सं (संयम ७) द (दर्शन ४) ले (लेश्या ६) भ (भव्यत्व-अभव्यत्व) स (सम्यक्त्व ६) सं (संज्ञी-असंज्ञी) आ (आहारक-अनाहारक)।

इन बीस प्ररूपणाओमें-से जहाँ जितनी सम्भव होती है उनकी सूचना सकेताक्षरके आगे संख्यासूचक अंक लिखकर दी गयी है। जैसे पृ. ९५० मे पर्याप्त गुणस्थानवालोके गुणस्थान १४ कहे है। जीवसमास ७ पर्य्याप्त सम्बन्धी कहे है। पर्याप्ति ६, ५, ४ कही है क्योकि पंचेन्द्रियके छह, विकलेन्द्रियके पाँच और एकेन्द्रियके चार पर्याप्तियाँ होती है। प्राण १०, ९, ८, ७, ६, ४, ४, १ कहे है क्योकि सज्ञीके दस प्राण होते है शेष के एक-एक इन्द्रिय घटती जाती है। एकेन्द्रियके चार ही प्राण होते है। सयोगकेवलीके चार और अयोगकेवलीके एक प्राण होता है। सज्ञा चारो होती है। गति चार, इन्द्रिय एकसे लेकर पाँच तक, काय छह, योग ग्यारह (चार मन, चार वचन, तीन पूर्णकाय योग) होते है। वेद तीन, कषाय चार, ज्ञान आठ (पाँच और तीन मिथ्या), संयम सात (संयम मार्गणाके सात भेद है), दर्शन चार, लेश्या छह, भव्यत्व-अभव्यत्व, सम्यक्त्व मार्गणाके ६ भेद, सज्ञी-असज्ञी, आहारक होते है। उपयोग बारह—आठ ज्ञान, चार दर्शन। अपर्याप्त गुणस्थानवालोके गुणस्थान पाँच है—मिथ्यात्व, सासादन, असंयत, प्रमत्त (आहारककी अपेक्षा), सयोगकेवली (समुद्घात अवस्थाकी अपेक्षा)। जीव समास सात अपर्याप्त होते है। पर्याप्ति छह पाँच चार है। प्राण अपर्याप्त अवस्थामें सात, सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो होते है। एकेन्द्रियके तीन और समुद्घात केवलीके दो होते है। संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रिय पाँच, काय छह होते है। योग चार होते है—औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, आहारकमिश्र, कार्मण। वेद तीन, कषाय चार, ज्ञान छह होते है—कुमति, कुश्रुत, मति, श्रुत, अवधि, केवल। संयम मार्गणाके चार भेद होते है—असंयम, सामायिक,

मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा ।
एदेसु एक्कपगदे णत्थित्तियसेसयं जाणे ॥७२९॥

मनःपर्य्याय. परिहारः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं द्वावाहारौ । एतेष्वेकस्मिन् प्रकृते नास्तीत्यशेषकं जानीहि ॥

मनःपर्य्यायज्ञानमुं परिहारविशुद्धिसंयममुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुं आहारकाहारकमिश्रमुमितिवरोळुमो दु प्रकृतमागुत्तं विरलुळिदुमिल्लें दितु शिष्य नीनरियें दु संबोधने माडल्पट्टुदु ।

मन पर्ययज्ञान परिहारविशुद्धिसयम प्रथमोपशमसम्यक्त्व आहारकद्विकं च इत्येतेषु मध्ये एकस्मिन् प्रकृते प्रस्तुते अधिकृते सति अवशेष उद्धरितं नास्ति-न सभवतीति जानीहि [तेषु[1] मध्ये एकस्मिन्नुदिते तस्मिन् पुंसि तदा अन्यस्योत्पत्तिविरोधात्] ॥७२९॥

छेदोपस्थापना, यथाख्यात । दर्शन चार, लेश्या छह, भव्यत्व-अभव्यत्व, सम्यक्त्व मार्गणाके पाँच भेद सम्यक्-मिथ्यात्वके विना । सज्ञी-असज्ञी, आहारक-अनाहारक, उपयोग दस-विभंग और मन पर्यय अपर्याप्त अवस्थामें नही होते ।

इसी तरह आगे चौदह गुणस्थानोमें क्रमश बीस प्ररूपणाओका कथन सकेताक्षर द्वारा किया है । उसके पश्चात् क्रमश चौदह मार्गणाओमें कथन किया है ।

गति मार्गणामें कथन करते हुए सातो नरकोमें, तिर्यंचके भेदोमे, मनुष्योमे, देवोमें गुणस्थानोको आधार बनाकर बीस प्ररूणाओका कथन विस्तारसे किया है । जैसे नरकगतिमें—नारक सामान्य, नारक सामान्य पर्याप्त, सामान्य नारक अपर्याप्त, सामान्य नारक मिथ्यादृष्टि, सामान्य नारक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि, सामान्य नारक अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, सामान्य नारक सासादन सम्यग्दृष्टि, नारक सामान्य मिश्र, नारक सामान्य असयत, सामान्य नारक पर्याप्त असयत, सामान्य नारक अपर्याप्त असयत, घर्मा सामान्य नारक, घर्मा सामान्य नारक पर्याप्त, घर्मा सामान्य नारक अपर्याप्त, घर्मामिथ्यादृष्टि, घर्मानारक अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, घर्मा पर्याप्त सासादन, घर्मा मिश्रगुणस्थान, घर्मा असयत गु , घर्मा पर्याप्त नारक असंयत, घर्मा नारक अपर्याप्त असयत सम्यग्दृष्टि, द्वितीयादि पृथ्वी नारक सामान्य, द्वितीयादि पृथ्वी नारक पर्याप्त, द्वितीयादि पृथ्वी नारक अपर्याप्त, द्वितीयादि पृथ्वी नारक सामान्य मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथ्वी नारक पर्याप्त मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथिवी नारक अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथिवी नारक सासादन, द्वितीयादि पृथ्वी नारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि, द्वितीयादि पृथ्वी नारक असयत सम्यग्दृष्टि, इतने विस्तारसे बीस प्ररूपणाओका प्रत्येकमें कथन किया है । इसी प्रकार तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, इन्द्रिय मार्गणाके भेद-प्रभेदोमें बीस प्ररूपणाओका कथन किया है ।

पहले हमने प टोडरमलजीकी टीकाके अनुसार नकशो द्वारा अकित करनेका विचार किया था । किन्तु उनमें भी सकेताक्षरोका ही प्रयोग करना पडता । और कम्पोजिगमें भी कठिनाई आ जाती । ग्रन्थका भार भी बढ जाता इससे उसे छोड दिया । सकेताक्षर समझ लेनेसे टीकाको समझा जा सकता है ।]

'मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम, प्रथमोपशम सम्यक्त्व, आहारक, आहारक-मिश्र इनमे-से एक प्राप्त होनेपर उसके साथ शेष सब नही होते ॥७२९॥

---

१. ब प्रतौ कोष्ठान्तर्गत. पाठो नास्ति ।

विदियुवसमसम्मत्तं सेडीदो दिण्ण अविरदादीसु ।
सगसगलेस्सामरिदे देव अपज्जत्तगेव हवे ॥७३०॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं श्रेणितोऽवतीर्णाविरतादिषु । स्वस्वलेश्यामृते देवापर्याप्तके एव भवेत् ॥

असंयतादिगळोळु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वसंभवमें बुदुपशमश्रेणियिंदमिळिदु संक्लेशवशदिंदमसंयमादियोळु परिपतितरादरोळंदु निश्चैसूदू । आ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिगळप्प असंयतादिगळु तंतम्म लेश्येगळोळ्कूडि मृतरादरादोडे देवापर्याप्तकासंयतसम्यग्दृष्टिगळे नियमदिंदमप्परेकें दोडे बद्धदेवायुष्यंगल्लदे मरणमुपशमश्रेणियोळु संभविसदु । इतरायुस्त्रयबद्धायुष्यंगे देशसंयममुं सकलसंयममुं संभविसदप्पुदरिंदं ।

सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती ॥७३१॥

सिद्धानां सिद्धगतिः केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं, सम्यक्त्वमनाहारः उपयोगयोरक्रमप्रवृत्तिः ॥

सिद्धपरमेष्ठिगळगे सिद्धगतियुं केवलज्ञानमुं केवलदर्शनमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुं अनाहारमुं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयक्कक्रमप्रवृत्तियुमरियल्पडुगुं ।

मत्तं सिद्धपरमेष्ठिगळु :—

गुणजीवठाणरहिया सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥७३२॥

गुणजीवस्थानरहिताः संज्ञापर्याप्तिप्राणपरिहीनाः । शेषनवमार्गणोनाः सिद्धाः शुद्धास्सदा भवंति ॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं संभवति । केषु ? उपशमश्रेणित· सक्लेशवशादध· असंयतादिषु अवतीर्णेषु । ते च असंयतादय. स्वस्वलेश्यया म्रियते तदा देवापर्याप्तासयता एव नियमेन भवति । कुत ? बद्धदेवायुष्कादन्यस्य उपशमश्रेण्या मरणाभावात् । शेषत्रिबद्धायुष्काणा च देशसकलसयमयोरेवासंभवात् ॥७३०॥

सिद्धपरमेष्ठिना सिद्धगतिः केवलज्ञानं केवलदर्शनं क्षायिकसम्यक्त्वं अनाहारः ज्ञानदर्शनोपयोगयोरक्रमप्रवृत्तिश्च भवति ॥७३१॥

संक्लेश परिणामोंके वश उपशमश्रेणिसे नीचे उतरनेपर असंयत आदि गुणस्थानोंमें द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। वे असंयत आदि जब अपनी-अपनी लेश्याके अनुसार मरण करते है तो नियमसे देवगतिमें अपर्याप्त असंयत ही होते है, क्योंकि जिसने देवायुका बन्ध किया है उसके सिवा अन्यका उपशमश्रेणिमें मरण नहीं होता। जिन्होंने देवायुके सिवाय अन्य तीन आयुमें-से किसी एकका भी बन्ध किया है उसके तो देशसंयम और सकलसंयम ही नहीं होते ॥७३०॥

सिद्ध परमेष्ठीके सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, अनाहार और ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगकी एक साथ प्रवृत्ति, इतनी प्ररूपणाएँ होती हैं ॥७३१॥

चतुर्द्दशगुणस्थानरहितरुं चतुर्द्दशजीवसमासरहितरुं चतुःसंज्ञारहितरुं षट्पर्य्याप्तिरहितरुं दशप्राणरहितरुं सिद्धगति ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वमनाहारमेंब मार्गणापंचकमल्लदुळिद नव मार्गणारहितरुं सिद्धपरमेष्ठिगळु द्रव्यभावकर्म्मरहितरप्पुदरिंदं सदा शुद्धरुमप्परु ।

णिक्खेवे एयट्ठे णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइ वीसं भेयं सो जाणइ अप्पसब्भावं ॥७३३॥

निक्षेपे एकार्त्थे नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगे । मृगयति विंशतिभेदं स जानाति जीवसद्भावं ॥

नामस्थापनाद्रव्यभावतो यें ब निक्षेपदोळु प्राणभूतजीवसत्वमें बेकार्त्थदोळं द्रव्यार्थिकपर्य्यायार्थिकमें ब नयदोळं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानकेवलमें ब प्रमाणदोळं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्व्वो वा जीवः एंब निरुक्तियोळं 'किं कस्स केण कत्थ व केवचिरं कति विहा य भावाइ' एंब अनुयोगदोळं 'निर्द्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः साध्या' एंब नियोगदोळं आवनानोव्वं भव्यं गुणस्थानादिविंशतिभेदमं तिळिगुमातं जीवसद्भावमनरिगुं ।

चतुर्दशगुणस्थानचतुर्दशजीवसमासरहिता चतु सज्ञाषट्पर्याप्तिदशप्राणरहिता· सिद्धगतिज्ञानदर्शनसम्यक्त्वानाहारेभ्य शेषनवमार्गणारहिताः सिद्धपरमेष्ठिनो द्रव्यभावकर्माभावात् सदा शुद्धा भवति ॥७३२॥

नामादिनिक्षेपे प्राणभूतजीवसत्त्वलक्षणैकार्थे द्रव्यार्थिकपर्यार्थिकनये मतिज्ञानादिप्रमाणे जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति निरुक्तौ 'किं कस्स केण कत्थवि केव चिर कतिविहा य भावा' इति च निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानत· साध्या इति च[1] नियोगिप्रश्ने यो भव्य गुणस्थानादिविंशतिभेदान् जानाति स जीवसद्भाव जानाति ॥७३३॥

सिद्ध परमेष्ठी चौदह गुणस्थान, चौदह जीवसमास, चार संज्ञा, छह पर्याप्ति, दस प्राण इन सबसे रहित होते है। तथा सिद्धगति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व और अनाहारके सिवाय शेष नौ मार्गणाओंसे रहित होते हैं। और द्रव्यकर्म-भावकर्मका अभाव होनेसे सदा शुद्ध होते हैं ॥७३२॥

नामादि निक्षेपमें, एकार्थमें, द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयमें, मतिज्ञानादि प्रमाणमें, निरुक्ति और अनुयोगमें जो भव्य गुणस्थान आदि बीस भेदोंको जानता है वह जीवके अस्तित्वको जानता है । नामस्थापना द्रव्यभावनिक्षेप प्रसिद्ध है। प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व ये चारों एकार्थक हैं इन चारोंका अर्थ एक ही है। जो जीता है जियेगा और पूर्वमें जी चुका है यह जीव शब्दकी निरुक्ति है—जो उसे त्रिकालवर्ती सिद्ध करती है। जीवका स्वरूप क्या है, स्वामी कौन है, साधन क्या है, कहाँ रहता है, कितने काल तक रहता है, कितने उसके भेद हैं इस प्रकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान ये अनुयोग हैं। इनके उत्तरमें जो बीस भेदोको खोजकर जानता है उसे आत्माके अस्तित्वकी श्रद्धा होती है ॥७३३॥

---

१. ब नियोगे यो ।

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारि अजियसेणगुरु ।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयउ ॥७३४ ॥

आर्य्यार्य्यसेनगुणगणसमूह संधार्य्यजितसेनगुरुर्भुवनगुरुर्य्यस्य गुरुः स राजो य गोम्मटो जयतु ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु- ५
भूमंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीसदभयसूरिसिद्धांत-
चक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजित ललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटकवृत्ति-
जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु आळापाधिकारं निरूपितमादुदु ॥

गणनेगळिदर्द्द गुणगणमणिभूषण धर्म्मभूषणश्रीमुनि स-। दृगणियुपरोधदि नानोणर्द्दे गुणि
गोम्मटसारवृत्तियं केशण्णं । १०

आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरु. भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ॥७३४॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिताया गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिका-
ख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणालाप नाम
द्वाविंशतिमयोऽधिकार· समाप्तः ॥२२॥

आर्य आर्यसेनके गुण और गणसमूहको धारण करनेवाले अजितसेन—जो तीन १५
जगत्के गुरु हैं—वे जिसके गुरु हैं वह गोम्मटराज चामुण्डराय जयवन्त हों ॥७३४॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव
परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी
श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-
के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका
तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक २०
भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें जीवकाण्डके अन्तर्गत
बीस प्ररूपणाओंमें-से आलाप प्ररूपणा नामक बाईसवाँ
अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

आचार्यप्रवर श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्तिरचित

गोम्मटसार

(कर्म्मकांड)

श्री केशवण्णविरचित टीका सहित

पणमिय सिरसा णेमिं गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥१॥

प्रणम्य शिरसा नेमिं गुणरत्नविभूषणं महावीरं। सम्यक्त्वरत्ननिलयं प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं वक्ष्यामि ॥

वक्ष्यामि । कं । प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं प्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलोत्तरभेदभिन्नानां समुत्कीर्त्तनमस्मिन्निति प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनो ग्रंथस्तं । आदौ किं कृत्वा । प्रणम्य । नमस्कृत्य । कं । नेमिं । नेमितीर्थंकरपरमदेवं । केन । शिरसा । उत्तमांगेन । कथंभूतं । गुणरत्नविभूषणं । गुणा एव रत्नानि । तान्येव विभूषणानि यस्यासौ गुणरत्नविभूषणस्तं । पुनरपि कथंभूतं । महावीरं विविशिष्टां लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः । महांश्चासौ वीरश्च महावीरस्तं । भूयः किंभूतं । सम्यक्त्वरत्ननिलयं । आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यग्भावः सम्यक्त्वं । क्षायिकसम्यक्त्वं वा । तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयस्तमिति ।

सम्यक्त्वरत्ननिलयनुं गुणरत्नविभूषणनुं महावीरनुमप्प नेमितीर्थंकरपरमदेवनं नमस्कारमं माडि ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिगळ स्वरूपनिरूपणमं माळ्प ग्रंथमं पेळ्दपेनें बुदाचार्य्यन प्रतिज्ञे ॥

प्रकृतियं देनें दोडे पेळ्दपं—

वक्ष्यामि । कं ? प्रकृतिसमुत्कीर्तनं—प्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलोत्तरभेदभिन्नानां समुत्कीर्तनमस्मिन्निति प्रकृतिसमुत्कीर्तनो ग्रन्थः तं । आदौ किं कृत्वा ? प्रणम्य—नमस्कृत्य । कं ? नेमिं—नेमितीर्थंकरपरमदेवं । केन ? शिरसा—उत्तमाङ्गेन । कथंभूतं ? गुणरत्नविभूषणं—गुणा एव रत्नानि तान्येव भूषणानि यस्यासौ गुणरत्नविभूषणस्तं । पुनरपि कथंभूतं ? महावीरं—विशिष्टां ई—लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः महांश्चासौ वीरश्च महावीरः तं । भूयः किंभूतं । सम्यक्त्वरत्ननिलयं आत्मस्वरूपोपलब्धिलक्षणः सम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं वा तदेव रत्नं तस्य निलय आश्रयः तं । एवं विशिष्टेष्टदेवतानमस्कारपूर्विका प्रकृतिसमुत्कीर्तनकथनप्रतिज्ञा आचार्यस्य ज्ञातव्या ॥१॥ प्रकृतिः का ? इति चेदाह—

गुणरूपी रत्न ही जिनके भूषण हैं, जो विशिष्ट 'ई'—लक्ष्मीको देता है वह वीर है किन्तु जो महान् वीर होने से महावीर है, तथा आत्मस्वरूपकी उपलब्धिरूप सम्यक्त्व, अथवा क्षायिकसम्यक्त्वरूपी रत्नके जो आश्रय हैं उन नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेवको मस्तकसे नमस्कार करके, जिसमें ज्ञानावरण आदि मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे भिन्न प्रकृतियोंका कथन है, उस प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक ग्रन्थको कहूँगा। इस प्रकार विशिष्ट देवताको नमस्कार करके प्रकृतिसमुत्कीर्तनका कथन करनेकी प्रतिज्ञा आचार्यने की है ॥१॥

पयडी सील सहाओ जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

प्रकृतिः शीलं स्वभावः जीवांगयोः अनादिः संबंधः । कनकोपले मलमिव तयोरस्तित्वं स्वतःसिद्धं ॥

प्रकृतियेंदोडं शीलमेंदोडं स्वभावमेंबुदत्थं । कारणांतरनिरपेक्षमप्पुदं स्वभावमेंबुदु । अग्निगूर्ध्वज्वलनमुं वायुविगे तिर्य्यक्पवनमं नीरिगे निम्नगमनमु मेंतु स्वभावो हि स्वभाववन्तऽमपेक्षत इति । कयोः स्वभावः एंदितेंदोडे जीवांगयोः जीवकम्मणोः जीवस्वभावमुं कर्म्मस्वभावमुमेंबदर्थमल्लि रागादिपरिणमनमात्मन स्वभावमक्कुं । रागाद्युत्पादकत्वं कर्म्मस्वभावमक्कुमंतादोडे इतरेतराश्रयदोषमागि बक्कुमेंदोडे तद्दोषपरिहारार्थमागि अनादिः संबंधः एंदु पेळल्पट्टुदु । जीवकर्म्मंगळ संबंधक्कनादित्वमंटप्पुदरिंदमा दोषं पोद्दिदक्के दृष्टांतमं तोरिदपरु । कनकोपले मलमिव कनकोपलदोळु सुवर्ण्णमलंगळगे संबंधमेंतंते अनादिः संबधः एंदिदरिंदमे अमूर्त्तो जीवः मूर्तेन कर्म्मणा कथं बध्यत इति चोद्यमपाकृतं भवति ।

जीवकर्म्मंगळस्तित्वमेंतु सिद्धमेंदोडे पेळ्दपरु । तयोरस्तित्वं जीवकर्म्मंगळस्तित्वं स्वतःसिद्धमेंबुदु पेळल्पट्टुददें तेंदोडे अहं प्रत्ययवेद्यत्वदिंदमात्मास्तित्वमुं ओब्बं दरिद्रनोब्बं श्रीमन्तनितु विचित्रपरिणमनदर्त्तणिदं कर्म्मास्तित्वमं सिद्धमेंदु ज्ञातव्यमक्कुं ।

संसारिजीवं कर्म्मनोकर्म्मंगळु तनगेमाळ्प प्रकारमं पेळ्दपरु—

प्रकृतिः शीलं स्वभाव इत्यर्थः । सोऽपि कारणान्तरनिरपेक्षता अग्निवायुजलानामूर्ध्वतिर्यग्निम्नगमनवत् । सहि स्वभाववन्तमपेक्षते इति । कयोः सः ? जीवाङ्गयोः—जीवकर्मणोः । तत्र रागादिपरिणमनमात्मनः स्वभावः रागाद्युत्पादकत्वं तु कर्मणः तदेतरेतराश्रयदोषः तत्परिहारार्थं तयोः जीवकर्मणोः संबन्ध अनादिरित्युक्तम् । क इव ? कनकोपले मलमिव स्वर्णपाषाणे स्वर्णपाषाणयोः संबन्धस्य अनादिरिव । अनेन अमूर्तो जीवः मूर्तेन कर्मणा कथं बध्यते ? इत्यप्यपास्तं । तयोरस्तित्वं कुतः सिद्धं ? स्वतः सिद्धं । अहंप्रत्ययवेद्यत्वेन आत्मनः दरिद्रश्रीमदादिविचित्रपरिणामात् कर्मणश्च तत्सिद्धेः ॥२॥ संसारिणां कर्मनोकर्मग्रहणप्रकारमाह—

प्रकृति किसे कहते हैं ? यह कहते हैं—

जैसे अग्निका ऊर्ध्वगमन, वायुका तिर्यग्गमन और जलका नीचेको गमन स्वभाव है उसी प्रकार अन्य कारण निरपेक्ष जो होता है उसे प्रकृति या शील या स्वभाव कहते हैं । ये तीनों शब्द एकार्थक हैं । यहाँ जीव और कर्मके स्वभावसे प्रयोजन है । रागादि रूप परिणमन आत्माका स्वभाव है तथा रागादि उत्पन्न करना कर्मका स्वभाव है । किन्तु ऐसा होनेसे इतरेतराश्रय दोष आता है इसलिए उस दोषको दूर करनेके लिए जीव और कर्मके सम्बन्ध को अनादि कहा है । जैसे स्वर्णपाषाणमें स्वर्ण और पाषाणका सम्बन्ध अनादि है उसी तरह जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि है । इससे यह तर्क निरस्त कर दिया कि अमूर्त जीव मूर्त कर्मसे कैसे बँधता है । अब प्रश्न होता है कि जीव और कर्मका अस्तित्व कैसे सिद्ध होता है तो उत्तर है कि स्वतःसिद्ध है । क्योंकि आत्मा तो 'मैं' इस प्रत्ययसे जाना जाता है और कोई दरिद्र और कोई श्रीमान् देखा जाता है इससे कर्मका अस्तित्व सिद्ध होता है ॥२॥

संसारी जीव कर्म-नोकर्म को कैसे ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

---

१. म मेंतंते ।

देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्मं ।
पडिसमयं सव्वंगं तत्तायसपिंडओव्व जलं ॥३॥

देहोदयेन सहितो जीवः आहरति कर्म्म नोकर्म्म । प्रतिसमयं सर्वांगैस्तप्तायसपिंडमिव जलं ॥

देहोदयेन कार्म्मणशरीरनामकर्मोदयजनितयोगदोडने । सहितो जीवः सहितनप्प जीवनु । आहरति आहरिसुगुं । कर्म्मं ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्ममं । मत्तं देहोदयेन औदारिकवैक्रियिकाहारक-तैजसशरीरनामकर्म्मोदयंगळोडने । सहितो जीवः सहितनप्प जीवं । आहरति आहरिसुगुं । नोकर्म्मं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीर नोकर्म्ममं आव कालदोळाहरिसुगुमं दोडे प्रतिसमयं तदुदयद समयं प्रति समयं प्रति । सर्व्वांगैः सर्व्वात्मप्रदेशैः जगच्छ्रेणीघनप्रमितजीवप्रदेशंगळिंदमाहरिसुगुमदक्के दृष्टांतमं तोरिदपरु । तप्तायसपिंडं अयसि भवमायसं तच्च तप्तिंडं च आयसपिंडं । तप्तं च तदायसपिंडं च तप्तायसपिंडं । काय्द कब्बुनद गुंडु जलमिव जलमं तन्न सर्व्वप्रदेशंगळिंदमे तु पोगुमंते जोवनुं तन्न सर्व्वप्रदेशंगळिंदं शरीरनामकर्मोदयहेतुविंदं कर्म्ममुमं नोकर्म्ममुमं प्रतिसमयमुमाहरिसुगुमेंबुदर्त्थं । जोवं प्रतिसमयमुं कर्म्मनोकर्म्मपरमाणुगळनेनितनाहरिसुगुमं दोडे पेळ्दपरु ।

सिद्धाणंतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव ।
समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं ॥४॥

सिद्धानामनंतैकभागमभव्यसिद्धादणंतगुणमेव । समयप्रबद्धं बध्नाति योगवशतस्तु विसदृशं ॥

सिद्धराशिप्रमाणमं नोडलनंतैकभागमनभव्यसिद्धराशियं नोडलुमनन्तगुणमप्पुदं । समयप्रबद्धमने । तु मत्ते योगवशदिंदं विसदृशमप्पुदं कट्टुगुं । समये समये प्रबध्यत इति समयप्रबद्धः

देहाः—औदारिक—वैक्रियिकाहारक—तैजस—कार्मणनामकर्माणि । तत्र कार्मणनामोदयजनितयोगेन सहितो जीवः ज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म आहरति । शेषोदयेन सहितः तत्तत्संज्ञं नोकर्म आहरति । कदा ? इति चेत् प्रतिसमयं तदुदयकाले समयं समयं प्रति । कथं ? सर्वाङ्गसर्वात्मप्रदेशैः किंवत् ? तप्तायसपिंडं जलमिव—यथा तप्तं अयोभवं पिंडं सर्वप्रदेशैर्जलमाहरति तथा शरीरनामोदयसहितजीवः प्रतिसमयं कर्म नोकर्म आहरतीत्यर्थः ॥३॥ कति तत्परमाणूनाहरति ? इति चेत्—

सिद्धराश्यनन्तैकभागं । अभव्यसिद्धेभ्यो ऽनंतगुणं तु—पुनः योगवशाद् विसदृशं समयप्रबद्धं बध्नाति ।

देहसे मतलब है औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणनामकर्म-इनमेंसे कार्मणनामकर्मके उदयसे उत्पन्न योगसे सहित जीव ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारके कर्मको ग्रहण करता है । शेष शरीरनामकर्मके उदयसे सहित जीव उस नामवाले नोकर्मको ग्रहण करता है । कब ग्रहण करता है ? इसका उत्तर है कि उसका उदय रहते हुए प्रति समय ग्रहण करता है । तथा जैसे तपा हुआ लोहपिण्ड सब प्रदेशोंसे जलको ग्रहण करता है उसी तरह शरीरनामकर्मके उदयसे सहित जीव सब आत्मप्रदेशोंसे कर्म-नोकर्मको ग्रहण करता है ॥३॥

प्रति समय कितने परमाणुओंको ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्यराशिसे अनन्तगुणे परमाणुरूप समयप्रबद्धको बाँधता है । योगके वशसे कमती-बढ़ती परमाणुओंके समूहरूप समयप्रबद्धको बाँधता है ।

---

१. ब त्यर्थः । सोऽपि कः कारणान्तरनिरपेक्षता । कति० ।

एंदितन्वत्थ्यनाममनुळ्ळ कर्म्मनोकर्म्मसमयप्रबद्धमेमुक्तप्रमाणमं प्रतिसमयं कट्टुगमेंबु पेळ्दु मत्तं प्रतिसमयमुदयमुं सत्वमुमेनितेंबुदं पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपं ।—

जीरदि समयपबद्धं पओगदोऽणेगसमयबद्धं वा ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥५॥

५ जीर्य्यते समयप्रबद्धः प्रयोगतोनेकसमयबद्धो वा । गुणहानीनां द्वयर्द्धः समयप्रबद्धो भवेत्सत्वं ॥

प्रतिसमयमो[1]दु कार्म्मणसमयप्रबद्धमुदयिसुगुं । सातिशयक्रियेयोळात्मन सम्यक्त्वादिप्रवृत्तियं प्रयोगमेंबुदु कारणदिं मेणेकादश निर्ज्जराविवक्षेयिदमनेकसमयप्रबद्धं प्रतिक्षणमुदयिसुगुं । द्वयर्द्ध-गुणहानि प्रमितसमयप्रबद्धं प्रतिसमयं सत्वमक्कुमल्लि शिष्यनें दपं । प्रतिक्षणमो[1]दु समयप्रबद्धं
१० बंधमप्पुदो[1]दु समयप्रबद्धं फलदानपरिणतियिनुदयिसिगळिसुगुमप्पुदरिनेन्तु मत्तं सत्वं द्वयर्द्धगुणहानि-मात्रसमयप्रबद्धमें दोडुत्तरमं मुन्नं जीवकांडदोळु पेळ्द त्रिकोणरचनाभिप्रायदिदं पेळ्वुदु ।

कर्म्मक्के सामान्यादिभेदप्रभेदमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु ।

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होदि दुविहं तु ।
पोग्गलपिंडो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥६॥

१५ कर्म्मत्वेनैकं द्रव्यं भाव इति भवति द्विविधं तु पुद्गलपिंडो द्रव्यं तच्छक्तिर्भावकर्म तु ॥

समये समये प्रबध्यते इति समयप्रबद्धः ॥४॥ अथ प्रतिसमयभवं बंधं प्रमाणयित्वा उदयसत्त्वे प्रमाणयति—

प्रतिसमयमेकः कार्मणसमयप्रबद्धः जीर्यते उदेति, वा अथवा सातिशयक्रियोपेतस्य आत्मनः सम्यक्त्वादि-प्रवृत्तिलक्षणप्रयोगेन हेतुना एकादशनिर्जराविवक्षया अनेकसमयप्रबद्धो जीर्यते । द्वयर्धगुणहानिमात्रसमय-प्रबद्धः प्रतिसमयं सत्त्वं भवति । ननु प्रतिक्षणमेकः समयप्रबद्धो बध्नाति एको गलति तदा सत्त्वेऽप्येक एव
२० स्यात् कथं द्वयर्धगुणहानिमात्रः ? तन्न प्रागुत्तरत्रापि त्रिकोणरचनायां व्यक्तप्रतिपादनात् ॥५॥ कर्मणः सामान्यादिभेदप्रभेदान् गाथाद्वयेनाह—

अर्थात् योगके अनुसार ही कर्मपरमाणुओंका बन्ध होता है। समय-समयमें जो बँधता है उसे समयप्रबद्ध कहते हैं ॥४॥

प्रति समय होनेवाले बन्धका प्रमाण कहकर उदय और सत्त्वका प्रमाण कहते हैं—

२५ प्रतिसमय एक कार्मण समयप्रबद्धकी निर्जरा अर्थात् उदय होता है। अथवा सातिशय क्रिया सहित आत्माके सम्यक्त्व आदिकी प्रवृत्तिरूप प्रयोगके कारण जो निर्जराके ग्यारह स्थान कहे हैं उनकी विवक्षासे एक समयमें अनेक समयप्रबद्धकी निर्जरा करता है। तथा प्रति समय डेढ़ गुणहानि प्रमाण समयप्रबद्धका सत्त्व होता है।

शंका—जब प्रति समय एक समयप्रबद्ध बाँधता है और एक ही निर्जीर्ण होता है तो
३० सत्त्वमें भी एक ही होना चाहिए, डेढ गुण-हानि प्रमाणकी सत्ता कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी शंका उचित नहीं है, क्योंकि पहले (जीवकाण्डमें) योगमार्गणामें त्रिकोण रचनाके द्वारा इसे स्पष्ट किया है और आगे भी करेंगे ॥५॥

कर्मके सामान्य आदि भेद-प्रभेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म° मनुक्त° ।

मुन्नमुद्देशिसल्पट्ट सामान्यकर्म्मं कर्म्मत्वविंदमो दु। तु मत्ते द्रव्यकर्म्मं भावकर्म्मभेदर्दिदं द्विविधमक्कुमल्लि पुद्गलपिंडं द्रव्यकर्म्ममेंबुदक्कुमा पुद्गलपिंडद अज्ञानादिजननशक्ति भावकर्म्ममेंदु पेळल्पट्टुदु। अथवा पुद्गलपिंडाज्ञानादिजनकशक्तिसंजातजीवाज्ञानादियुं भावकर्म्ममेंदु पेळल्पट्टुदर्दे तेंदोडे कार्य्ये कारणोपचारः एंबी न्यायदिंजीवाज्ञानादियुं तच्छक्तियेंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदमुभयदोळं भावकर्म्मत्व सिद्धमादुदु ॥

५

तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा।
ताण पुडं[1] घादित्ति अघादित्ति य होंति सण्णाओ ॥७॥

तत्पुनरष्टविधं वा अष्टाचत्वारिंशच्छतमसंख्यलोको वा। तेषां पृथक् घातीत्यघातीति च भवतः संज्ञे ॥

तत्पुनः मुंपेळ्द सामान्यदोळु विवक्षितद्रव्यकर्म्ममष्टविधमक्कुमथवा अष्टाचत्वारिंशच्छतविधमुमथवा असंख्यातलोकविधमुमप्पुदु। तेषां पृथक् तदष्टविधमुमष्टाचत्वारिंशच्छतविधमुमसंख्यातलोकविधमुं पृथक्-पृथक् घातियुमेंदुमघातियुमेंदु संज्ञे द्वे भवतः संज्ञेगळेरडप्पुवु। यथोद्देशस्तथा निर्देशः एंदी न्यायदिंदं प्रथमोद्दिष्टाष्टविधमं तद्घात्यघातिभेदंगळं पेळल्वेडि गाथाद्वयमं पेळ्दपरु :—

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि अट्ठपयडीओ ॥८॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुष्यं नामगोत्रमन्तराय इत्यष्टौ प्रकृतयः ॥

प्रागुक्तं सामान्यकर्म कर्मत्वेन एकं। तु-पुनः द्रव्यभावभेदाद्द्विविधं। तत्र द्रव्यकर्म पुद्गलपिण्डो भवति। पिण्डगतशक्तिः कार्ये कारणोपचारात् शक्तिजनिताज्ञानादिर्वा भावकर्म भवति ॥६॥

तत्पुनः सामान्यं कर्म अष्टविधं वा अष्टचत्वारिंशच्छतविधं वा असंख्यातलोकविधं भवति तेषां च अष्टविधादीनां पृथक्-पृथक् घात्यघातीति संज्ञे स्तः ॥७॥ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायात् प्रथमोद्दिष्टाष्टविधं तद्घात्यघातिभेदौ च गाथाद्वयेनाह—

पहले कहा सामान्य कर्म कर्मत्वरूपसे एक है। तथा द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकार है। उनमेंसे द्रव्यकर्म पुद्गलपिण्ड है। और उस पिण्डमें रहनेवाली फल देनेकी शक्ति भावकर्म है। अथवा कार्यमें कारणके उपचारसे उस शक्तिसे उत्पन्न हुए अज्ञानादि भी भावकर्म हैं ॥६॥

वह सामान्य कर्म आठ प्रकार है अथवा एक सौ अड़तालीस प्रकार है अथवा असंख्यात लोक प्रकार है। उन आठ प्रकार आदि रूप कर्मोंकी पृथक्-पृथक् घाती और अघाती संज्ञा है ॥७॥

उद्देशके अनुसार निर्देश होता है इस न्यायसे प्रथम कहे आठ भेद और उनके घाति-अघाति भेदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. म पुष।

ज्ञानावरणमुं दर्शनावरणमुं वेदनीयमुं मोहनीयमुमायुष्यमुं नाममं गोत्रमुमन्तरायमुमं दितु मूलप्रकृतिगळे टप्पुवु ॥

आवरणमोहविग्घं घादी जीवगुणघादणत्तादो ।
आऊणणामगोदं वेयणियं तह अघादित्ति ॥९॥

आवरणमोहविघ्नं घाति जीवगुणघातनात् । आयुर्न्ननामगोत्रं वेदनीयं तथा अघातीति ॥

ज्ञानावरणमुं दर्शनावरणमुं मोहनीयमुमंतरायमुमें बी नाल्कुं प्रकृतिगळु घातिगळप्पुवेकेंदोडे जीवगुणघातकत्वदिदं । आयुष्यमुं नाममुं गोत्रमुं वेदनीयमुमें बी नाल्कुं प्रकृतिगळु तथा न, ज्ञानावरणादिगळंते जीवगुणघातकंगळल्लदु कारणमागियघातिगळेंदु पेळल्पट्टुवु ॥

जीवगुणमं पेळ्दपरु :—

केवलणाणं दंसणमणंतविरियं च खयियसम्मं च ।
खयियगुणे मदि आदी खओवसमिये य घादी दु ॥१०॥

केवलज्ञानं दर्शनमनंतवीर्य्यं च क्षायिकसम्यक्त्वं च । क्षायिकगुणान् मत्यादीन् क्षायोपशमिकांश्च घ्नंति तु ॥

केवलज्ञानमुमं केवलदर्शनमुममनन्तवीर्य्यमुमं क्षायिकसम्यक्त्वमुमं च शब्ददिदं क्षायिकचारित्रमुमं द्वितीय च शब्ददिदं क्षायिकदानादिगळनिन्तो क्षायिकगुणंगळनू । तु मत्तं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययमुमें बी क्षायोपशमिक गुणंगळनू । घ्नंति केडिसुववेंदितु घातिगळप्पुवु ॥

अनंतरज्ञानावरणादिपाठक्रममक्कुपपत्तियं पेळल्वेडियायुरादिकर्म्मंगळ कार्य्यमं पेळ्दपरु :—

ज्ञानावरणं दर्शनावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतयोऽष्टौ ॥८॥

ज्ञानावरणं दर्शनावरणं मोहनीय अन्तरायश्चेति चत्वारि घातिसंज्ञानि स्युः, कुतः ? जीवगुणघातकत्वात् । आयुष्यं नाम गोत्रं वेदनीयं चेति चत्वारि तथा जीवगुणघातकप्रकारेण न इत्यघातिसंज्ञानि स्युः ॥९॥ तान् जीवगुणानाह—

केवलज्ञानं केवलदर्शनं अनन्तवीर्यं क्षायिकसम्यक्त्वं चशब्दात्क्षायिकचारित्रं द्वितीयचशब्दात् क्षायिकदानादीश्च क्षायिकान् । तु-पुनः मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यान् क्षायोपशमिकांश्च गुणान् घ्नंतीति घातीनि ॥१०॥ आयुःकर्मकार्यमाह—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय ये आठ मूल प्रकृतियाँ हैं ॥८॥

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय ये चार कर्म घाती कहे जाते हैं, क्योंकि जीवके गुणोंके घातक हैं । आयु, नाम, गोत्र, वेदनीय ये चार इस प्रकारसे जीवके गुणोंके घातक नहीं हैं अतः अघाती कहे जाते हैं ॥९॥

उन जीवके गुणोंको कहते हैं—

केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और 'च' शब्दसे क्षायिक चारित्र तथा दूसरे 'च' शब्दसे क्षायिक दान आदि क्षायिक गुणोंको, व मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान नामक क्षायोपशमिक गुणोंको ये कर्म घातते हैं इससे ये घाती हैं ॥१०॥

आयुकर्मका कार्य कहते हैं—

कम्मकयमोहवड्ढिय संसारम्मि य अणादिजुत्तम्मि ।
जीवस्स अवट्ठाणं करेदि आऊ हलिव्व णरं ॥११॥

कर्म्मकृतमोहवर्द्धितसंसारे चानादियुक्ते । जीवस्यावस्थानं करोत्यायुर्हलीव नरं ॥

ज्ञानावरणाद्यष्टविधप्रकृतिगळोळायुः कर्म्मोदयं हलिवन्नरं चोरनप्प नरनं स्थूलकाष्ठ शृंखलाविशेषमंतु कालं सिल्किसि पिडिदिर्प्पुदंते कर्म्मकृताज्ञानासंयममिथ्यात्वमेंब मोहत्रयदिदं वर्द्धितसंसारदोळनादियुक्तदोळु जीवक्कवस्थानमं चतुर्गतिगळोळुमाळ्कुं ॥

नामकर्म्मकार्य्यमं पेळ्दपरु :—

गदियादिजीवभेदं देहादी पोग्गलाण भेदं च ।
गदियंतरपरिणमणं करेदि णामं अणेयविहं ॥१२॥

गत्यादिजीवभेदं देहादिपुद्गलानां भेदं च । गत्यंतरपरिणमनं करोति नाम अनेकविधं ॥

गत्याद्यनेकविधमप्प नामकर्म्मं । जीवभेदं नारकादि जीवपर्य्यायमुमनौदारिकादिशरीरंगळ पुद्गलभेदमुमं । गतियिंदं गत्यंतरपरिणमनमुमं । करोति माळ्कुमप्पुदरिंदं । जीवविपाकियुं पुद्गलविपाकियुं क्षेत्रविपाकियुमेंदितु नामकर्म्मं त्रिविधमक्कुं । च शब्ददिंदं भवविपाकियुमक्कुं ॥

गोत्रकर्म्मकार्य्यमं पेळ्दपरु :—

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं ॥१३॥

संतानक्रमेणागतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा । उच्चं नीचं चरणं उच्चं नीचं भवेद्गोत्रं ॥

संतानक्रमदिंदमागतजीवाचरणक्के गोत्रमेंब संज्ञेयक्कुमल्लियुच्चाचरणमुच्चैर्गोत्रमक्कुं । नीचाचरणं नीचैर्गोत्रमक्कुं ॥

आयुः कर्मोदयः कर्मकृते अज्ञानासंयममिथ्यात्ववर्धिते अनादौ संसारे चतुर्गतिषु हलिरिव स्वच्छिद्रनिर्प्रवितततत्पादकाष्ठविशेष इव जीवस्यावस्थानं करोति ॥११॥ नामकर्मकार्यमाह—

गत्याद्यनेकविधं नामकर्म नारकादिजीवपर्यायभेदं औदारिकादिशरीरपुद्गलभेदं गत्यन्तरपरिणमनं च करोति तेन तत् जीवपुद्गलक्षेत्रविपाकि भवति । चशब्दाद्भवविपाकि च ॥१२॥ गोत्रकर्मकार्यमाह—

संतानक्रमेण आगतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा भवति । तत्र उच्चाचरणम् उच्चैर्गोत्रम् । नीचा-

---

आयुकर्मका उदय कर्मके द्वारा किये गये और अज्ञान, असंयम तथा मिथ्यात्वके द्वारा वृद्धिको प्राप्त हुए अनादि संसारकी चार गतियोंमें जीवको उसी प्रकार रोके रहता है जैसे एक विशेष प्रकारका काष्ठ अपने छिद्रमें पैर डालनेवाले व्यक्तिको रोके रहता है ॥११॥

नामकर्मका कार्य कहते हैं—

गति आदिके भेदसे अनेक प्रकारका नामकर्म जीवके नारक आदि पर्यायभेदको, औदारिक आदि शरीररूप पुद्गलके भेदको तथा एक गतिसे दूसरी गतिमें परिणमनको करता है। इसीसे वह जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और 'च' शब्द से भवविपाकी है ॥१२॥

गोत्रकर्मका कार्य कहते हैं—

सन्तानक्रमसे आये हुए जीवके आचरणकी गोत्र संज्ञा है। उच्च आचरणको उच्च गोत्र और नीच आचरणको नीच गोत्र कहते हैं ॥१३॥

वेदनीयकार्य्यमं पेळ्दपरु ॥

अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहसरूवयं सादं ।
दुक्खसरूवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥१४॥

अक्षाणामनुभवनं वेदनीयं सुखस्वरूपकं सातं । दुःखस्वरूपमसातं तद्वेदयतीति वेदनीयं ॥

इंद्रियविषयानुभवनं इंद्रियविषयावबोधनं वेदनीयं वेदनीयमेंबुदा वेदनीयं सुखस्वरूपं सातमेंबुदक्कुं दुःखस्वरूपमसातमेंबुदक्कुं । तद्वेदयतीति सत्सुखदुःखंगळं वेदिसुगुमरियिसुगुमेंदितु वेदनीयमेंब संज्ञेयादुदु ॥

अट्ठं देक्खिय जाणदि पच्छा सद्दहदि सत्तभंगीहिं ।
इदि दंसणं च णाणं सम्मत्तं होंति जीवगुणा ॥१५॥

अर्थं दृष्ट्वा जानाति पश्चाच्छ्रद्दधाति सप्तभंगीभिः । इति दर्शनं च ज्ञानं सम्यक्त्वं भवन्ति जीवगुणाः ॥

संसारिजीवं अर्थं बाह्यार्थमं । दृष्ट्वा कंडु । जानाति अरिगुं मरिदुदं सप्तभंगीभिः सप्तभंगिगळिंदं निश्चयिसि । पश्चाच्छ्रद्दधाति बळिकं नंबुगुं । इति ई प्रकारदिंदं । दर्शनमुं ज्ञानमुं सम्यक्त्वमुं जीवगुणंगळप्पुवु ॥

इवरावरणंगळे पाठक्रममनुपपत्तिपूर्व्वकं पेळ्दपरु :—

अब्भरिहिदादु पुव्वं णाणं तत्तो हि दंसणं होदि ।
सम्मत्तमदो विरियं जीवाजीवगदमिदि चरिमे ॥१६॥

अभ्यर्हितात्पूर्व्वं ज्ञानं ततो हि दर्शनं भवति । सम्यक्त्वमतो वीर्य्यं जीवाजीवगतमिति चरमे ॥

चरणं नीचैर्गोत्रम् ॥१३॥ वेदनीयकर्मकार्यमाह—

इन्द्रियाणां अनुभवनं विषयावबोधनं वेदनीयं । तच्च सुखस्वरूपं सातं दुःखस्वरूपमसातं ते सुखदुःखे वेदयति-ज्ञापयति इति वेदनीयम् ॥१४॥

संसारी जीवः अर्थं दृष्ट्वा जानाति । तमेव पुनः सप्तभंगीभिर्निश्चित्य पश्चात् श्रद्दधाति इत्यनेन प्रकारेण दर्शनं ज्ञानं सम्यक्त्वं च जीवगुणा भवन्ति ॥१५॥ तदावरणानां पाठक्रममुपपत्तिपूर्वकमाह—

वेदनीय कर्मका कार्य कहते हैं—

इन्द्रियोंके विषयको जाननेरूप अनुभवनको वेदनीय कहते हैं । वह सुखरूप साता है और दुःखरूप असाता है उसे जो अनुभव कराता है वह वेदनीय है ॥१४॥

संसारी जीव अर्थको देखकर जानता है । पुनः उसे ही सात भंगोंके द्वारा निश्चित करनेके पश्चात् श्रद्धान करता है । इस प्रकारसे दर्शन, ज्ञान और सम्यक्त्व जीवके गुण हैं ॥१५॥

इन गुणोंके आवरणोंके पाठका क्रम उपपत्तिपूर्वक कहते हैं—

अभ्यर्हितात्पूज्यात् पूज्यमप्पुदरिंदं ज्ञानं पूर्व्वमक्कुं। हि तथा हि अहंगे लघुध्यजाद्यदल्पाजर्च्यमेकर्मेदितु पूज्यपदक्के पूर्व्वं निपतनमुंटप्पुदरिंदं। ततः बळिकं। दर्शनं भवति दर्शनमक्कुं। अतः बळिकं सम्यक्त्वं सम्यक्त्वमक्कुं। जीवाजीवगतमिति जीवदोळमजीवदोळमिक्कुमेंदितु वीर्य्यं चरमदोळपठिसल्पट्टुदु ॥

घादीवि अघादिं वा णिस्सेसं घादणे असक्कादो।
णामतियणिमित्तादो विग्घं पढिदं अघादि चरिमम्मि ॥१७॥

घात्यप्यघातिवन्निःशेषं घातनेऽशक्यात्। नामत्रयनिमित्ताद्विघ्नं पठितमघातिचरमे ॥

घातिकर्म्ममादोडमंतरायकर्म्ममघातिकर्म्मदंते निःशेषमागि जीवगुणघातनदोळु शक्तिराहित्यदिंदमुं नामगोत्रवेदनीयंगळं निमित्तमागुळ्ळुदरिंदमुमघातिगळ चरमदोळु विघ्नं पठिसल्पट्टुदु ॥

आउबलेण अवट्ठिदि भवस्स इदि णाममाउपुव्वं तु।
भवमस्सिय णीचुच्चं इदि गोदं णाम पुव्वं तु ॥१८॥

आयुर्ब्बलेनावस्थितिर्भवस्येति नाम आयुः पूर्व्वं तु। भवमाश्रित्य नीचोच्चमिति गोत्रं नामपूर्व्वं तु ॥

आयुर्ब्बलाधानदिंदमवस्थितियक्कुमाउदक्कं दोडे नामकर्म्मकार्य्यगतिलक्षणमप्प भवस्य भवक्कें दितु कारणमागि। तु मत्तें नाममायुष्यकर्म्ममं पूर्व्वमागुळ्ळुदादुदु। तु मत्तें भवमनाश्रयिसिये नीचत्वमुमुच्चत्वमुमेंदितु कारणमागि गोत्रकर्म्म नामकर्म्ममं पूर्व्वमागुळ्ळुदादुदु।

अभ्यर्हितात् पूज्यात् ज्ञानं पूर्वं पठितं हि तथाहि—'लघुध्यजाद्यदल्पाजर्च्यं' इति सूत्रसद्भावात्। ततो दर्शनं भवति। अतः सम्यक्त्वम्। वीर्यं तु जीवाजीवगतमिति चरमे पठितम् ॥१६॥

अंतरायकर्म घात्यपि अघातिवत् निश्शेषजीवगुणघातेऽशक्यात् नामगोत्रवेदनीयनिमित्ताच्च अघातिनां चरमे पठितम् ॥१७॥

तु—पुनः—आयुर्बलाधानेन अवस्थितिः नामाकार्यगतिलक्षणभवस्येति हेतोः नामकर्म आयुष्कर्मपूर्वकं भवति। तु—पुनः भवमाश्रित्यैव नीचत्वमुच्चत्वं चेति हेतोः गोत्रकर्म नामकर्मपूर्वकं ॥१८॥

पूज्य होनेसे ज्ञानको पहले कहा क्योंकि व्याकरणके सूत्रमें कहा है कि अल्प अक्षरवालेसे जो पूज्य होता है उसका पूर्व निपात होता है। उसके पश्चात् दर्शन कहा है, उसके पश्चात् सम्यक्त्व कहा। और वीर्य तो जीव-अजीव दोनोंमें पाया जाता है इसलिए अन्तमें पढ़ा है। इस प्रकार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायका पाठक्रम जानना ॥१६॥

अन्तराय कर्म घाती होनेपर भी अघातीके समान है क्योंकि वह जीवके समस्त गुणको घातनेमें असमर्थ है। तथा नाम, गोत्र और वेदनीयके निमित्तसे अपना कार्य करता है इसलिए उसका पाठ अघाति कर्मोंके अन्तमें किया है ॥१७॥

नामकर्मका कार्य जो भव है उस भवकी अवस्थिति आयुकर्मके बलाधानसे होती है, आयुकर्मके बिना भवका ठहरना सम्भव नहीं है। अतः नामकर्मसे पहले आयुकर्म कहा। तथा भवको लेकर नीचपना-उच्चपना होता है इसलिए गोत्रकर्मसे पहले नामकर्म कहा है ॥१८॥

घादिंव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।
इदि घादीणं मज्झे मोहस्सादिम्मि पढिदं तु ॥१९॥

घातिवद्वेदनीयं मोहस्य बलेन घातयति जीवं । इति घातीनां मध्ये मोहस्यादौ पठितं तु ॥

घातिकर्म्ममेंतंते वेदनीयकर्म्मं मोहनीयकर्म्मवेंनिसिद रत्यरतिप्रकृत्युदयबलदिंदमे जीवं जीवनं । घातियति सुखदुःखरूपसातासातनिमित्तेंद्रियविषयानुभवनदिंदं केडुवंतु माळ्कुमेंदितु घातिगळ मध्यदोळु मोहनीयकर्म्मदादियोळु पठियिसल्पट्टुदु ॥

णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं ।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं ॥२०॥

ज्ञानस्य दर्शनस्य चावरणं वेदनीयं मोहनीयमायुर्न्नामगोत्रमन्तरायमिति पठितमिति सिद्धं ॥

ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्न्नामगोत्रमन्तरायमेंदितु मुंपेळ्द पाठक्रममो प्रकारदिंदं सिद्धमादुदी मूलप्रकृतिगळगे निरुक्तिगळपेळल्पडुगुमदें तेंदोडे ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं । तस्य का प्रकृतिः ज्ञानप्रच्छादनता । किंवत् देवतामुखवस्त्रवत् । दर्शनामावृणोतीति दर्शनावरणीयं । तस्य का प्रकृतिः दर्शनप्रच्छादनता । किंवत् राजद्वारे प्रतिनियुक्तप्रतिहारवत् । वेदयतीति वेदनीयं । तस्य का प्रकृतिः सुखदुःखोत्पादनता । किंवत् मधुलिप्तासिधारावत् । मोहयतीति मोहनीयं । तस्य का प्रकृतिः मोहोत्पादनता । किंवत् मद्यधुत्तूरमदनक्रोद्रववत् । भवधारणा...

घातिकर्मवत् वेदनीयं कर्म मोहनीयविशेषरत्यरत्युदयबलेनैव जीवं घातयति सुखदुःखरूपसातासातनिमित्तेंद्रियविषयानुभवनेन हन्तीति घातिनां मध्ये मोहनीयस्य आदौ पठितम् ॥१९॥

ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयम् आयुर्नाम गोत्रम् च अन्तरायः इति प्रागुक्तपाठक्रम एवं सिद्धः । तेषां निरुक्तिरुच्यते–ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? ज्ञानप्रच्छादनता । किंवत् ? देवतामुखवस्त्रवत् । दर्शनमावृणोतीति दर्शनावरणीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? दर्शनप्रच्छादनता । किंवत् ? राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहारवत् । वेदयतीति वेदनीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? सुखदुःखोत्पादनता । किंवत् ? मधुलिप्तासिधारावत् । मोहयतीति मोहनीयम् । तस्य का प्रकृतिः ? मोहोत्पादनता । किंवत् मद्यधत्तूरमदन-

---

घातिकर्मकी तरह वेदनीयकर्म मोहनीयके भेद रति और अरतिके उदयका बल पाकर ही जीवका घात करता है अर्थात् सुख-दुःखरूप साता-असातामें निमित्त इन्द्रियोंके विषयोंका अनुभवन कराकर घात करता है इसलिए घातिकर्मोंके मध्यमें और मोहनीयके पहले वेदनीय कहा है ॥१९॥

इस प्रकार ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय पहले कहा पाठक्रम सिद्ध होता है । उनकी निरुक्ति कहते हैं । जो ज्ञानको आवृत करता है, आच्छादित करता है वह ज्ञानावरणीय है । जैसे देवताके मुखपर वस्त्र डालनेसे वह वस्त्र देवताका विशेष ज्ञान नहीं होने देता, वैसे ही ज्ञानावरण ज्ञानको आच्छादित करता है । जो दर्शनको आवृत करता है वह दर्शनावरणीय है । जैसे राजद्वारपर बैठा द्वारपाल राजाको नहीं देखने देता, उसी प्रकार दर्शनावरण दर्शनगुणको आच्छादित करता है । जो सुख-दुःखका वेदन अर्थात् अनुभवन कराता है वह वेदनीय है । जैसे

गच्छतीत्यायुः। तस्य का प्रकृतिः भवधारणता। किंवत् शृंखलाकोळमें बुवर्त्थं। हलिवत्। नाना मिनोतीति नाम। तस्य का प्रकृतिः नरनारकादिनानाविधकरणता। किंवत् चित्रकावरत्। उच्चनीचं मयतीति गोत्रं। तस्य का प्रकृतिः उच्चनीचत्वप्रापकता। किंवत् कुंभकारवत्। दातृपात्रयोरंतरमेतीत्यंतरायः। तस्य का प्रकृतिः विघ्नकरणता। किंवत् भांडागारिकवत्॥

ज्ञानावरणादिप्रकृतिगळ्गे यी पेळ्द दृष्टांतमं पेळ्दपरु— ५

पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं।
जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा॥२१॥

पटप्रतीहारासिमद्यहलिचित्रकुलालभांडागारिकाणां। यथैतेषां भावास्तथापि च कर्म्माणि मन्तव्यानि।

देवतामुखवस्त्रमुं राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहारनुं मधुलिप्तासिधारेयुं मद्यमुं हळियुं चित्रकनुं १० कुलालनुं भांडागारिकनुमेंब यथैतेषां भावाः एंतिवर भावंगळु तथापि च आ प्रकारंगळिदमे कर्म्माणि मंतव्यानि कर्म्मंगळु बगेयल्पडुवउ।

उत्तरप्रकृतिगळुत्पत्तिक्रममं पेळ्दपरु :—

कोद्रवत्। भवधारणाय एति गच्छतीति आयुः। तस्य का प्रकृतिः? भवधारणता। किंवत्? हलिवत्। नाना मिनोतीति नाम। तस्य का प्रकृतिः? नरनारकादि नानाविधकरणता। किंवत्? चित्रकवत्। उच्चनीचं १५ गमयतीति गोत्रं। तस्य का प्रकृतिः उच्चनीचत्वप्रापकता। किंवत्? कुंभकारवत्। दातृपात्रयोरन्तरमेतीति अंतरायः। तस्य का प्रकृतिः? विघ्नकरणता। किंवत्! भांडागारिकवत्॥२०॥ उक्तदृष्टान्तानाह—

देवतामुखवस्त्र-राजद्वारप्रतिनियुक्तप्रतीहार-मधुलिप्तासिधारा—मद्य-हलि—चित्रक—कुलाल—भाण्डागारिकाणां एतेषां भावा यथा तथैव कर्माणि मन्तव्यानि॥२१॥ उत्तरप्रकृत्युत्पत्तिक्रममाह—

शहद लपेटी तलवारकी धारको चाटनेसे पहले सुख और फिर दुःख होता है। वैसे ही २० वेदनीय कर्म सुख-दुःखमें निमित्त होता है। जो जीवको मोहित करता है वह मोहनीय है। जैसे मदिरा, धतूरा या मादक कोदोंका सेवन करनेसे नशा होता है और सेवन करनेवाला असावधान हो जाता है वैसे ही मोहनीय आत्माको मोहित करनेमें निमित्त होता है। जो नवीन भव धारण करनेमें निमित्त है वह आयु है। जैसे साँकल या काठ आदिका फन्दा मनुष्यको नियत स्थानमें रोके रखता है वैसे ही आयुकर्म भी जीवको अमुक भवमें रोके २५ रखनेमें निमित्त होता है। जो नाना प्रकारके कार्य करता है वह नामकर्म है। जैसे चित्रकार अनेक प्रकारके चित्र बनाता है वैसे ही नामकर्म जीवको नर नारक आदि रूप करता है। जो उच्च-नीच कहानेमें निमित्त है वह गोत्रकर्म है। जैसे कुम्हार मिट्टीके छोटे-बड़े बरतन बनानेमें निमित्त है वैसे ही गोत्र जीवको उच्च-नीच बनानेमें निमित्त है। जो दाता और पात्रके मध्यमें आकर विघ्न डालता है वह अन्तराय है। जैसे भण्डारी दान देनेमें विघ्न ३० करता है उसी प्रकार अन्तरायकर्म दान आदिमें विघ्न करता है॥२०॥

इस प्रकार देवताके मुखपर पड़ा वस्त्र, राजद्वारपर खड़ा द्वारपाल, शहद लपेटी तलवार, मदिरा, हलि, चित्रकार, कुम्हार और भण्डारीका जैसा स्वभाव होता है वैसा ही स्वभाव इन कर्मोंका भी जानना॥२१॥

---

१. ब शृङ्खलाहलिवत्।

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति ॥२२॥

पंच नव द्वयष्टाविंशति चतुस्त्रिनवति त्र्युत्तरशतं वा द्विपंचोत्तरा भवंति ॥

ज्ञानावरणादिगळ्गे यथासंख्यमागुत्तरप्रकृतिगळु पंच नव द्वयष्टाविंशति चतुस्त्रिनवति त्र्युत्तरशतं वा द्विपंचभेदंगळु भवन्ति अप्पुवु । अदें तेंदोडे—ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्न्नामगोत्रमंतरायमें दिवु मूलप्रकृतिगळक्कुमल्लि ज्ञानावरणीयं पंचविधमक्कुमाभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणीयमुं केवलज्ञानावरणीयमुमें दिंतु । दर्शनावरणीयं नवविधमक्कुं स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयमुमें दिन्तु ।

थीणुदयेणुट्ठविदे सोवदि कम्मं करेदि जप्पदि य ।
णिद्दाणिद्दुदयेण य ण दिट्ठिमुग्घाडिदुं सक्को ॥२३॥

स्त्यानगृद्धयुदयेनोत्थापिते स्वपिति कर्म्म करोति जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन च न दृष्टिमुद्घाटितुं शक्तः ॥

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिंदमेति येब्बिसिदोडं स्वपिति निद्रेगेय्गुं । कर्म्म करोति निद्रेयोळ्कलसमं माळ्कुं । जल्पति च मातुमनाडुगुं । निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिंदमेनितनेच्चरिसिदोडं दृष्टिगळं तेगेयलु शक्तनल्लं ।

ज्ञानावरणादीनां यथासंख्यमुत्तरभेदा पंच नव द्वौ अष्टाविंशतिः चत्वारः त्रिनवतिः त्र्युत्तरशतं वा द्वौ पञ्च भवन्ति । तद्यथा ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुर्नामगोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतयः । तत्र ज्ञानावरणीयं पंचविधं—आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणीयं केवलज्ञानावरणीयं चेति । दर्शनावरणीयं नवविधं स्त्यानगृद्धि-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-निद्रा-प्रचला चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीयं चेति ॥२२॥

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयोदयेनोपस्थापितेऽपि स्वपिति । निद्रायां कर्म करोति । जल्पति च । निद्रानिद्रोदयेन बहुधा सावधानीक्रियमाणोऽपि दृष्टिमुद्घाटयितुं न शक्नोति ॥२३॥

ज्ञानावरण आदिके उत्तर भेद क्रमानुसार पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, तिरानबे अथवा एक सौ तीन, दो और पाँच होते हैं । उनका विवरण इस प्रकार है—ज्ञानावरणीयके पाँच भेद हैं—मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय । दर्शनावरणीयके नौ भेद हैं—स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ॥२२॥

स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयके उदयसे उठानेपर भी सोता है । सोते हुए कर्म करता है, बोलता है । निद्रानिद्राके उदयसे सावधान करनेपर भी दृष्टि उघाड़नेमें समर्थ नहीं होता ॥२३॥

पयलापयलुदयेण य वहेदि लाला चलंति अंगाइं ।
णिद्दुदये गच्छंतो ठाइ पुणो वयिसइ पडेइ ॥२४॥

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म्मोदयेन च वहति लाला चलन्त्यंगानि । निद्रोदये गच्छन् तिष्ठति पुनरुपविशति पतति ॥

प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिंदमुं । वहति लाला लोळि बायिदं सुरिगुं । चलन्त्यंगानि अवयवंगळेत्तुगुं । निद्रादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदोळु । गच्छन् नडेयुत्तं । तिष्ठति निंदिक्कुं । नरुपविशति मत्ते कुळ्ळिक्कुं । पतति ओरगुगुं ।

पयलुदयेण य जीवो ईसुम्मीलिय सुवेइ सुत्तोवि ।
ईसं ईसं जाणदि मुहुं मुहु सोवदे मंदं ॥२५॥

प्रचलोदयेन च जीवः ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोपि ईषदीषज्जानाति मुहुर्म्मुहुः स्वपिति मंदं ॥

प्रचलादर्शनावरणीयकर्म्मोदयदिंदं जीवः जीवं ईषदुन्मील्य ओप्पच्चिक्कण्देरदु स्वपिति निद्रेगेय्गुं । सुप्तोपि निद्रे गेय्यल्पट्टनागियुं ईषदीषज्जानाति इनितिनितनेच्चरुगुं । मुहुर्म्मुहुः मरळे मरळे । मंदं गाढमागि । स्वपिति निद्रेगेय्गुं ।

वेदनीयं द्विविधमक्कुं । सातवेदनीयमुमसातवेदनीयमुमेंदितु । मल्लि रतिमोहनीयकर्म्मोदयबलदिंदं जीवक्के सुखकारणेंद्रियविषयानुभवनमं माडिसुगुं सातवेदनीयं । जीवक्के दुःखकारणेंद्रियविषयानुभवनमं माडिसुगुमरतिमोहनीयकर्म्मोदयबलदिंदमसातवेदनीयं ॥

मोहनीयं द्विविधमक्कुं । दर्शनमोहनीयमुमेंदु चारित्रमोहनीयमेंदितल्लि दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षेयिंदं मिथ्यात्वमेकविधमेयक्कुमुदयमुमं सत्वमुमं कुरुत्तु मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंदिन्तु त्रिविधमक्कुमवक्कुपपत्तियं पेळ्दपरु ।

प्रचलाप्रचलोदयेन मुखात् लाला वहन्ति । अङ्गानि चलन्ति । निद्रोदयेन गच्छन् तिष्ठति । स्थितः पुनरुपविशति । पतति च ॥२४॥

प्रचलोदयेन जीवः ईषदुन्मील्य स्वपिति । सुप्तोऽपि ईषदीषज्जानाति । मुहुर्मुहुर्मन्दं स्वपिति । वेदनीयं द्विविधं-सातवेदनीयमसातवेदनीयं चेति । तत्र रतिमोहनीयोदयबलेन जीवस्य सुखकारणेंद्रियविषयानुभवनं कारयति तत्सातवेदनीयं । दुःखकारणेंद्रियविषयानुभवनं कारयति अरति मोहनीयोदयबलेन तदसातवेदनीयं । मोहनीयं द्विविधं दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं चेति । तत्र दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षया मिथ्यात्वमेकविधं भवति उदयं सत्त्वं प्रतीत्य मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति त्रिविधं ॥२५॥ तस्योपपत्तिमाह—

प्रचलाप्रचलाके उदयसे मुखसे लार बहती है, अंग चलते हैं। निद्राके उदयसे चलता हुआ ठहरता है, पुनः बैठता है और पड़कर सो जाता है ॥२४॥

प्रचलाके उदयसे जीव कुछ-कुछ आँख खोले सोता है। सोता हुआ भी कुछ-कुछ जानता है। बार-बार मन्द सोता है। वेदनीयके दो भेद हैं—सातवेदनीय और असातवेदनीय। रतिमोहनीयके उदयके बलसे जीवके सुखके कारण इन्द्रियविषयका अनुभवन जो कराता है वह सातवेदनीय है। और अरतिमोहनीयके उदयके बलसे जो दुःखके कारण इन्द्रियविषयका अनुभवन कराता है वह असातवेदनीय है। मोहनीयके दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। उनमें-से दर्शनमोहनीयका बन्धकी विवक्षामें एक भेद

जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण ।
मिच्छं दव्वं तु तिहा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥२६॥

यंत्रेण कोद्रववत् प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण । मिथ्यात्वद्रव्यं तु त्रिधा असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमात् ॥

यंत्रेण कोद्रववत् हारक्किन कल्लिदं हारक्कें ब धान्यमें तु बीसिदोडे हारक्कुमक्किर्यु नुच्चुगळुमें दि तु त्रिप्रकारमप्पुदंते । तु मत्ते । प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रदिदं मिथ्यात्वद्रव्यं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपदिंदमसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमदिंद । त्रिधा स्यात् त्रिःप्रकारमप्पुदवें तें दोडे—दर्शनमोहनीयं बंधविवक्षेयिंदं मिथ्यात्वमेकप्रकारमेयक्कुमप्पुदरिंदमायुर्वर्जितज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं सत्वमक्कुं । स ə १२–।
७

इदनेळुं कर्म्मंगळगे पसुगेयं माडिदोडे मोहनीयक्के त्रैराशिकसिद्धमिनितु द्रव्यमक्कु स ə १२
७

मिदरोळु देशघातिसर्व्वघातिविभागनिमित्तमनन्त भागहारदिंदं भागिसिदोडे बहुभागं देशघाति
गळगक्कुमेकभागं सर्व्वघातिसंबंधिद्रव्यमिनितक्कु स ə १२– मी द्रव्यमं मिथ्यात्वमुं षोडश-
७।ख

कषायंगळुं सर्व्वघातिगळप्पुदरिंदं पदिनेळक्कं पसलोडमों दु मिथ्यात्वकर्म्मसंबंधिद्रव्यमिनितक्कु
स ə १२– मिदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालमंतर्म्मुहूर्त्तमदर प्रथमसमयं मोदल्गों डु चरमसमय-
७।ख १७

यन्त्रेण घरट्टेन कोद्रवो दलितो यथा तुषतण्डुलकणिकारूपेण त्रिधा भवति तथा प्रथमोपशमसम्यक्त्वभावयंत्रेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपेण असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण त्रिधा भवति । तद्यथा—

आयुर्वर्जितसप्तकर्मद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं स ə १२—तत्सप्तभिर्भक्तं मोहनीयस्य
७
स्यात् स ə १२–। तत्रानन्तबहुभागो देशघातिनः इत्येकभागः सर्वघातिनः स ə १२–तच्च मिथ्यात्व-
७ ख

षोडशकषायेभ्यो दातुं सप्तदशभिर्भक्तं मिथ्यात्वस्यैतावत् स ə १२–। इदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्तस्य
७ ख १७

मिथ्यात्व है । किन्तु उदय और सत्त्वकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति तीन भेद हैं ॥२५॥

ये तीन भेद कैसे होते हैं इसकी उपपत्ति कहते हैं—

जैसे चाकीसे दलनेपर कोदोंके भूसी, चावल और कनरूपसे तीन भेद होते हैं उसी प्रकार प्रथमोपशम सम्यक्त्वरूप भावयन्त्रसे एक मिथ्यात्वप्रकृतिका द्रव्य (परमाणु समूह) क्रमसे असंख्यातगुण हीन द्रव्यरूपसे मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूप तीनमें विभाजित हो जाता है । उसका विवरण इस प्रकार है—आयुको छोड़ सातकर्मोंका द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण है । उसमें सातसे भाग देनेपर मोहनीयका द्रव्य होता है । उसमें अनन्तसे भाग देनेपर बहुभाग देशघाती द्रव्य है और एक भाग सर्वघाती द्रव्य है । उस सर्वघातीद्रव्यको मिथ्यात्व और सोलह कषायोंमें देनेके लिए सतरहसे भाग देनेपर मिथ्यात्वका द्रव्य होता है । प्रथमोपशम सम्यक्त्वके काल अन्तर्मुहूर्तके

पर्यंतं प्रतिसमयमुं गुणसंक्रमभागहारदिंदमपकर्षिसिकों डु असंख्यातगुणहीनक्रमदिंदं मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिरूपमागि मूरुं पुंजंगळं माळ्कुमंतु माडुत्तिरलुमा प्रथमोपशम-सम्यक्त्वकालचरमसमयदोळु मिथ्यात्वद्रव्यमुं मिश्रप्रकृतिद्रव्यमुं सम्यक्त्वप्रकृतिद्रव्यमुमिंतिप्पुंवु :—

	∧ मि	∧ मि	∧ सं
० ० ० ०	स अ १२–गु	स अ १२–अ	स अ १२– १
	द्र ७ ख १७ अ गु अ	७ । ख १७ । गु	७ । ख १७ । गु
२१ ० ० ०	३ शक्ति । र्व ना	३ ९ ना S ख	३ S ९ ना ख ख

मिथ्यात्वमें तु मिथ्यात्वमागि माडल्पट्टुदें दोडे—अतिच्छापनावलिमात्रस्थिति ह्रासमागि माडल्प-ट्टुदें बदर्थं । ई विधानमं मनदोळिरिसियसंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमदिंदं मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिप्रकार- ५
मक्कुमें दाचार्य्यनिंद पेळल्पट्टुदु । चारित्रमोहनीयं द्विविधमक्कुं । कषायवेदनीयं नोकषायवेद-

प्रथमसमयात्प्रभृति चरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयं गुणसंक्रमभागहारेण अपकृष्यापकृष्य असंख्यातगुणहीनक्रमेण मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण त्रिपुंजीकरोति तथा सति तच्चरसमयेऽप्येवं तिष्ठति—

	मि ∧	मि ∧	सं ∧
० ० ० ०	१–० स अ १२–गु १– ७ ख १७ अ गु १– अ	स अ १२–अ १– अ ख १७ गु अ	स अ १२– । १ १– ७ ख १७ गु अ
२१ ० ० ० ० ०	३ व ९ ना शक्ति	३ व ९ ना ख शक्ति	व ९ ना ख ख शक्ति

मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु अतिस्थापनावलिमात्रं पूर्वस्थितावूनितमित्यर्थः । एतद्विधानं मनसि कृत्वा असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिधा स्यात् इति आचार्येणोक्तम् । १०

प्रथमसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय गुणसंक्रम भागहारके द्वारा उस मिथ्यात्वके द्रव्यको अपकर्षण कर-करके मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृतिरूपसे तीन पुंज करता है । उसमें मिथ्यात्वका जितना द्रव्य होता है उससे असंख्यातगुणा हीन सम्यक्-मिथ्यात्वका और उससे भी असंख्यातगुणा हीन सम्यक्त्व प्रकृतिका द्रव्य होता है । ऐसा होनेपर अन्तिम समयमें भी ऐसा ही रहते हैं । यहाँ प्रश्न हो सकता है कि जो द्रव्य- १५
मिथ्यात्वरूप ही था उसका मिथ्यात्व करना कैसा ? इसका समाधान यह है कि मिथ्यात्वकी

नीयमुमेंदितवरोळ् कषायवेदनीयं षोडशविधमक्कुं । क्षपणेयं कुरुत्तु अनंतानुबंधि क्रोधमानमायालोभमप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं । क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनमेंदितुं प्रक्रमद्रव्यमं कुरुत्तु प्रक्रमद्रव्यमेंबुदु विभंजनद्रव्यमेंबुदर्थमदं कुरुत्तु अनंतानुबंधिलोभमायाक्रोधमानं । संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं । प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं । अप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानमेंदितु ॥ नोकषायवेदनीयं नवविधमक्कुं :—पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदं रत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्सेयेंदिन्तु ॥

आयुष्यं चतुर्व्विधमक्कुं । नरकायुष्यं तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यमेंदिन्तु । नामकर्म्म द्वाचत्वारिंशद्विधमक्कुं । पिंडापिंडभेदविंदं । गति जाति शरीर बंधन संघातसंस्थान अंगोपांग संहनन वर्ण्ण गंध रस स्पर्श आनुपूर्व्व्यंअगुरुलघुक उपघात परघात उच्छ्वास आतप उद्योत विहायोगति त्रस स्थावर बादर सूक्ष्म पर्य्याप्त अपर्याप्त प्रत्येक साधारणशरीर स्थिर अस्थिर शुभ अशुभ सुभग दुर्भ्भग सुस्वर दुस्वर आदेय अनादेय यशस्कीर्त्ति अयशस्कीर्त्ति निर्म्माण तीर्त्थंकरनामम्मेंदितल्लि

चारित्रमोहनीयं द्विविधं—कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं चेति । तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं क्षपणां प्रतीत्य अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभं, अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं, प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभं, क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति । प्रक्रमद्रव्यं विभञ्जनद्रव्यं प्रतीत्य अनन्तानुबन्धिलोभमायाक्रोधमानं संज्वलनलोभमायाक्रोधमानं प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं अप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानं चेति । नोकषायवेदनीयं नवविधं पुरुषस्त्रीनपुंसकवेदं रत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्साश्चेति । आयुष्यं चतुर्विधं नरकायुष्यं तिर्यग्मनुष्यदेवायुष्कं चेति । नामकर्म द्वाचत्वारिंशद्विधं पिण्डापिण्डप्रकृतिभेदेन गतिजातिशरीरबन्धनसंघातसंस्थानाङ्गोपाङ्गसंहननवर्णगन्धरसस्पर्शानुपूर्व्यागुरुलघुकोपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योतविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येकसाधारणशरीरस्थिरास्थिर-शुभाशुभसुभगदुर्भगसुस्वर-दुःस्वरादेयानादेययशोऽयशस्कीर्तिनिर्मणितीर्थंकरनामेति ।

जो पूर्व स्थिति थी उसमें-से अति स्थापनावली प्रमाण कम कर दिया। यह विधान मनमें रखकर आचार्यने असंख्यातगुणाहीन क्रमसे मिथ्यात्व द्रव्य तीन रूप किया ऐसा कहा है।

चारित्रमोहनीयके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और अकषायवेदनीय। उनमें-से कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं। जिस क्रमसे उनका क्षय होता है उस क्रमके अनुसार वे भेद इस प्रकार हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन। प्रदेशबन्धके अन्तर्गत होनेवाले विभाजनके क्रमानुसार लें तो अनन्तानुबन्धी लोभ माया क्रोध मान, संज्वलन लोभ माया क्रोध मान, प्रत्याख्यान लोभ माया क्रोध मान, अप्रत्याख्यान लोभ माया क्रोध मान, यह क्रम है। इसी क्रमसे इनमें विभाग दिया जाता है। नोकषाय वेदनीयके नौ भेद हैं—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, रति, अरति, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा। आयुकर्मके चार भेद हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु। नामकर्म पिण्ड प्रकृति और अपिण्ड प्रकृतिके भेदसे बयालीस भेदवाला है—गति, जाति, शरीर, बन्धन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्व्य, अगुरुलघुक, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर-

गतिनामकर्म्म चतुर्व्विधमक्कुं। नारकतिर्य्यंग्गतिनामकर्म्ममेंदुं मनुष्यदेवगतिनामकर्म्ममेंदितं। जातिनामकर्म्मं पंचविधमक्कुमेकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजातिनामकर्म्ममेंदुं पंचेंद्रियजातिनामकर्म्ममेंदिन्तु।

शरीरनामकर्म्मं पंचविधमक्कुं। औदारिक वैक्रियिक आहार तैजस कार्म्मण शरीरनाम कर्म्ममेंदिन्तु। ५

औदारिकादिपंचशरीरंगळिवक्के द्विसंयोगदिभंगंगळ्पदिनय्दप्पुवेंबुदं पेळ्दपरु :—

तेजाकम्मेहि तिए तेजा कम्मेण कम्मणा कम्मं।
कयसंजोगे चदु चदु चदु दुग एक्कं व पयडीओ ॥२७॥

तैजसकार्म्मणाभ्यां त्रये तैजसं कार्म्मणेन कार्म्मणेन कार्म्मणं। कृतसंयोगे चतुः चतुश्चतुर्द्वयेका वा प्रकृतयः॥ १०

तैजसकार्म्मणंगळेरडरोडने। त्रये औदारिक वैक्रियिक आहारकमेंब त्रयदोळु। कृतसंयोगे संयोगं माडल्पडुत्तिरलु। चतुश्चतुश्चतुः प्रकृतयो भवंति नाल्कुं नाल्कुं नाल्कुं प्रकृतिगळप्पुवु। तैजसं कार्म्मणदोडने संयोगं माडल्पडुत्तिरलु द्विप्रकृतिगळप्पुवु। कार्म्मणदोडने कार्म्मणं संयोगं माडल्पडुत्तिरलेकप्रकृतियक्कुमितु पंचदशप्रकृतिगळगे संदृष्टिरचनेयिदु :—

तत्र गतिनाम चतुर्विधं–नारकतिर्यग्गतिनाम मनुष्यदेवगतिनाम चेति। जातिनाम पञ्चविधं–एकेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति। शरीरनाम पञ्चविधं–औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरनामेति ॥२६॥ एषां पञ्चशरीराणां भङ्गानाह— १५

औदारिकवैक्रियिकाहारकत्रये तैजसकार्मणाभ्यां संयोगे कृते चतस्रश्चतस्रः प्रकृतयः। तद्यथा—औदारिकौदारिक–औदारिकतैजस–औदारिककार्मण–औदारिकतैजसकार्मणाः। एवं वैक्रियिके आहारकेऽपि ज्ञातव्याः। पुनः तैजसकार्मणेन संयोगे कृते तदा तैजसतैजसतैजसकार्मणेति द्वे प्रकृती। पुनः कार्मणं कार्मणेन तदा कार्मणकार्मणेत्येका। एवं पञ्चदश भवन्ति। २०

नाम। गतिनामके चार भेद हैं—नारकगतिनाम, तिर्यंचगतिनाम, मनुष्यगतिनाम, देवगतिनाम। जातिनामके पाँच भेद हैं—एकेन्द्रिय जातिनाम, द्वीन्द्रिय जातिनाम, त्रीन्द्रिय जातिनाम, चतुरिन्द्रिय जातिनाम और पंचेन्द्रिय जाति नाम। शरीरनामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीरनाम, वैक्रियिक शरीरनाम, आहारक शरीरनाम, तैजस शरीरनाम और कार्मण शरीरनाम ॥२६॥ २५

इन पाँच शरीरोंके भंग कहते हैं—

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीनोंमें तैजस और कार्मणका संयोग करनेपर चार, चार, चार प्रकृतियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं—औदारिकऔदारिक, औदारिकतैजस, औदारिककार्मण, औदारिकतैजसकार्मण। इसी प्रकार वैक्रियिक और आहारकमें भी जानना चाहिए। पुनः तैजसका कार्मणसे संयोग करनेपर तैजसतैजस, तैजसकार्मण दो प्रकृति होती हैं। पुनः कार्मणका कार्मणसे संयोग होनेपर एक प्रकृति होती है। इस प्रकार ३०

औ	औ औ	औ तै	औ का ३	औ तै का ४
वै	वै वै	वै तै	वै का ।	वै तै का ४
आ	आ आ	आ तै	आ । का	आ तै का ४
तै	तै तै	तै का	२	
का	का का		१	

इन्ती द्विसंयोगादिजनितपंचदशभंगंगळोळु पुनरुक्तंगळप्प औदारिकौदारिक वैक्रियिक-वैक्रियिक आहारकाहारक तैजसतैजस कार्म्मणकार्म्मणमेंब द्विसंयोगभंगपंचकमं बिट्टु शेषदश-भंगंगळं त्रिनवतिनामकर्म्मंगळोळु कूडुत्तं विरलु त्र्युत्तरशतं वा यें दु पेळ्द नामकर्म्मदुत्तरप्रकृति-गळप्पुवु ।

५ शरीरबंधननामकर्म्म पंचविधमक्कुमौदारिक वैक्रियिक आहारक तैजसकार्म्मण शरीर बंधननामकर्म्ममें दिन्तु ।

शरीरसंघातनामकर्म्म पंचविधमक्कुं मौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्म्मणशरीरसंघात नामकर्म्मंने दितु ।

शरीरसंस्थाननामकर्म्म षड्विधमक्कुं । समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म्ममें बुदुं न्यग्रोधपरि-
१० मण्डल स्वाति कुब्ज वामन हुंडशरीर संस्थाननामकर्म्ममें दितु ।

१	औ	औ औ	औ तै	औ का	औ तै का ४
	वै	वै वै	वै तै	वै का	वै तै का ४
	आ	आ आ	आ तै	आ का	आ तै का ४
	तै	तै तै	तै का	२	
	का	का	का	१	

एतासु औदारिकौदारिकादयः कार्मणकार्मणान्ताः सदृशद्विसंयोगाः पञ्च पुनरुक्ता इति त्यक्त्वा शेषदशसु त्रिनवत्यां निक्षिप्तासु त्र्युत्तरं शतं नामकर्मोत्तरप्रकृतयो भवन्ति ।

शरीरबन्धननाम पञ्चविधं-औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरबन्धननामेति । शरीरसंघातनाम पञ्चविधं-औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंघातनामेति । शरीरसंस्थानं नाम षड्विधं-समचतुरस्र-
१५ संस्थान नाम न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनहुण्डशरीरसंस्थाननाम चेति । शरीराङ्गोपाङ्गनाम त्रिविधं—औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गनामेति ॥२७॥

पन्द्रह भेद होते हैं । इनमें औदारिकऔदारिक आदि कार्मणकार्मणपर्यन्त समान दो संयोगी पाँच भेद पुनरुक्त हैं इनको छोड़कर शेष दस भेद तिरानवेमें जोड़नेपर नामकर्मकी उत्तर-प्रकृतियाँ १०३ (एक सौ तीन) होती हैं । शरीरबन्धननामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीर-
२० बन्धननाम, वैक्रियिक शरीरबन्धननाम, आहारक शरीरबन्धननाम, तैजस शरीर बन्धन-नाम, कार्मण शरीरबन्धननाम । शरीर संघात नामके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीर संघात नाम, वैक्रियिक शरीर संघात नाम, आहारक शरीरसंघातनाम, तैजस शरीर संघात नाम, कार्मण शरीर संघात नाम । शरीर संस्थान नामके छह भेद हैं—समचतुरस्रसंस्थान-नाम, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान नाम, स्वातिसंस्थान नाम, कुब्जसंस्थान नाम, वामन-

शरीरांगोपांगनामकर्म्मंत्रिविधमक्कुमौदारिकवैक्रियिकाहारशरीरांगोपांगनामकर्म्ममेंदिन्तु ॥

णलया बाहू य तहा णियंबपुट्ठी उरो य सीसो य ।
अट्ठेव दु अगाइं देहे सेसा उवंगाइं ॥२८॥

नलकौ बाहू च तथा नितंबपृष्ठे उरश्च शीर्षं च । अष्टैव त्वंगानि देहे शेषाण्युपांगानि ।

एरडुं कालगळुमेरडुं कैगळुमोंदु नितंबमुमोंदपरभागमुमोंदुरस्सु मोंदु शीर्षमुमेंबिवंटंगंगळप्पुवु । उळिदवेल्लं देहदोळुपांगंगळप्पुवु । संहननंनामकर्म्मं षड्विधमक्कुं । वज्रवृषभनाराचशरीरसंहननंनामकर्म्ममेंदुं वज्रनाराच नाराचार्द्धनाराच कीलितासंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहननंनामकर्म्ममुमेंदिंतु ॥

सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति ।
तत्तो दु जुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति ॥२९॥

सृपाटिकया च गम्यते आदितश्चतुर्षु कल्पयुगळपर्य्यंतं । ततो द्वि युगळयुगळे कीलितनाराचनार्द्ध पर्य्यंतं ॥

सृपाटिकासंहननंदिंदं सौधर्म्मकल्पयुगलं मोदल्गोंडु लांतवयुगलपर्य्यंतं नाल्कु युगलंगळोळ्पुट्टल्पडुगुं । ततो द्वियुगळयुगळे मेले शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारमेंबी द्वियुगळदोळं आनतप्राणत आरण अच्युतमेंबी द्वियुगळदोळं क्रमदिंदं कीलितार्द्धनाराचसंहननंगळिंदं पुट्टल्पडुगुं ॥

णवगेवेज्जाणुद्दिसणुत्तरवासीसु जांति ते णियमा ।
तिदुगेगे संघडणे णारायणमादिगे कमसो ॥३०॥

नवग्रैवेयकानुदिशानुत्तरवासिषु यांति ते नियमात् । त्रिद्विकैके संहनने नाराचनादिके क्रमशः ॥

नलकौ पादौ तथा बाहू हस्तौ नितम्बः परभागः उरः शीर्षं चेत्यष्टैवाङ्गानि । शेषाणि देहे उपाङ्गानि भवन्ति । संहननंनाम षड्विधं वज्रर्षभनाराचशरीरसंहननंनाम वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहननंनाम चेति ॥२८॥

सृपाटिकासंहननेन सौधर्मद्वयाल्लान्तवद्वयपर्यंतं चतुर्षु युगलेषु उत्पद्यते । तत उपरि युग्मद्वये युग्मद्वये क्रमेण कीलितार्धनाराचसंहननाभ्यामुत्पद्यते ॥२९॥

संस्थान नाम, हुण्ड शरीर संस्थान नाम । शरीरांगपांग नामके तीन भेद हैं—औदारिकशरीरांगोपांग, वैक्रियिक शरीरांगोपांग नाम, आहारकशरीरांगोपांग नाम ॥२७॥

शरीरमें दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, उर, सिर ये आठ अंग हैं । शेष उपांग होते हैं । संहनन नामके छह भेद हैं—वज्रर्षभनाराचशरीर संहनन नाम, वज्रनाराचशरीरसंहननंनाम, नाराचशरीरसंहननंनाम, अर्धनाराचशरीरसंहननंनाम, कीलितशरीरसंहनन नाम, असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नाम ॥२८॥

सृपाटिकासंहननसे जीव मरकर सौधर्मयुगलसे लान्तवयुगल पर्यन्त चार युगलोंमें उत्पन्न होता है । उससे ऊपर दो युगलों शतारयुगलपर्यन्त कीलितसंहननसे मरकर उत्पन्न होता है, उसके ऊपर दो युगलोंमें आरणअच्युतपर्यन्त अर्धनाराचसंहननसे मरकर उत्पन्न होता है ॥२९॥

नवग्रैवेयकमुं नवानुदिशमुं पंचानुत्तरमुमेंबी विमानवासिगळोळु क्रमदिंदं यांति पुट्टुवरु। ते अवग्गंळु। अवग्गंळेंदवरारेंदोडे नाराचनादिके त्रिद्विकैकसंहनने नाराचवज्रनाराचवज्रवृषभनाराचमेंब त्रिसंहननदवग्गंळं। वज्रनाराचवज्रवृषभनाराचसंहननद्वितयदवग्गंळु वज्रवृषभनाराचसंहननमोंदनुळळवग्गंळु क्रमदिंदं पुट्टुवरु॥

सण्णी छस्संघडणो वज्जदि मेघं तदो परं चावि।
सेवट्टादीरहिदा पणपणचदुरेगसंघडणो ॥३१॥

संज्ञी षट्संहननो व्रजति मेघां ततः परं चापि। सृपाटिकादिरहितः पंचपंचचतुरेकसंहननः॥

संज्ञिजीवं षट्संहननयुतनु मेघां व्रजति मेघेयं तृतीयपृथ्वियं पुगुगुं। तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं पुट्टुगुमेंबुदर्त्थं। ततः परं चापि अल्लिद मुंदेयुमा संज्ञिजीवं सृपाटिकासंहननादिरहितं कीलितसंहननपर्य्यंतमादैदुं संहननंगळिंदमरिष्टे पर्य्यंतमादय्दुं पृथ्विगळोळ्पुट्टुगुं। अर्द्धनाराचपर्य्यंतमादनाल्कुं संहननंगळनुळळ संज्ञिजीवं मघविपर्य्यंतमादारुं पृथ्विगळोळ्पुट्टुगुं। वज्रवृषभनाराचसंहननयुतं संज्ञिजीवं माघविपर्य्यंतमादेळुं पृथ्विगळोळ्पुट्टुगुं।

५	१	घ। ६
९	२	वं। ६
९	३	मे। ६
११	४	अं। ५
११	४	अ। ५
१।०	५	म। ४
१।०	५	मा। १
०।१	६	
०।१	६	
०।१	६	
१।१	६	

नाराचादिना संहननत्रयेण वज्रनाराचादिना द्वयेन वज्रर्षभनाराचैकेन चोपलक्षिताः ते जीवाः क्रमशः नवग्रैवेयकनवानुदिशपञ्चानुत्तरविमानवासिषु उत्पद्यन्ते ॥३०॥

संज्ञी जीवः षट्संहननः मेघां व्रजति—तृतीयपृथ्वीपर्यन्तमुत्पद्यते इत्यर्थः। ततः परं चापि सृपाटिकादिरहितः कीलितान्तपञ्चसंहननः अरिष्टान्तपञ्चपृथिवीषु उत्पद्यते। अर्धनाराचान्तचतुःसंहननः मघव्यन्तषट्पृथ्वीषु उत्पद्यते। वज्रर्षभनाराचसंहननः माघव्यन्तसप्तपृथ्वीषु उत्पद्यते ॥३१॥

नाराच आदि तीन संहननोंसे मरे जीव नौग्रैवेयकपर्यन्त उत्पन्न होते हैं। वज्रनाराच आदि दो संहननोंसे मरे जीव नौ अनुदिशोंपर्यन्त उत्पन्न होते हैं। तथा वज्रर्षभनाराचसे मरे जीव पाँच अनुत्तर विमानवासी देवपर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥३०॥

छह संहननसे युक्त संज्ञी जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो मेघा नामक तीसरी पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है। सृपाटिका रहित कीलित पर्यन्त संहननवाला जीव मरकर अरिष्टा नामक पाँचवीं पृथ्वीपर्यन्त उत्पन्न होता है। अर्धनाराचपर्यन्त चार संहननवाला जीव मघवी नामक छठी पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है। एक वज्रर्षभनाराच संहननका धारी जीव माघवी नामकी सातवीं पृथ्वी पर्यन्त उत्पन्न होता है ॥३१॥

अंतिमतिगसंघडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंघडणं णत्थित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥३२॥

अन्त्यत्रयसंहननस्योदयः पुनः कर्म्मभूमिमहिलानां । आद्यत्रयसंहननस्योदयो नास्तीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

कर्म्मभूमिसंजातमहिलाजनंगळ्गे अर्द्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननमेंब संहननत्रितयोदयमल्लदुळिदाद्यसंहननत्रितयोदयमिल्लेंदु जिनस्वामिगळिदं पेळल्पट्टुदु ॥

वर्णनामकर्म्मं पंचविधमक्कुं कृष्ण नीलरुधिरपीतशुक्लवर्णनामकर्म्ममेंदितु । गंधनामकर्म्मं द्विविधमक्कुं सुगंधदुर्ग्गंधनामकर्म्ममेंदितु ।

रसनाकर्म्मं पंचविधमक्कुं तिक्तकटुकषायांम्लमधुरनामकर्म्ममेंदितु ॥ स्पर्शनामकर्म्ममष्टविधमक्कुं कर्कशं गुरु मृदु लघु रूक्षस्निग्धशीतोष्णस्पर्शनामकर्म्ममेंदितु । आनुपूर्व्वीनामकर्म्मं चतुर्व्विधमक्कुं नरकतिर्य्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्विनामकर्म्ममेंदितु मनुष्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्विनामकर्म्ममुमेंदितु ॥

अगुरुकलघुक उपघातपरघात उच्छ्वास आतप उद्योतनामकर्म्ममेंदुं । विहायोगतिनामकर्म्मं द्विविधमक्कुं प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म्ममेंदुं अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म्ममेंदितु । त्रस बादरपर्य्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर शुभसुभग सुस्वरआदेययशस्कीर्त्ति निर्म्माण तीर्त्थंकर नामकर्म्ममेंदुं । स्थावर सूक्ष्म अपर्य्याप्त साधारणशरीर अस्थिर अशुभ दुर्भगदुःस्वर अनादेय अयशस्कीर्त्ति-

---

कर्मभूमिस्त्रीणां अर्धनाराचाद्यन्त्यत्रिसंहननोदय एव नाद्यसंहननत्रयोऽस्तीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।

वर्णनाम पञ्चविधं–कृष्णनीलरुधिरपीतशुक्लवर्णनामेति । गन्धनाम द्विविधं सुगन्धदुर्गन्धनामेति । रसनाम पञ्चविधं–तिक्तकटुकषायाम्लमधुरनामेति । स्पर्शनामाष्टविधं कर्कशमृदुकगुरुलघुरूक्षस्निग्धशीतोष्णस्पर्शनामेति । आनुपूर्वीनाम चतुर्विधं नरकतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम मनुष्यदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनामेति च । अगुरुकलघुकोपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योतनामेति । विहायोगतिनाम द्विविधं प्रशस्तविहायोगतिनाम अप्रशस्तविहायोगतिनाम चेति । त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकरनामेति । स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशःकीर्तिनामेति नामकर्मोत्तरप्रकृतयस्त्रिनवति-

---

कर्मभूमिकी स्त्रियोंके अर्धनाराच आदि अन्तिम तीन संहननोंका उदय होता है, आदिके तीन संहनन नहीं होते, ऐसा जिनदेवने कहा है। वर्णनाम पाँच प्रकार है—कृष्ण, नील, लाल, पीत और शुक्ल वर्णनाम। गन्धनाम दो प्रकार है—सुगन्ध और दुर्गन्धनाम। रसनाम पाँच प्रकार है—तीता, कटुक, कषाय, खट्टा और मधुरनाम। स्पर्शनाम आठ प्रकार है—कर्कश, कोमल, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्णनाम। आनुपूर्वीनाम चार प्रकार है—नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीनाम। अगुरुलघुकनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम। विहायोगतिनाम दो प्रकार है—प्रशस्तविहायोगतिनाम, अप्रशस्तविहायोगतिनाम। त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिरनाम, शुभनाम, सुभगनाम, सुस्वरनाम, आदेयनाम, यशस्कीर्तिनाम, निर्माणनाम, तीर्थंकरनाम। स्थावरनाम, सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणशरीर नाम, अस्थिरनाम, अशुभनाम, दुर्भगनाम, दुःस्वरनाम, अनादेयनाम, अयशःकीर्तिनाम। इस प्रकार नामकर्मकी उत्तर

नामकर्म्ममेंदितु नामकर्म्मदुत्तरप्रकृतिगळु तोंभत्तमूरुं नूर मूरुं मेणप्पुवु ॥

मूलुण्हपहा अग्गी आदाओ होदि उण्हसहियपहा ।
आइच्चे तेरिच्छे उण्हूणपहा हु उज्जोओ ॥३३॥

मूलोष्णप्रभोऽग्निः आतपो भवत्युष्णसहितप्रभः । आदित्ये तिरश्चि उष्णोनप्रभः खलूद्योतः ॥

मूलदोळुष्णप्रभेयनुळ्ळुदग्नियक्कुं । उष्णसहितप्रभेयनुळ्ळु दातपमक्कुमदुवुमादित्यबिंबदोळ्पुट्टिद बादरपर्य्याप्तपृथ्वीकायतिर्य्यंचरोळेयक्कुं । उष्णरहितप्रभेयनुळ्ळुद्योतमक्कं स्फुटमागि ॥

गोत्रकर्म्म द्विविधमक्कुं उच्चनीचगोत्रकर्म्ममेंदितु । अंतरायकर्म्म पंचविधमक्कुं । दान लाभ भोगोपभोगवीर्य्यांतरायकर्म्ममेंदितु आत्मप्रदेशस्थितकर्म्मभावयोग्यंगळप्प कार्म्मणवर्गणेगळे अविभागदिंदमुपश्लेषं बंधमेंदुपेळल्पट्टुदु । भाजनविशेषदोळ्प्रक्षिप्त विविधरसबीजपुष्पफलंगळगे मदिराभावदिंदं परिणाममेंतक्कुमंते कार्म्मणपुद्गलंगळगेयुं योगकषायनिमित्तदिंदं कर्म्मभावदिंदं परिणामसरियल्पडुगुं । ओंदे आत्मपरिणामदिंदं कैकोळुत्तिर्द्द पुद्गलंगळु ज्ञानावरणाद्यनेकभेदंगळरियल्पडुवुवेंतोगळु सकृदुपयुक्तान्नमोंदक्केये रसरुधिरादिपरिणाममेंतंते ।

यिन्नुत्तरप्रकृतिगळगे निरुक्ति पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे :—

स्युत्तरशतं वा भवन्ति ॥३२॥

मूले उष्णप्रभः अग्निः, उष्णसहितप्रभः आतपः स च आदित्यबिम्बोत्पन्नबादरपर्याप्तपृथ्वीकायतिर्यंचि भवति । उष्णरहितप्रभः उद्योतः स्फुटम् । गोत्रकर्म द्विविधं उच्चनीचगोत्रभेदात् । अन्तरायकर्म पञ्चविध—दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदात् । आत्मप्रदेशस्थितानां कर्मभावयोग्यानां कार्मणवर्गणानां अविभागेन उपश्लेषः बन्धः । यथा भाजनविशेषप्रक्षिप्तविविधरसबीजपुष्पफलानां मदिराभावः स्यात् तथा कार्मणपुद्गलानां योगकषायनिमित्तेन कर्मभावो ज्ञातव्यः । एकेनैव आत्मपरिणामेन स्वीक्रियमाणपुद्गलाः ज्ञानावरणाद्यनेकभेदाः स्युः सकृदुपयुक्तस्यान्नस्य एकस्यैव रसरुधिरादिपरिणामवत् । इदानीमुत्तरप्रकृतीनां निरुक्तिरुच्यते—

प्रकृतियाँ तिरानवे अथवा एक सौ तीन होती हैं ॥३२॥

जो मूलमें उष्ण हो वह अग्नि है और जिसकी प्रभा उष्ण हो वह आतप है । आतप नाम कर्मका उदय सूर्यके बिम्बमें उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक तिर्यंचजीवमें होता है । जिसकी प्रभा भी उष्ण न हो वह उद्योत है । गोत्रकर्म दो प्रकार है—उच्चगोत्र, नीचगोत्र । अन्तरायकर्म पाँच प्रकार है—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय । आत्माके प्रदेशोंमें स्थित कर्मरूप होनेके योग्य कार्मणवर्गणाओंका भेदरहित सम्बन्ध बन्ध है । जैसे विशेष पात्रमें डाले गये विविध रस, बीज, पुष्प, फलोंका मदिरारूप परिणाम होता है उसी तरह योग और कषायके निमित्तसे कार्मणपुद्गलोंका कर्मरूप परिणाम जानना । एक ही आत्मपरिणामसे ग्रहण किये गये पुद्गल ज्ञानावरण आदि अनेक भेदरूप हो जाते हैं जैसे एक बारमें खाये गये एक ही अन्नका रस रुधिर आदि रूपसे परिणाम होता है । अब उत्तरप्रकृतियोंकी निरुक्ति कहते हैं—

मतिज्ञानमावृणोत्यावृीयतेऽनेनेति मतिज्ञानावरणं। श्रुतज्ञानमावृणोत्यावृीयतेऽनेनेति श्रुतज्ञानावरणं। अवधिज्ञानमावृणोत्यावृीयतेऽनेनेति अवधिज्ञानावरणं। मनःपर्य्ययज्ञानमावृणोत्यावृीयतेऽनेनेति मनःपर्य्ययज्ञानावरणं। केवलज्ञानमावृणोत्यावृीयतेऽनेनेति केवलज्ञानावरणमिति यिल्लि चोदिसल्पट्टुदु॥ अभव्यंगे मनःपर्य्ययज्ञानशक्तियुं केवलज्ञानशक्तियुमुंटो मेणिल्लमो एत्तलानुमुंटप्पोडे तज्जीवक्कभव्यत्वाभावमक्कुमेत्तलानुमिल्लमक्कुमप्पोडे यिल्लि आवरणद्वयकल्पनेव्यर्थमेंदितु। इदक्कुत्तरं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडादेशवचनमप्पुदरिनिल्लि दोषमिल्लेकेंदोडे द्रव्यार्थादेशान्मनःपर्य्ययकेवलज्ञानशक्तिसंभवमप्पुदरिंदं। पर्य्यायार्थादेशदत्तणिंदं तच्छक्त्यभावमक्कुमेत्तलानुमितु भव्याभव्यविकल्पसंभविसदिर्द्दोडे उभयदोळं तच्छक्तिसद्भावमागि बक्कुमदुकारणमागि शक्तिभावाभावापेक्षेयिंदं भव्याभव्यविकल्पं पेळल्पडदु। मत्तेंतु पेळल्पडुगुमेंदोडे बहिर्व्यक्तिसद्भावासद्भावापेक्षेयिंदं सम्यग्दर्शनादिव्यक्ति यावंगे संभविसुगुमा जीवं भव्यनक्कुमावंगे मत्ते तत्सम्यक्त्वाभिव्यक्तियागदा जीवनभव्यनेंदु पेळल्पडुगुं। सुवर्णाधपाषाणगळंते आवृणोत्यावृीयतेनेऽनेत्यावरणं। चक्षुर्दर्शनावरणमचक्षुर्दर्शनावरणमवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणमिति।

स्वप्ने यया वीर्य्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकार्थत्वात् स्वप्नार्थ इह गृह्यते। गृद्धेरपि दीप्तिर्गृह्यते स्त्याने स्वप्ने गृध्यते दीप्यते यदुदयादातं रौद्रं च बहु च कर्म्मकरणं

मतिज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति मतिज्ञानावरणं। श्रुतज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति श्रुतज्ञानावरणं। अवधिज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति अवधिज्ञानावरणं। मनःपर्ययज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति मनःपर्ययज्ञानावरणं। केवलज्ञानमावृणोति आव्रियतेऽनेनेति केवलज्ञानावरणं। ननु अभव्यस्य मनःपर्ययकेवलज्ञानशक्तिरस्ति न वा यद्यस्ति तदा तस्याभव्यत्वं न स्यात्। यदि नास्ति तदा तत्रावरणद्वयकल्पनावैयर्थ्यमिति? तन्न। द्रव्यार्थादेशेन तच्छक्तिसद्भावात् पर्यायार्थादेशेन व्यक्तयसंभवात्तदुक्तदोषानवकाशात्। अन्धपाषाणे स्वर्णवत्।

आवृणोति आव्रियतेऽनेनेति आवरणं चक्षुर्दर्शनावरणं अचक्षुर्दर्शनावरणं अवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणं चेति। स्वप्ने यया वीर्यविशेषाविर्भावः सा स्त्यानगृद्धिः। स्त्यायतेरनेकार्थत्वात् स्वप्नोऽर्थ इह गृह्यते।

जो मतिज्ञानका आवरण करता है या जिससे मतिज्ञान आवृत किया जाता है वह मतिज्ञानावरण है। जो श्रुतज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा श्रुतज्ञान आवृत होता है वह श्रुतज्ञानावरण है। जो अवधिज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा अवधिज्ञान आवृत होता है वह अवधिज्ञानावरण है। जो मनःपर्ययज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा मनःपर्ययज्ञान आवृत होता है वह मनःपर्ययज्ञानावरण है। जो केवलज्ञानका आवरण करता है या जिसके द्वारा केवलज्ञान आवृत किया जाता है वह केवलज्ञानावरण है।

शंका—अभव्यके मनःपर्यय और केवलज्ञान शक्ति है या नहीं? यदि है तो वह अभव्य नहीं हो सकता। यदि नहीं है तो उसके दो आवरण मानना व्यर्थ है?

समाधान—द्रव्यार्थिक-नयसे अभव्यमें दोनों ज्ञानशक्तियाँ विद्यमान हैं। किन्तु पर्यायार्थिक नयसे उन शक्तियोंकी व्यक्ति असम्भव होनेसे उक्त दोषोंको स्थान नहीं है। जैसे अन्धपाषाणमें द्रव्यदृष्टिसे स्वर्णशक्ति है किन्तु वह व्यक्त नहीं हो सकती। जो आवरण करता है या जिसके द्वारा आवृत किया जाता है वह आवरण है अतः चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण रूपसे चार दर्शनोंके चार दर्शनावरण

१. म मिल्लमदेंतेंदोडे।

सा स्त्यानगृद्धि । इह स्त्यानगृद्ध्यादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसंबध्यतयितिस्त्यानगृद्धिर्दर्शनावरणमिति । यदुदयान्निद्रायाः उपर्युपरि वृत्तिस्तन्निद्रानिद्रादर्शनावरणं । यदुदयाद्या क्रिया आत्मानं पुनः पुनः प्रचलयति तत्प्रचलाप्रचलादर्शनावरणं । शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका सैव पुनःपुनरावर्त्तमाना प्रचलाप्रचलेत्यर्थः । यदुदयान्मदखेदक्लमव्यपनोदार्थं स्वापस्तन्निद्रादर्शनावरणं । यदुदयाद्या क्रिया आत्मानं प्रचलयति तत्प्रचलादर्शनावरणमिति ॥

यदुदयाद्देवादिगतिषु शारीरमानससुखप्राप्तिस्तत्सातं । तद्वेदयति वेद्यत इति सातवेदनीयं यदुदयफलं दुःखमनेकविधं तदसातं । तद्वेदयति वेद्यत इत्यसातवेदनीयमिति ॥ दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयमिति मोहनीयं चतुर्व्विधं । तत्र दर्शनमोहनीयं सम्यक्त्वमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वमिति त्रिविधं । तद्बंधं प्रत्येकविधं सत् उदयसत्कर्मापेक्षया त्रिविधमवतिष्ठते । यस्योदयात्सर्व्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखस्तत्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचा-

---

गृद्धेरपि दीप्तिर्गृह्यते । स्त्याने-स्वप्ने गृध्यते दीप्यते यदुदयादार्तं रौद्रं च बहु च कर्मकरणं सा स्त्यानगृद्धिः । इह स्त्यानगृद्ध्यादिभिर्दर्शनावरणं सामानाधिकरण्येनाभिसंबध्यते इति स्त्यानगृद्धिर्दर्शनावरणमिति । यदुदयान्निद्राया उपर्युपरि वृत्तिः तन्निद्रानिद्रादर्शनावरणं । यदुदयात् या क्रिया आत्मानं पुनः पुनः प्रचलयति तत्प्रचलाप्रचलादर्शनावरणं । शोकश्रममदादिप्रभवा आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका [सैव पुनः पुनरावर्तमाना प्रचलाप्रचलेत्यर्थः] । यदुदयात् मदखेदक्लमव्यपनोदार्थं स्वापः तन्निद्रादर्शनावरणं । यदुदयात् या क्रिया आत्मानं प्रचलयति तत्प्रचलादर्शनावरणमिति ।

यदुदयाद्देवादिगतिषु शरीरमानससुखप्राप्तिः तत्सातं; तद्वेदयति वेद्यते इति सातवेदनीयं । यदुदयफलं दुःखमनेकविधं तदसातं तद्वेदयति वेद्यते इत्यसातवेदनीयमिति ।

दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं इति मोहनीयं चतुर्विधं । तत्र दर्शनमोहनीयं सम्यक्त्वं–मिथ्यात्वं–सम्यग्मिथ्यात्वमिति त्रिविधम् । तद्बन्धं प्रति एकविधं सत् तदेव मिथ्यात्वं सत्कर्मा-

---

हैं । सोतेमें जिसके द्वारा शक्ति विशेष प्रकट हो वह स्त्यानगृद्धि है । 'स्त्यायति'के अनेक अर्थ होनेसे यहाँ शयन अर्थ लिया है । और गृद्धिका अर्थ दीप्ति लिया है । अतः 'स्त्यान' यानी शयनमें जिसके उदयसे आत्मा दीप्त होती है, आर्तरौद्ररूप बहु कर्म करती है वह स्त्यानगृद्धि है । यहाँ स्त्यानगृद्धि आदिके साथ दर्शनावरणका समान अधिकरण रूपसे सम्बन्ध किया जाता है कि स्त्यानगृद्धि ही दर्शनावरण है । जिसके उदयसे निद्रापर निद्रा आती है वह निद्रानिद्रादर्शनावरण है । जिसके उदयसे जो क्रिया आत्माको पुनः-पुनः प्रचलित करती है वह प्रचलाप्रचलादर्शनावरण है । यह शोक, मेहनत, नशा आदिसे होती है, बैठे हुए भी मनुष्यके नेत्र और गात्रमें विकारकी सूचक है । इसकी पुनः पुनः आवृति होना प्रचलाप्रचला है । जिसके उदयसे मद, खेद, थकान दूर करनेके लिए सोया जाता है वह निद्रादर्शनावरण है । जिसके उदयसे जो क्रिया आत्माको प्रचलित करती है वह प्रचलादर्शनावरण है । जिसके उदयसे देवादि गतियोंमें शारीरिक और मानसिक सुखकी प्राप्ति हो वह साता है उसका जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा उसका वेदन हो वह सातवेदनीय है । जिसके उदयका फल अनेक प्रकारका दुख है वह असाता है उसका जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा उसका वेदन हो वह असातवेदनीय है । मोहनीयके चार भेद हैं—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, कषायवेदनीय, नोकषायवेदनीय । दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्-

रासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वं। तदेव मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासिन्येनाऽवस्थितमात्मानं श्रद्धानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः सन् पुरुषः सम्यग्दृष्टिरभिधीयते। तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्सामिषच्छुद्धस्वरसं स्वशक्तियुतं तदुभयमित्याख्यायते सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयादात्मनोऽशुद्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयात्मको भवति परिणाम इति ॥ ९

चारित्रमोहनीयं द्विविधं चरति चर्यते अनेन चरणमात्रं वा चारित्रं। तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयं। तद्द्विविधं कषायवेदनीय-नोकषायवेदनीयभेदात्। कषंति हिंसंतीति कषायाः। ईषत्कषायाः नोकषायाः इति। तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधं। कुतोऽनंतानुबंध्यादिविकल्पात्। तद्यथा कषायाः क्रोधमानमायालोभाः। तेषां चतस्रोऽवस्थाः अनंतानुबंधिनः अप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति ॥ १०

तत्रानन्तसंसारकारणत्वान्मिथ्यात्वमनन्तं। तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमाया-

---

पेक्षया त्रिविधमवतिष्ठते। यस्योदयात् सर्वज्ञप्रणीतमार्गपराङ्मुखः तत्त्वार्थश्रद्धाननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्थो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम्। तदेव मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धरसं यदा औदासीन्येनावस्थितमात्मानं श्रद्धानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः सन् पुरुषः सम्यग्दृष्टिरभिधीयते। तदेव मिथ्यात्वं प्रक्षालनविशेषात् क्षीणाक्षीणमदशक्तिकोद्रववत्समीषच्छुद्धरसं स्वशक्तियुतं तदुभयमित्याख्यायते-सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत्। यस्योदयात् आत्मनः अशुद्धशुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिश्रपरिणामवदुभयात्मको भवति।

चारित्रमोहनीयं द्विविधं चरति चर्यतेऽनेनेति चरणमात्रं वा चारित्रं तन्मोहयति मुह्यतेऽनेनेति चारित्रमोहनीयम्। तद्द्विविधं कषायवेदनीयनोकषायवेदनीयभेदात्। कषन्ति हिंसन्ति कषायाः। ईषत्कषाया नोकषाया इति। तत्र कषायवेदनीयं षोडशविधम्। कुतः? अनन्तानुबन्ध्यादिविकल्पात्। तद्यथा— कषायाः क्रोधमानमायालोभाः, तेषां चतस्रोऽवस्थाः अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणाः प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं लोभसंज्वलनं चेति। तत्र अनन्तसंसार-

---

मिथ्यात्व। यह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकार होनेपर भी उदय और सत्ताकी अपेक्षा तीन प्रकार है। जिसके उदयसे सर्वज्ञकथित मार्गसे विमुख, तत्त्वार्थश्रद्धानके प्रति उत्सुकतारहित, तथा हित-अहितके विचारमें असमर्थ मिथ्यादृष्टि होता है वह मिथ्यात्व है। वही मिथ्यात्व जब शुभ परिणामके द्वारा उसका रस रोक दिया जाता है और उदासीनतासे अवस्थित हो आत्माके श्रद्धानको नहीं रोकता तो वह सम्यक्त्व कहलाता है। उसका वेदन करनेवाला मनुष्य वेदकसम्यग्दृष्टि कहलाता है। जैसे धोनेसे कोदोंकी मदशक्ति कुछ क्षीण और कुछ अक्षीण होती है उसी तरह मिथ्यात्वकी कुछ शक्ति शुद्ध हो और कुछ बनी रहे तब उसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। उसके उदयसे आत्माके कुछ शुद्ध कुछ अशुद्ध कोदोंके भातके खानेपर होनेवाले मिश्रपरिणामकी तरह उभयरूप परिणाम होते हैं। जो आचरण करता है या जिसके द्वारा आचरण किया जाता है या आचरण मात्र चारित्र है। उसे जो मोहित करता है या जिसके द्वारा वह मोहित किया जाता है वह चारित्रमोहनीय है। उसके दो भेद हैं—कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। जो कषति अर्थात् हिंसा करती है वह कषाय है। ईषत् कषाय नोकषाय है। उनमें-से कषायवेदनीयके सोलह भेद हैं। वह इस प्रकार हैं— कषाय क्रोध मान माया लोभ हैं। उनकी चार अवस्थाएँ हैं—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन।

लोभाः । यदुदयाद्देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति तदप्रत्याख्यानावरणम् । तद्भेदाः क्रोधमानमायालोभाः । प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । संशब्दः एकीभावे वर्त्तते संयमेन सहावस्थानात् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः । त एते समुदिताः षोडश कषाया भवन्ति । ईषत्कषायाः नोकषायास्तान् वेदयन्ति वेद्यन्ते एभिरिति नोकषायवेदनीयानि नवविधानि । तत्र यस्योदयाद्धास्याविर्भावस्तद्धास्यम् । यदुदयाद्देशादिषु औत्सुक्यं सा रतिः । अरतिस्तद्विपरीतेत्यर्थः ॥ यद्विपाकात् शोचनं स शोकः । यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम् ॥ यदुदयादात्मदोषसंवरणमन्यदोषस्य धारणं सा जुगुप्सा ॥ यदुदयात्स्त्रैणान्भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः ॥ यस्योदयात्पौंस्नान् भावानास्कंदति स पुंवेदः ॥ यदुदयान्नापुंसकान् भावानुपव्रजति स नपुंसकवेदः । नरकादि भवधारणाय एतीत्यायुः । तन्नारकादिभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नरकादिषु भवसंबन्धेनायुषो व्यपदेशः क्रियते । वा नरकेषु भवं नारकमायुः । तिर्य्यग्योनिषु भवं तैर्य्यग्योनम् । मनुष्येषु भवं मानुष्यं देवेषु भवं दैवमिति ॥

कारणत्वात् मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबन्धिनः—अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभाः । यदुदयात् देशविरतिं संयमासंयमाख्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति तदप्रत्याख्यानावरणं तद्भेदाः क्रोधमानमायालोभाः । प्रत्याख्यानं सकलसंयमः तमावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः । सम् शब्दः, एकीभावे वर्तते संयमेन सहावस्थानात् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमो वा ज्वलति एषु सत्स्वपीति संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः त एते समुदिताः षोडश कषाया भवन्ति ।

ईषत्कषाया नोकषायाः तान् वेदयन्ति वेद्यन्ते एभिरिति नोकषायवेदनीयानि नवविधानि । तत्र यस्योदयात् हास्याविर्भावः तद्धास्यम् । यदुदयाद्देशादिषु औत्सुक्यं सा रतिः । अरतिस्तद्विपरीता । यद्विपाकात् शोचनं स शोकः । यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम् । यदुदयात् आत्मदोषसंवरणं अन्यदोषस्य धारणं सा जुगुप्सा । यदुदयात् स्त्रैणान् भावान् प्रतिपद्यते स स्त्रीवेदः । यस्योदयात् पौंस्नान् भावान् आस्कन्दति स पुंवेदः । यदुदयात् नापुंसकान् भावान् उपव्रजति स नपुंसकवेदः ।

नारकादिभवधारणाय एतीत्यायुः तन्नारकादिभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नरकादिषु भवसंबन्धेन आयुषो

अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्वको अनन्त कहते हैं उसके बाँधनेवाले अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ हैं । जिसके उदयसे संयमासंयम नामक देशविरतिको थोड़ा सा भी करनेमें असमर्थ होता है वह अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ है । प्रत्याख्यान कहते हैं सकलसंयमको । उसे जो आवरण करती हैं वे प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ हैं । 'सम्' शब्दका अर्थ एकीभाव है । संयमके साथ एकमेक रूपसे रहकर जो ज्वलित हों अथवा जिनके रहते हुए भी संयम ज्वलित हो वे संज्वलन क्रोध मान माया लोभ हैं । ये सब मिलकर सोलह कषाय हैं । ईषत् कषायको नोकषाय कहते हैं । उनका जो वेदन करते हैं या जिनके द्वारा उनका वेदन हो वे नोकषायवेदनीय नौ भेदरूप हैं । उनमें-से जिसके उदयसे हास्य प्रकट हो वह हास्यवेदनीय है । जिसके उदयसे देशादिमें उत्सुकता हो वह रति है । उससे विपरीत अरति है । जिसके उदयसे शोक हो वह शोक है । जिसके उदयसे उद्वेग हो वह भय है । जिसके उदयसे अपने दोषोंको ढाँके और दूसरोंके दोष प्रकट करे वह जुगुप्सा है । जिसके उदयसे स्त्रियों जैसे भाव हों वह स्त्रीवेद है । जिसके उदयसे पुरुषों जैसे भाव हों वह पुरुषवेद है । जिसके उदयसे नपुंसक भाव हों वह नपुंसकवेद है । नारक आदि भव धारणके लिए गमन करना आयु है । उसके चार भेद हैं । नरक आदिमें

नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनं नारकमायुरित्येवं शेषेष्वपि ॥

पिण्डापिण्डभेदाद्द्विचत्वारिंशद्विधं नाम । तत्र यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः । सा चतुर्व्विधा । नरकगतिः तिर्य्यग्गतिर्म्मनुष्यगतिर्देवगतिरिति । तत्र यन्निमित्तमात्मनो नारकपर्य्यायस्तन्नारकगति नाम । यन्निमित्तमात्मनस्तिर्य्यग्भावस्तत्तिर्य्यग्गतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो मनुष्यपर्य्यायस्तन्मनुष्यगतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो देवपर्य्यायस्तद्देवगतिनाम । तासु नरकादिष्वव्यभिचारिणा सादृश्येनैकीकृतार्त्थात्मा जातिस्तन्निमित्तं जातिनाम । तत्पञ्चविधं एकेंद्रियजातिनाम द्वींद्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिंद्रियजातिनाम पंचेंद्रियजातिनाम चेति । यदुदयादात्मा एकेंद्रिय इति शब्द्यते तदेकेंद्रियजातिनाम । यदुदयादात्मा द्वींद्रिय इति चोच्यते तद्द्वींद्रियजातिनाम । यदुदयफलं त्रींद्रियत्वं तत्त्रींद्रियजातिनाम । यस्योदयाज्जीवश्चतुरिंद्रिय इति वर्ण्यते तच्चतुरिंद्रियजातिनाम । यदुदयादात्मा पंचेंद्रिय इति चोच्यते तत्पंचेंद्रियजातिनाम ॥ यदुदयादात्मनः

व्यपदेशः क्रियते, वा नरकेषु भवं नारकमायुः । तिर्यग्योनिषु भवं तैर्यग्योनम् । मनुष्ययोनिषु भवं मानुष्यम् । देवेषु भवं दैवमिति । नरकेषु तीव्रशीतोष्णवेदनेषु दीर्घजीवनं नारकमायुरित्येवं शेषेष्वपि ।

पिण्डापिण्डभेदाद्द्विचत्वारिंशद्विधं नाम । तत्र यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः । सा चतुर्विधा—नरकगतिः तिर्यग्गतिः मनुष्यगतिः देवगतिरिति । तत्र यन्निमित्तमात्मनो नारकपर्यायः तन्नारकगतिनाम । यन्निमित्तं आत्मनः तिर्यग्भवः तत्तिर्यग्गतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो मनुष्यपर्यायस्तन्मनुष्यगतिनाम । यन्निमित्तमात्मनो देवपर्यायः तद्देवगतिनाम ।

तासु नरकादिगतिषु अव्यभिचारिणा सादृश्येन एकीकृतार्थात्मा जातिः तन्निमित्तं जातिनाम । तत्पञ्चविध एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम चेति । यदुदयात् आत्मा एकेन्द्रिय इति शब्द्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम । यदुदयात् आत्मा द्वीन्द्रिय इत्युच्यते तद्द्वीन्द्रियजातिनाम । यदुदयफलं त्रीन्द्रियत्वं तत्त्रीन्द्रियजातिनाम । यस्योदयाज्जीवश्चतुरिन्द्रिय इति वर्ण्यते तच्चतुरिन्द्रियजातिनाम । यदुदयात् आत्मा पञ्चेन्द्रिय इत्युच्यते तत् पञ्चेन्द्रियजातिनाम ।

भवके सम्बन्धसे आयुका व्यवहार किया जाता है । नरकमें होनेवाली नारकायु है, तिर्यंचयोनिमें होनेवाली तिर्यंचायु है । मनुष्ययोनिमें होनेवाली मनुष्यायु है । देवोंमें होनेवाली देवायु है । तीव्र शीत-उष्णकी वेदनावाले नरकोंमें दीर्घकाल तक जीना नरकायु है । इसी तरह शेषमें भी जानना ।

पिण्ड और अपिण्डके भेदसे नामकर्मके बयालीस भेद हैं । जिसके उदयसे आत्मा भवान्तरमें जाता है वह गति है । उसके चार भेद हैं—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति । जिसके निमित्तसे आत्माकी नारकपर्याय हो वह नरकगति नाम है । जिसके निमित्तसे आत्माकी तिर्यंचपर्याय हो वह तिर्यंग्गतिनाम है । जिसके निमित्तसे आत्माकी मनुष्य पर्याय हो वह मनुष्यगतिनाम है । जिसके निमित्तसे आत्माकी देवपर्याय हो वह देवगतिनाम है । उन नरकादि गतियोंमें अव्यभिचारी समानतासे एकरूप किये गये जीव जाति हैं । उसमें निमित्त जातिनाम है । उसके पाँच भेद हैं—एकेन्द्रियजातिनाम, द्वीन्द्रियजातिनाम, त्रीन्द्रिय जातिनाम, चतुरिन्द्रिय जातिनाम, पंचेन्द्रियजातिनाम । जिसके उदयसे आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाये वह एकेन्द्रिय जातिनाम है । जिसके उदयसे आत्मा द्वीन्द्रिय कहा जाये वह द्वीन्द्रिय जातिनाम है । जिसके उदयका फल त्रीन्द्रियपना है वह त्रीन्द्रियजातिनाम है । जिसके उदयसे जीव चतुरिन्द्रिय कहा जाता है वह

शरीरनिर्वृत्तिस्तच्छरीरनाम । तत्पंचविधं औदारिकशरीरनाम, वैक्रियिकशरीरनाम, आहारकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्म्मणशरीरनाम चेति ॥ यदुदयादात्मनः औदारिकशरीरनिर्वृत्तिस्तदौदारिकशरीरनाम । यदुदयाद्वैक्रियिकशरीरनिर्वृत्तिस्तद्वैक्रियिकशरीरनाम । यदुदयादाहारकशरीरनिर्वृत्तिस्तदाहारकशरीरनाम । यस्योदयात्तैजसशरीरनिर्वृत्तिस्तत्तैजसशरीरनाम । यदुदयादात्मनः कार्म्मणशरीरनिर्वृत्तिस्तत्कार्म्मणशरीरनाम ॥

शरीरनामकर्म्मोदयवशादुपात्तानामाहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधानामन्योन्यप्रदेशसश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धननाम । यदुदयादौदारिकादिशरीराणां विवरविरहितानामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम । यदुदयादौदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम । तत् षोढा विभज्यते । समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थाननाम स्वातिसंस्थाननाम कुब्जसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम हुंडसंस्थाननाम चेति ॥

यदुदयादात्मनः शरीरनिर्वृत्तिः तच्छरीरनाम । तत्पञ्चविधं औदारिकशरीरनाम—वैक्रियिकशरीरनाम—आहारकशरीरनाम—तैजसशरीरनाम—कार्मणशरीरनाम चेति । यदुदयादात्मनः औदारिकशरीरनिर्वृत्तिः तदौदारिकशरीरनाम । यदुदयाद्वैक्रियिकशरीरनिर्वृत्तिः तद्वैक्रियिकशरीरनाम । यदुदयादाहारकशरीरनिर्वृत्तिस्तदाहारकशरीरनाम । यस्योदयात्तैजसशरीरनिर्वृत्तिः तत्तैजसशरीरनाम । यदुदयादात्मनः कार्मणशरीरनिर्वृत्तिः तत्कार्मणशरीरनाम ।

शरीरनामकर्मोदयवशात् उपात्तानामाहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां अन्योन्यप्रदेशसंश्लेषणं यतो भवति तद्बन्धनं नाम ।

यदुदयात् औदारिकादिशरीराणां विवरविरहितानामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्संघातनाम ।

यदुदयात् औदारिकादिशरीराकृतिनिर्वृत्तिर्भवति तत्संस्थाननाम । तत् षोढा विभज्यते—समचतुरस्रसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननाम स्वातिसंस्थाननाम कुब्जसंस्थाननाम वामनसंस्थाननाम हुण्डकसंस्थाननाम चेति ।

चतुरिन्द्रियजातिनाम है। जिसके उदयसे आत्मा पंचेन्द्रिय कहा जाता है वह पंचेन्द्रियजातिनाम है। जिसके उदयसे आत्माके शरीरकी रचना होती है वह शरीरनाम है। उसके पाँच भेद हैं—औदारिक शरीरनाम, वैक्रियिक शरीरनाम, आहारक शरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम। जिसके उदयसे आत्माके औदारिक शरीर बनता है वह औदारिक शरीरनाम है। जिसके उदयसे वैक्रियिक शरीरकी रचना होती है वह वैक्रियिक शरीरनाम है। जिसके उदयसे आहारक शरीरकी रचना होती है वह आहारक शरीरनाम है। जिसके उदयसे तैजस शरीरकी रचना होती है वह तैजस शरीरनाम है। जिसके उदयसे आत्माके कार्मणशरीरकी रचना होती है वह कार्मणशरीरनाम है। शरीर नामकर्मके उदयके वश ग्रहण किये गये आहारवर्गणाके रूपमें आये पुद्गलस्कन्धोंका परस्परमें प्रदेशोंका सम्बन्ध जिससे होता है वह बन्धननाम है। जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका छिद्ररहित परस्परमें प्रदेशोंके प्रवेशसे एकरूपता होती है वह संघातनाम है। जिसके उदयसे औदारिक आदि शरीरोंका आकार बनता है वह संस्थान नाम है। उसके छह भेद हैं—समचतुरस्र संस्थान नाम, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नाम, स्वातिसंस्थान नाम, कुब्जसंस्थान नाम, वामन-

यदुदयादंगोपांगविवेकस्तदंगोपांगनाम। तत्त्रिविधमौदारिकशरीरांगोपांगनाम वैक्रियिकशरीरांगोपांग नाम आहारकशरीरांगोपांगनाम चेति॥ यस्योदयादस्थिबंधनविशेषो भवति तत्संहननानाम। षड्विधं तत्। वज्रवृषभनाराचसंहननानाम वज्रनाराचसंहननानाम नाराचसंहननानाम अर्द्धनाराचसंहननानाम कीलितसंहननानाम असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानाम चेति। संहननमस्थिसंचयः। ऋषभो वेष्टनं। वज्रवदभेद्यत्वाद्वज्रऋषभः वज्रवन्नाराचो वज्रनाराचस्तौ द्वावपि यस्मिन्वज्रशरीरे संहनने तद्वज्रऋषभनाराचशरीरसंहननानाम। एष एव वज्रास्थिबंधो वज्रऋषभवर्जितः सामान्यऋषभवेष्टितो यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराचशरीरसंहननानाम। यस्य कर्म्मण उदयेन वज्रविशेषेण रहितनाराचकीलिताः अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहननानाम। यस्य कर्म्मण उदयेनास्थिसंधयो नाराचेनार्द्धकीलिता भवन्ति तदर्द्धनाराचशरीरसंहननानाम। यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानीव भवन्ति तत्कीलितशरीरसंहननानाम। यस्योदयेनान्योन्यासंप्राप्तानि शरीरसृपसंहननवत् शिराबंधान्यस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहननानाम॥

यदुदयादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गोपाङ्गनाम। तत् त्रिविधं औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनाम चेति।

यस्योदयादस्थिबन्धनविशेषो भवति तत्संहननानाम। तत् षड्विधं–वज्रर्षभनाराचसंहननानाम। वज्रनाराचसंहननानाम। नाराचसंहननानाम। अर्धनाराचसंहननानाम। कीलितसंहननानाम। असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानाम। संहननम् अस्थिसंचयः। ऋषभो वेष्टनं वज्रवदभेद्यत्वात् वज्रर्षभः। वज्रवन्नाराचो वज्रनाराचः तौ द्वावपि यस्मिन् वज्रशरीरे संहनने तत् वज्रर्षभनाराचसंहननानाम। एष एव वज्रास्थिबन्धः वज्रर्षभवर्जितः सामान्यर्षभवेष्टितः यस्योदयेन भवति तद्वज्रनाराचशरीरसंहननानाम। यस्य कर्मण उदयेन वज्रविशेषणेन रहितनाराचकीलिता अस्थिसंधयो भवन्ति तन्नाराचशरीरसंहननानाम। यस्य कर्मण उदयेन अस्थिसंधयो नाराचेनार्धकीलिता भवन्ति तदर्धनाराचशरीरसंहननानाम। यस्योदयादवज्रास्थीनि कीलितानि भवन्ति तत्कीलितशरीरसंहननानाम। यस्योदयेन अन्योन्यासंप्राप्तानि शरीरसृपसंहननवत्सिराबन्धानि अस्थीनि भवन्ति तदसंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहननानाम।

संस्थान नाम और हुण्डकसंस्थान नाम। जिसके उदयसे अस्थियोंका बन्धनविशेष होता है वह संहननानाम है। उसके छह भेद हैं—वज्रर्षभनाराचसंहनन नाम, वज्रनाराचसंहनन नाम, नाराचसंहनन नाम, अर्धनाराच संहननानाम, कीलितसंहनन नाम, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नाम। संहनन अस्थियोंके संचयको कहते हैं। ऋषभका अर्थ वेष्टन है। नाराच कीलको कहते हैं। वज्रके समान अभेद्य ऋषभ होनेसे वज्रर्षभ कहलाता है। और वज्रके समान नाराचको वज्रनाराच कहते हैं। जिस वज्रसंहनन शरीरमें ऋषभ नाराच दोनों वज्रवत् हो उसे वज्रर्षभनाराच संहनन नाम कहते हैं। यही वज्ररूप अस्थिबन्ध वज्रवत् वेष्टनके बिना सामान्य वेष्टनसे वेष्टित जिस कर्मके उदयसे होता है वह वज्रनाराच शरीरसंहनन नाम है। जिस कर्मके उदयसे वज्रविशेषणसे रहित और नाराचसे कीलित अस्थियोंकी सन्धियाँ होती हैं वह नाराच शरीरसंहनन नाम है। जिस कर्मके उदयके अस्थियोंके जोड़ नाराचसे अर्धकीलित होते हैं वह अर्धनाराचशरीर संहनन नाम है। जिसके उदयसे अस्थियाँ परस्परमें कीलित होती हैं वह कीलितशरीर संहनन नाम है। जिसके उदयसे अस्थियाँ परस्परमें प्राप्त न होकर सरीसृपकी शरीरकी तरह सिराओंसे बँधी होती हैं वह असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन नाम हैं।

यद्धेतुको वर्णविकारस्तद्वर्णनाम। तत्पंचविधं कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हारिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम चेति ॥ यदुदयात्प्रभवो गंधस्तद्गंधनाम। तद् द्विविधं सुरभिगंधनाम असुरभिगन्धनाम चेति ॥ यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम। तत्पंचविधं तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति। यस्योदयात् स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम। तदष्टविधं कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम शीतनाम उष्णनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम चेति ॥ पूर्व्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम तच्चतुर्विधं नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्य्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति।

यस्योदयादयस्पिण्डवद्गुरुत्वान्न च पतति न चार्कतूलवल्लघुत्वादूर्ध्वं गच्छति तदगुरुलघुनाम। उपेत्य घात इत्युपघातः आत्मघात इत्यर्थः। यस्योदयादात्मघातावयवा महाशृंगलंबस्तनतुंदोदरादयो भवन्ति तदुपघातनाम। परेषां घातः परघातः। यदुदयात्तीक्ष्णशृंगनखसर्प्पदाढादयो भवन्त्यवयवास्तत्परघातनाम। यद्धेतुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम। यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातप-

---

यद्धेतुको वर्णविकारः तद्वर्णनाम। तत्पञ्चविधं—कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम रक्तवर्णनाम हरिद्रवर्णनाम शुक्लवर्णनाम चेति। यदुदयात्प्रभवो गन्धः तद्गन्धनाम। तद्द्विविधं सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम चेति। यन्निमित्तो रसविकल्पः तद्रसनाम। तत्पञ्चविधं—तिक्तनाम-कटुकनाम-कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति। यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावः तत्स्पर्शनाम। तदष्टविधं—कर्कशनाम मृदुनाम गुरुनाम लघुनाम शीतनाम उष्णनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम चेति।

पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम। तच्चतुर्विधं-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चेति।

यस्योदयादयःपिण्डवत् गुरुत्वान्न च पतति न चार्कतूलवत् लघुत्वादूर्ध्वम् गच्छति तदगुरुलघुनाम। उपेत्य घात इत्युपघात आत्मघात इत्यर्थः। यस्योदयादात्मघातावयवाः महाशृङ्गलम्बस्तनतुन्दोदरादयो भवन्ति तदुपघातनाम। परेषां घातः परघातः यदुदयात्तीक्ष्णशृङ्गनखसर्पदाढादयो भवन्ति अवयवा तत्परघातनाम।

जिसके निमित्तसे शरीरमें वर्णविकार होता है वह वर्णनाम है। वह पाँच प्रकार है—कृष्णवर्णनाम, नीलवर्णनाम, रक्तवर्णनाम, हरितवर्णनाम और शुक्लवर्णनाम। जिसके उदयसे गन्ध हो वह गन्धनाम है। उसके दो भेद हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध। जिसके निमित्तसे रस हो वह रसनाम है। उसके पाँच भेद हैं—तिक्त नाम, कटुक नाम, कषाय नाम, आम्लनाम, मधुरनाम। जिसके उदयसे स्पर्श हो वह स्पर्शनाम है। उसके आठ भेद हैं—कर्कशनाम, मृदुनाम, गुरुनाम, लघुनाम, शीतनाम, उष्णनाम, स्निग्धनाम, रूक्षनाम। पूर्वशरीरके आकारका अविनाश जिसके उदयसे होता है वह आनुपूर्व्य नाम है। उसके चार भेद हैं—नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नाम।

जिसके उदयसे शरीर न तो लोहेकी पिण्डीकी तरह भारी होनेसे नीचे गिरे और न आककी रुईकी तरह हल्का होनेसे ऊपर उड़े वह अगुरुलघुनाम है। उपतकर घातको उपघात अर्थात् आत्मघात कहते हैं। जिसके उदयसे आत्मघात करनेवाले अवयव यथा बड़े-बड़े सींग, लम्बे स्तन, बड़ा पेट आदि होते हैं वह उपघात नाम है। परके घातको परघात कहते हैं। जिसके उदयसे तीक्ष्ण सींग, नख, दाढ़ आदि अवयव होते हैं वह परघात नाम है। जिसके

नाम । तदप्यादित्यबिंबोत्पन्नबादरपर्य्याप्तपृथ्विकायिकजीवेष्वेव वर्त्तते । यस्योदयादुद्योतनं तदुद्योतनाम । तच्चन्द्रे खद्योतादिषु च वर्त्तते । विहाय आकाशं तत्र गतिनिवर्त्तकं तद्विहायोगतिनाम । तद्द्विविधं प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् । यदुदयाद्द्वींद्रियादिषु जन्म तत् त्रसनाम । यदुदयादन्यबाधाऽकरशरीरं भवति तद्बादरनाम । यदुदयादाहारादिपर्य्याप्तिनिर्व्वृत्तिस्तत्पर्य्याप्तिनाम । तत् षड्विधमाहारपर्याप्तिनाम शरीरपर्याप्तिनाम इंद्रियपर्य्याप्तिनाम प्राणापानपर्य्याप्तिनाम भाषापर्य्याप्तिनाम मनःपर्य्याप्तिनाम चेति ॥ शरीरनामकर्म्मोदयान्निर्व्वर्त्त्यमानं शरीरमेकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम । यस्योदयाद्रसादिधातूपधातूनां स्वस्वस्थाने स्थिरभावनिर्व्वर्त्तनं भवति तत् स्थिर नाम ।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्त्तते ।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जात् शुक्रं ततः प्रजा ॥
वातं पित्तं तथा श्लेष्मा शिरा स्नायुश्च चर्म च ।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ॥

यद्धेतुरुच्छ्वासः तदुच्छ्वासनाम । यदुदयान्निर्वृत्तमातपनं तदातपनामा तदपि आदित्यबिम्बोत्पन्नबादरपर्याप्तपृथिवीकायिकजीवेषु एव वर्तते । यस्योदयादुद्योतनं तदुद्योतनाम तच्चन्द्रखद्योतादिषु च वर्तते । विहायः आकाशं तत्र गतिनिर्वर्तकं तद्विहायोगति नाम । तद्द्विविधं प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् । यदुदयात् द्वीन्द्रियादिषु जन्म तत् त्रसनाम । यदुदयादन्यबाधाकरशरीरं भवति तद्बादरनाम ।

यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिर्वृत्तिस्तत्पर्याप्तिनाम । तत् षड्विधं-आहारपर्याप्तिनाम शरीरपर्याप्तिनाम इन्द्रियपर्याप्तिनाम प्राणापानपर्याप्तिनाम भाषापर्याप्तिनाम मनःपर्याप्तिनाम चेति । शरीरनामकर्मोदयान्निर्वर्त्यमानशरीरम् एकात्मोपभोगकारणं यतो भवति तत्प्रत्येकशरीरनाम ।

यस्योदयात् रसादिधातूपधातूनां स्वस्वस्थाने स्थिरभावनिर्वर्तनं भवति तत्स्थिरनाम—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते ।
मेदतोऽस्थि ततो मज्जं मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजाः ॥१॥
वातः पित्तं तथा श्लेष्मा सिरा स्नायुश्च चर्म च ।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ॥२॥ [ ]

निमित्तसे श्वासोच्छ्वास होता है वह उच्छ्वास नाम है । जिसके उदयसे आतपन हो वह आतपनाम है । उसका उदय सूर्यके बिम्बमें उत्पन्न बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीवोंमें ही होता है । जिसके उदयसे उद्योतन हो वह उद्योत नाम है । उसका उदय चन्द्रबिम्ब, जुगनू आदिमें होता है । विहाय आकाशको कहते हैं । उसमें गमन जिसके उदयसे हो वह विहायोगति नाम है । उसके दो भेद हैं—प्रशस्त और अप्रशस्त । जिसके उदयसे दो-इन्द्रिय आदिमें जन्म हो वह त्रसनाम है । जिसके उदयसे दूसरेको बाधा करनेवाला स्थूल शरीर होता है वह बादरनाम है । जिसके उदयसे आहार आदि पर्याप्तिकी रचना होती है वह पर्याप्तिनाम है । उसके छह भेद हैं—आहारपर्याप्तिनाम, शरीरपर्याप्तिनाम, इन्द्रियपर्याप्तिनाम, प्राणापानपर्याप्तिनाम, भाषापर्याप्तिनाम, मनःपर्याप्तिनाम । शरीरनामकर्मके उदयसे रचा गया शरीर जिसके उदयसे एक आत्माके उपभोगका कारण होता है वह प्रत्येक शरीर नाम है । जिसके उदयसे रस आदि धातु-उपधातु अपने-अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों वह स्थिर नाम है । कहा है—'रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे

धातु । प्र ७ । फ । दिन । ५० (३०) । इच्छि । वा १ । लब्धदि ४ २ ।
७

यदुदयाद्रमणीया मस्तकादिप्रशस्तावयवा भवन्ति तच्छुभनाम । यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवस्तत्सुभगनाम । यस्मान्निमित्तान्मनोज्ञस्वरनिर्व्वर्त्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । प्रभोपेतशरीरकारणमादेयनाम । पुण्यगुणख्यापनकारणं यशस्कीर्त्तिनाम । यन्निमित्तात्परिनिःपत्तिस्तन्निर्म्माणं तद्द्विविधं स्थाननिर्म्माणं प्रमाणनिर्म्माणं चेति । तत्र जातिनामकर्म्मोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्व्वर्त्तयति । निर्म्मीयतेऽनेनेति वा निर्म्माणमिति ।

आर्हन्त्यकारणं तीर्त्थकरत्वनाम । यन्निमित्तादेकेंद्रियेषु प्रादुर्भावः तत्स्थावरनाम । सूक्ष्मशरीरनिर्व्वर्त्तकं सूक्ष्मनाम । षड्विधपर्य्याप्त्यभावहेतुरपर्य्याप्तनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं भवति शरीरं यतस्तत्साधारणशरीरनाम । धातूपधातूनां स्थिरभावेनानिर्व्वर्त्तनं यतस्तदस्थिरनाम । यदुदयेनाऽरमणीयमस्तकाद्यवयवनिर्व्वर्त्तनं भवति तदशुभनाम । यदुदयाद्रूपादिगुणोपेतेऽप्यप्रीतिं विदधाति जनस्तद्दुर्भगनाम । यदुदयादमनोज्ञस्वरनिर्व्वर्त्तनं भवति तद्दुःस्वर-

---

धातु प्र ७ । फ दि ३० । इच्छा धातुः १ लब्धदि ४ । २ ।
७

यदुदयात् रमणीया मस्तकादिप्रशस्तावयवा भवन्ति तच्छुभनाम । यदुदयादन्यप्रीतिप्रभवः तत्सुभगनाम । यस्मान्निमित्तात् मनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तत्सुस्वरनाम । प्रभोपेतशरीरकारणं आदेयनाम । पुण्यगुणख्यापनकारणं यशस्कीर्तिनाम ।

यस्मान्निमित्तात् परिनिष्पत्तिः तन्निर्माणनाम । तद्द्विविधम्-स्थाननिर्माणं प्रमाणनिर्माणं चेति । तत्र जातिनामोदयापेक्षं चक्षुरादीनां स्थानं प्रमाणं च निर्वर्तयति निर्मीयते अनेनेति वा निर्माणम् । आर्हन्त्यकारणं तीर्थकरत्वनाम ।

यन्निमित्तादेकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावः तत्स्थावरनाम । सूक्ष्मशरीरनिर्वर्तकं सूक्ष्मनाम । षड्विधपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्तनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुत्वेन साधारणं भवति शरीरं यतः तत्साधारणशरीरनाम । धातूपधातूनां स्थिरभावेनानिर्वर्तनं यतः तदस्थिरनाम । यदुदयेन अरमणीयमस्तकाद्यवयवनिर्वर्तनं भवति तदशुभनाम । यदुदयात् रूपादिगुणोपेतेऽपि अप्रीतिं विदधाति जनः तद्दुर्भगनाम । यदुदयात्

मज्जा, मज्जासे वीर्य और वीर्यसे सन्तान होती है। वात, पित्त, कफ, सिरा, स्नायु, चर्म और उदराग्नि इन सातको विद्वानोंने उपधातु कहा है।'

जिसके उदयसे रमणीय मस्तक आदि प्रशस्त अवयव होते हैं वह शुभनाम है। जिसके उदयसे दूसरे प्रीति करते हैं वह सुभगनाम है। जिसके निमित्तसे मनोज्ञ स्वर होता है वह सुस्वरनाम है। प्रभायुक्त शरीरका कारण आदेयनाम है। पुण्य गुणोंकी कीर्तिमें कारण यशस्कीर्तिनाम है। जिसके निमित्तसे रचना हो वह निर्माणनाम है। उसके दो भेद हैं—स्थाननिर्माण और प्रमाणनिर्माण। वह जातिनामकर्मके उदयके अनुसार चक्षु आदिके स्थान और प्रमाणका निर्माण करता है। अर्हन्तपदका कारण तीर्थंकर नाम है। जिसके निमित्तसे एकेन्द्रियोंमें जन्म हो वह स्थावरनाम है। सूक्ष्मशरीरका उत्पादक सूक्ष्मनाम है। छह प्रकारकी पर्याप्तिके अभावमें जो निमित्त है वह अपर्याप्तिनाम है। जिसके उदयसे बहुत-से जीवोंके उपभोगमें हेतु साधारण शरीर होता है वह साधारणशरीरनाम है। जिसके उदयसे धातु-उपधातु स्थिर न हों वह अस्थिर नाम है। जिसके उदयसे अरमणीय मस्तक आदि अवयवोंकी रचना हो वह अशुभ नाम है। जिसके उदयसे रूप आदि गुणोंसे

नाम। निष्प्रभशरीरकारणमनादेयनाम। पुण्ययशसः प्रत्यनीकफलमयशस्कीर्त्तिनाम। यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रंनाम। तद्विपरीतेषु गर्हितेषु कुलेषु जन्म भवति तन्नीचैर्गोत्रं नाम। यदुदयाद्दातुकामोपि न प्रयच्छति लब्धुकामोपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते उपभोक्तुमिच्छन्नपि नोपभुंक्ते तत्सहितुकामोपि न तत्सहते त एते पंचान्तरायस्य भेदाः। अन्तरायापेक्षया भेदनिर्द्देशः क्रियते। दानस्यांतरायो लाभस्यान्तरायो भोगस्यान्तराय उपभोगस्यान्तरायो वीर्य्यस्यांतराय इति। दानादिपरिणामस्य व्याघातहेतुत्वात्।

नामकर्म्मदुत्तरप्रकृतिगळोळ भेदविवक्षेयिंदमन्तर्भावमं तोरिदपरु :—

देहे अविणाभावी बंधणसंघाद इदि अबंधुदया।
वण्णचउक्केऽभिण्णे गहिदे चत्तारि बंधुदये ॥३४॥

देहे अविनाभाविनौ बंधनसंघातावित्यबंधोदयौ। वर्णचतुष्के अभिन्ने गृहीते चत्वारि बंधोदययोः॥

देहे शरीरनामकर्म्मदोळु। अविनाभाविनौ अविनाभाविगळंतर्भाविगळु। बंधनसंघातौ बंधननाममुं संघातनाममुमें दरडुं इति यिदुकारणदिंदमबंधोदयौ बंधप्रकृतिगळुमुदयप्रकृतिगळु·

अमनोज्ञस्वरनिर्वर्तनं भवति तद्दुःस्वरनाम। निष्प्रभशरीरकारणम् अनादेयनाम। पुण्ययशसः प्रत्यनीकफलं अयशस्कीर्तिनाम।

यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म भवति तदुच्चैर्गोत्रम्। यदुदये तद्विपरीतेषु गर्हितेषु कुलेषु जन्म भवति तन्नीचैर्गोत्रम्।

यदुदयाद्दातुकामोऽपि न प्रयच्छति लब्धुकामोऽपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते उपभोक्तुमिच्छन्नपि नोपभुङ्क्ते तत्सहितुकामोऽपि न तत्सहते ते एते पञ्चान्तरायभेदाः। अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते। दानस्य अन्तरायः, लाभस्य अन्तरायः, भोगस्यान्तरायः, उपभोगस्यान्तरायः, वीर्यस्य अन्तराय इति दानादिपरिणामस्य व्याघातहेतुत्वात् ॥३३॥ अथ नामोत्तरप्रकृतिषु अभेदविवक्षया अन्तर्भावं दर्शयति—

देहे पञ्चविधशरीरनामकर्मणि स्वस्वबन्धसंघातौ अविनाभाविनौ इति कारणात् अबन्धोदयौ-बन्धोदय-

---

युक्त होनेपर भी लोग प्रीति नहीं करते वह दुर्भगनाम है। जिसके उदयसे स्वर सुन्दर नहीं होता वह दुःस्वरनाम है। प्रभाहीन शरीरका कारण अनादेय नाम है। पुण्य कार्य करनेपर भी यशका न फैलना या अपयश फैलना जिसके उदयसे हो वह अयशकीर्तिनाम है।

जिसके उदयसे लोकपूजित कुलमें जन्म हो वह उच्चगोत्र है। जिसके उदयमें उससे विपरीत नीच कुलमें जन्म हो वह नीचगोत्र है।

जिसके उदयसे देनेकी इच्छा होनेपर भी दान नहीं कर पाता, लाभकी इच्छा होनेपर लाभ नहीं होता, भोगनेकी इच्छा होनेपर भी भोग नहीं सकता, उपभोगकी इच्छा होनेपर उपभोग नहीं करता, उत्साह करनेकी इच्छा होनेपर भी उत्साह नहीं होता, वे ये अन्तरायके भेद हैं। अन्तरायकी अपेक्षा भेदपूर्वक निर्देश किया गया है—दानका अन्तराय, लाभका अन्तराय, भोगका अन्तराय, उपभोगका अन्तराय और वीर्यका अन्तराय; क्योंकि ये दान आदिके परिणामोंके व्याघातमें निमित्त होते हैं ॥३३॥

आगे नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें अभेद-विवक्षामें गर्भित प्रकृतियोंको दिखाते हैं—
पाँच शरीरनामकर्मके अपने-अपने बन्धन और संघात अविनाभावी हैं। इस कारणसे

मल्लवु। औदारिकादिपंचशरीरंगळ बंधदोळमुदयदोळं तंतम्म बंधनसंघातंगळगंतर्भावं माडल्पट्टुदरिंदं पृथक् बंधदोळमुदयदोळं पेळल्पडवें बुदत्थं। वर्णचतुष्केऽभिन्ने गृहीते वर्णसामान्यमुं गन्धसामान्यमुं रससामान्यमुं स्पर्शसामान्यमुमभेदविवक्षेयिंदं कैकोळल्पडुत्तिरलु सत्वकथनमल्लदुळिद बंधदोळमुदयदोळं। चत्वारि नाल्कु नामकर्म्म प्रकृतिगळप्पुवु। शेषषदिनारुं प्रकृतिगळगे-
५ पृथक्कथनमिल्लें बुदत्थंमंतागुत्तिरलु बंधप्रकृतिगळुमुदयप्रकृतिगळुं सत्वप्रकृतिगळुमेनितेनितप्पुमं दोडे नाल्कु गाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :—

पंच णव दोण्णि छव्वीसमवि य चउरो कमेण सत्तट्ठी।
दोण्णि य पंच य भणिया एदाओ बंधपयडीओ ॥३५॥

पंच नव द्वे षड्विंशतिरपि च चतस्रः क्रमेण सप्तषष्टिर्द्वे च पंच च भणिताः एता
१० बंधप्रकृतयः ॥

पंचज्ञानावरणंगळं नवदर्शनावरणंगळुं द्विवेदनीयंगळुं षड्विंशतिमोहनीयंगळुमेकें दोडे बंधकालदोळु दर्शनमोहनीयमोंदे मिथ्यात्वमें बुदरिंदं सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिगळेरडुं उदयसत्वंगळोळे पेळल्पडुगुमप्पुदरिंदमी बंधप्रकृतिगळोळु मोहनीयद षड्विंशत्युत्तरप्रकृतिगळ्पेळल्पट्टुवु। चतुरायुष्यंगळं सप्तषष्टिनामप्रकृतिगळुमेकें दोडे बंधनसंघातंगळपत्तुं वर्णादिषोडशप्रकृति-
१५ गळुमिन्तु षड्विंशतिप्रकृतिगळं बिट्टु शेषसप्तषष्टिनामप्रकृतिगळु पेळल्पट्टुवु। द्विगोत्रकर्म्मंगळं पंचान्तरायकर्म्मंगळुमिन्तु ज्ञानावरणादिपाठक्रमदिंदमिविनितुं कूडि विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळबंधयोग्यंगळप्पुवें दु वीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुवु। ५। ९। २। २६। ४। ६७। २। ५। कूडि १२०॥

प्रकृती न भवतः। तत्र पृथग्नोक्तावित्यर्थः। वर्णचतुष्के वर्णगन्धरसस्पर्शसामान्यचतुष्के अभिन्ने अभेदविवक्षया
२० एकैकस्मिन्नेव गृहीते सत्त्वादन्यत्र बन्धोदययोश्चतस्र एव प्रकृतयो भवन्ति। शेषषोडशानां पृथक् कथनं नास्तीत्यर्थः ॥३४॥ तथा सति ता बन्धोदयसत्त्वप्रकृतयः कति ? इति चेत् चतुर्भिर्गाथाभिराह—

पञ्च ज्ञानावरणानि नव दर्शनावरणानि द्वे वेदनीये षड्विंशतिर्मोहनीयानि। कुतः ? मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योरुदयसत्त्वयोरेव कथनात्। चत्वारि आयूंषि। सप्तषष्टिर्नामानि कुतः ? दशबन्धनसंघातषोडशवर्णादीनामन्तर्भावात्। द्वे गोत्रे। पञ्चान्तराया इत्येता विंशत्युत्तरशतबन्धयोग्या भणिताः सर्वज्ञैः ॥३५॥

---

२५ पाँच बन्धन और पाँच संघात बन्ध और उदय प्रकृतियोंमें पृथक् नहीं लिये गये हैं। अर्थात् बन्ध और उदयमें वे दस पृथक् नहीं कहे हैं, शरीरनामकर्ममें ही गर्भित कर लिये हैं। तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श इन चारोंको सामान्य रूपसे अभेदविवक्षामें एक-एकमें ही ग्रहण करनेपर सत्त्वके अतिरिक्त बन्ध और उदयमें चार ही प्रकृतियाँ होती हैं, शेष सोलहको पृथक् नहीं कहा है ॥३४॥

३० ऐसा होनेपर बन्ध, उदय और सत्त्व प्रकृतियाँ कितनी हैं यह चार गाथाओंसे कहते हैं—पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, छब्बीस मोहनीय, क्योंकि मिश्र और सम्यक्त्वप्रकृति उदय और सत्त्वमें ही कही गयी हैं, चार आयु, सड़सठ नाम; क्योंकि दस बन्धन दस संघात और सोलह वर्णादिका अन्तर्भाव कर लेते हैं, दो गोत्र, पाँच अन्तराय इस प्रकार ये एक सौ बीस प्रकृतियाँ बन्धयोग्य सर्वज्ञदेवने कही हैं ॥३५॥

उदयप्रकृतिगळं पेळ्दपरु । :—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण सत्तट्ठी ।
दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ उदयपयडीओ ॥३६॥

पंच नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रः । क्रमेण सप्तषष्टिर्द्वे च पंच च भणिता एता उदयप्रकृतयः ॥ ५

पंचज्ञानावरणंगळु नवदर्शनावरणंगळु द्विवेदनीयंगळुमष्टाविंशतिमोहनीयंगळुमेकें दोडुदयदोळु सत्वदोळं मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळगे सद्भावमुंटप्पुदरिंदं । चतुरायुष्यंगळु सप्तषष्टि नामप्रकृतिगळुमेकें दोडे बंधदोळपेळ्दंते षड्विंशतिप्रकृतिगळगविनाभावमुंटप्पुदरिंदं । द्विगोत्रकर्म्मप्रकृतिगळु पंचांतरायकर्म्मप्रकृतिगळुमिन्तु क्रमदिदमिविनितुं कूडि द्वाविंशत्युत्तरशतमुदयप्रकृतिगळें दु श्रीवीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुवु । ५ । ९ । २ । २८ । ४ । ६७ । २ । ५ । कूडि १२२ ॥ १०

ई बंधोदयप्रकृतिगळगे भेदाभेदविवक्षेयिंदं संख्येयं पेळ्दपरु । :—

भेदे छादालसयं इदरे बंधे हवंति वीससयं ।
भेदे सव्वे उदये बावीससयं अभेदम्मि ॥३७॥

भेदे षट्चत्वारिंशच्छतमितरस्मिन्बंधे भवन्ति विंशतिशतं । भेदे सर्व्वा उदये द्वाविंशतिशतमभेदे ॥ १५

बंधे बंधदोळु भेदे भेदविवक्षेयागुत्तिरलु । षट्चत्वारिंशच्छतं षट्चत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतिगळु भवन्ति अप्पुवु । इतरस्मिन्नभेदविवक्षेयागुत्तिरलु विंशतिशतं विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळप्पुवु । उदये उदयदोळु । भेदे भेदविवक्षेयागुत्तं विरलु । सर्व्वाः अष्टाचत्वारिंशदुत्तरशतप्रकृतिगळप्पुवु । अभेदे अभेदविवक्षेयागुत्तं विरलु । द्वाविंशतिशतं द्विंशत्युत्तरशतप्रकृतिगळप्पुवु । भे बं । १४६ । अभे । बं १२० । भे । उ । १४८ । अभे । उ । १२२ ॥ २०

सत्वप्रकृतिगळं पेळ्दपरु ।

उदयप्रकृतीराह—

उदयप्रकृतयो ज्ञानावरणादीनां क्रमेण पञ्च नव द्वे अष्टाविंशति चतस्रः सप्तषष्टिः द्वे पञ्च च मिलित्वा द्वाविंशत्युत्तरशतं भणिताः ॥३६॥ ता एवं बन्धोदयप्रकृतीर्भेदाभेदविवक्षया संख्याति—

बन्धे भेदविवक्षायां षट्चत्वारिंशच्छतं प्रकृतो भवन्ति । अभेदविवक्षायां विंशत्युत्तरशतम् । उदये २५
भेदविवक्षायां सर्वा अष्टचत्वारिंशच्छतं अभेदविवक्षायां द्वाविंशत्युत्तरशतम् ॥३७॥ सत्त्वप्रकृतीराह—

उदय प्रकृतियाँ कहते हैं—

उदयप्रकृतियाँ ज्ञानावरण आदिकी क्रमसे पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, सड़सठ, दो, पाँच मिलकर एक सौ बाईस कही हैं ॥३६॥

बन्धमें भेदविवक्षामें एक सौ छियालीस प्रकृतियां होती हैं। अभेदविवक्षामें ३०
एक सौ बीस हैं। उदयमें भेद विवक्षामें सब एक सौ अड़तालीस हैं और अभेद विवक्षामें एक सौ बाईस हैं ॥३७॥

सत्त्व प्रकृतियाँ कहते हैं—

पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी ।
दोण्णि य पंच य भणिदा एदाओ सत्तपयडीओ ॥३८॥

पंच नव द्वे अष्टाविंशतिश्चतस्रः क्रमेण त्रिनवतिर्द्वे च पंच च भणिता एताः सत्वप्रकृतयः ॥

पंचज्ञानावरणंगळु नवदर्शनावरणंगळु द्विवेदनीयंगळु अष्टाविंशति मोहनीयंगळु चतुरायुष्यंगळु त्र्युत्तरनवतिनामकर्म्मप्रकृतिगळु द्विगोत्रकर्म्मप्रकृतिगळु पंचान्तरायकर्म्मप्रकृतिगळुमें दिविनितुं सत्वप्रकृतिगळें दुत्तरप्रकृतिगळु श्रीवीतरागसर्व्वज्ञरिंदं निरूपिसल्पट्टुवु ॥

घातिकर्म्मंगळु सर्व्वघातिदेशघातिभेदर्दिदं द्विविधंगळें दवरोळु सर्व्वघातिगळं पेळ्दपरु ।

केवलणाणावरणं दंसणछक्कं कसायबारसयं ।
मिच्छं च सव्वघादी सम्मामिच्छं अबंधम्मि ॥३९॥

केवलज्ञानावरणं दर्शनषट्कं कषायद्वादशकं । मिथ्यात्वं च सर्व्वघातीनि सम्यग्मिथ्यात्वमबंधे ॥

केवलज्ञानावरणमुं केवलदर्शनावरणमुं स्त्यानगृद्ध्यादिदर्शनावरणपंचकमुमनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभंगळें ब द्वादशकषायंगळुं मिथ्यात्वकर्म्ममुमें बिविनितुं कूडि विंशतिप्रकृतिगळु २० । सर्व्वघातिगळप्पुवु । सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं बंधप्रकृतियल्लप्पुदर्दरिदमुदयसत्वंगळोळु जात्यंतर सर्व्वघातियें दु पेळल्पट्टुदु ॥

देशघातिगळं पेळ्दपरु :—

णाणावरणचउक्कं तिदंसणं सम्मगं च संजलणं ।
णवणोकसायविग्घं छव्वीसा देसघादीओ ॥४०॥

ज्ञानावरणचतुष्कं त्रिदर्शनं सम्यक्त्वं च संज्वलनं । नवनोकषायविघ्नं षड्विंशतिर्देशघातीनि ॥

पञ्च नव द्वे अष्टाविंशतिः चतस्रः त्रिणवतिः द्वे पञ्च एताः क्रमेण ज्ञानावरणादीनां सत्त्वप्रकृतयोऽष्टचत्वारिंशच्छतं सर्वज्ञैर्भणिताः ॥३८॥ घातिकर्माणि सर्वघातीनि देशघातीनि च । तत्र सर्वघातीन्याह—

केवलज्ञानावरणं केवलदर्शनावरणं स्त्यानगृद्ध्यादिपञ्चकं अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्वकर्मेति विंशतिः सर्वघातीनि भवन्ति । सम्यग्मिथ्यात्वं तु बन्धप्रकृतिर्नेत्युदयसत्त्वयोरेव जात्यन्तरसर्वघाति भवति ॥३९॥ देशघातीन्याह—

पाँच, नौ, दो, अठाईस, चार, तिरानबे, दो, पाँच ये क्रमसे ज्ञानावरण आदिकी सत्त्वप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस सर्वज्ञदेवने कही हैं ॥३८॥

घाति कर्म, सर्वघाती और देशघाती होते हैं । उनमें-से सर्वघाती कहते हैं—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि आदि पाँच, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, क्रोध-मान-माया-लोभ, मिथ्यात्वकर्म ये बीस सर्वघाती हैं । सम्यग्मिथ्यात्व बन्धप्रकृति नहीं है । अतः उदय और सत्त्वमें ही जात्यन्तर सर्वघाती है ॥३९॥

देशघाती कहते हैं—

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणचतुष्कमुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणत्रितयमुं सम्यक्त्व-प्रकृतियुं संज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायचतुष्कमुं हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकमेंब नवनोकषायंगळुं दानलाभभोगोपभोगं वीर्य्यांतरायमेंब पंचान्तरायकर्म्मंगळुमिन्तु कूडि षड्विंशति-प्रकृतिगळु देशघातिगळेंदनादिसिद्धमप्प परमागमदोळु पेळल्पट्टुवु ॥ सर्व्वघातिगळु के १ । व ६ । क १२ । मि १ । मिश्र १ । कूडि २१ ॥ देशघातिगळु ज्ञा ४ । दं ३ । सं १ । सं ४ । नो ९ । विघ्न ५ कूडि २६ ॥ ५

घातिकर्म्मंगळगेसर्व्वघातिदेशघातिभेदमं पेळ्दु अघातिकर्म्मंगळगे प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृति-भेदमं पेळ्दल्लि प्रशस्तप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु ।

सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।
देहा बंधणसंघादंगोवगाइ वण्ण चऊ ॥४१॥ १०
समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्कसग्गमणं ।
तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था ॥४२॥

सातं त्रीण्येवायुरुच्चं नरसुरद्विकं पंचेंद्रियं देहाः बंधनसंघातांगोपांगानि च वर्णचतस्रः ॥ समचतुरस्रं वज्रऋषभः उपघातोनागुरुलघुषट्क सद्गमनं त्रसद्वादशाष्टषष्टिर्द्वाचत्वारिंशदभेदतः शस्ताः ॥ १५

सातवेदनीयमुं तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यमेंबायुस्त्रितयमुं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यगति मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं देवगतिदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं पंचेंद्रियजातिनाममुं औदारिकादि-शरीरपंचकमुं औदारिकादिशरीरबंधनपंचकमुं औदारिकादिशरीरसंघातपंचकमुं औदारिकवैक्रियि-काहारकशरीरांगोपांगत्रितयमुं शुभवर्णगंधरसस्पर्शचतुष्टयमुं समचतुरस्रशरीरसंस्थानमुं वज्रवृषभ-नाराचशरीरसंहननमुं अगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतमेंबुपघातोनागुरुलघुषट्कमुं प्रशस्तविहायो- २०

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानि । चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि । सम्यक्त्वप्रकृतिः । संज्वलन-क्रोधमानमायालोभाः । हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकानि । दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायाश्चेति षड्विंशतिर्देशघातीनि ॥४०॥ घातिनां सर्वदेशघातिभेदौ प्ररूप्य अघातिनां प्रशस्ताप्रशस्तभेदप्ररूपणे प्रशस्त-प्रकृतीर्गाथाद्वयेन आह—

सातवेदनीयं तिर्यग्मनुष्यदेवायूंषि उच्चैर्गोत्रं मनुष्यगतितदानुपूर्व्ये देवगतितदानुपूर्व्ये पञ्चेन्द्रियं पञ्च- २५
शरीराणि पञ्चबन्धनानि पञ्चसंघाताः त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि शुभवर्णगन्धरसस्पर्शाः समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराच-

---

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानावरण, चक्षु अचक्षु अवधि दर्शनावरण, सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्यान्तराय ये छब्बीस देशघाती हैं ॥४०॥

घातिकर्मोंके सर्वघाती देशघाती भेद कहकर अघातीकर्मोंके प्रशस्त और अप्रशस्त ३०
भेदका प्ररूपण करते हुए प्रशस्त प्रकृतियोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

सातवेदनीय, तिर्यंच मनुष्य देवआयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय, पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग,

गतियुं । त्रसबादरपर्य्याप्त प्रत्येकशरीर स्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेय यशस्कीर्त्तिनिर्म्माण तीर्त्थंकर नाममेंब त्रस द्वादशकमुमिन्तष्टषष्टि प्रकृतिगळु भेदविवक्षेयिंदं प्रशस्तप्रकृतिगळक्कुमभेदविवक्षेयिंदं द्विचत्वारिंशत्प्रशस्तप्रकृतिगळक्कुं ॥ सा १ । आ ३ । उ १ । म २ । सु २ । पं १ । दे ५ । बं ५ । सं ५ । अंगो ३ । व २० । ४ । स १ । व १ । अगु ५ । सद्गमन १ । त्रस १२ । कूडि भेदप्रकृतिगळु ६८ । अभेदविदं ४२ । सद्वेद्यशुभायुर्न्नामगोत्राणि पुण्यमेंदु पेळल्पट्ट प्रशस्तप्रकृतिगळेंबुदत्थं ॥

घातिगळनितुमप्रशस्तंगळप्पुदरिंदमवुवेरसु अघातिगळोळु अप्रशस्तप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु । :—

घादी णीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी ।
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचऊ ॥४३॥
उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।
बंधुदयं पडि भेदे अडणवदिमयं दुचदुरसीदिदरे ॥४४॥

घातीनि नीचमसातं नरकायुर्न्नरकतिर्य्यग्द्विकंजाति । संस्थानसंहननानां चतुः पंच पंचकं च वर्णचतुष्कं ॥

उपघातमसद्गमनं स्थावरदशकं चाप्रशस्ताः खलु । बंधोदयं प्रति भेदेऽष्टनवतिः शतं द्विचतुरुत्तराशीतिरितरस्मिन् ॥

सप्तचत्वारिंशद्घातिकर्म्मगळं नीचैर्गोत्रमुं असातवेदनीयमुं नरकायुष्यमुं नरकगति नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं तिर्य्यग्गति तिर्य्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्विकमुं एकेंद्रियादिचतुरिंद्रियपर्य्यंतमाद जातिचतुष्टयमुं न्यग्रोधपरिमंडलादि पंचसंस्थानंगळुं वज्रनाराचादिपंचसंहननंगळुं

संहननं अगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योताः प्रशस्तविहायोगतिः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशःकीर्तिनिर्माणतीर्थकराणि । एवमष्टषष्टिर्भेदविवक्षया प्रशस्ताः अभेदविवक्षया द्विचत्वारिंशत् । सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यमित्युक्ता एवेत्यर्थः ॥४१-४२॥ अप्रशस्तप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

घातीनि सर्वाण्यप्रशस्तान्येवेति तानि सप्तचत्वारिंशत् नीचैर्गोत्रं असातवेदनीयं नरकायुष्यं नरकगतितदानुपूर्व्ये तिर्यग्गतितदानुपूर्व्ये एकेन्द्रियादिचतुर्जातयः न्यग्रोधपरिमण्डलादिपञ्चसंस्थानानि वज्रनाराचादि-

---

शुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्श, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण तीर्थंकर, इस प्रकार भेदविवक्षासे अड़सठ और अभेदविवक्षासे बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं । तत्त्वार्थ सूत्रमें भी कहा है—सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र पुण्य प्रकृतियाँ हैं ॥४१-४२॥

अप्रशस्त प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

घातिकर्मोंकी सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त ही हैं अतः वे सैंतालीस, नीचगोत्र, असातवेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंग्गति तिर्यंग्गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ, न्यग्रोध परिमण्डल आदि पाँच संस्थान, वज्रनाराच आदि पाँच संहनन,

अशुभवर्ण्णगंधरसस्पर्शमेंब वर्ण्णचतुष्टयमुं उपघातमुमप्रशस्तविहायोगतियुं स्थावरसूक्ष्म अपर्य्याप्त-साधारणशरीरास्थिराशुभदुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्त्तियेंब स्थावरदशकमुमेंबिउ बंधोदयंगळं कूर्त्तु भेदविवक्षेयोळु क्रमदिदमष्टनवतियुं शतमुमप्पुवु। अभेदविवक्षेयोळु द्व्युत्तराशीतियुं चतुरुत्तराशीतियुमप्पुवु। घा ४७। नी १। अ १। न १। नि २। ति २। जा ४। सं ५। सं ५।—

२०
अ = व ४। उ १। असद्गमन १। स्था १०। बंधे। भेदे ९८। उदये। भेदे १००। बंधे अभेदे ८२। उदये अभेदे ८४॥

कषायंगळ कार्य्यमं पेळ्दपरु—

पढमादिया कसाया सम्मत्तं देससयलचारित्तं।
जहखादं घादंति य गुणणामा होंति सेसा वि॥४५॥

प्रथमादिकाः कषायाः सम्यक्त्वं देशसकलचारित्रं। यथाख्यातं घ्नंति च गुणनामानो भवन्ति शेषा अपि॥

अनंतानुबंधिकषायं सम्यक्त्वमं कॆडिसुगुमेकॆंदोडप्रतिबंधकत्वमुंटप्पुदरिंदं। अप्रत्याख्यानकषायं देशचारित्रमं किडिसुगु। प्रत्याख्यानकषायं सकलचारित्रमं किडिसुगुं। संज्वलनकषायं यथाख्यातचारित्रमं किडिसुगुं। अदुकारणमागि कषायंगळ्गुणनाममनुळ्ळुवप्पुवदॆंतॆंदोडे :—

अनंतसंसारकारणत्वान्मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबध्नंतीत्यनंतानुबंधिनः। अप्रत्याख्यानमीषत्संयमो देशसंयमस्तं कषंतीत्यप्रत्याख्यानकषायाः। प्रत्याख्यानं सकलसंयमस्तं कषंतीति प्रत्याख्यान-

---

पञ्चसंहननानि अशुभवर्णगन्धरसस्पर्शाः उपघातः अप्रशस्तविहायोगतिः स्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणास्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तयः इत्येता अप्रशस्ताः बन्धोदयौ प्रति क्रमेण भेदविवक्षायामष्टनवतिः शतं च भवन्ति। अभेदविवक्षाया द्व्यशीतिश्चतुरशीतिश्च भवन्ति॥४३-४४॥ कषायकार्यमाह—

अनन्तानुबन्धिनः सम्यक्त्वं घ्नन्ति। अप्रत्याख्यानकषायाः देशचारित्रं, प्रत्याख्यानकषायाः सकलचारित्रं, संज्वलना यथाख्यातचारित्रं तेन गुणनामानो भवन्ति। तथाहि—अनन्तसंसारकारणत्वात् मिथ्यात्वमनन्तं तदनुबध्नन्तीत्यनन्तानुबन्धिनः। अप्रत्याख्यानं-ईषत्संयम देशसंयमः तं कषंतीति अप्रत्याख्यानकषायाः।

अशुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्श, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशकीर्ति ये अप्रशस्त प्रकृतियाँ भेदविवक्षामें बन्धमें अठानबे तथा उदयमें सौ, अभेदविवक्षामें बन्धमें बयासी और उदयमें चौरासी होती हैं॥४३-४४॥

कषायका कार्य कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्वको घातती हैं। अप्रत्याख्यानकषाय देशचारित्रको घातती हैं। प्रत्याख्यान कषाय सकल चारित्रको घातती हैं। संज्वलन कषाय यथाख्यातचारित्रको घातती हैं। अतः ये सार्थक नामवाली हैं। यही कहते हैं—अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्व अनन्त कहलाता है उसको जो बाँधती हैं या उसके साथ जो बँधती हैं वे अनन्तानुबन्धी हैं। अप्रत्याख्यान कहते हैं ईषत् संयम या देशसंयमको। उसे जो घातती हैं वे अप्रत्याख्यानकषाय हैं। प्रत्याख्यान कहते हैं सकलसंयमको, उसे जो घातती हैं

कषायाः । समेकीभूय ज्वलन्ति संयमेन सहावस्थानात् । संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनास्तेयेव यथाख्यातं कषंति संज्वलनाः । कषायाः एवं गुणनामानो भवन्तीत्यर्थः । शेषा अपि नोकषायज्ञानावरणादीन्यप्यन्वर्थसंज्ञानि भवन्तीति ज्ञातव्यानि ॥

संज्वलनादिचतुःकषायंगळवासनाकालमं पेळ्दपरु :—

अंतोमुहुत्तपक्खं छम्मासं संखसंखणंतभवं ।
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण ॥४६॥

अन्तर्म्मुहूर्त्तः पक्षः षण्मासाः संख्यासंख्यानंतभवाः । संज्वलनादीनां वासनकालस्तु नियमेन ॥

उदयाभावेपि तत्संस्कारकालो वासनाकालः एंदितप्प वासनाकालं संज्वलनकषायंगळगे अन्तर्म्मुहूर्त्तं वासनाकालमक्कुं । प्रत्याख्यानकषायंगळगे एकपक्षं वासनाकालमक्कुं । अप्रत्याख्यानकषायंगळगे षण्मासं वासनाकालमक्कुमनंतानुबंधिकषायंगळगे वासनाकालं संख्यातभवंगळुमसंख्यातभवंगळुमनंतभवंगळुमप्पुवु नियमदिंदं ॥ सं २१ प्र । दि १५ । अप्र मास ६ । अनंता १ ० । ख । वासनाकालंगळ् ॥

अनंतरं पुद्गलविपाकीप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

देहादीफस्संता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च ।
थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं पोग्गलविवाई ॥४७॥

देहादिस्पर्शांतानि पंचाशत् निर्म्माणमातपयुगळं च स्थिरशुभप्रत्येकयुगळमगुरुलघुत्रितयं पुद्गलविपाकीनि ॥

प्रत्याख्यानं सकलसंयमः तं कषंतीति प्रत्याख्यानकषायाः । सम् एकीभूत्वा ज्वलन्ति संयमेन सहावस्थानात् संयमो वा ज्वलत्येषु सत्स्वपीति संज्वलनाः त एव यथाख्यातं कषंतीति संज्वलनकषायाः । एवं शेषनोकषायज्ञानावरणादीन्यप्यन्वर्थसंज्ञानि भवन्ति ॥४५॥ संज्वलनादिचतुःकषायाणां वासनाकालमाह—

उदयाभावेऽपि तत्संस्कारकालो वासनाकालः । स च संज्वलनानामन्तर्मुहूर्तः । प्रत्याख्यानावरणानामेकपक्षः । अप्रत्याख्यानावरणानां षण्मासाः । अनन्तानुबन्धिनां संख्यातभवाः, असंख्यातभवाः, अनन्तभवा वा भवन्ति नियमेन ॥४६॥ अथ पुद्गलविपाकीन्याह—

वे प्रत्याख्यान कषाय हैं । जो संयमके साथ 'सम्' अर्थात् एकरूप होकर ज्वलित होती हैं अथवा जिनके होते हुए भी संयम ज्वलित होता है वे संज्वलन कषाय हैं । वे ही यथाख्यात संयमको घातती हैं । इसी तरह शेष नोकषाय और ज्ञानावरण आदि भी सार्थक नामवाले हैं ॥४५॥

संज्वलन आदि चार कषायोंका वासनाकाल कहते हैं—

उदयके अभावमें भी उनका संस्कार जितने काल रहता है उसे वासना काल कहते हैं । संज्वलन कषायोंका वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है । प्रत्याख्यानावरण कषायोंका एक पक्ष है । अप्रत्याख्यानावरण कषायोंका छह मास है । अनन्तानुबन्धीकषायोंका संख्यातभव, असंख्यातभव अथवा अनन्तभव नियमसे होता है ॥४६॥

पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं—

औदारिकादिशरीरपंचकमुं तद्बंधनपंचकमुं संघातपंचकमुं संस्थानषट्कमुं अंगोपांगत्रितयमुं संहननषट्कमुं वर्णपंचकमुं गंधद्वितयमुं रसपंचकमुं स्पर्शाष्टकमुमेंदितो पंचाशत्प्रकृतिगळुं निर्म्माणनाममुं आतपोद्योतयुगळमुं स्थिरास्थिरशुभाशुभप्रत्येकसाधारणशरीरंगळ द्विकंगळुं अगुरुलघूपघातपरघातमेंब अगुरुलघुत्रितयमुमेंबी द्वाषष्टिप्रकृतिगळु पुद्गलविपाकिगळक्कुं। पुद्गले विपाकः पुद्गलविपाकः। सोऽस्त्येष्विति पुद्गलविपाकीनि येंदु गुणनाममक्कुं ॥ ५

इन्नुळिदभवविपाकिगळंगे क्षेत्रविपाकिगळंगे जीवविपाकिगळंगे पेळ्दपरु :—

आऊणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ।
अट्ठुत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा ॥४८॥

आयूंषि भवविपाकीनि क्षेत्रविपाकिन्यानुपूर्व्यांणि। अष्टसप्तत्यवशेषा जीवविपाकिन्यो मंतव्याः ॥ १०

नाल्कुमायुष्यंगळु भवविपाकिगळक्कुं। नाल्कुमानुपूर्व्यंगळु क्षेत्रविपाकिगळप्पुवु। अवशेषाष्टसप्ततिप्रकृतिगळु जीवविपाकिगळेंदु बगेयल्पडुववु। औदारिकादिशरीरनिर्व्वर्त्तनदोळु विपाकमुळ्ळुदरिंदं पुद्गलविपाकिगळुं नारकादि भवंगळोळे विपाकमुळ्ळुदरिंदं भवविपाकिगळुं पूर्व्वशरीरमं बिट्टुत्तरशरीरनिमित्तं विग्रहगतियोळे विपाकमुळ्ळुदरिंदं क्षेत्रविपाकिगळुं नारकादिजीवपर्य्यायनिवर्त्तनदोळु विपाकमुळ्ळुदरिंदं जीवविपाकिगळेंदिन्तु कर्म्मप्रकृतिगळगे कार्य्यविशेषंगळपेळल्पट्टुवु। दे ५। बं ५। सं ५। सं ६। अं ३। सं ६। व ५। ग २। र ५। स्प ८। नि १। आ १। उ १। स्थि १। अ १। शु १। अ १। प्र १। सा १। अ १। उ १। प १। युति ६२। भवविपाकिगळु ४। क्षेत्रविपाकिगळु ४। जीवविपाकिगळु ७८ युति १४८ ॥ १५

अष्टासप्रतिजीवविपाकिगळवाउवेंदोडे पेळल्पपरु :—

पञ्चशरीरपञ्चबन्धनपञ्चसंघातषट्संहननपञ्चवर्णद्विगन्धपञ्चरसस्पर्शाष्टकमिति पञ्चाशत्। निर्माणं आतपोद्योतौ स्थिरास्थिरशुभाशुभप्रत्येकसाधारणानि अगुरुलघूपघातपरघाताश्चेति द्वाषष्टिः पुद्गलविपाकीनि भवन्ति। पुद्गले एव एषां विपाकत्वात् ॥४७॥ भवक्षेत्रजीवविपाकीन्याह— २०

चत्वारि आयूंषि भवविपाकीनि। चत्वारि आनूपूर्व्वाणि क्षेत्रविपाकीनि अवशिष्टाष्टसप्ततिः जीवविपाकीनि नरकादिजीवपर्यायनिर्वर्तनहेतुत्वात्। एवं प्रकृतिकार्यविशेषाः ज्ञातव्याः ॥४८॥ तानि जीवविपाकीनि कानि ? इति चेदाह— २५

पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श ये पचास, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, प्रत्येक, साधारण, अगुरुलघु, उपघात, परघात ये सब बासठ पुद्गलविपाकी हैं क्योंकि पुद्गलमें ही इनका विपाक होता है ॥४७॥

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियोंको कहते हैं— ३०

चार आयु भवविपाकी हैं। चार आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी हैं। शेष अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं क्योंकि नारक आदि जीवपर्यायोंकी रचनामें निमित्त हैं। इस प्रकार प्रकृतियोंका कार्यविशेष जानना चाहिए ॥४८॥

वे जीवविपाकी प्रकृतियाँ कौन हैं, यह कहते हैं—

वेदणियगोदघादीणेक्कावण्णं तु णामपयडीणं ।
सत्तावीसं चेदे अट्ठुत्तरि जीवविवाईओ ॥४९॥

वेदनीयगोत्रघातिनामेकपंचाशत् तु नामप्रकृतीनां । सप्तविंशतिश्चैतान्यष्टसप्ततिर्जीवविपाकीनि ॥

वेदनीयद्विकमुं गोत्रद्विकमुं घातिसप्तचत्वारिंशत्प्रकृतिगळुमिन्तु कूडि एकोत्तरपंचाशत्प्रकृतिगळुं नामकर्म्मदोळु सप्तविंशतिप्रकृतिगळुमिन्तु जीवविपाकिगळु मुंपेळ्दष्टासप्ततिप्रकृतिगळप्पुवु ॥

नामकर्म्मद सप्तविंशतिगळाउवें दोडे गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।
जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं ॥५०॥

तीर्त्थंकरमुच्छ्वासं बादरपर्याप्तसुस्वरादेययशस्कीर्त्तित्रसविहायोगतिसुभगद्वयं चतुर्ग्गतिः पंचजातयः सप्तविंशतिः ॥

तीर्त्थंकरनाममुच्छ्वासमुं बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसुस्वरदुस्वर आदेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तित्रसस्थावरप्रशस्तविहायोगत्यप्रशस्तविहायोगतिसुभगदुर्भगगळुं चतुर्ग्गतिनामकर्म्मगळुं पंचजातिनामकर्म्मगळुमेंदितु नामकर्म्मदोळु जीवविपाकिगळु सप्तविंशतिगळप्पुवु । ती १ । उ १ । बा २ । प २ । सु २ । आ २ । य २ । त्र २ । वि २ । सु २ । ग ४ । जा ५ । कूडि २७ ।

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।
सुभगादी चउजुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं ॥५१॥

गतिजातयः उच्छ्वासो विहायोगति त्रसत्रयाणां युगळं च । सुभगादि चतुर्य्युगळं तीर्त्थंकरं चेति सप्तविंशतिः ॥

वेदनीयद्वयं गोत्रद्वयं घातिसप्तचत्वारिंशत् नामसप्तविंशतिश्चेति अष्टसप्ततिर्जीवविपाकीनि भवन्ति ॥४९॥ तत्सप्तविंशति गाथाद्वयेनाह—

तीर्थङ्करं, उच्छ्वासः बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तित्रसस्थावरप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिसुभगदुर्भगचतुर्गतयः पञ्चजातयश्चेति नामकर्म सप्तविंशतिः ॥५०॥

चतुर्गतयः पञ्चजातयः उच्छ्वासः विहायोगतित्रसबादरपर्याप्तियुगलानि सुभगसुस्वरादेययशस्कीर्तियुगलानि तीर्थकरं चेत्यथवा नाम सप्तविंशतिः ।

दो वेदनीय, दो गोत्र, घातिकर्मोंकी सैंतालीस और नामकर्मकी सत्ताईस ये अठहत्तर प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं ॥४९॥

नामकर्मकी वे सत्ताईस प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, चार गति, पाँच जाति ये नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ॥५०॥

चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्तका युगल, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्तिका युगल और तीर्थंकर ये नामकर्मकी सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ।

नाल्कुगतिगळुमय्दु जातिगळुमुच्छ्वासमुं विहायोगति त्रसबादरपर्याप्तयुगळंगळं सुभग-सुस्वरादेययशस्कीर्त्तिचतुर्युगळंगळं तीर्त्थंकरनाममुमिन्तु मेणु नामकर्म्मदोळु जीवविपाकिगळु सप्तविंशतिगळप्पुवु । २७ ॥ ग ४ । जा ५ । उ १ । वि २ । त्र २ । बा २ । प २ । सु २ । सु २ । आ २ । य २ । ती १ । युति २७ ॥

अनंतरं सामान्यकर्म्ममूलोत्तरकर्म्मप्रकृतिगळोळु प्रथमोद्दिष्टसामान्यकर्म्मं नामकर्म्म स्थापनाकर्म्म द्रव्यकर्म्म भावकर्म्मभेदर्दिदं चतुर्व्विधमेंदु पेळ्दपरेकें दोडे :—

अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।
संसयविणासणट्ठं तच्चट्ठवधारणट्ठं च ॥

अप्रकृतनिवारणार्त्थं प्रकृतस्य प्ररूपणानिमित्तं च । संशयविनाशनार्त्थं तत्वार्थावधारणार्त्थं च ॥

अप्रकृतार्त्थनिवारणार्त्थमागियुं प्रकृतार्त्थप्ररूपणानिमित्तमागियुं संशयविनाशनार्त्थमागियुं तत्वार्त्थावधारणार्त्थमागियुं चतुर्व्विधनामादिनिक्षेपं पेळल्पट्टुगुमेकें दोडे—श्रोतृगळु त्रिविधमप्पर-व्युत्पन्ननुमवगताशेषविवक्षितपदार्त्थनुमेकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्त्थमंमें दितिवरोळु प्रथमोद्दिष्टा-व्युत्पन्नतव्युत्पन्ननप्पुदरिदं विवक्षितपदार्त्थनुं नाध्यवस्यति निश्चयिसल्नेरेयं । अवगताशेषविवक्षित-पदार्त्थनप्प द्वितीयनुं संशेते संदेहिसुगुमें तें दोडे—कोऽर्त्थोऽस्य पदस्याधिकृत इति । प्रकृतार्त्था-दन्यमर्त्थमादाय विपर्य्यस्यति वा इन्तु विपरीतनुमक्कुं । मेणु एकदेशतोवगतविवक्षितपदार्त्थनप्प तृतीयनुं द्वितीयनंते संशेते संदेहिसुगुं । प्रकृतादर्त्थादन्यमर्त्थमादाय विपर्य्यस्यति वा । प्रकृतार्त्थ-दत्तणिद मन्यार्त्थमं कैकों डु विपरीतनक्कु मेणु एकें दोडे सामान्यप्रत्यक्षदत्तणिदमुं विशेषाऽप्रत्यक्ष-

ननु श्रोतारस्त्रिविधाः—अव्युत्पन्नः अवगताशेषविवक्षितपदार्थः एकदेशतोऽवगतविवक्षितपदार्थश्चेति । तत्र प्रथमः—अव्युत्पन्नत्वात् विवक्षितपदार्थं नाध्यवस्यति इदमित्थमेवेति याथात्म्यप्रतिपत्त्यनुत्पत्तेः । गच्छत-स्तृणस्पर्शवत् । द्वितीयः—कोर्थोऽस्य ? इति संशेते । सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् उभयविशेषस्मृतेश्च संशयस्य दुर्निवारत्वात् । स्थाणुर्वा पुरुषो वेति । अथवा प्रकृतार्थादन्यमर्थमादाय विपर्येति । सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विपरीतस्मृतेश्च विपर्यासस्यावश्यंभावात् शुक्तिकाशकले रजतमिति । तथा तृतीयोऽपि द्वितीयवत् संशेते विपर्येति च । तत् एवाप्रकृतार्थनिवारणार्थं प्रकृतार्थप्ररूपणार्थं संशयविनाशार्थं तत्त्वाव-

श्रोता तीन प्रकारके होते हैं—अव्युत्पन्न, समस्त विवक्षित पदार्थको जाननेवाला और एकदेशसे विवक्षित पदार्थको जाननेवाला। इनमें-से प्रथम अव्युत्पन्न होनेसे विवक्षित पदार्थको नहीं जानता, यह ऐसा ही है इस प्रकारका यथार्थज्ञान उसे नहीं होता। जैसे मार्गमें चलते हुएको तृणका स्पर्श होनेपर यथार्थ ज्ञान नहीं होता कि क्या है। दूसरा 'इसका क्या अर्थ है' इस प्रकार संशय करता है। क्योंकि सामान्यका प्रत्यक्ष, विशेषका अप्रत्यक्ष और दोनोंके विशेष धर्मोंका स्मरण होनेसे संशय अवश्य होता है जैसे यह स्थाणु है या पुरुष है। अथवा वह प्रकृत अर्थसे अन्य अर्थ लेकर विपरीत जानता है जैसे सीपमें चाँदीका ज्ञान करना। यहाँ दोनोंमें पाये जानेवाले समान धर्मका प्रत्यक्ष और दोनोंके विशेष धर्मोंका प्रत्यक्ष न होनेसे व सीपसे विपरीत चाँदीका स्मरण आनेसे सीपको चाँदी समझ लेता है। तीसरा श्रोता भी दूसरेकी तरह संशय करता है या विपरीत जान लेता है। इसीलिए अप्रकृत अर्थका निवारण, प्रकृत अर्थका प्ररूपण, संशयका विनाश और तत्त्वका अवधारण करनेके लिए जबतक सामान्य आदि भेद-प्रभेदवाले कर्मका कथन

दर्त्तणिदमुं उभयविशेषविपरीतस्मृतियर्त्तणिदमुं संशयज्ञानमुं विपर्य्यासज्ञानमुं पुट्टुगुं। स्थाणुर्व्वा पुरुषो वा एंविन्तु शुक्तिकाशकले रजतमेंदितु। आवुदोंदु कारणदिंदमिदमित्थमेव वस्तुवेंदितु वस्तु याथात्म्याऽप्रतिपत्तियदु अनध्यवसायमेंबुदक्कुं। गच्छतस्तृणस्पर्शवत्। एंदितदु कारणदिंदं संशयादिगळोळु व्यवस्थितनप्प शिष्यनना संशयादिगळिंदं तोलगिसिनिर्णये निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः। अप्रस्तुतार्थापाकरणदिंदमुं प्रस्तुतार्थव्याकरणदिंदमुमी नामादिचतुर्व्विधनिक्षेपं फलवंतमक्कुमा नामादिगळ लक्षणमेंतेंदोडे:—अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये। यत्संज्ञा कर्म्म तन्नाम नरेच्छावशवर्त्तनात्॥ त एव गुणास्तद्गुणाः। न तद्गुणा एषां ते अतद्गुणास्तेषु भावेषु पदार्थेषु व्यवहारप्रसिद्धये व्यवहारप्रसिद्धयर्थं यत्संज्ञाकर्म्म यत्संज्ञाकरणं तन्नाम तन्नामेति प्रतिपद्यते। अतद्गुणंगळप्प पदार्थंगळोळु व्यवहारप्रसिद्धिनिमित्तमागि यावुदोंदु नामकरणमदु नाममेंदु पेळल्पट्टुदु। येकेंदोडा नामक्के पुरुषेच्छावशवर्त्तनमुंटप्पुदे कारणमागि। तथा चोक्तं:—अंते पेळल्पट्टुदु—

अयमर्थो नायमर्थ इति शब्दा वदन्ति न,।
कल्प्योऽयमर्थः पुरुषैस्ते च रागादिविप्लुताः॥

इदर्त्थमप्पुदिवर्त्थमल्लदुदेंदितु शब्दंगळु पेळ्दुवल्लवु। मत्तेंतेंदोडे पुरुषैरयमर्थः कल्प्यः पुरुषरुगळिंदमी शब्दक्कर्त्थमिदप्पुदिल्लतेंदितु कल्पिसल्पडुगुमा पुरुषरुगळुं रागादिदोषदूषितरिंदं विप्लुतंगळु विप्लवमनुळ्ळुदरिंदं।

"साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनं।
सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते॥"

वस्तुसादृश्यदोळु मेणसादृश्यदोळं मेणु काष्ठादिद्रव्यदोळु यन्निवेशनं आउदोंदु निक्षेपणमदाव तेरदिनेंदोडे—सोऽयमिति अदिदेंदितु अवधानेन प्रयत्नविशेषदिंदं सा स्थापना निगद्यते अदु स्थापनेयेंदु पेळल्पट्टुदु।

धारणार्थं च यावत्सामान्यादिभेदप्रभेदं कर्म, नामादिचतुर्विधनिक्षेपाश्रयेण नोच्यते तावत् तेषां श्रोतृणां मनः संशयादिभ्यो न निवर्तते इति तल्लक्षणमुच्यते—

अतद्गुणेषु भावेषु व्यवहारप्रसिद्धये। यत्संज्ञाकर्म तन्नाम नरेच्छावशवर्तनात्॥१॥
साकारे वा निराकारे काष्ठादौ यन्निवेशनम्। सोऽयमित्यवधानेन स्थापना सा निगद्यते॥२॥

नाम आदि चार प्रकारके निक्षेपोंके आश्रयसे नहीं किया जाता तबतक उनके विषयमें श्रोताओंके मनसे संशयादि दूर नहीं होते। इसलिए नामादि निक्षेपोंका लक्षण कहते हैं—जिन पदार्थोंमें जो गुण नहीं है उनमें व्यवहार चलानेके लिए मनुष्यकी इच्छानुसार जो संज्ञा रखी जाती है वह नामनिक्षेप है। साकार अथवा निराकार काष्ठ आदिमें 'यह वह है' इस प्रकारका ध्यान करके जो निवेश किया जाता है उसे स्थापना कहते हैं। आगामी गुणके योग्य अर्थ द्रव्यनिक्षेपका विषय है और तत्कालकी पर्यायसे युक्त वस्तु भावनिक्षेपका विषय है। उदाहरणके रूपमें—जैसे किसी व्यक्तिने अपनी इच्छानुसार व्यवहार चलानेके लिए अपने पुत्रका नाम राजा रखा। सो उसको राजा कहना नामनिक्षेप है। काष्ठ आदिकी प्रतिमामें या चित्रमें 'यह राजा है' ऐसी स्थापना करके उसे राजा मानना स्थापनानिक्षेप

---

१. म विप्लुतरुगलु। साकारे।

"आगामिगुणयोग्योर्त्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः ।
तत्कालपर्य्ययाक्रांतं वस्तु भावोऽभिधीयते ॥"

आगामिगुणयोग्यार्थः आगामिगुणंगळिगे योग्यमप्पर्थं कथंभूतः न्यासस्य गोचरः निक्षेपक्केगोचरमप्पुदु द्रव्यं द्रव्यमेंदिल्लि पेळल्पट्टुदु । तत्कालपर्य्ययाक्रांतं वस्तु तत्कालपर्य्ययदिदं परिणतमप्पु वस्तु भावः भावमेंदितु अभिधीयते पेसरगोंळल्पट्टुदु । ५

मुंपेळ्द चतुर्व्विधनामादिगळोळु सामान्यकर्म्म मूलोत्तरप्रकृतिगळगे न्यासमं चतुस्त्रिंशद्गाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :—

णाम ट्ठवणा दवियं भावं ति चउव्विहं हवे कम्मं ।
पयडी पावं कम्मं मलं ति सण्णा हु णाममलं ॥५२॥

नाम स्थापना द्रव्यं भाव इति चतुर्व्विधं भवेत्कर्म्म । प्रकृतिः पापं कर्म्म मलमिति संज्ञं १०
खलु नाममलं ।

नामकर्म्म स्थापनाकर्म्म द्रव्यकर्म्म भावकर्म्ममेंदितु कर्म्मसामान्यं चतुर्व्विधमक्कुमवरोळु प्रथमोद्दिष्टनाममलं नामकर्म्म प्रकृतिः प्रकृतियेंदुं पापं पापमेंदुं कर्म्म कर्म्ममेंदुं मलमिति मलमुमेंदितु संज्ञं भवेत् संज्ञेयनुळ्ळदक्कुं ।

सरिसासरिसं दव्वे मदिणा जीवट्ठियं खु जं कम्मं । १५
तं एदं ति पदिट्ठा ठवणा तं ठावणा कम्मं ॥५३॥

सादृश्यासादृश्यद्रव्ये मत्या जीवस्थितं खलु यत्कर्म्म । तदेतदिति प्रतिष्ठा स्थापना तत्स्थापनाकर्म्म ॥

सद्भावस्तुविनोळमसद्भावस्तुविनोळं । मत्या बुद्धियिंदं जीवाशेषप्रदेशप्रचययंगळोळिरुतिर्द्दं यत्कर्म आउदोंदु सामान्यकर्म्मं । तदेतदिति अदिदेंदितु प्रतिष्ठा स्थापना स्थापने तत् २०
स्थापनाकर्म्मं अदु स्थापनाकर्म्ममेंदु पेळल्पट्टुदु ।

आगामिगुणयोग्योऽर्थो द्रव्यं न्यासस्य गोचरः । तत्कालपर्ययाक्रान्तं वस्तु भावोऽभिधीयते ॥३॥
॥५१॥ अथ नामादिषु सामान्यकर्म मूलोत्तरप्रकृतीश्च चतुस्त्रिंशद्गाथासूत्रैर्न्यस्यति—

कर्मसामान्यं नामस्थापनाद्रव्यभावभेदाच्चतुर्विधम् । तत्र नाममलं नामकर्म । प्रकृतिरिति-पापमिति-कर्मेति-मलमिति च संज्ञं स्यात् ॥५२॥ २५

सदृशे असदृशे वा वस्तुनि मत्या जीवाशेषप्रदेशप्रचयस्थितं यत्सामान्यकर्म तदिदमिति प्रतिष्ठा स्थापनाकर्मेत्युच्यते ॥५३॥

है । आगे जो राजा होगा उसको राजा कहना द्रव्यनिक्षेप है और वर्तमानमें जो पृथ्वीका स्वामी राज्यासनपर विराजता है उसे राजा कहना भावनिक्षेप है ॥५१॥

सामान्य कर्म और मूल तथा उत्तर प्रकृतियोंमें नामादि निक्षेपका कथन चौंतीस ३०
गाथाओं द्वारा करते हैं—कर्मसामान्य नाम, स्थापना, द्रव्य और भावके भेदसे चार प्रकार है । उसमें प्रकृति, पाप कर्म अथवा मल ऐसी संज्ञा नाममल है ॥५२॥

कर्मके समान अथवा असमान द्रव्यमें बुद्धिके द्वारा 'जीवके समस्त प्रदेशोंमें स्थित जो सामान्य कर्म है वह यह है' ऐसी स्थापना स्थापनाकर्म है ॥५३॥

---

१. अ जीवाविशेष ।

दव्वे कम्मं दुविहं आगमणोआगमं ति तप्पढमं ।
कम्मागमपरिजाणगजीवो उवजोगपरिहीणो ॥५४॥

द्रव्ये कर्म्म द्विविधमागम नोआगम इति तत्प्रथमं । कर्म्मागमपरिज्ञायकजीवः उपयोग-परिहीनः ॥

द्रव्यदोळु कर्म्मं द्विविधमक्कुमागमद्रव्यकर्म्ममेंदुं नोआगमद्रव्यकर्म्ममुमेंदितु । तत्प्रथमं तयोर्म्मध्ये प्रथममागमद्रव्यकर्म्मं कर्म्मागमपरिज्ञायकजीवः कर्म्मागमवाच्यवाचकज्ञातृज्ञेयसंबंध परिज्ञायिकजीवनप्पं । उपयोगपरिहीनः अनुपयुक्तनप्पं । तच्छास्त्रार्थावधारणानुचिंतनव्यापार-रहितनेंबुदत्थं ।

जाणुगसरीर भवियं तव्वदिरित्तं तु होदि जं बिदियं ।
तत्थ सरीरं तिविहं तियकालगयंति दो सुगमा ॥५५॥

ज्ञायकशरीरं भव्यं तद्व्यतिरिक्तं तु भवति यद्द्वितीयं । तत्र शरीरं त्रिविधं त्रिकालगत-मिति द्वे सुगमे ॥

यद्द्वितीयं आवुदों दु नोआगमद्रव्यकर्म्मं तत्त्रिविधं अदु त्रिविधमक्कुं ज्ञायकशरीरं भावि तद्व्यतिरिक्तमिति । ज्ञातृशरीरमेंबुं ज्ञायि भाविशरीरमेंदुं आयेरडरिंदं व्यतिरिक्तमेंदितु । तु मत्ते तत्र अवरोळु शरीरं प्रथमोद्दिष्टज्ञायकशरीरं त्रिविधं त्रिप्रकारमक्कुं । त्रिकालगतमिति त्रिकालं-गळोळु भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालंगळोळिद्दुर्दुदेंदिन्तु द्वे सुगमे तत् ज्ञातृविन त्रिकालगतशरीरंगळोळु भूतशरीरमं बिट्टुळिद वर्त्तमानभाविशरीरंगळेंरडुं सुगमंगळेकेंदोडे वर्त्तमानदोळिरुत्तिद्दुर्दुं भाविकालदोळागल्वेडिद्दुर्दुमप्पुदरिंदं ।

भूतशरीरक्के पेळ्दपरु :—

द्रव्ये कर्म द्विविधं आगमनोआगमभेदात् । तत्र कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमस्य वाच्यवाचकज्ञातृज्ञेय-संबन्धपरिज्ञायकजीवो यः तदर्थावधारणचिन्तनव्यापाररूपोपयोगरहितः स आगमद्रव्यकर्म भवति ॥५४॥

तु-पुनः यद्द्वितीयं नो-आगमद्रव्यकर्म तत्त्रिविधं भवति—ज्ञायकशरीरं भावि तद्व्यतिरिक्तमिति । तत्र ज्ञायकशरीरं त्रिविधं त्रिकालगतमिति । तत्र वर्तमानभाविशरीरे द्वे सुगमे तत्तत्कालवर्तित्वात् ॥५५॥ भूतशरीरस्याह—

द्रव्यनिक्षेप रूप कर्मके दो भेद हैं—आगम द्रव्यकर्म और नोआगमद्रव्यकर्म । उनमें-से कर्मके स्वरूपका कथन करनेवाले आगमका वाच्य-वाचक सम्बन्ध और ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध से जाननेवाला जो जीव वर्तमानमें उसके अर्थके अवधारण और चिन्तन व्यापाररूप उपयोगसे रहित है अर्थात् उसका उपयोग अन्य ओर है वह आगमद्रव्यकर्म है ॥५४॥

जो दूसरा नोआगमद्रव्यकर्म है वह तीन प्रकारका है—ज्ञायकशरीर, भावि, तद्व्यतिरिक्त । उनमें-से ज्ञायक शरीर तीन प्रकार है—भूत, भावि और वर्तमानकालीन । जिस शरीर सहित जीव कर्मके स्वरूपको जानता है उसका वह शरीर वर्तमान है । उससे पूर्वका छोड़ा हुआ शरीर भूत है और आगामीमें जो शरीर धारण करेगा वह भावि है । उनमें-से वर्तमान और भावि शरीर दो सुगम हैं, क्योंकि दोनों अपने-अपने कालवर्ती होते हैं ॥५५॥

भूत शरीरको कहते हैं—

भूदं तु चुदं चयिदं चत्तंति तिधा चुदं सपाकेण ।
पडिदं कदलीघादपरिच्चागेणूणयं होदि ॥५६॥

भूतं तु च्युतं च्यावितं त्यक्तमिति त्रिधा च्युतं स्वपाकेन । पतितं कदलीघातपरित्यागाभ्यामूनकं भवति ॥

ज्ञायकन भूतशरीरं । तु मत्ते । च्युतशरीरमेंदु च्यावितशरीरमेंदु त्यक्तशरीरमेंदितु । त्रिधा त्रिप्रकारमक्कुमल्लि । च्युतं च्युतशरीरमेंबुदु स्वपाकेन पतितं स्वस्थितिक्षयवशदिंदं बिद्दुं पोदुदागियुं । कदलीघातपरित्यागाभ्यामूनकं भवति कदलीघातमुं सन्न्यासमुमेंबेरडरिंदं हीनमादुदक्कुं ।

कदलीघातक्के लक्षणमं पेळ्दपरु :—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं ।
उस्सासाहाराणं णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥५७॥

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशैः । उच्छ्वासाहाराणां निरोधतः च्छिद्यते आयुः ॥

विषमुं वेदनेयुं रक्तक्षयमुं भयमुं शस्त्रघातमुं संक्लेशमुमुच्छ्वासनिरोधमुमाहारनिरोधमुमेंबी हेतुगळिंदमायुष्यं खंडिसल्पडुगुमदु कदलीघातमेंबुदक्कुं ।

कदलीघादसमेदं चागविहीणं तु चइदमिदि होदि ।
घादेण अघादेण व पडिदं चागेण चत्तमिदि ॥५८॥

कदलीघातसमेतं त्यागविहीनं त च्यावितं भवति । घातेनाघातेन वा पतितं त्यागेन त्यक्तमिति ॥

तु मत्ते ज्ञायकनाउदोंदु भूतशरीरं । कदलीघातसमेतं कदलीघातसमेतमागि पतितं बोळल्पट्टुदु । चागविहीणं त्यागदिंदं हीनमादुदादोडे । च्यावितं भवति च्यावितमेंबुदक्कुं । मत्तमा

ज्ञायकस्य भूतशरीरं तु पुनः च्युतं च्यावितं त्यक्तं चेति त्रिधा । तत्र च्युतं स्वपाकेन पतितमपि कदलीघातसंन्यासाभ्यामूनं भवति ॥५६॥ कदलीघातस्य लक्षणमाह—

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रघातसंक्लेशोच्छ्वासनिरोधाहारनिरोधैर्हेतुभिरायुः छिद्यते स कदलीघातः ॥५७॥

तु—पुनः ज्ञायकस्य यद्भूतशरीरं कदलीघातसमेतं सत् पतितम् । त्यागेन संन्यासेनोनं तदा तच्च्यावित-

ज्ञायकका भूत शरीर च्युत, च्यावित, त्यक्तके भेदसे तीन प्रकार है । उनमें-से च्युत-शरीर स्वयं पककर अपने समयसे छूटता है । वह कदलीघात और संन्यास इन दोनोंसे रहित होता है ॥५६॥

कदलीघातका लक्षण कहते हैं—

विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेश, उच्छ्वासका रुकना या आहारका न मिलना आदि कारणोंसे आयुका छेद होनेको कदलीघात कहते हैं ॥५७॥

ज्ञायकका जो भूत शरीर कदलीघातपूर्वक छूटता है किन्तु संन्याससे रहित होता है

१. म °तसहितमा° । २. आ त्रिविधा । ३. आ °घातं लक्षयति ।

ज्ञातृविनाउदों दु भूतशरीरं घातेनाघातेन वा कदलीघातदिंदं मेणकदलीघातरहितदिंदं मेणु। त्यागेन पतितं सन्यासंसहितमागि पतितमादुदु। त्यक्तमिति त्यक्तशरीरमेंदितु पेळल्पट्टुदु।

आ त्यक्तशरीरं मरणविधानभेददिंदं त्रिविधमें दु पेळदपरु :—

भत्तपइण्णाइंगिणिपाओग्गविहीहि चत्तमिदि तिविहं।
भत्तपइण्णा तिविहा जहण्णमज्झिमवरा य तहा ॥५९॥

भक्तप्रतिज्ञाइंगिनीप्रायोपगमनविधिभिस्त्यक्तमिति त्रिविधं। भक्तप्रतिज्ञा त्रिविधा जघन्यमध्यमवरा च तथा ॥

ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरं भक्तप्रतिज्ञायिंगिनीप्रायोपगमनविधिभिः। भक्तप्रतिज्ञेयुं इंगिनियुं प्रायोपगमनमुमेंब मरणविधानभेदंगळिंदं। त्यक्तं बिडल्पट्टुदेंदितु। त्रिविधं त्रिप्रकारमक्कुमल्लि प्रथमोद्दिष्टभक्तप्रतिज्ञा तथा ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरदंते। त्रिविधा त्रिप्रकारमक्कुं। जघन्यभक्तप्रतिज्ञाविधान मृतियेंदु मध्यमभक्तप्रतिज्ञाविधानमरणमेंदुमुत्कृष्टभक्तप्रत्याख्यान मरणमुमेंदितु।

अनंतरं त्रिविधभक्तप्रतिज्ञाविधानमरणंगळगे कालप्रमाणमं पेळदपरु :—

भत्तपइण्णायविही जहण्णमंतोमुहुत्तयं हादि।
बारसवरिसा जेट्ठा तम्मज्झे होदि मज्झिमया ॥६०॥

भक्तप्रतिज्ञाविधिर्ज्जघन्योन्तर्म्मुहूर्त्तो भवति। द्वादशवर्षाण्युत्कृष्टस्तन्मध्ये भवति मध्यमकाः ॥

भक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालं जघन्यमन्तर्म्मुहूर्त्तमक्कुमुत्कृष्टं द्वादशवर्षंगळप्पुवु। मध्यभक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालंगळु। तन्मध्ये तयोर्ज्जघन्योत्कृष्टयोर्म्मध्यं तस्मिन्। आ एरडर मध्यदोळु समयाधिकजघन्यान्तर्म्मुहूर्त्तमादियागि समयाधिकक्रमदिंदं उत्कृष्टविधान द्वादशवरुषंगळोळेकसमयोनसंख्यातावलिपरियंतमाद सर्व्वमध्यमविकल्पंगळ संख्यातावलिप्रमितंगळप्पुदरिंदं युक्तासंख्यात-

---

मिति भवति। कदलीघातेन तद्विना वा त्यागेन पतितं त्यक्तमिति ॥५८॥ तस्यैव मरणविधानेन त्रैविध्यमाह—

तत् त्यक्तशरीरं भक्तप्रतिज्ञा-इंगिनी-प्रायोपगमनमरणविधिभिस्त्यक्तमिति त्रिविधम्। तत्र भक्तप्रतिज्ञापि तथा ज्ञायकभूतत्यक्तशरीरवत् त्रिधा जघन्या मध्यमोत्कृष्टेति ॥५९॥ तज्जघन्यादेः कालप्रमाणमाह—

भक्तप्रतिज्ञामरणविधानकालः जघन्योऽन्तर्मुहूर्तो भवति। २ १। उत्कृष्टो द्वादशवर्षमात्रो भवति।

वह च्यावित होता है। कदलीघातसे या उसके बिना किन्तु संन्यासपूर्वक छूटा शरीर त्यक्त होता है ॥५८॥

उसी त्यक्तशरीरके त्यागके मरणविधानकी अपेक्षा तीन भेद कहते हैं—

वह त्यक्तशरीर भक्त प्रतिज्ञा, इंगिनी और प्रायोपगमन नामक मरणविधिके भेदसे तीन प्रकार है। जैसे ज्ञायकका भूत त्यक्तशरीर तीन प्रकारका है वैसे ही भक्तप्रतिज्ञा भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदसे तीन प्रकार है ॥५९॥

उन जघन्य आदि भेदोंके कालका प्रमाण कहते हैं—

भक्तप्रतिज्ञा अर्थात् भोजनकी प्रतिज्ञापूर्वक मरणविधानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त

---

१. आ. भवति २ १ १।

मध्यपतितासंख्यातराशिप्रमाणमप्पुवक्के संदृष्टि :—आदि २१ अन्तेव १२ सुद्धे २१ । १ । वड्ढि-हिदे २१ १ रूवसंजुदे २१ २१ ठाणा । येंदितिनितु मध्यमकालविकल्पंगळसंख्याततंगळप्पुवें-बुदत्थं ॥

इंगिनीप्रायोपगमनमरणंगळ लक्षणमं पेळ्दपरु :—

अप्पोवयारवेक्खं परोवयारूणमिंगिणीमरणं ।
सपरोवयारहीणं मरणं पाओवगमणमिदि ॥६१॥

आत्मोपचारापेक्षं परोपचारोनमिंगिनीमरणं । स्वपरोपचारहीनं मरणं प्रायोपगमनमिति ॥

तन्निनदं तनगे माळ्पुपचारापेक्षमुं परोपचारनिरपेक्षमुमिंगिनीमरणमें बुदक्कुं । स्वपरोपचार-रहितं मरणं प्रायोपगमनमें बुदक्कुं ॥

ज्ञायकशरीरभेदमं पेळ्दनंतरं भावि ज्ञातृकशरीरमं पेळ्दपरु :—

भवियंति भवियकाले कम्मागमजाणगो स जो जीवो ।
जाणुगसरीरभवियं एवं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥६२॥

भविष्यति भाविकाले कर्म्मागमज्ञायकः स यो जीवः । ज्ञायकशरीरभव्यः एवं भवतीति निर्दिष्टं ॥

यः आवनोव्वं मुंपेळल्पट्टं । कर्म्मागमज्ञायकः कर्म्मागमज्ञायी । भाविकाले भाविकालदोळु भविष्यति आदहनु । स जीवः आ जीवं । ज्ञायकशरीरभव्यः ज्ञायकभाविशरीरमक्कुमिन्तु भावियें दु पेळल्पट्टुज्ञायकशरीरं एवं भवति निर्दिष्टं इंतप्पुदें दु पेळल्पट्टुदु ॥

---

२ १ १ १ । तन्मध्यवर्ती समयोत्तरविकल्पः स सर्वोऽपि मध्यमो भवति ॥६०॥ इंगिनीप्रायोपगमनमरणे लक्षयति—

स्वकृतोपचारापेक्षं परोपचारनिरपेक्षं तदिङ्गिनीमरणम् । स्वपरोपचाररहितं[1] तन्मरणं प्रायोपगमन-मिति ॥६१॥ ज्ञायकशरीरभेदमुक्त्वा भाविज्ञातृशरीरमाह—

यः कर्मागमज्ञायको भाविकाले भविष्यति स जीवो ज्ञायकभाविशरीरं स्यात् । एवं भावीत्युक्त-ज्ञायकशरीरं भवति इति निर्दिष्टम् ॥६२॥

है । उत्कृष्ट बारह वर्ष प्रमाण है । उनके मध्यवर्ती एक-एक समय अधिक जितने भेद हैं वह सब मध्यम कालका प्रमाण है ॥६०॥

इंगिनी और प्रायोपगमन मरणका लक्षण कहते हैं—

जिस संन्यासमरणमें संन्यास धारण करनेवाला अपने शरीरका उपचार स्वयं तो करता है किन्तु दूसरेसे नहीं कराता वह इंगिनी मरण है । और जिसमें अपना उपचार न स्वयं करता है, न दूसरेसे कराता है वह प्रायोपगमन मरण है ॥६१॥

ज्ञायक शरीरके भेद कहकर भाविज्ञायक शरीरको कहते हैं—

जो भविष्यकालमें कर्मविषयक आगमका ज्ञाता होगा वह जीव ज्ञायकभावि है इस प्रकार भाविज्ञायक शरीर कहा है ॥६२॥

---

१. आ. °रहितं तेजो प्रा° ।

अनंतरं तद्व्यतिरिक्तमं पेळ्दपरु :—

तव्वदिरित्तं दुविहं कम्मं णोकम्ममिदि तहिं कम्मं ।
कम्मसरूवेणागय कम्मं दव्वं हवे णियमा ॥६३॥

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्म्म नोकर्म्म इति तस्मिन् कर्म्म । कर्म्मस्वरूपेणागतकर्म्मद्रव्यं भवेन्नियमात् ॥

ताभ्यां व्यतिरिक्तं ज्ञायकशरीरभाविशरीराभ्यां व्यतिरिक्तं । अरिवन शरीरमरियलु वेडिर्द्दनशरीरमुमं बेरडुमल्लदुदु तद्व्यतिरिक्तमें बुदक्कुमदु द्विविधं द्विप्रकारमक्कुं । कर्म्म नोकर्म्म इति कर्म्मरूप तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यमें दुं नोकर्म्मरूपतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यमुमें दितु । तस्मिन् आ द्विविधदोळु कर्म्म कर्म्मस्वरूप तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यं कर्म्मस्वरूपेणागतद्रव्यं ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपदिदं परिणतकर्म्मद्रव्यमक्कुं नियमात् नियमदिदं ॥

अनंतरं नोकर्म्मरूप तद्व्यतिरक्त नोआगमद्रव्यमं पेळ्दपरु :—

कम्मद्दव्वादण्णं दव्वं णोकम्मदव्वमिदि होदि ।
भावे कम्मं दुविहं आगमणोआगमंति हवे ॥६४॥

कर्म्मद्रव्यादन्यद्रव्यं नोकर्म्मद्रव्यमिति भवति । भावे कर्म्म द्विविधं आगम नोआगम इति भवेत् ॥

कर्म्मस्वरूपद्रव्यदत्तणिदं । अन्यत् द्रव्यं मत्तों दु द्रव्यं । नोकर्म्मद्रव्यमिति भवेत् नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममें दितु पेळल्पट्टुदक्कुं । भावे कर्म्म द्विविधं भावदोळु कर्म्म द्विप्रकारमक्कुं । आगम नो आगम इति आगमभावकर्म्ममेंदुं नोआगमभावकर्म्ममें दितु ॥

आ भावकर्म्मद द्विप्रकारमं पेळ्दपरु :—

कम्मागमपरिजाणगजीवो कम्मागमम्मि उवजुत्तो ।
भावागमकम्मोत्ति य तस्स य सण्णा हवे णियमा ॥६५॥

कर्म्मागमपरिज्ञायकजीवः कर्म्मागमे उपयुक्तः । भावागमकर्म्म इति तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् ॥

अथ तद्व्यतिरिक्तमाह—

तद्व्यतिरिक्तं द्विविधं कर्मनोकर्मेति । तत्र मूलोत्तरप्रकृतिस्वरूपेण परिणतं कर्म द्रव्यकर्म भवति नियमात् ॥६३॥ नोकर्मरूपतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यमाह—

कर्मस्वरूपादन्यद्द्रव्यं नोकर्मेत्युच्यते । भावे कर्म द्विविधं आगमभावकर्म नोआगमभावकर्मेति ॥६४॥

आगे नो आगम द्रव्यकर्मके तीसरे भेद तद्व्यतिरिक्तको कहते हैं—

तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यकर्मके दो भेद हैं—कर्म और नोकर्म । उनमें-से मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतिके रूपमें परिणमा पुद्गलद्रव्य कर्मतद्व्यतिरिक्त है ॥६३॥

नोकर्मरूप तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यको कहते हैं—

कर्मरूपसे अन्य द्रव्यको नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म कहते हैं । भाव-निक्षेपरूप कर्मके भी दो भेद हैं—आगमभावकर्म, नोआगमभावकर्म ॥६४॥

---

१. आ. °कर्म भवति ।

कर्म्मागम परिज्ञायकजीवः कर्म्मस्वरूपप्रतिपादकागमशास्त्रपरिज्ञाइयप्प जीवं । कर्म्मागमे उपयुक्तः तच्छास्त्रोपयोगमुळ्ळं । भावागम कर्म्म इति भावागमकर्म्ममेंवितु । तस्य च संज्ञा भवेन्नियमात् आ जीवंगे संज्ञे नियमदिदमक्कुं ॥

अनंतरं नोआगमभावमं पेळ्दपरु :—

णोआगमभाओ पुण कम्मफलं भुज्जमाणगो जीवो ।
इदि सामण्णं कम्मं चउव्विहं होदि णियमेण ॥६६॥

नो आगमभावः पुनः कर्म्मफलं भुंजानो जीवः । इति सामान्यं कर्म्म चतुर्व्विधं भवति नियमेन ॥

नोआगम भावकर्म्ममुं पुनः मत्तं । कर्म्मफलमननुभविसुत्तिर्प्प जीवनक्कुं । इंतु सामान्यकर्म्म चतुर्व्विधमक्कुं नियमदिदं ॥

अनंतरं मूलोत्तरप्रकृतिगळगे नामादिचतुर्व्विधमं पेळ्दपरु :—

मूळुत्तरपयडीणं णामादी एवमेव णवरिं तु ।
सगणामेण य णामं ठवणा दवियं हवे भावो ॥६७॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादय एवमेव विशेषस्तु । स्वस्वनाम्ना च नाम स्थापना द्रव्यं भवेद्भावः ॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां मूलोत्तरप्रकृतिगळगंमुत्तरप्रकृतिगळगं । नामादयः नामस्थापनाद्रव्यभावंगळु । एवमेव यी सामान्यकर्म्मक्के पेळ्दंतेये । भवेत् अक्कुं । तु मत्तं । विशेषः विशेषमुंटदाउदेंदोडे स्वस्वनाम्ना च तंतम्म नामदिंदमे नाम स्थापना द्रव्यं भावो भवेत् तंतम्म नामस्थापनाद्रव्यं भावमुमक्कुं ॥

अनंतरमल्लि विशेषमं पेळ्दपरु :—

तत्र कर्मस्वरूपप्रतिपादकागमपरिज्ञायकः कर्मागमे उपयुक्तः तस्य भावागमकर्मसंज्ञा नियमेन भवति ॥६५॥

नोआगमभावकर्म पुनः कर्मफलमनुभवन् जीवो भवति । एवं सामान्यकर्म चतुर्विधं भवति नियमेन ॥६६॥

अथ मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादिभेदानाह—

मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च नामस्थापनाद्रव्यभावाः सामान्यकर्मोक्तरीत्यैव भवन्ति । तु—पुनः विशेषः । स कः ? स्वस्वनाम्नैव नाम स्थापना द्रव्यं भावो भवति ॥६७॥ पुनः तत्र विशेषमाह—

जो जीव कर्मके स्वरूपके प्रतिपादक आगमका ज्ञाता है और उसीमें अपना उपयोग लगा रहा है उसको नियमसे आगमभावकर्म कहते हैं ॥६५॥

जो जीव कर्मका फल भोग रहा है वह नोआगमभावकर्म है । इस प्रकार नियमसे सामान्य कर्म चार प्रकार है ॥६६॥

अब मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके नामादि भेद कहते हैं—

मूल प्रकृतियों और उत्तरप्रकृतियोंके नाम, स्थापना, द्रव्य भाव सामान्य कर्मके कहे भेदोंके अनुसार ही होते हैं । इतना विशेष है कि प्रत्येक प्रकृतिके नाम, स्थापना, द्रव्य भाव अपने-अपने नामानुसार ही होते हैं ॥६७॥

पुनः अन्य विशेष कहते हैं—

मूलुत्तरपयडीणं णामादि चउव्विहं हवे सुगमं ।
वज्जित्ता णोकम्मं णोआगमभावकम्मं च ॥६८॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां नामादि चतुर्व्विधं भवेत्सुगमं । वर्ज्जित्वा नोकर्म्म नोआगमभाव कर्म्म च ॥

ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिगळगं मतिज्ञानावरणाद्युत्तरप्रकृतिगळगं नामादिचतुःप्रकारं सुगममक्कुमल्लि नोकर्म्ममुं नोआगमभावकर्म्ममुमें बेरडं वर्ज्जिसि शेषमनितुं सामान्यकथनमें तंते यप्पुदरिंदं सुगममक्कुमा नोकर्म्म नोआगमभावकर्म्मंगळं मूलप्रकृतिगळोगमुत्तरप्रकृतिगळोग योजिसिदपरदंतें दोडे :—

पडपडिहारसिमज्जा आहारं देह उच्चणीचंगं ।
भंडारी मूलाणं णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥६९॥

पटप्रतिहारासिमद्याहारदेहोच्चनीचांगं । भांडागारी मूलानां नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म तु ॥

ज्ञानावरणक्के श्लक्ष्णकांडपटं नोकर्म्मद्रव्यमक्कुमदुवुं ज्ञानावरणदंते वस्तुविशेषप्रतिपत्तिप्रतिबंधकमप्पुदरिंदं ॥

दर्शनावरणक्के द्वारनियुक्तप्रतिहारं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममुमक्कुमातंगं दर्शनावरणदंते वस्तुसामान्यग्रहणप्रतिबंधकत्वमुंटप्पुदरिंदं ॥ वेदनीयकर्म्मक्के मधुलिप्तासिधारे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदुवुं विषयानुभवनदोळु सुखदुःखंगळं वेदनीयमें तु माळ्कुमंते सुखदुःखकारणमप्पुदरिंदं । मोहनीयकर्म्मक्के मद्यं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदुवुं मोहनीयदंते सम्यग्दर्शनादिजीवस्वभावमं पत्तुविडिसि

मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च नामादिचतुर्विधं सुगमं भवति । तत्र नोकर्म नो आगमभावकर्मेति द्वयं वर्जित्वा शेषस्य सामान्यवत् कथनात् ॥६८॥ तन्नोकर्मनोआगमभावकर्मणी मूलोत्तरप्रकृतीषु योजयति—

तत्र ज्ञानावरणस्य नोकर्मद्रव्यकर्म श्लक्ष्णकाण्डपटो भवति विशेषग्रहणप्रतिबन्धकत्वात् । दर्शनावरणस्य द्वारनियुक्तप्रतीहारः सामान्यग्रहणविराधकत्वात् । वेदनीयस्य मधुलिप्तासिधारा सुखदुःखकारणत्वात् । मोह-

---

मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंके नामादि चारों भेद सुगम हैं। किन्तु नोकर्म और नोआगम भावकर्मको छोड़कर शेषका कथन सामान्य कर्मके समान जानना। आशय यह है कि पहले द्रव्यनिक्षेपके दो भेद किये थे—आगम और नोआगम। नोआगम द्रव्यके तीन भेद कहे थे—ज्ञायक शरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त। उनमें-से तद्व्यतिरिक्तके दो भेद कहे थे—कर्म और नोकर्म। सो यहाँ नोकर्म तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्मका वर्णन सब प्रकृतियोंमें करते हैं। जिस-जिस प्रकृतिका जो-जो उदय फलरूप कार्य है उस-उस कार्यमें जो बाह्यवस्तु निमित्त होती है उस वस्तुको उस प्रकृतिका नोकर्म द्रव्यकर्म कहते हैं ॥६८॥

मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें नोकर्म और नोआगम भावकर्मकी योजना करते हैं—

ज्ञानावरणका नोकर्मद्रव्यकर्म घने वस्त्रका परदा है क्योंकि वह विशेष रूपसे वस्तुको ग्रहण करनेमें बाधक होता है। दर्शनावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म द्वारपर नियुक्त द्वारपाल है क्योंकि वह सामान्य रूपसे भी देखनेमें बाधक होता है। वेदनीयका नोकर्म द्रव्यकर्म मधुसे लिप्त तलवारकी धार है क्योंकि उसको चाटनेसे सुख और पुनः दुःख होता है। मोहनीयका

मरुळ्माडुगुमंते मद्यमुं निजस्वभावमं पत्तुविडिसि सोक्किसुगुमप्पुदरिंदं। आयुष्यकर्म्मक्के चतुर्व्विधाहारं नोकर्म्मं द्रव्यकर्म्ममक्कुमा चतुर्व्विधाहारक्के आयुष्यकर्म्मदंते आयुःकर्म्मधृतशरीरक्के बलाधानकारणत्वदिंदं शरीरस्थितिहेतुत्वमुंटप्पुदरिंदं। नामकर्म्मक्के औदारिकादिदेहं नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमा देहक्के युं नामकर्म्मदंते औदारिकादिदेहनिर्व्वर्त्तकत्वमुंटदे तें दोडे औदारिकादिदेहवर्गणेगळ्गे योगोत्पादकत्वमुंटप्पुदरिंदं तन्निमित्तकमप्पौदारिकादिदेहनिर्व्वर्त्तकत्वं सिद्धमप्पुदरिंदं॥ ५

गोत्रकर्म्मक्के युच्चनीचांगं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदक्के गोत्रकर्म्मदंते उच्चनीचकुलाविर्भावकत्वमुंटप्पुदरिंदं। अन्तरायकर्म्मक्के भाण्डागारिकं नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमवंगमंतरायकर्म्मदंते भोगोपभोगादिवस्तुगळगमन्तरायकरणत्वमुंटप्पुदरिंदं। तु मत्ते॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळ्गे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममं पेळ्दपरु :— १०

पडविसयपहुडिदव्वं मदिसुदवाघादकरणसंजुत्तं।
मदिसुदबोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु॥७०॥

पटविषयप्रभृति द्रव्यं मतिश्रुतव्याघातकरणसंयुक्तं। मतिश्रुतबोधयोः पुनर्नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म तु॥

पटप्रभृतिद्रव्यं विषयप्रभृतिद्रव्यमुं क्रमदिंदं मतिज्ञानव्याघातकरणसंयुक्तमुं श्रुतज्ञानव्याघातकरणसंयुक्तमप्पुदु कारणमागि मतिज्ञानावरणक्के पटप्रभृतिद्रव्यं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। श्रुतज्ञानावरणक्के विषयप्रभृतिद्रव्यं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। तु इति॥ १५

नीयस्य मद्यं सम्यग्दर्शनादिजीवगुणघातकत्वात्। आयुषः चतुर्विधाहारः धृतशरीरस्य बलाधानकारणत्वेन स्थितिहेतुत्वात्। नामकर्मण औदारिकादिदेहः योग्योत्पादकत्वेन औदारिकादिदेहनिवर्तकत्वात्। गोत्रस्य उच्चनीचाङ्गं उच्चनीचकुलाविर्भावकत्वात्। अन्तरायस्य भाण्डागारिकः भोगोपभोगादिवस्तूनामन्तरायकरणात्॥६९॥ तु-पुनः अनन्तरमुत्तरप्रकृतीनामाह— २०

पटप्रभृतिद्रव्यं मतिज्ञानस्य विषयप्रभृतिद्रव्यं श्रुतज्ञानस्य च व्याघातकरणसंयुक्तं तत्तदावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति तु-पुनः इति॥७०॥

नोकर्म मद्य है क्योंकि वह जीवके सम्यग्दर्शन आदि गुणोंका घातक है। आयुका नोकर्म चार प्रकारका आहार है क्योंकि वह धारण किये शरीरके बलाधानमें कारण होनेसे उसकी स्थितिमें निमित्त होता है। नामकर्मका नोकर्म औदारिक आदि शरीर है क्योंकि वह योगका उत्पादक होनेसे औदारिक आदि शरीरको उत्पन्न करता है। गोत्रकर्मका नोकर्म उच्च-नीच शरीर है क्योंकि वह उच्च और नीच कुलको प्रकट करता है। अन्तरायका नोकर्म भण्डारी है क्योंकि वह भोग-उपभोग आदिकी वस्तुओंमें विघ्न डालता है॥६९॥ २५

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें नोकर्म कहते हैं— ३०

मतिज्ञानमें बाधा डालनेवाले वस्त्र आदि द्रव्य मतिज्ञानावरणके नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। और श्रुतज्ञानमें बाधा डालनेवाले इन्द्रियोंके विषय आदि श्रुतज्ञानावरणके नोकर्म हैं॥७०॥

ओहिमणपज्जवाणं पडिघादणिमित्तसंकिलेसयरं ।
जं बज्झट्ठं तं खलु णोकम्मं केवले णत्थि ॥७१॥

अवधिमनःपर्य्ययोः प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकरो यो बाह्यार्थस्तत्खलु नोकर्म्म केवले नास्ति ॥

अवधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळगे प्रतिघातनिमित्तमप्प संक्लेशमं पुट्टिसुव यद्बाह्यं वस्तु आवुदो दुबाह्यवस्तु । तत् अदु । नोकर्म्म नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । केवलज्ञानावरणक्के नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममिल्लेकेंदोडे केवलज्ञानं क्षायिकमेयप्पुदरिंदं तत्प्रतिबंधकमप्प संक्लेशकारि बाह्यवस्तु विल्लप्पुदरिंदं । अवधिमनःपर्य्ययज्ञानंगळु क्षायोपशमिकंगळप्पुदरिंदं तत्प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकारिबाह्यवस्तुगळवधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणंगळंते व्याघातकारिगळोलवेंबुदु तात्पर्य्यं ॥

पंचण्हं णिद्दाणं माहिसदहिपहुडि होदि णोकम्मं ।
वाघादकरपडादी चक्खुअचक्खूणणोकम्मं ॥७२॥

पंचानां निद्राणां माहिषदधिप्रभृति भवति नोकर्म्म । व्याघातकरपटादिश्चक्षुरचक्षुषोर्न्नोकर्म्म ॥

पंचनिद्रादर्शनावरणंगळगे माहिषदधिप्रभृतिलशुनखलादिद्रव्यंगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । व्याघातहेतुगळप्प पटादिवस्तुगळु चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनावरणंगळगे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ॥

ओहीकेवलदंसणणोकम्मं ताण णाणभंगोव्व ।
सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि ॥७३॥

अवधिकेवलदर्शननोकर्म्म तयोर्ज्ञानभंगवत् । सातेतरनोकर्म्म इष्टानिष्टान्नपानादि ॥

अवधिमनःपर्ययोः प्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकरं यद्बाह्यं वस्तु तत् तदावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म स्यात् । केवलज्ञानावरणस्य नोकर्मद्रव्यकर्म नास्ति क्षायिकत्वेन तत्प्रतिबन्धकसंक्लेशकारिवस्तुनोऽसंभवात् । अवधिमनःपर्ययोः क्षायोपशमिकत्वात् तत् संभवतीत्यर्थः ॥७१॥

पञ्चनिद्रादर्शनावरणानां माहिषदधिलशुनखलादिद्रव्याणि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । व्याघातहेतुपटादिवस्तूनि चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणयोर्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति ॥७२॥

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके प्रतिघातमें निमित्त संक्लेशपरिणामोंको करनेवाली जो बाह्यवस्तु है वह अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। केवलज्ञानावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म नहीं है क्योंकि वह क्षायिक है अतः उसके प्रतिबन्धक संक्लेशपरिणामोंको करनेवाली वस्तु सम्भव नहीं है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान क्षायोपशमिक हैं इसलिए उनमें होना सम्भव है ॥७१॥

पाँच निद्रादर्शनावरणोंका भैंसका दही, लहसुन, खल आदि निद्रा लानेवाले द्रव्य नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शनावरणका नोकर्म चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें व्याघात डालनेवाले परदा आदि होते हैं ॥७२॥

अवधिदर्शनावरणक्के अवधिज्ञानावरणक्के पेळ्दंते नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमदेतेंदोडे अवधिदर्शनप्रतिघातनिमित्तसंक्लेशकारियप्पुदाउदानुमोंदु बाह्यार्थमदवधिदर्शनावरणक्के नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमा बाह्यार्थमुमवधिदर्शनावरणदंते अवधिदर्शनप्रतिघातहेतुमप्पुदरिंदं केवलदर्शनावरणक्के केवलज्ञानावरणक्के पेळ्दंते नोकर्म्ममुमिल्ल। कारणमुं मुंपेळ्दुदेयक्कुं। सातेतरनोकर्म्म सातवेदनीयक्के इष्टान्नपानादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमसातवेदनीयक्के अनिष्टमप्पन्नपानादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ॥

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य हवदि णोकम्मं ।
उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेण ॥७४॥

आयतनानायतनं सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे च भवति नोकर्म्म। उभयं सम्यग्मिथ्यात्वे नोकर्म्म भवति नियमेन ॥

सम्यक्त्वक्के सम्यक्त्वप्रकृतिगे आयतनं आप्तनुमाप्तालयमुं। आगममुमागमधरनुं। तपमुं तपोधरनुमेंब षडायतनं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। सम्यक्त्वप्रकृतियंते सम्यग्दर्शनविघातकारिगळल्लप्पुदरिंदं। सम्यक्त्वभावक्के चलमलिनावगाढ हेतुगळप्पुदरिंदमुं। अनाप्तनुमनाप्तालयमुं कुश्रुतमुं कुश्रुतधरनुं मिथ्यातपमुं मिथ्यातपस्वियुमेंब षडनायतनंगळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं। मिथ्यात्वकर्म्मदंतिवक्कं सम्यक्त्वप्रकृतिघातकत्वमुंटप्पुदरिंदं। सम्यग्दृष्टिगे अनायतनंगळु सम्यक्त्वप्रकृतिघातकंगळल्तु। सम्यक्त्वातिचारकारणंगळप्पुवु एकेंदोडे मिथ्यात्वकर्म्मोदयमिल्लप्पुदरिंदं। मिथ्यात्वकर्म्मक्के नोकर्म्मंगळनायतनंगळप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्टिगळगे अनायतनंगळु गाढमिथ्यापरिणामक्के कारणंगळेंबुदर्थं। नियमशब्दमवधारणार्थमक्कुं।

अवधिदर्शनावरणस्य केवलदर्शनावरणस्य च नोकर्मद्रव्यकर्म तज्ज्ञानोक्तभङ्गवत् भवति। सातवेदनीयस्य इष्टान्नपानादयः असातवेदनीयस्यानिष्टान्नपानादयः ॥७३॥

सम्यक्त्वप्रकृतौ आयतनानि आप्ततदालयागमतद्धरतपस्तद्धरारूयानि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। सम्यक्त्वस्य चलमलिनावगाढहेतुत्वात्। मिथ्यात्वप्रकृतेः मिथ्यात्वतदालयश्रुततद्धरतपस्तपस्विनो नोकर्मद्रव्यकर्म भवति सम्यक्त्वस्य घातकत्वात्। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतावुभयं आयतनानायतनद्वयं संयुक्तमेव नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। अत्र नियमशब्दोऽवधारणार्थः ॥७४॥

अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरणका नोकर्म द्रव्यकर्म अवधिज्ञान और केवलज्ञानकी तरह जानना। सातवेदनीयका नोकर्म रुचिकर भोजनादि और असातवेदनीयका नोकर्म अरुचिकर खानपान जानना ॥७३॥

सम्यक्त्व प्रकृतिमें जिन, जिनमन्दिर, जिनागम, जिनागमके धारी, तप तथा तपके धारी ये छह आयतन नोकर्म द्रव्यकर्म होते हैं क्योंकि ये सम्यक्त्वके चल, मलिन और अवगाढ़ होनेमें निमित्त होते हैं। मिथ्यात्व प्रकृतिके मिथ्यादेव, उनका मन्दिर, मिथ्याशास्त्र, मिथ्याशास्त्रोंके धारी, मिथ्यातप, मिथ्यातपस्वी ये नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। क्योंकि ये सम्यग्दर्शनके घातक हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें आयतन और अनायतन दोनों मिलकर ही नोकर्म द्रव्यकर्म हैं। यहाँ नियमका अर्थ अवधारण है। अर्थात् ये नियमसे इनके नोकर्म होते हैं ॥७४॥

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादो दु होदि सेसाणं ।
सगसगजोग्गं सत्थं सहायपहुदी हवे णियमा ॥७५॥

अनंतानुबंधिनोकर्म्म मिथ्यात्वायतनादि तु भवति नोकर्म्म शेषाणां । स्वस्वयोग्यं शास्त्रं सहायप्रभृति भवेन्नियमात् ॥

अनंतानुबंधिकषायंगळ्गे मिथ्यायतनादिषडनायतनंगळुमादियादुउ नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममुमक्कु । तु मत्ते । शेषाप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनकषायंगळ्गे देशव्रत सकलसंयम यथाख्यातचारित्रंगळ निवारकत्वदोळु स्वस्वयोग्यंगळप्प काव्यनाटककोकादि ग्रंथंगळुं विटजनादिगळ सहायमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळिनियमदिंदप्पुउ ।

थीपुंमंढसरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु ।
वेलंबको सुपुत्तो हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥७६॥

स्त्रीपुंनपुंसकशरीरं तेषां नोकर्म्म द्रव्यकर्म तु । विडंबकः सुपुत्रो हास्यरत्योश्च नोकर्म्म ॥

स्त्रीवेदनोकषायक्के स्त्रीशरीरमुं पुरुषशरीरमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । पुंवेदनोकषायक्के पुरुषशरीरमुं स्त्रीशरीरमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । नपुंसकवेदनोकषायक्के स्त्रीशरीरमुं पुरुषशरीरमुं नपुंसकशरीरमुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । हास्यनोकषायक्के विडंबकनप्प बहुरूपिप्रहसनपात्रंगळुं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । रतिनोकषायक्के सुपुत्रं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

इट्ठाणिट्ठवियोगं जोगं अरदिस्स मुदसुपुत्तादी ।
सोगस्स य सिंहादी णिंदिददव्वं च भयजुगले ॥७७॥

इष्टानिष्टवियोगो योगोऽरतेर्मृतसुपुत्रादिः । शोकस्य च सिंहादिर्निन्दितद्रव्यं च भययुगळे ॥

अरतेः अरतिनोकषायक्के इष्टवियोगमुमनिष्टसंयोगमु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । शोकनोकषायक्के मृतसुपुत्रादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । भयनोकषायक्के सिंहादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । जुगुप्सानोकषायक्के निंदितद्रव्यादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

अनन्तानुबन्धिनां मिथ्यात्वायतनादिनोकर्मद्रव्यकर्म भवति । तु–पुनः शेषद्वादशकषायाणां देशसकलयथाख्यातचारित्रघातककाव्यनाटककोकादिग्रन्थाः विटजनादिसहायश्च नियमेन ॥७५॥

स्त्रीपुंवेदयोः स्त्रीपुंशरीरे नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । नपुंसकवेदस्य तद्द्वयं नपुंसकशरीरं च । हास्यस्य विडम्बकभूतबहुरूपिप्रहसनपात्राणि । रतेः सुपुत्रः ॥७६॥

अरतेः इष्टवियोगोऽनिष्टसंयोगश्च । शोकस्य मृतसुपुत्रादयः । भयस्य सिंहादयः । जुगुप्साया निन्दितद्रव्यादयः ॥७७॥

अनन्तानुबन्धी कषायोंका मिथ्या आयतन आदि नोकर्म द्रव्यकर्म है । शेष बारह कषायोंका देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यात चारित्रके घातक काव्य, नाटक, कोकशास्त्र आदि ग्रन्थ और सहायक विट्पुरुष आदि नियमसे नोकर्म द्रव्यकर्म होते हैं ॥७५॥

स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें स्त्री और पुरुषका शरीर नोकर्म द्रव्यकर्म होता है । नपुंसक वेदका नोकर्म स्त्री-पुरुष और नपुंसकका शरीर होता है । हास्यका नोकर्म विचित्र वेषधारी बहुरुपिया तथा हँसानेवाले पात्र होते हैं । रतिका नोकर्म सुपुत्र है ॥७६॥

अरतिका नोकर्म इष्टवियोग अनिष्टसंयोग है । शोकका नोकर्म सुपुत्र आदिका मरण है । भयका नोकर्म सिंह आदि है । जुगुप्साका नोकर्म घृणा योग्य वस्तु है ॥७७॥

णिरयाउस्सअणिट्ठाहारो सेसाणमिट्ठमण्णादी ।
गदिणोकम्मं दव्वं चउग्गदीणं हवे खेत्तं ॥७८॥

नरकायुषोऽनिष्टाहारः शेषाणामिष्टान्नादिः । गतिनोकर्म्म द्रव्यं चतुर्गतीनां भवेत्क्षेत्रं ॥

नरकायुष्यक्के अनिष्टाहारं नरकगतिय विषमृत्तिकेये नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं । शेष तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळ्गे इष्टान्नादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळप्पुवु ।

नारकादिशरीरस्थितिकारणंगळप्पुदरिंदं । सामान्यगतिनामकर्म्मक्के चतुर्गतिगळ क्षेत्रमात्रं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा ।
जाईए णोकम्मं दव्विंदियपोग्गलं होदि ॥७९॥

नरकादीनां गतीनां नरकादिक्षेत्रं भवेन्नियमात् । जातेर्नोकर्म्म द्रव्येंद्रियपुद्गलो भवति ॥

नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळ्गे तंतम्म नरकगति तिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिक्षेत्रं नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म नियमदिंदमक्कुं । नरकगत्यादिचतुर्गतिनामकर्म्मंगळुदयंगळ्नारकादिपर्य्यायंगळ्गे निमित्तमक्कुमादोडा तत्तत्पर्य्यायंगळन्यक्षेत्रंगळोळिल्लप्पुदरिंदं तंतम्म गतिक्षेत्रंगळेयागल्वेळ्कुमप्पुदरिंदं । नियमशब्दमवधारणार्थमक्कुं । जातिनामकर्म्मक्के द्रव्येंद्रियपुद्गलं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

एइंदियमादीणं सगसगदव्विंदियाणि णोकम्मं ।
देहस्स य णोकम्मं देहुदयजदेहखंदाणि ॥८०॥

एकेंद्रियादीनां स्वस्वद्रव्येंद्रियाणि नोकर्म्म । देहस्य च नोकर्म्म देहोदयजदेहस्कंधाः ॥

नरकायुषोऽनिष्टाहारः तद्विषमृत्तिका नोकर्मद्रव्यकर्म । शेषायुषामिष्टान्नादयः नारकादिशरीरस्थितिकारणत्वात् । सामान्यगतेः चतुर्गतिक्षेत्रमात्रम् ॥७८॥

नारकादिगतीनां स्वस्वनरकादिगतिक्षेत्रं नोकर्मद्रव्यकर्म नियमेन भवति । गत्युदयानां नारकादिपर्यायनिमित्तत्वेऽपि तत्पर्यायाणामन्यत्राभावात् । तत्क्षेत्रेणैव भाव्यमित्यवधारणार्थो नियमशब्दः । जातिनाम्नः द्रव्येन्द्रियपुद्गलः ॥७९॥

अनिष्ट आहार वहाँकी विषतुल्य मिट्टी नरकायुका नोकर्म द्रव्यकर्म है। शेष आयुओंका इष्ट अन्नादि नोकर्म है क्योंकि वह नारक आदिके शरीरकी स्थितिमें निमित्त होता है। सामान्य गतिनाम कर्मका नोकर्म चारों गतियोंका क्षेत्र है ॥७८॥

नारक आदि गतियोंका अपना-अपना नरकादिका क्षेत्र नोकर्म द्रव्यकर्म होता है। यद्यपि गतियोंका उदय नारक आदि पर्यायोंमें निमित्त है तथापि वे पर्याय अन्यत्र नहीं होतीं, इसलिए उनका नोकर्म उन-उनका क्षेत्र ही होना चाहिए इसके लिए नियम शब्द गाथामें दिया है। जातिनामका नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल हैं ॥७९॥

एकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियजातिनामकर्म्मंगळगे तंतम्म द्रव्येंद्रियंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्मंगळप्पुवु। शरीरनामकर्म्मंक्के शरीरनामकर्म्मोदयजनितदेहस्कंधमे नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं।

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं।
ताणुदयजचउदेहा कम्मे विस्संचयं णियमा ॥८१॥

औदारिकवैक्रियिकाहारक तैजसकर्म्मणां नोकर्म्म तेषामुदयजचतुर्देहाः कार्म्मणे विस्रसोपचयो नियमात् ॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्म्मंगळगे तेषां तंतम्म उदयजनितचतुर्देहाः उदयसंजनितचतुर्देहंगळु यथासंख्यमागि तंतम्मौदारिकादिशरीरवर्गणेगळु तंतम्म नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळप्पुवु। कार्म्मणशरीरनामकर्म्मंक्के विस्रसोपचयं नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं।

बंधणपहुदिसमण्णियसेसाणं देहमेव णोकम्मं।
णवरि विसेसं जाणे सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥८२॥

बंधनप्रभृतिसमन्वितशेषाणां देह एव नोकर्म्म। नवीनं विशेषं जानीहि स्वक्षेत्रमानुपूर्व्याणां ॥

बंधनप्रभृतिपुद्गलविपाकिगळसमन्वितशेषजीवविपाकिगळगे देहमे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुमेकेंदोडे तत्तत्क्रियमाणपुद्गलरूपक्कंयुं जीवभावक्कंयुं सुखादिगळप्प कार्य्यक्कं शरीरवर्गणेगळुपादाननिमित्तत्व प्रसिद्धत्ववर्त्तणिदं। क्षेत्रविपाकिगळप्पानुपूर्व्यंगळगे तंतम्मक्षेत्रमे नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमेंबी पोसतप्प विशेषमं नीनरि शिष्य यें दु संबोधिसल्पट्टुदु।

एकेन्द्रियादिपञ्चजातीनां स्वस्वद्रव्येन्द्रियाणि नोकर्मद्रव्यकर्म। शरीरनाम्नः स्वोदयजदेहस्कन्धः नोकर्मद्रव्यकर्म ॥८०॥

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मणां उदयजतत्तच्छरीरवर्गणाः तत्तन्नोकर्मद्रव्यकर्म भवति। कार्मणस्य विस्रसोपचय एव ॥८१॥

बन्धनप्रभृतिपुद्गलविपाकिसमन्वितशेषजीवविपाकिनां देह एव नोकर्मद्रव्यकर्म। तत्तत्क्रियमाणस्य पुद्गलरूपस्य[1] जीवभावस्य सुखादिरूपस्य कार्यस्य शरीरवर्गणानामेवोपादाननिमित्तत्वप्रसिद्धेः। क्षेत्रविपाक्यानुपूर्व्याणां स्वस्वक्षेत्रमेव नोकर्मद्रव्यकर्मेति नवीनं विशेषं जानीहि ॥८२॥

एकेन्द्रिय आदि पाँच जातियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रियाँ हैं। शरीरनामके नोकर्म द्रव्यकर्म अपने-अपने उदयसे बने शरीररूप स्कन्ध हैं ॥८०॥

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस शरीर नामकर्मोंका अपने-अपने उदयसे प्राप्त हुई उस-उस शरीर सम्बन्धी वर्गणा अपना-अपना नोकर्म द्रव्यकर्म होता है। कार्मणका नोकर्म विस्रसोपचय ही है ॥८१॥

बन्धनसे लेकर पुद्गलविपाकी प्रकृतियों सहित शेष रही जीवविपाकी प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म शरीर ही है। क्योंकि उनके द्वारा किया गया पुद्गलरूप भाव और जीवभाव तथा सुखादि रूप कार्यका उपादान कारण शरीर सम्बन्धी वर्गणा ही है किन्तु क्षेत्रविपाकी आनुपूर्वीनामकर्मोंका अपना-अपना क्षेत्र ही नोकर्म द्रव्यकर्म है इतना विशेष जानना ॥८२॥

---

१. आ. पुद्गलजीव°।

थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुधिरादीणि सुहजुगस्स सुहं ।
असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्गलाणि सरे ॥८३॥

स्थिरयुग्मस्य स्थिरास्थिररसरुधिरादीनि शुभयुगस्य शुभं । अशुभं देहावयवं स्वरपरिणत-पुद्गलाः स्वरे ॥

स्थिरनामकर्म्मक्के स्थिररसरुधिरादिगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं । अस्थिरनामकर्म्मक्के अस्थिररसरुधिरादिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममक्कुं । शुभनामकर्म्मक्के शुभमप्प शरीरावयवंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमशुभनामकर्म्मक्के अशुभमप्प शरीरावयवंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कु । स्वरनामकर्म्मक्के सुस्वरदुःस्वरपरिणतपुद्गलंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं ।

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं णीचस्स होदि णोकम्मं ।
दाणादिचउक्काणं विग्घगणगपुरिसपहुदी हु ॥८४॥

उच्चस्योच्चो देहो नीचो नीचस्य भवति नोकर्म्म । दानादिचतुर्णां विघ्नकनगपुरुषप्रभृतयः खलु ॥

उच्चैर्गोत्रकर्म्मक्के उच्चदेहमे लोकपूजितकुलोत्पन्नदेहमे नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं । नीचै-र्गोत्रकर्म्मक्के नीचकुलोत्पन्नदेहमे नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुं । दानलाभभोगोपभोगांतरायकर्म्म चतुष्टयक्के विघ्नकरपर्व्वतनदीपुरुषप्रभृतिगळु नोकर्म्मद्रव्यकर्म्ममप्पुवु । खलु स्फुटमागि ।

वीरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं ।
इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु ॥८५॥

वीरियस्य च नोकर्म्म रूक्षाहारादिबलहरं द्रव्यं । इत्युत्तरप्रकृतीनां नोकर्म्म द्रव्यकर्म्म तु ॥

तु मत्ते वीर्य्यांतरायकर्म्मक्के रूक्षाहारपानद्रव्यंगळु नोकर्म्म द्रव्यकर्म्ममक्कुमिन्तुत्तरप्रकृति-गळगे नोकर्म्मद्रव्यकर्म्मंगळु पेळल्पट्टुवु ॥

स्थिरस्य स्थिररसरुधिरादयो नोकर्मद्रव्यकर्म । अस्थिरस्य अस्थिररसरुधिरादयः । शुभस्य शुभ-शरीरावयवाः । अशुभस्य अशुभशरीरावयवाः । स्वरस्य सुस्वरदुःस्वरपरिणतपुद्गलाः ॥८३॥

उच्चैर्गोत्रस्य उच्चो—लोकपूजितकुलोत्पन्नो देहः नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । नीचैर्गोत्रस्य नीचकुलोत्पन्नो देहः । दानादिचतुरन्तरायाणां विघ्नकरपर्वतनदीपुरुषप्रभृतयः । खलु स्फुटम् ॥८४॥

तु—पुनः वीर्यान्तरायस्य रूक्षाहारपानद्रव्याणि नोकर्मद्रव्यकर्म भवति । एवमुत्तरप्रकृतीनां नोकर्म-द्रव्यकर्मोक्तम् ॥८५॥

स्थिरका स्थिर रस रुधिरादि नोकर्म द्रव्यकर्म है । अस्थिरका अस्थिर रसरुधिरादि नोकर्म द्रव्यकर्म है । शुभका शरीरके शुभ अवयव और अशुभका शरीरके अशुभ अवयव तथा स्वरका सुस्वर रूप परिणत पुद्गल द्रव्यकर्म नोकर्म है ॥८३॥

उच्चगोत्रका उच्च लोकपूजित कुलमें उत्पन्न शरीर और नीचगोत्रका नीचकुलमें उत्पन्न हुआ शरीर नोकर्म द्रव्यकर्म है । दानान्तराय आदि चार अन्तरायोंका विघ्न करनेवाले पर्वत, नदी, पुरुष वगैरह द्रव्यकर्म है ॥८४॥

वीर्यान्तरायका नोकर्म रूखा खानपान आदि बलहारी द्रव्य नोकर्म द्रव्यकर्म है । इस प्रकार उत्तर प्रकृतियोंका नोकर्म द्रव्यकर्म कहा ॥८५॥

णोआगमभाओ पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो ।
पोग्गलविवाइयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो ॥८६॥

नोआगमभावः पुनः स्वस्वकर्म्मफलसंयुतो जीवः । पुद्गलविपाकिनां नास्ति खलु नोआगमो भावः ॥

नोआगमभावमुं मत्तें तंतम्म कर्म्मफलसंयुतनप्प जीवनेयक्कुं । पुद्गलविपाकिगळ्गे नोआगमभावमिल्लेकेंदोडे पुद्गलविपाकिगळुदयदोळु साक्षात्सुखादिगळनुत्पत्तियेयक्कुमल्लिमोंदु विशेषमुंटदाउदेंदोडे जीवविपाकिगळ सहायत्वदिंदं सुखाद्युत्पादकत्वमुंटेंबिदु । पुद्गलविपाकिनाम-कर्मोदयदोळु देहवर्ग्गणेगळुपादानमक्कुं । सुखदुःखंगळ्गे तद्वर्गणानिमित्त जीवविपाकियक्कुं ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्र-वर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचितगोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्व-प्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांड प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं प्रथमाधिकारं व्याख्यातमादुदु ॥

नोआगमभावः पुनः स्वस्वकर्मफलसंयुक्तजीवो भवति । पुद्गलविपाकिनां खलु नोआगमभावकर्म नास्ति तदुदयजीवविपाकि सहायं विना साक्षात्सुखाद्यनुत्पत्तेः ॥८६॥

इत्याचार्यनेमिचन्द्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वदीपिकाख्यायां कर्मकाण्डे प्रकृतिसमुत्कीर्तननाम प्रथमोऽधिकारः ॥१॥

अपने-अपने फलको भोगता हुआ जीव उन-उन प्रकृतियोंका नोआगमभाव कर्म है । पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंका नोआगमभाव कर्म नहीं होता क्योंकि उनका उदय होते हुए जीवविपाकी प्रकृतियोंकी सहायता बिना साक्षात् सुखादि नहीं होते ॥८६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत प्रकृति समुत्कीर्तन नामक पहला अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

बन्धोदयसत्वाधिकार ॥ २ ॥

णमिऊण णेमिचंदं असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं ओघादेसे थयं वोच्छं ॥८७॥

नत्वा नेमिचंद्रं असहायपराक्रमं महावीरं । बंधोदयसत्त्वयुक्तं ओघादेशे स्तवं वक्ष्यामि ॥

वक्ष्यामि वदिष्ये करिष्ये वा । कं स्तवं सकलांगार्त्थविषयं शास्त्रं । कथंभूतं बंधोदयसत्त्वयुक्तं बंधोदयसत्त्वप्रतिपादकं तस्मिन् । ओघादेशे गुणस्थानमार्गणास्थाने । किं कृत्वा नत्वा नमस्कृत्य । कं नेमिचंद्रं नेमितीर्थंकरपरमदेवं । कथंभूतं महावीरं वंदारुवृंदस्याभिलषितार्थप्रदायकं । भूयः किंभूतं असहायपराक्रमं न विद्यते सहायो यस्यासावसहायः । असहायः पराक्रमो यस्यासावसहायपराक्रमस्तमिति ॥

कर्म्मवैरिबलमं गेलुवेडेयोळु सहायनिरपेक्षमप्प अभेदरत्नत्रयात्मकात्मस्वरूपभावनास्वसामर्थ्यरूपपराक्रममनुळ्ळ वंदारुवृंदसमभिलषितार्थप्रदायकत्वदिंदं महावीरनप्प नेमितीर्थंकरपरमदेवनं नमस्करिसि बंधोदयसत्वप्रतिपादकमप्प स्तवमं सकलांगार्त्थविषयशास्त्रमं पेळ्वं नेबुदाचार्य्यन प्रतिज्ञेयक्कुमल्लि । स्तवमेंबुदें तेंदोडे पेळ्दपरु :—

सयलंगेक्कंगेक्कंगहियार सवित्थरं ससंखेवं ।
वण्णणसत्थं थयथुइ धम्मकहा होइ णियमेण ॥८८॥

सकलांगैकांगैकांगाधिकार सविस्तरं ससंक्षेपं वर्णनशास्त्रं स्तवः स्तुतिर्द्धर्म्मकथा भवति नियमेन ॥

वक्ष्यामि वदिष्ये करिष्ये वा । कं ? स्तवं सकलाङ्गार्थविषयशास्त्रम् । कथंभूतम् ? बन्ध्योदयसत्त्वयुक्तं—बन्धोदयसत्त्वप्रतिपादकम् । कस्मिन् ? ओघादेशे—गुणस्थानमार्गणास्थाने । किं कृत्वा ? नत्वा—नमस्कृत्य । कं ? नेमिचन्द्रं—नेमितीर्थंकरपरमदेवं । कथंभूतम् ? महावीरं—वन्दारुवृन्दस्य अभिलषितार्थप्रदायकम् । भूयः किंभूतम् ? असहायपराक्रमं—न विद्यते सहायो यस्यासावसहायः । असहायः पराक्रमो यस्यासावसहायपराक्रमस्तमिति कर्मवैरिबलजये सहायनिरपेक्षाभेदरत्नत्रयात्मकस्वरूपभावनास्वसामर्थ्यरूपपराक्रमम् । वन्दारुवृन्दसमभिलाषितार्थप्रदायकत्वेन महावीरं नेमितीर्थङ्करपरमदेवं नत्वा बन्ध्योदयसत्त्वप्रतिपादकस्तवं वक्ष्यामीत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥८७॥ स्तवः कः इति चेदाह—

जो अन्य सहायताकी अपेक्षा न करके अभेदरत्नत्रयात्मक आत्मस्वरूपकी भावनारूप सामर्थ्यके द्वारा अपने पराक्रमसे कर्मशत्रुकी सेनापर विजय प्राप्त करते हैं और वन्दना करनेवालोंके समूहको इच्छित अर्थ प्रदान करनेके कारण महावीर हैं, उन नेमिनाथ तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें बन्ध उदय और सत्त्वका कथन करनेवाले स्तवको कहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा आचार्य करते हैं ॥८७॥

स्तवका स्वरूप कहते हैं—

सकलांगात्थं सविस्तर ससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तवं । एकांगात्थं सविस्तर ससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तुतिः । एकांगाधिकारात्थंसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं वस्त्वनुयोगादि धर्म्मंकथेयुमक्कुं नियमदिंदं ॥

अनंतरं बंधं चतुर्व्विधमेंदु पेळ्दपरु :—

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधोत्ति चदुविहो बंधो ।
उक्कस्समणुक्कस्सं जहण्णमजहण्णगंति पुधं ॥८९॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंध इति चतुर्व्विधो बंधः । उत्कृष्टानुत्कृष्टो जघन्योऽजघन्य इति पृथक् ॥

प्रकृतिबंधमेंदुं स्थितिबंधमेंदुमनुभागबंधमेंदुं प्रदेशबंधमुमेंदु बंध चतुर्विधमक्कुमल्लि पृथक् प्रत्येकमुत्कृष्टमुमनुत्कृष्टमुमेंदुं जघन्यमुमजघन्यमुमेंदुमितु चतुर्व्विधमक्कु ॥

अनंतरं उत्कृष्टादिगळु प्रत्येकं चतुर्व्विधंगळेंदु पेळ्दपरु :—

सादिअणादी धुवअद्धुवो य बंधो दु जेट्ठमादीसु ।
णाणेगं जीवं पडि ओघादेसे जहाजोग्गं ॥९०॥

सादिरनादिध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तूत्कृष्टादिषु । नानैकं जीवं प्रति ओघादेशे यथायोग्यं ॥

सादिबंधमेंदुमनादिबंधमेंदुं ध्रुवबंधमेंदुमध्रुवबंधमुमेंदितु । तु मत्ते उत्कृष्टादिबंधंगळोळु नानाजीवमुमेकजीवमुमं कुरु त्तु गुणस्थानदोळं मार्ग्गणास्थानदोळं यथायोग्यमागि साद्यनादि

सकलाङ्गार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तवः । एकाङ्गार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं स्तुतिः । एकाङ्गाधिकारार्थसविस्तरससंक्षेपविषयशास्त्रं वस्त्वनुयोगादिधर्मकथा च भवति नियमेन ॥८८॥ अथ बन्धभेदानाह—

प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्धः अनुभागबन्धः प्रदेशबन्धश्चेति बन्धश्चतुर्विधः । स चतुर्विधोऽपि पृथक् प्रत्येक उत्कृष्टोऽनुत्कृष्टो जघन्योऽजघन्यश्चेति चतुर्विधः ॥८९॥ तानुत्कृष्टादीनपि भिनत्ति—

तेषु उत्कृष्टादिबन्धेषु तु पुनः सादिबन्धोऽनादिबन्धो ध्रुवबन्धोऽध्रुवबन्धश्च नानाजीवमेकजीवं च

समस्त अंगसहित अर्थका विस्तार या संक्षेपसे जिसमें वर्णन होता है उस शास्त्रको स्तव कहते हैं। एक अंगसहित अर्थका जिसमें विस्तार या संक्षेपसे कथन होता है उस शास्त्रको स्तुति कहते हैं। एक अंगके अधिकार सहित अर्थका संक्षेप या विस्तारसे वर्णन करनेवाला शास्त्र जिसमें प्रथमानुयोगसम्बन्धी वस्तु रहती है वह नियमसे धर्मकथा है। सो इसमें बन्ध उदय सत्त्वरूप अर्थका कथन समस्त अंग सहित यथायोग्य विस्तार और संक्षेपसे कहा जायेगा अतः यह शास्त्र स्तव नामसे कहा गया है ॥८८॥

बन्धके भेद कहते हैं—

बन्धके चार भेद हैं—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। उन चारोंके भी जुदे-जुदे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य चार भेद हैं ॥८९॥

उन उत्कृष्ट आदिके भी भेद कहते हैं—

उन उत्कृष्ट आदि बन्धोंमें पुनः सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध, नाना

ध्रुवाध्रुवबंधमुमक्कुं प्र । स्थि । अ । प्र ।
उ ४ । उ ४ । उ ४ । उ ४
अ ४ । अ ४ । अ ४ । अ ४
अ ४ । अ ४ । अ ४ । अ ४
ज ४ । ज ४ । ज ४ । ज ४

ठिदिअणुभागपदेसा गुणपडिवण्णेसु जेसिमुक्कस्सा ।
तेसिमणुक्कस्सो चउव्विहोऽजहण्णो वि एमेव ॥९१॥

स्थित्यनुभागप्रदेशा गुणप्रतिपन्नेषु एषामुत्कृष्टाः । तेषामनुत्कृष्टश्चतुर्व्विधोऽजघन्योप्येवमेव ॥

स्थित्यनुभागप्रदेशंगळु गुणप्रतिपन्न मिथ्यादृष्टि सासादनाद्युपरितनोपरितनगुणस्थानवर्त्ति- ५
गळोळु । एषां कर्म्मणां आउ केलवु कर्म्मंगळगे उत्कृष्टंगळु । तेषामेव कर्म्मणां आकर्म्मंगळगये अनुत्कृष्टस्थित्यनुभागप्रदेशमक्कुमदु चतुर्व्विधः साद्यनादिध्रुवाध्रुवचतुर्व्विधबंधमक्कुमा जघन्यमु-मिन्ते चतुर्विधः चतुर्व्विधबंधमक्कुमी साद्यनादिध्रुवाध्रुवबंधलक्षणमुमं मुंदे पेळ्दपरादोडमिल्लि-युदाहरणमात्रं किरिदु तोरल्पट्टप्पुददंते दोडे उपशमश्रेण्यारोहकसूक्ष्मसांपरायनुच्चैर्ग्गोत्रानुभागमनु-त्कृष्टमं कट्टियुपशांतकषायनागि मत्तमवरोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि तदनुभागमननुत्कृष्टमं १०
कट्टुगुमागळदक्के सादित्वमा सूक्ष्मसांपरायन चरमदर्तणिदं केळगे अदक्कनादित्वं अभव्यनोळु ध्रुवत्वमागळोम्मेयनुत्कृष्टमं माण्डु उत्कृष्टमं कट्टुगुमागळवक्कध्रुवत्वमितु । अजघन्योप्येवमेव चतुर्व्विधः अजघन्यमुमिन्ते चतुर्व्विधमक्कुमदंते दोडे सप्तमपृथ्वियोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखं

प्रतीत्य गुणस्थाने मार्गणास्थाने च यथायोग्यं भवति ॥९०॥

स्थित्यनुभागप्रदेशाः गुणप्रतिपन्नेषु मिथ्यादृष्टिसासादनाद्युपरितनोपरितनगुणस्थानवर्तिषु येषां कर्मणा- १५
मुत्कृष्टस्तेषामेव कर्मणामनुत्कृष्टः स्थित्यनुभागप्रदेशः साद्यादिभेदाच्चतुर्विधो भवति । अजघन्योऽप्येवं चतुर्विधः । तेषां लक्षणमग्रे वक्ष्यति । तथाप्यत्रोदाहरणमात्रं किञ्चित् प्रदर्श्यते । तद्यथा—उपशमश्रेण्यारोहकः सूक्ष्म-साम्परायः उच्चैर्गोत्रानुभागमुत्कृष्टं बद्ध्वा उपशान्तकषायो जातः । पुनरवरोहणे सूक्ष्मसाम्परायो भूत्वा तदनु-भागमनुत्कृष्टं बध्नाति । तदाऽस्य सादित्वं तत्सूक्ष्मसाम्परायचरमादधोऽनादित्वम् । अभव्ये ध्रुवत्वम् । यदा-ऽनुत्कृष्टं त्यक्त्वा उत्कृष्टं बध्नाति तदा अध्रुवत्वमिति । अजघन्योऽप्येवमेव चतुर्विधः । तद्यथा—सप्तमपृथिव्यां २०

जीव और एक जीवकी अपेक्षा गुणस्थान और मार्गणास्थानमें यथायोग्य होते हैं ॥९०॥

गुणप्रतिपन्न अर्थात् मिथ्यादृष्टि सासादन आदि ऊपर-ऊपरके गुणस्थानवर्ती जीवोंमें जिन कर्मोंका स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, प्रदेशबन्ध उत्कृष्ट होता है उन्ही कर्मोंका अनुत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशबन्ध सादि-आदिके भेदसे चार प्रकार का होता है, अजघन्यमें भी इसी प्रकार चार भेद होते हैं । उनका लक्षण आगे कहेंगे तथापि यहाँ उदाहरणरूपसे कुछ २५
कहते हैं—उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेवाला सूक्ष्मसाम्पराय उच्चगोत्रका उत्कृष्ट अनुभाग-बन्ध करके उपशान्तकषायगुणस्थानमें गया । पुनः उतरनेपर सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवाला होकर वह उसका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध करता है तब वह बन्ध सादि होता है । क्योंकि अनुत्कृष्ट उच्चगोत्र अनुभागबन्धका अभाव होकर सद्भाव हुआ है । उस सूक्ष्मसाम्पराय गुण-स्थानसे नीचेके गुणस्थानवर्ती जीवोंके वह बन्ध अनादि है । अभव्यके ध्रुव बन्ध हैं । किन्तु ३०
भव्य जीव जब अनुत्कृष्टको छोड़कर उत्कृष्ट बन्ध करता है तब अध्रुव है । अजघन्यमें भी इसी प्रकार चार भेद होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

मिथ्यादृष्टिचरमसमयदोळु नीचैर्गोत्रानुभागमं जघन्यमं कट्टि सम्यग्दृष्टियागि मिथ्यात्वोदयदिदं मिथ्यादृष्टियागि तदनुभागमनजघन्यमं कट्टुगुमागळदक्के सादित्वं द्विचरमादिसमयंगळोळदक्कनादित्वमी प्रकारदिदं चतुर्व्विधत्वं यथासंभवं तोरल्पडुवुदु। प्रकृतिबंधक्कुत्कृष्टानुत्कृष्टमजघन्यजघन्यंगळिल्ल—

स्थिति। उ १। अनु। अज। ज १। अनुभाग। उ १। अनु। अज। ज १। प्रदे। उ १। अनु। अज। ज १
∧०००० | ०००० ∧ | □ | ०००० | ०००० | □ | स ३२। ०००० | ०००० स।

अनंतरं प्रकृतिबंधक्के गुणस्थानंगळोळु नियममं पेळ्दपरु :—

सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु।
मिस्सूणे आउस्स य मिच्छादिसु सेसबंधो दु ॥९२॥

सम्यग्दृष्टावेव तीर्त्थबंधः आहारद्वयं प्रमादरहितेषु। मिश्रोने आयुषश्च मिथ्यादिषु शेषबंधस्तु ॥

सम्यग्दृष्टिगळोले तीर्त्थबंधमक्कुं। आहारकाहारकांगोपांगद्वयं प्रमादरहितरोळेयक्कुं। प्रमत्तावसानमाद गुणस्थानषट्कदोळाहारद्वयबंधमिल्लेंबुदर्थं। मिश्रगुणस्थानमं मिश्रकाययोगमुमं

प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिश्चरमसमये नीचैर्गोत्रानुभागं जघन्यं बध्वा सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा तदनुभागमजघन्यं बध्नाति। तदास्य सादित्वं द्वितीयादिसमये चानादित्वमिति चतुर्विधत्वं यथासंभवं द्रष्टव्यम्। प्रकृतिबन्धस्योत्कृष्टादिर्नास्ति।

शेषाणां संदृष्टिः

स्थिति ३१ अनु। अज १ ज १
० ० ० ० ० ० ० ०

अनुभाग उ. अनु.
० ० ० ० ० ० ० ०

अज. ज. | प्रदे. उ. अनु. अज. ज.
स ३२। ० ० ० ० ० ० ० ० स १ ॥९१॥

अथ प्रकृतिबन्धस्य गुणस्थानेषु नियममाह—

तीर्थबन्धोऽसंयताद्यपूर्वकरणषष्ठभागान्तसम्यग्दृष्टिष्वेव। आहारकतदङ्गोपाङ्गबन्धोऽप्रमत्ताद्यपूर्वकरणषष्ठभागान्तेष्वेव प्रमादरहितेषु न प्रमत्तावसानेषु। आयुर्बन्धो मिश्रगुणस्थानमिश्रकाययोगवर्जितेष्वप्रमत्ता-

---

सातवीं पृथिवीमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि अन्तिम समयमें नीचगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध करके सम्यग्दृष्टी होकर पुनः मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्यादृष्टि होकर नीचगोत्रका जघन्य अनुभागबन्ध करता है तब उसके सादिबन्ध कहलाता है। उससे पहले वह अनादि कहलाता है। इस प्रकार यथासंभव चार भेद जानना। प्रकृतिबन्धमें उत्कृष्ट आदि भेद नहीं हैं ॥९१॥

गुणस्थानोंमें प्रकृतिबन्ध का नियम कहते हैं—

तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध असंयत से लेकर अपूर्वकरणगुणस्थानके छठे भाग पर्यन्त सम्यग्दृष्टियोंमें ही होता है। आहारक आहारक अंगोपांगका बन्ध अप्रमत्तसे लेकर अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त प्रमादरहित गुणस्थानोंमें ही होता है, प्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त नहीं होता। आयुका बन्ध मिश्रगुणस्थान और मिश्रकाययोगोंको छोड़कर अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त ही

---

१. म द्वितीयादि ।

वर्ज्जिसि शेषमिथ्याद्यप्रमत्तगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळोळु यथायोग्यमायुर्ब्बंधमक्कुं। तु मत्तं अपूर्व्वकरणादिगळोळिल्ल ॥

तीर्त्थबंधकके विशेषनियममं पेळ्दपरु :—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥९३॥ ५

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषत्रये अविरतादिचत्वारस्तीर्थंकरबंधप्रारंभकाः नराः केवलिद्वयोपांते ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं शेषद्वितीयोपशमसम्यक्त्वक्षायोपशमिकसम्यक्त्वक्षायिकसम्यक्त्वमेंब सम्यक्त्वत्रयदोळं असंयताद्यप्रत्तावसानमाद नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु मनुष्यरुगळे तीर्थ्यकरनामकर्म्मबंधप्रारंभकरप्परंतप्पोडं प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिद्वय श्रीपादोपांत्यदोळेयप्परु। यिल्लि १० प्रथमोपसम्यक्त्वदोळमेंदितु भिन्नविभक्तिकरणमर्त्थांतरज्ञापकमक्कुमेंतेंदोडे प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालं स्तोकांतर्म्मुहूर्त्तमप्पुदरिंदमल्लि षोडशभावनासमृद्धि समनिसदेंदु केलंबराचार्य्यरेंबरवर पक्षदोळा सम्यक्त्वदोळु तीर्त्थबंधप्रारंभमिल्ल। नरा एंबी विशेषणमेकेंदोडे मनुष्यगतिजरल्लदुळिद गतिजरुगळ तीर्त्थबंधप्रारंभकत्वयोग्यतेयिल्लदेंतेंदोडे नारकरुगळगे पेरगे पेळ्द विशुद्धि- निबंधनकेवलिद्वयश्रीपादसन्निधि संभविसदप्पुदरिंदं नारकरुं तिर्य्यंचरुगळगे विशिष्टप्रणिधानक्षयो- १५ पशमाभावदिंद तत्त्वार्त्थाधिगमविशेषाभावदत्तणिंदं तीर्त्थबंधप्रारंभकत्वानुपपत्तियिंदमा तिर्य्यंचरुं योग्यरल्लमेकेंदोडे तीर्त्थकरबंधकारणदरुशनविशुद्धयादि भावनापरमप्रकर्षमिल्लदत्तणिंदं। देवगतिजरुगळुं मनुष्यरंते विशिष्टप्रणिधानाभावदिंदं क्रीडाशीलत्वदिंदमभीक्ष्णज्ञानोपयोगादिभावनाऽ-

---

न्तेष्वेव । नापूर्वकरणादिषु । शेषप्रकृतिबन्धः तु पुनः मिथ्यादृष्ट्यादिषु स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिपर्यन्तेष्वेव ॥९२॥ तीर्थबन्धस्य विशेषनियममाह— २०

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेष–द्वितीयोपशम क्षायोपशमिक-क्षायिकसम्यक्त्वेषु चासंयताद्यप्रमत्तान्तमनुष्या एव तीर्थकरबन्धं प्रारभन्ते। तेऽपि प्रत्यक्षकेवलिश्रुतकेवलिश्रीपादोपान्ते एव । अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्व' इति भिन्नविभक्तिकरणं तत्सम्यक्त्वे स्तोकान्तर्मुहूर्तकालत्वात् षोडशभावनासमृद्धयभावात्तद्बन्धप्रारम्भो नेति केषाञ्चित्पक्षं ज्ञापयति । नरा इति विशेषणं शेषगतिजानपाकरोति । विशिष्टप्रणिधानक्षयोपशमादिसामग्रीविशेषाभावात् । २५

होता है, अपूर्वकरण आदिमें आयुका बन्ध नहीं होता। शेष प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें अपनी अपनी बन्धव्युच्छित्तिपर्यन्त ही होता है ॥९२॥

तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके विषयमें विशेष नियम कहते हैं—

प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें तथा शेष द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्वमें असंयतसे लेकर अप्रमत्तगुणस्थानपर्यन्त मनुष्य ही तीर्थंकरके बन्ध- ३० का प्रारम्भ करते हैं। वे भी प्रत्यक्ष साक्षात् केवली श्रुतकेवलीके चरणोंके निकटमें ही करते हैं। यहाँ जो 'पढमुवसमिए' इस प्रकार जुदी विभक्ति की है सो प्रथमोपशमसम्यक्त्वका काल थोड़ा अन्तर्मुहूर्तमात्र होनेसे षोडश कारण भावना भाना संभव नहीं है इसलिये उसमें तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता ऐसा किन्हीं का पक्ष है' उसका ज्ञापन करनेके लिये की है।

नुपपत्तिइंदं तीर्त्थकरत्वबंधप्रारंभयोग्यविशुद्धिविशेषासंभवमप्पुदरिंदमुं सिद्धमादुदु। मनुष्यरुगळे तीर्त्थबंधप्रारंभकरप्परेंबुदर्त्थं ॥ तिर्य्यग्गतिवर्ज्जितमागि शेषगतित्रयदोळु तीर्त्थकरबंधं संभविसुगुमेकेंदोडे तीर्त्थबंधकालमुत्कृष्टदिंदमन्तर्म्मुहूर्त्तंधिकाष्टवर्षहीनपूर्व्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालप्रमाणमप्पुदरिंदं। केवलिद्वयश्रीपादोपान्तदोळेंब नियममेकेंदोडे तत्समीपदोळे दर्शनविशुद्धचादिनिबंधनविशुद्धिकारणतत्त्वाधिगमविशेषं संभविसुगुमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळु प्रकृतिगळोळु प्रकृतिगळ्गे बंधव्युच्छित्तियं पेळ्दपरु :—

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को ॥९४॥

षोडश पंचविंशतिर्न्नभः दश चतुः षट्कैक्कबंधव्युच्छित्तयः। द्विकस्त्रिंशच्चतस्रोऽपूर्व्वे पंच षोडश योगिन्येकः ॥

मिथ्यादृष्टयाविसयोगकेवलिपर्य्यंतमाद गुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि षोडशपंचविंशति शून्यं दश चतुः षट्क एक प्रकृतिगळु तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। मेले अपूर्व्वकरणगुणस्थानत्रिभागंगळोळं द्वित्रिंशच्चतुः प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। अनिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायरोळु क्रमदिंदं पंचषोडशप्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। उपशांतक्षीणकषायरोळु व्युच्छित्ति

न च तिर्यग्गतिवर्जितगतित्रयतीर्थबन्ध...तद्बन्धकालस्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षोनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रत्वात्। केवलिद्वयान्त एवेति नियमः तदन्यत्र तादृग्विशुद्धिविशेषासंभवात् ॥९३॥ अथ गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिमाह—

मिथ्यादृष्टौ षोडशप्रकृतयो बन्धव्युच्छिन्नास्तासामुपरि बन्धो नास्तीत्यर्थः। सासादने पञ्चविंशतिः। मिश्रे शून्यं व्युच्छित्त्यभाव इत्यर्थः। असंयते दश। देशसंयते चतस्रः। प्रमत्ते षट्। अप्रमत्ते एका। अपूर्वकरणस्य सप्तभागेषु प्रथमे द्वे षष्ठे त्रिंशत्। सप्तमे चतस्रः। अनिवृत्तिकरणे पञ्च। सूक्ष्मसाम्पराये षोडश। उपशान्त-

---

'णरा' ऐसा विशेषण शेषगतियोंका निराकरण करता है क्योंकि अन्य गतियोंमें विशिष्ट चिन्तन क्षयोपशम आदि विशेष सामग्री का अभाव होता है किन्तु तिर्यञ्चगतिको छोड़ शेष तीन गतियोंमें तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका अभाव नहीं है क्योंकि तीर्थंकरके बन्धका काल उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त अधिक आठवर्षकम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीससागर प्रमाण कहा है। अर्थात् यद्यपि तीर्थंकरके बन्ध का प्रारम्भ मनुष्य गति में ही होता है तथापि उसके नरक देव आदि गतिमें जानेपर वहाँ भी बन्ध होता रहता है केवल तिर्यञ्च गतिमें ही बन्ध नहीं होता। केवली श्रुतकेवलीके निकट में ही बन्धका नियम कहनेका कारण यह है कि अन्यत्र उस प्रकार की विशेष विशुद्धि संभव नहीं है ॥९३॥

गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंके बन्धकी व्युच्छित्ति कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सोलह प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। इसका आशय यह है कि उन प्रकृतियों का बन्ध दूसरे आदि गुणस्थानोंमें नहीं होता। सासादनमें पच्चीस प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न होती हैं। मिश्रमें शून्य है अर्थात् यहाँ व्युच्छिति नहीं होती। असंयतमें दस, देशसंयतमें चार, प्रमत्तमें छह, अप्रमत्तमें एक, अपूर्वकरणके सात भागोंमें-से पहलेमें दो, छठे भागमें तीस, सातवें भागमें चार की व्युच्छिति होती है। अनिवृत्तिकरणमें

प्रकृतिगळिल्लल्लिल शून्यंगळेयप्पुवु। सयोगकेवलियोळु बंदे प्रकृतिव्युच्छित्तियक्कुं। व्युच्छित्तियेंबुदेनेंदोडे उपरितनगुणस्थानेष्वभावो व्युच्छित्तिः। एल्लि व्युच्छित्तियेंदु पेळल्पट्टुदल्लिया प्रकृतिगळगे मेलण गुणस्थानदोळु बंधाभावमेंबुदत्थं। तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्ति बंधविनाशमेंबी विनाशविषयदोळु द्वौ नयाविच्छन्ति येरडु नयंगळनोडंबडुवरु। उप्पादाणुच्छेदो अणुप्पादाणुच्छेदो चेदि। उत्पादानुच्छेदमुमनुत्पादानुच्छेदमुमेंदितु। तत्थ अल्लि उप्पादाणुच्छेदो णाम उत्पादानुच्छेदमेंबुदु। दव्वट्ठियो द्रव्यार्थिकः द्रव्यार्थिकं। तेण सत्तावट्ठाए चेव विणासमिच्छदि। अदरिं सत्वावस्थेयोळे विनाशमनिच्छयिसुगुं। असत्ते असत्वे असत्वदोळु। बुद्धिविसयमइक्कंतभावेण बुद्धिविषयमतिक्रांतभावदिदं वयणगोयराइक्कंते वचनगोचरातिक्रांतमागुत्तिरलु। अभाववववहाराणुववत्तीदो अभाव व्यवहारानुपपत्तितः। अभावव्यवहारानुपपत्तियत्तणिदं। ण च अभावो णाम अत्थि न च अभावो नामास्ति अभाव मेंबुदिल्ल। तप्परिच्छिददो पमाणाभावादो तत्परिच्छेदतः प्रमाणस्याभावात्। सत्तविसयाणं पमाणाणमसत्ते वावारविरोहादो–सत्त्वविषयाणां प्रमाणानां असत्त्वे व्यापारविरहात् सत्त्वविषयंगळप्प प्रमाणं गळगसत्त्वदोळु व्यापारमप्पुदरिंदं। अविरोहे वा अविरोधे वा। अविरोधमादोडे मेणु। गद्दहसिंगंपि पमाणविसयं होज्ज गर्द्दभशृंगोपि प्रमाणविषयो भवेत् गर्द्दभशृंगमुं प्रमाणविषयमागलि। ण च एवमणुवलंभादो न चैवमनुपलंभात् इन्तल्लतनुपलंभमप्पुदरिंदं। तम्हा भावो चेव तस्माद्भावश्च एव अदरिंदं भावमे। अभावोत्ति सिद्धं अभावमेंदितु सिद्धं॥

क्षीणकषाययोः शून्यम्। सयोगकेवलिन्येका। अयोगकेवलिनि बन्धो व्युच्छित्तिरपि न॥ तत्र बन्धव्युच्छित्तौ द्वौ नयाविच्छन्ति–उत्पादानुच्छेदोऽनुत्पादानुच्छेदश्चेति। तत्र उत्पादानुच्छेदो नाम द्रव्यार्थिकः। तेन सत्त्वावस्थायामेव विनाशमिच्छति। असत्त्वे बुद्धिविषयातिक्रान्तभावेन वचनगोचरातिक्रान्ते सति अभावव्यवहारानुपपत्तेः। न चाभावो नामास्ति तत्परिच्छेदकप्रमाणाभावात्। सत्त्वविषयाणां प्रमाणानामसत्त्वे व्यापारविरोधात्। अविरोधे वा गर्दभशृङ्गमपि प्रमाणविषयं भवेत्। न चैवमनुपलम्भात्। तस्माद्भाव एव अभाव इति सिद्धम्। अनुत्पादानुच्छेदो नाम पर्यायार्थिकः। तेन सत्त्वावस्थायामभावव्यपदेशमिच्छति। भावे उप-

---

पाँच, सूक्ष्मसाम्परायमें सोलह, उपशान्तकषाय क्षीणकषायमें शून्य, सयोगकेवलीमें एक की बन्धव्युच्छित्ति होती है। अयोगकेवलीमें बन्ध भी नहीं होता व्युच्छित्ति भी नहीं होती। बन्धव्युच्छित्तिमें दो नयसे कथन है—

एक उत्पादानुच्छेद और दूसरा अनुत्पादानुच्छेद। उत्पादानुच्छेद नाम द्रव्यार्थिक का है। इस नयके अभिप्रायसे सत्त्व अवस्थामें ही विनाश होता है। जहाँ सत्त्व ही नहीं है वहाँ बुद्धि का व्यापार ही सम्भव नही है। और ऐसी अवस्थामें वचनके अगोचर होनेसे उसमें अभाव का व्यवहार सम्भव नहीं है। दूसरे, अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि उसको ग्रहण करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है। जो प्रमाण सत्पदार्थको जानते हैं वे तो असत्पदार्थको जाननेमें व्यापार नहीं कर सकते। यदि कर सकते हैं तो गधेके सींग भी प्रमाणके विषय होने चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि ऐसा पाया नहीं जाता। अतः सिद्ध होता है कि भाव ही अभावरूप होता है। अनुत्पादानुच्छेद नाम पर्यायार्थिक नयका है। उसके अनुसार असत्व अवस्थामें अभावका व्यवहार होता है क्योंकि भावके होते हुए अभावका

अणुप्पादाणुच्छेदो णाम अनुत्पादानुच्छेदो नाम अनुत्पादानुच्छेदमें बुदु। पज्जट्ठियो णयो पर्य्यायार्थिको नयः। पर्य्यायार्थिकनयं। तेण असत्तावत्थाए तेनासत्त्वावस्थायां अदरिनसत्त्वावस्थेयोळ्। अभाववएसमिच्छदि अभावव्यपदेशमिच्छति। भावे उवलंभमाणे अभावत्तविरोहादो भावे उपलभ्यमाने अभावत्वविरोधात्। ण च पडिसेहाविसओ भावो अभावत्तमल्लियइ न च प्रतिषेधाविषयो भावोऽभावत्वमाश्रयति। प्रतिषेधाविषयमप्प भावमभावत्वमनाश्रयिसदु। पडिसेहस्स फलाभावप्पसंगादो प्रतिषेधस्य फलाभावप्रसंगात्। प्रतिषेधक्के फलाभावप्रसंगदिदं। ण च विणासो णत्थि न च विनाशो नास्ति। न चैवं इन्तल्लु। विनाशो नास्ति विनाशमिल्ल। घादि अघादीणं घात्यघातीनां। घात्यघातिगळगे। सव्वत्थमवट्ठाणाणुवलंभादो सर्व्वत्रावस्थानानुपलंभात् सर्व्वत्रावस्थानानुपलंभदत्तणिदं। ण च भावो अभावो होदि न च भावो अभावो भवति भावमभावमुमागदु। भावाभावाणमण्णोण्णविरुद्धाणमेयत्तविरोहादोत्ति। भावाभावानामन्योन्यविरुद्धानामेकत्वविरोधादिति। भावाभावंगळगन्योन्यविरुद्धंगळगेकत्वविरोधमुंटप्पुदरिं। एत्थ पुण सुत्ते—अत्र पुनःसूत्रे द्रव्यार्थिकनयः। उप्पादाणुच्छेदोवलंबिदो उत्पादानुच्छेदोवलंबितः। उत्पादस्य विद्यमानस्य अनुच्छेदोऽविनाशो यस्मिन्नसावुत्पादानुच्छेदो नयः। एंदितु द्रव्यार्थिकनयापेक्षेयिदं तंतम्म गुणस्थानद चरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिबंधविनाशमप्पुदरिंदं। पर्य्यायार्थिकनयदिंदमनन्तरसमयदोळु बंधविनाशमक्कुमिन्तु॥

लम्यमाने अभावत्वविरोधात्। न च प्रतिषेधाविषयो भावोऽभावत्वमाश्रयति प्रतिषेधस्य फलाभावप्रसङ्गात्। न च विनाशो नास्ति घात्यघातिनां सर्वत्रावस्थानानुपलम्भात्। न च भावोऽभावो भवति भावाभावयोरन्योन्यविरुद्धयोरेकत्वविरोधात् इति। अत्र पुनः सूत्रे द्रव्यार्थिकनयः उत्पादानुच्छेदोऽवलम्बितः। उत्पादस्य विद्यमानस्यानुच्छेदोऽविनाशो यस्मिन्नसावुत्पादानुच्छेदो नयः, इति द्रव्यार्थिकनयापेक्षया स्वस्वगुणस्थानचरमसमये बन्धव्युच्छित्तिः—बन्धविनाशः। पर्यायार्थिकनयेन तु अनन्तरसमये बन्धनाशः ॥९४॥

व्यवहार होनेमें विरोध है। क्योंकि भावका निषेध किये विना अभाव नहीं होता। अतः वह अभावपने का आधार नहीं हो सकता। यदि हो तो फिर निषेधका कोई फल नहीं रहेगा। कर्मोंका विनाश नहीं होता ऐसा भी नहीं है क्योंकि घाति और अघाति कर्म सर्वत्र नहीं पाये जाते। न भाव-अभावरूप होता है क्योंकि भाव और अभाव परस्परमें विरोधी होनेसे एक नहीं हो सकते। यहाँ व्युच्छित्तिके कथनमें उत्पादानुच्छेदरूप द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन लिया है। उत्पाद अर्थात् विद्यमानका अनुच्छेद अर्थात् अविनाश जिसमें है वह उत्पादानुच्छेदनय है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अपने-अपने गुणस्थानके अन्तिम समयमें बन्धकी व्युच्छित्ति अर्थात् विनाश होता है। किन्तु पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा तो अनन्तर समयमें बन्धका नाश होता है।

भावार्थ—इसका आशय यह है कि जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियों की व्युच्छित्ति कही है उन प्रकृतियोंका बन्ध उस गुणस्थान के अन्त समयपर्यन्त होता है, उसमें उनके बन्धका अभाव नहीं होता। उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें उनके बन्धका अभाव होता है। अतः जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उसमें उतनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है। सो पूर्व-पूर्वके गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उनमें-से उसी गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति कही हो उन्हें घटानेपर आगे-आगेके गुणस्थानमें बन्धका प्रमाण आता है। तथा जितनी प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही हों उनमें-से जितनी प्रकृतियोंका

अनन्तरं मिथ्यादृष्टियषोडशबंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

मिच्छत्तहुंडसंढासंपत्तेयक्खथावरादावं ।
सुहुमतियं वियलिंदी णिरयदुणिरयाउगं मिच्छे ॥९५॥

मिथ्यात्वहुंडषंढाऽसंप्राप्तैकाक्षस्थावरातपाः । सूक्ष्मत्रिकं विकलेंद्रियनरकद्विकनरकायुष्कं मिथ्यादृष्टौ ॥

मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ षंढवेदमुं १ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुं १ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणशरीरमेंब सूक्ष्मत्रितयमुं ३ द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियनुमेंब विकलेंद्रियत्रितयमुं ३ नरकगति तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमेंब नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमुमेंबिंती षोडशप्रकृतिगळु केवलं मिथ्यात्वोदयहेतुकंगळप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु ॥

अनंतरं सासादनन व्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

बिदियगुणे अणथीणतिदुभगतिसंठाणसंहदिचउक्कं ।
दुग्गमणित्थीणीचं तिरियदुगुज्जोवतिरिआऊ ॥९६॥

द्वितीयगुणे अनंतानुबंधिनः स्त्यानगृद्धित्रितयं दुर्भगत्रितयं संस्थानसंहननचतुष्कं दुर्गमनं स्त्रीनीचं तिर्य्यग्द्विकमुद्योततिर्य्यगायुषि ॥

द्वितीयगुणे सासादनगुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुं ४ स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचलात्रितयमुं ३ दुर्भगदुःस्वर अनादेयमेंब दुर्भगत्रितयमुं ३ न्यग्रोधपरिमंडलस्वातिकुब्जवामनसंस्थानचतुष्टयमुं ४ वज्रनाराच नाराच अर्द्धनाराच कीलितसंहननमेंब संहननचतुष्टयमुं ४,

---

अथ ताः षोडशादि प्रकृतिर्गाथाष्टकेनाह—

मिथ्यात्वं हुंडसंस्थानं षण्ढवेदः असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं एकेंद्रियं स्थावरातपः सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणि नरकगतितदानुपूर्व्ये नरकायुश्चेति षोडश केवलमिथ्यात्वोदयहेतुबन्धत्वात् मिथ्यादृष्टिगुणस्थानचरमसमये एव व्युच्छिद्यन्ते ॥९५॥

सासादनगुणस्थानचरमसमये अनन्तानुबन्धिचतुष्टयं स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाः दुर्भगदुःस्वरानादेयानि न्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्जवामनसंस्थानानि वज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितसंहननानि अप्रशस्त-

---

बन्ध कहा हो उन्हें घटानेपर शेष जितनी प्रकृतियाँ रहें उन्हें अबन्धरूप जानना । इस तरह बन्ध, व्युच्छित्ति और अबन्ध ये तीन अवस्थाएँ होती हैं । उन्हींका कथन आगे करेंगे ॥९४॥

उन सोलह आदि व्युच्छित्ति प्रकृतियों को आठ गाथाओं से कहते हैं—

मिथ्यात्व, हुंडसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु ये सोलह प्रकृतियाँ केवल मिथ्यात्वके उदयके कारण ही बँधती हैं । अतः मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के अन्तिम समयमें ही ये व्युच्छिन्न होती हैं ॥९५॥

सासादन गुणस्थानके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान, वज्रनाराचसंहनन, अर्धनाराच संहनन, कीलितसंहनन, अप्रशस्त-

अप्रशस्तविहायोगतियुं १ स्त्रीवेदमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १ तिर्य्यंग्गति तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमेंब तिर्य्यग्द्विकमुं २ उद्योतनाममुं १ तिर्य्यगायुष्यमु १ मेंब पंचविंशतिप्रकृतिगळनंतानुबंधिकषायोदयहेतुकंगळप्पुदरिंदं सासादनगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु।

ई पंचविंशतिप्रकृतिगळु मिथ्यात्वानंतानुबंध्युभयोदयहेतुकंगळप्पुवेकेंदोडे अनंतानुबंधिकषायोदयरहितमिथ्यादृष्टियोळिवक्के बंधमुंटप्पुदरिंदमुं मिथ्यात्वोदयरहित सासादननोळं बंधमुंटपुदरिंदं उभयोदयरहितरोळु बंधरहितत्वदिंदमुं।

अनंतरमसंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

मिश्रगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यमेकेंदोडे अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुकंगळ्गसंयत पर्य्यंतं बंधमुंटप्पुदरिंदमल्लि बंधव्युच्छित्तिशून्यमेंदु पेळल्पट्टुवु।

अयदे बिदियकसाया वज्जं ओरालमणुदुमणुवाऊ।
देसे तदियकसाया णियमेणिह बंधवोच्छिण्णा ॥९७॥

असंयते द्वितीयकषाया वज्रमौदारिकमनुष्यद्विकं मनुष्यायुर्देशव्रते तृतीयकषायाः नियमेनेह बंधव्युच्छित्तयः॥

असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४ वज्रऋषभनाराचसंहननमुं १ औदारिकशरीरतदंगोपांगद्विकमुं २ मनुष्यगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वितयमुं २ मनुष्यायुष्यमेंब दशप्रकृतिगळु अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुकंगळप्पुदरिंदमसंयतगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। देशव्रते देशव्रतगुणस्थानचरमसमयदोळु प्रत्याख्यानावरणोदयहेतुकंगळप्प प्रत्याख्यानावरणचतुष्टयं ४ बंधव्युच्छित्तियक्कुं नियमदिंद नी गुणस्थानदोळे येकेंदोडनंतगुणस्थानवर्त्तिगळु संयमिगळप्पुदरिंदं प्रत्याख्यानावरणोदयाभावमप्पुदरिंदं तद्धेतुक तद्बंधमुमिल्ल।

विहायोगतिः स्त्रीवेदः नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतितदानुपूर्व्ये उद्योतः तिर्यगायुश्चेति पञ्चविंशतिः व्युच्छिद्यन्ते। अमूः पञ्चविंशतिः अनन्तानुबन्ध्युदयरहितमिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वोदयरहितसासादने च बन्धादुभयोदयहेतुका भवन्ति। मिश्रगुणस्थाने बन्धव्युच्छित्तिः शून्यम् ॥९६॥

असंयतगुणस्थानचरमसमये द्वितीयकषायचतुष्कं वज्रवृषभनाराचसंहननं औदारिकशरीरतदङ्गोपाङ्गे मनुष्यगतितदानुपूर्व्ये मनुष्यायुश्चेति दश अप्रत्याख्यानकषायोदयहेतुबन्धत्वाद्व्युच्छिद्यन्ते। देशव्रतगुणस्थानचरमसमये स्वोदयहेतुबन्धत्वात् प्रत्याख्यानावरणा व्युच्छिद्यन्ते नियमेन ॥९७॥

विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, उद्योत, तिर्यगायु इन पच्चीसकी व्युच्छित्ति होती है। ये पच्चीस अनन्तानुबन्धीके उदयके बिना मिथ्यादृष्टिमें और मिथ्यात्वके उदयके बिना सासादनमें भी बँधती हैं अतः इनका बन्ध मिथ्यात्वके उदयसे भी होता है और अनन्तानुबन्धीके भी उदयसे होता है। मिश्रगुणस्थानमें व्युच्छित्ति नहीं है ॥९६॥

असंयतगुणस्थानके अन्तिम समयमें अप्रत्याख्यान कषायकी चौकड़ी, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु ये दस अप्रत्याख्यानकषायके उदयसे बँधनेके कारण व्युच्छिन्न होती हैं। देशविरत गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्रत्याख्यानावरण कषायकी नियमसे व्युच्छित्ति होती है। क्योंकि ये अपने उदयके निमित्तसे ही बँधती हैं ॥९७॥

अनंतरं प्रमत्तसंयतन बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

छट्ठे अथिरं असुहं असादमनसं च अरदिसोगं च ।
अपमत्ते देवाऊ णिट्ठवणं चेव अत्थित्ति ॥९८॥

षष्ठे अस्थिरमशुभमसातमयशश्चारतिः शोकश्च । अप्रमत्ते देवायुर्न्निष्ठापनं चैवास्तीति ॥

प्रमत्ते प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु अस्थिरमुमशुभमुमसातवेदनीयमुमयशस्कीर्त्तिनाममुमरतियुं शोकमुमेंब षट्प्रकृतिगळु प्रमादहेतुकंगळप्पुदरिंदं षष्ठगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु । प्रमादरहितरोळु तद्बंधाभावमप्पुदरिंदं । अप्रमत्ते अप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे देवायुर्ब्बन्धव्युच्छित्तियक्कुं । स्वस्थानाप्रमत्तचरमसमयदोळु तद्गुणस्थानचरमसमयदोळे देवायुर्न्निरंतरबंधान्तर्म्मुहूर्त्तकालसमयसंख्याप्रमाणासंख्यातसमयप्रबद्धंगळं समानंगळप्पुवेकेंदोडे—सातिशयाप्रमत्तादिविशिष्टविशुद्धपरिणामरप्प उपशमश्रेण्यारोहकापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरुगळ तदायुर्ब्बंधननिबंधनमध्यमविशुद्धि संज्वलनकषायपरिणामस्थानंगळु संभविसवप्पुदरिंदं ।

अनंतरमपूर्व्वकरणगुणस्थानसप्तभागेगळं त्रिविधंमाडिदल्लि तद्भागंगळोळु बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु । गाथाद्वयदिंदं :—

मरणूणम्मि णियट्टीपढमे णिद्दा तहेव पयला य ।
छट्ठे भागे तित्थं णिविणं सग्गमणपंचिंदी ॥९९॥
तेजदुहारदुसमचउसुरवण्णगुरुगचउक्कतसणवयं ।
चरिमे हस्सं च रदी भयं जुगुच्छा य वोच्छिण्णा ॥१००॥

मरणोने निवृत्तिप्रथमे निद्रा तथैव प्रचला च । षष्ठे भागे तीर्त्थं निर्म्माणं सद्गमनपंचेंद्रिये ॥

तैजसद्विकमाहारकद्विकं समचतुरस्रसंस्थानं सुरवर्णागुरुलघुचतुष्कं त्रसनवकं । चरमे हास्यं च रतिः भयं जुगुप्सा च व्युच्छित्तयः ॥

प्रमत्तसंयतगुणस्थानचरमसमये अस्थिरं अशुभं असातवेदनीयं अयशस्कीर्तिः शोकश्चेति षट् व्युच्छिद्यन्ते प्रमादहेतुकबन्धत्वात् । स्वस्थानाप्रमत्तगुणस्थानचरमसमये देवायुर्बन्धव्युच्छित्तिः । सातिशयाप्रमत्तादिषु विशिष्टविशुद्धिकेषु तद्बन्धनिबन्धनमध्यमविशुद्धिसंज्वलनपरिणामासंभवात् ॥९८॥ अथापूर्वकरणस्य सप्तभागान् त्रिधा कृत्वा तत्र बन्धव्युच्छित्तिं गाथाद्वयेनाह—

प्रमत्तसंयतगुणस्थानके अन्तिम समयमें अस्थिर, अशुभ, असातवेदनीय, अयशकीर्ति, शोक ये छह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती हैं क्योंकि इनका बन्ध प्रमादके कारण होता है। स्वस्थानाप्रमत्तगुणस्थानके अन्तिम समयमें देवायुकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है। यहाँ अप्रमत्तके साथ स्वस्थान विशेषण इसलिए लगाया है कि सातिशय अप्रमत्त आदिमें विशिष्ट विशुद्धि होनेसे मध्यम विशुद्धिरूप संज्वलनके परिणाम सम्भव नहीं हैं और ये ही मध्यम विशुद्धिरूप परिणम यहाँ देवायुके बन्धमें कारण होते हैं ॥९८॥

अपूर्वकरणके सात भागोंमें-से तीन भागोंमें बन्धव्युच्छित्ति दो गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. मु य बंधवो° । २. त्तिः स्वस्थानविशेषणं तु सात° मु. ।

उपशमश्रेण्यारोहणदोळु अपूर्व्वकरणंगे प्रथमभागदोळु मरणमिल्लदु कारणमागि मरणोने मरणरहितमप्प निवृत्तिप्रथमे निवृत्तिः परिणामविकल्पः तस्य प्रथमो भागस्तस्मिन्। परिणामभेदंगळ मरणरहितमप्प प्रथमभागदोळु परिणामभेदंगळसंख्यात लोकमात्रंगळपूर्वगळपूर्व्वकरणंगें दु जीवकांडदोळु सुनिर्न्नीतमप्पुदरिंदमपूर्व्वकरणगुणस्थानद मरणविरहितमप्प प्रथमभागदोळें बुदत्थमल्लि निद्रादर्शनावरणमुं प्रचलादर्शनावरणमुमें बेरडुं बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं। तथैव तेन प्रकारेणैव आ प्रकारदिंदमे षष्ठे भागे षष्ठभागदोळु तीर्थंकरनामम् १ निर्म्माणनामम् १ सद्गमनमुं १ पंचेंद्रियजातिनामम् १ तैजसकार्म्मणशरीरद्वितयमुं २ आहारकाहारकांगोपांगनामद्वितयमुं २ समचतुरस्रसंस्थानमुं १ देवगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीर तदंगोपांगमुमेंब सुरचतुष्कमुं ४ वर्णगंधरसस्पर्शमेंब वर्णचतुष्कमुं ४ अगुरुलघु उपघातपरघातोच्छ्वासमेंब अगुरुलघुचतुष्कमुं ४ त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीरस्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेयमेंब त्रस नवकमुं ९ इन्तु त्रिंशत्प्रकृतिगळु षष्ठभाग चरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं। चरमे चरमसप्तमभागदोळु हास्यमुं रतिनोकषायमुं भयनोकषायमुं जुगुप्सानोकषायमुमिन्तु नाल्कुं प्रकृतिगळु तत्सप्तमभागचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळक्कुं।

अनंतरमनिवृत्तिकरण गुणस्थानद बंधव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

पुरिसं चदु संजलणं कमेण अणियट्टि पंचभागेसु।
पढमं विग्घं दंसणचउ जस उच्चं च सुहुमंते ॥१०१॥

पुरुषश्चतुः संज्वलनाः क्रमेणानिवृत्तिपंचभागेषु। प्रथमं विघ्नं दर्शनचत्वारि यशस्कीर्त्तिरुच्चं च सूक्ष्मांते ॥

पुंवेदनोकषायमुं १ क्रोधसंज्वलनकषायमुं २ मानसंज्वलनकषायमुं १ मायासंज्वलनकषायमुं १ लोभसंज्वलनकषायमुं १ मेंदितु पचप्रकृतिगळु अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपंचभागंगळोळु यथाक्रमदिदं मेले मेले बंधव्युच्छित्तिगलप्पुवु। सांपरायगुणस्थानदोळु मत्यावरणादिज्ञानावरणपंचकमु ५

निवृत्तिः अर्थादपूर्वकरणपरिणामः। तस्य प्रथमभागे मरणोने आरोहणावसरे मरणरहिते निद्राप्रचले व्युच्छिन्ने। तथैव—तेनैव प्रकारेण षष्ठभागचरमसमये तीर्थं निर्माणं सद्गमनं पञ्चेन्द्रिय तैजसकार्मणे आहारकतदङ्गोपाङ्गे समचतुरस्रं देवगतितदानुपूर्व्ये वैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानि वर्णगन्धरसस्पर्शाः अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेयानि चेति त्रिंशद्बन्धव्युच्छिन्ना। सप्तमभागे हास्यं रतिर्भयं जुगुप्सा चेति चतुष्कं बन्धव्युच्छिन्नम् ॥९९–१००॥

पुंवेदः क्रोधादयश्चतुःसंज्वलनाश्चानिवृत्तिकरणगुणस्थानपञ्चमभागेषु क्रमेणोपर्युपरि व्युच्छिद्यन्ते।

निवृत्ति अर्थात् अपूर्वकरणगुणस्थानके प्रथम भागमें श्रेणी चढ़ते समय मरण नहीं होता। उस भागमें निद्रा और प्रचलाकी व्युच्छित्ति होती है। उसी प्रकारसे छठे भागके अन्तिम समयमें तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय, तैजस, कार्मण, आहारक, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक-अंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय ये तीस प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं। सप्तमभागमें हास्य, रति, भय, जुगुप्सा ये चार व्युच्छिन्न होती हैं ॥९९–१००॥

पुरुषवेद, संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया, संज्वलन लोभ ये पाँच अनिवृत्तिगुणस्थानके पाँच भागोंमें क्रमसे व्युच्छिन्न होती हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके

दानांतरायादिविघ्नपंचकमुं ५ चक्षुर्दर्शनावरणादि दर्शनावरणचतुष्कमुं ४ यशस्कीर्त्तिनाममुं १ उच्चैर्गोत्रमुमेंब षोडशप्रकृतिगळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तियप्पुवु। अंतेंबी शब्दमन्त्यदीपकमप्पुदरिंदमेल्ला गुणस्थानंगळोळ तंतम्म गुणस्थानचरमसमयदोळी पेळल्पट्ट बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवेंदितु निश्चयिसुवुदु। मेले कषायोदयमिल्लप्पुदरिंदं। कषायहेतुकंगळागी गुणस्थानदोळं बंधव्युच्छित्तियादुदिन्नु योगहेतुकमप्प सातवेदनीयबंधं मूरु गुणस्थानंगळोळेंदु पेळ्दपदपरु।

उवसंतखीणमोहे जोगिम्मि य समइयट्ठिदी सादं।
णायव्वो पयडीणं बंधस्संतो अणंतो य ॥१०२॥

उपशांतक्षीणमोहयोर्योगिनि च समयिकस्थिति सातं। ज्ञातव्यः प्रकृतीनां बंधस्यान्तोऽनंतश्च ॥

उपशांतकषायनोळं क्षीणमोहनोळं सयोगकेवलिभट्टारकरोळं समयस्थितिकसातवेदनीयं योगहेतुकं बंधमक्कुमयोगिभट्टारकरोळु योगमुमिल्लप्पुदरिंदमदक्कं बंधाभावमक्कुमिन्तु प्रकृतिगळगे बंधस्यांतः बंधव्युच्छित्तियुं अनंतश्च बंधमुं च शब्ददिनबंधमिन्तु त्रिभेदं ज्ञातव्यः। अरियल्पडुवुदिल्लि बंधव्युच्छित्तिगळे पेळल्पट्टुवनुक्तंगळप्पबंधमुमबंधमुमेंतरियल्पडुववेंदोडे मुंपेळ्दबंधनियमसूत्रमं लेसागि भाविसि तीर्थबंधमसंयतादिचतुर्गुणस्थानदोळेयक्कुमाहारकद्वयमप्रमत्तादिअपूर्वकरणषष्ठभागपर्यंतमेयक्कुमायुष्यं मिश्रगुणस्थानमुमं मिश्रकाययोगिगळं वर्ज्जिसिउळिदेल्ला अप्रमत्तावसानमाद सप्तगुणस्थानंगळोळु यथायोग्यमागियायुष्यं बंधमक्कुमुळिदेल्ला प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगकेवलिगुणस्थानावसानमागिर्द्दत्रयोदशगुणस्थानंगळोळी पेळल्पट्ट व्युच्छित्ति प्रकृतिगळिप्पडिदु मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु व्युच्छित्तिबंधअबंधमुमेंब त्रिविधत्वमं रचिसुवदर्दतेंदोडे बंधप्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळु अभेदविवक्षेयिंदं विंशत्युत्तरशतंगळक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु तीर्थमुमाहारकद्वयमुमेंबित्रिप्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळऽतेंदवं कळेदुळिद—११७ प्रकृतिगळु बंध-

सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानचरमसमये मत्यादीनि पञ्च, दानान्तरादयः पञ्च, चक्षुर्दर्शनावरणादीनि चत्वारि, यशःकीर्तिरुच्चैर्गोत्रं चेति षोडश व्युच्छिद्यन्ते। अन्ते इत्यन्तदीपकत्वात् सर्वत्रोक्तव्युच्छित्तयः तत्तच्चरमसमये एव ज्ञातव्याः ॥१०१॥

उपशान्तकषाये क्षीणमोहे सयोगकेवलिनि चैकसमयस्थितिकं सातवेदनीयमेव बध्नाति। तच्च योगहेतुकबन्धं कषायोदयस्य तेष्वभावात्। अयोगे योगोऽपि बन्धोऽपि च नास्ति। एवं प्रकृतीनां बन्धस्यान्तो बन्ध-

अन्तिम समयमें मत्यावरण आदि पाँच, दानान्तराय आदि पाँच, चक्षुदर्शनावरण आदि चार, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र ये सोलह व्युच्छित्ति होती हैं। अन्त शब्द अन्तदीपक है अतः सर्वत्र उक्त व्युच्छित्तियाँ प्रत्येक गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही होती हैं यह ज्ञापित करता है ॥१०१॥

उपशान्तकषाय, क्षीणमोह और सयोगकेवलीमें एक समयकी स्थिति लेकर सातवेदनीयका ही बन्ध होता है। यह बन्ध योगके कारण होता है। इन गुणस्थानोंमें कषायका अभाव है। अयोगकेवलीमें योग भी नहीं है अतः बन्ध भी नहीं है। इस प्रकार प्रकृतियों के

योग्यंगळु । कळेदत्रिप्रकृतिगळु अबंधंगळप्पुवंतागुत्तिरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळु १६ । बंधंगळु ११७ । अबंधंगळु ३ । सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिय षोडश बंधव्युच्छित्तिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडे शेष १०१ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पवा पविनारुमबंधद मूरुं कूडि एकान्नविंशति प्रकृतिगळु १९ सासादनंगबंधंगळप्पुवंतागुत्तिरलु सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळु २५ बंधगळु १०१ अबंधगळु १९ । मिश्रगुणस्थानदोळु आयुर्बंधमिल्लेंब नियममुंटप्पुदरिंदमा सासादनसम्यग्दृष्टिगे पेळ्द बंधप्रकृतिगळोळगे नरकायुष्यं मिथ्यादृष्टियोळुळियितप्पुदरिंदं । तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळिरुतिर्द्दंपवातन पंचविंशतिव्युच्छित्तिप्रकृतिगळोळु तिर्य्यंगायुष्यमिद्दुपुद्दप्पुदरिना पंचविंशतिप्रकृतिगळनू मनुष्यदेवायुष्यद्वयमुमं कूडि २७ प्रकृतिगळं कळेदोडे ७४ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवु । अबंधंगळा कळेद २७ प्रकृतिगळुं सासादनन अबंधंगळु १९ मं कूडिदोडे ४६ प्रकृतिगळ बंधंगळप्पुवंतागुत्तिरलु मिश्रगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिशून्यं बंधंगळु ७४ अबंधंगळु ४६ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिशून्यमप्पुदरिंदमा मिश्रनबंधप्रकृति गळु ७४ रोळगेयातन बंधप्रकृतिगळोळु मनुष्यायुष्यमुं देवायुष्यमुं तीर्त्थनाममुमेंब त्रिप्रकृतिगळिरुत्तिर्प्पंवं तेगवु कूडिदोडसंयतंगे बंधप्रकृतिगळु ७७ अप्पुवा तेगदुळिद अबंधप्रकृतिगळु ४३ असंयतंगे अबंधप्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तिरलु असंयतगुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळु १० बंधंगळु ७७ अबंधगळु ४३ । देशसंयतगुणस्थानदोळु असंयतन बंधप्रकृतिगळोळगेयातन व्युच्छित्तिगळं कळेदुळिद ६७ प्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळप्पुवा पत्तुं आतन अबंधद ४३ प्रकृतिगळुमं कूडिदोडे देशसंयतंगे अबंधगळु ५३ प्रकृतिगळप्पुवु । अन्तागुत्तिरला देशव्रतंगे व्युच्छित्तिगळु ४ बंधंगळु ६७ अबंधंगळु ५३ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु देशसंयतन नाल्कुं व्युच्छित्तिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळकळेदोडे शेष ६३ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवा नाल्कुमातन अबंधंगळु ५३ नू कूडिदोडे प्रमत्तंगे अबंधप्रकृतिगळु ५७ अप्पुवु । अन्तागुत्तिरलु प्रमत्तसंयतंगे व्युच्छित्तिगळु ६ बंधंगळु ६३ । अबंधंगळु ५७ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु प्रमत्तसंयतन व्युच्छित्तिगळारुम ६ नातन बंधप्रकृतिगळोळु ६३ कळेदुळिद ५७ प्रकृतिगळं प्रमत्तर अबंधप्रकृतिगळोळिरुत्तिर्द्दंाहारकद्वयमं बंधयोग्यतेयुळ्ळुदरिंदं तेगदुकोंडु कूडिदोडे बंधप्रकृतिगळु ५९ अप्पुवाशेषाबंधप्रकृतिगळु ५५ मनातनबंधव्युच्छित्तिगळु ६ मं कूडिदोडे अप्रमत्तरिगे अबंधप्रकृतिगळु ६१ अप्पुवंतागुत्तिरलप्रमत्तसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति १ बंधंगळु ५९ अबंधंगळु ६१ ।

अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु अप्रमत्तसंयतन बंधप्रकृतिगळोळु ५९ आतन बंधव्युच्छित्तियों दं कळेदोडे बंधप्रकृतिगळु ५८ आ कळेदों दुमनातन अबंधप्रकृतिगळु ६१ मं कूडिदोडे ६२ प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तिरलु मरणरहितापूर्व्वकरणन प्रथमभागदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु २ बंधंगळु ५८

व्युच्छित्तिरुक्तो ज्ञातव्यः । बन्धस्यानन्तो बन्ध इत्यर्थः । च शब्दादबन्धश्चेति ॥१०२॥

बन्धका अन्त अर्थात् बन्धव्युच्छित्ति और बन्धका अनन्त अर्थात् बन्ध तथा 'च' शब्दसे अबन्ध जानना ॥१०२॥

अबंधंगळु ६२ तद्गुणस्थानषष्ठभागदोळु तन्न प्रथमभागद बंधव्युच्छित्तिगळिन्द्राप्रचलेगळर्रडुमना प्रथमभागबंधप्रकृतिगळु ५८ रोळु कळेदुळिद ५६ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवा निद्राप्रचलेगळुमाप्रथमभागेय अबंधप्रकृतिगळु ६२ मं कूडिदोडे तत्षष्ठभागेयोळऽबंधंगळु ६४ अप्पुवंतागुत्तिरला षष्ठभागेयोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ३० बंधंगळय्वत्तारु ५६ अबंधंगळु ६४। अपूर्व्वकरणसप्तमभागदोळु तन्न षष्ठभाग बंधप्रकृतिगळोळु ५६ तत् षष्ठभागव्युच्छित्तिगळु ३० कळेदुळिद २६ प्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळप्पुवु वा मूवत्तु ३० प्रकृतिगळं तत्षष्ठभागद अबंधंगळु ६४ मं कूडिदोडे अबंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवंतागुत्तं विरलु अपूर्व्वकरणन सप्तमभागचरमसमयदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ बंधप्रकृतिगळु २६ अबंधप्रकृतिगळु ९४। अनिवृत्तिकरणन पंचभागंगळोळगे प्रथमभागदोळु अनिवृत्तिकरणन चरमसप्तमभागद नाल्कुं बंधव्युच्छित्तिगळनातनबंधप्रकृतिगळु २६ रोळु कळेयलुळिद २२ प्रकृतिगळु बंधंगळप्पुवु। तत्सप्तमभागव्युच्छित्तिगळु नाल्कुमं तत्भागाबंधप्रकृतिगळु ९४ कूडिदोडे अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागद अबंधप्रकृतिगळप्पु ९८ वंतागुत्तं विरला अनिवृत्तिकरणम प्रथमभागदोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृतिगळु २२ अबंधप्रकृतिगळु ९८। अनिवृत्तिकरणन द्वितीयभागदोळु तन्न प्रथमभागद बंधव्युच्छित्ति पुंवेदमनों दं १ तन्न प्रथमभागद बंधप्रकृतिगळु २२ रोळगे कळदोडे बंधप्रकृतिगळु २१ अप्पुवा पुंवेदमुं तत्प्रथमभागद अबंधप्रकृतिगळु ९८ मं कूडिदोडे तद्द्वितीयभागद अबंधप्रकृतिगळु ९९ अप्पुवंतागुत्तं विरला द्वितीयभागवर्त्तियनिवृत्तिकरणंगे बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृतिगळु २१ अबंधप्रकृतिगळु ९९ अनिवृत्तिकरणन तृतीयादिभागंगळोळमी प्रकारदिदं बंधव्युच्छित्तिगळुं बंधंगळुमबंधंगळुमी प्रकारदिदमिर्प्पुवु। तृतीयभागदोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृतिगळु २०। अबंधप्रकृतिगळु १००। चतुर्त्थभागदोळु मानसंज्वलनं पोदडे बंधव्युच्छित्ति १। बंधप्रकृतिगळु १९। अबंधप्रकृतिगळु १०१। अनिवृत्तिपंचमभागदोळु बंधव्युच्छित्ति १। बंधप्रकृतिगळु १८। अबंधप्रकृतिगळु १०२। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु बादरलोभसंज्वलनं पोदडे बंधव्युच्छित्तिगळु १६ बंधप्रकृतिगळु १७ अबंधप्रकृतिगळु १०३। उपशांतकषायगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं । ० । बंधप्रकृति १। अबंधप्रकृतिगळु ११९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं ०। बंधप्रकृति १ अबंधप्रकृतिगळु ११९। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृति १ अबंधप्रकृतिगळु ११९। अयोगिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं ०। बंधप्रकृतिगळु शून्यं ०। अबंधप्रकृतिगळु १२०।

इंतिवेल्लमं मनदोळिरिसि बंधप्रकृतिगळुमनबंधप्रकृतिगळुमं गुणस्थानंगळोळु गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपं :—

सत्तरसेक्कग्गसयं चउसत्तत्तरि सगट्ठि तेवट्ठी।
बंधा णवट्ठवण्णा दुवीस सत्तारसेक्कोघे ॥१०३॥

सप्तदशैकाधिकशतं चतुः सप्तोत्तरसप्ततिः सप्तषष्टिस्त्रिषष्टिर्बंधा नवाष्टाधिकपंचाशद्द्विविंशतिः सप्तदशैक ओघे ॥

तद्द्वयं गुणस्थानेष्वग्रतनसूत्रद्वयेनाह—

आगे बन्ध और अबन्ध गुणस्थानोंमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि। बंधाः प्रकृतिबंधंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ११७। सासादनदोळु १०१ मिश्रनोळु ७४। असंयतनोळु ७७। देशव्रतियोळु ६७। प्रमत्तसंयतनोळु ६३, अप्रमत्तसंयतनोळु ५९, अपूर्वकरणनोळु ५८। अनिवृत्तिकरणनोळु २२, सूक्ष्मसांपरायनोळु १७। उपशांतकषायनोळु १। क्षीणकषायनोळु १। सयोगकेवलियोळोंदु १। अयोगकेवलियोळु शून्यं ०।

अनंतरमबंधप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तिय उणवीसं छत्तियतालं तेवण्ण सत्तवण्णं च।
इगिदुगसट्ठी बिरहिय तियमय उणवीसमय ति वीससयं ॥१०४॥

तिस्रश्चैकान्नविंशतिः षट्त्र्यधिकचत्वारिंशत्त्रिपंचाशत्सप्तपंचाशत् एकद्विकषष्टिद्विरहित-त्र्यधिकशतमेकान्नविंशत्युत्तरशतत्रिविंशत्युत्तरशतं ॥

अभेदविवक्षया बन्धो विंशत्यग्रशतम्। तत्र मिथ्यादृष्टौ सप्तदशोत्तरशतमेव। 'सम्मेव तित्थबंधो आहारदुगं पमादरहिदेसु' इति तत्त्रयस्य बन्धाभावात्। सासादने एकोत्तरशतं मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तिषोडशकबन्धात्। मिश्रे चतुःसप्ततिः सासादनव्युच्छित्तेर्नृसुरायुषोश्चाबन्धे प्रक्षेपात्। असंयते सप्तसप्ततिः नृदेवायुस्तीर्थानामबन्धाद्बन्धे निक्षेपात्। देशसंयते सप्तषष्टिः, असंयतछेदस्याभावात्। प्रमत्ते त्रिषष्टिः देशसंयतव्युच्छित्तेरभावात्। अप्रमत्ते एकान्नषष्टिः प्रमत्तव्युच्छित्तेरभावादाहारकद्वयस्य च बन्धे पतनात्। अपूर्वकरणेऽष्टपञ्चाशत् देवायुषोऽप्रमत्ते छेदात्। अनिवृत्तिकरणे द्वाविंशतिः षट्त्रिंशतो बन्धाभावात्। सूक्ष्मसाम्पराये सप्तदश पञ्चानामनिवृत्तिकरणे व्युच्छेदात्। उपशान्त-क्षीणकषाययोः सयोगे च एकैका अयोगे शून्यम् ॥१०३॥

अभेद विवक्षासे बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ बीस हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक सौ सतरह ही बँधती हैं क्योंकि कहा है कि 'तीर्थंकरका बन्ध सम्यग्दृष्टिके ही होता है और आहारकद्विकका बन्ध प्रमादरहितके होता है।' इस प्रकार वहाँ तीन प्रकृतियोंके बन्धका अभाव है। सासादनमें एक सौ एक बँधती हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न सोलह प्रकृतियाँ ऊपरके गुणस्थानोंमें अबन्धरूप होती हैं। मिश्रमें चौहत्तर बँधती हैं क्योंकि सासादनमें व्युच्छिन्न पच्चीस प्रकृतियाँ तथा मनुष्यायु और देवायुका बन्ध यहाँ नहीं होता। असंयतगुणस्थानमें सतहत्तर बँधती हैं क्योंकि मनुष्यायु देवायु और तीर्थंकर अबन्धसे बन्धमें आ जाती हैं अर्थात् यहाँ बँधने लगती हैं। देशसंयतमें सड़सठका बन्ध होता है क्योंकि असंयतमें दसकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे यहाँ उनका बन्ध नहीं होता। प्रमत्तमें त्रेसठका बन्ध होता है क्योंकि देशसंयतमें चारकी व्युच्छित्ति होनेसे यहाँ उनका बन्ध नहीं होता। अप्रमत्तमें उनसठका बन्ध होता है क्योंकि प्रमत्तमें व्युच्छिन्न छहका अभाव हो जाता है तथा आहारकादिक बन्धमें आ जाते हैं। अपूर्वकरणमें अठावनका बन्ध होता है क्योंकि एक देवायुकी अप्रमत्तमें व्युच्छित्ति हो जाती है। अनिवृत्तिकरणमें बाईसका बन्ध होता है क्योंकि छत्तीसका बन्ध नहीं होता। सूक्ष्मसाम्परायमें सतरह बँधती हैं क्योंकि पाँचकी अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छित्ति हो जाती है। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय सयोगीमें एक-एक बँधती है। अयोगीमें शून्य है ॥१०३॥

अबंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु ३ सासादननोळु १९ मिश्रनोळु ४६ असंयतनोळु ४३ देशव्रतियोळु ५३ प्रमत्तसंयतनोळु ५७। अप्रमत्तसंयतनोळु ६१। अपूर्वकरणनोळु ६२। अनिवृत्तिकरणनोळु ९८। सूक्ष्मसांपरायनोळु १०३। उपशांतकषायनोळु ११९। क्षीणकषायनोळु ११९। सयोगकेवलि भट्टारकनोळु ११९। अयोगकेवलिभट्टारकनोळु अबंधप्रकृतिगळु १२०।

अनंतरं मार्गणास्थानंगळोळु बंधव्युच्छित्ति बंधाबंध त्रिविधत्वमं पेळ्वल्लि मोदलोळु नरकगतिमार्गणेयोळु गाथात्रितयदिदं पेळ्दपरु :—

अबन्धो मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृदाहारकद्वयं चेति त्रयम्। सासादने तदेव षोडशयुतमित्येकान्नविंशतिः। मिश्रे गतिः पञ्चविंशत्या नृदेवायुर्म्यां च युते षट्चत्वारिंशत् असंयते नृदेवायुस्तीर्थकृद्बन्धात् त्रिचत्वारिंशत्। देशसंयते सा दशयुतेति त्रिपञ्चाशत्। प्रमत्ते चतुर्युतेति सप्तपञ्चाशत्। अप्रमत्ते प्रमत्तषड्युतापि आहारकद्वयबन्धात् एकषष्टिः। अपूर्वकरणप्रथमभागे देवायुर्युतेति द्वाषष्टिः। द्वितीयभागे निद्राप्रचलाभ्यां चतुःषष्टिः। सप्तमभागे षष्टभागत्रिंशता चतुर्नवतिः। अनिवृत्तिकरणे सप्तमभागचतुर्भिरष्टानवतिः। सूक्ष्मसाम्परायेऽनिवृत्तिकरणपञ्चभागानामेकव्युच्छित्त्या व्युत्तरशतम्। उपशान्तक्षीणकषायसयोगेषु षोडशयुतमित्येकान्नविंशत्यग्रशतम्। अयोगे सातस्याप्यबन्धाद्विंशत्यग्रशतम् ॥१०४॥ अथ मार्गणासु तत्त्रयप्ररूपणयंस्तावन्नरकगतौ गाथात्रयेणाह—

अब अबन्ध कहते हैं। मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकर और आहारकद्विक तीनका अबन्ध है। सासादनमें उनमें सोलह मिलानेसे उन्नीसका अबन्ध है। मिश्रमें उन्नीसमें पच्चीस व्युच्छित्ति तथा मनुष्यायु देवायु मिलानेसे छियालीसका अबन्ध है। छियालीसमेंसे मनुष्यायु देवायु तीर्थंकर घटानेसे असंयतमें तैंतालीसका अबन्ध है अर्थात् असंयतमें ये तीन अबन्धसे बन्धमें आ जाती हैं। उनमें दस जोड़नेसे देशसंयतमें तिरपनका अबन्ध है। उनमें चार जोड़नेसे प्रमत्तमें सत्तावनका अबन्ध है। इसमें प्रमत्तमें व्युच्छिन्न छह प्रकृतियोंको जोड़नेपर भी आहारकद्विकके बन्धमें आ जानेके इकसठका अबन्ध है। इसमें देवायु बढ़ानेसे अपूर्वकरणके प्रथम भागमें बासठका अबन्ध है। दूसरे भागमें निद्रा प्रचलाके बढ़नेसे चौसठका अबन्ध है। सप्तम भागमें छठे भागमें व्युच्छिन्न तीस प्रकृतियोंके मिलनेसे चौरानबेका अबन्ध है। अनिवृत्तिकरणमें अपूर्वकरणके सप्तमभागमें व्युच्छिन्न चारके मिलनेसे अठानबेका अबन्ध है। अनिवृत्तिकरणके पाँच भागोंमें व्युच्छिन्न पाँच प्रकृतियोंके मिलनेसे सूक्ष्मसाम्परायमें एक सौ तीनका अबन्ध है। इसमें सोलह मिलनेसे उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय सयोगीमें एक सौ उन्नीसका अबन्ध है। अयोगीमें सातका भी अबन्ध होनेसे एक सौ बीसका अबन्ध है ॥१०४॥

इनकी संदृष्टि इस प्रकार हैं—

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
बन्ध व्यु.	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बन्ध	११७	१०१	७४	७३	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबन्ध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९	१२०

आगे मार्गणाओंमें बन्धादि तीनका कथन करते हुए नरकगतिमें तीन गाथाओंसे कहते हैं—

ओघे वा ओदेसे णारयमिच्छम्मि चारि वोच्छिण्णा।
उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा ॥१०५॥

ओघे इवादेशे नारकमिथ्यादृष्टौ चतस्रो व्युच्छित्तयः। उपरिम द्वादश सुरचतुःसुरायुराहारकमबंधाः॥

ओघे इव इन्तु गुणस्थानदोळु पेळवंते आदेशे मार्गणेयोळमरियल्पडुगुमप्पुदरिंदं गुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिगे पेळ्द बंधव्युच्छित्तिगळु १६ ररोळगे नारकमिथ्यादृष्टियल्लि मोदल नाल्कुं मिथ्यात्व हुंडसंस्थान षंढवेदासंप्राप्तसंहननमेंब प्रकृतिगळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवी नाल्कर मुंदण एकेंद्रियजाति स्थावरनाम आतप सूक्ष्म अपर्याप्तसाधारणशरीरनाम द्वींद्रियजाति त्रींद्रियजाति चतुरिंद्रियजाति नरकगति नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्य नरकायुष्यमेंब द्वादशप्रकृतिगळु १२। देवगति देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यमुं वैक्रियिकशरीरमुं तदंगोपांगमेंब सुरचतुष्कमुं ४ देवायुष्यमुं आहारकद्वयमुमेंब १९ प्रकृतिगळु नरकगतिसामान्यनारकरुगळगे बंधयोग्यंगळल्लवेकेंदोडे नारकरु नरकगतियिंबंदु एकेंद्रियजीवंगळुं विकलत्रयजीवंगळुं नारकरुं देवर्कळुमागि पुट्टरदु कारणदिंदमा पत्तों भत्तुं प्रकृतिगळं नूरिप्पत्तु बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडे नरकगतिय नारकरुगळगे बंधयोग्यमप्प प्रकृतिगळु नूरोंदु प्रकृतिगळप्पुवु १०१। घम्मेयोळं वंशेयोळं मेघेयोळमी नूरोंदु प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। अंजनेयोळमरिष्टेयोळं मघवियोळं तीर्त्थबंधमिल्लप्पुदरिंदमा मूरुं नरकंगळ नारकरुगळगे नूरु नूरे प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। माघवियोळु मनुष्यायुष्यं तद्गतिनारकरुगळगे बंधयोग्यमल्लप्पुदरिंदमा मनुष्यायुष्यमं कळेदोडे ओंदु गुंदि नूरु प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवी प्रकृतिगळु तत्तत्पृथ्विय पर्य्याप्तकरुगळगे योग्यंगळु। अपर्य्याप्तकरुगळगे बेरे योग्य प्रकृतिगळ पेळल्पट्टपुवप्पुदरिंदं

	परि		अप	
घ	१०१		घ	९९
वं	१०१		वं	९८
मे	१०१		मे	९८
अं	१००		अं	९८
अं	१००		अ	९८
म	१००		म	९८
मा	९९		मा	९५

मार्गणाणां गुणस्थानवज्ज्ञातव्यं किन्तु नरकगतौ मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वादीनां चतुर्णामेव व्युच्छित्तिः। तदुपरितनैकेन्द्रियादिद्वादशानां देवगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकतदङ्गोपाङ्गानां देवायुराहारकद्वययोश्च बन्धो नास्ति। तेन बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम् १०१। अञ्जनादित्रये तीर्थङ्करत्वं विना शतम्। माघव्यां मनुष्यायुर्विना एकोन-

मार्गणामें गुणस्थानवत् जानना। किन्तु नरकगतिमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारकी ही व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपरकी एकेन्द्रिय आदि बारह, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक, वैक्रियिक अंगोपांग, देवायु, आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता। अतः घर्मा आदि तीन नरकोंमें बन्ध योग्य एक सौ एक हैं। अंजना आदि तीन नरकोंमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य सौ हैं। माघवीमें मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य निन्यानवे हैं।

अपर्याप्तकरुगळ्गे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिंदं आयायुर्ब्बंधमिल्लप्पुदरिंदं तिर्य्यंग्मनुष्यापुर्द्वयमं कळेदोडे ९९ प्रकृतिगळ् बंधयोग्यंगळप्पुवु। क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळ् कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळ् घम्मेयोळ्पुट्टुवरप्पुदरिंदमपर्य्याप्तकालदोळं तीर्त्थबंधमुंटु। वंशेयोळं मेघेयोळमुळिव नरकंगळोळं सम्यग्दृष्टिगळ्पुट्टरु मिथ्यादृष्टिगळे पोगि पुट्टुवरदु कारणमागि तीर्त्थनामकर्म्ममना तोंभत्तों-भत्तरोळ् कळेदोडे ९८ प्रकृतिगळ् वंशादिमघविपर्य्यंतं बंधयोग्यप्रकृतिगळप्पुवु। माघवियोळ् नारकरु अपर्य्याप्तकालदोळ् मनुष्यगतिनामकर्म्ममुमन्तत्प्रायोग्यानुपूर्व्यमुमनुच्चैर्गोत्रमुमिन्तु मूरुं प्रकृतिगळं कट्टुव योग्यतेयिल्लप्पुदरिंदमवं तोभत्तेंटुं प्रकृतिगळोळ्कळेदोडे ९५ प्रकृतिगळ् बंधयोग्यंगळप्पुवु। इन्ती विधानम ननितं लेसागव धारिसिवंगे घर्म्माविपृथ्विगळोळ् बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधत्रिविकल्पमं मिथ्यादृष्टयादिचतुर्ग्गुणस्थानंगळोळ् योजिसुव प्रकारमं पेळ्दपरु :—

घम्मे तित्थं बंधदि वंसामेघाण पुण्णगो चेव।
छट्ठोत्ति य मणुवाउ चरिमे मिच्छेव तिरियाऊ ॥१०६॥

घर्म्मायां तीर्त्थं बध्नाति वंशामेघयोः पूर्णश्चैव षष्टिपर्य्यंतं मनुष्यायुश्चरमे मिथ्यादृष्टयादावेव तिर्य्यंगायुः॥

घम्मेयोळ् नारकं तीर्त्थनामकर्म्ममं कट्टुगुं। वंशेय मेघेय नारकरु पर्य्याप्तकालदोळे कट्टुवरु। अवेकेंदोडे घम्मेयल्लबुळिव वंशाद्यधस्तन पृथ्विगळोळ् सम्यग्दृष्टिगळ्पुट्टरवु कारणदिंदमा वंशेयोळ् मेघेयोळ्पुट्टिव तीर्त्थसत्कमंरु पुट्टिवंतर्म्मुहूर्त्तंक्के षट्पर्य्याप्तिगळ्नेरवु सम्यक्त्वस्वीकारमं माडि तीर्त्थबंधमं माळ्परप्पुरिंदं। मघविपर्य्यंन्तमाद नरकंगळ नारकरु मनुष्यायुष्यमं कट्टुवरु। माघविय नारकरु मिथ्यादृष्टिगळे तिर्य्यंगायुष्यमं कट्टुवरु एंबी सूत्राभिप्रायदिंदं घम्मे वंशे मेघेय पर्य्याप्तकरचनेयं मुन्नं रचियिसि बळिक्कदर विचारमं माडिदपेमदक्के संदृष्टि :—

शतम्। अपर्याप्तकाले तु मिश्रकाययोगित्वात् नरतिर्यगायुषी विना घर्मायामेकोनशतम् ९९। वंशादिषु सम्यग्दृष्टयनुत्पत्तेः तीर्थङ्करत्वं विना अष्टानवतिः ९८। माघव्यां मनुष्यगतितदानुपूर्व्योच्चैर्गोत्रैर्विना पंचनवतिः ९५। इदं जानन्तं प्रति गुणस्थानेषु व्युच्छित्त्यादित्रयं योजयति ॥१०५॥

घर्मायां तीर्थकरत्वं च बध्नाति। वंशामेघयोः पर्याप्त एव बध्नाति नापर्याप्तः। मघवीं यावन्मनुष्यायुर्बध्नाति नाधः। माघव्यां मिथ्यादृष्टावेवैकं तिर्यगायुर्बध्नाति एतत्सूत्राभिप्रायेण घर्मादित्रयपर्याप्तस्य

अपर्याप्त अवस्थामें मिश्रकाय योग होनेसे मनुष्यायु तिर्यंचायुका बन्ध नहीं होता। अतः घर्मामें बन्धयोग्य निन्यानवे हैं। सम्यग्दृष्टि जीव मरकर वंशा आदिमें उत्पन्न नहीं होता। अतः वहाँ तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य अठानवे हैं। माघवीमें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रके बिना बन्धयोग्य पिचानवे हैं, यह अपर्याप्त अवस्थामें जानना ॥१०५॥

यह जान लेनेपर गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति आदि तीनका कथन करते हैं—

घर्मानरकमें तीर्थंकरका बन्ध करता है। वंशा और मेघामें पर्याप्त अवस्थामें ही तीर्थंकरका बन्ध करता है, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं करता। मघवी नामक छठे नरक तक ही मनुष्यायुका बन्ध करता है उससे नीचे नहीं करता। 'माघवीमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही

पर्य्याप्त		घर्म्मे	वंशे	मेघे
	अ	१०	७२	२९
	मि	०	७०	३१
	सा	२५	९६	५
	मि	४	१००	१
अपर्य्याप्त	अ	९	७१	२८
	मि	२८	९८	१
		व्युच्छि	बध	अबंध

इल्लि मिथ्यात्वमुं हुंडसंस्थानमुं षंढवेदमुमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननमें ब नाल्कुं प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु १०० अबंधप्रकृति तीर्त्थमो देयक्कुं। सासादनंगे बंधव्युच्छित्तिगळुं मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळ्द पंचविंशतिप्रकृतिगळेयप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळु नाल्कनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदुळिद ९६ प्रकृतिगळु सासादनंगे बंधप्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुं मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळु नाल्कुमबंधप्रकृति तीर्त्थमितैदुं प्रकृतिगळु सासादनंगे अबंधप्रकृतिगळप्पुवु। मिश्रंगे व्युच्छित्तिशून्य मक्कुं। बंधप्रकृतिगळु। सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु २५ मनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदुळिद ७१ प्रकृतिगळोळगे मिश्रगायुर्ब्बंधमिल्लप्पुदरिंदमल्लिई मनुष्यायुष्यमं तेगेदोडे बंधप्रकृतिगळु ७० रुप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुमा कळेद मनुष्यायुष्यमुं १। सासादनन बंधव्युच्छिति २५ मबंधप्रकृतिगळु ५ मिन्तु ३१ प्रकृतिगळु मिश्रंगे अबंधप्रकृतिगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु १० बंधप्रकृतिगळु मिश्रन बंधप्रकृतिगळोळगे तीर्त्थमुमं मनुष्यायुष्यमुमं कूडिदोडे ७२ प्रकृतिगलु असंयतंगे बंधप्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुं मिश्रन अबंधंगळु ३१ रोळगे तीर्त्थमुमं मनुष्यायुष्यमुमं तेगेदु बंधप्रकृतिगळोळु कूडिदवप्पुदरिंदमु आ येरडुं प्रकृतिगळं कळेदोडे असंयतंगे अबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवु। घर्म्मेय अपर्य्याप्तनारकरुगळगे। मिथ्यादृष्टिगे सासादनतिर्य्गायुर्व्वर्जितबंधव्युच्छित्तिगळु २४ मं तन्न नाल्कुं बंधव्युच्छित्तिगळं कूडिदोडे बंधव्युच्छित्तिगळु २८ प्पुवेकेंदोडे नरकगतियोळ्ल्लियुमप्पपर्य्याप्तकालदोळु सासादनरिल्लप्पुदरिंदं। असंयतसम्यग्दृष्टिगे मनुष्यायुर्व्वर्जितं-

---

एकोत्तरशते मिथ्यादृष्टौ अबन्धः तीर्थकरत्वं, बन्धः शतं, व्युच्छित्तिः तदेवाद्यचतुष्कम्। सासादने अबन्धः पञ्च, बन्धः षण्णवतिः, व्युच्छित्तिः प्रागुक्तैव पञ्चविंशतिः। मिश्रे बन्धः मनुष्यायुर्नेति सप्ततिः, अबन्धः एकत्रिंशत्, व्युच्छित्तिः शून्यम्। असंयते बन्धः मनुष्यायुस्तीर्थकरत्वाभ्यां द्वासप्ततिः, अबन्धः एकान्नत्रिंशत्, व्युच्छित्तिर्दश। नारकापर्याप्तानां सासादनत्वं नेति घर्मायां मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः तिर्यगायूरहितगासादन-

---

एक तिर्यगायुका बन्ध करता है' इस सूत्रके अभिप्रायसे घर्मा आदि तीनमें पर्याप्तके एकसौ एक बन्धयोग्य हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका अबन्ध है, बन्ध सौका, व्युच्छित्ति आदिकी चार प्रकृतियोंकी। सासादनमें अबन्ध पाँच, बन्ध छियानवे, व्युच्छित्ति पूर्वोक्त पच्चीस। मिश्रमें मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे बन्ध सत्तर, अबन्ध इकतीस, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतमें तीर्थंकर और मनुष्यायुका बन्ध होनेसे बन्ध बहत्तर, अबन्ध उनतीस, व्युच्छित्ति दस। नरकमें अपर्याप्तावस्थामें सासादन गुणस्थान नहीं होता। अतः घर्मामें मिथ्यादृष्टिमें

गळप्प तन्न व्युच्छित्तिगळु ९ तनगे बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु ९। मिथ्यादृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयरहित ९८ प्रकृतिगळु बंधप्रकृतिगळप्पुवु। असंयतंगे तन्न पर्य्याप्तकालद ७२ रोळगे मनुष्यायुष्यरहितमागि तीर्त्थसहितमागि बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवु। मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थमोंदे अबंधप्रकृतियक्कुं १। असंयतंगे आ मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्ति अबंधंगळु कूडि २९ रोळगे तीर्त्थबंधप्रकृतिगळोळं कूडित्तप्पुदु कारणमागि असंयतनोळबंधप्रकृतिगळु २८ अप्पुवु। यिन्नु अंजने अरिष्टे मघविगळ पर्य्याप्तनारकरुगळे :— ५

अ	१०	७१	२९
मि	०	७०	३०
सा	२५	९६	४
मि	४	१००	०

तीर्त्थरहितमागि घर्मे वंशे मेघेगळगे पेळ्दंतेयक्कुं। वंशेयुं मेघेयुमंजनेयुमरिष्टेयुं मघवियुमेंब पंचभूमिगळनारकापर्य्याप्तरु मिथ्यादृष्टिगळेयप्पुदरिंदमा मिथ्यादृष्टिगळगेल्लरिगं बंधप्रकृतिगळु ९८ अप्पुवु मी २८। ९८। ०। माघविय नारकपर्याप्तकरुगळगे :—

अ	९	७०	२९
मि	०	७०	२९
सा	२४	९१	८
मि	५	९६	३
माघविय अपर्य्याप्त			
मि	९५	९५	०

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ सासादननल्लिय तिर्य्यगायुष्यं गूडि ५ प्रकृतिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९६। अबंधप्रकृतिगळु ३ ॥ १०

मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमे हवे बंधो।
मिच्छा सासणसम्मा मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥१०७॥

मिश्राविरतयोरुच्चं मनुष्यद्विकं सप्तम्यां भवेद्बंधः। मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यद्विकमुच्चं न बध्नीतः ॥ १५

व्युच्छित्त्या युता इत्यष्टाविंशतिः, बन्धोऽष्टानवतिः, अबन्धः तीर्थकरत्वम्। असंयते व्युच्छित्तिः मनुष्यायुर्विना नव, बन्धस्तीर्थकरत्वेन एकसप्ततिः। अबन्धोऽष्टाविंशतिः। अञ्जनादित्रयपर्याप्तानां तीर्थकरत्वं विना घर्मादित्रयवत् ज्ञातव्यम्। वंशादिपञ्चापर्याप्ता मिथ्यादृष्टय एवेति बन्ध एव ॥१०६॥

व्युच्छित्ति तिर्यगायुके बिना सासादनमें व्युच्छिन्न चौबीस प्रकृतियोंके मिलनेसे अठाईसकी होती है। बन्ध अठानबे, अबन्ध तीर्थंकर का। असंयतमें व्युच्छित्ति मनुष्यायुके बिना नौ, बन्ध तीर्थंकरके साथ इकहत्तर, अबन्ध अठाईस। अंजना आदि तीनमें पर्याप्तकोंके तीर्थंकरके बिना घर्मा आदि तीनकी तरह जानना। वंशा आदि पाँच पृथिवियोंमें अपर्याप्त अवस्थामें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ॥१०६॥ २०

मिश्रनोळुमसंयतनोळं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुं सप्तमपृथ्वियोळु बंधमक्कुं। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिगळोळ्वरु मनुष्यद्विकमुमनुच्चैर्गोत्रमुमं कट्टरेंदितु मिथ्यादृष्टियोळबंधप्रकृतिगळु ३ अप्पुवु। सासादनसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु २४ अप्पुवेकेंदोडे तिर्य्यगायुष्यमं तेगदु मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळोळकूडिदप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ९१ अप्पुवेकेंदोडे मिथ्यादृष्टिबंधव्युच्छित्तिगळप्पुं कळेदुदप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु ८ प्पुवेकेंदोडे मिथ्यादृष्टिय व्युच्छित्तिगळप्पु मातन अबंधप्रकृतिगळमूरुं ३ कूडिदोडे टे प्रकृतिगळप्पुदरिंदं मिश्रनोळु व्युच्छित्तिशून्यमक्कुं। बंधप्रकृतिगळु सासादनन व्युच्छित्तिगळनातनबंधप्रकृतिगळोळकळेदोडे ६७ प्रकृतिगळप्पुववरोळु मनुष्यद्विकमुमनुच्चैर्गोत्रमुमं कूडिदोडे मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळा कूडिद मूरुं प्रकृतिगळं सासादनन व्युच्छित्यबंधंगळोळु ३२ कळेदोडे मिश्रंगबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु मनुष्यायुर्व्वर्ज्जितनवप्रकृतिगळप्पुवु ९। बंधप्रकृतिगळु मिश्रंगे पेळ्दंते ७० प्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळुं मिश्रनोळेंतंते २९ प्रकृतिगळप्पुवु। माघविय अपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगे तिर्य्यगायुर्व्वर्ज्जित ९८ प्रकृतिगळोळगे मनुष्यद्विकोच्चप्रकृतित्रयमं कळेदोडे ९५ प्रकृतिगळुबंधंगळप्पुवु। इन्तु नरकगतियोळु बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळु पेळल्पट्टुवनंतरं तिर्य्यंग्गतियोळु पेळ्दपरु :—

सप्तमपृथिव्यां मिश्रासंयतयोरुच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्वयं च बध्नाति। मिथ्यादृष्टिसासादनौ न बध्नतः इति तत्त्रयं तत्पर्याप्ते मिथ्यादृष्टावबन्धः। बन्धः षण्णवतिः। व्युच्छित्तिस्तिर्यगायुषोऽत्रैव बंधात् पञ्च। सासादने अबन्धोऽष्टौ, बन्धः एकनवतिः, व्युच्छित्तिः चतुर्विंशतिः। मिश्रेऽबन्धः तत्त्रयबन्धादेकान्नत्रिंशत्, बन्धः सप्ततिः, व्युच्छित्तिः शून्यम्। असंयते अबन्धबन्धौ मिश्रवत्। व्युच्छित्तिर्मनुष्यायुर्वर्जनान्नव ॥१०७॥ एवं नरकगतौ बन्धव्युच्छित्तिबन्धाबन्धप्रकृतीः प्ररूप्य अनन्तरं तिर्यग्गतौ प्ररूपयति—

सातवीं पृथिवीमें मिश्र और असंयत गुणस्थानमें ही उच्चगोत्र और मनुष्यद्विकका बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टि और सासादनमें उनका बन्ध नहीं होता। अतः सातवीं पृथिवीमें पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टिमें इन तीनोंका अबन्ध होता है। बन्ध छियानबे, तिर्यगायुका बन्ध यहीं होनेसे व्युच्छित्ति पाँच। सासादनमें अबन्ध आठ, बन्ध इक्यानबे, व्युच्छित्ति चौबीस। मिश्रमें मनुष्यद्विक और उच्चगोत्रका बन्ध होनेसे अबन्ध उनतीस, बन्ध सत्तर, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतमें अबन्ध और बन्ध मिश्रकी तरह, व्युच्छित्ति मनुष्यायुको छोड़ नौ ॥१०७॥

	धर्मादि तीन पर्याप्त १०१ बन्धयोग्य				धर्मा अपर्याप्त ९९ बन्धयोग्य		अंजनादि तीन पर्याप्त १०० बन्धयोग्य				सप्तम नरक पर्याप्त ९९ बन्धयोग्य			
	मि.	सा.	मिश्र	असं.	मि.	असं.	मि.	सा.	मिश्र	असं.	मि.	सा.	मिश्र	असं.
अबन्ध	१	५	३१	२९	१	२८	०	४	३०	२९	३	८	२९	२९
बन्ध	१००	९६	७०	७२	९८	७१	१००	९६	७०	७१	९६	९१	७०	७०
बं. व्यु.	४	२५	०	१०	२८	९	४	२५	०	१०	५	२४	०	९

तिरिए ओघो तित्थाहारूणो अविरदे छिदी चउरो ।
उवरिमछण्णं च छिदि सासणसम्मे हवे णियमा ॥१०८॥

तिरश्चि ओघस्तीर्थाहारोनोऽविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः । उपरितनषण्णां व्युच्छित्तिः सासादनसम्यग्दृष्टौ भवेन्नियमात् ॥

तिर्य्यंग्गतियोळु ओघः गुणस्थाननिरूपणमेयक्कुं । अदेंतप्पुदें दोडे तीर्त्थाहारोनः तीर्त्थनामसुमाहारकद्वयविहीनमप्पुदक्कुं । तीर्त्थाहारकत्रिप्रकृतिविहीनमाद सर्व्वबंधप्रकृतिगळु ११७ ळुं मुन्नं गुणस्थानदोळपेळ्दंते बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु ज्ञातव्यमप्पुवल्लि अविरते असंयतसम्यग्दृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळं १० रोळगे तिर्य्यंचासंयतंगे चतस्रो व्युच्छित्तयः नाल्के बंधव्युच्छित्तिगळप्पुव ४ ल्लि उपरितनषट्प्रकृतिगळगे ६ सासादनसम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु नियमविदमप्पुवन्तागुत्तं विरलु :—

सामण्णतिरियपंचिंदियपुण्णगजोणिणीसु एमेव ।
सुरणिरयाउ अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि ॥१०९॥

सामान्यतिर्य्यक्पंचेंद्रियपूर्णकयोनिमतिष्वेवमेव । सुरनारकायुरपूर्णे वैक्रियिकषट्कमपि नास्ति ॥

सामान्यतिर्य्यंचरुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुं पर्य्याप्तकतिर्य्यंचरुं योनिमतितिर्य्यंचरुमेंबी चतुर्व्विधतिर्य्यंचरुगळोळु एमेव यी प्रकारमेयक्कुमपूर्ण लब्ध्यपर्य्याप्ततिर्य्यंचरोळु सुरनारकायुः देवायुष्यमुं नरकायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमपि वैक्रियिकद्वितयमुं देवगतिद्वयमुं नरकगतिद्वयमुमेंब वैक्रियिकषट्कमुमा तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तकरोळु बंधमिल्लेकेंदोडे उत्तरभवदोळु उदययोग्यमल्लद प्रकृतिगळं कट्टुवरल्लरें बुदर्त्थं । संदृष्टिरचने :—

तिर्यग्गतौ ओघः गुणस्थाननिरूपणमिव भवति किन्तु तीर्थाहारोन। तीर्थकरत्वाहारकद्वयाभ्यां रहितो भवति तेन बन्धयोग्यप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतम् । व्युच्छित्तिबन्धाबन्धभेदास्तत्प्रकृतित्रयं बिना गुणस्थानवज्ज्ञातव्याः । तत्रापि अविरते असंयतसम्यग्दृष्टौ व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया एव चत्वारः तदुपरितनानां वज्रवृषभनाराचादीनां षण्णां व्युच्छित्तिः तिर्यग्मनुष्यगत्योः सासादनसम्यग्दृष्टावेव भवति नियमात् ॥१०८॥ तथासति—

सामान्यतिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः पर्याप्ततिर्यञ्चः योनिमत्तिर्यञ्चश्चेति चतुर्विधतिर्यक्षु एवमेव भवति । अपूर्णे लब्ध्यपर्याप्तकतिरश्चि सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कमपि बन्धो नास्ति उत्तरभवे उदययोग्यानां

तिर्यञ्चगतिमें 'ओघ' अर्थात् गुणस्थानवत् जानना। किन्तु तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध नहीं होता। अतः बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह। व्युच्छित्ति, बन्ध-अबन्ध गुणस्थानवत् जानना। इतना विशेष है कि असंयत गुणस्थानमें व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यानावरण कषायकी ही होती है। उससे ऊपरकी वज्रवृषभनाराच आदि छहकी व्युच्छित्ति सासादन सम्यग्दृष्टिमें ही नियमसे होती है ॥१०८॥

सामान्यतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पर्याप्ततिर्यञ्च, योनिमत्तिर्यञ्च इन चार प्रकारके तिर्यञ्चोंमें इसी प्रकार होता है। लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चमें देवायु, नरकायु और वैक्रियिक षट्क-

१. ब भवेदिति ।

सा	पं	प	यो
वि	४	६६	५१
अ	४	७०	४७
मि	०	६९	४८
सा	३१	१०१	१६
मि	१६	११७	०

इल्लि मिथ्यादृष्टिय बंधप्रकृतिगळु ११७ रोळु मिथ्यात्वादि षोडश व्युच्छित्ति प्रकृतिगळं कळेदुळिद १०१ प्रकृतिगळु सासादनंगे बंधप्रकृतिगळक्कुमा कळेद १६ प्रकृतिगळु आतंगबंधप्रकृतिगळप्पुउ। बंधव्युच्छित्ति प्रकृतिगळु ३१ अप्पुवेकेंदोडे चतुर्व्विधतिर्य्यंचासंयतसम्यग्दृष्टिगळु वज्रर्षभनाराचसंहननमुमं औदारिकद्वयमुमं मनुष्यद्वितयमुमं मनुष्यायुष्यमुमं कट्टरप्पुदरिंदमवं तेगदु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळ्माडल्पट्टुदरिंदं। मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळु ६९ अप्पुवेंतेंदोडे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु ३१ नातन बंधप्रकृतिगळोळ्कळेदल्लिद्दंदेवायुष्यमुमं कळेदोडक्कुमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळल्लि ४८ प्रकृतिगळप्पुवेंतेंदोडे सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळुमबंधप्रकृतिगळुं कूडि देवायुष्यं सहितमागियप्पुवप्पुदरिंदं। तिर्य्यक्चतुष्टयासंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रनोळ्कळेद देवायुष्यमनातं कट्टुगुमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु ४७ अप्पुवा कूडिद देवायुष्यं कळदुदप्पुदरिंदं। चतुर्व्विधतिर्य्यंचदेशव्रतिगळगे बंधप्रकृतिगळु ६६ अप्पुवेंतेंदोडे असंयतन बंधव्युच्छित्तिगळनाल्कुमनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडक्कुमेंबुदर्त्थं। अबंधप्रकृतिगळु ५१ अप्पुवेंतेंदोडसंयतन अबंधप्रकृतिगळोळु ४७ आतनव्युच्छित्तिगळनाल्कु कूडिदोडक्कु मेंबुदर्त्थं। बंधव्युच्छित्तिगळुमल्लि ४ अप्पुवी चतुर्व्विधतिर्य्यंचनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १११

बन्धाभावात्। तत्सामान्यादिचतुर्विधतिरश्चां मिथ्यादृष्टौ बन्धप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतम्। अत्र मिथ्यात्वादि षोडशव्युच्छित्तिमपनीय शेषाः १०१।

सासादनस्य बन्धः। अपनीतास्ताः १६ अबन्धः, व्युच्छित्तिरेकत्रिंशत्। कुतः ? असंयतव्युच्छित्तेरुपरितनषण्णामत्रैव छेदात्। मिश्रे बन्धः एकान्नसप्ततिः सासादनबन्धे तद्व्युच्छित्तेर्देवायुषश्च अपनयनात्। अबन्धोऽष्टचत्वारिंशत् सासादनव्युच्छित्त्यबन्धयोर्देवायुर्मेलनात्। व्युच्छित्तिः शून्यम्। असंयतस्य बन्धः सप्ततिः देवायुषोऽत्र बन्धसंभवात्। अबन्धः सप्तचत्वारिंशत् देवायुषोऽपनीतत्वात्। व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया

का बन्ध नहीं है क्योंकि जो प्रकृतियाँ आगामी भवमें उदयके योग्य नहीं हैं उनका बन्ध नहीं होता। अतः सामान्य आदि चार प्रकारके तिर्यञ्चोंके मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह हैं। इनमें-से सोलहकी व्युच्छित्ति घटानेपर शेष एक सौ एकका बन्ध सासादनमें, अबन्ध सोलह, व्युच्छित्ति इकतीस; क्योंकि असंयतमें व्युच्छिन्न होनेवाली ऊपरकी छह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही होती है। मिश्रमें बन्ध उनहत्तर क्योंकि सासादनमें बँधनेवाली एक सौ एक प्रकृतियोंमें-से व्युच्छिन्न इकतीस तथा देवायु कम हो जाती हैं। अबन्ध अड़तालीस, क्योंकि सासादनमें व्युच्छिन्न इकतीस और अबन्धमें सोलह तथा देवायुके मिलनेसे अड़तालीस होती है। व्युच्छित्ति शून्य। असंयतके बन्ध सत्तरका, क्योंकि यहाँ देवायुका बन्ध सम्भव है। अबन्ध सैंतालीस क्योंकि देवायु कम हो गयी।

अप्पुवर्वेतेंदोडे मिश्रकाययोगिगळोळायुर्ब्बंधमिल्लप्पुदरिंदं। नाल्कायुष्यंगळुं ४ नरकद्विकमुमिन्तु ६ प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं। ई निवृत्यपर्याप्तकरुगळिगे गुणस्थानत्रयमक्कुमल्लिमिथ्यादृष्टिगुण स्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवेकेंदोडे निर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु मिथ्यादृष्टिगं सासादनंगं सुरचतुष्टयमं कट्टुव योग्यते यिल्लप्पुदरिनवं कळेबातनोळु अबंधप्रकृतिगळ्माडिद वप्पुदरिंदं। आ चतुर्व्विधसासादननिवृत्यपर्य्याप्तितिर्य्यंचरुगळगे बंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळु १३ कळेदोडप्पुवप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळुमल्लि १७ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिय बंधव्युच्छित्तिगळुमनातन अबंधप्रकृतिगळुमं कूडिदोडक्कुमप्पुदरिंदं। असंयतत्रिविधतिर्य्यंचनिर्वृत्य-पर्य्याप्तरुगळगे बंधप्रकृतिगळु ६९ अप्पुवेंतेंदोडे सासादनबंधव्युच्छित्तिगळु २९ इवनातन बंध-प्रकृतिगळोळकळेदोडे ६५ अप्पुववरोळु सुरचतुष्कमं कूडिदोडे अप्पुवप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळो-ळातनोळु ४२ अप्पुवेंतेंदोडे सासादनबंधव्युच्छित्तिगळुमं २९। अबंधप्रकृतिगळुमं १७ कूडिदोडे ४६ रिवरोळु सुरचतुष्कं तेगदु असंयतनोळ्कूडिदुदप्पुदरिंदं :—

सा	पं	अप	०
अ	४	६९	४२
सा	२९	९४	१७
मि	१३	१७	४

एव चत्वारः वज्रवृषभनाराचादीनां षण्णां प्राक् सासादन एव बन्धच्छेदात्। देशसंयतस्य बन्धः षट्षष्टिः असंयतव्युच्छित्तिचतुष्कस्य तद्बन्धेऽपनीतत्वात्। अबन्धः एकपञ्चाशत् असंयतव्युच्छित्तेरत्र पतितत्वात्। व्युच्छित्तिः स्वस्य चतुष्कम्। चतुर्विधतिर्यग्निर्वृत्यपर्याप्तानां बन्धयोग्यप्रकृतयः एकादशोत्तरशतमेव। मिश्रकाय-योगित्वादायुश्चतुष्कनरकद्विकयोर्बन्धाभावात् तेषां च गुणस्थानत्रयमेव। तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः सप्तोत्तरशतं निर्वृत्यपर्याप्तकाले मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सुरचतुष्कस्याबन्धात्। व्युच्छित्तिः त्रयोदश नरकायुर्नरकद्विकयोर-भावात्। अबन्धः सप्तदश मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्त्यबन्धयोर्मेलत्वात्। असंयतस्य बन्धः एकान्नसप्ततिः सासादन-बन्धे तद्व्युच्छित्त्येकान्नत्रिंशतमपनीय सुरचतुष्कस्य मेलनात्। अबन्धः द्वाचत्वारिंशत् सासादनव्युच्छित्त्यबन्धौ

व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यानकषायोंकी, क्योंकि वज्रर्षभनाराच आदि छहकी पहले सासादनमें ही बन्धव्युच्छित्ति हो गयी है। देशसंयतमें बन्ध छियासठका, क्योंकि असंयतमें बँधनेवाली सत्तर प्रकृतियोंमें-से उसमें व्युच्छिन्न चार घट जाती हैं। अबन्ध इक्यावनका, असंयतमें व्युच्छिन्न उसमें मिल जाती हैं। व्युच्छित्ति चार। उक्त चारों प्रकारके निर्वृत्य-पर्याप्ततिर्यञ्चोंके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ ग्यारह हैं। क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे चारों आयु और नरकद्विकका बन्ध नहीं होता तथा उनमें तीन ही गुणस्थान होते हैं। उनके मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमें बन्ध एक सौ सात; क्योंकि निर्वृत्यपर्याप्तकालमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें सुरचतुष्कका बन्ध नहीं होता। व्युच्छित्ति तेरह; क्योंकि नरकद्विक और नरकायु-का अभाव है। सासादनमें बन्ध चौरानबे; क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न तेरह घट जाती हैं। व्युच्छित्ति उनतीस, क्योंकि तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका अभाव है। अबन्ध सतरह, क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न तेरह और अबन्धमें चार मिलकर सतरह होती हैं। असंयतमें बन्ध उनहत्तर; क्योंकि सासादनमें बन्ध चौरानबेमें-से उसमें व्युच्छिन्न उनतीस घटाकर सुरचतुष्क

इन्नु लब्ध्यपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टिगळ्गे सुरनारकायुरपूर्णे वैक्रियिकषट्कमपि नास्ति एंदी सूत्राभिप्रायदिंदं लब्ध्यपर्य्याप्तकतिर्य्यंचमिथ्यादृष्टिगळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कट्टुवरप्पुदरिंदं शेष-सुरनारकायुर्द्वयमुमं वैक्रियिकषट्कमुमं कट्टुव योग्यतेयिल्लप्पुदरिंदमा ८ प्रकृतिगळं तिर्य्यग्गतिय बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ रोळगे कळेदोडे १०९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु ॥

अनंतरं मनुष्यगतियोळु बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगळं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दपरु :—

तिरियेव णरे णवरि हु तित्थाहारं च अत्थि एमेव ।
सामण्णपुण्णमणुसिणिपारे अपुण्णे अपुण्णेव ॥११०॥

तिरश्चीव नरे नवं खलु तीर्थाहारं चास्त्येवमेव । सामान्यपूर्णमानुषीषु नरे अपूर्णे अपूर्णे इव ॥

तिर्य्यग्गतियोळेंतु पेळ्दंते मनुष्यगतियोळुमक्कुमेंतेंदोडे अविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः एंबिवुवु । मा असंयतन नाल्करिंद मुंदण ६ व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळप्पु-वेंबिवुवुं । मत्तं नवीनमुंटदावुदेंदोडे तीर्त्थाहारं चास्ति तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमुंटु खलु स्फुट-

---

एकीकृत्य तस्मात् सुरचतुष्कस्य बन्धे निक्षेपात् । व्युच्छित्तिः अप्रत्याख्यानकषाया एव चत्वारः । तिर्यग्लब्ध्य-पर्याप्तकमिथ्यादृष्टौ तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धसद्भावात् शेषसुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कमपि बन्धो नास्तीति तदष्टके तिर्यग्गतिबन्धेऽनीते शेषं नवोत्तरशतमेव बन्धयोग्यं भवति ॥१०९॥ अथ मनुष्यगतौ बन्धव्युच्छित्ति बन्धाबन्धप्रकृतीर्गुणस्थानेषु प्ररूपयति—

तिर्यग्गतिवन्मनुष्यगतौ भवति । अविरते व्युच्छित्तिश्चत्वारः । तदुपरितनानां षण्णां व्युच्छित्तिः सासादनसम्यग्दृष्टावेव इति विशेषस्य उभयत्र समानत्वात् । पुनः नवीनमस्ति । तत् किम् ? तीर्थकरत्वमा-

---

मिलानेसे उनहत्तर होती हैं । अबन्धमें बयालीस; क्योंकि सासादनमें हुई व्युच्छित्ति और अबन्धको मिलाकर उसमें-से सुरचतुष्कको बन्धमें ले जानेपर बयालीस रहती हैं । व्युच्छित्ति चार अप्रत्याख्यान कषायकी । तिर्यञ्चलब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टिमें तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध सम्भव है । शेष देवायु, नरकायु और वैक्रियिक षट्कका बन्ध नहीं होता । अतः तिर्यञ्च-गतिमें बन्धयोग्य एक सौ सतरहमें-से ये आठ कम करनेपर शेष एक सौ नौ बन्धयोग्य होती हैं ॥१०९॥

सामान्यादि चार पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें बन्धयोग्य ११७

	मि.	सा.	मिश्र	असं.	देश.
अबन्ध	०	१६	४८	४७	५१
बन्ध	११७	१०१	६९	७०	६६
ब. व्यु.	१६	३१	०	४	४

निर्वृत्यपर्याप्त तिर्यञ्चोंमें बन्धयोग्य १११

	मि.	सा.	असं.
	४	१७	४२
	१०७	९४	६९
	१३	२९	४

मनुष्यगतिमें गुणस्थानोंमें बन्ध, व्युच्छित्ति-बन्ध और अबन्ध कहते हैं—

तिर्यञ्चगतिके समान मनुष्यगतिमें होता है । अर्थात् असंयतगुणस्थानमें चारकी व्युच्छित्ति होती है । उससे ऊपरकी छहकी व्युच्छित्ति सासादन सम्यग्दृष्टीमें ही होती है यह विशेषता दोनोंमें समान है । नवीनता यह है कि मनुष्यगतिमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका

मागि। सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यमानुषीमनुष्यरुगळ्बी त्रिविधमनुष्यरोळं एमेव ई प्रकारमेयक्कुमदु कारणमागिबंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० अप्पुवु। सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु ३१ अप्पुवु। असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ४ मिर्विनितु तिर्य्यंग्गतियोळपेळल्पट्टुविल्लियुं त्रिविधमनुष्यरोळमरियल्पडुगुमेंबुदर्त्थं। नरे अपूर्णे अपूर्णे इव मनुष्यापूर्णनप्प लब्ध्यपर्याप्तकनोळु तिर्यंग्गतिलब्ध्यपर्याप्तकंगे पेळ्दंतेयक्कुं संदृष्टि :— ५

अ	०	०	१२०
स	१	१	११९
क्षी	०	१	११९
१ उ	०	१	११९
१ सू	१६	१७	१०३
१ अ	५	२२	९८
१ अ	३६	५८	६२
अ	१	५९	६१
प्र	६	६३	५७
दे	४	६७	५३
अ	४	७१	४९
मि	०	६९	५१
सा	३१	१०१	१९
मि	१६	११७	३

इल्लिद मुंदधस्तनाधस्तनगुणस्थानंगळ बंधव्युच्छित्तिगळं बंधदोळकळेदोडं बंधव्युच्छित्तिगळनू अबंधप्रकृतिगळनुं कूडिदडमुपरितनोपरितनगुणस्थानंगळोळु यथासंख्यमागि बंधप्रकृतिगळुमबंधप्रकृतिगळुमप्पुवेंदिन्तु बंधदोळमुदयदोळमुदीरणेयोळं सत्वदोळं ज्ञातव्यमक्कुमेकेंदोडवं कळेदुं कूडियुं बंधप्रकृतिगळनू अबंधप्रकृतिगळनू पेळ्वुदिल्ल विशेषमुंटादोडेयोळु कंठोक्तं माडिदपरेंदु निश्चयिसूदु। गुणस्थानंगळोळु बंधप्रकृतिगळिनितेंदु पेळ्दोडे कळेगणगुणस्थानद बंधव्युच्छिगळना १० गुणस्थानद बंधप्रकृतिगळोळु कळेदु पेळदरेंदु अबंधप्रकृतिगळुमिनितेंदु पेळ्दोडेयुं कळेगण गुणस्थानद बंधव्युच्छित्तिगळनू अबंधप्रकृतिगळनू कूडि पेळ्दरदे निश्चयिसुवुदेंबुदर्त्थं।

मनुष्यगतियोळु सामान्यमनुष्यपर्य्याप्तमनुष्ययोनिमतिमनुष्यनेंदितु त्रिविधमनुष्यरुगळ्गे गुणस्थानंगळु चतुर्दशप्रमितंगळप्पुववरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १६ बंधप्रकृतिगळु ११७ अबंधप्रकृतिगळु तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं कूडि त्रिप्रकृतिगळप्पुवु ३। सासादननोळु १५

हारकद्वयं च बन्धोऽस्ति खलु—स्फुटम्। सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्यमानुषीमनुष्येषु त्रिविधेष्वपि एवमेव तेन बन्धयोग्यं विंशत्युत्तरशतम्। सासादनव्युच्छित्तिरेकत्रिंशत्। असंयतव्युच्छित्तिश्चत्वारश्चेति ज्ञातव्यम्। गुणस्थानानि चतुर्दश। तेष्वधस्तनव्युच्छित्तौ बन्धादपनीतायां विशेषकथनपूर्वकमबन्धे च युतायामुपरितनबन्धाबन्धौ स्याताम्। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १६। बन्धः ११७। अबन्धः तीर्थमाहारकद्वयं चेति त्रयं। सासादने

बन्ध होता है। सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मानुषी मनुष्य तीनोंमें भी इसी प्रकार है। अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। सासादनमें व्युच्छित्ति इकतीस और असंयतमें चार जानना। गुणस्थान चौदह हैं। उनमें नीचेकी व्युच्छित्ति बन्धमें-से घटानेपर विशेष कथनके २०

बंधव्युच्छित्तिगळु ३१ अप्पुवें तें दडे असंयतंगे पेळ्द बंधव्युच्छित्तिगळु १० रोळु तिरियेव णरे एंदु पेळ्दरप्पुदरिंदमप्रत्याख्यानचतुष्टयमं कळदुळिद षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु व्युच्छित्तिगळादुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु १०१। अबंधप्रकृतिगळु १९। मिश्रगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यमक्कुं। बंधप्रकृतिगळु ६९। अप्पुवेकेंदोडे देवायुष्यमं कळेदु अबंधप्रकृतिगळोळ्कूडिदवप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु ५१। असंयतगुणस्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु ४ अप्पुवेकेंदोडे वज्रऋषभनाराचसंहननादि षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळादुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवें तेंदोडे मिश्रनोळबंधरूपदिनिर्द्द देवायुष्यमुमं तीर्त्थमुमनातं कट्टुवनप्पुदरिंदमा एरडुं प्रकृतिगळुं कूडिदुवेंबुदत्थं। अबंधप्रकृतिगळु ४९। अप्पुवा कूडिदेरडुं प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं। देशव्रतियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु तन्न प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्टयमेयक्कुं ४। बंधप्रकृतिगळु ६७ अबंधप्रकृतिगळु ५३। प्रमत्तसंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु अस्थिरादिगळु ६ अप्पुवु। बंधप्रकृतिगळं ६३ अबंधप्रकृतिगळु ५७। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु देवायुष्यमोंदे बंधव्युच्छित्तियक्कुं १। बंधप्रकृतिगळु ५९ एकेंदोडाहारकद्विकमुं प्रमादरहितरु कट्टुवरप्पुदरिंदमा एरडुं प्रकृतिगळु कूडिदोडक्कुमेंबुदत्थं। अबंधप्रकृतिगळु ६१। अप्पुवा कूडिदेरडुं प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं मेलपूर्व्वकरणादिगुणस्थानंगळेल्लेडेयोळुं मुन्नं गुणस्थानसामान्यकथनदोळेंतु पेळ्दंते बंधव्युच्छित्ति बंधाऽबंधप्रकृति-

---

बन्धव्युच्छित्तिः ३१। तिरिएव णरे इत्यसंयतस्योक्तबन्धव्युच्छित्तौ उपरितनषण्णामत्रैव छेदाद् बन्धः १०१। अबन्धः १९। मिश्रे बन्धव्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ६९। देवायुष्यमपनीय अबन्धप्रकृतिषु क्षेपात्। बन्धः १०१। अबन्धः ५१। असंयते बन्धव्युच्छित्तिः ४। वज्रवृषभनाराचादिषट्प्रकृतीनां सासादने व्युच्छिन्नत्वात्। बन्धः ७१। देवायुस्तीर्थकरयोरत्र बन्धे मिलितत्वात्। अबन्धः ४९। तत्प्रक्षिप्तप्रकृतिद्वयस्यापनयनात्। देशव्रते बन्धव्युच्छित्तिः स्वस्य प्रत्याख्यानकषायचतुष्कमेव ४। बन्धः ६७। अबन्धः ५३। प्रमत्तसंयते बन्धव्युच्छित्तिः अस्थिरादयः ६। बन्धः ६३ अबन्धः ५७। अप्रमत्तगुणस्थाने देवायुर्व्युच्छित्तिः १। बन्धः ५९। आहारद्वयस्य प्रमादरहितेषु बन्धप्रतिपादनात्। अबन्धः ६१। तद्द्वयस्यापनयनात्। उपर्यपूर्वकरणादिषु

अनुसार अबन्धमें जोड़नेपर ऊपरके बन्ध और अबन्ध होते हैं। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति १६, बन्ध ११७, अबन्ध तीर्थंकर और आहारद्विक इस प्रकार तीन। सासादनमें बन्ध व्युच्छित्ति ३१, क्योंकि तिर्यञ्चके समान मनुष्यमें होनेसे असंयतमें कही बन्धव्युच्छित्ति दसमें-से ऊपरकी छहकी व्युच्छित्ति यहाँ ही होती है। बन्ध १०१, अबन्ध १९। मिश्रमें बन्धव्युच्छित्ति शून्य, बन्ध ६९, क्योंकि देवायुको अबन्ध प्रकृतियोंमें मिला दिया है, बन्ध एक सौ एक, अबन्ध इक्यावन। असंयतमें बन्धव्युच्छित्ति चार, क्योंकि वज्रवृषभनाराच आदि छह प्रकृतियोंकी सासादनमें व्युच्छित्ति हो गयी है। बन्ध इकहत्तर, क्योंकि देवायु और तीर्थंकर यहाँ बन्धमें आ गयी हैं। अबन्ध उनचास; क्योंकि बन्धमें गयी दो प्रकृतियाँ कम हो गयी हैं। देशसंयतमें बन्धव्युच्छित्ति अपनी प्रत्याख्यान कषाय चार हैं। बन्ध सड़सठ, अबन्ध तरेपन। प्रमत्तसंयतमें बन्धव्युच्छित्ति अस्थिर आदि छह, बन्ध तरेसठ, अबन्ध सत्तावन। अप्रमत्त गुणस्थानमें एक देवायुकी बन्धव्युच्छित्ति, बन्ध उनसठ, क्योंकि आहारकद्विकका बन्ध प्रमादरहितमें कहा है। अबन्ध इकसठ क्योंकि दो कम गयीं। ऊपर अपूर्वकरण आदिमें सर्वत्र गुणस्थान सामान्यकी तरह व्युच्छित्ति बन्ध और अबन्ध प्रकृतियाँ होती हैं उसी प्रकार लगाना

गळप्पुदरिंवं नडसल्पडुवुदु। ई सामान्यमनुष्यपर्याप्तमनुष्य योनिमतिमनुष्यरेंदी त्रिविधमनुष्यरुगळगे निर्वृत्यपर्याप्तकालदोळु बंधयोग्यप्रकृति ११२ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिंदमायुश्चतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २ आहारकद्विकमु २ मिन्तु ८ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुदरिंदमवं बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु कळेदोडे ११२ प्रकृतिगळप्पुवप्पुदरिंवं। अल्लि मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतप्रमत्तसयोगकेवलिगुणस्थानपंचकमक्कुमागुणस्थानंगळगे संदृष्टि :— ५

स	१	१	१११
प्र	६१	६२	५०
अ	८	७०	४२
सा	२९	९४	१८
मि	१३	१०७	५

ई निवृत्यपर्य्याप्तमनुष्यमिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १३ अप्पुवेंतेंदोडे मिश्रकाययोगिगळगे बंधयोग्यमल्लद नरकायुष्यमुं नरकद्विकमुं कळेदोडप्पुवप्पुदरिंवं बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवेकेंदोडे सुरचतुष्कमुं तीर्त्थमुमातनोळबंधयोग्यतेयिल्लप्पुदरिंदमनितेयप्पुवा पंच प्रकृतिगळुमबंधप्रकृतिगळप्पुवु ५।

सासादनंगे बंधव्युच्छित्तिगळु २९ अप्पुवेकेंदोडे मनुष्यायुष्यमुं तिर्यंगायुष्यमुं एरडुमल्लि कळेदुदप्पुदरिंवं। बंधप्रकृतिगळु ९४ अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु १८ अप्पुवु। मिश्रगुणस्थानं शून्यमेयक्कुमेकेंदोडे मिश्रगायुर्ब्बंधमुं मरणमुमिल्लप्पुदरिंवं। १०

असंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ८ अप्पुवेंतेंदोडे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाष्टकमुं तन्नोळे व्युच्छित्तियप्पुदरिंवं बंधप्रकृतिगळु ७०। अप्पुवेंतेंदोडे सुरचतुष्कमुं ४ तीर्त्थमुमं निवृत्यपर्य्याप्तासंयतं कट्टुगुमप्पुदरिंदमवं कूडिदोडक्कुमप्पुदरिंवं अबंधप्रकृतिगळु ४२ अप्पुवेकेंदोडे- १५

सर्वत्र गुणस्थानसामान्यवत् व्युच्छित्तिबन्धाबन्धप्रकृतयो भवन्तीति नेतव्यम्। तत्त्रिविधमनुष्यनिर्वृत्त्य पर्याप्तकानां बन्धयोग्यं द्वादशोत्तरशतमेव मिश्रकाययोगित्वादायुश्चतुष्कं नरकद्विकं आहारद्विकं चेत्यष्टानां बन्धाभावात्। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतप्रमत्तसयोगाख्यानि पञ्च। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १३। नरकायुर्नरकद्विकापनयनात्। बन्धः १०७ सुरचतुष्कतीर्थयोरबन्धात्। अबन्धः ५। सासादने व्युच्छित्तिः २९। नरतिर्यगायुषोरपनयनात्। बन्धः ९४। अबन्धः १८। मिश्रगुणस्थानं न संभवति। असंयते व्युच्छित्तिः ८ अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषायाष्टकस्य अत्रैव छेदात्। बन्धः ७०। सुरचतुष्कतीर्थयोरस्य २०

चाहिए। तीनों प्रकारके मनुष्य निर्वृत्यपर्याप्तकोंमें बन्ध योग्य एक सौ बारह हैं क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे चारों आयु, नरकद्विक और आहारकद्विक इन आठोंका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, प्रमत्त और सयोगकेवली पाँच होते हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति तेरह, क्योंकि नरकायु और नरकद्विकका अभाव है। बन्ध एक सौ सात, क्योंकि सुरचतुष्क और तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। अतः अबन्ध पाँच। सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस क्योंकि मनुष्यायु तिर्यञ्चायु कम हो गयी है। बन्ध चौरानबे, अबन्ध अठारह। यहाँ मिश्रगुणस्थान नहीं होता। असंयतमें व्युच्छित्ति आठ; क्योंकि अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान आठ कषायोंकी व्युच्छित्ति यहीं हो जाती है। बन्ध सत्तर; २५

कूडिवप्वुं प्रकृतिगळ कळेवुवप्पुवरिंदं । प्रमत्तसंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ६१ अप्पुवेंतेंदोडे तन्न बारं ६ अप्रमत्तनवोंदु देवायुष्यं राशियोळकळेवुवेदवं बिट्टु अपूर्वकरणन आहारकद्वयरहित ३४ प्रकृतिगळुं अनिवृत्तिय ५ प्रकृतिगळुं सूक्ष्मसांपरायन १६ रुं कूडिदोडप्पुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ६२ अबंधप्रकृतिगळु ५० सयोगिगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्ति सातमों देप्रकृतियक्कुं १ । बंधप्रकृतियुमदों देयक्कु १ मबंधप्रकृतिगळु १११ अप्पुवु । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिगे णरे अपुण्णे अपुण्णेव येंदितु तिर्य्यंग्गतिलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे पेळ्दंते बंधप्रकृतिगळु १२० रोळगे तीर्त्थमुं १ माहारकद्वयमुं २ देवनारकायुष्यद्वयमुं २ वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळं कळे दोडे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ अप्पुवु ।

देवगतियोळु बंधयोग्य प्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्वपरु :—

णिरयेव होदि देवे आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी ।
सोलस चेव अबंधो भवणतिये णत्थि तित्थयरं ॥१११॥

नरक इव भवति देवे आईशान पर्य्यंतं सप्त वाम व्युच्छित्तयः । षोडश चैवाबंधः भवत्रये नास्ति तीर्थंकरं ॥

बन्धात् । अबन्धः ४२ । प्रमत्तसंयते व्युच्छित्तिः ६१ । कुतः स्वस्य षट्कं अप्रमत्तस्य देवायुराशावपनीतमिति तत्त्यक्त्वा । अपूर्वकरणस्य आहारद्वयं बिना चतुस्त्रिंशत्, अनिवृत्तेः पञ्च, सूक्ष्मसांपरायस्य षोडश चेत्येषां मिलितत्वात् । बन्धः ६२ । अबन्धः ५० । सयोगे व्युच्छित्तिः सातवेदनीयम् । बन्धोऽपि तदेव । अबन्धः १११ । 'णरे अपुण्णे अपुण्णेव' मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टौ तिर्यग्गतिलब्ध्यपर्याप्तकवत् तीर्थमाहारद्वयं देवनरकायुषी वैक्रियिकषट्कं चेत्येकादशानामबन्धात् । बन्धयोग्यं नवोत्तरशतमिति १०९ ॥ ११० ॥ देवगतौ बन्धयोग्यप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

क्योंकि सुरचतुष्क और तीर्थंकरका यहाँ बन्ध होता है अबन्ध बयालीस । प्रमत्तसंयतमें व्युच्छित्ति इकसठ, क्योंकि अपनी छह, अप्रमत्तकी देवायु मूलमें ही नहीं है अतः उसे छोड़ देना, अपूर्वकरणकी आहारकद्विकके बिना चौतीस, अनिवृत्तिकी पाँच, सूक्ष्म साम्परायकी सोलह ये सब मिलकर इकसठ होती हैं, बन्ध बासठ, अबन्ध पचास । सयोगीमें व्युच्छित्ति एक सातवेदनीय, बन्ध भी उसीका, अबन्ध एक सौ ग्यारह ।

मनुष्यनिर्वृत्यपर्याप्तक बन्धयोग्य ११२

	मि.	सा.	असं.	प्र.	स.
अबन्ध	५	१८	४२	५०	१११
बन्ध	१०७	९४	७०	६२	१
ब. व्यु.	१३	२९	८	६१	१

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें तिर्यञ्चलब्ध्यपर्याप्तककी तरह तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु, वैक्रियिकषट्क इन ग्यारहका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ हैं ॥११०॥

देवगतिमें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

नरकगतियोळें तु पेळ्दंते देवगतियोळु आईशानपर्य्यंतं अभिविधियोळाओप्पुदरिंदं भवनत्रयदोळं कल्पवासिस्त्रीयरोळं सौधर्म्मैशानकल्पद्वयदोळं मिथ्यादृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु ७ अप्पुवु। अंतागुत्तं विरलु षोडश चैवाबंधः आ मिथ्यादृष्टिय शेषसूक्ष्मत्रयमुमं ३ विकलत्रयमुं नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमु १ इंतु ९ प्रकृतिगळु सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ आहारकद्वयमु २ मिन्तु १६ प्रकृतिगळ् देवगतियोळु बंधयोग्यंगळल्लप्पुदरिंदमी षोडश प्रकृतिगळं बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु कळदोडे शेष १०४ प्रकृतिगळु देवगतियोळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। भवनत्रयदोळं कल्प स्त्रीयरोळं तीर्त्थबंधमिल्लप्पुदरिंदमल्लि बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०३ अप्पुवल्लि संदृष्टिः —

	भ ३ ।	कल्पस्त्रीयरु	
अ	१०	७१	३२
मि	०	७०	३३
सा	२५	९६	७
मि	७	१०३	०

यिल्लि भवनत्रय कल्पवासि स्त्री मिथ्यादृष्टिगळगे बंधप्रकृतिगळु १०३ रोळु मिथ्यात्वहुंड षंढा संप्राप्तैकेंद्रियस्थावरातपमेंब ७ प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टिगळे कट्टुवरप्पुदरिंदमा प्रकृतिसप्तकमं कळेदोडे भवनत्रयसासादनसम्यग्दृष्टिगळुं कल्पस्त्रीसासादनरुं कट्टुव योग्यप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु ७ अप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदोळनंतानुबंध्यादि २५ प्रकृतिगळं सासादनने कट्टुमगुप्पुदरिंदमवं मनुष्यायुष्यमुमं सासादनन बंधप्रकृतिगळोळु ९६ रोळु कळेदोडे मिश्रंगे बंधप्रकृतिगळ ७० अप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु ३३ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु ७१ अप्पुवें तेंदोडे मिश्रनोळकळेद मनुष्यायुष्यमं

नरकगतिवत् देवगतौ स्यात्। किन्तु आ ईशानपर्यन्तं सप्तप्रकृतयः मिथ्यात्वहुण्डसंस्थानादयः मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिर्भवति। तदुपरितनसूक्ष्मत्रयादयो नव सुरचतुष्कं सुरायुष्यं आहारकद्वयं चेति षोडश प्रकृतयो देवगतौ अबन्धाः—बन्धयोग्या न भवन्ति तेन चतुरुत्तरशतमेव बन्धयोग्याः। तत्रापि भवनत्रये कल्पस्त्रीषु च तीर्थबन्धाभावात् बन्धयोग्यास्त्र्युत्तरशतमेव। तत्र भवनत्रयकल्पस्त्रीमिथ्यादृष्टेर्बन्धः त्र्युत्तरशतम्। व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वाद्यसप्तकं। अबन्धः शून्यम्। तत्सासादनस्य बन्धः षण्णवतिः तत्सप्तकस्य मिथ्यादृष्टेरेव बन्धात्। व्युच्छित्तिः सैव पञ्चविंशतिः। अबन्धः तदेव सप्तकं। मिश्रगुणस्थानस्य बन्धः सप्ततिः, मनुष्यायुरबन्धात्। अबन्धा त्रयस्त्रिंशत्, सासादनव्युच्छित्त्यबन्धयोर्मनुष्यायुर्मेलनात्। असंयतस्य बन्धः एकसप्ततिः, मनुष्यायुषोऽत्र

देवगतिमें नरकगतिके समान जानना। किन्तु ईशानपर्यन्त मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व हुण्डसंस्थान आदि सात प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपरकी सूक्ष्मत्रिक आदि नौ, सुरचतुष्क, सुरायु, आहारकद्विक इन सोलह प्रकृतियोंका देवगतिमें बन्ध नहीं होनेसे बन्धयोग्य एक सौ चार ही है। उनमेंसे भी भवनत्रिक और कल्पस्त्रियोंमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ तीन हैं। भवनत्रिक और कल्पस्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध एक सौ तीन, व्युच्छित्ति मिथ्यात्व आदि सात, अबन्ध शून्य। सासादनमें बन्ध छियानबे, क्योंकि सातका बन्ध मिथ्यादृष्टिमें ही होता है, व्युच्छित्ति पचीस, अबन्ध वही सात। मिश्रगुणस्थानमें बन्ध सत्तर, क्योंकि मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता, अबन्ध तेंतीस क्योंकि

असंयतं कट्टुगुमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु ३२। अप्पुवु। मनुष्यायुष्यं तेगेदु बंधप्रकृतिगळोळ्कूडिदुवप्पुदरिंदं। सौधर्म्मैशानकल्पद्वयदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०४ अप्पुवा कल्पद्वयमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि मिश्रासंयतसम्यग्दृष्टिगळगे त्रिविधप्रकृतिगळ संदृष्टिः—

	सौधर्म्मं २		
अ	१०	७२	३२
मि	०	७०	३४
सा	२५	९६	८
मि	७	१०३	१

इल्लि मिथ्यादृष्टिगे बंधप्रकृतिगळु १०३। अबंधप्रकृति तीर्त्थमो देयक्कुं १। सासादननोळु बंधप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यात्व हुंडसंस्थान षंडवेद असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन एकेंद्रियजातिनामस्थावरनाम आतपनाममेंबी ७ प्रकृतिगळं मिथ्यादृष्टियें कट्टुगुं। सासादनसम्यग्दृष्टि कट्टनप्पुदरिंदमा प्रकृतिगळनातन बंधप्रकृतिगळोळु कळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु ८ अप्पुवु। मिश्रगुणस्थानदवोळु बंधप्रकृतिगळु ७० अप्पुवेकेंदोडे अनन्तानुबंध्यादि २५ प्रकृतिगळुमं मनुष्यायुष्यमुमं कूडि २६ प्रकृतिगळु सासादननोळे बंधमप्पुवप्पुदरिंदमवनातन बंधप्रकृतिगळोळ्कळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यंकूडि ३४ प्रकृतिगळप्पुवु। असंयतसम्यग्दृष्टियोळु बंधप्रकृतिगळु ७२ अप्पुवदेंतेंदोडे मिश्रनोळबंधप्रकृतिगळोळिर्द्द मनुष्यायुष्यमुमं तीर्त्थमुमनो सौधर्म्मकल्पद्वयासंयतं कट्टुगुमप्पुदरिंदमवं कूडिदोडप्पुवेंदु बगेयल्पडुवुदु। अबंधप्रकृतिगळु ३२ अप्पुवेंतेंदोडे आकूडिदेरडुं प्रकृतिगळिल्लि कळेदुवप्पुदरिंदं॥

कप्पित्थीसु ण तित्थं सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं।
तिरियाऊ उज्जोवो अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ॥११२॥

कल्पस्त्रीषु न तीर्त्थं शतारसहस्रार पर्य्यंतं तिर्य्यग्द्विकं। तिर्य्यगायुरुद्योतः अस्ति ततो नास्ति शतारचतुष्कं॥

बन्धात्। अबन्धः द्वात्रिंशत्। व्युच्छित्तिः स्वस्य दश। सौधर्मैशानद्वये बन्धयोग्याश्चतुरुत्तरशतम्। तत्र मिथ्यादृष्टौ अबन्धः तीर्थकरत्वम्। बन्धः त्र्युत्तरशतम्। व्युच्छित्तिः ते एव सप्त। सासादने अबन्धः ८। बन्धः ९६। व्युच्छित्तिः २५। मिश्रेऽबन्धः ३४ मनुष्यायुःक्षेपात्। बन्धः ७०। व्युच्छित्तिः शून्य ०। असंयते अबन्धः ३२ तीर्थकरत्वमनुष्यायुषोर्बन्धात्। बन्धः ७२। व्युच्छित्तिः १०॥ १११॥

सासादनकी व्युच्छिति और अबन्धके जोड़में मनुष्यायु भी मिल गयी। असंयतमें बन्ध इकहत्तर क्योंकि यहाँ मनुष्यायुका बन्ध होता है। अबन्ध बत्तीस, व्युच्छित्ति अपनी दस। सौधर्म ऐशानयुगलमें बन्धयोग्य एकसौ चार। मिथ्यादृष्टिमें अबन्ध तीर्थंकरका, बन्ध एक सौ तीन, व्युच्छित्ति वही सात। सासादनमें अबन्ध आठ, बन्ध छियानबे, व्युच्छित्ति पच्चीस। मिश्रमें अबन्ध चौंतीस क्योंकि मनुष्यायुका भी बन्ध नहीं होता। बन्ध सत्तर, व्युच्छित्ति शून्य। असंयतमें अबन्ध बत्तीस, क्योंकि यहाँ तीर्थंकर और मनुष्यायु बँधने लगती हैं, बन्ध बहत्तर, व्युच्छित्ति दस॥१११॥

कल्पस्त्रीयरोळं तीर्त्थबंधमिल्लदुकारणमागि तद्बंधरहित भवनत्रयदेवर्क्कळ रचनेयोळे कल्पस्त्रीयरुं पेळल्पट्टरेकेंदोडे मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळु सदृशंगळप्पुदे कारणमागि पृथक् पेळल्पट्टुदिल्ल।

सानत्कुमार माहेंद्रब्रह्मब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ट शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारमुमेंब १० कल्पंगळोळु देवर्क्कळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०१ अप्पुवेकेंदोडे तत्कल्पजरुगळेकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुं आतपमुमं सूक्ष्मत्रयविकलत्रय नरकद्विक नारकायुष्यमुमेंबी मिथ्यादृष्टिय उपरितन द्वादशप्रकृतिगळुं १२ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुमाहारकद्वयमुमिंतु १९ प्रकृतिगळं कट्टुवरल्तेकेंदोडे "आईसाणोत्ति सत्तवामछिदी" एंदितु सौधर्मैशानकल्पद्वयावसानमाद भवनत्रयदेवर्क्कळुमेकेंद्रियस्थावरातपंगळं कट्टुवरप्पुदरिंदमवरोळेया प्रकृतित्रयक्के बंधमुळिद सानत्कुमारादि दशकल्पजरुगळगे "णिरयेव होदि देवे" एंबी सूत्राभिप्रायदिंदं। णारयमिच्छम्मि चारि बोच्छिण्णा। उवरिम बारस सुरचउ सुराउ आहारयमबंधा॥ एंदु बंधप्रकृतिगळु १२० रोळु १९ प्रकृतिगळ कळेदोडे सानत्कुमारादि दशकल्पजरुगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळनितेयप्पुवप्पुदरिंदं। अल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानंगळोळु बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधप्रकृतिगळगे संदृष्टि :—

सानत्कुमारादि १० कल्पज

अ	१०	७२	२९
मि	०	७०	३१
सा	२५	९६	५
मि	४	१००	१

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्व हुंड षंढ असंप्राप्तमेंब नाल्कुं प्रकृतिगळु ४ बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु १०० अप्पुव बंधप्रकृति तीर्त्थमो देयक्कुं।

सासादनसम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु २५ बंधप्रकृतिगळु ९६ अबंधप्रकृतिगळु ५।

कल्पस्त्रीषु तीर्थकरत्वं न बध्नातीति ततः कारणात् तद्रचना भवनत्रयरचनायामेवोक्ता उभयत्र गुणस्थानेषु बन्धाबन्धव्युच्छित्तिभिर्विशेषाभावात्। सानत्कुमारादिदशकल्पेषु नरकगतिवदिति बन्धयोग्यमेकोत्तरशतम्। मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिश्चत्वारि समानां तु ईशानपर्यन्तमेवोक्तत्वात्। बन्धः १००। अबन्धः तीर्थकरत्वं। सासादने व्युच्छित्तिः २५। बन्धः ९६। अबन्धः ५। मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ७०। मनुष्यायुषोऽ-

---

कल्पस्त्रियोंमें तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। अतः उनकी रचना भवनत्रिककी रचनामें ही कही गयी। दोनोंके गुणस्थानोंमें बन्ध, अबन्ध, बन्ध व्युच्छित्तिमें अन्तर नहीं है। सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें नरकगतिके समान बन्धयोग्य एक सौ एक हैं। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति चार, क्योंकि सातकी व्युच्छित्ति तो ईशान्तपर्यन्त ही कही है। बन्ध सौ, अबन्ध तीर्थंकर एक। सासादनमें व्युच्छित्ति पचीस, बन्ध छियानबे, अबन्ध पाँच। मिश्रमें व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध सत्तर, क्योंकि मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता। अबन्ध इकतीस।

---

१. सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणेति सूक्ष्मत्रयः।

मिश्रगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्ति शून्यं। बंधप्रकृतिगळु ७०। अबंधप्रकृतिगळु ३१। एकेंदोडे मनुष्यायुष्यं बंधदोळकळेदऽबंधप्रकृतिगळोळकूडिदुवप्पुदरिंदं। असंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १०। बंधप्रकृतिगळु ७२। एकेंदोडे मनुष्यायुमं तीर्त्थमुमं कट्टुवनप्पुदरिना येरडु प्रकृतिगळु मिश्रन अबंधप्रकृतिगळोळिद्दुवं तेगेदिल्लि कूडिदुवप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळु २९ अप्पुवा येरडुं प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं। शतारसहस्रारकल्पद्वयपर्यंतं तिर्य्यग्द्विकमुं तिर्य्यगायुष्यमुं उद्योतमुं बंधवप्पुवल्लिदं मेले बंधमिल्लेंब नियममुंटप्पुदरिंदं आनतादिचतुष्कल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळुं कट्टुवरल्लप्पुदरिंदमा नाल्कुं प्रकृतिगळं ४ नूरोंदु प्रकृतिगळोळु १०१ कळेदोडानतादि १३ स्थानंगळोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ९७ अप्पुवल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे बंधव्युच्छित्तिबंधाबंधत्रिभेदंगळ संदृष्टि :—

आन ४।९ ग्रैवेयक

अ	१०	७२	२५
मि	०	७०	२७
सा	२१	९२	५
मि	४	९६	१

इल्लि मिथ्यादृष्टिगळ्गे मिथ्यात्वादि चतुष्प्रकृतिगळु ४ बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवु। अबंधप्रकृति तीर्त्थमो वेयक्कुं १। सासादन सम्यग्दृष्टियोळु बंधव्युच्छित्ति २१। प्रकृत्तिगळप्पुवु। एकेंदोडे शतारचतुष्कं बंधमिल्लप्पुदरिंदमवं कळेदोडनितेयप्पुवप्पुदरिंद बंधप्रकृतिगळु ९२। अबंधप्रकृतिगळु ५। मिश्रगुणस्थानदोळु बंधप्रकृतिगळु ७०। मनुष्यायुष्यमबंधमप्पुदरिंदं अबंधप्रकृतिगळु २७। मनुष्यायुष्यमिल्लि कूडिदुवप्पुदरिंदं। असंयतगुणस्थानदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १०। बंधप्रकृतिगळु ७२। अप्पुवेकेंदोडातनोळु तीर्त्थमुं मनुष्यायुष्यमुं बंधमुंटप्पुदरिंदमवं मिश्रन बंधप्रकृतिगळोळु तेगदिल्लि कूडिदोडनितादुदेंबुदर्त्थं। अबंधप्रकृतिगळु २५ अप्पुवा कूडिद प्रकृतिगळिल्लि तेगदुवप्पुदरिंदं।

प्यपनीतत्वात्। अबन्धः ३१। असंयते व्युच्छित्तिः १०। बन्धः ७२ तीर्थमनुष्यायुषोर्बन्धात्। अबन्धः २९ शतारसहस्रारपर्यन्तमेव तिर्यद्विकं तिर्यगायुरुद्योतश्चेति सदरचउक्कं बन्धयोग्यमस्ति तत उपरि नास्तीति नियमादानतादिषु कल्पेषु नवग्रैवेयकेषु च बन्धयोग्याः ९७। तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धः ९६ तीर्थकरत्वस्याबन्धात्। व्युच्छित्तिः ४। सासादने व्युच्छित्तिः २१ सदरचउक्कस्य राद्यभावात्। बन्धः ९२। अबन्धः ५। मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ७० मनुष्यायुरबन्धात्। अबन्धः २७। असंयते व्युच्छित्तिः दश। बन्धः ७२।

असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध बहत्तर क्योंकि तीर्थंकर और मनुष्यायुका बन्ध होता है, अबन्ध उनतीस ॥

शतार सहस्रार पर्यन्त ही तिर्यंचगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चायु उद्योत इस शतार चतुष्कका बन्ध होता है। उससे ऊपर नहीं होता, इस नियमके अनुसार आनत आदि चार कल्पोंमें और नवग्रैवेयकमें बन्धयोग्य सत्तानबे। उनमें मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका बन्ध न होनेसे बन्ध छियानबे, व्युच्छित्ति चार। सासादनमें शतार चतुष्कके न होनेसे व्युच्छित्ति इक्कीस, बन्ध बानबे, अबन्ध पाँच। मिश्रमें व्युच्छित्ति शून्य, मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे

अनुदिशानुत्तरविमानंगळु १४ रोळु सम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदमल्लिय असंयतरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७२ अप्पुविन्ती देवगतियोळु पेळ्द भवनत्रयजरुं कल्पजस्त्रीयरुगळप्प निर्व्वृत्य पर्य्याप्तकरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०१। अप्पुवेंतेंदोडे तत्पर्याप्तरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०३ रोळगे मिश्रकाययोगिगळप्पुदरिंदं। तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कट्टरप्पुदरिंदमवं कळेदोडे तावन्मात्रप्रकृतिगळप्पुवप्पुदरिंदं। अल्लि मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानद्वितयमेयक्कुमेकेंदोडे तिर्य्यग्मनुष्यगतिय सम्यग्दृष्टिगळल्लि पुट्टदुवरल्लप्पुदरिंदं आ गुणस्थानद्वयदोळु बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगळ्गे संदृष्टिः— भ ३। कल्पजस्त्रीयरु निर्वृत्यपर्य्याप्तरु

सा	२४	९४	७
मि	७	१०१	०

ई रचने सुगममेकेंदोडे तीर्त्थमुमायुष्यमुमिल्लि बंधमिल्लप्पुदरिंदं। सौधर्म्मैशानकल्पजनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०२ अप्पुवेंतेंदोडिल्लियुमेरडायुष्यंगळे कळेवुवु तीर्त्थमुंटप्पुदरिंदं। गुणस्थानत्रितयमुमप्पुववक्के संदृष्टिः— सौधर्म २ द्वयनिर्वृत्यप.।

अ	९	७१	३१
सा	२४	९४	८
मि	७	१०१	१

ई रचने सुगममेकेंदोडे असंयतनोळु तीर्त्थबंधमेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं। सानत्कुमारादि दशकल्पजनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ९९ अप्पुविल्लियुमायुर्द्वयरहितमप्पुदरिंदं संदृष्टिः— सा कल्प निर्वृत्थ

अ	९	७१	२८
सा	२४	९४	५
मि	४	९८	१

अबन्धः २५। अनुदिशानुत्तराः असंयतसम्यग्दृष्टय एव तेषां बन्धयोग्यप्रकृतयः ७२। निर्वृत्यपर्याप्तानां तु भवनत्रयकल्पस्त्रीषु बन्धयोग्यं मिश्रयोगित्वात्तिर्यग्मनुष्यायुषी न इत्येकोत्तरशतम् १०१। गुणस्थाने द्वे एव असंयतानां तत्रोत्पत्त्यभावात्। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्त्यादित्रयं ७। १०१। ०। सासादने २४। ९४। ७। सौधर्मेशानयोर्बन्धयोग्यं तीर्थकृता सह द्व्युत्तरशतम् १०२। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्त्यादित्रयं ७। १०१। १।

बन्ध सत्तर, अबन्ध सत्ताईस। असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध बहत्तर, अबन्ध पच्चीस। अनुदिश अनुत्तरवासी देव असंयत सम्यग्दृष्टी ही होते हैं। उनके बन्धयोग्य प्रकृतियाँ बहत्तर हैं। निर्वृत्यपर्याप्तकोंके भवनत्रय और कल्पस्त्रियोंमें बन्धयोग्य एक सौ एक हैं क्योंकि मिश्रकाययोग होनेसे तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान दो ही हैं क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरकर उनमें उत्पन्न नहीं होता मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति आदि तीन, सात, एकसौ एक और शून्य है। सासादनमें चौबीस, चौरानबे, सात है। सौधर्म ऐशानमें तीर्थंकरके बँधनेसे बन्धयोग्य एक सौ दो हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति आदि तीन, सात, एक सौ एक है। सासादनमें चौबीस, चौरानबे, आठ। असंयतमें नौ, इकहत्तर, इकतीस।

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे संयतनोळु तीर्थबंधमुंटें बिनितें विशेषमप्पुदरिंदं ॥ आनतादिचतुष्कल्पनवग्रैवेयकसंजातनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळो बंधयोग्यप्रकृतिगळु ९६ अप्पुवें तेंदोडे मनुष्यायुष्यमनल्लियों दने कट्टुवरदुवुमी निर्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु बंधमिल्लप्पुदरिंदमवं कळेदोडनिते योग्यंगळप्पुवप्पुदरिंदं संदृष्टि :—

अ	९	७१	२५
सा	२१	९१	५
मि	४	९५	१

आ ४। ९ ग्रैवे = निर्वृ

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे असंयतनोळु तीर्थबंधमुंटु सासादनन बंधव्युच्छित्तिगळु २१ अप्पुवेकेंदोडे अल्लि शतारचतुष्टयं कळेदुदप्पुदरिंदं। अनुदिशानुत्तरविमान १४ गळोळु सम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदं तीर्त्थसहितमागि ७१ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। मनुष्यायुष्यमों देयक्कुमदुवुमा कालदोळु बंधमिल्लप्पुदरिंमं कळेदोडनिते बंधयोग्यंगळप्पुदरिंदं ॥

सासादने २४। ९४। ८। असंयते ९। ७१। ३१। सानत्कुमारादिदशकल्पेषु बन्धयोग्या नवनवतिः ९९। व्युच्छित्त्यादित्रयं मिथ्यादृष्टौ ४। ९८। १। सासादने २४। ९४। ५। असंयते ९। ७१। २८। आनतादिचतुःकल्पनवग्रैवेयकेषु बन्धयोग्याः षण्णवतिः ९६। तत्र व्युच्छित्त्यादित्रयं मिथ्यादृष्टौ ४। ९५। १। सासादने २१। ९१। ५। असंयते ९। ७१। २५। अनुदिशानुत्तराणामसंयतसम्यग्दृष्टित्वात् तेषां बन्ध एव ७१ ॥ ११२॥

सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें बन्धयोग्य निन्यानवे। व्युच्छिति आदि तीन मिथ्यादृष्टिमें चार, अठानबे, एक सासादनमें चौबीस, चौरानबे, पाँच। असंयतमें नौ, इकहत्तर, अठाईस। आनतादि चार कल्पों और नवग्रैवेयकोंमें बन्धयोग्य छियानबे। उनमें व्युच्छित्ति आदि तीन मिथ्यादृष्टिमें चार, पिचानबे, एक। सासादनमें इक्कीस, इकानबे, पाँच। असंयतमें नौ, इकहत्तर, पच्चीस। अनुदिश अनुत्तरवासियोंके असंयत सम्यग्यदृष्टी ही होनेसे उनके इकहत्तरका बन्ध होता है ॥११२॥

पर्याप्त भवनत्रिक कल्पस्त्री १०३ बन्धयोग्य

	मि.	सा.	मि.	असं.
बन्ध व्यु.	७	२५	०	१०
बन्ध	१०३	९६	७०	७१
अबन्ध	०	७	३३	३२

पर्याप्त सौधर्मयुगल १०४ बन्धयोग्य

	मि.	सा.	मिश्र	असं.
बन्ध व्यु.	७	२५	०	१०
बन्ध	१०३	९६	७०	७२
अबन्ध	१	८	३४	३२

पर्याप्त सानत्कुमारादि दस कल्प १०१

	मि.	सा.	मिश्र	असं.
बन्ध व्यु.	४	२५	०	१०
बन्ध	१००	९६	७०	७२
अबन्ध	१	५	३१	२९

पर्या. आनतादि ४ नवग्रैवेयक ९७

	मि.	सा.	मिश्र	असं.
बन्ध व्यु.	४	२१	०	१०
बन्ध	९६	९२	७०	७२
अबन्ध	१	५	२७	२५

नि. अ. भव. कल्प स्त्री १०१

	मि.	सा.
बन्ध व्यु.	७	२४
बन्ध	१०१	९४
अबन्ध	०	७

नि. अ. सौधर्मयुगल १०२

	मि.	सा.	असं.
बन्ध व्यु.	७	२४	९
बन्ध	१०१	९४	७१
अबन्ध	१	८	३१

नि. अ. सानत्कु. दस कल्प ९९

	मि.	सा.	असं.
बन्ध व्यु.	४	२४	९
बन्ध	९८	९४	७१
अबन्ध	१	५	२८

नि. आनतादि नवग्रै. ९६

	मि.	सा.	असं.
बन्ध व्यु.	४	२१	९
बन्ध	९५	९१	७१
अबन्ध	१	५	२५

इंद्रियमार्गणेयं पेळ्दल्लि मोदलोळेकेंद्रियविकलत्रयंगळगे पेळ्दपरु :—

पुण्णिदरं इगिविगले तत्थुप्पण्णो हु सासणो देहे ।
पज्जत्तिं ण वि पावदि इदि णरतिरियाउगं णत्थि ॥११३॥

पूर्णेतरवदेकेंद्रियविकलत्रये तत्रोत्पन्नः खलु सासादनो देहे । पर्य्याप्तिं न प्राप्नोति इति नरतिर्य्यगायुषी नस्तः ॥ ५

तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तकनोळु पेळ्दंते एकेंद्रियंगळोळं विकलेंद्रियंगळोळं पेळल्पडुगुमेकेंदोडे तीर्थमुमाहारद्वयमुं सुरनारकायुर्द्वयमुं वैक्रियिकषट्कमुमेंब ११ प्रकृतिगळं कळेदु शेष १०९ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुदरिंदमा एकेंद्रियविकलत्रयंगळगे गुणस्थानद्वितयमेयक्कु—

	एकेंद्रिय	विकलत्रयक्के
सा	२९	९४ १५
मि	१५	१०९ ०

मिल्लि मिथ्यादृष्टिगळगे बंधव्युच्छित्तिगळु १५ प्रकृतिगळप्पुवेंतेंदोडे तन्न मिथ्यात्वावि बंधव्युच्छित्तिगळु १६ रोळगे नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुं कळेदु १३ प्रकृतिगळप्पुवरोळगे १०
तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कूडि दोडे तत्प्रमाणप्रकृतिसंख्येयक्कुमप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु १०९ । अबंधशून्यमक्कुं । सासाविननोळु तत्रोत्पन्नः खलु सासादनो देहे पर्य्याप्तिं न प्राप्नोतीति नरकतिर्य्यंगायुषी नस्तः । एंदितु एकेंद्रियविकलत्रयदोळपुट्टिद सासादनं निर्वृत्यपर्य्याप्तकालमन्तर्मुहूर्त्तपर्य्यंतं शरीरापर्य्याप्तिकालदोळु मिश्रकाययोगियप्पुदरिंदं आयुर्ब्बंधयोग्यतेयिल्लदुकारणमागि तत्कालपर्य्यंतं तद्गुणस्थानकालमल्पमप्पुदरिंदं तोद्दु पोकुमदु कारणमागि मनुष्यायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुं १५

इन्द्रियमार्गणायां एकविकलेन्द्रियेषु लब्ध्यपर्याप्तकवत्तीर्थकरत्वाहारकद्वयसुरनारकायुर्वैक्रियिकषट्कबन्धाभावात् बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम् । गुणस्थाने द्वे । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः पञ्चदश । १५ । तत्षोडशके नरकद्विकनरकायुषोरभावे नरतिर्यगायुषोः क्षेपात् तत्क्षेपोऽत्रैव कृतः । तत्र तेषु एकविकलेन्द्रियेषु उत्पन्नः खलु सासादनः स्वकीयकालस्य निर्वृत्यपर्याप्तकालात् स्तोकत्वात् सासादनत्वे शरीरपर्याप्तिं न प्राप्नोतीति कारणात्

इन्द्रियमार्गणामें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियमें लब्ध्यपर्याप्तकके समान तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ हैं । उनमें मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पन्द्रह, क्योंकि उसमें व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियोंमें-से नरकद्विक और नरकायुका बन्ध न होने तथा मनुष्यायु तिर्यञ्चायुके मिलानेसे होता है । इसका कारण यह है कि उन एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न सासादन गुणस्थानवर्ती जीव सासादनका काल निर्वृत्यपर्याप्तकके कालसे थोड़ा होनेके कारण सासादन अवस्थामें शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं करता, इससे यहाँ सासादनमें मनुष्यायु तिर्यञ्चायुका बन्ध

---

१. मः °सियोलु ।

तेगदु मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तियादुवप्पुदरिंवमिल्लि बंधव्युच्छित्तिगळु २९ प्रकृतिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १५ अप्पुवु।

अनंतरं पंचेंद्रियंगळगं पृथ्वीकायादि पंचकक्कं पेळ्दपरु :—

पंचिंदिएसु ओघं एयक्खे वा वणप्पडीयंते।
मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्मि ॥११४॥

पंचेंद्रियेषु ओघः एकाक्षवद्वनस्पत्यंतानां। मनुष्यद्विकं मनुष्यायुरुच्चं न हि तेजोवाय्वोः॥

पंचेंद्रियंगळोळु ओघः मुन्नं चतुर्दशगुणस्थानंगलोलु पेळ्दंतेयप्पुवेकेंदोडे विशेषाभावमप्पुदरिंवं बंधयोग्यंगळु १२०। बंधव्युच्छित्तिगळु मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ०॥ बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०॥ अबंधप्रकृतिगळु :—

मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०॥

बन्धः १०९। अबन्धः शून्यम् ०। सासादने व्युच्छित्तिरेकान्नत्रिंशत् २९। बन्धः चतुर्नवतिः ९४। अबन्धः पञ्चदश १५॥ ११३॥ अथ पञ्चेंद्रिये पृथ्व्यादिपञ्चकायेषु चाह—

पञ्चेन्द्रियेषु ओघः चतुर्दशगुणस्थानवद्भवति विशेषाभावात्। बन्धयोग्याः १२०। व्युच्छित्तयः—मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ ०। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०।

न होनेसे उनकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें ही कही है। अतः बन्ध एक सौ नौ, अबन्ध शून्य। सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस, बन्ध चौरानवे, अबन्ध पन्द्रह ॥११३॥

आगे पञ्चेन्द्रिय और पृथिवी आदि पाँच कायोंमें कहते हैं—

पञ्चेन्द्रियोंमें 'ओघ' अर्थात् चौदह गुणस्थानवत् होता है उससे भेद नहीं है।

अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस। व्युच्छित्ति मि. १६। सा. २५। मि. ०। असं. १०। दे. ४। प्र. ६। अप्र. १। अपूर्व. ३६। अनि. ५। सू. १६। उप. ।। क्षी. ।। स. १। अयो. ।। बन्ध—मि. ११७। सा. १०१। मि. ७४। असं. ७७। दे. ६७। प्र. ६३। अप्र. ५९। अप्र. ५८। अनि. २२। सू. १७। उ. १। क्षी. १। स. १ अयो. ।। अबन्ध—मि. ३। सा. १९। मि. ४६। असं. ४३। दे. ५३। प्र. ५७। अप्र. ६१। अपू. ६२। अनि. ९८। सू. १०३। उ. ११९। क्षी. ११९। सं. ११९। अयो. १२०। पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकमें बन्ध योग्य एक सौ बारह। गुणस्थान पांच।

पंचेंद्रियनिर्वृत्यपर्य्याप्तकंगे बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ११२। गुणस्थानंगळ् ५। एंतेंदोडे चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं कळे द प्रकृतिगळ् आहारकद्वयमुं २ नरकद्विकमुं २ आयुष्यचतुष्कमु ४ मिन्तु ८ प्रकृतिगळ्। पंचेंद्रियनिवृत्य १.

स	१	१	१११
प्र.	६१	६२	५०
अ.	१३	७५	३७
सा.	२४	९४	१८
मि.	१३	१०७	५

ई रचने सुगममेंतेंदोडे—असंयतनोळु तीर्त्थमुं सुरचतुष्टयमुं बंधमुंटप्पुदरिंदमल्लि बंधप्रकृतिगलु ७५ अबंधप्रकृतिगळु ३७ अप्पुदेंबिनि ते विशेषमप्पुदरिंदं। पंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तकंगे ५
बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुमोंदेयक्कुं। कळे द प्रकृतिगलु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं सुरनारकायुर्द्वयमुं वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगलु बंधयोग्यंगळल्लप्पुदरिंदं॥

तन्निर्वृत्यपर्याप्तके तु बन्धयोग्यम् ११२। गुणस्थानानि ।५। चतुर्गतिसाधारणत्वात् अपनीतप्रकृतयः आहारकद्वयं नरकद्विकमायुष्यचतुष्कं चेति रचनेयं सुगमा—

पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्त रचना। १०
व्युच्छित्ति बन्ध अबन्ध

स	१	१	१११
प्र	६१	६२	५०
अ	१३	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

असंयते तीर्थसुरचतुष्कबन्धः। इत्येतावत एव विशेषाभावात्। तल्लब्ध्यपर्याप्तके बन्धयोग्यप्रकृतयः १०९। मिथ्यादृष्टि—गुणस्थानम्। अपनीतप्रकृतयः। तीर्थमाहारद्वयं सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कं चेति ११।

यहाँ आहारकद्विक, नरकद्विक, चार आयुका बन्ध नहीं होता। इसकी रचना सुगम १५
है। तथा असंयतमें तीर्थंकर और सुरचतुष्कका बन्ध होता है। पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकमें बन्धयोग्य एक सौ नौ। तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है।

कायमार्गणेयोलु वनस्पत्यंतमाद पंचकायिकंगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगलु १०९ अप्पुवें तेंदोडे एकेंद्रियवद्वनस्पत्यंतानामेंदिन्तु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुं सुरायुष्यमुं नारकायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगलु बंधप्रकृतिगळोलु कलेदुवप्पुदरिंदं पृथ्वीकायिकाप्कायिकवनस्पतिकायिकंगळगे १०९ प्रकृतिगलु बंधयोग्यंगळप्पुवु। तेजस्कायिकवायुकायिकंगळगे मनुष्यद्वयं मानवायुष्यमुमुच्चैर्गोत्रमुं बंधमिल्लेंब अपवादविधियिंदमा नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदोडे बंधयोग्यप्रकृतिगळु नूरैदु नूरैदुमप्पुवु—

	पृथ्वी ३	कायिक	
सा	२९	९४	१५
मि	१५	१०९	०

इल्लिसासादनं देहदोळु पर्य्याप्तियनेय्यदप्पुदरिंदं तिर्य्यग्मनुष्यायुद्वयं मिथ्यादृष्टियोळे बंधव्युच्छित्तिगळागि कूडिदवप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छिगळु १५ बंधप्रकृतिगळु १०९ अबंधप्रकृतिशून्यमक्कुं। सासादनंगे बंधव्युच्छित्तिगळु २९ बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १५। तेजस्कायिकंगळगं वायुकायिकंगळगं सासादनगुणस्थानमिल्ल। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोंदेयक्कुमेकेंदोडे :—

ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे।
ओघं तस मणवयणे ओरालेमणुवगइभंगो ॥११५॥

न हि सासादनोऽपूर्णे साधारणसूक्ष्मके च तेजोद्विके ओघस्त्रस मनोवचने औदारिके मानवगतिभंगः॥

कायमार्गणायां वनस्पत्यन्तपञ्चानां एकेन्द्रियवत् तीर्थमाहारकद्वयं सुरनारकायुषी वैक्रियिकषट्कं च न इति बन्धयोग्यं नवोत्तरशतम्। १०९। तत्र पृथ्व्यब्वनस्पतिकायेषु उत्पन्नस्य सासादनत्वे शरीरपर्याप्त्यसंभवात् तिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धो मिथ्यादृष्टावेवेति तत्र व्युच्छित्तिः १५। बन्धः १०९। अबन्धः शून्यम्। सासादने व्युच्छित्तिः २९। बन्धः ९४। अबन्धः १५। तेजोवातकायिकयोः पुनः मनुष्यद्वयं मनुष्यायुः उच्चैर्गोत्रमपि न बध्नाति बन्धयोग्यं पञ्चोत्तरशतमेव। १५। तौ तु मिथ्यादृष्टी एव न सासादनौ ॥११४॥ कुतः ?—

कायमार्गणामें वनस्पतिकायिक पर्यन्त पाँच स्थावरकायोंमें एकेन्द्रियके समान तीर्थंकर, आहारकद्विक, देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्कका बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ नौ। वहाँ पृथिवी, जल तथा वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न सासादनके सासादन अवस्थामें शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होनेसे तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बन्ध मिथ्यादृष्टिमें ही होता है इसलिए वहाँ व्युच्छित्ति पन्द्रह, बन्ध एक सौ नौ, अबन्ध शून्य। सासादनमें व्युच्छित्ति उनतीस, बन्ध चौरानवे, अबन्ध पन्द्रह। तैजस्कायिक वायुकायिकोंमें मनुष्यायु, मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका भी बन्ध न होनेसे बन्धयोग्य एक सौ पाँच ही हैं। तथा उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, सासादन नहीं होता ॥११४॥

	मि.	सा.	असं.	प्र.	सयो.		मि.	सा.		मि.	सा.
व्यु.	१३	२४	१३	६१	१		१५	२९		१५	२९
बन्ध	१०७	९४	७५	६२	१		१०९	९४		१०९	९४
अबन्ध	५	१८	३७	५०	१११		०	१५		०	१५

सासादनसम्यग्दृष्टि यावेडेयोळपुट्टनेंदडे लब्ध्यपर्याप्तकभेदंगळेनितोळवनितरोळं साधारणशरीरंगळोळं सूक्ष्मजीवभेदंगळगेनितोळ वनितरोळं तेजस्कायिकजीवंगळोळं वायुकायिकजीवंगळोळं पुट्टनेंबी नियममरियल्पडुगुं। नरकगतियोळं पुट्टं। त्रसकायिकजीवंगळगं योगमार्गणेयोळु मनोवाग्योगिगळगं ओघः सामान्यगुणस्थानकथनमेयक्कुमौदारिककाययोगिगळगे मनुष्यगतिभेदंगळक्कुमेंदरियल्पडुगुमल्लि त्रसकायिकंगळगं मनोवाग्योगिगळगं बंधयोग्यंगळु १२० प्रकृतिगलप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगे व्युच्छित्तिगळु १६ सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ ०। बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०॥

अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०। ई निवृत्यपर्याप्तकरोळु पंचेंद्रियंगळोळु पेळ्दंते भाविसल्पडुवुदु। औदारिककाययोगिगळगे मानवगतिभंगमप्पुदरिंदं बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२०। अप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगे बंधव्युच्छित्तिगळु १६। सासादनंगे ३१। मि ०। अ ४। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी०। स १। अ ०॥

बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सासा १०१। मि ६९। अ ७१। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०॥ अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ५१। अ ४९। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ६८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०॥

हि यस्मात्सर्वलब्ध्यपर्याप्तेषु साधारणशरीरेषु सर्वसूक्ष्मेषु तेजोवायुकायिकेषु च सासादनो न विद्यते। नरकगतौ च नोत्पद्यते।

त्रसकायिकेषु योगमार्गणायां मनोवाग्योगिषु च ओघः सामान्यगुणस्थानवत् तेन तेषु बन्धयोग्यम् १२०। व्युच्छित्तयः—मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। अ ५। सू १६। उ ०। क्षी ०। स १। अ ०। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। अ २२। सू १७। उ १। क्षी १। स १। अ ०। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। अ ९८। सू १०३। उ ११९। क्षी ११९। स ११९। अ १२०। त्रसनिर्वृत्यपर्याप्तके पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकवत्। औदारिककाययोगिषु मानवगतिभङ्गः तेन

क्योंकि सर्वलब्ध्यपर्याप्तकोंमें, साधारण शरीरोंमें, सब सूक्ष्मकायोंमें और तेजकाय-वायुकायिकोंमें सासादन नहीं होता तथा सासादन मरकर नरक गतिमें भी उत्पन्न नहीं होता। त्रसकायिकोंमें, योगमार्गणामें, मनोयोगी-वचनयोगियोंमें सामान्य गुणस्थानके समान बन्ध-योग्य एक सौ बीस होती हैं।

त्रसकायिक, मनोयोगी, वचनयोगी बन्धयोग्य १२० की रचना

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अयो.
व्युच्छित्ति	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबन्ध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९	१२०

औदारिकमिश्रकाययोगिगळगे पेळ्वपरु :—

ओरालें वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं ।
मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥११६॥

औदारिकवन्मिश्रे न हि सुरनारकायुराहारनरकद्वयं मिथ्यादृग्द्वये देवचतुस्तीर्थं न ह्यविरतेऽस्ति ॥

औदारिकमिश्रकाययोगिगळगे औदारिककाययोगिगळगे पेळ्वंते बंधयोग्यप्रकृतिगळु बंधव्युच्छित्यादिगळु मरियल्पडुवुदें दोडे औदारिकमिश्रकाययोगिगळु लब्ध्यपर्याप्तकरुं निर्वृत्यपर्य्याप्तकरुमप्पुदरिंदं बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११४ अप्पुवें दोडे देवायुष्यमुं १ नरकायुष्यमुं १ आहारकद्वयमुं २। नरकद्वयमु २ मल्लि बंधयोग्यंगळल्लवप्पुदरिंदमा षट्प्रकृतिगळं कळेदोडे योग्यप्रकृतिगळुतावन्मात्रंगळेयप्पुवप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिसासादनरोळु सुरचतुष्कमुं तीर्त्थमुं बंधमिल्ला प्रकृतिगळु अविरतनोळु बंधमप्पुवु। संदृष्टि औदारिकमिश्रकाययोगिगळगे

स	१	१	११३
अ	६९	७०	४४
सा	२९	९४	२०
मि	१५	१०९	५

बन्धयोग्यम् १२० । व्युच्छित्तयः—मि १६ । सा ३१ । मि ० । अ ४ । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ० । क्षी ० । स १ । अ ० । बन्धाः—मि ११७ । सा १०१ । मि ६९ । अ ७१ । दे ६७ । अ ६३ । अ ५९ । अ ५८ । अ २२ । सू १७ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० । अबन्धाः—मि ३ । सा १९ । मि ५१ । अ ४९ । दे ५३ । प्र ५७ । अ ६१ । अ ६२ । अ ९८ । सू १०३ । उ ११९ । क्षी ११९ । स ११९ । अ १२० ॥ ११५ ॥

औदारिक-मिश्रकाययोगिष्वाह—

औदारिकमिश्रकाययोगिषु औदारिककाययोगिवद्बन्धप्रकृतयो व्युच्छित्त्यादयश्च ज्ञातव्याः। औदारिकमिश्रकाययोगिनो हि लब्ध्यपर्याप्ताः निर्वृत्त्यपर्याप्ताश्च तेन देवनारकायुषी आहारकद्वयं नरकद्वयं च तत्र बन्धयोग्यं नेति चतुर्दशोत्तरशतम्। तत्रापि सुरचतुष्कं तीर्थं च मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्न बध्नाति। अविरते च बध्नाति ॥११६॥

त्रसनिर्वृत्यपर्याप्तकमें पञ्चेन्द्रियनिर्वृत्यपर्याप्तकके समान जानना। औदारिक काययोगीमें मनुष्यगतिके समान जानना। अतः बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं।

औदारिक काययोगमें बन्धयोग्य १२० रचना

	मि.	सा.	मि.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्युच्छित्ति	१६	३१	०	४	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१
बन्ध	११७	१०१	६९	७१	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१
अबन्ध	३	१९	५१	४९	५३	५७	६१	६२	९८	१०३	११९	११९	११९

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें कहते हैं—

औदारिक मिश्रकाययोगियोंमें औदारिक काययोगियोंकी तरह बन्ध प्रकृतियाँ और व्युच्छित्ति आदि जानना। औदारिक मिश्रकाययोगी लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त होते हैं अतः उनके देवायु, नरकायु, आहारकद्विक, और नरकद्विक बन्धयोग्य नहीं है। इससे एक सौ चौदह बन्धयोग्य हैं। उनमें-से भी सुरचतुष्क और तीर्थंकर मिथ्यादृष्टि और सासादनमें नहीं बँधती, असंयत सम्यग्दृष्टीमें बँधती हैं ॥११६॥

इल्लि बंधव्युच्छित्तिसंख्येगळं पेळ्दपरु :—

पण्णारसमुगुतीसं मिच्छदुगे अविरदे छिदी चउरो ।
उवरिमपणसट्ठीवि य एक्कं सादं सजोगिम्मि ॥११७॥

पंचदशैकान्नत्रिंशन्मिथ्यद्विके अविरते व्युच्छित्तयश्चतस्रः । उवरिम पंचषष्टिरपि च एकं सातं सयोगे ॥

मिथ्याद्विके मिथ्यादृष्टि सासादनगुणस्थानद्विकदोळु बंधव्युच्छित्तिगळु क्रमदिंदं पंचदशैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिगळप्पुवु । मिथ्यादृष्टियोळु १६ प्रकृतिगळोळु नरकायुष्यमुं नरकद्विकमुं कळेदु शेष १३ प्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यमुमं तिर्य्यगायुष्यमुमं कूडिदोडे १५ प्रकृतिगळप्पुवु । सासादननोळु ३१ प्रकृतिगळोळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमुं कळेदु २९ प्रकृतिगळु बंधव्युच्छित्तिगळप्पुवेकेंदोडा तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळं कट्टुवडे मिश्रकालदोळु लब्ध्यपर्याप्तकनागलेवेळ्कुं । सासादननादोडे लब्ध्यपर्याप्तकरोळु पुट्टदुदुविल्ल । निर्वृत्यपर्य्याप्तकनुं मिश्रकाययोगियप्पुदरिंदमायुर्ब्बंधमं माळ्पुविल्लवु कारणमागि मिथ्यादृष्टिलब्ध्यपर्य्याप्तकने कट्टुगुं । तद्विवक्षेयिंदमा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळे बंधव्युच्छित्तिगळादुवेंदरिवुदु । अविरते असंयतनोळु व्युच्छित्तयश्चतस्रः अप्रत्याख्यानकषायचतुष्टयमे बंधव्युच्छित्तियप्पुवेकेंदोडे वज्रऋषभनाराचादि षट्प्रकृतिगळु सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळादु वप्पुदरिंदमल्लिदं मेले देशसंयतन ४ प्रमत्तन ६ । अप्रमत्तन देवायुष्यं राशियोळकळे दुवेंदवं बिट्टु अपूर्वकरणनोळु आहारद्वयरहित शेष ३४ प्रकृतिगळुमनिवृत्तिकरणन ५ सूक्ष्मसांपरायन १६ कूडि यितु उपरितन पंचषष्ठि प्रकृतिगळु सहितमागि असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ६९ अप्पुवु । सयोगकेवलि भट्टारकरोळु सातमों दे बंधव्युच्छित्तियक्कु १ । मी गुणस्थानंगळोळु बंधप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु १०९ । अबंधंगळु ५ । सासादननोळु बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृति-

---

तस्य गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिं संख्याति—

मिथ्यादृष्टिद्वये व्युच्छित्तिः क्रमेण मिथ्यादृष्टौ पञ्चदश १५ । नरकायुर्नरकद्वयं चापनीय तिर्यग्मनुष्यायुःक्षेपात् पञ्चदश १५ । सासादने एकान्नत्रिंशत् । २९ । मिश्रकाययोगकाले लब्ध्यपर्याप्तकादन्यस्य आयुर्बन्धासंभवात् नरतिर्यगायुषोरपनयनात् । अविरते व्युच्छित्तिः वज्रर्षभनाराचादीनां षण्णां सासादने छेदात् अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कं, देशसंयतचतुष्कं प्रमत्तषट्कं अप्रमत्तस्य देवायूराशौ न अपूर्वकरणस्य आहारकद्वयं विना शेषचतुस्त्रिंशत् ३४ अनिवृत्तिकरणपञ्चकं सूक्ष्मसांपरायषोडशकमित्येकान्नसप्ततिः ६९ । सयोगे एकं

उनके गुणस्थानोंमें व्युच्छित्तियोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें नरकायु और नरकद्विक घटाकर तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुके मिलानेसे व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें उनतीसकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि मिश्रकाय योगके कालमें लब्ध्यपर्याप्तकके सिवाय अन्यके आयुबन्ध नहीं होनेसे मनुष्यायु तिर्यञ्चायु कम हो जाती है । असंयतमें वज्रर्षभनाराच आदि छहकी व्युच्छित्ति सासादनमें होनेसे अप्रत्याख्यानावरण चार, देशसंयतकी चार, प्रमत्तकी छह, अप्रमत्तकी व्युच्छित्ति देवायु मूलमें नहीं है, अपूर्वकरणकी आहारकके बिना चौंतीस, अनिवृत्तिकरणकी पाँच, सूक्ष्म साम्परायकी सोलह इस तरह सब मिलकर व्युच्छित्ति उनहत्तर है । सयोगीमें एक सातवेदनीयकी

गळु २०। असंयतनोळु बंधप्रकृतिगळु ७० अबंधप्रकृतिगळु ४४। एकें दोडे तीर्थ्यमुमं सुरचतुष्टयमुमनविरतं कट्टुगुमपुर्दारिंदमविल्लि कळदुबंधदोळकूडिदुवें बुदर्त्थं। सयोगिकेवलि भट्टारकरोळु बंधमों दे सातमेयक्कु १ मबंध प्रकृतिगळु ११३ अप्पुवु॥

वैक्रियिकाहारककाययोगिगळगं पेळ्दपरु :—

देवे वा वेगुव्वे मिस्से णरतिरियआउगं णत्थि।
छट्ठगुणं वाहारे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ ॥ ११८॥

देवे इव वैक्रियिके मिश्रे नरतिर्य्यगायुर्नास्ति। षष्ठगुणत्वदाहारे तन्मिश्रे नास्ति देवायुः॥

वैक्रियिककाययोगिगळगे बंधयोग्य प्रकृतिगळु देवगतियोळु पेळ्दंते १०४ प्रकृतिगळप्पुवेकें दोडे सूक्ष्मत्रयमुं ३ विकलत्रयमुं ३ नरकद्विकमुं २ नरकायुष्यमुं १ सुरचतुष्कमुं ४। सुरायुष्यमु १ माहारद्वयमु २ मिन्तु १६ प्रकृतिगळु कळेदु पोदुवप्पुदरिंद संदृष्टिः— वै० क्रि० काययोगिगळगे

अ	१०	७२	३२
मि	०	७०	३४
सा	२५	९६	८
मि	७	१०३	१

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सूक्ष्मत्रयादिगळु ९ प्रकृतिगळकळेदुवप्पुदरिवं बंधव्युच्छित्तिगळु ७ बंधप्रकृतिगळु १०३ अबंधप्रकृति तीर्त्थमों देक्कुं १॥

सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळु २५ बंधप्रकृतिगळु ९६ अबंधप्रकृतिगळु ८॥ मिश्रनोळु बंधव्युच्छित्तिशून्यं। बंधप्रकृतिगळु मनुष्यायुष्यमं कळेदु ७० प्रकृतिगळप्पुवु। मनुष्यायुष्यं सहित-

सातम् १। बन्धाबन्धौ च मिथ्यादृष्टौ १०९। ५। सासादने ९४। २०। असंयते ७०। ४४ तीर्थसुरचतुष्कयोर्बन्धात्। सयोगे १। ११३॥ ११७॥ वैक्रियिकाहारकयोस्तन्मिश्रयोश्चाह—

वैक्रियिककाययोगिनां बन्धप्रकृतयः देवगतिवत्। १०४। सूक्ष्मत्रयविकलत्रयनरकद्विकनरकायुःसुरचतुष्कसुरायुराहारकद्वयानामबन्धात्। अत्र मिथ्यादृष्टौ सूक्ष्मत्रयादिनवानामभावाद्व्युच्छित्तिः ७। बन्धः १०३। अबन्धः तीर्थम्। सासादने व्युच्छित्तिः २५। बन्धः ९६। अबन्धः ८। मिश्रे व्युच्छित्तिः शून्यम्। बन्धः ७०

व्युच्छित्ति होती है। बन्ध और अबन्ध मिथ्यादृष्टिमें एक सौ नौ तथा पाँच, सासादनमें चौरानवे तथा बीस। असंयतमें सत्तर तथा चवालीस क्योंकि यहाँ तीर्थंकर और सुरचतुष्कका बन्ध होता है। सयोगीमें एक तथा एक सौ तेरह ॥११७॥

औदारिकमिश्रका. ११४

	मि.	सा.	असं.	सयो.
बन्ध व्यु.	१५	२९	६९	१
बन्ध	१०९	९४	७०	१
अबन्ध	५	२०	४४	११३

वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र और आहारकआहारकमिश्रमें कहते हैं—

वैक्रियिक काययोगियोंके बन्ध प्रकृतियाँ देवगतिके समान एक सौ चार हैं। सूक्ष्मादि तीन, विकलत्रय, नरकद्विक, नरकायु, सुरचतुष्क, देवायु, आहारकद्वयका बन्ध नहीं होता। यहाँ मिथ्यादृष्टिमें सूक्ष्मत्रिक आदि नौका अभाव होनेसे व्युच्छित्ति सात, बन्ध एक सौ तीन, अबन्ध एक तीर्थंकर। सासादनमें व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध छियानबे, अबन्ध आठ। मिश्रमें

मागि अबंधप्रकृतिगळु ३४। असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १०। बंधप्रकृतिगळु तीर्थमुं मनुष्यायुष्यमुं सहितमागि ७२ अप्पुवु।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०२ अप्पुवें तेंदोडे 'मिस्से णरतिरिय आउगं णत्थि' एंबितु नरतिर्य्यगायुर्द्वयमं कळेदोडप्पुवप्पुवरिंदं संदृष्टिरचने—

	वै० मिश्र काय		
अ	९	७१	३१
सा	२४	९४	८
मि	७	१०१	१

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ७ बंधप्रकृतिगळु १०१। अबंधप्रकृति तीर्थमों दे १॥ ५

सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळु तिर्य्यगायुष्यरहित २४ प्रकृतिगळप्पुवु। बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु ८ असंयतनोळु मनुष्यायुष्यरहित बंधव्युच्छित्तिगळु ९। बंधप्रकृतिगळु तीर्थसहितमागि ७१ प्रकृतिगळप्पुवु। अबंधप्रकृतिगळु तीर्थरहितमागि ३१ अप्पुववु॥ आहारककाययोगिगळगे छट्ठगुणंवाहारे एंबितु प्रमत्तसंयतंगे गुणस्थानदोळु पेळ्दंते बंधव्युच्छित्तिगळु ६ बंधप्रकृतिगळु ६३। अबंधप्रकृतिगळु ५७ अप्पुवु॥ आहारकमिश्रकाययोगिगे बंधव्युच्छित्तिगळु ६ बंधप्रकृतिगळु ६२ अप्पुवेकें दोडे तम्मिस्से णत्थि देवाऊ एंबितु देवायुष्यं कळेवु अबंधदोळु कूडिदुदप्पुवरिंदम बंधप्रकृतिगळु ५७। काम्मंणकाययोगिगळगे पेळ्वपरु। १०

मनुष्यायुरभावात्। अबन्धः ३४। असंयते व्युच्छित्तिः १०। बन्धः तीर्थमनुष्यायुःसहिततया ७२। अबन्धः तद्विना ३२। १५

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां बन्धप्रकृतयः द्व्युत्तरशतमेव १०२। कुतः? तत्र नरतिर्यगायुषो बन्धो नास्तीति तद्द्वयापनयनात्। अत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः ७। बन्धः १०१। अबन्धः तीर्थम्। सासादने व्युच्छित्तिस्तिर्यगायुर्विना २४। बन्धः ९४। अबन्धः ८। असंयते मनुष्यायुर्विना व्युच्छित्तिः ९। बन्धः तीर्थसहिततया ७१। अबन्धः तीर्थं विना ३१। आहारककाययोगिनां प्रमत्तगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिः ६। बन्धः ६३। अबन्धः ५७। तन्मिश्रकाययोगिनां व्युच्छित्तिः ६। बन्धः ६२ 'तम्मिस्सेणत्थि देवाऊ' इति वचनात्। अबन्धः ५८॥ ११८॥ कार्मणकाययोगिनामाह— २०

व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध सत्तर क्योंकि मनुष्यायुका अभाव है अबन्ध चौंतीस। असंयतमें व्युच्छित्ति दस, बन्ध तीर्थंकर और मनुष्यायु सहित बहत्तर, अबन्ध उनके बिना बत्तीस। वैक्रियिक मिश्रकाय योगियोंमें बन्ध प्रकृतियाँ एक सौ दो, क्योंकि मनुष्यायु तिर्यञ्चायुका बन्ध नहीं होता इसलिए उन दोनोंको कम कर दिया है। यहाँ मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति सात, २५
बन्ध एक सौ एक, अबन्धमें तीर्थंकर एक। सासादनमें व्युच्छित्ति तिर्यञ्चायुके बिना चौबीस, बन्ध चौरानबे, अबन्ध आठ। असंयतमें मनुष्यायुके बिना व्युच्छित्ति नौ, बन्ध तीर्थंकर सहित इकहत्तर, अबन्ध तीर्थंकरके बिना इकतीस। आहार काययोगियोंके प्रमत्त गुणस्थानकी तरह व्युच्छित्ति छह, बन्ध तरेसठ, अबन्ध सत्तावन। आहारक मिश्रकाययोगियोंके व्युच्छित्ति छह, बन्ध बासठ क्योंकि आहारकमिश्रमें देवायुका बन्ध नहीं होता ३०
ऐसा कहा है। अबन्ध अठावन ॥११८॥

कम्मे उरालमिस्सं वा णाउदुगंपि णव छिदी अयदे ।
वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघं तु ॥११९॥

कार्म्मणे औदारिकमिश्रवन्नायुर्द्वयमपि नवव्युच्छित्तयोऽसंयते । वेदादाहारपर्य्यंतं स्वगुणस्थानानामोघस्तु ॥

कार्म्मणकाययोगिगळ्गे औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गे पेळ्दंतेयक्कुमदुवुं 'ओरालेवामिस्से ण हि सुरणिरयाउहार जिरयदुगमेंदितु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११४ अप्पुविल्लि विग्रहगतियोळायुर्ब्बंधमिल्लप्पुदरिंदमवरोळिर्द्द तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं कळेदोडे ११२ प्रकृतिगळु बंधयोग्यंगळप्पुवल्लि गुणस्थानचतुष्टयमक्कुं ॥ कार्म्मणकाययोगिगळ्गे—

स	१	१	१११
अ	७४	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	७३	१०७	५

इल्लि मिथ्यादृष्टियोळु बंधव्युच्छित्तिगळु १३ अप्पुवें तेंदोडे नरकद्विकमुं नरकायुष्यमुं कळदुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु १०७ अप्पुवें तेंदोडे 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहि अविरदे अत्थि' एंदितु ५ प्रकृतिगळु बंधदोळकळे दु अबंधप्रकृतिगळादुवप्पुदरिंदं । सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळु तिर्य्यंगायुष्यमं कळेदुळिद २४ प्रकृतिगळप्पुवु । बंधप्रकृतिगळु ९४ अबंधप्रकृतिगळु १८ ॥

असंयतनोळु बंधव्युच्छित्तिगळु ७४ अप्पुवें तेंदोडे तन्न ओंभत्तु ९ । देशसंयतन ४ प्रमत्तसंयतन ६ अप्रमत्तन देवायुष्यमं बिट्टु अपूर्व्वकरणनाहारकद्वयरहित ३४ प्रकृतिगळुं अनिवृत्ति-

कार्मणकाययोगिनां औदारिकमिश्रकाययोगिवद्भवति । तत्रापि विग्रहगतावायुर्बन्धो नेति तिर्यग्मनुष्यायुषी विना बन्धयोग्यं द्वादशोत्तरशतमेव । गुणस्थानचतुष्कम् । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १३ नरकद्विकनरकायुरभावात् । बन्धः १०७ । मिच्छदुगेदेवचऊ तित्थं णहि अविरदे अत्थीति पञ्चानामबन्धात् । सासादने व्युच्छित्तिः तिर्यगायुर्विना २४ । बन्धः ९४ । अबन्धः १८ । असंयते व्युच्छित्तिः मनुष्यायुर्विना स्वस्य ९ । देशसंयतस्य ४ । प्रमत्तस्य ६ । अप्रमत्तस्य देवायूराशौ न । अपूर्वकरणस्य आहारकद्वयं विना ३४ ।

	वैक्रियिक काययोगी-१०४		वै. मिश्र. १०२ बन्धयोग्य				
	मि.	सा.	मि.	असं	मि.	सा.	असं.
व्युच्छित्ति	७	२५	०	१०	७	२४	९
बन्ध	१०३	९६	७०	७२	१०१	९४	७१
अबन्ध	१	८	३४	३२	१	८	३१

कार्मणकाय योगियोंके औदारिक मिश्रकाययोगीकी तरह होता है । उसमें भी विग्रहगतिमें आयुबन्ध नहीं होता । अतः तिर्यञ्चायु मनुष्यायुके बिना बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं । गुणस्थान चार होते हैं । मिथ्यादृष्टीमें नरकद्विक नरकायुका अभाव होनेसे व्युच्छित्ति तेरह, बन्ध एक सौ सात क्योंकि 'मिथ्यात्व और सासादनमें देवचतुष्क और तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता असंयतमें होता है' इस नियमके अनुसार पाँच अबन्धमें हैं । सासादनमें व्युच्छित्ति तिर्यगायुके बिना चौबीस, बन्ध चौरानबे, अबन्ध अठारह । असंयतमें

करणन ५ सूक्ष्मसांपरायन १६ अन्तु ७४ प्रकृतिगळप्पुवप्पुदरिंदं बंधप्रकृतिगळु ७५ वप्पुवेंतेंदोडे सुरचतुष्कमुं तीर्त्थमुमनसंयतं कट्टुगुमप्पुदरिनवं कूडिदोडप्पु वप्पुदरिंदं। अबंधप्रकृतिगळोळा ५ प्रकृतिगळं कळेदु ३७ प्रकृतिगळप्पुवु॥ सयोगभट्टारकनोळु बंधव्युच्छित्ति १ बंधप्रकृति १ अबंधप्रकृतिगळु १०१। मुंदे वेदमार्गणे मोदल्गोंडु आहारमार्गणे पर्य्यंतमाद १० मार्गणास्थानंगळोळु तु मत्ते स्वस्वगुणस्थानंगळोळु पेळ्द साधारणकथनमक्कु। मल्लि स्त्रीवेदिगळगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० गुणस्थानंगळु ९ बंधव्युच्छित्ति मि१६। सा२५। मि ०। अ१०। दे४। प्र ६। अ१। अ३६। क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेद भागेय द्विचरमदोळु पुंवेद १ चरमसमयदोळु शून्यं बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्रमत्तनोळु ६३ अ ५९। अनिवृत्तिकरणसवेद भागेय द्विचरमसमयदोळु २२। चरमसमयदोळु २१। अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२ अनिवृत्तिकरणसवेदभागेय द्विचरमदोळु ९८। चरमसमयदोळु ९९। स्त्रीवेदिनिर्वृत्यपर्याप्तकरुगळगे योग्यप्रकृतिगळु १०७ एंतेंदोडे आयुश्चतुष्टयं

अनिवृत्तिकरणस्य ५। सूक्ष्मसांपरायस्य १६। एवं ७४। बन्धः ७५। सुरचतुष्कतीर्थबन्धात्। अबन्धः ३७। सयोगे व्युच्छित्तिः १। बन्धः १। अबन्धः १११। तु पुनः अग्रे वेदाद्याहारपर्यन्तदशमार्गणासु स्वस्वगुणस्थानोक्तसाधारणकथनमेव। तत्र स्त्रीवेदिनां बन्धयोग्यं १२०। गुणस्थानानि ९। व्युच्छित्तयः—मि १६ सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६ क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागद्विचरमसमये पुंवेदः १। चरमसमये शून्यम् ०। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ३६। अ ५९। अ ५८। तत्सवेदभागद्विचरमसमये २२। चरमसमये २१। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। सवेदभागद्विचरमसमये ९८। चरमसमये ९९। तन्निर्वृत्त्य-

व्युच्छित्ति मनुष्यायुके बिना अपनी नौ, देशसंयतकी चार, प्रमत्तकी छह, अप्रमत्तकी देवायु यहाँ नहीं है, अपूर्वकरणकी आहारकयुगलके बिना चौंतीस, अनिवृत्तिकरणकी पाँच, सूक्ष्मसाम्परायकी सोलह, इस प्रकार सब चौहत्तर। बन्ध पिचहत्तर क्योंकि देवचतुष्क और तीर्थंकर बँधती है। अबन्ध सैंतीस। सयोगिमें व्युच्छित्ति एक, बन्ध एक, अबन्ध एक सौ ग्यारह। आगे वेदमार्गणासे लेकर आहार मार्गणापर्यन्त दस मार्गणाओंमें अपने-अपने गुणस्थानमें कहा साधारण कथन ही जानना।

स्त्रीवेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस, गुणस्थान नौ। स्त्रीवेदीनिर्वृत्यपर्याप्तकोंके बन्धयोग्य एक सौ सात; क्योंकि चारों आयु, तीर्थंकर, आहारद्विक और वैक्रियिकषट्कका बन्ध नहीं होता। इसमें असंयत गुणस्थान नहीं होता।

	कार्मणकाय योग ११२				स्त्रीवेद १२० बन्धयोग्य							स्त्री. निर्वृत्य १०७	
	मि.	सा.	अ.	सयो.	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	मि.	सा.
व्युच्छित्ति	१३	२४	७४	१	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	१	१३	२४
बन्ध	१०७	९४	७५	१	११७	१०१	७४	७७	६७	३६	५९	५८	२२	१०७	९४
अबन्ध	५	१८	३७	१११	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	०	१३

स्त्रीवेद नौवें गुणस्थानके सवेदभागपर्यन्त होता है। अतः क्षपक अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भागके द्विचरम समयमें एक पुरुषवेदकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है। तथा बन्ध

तीर्थं १ । आहारद्वयं २ वैक्रियिकषट्क ६ मन्तु १३ प्रकृतिगळ्कळेदुवप्पुदरिंदं :—

स्त्री = निर्वृत्यपर्य्याप्त			
सा	२४	९४	१३
मि	१३	१०७	०

ई रचने सुगममेंदोडे स्त्रीवेदिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तकासंयतं घटिसनेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥

षंढवेदिगळ्गेयुं बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० गुणस्थानंगळुं स्त्रीवेदिगळोळ्पेळ्दंते ९ अप्पुवु। गमनिकेयुमा प्रकारमेयक्कु मी षंढवेदिगळोळु निर्वृत्यपर्य्याप्तकोरोळु विशेषमुंटदाउदेंदोडे योग्य-
५ प्रकृतिगळु नूरेंदु १०८। गुणस्थानंगळु अप्पुवु।

षं. निर्वृत्य०

अ	९	७१	३७
सा	२४	९४	१४
मि	१३	१०७	१ तीर्थ

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे नरकगतिय असंयतनोळ् तीर्थबंधमुंटेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं। षंढवेदिलब्ध्यपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिगे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०९ तीर्थमं कळेदु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्द्वयमं

पर्याप्तानां बन्धयोग्यं १०७। कुतः ? आयुश्चतुष्कतीर्थाहारद्वयवैक्रियिकषट्कानामबन्धात्। संदृष्टि :—

स्त्रीनिर्वृत्यपर्याप्त १०७

सा	२४	९४	१३
मि	१३	१०७	०

अत्रासंयतो न संभवति।

१० षंढवेदिनां बन्धयोग्यम् १२०। गुणस्थानानि गमनिका च स्त्रीवेदिवत्। तन्निर्वृत्यपर्याप्ते तु बन्धयोग्यमष्टोत्तरशतम्। १०८। तल्लब्ध्यपर्याप्तकबन्धात्तिर्यग्मनुष्यायुषी अपनीय नारकासंयतापेक्षया तीर्थबन्धस्यात्र क्षेपात् गुणस्थानानि ३। संदृष्टिः—

षंढनिर्वृत्यपर्याप्त ०।

अ	९	७१	३७
सा	२४	४९	१४
मि	१३	१०७	१ तीर्थ

बाईस और अबन्ध अठानबे का होता है। तथा चरम समयमें व्युच्छिति शून्य, बन्ध इक्कीस और अबन्ध निन्यानबेका होता है।

१५ नपुंसक वेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। गुणस्थान तथा रचना स्त्रीवेदीकी तरह जानना। नपुंसकवेदी निर्वृत्यपर्याप्तमें बन्धयोग्य एक सौ आठ हैं। क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तकके बन्धयोग्य एक सौ नौ प्रकृतियोंमें-से तिर्यञ्चायु मनुष्यायु घटाकर तीर्थंकरको मिलानेसे एक सौ आठ होती हैं क्योंकि नरकमें चतुर्थगुणस्थानमें तीर्थंकरका बन्ध होता है। गुणस्थान तीन

कट्टुगुमप्पुर्दारिदमा प्रकृतिद्वयं कूडिदुर्बुदत्थं। पुंवेदिगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० बंधव्युच्छित्तिगळु मि १६ सा २५ मि ०। अ १०। दे ४ प्र ६ अ १ अ ३६। क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागचरमसमयदोळु पुंवेदं १ व्युच्छित्तियक्कुं। बंधप्रकृतिगळु मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३ अ ५९ अ ५८। क्षपकानिवृत्ति प्रथमसवेदभागचरमसमयपर्यंतं बंधप्रकृतिगळु २२। अबंधप्रकृतिगळु मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। क्षपकानिवृत्तिप्रथमसवेदभागचरमसमयपर्य्यंतं ९८।

पुंवेदिनिर्वृत्यपर्य्याप्तकरुगळ्गे गतित्रयजरुगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११२। गुणस्थानत्रितयमुमक्कुं।

पुं० निर्वृत्यपर्य्याप्तक			
अ	९	७५	३७
सा	२४	९४	९८
मि	१३	१०७	५

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे असंयतनोळु तीर्त्थमुं सुरचतुष्कमुं बंधमुंटप्पुदरिंदमा प्रकृतिपंचकमसंयतन बंधप्रकृतिगळोळ्कूडिदुवेंबिनिते विशेषमप्पुदरिं, स्त्रीवेददोळं षंढवेददोळं तीर्त्थबंधमुमाहारकद्वयबंधमुं विरोधिसल्पडदु। तीर्त्थोदयमेंतु परमोत्कृष्टविशुद्धरोळुदयिसुगुमंते

पुंवेदिनां बन्धयोग्यम् १२०। व्युच्छित्तयः—मि १६। सा २५। मि ०। अ १०। दे ४। प्र ६। अ १। अ ३६। क्षपकानिवृत्तिकरणप्रथमभागचरमसमये पुंवेदः १। बन्धाः—मि ११७। सा १०१। मि ७४। अ ७७। दे ६७। प्र ६३। अ ५९। अ ५८। तत्प्रथमभागचरमसमयपर्यन्तम् २२। अबन्धाः—मि ३। सा १९। मि ४६। अ ४३। दे ५३। प्र ५७। अ ६१। अ ६२। तत्प्रथमभागचरमसमयपर्यन्तम् ९८। सन्निर्वृत्यपर्याप्तानां नारकं विना त्रिगतिजानामेव बन्धयोग्यम् ११२। गुणस्थानत्रयम्। संदृष्टिः—

पुंनिर्वृत्यपर्याप्त०।

अ	९	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

हैं। पुरुषवेदियोंके बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। उनके निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें नारकको छोड़ शेष तीन गतिवाले जीवोंके ही बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं। गुणस्थान तीन हैं—

	पुरुषवेद बन्धयोग्य १२०									पु. निवृ. ११२			नपुं. निवृ. १०८		
	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	मि.	सा.	अ.	मि.	सा.	अ.
व्यु.	१६	२५	०	१०	४	६	१	३६	१	१३	२४	९	१३	२४	९
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१०७	९४	७५	१०७	९४	७१
अबन्ध	३	१९	४६	४३	५३	५७	६१	६२	९८	५	१८	३७	१	१४	३७

पुरुषवेदनिर्वृत्यपर्याप्तकोंके असंयतमें तीर्थंकर और सुरचतुष्क बन्ध होता है इतना विशेष जानना। स्त्रीवेद नपुंसकवेदमें भी तीर्थंकर और आहारकद्विकके बन्धमें कोई विरोध नहीं है, किन्तु इनका उदय नियमसे पुरुषवेदमें ही होता है।

आहारकद्वयमुं स्त्रीषंढवेदविगळोळुदयमिल्ल ॥ कषायमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० । गुणस्थानंगळु क्षपकानिवृत्तिकरणद्वितीयतृतीय चतुर्त्थ पंचमभागंगळु पर्य्यंतं क्रोधमानमायाबादरलोभंगळ्गे ९ गुणस्थानंगळप्पुवु । सामान्यगुणस्थानदोळ्पेळ्दंते गमनिकेयरियल्पडुगुं ॥ सूक्ष्मलोभिगे सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमेयक्कुं । ज्ञानमार्गणेयोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ गुणस्थानद्वितयमेयक्कुं ।

	कु	कु	विभंग
सा	२५	१०१	१६
मि	१६	११७	०

मतिश्रुतावधिज्ञानिगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु तीर्त्थं आहारकद्वितयं सहितमागि ७९ प्रकृतिगळप्पुवु । एंतें दोडे मिथ्यादृष्टिसासादनरोळु ४१ प्रकृतिगळुळिवप्पुदरिंदं । गुणस्थानंगळुमसंयतादि ९ अप्पुवल्लि बंधव्युच्छित्तिगळु अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ । उ ०।

अत्रासंयते तीर्थसुरचतुष्कयोर्बन्धोऽस्तीति ज्ञातव्यम् । स्त्रीषंढवेदयोरपि तीर्थाहारकबन्धो न विरुध्यते उदयस्यैव पुंवेदिषु नियमात् ।

कषायमार्गणायां बन्धयोग्यम् १२० । गुणस्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरणद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमभागपर्यंतानि क्रोधमानमायाबादरलोभानां गमनिका च सामान्यगुणस्थानोक्तैव । सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमेव । ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतविभंगानां बन्धयोग्यम् ११७ । गुणस्थानद्वयं । संदृष्टि :—

कु-कु-विभंगाः ।

सा	२५	१०१	१६
मि	१६	११७	०

मतिश्रुतावधिज्ञानिना बन्धयोग्याः ७९ । मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्ति ४१–प्रकृत्यभावात् । गुणस्थानानि असंयतादीनि ९ तत्र व्युच्छित्तयः–अ १० । दे ४ । प्र ६ । अ १ । अ ३६ । अ ५ । सू १६ ।

कषायमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं । क्रोध, मान, माया और लोभके गुणस्थान क्रमसे क्षपक अनिवृत्तिकरणके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम भाग पर्यन्त जानना । बन्धादि तीन सामान्य गुणस्थानवत् जानना । सूक्ष्मलोभमें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान ही होता है । ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत और विभंगज्ञानके बन्धयोग्य एक सौ सतरह हैं । गुणस्थान दो हैं ।

	कु. मि.	कु. सा.	निभ. ११७
बन्ध व्यु.	१६	२५	
बन्ध	११७	१०१	
अबन्ध	०	१६	

मति श्रुत अवधिज्ञानियोंके बन्धयोग्य उन्यासी हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सासादनमें व्युच्छिन्न होनेवाली इकतालीस प्रकृतियोंका अभाव है । गुणस्थान असंयतसे लेकर नौ होते

क्षी ० । बंधप्रकृतिगळु अ० ७७ । अबंध २ । दे बंध ६७ । अबंध १२ । प्रमत्त बंध ६३ । अबंध १६ । अप्रमत्त बंध ५९ । अबंध २० । अपूर्ववकरण बंध ५८ । अबंध २१ । अनिवृत्ति बंध २२ । अबंध ५७ । सू० बंध १७ । अबंध ६२ । उपशांतकषाय बंध १ अबंध ७८ । क्षीण बंध १ अबंध ७८ । मनःपर्य्ययज्ञानिगळु बंधयोग्यप्रकृतिगळो ६५ ॥ प्रमत्तसंयतादिसप्तगुणस्थानंगळुमप्पुवु—

मनःपर्य्यय

क्षी	०	१	६४
उ	०	१	६४
सू	१६	१७	४८
अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

ई रचनेयु सुगममेकदोडे मनःपर्य्ययज्ञानिगळु आहारकऋद्धिप्राप्तरिल्लवे तद्बंधमप्रमत्तापूर्ववकरणरोळ्दे बिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥

केवलज्ञानमार्गणेयोळु सातमो दे बंधमक्कुं । सयोगायोगिगुणस्थानद्वितयमुं सिद्धपरमेष्ठिगळुमप्परु ॥ संयममार्गणेयोळु असंयमबंधयोग्यप्रकृतिगळु ११८ गुणस्थानंगळुं मिथ्यादृष्ट्यादि-

---

ल ० । क्षी ० । बन्धाबन्धौ च–अ ७७ । २ । दे ६७ । १२ । प्र ६३ । १६ । अ ५९ । २० । अ ५८ । २१ । अ २२ । ५७ । सू १७ । ६२ । उ १ । ७८ । क्षी १ । ७८ । मनःपर्ययज्ञानिनां बन्धयोग्याः ६५ । प्रमत्तादिसप्तगुणस्थानानि । सं—

मनःपर्यय

ब	०	१	६४
उ	०	१	६४
सू	१६	१७	४८
अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

अत्राहारकद्वयोदय एव विरुध्यते नाप्रमत्तापूर्वकरणयोस्तद्बन्धः । केवलज्ञानिषु सातस्यैव बन्धः । सयोगायोगगुणस्थानद्वयं सिद्धाश्च संति । संयममार्गणायां असंयमस्य बन्धयोग्यं ११८ गुणस्थानानि आद्यान्येव

हैं । मनःपर्ययज्ञानियोंके बन्धयोग्य पैंसठ हैं । प्रमत्त आदि सात गुणस्थान होते हैं । मनःपर्ययका आहारकद्वयके उदयके साथ ही विरोध है, अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें होनेवाले उनके बन्धके साथ विरोध नहीं है । केवलज्ञानियोंके एक सातका ही बन्ध होता है । सयोग और अयोग ये दो गुणस्थान होते हैं । केवलज्ञान सिद्धोंके भी होता है ।

चतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु :—

असंयमक्के

अ	१०	७७	४१
मि	०	७४	४४
सा	२५	१०१	१७
मि	१६	११७	१

ई रचनेयुं सुगममेयक्कुमेंतेंदोडे असंयतगे तीर्त्थमुं मनुष्यायुष्यमुं मिश्रन अबंधदोळकळेदु असंयतनोळ्कूडिदुवेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥

देशसंयमक्के देशसंयतगुणस्थानदोळेंतेयक्कुं। बंध व्यु ४ बं ६७ अ १२ ॥ सामायिकच्छेदोपस्थानद्वयक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु ६५ अप्पुवेंतेंदोडे ई संयमद्वयदोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वितयमुं बंधमुंटप्पुदरिंदं गुणस्थानचतुष्टयमुमक्कुं।

	सा०	छे०	
अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

चत्वारि। संदृष्टि :—

असंयमस्य रचना

अ	१०	७७	४१
मि	०	७४	४४
सा	२५	१०१	१७
मि	१६	११७	१

अत्र तीर्थदेवमनुष्यायूंषि मिश्रस्य अबन्धादसंयते निक्षिप्तानीति ज्ञातव्यम्। देशसंयमस्य देशसंयतगुणस्थानवत् व्युच्छित्तिः ४। बन्धः ६७। अबन्धः ५३। सामायिकछेदोपस्थापनयोर्बन्धयोग्याः ६५। अत्र तीर्थाहारद्विकबन्धो गुणस्थानचतुष्कं। सं—

	सा	छे	६५
अ	५	२२	४३
अ	३६	५८	७
अ	१	५९	६
प्रमत्त	६	६३	२

	मति. श्रुत. अवधि ७९ बन्धयोग्य									मनःपर्यय ६५ बन्धयोग्य							
	असं.	दे.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.
बन्ध व्यु.	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	६	१	३६	५	१६	०	०
बन्ध	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	६३	५९	५८	२२	१७	१	१
अबन्ध	२	१२	१६	२०	२१	५७	६२	७८	७८	२	६	७	४३	४८	६४	६४

संयममार्गणामें असंयममें बन्धयोग्य एक सौ अठारह, आदिके चार गुणस्थान होते हैं, यहाँ तीर्थंकर, देवायु और मनुष्यायुका मिश्रगुणस्थानमें बन्ध नहीं होनेसे असंयत गुणस्थानमें उनका निक्षेप किया है। देशसंयममें देश संयत गुणस्थानकी तरह व्युच्छित्ति चार, बन्ध सड़सठ और अबन्ध तिरपनका है। सामायिक और छेदोपस्थापनामें बन्धयोग्य पैंसठ हैं। यहाँ तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है। गुणस्थान चार होते हैं।

परिहारविशुद्धिसंयमदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळ् ६५ अवर्गळ्पुवेंतेंदोडे तीर्थमाहारकद्वितयमुमोसंयमदोळं बंधमुंदु आहारकऋद्धि संभविसवेंबुदत्थं। गुणस्थानद्वितयमेयक्कुं :—

परिहार शु.

अ	१	५९	६
प्र	६	६३	२

सूक्ष्मसांपराय संयमदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळेंतेयक्कुं। बंधव्युच्छित्ति १६। बं १७। अ ६२॥ यथाख्यात संयमदोळु बंधयोग्यप्रकृति सातमो देयक्कुं गुणस्थानचतुष्टयमुमक्कुं

यथाख्यात

अ	०	०	१
स	१	१	०
क्षी	०	१	०
उ	०	१	०

परिहारविशुद्धिसंयमे बन्धयोग्याः ६५। अत्र तीर्थाहारकद्विकबन्धोऽस्ति नाहारकर्धिः। गुणस्थानद्वयं— ५

परिहारविशुद्धि ६५

अप्र	१	५९	६
प्रमत्त	६	६३	२

सूक्ष्मसांपरायसंयमे सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवत् व्यु–१६। बं १७। अ १०३। यथाख्यातसंयमे बन्धयोग्यं सातमेव गुणस्थानचतुष्कं। सं—

यथाख्यात

अ	०	०	१
स	१	१	०
क्षी	०	१	०
उ	०	१	०

परिहार विशुद्धि संयममें बन्धयोग्य पैंसठ हैं। यहाँ तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है। किन्तु आहारक ऋद्धि नहीं है।

	असंयम बन्धयोग्य ११८				सामा. छे. ६५				परि. वि. ६५		१०
	मि.	सा.	मि.	असं.	प्र.	अ.	अपू.	अनि.	प्र.	अप्र.	
व्यु.	१६	२५	०	१०	६	१	३६	५	६	१	
बन्ध	११७	१०१	७४	७७	६३	५९	५८	२२	६३	५९	
अबन्ध	१	१७	४४	४१	२	६	७	४३	२	६	

सूक्ष्मसाम्पराय संयममें सूक्ष्म साम्परायगुणस्थानके समान व्युच्छित्ति सोलह, बन्ध सतरह, अबन्ध एक सौ तीन जानना। यथाख्यात संयममें बन्धयोग्य एक साता है। गुणस्थान चार अन्तिम हैं। १५

दर्शनमार्गणेयोळु चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० अप्पुवु। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टयादि १२ अप्पुवु। इल्लि गुणस्थानसामान्यदोळे तंते बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिगळरियल्पडुगुं। अवधिदर्शनक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु अवधिज्ञानदोळ्पेळ्दंते योग्यप्रकृतिगळु ७९ गुणस्थानंगळ्कुं असंयतादि ९ अप्पुवु। केवलदर्शनक्के केवलज्ञानक्के पेळ्दंतेयक्कुं।

लेश्यामार्गणेयोळु कृष्णनीलकपोतंगळ्गे बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११८ अप्पुवेंतेंदोडे असंयतनोळु तीर्त्थबंधमुंटु। आहारकद्विकमे कळेदुदेंबुदर्त्थं। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टयादिचतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु। बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधगमनिकेयुं गुणस्थानदोळ्पेळ्द सामान्यकथनमेयक्कुं। तेजःपद्मशुक्ललेश्येगळ्गे गाथाद्वयदिंदं बंधयोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु।

णवरि य सव्वुवसम्मे णारसुरआऊणि णत्थि णियमेण।
मिच्छस्संतिमणवयं बारं ण हि तेउपम्मेसु ॥१२०॥
सुक्के सदरचउक्कं वामंतिमबारसं च ण च अत्थि।
कम्मेव अणाहारे बंधस्संतो अणंतो य ॥१२१॥

नवीनं च सर्व्वोपशमसम्यक्त्वे नरसुरायुषी न स्तः नियमेन। मिथ्यादृष्टेरंत्यनवकं द्वादश च न हि तेजःपद्मयोः ॥

शुक्ले शतारचतुष्कं वामांत्यद्वादश च न च संति। कार्म्मणे इव अनाहारे बंधस्यांतोऽनंतश्च ॥

तेजोलेश्येयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १११ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिय कडेय सूक्ष्मत्रयादि नवप्रकृतिगळु कळेदु तावन्मात्रं गळप्पुदरिंदं। अल्लि गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तावसान-

---

दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोर्बन्धयोग्यम् १२०। मिथ्यादृष्ट्यादिद्वादशगुणस्थानोक्तबन्धाबन्धव्युच्छित्तयो ज्ञातव्याः। अवधिदर्शने अवधिज्ञानवद्बन्धयोग्याः ७९। गुणस्थानानि असंयतादीनि ९। केवलदर्शने केवलज्ञानवत्। लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलकपोतानां बन्धयोग्यं ११८ आहारकद्विकाभावात्। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि बन्धाबन्धव्युच्छित्तयस्तद्वत् ॥११९॥ शुभलेश्यानां गाथाद्वयेनाह—

तेजोलेश्यायां बन्धयोग्यं १११ मिथ्यादृष्टेश्चरमसूक्ष्मत्रयादिनवानामभावात्। गुणस्थानानि आद्यान्येव

दर्शनमार्गणामें चक्षु अचक्षुदर्शनमें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। मिथ्यादृष्टिसे लेकर बारह गुणस्थानोंमें कहे अनुसार बन्ध, अबन्ध और व्युच्छित्ति जानना। अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानकी तरह बन्धयोग्य उनासी हैं। गुणस्थान असंयत आदि नौ हैं। केवल दर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना।

लेश्यामार्गणामें कृष्ण नील कपोतमें बन्धयोग्य एक सौ अठारह हैं, आहारकद्विक नहीं है। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार हैं। गुणस्थानोंकी तरह ही बन्ध अबन्ध और व्युच्छित्ति होती है ॥११९॥

शुभलेश्याओंमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

तेजोलेश्यामें बन्धयोग्य एक सौ ग्यारह हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली सोलह प्रकृतियोंमें से अन्तकी सूक्ष्मत्रिक आदि नौका अभाव है। गुणस्थान आदिके सात

माद ७ गुणस्थानंगळप्पुवु । मि । व्यु ७ । बं १०८ अ ३ । सासा. व्यु. २५ । बं १०१ । अ १० । मि व्यु ० । बं ७४ । अ बं ३७ । अ सं व्यु १० । बं ७७ । अ बं ३४ ॥ देश सं व्यु ४ । बंध ६७ । अ बं ४४ । प्रम व्यु ६ बंध ६३ । अ बं ४८ ॥ अप्र व्यु १ बंध ५९ । अबं ५२ ॥ पद्मलेश्ययोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०८ अप्पुवंतेंदोडे वामन अन्त्यद्वादश प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं । गुणस्थानंगळु ७ अप्पुवु । मि व्यु ४ बंध १०५ । अबं ३ ॥ सासा व्यु २५ । बंध १०१ । अबं ७ ॥ मिश्र व्यु । ० । बंध ७४ । अबं ३४ ॥ असं व्यु १० । बंध ७७ । अबं ३१ ॥ देश व्यु ४ । बंध ६७ । अबं ४१ ॥ प्रम व्यु ६ बंध ६३ । अबं ४५ ॥ अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अबं ४९ ॥ शुक्ललेश्ययोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १०४ अप्पुवंतेंदोडे सासादननोळु शतारचतुष्टयमुं मिथ्यादृष्टियोळु एकेंद्रियादि अन्त्यद्वादशप्रकृतिगळुं कळेदोडे तावत्प्रमितंगळप्पुवप्पुदरिंदं । गुणस्थानंगळु १३ रप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु व्यु ४ । बंध १०१ । अबं ३ ॥ सासा व्यु २१ । बंध ९७ । अबं ७ ॥ मिश्र व्यु ० । बंध ७४ । अबं ३० ॥ असं व्यु १० । बंध ७७ । अबं २७ ॥ देश व्यु ४ बंध ६७ । अबं ३७ ॥ प्रम व्यु ६ बंध ६३ । अबं ४१ । अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अबं ४५ ॥ अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अबं ४५ ॥ अपूर्व्व व्यु ३६ । बंध ५८ । अबं ४६ ॥ अनि व्यु ५ । बंध २२ । अबं ८२ ॥ सूक्ष्म व्यु १६ । बंध १७ । अबं ८७ ॥ उप व्यु ० । बंध १ । अबं १०३ ॥ क्षीण व्यु ० । बंध १ । अबं १०३ ॥

सप्त । मि व्यु-७ । बं १०८ । अ ३ । सा-व्यु २५ । बं १०१ अ १० । मि व्यु-० । बं ७४ । अ ३७ । अ व्यु-१० । बं ७७ । अ ३४ । दे व्यु-४ । बं ६७ । अ ४४ । प्र व्यु-६ । बं ६३ । अ ४८ । अ व्यु-१ । बं ५९ । अ ५२ । पद्मलेश्यायां बन्धयोग्यं १०८, वामस्यान्तद्वादशानामभावात् । गुणस्थानानि ७ । मि व्यु-४ । बं १०५ । अ ३ । सा-व्यु २५ । बं १०१ । अ ७ । मि व्यु-० । बं ७४ । अ ३४ । अ व्यु १० । बं ७७ । अ ३१ । दे व्यु-४ । बं ६७ । अ ४१ । प्र व्यु-६ । बं ६३ । अ ४५ । अ व्यु-१ । बं ५९ । अ ४९ । शुक्ललेश्यायां बन्धयोग्यम् १०४ । सदरचउक्कं मिथ्यादृष्टचेकेन्द्रियाद्यन्त्यद्वादश च नहि । गुणस्थानानि १३ । तत्र मि व्यु-४ । बं १०१ । अ ३ । सा व्यु-२१ । बं ९७ । अ ७ । मि व्यु-० । बं ७४ । अ ३० । अ व्यु १० । बं ७७ । अ २७ । दे व्यु-४ बं ६७ । अ ३७ । प्र व्यु-६ । बं ६३ । अ ४१ । अ व्यु-१ । बं ५९ । अ ४५ । अ व्यु-३६ । बं ५८ । अ ४६ । अ व्यु-५ । बं २२ । अ ८२ । सू व्यु १६ ।

होते हैं। पद्मलेश्यामें बन्धयोग्य एक सौ आठ हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंमें-से अन्तिम बारहका अभाव है। गुणस्थान सात होते हैं।

तेजोलेश्या बन्धयोग्य १११

बं. व्यु.	मि. ७	सा. २५	मि. ०	असं. १०	दे. ४	प्र. ६	अप्र. १
बन्ध	१०८	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	३	१०	३७	३४	४४	४८	५२

पद्मलेश्या बन्धयोग्य १०८

	मि० ४	सा. २५	मि. ०	असं. १०	दे. ४	प्र. ६	अप्र. १
बन्ध	१०५	१०१	७४	७७	६७	६३	५९
अबन्ध	३	७	३४	३१	४१	४५	४९

शुक्ललेश्यामें बन्धयोग्य एक सौ चार। क्योंकि शतारचतुष्क और मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छिन्न होनेवाली प्रकृतियोंमें-से अन्तकी एकेन्द्रिय आदि बारह नहीं होतीं। गुणस्थान तेरह हैं। रचना इस प्रकार है—

सयो व्यु १ । बंध १ । अबं १०३ ॥

भव्याऽभव्यमार्गणाद्वयदोळु मोदल भव्यमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२० गुणस्थानंगळु १४ अप्पुवल्लि । मि बंधव्युच्छि १६ बं ११७ । अबं ३ ॥ सा व्यु २५ । बं १०१ । अ १९ ॥ मि व्यु ० । बं ७४ । अ ४६ ॥ असं व्यु १० । बं ७७ । अ ४३ ॥ देश व्यु ४ । बं ६७ । अ ५३ ॥ प्रम व्यु ६ । बं ६३ । अ ५७ ॥ अप्र व्यु १ । बंध ५९ । अ ६१ ॥ अपू व्यु ३६ । बं ५८ । अ ६२ ॥ अनिवृत्ति व्यु ५ । बं २२ । अ ९८ ॥ सूक्ष्म व्यु १६ । बं १७ । अ १०३ ॥ उप व्यु ० । बं १ । अ ११९ ॥ क्षीण व्यु शून्य ० । बं १ । अ ११९ ॥ सयोग व्यु १ । बं १ । अ ११९ ॥ अयोगि व्यु ० । बं ० । अ १२० ॥ अभव्यमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७ । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं नियमदिंद मो देयक्कुं ॥

सम्यक्त्वमार्गणेयोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७७ अप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळ व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु ४० । णवरि य सव्वुवसम्मे णरसुर आऊणि णत्थि णियमेण एंदितु सम्यग्दृष्टिगळगे तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळु परभवबंधयोग्यमप्पदेवायुष्यमुं नरकदेवगतिगळोळु परभवबंधयोग्यमप्प मनुष्यायुष्यमुमुभयोपशमसम्यक्त्वदोळं बधयोग्यंगळल्लप्पुदरिंदमा यरडुमायुष्यंगळुं कूडि ४३ । प्रकृतिगळु कळेदुवप्पुदरिंदं तावन्मात्रं गळेयप्पुवु । गुणस्थानंगळु

बं १७ । अ ८७ । उ व्यु ० । बं १ । अ १०३ । क्षी व्यु ० । बं १ । अ १०३ । स व्यु १ । बं १ । अ १०३ । भव्यमार्गणायां बन्धयोग्यम् १२० । गुणस्थानानि १४ । तद्रचनासामान्यगुणस्थानोक्तवज्ज्ञातव्या । अभव्यमार्गणायां बन्धयोग्यप्रकृतयः ११७, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानम् । सम्यक्त्वमार्गणायां प्रथमोपशमसम्यक्त्वे बन्धयोग्याः ७७ । मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्तेः ४१ । तथा णवरिय सव्वुवसम्मे णरसुरआऊणि णत्थि णियमेणेति उपशमसम्यग्दृष्टीनां तिर्यग्मनुष्यगत्योर्देवायुषोर्नरकदेवगत्योर्मनुष्यायुषश्चाबन्धादुभयोपशमसम्यक्त्वे तद्द्वयस्याप्यभावात् गुणस्थानानि असंयतादीनि चत्वारि ।

शुक्ललेश्या बन्धयोग्य १०४

	मि.	सा.	मि.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्युच्छित्ति	४	२१	०	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१
बन्ध	१०१	९७	७४	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१
अबन्ध	३	७	३०	२७	३७	४१	४५	४६	८२	८७	१०३	१०३	१०३

भव्यमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस । गुणस्थान चौदह । उसकी रचना सामान्य गुणस्थानवत् जानना । अभव्यमार्गणामें बन्धयोग्य प्रकृतियाँ एक सौ सतरह और केवल एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है ।

सम्यक्त्वमार्गणामें प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें बन्धयोग्य सतहत्तर हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सासादनकी व्युच्छित्ति इकतालीस, तथा यद्यपि सम्यग्दृष्टिके तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें देवायुका तथा नरकगति और देवगतिमें मनुष्यायुका बन्ध होता है तथापि उपशम सम्यग्दृष्टिके दोनों ही उपशमसम्यक्त्वोंमें इन दोनों आयुका बन्ध नहीं होता । गुणस्थान असंयत आदि चार । असंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें तीर्थंकरका बन्ध होता है । अप्रमत्तमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका बन्ध होता है द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें भी बन्धयोग्य सत्तर हैं । गुणस्थान आठ । रचना इस प्रकार है—

मसंयतादिचतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु—

	प्रथ०		सम्यक्त्व	
अ	०		५८	१९
प्र	६		६२	१५
दे	४		६६	११
अ	९		७५	२

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमुंटें बी पक्षदोळु असंयतादिगुणस्थानत्रयदोळु तीर्त्थबंधमुमप्रमत्तगुणस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वितयमुं बंधमक्कुमें बिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळं बंधयोग्य प्रकृतिगळु ७७ अप्पुवु। गुणस्थानंगळु ८ प्पुवल्लि श्रेण्यवरोहणाऽसंयतंगे बंधव्युच्छित्तिगळु ९। बं ७५। अबंधप्रकृतिगळाहार २ श्रेण्यवरोहण देशसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति ४। बं ६६। अ ११ श्रेण्यवरोहणप्रमत्तसंयतंगे बंधव्युच्छित्ति ६। बं ६२। अ १५ ॥

प्रथम० सम्यक्त्वं

अ	०	५८	१९
प्र	६	६२	१५
दे	४	६६	११
अ	९	७५	२

अत्र तीर्थाहारकद्विकबन्धपक्षे असंयतादित्रये तीर्थस्य बन्धः, अप्रमत्ते तीर्थाहारकद्विकयोश्च बन्धोऽस्ति। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि बन्धयोग्याः ७७। गुणस्थानानि ८। तत्र श्रेण्यवरोहकासंयते व्यु ९। बं ७५। अबन्धः आहारकद्वयम्। देशसंयते व्यु ४। बं ६६। अ ११। प्रमत्ते व्यु ६। बं ६२। अ १५। आरोहका-रोहकाप्रमत्ते, व्यु ०। बं ५८। अ १९। अपूर्वकरणे व्यु ३६। बं ५८। अ १९। अनिवृत्तिकरणे व्यु ५। बं २२। अ ५५। सूक्ष्मसांपराये व्यु १६। बं १७। अ ६०। उपशांतकषाये व्यु ०। बं १। अ ७६। अत्र।

	प्रथमोपश. ७७				द्वितीयोपश. ७७							
	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.
व्युच्छित्ति	९	४	६	०	९	४	६	०	३६	५	१६	१
बन्ध	७५	६६	६२	५८	७५	६६	६२	५८	५८	२२	१७	१
अबन्ध	२	११	१५	१९	२	११	१५	१९	१९	५५	६०	७६

असंयत और देशसंयतमें जो प्रमत्तमें श्रेणिसे उतरकर नीचे आता है उसीकी अपेक्षा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होता है। तथा प्रमत्तादिमें श्रेणी चढ़ने व उतरनेकी अपेक्षा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पाया जाता है इससे इसमें गुणस्थान आठ होते हैं।

शंका—जब प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें आयुबन्ध नहीं होता तो १५

श्रेण्यारोहकावरोहकाप्रमत्तसंयतंगे बंध व्यु ०। बंध ५८। अ १९॥ श्रेण्यारोहकावरोहकापूर्व्वकरणंगे बंधव्युच्छित्ति ३६। बं ५८। अ १९॥ श्रेण्यारोहकावरोहकानिवृत्तिकरणंगे बंधव्युच्छित्ति ५। बं २२। अ ५५॥ आरोहकावरोहकसूक्ष्मसांपरायंगे बंधव्युच्छित्ति १६। बं १७। अ ६०॥ उपशांतकषायंगे बंधव्युच्छित्ति। ०। बं १। अ ७६॥ ई प्रथमद्वितीयोपशम-
५ सम्यक्त्वद्वयदोळमायुर्बंधमिल्लप्पुदरिंदमारोहकापूर्व्वकरणमरणरहितप्रथमभागमेंब विशेषणमनर्त्थकमक्कुमेंदेनल्वेडि येकेंदोडे प्राग्बद्धदेवायुष्यनप्प सातिशयाप्रमत्तसंयतंगे श्रेण्यारोहणं संभविसुगुमप्पुदरिंदं॥ प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु प्राग्बद्धायुष्यनादोडं तत्सम्यक्त्वकालमंतर्मुहूर्तपर्यंतं मरणं संभविसदु॥ क्षायोपशमिकसम्यक्त्वदोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७९ अप्पुवेंतेदोडे मिथ्यादृष्टिसासादन-
गुणस्थानद्वयदोळु ४१ प्रकृतिगळ्छिद्दुवप्पुदरिंदं तावन्मात्रंगळेयप्पुवु। गुणस्थानंगळ्मसंयतादि-
१० चतुर्गुणस्थानंगळेयप्पुवेकेंदोडे उपशमश्रेणियोळुपशमसुं क्षायिकमुं मेणु क्षपकश्रेणियोळु क्षायिकसम्यक्त्वमेयक्कुमेंब नियममप्पुदरिंदं।—

वेदकसम्यक्त्व

अ	१	५९	२०
प्र	६	६३	१६
दे	४	६७	१२
अ	१०	७७	२आ

प्रथमद्वितीयोपशमसम्यक्त्वयोरायुरबन्धात् आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागे मरणो न इति विशेषोऽनर्थकः ? इति न वाच्यं प्राग्बद्धदेवायुष्कस्यापि सातिशयाप्रमत्तस्य श्रेण्यारोहणसंभवात्। प्रथमोपशमसम्यक्त्वे तु प्राग्बद्धायुष्कस्यापि तत्कालान्तर्मुहूर्ते मरणासंभवात्। क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे मिथ्यादृष्टिसासादनव्युच्छित्त्य-
१५ संभवात् बन्धयोग्या ७९। गुणस्थानानि असंयतादीनि चत्वारि एव। कुतः ? उपशमश्रेण्यां औपशमिकं क्षायिकं च, क्षपकश्रेण्यां क्षायिकमेव सम्यक्त्वमिति नियमात्।

वेदकसम्यक्त्व ७९

अ	१	५९	२०
प्र	६	६३	१६
दे	४	६७	१२
अ	१०	६७	२आ

श्रेणि चढ़ते हुए अपूर्वकरणके प्रथम भागके साथ 'मरणूण' मरणसे रहित विशेषण क्यों लगाया ? यह विशेषण व्यर्थ क्यों नहीं है ?

समाधान—ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि जिसने पहले देवायुका बन्ध किया है
२० ऐसा सातिशय अप्रमत्त भी श्रेणि पर आरोहण कर सकता है। किन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें और श्रेणी चढ़ते हुए अपूर्वकरणके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथमभागमें जिसने पहले देवायुका बन्ध किया है उसका भी मरण नहीं होता अन्यत्र उपशमश्रेणिमें मरण हो सकता है।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें होनेवाली व्युच्छित्ति प्रकृतियोंका अभाव होनेसे बन्धयोग्य उनासी हैं। गुणस्थान असंयत आदि चार ही होते हैं क्योंकि
२५ उपशम श्रेणिमें औपशमिक क्षायिक और क्षपकश्रेणिमें क्षायिक ही सम्यक्त्व होनेका नियम

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे अप्रमत्तनोळु तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं बंधमक्कुमेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं ॥

क्षायिकसम्यक्त्वक्के बंधयोग्यप्रकृतिगळु ७९। अप्पुवल्लियुं ४१ प्रकृतिगळ्कळेदुवप्पुदरिंदं तावन्मात्रंगळेयप्पुवप्पुदरिंदं। गुणस्थानंगळुमसंयताद्ययोगिकेवलिगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानंगळु ११ अप्पुवु ॥ गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्ठिगळोळं क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुं। असं व्यु १०। बं ७७। अ २ आहारकं ॥ देशसंयतनल्लि व्यु ४ बं ६७। अ १२ ॥ प्रम व्यु ६। बं ६३। अ १६ ॥ अप्रमत्त व्यु १ बं ५९ अ २० ॥ एकेंदोडाहारकद्वयं बंधदोळ्कूडिदुवप्पुदरिंदं ॥ अपूर्व्वकरणंगे बंधव्युच्छित्ति ३६ बं ५८। अ २१ ॥ अनि व्यु ५। बं २२। अ ५७। सूक्ष्म व्यु १६। बं १७। अं ६२ ॥ उप व्यु। ०। ब १। अबं ७८ ॥ क्षीणकषाय। व्यु। ०। बं १। अ ७८ ॥ सयोग व्यु १। बं १। अबं ७८ ॥ अयोगिकेवलि भट्टारकंगे व्यु ०। बं ०। अबं ७९ ॥ मिथ्यारुचिगळ्गे व्यु १६। ब ११७। अ ३ ॥ सासादनरुचिगळ्गे व्यु २५। बं १०१। अ १९ ॥ मिश्ररुचिगळ्गे व्यु ०। बं ७४। अ ४६ ॥ संज्ञिसंज्ञिमार्गणाद्वयदोळु संज्ञिमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२०। गुणस्थानंगळु १२। इल्लि बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु सामान्यगुणस्थानदोळु पेळ्दंते वक्तव्यमप्पुवु ॥ असंज्ञिमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११७। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुं सासादनगुण-

---

अत्राप्रमत्ते तीर्थाहारकद्विकयोर्बन्धोऽस्ति। क्षायिकसम्यक्त्वेऽपि सैव ७९। बन्धयोग्यगुणस्थानानि असंयताद्ययोगान्तानि ११। सिद्धा अपि। अ व्यु १०। बं ७७। अ २ आहारकद्वयं। दे व्यु ४। बं ६७। अ १२। प्र व्यु ६। बं ६३। अ १६। अ व्यु १। बं ५९। अ २०। आहारकद्वयस्य बन्धे मिलितत्वात् अपूर्वकरणस्य व्यु ३६। बं ५८। अ २१। अ व्यु ५। बं २२। अ ५७। सू व्यु १६। बं १७। अ ६२। उ व्यु ०। बं १। अ ७८। क्षी व्यु ०। बं १। अ ७८। स व्यु १। बं १। अ ७८। अ व्यु ०। बं ०। अ ७९। मिथ्यारुचीनां व्यु १६। बं ११७। अ ३। सासादनरुचीनां व्यु २५। बं १०१। अ १९। मिश्ररुचीनां व्यु ०। बं ७४। अ ४६। संज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यं १२० गुणस्थानानि १२ बन्धाबन्धव्युच्छित्तयः

है। वेदक सम्यक्त्वमें अप्रमत्त अवस्थामें तीर्थंकर आहारकद्विकका बन्ध होता है और क्षायिक सम्यक्त्वमें भी होता है। अतः क्षायिक सम्यक्त्वमें भी बन्धयोग्य उनासी हैं और गुणस्थान असंयतादि ग्यारह हैं।

	वेदक सम्यक्त्व ७९				क्षायिक सम्यक्त्व ७९									
	असं.	दे.	प्र.	अप्र.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपू.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अयो.
व्युच्छित्ति	१०	४	६	१	१०	४	६	१	३६	५	१६	०	०	१	०
बन्ध	७७	६७	६३	५९	७७	६७	६३	५९	५८	२२	१७	१	१	१	०
अबन्ध	२	१२	१६	२०	२	१२	१६	२०	२१	५७	६२	७८	७८	७८	७९

मिथ्यादृष्टिके व्युच्छित्ति सोलह, बन्ध एक सौ सतरह और अबन्ध तीनका है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके व्युच्छित्ति शून्य, बन्ध चौहत्तर और अबन्ध छियालीसका है। सासादन सम्यग्दृष्टीके व्युच्छित्ति पच्चीस, बन्ध एक सौ एक और अबन्ध उन्नीस है।

संज्ञिमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस हैं। गुणस्थान बारह हैं। बन्ध, अबन्ध और

स्थानमुमप्पुवल्लि सासादननोळायुर्ब्बंधमिल्लेकेंदोडे मिश्रकाययोगियप्पुदरिंदं। तत्कालदोळे तद्गुणस्थानकालं तीर्दुदं मिथ्यादृष्टियक्कुमप्पुदरिंदमायुश्चतुष्टयबंध मिथ्यादृष्टियोळे व्युच्छित्ति-यक्कुं—

असंज्ञिगे			
सा	२९	९८	१९
मि	१९	११७	०

आहारानाहारमार्गणा द्वयदोळु आहारमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु १२०। गुणस्था-नंगळु १३। थिल्लि बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधभेदंगळु साधारणगुणस्थानदोळु पेळ्दे क्रममेयप्पुवु॥ अनाहारमार्गणेयोळु बंधयोग्यप्रकृतिगळु ११२ अप्पुवेंतेंदोडे कम्मेव अणाहारे येंदितु कार्म्मण-काययोगदोळु पेळ्दंतेयक्कुमा कार्म्मणकाययोगमुं औदारिकमिश्रकाययोगक्के पेळ्दंतेयक्कुं। तिर्य्यंग्मनुष्यायुर्द्वयमुं रहितमप्पुदरिंदं॥ ओराळे वा मिस्से ण हि सुराणिरयाउहारणिरयदुगमेंदी षट्प्रकृतिगळु ६ मिन्तु ८ प्रकृतिगळ्कळे दोडे तावन्मात्रंगळे यप्पुवप्पुदरिंदं गुणस्थानंगळु ५।

सामान्यवत्। असंज्ञिमार्गणायां बन्धयोग्यम् ११७। गुणस्थानद्वयम्। तत्र सासादने मिश्रकाययोगित्वात् मिथ्यादृष्टावेव आयुश्चतुष्कस्य व्युच्छित्तिः।

असंज्ञिनः ११७

सा	२९	९८	१९
मि	१९	११७	०

आहारमार्गणायां बन्धयोग्याः १२०। गुणस्थानानि १३। बन्धाबन्धव्युच्छित्तयः साधारणवत्। अनाहारमार्गणायां बन्धयोग्या ११२। कुतः? 'कम्मेव अणाहारे' कार्मणे च औदारिकमिश्रवदिति तिर्यग्-मनुष्यायुषी न। 'ओराले वा मिस्से णहि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं' इत्यष्टानामभावात्। गुणस्थानानि ५।

व्युच्छित्ति सामान्य गुणस्थानकी तरह जानना। असंज्ञिमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ सतरह। गुणस्थान दो। सासादनमें मिश्रकाययोग होनेसे मिथ्यादृष्टिमें ही चारों आयुकी बन्ध-व्युच्छित्ति होती है। आहारमार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बीस। गुणस्थान तेरह। बन्ध, अबन्ध और व्युच्छित्ति सामान्यगुणस्थानवत् जानना। अनाहार मार्गणामें बन्धयोग्य एक सौ बारह हैं क्योंकि कार्मण काययोगकी तरह कहा है और कार्मणमें औदारिक मिश्रकी तरह तिर्यञ्चायु मनुष्यायुका बन्ध नहीं होता तथा औदारिक मिश्रमें देवायु नरकायु नरकद्विक आहारकद्विकका अभाव है। इस तरह आठका बन्ध नहीं होता। गुणस्थान पाँच होते हैं।

	असंज्ञी ११७		अनाहार ११२				
	मि.	सा.	मि.	सा.	असं.	स.	अयो.
व्युच्छित्ति	०	२९	१३	२४	७४	१	०
बन्ध	११७	९८	१०७	९४	७५	१	०
अबन्ध	३	१९	५	१८	३७	१११	११२

अनाहारमार्ग०			सं०
अ	०	०	११२
स	१	१	१११
अ	९।६५	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

ई रचनेयुं सुगममेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टियोळु अबंधंगळागिद्दं तीर्थमुं सुरचतुष्कमुमसंयतसम्यग्दृष्टियोळु बंधमुंटप्पुदरिंदमा प्रकृतिपंचकमं कूडिदोडे बंधप्रकृतिगळु ७५। अबंधप्रकृतिगळु ३७ अप्पुवेंबिनिते विशेषमप्पुदरिंदं बंधव्युच्छित्तिगळु णवछिदी अयदे एंदु ९ प्रकृतिगळप्पुवु। उवरिम पणसट्ठी वि य येंदितु देशसंयतादि क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानव्युच्छित्तिगळु ६५ अन्तु ७४ प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळागुत्तिरलु एक्कं सादं सजोगम्मि एंदितु सयोगकेवळिगळोळु सातमों दे ५
बंधमुं व्युच्छित्तियुमक्कुमबंधप्रकृतिगळु १११। अयोगिकेवळिगळोळु व्युच्छित्तिबंधंगळु शून्यंगळु। बंधप्रकृतिगळु ११२। इन्तु वेदमार्गणे मोदल्गोंडनाहारमार्गणे पर्य्यंतं बंधस्यांतोऽनंतश्च। बंधव्युच्छित्ति बंधाबंधप्रकृतिविशेषंगळुक्तप्रकारदिंदं भाविसल्पडुवुवु॥

अनंतरं मूलप्रकृतिगळगे साद्यनादिध्रुवाध्रुवबंधसंभवासंभवमं पेळ्दपरु।

सादिअणादी धुव अद्धुवो य बंधो दु कम्मछक्कस्स। १०
तदियो सादि य सेसो अणादि धुव सेसगो आऊ॥१२२॥

सादिरनादि ध्रुवोऽध्रुवश्च बंधस्तु कर्म्मषट्कस्य। तृतीयं सादि शेषमनादि ध्रुवशेषकमायुः॥

अनाहारमा०—११२

अ	०	०	११२
स	१	१	१११
अ	९-६५	७५	३७
सा	२४	९४	१८
मि	१३	१०७	५

इयं रचना सुगमा। कुतः ? मिथ्यादृष्टौ अबन्धस्थिततीर्थसुरचतुष्कयोरसंयते बन्धः, इत्येतावत् एव विशेषात्। व्युच्छित्तिः 'णवच्छिदी अयदे' इति नव। तथा 'उवरिमपणसट्ठीविय' एवं ७४। 'एक्कं सादं सजोगिम्हि' बध्यते व्युच्छिद्यते च। अबन्धः—१११। अयोगे व्युच्छित्तिः बन्धश्च शून्यम्। अबन्धः ११२। १५
एवं वेदमार्गणाद्याहारमार्गणापर्यन्तं बन्धस्यान्तो व्युच्छित्तिः। अनन्तः—बन्धः। चशब्दादबन्धश्चोक्तः॥१२०-१२१॥ अथ मूलप्रकृतीनां साद्यादिबन्धभेदान् विशेषयति—

अनाहारकमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकर और सुरचतुष्कका बन्ध न होकर असंयतमें होता है इतना ही विशेष है। असंयतमें अपनी व्युच्छित्ति नौ तथा ऊपर के गुणस्थानोंकी पैंसठ मिलकर चौहत्तर होती है। सयोगीमें एक साता ही बँधती है उसीकी २०
व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार वेदमार्गणासे आहारमार्गणा पर्यन्त बन्धका अन्त अर्थात् व्युच्छित्ति और बन्धका अनन्त अर्थात् बन्ध तथा 'च' शब्दसे अबन्ध कहा॥१२०-१२१॥

आगे मूल प्रकृतियोंके सादि आदि बन्धके भेदोंको कहते हैं—

सादिबंधमं बुमनादिबंधमें बुं ध्रुवबंधमें बुमध्रुवबंधमें बितु प्रकृतिबंधं चतुर्व्विधमक्कुमवरोळु ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं मोहनीयं नामं गोत्रमंतरायमें ब मूलप्रकृतिषट्कक्के प्रत्येकं साद्यनादि ध्रुवाध्रुवबंधचतुष्टयमुमक्कुं। तृतीयं वेदनीयं। सादिशेषं सादिबंधवर्त्तिगळदं शेषानादिध्रुव अध्रुवबंधभेदंगळनुळ्ळुवक्कुं। एंतेंदोडे सातवेदनीयापेक्षेयिंदं वेदनीयक्के सादित्वमिल्लेकें दोडे गुणप्रतिपन्नरोळमुपशमश्रेण्यारोहणावरोहणदोळं सातवेदनीयबंधमविच्छिन्नरूपदिंदं सयोगगुणस्थानपर्य्यंतं बंधमुंटप्पुदरिंदं। अनादिध्रुवशेषमायुः आयुष्यमनादिध्रुवबंधद्वयवर्त्तिगळं शेषसाद्यध्रुवबंधंगळनुळ्ळुवक्कुमेकें दोडे उत्तरभवदायुष्यमनोम्मे मोदल्गोंडु कट्टुगुमप्पुदरिंदं। सादिबंधमनुळ्ळुवुमक्कुं अंतर्म्मुहूर्त्तकालावसानबंधमनुळ्ळुवुमप्पुदरिंदं अध्रुवबंधमुमनुळ्ळुवुमक्कुं—

णा	दं	वे	मो	आ	ना	गो	अं
४	४	३	४	०/१	४	४	४

अनंतरं सादिबंधाविगळगे लक्षणमं पेळ्दपर।

सादी अबंधबंधे सेढि अणारूढगे अणादी दु।
अब्भवसिद्धम्मि धुवो भवसिद्धे अद्धुवो बंधो ॥१२३॥

सादिरबंधबंधे श्रेण्यनारूढे अनादिस्तु। अभव्यसिद्धे ध्रुवो भव्यसिद्धेऽध्रुवो बंधः॥

सादिः सादिबंधमें बुदु। अबंधबंधे कट्टदिद्दुं कट्टिदल्लियक्कुमें तेंदोडे इवक्कुदाहरणं तोरल्पडुगुं। ज्ञानावरणीयपंचकमं सूक्ष्मसांपरायं तन्न गुणस्थानचरमसमयदोळकट्टि उपशांतकषायनागि

सादिः अनादिः ध्रुवः अध्रुवश्चेति प्रकृतिबन्धश्चतुर्धा। तत्र ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयनामगोत्रांतरायाणां प्रत्येकं चतुर्धा बन्धो भवति। वेदनीयं सादितः शेषत्रिविधो बन्धो भवति। सातापेक्षया तस्य गुणप्रतिपन्नेषु उपशमश्रेण्यारोहणावरोहणे च निरन्तरबन्धेन सादित्वासंभवात्। आयुः अनादिध्रुवाभ्यां शेषद्विविधबन्धो भवति एकवारादिना बन्धेन सादित्वात् अन्तर्मुहूर्तावसाने च अध्रुवत्वात् ॥१२२॥ अथ तान् बन्धान् लक्षयति—

सादिबन्धः अबन्धपतितस्य कर्मणः पुनर्बन्धे सति स्यात्, यथा ज्ञानावरणपञ्चकस्य उपशान्तकषायाद-

---

प्रकृतिबन्धके चार भेद हैं—सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इनमें-से प्रत्येकका बन्ध चार प्रकार है। वेदनीयकर्मका सादिबन्ध नहीं है, शेष तीन बन्ध होते हैं। क्योंकि ऊपरके गुणस्थानोंमें वर्तमान जीवोंके उपशम श्रेणि आदिपर चढ़ने और उतरनेपर सातकी अपेक्षा वेदनीयका निरन्तर बन्ध होता रहता है अतः वेदनीयका सादिबन्ध सम्भव नहीं है। आयुका अनादि और ध्रुवके बिना शेष दो बन्ध होते हैं क्योंकि आयु एक पर्यायमें एक बारसे आठ बार तक बँधती है अतः सादि है और आयुका बन्ध एक बारमें अन्तर्मुहूर्तकाल पर्यन्त ही होता है। अतः अध्रुव है ॥१२२॥

उन बन्धोंके लक्षण कहते हैं—

जिस कर्मका अबन्ध होकर बन्ध होता है उसके बन्धको सादि कहते हैं। जैसे ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त होता है अतः उपशान्त कषायमें

तद्गुणस्थानदोळंतरिसिद तत्प्रकृतिबंधमनवरोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि कट्टिदोडल्लि सादिबंधमक्कुमप्पुदरिंदं । श्रेण्यनारूढे यत्कर्म यस्मिन्गुणस्थाने व्युच्छिद्यते तदनंतरोपरितनगुणस्थानं श्रेणिः एंदिन्तु तत्सूक्ष्मसांपरायचरमसमयदल्लिंदं केळगे द्वितीयादि समयंगळोळ नादिबंधमेंबुदक्कुं । तु मत्ते । अभव्यसिद्धे ध्रुवः अभव्यजीवनोळु ध्रुवबंधमक्कुमेंतेंदोडादिमध्यावसानरहितमागि ज्ञानावरणादि निष्प्रतिपक्षकर्म्मंगळगे निरंतरबंधमुंटप्पुदरिंदं । भव्यसिद्धे भव्यजीवं गळोळु अध्रुवबंधमक्कुमेंतेंदोडे ज्ञानावरणादिकर्म्मंगळगे क्षपकश्रेण्यारोहणदोळमुपशमश्रेण्यारोहणदोळं सूक्ष्मसांपरायनोळु बंधव्युच्छित्तिगळागि मेलणुपशांतकषायादिगुणस्थानंगळोळु बंधरहितत्वमागुत्तं विरलु तद्ज्ञानावरणादिबंधक्कध्रुवत्वमक्कुमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळोळु ध्रुवप्रकृतिगळगे साद्यादिचतुर्व्विधबंधमुमनध्रुवप्रकृतिगळगे साद्यध्रुवद्विविधबंधमेयक्कुमेंबुवं पेळ्दपरु :—

घादितिमिच्छकसाया भयतेजगुरुदुगणिमिणवण्णचऊ ।
सत्तेतालधुवाणं चदुधा सेसाणयं तु दुधा ॥१२४॥

घातित्रयमिथ्यात्वकषायाः भयतेजोऽगुरुद्वि कनिर्म्माणवर्णचत्वारि । सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवाणां चतुर्धा शेषाणां तु द्विधा ॥

घातित्रय ज्ञानावरण पंचकमुं ५ दर्शनावरणनवकमुं ९ अंतरायपंचकमुं ५। मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। षोडशकषायंगळुं १६। भयजुगुप्साद्वयमु २ तैजसकार्म्मणशरीरद्वयमुं २ अगुरुलघूपघातद्वयमुं २

वतरतः सूक्ष्मसांपराये । यत्कर्म यस्मिन् गुणस्थाने व्युच्छिद्यते तदनन्तरोपरितनगुणस्थानं श्रेणिः तत्रानारूढे अनादिबन्धः स्यात्, यथा सूक्ष्मसांपरायचरमसमयादधस्तत्पञ्चकस्य । तु–पुनः अभव्यसिद्धे ध्रुवबन्धो भवति निष्प्रतिपक्षाणां बन्धस्य तत्रानाद्यनन्तत्वात् । भव्यसिद्धे अध्रुवबन्धो भवति । सूक्ष्मसांपराये बन्धस्य व्युच्छित्त्या तत्पञ्चकादीनामिव ॥१२३॥ अथोत्तरप्रकृतिष्वाह—

ज्ञानदर्शनावरणांतरायैकान्नविंशतिः[1], मिथ्यात्वं, षोडशकषायाः, भयजुगुप्से तैजसकार्मणे अगुरु-

---

जानेपर उनके बन्धका अभाव हो जाता है और उपशान्त कषायसे उतरकर जो सूक्ष्मसाम्परायमें आता है उसके पुनः उनका बन्ध होता है वह बन्ध सादि है। जिस कर्मकी जिस गुणस्थानमें व्युच्छित्ति होती है उसके अनन्तरवर्ती ऊपरका गुणस्थान श्रेणि कहाता है उसपर जो नहीं चढ़ा है उसका बन्ध अनादि है। जैसे सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयसे नीचे ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंका बन्ध अनादि है। अभव्य जीवके ध्रुवबन्ध होता है क्योंकि जो प्रकृतियाँ प्रतिपक्षी प्रकृतियोंसे रहित हैं उनका बन्ध अभव्यके अनादि अनन्त होता है। भव्यजीवके अध्रुव बन्ध होता है जैसे सूक्ष्म साम्परायमें ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है ॥१२३॥

उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी उन्नीस, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय,

---

१. ब °रायैका° ।

निम्माणनाममुं १ वर्णचतुष्कमुं ४ मेंदिन्तु ४७ ळु ध्रुव प्रकृतिगळ्गे साद्यनादि ध्रुवाध्रुवबंधचतुष्टयमुमक्कुं। शेषाणां शेषवेदनीयद्वयमुं २ मोहनीयसप्तकमु ७। आयुश्चतुष्टयमुं ४ नामदोळु गतिचतुष्टयमुं ४ जातिपंचकमुं ५ औदारिकद्वयमु २ वैक्रियिकद्वयमुं २ आहारकद्वयमुं २ संस्थानषट्कमुं ६ संहननषट्कमुं। आनुपूर्व्यचतुष्टयमुं ४। परघातमुं १ आतपमुं १ उद्योतमुं १ उच्छ्वासमुं १ विहायोगतिद्वयमुं २ त्रसद्वयमुं २ बादरद्वयमुं २ पर्य्याप्तद्वयमुं २ प्रत्येकसाधारणशरीरद्वयमुं २ स्थिरद्वयमुं २ शुभद्वयमुं २ सुभगद्वयमुं २ सुस्वरद्वयमुं २ आदेयद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तिद्वयमुं २ तीर्त्थमुमेंदिन्तु ५८ गोत्रद्वितयमु २ मिन्तु ७३ अध्रुवप्रकृतिगळ्गे साद्यध्रुवबंधद्वयमक्कुमी प्रकृतिगळोळु अप्रतिपक्षंगळेंदुं सप्रतिपक्षंगळेंदुं द्विप्रकारमप्पुवेंदु पेळ्दपरु :—

सेसे तित्थाहारं परघादचउक्क सव्व आऊणि।
अप्पडिवक्खा सेसा सप्पडिवक्खा हु बासट्ठा ॥१२५॥

शेषे तीर्त्थमाहारद्वयं परघातचतुष्क सर्व्वायूंष्यप्रतिपक्षाणि शेषाणि सप्रतिपक्षाणि खलु द्वाषष्टिः॥

ध्रुवप्रकृतिगळु ४७। कळेद शेषप्रकृतिगळु ७३। रवरोळु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं परघातचतुष्कमायुष्यचतुष्कमुमिन्तु ११ प्रकृतिगळु अप्रतिपक्षंगळप्पुवुळिद सातद्वयमुं २ स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रयमुं ३ हास्यद्विकमु २ मरतिद्विकमुं २ गतिचतुष्टयमुं ४ जातिपंचकमुं ५ औदारिकद्विकमुं २

लघूपघातौ निर्माणं वर्णचतुष्कं चेति सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवाणां चतुर्धा बन्धो भवति। शेषाणां वेदनीयद्वयमोहनीयसप्तकायुश्चतुष्कगतिचतुष्कजातिपञ्चकौदारिकद्वयवैक्रियिकद्वयाहारकद्वयसंस्थानषट्कसंहननषट्कानुपूर्व्यचतुष्क-परघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतिद्वयत्रसद्वयबादरद्वयपर्याप्तद्वयप्रत्येकद्वयस्थिरद्वय-शुभद्वयसुभगद्वयसुस्वरद्वया-देयद्वययशस्कीर्तिद्वयतीर्थंकरगोत्रद्वयानां त्रिसप्तत्यध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धौ भवतः ॥१२४॥ एतासु अप्रतिपक्षाः सप्रतिपक्षाश्चेति भिनत्ति—

ध्रुवेभ्यः शेषत्रिसप्तत्या तीर्थमाहारद्वयं परघातचतुष्कं आयुश्चतुकं चेत्येकादश अप्रतिपक्षा भवन्ति

जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णचतुष्क इन सैंतालीस ध्रुव प्रकृतियोंका चारों प्रकारका बन्ध होता है। शेष वेदनीय दो, मोहनीयकी सात, चार आयु, चार गति, पाँच जाति, औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा इनके अंगोपांग इस तरह दो-दो, छह संस्थान, छह संहनन, चार अनुपूर्वी, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, दो विहायोगति, त्रस स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, तीर्थंकर दो गोत्र इन तिहत्तर अध्रुव प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव बन्ध होता है ॥१२४॥

विशेषार्थ—जबतक व्युच्छित्ति नहीं होती तबतक ४७ प्रकृतियाँ प्रतिसमय बँधती हैं। इसीसे इन्हें ध्रुव कहा है। शेष ७३ का बन्ध कभी होता है कभी नहीं होता। अतः इन्हें अध्रुव कहा है।

आगे इनमें अप्रतिपक्ष और सप्रतिपक्ष भेद करते हैं—

ध्रुव प्रकृतियोंसे शेष तिहत्तर प्रकृतियोंमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, चार आयु, परघात

वैक्रियिकद्वयमुं २। संस्थानषट्कमुं ६ संहननषट्कमुं ६। विहायोगतिद्वयमुं २ त्रसद्वयमुं २ बादरद्वयमुं २ पर्य्याप्तद्वयमुं २ प्रत्येकशरीरद्वयमुं २ स्थिरद्वयमुं २ शुभद्वयमुं २ सुभगद्वयमुं २ सुस्वरद्वयमुं २। आदेयद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तिद्वयमुं २ गोत्रद्वयमुं २ आनुपूर्व्यचतुष्टयमुं ४ मिन्तु द्विषष्टि प्रकृतिगळु ६२ सप्रतिपक्षंगळप्पुवनंतरमी शेषाध्रुवप्रकृतिगळु ७३ वक्कं साद्यध्रुवबंधक्कुपपत्तियं तोरिवपरु :— ५

अवरो भिण्णमुहुत्तो तित्थाहाराण सव्वआऊणं ।
समओ छावट्ठीणं बंधो तम्हा दुधा सेसा ॥१२६॥

अवरो भिन्नमुहूर्तस्तीर्त्थाहाराणां सर्व्वायुषां समयः षट्षष्टीनां बंधस्तस्माद्द्विधा शेषा ॥

तीर्त्थंकरनामकर्म्मक्कमाहारद्वयक्कं सर्व्वायुष्यंगळ्गमिन्तु ७ प्रकृतिगळ्गे जघन्यदिंदं निरंतरबंधाद्धे अंतर्म्मुहूर्तकालमक्कुं २७। शेषषट्षष्टिप्रकृतिगळ्गे ६६ जघन्यदिंदं बंधकालमेकसमयमेयक्कुमदु कारणमागि ई शेष ७३ प्रकृतिगळ्ग ध्रुवंगळ्गे साद्यध्रुवबंधद्वितयं सिद्धमादुदु। यिंतु प्रकृतिबंधं समाप्तमादुदु। १० १५

शेषाः द्वाषष्टिः सप्रतिपक्षा भवन्ति। प्रकृतिप्रदेशबन्धनिबन्धनयोगस्थानानां चतसृभिः स्थित्यनुभागबन्धनिबन्धनतदध्यवसायानां षड्भिश्च वृद्धिहानिभिः परिवर्तनेन सातद्वयस्येव वेदत्रयादीनामपि परस्परं तथात्वसंभवात् ॥१२५॥ अध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धयोरुपपत्तिमाह—

तीर्थस्य आहारकद्वयस्य सर्वायुषां च जघन्येन निरन्तरबन्धकालोऽन्तर्मुहूर्तः २१। शेषषट्षष्टेश्च एक-

---

आदि चार ये ग्यारह प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षा हैं इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ नहीं हैं। शेष बासठ सप्रतिपक्षा हैं ॥१२५॥

विशेषार्थ—जो प्रकृतियाँ अप्रतिपक्षा होती हैं उन प्रकृतियोंका जिस समय बन्ध होता है उस समय उनका अपना ही बन्ध होता है और जब बन्ध नहीं होता तब नहीं होता। जैसे तीर्थंकर प्रकृति अप्रतिपक्षा है जिस समय इसका बन्ध होता है उस समय इसका बन्ध होता है, नहीं होता तो नहीं होता। इसके बदलेमें बँधनेवाली प्रकृति नहीं है। किन्तु जो प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षा हैं उनमें-से एक समयमें किसी एकका बन्ध होता है, जैसे साता-असातावेदनीय सप्रतिपक्षा हैं उनमें-से एक समयमें एकका बन्ध अवश्य होता है। मोहनीयमें रति-अरति प्रतिपक्षी हैं। हास्य-शोक प्रतिपक्षी हैं, तीनों वेद परस्पर प्रतिपक्षी हैं। इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। नामकर्ममें चार गति परस्पर प्रतिपक्षी हैं। पाँच जाति परस्पर प्रतिपक्षी हैं इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। दो गोत्रोंमें-से एकका ही बन्ध एक समयमें होता है।

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धका कारण योगस्थान है उनमें चतुःस्थानपतित वृद्धिहानिके द्वारा तथा स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्धके कारण अध्यवसाय स्थान हैं उनमें षट्स्थानपतित वृद्धिहानिके द्वारा परिवर्तन होता रहता है इसलिए साता-असाताकी तरह तीन वेद आदिमें भी परस्परमें प्रतिपक्षीपना होता है अतः उनमें-से भी कभी किसीका और कभी किसीका बन्ध होता है ॥१२५॥

अध्रुव प्रकृतियोंमें सादि और अध्रुवबन्ध ही क्यों होता है, यह बतलाते हैं—

तीर्थंकर, आहारक युगल और चारों आयुका निरन्तर बन्धकाल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त

सातादि सप्रतिपक्षंगळु तंतम्मोळु परस्परं प्रतिपक्षंगळेंदरिवुदेकेंदोडे प्रकृतिप्रवेशबंधनिबंधनयोग्यस्थानंगळगे चतुर्व्वृद्धिहानिगळिवमुं स्थित्यनुभागबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगमनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळगं षड्ढानिवष्वृद्धिगळिवं परावृत्तिवर्त्तनमुंटप्पुदरिंदं।

अनंतरं स्थितिबंधमं पेळलुपक्रमिसिमोदळोळु मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधमं पेळ्दपरु।

तीसं कोडाकोडी तिघादितदिएसु वीस णामदुगे।
सत्तरि मोहे सुद्धं उवही आउस्स तेतीसं ॥१२७॥

त्रिंशत्कोटीकोट्यस्त्रिघातित्रितयेषु विंशतिर्न्नामद्विके। सप्ततिर्म्मोहे शुद्धा उदधय आयुषस्त्रयस्त्रिंशत्॥

त्रिघातितृतीयेषु ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयमन्तरायं वेदनीयमुमेंबी नाल्कुं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुं। विंशतिर्न्नामद्विके नामगोत्रद्वयक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं विंशतिकोटीकोटिसागरोपममात्रमक्कुं। मोहनीयदोळु सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमुत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं। आयुष्यक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं शुद्धस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणमक्कुमिल्लि शुद्धविशेषणं कोटीकोटिव्यवच्छेदकमक्कुमप्पुदरिंद मुवत्तमूरे सागरोपमंगळेंबुदर्त्थं। ज्ञा। सा ३०। को २। द। सा ३०। को २। वे। सा ३०। को २। मो। सा ७०। को २। आयु। सा ३३। नाम। सा २०। को २। गोत्र सा २०। को २। अन्तरा। सा ३०। को २।

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळगे उत्कृष्टस्थितिबंधमं गाथाषट्कदिंदं पेळ्दपरु :—

दुक्खतिघादीणोघं सादित्थीमणुदुगे तदद्धं तु।
सत्तरि दंसणमोहे चरित्तमोहे य चत्तालं ॥१२८॥

दुःखत्रिघातीनामोघः सातः स्त्रीमानवद्विके तदर्द्धं तु। सप्ततिर्दर्शनमोहे चरित्रमोहे च चत्वारिंशत्॥

समयः, ततः कारणात् तासामध्रुवाणां साद्यध्रुवबन्धौ सिद्धौ ॥१२६॥ इति प्रकृतिबन्धः समाप्तः। अथ स्थितिबन्धमुपक्रमन्नादौ मूलप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिमाह—

उत्कृष्टः स्थितिबन्धः कोटीकोटिसागरोपमाणि ज्ञानदर्शनावरणांतरायवेदनीयेषु त्रिंशत्। नामगोत्रयोः विंशतिः। मोहनीये सप्ततिः। आयुषि शुद्धानि कोटीकोटिविशेषणरहितानि सागरोपमाण्येव त्रयस्त्रिंशत्। अत्र शुद्धविशेषणं कोटीकोटिव्यवच्छेदार्थम् ॥१२७॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथाषट्केनाह—

है। और शेष छियासठका निरन्तर बन्धकाल जघन्यसे एक समय है इस कारणसे उन तिहत्तर अध्रुव प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव बन्ध ही होता है यह सिद्ध हुआ ॥१२६॥

इस प्रकार प्रकृतिबन्ध समाप्त हुआ।

आगे स्थितिबन्धको प्रारम्भ करते हुए प्रथम मूल प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं—

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और वेदनीयका तीस कोडाकोडी सागर प्रमाण है। मोहनीयका सत्तर कोडाकोडि सागर प्रमाण है। आयुका शुद्ध अर्थात् कोडाकोडी विशेषणसे रहित तैंतीस सागर प्रमाण है। यहाँ शुद्ध विशेषण कोडाकोडीके व्यवच्छेदके लिए दिया है ॥१२७॥

आगे छह गाथाओंसे उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कहते हैं—

संठाणसंहदीणं चरिमस्सोघं दुहीणमादित्ति ।
अट्ठरसकोडकोडी वियलाणं सुहुमतिण्हं च ॥१२९॥

संस्थानसंहननानां चरमस्यौघः द्विहीनः आविपर्य्यन्तमष्टादशकोटीकोटयो विकलानां सूक्ष्मत्रयाणां च ॥

अरदीसोगे संढे तिरिक्खभयणिरयतेजुरालदुगे ।
वेगुव्वादावदुगे णीचे तसवण्णअगुरुतिघउक्के ॥१३०॥

अरतौ शोके षंढे तिर्य्यग्भयनरकतैजसौदारिकद्विके । वैक्रियिकातपद्विके नीचे त्रसवर्णागुरुत्रिचतुष्के ॥

इगिपंचिंदियथावरणिमिणासग्गमण अथिरछक्काणं ।
वीसं कोडाकोडीसागरणामाणमुक्कस्सं ॥१३१॥

एकपंचेंद्रियस्थावरनिर्म्माणसद्गमनास्थिरषट्कानां । विंशतिः कोटीकोटयः सागरनाम्नामुत्कृष्टः ॥

हस्सरदि उच्चपुरिसे थिरछक्के सत्थगमणदेवदुगे ।
तस्सद्धमंतकोडाकोडी आहारतित्थयरे ॥१३२॥

हास्यरत्युच्चपुरुषे स्थिरषट्के शस्तगमनदेवद्विके । तस्यार्द्धमन्तःकोटीकोटयः आहारतीर्त्थकरे ॥

सुरणिरयाऊणोघं णरतिरियाऊण तिण्णि पल्लाणि ।
उक्कस्सट्ठिदिबंधो सण्णीपज्जत्तगे जोग्गे ॥१३३॥

सुरनारकायुषोरोघो नरतिर्य्यगायुषोस्त्रीणि पल्यानि । उत्कृष्टस्थितिबंधः संज्ञीपर्य्याप्तके योग्ये । गाथाषट्कं ॥

दुःखत्रिघातीनामोघः असातवेदनीयं ज्ञानावरणीयपंचकं दर्शनावरणीयनवकमन्तरायपंचकमितु विंशति प्रकृतिगळगे ओघः मूलप्रकृतिगळोळ्पेळ्दे त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपममुत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं । प्रत्येकं बु १ धा १९ सातस्त्रीमानवद्विके सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यद्विकमेंबी नाल्कुं सा ३० को २

प्रकृतिगळगुत्कृष्टस्थितिबंधं तदर्द्धं पंचदशकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं सा १ स्त्री १ म २ सा १५ को २

सम्प्रतिदर्शनमोहे दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वप्रकृतिबंधदोळेकविधमप्पुर्दारिदमदक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं सम्प्रति

उत्कृष्टस्थितिबन्धः असातवेदनीयज्ञानदर्शनावरणान्तरायविंशतेः ओघः मूलप्रकृतिवत् त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमाणि । सातवेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यद्विकेषु तदर्धं पञ्चदशकोटीकोटिसागरोपमाणि । दर्शनमोहे मिथ्यात्वं

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध असातावेदनीय तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण अन्तरायकी उन्नीस इन बीस प्रकृतियोंका 'ओघ' अर्थात् मूल प्रकृतियोंके समान तीस कोडाकोडि सागर प्रमाण है। सातवेदनीय स्त्रीवेद और मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वीका उससे आधा अर्थात् पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। दर्शनमोहमें बन्ध एक मिथ्यात्वका ही होता है अतः उसका

सागरोपमकोटीकोटिप्रमाणमक्कुं व० मिथ्या १ चरित्रमोहे च चत्वारिंशत् चारित्रमोहनीयक्कु- सा ७० को २
त्कृष्टस्थितितिबंधं चत्वारिंशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितमक्कुं चारि० कषा १६ संस्थानसंह- सा ४० को २ ॥
ननानां संस्थानसंहननंगळोळगे चरमस्यौघः कडेय हुंडसंस्थानासंप्राप्तसृपाटिकासंहननमेंब प्रकृति-
द्वयक्कुत्कृष्टस्थितिबंधंमूलप्रकृतिगळोळपेळ्द ओघं विंशति कोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं—
५ हुं १ असं १ शेषसंस्थानसंहननंगळ्गे आदिपर्य्यंतं समचतुरस्रसंस्थानवज्रऋषभनाराचसंहनन- सा २० को २
पर्य्यन्तं द्विकद्विकंगलोळक्रमदिंदमुत्कृष्टस्थितिबंधं द्विहीनः द्विकोटीकोटिसागरोपमविहीनमप्पो-
घमक्कुं— वाम १ की १ कु १ अर्द्ध १ स्वाति १ नाराच १ न्य १ वज्र १ सम १ वज्र वृ १
सा १८ को २ सा १६ को १ सा १४ को १ सा १२ को २ सा १० को २
विकलानां सूक्ष्मत्रयाणां च विकलत्रयंगळ्गं सूक्ष्मत्रयंगळ्गमुत्कृष्टस्थितिबंधमष्टादशकोटीकोटि साग-
१० रोपम प्रमाणमक्कुं वि ३ सू ३ अरति शोक षंढवेद तिर्य्यग्द्विकभयद्विक नरकद्विक तैजसद्विक सा १८ को २
औदारिकद्विक वैक्रियिकद्विक आतपद्विक नीचैर्गोत्र त्रसचतुष्क—(वर्णचतुष्क अगुरुलघुचतुष्क)
एकेंद्रियजाति पंचेंद्रियजाति स्थावरनाम निर्माणनाम असद्गमननाम अस्थिर षट्कमुमेंबी ४१
प्रकृतिगळुत्कृष्टस्थितिबंधं विंशतिः कोटीकोटयः विंशतिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं प्रत्येकमक्कुं—
अरत्यादि ४१ हास्य रति उच्चैर्गोत्र पुरुषवेद स्थिरषट्क शस्तगमन देवद्विकमुमेंबी १३ प्रकृति- सा २ को २०

---

१५ बन्धे एकविधत्वात् तत्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि ७० । चारित्रमोहनीयषोडशकषायेषु चत्वारिंशत्कोटी-
कोटिसागरोपमाणि । संस्थानसंहनानां चरमसंस्थानसंहननस्य मूलप्रकृतिवद् विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि ।
शेषसंस्थानसंहननानां समचतुरस्रसंस्थानवज्रवृषभनाराचसंहननपर्यन्तं द्विद्विकोटीकोटिसागरोपमविहीन ओघः ।
विकलत्रयाणां चाष्टादशकोटीकोटिसागरोपमाणि । अरतिशोकषंढवेदतिर्यग्द्विकभयद्विकनरकद्विकतैजसद्विकौदा-
रिकद्विकवैक्रियिकद्विकातपद्विकनीचैर्गोत्रत्रसचतुष्कवर्णचतुष्कागुरुलघुचतुष्कैकेंद्रियपञ्चेन्द्रियस्थावरनिर्माणासद्गम -
२० नास्थिरषट्कानां विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि हास्यरत्युच्चैर्गोत्रपुंवेदस्थिरषट्कप्रशस्तगमनदेवद्विकानां

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। चारित्र मोहनीयकी सोलह कषायोंका चालीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। संस्थान और संहननोंमें-से अन्तिम संस्थान और अन्तिम संहननका मूलप्रकृति नामकर्मकी तरह बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। शेष संस्थान और संहननों-
२५ का समचतुरस्रसंस्थान और वज्रवृषभनाराच संहनन पर्यन्त दो-दो कोड़ाकोड़ी सागर घटता हुआ है अर्थात् वामन संस्थान और कीलित संहननका अठारह, कुब्ज संस्थान और अर्धनाराच संहननका सोलह, स्वातिसंस्थान और नाराच संहननका चौदह, न्यग्रोध-परिमण्डल संस्थान और वज्रनाराच संहननका बारह, तथा समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभ नाराच संहननका दस कोड़ाकोड़ी सागर है। विकलत्रयका अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। अरति, शोक, नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा,
३० नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तैजस, कार्मण, औदारिक, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात परघात उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति,

गळगुत्कृष्ट) स्थितिबंधं तस्यार्द्धं दशकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणमक्कुं हास्यादि १३ आहारकद्वय- सा १० को २
तीर्थमंबी प्रकृतित्रयक्कुत्कृष्टस्थितिबंधं प्रत्येकं अन्तःकोटीकोटयः अन्तःकोटीकोटिसागरोपम-
प्रमितमक्कुं आ २ ती १ सुरनारकायुष्यंगळगे स्थितिबंधोत्कृष्टं ओघः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपम- सा अन्तः को २
प्रमाणमक्कुं— सुरायु १ ना १ तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळगुत्कृष्टस्थितिबंधं त्रीणि पल्यानि त्रिपल्यो- सागरोपम ३३
पमप्रमाणमक्कुं— ति १ म १ इंतुत्तरप्रकृतिगळ १२० क्कं पेळ्दीयुत्कृष्टस्थितिबंधंगळु संज्ञिपंचें- ५
द्रियपर्य्याप्तकनोळप्पुवु । एकेंद्रियाद्यसंज्ञिपर्य्यंन्तमादुवक्के मुंदे पेळ्दपरु । तत्तत्प्रकृतिबंधयोग्यनोळें-
बिदरिंदमुत्कृष्टस्थितिबंधं संसारकारणमप्पुदरिंदमशुभमप्पुदरिंदं । शुभाशुभकर्म्मंगळगं चतुर्गतिय
संक्लिष्टजीवंगळिंदं कट्टल्पडुगुमेंबुदर्त्थं— असा १ घा १९ सा १ स्त्री १ म २ मि १ सा ३० को २ सा १५ को २ सा ७० को २
चारि १६ हु १ अ १ वा १ कि १ कु १ अर्द्ध १ स्वा १ ना १ न्य १ वज्र १
सा ४० को २ सा २० को २ सा १८ को २ सा १६ को २ सा १४ को २ सा १२ को २
सम १ वज्र १ वि ३ सू ३ अरत्यादि ४१ हास्यादि १३ आ २ ती १
सा १० को २ सा १८ को २ सा २० को २ सा १० को २ सा. अन्तः को २
सु १ ना १ तिर्य १ मनु १ अन्तु प्रकृति १२० ॥
सा ३३ पल्या ३

अनंतरमी पेळ्द शुभाशुभप्रकृतिगळगुत्कृष्टस्थितिबंधक्के संक्लेशपरिणाममे कारणं । तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुस्त्रयमं कळेदेंदु पेळ्दपरु :— १०

तस्यार्धं—दशकोटीकोटिसागरोपमाणि । आहारकद्वयतीर्थकृतोरन्तःकोटीकोटिसागरोपमाणि । सुरनरकायुषोः ओघः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । तिर्यग्मनुष्यायुषोः त्रीणि पल्यानि । अयमुत्कृष्टस्थितिबन्धः संज्ञिपर्याप्तस्यैव असंज्ञ्यंतानामग्रे प्ररूपणात् । योग्ये इत्यनेन अयं संसारकारणत्वात् अशुभत्वात् शुभाशुभकर्मणां चातुर्गतिक-संक्लिष्टैरेव बध्यते इत्यर्थः ॥१२८–१३३॥ आयुस्त्रयवर्जितशुभाशुभप्रकृतीनामुत्कृष्टस्थितिकारणं संक्लेश एवेत्याह— १५

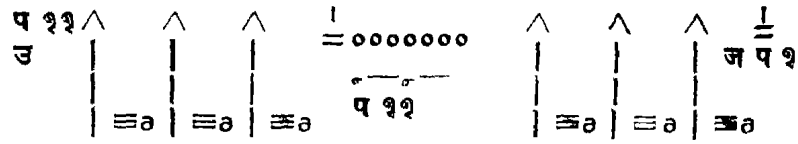
अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति इनका बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। हास्य, रति, उच्चगोत्र, पुरुषवेद, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, प्रशस्त-विहायोगति, देवगति, देवगत्यानुपूर्वीका उससे आधा अर्थात् दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। आहारकद्विक और तीर्थंकरका अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। देवायु नरकायुका ओघ अर्थात् तेतीस सागर प्रमाण है। तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका तीन पल्य है। यह उत्कृष्ट २० स्थितिबन्ध संज्ञी पर्याप्तकके ही होता है। एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्तका आगे कहा है। 'योग्य' शब्दसे बतलाया है कि यह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संसारका कारण और अशुभ है। अतः शुभ और अशुभ कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चारों गतियोंके संक्लेशपरिणामी जीवोंके द्वारा ही बाँधा जाता है ॥१२८–१३३॥

आगे कहते हैं कि तीन आयुको छोड़कर अन्य शुभ अशुभ सभी प्रकृतियोंके उत्कृष्ट २५ स्थितिबन्धका कारण संक्लेश ही है—

सव्वट्ठिदीणमुक्कस्सओ दु उक्कस्ससंकिलेस्सेण ।
विवरीदेण जहण्णो आउगतियवज्जियाणं तु ॥१३४॥

सर्व्वस्थितीनामुत्कृष्टस्तूत्कृष्टसंक्लेशेन विपरीतेन जघन्यः आयुस्त्रयवर्ज्जितानां तु ॥

तु मत्ते यी पेळ्द आयुस्त्रयवर्ज्जितानां तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्व्वर्ज्जितंगळप्प सर्व्वप्रकृतिगळ स्थित्युत्कृष्टंगळु उत्कृष्टसंक्लेशदिंदं बंधंगळप्पुवु । तु मत्ते विपरीतेन उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामंगळिंदं जघन्यस्थितिबंधंगळप्पुवु । तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळगे उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामदिंदं उत्कृष्टस्थितिबंधंगळप्पुवु । तद्विपरीतपरिणामदिंद जघन्यस्थितिबंधंगळप्पुवु—



अनंतरमुत्कृष्टस्थितिबंधकर्के स्वामिगळं पेळ्दपरु :—

सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठी दु बंधगो भणिदो ।
आहारं तित्थयरं देवाउं चावि मोत्तूण ॥१३५॥

सर्व्वोत्कृष्टस्थितीनां मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः । आहारं तीर्त्थकरं देवायुश्चापि मुक्त्वा ॥

आहारद्विकमं तीर्त्थकरनाममुं देवायुष्यमुमं कळेदुळिद ११६ रुं प्रकृतिगळ सर्व्वोत्कृष्टस्थितिगळगे तु मत्ते मिथ्यादृष्टिस्तु बंधको भणितः मिथ्यादृष्टिजीवने बंधकनेंदु अनादिनिधनार्षदोळु पेळल्पट्टनु । देवायुराहारद्विकतीर्त्थमेंबी ४ प्रकृतिगळगे सम्यग्दृष्टिबंधकनेंदु पेळल्पट्टं ॥

अनंतरं देवायुरादि ४ प्रकृतिगळगे बंधकरं पेळ्दपरु :—

तु—पुनः तिर्यग्मनुष्यदेवायुर्वर्जितसर्वप्रकृतिस्थितीना उत्कृष्ट उत्कृष्टसंक्लेशेन भवति । तु—पुनः तासां जघन्यं उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन भवति । तत्त्रयस्य तु उत्कृष्टं उत्कृष्टविशुद्धपरिणामेन जघन्यं तद्विपरीतेन भवति ॥१३४॥ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमाह—

आहारकद्विकं तीर्थं देवायुश्चेति चत्वारि मुक्त्वा शेष ११६ प्रकृतिसर्वोत्कृष्टस्थितीनां मिथ्यादृष्टिरेव बन्धको भणितः तच्चतुर्णां तु सम्यग्दृष्टिरेव ॥१३५॥ तत्रापि विशेषमाह—

तिर्यञ्चायु मनुष्यायु देवायुको छोड़कर सब प्रकृतियोंकी स्थितिका उत्कृष्टबन्ध उत्कृष्ट संक्लेशसे होता है । तथा उनका जघन्यबन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामसे होता है । तीनों आयुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामसे और जघन्यबन्ध उससे विपरीत परिणामोंसे होता है ॥१३४॥

उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसके होता है, यह कहते हैं—

आहारकद्विक, तीर्थंकर और देवायु इन चारको छोड़कर शेष एक सौ सोलह प्रकृतियोंकी सर्वोत्कृष्ट स्थितियोंका बन्धक मिथ्यादृष्टिको ही कहा है । किन्तु इन चारका बन्धक सम्यग्दृष्टि ही है ॥१३५॥

उसमें भी विशेष कहते हैं—

---

१. °बन्धमाह ।

देवाउगं पमत्तो अहारयमप्पमत्तविरदो दु ।
तित्थयरं च मणुस्सो अविरदसम्मो समज्जेइ ॥१३६॥

देवायुः प्रमत्तः आहारकमप्रमत्तविरतस्तु । तीर्थंकरं च मनुष्योऽविरतसम्यग्दृष्टिः समर्जयति ॥

देवायुष्योत्कृष्टस्थितिबंधमं प्रमत्तसंयतं माळ्पनेकें दोडे देवायुष्यमप्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छित्तियक्कुमप्पोडमल्लियुत्कृष्टस्थितिबंधमागदेकें दोडे—तीव्रविशुद्धनप्प सातिशयाप्रमत्तंगायुर्ब्बंधयोग्यपरिणामं संभविसदु । निरतिशयाप्रमत्तनोळुमुत्कृष्टायुस्थितिबंधं संभविसदवु कारणदिं प्रमत्तसंयतने देवायुष्योत्कृष्टस्थितिबंधमनप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखं विशुद्धं माळ्पनप्पुदरिदं । आहारकद्वयोत्कृष्टस्थितिबंधमं तु मत्ते प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखनप्प संक्लिष्टाप्रमत्तं माळ्कुमेकें दोडायुस्त्रितयवर्ज्जित सर्व्वकर्म्मंगळगुत्कृष्टस्थितिबंधमुत्कृष्टसंक्लेशपरिणामदिंदमेयक्कुमप्पुदरिदं । तीर्थंकरनामकर्म्मक्कुत्कृष्टस्थितिबंधमं नरकगतिगमनाभिमुखनप्प मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टियें माळ्कुं ॥

अनंतरमा ११६ प्रकृतिगळगुत्कृष्टस्थितितिबंधमं माळ्प मिथ्यादृष्टिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

णरतिरिया सेसाउं वेगुव्वियछक्कवियलसुहुमतियं ।
सुरणिरया ओरालियतिरियदुगुज्जोवसंपत्तं ॥१३७॥
देवा पुण एइंदिय आदावं थावरं च सेसाणं ।
उक्कस्ससंकिलिट्ठा चदुगदिया ईसिमज्झिमया ॥१३८॥ गाथाद्वयं

नरतिर्य्यञ्च शेषायुर्व्वैक्रियिकषट्कविकल सूक्ष्मत्रयं । सुरनारकाः औदारिकतिर्य्यग्द्विकोद्योताऽसंप्राप्तं ॥

देवायुः उत्कृष्टस्थितिकं प्रमत्त एवाप्रमत्तगुणस्थानाभिमुखो बध्नाति । अप्रमत्ते तद्व्युच्छित्तावपि तत्र सातिशये तीव्रविशुद्धत्वेन तदबन्धात्, निरतिशये च तदुत्कृष्टासंभवात् । तु—पुनः आहारकद्वयं उत्कृष्टस्थितिकं अप्रमत्तः प्रमत्तगुणस्थानाभिमुखः संक्लिष्ट एव बध्नाति आयुस्त्रयवर्जितानां उत्कृष्टस्थितेः उत्कृष्टसंक्लेशेन इत्युक्तत्वात् । तीर्थंकरं उत्कृष्टस्थितिकं नरकगतिगमनाभिमुखमनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिरेव बध्नाति ॥१३६॥ शेषाणां ११६ उत्कृष्टस्थितिबन्धकमिथ्यादृष्टीन् गाथाद्वयेनाह—

देवायुकी उत्कृष्टस्थिति अप्रमत्तगुणस्थानके अभिमुख प्रमत्तसंयत मुनि ही बाँधता है। यद्यपि देवायुके बन्धकी व्युच्छित्ति अप्रमत्तमें ही होती है तथापि सातिशय अप्रमत्तके तो तीव्रविशुद्ध परिणाम होनेसे देवायुका बन्ध ही नहीं है और निरतिशय अप्रमत्तके बन्ध तो होता है किन्तु उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। आहारकद्वयकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमत्त गुणस्थानके अभिमुख संक्लेश परिणामी, अप्रमत्त ही बाँधता है; क्योंकि तीन आयुको छोड़ शेष कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट संक्लेशसे बँधती है ऐसा कहा है। तीर्थंकरकी उत्कृष्ट स्थिति नरकगतिमें जानेके अभिमुख असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही बाँधता है क्योंकि तीर्थंकरका बन्ध करनेवाले जीवोंमें उसीके तीव्र संक्लेश होता है ॥१३६॥

शेष एक सौ सोलह प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक मिथ्यादृष्टियोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

देवाः पुनरेकेंद्रियमातपं स्थावरं च शेषाणामुत्कृष्टसंक्लिष्टाश्चातुर्गतिकाः ईषन्मध्यमकाः ॥

नरतिर्य्यग्गतिद्वयमिथ्यादृष्टिगळु शेषनरतिर्य्यग्मनुष्यायुस्त्रितयक्कं वैक्रियिकषट्कक्कं विकलत्रयक्कं सूक्ष्मत्रयक्कमुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळ्परु। सुरनारकाः देवनारकमिथ्यादृष्टिगळु औदारिकद्वयक्कं तिर्य्यग्द्वयक्कं उद्योतनामक्कमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननक्कमुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळ्परु। पुनर्देवाः मत्ते देवगतिय मिथ्यादृष्टिगळे एकेंद्रियजातिनाममनातपनाममं स्थावरनाममुमनुत्कृष्टस्थितिकंगळप्पुवन्तु बंधमं माळ्परु। शेषाणां ई कंठोक्तमागि पेळल्पट्ट २४ प्रकृतिगळं कळेदु शेष ९२ प्रकृतिगळुत्कृष्टसंक्लिष्टरुगळुमीषन्मध्यमकरुगळप्प चातुर्गतिकमिथ्यादृष्टिगळुत्कृष्टस्थितिबंधमं माळ्परु।

	उत्कृष्ट २८						
देवाः	एके०	आ०	स्था०				
सुरनारकाः	मि०	ए०	वि०	ति०	आ०		
नरतिर्य्यं	वै०	आ०	नरक	ति०	उ०	सू०	
म	म	४					
मि	अ	२५					

प १९	२२२	५४	५५	५६	५७	≡ ०
प १९ ०	२१८	५३	५४	५५	५६	≡ ०
२	२१४	५२	५३	५४	५५	≡ ०
प १९	२१०	५१	५२	५३	५४	≡ ०
०	२०६	५०	५१	५२	५३	≡ ०
०	२०२	४९	५०	५१	५२	≡ ०
०	१९८	४८	४९	५०	५१	≡ ०
प १९	१९४	४७	४८	४९	५०	≡ ०
०	१९०	४६	४७	४८	४९	≡ ०
०	१८६	४५	४६	४७	४८	≡ ०
२ ०	१८२	४४	४५	४६	४७	≡ ०
प १	१७८	४३	४४	४५	४६	≡ ०
प १	१७४	४२	४३	४४	४५	≡ ०
प १	१७०	४१	४२	४३	४४	≡ ०
प १	१६६	४०	४१	४२	४३	≡ ०
प १	१६२	३९	४०	४१	४२	≡ ०
स्थिति	≡ ०	ज ई सि	मज्झिमम		उ	

इल्लि उत्कृष्टेषन्मध्यमसंक्लेशपरिणामंगळगुपपत्तियं पेळ्दपरु :—

नरकतिर्यग्मनुष्यायूंषि वैक्रियिकषट्कं विकलत्रयं सूक्ष्मत्रयं चोत्कृष्टस्थितिकानि नराः तिर्यंचश्च बध्नन्ति औदारिकद्वयं तिर्यग्द्वयोद्योतासंप्राप्तसृपाटिकसंहननानि सुरनारका एव। एकेन्द्रियातपस्थावराणि पुनः देवाः। शेषद्वानवति उत्कृष्टसंक्लिष्टा ईषन्मध्यमसंक्लिष्टाश्च चातुर्गतिकाः। अत्रोत्कृष्टेषन्मध्यमसंक्लेशपरिणामोपपत्तिमाह—

नरकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु, वैक्रियिकषट्क, विकलत्रय, सूक्ष्म आदि तीनकी उत्कृष्ट स्थिति मनुष्य और तिर्यंच बाँधते हैं। औदारिकद्विक, तिर्यञ्चद्विक, उद्योत, असंप्राप्तसृपाटिका संहननकी उत्कृष्ट स्थिति देव और नारकी ही बाँधते है। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावरकी उत्कृष्टस्थिति देव बाँधते हैं। शेष बानबे प्रकृतिकी उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट संक्लेशवाले या ईषत् मध्यम संक्लेशवाले चारों गतिके जीव बाँधते हैं। यहाँ उत्कृष्ट ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामोंकी उपपत्ति कहते हैं।

उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स उत्कृष्टसंक्लिष्टनप्प मिथ्यादृष्टिगं ईसिमज्झिमपरिणामस्स वा ईषन्मध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिगं मेणु उक्कस्सट्ठिदिबंधो होदि उत्कृष्टस्थितिबंधमक्कुं। उक्कस्स ट्ठिदिबंधपाओग्ग असंखेज्जलोगपरिणामाणं उत्कृष्टस्थितिबंधप्रायोग्यासंख्येयलोकपरिणामंगळ्गे पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तखंडाणि कादूण पलितोपमासंख्येयभागमात्रखंडंगळं माडि तत्थ आ खंडंगळोळु चरिमखंडस्स चरमखंडक्के उक्कस्ससंकिळेसो णाम उत्कृष्टसंक्लेशव्यपदेशमक्कुं। प्रथमखंडस्स प्रथमखंडक्के ईसिसंकिळेसो णाम ईषत्संक्लेशव्यपदेशमक्कुं। दोण्हं विच्चाळखंडाणं तद्द्वयान्तरालखंडगळ्गे मज्झिमसंकिळेसो णामेत्ति उच्चदि मध्यमसंक्लेशमेंब व्यपदेशमक्कुमेंदिन्तु पेळल्पट्टुदु। एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं ई प्रकारदिंदमे शेषसर्व्वस्थितिविकल्पंगळोळु वक्तव्यमक्कुं। एत्थ सव्वपयडीसु इल्लि सर्व्वप्रकृतिगळोळु सगसगठिदिवियप्पो स्वस्वस्थिति-विकल्पं उड्ढगच्छो होदि ऊर्द्धगच्छमक्कुं। तिरियगच्छो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि तिर्य्यग्गच्छमुं पलितोपमाऽसं(ख्येयभागमक्कुं) गुणहाणि आयामो गुणहान्यायाममुं पलिदोवमस्सा-संखेज्जदिभागो होदि पलितोपमासंख्येयभागमक्कुं। णाणागुणहाणिसळागाओ नानागुणहानिशलाके-गळ्मं पल्लछेदासंखेज्जदिभागे होदि पल्यच्छेदासंख्येयभागमक्कुं। अण्णोण्णब्भरासि अन्योन्याभ्यस्त-राशियुं पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागो होदि पलितोपमासंख्येयभागमक्कुं। एत्थ अत्र अणुकड्ढिर-यणाविहाणं अधापवत्तकरणंव वत्तव्वं इल्लि अनुकृष्टिरचनाविधानमधःप्रवृत्तिकरणवद्वक्तव्य-मक्कुं। अदेंतेंदोडे—धनं ३०७२। पद १६। कदि १६। १६। संखेण ३ भाजिदे ३०७२। २५६। ३

उक्कस्ससंकिलिट्ठस्स–उत्कृष्टसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टेः, ईसिमज्जिमपरिणामस्स–वा ईषन्मध्यमपरिणाम-मिथ्यादृष्टेर्वा, उक्कस्सट्ठिदिबन्धो होदि—उत्कृष्टस्थितिबन्धो भवति उक्कस्सट्ठिदिबंधपाउग्गअसंखेज्जलोग-परिमाणं—उत्कृष्टस्थितिबन्धप्रायोग्यासंख्येयलोकपरिणामानां, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखण्डाणि कादूण पलितोपमासंख्येयभागमात्रखण्डानि कृत्वा, तस्य–तेषु खण्डेषु, चरमखण्डस्स–चरमखण्डस्य, उक्कस्ससंकिलेसो णाम–उत्कृष्टसंक्लेशव्यपदेशो भवति। पढमखण्डस्स–प्रथमखण्डस्य, ईसिसंकिलेसो णाम–ईषत्संक्लेशव्यपदेशो भवति। दोण्हं, विच्चालखण्डाणं–द्वयोरंतरालखण्डानां मज्झिमसंकिलेसो णामेत्ति उच्चदि–मध्यमसंक्लेश-व्यपदेश इत्युच्यते। एवं सेससव्वट्ठिदिवियप्पेसु वत्तव्वं—एवं शेषसर्वस्थितिविकल्पेषु वक्तव्यं। एत्थ सव्वपयडीसु–अत्र सर्वप्रकृतिषु, सगसगट्ठिदिवियप्पो-स्वस्वस्थितिविकल्पः, उड्ढगच्छो होदि ऊर्ध्वगच्छो भवति। तिरियगच्छो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होदि—तिर्यग्गच्छः पलितोपमासंख्येयभागो भवति। गुणहाणि आयामो गुणहान्यायामः पलितोपमस्सासंखेज्जदिभागो होदि–पलितोपमासंख्येयभागो भवति। एत्थ अणुकट्ठिरयणाविहाणं अधापवत्तकरणं व वत्तव्वं–अत्रानुकृष्टिरचनाविधानं अधःप्रवृत्तकरणवद्वक्तव्यं। तद्यथा—

उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके अथवा ईषत् मध्यम परिणाम वाले मिथ्यादृष्टिके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। उत्कृष्टस्थितिबन्धके प्रायोग्य असंख्यात लोक परिणामोंके पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र खण्ड करके उन खण्डोंमें चरमखण्डका नाम उत्कृष्ट संक्लेश है और प्रथमखण्डको ईषत्संक्लेश नामसे कहते हैं। दोनोंके बीचके खण्डोंको मध्यमसंक्लेश कहते हैं। इसी प्रकार शेष सब स्थितिके विकल्पोंमें जानना। यहाँ सब प्रकृतियोंमें अपनी-अपनी स्थितिके विकल्प ऊर्ध्वगच्छ है और तिर्यग्गच्छ पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। गुणहानि आयाम पल्योपमके असंख्यातवें भाग है। यहाँ अनुकृष्टि रचनाका विधान अधःप्रवृत्तकरणकी तरह कहना चाहिए जो इस प्रकार है—

पचयं ४। व्येकपद १६। अर्द्ध १५ घनचय १५ ४। गुणो गच्छ १५ ४। १६। उत्तरधनं
२ २ २

४८०। चय धनहीनं द्रव्यं २५९२। पदभजिदे। प्र १६ फ २५९२। इ १। लब्ध मादि धनं भवति

अङ्कसंदृष्टौ स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि द्वासप्तत्यधिकत्रिसहस्री ३०७२ स्थितिविकल्पाः षोडश १६ पदकृत्या २५६ संख्यातेन च ३ सर्वधने भक्ते ३०७२ चयो भवति ४। व्येकपदार्धं १५ घनचयः १५। ४
२५६। ३ २ २

गुणो गच्छः १५। ४। १६। ४८० चयधनं भवति। अनेन सर्वधनं ३०७२ ऊनयित्वा २५९२ पदेन १६
२

भक्तं सत् जघन्यस्थितिकारणपरिणामसंख्या भवति १६२। अत्रैकचये ४ वृद्धे सति एकैकसमयाधिकद्वितीयादिस्थितिकारणपरिणामप्रमाणानि भवन्ति। पुनः अनुकृष्टिपदेन ४ ऊर्ध्वचये ४ भक्ते तिर्यक्चयो भवति १। व्येकपदार्थ ३ घनचयः ३। १ गुणो गच्छः ३। १। ४ चयधनं ६ भवति। अनेन जघन्यस्थितिकारणपरिणाम-
२ २ २

प्रमाणं १६२ हीनं कृत्वा अनुत्कृष्टिगच्छेन भक्तं सत् प्रथमखण्डप्रमाणं स्यात् ३९। अत्रैकैकतिर्यक्चये वृद्धे द्वितीयादिखण्डानि स्युः ४०। ४१। ४२। एवं शेषद्वितीयादिचरमपर्यन्तस्थितिपरिणामा अपि तिर्यग्रच-

---

जैसे जीवकाण्डमें गुणस्थानोंका कथन करते हुए सातिशय अप्रमत्तके अधःप्रवृत्तकरणका स्वरूप कहा है वैसे ही यहाँ अंकसंदृष्टिके कथन द्वारा जानना। जैसे वहाँ अंकसंदृष्टिमें सर्वधनका प्रमाण तीन हजार बहत्तर ३०७२ है वैसे ही यहाँ सर्व स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण ३०७२ जानना। जैसे वहाँ ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण सोलह कहा, वैसे ही यहाँ विवक्षित कर्मकी जघन्य स्थितिसे लेकर एक-एक समय अधिक उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त जितने स्थितिके भेद हों उतना ऊर्ध्वगच्छ जानना। जैसे गच्छ १६ का वर्ग दो सौ छप्पन और संख्यात तीनका भाग सर्वधन ३०७२ में देनेपर चार पाये सो चयका प्रमाण चार है, वैसे ही यहाँ जो ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण कहा, उसका वर्ग करके संख्यातसे गुणा करें और उसका भाग सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना चय जानना। ऊर्ध्व रचनामें इतनी-इतनी वृद्धि जानना। जैसे एक कम गच्छ पन्द्रहका आधा करके उसे चयके प्रमाण चारसे गुणा करनेपर तीस होता है। उसे गच्छ सोलहसे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी होता है। वही चय धनका प्रमाण है। उसे सर्वधन तीन हजार बहत्तरमें-से घटानेपर दो हजार पाँच सौ बानवे २५९२ शेष रहे। उसे गच्छ सोलहसे भाग देनेपर एक सौ बासठ पाये, सो प्रथम स्थान जानना। उसी प्रकार यहाँ जो गच्छका प्रमाण कहा उसमें एक कम करके तथा उसका आधा करके उसे चयसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसे गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना चयधन जानना। इस चयधनको सर्वधनमें-से घटाकर जो प्रमाण रहे उसमें गच्छके प्रमाणसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने अध्यवसाय स्थान जघन्य स्थितिबन्धके कारण हैं। तथा जैसे आदि स्थान एक सौ बासठमें एक चय चार मिलानेपर दूसरा स्थान एक सौ छियासठ होता है, वैसे ही यहाँ जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका जो प्रमाण कहा उसमें पूर्वोक्त चयका प्रमाण मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने अध्यवसायस्थान जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके बन्धके कारण होते हैं। उसमें एक चय मिलानेपर जघन्यसे दो समय अधिक तीसरी स्थितिके बन्धके कारण अध्यवसाय स्थान

१६२। आविम्मि च य उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं। १६६। १७०। १७४। इत्यादि विधानमं जीवकांडदोळे तनुकृष्टिविधानमंते अर्थसंदृष्टियोळमरियल्पडुगुं॥

यितव्याः। एवमर्थसंदृष्टावपि रचनां कृत्वा अधःप्रवृत्तकरणवदुपरितनस्थितिपरिणामखण्डानां अधस्तनस्थिति-परिणामखण्डैः सह संख्यया संक्लेशविशुद्धिभ्यां च सादृश्यादिकं वक्तव्यमित्यर्थः॥ १३७-१३८॥

जानने। इस प्रकार उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त एक-एक चय बढ़ाना चाहिए। जैसे अंक संदृष्टिमें १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८, २२२ है वैसे ही जानना। तथा जैसे अंकसंदृष्टिमें तिर्यक् गच्छका प्रमाण चार है वैसे ही यहाँ तिर्यक्गच्छका प्रमाण पल्यका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण जानना। इस तिर्यक्गच्छको अनुकृष्टिगच्छ भी कहते हैं। सो जैसे अनुकृष्टिगच्छ चारका भाग ऊर्ध्वरचनामें चयके प्रमाण चारमें देनेपर एक आता है। वह एक अनुकृष्टिमें चय जानना। वैसे ही यहाँ अनुकृष्टि गच्छका प्रमाण पल्यका असंख्यातवाँ भाग कहा। उसका भाग पूर्वोक्त चयके प्रमाणमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना अनुकृष्टिका चय जानना। तथा जैसे अनुकृष्टिके गच्छ चारमें-से एक कम करके उसका आधा करके उसे चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर छह होते हैं वही अनुकृष्टिका चयधन होता है। उसको अनुकृष्टिके सर्वधन १६२ में-से घटानेपर एक सौ छप्पन १५६ रहे। उसमें अनुकृष्टिके गच्छ चारसे भाग देनेपर उनतालीस ३९ आते हैं वही प्रथम स्थानका प्रथम खण्ड है। वैसे ही यहाँ अनुकृष्टि गच्छमें-से एक घटाकर उसका आधा करके उसे अनुकृष्टि गच्छके चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अनुकृष्टिका चयधन जानना। उसे जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंके प्रमाणमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका प्रथम खण्ड जानना। इनकी

१.

२२२	५४	५५	५६	५७	≡a
२१८	५३	५४	५५	५६	≡a
२१४	५२	५३	५४	५५	≡a
२१०	५१	५२	५३	५४	०
२०६	५०	५१	५२	५३	०
२०२	४९	५०	५१	५२	०
१९८	४८	४९	५०	५१	०
१९४	४७	४८	४९	५०	०
१९०	४६	४७	४८	४९	a
१८६	४५	४६	४७	४८	०
१८२	४४	४५	४६	४७	०
१७८	४३	४४	४५	४६	०
१७४	४२	४३	४४	४५	०
१७०	४१	४२	४३	४४	≡a
१६६	४०	४१	४२	४३	≡a
१६२	३९	४०	४१	४२	≡a

अनंतरं मूलप्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिबंधमं पेळ्दपरु :—

बारस य वेयणीये णामागोदे य अट्ठ य मुहुत्ता ।
भिण्णमुहुत्तं तु ठिदी जहण्णयं सेसपंचण्हं ॥१३९॥

द्वादश वेदनीये नामगोत्रे चाष्टौ मुहूर्त्ताः । भिन्नमुहूर्त्ता तु स्थितिर्ज्जघन्या शेषपंचानां ॥

वेदनीयदोळु जघन्यस्थितिबंधं द्वादशमुहूर्त्तंगळप्पुवु । नामगोत्रं गळोळु प्रत्येकमष्टमुहूर्त्तंगळु जघन्यस्थितिबंधमक्कुं । शेषपंचमूलप्रकृतिगळगे तु मत्ते जघन्यस्थितिबंधमन्तर्म्मुहूर्त्तमात्रं प्रत्येकमक्कुं । ज्ञा २१ । द २१ । वे । मु १२ । मो २१ आ २१ नाम मु ८ । गोत्र मु ८ । अं २१ ॥

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळगे गाथाचतुष्टयदिंदं जघन्यस्थितिबंधमं पेळ्दपरु :—

लोहस्स सुहुमसत्तरसाणं ओघं दुगेक्कदलमासं ।
कोहतिये पुरिसस्स य अट्ठ य वस्सा जहण्णठिदी ॥१४०॥

लोभस्य सूक्ष्मसप्तदशानामोघः द्व्येक दळमासः । क्रोधत्रये पुरुषस्य चाष्ट वर्षाणि जघन्यस्थितिः ॥

अथ मूलप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धानाह—

जघन्यस्थितिबन्धो वेदनीये द्वादश मुहूर्ताः, नामगोत्रयोरष्टौ, शेषपञ्चानां तु पुनः एकैकोऽन्तर्मुहूर्तः ॥१३९॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथाचतुष्टयेनाह—

संज्ञा ईषत् है । तथा जैसे उनतालीसमें अनुकृष्टिका एक चय मिलानेपर चालीस होता है । यह दूसरा खण्ड है, उसमें एक चय मिलानेपर तीसरा खण्ड होता है इकतालीस, वैसे ही प्रथम खण्डमें अनुकृष्टिका चय मिलानेपर दूसरा खण्ड होता है । उसमें एक चय मिलानेपर तीसरा खण्ड होता है । इस प्रकार एक कम अन्तिम खण्ड पर्यन्त जितने खण्ड हों उनकी मध्यम संज्ञा है । तथा जैसे अन्तिम खण्ड बयालीस है वैसे ही यहाँ एक-एक चय मिलानेपर अन्तिम खण्डका जो प्रमाण हो उसकी उत्कृष्ट संज्ञा है । इस प्रकार जघन्य स्थिति सम्बन्धी परिणामोंके खण्ड कहे । तथा जैसे दूसरा स्थान एक सौ छियासठ है उसके चार खण्डोंमें ४०, ४१, ४२, ४३ प्रमाण कहा है । वैसे ही यहाँ भी जघन्यसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके कारण अध्यवसाय स्थानोंके खण्डोंका प्रमाण पूर्वोक्त विधानके अनुसार जानना । जैसे अन्तके स्थानमें दो सौ बाईस प्रमाण होता है और उसके खण्डोंका चौवन, पचपन, छप्पन, सत्तावन, ५४, ५५, ५६, ५७ प्रमाण होता है । उसी प्रकार यहाँ एक एक ऊर्ध्वचय बढ़ाते-बढ़ाते उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंका जो प्रमाण होता है, उसके पूर्वोक्त विधानसे खण्ड करनेपर प्रथम खण्डकी ईषत् संक्लेश संज्ञा है । मध्यके खण्डोंकी मध्य संक्लेश संज्ञा है और अन्तके खण्डकी उत्कृष्ट संक्लेश संज्ञा है । अधःकरणकी तरह यहाँ भी नीचेकी स्थितिके कारण अध्यवसाय और उनके ऊपरकी स्थितिके कारण अध्यवसायोंमें संख्या, संक्लेश और विशुद्धिसे समानपना जानना । इसीका नाम अनुकृष्टि है ॥१३७-१३८॥

मूल प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध कहते हैं—

जघन्य स्थितिबन्ध वेदनीयमें बारह मुहूर्त है, नाम और गोत्रमें आठ मुहूर्त है । शेष पाँच कर्मोंमें एक-एक अन्तर्मुहूर्त है ॥१३९॥

लोभकषायक्कंयुं सूक्ष्मसांपरायन बंधप्रकृतिगळु १७ क्कं मूलप्रकृतिगळ्गे पेळ्दोर्घं जघन्यस्थितिबंधमक्कुं। क्रोधमानमायात्रयक्के यथाक्रमदिंदं द्विमासमुमेकमासमुमर्द्धमासमुमक्कुं। पुरुषवेदक्के जघन्यस्थितिबंधमष्टवर्षंगळप्पुवु ॥

तित्थाहाराणंतोकोडाकोडीजहण्णठिदिबंधो।
खवगे सगसगबंधणछेदणकाले हवे णियमा ॥१४१॥ ५

तीर्थाहाराणामंतःकोटीकोटिर्जघन्यस्थितिबंधः। क्षपके स्वस्वबंधच्छेदनकाले भवेन्नियमात् ॥

तीर्थनामप्रकृतिगमाहारद्वयक्कं जघन्यस्थितिबंधमन्तःकोटीकोटिसागरोपममक्कुमो प्रकृतिगळो जघन्यस्थितिबंधंगळु क्षपकरोळु तंतम्म बंधव्युच्छित्तिकालदोळे तंतम्म गुणस्थानचरमदोळे नियमदिंदमप्पुवु ॥ १०

भिण्णमुहुत्तो णरतिरिआऊणं वासदससहस्साणि।
सुरणिरय आउगाणं जहण्णओ होदि ठिदिबंधो ॥१४२॥

भिन्नमुहूर्त्तो नरतिर्य्यगायुषोः वर्षदशसहस्राणि। सुरनारकायुषोः जघन्यो भवति स्थितिबंधः ॥

मनुष्यायुष्यक्कं तिर्य्यगायुष्यक्कं जघन्यस्थितिबंधमन्तर्म्मुहूर्त्तमक्कुं। सुरायुष्यक्कं नरकायुष्यक्कं जघन्यस्थितिबंधं दशसहस्रवर्षंगळप्पुवु ॥ १५

सेसाणं पज्जत्तो बादरएइंदियो विसुद्धो य।
बंधदि सव्वजहण्णं सगसग उक्कस्सपडिभागे ॥१४३॥

शेषाणां पर्य्याप्तो बादर एकेन्द्रियो विशुद्धश्च बध्नाति सर्व्वजघन्यां स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागे ॥

लोभस्य सूक्ष्मसांपरायबन्धसप्तदशानां च जघन्यस्थितिबन्धः मूलप्रकृतिवद्भवति, क्रोधस्य द्वौ मासौ, २०
मानस्यैकमासः, मायाया अर्धमासः, पुंवेदस्याष्टवर्षाणि ॥१४०॥

तीर्थकराहारकद्विकयोरन्तःकोटीकोटिसागरोपमाणि। अयं जघन्यस्थितिबन्धः सर्वोऽपि क्षपकेषु स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिकाले एव नियमाद् भवति ॥१४१॥

नरतिर्यगायुषोर्जघन्यस्थितिबन्धोऽन्तर्मुहूर्तो भवति, सुरनारकायुषोः दशसहस्रवर्षाणि ॥१४२॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंका जघन्यस्थितिबन्ध चार गाथाओंसे कहते हैं— २५

लोभ और सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली सतरह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध मूल प्रकृतिकी तरह होता है। अर्थात् यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका आठ मुहूर्त, सातावेदनीयका बारह मुहूर्त, शेषका एक-एक अन्तर्मुहूर्त जानना। क्रोधका दो मास, मानका एक मास, मायाका अर्धमास और पुरुषवेदका आठ वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध होता है ॥१४०॥

तीर्थंकर और आहारकद्विकका अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। यह सब जघन्य- ३०
स्थितिबन्ध क्षपक श्रेणीवालोंके अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके कालमें नियमसे होता है ॥१४१॥

मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका जघन्य स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा देवायु, नरकायुका दस हजार वर्ष होता है ॥१४२॥

बंधप्रकृतिगळ्ळु १२० रोळगे जघन्यस्थितिबंधं कंठोक्तमागि २९ प्रकृतिगळगे पेळल्पट्टुदिन्नुळिद ९१ प्रकृतिगळोळु वैक्रियिकषट्कमं कळेदुळिद ८५ रोळं मिथ्यात्वप्रकृतियुमं कळेदु शेष ८४ प्रकृतिगळगे जघन्यस्थितियं बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवं सर्व्वजघन्यमं कट्टुगुमेकेंदोडा एकेंद्रियजीवंगा प्रकृतिगळ्ळु बंधयोग्यं गळप्पुदरिंदमन्तु कट्टुत्तलुमा प्रकृतिगळगे स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागेयोळु कट्टुगुं त्रैराशिकविधानदिंदं कट्टुगुमें बुदर्त्थमेकेंदोडधिकागमननिमित्तं भागहारः। प्रतिभागहारः एंदिन्तु प्रतिभागहारविधानमुंटप्पुदरिंदं— ज लो १ ज्ञा ५ वि ५ द ४ ज स १ उच्च १ वे १ को १

२१ २१ मु ८ मु १२ मा २

मा १ माया १ पुं १ ति १ आ २ म १ ति १ सु १ ना १ उक्त २९ शेष

मा १ १

मा २ वर्ष ८ सा अन्तः को २ २१ वर्ष १०००० ९१

अनन्तरमी शेषप्रकृतिगळगे स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागदिंदं जघन्यस्थितिबंधमं साधिसुवुपायमं पेळदपरु :—

एयं पणकदि पण्णं सयं सहस्सं च मिच्छवरबंधो ।
इगिविगलाणं अवरं पल्लासंखूणसंखूणं ॥१४४॥

एकः पंचकृतिः पंचाशत् शतं सहस्रं च मिथ्यात्वोत्कृष्टबंधः। एकविकलानामवरः पल्यासंख्योनः संख्योनः ॥

एकेंद्रियजीवंगलु मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमनेकसागरोपममं माळ्पुवु। द्वींद्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं पंचविंशतिसागरोपममं माळ्पुवु। त्रींद्रियजीवंगळुमा

उक्तास्यः २९ शेषप्रकृतीनां ९१ मध्ये वैक्रियिकषट्कमिथ्यात्वरहितानां ८४ जघन्यस्थितिं बादरैकेन्द्रियपर्याप्तः[1] तद्योग्यविशुद्ध एव बध्नाति स्वस्वोत्कृष्टप्रतिभागेन त्रैराशिकविधानेनेत्यर्थः ॥१४३॥ तद्यथा —

एकेन्द्रिया मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिमेकसागरोपमं बध्नन्ति, द्वीन्द्रियाः पञ्चविंशतिसागरोपमाणि, त्रीन्द्रियाः

उक्त २९ प्रकृतियोंसे शेष रही ९१ प्रकृतियोंमें-से वैक्रियिकषट्क और मिथ्यात्वके बिना ८४ की जघन्य स्थितिको बादर एकेन्द्री पर्याप्त उसके योग्य विशुद्धताका धारक होकर बाँधता है। सो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिके प्रतिभाग द्वारा त्रैराशिक विधानके अनुसार बाँधता है ॥१४३॥

वही कहते हैं—

एकेन्द्रिय जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण बाँधते हैं। दो-इन्द्रिय

---

१. ब °प्त एक।

२.

	एकें	द्वीं	त्री	चतु	असं	संज्ञि
उ	सा १	सा २५	सा ५०	सा १००	सा १०००	सा ७० को १
ज	सा १ × प / प	सा २५ × प / प	सा ५० × प / प	सा १०० × प / प	सा १००० × प / प	सा अतः को २
	९	१ । ४	१ । ३	१ । २	१	

मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं पंचाशत्सागरोपममं माळ्पुवु। चतुरिंद्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगुत्कृष्टस्थितिबंधमं शतसागरोपमंगळं माळ्पुवु। असंज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगे उत्कृष्टस्थितिबंधमं सहस्रसागरोपमंगळं माळ्पुवु। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळु सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमंगळनुत्कृष्टस्थितिबंधमं मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळ्परितो एकविकलेंद्रियजीवंगळो मिथ्यात्वप्रकृतिगे जघन्यस्थितिबंधमं क्रमदिनेकेंद्रियजीवंगळु पल्यासंख्येयभागोनमुं द्वींद्रियादिजीवंगळु मिथ्यात्व प्रकृतिगे जघन्यस्थितिबंधमं पल्यासंख्येयभागोनक्रमदिदं माळ्परु :—

	एकें	द्वींद्रि	त्रीं	चतु	असं	संज्ञि
उ	सा १	सा २५	सा ५०	सा १००	सा १०००	सा ७० को २
ज	सा १२	सा २५२	सा ५०२	सा १००२	सा १०००२	सा अन्तः को २
	प	प १	प	प−१	प−१	
	७	७४	७।३	७।२	७	

तदनंतरं मुंपेळ्दुत्कृष्टस्थितिबंधमं संज्ञिपर्य्याप्तकमिथ्यादृष्टि माळ्पनेंदु पेळल्पट्टुदरिनोगळेकेंद्रियादिजीवंगळगुत्कृष्टस्थितिबंधमुमं जघन्यस्थितिबंधमुमं पेळ्वल्लि त्रैराशिकविधानदिदं पेळ्दपरदे तेंदोडे[1] :—

जदि सत्तरिस्स एत्तियमेत्तं किं होदि तीसियादीणं ।
इदि संपादे सेसाणं इगिविगलेसु उभयठिदी ॥१४५॥

यदि सप्ततेरेतावन्मात्रं किं भवति त्रिंशत्कादीनां। इति संपाते शेषाणामेकविकलेषूभयस्थितिः ॥

पञ्चाशत्सागरोपमाणि, चतुरिन्द्रियाः शतसागरोपमाणि, असंज्ञिनः सहस्रसागरोपमाणि, संज्ञिनः पर्याप्ता एव सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि। तज्जघन्यस्तु एकेन्द्रियद्वीन्द्रियादीनां स्वस्वोत्कृष्टात्पल्यासंख्येयभागोनक्रमो भवति ॥१४४॥ तत्संज्ञ्युत्कृष्टेन एकेन्द्रियादीनामुत्कृष्टजघन्यावाह—

पच्चीस सागर प्रमाण बाँधते हैं। त्रीन्द्रिय पचास सागर प्रमाण बाँधते हैं। चौइन्द्रिय सौ सागर प्रमाण बाँधते हैं। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय एक हजार सागर प्रमाण बाँधते हैं। संज्ञीपर्याप्त ही सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बाँधते हैं। तथा मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रिय अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे पल्यके असंख्यातवें भाग कम बाँधता है। और शेष द्वीन्द्रिय आदि अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे पल्यके संख्यातवें भाग हीन बाँधते हैं ॥१४४॥

आगे संज्ञी पञ्चेन्द्रियके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकी अपेक्षा एकेन्द्रियादिके उत्कृष्ट और जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण कहते हैं—

१. ई रचनेयोलु जघन्यस्थितियोलिदे रूपन्यूनते मंदे "जेट्ठबाहोवट्टिय" एंब गाथाव्याख्यानदोलु व्यक्तमादपुदु= उक्कस्सट्ठिदीबंधो सण्णि पज्जत्तगे जोग्गे इति गाथांतेन। सव्वुक्कस्सठिदीणं मिच्छाइट्ठीदु बंधको भणिदो। इति गाथांशेन प्रागुक्तत्वात्।

यदि एत्तलानुं सप्ततेः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमक्कें एतावन्मात्रं यितु प्रमाणं स्थितिबंधमक्कुमप्पोडागळु तीसियादीणं तीसियादिगळगे कि भवति एनितु स्थितिबंधमक्कुं इति इहिंगे दु संपाते अनुपातत्रैराशिकं माडल्पडुत्तिरलु तीसियासोदिगळगमवल्लव शेषाणां शेषोत्तरप्रकृतिगळगेयुं । १८ । १६ । १५ । १४ । १२ । १० कोटीकोटिसागरोपम स्थितिबंधमनुळ्ळुवक्कं यथायोग्यंगळगे एकविकलेषु एकेंद्रियविकलेंद्रियजीवंगळोळु उभयस्थितिः उत्कृष्टस्थितिबंधमु जघन्यस्थितिबंधमुमरियल्पडुवुदें तेंदोडे सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधमनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकेंद्रियजीवनोंदु सागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा एकेंद्रियजीवं षोडशकषायचाळीसीयंगळगेनितुं स्थितियं कट्टुगुमेंदिन्तनुपातत्रैराशिकं माडि प्र सा ७० को २ । प सा १ । इ । सा ४० । को २ । गे बंद लब्धमेकेंद्रियजीवं चाळीसियंगळगे कट्टुउ उत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणमेकसागरोपमचतुःसप्तमभागमक्कुं सा ४ मत्तमेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधमनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे
७
एकेंद्रियजीवनेकसागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा जीवं । असात १ घाति १९ अन्तु विंशतितीसिय प्रकृतिगळगेनितु स्थितियं कट्टुगुमेंदिन्तु अनुपातत्रैराशिकमं माडि । प्र सा ७० को २ । फ सा १ । इ सा ३० को २ । लब्धमेकेंद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुववुत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणमेकसागरोपमत्रिसप्तमभागमक्कु सा ३ मत्तमेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपम मुत्कृष्टस्थितिबंधमनुळ्ळ
७

सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमोत्कृष्टस्थितिकमिथ्यात्वस्य यद्येकसागरोपममात्रं बध्नाति तदा तीसियादीनां कि भवति ? इति लब्धः एकेन्द्रियस्य उत्कृष्टस्थितिबन्धः चालीसियानां षोडशकषायाणां एकसागरोपमचतुःसप्तभागः सा ४ । अनेन त्रैराशिकक्रमेण तीसियानामसातवेदनीयैकान्नविंशतिघातिना एकसागरोपमत्रिसप्तभागः सा
७
३ । बीसियानां हुण्डासंप्राप्तसृपाटिकाऽरतिरतिशोकषंढवेदतिर्यग्द्विकभयद्विकतैजसद्विकौदारिकद्विकातपद्विकनीचै-
७

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले मिथ्यात्वका यदि एकेन्द्रिय जीव एक सागर प्रमाण बन्ध करता है तो जिन कर्मोंकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर आदि प्रमाण स्थिति है उनका वह कितना बन्ध करता है ऐसा त्रैराशिक करना चाहिए। सो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एक सागर, इच्छाराशि जिस कर्मकी ज्ञात करना हो उसकी स्थिति तीस, चालीस, बीस आदि कोड़ाकोड़ी सागर। यहाँ फलराशिको इच्छाराशिसे गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी उत्कृष्ट स्थिति उस कर्मकी एकेन्द्रिय जीव बाँधता है। सो सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। इसको पूर्वोक्त प्रकार इच्छाराशि एक सागरसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरसे भाग देनेपर लब्ध एक सागरके सात भागोंमें-से चार भाग प्रमाण स्थिति एकेन्द्रियके बँधती है। इसी प्रकार तीस कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थितिवाले असातवेदनीय तथा घातिया कर्मोंकी उन्नीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सात भागोंमें-से तीन भाग होता है। बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, अरति, रति, शोक,

मिथ्यात्वप्रकृतिगेकेंद्रियजीवनेकसागरोपमस्थितियं कट्टुत्तं विरलागळा जीवं हुंडसंस्थानमुमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुमरतिशोकषंढवेदतिर्य्यद्द्विकमं भयद्विकमं तैजसद्विकमं औदारिकद्विकमं आतपद्विकमं नीचैर्गोत्रमं त्रसचतुष्कमं वर्णचतुष्कमं अगुरुलघुउपघातपरघातउच्छ्वासमं एकेंद्रियपंचेंद्रियस्थावरनिर्म्माणमं असद्गमनमं अस्थिरषट्कमेंब ३९ प्रकृतिगळ्गे विसियंगळ्गोनितुं स्थितियं कट्टुगुमेंदितनुपातत्रैराशिकमं माडिदोडे प्र सा ७० को २। फ सा १। इ सा २० को २। गळ्गे लब्धमेकेंद्रियजीवं विसियंगलग्गे कट्टुवुत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणमेकसागरोपमद्विसप्तमभागमक्कु— सा २ मी प्रकारदिंदं

७

शेष सात स्त्रीवेद मनुष्यायुगळंगळ। सा १५ को २। स्थितिगं। वामन कीलित विकलत्रय सूक्ष्मत्रयंगळ सा १८ को २ स्थितिगं। कुब्जार्द्धनाराचंगळ सा १६ को २ स्थितिगं। स्वातिनाराचंगळ सा १४ को २ स्थितिगं। न्यग्रोधवज्रनाराचंगळ सा १२ को २ स्थितिगं। समचतुरस्रवज्रऋषभनाराचहास्यरतिउच्चैर्गोत्रपुरुषवेदस्थिरषट्क सद्गमनमेंब १३ प्रकृतिगळ सा १० को २ स्थितिगमिन्तु तिर्य्यग्गतिसंबंधिबंधयोग्यप्रकृतिगळ ११७। रोळगे वैक्रियिकषट्कमुं सुरनारकायु-

---

गोत्रत्रसचतुष्कवर्णचतुष्कागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासैकेन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियस्थावरनिर्माणासद्गमना-स्थिरषट्कानां ३९ एकसागरोपमद्विसप्तभागो भवति सा २। पुनः अनेन संपातत्रैराशिककमेण शेषाणां सागरपञ्चदशकोटी-

७

कोटिस्थितिसातस्त्रीवेदमनुष्ययुग्मानां सागराष्टादशकोटीकोटिस्थितिवामनकीलितविकलत्रयसूक्ष्मत्रयाणां सागरषोडशकोटीकोटिस्थितिकुब्जार्धनाराचयोः सागरचतुर्दशकोटीकोटिस्थितिस्वातिनाराचयोः सागरद्वादशकोटीकोटिस्थितिन्यग्रोधवज्रनाराचयोः सागरदशकोटीस्थितिसमचतुरस्रवज्रर्षभनाराचहास्यरत्युच्चैर्गोत्रपुंवेदस्थिरषट्कसद्गमनानां च उत्कृष्टस्थितिबन्धं एकेन्द्रियस्य साधयेत्। एकं पञ्चविंशति पञ्चाशतं शतं सहस्रं सागरोपमाणि चतुरः फलराशीन् कृत्वा चालीसियादीनि पृथक् पृथक् इच्छाराशीन् कृत्वा प्रमाणराशिं प्राक्तनमेव कृत्वा

नपुंसकवेद, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, आतप, उद्योत, नीचगोत्र, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, वर्णादिचार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिरादि छह इन ३९ प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सात भागोंमें-से दो भाग प्रमाण होता है। इसी त्रैराशिकके क्रमसे शेष पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले सातवेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यद्विक आदिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सत्तर भागोंमें-से पन्द्रह भाग प्रमाण होता है। अठारह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले वामन संस्थान, कीलितसंहनन, विकलत्रय, सूक्ष्मत्रिकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एकेन्द्रियके एक सागरके सत्तर भागोंमें-से अठारह भाग प्रमाण होता है। सोलह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कुब्जक संस्थान, अर्धनाराचसंहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें-से सोलह प्रमाण, चौदह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्टस्थितिवाले स्वातिसंस्थान, नाराच संहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें चौदह भाग प्रमाण, बारह कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले न्यग्रोधसंस्थान और वज्रनाराच संहननका एक सागरके सत्तर भागोंमें-से बारह भाग प्रमाण, दस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले समचतुरस्र संस्थान वज्रर्षभ नाराच संहनन, हास्य, रति, उच्चगोत्र,

द्विकमुमेंब अयोग्यप्रकृत्यष्टकमं कळेदुळिद १०९ प्रकृतिगळगो प्रतिभागक्रमदिदं उत्कृष्टस्थितिबंधमनेकेंद्रियजीवंगळगो साधिसिदन्ते द्वींद्रियादिगळगं साधिसल्पडुवुदु । संदृष्टिरचने

		ए	द्वीं	त्रीं	चतु	असं
उ	चाळीसि	सा ४	सा २५ । ४	सा ५० ४	सा १०० ४	सा १००० ४
		७	७	७	७	७
उ	तीसि	सा ३	सा २५ । ३	सा ५० ३	सा १०० ३	सा १००० ३
		७	७	७	७	७
उ	विसि	सा २	सा २५ । २	सा ५० २	सा १०० २	सा १००० २
		७	७	७	७	७

लब्धानि द्वीन्द्रियादीनां चालीसियादिगतोत्कृष्टस्थितिबन्धप्रमाणानि भवन्ति । एवं जघन्यस्थितिबन्धमप्येकेन्द्रियादीनां साधयेत् ॥१४५॥

पुरुषवेद, स्थिरादि छह और प्रशस्तविहायोगतिका उत्कृष्टस्थिति बन्ध एक सागरके सात भागोंमें-से एक भाग प्रमाण एकेन्द्रिय जीवके साधना चाहिए । इसी प्रकार पच्चीस, पचास, सौ और हजार सागर इन चारको फल राशि करके चालीस आदि कोड़ाकोड़ी सागरको पृथक्-पृथक् इच्छाराशि करके और प्रमाणराशि पूर्वोक्त सत्तर कोड़ाकोड़ीको करके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञि पञ्चेन्द्रियके क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और हजारसे गुणित उक्त एकेन्द्रियके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है ।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार जानना—

दो-इन्द्रिय जीवके सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्व कर्म पच्चीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति लेकर बँधता है तो तीस आदि कोड़कोड़ी सागरकी स्थितिवाले कर्म दो-इन्द्रिय जीवके कितनी स्थिति लेकर बँधते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पच्चीस सागर और इच्छाराशि विवक्षित कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण, सो फलराशिसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी-उतनी उत्कृष्ट स्थिति दो-इन्द्रिय जीवके बँधती है । सो जिनकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी सौ सागरका सातवाँ भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बँधती है । जिनकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनकी पिचहत्तर सागरका सातवाँ भाग प्रमाण बँधती है । इसी प्रकार सब कर्मोंकी एकेन्द्रियसे पच्चीस गुनी उत्कृष्ट स्थिति दो इन्द्रियके बँधती है । तेइन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर प्रमाण बँधती है । अतः फलराशि पचास सागर करनेपर जो जो प्रमाण आवे उतनी स्थिति अन्य कर्मोंकी बँधती है । दो इन्द्रियकी फल राशि पच्चीस सागरसे तेइन्द्रियकी फलराशि दूनी

१.

		एकें	द्वीं	त्रीं	चतु	असं
उ	चाली	सा ४	सा २५ ४	सा ५० ४	सा १०० ४	सा १००० ४
		७	७	७	७	७
उ	तीसि	सा ३	सा ५० ३	सा ५० ३	सा १०० ३	सा १००० ३
		७	७	७	७	७
उ	वीसि	सा २	सा २५ २	सा ५० २	सा १०० २	सा १००० २
		७	७	७	७	७

मत्तमी एकेंद्रियादिजीवंगळगे तंतम्म योग्योत्कृष्टस्थितिबंधप्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिबंधमुमी प्रकारदिंदं त्रैराशिकदिंदं साधिसल्पडुगुमादोडमा जघन्यस्थितिबंधमुं साधिसुवल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे पेळ्दपरु १० ॥

सण्णि असण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
जेट्ठे संखेज्जगुणा आवलिसंखं असंखभागहियं ॥१४६॥ ५

संज्ञिन्यसंज्ञिचतुष्के एकेंद्रिये अंतर्मुहूर्त्तमाबाधा । ज्येष्ठायां संख्येयगुणा आवलिसंख्यमसंख्यं भागाधिका ॥

संज्ञिजीवनोळु जघन्यस्थित्याबाधे अन्तर्मुहूर्त्तमात्रेयक्कु २१ । मेकेंदोडे संज्ञिजीवंगे जघन्यस्थितिबंधमन्तःकोटीकोटिसागरोपममप्पुदरिंदमंतोकोडाकोडिद्विदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा एंबागमप्रमाणमुंटप्पुदरिंदं असंज्ञिचतुष्कदोळु जघन्यस्थित्याबाधे संख्यातगुणहीनमागुत्तलुं तंतम्मुत्कृष्टगुणकारगुणितमक्कुमप्पुदरिंदमसंज्ञिजघन्यस्थित्याबाधे सहस्रगुणितान्तर्मुहूर्त्तमक्कुं । २१ । १००० । चतुरिंद्रियजघन्यस्थित्याबाधे शतगुणितान्तर्मुहूर्त्तमात्रेयक्कुं । २१ । १०० । त्रींद्रियजघन्यस्थित्याबाधे पंचाशद्गुणितान्तर्मुहूर्त्तमात्रेयक्कुं । २१ । ५० । द्वींद्रियजघन्यस्थित्याबाधे पंचविंशतिगुणितान्तर्मुहूर्त्तमात्रेयक्कुं । २१ । २५ । एकेंद्रियजघन्यस्थित्याबाधे अंतर्मुहूर्त्तमेयक्कुं । २१ । ई

१०

तत्र संभवद्विशेषमाह—

१५

संज्ञिजीवे जघन्याबाधाऽन्तर्मुहूर्ता २ १ १ तज्जघन्यस्थितेरन्तःकोटीकोटिसागरोपममात्रत्वेन तदाबाधाया अग्रे तत्प्रमाणप्ररूपणात् । असंज्ञिजीवे चतुरिन्द्रिये त्रीन्द्रिये द्वीन्द्रिये एकेन्द्रियेऽपि जघन्याबाधान्त-

---

है । अतः दो इन्द्रियके स्थितिबन्धसे तेइन्द्रियके सब कर्मोंका स्थितिबन्ध दूना-दूना जानना । चौइन्द्रियके प्रमाण राशि और इच्छाराशि पूर्वोक्त ही हैं किन्तु फल राशि सौ सागर है क्योंकि उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागर प्रमाण बँधती है । सो यहाँ भी फलराशि पूर्वोक्त फल राशिसे दूनी है । अतः तेइन्द्रियके स्थितिबन्धसे चौइन्द्रियका स्थितिबन्ध सब कर्मोंका दूना-दूना है । असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके भी प्रमाण राशि और इच्छाराशि तो पूर्वोक्त ही है किन्तु फलराशि एक हजार सागर है क्योंकि उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति हजार सागर प्रमाण बँधती है । सो यह फलराशि चौइन्द्रियकी फलराशिसे दसगुनी है । अतः चौइन्द्रियके स्थितिबन्धसे असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका स्थितिबन्ध सब कर्मोंका दसदस गुणा जानना । इसी प्रकार जघन्य स्थितिबन्ध भी त्रैराशिक विधान द्वारा जानना ॥१४५॥

२०

२५

जघन्य स्थितिबन्धके सम्बन्धमें विशेष बात कहते हैं—

संज्ञी जीवके जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है क्योंकि उसके जघन्य स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता और इतनी स्थितिकी आबाधा आगे अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही कही है । असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवमें तथा चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, दो इन्द्रिय और एकेन्द्रियमें भी जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त है किन्तु संज्ञीकी जघन्य आबाधासे इनकी आबाधा क्रमसे संख्यातगुणा हीन है । क्योंकि एकेन्द्रियकी जघन्य आबाधासे द्वीन्द्रियादिककी जघन्य आबाधा क्रमसे पच्चीस, पचास, सौ और हजार गुनी है अतः विपरीत क्रमसे संख्यातगुणा-

३०

जीवंगळ उत्कृष्टस्थितिबंधाबाधे यथाक्रमदिदं संज्ञियोळु संख्येयगुणा तन्न जघन्यस्थित्याबाधेयं नोडलु संख्यातगुणमक्कुं । २११ । ४ । असंज्ञिचतुष्कदोळु क्रमदिदं द्वींद्रियपर्य्यंतं आवलिसंख्येयभागं संख्यातगुणहीनक्रमदिदं साधिकमक्कुमदंतेंदोडे असंज्ञियुत्कृष्टस्थित्याबाधे तन्न जघन्यमं नोडलावळिसंख्येयभागाधिकमक्कुं । २१ । १००० । चतुरिंद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे तत्संख्यातगुणहीनावलिसंख्येयभागाधिकं तन्न जघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयक्कुं— २ त्रींद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे
२१
२१ । १००

तत्संख्यातगुणहीनावलिसंख्येयभागाधिकस्वजघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयक्कुं २ द्वींद्रियोत्कृष्ट-
२११
२१५०

स्थित्याबाधे तत्संख्येय गुणहीनावलिसंख्येय भागाधिकस्वजघन्यस्थित्याबाधाप्रमितेयक्कुं २
२१२१
२१२५

एकेंद्रिये एकेंद्रियोत्कृष्टस्थित्याबाधे असंख्यभागाधिका तन्न जघन्यस्थित्याबाधेयं नोडलुत्कृष्टस्थित्याबाधे आवल्यसंख्येयभागाधिकमक्कुं २१ ॥ संज्ञियुत्कृष्टाबाधे उ २ ११ । ४ असंज्ञिगे उत्कृष्टाबाधे-
ज २ ११ । १

२	२	२	२	२
१	११	२१११	११११	ə
उ २१ । १०००	चतु = उ २ १ । १००	ति उ २११	द्वीं उ २१ २५	ए = उ २१ । १
ज २१ । १०००	ज २ १ । १००	ज २१ । ५०	ज २१ २५	ज २१ । १

मुहूर्ता । एयं पणकदिपण्णं सयं सहस्समिति स्वस्वोत्कृष्टगुणकारगुणितत्वे संज्ञिजघन्याबाधातः संख्यातगुणहीनक्रमत्वे च तदालापस्यात्यजनात् । उत्कृष्टाबाधा तु स्वस्वजघन्यतः संज्ञिजीवे संख्यातगुणा । असंज्ञिचतुष्के संख्यातगुणहीनक्रमा आवलिसंख्येयभागाधिका । एकेन्द्रिये आवल्यसंख्येयभागाधिका च भवति ।

हीन कही है । उत्कृष्ट आबाधा अपनी-अपनी जघन्य आबाधासे संज्ञी जीवमें संख्यात गुणी, असंज्ञि पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय त्रीन्द्रिय, दो इन्द्रियके आवलीके संख्यातवें भाग अधिक और एकेन्द्रियके आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक है । यह उत्कृष्ट आबाधा भी क्रमसे संख्यातगुणा हीन है । एकेन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आबाधामें-से जघन्य आबाधाको घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसमें एक मिलानेपर एकेन्द्रिय जीवकी आबाधाके भेद होते हैं । इसी प्रकार दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञीमें अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधामें-से अपनी-अपनी जघन्य आबाधाको घटाकर उसमें एक मिलानेसे आबाधाके भेदका प्रमाण होता है । कहा है आदिको अन्तमें-से घटाकर वृद्धिका भाग दे और एक

१.

संज्ञि	अ	चतु	त्री	द्वीं	ए
	२	२	२ १ १ १	२ १ १ १ १	२
२ १ १ । ४	१	१ १			ə
	२ १ १०००	२ १ । १००	२ १ ५०	२ १ २५	२ १ १

ई जघन्योत्कृष्टाबाधेगळ जघन्यमनुत्कृष्टदोळकळेवु आदियं २१ । अन्त २१ दोळु कळेदोडे २ वृद्धि

एकरूपदिदं भागिसिदोडे तावन्मात्रमेयक्कुं । रूपं कूडिदोडे २ स्थानविकल्पंगळिते द्वींद्रियादि-

गळगमरियल्पडुगुं द्वि २ त्रि २ च २ अस २ सं इवाबाधाविकल्पंगळु । इवं

मनदोळवधरिसिदंगे बळिक्कं जघन्यस्थितिबंधमं साधिसुव करणसूत्रमं पेळ्दपरु :—

जेट्ठाबाहोवट्टियजेट्ठं आबाहकंडयं तेण ।
आबाहवियप्पहदेणेगूणेणूण जेट्ठमवरठिदी ॥१४७॥

ज्येष्ठाबाधापवर्तिता ज्येष्ठा आबाधाकांडकं तेनाबाधाविकल्पहतेनैकोनेनोनज्येष्ठा अवर-स्थितिः ॥

इल्लि एकेंद्रियादि तंतम्मुत्कृष्टस्थित्याबाधेयिंदं तंतम्मुत्कृष्टस्थितियं भागिसि दोडेकभाग-प्रमाणमदु आबाधाकांडकप्रमाणमक्कुमदनाबाधाविकल्पंगळ प्रमाणदिदं गुणिसि लब्धराशियोळेकरूपं-कळेदुदनुत्कृष्टस्थितियोळकळेदोडे शेषं जघन्यस्थितियक्कुमदं तं दोडेकेंद्रियोत्कृष्टमिथ्यात्वप्रकृति-

---

आबाधाविकल्पास्तु एकेन्द्रिये आदौ २ १ अन्ते २ सुद्धे २ वड्ढि १ हिदे रूवसंजुदे २ ठाणा । एवं

द्वीं	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असं	संज्ञि
१—	१—	१—	१—	१—
२	२	२	२	८
१ । ४	१ । ३	१ । २	१ । १	२ १ १ ४

द्वीन्द्रियादावप्यानेतव्याः ॥१४६॥ अथैतत्सर्वं मनसि धृत्वा जघन्यस्थितिबन्धसाधनकरणसूत्रमाह—

एकेन्द्रियादीनां स्वस्वोत्कृष्टाबाधया भक्तस्वस्वोत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकप्रमाणं भवति तेन काण्डकेन

मिलानेपर स्थानोंका प्रमाण होता है। सो यहाँ जघन्य आबाधा आदि है और उत्कृष्ट आबाधा अन्त है। अन्तमें-से आदिको घटाकर उसमें एक-एक समयकी वृद्धि होनेसे एकका भाग देकर एक मिलानेपर विकल्प होते हैं। इसी तरह दो इन्द्रिय आदिमें भी आबाधाके विकल्प लाने चाहिए ॥१४६॥

ये सब मनमें रखकर जघन्य स्थितिबन्धका साधक करण सूत्र कहते हैं—

एकेन्द्रियादिक जीवोंकी अपनी-अपनी उत्कृष्ट आबाधासे अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति-में भाग देनेपर जो लब्ध आवे वह आबाधा काण्डकका प्रमाण होता है। उस आबाधा-काण्डकको आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक कम करके अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिमें घटाने पर जो शेष रहे उतना अपना-अपना जघन्यस्थिति-

स्थित्याबाधेयिदु २/अ/२१ इल्लिगावलिगावळियं तोरि रूपासंख्येयभागमं गुणकारभूतान्तर्म्मुहूर्त्तव संख्यातदोळु साधिकं माडिवोडिदु २१। इवरिंदमेकेंद्रियजीवन तन्न मिथ्यात्वोत्कृष्टस्थिति-येक सागरोपममदं संख्यातपल्यप्रमाणराशियं भागिसि प/२१ १ वंद लब्धप्रमणमाबाधाकांडक-

प्रमाणमक्कुमवनाबाधाविकल्पप्रमाणराशियिदं २८ गुणिसिदोडिदु प/२१ १।२/अ ई आबाधाविकल्पंगळु

५ रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागमें तावुदें दोडे आदौ २१ अन्ते २/अ/२१ सुद्धे २/अ वड्ढिहिदे २/अ।१ रूव-संजुदे ठाणा। २/अ एंदिन्तु रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागं सिद्धमप्पुदरिंदं। मत्तमा स्थित्याबाधा विकल्पंगळिंदं गुणिसल्पट्ट स्थित्याबाधाकांडकराशियोळेकरूपं कळेदोडिदु प/२१ १।२/अ अपवर्त्तित-

---

आबाधाविकल्पैर्गुणितेन एकरूपोनेन ऊना उत्कृष्टस्थितिः जघन्यस्थितिर्भवति। तथाहि—

एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधेयं २/अ/२१ आवलेरावलि प्रदर्श्य रूपासंख्येयभागेन संख्यातगुणकारं साधिकं

१० २/२१ कृत्वा अनेन तस्यैकसागरमिथ्यात्वोत्कृष्टस्थितिः संख्यातपल्यमात्री भक्ता सती प/२१ १ आबाधाकाण्डकं २/२१ भवति। तच्च तस्याबाधाविकल्पैः २/अ गुणयित्वा पं/२१ १।२/अ अपवर्त्य प/अ रूपेण ऊनयित्वा उत्कृष्ट-स्थितावपनीतं तदा तस्य मिथ्यात्वजघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा, इमां स्थिति उत्कृष्टस्थितावपनीय शेषे

प/अ एकेन भक्त्वा प/अ।१ रूपाधिकीकृते प/अ

बन्ध जानना। इसका विवरण इस प्रकार है—एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके असंख्यातवें भाग अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कही है। उसका भाग १५ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। इस आबाधाकाण्डकको एकेन्द्रियकी आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक कम करके जो प्रमाण रहे उसे उत्कृष्ट स्थितिमें घटानेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें

मनिदं प रूपोनपल्यासंख्यातमनुत्कृष्टस्थितियोळकळदोडे मुंपेळ्देकेंद्रियमिथ्यादृष्टिजीवनु
मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १२ ई जघन्यस्थितियनादियं माडि
प
आ
उत्कृष्टस्थितियनन्तमं माडि आदौ अन्ते सुद्धे एंदु आदियनन्तदोळकळेदोडे शेषमिदु। प इदं
आ
वृद्धियिदं आ भागिसिदोडे तावन्मात्रमेयक्कु प मल्लि एकरूपं कूडिदोडे केंद्रियजीवं मित्यात्व-
आ
प्रकृतिगे माळप सर्व्वस्थितिविकल्पप्रमाणमक्कुं प। द्वींद्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृत्युत्कृष्टाबाधे ५
आ
२
साधिकपंचविंशत्यंतर्म्मुहूर्त्तंगळप्पुवु। ११११ अपवर्त्तितमप्पिदरिं २१२५ दमुत्कृष्टस्थितियं
२१२५
भागिसिदोडाबाधाकांडकप्रमाणमक्कुं सा २५ अपवर्त्तिसिदोडिदु सा ई आबाधाकांडकम
२१।२५ २१

तस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति प। द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा साधिकपञ्चविंशत्यंतर्मुहूर्ता
आ
२ अपवर्त्य २ १ २५ तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा २५। तेन अप-
१ १ १ १ २ १ २५
२ १ | २५
१- १-
वर्तितेन सा आबाधाविकल्प २ गुणितेन सा २ अपवर्तितेन— प रूपोनेन १०
२ १ १ १ १ २ १ १ ४ १ १ १ १
ओ ओ
प उत्कृष्टस्थितिः मिथ्यात्वजघन्यस्थितिः सा २५) भवति। तां च उत्कृष्टस्थितावपनीय शेषे प
ओ १ १ १ १
१ १ १ १ प
१ १ १ १

घटानेपर जो शेष रहे उसमेंसे एकसे भाग देनेपर उतना ही रहा। उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण होता है। अर्थात् जघन्यसे लेकर एक-एक समय बढ़ता उत्कृष्ट पर्यन्त एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके इतने भेद होते हैं। इसी प्रकार दो इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधाका प्रमाण चार बार १५
संख्यातसे भाजित आवली मात्र अधिक पच्चीस अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। यह आबाधा भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, तथापि एकेन्द्रिय जीवकी आबाधाके अन्तर्मुहूर्तसे पच्चीस गुणा है, क्योंकि दो इन्द्रियके एकेन्द्रियसे पच्चीस गुना स्थितिबन्ध होता है। सो यहाँ एकेन्द्रियकी

नाबाधाविकल्पंगळिवरिंदं $\frac{१}{२}$ गुणिसिदोडिदु सा $\frac{१}{२}$ इदनपवर्त्तिसिदोडिदु प $\frac{१}{१}$ इद-
$\frac{१}{१ १ १ १}$ $\frac{१}{२ १}$ । $\frac{१}{१ १ १ १}$ $\frac{१}{१ १ १ १}$

रोळेकरूपं कळेदोडिदु $\frac{१}{प}$ इदनुत्कृष्टस्थितिबंधप्रमाणदोळु कळेदोडिदु सा २५ । द्वींद्रियजीवं
$\frac{१}{१ १ १ १}$ $\frac{१}{प}$
$\frac{१}{१ १ १ १}$

मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळप जघन्यस्थितिबंधप्रमा २१ । २५ णमक्कु–। मी जघन्यस्थितियनुत्कृष्ट
$\frac{०}{प}$

स्थितियोळ्कळेदोडे शेषमिदु $\frac{०}{प}$ वृद्धियिदं भागिसि येकरूपं कूडिदोडे द्वींद्रियजीवंगे
$\frac{१}{१ १ १ १}$

मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिविकल्पंगळप्पुवु प $\frac{१}{१}$ त्रींद्रिय जीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधे
$\frac{१}{१ १ १ १}$

$\frac{२}{१ १ १}$
यिदु $\frac{२}{२ १ । ५ ०}$ संख्यातत्रितयभक्तावल्यभ्यधिकपंचाशदन्तर्म्मुहूर्त्तप्रमाणदिदं भागिसल्पट्टुत्कृष्ट-

स्थितियाबाधाकांडकमक्कुमिदं सा $\frac{५०}{२१ । ५०}$ अपवर्त्ततमिदु सा $\frac{१}{२१}$ इदनाबाधाविकल्पंगळिदं गुणि-

रूपाधिकीकृते तस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति प $\frac{१}{१ १ १ १}$ त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा $\frac{२}{१ १ १}$

$\frac{२ १ ५०}{}$

संख्यातत्रितयभक्तावल्यधिकपञ्चाशदन्तर्मुहूर्ता । तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा $\frac{५०}{२ १ ५०}$ तेन

अपवर्तितेन सा $\frac{१}{२ १}$ आबाधाविकल्पगुणितेन सा $\frac{१}{२ १ १ १ १}$ अपवर्तितेन प $\frac{१}{१ १ १}$ रूपोनेन $\frac{०}{प}$ $\frac{१}{१ १ १}$

अपेक्षा पच्चीस अन्तर्मुहूर्त कहे हैं, आगे भी ऐसा ही जानना।

इस तरह द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा साधिक पच्चीस अन्तर्मुहूर्त है। उससे द्वीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डक होता है। उससे द्वीन्द्रियकी आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करनेसे जो प्रमाण आवे उसमेंसे एक घटानेपर जो शेष रहे उसे उसकी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतनी दो इन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्यस्थिति होती है। उस जघन्यस्थितिको उत्कृष्टस्थितिमें घटाकर शेषमें एक अधिक करनेपर दो इन्द्रियके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा तीन बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक पचास अन्तर्मुहूर्त है। उससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डकका प्रमाण होता है। उसे आबाधाके विकल्पोंसे गुणा करनेपर

सिदोडिदु २ सा १ अपवर्त्तितमिदु प इदरोळेकरूपं कळेदु प उत्कृष्टस्थितियोळकळे-
१११ । ११ १११ १११
दोडे त्रींद्रियजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा ५० ई जघन्यस्थिति-
१-३
४
१११
यनुत्कृष्टस्थितियोळकळेदेकरूपं कूडिदोडिदु प त्रींद्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृति सर्व्वस्थितिबंध-
१११
विकल्पंगळप्पुवु । चतुरिंद्रिय जीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधेयिदु २ ११ ई संख्यात-
२१ । १००
द्वितयभक्तावल्यभ्यधिकशतांतर्म्मुहूर्त्तप्रमाणदिंदमुत्कृष्टस्थितियं भागिसिदोडे स्थित्यबाधाकांडक- ५
प्रमाणमक्कुं सा १०० अपवर्त्तितमिदु सा १ इदनाबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसिदोडिदु सा १
२१ । १०० २१ २
२१ । ११
अपवर्त्तितमिदु प इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितियोळकळेदोडे सा १००
११ ०
प
११
इदु चतुरिंद्रियजीवं

ऊना उत्कृष्टस्थितिः तस्य त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वजघन्यस्थितिर्भवति सा ५०
०
प
१ १ १
तां च उत्कृष्टस्थितौ अपनीय

रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिबन्धविकल्पा भवन्ति । चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधया २
१ १ १ १ १
|
२ १ १००

संख्यातद्वयभक्तावल्यधिकशतांतर्मुहूर्तया भक्ता उत्कृष्टस्थितिः आबाधाकाण्डकं भवति सा १०० तेन अप- १०
|
२ १ १००

१-
वर्तितेन सा आबाधाविकल्पगुणितेन २ अपवर्त्य प रूपोनेनोत्कृष्टस्थितिस्तस्य मिथ्यात्वस्य
| | १ १
२ १ २ १ । ११

जो प्रमाण हो उसमें एक घटाकर उसे उत्कृष्ट स्थिति पचास सागरमें-से घटानेपर त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें घटाकर शेषमें एक जोड़नेपर तेइन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण होता है। चतुरिन्द्रिय जीवके दो बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक सौ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट १५

१. ब° तिमिथ्यात्व ज°।

मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १००/प) इदनुत्कृष्टस्थितियोळ्कळेदे-
११

करूपं कूडिदोडे चतुरिंद्रियजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिसर्वस्थितिबंधविकल्पंगळ प्रमाणमक्कुं प/११

असंज्ञिजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिस्थित्युत्कृष्टाबाधेयिदु २/१ ई आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रां-
२१।१०००

तर्म्मुहूर्त्तंगळिदं तन्नुत्कृष्टमिथ्यात्वस्थितियं भागिसिदोडेकभागं स्थित्याबाधाकांडकप्रमाणमक्कुं—
५ सा १०००/२१।१००० अपवर्त्तितमिदु सा ई/२१ स्थितिकांडकप्रमाणमं स्थित्याबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसिदो-
डिदु सा १/२ अपवर्त्तितमिदु प/१ इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितियोळ्कळेदोडे असंज्ञिजीवं
२१।१

मिथ्यात्वप्रकृतिगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १०००/प/१) ई जघन्यमनन्तदोळुत्कृष्ट-

---

जघन्यस्थितिर्भवति सा १००/प/११) इमामुत्कृष्टस्थितावपनीय रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति

प/११ । असंज्ञिनो मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधया २/१।२१००० आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रान्तर्मुहूर्तैर्भक्ता उत्कृष्ट-

१० स्थितिः आबाधाकाण्डकं स्यात्—सा १०००/२१००० तेन अपवर्तितेन सा/२१ आबाधाविकल्पगुणितेन सा २^{१-१/२१।१} ।

आबाधा है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना आबाधाकाण्डकका प्रमाण है। उससे चतुरिन्द्रियके आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक घटाकर जो शेष रहे उसे उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरमें-से घटानेपर चतुरिन्द्रियकी जघन्य स्थितिका प्रमाण होता है। इस जघन्य स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष
१५ रहे उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियकी मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीका संख्यातवाँ भाग अधिक एक हजार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक हजार सागरमें भाग देनेपर आबाधाकाण्डकका प्रमाण होता है। इससे असंज्ञीके आबाधाके भेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति हजार

स्थितियो सा १००० ळकळेदडेकरूपं कूडिदोडे असंज्ञिजीवंगे मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिविकल्प-
प्रमाणमक्कुं प ईयर्थसंदृष्टि सुव्यक्तमप्पुदादोडं मंदबुध्यनुरोधदिंदमी जघन्यस्थितिबंधानयन-
१
दोळं संदृष्टियं तोरिदपरु । अवर विन्यासमिदु —

स्थिति	६४	६३	६२	६१	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४५
आबाधारहित स्थिति	४८	४७	४६	४५	४५	४४	४३	४२	४२	४१	४०	३९	३९	३८	३७	३६	३६	३५	३४	३३
आबाधा	१६	१६	१६	१६	१५	१५	१५	१५	१४	१४	१४	१४	१३	१३	१३	१३	१२	१२	१२	१२
	उ	४			४					४				४				४	ज	

इल्लि स्थित्युत्कृष्टाबाधे यं बुदु १६ इदरिंदमुत्कृष्टस्थितियनिदं ६४ भागिसिदोडे ६४
१६
स्थितिकांडकं नाल्कक्कुमाबाधाकांडकमेंनेंदोडे विसदृशस्थितिगळ्गे ६४ । ६३ । ६२ । ६१ । एकादृश-
मप्पाबाधेयक्कुं १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । निदनाबाधाकांडकमेंबुदीयाबाधाकांडकमं । ४ ।

अपवर्तितेन प रूपोननोनोत्कृष्टस्थितिः तस्य मिथ्यात्वस्य जघन्यस्थितिर्भवति सा १०००) तां च उत्कृष्ट- १०
१ ———
प
१

स्थितौ सा १००० न्यूनयित्वा रूपे निक्षिप्ते मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पा भवन्ति प । इयमर्थसंदृष्टिः सुव्यक्तापि
८
पुनरंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते—

ज्येष्ठा स्थितिः चतुःषष्टिसमया रूपोनक्रमेण मध्यमविकल्पानतीत्य जघन्या स्थितिः पञ्चचत्वारिंशत्समया ।
ज्येष्ठाबाधा षोडशसमया तया भक्तज्येष्ठस्थितिः ६४ आबाधाकाण्डकं भवति । ४ । एतावत्सु स्थितिविकल्पेषु
१६

सागरमें-से घटानेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका प्रमाण होता है । इस जघन्य १५
स्थितिको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें एक मिलानेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है ।

यद्यपि यह अर्थ संदृष्टि स्पष्ट है फिर भी इसे अंक संदृष्टि द्वारा बतलाते हैं—

उत्कृष्ट स्थिति चौंसठ समय प्रमाण है । इसमें एक-एक समय घटाते हुए मध्यके सब भेदों तिरसठसे छियालीस पर्यन्त बितानेपर जघन्य स्थितिका प्रमाण पैंतालीस समय २०
है । उत्कृष्ट आबाधा सोलह समय है । उससे उत्कृष्ट स्थितिमें भाग देनेपर $\frac{६४}{१६}$ आबाधा काण्डक ४ होता है । अर्थात् इतने स्थितिके भेदोंमें एक-सी आबाधा होती है । तदनुसार चौंसठसे इकसठ तक स्थिति भेदोंमें सोलह-सोलह समय प्रमाण ही आबाधा होती है ।

---

१. ६४ ६३ ६२ ६१ ६० ५९ ५८ ५७ ५६ ५५ ५४ ५३ ५२ ५१ ५० ४९ ४८ ४७ ४६ ४५
४८ ४७ ४६ ४५ ४५ ४४ ४३ ४२ ४२ ४१ ४० ३९ ३९ ३८ ३७ ३६ ३६ ३५ ३४ ३३ २५
१६ | १६ | १६ | १६ | १५ | १५ | १५ | १५ | १४ | १४ | १४ | १४ | १३ | १३ | १३ | १३ | १२ | १२ | १२ | १२

आदी । १२ । अंते । १६ । सुद्धे । ४ वड्ढिहिदे । ४ । इगिजुदे ४ ठाणा येंबी याबाधाविकल्पंगळि ४ दं गुणिसिदोडे सर्व्वस्थितिविकल्पप्रमितहानिवृद्धिप्रमाणमक्कु २० मल्लि प्रथमस्य हानिर्व्वा नास्ति वृद्धिर्व्वा नास्ति येंदेकरूपं हीनं माडि १९ युत्कृष्टस्थितिज्ञातमप्पुदादोडदरोळकलेदोडे जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कु । ४५ । मी जघन्यस्थितिज्ञातमादुदादोडिल्लि वृद्धिरूपदिंदं कूडिदोडुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमक्कु । ६४ । मी प्रकारदिंदमेकेंद्रियादिजीवंगळ सर्व्वप्रकृतिगळगे जघन्यस्थितियं साधिसुवुदिन्नु एकेंद्रियादिगळु चाळीसिय तीसिय बीसिय प्रकृतिगळ जघन्यस्थितिबंधमनेनितेनितं माळ्परेकेंदोडे अनुपातत्रैराशिकविधानदिंदं साधिसल्पडुगुमदें तेंदोडे सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितियनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकेंद्रियजीवं जघन्यस्थितिबंधमं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनसागरोपममं स्थितिबंधमं माडुगुमागळु नाल्वत्तुकोटीकोटिसागरोपमस्थितिबंधंगळनुळ्ळ चाळीसियंगळगेनितु जघन्यस्थितिबंधमं माळ्पनेंदितु अनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र । सा ७० । को २ । फ । १ । इ ४ ।

एतादृशी आबाधेत्यर्थः । तेन आबाधाचतुःषष्टितः एकषष्ठयन्तं षोडश षोडश समयैव । षष्टितः सप्तपञ्चाशदन्तं पञ्चदश पञ्चदशसमयैव । षट्पञ्चाशतः त्रिपञ्चाशदंतं चतुर्दश चतुर्दशसमयैव । द्वापञ्चाशतः एकान्नपञ्चाशदंतं त्रयोदश त्रयोदशसमयैव । अष्टचत्वारिंशत्तः पञ्चचत्वारिंशदंतं द्वादश द्वादशसमयैव । तच्च काण्डकं ४ । आदौ १२ अन्ते १६ सुद्धे ४ वड्ढिहिदे ४ रूवसंजुदे १ इत्यानीताबाधाविकल्पैर्गुणितं सर्वस्थितिविकल्प-
१ ४
प्रमाणं भवति २० । तत्र प्रथमे हानिर्वा वृद्धिर्वा न इत्येकं त्यक्त्वा शेषे १९ उत्कृष्टस्थितावपनीते जघन्यस्थितिः ४५ वा जघन्यस्थितौ युते उत्कृष्टस्थितिः ६४ भवति । एवमेकेन्द्रियादीनां सर्वप्रकृतीनां जघन्यस्थितिबन्धं साधयेत् । इदानीं त्रैराशिकैः कृत्वा साध्यते तद्यथा—

सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिकमिथ्यात्वस्य यद्येकेन्द्रियः जघन्यस्थितिबन्धं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनसागरोपममात्रं बध्नाति तदा चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिकानां किमिति ? प्र—स ७० को २ ।

साठसे सत्तावन पर्यन्त स्थितिके भेदोंमें पन्द्रह-पन्द्रह समय ही आबाधा होती है । छप्पनसे तिरपन पर्यन्त स्थितिके भेदोंमें चौदह-चौदह समय ही आबाधाका प्रमाण होता है । बावनसे उनचास पर्यन्त स्थिति भेदोंमें तेरह-तेरह समय ही आबाधाका प्रमाण होता है । अड़तालीससे पैंतालीस पर्यन्त स्थितिभेदोंमें बारह-बारह समय ही आबाधा होती है । इस प्रकार ये काण्डक चार हैं । आदि जघन्य आबाधा १२ को अन्त उत्कृष्ट आबाधा १६ में घटानेपर चार रहते हैं । प्रतिसमय एककी वृद्धि होनेसे एकसे भाग देनेपर तथा एक जोड़नेपर आबाधाके भेद पाँच होते हैं । इन विकल्पोंसे आबाधा काण्डकको गुणा करनेपर स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण ४×५=२० होता है । इनमें-से प्रथम भेदमें हानि-वृद्धि नहीं होती इसलिए एकको छोड़ शेष १९ को उत्कृष्ट स्थितिमें घटानेपर जघन्य स्थिति ४५ समय होती है । अथवा जघन्य स्थिति ४५ में उन्नीस जोड़नेपर उत्कृष्ट स्थिति ६४ होती है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय आदिके सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिबन्धको लाना चाहिए । अब त्रैराशिकोंके द्वारा उसे लाते हैं—

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्मका यदि एकेन्द्रिय जीव एक कम पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागर प्रमाण जघन्य स्थितिबन्ध करता है तो चालीस

ज सा/प/अ) ३ सा ४० को २ बंध लब्धमिदु सा १/प/१) ४/७ एकेंद्रियजीवं चालीसियंगल्गेकट्टुव

जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं। मत्तमंते प्र सा ७० को २। फ ज सा १।२/प/अ) इ सा ३० को २ बंद

लब्धमेकेंद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १।१/प/अ) ३/७ मत्तमन्ते प्र।

सा ७० को २ फ। ज सा १।१/प/अ) इ सा २०। को २। बंधलब्धमेकेंद्रियजीवं वीसियंगळगे कट्टुव

जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १।१/प/अ ०) ।२/७ द्वींद्रियादिगळगेयुमी प्रकारदिंदं चालीसिय ५

तीसिय वीसियंगळ जघन्यस्थितियननुपातत्रैराशिकदिं साधिसिदपरदेंतेंदोडे सप्ततिकोटीकोटिसाग-

---

फ–ज। सा/प/अ) इ–सा ४० को २। लब्धं सा १।१/प/अ) ४/७ तस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं

भवति। तथा प्र ७० को २। फ ज सा १/प/अ) इ सा ३० को २ लब्धं तस्य तीसियानां जघन्यस्थिति-

बन्धप्रमाणं भवति सा १।१/प/अ) ३/७ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २। फ ज सा १/प/अ) इ सा २० को २ लब्धं

कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाले कर्मकी जघन्य स्थिति कितनी बाँधेगा। सो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका प्रमाण, इच्छाराशि चालीस कोड़ाकोड़ी सागर। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर लब्ध प्रमाण जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। इसी तरह जिस कर्मकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर और बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है उसका जघन्य स्थिति बन्ध एकेन्द्रिय जीव कितना करता है। यहाँ भी प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति, इच्छाराशि तीस कोड़ाकोड़ी सागर या बीस कोड़ाकोड़ी सागर। सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग

रोपमस्थितियनुळ्ळ मिथ्यात्वप्रकृतिगे द्वींद्रियजीवं जघन्यस्थितियं संख्यातचतुष्टयभक्तरूपोन-पल्यहीनपंचविंशतिसागरोपमजघन्यस्थितियनबक्कंतलानुं कट्टुगुमाळु चत्वारिंशत्सागरोपमकोटी-कोटिस्थितियनुळ्ळ चालीसियंगळगेनितं जघन्यस्थितियं कट्टुगुमेंदिन्तु त्रैराशिकमं माडि प्र। सा ७०। को २। फ। ज सा २५। / प / १। ४ इ सा ४०। को २। बंद लब्धं द्वींद्रियजीवं चालीसियं-

गळगे माळ्प जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा २५। / प / १। ४ ४ / ७ मत्तमंते प्र। सा ७०। को २ फ

सा २५। / प / १। ४ इ। सा ३०। को २। बंद लब्धं द्वींद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थिति-

बंधप्रमाणमक्कुं सा २५। / प / १। ४ ३ / ७ ॥ मत्तमंते प्र। सा ७०। को २। फ सा २५। / प / १। ४ इ। सा

२०। कोटि २। बंद लब्धं द्वींद्रियजीवं विसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणं सा २५। / प / १। ४

तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा १ / प / ə २ / ७ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २। फ सा २५ / प / १ ४

इ–सा ४० को २ लब्धं द्वीन्द्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति। सा २५ / प / १। ४ ४ / ७ पुनस्तथा

प्र–सा ७० को २। फ–ज सा २५ इ–सा ३० को २ लब्धं तस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं / प / १। ४

देनेपर एकेन्द्रियके उस कर्मकी जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण आता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्मका जघन्य स्थितिबन्ध दो इन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भाग हीन पच्चीस सागर प्रमाण होता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध दो इन्द्रियके कितना होता है तो प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन

मत्तमुमंते प्र । सा ७० । को २ । फ सा ५० / प १ । ३ इ । सा ४० । को २ । बंद लब्धं त्रींद्रियजीवं चाळीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा ५० । / प १ । ३ ४ मत्तमन्ते प्र । सा ७० । को २ । फ सा ५० । / प १ । ३ इ । सा ३० । को २ । बंद लब्ध त्रींद्रियजीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थिति प्रमाणमक्कुं । सा ५० । / प १ । ३ । ७ ३ ॥ मत्तमंते प्र । सा । ७० । को २ फ सा ५० / प १ । ३ इ । सा २० । को २ । बंद लब्धं त्रींद्रियजीवं विसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं— ५

भवति सा २५ / प १ । ४ ३ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २ फ ज सा २५ / प १ । ४ इ सा २० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा २५ / प १ । ४ ७ २ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २ । फ ज—सा ५० / प १ । ३ इ सा ४० को २ लब्धं त्रींद्रियस्य चालीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा ५० / प १ । ३ ७ ४ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २ । फ ज सा ५० / प १ । ३ इ सा ३० को २ लब्धं त्रीन्द्रियस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा ५० / प १ । ३ ७ ३ पुनस्तथा प्र—सा ७० को २ फ—ज — सा ५० / प १ । ३ इ सा १०

पच्चीस सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस, बीस आदि। फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर द्वीन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्यस्थिति बन्धका प्रमाण होता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाला मिथ्यात्व कर्म यदि त्रीन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भागहीन पचास सागर प्रमाण बँधता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट-

सा ५० । प / १ । ३ ।) २/७ मत्तमंते प्र ७० । को २ । सा । फ सा १०० । प / १ । २) इ । सा ४० । को २ ।

बंद लब्धं चतुरिंद्रियजीवं चालीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १०० । प / १ । ० ।) ४/७

मत्तमंते प्र सा ७० । कोटि २ । फ सा १०० । प / १ । २) इ ३० । को २ । सा । बंद लब्धं चतुरिंद्रिय-

जीवं तीसियंगळगे कट्टुव जघन्यस्थितिबंधप्रमाणमक्कुं सा १०० । प / १ । २ ।) ३ । ७ मत्तमन्ते प्र । सा ।

५ ७० । को २ । फ सा १०० । प / १ । २) इ । सा २० । को २ । बंद लब्ध चतुरिंद्रियजीवं विसियंगळगे

---

२० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति सा ५० । प / १ । ३) २/७ पुनस्तथा प्र–सा

७० को २ । फ ज सा १०० । प / १ । २) इ सा ४० को २ लब्धं चतुरिन्द्रियस्य चालीसियाना जघन्यस्थिति-

बन्धप्रमाणं भवति सा १०० । प / १ । २) ४/७ पुनस्तथा प्र सा ७० को २ फ ज सा १०० । प / १ २) इ–सा ३० को २ लब्धं

तस्य तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति । सा १०० । प / १ । २) ३/७ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २ । फ ज

---

१० स्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्यस्थितिबन्ध त्रीन्द्रिय जीवके कितना होता है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन पचास सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर। फलसे इच्छाको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिसे भाग देनेपर त्रीन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी

कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणं $\text{सा } १०० \Big/ \frac{\text{प}}{१।२।}$) ७ २ मत्तमन्ते प्र सा ७० । को २ । फ $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) इ सा ४० । को २ । बंद लब्धमसंज्ञिजीवं चाळीसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कु— $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) ७ ४ मत्तमन्ते प्र सा ७० । को २ । फ $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) इ सा ३० । को २ । बंद लब्धमसंज्ञिजीवं तिसियंगळ्गे कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कुं । $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) ७ ३ मत्तमंते प्र

$\text{सा } १०० \Big/ \frac{\text{प}}{१ २}$) इ सा २० को २ लब्धं तस्य वीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\text{सा } १०० \Big/ \frac{\text{प}}{१।२}$) ७ २ ५

पुनस्तथा प्र सा ७० को २ । फ ज $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) इ सा ४० को २ लब्धं असंज्ञिनः चालीसियानां जघन्य-

स्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) ७ ४ पुनस्तथा प्र–सा ७० को २ । फ–ज $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) इ सा

३० को २ लब्धं असंज्ञिनः तीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं भवति $\text{सा } १००० \Big/ \frac{\text{प}}{१}$) ७ ३ पुनस्तथा प्र-सा

सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्वकर्मका जघन्यस्थितिबन्ध यदि चतुरिन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भागहीन सौ सागर प्रमाण होता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध चतुरिन्द्रियके कितना होता है इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फल-राशि पल्यके संख्यातवें भागहीन सौ सागर, इच्छाराशि चालीस, तीस या बीस कोड़ाकोड़ी सागर। फलसे इच्छा राशिको गुणा करके प्रमाण राशिसे भाग देनेपर चतुरिन्द्रिय जीवके उस-उस कर्मकी जघन्य स्थितिका प्रमाण आता है। तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति-वाला मिथ्यात्वकर्म यदि असंज्ञि पञ्चेन्द्रियके पल्यके संख्यातवें भागहीन एक हजार सागर प्रमाण जघन्य स्थितिको लेकर बँधता है तो जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस, तीस या बीस सागर प्रमाण है उनका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञीके कितना होता है ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि पल्यके संख्यातवें भागहीन हजार

सा ७० । को २ । फ सा १००० । इ सा २० । को २ । बंद लब्धमसंज्ञिजीवं विसियंगळ्गो

कट्टुव जघन्यस्थितिप्रमाणमक्कुं सा १००० । उक्तार्थं संदृष्टियिदु ।

ए० चाळी । ज सा २५ ।	द्वी० चाळी । ज सा २५ ।	त्री० चा० । ज सा ५० ।
ति सि ज । सा १ ।	ति सि ज सा २५	ती सि । ज सा ५०
वि सि ज । सा १ ।	वि सि । ज । सा २५	वि सि । ज । सा ५०

चतु० चा० । ज सा १००	असंज्ञि चा० । ज सा १०००
ति सि ज । सा १००	ती सि । ज । सा १०००
वि सि । ज । सा १००	वि सि । ज सा १०००

७० को २ । फ ज सा १००० इ सा २० लब्धं असंज्ञिनः बीसियानां जघन्यस्थितिबन्धप्रमाणं

भवति सा १००० २ एवं शेषाष्टादशषोडशपञ्चदशचतुर्दशद्वादशदशकोटीसागरोपमस्थितिकानां अपि

५ सागर, इच्छाराशि चालीस, बीस या तीस कोड़ाकोड़ी सागर सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाण राशिसे भाग देनेपर असंज्ञी जीवके उस-उस कर्मकी जघन्य स्थितिका

शेषाष्टादश षोडश पंचदश चतुर्दश द्वादश दशकोटीकोटिसागरोपम स्थितिय प्रकृतिगळमी प्रकारदिंदमेकेंद्रियादिजीवंगळ्गे त्रैराशिकविधानदिंदं जघन्यस्थितिबंधं साधिसल्पडुवुदु । अनंतरमी एकेंद्रियादिगळ मिथ्यात्वादि प्रकृतिगळ्गे पेळ्द जघन्योत्कृष्टस्थितिबंधगळनरिवु तरल्पट्ट स्थितिविकल्पंगळं प्रत्येकं स्थापिसि

एके	द्वी	त्री	चतु	असं	संज्ञि
प	प	प	प	प	—
अ	१।४	१।३	१।२	१।१	१प ११

एकेंद्रियंगल बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्तंगळ उत्कृष्टजघन्यमं द्वींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं त्रींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं चतुरिंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यंगळुमं मिथ्यात्वादिप्रकृतिस्थितिबंधविकल्पंगळोळु विभागिसि तोरिदपरु :—

बासूप बासूअ वरट्ठिदीओ सूबाअ सूबापजहण्णकालो ।
बीबीवरो बीविजहण्णकालो सेसाणमेवं वयणीयमेदं ॥१४८॥

बा । बादरश्च । सू । सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ तयोः प । पर्य्याप्तकौ बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकौ । बा । बादरश्च । सू । सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ तयोरपर्य्याप्तकौ बादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकौ । बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तकबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तकाः । तेषां वरस्थितयः तास्तथोक्ताः ॥

सू । सूक्ष्मश्च बा बादरश्च सूक्ष्मबादरौ । तयोरपर्य्याप्तकौ सूक्ष्मबादरापर्य्याप्तकौ । सू । सूक्ष्मश्च बा बादरश्च सूक्ष्मबादरौ । तयोः प पर्य्याप्तकौ सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकौ । सूक्ष्मबादराऽ-

---

साधयेत् ॥१४७॥ उक्तैकेन्द्रियादिस्थितिविकल्पान् संस्थाप्य—

एकें	द्वी	त्री	चतु	असं	संज्ञि
प	प	प	प	प	१—
अ	१।४	१।३	१।२	१।१	—
					प १ १

तेषु बादरसूक्ष्मैकद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञिनां पर्याप्तापर्याप्तभेदेन चतुर्दशानां उत्कृष्टजघन्यस्थितिबन्धौ विभज्य दर्शयति—

बा-बादरश्च सू-सूक्ष्मश्च बादरसूक्ष्मौ, तयोः प-पर्याप्तकौ बादरसूक्ष्मपर्याप्तकौ । बा-बादरश्च सू-सूक्ष्मश्च

प्रमाण आता है । इसी प्रकार जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अठारह, सोलह, पन्द्रह, चौदह, बारह और दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है उनके भी जघन्यस्थितिबन्धका प्रमाण लाना चाहिए ॥१४७॥

उक्त एकेन्द्रिय आदिके स्थितिभेदोंको स्थापित करके उनमें बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी इनके पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे चौदह जीव समासोंमें उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिबन्धका विभाग करके दर्शाते हैं—

'बा' अर्थात् बादर, 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, ये दोनों 'प' अर्थात् पर्याप्तक—बादर पर्याप्तक, सूक्ष्मपर्याप्तक । 'बा' अर्थात् बादर, 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, ये दोनों अपर्याप्तक—बादर अपर्याप्तक,

पर्य्याप्तकौ च सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकौ च सूक्ष्मबादराऽपर्य्याप्तकसूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकास्तेषां जघन्यकालः सूक्ष्मबादरापर्य्याप्तक सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तकजघन्यकालो जघन्यस्थितिरित्यर्थः ॥

बी द्वींद्रियपर्य्याप्तश्च बी द्वींद्रियापर्य्याप्तश्च द्वींद्रियपर्य्याप्तद्वींद्रियापर्य्याप्तौ । तयोर्व्वरा बी द्वींद्रियापर्य्याप्तश्च । बी द्वींद्रियपर्य्याप्तश्च द्वींद्रियापर्य्याप्तद्वींद्रियपर्य्याप्तौ । तयोर्ज्जघन्यकालः द्वींद्रियापर्य्याप्तद्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यकालः । शेषाणामेवं वचनीयमेतत् ।

बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं । बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं । सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं । बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं । सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं । बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंबितेंदु स्थितिविकल्पंगळेकेंद्रियक्कें मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्व-स्थितिविकल्पंगळोळप्पुवु । द्वींद्रियपर्य्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबंधमुं । द्वींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं । द्वींद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं । द्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंबितु नाल्कुं स्थितिबंध-विकल्पंगळु द्वींद्रियक्कें मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळोळप्पुवु । शेषत्रींद्रियादिगळ्ग-

---

बादरसूक्ष्मौ तयोः, अ-पर्याप्तकौ बादरसूक्ष्मापर्याप्तकौ । बादरसूक्ष्मपर्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मापर्याप्तकौ च बादरसूक्ष्मपर्याप्तक-बादरसूक्ष्मापर्याप्तकाः तेषां वरस्थितयः तास्तथोक्ताः । सू-सूक्ष्मश्च बा-बादरश्च सूक्ष्म-बादरौ तयोः अ-अपर्याप्तकौ सूक्ष्मबादरापर्याप्तकौ । सू-सूक्ष्मश्च बा-बादरश्च बा-बादरश्च सूक्ष्मबादरौ तयोः प-पर्याप्तकौ सूक्ष्मबादरपर्याप्तकौ । सूक्ष्मबादरापर्याप्तकौ च सूक्ष्मबादरापर्याप्तकौ च सूक्ष्मबादरापर्याप्तक-सूक्ष्म-बादरपर्याप्तकाः तेषां जघन्यकालः सूक्ष्मबादरापर्याप्तकसूक्ष्मबादरपर्याप्तकजघन्यकालो जघन्यस्थितिरित्यर्थः । अनेन बादरपर्याप्तोत्कृष्टः सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टः बादरपर्याप्तकोत्कृष्टः सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टः, सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यः बादरापर्याप्तकजघन्यः सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यः बादरपर्याप्तजघन्यश्चेत्येकेन्द्रियस्य अष्टौ स्थितिबन्धविकल्पा उक्ता भवन्ति । बी-द्वीन्द्रियपर्याप्तकश्च बी-द्वीन्द्रियापर्याप्तकश्च द्वीन्द्रियपर्याप्तकद्वीन्द्रियापर्याप्तकौ तयोर्बरः, बी-द्वीन्द्रियापर्याप्तकश्च बि-द्वीन्द्रियपर्याप्तकश्च द्वीन्द्रियापर्याप्तकद्वीन्द्रियपर्याप्तकौ तयोः जघन्यकालः द्वीन्द्रिया-पर्याप्तकद्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यकालः । अनेन द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टः द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टः द्वीन्द्रियापर्याप्तक-जघन्यः द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यश्चेति द्वीन्द्रियस्य चत्वारः स्थितिबन्धविकल्पा उक्ता भवन्ति । 'सेसाणमेवं वयणीयमेदं' एवं द्वीन्द्रियोक्तरीत्या एतत्पर्याप्तकापर्याप्तकाभ्यां उत्कृष्टजघन्यभेदेन निजनिजविकल्पचतुष्टयं शेषाणां

सूक्ष्म अपर्याप्तक । इनकी उत्कृष्ट स्थितियाँ । तथा 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, 'बा' अर्थात् बादर ये दोनों 'अ' अर्थात् अपर्याप्तक । 'सू' अर्थात् सूक्ष्म, 'बा' अर्थात् बादर ये दोनों 'प' अर्थात् पर्याप्तक । इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, बादर अपर्याप्तक और सूक्ष्म पर्याप्तक बादर पर्याप्तककी जघन्य स्थिति । इस प्रकार १ बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, २ सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, ३ बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, ४ सूक्ष्म अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, ५ सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, ६ बादर अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, ७ सूक्ष्म पर्याप्तककी जघन्य स्थिति, ८ बादर पर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये आठ एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके विकल्प कहे हैं । 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थिति । 'बी' अर्थात् द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, 'बि' अर्थात् द्वीन्द्रिय पर्याप्तक इन दोनोंका जघन्य काल । इससे द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक-की जघन्यस्थिति और द्वीन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थिति इस प्रकार द्वीन्द्रियके चार स्थिति-

मिन्ते नाल्कुं नाल्कुं स्थितिबंधविकल्पंगळु तंतम्म मिथ्यात्वप्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळोळप्पु-वेंदिन्ती मिथ्यात्वप्रकृतिस्थितिबंधं पेळल्पट्टुवु। अवें तेंदोडे त्रींद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। त्रींद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। त्रींद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। त्रींद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितिवु नाल्कुं ४, चतुरिंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। चतुरिंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं। चतुरिंद्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं। चतुरिंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितिवु ५
नाल्कु ४, असंज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं असंज्ञपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं असंज्ञपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमसंज्ञिपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदितिवु नाल्कु ४, संज्ञिपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं संज्ञपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधमुं संज्ञपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुं संज्ञिपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधमुमेंदि-

---

त्रीन्द्रियादिसंज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्यन्तानामपि वचनीयं—कथनीयम्। तद्यथा—

त्रीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टः त्रीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टः त्रीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यः त्रीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यश्चेति त्रीन्द्रियस्य चत्वारः। चतुरिन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टः चतुरिन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टः चतुरिन्द्रियापर्याप्तकजघन्यः चतुरिन्द्रियपर्याप्तकजघन्यश्चेति चतुरिन्द्रियस्य चत्वारः। असंज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टः असंज्ञपर्याप्तकोत्कृष्टः असंज्ञपर्याप्तकजघन्यः असंज्ञिपर्याप्तकजघन्यश्चेति असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चत्वारः। संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टः, संज्ञपर्याप्तकोत्कृष्टः, संज्ञपर्याप्तकजघन्यः, संज्ञिपर्याप्तकजघन्यश्चेति संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य चत्वारः। अमीषु अष्टाविंशतिस्थितिबन्धविकल्पेषु अन्त्यानां चतुर्णां पृथक्कथनमस्ति इति आदौ आद्यानामायाममानेतुं अन्तरालविकल्पान् त्रैराशिकैर्विभजति—

तत्रैकेन्द्रियस्य यथा मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा एकसागरोपममात्री सा १। जघन्या च रूपोनपल्यासंख्येय-

---

बन्धके विकल्प कहे हैं। इस प्रकार द्वीन्द्रियकी कही उक्त रीतिसे पर्याप्तक, अपर्याप्तक और उनके उत्कृष्ट जघन्यके भेदसे चार विकल्प शेष त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञिपञ्चेन्द्रिय तथा संज्ञिपञ्चेन्द्रियके कहना चाहिए। जो इस प्रकार हैं—त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, त्रीन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, त्रीन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थिति इस प्रकार त्रीन्द्रियके चार विकल्प हैं। चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य स्थिति, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्यस्थिति इस प्रकार चतुरिन्द्रियके चार विकल्प कर्मोंकी स्थितिके हैं। असंज्ञि पर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, असंज्ञि अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, असंज्ञी अपर्याप्तककी जघन्य स्थिति, असंज्ञी पर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये चार विकल्प असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी कर्मस्थितिके हैं। संज्ञीपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, संज्ञी अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थिति, संज्ञी अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति, संज्ञीपर्याप्तककी जघन्य स्थिति ये चार विकल्प संज्ञी पञ्चेन्द्रियके हैं। स्थितिबन्धके इन अठाईस विकल्पोंमें अन्तिम चारका पृथक् कथन है। इसलिए आदिमें शेष चौबीस भेदोंकी स्थितिका आयाम लानेके लिए अन्तराल भेदोंका त्रैराशिकोंके द्वारा विभाजन करते हैं—

उनमें-से एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है और जघन्यस्थिति एक कम पल्यके असंख्यातवें भागसे हीन एक सागर प्रमाण है। सो करणसूत्रके अनुसार आदि जघन्यस्थितिको अन्त उत्कृष्टस्थितिमें-से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उसको

वितिवु नाल्कु ४ ई पेळल्पट्ट त्रींद्रियादिगळ नाल्कुं नाल्कुं स्थितिबंधविकल्पंगळु तंतम्म मिथ्यात्व-प्रकृतिसर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळोळप्पुवल्लि बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिंदमेनितु स्थितिविकल्पंगळु नडदु येकेंद्रियसूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिंदमेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळु नडवु

५ भागोनतदुत्कृष्टमात्री सा १ $\left(\frac{\text{आ}}{\text{प}}\right)$ आदी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे' इत्यानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पा

$\frac{\text{आ}}{\text{प}}$

एतावन्तः प। तत्र एकद्विचतुश्चतुर्दशाष्टाविंशत्यष्टानवतिषण्णवत्यग्रशतशलाकानां मिलितत्वात् त्रिचत्वारिंशदग्र-

$\frac{\text{आ}}{\text{प}}$

त्रिशतसंख्यानां प्र श ३४३ यद्येतावन्तः फ बि प तदा षण्णवत्यग्रशतशलाकानां इ श १९६ कति ? इति

$\frac{\text{आ}}{\text{प}}$

बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तं विकल्पा लब्धा भवन्ति प १९६

$\frac{\text{आ}}{\text{प}}$ ३४३

एतेषु चरमस्य सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयामः रूपोनैरेतावन्मात्रसमयैर्न्यूनबादरपर्याप्तकोत्कृष्ट-

१० एकका भाग देना, क्योंकि एक-एक स्थितिके भेदमें एक-एक समयकी वृद्धि होती है, अतः वृद्धिका प्रमाण एक है। एकका भाग देनेपर उतने ही रहे। उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेद पल्यके असंख्यातवें भाग होते हैं। इससे आगेकी ही गाथामें उसका अर्थ करते हुए एकेन्द्रिय जीवकी स्थितिके अन्तरालमें अंकसदृष्टिकी अपेक्षा एक, दो, चार, चौदह, अठाईस, अठानवे, एक सौ छियानवे शलाका कहेंगे। उन सबका १५ जोड़ तीन सौ तेंतालीस होता है। एकेन्द्रिय जीवके जो पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिके भेद कहे हैं, उनमें तीन सौ तेंतालीसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना एक शलाकामें स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। इस प्रमाणको अपने-अपने शलाका प्रमाण-से गुणा करनेपर अपने-अपने स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। उसे त्रैराशिक द्वारा बतलाते हैं—

२० यदि तीन सौ तेंतालीस शलाकाओंमें एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं तो एक सौ छियानवे शलाकाओंमें कितने होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण पल्यके असंख्यातवें भाग। इच्छाराशि एक सौ छियानवे। फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका २५ जो प्रमाण आया उतने बादर पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्मपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। अर्थात् बादर पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध और सूक्ष्म पर्याप्तकका उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तरालमें जितने स्थितिके भेद होते हैं उनका यह प्रमाण है। तथा इस अन्तरालकी शलाका एक सौ छियानवे हैं। जितना यहाँ अन्तरालके स्थितिके भेदोंका प्रमाण कहा, उसमें एक कम करके उतने समय बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट ३० स्थिति एक सागरमें-से घटानेपर सूक्ष्मपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका

बादरैकेंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिदमेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळं नडदु । सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कष्टस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डेनितुस्थितिविकल्पंगळं नडदु

स्थित्यायाममात्रो भवति सा (प १९६ / अ ३४३) पुनः प्र–श ३४३ फ बि प इ–श २८ । इति सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टा- (अ)

नंतरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २८ एतेषु चरमस्य ५
अ ३४३

बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयामः एतावद्भिरेव समयैः न्यूनसूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो

भवति सा (प २२४ / अ ३४३) पुनः प्र–श ३४३ । फ बि प इ श ४ इति बादरापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि (अ)

कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प ४ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मापर्याप्तको-
अ ३४३

त्कृष्टस्थितिबन्धस्य आयाम एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनबादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति । सा (प २२८ / अ ३४३)

पुनः प्र—श ३४३ । फ बि प इ श १ इति सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा सूक्ष्मा- १०
(अ)

पर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवति प १ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थिति-
अ ३४३

बन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनसूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा (प २२९ / अ ३४३) पुनः प्र–श

प्रमाण, इच्छाराशि अठाईस शलाका। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्टके अनन्तरवर्ती स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन स्थिति भेदों- १५
के प्रमाणको सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट-स्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियकी मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि चार शलाका। सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया वह बादर अपर्याप्तक-के उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध २०
पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदोंका जितना प्रमाण है उतने समय बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर सूक्ष्म अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छा-

सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिविकल्पमुमन्ते सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिविकल्पं मोदल्गो-

३४३ । फ बि प इ श २ इति सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तकजघन्य-
ə
स्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प २ एतेषु चरमस्य बादरापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः
ə ३४३
एतावद्भिरेव समयैः न्यूनसूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति । सा (०/प २३१/ə ३४३) पुनः प्र—श

५ ३४३ । फ बि प इ श १४ इति बादरापर्याप्तजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थिति-
ə
बन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति—प १४ एतेषु चरमस्य सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एता-
ə ३४३
वद्भिरेव समयैर्न्यूनबादरापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रो भवति सा (०/प २४५/ə ३४३) पुनः प्र श ३४३ फ बि प
ə
इ श ९८ इति सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्त-
विकल्पा लब्धा भवन्ति प ९८ एतेषु चरमस्य बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव
ə ३४३

१० राशि एक शलाका। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्टसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेद प्रमाण समयोंको सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-से घटानेपर सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी
१५ उत्कृष्ट स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि दो शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्यस्थितिबन्धसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदप्रमाण समयोंको सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिमें घटानेपर बादर अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस, फलराशि एकेन्द्रियके
२० मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि शलाका चौदह। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धके भेदसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद हैं। इन भेद प्रमाण समयोंको बादर अपर्याप्तके जघन्यस्थितिबन्धमें घटानेपर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। प्रमाणराशि तीन सौ तेंतालीस शलाका, फलराशि एकेन्द्रियके
२५ मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेद, इच्छाराशि शलाका अठानवे। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने सूक्ष्म अपर्याप्तके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं।

डेनितु स्थितिविकल्पंगळं नडवु बादरापर्य्याप्त जघन्यस्थितिबंधविकल्पमुमन्ते । बादरैकेंद्रियपर्य्याप्त-

समयैर्न्यूनसूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रः—सा $\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)$ अपवर्तितः स चेदृश एव भवति सा $\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)$

$\left(\frac{\text{प ३४३}}{\text{अ ३४३}}\right)$

तथा एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वाबाधा आवल्यसंख्येयभागाधिकसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनत-

$\left(\frac{\text{अ}}{\text{२१}}\right)$

न्मात्री २१ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पा एतावन्तः २ एतानेव उक्तसप्तत्रैराशिकानां स्थितिबन्धविकल्पान्

$\left(\frac{\text{अ}}{\text{अ}}\right)$

अपहाय फलराशीन् कृत्वा तत्तल्लब्धं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तदष्टविकल्पाबाधायामानां प्रथमे ५
रूपोनतल्लब्धमात्रान् परेषु संपूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय परम्परमाबाधायामं साधयेत् ।
तत्संदृष्टि :—

इन भेदप्रमाण समयोंको सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्यस्थितिबन्धमें-से घटानेपर बादर पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध होता है। इस प्रकार एकेन्द्रियके सूक्ष्म बादरके पर्याप्त-अपर्याप्त जीव समासोंके जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके भेदसे आठ स्थानोंमें स्थितिबन्धका प्रमाण १०
कहा। इन आठोंमें सात अन्तराल होनेसे अन्तरालोंमें स्थितिके भेदोंका प्रमाण जाननेके लिए सात त्रैराशिक किये हैं।

आगे आबाधाकालका प्रमाण दिखाते हैं—

एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके असंख्यातव भागसे अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त मात्र है। और जघन्य आबाधा आधिक्यके बिना केवल १५
अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उत्कृष्टमेंसे जघन्यको घटाकर एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर एकेन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण आता है। जैसे स्थितिबन्धके कथनमें आठ स्थानोंके सात अन्तरालोंमें भेदोंका प्रमाण लानेके लिए सात त्रैराशिक किये वैसे ही आबाधाका प्रमाण लानेके लिए भी करना चाहिए। यहाँ प्रमाणराशि तो सर्वत्र तीन सौ तेंतालीस शलाका प्रमाण है। फलराशिमें वहाँ स्थितिके भेदोंका प्रमाण २०
कहा था यहाँ एकेन्द्रिय जीवकी मिथ्यात्वकी आबाधाके जघन्यसे लेकर उत्कृष्टपर्यन्त भेदोंका जितना प्रमाण उतना लेना। तथा इच्छाराशि क्रमसे वही एक सौ छियानबे, अठाईस, चार, एक, दो, चौदह और अठानबें शलाका प्रमाण लेना। सर्वत्र फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो अपने-अपने अन्तरालोंमें आबाधाके भेदोंका प्रमाण है। सो प्रथम त्रैराशिकमें जितने भेदोंका प्रमाण आया उनमें-से एक घटानेपर २५
जितना रहे उतना समय बादर पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधामें-से घटानेपर सूक्ष्म पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण होता है। उसमें-से दूसरे त्रैराशिकमें जितने भेदोंका प्रमाण आवे उतने समय घटानेपर बादर अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण होता है। इसी प्रकार तीसरे आदि त्रैराशिकमें भी जितने भेदोंका प्रमाण आवे उतने समय घटानेपर उस-उस स्थानमें जो स्थितिबन्धका ३०

जघन्यस्थितिबंधविकल्प मोवल्गो डेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळं नडेदु सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्य-

वा प उ	सू प उ	बा अ उ	सू अ उ	सू अ ज	वा अ ज	सू प ज	वा प ज
२	२	२	२	२	२	२	२
०	० २१	० २१	० २१	० २१	० २१	० २१	०
२१	२ १९६	२ २२४	२ २२८	२ २२९	२ २३१	२ २४५	२ २१
५	० ३४३	० ३४३	० ३४३	० ३४३	० ३४३	० ३४३	० ३४३
							३४३

अथ द्वीन्द्रियस्य यथा तन्मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा पञ्चविंशतिसागरोपममात्री सा २५ जघन्या च चतुः-संख्यातभक्तरूपोनपल्योनतदुत्कृष्टमात्री सा २५ $\left(\frac{\text{प}}{\text{१ १ १ १}}\right)$ तथानीतसमयोत्तरविकल्पा एतावन्तः प १ १ १ १ तत्र

एकद्वित्रिचतुःशलाकानां मिलित्वा सप्तसंख्यानां प्र–श ७ यद्येतावन्त :—

फ–वि प १ १ १ १ तदा चतसृणां शलाकानां इ श ४ कति ? इति द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा

द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तं विकल्पा लब्धा भवति प १ १ १ १ ७ ४ एतेषु चरमस्य द्वीन्द्रिया-

पर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्यायामो रूपोनैरेतावद्भिः समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति

प्रमाण कहा उस-उस सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण जानना। इस तरह एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्ध और आबाधाके भेदोंका तथा कालका प्रमाण जानना। अब दो-इन्द्रिय जीवके कहते हैं—

दो-इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागर है। जघन्य स्थिति चार बार संख्यातसे भाजित एक हीन पल्यके प्रमाणको उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतनी है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर जो शेष रहे उसमें एकसे भाग देकर तथा एक जोड़नेपर जो प्रमाण रहे उतने द्वीन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेद होते हैं। दो-इन्द्रियके चार स्थानोंके तीन अन्तरालोंमें एक, दो और चार शलाका प्रमाण हैं। इनका जोड़ सात होता है। यदि सात शलाकाओंमें दो-इन्द्रिय जीवके जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट-स्थितिपर्यन्त मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद चार बार संख्यातसे भाजित पल्य प्रमाण होते हैं तो चार शलाकाओंमें कितने भेद होंगे। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि शलाका सात, फलराशि दोइन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि चार शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध आया उतने द्वीन्द्रिय पर्याप्तक-के उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदोंमें-से एक घटानेपर जो शेष रहे उतने समय द्वीद्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागरमें-से घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका

१. एतस्याः संदृष्टेराकारः श्रीपण्डितटोडरमल्लजीकैः, अपरथैव प्रतिपादितः तत्र रचनायां वैलक्षण्येऽपि नार्थे वैलक्षण्यं। स चाकारोऽत्र १४९ तम संख्यांकितगाथायाष्टिपण्याः आबाधारचनेत्यंशे, कर्मकाण्डसंदृष्टौ च लिखितः।

स्थितिबंधविकल्पमुमन्ते। सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पं मोवल्गों डेनितु स्थितिबंध-

सा २५ / प १ १ १ १) ४ पुनः प्र–श ७ फ बि प १ १ १ १ इ श १ इति द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादि कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प १ १ १ १ ७ एतेषु चरमस्य द्वीन्द्रिया-

पर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति

सा २५ / प १ १ १ १) ५ पुनः प्र–श ७ फ–बि प १ १ १ १ इ श २ इति द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यानन्तरस्थिति- ५

बन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पा लब्धा भवन्ति प १ १ १ १ ७ एतेषु चरमस्य

द्वीन्द्रियपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायाम एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनद्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यस्थित्यायाममात्रः

सा २५ / प १ १ १ १) ७ स च ईदृश एव भवति सा २५ / प १ १ १ १) तथा द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा

प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेद, इच्छाराशि एक शलाका। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देने- १०
पर जो लब्धराशिका प्रमाण आवे उतने दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अन्तर भेदसे लगाकर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेद प्रमाण समयोंको दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें-से घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थितिका प्रमाण होता है। पुनः प्रमाणराशि सात शलाका, फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वके सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण, इच्छाराशि दो शलाका। १५
फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतने दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लगाकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तक-के जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद होते हैं। इन भेदप्रमाण समयोंको दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्धमें घटानेपर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। आगे आबाधाका प्रमाण कहते हैं। २०

दो-इन्द्रिय जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधा चार बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त पच्चीस प्रमाण है। जघन्य आबाधा उस अधिक बिना केवल पच्चीस अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसमें एक जोड़नेपर आबाधाके भेदोंका प्रमाण होता है। यहाँ भी पूर्वकी तरह तीन त्रैराशिक करना चाहिए। सो प्रमाणराशि और २५
इच्छाराशि तो स्थितिबन्धके कथनके समान ही जानना। फलराशि दो-इन्द्रियके मिथ्यात्वकी

---

१. ब रूपोनातीतविकल्पमात्रसमयैः।

विकल्पंगळं नडेदु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पं पुट्टिदुर्दे विंतु पर्य्यनुयोगमागुत्तं

चतुःसंख्यातभक्तावल्यधिकपञ्चविंशतिगुणितसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनतन्मात्री
१ १ १ १
२ । १ २५

२ १ २५ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पा एतावन्तः २ एतानेव उक्तत्रैराशिकानां स्थितिबन्धविकल्पा-
१ १ १ १
नपहाय फलराशीन् कृत्वा तत्तल्लब्धं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तच्चतुर्विकल्पाबाधायामानां प्रथमे रूपोनलब्धमात्रान् परेषु संपूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय तं तमाबाधायामं साधयेत्, एवमेव
५ त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा पञ्चाशत्सागरोपममात्री सा ५० जघन्या च त्रिसंख्यातभक्तरूपोनपल्यो-
नतदुत्कृष्टमात्री सा ५०) तथानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पानिमान् प तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा
१ । ३
प
१ । ३

त्रिसंख्यातभक्तावल्यधिकपञ्चाशद्गुणितसंख्यातावलिमात्री २ जघन्या च तदाधिक्योनतन्मात्री २ १ ५०
१ ३
२ १ ५०

तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पानिमान् १ पुनः चतुरिन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिरुत्कृष्टा शतसागरोपम-
२
१ । ३

आबाधाके जितने भेद हैं उतनी जानना। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर
१० जो-जो प्रमाण आवे उतने आबाधाके भेदोंका प्रमाण जानना। सो प्रथम त्रैराशिकमें तो जितना भेदोंका प्रमाण हो उसमें एक घटानेपर जो रहे उतने समय दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थिति सम्बन्धी उत्कृष्ट आबाधामें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका आबाधाकाल होता है। इसमें-से दूसरे त्रैराशिकमें जितने भेद आयें उतने समय घटानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी जघन्यस्थिति सम्बन्धी आबाधाका
१५ काल होता है। इसमें-से तीसरे त्रैराशिकमें जितने भेद आयें उतने समय घटानेपर दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्ध सम्बन्धी आबाधाकालका प्रमाण होता है।

दो-इन्द्रियके समान ही त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियका कथन जानना। इतना विशेष है कि यहाँ स्थिति और आबाधाका प्रमाण भिन्न-भिन्न है अतः फलराशि भिन्न है। आगे उसका कथन करते हैं—

२० त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पचास सागर है। जघन्यस्थिति उत्कृष्टस्थितिमें-से तीन बार संख्यातसे भाजित एक कम पल्यको घटानेपर जो शेष रहे उतनी है। उत्कृष्ट-स्थितिमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर त्रीन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण तीन बार संख्यातसे भाजित पल्यप्रमाण होता है। यही त्रीन्द्रियके स्थितिबन्धका कथन करनेमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि है। तथा
२५ त्रीन्द्रियके उत्कृष्ट मिथ्यात्व स्थितिकी आबाधा तीन बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त पचास है। और जघन्य आबाधा केवल पचास अन्तर्मुहूर्त

विरलु तन्मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळुमनवराबाधाविकल्पंगळुमं पेळल्वेडियुमिन्ते द्वींद्रियादिगळ

मात्री सा १०० जघन्या च द्विसंख्यातभक्तरूपोनपल्योनतदुत्कृष्टमात्री सा १०० $\left(\frac{\text{—}^{\text{प}}_{\text{१}}}{\text{१ । २}}\right)$ तथानीतसमयोत्तर-

तद्विकल्पानिमान् $\frac{\text{प}}{\text{१ । २}}$ तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा द्विसंख्यातभक्तावल्यधिकशतगुणितसंख्यातावलिमात्री

$\frac{\text{२}}{\text{१ । २}}$ जघन्या च तदाधिक्योनोत्कृष्टमात्री $\frac{\text{२ १ १००}}{\text{२ १ । १००}}$ तथानीतसमयोत्तरतद्विकल्पानिमान् $\frac{\text{२}}{\text{१ । २}}$

पुनः असंज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा सहस्रसागरोपममात्री सा १००० जघन्या च रूपोनपल्य- ५

संख्येयभागोनतदुत्कृष्टमात्री सा १००० $\left(\frac{\text{—}^{\text{प}}_{\text{१}}}{}\right)$ तथानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पानिमान् $\frac{\text{प}}{\text{१}}$ तन्मिथ्यात्वा-

बाधा उत्कृष्टा आवलिसंख्येयभागाधिकसहस्रगुणितसंख्यातावलिमात्री $\frac{\text{२}}{\text{१}}$ जघन्या च तदाधिक्योनतदु-

$\frac{\text{२ १ । १०००}}{}$

त्कृष्टमात्री $\frac{\text{२ १ १०००}}{}$ तथानीतसमयोत्तराबाधाविकल्पान् इमांश्च $\frac{\text{२}}{\text{१}}$ द्वीन्द्रियोक्तरीत्या त्रैराशिकत्रयस्य

पृथक्-पृथक् फलराशीन् कृत्वा तत्रस्थितिविकल्पलब्धानि तत् तत्त्रिषु अन्तरालेषु संस्थाप्य आबाधाविकल्प-

है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़ने- १०
पर त्रीन्द्रियकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। त्रीन्द्रियके आबाधाके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें यही फलराशि है। चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति सौ सागर है। जघन्यस्थिति इस उत्कृष्ट स्थितिमें-से दो बार संख्यातसे भाजित पल्यको घटाने- पर जो प्रमाण शेष रहे उतनी है। उत्कृष्ट स्थितिमें-से जघन्यको घटाकर उसमें एकसे भाग देकर जो प्रमाण रहे उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका १५
प्रमाण दो बार संख्यातसे भाजित पल्य प्रमाण होता है। यही चतुरिन्द्रियके स्थितिबन्धके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि जानना। तथा चतुरिन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट- स्थितिकी आबाधा दो बार संख्यातसे भाजित आवली अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त सौ है। और जघन्य आबाधा केवल सौ अन्तर्मुहूर्त है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्य- को घटाकर एकका भाग देकर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर चतुरिन्द्रियके आबाधाके २०
सब भेदोंका प्रमाण होता है। यही चतुरिन्द्रियके आबाधाके कथनमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशिका प्रमाण है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति एक हजार सागर है। इसमें एकहीन पल्यके संख्यातवें भागको घटानेपर जघन्यस्थिति होती है। उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाजित करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर असंज्ञीके मिथ्यात्वकी स्थितिके सब भेदोंका प्रमाण एक बार संख्यातसे भाजित पल्य प्रमाण है। यही २५

पर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु नडदु तदुत्कृष्टस्थितिबंध विकल्पंगळुमवराबाधाविकल्पंगळं पुट्टगुमेंदोडे पेळल्वेडि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु :—

मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं च संखगुणिदकमा ।
सव्वजुदी संखगुणा हेट्ठुवरिं संखगुणमसण्णित्ति ॥१४९॥

मध्ये स्तोकशलाकाः अधः उपरि च संख्यगुणितक्रमाः । सर्व्वयुतिः संख्यगुणा अध उपरि संख्यगुणमसंज्ञिपर्य्यंतं ॥

बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु तज्जघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिर्द्दैकेंद्रियंगळ मिथ्यात्वकर्म्मप्रकृतिसर्व्वस्थितिविकल्पंगळोळु मध्यवर्तिगळप्प सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यन्तमिर्द्द स्थितिबंधविकल्पंगळं मध्यमेंबुदा मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळोळितोळवनितमोंदु शलाकेयं माडिदुदिदु सर्व्वतः स्तोकशलाका संख्येयक्कुं । अधः आ मध्यशलाकासंख्येयिंद केळगण सूक्ष्मापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पानंतरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु बादरापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंत-

---

लब्धानि तेषामधः संस्थाप्य प्रागुक्ततत्तच्चतुश्चतुर्विकल्पानां प्रथमप्रथमस्य स्थित्यायामाबाधायामयोः रूपोनतत्तल्लब्धमात्रान् द्वितीयतृतीयस्य तयोः सम्पूर्णतत्तल्लब्धमात्रानेव समयानपनीयापनीय परस्परं स्थित्यायाममाबाधायामं च साधयेत् ॥१४८॥ एतत्सर्वं मनसि धृत्वाग्रतनसूत्रमाह—

मज्झे थोवसलागा—बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तेषु एकेन्द्रियस्य मिथ्यात्वसर्वस्थितिविकल्पेषु मध्ये ये सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मापर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तं मध्यविकल्पाः स्तोकाः ते एका शलाका ज्ञातव्या ∧१∧ हेट्ठा सूक्ष्मापर्याप्तक-

---

असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी स्थितिके कथन सम्बन्धी तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि होता है । तथा असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा आवलीके संख्यातवें भागसे अधिक संख्यात आवली प्रमाण अन्तर्मुहूर्त हजार है । और जघन्य आबाधा केवल हजार अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर एकसे भाग देकर जो प्रमाण हो उसमें एक जोड़नेपर असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके मिथ्यात्वकी आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है । वही असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी आबाधाके कथनमें तीनों त्रैराशिकोंमें फलराशि जानना । इतना विशेष कथन है शेष सब कथन दो-इन्द्रियके कथनकी तरह जानना ॥१४८॥

यह सब कथन मनमें रखकर आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

मध्यमें स्तोक शलाका है अर्थात् बादर पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तककी जघन्यस्थितिबन्ध पर्यन्त जो एकेन्द्रियके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके विकल्प हैं उनमें-से सूक्ष्म अपर्याप्तकके उत्कृष्टस्थितिबन्धसे लेकर सूक्ष्म अपर्याप्तककी जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त विकल्प सबसे थोड़े हैं । उनकी एक शलाका जानना । 'हेट्ठा' अर्थात् इसके नीचे सूक्ष्म अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धसे अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके

---

१. म °गलु मेनितेनित स्थितिविकल्पंगलं नडदु नडदु पुट्टुगुमे दोडे तन्मध्यस्थितिबन्ध विकल्पंगलुमनवारबाधा विकल्पंगलुमं पेल° ।

मिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळ्। उपरि च आ सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पानंतरोपरितनस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु बादरापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळुं क्रमदिदं। संख्यगुणितक्रमाः आकेळगण शलाकेगळुं मेलण शलाकेगळुं संख्यातगुणितंगळप्पुवु बा. अ. उ. सू. अ. उ सू. अ. ज. बा. अ. ज. सर्वयुतिः ई मध्याधस्तनोपरितनसर्व्व-
∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧

शलाकायुतियुं ७ हेट्ठुवरिं मुन्निनंते केळगेयुं मेगेयुं संख्यगुणा संख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु— ५

सू. प. उ. बा. अ. उ. सू. अ. उ. सू. अ. ज. बा. अ. ज. सू. प. ज.
∧ २८ ∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧ १४ ∧

मत्तमन्ते सूक्ष्मपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पानन्तरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु बादरपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळुं मेले सूक्ष्मपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गोंडु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्य्यंतमिद्दं स्थितिबंधविकल्पंगळुं क्रमदिंद सर्व्वयुतिय ४९ संख्यातगुणितंगळप्पुवु— १०

बा प उ सू प उ बा अ उ सू अ उ सू अ ज बा अ ज सू प ज बा प ज
∧ १९६ ∧ २८ ∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧ १४ ∧ ९८ ∧

जघन्यस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तक। जघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः 'उवरि च' सूक्ष्मापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरोपरितनस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च 'संखगुणिदकमा' संख्यातेन अङ्कसंदृष्टया द्व्यङ्केन गुणितक्रमा भवन्ति ∧४∧१∧२∧ 'सव्वजुदो' सर्वयुतः तदुक्तैक-द्वित्रिचतुःशलाकायुतैः सप्तभ्यः सकाशात् 'हेट्ठा' बादरापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः उवरि बादरापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च प्राग्वत् संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ∧२८∧४∧१∧२∧

जघन्यस्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका उन शलाकाओंसे संख्यात गुणी हैं। और ऊपर सूक्ष्म अपर्याप्तककी उत्कृष्टस्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी ऊपरकी शलाका उनसे संख्यात गुणी है। इस प्रकार संख्यातगुणा अनुक्रम कहा। सो संख्यातका प्रमाण तो यथायोग्य हैं। परन्तु यहाँ समझनेके लिए संख्यातका चिह्न दोका अंक जानना। सो एकसे दूना दो होता है, सो नीचे दो शलाका और उससे दुगुना चार, सो ऊपर चार शलाका जानना ४∧१∧२ इन सबको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे नीचे बादर अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर भेदसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी जानना और ऊपर अर्थात् बादर अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तरसे लेकर सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरितन शलाका उससे संख्यातगुणी जाना। सो पहलेकी शलाका चार, एक दोका जोड़ सात हुआ। उसको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर नीचे तो चौदह शलाका हुई। उन्हें संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अट्ठाईस

इल्लि तात्पर्य्यार्थमें तें दोडे अंकसंदृष्टियिदमुमर्त्थसंदृष्टियिदमुं पेळ्दपे मल्लि अंकसंदृष्टियिदमें तें दोडे बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डु एकैकसमयहीनक्रमदिदं तन्मध्यस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु नूरतों भत्तारनेयदु सूक्ष्मपर्य्याप्तोकृष्टस्थितिबंधविकल्पं पुट्टुगुमनंतरस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिंस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु २८ इप्पत्तें टनेयदु बादरापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमक्कु। मनंतर स्थितिविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिंद स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु नाल्कनेयदु सूक्ष्मापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमक्कुमनंतरसमयोनस्थितिबंधविकल्पमों दनेयदु सूक्ष्मापर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु। मनंतरसमयोनस्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु येरडनेयदु बादरापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु-। मनंतर समयोनस्थितिबंधविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिदं स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु पदिनाल्कुनेयदु सूक्ष्मपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कु-। मनंतरसमयोनस्थितिविकल्पं मोदल्गों डु समयोनक्रमदिंद स्थितिबंधविकल्पंगळु नडदु तों भत्तें टनेयदु बादरपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमक्कुमर्त्थसंदृष्टियोळु तात्पर्यार्थं पेळल्पडुगुमें तें दोडे बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमेकसागरोपमप्रमाण। सा १। जघन्यस्थितिबंधविकल्पं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनैकसागरोपमप्रमितमक्कु सा १ / प / ७

१४ ∧ 'च' शब्दात् पुनरपि सव्वजुदो तदुक्तैकद्विचतुश्चतुर्दशाष्टाविंशतिशलाकायुतैः एकान्न पञ्चाशतः ४९ सकाशात् 'हेट्ठा' सूक्ष्मपर्याप्तकजघन्यान्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाका उवरिं सूक्ष्मपर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा बादरपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च संखगुणं संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति

वा प उ ∧ १९६ ∧ २८ ∧ ४ ∧ १ ∧ २ ∧ १४ ∧ ९८ ∧ वा प ज

पुनरपि मज्झे थोवसलागा हेट्ठा उवरिं 'च संखगुणिदकमा' एतावत्सूत्रं द्वीन्द्रियं प्रत्यपि योज्यम्। तथाहि— मज्झे थोवसलागा द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थिति-

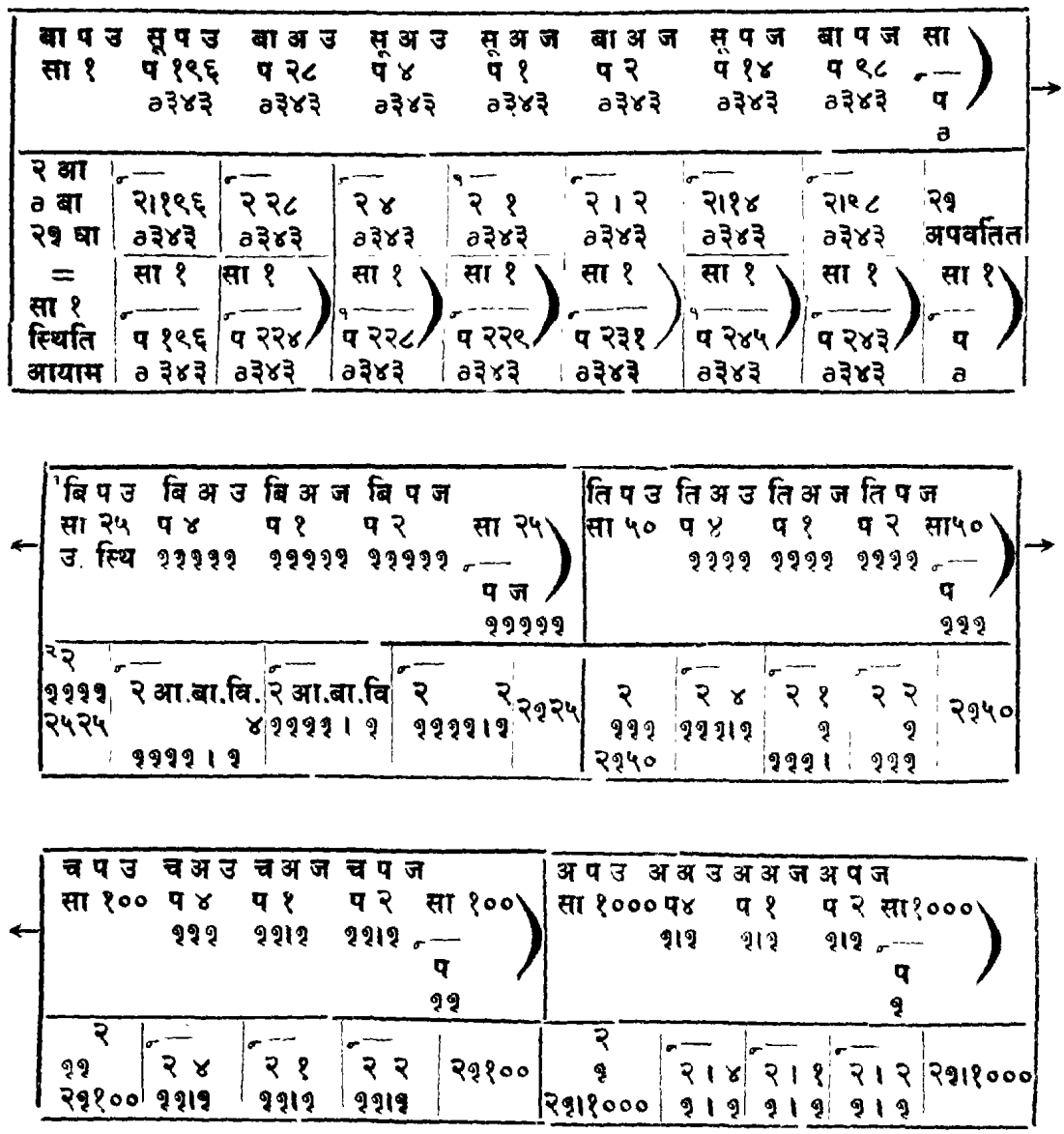
शलाका हुई। यथा २८∧४∧१∧२∧१४। इन्हें पुनः जोड़नेपर जो प्रमाण हो उससे नीचे अर्थात् सूक्ष्म पर्याप्तकके जघन्यस्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तक जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी है और ऊपर सूक्ष्म पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर बादर पर्याप्तक उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरितन शलाका संख्यातगुणी है। सो अठाईस, चार, एक, दो और चौदह को जोड़नेपर उनचास हुए। इनको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अठानबे नीचेकी शलाका जानना और उसे दोसे गुणा करनेपर एक सौ छियानबे ऊपरकी शलाका जानना। यथा १९६∧२८∧४∧२∧१∧१४ ९८ इस प्रकार एकेन्द्रियका कथन किया। आगे इसी गाथाका अर्थ दो इन्द्रियमें लगाते हैं—

मध्य अर्थात् दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त भेदोंमें दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर एक-एक

मितागुत्तं विरलु आदौ अंते सुद्धे $\frac{\text{प}^{\circ}}{\text{अ}}$ वड्ढिहिदे— $\frac{\text{प}^{\circ}}{\text{अ}}$ रूवसंजुदे ठाणा यें दितु बादरैकेंद्रिय-
पर्य्याप्तजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे माळ्प सर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळु पल्यासंख्यातैकभागमात्रमक्कुं। प। इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमें तें दोडे यिनितु प्रक्षेपयोगशलाकेगळगे पल्यासंख्यातैकभागमात्र-
स्थितिविकल्पमागुत्तं विरलु तंतम्म मध्यादिशलाके प्र ३४३। फ प। इ १। २। ४। १४। २८।
९८। १९६ गळगेनितेनितु स्थितिबंधविकल्पंगळप्पुवें दितनुपातत्रैराशिकमं माडिदोडे बंद लब्धंगळु तंतम्म स्थितिबंधविकल्पंगळप्पुवु। असण्णित्ति। ई क्रमदिदं द्वींद्रियं मोदल्गोंडसंज्ञिपर्य्यंतमाद जीवंगळ पर्य्याप्तापर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधविकल्पंगळुमनाबाधाविकल्पंगळुमं भाविसि स्थापिसुवुदु॥

बन्धपर्यन्तेषु मध्ये ये द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियापर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्ता विकल्पाः स्तोकास्ते एका शलाका ज्ञातव्या। 'हेट्ठा' द्वीन्द्रियापर्याप्तकजघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्योऽधस्तनशलाकाः उवरिं च द्वीन्द्रियापर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरं स्थितिबन्धमादिं कृत्वा द्वीन्द्रियपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तविकल्पसम्बन्धिन्य उपरितनशलाकाश्च 'संखगुणिदकमा' संख्यातगुणितक्रमा भवन्ति। एवमेव 'असण्णित्ति' असंज्ञिपर्यन्तं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियासंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां ∧४∧१∧२∧ स्वस्वस्थितिबन्धविकल्पेषु अपि व्याख्यातव्यम् ॥१४९॥ अथ संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य तत्प्रागुक्तपर्याप्तकोत्कृष्टापर्याप्तकोत्कृष्टापर्याप्तकजघन्यपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धविकल्पेषु विशेषमाह—

समय घटता दो-इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद हैं वे थोड़े हैं। अतः उनकी एक शलाका जानना। तथा हेट्ठा अर्थात् नीचे दो इन्द्रिय अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर एक-एक समय घटता दो-इन्द्रिय पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी अधस्तन शलाका संख्यातगुणी है और ऊपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिके अनन्तर स्थितिबन्धसे लेकर दो-इन्द्रिय पर्याप्तककी उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेद सम्बन्धी उपरि शलाका उससे संख्यातगुणी है। सो एकको संख्यातके चिह्न दोसे गुणा करनेपर अधस्तन शलाका दो होती है। उसे भी दोसे गुणा करनेपर ऊपरकी शलाका चार होती है। यथा ४ १ २। इस प्रकार दो-इन्द्रियकी शलाका कही। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी शलाका जानना। इनकी स्थितिके भेदोंका प्रमाण, स्थितिका प्रमाण तथा आबाधाके भेदोंका प्रमाण और आबाधाकालका प्रमाण भी यथासम्भव जानना॥१४९॥



ई रचनेय एल्ला कोष्ठदल्लि सागरदोळ्कळेदरेंबुदर्त्थं। यी रचनेय संपूर्णाभिप्राय मुंदे संज्ञिगे पेळ्दनंतरं व्यक्तमादपुदु।

---

१. द्वीन्द्रिये सप्तशलाकानां एतावत्सु स्थिति प विकल्पेषु सत्सु चतसृणां शलाकानां कियन्तः स्थितिविकल्पाः
१।४
स्युः इत्येवं सर्वत्र स्थितिविकल्पास्सेद्धव्याः।

२. द्वीन्द्रिये सप्तशलाकानां एतावत्सु आबाधा विकल्पेषु सत्सु चतसृणां शलाकानां कियन्त आबाधाविकल्पाः स्युरित्येवं सर्वत्र आबाधाविकल्पास्सेद्धव्याः।

इन्नु संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थितिबंधगळ्गे विशेषमं पेळ्दपरु :—

सण्णिस्स दु हेट्ठादो ठिदिठाणं संखगुणिदमुवरुवरिं ।
ठिदिआयामो वि तहा सगठिदिठाणं व आबाहा ॥१५०॥

संज्ञिनस्तु अधस्तात् स्थितिस्थानं संख्यगुणितमुपर्युपरि स्थित्यायामोऽपि तथा स्वस्थिति-स्थानमिव आबाधा ॥

संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं सा ७० को २। तज्जघन्यस्थितिबंधविकल्पमन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणं । सा अन्तः कोटी २। मल्लि आदी अंते सुद्धे प १ २ वड्ढिहिदे । प १ १ । रूवसंजुदे ठाणा । प १ १ । एंदितिउ मिथ्यात्व-

प्रकृतिस्थितिबंधसर्व्वविकल्पंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु । तु मत्ते संज्ञिनः संज्ञिजीवंगे । अधस्तात् केळगे संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधं मोदल्गोंडु उपर्य्युपरि संज्ञ्यपर्याप्तजघन्यस्थिति संज्ञ्यपर्याप्तोत्कृष्ट-संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पंगळंतरालंगळोळु संभविसुव स्थितिस्थानं स्थितिबंधविकल्पंगळु संख्यगुणितं संख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु । स्थित्यायामोऽपि तथा । संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थित्यायाममं नोडलुमपर्याप्तसंज्ञिजीवजघन्यस्थितिबंधायाममुमदं नोडलुमपर्याप्तसंज्ञिजीवोत्कृष्टस्थितिबंधा-याममुमदं नोडलु पर्याप्तसंज्ञिजीवोत्कृष्टस्थितिबंधायाममुमा स्थितिबंधविकल्पंगळंतंते उपर्य्युपरि

संज्ञिपञ्चेन्द्रियस्य तत्प्रागुक्तचतुःस्थितिविकल्पेषु तु पूर्वोक्तैकेन्द्रियाद्यसंज्ञ्यंताना उक्ततदष्टचतुर्भ्यो विशेषः । स कथ्यते—

अधस्तात्संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धविकल्पमादिं कृत्वा उपर्युपरि तच्चतुर्विकल्पांतरालेषु स्थिति-स्थानं स्थितिविकल्पप्रमाणं संख्यगुणितं संख्यातगुणितक्रमं भवति । स्थित्यायामोऽपि तथा तच्चतुःस्थिति-विकल्पानां आयामोऽपि तथा उपर्युपरि संख्यातगुणितक्रमो भवति । तद्यथा—

संज्ञिनो मिथ्यात्वस्थितिः उत्कृष्टा सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि इति द्विसंख्यातगुणितपल्यमात्री प १ १

आगे संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें पूर्वमें कहे पर्याप्तकका उत्कृष्ट, अपर्याप्तकका उत्कृष्ट, अपर्याप्तक-का जघन्य और पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धके भेदोंमें जो विशेष बात है उसे कहते हैं ।

संज्ञी पञ्चेन्द्रियके ऊपर कहे चार भेदोंमें पूर्वोक्त एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी पर्यन्त कहे आठ, चार, चार आदिसे अन्तर है । वही कहते हैं—

'हेट्ठादो' अर्थात् संज्ञी पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धसे लगाकर ऊपर-ऊपर उन चार भेदोंके अन्तरालोंमें स्थितिके भेदोंका प्रमाण क्रमसे संख्यातगुणा-संख्यातगुणा होता है । तथा स्थितिका आयाम अर्थात् समयोंका प्रमाण भी ऊपर-ऊपर क्रमसे संख्यातगुणित होता है । उसे ही आगे कहते हैं—

संज्ञी जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है । सो दो बार संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर उतनी होती है । तथा जघन्यस्थिति मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा

---

१. ब तत्तच्चतुर्विकल्पेभ्यो ।

मेगे मेगे संख्यगुणितं संख्यात गुणितक्रमंगळप्पुवु । स्वस्थितिस्थानमिवाबाधा तंतम्म स्थितिबंधस्थानविकल्पंगळेतंते । आबाधा आबाधाविकल्पंगळु मप्पुदरिनिल्लियुं मेगे मेगे संख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु । आ नाल्कुं स्थानंगळगे संदृष्टि—

	सं प उ सा ७० को २ उ. स्थिति	सं अ उ	स अ ज	सं प ज	प १ ज. स्थिति
		प १ १ ४ ५ स्थि. वि.	प १ १ ४ ५।५ स्थि. वि.	प १ १ १ ५।५	
आबाधा	व ७००० स २ १११	अबा. वि. २१११ ४ ५	२१।११ ४ १।५	२१। ११ १ ५।५	आबाधा जघन्य २११

यिल्लि स्थितिबंधविषयदोळु बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवं मिथ्यात्वप्रकृतिगे एकसागरोपमस्थितिबंधमं माळ्कुमा मिथ्यात्वप्रकृतिगे आ जीवं जघन्यस्थितिबंधमं समयोनक्रमदिदं रूपोनपल्यासंख्यातैकभागोनैकसागरोपमस्थितिबंधमं माळ्कुमदुकारणदिंदमा सर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळु पल्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळप्पुवु प ई सर्व्वस्थितिबंधविकल्पंगळगाबाधाविकल्पंगळं रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळप्पुवु १ तन्मध्यपतितसूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं । बादरैकेन्द्रि-

जघन्या च अन्तःकोटाकोटिसागरोपमाणीति संख्यातपल्यमात्री प १ प्राग्वदानीतसमयोत्तरतत्स्थितिविकल्पा एतावन्तः प १ १ एतेषु संख्यातभक्तबहुभागः संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धमादिं कृत्वा संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ ४ एतेषु चरमस्य[1] संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थितिबन्धस्यायामो रूपोनातीतविकल्पमात्रसमयैर्न्यूनसंज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो भवति सा ७० को २ प १ १ ४

कोड़ीके ऊपर और कोड़ाकोड़ीसे नीचे इस तरह अन्तः कोटाकोटि सागर है। सो एक बार संख्यातसे पल्यको गुणा करनेपर होती है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर तथा एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर संज्ञीके मिथ्यात्वकी सब स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। उसमें संख्यातसे भाग देवें। एक भागके बिना शेष बहुभाग मात्र संज्ञी-पर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लगाकर संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण है। उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने समय संज्ञी पर्याप्तकके उत्कृष्ट

१. ब संज्ञ्यपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्याममात्रो ।

यापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं। सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पमुं सूक्ष्मैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं। बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं। सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुं बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थितिबंधविकल्पमुमेंब स्थितिबंधविकल्पंगळ्गे प्रत्येकं स्थित्यायामप्रमाणमुमनवराबाधाविशेषमुमं तरल्पडुगुमदें तेंदोडे जेट्ठाबाहोवट्टिय जेट्ठमित्यादि। उत्कृष्टस्थितियनुत्कृष्टाबाधेयिदं भागिसिदोडाबाधाकांडकमक्कुमदं तंतम्माबाधाविकल्पंगळिदं गुणिसि लब्धदोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधदोळु कळेदोडे तंतम्म स्थितिबंधस्थानायामप्रमाणमक्कुमल्लि बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायाममेकसागरोपमप्रमाणमं तन्नुत्कृष्टाबाधेयिदं २ भागिसिदोडाबाधाकांडकमक्कु प ११ मिदनुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगों डु सूक्ष्म-
अ ४२१
२१

पर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधपर्य्यंतमिद्दं स्थितिविकल्पंगळाबाधाविकल्पंगळिनितरिदं २ १९६ गुणि-
अ ३४३

सिदुदनिदं प १ १। २। १९६ आवळिगावळियं भाज्यभागहारंगळं कळेद शेषमपवर्त्तित-
। २ १। अ ३ ४ ३

पुनस्तदेकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागः संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा संज्ञिपर्याप्तजघन्य-

स्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ ४ एतेषु चरमस्य संज्ञिपर्याप्तजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः
५ ५

एतावद्भिरेव समयैर्यूनसंज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायामो भवति सा ७० को २ शेषतदेकभागः संज्ञिपर्याप्तक-

प १ १ ४।
५ ५

जघन्यानन्तरस्थितिबन्धमादिं कृत्वा संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धपर्यन्तलब्धविकल्पप्रमाणं भवति प १ १ १
५ ५

स्थितिबन्ध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धका प्रमाण है। तथा जो एक भाग रहा था उसमें संख्यातका भाग दीजिए। उसमें भी एक भाग बिना शेष बहुभाग मात्र संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे एक समय कम स्थितिबन्धसे लगाकर संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण होता है। सो इतने समय संज्ञी अपर्याप्तकके उत्कृष्ट स्थितिबन्धमेंसे घटानेपर संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धका प्रमाण होता है। तथा जो एक भाग

---

१. ब संज्ञिपर्याप्तकोत्कृष्टस्थित्यायाममात्रो।

मिदु प १९६ इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पदोळु कळेदोडे सूक्ष्मैकेंद्रिय-
अ ३४३

पर्य्याप्तोत्कृष्टस्थित्यायामप्रमाणमक्कु सा मा स्थित्यायामकाबाधेयुं रूपोनमप्पी याबाधावि-
प १९६
अ ३४३

कल्पंगळनुत्कृष्टाबाधाविकल्पदोळु कळेद शेषमाबाधाययममक्कुं।

मुंदेयुमी प्रकारदिंदं तंतम्माबाधाययममरियल्पडुगुं मत्तमुत्कृष्टस्थितिबंधायाममननुत्कृष्टाबाधा-
यामदिदं भागिसिद लब्धमात्राबाधाकांडकमनिदं प १९ उत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पं मोदलगोंडु
२१

बादरापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पपर्य्यन्तमिर्द्द स्थितिविकल्पंगळाबाधाविकल्पंगळिवरिंदं।

२।२२४ गुणिसिदुदनिदं प १९।२।२२४ भाज्यभागहाररूपदिनिर्द्दावळिद्वयमं सरि-
अ ३४३ २१।अ ३४३

गळेदपवर्त्तितशेषमिदु प २२४ इदरोळेकरूपं कळेदुत्कृष्टस्थितिबंधविकल्पदोळु कळेदोडे
अ ३४३

एतेषु चरमस्य संज्ञिपर्याप्तकजघन्यस्थितिबन्धस्यायामः एतावद्भिरेव समयैर्न्यूनसञ्ज्ञपर्याप्तकजघन्यस्थित्या-
याममात्रो भवति सा ७० को २ स तु अन्तःकोटाकोटिसागरोपमात्र एव सा अन्तः को २।

(प १९ १
५।५

तथा 'सगठिदिठाणं व आबाहा' संज्ञिनो मिथ्यात्वाबाधाविकल्पा अपि 'सगठिदिठाणं व' निजस्थिति-
विकल्पवद्भवन्ति। तद्यथा—तन्मिथ्यात्वाबाधा उत्कृष्टा सप्तसहस्रवर्षाणि इति त्रिसंख्यातगुणितावलिमात्रो
२ १ १ १ जघन्या च समयोनमुहूर्तः इति द्विसंख्यातगुणितावलिमात्रो २ १ १ तयानीतसमयोत्तरतद्विकल्पा

रहा था उतना प्रमाण मात्र संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्यसे एक समय कम अनन्तर स्थिति-
बन्धसे लेकर संज्ञी पर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्ध पर्यन्त स्थितिके भेदोंका प्रमाण है। इस प्रमाणको संज्ञी अपर्याप्तकके जघन्य स्थितिबन्धमें-से घटानेपर संज्ञी पर्याप्तकका जघन्य स्थितिबन्ध होता है। सो यह प्रमाण अन्तःकोटाकोटी सागर जानना। यह स्थितिका कथन हुआ।

अब आबाधाका कथन करते हैं। आबाधाका कथन भी स्थितिस्थानवत् जानना। सो संज्ञीके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्ष प्रमाण है। सो तीन बार संख्यातसे गुणित आवली प्रमाण है। और जघन्य आबाधा एक समय कम एक मुहूर्त प्रमाण है। सो दो बार संख्यातसे गुणित आवली प्रमाण है। सो उत्कृष्टमें-से जघन्यको घटाकर उसे एकसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर आबाधाके सब भेदोंका प्रमाण होता है। जैसे स्थितिके भेदोंमें संख्यातका भाग दे-देकर बहुभाग, बहुभाग और एक भाग प्रमाण-स्थितिके भेद तीनों अन्तरालोंमें कहे, उसी प्रकार आबाधाके सब भेदोंमें संख्यातसे भाग दे-

बादरैकेंद्रियापर्य्याप्तोत्कृष्टस्थितिबंधायामप्रमाणमक्कुं सा $\frac{\text{०}}{\text{प २२४ अ ३४३}}$) मी प्रकारदिंदं शेषसूक्ष्मापर्य्याप्तो-

त्कृष्टजघन्यस्थितिबंधद्वयबादरापर्य्याप्तजघन्यसूक्ष्मपर्याप्तजघन्य बादरपर्याप्तजघन्यस्थितिबंधविक-

ल्पंगळु यथाक्रमदिदमिनितप्पुवु ।

सा १ ।)	सा १ ।	सा १ । १	सा १ । १	सा १
$\frac{\text{०}}{\text{प २२८ अ ३४३}}$	$\frac{\text{०}}{\text{प २२ ९ अ ३४३}}$	प २३१ । १ अ ३४३	प २ । ४५ । १ अ ३४३	प ३४३ । १ अ ३४३

अपवर्तितमन्त्यमिदु

सा १) ई प्रकारदिंदं शेषद्वींद्रियादिगळ पर्य्याप्तोत्कृष्टजघन्यस्थित्यामंगळुमवराबाधाया- ५

$\frac{\text{—}}{\text{प}}$
अ

मेंगलं तरल्पडुवुवु ॥

अनंतरं जघन्यस्थितिबंधस्वामिगळं पेळ्दपरु—

सत्तरसपंचतित्थाहाराणं सुहुमबादरोऽपुव्वो ।
छव्वेगुव्वमसण्णी जहण्णमाऊण सण्णी वा ॥१५१॥

सप्तदश पंच तीर्थाहाराणां सूक्ष्मबादरापूर्व्वाः । षड्वैगूर्व्वमसंज्ञी जघन्यमायुषां संज्ञी वा ॥ १०

ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणचतुष्कमुमंतरायपंचकमुं यशस्कीर्त्तिनाममुच्चैर्गोत्रमुं साता-

वेदनीयमुमेंबी १७ सप्तदश प्रकृतिगळगे जघन्यस्थितिबंधमं सूक्ष्मसांपरायं माळ्कुं । पुरुषवेदमुं

एतावन्तः—२ १ १ १ । एतान् स्थितिविकल्पवत् संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागं बहुभागं एकभागं स्वस्वस्थितिविकल्पानामधः संस्थाप्य तत्तल्लब्धस्य चरमं चरममाबाधायामं निजस्थितिविकल्पायामवत् साधयेत् ॥१५०॥ अथ जघन्यस्थितिबन्धस्वामिभेदानाह— १५

पञ्चज्ञानावरणचतुर्दर्शनावरणपञ्चान्तराययशस्कीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानां जघन्यस्थितिं सूक्ष्मसाम्पराय

देकर बहुभाग, बहुभाग और एक भाग प्रमाण आबाधाके भेद तीनों अन्तरालोंमें जानना। तथा जैसे स्थितिके भेदोंको घटा-घटाकर स्थितिका प्रमाण कहा वैसे ही यहाँ आबाधाके भेदोंको घटा-घटाकर उस-उस स्थिति सम्बन्धी आबाधाका प्रमाण जानना। इस प्रकार संज्ञी पञ्चेन्द्रियके सम्बन्धमें विशेष कथन जानना ॥१५०॥ २०

आगे जघन्य स्थितिबन्ध करनेवाले जीवोंको कहते हैं—

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और साता-वेदनीय इन सतरह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव ही

---

१. ब तत्तच्चरममाबाधायामं साधयेत् ।

चतुःसंज्वलनमुमेंबी प्रकृतिपंचकक्के जघन्यस्थितिबंधमननिवृत्तिकरणं माळ्कुं। तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुमेंबी प्रकृतित्रयक्के जघन्यस्थितिबंधमनपूर्व्वकरणं माळ्कुं। वैक्रियिकषट्कक्के जघन्यस्थितिबंधमनसंज्ञिजीवं माळ्कुमायुष्यंगळ्गे जघन्यस्थितिबंधमं संज्ञियुं वा मेणसंज्ञियुं माळ्कुं।

अनन्तरमजघन्यस्थितिबंधादिगळ्गे संभविसुव साद्यादिभेदंगळं पेळ्दपरु—

अजहण्णट्ठिदिबंधो चदुव्विहो सत्तमूलपयडीणं।
सेसतिये दुवियप्पो आउचउक्केवि दुवियप्पो ॥१५२॥

अजन्यस्थितिबंधश्चतुर्व्विधः सप्तमूलप्रकृतीनां। शेषत्रये द्विविकल्पः आयुश्चतुष्केऽपि द्विविकल्पः॥

आयुर्व्वर्ज्जितज्ञानावरणाद्यष्टविध प्रकृतिगळ्गे अजन्यस्थितिबंधं साद्यनादि ध्रुवाध्रुवभेददिं चतुर्व्विधमक्कुं। शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितयदोळु साद्यध्रुवभेदर्दिदं द्विविकल्पमक्कुमायुश्चतुष्टयदोळमा द्विविकल्पमेयक्कुमपवादविनिर्म्मुक्तमिदक्के विषयमक्कुं। इल्लि विशेषमं पेळ्दपरु।

संजलणसुहुमचोद्दसघादीणं चदुविधो दु अजहण्णो।
सेसतिया पुण दुविहा सेसाणं चदुविधा विदु धा ॥१५३॥

संज्वलनसूक्ष्मचतुर्द्दशघातीनां चतुर्व्विधस्तु अजघन्यः। शेषत्रितयाः पुनर्द्विविधाः शेषाणां चतुर्व्विधा अपि द्विधा॥

एव बध्नाति पुंवेदचतुःसंज्वलनानां अनिवृत्तिकरण एव। तीर्थकृत्वाहारकद्वययोरपूर्वकरण एव। वैक्रियिकषट्कस्य असंज्ञ्येव आयुषः संज्ञी वा असंज्ञी वा ॥१५१॥ अथाजघन्यादीनां संभवत्साद्यादिभेदानाह—

आयुर्वर्जितसप्तविधमूलप्रकृतीनां अजघन्यस्थितिबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधो भवति शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रितये साद्यध्रुवौ द्वावेव। आयुष्कर्मणः अजघन्यादिबन्धचतुष्केऽपि तावेव द्वौ। अपवादविनिर्मुक्तोऽस्य विषयो भवति ॥१५२॥ अत्र विशेषमाह—

करता है तथा पुरुषवेद, चार संज्वलन कषाय, इन पाँचका जघन्य स्थितिबन्ध अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव करता है। तीर्थंकर और आहारकद्विकका जघन्य स्थितिबन्ध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव करता है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इस वैक्रियिकषट्कका जघन्य स्थितिबन्ध असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय करता है। आयुकर्मकी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिबन्ध संज्ञी या असंज्ञी जीव करता है ॥१५१॥

आगे अजघन्य आदि स्थितिके भेदोंमें होनेवाले सादि आदि भेदोंको कहते हैं—

आयुको छोड़ सात मूल प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। और उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट तथा जघन्य स्थितिबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं। किन्तु आयुकर्मका चारों ही प्रकारका स्थितिबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार है। यह कथन सन्देह रहित है अतः इसके विषयमें विशेष नहीं कहा है ॥१५२॥

उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

संज्वलनक्रोधमानमायालोभंगळगं सूक्ष्मसांपरायनबंधचतुर्द्दशघातिगळगमजघन्यस्थितिबंधं तु मत्ते साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदंदिदं चतुर्व्विधमक्कुं। शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रयंगळुं पुनः मत्ते द्विविधा साद्यध्रुवभेदंदिदं द्विविधंगळप्पुवु। शेषाणां शेषप्रकृतिगळेल्लम जघन्य-जघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टभेदंदिदं चतुर्व्विधंगळनितुं साद्यध्रुवभेदंदिदं द्विप्रकारस्थितिबंधमनुळ्ळुवक्कुं—

ज्ञा	द	वे	मो	आ	ना	गो	अं	१८	१०२
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २
अ ४	अ ४	अ ४	अ ४	अ २	अ ४	अ ४	अ ४	अ ४	अ २

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणं पि होंति असुहाओ।
माणुसतिरिक्खदेवाउगं च मोत्तूण सेसाणं ॥१५४॥

सर्व्वास्तु स्थितयः शुभाशुभानामप्यशुभाः। मानुषतिर्य्यग्देवायूंषि च मुक्त्वा शेषाणां॥

मानुषतिर्य्यग्देवायुष्यत्रितयमल्लदुळिदेल्ला शुभाशुभप्रकृतिगळ सर्व्वस्थितिगळुं संसारहेतुत्वाद्विदमशुभंगळे यप्पुवेंदरियल्पडुवुवु॥

अनंतरमाबाधे यं बुदेनेंदोडे पेळ्दपरु :—

चतुःसंज्वलनानां सूक्ष्मसांपरायबन्धचतुर्दशघातिनां च अजघन्यस्थितिबन्धः तु—पुनः चतुर्विधो भवति। शेषजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टत्रयमपि साद्यध्रुवभेदात् द्वेधैव। शेषप्रकृतीनां अजघन्यजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाश्चत्वारोऽपि तथा द्विधा ॥१५३॥

मानुष्यतिर्यग्देवायूंषि मुक्त्वा शेषसर्वशुभाशुभप्रकृतीनां सर्वाःस्थितयः संसारहेतुत्वादशुभा एवेति ज्ञातव्यम् ॥१५४॥ अथाबाधां लक्षयति—

चार संज्वलन कषायोंका तथा सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली चौदह घाति प्रकृतियों-का (पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण) अजघन्य स्थितिबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुवके भेदसे चार-चार प्रकार है। शेष जघन्यबन्ध, अनुत्कृष्ट बन्ध और उत्कृष्ट बन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं। इनके सिवाय शेष प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट तथा उत्कृष्ट चारों प्रकारका बन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार हैं ॥१५३॥

ज्ञा.	द.	वे.	मो.	आ.	ना.	गो.	अं.	१८	१०२
उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २
अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २	अ. २
ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २
अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. ४	अ. २

मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु और देवायुको छोड़कर शेष सभी शुभ और अशुभ प्रकृतियोंकी सब स्थितियाँ संसारका कारण होनेसे अशुभ ही होती हैं। ऐसा जानना चाहिए ॥१५४॥

आगे आबाधाका लक्षण कहते हैं—

---

१. ब °त्कृष्टाः पुनः सा°।

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स व आबाहा जाव ताव हवे ॥१५५॥

कर्म्मस्वरूपेणागतद्रव्यं न चैत्युदयरूपेण । रूपेणोदीरणाया वा आबाधा यावत्तावद्भवेत् ॥

कार्म्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पंदलक्षणयोगहेतुविंद कार्म्मण वर्ग्गणायात-
५ पुद्गलस्कंधंगळु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदंगळिंद परिणमिसि जीवप्रदेशंगळोळन्योन्य-
प्रदेशानुप्रवेशलक्षणबंधरूपदिनिर्द्दग्धक्के फलदानपरिणतिलक्षणोदयरूपदिनुदयावळियनेय्ददेयुमपक्व-
पाचनलक्षणोदीरणारूपदिनुदयक्केयुं बादरदेन्नेवरमिप्पुवुदन्नेवरमाबाधाकालमेंदुपरमागमदोळु
पेळल्पट्टुदु ॥

अनंतरमाबाधेयं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्दपरु :—

१० उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडि उवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥१५६॥

उदयं प्रति सप्तानामाबाधा कोटीकोटयुदधीनां । वर्षशतं तत्प्रतिभागेन शेषस्थितीनां च ॥

आयुर्व्वर्ज्जितज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिगळ्गाबाधे येनितेनितेंदोडे उदयं प्रति उदयमनाश्र-
यिसि कोटीकोटिसागरोपमंगळ्गे शतवर्षप्रमितमक्कुमन्तागुत्तं विरलु तत्प्रतिभागदिंदं शेषस्थिति-
१५ गळ्गेयुमरियल्पडुगुमर्देतेंदोडिल्लि त्रैराशिकविधानं पेळल्पडुगुमर्देतेंदोडेककोटीकोटिसागरोपम-
स्थितिगे नूरुवर्षमाबाधेयागलु सप्ततिकोटिकोटिसागरोपमस्थितिगे निताबाधेयक्कुमेंदितनुपात-

कार्मणशरीरनामकर्मोदयापादितजीवप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगहेतुना कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाः मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण आत्मप्रदेशेषु अन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशलक्षणबन्धरूपेणावस्थिताः फलदानपरिणति-लक्षणोदयरूपेण अपक्वपाचनलक्षणोदीरणारूपेण वा यावन्नायान्ति तावान् काल आबाधेत्युच्यते ॥१५५॥

२० अथ तां मूलप्रकृतिष्वाह—

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुदयं प्रति आबाधा कोटीकोटिसागरोपमाणां शतवर्षमात्री भवति तथा सति शेषस्थितीनां तत्प्रतिभागेनैव ज्ञातव्या । तद्यथा—

कार्मण शरीर नामक नामकर्मके उदयसे और जीवके प्रदेशोंकी चंचलतारूप योगके निमित्तसे कार्मण वर्गणारूपसे आये पुद्गलस्कन्ध मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिरूप होकर
२५ आत्माके प्रदेशोंमें परस्परमें प्रवेश करते हैं उसीको बन्ध कहते हैं। बन्धरूपसे अवस्थित वे पौद्गलिक कर्म जबतक उदयरूप या उदीरणारूप नहीं होते उस कालको आबाधा कहते हैं। अर्थात् कर्मप्रकृतिका बन्ध होनेपर जबतक उसका उदय या उदीरणा नहीं होती, तबतकका समय उस प्रकृतिका आबाधा काल कहा जाता है। फल देने रूप परिणमनको तो उदय कहते हैं। और असमयमें ही अपक्व कर्मका पकना उदीरणा है ॥१५५॥

३० आगे मूल प्रकृतियोंमें आबाधा कहते हैं—

आयुको छोड़ सात कर्मोंकी उदयकी अपेक्षा आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिकी एक सौ वर्ष होती है। ऐसा होनेपर शेष स्थितिओंकी आबाधा इसी प्रतिभागसे जानना। वही कहते हैं—एक कोड़ाकोड़ी सागरकी सौ वर्ष आबाधा होती है तो सत्तर

त्रैराशिकमं माडि प्र । सा १ । को २ । फ । व १०० । इ । सा ७० । को २ । बंद लब्धं मिथ्यात्व-प्रकृति उत्कृष्टस्थितिगाबाधे सप्तसहस्रप्रमितमक्कु ७००० मी प्रकारदिंदं शेष चाळीसिय तीसिय वीसियादिगळगे स्थितिप्रतिभागदिंदमाबाधेयक्कुं । सण्णि असण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा

इत्यादि प्र सा २५ । फ २ इ । सा २५ ४ लब्धमाबाधे २ इत्यादि ॥
२१ । २५ ७ २१ । २५ । ४ ७

अनंतरमन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगाबाधेयं पेळ्दपरु :— ५

अंतोकोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा ।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥१५७॥

अन्तःकोटीकोटिस्थितेरन्तर्मुहूर्त्तमाबाधा । संख्यातगुणविहीना सर्व्वजघन्यस्थितेर्भवेत् ॥

अन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे आबाधेयन्तर्मुहूर्त्तमक्कुं । २१ । सर्व्वजघन्यस्थितिगाबा-

धेयदं नोडलु संख्यातगुणहीनमक्कुं २१ प्र । मु १०८०००० । फ सा १ । को २ । इ । मु १ । १०
४

कोटीकोटिसागरोपमस्य शतवर्षं तदा सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्य किमिति ? त्रैराशिके कृते प्र-सा १ को २ । फ-व १०० । इ सा ७० को २ लब्धं मिथ्यात्वोत्कृष्टाबाधा सप्तसहस्री भवति ७०००। एवं शेषचालीसियतीसियवीसियादीनामप्यानेतव्या । 'सण्णिअसण्णिचउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा' इत्यादि प्र-सा २५ । फ २ इ सा २५ ४ लब्धा २ इत्यादि । अथान्तःकोटीकोटिसागरोपमस्याह—
१ १ १ १ ७ १ १ १ १ ४
२ १ २५ २ १ । २५ । ७

अन्तःकोटीकोटिसागरोपमस्थितेराबाधा अन्तर्मुहूर्तो भवति २ १ सर्वजघन्यस्थितेस्तु ततः संख्यात- १५
४
गुणहीना भवति २ १ प्र—१०,८०००० । फ सा १ को २ । इ मु १ लब्धस्थितिः ९, २५, ९२, ५९२ ।

कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी आबाधा कितनी होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाण राशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि सौ वर्ष, इच्छाराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर । सो फलराशिसे इच्छाराशिको गुणा करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर लब्धराशिका प्रमाण सात हजार वर्ष आता है । वही मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट आबाधा है । इसी प्रकार अपनी- २०
अपनी स्थिति प्रमाण इच्छाराशि करनेपर अपने-अपने आबाधा कालका प्रमाण आता है । जिनकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनका आबाधा काल चार हजार वर्ष प्रमाण है । जिनकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी आबाधा तीन हजार वर्ष है । इसी तरह अन्य भी प्रकृतियोंकी आबाधा जानना । 'सण्णि असण्णि चउक्के एगे अंतोमुहुत्तमाबाहा ।' सो इस गाथाके द्वारा दो-इन्द्रिय आदिके आबाधा कही है उसे भी जान लेना ॥१५६॥ २५

आगे अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिकी आबाधा कहते हैं—

अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण स्थितिका आबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । और सब कर्मोंकी जघन्यस्थितिकी आबाधा उससे संख्यातगुणा हीन है । सौ वर्षके दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त होते हैं । सो इतनी आबाधा एक कोड़ाकोड़ी सागरकी होती है तो एक

लब्धस्थिति ९२५९२५९२ ६४ प्रमाण। सा १। को २। फ आबाधा। १०८०००० । इ
१०८
९२५९२५९२। ६४ लब्धं मुहूर्त्त १। प्र। सा ७०। को २। फ आबाधा व ७०००। इ सा १।
१०८
लब्धमाबाधे। उच्छ्वा १ आयुष्यकाबाधेयं पेळ्दपरु :—
१

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेप अद्ध ओत्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥१५८॥

पूर्व्वाणां कोटित्रिभागादासंक्षेपाद्धा पर्य्यन्तं भवेदायुष्यस्य चाबाधा न स्थितिप्रतिभाग-मायुषः ॥

आयुष्कर्म्मक्के पूर्व्वकोटिवर्षंगळ त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुं । जघन्यमन्तर्म्मुहूर्त्तमक्कुं । अथवा पक्षांतरदिंदमसंक्षेपाद्धेयक्कुमऽसंक्षेपाद्धे एंबुदाउदेंदोडे—न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः स चासावद्धा च असंक्षेपाद्धा येंदावल्यसंख्यातैकभागमेंदु पेळ्वरा पक्षांतरमनंगीकरिसि पेळल्पट्टुदु । आयुष्यकर्म्मक्की प्रकारदिंदमाबाधेयल्लदे स्थितिप्रतिभागदिंदमाबाधेयिल्ल। देवनारक-

६४ प्र–सा १ को २। फ–मु १०८०००० । इ ९२५९२५९२। ६४ लब्धो मुहूर्तः १। प्र–सा ७० को २।
१०८ १०८
फ अबाधा ७००० । इ सा १ लब्धं आबाधा उच्छ्वासः १ ॥१५७॥ आयुष आह—
१

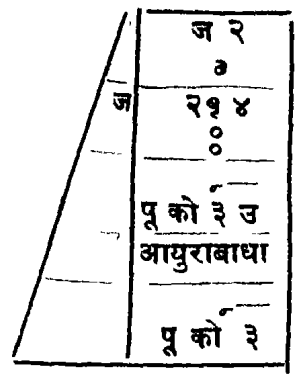
आयुःकर्मण उत्कृष्टाबाधा पूर्वकोटिवर्षत्रिभागो भवति जघन्योऽन्तर्मुहूर्तो वा पक्षान्तरेण असंक्षेपाद्धा वा भवति। न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपः असंक्षेपः, स चासौ अद्धा च असंक्षेपाद्धा आवल्यसंख्येयभागमात्रत्वात् ।

मुहूर्त आबाधा कितनी स्थितिको होती है। ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त, फलराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, इच्छाराशि एक मुहूर्त। सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर नौ कोटि पच्चीस लाख बानवे हजार पाँच सौ बानवे सागर और एक सागरके एक सौ आठ भागोंमें-से चौंसठ भाग स्थितिकी एक मुहूर्त आबाधा हुई। तथा प्रमाणराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि दस लाख अस्सी हजार मुहूर्त, इच्छाराशि नौ कोटि पच्चीस लाख बानवे हजार पाँच सौ बानवे और एक सौ आठ भागोंमें-से चौंसठ भाग प्रमाण सागर। ऐसा करनेपर आबाधा एक मुहूर्त होती है। तथा प्रमाणराशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि सात हजार वर्ष, इच्छाराशि एक सागर। ऐसा करनेपर फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध साधिक संख्यात उच्छ्वास आया वही एक सागरकी स्थितिमें आबाधा काल जानना ॥१५७॥

आयुकर्मकी आबाधा कहते हैं—

आयुकर्मकी उत्कृष्ट आबाधा एक कोटि पूर्व वर्षका तीसरा भाग होती है। जघन्य आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अन्य किसी आचार्यके मतसे 'आसंक्षेपाद्धा' प्रमाण है। जिससे थोड़ा काल दूसरा नहीं है उसे आसंक्षेपाद्धा कहते हैं सो यह काल आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण है। आयुकर्मकी आबाधा इसी प्रकार है अन्य कर्मोंकी तरह स्थितिके प्रतिभागके अनुसार नहीं है।

भोगभूमिजर्गसंख्यातवर्षायुष्यंगळप्पुदरिंदमें तु पूर्व्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुमेंदोडे देवनारकरुगळ स्वस्थितिषण्मासावसानशेषमादबळिक्कं तत्त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुं । भोगभूमिजरुगळ स्वस्थितिनवमासावशेषमादबळिक्कं तत्त्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुमदु कारणदिंद कर्म्मभूमितिर्य्यग्मनुष्यरुगळगे पूर्व्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयक्कुमदु मोदल्गोंडु असंक्षेपाद्धावसानमावाबाधाविकल्पंगळोळु देवनारकभोगभूमिजरुगळगाबाधेयरियल्पडुगुमसंक्षेपाद्धे यावडेयोळेंदोडे अष्टापकर्षंगळोळेल्लियुमायुर्ब्बंधमागदे भुज्यमानायुष्यमन्तर्म्मुहूर्त्तावशेषमागुत्तं विरलु उत्तरभवायुष्यं मुन्तमेयंतर्म्मुहूर्त्तमात्रसमयप्रबद्धंगळ बंधं (बद्धं) निष्ठापिसल्पडुगुं । केळंबराचार्य्यरुगळावल्यसंख्यातैकभागमसंक्षेपाद्धेयवशेषमागुत्तिरलुत्तर भवायुष्यं निष्ठापिसल्पडुगुमेंबरु । ई येरडुं प्रवाह्योपदेशंगळप्पुदरिनंगीकृतंगळु । असंक्षेपाद्धेयुमदरिनन्तर्म्मुहूर्त्तमा पक्षदोळु जघन्यमक्कुमुत्कृष्टांतर्म्मुहूर्त्तं समयोनमुहूर्त्तमेयेंदरिउदु—



आयुःकर्मण एवमेव भवति न च स्थितिप्रतिभागेन । तर्हि असंख्यातवर्षायुष्काणां त्रिभागे उत्कृष्टा कथं नोक्ता ? इति तन्न, देवनारकाणां स्वस्थितौ षण्मासेषु भोगभूमिजानां नवमासेषु च अवशिष्टेषु त्रिभागेन आयुर्बन्धसंभवात् । यद्यष्टापकर्षेषु क्वचिन्नायुर्बद्धं तदावल्यसंख्येयभागमात्रायाः समयोनमुहूर्तमात्रायाः वा असंक्षेपाद्धायाः प्रागेवोत्तरभवायुरन्तर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् बद्ध्वा निष्ठापयति । एतौ द्वावपि पक्षौ प्रवाह्योपदेशत्वात् अङ्गी-

शंका—असंख्यात वर्षकी जिनकी आयु है उनका त्रिभाग प्रमाण आबाधा क्यों नहीं कही ?

समाधान—क्योंकि देव और नारकियोंके तो अपनी स्थितिमें छह मास और भोगभूमियोंमें नौ मास शेष रहनेपर उसके त्रिभागमें आयुका बन्ध होता है। और कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यंचोंमें अपनी पूर्ण आयुके त्रिभागमें आयुबन्ध होता है। कर्मभूमियोंकी उत्कृष्ट स्थिति कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण है। इससे उसीका त्रिभाग उत्कृष्ट आबाधाकाल कहा है। सो त्रिभागसे आठ अपकर्षोंमें आयुबन्ध होता है। यदि कदाचित् किसी भी अपकर्षमें आयुका बन्ध न हो तो किसी आचार्यके मतसे तो आवलीका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण और किसी आचार्यके मतसे एक समय कम मुहूर्त प्रमाण आयुके शेष रहनेसे पहले ही उत्तर भवकी आयुकर्मके अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण समय प्रबद्धोंका बन्ध करके निष्ठापन करता है। ये दोनों मत आचार्य परम्पराका उपदेश होनेसे स्वीकार किये हैं ॥१५८॥

उदीरणेयनाश्रयिसि मूलप्रकृतिगळगाबाधाविशेषमं पेळ्दपरु :—

आवलियं आबाहोदीरणमासेज्ज सत्तकम्माणं ।
परभवियआउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥१५९॥

आवलिकाबाधोदीरणामाश्रित्य सप्तकर्म्मणां । परभवायुषश्चोदीरणा नास्ति नियमेन ॥

उदीरणेयनाश्रयिसि आयुर्व्वर्ज्जितसप्तमूलप्रकृतिगळगाबाधेयावलिकामात्रमेयक्कुमदनचळावळि येंबुदवं कळिदु प्रथमादिनिषेकं गळोळपकृष्टद्रव्यमनुदयावळियोळमुपरितनस्थितियोळतिच्छापनावळियं कळेदुळिद सर्व्वस्थितिनिषेकंगळोळ "भद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूअण अद्धाण अद्धेण ऊणेण णिसेय भागहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं । तत्तो विसेसहीणकम"—मेंदितु प्रथमादिगुणहाणिद्रव्यंगळं तंतम्म प्रथमादिनिषेकंगळं बिट्टु द्वितीयादिनिषेकंगलोळु तंतम्म गुणहानिसंबंधिविशेषहीनक्रमदिदं

कृतौ ॥१५८॥ उदीरणां प्रत्याह—

उदीरणामाश्रित्य आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीना आबाधा आवलिकैव भवति, सा चावलिः अचलावलिरित्युच्यते, तां त्यक्त्वा अपकृष्टद्रव्यं उदयावल्यां उपरितनस्थितौ तु चरमे अतिस्थापनावलीं त्यक्त्वा नानागुणहानिषु च सर्वनिषेकेषु, "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेयभागहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं तं दोगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं तत्तो विसेसहीणकमं" इति

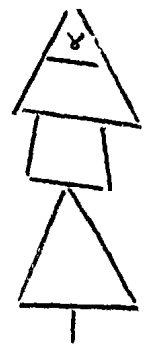
आगे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा कहते हैं—

उदीरणाको लेकर आयुके बिना सात मूल प्रकृतियोंकी आबाधा एक आवली प्रमाण ही होती है । अर्थात् जो कर्म उदीरणारूप होता है तो बँधनेके पश्चात् एक आवली प्रमाणकाल बीतनेपर ही उदीरणारूप होता है । इससे उदीरणाकी अपेक्षा आबाधा एक आवली प्रमाण कही है । कर्म बँधनेपर एक आवली तक तो जैसा बँधा वैसा ही रहता है, उदयरूप या उदीरणारूप नहीं होता । इसीसे इस आवलीको अचलावली कहते हैं । इस अचलावलीको छोड़ पीछे कर्मपरमाणुओंमें-से कितने ही कर्म परमाणुओंका अपकर्षण करके जिन्हें उदयावलीमें देता है, वे तो आवलीकालमें उदय देकर खिर जाते हैं । और जिन्हें ऊपरकी स्थितिमें देता है वे उदयावलीके ऊपरकी स्थितिके अनुसार खिरते हैं । अन्तिम आवली प्रमाण अतिस्थापनावलीको छोड़ जो परमाणु प्राप्त होते हैं वे नानागुण हानिके द्वारा सर्वनिषेकोंमें खिरते हैं । सो उदयावलीमें दिया उदीरणा द्रव्य कैसे खिरता है यह कहते हैं—

विवक्षित कालके समयोंका प्रमाण यहाँ गच्छ है । उससे सर्वधन अर्थात् विवक्षित सर्व परमाणुओंके प्रमाणमें भाग देनेपर मध्यम धन अर्थात् मध्यके समयोंमें जितने खिरते हैं उनका प्रमाण आता है । उस मध्यम धनमें, एक कम गच्छके आधा प्रमाण सो निषेक भागहार जो दो गुणहानि उसमें घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे सो चयका प्रमाण जानना । उस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम समयमें जितने परमाणु खिरते हैं उनका प्रमाण आता है । द्वितीय आदि समय सम्बन्धी निषेकोंमें एक-एक चयहीन परमाणु खिरते हैं । इन सबका विशेष स्वरूप पहले कह आये हैं और आगे भी कहेंगे । इस प्रकार असमयमें ही उदीरणाके द्वारा उदयावलीमें प्राप्त कर्मके खिरनेका

निक्षेपिसुवुदु दीरणाविधानदोळमेंदरिउदु ॥

नानानिषेक स्थिति ।



आबाधावर्ज्जितस्थितियं निषेकमेंदु पेळ्दपरु :—

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं ।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥१६०॥

आबाधोनितकर्म्मस्थितिर्निषेकस्तु सप्तकर्म्मणां । आयुषो निषेकः पुनः स्वस्थितिर्भवति नियमेन ॥ ५

आयुर्वर्ज्जितज्ञानावरणादि सप्तमूलप्रकृतिगळगे आबाधोनित कर्म्मस्थिति । तु मत्ते निषेकमक्कुमायुष्यकर्म्मक्के पुनः मत्ते स्वस्थितियेनितेनितुं निषेकमक्कुं नियमदिंदं ।[1]

निक्षिपेत् उदीरणाविधाने इति ज्ञातव्यम् ।

∧ ४ अतिस्थापनावलिः
उपरितनस्थितिः
∧ ४ उदयावलिः
∧ ४ अचलावलिः

॥१५९॥ निषेकस्वरूपमाह—

आयुर्वर्जितसप्तमूलप्रकृतीनां आबाधोनितकर्मस्थितिः तु—पुनः निषेकः स्यात् । आयुषः पुनः स्वस्थितिः सर्वैव निषेको भवति नियमेन ॥१६०॥

कथन जानना । आयुकर्ममें उदीरणा जिस आयुको भोग रहे हैं उसी आयुमें होती है । जो आगामी उत्तरभवकी आयु बाँधी है उसकी उदीरणा नियमसे नहीं होती ॥१५९॥

आगे निषेकका स्वरूप कहते हैं— १५

आयुको छोड़ सात मूल प्रकृतियोंके निषेक उनकी आबाधाकालसे हीन जितनी स्थितिका प्रमाण है उतने हैं । आशय यह है कि प्रति समय जितने कर्मपरमाणु खिरते हैं उनके समूहका नाम निषेक है । सो सात कर्मोंमें-से किसी भी कर्मकी जितनी स्थिति बँधी हो उसमेंसे आबाधाकालमें तो कोई परमाणु खिरता नहीं । आबाधाकाल बीतनेपर प्रति समय कर्मपरमाणु क्रमसे खिरते हैं । अतः कर्मकी स्थितिमें-से आबाधाकाल घटानेपर जो २० काल शेष रहे उसके समयोंका जितना प्रमाण हो उतना ही निषेकोंका प्रमाण होता है । सो सात कर्मोंके निषेक तो उनकी आबाधाहीन स्थिति प्रमाण जानना । किन्तु आयुकर्मकी

१. क °दिदं । आयुष्य कर्म सर्व निषेकस्थिति ∧ ।

आबाहं बोलाविय पढमणिसेगम्मि देइ बहुगं तु ।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसिगोत्ति ॥१६१॥

आबाधामपनीय प्रथमनिषेके ददाति बहुकं तु । ततो विशेषहीनं द्वितीयस्याद्यनिषेकपर्य्यंतं ॥

कर्म्मस्थितियोळाबाधेयं कळेदु प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु बहुद्रव्यमं कुडुगुं । तु मत्ते ततो विशेषहीनं अल्लिंद मेलण द्वितीयनिषेकं मोदल्गोंडु द्वितीयगुणहान्याद्यनिषेकपर्य्यंतं विशेषहीनक्रमदिंदं कुडुगुं ॥

बिदिये बिदियणिसेगे हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडि हाणी अद्धद्धयं होदि ॥१६२॥

द्वितीये द्वितीयनिषेके हानिः पूर्व्वहानेरर्द्धं तु । एवं गुणहानिं प्रति हानिरर्द्धार्द्धं भवति ॥

तु मत्ते द्वितीये द्वितीयगुणहानियोळु द्वितीयनिषेके द्वितीयनिषेकदोळु हानिः हानि पूर्व्वहानेरर्द्धं प्रथमगुणहानिय हानियं नोडलर्द्धंयक्कुमिन्तु गुणहानिं प्रति गुणहानि । गुणहानिदप्पदे हानिः हानी अर्द्धार्द्धं भवति अर्द्धार्द्धक्रममक्कुं । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । द्रव्य ६३०० । गुणहानि ८ । नानागुणहानि ६ । स्थिति ४८ । अन्योन्याभ्यस्तराशि

च	१००
	२००
	४००
	८००
	१६००
प्र	३२००

कर्मस्थितावाबाधां त्यक्त्वा प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके बहुद्रव्यं ददाति । तु-पुनः तत उपरि द्वितीयादिनिषेकेषु द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकपर्यन्तेषु विशेषहीनक्रमेण ददाति ॥१६१॥

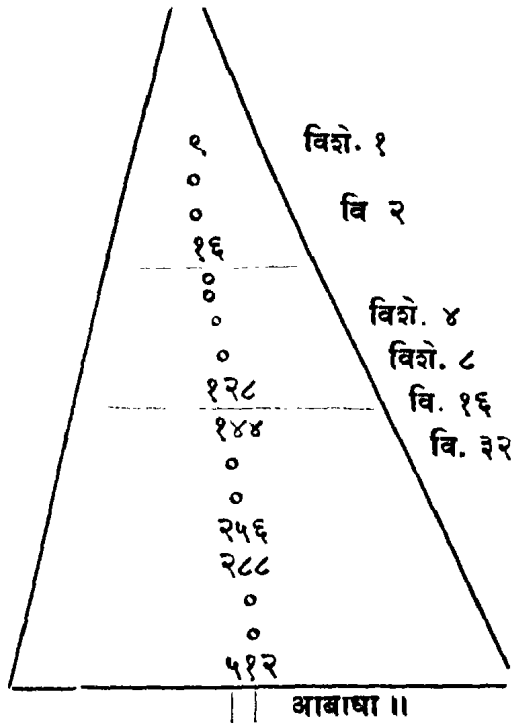
तु-पुनः द्वितीयगुणहानौ द्वितीयनिषेके हानिः पूर्वहानेरर्धं भवति । एवं गुणहानिं गुणहानि प्रति

स्थितिमें-से आबाधाकाल नहीं घटाना क्योंकि आयुकर्मकी आबाधा तो जिस भवमें उसका बन्ध किया उसी भवमें पूर्ण हो गयी। पीछे जो जन्म धारण किया उसमें प्रथम समयसे लगाकर अन्त समय पर्यन्त प्रतिसमय आयुकर्मके निषेक खिरते हैं। अतः आयुकर्मकी जितनी स्थिति होती है उसके समयोंका जितना प्रमाण होता है उतने ही आयुकर्मके निषेक होते हैं ॥१६०॥

सो आबाधाकालको छोड़कर, क्योंकि आबाधाकालमें तो कोई परमाणु खिरता नहीं, अतः उसके अनन्तर समयमें अर्थात् प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें अन्य निषेकोंसे बहुत द्रव्य देना चाहिए। उसमें बहुत परमाणु खिरते हैं। तथा प्रथम गुणहानिके द्वितीय आदि निषेकोंमें द्वितीय गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त एक-एक चयहीन द्रव्य देना चाहिए ॥१६१॥

तथा दूसरी गुणहानिके दूसरे निषेकमें प्रथम निषेकसे पहले प्रत्येक निषेकमें जितना घटाया था उससे आधा घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना द्रव्य देना चाहिए। इसी प्रकार तीसरे आदि निषेकोंमें तीसरी गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त इतना-इतना ही घटाना

नानागुणहानिनिषेकरचने णाणावरणादि ७ निषेकस्थिति
आयुष्य कर्म सर्वनिषेकस्थिति
आयुष्यक्के स्वस्थितियेनिजनितुं निषेकमक्कुं



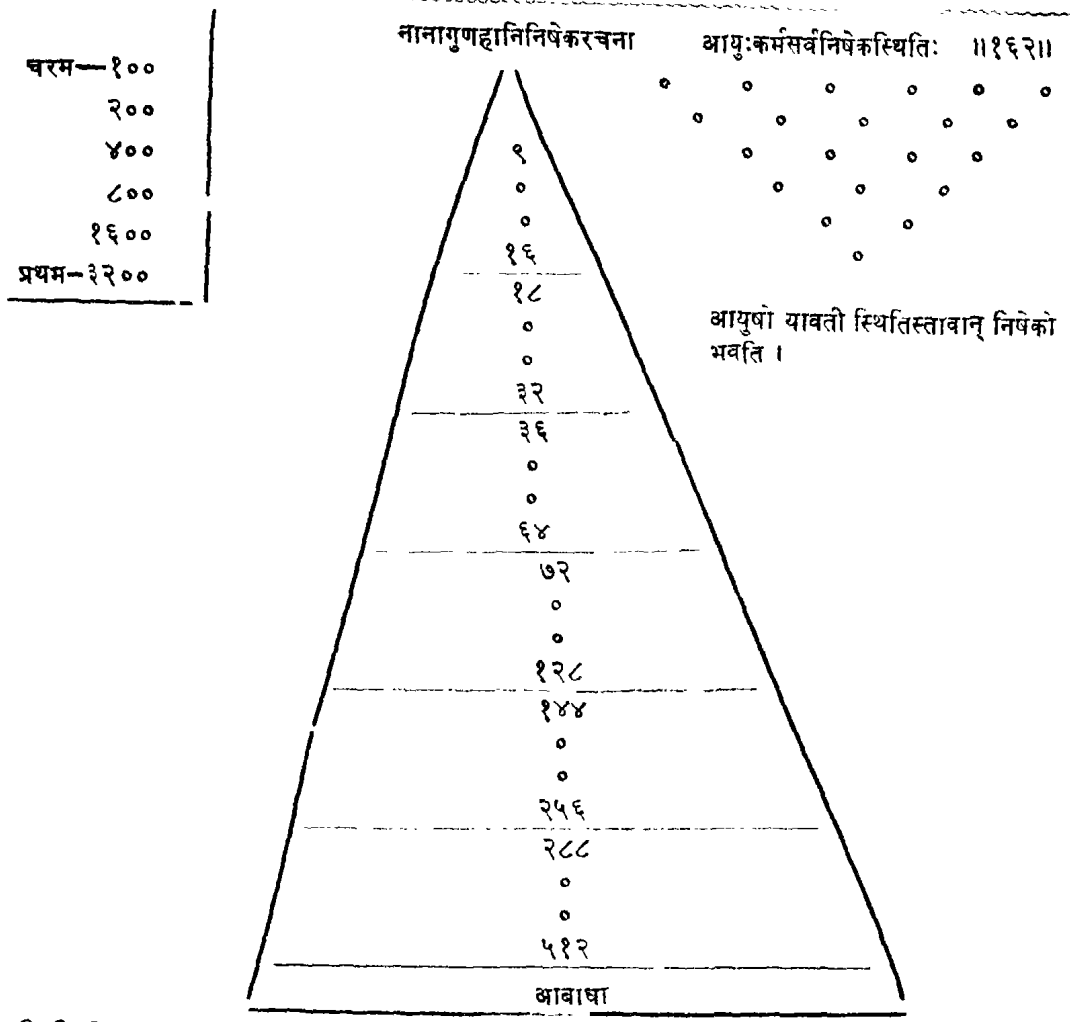
इन्तु स्थितिबंधप्रकरणं समाप्तमादुदु ॥

हानिः अर्धार्धक्रमा भवति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ द्रव्यं ६३०० । गुणहानिः ८ । नानागुणहानिः ६ । स्थितिः ४८ । अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ ।

चाहिए । आगे प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है । इस कथनको अंकसंदृष्टि द्वारा कहते हैं—

विवक्षित कर्मके परमाणु ६३०० तिरसठ सौ । आबाधा बिना स्थितिका प्रमाण अड़तालीस ४८ । एक गुणहानि आठ समय प्रमाण । नाना गुणहानि छह । दो गुणहानि सोलह । अन्योन्याभ्यस्त राशि चौंसठ ६४ । प्रथम गुणहानिमें परमाणु बत्तीस सौ ३२०० खिरते हैं । द्वितीयादि गुणहानिमें आधे-आधे खिरते हैं—३२००।१६००।८००।४००।२००।१०० । एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका परिमाण आता है । उससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त जानना । सो प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य बत्तीस सौ । उसमें प्रथम गुणहानिके गच्छके प्रमाण आठसे भाग देनेपर मध्यधन चार सौ आता है । एक कम गच्छका आधा प्रमाण साढ़े तीनको निषेक भागहार सोलहमें-से घटाने पर साढ़े बारह रहे । उस साढ़े बारहका भाग मध्यधनमें देनेपर बत्तीस आये । वही चय जानना । उसको दो गुणहानि सोलहसे गुणा करनेपर पाँच सौ बारह हुए । यही प्रथम निषेक सम्बन्धी द्रव्यका प्रमाण है । उसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक

अनंतरमनुभागबंधमं त्रयोविंशतिगाथासूत्रंगळिदं पेळ्दपरु :—



इति स्थितिबन्धकारणं समाप्तं । अथानुभागबन्धं त्रयोविंशतिगाथाभिराह—

सम्बन्धी द्रव्य होता है—५१२।४८०।४४८।४१६।३८४।३५२।३२०।२८८। इस दो सौ अठासीमें एक चय घटनेपर दो सौ छप्पन होते हैं। यह प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेक पाँच सौ बारह-का आधा है। सो यही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक है। यहाँ हानिरूप चयका प्रमाण पूर्वसे आधा अर्थात् सोलह है। सो तीसरी गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त सोलह-सोलह घटानेपर २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४ होते हैं। उसमें एक चय घटानेपर एक सौ अठाईस हुए। यह दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेक दो सौ छप्पनसे आधा है। सो यह तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक है। यहाँ चयका प्रमाण पूर्वसे भी आधा आठ है। इस तरह अन्तकी छठी गुणहानि पर्यन्त सर्वधनका, निषेकोंके द्रव्यका और चयका प्रमाण आधा-आधा जानना। इस क्रमसे तरेसठ सौ परमाणु खिरते हैं ॥१६२॥

स्थितिबन्धका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे तेईस गाथाओंसे अनुभाग बन्धका कथन करते हैं—

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसेण ।
विवरीदेण जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥१६३॥

शुभप्रकृतीनां विशुध्या तीव्रः अशुभानां संक्लेशेन । विपरीतेन जघन्योऽनुभागः सर्व्व-प्रकृतीनाम् ॥

शुभप्रकृतीनां सातादि प्रशस्तप्रकृतिगळगे । विशुद्धचा विशुद्धिपरिणामदिंदं । तीव्रः तीव्रानुभागमक्कुमशुभानाम् असाताद्यप्रशस्तप्रकृतिगळगे । संक्लेशेन संक्लेशपरिणामदिंद तीव्रः तीव्रानुभागमक्कुं । विपरीतेन संक्लेशपरिणामदिंद प्रशस्तप्रकृतिगळगे जघन्यानुभागमुं विशुद्धिपरिणामदिंदमप्रशस्तप्रकृतिगळगे जघन्यानुभागमुमक्कु । सर्व्वप्रकृतीनां मूलोत्तरोत्तर प्रकृतिगळगेनितोळवनितक्कुं ॥

बादालं तु पसत्था विसोहिगुणमुक्कडस्स तिव्वाओ ।
बासीदि अप्पसत्था मिच्छुक्कडसंकिलिट्ठस्स ॥१६४॥

द्वाचत्वारिंशत् तु प्रशस्ताः विशुद्धिगुणोत्कटस्य तीव्राः । द्व्यशीत्यप्रशस्ताः मिथ्यादृष्ट्युत्कट-संकिलिष्टस्य ॥

प्रशस्ताः सातादिप्रशस्तप्रकृतिगळु द्विचत्वारिंशत्संख्याप्रमितंगळु विशुद्धिगुणोत्कटस्य विशुद्धिगुणदिंदमुत्कटनप्प जीवंगे तीव्राः तीव्रानुभागंगळप्पुवु । द्व्यशीत्यप्रशस्ताः असातादि-वर्णचतुष्टयोपेतद्व्यशीत्यप्रशस्तप्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टयुत्कटसंक्लिष्टस्य मिथ्यादृष्टयुत्कटसंक्लिष्ट-जीवंगे । तु मत्ते तीव्राः तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

शुभप्रकृतीनां सातादीनां प्रशस्तानां विशुद्धिपरिणामेन, असाताद्यप्रशस्तानां संक्लेशपरिणामेन च तीव्रानुभागो भवति । विपरीतेन संक्लेशपरिणामेन प्रशस्तानां विशुद्धपरिणामेन अप्रशस्तानां च जघन्यानुभागो भवति ॥१६३॥

सातादिप्रशस्ताःद्वाचत्वारिंशद्विशुद्धिगुणेनोत्कटस्य, असातादिचतुर्वर्णोपेताप्रशस्ताःद्व्यशीतिः मिथ्यादृष्टयुत्कटस्य संक्लिष्टस्य च तीव्रानुभागा भवन्ति ॥१६४॥

शुभ प्रकृति अर्थात् साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका विशुद्धि परिणामोंसे तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागबन्ध होता है । और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका संक्लेश परिणामोंसे तीव्र अर्थात् उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध होता है । और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका संक्लेश परिणामोसे तीव्र अनुभागबन्ध होता है । तथा विपरीतसे अर्थात् संक्लेश परिणामसे प्रशस्त प्रकृतियोंका और विशुद्धि परिणामसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध होता है । इस प्रकार सब प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध होता है । मन्दकषाय रूप परिणामोंको विशुद्ध और तीव्रकषाय रूप परिणामोंको संक्लेश कहते हैं ॥१६३॥

सातावेदनीय आदि बयालीस प्रशस्त प्रकृतियाँ, जिसके विशुद्धि गुणकी तीव्रता होती है, उसके तीव्र अनुभाग बन्धको लिए हुए बँधती हैं । और असाता आदि बयासी अप्रशस्त प्रकृतियाँ उत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टिके तीव्र अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१६४॥

विशेषार्थ—यहाँ शुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्शको प्रशस्त प्रकृतियोंमें गिना है और अशुभ वर्ण गन्ध रस स्पर्शको अप्रशस्त प्रकृतियोंमें गिना है । इस तरह इन चारकी गणना दोनोंमें

आदाओ उज्जोओ मणुवतिरिक्खाउगं पसत्थासु ।
मिच्छस्स होंति तिव्वा सम्माइट्ठिस्स सेसाओ ॥१६५॥

आतप उद्योतो मनुष्यतिर्य्यगायुष्यं प्रशस्तासु । मिथ्यादृष्टेर्भवंति तीव्राः सम्यग्दृष्टेः शेषाः ॥

आतपनामकर्म्ममुमुद्योतनामकर्म्ममुं मानवायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुमेंबी नाल्कुं ४ प्रकृतिगळु प्रशस्तप्रकृतिगळोळु विशुद्धमिथ्यादृष्टिगे तीव्रानुभागंगळप्पुवु । शेषाः शेषसातादि अष्टात्रिंशत्प्रशस्तप्रकृतिगळु विशुद्धसम्यग्दृष्टिगळिगे तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

मणुओरालदुवज्जं विसुद्धसुरणिरयअविरदे तिव्वा ।
देवाउ अप्पमत्ते खवगे अवसेसबत्तीसा ॥१६६॥

मनुष्यौदारिकद्वयं वज्रं विशुद्धसुरनारकाविरते तीव्राः । देवायुरप्रमत्ते क्षपके अवशेष द्वात्रिंशत् ॥

सम्यग्दृष्टिगळ तीव्रानुभागप्रकृतिगळु मूवत्तेंट ३८ रोळु मनुष्यद्विकमुमौदारिकद्विकमुं वज्रऋषभनाराचसंहननमुमेंब प्रकृतिपंचकं अनंतानुबंधियं विसंयोजिसुवनिवृत्तिकरणपरिणामचरमसमयद विशुद्धसुरनारकरुगळगसंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे तीव्रानुभागंगळप्पुवु । अप्रमत्तनोळु देवायुष्यं तीव्रानुभागमक्कुं । अवशेषद्वात्रिंशत्प्रशस्त प्रकृतिगळु क्षपकनोळु तीव्रानुभागमप्पुवु ॥

प्रशस्तप्रकृतिषु आतपः उद्योतः मानवतिर्यगायुषी चेति चतस्रः विशुद्धमिथ्यादृष्टेः शेषाः साताद्याष्टत्रिंशद्विशुद्धसम्यग्दृष्टेश्च तीव्रानुभागा भवन्ति ॥१६५॥

सम्यग्दृष्टिषु उक्ताष्टात्रिंशन्मध्ये मनुष्यद्विकं औदारिकद्विकं च वज्रवृषभनाराचसंहननं चेति पञ्चकं अनन्तानुबन्धिविसंयोजनकानिवृत्तिकरणचरमसमयविशुद्धसुरनारकासंयतसम्यग्दृष्टी तीव्रानुभागं भवति । देवायुः अप्रमत्ते भवति । अवशिष्टा द्वात्रिंशत् क्षपके एव ॥१६६॥

होनेसे बन्ध प्रकृतियोंकी संख्या १२० में चार बढ़ गयी; क्योंकि किसीको कोई रूप आदि अच्छा लगता है और किसीको वही बुरा लगता है ॥१६४॥

उन बयालीस प्रशस्त प्रकृतियोंमें-से आतप, उद्योत, मनुष्यायु इन चारका तो विशुद्ध मिथ्यादृष्टिके तीव्र अनुभाग बन्ध होता है । और शेष साता आदि अड़तीस प्रकृतियोंका विशुद्ध सम्यग्दृष्टीके तीव्र अनुभागबन्ध होता है ॥१६५॥

किन्तु सम्यग्दृष्टीके तीव्र अनुभाग सहित बँधनेवाली अड़तीस प्रकृतियोंमें-से मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रऋषभनाराच संहनन इन पाँचका तीव्र अनुभागबन्ध जो देव या नारकी असंयत सम्यग्दृष्टी अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनके लिए तीन करण करते हुए अनिवृत्ति करणके अन्तके समयमें वर्तमान होता है उसके होता है । देवायुका तीव्र अनुभागबन्ध अप्रमत्त गुणस्थानमें होता है । शेष बत्तीस प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध क्षपक श्रेणिवाले जीवके ही होता है ॥१६६॥

उवघादहीणतीसे अपुव्वकरणस्स उच्चजससादे ।
सम्मेलिदे हवंति हु खवगस्सवसेसबत्तीसा ॥१६७॥

उपघातहीनत्रिंशत् अपूर्वकरणस्योच्चयशः शातान् । सम्मिलिते भवंति खलु क्षपकस्यावशेषद्वात्रिंशत् ॥

अपूर्व्वकरणस्य अपूर्व्वकरणक्षपकन उपघातनामकर्म्मवर्जितषष्ठभागव्युच्छिन्नत्रिंशत्प्रकृतिगळु 'छट्ठे भागे तित्थं णिमिणं सग्गमणपंचिंदी । तेजदु हारदु' इत्यादिगळनू सूक्ष्मसांपरायन उच्चैर्गोत्रमं यशस्कीर्तियुमं सातवेदनीयमुमं कूडुत्तिरलु अवशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतिगळु क्षपकनोळु तीव्रानुभागंगळप्पुवेंदु पेळ्द प्रकृतिगळप्पुवु ॥

मिच्छस्संतिमणवयं णरतिरियाऊणि वामणरतिरिए ।
एइंदिय आदावं थावरणामं च सुरमिच्छे ॥१६८॥

मिथ्यादृष्ट्यंतिमनवकं नरतिर्य्यगायुर्व्वामनरतिरश्चि । एकेंद्रियमातपस्थावरनाम च सुरमिथ्यादृष्टौ ॥

अप्रशस्तप्रकृतिगळु अशुभवर्णचतुष्कयुक्तंगळ ८२ प्रशस्त प्रकृतिगळु ४ कूडि ८६ प्रकृतिगळगे मिथ्यादृष्टिजीवने तीव्रानुभागमं माळ्कुमाव प्रकृतिगळगाव मिथ्यादृष्टि माळ्कुमेंदोडे मिथ्यादृष्ट्यन्तिमनवकं सूक्ष्मत्रयविकलेन्द्रियत्रयनरकद्विकनरकायुष्यमेंबी मिथ्यादृष्ट्यंतिम नवकमुं संक्लिष्टरोळु मनुष्यतिर्य्यगायुर्द्वयं विशुद्धमिथ्यादृष्टि मनुष्यतिर्यंचरोळु कूडि ११ प्रकृतिगळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु । एकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुं संक्लिष्टरोळु आतपं विशुद्धरोळिन्तु प्रकृतित्रयं स्वस्थिति षण्मासावशेषमागुत्तं विरलु सुरमिथ्यादृष्टियोळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

अपूर्वकरणक्षपकस्य उपघातवर्जितषष्ठभागव्युच्छित्तित्रिंशति सूक्ष्मसांपरायस्य उच्चैर्गोत्रयशस्कीर्तिसातवेदनीयेषु मिलितेषु ताः अवशेषद्वात्रिंशत्प्रकृतयो भवन्ति ॥१६७॥

अप्रशस्तद्व्यशीतिः आतपादयश्चतस्रश्च मिथ्यादृष्टावेव तीव्रानुभागा उक्ताः । तत्र सूक्ष्मत्रयादिमिथ्यादृष्ट्यंतिमनवकं नरतिरिश्चोः संक्लिष्टयोः नरतिर्यगायुषी च विशुद्धयोर्भवन्ति । एकेन्द्रियं स्थावरं च संक्लिष्टे आतपस्तु विशुद्धे स्वस्थितिषण्मासावशेषे सुरमिथ्यादृष्टौ भवन्ति ॥१६८॥

क्षपक अपूर्वकरण गुणस्थानके छठे भागमें जिन तीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही है उनमें-से उपघातको छोड़कर उनतीस तथा सूक्ष्म साम्परायमें बँधनेवाली उच्चगोत्र, यशःकीर्ति और सातावेदनीय मिलकर उक्त बत्तीस प्रकृतियाँ होती हैं ॥१६७॥

बयासी अप्रशस्त प्रकृति और आतप, उद्योत, मनुष्यायु, तिर्यंचायु इन छियासीका तीव्र अनुभाग सहित बन्ध मिथ्यादृष्टिके ही होता है। उनमेंसे जिन सोलह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिके कही है उनमेंसे सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण आदि अन्तकी नौ प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध संक्लेश परिणामयुक्त मनुष्य और तिर्यंच करते हैं। और मनुष्यायु तिर्यंचायुका तीव्र अनुभागबन्ध विशुद्ध परिणामवाले देव मनुष्य या तिर्यंच करते हैं तथा एकेन्द्रिय, स्थावरका संक्लेश परिणामवाला और आतपका विशुद्ध परिणामवाला मिथ्यादृष्टि देव अपनी आयुके छह मास शेष रहनेपर तीव्र अनुभाग बन्ध करता है ॥१६८॥

उज्जोओ तमतमगे सुरणारयमिच्छगे असंपत्तं ।
तिरियदुगं सेसा पुण चदुगदिमिच्छे किलिट्ठे य ॥१६९॥

उद्योतस्तमस्तमके सुरनारकमिथ्यादृष्टावसंप्राप्तं । तिर्य्यग्द्विकं शेषाः पुनश्चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ क्लिष्टे च ॥

तमस्तमके सप्तमनरकभूमियोळुपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धियुतनारकनोळुद्योतनामकर्म्म तीव्रानुभागमक्कुमेकेंदोडे अतिविशुद्धंगुद्योतनामकर्म्मबंध मिल्लप्पुदरिदं । मत्तं सुरनारकमिथ्यादृष्टिजीवंगळोळु असंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुं तिर्य्यग्द्विकमेंब त्रिप्रकृतिगळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु । शेषाष्टोत्तरषष्टिप्रकृतिगळु ६८ । पुनः मत्ते संक्लिष्टचतुर्गतिमिथ्यादृष्टिजीवनोळु तीव्रानुभागंगळप्पुवु ॥

यितुत्कृष्टानुभागमं पेळ्दनंतरं जघन्यानुभागबंधस्वामिगळं पेळ्दपरु :—

वण्णचउक्कमसत्थं उवघादो खवगघादि पणुवीसं ।
तीसाणमवरबंधो सगसगवोच्छेदठाणम्मि ॥१७०॥

वर्णचतुष्कमशस्तं उपघातः क्षपकघाति पंचविंशतिः त्रिंशतामवरबंधः स्वस्वव्युच्छित्तिस्थाने ॥

अप्रशस्तवर्णचतुष्कमुं उपघातनाममुं ज्ञानावरणपंचकमुमन्तरायपंचकमुं दर्शनावरणचतुष्कमुं निद्रेयुं प्रचलेयुं हास्यमुं रतियुं भयमुं जुगुप्सेयुं पुंवेदमुं संज्वलन चतुष्कमेंब क्षपकरुगळ पंचविंशतिघातिगळुं कूडि ३० मूवत्तुं प्रकृतिगळ जघन्यानुभागबंधं स्वस्वबंधव्युच्छित्तिस्थानदोळेयक्कुं । अशु० व ४ उ १ णा ५ वि ५ दं ४ नि १ प्र १ हा १ र १ । भ १ जु १ पुं १ सं ४ कूडि ३० ॥

तमस्तमके सप्तमनरके उपशमसम्यक्त्वाभिमुखमिथ्यादृष्टिविशुद्धनारके उद्योतः तीव्रानुभागो भवति अतिविशुद्धस्य तदबन्धात् । पुनः सुरनारकमिथ्यादृष्टौ असंप्राप्तसृपाटिकासंहननं तिर्यग्द्विकं च । शेषाः अष्टषष्टिः ६८ पुनः संक्लिष्टचातुर्गतिकमिथ्यादृष्टौ ॥१६९॥ अथ जघन्यानुभागबन्धकानाह—

अप्रशस्तवर्णचतुष्कं उपघातः पञ्चज्ञानावरणपञ्चान्तरायचक्षुर्दर्शनावरणनिद्राप्रचलाहास्यरतिभयजुगुप्सापुंवेदचतुःसंज्वलनाश्चेति त्रिंशतः जघन्यानुभागः स्वस्वबन्धव्युच्छित्तिस्थाने भवति ॥१७०॥

सातवें नरकमें उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि विशुद्ध नारकी उद्योतका तीव्र अनुभागबन्ध करता है, क्योंकि अतिविशुद्धके उद्योत प्रकृतिका बन्ध नहीं होता । तथा मिथ्यादृष्टि देव और नारकीके असंप्राप्तासृपाटिका संहनन तिर्यंचगति और तिर्यंचगत्यानुपूर्वीका तीव्र अनुभागबन्ध होता है । शेष अड़सठ प्रकृतियोंका तीव्र अनुभागबन्ध चारों गतिके संक्लेश परिणामवाले मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं ॥१६९॥

आगे जघन्य अनुभागबन्ध करनेवालोंको कहते हैं—

अप्रशस्त वर्णादि चार, उपघात, पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, चार दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, चार संज्वलन कषाय इन तीस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपनी-अपनी बन्धव्युच्छित्तिके स्थानमें होता है अर्थात् जहाँ इनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है वहीं जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥१७०॥

अणथीणतियं मिच्छं मिच्छे अयदे हु बिदियकोहादी ।
देसे तदियकसाया संजमगुणपत्थिदे सोलं ॥१७१॥

अनन्तानुबंधिस्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं मिथ्यादृष्टौ असंयते खलु द्वितीयक्रोधादयः। देशव्रते तृतीयकषायः संयमगुणप्रार्थिते षोडश ॥

अनंतानुबंधिचतुष्कमुं स्त्यानगृद्धित्रयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमेंब ८ अष्टप्रकृतिगळु संयमगुणप्रार्थितनप्प संयमगुणाभिमुखनप्प विशुद्धमिथ्यादृष्टियोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभंगळु ४ नाल्कुं संयमाभिमुखनप्प विशुद्धासंयतनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभंगळु ४ नाल्कुं संयमाभिमुखनप्प देशसंयतनोळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। अदरिनो षोडशप्रकृतिगळुं संयमगुणप्रार्थितरोळे जघन्यानुभागंगळप्पुवेंदु पेळल्पट्टुवु। अ ४ स्त्या ३ मि १ अ ४ प्र ४ ॥

आहारमप्पमत्ते पमत्तसुद्धेव अरदिसोगाणं ।
णरतिरिये सुहुमतियं वियलं वेगुव्वछक्काऊ ॥१७२॥

आहारमप्रमत्ते प्रमत्तसुद्धे एवारतिशोकयोः। नरतिरश्चोः सूक्ष्मत्रयं विकलं वैगुर्व्वषट्कमायुः ॥

आहारकद्वयं प्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिंदं प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टाप्रमत्तसंयतनोळु जघन्यानुभागमक्कुं। अरतिशोकद्वयमप्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिंदमप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्तसंयतनोळु जघन्यानुभागमक्कुं। सूक्ष्मत्रयमुं विकलत्रयमुं वैक्रियिकषट्कमुमायुश्चतुष्कमुमेंब १६ प्रकृतिगळु नरतिर्य्यंचरोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। आ २। अ १। शो १। सू ३। वि ३। वै ६। आ ४॥

अनन्तानुबन्धिनः स्त्यानगृद्धित्रयं मिथ्यात्वं च मिथ्यादृष्टौ, अप्रत्याख्यानकषायाः असंयते, प्रत्याख्यानकषायाः देशसंयते इतीमाः षोडशप्रकृतयः तत्र तत्र संयमगुणाभिमुखे एव विशुद्धजीवे जघन्यानुभागा भवन्ति ॥१७१॥

आहारकद्वयं प्रशस्तत्वात् प्रमत्तगुणाभिमुखसंक्लिष्टाप्रमत्ते जघन्यानुभागं भवति। अरतिशोकौ अप्रशस्तत्वात् अप्रमत्तगुणाभिमुखविशुद्धप्रमत्ते एव। सूक्ष्मत्रयं विकलत्रयं वैक्रियिकषट्कं आयुश्चतुष्कं च नरतिरश्चोरेव ॥१७२॥

अनन्तानुबन्धी चार कषाय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, और मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टिमें, चार अप्रत्याख्यान कषायोंका असंयतमें, चार प्रत्याख्यान कषायोंका देशसंयतमें, इस प्रकार ये सोलह प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणस्थानोंमें संयमगुण धारण करनेके अभिमुख विशुद्ध जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७१॥

आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। अतः इनका जघन्य अनुभागबन्ध प्रमत्तगुणस्थानके अभिमुख हुए संक्लेश परिणामवाले अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवके होता है। अरति और शोक अप्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। अतः इनका जघन्य अनुभागबन्ध अप्रमत्त गुणस्थानके अभिमुख हुए विशुद्ध प्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवके होता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति,

सुरणिरये उज्जोवोरालदुगं तमतमम्मि तिरियदुगं ।
णीचं च तिगदिमज्झिमपरिणामे थावरेयक्खं ॥१७३॥

सुरनारकेषूद्योतः औदारिकद्विकं तमस्तमे तिर्य्यग्द्विकं । नीचं च त्रिगतिमध्यमपरिणामे स्थावरैकाक्षं ॥

सुरनारकरोळुद्योतमुमौदारिकद्विकमुं जघन्यानुभागंगळप्पुवल्लि देवर्क्कळतिविशुद्धरादोडुद्योतनाममं मोदल्गे कट्टुवरल्लदु कारणदिंदमुद्योतनामं प्रशस्तप्रकृतियप्पुदरिंदं सुरनारकरुगलु संक्लिष्टरुगळे जघन्यानुभागमनदक्के माळ्परु । तिर्य्यद्विकं नीचैर्गोत्रमुमेंब प्रकृतित्रयं सप्तमपृथ्विय नारकनोळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागमक्कुं । स्थावरनाममुमेकेंद्रियजातिनाममुमेंबेरडुं प्रकृतिगळु नरकगतिरहित शेषत्रिगतिजीवंगळ तीव्रविशुद्धि संक्लेशपरिणाममल्लद मध्यमपरिणामदोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । उ १ । औ २ । ति २ । नी १ । था १ । ए १ ॥

सोहम्मोत्ति य तावं तित्थयरं अविरदे मणुस्सम्मि ।
चदुगतिवामकिलिट्ठे पण्णरस दुवे विसोहीये ॥१७४॥

सौधर्म्मपर्य्यन्तमातपः तीर्थंकरमविरते मनुष्ये । चतुर्गतिवामक्लिष्टे पंचदश द्वे विशुद्धे ॥

भवनत्रयमादियागि सौधर्म्मद्वयपर्य्यन्तमाद देवर्क्कंळातपनाममं संक्लिष्टरु जघन्यानुभागमं माळ्परु । नरकगतिगमनाभिमुखनप्प असंयतनोळु मनुष्यनोळु तीर्थंकरनाममं जघन्यानुभाग-

---

उद्योतः औदारिकद्विकं च सुरनारके जघन्यानुभागं लभते । तत्र उद्योतः अतिविशुद्धदेवे बन्धाभावात् प्रशस्तत्वात् संक्लिष्टे एव लभते । तिर्यग्द्विकं नीचैर्गोत्रं च सप्तमपृथ्वीनारके विशुद्धे, स्थावरमेकेन्द्रियं च नारकाद्विना शेषत्रिगतिजे तीव्रविशुद्धिसंक्लेशरहिते मध्यमपरिणामे एव ॥१७३॥

आतपनामकर्म भवनत्रये सौधर्मद्वये च संक्लिष्टे जघन्यानुभागं भवति तीर्थकृत्त्वं नरकगमनाभिमुखा-

---

नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग और चार आयु इन सोलह प्रकृतियोंको मनुष्य और तिर्यंच जघन्य अनुभाग सहित बाँधते हैं ॥१७२॥

विशेषार्थ—गाथामें चार आयु नहीं गिनायी हैं । टीकामें ही गिनायी हैं ।

उद्योत और औदारिक द्विक देव और नारकीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं । उनमें-से उद्योत प्रकृतिका बन्ध अति विशुद्ध परिणामवाले देवके नहीं होता । अतः संक्लेश परिणामीके ही जघन्य अनुभाग सहित बँधती है । तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और नीच गोत्र सातवें नरकमें विशुद्ध परिणामी नारकीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं । स्थावर, एकेन्द्रिय ये दो प्रकृतियाँ नारकी बिना शेष तीन गतिवाले जीवके, जिसके परिणाम न तो तीव्र विशुद्ध होते हैं और न तीव्र संक्लेशयुक्त होते हैं, किन्तु मध्यम परिणाम होते हैं उसीके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७३॥

आतप प्रकृति भवनत्रिक और सौधर्म ईशान स्वर्गके संक्लेश परिणामवाले देवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती है । तीर्थंकर प्रकृति नरक जानेके अभिमुख असंयत सम्यक्-

मक्कुं । चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टिसंक्लिष्टनोळु मुंवण सूत्रदोळु पेळ्व पंचदश प्रकृतिगळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । मत्तमेरडु प्रकृतिगळु विशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवउवाउवेंदोडे पेळ्वपरु :—

परघाददुगं तेजदु तसवण्णचउक्क णिमिणपंचिंदी ।
अगुरुलहुं च किलिट्ठे इत्थिणउंसं विसोहीये ॥१७५॥

परघातद्विकं तैजसद्विकं त्रसवर्णचतुष्कनिर्म्माणपंचेंद्रियाण्यगुरुलघुश्च विलष्टे स्त्रीनपुंसके विशुद्धे ॥

परघातमुमुच्छ्वासमुं तैजसशरीरनाममुं कार्म्मणशरीरनाममुं त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरचतुष्कमुं शुभवर्णचतुष्कमुं निर्म्माण पंचेंद्रियजातिनाममुमगुरुलघुनाममुमेंदिवु १५ पंचदशप्रकृतिगळेंबुवक्कुमिवु चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसंक्लिष्टजीवनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु एकेंदोडे इवु प्रशस्तप्रकृतिगळप्पुदरिंदं, स्त्रीनपुंसकंगळेरडुमप्रशस्तप्रकृतिगळप्पुदरिंदं चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिविशुद्धनोळु जघन्यानुभागंगळप्पुवु । अ १ । ति १ । प १ । उ १ । तै २ । त्र १ । बा १ । प १ । प्र १ । व १ । ग १ । र १ । स्प १ । नि १ । प १ । अगु १ । स्त्री १ । न १ ॥

सम्मो वा मिच्छो वा अट्ठ अपरियट्टमज्झिमो य जदि ।
परिवट्टमाणमज्झिममिच्छाइट्ठी दु तेवीसं ॥१७६॥

सम्यग्दृष्टिर्वा मिथ्यादृष्टिर्वा अष्ट अपरिवर्त्तमानमध्यमश्च यदि । परिवर्तमानमध्यममिथ्यादृष्टिस्तु त्रयोविंशति ॥

संयतमनुष्ये एव । उत्तरसूत्रोक्तपञ्चदशप्रकृतयः चतुर्गतिकमिथ्यादृष्टौ संक्लिष्टौ एव, द्वे प्रकृती विशुद्धे एव ॥१७४॥ अमुमुत्तरार्धमेव स्पष्टयति—

परघातोच्छ्वासौ तैजसकार्मणे त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकानि शुभवर्णचतुष्कं निर्माणं पञ्चेन्द्रियं अगुरुलघु चेति पञ्चदशप्रकृतयः चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ संक्लिष्टे जघन्यानुभागा भवन्ति प्रशस्तत्वात् । स्त्रीषंढवेदौ तस्मिन् विशुद्धे एव अप्रशस्तत्वात् ॥१७५॥

दृष्टी मनुष्यके जघन्य अनुभाग सहित बँधती है । आगे कही गयी । पन्द्रह प्रकृतियाँ चारों गतिके संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके और दो प्रकृतियाँ चारों गतिके विशुद्ध परिणामी जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं ॥१७४॥

आगे उन्हीं प्रकृतियोंको कहते हैं ।

परघात, उच्छ्वास, तैजस, कार्मण, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ वर्णादि चार, निर्माण, पंचेन्द्रिय, अगुरुलघु ये पन्द्रह प्रकृतियाँ चारों गतिके संक्लेश परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं; क्योंकि ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं । तथा स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ये दोनों अप्रशस्त हैं अतः इनका चारों गतिके विशुद्ध जीवके जघन्य अनुभागबन्ध होता है ॥१७५॥

---

१. ब °रार्द्धार्थमेव ।

सम्यग्दृष्टिमेणिमिथ्यादृष्टियागलु वक्ष्यमाणसूत्रदोळपेळ्व ३१ एकाधिकत्रिंशत् प्रकृतिगळोळु प्रथमोक्ताष्टप्रकृतिगळगे मध्यमश्च यदि अपरिवर्त्तमानमध्यमपरिणामपरिणतनादोडे जघन्यानुभागमं माळ्कुं। परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामियप्प मिथ्यादृष्टि तु मत्ते शेषत्रयोविंशतिगळगे जघन्यानुभागमं माळ्कुमवा उवें दोडे पेळ्दपरु :—

थिरसुहजससाददुगं उभये मिच्छेव उच्चसंठाणं ।
संहदिगमणं णरसुरसुभगादेज्जाण जुम्मं च ॥१७७॥

स्थिरशुभयशःसातद्विकमुभयस्मिन् मिथ्यादृष्टावेवोच्चसंस्थानं संहननं गमनं नरसुभगादेयानां युग्मं च ॥

स्थिरास्थिरशुभाशुभयशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्तिसातवेदनीयमसातवेदनीयमेंबी प्रकृत्यष्टकमुभयस्मिन्। सम्यग्दृष्टियोळं मेणिमथ्यादृष्टियोळागलु जघन्यानुभागंगळप्पुवु। येत्तलानुमवर्गळु मपरिवर्त्तमानमध्यमपरिणामिगळादोडे मिथ्यादृष्टियोळे परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामपरिणतनोळु उच्चैर्गोत्रमुं संस्थानषट्कमुं संहननषट्कमुं प्रशस्ताप्रशस्तगमनयुग्ममुं। मनुष्ययुग्ममुं सुरयुग्ममुं सुभगयुग्ममुं आदेययुग्ममुमेंबी त्रयोविंशति प्रकृतिगळगे जघन्यानुभागंगळप्पुवु। थिर २। शु २। ज २। सा २। उभये। उ १। सं ६। सं ६। विहा २। म २। सु २। सु २। आ २। जघन्यानुभागदोळु पेळ्दी अपरिवर्त्तमानपरिवर्त्तमानमध्यमपरिणामंगळगे लक्षणमेंतेंदोडे। अणुसमयं अनुसमयं। केवळं

सम्यग्दृष्टिर्वा मिथ्यादृष्टिर्वा वक्ष्यमाणसूत्रोक्तैकत्रिंशत्प्रकृतिषु प्रथमोक्ताष्टानां यद्यपरिवर्तमानमध्यमपरिणामस्तदा जघन्यानुभागं करोति, शेषत्रयोविंशतेस्तु पुनः परिवर्तमानमध्यमपरिणाममिथ्यादृष्टिरेव करोति ॥१७६॥ ताः काः ? इत्याह—

स्थिरास्थिरशुभाशुभयशोऽयशःसातासातान्यष्टौ उभयस्मिन् सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा जघन्यानुभागानि यद्यपरिवर्तमानमध्यमपरिणामाः संति, मिथ्यादृष्टावेव परिवर्तमानमध्यमपरिणामे उच्चैर्गोत्रं संस्थानषट्कं संहननषट्कं प्रशस्ताप्रशस्तगमने नरसुरसुभगादेययुग्मानीति त्रयोविंशतेर्जघन्यानुभागो भवति ॥१७७॥ तौ अपरिवर्तमानपरिवर्तमानमध्यपरिणामौ लक्षयति—

आगेकी गाथामें कही इकतीस प्रकृतियोंमें-से प्रथम कही आठ प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टि करता है। शेष तेईसका जघन्य अनुभागबन्ध परिवर्तन मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टी ही करता है ॥१७६॥

उन इकतीस प्रकृतियोंको कहते हैं—

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, साता, असाता ये आठ अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टिके जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं। तथा उच्चगोत्र, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय ये तेईस प्रकृतियाँ परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टी जीवके ही जघन्य अनुभाग सहित बँधती हैं। यहाँ प्रसंगवश अपरिवर्तमान और परिवर्तमान मध्यम परिणामका लक्षण कहते हैं—

वड्ढमाणा हायमाणा च केवलं वर्द्धमाना हीयमानाश्च। जे संकिलेस्सविसोहि परिणामा ये संक्लेशविशुद्धिपरिणामाः ते अपरियत्तमाणा णाम तेऽपरिवर्त्तमाना नाम। जेत्थ पुण यत्र पुनः। ठाइदूण स्थित्वा परिणामान्तरं गंतूण परिणामांतरं गत्वा। एगदो एकतः। आदिसमये आदिसमये। हि स्फुटं। आगमणं संभवदि आगमनं संभवति। ते परिणामा ते परिणामाः परियत्तमाणा णाम परिवर्त्तमाना नाम। तत्थ तत्र उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णात्ति उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति तिविहा परिणामा त्रिविधाः परिणामाः। ण न। तत्थ तत्र। सव्वविसुद्धिपरिणामेहि सर्वविशुद्धिपरिणामैः जहण्णो अणुभागो होदि जघन्योऽनुभागो भवति। अप्पसत्थपयडि अणुभागादो अप्रशस्तप्रकृत्यनुभागात्। अणंतगुणपसत्थपयडि अणुभागस्स अणंतगुणवड्ढिप्पसंगादो अनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्यानन्तगुणवृद्धिप्रसंगात्। ण न। सव्वसंकिलिट्ठपरिणामेहिय सर्वसंक्लिष्टपरिणामैश्च तिव्वसंकिलिस्सेण तीव्रसंक्लेशेन। असुहाणं पयडीणं अशुभानां प्रकृतीनां अणुभागवड्ढिप्पसंगादो अनुभागवृद्धिप्रसंगात्। तम्हा तस्मात्। जहण्णुक्कस्सपरिणामणिराकरणट्ठं जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणार्थं परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहित्ति उत्तं परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामैरित्युक्तम्।

प्रतिसमयं केवलवर्द्धमानहीयमानंगळु मावुवु केलवु संक्लेशविशुद्धिपरिणामंगळवनपरिवर्त्तमानंगळेंबुदु। आवुवु केलवु मत्तं परिणामंगळोळिरुतिद्दु परिणामान्तरमनेय्दि बो दरत्तणिदमे

अणुसमयं–अनुसमयं, केवलं वड्ढमाणा हीयमाणा च–केवलं वर्धमाना हीयमानाश्च, जे संकिलेसविसोहिपरिणामा–ये संक्लेशविशुद्धिपरिणामाः ते अपरियत्तमाणा णाम–ते अपरिवर्तमाना नाम। जेत्थ पुण–यत्र पुनः, ठाइदूण–स्थित्वा परिणामांतरं गंतूणं–परिणामांतरं गत्वा, एगदो–एकतः आदिसमए हि–आदिसमये हि, स्फुटं आगमणं संभवदि–आगमनं संभवति ते परिणाम–ते परिणामाः परिवर्तमाणा णाम–परिवर्तमाना नाम। तत्थ–तत्र उक्कस्सा मज्झिमा जहण्णा त्ति–उत्कृष्टा मध्यमा जघन्या इति तिविहा परिणामा–त्रिविधाः परिणामाः ण–न। तत्थ–तत्र सव्वविसुद्धपरिणामेहि–सर्वविशुद्धपरिणामैः, जहण्णो अणुभागो होदि–जघन्योऽनुभागो भवति। अप्पसत्थपयडीअणुभागादो–अप्रशस्तप्रकृत्यनुभागात्, अणंतगुणपसत्थपयडी अणुभागस्स अणंत-

---

जो संक्लेशरूप या विशुद्धरूप परिणाम प्रतिसमय बढ़ते ही जायें या घटते ही जायें उन्हें अपरिवर्तमान परिणाम कहते हैं क्योंकि वे परिणाम पलटकर पीछेकी ओर नहीं आते। और जिस परिणाममें स्थित हो परिणामान्तरको प्राप्त होकर पुनः उसी परिणाममें आना सम्भव हो उन्हें परिवर्तमान कहते हैं क्योंकि यहाँ पलटकर पुनः उसी परिणाममें आना सम्भव है। परिणाम तीन प्रकारके हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उनमें-से सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामोंसे जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता है। क्योंकि अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागसे प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग अनन्तगुणा होता है। अतः उसमें अनन्तगुणी वृद्धिका प्रसंग आता है। तथा सर्वोत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे भी जघन्य अनुभागबन्ध नहीं होता; क्योंकि तीव्र संक्लेशसे अशुभ प्रकृतियोंके अनुभागकी वृद्धिका प्रसंग आता है। अतः जघन्य और उत्कृष्ट परिणामोंके निराकरणके लिए परिवर्तमान मध्यम परिणामोंमें पूर्वोक्त तेईस प्रकृतियोंका जघन्य अनुभागबन्ध कहा है। आशय यह है कि तेईस प्रकृतियोंमें प्रशस्त और

मोदल समयदल्लिगे हि स्फुटमागि आगमनं संभविसुगुमा परिणमंगळु परिवर्त्तमानंगलें बुवक्कुमल्लि उत्कृष्टंगळुं मध्यमंगळुं जघन्यंगळुमेंदितु त्रिविधपरिणामंगळप्पुवल्लि सर्व्वविशुद्धिपरिणामंगळिंदं प्रशस्त प्रकृतिगळगे जघन्यानुभागमुमागदु। अप्रशस्तप्रकृतिगळनुभागमं नोडलुं प्रशस्तप्रकृतिगळ अनन्तगुणानुभागक्के अनन्तगुणवृद्धिप्रसंगमुमक्कुमप्पुदरिंदं सर्व्वसंक्लेशपरिणामंगळिंदमुं अप्रशस्तप्रकृतिगळगे जघन्यानुभागमागदु। तीव्रसंक्लेशदिंदमप्रशस्तप्रकृतिगळगनुभागवृद्धिप्रसंगमप्पुदरिंदमन्तुमल्लदु कारणदिंदं जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणनिमित्तमागि परिवर्त्तमानमध्यमपरिणामंगळिंदमेंदितु पेळल्पट्टुदु ॥

अनन्तरं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागंगळगे साद्यनादि ध्रुवाध्रुवानुभागबंधसंभवासंभवमं पेळ्दपरु :—

घादीणं अजहण्णोणुक्कस्सो वेयणीयणामाणं ।
अजहण्णमणुक्कस्सो गोदे चदुधा दुधा सेसा ॥१७८॥

घातिनामजघन्योऽनुत्कृष्टो वेदनीयनाम्नोरजघन्योऽनुत्कृष्टो गोत्रे चतुर्द्धा द्विधा शेषाः ॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयान्तरायघातिकर्म्मंगळ अजघन्यमुं। वेदनीयनामकर्म्मद्वितयद अनुत्कृष्टमुं गोत्रकर्म्मदोळु अजघन्यमुमनुत्कृष्टमुं इंतें दु स्थानंगळोळु साद्यनादि ध्रुवाध्रुवानुभागबंधभेददिंदं चतुर्व्विधंगळप्पुवु। शेषाः शेषजघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टस्थानंगळनितुं मूलप्रकृति-

---

गुणवड्ढिप्पसंगादो—अनन्तगुणप्रशस्तप्रकृत्यनुभागस्य अनन्तगुणवृद्धिप्रसंगात्, ण-न, सव्वसंकिलिट्ठपरिणामेहि य सर्वसंक्लिष्टपरिणामैश्च, तिव्वसंकिलिस्सेण—तीव्रसंक्लेशेन, असुहाणं पयडीणं—अशुभानां प्रकृतीनां अणुभागवड्ढिप्पसंगादो—अनुभागवृद्धिप्रसंगात्। तम्हा—तस्मात्, जहण्णुक्कस्सपरिणामणिराकरट्ठं—जघन्योत्कृष्टपरिणामनिराकरणार्थम्, परियत्तमाणमज्झिमपरिणामेहित्ति उत्तं-परिवर्तमानमध्यमपरिणामैरित्युक्तं ॥१७७॥ अथ मूलप्रकृतीनां उत्कृष्टाद्यनुभागानां साद्यादिसंभवासंभवावाह—

घातिनां चतुर्णामजघन्यः, वेदनीयनामकर्मणोरनुत्कृष्टः गोत्रस्याजघन्यानुत्कृष्टौ च साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्धा भवन्ति। शेषाः जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टाः साद्यध्रुवभेदाद् द्वेधैव ॥१७८॥

अप्रशस्त दोनों ही प्रकार की प्रकृतियाँ हैं। यदि सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध परिणामोंसे उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्तमें जितना अनुभागबन्ध होगा उससे अनन्तगुणा अनुभाग बन्ध प्रशस्त प्रकृतियोंमें होगा। तब जघन्य अनुभागबन्ध कहाँ रहा। इसी तरह यदि तीव्र संक्लेश परिणामोंसे उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहते हैं तो अप्रशस्त प्रकृतियोंमें अनुभाग बढ़ जायेगा। अतः दोनोंको छोड़कर परिवर्तमान मध्यम परिणामोंसे उनका जघन्य अनुभागबन्ध कहा है ॥१७७॥

अब मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट आदि अनुभागके सादि आदि भेद होते हैं या नहीं होते, यह कहते हैं—

चारों घातिकर्मोंका अजघन्य अनुभागबन्ध, वेदनीय और नामकर्मका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तथा गोत्रकर्मका अजघन्य और अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकारके होते हैं। शेष अर्थात् चारों घातिकर्मोंके अजघन्यके बिना

गळगे द्विप्रकारानुभागबंधंगळे साद्यध्रुव भेदंगळेरडेयप्पुवु—

णा	दं	वे	मो	आ	ना	गो	अं
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
अ २	अ २	अ ४	अ २	अ २	अ ४	अ ४	अ २
अ ४	अ ४	अ २	अ ४	अ २	अ २	अ ४	अ ४
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २

अनंतरं ध्रुवप्रकृतिगळोळु प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिगळगमध्रुवप्रकृतिगळगं जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानुभागंगळगे साद्यादिभेदसंभवासंभवमं पेळ्दपरु—

सत्थाणं धुवियाणमणुक्कस्समसत्थगाण दुवियाणं ।
अजहण्णं च य चदुधा सेसा सेसाणयं च दुधा ॥१७९॥

शस्तानां ध्रुवाणामनुत्कृष्टोऽशस्तानां ध्रुवाणामजघन्यश्च च चतुर्द्धा शेषाः शेषाणां च द्विधाः ॥

तैजसकाम्मंणशरीरनामकर्म्मद्वितयमुमगुरुलघुकमुं निर्म्माणनाममुं प्रशस्तवर्णगंधरसस्पर्शंगळे ब ८ अष्ट प्रशस्तध्रुवप्रकृतिगळ अनुत्कृष्टमुं ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणीयनवकमुमन्तरायपंचकमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं षोडशकषायंगळुं भयद्विकमुं वर्णचतुष्कमुं उपघातनाममुमेंब ४३ त्रिचत्वारिंशत् ध्रुवाप्रशस्तप्रकृतिगळ अजघन्यमुं साद्यनादिध्रुवाध्रुवानुभागबंधभेदर्दिदं चतुःप्रकारंगळप्पुवु। शेषाः प्रशस्ताप्रशस्तध्रुवप्रकृतिगळ जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टंगळुं शेषाणां च

अथ ध्रुवासु प्रशस्ताप्रशस्तानां अध्रुवाणां च जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानां संभवत्साद्यादिभेदानाह—
तैजसकार्मणागुरुलघुनिर्माणवर्णगन्धरसस्पर्शध्रुवप्रशस्तानां अनुत्कृष्ट एकान्नविंशतिज्ञानदर्शनावरणान्तरायमिथ्यात्वषोडशकषायभयद्विवर्णचतुष्कोपघातध्रुवाप्रशस्तानां अजघन्यश्च साद्यादिभेदाच्चतुर्धा भवति, शेषाः

तीन, वेदनीय और नामकर्मके अनुत्कृष्टके बिना तीन गोत्रके अजघन्य और अनुत्कृष्टके बिना दो और आयु कर्मके चारों अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकारके हैं ॥१७८॥

ज्ञा.	द.	वे.	मो.	आ.	ना.	गो.	अं.
उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २	उ. २
अ. २	अ. २	अ. ४	अ. २	अ. २	अ. ४	अ. ४	अ. २
अ. ४	अ. ४	अ. २	अ. ४	अ. २	अ. २	अ. ४	अ. ४
ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २	ज. २

आगे ध्रुव प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंमें तथा अध्रुव प्रकृतियोंके जघन्य, अजघन्य, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट, अनुभागबन्धमें सम्भव सादि आदि भेद कहते हैं—

तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, प्रशस्त वर्ण गन्ध रस स्पर्श इन ध्रुवबन्धी प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभागबन्ध तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकी उन्नीस, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, अप्रशस्त वर्णादि चार, उपघात इन ध्रुवबन्धी अप्रशस्त प्रकृतियोंका अजघन्य अनुभागबन्ध सादि अनादि ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार

अध्रुवप्रकृतिगळ ७३ त्रिसप्ततिप्रकृतिगळ जघन्याजघन्यानुत्कृष्टोत्कृष्टानुभागबंधंगळुं द्विधा साद्यध्रुव-भेदविदं द्विविधंगळप्पुवु—

ध्रु = प्र	ध्रु = अप्र	अध्रु प्र.
८	४३	७३
उ २	उ २	उ २
अ ४	अ २	अ २
अ २	अ ४	अ २
ज २	ज २	ज २

अनंतरमनुभागमं बुदेनें दोडे तत्स्वरूपनिरूपणमं घातिकर्म्मंगळोळ् माडिदपरु :—

सत्ती य लदादारू अट्ठीसेलोवमा हु घादीणं ।
दारुअणंतिमभागोत्ति देसघादी तदो सव्वं ॥१८०॥

शक्तयो लतादार्व्वस्थिशैलोपमाः खलु घातीनां । दार्व्वनंतैकभागपर्य्यंतं देशघाति ततः सर्व्वम् ॥

घातीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयान्तरायघातिकर्म्मंगळ शक्तयः स्पर्द्धकंगळु लतादार्व्व-स्थिशैलोपमाः लतादार्व्वस्थिशैलोपमानंगळु चतुर्व्विभागमागिर्प्पुवु । खलु स्फुटमागिर्प्पुवुमल्लि दार्व्वनन्तैकभागपर्य्यन्तं लताभागमादियागि दारुभागे योळनंतैकभागपर्य्यंतं देशघाति देशघाति-

तासां जघन्यादयः अध्रुवत्रिसप्ततेर्जघन्यादयश्च साद्यध्रुवभेदाद् द्विधैव ॥१७९॥ अनुभागः किमिति प्रश्ने तत्स्वरूपं प्रथमतः घातिष्वाह—

घातिनां ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयान्तरायाणां शक्तयः स्पर्धकानि लतादार्वस्थिशैलोपमचतुर्विभागेन तिष्ठन्ति खलु स्फुटम् । तत्र लताभागमादिं कृत्वा दार्वनन्तैकभागपर्यन्तं देशघातिन्यो भवन्ति । तत उपरि

प्रकार है । इन ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंके शेष तीन अनुभागबन्ध और अध्रुवबन्धी ७३ तेहत्तर प्रकृतियोंके चारों अनुभागबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो ही प्रकार हैं ॥१७९॥

ध्रुव ८ प्र.	ध्रु. ४३ अ.	अध्रुव ७३
उ. २	उ. ५	उ. २
अ. ४	अ. २	अ. २
अ. २	अ. ४	अ. २
ज. २	ज. २	ज. २

आगे अनुभागका स्वरूप प्रथम घातिकर्मोंमें कहते हैं—

घाति ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मोंकी शक्तियाँ अर्थात् स्पर्धक लता, दारु, अस्थि और शैलकी उपमाको लिये हुए चार भागरूप होते हैं। लता बेलको कहते हैं। दारुका अर्थ काष्ठ है। अस्थि हड्डीको कहते हैं और शैल पर्वतको कहते हैं। जैसे ये उत्तरोत्तर अधिक कठोर होते हैं वैसे ही कर्मोंके स्पर्धक अर्थात् वर्गणाओंका समूह भी होता है। उनमें फल देनेकी शक्ति रूप अनुभाग उत्तरोत्तर अधिक-अधिक होता है। सो लता भागसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग पर्यन्त स्पर्धक तो देशघाती होते हैं। उनके उदय

गळप्पुवु । ततः सर्व्व मेले दार्व्वनन्तबहुभागमादियागि अस्थिशैलभागेगळ् सर्व्वघातियक्कुमल्लि । घातिगळोळुत्तरप्रकृतिगळोळु मिथ्यात्वप्रकृतिगे विशेषमं पेळ्दपरः—

देसोत्ति हवे सम्मं तत्तो दारू अणंतिमे मिस्सं ।
सेसा अणंतभागा अत्थिसिलाफड्ढया मिच्छे ॥१८१॥

देशघातिपर्य्यन्तं भवेत्सम्यक्त्वं ततो दार्व्वनन्तैकभागे मिश्रं । शेषाः अनन्तभागाः अस्थि- ५
शिलास्पर्द्धकानि मिथ्यात्वे ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामदिंदं गुणसंक्रमभागहारदिंदं बंधदिनेकविधमेयप्प सत्वरूप-मिथ्यात्वप्रकृतिदेशघातिजात्यंतरसर्व्वघाति सर्व्वघातिभेददिंदं "कोर्त्थ" सम्यक्त्वमिश्रमिथ्यात्व-प्रकृतिभेददिंदं द्विविधमागि माडल्पट्टुदप्पुदरिंदं लताभागमादियागि दारुविननंतैकभागपर्य्यन्तमाद

देशघातिस्पर्द्धकंगळनितुं भवेत्सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृतियक्कुं । शेषदारुविननंतबहुभागम दा ख १०
ख

ननंतखंडंगळं माडिदलि एकखंडं दा ख । १ जात्यंतरसर्व्वघातिमिश्रप्रकृतियक्कुं । शेषा अनन्त-
ख ख

भागाः शेषदारुविननन्तबहुभागबहुभागंगळुमस्थिशिलास्पर्द्धकंगळुं सर्व्वघातिमिथ्यात्वप्रकृतियक्कुं

दा ख ख अ शि ।
ख ख

दार्वनन्तबहुभागमादिं कृत्वा अस्थिशैलभागेषु सर्वत्र सर्वघातिन्यो भवन्ति ॥१८०॥ तासामुत्तरप्रकृतिषु मिथ्यात्वस्य विशेषमाह—

लताभागमादिं कृत्वा दार्वनन्तैकभागपर्यन्तानि देशघातिस्पर्धकानि सर्वाणि सम्यक्त्वप्रकृतिर्भवति, १५

शेषदार्वनन्तबहुभागेषु दा ख अनन्तखण्डीकृतेषु एकखण्डं दा ख १ जात्यंतरसर्वघातिमिश्रप्रकृतिर्भवति ।
ख ख

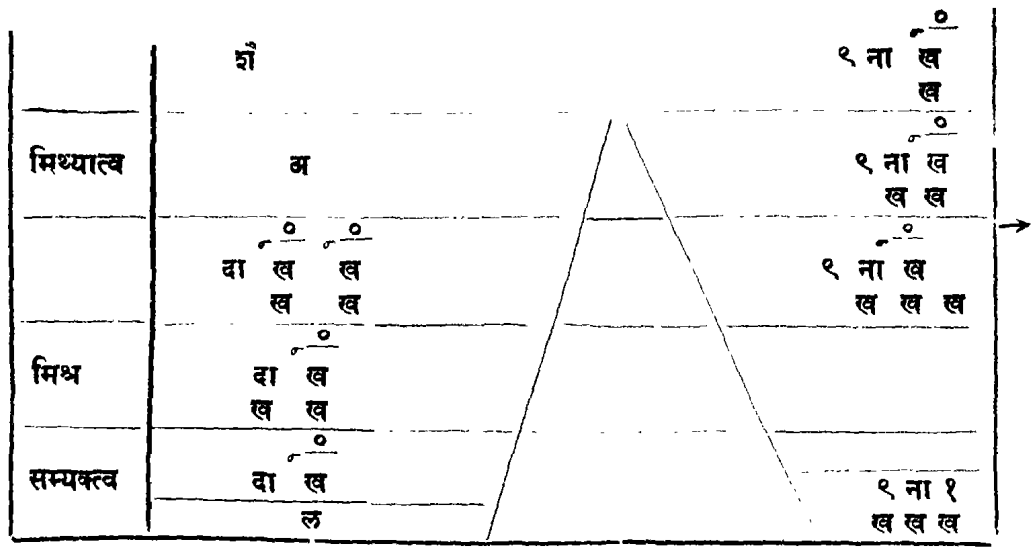
शेषदार्वनन्तबहुभागभागाः अस्थिशिलास्पर्धकानि च सर्वघातिमिथ्यात्वप्रकृतिर्भवति दा ख ख
ख ख

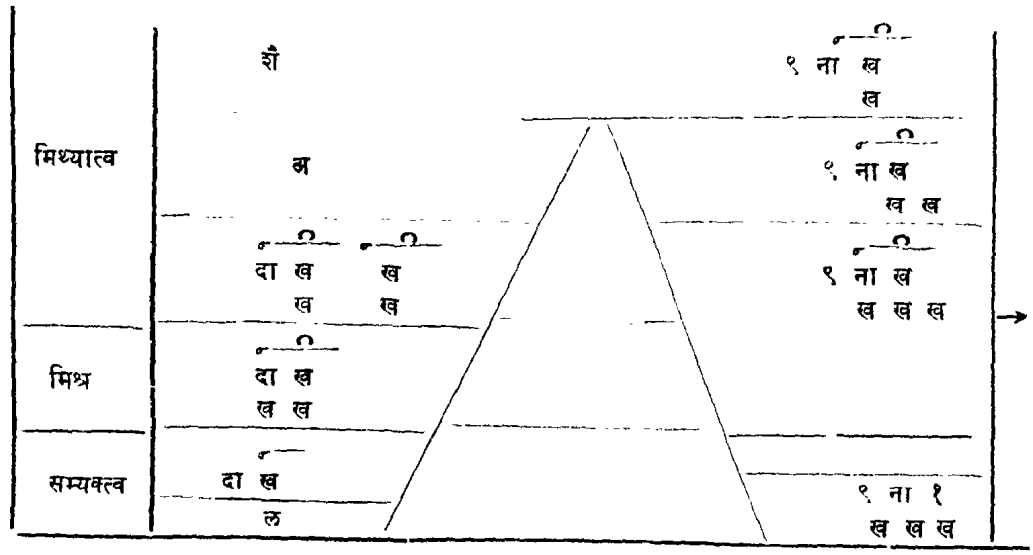
अ शै ॥१८१॥

होते हुए भी आत्माका गुण प्रकट रहता है । तथा दारुका अनन्त बहुभागसे लेकर अस्थि और शैलरूप सब स्पर्धक सर्वघाती हैं । उनके उदयमें आत्माके गुणका एक अंश भी प्रकट नहीं होता ॥१८०॥ २०

उन कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें-से मिथ्यात्व प्रकृतिके विषयमें कहते हैं—

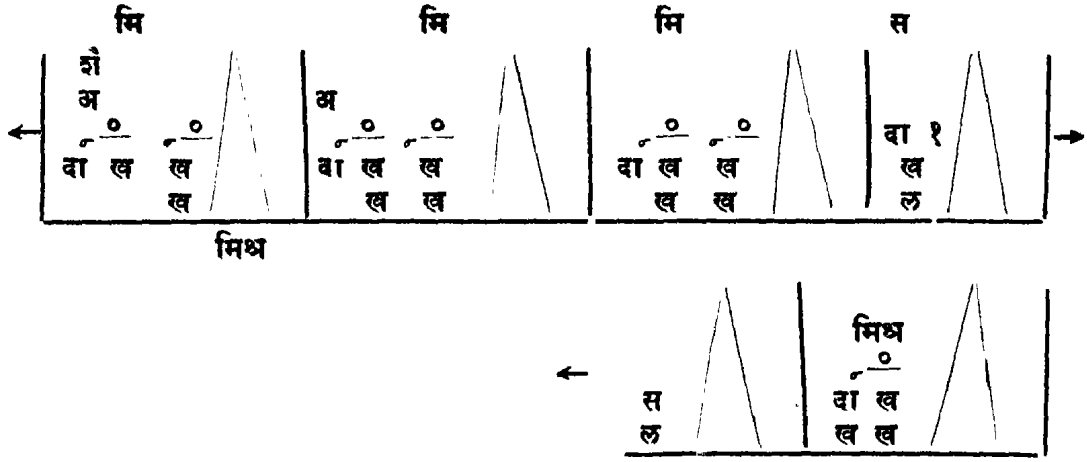
लता भागसे लेकर दारुके अनन्तवें भाग पर्यन्त सब देशघाति स्पर्धक सम्यक्त्व प्रकृतिरूप हैं । दारुके अनन्तवें भाग बिना शेष बहुभागके अनन्त खण्ड करें । उनमें-से एक खण्ड प्रमाण स्पर्धक जात्यन्तर अर्थात् पृथक् ही जातिकी सर्वघाती मिश्र प्रकृतिरूप हैं ।





तथा शेष दारुके बहुभाग और अस्थि तथा शैलरूप स्पर्धक सर्वघाति मिथ्यात्व प्रकृति-रूप जानना ॥१८१॥

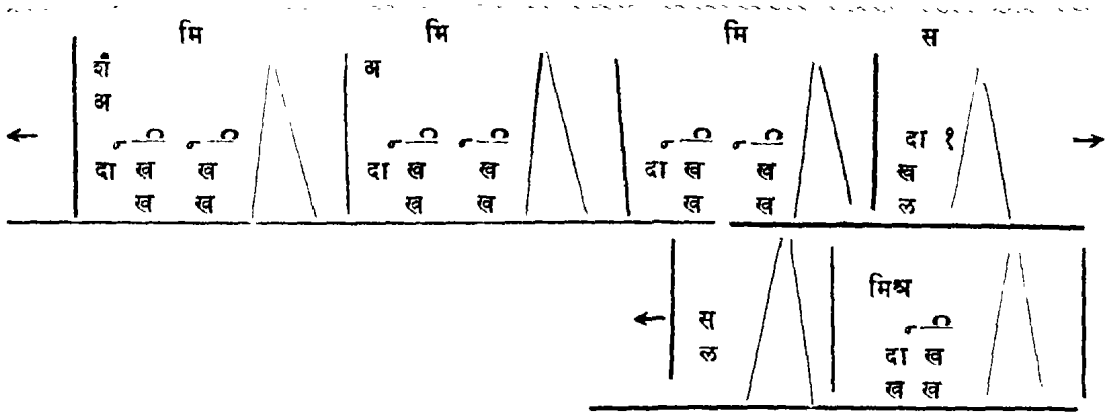
विशेषार्थ—पूर्वमें कहा था कि बन्ध केवल मिथ्यात्व प्रकृतिका ही होता है। जब किसीको सम्यक्त्वकी प्राप्ति सर्वप्रथम होती है तो मिथ्यात्व प्रकृति तीन रूप हो जाती है। उनमें-से देशघाती अंश देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिको और सर्वघातीमें-से दारुका कुछ भाग जात्यन्तर सर्वघाती मिश्र प्रकृतिको और शेष सब मिथ्यात्व रूप होता है। यही कथन ऊपर किया है ॥१८१॥



आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं ।
चदुविधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१८२॥

आवरणदेशघात्यंतरायसंज्वलनपुरुषसप्तदश । चतुर्विधभावपरिणताः त्रिविधा भावाः खलु शेषाणां ॥

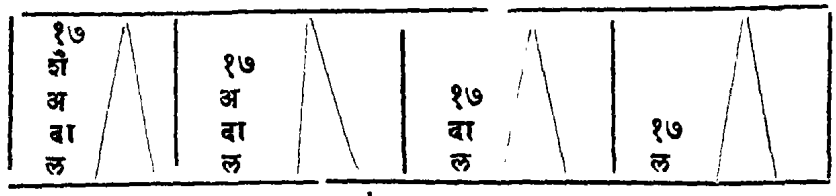
केवलज्ञानावरणरहितज्ञानावरणचतुष्कमुं ४, केवलदर्शनावरणरहितदर्शनावरणत्रितयमुं ३ यी येळुं प्रकृतिगळावरणमध्यदेशघातिगळेंबुवक्कु-। मन्तराय अन्तरायपंचकमुं ५, संज्वलन



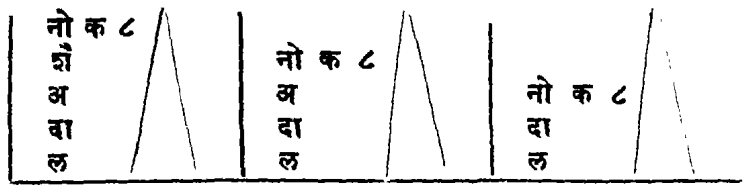
आवरणेषु देशघातीनि मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणानि पञ्चान्तरायाः

ज्ञानावरण और दर्शनावरणमें-से देशघाती मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, ज्ञानावरण और चक्षु, अचक्षु अवधि दर्शनावरण ये सात, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन, और पुरुषवेद ये सतरह प्रकृतियाँ शैल, अस्थि, दारु और लता भागरूप परिणत होती हैं। जहाँ शैल भाग नहीं होता वहाँ अस्थि, दारु और लतारूप परिणत होती हैं और जिनमें दारुभाग भी नहीं होता उनमें केवल लतारूप ही परिणमन होता है। इस तरह सतरह प्रकृतियाँ चार रूप परिणत होती हैं। शेष प्रकृतियोंमें-से मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिके बिना समस्त घाति प्रकृतियाँ तीन भागरूप ही परिणत होती हैं। सो केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पाँच

संज्वलनचतुष्कमुं ४, पुरुष पुंवेदमुं इन्तु १७ सप्तदशप्रकृतिगळु चतुर्व्विधभावपरिणताः चतुर्व्विध-शक्तिपरिणतंगळु । लतादारु अस्थिशैलमुं लतादार्व्वस्थियुं लतादारुवुं लताशक्तियुमेंदिन्तु :—

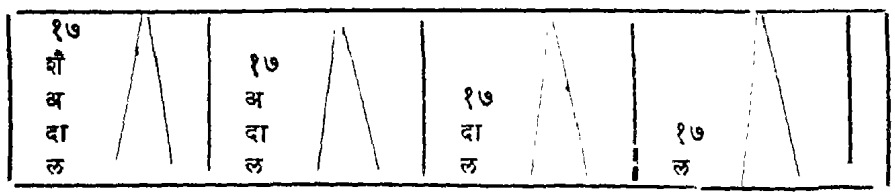


शेषाणां शेषमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयं पोरगागि घात्यघातिगळनितक्कं प्रत्येकं त्रिविधभावाः खलु त्रिविधशक्तिगळप्पुवुवरोळु घातिगळगे नोकषायंगळगे :—

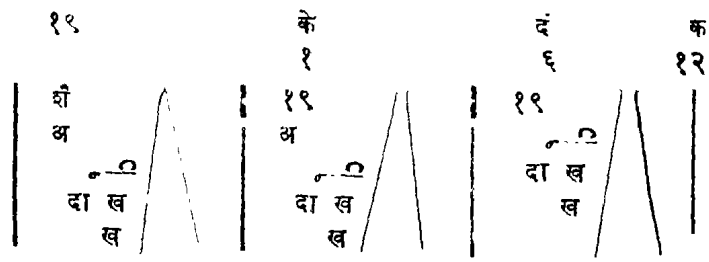


५ अनंतरं शेषाघातिगळगे पेळ्दपरु :—

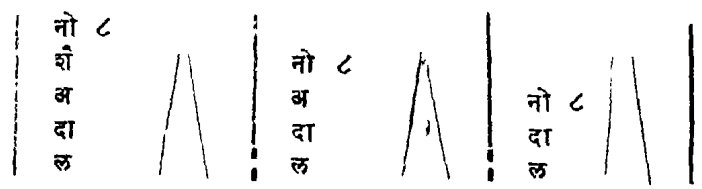
चतुःसंज्वलनाः पुंवेदश्चेति सप्तदश लतादार्वस्थिशैल-लतादार्वस्थि-लतादारु-लतेतिचतुर्विधभावपरिणता भवन्ति ।



शेषाणां मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतौ विना घात्यघातिनां सर्वेषां प्रत्येकं त्रिविधा भावाः खलु । तत्र घातिनां—



नोकषायाणां—



॥१८२॥ शेषाघातिनामाह—

निद्रा, अनन्तानबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण ये बारह कषाय इन उन्नीस
१० प्रकृतियोंके स्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं अतः शैल, अस्थि और दारुका अनन्त बहुभाग रूप

अवसेसा पयडीओ अघादिया घादियाण पडिभागा ।
ता एव पुण्णपावा सेसा पावा मुणेयव्वा ॥१८३॥

अवशेषा प्रकृतयोऽघातिन्यो घातिनीनां प्रतिभागाः । ता एव पुण्यपापानि शेषा पापानि मंतव्याः ॥

शेषघात्यघातिगळगे पेळल्पट्ट घात्यघातिगळोळु केवलज्ञानावरणादिसर्व्वघातिगळगं नोकषायाष्टकदेशघातिगळगं त्रिविधभावंगळु त्रिविधशक्तिगळु पेळल्पट्टुवु । शेषाऽघातिप्रकृतिगळु घातिकर्म्मंगळगे पेळ्दंते प्रतिभागंगळप्पुवु प्रतिविकल्पंगळप्पुवु । त्रिविधशक्तिगळप्पुवें बुदर्त्थं । ता एव अवु मत्तमघातिप्रकृतिगळे पुण्यप्रकृतिगळुं पापप्रकृतिगळुमेंदितु द्विविधंगळप्पुवु । शेषाः शेषघातिप्रकृतिगळेनितोळवनितुं पापानि पापंगळेयप्पुवु येंदितु मंतव्यंगळप्पुवु ।

अनंतरं घातिगळेल्ल लतादार्व्वस्थिशैलभेदस्पर्द्धकंगळे येंदु पेळ्द अघातिगळ चतुर्व्विभागस्पर्द्धकंगळगे नामांतरमं प्रशस्ताप्रशस्तप्रकृतिविभागदिंदं पेळ्परु :—

गुडखंडसक्करामियसरिसा सत्था हु णिंबकंजीरा ।
विसहालाहलसरिसाऽसत्था हु अघादिपडिभागा ॥१८४॥

गुडखंडशर्क्करामृतसदृशाः शस्ताः खलु निंबकांजीर विषहालाहलसदृशाः अशस्ताः खलु अघातिप्रतिभागाः ॥

अघातिप्रतिभागाः अघातिप्रतिविकल्पंगळु अघातिशक्तिविकल्पंगळेंबुदर्त्थमवु पेळल्पट्टपुर्वंतेंदोडे शस्ताः प्रशस्तप्रकृतिगळु गुडखंडशर्क्करामृतसदृशाः गुडमुं खंडमुं शक्करेयुममृतमुमें-

---

शेषाः अघातिप्रकृतयः घातिकर्मोक्तप्रतिभागा भवन्ति त्रिविधशक्तयो भवन्तीत्यर्थः । ता अघातिप्रकृतय एवं पुण्यप्रकृतयः पापप्रकृतयश्च भवन्ति, शेषघातिप्रकृतयः सर्वा अपि पापान्येवेति मन्तव्यम् ॥१८३॥ घातिनां सर्वेषां स्पर्धकानि लतादार्वस्थिशैलनामानीत्युक्तानि । इदानीं अघातिनां तानि प्रशस्ताप्रशस्तानां नामान्तरेणाह—

अघातिनां प्रतिभागाः शक्तिविकल्पाः प्रशस्तानां गुडखण्डशर्करामृतसदृशाः खलु स्फुटं, अप्रशस्तानां

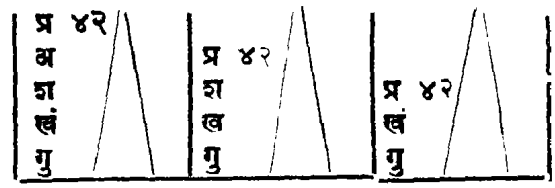
स्पर्धक ही इनमें पाये जाते हैं या शैलके बिना दो प्रकार पाये जाते हैं अथवा अस्थिके बिना एक ही प्रकार पाया जाता है । इस तरह तीनों प्रकार होते हैं । पुरुषवेदके बिना आठ नोकषायोंमें शैल, अस्थि, दारु, लता चारों प्रकारका अनुभाग पाया जाता है । सो उनमें चाररूप, शैलके बिना तीन रूप और अस्थिके बिना दो रूप पाये जाते हैं, केवल लतारूप एक ही भाग नहीं पाया जाता ॥१८२॥

शेष अघातिया कर्मोंकी प्रकृतियाँ घातिकर्मोंकी तरह प्रतिभागयुक्त होती हैं । अर्थात् उनके स्पर्धक भी तीन भागरूप ही होते हैं । पुण्य प्रकृति और पाप प्रकृतिका भेद अघातिकर्मोंकी प्रकृतियोंमें ही है । घतिकर्मोंकी तो सब प्रकृतियाँ पापरूप ही होती हैं ॥१८३॥

सब घाति प्रकृतियोंके स्पर्धक लता, दारु, अस्थि और शैल नामसे कहे हैं, अब अघाति कर्मोंकी प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियोंके स्पर्धकोंके अन्य नाम कहते हैं—

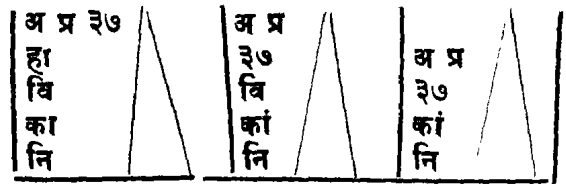
अघातिकर्मोंके प्रतिभाग अर्थात् शक्तिके भाग प्रशस्त प्रकृतियोंमें तो गुड़, खाँड, शर्करा

विवरोळु सदृशाः वोरन्नंगळप्पुवु सामानानुभागस्पर्द्धकंगळप्पुवेंबुदत्थं । खलु स्फुटमागि अशस्ताः अप्रशस्तप्रकृतिगळु निंबकांजीरविषहालाहलसदृशाः बेवुं कांजीरमुं विषमुं हालाहलमुमेंबिवरोळो-रन्नंगळप्पुवु खलु स्फुटमागि । सर्व्वप्रकृतिगळु १२२ । इवरोळु घातिगळु ४७ अघातिगळु ७५ । यीयघातिगळोळु प्रशस्तंगळु :—



४२ । अप्रशस्तंगळु ३३ । अप्रशस्तवर्ण-

चतुष्कमुं टप्पुदरिंदमदु गूडि ३७

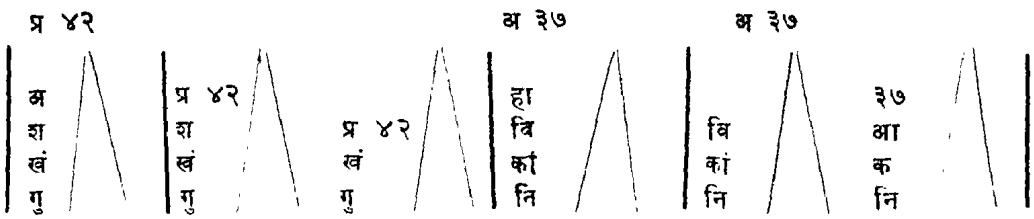


इन्तु भगवदर्हत्परमेश्वर ० कर्म्मकांडप्रकृतिसमुत्कीर्त्तनं अनुभागबंध परिसमाप्तमादुदु ॥

अनंतरं प्रदेशबंधमं त्रयस्त्रिंशत् ३३ गाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :-

---

निंबकाञ्जीरविषहलाहलसदृशाः खलु स्फुटम् । सर्वप्रकृतयः १२२, तासु घातिन्यः ४७, अघातिन्यः ७५ । एतासु प्रशस्ताः ४२ अप्रशस्ताः ३३, अप्रशस्तवर्णचतुष्कमस्तीति तन्मिलिते ३७ ।



॥१८४॥ इत्यनुभागबन्धः समाप्तः । अथ प्रदेशबन्धं त्रयस्त्रिंशद्गाथासूत्रैराह—

और अमृत समान होते हैं । जैसे ये अधिक-अधिक मिष्ठ होनेसे सुखदायक हैं वैसे प्रशस्त प्रकृतिके स्पर्धक भी होते हैं और अप्रशस्त प्रकृतियोंके शक्तिके भाग नीम, कांजीर, विष और हालाहलके समान होते हैं, जैसे नीम आदि अधिक-अधिक कटुक होनेसे दुःखदायक होते हैं वैसे ही अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग भी होता है । सब प्रकृतियाँ एक सौ बाईस १२२ हैं । उनमें सैंतालीस ४७ घातियाँ हैं और ७५ अघातिया हैं । पचहत्तरमें-से बयालीस ४२ प्रशस्त हैं । तैंतीस अप्रशस्त हैं । उनमें वर्णादि चार अशुभ भी जोड़नेसे सैंतीस होती हैं । सो प्रशस्त प्रकृति तो गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृतरूप या गुड़, खाण्ड, शर्करारूप या गुड़, खाण्ड-रूप इस तरह तीन रूप परिणत होती हैं । और अप्रशस्त प्रकृति नीम, कांजीर, विष, हालाहल-रूप या नीम, कांजीर विषरूप या नीम कांजीर इस प्रकार तीन रूप परिणत होती हैं ॥१८४॥

अनुभागबन्ध समाप्त हुआ ।

आगे तैंतीस गाथाओंसे प्रदेशबन्धको कहते हैं—

एयक्खेत्तोगाढं सव्वपदेसेहिं कम्मणो जोग्गं ।
बंधदि सगहेदूहिं य अणादियं सादियं उभयं ॥१८५॥

एकक्षेत्रावगाढं सर्व्वप्रदेशैः कर्म्मणो योग्यं । बध्नाति स्वहेतुभिरनादिसाद्युभयं ॥

सूक्ष्मनिगोदशरीरघनांगुलासंख्यातैकभागजघन्यावगाहक्षेत्रमेकक्षेत्रमें बुवक्कुमा क्षेत्रावगाहितमं कर्म्मस्वरूपपरिणमनयोग्यमप्पुदननादियं सादियनुभयमं पुद्गलद्रव्यमं जीवं सर्व्वात्मप्रदेशंगळिंदं मिथ्यादर्शनादिस्वहेतुगळिंदं बध्नाति कट्टुगुं ॥

एयसरीरोगाहियमेयक्खेत्तं अणेयखेत्तं तु ।
अवसेसलोयखेत्तं खेत्तणुसारिट्ठियं रूवि ॥१८६॥

एकशरीरावगाहितमेकक्षेत्रमनेकक्षेत्रं तु अवशेषलोकक्षेत्रं क्षेत्रानुसारिस्थितं रूपि ॥

एकशरीरावगाहितं एकशरीरर्विंदमवष्टंभिसल्पट्टाकाशमेकक्षेत्रमें बुदु । अवुकारणमागि

घनांगुलासंख्यातैकभागमुपलक्षणमवादी ६ अंते = सुद्धे = ६ वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ।
प प
अ अ

एंदेकक्षेत्रविकल्पंगळुमिनितप्पुवु = ६ विवक्षेयिंदमनेकक्षेत्रमुमेकक्षेत्रमक्कुमें बुदत्थं । तु मत्ते
प
अ

अवशेषलोकक्षेत्रं एकक्षेत्रशरीरावगाहितमं घनांगुलासंख्यातैकभागमं कळेदुळिद लोकाकाशमनितुम-

---

सूक्ष्मनिगोदशरीरं घनाङ्गुलासंख्येयभागं जघन्यावगाहक्षेत्रं एकक्षेत्रं, तेनावगाहितं कर्मस्वरूपपरिणमनयोग्यं अनादिकं सादिकं उभयं च पुद्गलद्रव्यं जीवः सर्वात्मप्रदेशैः मिथ्यादर्शनादिहेतुभिर्बध्नाति ॥१८५॥

एकशरीरेणावष्टब्धाकाशप्रदेशं एकक्षेत्रं, तेन घनाङ्गुलासंख्यातैकभाग उपलक्षणं ६ तद्विकल्पाः आदौ
प
अ

६ अंते = सुद्धे = ६ वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा इत्येतावन्तः = ६ विवक्षया अनेकक्षेत्रमप्येकक्षेत्रं
प प प
अ अ अ

सूक्ष्म निगोदियाका शरीर घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्रवाला होता है। उसे एकक्षेत्र कहते हैं। उस एकक्षेत्रमें स्थित जो कर्मरूप परिणमनके योग्य अनादि, सादि और उभयरूप पुद्गल द्रव्य है उसे जीव मिथ्यादर्शन आदिके निमित्तसे अपने सर्व आत्मप्रदेशोंसे बाँधता है ॥१८५॥

एक शरीरकी अवगाहनासे रोका गया जो आकाशप्रदेश है वह एक क्षेत्र है। इससे एक क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा है। यद्यपि शरीरकी अवगाहना जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त होती है। उसका आदि भेद तो घनांगुलको पल्यके असंख्यातवें भागका

नेकक्षेत्रं अनेकक्षेत्रमं बुदक्कुमिन्तेकक्षेत्रानेकक्षेत्रंगळोळु एकक्षेत्रं ६ अनेकक्षेत्रं ≡६ क्षेत्रानुसारि
प प
अ अ

स्थितं तंतम्म क्षेत्रानुसारियागिर्द्द रूपि सर्व्वपुद्गलद्रव्यं विभागिसल्पट्टोडेकानेकक्षेत्रंगळोळु
५ त्रैराशिकसिद्धंगळिनितिनितप्पुवु । प्र ≡ । फ १६ ख । इ ६ लब्धमेकक्षेत्रस्थितरूपि
प
अ

१६ ख ६ प्र≡फ १६ ख । इ ≡६ लब्धमनेकक्षेत्रस्थिररूपि १६ ख≡६
≡ प प ≡ प
अ अ अ

एयाणेयखेत्तट्ठियरूवि अणंतिमं हवे जोग्गं ।
अवसेसं तु अजोग्गं सादि अणादी हवे तत्थ ॥१८७॥

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यनंतैकभागो भवेद्योग्यं । अवशेषं त्वयोग्यं साद्यनादि भवेत्तत्र ॥

---

१० भवतीत्यर्थः । तु पुनः तेनैकक्षेत्रेण ऊनं अवशेषलोकक्षेत्रं अनेकक्षेत्रं ≡ ६ तत्तत्क्षेत्रानुसारितया स्थितं रूपि
प
अ

पुद्गलद्रव्यमेवं सिद्धयति तत्र प्र ≡ फ १६ ख इ ६ लब्धं एकक्षेत्रस्य द्रव्यं १६ ख ६ प्र । ≡ फ
प ≡ प
अ अ

१६ ख इ ≡ ६ लब्धं अनेकक्षेत्रस्य द्रव्यं १६ ख ≡ ६ ॥१८६॥
प ≡ प
अ अ

भाग दें, उतना है । अन्तिम भेद समुद्घातकी अपेक्षा लोकप्रमाण है । सो अन्तमें-से आदिको घटाकर एक मिलानेसे अवगाहनाके समस्त भेद होते हैं । तथापि बहुत जीव घनांगुलके
१५ असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाके धारक होनेसे मुख्यतासे एक क्षेत्रका प्रमाण घनांगुलके असंख्यातवें भाग मात्र कहा है । सो इतने क्षेत्रके बहुत प्रदेश हैं । इससे प्रदेशोंकी अपेक्षा यही अनेक क्षेत्र है । तथापि विवक्षावश यहाँ इस क्षेत्रको एकक्षेत्र कहा है । और इस क्षेत्रके परिमाणसे हीन शेष लोकाकाशके क्षेत्रको अनेक क्षेत्र कहा है । सो उस-उस क्षेत्रके अनुसार स्थित रूपी पुद्गल द्रव्यका परिमाण इस प्रकार जानना—

२० जो समस्त लोकमें सर्व पुद्गल द्रव्य पाया जाता है तो एक क्षेत्रमें कितना पुद्गल द्रव्य पाया जाता है । ऐसा त्रैराशिक करना । उसमें प्रमाणराशि समस्त लोक, फलराशि पुद्गलद्रव्यका परिमाण, इच्छाराशि एक क्षेत्रका परिमाण । फलसे इच्छाराशिको गुणा करके प्रमाणराशिसे भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतना एक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गलद्रव्य जानना । तथा इच्छाराशि अनेक क्षेत्र रखनेपर पूर्वोक्त सब विधान करनेसे जो लब्ध-
२५ राशिका प्रमाण आवे उतना अनेक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गलद्रव्य जानना ॥१८६॥

एकानेकक्षेत्रस्थितरूप्यनंतैकभागः भवेद्योग्यं एकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्यानन्तैकभागमेकक्षेत्रस्थितयोग्यरूपिद्रव्यमक्कुं। अनेकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्यानन्तैकभागमनेकक्षेत्रस्थितयोग्यरूपिद्रव्यमक्कुं—

एक = यो	अनेक = योग्य
१६ ख । ६ । १	१६ ख ≅ ६ । १
= प ख	प ख
∂	∂

ई येरडु राशिगळिंदं होनंगळप्प तंतम्म राशिगळेकानेकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपिद्रव्यंगळप्पुवल्लि

एकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपि १६ ख ६ ख अनेकक्षेत्रस्थितायोग्यरूपि १६ ख ≅ ६ ख तत्र अव-
≅ प ख प ख
∂ ∂

रोळु एकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यरूपिद्रव्यंगळोळु प्रत्येकं सादिरूपिद्रव्यमें दुमनादिरूपिद्रव्यमें दु द्विविधमप्पुवल्लि साद्यनादियोग्यायोग्यद्रव्यप्रमाणंगळगे उपपत्तियं पेळ्दपरु :—

तयोरेकानेकक्षेत्रस्थितरूपिद्रव्ययोरनन्तैकभागः स्वस्वयोग्यरूपिद्रव्यं भवति—एक = योग्यं
१६ ख ६ ।
≅ प १
∂ ख

अनेक = योग्यं तेन विहीनं स्वस्वावशेषमयोग्यरूपिद्रव्यं भवति। तत्रैकक्षेत्रस्य १६ ख ६ ख अनेक-
१६ ख ≅ ६ ≅ प ख
≅ प १ ∂
∂ ख

क्षेत्रस्य १६ ख ≅ । ६ । ख तेष्वेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यरूपिद्रव्येषु प्रत्येकं सादिरूपिद्रव्यं अनादि-
≅ प ख
∂

रूपिद्रव्यं च भवति ॥१८७॥ तत्र साद्यनादियोग्यायोग्यद्रव्यप्रमाणानामुपपत्तिमाह—

एक क्षेत्र और अनेकक्षेत्रमें स्थित पुद्गलद्रव्यका जितना परिमाण है उसके अनन्तवें भाग तो अपना-अपना योग्य पुद्गलद्रव्य है और शेष अयोग्य पुद्गलद्रव्य हैं। उनमें-से एक क्षेत्र सम्बन्धी पुद्गल द्रव्यके परिमाणमें अनन्तसे भाग दें। एक भाग प्रमाण कर्मरूप होनेके योग्य पुद्गलोंका प्रमाण है। शेष भाग प्रमाण कर्मरूप होनेके अयोग्य पुद्गलोंका प्रमाण है। इस प्रकार चार भेद हुए—एक क्षेत्रमें स्थित योग्य द्रव्य, एक क्षेत्रमें स्थित अयोग्य द्रव्य, अनेक क्षेत्रस्थित योग्यद्रव्य, अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य द्रव्य। एक-एक भेदमें भी सादि द्रव्य और अनादि द्रव्य जानना। जो अतीतकालमें जीवके द्वारा ग्रहण किया गया वह सादिद्रव्य है। और जो अनादिकालसे जीवके द्वारा ग्रहण नहीं किया गया वह पुद्गलद्रव्य अनादि-द्रव्य जानना ॥१८७॥

आगे इनका प्रमाण जाननेके लिए कथन करते हैं—

जेट्ठे समयपबद्धे अदीदकालाहदेण सव्वेण ।
जीवेण हदे सव्वं सादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८८॥

जेठ्ठे समयप्रबद्धे अतीतकालाहतेन सर्व्वेण । जीवेन हते सर्व्वं सादी भवतीति निर्द्दिष्टं ॥

उत्कृष्टयोगार्ज्जितोत्कृष्टसमयप्रबद्धमनतीतकालदिंदं गुणिसल्पट्टु सर्व्वजीवराशियिंदं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमक्कुमें दु श्रीवीतरागसर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्ट परमागमदोळु पेळल्पट्टुदल्लि त्रैराशिकंगळ्माडल्पडुवुदें तेंदोडे एकसमयदोळुत्कृष्टसमयप्रबद्धद्रव्यं स्वीकृतमागुत्तं विरलु संख्यातावलिगुणितसिद्धराशिप्रमितमप्प अतीतकालसमयंगळ्गेनितु द्रव्यमक्कुमें दितु

त्रैराशिकमं माडिदोडे प्र । स १ । फ स ३२ इ । अ । बंद लब्धमेकजीवसंबंधि सादिद्रव्यमक्कु । स ३२ । अ । मदं सर्व्वजीवराशियिंदं गुणिसिदोडे त्रैराशिकसिद्ध । प्र १ । जी १ । फ स ३२ । अ । । इ । जी १६ । लब्धप्रमितं सर्व्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमक्कुं । स ३२ । अ १६ ॥

अनन्तरमेकानेकक्षेत्रस्थितकर्म्मयोग्यायोग्यद्रव्यंगळोळिरुत्तिर्द्द योग्यायोग्यसादिद्रव्यप्रमाणमं पेळ्दपरु :—

सगसगखेत्तगयस्स य अणंतिमं जोग्गदव्वगयसादी ।
सेसं अजोग्गसंगयसादी होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१८९॥

स्वस्वक्षेत्रगतस्य चानंतैकभागो योग्यद्रव्यगतसादि । शेषमयोग्यसंगतसादि भवतीति निर्द्दिष्टं ॥

उत्कृष्टयोगार्जितोत्कृष्टसमयप्रबद्धे अतीतकालगुणितसर्वजीवराशिना गुणिते सति सर्वजीवसंबन्धि सादिद्रव्यं भवति । तत्रैकसमये यद्युत्कृष्टसमयप्रबद्धद्रव्यं गृह्णाति तदा संख्यातावलिहतसिद्धराशिमात्रातीतकाले कियदिति प्र—स १ फ—स ३२ इ अ, लब्धमेकजीवसंबन्धि सादिद्रव्यं भवति । स ३२ अ । इदं पुनः सर्वजीवराशिना गुणितं सर्वजीवसंबन्धि भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं स ३२ अ १६ ॥१८८॥ अथैकानेकक्षेत्रस्थितकर्मयोग्यायोग्यद्रव्येषु स्थितयोग्यायोग्यसादिद्रव्यप्रमाणमाह—

उत्कृष्ट योगके द्वारा उपार्जित उत्कृष्ट समयप्रबद्धको अतीतकालसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसको सर्व जीवराशिके प्रमाणसे गुणा करनेपर सर्वजीव सम्बन्धी सादिद्रव्यका प्रमाण होता है। संख्यात आवलीसे सिद्धराशिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना अतीतकालके समयोंका प्रमाण है। यदि एक समयमें उत्कृष्ट समयप्रबद्ध प्रमाण पुद्गलद्रव्यका ग्रहण होता है तो अतीतकालके समयोंमें कितने पुद्गलद्रव्यका ग्रहण हुआ ऐसा त्रैराशिक करो। सो प्रमाणराशि एक समय, फलराशि उत्कृष्ट समयप्रबद्ध, इच्छाराशि अतीतकालके समय। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना सर्वजीव सम्बन्धी सादि पुद्गलद्रव्य जानना। इस प्रमाणको समस्त पुद्गलराशिके प्रमाणमें-से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना अनादि पुद्गलद्रव्य जानना ॥१८८॥

आगे पूर्वोक्त भेदोंमें सादि द्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

स्वस्वक्षेत्रगतस्य एकानेकक्षेत्रस्थितद्रव्यद तंतम्म कर्म्मयोग्यद्रव्यद अनंतैकभागः जीवन दृष्टानंतभागहारदिंदं खंडितैकखंडं तंतम्म योग्यद्रव्यस्थितसादिद्रव्यमक्कुं। शेषं तंतम्म अयोग्य-संगतसादि द्रव्यमक्कु—

एकक्षेत्रसव्वद्रव्यं	एकक्षेत्रसादि	अनेकक्षेत्रद्रव्यं।
१६ ख। ६ ≡ प ∂	स ३२। अ १६। ६। १ ≡ प ∂	१६ ख। ६ ≡ प ∂
यो = द्रव्य १६ ख ६। १ योग्यसादि≡ प ख ∂	६ अयो द्र १६ ख प ख ≡ ∂ ख	यो द्र १६ ख≡६ ख ≡ प ∂
द्रव्य स ३२ अ ६ ख १ १६ प ≡ ∂	६ अयो सा। स ३२अ१६प ख ≡ ∂ख	६ यो सा। स ३२ अ १६≡प ख ∂
योग्यानादिद्रव्यं १ १६ ख। ६। ख ≡ प ∂ ६ १ स ३२ अ १६। प। ख ≡ ∂	अयोग्यानादि १६ ख ६। ख प ख ६। ख स ३२ अ ∂ १६। ख ≡ प ∂	योग्यानादि १६ ख≡६ ख ≡ प ∂ ६ स ३२ अ १६≡प ख ≡ ∂

अनेकक्षेत्र सादि	सर्वक्षेत्र	सर्वद्रव्य
६ स ३२ अ १६≡प ∂ ≡	≡	१६ ख
अयो १६ ख≡६ ख प ≡ ∂ ख	एकक्षेत्र ६ प ∂	अनेकक्षेत्र ≡ ६ प ∂
अयो ।सा।स ३२ अ १६≡६ ख ≡ प ख ∂		
अयोग्यानादि ६ १६ ख≡ प ख ≡ ∂ ख ६ ख स ३२ अ १६≡ प ख ≡ ∂	समस्त सादिद्रव्यं स ३२ अ १६ समस्त अनादिद्रव्यं १६ ख स ३२ अ १६	

एकानेकक्षेत्रस्थितसादिद्रव्यस्य जिनदृष्टानन्तभक्तैकभागः स्वस्वयोग्यद्रव्यस्थितसादिद्रव्यं भवति शेषं

एक क्षेत्र और अनेक क्षेत्रमें स्थित सादिद्रव्यमें जिनदेवके द्वारा देखे गये अनन्तसे ५

मेंदितु परमागमदोळु प्रणीतमादुददें तेंदोडे इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुं। घनलोकसर्व्व-प्रदेशंगळोळु सर्व्वजीवसंबंधि सादिद्रव्यमिनितिरुत्तं विरलागळेकजीवावगाहित घनांगुलासंख्यातैक-भागमात्रक्षेत्रदोळं घनांगुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रानेकक्षेत्रदोळमेनितु सादिद्रव्यमिक्कुमेंदितु त्रैराशिकंगळं माडिदोडे। प्र≡फ स ३२। अ १६। इ ६ प्र≡फ स ३२। अ १६।
प
अ

५ इ। ≡ ६ लब्धंगळेकानेकक्षेत्रस्थित सादिद्रव्यंगळप्रमाणंगळप्पुवु। एक क्षे=सादि=
प स ३२। अ १६। ६
अ ≡ प
अ

अनेकक्षेत्रसादि= ई एकानेकक्षेत्रगत सादिद्रव्यं गळ अनंतैकभागंगळु योग्यसादिद्रव्यंगळप्पुवु—
स ३२। अ १६≡६
≡ प
अ

स्वस्वायोग्यसंगतसादिद्रव्यं भवतीति प्रणीतम्। यदि घनलोकसर्वप्रदेशेषु सर्वजीवसंबन्धिसादिद्रव्यं एतावत् तदा एकजीवावगाहितघनाङ्गुलासंख्यातैकभागमात्रैकक्षेत्रे घनाङ्गुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रानेकक्षेत्रे च कियत् स्यात्? इति त्रैराशिके कृते प्र—≡, फ स ३२ अ १६, इ ६। प्र ≡, फ स ३२ अ १६, इ ≡ ६
प प
अ अ

१० लब्धं एकानेकक्षेत्रस्थितसादिद्रव्यं भवति एकक्षेत्रसादि= अनेकक्षेत्रसादि= तयोर्द्रव्ययोरनन्तैक-
स ३२ अ १६ ६ स ३२ अ १६≡६
प प
≡ अ ≡ अ

भागौ योग्यसादिद्रव्ये भवतः— एकक्षेत्रयोग्यसादि = अनेकक्षेत्रयोग्यसादि =
स ३२ अ १६। ६ स ३२ अ १६। ≡ ६
प १ प १
≡ अ ख ≡ अ ख

शेषौ अनन्तबहुभागौ एकानेकक्षेत्रगतायोग्यसादिद्रव्ये भवतः ॥१८९॥

भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो अपना-अपना योग्य सादिद्रव्य है, शेष अयोग्य सादिद्रव्य है ऐसा कहा है। वही कहते हैं—

१५ जो सर्वलोकके प्रदेशोंमें सर्वजीव सम्बन्धी सादिद्रव्य पूर्वोक्त प्रमाण पाया जाता है तो एक जीवकी अवगाहनारूप घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण एक क्षेत्रमें और एक क्षेत्रके परिमाणसे हीन लोक प्रमाण अनेक क्षेत्रमें कितना पाया जायेगा। इस प्रकार दो त्रैराशिकमें-से एकमें प्रमाणराशि सर्वलोक, फलराशि सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छाराशि एक क्षेत्र। सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया उतना २० एक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्य जानना। दूसरेमें, प्रमाण सर्वलोक, फल सादिद्रव्यका प्रमाण, इच्छा अनेक क्षेत्र। फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्धराशिका प्रमाण आया, उतना अनेक क्षेत्र सम्बन्धी सादि द्रव्य जानना। एक क्षेत्र सम्बन्धी सादिद्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी कर्मरूप होनेके योग्य सादिद्रव्य

एक क्षेत्र योग्यसादि

स ३२ अ १६ । ६ १
≅ प ख
अ

अनेक क्षेत्र योग्यसादि

स ३२ अ १६ ≅ ६ ख
≡ प
अ

शेषानंतबहुभागंगळ्-

मेकानेकक्षेत्रगताऽयोग्यसादिद्रव्यंगळप्पुवु

एक क्षेत्र योग्यसादि

स ३२ अ १६ । ६ ख
≅ प ख
अ

अनेकक्षेत्रायोग्यसादि

स ३२ । अ १६ ≅ ६ ख
≅ प ख
अ

अनंतरमेकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यअनादिद्रव्यप्रमाणंगळं पेळ्दपरु :—

सगसगसादिविहीणे जोग्गाजोग्गे य होदि णियमेण ।
जोग्गाजोग्गाणं पुण अणादिदव्वाण परिमाणं ॥१९०॥

स्वस्वसादिविहीने योग्यायोग्ये च भवति नियमेन। योग्यायोग्यानां पुनरनादिद्रव्याणां परिमाणं ॥

एकानेकक्षेत्रगतयोग्यायोग्यद्रव्यंगळोळु यथाक्रमदिंदं स्वस्वयोग्यायोग्यसादिद्रव्यंगळं कळेयुत्तिरलु एकानेकक्षेत्रस्थित योग्यायोग्यद्रव्यंगळ अनादिद्रव्यपरिमाणंगळप्पुवु :—

एकक्षेत्रायोग्यसादि

स ३२ अ १६ ६ ख
प ख
≅ अ

अनेकक्षेत्रायोग्यसादि

स ३२ अ १६ ≅ ६ ख
प ख
≡ अ

अथैकानेकक्षेत्रस्थितयोग्यायोग्यानादि द्रव्यप्रमाणान्याह—

एकानेकक्षेत्रगतयोग्यायोग्यद्रव्येषु यथाक्रमं स्वस्वयोग्यायोग्यसादिद्रव्येष्वपनीतेषु एकानेकक्षेत्रस्थित-

जानना। शेष बहुभाग प्रमाण एक क्षेत्र सम्बन्धी अयोग्य सादि द्रव्य जानना। इसी प्रकार अनेक क्षेत्र सम्बन्धी सादि द्रव्यमें अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण अनेक क्षेत्रमें स्थित योग्य सादिद्रव्य जानना, शेष बहुभाग प्रमाण अनेक क्षेत्रमें स्थित अयोग्य सादि द्रव्य जानना ॥१८९॥

आगे अनादिद्रव्यका प्रमाण कहते हैं—

एकक्षेत्रमें स्थित योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्य तथा अनेकक्षेत्रमें स्थित योग्यद्रव्य और अयोग्यद्रव्यका जो परिमाण कहा है उनमें-से अपने-अपने सादिद्रव्यका परिमाण घटानेपर जो शेष प्रमाण रहे उतना-उतना क्रमसे एकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्यका और एकक्षेत्रस्थित अयोग्य अनादि द्रव्यका तथा अनेकक्षेत्रस्थित योग्य अनादि द्रव्यका और अनेक क्षेत्र स्थित अयोग्य अनादि द्रव्यका प्रमाण होता है। इनमें-से योग्य सादिद्रव्यसे अथवा योग्य अनादि-द्रव्यसे अथवा योग्य उभय द्रव्यसे एक समयप्रबद्ध प्रमाण मूलप्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति-रूपसे प्रतिसमय प्रदेशबन्ध करता है। इसका भावार्थ यह है कि जीव मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे प्रतिसमय कर्मरूप होनेके योग्य समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओंको ग्रहण करके उन्हें

उक्त समुदायरचना

एक क्षे० यो० अनादि	अनेक क्षेत्र यो० अनादि
१६ ख ६ ख ≡ प ∂ स ३२ अ १६ । ६ ≡ प ख ∂	१६ ख ≡ ६ । १ ≡ प ख ∂ स ३२ अ १६ ≡ ६ १ ≡ प ख ∂
एक क्षे० अयो० अनादि०	**अनेक क्षे० अयो० अ०**
१६ ख । ६ ख ≡ प ख ∂ स ३२ । अ १६ ६ ख ≡ प ख ∂	१६ ख । ≡ ६ ख ≡ प ख ∂ स ३२ । अ १६ ६ ख ≡ प ख ∂

अनंतरमी पेळल्पट्ट योग्यसादिद्रव्यमं मेणु योग्यानादिद्रव्यमं मेणुभयद्रव्यमुमं मेणु कर्म्म-परिणमनयोग्यकार्म्मणवर्ग्गणास्कंधगळनेकसमयप्रबद्धप्रमितमं मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपदिदं प्रतिसमयं प्रदेशबंधमं माळ्कुमा समयप्रबद्धप्रमाणमुमिनितें दु पेळ्दपरु :—

योग्यायोग्यद्रव्याणां अनादिद्रव्यप्रमाणानि भवन्ति, तस्माद्योग्यसादिद्रव्याद् वा योग्यानादिद्रव्याद् वा योग्योभय-द्रव्याद् वा एकसमयप्रबद्धप्रमितं मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिरूपेण प्रतिसमयं प्रदेशबन्धं करोति ।

एकक्षेत्र यो = अनादि

१६ ख ६ १
≡ ख प)
∂)
स ३२ अ १६ । ६ १
≡ प ख
∂

अनेकक्षेत्रयोग्य अनादि

१६ ख ≡ ६ १
≡ ख प)
∂)
स ३२ अ १६ । ≡ ६ १
≡ प ख
∂

एकक्षेत्र अयो = अनादि

१६ ख ६ । ख
≡ प)
∂ ख)
स ३२ अ १६ । ६ ख
≡ प ख
∂

अनेकक्षेत्र अयो–अनादि

१६ ख ≡ ६ ख
प ख)
≡ ∂)
स ३२ अ १६ । ≡ ६ ख
प ख
≡ ∂ ॥१९०॥

कमरूप परिणमाता है । सो किसी समय तो जीवके द्वारा पूर्वमें ग्रहणमें आये सादिद्रव्यरूप परमाणुओंको ही ग्रहण करता है, किसी समय किसी भी जीवके द्वारा पूर्वमें ग्रहण न किये

सयलरसरूवगंधेहिं परिणदं चरिमचदुहिं फासेहिं ।
सिद्धादो अभव्वादो णंतिमभागं गुणं दव्वं ॥१९१॥

सकलरसरूपगंधैः परिणतं चरमचतुर्भिः स्पर्शैः । सिद्धादभव्यादनंतैकभागो गुणं द्रव्यं ॥

सर्व्वरससर्व्वरूपसर्व्वगंधंगळिंदमुं चरमशीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःस्पर्शंगळिंदमुं परिणतमप्पुदुं सिद्धराशियं नोडलुमनंतैकभागमुमप्पुदु । मभव्यराशियं नोडलुमनन्तगुणमुमप्पुदु । मितप्प समय- ५
प्रबद्धद्रव्यं मूलप्रकृतिगळोळं[1] तु पसल्पडुगुमं दोडे पेळ्दपरु :—

आउगभागो थोवो णामागोदे समो तदो अहियो ।
घादितिये वि य तत्तो मोहे तत्तो तदो तदिए ॥१९२॥

आयुर्भागः स्तोकः नामगोत्रयोः समस्ततोऽधिकः । घातित्रयेऽपि च ततो मोहे ततस्तृतीये ॥

आयुर्भागः आयुष्यकर्म्मद भागं स्तोकः एल्लवर भागमं नोडलु किरिदक्कु । ततः आ १०
आयुर्भागमं नोडलुं नामगोत्रयोः नामगोत्रंगळोळु अधिकः अधिकमक्कुमदुवुं समः तम्मोळु सम-
नागि पसल्पडुगुं । ततः आ नामगोत्रद्वयद भागमं नोडलु घातित्रये अन्तराय दर्शनावरणज्ञानावरण-
त्रयदोळु अधिकः अधिकमक्कु । मदुवुं समः तम्मोळु समनागि पसल्पडुगुं । ततः आ घातित्रयद
भागमं नोडलुं मोहे मोहनीयकर्म्मदोळु अधिकः अधिकमक्कुं । ततः आ मोहनीयद भागमं नोडलु

तत्प्रमाणमाह— १५

सर्वरसरूपगन्धैश्चरमशीतोष्णस्निग्धरूक्षचतुःस्पर्शैश्च परिणतं सिद्धराश्यनन्तैकभागं अभव्यराश्यनन्त-
गुणं समयप्रबद्धद्रव्यं भवति ॥१९१॥ तन्मूलप्रकृतिषु कथं विभज्यते ? इति चेदाह—

आयुःकर्मणो भागः स्तोकः । नामगोत्रयोः परस्परं समानोऽपि ततोऽधिकः । अंतरायदर्शनज्ञानावरणेषु

गये अनादि द्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है। और किसी समय कुछ सादि द्रव्यरूप
और कुछ अनादिद्रव्यरूप परमाणुओंको ग्रहण करता है ॥१९०॥ २०

आगे उस समयप्रबद्धका प्रमाण कहते हैं—

वह समयप्रबद्धरूप परमाणुओंका समूह सब रस, सब रूप, सब गन्ध किन्तु शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष चार प्रकारके स्पर्शसे युक्त होता है। उसमें गुरु, लघु, मृदु और कठिन ये चार स्पर्श नहीं होते। तथा उस समयप्रबद्धमें सिद्धराशिके अनन्तवें भाग और अभव्यराशि- से अनन्तगुणे परमाणु होते हैं। इतने परमाणुओंको प्रतिसमय ग्रहण करके कर्मरूप परिण- २५
माता है अर्थात् जीवके भावोंका निमित्त पाकर इतने परमाणु प्रतिसमय स्वयं कर्मरूप परिणमते हैं ॥१९१॥

उस समयप्रबद्धका विभाजन मूल प्रकृतियोंमें किस प्रकारसे होता है यह कहते हैं—

सब मूल प्रकृतियोंमें आयुकर्मका भाग थोड़ा है। नाम और गोत्रकर्मका भाग परस्पर- में समान होते हुए भी आयुकर्मके भागसे अधिक है। अन्तराय, ज्ञानावरण और दर्शना- ३०
वरणका भाग परस्परमें समान है तथापि नाम और गोत्रके भागसे अधिक है। उससे

---

१. ह्च्चल्पडुगु ।

तृतीये वेदनीयदोळु अधिकः अधिकमक्कु । मिन्तु पसल्पडुत्तिरलु मिथ्यादृष्टियोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्भेदविंदं चतुर्विधमक्कुं ।

सासादननोळु तिर्य्यग्मनुष्यदेवायुर्भेदविंदं त्रिविधमक्कुं । असंयतनोळु मनुष्यदेवायुर्भेदविंदं द्विविधमक्कुं । देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु देवायुष्यभेदविनेकविधमेयक्कु । मायुबंधरहितपेक्षेयिंदमनिवृत्तिकरणपर्य्यंत ९ गुणस्थानंगळोळु सप्तविधमूलप्रकृतिप्रदेशबंधमक्कुं । सूक्ष्मसांपरायनोळु ६ षड्विधमूलप्रकृतिगळगे प्रदेशबंधमक्कुमुपशांतादिसयोगकेवलिपर्य्यंतमेकमूलप्रकृतिगे सर्व्वसमयप्रबद्धद्रव्यमुदयात्मकप्रदेशबंधमक्कुं ।

वेद स ७८	मो स ७८	णा स ७८	द स ७८	अन्तराय स ७८	गो स ७८	ना स ७८	आ स ७८
८।९	८।९	८।९	८।९	८।९	८।९	८।९	८।९
स ७८	स ७८	स ७८	स ७८	स ७८	स ७८	स ७८	स ७१
९९	९९९	९९९९।३	९९९९।३	९९९९।३	९९९९९।२	९९९९९।२	९९९९९

अनंतरं वेदनीयक्के सर्व्वतोधिकमप्पुदक्के कारणमं पेळ्दपरु :—

सुहदुक्खणिमित्तादो बहुणिज्जरगोत्ति वेयणीयस्स ।
सव्वेहिंतो बहुगं दव्वं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥१९३॥

सुखदुःखनिमित्तात् बहुनिर्ज्जरेति वेदनीयस्य । सर्व्वतो बहुकं द्रव्यं भवतीति निर्दिष्टं ॥

वेदनीयस्य वेदनीयक्के सुखदुःखनिमित्तात् सुखदुःखकारणदिंदं बहुनिर्ज्जरेति बहुनिर्ज्जरेयुटेंदिन्तु सर्व्वतः सर्व्वप्रकृतिगळ भागेय द्रव्यमं नोडलुं बहुकं द्रव्यं पिरिदुं द्रव्यं भवतीति निर्दिष्टं

तथा समानोऽपि ततोऽधिकः । ततो मोहनीयेऽधिकः ततो वेदनीयेऽधिकः । एवं भवत्वा दत्ते सति मिथ्यादृष्टौ आयुश्चतुर्विधम् । सासादने नारकं नेति त्रिविधम् । असंयते तैरश्चमपि नेति द्विविधम् । देशसंयतादित्रये एकं देवायुरेव । उपर्यनिवृत्तिकरणांतेषु सप्तविधमूलप्रकृतीनां प्रदेशबन्धः सूक्ष्मसांपराये षण्णां उपशांतादित्रये एकाया उदयात्मिकायाः ॥१९२॥ अथ वेदनीयस्य सर्वत आधिक्ये कारणमाह—

वेदनीयस्य सुखदुःखनिमित्तत्वात् बहुकं निर्जरयति इति हेतोः सर्वप्रकृतिभागद्रव्यात् बहुकं द्रव्यं भव-

---

मोहनीयका भाग अधिक है । मोहनीयसे वेदनीयका भाग अधिक है । सो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारों आयुका बन्ध सम्भव है । सासादनमें नरकायुके बिना तीन आयुका बन्ध होता है । असंयतमें नरक और तिर्यंचके बिना दो आयुका बन्ध होता है । देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तमें एक देवायुका ही बन्ध होता है । ऊपर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त आयुके बिना सात ही कर्मोंका प्रदेशबन्ध होता है । सूक्ष्म साम्परायमें आयु और मोहनीयके बिना छह कर्मोंका बन्ध होता है । उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवलीमें एक वेदनीयका बन्ध होता है जो उदयरूप ही है । जहाँ जितने कर्मोंका बन्ध होता है वहाँ समयप्रबद्धमें उतने ही कर्मोंका बँटवारा होता है ॥१९२॥

आगे वेदनीय कर्मका सबसे अधिक भाग होनेका कारण कहते हैं—

वेदनीय कर्म सुख और दुःखमें निमित्त होता है । इससे उसकी निर्जरा बहुत होती

---

१. ब °षु मूलप्रकृतयः सप्त, सूक्ष्मसांपराये षट् । उपशान्तादित्रये एका उदयात्मिका ।

अक्कुमेंबितु परमागमदोळु पेळल्पट्टुदु ॥

अनन्तरं शेषप्रकृतिगळ्गे स्थित्यनुसारिद्रव्यविभंजनमक्कुमेंदु पेळ्दपरु :—

सेसाणं पयडीणं ठिदिअणुभागेण होदि दव्वं तु ।
आवलिअसंखभागो पडिभागो होदि णियमेण ॥१९४॥

शेषाणां प्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन भवति द्रव्यं तु । आवल्यसंख्यभागः प्रतिभागो भवति नियमेन ॥

शेषमूलप्रकृतिगळ्गेल्लं स्थितिप्रतिभागदिंदं द्रव्यमक्कुं । तु मत्ते । अधिकागमननिमित्तमागि । प्रतिभागं प्रतिभागहारं । आवल्यसंख्यभागः आवल्यसंख्यातैकभागमेयक्कुं । नियमेन नियमदिंदं । भागहारान्तरनिर्व्वृत्त्यर्थमागि नियमवचनमा भागहारक्के नवांकं संदृष्टियक्कुं ९ ॥

ई आवल्यसंख्यातदिंदं भागिसि पसुगेयं माळ्प क्रममं पेळ्दपरु :—

बहुभागे समभागो अट्ठण्हं होदि एक्कभागम्हि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देयो दु ॥१९५॥

बहुभागे समभागोऽष्टानां भवत्येकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥

तीति परमागमे निर्दिष्टम् ॥१९३॥ अथ शेषाणां स्थित्यनुसारिद्रव्यविभञ्जनमित्याह—

शेषसर्वमूलप्रकृतीनां स्थितिप्रतिभागेन द्रव्यं भवति । तु-पुनः तत्राधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः आवल्यसंख्येयभागो नियमेन । भागहारान्तरनिवृत्त्यर्थं नियमवचनम् । तत्संदृष्टिर्नवाङ्कः ९ ॥१९४॥ अनेन विभागक्रमं दर्शयति—

है । अतः अन्य सब मूल प्रकृतियोंके भागरूप द्रव्यसे वेदनीयका द्रव्य बहुत है, ऐसा परमागममें कहा है ॥१९३॥

शेष कर्मोंके द्रव्यका विभाग उनकी स्थितिके अनुसार होता है, यह कहते हैं—

वेदनीयके बिना शेष सब मूल प्रकृतियोंका द्रव्य स्थितिके प्रतिभागके अनुसार होता है अर्थात् जिस कर्मकी स्थिति बहुत है उसका द्रव्य अधिक है। जिनकी स्थिति परस्परमें समान है उनका द्रव्य परस्परमें समान जानना। जिसकी स्थिति कम है उसका द्रव्य थोड़ा है। अधिक भाग लानेके लिए प्रतिभागहार आवलीका असंख्यातवाँ भाग नियमसे होता है। 'नियम' पद इसलिए दिया है कि अन्य भागहार नहीं होता। उसकी संदृष्टि 'नौ'का अंक है। इसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे सो एक भाग जानना। और एक भागके बिना शेष सब भागको बहुभाग जानना ॥१९४॥

आगे विभागका क्रम कहते हैं—

---

१. ब °सारद्रं ।

ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिगळ्गेल्लं बहुभागदोळु समभागमक्कुं। एक्कभागम्मि शेषैकभागदोळु उक्तक्रमः पूर्व्वोक्तक्रममक्कुमल्लि तु मत्ते। बहुभागः बहुभागं। बहुकस्य देयः पिरिदप्पुदक्के देयमक्कुमदें तेंदोडे सिद्धराशियं नोडलुमनंतैकभागमुमभव्यराशियं नोडलुमनंतगुणमुमप्प कार्म्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं। स ९ ८। पूर्व्वोक्तावल्यसंख्यातैकभागमात्रप्रतिभागहारदिंदं भागिसि बहुभागमं स ९ ८ आयुर्ब्बंधकालदोळु मूलप्रकृतिगळ्गें टक्कमेल्लमिनितु द्रव्यमागलो दु प्रकृतिगेनितु द्रव्यमक्कुमें दु त्रैराशिकमं माडि बंदलब्धमनें टेडेयोळं प्रत्येकमिरिसि शेषैकभागमनिदं स ९ १ मत्तमावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसि बहु भागमनिदं स ९ ८ बहुकस्य देयमें दु वेदनीयक्के कोट्टु शेषैकभागमं स ९ १ मत्तमावल्यसंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमनिदं स ९ ८ मोहनीयक्के कोट्टु शेषैकभागमं स ९ १ मत्तमावल्यसंख्यातैकभागदिंदं भागिसि बहुभागमं स ९ ८ ज्ञानावरण-दर्शनावरणान्तराय घातित्रयक्कं[1] कोट्टदं मूररिंदं भागिसि समनादुदं स ९ ८ प्रत्येकं मूरडेयोळं कोट्टु शेषैकभागमं स ९ १ पूर्व्वोक्तावल्यसंख्यातदिंदं भागिसि बहुभागमनिदं स ९ ८ नामगोत्र-

---

मूलप्रकृतीनामष्टानां बहुभागे समभागो देयः। तत्रैकभागे उक्तक्रमो भवति। तत्र तु पुनः बहुभागः बहुकस्य देयः। तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं स ९ तत् आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स ९ ८ अष्टभिर्भक्त्वा स ९ ८ अष्टसु स्थानेषु प्रत्येकं स्थाप्यः, शेषैकभागे स ९ १ आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः स ९ ८ बहुकस्य वेदनीयस्य देयः। शेषैकभागे स ९ १ पुनरावल्यसंख्यातभक्तबहुभागः मोहनीयस्य देयः स ९ ८ शेषैकभागे स ९ १ पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः स ९ ८ त्रिभिर्भक्त्वा स ९ ८ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ९ ३

आठ मूल प्रकृतियोंको बहुभाग तो बराबर-बराबर समान देना चाहिए। जो एक भाग रहा उसको उक्त क्रमसे देना। किन्तु उसमें भी जिसका बहुत द्रव्य हो उसको बहुभाग देना चाहिए। वही कहते हैं—

एक समयमें जो कार्माण सम्बन्धी समयप्रबद्ध ग्रहण किया, उसके परमाणुओंका जो प्रमाण है उसे कार्मण समयप्रबद्ध द्रव्य कहते हैं। उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे एक भागको पृथक् रखकर बहुभागके आठ समान भाग करें। भाग देवें। और एक-एक समान भाग आठ स्थानोंमें अलग-अलग रखें। और जो एक भाग अलग रखा है उसमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देवें। तथा एक भागको अलग रखकर शेष बहुभाग जिसका बहुत द्रव्य कहा है उस वेदनीय कर्मको देवें। सो पूर्वोक्त आठ समान भागोंमें-से

---

१. म °क्कं मूर°।

द्वयक्कं कोट्टुदनेरडॆरदं भागिसि समानादुवं स ८ प्रत्येकमेरडेडेयोळं कोट्टु शेषैकभागमनिदं
९९९९९।२
स ८ आयुष्यक्के कोडुवुदिन्तु कुडुत्तं विरलु वेदनीयं पोरगागि शेषप्रकृतिगळ्गे तंतम्म स्थित्यनु-
९९९९९
सारियागि द्रव्यंगळायुष्यकर्म्मक्के सर्व्वतः स्तोकमक्कुं। नामगोत्रंगळोळधिकमागियुं तंतम्मोळु सरियक्कुं। मन्तरायदर्शनावरणज्ञानावरणत्रयक्कधिकमागियुं तम्मोळु सरियक्कुं। मोहनीयदोळु अधिकमक्कुं। वेदनीयदोळमधिकमक्कुमेंदु मुंपेळ्द मूलप्रकृतिगळ पसुगेय द्रव्यंगळु सिद्धमादुवु ॥ ५

अनंतरं ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिगळ्गे पेळ्द पिंडद्रव्यमं तंतम्मुत्तरप्रकृतिगळोळु विभागिसि कुडुवं प्रकारमं पेळ्दपरु :—

ज्ञानदर्शनावरणांतरायेषु प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे स ८ पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः द्वाभ्यां
९ ९ ९ ९
भक्त्वा स ८ प्रत्येकं नामगोत्रयोर्देयः। शेषैकभागं स ८ आयुषि दद्यात्। एवं दत्ते
९ ९ ९ ९ ९ २ ९ ९ ९ ९ ९
आउगभागो थोवो इति गाथोक्तक्रमः सिद्धः ॥१९५॥ अथ मूलप्रकृतीनां उक्तपिण्डद्रव्यं स्वस्योत्तरप्रकृतिषु १०
भक्त्वा दानक्रममाह—

एक समान भागमें उस बहुभागको मिलानेसे जितना प्रमाण हो उतने परमाणु उस समयप्रबद्धमें-से वेदनीय कर्मरूप परिणमते हैं। अब जो एक भाग रहा उसमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। और एक भागको अलग रख शेष बहुभाग मोहनीय कर्मको देवें। इस बहुभागको भी आठ समान भागोंमें-से एक भागमें मिलानेपर जो १५
प्रमाण हो उतने परमाणु मोहनीय कर्मरूप परिणमते हैं। अलग रखे एक भागमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें और एक भागको अलग रख शेष बहुभागके तीन समान भाग करें। और एक-एक भाग ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायको देवें। इस एक-एक भागको आठ समान भागोंमें एक-एक भागमें मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रमसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मरूप परिणमते हैं। इन २०
तीनोंका द्रव्य परस्परमें समान होता है। अलग रखे एक भागमें भी आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भागको अलग रख बहुभागके दो समान भाग करके एक-एक भाग नाम और गोत्रको दें। और उन आठ भागोंमें-से एक-एक समान भागमें इस एक-एक भागको मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने परमाणु क्रमसे नाम और गोत्ररूप परिणमते हैं। इन दोनोंका द्रव्य परस्पर समान होता है। एक भाग जो रहा वह आयु कर्मको देवें और २५
उन आठ समान भागोंमें-से शेष रहे एक भागमें मिला दें। जो प्रमाण हो उतने परमाणु आयुकर्मरूप परिणमते हैं। इस प्रकार जो 'आउगभागो थोवो' आदि गाथामें कहा था वह निष्पन्न हुआ ॥१९५॥

आगे मूल प्रकृतियोंमें जो ऊपर पिण्डद्रव्य कहा है उसे अपनी-अपनी उत्तर प्रकृतियोंमें विभाजित करके देनेका क्रम कहते हैं— ३०

---

१. क °व क्रमं।

उत्तरपयडीसु पुणो मोहावरणा हवंति हीणकमा ।
अहियकमा पुण णामा विग्घा य ण भंजणं सेसे ॥१९६॥

उत्तरप्रकृतिषु पुनर्मोहावरणानि भवन्ति हीनक्रमाः । अधिकक्रमाः पुनर्नामानि विघ्नाश्च न भंजनं शेषे ॥

उत्तरप्रकृतिगळोळ् पुनः मत्ते मोहावरणानि मोहनीयंगळुं ज्ञानावरणंगळुं दर्शनावरणंगळुं हीनक्रमा भवंति हीनक्रमंगळप्पुवु । पुनः मत्ते नामकर्म्मप्रकृतिगळु मन्तरायकर्म्मप्रकृतिगळुं अधिकक्रमा भवंति अधिकक्रमंगळप्पुवु । शेषवेदनीयगोत्रायुष्यंगळोळु द्रव्यविभंजनमिल्लेकेंदोडे तत्प्रकृतिगळुं बंधकालदोळेकैकंगळे बंधमप्पुवितरंगळगे बंधमिल्लप्पुदरिंदं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्द द्रव्यमनितुं विवक्षितबंधप्रकृतिगेयक्कुं । युगपद्विवक्षितबंधंगळ्गमितरंगळ्गं बंधमिल्लप्पुदरिंदं । सातमुमुच्चैर्गोत्रमुं देवायुष्यमुं बंधमप्पागळु इतरासातं नीचैर्गोत्र नरकतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळ्गे बंधमिल्लदु कारणदिंदं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्द द्रव्यमिवक्केयक्कुमा असातनीचैर्गोत्रादिगळु बंधमप्पागळु सातादिगळ्गे बंधमिल्लप्पुदरिंदं । मूलप्रकृतिद्रव्यमनितुविवक्कक्कुमेंबुदत्थं ॥

अनंतरं घातिकर्म्मंगळोळु सर्व्वघातिप्रकृतिगळ्गं देशघातिप्रकृतिगळ्गं द्रव्यविभंजनक्रममं पेळ्दपरु :—

सव्वावरणं दव्वं अणंतभागो दु मूलपयडीणं ।
सेस अणंता भागा देसावरणे हवे दव्वं ॥१९७॥

सर्व्वावरणद्रव्यमनन्तभागस्तु मूलप्रकृतीनां । शेषानंता भागाः देशावरणे भवेत् द्रव्यं ॥

उत्तरप्रकृतिषु पुनः मोहनीयज्ञानदर्शनावरणानि हीनक्रमाणि भवन्ति । नामान्तरायौ पुनः अधिकक्रमौ भवतः । शेषवेदनीयगोत्रायुस्सु द्रव्यविभजनं नास्ति, तेषां एकैकस्या एव तदुत्तरप्रकृतेर्बन्धात् । तेन तन्मूलप्रकृत्युक्तद्रव्यं सर्वमेव स्यात् इत्यर्थः ॥१९६॥ अथ घातिकर्मसु सर्वघातिदेशघातिद्रव्यविभञ्जनक्रममाह—

उत्तर प्रकृतियोंमें मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण ये तो हीनक्रम होते हैं अर्थात् क्रमसे घटता-घटता द्रव्य इनकी उत्तर प्रकृतियोंमें दिया जाता है । जैसे ज्ञानावरणमें मतिज्ञानावरणसे श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है । उससे अवधि ज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है । उसे मनःपर्ययज्ञानावरणका द्रव्य थोड़ा है । तथा नामकर्म और अन्तराय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य दिया जाता है । जैसे अन्तराय कर्ममें दानान्तरायके द्रव्यसे लाभान्तरायका द्रव्य अधिक है । उससे भोगान्तरायका द्रव्य अधिक है । शेष वेदनीय, गोत्र आयुकर्ममें बँटवारा नहीं है क्योंकि इनकी एक-एक ही प्रकृति बँधती है । जैसे वेदनीय कर्मके भेदोंमें-से या तो साताका ही बन्ध होता है या असाताका ही बन्ध होता है । दोनोंका बन्ध एक समयमें नहीं होता । इसी तरह गोत्रकर्ममें-से या तो नीचगोत्रका बन्ध होता है या उच्चगोचका बन्ध होता है । आयु भी एक समयमें एक ही बँधती है । अतः इन तीनों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंमें बँटवारा नहीं है । जिस समयमें इनकी जिस उत्तर प्रकृतिका बन्ध होता है उस समयमें मूल प्रकृतिको जो द्रव्य मिलता है वह सब उसकी उत्तर प्रकृतिका ही होता है ॥१९६॥

आगे घातिकर्मोंमें सर्वघाती और देशघाती द्रव्यका बँटवारा कहते हैं—

मूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयमें ब मूलप्रकृतिगळ तंतम्म द्रव्यंगळोळु सर्व्वावरणद्रव्यं सर्व्वघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यं अनंतभागस्तु जिनदृष्टानन्तभागहारभक्तानंतैकभाग-मक्कुं। तु मत्ते शेषानंता भागाः शेषानन्तबहुभागंगळु देशावरणे भवेत् द्रव्यं स्वस्वदेशघातिप्रकृति-संबंधिद्रव्यंगळप्पुवु। तद्यथा—ज्ञानावरणमूलप्रकृतिद्रव्यमिदु स ə । ८ यिल्लि विशेषरूपदिनिर्द्दं
९ । ८

स ə । ८
९९९९ । ३

केळगणावल्यसंख्यातैकभागमं तंदु साधिकं माडि स ə । ८ गुणकारदोळेकरूपहीनत्वमनवगणि- ५
८ । ९

सियपवर्त्तिसि स ə जिनदृष्टानंतभागहारदिंदं भागिसि बंद लब्धमेकभागं ज्ञानावरणसर्व्वघाति-
८

प्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं स ə । १ शेषबहुभागद्रव्यं मतिज्ञानावरणादिदेशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्य-
८ । ख

मक्कुं स ə । ख दर्शनावरणमूलप्रकृतिसर्व्वद्रव्यमनिद स ə ननन्तदिंद भागिसिदेकभागमिदु
८ ख ८

स ə १ तत्सर्व्वघातिषट्कसंबंधिद्रव्यमक्कुं। शेषबहुभागद्रव्यं चक्षुर्द्दर्शनादिदेशघातित्रयसंबंधि
८ । ख

द्रव्यमक्कुं स ə ख मोहनीयमूलप्रकृतिद्रव्यं अन्तरायदर्शनावरणज्ञानावरणघातित्रयद्रव्यमं नोडलु १०
८ । ख

साधिकमक्कुमिदं स ə अनन्तभागहारदिंदं भागिसिदेकभागद्रव्यमिदु स ə । १ मिथ्यात्व-
८ ८ । ख

द्वादशकषायसर्व्वघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं। शेषबहुभागद्रव्यं संज्वलननोकषाय त्रयोदश देश-

घातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कु स ə ख मपवर्त्तितमनिदं स ə संज्वलनाकषायद्रव्यविभागनिमित्त-
८ । ख ८

ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयमूलप्रकृतीनां स्वस्वद्रव्येषु सर्वावरणद्रव्यं अनन्तैकभागो भवति। तु—पुनः शेषा अनन्ता भागाः देशघातिद्रव्यं भवति। यथा ज्ञानावरणस्य इदं स ə ८ अधस्तनावल्यसंख्यातैकभागे[1] साधिकी- १५
९ ८

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीय इन मूल प्रकृतियोंके अपने-अपने द्रव्यमें अनन्त-का भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती द्रव्य है और शेष अनन्त बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। जैसे ज्ञानावरणके द्रव्यका जो प्रमाण पहले कहा था, उसमें जिन भगवान्-के द्वारा देखे गये अनन्तका भाग देनेपर एक भाग प्रमाण तो सर्वघाती द्रव्य है शेष सर्वभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। ऐसे ही दर्शनावरण और मोहनीयमें भी जानना ॥१९७॥ २०

---

१. ब °भागेन साधिकं कृत्वा।

मावल्यसंख्यातदिदं भागिसिदेकभागमुं स ड । १ शेषबहुभागद्रव्यमं । स ड । ८ समनागि येरडु
८।९ ८।९

भागं माडिदल्लि येकभागमुं । स ड । ८ । १ संज्वलनदेशघातिचतुष्प्रकृतिसंबंधिद्रव्यमक्कुं
८।९।२

स ड । ८ । १ शेषबहुभागार्द्धद्रव्यमकषायदेशघातिप्रकृतिनवकसंबंधिद्रव्यमक्कुं स ड । ८
८ ।९।२ ८।९।२

अन्तरायपंचकमुं देशघातियेयप्पुदरिंदं मूलप्रकृतिसर्व्वद्रव्यमुमक्कुं स ड यो नाल्कुं घातिकर्म्मंगळ
८

५ देशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यंगळगे पेळ्वन्योन्याभ्यस्तराशिये सर्व्वावरणधनात्थं प्रतिभागप्रमाणमेंदु पेळ्दपरदेकेंदोडे रूपोनान्यान्योभ्यस्तराशियिदं ज्ञानावरणादिघातिकर्म्मंगळ सर्व्वघातिसंबंधिद्रव्यदोळं देशघातिप्रकृतिगळगे भागमुंटप्पुदरिनदु सहितमाद देशघातिसंबंधिसर्व्वद्रव्यमं भागिसिदोडे देशघातिज्ञानावरणचतुष्कमुं त्रिदर्शनावरणमुमन्तरायपंचकमुं संज्वलनचतुष्कनवनो-

---

कृते स ड ८ गुणकारस्य एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्त्य स ड जिनदृष्टानन्तभागहारेण भक्त्वा एकभागः
९ ८ ८

१० स ड १ तत्सर्वघातिप्रकृतिसंबन्धी भवति शेषबहुभागः तद्देशघातिसंबन्धी भवति स ड ख तथा दर्शना-
८ ख ८ ख

ऊपर जो सर्वघाती द्रव्यका परिमाण कहा है आगे उसका बँटवारा सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियोंमें करेंगे। सो देशघाती मतिज्ञानावरणादिके द्रव्यका जो परिमाण है उसमें सर्वघाति परमाणुओंका प्रमाण लानेके लिए प्रतिभागहारका प्रमाण कहते हैं—

चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन और नौ नोकषायके १५ द्रव्यकी नाना गुणहानि शलाका अनन्त है। और जितनी नाना गुणहानि शलाका हैं उतने दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है वह भी अनन्त संख्यावाली है।

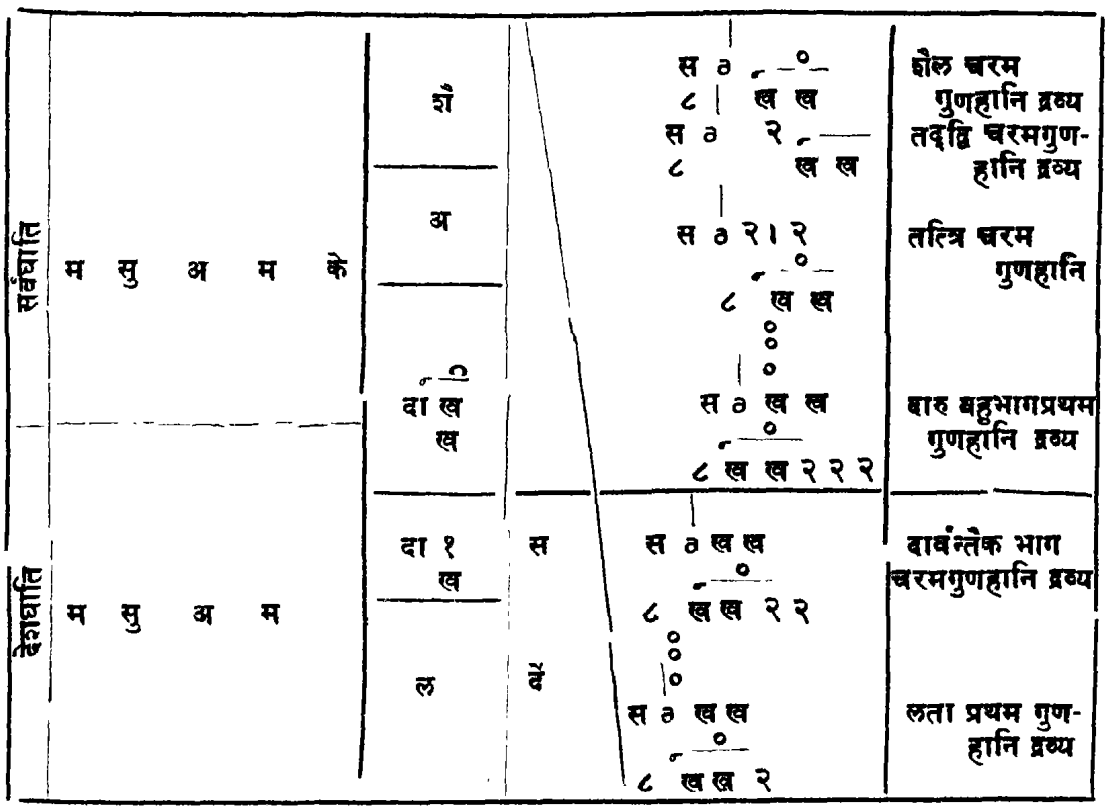
जैसे अंक संदृष्टिमें द्रव्य इकतीस सौ ३१००, स्थिति स्थान चालीस ४०, एक-एक गुणहानिका प्रमाण आठ ८, दो गुणहानिका प्रमाण सोलह १६, नाना गुणहानि पाँच ५। २० नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि २×२×२×२×२=३२ बत्तीस। सो इसकी रचना पूर्वमें कही है वैसे ही जानना। अस्तु।

सो यहाँ जो अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण है वही सर्वघाती द्रव्यका परिमाण लानेके लिए प्रतिभाग होता है। वही कहते हैं—

२५ मतिज्ञानावरण आदि चार प्रकृतियोंका द्रव्य केवलज्ञानावरणके भागसे हीन अपने सर्वघाती द्रव्य सहित देशघातिद्रव्यका जितना प्रमाण है उतना है। अर्थात् इन देशघाति प्रकृतियोंका देशघाती द्रव्य तो अपना है ही सर्वघाती द्रव्य भी है। वह सर्वघाती द्रव्य केवल-

कषायप्रकृतिगळ शैलभागेय चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमंतादोडे शैलभागे मोदलागि केळगे दारुबहुभागपर्य्यंतं सर्व्वघातिस्वमुंटप्पुदरिनी घातिगळ देशघातिद्रव्यं दार्व्वनंतैकभागपर्य्यंतं निक्षेपिसल्पडुगुमप्पुदरिनंतु शैलभागचरमगुणहानिद्रव्यमक्कुमेंदु चोदिसिदंगुत्तरं पेळल्पडुगुमवंतंदोडे—देशघातिप्रकृतिगळगे स्वस्वसर्व्वघातिप्रकृतिगळत्तणिवं बंद भागेय द्रव्यं दारुबहुभागं मोदल्गोंडु शैलभागचरमपर्य्यंतं निक्षेपिसल्पडुगुं। देशघातिप्रकृतिभागद्रव्यं स्वस्व- ९
दार्व्वनंतैकभागपर्य्यंतमे निक्षेपिसल्पडुगुमिन्तुभयद्रव्यमं कूडि लताशक्तिमोदलागि शैलशक्तिपर्य्यंतं निक्षेप्यमक्कुमन्तु निक्षेपमागुत्तिरलेकगोपुच्छरूपदिनिक्कुमेंदिन्तु केवलं देशघातिगळप्पन्तरायपंचकदोळु ई रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिगे तद्द्रव्यदोळ प्रतिभागत्वं. विरोधिसल्पडुगुमेनल्वेडेकेंदोडे "आवरणदेसघादंतरायसंजळणपुरिससत्तरसं। चदुविधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाण" मेंबी सूत्रप्रमाणदिंदमंतरायदेशावरणंगळगमुभयसर्व्वदेशघातिशक्तिसंभवमक्कुमप्पुदरिंदं। १०

देसावरणण्णोण्णब्भत्थं तु अणंतसंखमेत्तं खु।
सव्वावरणधणट्ठं पडिभागो होदि घादीणं ॥१९८॥



वरणमोहनीययोरपि ज्ञातव्यं ॥१९७॥ उक्तसर्वघातिद्रव्येषु तद्देशघातिप्रकृतिभागस्य वक्ष्यमाणत्वात् तत्सहितघातिद्रव्येषु सर्वावरणधनार्थं प्रतिभागहारप्रमाणमाह—

ज्ञानावरणका जितना भाग है उससे हीन है सब नहीं है। इस तरह देशघाती और सर्वघाती १५

१. ब तत्सहितदेशघाति ।

देशावरणान्योन्याभ्यस्तस्त्वनन्तसंख्यामात्रः खलु । सर्व्वावरणधनार्थं प्रतिभागो भवति घातीनां ॥

देशघातिप्रकृतिसंबंधिद्रव्यनानागुणहानिशलाकेगळनंतप्रमितंगळप्पुदरिंदं तावन्मात्रद्विकवर्गितसंवर्गसंजनितमप्पुदरिंदमन्योन्याभ्यस्तराशिनानागुणहानिशलाकाराशियं नोडलुमनंतानंतगुणमप्पुदरिंदं । तु मत्तमनंतसंख्यावच्छिन्नमक्कुमदु सर्व्वघातिशक्तियुक्तघातिकर्म्मंगळ तत्सर्व्वघातिसंबंधिद्रव्यगुणसंकलितधनप्रमाणावधारणार्त्थमागि प्रतिभागमक्कुमदेंतेंदोडे घातिकर्म्मंगळोळु

चतुर्ज्ञानावरणत्रिदर्शनावरणपञ्चांतरायचतुःसंज्वलननवनोकषायद्रव्याणां नानागुणहानिशलाकाः अनन्ता इति तन्मात्रद्विकसंवर्गजनितोऽन्योन्याभ्यस्तराशिरपि अनन्तसंख्यो भवति । स खलु तेषां सर्वघातिद्रव्यस्य गुणसंकलितधनप्रमाणावधारणार्थं प्रतिभागो भवति । तद्यथा—

द्रव्य मिलकर मतिज्ञानावरणादिका द्रव्य होता है ।

शंका—देशघाति प्रकृतियोंमें सर्वघाती परमाणु कैसे कहे हैं ?

समाधान—पूर्वमें कहा है कि मतिज्ञानावरणादिका अनुभाग शैल, अस्थि, दारु और लतारूपसे चार प्रकार है । उनमें-से दारुका अनन्तवाँ भाग और लताभाग तो देशघाती है । ऐसे अनुभागवाले परमाणु देशघाती होते हैं । तथा शैल, अस्थि और दारुका बहुभाग सर्वघाती है । ऐसे अनुभागवाले परमाणु सर्वघाती हैं । सर्वघातीके उदयमें किंचित् भी आत्मगुण प्रकट नहीं होता । जैसे एकेन्द्रियादिके चक्षुदर्शनके सर्वघाती परमाणुका उदय होनेसे चक्षुदर्शन नहीं होता । किन्तु देशघातीके उदयमें आत्मगुण प्रकट होता है जैसे चौइन्द्रिय आदि जीवोंके चक्षुदर्शनके देशघाती परमाणुओंका उदय है फिर भी चक्षुदर्शन होता है । इस प्रकार देशघाति प्रकृतियोंमें सर्वघाती और देशघाती द्रव्य होता है । अस्तु,

मतिज्ञानावरणादि चारका वह द्रव्य केवलज्ञानके बिना अपने सर्वघाति द्रव्यसहित देशघातिद्रव्य प्रमाण है सो कुछ अधिक समय प्रबद्धके आठवें भाग है । उसमें एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका परिमाण होता है । पश्चात् नीचेकी ओर एक-एक गुणहानिमें दूना-दूना द्रव्य होते-होते दारु भागके अनन्त भागोंमें-से एक भाग बिना शेष बहुभाग सम्बन्धी द्रव्य उनकी प्रथम गुणहानिमें शैलभागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको यथायोग्य आधे अनन्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना । क्योंकि यहाँ तक जितनी गुणहानि हुई वही गच्छ है । सो एक कम गच्छमात्र दोके अंकोको गुणा करनेपर सर्वघाती सम्बन्धी अन्योन्याभ्यस्त राशि अनन्त प्रमाण होती है । उसका जो आधा है वही यहाँ गुणकार है । इन सब गुणहानियोंके द्रव्यको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु सर्वघाती सम्बन्धी जानने । इसीसे सर्वघाती द्रव्य लानेके लिए अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रतिभाग कहा है । आगे देशघातीका द्रव्य कहते हैं—

दारुभागके बहुभागकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यसे नीचे दारु भागके अनन्त भागोंमें-से एक भागकी अन्तिम गुणहानिका द्रव्य दूना है । तथा नीचे प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता हुआ लताभागकी प्रथम गुणहानिमें एक कम सर्व नाना गुणहानिका जितना प्रमाण है उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अन्योन्याभ्यस्त राशिका है । उसके आधे प्रमाणसे शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण

सर्व्वघातिकेवलज्ञानावरणादि प्रकृतिगळ संबंधिद्रव्यमिदरोळु स अ । १ केवलज्ञानावरण भागम-
८ । ख

निदं स अ ८ कळेदुळिद सर्व्वघातिद्रव्यमनितुं स अ ५ मतिज्ञानावरणादि देशघातिचतुष्क-
८ख।९।५ ८ ख।५

संबंधि सर्व्वघातिशक्तियुक्तद्रव्यमक्कुमीयनंतैकभाग द्रव्यमं स अ तंतम्म भागमं होनक्रमदो-
८ । ख । ९

ळिद्दुदुवं तंतम्म होनक्रमदिंदमिर्द्द शेषघातिसंबंधिद्रव्यदोळ्कूडिदोडे मतिज्ञानावरणादिदेशघातिद्रव्यं

प्रत्येकं समयप्रबद्धानंतैकभागाधिकसमयप्रबद्धाष्टमभागद्रव्यमक्कु स अ मिदं मुंपेळ्दनंतप्रमाणा- ५
८

वच्छिन्नान्योन्याभ्यस्तराशियोळेकरूपं होनं माडि भागिसिदोडेक भागमिदु स अ । १
८ ख ख

मतिज्ञानावरणादिदेशघातिगळ सर्व्वघातिशक्तियुक्तसर्व्वोत्कृष्टशैलभागचरमगुणहानिद्रव्यप्रमक्कुमिदु मोदल्गों-
डु कलगे केळगे गुणहानि प्रति गुणहानि प्रति द्विगुण द्विगुणक्रमदिंदं बंदु दारु बहुभाग प्रथमगुण-

हानियोळु तद्योग्यानन्तार्द्धगुणितचरमगुणहानिप्रमितद्रव्यमक्कुं स अ । ख मेकेंदोडे रूपोनगच्छ-
८ ख ख । २

मात्रानन्तद्विक संवर्ग्गसंजनितराशियप्पुदरिंदमल्लि सर्व्वघातिसंबंधि द्रव्यं तोद्दुदुदु कारणदिंदमी १०

मतिज्ञानावरणादीनां चतुर्णा देशघातिद्रव्यं केवलज्ञानावरणभाग स अ ८ १ न्यूनस्वकीयसर्वघातिद्रव्य
८ ख ९ ५

स अ ८ ५ युतं तत्साधिकसमयप्रबद्धाष्टभागमात्रं अ रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्तं स अ
८ ख ९ ५ ८ ८ ख ख

शैलभागचरमगुणहानिद्रव्यं भवति । ततोऽधः गुणहानिं गुणहानिं प्रति द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा दारुबहुभाग-

प्रथमगुणहानौ तत्तद्योग्यानन्तार्द्धगुणिते भवति स अ ख रूपोनगच्छमात्रानन्तद्विकानां तद्गुणकारत्वात् । अत्र
८ ख ख २

हो उतना द्रव्य जानना। इन गुणहानियोंको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणु देशघाती १५
सम्बन्धी जानने।

जैसे अंकसंदृष्टिसे सर्वद्रव्य इकतीस सौ ३१००। इसको एक कम अन्योन्याभ्यस्त राशि इकतीससे भाग देनेपर सौ आये। यही शैलभागकी अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना। पश्चात् प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता है। यथा २००, ४००, ८००। एक कम

सर्व्वावरणगुणसंकलितधनप्रमाणावधारणार्त्थमन्योन्याभ्यस्तराशिघातिगळगे प्रतिभागमक्कु-
मेंतेंदोडे :—

"रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुणकमं आदिमगुणहाणि दव्वोत्ति ॥"

येंदी गुणसंकलितधनं तरल्पडुगुमप्पुदरिंदं आ दारु बहुभागप्रथमगुणहानिसर्व्वघातिजघन्य-
शक्तियुक्तगुणहानिप्रथमवर्गणानन्तराधस्तनदार्व्वनंतैकभागदेशघातिसर्व्वोत्कृष्टचरमगुणहानिद्रव्यमा
जघन्यशक्तियुक्तसर्व्वावरणगुणहानिद्रव्यमं नोडलु द्विगुणितमक्कु स ८ ख । २ मी क्रमदि-
केळगे केळगे द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि लताभागसर्व्वजघन्यशक्तियुक्तप्रथमगुणहानियोळु रूपो-
नसर्व्वनानागुणहानिशलाकाराशिमात्रद्विकंगळु वर्गितसंवर्गंगळादोडे अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धमक्कु-
मदरिंगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं देशघातिसर्व्वजघन्यशक्तियुक्तप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं
स ख ख ख इल्लि द्रव्यस्थिति गुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानियन्योन्याभ्यस्तराशिगळंक-
८ ख ख । २
संदृष्टियुमर्त्थसंदृष्टियुमिवु—

द्र	स्थि	गु	दो	ना	अन्योन्या
१३००	४०	८	१६	५	३२
स ८	ख ख ख	ख ख	ख ख ख	ख	ख ख

सर्वघातिद्रव्यं समाप्तं तत एवान्योन्याभ्यस्तराशिः सर्वावरणघनार्थं प्रतिभाग इत्युक्तं तत् दारुबहुभागप्रथम-
गुणहानिद्रव्यादधस्तनदार्वनन्तैकभागचरमगुणहानिद्रव्यं द्विगुणं भवति स ८ ख २ ततधः द्विगुणद्विगुणक्रमेण
गत्वा लताभागप्रथमगुणहानौ द्रव्यं रूपोनसर्वनानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गसंजातान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणित-
चरमगुणहानिद्रव्यमात्रं भवति स ८ ख । एवं त्रिदर्शनावरणादिद्रव्याणामपि ज्ञातव्यं । अत्र द्रव्य-स्थिति-

नाना गुणहानि चार है। सो उतने दोके अंक रखकर २×२×२×२ परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए। वही अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीसका आधा प्रमाण है। उससे शैल भागकी अन्तिम गुणहानिके द्रव्य सौको गुणा करनेपर सोलह सौ हुए। यही लताभागकी

अनंतरं मुंपेळ्द सर्व्वघातिदेशघातिद्रव्यंगळ्गे विशेषविभंजनक्रममं पेळ्दपरु :—

सव्वावरणं दव्वं विभज्जणिज्जं तु उभयपयडीसु ।
देसावरणं दव्वं देसावरणेसु णेविदरे ॥१९९॥

सर्व्वावरणद्रव्यं विभंजनीयमुभयप्रकृतिषु । देशावरणद्रव्यं देशावरणेषु नैवेतरस्मिन् ॥

गुणहानि—दोगुणहानि—नानागुणहानि—अन्योन्याभ्यस्तराशीनामंकसंदृष्ट्यर्थं संदृष्टि :— ५

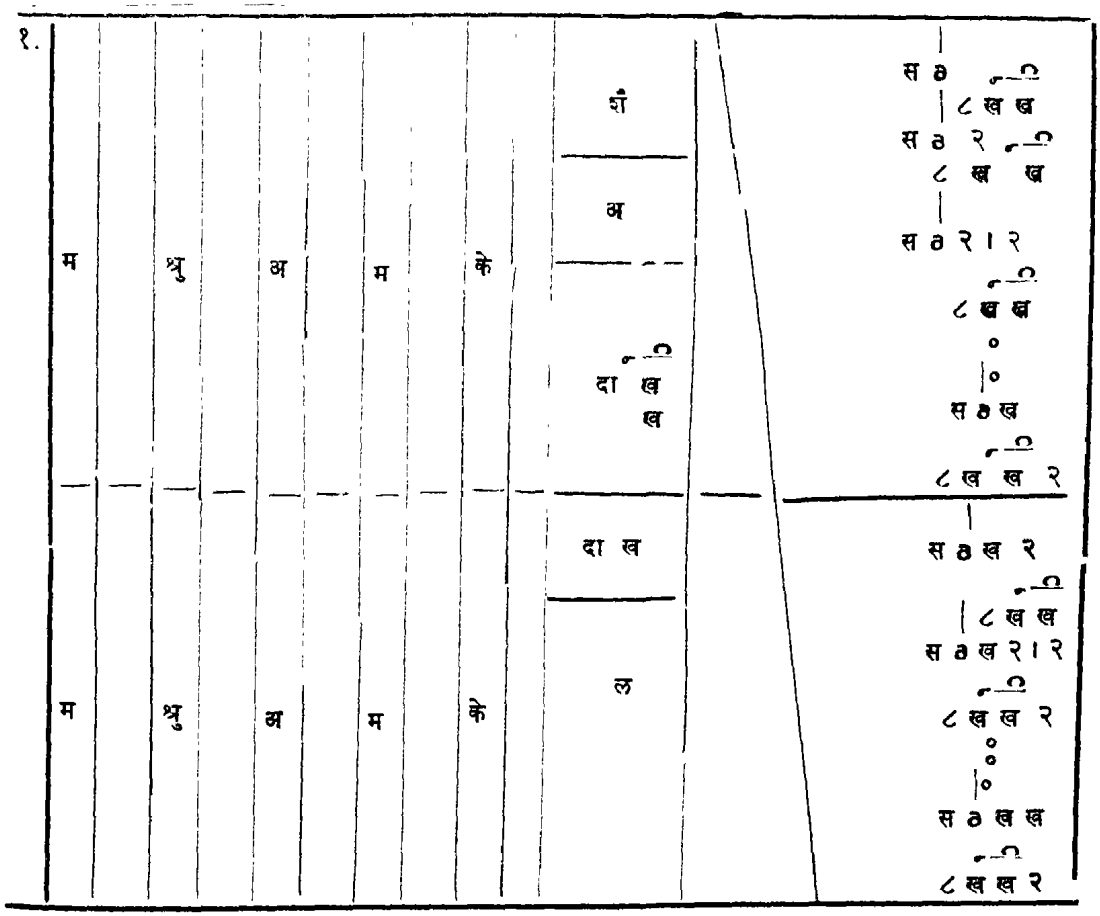
द्र	स्थि	गु	दो	ना	अन्योन्या
३१००	४०	८	१६	५	३२
स ० / ८	ख ख ख	ख ख	ख ख २	ख	ख ख

॥१९८॥ अथ प्रागुक्तसर्वघातिदेशघातिद्रव्ययोर्विशेषविभजनक्रममाह—

प्रथम गुणहानिका द्रव्य जानना । इसी प्रकार दर्शनावरण आदिके द्रव्योंमें भी सर्वघाती और देशघाती द्रव्यका प्रमाण जानना ॥१९८॥

आगे सर्वघाती और देशघाती द्रव्यके विशेष विभागका क्रम कहते हैं—

१.



मूलप्रकृतिघातिकर्म्मंगळ स्वस्वसमस्तद्रव्यंगळोळनन्तैकभागमनंतैकभागंगळु सर्व्वघाति-प्रकृतिसंबंधिद्रव्यंगळप्पुवु :—

णा स अ । १ / ८ । ख	दं स अ । १ / ८ । ख	मोह । स अ । १ / ८ । ख	अन्तरा । स अ १ / ८	बहुभागंगळु देशघातिप्रकृतिप्रति-

बद्धद्रव्यंगळप्पु | णा स अ । ख / ८ । ख | दं स अ । ख / ८ ख | मो स अ ख / ८ । ख | अन्त स अ / ८ |

वेंदितु मुन्नं पेळल्पट्टुवल्लि सर्व्वावरणद्रव्यं सर्व्वघातिगळोळं देशघातिगळोळं हीनक्रमदिंदं विभागिसि कुडल्पडुगुं । देशावरणद्रव्यं देशावरणंगळोळे विभागिसि कुडल्पडुवुवितरसर्व्वघातिगळोळु विभागिसि कुडल्पडदु ॥

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळोळु द्रव्यविभंजनक्रममं पेळ्दपरु :—

बहुभागे समभागो बंधाणं होदि एक्कभागह्मि ।
उत्तक्रमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥२००॥

बहुभागे समभागो [1]बंधानां भवति एकभागे । उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥

[2]बंधानां बंधकालदोळु युगपद्बंधंगळागुत्तं विद्दुत्तरप्रकृतिगळगे बहुभागे आवल्यसंख्यातैकभागमात्रप्रतिभागदिंदं भागिसल्पट्टस्वस्वद्रव्यबहुभागदोळु समभागः समनागि भागं कुडल्पडुगुं ।

घातिकर्मणां स्वस्वसमस्तद्रव्यस्यानन्तैकभागः सर्वघातिद्रव्याणि बहुभागो देशघातिद्रव्याणि इति प्रागुक्तानि । तत्र सर्वावरणद्रव्यं सर्वघातिषु देशघातिषु च हीनक्रमेण भक्त्वा देयं देशावरणद्रव्यं तु देशावरणेष्वेव न सर्वघातिषु ॥१९९॥ अथोत्तरप्रकृतिषु आह—

सहसंभवद्बन्धोत्तरप्रकृतीनां आवल्यसंख्यातैकभागभक्तस्वस्वद्रव्यस्य बहुभागे समभागो देयः । एकभागे

घातिकर्मोंके अपने-अपने द्रव्यमें अनन्तका भाग देवें । एक भाग प्रमाण तो सर्वघाति द्रव्य है और बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है । यह पहले कहा है । उसमें-से सर्वघाति द्रव्य तो सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियोंमें हीनक्रमसे विभाग करके देना चाहिए । किन्तु देशघाती द्रव्य देशघाति प्रकृतियोंमें ही देना चाहिए, सर्वघाति प्रकृतियोंमें नहीं देना चाहिए ॥१९९॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें विभाग कहते हैं—

अपने-अपने पिण्डरूप द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर बहुभाग एक साथ बँधनेवाली उत्तर प्रकृतियोंको बराबर-बराबर समभाग करके देना चाहिए । शेष एक

---

१. म बद्धानां २. बद्धानां ३. म°द्धदंग ।

एकभागे शेषैकभागदोळु उक्तक्रमः मुन्नं पेळल्पट्ट मोहावरणंगळोळु हीनक्रममुं नामान्तरायंगळोळधिकक्रममक्कुं। तत्रापि अल्लियुं बहुभागः प्रतिभागभक्तबहुभागं तु मत्ते बहुकस्य देयः पिरिदक्के देयमक्कुमदेंतेंदोडे पेळ्दपरु :—

घादितियाणं सगसगसव्वावरणीयमव्वदव्वं तु ।
उत्तकमेण य देयं विवरीयं णामविग्घाणं ॥२०१॥ ५

घातित्रयाणां स्वस्वसर्व्वावरणीय सर्व्वद्रव्यं तु । उक्तक्रमेण देयं विपरीतं नामविघ्नानां ॥

घातित्रयाणां ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयमेंब घातित्रयंगळ स्वस्वसर्व्वावरणीयसर्व्वद्रव्यं तंतम्म सर्व्वघातिप्रकृतिगळ सर्व्वद्रव्यं उक्तक्रमेण देयं। मुंपेळ्द क्रमदिंदं सर्व्वघातिगळ्गं देशघातिगळ्गं हीनक्रमदिंदं देयमक्कुं। नामविघ्नानां नामकर्म्मांतरायकर्म्मंगळ सर्व्वद्रव्यं विपरीतं हीन-

क्रमक्कधिकक्रममप्प विपरीतविभंजनमक्कुमदेंतेंदोडे ज्ञानावरणीयसर्व्वद्रव्यमपवर्तितमनिदं स ∂ १०
८

जिनदृष्टानन्तप्रतिभागदिंदं विभक्तानंतैकभागं सर्व्वघातिप्रकृतिप्रतिबद्धसर्व्वघातिशक्तियुक्तद्रव्यमक्कु स ∂ । १ मिदनुक्तक्रमदिंदं सर्व्वघातिगळोळं देशघातिगळोळं विभागिसि कुडुवल्लि प्रति-
८ । ख

भागमावल्यसंख्यातैकभागमात्रमक्कु । ९ । मदरिंदं भागिसि बहुभागमं स ∂ ८ बहुभागे समभागः
८ । ख । ९

येंदु ज्ञानावरणप्रकृतिपंचकक्कं समम माडल्वेडियुद्दरिंदं भागिसि प्रत्येकमिनितिनितं स ∂ ८
८ । ख । ९ । ५

मोहावरणानि हीनक्रमाणि नामान्तरायौ अधिकक्रमौ इत्युक्तक्रमः कार्यः । तत्र बहुभागः तु—पुनः बहुकस्य १५
देयः ॥२००॥ तद्यथा—

ज्ञानदर्शनावरणमोहनीयानां स्वस्वसर्वघातिद्रव्यमुक्तक्रमेण देयं, नामविघ्नप्रकृतीनां च विपरीतम्। तद्यथा—

ज्ञानावरणीयसर्वद्रव्यमिदं स ∂ जिनदृष्टानंतेन भक्त्वैकभागः सर्वघातिद्रव्यं स ∂ इदमावल्यसंख्या-
८ ८ ख

भागमें-से मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरणकी प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता-घटता देना और २०
नामकर्म तथा अन्तरायकर्मकी प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक देना। जिसका बहुत द्रव्य कहा हो उसे बहुभाग देना चाहिए ॥२००॥

वही कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीयका अपना-अपना सर्वघाती द्रव्य उक्त क्रमसे देना चाहिए और नाम तथा अन्तरायका द्रव्य उनकी उत्तर प्रकृतियोंमें विपरीत क्रमसे देना २५
चाहिए। वही कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मका सर्वद्रव्य जो पूर्वमें कहा है उसे जिनदेवके द्वारा देखे गये यथायोग्य अनन्तका भाग दें। एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है। इस सर्वघाती द्रव्यका

कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागं स ० ८ / ८ । ख । ९९ पूर्व्वोक्तक्रमदिदं देयमप्पुदरिंदमिल्लि मत्याणावरणदोळु बहुकमप्पुदरिंदं बहुभागमं कोट्टु शेषैकभागदोळु मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८ । ख । ९९९ श्रुतावरणक्के कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८ । ख । ९९९९ अवधिज्ञानावरणक्के कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० ८ / ८ । ख । ९९९९९ मनष्पर्य्ययावरणक्के कोट्टु शेषैकभागमं केवलज्ञानावरणक्के कोडुउदु स ० १ / ८ । ख । ९९९९९ मत्तं देशघातिप्रतिबद्धानन्तबहुभागमं स ० ख / ८ । ख पूर्व्वोक्तक्रमदिदं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ० । ख ८ / ८ । ख । ९

तेन भक्त्वा बहुभागः स ० ८ / ८ ख ९ ज्ञानावरणपञ्चकस्य पञ्चभिर्भक्त्या प्रत्येकं स ० ८ / ८ ख ९ । ५ देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९ । ९ मत्यावरणस्य देयः । शेषैकभागे पुनः प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९ ९ ९ श्रुतावरणस्य देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९९९९ अवधिज्ञानावरणस्य देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ० ८ / ८ ख ९९९९९ मनःपर्ययज्ञानावरणस्य देयः । शेषैकभागं केवलज्ञानावरणस्य स ० १ / ८ ख ९९९९९ दद्यात् ।

विभाग करते हैं—इस सर्वघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। एक भाग बिना बहुभागके पाँच समान भाग करके पाँचों प्रकृतियोंमें दें। जो एक भाग रहा उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें, और एक भागको अलग रख बहुभाग मतिज्ञानावरणको दें। उस एक भागमें पुनः आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाग दें। और बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको दें। शेष एक भागमें भी प्रतिभागका भाग दें और बहुभाग अवधिज्ञानावरणको दें। शेष एक भागमें भी प्रतिभागका भाग दें और बहुभाग मनःपर्ययज्ञानावरणको दें। शेष एक भाग केवल ज्ञानावरणको दें। इस प्रकार जो पूर्वमें समान भाग कहे थे उनमें अपने-अपने पीछेके एक-एक भागको जोड़नेसे मतिज्ञानावरण आदिका सर्वघाती द्रव्य होता है। तथा ज्ञानावरणके द्रव्यके अनन्त भागोंमें-से एक भागके बिना शेष बहुभाग देशघाती द्रव्य है। उसको उसी आवलीके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे भाग

मत्यावरणादिचतुष्टयक्कं बहुभागे समभागः एंदु चतुर्भागमं स ।ə ।ख ८ प्रत्येकं नाल्केडेयोळं
८।ख।९।४
कोट्टु शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ।ə ।ख।८ बहुकक्के देयमेंदु मत्यावरणक्के
८।ख।९।९
कोट्टु शेषैकभागदोळं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ।ə ।ख।८ श्रुतावरणक्के कोट्टु
८।ख।९।९।९।
शेषैकभागदोळं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स।ə।ख।८ अवधिज्ञानावरणक्के कोट्टु शेषैक-
८।ख।९९९९
भागमं स।ə।ख।१ मनःपर्य्यावरणक्के कुडुवुदी प्रकारदिंदं दर्शनावरणद्रव्यमं सर्व्वघाति- ५
८ख।९९९९
देशघातिविभागनिमित्तमागियनन्तदिंदं भागिसि देकभागमं स ə।१ प्रतिभागभक्तबहुभागमं
८।ख

पुनर्देशघातिप्रतिबद्धानन्तबहुभागे स ।ə ख पूर्वोक्तक्रमेण प्रतिभागभक्तबहुभागः स ।ə ख ८
८ ख ८ ख ९

चतुर्भिर्भक्त्वा स ।ə ख ८ मत्यावरणादिचतुष्कस्य प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः
८ ख ९।४

स ।ə ख ८ मत्यावरणस्य देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ।ə ख ८ श्रुता-
८ ख ९।९ ८ ख ९९९

वरणस्य देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः स ।ə ख ८ अवधिज्ञानावरणस्य देयः। शेषैकभागं १०
८ ख ९९९९

स ।ə ख १ मनःपर्ययज्ञानावरणस्य दद्यात्। एवं दर्शनावरणद्रव्यमपि सर्वघातिदेशघातिविभाग-
८ ख ९९९९

देवें। और एक भागको अलग रख बहुभागके चार समान भाग करके एक-एक भाग मतिज्ञानावरण आदि चार प्रकृतियोंको देना चाहिए। शेष एक भागमें भी प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग श्रुतज्ञानावरणको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अवधिज्ञानावरणको दें। शेष एक भाग मनःपर्ययज्ञानावरणको दें। इन एक-एक भागोंको १५ पहले मिले अपने-अपने समान भागोंमें मिलानेसे मतिज्ञानावरण आदिके देशघाती द्रव्यका परिमाण होता है। अपना-अपना देशघाती तथा सर्वघाती द्रव्य मिलानेपर ज्ञानावरणकी उत्तर प्रकृतियोंके सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है।

इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके सर्वद्रव्यके परिमाणमें अनन्तका भाग दें। एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है। उस सर्वघाती द्रव्यमें प्रतिभागसे भाग दें। एक भागको अलग २०

स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला चक्षुर्दर्शनावधिदर्शन केवलदर्शनावरणनवकंगळोळु समभागि माडल्वेडि नवमभागम स ।ə । ८ नोंभत्तेडेयोळिरिसि शेषैकभागमं ज्ञानावरणपंचक्के ८ । ख ।९।९ पेळ्दंते प्रतिभागभक्त एकैकभागंगळ बहुभागंगळंहीनक्रमदिंदं कोट्टु चरमदोळु द्विचरमशेषैकभागदोलु प्रतिभागभक्तबहुभागमं अवधिदर्शनावरणक्के कोट्टु शेषैकभागमं केवलदर्शनावरणक्के कुडुवुदु। तद्देशघाति प्रतिबद्धानन्तबहुभागद्रव्यमं स ।ə ख प्रतिभागभक्तबहुभागमं स ।ə ख । ८ समनागि ८ । ख ८ । ख । ९ चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनावधिदर्शनत्रयक्के सरिमाडि त्रिभागमं स ।ə ख ८ प्रत्येकमित्तु शेषैक- ८ । ख । ९ । ३ भागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागंगळं चक्षुरचक्षुर्दर्शनंगळ्गित्तु शेषैकभागमनवधिदर्शनावरणक्के कुडुवुदु। अन्तरायपंचकमुं देशघातियप्पुदरिंदं तत्सर्व्वद्रव्यमं स ।ə प्रतिभागभक्तबहुभागमं सममं ८ माडि पंचमभागमं प्रत्येकं कुडुवुदु। शेषैकभागदोळु प्रतिभागभक्तबहुभागंगळनधिकक्रमदिंदं कोट्टु

१० निमित्तं अनन्तेन भक्त्वा एकभागस्य स ।ə प्रतिभागभक्तबहुभागो नवभिर्भक्त्वा स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्रा- ८ ख

प्रचलाप्रचलानिद्राप्रचलाचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानां प्रत्येकं देयः स ।ə ८ शेषैकभागः ज्ञानावरण- ८ ख ९ । ९

पञ्चकवत्प्रतिभागभक्तबहुभागबहुभागान् हीनक्रमेण दत्वा चरमे शेषैकभागं दद्यात्। तद्देशघातिप्रतिबद्धानन्त- बहुभागस्य स ।ə ख प्रतिभागभक्तबहुभागः स ।ə ख ८ त्रिभिर्भक्त्वा स ।ə ख ८ चक्षुर- ८ ख ८ ख ९ ८ ख ९ । ३

चक्षुरवधिदर्शनावरणानां प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं चक्षुरचक्षुर्दर्शनावरणयोः

१५ रख शेष बहुभागके नौ समान करके नौ प्रकृतियोंमें दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग स्त्यानगृद्धिको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग निद्रा-निद्राको देवें। इसी तरह एक भागमें प्रतिभागका भाग दे-देकर बहुभाग क्रमसे प्रचला-प्रचला, निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरणको क्रमसे हीन-हीन देना। शेष रहा एक भाग केवलदर्शनावरणको देना। पहले कहे समान २० भागमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेपर स्त्यानगृद्धि आदिका सर्वघाती द्रव्यका प्रमाण होता है। तथा दर्शनावरण द्रव्यके अनन्त भागोंमें-से एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। उसमें प्रतिभागका भाग दें। एक भागको अलग रख बहुभागके तीन समान भाग करें। और चक्षु, अचक्षु तथा अवधिदर्शनावरणको एक-एक समान भाग दें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग चक्षुदर्शनावरणका देवें। २५ शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अचक्षु दर्शनावरणको दें। शेष एक भाग

चरमशेषैकभागमं दानांतरामदोळु कुडुवुवग्गु कुडुतिरलिकक्रमंगळप्पुविवक्के क्रमविदं संदृष्टि-रचनेयिदु :—

मदिणाण	सुदणाण	ओहिणाण	मणपज्जवणाण	केवळणाण	दे। मदिणाण	दे। सुदणाण
स ə । ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ख ८	स ə ख ८
८ख।९।५	८ख।९।५	८ख।९।५	८ ख ९ । ५	८ ख ९।५	८ ख ९।४	८ । ख ९।४
स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə १	स ə ख ८	स ə ख ८
८ ख ९९	८ख।९९९	८ख।९९९९	८ ख ९९९९	८ख९९९९	८ ख ९९	८ ख । ९९९

दे । ओहिणाण	दे । मणपज्जवणाण	थीणगिद्धि	णिद्दाणिद्दा	पयलापयला	णिद्दा
स ə ख ८	स ə ख ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८
८ ख । ९ । ४	८ । ख ९ । ४	८९ ख ९	८९ ख ९	८९ ख ९	८९ ख ९
स ə ख । ८	स ə ख १	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८
८ ख ९९९९	८ ख ९९९९	८ ख ९९	८ ख ९९९	८ ख ९९९	८ख९९९९

पयला	चक्खु	अचक्खु	ओहिदं	केवळदं	चक्खुदंदे	अचक्खुदं दे
स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ख ८	स ə ख ८
८९ ख ९	८९ ख ९	८९ ख ९	८९ ख ९	८९ ख ९	८ । ख ९ । ३	८ ख ९ । ३
स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə १	स ə ख ८	स ə ख ८
८ख९९९९९	८ ख ९ । ७	८ ख ९ । ८	८ ख ९ । ९	८ ख ९ । ९	८ । ख । ९ । ९	८ ख ९९९

अवधिदं दे	विरिदे	उप दे	भोग दे	लाभ दे	वान दे
स ə ख ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८
८ ख ९ । ३	८ । ५ । ९	८ । ५ । ९	८ ५ । ९	८ । ५ । ९	८ । ५ । ९
स ə ख १	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə ८	स ə १
८ ख ९९९	८ ९ ९	८ ९९९	८ ९९९९	८ । ९९९९९	८ । ९९९९९

दत्वा शेषैकभागं अवधिदर्शनावरणस्य दद्यात्। अन्तरायपञ्चकस्य स ə / ८ प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यं पञ्चभि-

अवधिदर्शनावरणको दें। पहले समान भागमें अपना-अपना एक भाग मिलानेपर चक्षु-दर्शनावरण आदिका अपना-अपना देशघाती द्रव्य होता है। चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शना-वरणके अपने-अपने सर्वघाती और देशघाती द्रव्योंको मिलानेपर उनके सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है। शेष छह प्रकृतियोंमें सर्वघाती ही द्रव्य होता है।

अन्तराय कर्मके सर्वद्रव्यमें प्रतिभागका भाग दें। एक भागको अलग रख बहुभागके पाँच समान भाग करके एक-एक प्रकृतिको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर

१. म. °वुदुइंतु।

अनंतरं मोहनीयदोळु द्रव्यविभंजनक्के विशेषमुंटें दु पेळ्दपरु :—

मोहे मिच्छत्तादी सत्तरसण्हं तु दिज्जदे हीणं ।
संजलणाणं भागेव होहि पणणोकसायाणं ॥२०२॥

मोहे मिथ्यात्वादीनां सप्तदशानां तु दीयते हीनं । संज्वलनानां भागे इव भवति पंच नोकषायाणां ॥

मिथ्यात्वादीनां सप्तदशानां मिथ्यात्व अनंतानुबंधिलोभमायाक्रोधमानं संज्वलनलोभ-मायाक्रोधमानं, प्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानमप्रत्याख्यानलोभमाया क्रोधमानमें बी सप्तदशप्रकृति-गळोळु होनं दीयते हीनक्रमविदं कुडल्पडुगुं । संज्वलनानां भागे इव भवति पंच नोकषायाणां
१ २ ३ ४ ५
संज्वलनंगळ भागेयोळें तु वक्ष्यमाणदेयक्रममंते वेदत्रयरत्यरति । हास्यशोक । भय जुगुप्सेयुमें ब पंचप्रकृतिस्थानंगळोळं देयक्रममक्कुमदें तें दोडे पेळ्दपरु :—

संजलणभागबहुभागद्धं अकसायसंगयं दव्वं ।
इगिभागसहियबहुभागद्धं संजलणपडिबद्धं ॥२०३॥

संज्वलनभागबहुभागार्द्धमकषायसंगतं द्रव्यं । एकभागसहितबहुभागार्द्धं संज्वलनप्रतिबद्धं ॥

भक्त्वा प्रत्येकं देयम् । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं अधिकक्रमेण दत्वा शेषैकभागं दानान्तराये दद्यात् । एवं दत्ते सति अधिकक्रमा भवन्ति ॥२०१॥

अथ मोहनीयस्य विशेषमाह—

मिथ्यात्वानन्तानुबंधिसंज्वलनप्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानलोभमायाक्रोधमानानां सप्तदशानां हीनक्रमेण दीयते । संज्वलनानां भागे इव वेदत्रयरत्यरतिहास्यशोकभयजुगुप्सानां देयक्रमो भवति ॥२०२॥ तद्यथा—

बहुभाग वीर्यान्तरायको दें । शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग उपभोगान्त-रायको दे । इसी प्रकार एक भागमें प्रतिभाग दे-देकर बहुभाग भोगान्तरायको फिर लाभान्तरायको दें । शेष एक भाग दानान्तरायको देना । पहले पाँच समान भागोंमें पीछेसे दिये एक-एक भागको मिलानेपर अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण होता है । अन्तरायकर्म देशघाती है इससे इसमें सर्वघातीका बँटवारा नहीं है । तथा सर्वत्र प्रतिभागका प्रमाण आवलीका असंख्यातवाँ भाग है ॥२०१॥

मोहनीय कर्ममें कुछ विशेष है उसे कहते हैं—

मोहनीय कर्ममें मिथ्यात्व अनन्तानुबन्धी लोभ, माया, क्रोध, मान, संज्वलन, लोभ, माया, क्रोध मान, प्रत्याख्यानावरण लोभ, माया, क्रोधमान, अप्रत्याख्यानावरण लोभ, माया, क्रोधमान, इन सतरह प्रकृतियोंमें क्रमसे हीन द्रव्य देना । पाँच नोकषायोंका भाग संज्वलनके भागके बराबर होता है । नोकषाय नौ हैं किन्तु एक समयमें उनमें-से पाँच ही बँधती हैं । तीन वेदोंमें-से एक समयमें एक ही वेद बँधता है । रति-अरतिमें-से भी एक समयमें एक ही बँधती है । हास्य और शोकमें-से एक समयमें एकका ही बन्ध होता है । भय और जुगुप्सा दोनों बँधती हैं । इस तरह एक साथ पाँच ही बँधती हैं ॥२०२॥

इल्लि मोहनीयसर्व्वद्रव्यमिदु स ꯑ इवं सर्व्वघातिदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यनिमित्तमागि वीत-
८

रागसर्व्वज्ञदृष्टानन्तप्रतिभागदिंदं भागिसि बंद लब्धमेकभागमिदु। स ꯑ १ सर्व्वघातिप्रतिबद्ध-
८।ख

द्रव्यमक्कुं। शेषबहुभागद्रव्यं देशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कु स ꯑ ख मिल्लि गुणकारभूतानन्तदोळेक-
८।ख

रूपहीनतेयनवगणिसि भाज्य भागहार भूतानन्तंगळनपवर्त्तिसि कळेदुळिवुदनिदं स ꯑ समयप्रब-
८

द्धाष्टमभागप्रमितमनावल्यसंख्यातैकभागमात्र प्रतिभागदिंदं भागिसि बहुभागमनिदं स ꯑ ८ ५
८।९

संज्वलनकषायंगळगमकषायंगळगं पसल्वेडि द्विरूपादि भागिसिदर्द्धमनोंदु भागद्रव्यमनकषायंग-
ळिगित्त स ꯑ ८ शेषबहुभागार्द्धद्रव्यमुनेकभागमुं सहितमागि संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कुं-
८।९।२

अत्र मोहनीयसर्वद्रव्यमिदं स ꯑ अनन्तेन भक्त्वा एकभागः स ꯑ १ सर्वघातिप्रतिबद्धं भवति।
८ ८ख

शेषबहुभागो देशघातिप्रतिबद्धं भवति स ꯑ ख। अत्र गुणकारे एकोनतामवगणय्य भाज्यभागहारभूतानन्त-
८ ख

योरपवर्तने स ꯑ समयप्रबद्धाष्टमभागः। तमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स ꯑ ८ द्वाभ्यां भक्त्वा १०
८ ८९

स ꯑ ८ एकषायाणां देयः। शेषबहुभागार्द्धमेकभागं संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धं भवति स ꯑ ८ उक्तत्रि-
८।९।२ ८९।२

पूर्वमें जो मोहनीय कर्मका सर्वद्रव्य कहा था, उसमें अनन्तसे भाग दें। उसमें-से एक भाग प्रमाण सर्वघाती द्रव्य है और शेष बहुभाग प्रमाण देशघाती द्रव्य है। उस देशघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग दें। जो बहुभाग आवे उसका आधा तो नोकषायोंको दें। तथा बहुभागका आधा और एक भाग संज्वलन सम्बन्धी देशघाती १५
द्रव्य होता है। इस प्रकार ये तीन द्रव्य हुए। उसमें-से प्रथम सर्वघाती द्रव्यका विभाग करते हैं—

सर्वघाती द्रव्यमें आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रतिभागसे भाग दें। एक भाग-को अलग रख शेष बहुभागके सतरह भाग करें। और एक-एक समान भाग एक-एक

स अ १ ई मोहनीयत्रिविधद्रव्यंगळोळु सर्व्वघातिप्रतिबद्धद्रव्यमं स अ १ मिथ्यात्वादि सप्तदश
८।९।२ ८।ख

स अ १
८।९

सर्व्वघातिगळगे हीनक्रमदिदं पसल्वेडि आवल्यसंख्यातप्रमितप्रतिभागदिदं भागिसि बंद लब्धमनेकभागमं बेरिरिसि स अ १ बहुभागद्रव्यमनिदं स अ ८ बहुभागे समभागो बंधानामेंदिन्तु
८।ख।९ ८।ख।९

बहुभागमं सरियागि सप्तदशप्रकृतिगळ्गं पसल्वेडि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे सप्तदशप्रकृतिगळगे मेल्लमिनितु द्रव्यमागलागळेकप्रकृतिगेनितु द्रव्यमक्कुमेंदिन्तु त्रैराशिकं माडि प्र १७। फ

स अ ८ इ १ बंदलब्धमेकप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यमक्कु स अ ८ मदं प्रत्येकं सप्तदशप्रकृति-
८।ख।९ ८।ख।९।१७

गळोळु क्रमदिंदमित्तु शेषैकभागदोळु स अ १ मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स अ ८
८।ख ९ ८।ख।९।९

बहुभागो बहुकस्य देयः येंदितु हीनक्रमदिंदं देयमप्पुदरिंदं मिथ्यात्वप्रकृतिगित्तु शेषैकभागदोळु मत्तं प्रतिभागभक्तबहुभागमं स अ ८ अनंतानुबंधिलोभदोळितु शेषैकभागदोळमी प्रकारदिंदं प्रति-
८ख ९९९

भागभक्तबहुभागंगळननन्तानुबंधिमायाकषायादिगळोळु क्रमदिनीयुत्तं पोगि अप्रत्याख्यानक्रोधदोळु बहुभागमुमिनित्तु। तत्रत्यचरमशेषैकभागमं स अ १ अप्रत्याख्यानमानकषा-
८।ख।९९।००।१७

विषद्रव्येषु सर्वघातीदं स अ १ आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागं स अ १ पृथक् संस्थाप्य बहुभागः
८ख ८ख ९

स अ ८ सप्तदशभिर्भक्त्वा स अ ८ प्रत्येक सप्तदशसु स्थानेषु देयः। शेषैकभागे स अ १ प्रतिभाग-
८ख ९ ८ख ९।१७ ८ख ९

भक्तबहुभागं बहुभागं मिथ्यात्वादिषु षोडशसु क्रमेण दत्वा एकभागं स अ १ अप्रत्याख्यानमाने दद्यात्।
८ख ९।१७

प्रकृतिको देवें। जो एक भाग रहा उसमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग मिथ्यात्वको दें। पुनः शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी लोभ को दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अनन्तानुबन्धी मायाको दें। इसी प्रकार शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग क्रमसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, संज्वलन लोभ, संज्वलन माया, संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, प्रत्याख्यान लोभ, प्रत्याख्यान माया, प्रत्याख्यान क्रोध प्रत्याख्यान मान, अप्रत्याख्यान लोभ, अप्रत्याख्यान माया, अप्रत्याख्यान क्रोध को देना। और अन्तमें शेष रहा एक भाग अप्रत्याख्यान मानको देना।

यक्के कुडुवुदु। द्वितीयसंज्वलनप्रतिबद्धदेशघातिद्रव्यमं स्थापिसि स अ ८ एकभागद्रव्यमनेर-
८।९।२

स अ १
८।९

दरिंदं समच्छेदनिमित्तमागि गुणिसि स अ २ यदरोळेकरूपं तेगदुकोंडु स अ १
८।९।२ ८।९।२

बहुभागार्द्धदोळ्कूडि स अ ८ आवल्यसंख्यातमनावल्यसंख्यातक्के सरिगळ्दु स अ
८।९।२ ८।२

मुन्नमेकरूपं तेगेदुळिदेकभागार्द्धमं स अ १ असंख्यातैकभागमं साधिकं माडि स अ प्रति-
८।९।२ ८।२

भागभक्तबहुभागमं स अ ८ बहुभागे समभाग एंदु बहुभागं नाल्करोळं समप्पुदरिंदं नाल्करिं ५
८।२।९

भागिसि स अ ८ चतुर्थांशंगळं प्रत्येकं नाल्केडेयोळं स्थापिसि शेषैकभागदोळु
८।२।९।४

स अ १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स अ ८ बहुभागो बहुकस्य देयः एंदिन्तु संज्वलनलोभदो-
८।२।९ ८।२।९

द्वितीय संज्वलनदेशघातिद्रव्यं स अ ८ संस्थाप्य अधस्तनमेकभागद्रव्यं द्वाभ्यां समुच्छिद्य स अ २ अशेक-
८९२ ८९२

स अ १
८९

रूपं गृहीत्वा स अ १ बहुभागार्धे निक्षिप्य स अ ८ आवल्यसंख्यातं आवल्यसंख्यातेन अपवर्त्य स अ
८९२ ८।९।२ ८।२

शेषैकभागार्धं स अ १ असंख्यातैकभागं साधिकं कृत्वा स अ । १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स अ ८ चतु- १०
८।२ ८२ ८२९

र्भिर्भक्त्वा स अ ८ चतुर्षु स्थानेषु प्रत्येकं देयः। शेषैकभागे स अ १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स अ ८
८२९४ ८९२ ८२९९

सो जो पहले सतरह समान भाग कहे थे उनके एक-एक भागमें पीछे कहे अपने-अपने भागको मिलानेसे अपना-अपना सर्वघाती द्रव्यका प्रमाण होता है।

दूसरे संज्वलनके देशघाती द्रव्यके प्रमाणमे प्रतिभागसे भाग देकर एक भागको अलग रख शेष बहुभागके चार समान भाग करके चारोंको दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग १५
देकर बहुभाग संज्वलन लोभको दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन

ळित्तु शेषैकभागदोळु स अ १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स अ ८ संज्वलनमायाकषायक्कित्तु
८।२।९९ ८।२।९९९

शेषैकभागदोळु स अ १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं स अ ८ संज्वलनक्रोधकषायदो-
८।२।९९९ ८।२।९९९९

ळित्तु शेषैकभागमं स अ १ संज्वलनमानकषायक्के कुडुवुदु । अंतु कुडुत्तं विरलु
८।२।९९९९

हीनक्रमदेयमक्कुं ।

मत्तं तृतीयनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यमनिदं स अ ८ गुणकारदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि
८।९।२

८।२।९९९ भाज्यभागहारभूतावल्यसंख्यातंगळनपवर्त्तिसि कळदु शेषद्रव्यमनिदं स अ प्रति-
८।२

भागदिंदं भागिसि बहुभागद्रव्यमं स अ ८ बहुभागे समभागो बंधानामेंदु बहुभागदोळु बंधप्रकृति-
८।२।९

संज्वलनलोभे देयः । शेषैकभागे स अ १ प्रतिभागबहुभागः स अ ८ संज्वलनमायायां देयः । शेषैक-
८२९९ ८२९९९

भागे स अ १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स अ ८ संज्वलनक्रोधे देयः । शेषैकभागं स अ १
८२९९९ ८२९९९९ ८२९९९९

संज्वलनमाने दद्यात् । एवं दत्ते सति हीनक्रमेण दत्तं भवति । पुनः तृतीयं नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यमिदं स अ ८
८२९

गुणकारे एकरूपहीनतामवगणय्य भाज्यभागहारौ आवल्यसंख्यातौ अपवर्त्य स अ प्रतिभागेन भक्त्वा बहु-
८२

भागस्य स अ ८ पञ्चधाः पञ्चसु स्थानेषु प्रत्येकं स अ ८ देयः । शेषैकभागे स अ १ प्रतिभागभक्तबहु-
८२९ ८२९५ ८२९

मायाको दें। शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग संज्वलन क्रोधको दें। शेष एक भाग संज्वलन मानको दें। पहले कहे चार समान भागोंमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेसे अपने-अपने देशघाती द्रव्यका प्रमाण होता है सो संज्वलन कषायकी चार प्रकृतियोंके देशघाती और सर्वघाती द्रव्यको मिलानेसे सर्वद्रव्यका प्रमाण होता है।

मिथ्यात्व और बारह कषायका द्रव्य सर्वघाती ही है और नोकषायोंका सब द्रव्य अघाती ही है। उनका बँटवारा कहते हैं—पूर्वमें जो नोकषाय सम्बन्धी तीसरा द्रव्य कहा, उसमें प्रतिभागका भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभागके पाँच समान भाग करके

गळ्गो समभागमक्कुमप्पुदरिंदं। वेदत्रितयादिपंचस्थानंगळोळं प्रत्येकं पंचमांशमं स्थापिसि

स ८ शेषैक भागदोळु स १ प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यमं स ८
८।२।९।५ ८।२।९ ८।२।९९

बहुभागो बहुकस्य देय एंदितु वेदत्रितयक्के कोट्टु शेषैकभागदोळु स १ प्रतिभागभक्तबहु-
८।२।९९

भागमं स ८ रत्यरतिगळ्गित्तु शेषैकभागदोळु स १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं
८।२।९९९ ८।२।९९९

स ८ हास्यशोकंगळ्गित्तु शेषैकभागदोळु स १ प्रतिभागभक्तबहुभागमं ५
८।२।९९९९ ८।२।९९९९

स ८ भयनोकषायक्कित्तु शेषैकभागमं स १ जुगुप्सानोकषायक्कित्तु
८।२।९९९९९ ८।२।९९९९९

कळेवुदंतीवुत्तमिरलु नोकषायपिंडप्रकृतिद्रव्यक्के विभागविशेषमुंटदावुदे दोडे पेळ्दपरु :—

तण्णोकषायभागो सबंधपणणोकसायपयडीसु ।
हीणकमो होदि तहा देसे देसावरणदव्वं ॥२०४॥

तन्नोकषायभागः सबंधपंचनोकषायप्रकृतिषु । हीनक्रमो भवति तथा देशे देशावरणद्रव्यं ॥ १०

भागः स ८ वेदत्रये देयः । शेषैकभागे स १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ८ रत्यरत्योर्देयः ।
८२९९ ८२९९ ८२९९९

शेषैकभागे स १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ८ हास्यशोकयोर्देयः । शेषैकभागे स १
८२९९९ ८२९९९९ ८२९९९९

प्रतिभागभक्तबहुभागः स ८ भये देयः । शेषैकभागं स १ जुगुप्सायां दद्यात् ॥२०३॥
८२९९९९९ ८२९९९९९

एवं दत्ते नोकषायपिण्डप्रकृतिद्रव्यस्य विशेषमाह—

पाँचों प्रकृतियोंको देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर एक भागको अलग रख १५
बहुभाग तीनों वेदोंमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें। एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग रति और अरतिमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग हास्य और शोकमें-से जिसका बन्ध हो उसे देवें। शेष एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग भयको देना। शेष एक भाग जुगुप्साको देना। पहले कहे समान पाँच भागोंमें से एक-एकमें पीछे कहा अपना-अपना एक भाग मिलानेपर अपने-अपने द्रव्यका २०
प्रमाण होता है ॥२०३॥

इस प्रकार देनेपर नोकषायरूप पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यमें कुछ विशेष है वह कहते हैं—

ई पेळल्पट्ट नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स अ ८ सबंधपंचनोकषायप्रकृतिषु सहबंधंगळप्प
८।२।९
पुंवेदरतिहास्यभयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळं मिथ्यादृष्टि मोदल्गोंडु अपूर्व्वकरणपर्य्यंतमाद गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे होनक्रमं देयमक्कुं मेणु पुंवेद । अरति । शोक । भय । जुगुप्सा प्रकृतिपंचकदोळु मिथ्यादृष्टिमोदल्गोंडु प्रमत्तपर्य्यन्तमाद षड्गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे होनक्रमं देयमक्कुं । स्त्रीवेदरतिहास्यभयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळं मेणु स्त्रीवेद-अरतिशोक-भयजुगुप्साप्रकृतिपंचकदोळं मिथ्यादृष्टिगं सासादनंगं होनक्रमं देयमक्कुं । नपुंसकवेद रतिहास्य भयजुगुप्सा प्रकृति पंचकदोळं मेणु नपुंसकवेद अरति शोक भय-जुगुप्सा प्रकृतिपंचकदोळं मिथ्यादृष्टियोळे होनक्रमं देयमक्कुं । अनिवृत्तिकरणदोळु पुंवेद नोकषायमोंदे बंधमप्पुदरिंदमकषायप्रतिबद्धद्रव्यमनितु मनिवृत्तिसवेदभागे पर्य्यन्तमदरोळेयक्कुमेंबी विशेषमरियल्पडुगुं । देशे देशघाति संज्वलनकषायदोळु देशावरण-

द्रव्यं संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यं स अ तथा संबंधप्रकृतिषु अहंगे सहबंधप्रकृतिगळोळु हीन-
८।२
क्रमं देयमक्कुमदेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिमोदल्गोंडु अनिवृत्तिकरणक्रोधबंधभागे पर्य्यंतं सहबंधसंज्वलन चतुष्टयदोळु हीनक्रमं देयमक्कुं । क्रोधबंधोपरतानिवृत्तितृतीयभागदोळु सहबंधसंज्वलन-

---

तन्नोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स अ ८ संबन्धपञ्चकनोकषायप्रकृतिषु पुंवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु अपूर्व-
८ २ ९
करणान्तानां वा पुंवेदारतिशोकभयजुगुप्सासु प्रमत्तांतानां स्त्रीवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु स्त्रीवेद-अरति-शोकभय-जुगुप्सासु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः नपुंसकवेदरतिहास्यभयजुगुप्सासु वा नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सासु मिथ्यादृष्टेश्च होनक्रमेण देयम् । अनिवृत्तिकरणे एकः पुंवेद एव बध्यते, तेन अकषायप्रतिबद्धद्रव्यं सर्वं सवेदभागपर्यंतं तत्रैव देयं इति विशेषो ज्ञातव्यः । देशघातिसंज्वलनकषाये देशावरणद्रव्यं स अ सबन्धप्रकृतिषु हीनक्रमेण
८ २
देयम् । तद्यथा—

नोकषाय सम्बन्धी द्रव्य एक साथ बँधनेवाली पाँच नोकषायोंमें हीनक्रमसे देना चाहिए । सो मिथ्यादृष्टिसे लगाकर पुरुषवेद, रति, हास्य, भय और जुगुप्साका अपूर्वकरण पर्यन्त अथवा पुरुषवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका प्रमत्त पर्यन्त एक साथ बन्ध होता है । तथा स्त्रीवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका मिथ्यादृष्टि और सासादनमें एक साथ बन्ध होता है । तथा नपुंसक वेद, रति, हास्य, भय, जुगुप्साका अथवा नपुंसक वेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्साका मिथ्यादृष्टिमें एक साथ बन्ध होता है । सो नोकषाय सम्बन्धी द्रव्यका बँटवारा जैसे पूर्वमें कहा है उसी प्रकार जिन पाँच प्रकृतियोंका बन्ध हो उनको क्रमसे हीन-हीन देना । अनिवृत्तिकरणमें एक पुरुषवेदका ही बन्ध होता है अतः वहाँ सवेद भाग पर्यन्त नोकषाय सम्बन्धी सब द्रव्य एक पुरुषवेदको ही देना चाहिए । तथा देशघाती संज्वलन कषायका देशघाती द्रव्य, एक साथ जितनी प्रकृतियाँ बँधे उनको हीनक्रमसे देना चाहिए । सो

कषायत्रयदोळु होनक्रमं देयमक्कुं। मानबंधोपरतानिवृत्तिकरणचतुर्थभागदोळु संज्वलनकषायद्वय-दोळु होनक्रमं देयमक्कुं। मायाबंधोपरतानिवृत्तिपंचमभागदोळु संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यमनितुं लोभसंज्वलनकषायदोळेयक्कुं ॥

अनंतरं सबंधनोकषायंगळ्गे निरंतरबंधाद्धा प्रमाणमं पेळ्दपरु :—

पुंबंधद्धा अंतोमुहुत्त इत्थिम्मि हस्सजुगले य ।
अरदिजुगे संखगुणा णउंसगद्धा विसेसहिया ॥२०५॥

पुंबंधाऽद्धाऽन्तर्म्मुहूर्त्तं स्त्रियां हास्ययुगळे च अरतिद्विके संख्यगुणा नपुंसकाद्धा विशेषाधिका ॥

पुंवेदक्के निरंतरबंद्धाद्धे जिनदृष्टान्तर्म्मुहूर्त्तमिदु। २१। २। संख्यातगुणितसंख्यातावलि-प्रमितमक्कुं। स्त्रियां स्त्रीवेदक्के निरंतरबंधाद्धेयदं नोडलु संख्यातगुणितमक्कु। २१। ४ मिदं नोडलु हास्ययुगले चं हास्यरतिगळ्गे निरंतरबंधाद्धे संख्यातगुणितमक्कु। २१। १६। मिदं नोडलु अरतिद्विके अरतिशोकंगळ निरंतरबंधाद्धे संखगुणा संख्यातगुणितमक्कुं। २१। ३२। नपुंसकाद्धा नपुंसकवेदनिरंतरबंधाद्धेयरतिद्विकाद्धेयं नोडलु विषाधिका विशेषाधिकमक्कुं। २१। ४२। इल्लि वेदत्रयशलाकेगळं कूडिदोडे अन्तर्म्मुहूर्त्तशलाकेगळु नाल्वत्तेंटप्पुवु। २१। ४८। हास्यद्विकारतिद्विकान्तर्म्मुहूर्त्तशलाकेगळं कूडिदोडेयुं तावन्मात्रंगळप्पुवु। २१। ४८ ॥

मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणक्रोधबन्धभागपर्यंतं सहबन्धसंज्वलनचतुष्टये क्रोधबन्धोपरतानिवृत्तितृतीयभागे सहबन्धसंज्वलनत्रये मानबन्धोपरतानिवृत्तिकरणचतुर्थभागे संज्वलनद्वये च होनक्रमेण देयम्। मायाबन्धोपरतानिवृत्तिपञ्चमभागे संज्वलनदेशघातिप्रतिबद्धद्रव्यं सर्वं लोभसंज्वलन एव देयम् ॥२०४॥ अथ सबन्धनोकषायाणां निरन्तरं बन्धाद्धां प्रमाणयति—

पुंवेदस्य निरन्तरबन्धाद्धा जिनदृष्टान्तर्मुहूर्तः २१।२ स च [1]संख्यातावलिमात्रः। स्त्रीवेदे ततः संख्यातगुणः २१।४ अतो हास्यरत्योः संख्यातगुणः २१।१६ अतः अरतिशोकयोः संख्यातगुणः २१।३२। ततः नपुंसकवेदे विशेषाधिकः २१।४२। अत्र वेदत्रयस्य मिलित्वा अंतर्मुहूर्तशलाकाः अष्टचत्वारिंशत्

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके दूसरे भाग पर्यन्त चारोंमें बँटवारा करना चाहिए। तीसरे भागमें जहाँ क्रोधका बन्ध नहीं होता वहाँ तीनमें ही बँटवारा करना। चौथे भागमें जहाँ मानका भी बन्ध नहीं होता, दोमें ही बँटवारा करना। पाँचवें भागमें जहाँ मायाका भी बन्ध नहीं होता वहाँ संज्वलनका सब देशघाती द्रव्य एक लोभको ही देना ॥२०४॥

आगे बन्धको प्राप्त नोकषायोंके निरन्तर बन्ध होनेका काल कहते हैं—

पुरुषवेदका निरन्तर बन्धकाल, जैसा जिनदेवने देखा तदनुसार अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। वह संख्यात आवली प्रमाण है। उसकी सहनानी (चिह्न) दो गुणा अन्तर्मुहूर्त है। स्त्रीवेदका निरन्तर बन्धकाल उससे संख्यात गुणा है। उसकी सहनानी चार गुणा अन्तर्मुहूर्त है। हास्य और रतिका उससे भी संख्यातगुणा है। उसकी सहनानी सोलह गुणा अन्तर्मुहूर्त है। अरति और शोकका उससे भी संख्यातगुणा है। उसकी सहनानी बत्तीसगुणा अन्तर्मुहूर्त

---

१. ब संख्यातगुणितसंख्यातावलि°।

यिन्नु त्रैराशिकंगळ्ळु माडल्पडुवुवदे तेंदोडे वेदत्रयविनितंतम्मुंहूर्तंगळगेल्लमिनितु द्रव्यमागुत्तिरलागळिनितंतम्मुंहूर्त्तशलाकेगळ्गेनितु द्रव्यमक्कुमेंविन्तनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र मु २१ । ४८ ।

फ- स ∂ इ । मु २१ । २ । बंद लब्धं पुंवेदप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकमक्कुं स ∂ । २ मत्तमिंते
८ । १० ८ । १० । ४८

प्र मु २१ । ४८ । फ स ∂ इ । मु । २१ । ४ । बंद लब्धं स्त्रीवेदप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणित-
८ । १०

द्रव्यमक्कुं स ∂ । ४ मत्तमंते प्र मु २१ । ४८ । फ स ∂ इ । मु । २१ । ४२ । बंद
८ । १० । ४८ ८ । १०

लब्धं नपुंसकवेद प्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितमक्कुं स ∂ । ४२ मत्तमी प्रकारदिंदं हास्य-
८ । १० । ४८

रत्यरतिशोकंगळगं मुहूर्त्तंशलाकेगळ् प्रमु । २१ । ४८ । फ स ∂ = इमु । २१ । १६ । बंद लब्धं
८ । १०

रतिनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकमक्कुं स ∂ = १६ मत्तमंते प्रमु २१ । ४८ । फ स ∂ ≡ इमु
८ । १० । ४८ ८ । १०

---

२१ । ४८ । हास्यद्विकारतिद्विकयोरपि तावत्यः २१ । ४८ । यदि वेदत्रयस्य तावतीनां एतावद्द्रव्यं तदा

एतावतीनां कियत् ? इति प्र मु २१ । ४८ । फ । स ∂ इ मु २१ । २ लब्धं पुंवेदप्रतिबद्धद्रव्यं स्तोकं
८ । १०

स ∂ । २ तथा प्र मु २१ । ४८ फ स ∂ इ मु २१ ४ लब्धं स्त्रीवेदस्य संख्यातगुणं स ∂ ४
८ । १० । ४८ ८ १० ८ १० ४८

तथा प्र मु २१ ४८ । फ स ∂ इ मु २१ । ४२ लब्धं नपुंसकवेदस्य संख्यातगुणं स ∂ । ४२ एवं प्र
८ १० ८ १० ४८

है। नपुंसक वेदका उससे कुछ अधिक है। उसकी सहनानी बयालीस गुणा अन्तर्मुहूर्त है। तीनों वेदोंका काल मिलानेपर २+४+४२=अड़तालीस अन्तर्मुहूर्त होता है। हास्य-शोक और रति-अरतिका काल मिलानेपर भी १६+३२ अड़तालीस मुहूर्त होता है। मिले हुए कालको प्रमाण राशि, पिण्डरूप द्रव्यको फलराशि, और अपने-अपने कालको इच्छाराशि करनेपर त्रैराशिक द्वारा लब्धराशिमें अपने-अपने द्रव्यका प्रमाण आता है।

सो तीनों वेदोंके सत्तामें स्थित द्रव्यका जो प्रमाण है उसको तीनोंके मिले हुए कालकी सहनानी अड़तालीस मुहूर्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसको पुरुषवेदके कालकी सहनानी दो अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना पुरुषवेद सम्बन्धी द्रव्य जानना। यह सबसे थोड़ा है। तथा स्त्रीवेदके कालकी सहनानी चार अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना स्त्रीवेद सम्बन्धी द्रव्य है। यह पुरुषवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा

२१। ३२। बंद लब्धमरतिनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणमक्कुं। स अ≡३२ मत्तमो प्रका-
८।१०।४८

रदिदं प्र मु २१।४८। फ स अ= इ मु २१। १६। बंद लब्धं हास्यनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं
८।१०

संख्यातगुणहीनमक्कुं स अ १६ मत्तमन्ते प्रमु २१।४८। फ स अ= इ। मु २१ ३२। बंद
८।१०।४८ ८।१०

लब्धं शोकनोकषायप्रतिबद्धद्रव्यं संख्यातगुणितमक्कुं स अ = ३२ सबंधपंचनोकषायप्रकृति-
८।१०।४८

गळु क्रमदिंद विशेषहीनक्रमंगळादोडं पिंडंगळागे तम्मोळु कालसंचयमनाश्रयिसि उक्तप्रकारदिंदं ५
द्रव्यविभंजनं तंतम्म बंधकालदोळप्पुवु ॥

मु २१।४८। फ स अ मु इ २१ १६। लब्धं रतिनोकषायस्य स्तोकं स अ १६ तथा प्र मु २१।४८।
८ १० ८ १० ४८

फ स अ–इ मु २१ ३२ लब्धं अरतिनोकषायस्य संख्यातगुणं स अ–३२ एवं प्र मु २१।४८ फ स अ=
८ १० ८ १० ४८ ८ १०

इ मु २१ १६ लब्धं हास्यनोकषायस्य संख्यातगुणहीनं स अ=१६ तथा प्र मु २१।४८ फ स अ≡
८।१०।४८ ८ १०

इ मु २१।३२ लब्धं शोकनोकषायस्य संख्यातगुणं —स अ≡।३२ सबन्धपञ्चनोकषायाः विशेषहीनक्रमा १०
८।१०।४८

अपि पिण्डाना परस्परं कालसंचयमाश्रित्य उक्तप्रकारेण द्रव्यविभंजनस्वस्वबन्धकाले भवति ॥ २०५ ॥

है। तथा नपुंसक वेदके कालकी सहनानी बयालीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतना नपुंसकवेद सम्बन्धी द्रव्य है। यह स्त्रीवेदके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। रति और अरति सम्बन्धी द्रव्यको अड़तालीस अन्तर्मुहूर्तसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको रतिके काल सोलह अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह रति सम्बन्धी द्रव्य जानना। १५
वह थोड़ा है। तथा अरतिके काल बत्तीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अरति सम्बन्धी द्रव्य जानना। वह रतिके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। तथा हास्य और शोक सम्बन्धी द्रव्यको अड़तालीस अन्तर्मुहूर्तका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे हास्यके काल सोलह अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना हास्य सम्बन्धी द्रव्य है। तथा शोक-के काल बत्तीस अन्तर्मुहूर्तसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह शोक सम्बन्धी द्रव्य है। वह २०
हास्यके द्रव्यसे संख्यातगुणा है। इस प्रकार जिनका एक साथ बन्ध होता है उन पाँच नोकषायका द्रव्य पूर्वोक्त क्रमसे हीन-हीन होता है। तथापि पिण्डरूपमें नाना कालमें एकत्र होनेकी अपेक्षा इस प्रकारसे द्रव्यका बँटवारा अपने-अपने बन्ध कालमें होता है। सो तीन वेदोंका एक पिण्ड होता है। रति-अरतिका एक पिण्ड होता है। हास्य-शोकका एक पिण्ड होता है ॥२०५॥ २५

अनंतरं पंचविघ्नदोळं सहबंधपिंडापिंडनामबंधस्थानंगळोळं विपरीतदेयक्रममेंदु पेळ्दपरु :—

पणविग्घे विवरीयं सबंधपिंडिदरणामठाणे वि ।
पिंडं दव्वं च पुणो सबंधसगपिंडपयडीसु ॥२०६॥

पंचविघ्ने विपरीतः सबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि । पिंडद्रव्यं च पुनः सबंधस्वपिंडप्रकृतिषु ॥

पंचानां दानादीनां विघ्नः पंचविघ्नस्तस्मिन् । दानादिविघ्नपंचकदोळं विपरीतः मुंपेळ्द-क्रमदिंदमधिकक्रमं देयमक्कुं । सबंधपिंडेतरनामस्थाने पिंडाश्चेतराश्च पिंडेतराः सहबंधोदया सांताः सबंधाः पिंडेतरा यस्मिन् तच्च तन्नामस्थानं च तस्मिन् सबंधपिंडेतरनामस्थानेऽपि विपरीतः पिंडापिंडसबंधनामबंधस्थानदोळं प्रकृतिपाठक्रमदोळु घातिगळ्गे तु हीनक्रममन्तल्लदधिकक्रमप्पु-

दरिंदं पंचविघ्नदोळं तंते अधिकक्रममक्कुमदेतेंदोडे नामकर्मसर्वद्रव्यमिदु स $\frac{1}{8}$ । ८ यिदं केळगण $\frac{८ । ९}{}$

असंख्यातैकभागमं साधिकमं माडि स $\frac{1}{8}$ । ८ साधिकबहुभागदोळेकरूपहीनतेयनवगणिसि भाज्य $\frac{८ । ९}{}$

भागहारंगळनपवर्त्तिसि शेषद्रव्यमनिद स $\frac{1}{8}$ नेकविंशतिसहबंध पिंडापिंडप्रकृतिगळु तिर्य्यग्गति

अथ विघ्नपञ्चके नामबन्धस्थानेषु चाह—

पञ्चदानाद्यन्तरायेषु प्रागुक्तक्रमाद्विपरीतोऽधिकक्रमो भवति पुनः सबन्धपिण्डेतरनामस्थानेऽपि विपरीतः ।

तद्यथा—नामकर्मसर्वद्रव्यमिदं स $\frac{|}{८ । ९}$ अधस्तनासंख्यातैकभागं साधिकं कृत्वा स $\frac{|}{८ । ९}$ अत्रैकरूपहीनता-

स $\frac{|}{८}$
९ ९ ९ ९ ९ । २

मवगणय्य भाज्यभागहारावपवर्त्येदं स $\frac{|}{८}$ त्रयोविंशतिकस्थानस्य सहबन्धपिण्डप्रकृतिषु तिर्यग्गत्येकेन्द्रियौ-

---

आगे अन्तरायकी पाँच प्रकृति और नामकर्मके बन्धस्थानोंमें कहते हैं—

पाँच दानान्तराय आदिमें पूर्वोक्त क्रमसे विपरीत उत्तरोत्तर अधिक-अधिक द्रव्य जानना। तथा नामकर्मके स्थानोंमें एक साथ बँधनेवाली नामकर्मकी गति आदिरूप पिण्ड प्रकृति और अगुरुलघु आदि अपिण्ड रूप प्रकृतियोंमें भी विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर अधिक द्रव्य जानना। वही कहते हैं—

एक साथ जिनका बन्ध होता है ऐसा नामकर्मका स्थान तेईस प्रकृतिवाला है यथा—तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस कार्मण शरीर, हुण्डक संस्थान, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर,

एकेंद्रियजाति औदारिक तैजसकार्म्मणपिंडहुंडसंस्थानवर्णगंधरसस्पर्शतिर्य्यगानुपूर्व्यं अगुरुलघु उपघातस्थावर सूक्ष्म अपर्य्याप्त साधारणशरीर अस्थिरअशुभदुर्भग अनादेय अयशस्कीर्त्तिनिर्म्माणमें बी एकविंशतिसबंधपिंडापिंडप्रकृतिस्थानंगळोळु पसल्वेडि आवल्यसंख्यातैकभागप्रमितप्रतिभागदिंद भागिसि बहुभागमं स ८।८ बहुभागे समभागो बंधाना स ८।८ मेंदेकविंशतिस्थानंगळोळ-
८।९ ९९९९।२

मेकविंशति भक्तैकभागमं स ८।८ प्रत्येकमिरिसि शेषैकभागदोळु स ८।१ उक्तक्रमः ५
८।९।२१ ८।९

प्रतिभागभक्तबहुभागद्रव्यं स ८ बहुकस्य देय एंदु प्रकृतिपाठक्रमदोळु तुविर्यिदं मोदल्वरं
८।९।९।१
विपरीतमागि देयं हीनक्रममप्पुदरिंदं निर्म्माणनामकर्म्मदोळु कुडल्पडुगुमन्ते शेषैकभागदोळु प्रति-

भागभक्तबहुभागद्रव्यमयशस्कीर्त्तिनामदोळु कुडल्पडुगु स ८।८ मन्ते शेषैकभागदोळु प्रतिभाग-
८।९।९।२
भक्तबहुभागद्रव्यमनादेयनामदोळु कुडल्पडुगु स ८।८ मिन्तु प्रतिभागभक्तशेषैकभागबहुभाग-
८।९।९।३

दरिकतैजसकार्मणहुण्डसंस्थानवर्णगन्धरसस्पर्शतिर्यगानुपूर्व्यागुरुलघूपघातस्थावरसूक्ष्मपर्याप्तसाधारणास्थिराशुभ - १०

दुर्भगानादेययशस्कीर्तिनिर्माणनाम्नीषु दातुं आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा बहुभागः स ८ एकविंशत्या
८।९

भक्त्वा स ८ प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे स ८ १ प्रतिभागभक्तबहुभागः स ८ निर्माणे
८।९।२१ ८।९ ८।९।९

देयः । शेषैकभागे प्रतिभागभक्तबहुभागः अयशस्कीर्तौ देयः स ८ शेषैकभागे प्रतिभागभक्त-
८।९।९।२

अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति और निर्माण। इन तेईस प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध मिथ्यादृष्टि मनुष्य या तिर्यंच करता है। सो यह स्थान साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक भवको प्राप्त करनेके योग्य है अर्थात इसका बन्ध करनेवाला मरकर साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक भवमें उत्पन्न होता है। इनका बँटवारा कहते हैं— १५

पूर्वमें मूल प्रकृतियोंके बँटवारेमें जो नामकर्मका द्रव्य कहा है उसमें आवलीके असंख्यातवें भागसे भाग देकर एक भागको अलग रख बहुभागके समान इक्कीस भाग करें। २० और एक-एक भाग एक-एक प्रकृतिको देवें। यद्यपि बन्धमें तेईस प्रकृतियाँ हैं तथापि औदारिक, तैजस, कार्मण ये तीनों एक शरीर नामक पिण्डप्रकृतिमें आ जाती हैं और पिण्ड प्रकृतियोंमें एक-एक प्रकृतिका ही बन्ध है। इससे यहाँ इक्कीस भाग ही किये हैं। शेष रहे एक भागमें

द्रव्यंगळु क्रमदिदं दुर्भगनामं मोदलागि एकेंद्रियजातिनामपर्य्यंतं कुडल्पडुवुवु । तत्रत्य चरम-

शेषैकभागद्रव्यं स अ । १ तिर्य्यग्गतिनामदोळु कुडल्पडुगुमिदुपलक्षणमिन्ते शेषनामबंधस्थानं-
८।९।९।२०

गळोळमरियल्पडुगुमी पेळल्पट्ट साधारणसूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवभवदोळुदयोचितत्रयोविंशति-प्रकृतिनामबंधस्थानस्वामिगळु तिर्य्यग्मनुष्यगतिद्वयमिथ्यादृष्टिजीवंगळप्परु । पिंडद्रव्यं च पुनः शरीरनामपिंडप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यं मत्तं स्वबंधस्वपिंडप्रकृतिषु सहबंधंगळप्प औदारिकतैजसकार्म्मण-शरीरनामस्वपिंडप्रकृतिगळोळु औदारिकं मोदलागि तैजसकार्म्मणंगळोळु तम्मोळधिकक्रममक्कु-मिन्तु त्रयोविंशतिनामसबंधपिंडापिंडप्रकृतिस्थानदोळे तु द्रव्यविभंजनमन्ते वक्ष्यमाण शेष । २५।२६।

बहुभागः म अ ८. अनादेये देयः । एवं प्रतिभागभक्तबहुभागं बहुभागं दुर्भगाद्येकेन्द्रियान्तेषु दत्वा
८ ९ ९ । ३

चरमशेषैकभागं स अ १ तिर्यग्गतौ दद्यात् । इदमुपलक्षणं, तेन शेषनामबन्धस्थानेषु अपि ज्ञातव्यम् । इदं
८ ९ ९ २०

त्रयोविंशतिकं साधारणसूक्ष्मैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकभवोदयोचितं नरतिर्यग्मिथ्यादृष्टिरेव बध्नाति । पिण्डद्रव्यं च पुनः शरीरनामपिण्डप्रकृतिप्रतिबद्धद्रव्यं पुनः सहबन्धौदारिकतैजसकार्मणेषु औदारिकतोऽधिकक्रमेण देयम् ।

आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रतिभागसे भाग दें । उसमें-से बहुभाग अन्तमें कही निर्माण प्रकृतिको देवें । शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग अयशस्कीर्तिको देना । शेष रहे एक भागमें प्रतिभागका भाग देकर बहुभाग अनादेयको देवें । इसी प्रकार शेष रहे एक भागमें प्रतिभागसे भाग दे-देकर बहुभाग क्रमसे दुर्भग, अशुभ, अस्थिर, साधारण, अपर्याप्त, सूक्ष्म, स्थावर, उपघात, अगुरुलघु, तिर्यंचानुपूर्वी, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, हुण्डक संस्थान, शरीररूप पिण्ड प्रकृति और एकेन्द्रिय जातिको देवें । शेष रहे एक भागको सबसे पहले कही तिर्यंचगतिको दें । सो पूर्वमें जो इक्कीस भाग कहे थे, उन एक-एक भागमें अपना-अपना पीछे कहा भाग मिलानेसे अपनी-अपनी प्रकृतिका द्रव्य होता है । इसी प्रकार जहाँ एक साथ पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियोंका एक साथ बन्ध होता है उनका भी बँटवारा कर लेना । जहाँ ऊपरमें एक यशस्कीर्तिका ही बन्ध होता है वहाँ नामकर्मका सब द्रव्य उस एक ही प्रकृतिको देना । इन स्थानोंमें पिण्ड प्रकृतिके द्रव्यका बँटवारा बन्धको प्राप्त पिण्ड प्रकृतिके भेदोंमें करना । जैसे तेईस प्राकृतिक स्थानमें एक शरीर नामक पिण्ड प्रकृतिके तीन भेद हैं । सो बँटवारेमें शरीर प्रकृतिको जो द्रव्य मिला, उसे प्रतिभागसे भाग देकर बहुभागके तीन समान भाग करके तीनोंको देना । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग कार्माणको देना । शेष एक भागमें प्रतिभागसे भाग देकर बहुभाग तैजसको देना । शेष एक भाग औदारिकको देना । पूर्वोक्त समान भागमें इन भागोंको मिलानेपर अपना-अपना द्रव्य होता है । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना । जहाँ पिण्डके भेदोंमें-से एक ही का बन्ध हो वहाँ पिण्ड प्रकृतिका सब द्रव्य उस एक ही प्रकृतिको देना चाहिए ।

२८।२९।३०। ३१ । १ । स्थानसबंधप्रकृतिगळ्गेकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु स्वामित्वमुं पेळल्पडुगु-मप्पुदरिनिल्लि प्रदेशबंधप्रकरणदोळु द्रव्यविभंजनक्रममेकदेशदिंदं सूचिसल्पट्टुदु :—

ति० गति	एकेंद्रि	औ ते का	हुं	वर्ण्ण	गंध	रस
।	।	।	।	।	।	।
स अ । ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८
८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१
।	।	।	।	।	।	।
स अ १	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८
८।९।९।२०	८।९।९।२०	८।९।९।१९	८।९।९।१८	८।९।९।१७	८।९।९।१६	८।९।९।१५

स्पर्श	ति० अनु	अगुरु	उपघात	स्थावर	सूक्ष्म	अपर्य्या
।	।	।	।	।	।	।
स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८
८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१
।	।	।	।	।	।	।
स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८
८।९।९।१४	८।९।९।१३	८।९।९।१२	८।९।९।११	८।९।९।१०	८।९।९।९	८।९।९।८

साधार	अस्थिर	अशुभ	दुर्भग	अनादे	अयशस्को	निर्म्माण
।	।	।	।	।	।	।
स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८
८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१	८।९।२१
।	।	।	।	।	।	।
स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८	स अ ८
८।९।९।७	८।९।९।६	८।९।९।५	८।९।९।४	८।९।९।३	८।९।९।२	८।९।९।१

एवं वक्ष्यमाण शेष २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । स्थानेष्वप्येकचत्वारिंशज्जीवपदेषु वक्तव्यं इति अत्र प्रदेशबन्धप्रकरणे द्रव्यविभञ्जनक्रमः सूचितः ॥२०६॥

इकतालीस जीवपदोंमें नामकर्मके स्थानोंका बन्ध जिस प्रकारसे होता है उसका कथन आगे करेंगे। इस प्रकार प्रदेशबन्धके कथनमें द्रव्यका बँटवारा कहा। उसका आशय यह है कि समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणुओंमें जिस प्रकृतिका जितना द्रव्य कहा उतने परमाणु उस प्रकृतिरूप परिणमते हैं।

विशेषार्थ—कोई बहुभाग आदिको न समझता हो तो उसके लिए दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं—जैसे सर्वद्रव्य चार हजार छियानबे ४०९६ है। उसका बँटवारा चार जगह करना है। प्रतिभागका प्रमाण आठ है। सो चार हजार छियानबेको आठसे भाग दें। एक भाग बिना बहुभाग ३५८४ आया; क्योंकि चार हजार छियानबेमें आठका भाग देनेसे लब्ध पाँच सौ बारह आया। उसे चार हजार छियानबेमें घटानेपर ३५८४ रहा। उसके चार समान भाग करनेपर एक-एक भागमें आठ सौ छियानबे आये। शेष एक भाग पाँच सौ बारहमें प्रतिभाग आठका भाग देनेपर चौंसठ आये। सो अलग रख बहुभाग चार सौ अड़तालीस बहुत द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग चौंसठमें प्रतिभागका भाग देनेपर आठ आये। उसे अलग रख बहुभाग छप्पन उससे हीन द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग आठमें

अनंतरमुत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्य जघन्य प्रदेशबंधंगळगे साद्यादिभेदसंभवासंभवविशेषमं मूलप्रकृतिगळोळु पेळ्दपरु :—

छण्हंपि अणुक्कस्सो पदेसबंधो दु चदुवियप्पो दु ।
सेसतिये दुवियप्पो मोहाऊणं च दुवियप्पो ॥२०७॥

षण्णामप्यनुत्कृष्टः प्रदेशबंधस्तु चतुर्व्विकल्पस्तु । शेषत्रये द्विविकल्पो मोहायुषोश्चतुर्विकल्पः ॥

षण्णां ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीयनामगोत्रान्तरायंगळे बारुं मूलप्रकृतिगळ अनुत्कृष्टः प्रदेशबंधः अनुत्कृष्टप्रदेशबंधं चतुर्व्विकल्पस्तु साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेददिदं चतुर्व्विकल्पमक्कं । तु मत्तमा षड्मूलप्रकृतिगळ शेषत्रये अनुत्कृष्टवर्ज्जितोत्कृष्टाजघन्यजघन्यशेषत्रयदोळु द्विविकल्पः साद्यध्रुवभेददिद्विविकल्पमेयक्कुं । तु मत्तं मोहायुषोः मोहनीयायुष्यंगळेरडर चतुर्व्विकल्पः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यमे ब चतुर्व्विकल्पमुं साद्यध्रुवमे बेरडे विकल्पंगळनुळ्ळुवप्पुवु :—

णा	दं	वे	मो	आ	ना	गो	अं
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
आ ४	आ ४	आ ४	आ ४	आ २	आ ४	आ ४	आ ४
अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २

अथ उत्कृष्टादीनां साद्यादिविशेषं मूलप्रकृतिष्वाह—

षण्णां ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणामनुत्कृष्टः प्रदेशबन्धः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेदाच्चतुर्विधो भवति । तु—पुनः शेषोत्कृष्टाजघन्यजघन्येषु साद्यध्रुवभेदाद् द्विविध एव । तु—पुनः मोहायुषोः उत्कृष्टादि-

प्रतिभाग आठसे भाग देनेपर एक आया। उसे अलग रख बहुभाग सात उससे भी हीन द्रव्यवालेको देना। शेष एक भाग एक उससे भी हीन द्रव्यवालेको देना। अपने-अपने समान भागमें इनको मिलानेपर क्रमसे तेरह सौ चवालीस १३४४, नौ सौ बावन ९५२, नौ सौ तीन ९०३ और आठ सौ सत्तानबे ८९७ द्रव्यका प्रमाण आया। इस प्रकार चार हजार छियानबेका बँटवारा हुआ। इसी प्रकार उक्त प्रकृतियोंका भी जानना। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और मोहनीयकी प्रकृतियोंमें क्रमसे घटता द्रव्य होता है। अन्तराय और नामकर्मकी प्रकृतियोंमें क्रमसे अधिक-अधिक द्रव्य होता है। वेदनीय आयु और उच्च गोत्रकी उत्तर प्रकृति एक समयमें एक ही बँधती है। अतः इनका द्रव्य मूल प्रकृतिवत् होता है ॥२०६॥

इस प्रकारप्रदेश बन्धके प्रकरणमें द्रव्यके विभागका क्रम कहा। आगे मूल प्रकृतियोंमें उत्कृष्ट आदि प्रदेशबन्धके सादि आदि भेद कहते हैं—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम, गोत्र, अन्तराय इन छह कर्मोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। इन्हीं छहोंका उत्कृष्ट

अनन्तरमुत्तरप्रकृतिगळुत्कृष्टादिगळ्गे साध्यादि संभवविकल्पंगळं पेळ्दपरु :—

तीसण्हमणुक्कस्सो उत्तरपयडीसु चउविहो बंधो ।
सेसतिये दुवियप्पो सेसचउक्केवि दुवियप्पो ॥२०८॥

त्रिंशतामनुत्कृष्ट उत्तरप्रकृतिषु चतुर्विधो बंधः । शेषत्रये द्विविकल्पः शेषचतुष्केपि द्विविकल्पः ॥

उत्तरप्रकृतिषु उत्तरप्रकृतिगळोळु त्रिंशतां मूवत्तु प्रकृतिगळ अनुत्कृष्टः अनुत्कृटमप्प प्रदेशबंधः प्रदेशबंधं चतुर्विधः चतुर्विधमक्कुमवर शेषत्रये उत्कृष्टाजघन्यजघन्यमेंब शेषत्रयदोळु द्विविकल्पः साद्यध्रुवविकल्पद्वयमक्कुं । शेषचतुष्केपि शेषाणां नवति प्रकृतीनामुत्कृष्टादिचतुष्टयस्तस्मिन् । शेषप्रकृतिगळुत्कृटादिचतुर्विकल्पंगळोळु द्विविकल्पः साद्यध्रुव द्विविकल्पमेयक्कुं—

३०	९०
उ २	उ २
अ ४	अ २
अ २	अ २
ज २	ज २

अनंतरमा त्रिंशत्प्रकृतिगळावुवेंदोडे पेळ्दपरु :—

णाणंतरायदसयं दंसणछक्कं च मोह चोद्दसयं ।
तीसण्हमणुक्कस्सो पदेसबंधो चदुवियप्पो ॥२०९॥

ज्ञानांतरायदशकं दर्शनषट्कं च मोहचतुर्दशकं । त्रिंशतामनुत्कृष्टः प्रदेशबंधश्चतुर्विकल्पः ॥

चतुर्विधोऽपि साद्यध्रुवभेदाद्द्विविधः ॥२०७॥ अथोत्तरप्रकृतीनामाह—

उत्तरप्रकृतिषु त्रिंशतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धः, चतुर्विधः शेषोत्कृष्टादित्रयेऽपि साद्यध्रुवभेदाद्द्विविकल्पः । शेषनवतिप्रकृतीनामुत्कृष्टादिबन्धचतुष्केऽपि साद्यध्रुवभेदाद् द्विविकल्प एव ॥२०८॥ तां त्रिंशतमाह—

अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार ही है। मोहनीय और आयुके उत्कृष्ट आदि चारों ही प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार हैं ॥२०७॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

उत्तर प्रकृतियोंमें तीस प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे चार प्रकार है। शेष उत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार है। शेष नवेबें प्रकृतियोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य प्रदेशबन्ध सादि और अध्रुवके भेदसे दो प्रकार ही हैं ॥२०८॥

वे तीस प्रकृतियाँ कहते हैं—

णा	दे	वे	मो	आ	ना	गो	अं
उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २	उ २
अ ४	अ ४	अ ४	अ २	अ २	अ ४	अ ४	अ ४
अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २	अ २
ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २	ज २

ज्ञानावरणपंचकममन्तरायपंचकमुं निद्राप्रचलाचक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनकेवलदर्शनावरणमंब दर्शनषट्कमुं अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलनक्रोधमानमायालोभंगळुं भयमुं जुगुप्सयुमेंब मोहचतुर्दशकममिन्तु त्रिंशत्प्रकृतिगळनुत्कृष्टप्रदेशबंधं चतुर्व्विकल्पः साद्यनादिध्रुवाध्रुवभेददिदं चतुर्व्विकल्पमक्कुं।

अनंतरमुत्कृष्टबंधस्वामिसामग्रीविशेषमं पेळ्दपरु :—

उक्कडजोगो सण्णी पज्जत्तो पयडिबंधमप्पदरो।
कुणदि पदेसुक्कस्सं जहण्णये जाण विवरीयं ॥२१०॥

उत्कृष्टयोगः संज्ञिपर्य्याप्तः प्रकृतिबंधाल्पतरः। करोति प्रदेशोत्कृष्टं जघन्येन जानीहि विपरीतं ॥

प्रदेशोत्कृष्टं प्रदेशोत्कृष्टमं उत्कृष्टयोगः उत्कृष्टयोगमनुळ्ळ संज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिजीवनुं पर्य्याप्तः परिपूर्णपर्य्याप्तिकनुं प्रकृतिबंधाल्पतरः प्रकृतीनां बंधोऽल्पतरो यस्यासौ प्रकृतिबंधाल्पतरः अल्पतरमाद प्रकृतिगळ बंधमनुळ्ळनुं करोति माळ्कुं। जघन्येन जघन्यदिदं प्रदेशबंधदोळु विपरीतं जानीहि उक्तसामग्रीविशेषविपरीतनं स्वामियेंदरियेंदु शिष्य संबोधिसल्पट्टं।

जघन्ययोगमनुळ्ळनुमसंज्ञियुमपर्य्याप्तनुं प्रकृतिबंधबहुतरनुं जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्पनेंबुदत्थं।

अनंतरं मूलप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधक्के गुणस्थानदोळु स्वामित्वमं पेळ्दपरु :—

आउक्कस्सपदेसं छत्तुं मोहस्स णव दु ठाणाणि।
सेसाणं तणुकसाओ बंधदि उक्कस्सजोगेण ॥२११॥

आयुरुत्कृष्टप्रदेशं षडतीत्य मोहस्य नव तु स्थानानि। शेषाणां तनुकषायो बध्नात्युत्कृष्टयोगेन ॥

पञ्चज्ञानावरणपञ्चान्तरायाः निद्राप्रचलाचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनक्रोधमानमायालोभभयजुगुप्साश्चेति त्रिंशतोऽनुत्कृष्टप्रदेशबन्धश्चतुर्विकल्पो भवति ॥२०९॥ अथोत्कृष्टबन्धस्य सामग्रीविशेषमाह—

प्रदेशोत्कृष्टं उत्कृष्टयोगः संज्ञिपर्याप्त एव प्रकृतिबन्धाल्पतरः करोति। जघन्ये विपरीतं जानीहि। अघन्ययोगासंज्ञ्यपर्याप्तप्रकृतिबन्धबहुतर एव जघन्यप्रदेशे बन्धं करोतीत्यर्थः ॥२१०॥ अथ मूलप्रकृतीनां उत्कृष्टप्रदेशबन्धस्य गुणस्थाने स्वामित्वमाह—

पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय, निद्रा, प्रचला, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय और जुगुप्सा इन तीसका अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सादि आदि चार प्रकार हैं ॥२०९॥

आगे उत्कृष्ट प्रदेशबन्धकी सामग्री कहते हैं—

जो जीव उत्कृष्ट योगसे युक्त होनेके साथ संज्ञी और पर्याप्त होता है तथा थोड़ी प्रकृतियोंका बन्ध करता है वह उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। और जो उससे विपरीत होता है अर्थात् जघन्य योगसे युक्त होता है, असंज्ञी और अपर्याप्त होता है तथा बहुत प्रकृतियोंका बन्ध करता है वह जघन्य प्रदेशबन्ध करता है ॥२१०॥

आगे मूल प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका स्वामिपना गुणस्थानोंमें कहते हैं—

आयुरुत्कृष्टप्रदेशं आयुष्यकर्म्मंक्कुत्कृष्टप्रदेशमं षडतीत्य षड्गुणस्थानंगळनतिक्रमिसि वर्त्तमाननप्प अप्रमत्तं बध्नाति कट्टुगुं। मोहस्य मोहनीयक्के प्रदेशोत्कृष्टमं। तु मत्ते। नव स्थानानि नवगुणस्थानंगळनेय्दिद अनिवृत्तिकरणं बध्नाति कट्टुगुं। शेषाणां ज्ञानावरणदर्शनावरण-वेदनीय नामगोत्रांतरायमें ब शेषषण्मूलप्रकृतिगळ उत्कृष्टप्रदेशमं तनुकषायः सूक्ष्मसांपरायं बध्नाति कट्टुगुमी प्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधक्के कारणमुत्कृष्टयोगमुं प्रकृतिबंधाल्पतरत्वमुमक्कुं। आयुष्य-कर्म्मक्कप्रमत्तं मोहनीयक्कनिवृत्तिकरणं शेषज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायंगळगे सूक्ष्मसांपरायनुमें बी मूरुं गुणस्थानवर्त्तिगळुत्कृष्टयोगमुं प्रकृतिबंधाल्पतरत्वमुं कारणमागुत्तं विरलु तंतम्म बंधप्रकृतिगळगुत्कृष्टप्रदेशबंधमं माळ्परें बुदत्थं।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळगुत्कृष्टप्रदेशबंधस्वामिगळं गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु गाथात्रयविदं :—

सत्तर सुहुमसरागे पंचणियट्टिम्मि देसगे तदियं ।
अयदे बिदियकसायं होदि हु उक्कस्सदव्वं तु ॥२१२॥

सप्तदश सूक्ष्मसांपराये पंचानिवृत्तौ देशगे तृतीयः। असंयते द्वितीयकषायो भवति खलु-त्कृष्टद्रव्यं तु ॥

छण्णोकसायणिद्दापयलातित्थं च सम्मगो य जदी ।
सम्मो वामो तेरं णरसुरआऊ असादं तु ॥२१३॥

षण्णोकषायनिद्रा प्रचलास्तीर्थं च सम्यग्दृष्टिर्यदि। सम्यग्दृष्टिर्वामस्त्रयोदश नरसुरायुषो असातं तु ॥

देवचउक्कं वज्जं समचउरं सत्थगमणसुभगतियं ।
आहारमप्पमत्तो सेसपदेसुक्कडो मिच्छो ॥२१४॥

देवचतुष्कं वज्रं समचतुरस्रं शस्तगमनसुभगत्रयं। आहारमप्रमत्तः शेषप्रदेशोत्कटं मिथ्या-दृष्टिः ॥

आयुष उत्कृष्टप्रदेशं षड्गुणस्थानान्यतीत्य अप्रमत्तो भूत्वा बध्नाति, मोहस्य तु पुनः नवमं गुणस्थानं प्राप्य अनिवृत्तिकरणो बध्नाति। शेषज्ञानदर्शनावरणवेदनीयनामगोत्रान्तरायाणां सूक्ष्मसांपराय एव। अत्रापि स्थानत्रये उत्कृष्टयोगः प्रकृतिबन्धाल्पतरः इति विशेषणद्वयं ज्ञातव्यम् ॥२११॥ अथोत्तरप्रकृतीनां गाथात्रयेणाह—

आयुकर्मका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध छह गुणस्थानोंको उलंघकर अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है। मोहनीयका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध नौवें गुणस्थानको प्राप्त करके अनिवृत्तिकरण गुण-स्थानवर्ती करता है। शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, नाम-गोत्र और अन्तरायका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानवर्ती ही करता है। इन तीनों स्थानोंमें भी उत्कृष्ट योगका धारक और अल्प प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला ये दो विशेषण जानना। अर्थात् उक्त गुणस्थानोंमें भी वही उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है जिसके उत्कृष्ट योग होता है और जो थोड़ी प्रकृतियाँ बाँधता है ॥२११॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धको कहते हैं—

ज्ञानावरणपंचकं दर्शनावरणचतुष्कमुं मन्तरायपंचकमु यशस्कीर्त्तिनाममुच्चैर्गोत्रं सातवेदनीयमेंब सप्तदशप्रकृतिगळु १७ सूक्ष्मसांपरायनोळु । तु मत्ते पुंवेदमुं संज्वलनचतुष्कमेंब पंचप्रकृतिगळु ५ अनिवृत्तिकरणनोळु । तृतीयः प्रत्याख्यानकषायचतुष्कं ४ देशगे देशमेकदेशं व्रतं गच्छतीति देशगस्तस्मिन् । देशसंयतनोळु । द्वितीयकषायः अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कं ४ असंयते असंयतसम्यग्दृष्टियोळु यिती नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु कूडि ३० प्रकृतिगळुत्कृष्टद्रव्यमक्कुं । खलु स्फुटमागि । षण्णोकषायनिद्राप्रचलास्तीर्थं च हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साषण्णोकषायंगळुं निद्रादर्शनावरणमु १ प्रचलादर्शनावरणमुं १ तीर्त्थ १ मुमेंब नवप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधमं सम्यग्दृष्टिश्च सम्यग्दृष्टि माळ्कुं । त्रयोदश वक्ष्यमाणत्रयोदशप्रकृतिगळुत्कृष्टप्रदेशबंधमं सम्यग्दृष्टिश्च सम्यग्दृष्टियुं । यदि एत्तलानुं वामश्च मिथ्यादृष्टियुं माळ्कुमदाउवें दोडे पेळ्दपरु :—नरसुरायुषो मनुष्यायुष्यमुं १ सुरायुष्यमुं १ असातं तु । तु मत्तमसातवेदनीयमुं १ देवचतुष्कमुं देवगति देवगत्यानुपूर्व्यं वैक्रियिकशरीर तदंगोपांगमंब देवचतुष्कमुं ४ । वज्रं वज्रऋषभनाराचसंहननमुं १ । समचतुरस्रं समचतुरस्रशरीरसंस्थानमुं १ । शस्तगमनसुभगत्रयम् प्रशस्तविहायोगतियुं १ । सुभगसुस्वरादेयमेंब सुभगत्रयमुं ३ यें बिवु त्रयोदशप्रकृतिगळप्पुवु । आहारं आहरकद्वयक्कं २ अप्रमत्तनुत्कृष्टप्रदेशबंधमं माळ्कुमिन्तु सू १७ । अ ५ । दे ४ । अ ४ । सम्यग्दृष्टिगळ ९ । सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिगळ १३ । अप्रमत्तन २ अन्तुक्त ५४ प्रकृतिगळं कळेदु शेषदर्शनावरणस्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ मिथ्यात्वमनंतानुबंधिचतुष्कमुं स्त्रीवेदमुं नपुंसकवेदमुमेंब मोहनीयसप्तकमुं ७ । नरकतिर्य्यगायुद्वयमुं २ । नरकतिर्य्यग्मनुष्यगतित्रितयमुं ३ एकेंद्रियादि जाति पंचकमु ५ । औदारिक तैजसकार्म्मणशरीरत्रयमुं ३ । न्यग्रोधपरिमंडल स्वातिकुब्जवामनहुंडशरीरसंस्थानपंचकमुं ५ ।

पञ्चचतुःपञ्चज्ञानदर्शनावरणान्तरायययशस्कीर्त्युच्चैर्गोत्रसातवेदनीयानामुत्कृष्टद्रव्यं सूक्ष्मसांपराये भवति । तु—पुनः पुंवेदसंज्वलनानां अनिवृत्तिकरणे भवति । प्रत्याख्यानकषायाणां देशसंयते, अप्रत्याख्यानकषायाणामसंयते खलु स्फुटम् । षण्णोकषायनिद्राप्रचलातीर्थानामुत्कृष्टप्रदेशबन्धं सम्यग्दृष्टिः करोति । वक्ष्यमाणत्रयोदशानां सम्यग्दृष्टिः मिथ्यादृष्टिर्वा यदि । तानि त्रयोदश तु—पुनः नरसुरायुषी असातं देवगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीरतदङ्गोपाङ्गानि वज्रर्षभनाराचसंहननं समचतुरस्रसंस्थानं प्रशस्तविहायोगतिः सुभगसुस्वरादेयानि भवन्ति । आहारद्वयस्य अप्रमत्तः उत्कृष्टप्रदेशबन्धं करोति । उक्तचतुःपञ्चाशतः शेषाणां स्त्यानगृद्धित्रयमिथ्यात्वानन्तानुबन्धिस्त्रीनपुंसकवेदनरकतिर्यगायुर्नरकतिर्यग्मनुष्यगतिपञ्चजात्यौदारिकतैजसकार्मणन्यग्रोधपरिमण्डलस्वातिकुब्ज-

---

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र, सातावेदनीय इन सतरहका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सूक्ष्म साम्परायमें होता है । पुरुषवेद और चार संज्वलन कषाय इन पाँचका अनिवृत्तिकरणमें होता है । तीसरी प्रत्याख्यान कषायोंका देशविरतमें होता है । दूसरी अप्रत्याख्यान कषायोंका असंयतमें होता है । छह नोकषाय, निद्रा, प्रचला और तीर्थंकरका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध सम्यग्दृष्टि करता है । आगे कही गयी तेरह प्रकृतियोंका सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टी करता है । वे तेरह इस प्रकार हैं—मनुष्यायु, देवायु, असातावेदनीय, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय । आहारक-

औदारिकांगोपांगमुं १ वज्रनाराचनाराच अर्द्धनाराच कीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननपंचकमु ५ वर्णचतुष्कमुं ४। नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रितयमुं ३ अगुरुलघुकमुं १ उपघातमुं १ परघातमुं १ उच्छ्वासमुं १ आतपमुं १। उद्योतमुं १ अप्रशस्तविहायोगतियुं १ त्रसस्थावरद्विकमुं २ बादरसूक्ष्मद्विकमुं २। पर्य्याप्तापर्य्याप्तद्विकमुं २। प्रत्येक साधारणशरीरद्विकमुं २। स्थिरास्थिरद्विकमुं २। शुभाशुभद्विकमुं २। दुर्भगमुं १ दुःस्वरमुं १ अनादेयमुं १ अयशस्कीर्त्तियुं १। निर्म्माणनाममु १ नीचैर्गोत्रमुं मेंब षट्षष्टिप्रकृतिगळगे प्रदेशोत्कटमं मिथ्यादृष्टियें माळकु। यितुक्तानुक्त १२० प्रकृतिगळगे प्रदेशोत्कटबंधकारमुत्कृष्टयोगप्रकृतिबंधाल्पतरत्वमनुळ्ळ संज्ञिपर्य्याप्तजीवंगळे प्रदेशोत्कटबंधमं माळ्परु। इल्लि मिथ्यात्वप्रकृतिगे मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तियागलनन्तानुबंधिगे सासादननोळेंकिंतु अग्रहणमेंदोडे मिथ्यात्वद्रव्यक्के देशघातिगळे स्वामिगळप्पुदरिंदमदु कारणमागिये प्रकृत्यल्पतराभावमप्पुदरिंदं मुन्निनंते सबंधप्रकृतिगळप्पुदरिननन्तानुबंधिगातनोळग्रहणमक्कुं।

अनंतरं मुन्नं जहण्णए जाण विवरीयमें दरप्पुदरिंदमा जघन्यप्रदेशबंधस्वामिसामग्रीविशेषमं पेळदपरु :—

वामनहुण्डौदारिकाङ्गोपाङ्गवज्रनाराचार्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकाचतुर्वर्णनरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासातपोद्योताप्रशस्तविहायोगतित्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तप्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिरशुभाशुभदुर्भगदुःस्वरानादेययशस्कीर्तिनिर्माणनीचैर्गोत्राणां षट्षष्टेः मिथ्यादृष्टिरेव करोति। एवमुक्तानुक्त १२० प्रकृतीनां उत्कृष्टप्रदेशबन्धकारणमुत्कृष्टयोगादिप्रागुक्तमेवावसेयम्। अत्र मिथ्यात्वस्य मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिद्रव्यमुत्कृष्टमुक्तं, तथानन्तानुबन्धिनः सासादने किमिति नोच्यते ? तन्न मिथ्यात्वद्रव्यस्य देशघातिनामेव स्वामित्वात् ॥२१२–२१४॥ अथ पूर्वं 'जहण्णये जाण विवरीयं' इत्युक्तं तत्सामग्रीविशेषमाह—

द्विकका उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध अप्रमत्त करता है। इन चौवन प्रकृतियोंसे शेष रहीं स्त्यानगृद्धि आदि तीन, मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी कषाय चार, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, नरकायु, तिर्यंचायु, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान, औदारिक अंगोपांग, वज्रनाराच, अर्धनाराच, कीलित, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, वर्णादि चार, नरकानुपूर्वी, तिर्यगनुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र इन छियासठका मिथ्यादृष्टि ही करता है। इस प्रकार गाथामें कही गयी और न कही गयी एक सौ बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट प्रदेशबन्धका कारण पूर्वमें कहे उत्कृष्ट योग आदि जानना।

शंका—यहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्तिका द्रव्य उत्कृष्ट कहा है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीका सासादनमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—

आगे मूल प्रकृतियोंके जघन्य प्रदेशबन्धके स्वामी कहते हैं—

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्य पढमे जहण्णए जोगे ।
सत्तण्हं तु जहण्णं आउगबंधेवि आउस्स ॥२१५॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य प्रथमे जघन्येन योगेन । सप्तानां तु जघन्यः आयुर्बंधेऽप्यायुषः ॥

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तकन भवप्रथमसमयदोळु जघन्ययोगदिंदं ज्ञानावरणादिसप्तमूलप्रकृतिगळगे जघन्यमप्प प्रदेशबंधमक्कु । मायुर्बंधदोळमदक्कं जघन्यप्रदेशबंधमक्कुं ।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळगे जघन्यप्रदेशबंधस्वामिविशेषमं पेळ्दपरु :—

घोडणजोगोऽसण्णी णिरयदुसुरणिरय आउगजहण्णं ।
अपमत्तो आहारं अयदो तित्थं च देवचऊ ॥२१६॥

घोटमानयोगोऽसंज्ञिनरकद्वयसुरनारकायुर्ज्जघन्यमप्रमत्त आहारकस्यासंयतस्तीर्थस्य च देव चतुष्कस्य ॥

घोटमानयोगः येषां योगस्थानानां वृद्धिहान्यवस्थानं च संभवति । तानि घोटमानयोगस्थाननामानि । परिणामयोगस्थानानीति भणितं भवति । हानिवृद्धयवस्थानंगळिदं परिवर्त्तमानयोगमं परिणममानयोगमं घोटमानयोगमेंबुदंतप्प घोटमानयोगस्थानयुतनप्प असंज्ञिजीवनु नरकद्वयसुरायुर्न्नारकायुर्द्वयमेंब ४ नाल्कं प्रकृतिगळगे जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्कुं । आहारद्वयक्कप्रमत्तं जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्कुमेकें दोडपूर्व्वकरणनं नोडलुमप्रमत्तसंयतंगष्टविधकर्म्मबंधसंभवमप्पुदरिंदंबहुप्रकृतिबंधं संभविसुगुमप्पुदरिंदं असंयतसम्यग्दृष्टियुं भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगयुतं तीर्त्थंकरनामक्कं सुरचतुष्कक्कर्यु जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्कुमिन्तेकादशप्रकृतिगळं कळेदु शेषनवोत्तरशतप्रकृतिगळगे जघन्यप्रदेशबंधमं माळ्प स्वामिविशेषमं पेळ्दपरु :—

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकः स्वभवप्रथमसमये जघन्ययोगेन सप्तमूलप्रकृतीनां जघन्यं प्रदेशबन्धं करोति । आयुर्बन्धे च आयुषोऽपि ॥२१५॥ अथोत्तरप्रकृतीनामाह—

येषां योगस्थानानां वृद्धिः हानिः अवस्थानं च संभवति तानि घोटमानयोगस्थानानि—परिणामयोगस्थानानीति भणितं भवति । तद्योगोऽसंज्ञिनरकद्वयसुरनारकायुषां जघन्यप्रदेशबन्धं करोति । आहारकद्वयस्य अप्रमत्तः करोति, कुतः ? अपूर्वकरणात्तस्य बहुप्रकृतिबन्धसंभवात् । असंयतो भवग्रहणप्रथमसमयजघन्योपपादयोगः तीर्थकरत्वस्य सुरचतुष्कस्य च ॥२१६॥ उक्तैकादशभ्यः शेषाणां विशेषमाह—

सूक्ष्म निगोदिया लब्ध पर्याप्तक जीव अपनी पर्याप्तके प्रथम समयमें जघन्य योगके द्वारा सात मूल प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । आयुबन्ध होनेपर आयुका जघन्य प्रदेशबन्ध भी वहीं करता है ॥२१५॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

जिन योगस्थानोंकी वृद्धि भी होती है, हानि भी होती है और जैसेके तैसे भी रहते हैं उनको घोटमान योगस्थान अथवा परिणाम योगस्थान कहते हैं । ऐसे योगका धारी असंज्ञी जीव नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवायु और नरकायु इन चारोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है । आहारकद्विकका अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है; क्योंकि अपूर्वकरणसे वह अधिक प्रकृतियोंको बाँधता है । भव ग्रहण करनेके प्रथम समयमें जघन्य उपपाद योगस्थानका धारी असंयत सम्यग्दृष्टी तीर्थंकर, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक अंगोपांगका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है ॥२१६॥

चरिम अपुण्णभवत्थो तिविग्गहे पढमविग्गहम्मि ठियो ।
सुहुमणिगोदो बंधदि सेसाणं अवरबंधं तु ॥२१७॥

चरमापूर्णभवस्थस्त्रिविग्रहे प्रथमविग्रहे स्थितः । सूक्ष्मनिगोदो बध्नाति शेषाणामवरबंधं तु ॥

तु मत्ते चरमापूर्णभवस्थः द्वादशोत्तरषट्सहस्रस्वकीयापर्याप्तभवंगळ चरमभवदोळु इरुतिर्द्द त्रिविग्रहे विग्रहगतिय त्रिवक्रंगळोळु प्रथमविग्रहे प्रथमवक्रदोळु स्थितः यिरल्पट्ट सूक्ष्मनिगोदः सूक्ष्मं निगोदजीवं । शेषाणां शेष १०९ नवोत्तरशत प्रकृतिगळगे अवरबंधं जघन्यप्रदेशबंधमं बध्नाति कट्टुगुं । इन्ती प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधप्रकरणंगळोळु प्रथमोक्तप्रकृतिबंधदोळु मूलोत्तरप्रकृतिगळनु येकजीवनेकसमयदोळु कट्टुव सबंधज्ञानावरणाद्यष्टविधसव्वंप्रकृतिस्थानंगळ जघन्योत्कृष्टमध्यमंगळगे तद्बंधकालदोळे तद्बंधस्थानगतप्रकृतिगळगे स्थित्यनुभागप्रदेशबंधभेदंगळुमप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु रचनाविशेषं वृत्तिकारनिवं तोरिसल्पट्टुगुं—

अ	५	४	१	५	४।३।२।१।	०	१।
अ	५	६।४	१	९		०	२८।२९।३०।३१।१।
अ	५	६	१	९		१	२८।२९।३०।३१।१।
प्र	५	६	१	९		१	२८।२९।
दे	५	६	१	१३		१	२८।२९।
अ	५	६	१	१७		१	२८।२९।३०।
मि	५	६	१	१७		०	२८।२९।
सा	५	९	१	२१		१	२८।२९।३०।
मि	५	९	१	२२		१	२३।२५।२६।२८।२९।३०।
		वं			२६।२२।२१।१७।		
सात १	णा ५	९।६।४	वे २	मो	१३।९।५।४।३।२।१।	आ ४	ना १२।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।

१	५	२२।२१।२०।१९।१८								
१	५	५५।५६।५७।५८।५६।								
१	५	५६।५७।५८।५९।								
१	५	५६।५७।								
१	५	६०।६१।	आ०	०	०	०	०	०	०	०	०
१	५	६४।६५।६६।	स ।०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	५	६३।६४।	सी।०	०	१	०	०	०	०	०	१
१	५	७१।७२।७३।	उ ।०	४	१	०	०	०	०	०	१
१	५	६७।६९।७०।७२।७३।७४।	सू ५	४	१	०	०	१	१	५	१७
गो २	अं ५	अंतु कंगलिवु	णा ५	वं ९	वे २	मो २६	आ ४	ना ९३	गो २	अं ५	अं.कं.

तु–पुनः द्वादशोत्तरषट्सहस्रापर्याप्तभवानां चरमभवस्थो विग्रहगतित्रिवक्रेषु प्रथमवक्रे स्थितः सूक्ष्मनिगोदः शेषनवोत्तरशतप्रकृतीनां जघन्यप्रदेशबन्धं बध्नाति । अत्र चतुर्षु बन्धेषु प्रथमोक्तप्रकृतिबन्धे मूलोत्तर-

छह हजार बारह क्षुद्रभवोंमें-से अन्तिम क्षुद्रभवमें स्थित तथा विग्रहगतिके तीन

प्रकृतीनामेकजीवस्य एकसमये सबन्धप्रकृतिजघन्यादिस्थानानां बन्धकाले तद्गतप्रकृतीनां स्थित्यनुभागप्रदेशबन्धभेदा भवन्ति इति मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानेषु रचनाविशेषो वृत्तिकारेण दर्श्यते—

अ	०	०	०	०	०	०	०	०	०
स	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षी	०	०	१	०	०	०	०	०	१
उ	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सू	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
अ	५	४	१	५।४।३।२।१	०	१	१	५	२२।२१।२०।१९।१८
व	५	६।४	१	९	०	२८।२९।३०।३१।१	१	५	५५।५६।५७।५८।२६
अ	५	६	१	९	१	२८।२९।३०।३१	१	५	५६।५७।५८।५९
प्र	५	६	१	९	१	२८।२९	१	५	५६।५७
दे	५	६	१	१३	१	२८।२९	१	५	६०।६१
अ	५	६	१	१७	१	२८।२९।३०	१	५	६४।६५।६६
मि	५	६	१	१७	०	२८।२९	१	५	६३।६४
सा	५	९	१	२१	१	२८।२९।३०	१	५	७१।७२।७३
मि	५	९	१	२२	१	२३।२५।२६।२८।२९।३०	१	५	६७।६९।७०।७२।७३।७४
	५ ८ ८	९।६।४	बे.२	मा.२६।२२।२१।१७।१३।९।५ ४।३।२।१	आ. ४	ना २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१।	गो.२	अ. ५	

५ मोड़ोंमें-से प्रथम मोड़ेमें स्थित सूक्ष्म निगोदिया जीव शेष एक सौ नौ प्रकृतियोंका जघन्य प्रदेशबन्ध करता है।

यहाँ चार प्रकारके बन्धोंमें प्रथम कहे प्रकृतिबन्धमें मूल और उत्तर प्रकृतियोंका एक जीवके एक समयमें एक साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंके जघन्यादि भेदरूप स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्धके भेद होते हैं। सो मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें टीकाकार रचनाविशेष दिखाते हैं—

गुण.	ज्ञाना-वरण	दर्शनाव.	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंत.	सब प्रकृतियोंका एक जीवके एक कालमें बन्धका प्रमाण
अ.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
स.	०	०	१	०	०	०	०	०	१
क्षी.	०	०	१	०	०	०	०	०	१
उ.	०	०	१	०	०	०	०	०	१
सू.	५	४	१	०	०	१	१	५	१७
अ.	५	४	१	५।४।३।२।१	०	१	१	५	२२।२१।२०।१९।१८
अ.	५	६।४	१	९	०	२८।२९।३०।३१।१।	१	५	५५।५६।५७।५८।२६
अ.	५	६	१	९	१		१	५	५६।५७।५८।५९
अ.	५	६	१	९	१	२८।२९	१	५	५६।५७
दे.	५	६	१	१३	१	२८।२९	१	५	६०।६१
अ.	५	६	१	१७	१	२८।२९।३०	१	५	६४।६५।६६
मि.	५	६	१	१७	०	२८।२९	१	५	६३।६४
सा.	५	९	१	२१	१	२८।२९।३०	१	५	७१।७२।७३
मि.	५	९	१	२२	१	२३।२५।२६।२८ २९।३०।३१।१	१	५	६७।६९।७०।७२।७३ ७४
	ज्ञाना. ५	द. ९।६।४	वे. १	२६।२२।२१। १७।१३।९।५। ४।३।२।१	आ. ४ एक	२३।२५।२६।२८ २९।३०।३१।१	गोत्र २ में एक	अं. ५	

इसका आशय यह है कि एक जीवके एक कालमें ज्ञानावरणकी पाँच ही प्रकृतियोंका बन्ध होता है। दर्शनावरणकी नौका, छहका अथवा चारका बन्ध होता है। वेदनीयकी दोमें एकका ही बन्ध होता है। मोहनीयकी छब्बीसमें-से बाइस या इक्कीस या सतरह या तेरह या नौ या पाँच चार दो और एकका बन्ध होता है। आयु चारमें-से एक ही बँधती है। नामकर्मकी तेईस या पच्चीस या छब्बीस या अठाईस या उनतीस या तीस या इकतीस या एक प्रकृतिका बन्ध होता है। गोत्र दोमें-से एक बँधता है। अन्तराय पाँचका ही बन्ध होता है।

यिल्लि मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळ स्थानविकल्पंगळगे प्रत्येकं प्रकृतिभेददिं भंगंगळु पुट्टुगुमें दें तें दोडे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ६७ स्थानमेकप्रकारमेयक्कुमत्त ६९ मरुवत्तों भत्तर
१ ९
स्थानदोळु नवभंगंगळप्पुवु । मत्तं ७० २ स्थानदोळु ८ भंग गळप्पुवु । मत्तं ७२ स्थानदोळु नव-
८ ९
भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७३ रर स्थानदोळो भत्तुसासिरवइन्नूर हदिनारु ९२१६ भंगंगळप्पुवु । मत्तं
९२१६
५ ७४ र स्थानदोळु ४६०८ भंगंगळप्पुवु । सासादनन ७१ र स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु ।
४६०८ ८
मत्तं ७२ र स्थानदोळु ६४०० भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७३ रर स्थानदोळु ३२०० भंगंगळ-
६४०० ३२००
प्पुवु । मिश्रन ७३ रर स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ७४ र स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु ।
८ ८
असंयतन अरुवत्तनाल्कर ६४ र स्थानदोळु एंदु ८ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ६५ र स्थानदोळु
८ १६
१६ भंगंगळप्पुवु । मत्तं ६६ रर स्थानदोळु ८ भंगंगळप्पुवु । देशसंयतन ६० । ६१ एंटेंदु भंगं-
८ ८ । ८

१० अत्र गुणस्थानेषु स्थानविकल्पानां प्रकृतिभेदेन भङ्गा उत्पद्यन्ते । तत्र मिथ्यादृष्टौ ६७ स्थाने एको १ भङ्गः । पुनः ६९ स्थाने ९ नवभङ्गाः पुनः ७० स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ७२ स्थाने नव ९ । पुनः ७३ स्थाने नवसहस्रद्विशतषोडश ९२१६ । पुनः ७४ स्थाने ४६०८ । सासादनस्य ७१ स्थाने अष्टौ ८ । पुनः ७२ स्थाने ६४०० । पुनः ७३ स्थाने ३२०० । मिश्रस्य ६३ स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ६४ स्थाने अष्टौ ८ । असंयतस्य ६४ स्थानेऽष्टौ ८ । पुनः ६५ स्थाने १६ । पुनः ६६ स्थानेऽष्टौ ८ । देशसंयतस्य ६० । ६१ अष्टावष्टौ । अप्रमत्तस्य

१५ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण नौ, वेदनीय एक, मोहनीय बाईस, आयु एक, नामकर्म तेईस या पच्चीस या अठाईस या उनतीस या तीसका, गोत्र एक और अन्तराय पाँचका बन्ध होता है । सब प्रकृतियोंको जोड़नेपर सड़सठ या उनहत्तर या सत्तर, या बहत्तर या तेहत्तर या चौहत्तरका बन्ध होता है । इसी प्रकार सासादन आदि गुणस्थानोंमें भी ऊपर कहे अनुसार जानना ।

२० प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग होते हैं । जैसे चौहत्तरके बन्धमें वेदनीय कर्मका बन्ध है । उसमें साता या असाताके बन्धकी अपेक्षा दो भंग होते हैं । इसी प्रकार प्रकृतियोंके घटने-बढ़नेसे स्थानभेद होते हैं । और एक ही स्थानमें प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग होते हैं । वही कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सड़सठके स्थानमें एक भंग है । उनहत्तरके स्थानमें नौ भंग हैं । सत्तरके
२५ स्थानमें आठ भंग हैं । बहत्तरके स्थानमें नौ भंग हैं । तेहत्तरके स्थानमें बानबे सौ सोलह भंग हैं । चौहत्तरके स्थानमें छियालीस सौ आठ भंग हैं । सासादनमें इकहत्तरके स्थानमें आठ भंग हैं । बहत्तरके स्थानमें चौंसठ सौ भंग हैं । तेहत्तरके स्थानमें बत्तीस सौ भंग हैं । मिश्रमें तिरसठ चौंसठ दोनों स्थानोंमें आठ-आठ भंग हैं । असंयतमें चौंसठ, पैंसठ, छियासठके स्थानोंमें आठ-आठ भंग हैं । देशसंयतमें साठ और इकसठके स्थानमें आठ-आठ भंग हैं ।

गळप्पुवु । प्रमत्तन ५६ । ५७ एंटेंदु भंगंगळप्पुवु । अप्रमत्तन ५६ । ५७ । ५८ । ५९ स्थानंग-
८ । ८ १ १ १ १
ळोळु प्रत्येकमों दों दप्पुवु । अपूर्वकरणन ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । २६ एकैकभंगंगळप्पुवु ।
१ १ १ १
अनिवृत्तिकरणन २२ । २१ । २० । १९ । १८ एकैकभंगंगळेयप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायन १७ र
१ १ १ १ १ १
स्थानदोळेकभागमेयक्कुमी भंगंगळु मुंदे नामस्थानकथनदोळु सुव्यक्तमादपुवु ॥

अनंतरं प्रकृतिप्रदेशबंधंगळ्गे कारणयोगस्थानंगळ स्वरूपसंख्यास्वामिगळं द्विचत्वारिंशद्गा- ५
थासूत्रंगळिदं पेळ्दपरु :

जोगट्ठाणा तिविहा उववादेयंतवड्ढिपरिणामा ।
भेदा एक्केक्कंपि य चोद्दसभेदा पुणो तिविहा ॥२१८॥

योगस्थानानि त्रिविधान्युपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदादेकैकमपि च चतुर्दशभेदानि पुनस्त्रि-
विधानि ॥

योगस्थानानि योगस्थानंगळ उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदात् उपपादएकान्तानुवृद्धिपरि- १०
णामभेदर्दिदं त्रिविधानि त्रिप्रकारंगळप्पुवु । च मत्तं एकैकमपि उपपादैकांतवृद्धिपरिणामगळा-
कैकमुं प्रत्येकं चतुर्दश भेदानि चतुर्दशभेदंगळनुळ्ळुवु । पुनः मत्तं त्रिविधानि सामान्यजघन्योत्कृष्ट-

---

५६ । ५७ अष्टावष्टौ । अप्रमत्तस्य ५६ ५७ ५८ ५९ एकैकः । अपूर्वकरणस्य ५५ ५६ ५७ ५८ २६ एकैकः
१ १ १ १ १
अनिवृत्तिकरणस्य २२ । २१ । २० । १९ । १८ एकैकः । सूक्ष्मसांपरायस्य १७ स्थाने एकः । एते भङ्गा १५
१ १ १ १ १ १
अग्रे नामस्थानकथने सुव्यक्तं संति ॥२१७॥ अथ प्रकृतिप्रदेशबन्धकारणयोगस्थानानां स्वरूपसंख्यास्वामिनो द्विचत्वारिंशद्गाथाभिराह—

योगस्थानानि उपपादैकान्तवृद्धिपरिणामभेदात्त्रिविधानि । च—पुनः तेषामेकैकमपि प्रत्येकं चतुर्दशभेदं

प्रमत्तमें छप्पन और सत्तावनके स्थानमें आठ-आठ भंग हैं। अप्रमत्तमें छप्पन, सत्तावन, अठावन और उनसठके स्थानोंमें एक-एक भंग है। अपूर्वकरणमें पचपन, छप्पन, सत्तावन, २०
अठावन और छब्बीसके स्थानोंमें एक-एक भंग हैं। अनिवृत्तिकरणमें बाईस, इक्कीस, बीस, उन्नीस और अठारहके स्थानोंमें एक-एक भंग है। सूक्ष्म साम्परायमें सतरहके स्थानमें एक भंग है। ये भंग आगे नामकर्मके स्थानोंमें प्रकट करेंगे ॥२१७॥

आगे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्धके कारण योगस्थानोंका स्वरूप, संख्या और स्वामी बयालीस गाथाओंसे कहते हैं— २५

योगस्थान तीन प्रकारके हैं—उपपाद योगस्थान, एकान्तवृद्धि योगस्थान और परिणाम योगस्थान। उनमेंसे एक-एक भेदके चौदह जीव समासोंकी अपेक्षा चौदह-चौदह भेद होते हैं। ये चौदह-चौदह भेद भी सामान्य, जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारके हैं।

भेदविदं त्रिविधंगळप्पुवु :

उपपा	एकां	परिणा
१४	१४	१४ सा
२८	२८	२८ सा ज
४२	४२	४२ सा ज उ

अनंतरं सामान्य सामान्य जघन्य सामान्य जघन्योत्कृष्टभेदविदं १४। २८। ४२। पविनाल्कुमिप्पत्तेंदु नाल्वत्तेरडुमुपपादयोगस्थानंगलगुपपत्तियं पेळ्दपरु :—

उववादजोगठाणा भवादिसमयट्ठियस्स अवरवरा ।
विग्गहउजुगइगमणे जीवसमासेसु णायव्वा ॥२१९॥

उपपादयोगस्थानानि भवादिसमयस्थितस्यावरवराणि । विग्रहर्ज्जुगतिगमने जीवसमासेषु ज्ञातव्यानि ॥

उपपादयोगस्थानानि उपपादयोगस्थानंगळु भवादिसमयस्थितस्य पूर्व्वभवशरीरमं बिट्टुत्तर भवदादिसमयदोळिरुत्तिर्प्पंगे । अवरवराणि जघन्योत्कृष्टयोगंगळु विग्रहर्ज्जुगतिगमने विग्रहगतियिंदमुत्तरभवक्कं सलुवल्लियुं ऋजुगतिगमनदिंदमुत्तरभवक्कं सलुवल्लियुं । यथासंख्यमागिजघन्योपपादयोगस्थानंगळुमुत्कृष्टोपपादयोगस्थानंगळु जीवसमासेषु चतुर्द्दशजीवसमासेगळोळुक्तरचनाविशेषदोळु ज्ञातव्यानि अरियल्पडुवुवु । उपपद्यते प्राप्यते भवप्रथमसमयो जंतुनेत्युपपादः । एंदितु उपपाद-

---

भवति । तेऽपि भेदाः पुनः सामान्यजघन्योत्कृष्टभेदात्त्रिविधा भवन्ति ॥२१८॥ अथ सामान्यजघन्यसामान्योत्कृष्टभेदेन १४ । २८ । ४२ चतुर्दशाष्टाविंशतिद्वाचत्वारिंशदुपपादयोगस्थानानामुत्पत्तिमाह—

उपपादयोगस्थानानि उत्तरभवस्य आदिसमये स्थितस्य, विग्रहगत्योत्तरभवगमने जघन्यानि, ऋजुगत्यात्रोत्कृष्टानि भवन्ति । तानि जीवसमासे चतुर्दशसूक्तरचनाविशेषे ज्ञातव्यानि । उपपाद्यते प्राप्यते भव-

---

सामान्यके भेदसे चौदह भेद हैं, सामान्य और जघन्यके भेदसे अठाईस भेद हैं। तथा सामान्य, जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे बयालीस भेद हैं ॥२१८॥

आगे उपपाद योगस्थानका स्वरूप कहते हैं—

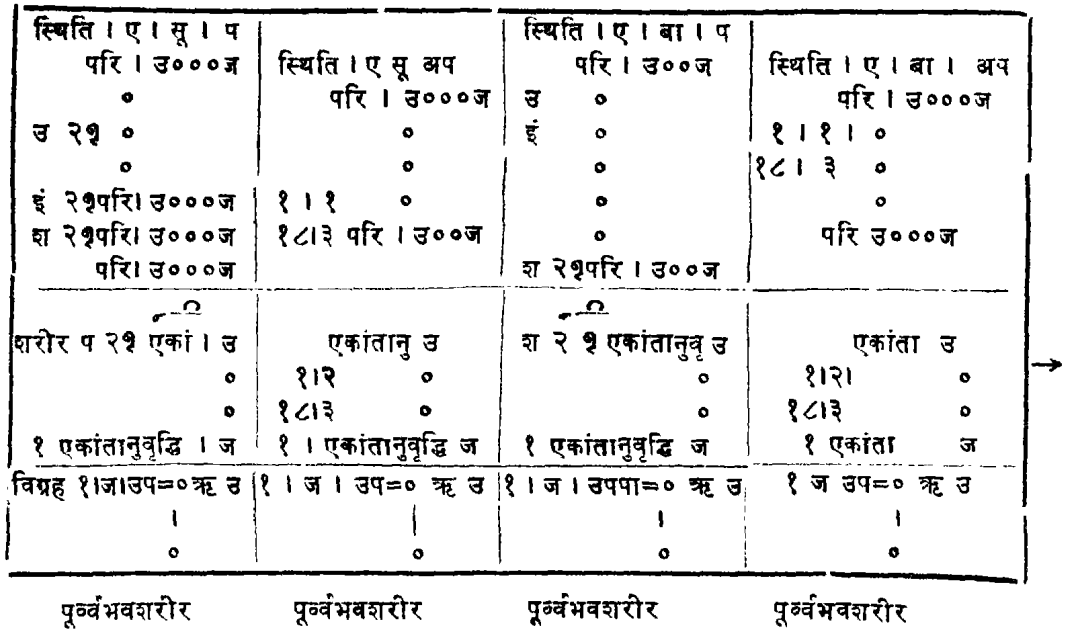
भवके प्रथम समयमें स्थित जीवके उपपाद योगस्थान होता है। जो जीव विग्रह गतिसे जाकर नवीन भव धारण करता है उसके जघन्य उपपाद योगस्थान होता है। और जो बिना मोड़ेवाली ऋजुगतिसे जाकर नवीन भव धारण करता है उसके उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान होता है। वे चौदह जीव समासोंमें होते हैं। 'उपपद्यते' अर्थात् जो जीवके द्वारा

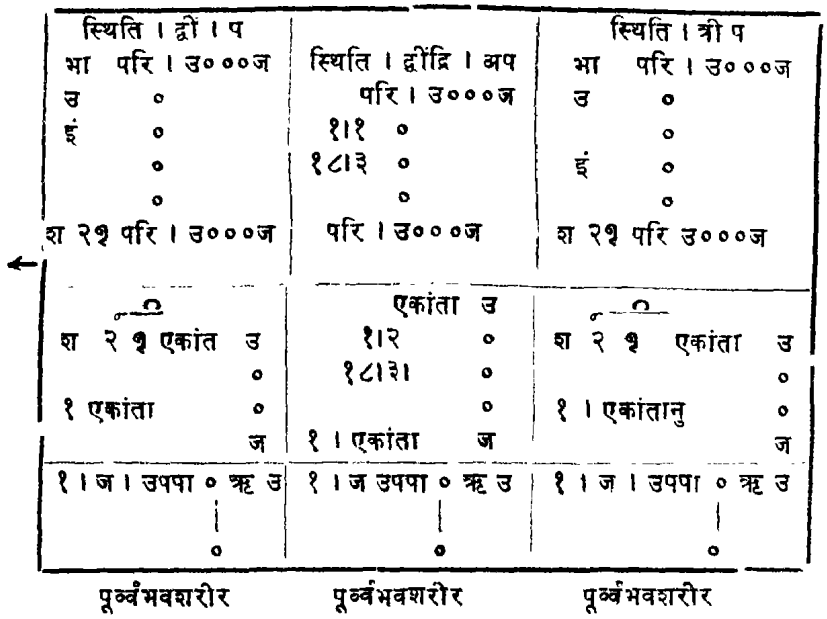
---

१. ब सामान्यसामान्यजघन्यसामान्यज° ।

योगव सामान्य सामान्यजघन्य सामान्यजघन्योत्कृष्टयोगभेदंगळनितुं भवप्रथमसमयसंभविगळप्पु-वेंबुवर्त्थमनंतरं परिणामयोगक्के पेळ्दपरु :—

प्रथमसमये जन्तुना इत्युपपादः । तस्य सामान्यादिभेदाः सर्वेऽपि भवप्रथमसमये एव संभवतीत्यर्थः ।





भवके प्रथम समयमें प्राप्त किये जाते हैं वे उपपाद योगस्थान हैं। उसके सब सामान्य आदि भेद भवके प्रथम समयमें ही होते हैं ॥२१९॥

परिणामजोगठाण सरीरपज्जत्तगादु चरिमोत्ति ।
लद्धियपज्जत्ताणं चरिमतिभागम्हि बोद्धव्वा ॥२२०॥

परिणामयोगस्थानानि शरीरपर्य्याप्तेस्तु चरमपर्य्यंतं । लब्ध्यपर्य्याप्तकानां चरमत्रिभागे बोद्धव्यानि ॥

परिणामयोगस्थानानि परिणामयोगस्थानंगळु तु मत्त शरीरपर्य्याप्तेः शरीरपर्य्याप्ति-प्रथमसमयं मोदल्गों डु चरमसमयपर्य्यंतं स्वस्वस्थितिचरमसमयपर्य्यंतं बोद्धव्यानि अरियल्पडुवुवु ।

स्थिति । त्री । अप	स्थिति । चप	स्थिति । च । अप	स्थिति । असं । प
परि । उ०००ज	परि । उ०००ज	परिणा । उ०००ज	भा परि । उ०००ज
१ । १ ०	०	१।१। ०	०
१८। ३ ०	भा ०	१८।३ ०	उ ०
०	उ ०	०	०
०	इं ०	०	इं ०
परि । उ०००ज	श २ १ परि।उ०००ज	परि । उ०००ज	श २ १ परि । उ०००ज
उ	०	१।२ एकांतानु उ	०
१।२ एकांता ०	श २ १ एकांतानु उ	१८।३ ०	श २ १ एकांतानुवृ उ
१८।३ ०	०	०	०
०	१ एकांतानु ०	०	१ । एकांतानु ०
१ । एकांतानुवृद्धि ज	०	१ एकांतानु ज	ज
१ ज उपपा ० ॠ । उ	१।ज।उपपा ० ॠ । उ	१ । ज । उपपा०ॠ । उ	१।ज । उपपा ० ॠ । उ
|	|	|	|
०	०	०	०

स्थिति । असं । अप	स्थिति । सं । प	स्थिति । सं । अप
परि । उ०००ज	म परि । उ०००ज	परि । उ०००ज
१।१। ०	०	१।१। ०
१८।३ ०	भा ०	१८।३ ०
०	उ ०	०
परि । उ०००ज	इं ०	परि । उ०००ज
	श २१ परि । उ०००ज	
एकांतानु उ	०	एकांतानु उ
१।२। ०	श २ १ एकांतानु उ	१।२। ०
१८।३ ०	०	१८।३ ०
०	१ एकांतानु ०	०
१ । एकांतानु ज	ज	१ । एकांतानुवृद्धि ज
१ । ज । उपपा ० ॠ उ	१ । ज । उपपा ० ॠ उ	१ । ज । उपपा ० ॠ । उ
|	|	|
०	०	०

॥२१९॥ अथ परिणामयोगस्थाह—

परिणामयोगस्थानानि तु-पुनः पूर्णशरीरपर्याप्तिप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं ज्ञात-

परिणाम योगस्थान शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके प्रथम समयसे लेकर अपनी आयुके

१. ब पुनः शरीर° ।

लब्ध्यपर्य्याप्तकानां लब्ध्यपर्य्याप्तकरुगळो चरमत्रिभागे स्वस्थितियुच्छ्वासाष्टादशैकभागमक्कुमवर चरमत्रिभागप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं परिणामयोगस्थानंगळु बोद्धव्यानि अरियल्पडुवुवु ।

सगपज्जत्तीपुण्णे उवरिं सव्वत्थ जोगमुक्कस्सं ।
सव्वत्थ होदि अवरं लद्धिअपुण्णस्स जेट्ठं पि ॥२२१॥

स्वपर्य्याप्तौ पूर्णायामुपरि सर्व्वत्र योग उत्कृष्टः । सर्व्वत्र भवत्यवरो लब्ध्यपर्य्याप्तकस्योत्कृष्टोऽपि ॥

स्वपर्य्याप्तौ पूर्णायां सत्याम् स्वशरीरपर्य्याप्तिपरिपूर्णमागुत्तं विरलु तच्छरीरपर्य्याप्तिप्रथमसमयं मोदल्गोंडु उपरि मेले सर्व्वत्र सर्व्वस्थितिसमयंगळोळु उत्कृष्टयोगः उत्कृष्टयोगमुं सर्व्वत्र सर्व्वस्थितिसमयंगळोळु अवरो योगः जघन्ययोगमुं भवति परिणामयोगवोळक्कुं । लब्ध्यपर्य्याप्तकस्य लब्ध्यपर्य्याप्तकंगो स्वस्थितियुच्छ्वासाष्टादशैकभागचरमत्रिभागप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं मेले सर्व्वस्थितिसमयंगळोळु उत्कृष्टः उत्कृष्टपरिणामयोगमुं अपि सर्व्वत्र जघन्यपरिणामयोगमुं भवति अक्कुमेकेंदोडे पर्य्याप्तजीवंगळ परिणामयोगस्थानंगळनितुं घोटमानयोगंगळप्पुदरिंदं । हानिवृद्ध्यवस्थानरूपेण परिणम्यत इति परिणाम येंबितु निरुक्तिसिद्धमक्कुं ।

अनंतरमेकांतानुवृद्धियोगक्के सामान्यजघन्योत्कृष्टस्थानंगळं जीवसमासेगळं कटाक्षिसि पेळ्दपरु :—

व्यानि । लब्ध्यपर्याप्तकाना च स्वस्थितेरुच्छ्वासाष्टादशकभागस्य चरमत्रिभोगप्रथमसमयादि कृत्वा चरमपर्यन्तं ज्ञातव्यानि ॥२२०॥

स्वस्वशरीरपर्याप्तौ पूर्णायां तत्प्रथमसमयात्प्रभृति उपरि सर्वस्थितिसमयेषु परिणामयोगस्य उत्कृष्टमपि सर्वस्थितिसमयेषु जघन्यमपि भवति । लब्ध्यपर्याप्तकस्वस्वस्थितेरुच्छ्वासाष्टादशैकभागस्य चरमत्रिभागप्रथमसमयमादि कृत्वा चरमसमयपर्यन्तं सर्वस्थितिविकल्पेषु उत्कृष्टपरिणामयोगोऽपि जघन्यपरिणामयोगोऽपि भवति । उभयजीवानां तानि योगस्थानानि सर्वाण्यपि घोटमानयोगा एव स्युः, हानिवृद्धचवस्थानरूपेण परिणमनात् ॥२२१॥ अथैकान्तानुवृद्धियोगस्याह—

अन्त समय पर्यन्त होते हैं । लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण अपनी स्थितिके अन्तिम त्रिभागके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त होते हैं ॥२२०॥

अपनी-अपनी शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर उसके प्रथम समयसे लेकर ऊपर आयुके सब समयोंमें परिणाम योगस्थान होता है । तथा सब समयोंमें उत्कृष्ट भी होता है और जघन्य भी होता है । तथा लब्ध्यपर्याप्तककी अपनी स्थिति उवासके अठारहवें भाग प्रमाण है । उसके अन्तिम त्रिभागके पहले समयसे लगाकर अन्तिम समय पर्यन्त सब स्थितिके समयोंमें उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान भी होता है और जघन्य परिणाम योगस्थान भी होता है । पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही प्रकारके जीवोंके वे सब परिणाम योगस्थान घोटमान योग ही होते हैं क्योंकि ये घटते भी हैं, बढ़ते भी हैं और जैसेके तैसे भी रहते हैं ॥२२१॥

आगे एकान्तानुवृद्धि योगस्थानको कहते हैं—

एयंतवड्ढिट्ठाणा उभयट्ठाणाणमंतरे होंति ।
अवरवरट्ठाणाओ सगकालादिम्मि अंतम्हि ॥२२२॥

एकान्तवृद्धिस्थानान्युभयस्थानानामन्तरस्मिन्भवंति । अवरवरस्थानानि स्वकालादावंते ॥

एकान्तवृद्धिस्थानानि एकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगळु पर्य्याप्तजीवंगळ रूपोनशरीरपर्य्याप्तिकालपर्य्यन्तांतर्म्मुहूर्त्त-चरमसमय-पर्य्यंतमुपपादयोग-परिणामयोगंगळेंबुभय-नामयोगंगळंतराळदोळप्पुवु । अवरवरस्थानानि जघन्योत्कृष्टस्थानंगळु स्वकालादावंते तदेकांतवृद्धि योगकालदादियोळु जघन्ययोगमक्कुमन्तदोळु चरमसमयदोळुत्कृष्टयोगमक्कुमदु कारणमागि एकान्तेन नियमेन स्वकालप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्य्यंतं प्रतिसमयमसंख्यातगुणितक्रमेण तद्योग्याविभागप्रतिच्छेदवृद्धिर्य्यस्मिन् स एकान्तवृद्धियोगः येंदितु निरुक्तिसिद्धमप्प योगमेकान्तवृद्धियोगमेंबुदक्कु । मिन्तुक्तयोगविशेषंगळनितुं मुन्नं स्थापिसिद चतुर्द्दशजीवसमासरचनाविशेषदोळतिव्यक्तमप्पुदरिंद मदु भाविसल्पडुगुं ॥

अनंतरं योगस्थानदवयवंगळं पेळ्दपरु :—

अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्डयगं ।
गुणहाणीवि य जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण ॥२२३॥

अविभागप्रतिच्छेदो वर्गः पुनर्व्वर्गणा च स्पर्द्धकं । गुणहानिरपि च जानीहि स्थानं प्रति भवेन्नियमेन ॥

समस्तयोगस्थानंगळु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुववरोळु अविभागप्रतिच्छेदाः अविभागप्रतिच्छेदंगळेंदुं वर्गः वर्गमेंदुं पुनः मत्ते वर्गणा च वर्गणेयेंदुं स्पर्द्धकं स्पर्द्धकमेंदुं

एकांतानुवृद्धियोगस्थानानि पर्याप्तजीवानां रूपोनशरीरपर्याप्तिकालस्य अंतर्मुहूर्तचरमसमयपर्यन्तं उपपादपरिणामयोगयोः अंतराले भवति । तस्य जघन्यस्थानानि स्वकालस्य आदौ उत्कृष्टानि च अंते भवन्ति । तत एवैकांतेन नियमेन स्वकालप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यन्तं प्रतिसमयसंख्यातगुणितक्रमेण तद्योग्याविभागप्रतिच्छेदवृद्धिर्यस्मिन् स एकांतानुवृद्धिरित्युच्यते । एवमुक्तयोगविशेषाः सर्वेऽपि पूर्वस्थापितचतुर्दशजीवसमासरचनाविशेषेऽतिव्यक्तं संभवंतीति संभावयितव्याः ॥२२२॥ अथ योगस्थानस्यावयवानाह —

समस्तयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि । तेषु अविभागप्रतिच्छेदः, वर्गः पुनः वर्गणा स्पर्धकं

एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पर्याप्त जीवोंके एक समय कम शरीर पर्याप्ति काल अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समय पर्यन्त उपपाद और परिणाम योगस्थानोंके मध्यमें होता है। उसका जघन्य स्थान तो अपने कालके आदिमें और उत्कृष्ट अन्तमें होता है। इसीसे एकान्त अर्थात् नियमसे अपने कालके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त प्रतिसमय असंख्यात गुणे-असंख्यातगुणे अपने योग्य अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि जिसमें हो उसे एकान्तानुवृद्धि कहते हैं। इस प्रकार कहे सब योगविशेष चौदह जीव समासोंमें होते हैं ॥२२२॥

आगे योगस्थानके अवयव कहते हैं—

समस्त योगस्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। उनमें अविभाग

गुणहानिरपि च गुणहानियुमेंदुं स्थानं प्रति प्रतिस्थानदोळं भवति नियमेन अक्कुं नियमदिंदमेंदिवं जानीहि नीनरियें दु शिष्य संबोधिसल्पट्टनल्लि :—

पल्लासंखेज्जदिमा गुणहाणिसला हवंति इगिठाणे ।
गुणहाणि फड्डयाओ असंखभागं तु सेडीए ॥२२४॥

पल्यासंख्यातैकभागा गुणहानिशलाका भवंति एकस्थाने । गुणहानिस्पर्द्धकान्यसंख्यभागस्तु श्रेण्याः ॥

एकस्थाने एकयोगस्थानदोळु । पल्यासंख्यातैकभागाः पल्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळु गुणहानिशलाका भवन्ति गुणहानिशलाकेगळप्पुवु प नानागुणहानिशलाकेगळेंबुदत्थं । गुणहानि-
ɔɔ
स्पर्द्धकानि एकगुणहानिस्पर्द्धकंगळु तु मत्ते श्रेण्याः जगच्छ्रेणिय असंख्यभागाः असंख्यातैकभागप्रमितंगळप्पुवु
।
ɔɔ

फड्ढयगे एक्केक्के वग्गणसंखा हु तत्तियालावा ।
एक्केक्कवग्गणाए असंखपदरा हु वग्गाओ ॥२२५॥

स्पर्द्धके एकैकस्मिन् वर्गणासंख्या खलु तावन्मात्रालापा । एकैकवर्गणायामसंख्यप्रतराः खलु वर्गाः ॥

एकैकस्मिन् स्पर्द्धके एकैकस्पर्द्धकदोळु वर्गणासंख्या वर्गणासंख्ये खलु स्फुटमागि तावन्मात्रालापा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रालापमुळ्ळुदक्कुं ɔ एकैकवर्गणायाम् एकैकवर्गणेयोळु
।
वर्गाः वर्गंगळु असंख्यप्रतराः असंख्यातगुणितजगत्प्रतरप्रमितंगळप्पुवु । = ɔ

गुणहानिरपि च स्थानं प्रति भवतीति नियमेन जानीहि ॥२२३॥

एकस्मिन् स्थाने गुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातैकभागमात्रो भवन्ति पं नानागुणहानिशलाका
ɔ ɔ

इत्यर्थः । एकैकगुणहानिस्पर्धकानि तु पुनः श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितानि
ɔ ɔ
॥२२४॥

एकैकस्मिन् स्पर्धके वर्गणासंख्या खलु स्फुटं तावन्मात्रालापाः श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रालापा भवन्ति ɔ एकैकस्या वर्गणायां पुनः वर्गाः असंख्यातजगत्प्रतरप्रमिता भवन्ति = ɔ ॥२२५॥

प्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और गुणहानि प्रत्येक योगस्थानमें होते हैं यह नियमसे जानना ॥२२३॥

एक योगस्थानमें गुणहानि शलाका पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। यह नाना गुणहानि शलाका जानना। तथा एक-एक गुणहानिमें स्पर्धक जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ॥२२४॥

एक-एक स्पर्धकमें वर्गणाओंकी संख्या भी उतनी ही अर्थात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है। और एक-एक वर्गणामें असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग होते हैं ॥२२५॥

---

१. ब एकैक व ।

एक्केक्के पुण वग्गे असंखलोगा हवंति अविभागा ।
अविभागस्स पमाणं जहण्णउड्ढी पदेसाणं ॥२२६॥

एकैकस्मिन् पुनर्वर्गे असंख्यलोका भवन्त्यविभागाः । अविभागस्य प्रमाणं जघन्यवृद्धिः प्रदेशानां ॥

पुनः मत्ते एकैकस्मिन्वर्गे एकैकवर्गदोळ् असंख्यलोका भवन्त्यविभागाः असंख्यातलोकंगळविभागंगळप्पुवु ≡a अविभागस्य प्रमाणं अविभागद प्रमाणमुं प्रदेशानां जगच्छ्रेणीघनप्रमितजीवप्रदेशंगळ मध्यदोळु जघन्यवृद्धिः सर्व्वजघन्यवृद्धियेनितनितक्कुं । अविभागशक्त्यंशमक्कुमेंबुदत्थं । यितविभागप्रतिच्छेदादिगळु विलोमक्रमदिंदं पेळल्पट्टुवदुकारणमागि अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः, वर्गसमूहो वर्गणा, वर्गणासमूहः स्पर्द्धकं स्पर्द्धकसमूहो गुणहानिः गुणहानिसमूहःस्थानमेंदु पेळ्दं तेरनक्कुमेकयोगस्थानदोळु गुणहानिशलाकेगळु प एकगुणहानि-
∂∂

स्पर्द्धकंगळु ∂∂ एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळु ∂ एकवर्गणावर्गंगळु =a एकवर्गाविभागप्रतिच्छेदंगळु ≡a अविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं जीवप्रदेशंगळोळ् जघन्याविभागिशक्त्यंशमक्कुं ॥

अनंतरमेकयोगस्थानगतसर्व्वस्पर्द्धकादिगळ प्रमाणमं पेळ्दपरु :—

इगिठाणफड्डयाओ वग्गणसंखा पदेसगुणहाणी ।
सेडिअसंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा ॥२२७॥

एकस्थानस्पर्द्धकानि वर्गणासंख्या प्रदेशगुणहानिः । श्रेण्यसंख्येयभागाः असंख्यलोकाः खल्वविभागाः ॥

एकस्थानस्पर्द्धकानि येकयोगस्थानगतसर्व्वस्पर्द्धकंगळुं वर्गणासंख्या अहंगे एकयोगस्थानगतवर्गणासंख्येयुं प्रदेशगुणहानिः प्रदेशगुणहान्यायाममुं प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभागाः सामान्यालापदिंदं

पुनरेकैकस्मिन् वर्गे असंख्यातलोका अविभागा भवन्ति ≡a अविभागस्य प्रमाणं पुनः आत्मप्रदेशानां सर्वजघन्यवृद्धिः अविभागशक्त्यंशः इत्यर्थः । एवं विलोमगत्योक्तम् । तेन अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः । वर्गसमूहो वर्गणा । वर्गणासमूहः स्पर्धकम् । स्पर्धकसमूहो गुणहानिः । गुणहानिसमूहः स्थानमिति ज्ञातव्यम् ॥२२६॥ अथैकयोगस्थानगतसर्वस्पर्धकादीनि प्रमाणयति—

एकयोगस्थानस्य सर्वस्पर्धकानि सर्ववर्गणासंख्या प्रदेशगुणहान्यायामश्च प्रत्येकं श्रेण्यसंख्येयभाग

एक-एक वर्गमें असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। अविभागका प्रमाण प्रदेशोंकी जघन्य वृद्धिरूप जानना। परमार्थसे जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे शक्तिके अंशको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। गाथाओंमें उलटे रूपसे कहा है। अतः अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। वर्गोंका समूह वर्गणा है। वर्गणाओंका समूह स्पर्धक है। स्पर्धकोंका समूह गुणहानि है और गुणहानियोंका समूह स्थान है, ऐसा जानना ॥२२६॥

आगे एक योगस्थानमें सब स्पर्धक आदिका प्रमाण कहते हैं—

एक योगस्थानमें सब स्पर्धक, सब वर्गणाओंकी संख्या और असंख्यात प्रदेशोंमें गुणहानि आयामका प्रमाण ये सब सामान्यसे जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं। किन्तु

जगच्छ्रेण्यसंख्येयभागंगळप्पुवु। वस्तुवृत्तियिंदं हीनाधिक भावंगळप्पुवदेंतेंदोडे प्र गु १ प स्प
।
अअ इ गु प बंद लब्धमेकस्थानगतसर्व्वस्पर्द्धकंगळ प्रमाणमक्कुं। =अअ प मत्तं। प्र स्प
अअ
—
१। फ व अ इ स्प अअ प बंद लब्धमेकस्थानगतसर्व्ववर्ग्गणाप्रमाणमक्कुं अअ×अअ मत्तं। प्र
अअ
स्प १। फ। व अ इ। स्प। अ अ बंद लब्धमेकगुणहानिगत वर्ग्गणाप्रमितमक्कुं अअअ। यिल्लि
गुणकारंगळं नोडलु भागहारमधिकंगळो समंगळो मेण हीनंगळो येंदितु विकल्पत्रयमं माडि श्रेण्य
संख्येयभागकथनान्यथानुपपत्तियत्तणिदं भागहारमं नोडलु गुणकारंगळसंख्यातगुणहीनंगळेंदितो
गाथासूत्रदिंदमे यरियल्पडुवुवु। असंख्यलोकाः खल्वविभागाः एकस्थानगतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदं-
गळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळेयप्पुवनंतंगळल्तु। कर्म्मपरमाणुगताविभागप्रतिच्छेदंगळुमनंतसंख्या-
सर्वनिकृष्टज्ञानाविभागप्रतिच्छेदंगळुवच्छिन्नंगळप्पुवी योगस्थानविषयदोळु कर्म्मादानजीवसर्व्व-
प्रदेशशक्तियसंख्यातलोकमात्रमेयक्कुमेंबुदाचार्य्यन हृद्गतार्त्थमक्कुं॥

सामान्यालापेन भवति। वस्तुवृत्त्या तु हीनाधिकं भवति। तद्यथा—

प्र गु १ फ स्प अ अ इ गु प लब्धमेकस्थानगतस्य स्पर्धकानि भवन्ति — प पुनः प्र
अ अ अ अ

स्प फ १ व अ इ स्प — प लब्धं एकस्थानगतसर्ववर्गणाप्रमाण भवति — — प पुनः प्र
अ अ अ अ अ अ अ अ

स्प १ फ व अ इ स्प अ अ लब्धं एकगुणहानिगतवर्गणा भवन्ति अ अ अ अत्र गुणकारो भागहारा-
द्धीनोऽधिकः समो वा असंख्यातगुणहीनो ज्ञातव्यः, कुतः? श्रेण्यसंख्येयभागस्य अन्यथानुपपत्तेः। एकस्थान-
गतसमस्ताविभागप्रतिच्छेदाः खलु असंख्यातलोकप्रमिता एव, न कर्मपरमाणुवत् सर्वनिकृष्टज्ञानवद्वा अनंता

वास्तवमें परस्परमें हीन अधिक हैं। एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको एक स्थानमें जो गुणहानिका प्रमाण है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने एक योगस्थानमें स्पर्धक होते हैं तथा जो एक स्पर्धकमें वर्गणाओंका प्रमाण कहा है उसको, एक योगस्थानमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण कहा है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना एक योगस्थानमें वर्गणाओंका प्रमाण जानना। तथा एक स्पर्धकमें जो वर्गणाओंका प्रमाण जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र कहा है उसको, एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण कहा है उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना एक गुणहानिमें वर्गणाओंका प्रमाण जानना। यहाँ गुणकारका प्रमाण जगतश्रेणिके भागहारके प्रमाणसे असंख्यातगुणा हीन जानना। ऐसा न होनेसे श्रेणिका असंख्यातवाँ भाग सिद्ध नहीं हो सकता। इसीका नाम गुणहानि आयाम है। सामान्यसे ये सब जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं क्योंकि असंख्यातके भेद बहुत हैं।

---

१. ब वपुवृद्धत्वा।

सर्व्वजीवप्रदेशंगळ्। ≡नाना। प अन्योन्याभ्यस्त प एकगुणहानिस्पर्द्धकंगळ्। ə ə ।
ə ə ə

एकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकेगळ् ə एकगुणहानिसर्व्ववर्ग्गणेगळ् ə ə ə एकस्थानसर्व्ववर्ग्गणेगळ्
ə ə। ə प ई राशिगळ् नानागुणहानिशलाकेगळादियागुत्तरोत्तरराशिगळुमसंख्यातगुणितक्रमंग-
ə ə
ळप्पुवु—

अवि	वर्ग	वर्ग्गणा	स्पर्द्धक	गुण	स्थान
		—	—	प	
≡ə	=ə	ə	ə ə	ə ə	१
S	२५६	४	९	५	१

५ भवन्ति। एकजीवगतसर्वप्रदेशाः ≡ नानागु प अन्योन्याभ्यस्त प एकगुणहानिस्पर्धकानि ə ə एक-
ə ə ə
स्पर्धकवर्गणाशलाकाः ə एकगुणहानिगतसर्ववर्गणा ə ə। ə एकस्थानगतसर्ववर्गणा ə ə। ə ə ə प
एते नानागुणहानिशलाकाद्याः उत्तरोत्तरे असंख्यातगुणितक्रमा भवन्ति ॥२२७॥

एक योगस्थानमें समस्त अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं, कर्म-
१० परमाणुओं अथवा सबसे जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणकी तरह अनन्त नहीं हैं। जीवके प्रदेश लोक प्रमाण हैं। एक स्थानमें नाना गुणहानिका प्रमाण पल्यमें दो बार असंख्यातका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतना है। नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अन्योन्याभ्यस्त राशि है। सो पल्य-को एक बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतनी है। एक गुणहानिमें स्पर्धक
१५ जगतश्रेणिमें दो बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने हैं। एक स्पर्धकमें वर्गणा जगतश्रेणिको एक बार असंख्यातसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे, उतनी हैं। एक गुणहानिमें जो स्पर्धकोंका प्रमाण है उसको, एक स्पर्धकमें जो वर्गणाओंका प्रमाण है उससे गुणा करनेपर एक गुणहानिमें सब वर्गणाओंका प्रमाण होता है। उसको एक योगस्थानमें जो नाना गुणहानिका प्रमाण उससे गुणा करणेपर एक योगस्थानमें सब वर्गणाओंका
२० प्रमाण होता है। ये सब नाना गुणहानिसे लेकर क्रमसे असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे जानना ॥२२७॥

१. ब सर्वजीवप्रदेशाः।

२.

अवि	वर्ग	वर्गणा	स्पर्धक	गुण	स्थान
		—	—	प	
≡ə	=ə	ə	ə ə	ə ə	१
ब	२५६	४	९	५	१

सव्वे जीवपदेसे दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा ।
उवरिं उत्तरहीणं गुणहाणिं पडि तदद्धकमं ॥२२८॥

सर्व्वस्मिन् जीवप्रदेशे द्वयर्द्धगुणहानिभाजिते प्रथमा । उपर्य्युत्तरहीनं गुणहानिं प्रति तदर्द्धक्रमः ॥

सर्व्वस्मिन् जीवप्रदेशे सर्व्वलोकप्रमितजीवप्रदेशराशियंस्थापिसि— ५

द्रव्य	स्थिति —	गुण —	नाना — प	दो गु २	अन्योन्य प
≡	अ	अअ	अ अ	अअ	अ
३१००	४०	८	५	१६	३२≡

द्वयर्द्धगुणहानिभाजितेसाधिकद्वयर्द्धगुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु प्रथमाप्रथमवर्गणेयक्कुं ≡। मपवर्त्तितमिदु =अअ२ उपर्य्युत्तरहीनं यथा भवति तथा कृते मेले चयहीनमें तक्कुमंते
अअ२ ३
माडुत्तं विरलु गुणहानि प्रति गुणहानि-गुणहानि दप्पदे तदर्द्धार्द्धक्रममक्कुमें ते दोडे मोदलोळंक-संदृष्टितोरल्पडुगुं । सर्व्वद्रव्यं । ३१०० । ई राशियं रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं तु चरिमगुण-दव्वं यें दु रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं भागिसिदोडेकभागं चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुं ३१००/३१ १०
होदि तदो दुगुणकमं आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति अल्लिदं केळगे प्रथमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुण क्रम द्रव्यंगळप्पुवु । १००।२००।४००।८००।१६००। इंतिल्लि गुणहानिं प्रति अर्द्धार्द्धक्रमदिदं गुणहानि-

सर्वस्मिन् लोकमात्रैकजीवप्रदेशे द्वयर्धगुणहान्या भक्ते सति प्रथमवर्गणा भवति≡ अपवर्तिते एवं =
३
अअ२
अ अ २ उपर्युत्तरहीना यथा भवति तथा गत्वा गुणहानिं प्रति अर्धार्धक्रमा भवति । सा च अंकसंदृष्टौ यथा—
३
सर्वद्रव्ये ३१०० रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते चरमगुणहानिद्रव्यं भवति ३१००/३१ ततोऽधोधः १५
प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रम भवति १०० । २०० । ४०० । ८०० । १६०० । एवं प्रतिगुणहानि-

एक जीवके प्रदेश लोक प्रमाण है । उनमें डेढ़ गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम गुणहानि-के प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा होती है । उसमें एक-एक विशेष घटानेपर एक-एक वर्गणा होती है । गुणहानि गुणहानि प्रति क्रमसे आधा प्रमाण जानना । उसकी अंकसंदृष्टि इस प्रकार है— सर्वद्रव्य ३१०० को एक घाट अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर ३१००/३१ २० अन्तिम गुणहानिका द्रव्य आता है । उससे नीचे-नीचे प्रथम गुणहानिपर्यन्त दूना-दूना होता

१.

द्रव्य	स्थिति —	गुण —	नाना प	दोगु — २	अन्योन्या प
≡	अ	अअ	अ अ	अ अ	अ
३१००	४०	८	५	१६	३२

द्रव्यंगळप्पुवु। सव्वे जीवपदेसे सव्वजीवप्रदेशंगळोळु मूरु सावि॒रद नूरु संदृष्टियक्कु। ३१००। मिदं द्वयर्द्धगुणहानिभाजिते साधिकद्वयर्द्धगुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु प्रथमा प्रथमवर्गणेयक्कु-। मिल्लियधिकप्रमाणमेनितेंदोडे प्र २५६। फ। श १। इ ३१००। एनितु शलाकेगळक्कुमेंदोडे

लब्धं साधिकद्वयर्द्धगुणहानिप्रमाणमक्कुं १२।७ मिदरिंदं ७७५ द्रव्यमं भागिसुत्तं विरलु—
६४ ६४

३१००।६४ प्रथमा प्रथमगुणहानि प्रथमस्पर्द्धक प्रथमवर्गणाप्रमाणमक्कुं। २५६। उपर्युपरितनहीनं
७७५

मेले विशेषहीनमागुत्तं प्रथमगुणहानिचरमस्पर्द्धकचरमवर्गणेपर्य्यंतं पोगि चरम वर्गणेयोळु रूपोनगच्छमात्रविशेषहीनंगळप्पुवु १४४ इल्लि विशेषप्रमाणमेनितेंदोडे प्रथमवर्गणेयं दो
१६०
१७६
१९२
२०८
२२४
२४०
२५६

द्रव्याणि अर्धार्धक्रमेण सिद्धानि। पुनः सर्वजीवप्रदेशे शताधिकत्रिसहस्रे ३१०० साधिकद्वयर्धगुणहान्या भाजिते प्रथमवर्गणा भवति। यद्येतावतः प्र २५६ एका शलाका फ श १ तदैतावतः इ ३१०० किमिति? लब्धं साधिकद्वयर्धगुणहानिप्रमाणं १२।७ अनेन ७७५ द्रव्ये भक्ते ३१०० । ६४ प्रथमगुणहानिस्पर्धकप्रथमवर्गणा-
६४ ६४ ७७५

प्रमाणं भवति २५६। उपर्युपरितनहीनं भूत्वा प्रथमगुणहानिचरमस्पर्धकचरमवर्गणाया रूपोनगच्छमात्रविशेषैर्हीयते—१४४
१६०
१७६
१९२
२०८
२२४
२४०
२५६

है—१००।२००।४००।८००।१६००। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य क्रमसे आधा-आधा सिद्ध होता है। सब जीवके प्रदेश तीन हजार एक सौमें ३१०० साधिक डेढ़ गुणहानिसे भाग देनेपर प्रथम वर्गणा होती है। यदि २५६ की एक गुणहानि होती है तो ३१०० की कितनी होगी। ऐसा त्रैराशिक करनेपर साधिक गुणहानिका प्रमाण १२ ७/६४ होता है। इसमें ७७५/६४ द्रव्यमें भाग देनेपर ३१०० × ६४ / ७७५ प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रमाण २५६ होता है। ऊपर उत्तरोत्तर हीन होकर प्रथम गुणहानिके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणामें एक हीन गच्छमात्र चय घटते हैं। यथा २५६।२४०।२२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४।

गुणहानियिंदं भागिसिदोडे $\frac{२५६}{१६}$ क्क भागं विशेषप्रमाणमक्कु १६ मिन्तेल्ला गुणहानिगळ प्रथमवर्गणेयं दोगुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु तंतम्म गुणहानियोळु विशेषप्रमाणमक्कु १ मत्तु
२
४
८
१६

कारणदिंदमी दोगुणहानिगे निषेकहारमेंब पेसरक्कुं। गुणहाणि पडि तद्द्रव्यक्रमं गुणहानिगुणहानिदप्पदे द्रव्यंगळुं वर्गणेगळुं विशेषंगळुमर्द्धार्द्धक्रमंगळप्पुवेंदितु निश्चयि-

७२	३६	१८	९
८०	४०	२०	१०
८८	४४	२२	११
९६	४८	२४	१२
१०४	५२	२६	१३
११२	५६	२८	१४
१२०	६०	३०	१५
१२८	६४	३२	१६

सल्पडुवुदितु सामान्यदिंदमंकसंदृष्टियिंदं गमनिकेयं तोरि विशेषनिर्णयमनर्थसंदृष्टियिंदं पेळ्दपरु :—

अत्र विशेषप्रमाणं तु प्रथमवर्गणायां दोगुणहानिभक्तायां $\frac{२५६}{१६}$ भवति १६। तया सर्वगुणहानीनामपि ज्ञातव्यं १ तत एव दोगुणहानिनिषेकहार इत्युच्यते। एवं गुणहानिं गुणहानिं प्रति द्रव्याणि वर्गणाः विशेषाश्च
२
४
८
१६
अर्धार्धक्रमा भवन्ति।

७२	३६	१८	९
८०	४०	२०	१०
८८	४४	२२	११
९६	४८	२४	१२
१०४	५२	२६	१३
११२	५६	२८	१४
१२०	६०	३०	१५
१२८	६४	३२	१६

॥२२८॥ एवं सामान्येन अंकसंदृष्ट्या गमनिकां प्रदर्श्य विशेषनिर्णयं अर्थसंदृष्ट्या आह—

प्रथम वर्गणामें दो गुणहानिसे भाग देनेपर $\frac{२५६}{१६}$ चयका प्रमाण १६ आता है। इसी तरह सब गुणहानियोंका भी चय जानना १६।८।४।२।१। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य, वर्गणा और चय आधा-आधा होता है ॥२२८॥

इस प्रकार अंकसंदृष्टिके द्वारा दिखाकर अर्थसंदृष्टिके द्वारा कहते हैं—

फड्ढयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी ।
विदियादिवग्गणाणं वग्गा अविभागअहियकमा ॥२२९॥

स्पर्द्धकसंख्याभिर्गुणो जघन्यवर्गस्तु तत्र तत्रादौ । द्वितीयादिवर्गणानां वर्गा अविभागाधिकक्रमाः ॥

स्पर्द्धकसंख्याभिर्गुणो जघन्यवर्गः तत्र तत्रादौ । प्रथमगुणहानि प्रथमस्पर्द्धकं मोदल्गोंडु चरमगुणहानिचरमस्पर्द्धकपर्य्यंतमाद सर्व्वगुणहानि सर्व्वप्रथमस्पर्द्धकंगळ जघन्यवर्गः कोर्त्यः प्रथमवर्गणेय वर्गं तत्र तत्रादौ अल्लल्लिय आदियोळु स्पर्द्धकसंख्याभिर्गुणः स्पर्द्धकसंख्येगळिदं गुणिसल्पट्टुदक्कुं । तु मत्ते द्वितीयादिवर्गणानां वर्गाः द्वितीयादिवर्गणेगळ वर्गंगळु अविभागाधिकक्रमाः अविभागाधिकक्रमंगळप्पुवु । इल्लिसर्वजघन्ययोगस्थानसर्व्वयोगाविभागप्रतिच्छेदमेलापनविधानं पेळल्पडुगुमल्लि प्रथमदोळु अन्नेवरं प्रथमगुणहानिस्पर्द्धकंगळ घनसंयोजनक्रमं पेळल्पडुगुमदंतें दोडे जघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणा २५६ प्रदेशसमूहमं । वि १६ जघन्यवर्गदिदं गुणिसि । व वि १६ । मत्ते एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिदं जघन्यस्पर्द्धकं बक्कुं । व वि १६।४। मत्तमा जघन्यस्पर्द्धकमादियुमुत्तरमुमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकागच्छसंकलनमं तरुत्तं विरलु ऋण सहितमप्प प्रथमगुणहानिद्रव्यमिनितक्कु । व वि १६ । ४ । ९ । ९ मिल्लि ऋण- २ । १
प्रमाणं तरल्पडुगुं । जघन्यवर्गगुणैकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलने प्रथम-

---

प्रथमगुणहानिमादिं कृत्वा चरमगुणहानिपर्यन्तं सर्वस्पर्धकेषु तत्र तत्र प्रथमवर्गणावर्गः स्पर्धकसंख्याभिर्गुणितो भवति । तु-पुनः द्वितीयादिवर्गणानां वर्गाः अविभागाधिकक्रमा भवन्ति । अत्र सर्वजघन्ययोगस्थानस्य सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदमेलापनविधानमुच्यते—

तत्र तावत् प्रथमगुणहानिस्पर्धकानां घनसंयोजनक्रमोऽयं जघन्यस्पर्धकादिवर्गणा २५६ प्रदेशसमूहेऽस्मिन् वि १६ जघन्यवर्गेण गुणयित्वा व वि १६ एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिर्गुणिते स्थूलरूपेण जघन्यस्पर्धकं भवति व वि १६ । ४ । इदमेवाद्युत्तरं कृत्वा एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छं कृत्वा संकलिते सति ऋणसहितप्रथम-

गुणहानिद्रव्यं भवति व वि १६ ४ ९ ९ अत्रत्यं ऋणमानीयते— (८ के ऊपर ०)
२ १

प्रथम गुणहानिसे लेकर अन्तिम गुणहानि पर्यन्त सब स्पर्धकोंमें प्रथम वर्गणाके वर्ग स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणा करनेपर होते हैं । और द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्ग अविभाग-प्रतिच्छेद अधिक-अधिक लिये होते हैं ।

[इससे आगे टीकामें सबसे जघन्य योगस्थानके सब योगोंके अविभागप्रतिच्छेद मिलानेका कथन बहुत विस्तारसे किया है । पं टोडरमलजी साहबने भी उसे छोड़ दिया है । अतः हम भी उसे छोड़कर उनके अनुसार ही उक्त गाथाओंका आशय स्पष्ट करते हैं ।]

---

१. ब °योग्यवि° ।

स्पर्धकदोळु ऋणमक्कुं। तत्प्रमाणमिदु व वि ३।४ इल्लि नवीनमुंटवावुदेंदोडे रूपोनैकस्पर्द्धकव-
२।१
र्ग्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्र-

३ वि ३	१ वि ३	२ वि ३
२ वि २	१ वि २	१ वि २
१ वि १	१ वि १	०
०	०	०
अधिक	वि ३।४	वि २।२।३।४
ऋण न्यासः	२ १	३ २ १

विशेषाधिकदिंदमुं मेकविशेषाद्युत्तरद्विरूपोनैकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलन-
मिदु वि २।२।३।४ ऋणस्य धनं धनराशेः ऋणं भवति येंदिदमूनीतमप्पादिवर्ग्गणामात्रप्रदेशा-
३।२।१
द्युत्तररूपोनैकस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाका गच्छ ३ वि १६ संकलनमात्रंगळु वि १६।३।४– ५
२ वि १६ २।१
१ वि १६
०००

एकाद्येकोत्तरक्रमदिनिर्दविभागप्रतिच्छेदंगळु अधिकंगळुंटवक्के जघन्यवर्ग्गद असंख्यातैकभागमात्र-
त्वदिंदमविवक्षेयक्कुमदु कारणदिंदमे द्वितीयादिस्पर्द्धकंगळोळमवक्कविवक्षेयक्कुमेंग द्वितीयस्प-
र्द्धकऋणं तरल्पडुगुं। जघन्यवर्ग्गगुणविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्ग्गणाशलाकागच्छ संकलनमं—

जघन्यवर्गगुणैकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं प्रथमस्पर्धकऋणं भवति व वि ३।४ अत्र नवीनमस्ति रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्र वि ३।४ विशेषाधिकम्। १०
२ १ २ १

३ वि ३	१ वि ३	२ वि ३
२ वि २	१ वि २	१ वि २
१ वि १	१ वि १	०
०	०	०
अधिकधनस्य	वि ३।४	वि २ २ ३ ४
ऋणन्यासः	२ १	३ २ १

एकविशेषाद्युत्तरद्विरूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमिदं–वि २।२।३।४
३ २ १
धनस्य ऋणं धनराशेः ऋणमिति तद्राश्यूनितो[1] द्विवर्गणाप्रदेशमात्रो[2] द्वयुत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छ
३ वि १६ संकलनधनमात्राः वि १६।३।४ एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थिताविभागप्रतिच्छेदा अधिकाः संति।
२ वि १६ २ १
१ वि १६
०
ते जघन्यवर्गस्यासंख्यातैकभागत्वान्न विवक्षिताः। तथैव द्वितीयादिस्पर्धकेष्वपि ज्ञातव्यम्। इदानीं द्वितीय-
स्पर्धकऋणमानीयते— १५

---

१. ब °तादिव°। २. ब °त्राद्युत्त°।

३ ३	३	३
व २ वि ४	व । २ वि ३	व । २ । वि ४
२ २	२	२
व वि ४	व वि २	व । २ । वि । ४
—	—	—
व २ । वि ४	व २ वि १	व २ । वि ४
द्वितीय स्पर्द्धक ऋण न्यासः	ऋण साधिक न्यासः	व २ वि. ४ पृथक्ताधिक ऋण न्यास

तंदु द्विगुणिसुत्तं विरलिनितक्कुं व । वि । ३ । ४ । २ मत्ते जघन्यवर्गमात्रविशेषमनेक-
२ । १

स्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिदं गुणिसि रूपोनस्पर्द्धकसंख्या $\overset{\circ}{\underset{2}{}}$ गच्छसंकलनेय $\overset{1}{\underset{2\,1}{1\,2}}$ द्विगुण-

दिदमं ।१।२। गुणिसुत्तं विरलु इनितक्कुं । व । वि । ४ । ४ । १ । २ । मी एरडु राशिगळु द्वितीय-स्पर्द्धकऋणमक्कुं । मत्तं जघन्यवर्गमात्रविशेषंगळ—

३ ३	३	३
व । ३ । वि । ४ । २	व । ३ । वि । ३	व ३ । वि ४ । २
२ २	२	२
व । ३ । वि । ४ । २	व । ३ । वि २	व । ३ । वि । ४ । २
१ १	१	१
व । ३ । वि । ४ । २	व । ३ । वि । १	व । ३ । वि । ४ । २
१		
व । ३ । वि । ४ । २	०	व । ३ । वि । ४ । २
तृतीय स्पर्द्धक सर्व ऋण न्यासः	ऋणस्याधिक न्यासः	पृथक्ताधिक ऋण न्यास

जघन्यवर्गगुणितविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं—

३ ३	३	३
व २ वि ४	व २ वि ३	व २ वि ४ ।
२ २	२	२
व २ वि ४	व २ वि २	व २ वि ४ ।
१ १	१	१
व २ वि ४	व २ वि १	व २ वि ४ ।
व २ वि ४	०	व २ वि ४ ।

आनीय द्विगुणितं व वि ३ । ४ । २ पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण रूपोन-
२ १

स्पर्धकसंख्या $\overset{\circ}{\underset{2}{}}$ गच्छसंकलनेन १ । २ द्विगुणेन च १ । २ । गुणितः व वि ४ । ४ । १ । २ एतद्राशिद्वयं
२ । १

द्वितीयस्पर्धकऋणम् । पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषाणां—

रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छ संकलनमं त्रिगुणिसुत्तं विरलिनितक्कुं । व । वि । ३ । ४ । ३
२ । १

मत्तं जघन्यवर्गमात्रविशेषंगळमेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गवितं गुणिसि रूपोनगच्छसंकलन
०
३ । ३ द्विगुणवितं २ । ३ । २ गुणिसुत्तं विरलिनितक्कु । व । वि । ४ । ४ । ३ । २ । मी
२ । १ २ । १

येरडुं राशिगळु तृतीयस्पर्द्धकऋणमक्कुमिन्तु प्रथम—

३ ३	३ ३	३ ३
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
२ २	२ २	२ २
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
१ १	१ १	१ १
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
१		
व ३ वि १६—४।२	व ६ वि १६—४।५	व ९ वि १६—४।८
३	३ ३	३ ३
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
२	२ २	२ २
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
१	१ १	१ १
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४।४	व ८ वि १६—४।७
३	३ ३	३ ३
व १ वि १६—३	व ४ वि १६—४।३	व ७ वि १६—४।६
२	२ २	२
व १ वि १६—२	व ४ २ १६—४।३	व ७ वि १६—४।६
१	१ १	१ १
व १ वि १६—१	व ४ वि १६—४।३	व ७ वि १६—४।६
व १ वि १६—	व ४ वि १६—४।३	व ७ वि १६—४।६

३ ३	३	३
व ३ वि ४ २	व ३ वि ३	व ३ वि ४ । २
२ २	२	२
व ३ वि ४ २	व ३ वि २	व ३ वि ४ । २
१ १	१	१
व ३ वि ४ २	व ३ वि १	व ३ वि ४ । २
व ३ वि ४ २	०	व ३ वि ४ । २

रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं त्रिगुणितं व वि ३ । ४ । ३ पुनर्जघन्यवर्गमात्रविशेषः— ५
२ । १

०
एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण रूपोनगच्छसंकलनेन ३ ३ द्विगुणेन च २ । ३ । २ गुणितः व वि ४ । ४ । ३ । २
२ १ २ । १

१. व गुणितः रूपोनैकस्पर्धक एतौ ।

गुणहानियोळु स्पर्द्धकं प्रति रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणशलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळु गुणकारंगळु गच्छमात्रंगळु प्रथमऋणपंक्तियोळप्पुवु—

व । वि । ३ । ४ । २	९
व वि । ३ । ४ । २	८
व वि । ३ । ४ । २	७
व वि । ३ । ४ । २	६
व वि । ३ । ४ ।	५
व वि । ३ । ४ । २	४
व वि । ३ । ४ । २	३
व वि । ३ । ४ । २	२
व वि । ३ । ४ ।	१
प्रथम पंक्ति ऋण ।।	

स्पर्द्धकवर्गणशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळ रूपोनगच्छद्विगुणसंकलनमात्रगुणकारंगळु द्वितीयऋणपंक्तियोळप्पुवु—

व । वि । ४ । ४ । २ ।	३६
व । वि । ४ । ४ । २ ।	२८
व । वि । ४ । ४ । २ ।	२१
व । वि । ४ । ४ । २ ।	१५
व । वि । ४ । ४ । २ ।	१०
व । वि । ४ । ४ । २ ।	६
व । वि । ४ । ४ । २ ।	३
व । वि । ४ । ४ । २ ।	१
०	
द्वितीयपंक्तिऋण	

रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळ द्विगुणद्विकवारसंकलनदिंदं स्पर्द्धकवर्गणा शलाकावर्ग-गुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्ति सर्व्वऋण समासमेतावन्मात्रमक्कुं।

व वि । ४ । ४ । २ । ९ । ९ । ९ । मत्तं गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनदिंदं रूपोनस्पर्द्धकवर्गणा
० ३ । २ । १

शलाकासंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिऋणसमासमिनितक्कुं।

एतौ द्वौ राशी तृतीयस्पर्धकऋणम्। एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्धकं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनगुणित-जघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गुणकारा गच्छमात्राः प्रथमपंक्तौ गच्छन्ति। द्वितीयपंक्तौ च स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्ग-गुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणैकवारसंकलनमात्रा गच्छन्ति।

व । वि ३ । ४ । ९ । ९ ई राशियं मेळापिसल्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमास चरमगुणकार-
२ २
दोळेकरूप चतुर्थभागमं प्रक्षेपिसुत्तं विरलुभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमक्कुं । व वि ४ ४ ।
९ । ९ । ९ ई राशियं मुन्नं तंद प्रथम गुणहानिद्रव्यदोळु व वि । १६ । ४ । ९ । ९ कळे
३ २ । १
दोडे प्रथमगुणहानि सर्व्वयोगविभागप्रतिच्छेदंगळु यथास्वरूपिंदिदं बप्पुंवु । तत्प्रमाणमिदु व वि
४४ । ९ ९ ९ । ४ पिल्लि इदुवे आदिधनमक्कुमुत्तरधनमिल्ल । मत्तमोगळु द्वितीयगुणहानिद्रव्यं ५
६
पेळल्पडुगुं । प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणा व २ १६ द्वंमं एकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिंदमुं
२
रूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकमेतावन्मात्रमक्कुं ।

व वि	३	४ ९	व वि	४	४	२	३६
	२						
व वि	३	४ ८	व वि	४	४	२	२८
	२						
व वि	३	४ ७	व वि	४	४	२	२१
	२						
व वि	३	४ ६	व वि	४	४	२	१५
	२						
व वि	३	४ ५	व वि	४	४	२	१०
	२						
व वि	३	४ ४	व वि	४	४	२	६
	२						
व वि	३	४ ३	व वि	४	४	२	३
	२						
व वि	३	४ २	व वि	४	४	२	१
	२						
व वि	३	४ १					
प्रथमपंक्ति	२	ऋणं ।	द्वितीयपंक्तिऋणं ।				

रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकानां द्विगुणद्विकवारसंकलनेन स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र-
विशेषेषु गुणितेषु द्वितीयपंक्तिसर्व—ऋण[1]समासोऽयं व वि ४ । ४ २ ९ ९ ९ पुनः गुणहानिस्पर्धकशलाका-
३ २ १
संकलेन रूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनेन च गुणितजघन्यमात्रवर्गविशेषः प्रथमपंक्तिऋण[2]समासोऽयं व वि १०
३ ४ ९ ९ अस्य मेलनं कर्तुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासचरमगुणकारे एकरूपचतुर्थभागे प्रक्षिप्ते उभय-
२ १ २ १

१-२. ब ऋणमिदं ।

व वि । १६ । ४ । ९ मेतावन्मात्रमं सर्व्वत्र कळदु पृथक्स्थापिसि—

पंक्तिसर्वत्रऋणसंयोगो भवति व वि ४ ४ ९ ९ ९ । अस्मिन् प्रागानीतप्रथमगुणहानिद्रव्ये व वि १६ ४ ९ ९
३ २ १

अपनीते प्रथमगुणहानि—

३ ३	३ ३	३ ३
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
२ २	२ २	२ २
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
१ १	१ १	१ ८
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
व ३ वि १६—४ २	व ६ वि १६—४ ५	व ९ वि १६—४ ८
३ ३	३ ३	३ ३
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
२ २	२ २	२ २
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
१ १	१ १	१ १
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
व २ वि १६—४	व ५ वि १६—४ ४	व ८ वि १६—४ ७
३	३ ३	३ ३
व १ वि १६—३	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६
२	२ २	२ २
व १ वि १६—२	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६
१	१ १	१ १
व १ वि १६—१	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६
व १ वि १६	व ४ वि १६—४ ३	व ७ वि १६—४ ६

प्रथमगुणहानिरचना ।

सर्वयोगाविभागप्रतिच्छेदा यथास्वरूपेण आयांति । व वि ४ ४ ९ ९ ९ ६ इदमादिधनम् । उत्तरधनं
५ नास्ति । इदानीं द्वितीयगुणहानिद्रव्यमुच्यते—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्धे एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः रूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकैश्च गुणिते द्वितीय-
गुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् व वि १६ ४ ९ एतावन्मात्रं सर्वत्रापनीय पृथक् संस्थाप्य—
२

व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ८
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ७
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ६
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ५
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ४
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ३
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। २
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। १
२	२
व वि १६।४। ९	व वि १६।४। ०
२	२
मूल धनं ॥	संकलन धनं ॥

यल्लि प्रथमराशियनु गुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्वसमासमेतावन्मात्रमक्कुं। व। वि। १६।४।९।९॥ यिदक्के मूलधनमेंब संज्ञेयक्कुं। मत्तं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकार्द्धदाद्युत्तरक्रमदिंदं द्वितीयादिस्पर्द्धकंगळोळिर्द्दं शेषं रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनदिंदं गुणिसुत्तं विरलेतावन्मात्रमक्कुं। व वि। १६।४।९।९। यिदक्के संकलितधनमेंब संज्ञेयक्कुमन्नतनऋणमं। व वि। १६।४।१।९। मूलधनदधिकरूपदोळु कळेदु शेषमुं। व वि। १६।४।१।९। मूलधनदोळे प्रक्षेपिसल्पडुगुमी येरडुं राशिगळु द्वितीयगुणहानियोळु स्थूलधनमक्कुमिल्लि ऋणं तरल्पडुगुं—

३ २ ३ व । ९ । वि १६–४ २ २ २ २ व । ९ । वि १६–४ २ २ व । ९ । वि १६–४ २ २ व । ९ । वि १६–४ २ ३ १ व । ९ । वि १६–३ २ २ १ व । ९ । वि १६–२ २ १ व । ९ । वि १६–१ २ १ व । ९ । वि १६– २	३ ४ ३ व । ९ । वि १६–४।३ २ २ ४ २ व । ९ । वि १६–४।३ २ ४ १ व । ९ । वि १६–४।३ २ ४ ० व । ९ । वि १६–४।३ २ ३ ३ ३ व । ९ । वि १६–४।२ २ २ ३ २ व । ९ । वि १६–४।२ २ ३ १ व । ९ । वि १६–४।२ २ ३ व । ९ । वि १६–४।२ २	३ ६ ३ व । ९ । वि १६–४।५ २ २ ६ २ २ व । ९ । वि १६–४।५ २ ६ १ व । ९ । वि १६–४।५ २ ५ व । ९ । वि १६–४।५ २ ३ ५ ३ व । ९ । वि १६–४।४ २ २ ५ २ २ व । ९ । वि १६–४।४ २ ५ १ व । ९ । वि १६–४।४ २ ५ व । ९ । वि १६–४।४ २	३ ८ ३ व । ९ । वि १६–४।७ २ २ ८ २ २ व । ९ । वि १६–४।७ २ ८ १ व । ९ । वि १६–४।७ २ ८ २ व । ९ । वि १६–४।७ २ ३ ७ ३ व । ९ । वि १६–४।६ २ २ ७ २ व । ९ । वि १६–४।६ → २ ७ १ व । ९ । वि १६–४।६ २ ७ २ व । ९ । वि १६–४।६ २

द्वितीयगुणहानि

← ३ ९ ३
व । ९ । वि १६–४।८
२
२ ९ २
व । ९ । वि १६–४।८
२
९ १
व । ९ । वि १६–४।८
२
९
व । ९ । वि १६–४।८
२

३ २ ३ व ९ वि १६—४ २ २ २ २ व ९ वि १६—४ १ २ २ १ व ९ वि १६—४ २ २ व ९ वि १६—४ २	३ ४ ३ व ९ वि १६—४ ३ २ ४ २ २ व ९ वि १६—४ ३ १ ४ २ १ व ९ वि १६—४ ३ ४ २ व ९ वि १६—४ ३ २	३ ६ ३ व ९ वि १६—४ ५ २ ६ २ २ व ९ वि १६—४ ५ १ ६ २ १ व ९ वि १६—४ ५ ६ २ व ९ वि १६—४ ५ २	३ ८ ३ व ९ वि १६—४ ७ २ ८ २ २ व ९ वि १६—४ ७ १ ८ २ १ व ९ वि १६—४ ७ ८ २ व ९ वि १६—४ ७ २
३ १ व ९ वि १६—३ २ १ २ व ९ वि १६—२ १ १ २ व ९ वि १६—१ १ २ व ९ वि १६—१ २	३ ३ ३ व ९ वि १६—४ २ २ ३ २ २ व ९ वि १६—४ २ १ ३ २ १ व ९ वि १६—४ २ ३ २ व ९ वि १६—४ २ २	३ ५ ३ व ९ वि १६—४ ४ २ ५ २ २ व ९ वि १६—४ ४ १ ५ २ १ व ९ वि १६—४ ४ ५ २ व ९ वि १६—४ ४ २	३ ७ ३ व ९ वि १६—४ ६ २ ७ २ २ व ९ वि १६—४ ६ १ ७ २ १ व ९ वि १६—४ ६ ७ २ व ९ वि १६—४ ६ २

द्वितीयगुणहानिः	मूलघनं	संकलितघनं
३ ९ ३ व ९ वि १६—४ ८ २ २ ९ २ व ९ वि १६—४ ८ २ १ ९ १ व ९ वि १६—४ ८ २ ९ व ९ वि १६—४ ८ २	१— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २ १— व वि १६—४ ९ २	व वि १६—४ ८ २ व वि १६—४ ७ २ व वि १६—४ ६ २ व वि १६—४ ५ २ व वि १६—४ ४ २ व वि १६—४ ३ २ व वि १६—४ २ २ व वि १६—४ १ २

अत्र प्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते सर्वसमासः स्यात् व वि १६ ४ ९ ९ अस्य मूलघन-
२

मिति संज्ञा। पुनः प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकाद्युत्तरक्रमेण द्वितीयादिस्पर्धकस्थितशेषे रूपोनगुणहानिस्पर्धक-

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनधनमं व । वि । ३
२
व । वि । २
२
व वि । १

रूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसि । व वि ३ । ४ । ९ । अधिकरूपमं कळेदु
व वि । ३ । ४ २ २
२

पृथक् स्थापिसिदोडे प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगळिनितप्पुवु । व । वि । ३ । ४ । ९ व वि ३ । ४ । १
२ २ २ ४

ई एरडु राशिगळु प्रथमस्पर्द्धकऋणमक्कुं । मत्तं पूर्व्वोक्तविशेषाद्युत्तरगच्छसंकलनेयं ।
२ २

५ व । ९ । वि ३ व । वि । ३ । ४ । ९ द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसि
ग २ २ २
उ २ वि २
व ९ २
आ २ वि
व । ९ । २ १

शलाकासंकलनेन गुणिते एतावत् व वि १६ ४ १ ९ अस्य संकलितधनमिति संज्ञा । अत्रतनऋणं व वि
२ २ १ २

१६ ४ १ ९ मूलधनस्याधिकरूपे व वि १६ ४ १ ९, अपनीय शेषं व वि १६ ४ १ ९ मूलधने प्रक्षेप्यं व वि
२ २ २ २ २

१६ ४ ९ ९ एतौ द्वौ राशी द्वितीयगुणहानौ स्थूलधनं स्तः । अत्रत्यं ऋणमानीयते—

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं व वि ३ व वि ३ ४ रूपा-
२ २ २ १
व वि २
२
व वि १
२

१० धिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना संगुण्य व वि ३ ४ ९ अधिकरूपेऽपनीय पृथक्संस्थापिते प्रथमद्वितीय-
२ २ १

पंक्तिऋणे स्तः व वि ३ ४ ९ व वि ३ ४ १ एते द्वे प्रथमस्पर्धकऋणम् । पुनः पूर्वोक्तविशेषाद्युत्तरगच्छ-
२ २ १ २ २ १

संकलनं

अधिकरूपद्विकमं तेगदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु क्रमदिंदं प्रथमद्वितीयपंक्तिरूपंगळु
एतावन्मात्रंगळप्पु व । वि । ३ । ४ । ९ व । वि । ३ । ४ । २ वु । मत्तमेकस्पर्द्धकवर्ग-
२ २ २ २
णाशलाकावर्गगुणजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषंगळं द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणिसि—

२ २
व । ९ । वि । ४ व । ९ । वि । ४ । ४ अधिकरूपद्विकमं कळेदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु क्रमदिंदं
२ २ २
व । ९ । वि । ४
२ २
व । ९ । वि । ४
२ २
। ९ । वि । ४
तृतीयचतुर्थपंक्तिरूपंगळे तावन्मात्रंगळप्पुवु । व वि ४ । ४ । ९ । व । वि । ४ । ५
२ २
४ । २ । १ । यी नाल्कुं राशिगळु द्वितीयस्पर्द्धकरूपमक्कुं । मत्तं पूर्व्वोक्तानुत्तरगच्छसंकलनेयं

द्वितीयस्पर्धकाधिकरूपन्यासः

			२								२		
व	९	वि	३		व	वि	३	४	९				
	२	२				२	२		१				
व	९	वि	२										
	२	२											
व	९	वि	१										
	०	२											

द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना संगुण्य अधिकरूपद्विकेऽपनीय पृथक्स्थापिते क्रमेण प्रथमद्वितीय-
पंक्तिरूपे भवतः व वि ३ ४ ९ व वि ३ ४ २ पुनरेकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषान्
२ २ २ २
द्विरूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिः संगुण्य— १०

अर्पिताधिकरणन्यासो द्वितीयस्पर्धकस्य—

			२										
व	९	वि	४								२		
	२	२			व	९	वि	४	४				
व	९	वि	४					२					
	२	२											
व	९	वि	४										
	२	२											
व	९	वि	४										
		२											

अधिकरूपद्विकेऽपनीय पृथक् स्थापिते क्रमेण तृतीयचतुर्थपंक्तिरूपे भवतः व वि ४ ४ ९ व वि ४ ४ २ १ ।
२ २

प्रथमपंक्तिऋण	द्वितीयपंक्तिऋण	तृतीयपंक्तिऋण	चतुर्थपंक्तिऋण
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।९ २ २	व वि ४।४।९।८ २	व वि ४।४।२।३६ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।८ २ २	व वि ४।४।९।७ २	व वि ४।४।२।२८ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।७ २ २	व वि ४।४।९।६ २	व वि ४।४।२।२१ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।६ २ २	व वि ४।४।९।५ २	व वि ४।४।२।१५ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।५ २ २	व वि ४।४।९।४ २	व वि ४।४।२।१० २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।४ २ २	व वि ४।४।९।३ २	व वि ४।४।२।६ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।३ २ २	व वि ४।४।९।२ २	व वि ४।४।२।३ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।२ २ २	व वि ४।४।९।१ २	व वि ४।४।२।१ २
व वि ३।४।९ २ २	व वि ३।४।१ २ २	०	०

$$\overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{३} \qquad \overset{३}{व९}\,वि\,३।४\ \text{त्रिरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि रूपत्रयमं}\ \overset{२\ २}{}$$

$$\overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{३}$$

$$\overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{१}$$

कळेदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु प्रथमद्वितीयपंक्तिरुणंगळे तावन्मात्रंगळप्पुवु। व वि।३।४।९ २ २

व।वि।३।४।२ २ २ मत्तं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषंगळं $\overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{४}।२।\overset{३}{व९}।वि।४।४।२$

$$\begin{array}{|l|}\hline \overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{४}।२ \\ \overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{४}।२ \\ \overset{३}{व९}\,वि\,\overset{२}{४}।२ \\ \hline \end{array}$$

तृतो. स्प. अंतादिऋण न्यासः

स्पर्द्धकवर्गणाशलाकाबर्गदिदं गुणिसि द्विगुणितत्रिरूपाधिकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदमुं गुणिसि अधिकरूपत्रयमं कळेदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु व वि ४।४।९।२ व वि ४।४।२।३ ई नाल्कुं राशिगळु तृतीयस्पर्द्धकऋणमिन्तु प्रथमपंक्तिऋणंगळवस्थितक्रमदिदं द्वितीयपंक्तिगुणकारंगळु पदमात्रक्रमदिदं तृतीयपंक्तिगुणकारंगळु रूपोनपदमात्रक्रमदिदं चतुर्थपंक्तिगुणकारंगळु द्विगुणरूपोनपदसंकलनक्रमदिदं

एते चत्वारो द्वितीयस्पर्धकऋणं पुनः पूर्वोक्तादुत्तरगच्छसंकलनं व ९ ३ वि ३ २ व ९ ३ वि ३ २ २ ४ त्रिरूपाधिक-

तृतीयस्पर्धकाधिक ऋणन्यासः व ९ ३ वि २ २ व ९ वि १ २

गुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना संगुण्य रूपत्रयेऽपनीय पृथक् स्थापिते प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः—व वि ३ ४ ९ । व वि ३ ४ ३ पुनः जघन्यवर्गमात्रविशेषान्—

तृतीयस्पर्धकार्पिताधिक-ऋणन्यासः

व ९ ३ वि ४ २	व ९ ३ वि ४ ४ २
व ९ ३ वि ४ २	
व ९ ३ वि ४ २	
व ९ ३ वि ४ २	

स्पर्धकवर्गणाशलाकाबर्गेण द्विगुणत्रिगुणरूपाधिकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च संगुण्य अधिकरूपत्रयेऽपनीय पृथक्स्थापिते तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ ९ २ व वि ४ ४ २ ३ एते चत्वारः तृतीयस्पर्धक-ऋणम् । एवं प्रथमपंक्तिऋणान्यवस्थितक्रमेण द्वितीयपंक्तिगुणकाराः पदमात्रक्रमेण तृतीयपंक्तिगुणकाराः रूपोनपदमात्रक्रमेण चतुर्थपंक्तिगुणकाराः रूपोनपदसंकलनक्रमेण च गच्छन्ति ।

---

१. व त्रिरूपाधिक ।

नडेवर्वेंबितु प्रथमपंक्तिय प्रथमराशियं स्थापिसि गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि ३।४।९।९। मत्तं द्वितीयपंक्तिप्रथम-
२ २
राशियं स्थापिसि गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिंदं गुणिसिदोडे द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमास-
मेतावन्मात्रमक्कुं व वि।३।४।९।९ मत्तं तृतीयपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि रूपोनगुण-
२ २ २
हानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिंदं गुणिसुत्तं विरलु—

प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।४।४।९।८ / २	व।वि।४।४।२।३६ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।८ / २ २	व।वि।४।४।९।७ / २	व।वि।४।४।२।२८ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।७ / २ २	व।वि।४।४।९।६ / २	व।वि।४।४।२।२१ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।६ / २ २	व।वि।४।४।९।५ / २	व।वि।४।४।२।१५ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।५ / २ २	व।वि।४।४।९।४ / २	व।वि।४।४।२।१० / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।४ / २ २	व।वि।४।४।९।३ / २	व।वि।४।४।२।६ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।३ / २ २	व।वि।४।४।९।२ / २	व।वि।४।४।२।३ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।२ / २ २	व।वि।४।४।९।१ / २	व।वि।४।४।२।१ / २
व।वि।३।४।९ / २ २	व।वि।३।४।१ / २ २	०	०

अत्र प्रथमपंक्तिप्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकाराशिना गुणिते प्रथमपंक्तिसर्वऋणसमासो भवति व।वि।३।४।९।९ पुनर्द्वितीयपंक्तिप्रथमराशौ गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणिते द्वितीयपंक्ति-
२।२
ऋणसमासो भवति व।वि।३।४।९।९। पुनस्तृतीयपंक्तिप्रथमराशौ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाका-
२ २ २

व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। ८ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। ७ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। ६ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। ५ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। ४ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। ३ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। २ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	व वि १६।४। १ ४
व वि १६।४।९।२ १ ४	संकलनधन एषोऽधिको भागः

मूलधन

तृतीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं। व। वि ४।९।९ मत्तं चतुर्त्थपंक्ति-
२ २

प्रथमराशियं स्थापिसि रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेयिंवं गुणिसुत्तं विरलु चतुर्त्थपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं व वि।४।४।२।९।९।९ इवनपवर्तिसि-
२ ३ २ १

दोडिदु व। वि ४।४।९९ ९ ई चतुर्त्थपंक्तिसर्व्वऋणचरमगुणकारवोळु द्वितीयपंक्तिसर्व्व-
२ ३

संकलनेन गुणिते तृतीयपंक्तिऋणसमासो भवति व। वि।४।४।९।९।९ पुनश्चतुर्थपंक्तिप्रथमराशौ ५
२ २ १

रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेन गुणिते चतुर्थपंक्तिऋणसमासो भवति—

व। वि।४।४।२।९।९।९। अयमपवर्तितः व। वि।४।९९९। अस्य चरमगुणकारे द्वितीय-
३ २ १ २ ३ २ १

ऋणमं कूडल्वडि एकरूपचतुर्भागमं प्रक्षेपिसिदुवनिवं व वि ४।४।९।९।९ मुन्नं स्थूलरूप-
२ ३

दिवं तंद संकलितधनवोळु व वि १६।४।९।९। ई राशिय दोगुणहानियं बिच्चिरिसिदो-
२ २

डिदु। व वि ४।४।९।९।९।२ यिदरोळु शोधिसिदोडे द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमादि-
२ २

धनमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि।४।४।९।९।९।४ मत्तं प्रथमपंक्तिसर्वऋणसंयोगार्थं
६।२

तृतीयपंक्तिसर्वऋणचरमगुणकारदोळु एकरूपं प्रक्षेपिसिदुवनिवं व वि।४।४।९।९।९
२ २

मुन्नं स्थूलरूपदिं तंद मूलधनदोळु। व वि।१६।४।९।९। अपवर्तितमिदरोळु
२

व वि ४।४।९।९।९।२ कळेदु शेषमनिवं। व वि ४।४।९।९।९।३
२ २ २

मूररिंदं समच्छेदनिमित्तं मेगेयुं कळगेयुं गुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तर-
धनमेतावन्मात्रमक्कुं व वि ४।४।९।९।९।९ ई येरडुं राशिगळु द्वितीयगुणहानिसर्व-
२ ६।२

धनमक्कुमिल्लिवं मुंदे तृतीयगुणहानिधनं पेळल्पट्टपुवदिंतेंदोडे तृतीयगुणहानिरचनेयिदु।

पंक्तिसर्वऋणं निक्षेप्तुं एकरूपचतुर्थभागं प्रक्षिप्येदं व।वि।४।४।९ ९ ९ प्राक्स्थूलरूपानीतसंकलितधनं
२ ३

व।वि।१६।४।९।९। गतदोगुणहानिःसंभेद्य संस्थाप्य व। वि। ४।४। ९।९। ९।२
२ २ २ २

शोध्यते तदा द्वितीयगुणहानौ शुद्धमादिधनं भवति व।वि।४।४।९।९।९।४ पुनः प्रथमपंक्तिसर्वऋणसंयोगार्थं
२ ६

तृतीयपंक्तिसर्वऋणचरमगुणकारे एकरूपं प्रक्षिप्येदं व।वि।४।४।९।९।९ पूर्वं स्थूलरूपानीतमूलधने
२ २

व।वि।१६।४।९।९। अपवर्तितेऽस्मिन्—
२

व।वि।४।४।९।९।९।२ अपनीय शेषे व।वि।४।४।९।९।९।३ समच्छेदनिमित्तं
२ २ २

उपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते द्वितीयगुणहानिशुद्धमुत्तरधनं भवति व।वि।४।४।९।९।९।९ एतौ द्वौ राशी
२ ६

द्वितीयगुणहानिसर्वधनं। इतस्तृतीयगुणहानिधनमुच्यते तद्रचनेयं—

३ २ ३ व ९।२। वि १६–४ २।२	३ व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	३ ६ ३ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	३ ८ ३ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
२ २ २ व ९।२। वि १६–४ २।२	२ व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	२ ६ २ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	२ ८ २ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
२ व ९।२। वि १६–४ २।२	२ व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	६ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	८ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
१ व ९।२। वि १६–४ २।२	६ व ९।२। वि १६–४ ३ २।२	६ व ९।२। वि १६–४ ५ २।२	८ व ९।२। वि १६–४ ७ २।२
३ १ ३ व ९।२। वि १६–३ २।२	३ व ९।२। वि १६–४ २ २।२	३ ५ ३ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	३ ७ ३ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२
२ १ २ व ९।२। वि १६–२ २।२	२ व ९।२। वि १६–४ २ २।२	२ ५ २ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	२ ७ २ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२
१ व ९।२। वि १६–१ २।२	२ व ९।२। वि १६–४ २ २।२	५ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	७ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२
१ व ९।२। वि १६— २।२	व ९।२। वि १६–४ २ २।२	५ व ९।२। वि १६–४ ४ २।२	७ व ९।२। वि १६–४ ६ २।२

तृतीय गुणहानिरचने ॥

तृतीय गुणहानि

३
व ९।२। वि १६–४ ८
२।२

२
व ९।२। वि १६–४ ८
२।२

व ९।२। वि १६–४ ८
२।२

व ९।२। वि १६–४ ८
२।२

प्रथमगुणहानिजधन्यस्पर्द्धकचतुर्त्थभागमं रूपाधिकद्विगुण गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंद गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिंदं तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकमेतावन्मात्रमक्कु व वि १६।४।९।२/४

मो राशियं गुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्वमूलधनमेतावन्मात्रमक्कुं

३ २ ३–	३ ४ ३	३ ६ ३–
व ९।२ वि १६—४	व ९।२ वि १६—४।३	व ९।२ वि १६—४।५
२ २ २२ २–	२ ४ २२ २	२ ६ २२ २–
व ९।२ वि १६—४	व ९।२ वि १६—४।३	व ९।२ वि १६—४।५
१ २ २२ १–	१ ४ २२ १	१ ६ २२ १–
व ९।२ वि १६—४	व ९।२ वि १६—४।३	व ९।२ वि १६—४।५
९ २२	४ २२	६ २२
व ९।२ वि १६—४	व ९।२ वि १६—४।३	व ९।२ वि १६—४।५
२२	२२	२२
३ १	३ ३ ३	३ ५ ३
व ९ २ वि १६—३	व ९ २ वि १६—४ २	व ९ २ वि १६—४ ४
२ १ २२	२ ३ २२ २	२ ५ २२ २
व ९ २ वि १६—२	व ९ २ वि १६—४ २	व ९ २ वि १६—४ ४
१ १ २२	१ ३ २२ १	१ ५ २२ १
व ९ २ वि १६—१	व ९ २ वि १६—४ २	व ९ २ वि १६—४ ४
१ २२	३ २२	५ २२
व ९ २ वि १६—	व ९ २ वि १६—४ २	व ९ २ वि १६—४ ४
२२	२२	२२

३ ८ ३–	३ ७ ३
व ९।२ वि १६—४।७	व ९ २ वि १६—४ ६
२ ८ २२ २–	२ ७ २२ २
व ९।२ वि १६—४।७	व ९ २ वि १६—४ ६
१ ८ २२ १–	१ ७ २२ १
व ९।२ वि १६—४।७	व ९ २ वि १६—४ ६
८ २२	७ २२
व ९।२ वि १६—४।७	व ९ २ वि १६—४ ६
२२	२२

व वि १६।४।९।२।२ मत्तं प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्द्धकचतुर्त्थभागाद्युत्तररूपोनगुणहानि-
४

स्पर्द्धकशलाकागच्छधनं तरल्पडुत्तं विरलु संकलितधनमेतावन्मात्रमक्कु व वि १६।४।९।९।
४ २

मी येरडुं राशिगळु तृतीयगुणहानि ऋणसहितधनमक्कुमा ऋणं तरल्पडुगुं। जघन्यवर्गगुणरूपोन-

तृतीयगुणहानिः	मूलधन	संकलितधन
३ ९ ३—	१—	
व ९।२ वि १६—४।८	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।८
२ ९ २२ २—	४ १—	४
व ९।२ वि १६—४।८	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।७
१ ९ २२ १—	४ १—	४
व ९।२ वि १६—४।८	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।६
९ ९२	४ १—	४
व ९।२ वि १६—४।८	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।५
२२	४ १—	४
	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।४
	४ १—	४
	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।३
	४ १—	४
	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।२
	४ १—	४
	व।वि।१६।४।९।२।१	व।वि।१६।४।१
	४ १—	४
	व।वि।१६।४।९।२।१	
	४	

प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकचतुर्भागे व वि १६।४ रूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते स्थूल-
४

१—
रूपेण तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकमिदं व वि १६।४।९।२ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणितं सर्वमूलधनं ५
४

१—
स्यात् व वि १६।४।९।२।९ पुनः प्रथमगुणहानिजघन्यस्पर्धकचतुर्भागाद्युत्तररूपोनगुणहानिस्पर्धक-
४

शलाकागच्छसंकलनमिदं व वि १६।४।९।२।९ एते द्वे तृतीयगुणहानिऋणसहितधनं भवतः।
४

स्पर्द्धक वर्ग्गणाशलाकासंकलनमात्रविशेष व ९।२।वि।३ चतुर्भागमं रूपाधिकद्विगुण-
४

व ९।२।वि।२
४

व ९।२।वि।१
४

गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिदं गुणिसि अधिकरूपनेत्तिकोंडु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु प्रथम-द्वितीयपंक्तिऋणंगळे तावन्मात्रंगळप्पुवु व वि।३।४।९।२। व वि।३।४।१ मत्तं द्वितीय-
४ २ ४ २

स्पर्द्धक सर्व्वऋणमिदु व।९।२।वि।४ प्रथमद्वितीयोभयपंक्तिसंबंधिऋणमिदु। इदं
४

व।९।२।वि।४
४

व।९।२।वि।४
४

व।९।२।वि४
४

---

५ तदूणमानीयते—जघन्यवर्गगुणरूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रविशेष—

व	९	२	वि	३
	१—	४		
व	९	२	वि	२
	१—	४		
व	९	२	वि	१
		४		

चतुर्भागे रूपाधिकद्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते व वि ३।४ ९ २ अधिकरूपे च पृथक् स्थापिते
४ २

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ २ व वि ३ ४ १ पुनर्द्वितीयस्पर्धकसर्वऋणमिदं
४ २ ४ २

संकलिसि व वि ३।४।९।२ अधिकद्विरूपमं तेगवु पृथक्स्थापिसिदोडे प्रथमस्पर्द्धकप्रथम-
४ २
पंक्तिसमानं प्रथमपंक्तिऋणमक्कु व वि ३।४।९।२। प्रथमस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमं नोडलो
४
द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणं रूपाधिकगुणकारगुणमक्कुं व वि।३।४।२ शेषतृतीय-
४ २

चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदु

२ व ९।२।वि।४ ४
२ व ९।२।वि।४ ४
२ व ९।२।वि।४ ४
२ व ९।२।वि।४ ४

जघन्यवर्गमात्रस्पर्द्धकवर्गणाशलाका-

अपनीताधिकऋणन्यासः

२			३
व	९	२ वि	४
२		४	२
व	९	२ वि	४
२		४	१
व	९	२ वि	४
२		४	
व	९	२ वि	४
		४	

प्रथमद्वितीयपंक्तिसंबन्धि ऋणमिदं

२			
व	९	२ वि	३
२		४	
व	९	२ वि	२
२		४	
व	९	२ वि	१
		४	

संकलय्य व वि ३ ४ ९ २ ५
४ २

अधिकरूपद्वये पृथक्स्थापिते प्रथमस्पर्धकप्रथमपंक्तिसमानं प्रथमपंक्तिऋणं भवति व वि ३ ४ ९ २ प्रथम-
४ २
स्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणादिदं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं रूपाधिकगुणकारगुणं व वि ३ ४ २ शेषतृतीय-
४ २

चतुर्थपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

२			
व	९	२ वि	४
२		४	
व	९	२ वि	४
२		४	
व	९	२ वि	४
२		४	
व	९	२ वि	४
		४	

जघन्यवर्गमात्रस्पर्धकवर्गणाशलाका-

वर्गगुणस्वविशेषगळं द्विरूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिवं गुणिसि व वि ४ । ४ । ९ । २ (२)

अधिकद्विरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रं-

गळप्पु व वि ४ । ४ । ९ । २ | व वि ४ । ४ । २ वु । मत्तं तृतीयस्पर्द्धकसर्वऋणमिदु

३ ३		व ९ । २ । वि । ४ । २
४		
३ २		व ९ । २ । वि ४ । २
४		
३		व ९ । २ । वि ४ । २
४		
		व ९ । २ । वि ४ । २
४		

इल्लि प्रथमद्वितीयपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदु

व ९ । २	वि । ३
	४
व ९ । २	वि । २
	४
व ९ । २	वि । १
	४

५ इदं संकळिसि व वि ३ । ४ । ९ । २ (३) अधिकत्रिरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयस्पर्द्धक-

४ २

वर्गगुणस्वविशेषद्विरूपाधिकद्विगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते व वि ४ ४ ९ २ (२—) अधिकद्वये च पृथक्स्थापिते

४

द्वितीयस्पर्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः। व वि ४ ४ ९ २ व वि ४ ४ २।

४ ४

पुनस्तृतीयस्पर्धकसर्वऋणमिदं

३		३	
व ९	२	वि ४	२
३		४	२
व ९	२	वि ४	२
३		४	१
व ९	२	वि ४	२
३		४	
व ९	२	वि ४	२
		४	

अत्र प्रथमद्वितीयपंक्तिप्रतिबद्धऋणमिदं

३			
व ९	२	वि	३
३		४	
व ९	२	वि	२
३		४	
व ९	२	वि	१
		४	

संकलय्य व वि ३ ४ ९ २ (३—) अधिकरूपत्रये पृथक्स्थापिते तृतीयस्पर्धक-

४ २ १

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु व वि ३।४।९।२ | व वि ३।४।३
४ २ ४ २

तृतीयचतुर्थपंक्तिसंबंधिऋणमिदु

२		
व ९।	वि।४।२	
	४	
३		
व ९।२	वि।४।२	
	४	
३		
व ९।२	वि।४।२	
	४	
३		
व ९।२	वि।४।२	
	४	

यिदनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिंद गुणिसि अधिकत्रिरूपमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु तृतीयस्पर्द्धकद तृतीयचतुर्थपंक्तिऋणंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु व वि।४।४।९।२ | व वि।४।४।३ यितु स्पर्द्धकं प्रतिप्रथम-
४

पंक्तिगळु अवस्थितक्रमदिंदं द्वितीयपंक्तिगळु पदमात्ररूप गुणितक्रमदिंदं तृतीयपंक्तिगळु रूपोनपदमात्ररूपगुणितक्रमदिंदं चतुर्थपंक्तियोळु द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनगुणितक्रमदिंदं नडेववेंदितु स्थापिसि ५

प्रथमद्वितीयपंक्तिऋणे भवतः व वि ३ ४ ९ २। व वि ३ ४ ३ शेषतृतीयचतुर्थपंक्तिसंबन्धिऋणमिदं
४ २ १ ४ २ १

३		
व ९ २	वि ४ २	
३	४	
व ९ २	वि ४ २	
३	४	
व ९ २	वि ४ २	
३	४	
व ९ २	वि ४ २	
	४	

एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः संगुण्य व वि ४ ४ २ ९ २ अधिकरूपत्रये
३
४

पृथक्स्थापिते तृतीयस्पर्धकतृतीयचतुर्थपंक्तिऋणे भवतः व वि ४ ४ २ ९ २ व वि ४ ४ २ ३ एवं
४ ४

प्रतिस्पर्धकं प्रथमपंक्तयोऽवस्थितक्रमेण द्वितीयपंक्तयः पदमात्ररूपगुणितक्रमेण तृतीयपंक्तयो रूपोनपदमात्ररूप- १०

गुणितक्रमेण चतुर्थपंक्तयो रूपोनगच्छसंकलनगुणितक्रमेण च गच्छन्ति । ताः संस्थाप्य—

प्रथमपंक्तिऋण	द्वितीयपंक्तिऋण	तृतीयपंक्तिऋण	चतुर्थपंक्तिऋण
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ९ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २८ ४	व वि ४ । ४ । २ । ३६ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ८ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २७ ४	व वि ४ । ४ । २ । २८ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ७ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २६ ४	व वि ४ । ४ । २ । २१ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ६ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २५ ४	व वि ४ । ४ । २ । १५ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ५ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २४ ४	व वि ४ । ४ । २ । १० ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ४ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २३ ४	व वि ४ । ४ । २ । ६ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । ३ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २२ ४	व वि ४ । ४ । २ । ३ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । २ ४ २	व वि ४ । ४ । ९ । २१ ४	व वि ४ । ४ । २ । १ ४
व वि ३ । ४ । ९।२ ४ २	व वि ३ । ४ । १ ४ २	०	०

यिल्लि प्रथमपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि व वि ३ । ४ । ९ । २ गुणहानिस्पर्द्धकशलाके-
४ २
गळिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमिनितक्कुं व वि । ३ । ४ । ९ । २ । ९ मत्तं
४ २

प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ९ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२८ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । ३६ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ८ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२७ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । २८ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ७ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२६ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । २१ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ६ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२५ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । १५ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ५ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२४ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । १० ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ४ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२३ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । ६ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । ३ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२२ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । ३ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । २ ४ २	व । वि । ४ । ४ । ९।२१ ४	व । वि । ४ । ४ । २ । १ ४
व । वि । ३ । ४ । ९।२ ४ २	व । वि । ३ । ४ । १ ४ २	०	०

द्वितीयपंक्तिप्रथमराशियं स्थापिसि व वि । ३ । ४ । १ । गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिंदं
४ २
गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिऋणसंयोगमिनितक्कु व वि ३ । ४ । ९ । ९ मत्तं तृतीयपंक्ति प्रथम-
४ २ २
राशियं स्थापिसि व वि । ४ । ४ । ९ । २ । १ रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकाशलकासंकलनदिंदं गुणिसुत्तं
४
विरलु तृतीयपंक्तिऋणसंयोगमिनितक्कुं व वि । ४ । ४ । ९ । २ । ९ ९ मत्तं चतुर्त्थपंक्तिप्रथम-
४ २
राशियं स्थापिसि व वि ४ । ४ । २ । १ रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेयिंदं
४
गुणिसुत्तं विरलु चतुर्त्थपंक्तिऋणसमासमिनितक्कुं व वि । ४ । ४ । २ । ९ । ९ ९ ९ ई चतुर्त्थ-
४ ३ २ १
पंक्तिचरमगुणकारदोळु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणमेलापनार्त्थमेकरूपचतुर्त्थभागमं प्रक्षेपिसि मुन्नं
स्थूलरूपिंदं तंद संकलनधनदोळु शोधिसुत्तं विरलु तृतीयगुणहानिशुद्धमाविधनमेतावन्मात्रमक्कुं
व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ मत्तं प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगार्त्थं तृतीयपंक्तिसर्व्वऋणचरम-
४ २ । २
गुणकारदोळु एकरूपं प्रक्षेपिसिदुवुं तंदु मुन्नं स्थूलरूपिंदं तंद मूलधनदोळु शोधिसि मेलेयुं केळगेयुं
त्रिगुणिसिदोडे तृतीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कुं व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९।२
६ । २।२
ई येरडुं राशिगळु तृतीय गुणहानिसर्व्वधनमक्कुमी प्रकारदिंदं गुणहानि प्रत्यादिधनमर्द्धर्द्धमागि
उत्तरधनमर्द्धर्द्धमागियुं रूपोनगच्छगुणमुमागि नडेगुमन्तु नडेदु—

अत्र प्रथमपंक्तिप्रथमराशौ व वि ३ ४ ९ २ गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिर्गुणिते प्रथमपंक्तिसर्वऋण-
४ २ १
संयोगो भवति व वि ३ ४ ९ २ ९ पुनर्द्वितीयपंक्तिप्रथमराशौ व वि ३ ४ १ गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन
१-४ २ १ ४ २ १
गुणिते द्वितीयपंक्तिऋणसंयोगो भवति व वि ३ ४ ९ ९ | पुनस्तृतीयपंक्तिप्रथमराशौ व वि ४ ४ २ १ रूपोन-
४ २ १ २ १ | ४
गुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणिते तृतीयपंक्तिऋणसंयोगो भवति व वि ४ ४ ९ २ ९ ९ पुनश्चतुर्थपंक्ति-
४ २
प्रथमराशौ व वि ४ ४ २ १ रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकाद्विकवारसंकलनेन गुणिते चतुर्थपंक्तिऋणं भवति व वि
४ ४
४ ४ २ ९ ९ ९ अस्य गुणकारे द्वितीयपंक्तिसर्वऋणमेलापनार्थं एकरूपचतुर्थभागं प्रक्षिप्य प्राक्स्थूलरूपापनीत-
३ २ १
संकलितघने शोधिते तृतीयगुणहानिशुद्धमादिधनमायाति— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ पुनः प्रथमपंक्तिसर्वऋण-
६ २ २
संयोगार्थं तृतीयपंक्तिसर्वचरमगुणकारे एकरूपं प्रक्षिप्य इदं प्राक्स्थूलरूपानीतमूलधने संशोध्य उपर्यधश्च त्रिभिः

व वि । ४४।९।९।९।४ प ६ प ००	व वि ।४।४।९।९।९।९। ना ६। प २
० ० २	०
०	०
व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२।२।२।२।२।२।२।	व वि ।४।४।९।९।९।८ ६।२।२।२।२।२।२।२।२।
६	व वि ।४।४।९।९।९।७
व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२।२।२।२।२।२।	६।२।२।२।२।२।२।२।
६	०
०	०
०	व वि ।४।४।९।९।९।३
व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२।२	६।२।२।२।
६	व वि ।४।४।९।९।९।२
व वि ।४।४।९।९।९।४।२।२	६।२।२।
६	व वि ।४।४।९।९।९। १।
व वि ।४।४।९।९।९।४।२	६।२।
६	० उत्तरधन
व वि ।४।४।९।९।९।६। आदिधन	

संगुण्य तृतीयगुणहानौ शुद्धमुत्तरधनं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ एते तृतीयगुणहानिसर्वधनं भवतः । एवं
६ २ २

प्रतिगुणहानि आदिधनं अर्धार्धक्रमं उत्तरधनं अर्धार्धक्रममपि रूपोनगच्छगुणं, तेन चरमगुणहानौ धनद्वये भागहारो रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकः । उत्तरधनगुणकारो रूपोननानागुणहानिमात्रः ।

आदिधनं	उत्तरधनं
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ० ६ प २ ० ० ०	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ना ० ६ प २ ० ० ०
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २ २ २ २ २ २ २ ६	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ८ २ २ २ २ २ २ २ ६
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २ २ २ २ २ २ २ १ ० ० ०	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ७ २ २ २ २ २ २ २ १ ० ० ०
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ३ ६ २ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ ६ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६ २	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १ ६ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ ६	०

चरमगुणहानियोळु एरडुं धनंगळ्गे रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळु भागहारंगळप्पुवुत्तरधनगुणकारमुं मत्ते रूपोननानागुणहानिमात्रमक्कुं। सर्व्वत्रमेरडुं धनंगळ्गे गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाघनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाकृतिगुणजघन्यवर्गमात्रविशेषं गुण्यराशिसमानमक्कुं। गुणकारमुं मत्ते आदिधनक्के चतुःषड्भागादिद्विगुणहीनमक्कुमुत्तरधनक्के नवषड्भागार्द्धादिद्विगुणहीनमक्कुं। रूपोनपदगुणितमुमक्कुमिंतु गुणहीनाधिकस्वरूपंविदं स्थितिसर्व्वगुणहानिगळ संकलनसूत्रमिदुः—

पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं वैकं सहोत्तराद्यंशगुणं ।
विपदघ्नचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना ॥

ई सूत्रवर्त्थं सुगममक्कु। विपदघ्नचयमेंदितु पदेन घनः पदघनः गच्छेन हत इत्यर्थः। स चासौ चयश्च पदघनचयः विगतः पदघनचयो यस्मात्तद्विपदघनचयं विभजेद्व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिनेति। विगतमेकेन वैकं वैकं च तत्पदं च वैकपदं। तन्मात्रगुणकाराणामन्योन्याभ्यासस्तेनहतेनाद्यच्छिदिना विभजेदिति संबंधः। यें दितिल्लि नानागुणहानिमात्रद्विकंगळवर्गितसंवर्गंविदं पुट्टिद राशि अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कु प मदरोळेकरूपं हीनं माडि $\overset{०}{\text{प}}$ आद्युत्तरांशंगळं कूडि गुणिसिद राशियुमं १३ $\overset{०}{\text{प}}$ उत्तरधनपदघनचयं ऋणमप्पुदरिना ऋणराशियुमं ९ $\overset{०}{\text{प}}$ रूपोनपदमात्रद्विकंगळ रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळं वर्गितसंवर्गं माडि संजनितान्योन्याभ्यस्त राश्यर्द्धंविदं गुणिसल्पट्ट आद्यच्छेदरूपषट्कंविदं भागिसुत्तं विरलु आद्युत्तरोभयधनमुं ऋणमुमक्कुं—

अत्र सर्वत्र धनद्वये गुणहानिस्पर्धकशलाकाघनस्पर्धकवर्गणाशलाकाकृतिगुणजघन्यवर्गमात्रविशेषो गुण्यं समानं गुणकारः आदिधने चतुःषड्भागादिद्विगुणहीनः। उत्तरधने नवषड्भागार्धादिद्विगुणहीनोऽपि रूपोनपदगुणितो भवति। एवं गुणहीनाधिकरूपस्थितसर्वगुणहानिधनसंकलनसूत्रं—

'पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं व्येकं सहोत्तराद्यंशगुणं विपदघ्नचयं विभजेत् व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना।' अस्यार्थः—[विपदघ्नचयं पदेन घनः पदघनः गच्छेन हतः इत्यर्थः, स चासौ चयश्च पदघनचयः, विगतः पदघनचयो यस्मात्तं विपदघ्नचयं। व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विगतं एकेन व्येकं तच्च तत्पदं च व्येकपदं तन्मात्रगुणकाराणामन्योन्याभ्यासः तेन हतेन आद्यच्छिदिना विभजेदिति संबंधः।] पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं नानागुणहानिमात्रद्विकानां परस्परगुणनं प व्येकं–एकरूपोनं $\overset{०}{\text{प}}$ सहोत्तराद्यंशगुणं उत्तरधनांशसहितावधनां-

शैर्हृतं कृत्वा १३ $\overset{०}{\text{प}}$ विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचयः ऋणमस्तीति तं पृथग् न्यसेत् ९ प तौ राशी व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणिताद्यच्छेद-

---

१. कोष्ठांतर्गतपाठो ब प्रतौ नास्ति।

व वि ४।४।९।९।९। धनं प ऋण व वि।४।४।९।९।९।९। प मत्तं
१३ ə ६।प ə ə
६।प। ə २
ə २

धनस्थितऋणमनुभय्यांशंगळं तेगदु व वि।४४९९९।१३ ऋणऋणयोरैक्यमें दितु ऋण-
६ प
ə ə

राशियगुणकारदोळु रूपोननानागुणहानियोळु कूडुत्तं विरलु सर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं—
१३
व वि।४।४।९।९।९।९।प–१ बळिक्कं धनद गुणकार भागहारंगळनपवर्त्तिसि भागिसि
६ प ə ə
ə।२

मत्तं ऋणद गुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसि रूपासंख्यातैकभागमं १ कळेयुत्तं विरलु किंचिदून-
ə

त्रिभागाधिकरूपचतुष्टयगुणकारमक्कुमदक्के संदृष्टि :—

। व वि।४।४।९।९।९।४ मत्तमो करणसूत्राभिप्रायप्रकटनार्थं सर्व्वगुणहानिगळ
१
३

मध्यदोळु प्रथमगुणहानिमोदल्गों डंष्टगुणहानिगळ धनं तरल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणमें दितु गुणसंकलनसूत्रदिदं तरल्पट्टुदो धनसंदृष्टि—

षट्केन विभजेत् इत्युभयधनऋणे स्यातां। व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ प तद्धनस्थ-
ə ə ə
६ प ६ प
ə २ ə २

ऋणं पृथक् कृत्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ ऋणऋणयोरैक्यमिति ऋणराशौ प्रक्षिप्य
६ प
ə २

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १३ प अपवर्तिते रूपासंख्यातैकभागः १ अपवर्तितधने १३ अपनीतस्तदा किंचिदून-
ə ə ə ३
६ प
ə २

त्रिभागाधिकरूपचतुष्टयं गुणकारो भवति। तत्संदृष्टिः व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ पुनः सूत्राभिप्रायप्रकटनार्थं प्रथमा-
१
३

दिगुणहानीनां धनमानीयते—

अंतधनं गुणगुणियं आदिविहीणमिति गुणसंकलनसूत्रानीतादिधनं। संदृष्टिः—

व । वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४ २५६ उत्तरधनसमासदोळु तत्रतत्रतनगुणकारंगळोळु पृथक्-पृथक्
६ २५६
२

स्थापिसुत्तं विरळु—

९।१। आविधन ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ० ० ० ९।१ ६।२।२ ९।१ ६।२ अ. ध.	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ० ० ० ९।१ ६।२।२ ९।१ ६।२	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२ ९।१ ६।२२२२ ९।१ ६।२२२	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२ ९।१ ६।२२२२ ९।१ ६।२२२	९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२ ९।१ ६।२२२२
९।१ ६		९।१ ६।२२		

९।१ ६।२२२२२२२२ ९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२ अ । ९।१ ६।२२२२२२२	अ । ९ । १ ६।२२२२२२२२
९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२	

व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ २५६ उत्तरधनसमासे तु तत्र तत्रतनगुणकारेषु पृथक् पृथक् स्थापितेषु—
६ २५६
२

९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२२
९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२२
०	०	९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२	९।१ ६।२२२२२२	
०	०	९।१ ६।२२२२२	९।१ ६।२२२२२	९।१ ६।२२२२२		
९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२	९।१ ६।२२२२			
९।१ ६।२२२	९।१ ६।२२२	९।१ ६।२२२				
९।१ ६।२२	९।१ ६।२२					
९।१ ६।२	९।१ ६।२					
९।१ ६।१						

९।१ ६।२२२२२२२२

सप्तपंक्तिगळप्पुवु। अवरमध्यदोळु मुन्नमूर्ध्वरूपदिंदं चरमं बिट्टु शेषषट्पंक्तिगळं संकलिसि बळिकं चरमदोळु तत्प्रमाणऋणमनिक्कि[1] संकलिसि बळिकं तिर्य्यग्रूपसंकलननिमित्तमागियुमष्टमस्थानदोळं तावन्मात्रऋणमनिक्कि ९।१ तिर्य्यग्रूपदिदं संकलिसि चरम- ६।२२२२२२२

सप्तमस्थानदोळिक्किद ऋणमं कळेयुत्तं विरलु उत्तरधनसमासमेतावन्मात्रमक्कुं—

व वि। ४। ४। ९। ९। ९। ९। २५६ आदिविहीनमादिविहीनमेंदु सर्व्वत्र स्थाप्यमागिद्दं
६। २५६
२

ऋणसमासंदोळमष्टमस्थानदोळं कूडि सर्व्वऋणमेतावन्मात्रमक्कुं व वि।४।४।९।९।९।९।८ इन्तु ६।२५६
२

मूरुं सिद्धराशिगळ विषयदोळु गुणहीनाधिक संकलनासूत्रं प्रवर्त्तिसुगुमेंदितु तत्सूत्राभिप्रायं

सम्यग्दर्शितमादुदुभयधनयोगमिदु व वि। ४। ४। ९। ९। ९। १३। २५६ अत्रतनहीनरूपं तेगदु
६। २५६
२

ऋणऋणंगळ्गेकत्वमेंदितु कूडुत्तं विरलु अष्टषष्टिसप्तशतहृतपंचाशीतिगुणकारमक्कुमदक्केसंदृष्टि

व वि। ४। ४। ९९९। ८५ मत्तं धनद गुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसि ४ ऋणमं कळेयुत्तं
७६८ १
३

सप्त पंक्तयः स्युः। तासु षडर्धरूपेण संकलय्य सप्तम्यां तत्प्रमाणऋणं प्रक्षिप्य पश्चात्तिर्यक्संकलनार्थं अष्टमस्थाने एतावदृणं ९।१
६।२२२२२२२

निक्षिप्य संकलय्य अष्टमस्थाननिक्षिप्तऋणे अपनीते उत्तरधनसमासोऽयं ब वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २५६ आदि-
६ २५६
२

विहीनमिति सर्वत्र स्थाप्यतया अवस्थितऋणसमासः अष्टस्थानानामेतावान् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ८ एवं
६ २५६
२

त्रयाणामपि सिद्धराशीनां विषये गुणहीनाधिकसंकलनसूत्रं प्रवर्तत इति सूत्राभिप्रायः सम्यग्दर्शितः।

उभयधनयोगोऽयं—व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ २५६ अत्रतनहीन १३ १ रूपमपनीय ऋणार्णयोरैक्यमिति
६ २५६ ६ २५६
२ २

युक्तोऽष्टषष्टिसप्तशतहृतपंचाशीतिगुणकारः स्यात् तत्संदृष्टिः— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ८५ पुनः धन-
७६८

---

१. म °क्कि बलिकं। २. म °समष्टस्थ°।

विरलु किंचिदूनत्रिभागाधिकचतूरूपंगळु गुणकारमक्कुमदक्के संदृष्टि— व वि । ४।४।९।९।९।४
१७१ शेष
२५६ । ३

मत्तमी करणसूत्राभिप्रायदिंदमष्टगुणहानिगळ घनं तंदु तोरलुपडुगुं । पदमात्रगुणगच्छमात्रगुणकारंगळं स्थापिसि २२२२२२२२ अन्योन्याभ्यस्तः परस्परं गुणिसि । २५६ । वैकं एकरूपमं हीनं माडि
०
२५६ बळिक्कों राशियं सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तरधनांशंगळं कूडि १३ । गुणिसिदराशियोळु
०
१३ । २५६ विपदघ्नचयं पदमात्रमुत्तरधनविशेषंगळं । ९ । ८ । कळेवुदंतु कळेयुत्तं विरलु शेषमिदु । ३२४३ । ई राशियं व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विभजेत् । रूपोनपदमात्रगुणकारंगळ २।२।२।२।२।२।२ अन्योन्यगुणपरस्परगुणदिंदं पुट्टिद लब्धराशियिंदं २५६ हताद्यच्छिदिना गुणिसल्पट्टा-
२
द्यच्छिदर्दिदं ६२५६ विभजेत् भागिसुवुदन्तु भागिसुत्तं विरलु ३२४३ बंद लब्धमष्टगुणहानिगळ
२ ७६८
शुद्धघनमक्कु ४ भागे १७१ मंबुदिदु करणसूत्राभिप्रायमक्कुमिदु किंचिदूनत्रिभागाधिकरूप-
२५६।३
चतुष्टयं गुणकारमक्कुं व वि ४४ । ९ । ९ । ९ । ४ शेषगुणहानिगळ घनानयनदोळु नवमगुण-
१
३
हानियोळु आदिधनदाद्यच्छेदं बेसदच्छप्पण्णहृतषट्कमक्कुं ४ उत्तरधनदोळमाद्यच्छेदं तावन्मात्र-
६ । २५६
मयक्कुं ९ । ८ उभयधनांशंगळुं कूडि सर्व्वत्र षट्सप्तमितिमात्रमक्कुं व वि ४४ । ९९९ । ७६
६ । २५६ ६ । २५६

गुणकारभागहारावपवर्त्य ४ ऋणेऽपनीते किंचिदूनत्रिभागाधिकचतूरूपाणि गुणकारः स्यात् । तत्संदृष्टिः—
१
३
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ पुनरेतत्करणसूत्राभिप्रायेण अष्टगुणहानिधनमानीयते—
१७१
२५६ ३

पदघ्नं च पदमात्रगुणा २ २ २ २ २ २ २ २ न्योन्याभ्यासं २५६ व्येकं २५६ सहोत्तराद्यंशगुणं
०
१३ २५६ विपदघ्नचयं पदघ्नचयेन ९ ८ रहितं ३२४३ व्येकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना विभजेत् ३२४३
६ २५६ ७६८
२
इत्यष्टगुणहानिशुद्धघनं ४ भाग १७१ किंचिदूनत्रिभागार्धैकरूपचतुष्टयं गुणकारो भवति व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४
२५६।३ १—
३

शेषगुणहानिधनानयने नवमगुणहानौ आदिधनं बेसदछप्पण्णहृतषट्कभक्तषट्कसप्ततिः—

मेकें दोडे अष्टरूपोननानागुणहानिमात्रसर्व्वपदंगळोळु अष्टरूप गुणितोत्तरक्के ९।८। संयुतरूप-चतुष्टयत्वदिंदं। यितागुत्तं विरलु नवमगुणहानियोळुत्तरधनमिल्लेकें दोडे तत्सर्व्वक्कं स्वकादियोळ संक्रांतत्वदिमंतागुत्तं विरलु दशमगुणहानियोळुभयधनच्छेदं द्विगुणबेसदछप्पण्णहतषट्कमक्कुं। मेलेयुभयधनंगळ हारंगळु द्विगुणद्विगुणंगळागि नडेववन्तु नडेदु चरमदोळु उभयधनंगळोळं द्विगुणबेसदछप्पण्णभाजितान्योन्याभ्यस्तराशिगुणितस्वकादिच्छेदं हारमक्कुमुत्तरधनगुणकारमुमेकाद्येकोत्तरक्रमदिंदं नडेयल्पडुत्तिदर्दुदु। चरमदोळु नवरूपोननानागुणहानिमात्रमक्कुमिल्लि पूर्व्वकरण-सूत्रदिंदमुं मेणु तदभिप्रायक्रमदिंदमुं धनंतरल्पडुगुमल्लि करणसूत्रदिंदं धनं तरल्पडुगुमदें तें दोडे

७६ ६ प अ २५६।२	९ प ९ प अ अ ६ अ २५६।२
० ०	० ०
७६ ६।२।२५६	९।१ ६२।२५६
७६ ६।२५६	०

पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं पदमात्रगुणकारंगळ अन्योन्याभ्यास-दिदं पुट्टिद रासि बेसदछप्पण्ण भक्तान्योन्याभ्यस्तराशियक्कु प मदं वैकं एकरूपदिंदं हीनं अ २५६

माडुवुदु। ० प अन्तु माडिद राशियं सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तर धनांशंगळं कूडि गुणिसुदु ७६ ९ ८५ ० प अ।२५६ अ२५६

व वि ४४९९९ ७६ कुतः ? तत्रतना ४ |९८ द्युत्तरधनयोरादावेव संक्रांतत्वात्
६।२५६ ६।२५६|६ २५६

तत्रोत्तरधनं नास्ति। दशमगुणहानौ उभयधनच्छेदः द्विगुणबेसदछप्पण्णहतषट्कं उपरि द्विगुणद्विगुणो भूत्वा चरमे द्विगुणबेसदछप्पण्णभक्तान्योन्याभ्यस्तगुणितादिच्छेदः स्यात्। उत्तरधनगुणकारः एकाद्येकोत्तरक्रमेण गच्छैश्चरमे नवो नानागुणहानिमात्रो भवति। अत्रापि उक्तकरणसूत्रतदभिप्रायाभ्यां धनमानेतव्यम्। तत्र करणसूत्रेण यथा—

७६ ६ प अ २५६।२	९ प–९ ६ प अ अ अ २५६।२
० ० ०	० ० ०
७६ ६।२५६।२	९।१ ६।२५६।२
७६ ६।२५६	०

अन्तु गुणिसिद राशियोळु विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचय। ९ प ८ मिदु कळेयल्वेळकुमेंदु वेरि-
अ अ
रिसिया येरडुं राशिगळं व्येकपदरूपोनगच्छमात्रगुणकारंगळ अन्योन्याभ्यासजनितराशियिदं
प गुणिसल्पट्ट आद्यच्छिदिना आद्यच्छेदर्दिदं विभजेत् भागिसुवुदु धनं।
अ २५६। २

८५ प अ२५६। प ६। २५६ अ२५६।२ ६।९	ऋणं। ९ प–८ २५६। ६ प अ अ अ२५६। २	यितु स्थापिसल्पट्ट धनऋणंगळोळु धनदोळिर्द्दं

ऋणरूपनुभयांशप्रमितमनेत्तिकोंडु बेरिरिसि ८५। १ ऋणराशियोळिर्द्दं ऋणं राशिगे धन- ५
६ प २५६
अ २५६।२
मक्कुमप्पुदरिंदं। द्विसप्ततिप्रमितांशमं तेगदुकोंडु समच्छेदंगळप्पुदरिंदं पंचाशीतियोळु द्विसप्ततियं
कळेदु शेषऋणम १३ निदं त्रयोदशरूपं ऋणदोळे निक्षेपिसि १३
२५६।६।प ९। प
अ२५६। २ २५६।अअ६ प
अ २५६। २
सर्व्वगुणहानिगळ संकलनेयोळु जनितरुणसमानमुमी ऋणमुमक्कुमेंदु निरीक्षिसि धनऋणंगळ

पदामात्रगुणान्योन्याभ्यासं प व्येकं प सहोत्तराद्यंशगुणं ८५ प विपदघ्नचयं पदघ्नोत्तरधनचयः
अ २५६ अ २५६ अ २५६
९ प–८ अपनेतव्योऽस्तीति तं पृथक् संस्थाप्य तौ राशी व्येकपदान्योन्याभ्यस्त प २५६। हताद्यच्छिदिना १०
अ अ अ
विभजेत् इति धनं—८५ प ऋणं—९ प–८ धनस्थं ऋणं पृथक् संस्थाप्य
६।२५६ प अ। २५६ अ
अ २। २५६ ६। २५६ प अ अ
अ २। २५६

८५ १ ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति द्विसप्तति ७२
६। २५६ प ६। २५६ प
अ २५६। २ अ २५६। २

१३
पंचाशीत्यामपनीय शेषत्रयोदशसु ऋणे निक्षिप्तेषु इदं—९ प निरीक्ष्य धनऋणे अपवर्तयितव्ये।
अ अ
६। २५६ प
अ २५६। २

तत्र धने अन्योन्याभ्यस्तेन बेसदछप्पण्णं बेसदछप्पण्णेन द्विकं षड्रूपस्थद्विकेन चापवर्त्य शेषं ८५
२५६। ३

गुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसुवल्लि धनदोळन्योन्याभ्यस्तराशियन्योन्याभ्यस्तराशियोडने बेसद-
छप्पण्णनं बेसदछप्पण्णनोडनपवर्त्तिसि द्विकमं षड्रूपस्थितद्विकदोडनपवर्त्तिसिदोडे शेषधनमिदु
८५ ऋणमं निरीक्षिसियपवर्त्तिसिदोडेकरूपासंख्यातैकभागमक्कु १। मिदं कळेयुत्तं विरलु
२५६। ३ ə

किंचिदूनाष्टषष्टिसप्तशतभक्तपंचाशीतिप्रमितमक्कुमदवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमक्कु
५ व वि ४४।९९९।८५ मिदनष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकसप्तत्युत्तरशतदोळु मुन्निननष्टगुणहानि-
२५६। ३
द्रव्यगुणकारदोळु ८५ प्रक्षेपिसुवंतु प्रक्षेपिसिदुदिदु २५६ किंचिदूनत्रिभागमक्कुमी त्रिभागदिंदमा-
१७१ ७६८
७६८
धिकमप्प रूपचतुष्टयमनवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमं माडुत्तिरलु सर्व्वगुणहानिद्रव्यसमासमेता-
वन्मात्रमक्कु व वि ४४।९९९।४ मथवा व्यतिरेकमुखदिदं शेषगुणहानिगळ द्रव्यं तरल्पडुवल्लि
१
३
अष्टगुणहानिद्रव्यमं व वि ४४।९९९।४ सर्व्वगुणहानिगळ द्रव्यदोळु व वि ४४।९९९।४
१७१ १
७६८ ३
१० कळेयुत्तं विरलु एकरूपासंख्यातैकभागोनाष्टषष्टिसप्तशतभक्तपंचाशीतिगुणकारमक्कुं व वि
४४।९९९।८५ ई जघन्ययोगस्थानरचना सर्व्वद्रव्यमनिदं स्थापिसि व वि ४४।९९९।४
७६८ १
३

अपवर्तितऋणेन एकरूपासंख्यातैकभागेन १ ऊनिते अष्टषष्टिसप्तशतभक्तकिंचिदूनपंचाशीतिः अवस्थितगुण्यस्य
ə
गुणकारः स्यात्। व वि ४४९९९८५ अस्मिन् अष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकसप्ततिशते अष्टगुणहानिद्रव्यगुणकारे
२५६। ३
प्रक्षिप्ते २५६– किंचिदूनत्रिभागः। अनेन अधिकरूपचतुष्टये अवस्थितगुण्यस्य गुणकारे कृते सर्वगुणहानिद्रव्य-
७६८
१५ मेतावद्भवति— व वि ४४९९९४ अथवा व्यतिरेकमुखेन शेषगुणहानिद्रव्यमानीयते—
१–
३
तत्राष्टगुणहानिद्रव्ये व वि ४४९९९४ सर्वगुणहानिद्रव्यात् व वि ४४९९९४ अपनीते
१७१ १–
७६८ ३
अष्टषष्टिसप्तशतभक्तैकरूपासंख्यातैकभागोनपंचाशीतिगुणकारः स्यात् व वि ४४९९९८५ तज्जघन्ययोग-
७६८

---

१. म °मवस्थि°।

इल्लि संदृष्टिनिमित्तमागि चारिनवगा अट्ठ एंदितु गुणहानियनुत्पादिसि रूपत्रिभागमं बेरे तेगेदिरिसि व वि ८४९९१ गुणकारभूतचतुष्कमं भेदेसि द्विकद्वयमं माडि। २। २। एकद्विकविंदमा
३
गुणहानियं गुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु १६। मागळु सर्व्वराशिविन्यासमिदु व वि १६। ४।९९।२ ई प्रकारदिंदं त्रिभागेयोळु संदृष्टिनिमित्तमागि द्विकविंदं मेगेयुं केळगेयुं गुणिसिदोडे तद्विन्यासमिदु व वि १६। ४। ९। ९। १–। २ इदनी रूपषड्भागमं व वि। १६। ४। ९९। १– पूर्व्व- ५
३। २ ६
राशिय गुणकारद्विकदोळु साधिकमं माडि जघन्यस्पर्द्धकप्रमाणदिंदं प्रमाणिसुत्तं विरलु किंचिदूनषड्भागाधिकद्विरूपदिंदं गुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्ग्गमात्रंगळु जघन्यस्पर्द्धकंगळप्पुवदक्के संदृष्टि। ९। ९। १ २। एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाप्रमाणश्रेण्यसंख्यातैकभागवर्गं साधिकद्विगुण- मक्कुमदर प्रमाण a a मिदेत्तलानुं प्रतरासंख्येयभागमेंदितु संदेहमं जनियिकुमंतादोडं श्रेण्यसंख्येय- भागमात्रमे शलाकाराशियक्कुमेंदितु गृहीतव्यमक्कु। a मेकेंदोडे "इगि ठाण पड्ढयाओ वग्गण- १०
संखा पदेसगुणहाणी। सेढियसंखेज्जदिमा" एंदितु सूत्रोक्तमप्पुदरिंदं चोदकनेंदपनन्तु प्रतरासंख्येय- भागमेंब संदेहदिंदं सूत्रविरोधमेकादपुदा श्रेण्यसंख्येयभागत्वमल्लि पडेयल्पडुत्तं विरलेंदोडंतल्तु। प्रतरासंख्येयभागमसंख्यातश्रेणिप्रसंगमप्पुदरिंदमदु कारणदिंदं जघन्यस्पर्द्धकशलाकावर्ग्गप्रविष्ट- भागहारभूतासंख्यातंगळु गुणिसिकोंडु असंख्यातश्रेणिप्रमितंगळप्पुदरिंदं श्रेण्यसंख्यातैकभागमेयक्कु- मेंबुदत्थं। भागहार = a लब्धं a। १५

स्थानरचनासर्वद्रव्यमिदं संस्थाप्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ अत्र संदृष्टिनिमित्तं चारिणवगा अट्ठ इति गुण-
१—
३
हानिमुत्पाद्य गुणकारभूतचतुष्कं संभेद्य द्विकद्वयं कृत्वा २। २। एकद्विकेन तां संगुण्य दोगुणहानौ उत्पादितायां १६ तद्विन्यासोऽयं– व वि १६ ४ ९ ९ २ शेषत्रिभागेन संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्विगुणितेन व वि १६ ४ ९ ९ १–
३। २
अनेनैकरूपषड्भागेन व वि १६ ४ ९ ९ १– साधिकीकृत्य व वि १६ ४ ९ ९ २ जघन्यस्पर्धकेन प्रमाणितः
६
किंचिदूनषड्भागाधिकद्विरूपगुणितैकगुणहानिस्पर्धकशलाकावर्गमात्रजघन्यस्पर्धकमात्रो भवति। तत्संदृष्टिः– २०
।
९ ९ २ अयं श्रेण्यसंख्येयभागवर्गः a। a। २ प्रतरासंख्येय इव दृश्यते तथापि श्रेण्यसंख्येयभाग एव अन्यथा इगिठाणफड्ढयाओसेढिअसंखेज्जदिमा इति सूत्रं विरुध्यते तथात्वेऽपि तावत एव लब्धाददोषः? तन्न, तत्रासंख्यातश्रेणीनामपि प्रसंगात् तेन तद्भागहारभूतासंख्यातद्वयं गुणितमसंख्यातश्रेणिप्रमितं = a अपवर्तिते श्रेण्यसंख्यातैकभाग एवेत्यर्थः a। अथ प्रागुक्तमेव—

अनंतरं मुन्नं पेळल्पट्ट "अविभागपडिछेदो वग्गो पुण वग्गणाय पड्ढयगो। गुणहाणी वियजाणे ठाणं पडि होदि णियमेण" एंबी सूत्रार्थमिल्लि विशदमक्कुमप्पुदरिंदं पेळ्दपडुगुमें तेंदोडे— किं स्थानं नाम। एकसमये एकस्य जीवस्य संभवद्गुणहानिसमूहः स्थानम्। का गुणहानिः स्पर्द्धकसमूहः। किं स्पर्द्धकं क्रमवृद्धिहानिवर्गणासमूहः। का वर्गणा वर्गसमूहः। को वर्गः अविभागप्रतिच्छेदसमूहः। को विभागप्रतिच्छेदः जीवप्रदेशस्य कर्म्मादानशक्त्यां जघन्यवृद्धिः योगस्याधिकृतत्वात् एंदितिल्लि जघन्यवृद्धिप्रमाणमावुदे दोडे लोकमात्रजीवप्रदेशंगळं स्थापिसि ≡ अल्लि सर्व्वजघन्यशक्तिविशिष्टमप्पेकप्रदेशमं कोंडु। १। तत्प्रदेशगतशक्तियं बुद्धियिंदं प्रसारिसि मत्तमा प्रदेशशक्तियं नोडलविभागप्रतिच्छेदोत्तरशक्तिविशिष्टप्रदेशमं कोंडु। १। तत्प्रदेशगतशक्तियं मुन्नं प्रसारितप्रदेशशक्तिय मेले प्रसरितं माडि अधिकप्रमाणदिंदं प्रथमप्रसारितप्रदेशशक्तियं खंडिसुत्तिरलु असंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदंगळप्पुवु ||||||||||| तत्समूहं वर्गमें बुदक्कुं। मत्तं तज्जघन्य-
≡ a

शक्तियुक्तप्रदेशसदृशधनिकंगळुमसंख्यातप्रतरमात्रप्रदेशंगळप्पुववुं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितद्वयर्द्ध-

---

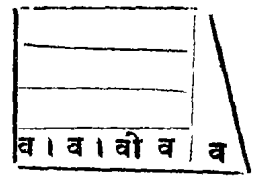
"अविभागपडिच्छेदो वग्गो पुण वग्गणा य फड्ढयगं। गुणहाणीणिय जाणे ठाणं पडि होदि णियमेण॥" इति सूत्रार्थं पुनर्विशदयति—

किं स्थानं? एकसमये एकस्य जीवस्य संभवद्गुणहानिसमूहः। का गुणहानिः? स्पर्धकसमूहः। किं स्पर्धकं? क्रमवृद्धिहानिवर्गणासमूहः। का वर्गणा? वर्गसमूहः। को वर्गः? अविभागप्रतिच्छेदसमूहः। कोऽविभागप्रतिच्छेदः? जीवप्रदेशस्य कर्मादानशक्तौ जघन्यवृद्धिः योगस्याधिकृतत्वात्। किं तज्जघन्यवृद्धिप्रमाणं? लोकमात्रजीवप्रदेशान् संस्थाप्य≡एतु सर्वजघन्यशक्तिकमेकं प्रदेशं स्वीकृत्य १ तद्गतशक्तिं बुद्ध्या प्रसार्य पुनः ततोऽविभागप्रतिच्छेदोत्तरप्रदेशं स्वीकृत्य १ तद्गतशक्तिं पूर्वप्रसारितशक्तेरुपरि प्रसार्य अधिकप्रमाणेन प्रथमप्रसारितप्रदेशशक्तौ खंडितायां असंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदा भवंति ||||||||||| ≡ a तत्समूहो वर्गः। स a इति संदृष्ट्या लिखितव्यः। तदग्रे तत्सदृशधनिकाः यावंतस्तावंतो लिखितव्याः। ते च असंख्यातलोकप्रतरमात्राः, श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्र्या

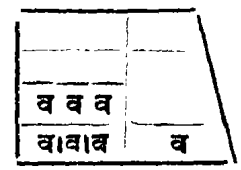
अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक, गुणहानि और स्थान ऊपर कहे हैं। एक जीवके एक समयमें होनेवाले गुणहानि समूहको स्थान कहते हैं। स्पर्धकोंके समूहको गुणहानि कहते हैं। क्रमसे वृद्धिहानिरूप वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं। वर्गके समूहको वर्गणा कहते हैं। और अविभागप्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं। जीवके प्रदेशोंमें कर्मको ग्रहण करनेकी शक्तिमें जो जघन्य वृद्धि होती है उसे अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। यहाँ योगका अधिकार होनेसे योगरूप शक्तिके अविभागी अंशका ग्रहण किया है। आगे जघन्य वृद्धिका प्रमाण कहते हैं—

जीवके प्रदेश लोकप्रमाण हैं। उनको स्थापन करके इन सब प्रदेशोंमें-से जिस प्रदेशमें योगोंकी जघन्य शक्ति पायी जाये, उस प्रदेशको अलग रखकर उस प्रदेशमें जितनी योगशक्ति हो उसको अपनी बुद्धिसे फैलाइये। उस जघन्य शक्तिसे अधिक और अन्य शक्तिसे हीन शक्ति जिसमें पायी जाये ऐसे किसी अन्य प्रदेशको ग्रहण करके, उसमें जितनी योगशक्ति पायी जाये उसे पहले फैलायी गयी जघन्य शक्तिके ऊपर बुद्धिसे ही फैलाइए। सो उस

गुणहानिर्यिदं लोकमात्रजीवप्रदेशंगळनपवर्त्तिसुत्तं विरला $\frac{\equiv}{३}$ आदिवर्गणाजीवप्रदेशागमन-
$\frac{}{ə ə २}$
मुंटप्पुदरिंदं $= \frac{ə ə २}{३}$ आ वर्गणाविभागप्रतिच्छेदंगळु पृथक् पृथक् वर्गसंज्ञितंगळु मुन्निन
वर्गपार्श्वदोळु रचियितव्यंगळप्पुवु

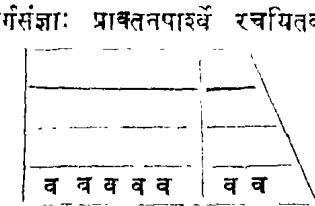


यितु रचयिसल्पट्टु संख्यातप्रतरमात्रवर्गंगळसमूहक्के वर्गणेयेंब संज्ञेयक्कुं। मत्तमी रचितवर्गंगळ
मेले अविभागप्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प पूर्व्ववर्गंगळं नोडलु दोगुणहानिभाजितादिवर्गणाप्रदेशमात्र- ५
विशेष।-ə ə ə ə हीनप्रदेशंगळ रचने रचियिसल्पडुगु

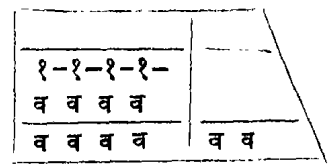


मन्तु रचियिसल्पट्टवर्गंगळगे द्वितीयवर्गणेयें ब व्यपदेशमक्कुमितविभागप्रतिच्छेदोत्तरमुं विशेष-
हीनक्रमदिंदं श्रेण्यसंख्यातैकभागपर्य्यंवस्थितंगळप्प वर्गणेगळ समूहमेकस्पर्द्धकमक्कुं। मत्तविभाग-
प्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प प्रदेशंगळिल्ल। मत्ते तप्प शक्तियुक्तप्रदेशंगळोळवें दोडे आदिवर्गणेय वर्गमं
नोडलु द्विगुणा व। २ विभागप्रतिच्छेदसंयुक्तप्रदेशंगळोळववर सदृशधनिकंगळगे पूर्व्वदन्ते प्रथम- १०
स्पर्द्धकचरमवर्गंगळ मेळे रचनेयं माडि :—

द्व्यर्धगुणहान्या लोकमात्रजीवप्रदेशेषु भक्तेषु $\frac{\equiv}{ə ə २}$ ३ आदिवर्गणाजीवप्रदेशागमनात् $= \frac{ə ə २}{३}$ तद्वर्गणाविभाग-
प्रतिच्छेदाः पृथक्पृथक्वर्गसंज्ञाः प्राक्तनपार्श्वे रचयितव्याः। एवं रचिताऽसंख्यातप्रतरमात्रः वर्गसमूहस्य
वर्गणेति संज्ञा स्यात्



इयं प्रथमा वर्गणा। पुनरेषा वर्गणामुपर्यविभाग-
प्रतिच्छेदोत्तरा अपि पूर्ववर्गेभ्यः एकविशेषहीनसंख्याका वर्गा लिखितव्याः

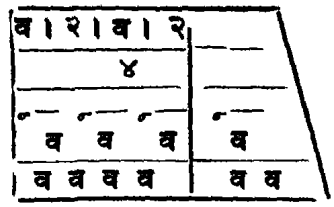


१५

इयं द्वितीया वर्गणा। एवमविभागोत्तरविशेषहीनक्रमेण श्रेण्यसंख्येयभागमात्रवर्गणासमूहः एकं स्पर्धकम्। पुनः
द्विगुणादादिवर्गणावर्गात् स्तोकशक्तिकाः प्रदेशा न संति ततस्तेषां द्विगुणानामेव सदृशधनिकानां प्रथमस्पर्धक-

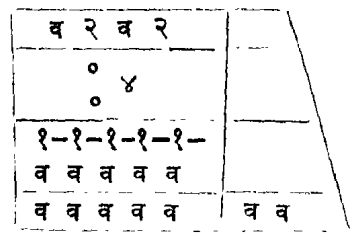
---

जघन्य शक्तिके ऊपर स्थापन की गयी शक्ति जितनी वृद्धिको लिये हुए हो उतनी वृद्धिका नाम योगोंका अविभाग प्रतिच्छेद है। इसका आशय यह है कि जघन्य शक्तिवाले प्रदेशसे



यवर मेले अविभागोत्तरमं विशेषहीनक्रममुमागी सदृश-धनिकंगळगे पूर्व्ववदन्ते श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रवर्गणेगळं कोंडु रचियिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धकमक्कुमिन्तु मेले मेले "पड्ढयसंखा हि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थ तत्थादी" यँदिती सूत्रोक्तक्रमदिंदमसंख्यातलोकमात्राविभागप्रतिच्छेदोत्तरंगळप्प श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रस्पर्द्धकंगळगे प्रथमगुणहानियोळु अव्यामोहदिंदं रचने माडल्पडुगुमल्लिदं मेले प्रथमगुणहान्यादिवर्गणासदृशधनिकंगळं नोडलु द्वितीयगुणहान्यादिवर्गणासदृशधनिकजीवप्रदेशसंख्ये द्विगुणहीनमक्कुमल्लिदं मेले विशेषहीनक्रमंगळप्पुवु । नवीनमुंटदावुदें दोडे मुन्निन विशेषमं नोडलो द्वितीयगुणहानिविशेषमर्द्धमात्रमेयक्कुमिन्तप्प गुणहानिगळु पळितोपमासंख्यातैकभागमात्रंगळु सलुत्तं विरलोंदु योगस्थानमक्कुमिदु सर्व्वजघन्ययोगस्थानमक्कुमिन्तु शक्तिप्रधानमागि पेळल्पट्टुदु । मत्तमिदर संकलननिमित्तं प्रदेशप्रधानरचनास्वरूपं निरूपिसल्पडुगुमदें तें दोडे प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशकलापमं

चरमवर्गणाया उपरि रचना कर्तव्या तस्या



उपरि पुनः प्राग्वद-विभागोत्तरविशेषहीनक्रमेण श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रीषु वर्गणासु रचितासु द्वितीयं स्पर्धकं । एवमुपर्युपरि फड्ढयसंखाहि गुणं जहण्णवग्गं तु तत्थतत्थादीत्युक्तक्रमेण श्रेण्यसंख्येयभागस्पर्धकानि प्रथमगुणहानौ रचितव्यानि । तत उपरि द्वितीयगुणहान्यादिवर्गणा प्रथमगुणहान्यादिवर्गणार्धमात्री उपरि विशेषहीनक्रमेण गच्छति । अयं विशेषोऽपि पूर्वविशेषार्धमात्रः । एवं पलितोपमासंख्यातैकभागमात्रगुणहानिषु गच्छंतीषु एकं योगस्थानं । इदं सर्वजघन्यं शक्तिप्राधान्येनोक्तं । पुनः तदेव प्रदेशप्राधान्येन संकलयति—

एक अविभागी अंश अधिक शक्तिके धारी दूसरे प्रदेशमें उस जघन्य शक्तिसे जितनी शक्ति बढ़ती हुई हो उस बढ़ती हुई शक्तिके प्रमाणको योगका अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं । पहले फैलायी गयी प्रदेशकी जघन्य शक्तिके उस अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण, खण्ड करनेपर असंख्यात लोक प्रमाण खण्ड होते हैं । अतः असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदोंके समूहको वर्ग कहते हैं । इसीसे एक वर्गमें असंख्यात लोक प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं । उसकी सहनानी (पहचान) 'व' अक्षर है । उसके आगे जिन प्रदेशोंमें जघन्य शक्ति पायी जाती है वे सब लिखें । इस प्रकार जघन्य शक्तिके धारक जीवके प्रदेश असंख्यात जगत्प्रतर प्रमाण होते हैं क्योंकि लोक प्रमाण जीवके प्रदेशोंमें डेढ़ गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने जघन्यशक्ति प्रमाण शक्तिके धारक प्रदेश हैं । सो एक गुणहानिमें जितना वर्गणाका प्रमाण कहा है उसका ड्योढ़ा करनेपर डेढ़ गुणहानिका

=अ अ २ दोगुणहानिर्यिदं अअ २ । भागिसुत्तं विरलु विशेषमक्कु । -अ अ अ अ मिदु लघुसंदृष्टि-
३ ३

निमित्तं । वि । एंदितु माडल्पट्टुददं मत्ते दोगुणहानिर्यिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानियोळु प्रथमस्पर्द्धकदादिवर्ग्गणेयक्कुं । वि १६ । तंदवस्थंगळेयप्पुवु । होनाधिकभावमिल्लेंबिदर्द्दंतिर्द्दवं बुदर्त्थं । मत्तं जघन्यवर्ग्गमात्रशक्तियं कुरुत्तु सदृशधनिकत्वदिंदं त्रैराशिकविधानदिंदं प्र १ । फ । व । इ । वि १६ । बंद लब्धं प्रथमगुणहानियोळु प्रथमस्पर्द्धकदादिवर्ग्गणेयक्कुं । व । वि १६ । मेले सर्व्वत्र विशेषहीनप्रदेशंगळ्गे अविभागोत्तरादिजघन्यवर्ग्गं त्रैराशिकदिंदमुत्पन्नगुणकारं सुगममक्कुं । नवीनमुंटदावुदें दोडे गुणहानि गुणहानि प्रतियाविर्यं नोडलाविर्यद्धार्द्धक्रममक्कुमेकेंदोडे सर्व्वत्र रूपोनगुणहानिमात्रविशेषहीनविवक्षितगुणहानिप्रथमवर्ग्गणेये तच्चरमवर्ग्गणेयप्पुदरिना चरमवर्ग्गणाप्रदेशंगळिंदं तदुत्तरगुणहान्यादिवर्ग्गणाप्रदेशंगळु पूर्व्वैकविशेषहीनत्वदिंदमर्द्धार्द्धंगळप्पुवप्पुदरिंदं । यिल्लिंदं मेले द्वितीयादिगुणहानिगळोळु विशेषमुमर्द्धार्द्धक्रममक्कुमाउदोंदु कारणदिंदं दोगुणहानिर्यिदं स्वस्वादि भागिसल्पडुत्तिरलागळा विशेषं वक्कुमप्पुदरिंदमा सर्व्वगुणहानिगळोळन्नेवरं

प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशकलापे = अ अ २ दोगुणहान्या अ अ भक्ते विशेषः स्यात्—
३

अ अ अ अ स एव पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्तं वि इति कृत्वा दोगुणहान्या गुणितः प्रथमगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणा
३

स्यात् वि १६ । इयं तदवस्थैव न च होनाधिकेत्यर्थः । पुनर्जघन्यवर्गमात्रशक्तिं प्रति सदृशधनिकत्वात् त्रैराशिकविधानेन प्र १ फ व इ वि १६ लब्धं प्रथमगुणहानौ प्रथमस्पर्धकादिवर्गणा भवति व वि १६ । एवमुपर्युपरि सर्वत्राविभागोत्तरादिजघन्यवर्गः त्रैराशिकोत्पन्नगुणकारः सुगमः, किंतु गुणहानिं गुणहानिं प्रति आदितः आदिः अर्धार्धक्रमः । कुतः ? पूर्वगुणहान्यादिवर्गणायाः गुणहानिमात्रस्वविशेषैर्हीनायाः उत्तरगुणहान्यादिवर्गणात्वात् । तथा विशेषोऽप्यर्धार्धक्रमः स्वस्वादेः दोगुणहानिभक्तस्य तत्प्रमाणत्वात् । तासु सर्वगुणहानिषु तावत् प्रथम-

---

प्रमाण होता है । वह जगतश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र ही है । उसका भाग जीवके प्रदेशोंमें देनेपर असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण प्रदेशोंका प्रमाण होता है । सो इतने प्रदेशोंके समूहको प्रथम वर्गणा कहते हैं । इसीसे एक वर्गणामें असंख्यात जगतप्रतर प्रमाण वर्ग कहे हैं ।

आगे उस जघन्य शक्तिरूप वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण कहा उससे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें पाये जायें ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उतने प्रदेश उसके ऊपर लिखें । ये प्रदेश प्रथम वर्गणामें जितने प्रदेश कहे थे उनसे एक चय हीन होते हैं । प्रथम वर्गणामें जो प्रदेशोंका प्रमाण है उसे दो गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही चय या विशेषका प्रमाण जानना । सो विशेषकी सहनानी 'वि' अक्षर जानना । एक गुणहानिमें जो वर्गणाओंका प्रमाण है उसको दूना करनेपर दो गुणहानिका

---

१. म °मिल्लदेहद्दंतिर्प्पुवुवेंबु° ।

प्रथमगुणहानिचरमवर्ग्गणेयेंबुदिदु । व ९ वि १६—४ । ८ द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्ग्गणेयेंबुदिदु ।

व ९ । वि १६–४ । ८ । द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्ग्गणेयोळिर्द्द ऋणमनिदं । वि ४ । ९ । चारि नवगा अट्ठ एंदिन्तु गुणहानियनुत्पादिसि वि ८ । दोगुणहानियोळु विशेषमात्रगुणहानिगळ्गे विशेषमात्रगुणहानिगळं तोरि तोरलिल्लद द्विकदोळात्मप्रमाणमेकरूपं कळेयुत्तिरलु शेषमेकगुणहानिमात्रविशेषंगळेयप्पुवदं वि ८ । संदृष्टिनिमित्तं मेलेयुं केळगेयुं द्विगुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशंगळ् नोडलो द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशं द्विगुणहीनमागि स्फुटमागि काणल्पट्टुदु । व ९ । वि ८ । १।२। गुणिसल्पडुत्तिरलिदर न्यासमितिक्कु

व ९ । वि १६ । मिन्तु सर्व्वत्र नेतव्यमक्कुमिल्लिदं मेले सर्व्वविभागप्रतिच्छेदमेलापविधानं पेळल्पडुगुमल्लि मुन्नं प्रथमगुणहानिस्पर्द्धकंगळसंयोजनक्रमं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे जघन्यस्पर्द्धकादिवर्गणेयनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिदं गुणिसुत्तं विरलु स्थूलरूपदिंदं जघन्यस्पर्द्धकमेता-

---

गुणहानिचरमवर्गणेयं व ९ वि १६–४ ८ द्वितीयगुणहानिप्रथमवर्गणेयं व ९ वि १६–४ ९ । अत्रस्थमूनमिदं वि ४ ९ चारिनवगा अट्ठ इति गुणहानिमुत्पाद्य वि ८ दोगुणहानौ विशेषमात्रगुणहानीनां विशेषमात्रगुणहानीः प्रदर्श्य तत्रस्थद्विके आत्मप्रमाणैकरूपेऽपनीते शेषमेकगुणहानिमात्रविशेषमिति । तस्मिन् वि ८ १ संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्वाभ्यां गुणिते प्रथमगुणहानिप्रथमस्पर्धकवर्गणाप्रदेशेभ्यो द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकप्रथमवर्गणाप्रदेशा द्विगुणहीनाः स्फुटं दृश्यंते व ९ वि ८ १ २ गुणिते तन्न्यासोऽयं व ९ वि १६ एवं सर्वत्र नेतव्यं । इतः परं सर्वविभागप्रतिच्छेदान् संकलयति—

तत्र जघन्यस्पर्धकस्यादिवर्गणायां एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः गुणितायां स्थूलरूपेण जघन्यस्पर्धकं

प्रमाण होता है । सो प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणमें-से विशेषको घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने प्रदेशोंके समूहको द्वितीय वर्गणा कहते हैं । यहाँ पूर्वोक्त जघन्य शक्तिसे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिका धारक जो प्रदेश है उसे वर्ग कहते हैं । उनका समूह दूसरी वर्गणा है । द्वितीय वर्गणा सम्बन्धी वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उससे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक जिसमें हो ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उतने उनके ऊपर लिखें । वे प्रदेश द्वितीय वर्गणामें जितने कहे थे उनमेंसे विशेषका प्रमाण घटानेपर जितना प्रमाण रहे उतने होते हैं । यहाँ द्वितीय वर्गणा सम्बन्धी वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग कहते हैं । उनका समूह तीसरी वर्गणा है । इसी क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये और एक-एक विशेष हीन प्रमाणको लिये हुए जो वर्ग हैं उनका समूह एक-एक वर्गणा होता है । ऐसे

वन्मात्रमक्कुं व वि १६ । ४ । यिदनेयाद्युत्तरमागेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकागच्छसंकलनेयं तरुत्तं

विरलु ऋणसहितमागि प्रथमगुणहानिद्रव्यमिनितक्कु व वि १६ । ४ । ९ । ९ । मिल्लि प्रथम-
२ । १

स्पर्द्धकदोळु ऋणंतरत्पडुगुमल्लि यन्नेवरं द्वितीयादिवर्गणेगळोळु जघन्यवर्गद मेले एकाद्ये-
कोत्तरक्रमदिनिर्द्द अविभागप्रतिच्छेदधनमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि :—

वि १६–३ । ३ इल्लिर्द्दऋणमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि वि । ३ । ३ ५
वि १६–२ । २ वि । २ । २
वि १६–१ । १ वि । १ । १

यिल्लि संकलनानिमित्तं प्रथमपंक्तियगुणकारंगळोळेकैकरूपं सर्व्वत्र तेगदुपृथक् स्थापिसल्पडुगुं—

वि २ । ३ ऋणद्वयं वि १ । ३ धन वि १६ । १ यिल्लि ऋणद्वयदोळु चरमराशिय
वि १ । २ वि १ । २ वि १६ । २
० वि १ । १ वि १६ । ३
० ०

एकविशेषादि एकविशेषोत्तररूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रमं वि ३ । ४
२ १

द्विरूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमात्रविशेषंगळोळु—

स्यात् । व वि १६ । ४ । एतदाद्युत्तरैकगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छसंकलनायां ऋणसहितं प्रथमगुणहानि- १०
१—
द्रव्यमिदं व वि १६ ४ ९ ९ । अत्र प्रथमस्पर्धके ऋणमानीयते—
२

तत्र तावद् द्वितीयादिवर्गणासु जघन्यवर्गस्योपरि एकाद्येकोत्तराविभागप्रतिच्छेदधनं पृथक् संस्थाप्यं,
तत्संदृष्टिः— वि १६–३ ३ / वि १६–२ २ / वि १६–१ १ अत्रस्थं ऋणमपि पृथक् संस्थाप्यं, तत्संदृष्टिः त्रि ३ । ३ / वि २ । २ / वि १ । १ अत्र संकलना-

निमित्तं प्रथमपंक्तेर्गुणकारेष्वेकैकरूपे सर्वत्र पृथक्स्थापिते ऋणद्वयं- वि २ ३ / वि १ २ / ० / ० वि १ ३ / वि १ २ / वि १ १ / ० धनं वि १६ ३ / वि १६ २ / वि १६ १

अत्र ऋणद्वये चरमराशेरेकविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं वि ३ । ४ द्विरूपोनैक- १५
२ । १

जगत्श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा होनेपर एक स्पर्धक होता है। इसीसे एक स्पर्धकमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा कही है। उसकी सहनानी चार ४ का अंक है। इस प्रथम स्पर्धकको जघन्य स्पर्धक कहते हैं।

इस प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका जो प्रमाण है उसके ऊपर प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गमें जितने अविभाग प्रतिच्छेद २० हैं उनसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद जिनके हों ऐसी शक्तिके धारक पाये जाते हैं। उससे हीन

वि २।३।४।२ साधिकं माडि रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रादिवर्गणाप्रदेश-
३।२।१
वोळु किंचिदूनितं माडुत्तिरलु शेषधनमेतावन्मात्रमक्कुं वि १६।३।४– मत्तमपनीताधिका-
२
विभागप्रतिच्छेदशेषजघन्यस्पर्द्धकरचनेयिदु व वि १६–३ इल्लि द्वितीयादिवर्गणेगळोळु स्थित-
व वि १६–२
व वि १६–१
व वि १६।
ऋणमं तेगदु पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु अदक्के संदृष्टि व वि ३ यिदं संकलिसुत्तं विरलु रूपो-
व वि २
व वि १
नैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रं विशेषमक्कु व वि ३।४।
२
एतस्मात्कारणात् यिदु कारणमागि पूर्व्वमानिताधिकाविभागप्रतिच्छेदाधिक धनमिदु। वि १६।३।४।।
२
जघन्यवर्गमात्रासंख्यातलोकगुणकाराभावादिदमविवक्षितमक्कुमदु कारणमागि द्वितीयादिस्पर्द्धकं-
गळ द्वितीयादिवर्गणेगळोळेकाद्येकोत्तरक्रमदिदमिर्द्द अविभागप्रतिच्छेदधनंगळगविवक्षेयुमक्कु-

---

स्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनमात्रविशेषेषु वि २ ३ ४ २ साधिकं कृत्वा वि २ २ ३ ४ अनेन
३ २ १ ३ २ १
रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्रादिवर्गणाप्रदेशेषु किंचिदूनितेषु शेषधनमिदं वि १६ ३ ४ पुनरपनीता-
२
धिकाविभागप्रतिच्छेदशेषजघन्यस्पर्धकरचनेयं—

व वि १६-३ व वि १६-२ व वि १६-१ व वि १६	अत्र द्वितीयादिवर्गणास्थं ऋणं पृथक् स्थाप्यं। तत्संदृष्टिः–	व वि ३ व वि २ व वि १	अस्य संकलनं रूपो-

नैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषः व वि ३ ४ तच्च प्रागानीताधिकाविभाग-
२ १
प्रतिच्छेदाधिकधनमिदं वि १६ ३ ४ जघन्यवर्गमात्रासंख्यातलोकमात्रगुणकाराभावान्न विवक्षितं तत एव
२ १

शक्तिका धारक प्रदेश नहीं पाया जाता। अतः जिनमें जघन्य वर्गसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद पाये जायें ऐसी शक्तिके धारक जितने प्रदेश हों उनकी रचना प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके ऊपर करें। वे प्रदेश प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणमें-से एक विशेष घटानेपर जो प्रमाण रहें उतने जानना। यहाँ जघन्य वर्गसे दूने अविभाग प्रतिच्छेद-रूप शक्तिके धारक प्रदेशको वर्ग जानना। उनका समूह दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणा है। इस प्रथम वर्गणाके वर्गसे एक अविभाग प्रतिच्छेद जिसमें अधिक हो ऐसी शक्तिके धारक

---

१. ब °वर्गश°। २. ब लोकगुण०।

मीगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमेतरल्पडुत्तं विदे अविभागोत्तररहितद्वितीयस्पर्द्धकमिदु—

$$\begin{array}{l} \overset{३}{व २ वि १६-४} \\ \overset{२}{व २ वि १६-४} \\ \hline व २ वि १६-४ \\ व २ वि १६-४ \end{array}$$

अत्रतन ऋणमं कळेदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलिदु

$$\begin{array}{l} \overset{३}{व २ वि ४} \\ \overset{२}{व २ वि ४} \\ \hline व २ वि ४ \\ व २ वि ४ \end{array}$$

यिल्लियधिक-

रूपुगळ रचनेयिदु व २ वि ३ व २ वि २ व २ वि १ इदर संकलनें जघन्यवर्गमात्रविशेषमादियुमुत्तरमं रूपोनैक-स्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनमात्रं द्विगुणितप्रमाणमक्कु व वि ३।४।२ मिदु प्रथम-स्पर्द्धकऋणद मेले स्थापिसल्पडुगुं। शेषमिदु व २ वि ४ व २ वि ४ व २ वि ४ व २ वि ४ त्रैराशिकदिंदं सिद्धमप्प राशिय ५ प्रमाणजघन्यवर्गमात्रविशेषमनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिंदं गुणिसल्पट्टुदं रूपोनगच्छ

द्वितीयादिस्पर्धकानां द्वितीयादिवर्गणासु अपि एकाद्येकोत्तरक्रमस्थिताविभागप्रतिच्छेदघनानि न विवक्षितानि।

संप्रति द्वितीयस्पर्धकऋणानयने अविभागोत्तररहितद्वितीयस्पर्धकमिदं

$$\begin{array}{|l|} \hline \overset{३-}{व २ वि १६-४} \\ \overset{२-}{व २ वि १६-४} \\ \overset{१-}{व २ वि १६-४} \\ व २ वि १६-४ \\ \hline \end{array}$$

अत्रस्थमृणं पृथक्संस्थाप्य

$$\begin{array}{|l|} \hline \overset{३-}{व २ वि ४} \\ \overset{२-}{व २ वि ४} \\ \overset{१-}{व २ वि ४} \\ व २ वि ४ \\ \hline \end{array}$$

अधिकरूपरचनेयं—

$$\begin{array}{|l|} \hline व २ वि ३ \\ व २ वि २ \\ व २ वि १ \\ \hline \end{array}$$

अस्याः संकलनाजघन्यवर्गमात्रविशेषा-द्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं द्विगुणितं स्यात्। व वि ३ ४ २ इदं प्रथमस्पर्धकऋणस्योपरि १०

जो प्रदेश हैं वे ही वर्ग हैं। दूसरे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रदेशोंके प्रमाणसे एक विशेष हीन जो प्रदेशरूप वर्ग हैं उनका समूह दूसरे स्पर्धककी दूसरी वर्गणा है। इसी प्रकार क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये हुए और एक-एक विशेष घटते हुए जो वर्ग हैं उनके समूह एक-एक वर्गणा होते होते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणा होती हैं। उनका समूह दूसरा स्पर्धक है। १५

१. ब अस्याधिक०।

संकलनाद्विगुणद्विरूपं गुणितमात्रं द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि ४।४।१।२। स्वकीयपूर्व्वऋण पार्श्वदोळु स्थापिसल्पडुगु। मी येरडुं राशिगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमक्कुं।

मत्तमविभागप्रतिच्छेदोत्तररहिततृतीयस्पर्द्धकमिदु व ३ वि १६-४।२ अत्रतनऋणमं तेगदु

३
व ३ वि १६-४।२
२
व ३ वि १६-४।२
१
व ३ वि १६-४।२
व ३ वि १६-४।२

पृथक् स्थापितमिदु व ३ वि ४।२ इल्लिय्धिकरूपंगळ स्थापनेयिदु व ३ वि ३ यिदर संक-

३
व ३ वि ४।२
२
व ३ वि ४।२
१
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२

व ३।वि २
व ३।वि १

५ स्थाप्यं। शेषमिदं | व २ वि ४ | त्रैराशिकसिद्धप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण
व २ वि ४
व २ वि ४
व २ वि ४

द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनेन च गुणितः द्वितीयपंक्तिऋणमिदं व वि ४ ४ १ २ स्वकीयपूर्वऋणपार्श्वं स्थापयेत्।

एते द्वे द्वितीयस्पर्धकऋणे स्यातां। पुनरविभागप्रतिच्छेदोत्तररहिततृतीयस्पर्धकमिदं

३—
व ३ वि १६—४ २
२—
व ३ वि १६—४ २
१—
व ३ वि १६—४ २
व ३ वि १६—४ २

अत्रस्थमृणं पृथक् संस्थाप्य

३—
व ३ वि ४ २
२—
व ३ वि ४ २
१—
व ३ वि ४ २
व ३ वि ४ २

अस्याधिकरूपस्थापनेयं | व ३ वि ३ | अस्याः संकलना-
व ३ वि २
व ३ वि १

उस दूसरे स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके ऊपर प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी
१० जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदवाले शक्तिके धारक प्रदेश पाये जाते हैं, उससे कम शक्तिवाले नहीं पाये जाते। अतः जघन्य वर्गसे तिगुने अविभाग प्रतिच्छेदरूप शक्तिके धारक जो प्रदेश हैं वे ही वर्ग हैं। उस द्वितीय स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके प्रदेशोंसे एक विशेष हीन प्रदेशरूप वर्गोंका जो समूह है वह तीसरे स्पर्धककी

लने जघन्यवर्गमात्रविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनात्रिगुणितप्रमाणमक्कु ।
व वि ३ । ४ । ३ मिदु द्वितीयस्पर्द्धकप्रथमऋणद मेले स्थापिसल्पडुगुं विशेषमिदु । व ३ वि ४।२
२ व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२
व ३ वि ४।२

त्रैराशिकदिंदमुत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रविशेषमनेकस्पर्द्धक वर्गणाशलाकावर्गदिंदं गुणितमं रूपोनगच्छसंकलनेय द्विगुणदिंदंगुणितमात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । २ । ३ । मिदु द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयऋणपंक्तिय मेले स्थापिसल्पडुगुमी एरडुं राशिगळुं तृतीयस्पर्द्धकऋणमक्कुमिन्तु प्रथमगुणहानियोळु स्पर्द्धकं प्रतिरूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकासंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळ गुणकारंगळु गच्छमात्रंगळागि नडेवुवु प्रथमपंक्तिऋणंगळु मत्तं स्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र विशेषंगळ रूपोनस्पर्द्धकसंख्या गच्छद्विगुणसंकलनमात्रगुणकारंगळु द्वितीयऋणपंक्तियोळप्पुवु—

व वि ३ । ४ । ९ २	व वि ४ । ४ । ८ । ९ । २ २
व वि ३ । ४ । ८ २	व वि ४ । ४ । ७ । ८ । २ २
० ०	० ०
व वि ३ । ४ । २ २	व वि ४ । ४ । २ । ३ । २ २
व वि ३ । ४ । १ २	व वि ४ । ४ । १ । २ । २ २

जघन्यवर्गमात्रविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनं त्रिगुणितं स्यात्— व वि ३ । ४ । ३ इदं
२
द्वितीयस्पर्धकप्रथमऋणस्योपरि स्थाप्यं । शेषमिदं

व ३ वि ४ । २
व ३ वि ४ । २
व ३ वि ४ । २
व ३ वि ४ । २

त्रैराशिकोत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्ग-

मात्रविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणरूपोनगच्छसंकलनेन च गुणितः व वि ४ ४ ३ २ । इदं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयऋणपंक्तेरुपरि स्थाप्यं । एते द्वे तृतीयस्पर्धकऋणे भवतः । एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्धकं प्रथमपंक्तौ रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गच्छमात्राः गुणकारा भूत्वा

प्रथम वर्गणा है। इससे ऊपर पूर्ववत् एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक शक्तिको लिये हुए और एक-एक विशेष हीन प्रमाणको लिये हुए वर्गोंके समूहरूप एक-एक वर्गणा

१. ब० सार्धक संकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां गच्छमात्राः । द्वितीयपंक्तौ तु स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्र विशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणऋणे भवतः । एवं प्रथमगुणहानौ प्रतिस्पर्द्धकं प्रथमपंक्तौ रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकासंकलनमात्राश्च गुणकारा भवन्ति । एषां संकलना० ।

ई प्रथमगुणहानिय प्रथमद्वितीय पंक्तिय ऋणंगळं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकसंकलिसुत्तं विरलु रूपोनगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळु द्विगुणद्विकवार संकलनेयिंदं स्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषंगळु गुणिसल्पडुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि ४।४।९।९।९। मत्तं गुणहानिस्पर्द्धकशलाका संकलनेयिंदं रूपोन-
३
रूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकासंकलनेयिंदमुं गुणिसल्पट्ट जघन्य वर्गमात्रविशेषंगळु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु। व वि ३।४।९।९। मी राशियं मेलापिसल्वेडि द्वितीयपंक्ति-
२ २

प्रथमपंक्तिऋणानि, द्वितीयपंक्तौ तु स्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाणां रूपोनगच्छद्विगुणसंकलनमात्राश्च गुणकारा द्वितीयपंक्तिऋणानि भवंति—

प्रथमपंक्तिऋणं

व	वि	३	४	९
		२		
व	वि	३	४	८
		२		
		०		
		०		
		०		
व	वि	३	४	३
		२		
व	वि	३	४	२
		२		
व	वि	३	४	१
		२		

द्वितीयपंक्तिऋणं

व	वि	४	४	८	९	२
				२		
व	वि	४	४	७	८	२
			०	२		
			०			
			०			
व	वि	४	४	२	३	२
				२		
व	वि	४	४	१	२	२
				२		
				०		

एषां संकलनायां रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाकागच्छद्विगुणद्विकवारसंकलनगुणितस्पर्धकवर्गणाशलाका-
० १—
वर्गगुणितजघन्यवर्गमात्रविशेषाः द्वितीयपंक्तिसर्वऋणं भवति व वि ४।४।९।९।९ पुनर्गुणहानिस्पर्धक-
३
शलाकागच्छसंकलनेन रूपोनस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनेन च गुणिते जघन्यवर्गमात्रविशेषाः प्रथमपंक्ति-

होते-होते जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाओंके होनेपर उनका समूहरूप तीसरा स्पर्धक होता है। इसी अनुक्रमसे जघन्य वर्गको स्पर्धकोंकी संख्यासे गुणा करनेपर प्रथम वर्गणा होती है। प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणा सम्बन्धी जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणसे चौगुना करनेपर चौथे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। पाँच गुना करनेपर पंचम स्कन्धकी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। छह गुणा करनेपर छठे स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। इस प्रकार जिस संख्याके स्पर्धककी प्रथम वर्गणा विवक्षित हो जघन्य वर्गसे उतना गुणा करनेपर उस स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। तथा प्रथम वर्गणाके

सर्व्वऋणसमासचरमगुणकारदोळेकरूपचतुर्त्थांशमं प्रक्षेपिसुत्तं विरलुभयपंक्तिऋणसमासमेता-
वन्मात्रमक्कु। व वि ४।४।९।९ ९ मी प्रथमगुणहानिऋणमं संदृष्टिनिमित्तमागि द्विक-
३
२
दिंद मेलेयुं केळगेयुं गुणिसिदुदनिदं व वि ४।४।९९।९।२ मुन्नं सामान्यदिंदं तंद प्रथम-
६
गुणहानिद्रव्यदोळु— व वि १६।४।९।९ अत्रतनगुणहानियं द्विकदिंदं भेदिसि द्विकमं मुंदे
२
स्थापिसि गुणहानियं भेदिसि एकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकागुणितस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळं माडि। ५
४।९। चतुष्कमं चतुष्कद नवकमं नवकद पार्श्वदोळु स्थापिसल्पट्टुदं मूररिंदं समच्छेदमं माडि।
व वि ४।४।९९९ ६ दी धनराशियोळु कळेयुत्तं विरलु प्रथमगुणहानिशुद्धसर्वाविभागप्रतिच्छे-
६
दंगळे तावन्मात्रंगळु यथास्वरूपदिंदं बर्प्पुवु। तत्प्रमाणमिदु व वि ४।४।९९९।४ यी
६
प्रथमगुणहानियोळिदेयादिधनमक्कुमुत्तरधनमिल्ल॥

अनंतरं द्वितीयगुणहानिद्रव्यं पेळल्पडुगुमल्लि प्रथमादिस्पर्द्धकंगळ प्रथमादिवर्गणेगलेक १०
गुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगल मेलिर्द्दधिकरूपंगळं तेगदु मुन्नं संकलिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानिद्रव्य-

१—
सर्वऋणं स्यात् व वि ३ ४ ९ ९ इदं मेलापयितुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणसमासचरमगुणकारे एकरूपचतुर्थांशे
२ २
१—
प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ इदं प्रथमगुणहानिऋणं संदृष्टिनिमित्तं द्विकेन उपर्यधो
३
१— १—
गुणितं व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ प्राक् सामान्यानीतप्रथमगुणहानिद्रव्य व वि १६ ४ ९ ९ स्थादोगुणहानि
६ २
द्विकेन संभेद्य द्विकमग्रे संस्थाप्य गुणहानिं संभेद्य एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणितस्पर्धकवर्गणाशलाकाः कृत्वा १५
१—
४।९। चतुष्कं चतुष्कस्य नवकं नवकस्य च पार्श्वे संस्थाप्य त्रिभिः समच्छेदीकृते व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ६
६
तस्मिन् धनराशावपनीते तदा प्रथमगुणहानिविशुद्धसर्वाविभागप्रतिच्छेदप्रमाणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४
६
इदं प्रथमगुणहानावादिधनं, उत्तरधनं नास्ति। अथ द्वितीयगुणहानिद्रव्यमानीयते—

तत्र प्रथमादिस्पर्धकप्रथमादिवर्गणानां एकगुणहानिस्पर्धकशलाकोपरि स्थिताधिकरूपाणि पृथक्कृत्य

वर्गसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढ़ानेपर द्वितीयादि वर्गणाओंके वर्गोंके अविभाग २०
प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। और आगे प्रत्येक वर्गणामें एक-एक विशेष हीन वर्गोंका

वर्द्धमेतावन्मात्रमेयक्कु। व वि ४।४।९।९।९।४ मिदक्कादिधनसंज्ञेयक्कुमिदु मुन्निन
६।४
प्रथमगुणहानिद्रव्यद मेले स्थापिसल्पडुगुं। प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्द्धमनेकस्पर्द्धकवर्गणा-
शलाकेगळिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धक-
मेतावन्मात्रमक्कु। व वि १६।४।९। मी राशियं स्पर्द्धकं प्रतिगच्छमात्रमवस्थितस्वरूपविद-
२
मिरुत्तिर्द्दुदेंदु त्रैराशिकक्रमदिंदं गुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानि-
योळु ऋणसहितमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु। व वि १६।४।९९। मीयुत्तरधनद ऋणं तरल्प-
२
डुगुमदें तोडे उत्तरधनद प्रथमस्पर्द्धकसंस्थानमिदु :—

व ९ वि १६–३ यिल्लि द्वितीयादि वर्गणेगळोळिर्द्द ऋणमं तेगदु पृथक् स्थापितमिदु :—
२

व ९ वि १६–२
२

व ९ वि १६–१
२

व ९ वि १६–
२

तेषु पूर्वं संकलितेषु प्रथमगुणहानिद्रव्यस्यार्धं स्यात्। व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ इदमादिधनसंज्ञितं प्राक्तन-
६ २

प्रथमगुणहानिद्रव्यस्योपरि स्थाप्यं। प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणार्धं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिरेकगुणहानिस्पर्धक-
शलाकाभिश्च संगुणितं द्वितीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात्।

व वि १६ ४ ९ अयं राशिः प्रतिस्पर्धकं गच्छमात्रमवस्थितरूपेण तिष्ठतीति त्रैराशिकक्रमेण गुणहानिस्पर्धक-
२
शलाकागुणितो द्वितीयगुणहानौ ऋणसहितमुत्तरधनं भवति व वि १६ ४ ९ ९ अस्य ऋणमानीयते—
२

उत्तरधनप्रथमस्पर्धकसंस्थानमिदं व ९ वि १६–३ अत्र द्वितीयादिवर्गणास्थितमृणं पृथक् संस्थाप्य
२

व ९ वि १६–२
२

व ९ वि १६–१
२

व ९ वि १६
२

प्रमाण होता है। तथा जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्गणाओंके समूहका एक स्पर्धक होता है। इस प्रकार जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्धक होनेपर एक गुणहानि होती है। इसीसे एक गुणहानिमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग स्पर्धक कहे हैं। इसकी सहनानी नौका अंक ९ है। उसके ऊपर दूसरी गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम

व ९ । वि । ३ यिदं संकलिसुत्तं विरलु रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाछाच्छसंकलनगुणितजघन्य-
२
व ९ । वि । २
२
व ९ । वि । १
२

वर्गमात्रस्यविशेषमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिदं गुणितमात्रमक्कुं । व वि ३ । ४ । ९ ।
२ २

मत्तमुत्तरधनद्वितीयस्पर्द्धकमिदु व ९ वि १६-४ यिल्लिद्दं ऋणमं तेगदु पृथक्स्थापितमिदु—
३
२ २
व ९ वि १६-४
२
व ९ वि १६-४
२
व ९ वि १६-४
२

३
व ९ वि ४ अत्रतनाधिकऋणरूपस्थापनेयिदु—
२ २
व ९ वि ४
२
व ९ वि ४
२
व ९ वि ४
२

व ९ वि ३ संकलितं रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं एकगुणहानि- ५
२
व ९ वि २
२
व ९ वि १
२

३
स्पर्धकशलाकागुणितं स्यात्—व वि ३ ४ ९ पुनरुत्तरधनस्य द्वितीयस्पर्धकमिदं—व ९ वि १६—४ अत्रस्थमृणं
२ २ २ २
व ९ वि १६—४
२ १
व ९ वि १६—४
२
व ९ वि १६—४
२

वर्गणाके प्रदेशरूप वर्ग हैं। वे प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे आधे

व ९ वि १ यिवर संकलनेयं रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्व-
२
व ९ वि २
२
व ९ वि ३
२
विशेषमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुं गुणितमक्कु। व वि ३।४।९। मिदु प्रथम-
२ २
स्पर्द्धक ऋणद मेळे स्थापिसल्पडुगुं। शेषमिदु। व ९ वि।४ त्रैराशिकदिंदमुत्पन्नराशिप्रमाणं
२
व ९ वि।४
२
व ९ वि।४
२
व ९ वि।४
२
जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुं
गुणितमात्रं द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रं व वि ४।४।९। स्वपूर्व्वऋणपार्श्व-
२
वोळु स्थापिसल्पडुगुमी एरडुं राशिगळु द्वितीयस्पर्द्धकऋणमक्कुं। मत्तमुत्तरधनतृतीयस्पर्द्धकरचना-

---

३
पृथक् संस्थाप्य व ९ वि ४ अत्रतनाधिकरूपस्थापनेयं व ९ वि ३ संकलिता रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाका-
२ २ २
व ९ वि ४ व ९ वि २
२ १ २
व ९ वि ४ व ९ वि १
२ २
व ९ वि ४
२
गच्छसंकलनगुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषा एकगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिता व वि ३ ४ ९ प्रथमस्पर्धकऋण-
२ २ १
स्योपरि स्थाप्या शेषमिदं व ९ वि ४ त्रैराशिकोत्पन्नप्रमाणमेकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण एकगुणहानिस्पर्धक-
२
व ९ वि ४
२
व ९ वि ४
२
व ९ वि ४
२
शलाकाभिश्च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ३ स्वपूर्व-
२

---

१० होते हैं। इस वर्गणाके वर्गोंमें अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण एक अधिक एक गुणहानिके

विन्यासमिदु व ९ वि १६-४ । २ अत्रतनऋणमं तेगदु पृथक्स्थापितमिदु व ९ वि ४ । ३

व ९ वि १६-४ । २

व ९ वि १६-४ । २

व ९ वि १६-४

अत्रस्थिताधिकरूपऋणविन्यासमिदु व ९ वि ३ इदरसंकलने रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणाशलाका-

व ९ वि । २

व ९ वि । १

गच्छसंकलनागुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणितमक्कु ।

व वि ३ । ४ । ९ । मी राशिद्वितीयस्पर्द्धकप्रथमपंक्तिऋणव मेले स्थापिसल्पडुगुं । शेषमिदु—

ऋणपार्श्वे स्थाप्यं । एतौ द्वौ राशी द्वितीयस्पर्धकऋणं भवतः । पुनरुक्तरचनातृतीयस्पर्धकरचनेऽयं— ५

व ९ वि १६-४ । २ अत्रतनमृणं पृथक्संस्थाप्य—व ९ वि ४ । २ अत्रस्थाधिकरूपऋणविन्यासोऽयं—

व ९ वि १६-४ २ व ९ वि ४ । २

व ९ वि १६-४ २

व ९ वि १६-४ २ व ९ वि ४ । २

व ९ वि १६-४ २ व ९ वि ४ । २

व ९ वि ३ संकलितो रूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलनेन एकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणित-

व ९ वि २

व ९ वि १

०

स्पर्धकोंके प्रमाणसे जघन्य वर्गके अविभाग प्रतिच्छेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। सो अविभाग प्रतिच्छेदोंका अनुक्रम तो पूर्ववत् ही जानना। और प्रदेशरूप वर्गोंका

व ९ वि । ४ । २ त्रैराशिकविधमुत्पन्नराशिप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषमनेकस्पर्द्धकवर्गणा-
२
व ९ वि । ४ । २
२
व ९ वि । ४ । २
२
व ९ वि ४ । २
२

शलाकावर्गदिंद द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकगळिंदमुं गुणितमात्रमक्कु । व वि । ४।४।९।२।
२

मी राशि द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयऋणद मेळे स्थापिसल्पडुगुमी येरडुं राशिगळुं तृतीयस्पर्द्धकऋण-मक्कुमल्लिदं मुंदे चतुर्थादिस्पर्द्धकंगळोळुत्तरधनदऋणानयनं सुगममेकेंदोडे प्रथमपंक्तिऋणम-

५ वस्थितरूपदिंदं

व वि ३ । ४ । ९	व वि । ४ । ४ । ९ । ८
२ २	२
व वि ३ । ४ । ९	व वि । ४ । ४ । ९ । ७
२ २	२
०	०
०	०
व वि ३ । ४ । ९	व वि । ४ । ४ । ९ । २
२ २	२
व वि ३ । ४ । ९	व वि । ४ । ४ । ९ । १
२ २	२
व वि ३ । ४ । ९	
२ २	

जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः व वि ३ ४ ९ द्वितीयस्पर्धकप्रथमपंक्तिऋणस्योपरि स्थाप्यः शेषमिदं—व ९ वि ४ २
२ २ २
व ९ वि ४ २
२
व ९ वि ४ २
२
व ९ वि ४ २
२

त्रैराशिकेनोत्पन्नप्रमाणं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषं एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्धक-शलाकाभिश्च गुणितं व वि ४ ४ ९ २ द्वितीयस्पर्धकद्वितीयऋणस्योपरि स्थाप्यं । उभौ राशी तृतीयस्पर्धक-
२
ऋणं भवतः । अग्रे चतुर्थादिस्पर्धकेषु उत्तरधनस्य ऋणानयनं तु प्रथमपंक्तावावस्थितत्वेन—

१० प्रमाण प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके प्रमाणसे दूसरी गुणहानिके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रमाण आधा जानना । उसमें एक विशेष घटानेपर दूसरी वर्गणा का प्रमाण होता है । सो इस दूसरी गुणहानिमें विशेषका प्रमाण प्रथम गुणहानिके विशेषके

द्वितीयपंक्तियोळु रूपोनगच्छगुणकारगुणिततत्वविदं गमनवर्शनविंव मदु कारणमागि रूपोन-गुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनेयिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुमेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकाव-वर्गविंदमुं जघन्यवर्गमात्रस्वविशेषंगळु गुणिसल्पडुत्तिरलु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्र-मक्कु। व वि ४।४।९९९। मत्तमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं रूपोनैकस्पर्द्धकवर्गणा-
२

शलाकासंकलनेयिंदमुं गुणितजघन्यवर्गमात्र स्वविशेषंगळु सर्व्वत्रावस्थितस्वरूपविंदमिरुत्तिर्द्दपवें- ५
दितु त्रैराशिकक्रमविंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिऋणमेतावन्मा-त्रमक्कु। व वि ३।४।९।९। मी राशियं मेलापिसल्वेडि द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासव
२ २

ऋणसहितमागिर्द्द गुणकारदोळेकरूपं प्रक्षिप्तमागुत्तंविरलु उभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्र-मक्कु। व वि ४।४।९।९।९। मी रुणमुं मुन्नं स्थूलरूपविंदं तरल्पट्टत्तरधनदोळु
२ २

व वि ३ ४ ९ २ २	व वि ४ ४ ९ ८ २
व वि ३ ४ ९ २ २	व वि ४ ४ ९ ७ २
० ०	० ०
व वि ३ ४ ९ २ २	व वि ४ ४ ९ २ २
व वि ३ ४ ९ २ २	व वि ४ ४ ९ १ २
व वि ३ ४ ९ २ २	०
प्रथमपंक्तिऋणं	द्वितीयपंक्तिऋणं

द्वितीयपंक्तौ रूपोनगच्छगुणितत्वेन च गमनदर्शनात्। सुगमं। ततो रूपोनगुणहानिस्पर्धकशलाका- १०
संकलनया एकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः
द्वितीयपंक्तिसर्वऋणं स्यात्। व वि ४ ४ ९ ९ ९ पुनरेकगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिः रूपोनैकस्पर्धकवर्गणा-
२ २

शलाकासंकलनेन च गुणितजघन्यवर्गमात्रस्वविशेषः सर्वत्रावस्थितरूपेण तिष्ठति इति त्रैराशिकक्रमेण एकगुण-हानिस्पर्धकशलाकागुणितः प्रथमपंक्तिऋणं स्यात्। व वि ३ ४ ९ ९ इदं मेलापयितुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणस्य
२ २

ऋणसहितस्थितगुणकारे एकरूपे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ इदं पुनः पूर्वं स्थूल- १५
२ २

प्रमाणसे आधा होता है। इसी प्रकार एक एक विशेष घटानेपर तीसरी आदि वर्गणाओंका प्रमाण होता है। इसी प्रकार दूसरी गुणहानिसे तीसरी गुणहानिकी वर्गणाओंमें वर्गोंका

व वि १६।४।९।९। शोधिसि। व वि।४।४।९।९।९।४–१ केलगेयुं मेगेयुं त्रिगु-
२ २
णिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कुं। व वि ४।४।९९।९।४
६।२
मत्तं तृतीयगुणहानि द्रव्यं पेळल्पडुगुमल्लि प्रथमादिवर्गणेगळ मध्यदोळु द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळ मेले स्थिताधिकरूपुगळं तेगदु मुन्नं संकलिसुत्तं विरलु द्वितीयगुणहानिय आदिधनार्धमेतावन्मात्रमक्कु। व वि ४।४।९।९।९।४। मिदु द्वितीयगुणहान्यादिधनद मेळे स्थापि-
६।२।२
सल्पडुगुं। मत्तमुत्तरधनं तरल्पडुगुं। प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाचतुर्भागमनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकेगळिंदं द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगलिदमुं गुणिसुत्तं विरलु तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्द्धकमेतावन्मात्रमक्कु। व वि १६।४।९।२। मिनितु द्रव्यं स्पर्द्धकं प्रतिगच्छमात्रमवस्थित-
४
स्वरूपांदमिरुत्तिर्क्कुमेंदितु त्रैराशिकक्रमदिंद गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशियिंदं गुणिसुत्तं विरलु ऋणसहितमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु। व वि १६।४।९९।२। मिल्लि ऋणं तरल्पडुगुं।
४
जघन्यवर्गगुण स्वविशेषाद्युत्तररूपोनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलने द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदं गुणिसल्पडुत्तं विरलु प्रथमस्पर्द्धकऋणमेतावन्मात्रमक्कु। व वि।३।४।९।२।
४ २
मिनिते ऋणमवस्थितं प्रतिस्पर्द्धकमिरुत्तिक्कुमेंदितु त्रैराशिकक्रमदिंदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाके-

---

रूपानीतोत्तरधने व वि १६ ४ ९ ९ संशोध्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४—१ उपर्यधस्त्यैर्भिर्गुणितं द्वितीय-
२ २ २
गुणहानौ शुद्धमुत्तरधनं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ पुनस्तृतीयगुणहानिद्रव्यमुच्यते—
६।२

तत्र प्रथमादिवर्गणासु द्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकानामुपरिस्थिताधिकरूपाणि स्वीकृत्य प्राक् संकलितानि द्वितीयगुणहान्यादिधनार्धं स्यात् व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४ इदं द्वितीयगुणहान्यादिधनस्योपरि स्थाप्यं।
६ २ २

पुनरुत्तरधनमानीयते—

प्रथमगुणहानिप्रथमवर्गणाचतुर्भागः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकाभिः द्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणितः तृतीयगुणहानिप्रथमस्पर्धकं स्यात् व वि १६ ४ ९ २ एतावत्प्रतिस्पर्धकमस्तीति गुणहानिस्पर्धकशलाकागुणितं ऋणसहितोत्तरधनं स्यात् व वि १६ ४ ९ ९ २ अत्रत्यमृणमानीयते—
४ ४

जघन्यवर्गगुणस्वविशेषाद्युत्तररूपोनैकस्पर्धकवर्गणाशलाकागच्छसंकलना द्विगुणगुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिता प्रथमस्पर्धकऋणं स्यात्—व वि ३ ४ ९ २ एतावत्प्रतिस्पर्धकमस्तीति गुणहानिस्पर्धकशलाकागुणिते
४ २

प्रमाण तथा विशेषका प्रमाण आधा-आधा जानना। इस प्रकार पल्यके असंख्यातवें भाग गुणहानियोंके होनेपर एक योगस्थान होता है। इसीसे एक स्थानमें पल्यके असंख्यातवें

गळिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । व वि । ३ । ४ । ९ । २ । ९ ।
४ २
मत्तं जघन्यवर्गगुणस्वविशेषमुमनेकस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गदिंदं द्विगुणगुणहानिस्पर्द्धकशलाकेगळिंदमुं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयस्पर्द्धकद्वितीयपंक्तिऋणमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४।४।९।२।
४
मिन्तु तृतीयादिस्पर्द्धकंगळोळं द्विगुणत्रिगुणादिक्रमदिंदं रूपोनगच्छमात्रमिरुत्तिर्क्कुमेंदितु रूपोनैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकासंकलनदिंदं गुणिसुत्तं विरलु द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणसमासमेतावन्मात्रमक्कु । ५

व वि ४ । ४ । ९ । २९९ । मी द्वितीयपंक्तिऋणसमासदोळु प्रथमपंक्तिसर्व्वऋणमं कूडल्वेडि
४ २
द्वितीयपंक्तिसर्व्वऋणदोळु ऋणसहितमावुदोंदु गुणकारमा गुणकारदोळेकरूपु प्रक्षेपिसल्पडुत्तं विरलु उभयपंक्तिसर्व्वऋणसंयोगमेतावन्मात्रमक्कु । व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ । मी ऋणमं
४ २
मुन्नं स्थूलरूपदिंदं तंदुत्तरधनदोळु । व वि १६ । ४ । ९ । ९ । २ । निरीक्षिसि शोधिसिदोडिदु ।
४
व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ । ३ । पिदं मेलेयुं केळगेयुं त्रिगुणितं माडल्पडुत्तं विरलु तृतीय- १०
४ २
गुणहानियोळु शुद्धमुत्तरधनमेतावन्मात्रमक्कु । व वि ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । २ मी प्रकारदिंदं
६ । २ । २
चतुर्त्थादिगुणहानिगळोळु चरमगुणहानिपर्य्यन्तमुभयधनंगळर्द्धार्द्धक्रमंगळप्पुवु । विशेषमुंटदावुदेंदोडे उत्तरधनदोळु रूपोनपदमात्रगुणकारंगळोळवु चरमगुणहानियोळु येरडुं धनंगळुं रूपोननाना-
०
गुणहानिमात्र प । २ द्विकंगळु भागहारंगळप्पुवु । उत्तरधनगुणकारमुं मत्तं रूपोननानागुणहानि-
११

प्रथमपंक्तिसर्वऋणं स्यात् व वि ३ ४ ९ २ ९ पुनर्जघन्यवर्गगुणस्वविशेषः एकस्पर्धकवर्गणाशलाकावर्गेण द्विगुण- १५
४ २
गुणहानिस्पर्धकशलाकाभिश्च गुणितो द्वितीयस्पर्धकद्वितीयपंक्तिऋणं स्यात् व वि ४ ४ ९ २ एवं तृतीयादिस्पर्धकेषु
४
द्विगुणत्रिगुणादिक्रमेण रूपोनगच्छमात्रमस्तीति रूपोनैकगुणहानिस्पर्धकशलाकासंकलनेन गुणने द्वितीयपंक्ति-
०
सर्वऋणं स्यात् । व वि ४ ४ ९ २ ९ ९ अस्मिन् प्रथमपंक्तिसर्वमृणं निक्षेप्तुं द्वितीयपंक्तिसर्वऋणे ऋणसहित-
४ २
स्थितैकगुणकारे एकरूपे प्रक्षिप्ते उभयपंक्तिसर्वऋणं स्यात् । व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ इदं प्राक्स्थूलरूपानीतोत्तर-
४ २
धने व वि १६ ४ ९ ९ २ संशोध्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ २ । ३ उपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते तृतीयगुणहानौ शुद्ध- २०
४ ४ २

भाग गुणहानियाँ कही हैं । यह सब कथन जघन्य योगस्थानका है । जो शक्तिकी प्रधानता

मात्रमक्कुं। सर्व्वत्रमेरडुं धनंगळ्गे गुणहानिस्पर्द्धकशलाकाघनस्पर्द्धकवर्गणाशलाकावर्गगुणजघन्य-वर्गमात्रविशेषं गुण्यमानराशिसदृशमेयक्कुं। गुणकारमुं मत्ते आदिधनक्के चतुःषड्भागमुपर्य्युपरि द्विगुणहीनमक्कुमुत्तरधनक्के नवषड्भागार्द्धमुपर्य्युपरि द्विगुणहीनमुं रूपोनपदगुणितमुमक्कुमिन्तु गुणहीनाधिकस्वरूपदिंदं नडेदवर सर्व्वगुणहानिगळ :—

आदिधन	उत्तरधन
व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ४	व वि । ४ । ४ । ९ । ९ । ९ । ९ । ५
० ६ ५	० ६ ७७
० ७।२	० ५
	७।२
व वि ४।४ ।९९९।४	व वि ४।४।९।९।९।२।३
६।२।२।२	६।२।२।२
व वि ।४।४।९।९।९।४	व वि ४।४।९।९।९।९।२
६।२।२	६।२।२
व वि ४।४।९।९।९।४	व वि ४।४।९।९।९।९।१
६।२	६।२
व वि ४।४।९।९।९।४	०
६	

५ धनसंकलनासूत्रमिदु ॥ "पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं वैकं सहोत्तराद्यंशगुणं। विपदघनचयं विभजेद्वयेकपदान्योन्यगुणहताद्यच्छिदिना ॥" एंदितु मुन्नं संकलितधनं तरल्पट्ट क्रमदिंदं समस्त-गुणहानिगळ सर्व्वविभागप्रतिच्छेदंगळु तरल्पडुगुं। पदमात्रगुणान्योन्याभ्यासं पदं नानागुणहानि

मुत्तरधनं स्यात्— व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २ एवं चतुर्थादिगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यंतासु उभयधनानि
४ ६ २ २

अर्धार्धक्रमाण्यपि उत्तरधनानि रूपोनपदगुणितानि स्युः। संदृष्टिः—

आदिधनं	उत्तरधनं
	१ —
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ५
० ६ ५ २	० ७
० ७	० ६ ५ ७ ७
०	० ७ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ ३
६ २ २ २	६ २ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ २
६ २ २	६ २ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४	व वि ४ ४ ९ ९ ९ ९ १
६ २	६ २
व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४	०
६	

१० लेकर किया है। प्रदेशोंकी प्रधानतासे कथन करते हैं। सब जीवके प्रदेश लोक प्रमाण है।

पल्यासंख्यातैकभागमक्कुं प एतावन्मात्रद्विकंगळनन्योन्याभ्यासमं माडुत्तं विरलु पुट्टिद राशियुं
अ अ

पल्यासंख्यातैकभागमात्रमप्प अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुं प व्येकं एकरूपंविदं हीनमप्प राशियं
अ

०
प सहोत्तराद्यंशगुणं आद्युत्तरधनांशंगळं कूडि गुणिसि १३ ०प दी राशियं विपदघ्नचयं पदंविदं
अ अ

०
गुणिसल्पट्टुत्तरधनचयंविदं ९ प हीनं माडिदी राशियं १३ प ९ प व्येकपदान्योन्यगुणहताद्य-
अ अ अ अ

०
च्छिदिना विभजेत् । रूपहीनपदप्रमित प रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गंविदं पुट्टिद राशि- ५
अ अ

यन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धमक्कु प मिदनादिच्छेदंविदं षड्रूपं गळिदं गुणिसि प ६ द राशियिंदं
अ २ अ।२

भागिसुवुदंतु भागिसिद राशियं तन्नवस्थितगुण्यराशिगे गुणकारमाडि व वि ४।४।२।९।९।१३ प-९प
अ अअ

६ अ
ऋणमं तेगदु पृथक्स्थापिसिदोडे धनऋणराशिद्वयमिन्तिवक्कुं :— अ २

धन ०
व वि ४।४।९।९।९।१३ प व वि ४।४९।९९९ प मिल्लि ऋणर्णयोरैक्यमेंदितु धन-
अ ६ प अअ

६ प
अ २

संकलनसूत्रं पदमात्रं प गुणान्योन्याभ्यासं प व्येकं ०प सहोत्तराद्यंशगुणं १३ ०प विपदघ्नचयं १०
अअ अ अ अ

६ ०
१३ प—९ प व्येकपदा ०प न्योन्यगुण प हताद्यच्छिदिना प ६ विभजेत् इति भक्तराशि स्वावस्थित-
अ अ अ अ अ २ अ २

गुण्यस्य गुणकारं कृत्वा व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ ०प—९ प ऋणे पृथक्स्थापिते धन ऋणे एतावती स्यातां
अ अ अ

६ प २
अ

०
व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प व वि ४ ४ २ ९ ९ ९ प अत्र ऋणर्णयोरैक्यमिति धनस्थं उभयधनगुणकारांश-
६ प अ अअ

६ प
अ २

पीछे अंक संदृष्टिमें ३१०० बताया है। नानागुणहानि पल्यके असंख्यातवें भाग। इसकी

दोळिद्दंवुभयधनगुणकारांशमात्रऋणं पृथग्भूतं माडि व वि ४।४।९।९।९।१३।१ ऋण-
६ प २
अ

दोळु कूडिरिसि :— व वि ४।४।९।९।९।९।प धनदणगुणकारभागहारंगळनपवर्त्तिसि
६ प अअ
अ २

गुणिसि भागिसिदोडे रूपचतुष्टयगुणकारमुं त्रिभागाधिकमुमक्कु। व वि ४।४।९।९।९।४
१
३

मी त्रिभागदोळु ऋणमं निरोक्षिसियपवर्त्तिसिदोडेकरूपासंख्यातैकभागमक्कुं १ मेकेंदोडे नाना-
अ

गुणहानिगुणकारमं नोडलु भागहारभूतान्योन्याभ्यस्तराशियर्द्धमसंख्यातगुणितमप्पुदरिंदमा रूपासं-
ख्यातयिकभागमं कळेदोडे किंचिदूनत्रिभागाधिकरूपचतुष्टयं गुणकारमक्कु :—

व वि ४।४।९।९।९।४ मी सर्वजघन्योपपादयोगस्थानद अविभागप्रतिच्छेदंगळं मुन्तिनंते
१
३

चारिनवगा अट्ठ एंदु गुणहानियतुत्पादिसि चतुर्गुणकारदोळेकद्विकमं कोंडु गुणिसि दोगुणहानियं
माडि चतुष्कदिंदं गुणिसि जघन्यस्पर्द्धकमतुत्पादिसि द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्गदिंदं
गुणिसि। व वि १६।४।९।९।२। चरमगुणकारद्विकदोळु मुन्निनंते किंचिदूनषड्भागमं—

व वि १६।४।९।९।१-।२। साधिकं माडि। प्र।व।वि।१६।४।फ १। इ व वि १६।
३ २

४।९।९।२। लब्धमिनितु स्पर्द्धकंगळप्पुवु। ९।९।२। इवु गुणहानिस्पर्द्धकशलाकावर्गमं

मात्रं ऋणं पृथक्कृत्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ १ ऋणे प्रक्षिप्य व वि ४ ४ ९ ९ ९ १३ प आवर्तितं
६ प अ अ
अ २ ६ प
अ २

१
रूपासंख्यातैकभागः स्यात् अ धनस्य गुणकारभागहारावपवर्त्य भक्त्वा तृतीयभागे तद्रूपासंख्यातैकभागेऽपनीते
किंचिदूनत्रिभागाधिकरूपचतुष्टयगुणकारः स्यात्। व वि ४ ४ ९ ९ ९ ४। अमी सर्वजघन्योपपादयोगस्थान-
१—
३

स्याविभागप्रतिच्छेदाः प्राग्वत् चारिनवगा अट्ठ इति गुणहानिगुरुत्पाद्य चतुर्गुणकारे एकद्विकं स्वीकृत्य दोगुणहानिं
कृत्वा चतुष्केन संगुण्य जघन्यस्पर्धकमुत्पाद्य द्विगुणितैकगुणहानिस्पर्धकशलाकावर्गेण संगुण्य व वि १६ ४ ९ ९ २
चरमगुणकारद्विकं प्राग्वत् किंचिदूनषड्भागेन व वि १६ ४ ९ ९ १—२ साधिकं कृत्वा प्र व वि १६ ४।
३ २

अंक संदृष्टि पाँच है। एक गुणहानिका आयाम जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग। इसकी

द्विगुणिसिदनितकुमवर प्रमाणमिदु अ अ २ यिदेत्तलानुं प्रतरासंख्येयभागमक्कुमेंदु संकिसल्वेडे केंदोडे "यिगिठाणपड्ढयाओवग्गणसंखापदेसगुणहाणी। सेडियसंखेज्जदिमा असंखलोगा हु अविभागा ॥" एंबी सूत्राभिप्रायदिंदं श्रेण्यसंख्यातैकभागमेयक्कु अ मो जघन्ययोगस्थानद मेले सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळु पेच्चुत्तं पोगियो दोंदपूर्व्वस्पर्द्धकंगळु पेच्चुत्तं पोगियुत्कृष्टस्थान पुट्टुगुमेंबुवं मुंदणसूत्रद्वयदिंदं पेळदपरु :— ५

अंगुलअसंखभागप्पमाणमेत्तवरफड्ढया उड्ढी ।
अंतरछक्कं मुच्चा अवरट्ठाणादु उक्कस्सं ॥२३०॥

अंगुलासंख्यभागप्रमाणमात्रावरस्पर्द्धकवृद्धिरन्तरषट्कं मुक्त्वावरस्थानादुत्कृष्टं ॥

अवरस्थानात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यप र्याप्तभवंगळ चरमभवद त्रिविग्रहंगळोळु प्रथमविग्रहदुपपादयोगसर्व्वजघन्यस्थानदत्तणिननन्तरस्थानं मोदल्गोंडु प्रथमस्य हानिर्व्वा नास्ति वृद्धिर्व्वा नास्ति येंदनंतरयोगस्थानदोळु वृद्धियुंटप्पुदरिंदमा द्वितीयस्थानं मोदल्गोंडु सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानं पुट्टुवन्नेवरं सांतरनिरंतर सांतरनिरंतरगळेंब त्रिविधयोगस्थानंगळोळु सर्व्वत्र निरंतरक्रमदिंदं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्र प्रमितंगळु जघन्यस्पर्द्धकंगळु। युगपत् स्थान स्थानं प्रति पूर्व्वपूर्व्वस्थानंगळ मेळे वृद्धियागियुत्तरोत्तरस्थानंगळागुत्तं पोपुवन्तु पेच्चुत्तं पोगुत्तं विरलु।

फ १। इ व वि १६ ४ ९ ९ २ लब्धमेतावंति स्पर्धकानि ९ ९ २। साधिकद्विगुणगुणगुणहानिस्पर्धकशलाका- १५
— —।
वर्गमात्राणि अ अ २। इमानि प्रतरासंख्येयभाग इति नाशंकनीयं 'इगि ठाणप्फड्डयाओ' इति सूत्रेण श्रेण्य-
—
संख्यातैकभागप्रतिपादनात्। अ ॥२२९॥ तज्जघन्ययोगस्थानस्योपरि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्धकानि वर्धित्वा वर्धित्वा एकैकमपूर्वस्पर्धकं, एवं गत्वोत्कृष्टस्थानमुत्पद्यते इत्यग्रतनसूत्रद्वयेन आह—

तस्मात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य सर्वजघन्यचोपपादयोगस्थानादनंतरस्थानमादिं कृत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थानोत्पत्तिपर्यंतं सांतरेषु निरंतरेषु सांतरनिरंतरेषु च अमीषु योगस्थानेषु निरंतरं सूच्यंगुलासंख्यातैकभाग- २०
मात्राणि जघन्यस्पर्धकानि युगपत्प्रतिस्थानं वर्धंते तदा एकैकमुत्तरोत्तरस्थानमुत्पद्यते ॥२३०॥ तथा सति—

अंक संदृष्टि आठ है। इत्यादि सब पूर्ववत जानना। ऊपर टीकामें अविभाग प्रतिच्छेदोंके मिलानेका विधान विस्तारसे किया है। यह जघन्य योगस्थानका कथन हुआ ॥२२९॥

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके सबसे जघन्य उपपाद योगस्थान होता है। उसके अनन्तरवर्ती स्थानसे लेकर सर्वोत्कृष्ट योगस्थानकी उत्पत्ति पर्यन्त सान्तर, निरन्तर और २५
सान्तरनिरन्तर सब ही योगस्थानोंमें-से प्रत्येक योगस्थानमें निरन्तर सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक युगपत् बढ़ते हैं। तब उत्तरोत्तर एक-एक स्थान उत्पन्न होता है ॥२३०॥

विशेषार्थ—जघन्य स्थानमें प्रथम गुणहानिके प्रथम स्पर्धकमें जितने अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं उनसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग गुने अविभाग प्रतिच्छेद उससे ३०
ऊपरके दूसरे योगस्थानमें होते हैं। इसी प्रकार दूसरेसे तीसरेमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें

सरिसायामेणुवरिं सेढियसंखेज्जभागठाणाणि ।
चडिदेक्केक्कमपुव्वं पड्ढयमिह जायदे चयदो ॥२३१॥

सदृशायामेनोपरि श्रेण्यसंख्येयभागस्थानानि । चटित्वा एकैकमपूर्वं स्पर्द्धकमिह जायते चयतः ॥

वृद्धिप्रमाणमायामः । इति प्राक्तनप्रतिपदं । सदृशायामेनोपरि सर्व्वजघन्ययोगस्थानायामद समानायामद मेले चयतः सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळु सर्व्वजघन्यदनंतर द्वितीयस्थानं मोदल्गोंडु पेच्चुत्तं पेच्चुत्तं पोगियोंदेडेयोळु जघन्यस्थानायामद मेळे पेच्चिद चयदिंदमोंदु अपूर्व्वस्पर्द्धकं पुट्टुगुं । अदेनितु स्थानंगळं नडदु पुट्टुगुमेंदोडे अनुपातत्रैराशिकदिंदमा स्थानंगळ

साधिसल्पडुगु । प्र व वि । १६ । ४ । २ । फ । स्था । १ । इ । व । वि । १६ । ४ । ९ ना इनितितिनि-
अ

तविभागप्रतिच्छेदंगळ्पेच्चियोंदु स्थानविकल्पं पुट्टुत्तं विरलागळिनितविभागंगळु पेच्चिदल्लिगेनितु

स्थानविकल्पंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडि बंद लब्धप्रमितं व ९ ना वि १६ । ४ अपवर्त्तित-
व वि अ १६ । ४ । २
अ

तत्सर्वजघन्ययोगस्थानस्य समानायामस्योपरि उक्तप्रमाणचयेन एकमपूर्वस्पर्धकमुत्पद्यते । कति स्थानानि गत्वा गत्वा ? इति चेत् यद्येतावत्सु अविभागप्रतिच्छेदेषु प्र-व वि १६ ४ २ वर्धितेषु एकस्थानं फ स्था १
अ

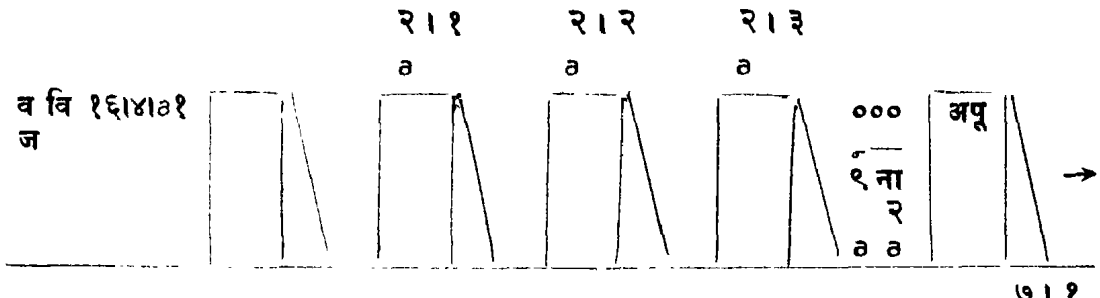
१—
तदैतावत्सु इ व वि १६ ४ ९ ना वर्धितेषु कति स्थानानि ? इति त्रैराशिकेन लब्धमात्राणि
अ

भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक अधिक होते हैं। तीसरेसे चौथेमें, चौथेसे पाँचवेंमें, इसी प्रकार सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पर्यन्त एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते-बढ़ते होते हैं। आगे छह अन्तर कहेंगे, उनको छोड़कर जघन्य स्थानसे उत्कृष्ट पर्यन्त जीवोंके योगस्थान होते हैं ॥२३०॥

सबसे जघन्य योगस्थानके समान आयामके ऊपर पूर्वोक्त प्रमाण वृद्धिरूप चयके होनेपर एक-एक अपूर्व स्पर्धक उत्पन्न होता है। कितने-कितने स्थान जानेपर होता है? इसके उत्तरमें त्रैराशिक करना चाहिए। सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धकोंके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उनके बढ़नेपर यदि एक स्थान होता है तो जघन्य स्थानके सब अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणमें एक गुणहानि सम्बन्धी स्पर्धकोंकी संख्याको नाना गुणहानिसे गुणित उनकी अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने जघन्य स्पर्धक बढ़नेपर कितने स्थान होंगे, ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका प्रमाण जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग आता है। इसी प्रकार इसके अनन्तर समान आयामको लिये द्वितीय स्थानसे लेकर, सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक एक स्थानमें

१. अ इत्यपूर्व्वस्पर्द्धकं कथयति नायं भागहारः ।

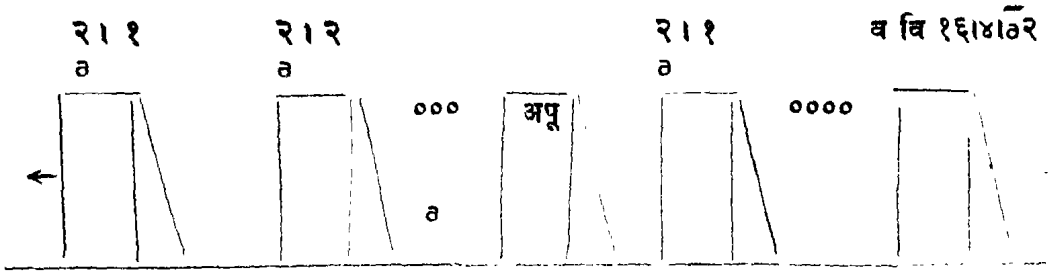
मिनितु $\frac{\overline{\text{९ ना}}}{\text{अ २}}$ $\overline{\text{अ}}$ श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रस्थानंगळप्पुवु । $\overline{\text{अ}}$ ।=। मत्तमन्ते तदनंतरसदृशायामद द्वितीयस्थानं मोदल्गोंडु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रतद्योग्ययोगस्थानंगळु सवृद्धिकंगळु नडवु मत्ते वोंदु द्वितीयापूर्व्वस्पर्द्धकं पुट्टुगुमो क्रमदिदमेकगुणहानिस्पर्द्धकशलाकाराशिप्रमित $\overline{\text{अअ}}$ मपूर्व्वस्पर्द्धकमपूर्व्वस्पर्द्धकंगळु पेच्चिदल्लि जघन्ययोगस्थानं द्विगुणमक्कु मी क्रमदिदं तद्द्विगुणद्विगुणक्रमदिदं नडवु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवसर्व्वोत्कृष्ट योगस्थानं पुट्टुगुमी यर्त्थमं प्रद्योतिसल्समर्त्थमप्प रचनाविशेषसंदृष्टियिदु— ५



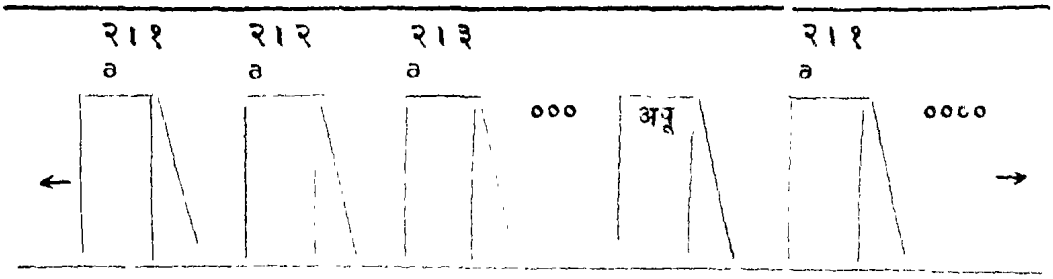
प्र व वि १६।४।२ । फ स्था १।इ व वि १६।४।$\overline{\text{अ}}$ लब्धांतरालस्थानविकल्पंगळु एतावन्मात्रंगळु । अ अ

$\frac{\text{१—}}{\text{व वि १६ ४ ९ ना}}$ अपवर्तितानि $\frac{\text{१—}}{\text{९ ना}}$ श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राणि भवंति $\overline{\text{अ}}$ तथा तदनंतरं सदृशायामं द्वितीयस्थानमादिं कृत्वा श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रतद्योग्ययोगस्थानानि सवृद्धिकानि गत्वा पुनरेकं द्वितीयमपूर्वस्पर्धकमुत्पद्यते । एवमेकहानिगुणस्पर्धकशलाकामात्रे $\overline{\text{अअ}}$ ष्वपूर्वस्पर्धकेषु जघन्ययोगस्थानं द्विगुणं स्यात् । एवं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य सर्वोत्कृष्टयोगस्थानमुत्पद्यते । अस्य संदृष्टिः— १०

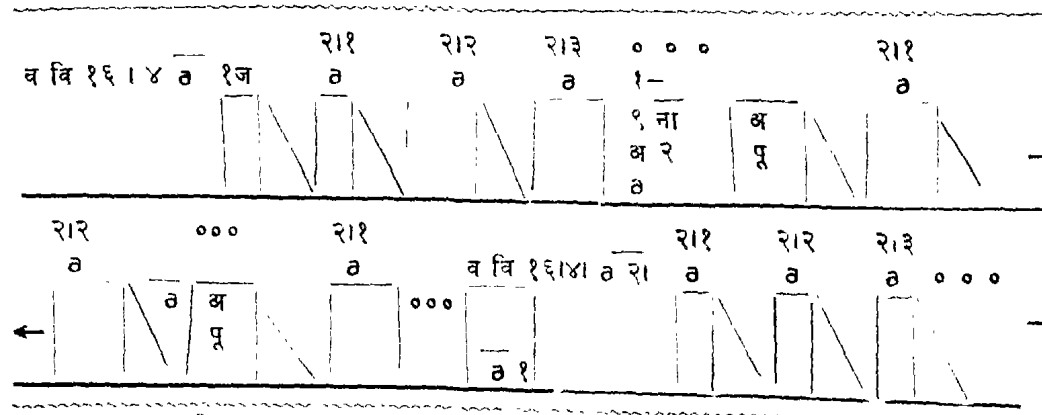
बढ़ें इस प्रकार जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान होनेपर दूसरा अपूर्व स्पर्धक होता है । उसके ऊपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थान होनेपर तीसरा अपूर्व स्पर्धक होता है । इसी प्रकार एक गुणहानिमें जितने स्पर्धकोंका प्रमाण कहा था उतने अपूर्व स्पर्धक होनेपर जघन्य योगस्थान दूना होता है । यहाँ अपूर्व स्पर्धक होनेका विधान समझमें न आनेके कारण नहीं लिखा है । १५



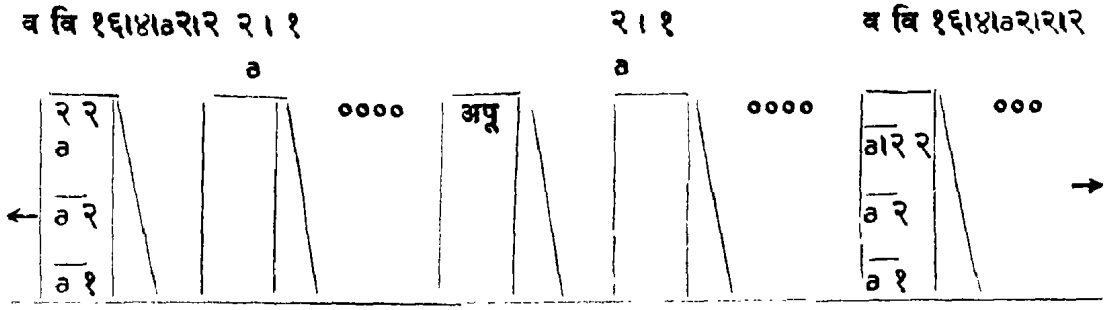
प्र व वि १६।४।२ इ व वि १६।४।ā२ प्र व वि १६।४।२ इ वि १६।४।ā२।२ लब्ध-य न-
ā ā
फ स्था १ लब्ध ā२।२ फ स्था १ विकल्प ā २।२।२
ā ā



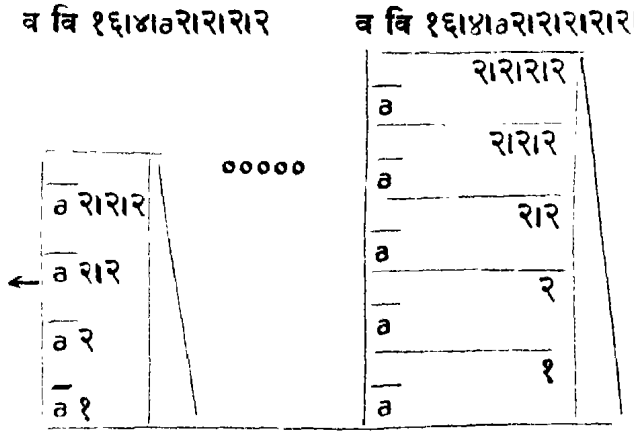
प्र व वि १६।४।२ फ स्था १ । इ व वि १६।४।ā२।२।२ लब्धस्थानविकल्प ā २।२।२।२।
ā ā



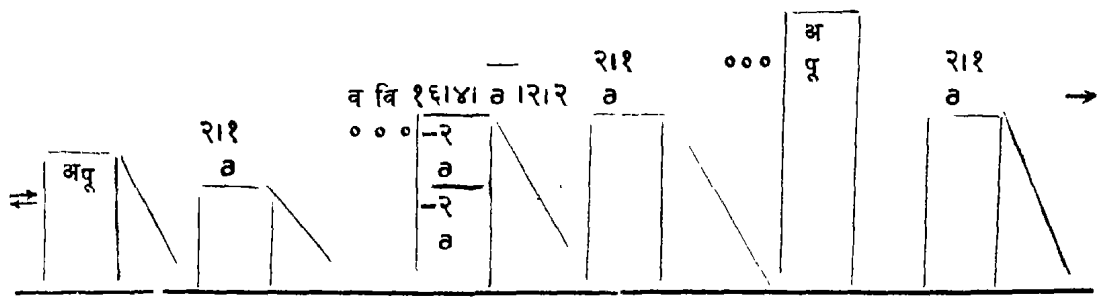
विशेषार्थ—एक गुणहानिमें स्पर्धकोंका प्रमाण जगतश्रेणिमें दो बार असंख्यातका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतना कहा था। सो उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योग-स्थान होता है उसके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं वे जघन्य योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदसे दूने हैं। उससे ऊपर उतने ही अपूर्व स्पर्धक होनेपर जो योगस्थान होता है वह उस योगस्थानसे भी दूना होता है। इस प्रकार क्रमसे दूना-दूना होते संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक



प्र व वि १६।४।२ फ स्था १ इ व वि $\overline{अ}$ २।२।२।२ लब्धस्थानविकल्पं = $\overline{\overline{अ}}$ २।२।२।२।२।२



अट्ठघणं $\overline{अ}$ २२२२२ गुण गुणिय $\overline{अ}$ २२२२२२ आदिविहीणं $\overline{अ}$ २३१ ई ऊणुत्तरभजियं $\overline{अ}$ २३१ $\overline{अ}$ १

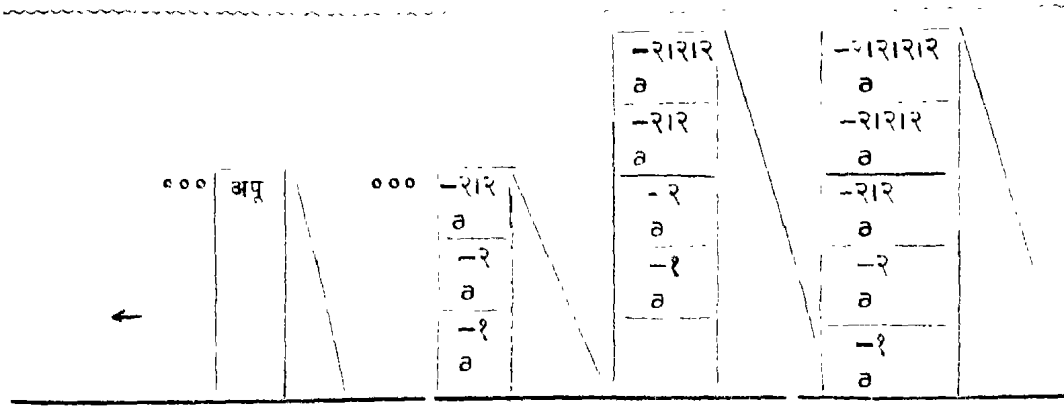


व वि १६।४।$\overline{अ}$।२।२।२। व वि १६।४।$\overline{अ}$ २।२।२।२। व वि १६।४ $\overline{अ}$ २।२।२।२ २।उ

जीवका सर्वोत्कृष्ट परिणाम योगस्थान होता है। यहाँ स्थान भेद लानेके लिए त्रैराशिक करना चाहिए। उसमें सर्वत्र प्रमाणराशि सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मात्र जघन्य स्पर्धक है, फलराशि एक स्थान, इच्छाराशि जगतश्रेणिके असंख्यातवाँ भाग मात्र जघन्य स्पर्धकोंको ५

रूपोनगुणेन हतं गुणितं $\frac{-}{a}$ २ ३१ । १ प्रभवेण भाजितं $\frac{-}{a}$ २ $\frac{-}{aa२}$ ३१ सैकं ३२ यतिकृत्वो

गणभक्तं ३२ । $\frac{}{२२२२२}$ रूपं स्यात्तति भवेद्गच्छः । इवन्योन्यभ्यस्तगुणकारशलाकेगळक्कुं । ई प्रति-



$\frac{-}{a}$ $\frac{-१}{a}$

प्र—व वि १६ ४ २ फ—स्था १ । इ–व वि १६ ४ a लब्धस्थानविकल्पाः a २ पुनः प्र—व वि १६ ४ २

फ—स्था १ इ व वि १६ ४ a २ । लब्धस्थानविकल्पाः a २ २ पुनः प्र–व वि १६ ४ १ फ– स्था १ इ व

वि १६ ४ a २ २ लब्धस्थानविकल्पाः a २ पुनः प्र व वि १६ ४ २ । फ—स्था १ । इ व वि १६ ४

a २ २ २ । लब्धस्थानविकल्पाः a २ पुनः प्र–व वि १६ ४ २ । फ–स्था १ इ व वि १६ ४ a २ २ २ २ ।

लब्धस्थानविकल्पाः a २ अंतधणं a २ २ २ २ २ गुणगुणियं a २ २ २ २ २ २ आदि a २ विहोणं

a २ ३१ रूऊणुत्तरभजियं इतीदं सर्वयोगस्थानविकल्पप्रमाणं भवति a २ १ इदं पुनः रूपोनगुणेन हतं गुणितं

a २ ३१ १ प्रभवेन भाजितं—a २– २ सैकं ३२ : यतिकृत्वो गुणभक्तं ३२ रूपं स्यात् तति भवेत् गच्छः,

१० क्रमसे एक, दो, चार, आठ, सोलह और बत्तीस गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। यहाँ फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको

१. ब. स्यात्तै = तावान् = यावतो वारान् १ ति भ. ।

पादने मुंदे व्याख्यानदोळु बरेयल्पट्टपुदिदरभिप्रायमेनें दोडे जघन्ययोगस्थानद $\bar{a}$ मेले तावन्मात्रं पेच्चिव $\bar{a}$ द्विगुणस्थानं पुट्टिद कारणं प्रथमत्रैराशिकदोळु $\bar{a}$ इनितु पेच्चिगे यिच्छाराशियें दरिवुदु। इदरिं प्रथमांतराळद योगविकल्पंगळु बंदवु मत्ते द्विगुणस्थानद $\bar{a}$ २ मेले अनिते $\bar{a}$ २ पेच्चिचतुर्गुणस्थानं $\bar{a}$ २। २ पुट्टिद कारणं द्वितीयत्रैराशिकदल्लि $\bar{a}$ २ इदु इच्छाराशि। यिदरिं द्वितीयांतरालविकल्पंगळु बंदुवु मत्तं मुंदे इदे क्रममेंदु भाविसिकों बुदु॥ ५

ई जघन्ययोगस्थानं मोदल्गों डु सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानपर्य्यन्तमिर्द्द समस्तयोगस्थानविकल्पंगळु तरल्पडुगुमदें तें दोडे जघन्ययोगस्थानं मोदल्गों डु सवृद्धिकस्थानंगळु नडेदावुदो देडेयोळु जघन्ययोगस्थानं द्विगुणमक्कुमल्लिगेनितु स्थानविकल्पंगळक्कुमेंदोडे त्रैराशिकं माडल्पडुगुं। इनितविभागप्रतिच्छेदंगळु पेच्चिदोडों दु स्थानविकल्पमक्कु मागळेनितविभागप्रतिच्छेदंगळु पेच्चिदल्लिगेनितु स्थानविकल्पंगळप्पुवें दितनुपातत्रैराशिकमं माडि प्र $\bar{\bar{a}}$ फ सा १ इ $\bar{a}$। लब्धस्थानविकल्पंगळिं- १०

इत्यन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाः स्युः। जघन्यात् आ उत्कृष्टं सर्वयोगस्थानविकल्पेषु यत्र यत्र जघन्यं द्विगुणं द्विगुणं स्यात् तत्र तत्र कति कति विकल्पाः स्युः? इति चेत् उच्यंते—एतावदविभागप्रतिच्छेदवृद्धौ एको विकल्पः तदा एतावद्वृद्धौ कति इति प्र—व वि १६ ४ २ फ—स्था १ इ व वि १६ ४—। लब्धाः स्थान-

---

सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसको अनुक्रमसे एक, दो, चार आठ और सोलहसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने स्थानभेद होते हैं। १५

यहाँ अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा सोलह पर्यन्त ही गुणकार कहा है। इनका जोड़ देते हैं—

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूउणुत्तरभजियं' इस गणित सूत्रके अनुसार अन्तका धन जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उससे सोलह गुना है। उसको गुणकार दोसे गुणा करें। उसमें आदिका प्रमाण, जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दें उतना है। उसको २० घटानेपर जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करके इकतीससे गुणा करें, उतना होता है। तथा एक हीन उत्तर एक, उससे भाग देनेपर भी इतना ही रहा। सो इतना सब योगस्थानोंके भेदोंका प्रमाण है। उसको एक हीन गुणकार एकसे भाग देनेपर भी इतना ही रहा। उसको आदिसे भाग देनेपर लब्ध इकतीस आया। उसमें एक मिलानेपर बत्तीस हुए। सो जितनी बार गुणकार दोका भाग देनेपर एक रहता २५ है उतना गच्छ जानना। सो पाँच बार दोका भाग बत्तीसमें देनेपर एक रहता है अतः अन्योन्याभ्यस्त राशिकी गुणकार शलाका पाँच है। पाँच जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण बत्तीस आता है।

इसी प्रकार जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त सब योग स्थानोंके जघन्य भेदोंमें जघन्य योगस्थान जहाँ-जहाँ दूना होता है वहाँ-वहाँ योगस्थानोंके कितने भेद होते ३० हैं सो कहते हैं—

नितप्पुवु —। १ मत्तं प्र व वि १६ । ४ । २ फ स्था १ इ व वि १६ । ४ अ लब्धस्थानविक-
अ । २ अ

ल्पंगळ् –२ मत्तं प्र व वि १६ । ४ । २ । प स्था १ इ व वि १६ । ४ । –२२ लब्धस्थानविकल्पं-
अ२ अ अ

गळ् अ२ । २२ मत्तं प्र व वि १६ । ४ । २ । फ स्था १ । इ । व वि १६ । ४ । –२२२ लब्धस्थान-
अ अ अ

विकल्पंगळ् अ २ २२२ । यितु स्थानविकल्पंगळ् द्विगुणद्विगुणवृद्धिस्थानंगळंतराळंगळोळ् द्विगुण-
अ

द्विगुणंगळागुत्तं पोगि सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानदोळ् पेच्चिद पेच्चुगेयनिच्छाराशियं माडिद त्रैराशिक

दल्लि प्र व वि १६ । ४२ । फ स्था १ । इ । व वि १६ । ४ । अ छे २ । लब्धस्थानविकल्पंगळ्
अ अ

अ २ छे एतावन्मात्रंगळप्पुवी चरमस्थानविकल्पंगळनन्तधणं गुणगुणियं —छे२ आदि-
अ अ २ अ २ अ २

विहीणं –छे रूऊणुत्तरभजियमेंदेकरूपदिंदं भागिसिद राशि तावन्मात्रमेयक्कुमी सर्व्वयोग-
अ २ अ अ

विकल्पाः एतावंतः अ २ १ पुनः प्र– व वि १६ ४ २ फ—स्था १ । इ व वि १६ ४—२ लब्धस्थानविकल्पा
अ अ अ

—२
एतावंतः अ २ पुनः प्र—व वि १६ ४ २ फ–स्था १ इ व वि १६ ४—२ २ । लब्धाःस्थानविकल्पाः एतावंतः
अ अ अ

अ २ २ २ पुनः प्र–व वि १६ ४ २ । फ–स्या १ । इ व वि १६ ४—२ २ २ । लब्धाःस्थानविकल्पाः
अ अ अ

एतावंतः अ २ २ २ २ एवं गत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थाने इच्छाराशौ कृते प्र—ब वि १६ ४ २ फ–स्था १ इ व वि
अ अ

१६ ४ —छे लब्धस्थानविकल्पाः एतावंतः—२ छे एते च अंतधणं गुणगुणियं अ २ छे २ आदिविहीणं
अ अ २ अ अ अ २ अ अ २

प्रमाण फल और इच्छाराशि क्रमसे पूर्वोक्त प्रमाण जानना। इतना ही विशेष है कि यह कथन अंक संदृष्टिकी अपेक्षा न होकर यथार्थ अपेक्षा है। अतः पूर्वमें जैसे अन्तधनमें

स्थानविकल्पंगळ्गे नानागुणहानिशलाकेगळ्परियल्पडवु कारणमागि तत्तदन्तराळस्थानंगळु द्विगुण-द्विगुणक्रमदिदमेनितु स्थानंगळनंडेवबिं नानागुणहानिशलाकेगळु गच्छमक्कुमवु तरल्पडुत्तिदे रूपोन गुणेन हतं गुणिशतं प्रभवे भाजितं सैकं । यतिकृत्वो गुणभक्तं रूपं स्यात्तति भवेद्गच्छं ॥

एंदितो करणसूत्राभिप्रायदिंदं नानागुणहानिशलाकेगळेनितप्पुवेंदोडे केळ्पेळ्दपं :—

रूपोनगुणेन द्विगुणगुणसंकलनविधानमप्पुदरिंदं गुणकारमेरडरोळोंदु रूपं कळेदोडो दे रूपमक्कुमदरिंदं हतं गुणितं गुणिसल्पट्ट धनरूपसर्व्वस्थानविकल्पंगळं $\bar{ə}\ २^{\circ}_{ə}\ \overset{\circ}{छे}_{ə}$ प्रभवेण भाजितं प्रभवमेंबुदादियस्थानविकल्पंगळवरिंद भागिसल्पट्ट राशियं $\bar{ə}\ २^{\overline{\ }}_{ə ə ə}\ \overset{\overline{\ }}{छे}_{ə}$ अपवर्त्तितमिदु $\overset{\overline{\ }}{छे}_{ə}$ सैकं एकरूपं कूडिदुदं $छे_{ə}$ यतिकृत्वः वारे कृत्व...एंदु यावतो वारान् यतिकृत्वः एनितु वारंगळनु गुण-भक्तं रूपं गुणकारभूतद्विकदिंदमी यन्योन्याभ्यस्तराशियं छेदासंख्यातैकभागमात्रराशियं भागिसिद वारंगळ रूपं तति तावत्प्रमितं गच्छं स्यात् गच्छमक्कुमेंदितु तिर्य्यग्रूपदिंदं नानागुणहानिशलाकेगळु असंख्यातरूपहीनपल्यवर्गशलाकाप्रमितमप्पु । ə । वेकेंदोडे छेदराशिय अर्द्धच्छेदंगळप्प वर्गशलाकेगे द्विकमनित्तु संवर्गमं माडुत्तिरलु पल्यच्छेदराशि पुट्टदुगुं । विरलनराशीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ एंदा वर्गशलाकेय हीनरूपुगळऽसंख्या-

---

—२ $\overset{\circ}{छे}_{ə ə ə}$ रुऊणुत्तरभजियं इति सर्वयोगस्थानविकल्पाः स्युः । त एव पुनः रूपोनगुणेन एकेन हताः $\bar{ə}\ २^{\circ}_{ə ə}\ \overset{\circ}{छे}_{ə}\ १$ प्रभवेन आदिस्थानविकल्पैर्भाजिताः $\bar{ə}\ २^{\overline{\ }}_{ə ə-ə}\ \overset{\overline{\ }}{छे}_{ə}\ १२$ अवर्तिताः $\overset{\circ}{छे}_{ə}\ १$ एकरूपसहिताः $छे_{ə}$ यावतो वारान् गुणेन द्विकात्मकेन भक्ताः संतो रूपं जायंते ते वाराः तिर्यग्रूपेण नानागुणहानिशलाकाः स्युः । ताश्च असंख्यातरूपैर्हीन-

---

सोलहका गुणकार कहा, वैसे ही यहाँ क्रमसे दूना-दूना पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागका आधा प्रमाण मात्र गुणकार जानना। सो 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार जोड़नेपर सब योगस्थानोंके भेदोंका प्रमाण होता है। उसको एक हीन गुणकारसे गुणा करके आदिस्थानसे भाग दें, एक मिलानेपर पल्यके अर्धच्छेदोंका असंख्यातवाँ भाग होता है। उसमें जितनी बार गुणकार दोसे भाग देनेपर एक रहे उतनी नाना गुणहानि शलाका है। सो असंख्यात हीन पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण जानना। क्योंकि पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेद मात्र प्रमाण होता है। और उसमें घटाये असंख्यात। उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर असंख्यातका

तंगळं विरळिसि रूपंप्रति द्विकमं कोट्टु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलावुदो दु लब्धराशियवुवुमसंख्यातमेयक्कुमा राशि छेदराशिगे हारमक्कुमप्पुदरिंदमसंख्यातरूपहीनवर्गशलाकेगळे नानागुणहानिशलाकेगळिल्लिगप्पु बेंबुदु निर्ब्बाधबोधविषयमक्कुमी सर्व्वयोगस्थानंगळोळगे पदिनाल्कुं जीवसमासंगळ उपपादयोगएकांतानुवृद्धियोग परिणामयोगमेंबी योगत्रयंगळ जघन्योत्कृष्टविषयंगळ ८४ नेंभत्तनाल्कुं पदंगळिंदमल्पबहुत्वमं गाथानवकदिंदं पेळ्दपरु :—

एदेसिं ठाणाणं जीवसमासाण अवरवर विषयं ।
चउरासीदिपदेहिं अप्पाबहुगं परूवेमो ॥२३२॥

एतेषां स्थानानां जीवसमासानामवरवरविषयं । चतुरशीतिपदैरल्पबहुत्वं प्ररूपयामः ॥

ई पेळल्पट्ट सर्व्वयोगस्थानविकल्पंगळ जीवसमासेगळ जघन्योत्कृष्टविषयमं च शब्दिंदमुपपादयोगमेकान्तानुवृद्धियोग परिणामयोगमेंब योगत्रयमनाश्रयिसि चतुरशीतिपदंगळिंदमल्पबहुत्वमं पेळ्दमेंदु पेळल्पक्रमिसि मुंदण सूत्रमं पेळ्दपरु :—

सुहुमगलद्धि जहण्णं तण्णिव्वत्ती जहण्णयं तत्तो ।
लद्धियपुण्णुक्कस्सं बादरलद्धिस्स अवरमदो ॥२३३॥

सूक्ष्मलब्धिजघन्यं तन्निर्व्वृत्तेर्जघन्यकं ततः । लब्ध्यपूर्णोत्कृष्टं बादरलब्धेरवरमतः ॥

इल्लि एकेंद्रियसूक्ष्मबादरद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियंगळगे संदृष्टि :

पल्यवर्गशलाकामाश्रयो भवंति व—ə कुतः पल्यवर्गशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यच्छेदराशेर्हीनरूपासंख्यातमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नासंख्यातस्य हारत्वसंभवात् ॥२३१॥ अथानंतरं अभिधेयस्य प्रतिज्ञासूत्रमाह —

एतेषामुक्तयोगस्थानानां मध्ये चतुर्दशजीवसमासाना जघन्योत्कृष्टविषयमल्पबहुत्वं चशब्दात् उपपादादियोगत्रयमाश्रित्य चतुरशीतिपदैः प्ररूपयामः ॥२३२॥ तद्यथा—

अत्र सूक्ष्मबादरैकेंद्रियद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाणा संदृष्टिः —

भागहार होता है। आशय यह है कि असंख्यातहीन पल्यकी वर्गशलाकाका जो प्रमाण है उतनी बार जघन्य योगस्थान दूना होनेपर उत्कृष्ट योगस्थान होता है। इससे इसको नाना गुणहानि शलाका कहा है। इस नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। उससे जघन्यको गुणा करनेपर उत्कृष्ट योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण होता है। इस तरह योगस्थानोंका प्रमाण होता है ॥२३१॥

आगेके कथनकी प्रतिज्ञा करते हैं—

ऊपर कहे इन योगस्थानोंमें चौदह जीव समासोंके जघन्य-उत्कृष्टकी अपेक्षा और 'च' शब्दसे उपपाद आदि तीन योगोंकी अपेक्षा चौरासी पदोंके द्वारा अल्पबहुत्व कहते हैं ॥२३२॥

यहाँ सूक्ष्म, बादर, एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रियकी संदृष्टि इस प्रकार जानना—

सू	बा	बि	ति	च	अ	सं
०१	∧	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

सूक्ष्मलब्धिजघन्यं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तैकेंद्रियजीवनुपपादजघन्ययोगस्थानं सर्व्वतः स्तोकमक्कु १ मदं नोडलु तन्निवृत्तेर्ज्जघन्यकं आ सूक्ष्मनिगोदनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।२। ततः तस्मात् अदं नोडलु लब्द्धयपूर्णोत्कृष्टं सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।३। अतः अदं नोडलु बादरलब्धेरवरं बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु ।४। ५

सू	वा	वि	ति	च	अ	सं
०१	०१	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उपपादजघन्यं स्थानं सर्वतः स्तोकं १ । ततः तन्निर्वृत्यपर्याप्तजघन्यं पल्यासंख्यातगुणं २ । ततः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं ३ । ततः बादरलब्ध्यपर्याप्तस्य तज्जघन्य पल्यासंख्यातगुणं ॥४॥२३३॥

सू.	वा.	वि.	ति.	च.	अ.	सं.
०१	०१	०२	०३	०४	०५	०६
		०	०	०	०	०
			०	०	०	०
				०	०	०
					०	०
						०

सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान सबसे थोड़ा है ।१। उससे सूक्ष्म निगोद निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यका असंख्यातवाँ भाग गुणा है । अर्थात् पल्यके असंख्यात भागोंमेंसे एक भागके द्वारा पूर्व योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने अविभाग प्रतिच्छेद दूसरे स्थानमें हैं । ऐसे ही आगे भी समझ लेना २ । उससे सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भागगुणा है ३ । उससे बादर लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ४ ॥२३३॥ १०१५

णिव्वत्तिसुहुमजेट्ठं बादरणिव्वत्तियस्स अवरं तु ।
बादरलद्धिस्स वरं बीइंदियलद्धिगजहण्णं ॥२३४॥

निर्व्वृत्तिसूक्ष्मोत्कृष्टं बादरनिर्वृत्तेरवरं तु । बादरलब्धेर्व्वरं द्वींद्रियलब्धिजघन्यं ॥

निर्वृत्तिसूक्ष्मोत्कृष्टं आ बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानमं नोडलु निर्व्वृत्य-
५ पर्य्याप्तसूक्ष्मजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।५। तु पुनः मत्तमवं नोडलु बादरनिर्वृत्तेरवरं बादरनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु ।६। मदं नोडलु बादरलब्धेर्व्वरं बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पल्यासंख्यातयिक-भागगुणितमक्कु ।७। मदं नोडलु द्वींद्रियलब्धेर्ज्जघन्यम् द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादजघन्ययोग-स्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कुं ।८॥

१० बादरणिव्वत्तिवरं णिव्वत्तिबियिंदियस्स अवरमदो ।
एवं बितिबितितिचतिच चउविमणो होदि चउविमणो ॥२३५॥

बादरनिर्व्वृत्तिवरं निर्वृत्तिद्वींद्रियस्याऽवरं अवरः । एवं द्वित्रिद्वित्रित्रिचतुश्चतुस्त्रिचतुर्व्विमनो भवति चतुर्व्विमनः ॥

आ द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्योपपादयोगस्थानमं नोडलु बादरैकेंद्रियनिर्व्वृत्तिवरं
१५ बादरैकेंद्रियनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु ।९॥ मतः अदं नोडलु द्वींद्रियनिर्व्वत्तेरवरं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियजीवोपपादजघन्ययोगस्थानं पल्यासंख्यातगुणित मक्कुं ।१०। एवं ई प्रकारदिंदं द्वित्रिलब्ध्यपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्ट-जघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । उ । ज । अवं नोडलु द्वित्रि
११ १२

ततः सूक्ष्मनिर्वृत्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं । ५ । तु-पुनः ततो बादरनिर्वृत्यपर्याप्तस्य
२० तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ६ । ततः बादरलब्ध्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं ७ । ततः द्वींद्रियलब्ध्य-पर्याप्तस्य तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ॥८॥ २३४॥

ततो बादरैकेंद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तस्य तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं ९ । अतः द्वींद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तस्य तज्जघन्यं पल्यासंख्यातगुणं १० । एवं लब्ध्यपर्याप्तद्वित्रीन्द्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थाने

उससे सूक्ष्म निर्वृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग
२५ गुणा है ५। उससे बादर निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ६। उससे बादर लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ७। उससे दो इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ८ ॥२३४॥

उससे बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें
३० भाग गुणा है ९। उससे दो इन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है १०। इसी प्रकार उससे दो इन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट और

निर्व्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगंगळु पल्यासंख्यातैक-
भागगुणितंगळप्पुवु उ । ज अवं नोडलु त्रिचतुः लब्ध्यपर्य्याप्तत्रींद्रियचतुरिंद्रियजीवंगळ यथासंख्य-
१३ । १४
मागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितंगळप्पुवु उ । ज त्रिचतुः मत्तं
१५ । १६
निर्व्वृत्यपर्य्याप्तत्रींद्रियचतुरिंद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्या-
संख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु उ । ज चतुर्व्विमनः मत्तमंते लब्ध्यपर्य्याप्तचतुरिंद्रिय असंज्ञि- ५
१७ । १८
पंचेंद्रियजीवंगळ यथासंख्यमागि उत्कृष्टजघन्योपपादयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमं-
गळप्पुवु । १९ । २० । अवं नोडलु मत्तमंते चतुर्व्विमनः निर्व्वृत्यपर्य्याप्तचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय-
जीवंगळ यथाक्रमदिंदमुपपादयोगोत्कृष्टजघन्यस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु ।
२१ । २२ ॥

तह य असण्णी सण्णी असण्णिसण्णिस्स सण्णिउववादं । १०
सुहुमेइंदियलद्धिग अवरं एयंतवड्ढिस्स ॥२३६॥

तथा चासंज्ञिसंज्ञ्यसंज्ञिसंज्ञिन संज्ञ्युपपादः । सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यवरमेकांतवृद्धेः ॥

तथा च आ प्रकारदिंदमसंज्ञिसंज्ञि असंज्ञिपंचेंद्रियसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ यथा-
क्रमदिंदमुपपादयोगोत्कृष्टस्थानमुं जघन्यस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । २३।२४ ॥
मत्तमंते असंज्ञिसंज्ञिनां निर्वृत्यपर्य्याप्तासंज्ञिसंज्ञिजीवंगळ यथाक्रमदिंदमुपपादयोगोत्कृष्टस्थानमुं १५

पल्यासंख्यातगुणे भवतः । ११ । १२ । ततः निर्वृत्यपर्याप्तद्वित्रींद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यात-
गुणे । १३ । १४ । ततः लब्ध्यपर्याप्तत्रिचतुरिंद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १५ । १६ ।
पुनः निर्वृत्यपर्याप्तत्रिचतुरिंद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १७ । १८ । तथा लब्ध्यपर्याप्त-
चतुरसंज्ञिपंचेंद्रिययोर्यथासंख्यं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । १९ । २० । ततः निर्वृत्यपर्याप्तचतुरसंज्ञि-
पंचेंद्रिययोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । २१ । २२ ॥२३५ ॥२३६ ॥ २०

तथा च असंज्ञिसंज्ञिलब्ध्यपर्याप्तयोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे २३ । २४ । पुनस्तथा

तेइन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग पल्यके असंख्यावें भाग गुणे हैं । ११।१२। उससे निर्वृत्यपर्याप्त दो-इन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्य-
पर्याप्त तेइन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१३।१४। उससे लब्ध्यपर्याप्त तेइन्द्रियका उत्कृष्ट और लब्ध्यपर्याप्त चौइन्द्रियका जघन्य उपपाद योग- २५
स्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१५।१६। उससे निर्वृत्यपर्याप्त तेइन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्यपर्याप्त चौइन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१७।१८। उससे लब्ध्यपर्याप्तक चौइन्द्रियका उत्कृष्ट और लब्ध्यपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।१९।२०। उससे निर्वृत्यपर्याप्त चौइन्द्रियका उत्कृष्ट और निर्वृत्यपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियका जघन्य उपपाद ३०
योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ॥२१।२२॥२३५॥ उससे असंज्ञी लब्ध्य-

जघन्यस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । २५ । २६ ॥ आ पूर्व्वमं नोडलु संज्ञ्युपपादं लब्ध्यपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवोत्कृष्टोपपादयोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २७ । मदं नोडलु सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्यमेकान्तानुवृद्धियोगस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २८ ॥ मदं नोडलु :—

सण्णिस्सुववादवरं णिव्वत्तिगदस्स सुहुमजीवस्स ।
एयंतवड्ढि अवरं लद्धिदरे थूलथूले य ॥२३७॥

संज्ञिन उपपादवरं निर्व्वृत्तिगतस्य सूक्ष्मजीवस्य । एकान्तानुवृद्धिजघन्यं लब्धीतरस्मिन् स्थूलस्थूले च ॥

संज्ञिनः उपपादवरं निवृत्तिगतस्य संज्ञिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगोत्कृष्टस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । २९ ॥ अदं नोडलु सुहुमजीवस्स सूक्ष्मनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवन एकान्तानुवृद्धिजघन्यं एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानं पल्यासंख्यातैकभागगुणितमक्कु । ३० ॥ मदं नोडलु लब्धीतरस्मिन् लब्ध्यपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवे स्थूलस्थूले च बादरदोळं बादरदोळ एनें बुदर्थमें-दोडे बादरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्यैकांतानुवृद्धियोगमुं निर्वृत्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजघन्यैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागवृद्धिक्रमंगळें बुदर्त्थं । ३१ । ३२ ॥

तह सुहुम-सुहुम-जेट्ठं तो बादरबादरे वरं होदि ।
अंतरमवरं लद्धिगसुहुमिदरवरंपि परिणामे ॥२३८॥

तथा सूक्ष्मसूक्ष्मज्येष्ठं ततो बादरबादरे वरं भवति । अंतरमवरं लब्धिगसूक्ष्मेतरमपि परिणामे ॥

असंज्ञिसंज्ञिनिर्वृत्यपर्याप्तयोर्यथाक्रमं तदुत्कृष्टजघन्ये पल्यासंख्यातगुणे । २५ । २६ । ततः लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिनस्तदुत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं २७ । ततः सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तस्य एकांतानुवृद्धिजघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ।२८। ततः—

संज्ञिनिर्वृत्यपर्याप्तस्योपपादोत्कृष्टं पल्यासंख्यातगुणं २९ । ततः सूक्ष्मकेंद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तस्य एकांतानुवृद्धिजघन्यं पल्यासंख्यातगुणं ३० । ततः बादरैकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तयोरेकांतानुवृद्धिजघन्ये पल्यासंख्यातगुणितक्रमे । ३१ । ३२ ॥२३७॥

पर्याप्तकका उत्कृष्ट और संज्ञी लब्ध्यपर्याप्तका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।२३।२४। उससे असंज्ञी निर्वृत्यपर्याप्तका उत्कृष्ट और संज्ञी निर्वृत्यपर्याप्तका जघन्य उपपाद योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ॥२५।२६। उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ।२७। उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है ।२८ ॥२३६॥

उससे संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट उपपाद योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है । २९ । उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणा है । ३० । उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकका जघन्य एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ।३१।३२॥२३७॥

तथा निर्वृत्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजघन्यैकान्तानुवृद्धियोगमं नोडलु सूक्ष्मसूक्ष्मजघन्यस्थानम् सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं निर्वृत्यपर्य्याप्तसूक्ष्मैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३३ । ३४ ॥ ततः अदं नोडलु बादरबादरे वरं भवति लब्ध्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं निर्वृत्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानमुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३५ । ३६ ॥ अनंतरं बळिक्कमंतरमंबुदक्कुमन्तरमेंबुदेनेंदोडे निर्वृत्यपर्य्याप्तबादरैकेंद्रियजीवोत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानद सूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगस्थानद अन्तराळदोळु श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानंगळु निःस्वामिकंगळप्पंतरमंब व्यपदेशमक्कुमा प्रथमांतरमनतिक्रमिसि अवरं लब्धिसूक्ष्मेतरवरमपि परिणामे लब्ध्यपर्य्याप्तकसूक्ष्मबादरंगळ परिणामे परिणामयोगदोळु जघन्यस्थानंगळुमा सूक्ष्मेतरलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळु मिन्तु नाल्कुं स्थानंगळुं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥

अंतरमुवरीवि पुणो तप्पुण्णाणं च उवरि अंतरियं ।
एयंत वड्ढिठाणा तसपणलद्धिस्स अवरवरा ॥२३९॥

अंतरमुपर्य्यपि पुनस्तत्पूर्णानां चोपर्य्यंतरितमेकान्तानुवृद्धिस्थानानि त्रसपंचलब्धेरवरवराणि ॥

तथा सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तयोः एकांतानुवृद्धयुत्कृष्टे पल्यासंख्यातगुणक्रमे ३३ । ३४ । ततः बादरैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तयोरेकांतानुवृद्धयुत्कृष्टे पल्यासंख्यातगुणितक्रमे । ३५ । ३६ । ततः अंतरमिति बादरैकेंद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तैकांतानुवृद्धयुत्कृष्टसूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तपरिणामयोगजघन्ययोरंतराले श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानानि निःस्वामिकानि तानि चातीत्य सूक्ष्मबादरलब्ध्यपर्याप्तयोः परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातगुणक्रमाणि ॥ ३७ । ३८ । ३९ । ४० ॥२३८ ॥

उससे सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ३३।३४। उससे बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ३५।३६। उसके पश्चात् अन्तर है। अर्थात् बादर एकेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानके मध्यमें जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है। ये योगस्थान किसी जीवके नहीं पाये जाते। इससे यह अन्तर पड़ा है। इन स्थानोंको उलंघकर या छोड़कर सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं। यहाँ सूक्ष्मका जघन्य, बादरका जघन्य, सूक्ष्मका उत्कृष्ट, बादरका उत्कृष्ट यह क्रम लेना। ३७।३८।३९।४०। ऐसे ही आगे भी जानना ॥२३८॥

अंतरं तद्बादरैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानद सूक्ष्मपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद द्वितीयांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानविकल्पंगळनतिक्रमिसि उपर्य्यपि पुनः मेलेयुं मत्ते तत्पूर्णानां च आ सूक्ष्मैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळ बादरैकेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळ जघन्यपरिणामयोगस्थानंगळुमा सूक्ष्मबादरपर्य्याप्तजीवंगळ परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळु मिन्तु नाल्कुं स्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ ॥ उपर्य्यंतरितं मेले तृतीयांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनंतरिसल्पट्टुदेंतप्पुदंतें त्रसपंचलब्धेः द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियासंज्ञि पंचेंद्रियसंज्ञि लब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानंगळुमप्पुमवरुत्कृष्टस्थानंगळुमप्पुमिन्तु १० पत्तुं स्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ ॥

लद्धीणिव्वत्तीणं परिणामेयंतवड्ढिठाणाओ ।
परिणामट्ठाणाओ अंतरियंतरिय उवरुवरिं ॥२४०॥

लब्धिनिर्वृत्तीनां परिणामैकान्तवृद्धिस्थानानि परिणामस्थानानि च अंतरित्वांतरित्वोपर्य्युपरि ॥

मत्तमा संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टस्थानद द्वींद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद चतुर्थांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानविकल्पंगळनतिक्रमिसि लब्ध्यपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळ जघन्यपरिणामयोग-

---

तत उपरि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रयोगस्थानानि द्वितीयमंतरं । तदंतीत्य पुनः तत्सूक्ष्मबादरैकेंद्रियापर्याप्तयोः परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातगुणक्रमाणि ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । उपरि तृतीयांतरं श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानान्यतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तानामेकांतानुवृद्धेर्जघन्योत्कृष्टानि दशपल्यासंख्यातगुणक्रमाणि ४५ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ ॥२३९॥

(पुनः तत्संज्ञिलब्ध्यपर्याप्तैकांतानुवृद्धियोगोत्कृष्टद्वींद्रियलब्ध्यपर्याप्तपरिणामयोगजघन्ययोरंतरगतं)

इसके बाद दूसर अन्तर है अर्थात् बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । अतः इनको छोड़कर सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ये चार अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ४१। ४२।४३।४४। उसके ऊपर तीसरा अन्तर है अर्थात् बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं हैं । उनको छोड़कर दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तके जघन्य और उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ४५।४६।४७।४८।४९।५०।५१।५२।५३।५४ ॥२३९॥

इसके पश्चात् चौथा अन्तर है । अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थानोंका कोई स्वामी नहीं

---

१. कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति ब प्रतौ ।

स्थानंगळयिदु मवरुत्कृष्ट परिणामयोगस्थानंगळप्पुदु मिन्तु पत्तुं स्थानंगळुं पल्यासंख्यातैकभाग-गुणितक्रमंगळप्पुवु । ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४। मत्तमा लब्ध्यपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानद निर्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियजीवैकान्तानुवृद्धियोगस्थानद पंचमांतरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनतिक्रमिसि निर्वृत्यपर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय-असंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रियजीवंगळ एकान्तानुवृद्धियोगजघन्यस्थानंगळप्पुदुमवरुत्कृष्टैकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगळुमयिदुमिन्तु पत्तुं स्थानंगळु प्रत्येक पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवु । ६५।६६।६७।६८।६९।७०। ७१ । ७२ । ७३ । ७४ ॥ मत्तमा संज्ञिपंचेंद्रियनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवैकान्तानुवृद्धियोगोत्कृष्टस्थानद पर्य्याप्तद्वींद्रियजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानद षष्ठान्तरगतश्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानंगळनतिक्रमिसि पर्य्याप्तद्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रिय जीवंगळ परिणामयोगजघन्यस्थानंगळयिदुमवर परिणामयोगोत्कृष्टस्थानंगळयिदु मिन्तु पत्तुं स्थानंगळुं प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभाग-गुणितक्रमंगळप्पुवु । ७५ । ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ ॥ यिंतु पदिनाल्कुं जीवसमासंगळ उपपादयोगमुमेकान्तानुवृद्धियोगमुं परिणामयोगममुमेंब त्रिविधयोगंगळ जघन्योत्कृष्टविषयंगळप्प चतुरशीतियोगस्थानंगलल्पबहुत्वं सूक्ष्मैकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगजघन्यस्थानद अनंतरोक्तसूक्ष्मैकेंद्रियनिर्वृत्यपर्य्याप्तजीवोपपादजघन्यस्थानं मोदल्गोंडु संज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तजीवोपपादयोगजघन्यस्थानपर्य्यन्तमाद पदिनाल्कुं जीवसमासेगळ उपपादयोगस्थानंगळ्गं एकान्तानुवृद्धियोगस्थानंगळ्गं परिणामयोगस्थानंगळ्गं अल्पबहुत्वं पेळल्पडुगुं ।

पुनः चतुर्थांतरं श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानान्यतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तानां परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमाणि ५५ । ५६ । ५७ । ५८ । ५९ । ६० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । पुनः (तल्लब्ध्यपर्याप्तसंज्ञिपरिणामोत्कृष्टनिर्वृत्यपर्याप्तद्वींद्रियैकांतानुवृद्धियोगजघन्ययोरंतरगत) श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानानि पंचमांतरमतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियनिर्वृत्यपर्याप्तानां एकांतानुवृद्धेर्जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातैकभागगुणक्रमाणि । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७३ । ७४ । पुनः (तत्संज्ञिनिर्वृत्यपर्याप्तैकांतानुवृद्धियोगोत्कृष्टपर्याप्तद्वींद्रियपरिणामयोगजघन्ययोरंगतरंगत) श्रेण्यसंख्यातैकभागस्थानानि षष्ठांतरमतीत्य द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तानां परिणामयोगस्य जघन्योत्कृष्टानि पल्यासंख्यातगुणक्रमाणि । ७५ ।

है । उनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ५५।५६।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।६४ । इसके पश्चात् पाँचवाँ अन्तर है । अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । उनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ६५। ६६।६७।६८।६९।७०।७१।७२।७३।७४ । इसके पश्चात् छठा अन्तर है । अर्थात् संज्ञी पंचेन्द्रिय निर्वृत्यपर्याप्तकके उत्कृष्ट एकान्तानुवृद्धि योगस्थानके पश्चात् जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान ऐसे हैं जिनका कोई स्वामी नहीं है । सो इनको छोड़कर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य और उत्कृष्ट

---

१. ब. °संख्यातगु° । २.–३. कोष्ठकान्तर्गतपाठो नास्ति ब प्रतौ ।

द्वियपर्य्याप्तजीव परिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळे दु पेळ्दुदनीगळु ग्रंथकारं मुंदण गाथासूत्रदिंदं पेळ्दपं ।

एदेसिं ठाणाओ पल्लासंखेज्जभागगुणिदकमा ।
हेट्ठिमगुणहाणिसला अण्णोण्णब्भत्थमेत्तं तु ॥२४१॥

एतेषां स्थानानि पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमाणि । अधस्तनगुणहानिशलाकाः अन्योन्याभ्यस्तमात्रं तु ॥

ई पेळल्पट्ट चतुरशीति अल्पबहुत्वयोगस्थानंगळु पल्यासंख्यातैकभागगुणितक्रमंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानं जघन्ययोगस्थानमं नोडलु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमप्पुदु । आ जघन्योत्कृष्ट योगस्थानंगळ अधस्तनगुणहानिशलाकेगळु कियत्प्रमितंगळप्पुवेंदोडे मुन्नं पेळल्पट्ट असंख्यातरूपोनपल्यवर्गशलाकाप्रमितंगळप्पु । व-अ विवु । अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळे बुवप्पुदरिंवमवे तेंदोडे :— प्र व वि १६ । ४ । २ फ स्थान १ इ । व वि १६ । ४ । अ १ लब्ध

स्थानविकल्पंगळु अ२ मत्तं :—
अ

प्र व वि १६ । ४ । २ फ स्था १ इ । व वि । १६ । ४–छ लब्धस्थानविकल्पंगळु अ छे
अ अअ२ अ २ । २
अ

अन्तधणं गुणगुणियं अ २ छे २ आदिविहीणं अ २ छे रूऊणुत्तर भजियमेंदु तावन्मात्रमे-
अ अ २ अ अ

यक्कुमन्तागुत्तं विरलु रूपोनगुणेन हतं गुणितं अ २ छ १ प्रभवेन भाजितं अ २ छे
अ अ अ अ २

---

७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० । ८१ । ८२ । ८३ । ८४ ॥२४०॥ इममुक्तगुणकारं ग्रन्थकारः प्राह—

एतेषां चतुर्दशजीवसमासानामुपपादादियोगत्रयस्य जघन्योत्कृष्टचतुरशीतिस्थानानि पल्यासंख्यातगुणितक्रमाण्यपि सर्वोत्कृष्टं जघन्यात् पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणमेव । तयोर्जघन्योत्कृष्टयोरंतरालस्था अधस्तनगुण-

---

परिणाम योगस्थान ये दस अनुक्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं ७५।७६।७७।७८।७९। ८०।८१।८२।८३।८४। इस तरह ये चौरासी स्थान जानना ॥२४०॥

आगे ग्रन्थकार स्वयं उक्त गुणकारको कहते हैं ।

चौदह जीव समासोंके उपपाद आदि तीन योगोंके जघन्य और उत्कृष्ट भेदसे ये चौरासी स्थान यद्यपि क्रमसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं । तथापि जघन्य योगस्थानसे

---

१. गुणकारशलाकेगलेंबुदर्त्थं ।

सैकं । छे । यतिकृत्वो गुणभक्तं रूपं यावतो वारान् । गुणेन भक्तं रूपं । व–ə । तति भवेद्गच्छः ।
ə
एंदितिवु असंख्यातरूपोनपल्यवर्गशलाकामात्रमन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकेगळ प्रमाणमक्कुमवर प्रमाणमधस्तनगुणहानिशलाकेगळप्पुवेंबुदर्त्थं ॥

अनंतरमुपपादादियोगत्रयक्के जघन्योत्कृष्टदिंदं निरंतरप्रवृत्तिकालप्रमाणमं मुंदण गाथासूत्रदिंद पेळ्दपरु :— ५

अवरुक्कस्सेण हवे उववादेयंतवड्ढिठाणाणं ।
एक्कसमयं हवे पुण इदरेसिं जाव अट्ठोत्ति ॥२४२॥

जघन्योत्कृष्टेन भवेदुपपादैकान्तवृद्धिस्थानानामेकसमयो भवेत्पुनरितरेषां यावदष्टौ समयास्तावत्पर्य्यंतं ॥

उपपादयोगमेकान्तानुवृद्धियोगमेंबी एरडुं योगस्थानंगळगे जघन्योत्कृष्टदिंदं येकसमयमे १०
प्रवृत्तिकालप्रमाणमक्कु । मितरेषां इतरंगळप्प परिणामयोगस्थानंगळगे द्विसमयादियोगदष्टसमयंगळेन्नेवरमन्नेवरं निरंतरप्रवृत्तिकाल प्रमाणमक्कुं । उक्तार्थोपयोगियोगस्तंभरचनेयिदु :—

अस्यां स्तंभरचनायां शून्यानि त्रिकोणानि च किमर्थमिति चेदुच्यते—एकं शून्यं सूक्ष्मजीव इति संज्ञार्थं । द्वे शून्ये द्वींद्रियजीव इति संज्ञानिमित्तं । त्रिचतुः पंचषट् शून्यानि त्रिचतुः संज्ञाऽसंज्ञि जीव प्रतिपादकानि लघुसंदृष्टिनिमित्तं शून्यानि कृतानि । अत्र रचनायां त्रिकोणाकारं किमर्थं १५
इत्यारेकायां इदमुच्यते त्रिकोणाकारमत्र बादरजीवसंज्ञा निमित्तं । अत्र शून्यावस्थितगोळाकारं
० शोभार्थमेव शून्यं सूक्ष्मजीव संज्ञा इति अव्यामोहेन इयं स्तंभरचना प्रतिपादनीया ।
०

हानिशलाकाः कति ? पूर्वोक्ता असंख्यातरूपोनपल्यवर्गशलाकामात्र्यः व–ə ता एव अन्योन्याभ्यस्तस्य गुणकारशलाका नाम ॥२४१॥ अथोपपादादीना जघन्योत्कृष्टेन निरंतरप्रवृत्तिकालप्रमाणमाह—

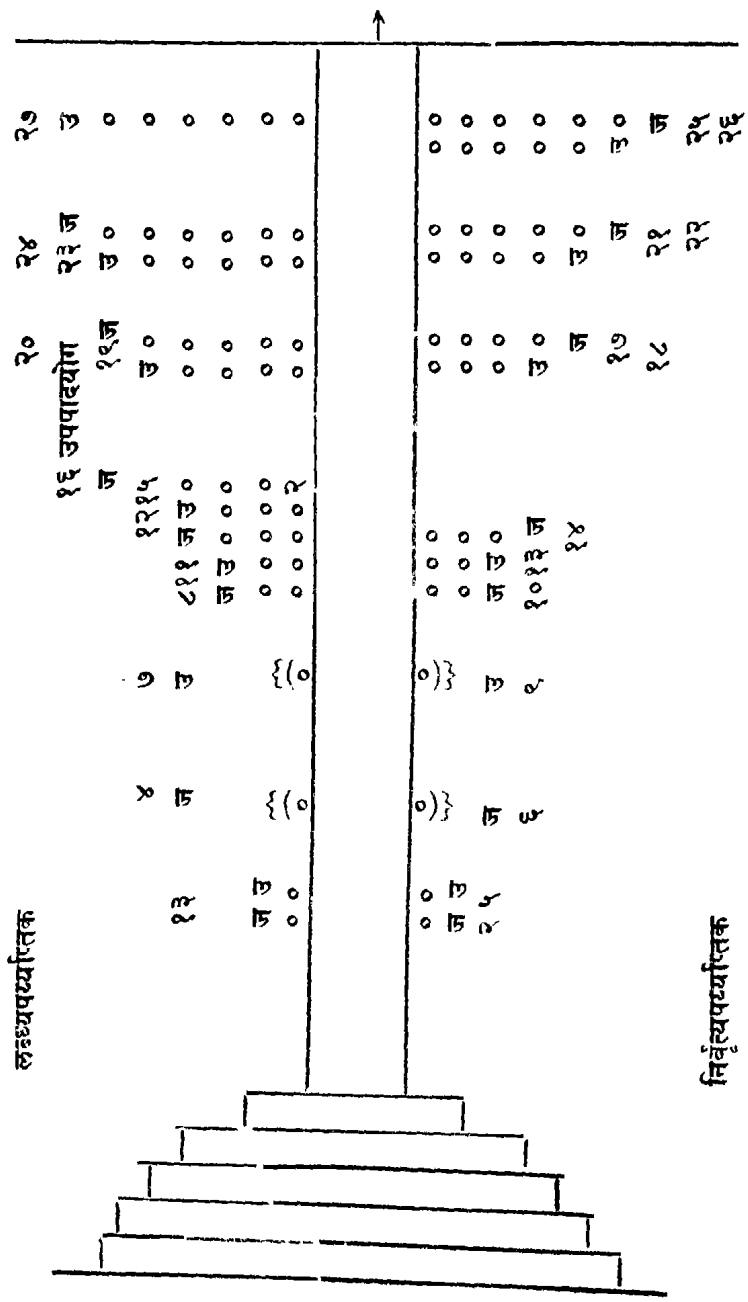
उपपादैकांतानुवृद्धियोगद्वयस्थानानां प्रवृत्तिकालो जघन्येन उत्कृष्टेन च एकसमय एव स्यात् । इतरेषां २०
परिणामयोगस्थानानां द्विसमयाद्यष्टसमयपर्यंतं स्यात् ॥२४२॥ उक्तार्थोपयोगिनी योगस्तंभरचनेयं—

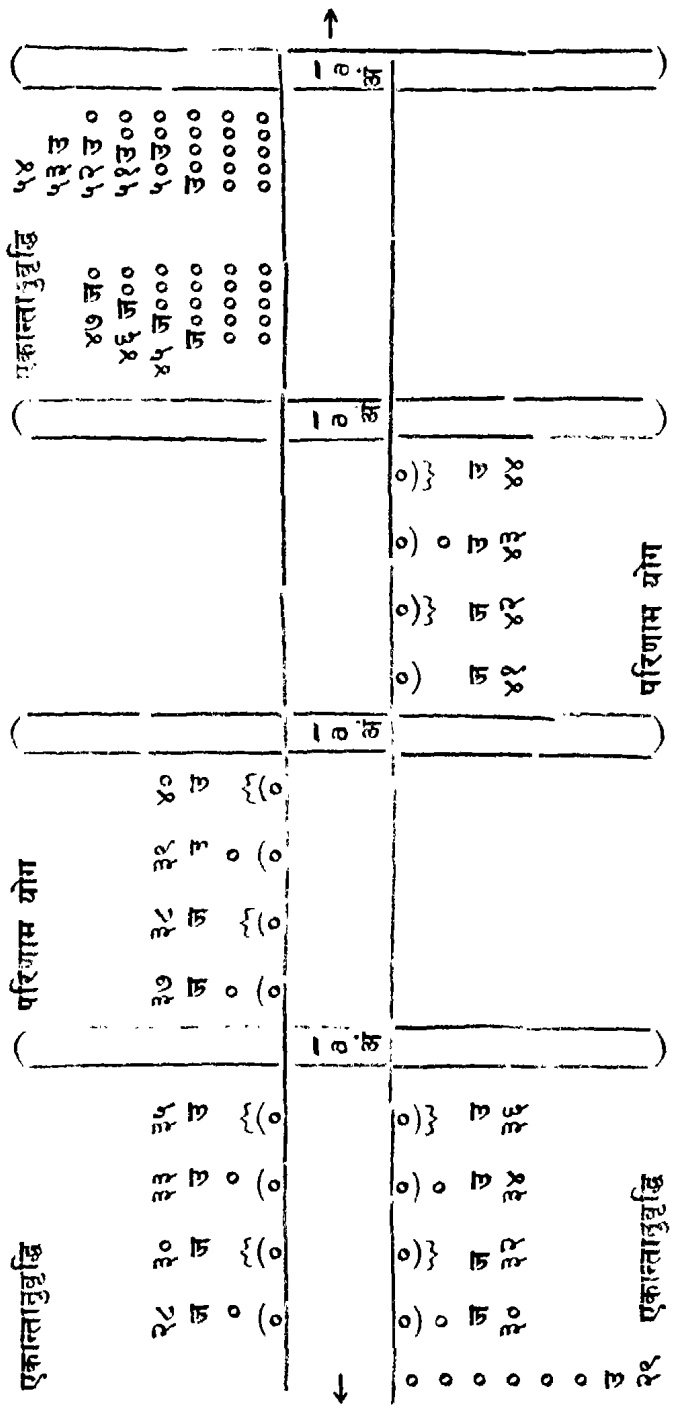
सर्वोत्कृष्ट योगस्थान पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा हैं। इन जघन्य और उत्कृष्ट योगस्थानके मध्यमें स्थित अधस्तन गुणहानिशलाका असंख्यात हीन पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण हैं। वे ही अन्योन्याभ्यस्त राशिकी गुणकार शलाका हैं ॥२४१॥

आगे उपपाद आदिके जघन्य और उत्कृष्टसे निरन्तर प्रवर्तनका काल कहते हैं— २५

उपपाद योगस्थान और एकान्तानुवृद्धि योगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल जघन्य और उत्कृष्टसे एक समय ही है। और परिणाम योगस्थानोंके प्रवर्तनेका काल दो समयसे लेकर आठ समय पर्यन्त है ॥२४२॥

विशेषार्थ—उपपाद योगस्थान जन्मके प्रथम समयमें ही होता है और एकान्तानुवृद्धि योगस्थान प्रतिसमय वृद्धिरूप होनेसे अन्य-अन्य होता रहता है। अतः इन दोनोंके प्रवर्तनेका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। एक परिणाम योगस्थान ही ऐसा है जो दो समयसे लेकर आठ समय तक रहता है ॥२४२॥ ३०


लब्ध्यपर्याप्तक
निर्वृत्यपर्याप्तक


एकान्तानुवृद्धि
परिणाम योग
परिणाम योग
एकान्तानुवृद्धि
१ a अं
१ a आं
१ a इं
१ a ईं

परिणाम योग
५९
५८ ज
५७ ज०
५६ ज००
५५ ज०००
ज००००
००००
००००
६४
६३ उ
६२ उ०
६१ उ००
६० उ०००
उ००००
००००
००००
१ अं
१ अं
एकान्तानुवृद्धि
६९
६८ ज
६७ ज०
६६ ज००
६५ ज०००
ज००००
००००
००००
६४
६३ उ
६२ उ०
६१ उ००
६० उ०००
उ००००
००००
००००
परिणाम योग
७९
७८ ज
७७ ज०
७६ ज००
७५ ज०००
ज००००
००००
००००
८४
८३ उ
८२ उ०
८१ उ००
८० उ०००
उ००००
००००
००००

अट्ठसमयस्स थोवा उभयदिसासु वि असंखसंगुणिदा ।
चउसमयोत्ति तहेव य उवरिं तिदुसमयजोग्गाओ ॥२४३॥

अष्टसमयस्य स्तोकाः उभयदिशास्वपि असंख्यसंगुणिताः । चतुःसमयपर्यंतं तथैव चोपरि त्रिद्विसमययोग्याः ॥

द्वींद्रियपर्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानमादियागि संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवपरिणाम- ५

योगोत्कृष्टस्थानपर्यंतमाद सर्व्वनिरंतर योगस्थानंगळोळु $-१\ \frac{\overline{छे}^{\circ}}{१\ ३\ अ}$ पल्यासंख्यातभाजितबहुभाग-

स्थानंगळु $\frac{-\overline{छे}^{\circ}\ \overline{प}^{\circ}}{१\ अ\ अ}$ द्विसमयनिरंतरपरिणामयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु । शेषैकभागपल्या-

संख्यातबहुभागस्थानविकल्पंगळु त्रिसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिपरिणामस्थानविकल्पंगळप्पुवु—

$-२\ \frac{\overline{छे}^{\circ}\ \overline{प}^{\circ}}{अ\ २\ अ\ अ\ अ}$ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्द्धस्थानविकल्पंगळु अधस्तन चतुःसमयनिरंतरयोग-

प्रतिपत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु । शेषार्द्धस्थानविकल्पंगळुपरितनचतुःसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थान- १०

द्वीन्द्रियपर्याप्तपरिणामयोगस्थानादारभ्य संज्ञिपर्याप्तपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्यंतं सर्वेषु निरन्तरयोग-

स्थानेषु— $\frac{\overline{छे}^{\circ}}{अ\ २\ अ}$ पल्यासंख्यातभाजितबहुभागः— $\frac{\overline{छे}^{\circ}\ \overline{प}^{\circ}}{अ\ २\ अ\ अ}$ द्विसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः, शेषैकभागस्य

पल्यासंख्यातबहुभागस्त्रिसमय— निरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः— $\frac{\overline{छे}^{\circ}\ \overline{प}^{\circ}}{अ\ २\ अ\ अ\ अ}$ शेषैकभागस्य पल्या-

---

दो-इन्द्रिय पर्याप्त जीवके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लगाकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त अन्तररूप योगस्थानोंको छोड़कर जो निरन्तर १५
योगस्थान हैं उनकी जौ नामक अन्नके आकार रचना कालकी अपेक्षा करते हैं। जो योगस्थान निरन्तर आठ समय तक होते हैं उन्हें मध्यमें लिखें। जो योगस्थान निरन्तर सात समय तक होते हैं उनमें-से आधे तो आठ समयवालोंके ऊपर लिखें और आधे नीचे

विकल्पंगळप्पुवु। — छे प। २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागंगळद्धद्धिगळु मुन्निनंते अधस्तन-

पंचसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळुमुपरितनपंचसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळुम-

प्पुवु :— — छे प। २ — छे प। २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागा-

द्धद्धिगळु मुंनिनंते अधस्तनोपरितनषट्समयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु—

— छे प। २ — छे प। २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागाद्धद्धिस्थानविकल्पंगळु

मुन्निनंते अधस्तनोपरितनसप्तसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळप्पुवु :—

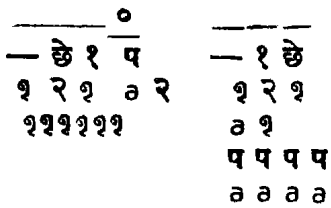
संख्यातबहुभागार्धमधस्तनचतुःसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः —२ छे प शेषार्धमुपरितनचतुःसमय-

निरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः— २ छे प २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धमधस्तनपंचसमयनिरंतर-

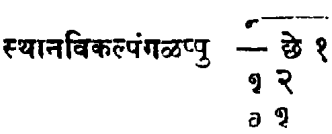
प्रवृत्तिस्थानविकल्पाः अर्धं चोपरितनपंचसमयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः —२ छे प २

—२ छे प २ शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धार्धमधस्तनोपरितनषट्समयनिरंतरप्रवृत्तिस्थानविकल्पाः

लिखें। जो योगस्थान निरन्तर छह समय तक होते हैं वे आधे तो उनके नीचे और आधे ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर पाँच समय तक होते हैं वे आधे तो नीचे और आधे उनके ही ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर चार समय तक होते हैं, वे आधे उनके नीचे

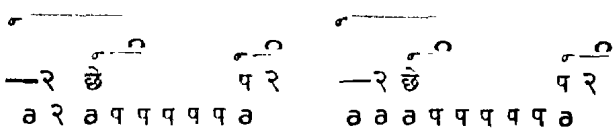


शेषैक भागमष्टसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिमध्यमयोग-

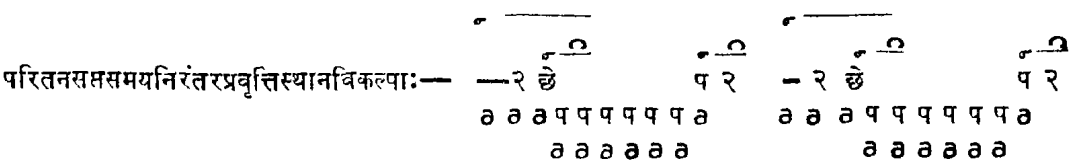


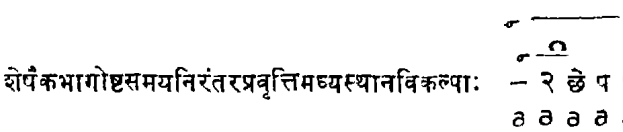
स्थानविकल्पंगळप्पु वदुकारणमागि अष्टसमयस्य स्थानविकल्पाः स्तोकाः

एंदितु पेळल्पट्टुदु । उभयदिशास्वपि असंख्यातगुणिताः अधस्तनोपरितनोभयदिशेगळोळमसंख्यात-
गुणित क्रमंगळप्पुविन्तु अधस्तनोपरितनोभयदिशेगळोळं चतुःसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्प-



शेषैकभागपल्यासंख्यातबहुभागार्धार्धमधस्तनो- ५





अत एव अष्टसमयस्य स्तोका इत्युक्तं । उभयदिशासु च असंख्यातगुणिताः । तत्र चतुःसमयनिरंतरप्रवृत्ति-

और आधे ऊपर लिखें। जो योगस्थान निरन्तर तीन समय तक होते हैं वे सब चार समयवालोंके ऊपर ही लिखना। जो योगस्थान निरन्तर दो समय तक होते हैं वे सब तीन १० समयवालोंके ऊपर लिखें।

अब इन स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

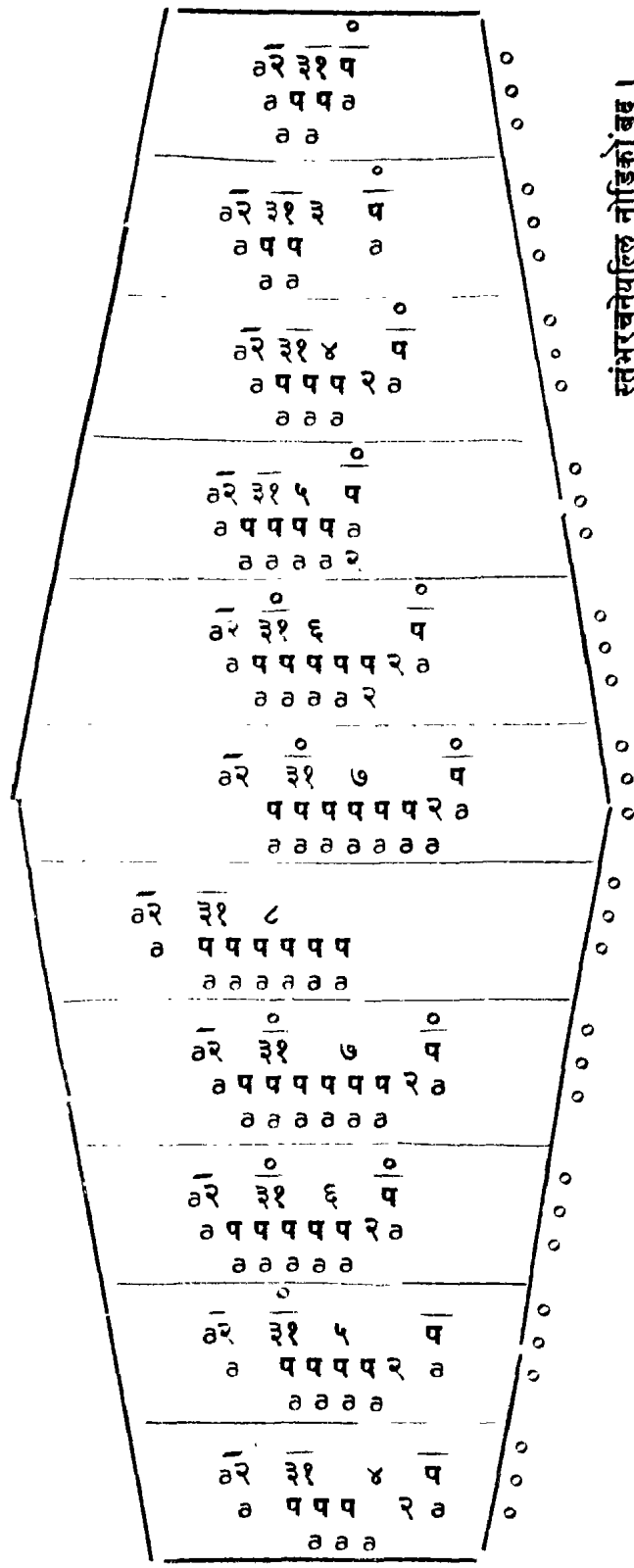
दो इन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगसे लेकर संज्ञी पर्याप्तके उत्कृष्ट परिणाम योग पर्यन्त योगस्थान—जगतश्रेणिसे असंख्यातवें भागको एक घाटि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागसे गुणा करें और सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे भाग दें। जो प्रमाण हो १५ उसमें एक जोड़ें—इतने हैं। उनके इस प्रमाणमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभाग तो निरन्तर दो समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभाग तीन समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है। उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें। एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके चार समय निरन्तर होनेवाले २०

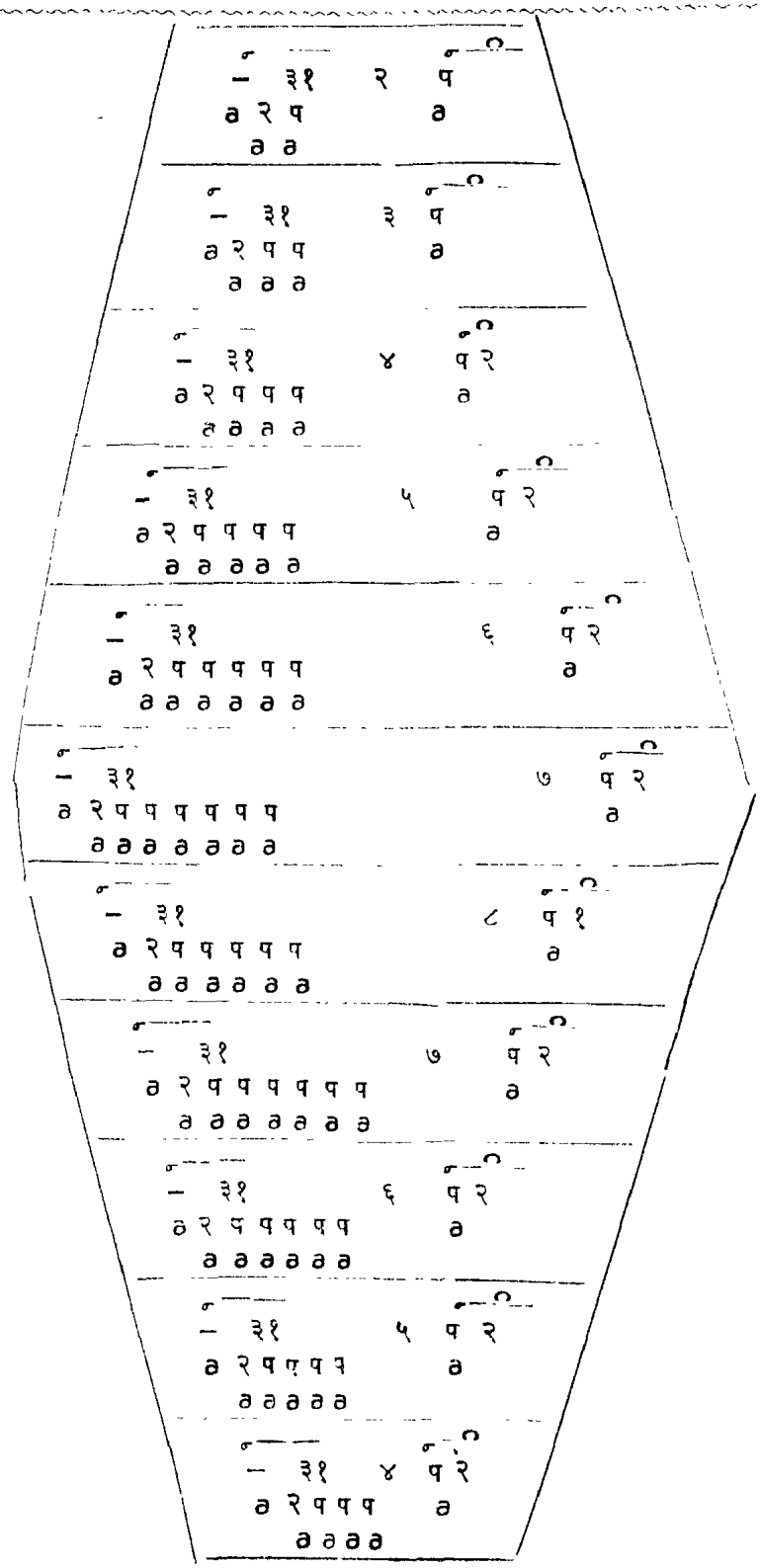
गळु पर्य्यंतमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवुपरितनत्रिसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळसंख्यात-गुणितंगळप्पुववं नोडलुमुपरितनद्विसमयनिरंतरयोगप्रवृत्तिस्थानविकल्पंगळसंख्यातगुणितंगळप्पुवल्लि कालं विवक्षितमप्पुदरिंदं यवाकाररचनेयक्कुमदक्के संदृष्टियिदु :—

स्थानविकल्पपर्यंतमुभयदिशासु असंख्यातगुणितक्रमाः त्रिसमयनिरंतरप्रवृत्तियोग्या द्विसमयनिरंतरप्रवृत्तियोग्याश्च उपर्युपर्येव असंख्यातगुणितक्रमा भवंति । अत्र कालो विवक्षितोऽस्तीति यवाकाररचना । तत्संदृष्टिः—

योगस्थानोंका प्रमाण है । और आधा ऊपरके चार समय निरन्तर प्रवर्तनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके पाँच समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा बहुभाग ऊपरके पाँच समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागका भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके छह समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानका प्रमाण है और आधा ऊपरके छह समय निरन्तर होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । उस एक भागमें भी पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग दें । एक भाग बिना बहुभागका आधा तो नीचेके निरन्तर सात समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है और आधा ऊपरके निरन्तर सात समय तक होनेवाले योगस्थानोंका प्रमाण है । शेष जो एक भाग रहा उतने निरन्तर आठ समय तक होनेवाले योगस्थान होते हैं । इसीसे गाथामें आठ समयवालोंका प्रमाण थोड़ा कहा है । और शेषका ऊपर और नीचे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा कहा है । सो चार समयवालों पर्यन्त नीचे और ऊपर दोनों दिशामें स्थापित किये हैं । किन्तु तीन और दो समयवाले योगस्थान ऊपर की ओर ही स्थापित किये हैं । इस प्रकार यह कालकी अपेक्षा यवाकार रचना है । जैसे यव (जौ) मध्यमें मोटा और ऊपर-नीचेकी ओर पतला होता है । उसी प्रकार मध्यमें आठ समयवाले लिखे और ऊपर नीचे एक-एक कम समयवाले लिखे । ऐसे यवाकार रचना होती है ॥२४३॥

आगे पर्याप्त त्रस जीवोंके परिणाम योगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण कहते हैं और उसकी यवाकार रचना रचते हैं—


स्तंभरचनेयल्लि नोडिकोंडु ।



मध्ये जीवा बहुगा उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता ।
हेट्ठिमगुणहाणिसलागादुवरि सलागा विसेसहिया ॥२४४॥

मध्ये जीवा बहुकाः उभयत्रविशेषहीनक्रमयुक्ताः । अधस्तनगुणहानिशलाकाया उपरि शलाका विशेषाधिकाः । जीवयवमध्यदोळु जीवंगळु बहुकंगळप्पुवु । अधस्तनोपरितनोभयत्र विशेषहीनक्रमयुक्तंगळु अधस्तनगुणहानिशलाकेगळं नोडलुमुपरितनगुणहानिशलाकेगळु विशेषाधिकंगळप्पुवदेंतेंदोडे :—

दव्वतियं हेट्ठुवरिमदलवारा दुगुणमुभयमण्णोण्णं ।
जीवजवे चोद्दससयबावीसं होदि बत्तीसं ॥२४५॥

द्रव्यत्रयमधस्तनोपरितनदलवारा द्विगुणमुभयमन्योन्यं । जीवयवे चतुर्दशशतद्वाविंशतिर्भवति द्वात्रिंशत् ॥

चत्तारि तिण्णि कमसो पण अड अट्ठं तदो य बत्तीसं ।
किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं ॥२४६॥

चत्वारि त्रीणि क्रमशः पंचाष्टाष्टौ ततश्च द्वात्रिंशत् । किंचिदूनत्रिगुणहानिविभाजिते द्रव्ये तु यवमध्यम् ॥

द्वींद्रियपर्य्याप्त जीवपरिणामयोगजघन्यस्थानमिदु ८ प ७५ इदनपवर्त्तिसिदोडिदु ८ । यिदर नंतरस्थानविकल्पमिदु २ इदु मोदलागि सवृद्धिस्थानंगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणाम-

---

जीवयवमध्ये जीवा बहुकाः अध उपरि च विशेषहीनक्रमयुक्ताः अधस्तनगुणहानिशलाकाभ्यः उपरितनगुणहानिशलाका विशेषाधिकाः ॥२४४॥ तद्यथा—

जीवोंकी संख्याकी अपेक्षा यवाकार रचनामें मध्यमें जीव बहुत हैं। ऊपर और नीचे अनुक्रमसे विशेष हीन-हीन हैं। नीचेकी गुणहानि शलाकासे ऊपरकी गुणहानि शलाकाका प्रमाण कुछ अधिक है ॥२४४॥

विशेषार्थ—जैसे यव (जौका दाना) मध्यमें मोटा होता है और ऊपर-नीचे क्रमसे घटता-घटता होता है। उसी प्रकार पर्याप्त त्रस सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंमें यवाकारमें जो मध्यका स्थान है उसमें जीव बहुत हैं अर्थात् उन योगस्थानोंके धारी जीव बहुत हैं। उस बीचके स्थानसे ऊपरके और नीचेके स्थानोंमें जीवोंका प्रमाण क्रमसे घटता हुआ है। अर्थात् उन योगस्थानोंके धारक जीव क्रमसे घटते हुए हैं। इस तरह यह यवाकार रचना है ॥२४४॥

जीवोंकी संख्याकी यवाकार रचनामें प्रथम अंकसंदृष्टिसे कथन करते हैं—

योग सर्व्वोत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं निरंतरवृद्धिस्थानंगळु नडदु सर्व्वोत्कृष्ट परिणामयोगस्थानमिदु $\overline{\text{अ}}$ छे अ आदीयंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा येंदु सर्व्वनिरंतरपरिणामयोगस्थानविकल्पंगळितिप्पुंवु

व वि १६ । ४ । $\overline{\text{अ}}$ छे । उ $\overset{\text{अ}}{\text{अ}}$ ई योगस्थानंगळोळ स्वामिगळु द्वींद्रियादित्रसपर्य्याप्तजीवरुगळिद्रव्य-

सव्वं $\overset{\text{अ}}{\text{अ}}$ ३१ $\overset{\text{०}}{\text{ज}}$

व वि १६ । ४ । $\frac{\text{अ}}{\text{अ}}$ १

मेंबुदक्कुं। स्थितियेंबुदु ई निरंतरपरिणामयोगस्थानविकल्पंगळक्कुं। गुणहानियेंबुदु सामान्य-
५ च्छेदासंख्यातैकभागप्रमितनानागुणहानिभक्तस्थित्येकभागमक्कुं। यितु द्रव्यत्रयमुं अधस्तनोपरितन-दळवाराः अधस्तनोपरितननानागुणहानिशलाकेगळुं दुगुणं दोगुणहानियं उभयमन्योन्यं अधस्तनोपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिद्वयमुमी यवाकारजीवसंख्यारचनेयोळु मुन्नमंकसंदृष्टियिदं मनंबुगिसल्बेडि यथासंख्यमागि द्रव्यप्रमाणं चतुर्द्दशशतद्वाविंशतिर्भवति साविरद नानूरिप्पत्तेरडु कल्पिसल्पट्टुदु। स्थितिप्रमाणं द्वात्रिंशत् चत्वारि गुणहान्यायामं नाल्कुं रूपुगळक्कुमधस्तनोपरितननाना-
१० गुणहानिशलाकेगळु क्रमदिंदं त्रीणि पंच मूरुरूपंगळुमप्पुवु। दोगुणहानिप्रमाणं अष्ट येंदु रूपुगळक्कुं। अधस्तनोपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिगळु क्रमदिंदमेंटुं मूवत्तेरडुमप्पुवु। यितुक्त-

यवाकारजीवसंख्यारचनायां तावदंकसंदृष्ट्या प्रतीत्युत्पादनार्थं द्रव्यं चतुर्दशशतद्वाविंशतिः १४२२, स्थितिः द्वात्रिंशत् ३२, गुणहान्यायामश्चत्वारः ४। अधस्तनोपरितननानागुणहानिशलाकाः क्रमेण तिस्रः पंच।

सो द्रव्य पर्याप्त त्रसजीवोंका प्रमाण चौदह सौ बाईस १४२२ है। और स्थिति अर्थात्
१५ पर्याप्त त्रस जीव सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंका प्रमाण बत्तीस ३२ है। गुणहानि आयाम अर्थात् एक गुणहानि स्थानोंका प्रमाण चार ४ है। ऐसी सब गुणहानियाँ आठ ८ हैं। इनको नाना गुणहानि कहते हैं। उनमें-से नीचेकी गुणहानिका प्रमाण तीन ३ और ऊपरकी गुणहानिका प्रमाण पाँच ५, इस प्रकार आठ नाना गुणहानियाँ हैं।

नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रख उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त-
२० राशिका प्रमाण होता है। सो नीचेकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण आठ और ऊपरकी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण बत्तीस ३२, इस प्रकार सब चालीस हैं। द्रव्यके प्रमाणमें कुछ कम तिगुनी गुणहानिका भाग देनेपर यवाकारके मध्यमें जीवोंकी संख्या होती है। सो गुणहानि आयामका प्रमाण चार ४ है। उसको तिगुना करनेपर बारह हुए। कुछ कम कहनेसे इसमें-से एकके चौंसठ भागोंमें-से सत्तावन भाग घटानेपर समच्छेद विधानके अनुसार

२५ १. म वड्ढि ऽर ६।४।२ हिदे। २. म रूपगलुमयिदुरूपुगं।
अ

द्रव्यादिराशिगळ विन्यासमिदु :—

द्रव्य	स्थिति	गुण	नाना	दो गुण-	अन्योन्या-
१४२२	३२	४	८	८	२५६
			५		३२
			३		८

यितु स्थापिसल्पट्ट राशिगळोळु तु मत्ते किंचिदूनत्रिगुणहानिविभाजिते द्रव्ये गुणहानियं बुदु नाल्कु रूपुगळप्पुववं त्रिगुणितं माडिदोडे द्वादशरूपुगळप्पुववरोळु किंचिदूनं माडल्पडुगुमा ऊनप्रमाणमेनितेदोडे सप्तपंचाशच्चतुःषष्टिभागमक्कुमदं त्रिगुणहानियोळु चतुःषष्टिरूपुगळिदं समच्छेदमं माडि ७६८ अयिवरॊळं कळेदोडे शेषमिदु ७११ ई किंचिदूनत्रिगुणगुणहानियिंदं द्रव्यं भागि- ५
५४ ६४
सल्पडुत्तिरलु लब्धं जीवयवमध्यमक्कु । १२८ । मदु कारणमागि मज्झे जीवा बहुगा एंदितु पेळल्पट्टुदु । उभयत्थ विसेसहीणकमजुत्ता येंदी यवमध्यप्रथमयोगस्थानस्वामिगळप्प जीवंगळ संख्येयं नोडलु उपरितनानंतरयोगस्थानस्वामिगळ संख्ये मोदल्गोंडु तद्गुणहानिचरमयोगस्थानस्वामिगळ संख्येयपर्य्यंतं विशेषहीनक्रमंगळप्पुवु । तद्यवमध्यानंतराधस्तनगुणहानि प्रथमयोगस्थानस्वामिगळप्प जीवंगळसंख्ये मोदल्गोंडु अधोधस्तनगुणहानिचरमयोगस्थानस्वामिजीवसंख्ये पर्य्यंतं १०
तदुपरितनगुणहानिविशेषप्रमि १६ त विशेषदिंदमे :—

---

३ । ५ । दोगुणहानिः अष्टौ ८ । अधस्तनोपरितनान्योन्याभ्यस्तराशी क्रमेण अष्टौ द्वात्रिंशत् ८ । ३२ । तु- पुनः त्रिगुणगुणहान्या १२ सप्तपंचाशच्चतुःषष्टिभागैः किंचिदूनया ७११ द्रव्ये भक्ते १४२२ × ६४ जीवयवमध्यं
६४ ७११
स्यात् । १२८ । तन्मध्ये जीवा बहुकाः इत्युक्तम् । उभयत्थविसेसहीणकमजुत्ता । तेभ्यः यवमध्यजीवेभ्यः तन्मध्यात् अधस्तनोपरितनगुणहानिनिषेकेषु जीवाः तत्तद्गुणहानिविशेषेण हीनक्रमयुक्ता भवंति । तत्तद्विशेष- १५
प्रमाणं तु तत्तद्गुणहानेरादिनिषेके दोगुणहान्या भक्ते, चरमनिषेके वा रूपाधिकगुणहान्या भक्ते भवति । तेन

सात सौ ग्यारहका चौंसठवाँ भाग हुआ। इसका भाग सर्व द्रव्य चौदह सौ बाईसमें देनेपर एक सौ अट्ठाईस आया। यही यवाकार रचनाके मध्यमें जीवोंका प्रमाण है इसीसे मध्यमें जीव बहुत कहे हैं। मध्यसे ऊपर और नीचेके गुणहानि निषेकोंमें अपनी-अपनी गुणहानिमें जितना विशेषका प्रमाण है उतना क्रमसे घटता जानना। सो अपनी-अपनी गुणहानिके २० प्रथम निषेकको दो गुणहानिसे भाग देनेपर जो प्रमाण हो अथवा अन्तिम निषेकको एक अधिक गुणहानि आयामका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना विशेषका प्रमाण जानना। अतः नीचेकी और ऊपरकी गुणहानिका द्रव्य तथा विशेष क्रमसे आधा-आधा होता है। वही कहते हैं—

ऊपरकी गुणहानि पाँच, उनमें पहली गुणहानिके पहले निषेकका प्रमाण एक सौ २५ अठाईस है। उसको दो गुणहानि आठका भाग देनेपर सोलह आये। वही विशेष है। सो एक-एक निषेकमें सोलह-सोलह घटाइए। अन्तके निषेकमें एक कम गुणहानि आयाम

---

१. ब उभय तत्तन्मध्या° ।

१	५	
	६	१२८।४।३
	७	४।२।२।२।२
	८	
२	१०	
	१२	१२८।४।३
	१४	४।२।२।२
	१६	
४	२०	
	२४	१२८।४।३
	२८	४।२।२
	३२	
८	४०	
	४८	१२८।४।३
	५६	४।२
	६४	
१६	८०	
	९६	१२८।४।३
	११२	४
	१२८	

१६	१६ ऋ	धन
	११२	
	१६ ऋ	१२८।४।३
	९६	४
	१६ ऋ	
	८०	ऋ ६४
	१६ ऋ	
	६४	
८	ऋ ८	धन
	५६	
	ऋ ८	१२८।४।३
	४८	४।२
	ऋ ८	
	४०	
	ऋ ८	ऋ ३२
	३२	
४	ऋ ४	धन
	२८	
	ऋ ४	१२८।४।३
	२४	४।२।२
	ऋ ४	
	२०	
	ऋ ४	
	१६	ऋ १६

विशेषहीनक्रमंगळप्पुवुभयत्रमा विशेषप्रमाणमेनितक्कुमेंदोडे हानिविवक्षेयिंदं स्वस्वादिनिषेकंगळं- १२८। दोगुणहानियिंदं भागिसिदोडे विशेषं बक्कुं। १२८ वृद्धिविवक्षेयिंदं स्वस्वादिनिषेकंगळं ४।२

८० रूपाधिकगुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु ८० विशेषं बक्कुमदु कारणमागि यवमध्यराशियं ५

दोगुणहानियिंदं भागिसिदोडे १२८ लब्धं विशेषप्रमाणमक्कु १६ मेकेंदोडा विशेषमं दोगुणहानि- ८

यिंदं गुणिसिदोडादिवर्ग्गणाप्रमाणमक्कुमप्पुदरिंदमा विशेषदिंदं हीनक्रमंगळप्पुवेबुदर्त्थमल्लि बळिक्कमधस्तनोपरितनगुणहानि द्रव्यंगळर्द्धार्द्धक्रमंगळप्पुदरिंदमवर विशेषंगळुमर्द्धार्द्धक्रमंगळेय- प्पुवु। अदेंतेंदोडे :—

व्येकपदं चयगुणितं भूमौ मुखे च ऋणधनं च कृते।
मुखभूमियोगदले पदगुणिते पदधनं भवति॥

१० अधस्तनोपरितनगुणहानीनां द्रव्याणि विशेषाश्च अर्धार्धक्रमेण भवन्ति। तद्यथा —

प्रमाण विशेष घटानेपर आदि निषेक एक सौ अठाईस, मध्य एक सौ बारह और छियानबे, तथा अन्त निषेक अस्सी हुआ १२८।११२।९६।८०। इन सबको जोड़िए। करणसूत्र है—'मुह-

येंदी रूपोनपदमात्र १६ । ४ विशेषंगळं । ४८ । भूमियोळु १२८ कळेदोडे शेषमिदु ८० मुखमक्कुमी मुखमं भूमियुमं कूडिदोडे २०८ अष्टोत्तरद्विशतमक्कुमदं दळियिसिदोडे १०४ चतुरुत्तरशतमक्कुमदं पदमिदं ४ गुणिसिदोडे १०४ । ४ । पदधनमक्कु ४१६ । इदुपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमिदं संदृष्टिनिमित्तं नाल्करिंदं कळगेयुं मेगेयुं गुणिसि ४१६ । ४ मूवत्तेरडरिंदं भेदिसिदोडिदु ३२ । १३ । ४ इदं गुणिसिदोडिदु । १२८ । १३ यिल्लि गुणकारभूतत्रयोदशरूपुगळं रूपाधिकत्रिगुणहानियं माडिरिसिदोडिदु १२८ । ४ । ३ उपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं । तदनंतरोपरितनगुणहानिगळोळर्द्धार्द्धक्रमदिदं पोगि चरमगुणहानियोळु रूपोनोपरितननानागुणहानिप्रमाणद्विकंगळु भागहारंगळप्पुवु १२८ । ४ । ३ अधस्तनगुणहानिगळोळमी प्रकारदिदं यवमध्यदो १२८ । ४ । २ । २ । २ । २ । ळों दु स्वविशेषमं कळेदोडे १२८–१६ । शेषमधस्तनगुणहानिप्रथमयोगस्थानस्वामिजीवंगळ प्रमाणमक्कु ११२ मिदरोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळं १६ । ४ ।

उपरि प्रथमगुणहानौ मुख ८० भूमि १२८ योग २०८ दले १०४ पद ४ गुणिदे ४१६ इदं संदृष्टिनिमित्तं चतुर्भिरध उपरि संगुण्य ४१६ । ४ द्वात्रिंशता संभेद्य ३२ । १३ । ४ गुणयित्वा १२८ । १३ गुणकारभूतत्रयोदशसु रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिकृतेषु १२८ । ४ । ३ प्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात् । इदं उपरि प्रतिगुणहान्यर्धार्धक्रमेण गच्छत् चरमगुणहानौ रूपोनोपरितननानागुणहानिमात्रद्विकैर्भक्तं स्यात् १२८ । ४ । ३ । अधस्तनगुणहानावप्येवम् । यवमध्ये १२८ एकस्वविशेषेऽपनीते १२८–१६ । अधस्तनप्रथमगुणहान्यादिनिषेकः भूमिः ११२ ।

भूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि' । यहाँ मुख ८० और भूमि १२८ इनको जोड़ा दो सौ आठ हुए । उन्हें आधा करनेपर एक सौ चार हुए । उन्हें पद अर्थात् गच्छ आयाम चारसे गुणा करनेपर पदधन चार सौ सोलह हुआ । इस प्रकार ऊपरकी प्रथम गुणहानिका सर्वधन चार सौ सोलह जानना । यवमध्यके प्रमाणको एक अधिक तिगुने गुणहानि आयामसे गुणा करें और गुणहानि आयामसे भाग दें । उतना ही प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है । सो यवमध्यका प्रमाण एक सौ अठाईसको तिगुनी गुणहानि बारहमें एक जोड़कर तेरह हुए । उससे गुणा करके और आयाम चारका भाग देनेपर चार सौ सोलह हुए । वही प्रथम गुणहानिका द्रव्य है । आगे एक-एक गुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण और विशेषका प्रमाण आधा-आधा होता है । एक कम नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसका भाग प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तिम गुणहानिके द्रव्यका

कळेदोडे मुखमरुवत्तनाल्कक्कु ६४। मी मुखमुमं भूमियुमं ११२। कूडि १७६। दळिसिदोडेण्ब-
स्तेंटक्कु। ८८। मदं पदविंदं गुणिसिदोडे। ८८। ४। इनितक्कुमिदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमदं
संदृष्टिनिमित्तमागिकेळगेयुं मेगेयुं नाल्करिंदं गुणिसि ८८। ४। ४ गुण्यभूताष्टाशीतियं गुणकारभूतै-
४
कश्चतुष्कविंदं गुणिसि पदिनारारिंदं भेदिसिदोडिदु १६। २२। ४ ई राशिय गुणकारभूतद्वाविंशतियं
४
द्विकविंदं भेदिसि गुणकारभूतचतुष्कमं द्विगुणिसिदष्टरूपुगळिंदं गुण्यभूतपदिनारं गुणिसिदोडेकादश-
गुणितयवमध्यचतुर्भागमक्कु १२८। ११ मिदरोळु ऋणमनिनित १२८। २ निक्किदोडे
४ ४
रूपाधिकत्रिगुणहानिगुणितयवमध्यचतुर्भागप्रमितमक्कु १२८ ४। ३ मधोऽधः अर्द्धार्द्धक्रमंग-
४

अत्र रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषेषु १६। ४। अपनीतेषु चरमनिषेकः ६४। मुखभूमियोग १७६ दले ८८ पद-
गुणिते ८८। ४। अधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात्। इदं संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधश्चतुर्भिः संगुण्य ८८। ४। ४
४
अष्टाशीति गुणकारचतुष्केन संगुण्य षोडशभिर्भित्वा १६। २२। ४ द्वाविंशति द्विकेन भित्वा तेन चतुष्कं
४
संगुण्य अष्टभिः षोडशके गुणिते एकादशगुणितयवमध्यचतुर्भागः स्यात् १२८। ११ अत्रैतावति ऋणं
४
१२८। २ निक्षिप्ते रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिगुणितयवमध्यचतुर्भागः स्यात् १२८। ४। ३। अधो-
४ ४

प्रमाण आता है। सो ऊपरकी गुणहानि पाँचमें-से एक घटानेपर चार रहे। चार जगह दोके अंक रखकर २×२×२×२ परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए। उसका भाग प्रथम गुण-
१५ हानिके द्रव्य चार सौ सोलहमें देनेपर छब्बीस आये। यही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना। तथा नीचेकी गुणहानि तीनमें-से पहली गुणहानिमें यवमध्यमें जो प्रमाण है उसमें-से एक विशेष घटानेपर प्रथम निषेक होता है। सो यवमध्य एक सौ अठाईसमें-से विशेषका प्रमाण सोलह घटानेपर एक सौ बारह रहे। यही आदि निषेकका प्रमाण है। इसमें एक-एक निषेकमें एक-एक विशेष घटानेपर अन्तके निषेकमें-से एक कम गुणहानिका आयाम प्रमाण
२० विशेष घटानेपर चौंसठ रहते हैं। सो मुख ६४, भूमि ११२ को जोड़नेपर एक सौ छिहत्तर १७६ हुए। उसका आधा अठासी ८८ को पद चारसे गुणा करनेपर तीन सौ बावन ३५२ हुए। यही नीचेकी प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य जानना। यवमध्य एक सौ अठाईसमें ग्यारहसे गुणा करके चारसे भाग देनेपर भी तीन सौ बावन होता है। ऊपरकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें यव-
मध्यको दूना करके चारसे भाग देनेपर जो आवे उतना ऋण जानना। सो यवमध्य एक सौ
२५ अठाईसको दूना करके चारसे भाग देनेपर चौंसठ आये। इसको ऊपरकी प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें-से घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिका द्रव्य होता है। तथा ऊपरकी गुणहानिके

ळप्पुवंतागुत्तं पोगि चरमाधस्तनगुणहानियोळु रूपोनाधस्तननानागुणहानिप्रमितद्विकंगळु भागहारं-

गळप्पुवु १२८/४।३/४।२।२ ऋणमुं प्रथमाधस्तनगुणहानियोळु निक्षिप्तऋणमं नोडलु गुणहानिं प्रति-

यर्द्धार्द्धंगळप्पु १२८।२/४ १२८।२/४।२ १२८।२/४।२।२ वी ऋणंगळं संकलिसिदोडे अन्तधणं

गुणगुणियं १२८।२।२/४ आदिविहीणं नाल्कर्रिदं ४ समच्छेदमं माडि कळेदोडे १२८।१।६।२/१६

ई सर्व्वऋणप्रमाणं गुणहानिगुणितचरमाधस्तनगुणहानिविशेषदिं हीनमप्पयवमध्यराशिप्रमाण- ५

मक्कुं । ११२। अन्तधणं १२८।४।३/४ गुणगुणियं १२८।१३।२/४ आदिविहीणं नाल्क-

रिदं समच्छेदमं माडि गुणिसि आदियं कळेद शेषमिदु। ७२८ अधस्तनगुणहानिगळ सर्व्वद्रव्य-

मक्कु । मत्तं अन्तधणं १२८।१३/४ गुणगुणियं १२८।१३।२/४ आदिविहीणं। ई राशियं पदि-

---

धार्धार्धक्रमेण चरमगुणहानौ रूपोनाधस्तननानागुणहानिमात्रद्विकैर्भक्तः स्यात् १२८।४।३/४।२।२ ऋणमपि प्रथम-

गुणहानिनिक्षिप्तात् प्रतिगुणहान्यर्धार्धं स्यात् । १२८।२/४ । १२८।२/४।२ । १२८।२/४।२।२ संकलिते अतधणं गुण- १०

निषेकोंमें-से नीचेकी गुणहानिके निषेकोंमें ऊपरकी गुणहानिके चय प्रमाण ऋण होता है। जैसे ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक एक सौ अठाईस है। उसमें-से चयका प्रमाण सोलह घटानेपर नीचेकी गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। तथा प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना। एक कम नीचेकी गुणहानि प्रमाण दुओंका भाग आदि गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर अन्तकी गुणहानिका द्रव्य होता है। तथा प्रथम गुणहानिमें जो ऋण कहा है वह भी आगे-आगेकी गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है जैसे ६४।३२।१६। सो 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं' इस सूत्रके अनुसार अन्तधन चौंसठको गुणकार दोसे गुणा करनेपर और आदि सोलह घटानेपर सबसे नीचेकी गुणहानिमें ऋणका प्रमाण होता है। सो गुणहानि आयामके प्रमाणसे नीचेकी अन्तिम गुण-हानिमें जो विशेषका प्रमाण है उसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना यवमध्यके प्रमाणमें-से घटानेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। सो गुणहानि आयाम चारसे नीचेकी अन्तिम गुणहानिके विशेष चारको गुणा करनेपर सोलह हुए। सो यवमध्यमें-से घटानेपर एक सौ बारह रहे। सो सर्वऋण होता है। चौंसठ, बत्तीस और सोलहको जोड़नेपर भी एक सौ बारह ही होता है। तथा नीचे को और ऊपरकी सर्वगुणहानियोंका सर्वद्रव्य 'अंतधणं गुण-गुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार जोड़नेपर तथा उसमें-से उक्त ऋणको घटानेपर शुद्ध द्रव्य चौदह सौ बाईस १४२२ होता है।

नारिरिवं समच्छेदमं माडि आदियनदरोळकळेव शेषमिदु । ८०६ । उपरितनगुणहानिगळ समस्त-
w)
धनमक्कुं । कूडिदुभयधनमिदु १५३४ यिदरोळगे अधस्तनगुणहानिगळोळु प्रविष्टऋणमनि-
नितं ११२ कळेदोडे शुद्धद्रव्यप्रमाणमिदु । १४२२ । इन्तु "मज्झेमजीवा बहुगा उभयत्थविसेस
हीणकमजुत्ता । हेट्ठिमगुणहाणिसळादुवरि सळागा विसेसहिया ॥ एंदो गाथा सूत्रार्थं विशदं

५ गुणियं १२८ । २ । २ आदिविहीणमिति १२८ । १६–२ इदं सर्वऋणं गुणहानिगुणितचरमाधस्तनगुणहानि-
४ १६
विशेषेण हीनयवमध्यराशिमात्रं स्यात्—

१	५	
	६	१२८ । ४ । ३
	७	४ २ २ २ २
	८	
२	१०	
	१२	१२८ । ४ । ३
	१४	४ । २ । २ । २
	१६	
४	२०	
	२४	१२८ । ४ । ३
	२८	४ । २ । २
	३२	
८	४०	
	४८	१२८ । ४ । ३
	५६	४ । २
	६४	
१६	८०	
	९६	१२८ । ४ । ३
	११२	४
	१२८	

↓

↑

१६	ऋ १६	घन
	११२	१२८ । ४ । ३
	ऋ १६	४
	९६	
	ऋ १६	
	८०	ऋ ६४
	ऋ १६	
	६४	
८	ऋ ८	घन
	५६	१२८ । ४ । ३
	ऋ ८	४ । २
	४८	
	ऋ ८	
	४०	
	ऋ ८	
	३२	ऋ ३२
४	ऋ ४	घन
	२८	१२८ । ४ । ३
	ऋ ४	४ । २ । २
	२४	
	ऋ ४	
	२०	
	ऋ ४	
	१६	ऋण १६

गुणहानिके निषेकोंमें घटाये जानेवाले विशेषोंका प्रमाण, योगस्थानरूप निषेकोंमें जीवोंका प्रमाण, गुणहानिमें सर्वद्रव्यका प्रमाण, नीचेकी और ऊपरकी गुणहानिमें घटाये जानेवाले ऋणका प्रमाण ये सब दिखानेके लिए आगे यन्त्र लिखते हैं—

१० इस यन्त्रका आशय इस प्रकार जानना—

त्रस पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योगस्थान बत्तीस कहे। उनमें ऊपरकी गुणहानिके प्रथम निषेकरूप जो योगस्थान हैं उनके धारक जीव एक सौ अठाईस हैं। उसको यवमध्य कहते हैं। उस स्थानसे पहले और पिछले दो योगस्थानोंके धारी जीव एक सौ बारह, एक सौ बारह हैं। इसी प्रकार सब योगस्थानोंमें जीवोंका प्रमाण जानना। जैसे १५ अंकोंके द्वारा कथन दिखाया है वैसे ही यथार्थ कथन जानना।

माडल्पट्टुदु । यिल्लियुपरितननानागुणहानिशलाकेगळु अधस्तननानागुणहानिशलाकेगळं नोडलु विशेषाधिकंगळेयप्पुवेंबुदुं सिद्धमादुदेंतेदोडधस्तनगुणहानिशलाकेगळु ३ । इवं नोडलु उपरितननानागुणहानिशलाकेगळयिदु ५ अयिदु । अदु कारणमागि द्विगुणंगळल्लवेरडु रूपुगळिंदमधिकंगळप्पुदरिंदं विशेषाधिकंगळेयप्पुवंबुदर्थं ॥

५

एतानि अधस्तनोपरितनगुणहानिद्रव्याणि पृथगंतधनमित्यादिना संकलय्य मेलयित्वा तत्र तदृणेऽपनीते शुद्धद्रव्यं तावन्मात्रमेव स्यात् १४२२ । तदानीयते—

[अंतधणं गुणगुणियं १२८ । १३ । २ चतुर्भिः समच्छेद्य संगुण्यादिविहीणं ७२८ अधस्तनगुणहानिसर्वद्रव्यं स्यात् । पुनः अंतधणं १२८ । १३ गुण २ गुणियं १२८ । १३ । २ षोडशभिः समच्छेद्यादिविहीणं ८०६ उपरितनगुणहानिसमस्तधनं स्यात् । मिलित्वा उभयधनमिदं १५ । ३४ । अत्राधस्तनगुणहानिप्रविष्टऋणे ११२ अपनीते शुद्धद्रव्यं स्यात् । १४२२] ॥ २४५-२४६ ॥

१०

नाम	विशेष का प्रमाण	निषेकोंमें जीवों का प्रमाण	गुणहानिमें सर्वद्रव्यका प्रमाण
ऊपरकी पाँचवीं गुणहानि	१	५ ६ ७ ८	२६
ऊपरकी चौथी गुणहानि	२	१० १२ १४ १६	५२
ऊपरकी तीसरी गुणहानि	४	२० २४ २८ ३२	१०४
ऊपरकी दूसरी गुणहानि	८	४० ४८ ५६ ६४	२०८
ऊपरकी प्रथम गुणहानि	१६	८० ९६ ११२ १२८	४१६

नीचेकी प्रथम गुणहानि	१६	ऊपरकी प्रथम गुणहानिके निषेकोंमें-से ऋण १६ ११२ ९६ ८० ६४	ऊपरकी प्रथम गुणहानिके सर्वद्रव्यमें ऋण ६४ शेष रहे ३५२
नीचेकी दूसरी गुणहानि	८	ऊपरकी दूसरी गुणहानिके निषेकोंमें ऋण ८ ५६ ४८ ४० ३२	ऊपरकी द्वितीय गुणहानिके सर्वद्रव्यमें-से ऋण ३२ शेष रहे १७६
नीचेकी तीसरी गुणहानि	४	ऊपरकी तीसरी गुणहानिके निषेकोंमें-से ऋण ४ २८ २४ २० १६	ऊपरकी तीसरी गुणहानिके सर्वद्रव्यमें ऋण १६ शेष रहे ८८

१. कोष्ठकान्तर्गतो पाठः ब प्रतौ नास्ति ।

अनंतरमर्थसंदृष्टियं तोरिदपरु :—

पुण्णतसजोगठाणं छेदासंखस्ससंखबहुभागे ।
दलमिगिभागं च दलं दव्वदुगं उभयदलवारा ॥२४७॥

पूर्णत्रसयोगस्थानं च्छेदासंख्यस्यासंख्यबहुभागे । दलमेकभागं च दलं द्रव्यद्वयमुभयदलवाराः ॥

अर्थसंदृष्टियोळु द्रव्यप्रमाणं पर्याप्तत्रसराशियक्कुं । अदर प्रमाणमुमेनितेंदोडे मुन्नं जीवकांडदोळु पेळ्द "आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुळेण हिदपदरं । कमसो तसतप्पुण्णा" येंदितु त्रसपर्य्याप्तराशियुं संख्यातभाजितप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितमक्कुं $\frac{\bar{ə}}{५}\frac{४}{}$ योगस्थानं द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणाम योगजघन्यस्थानमपवर्तिततमिदादियागि व वि १६ । ४ । $\bar{ə}$ । संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवपरिणामयोगोत्कृष्टस्थानपर्य्यन्तमाद सर्व्वनिरंतरपरिणामयोगस्थानंगळु $\bar{ə}$ । आदी अंते । $\bar{ə}$ ३२ । सुद्धे $\bar{ə}$ ३१ । वड्ढिहिदे $\frac{\bar{ə}}{ə}$ २ ३१ रूवसंजुदे ठाणा $\frac{\bar{ə}}{ə}$ २ ३१ एंदितिनितुं योग-

---

यथार्थसंदृष्ट्या आह—

द्रव्यं संख्यातभाजितप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितपर्याप्तत्रसराशिः = द्वींद्रियपर्याप्तपरिणामयोग- $\frac{४}{५}$

जघन्यात् — $\frac{ə\,५}{ə\,ə}$ अपवर्तितात् — $\frac{ə}{ə}$ अनंतरस्थानमिदं २ आदिकृत्वा प्रागुक्तवृद्ध्या वर्धितानि संज्ञिपर्याप्तपरिणाम- $\frac{ə}{ə}$

योगोत्कृष्टपर्यंतानि ८४ व वि १६ । ४ । — । छे उ आदौ — १ अंते — $\frac{ə}{ə\,ə}$ शुद्धे — $\frac{ə}{ə}$ ३२ वड्ढिहिदे- $\frac{ə}{ə}$ ३१ $\frac{ə}{ə}$ २ ३१

सर्व — $\frac{ə}{ə\,ə}$ २ ३१ ७५ व वि १६ । ४ । — $\frac{ə}{ə\,ज}$

यथार्थ कथन दिखाने के लिए कहते हैं—

जैसे द्रव्यका प्रमाण चौदह सौ बाईस कहा उसी प्रकार संख्यातका भाग प्रतरांगुलमें देनेपर जो प्रमाण आवे उसका भाग जगत प्रतरमें देनेपर जो प्रमाण हो उतना पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण है । इसे ही यहाँ द्रव्य जानना । तथा जैसे स्थितिका प्रमाण बत्तीस कहा था उसी प्रकार दो-इन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लगाकर संज्ञी पर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान पर्यन्त जितने योगस्थान हैं उतनी स्थिति जानना ।

स्थानंगळिल्लिगे स्थिति येंबुवक्कुमेकेंदोडे जघन्यस्थानं मोदल्गोंडुत्कृष्टस्थानपर्य्यन्तमागिद्दं परिणामयोगसमस्तस्थानविकल्पंगळोळेकैकस्थानं प्रति स्वामित्वंबिदं द्वींद्रियादिपर्य्याप्तत्रसराशि पसल्पडुगुमप्पुदरिंदं छेदासंख्यस्य पल्यच्छेदासंख्यातैकभागव । छे । असंख्यबहुभागे यथायोग्य-
अ

मप्प असंख्यातदिदं खंडिसिद बहुभागेयोळु छे ॰ अ दळं अर्द्धमुं छे ॰ अ मत्तमिगिभागं च दळं
अ अ अ अ २

येक भागमुं छे १ बहुभागार्द्धमुं छे — अ एकभागयुतबहुभागार्द्धमेंबुदर्त्थ छे — अ मिन्तु ५
अ अ अ अ २ अ अ २

यथाक्रमदिदं द्रव्यत्रयं द्रव्यमुं स्थितियुमेंब द्वितयमुं उभयदळवारः अधस्तनोपरितनदळवारंगळेंबुवु नानागुणहानिशलाकेगळगे पेसरक्कुमी सूत्रदिंदमिन्तु नाल्कुं राशिगळप्पेळल्पट्टुवु ॥

रूवसंजुदे — इत्यानीतविकल्पानि योगस्थानानि स्थितिः, पर्याप्तत्रसराशेः तेषु स्वामित्वेन भक्त्वा दीयमान-
अ २ ३१
अ

त्वात् । पल्यच्छेदासंख्यातैकभागस्य छे असंख्यातेन उपर्यधोगुणितस्य छे अ एकभागं पृथक्संस्थाप्य छे १ शेष-
अ अ अ अ

बहुभागान् छे ॰ अ द्वाभ्यां भक्त्वा तत्रैकार्धं छे ॰ अ अधस्तननानागुणहानिशलाका भवंति । पृथक्स्थापितैक- १०
अ अ अ अ २

भागयुतमपरार्धं छे ॰ अ उपरितननानागुणहानिशलाका भवंति ॥ २४७ ॥
अ अ २

ऊपर जो चौरासी स्थान कहे हैं उनमें-से दोइन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योग-स्थानका प्रमाण जगत श्रेणिके असंख्यातवें भागको पिचहत्तर बार पल्यके असंख्यातवें भागसे गुणा करो। अपवर्तन करनेपर जगतश्रेणिका असंख्यातवाँ भाग ही हुआ। उसमें सूच्यंगुलका असंख्यातवाँ भाग मिलानेपर उसके अनन्तरवर्ती स्थान होता है। उसको आदि देकर संज्ञी पर्याप्तका उत्कृष्ट योगस्थान संदृष्टि अपेक्षा जघन्यसे बत्तीस गुणा और यथार्थकी अपेक्षा पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा है। वहाँ तक स्थानोंका प्रमाण कहते हैं— १५

दोइन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य परिणाम योगस्थानसे जो अनन्तर स्थान है वह तो आदि हुआ, और संज्ञी पर्याप्तका उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान अन्त हुआ। 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूव संजुदे ठाणा' इस सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाइए। एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि होती है, अतः उससे भाग दें। जो प्रमाण हो उसमें एक मिलाइए तब त्रस पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योग-स्थानोंका प्रमाण होता है। वही स्थितिका प्रमाण जानना। २०

इन स्थानोंके धारक जीव कितने हैं यह बतलानेके लिए कहते हैं—

जैसे आठ नाना गुणहानियोंमें-से तीन नीचे की कही थीं, पाँच ऊपरकी कही थीं, उसी प्रकार पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण समस्त नाना गुणहानि है। उसमें २५

णाणागुणहाणिसला छेदासंखेज्जभागमेत्ताओ ।
गुणहाणीणद्धाणं सव्वत्थ वि होदि सरिसं तु ॥२४८॥

नानागुणहानिशलाकाः छेदासंख्यातैकभागमात्राः । गुणहानीनामध्वानं सर्व्वत्रापि भवति सदृशं तु ॥

अधस्तनोपरितनोक्त नानागुणहानिशलाकेगळ कूडि छेदासंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवी नानागुणहानिशलाकेगळिंदं स्थितियं त्रैराशिकविधानदिंदं भागिसुत्तं विरलु प्र छे प अ ३१ इ १ बंद
अ २ अ

लब्धं गुणहान्यायाममक्कु अ ३१ मीयायाममुभयत्राधस्तनोपरितननानागुणहानिगळोळु सदृशं
२ छे
अ अ

समानं तु नियमदिंदं ॥

अण्णोण्णगुणिदरासी पल्लासंखेज्जभागमेत्तं तु ।
हेट्ठिमरासीदो पुण उवरिल्लमसंखसंगुणिदं ॥२४९॥

अन्योन्यगुणितराशिः पल्यासंख्येयभागमात्रस्तु । अधस्तनराशितः पुनरुपरितनोऽसंख्यगुणितः ॥

ता उभयनानागुणहानिशलाका मिलिताश्छेदासंख्यातैकभागमात्राः । ताभिः स्थितौ भक्तायां
प्र छे फ – इ १ लब्धगुणहान्यायामः स्यात् – २ छे ३१ स च अधस्तनोपरितननानागुणहानिषु सदृशः
अ अ २ ३१ अ अ अ
अ

समानः तु-नियमेन ॥२४८॥

असंख्यातसे भाग दें । एक भागको पृथक् रखकर शेष बहुभागके आधा प्रमाण तो नीचेकी नाना गुणहानि जानना । तथा बहुभागका आधा और अलग रखा एक भाग मिलकर ऊपरकी नाना गुणहानि जानना ॥२४७॥

यही आगे कहते हैं—

नीचे और ऊपरकी नाना गुणहानियाँ मिलानेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग हैं । उससे स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना । जैसे पूर्वमें स्थिति बत्तीस कही थी । उसको सर्व नाना गुणहानि आठसे भाग देनेपर चार आये । सो चार एक गुणहानि आयामका प्रमाण है । वैसे ही यहाँ भी जानना । गुणहानि आयामका प्रमाण ऊपरकी गुणहानि और नीचेकी गुणहानिमें समान है । एक-एक गुणहानिमें इतने स्थान होते हैं । इस गुणहानि आयामका दूना प्रमाण दोगुणहानिका प्रमाण है ॥२४८॥

अन्योन्यगुणितराशिः अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्यासंख्यातैकभागमात्रं सामान्यदिंदमक्कुं। प। तु पुनः मत्ते विशेषदिंद अधस्तनराशितः अधस्तनान्योन्याभ्यस्तराशियं नोडलु उपरितनः
अ
उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यसंगुणितः असंख्यातसंगुणितमक्कुं। अधस्तनान्योन्याभ्यस्त-
राशि प उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशि प इन्तुक्तनवराशिगळगे संदृष्टि :—
अ अ अ अ अ

द्रव्य	= ४ ५	स्थिति	अ ३१ २ अ	गुणहानि अ ३ १ २ छे अ अ	सामान्यनानागुणहानि छे अ	सामान्यान्योन्याभ्यस्त प अ
					उपरि छे अ अ अ २	उपरि अन्योन्याभ्यस्त प अ अ
					अधस्त छे अ अ अ । २	अधस्तनान्योन्याभ्यस्त प अ अ अ

अनंतरं जघन्यपरिणामयोगस्थानस्थितिमोदल्गोंडुत्कृष्टपरिणामयोगस्थानस्थितिपर्य्यंतं प्रति स्थिति पर्य्याप्तत्रसराशिविभाजिसल्पडुगुमदें तें दोडे किंचूणतिगुणहाणिविभजिदे दव्वे दु जवमज्झं एंदु किंचिदूनत्रिगुणहानियिंदं द्रव्यं भागिसल्पडुत्तिरलु लब्धं यवमध्यमक्कु = ४। गु ३ मो राशियं ५ ५
दो गुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु लब्धं प्रचयप्रमाणमक्कु = ४ गु ३ गु २ मो प्रचयमं मत्ते दो- ५

अन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः सामान्येन भवेत् प तु-पुनः विशेषेण अधस्तनान्योन्या-
अ
भ्यस्तराशितः प उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिरसंख्यातगुणितः स्यात् प । अथ जघन्यपरिणामयोग-
अ अ अ अ अ
स्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्यंतेषु स्थितिविकल्पेषु पर्याप्तत्रसराशिर्विभज्यते तद्यथा—

नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। जैसे नीचेकी आठ और ऊपरकी बत्तीस अन्योन्याभ्यस्त राशि कही थी वैसे ही सामान्यसे पल्यके असंख्यातवें भाग अन्योन्याभ्यस्त राशि है। तथापि नीचेकी अन्योन्याभ्यस्त राशिसे ऊपरकी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यात गुणी है। अब जघन्य परिणाम योगसे लेकर उत्कृष्ट परिणाम योग पर्यन्त योगस्थानोंमें जीवोंका विभाग अंक संदृष्टिकी तरह इस प्रकार जानना—

गुणहानियिंदं गुणिसुत्तं विरलु लब्धं यवमध्यप्रमाणमेयक्कुं $\frac{=}{४/५}$ गु $\frac{—}{३}$ गु $\frac{गु २}{२}$ मेले द्वितीयपुंजं मोदलागों डु तत्प्रथमगुणहानिचरमपर्य्यन्त मेकैकविशेषहीनक्रमदिंदं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळु हीनमक्कु $\frac{=}{४/५}$ गु $\frac{—}{३}$ गु २ मा चरमदोळों डु विशेषमं कळेदोडे उपरितनद्वितीय गुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणमक्कु $\frac{=}{४/५}$ गु $\frac{—}{३}$ $\frac{गु १}{गु २}$ मिल्लि संदृष्टिनिमित्तमागि मेगेयुं केळगेयुं द्विगुणिसिदोडे जीवयवमध्यप्रमाणदर्द्धप्रमितमक्कुं $\frac{=}{४/५}$ गु $\frac{—}{३}$ $\frac{गु २}{गु २।२}$ मेले मुन्निनंते तद्वितीयगुणहानिचरमपर्य्यंतं स्वविशेषहीनक्रमदिंदं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळु हीनमक्कुं। $\frac{=}{४/५}$ गु $\frac{—}{३}$ गु २।२ मत्तमा चरमदोळु पूर्व्वविशेषमनेयों दं कळेदोडे उपरितनतृतीयगुणहानि प्रथमजीवराशिप्रमाणमक्कु $\frac{=}{४/५}$ गु $\frac{—}{३}$ $\frac{गु १}{गु २।२}$ मिल्लियुं मुन्निनंते संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं

किंचिन्न्यूनत्रिगुणगुणहान्या द्रव्ये भक्ते यवमध्यं स्यात् $= \frac{=}{४/५}$ गु ३− तच्च दोगुणहान्या भक्तं प्रचयः स्यात् $= \frac{=}{४/५}$ गु ३− गु २ स एव पुनः दोगुणहान्या गुणितः यवमध्यं स्यात् $= \frac{=}{४/५}$ गु ३− गु २ उपरि द्वितीयपुंजमादिं कृत्वा तत्प्रथमगुणहानिचरमपर्यंतं एकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानिमात्रचया होनाः स्युः $= \frac{=}{४/५}$ गु ३− $\frac{—}{गु २}$ तस्मिन् पुनः एकविशेषेऽपनीते उपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणं स्यात् $= \frac{=}{४/५}$ गु ३− $\frac{—}{गु २}$। इदं संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधोद्विकेन गुणिते जीवयवमध्यार्धं

किंचित् न्यून तिगुनी गुणहानि आयामका भाग सर्वद्रव्यको देनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है। उसको दो गुणहानिसे भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है। चय और विशेषका एक ही अर्थ है। इस चयको दोगुणहानिसे गुणा करनेपर यवमध्यका प्रमाण होता है। ऊपरकी गुणहानिमें प्रथम निषेक तो जितना यवमध्यका प्रमाण है उतना है। उससे

मेलेयुं द्विगुणिसिदोडे द्वितीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमं नोडलो तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमर्द्धमक्कु
= गु २
४ गु ३ गु २।२।२ मिन्तु मेले चयहीनमागुत्तं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्र-
५

= गु
स्वविशेषंगळुहीनमक्कु ४ गु ३ गु २।२।२ मिल्लियोंदु विशेषमं कळेदोडे चतुर्थ-
५

= गु
गुणहानिप्रथमद्रव्यमक्कु-। ४ गु ३ गु २।२।२ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि कळगेयुं मेगेयुं
५
द्विगुणिसिदोडे तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यमं नोडलो चतुर्थगुणहानिप्रथमराशिद्रव्यमर्द्धमक्कु-। ५
= गु
४ गु ३ गु २।२।२।२ मिल्लिदं मेले चयहीनमागुत्तं पोगि चरमदोळु रूपोनगुणहानिमात्र-
५

स्यात् = गु २ उपरि द्वितीयगुणहानिचरमपर्यंतं स्वविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानि-
४ गु ३ – गु २ २
५

मात्रचयहीनाः स्युः === गु तस्मिन् पुनः एकविशेषेऽपनीते उपरितनतृतीयगुणहानिप्रथमजीवराशिप्रमाणं
४ गु ३ – गु २ ३
५

स्यात् = गु तच्च उपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं स्फुटं द्वितीयगुणहानिमात्रप्रथमद्रव्यार्धं दृश्यते
४ गु ३ – गु २ २
५

=। गु २ उपरि चयहीनक्रमेण गत्वा चरमे रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीनाः स्युः– १०
४ गु ३ – गु २ २ २
५

= गु अत्रैकविशेषेऽपनीते चतुर्थगुणहानिप्रथमद्रव्यं स्यात् = गु तच्च उपर्यधो-
४ गु ३ – गु २ २ २ ४ गु ३ – गु २ २ २
५ ५

ऊपर द्वितीयादि निषेक एक एक चय हीन जानना। सो एक कम गुणहानिके आयाम प्रमाण चय यवमध्यमें-से घटानेपर प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। उसमें एक चय घटानेपर यवमध्यसे आधा प्रमाण होता है वही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक होता है। इससे ऊपर एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। सो एक कम गुणहानि आयाम प्रमाण चयोंके घटानेपर अन्तिम निषेक होता है। यहाँ प्रथम गुणहानिमें जो चयका प्रमाण था उससे आधा दूसरी गुणहानिमें चयका प्रमाण जानना। तथा दूसरी गुणहानिके अन्तिममें-से एक चय घटानेपर दूसरी गुणहानिके प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण होता है। १५

स्वविशेषंगळु होनमक्कु $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ ३\ \text{गु}\ २।२।२।२$ मिन्तु पंचमादिगुणहानिगळोळं तत्तद्गुण-
५
हानि प्रथमजीवद्रव्यंगळर्द्धार्द्धक्रमदिदं पोगियुपरितनगुणहानिगळ चरमगुणहानियोळु चरमजीवद्रव्य-
वोळु उपरितनरूपोननानागुणहानिमात्रद्विकंगळु हारंगळप्पुववनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे लब्धमुपरि-

तनान्योन्याभ्यस्तराशियर्द्ध हारमक्कुमागि रूपाधिकगुणहानिगुणकारमक्कुं-। $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ ३\ \text{गु}\ २\ \text{प}$
५ ०००२

मत्तमधस्तनगुणहानिगळोळु यवमध्याधस्तनानंतरप्रथमगुणहानिप्रथमजीवद्रव्यं मोदल्गोंडु गुण-
हानिगुणहानिं प्रति समस्तस्थितिद्रव्यदोळु चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यपर्य्यन्तमेकैकस्वस्वगुण-
हानिप्रचयंगळं ऋणमनिक्किदोडे अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितोपरितननानागुणहानिगळ
स्थितिद्रव्यंगळोळु समानमक्कुमन्तु ऋणमिक्कल्पडुत्तिरलु अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमु-

---

द्विकेन गुणितं तृतीयगुणहानिप्रथमद्रव्यार्धं स्फुटं स्यात् = $\overset{\frown}{\text{गु}}\ २$ उपरि चयहीनं सत् चरमे रूपोन-
$\overset{=}{४}\ \text{गु}\ ३-\text{गु}\ २\ २\ २\ २$
५

गुणहानिमात्रस्वविशेषहीनं स्यात् = $\overset{\frown}{\text{गु}}$ एवं पंचमादिगुणहानिषु तत्तद्गुणहानिप्रथमजीवद्रव्याणि
$\overset{=}{४}\ \text{गु}\ ३-\text{गु}\ २\ २\ २\ २$
५

अर्धार्धक्रमेण गत्वा चरमगुणहानौ चरमजीवद्रव्ये रूपोनोपरितननानागुणहानिमात्रद्विकानि हारा भवंति

तेषामभ्यासे उपरितनान्योन्याभ्यस्तराशिरर्धं स्यात्। गुणकारो रूपाधिकगुणहानिः स्यात् = $\overset{\frown}{\text{गु}}$
$\overset{=}{४}\ \text{गु}\ ३-\text{गु}\ २\ \text{प}$
५ ०००२

पुनरधस्तनगुणहानिषु यवमध्याधस्तनानंतरप्रथमगुणहानिप्रथमजीवद्रव्यमादिं कृत्वा गुणहानिं गुणहानिं प्रति समस्तस्थितिद्रव्येषु चरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यपर्यंतेषु एकैकस्वस्वगुणहानिप्रचयप्रमितऋणे निक्षिप्ते अधस्तन-
नानागुणहानिशलाकाप्रमितोपरितननानागुणहानिस्थितिद्रव्येण समानं स्यात् तेन अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथम-

---

वही तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक जानना। यहाँ चयका प्रमाण दूसरी गुणहानिके चयसे आधा जानना। उतना चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। इस तरह अन्तकी गुणहानि पर्यन्त जानना। प्रत्येक गुणहानिमें जीवोंका प्रमाण आधा-आधा होता जाता है। नीचेकी गुणहानिमें यवमध्यसे नीचे प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे लगाकर अन्तकी गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त प्रत्येक गुणहानिके समस्त निषेकोंमें जो-जो ऊपरकी गुणहानिके निषेकोंमें प्रमाण कहा है उनमें-से अपनी-अपनी गुणहानिमें जितना-जितना चयका प्रमाण कहा है उतना-उतना निषेकमें घटानेपर निषेकोंका प्रमाण होता है। वही कहते हैं—

१६ परितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यसमानमक्कु $\frac{=}{४}$ गु $\frac{\text{गु २}}{\text{३ गु २}}$ $\frac{}{५}$ मिल्लिवं केळगेकैक-
११२
विशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळु हीनमक्कु

$\frac{=}{४}$ गु $\frac{\text{ग}}{\text{३ गु २}}$ $\frac{}{५}$ मिल्लियोंदु विशेषमं होन माडिदोडेयधस्तनद्वितीयगुणहानियोळु प्रथम-

स्थितिद्रव्यमुपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यसमानमक्कु $\frac{=}{४}$ गु $\frac{\text{गु}}{\text{३ गु २}}$ $\frac{}{५}$ मिल्लि संदृष्टि-

निमित्तं पूर्व्वदंते केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसुत्तं विरलु जीवयमध्यप्रमाणवर्द्धमक्कु $\frac{=}{४}$ गु $\frac{\text{गु १}}{\text{३ गु २}}$ $\frac{}{५}$ ५
मल्लिदं केळगे केळगे स्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्व-

विशेषंगळु हीनमक्कु $\frac{=}{४}$ गु $\frac{\text{ग}}{\text{३ गु २। २}}$ $\frac{}{५}$ मल्लियोंदु विशेषमं हीनमं माडिदोडे तृतीयाधस्तन-

गुणहानि प्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु $\frac{=}{४}$ गु $\frac{\text{गु १}}{\text{३ गु २। २}}$ $\frac{}{५}$ मिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं

स्थितिद्रव्यं उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं च समानं = $\frac{\text{गु २}}{४ \text{ गु } ३-\text{गु } २}$ $\frac{}{५}$ इतोऽधः एकैकविशेषहीनक्रमेण

गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते = $\frac{\text{ग}}{४ \text{ गु } ३-\text{गु } २}$ $\frac{}{५}$ पुनरेकविशेषेऽपनीते अधस्तनद्वितीय- १०

गुणहानौ प्रथमस्थितिद्रव्यमुपरितनद्वितीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं समानं स्यात् = $\frac{\text{गु}}{४ \text{ गु } ३-\text{गु } २}$ $\frac{}{५}$ इदं संदृष्टि-

निमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं जीवयवमध्यप्रमाणार्धं स्यात् = $\frac{\text{गु २}}{४ \text{ गु } ३-\text{गु } २ \text{ २}}$ $\frac{}{५}$ इतोऽधः विशेषहीनक्रमेण गत्वा

चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते = $\frac{\text{ग}}{४ \text{ गु } ३-\text{गु } २ \text{ २}}$ $\frac{}{५}$ अत्रैकविशेषहीने तृतीयाधस्तनगुण-

---

ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेक यवमध्य प्रमाण है। उसमें-से प्रथम गुणहानिमें जितना विशेष (चय) का प्रमाण कहा है, उतना घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। तथा ऊपरकी प्रथम गुणहानिके दूसरे निषेकका जो प्रमाण कहा १५

मेलेयुं द्विगुणिसिदोडे उपरितन द्वितीयगुणहानि प्रथमस्थितिद्रव्यार्द्धसमानमागियधस्तनद्वितीय-गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यवर्द्धमात्रमो तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कुं। $\frac{=}{४/५}$ गु ३ गु २।२।२ मिवरनंतर स्थितिद्रव्यं मोदल्गो डेकैकस्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोन-गुणहानिप्रमितस्वविशेषंगळ् होनमक्कु। $\frac{=}{४/५}$ गु ३ गु २।२।२ मिल्लियो दु विशेषमं होनमं माडिदोडे चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु $\frac{=}{४/५}$ गु ३ गु १ २।२।२ मिल्लियुं संदृष्टि-निमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसिदोडे चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमुपरितन तृतीय-गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्द्धसमानमुमागि तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्द्धमो चतुर्थाध-स्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमक्कु $\frac{=}{४/५}$ गु ३ गु २ २।२।२।२ मल्लिदं केळगे द्वितीयस्थिति द्रव्यं मोदल्गो डेकैकस्वविशेषहीनक्रमदिदं पोगि चरमस्थितिद्रव्यदोळु रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषंगळु होनमक्कु। $\frac{=}{४/५}$ गु ३ गु २।२।२।२ मितु पंचमाद्यधस्तनगुणहानिगळोळं तत्तद्गुणहानि-

---

हानिप्रथमस्थितिद्रव्यं भवेत् = $\frac{=}{४/५}$ गु ४ गु ३ − गु २ २ इदमपि संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो द्वाभ्यां गुणितं उपरितनद्वितीय-

गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धसमानं अधस्तनद्वितीयगुणहानिद्रव्यार्धमात्रं तृतीयाधस्तनगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं स्यात् = $\frac{=}{४/५}$ गु २ ४ गु ३ − गु २ २ ९ अधः एकैकस्वविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिप्रमितस्व-

विशेषा हीयंते = $\frac{=}{४/५}$ गु ४ गु ३ − गु २ २ २ अत्रैकविशेषे हीने चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं स्यात् = $\frac{=}{४/५}$ गु ४ गु ३ − गु २ २ २

इदमपि संदृष्टिनिमित्तं उपर्यधोद्विकेन गुणितं चतुर्थगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यं उपरितनतृतीयगुणहानिप्रथमस्थिति-द्रव्यार्धसमानं अधस्तनतृतीयगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यार्धमात्रं स्यात् = $\frac{=}{४/५}$ गु २ ४ गु ३ − गु २ २ २ २ इतोधः एकैकस्व-

---

है उसमें-से प्रथम गुणहानिके चय प्रमाण घटानेपर नीचेकी प्रथम गुणहानिके दूसरे निषेकका प्रमाण होता है। इस तरह प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त जानना। तथा ऊपरकी दूसरी गुणहानिमें जो प्रथम निषेकका प्रमाण कहा था उसमें-से दूसरी गुणहानिमें जो विशेष-

प्रथमस्थितिद्रव्यंगळर्द्धार्द्धक्रमदिंद पोगियधस्तन चरमगुणहानियोळु चरमस्थितिद्रव्यदोळु अधस्तन-रूपोन नानागुणहानिमात्रद्विकंगळु हारमागिप्पुदवनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे लब्धमधस्तनान्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धमागि हारमक्कुं। गुणकारमुं रूपाधिकगुणहानि यक्कु = गु ४ गु ३ गु २ प मी ५ ० ० ० २

राशियु मीयधस्तननानागुणहानिगळ शलाकाप्रमितोपरितनगुणहानिगळ चरमगुणहानिचरमस्थिति-द्रव्यदोळु समानमक्कुमिन्तुक्ताधस्तनगुणहानिगळगमवर ऋणंगळगमुपरितनगुणहानिगळगं यथाक्रम-दिदं विन्यासरचनाविशेषमिदु :—

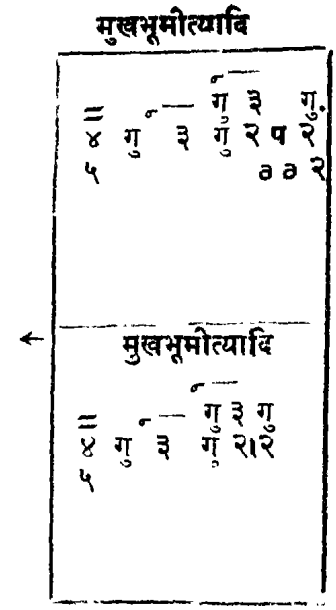
अधस्तनगुणहानि	मुखभूमीत्यादि	ऋणं	उपरितनगुणहानि
प्रथम गुण = गु २ ४ गु ३ गु २ ५ गु ० = ४ गु ३ गु २ ५	= गु ३ गु. ४ गु ३ गु २।२ ५	प्रथमगुणहानि समस्त ऋण = गु १ ४ गु ३ गु २ ५	चरमगुणहानि = गु ४ गु ३ गु २ प ५ ० ० २ = गु २ ० ४ गु ३ गु २ प ५ ० ० २
अधस्तन चरमगुणहानि = गु २ ४ गु ३ गु २ प ५ ० ० ० २ = गु ४ गु ३ गु २ प ५ ० ० ० २	मुखभूमीत्यादि = गु ३ ४ गु ३ गु प २ ५ ० ० ० २	चरमगुणहानि समस्त ऋण ॥ = गु १ ४ गु ३ गु २ प ५ ० ० ० २	उपरितन = गु ४ गु ३ गु २ ५ प्रथम गु. = गु २ ० ४ गु ३ गु २ ५

विशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिद्रव्ये रूपोनगुणहानिमात्रस्वविशेषा हीयंते = गु एवं ४ गु ३– गु २ २ २ २ ५

पंचमाद्यधस्तनगुणहानिषु तत्तद्गुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्याणि अर्धार्धक्रमेण गत्वा अधस्तनचरमगुणहानौ चरम-स्थितिद्रव्ये रूपोनाधस्तननानागुणहानिमात्रद्विकानि हाराः स्युः। तेषामभ्यासे अधस्तनान्योन्याभ्यस्तार्धं स्यात्।

गुणकारो रूपाधिकगुणहानिः स्यात् = गु अयं राशिः अधस्तननानागुणहानिशलाकाप्रमितो- ४ गु ३– गु २ प ५ ० ० ० २

का प्रमाण कहा है उतना घटानेपर नीचेकी द्वितीय गुणहानिमें प्रथम निषेकका प्रमाण जानना। उसमें-से उतना ही घटानेपर उसके दूसरे निषेकका प्रमाण जानना। इस तरह अन्तके निषेक पर्यन्त जानना। इसी प्रकार तृतीय आदि गुणहानिमें भी जानना। नीचेकी गुणहानियोंकी रचनामें चयका प्रमाण जोड़ देनेपर नीचेकी गुणहानिका प्रमाण ऊपरकी



परितनगुणहानिचरमगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यसमः। उक्ताधस्तनगुणहानीनां तदूनानामुपरितनगुणहानीनां क्रमेण विन्यासोऽयं—

अधस्तनप्रथमगुणहानिः = गु २ ४ गु ३– गु २ ५ ० ० = गु ४ गु ३– गु २ ५	मुखभूमीत्यादिनानीताधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं = गु ३– गु ४ गु ३– गु २ २ ५	ऋणं उपार = गु १ ४ गु ३– गु २ ५	उपरितनचरमगुणहानिः = गु ४ गु ३– गु २ प ५ अ अ २ ० ० = गु २ ४ गु ३– गु २ प ५ अ अ २	मुखभूमात्यादि = गु ३ गु ४गु ३–गु २ प २ ५ अ अ २
० ०	० ०	० ०	० ०	० ०
अधस्तनचरमगुण. = गु २ ४ गु ३–गु २ प ५ अअअ २ ० ० = गु ४ गु ३– गु २ प ५ अ अ अ २	मूखभूमीत्यादि = गु ३ गु ४ गु ३– गु २ प २ ५ अ अ अ २	ऋणं चरमगुण = गु १ ४ गु ३–गु २ प ५ अअअ२	उपरितनप्रथमगुणहानिः = गु ४ गु ३– गु २ ५ ० ० = गु २ ४ गु ३– गु २ ५	मुखभूमीत्यादि = गु ३ गु ४ गु ३–गु २ । २ ५

गुणहानिके समान हो जाता है। इस तरह जिस-जिस निषेकमें जितना-जितना प्रमाण हो उस-उस योगस्थानमें उतना-उतना जीवोंका प्रमाण होता है।

अनंतरमी त्रिविधपंक्तिगळ संकलन पेळल्पडुगुमदें तेदोडे :—अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथम-

स्थितिद्रव्यमिदु $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २ मुखभूमीजोग

$\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २ दळे $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २।२ पदगुणिदे $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २।२ पदधणं होदि

एंविदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमधस्तनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २ प ०००२

तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदु $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २।२ मुखभूमीजोगदळे पदगुणिदे पदधनं होदि यें दु ५

तंद धनमिदु। अधस्तनचरमगुणहानि द्रव्यमक्कु $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ गु २ प २ अंतधणं गुणगुणियं ०००२

अपवर्त्तितमिदु $\frac{=}{५}$ ४ गु ३ २ आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं एंदु आदियं कळेदोडे

तेषां संकलनोच्यते—अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं $= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २ गु २ तच्चरमस्थितिद्रव्य-

मिदं $= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २ मुहभूमीजोगदले— $= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २।२ पदगुणिदे $= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २ २ पदधणं

होदि इति तदधस्तनप्रथमगुणहानिद्रव्यं स्यात्। अधस्तनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं— १०

$= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २ प ०००२ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं $= \frac{}{५}$ ४ गु ३—गु २ प ०००२ मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे

पदधणं होदि इत्यधस्तनचरमगुणहानिद्रव्यं भवति $= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २ प २ ०००२ अंतधणं गुणगुणियं $= \frac{}{५}$ ४ गु ३–गु २।२

गुणहानियोंमें सब द्रव्यको जोड़नेके लिए 'मुह भूमि जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि' इस सूत्रके अनुसार मुख हुआ अन्तिम निषेक, भूमि हुई आदि निषेक, दोनोंको जोड़कर

$\overline{=\overline{४\ गु\ ३\ २}}\ \overline{\overline{गु\ ३\ प}}$ $\overline{\overline{०\ ०\ ०\ २\ प}}$ इदु अधस्तनगुणहानिगळ समस्तधनमक्कुमी धनदोळिर्द्द
५ ०००२

ऋणमेनितें दोडे प्रथमाधस्तनगुणहानियोळु गच्छमात्रस्वविशेषंगळक्कुं। $\overline{=\overline{४\ गु\ ३\ २}}\ \overline{गु}$ चरमाध-
५

स्तनगुणहानियोळं गच्छमात्रस्वविशेषंगळक्कु $\overline{=\overline{४\ गु\ ३\ २}}\ \overline{\overline{गु\ २\ प}}$ मन्तागुत्तं विरलन्तधणं
५ ०००२

गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियमेंदु तंद समस्ताधस्तनगुणहानिगळ ऋणमिनितक्कुं।

$\overline{=\overline{४\ गु\ ३\ २}}\ \overline{\overline{०\ प}}$
५ $\overline{\overline{०\ ०\ ०\ २\ प}}$ उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदु $\overline{=\overline{४\ गु\ ३\ २}}\ \overline{गु\ २}$ तद्-
५ ०००२

गुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदु $\overline{=\overline{४\ गु\ ३\ २}}\ \overline{गु}$ मुखभूमीजोगदळे पदगुणिदे पदधणं होदि एंदु
५

अपवर्तितं $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-२}}\ \overline{गु\ ३}$ आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-२}}\ \overline{\overline{गु\ ३\ प}}\ \overline{\overline{०\ ०\ ०\ ०\ ०\ ०}}\ \overline{प}$ इत्यधस्तनगुणहानिसर्व-
५

धनं स्यात्। अत्रस्थं ऋणं तु प्रथमाधस्तनगुणहानौ गच्छमात्रस्वविशेषाः स्युः— $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-गु\ २}}\ \overline{गु}$ चरमाधस्तन-
५

गुणहानावपि तावंतः स्युः $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-२}}\ \overline{\overline{गु\ प}}$ अंतधणं गुणगणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजिय-
५ ०००२

मित्यधस्तनसर्वगुणहानिऋणं स्यात्— $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-}}\ \overline{\overline{प}}\ \overline{\overline{०\ ०\ ०}}\ \overline{\overline{०\ ०\ ०}}\ \overline{०}$ उपरितनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थिति-
५

द्रव्यमिदं $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-गु\ २}}\ \overline{गु\ २}$ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं— $= \overline{\overline{४\ गु\ ३-गु\ २}}\ \overline{गु}$ मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं
५

आधा करें। फिर उसे गुणहानिके आयामसे गुणा करें। जो-जो प्रमाण हो उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानिमें सब द्रव्यका प्रमाण जानना। सो प्रथम गुणहानिके सब द्रव्यसे दूसरी गुणहानिका द्रव्य आधा है। इस तरह उत्तरोत्तर गुणहानिका द्रव्य आधा-आधा जानना। सब गुणहानियोंके द्रव्यको जोड़नेके लिए 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार प्रथम गुणहानिका द्रव्य अन्तधन, उसको गुणकार दोसे गुणा करो। उसमें अन्तिम गुणहानि-

तंदुपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदु $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ २।२$ उपरितनचरमगुणहानिप्रथमस्थिति-

द्रव्यमिदु $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ २\ प$ तद्गुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदु $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ २\ प$ मुख-

भूमीजोगदळे $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ २\ प\ २$ पदगुणिदे पदधणं होइ एंदु $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ १।२\ प\ २$ तंद

चरमोपरितनगुणहानि द्रव्यमक्कुं। मत्तमंतधणं गुणगुणियं $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ २।२$ अपवर्त्तितमिदु

$\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ २$ आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियमेंदु आदियं कळेदोडे $\overset{=}{४}\ \underset{५}{}\ \overset{\frown}{गु}\ ३\ २\ \overset{\circ}{प}$ ५

यिदु उपरितनगुणहानिगळ समस्तधनमक्कुमिन्तुत्कर्षूरुं राशिगळं क्रमदिदं स्थापिसल्पडुत्तिरलु उपरि-

---

होदीति उपरितनप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं $= \overset{\frown}{गु}\ ३\ गु$ उपरितनचरमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमिदं
$४\ गु\ ३ - गु\ २।२।$
५

$= \quad गु\ २$ तच्चरमस्थितिद्रव्यमिदं $= \quad \overset{\frown}{गु}$ मुहभूमीजोगदले $= \quad \overset{\frown}{गु}\ ३$
$४\ गु\ ३ - गु\ २\ प$ $४\ गु\ ३ - गु\ प\ २$ $४\ गु\ ३ - गु\ २\ प\ २$
$५ \quad ० ० २$ $५ \quad ० ० २$ $५ \quad ० ० २$

पदगुणिदे पदधणं $= \quad \overset{\frown}{गु}\ ३\ \overset{\frown}{गु}\ १$ इत्युपरितनचरमगुणहानिद्रव्यं भवति। पुनः अंतधणं गुण-
$४\ गु\ ३ - गु\ २।२\ प$
$५ \quad ० ० २$

गुणियं $= \quad \overset{\frown}{गु}\ ३\ गु\ २$ अपवर्तितं $= \overset{\frown}{गु}\ ३$ आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियं $= \quad \overset{\frown}{गु}\ ३ \quad \overset{\frown}{\overset{\circ}{प}}$ १०
$४\ गु\ ३ - गु\ २।२ \quad ४\ गु\ ३ - २ \quad ४\ गु\ ३ - २\ प \quad ० ०$
$५ \quad ५ \quad ५ \quad ० ०$

के द्रव्य आदि धनको घटाकर एकका भाग देनेपर ऊपर और नीचेकी सब गुणहानियोंके द्रव्यका प्रमाण होता है। नीचेकी गुणहानियोंमें जो अपना-अपना विशेष प्रमाण घटाया है उसको गुणहानि आयामसे गुणा करनेपर अपनी-अपनी गुणहानिमें घटाये गये विशेषका प्रमाण होता है। सब घटाये गये ऋणको जोड़नेके लिए 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके

तनगुणहानिद्रव्यमुमधस्तनगुणहानिद्रव्यमुमल्लिय ऋणमुमिन्तुरपुंवु

उपरितन-धन = ४ गु ३ २ ५ | ० प ∂∂ २ प ∂∂

अधस्तन धन = ४ गु ३ २ ५ | ० प ∂∂

ऋण मिदु = ४ ∂∂∂ गु ३ प ५ ∂∂∂

ई मूरुं राशिगळ तंतम्म ऋणरूपुगळं तंतम्म केळगेस्थापिसिदोडे यथाक्रमविंदमितिप्पुंवु :

= ४ गु ३ २ ५ | गु प ∂∂ प	= ४ गु ३ २ ५ | गु प ∂∂ प ∂∂∂	ऋण = ४ गु ३ ५ | प ∂∂∂ प ∂∂∂
= ४ गु ३ २ ५ | गु ३ १ प ∂∂	= ४ गु ३ २ ५ | गु ३ १ प ∂∂∂	= ४ गु ३ प ५ | १ ∂∂∂

मत्तमी मूरु राशिगळनपवर्त्तिसि स्थापिसिदोडिंतिप्पुंवु

५ इत्युपरितनगुणहानिसर्वधनं स्यात् । उत्तरराशित्रयं क्रमेणेदं-उपरिनधनं— = ४ गु ३ ५ \| गु ३ − २ प ∂ ∂ \| प ∂ ∂ अधस्तन-

धनं— = ४ गु ३ − २ प ५ \| गु ३ ∂ ∂ ∂ \| प ∂ ∂ ∂ ऋणं = ४ गु − ३ प ५ \| प ∂ ∂ ∂ स्वस्वऋणरूपे स्वस्वाधःस्थापिते एवं—

उपरि	अधस्त	ऋणं
१— = गु ३ ४ गु ३− २ प ५ | प ∂ ∂	१— = गु ३ ४ गु ३− २ प ५ | प ∂ ∂ ∂	प = ∂ ∂ ∂ ४ गु ३− प ५ ∂ ∂ ∂
१— = गु ३ ४ गु ३ − २ प ५ | ० १ प ∂ ∂	१— = गु ३ ४ गु ३− २ प ५ | ० १ प ∂ ∂ ∂	० = १ ४ गु ३ − प ५ ∂ ∂ ∂

अनुसार प्रथम गुणहानिके ऋणको गुणकार दोसे गुणा करके तथा अन्तिम गुणहानिके ऋणको उसमें-से घटाकर एकका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने ऋणके प्रमाणको ऊपरकी

$\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{२}\ \overset{\frown}{१}$ ५	$\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{२}\ \overset{\frown}{१}$ ५	ऋण $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{१}$ ५
$\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{२}\ \overset{\frown}{१}$ प ५ ∂∂	$\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{२}\ \overset{\frown}{१}$ प ५ ∂∂∂	$\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{१}$ प ५ ∂∂∂

उभयधनराशिगळं कूडिसियपवर्त्तिसियधिकरूपं केळगे स्थापिसिदोडिदु $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}$ केळगे $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \overset{\frown}{१}$ ५

स्थापिसिद अधिकरूपिंगे प्रथमऋणं समानमेंदु शोधिसि कळेदु मत्तं ऋणस्य ऋणं राशेर्द्धनं भवति येंदु प्रथमऋणदऋणमं द्विकदिंदं समच्छेदमं माडिदुदनिदं $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ \text{प}\ २$ ∂∂∂ ५ अधस्तनगुणहानि द्वितीयऋणरूपिनोळु शोधिसिदोडिदु $\overset{=}{४}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{\frown}{३}\ २\ \overset{\circ}{\text{प}}$ ∂∂∂ ५ ई द्वितीयाधस्तनगुणहानि ऋणरूपि

अपवर्तिते एवं

$१—$ $=\ \text{गु}\ ३\quad १$ $४\ \text{गु}\ ३—\quad २$ ५	$१—$ $=\ \text{गु}\ ३\quad १$ $४\ \text{गु}\ ३—\quad २$ ५	ऋणं $=$ $४\ ३—$ ५
$१—\quad \circ$ $=\ \text{गु}\ ३\quad १$ $४\ \text{गु}\ ३—\ २\ \text{प}$ ५ ∂∂	$१—\quad \circ$ $=\ \text{गु}\ ३\quad १$ $४\ \text{गु}\ ३—\ २\ \text{प}$ ५ ∂∂∂	$\circ$ $=\ १$ $४\ \text{गु}\ ३—\ \text{प}$ ५ ∂∂∂

उभयधने संयोज्य अपवर्तिते अधिकरूपमधः संस्थाप्य $\begin{matrix}१— \\ =\ \text{गु}\ ३ \\ ४\ \text{गु}\ ३— \\ ५\end{matrix}$ $=$ १—तेन प्रथमऋणं समानमिति ५

देयं पुनः ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति प्रथमऋणस्य ऋणं द्वाभ्यां समच्छिद्य $=\ \begin{matrix}\quad\quad\quad २ \\ ४\ \text{गु}—\text{प}\quad २ \\ ५\quad ∂\ ∂\ ∂\end{matrix}$ अधस्तनगुण-

---

गुणहानिके द्रव्यमें घटानेपर अथवा नीचेकी गुणहानिके द्रव्यमें मिलानेपर नीचे और ऊपरकी गुणहानियोंका द्रव्य समान हो जाता है। तथा ऊपर और नीचेकी सर्वगुणहानियोंके सब

नोळु उपरितनगुणहानिऋणरूपमसंख्यातैकभागमक्कुमेददं साधिकं माडिदोडे शेषऋणमिनितक्कु । $\frac{=}{४}$ गु ३ । १ / ५ गु ३ प २ / ०००

मिवं रूपस्यासंख्यातैकभागमनुभयधनयुतियोळु गुणकारभूतत्रिगुणहानियोळु किंचिदूनमं माडि $\frac{=}{४}$ गु ३ / ५ गु ३ किंचिदूनत्रिगुणहानिगे किंचिदूनत्रिगुणहानियनपवर्त्तिसिदोडे सर्व्वद्रव्यप्रमाणं पर्य्याप्तत्रसराशियक्कु $\frac{=}{४}$ / ५ मी संकलनविधानदोळु ग्रंथकारनप्पाचार्य्यनधस्तन-

गुणहानिगळोळु संकलनानिमित्तमागि ऋणमनधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यमप्पन्तु यवमध्यप्रमितऋणमनोम्मेयिक्किक १२८ चरमाधस्तनगुणहानि चरमस्थितिद्रव्यमनिनितं १६ धनमं माडि संकलिसिदनदु कारणमागियधस्तनप्रथमादिगुणहानिगळ प्रथमचरमस्थितिद्रव्यंगळु रूपहीनंगळुं गुणहानिमात्र गुणकारंगळागि ऋणरहितंगळु सूचिसल्पट्टुवु :—

$\frac{=}{४}$ गु ३ गु २ / ५	०००	$\frac{=}{४}$ गु ३ गु २ / ५	$\frac{=}{४}$ गु ३ गु २।२ / ५	०००

←

$\frac{=}{४}$ गु ३ गु २।२ / ५	०००	$\frac{=}{४}$ गु ३ गु २ प / ५ ०००२ ; $\frac{०}{=}$ गु २ / ४ गु ३ गु २ प / ५ ०००२

हानिद्वितीयऋणरूपे संशोध्यं = $\frac{०}{४}$ गु ३ / ५ गु ३ − २ प / ०००

इदं पुनः उपरितनगुणहानिऋणेन स्वासंख्यातैकभागेन साधिकीकृत्य = $\frac{}{४}$ गु ३ / ५ गु ३ − १ / ०००

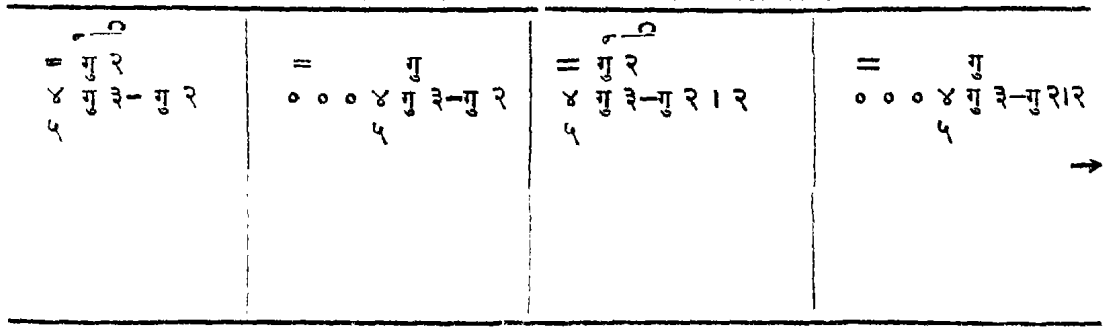
उभयधने गुणकारभूतत्रिगुणगुणहानौ किंचिदूनयित्वा = गु ३ − $\frac{}{४}$ गु ३ − प २ / ५ ०००

अपवर्तिते सर्वद्रव्यं पर्याप्तत्रसराशिः स्यात् । $\frac{=}{४}$ अत्र ग्रंथकारेण अधस्तनगुणहानिषु संकलनार्थं अधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमस्थितिद्रव्यभूतयवमध्यप्रमितमृणं युगपदेव निक्षिप्य । १२८ । चरमाधस्तनगुणहानिचरमस्थितिद्रव्यमिदं । १६ । धनं कृत्वा संकलितं ततोधस्तनप्रथमादिगुणहानीनां प्रथमस्थितिद्रव्याणि रूपोनानि चरमस्थितिद्रव्याणि गुणहानिमात्रगुणकाराणि ऋणरहितानि सूचितानि—

द्रव्यको जोड़नेपर पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण होता है । इस प्रकार पर्याप्त सम्बन्धी परिणाम योगस्थानोंमें पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण जानना । सो ऊपरकी गुणहानिका प्रथम निषेकरूप

अदु कारणमागि वृत्तिकारं पेळ्द संकलने ग्रंथकारन संकलनेयोळु विरोधिसल्पडुगुमेंदु भ्रांतिसल्वेडेकेंदोडे धनऋणंगळगे होनाधिकभावमिल्लप्पुदरिंदं।

अनंतरमुक्त द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवजघन्यपरिणामयोगस्थानं मोदल्गोंडु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानावसानमादनिरंतरतमागि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळिंदमेकावृशवृद्धिवर्द्धितंगळप्प समस्तयोगस्थानंगळोळु जघन्यस्थानमादियागेकैकस्थानंगळगे स्वामिगळु यवाकाररचनेयप्पंतु स्वस्थानदोळु चयाधिकंगळं परस्थानदोळु द्विगुणंगळं चयाधिकंगळंमागुत्तं पोगि यवमध्यदोळु सर्व्वोत्कृष्टंगळुमल्लिवं मेले स्वस्थानदोळु चयहीनंगळु परस्थानदोळु द्विगुणहीनंगळं चयहीनं हीनंगळुमागुत्तं पोगि सर्व्वोत्कृष्टयोगस्थानदोळु सर्व्वतस्तोकंगळागिर्द्द जीवंगळु तंतम्मयोगस्थानदिंदमे तप्प प्रदेशबंधमं माळ्पुवेंदोडे त्रैराशिकसिद्धमप्प समयप्रबद्ध जयवृद्धिप्रमाणमं निरूपिसिदपरु :—



तद्घटनेन वृत्तिकारोक्तसंकलना विरुध्यते तन्न। धनर्णयोर्हीनाधिक्याभावात् ॥ २४९ ॥ अथोक्तं द्वींद्रियपर्य्याप्तपरिणामयोगोत्कृष्टपर्यंतेषु निरंतरं सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रजघन्यस्पर्धकवृद्धया वर्धितेषु समस्तयोगस्थानेषु जघन्यादेकैकस्थानस्वामिनः यवाकाररचनारूपेण स्वस्थाने चयाधिकाः परस्थाने द्विगुणहीनाश्च भूत्वा सर्वोत्कृष्टयोगस्थाने सर्वतः स्तोकाः ते रचिता जीवाः स्वस्वयोगस्थानेन कियंतं प्रदेशबंधं कुर्वंतीति प्रश्ने तद्वृद्धिप्रमाणमाह—

योगस्थानोंके धारक जीव बहुत हैं। उसके नीचे या ऊपर जो योगस्थान हैं उनके धारक जीव पूर्वोक्त क्रमानुसार थोड़े-थोड़े हैं। इसीसे यवके आकार रचना कही है ॥२४९॥

इगिठाणफड्ढयाओ समयपबद्धं च जोगवड्ढी च ।
समयपबद्धचयट्ठं एदे हु पमाणफल इच्छा ॥२५०॥

एकस्थानस्पर्द्धकानि समयप्रबद्धश्च योगवृद्धिश्च । समयप्रबद्धचयार्थमेताः खलु प्रमाणफलेच्छाः ॥

जघन्ययोगस्थानस्पर्द्धकंगळुं समयप्रबद्धमुं योगवृद्धियुं समयप्रबद्धचयनिमित्तमागिक्रमदिंदं प्रमाणफलेच्छाराशिगळप्पुवु

प्र	व वि १६।४ $\frac{-}{a}$	फ	स	इ	व वि १६।४।२ $\frac{}{a}$

अन्तागुत्तं विरलु लब्धं समयप्रबद्धवृद्धिप्रमाणमिनितक्कु स २ मिनितु वृद्धि निरंतरक्रमदिंदमागुत्तं पोगियो दो डेयोळु जघन्यसमयप्रबद्धं द्विगुणमुं चतुर्गुणमष्टगुणमी क्रमदिंदं द्विगुणद्विगुणमागुत्तं पोगि पोगि चरमदोळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणितमक्कुमेल्लि योगस्थानं द्विगुणमक्कुमल्लि समयप्रबद्धमुं द्विगुणमक्कुमेल्लि योगस्थानं चतुर्गुणमक्कुमल्लि समयप्रबद्धं चतुर्गुणमक्कुमी क्रमदिंदं पोगि चरमदोळु योगस्थानमुं छेदासंख्यातैकभागगुणितमादोडल्लि समयप्रबद्धमुं तावन्मात्रगुणितमेयक्कुमेंबुदर्थं ।

तद्द्वीन्द्रियपर्याप्तस्य जघन्यपरिणामयोगस्थानस्पर्धकानि समयप्रबद्धः योगवृद्धिश्चामी त्रयः समयप्रबद्धचयनिमित्तं क्रमेण प्रमाणफलेच्छाराशयो भवंति । प्र = व वि १६ ४ $\frac{-}{a}$ । फ–स । इ व वि १६ ४ २ $\frac{}{a}$ इति लब्धसमयप्रबद्धवृद्धिप्रमाणेन स २ $\frac{}{a}$ जघन्यसमयप्रबद्धो निरंतरं वर्धित्वा वर्धित्वा यत्र योगस्थानं द्विगुणं $\frac{—}{a\ a}$ तत्र द्विगुणः, यत्र चतुर्गुणं तत्र चतुर्गुणः एवं गत्वा चरमे छेदासंख्यातगुणः ॥२५०॥

आगे इन योगस्थानोंके धारी जीव कितना-कितना प्रदेशबन्ध करते हैं इस प्रश्नके समाधानके लिए समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण कहते हैं—

दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थान सम्बन्धी स्पर्धक, समयप्रबद्ध और योगोंकी वृद्धि ये तीन एक-एक योगस्थानमें समयप्रबद्धकी वृद्धिका प्रमाण लानेके लिए क्रमशः प्रमाण, फल और इच्छाराशिरूप होते हैं । जघन्य परिणाम योगस्थानमें श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक पाये जाते हैं । यह प्रमाण राशि है । और उस जघन्य योगस्थानके द्वारा जो जघन्य समयप्रबद्ध प्रमाण प्रदेशोंका बन्ध होता है वह फलराशि हुई । और एक-एक योगस्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं यह इच्छाराशि हुई । सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रभाणराशिका भाग देनेपर जो लब्धराशि आयी उतना-उतना अधिक प्रदेशोंको लिये हुए ऊपरके एक-एक योगस्थानमें समयप्रबद्ध बँधता है । अर्थात् जघन्य योगस्थानसे तो जघन्य समयप्रबद्ध बँधता है उसके अनन्तरवर्ती योगस्थानसे इतने अधिक प्रदेशों को लिये हुए समयप्रबद्ध बँधता है । इस तरह निरन्तर बढ़ते-बढ़ते जहाँ योगस्थान दूना होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी दूना बँधता है । जहाँ वह चौगुना होता है वहाँ समयप्रबद्ध भी चौगुना बँधता है । इस प्रधार संज्ञी पर्याप्तकका उत्कृष्ट योगस्थान

अनंतरं द्वींद्रियपर्य्याप्तजीवजघन्ययोगस्थानं मोदलागि संज्ञिपर्य्याप्तोत्कृष्टयोगस्थानपर्य्यंतमवस्थितवृद्धियिंदं नडेव योगस्थानंगळ क्रममंगाथापंचकदिंदं पेळ्दपरु :—

बीयिंदियपज्जत्तजहण्णट्ठाणा दु सण्णिपुण्णस्स ।
उक्कस्सट्ठाणोत्ति य जोगट्ठाणा कमे उड्ढा ॥२५१॥

द्वींद्रियपर्य्याप्तजघन्यस्थानात्संज्ञिपूर्णस्योत्कृष्टस्थानपर्य्यंतं च योगस्थानानि क्रमेण वृद्धानि ॥ ५

द्वींद्रियपर्य्याप्तजीव जघन्यपरिणामयोगस्थानमादियागि संज्ञिपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानपर्य्यंतं परिणामयोगस्थानंगळुं अवस्थितवृद्धिक्रमदिंदमे पेच्चॆल्पट्टुवु। अन्तु पेच्चॆल्पट्ट स्थानंगळोळु :—

सेढियसंखेज्जदिमा तस्स जहण्णस्स फड्ढया होंति ।
अंगुलअसंखभागा ठाणं पडि फड्ढया उड्ढा ॥२५२॥ १०

श्रेण्य संख्यातैकभागप्रमितानि तस्य जघन्यस्य स्पर्द्धकानि भवंति । अंगुलासंख्यभागप्रमितानि स्थानं प्रति स्पर्द्धकानि वृद्धानि ॥

तस्य द्वींद्रियपर्य्याप्त जीवजघन्यपरिणामयोगस्थानक्के स्पर्द्धकंगळुश्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवु । व वि । १६ । ४ । ā । तज्जघन्यस्थानानंतरस्थानविकल्पं मोदल्गोंडु स्थानं प्रति सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्द्धकंगळु पेच्चॆल्पट्टुवंतु पेच्चॆल्पट्टु :— १५

तत्र छेदासंख्यातगुणः इतीमं क्रमं गाथापंचकेनाह—

द्वींद्रियपर्याप्तजीवपरिणामयोगजघन्यस्थानात् संज्ञिपर्याप्ततदुत्कृष्टस्थानपर्यंतं परिणामयोगस्थानानि अवस्थितवृद्धिक्रमेण वृद्धानि संति ॥२५१॥

तेषु द्वींद्रियपर्याप्तजघन्यपरिणामयोगस्थानं श्रेण्यसंख्येयभागमात्रस्पर्धकं । व वि १६ ४ — । तदनंतर-
ā

विकल्पमादिं कृत्वा प्रतिस्थानं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रजघन्यस्पर्धकानि वर्धन्ते ॥२५२॥ २०

जघन्य योगस्थानसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवाँ भाग गुणा होता है। तो उससे जो समयप्रबद्ध बँधता है वह जघन्य समयप्रबद्धसे पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा होता है ॥२५०॥

आगे उक्त कथनको पाँच गाथाओं से कहते हैं—

दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानसे लेकर संज्ञीपर्याप्तकके उत्कृष्ट २५
परिणाम योगस्थान पर्यन्त परिणाम योगस्थान क्रमसे समान वृद्धिको लिये हुए बढ़ते हैं ॥२५१॥

उनमें-से दो-इन्द्रिय पर्याप्तकके जघन्य परिणाम योगस्थानके स्पर्धक जगतश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं। उसके अनन्तरवर्ती स्थानसे लेकर प्रत्येक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य स्पर्धक बढ़ते हैं। अर्थात् जघन्य स्पर्धकके जितने अविभाग ३०
प्रतिच्छेद हैं उन्हें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने-उतने अविभाग प्रतिच्छेद एक-एक योगस्थानमें बढ़ते हैं ॥२५२॥

धुववड्ढवीड्ढंतो दुगुणं दुगुणं कमेण जायंतो ।
चरिमे पल्लच्छेदाऽसंखेज्जदिमो गुणो होदि ॥२५३॥

ध्रुववृद्ध्या वर्द्धमानानि द्विगुणद्विगुणक्रमेण जायमानानि । चरमे पल्यच्छेदासंख्येयभागो गुणो भवति ॥

ध्रुववृद्धियिंदं वर्द्धमानंगळप्प योगस्थानंगळु द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि चरमदोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टपरिणामयोगस्थानदोळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागगुणकारमक्कुं । संदृष्टि इदु :—

योगस्थानं	व वि १६ । ४ $\frac{\text{—}}{\text{अ}}$	२ । १ । २ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ	२ । $\frac{\text{—}}{\text{अ}}$ अ ० ० ०	$\frac{\text{—}}{\text{अ}}$ २	२ । १ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ २	२ । २ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ	० ० ० →
समयप्रबद्ध	स	स २ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स	स २ । २ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स	० ० स २	स २ । १ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स । २	स २ । २ ० ० $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स २। ०० । स २।२	

$\frac{\text{—}}{\text{अ}}$ २।२	२ । १ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ	२ । २ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ २ । २	० ० ० $\frac{\text{—}}{\text{अ}}$ २।२ २	०००००००० $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ छे ००० $\frac{\text{—}}{\text{अ २}}$ छे
$\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स २।२	स २।१ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स २।२	स २ । २ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स २ । २	० ० ० ० ० ० स । २।२।२	००० स छे०००० स । $\frac{\text{छे}}{\text{अ}}$ अ २

ध्रुववृद्ध्या वर्धमानयोगस्थानानि द्विगुणद्विगुणानि भूत्वा चरमे संज्ञिपर्याप्तोत्कृष्टपरिणामयोगस्थाने पल्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रो गुणकारः स्यात् । संदृष्टिः—

योगस्थान	व वि १६ ४ $\frac{\text{—}}{\text{अ}}$	२ १ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ	२ । २ $\frac{\text{अ}-२}{\text{— अ}}$ अ ० ० ०	२ । १ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ । २	२ । २ — $\frac{\text{अ २ ०००}}{\text{—}}$ अ अ २ । २	२ । १ $\frac{\text{अ}}{\text{— २२}}$ अ
समय प्रबद्ध	स	स २ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स	स २ । २ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स ०००स २	स २ । १ $\frac{\text{अ}}{\text{—}}$ अ स २	स २ । २ $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स २ ० ० ० स २ २	स २ । १ → $\frac{\text{—}}{\text{अ अ}}$ स २ । २

इस प्रकार ध्रुव अर्थात् एक समान वृद्धिसे बढ़ते-बढ़ते जघन्य योगस्थान दूना होता है फिर उससे भी दूना होता है । इस तरह क्रमसे दूना-दूना होते अन्तके संज्ञी पर्याप्तकके उत्कृष्ट परिणाम योगस्थानका गुणकार पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता

अनंतरमी निरंतरस्थानविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

आदी अंतेसुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा ।
सेढि असंखेज्जदिमा जोगट्ठाणा णिरंतरगा ॥२५४॥

आदावन्ते शुद्धेवृद्धिहृते रूपसंयुते स्थानानि । श्रेण्यसंख्येयानि योगस्थानानि निरंतराणि ॥

आदियप्प जघन्यस्थानमनन्त स्थानदोळु कळेयल्पडुत्तं विरलु शेषममल्लिगे पेच्चिद पेच्चुगेय प्रमाणमक्कु $\frac{\text{छे}^{\circ}}{\text{अ अ}}$ मदं त्रैराशिकविधानदिदं । प्र व वि १६ । ४ । २ । फ स्था १ । इ व वि १६ । ४ $\frac{\text{छे}^{\circ}}{\text{अ अ}}$ प्रमाणराशिभूतवृद्धिप्रमाणदिदं भागिसुत्तं विरलु लब्धं सवृद्धिघस्थानसंख्येयक्कुमदरोळु जघन्यस्थानमं कूडुत्तं विरलु समस्तनिरंतरयोगस्थानंगळ प्रमाणमिनितक्कु $\frac{\text{छे}}{\text{अ अ । २ अ}}$

२ । २ / अ / —२ २ ० ० ० / अ	—२२२ / अ / ० / ०	० ० ० —छे० ० ० ० —छे / अ अ २ अअ
← स २ । २ / —अ / अ / स २।२।० ० ०	स २।२।२	० ० ० स छे ० ० ० ० स छे / अ २ अ

॥ २५३ ॥ ते स्थानविकल्पाः कति ? इति चेदाह—

आदौ जघन्यस्थाने व वि १६ ४ — । अंते उत्कृष्टस्थाने व वि १६ ४ — छे शुद्धे शोधिते सति शेषे $\frac{}{\text{अ}}$ $\frac{\text{छे}}{\text{अ अ}}$

व वि १६ ४ — $\frac{\text{छे}^{\circ}}{\text{अ अ}}$ सूच्यंगुलासंख्येभागजघन्यस्पर्धकवृद्धचा भवते सवृद्धिकस्थानानि । अत्र जघन्यस्थाने निक्षिप्ते

है । अर्थात् जघन्य योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणको पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने सर्वोत्कृष्ट योगस्थानके अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं ॥२५३॥

समस्त निरन्तर योगस्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

आदि जघन्य स्थानको अन्त उत्कृष्ट स्थानमेंसे घटाइए । अर्थात् अन्तके उत्कृष्ट स्थानके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हैं उनमें-से जघन्य स्थानके अविभाग प्रतिच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण आवे उसे वृद्धिसे भाग दें । सो एक-एक स्थानमें सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग

मिवु श्रेण्यासंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवु ॥

अनंतरमंतरगतस्थानंगळेनितक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

अंतरगा तदसंखेज्जदिमा सेढियसंखभागा हु ।
सांतरणिरंतराणि वि सव्वाणि वि जोगठाणाणि ॥२५५॥

अन्तरगतानि तदसंख्यातैकभागप्रमितानि खलु । सांतरनिरंतराण्यपि सर्व्वाण्यपि योगस्थानानि ॥

अंतरगतयोगस्थानंगळु निरंतरयोगस्थानंगळ असंख्यातैकभागमात्रंगळप्पुवं $\frac{\text{छे}}{\text{अ अ २ अ}}$ तादोडं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयक्कुं । सान्तरनिरंतराण्यपि सांतरनिरंतरस्थानंगळुं तदसंखेज्जदिमा अंतरगतस्थानविकल्पंगळ असंख्यातैकभागमक्कु $\frac{\text{छे}}{\text{अ अ २ । अ । अ}}$ मादोडमवुं श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रंगळेयक्कुं । सर्व्वाण्यपि योगस्थानानि ई निरंतर सान्तर सांतरनिरंतरंगळेंब त्रिविधयोग-

---

समस्तनिरंतरयोगस्थानानि $\frac{\text{१—}}{\text{अ अ अ}} - २^{\text{छे}}$ एतानि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राण्येव । ॥२५४॥

अंतरगतयोगस्थानानि निरंतरयोगस्थानानामसंख्यातैकभागोऽपि $\frac{\text{———}}{\text{अ अ अ अ}} - २^{\text{छे}}$ श्रेण्यसंख्यातैकभाग एव ।

सांतरनिरंतराण्यपि अंतरगतानामसंख्यातैकभागोऽपि $\frac{\text{———}}{\text{अ २ अ अ अ}} - ^{\text{छे}}$ श्रेण्यसंख्यातैकभाग एव । तानि त्रिवि-

---

स्पर्धकोंके जितने अविभाग प्रतिच्छेद हों उतनी वृद्धि होती है उससे भाग दें। जो प्रमाण आवे उतनी वृद्धि सहित स्थान जानना। उनमें एक जघन्य योगस्थान मिलानेपर जो प्रमाण हो, उतने सर्व निरन्तर योगस्थान होते हैं। वे स्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं ॥२५४॥

अन्तरगत योगस्थान निरन्तर योगस्थानोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर भी जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग ही हैं। सान्तर निरन्तर मिश्ररूप योगस्थान अन्तरगत योगस्थानोंके असंख्यातवें भाग हैं। फिर भी वे जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं। निरन्तर, सान्तर और निरन्तरसान्तर ये तीनों योगस्थान मिलकर भी जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग

स्थानंगळ्गं कूडियुं श्रेण्यसंख्यातैकभागप्रमितंगळेयप्पुवु $\frac{\text{छे}}{\text{अ}\,\text{अ}\,\text{अ}}$ यिन्तुक्त सर्व्वयोगस्थानंगळो-

ळाद्यंतस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

सुहुमणिगोद अपज्जत्तयस्स पढमे जहण्णओ जोगो ।
पज्जत्तसण्णिपंचिंदियस्स उक्कस्सओ होदि ॥२५६॥

सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तकस्य प्रथमे जघन्यो योगः । पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्योत्कृष्टो भवति ॥ ५

अन्तुक्तसर्व्वयोगस्थानंगळ्गे मुन्नं पेळ्द विशेषणविशिष्टनप्प सूक्ष्मनिगोदापर्य्याप्तजीवन-चरमभवप्रथमसमयदोळावुदो दुपपादयोगजघन्यस्थानमदादियक्कुं । पर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियजीवपरि-णामयोगोत्कृष्टस्थानमदवसानस्थानमक्कु-॥ मनन्तरमिन्तु पेळल्पट्ट प्रकृतिबंधस्थितिबंधमनुभाग-बंध प्रदेशबंधमें ब चतुर्व्विधबंधंगळ्गे कारणंगळं पेळ्दपरु :—

जोगा पयडिपदेसा ठिदियणुभागा कसायदो होंति ।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि ॥२५७॥ १०

योगात्प्रकृतिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतो भवतः । अपरिणतोच्छिन्नेषु च बंधस्थिति-कारणं नास्ति ॥

धानि मिलित्वापि सर्वाणि श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्राण्येव— $\frac{\text{छे}}{\text{अ}\,\text{२}\,\text{अ}\,\text{अ}}$ ॥ २५५ ॥ एतेषु आद्यंत- १५

स्थाने आह—

उक्तविशेषणविशिष्टं सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तस्य चरमभवप्रथमसमये यदुपपादयोगजघन्यस्थानं तदाद्यं भवति । पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियस्य परिणामयोगोत्कृष्टस्थानं तदंत्यं भवति ॥ २५६ ॥ उक्तचतुर्विधबंधानां कारणान्याह—

हैं । इसका कारण यह है कि असंख्यातके बहुत भेद हैं । अतः यथायोग्य असंख्यातका भाग जानना ॥२५५॥ २०

आगे इन योगस्थानोंमें आदिस्थान और अन्तस्थान कहते हैं—

उक्त सब योगस्थानोंमें सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके अन्तिम क्षुद्रभवके पहले समयमें जो जघन्य उपपाद योगस्थान होता है वह आदिस्थान है । और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकका जो उत्कृष्ट परिणाम योगस्थान है वह अन्तिमस्थान है ॥२५६॥

आगे चार प्रकारके बन्धके कारण कहते हैं— २५

योगात् योगंदिदं प्रकृतिप्रदेशौ भवतः प्रकृतिबंधमुं प्रदेशबंधमुमप्पुवु । स्थित्यनुभागौ स्थितिबंधमुमनुभागबंधमुमेरडु कषायतो भवतः कषायस्थानोदयंदिदमप्पुवु । अपरिणतजघन्यंदिदमेकसमयमुत्कृष्टदिंदमन्तर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यन्तं कषायस्थानोदयापरिणतनप्प उपशांतकषायनोळं उच्छिन्नेषु च क्षपितकषायरुगळप्प क्षीणकषायनोळं सयोगकेवलिजिननोळं बंधस्थितिकारणं नास्ति तात्कालिकबंधक्के स्थितिबंधकारणमिळ । च शब्ददिंदमयोगिकेवलिजिननोळं प्रकृतिप्रदेशबंधकारणमप्प योगमुं स्थित्यनुभागबंधकारणमप्प कषायस्थानोदयमुमिल्ल ॥

अनंतरं योगस्थानप्रकृतिसंग्रहस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायअनुभागबंधाध्यवसायकर्म्मप्रदेशमेंबिवक्कल्पबहुत्वमं पेळ्दपरु गाथासूत्रदिंदं :—

सेढियसंखेज्जदिमा जोगट्ठाणाणि होंति सव्वाणि ।
तेहि असंखेज्जगुणो पयडीणं संगहो सव्वो ॥२५८॥

श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति सर्व्वाणि । तैरसंख्येयगुणः प्रकृतीनां संग्रहः सर्व्वः ॥

प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगाद्भवतः । स्थित्यनुभागबंधौ कषायतो भवतः । जघन्यतः एकसमय उत्कृष्टतोऽन्तर्मुहूर्तं अपरिणतकषायस्थानोदयोपशांतकषाये क्षपितकषायक्षीणकषायसयोगयोश्च तात्कालिकबंधस्य स्थितिबंधकारणं नास्ति । चशब्दादयोगकेवलिनि प्रकृतिप्रदेशबंधकारणं योगः स्थित्यनुबंधकारणं कषायस्थानोदयश्च नास्ति ॥२५७॥ अथ योगस्थानप्रकृतिसंग्रहस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायानुभागबंधाध्यवसायकर्मप्रदेशानामल्पबहुत्वं गाथात्रयेणाह—

प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध योगसे होते हैं । अर्थात् जैसा शुभ या अशुभ योग होता है वैसा ही प्रकृतिबन्ध होता है और जैसा योगस्थान होता है वैसा ही समयप्रबद्ध बँधता है । अतः ये दोनों बन्ध योगसे होते हैं । स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषायसे होते हैं । जैसी कषाय होती है वैसी ही यथायोग्य स्थिति और अनुभाग बँधते हैं । जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त काल तक जिसमें कषाय स्थान उदयरूप नहीं है ऐसे उपशान्त कषाय और कषायरहित क्षीणकषाय और सयोगकेवलीके जो प्रतिसमय बन्ध होता है उसके स्थितिबन्धका कारण नहीं है । 'च' शब्दसे अयोगकेवलीमें प्रकृति और प्रदेशबन्धका कारण योग तथा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका कारण कषाय दोनों ही नहीं हैं अतः उसके बन्ध नहीं होता ॥२५७॥

आगे योगस्थान, प्रकृतिसंग्रह, स्थितिभेद, स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान, अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान और कर्मोंके प्रदेश, इनका अल्पबहुत्व तीन गाथाओंसे कहते हैं—

---

१. ब न स्तः ।

निरंतरं,सांतर,निरंतर,सांतरभेदभिन्नसर्व्वयोगस्थानगळु श्रेण्यसंख्येयभागंगळप्पु- $\frac{\text{—}}{\text{अ}}\ \frac{\text{०}}{\text{अ}}$ $\frac{३१}{२।अ}$

वर्वरिवमुमसंख्यातलोकगुणं । सर्व्वप्रकृतिसंग्रहमक्कु $=अ=अ$ $\frac{।}{२}$ मीयुत्तरोत्तरप्रकृतिसंख्येयें तावुदें- दोडे पेळल्पडुगुमदेतेंदोडे मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानावरणीयमेंबु ज्ञानावरणीयदुत्तरप्रकृतिगळु ५ अप्पुवु । अवरोळु श्रुतज्ञानावरणीयोत्तरोत्तरप्रकृतिगळसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवेतेंदोडे मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलज्ञानमेंबु ज्ञानपंचकक्के प्रत्येकं भेदप्रभेदंगळु जीवकांडदोळपेळल्पट्ट प्रकारदिंदमिवरोळु पर्य्यायश्रुतज्ञानमादियागि लोकबिंदुसारपूर्व्वंश्रुतज्ञानमवसानमाद समस्तश्रुतज्ञानविकल्पंगळु पर्य्याय अक्षर पद संघातप्रतिपत्ति अनुयोग प्राभृतक, प्राभृतकप्राभृतक वस्तु पूर्व्वमेंब पत्तुं भेदंगळुमवर समासंगळुं सहितमागि अक्षरानक्षरात्मक क्षायोपशमिकश्रुतज्ञानविकल्पंगळुमसंख्येयलोकमात्रंगळप्पुवु $=अ=अ$ । १ । एनितु ज्ञानविकल्पंगळप्पुवनितेयावरणविकल्पंगळप्पुवल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे पर्य्यायज्ञानं निरावरणज्ञानमक्कुमेंकेंदोडवु सर्व्वनिकृष्टज्ञानमप्पुदरिंदमदक्कावरणमुंटक्कुमप्पोडे जीवाभावमागिबक्कुमदुकारणमागिरूपोनश्रुतज्ञानविकल्पमात्रश्रुतज्ञानावरणंगळुत्तरोत्तरप्रकृतिगळप्पुवु । श्रुतं मतिपूर्व्वमेंदितु मतिज्ञानविकल्पंगळुं श्रुतज्ञानविकल्पप्रमितंगळप्पुदरिंदं तदावरणंगळुमुत्तरोत्तरप्रकृतिगळु तावन्मात्रंगळेयप्पुवु । $=अ=अ$ । १ । देशावधि परमावधिज्ञानमेंबेरडुमवधिज्ञानंगळं सविकल्पज्ञानंगळप्पुदरिंदं देशावधिज्ञानविकल्पंगळु विषयभेददिंदं त्रैराशिकसिद्धंगळप्पुवा त्रैराशिकमेंतेंदोडे एकप्रदेशं क्षेत्रदोळु वृद्धियागुत्तं विरलु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागद्रव्यविकल्पंगळप्पुवागळु घनांगुलासंख्यातैकभागोनलोकमात्रप्रदेशंगळु क्षेत्रदोळु वृद्धिया-

---

निरंतरसांतरतदुभयभेदभिन्नसर्वयोगस्थानानि श्रेण्यसंख्येयभागमात्राणि $\frac{\text{—}}{\text{अ}}\ \frac{१-}{\text{अ}}$ २ ३१ एभ्योऽसंख्यात-

लोकगुणः सर्वप्रकृतिसंग्रहः । $=अ=अ$ $\frac{।}{२}$ तद्यथा–ज्ञानावरणीयस्य उत्तरप्रकृतयः पंच तत्र श्रुतावरणानि पर्यायज्ञानस्य निरावरणत्वात् असंख्यातलोकषट्स्थानवृद्धिवर्धितपर्यायसमासादिभेदमात्राणीत्येतावंति $=अ=अ$ 'श्रुतं मतिपूर्वं' इति मत्यावरणान्यपि तावंति $=अ=अ$ देशावध्यावरणानि घनांगुलासंख्येयभागोने लोके सूच्यं-

---

निरन्तर, सान्तर और निरन्तरसान्तरके भेदसे भिन्न सब योगस्थान जगतश्रेणिके असंख्यातवें भाग हैं। उनसे असंख्यात लोक गुना सब प्रकृतियोंका समूह है। अर्थात् सब योगस्थानोंके प्रमाणको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर कर्मोंकी प्रकृतियोंका प्रमाण होता है। वही कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ पाँच हैं। उनमें-से श्रुतज्ञानावरणमें पर्यायश्रुतज्ञानके निरावरण होनेसे असंख्यात लोकबार षट्स्थान वृद्धिसे वर्धित पर्याय समास आदि भेदोंके आवरणकी अपेक्षा असंख्यात लोकको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर जो राशि हो उतने श्रुतज्ञानावरणके भेद हैं। तथा श्रुतज्ञान मतिपूर्वक होता है अतः उतने ही मतिज्ञाना-

वल्लिगोनितु द्रव्यविकल्पंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडुत्तं विरलु प्र । १ वृ । फ । २ । इ ≡ ६ वृ
ə ə
लब्धं देशावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पंगळ प्रमाणमक्कुमा द्रव्यविकल्पंगळेनितनितें देशावधिज्ञान-
विकल्पंगळप्पुवु ≡ ६ । २ परमावधिज्ञानविकल्पंगळ्गं परमावहिस्सभेदासगओगाहणवियप्पहदतेऊ
ə ə
यें बितु तेजस्कायिकजीवावगाहनविकल्पंगळिंदं गुणिसल्पट्ट तत्तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणमक्कु
५ ≡ ə ६ ə सर्व्वावधिज्ञानं निर्व्विकल्पकमप्प क्षायोपशमिकज्ञानमप्पुदरिंदमेकविधमेयक्कु १ । सर्व्वा-
ə
वधिदेशावधिज्ञानविकल्पंगळं परमावधिज्ञानविकल्पंगळोळु साधिकमं माडिदोडे मतिज्ञानविकल्पं-
गळं नोडलुमसंख्यातगुणहीनमक्कुं । ≡ə तावन्मात्रंगळे तदावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळप्पुवु । मनः-
पर्य्ययज्ञानविकल्पंगळुमसंख्यातकल्पप्रमितंगळप्पुवु । क ə । तावन्मात्रंगळे तदावरणोत्तरोत्तर-
प्रकृतिगळप्पु । केवलज्ञानं क्षायिकनिर्व्विकल्पकज्ञानमप्पुदरिंदं तदावरणमुमेकविधमेयक्कुं । केवल-
१० ज्ञानावरणमनःपर्य्ययज्ञानावरणावधिज्ञानावरणोत्तरोत्तर प्रकृतिगळं तंदु श्रुतज्ञानावरणोत्तरोत्तर-
प्रकृतिगळोळु साधिकं माडि मतिज्ञानावरणोत्तरोत्तरप्रकृतिगळोळु कूडिदोडे साधिकद्विगुणमक्कु
≡ə ≡ ə २ मप्पुदरिंदं । सर्व्वप्रकृतिगळुं नामप्रत्ययंगळप्पुदरिंदं पूर्व्वशरीराकाराविनाशो यस्यो-

---

१
गुलासंख्येयभागगुणिते सैके सति यत्प्रमाणं तावंति— ≡ ६ । २ परमावध्यावरणानि स्वावगाहविकल्पहततेजस्का-
ə ə

यिकराशिमात्राणि ≡ ə ६ ə सर्वावध्यावरणमेकं १ । मनःपर्ययज्ञानावरणान्यसंख्यातकल्पमात्राणि । क ə ।
ə
१५ केवलज्ञानावरणमेकं १ मिलित्वा सर्वज्ञानावरणानि अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानावरणाधिकश्रुतावरणयुतमत्या-

---

वरणके भेद हैं ।

अवधिज्ञानावरणमें, घनांगुलके असंख्यातवें भागसे हीन लोकको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें एक मिलानेपर देशावधिके भेद होते हैं अतः देशावधि अवधिज्ञानावरणके भेद भी इतने ही हैं । अग्निकायके जीवोंके प्रमाणको
२० उनकी शरीरके अवगाहनाके भेदोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने परमावधिके भेद हैं । अतः परमावधिज्ञानावरणके भी इतने ही भेद हैं । सर्वावधिका एक ही भेद है अतः सर्वावधिज्ञानावरणका भी एक ही भेद है । बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कल्पकालको असंख्यातसे गुणा करनेपर मनःपर्ययज्ञानके भेद होते हैं । अतः मनःपर्ययज्ञानावरणके भी इतने ही भेद हैं । केवलज्ञानावरण एक होनेसे केवलज्ञानावरण भी एक है । ये सब
२५ मिलकर अवधिज्ञानावरण मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण तथा श्रुतज्ञानावरण सहित मतिज्ञानावरण, प्रमाण ज्ञानावरणकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेद होते हैं ।

दयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम एंदितु नामतः सिद्धमप्प क्षेत्रविपाकी सामान्यानुपूर्व्यनामकर्म्मं नारकानुपूर्व्यं तिर्य्यंगानुपूर्व्यं मनुष्यानुपूर्व्यं देवानुपूर्व्यमेंदितु चतुर्व्विधमक्कुमल्लि नारकानुपूर्व्य नामकर्म्मं नरकक्षेत्रविपाकियप्पुदरिंदं नरकक्षेत्रदोळुदयिसुगुमा नरकक्षेत्रप्रमाणमेनितेंदोडे नारकरेल्लरुं त्रसपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवंगळेयप्पुदरिंदमा नरकक्षेत्रं त्रसनाळदोळेयागल्वेळ्कुमप्पुदरिंदं त्रसनालप्रमितमेकैकरज्जु भुजकोटिप्रमितमुष्ट्रादिमुखाकारदोळुपरितनोपपादस्थानदोळल्लदे मत्तेल्लियुं बिलदोळुत्पत्तियिल्लप्पुदरिंदं प्रमाणसूच्यंगुलासंख्यातैकभागायामगुणितमप्प नरकक्षेत्रदोळेतप्प जीवंगळु बंदु पुट्टुगुमेंदोडे तिर्य्यग्मनुष्यपंचेंद्रियत्रसपर्य्याप्तजीवंगळु पूर्व्वशरीरमं बिट्टु विग्रहगतियिंदं स्वयोग्योत्पत्तिनरकस्थानक्के बर्प्पागळु नरकानुपूर्व्योदयदिंदं पूर्व्वाकाराविनाशमुंटप्पुदरिंदमा तिर्य्यग्मनुष्यपंचेंद्रियत्रसपर्य्याप्तजीवशरीरजघन्यावगाहनद घनांगुलसंख्यातैकभागदिंदं गुणिसिदोडे प्रथमविकल्पमक्कुं = २।६ द्वितीयादिविकल्पंगळोळेकैकप्रदेशोत्तरक्रम- ४९।अ।७

मध्यमविकल्पंगळु नडदु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवावगाहनगुणितक्षेत्रं चरमविकल्पमक्कु = २।६७ ४९ अ

मिन्तागुत्तं विरलु आदीयंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा। एंदु लब्धं सर्व्वविकल्पंगळि

इनितप्पुवु = २६ ७।७ तिर्य्यगानुपूर्व्यनामकर्म्मं तिर्य्यग्गतिक्षेत्रविपाकियप्पुदरिंदं तिर्य्यगायु- ४९ अ।७

वरणमात्राणि स्युः ≡ अ ≡ अ २ सर्वा प्रकृतयो नामकर्मप्रत्यया: इति नारकानुपूर्व्यं नरकक्षेत्रविपाकित्वात्तत्क्षेत्रमेकरज्जुप्रतरमुष्ट्रादिमुखाकारेभ्योऽन्यत्रोत्पत्त्यभावात् प्रमाणसूच्यंगुलासंख्यातैकभागायामगुणितं तिर्यग्मनुष्यपंचेंद्रियपर्याप्तानां तत्र गमनकाले नरकानुपूर्व्योदयेन पूर्वाकाराविनाशाज्जघन्यावगाहघनांगुलसंख्यातैकभागेन गुणिते प्रथमविकल्पः = २६ संख्यातघनांगुलैर्गुणिते चरमः = २६ १ आदी अंते सुद्धे इत्यादिना ४९ अ १ ४९ अ

सब प्रकृतियाँ नामकर्मके निमित्तसे होती हैं। अतः नामकर्मकी प्रकृतियोंमें आनुपूर्वी प्रकृतिके उत्तरोत्तर भेद कहते हैं। आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है। अतः क्षेत्रकी अपेक्षा उसके भेद होते हैं। नारकानुपूर्वी नरकक्षेत्र विपाकी है। नरकक्षेत्र एक राजु प्रतरप्रमाण है वहाँ उष्ट्रादि मुखाकारोंके सिवाय अन्यत्र उत्पत्ति नहीं होती। अतः प्रमाणरूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आयामसे उसे गुणा करें। तथा पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य जब नरकको जाते हैं तब नारकानुपूर्वीका उदय होता है। उससे पहले तिर्यंच या मनुष्य पर्यायमें जो आकार होता है उसका नाश नहीं होता। इससे वहाँ पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यकी जघन्य अवगाहना तो घनांगुलके संख्यातवें भाग है। उससे पूर्वोक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर जो क्षेत्रका प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वीका पहला भेद है। उन्हींकी उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है। उसको पूर्वोक्त क्षेत्रसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो नरकानुपूर्वीका अन्तिम भेद है। 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा' इस सूत्रके अनुसार अन्तिम भेदमें जितना क्षेत्रके प्रदेशोंका प्रमाण हो उसमें-से पहले भेदके क्षेत्रके प्रदेशोंके

स्तिर्य्यग्गतिनामकर्म्मोदयसहचरिततिर्य्यगानुपूर्व्यं तिर्य्यग्गतिक्षेत्रक्कुदयिसुगुमा तिर्य्यग्गतिक्षेत्रप्रमाणमेनितेंदोडे तिर्य्यंचरु स्थावरंगळुं त्रसंगळुमप्पुदरिंदमा जीवंगळगुत्पत्तियोग्यक्षेत्रमुं सर्व्वलोकमक्कुमी तिर्य्यग्लोकक्षेत्रदोळु पुट्टुव जीवंगळु मवावुवेंदोडे सर्व्वपृथ्विय नारकरुगळुं स्थावरत्रसभेदतिर्य्यंचरुगळुं कर्म्मभूमिपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुगळुं शतारसहस्रारकल्पद्वयावसानमाद देवर्कळुं पुट्टुवरा जीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिंदं तिर्य्यग्गतिक्षेत्रदोळ्पुट्टल्वेडि बर्प्पागळु तिर्य्यंगायुस्तिर्य्यग्गतिनामकर्म्मोदयसहचरित तिर्य्यगानुपूर्व्यनामकर्म्मोदयदिंदं पूर्व्वशरीरावगाहनाकारापरित्यागभावमप्पुदरिंदमा तिर्य्यंचरोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तजीवजघन्यावगाहनद घनांगुलासंख्यातैकभागगुणिततिर्य्यग्गतिक्षेत्रं प्रथमविकल्पमक्कुं ≡ ६ द्वितीयादि-
ə

विकल्पंगळोळेकैकप्रदेशोत्तरक्रमदिंदं पूर्व्वनारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवजीवंगळ शरीरावगाहनविकल्पंगळेल्लमिल्लि मध्यमविकल्पंगळागुत्तं पोगि पर्य्याप्तपंचेंद्रियतिर्य्यग्जीवोत्कृष्टावगाहनसंख्यातघनांगुलगुणितप्रमितमदु चरमविकल्पमक्कु ≡६७ मन्तागुत्तं विरलादी अन्ते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे

ठाणा येंदितो सूत्रेष्टदिंदं तंद सर्व्वावगाहविकल्पगुणितसर्व्वक्षेत्रविकल्पंगळिनितप्पुवु ≡६७ ə
ə

मनुष्यानुपूर्व्यनामकर्म्मं मनुष्यक्षेत्रविपाकियप्पुरिंदं मनुष्यक्षेत्रक्कुदयिसुगुमा मनुष्यक्षेत्रप्रमाणमु-

---

एतावद्विकल्पं स्यात्। = २ ६। १ । १ तिर्यगानुपूर्व्यं तिर्यक्क्षेत्रविपाकीति तत्क्षेत्रं सर्वलोकः। नारकत्रस-
४९ə१
स्थावरकर्मभूमिमनुष्यसहस्रारपर्यंतदेवानां तत्र गमनकाले आयुर्गतिसहचरिततिर्यगानुपूर्व्योदयात् सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तजघन्यावगाहनेन गुणिते प्रथमविकल्पः ≡ ६ उत्कृष्टावगाहनेन गुणिते चरमः ≡ ६ १ आदौ अंते
ə

सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा; इत्येतावद्विकल्पं स्यात् ≡ ६ १ ə । मनुष्यानुपूर्व्यं मनुष्यक्षेत्रविपाकित्वात्
ə

प्रमाणको घटानेपर जो शेष रहे उसमें एकसे भाग देकर एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने नरकानुपूर्वीके उत्तरोत्तर भेद होते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचानुपूर्वी तिर्यंच क्षेत्रविपाकी है। सो तिर्यंचका क्षेत्र सर्वलोक है। नारकी, त्रस-स्थावर-तिर्यंच, कर्मभूमिया मनुष्य तथा सहस्रार स्वर्ग तकके देव तिर्यंचगतिमें उत्पन्न होते हैं। सो वे आनुपूर्वीके उदयसे पूर्व शरीरके आकारको नहीं छोड़ते। अतः सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाणसे पूर्वोक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर तिर्यंचानुपूर्वीका प्रथम भेद होता है। तथा उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, उससे गुणा करनेपर अन्तका भेद होता है। सो 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाकर उसे एकसे भाग देकर और उसमें एक मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने भेद तिर्यंचानुपूर्वीके

मेनिते दोडेमनुष्यरेल्लरु त्रसपर्य्याप्तापर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळप्पुदरिंदमा जीवंगळ स्वोत्पत्तियोग्य-
मनुष्यक्षेत्रप्रमाणमुं पंचोत्तर चत्वारिंशल्लक्षयोजनवृत्तविष्कंभगुणितत्रसनालप्रतरप्रमितमक्कुं
= ४५ ल नात्वर्त्तदु लक्षयोजनसमचतुरस्रमेके ग्रहिसल्पदे दोडे मानुषोत्तरपर्व्वतदिंदं पोरगण-
४९
चतुष्कोणमनुष्यक्षेत्रदोळु मनुष्यग्गुत्पत्ति यिल्लप्पुदरिंदं। ई मनुष्यक्षेत्रदोळु पुट्टुव मनुष्यरुगळा- ५
वावगतिजरप्परे दोडे षष्ठपृथ्विपर्य्यंतमाद षट्पृथ्विगळ नारकरुगळुं स्थावरत्रसभेदभिन्नकर्म्म-
भूमितिर्य्यंचरुं कर्म्मभूमिपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरुगळुं सर्व्वार्थसिद्धिविमानावसानमाद देवगतिजरुं
पुट्टुवरा जीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिंदं मनुष्यगतिक्षेत्रदोळपुट्टल्वेडि अर्प्पागळु
मनुष्यायुष्यमनुष्यगतिनामकर्म्मोदयसहचरितमनुष्यानुपूर्व्व्यनामकर्म्मोदयदिंदं पूर्व्वपरित्यक्तशरीरा-
वगाहनाकाराऽपरित्यागमुंटप्पुदरिंदं तिर्य्यंचरोळु सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्य्याप्तजीवशरीरावगाहनाकार- १०
जघन्यघनांगुलाऽसंख्यातैकभागगुणितमनुष्यक्षेत्रं प्रथमविकल्पमक्कुं = ४५ ल ६ द्वितीयादि-
४९ अ
विकल्पंगळुमेकैक प्रदेशोत्तरक्रमदिंदं चतुर्ग्गतिजरवगाहनाऽकारंगळु मध्यविकल्पंगळागुत्त पोगि
पंचेंद्रियपर्य्याप्तजीवोत्कृष्टावगाहनाकारं संख्यातघनांगुलगुणितप्रमितमिदु चरमविकल्पमक्कु
=४५ ल । ६७ मिन्तागुत्तं विरलु आदौ अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा एंदी सूत्रेष्टदिंदं तंद
४९

मनुष्यानुपूर्व्यविकल्पंगळिनितपुवु = ४५ ल ६ ७ अ देवानुपूर्व्यमुं देवगतिक्षेत्रविपाकियप्पुदरिंदं १५
४९ अ

तत्क्षेत्रं तेषां त्रसपर्याप्तापर्याप्तपंचेंद्रियत्वात् उत्पत्तियोग्यमनुष्यक्षेत्रवृत्तविष्कंभगुणितत्रसनालीप्रतरप्रमितं = ४५
४९
ल । तत्समचतुरस्रं कुतो न गृह्यते मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणेषु मनुष्याणामनुत्पत्तेः। आद्यषट्पृथ्वीनारकत्रस-
स्थावरकर्मभूमितिर्यग्मनुष्यदेवानां तत्र गमनसमये तदायुर्गतिसहचरितानुपूर्व्योदयाज्जघन्यावगाहनेन गुणिते
प्रथमविकल्पः = ४५ ल ६ उत्कृष्टावगाहनेन गुणिते चरमः = ४५ ल ६ ७ आदौ अंते सुद्धे इत्यादिना
४९ अ

होते हैं। मनुष्यगत्यानुपूर्वी मनुष्यक्षेत्र विपाकी है। मनुष्यक्षेत्र मनुष्योंके पर्याप्त अपर्याप्त २०
पंचेन्द्रियपना होनेसे उनकी उत्पत्तिके योग्य पैंतालीस लाख योजन प्रमाण गोल विष्कम्भसे
गुणित त्रसनाली एक राजू प्रतर प्रमाण है। मानुषोत्तरसे बाहर चारों कोनोंमें मनुष्योंकी
उत्पत्ति न होनेसे चौकोर क्षेत्र नहीं कहा है। आदिकी छह पृथिवियोंके नारकी, त्रस,
स्थावर, कर्मभूमिया तिर्यंच और मनुष्य तथा देव मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। वे मनुष्यानु-
पूर्वीके उदयसे अपना पूर्व आकार नहीं छोड़ते। अतः जघन्य अवगाहना घनांगुलके २५
असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर पहला भेद और उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात घनांगुलसे
गुणा करनेपर अन्तिम भेद होता है। अतः 'आदौ अंते सुद्धे' सूत्रके अनुसार अन्तमें-से

देवगतिक्षेत्रक्कुवयिसुगुमा देवगतिक्षेत्रप्रमाणमेनितेंदोडे देवक्कळेल्लरुं त्रसपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळे-यप्पुदरिंदं आ जीवंगळुत्पत्तियोग्य देवगतिक्षेत्रं विवक्षितज्योतिर्लोकावसानमादनवशतयोजन-गुणिततसनाळप्रतरमक्कुं = ९०० शेषदेवक्षेत्रनोळु पुट्टुव जीवंगळल्पंगळेयप्पुदरिंदं अविवक्षित-
४९

मक्कुमी भवनत्रयदेवगतिक्षेत्रदोळु पुट्टुव जीवंगळावावगतिजरेंदोडे कर्म्मभोगभूमितिर्य्यक्पंचेंद्रिय-
५ पर्य्याप्तकरुं कर्म्मभोगभूमिमनुष्यपर्य्याप्तकरुं पुट्टुवरुळिदवावुं जीवंगळुपुट्टुवेकेंदोडे तद्गतिक्षेत्र-जननकारणाभावदिंदमल्लि पुट्टुव तिर्य्यग्मनुष्यजीवंगळु शरीरपरित्यागमं माडि विग्रहगतियिंदं भवनत्रयदेवगतिक्षेत्रदोळ्पुट्टल्वेडि बर्प्पागळु देवायुष्यदेवगतिनामकर्म्मोदयसहचरितदेवानुपूर्व्य-नामकर्म्मोदयदिंदं पूर्व्वं परित्यक्तशरीरावगाहनाकारापरित्यागदिंदं, पंचेंद्रियपर्य्याप्तत्रसजीवशरीर-जघन्यावगाहनाकारं घनांगुलसंख्यातैकभागगुणितदेवगतिक्षेत्रमदु प्रथमविकल्पमक्कु = ९०० । ६
४९ ७

१० द्वितीयादिविकल्पंगळुमेकैकप्रदेशोत्तरक्रमदिंदं पोगि तिर्य्यक्पंचेंद्रियपर्य्याप्तत्रसजीवोत्कृष्टावगाहनाकारं संख्यातघनांगुलदिंदं गुणिसल्पट्ट क्षेत्रमदु चरमविकल्पमक्कु = ९००।६७ मन्तागुत्तं विरलु आदी
४९

अंते सुद्धेत्यादिसूत्रदिंदं तरल्पट्ट लब्धं देवानुपूर्व्यविकल्पंगळिनितप्पु = यो ९००।६।१७ वी
४९ ७

१— २—
एतावद्विकल्पं = ४५ ल ६ ७ ə देवानुपूर्व्यं क्षेत्रविपाकित्वात्तत्क्षेत्रं तेषां त्रसत्वाद्विवक्षितज्योतिर्लोका-
१— ४९ ə
वसाननवशतयोजनगुणितत्रसनालीप्रतरं = ९०० शेषदेवोत्पत्तिक्षेत्रं स्तोकत्वान्न विवक्षितं पंचेंद्रियपर्याप्त-
४९
१५ तिर्यग्मनुष्याणामेव तत्र गमनकाले देवायुर्गतिसहचरितानुपूर्व्योदयेन घनांगुलसंख्येयभागेन गुणिते प्रथमविकल्पः
= ९०० । ६ संख्यातघनांगुलैर्गुणिते चरमः— = ९०० । ६ ७ आदौ अंते सुद्धे इत्यादिनानीतैतावद्विकल्पं
४९ ७ ४९

आदिको घटाकर एकका भाग देकर और एक जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने भेद मनुष्यानुपूर्वीके हैं

देवानुपूर्वी देवक्षेत्रविपाकी है। और देव सब त्रस होते हैं अतः उनका क्षेत्र विवक्षित
२० ज्योतिर्लोकके अन्तपर्यन्त नौ सौ योजनसे त्रसनालीके प्रतरक्षेत्रका गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना जानना। देवोंका उत्पत्ति क्षेत्र थोड़ा है इससे उसकी विवक्षा यहाँ नहीं की है। ज्योतिषी देवोंकी ही मुख्यतासे कथन किया है। पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्य ही देवोंमें जन्म लेते हैं। देवगतिमें गमन करते समय देवायु और देवगतिके उदयके साथ देवानुपूर्वीके उदयसे पूर्व आकारका नाश न होनेसे उनकी जघन्य अवगाहनाको संख्यात
२५ घनांगुलसे उक्त क्षेत्रको गुणा करनेपर प्रथम भेद होता है। उत्कृष्ट अवगाहना भी संख्यात घनांगुल प्रमाण है उससे गुणा करनेपर अन्तिम भेद होता है। सो 'आदी अंते सुद्धे' इत्यादि

नाल्कुमानुपूर्व्यंगळगे क्षेत्रविषयभेदंविदमुत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पंगळादुंदिंद मुन्निन साधिकद्विगुणाऽसंख्यातलोकमतिज्ञानोत्तरोत्तरप्रकृतिगुणकारदोळु साधिकं माडिदोडे प्रकृतिसंग्रहमिनितु प्रमाणमक्कु = अ ≡ अ २ मुळिदुत्तरप्रकृतिगळ उत्तरोत्तर प्रकृतिगळगुपदेशमिल्लदे पोप्पु। इंतु प्रकृतिसंग्रहरचनानुसारमागि व्याख्यानिसल्पट्टुवु। बहुश्रुतरुगळिंदं शोधिसल्पडुवुदु।

अनंतरं स्थितिविकल्पंगळुमनवर स्थितिबंधाध्यवसायंगळगल्प बहुत्वमं पेळ्दपरु :— ५

तेहि असंखेज्जगुणा ठिदि अवसेसा हवंति पयडीणं।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा तत्तो असंखगुणा ॥२५९॥

तैरसंख्येयगुणा स्थितिविशेषा भवंति प्रकृतीनां। स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि ततोऽसंख्येयगुणितानि भवंति॥

प्रकृतिगळ सर्व्वस्थितिविकल्पंगळु तैरसंख्येयगुणितानि भवति तत्प्रकृतिसंग्रहभेदंगळं १०
नोडलुमसंख्यातगुणितंगळप्पु। स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु ततोऽसंख्येयगुणितानि अशेषस्थितिविकल्पंगळं नोडलुमसंख्येयगुणितंगळप्पुवु अदेंतेंदोडे विवक्षितैकज्ञानावरणविशेषोत्तरोत्तरप्रकृतिजघन्यस्थितियन्तःकोटीकोटिसागरोपमप्रमितमक्कुमवु संख्यातपल्यप्रमितमक्कु। प १। मदर द्वितीयादिस्थितिविकल्पंगळु समयोत्तरवृद्धिक्रमदिंदं पोगि चरमस्थितिविकल्पमदं नोडलु संख्यातगुणमक्कु। प १ १। मन्तागुत्तं विरलु आदौ। प १। अन्ते। १५

स्यात् = ९०० । ६ १ १ अमीभिरानुपूर्व्योत्तरोत्तरभेदैः प्रागानीतज्ञानावरणोत्तरभेदेषु साधिकीकृतेषु
। ४९ १

प्रकृतिसंग्रहः एतावान् स्यात् ≡ अ ≡ अ २ शेषोत्तरप्रकृत्युत्तरोत्तरभेदानामुपदेशो नास्ति। इत्ययं संग्रहो रचनानुसारेण व्याख्यातो बहुश्रुतैः शोधितव्यः ॥२५८॥

तेभ्यः प्रकृतिसंग्रहभेदेभ्यः प्रकृतीनां सर्वस्थितिविकल्पा असंख्यातगुणा भवंति। कुतः ? एकप्रकृति-

सूत्रके अनुसार अन्तमें-से आदिको घटाकर एकका भाग देकर एक मिलानेपर जो प्रमाण २०
हो उतने भेद देवगत्यानुपूर्वीके जानना। आनुपूर्वीके इन उत्तरोत्तर भेदोंको पूर्वोक्त ज्ञानावरणके उत्तरोत्तर भेदोंमें मिलानेसे प्रकृति संग्रह होता है। टीकाकारका लिखना है कि शेष प्रकृतियोंके उत्तरोत्तर भेदोंका उपदेश प्राप्त नहीं है। यह प्रकृतिसंग्रह रचनाके अनुसार किया है। बहुश्रुतोंको इसको शुद्ध कर लेना चाहिए ॥२५८॥

प्रकृतिसंग्रहसे प्रकृतियोंकी स्थितिके भेद असंख्यात गुने हैं। क्योंकि जघन्य स्थितिको २५
उत्कृष्ट स्थितिमें-से घटाकर एक समयसे भाग दे और उसमें एक मिलानेसे जघन्य स्थितिसे उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त एक-एक स्थितिके संख्यात पल्य प्रमाण भेद होते हैं। यदि एक स्थितिके भेद संख्यात पल्य प्रमाण होते हैं तो पूर्वोक्त सब उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेदोंकी स्थितिके भेद कितने होंगे ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रकृति संग्रहके प्रमाणसे संख्यात पल्य गुणे स्थितिके भेद होते हैं। इन स्थितिके भेदोंसे स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुने हैं। जिन ३०

प १ १। सुद्धे। प १ १। वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाण। प १ १। एंदितिनितु मेकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदें तेंदोडेकप्रकृतिविकल्पक्किनितु स्थितिविकल्पंगळागुत्तं विरलिनितु प्रकृतिविकल्पंगळ्गेनितु स्थितिविकल्पंगळक्कुमेंदितु माडल्पडुत्तं विरलु

प्र १। फ प १ १ इ ≡ अ अ २ बंद लब्धं सर्व्वप्रकृति सर्व्वस्थितिविकल्पप्रमाणमक्कु

≡ अ ≡ अ २ प १ १ मदु कारणमागि सर्व्वप्रकृतिविकल्पंगळं नोडलुमवर स्थितिविकल्पंगळु संख्यातपल्यगुणितंगळप्पुदरिंदमसंख्यातगुणितंगळेंदु पेळल्पट्टुदो स्थितिविकल्पंगळं नोडलुमिवर स्थितिबंधनिबंधनकषायपरिणामस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकगुणितंगळप्पुवदें तेंदोडे एक-

प्रकृतिस्थितिविकल्पंगळ्गे। प १ १। स्थितिबंधकारणकषायपरिणामस्थानंगळुमसंख्यातलोक-

प्रमितंगळप्पुववु द्रव्यमक्कु ≡ अ मा येकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळु स्थितियेंबुदक्कु। प १ १। मिवर नानागुणहानिशलाकेगळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागमात्रंगळक्कु छे मदक्कन्योन्याभ्यस्त-

अ

विकल्पस्य यद्येतावंतः— प १ १ स्थितिविकल्पाः तदैतावतां ≡ अ ≡ अ २ प्रकृतिविकल्पानां कति

स्थितिविकल्पाः स्युः ? इति त्रैराशिकेन संख्यातपल्यैर्गुणितत्वप्रसिद्धेः— ≡ अ ≡ अ। २ प १ १ एभ्यः स्थितिविकल्पेभ्यः स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातगुणितानि तद्यथा—एकप्रकृतिस्थितिबंधकारणकषाय-

परिणामा असंख्यातलोकाः द्रव्यं ≡ अ एकप्रकृतिस्थितिविकल्पाः स्थितिः प १ १ नानागुणहानिशलाकाः

परिणामोंसे स्थितिबन्ध होता है उनके स्थानोंको स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं। इनका कथन अंकसंदृष्टिसे करते हैं—

एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण कषाय परिणाम इकतीस सौ ३१००। यह तो द्रव्य हुआ। उस एक प्रकृतिकी स्थितिके भेद चालीस ४०। यह स्थिति स्थान हुए। नाना गुणहानि पाँच ५। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे अन्योन्याभ्यस्त राशि हुई बत्तीस ३२। एक गुणहानिमें स्थितिका जो प्रमाण है वही गुणहानि आयाम है। सो नाना गुणहानि शलाकाका भाग सर्वस्थितिमें देनेपर जो प्रमाण हो उतना ही गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। सो नाना गुणहानि पाँच ५ का भाग स्थिति चालीस ४०में

राशियुं पल्यासंख्यातैकभागमक्कुं प गुणहान्यायाममुं नानागुणहानिशलाकाराशिभक्तस्थित्येक-
अ

भागमक्कुमी गुणहान्यायाममं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कु प १ १ मिन्तागुत्तं विरलु स्थिति-
छे
अ

विकल्पंगळोळ सर्व्वजघन्यस्थितिविकल्पस्थितिबंधनिबंधनकषायाध्यवसायस्थानंगळु सर्व्वतस्तोकं-
गळप्पुवंतादोडमसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवु ≡ अ पदहृतमुखमादि धनमेंदी राशियं गुणहानियं
पदमेंबुदा पदंदिदं गुणिसुत्तं विरलु प्रथमगुणहानियोळादिधनमक्कु ≡ अ गु। व्येकपद पदवोळेक- ५
०
रूपं कळेवोडे रूपोनगुणहानियक्कु। गु। मिदनर्द्धिसिदोडे रूपोनगुणहान्यर्द्धमक्कु। गु। मदं चयघ्नं
०
२
०
माडिदोडेयिनितक्कु गु। ≡ अ मी चयमुं वृद्धिविवक्षेयिंदमादियं रूपाधिकगुणहानियिंदं भागिसि-
२
गु

दोडे चयमक्कुं। हानिविवक्षेयादोडे दोगुणहानियिंदमादियं भागिसिदोडे चयमक्कुमिल्लि वृद्धि-
विवक्षितमप्पुदरिंदं रूपाधिकगुणहानियिंदं भागिसल्पट्टुदेंबुदर्त्थं। गुणो गच्छः गच्छश्चिदं गुणि-

---

पल्यच्छेदासंख्येयभागाः छे अन्योन्याभ्यस्तराशिः पल्यासंख्यातैकभागः प गुणहान्यायामः नानागुणहानि- १०
अ अ

शलाकाभक्तस्थितिमात्राः प १ १ अयं द्विगुणितो दोगुणहानिः प १ १ २ तेषु स्थितिविकल्पेषु सर्व-
छे छे
अ अ

जघन्यस्थितेर्निबंधनकषायाध्यवसायाः सर्वतः स्तोका अपि असंख्यातलोकमात्राः ≡ अ 'पदहृतमुखमादिधनं

≡ अ गु 'व्येकपदा गु धं गु घ्नेन रूपाधिकगुणहानिभक्तादिमात्रचयेन गु ≡ अ गुणो गच्छश्चयघनं
२ २ १-
गु

देनेपर आठ आये। आठ एक गुणहानि आयाम जानना। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि आयाम होता है। उन स्थितिके भेदोंमें-से सबसे जघन्य स्थितिके बन्धके कारण कषाया- १५
ध्यवसाय सबसे थोड़े हैं। उनका प्रमाण नौ ९। 'पदहृतमुखमादिधनं' इस सूत्रके अनुसार एक गुणहानि आयाम तो पद हुआ। उससे गुणित मुख अर्थात् आदि स्थान नौ ९ वह आदि-धन है। सो आदिधन ८×९=७२ हुआ। एक अधिक गुणहानिका भाग आदिस्थानको देनेपर जो प्रमाण हो वह चय जानना। सो यहाँ गुणहानिका प्रमाण आठ, उसमें एक अधिक करने पर नौ हुए। उसका भाग आदिस्थान नौमें देनेपर एक आया। वही चय २०
जानना। अतः एक-एक स्थानमें एक-एक बढ़ता कषायाध्यवसाय स्थान प्रथम गुणहानि-

सल्पट्टुदावोडे चयधनमक्कुं $\overline{\text{गु}}_{२} \equiv \text{अ} \cdot \overline{\text{गु}}$। उभयधनमं कूडिदोडिदु प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कु।

$\equiv \text{अ गु} \overline{\text{गु}}_{२}$ द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळु द्विगुणद्विगुणंगळागुत्तं पोगि चरमगुणहानियोळु रूपोन-

$\overline{\text{गु}}_{।२}$

नानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकंगळु गुणकारंगळप्पुववनन्योन्याभ्यासं माडिदोडे अन्योन्याभ्यस्त-

राश्यर्द्धं गुणकारमक्कु $\equiv \text{अ गु} \overline{\text{गु}}_{२}$ ३ प अ मिदंतधनमप्पुदरिंदमन्तधणं गुणगुणियमेंदु द्विगुणक्रम-

$\overline{\text{गु}}_{२}$ २

५ मप्पुदरिंदं गुणकारमेरडु रूपुगळवरिंदं गुणिसिदोडेडिदु $\equiv \text{अ गु} \overline{\text{गु}}_{२}$ ३ प २ अपवर्त्तितमिदु

$\overline{\text{गु}}$ २ अ २

$\overline{\text{गु}}_{२}^{०}$ $\equiv \text{अ गु}$ तयोर्योगः प्रथमगुणहानिद्रव्यं $\equiv \text{अ गु}_{१-\text{गु}}$। $\overline{\text{गु}}_{१—\text{गु}_{२}}$ ३ इदं प्रतिगुणहानिद्विगुणं द्विगुणं भूत्वा चरम-

गुणहानौ रूपोननानागुणहानिमात्रद्विकगुणमिति अन्योन्याभ्यस्तार्धगुणं स्यात् $\equiv \text{अ गु}_{१-\text{गु}_{२}}$। $\text{गु}^{१-}_{\text{अ}_{२}}$ ३ प इदं 'अंतधणं

पर्यन्त जानना। सो व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' एक हीनगच्छके आधेको चयसे गुणा करें। फिर गच्छसे गुणा करें। जो प्रमाण हो उतना सर्व चयधन होता है। यहाँ १० गच्छ आठमें-से एक घटानेपर सात रहे। उसका आधा साढ़े तीन। उसे चयके प्रमाण एकसे गुणा करनेपर साढ़े तीन ही रहे। उसे गच्छके प्रमाण आठसे गुणा करनेपर अठाईस हुए। यह चयधन जानना। आदिधन और उत्तरधन मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्व-द्रव्य होता है। सो आदिधन बहत्तर और उत्तरधन २८ को मिलानेपर १०० हुए। यही प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य जानना। आगे प्रत्येक गुणहानिका द्रव्य दूना-दूना होता है— १५ १००, २००, ४००, ८००, १६००। इस तरह एक कम नानागुणहानि प्रमाण वार दूना-दूना होता है। सो अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधेसे प्रथमको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो अन्तका प्रमाण जानना। यहाँ नानागुणहानि पाँच में-से एक घटानेपर चार रहे। सो चार जगह दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हुए। इतना ही अन्योन्याभ्यस्त राशि बत्तीसका आधा प्रमाण है। सोलहसे प्रथम स्थान सौको गुणा करनेपर सोलह सौ हुए। २० इतना ही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना। इन सबको जोड़िए—

---

१. म °लवनन्यो°।

≡ अ गु गु ३ । प आदिविहीणमें वादियं कळेदोडिदु ≡ अ गु गु ३ । प सर्व्वगुणहानिगळ
गु २ अ गु २ अ

सर्व्वधनमक्कुमन्नंतरं त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदें तें दोडे :—एकप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळिनितक्के स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळिनितागुत्तं विरलु इनितु प्रकृतिस्थितिविकल्पंगळ्गेनितु स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळप्पुवें दु त्रैराशिकं माडि प्र प १ १ फ ≡ अ गु गु ३ प इ ≡ अ ≡ अ २ प १ १
गु २ अ गु

गुणगुणियं' ≡ अ गु । गु ३ प २ अपवर्तितं ≡ अ गु । गु ३ प आदिविहीणमिति ≡ अ गु । गु ३ प
१- २ अ २ १-२ अ १- १ अ
गु गु गु २

सर्वगुणहानिघनं स्यात् । एकप्रकृतिस्थितिविकल्पानामेषां प १ १ यद्येतावंतः ≡ अ गु । गु ३ प
१- २ अ
गु

स्थितिबंधाध्यवसायाः तदा एतावतां ≡ अ ≡ अ २ प १ १ स्थितिविकल्पानां कति स्थितिबंधाध्यवसायाः

'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं' यह सूत्र जहाँ प्रत्येक स्थानका गुणकार समान होता है उनके जोड़ करनेके लिए है। सो गुणा करते-करते अन्तमें जो प्रमाण आवे उसको गुणकारसे गुणा करके उसमें-से आदि घटा दें। जो प्रमाण आवे उसको एक हीन उत्तरसे भाग देनेपर सर्वधन होता है। यहाँ अन्तस्थानका प्रमाण सोलह सौ १६०० और दूना-दूना किया था, इससे गुणकारके प्रमाण दोसे गुणा करनेपर बत्तीस सौ ३२०० सौ हुए। उसमें आदि का प्रमाण सौ घटानेपर इकतीस सौ रहे। यहाँ दूना-दूना किया है इससे उत्तरका प्रमाण दो हुआ। उसमें-से एक घटानेपर एक रहा। उसका भाग देनेपर इसतीस सौ ही रहे। सो पाँचों गुणहानिका जोड़ है। इस तरह एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण इकतीस सौ जानना।

यह तो अंक संदृष्टिसे कहा है। अब यथार्थ कथन करते हैं—एक प्रकृतिके स्थितिबन्धके कारण असंख्यातलोक प्रमाण कषायाध्यवसाय हैं सो द्रव्य जानना। एक प्रकृतिकी जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त संख्यात पल्य प्रमाण स्थितिके भेद हैं। सो स्थिति स्थान जानना। नानागुणहानि पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग मात्र है। अन्योन्याभ्यस्त राशि पल्यके असंख्यातवें भाग है। नानागुणहानिशलाकाका स्थितिमें भाग देनेपर जो प्रमाण हो उसे गुणहानि आयाम जानना। उसको दोसे गुणा करनेपर दो गुणहानि होती है।

बंद लब्धं सर्व्वप्रकृतिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायप्रमाणमक्कु $\equiv a \equiv a\,\frac{1}{2} \equiv a$ गु $\overline{\text{गु}_{\text{३}}}$ $\overline{\text{प}_{\text{२}}}$ a

गु

मत्तु कारणमागि सर्व्वप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळं नोडलु स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळ्मसंख्यातलोकगुणमेंदु पेळल्पट्टुदो स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगनुवृष्टिविधानमुंटप्पुदीयल्पबहुत्वकथनदोळ् प्रस्तुतमल्लप्पुदरिंदं पेळल्पडदु मुंदे पेळल्पडुगु।

अनंतरमनुभागबंधाध्यवसायंगळ्गं कर्म्मप्रदेशंगळ्गमल्पबहुत्वमं मुंदण सूत्रदिदं पेळ्दपरु।

अणुभागाणं बंधज्झवसाणमसंखलोगगुणिदमदो।
एत्तो अणंतगुणिदा कम्मपदेसा मुणेदव्वा ॥२६०॥

अनुभागानां बंधाध्यवसायोऽसंख्यलोकगुणितोऽतः। इतोऽनन्तगुणिताः कर्म्मप्रदेशा मन्तव्याः॥

स्युः ? इति त्रैराशिकेन एषां- $\equiv a \equiv a\,\frac{1}{2} \equiv a$ गु। $\overline{\text{गु}_{\text{३}}}$ $\overline{\text{प}_{\text{२}}}$ स्थितिविकल्पेभ्योऽसंख्यातलोकगुणि-

१- a

गु २

तत्वदर्शनात्। तेषां स्थितिबंधाध्यवसायानामनुकृष्टिविधानमस्त्यपि अत्राप्रस्तुतत्वान्नोक्तम्। अग्रे वक्ष्यति ॥२५९॥

सब स्थितिके भेदोंमें जघन्य स्थितिबन्धके कारण कषायाध्यवसाय स्थान सबसे थोड़े हैं। वे असंख्यात लोकमात्र हैं। 'पदहतमुखमादिधनं' अर्थात् आदिस्थानको गच्छसे गुणा करनेपर आदि धन होता है। एक अधिक गुणहानि आयामका भाग आदिमें देनेपर चयका प्रमाण होता है। आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्व द्रव्य होता है। सो प्रत्येक गुणहानिमें दूना-दूना होते-होते अन्तमें एक कम नानागुणहानि प्रमाण दूना होनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधे प्रमाणसे आदिको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वही अन्तकी गुणहानिका द्रव्य जानना। सो 'अंतधणं गुणगणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं' इस सूत्रके अनुसार अन्तमें जो प्रमाण हुआ उसको गुणाकार दोसे गुणा करके उसमें-से आदिका प्रमाण घटावे। उत्तरके प्रमाण दोमें एक घटानेपर एक रहा। उससे भाग देनेपर उतना ही रहा। इस तरह करनेपर जो प्रमाण रहा उसे सर्वगुणहानिका धन जानना। एक प्रकृतिके संख्यातपल्यप्रमाण स्थिति भेद और उनके इतने असंख्यातलोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हुए तो सर्व उत्तरोत्तर प्रकृति संग्रहके भेदोंके कितने स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हुए इस प्रकार त्रैराशिक करनेसे स्थितिके भेदोंसे असंख्यातलोक गुने होते हैं। इन स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंमें अधःप्रवृत्तकरणकी तरह अनुकृष्टि विधान होता है सो आगे कहेंगे। यहाँ मुख्य कथन न होने से नहीं कहा ॥२५९॥

इन सब स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंसे अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक गुने होते हैं। वही कहते हैं—

अतः तत्सर्व्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळं नोडलुमनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळुमसंख्यातलोकगुणितंगळप्पुवु । इतः पिवं नोडलुं कर्म्मप्रदेशंगळुमनंतगुणितंगळप्पुवें दितु मंतव्यंगळप्पुवल्लि-जघन्यस्थितिबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगे अनुभागबंधाध्यवसायंगळु असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकप्रमितंगळु द्रव्यमक्कु ≡a≡a मा जघन्यस्थितिबंधनिबंधनासंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगतस्थितिबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळु स्थितियें बुदक्कुं । ≡ a ५
नानागुणहानिशलाकेगळुमावल्यसंख्यातैकभागमक्कु २ मी नानागुणहानिशलाकेगळिंदं स्थितियं
a a
भागिसिदोडे गुणहान्यायाममक्कु ≡a मी गुणहान्यायाममं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कुं ≡a । २
२ २
a a a a
नानागुणहानिशलाकेगळगे द्विकमिनित्तु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलुमन्योन्याभ्यस्तराशियुमावल्यसंख्यातैकभागमेयक्कु । २ । मिन्तागुत्तं विरलु संकलितधनं तरल्पडुगुमदें तें दोडे जघन्यस्थिति-
a
बंधकारणस्थितिबंधाध्यवसायंगळ जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानदोळनुभागबंधाध्यवसायस्थान- १०
विकल्पगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळु स्तोकंगळिवु ≡a≡a मुखमें बुदक्कुं । पदहतमुखमादिधनमें दु मुखमं गुणहानियिंदं गुणिसिदोडादिधनमक्कुं । ≡a≡a गु । व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छः उत्तरधनमें दु गुणहानियोळों दु रूपं कळेदद्धिसि चयदिदं गुणिसि गुणहानियिंदं गुणिसिदोडे चयघनमक्कु ।

एभ्यः सर्वस्थितिबंधाध्यवसायस्थानेभ्यः अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यातलोकगुणितानि । तद्यथा—
जघन्यस्थितिबंधनिबंधनस्थितिबंधाध्यवसायसंबंध्यनुभागबन्धाध्यवसायाः असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकमात्राः। १५
द्रव्यं ≡ a ≡ a जघन्यस्थितिबंधाध्यवसाया असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगता अप्यसंख्यातलोकाः । स्थितिः
≡ a नानागुणहानिशलाकाः आवल्यसंख्यातैकभागः २ ताभिर्भक्तस्थितिगुणहान्यायामः ≡ a अयं द्विगु-
a a २
a a
णितो दोगुणहानिः ≡ a २ आवल्यसंख्यातैकभागोऽन्योन्याभ्यस्तराशिः २ । अत्र जघन्यस्थितिबंधाध्यव-
२ a
a a
सायस्थाने अनुभागबंधाध्यवसाया असंख्यातलोकाः सर्वतः स्तोकाः ≡ a ≡ a मुखमित्युच्यते । पदहतमुख-

---

जघन्य स्थितिबन्धके कारण जो कषायाध्यवसाय स्थान हैं उन सम्बन्धी अनुभागा- २०
ध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकसे असंख्यात लोकको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने हैं। वही यहाँ द्रव्य जानना। जघन्य स्थितिबन्धके कारण जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकवार षट्स्थान वृद्धिको लिये हुए हैं तथापि असंख्यात लोक मात्र ही हैं। उन्हें यहाँ स्थिति स्थान जानना। नानागुणहानि शलाका आवलीको दो बार असंख्यातसे भाग दें उतनी हैं। नानागुणहानिका भाग स्थिति स्थानमें देनेपर जो लब्ध आवे उतना एक गुण- २५
हानिका आयाम होता है। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि होती है। आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि है। यहाँ जघन्य स्थितिबन्धके कारण अध्यवसाय स्थानमें अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। वे सबसे थोड़े हैं। उनको मुख कहें।

$\overset{\frown}{\text{गु}} \equiv a \equiv 1$ गु मी चयधनमुमनादिधनमुमं कूडिदोडुभयधनमुं प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुमिदादि-
२ गु

धनमक्कु $\equiv a \equiv a$ गु $\overset{\frown}{\text{गु}}\ ३$ द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळ्‌ द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदं पोगि चरम-
$\overset{\frown}{\text{गु}}$ २

गुणहानियोळु रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकंगळु गुणकारंगळप्पुवरिंदमवनन्योन्याभ्यासं माडुत्तं विरलु लब्धमावल्यसंख्यातैकभागप्रमितमप्प अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्द्धं गुणकारमक्कु

५ $\equiv a \equiv a$ गु $\overset{\frown}{\text{गु}}\ ३$ २ मिदन्तधनमप्पुदरिंदमन्तधणं गुणगुणियं एंदु अन्तधनमं गुणकारदिंदं
२ a २
$\overset{\frown}{\text{गु}}$

गुणिसिदोडिदु $\equiv a \equiv a$ गु $\overset{\frown}{\text{गु}}\ ३$ २ २ अपवर्त्तितमिदु $\equiv a \equiv a$ $\overset{\frown}{\text{गु}}\ ३$ २ आदिविहीनमं दि-
$\overset{\frown}{\text{गु}}$ २ a २ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ २ a

---

मादिधनं $\equiv a \equiv a$ गु 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणोगच्छ उत्तरधनं'— $\overset{\frown}{\text{गु}}\ \overset{०}{\underset{१-}{}}$ $\equiv a \equiv a$ गु तयोर्योगः प्रथमगुण-
२ गु

हानिद्रव्यं $\equiv a \equiv$ गु । गु $\overset{१-}{३}$ प्रतिगुणहानि द्विगुणद्विगुणक्रमेण चरमगुणहानौ रूपोननानागुणहानिमात्रद्वि-
१-
गु

कगुणितमित्यन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धं गुणकारः स्यात् । $\equiv a \equiv a$ गु । $\overset{\frown}{\text{गु}}\ ३$ २ इदमंतधणं गुणगुणियं $\equiv a$
१- a २ १-
गु गु

---

१० 'पदहतमुखमादिधनं' अर्थात् पद-गुणहानि आयामसे मुखको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसे आदिधन जानना। 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'—एक हीन पद जो गुणहानि आयाम है, उसको आधा करें तथा चयसे गुणा करें, जो प्रमाण हो उसको पदसे गुणा करें। ऐसा करनेसे जो राशि आवे उसे चय धन जानो। आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। और आगे क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें दूना-
१५ दूना होता जाता है। एक हीन नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका आधा प्रमाण होता है। उससे प्रथम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर अन्तिम गुणहानिका सर्वद्रव्य होता है। तथा 'अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं', इस सूत्रके अनुसार अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणाकार दोसे गुणा करें। गुणा करनेसे जो आवे उसमें-से प्रथमगुणहानिका द्रव्य घटावें। तथा उत्तर दोमें-से
२० एक घटानेपर एक शेष रहा, उससे भाग देनेपर उतना ही रहा। ऐसा करनेसे जो प्रमाण

दरोळादियं कळेदोडे ≅ अ ≡ अ गु गु ३ २ ई राशि जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगनु-
अ

भागबंधाध्यवसायस्थानंगळप्पुविन्तु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमवेंतेंदोडे एकजघन्यस्थितिविकल्प-
क्कनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळिनितागुत्तं विरलिनितु स्थितिविकल्पंगळ्गेनितु अनुभाग-
बंधाध्यवसायस्थानंगळक्कुमेंदिन्तु त्रैराशिकं माडुत्तविरलु प्र १ प ≡ अ ≡ अ गु गु ३ । २
गु २ अ

इ ≡ अ ≡ अ २ प १ १ बंद लब्धं सर्व्वस्थितिविकल्पंगळगनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पं- ५
गळप्पुवु ≡ अ ≡ अ २ प १ १ ≡ अ ≡ अ गु गु ३ २ अदु कारणमागि सर्व्वस्थितिबंधाध्यव-
गु २ अ
सायस्थानविकल्पंगळं नोडलनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकगुणितंळेंदु परमा-

---

१— १—
≡ अ गु । गु ३ २ । २ अपवर्तितं ≡ अ ≡ अ गु । गु ३ २ आदिविहीणमिति ≡ अ ≡ अ गु ।
२ अ २ १— २ १—
गु अ गु

१— १—
गु ३ । २ जघन्यस्थितेः स्थितिबंधाध्यवसायानां अनुभागबंधाध्यवसायस्थानप्रमाणं स्यात् । एकस्थिति-
२ अ
विकल्पस्य अनुभागबंधाध्यवसायस्थानविकल्पा एतावंतः तदा एतावतां स्थितिविकल्पानां कति अनुभागबंधाध्य- १०
वसायस्थानानीति त्रैराशिकेन–प्र–१ फ– ≡ अ ≡ अ गु गु ३ २ इ – ≡ अ ≡ अ २ प १ १
१— २ अ
गु

लब्धानां एतावन्मात्रत्वात् ≡ अ ≡ अ २ प १ १ ≡ अ ≡ अ गु । गु ३ २ एभ्योऽनुभागबंधाध्य-
१— २ अ
गु

हुआ, उतना सब गुणहानियोंका द्रव्य हुआ । सो जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानसम्बन्धी अनुभागाध्यवसाय स्थानोंका इतना प्रमाण होता है । जो एक स्थिति भेदके अनुभागाध्यवसाय स्थानके भेद इतने हुए तो पूर्वोक्त सब स्थिति भेदोंके अनुभागाध्यवसाय स्थानके कितने भेद हुए । इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर लब्धराशिका जो प्रमाण होता है वह स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंसे असंख्यात गुणा होता है । १५

गमदोळ्पेळल्पट्टुदिन्नु कर्म्मप्रदेशंगळ प्रमाणमरियल्पडुगुमदें तेंदोडे मध्यमयोगाज्जितसमयप्रबद्धं द्रव्यमाबाधारहितकर्म्मस्थितिसंख्यातपल्यं स्थितिपल्यवर्ग्गशलाकार्द्धच्छेदराशिहीनपल्यार्द्धच्छेदराशिनानागुणहानिभाजितस्थितिगुणहानिद्विगुणितगुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानिप्रमितद्विकसंवर्ग्गसंजनितस्ववर्ग्गशलाकाभक्तपल्यमन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुमिवक्के यथाक्रमदिंदमंकसंदृष्टियुमर्थसंदृष्टियुमिदु :—

द्रव्य ६३००	स्थिति । ४८	नाना ६	गुणहानि ८	दोगुण १६	अन्योन्या ६४
स ०	प १	छे-व छे	प १ । २ छे व छे	प १ । २ छे-व छे	प व

अनंतरं त्रिकोणरचनास्वरूपिंदमिदं कर्म्मप्रदेशंगळ संकलितधनं तरल्पडुगुमा त्रिकोणरचनास्वरूपमें तेंदोडनादिबंधनबद्धगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळाबाधारहितोत्कृष्टकर्म्मस्थितिसप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितंगळु विवक्षितवर्त्तमानसमयदोळेकैकनिषेकाधिकक्रमदिंदं पोगि चरमसमयप्रबद्धदोळाबाधारहितोत्कृष्टकर्म्मस्थितिप्रमितनिषेकंगळप्पुवा समयप्रबद्धचरमगुणहानिचरमनिषेकं

१० वसायेभ्यः कर्मप्रदेशाः अनंतगुणाः तद्यथा—

अनादिबंधनबद्धगलितावशेषसमयप्रबद्धानां आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमिता, विवक्षितवर्तमानसमये एकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा चरमसमयप्रबद्धे आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिप्रमित-

इन अनुभागाध्यवसाय स्थानोंसे कर्मके प्रदेश अर्थात् कर्मपरमाणु अनन्त गुणे हैं। उसे ही अंक संदृष्टिसे दिखाते हैं—

१५ एक समयमें जितने परमाणु बँधते हैं उसे समयप्रबद्ध कहते हैं। उनका प्रमाण तेरसठ सौ ६३००। कर्मकी स्थितिका प्रमाण अड़तालीस समय सो स्थिति ४८। नानागुणहानि ६। एक-एक गुणहानिमें जितनी स्थिति हो वह गुणहानि आयाम आठ। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रख उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि चौंसठ। गुणहानि आयामको दूना करनेपर दो गुणहानिका प्रमाण सोलह। एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशि
२० त्रेसठका भाग सर्वद्रव्य तेरसठ सौ में देनेपर सौ आया। सो अन्तकी गुणहानिका प्रमाण है। उससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त होता है। सो आधा अन्योन्याभ्यस्त राशिसे अन्तिम गुणहानिके द्रव्यको गुणा करनेपर प्रथम गुणहानिका द्रव्य आता है। सो बत्तीससे सौको गुणा करनेपर बत्तीस सौ होते हैं यही प्रथम गुणहानिका द्रव्य है। इससे दूसरी आदि गुणहानियोंका द्रव्य आधा-आधा होता है—३२००। १६००। ८००। ४००। २००। १००।
२५ प्रथम गुणहानि सम्बन्धी द्रव्यको गुणहानि आयामसे भाग देनेपर मध्यधन होता है। सो बत्तीस सौमें आठसे भाग देनेपर चार सौ आये। यह मध्यधन है। एक हीन गुणहानि आयामके आधे प्रमाणको निषेक भागहाररूप दो गुणहानिमें-से घटानेपर जो प्रमाण रहे उसका भाग मध्यधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे सो चयका प्रमाण जानना। सो एक हीन गुणहानि आयाम सातका आधा साढ़े तीनको दो गुणहानि सोलहमें-से घटानेपर साढ़े बारह

३० १. ब °पमाणि, वि°।

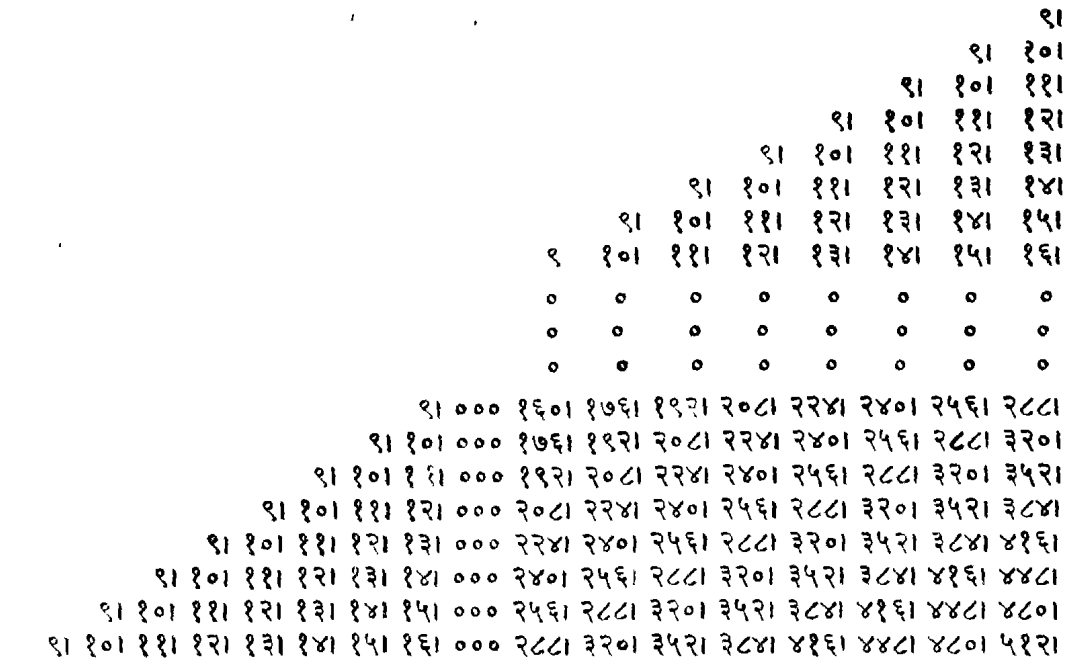
मोदल्गोंडधोधोनानागुणहानिगळोळु प्रथमगुणहानिप्रथमोदयनिषेकपर्य्यन्तमिळिदु तत्प्रथमनिषेकमादियागितिर्य्यक्संप्रतिकोटीकोटिसागरोपमाबाधारहितकर्म्मस्थिति प्रमितगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळोळेकैकनिषेकंगळुदयिसलुदयक्केकसमयप्रबद्धमक्कुमा त्रिकोणरचनासंदृष्टियिदु :—

								९।
							९।	१०।
						९।	१०।	११।
					९।	१०।	११।	१२।
				९।	१०।	११।	१२।	१३।
			९।	१०।	११।	१२।	१३।	१४।
		९।	१०।	११।	१२।	१३।	१४।	१५।
	९।	१०।	११।	१२।	१३।	१४।	१५।	१६।
	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०

०००	१४४।१६०।१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।	प्र
९। ०००	१६०।१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।	थ
९। १०। ०००	१७६।१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।	म
९। १०। ११। ०००	१९२।२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।	गु
९। १०। ११। १२। ०००	२०८।२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।३८४।	ण
९। १०। ११। १२। १३। ०००	२२४।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।	हा
९। १०। ११। १२। १३। १४। ०००	२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।	नि
९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। ०००	२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।	
९।१०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। ०००	२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।५१२।	

निषेका भवंति । तत्समयप्रबद्धचरमगुणहानिचरमनिषेकादारभ्याधोधो नानागुणहानिषु प्रथमगुणहानिप्रथमोदयनिषेकपर्यंतमवतीर्य तत्प्रथमनिषेकमादिं कृत्वा तिर्यगाबाधोनितोत्कृष्टस्थितिप्रमितगलितावशेषसमयप्रबद्धेष्वेकैकनिषेकेषु दीयमानेषु एकनिषेकसमयप्रबद्ध उदेति तत्त्रिकोणरचनासंदृष्टिः—

रहे। उसका भाग मध्यधन चार सौमें देनेपर बत्तीस आये। यही प्रथम गुणहानिमें चयका प्रमाण है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो सो आदिनिषेक जानना। सो बत्तीसको सोलहसे गुणा करनेपर पाँच सौ बारह प्रथम निषेक जानना। उसमें-से एक चय बत्तीस घटानेपर चार सौ अस्सी दूसरा निषेक हुआ। इसी प्रकार प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त घटाना। प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकमें-से प्रथम गुणहानि सम्बन्धी चय घटानेपर प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण होता है। वही द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक है। इसमें द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। प्रथम गुणहानिसे द्वितीय गुणहानिमें चयका तथा निषेकोंका प्रमाण आधा होता है। उसके अन्तिम निषेकमें-से द्वितीय गुणहानि सम्बन्धी एक चय घटानेपर तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक होता है। उसमें एक-एक चय घटानेपर द्वितीयादि निषेक होते हैं। यहाँ भी चय तथा निषेकोंका प्रमाण दूसरी गुणहानिसे आधा जानना। इसी तरह प्रत्येक गुणहानिमें आधा-आधा होता जाता है। गुणहानि यन्त्र इस प्रकार है—



गुणहानि क्रम	चय का प्रमाण	निषेकों का प्रमाण	सर्व द्रव्य का प्रमाण
		५१२	
		४८०	
प्रथम गुणहानि	३२	४४८	
		४१६	३२००
		३८४	
		३५२	
		३२०	
		२८८	
		२५६	
		२४०	
द्वितीय गुणहानि	१६	२२६	१६००
		२०८	
		१९२	
		१७६	
		१६०	
		१४४	
		१२८	
		१२०	
तीसरी गुणहानि	८	११२	८००
		१०४	
		९६	
		८८	
		८०	
		७२	

		↑	
		६४	
		६०	
चतुर्थ गुणहानि	४	५६	४००
		५२	
		४८	
		४४	
		४०	
		३६	
		३२	
		३०	
पंचम गुणहानि	२	२८	
		२६	२००
		२४	
		२२	
		२०	
		१८	
		१६	
		१५	
षष्ठम गुणहानि	१	१४	१००
		१३	
		१२	
		११	
		१०	
		९	

इसका आशय इस प्रकार है—

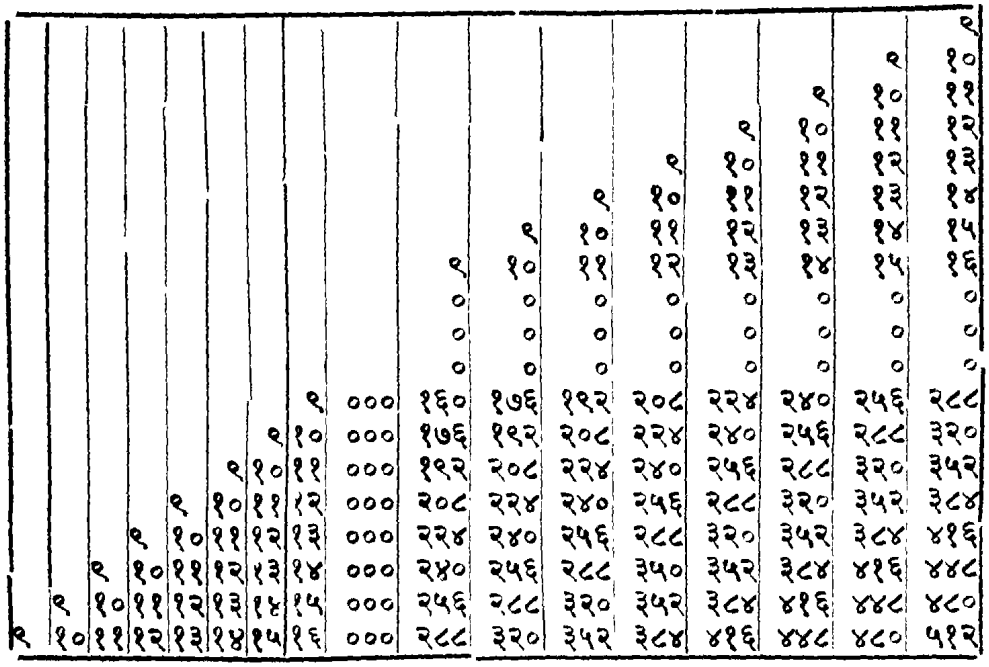
समयप्रबद्ध तिरसठ सौ कर्मवर्गणा बन्धरूप हुई। उनका आबाधाकाल रहित शुद्ध स्थिति अड़तालीस समय। पहले समयमें पाँच सौ बारह परमाणु खिरे। पीछे बत्तीस-बत्तीस घटते हुए खिरे। प्रथम गुणहानिके कालमें बत्तीस सौ परमाणु खिरे। द्वितीय गुणहानिके प्रथम समयमें दो सौ छप्पन खिरे। पीछे सोलह-सोलह घटते हुए खिरे। इस तरह द्वितीय गुणहानिमें सर्व परमाणु सोलह सौ खिरे। इस प्रकार प्रत्येक गुणहानिमें आधे-आधे खिरे। इस तरह सब गुणहानियोंमें त्रेसठ सौ परमाणु खिरते हैं। इसी प्रकारसे यथार्थ रूपमें भी जानना। यहाँ मोहनीय कर्म की अपेक्षा दिखाते हैं—

मोहनीय कर्मके परमाणु एक समयप्रबद्धमें जितने बँधते हैं उतना द्रव्यका प्रमाण जानना। मोहनीय कर्मकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर। उसमें-से आबाधा काल घटाने-पर जो प्रमाण रहे उसमें जितने समय हों उतनी स्थिति जानना। पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से घटानेपर जो शेष रहे उतना नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण है। इसका भाग उक्त स्थितिमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। उसको दूना करनेपर दो गुणहानि आयाम होता है। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण होता है। सो ऊपर अंकसंदृष्टिमें जैसा कहा है तदनुसार करते हुए गुणहानियोंमें और निषेकोंमें जितना द्रव्यका प्रमाण आवे सो जानना। सो आबाधाकाल बीतनेपर प्रथम समयमें तो प्रथम गुण-हानिके प्रथम निषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण हो, उतने परमाणु खिरते हैं। दूसरे समयमें दूसरे निषेकमें जितना द्रव्यका प्रमाण है उतने परमाणु खिरते हैं।

इस प्रकार एक गुणहानिके जितने समय होते हैं उतने समयोंमें प्रथम गुणहानिका जितना द्रव्य होता है उतने परमाणु खिरते हैं। इसी क्रमसे प्रत्येक गुणहानिमें आधे-आधे खिरते हैं। सर्वगुणहानियोंमें सम्पूर्ण समयप्रबद्ध इस क्रमसे खिर जाता है। इस प्रकार जो समयप्रबद्ध बँधता है उसकी निर्जरा होनेका यह विधान है। तथा प्रतिसमय एक समय-प्रबद्ध नवीन बँधता है। जीव और कर्मका सम्बन्ध अनादि होनेसे पूर्वोक्त प्रकारसे प्रति-समय बन्ध और निर्जरा होते हुए भी जीवके कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध सदा सत्तामें रहता है। अर्थात् गुणहानि आयामके प्रमाणको ड्योढ़ा करनेपर जो प्रमाण हो उसमें कुछ प्रमाण कम करके उससे समयप्रबद्धके प्रमाणको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे उतने कर्म परमाणुओंकी सत्ता जीवके सदा रहती है।

प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका बन्ध और एक-एक समयप्रबद्धका उदय होते रहते डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धकी सत्ता कैसे रहती है और कैसे एक समयप्रबद्धका उदय होता है, इस बातको अंक संदृष्टिके द्वारा त्रिकोण रचना करके दिखाते हैं—

इस रचनामें नीचेकी पंक्तिमें नौ आदि आठ निषेक लिखे हैं। बीचके बत्तीस निषेक न लिखकर बिन्दीके चिह्न दिये हैं फिर दो सौ अठासी आदि निषेक लिखे हैं। इसी प्रकार ऊपरकी पंक्तियोंके बीचमें भी बिन्दियोंके चिह्नसे बीचके निषेक जानना। आठ पंक्तियोंके ऊपर बिन्दीके चिह्नों द्वारा बत्तीस पंक्तियाँ एक-एक निषेक घटते हुए जानना। जीवकाण्डके योगमार्गणा अधिकारमें यह त्रिकोण रचना सम्पूर्ण दी गयी है। यहाँ संक्षेपमें लिखनेके कारण बीचमें बिन्दियोंके चिह्न दिये हैं।



इस त्रिकोण रचनाका अभिप्राय इस प्रकार है—त्रेसठ सौ परमाणु प्रमाण जो समयप्रबद्ध बँधा, आबाधाकाल छोड़कर वह अड़तालीस समयकी स्थितिमें क्रमसे इस प्रकार खिरता है—५१२।४८०।४४८।४१६।३८४।३५२।३२०।२८८। यह प्रथम गुणहानि हुई। २५६।२४०। २२४।२०८।१९२।१७६।१६०।१४४। यह दूसरी गुणहानि हुई। १२८।१२०।११२।१०४।९६।८८।८०। ७२। यह तीसरी गुणहानि हुई। ६४।६०।५६।५२।४८।४४।४०।३६। यह चतुर्थ गुणहानि हुई। ३२।३०।२८।२६।२४।२२।२०।१८। यह पंचम गुणहानि हुई। १६।१५।१४।१३।१२।११।१०।९। यह षष्ठम गुणहानि हुई। इन छहों गुणहानियोंमें त्रेसठ सौ परमाणु इस प्रकार खिरते हैं। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक अड़तालीस समय हो गये, उससे लगाकर इससे पहले जितने समयप्रबद्ध बँधे थे उनसे तो कोई प्रयोजन नहीं रहा, क्योंकि उनका कोई भी निषेक सत्तामें नहीं रहा। सब उदयमें आकर खिर गये। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक सैंतालीस समय हुए हैं उसके सैंतालीस निषेक तो खिर गये। एक अन्तका निषेक रहा। सो त्रिकोण रचनामें नौ परमाणु रूप अन्तका निषेक ऊपर लिखा है। उसके नीचे जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक छियालीस समय हुए उसके छियालीस निषेक तो खिर गये दो निषेक सत्तामें रहे। सो त्रिकोण रचनामें नौ और दस परमाणुके दो निषेक लिखे। उसके नीचे जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक पैंतालीस समय हुए उसके पैंतालीस निषेक खिर गये तीन निषेक सत्तामें रहे। सो त्रिकोण रचनामें नौ, दस और ग्यारह परमाणुके तीन निषेक लिखे। इसी प्रकार जिस-जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए एक-एक समय कम हुआ है उसके एक-एक घटते हुए समयप्रबद्ध तो खिर गये, शेष एक-एक अधिक निषेक सत्तामें रहे। उनको नीचे-नीचे लिखा। जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा अधिक एक समय हुआ हो उसका एक निषेक तो खिर गया शेष सैंतालीस निषेक रहे। वे नौ से लगाकर चार सौ अस्सी परमाणुके निषेक पर्यन्त लिखे हैं। उसके

ई त्रिकोणरचनेय चरमगुणहानिधनं तरल्पडुगुमवें तेंदोडे चरमनिषेकमों दु ९ अनंतराधस्तन द्विचरमनिषेकंगळेरडु ९ । १० । तदनंतराधस्तन त्रिचरमनिषेकंगळ् मूरु ९ । १० । ११ । इंतेकैकनिषेकंगळ द्विकंगळधिकंगळागुत्तं पोगि चरमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्ध प्रतिबद्धनिषेकंगळ् गुणहानिप्रमितंगळप्पुवु । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । यिंतिरुत्तं विरलु चरमनिषेकसमानमप्पंतु अधस्तनाधस्तननिषेकंगळोळिर्द्द चरमगुणहानिचयंगळं तेगदु तेगदु तंतम्म सदृशनिषेकसंख्येगळ पाश्वंदोळु स्थापिसुत्तं विरलु चरमगुणहानियोळु सदृशनिषेकंगळ् गच्छप्रमितंगळागुत्तं पोपुवु । तत्तच्चयंगळ्गं रूपोनगच्छसंकलनप्रमितंगळागुत्तं पोपुवप्पुदरिंदं द्विकवारसंकलनक्रमंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

एकवार द्विकवार

=		=
९	१	०
९	२	१ । १
९	३	१ । ३
९	४	१ । ६
९	५	१ । १०
९	६	१ । १५
९	७	१ । २१
९	८	१ । २८

अस्याश्चरमगुणहानौ चरमनिषेकः एकः ९ । अस्याधस्तनौ द्विचरमनिषेकौ द्वौ ९ । १० । त्रिचरमास्त्रयः ९ । १० । ११ । एवमेकैकाधिकक्रमेण तत्प्रथमनिषेके नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धा गुणहानिमात्राः स्युः ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । अत्र चरमनिषेकसमानं यथाभवति तथा अधस्तनाधस्तननिषेकस्थितचरमगुणहानिचयान् पृथक्कृत्य स्वस्वसदृशनिषेकसंख्यापार्श्वे स्थापितेषु सदृशधनिकानि गच्छप्रमितानि

नीचे अन्तमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए अबाधाकाल ही हुआ है और एक भी निषेक नहीं खिरा, उसके नौ से लगाकर पाँच सौ बारह पर्यन्त सब अड़तालीस निषेक सत्तामें हैं वे लिखे हैं। इस तरह त्रिकोण रचनामें गलनेके बाद जो शेष निषेक रहे वे क्रमसे लिखे हैं। इस सब त्रिकोण रचनाका जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो उतनी सत्ता जीवके सदा रहती है। इसके जोड़नेका विधान इस प्रकार जानना—

ऊपर जो त्रिकोण रचना दी है उसकी चरमगुणहानिमें चरम निषेक एक ९ है। उसके नीचे द्विचरम निषेक दो हैं ९।१०। इसी तरह त्रिचरम निषेक तीन है ९।१०।११। इस प्रकार एक-एक अधिकके क्रमसे प्रथम निषेकमें नाना समय प्रबद्धोंसे प्रतिबद्ध निषेक गुणहानि प्रमाण होते हैं ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६। यहाँ जोड़नेके लिये सबको चरमनिषेक ९ के समान करनेके लिए नीचे-नीचेके निषेकोंमें स्थित अन्तिम गुणहानिके चयोंको पृथक् करके उन्हें अपनी-अपनी समान निषेक संख्या के पासमें स्थापित करो।

ई येरडुं पंक्तिगळं संकलिसिदोडे यथाक्रमदिंदमिन्तिप्पुंवु ८।८। ८ १।८।८। ८
२ ६
उभयधनयुतियिनितक्कुं ८।८।८।४।१ अनंतरं द्विचरमगुणहानिद्रव्यं तरल्पडुगुमदें तेंदोडे
६
द्विचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्ध प्रतिबद्धनिषेकंगळु चरमगुणहानिप्रथमनिषेक नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळनितुं तच्चरमनिषेकद्विगुणप्रमितमोदु निषेकमुमधिकमक्कुं।
५ ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८। तदनंतराधस्तननिषेकदोळु तावन्मात्रंगळुं द्विचरमगुणहानिविशेषाधिकतच्चरमनिषेकमोंदधिकमक्कुं। ९। १०। ११। १२। १३।१४। १५।१६। १८। २०। इंतु पूर्व्वपूर्व्वमं नोडलेकैकद्विचरमगुणहानिविशेषयुतमेकैकनिषेकाधिक क्रमदिंदं पोगि द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळि-

---

चयाश्च रूपोनगच्छसंकलनमात्रतया द्विकवारसंकलनक्रमा भवंति–

९ १	०
९ २	१ १
९ ३	१ ३
९ ४	१ ६
९ ५	१ १०
९ ६	१ १५
९ ७	१ २२
९ ८	१ २८

अस्मिन् पंक्तिद्वये संकलिते

१– १– ०– १– १– २–
१० एवं ८।८।८ १। ८।८।८ उभयधनयुतावेवं ८।८।८ ४ तथा द्विगुणहानौ चरमे नानासमय-
२ ६ ६
प्रबद्धप्रतिबद्धाः चरमगुणहानिप्रथमनिषेका द्विगुणतच्चरमनिषेकाधिकाः ९।१०।११।१२।१३।१४। १५। १६। १८। तदनंतराधस्तनैतावंतोऽपि द्विचरमगुणहानिविशेषाधिकैकैकनिषेकाधिकाः स्युः ९।१०। ११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०। एवमेकैकद्विचरमगुणहानिविशेषाधिकैकैकनिषेकाधिकक्रमेण

अतः अन्तिम गुणहानिका अन्तिम निषेक ९ लिखकर उसके आगे एक से एक अधिक
१५ लिखो। दूसरीमें अन्तमें शून्य लिखो। पीछे संकलन रूप प्रमाण लिखो—

९×१	०
९×२	१×१
९×३	१×३
९×४	१×६
९×५	१×१०
९×६	१×१५
९+७	१×२१
९×८	१×२८

२० नौको एकसे गुणा करने पर पहला जोड़ नौ हुआ।
नौ दूना अठारह और एक एकम एक। दोनों मिल उन्नीस हुए।
सो ९+१० मिलकर उन्नीस होते हैं २।
नौ ती सत्ताईस और एक तिया तीन। दोनों मिल तीस हुए
सो ९+१०+११ मिलकर तीस होते हैं।

इसी प्रकार सबसे अन्तमें नौ अट्ठे बहत्तर और अठाईस इकम अठाईस। दोनों मिलकर सौ हुए। सो अन्तिम गुणहानिके सब निषेकोंका जोड़ सौ होता है।

नितप्पुवु। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। यिंतिरुत्तिद्दं त्रिकोणरचनाद्विचरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकंगळोळु सर्व्वोत्कृष्टनिषेकमिदु। १८॥

ई निषेकमादियागि तत्सदृशनिषेकंगळप्पन्तु तदधस्तनाधस्तननिषेकंगळोळिरुतिद्दं विशेषंगळं मुन्निनंते तेगतेगवु तंतम्म सदृशनिषेकंगळ पार्श्वदोळु पृथक् पृथक् स्थापिसुत्तं विरलु मुन्निनंते सदृशनिषेकंगळु गच्छमात्रंगळागुत्तं पोपुवु। तद्द्विचरमगुणहानिविशेषंगळुं रूपोनगच्छसंकलनप्रमितंगळप्पुवप्पुदरिंदं द्विकवारसंकलनाक्रममागि द्विचरमगुणहानिद्विचरमनिषेकं मोदल्गोंडु प्रथमनिषेकपर्य्यन्तं पोगि यिंती तेरदिनिरुत्तिप्पुंवु।

९।२	१	०	०
९।२	२	२	१
९।२	३	२	३
९।२	४	२	६
९।२	५	२	१०
९।२	६	२	१५
९।२	७	२	२१
९।२	८	२	२८

गत्वा द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेके नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धाः गच्छमात्राः स्युः। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। अत्र द्विचरमगुणहानौ चरमे नानासमयप्रबद्धप्रतिबद्धनिषेकेषु उत्कृष्टोऽयं। १८। इदमादिं कृत्वा तत्सदृशा निषेका यथा भवंति तथा तदधस्तनाधस्तननिषेकस्थितिविशेषान् प्राग्वदपनीयापनीय स्वस्वसदृशनिषेकपार्श्वे स्थापितेषु प्राग्वत् सदृशधनिका गच्छमात्रक्रमेण विशेषा रूपोनगच्छसंकलनमात्रक्रमेण द्विकवारसंकलनक्रमा भूत्वा द्विचरमगुणहानिप्रथमनिषेकपर्यंतं गत्वा इत्थं तिष्ठंति—

९	२	१	०
९	२	२	१
९	२	३	३
९	२	४	६
९	२	५	१०
९	२	६	१५
९	२	७	२१
९	२	८	२८

द्वितीयादि गुणहानिमें भी प्रथम गुणहानिका सर्वद्रव्य तो पूर्ववत् जानना किन्तु दोनों पंक्तियोंमें पहलेसे दूना-दूना प्रमाण जानना। यथा—

९×२×१	०
९×२×२	२×१
९×२×३	२×३
९×२×४	२×६
९×२×५	२×१०
९×२×६	२×१५
९×२×७	२×२१
९×२×८	२×२८

नौ दूना अठारह और अठारह एकम अठारह। यह पहला निषेक हुआ। नौ दूना अठारह। अठारह दूना छत्तीस और दो एकम दो। दोनों मिलकर अड़तीस हुए। सो १८+२० मिलकर अड़तीस होते हैं। इसी तरह अन्तमें नौ दूना अठारह। अठारह अड्डे एक सौ चवालीस। और अठाईस दूना छप्पन। दोनों मिलकर दो सौ हुए। यही दूसरी गुणहानिके सब निषेकोंका जोड़ होता है।

९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। अनन्तराधस्तननिषेकंगळोळेकैकचयोत्तरेकैकसमयप्रबद्धैकैकनिषेकाधिकक्रमदिंद पोगि त्रिकोणरचनासर्वाधस्तनप्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु आबाधारहितोत्कृष्टकर्म्मस्थितिमात्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितनानासमयप्रबद्धगळितावशेषयथास्थितनिषेकंगळेतावन्मात्रंगळप्पुवु। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०। ५१२। मिन्तिरुत्तं विरलुमी त्रिकोणरचनाप्रथमगुणहानिधनं तरल्पडुगुमदें तेंदोडे चरमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धनिषेकव्यक्तिगळोळु सर्व्वोत्कृष्टनिषेकं अन्योन्यभ्यस्तराश्यर्द्धगुणितचरमगुणहानि चरमनिषेकप्रमितमक्कुं। ९। ३२। तत्सदृशमप्पंतु तदधस्तननिषेकंगळोळिरुतिर्द्द प्रथमगुण-

---

इयत् ३००। ८। कुतः? सर्वत्र गुणहान्यायामे ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। एतावतां निषेकाणां सद्भावात्। एवं चतुश्चरमादिगुणहानिषु आद्युत्तरधनानि अधोधो द्विगुणद्विगुणक्रमाणि अपि उत्तरधनानि उपरितनगुणहान्युत्तरधनाधिकानि भूत्वा सर्वाधस्तनप्रथमगुणहानिचरमनिषेके नानासमयप्रबद्धनिषेका एतावंतः ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। २८८। अनंतराधस्तननिषेकेषु एकैकचयोत्तरैकसमयप्रबद्धैकैकनिषेकाधिकक्रमेण गत्वा त्रिकोणरचनासर्वाधस्तनप्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके आबाधारहितोत्कृष्टकर्मस्थितिमात्रासप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमितनानासमयप्रबद्धगलितावशेषनिषेका एतावंतः। ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४।

त्रिचरम गुणहानिके विशेषोंको उसमें-से निकालकर पृथक् स्थापित करनेपर यह स्थिति हुई—

९×४×१	०
९×४×२	४×१
९×४×३	४×३
९×४×४	४×६
९×४×५	४×१०
९×४×६	४×१५
९×४×७	४×२१
९×४×८	४×२८

यहाँ उत्तरधन तीन सौ है। जैसे नौ चौका छत्तीसमें तीन सौ जोड़नेपर तीन सौ छत्तीस तृतीय गुणहानिकी प्रथम पंक्तिका जोड़ होता है। तीन सौ उत्तरधन होनेका कारण यह है कि सर्वत्र गुणहानि आयाममें ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।

हानिचयंगळं तेगतेगदु पृथक्स्थापिसुत्तं विरलु—

९	३२	१	०	
९	३२	२	३२	१
९	३२	३	३२	३
९	३२	४	३२	६
९	३२	५	३२	१०
९	३२	६	३२	१५
९	३२	७	३२	२१
९	३२	८	३२	२८

मिन्तिरुत्तिर्प्पुविवं संकलिसुत्तं विरलुभयराशिगळितिर्प्पुवु: ८।८।८।३२ ८।८।०

८।३२ मीयुभयधनयुति इनितक्कु ८।८।४।३२ मिल्लियुत्तरधनमुमिनितक्कु।३१००।८।

मेंतें दोडे सर्व्वत्र प्रथमगुणहान्यायामदोळिनितिनितु निषेकंगळु ९।१०।११।१२।१३।१४।
१५।१६।१८।२०।२२।२४।२६।२८।३०।३२।३६।४०।४४।४८।५२।५६। ५
६०।६४।७२।८०।८८।९६।१०४।११२।१२०।१२८। १४४।१६०।१७६।१९२।

२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४। ४१६। ४४८।४८०।५१२। एवं सति तत्त्रिकोण-
रचनाधनमानीयते—

अथ प्रथमगुणहानौ चरमनिषेके नानासमयप्रबद्धनिषेकव्यक्तिषु सर्वोत्कृष्टचरमनिषेकः अन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिचरमनिषेकप्रमितः। ९।३२। तत्सदृशा यथाभवंति[1] तथा तदधस्तननिषेकस्थितिप्रथम- १०
गुणहानिचयानपनीयापनीय पृथक्स्थापितेषु एवं तिष्ठंति।

९	३२	१	०
९	३२	२	३२ । १
९	३२	३	३२ । ३
९	३२	४	३२ । ६
९	३२	५	३२ । १०
९	३२	६	३२ । १५
९	३२	७	३२ । २१
९	३२	८	३२ । २८

एतेषु संकलितेषु उभयराशी एवं ८।८।८।३२ | ८।८।८।३२। उभययुतिः ८।८।८।४।
२ ६ ६
३२ अत्रोत्तरधनं तु। एतावत् ३१००।८ कुतः? सर्वत्र प्रथमगुणहान्यायामे एतावतामेतावतां निषेकाणां—

३२। इतने निषेक पाये जाते हैं और इन सबका जोड़ तीन सौ है। इसी प्रकार चतुश्चरमादि १५
गुणहानियोंमें आदिधन और उत्तरधन नीचे-नीचे क्रमसे दुगुने-दुगुने होते जाते हैं। किन्तु

---

१. ब यथा संभवति।

२०८। २२४। २४०। २५६। वोळवप्पुदरिंदं। इन्तुक्तसर्व्वगुणहानिगळ धनंगळुमुत्तरधनंगळुमितिक्कुं—

$\frac{-\quad २}{८\,।\,८\,।\,८\,।\,४\,।\,१\quad ६}$	०
$\frac{-\quad २}{८\,।\,८\,।\,८\,।\,४\,।\,२\quad ६}$	१००।८
$\frac{-\quad २}{८\,।\,८\,।\,८\,।\,४\,।\,४\quad ६}$	३००।८
$\frac{-\quad २}{८\,।\,८\,।\,८\,।\,४\,।\,८\quad ६}$	७००।८
$\frac{-\quad २}{८\,।\,८\,।\,८\,।\,४\,।\,१६\quad ६}$	१५००।८
$\frac{-\quad २}{८\,।\,८\,।\,८\,।\,४\,।\,३२\quad ६}$	३१००।८

९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२८। १४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। सद्भावात्। तानि सर्वगुणहान्याद्युत्तरधनानि इमानि—

	२–	०
१– ६	८।४।१	१०० । ८
८ । ८	२–	३०० । ८
१– ६	८।४।२	७०० । ८
८ । ८	२–	१५०० । ८
१– ६	८।४।४	३१०० । ८
८ । ८	२–	
१– ६	८।४।८	
८ । ८	२–	
१– ६	८।४।१६	
८ । ८	२–	
१– ६	८।४।३२	
८ । ८		
६		

उत्तरधनमें ऊपरकी गुणहानियोंको उत्तरधन अधिक-अधिक होता जाता है।

मी धनं संकलिसल्पडुगुमदें तें दोडे प्रथमपंक्तियं अन्तधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तर-

२

भजियमें दु गुणसंकलितधनमं तंदोडिनितक्कु ८।८।८।४।६।३ मुत्तरधनमं संकलिसुवडे

६

ऋणमनिक्किदल्लदे संकलिसल्बारदप्पुदरिंदं द्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमित १००।८। मं सर्व्वत्र-नानागुणहानिगळोळु गुणहानिप्रतिथिविक संकलिसिदोडुत्तरधनमिनितक्कुं। ६३००।८। ऋणंगळुं नानागुणहानिमात्रद्विचरमगुणहान्युत्तरधनप्रमितमक्कु। १००।८।६। मिन्तुक्त मूरुं राशिगळु ५

२

यथाक्रमदिंदमिन्तिप्पुंवु। ८।८।८।४।६३।६।३००।८।१००।८।६। ई मूरुं राशिगळं

६

समयप्रबद्धदिंदं प्रमाणिसिदोडिन्तिरुत्तिप्पुंवु। संदृष्टि :—

० आदि	उत्तर	ऋण
८।८।८।४	६।३।६३००८	१००।८।६
६३००।६	६३००।	६३००।
१ २		
स ० ८।८।८।४	स ०।८	स ०।८।६
१०० ६		६३

इल्लियपवर्त्तित शतषट्कविधानदिंदिदर्ई

१०

१–

इदं संकलयति–अत्र प्रथमपंक्तौ अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादिना संकलितायां आदिधनमेतावत् ८।८

२–

८।४।६३ द्वितीयपंक्तौ सर्वत्र द्विचरमगुणहान्युत्तरधनमितं १००।८। ऋणं प्रक्षिप्य संकलितायामुत्तर-

६

धनमियत्। ६३००।८। तानि ऋणानि एतावंति १००।८।६। उक्तराशयः त्रयः क्रमेण अमी—

१– २–		
८८।८४।६३	उत्तरधनं	तदूणं
६	६३००।८	१००८।६
आदिधनं		

समयप्रबद्धेन प्रमाणिता एवं—

१– २–		
८८।८।४।६३	६३००८	१००।८।६
६३००।६	६३००	६३००
१– २–	स ० ८	स ० ८।६
स ० ८८।८।४		६३
१०० ६		

इस प्रकार अन्तिम गुणहानि पर्यन्त दोनों पंक्तियोंमें दूना-दूना प्रमाण रखकर तथा उन दोनों पंक्तियोंके एक-एक स्थानका प्रमाण मिलानेपर तथा पहले हुई गुणहानियोंका सर्व-द्रव्य मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना-उतना त्रिकोण रचनामें पंक्तियोंका जोड़ होता है। यह जोड़ इस प्रकार जानना। १५

९।१९।३०।४२।५५।६९।८४।१००।११८।१३८।१६०।१८४।२१०।२३८।२६८। ३००। ३३६। ३७६।

प्रथमधनमिदु स ८।८।८।४ अधिकरूपं पार्श्वदोळु स्थापितमिदु स ८।८।८।४ स ८।८।४।१

उभयत्रोपरिस्थितद्विरूपं स्वस्वाधः स्थापिसि

८।८।४	८४१
स ८।२	स ८।२

प्रथमद्विकमं केळगेयुं मेगेयुं त्रिगुणिसियल्लि नाल्कु रूपंकोंडु मेलिक्कियपर्वत्तितमिदु ८।४ विशेषमिदनु स ८।८।२ परितनपार्श्वदोळु स ८।८।४ यिदरोळु कूडल्पडुगुमन्तु कूडुत्तविरलु इनि-

---

५ अत्र शतषट्कविधानेन अपवर्तितं प्रथमधनमिदं—स ८ ८४। अधिकरूपं पार्श्वे स्थाप्यं

स ८।८।८।४।	स ८ ८ ४ उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः स्थाप्यं—

स ८।८।४	स ८।४।१
स ८।२	स ८।२

प्रथमद्विकं स ८।२ अध उपर्यपि त्रिभिः संगुण्य रूपषट्के रूपचतुष्टयं स्वीकृत्य स्वोपरितनराशौ

४२०।४६८।५२०।५७६।६३६।७००।७७२।८५२।९४०। १०३६। ११४०। १२५२। १३७२। १५००। १६४४। १८०४।१९८०।२१७२।२३८०।२६०४।२८४४।३१००। ३३८८। ३७०८। ४०६०। ४४४४। ४८६०। ५३०८। ५७८८।६३००।

१० विशेषार्थ—त्रिकोण रचनामें अड़तालीस पंक्तियाँ हैं उन सबका जोड़ ऊपर दिया है। पहली पंक्तिमें प्रथम गुणहानिका अन्तिम निषेक नौ है उसका जोड़ नौ है। दूसरी पंक्तिमें

---

१. ब उपर्यधः त्रि ।

तक्कुमिदरोळु स अ । ८ । १४ द्वितीयद्विकमनिद स अ । २ नोंभत्तरिंदं केळगेयुं मेगेयुं गुणिसि-
८।३ ३।३ ८।३।३

यदरोळु पदिनाल्कुरूपुगळं कोंडु कूडुत्तं विरलु इनितक्कु स अ । ८।३ । १४ मिदनपवर्त्तिसिदोडिदु ।
८।३ २१

स अ । १४ मत्तं पदिनाल्कु रूपं कळेदुळिद ८।३ । ३ । ३ । शेषमिदु स अ ४ यिदनेकरूपा-
२१
गु ३ २१

संख्येयभागमं । अ । तंदु भागहारदोळेकरूपहीनत्वमनवगणिसि पदिनाल्कुरूपुगळनिष्पत्तेळरोळप- ५

वर्त्तिसिदोडेकरूपार्द्धमक्कु । २ मिदरोळु साधिकमं माडि २ दिदं । ऋणमिदु ८ । ६ व तु-
००
६३

स अ ८ । ८ । ४ त्रिभिः समच्छिन्ने स अ ८ । ८ । ३ । ४ निक्षिप्य स अ ८ । ८ । ३ । ४ अपवर्तिते एवं
१— १— १— १—
८ । ३ । ३ ८ ३ । ३ । ३ १— ८ ३ । ३ । ३
स अ । ८ । ४ शेषमिदं स अ ८ । २ उपरितनपार्श्वे स अ ८ ४ निक्षिप्तं तदिदं स अ ८ १४ द्वितीयद्विकात्
१— १— १—
३ । ३ ८ ३ । ३ । ३ ८ ३ ३ ८ ३ ३ ३
१—
स अ २ उपर्यधो नवगुणितात् स अ १८ तद्गृहीतचतुर्दशरूपैर्युतं स अ । ८ । ३ । १४ अपवर्तितं स अ १४
१— १— १—
८ । ३ । ३ ८ । ३ । ४ । ९ ८ ३ २७ २७
पुनर्भागहारे एकरूपहीनत्वमवगणय्य चतुर्दशभिरपवर्तितमेकरूपार्धं स्यात् स अ । १ इदं चतुर्दशरूपापनीतशेषेण १०

नौ और दस है उसका जोड़ उन्नीस है। उसमें ग्यारह जोड़नेपर तीसरी पंक्तिका जोड़ तीस होता है। उसमें बारह जोड़नेपर चौथी पंक्तिका जोड़ बयालीस होता है। इस तरह पूर्व-पूर्वकी पंक्तिके जोड़में आगे-आगेका एक-एक निषेक जोड़नेसे आगे-आगेकी पंक्तिका जोड़ आता जाता है। अन्तिम पंक्तिमें सब अड़तालीस निषेक होनेसे उसका जोड़ त्रेसठ सौ है।

इन सब पंक्तियोंके जोड़ोंको जोड़नेपर त्रिकोण रचनाका जोड़ होता है। यह जोड़ १५
इकहत्तर हजार तीन सौ चार ७१३०४ होता है। सो यह सब जोड़ किंचित् न्यून डेढ गुण-हानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण जानना। गुणहानि आयामका प्रमाण आठ है। उसको ड्योढ़ा करनेपर बारह हुए। उसे त्रेसठ सौसे गुणा करनेपर पचहत्तर हजार छह सौ हुए। किन्तु यहाँ इकहत्तर हजार तीन सौ चार ही है। इससे गुणकारमें किंचित् न्यून कहा है।

जैसे अंक संदृष्टिमें कहा है वैसे ही अर्थ संदृष्टि द्वारा भी जानना। कन्नड़ तथा २०
तदनुसारी संस्कृत टीकामें अर्थसंदृष्टि और अंकसंदृष्टि द्वारा जोड़नेका विधान विस्तारसे कहा है। उससे समझ लेना चाहिए।

रूपोंदवमिन्तुटक्कु प १। छे व छे — अपवर्त्तितसिद्धोडेसंख्यातपल्यवर्गशलाकाप्रमित-
छे व छे। प
व
भक्कु। व १। मिदरोळु किंचिदूनं माडि। व १–। प्रथमधन मिदरोळु स अ। ८। ४ गुणहान्यष्टा-
९
दशैकभागमं ऋणमनिक्कि स अ। ८। ९ अपवर्त्तिसि गुणहान्यर्द्धमं तंदु उत्तरधनदोळेकगुण-
१८
हानियोळु कूडुत्तं विरलु द्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुववरोळु किंचिदूनपल्यासंख्यातवर्ग-
शलाकाराशियं साधिकं माडिद गुणहान्यष्टादशैकभागमात्रद्वितीयऋणदोळु साधिकं माडि स अ ८।१
१८
किंचिदूनमं माडिदोडे जीवप्रदेशंगळोळु सर्व्वदा सत्वरूपदिनिर्द्द कर्म्मप्रदेशंगळु किंचिदून द्वयर्द्ध-
गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळु सर्व्वस्थित्यनुभागबंधाध्यवसायस्थानंगळं नोडलुमनंतगुणितंगळेंदरि-

---

स अ। ४ एकरूपासंख्यातैकभागेन स अ। १ साधिकीकृत्य स अ १ ऋणेऽस्मिन् स अ। ८। ६ वस्तुत
१— अ ६३
८। ३ २७ २
ईदृशे स अ प १ अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकामात्रे स अ व १ अपनयेत् स अ / १ –। प्रथमधने स अ ८ ४
९
छे व छे प
अ
छे व छे
गुणहान्यष्टादशैकभागं स अ। ८। १ ऋणं निक्षिप्य स अ। ८। ९ अपवर्त्य उत्तरधने एकगुणहानौ निक्षिप्ते
१८ १८
द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धाः स्युः। एते किंचिदूनपल्यसंख्यातवर्गशलाकाधिकगुणहान्यष्टादशैकभागद्वितीयऋणेन
।
स अ ८। १ किंचिदूनिता एकजीवप्रदेशेषु सर्वदा सत्त्वस्थितकर्मप्रदेशाः किंचिन्न्यूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमय-
१८

इस प्रकार किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्मोंकी सत्ता जीवके सदा पायी जाती है। सो गुणहानि आयामके समयोंके प्रमाणको ज्योंका करके उसमें-
१५ से पल्यकी संख्यात वर्गशलाका प्रमाण अधिक गुणहानि आयामका अठारहवाँ भाग घटाकर जो शेष रहे उससे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने कर्म परमाणु जीवके सदा रहते हैं। इसीसे सब स्थिति सम्बन्धी अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्म प्रदेश अनन्तगुणे हैं।

जैसे प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध बँधता है। उसी प्रकार एक समयप्रबद्ध प्रतिसमय
२० उदयरूप होकर खिरता है, सो एक समयमें एक समयप्रबद्धका खिरना कैसे होता है, यह कहते हैं—

वर्तमान विवक्षित समयमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा काल ही पूरा हुआ हो और एक भी निषेक न खिरा हो उसका तो पाँच सौ बारह रूप प्रथम निषेकका ही उदय होता है। शेष निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे।

यल्पडुवर्वेंदु पेळल्पट्टुदु । यितु प्रदेशबंधं सांगमागि पेळल्पट्टुदनंतरं चतुर्विधबंधमं पेळदु प्रकृत्युदयप्रकरणमं पेळलुपक्रमिसि प्रथमदोळु गुणस्थानदोळु पेळल्वेडि केलवुप्रकृतिगळ्गे उदयनियमगुणस्थानंगळं पेळदपरु :—

आहारं तु पमत्ते तित्थं केवलिणि मिस्सयं मिस्से ।
सम्मं वेदगसम्मे मिच्छदुगयदेव आणुदओ ॥२६१॥

आहारस्तु प्रमत्ते तीर्थं केवलिनि मिश्रकं मिश्रे । सम्यक्त्वं वेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृग्द्वयासंयतेष्वेवानुपूर्व्योदयः ॥

तु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नचतुर्विधबंधस्वरूपनिरूपणानंतरं मत्ते प्रमत्ते प्रमत्तसंयतनोळु आहारः आहारकशरीरतदंगोपांगनामकर्म्मद्वयोदयमक्कुं । केवलिनि केवलिगळोळे तीर्त्थं तीर्त्थंकरनामकर्म्मोदयमक्कुं । मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोळे मिश्रं मिश्रकर्म्मोदयमक्कुं ।

प्रबद्धमात्राः स a १२ —सर्वस्थित्यनुभागबंधाध्यवसायस्थानेभ्योऽनंतगुणा इति ज्ञातव्यं ॥ २६० ॥ एवं प्रदेशबंधं प्ररूप्य इदानीमुदयप्रकरणमुपक्रमते—

तु पुनः चतुर्विधबंधनिरूपणानंतरं गुणस्थानेषु उदयनियममाह—आहारकशरीरतदंगोपांगोदयः प्रमत्त-

जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधाकाल पूरा होकर एक समय हुआ हो और जिसका एक निषेक पहले खिर गया हो उसका चार सौ अस्सी रूप दूसरा निषेक वर्तमान समयमें उदयमें आता है । शेष छियालीस निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे । जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधा काल और दो समय हुए हों तथा दो निषेक पूर्वमें खिर चुके हों उसका चार सौ अड़तालीस रूप तीसरा निषेक वर्तमान समयमें खिरता है । शेष पैंतालीस निषेक आगामीमें क्रमसे खिरेंगे । इसी तरह क्रमानुसार जिस-जिस समयप्रबद्धका बन्ध पहले-पहले हुआ है उसका पिछला-पिछला निषेक वर्तमान कालमें उदय आता है । शेष निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आते हैं । अन्तमें जिस समयप्रबद्धका बन्ध हुए आबाधाकाल और सैंतालीस समय हुए हों तथा जिसके सैंतालीस निषेक पूर्वमें उदयमें आ चुके हों उसका अन्तिम निषेक नौ वर्तमानमें उदयमें आता है । उसका कोई निषेक शेष नहीं रहा । उससे पहले जो समयप्रबद्ध बँधे थे उनके सर्वनिषेक इसी क्रमसे पूर्वमें खिर चुके । अतः उनसे कोई प्रयोजन नहीं रहा । इस प्रकार वर्तमान विवक्षित एक समयमें पाँच सौ बारहसे लेकर नौ तक सब निषेक एक समयमें उदयमें आते हैं । ये सब मिलकर एक समयप्रबद्ध होता है । इस प्रकार एक-एक समयमें समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु खिरते हैं और एक समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु नवीन बँधते हैं । तथा किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध सत्तामें रहते हैं । जैसे अंकसंदृष्टि द्वारा कथन किया है वैसे ही अर्थसंदृष्टि द्वारा जानना । इसीसे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंसे कर्म परमाणु अनन्तगुणे कहे हैं ॥२६०॥ प्रदेशबन्धके साथ बन्धका निरूपण समाप्त होता है ।

आगे उदयका निरूपण करते हैं—

चार प्रकार बन्धका कथन करनेके अनन्तर गुणस्थानोंमें उदयका नियम कहते हैं—

आहारक शरीर और आहारक अंगोपांगका उदय प्रमत्त गुणस्थानमें ही होता है ।

वेदकसम्यग्दृष्टौ वेदकसम्यग्दृष्टियोळु, वेदकसम्यग्दृष्टिसामान्यग्रहणदिंदमसंयतादि नाल्कुं गुणस्थानंगळगे ग्रहणमक्कुं। सम्यक्त्वसहचरितत्वदिंदं। सम्यक्त्वप्रकृतिगं सम्यक्त्वव्यपदेशमक्कुमदु कारणमागि असंयतादिनाल्कुं गुणस्थानदोळे सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमक्कुं।

मिथ्यादृग्द्वयासंयतेष्वेव मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि येंब मूरुं गुणस्थानंगळोळे आनुपूर्व्योदयः आनुपूर्व्यनामकर्म्मोदयमक्कुमो प्रकृतिगळ्गी गुणस्थानंगळोळल्लन्यत्र गुणस्थानांतरंगळोळुदयमिल्लेंबी नियममरियल्पडुगु-।

मनंतरं मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिगळेंबी मूरुं गुणस्थानंगळोळे आनुपूर्व्योदयमेंब नियममप्पुदरिंदं सासादनसम्यग्दृष्टियोळु नारकानुपूर्व्याद्यानुपूर्व्य चतुष्कोदयप्रसंगमादोडे विशेषमं सासादनंगे पेळ्दपरु :—

णिरयं सासाणसम्मो ण गच्छदित्ति य ण तस्स णिरयाणू।
मिच्छादिसु सेसुदओ सगसगचरिमोत्ति णायव्वो ॥२६२॥

नरकं सासादनसम्यग्दृष्टिर्न्नं गच्छतीति च न तस्य नारकानुपूर्व्यं। मिथ्यादृष्ट्यादिषु शेषोदयः स्वस्वचरमपर्य्यन्तं ज्ञातव्यः ॥

नरकं नरकगतियं सासादनसम्यग्दृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिजीवं न गच्छतीति च पुगनेंदितु न तस्य नरकानुपूर्व्यं सासादननोळानरकानुपूर्व्यनामकर्म्मोदयमिल्लमदक्के नियममी सूत्रमेयक्कुमुळिदंतेल्ला प्रकृतिगळ्गुदयं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानंगळोळु स्वस्वचरमपर्य्यंतं तंतम्मुदयगुणस्थानंगळ चरमपर्य्यन्तं ज्ञातव्यः ज्ञातव्यमक्कुं ॥

संयते एव। तीर्थोदयः केवलिन्येव। मिश्रप्रकृत्युदयः सम्यग्मिथ्यादृष्टावेव। सम्यक्त्वप्रकृत्युदयः वेदकसम्यग्दृष्टावेव असंयतादिचतुर्गुणस्थानेषु। आनुपूर्व्योदयः मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेष्वेव अन्यत्र तेषामुदयाभावात् ॥२६१॥ आनुपूर्व्योदयं पुनर्विशेषयति—

नरकगतिं सासादनसम्यग्दृष्टिर्न गच्छति इति हेतोः तस्य सासादनस्य नारकानुपूर्व्योदयो नास्ति। शेषसर्वप्रकृत्युदयः मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु स्वस्वोदयस्थाने चरमसमयपर्यंतं ज्ञातव्यं ॥ २६२ ॥

तीर्थंकर प्रकृतिका उदय सयोगकेवली और अयोगकेवलीके ही होता है। मिश्र मोहनीयका उदय सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है। सम्यक्त्व मोहनीयका उदय असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें वेदक सम्यग्दृष्टीके ही होता है। आनुपूर्वीका उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थानोंमें ही होता है अन्य गुणस्थानोंमें इनका उदय नहीं होता ॥२६१॥

आनुपूर्वीके उदयके विषयमें विशेष नियम कहते हैं—

सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरकगतिको नहीं जाता, इस कारणसे सासादन सम्यग्दृष्टिके नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता। शेष सब प्रकृतियोंका उदय मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें अपने-अपने उदय स्थानके अन्तिम समय पर्यन्त जानना चाहिए ॥२६२॥

विशेषार्थ—इस उदय प्रकरणमें भी व्युच्छित्ति, उदय, अनुदय तीन प्रकारसे कथन किया है। जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही हो उन प्रकृतियोंका उस गुणस्थानके अन्त तक उदय जानना और उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें उनका अनुदय-

अनंतरं मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पक्षांतरोक्तक्रममनंगीकरिसि पेळ्दपरु :—

दसचउरिगि सत्तरसं अट्ठय तह पंच चेव चउरो य ।
छच्छक्कएक्कदुगदुगं चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविही ॥२६२॥

दश चतुरेक सप्तदशाष्ट च तथा पंच चैव चत्वारः । षट् षडेक द्विद्वि चतुर्दशैकान्नत्रिंशत्त्रयोदशोदयविधिः ॥

अभेदविवक्षेयिनुदय प्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरड १२२ प्पुववरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु दश पत्तु १० चतुः सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु नाल्कु ४ । मिश्रगुणस्थानदोळु एक ओंदु १ । असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु सप्तदश पविनेळु १७ । देशसंयतगुणस्थानदोळु अष्ट च एंटु ८ । प्रमत्तगुणस्थानदोळु पंच अय्दु ५ । अप्रमत्तगुणस्थानदोळु चत्वारः नाल्कु ४ । अपूर्वकरणस्थानदोळु षट् आरु ६ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु एक ओंदु १ । उपशांतकषायगुणस्थानदोळु द्वि एरडु २ । क्षीणकषायगुणस्थानदोळु द्वि चतुर्दश एरडुं २ । पविनाल्कु १४ । सयोगि केवलियोळु

अथ गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिं पक्षांतरक्रमेणाह—

अभेदविवक्षया उदयप्रकृतिषु द्वाविंशत्युत्तरशते उदयविधिः उदयव्युच्छित्तिः उक्तगुणस्थानादुपर्युदयाभावः । स मिथ्यादृष्टौ दश । सासादने चतस्रः । अस्मिन् पक्षे एकेंद्रियस्थावरद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियनामकर्मणां मिथ्यादृष्टावेव उदयच्छेदकथनात् । मिश्रे एका, असंयते सप्तदश, देशसंयतेऽष्टौ, प्रमत्ते पंच, अप्रमत्ते चतस्रः, अपूर्वकरणे षट्, अनिवृत्तिकरणे षट्, सूक्ष्मसांपराये एका, उपशांतकषाये द्वे, क्षीणकषाये द्वे चतुर्दश च,

---

उदयका अभाव जानना। तथा जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका उदय और जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही हो उस गुणस्थानकी उदय प्रकृतियोंमें-से उसी गुणस्थानमें व्युच्छिन्न हुई प्रकृतियोंका प्रमाण जानना। इसमें इतना विशेष है कि यदि कोई प्रकृति ऊपरके गुणस्थानमें उदयमें आनेवाली है और विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय नहीं है तो उसे उदयमें-से घटा देना चाहिए। और यदि पहले गुणस्थानमें जिसका उदय न था और विवक्षित गुणस्थानमें उसका उदय हो तो उसे उदयमें मिला देना चाहिए। यह तो हुई उदयकी बात। जितनी प्रकृतियोंका मूलमें उदय कहा हो उनमें-से विवक्षित गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंका उदय कहा हो, उनसे शेष जो प्रकृति रहें उनका उस विवक्षित गुणस्थानमें अनुदय जानना इस प्रकार व्युच्छित्ति, उदय और अनुदयका स्वरूप जानना ॥२६२॥

आगे गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति पक्षान्तर अर्थात् यतिवृषभाचार्यके मतानुसार कहते हैं—

अभेद विवक्षासे उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस हैं। उनके उदयकी अवधिको उदय-व्युच्छित्ति कहते हैं। अर्थात् जिस गुणस्थानमें जितनी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति कही है, उनका उदय उसी गुणस्थान पर्यन्त होता है उससे ऊपर उनका उदय नहीं होता।

सो मिथ्यादृष्टिमें दसकी और सासादनमें चारकी व्युच्छिति जानना। क्योंकि इनके मतानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, और चौइन्द्रिय नामकर्मकी उदय-व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें कही है।

एकान्नत्रिंशत् ओंदुगुंदे मूवत्तु २९। अयोगिकेवलियोळु त्रयोदश पदिमूरु १३। मिन्तु प्रकृतिगळुदयविधानमवक्कु-। मितुक्तप्रकृतिगळोळ तत्तद्गुणस्थानचरमदोळुदयव्युच्छित्तियेंबुदर्त्थमी पक्षदोळु एकेंद्रियजाति नामकर्म्ममुं स्थावरनामकर्म्ममुं द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजातिनामकर्म्मंगळुमेंबी प्रकृतिपंचकोदयं सासादनसम्यग्दृष्टियोळिल्लेकेंदोडे आप्रकृतिगलुदयव्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टियोळक्कुमप्पुदरिंदं। उपरितनगुणस्थानेषूदयाभाव उदयव्युच्छित्तिरिति उपरितनगुणस्थानदोळुदयाभावमक्कुमप्पोडा प्रकृतिगळ्गे केळगणगुणस्थानदोळुदयक्के विद्यमानत्वंदमुदयव्युच्छित्तिगळेंब व्यपदेशमक्कुं। सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळेकान्नत्रिंशत्प्रकृतिगलुदयव्युच्छित्तियेंतेंदोडो पक्षदोळु नानाजीवापेक्षेयिंदं सदसद्वेद्यंगळुदय सद्भावदिंदमों देक्कं व्युच्छित्तियिल्लप्पुदरिंद मो दुगुंदे मूवत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमदु कारणमागि अयोगिकेवलियोळु येकतरोदयमागुत्तं विरलु तत्पक्षदोळु पदिमूरु प्रकृतिगळुदय मक्कुमितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळु नूरपदिनेळु ११७। अनुदय प्रकृतिगळु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंबी अय्दुं प्रकृतिगळप्पुवु ५। सासादनसम्यग्दृष्टियोळु नरकानुपूर्व्व्यसहितमागि पन्नों दु प्रकृतिगळ्कूडिदनुदय प्रकृतिगळु पदिनारप्पुवु १६। उदयप्रकृतिगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळु शेषानुपूर्व्व्यत्रितयमुमनंतानुबंधिचतुष्कं गूडिदेळं प्रकृतिगळु सहितमागि अनुदयप्रकृतिगळिप्पत्त मूरप्पुववरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं तेगेदुदयदोळु कूडिदोडनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदय प्रकृतिगळु नूरु १००। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियं तेगदनुदयंगळोळु कूडिदोडिप्पत्तमूरवरोळु सम्यक्त्वप्रकृति युमनानुपूर्व्व्यचतुष्टयमुमं तेगेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडे अनुदयंगळु पदिनेंदु १८। उदय-

---

सयोगकेवलिन्येकान्नत्रिंशत् कुतः सदसद्वेद्योदययोर्नानाजीवापेक्षया एकस्यापि व्युच्छित्त्यभावात्। अयोगकेवलिनि त्रयोदश। एवं सति मिथ्यादृष्टावुदयः सप्तदशोत्तरशतं। अनुदयः तीर्थाहारकद्वयमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतयः पंच। सासादने नारकानुपूर्व्यं न इत्येकादश मिलित्वा अनुदयः षोडश, उदयः षडुत्तरशतं। मिश्रेऽनुदयः

आगे मिश्रमें एक, असंयतमें सतरह, देशसंयतमें आठ, प्रमत्तमें पाँच, अप्रमत्तमें चार, अपूर्वकरणमें छह, अनिवृत्तिकरणमें छह, सूक्ष्म साम्परायमें एक, उपशान्त कषायमें दो, क्षीण कषायमें दो और चौदह, तथा सयोग केवलीमें उनतीस प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है। क्योंकि सयोग केवलीमें नाना जीवोंकी अपेक्षासे सातावेदनीय और असातावेदनीयमेंसे एककी भी व्युच्छित्ति नहीं होती। अयोगकेवलीमें तेरहकी व्युच्छित्ति होती है।

१. इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदय एक सौ सतरह। तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयका उदय न होनेसे अनुदय पाँचका।

२. सासादनमें उदय एक सौ छह। क्योंकि मिथ्यात्वमें इसकी व्युच्छित्ति हुई और नरकानुपूर्वीका उदय न होनेसे ५ + १० + १ = सोलहका अनुदय।

३. मिश्रमें उदय सौ का। यहाँ आनुपूर्वीका उदय नहीं होता। तथा मिश्रमोहनीयका उदय होता है। अतः सासादनमें अनुदय सोलह और उदय व्युच्छित्ति चार तथा तीन आनुपूर्वीका अनुदय, सब मिलकर १६ + ४ + ३ = २३ हुई। उनमेंसे मिश्रमोहनीय उदयमें आयी। अतः शेष बाईसका अनुदय रहा।

प्रकृतिगळु नूर नाल्कु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुं प्रकृतिगळ्कूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तय्दु ३५। उदयप्रकृतिगळ् एण्भत्तएळु ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु येंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्वितयमं तेगेदुदयंगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तो ंदु ४१। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तो ंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तारु ४६। उदयप्रकृतिगळु एप्पत्तारु ७६। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तु ५०। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तारु ५६। उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२। उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळेकप्रकृतिगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तमूरु ६३। उदयप्रकृतिगळय्वत्तो ंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५। उदयप्रकृतिगळय्वत्तेळु ५७। सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तो ंदवरोळु तीर्त्थंकरनामकर्म्ममं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळेण्भत्त ८०। उदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळो ंदु गुंदे मूवत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नूरो ंभत्तु १०९। उदयप्रकृतिगळु पदिमूरु १३॥ यितुक्तोदयव्युच्छित्त्युदयानुदयप्रकृतिगळगे मिथ्यादृष्टयादि चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंदं संदृष्टिः—

शेषानुपूर्व्यत्रयेण अनंतानुबंधिचतुष्कं मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदयाद्द्वाविंशतिः। उदयः शतं। असंयतेऽनुदयः मिश्रप्रकृतिर्मिलित्वा सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयादष्टादश। उदयश्चतुरुत्तरशतं। देशसंयते सप्तदश मिलित्वा अनुदयः पंचत्रिंशत्। उदयः सप्ताशीतिः। प्रमत्तेऽष्टौ मिलित्वाऽनुदयः आहारकद्वयोदयादेकचत्वारिंशत्। उदय एकाशीतिः। अप्रमत्ते पंच मिलित्वा अनुदयः षट्चत्वारिंशत्। उदयः षट्सप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदयः पंचाशत्। उदयो द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षण्मिलित्वा अनुदयः षट्पंचाशत्। उदय षट्षष्टिः।

---

४. असंयतमें एक सौ चारका उदय है क्योंकि यहाँ चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व मोहनीयका उदय है अतः ये चार उदयमें आ गयी और मिश्रमोहनीयकी मिश्रमें ही व्युच्छित्ति हो गयी। अतः अनुदयमें अठारह रहीं। २२+१=२३-५=१८।

५. देशसंयतमें उदय सतासीका। क्योंकि असंयतमें १८ का अनुदय था और सत्तरहकी व्युच्छित्ति हुई। अतः दोनों मिलकर १७+१८=३५ पैंतीसका अनुदय रहा।

६. प्रमत्तमें उदय इक्यासीका और अनुदय इकतालीस; क्योंकि देशसंयतमें पैंतीसका अनुदय और आठकी व्युच्छित्ति हुई तथा यहाँ आहारकद्विका उदय है अतः ३५+८=४३-२=४१ रहीं।

७. अप्रमत्तमें उदय छिहत्तर और अनुदय छियालीस, क्योंकि प्रमत्तमें अनुदय इकतालीसका और व्युच्छित्ति पाँच की। दोनों मिलकर छियालीस हुई।

८. अपूर्वकरणमें उदय बहत्तर और अनुदय पचास का, क्योंकि अप्रमत्तमें अनुदय छियालीस और व्युच्छित्ति चार मिलकर पचास हुई।

९. अनिवृत्तिकरणमें उदय छियासठ और अनुदय छप्पन; क्योंकि अपूर्वकरणमें छहकी व्युच्छित्ति हुई।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
ध्रु	१०	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	२९	१३
उ	११७	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१३
अ	५	१६	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	१०९

उदयप्रकृतिगळ्गुदीरणेयुटप्पुदरिंदमुदीरणारचनेयोळु प्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतमुदयव्युच्छित्ति-उदयानुदयप्रकृतिगळ्गमुदीरणाव्युच्छित्त्युदीरणानुदीरणाप्रकृतिगळ्गं विशेषमिल्ल । प्रमत्तगुणस्थानदोळे मनुष्यायुष्यसदसद्वेद्यंगळेंब मूरुं प्रकृतिगळ्गुदीरणेयुंटु । अदु कारणमागियप्रमत्तगुणस्थानदोळेप्पत्तरुमुदीरणाप्रकृतिगळोळा मूरुं प्रकृतिगळं कळेदनुदीरणाप्रकृतिगळोळ्कूडिदोडनुदीरणाप्रकृतिगळु नाल्वत्तों भत्तु ४९ । उदीरणाप्रकृतिगळेप्पत्तमूरु ७३ । अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदीरणा प्रकृतिगळ्वत्तमूरु ५३ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९ । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळ्वत्तों भत्तु ५९ । उदीरणाप्रकृतिगळु अरुवत्तमूरु ६३ । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु आरुगूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तैदु ६५ । उदीरणाप्रकृति-

सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयो द्वाषष्टिः उदयः षष्टिः । उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिषष्टिः । उदयः एकान्नषष्टिः । क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचषष्टिः उदयः सप्तपंचाशत् । सयोगकेवलिनि षोडश संयोज्य अनुदयः तीर्थकरत्वोदयादशीतिः उदयः द्वाचत्वारिंशत् । अयोगकेवलिनि एकान्नत्रिंशन्मिलित्वा अनुदयः नवोत्तरशतं । उदयः त्रयोदश ।

उदीरणारचनायां तु प्रमत्तगुणस्थानपर्यंतं उदयानुदयव्युच्छित्तय एव उदीरणानुदीरणाव्युच्छित्तयः किंतु मनुष्यायुःसदसद्वेद्यानां उदीरणा प्रमत्ते एवास्ति तेन अप्रमतेऽनुदीरणा एकान्नपंचाशत्, उदीरणा त्रिसप्ततिः । अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदीरणा त्रिपंचाशत्, उदीरणा एकोनसप्तति अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदीरणा एकोनषष्टिः । उदीरणा त्रिषष्टिः । सूक्ष्मसाम्पराये षट् संयोज्य अनुदीरणा पंचषष्टिः,

१०. सूक्ष्म साम्परायमें उदय साठका क्योंकि अनिवृत्तिकरणमें छहकी व्युच्छित्ति हुई। अतः अनुदय बासठका।

११. उपशान्त कषायमें उदय उनसठ और अनुदय तिरसठ, क्योंकि सूक्ष्म साम्परायमें एककी व्युच्छित्ति हुई।

१२. क्षीण कषायमें उदय सत्तावन और अनुदय पैंसठ;, क्योंकि उपशान्त कषायमें दो की व्युच्छित्ति हुई।

१३. सयोगीमें उदय बयालीस, अनुदय अस्सी; क्योंकि क्षीणकषायमें सोलहकी व्युच्छित्ति हुई और एक तीर्थंकर प्रकृति उदयमें आ गयी। अतः ६५ + १६ = ८१ - १ = ८० रहीं।

१४. अयोग केवलीमें उदय तेरह, अनुदय एक सौ नौ; क्योंकि सयोगीमें उनतीसकी व्युच्छित्ति हुई अतः ८७ + २९ = १०९ हुई।

उदीरणाकी रचनामें प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त तो उदय, अनुदय और व्युच्छित्तिके समान ही उदीरणा, अनुदीरणा और उदीरणा व्युच्छित्ति जानना। किन्तु मनुष्यायु, सातावेदनीय, असातावेदनीयकी उदीरणा प्रमत्तमें ही होती है। अतः अप्रमत्तमें अनुदीरणा उनचासकी और उदीरणा तिहत्तरकी जानना। यहाँ चारकी व्युच्छित्ति होनेसे अपूर्वकरणमें उदीरणा उनहत्तर की और अनुदीरणा तिरपन। यहाँ छह की व्युच्छित्ति होनेसे अनिवृत्तिकरणमें

गळय्वत्तेळु ५७। उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदुगूडिदरुवत्तारुं प्रकृतिगळनुदीरणाप्रकृतिगळु ६६। उदीरणाप्रकृतिगळय्वत्तारु ५६। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु येरडु गूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळरुत्तेंदु ६८। उदीरणाप्रकृतिगळय्वत्तनाल्कु ५४। सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदीरणाप्रकृतिगळु एण्भत्तनाल्कु ८४। अवरोळु तीर्त्थमोंदं कळेदुदीरणा प्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदीरणाप्रकृतिगळेण्भत्तमूरु ८३। उदीरणाप्रकृतिगळु ओंदुगुंदे नाल्वत्तु ३९। अयोगिगुणस्थानदोळु ओंदु गुंदे नाल्वत्तु प्रकृतिगळकूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२। उदीरणाप्रकृतिगळिल्ल। यिंतुक्तोदीरणा त्रिभंगिसंदृष्टि :—

०।०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उक्षी	स	अ
व्युच्छि	१०	४	१	१७	८	८	४	६	६	१	२ १६	३९	०
उदी	११७	१०६	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६ ५४	३९	०
अनु	५	१६	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६ ६८	८३	१२२

अनंतरं भूतबल्याचार्य्यपक्षदोळुदयप्रकृतिगळगे मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु दयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

पण णवइगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव ।
इगि दुग सोलस तीसं वारस उदये अजोगंता ॥२६४॥

पंच नवैक सप्तदशाष्ट पंच च चतुः षट् षडेवैक द्वि षोडश त्रिंशद्वादशोदयेऽयोग्यंताः ॥

उदीरणा सप्तपंचाशत्। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदीरणा षट्षष्टिः, उदीरणा षट्पंचाशत्। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदीरणा अष्टषष्टिः, उदीरणा चतुःपंचाशत्। सयोगकेवलिनि षोडश संयोज्य अनुदीरणा तीर्थकृत्त्वोदीरणात् त्र्यशीतिः, उदीरणा एकान्नचत्वारिंशत्। अयोगिनि एकान्नचत्वारिंशतं संयोज्य अनुदीरणा द्वाविंशत्युत्तरशतं। उदीरणा नहि ॥ २६३ ॥ अथ भूतबल्याचार्यादिप्रवाह्योपदेशेनाह—

उदीरणा तरेसठ, अनुदीरणा उनसठ। यहाँ छहकी व्युच्छित्ति होनेसे सूक्ष्म साम्परायमें उदीरणा सत्तावन, अनुदीरणा पैंसठ। यहाँ एककी व्युच्छित्ति होनेसे उपशान्त कषायमें उदीरणा छप्पन, अनुदीरणा छियासठ। यहाँ दोकी व्युच्छिति होनेसे क्षीणकषायमें उदीरणा चौवन, अनुदीरणा अड़सठ। यहाँ सोलहकी व्युच्छित्ति होनेसे और सयोगकेवलीमें तीर्थंकरके उदयमें आनेसे उदीरणा उनतालीस और अनुदीरणा तिरासी।

सयोगकेवलीमें उनतालीसकी व्युच्छित्ति होनेसे अयोगकेवलीमें उदीरणा नहीं है। केवल अनुदीरणा ही होती है उसकी संख्या एक सौ बाईस है ॥२६३॥

अब आचार्य भूतबलीके उपदेशानुसार उदय व्युच्छित्ति कहते हैं—

उदये स्वभावाभिव्यक्तिरुदयस्तस्मिन् स्वकार्य्यमं माडिकर्म्मरूपपरित्यागमुदयमें बुदक्कुमंतप्प कर्म्मोदयदोळु भूतबल्याचार्य्यविप्रवाह्योपदेशदोळु मिथ्यादृष्याद्ययोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यन्तमुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळुमय्दु-। मो भत्तु-। मो दु। पदिनेळु-। मे दु। मय्दुं। नाल्कु-। मारु-। मारु-। मो दु-। मेरडुं। पदिनारुं। मूवत्तुं। पन्नेरडुं यथाक्रमविंदमप्पुवावुवेदोडे दु गाथासूत्रंगळिवं पेळ्दपरु :—

मिच्छे मिच्छादावं सुहुमतियं सासणे अणेइंदी ।
थावरवियलं मिस्से मिस्सं च य उदयवोच्छिण्णा ॥२६५॥

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वातापं सूक्ष्मत्रयं सासादनेनंतानुबंध्येकेंद्रियं स्थावरविकलं मिश्रे मिश्रं च चोदयव्युच्छिन्नाः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वमातपनामकर्म्ममुं सूक्ष्मनामकर्म्ममुमपर्य्याप्तनामकर्म्ममुं साधारणनामकर्म्ममुमें बी अय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ५॥ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयमुमेकेंद्रियजातिनामकर्म्ममुं स्थावरनामकर्म्ममुं स्थावरनामकर्म्ममुं द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिनामकर्म्मंगळुमितो भत्तुप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ९॥

मिश्रगुणस्थानदोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियों दुदयव्युच्छित्तियक्कुं । १ ॥

स्वभावाभिव्यक्तिः उदयः, स्वकार्यं कृत्वा कर्मरूपपरित्यागो वा । तस्मिन् अंता व्युच्छित्तयः गुणस्थानेषु क्रमशः पंच नव एका सप्तदश अष्टौ पंच चतस्रः षट् षट् एका द्वे षोडश त्रिंशत् द्वादश स्युः ॥ २६४ ॥ ताः काः ? इति चेदष्टगाथासूत्रैराह—

मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने मिथ्यात्वमातपः सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं चेति पंच प्रकृतयः उदयतो व्युच्छिन्ना भवंति । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियं स्थावरं द्वींद्रियं त्रींद्रियं चतुरिंद्रियं चेति नव । मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वमित्येका ॥ २६५ ॥

अपने अनुभागरूप स्वभावकी अभिव्यक्तिको उदय कहते हैं। अपना कार्य करके कर्मरूपताको छोड़नेका नाम उदय है। और उदयके अन्तको उदय व्युच्छित्ति कहते हैं। अर्थात् जिस गुणस्थानमें जिस प्रकृतिकी उदय व्युच्छित्ति कही है उसके ऊपर उसका उदय नहीं होता। वह उदय व्युच्छित्ति गुणस्थानोंमें क्रमसे पांच, नौ, एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और बारह प्रकृतियोंकी होती है ॥२६४॥

आगे अठारह गाथाओंके द्वारा उन प्रकृतियोंको कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये पाँच प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति, ये नौ प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। मिश्रमें एक सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति उदयसे व्युच्छिन्न होती है ॥२६५॥

विशेषार्थ—पूर्वपक्षानुसार मिथ्यात्वमें दसकी और सासादनमें चारकी उदय व्युच्छित्ति कही थी। यहाँ मिथ्यात्वमें पाँचकी और सासादनमें नौकी व्युच्छित्ति कही है। पूर्वपक्षानुसार एकेन्द्रिय, स्थावर, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियका उदय मिथ्यादृष्टिके

अयदे बिदियकसाया वेगुव्वियछक्क णिरयदेवाऊ ।
मणुवतिरियाणुपुव्वी दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥२६६॥

असंयते द्वितीयकषायवैक्रियिकषट् नरकदेवायुः । मानवतिर्य्यगानुपूर्व्यं दुर्भगानादेयाऽयशः ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषायंगळुं वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगद्वयमुं नरकगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयमुं, देवगतितत्प्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं दुर्भगनाममुमनादेयनाममुमयशस्कीर्त्तिनाममुमेंब पदिनेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु १७ ।

देसे तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीच तिरियगदी ।
छट्ठे आहारदुगं थीणतियं उदयवोच्छिण्णा ॥२६७॥

देशसंयते तृतीयकषायास्तिर्य्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्रतिर्य्यग्गति षष्ठे आहारद्विकं स्त्यानगृद्धित्रयमुदयव्युच्छिन्नाः ॥

देशसंयतगुणस्थानदोळु प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभकषायंगळुं तिर्य्यगायुष्यमुद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतियुमेंबेंटुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ८ । षष्ठगुणस्थानवर्त्तिप्रमत्तसंयतनोळु आहारकशरीरतदंगोपांगद्वयमुं स्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलात्रयमुमितप्पत्तुं प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु ।५॥

अप्रमत्ते सम्मत्तं अंतिमतियसंहदी अपुव्वम्मि ।
छच्चेव णोकसाया अणियट्टीभागभागेसु ॥२६८॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमत्रयसंहननमपूर्व्वे । षट् चैव नोकषायानिवृत्तेर्भागभागेषु ॥

असंयते प्रत्याख्यानावरणचतुष्के वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगनरकदेवगतितदानुपूर्व्याणि नरकदेवायुषी मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये दुर्भगमनादेयमयशस्कीर्तिश्चेति सप्तदश ॥ २६६ ॥

देशसंयते प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं तिर्यगायुरुद्योतौ नीचैर्गोत्रं तिर्यगायुश्चेत्यष्टौ । षष्ठगुणस्थाने आहारकशरीरतदंगोपांगस्त्यानगृद्धिनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाश्चेति पंच व्युच्छिन्नाः इति मध्यदीपकत्वादन्यत्रापि ग्राह्यं ॥ २६७ ॥

ही होता है सासादनके नहीं होता । यहाँ सासादनमें भी इनका उदय माना है, यही अन्तर है ॥२६५॥

असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये सतरह उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२६६॥

देशसंयतमें प्रत्याख्यानावरण चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, और तिर्यंचगति ये आठ तथा छठे गुणस्थानमें आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा,

अप्रमत्तगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमर्द्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननत्रितयमुमेंबी नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु ।४॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सेगळेंबीयारे नोकषायंगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु ।६॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु प्रकृतिविनाशनक्रममनपेक्षिसि सवेद भागेयुमवेद भागेयुं क्रोधादिककषाय भागेगळोळं ।

वेदतियकोहमाणं मायासंजलणमेव सुहुमंते ।
सुहुमो लोहो संते वज्जं णारायणारायं ॥२६९॥

वेदत्रयक्रोधमानमायासंज्वलनमेव सूक्ष्मांते । सूक्ष्मो लोभः शान्ते वज्रनाराचनाराचं ॥

सवेदभागेयोळु वेदत्रयं स्त्रीपुन्नपुंसकंगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३ ॥ अवेदभागेयोळु यथाक्रमदिदं क्रोधसंज्वलनमुं मानसंज्वलनमुं मायासंज्वलनमुमेंबीयारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ६ । अल्लिये बादरलोभोदयव्युच्छित्तियक्कुं ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमयदोळु सूक्ष्मकृष्टिगत लोभकषायोदयव्युच्छित्तियक्कुं । १ ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळु वज्रनाराचनाराचशरीरसंहननद्वयमुदयव्युच्छित्तियप्पुवु । २ ॥

खीणकसायदुचरिमे णिद्दापयला य उदयवोच्छिण्णा ।
णाणंतरायदसयं दंसणचत्तारि चरिमम्मि ॥२७०॥

क्षीणकषायद्विचरमे निद्रा प्रचला चोदयव्युच्छिन्ने । ज्ञानांतरायदशकं दर्शनचत्वारि चरमे ॥

अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतिः अर्धनाराचकीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि चेति चतस्रः । अपूर्वकरणे हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साः षट् । अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने प्रकृतिविनाशक्रममपेक्ष्य सवेदावेदभागयोः ॥ २६८ ॥

सवेदभागे वेदत्रयं, अवेदभागे क्रमेण क्रोधसंज्वलनं मानसंज्वलनं मायासंज्वलनं चेति षट् । बादरलोभोऽपि तत्रैव । सूक्ष्मसांपरायचरमसमये सूक्ष्मकृष्टिगतलोभः । उपशांतकषाये वज्रनाराचनाराचसंहनने द्वे ॥ २६९ ॥

प्रचलाप्रचला ये पाँच उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। यहाँ आया 'व्युच्छिन्न' शब्द मध्यदीपक होनेसे आगे भी लगा लेना चाहिए ॥२६७॥

अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृति, अर्धनाराच, कीलित और असम्प्राप्तसृपाटिका संहनन ये चार तथा अपूर्वकरणमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग और अवेद भाग हैं ॥२६८॥

सवेद भागमें तीनों वेदोंकी व्युच्छित्ति होती है और अवेद भागमें क्रमसे क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन और मायासंज्वलनकी व्युच्छित्ति होनेसे अनिवृत्तिकरणमें छहकी व्युच्छित्ति होती है तथा बादर लोभकी व्युच्छित्ति भी अनिवृत्तिकरणमें ही होती है। सूक्ष्म साम्परायके अन्तमें सूक्ष्मकृष्टिको प्राप्त लोभकी व्युच्छित्ति होती है। उपशान्त कषायमें वज्रनाराच और नाराचसंहननकी व्युच्छित्ति होती है ॥२६९॥

क्षीणकषायगुणस्थानद्विचरमसमयदोळु निद्राप्रचलगळेरडुं व्युच्छित्तिगळप्पुवु । २ ॥ चरमसमयदोळु ज्ञानावरणपंचकमंतरायपंचकदर्शनावरणचतुष्टयमेंब पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । १४ ॥

तदियेक्कवज्जणिमिणं थिरसुहसरगदिउरालतेजदुगं ।
संठाणं वण्णागुरुचउक्कपत्तेय जोगम्मि ॥२७१॥

तृतीयैकवज्रनिर्म्माणं स्थिरशुभस्वरगत्यौदारिकतैजसद्विकं । संस्थानं वर्णागुरुचतुष्कं प्रत्येकं योगिनि ॥

सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु वेदनीयदोळोंदुं वज्रऋषभनाराचसंहननमुं निर्म्माणनाममुं स्थिरास्थिरद्विकमुं शुभाशुभद्विकमुं सुस्वरदुस्वरद्विकमुं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्विकमुं औदारिकशरीरतदंगोपांगनामद्विकमुं तैजसकार्म्मणशरीरद्विकमुं संस्थानषट्कमुं वर्ण्णचतुष्कमुं अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं प्रत्येकशरीरमुमिन्तु मूवत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३० ॥

तदिएक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं ।
जसतित्थं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्मि ॥२७२॥

तृतीयैकं मनुष्यगतिः पंचेंद्रियसुभगत्रसत्रिकादेयं । यशस्तीर्थं मनुष्यायुरुच्चं चायोगिचरमे ॥

अयोगिगुणस्थानचरमसमयदोळु वेदनीयद्वयदोळोंदुं मनुष्यगतियुं पंचेंद्रियजातियुं सुभगनाममुं त्रसबादरपर्य्याप्तत्रयमुमादेयनाममुं यशस्कीर्त्तिनाममुं तीर्त्थकरनाममुं मनुष्यायुष्यमुमुच्चैर्गोत्रमुमिन्तु पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । १२ ॥ सर्व्वत्रसर्व्वकर्म्मगळिगे नानाजीवापेक्षे-

---

क्षीणकषायगुणस्थानद्विचरमसमये निद्राप्रचले उदयव्युच्छिन्ने । चरमसमये पंचज्ञानावरणपंचांतरायचतुर्दर्शनावरणानि ॥ २७० ॥

सयोगकेवलिगुणस्थाने वेदनीयैकतरं वज्रवृषभनाराचं निर्माणं स्थिरास्थिरे शुभाशुभे सुस्वरदुःस्वरौ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतौ औदारिकतदंगोपांगे तैजसकार्मणे संस्थानषट्कं वर्णचतुष्कं अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासाः प्रत्येकशरीरं चेति त्रिंशत् ॥ २७१ ॥

अयोगिगुणस्थानचरमसमये वेदनीयैकतरं मनुष्यगतिः पंचेंद्रियं सुभगं त्रसबादरपर्याप्तानि आदेयं

क्षीणकषायके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचला उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं। अन्तिम समयमें पाँच ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरण उदयसे व्युच्छिन्न होती हैं ॥२७०॥

सयोगकेवली गुणस्थानमें दोनों वेदनीयमें-से कोई एक वेदनीय, वज्रवृषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजस, कार्मण, छह संस्थान, वर्णादिचार, अगुरुलघु, उपघात, परघात उच्छ्वास, प्रत्येकशरीर इन तीसकी व्युच्छित्ति होती है ॥२७१॥

अयोगी गुणस्थानके अन्त समयमें दोनों वेदनीयमें-से एक, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र ये बारह व्युच्छिन्न होती

यिदं व्युच्छित्तियं पेळ्दु सयोगायोगरोळं तदिएक्कं तदियेक्कमेंबितु आवुदो दु कथनमदेकजीवं प्रति साताऽसातंगळगऽन्यतरोदयव्युच्छित्तियागुत्तं विरलु सातदोडनागलसातदोडनागलि मेणु तीसं बारस एंबुदक्कुं। सातासातोदयंगळगे नानाजीवापेक्षेयिंदं सयोगकेवलियोंदक्कं व्युच्छित्ति पिल्लेंदितल्लि सयोगायोगिगळोळ्गुतीसतेरसुदयविहो येंदितु पेळल्पट्टुदु ॥ किंच । इंतागुत्तं विरलु नानाजीवंगळं कुरुत्तु तदुभयोदयसंभवमप्पुदरिंदं प्राक्तनगुणस्थानदंते सयोगकेवलियोळमेकजीवं प्रति आ एरडर परावर्त्तनोदयशंके यावनोर्व्वनोळक्कुमदं निवारिसल्वेडियं पेळ्दपरु :—

णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्मि जदो ।
तेण दु सातासातजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं ॥२७२॥

नष्टौ च रागद्वेषौ इंद्रियज्ञानं च केवलिनि यतस्तेन तु सातासातजसुखदुःखं नास्तींद्रियजं केवलिनि ॥

सयोगकेवलिभट्टारकनोळु रागद्वेषौ नष्टौ रागद्वेषंगळेरडुं नष्टंगळेकेंदोडे रागहेतुगळ् मायाचतुष्कमुं लोभचतुष्कमु वेदत्रितयमुं हास्यरति यें ब त्रयोदशप्रकृतिगळं, द्वेषहेतुगळप्प क्रोधचतुष्कमुं मानचतुष्कमुमरतिलोकभयजुगुप्सेगळेंब द्वादशप्रकृतिगळुं निरवशेषमागि क्षपिसल्पट्टुवप्पुदरिंदं यिंद्रियज्ञानं च नष्टं यिंद्रियज्ञानमुं नष्टमादुदेकेंदोडे मतिश्रुतज्ञानंगळु परोक्षंगळुं क्षायोपशमिकंगळप्पुदरिंदं युगपत्सकलार्त्थावभासिकेवलज्ञानोपयोगमुळ्ळ केवलियोळु परोक्षज्ञानंगळुं क्षायोप-

---

यशस्कीर्तिः तीर्थकरत्वं मनुष्यायुः उच्चैर्गोत्रं चेति द्वादश एता व्युच्छित्तयो नानाजीवापेक्षयैवोक्ताः । सयोगायोगयोस्तु एकं जीवं प्रति असाते साते वा व्युच्छिन्ने त्रिंशत् द्वादश नानाजीवं प्रति उभयच्छेदाभावात् एकान्नत्रिंशत् त्रयोदश ज्ञातव्याः ॥ २७२ ॥ अथ पूर्वगुणस्थानवत् सयोगेऽप्येकजीवं प्रति तदुभयोदयो भविष्यतीति शंकां निराकरोति—

यतः घातिकर्मविनाशात् सयोगकेवलिनि रागहेतुमायाचतुष्कलोभचतुष्कवेदत्रयहास्यरतीनां द्वेषहेतुक्रोधचतुष्कमानचतुष्कारतिशोकभयजुगुप्सानां च निरवशेषक्षयात् रागद्वेषौ नष्टौ । युगपत्सकलावभासिनि

हैं । यह व्युच्छित्ति नाना जीवोंकी उपेक्षा कही है । सयोगी अयोगी गुणस्थानमें एक जीवकी अपेक्षा साता या असाताकी व्युच्छित्ति कही है । अतः उनमें तीस और बारहकी व्युच्छित्ति एक जीवकी अपेक्षा कही है । नाना जीवोंकी अपेक्षा उनतीस और तेरहकी व्युच्छित्ति है ॥२७२॥

पूर्वके गुणस्थानोंकी तरह सयोगकेवलीमें भी एक ही जीवके साता और असाता दोनोंका उदय होगा, इस शंकाको दूर करते हैं—

क्योंकि सयोगकेवलीके घातिकर्मोंका विनाश हो गया है अतः रागके कारण चार प्रकारकी माया, चार प्रकारका लोभ, तीन वेद, हास्य-रतिका तथा द्वेषके कारण चार प्रकारका क्रोध, चार प्रकारका मान, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका पूर्णरूपसे क्षय होनेसे उनके राग और द्वेष नष्ट हो चुके हैं । तथा एक साथ सब पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानके प्रकट होनेपर परोक्ष तथा क्षायोपशमिक रूप मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्भव नहीं हैं ॥२७२॥

अतः केवलीके इन्द्रियज्ञान भी नष्ट हो चुका है । इस कारणसे केवलीके साता और असाताके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सुख-दुःख नहीं होता; क्योंकि वह सुख-दुःख इन्द्रिय-

शमिकंगळुपयोग विरुद्धमप्पुदरिंदं यतः आवुदो दु घातिकर्म्मविनाशमाद कारणदिंदं। तेन अदु कारणदिंदं। तु मत्ते सातासातजसुखदुःखं सातासातोदयजनितसुखमुं दुःखमुं नास्ति इल्लेकेंदोडे इंद्रियजं इंद्रियजत्वात् तत्सातासातवेदोदयजनितसुखदुःखमिंद्रियजनितमप्पुदरिंदं। सहकारिकारण-मोहनीयाभावदिंदमा सातासातोदयं विद्यमानवादोडे स्वकार्य्यंकारियल्तेंबुदत्थं ॥

अनंतरमा इंद्रियजनितसुखदुःखकारणमो दुमिल्लेंबुदक्कुपपत्तियं तोरिदपरु :— ५

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स ।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि ॥२७४॥

समयस्थितिको बंधः सातस्योदयात्मको यतस्तस्य। तेनासातस्योदयः सातस्वरूपेण परिणमति ॥

यतस्तस्य सातस्य बंधः समयस्थितिकः आवुदो दुकारणदिंदमा सातवेदनीयबंधं समयस्थिति- १०
कमप्पुदरिंदं उदयात्मकमेयक्कुमदु कारणमागि सयोगकेवलियोळसातवेदवुदयं सातस्वरूपदिंदं परिणमिसुगुमेकेंदोडे विशिष्ट विशुद्धनप्प सयोगभट्टारकनोळुदयिसुत्तं विदर्द असातवेदमनंतगुणहीन-शक्तिकमुं स्वसहायरहितमुमप्पुदरिनव्यक्तोदयमक्कुमदुमनंतगुणानुभागयुततात्कालिकोदयात्मक सातबंधमुंटप्पुदरिंदं तत्स्वरूपदिंदं परिणमिसुगुमप्पु। येंतलानुमसातस्वरूपदिंदं सातमुदयिसुगु-मागळु सातक्के द्विसमयस्थितिकत्वमक्कुमन्यथा असातक्कंये बंधप्रसंगमक्कुं ॥ १५

मतिश्रुतयोः परोक्षयोः क्षायोपशमिकयोरसंभवात् इंद्रियज्ञानं च नष्टं तेन कारणेन तु-पुनः सातासातोदयजं सुखदुःखमपि नास्ति। कुतः ? तस्येंद्रियजत्वात्। सहकारिकारणमोहनीयाभावे तदुदयो विद्यमानोऽपि न स्वकार्य-कारीत्यर्थः ॥ २७ ॥ तस्य तदकारणत्वे उपपत्तिमाह —

यतस्तस्य केवलिनः सातवेदनीयस्य बंधः समयस्थितिकः ततः उदयात्मक एव स्यात्। तेन तत्रासातोदयः सातस्वरूपेण परिणमति। कुतः ? सातस्वरूपे परिणमनस्य विशिष्टशुद्धे तस्मिन् असातस्य अनंतगुणहीनशक्तित्व- २०
सहायरहितत्वाभ्यां अव्यक्तोदयत्वात्। बध्यमानसातस्य च अनंतगुणानुभागत्वात् तथात्वस्यावश्यंभावात्। न च तत्र सातोदयोऽसातस्वरूपेण परिणमतीति शक्यते वक्तुं द्विसमयस्थितिकत्वप्रसंगात् अन्यथा असातस्यैव बंधः प्रसज्यते ॥ २७४ ॥

जन्य होता है। इसका अर्थ यह है कि वेदनीयका सहकारी कारण मोहनीय कर्म है। उसके अभावमें वेदनीयका उदय होते हुए भी वह अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता ॥२७३॥ २५

वेदनीयका उदय अपना कार्य करनेमें क्यों असमर्थ है, इसमें उपपत्ति देते हैं—

क्योंकि केवलीके सातावेदनीयका बन्ध एक समयकी स्थितिको लिए हुए होता है अतः वह उदयरूप ही है। इस कारणसे केवलीमें असाताका भी उदय सातारूपसे परिणमन करता है। क्योंकि केवलीमें विशेष विशुद्धता होनेसे असाता वेदनीयकी अनुभाग शक्ति अनन्तगुणी हीन हो जाती है तथा मोहकी सहायता भी नहीं रहती। इससे असातावेदनीय- ३०
का उदय अव्यक्त रहता है। तथा बँधनेवाले सातावेदनीयका अनुभाग अनन्तगुणा होता है। क्योंकि केवलीके विशुद्धि विशेष है और विशुद्धतासे अनुभाग अधिक होता है। इसीसे असाताका भी उदय सातारूपसे परिणमन करता है। किन्तु साताका उदय असातारूप

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि ॥२७५॥

एतेन कारणेन तु सातस्यैव तु निरंतरोदयः। तेनासातनिमित्ताः परीषहा जिनवरे न संति ॥

इवु कारणदिंदं तु मत्ते सातबंधमुदयात्मकमप्पुदरिंदं सातकेये निरंतरोदयमक्कुमदरिंदम सातदुदयजनितैकादश परीषहंगळु क्षुत् पिपासा शीत उष्ण दंश मशक चर्य्या शय्या वध रोग तृणस्पर्शमलमेंबिवु जिनवरे न संति जिनस्वामियोळु घटिसियवु। अंतादोडेकादश जिने 'वेदनीये शेषा' यें दु असातवेदनीयोदयसंभूतैकादश परीषहंगळु जिनरोळ्तें दोडे घादिव्व वेयणीयं मोहस्स बळेण घादवे जीवं यें बो वाक्यदिंदं मोहनीयकर्म्मबलसहायरहित वेदनीयं फलवंतमल्लें दितुमेकादशपरीषहंगळं जिनवरे णत्थि यें बी वाक्यविशेषदिंदमुं निश्चयनयदिंदं जिनरोळों दुं परीषहमिल्लों दुंदु कारणभूतासातवेदनीयोदयसद्भावदिंदमुपचारदिंदं कार्य्यरूपमप्प परीषहास्तित्वं ॥

अनंतरमभेदविवक्षेयिंदमुदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२। मिथ्यादृष्टियागि चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु संभवंगळु पेळल्पडुगुमदें तें दोडे—मिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळु नूर हदिनेळु ११७। अनुदयंगळु तीर्त्थमुमाहारद्वयमुं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमें दिवय्दु ५। सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तिगळय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पत्तुं नरकमं सासादनं पुगनप्पुदरिंदं नरकानुपूर्व्यमुं सहितमागि पन्नों दु ११। उदयप्रकृतिगळु नूर पन्नों दु १११। मिश्रगुणस्थानदोळो भत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तुं शेषानुपूर्व्यंगळु मूरुं कूडिप्पत्त-

---

एतेन उक्तकारणेन तु पुनः सातस्यैव निरंतरोदयः स्यात्। तेनासातोदयजनिताः परीषहाः क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाख्या जिनवरे न संति। 'एकादश जिने' 'वेदनीये शेषाः' इति सूत्रेणापि कारणे कार्योपचारेणैवोक्तत्वात् मुख्यतस्तेषामभावात्।

अथाभेदविवक्षया उदये द्वाविंशत्युत्तरशतं १२२। तत्र मिथ्यादृष्टावुदयः सप्तदशोत्तरशतं, अनुदयः तीर्थकरत्वाहारकद्वयसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतयः पंच। सासादने पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अनुदयः

परिणमन करता है, ऐसा कहना शक्य नहीं; क्योंकि ऐसा कहनेसे साताका स्थितिबन्ध दो समय मानना होगा। अन्यथा असाताका ही बन्ध प्राप्त होगा ॥२७४॥

उक्त कारणसे केवलीके निरन्तर साताका ही उदय रहता है। अतः असाताके उदयसे उत्पन्न होनेवाली क्षुधा, प्यास, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल परीषह केवलीमें नहीं होतीं। तत्त्वार्थ सूत्रमें भी जो 'एकादश जिने' 'वेदनीये शेषाः' ऐसा कहा है वह कारणमें कार्यका उपचार करके ही कहा है। मुख्यरूपसे उनका केवलीमें अभाव है।

अभेद विवक्षासे उदय प्रकृतियाँ एक सौ बाईस हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टिमें उदय एक सौ सतरह ११७, अनुदय तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति पाँच। सासादनमें उक्त पाँचमें पाँच व्युच्छित्ति और एक नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय ग्यारहका ११, उदय एक सौ ग्यारहका। और उदय व्युच्छित्ति नौ। अतः ११+९

मूररोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तेरडु २२। उदयप्रकृतिगळु नूरु १००॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळोंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूररोळु नाल्कानुपूर्व्यंगळुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पविनेंदु १८। उदयप्रकृतिगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तय्दु ३५। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळु एंटुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्वितयमं तेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तोंदु ४१। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तारु ४६। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु मय्वत्तु ५०। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळय्वत्तारु ५६। उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु आरुगूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२। उदयप्रकृतिगळु अरुवत्तु ६०।

उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्त मूरु ६३। उदयप्रकृतिगळय्वत्तोंभत्तु ५९॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडिदनुदयप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५। उदयप्रकृतिगळय्वत्तेळु ५७॥

सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तोंदवरोळु तीर्त्थंकरनामप्रकृतियंतेगदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदयप्रकृतिगळेणभत्तु ८०। उदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नूर पत्तु

एकादश, उदयः एकादशोत्तरशतं। मिश्रेऽनुदयः नव शेषानुपूर्वत्रयं च मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् द्वाविंतिः उदयः शतं। असंयतेऽनुदयः एकां निक्षिप्य चतुरानुपूर्व्यसम्यक्त्वप्रकृत्युदयादष्टादश। उदयः चतुरुत्तरशतं। देशसंयतेऽनुदयः सप्तदश मिलित्वा पंचत्रिंशत्। उदयः सप्ताशीतिः। प्रमत्तेऽनुदयोऽष्टौ मिलित्वा आहारद्वयोदयादेकचत्वारिंशत्। उदयः एकाशीतिः। अप्रमत्तेऽनुदयः पंच संयोज्य षट् चत्वारिंशत्। उदयः षट्सप्ततिः। अपूर्वकरणेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य पंचाशत्। उदयः द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणेऽनुदयः षट् संयोज्य षट्पंचाशत्। उदयः षट्षष्टिः। सूक्ष्मसांपराये षट् निक्षिप्य अनुदयो द्वाषष्टि, उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदयस्त्रिषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे निक्षिप्य अनुदयः पंचषष्टिः। उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगकेवलिनि

और शेष तीन आनुपूर्वीका अनुदय तथा सम्यक् मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय बाईस और उदय सौ १००। तथा व्युच्छित्ति एक। असंयतमें चार आनुपूर्वी और सम्यक्त्व मोहनीयका उदय होनेसे अनुदय अठारह, उदय एक सौ चार। यहाँ व्युच्छित्ति सतरहकी होनेसे देशसंयतमें अनुदय पैंतीस और उदय सत्तासी है। यहाँ व्युच्छित्ति आठकी है। अतः प्रमत्तमें ३५ + ८ = ४३ में-से आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय इकतालीस, उदय इक्यासी है। यहाँ व्युच्छित्ति पाँच है। अतः अप्रमत्तमें अनुदय छियालीस और उदय छिहत्तर है। यहाँ व्युच्छित्ति चार है। अतः अपूर्वकरणमें अनुदय पचास और उदय बहत्तर। यहाँ व्युच्छित्ति छह है। अतः अनिवृत्तिकरणमें अनुदय छप्पन, उदय छियासठ। यहाँ व्युच्छित्ति छह है। अतः सूक्ष्म साम्परायमें अनुदय बासठ, उदय साठ और व्युच्छित्ति एक। अतः

११०। उदयप्रकृतिगळु पन्नेरडु १२॥ यितुक्तमिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्दशगुणस्थानंगळोळु उदय-व्युच्छित्ति उदयानुदयप्रकृतिगळगे यथाक्रमदिंदमयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यन्तं संदृष्टिरचने :—

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

अनंतरमुदयप्रकृतिगळ संख्येयं गुणस्थानंगळोळु पेळ्दपरु :—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदि छदुसदरी ।
छावट्ठि सट्ठि णवसगवण्णास दुदालबारुदया ॥२७६॥

सप्तदशैकादशखचतुःसहितशतं सप्तैकाशीतिः षड्द्विसप्ततिः । षट्पष्टिः षष्टि नव सप्त-पंचाशद्द्विचत्वारिंशद्द्वादशोदयाः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंदं सप्तैकादशशून्यचतुरधिकशतंगळु सप्तैकाधिकाशीतिगळु षड्द्विकोत्तरसप्ततिगळु षट्षष्टियु षष्टियु नवसप्ताधिकपंचाशत्प्रकृतिगळु द्विचत्वारिंशद्वादशप्रकृतिगळुदयंगळप्पुवु ।

अनंतरमनुदयप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

पंचेक्कारसबावीसट्ठारसपंचतीस यिगिछादालं ।
पण्णं छप्पण्णं बितिपणसट्ठी असीदि दुगुणपणवण्णं ॥२७७॥

पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषट्चत्वारिंशत् पंचाशत् षट्पंचाशत् द्वित्रिपंचषष्टचशीतिद्विगुणपंचपंचाशत् ॥

षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयादनुदयः अशीतिः । उदयः द्वाचत्वारिंशत् । अयोगकेवलिनि त्रिंशतं संयोज्यानुदयः दशोत्तरशतं । उदयः द्वादश ॥ २७५ ॥ अमूनुक्तोदयानुदयान् गाथाद्वयेनाह —

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु यथाक्रमं सप्तदशैकादशशून्यचतुरधिकशतानि सप्तैकाशीतिः षट्द्व्युत्तरसप्ततिः षट्षष्टिः नवसप्ताधिकपंचाशतो द्विचत्वारिंशत् द्वादश प्रकृतयः उदये भवंति ॥ २७६ ॥

उपशान्त कषायमें अनुदय तिरसठ, उदय उनसठ और व्युच्छित्ति दो । अतः क्षीणकषायमें अनुदय पैंसठ, उदय सत्तावन, व्युच्छित्ति सोलह । किन्तु तीर्थंकरका उदय होनेसे सयोगकेवलीमें अनुदय अस्सी और उदय बयालीस, व्युच्छित्ति तीस । अतः अयोगकेवलीमें अनुदय एक सौ दस और उदय बारह है ॥२७५॥

ऊपर कहे उदय और अनुदयको दो गाथाओंसे कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, एक सौ, एक सौ चार, सतासी, इक्यासी, छिहत्तर, बहत्तर, छियासठ, साठ, उनसठ, सत्तावन, बयालीस और बारह प्रकृतियोंका उदय होता है ॥२७६॥

आ मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळनुदयप्रकृतिगळु यथाक्रमदिदं पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादश पंचोत्तरत्रिंशदेकषडधिक चत्वारिंशत्पंचाशत् षट्पंचाशत् द्वित्रिपंचाधिकषष्टयशीति द्विगुणपंचाधिक पंचाशत्प्रकृतिगळप्पुवु ।

अनंतरमुदयप्रकृतिगळनुदीरणेयं पेळ्दपरु :—

उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।
मोत्तूण तिण्णि ठाणं पमत्त जोगी अजोगी य ॥२७८॥

उदयस्योदीरणायाश्च स्वामित्वतो न विद्यते विशेषः मुक्त्वा त्रिस्थानं प्रमत्तयोग्ययोगिनां च ॥

उदयक्कमुदीरणेगं स्वामित्वदिदं विशेषमिल्ल । प्रमत्तसयोगायोगिगळ त्रिस्थानमं बिट्टु ई मूरु गुणस्थानंगळोळं विशेषमुंटल्लदन्यत्र सर्व्वगुणस्थानंगळोळुदयक्कमुदीरणेगं स्वामित्वदिदं विशेषमिल्लेबुदर्त्थं ॥

अनंतरमा त्रिस्थानदोळु विशेषमावुदेंदोडे पेळ्दपरु :—

तीसं बारस उदयच्छेदं केवलिणमेगदं किच्चा ।
सादमसादं च तहिं मणुवाउगमवणिदं किच्चा ॥२७९॥

त्रिंशद्द्वादशोदयोच्छेदं केवलिनोरेकीकृत्य । सातमसातं च तस्मिन्मनुष्यायुष्यं चापनीतं कृत्वा ॥

केवलिनोः सयोगायोगकेवलिगळ उदयोच्छेदं उदयव्युच्छित्तियं त्रिंशद्द्वादश मूवत्तु पन्नेरडुगळ् एकीकृत्य कूडि तस्मिन् अदरोळ ४२ । सातमसातं च सातप्रकृतियुमसातप्रकृतियुमं मनुष्यायुष्यं मनुष्यायुष्यमेंब मूरु प्रकृतिगळिदमपनीतं कृत्वा कळेयल्पट्टुदं माडि ३९ ॥

तेषु अनुदयः यथाक्रमं पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकषडधिकचत्वारिंशत्पंचाशत्षट्पंचाशद्द्वित्रिपंचाधिकषष्टयशीतिद्विगुणपंचपंचाशत्प्रकृतयो भवंति ॥ २७७ ॥ अथोदयप्रकृतीनामुदीरणामाह—

उदयस्य उदीरणायाश्च स्वामित्वाद्विशेषो न विद्यते प्रमत्तयोग्ययोगित्रयं मुक्त्वा अन्यत्र विशेषो नेत्यर्थः ॥ २७८ ॥ तत्र को विशेषः ? इति चेदाह—

सयोगायोगयोः उदयव्युच्छित्ति त्रिंशद्द्वादश एकीकृत्य ४२ तत्र सातासातमनुष्यायूंषि अपनेतव्यानि ३९ ॥ २७९ ॥

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, छियालीस, पचास, छप्पन, बासठ, तिरसठ, पैंसठ, अस्सी और एक सौ दस प्रकृतियोंका अनुदय होता है ॥२७७॥

आगे उदय प्रकृतियोंकी उदीरणा कहते हैं—

उदय और उदीरणाके स्वामीपनेमें कोई अन्तर नहीं है । प्रमत्त, सयोगी और अयोगी इन तीन गुणस्थानोंको छोड़कर अन्य गुणस्थानोंमें उदयके समान ही उदीरणा जानना ॥२७८॥

इन गुणस्थानोंमें विशेषता कहते हैं—

सयोगी और अयोगीमें उदय व्युच्छित्ति क्रमसे तीस और बारह हैं । उनको एकत्र करके उनमें-से साता, असाता और मनुष्यायु घटाइए ॥२७९॥

अवणिदतिप्पयडीणं पमत्तविरदे उदीरणा होदि ।
णत्थित्ति अजोगिजिणे उदीरणा उदयपयडीणं ॥२८०॥

अपनीतत्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते उदीरणा भवति । नास्तीत्ययोगिजिने उदीरणा उदयप्रकृतीनां ॥

अयोगिकेवलिजिननोळुदयप्रकृतिगळगुदीरणेयिल्लप्पुदरिंदं सयोगायोगिकेवळिगळ मूवत्तुं पन्नेरडुमुदयव्युच्छित्तियं कूडि नाल्वत्तेरडरोळु सातासातप्रकृतिगळुं मनुष्यायुष्यमुं कळेदु वप्पुदरिंदमा कळेदु मूरुं प्रकृतिगळु प्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु । अदु कारणमागि प्रमत्तसंयतनोळेंदु प्रकृतिगळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु । शेष मूवत्तोंभत्तु प्रकृतिगळुदीरणे सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळक्कुं । ३९ ॥

अप्रमत्तादिगुणस्थानंगळोळामूरुं प्रकृतिगळगुदीरणेयिल्लेकेंदोडे प्रमादरहितरप्पुदरिंदं संक्लिष्टरोळल्लदा मूरुं प्रकृतिगळुदीरणे घटिसदप्पुदरिंदमी विशिष्टशुद्धरोळु तदुदीरणगसंभवमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळुदीरणाव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :-

पण णव इगि सत्तरसं अट्ठट्ठ य चदुर छक्क छच्चेव ।
इगिदुग सोळुगुदालं उदीरणा होंति जोगंता ॥२८१॥

पंच नवैकसप्तदशाष्टाष्टौ च चतुः षट्कं षट्चैव । एक द्विकषोडशैकान्नचत्वारिंशदुदीरणा भवंति योग्यंताः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानमवसानमादत्रयोदशगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंदमुदीरणा व्युच्छित्तिप्रकृतिगळु पंच नव एक सप्तदश अष्ट अष्ट चतुः षट्क षट् च एक द्विक षोडश एकान्नचत्वारिंशत् प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तं विरलुदीरणाप्रकृतिगळुमनु-

---

अयोगिजिने उदयप्रकृतीनां उदीरणा नास्ति इति तदपनीतप्रकृतित्रयस्य प्रमत्तसंयते व्युच्छित्तिर्भवति ततः कारणात् प्रमत्तेऽष्टौ व्युच्छिद्यंते । शेषैकोनचत्वारिंशदुदीरणा सयोगे एव नाप्रमत्तादिषु तत्त्रयोदीरणास्ति अप्रमत्तादित्वात् । संक्लिष्टेभ्योऽन्यत्र तदसंभवाच्च ॥ २८० ॥ अथोदीरणाव्युच्छित्तिमाह—

सयोगपर्यंतत्रयोदशगुणस्थानेषु यथाक्रमं उदीरणाव्युच्छित्तिः पंचनवैकसप्तदशाष्टाष्टचतुःषट्कषट्कैक-

---

अयोग केवलीमें उदय प्रकृतियोंकी उदीरणा नहीं होती। इसलिए घटायी हुई तीन प्रकृतियोंकी उदीरणा व्युच्छित्ति प्रमत्तसंयतमें होती है। अतः प्रमत्तसंयतमें आठकी उदीरणा व्युच्छित्ति होती है। बयालीसमें-से तीन घटानेपर शेष रही उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणा व्युच्छित्ति सयोगकेवलीमें ही होती है। उन तीनकी उदीरणा अप्रमत्त आदि गुणस्थानोंमें नहीं होती, क्योंकि वे अप्रमत्तादि रूप हैं। इनकी उदीरणा संक्लेश परिणामोंसे होती है, संक्लेश परिणामोंके बिना इनकी उदीरणा नहीं होती ॥२८०॥

आगे उदीरणा व्युच्छित्ति कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगी पर्यन्त तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे उदीरणा व्युच्छित्ति पाँच,

दीरणा प्रकृतिगळं योजिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदीरणाप्रकृतिगळु नूरहदिनेळु ११७। अनुदीरणाप्रकृतिगळु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिगळेंब पंचप्रकृतिगळनुदीरणाप्रकृतिगळप्पुवु। ५॥ सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिय दीरणाव्युच्छित्तिगळय्दुगूडिदनुदीरणा प्रकृतिगळु पत्तु। नारकापूर्व्यमुं सहितमागि पन्नों दु ११। उदीरणाप्रकृतिगळु नूरपन्नों दु १११॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु ओंभत्तुगूडिदनुदीरणा प्रकृतिगळु इप्पत्तु। शेषानुपूर्व्यंगळु मूरुसहितमागि अनुदीरणाप्रकृतिगळु यिप्पत्तमूरवरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणा प्रकृतिगळिप्पत्तेरडु २२। उदीरणाप्रकृतिगळु १००॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळों दु गूडियनुदीरणाप्रकृतिगळिप्पत्तमूरवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमानुपूर्व्यचतुष्कमुमं कळेदुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणाप्रकृतिगळु पदिनेंदु १८। उदीरणाप्रकृतिगळु नूरनाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु मूवत्तय्दु ३५। उदीरणाप्रकृतिगळेंभत्तेळु ८७॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळु सातासातमनुष्यायुष्यं गूडिवुदीरणाव्युच्छित्तिप्रकृतिगळ्दु ८॥ देशसंयतनुदीरणाव्युच्छित्तिगळेंटुगूडिदाताननुदीरणाप्रकृतिगळु मूवत्तय्दं गूडि नाल्वत्तमूरवरोळु आहारकद्विकमं कळेदुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणाप्रकृतिगळु नाल्वत्तों दु ४१। उदीरणा-

---

द्विकषोडशैकान्नचत्वारिंशत्प्रकृतयः स्युः। तस्यां सत्यां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने उदीरणा सप्तदशोत्तरशतं। अनुदीरणा तीर्थकृदाहारकद्विकसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वानि पंच। सासादनेऽनुदीरणा मिथ्यादृष्टिव्युच्छित्तिनारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा एकादश। उदीरणा एकादशोत्तरशतं। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ अनुदीरणा नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा सम्यग्मिथ्यात्वोदीरणाद्द्वाविंशतिः। उदीरणा शतं। असंयते अनुदीरणा एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदीरणादष्टादश। उदीरणा चतुरुत्तरशतं। देशसंयतेऽनुदीरणा सप्तदश संयोज्य पंचत्रिंशत्। उदीरणा सप्ताशीतिः। प्रमत्तेऽनुदीरणा अष्टौ मिलित्वा आहारकद्विकोदीरणादेकचत्वारिंशत्। उदीरणा

नौ, एक, सतरह, आठ, आठ, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह तथा उनतालीस प्रकृतियोंकी होती है।

१. इस प्रकार व्युच्छित्ति होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदीरणा एक सौ सतरह, अनुदीरणा तीर्थंकर, आहारकद्विक, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति पाँच की।

२. सासादनमें। अनुदीरणा मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पाँच और नरकानुपूर्वीकी यहाँ उदीरणा न होनेसे ५+५+१ मिलकर ग्यारह। उदीरणा एक सौ ग्यारह। व्युच्छित्ति नौ।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उदीरणा होनेसे तथा शेष तीन आनुपूर्वीकी उदीरणा न होनेसे अनुदीरणा ११+९+३=२३-१=बाईस। उदीरणा सौ। व्युच्छित्ति एक।

४. असंयतमें सम्यक्त्व प्रकृति और चारों आनुपूर्वियोंकी उदीरणा होनेसे २२+१=२३-५= अनुदीरणा अठारह। उदीरणा एक सौ चार, व्युच्छित्ति सतरह।

५. देशसंयतमें अनुदीरणा १८+१७=पैंतीस। उदीरणा सत्तासी, व्युच्छित्ति आठ।

६. प्रमत्तसंयतमें आहारकद्विककी उदीरणा होनेसे अनुदीरणा ३५+८=४३-२= इकतालीस। उदीरणा इक्यासी, व्युच्छित्ति आठ।

प्रकृतिगळे णभत्तो दु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळे दुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नाल्वत्तो भत्तु ४९ । उदीरणाप्रकृतिगळे प्पत्त मूरु ७३ ॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळ्वत्तमूरु ५३ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तो भत्तु ६९ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु आरुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळ्वत्तो भत्तु ५९ । उदीरणाप्रकृतिगळरुवत्त मूरु ६३ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तय्दु ६५ । उदीरणाप्रकृतिगळे वत्त एळु ५७ ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळु ओंदुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६ । उदीरणाप्रकृतिगळु अय्वत्तारु ५६ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळु येरडुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु अरुवत्तेंदु ६८ । उदीरणाप्रकृतिगळय्वत्तनाल्कु ५४ ॥ सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळे णभत्तनाल्कवरोळु तीर्त्थमं कळे दुदीरणाप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलु अनुदीरणाप्रकृतिगळे णभत्त मूरु ८३ । उदीरणाप्रकृतिगळु मूवत्तो भत्तु ३९ ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तो भत्तुगूडियनुदीरणाप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ । उदीरणाप्रकृतिगळिल्लुदीरणे येंबुदेनें दोडपक्वपाचनमुदीरणा येंदुदीरणालक्षणमप्पुदरिंदं दीर्घकालदोळल्लदुदयिसदग्रनिषेकंगळ द्रव्यमनपकर्षिसिकोंडल्पस्थितिकंगळप्पधस्तननिषेकंगळोळमुदयावळियोळं पुगिसि उदयमुखदिनवर फलमननुभविसियनंतरसमयदोळु दितनिषेकं कर्म्मस्वरूपमं त्यजिसि पुद्गलांतररूपदिंदं परिणमिसुवंतु माळकुमेंबुदत्थं ॥

एकाशीतिः । अप्रमत्तेऽनुदीरणा अष्टौ मिलित्वा एकान्नपंचाशत् । उदीरणा त्रिसप्ततिः । अपूर्वकरणेऽनुदीरणा चतस्रो मिलित्वा त्रिपंचाशत् उदीरणा एकान्नषष्टिः । अनिवृत्तिकरणेऽनुदीरणा षट् संयोज्य एकान्नषष्टिः । उदीरणा त्रिषष्टिः । सूक्ष्मसांपराये नुदीरणा षट् संयोज्य पंचषष्टिः । उदीरणा सप्तपंचाशत् । उपशांतकषायेऽनुदीरणा एकां संयोज्य षट्षष्टिः उदीरणा षट्पंचाशत् । क्षीणकषायेऽनुदीरणा द्विसंयोज्य अष्टषष्टिः, उदीरणा चतुःपंचाशत् । सयोगकेवलिन्यनुदीरणा षोडश संयोज्य तीर्थकृदुदीरणात् त्र्यशीतिः, उदीरणा एकान्नचत्वारिंशत् । अयोगकेवलिनि अनुदीरणा एकान्नचत्वारिंशत् मिलित्वा द्वाविंशत्युत्तरशतं, उदीरणा नास्ति । उदीरणा नाम अपक्वपाचनं दीर्घकाले उदेष्यतोऽग्रनिषेकानपकृष्य अल्पस्थितिकाधस्तननिषेकेषु उदयावल्यां

७. अप्रमत्तमें अनुदीरणा ४१ + ८ = उनचास । उदीरणा तिहत्तर । व्युच्छित्ति चार ।

८. अपूर्वकरणमें अनुदीरणा ४९ + ४ = तरेपन । उदीरणा उनसठ । व्युच्छित्ति छह ।

९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदीरणा ५३ + ६ = उनसठ, उदीरणा तिरसठ । व्युच्छित्ति छह ।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें अनुदीरणा ५९ + ६ = पैंसठ, उदीरणा सत्तावन । व्युच्छित्ति एक ।

११. उपशान्त कषायमें अनुदीरणा ६५ + १ = छियासठ । उदीरणा छप्पन । व्युच्छित्ति दो ।

१२. क्षीणकषायमें अनुदीरणा ६६ + २ = अड़सठ । उदीरणा चौवन । व्युच्छित्ति सोलह ।

१३. सयोगकेवलीमें तीर्थंकर प्रकृतिकी उदीरणा होनेसे अनुदीरणा ६८ + १६ = ८४ - १ = तेरासी । उदीरणा उनतालीस । व्युच्छित्ति उनतालीस ।

१४. अयोगकेवलीमें अनुदीरणा ८३ + ३९ = एक सौ बाईस । उदीरणा नहीं है । उदीरणाका अर्थ है अपक्वपाचन । अर्थात् दीर्घकालमें उदयमें आनेवाले कर्म परमाणुमें-से अग्रिम निषेकोंका अपकर्षण करके, अल्पस्थितिवाले नीचेके निषेकोंमें देकर उदयावलीमें लाकर

अनंतरमुक्तोदीरणानुदीरणा प्रकृतिगळ संख्येयं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

सत्तरसेक्कारखचदुसहियसयं सगिगिसीदितियसदरी ।
णवतिण्णिसट्ठि सगछक्कवण्ण चउवण्णमुगुदालं ॥२८२॥

सप्तदशैकादशशून्यचतुःसहितशतं सप्तैकाशीतिः त्रिसप्ततिर्नव त्रिषष्टिः सप्त षट्पंचाशत् चतुःपंचाशदेकान्न चत्वारिंशत् मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानमवसानमाद पदिमूरुंगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंदमुदीरणाप्रकृतिगळु सप्तदश एकादश शून्य चतुःसहितशतंगळ्, सप्ताशीतिएकाशीतित्रिसप्तति नवषष्टि त्रिषष्टि सप्तपंचाशत् षट्पंचाशत् चतुःपंचाशत् एकान्नचत्वारिंशत्संख्याप्रमितंगळप्पुवु ॥

पंचेक्कारसबावीसट्ठारस पंचतीस इगिणवदालं ।
तेवण्णेक्कुणसट्ठी पणछक्कड सट्ठि तेसीदी ॥२८३॥

पंचैकादश द्वाविंशत्यष्टादश पंचत्रिंशदेकनव चत्वारिंशत्त्रिपंचाशदेकान्नषष्टि पंच षडष्टषष्टिस्त्र्यशीतिः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु अनुदीरणाप्रकृतिगलु यथाक्रमदिंदं पंच एकादश द्वाविंशति अष्टादश पंचत्रिंशत् एकचत्वारिंशत् नवोत्तरचत्वारिंशत् त्रिपंचाशत् एकान्नषष्टि पञ्चषष्टि षट्षष्टि अष्टषष्टि त्र्यशीतिसंख्याप्रमितंगलप्पुवु ।

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
उदीरणा द्रव्य.	५	९	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	०
उदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	०
अनुदीरणा	५	११	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	१२२

दत्वा उदयमुखेन अनुभूय कर्मरूपं त्याजयित्वा पुद्गलांतररूपेण परिणामयतीत्यर्थः ॥ २८१ ॥
अथोक्तोदीरणानुदीरणाप्रकृतिसंख्याः गाथाद्वयेनाह—

चतुर्दशगुणस्थानेषु यथाक्रमं सप्तदशैकादशशून्यचतुःसहितशतानि सप्ताशीतिरेकाशीतिस्त्रिसप्ततिर्नवषष्टिः त्रिषष्टिः सप्तपंचाशत्षट्पंचाशच्चतुःपंचाशदेकान्नचत्वारिंशदुदीरणा भवति । पंचैकादशद्वाविंशत्यष्टादशपंचत्रिंशदेकचत्वारिंशन्नवोत्तरचत्वारिंशत्त्रिपंचाशदेकान्नषष्टिपंचषष्टिषट्षष्टयष्टषष्टिस्त्र्यशीतिसंख्या च अनुदी-

उदयरूपसे उनको भोगकर, कर्मरूपसे छुड़ाकर अन्य पुद्गलरूपसे परिणमाता है ।

आगे दो गाथाओंसे उदीरणा और अनुदीरणा प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानोंमें क्रमसे एक सौ सतरह, एक सौ ग्यारह, एक सौ, एक सौ चार, सतासी, इक्यासी, तिहत्तर, उनहत्तर, तरेसठ, सत्तावन, छप्पन, चौवन, और उनतालीसकी उदीरणा होती है ॥२८२॥

यितु गुणस्थानदोलुदयत्रिभंगियुमुदीरणात्रिभंगियुं पेलल्पट्टुदिन्ननंतरं गत्यादिमार्गणेगलोलुदयत्रिभंगियं पेललुपक्रमिसि गत्यादिगलोलु पेळ्व क्रमदिं पेळ्दपरु :—

गदियादिसु जोग्गाणं पयडिप्पहुडीणमोघसिद्धाणं ।
सामित्तं णेदव्वं कमसो उदयं समासेज्ज ॥२८४॥

गत्यादिषु योग्यानां प्रकृतिप्रभृतीनामोघसिद्धानां । स्वामित्वं नेतव्यं क्रमशः उदयं समाश्रित्य ॥

गत्यादिमार्गणेगळोळु योग्यंगळप्प प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशंगळगे गुणस्थानदोळु पेळ्दु सिद्धंगळप्पुवक्के स्वामित्वमागमोक्तक्रमदिंदमुदयमनाश्रयिसि नडसल्पडुगुमदें तेंदोडे अल्लि मुन्नं परिभाषेयं गाथापंचकदिंदं पेळ्दपरु :—

गदि आणुआउउदओ सपदे भूपुण्णबादरे ताओ ।
उच्चुदओ णरदेवे थीणतिगुदओ णरे तिरिये ॥२८५॥

गत्यानुपूर्व्यायुरुदयः सपदे भूपूर्णबादरे आतपः । उच्चोदयो नरदेवयोः स्त्यानगृद्धित्रयोदयो नरे तिरश्चि ॥

रणा भवति ॥ २८२-८३ ॥ एवं गुणस्थानेषूदयोदीरणात्रिभंगीमुक्त्वा इदानीं गत्यादिमार्गणासु उदयत्रिभंगीं वक्तुमनास्तावद्गत्यादिषु तत्क्रममाह—

गत्यादिमार्गणासु योग्यानां प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां गुणस्थानसिद्धानां स्वामित्वमागमोक्तक्रमेणोदयमाश्रित्य नेतव्यं ॥ २८४ ॥ तत्र तावत्परिभाषां गाथापंचकेनाह—

उदयत्रिभंगी रचना

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	अ	अ.
उदी.व्यु.	५	९	१	१७	८	८	४	६	६	१	२	१६	३९	०
उदीरणा	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७३	६९	६३	५७	५६	५४	३९	०
अनुदीरणा	५	११	२२	१८	३५	४१	४९	५३	५९	६५	६६	६८	८३	१२२

तथा पाँच, ग्यारह, बाईस, अठारह, पैंतीस, इकतालीस, उनचास, तरेपन, उनसठ, पैंसठ, छियासठ, अड़सठ, तथा तेरासीको अनुदीरणा होती है ॥२८३॥

इस प्रकार गुणस्थानोंमें उदयत्रिभंगी और उदीरणा त्रिभंगी कहकर अब गति आदि मार्गणाओंमें उदयत्रिभंगी कहनेका विचार रखकर प्रथम गति आदिमें उदयका क्रम कहते हैं—

गुणस्थानोंमें सिद्धयोग्य प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागका स्वामीपना गति आदि मार्गणाओंमें आगमके अनुसार उदयकी अपेक्षा लाना चाहिए ॥२८४॥

प्रथम पाँच गाथाओंसे परिभाषा कहते हैं—

विवक्षितभवप्रथमसमयदोळे गत्यानुपूर्व्यायुरुदयः विवक्षितगतितदानुपूर्व्य तत्संबंध्यायुष्योदयं सपदे सदृशस्थाने ओम्मों दळेकजीवनोळुदयिसुगुमेंबुदर्थं । भूपूर्णबादरे आतपः पृथ्वीकायिकबादरपर्य्याप्तकजीवनोळे आतपनामकर्म्मोदयमक्कुं । उच्चोदयो नरदेवयोः उच्चैर्गोत्रकर्म्मोदयं मनुष्यरोळं देवक्कळेनितुभेदमनितरोळमक्कुं । स्त्यानगृद्धित्रयोदयो नरे तिरश्चि स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचलावरणत्रयोदयं मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळमुदयिसुगुमितरगतित्रयदोळुदयमिल्लेंबुदर्थं । अल्लियं :—

संखाउगणरतिरिये इंदियपज्जत्तगादु थीणतियं ।
जोग्गमुदेदुं वज्जिय आहारविगुव्वणुट्ठवगे ॥२८६॥

संख्यातायुर्न्नरतिरश्चोरिंद्रियपर्य्याप्तेस्तु स्त्यानगृद्धित्रयं । योग्यमुदेतुं वर्ज्जित्वाहार विकुर्व्वणोत्थापके ॥

तु मत्ते संख्यातवर्षायुष्यरप्प कर्म्मभूमिसंभूतमनुष्यतिर्य्यंचरुगळोळिंद्रियपर्य्याप्तियिंदमेले स्त्यानगृद्धित्रयमुदयिसल्के योग्यमक्कुमल्लियुं मनुष्यरोळुमाहारकऋद्धियुं वैक्रियिकऋद्धियुमिल्लदरोळे तदुदयमरियल्पडुगुं ।

अयदापुण्णे ण हि थी संढो वि य धम्मणारयं मुच्चा ।
थीसंढयदे कमसो णाणुचऊ चरिमतिण्णाणू ॥२८७॥

असंयतापूर्णे न हि स्त्री, षंडोपि च धर्म्मनारकं मुक्त्वा । स्त्रीषंढाऽसंयते क्रमशो नानुपूर्व्य चत्वारि चरम त्रीण्यानुपूर्व्याणि ॥

विवक्षितभवप्रथमसमये एव तद्गतितदानुपूर्व्यतदायुष्योदयः सपदे सदृशस्थाने युगपदेवैकजीवे उदेतीत्यर्थः । भूकायिकबादरपर्याप्ते एव आतपनामोदयः उच्चैर्गोत्रोदयो मनुष्ये सर्वदेवभेदे च । स्त्यानगृद्धित्रयोदयो मनुष्ये तिरश्चि च नेतरत्रेत्यर्थः ॥ २८५ ॥ तत्रापि—

तु पुनः संख्यातवर्षायुष्के कर्मभूमिमनुष्यतिरश्चि इंद्रियपर्याप्तेरुपरि स्त्यानगृद्धित्रयमुदययोग्यं । तत्रापि मनुष्ये आहारकर्द्धिवैक्रियिकद्वयभावे एव ॥ २८६ ॥

विवक्षित भवके प्रथम समयमें ही उस भव सम्बन्धी गति, आनुपूर्वी और आयुका उदय एक साथ ही एक जीवके होता है और वह समान रूपसे होता है अर्थात् तीनों भी एक ही गति सम्बन्धी होते हैं। जिस गतिका उदय होगा उसी गति सम्बन्धी आयु और आनुपूर्वीका भी उदय होगा। तथा बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवके ही आतप नामकर्मका उदय होता है। उच्चगोत्रका उदय मनुष्य और सब प्रकारके देवोंमें होता है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओंका उदय मनुष्य और तिर्यंचोंमें होता है, अन्यत्र नहीं होता ॥२८५॥

संख्यात वर्षकी आयुवाले कर्मभूमिया मनुष्यों और तिर्यंचोंमें इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् स्त्यानगृद्धि आदि तीन उदय होनेके योग्य हैं। किन्तु मनुष्योंमें भी आहारकऋद्धि और वैक्रियिकऋद्धिकी उत्थापना करनेके कालमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनका उदय नहीं होता ॥२८६॥

निर्वृत्यपर्य्याप्तकनप्पऽसंयत सम्यग्दृष्टियोळु स्त्रीवेदोदयं न हि यिल्लेकेंदोडा असंयतसम्यग्दृष्टि स्त्रीयागि पुट्टनप्पुदरिंदं, मत्तमपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टियोळु षंडोपि च न हि षंडवेदोदयमुमिल्लेकेंदोडातं षंडनागियुं पुट्टनप्पुदरिंदमिदुत्सर्ग्गविधियप्पुदरिंदं प्राग्बद्धनरकायुष्यनप्प मनुष्यतिर्य्यंचाऽसंयतसम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वमं विराधिसदे धर्म्मयोळु नारकनागि पुट्टुगुमप्पुदरिंदमल्लिय धर्म्मेय नारकापर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टियं बिट्टु शेषापर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळु षंडवेदोदयमिल्लदु कारणवागि स्त्रीवेदिगळुं षंडवेदिगळुमप्पऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळोळु यथाक्रमदिंदमानुपूर्व्यचतुष्टयमुमं नरकानुपूर्व्यमं कळेदु चरमानुपूर्व्यत्रितयमुमुदयमिल्लेकेंदोडानुपूर्व्यमुत्तरभवप्रथमसमयदोळुदयिसुगुमप्पुदरिंदमा कालदोळा स्त्रीवेदोदयमुं नपुंसकवेदोदयमुमुळ्ळ जीवंगळु स्त्रीयुं षंडरुमक्कुमप्पुदरिंदं ॥

इगिविगलथावरचऊ तिरिये अपुण्णो णरे वि संघडणं ।
ओरालदु णरतिरिए वेगुव्वदु देवणेरइये ॥२८८॥

एकविकलं स्थावर चत्वारि तिरश्चि अपूर्ण नरे पि संहननमौदारिकद्वयं नरतिरश्चोर्व्वैक्रियिकद्वयं देवनारकयोः ॥

एकेंद्रियजातिनामकर्म्ममुं द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिनामत्रितयमुं स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणचतुष्कमुमेंबी प्रकृतिगळुदयं तिर्य्यग्गतिजरप्प तिर्य्यंवरोळेयुदयिसुगुं । अपर्य्याप्तनामकर्म्मं मनुष्यगतिजरप्प मनुष्यरोळमुदयिसुगुं । संहननषट्कमुमौदारिकद्वयमुं मनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोळमुदयिसुगुं । वैक्रियिकद्वयं सुररोळं नारकरोळमुदयिसुगुं ।

निर्वृत्यपर्याप्तासंयते स्त्रीवेदोदयो नहि असंयतस्य स्त्रीत्वेनानुत्पत्तेः । षंढवेदादयोऽपि च नहि षंढत्वेनापि तस्यानुत्पत्तेः । अयमुत्सर्गविधिः प्राग्बद्धनरकायुस्तिर्यग्मनुष्ययोः सम्यक्त्वेन समं धर्मायामुत्पत्तिसंभवात् तेन असंयते स्त्रीवेदिनि चतुर्णां, षंढवेदिनि त्रयाणां चानुपूर्वीणां उदयो नास्ति ॥ २८७ ॥

एकद्वित्रिचतुरिंद्रियजातिनामकर्मस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि तिर्यक्षु एव उदययोग्यानि अपर्याप्तमनुष्येऽपि । संहननषट्कमौदारिकद्वयं च तिर्यग्मनुष्येष्वेव । वैक्रियिकद्वयं सुरनारकेष्वेव ॥ २८८ ॥

निर्वृत्यपर्याप्तक असंयतमें स्त्रीवेदका उदय नहीं होता, क्योंकि असंयत सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्री पर्यायमें जन्म नहीं लेता । निर्वृत्यपर्याप्तक असंयतमें नपुंसक वेदका भी उदय नहीं होता क्योंकि वह मरकर नपुंसक उत्पन्न नहीं होता । किन्तु यह उत्सर्ग विधि है । क्योंकि जिस मनुष्य या तिर्यंचने पहले नरकायुका बन्ध किया है वह यदि सम्यक्त्वके साथ मरण करता है तो उसकी उत्पत्ति घर्मा नामक प्रथम नरकमें होती है । अतः असंयत स्त्रीवेदीके चारों आनुपूर्वीका और असंयत नपुंसकवेदीके नरक बिना तीन आनुपूर्वीका उदय नहीं होता ॥२८७॥

एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति नामकर्म तथा स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण तिर्यंचोंमें ही उदय योग्य हैं । किन्तु अपर्याप्त प्रकृति मनुष्योंमें भी उदययोग्य है । छह संहनन, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग तिर्यंच और मनुष्योंमें ही उदय योग्य है । तथा वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांग देवों और नारकोंमें ही उदय योग्य है ॥२८८॥

तेउतिगूणतिरिक्खेसुज्जोवो बादरेसु पुण्णेसु ।
सेसाणं पयडीणं ओघं वा होदि उदओ दु ॥२८९॥

तेजस्त्रिकोनतिर्य्यक्षूद्योतो बादरेषु पूर्णेषु । शेषाणां प्रकृतीनामोघवद्भवत्युदयस्तु ॥

तेजस्कायिकमुं वायुकायिकमुं साधारणवनस्पतिकायिकमुमेंबी जीवत्रितयोनतिर्य्यंचरु बादरपर्य्याप्तजीवंगळोळुद्योतनामकर्म्ममुदयिसुगुं । तु मत्ते शेषप्रकृतिगळुदयक्रमं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयक्कु-। मनंतरमी परिभाषासूत्रपंचकप्रणीतप्रकृत्युदयनियममं मनदोळव धारिसिदा तंगे नरकादिगतिचतुष्टयदोळुदयप्रकृतिगळं पेळल्वेडि मुन्नं नरकगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :

थीणतिथीपुरिसूणा घादी णिरयाउणीचवेयणियं ।
णामे सगवंचिठाणं णिरयाणू णारयेसुदया ॥२९०॥

स्त्यानगृद्धित्रयं स्त्रीपुरुषोनानि घातीनि नरकायुर्न्नीचवेदनीयं नाम्नि स्ववांचिस्थानं नारकानुपूर्व्यं नारकेषूदयाः ॥

स्त्यानगृद्धित्रय स्त्रीवेद पुंवेदमेंबी पंचप्रकृतिगळं कळेदु शेषघातिगळु नाल्वत्तेरडुं ४२ । नारकायुष्यमुं १ । नीचैर्गोत्रमुं १ सातासातवेदनीयद्वितयमुं २ । नामकर्म्मदोळु नारकरुगळ भाषापर्य्याप्तिस्थानदिप्पत्तों भत्तुप्रकृतिगळुं २९ । नारकानुपूर्व्यमुमेंब षड्डुत्तरसप्ततिप्रकृतिगळु नारकर्गुदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु ७६ ॥

अनंतरं नारकरुगळभाषापर्य्याप्तिस्थानद यिप्पत्तों भत्तु प्रकृतिगळवावुवेंबोडे पेळ्दपरु :—

तेजोवायुसाधारणवनस्पत्यूनशेषबादरपर्याप्ततिर्यक्षु उद्योतः । तु-पुनः शेषप्रकृत्युदयक्रमो गुणस्थानवद् भवेत् ॥ २८९ ॥ एवं पंचपरिभाषा सूत्रैरुदयनियमं परिज्ञाप्य चतुर्गतिषु उदयप्रकृतीर्वक्तुं प्राक् नरकगतावाह—

स्त्यानगृद्धित्रयस्त्रीपुंवेदोनघातीनि द्वाचत्वारिंशत् । नरकायुर्नीचगोत्रसातासातवेदनीयानि नामकर्मणि नारकभाषापर्याप्तिस्थानस्यैकान्नत्रिंशत् नारकानुपूर्व्यं चेति षट्सप्ततिर्नारकोदययोग्यानि ॥ २९० ॥ तदेकान्नत्रिंशतमाह—

तेजस्काय, वायुकाय, साधारण वनस्पतिकायके सिवाय शेष बादर पर्याप्त तिर्यंचोंमें उद्योत प्रकृतिका उदय होता है। शेष प्रकृतियोंके उदयका अनुक्रम गुणस्थानवत् जानना ॥२८९॥

इस प्रकार पाँच परिभाषा सूत्रोंसे उदयका नियम कहकर चार गतियोंमें उदय-प्रकृतियोंका कथन करनेके लिए पहले नरकगतिमें कहते हैं—

स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बिना घातिकर्मोंकी शेष बयालीस प्रकृतियाँ, नरकायु, नीचगोत्र, साता और असाता वेदनीय, तथा नारकी जीवोंके भाषा-पर्याप्तिके स्थानमें होनेवाली नामकर्मकी उनतीस प्रकृतियाँ और नरकानुपूर्वी, ये छिहत्तर प्रकृतियाँ नरकगतिमें उदय योग्य हैं ॥२९०॥

उन उनतीस प्रकृतियोंको कहते हैं—

वेगुव्वतेजथिरसुहदुग दुग्गदिहुंडणिमिणपंचिंदी ।
णिरयगदि दुब्भगागुरुतसवण्णचऊ य वचिठाणं ॥२९१॥

वैक्रियिकतेजः स्थिरशुभद्विकं दुर्गतिहुंडनिर्म्माणपंचेंद्रियनरकगति दुर्भगागुरुत्रसवर्णचतुष्टयानि च वचः स्थानं ॥

वैक्रियिकद्विकमु २। तैजसद्विकमुं २ स्थिरद्विकमुं २ शुभगद्विकमुं २। अप्रशस्तविहायोगतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ निर्म्माणनाममुं १। पंचेंद्रियजातिनाममुं १ दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्त्तिचतुष्कमुं ४ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं ४ त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरचतुष्कमुं ४। वर्णगंधरसस्पर्शचतुष्कमुं ४। इन्तु पिप्पत्तोंभत्तुप्रकृतिगळु २९ नारकर वचः पर्य्याप्तिस्थानदोळप्पु वु।

अनंतरं घर्म्मेय नारकर्गुदयव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

मिच्छमणंतं मिस्सं मिच्छादिदिए कमा छिदी अयदे ।
बिदियकसाया दुब्भगणादेज्जदुगाउणिरयचऊ ॥२९२॥

मिथ्यात्वमनंतानुबंधिनो मिश्रं मिथ्यादृष्टयादित्रये क्रमाच्छित्तिरसंयते । द्वितीयकषाया दुर्भगानादेयद्विकायुर्न्नारक चत्वारि ॥

मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्व उदयव्युच्छित्तियक्कुं। सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं। मिश्रनोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु-। मिन्तुक्तक्रमदिंदमसंयतसम्यग्दृष्टियोळु द्वितीयकषायोदयमुं दुर्भगमुमनादेयमुमयशस्कीर्त्तियुं नरकायुष्य नरकगतियुं तत्प्रायोग्यापूर्व्वमुं वैक्रियिकशरीरनाममुं तदंगोपांगनाममुमितु कूडि पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पुवु।

वैक्रियिकद्विकं तैजसद्विकं स्थिरद्विकं शुभद्विकं अप्रशस्तविहायोगतिः हुंडसंस्थानं निर्माणं पंचेंद्रियं नरकगतिः दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्तयः अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासाः त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकशरीराणि वर्णगंधरसस्पर्शाश्च इत्येकान्नत्रिंशन्नारकाणां वचःपर्याप्तिस्थाने भवंति ॥ २९१ ॥ अथ घर्मानारकोदयव्युच्छित्तिमाह—

मिथ्यात्वं अनंतानुबंधिचतुष्कं सम्यग्मिथ्यात्वं च क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानत्रये व्युच्छित्तिः ।

वैक्रियिकद्विक, तैजस कार्माण, स्थिर अस्थिर, शुभ अशुभ, अप्रशस्त विहायोगति, हुण्डक संस्थान, निर्माण, पंचेन्द्रिय, नरकगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति ये चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास ये चार, त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक ये चार, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श ये चार इस प्रकार ये उनतीस प्रकृतियाँ नारकी जीवोंके वचन पर्याप्तिके स्थानमें उदयमें आती हैं ॥२९१॥

आगे घर्मा नामक प्रथम नरकमें उदय व्युच्छित्ति कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी तथा मिश्रमें सम्यक्मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। और असंयतमें

यितु व्युच्छित्तिगळागुत्तं बिरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतिमेंबेरडुं प्रकृतिगळतुदयंगळप्पुवु २। उदयप्रकृतिगळेप्पत्त नाल्कु ७४॥ सासादनगुणस्थानदोळोंदु मिथ्यात्वं गूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूरवरोळु नरकानुपूर्व्यमं कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु ४। उदयप्रकृतिगळु नरकानुपूर्व्यरहितमेप्पत्तेरडु ७२। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुप्रकृतिगळेंटरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं विरलु अनुदयकृतिगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळरुवत्तोंभत्तु ६९। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळु ओंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळेंटवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं नारकानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळारु ६। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तु ७०। यितु घर्मेयनारकरुगुंदयव्युच्छित्युदयानुदयप्रकृतिगळगे मिथ्यादृष्टयादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु संदृष्टिः—

गुणस्थान	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	१२
उ	७४	७२	६९	७०
अ	२	४	७	६

अनंतरं द्वितीयादि षट् पृथ्विगळोळु प्रकृत्युदयानुदयोदयव्युच्छित्तिगळं पेळ्दपरु :—

विदियादिसु छसु पुढविसु एवं णवरि य असंजदट्ठाणे।
णत्थि णिरयाणुपुव्वी तिस्से मिच्छेव वोच्छेदो ॥२९३॥

द्वितीयादिषु षट्पृथ्वीष्वेवं नवीनमसंयतस्थाने। नास्ति नारकानुपूर्व्यं तस्य मिथ्यादृष्टावेव व्युच्छित्तिः॥

असंयते द्वितीयकषायचतुष्कदुर्भगानादेयायशस्कीर्तिनारकायुर्नरकगतितदानुपूर्व्यवैक्रियिकशरीरतदंगोपांगानि द्वादश। एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती उदयः चतुःसप्ततिः। सासादनेऽनुदयः मिथ्यात्वनरकानुपूर्व्ये मिलित्वा चतस्रः, उदयः द्वासप्ततिः। मिश्रेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् सप्त, उदयः एकान्नसप्ततिः। असंयतेऽनुदयः एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वप्रकृतिनारकानुपूर्व्योदयात् षट्, उदयः सप्ततिः॥ २९२॥ अथ द्वितीयादिपृथ्वीष्वाह—

अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नरकायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग इन बारहकी व्युच्छित्ति होती है।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनुदय मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका, उदय चौहत्तरका। सासादनमें मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी मिलकर चारका अनुदय। उदय बहत्तर। चारकी व्युच्छित्ति।

३. मिश्रमें—सासादनमें व्युच्छित्ति चार और अनुदय चारमें-से सम्यक् मिथ्यात्वका उदय होनेसे अनुदय सात, उदय उनहत्तर, व्युच्छिति एक।

४. असंयतमें—मिश्रमें एककी व्युच्छित्ति और अनुदय सातमें-से सम्यक्त्व प्रकृति और नरकानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह, उदय सत्तर॥२९२॥

वंशे मोदलागिर्द्दारुं पृथ्विगळोळं घर्म्मेयोळु पेळ्दंते उदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। असंयतगुणस्थानदोळु विशेषमुंटदावुदेंदोडे नरकानुपूर्व्योदयमिल्लेकेंदोडे असंयतसम्यग्दृष्टिप्राग्बद्धनारकायुष्यनादोडं द्वितीयादिपृथ्विगळोळु पुट्टनदुकारणदिंदमा नारकानुपर्व्यमं तंदु मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळेरडु २ उदयप्रकृतिगळेप्पत्त नाल्कु ७४। अनुदयप्रकृतिगळु। सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंबेरडु प्रकृतिगळप्पुवु २। सासादनगुणस्थानदोळु एरडुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु नाल्कु ४। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेरडु ७२। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयप्रकृतिगळें टवरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडिदनुदयप्रकृतिगळें टवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु उदयप्रकृतिगळरुवत्तों भत्तु ६९। यितु वंशादि षट् पृथ्विगळ मिथ्यादृष्टयादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळुक्तोदयव्युच्छित्ति उदयानुदयप्रकृतिगळगे संदृष्टि :—

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	२	४	१	११
उ	७४	७२	६९	६९
अ	२	४	७	७

अनंतरं तिर्य्यग्गतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

वंशादिषु षट् पृथ्वीषु घर्मावत् षट्सप्ततिः उदययोग्याः। असंयते नारकानुपूर्व्योदयो नहि प्राग्बद्धनरकायुष्कस्यापि सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तेः। ततः नारकानुपूर्व्येण सह मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः द्वयम्। उदयः चतुःसप्ततिः। अनुदयः सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृती। सासादने द्वयं संयोज्य अनुदयः चतस्रः। उदयः द्वासप्ततिः। मिश्रेऽनुदयः चतस्रः संयोज्य मिश्रप्रकृत्युदयात्सप्त, उदयः एकान्नसप्ततिः। असंयतेऽनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् सप्त। उदयः एकान्नसप्ततिः ॥ २९३ ॥ अथ तिर्यग्गतावाह—

आगे द्वितीयादि पृथिवियोंमें कहते हैं—

वंशा आदि पृथिवियोंमें घर्माके समान उदय योग्य प्रकृतियाँ छिहत्तर। किन्तु असंयत गुणस्थानमें नरकानुपूर्वीका उदय नहीं होता, क्योंकि जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध किया है ऐसा सम्यग्दृष्टी भी वंशा आदिमें उत्पन्न नहीं होता। इसलिए मिथ्यादृष्टी गुणस्थानमें नरकानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होनेसे दोकी व्युच्छित्ति होती है और उदय चौहत्तर तथा अनुदय सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृतिका होता है। इन दोमें दोकी व्युच्छित्ति मिलानेसे सासादनमें अनुदय चारका और उदय बहत्तरका। सासादनमें चारकी व्युच्छित्तिमें चारका अनुदय जोड़नेसे आठ होते हैं। इसमें-से मिश्र प्रकृतिका उदय होनेसे मिश्रगुणस्थानमें अनुदय सातका और उदय उनहत्तरका। मिश्रमें एककी व्युच्छित्ति है उसमें सात मिलानेसे आठ होते हैं। इसमें-से सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय सातका और उदय उनहत्तरका है ॥२९३॥

तिरिए ओघो सुरणिरयाऊ उच्चमणुदुहारदुगं ।
वेगुव्वछक्कतित्थं णत्थि हु येमेव सामण्णे ॥२९४॥

तिरश्चि ओघः सुरनरनरकायूंषि उच्च मनुष्यद्विकमाहारद्विकं । वैक्रियिकषट्कं तीर्त्थं नास्ति खलु एवमेव सामान्ये ॥

तिर्य्यग्गतितिर्य्यंरोळु सामान्यदिदं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयक्कुमवुकारणमागि नूरिप्पत्तेरडुदय प्रकृतिगळप्पुववरोळु देवायुष्यमुं १। मनुष्यायुष्यमुं नारकायुष्यमुं १। उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ वैक्रियिकषट्कमुं ६। तीर्त्थंकरनाममु १ मेंब पदिनय्दुं १ प्रकृतिगळगुदयमिल्लेकेंदोडे तिर्य्यग्गतिजरोळा पदिनैय्दुं प्रकृतिगळगुदयं विरुद्धमप्पुदरिंदमवं कळेदोडुदय योग्यप्रकृतिगळु नूरेळु १०७। सामान्यतिर्य्यंचरुं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुं पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुं योनिमतितिर्य्यंचरुं लब्ध्यपर्याप्ततिर्य्यंचरुमेंब पंचविधतिर्य्यंचरोळु सामान्यतिर्य्यंचरुगळ्गे नूरेळं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०७। तिर्य्यगतिजग्गें गुणस्थानपंचकमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानदोळु तिरिए ओघो येंबिदरिंदं पणणवेत्यादिउदयव्युच्छित्तिगळरियल्पडुगुमप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळय्दु ५। उदयप्रकृतिगळु नूरय्दु १०५। अनुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेवेरडेयक्कुं २। सासादनगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदय प्रकृतिगळु ७। उदयप्रकृतिगळु नूरु १००। उदयव्युच्छित्तिगळोंभत्तु ९। मिश्रगुणस्थादोळोंभत्तुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पदिना-

तिर्यग्गतावोघः गुणस्थानवत् द्वाविंशत्युत्तरशतं । तत्र देवमनुष्यनरकायूंषि उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकमाहारद्विकं वैक्रियिकषट्कं तीर्थकरत्वं चेति पंचदश न इत्युदययोग्याः सप्तोत्तरशतं । १०७ । सामान्यतिर्यक्षु एवमेव सप्तोत्तरशतमेव । गुणस्थानानि पंच । तिरियो ओघो इति पणणवेत्यादि व्युच्छित्तयः तेन मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः पंच । उदयः पंचोत्तरशतं । अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । सासादने अनुदयः पंच संयोज्य सप्त ।

प्रथम नरक रचना

मि.	सा.	मि.	अ.
१	४	१	१२
७४	७२	६९	७०
२	४	७	६

द्वितीयादि नरक रचना

मि.	सा.	मि.	अ.
२	४	१	११
७४	७२	६९	६९
२	४	७	७

आगे तिर्यंचगतिमें कहते हैं—

तिर्यंचगतिमें ओघ अर्थात् गुणस्थानोंकी तरह उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से देवायु, मनुष्यायु, नरकायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी तथा तीर्थंकर इन पन्द्रहका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ सात हैं।

सामान्य तिर्यंचोंमें इसी प्रकार उदय योग्य प्रकृतियाँ एक सौ सात हैं। तथा गुणस्थान पाँच हैं।

१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उदय एक सौ पाँच, अनुदय दो मिश्र और सम्यक्त्व। व्युच्छित्ति पाँच।

रवरोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडियुदयंगळोळु तिर्य्यगानुपूर्व्यमं तेगदु अनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पदिनारु १६। उदयप्रकृतिगळु तोभत्तोंदु ९१। उदयव्युच्छित्तियुं मिश्रप्रकृतियो देयक्कुं १। असंयतगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतिगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पदिनेळवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिदोडनुदयप्रकृतिगळु पदिनय्दु १५। उदयप्रकृतिगळु तोभत्तेरडु ९२। उदयव्युच्छित्तिगळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४। तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १। दुर्भगनाममु १ मनादेयनाममुं मयशस्कीर्तिनाममु १ मितेंटु प्रकृतिगळप्पुवु। ८ देशसंयतगुणस्थानदोळा येंटुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूरु २३। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तनाल्कु ८४। उदयव्युच्छित्तिगळु मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळ्द तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतमुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतिमेंबेंटुं प्रकृतिगळप्पुवु ८। संदृष्टि :—

सामान्य तिर्यंच १०७

अ	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	५	९	१	८	८
उ	१०५	१००	९१	९२	८४
अ	२	७	१६	१५	२३

अनंतरं पंचेंद्रिय तिर्य्यंचरोळं तत्पर्य्याप्तकरोळं पेळ्दपरु :—

उदयः शतं । व्युच्छित्तिर्नव । मिश्रगुणस्थानेऽनुदयः नव तिर्यगानुपूर्व्यं च संयोज्य सम्यग्मिथ्यात्वोदयात् षोडश । उदयः एकनवतिः । व्युच्छित्तिरेका । असंयतेऽनुदयः मिश्रं संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात् पंचदश । उदयः द्वानवतिः । व्युच्छित्तिः द्वितीयकषायचतुष्कतिर्यगानुपूर्व्यदुर्भगानादेयायशस्कीर्तयोऽष्टौ । देशसंयते अनुदयः अष्टौ संयोज्य त्रयोविंशतिः । उदयः चतुरशीतिः । व्युच्छित्तिः गुणस्थानोक्ता अष्टौ ॥ २९४ ॥ अथ पंचेंद्रियतत्पर्याप्तकयोराह—

---

२. मिथ्यादृष्टिके अनुदय और व्युच्छित्तिको मिलानेसे सासादनमें अनुदय सात, उदय सौ, व्युच्छित्ति नौ।

३. सासादनके अनुदय और व्युच्छित्तिको मिलानेसे सोलहमें तिर्यंचानुपूर्वीको मिलानेसे तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय सोलह। उदय इक्यानवे। व्युच्छित्ति एक।

४. मिश्रमें अनुदय सोलह और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे सतरहमें-से सम्यक्त्व प्रकृति और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय पन्द्रह। उदय बानवें। व्युच्छित्ति अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, तिर्यंचानु, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति इन आठ की।

५. असंयतके अनुदय पन्द्रह और व्युच्छित्ति आठको जोड़नेसे देश संयतमें तेईसका अनुदय। उदय चौरासी। व्युच्छिति पंचम गुणस्थानमें कहीं आठ ॥२९४॥

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पर्याप्तक तिर्यंचोंमें कहते हैं—

थावरदुगसाहारणतावेगिविगलूण ताणि पंचक्खे ।
इत्थि अपज्जत्तूणा ते पुण्णे उदयपयडीओ ॥२९५॥

स्थावरद्वयसाधारणातपैकविकलोनानि तानि पंचाक्षे । स्त्र्यपर्याप्तोनानि तानि पूर्णे उदयप्रकृतयः ॥

स्थावरसूक्ष्मद्वयमुं २ । साधारणशरीरनाममुं १ । आतपनाममुं १ । येकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजातिनामचतुष्टयमु ४ मितेंदु प्रकृतिगळिंदमूनितमप्पमुं पेळ्द सामान्यतिर्य्यंचरुगळगुदययोग्यंगळु नूरेळं प्रकृतिगळे पंचेंद्रियतिर्य्यंचरुगळगुदययोग्यप्रकृतिगळु तोंभत्तों भत्तप्पवु । ९९ ॥ अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ् मिथ्यात्वमुमपर्य्याप्तनाममुमेरडुमुदयव्युच्छित्तिगळु २ । उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तेळु ९७ । मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेंबेरडुमनुदय प्रकृतिगळप्पुवु २ । सासादनगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळनंतानुबंधिचतुष्कमक्कुं ४ । उदय प्रकृतिगळु तोंभत्तय्दु ९५ । एरडुगूडिदनुदय प्रकृतिगळु नाल्कु ४ । मिश्रगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियों देयुदयव्युच्छित्तियक्कु १ । मुदयप्रकृतिगळु तोंभत्तों दु ९१ । नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळेंदु ८ । असंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळेंदु ८ । ओंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळों भतरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ । उदयप्रकृतिगळु तोंभत्तेरडु ९२ । देशसंयतगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळेंदु ८ । अनुदयंगळेंदुगूडि पविनय्दु १५ । उदयप्रकृतिगळे ण्भत्त नाल्कु ८४ । संदृष्टि :—

स्थावरसूक्ष्मसाधारणातपैकेंद्रियद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियोनसामान्यतिर्यगुक्ताः पंचेंद्रियतिरश्चि उदययोग्याः एकोनशतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वापर्याप्तं २ उदयः सप्तनवतिः । अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । सासादने व्युच्छित्तिरनंतानुबंधिचतुष्कं । उदयः पंचनवतिः । द्वयं संयोज्य अनुदयः चतस्रः । मिश्रे मिश्रं व्युच्छित्तिः । उदयः एकनवतिः, चतस्रः संयोज्य अनुदयोऽष्टौ । असंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ एकां निक्षिप्यानुदयः सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात्सप्त । उदयः द्विनवतिः । देशसंयते व्युच्छित्तिरष्टौ, अनुदयः अष्टौ

सामान्य तिर्यंचके उदय योग्य एक सौ सातमें-से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियको घटानेपर पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें उदय योग्य निन्यानबे ९९ हैं । उनमें-से—

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दो, मिथ्यात्व और अपर्याप्त । उदय सत्तानबे । अनुदय दो मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति ।

२. मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति दो और अनुदय दोको मिलानेसे सासादनमें अनुदय चार । उदय पंचानबें । व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चार ।

३. सासादनमें अनुदय चार और व्युच्छित्ति चारको मिलानेसे तथा मिश्र प्रकृतिका उदय और तिर्यंचानुपूर्वीका अनुदय होनेसे मिश्रमें अनुदय आठ । उदय इक्यानबे । व्युच्छित्ति एक मिश्रप्रकृति की ।

४. मिश्रमें अनुदय आठ और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे नौ हुए । उनमें-से सम्यक्त्व और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय सात । उदय बानबे । व्युच्छित्ति आठ ।

पंचेंद्रिय ९९

०	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	२	४	१	८	८
उ	९७	९५	९१	९२	८४
अ	२	४	८	७	१५

स्त्रीवेदमु १ मपर्य्याप्तमुं १ रहितमप्प पंचेंद्रिययोग्यप्रकृतिगळे पर्य्याप्तपंचेंद्रियोदययोग्यप्रकृतिगळु तों भत्तेळु ९७। अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिमिथ्यात्वप्रकृतियो देयक्कुं १। अनुदयप्रकृतिगळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुमेरडप्पुवु २। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तय्दु ९५। सासादनगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमे ४ यक्कुं। ओंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु मूरु ३। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तनाल्कु ९४। मिश्रगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्ति मिश्रप्रकृतियो देयक्कुं १। नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोलु कूडियुदयप्रकृतिगलोलु तिर्य्यगानुपूर्व्यमं कलेदनुदयप्रकृतिगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगलेलु ७। उदयप्रकृतिगलु तों भत्तु ९०। असंयतगुणस्थानदोलुदयव्युच्छित्तिगलेंदु ८। ओंदुगूडिदनुदयप्रकृतिगलेंटरोलु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यगानुपूर्व्यमं कलेदुदयप्रकृतिगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगलारु ६। उदयप्रकृतिगलु तों भत्तों दु ९१। देशसंयतगुणस्थानदोलुदयव्युच्छित्तिगलेंदु ८।

निक्षिप्य पंचदश, उदयश्चतुरशीतिः।

स्त्रीवेदापर्याप्तोनपंचेंद्रियतिर्यगुक्तास्तत्पर्याप्तस्य उदययोग्याः सप्तनवतिः। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं। अनुदयः सम्यक्त्वमिश्रप्रकृती। उदयः पंचनवतिः। सासादने व्युच्छित्तिरनंतानुबंधिचतुष्कं। एकां संयोज्य अनुदयस्तिस्रः। उदयश्चतुर्नवतिः। मिश्रे व्युच्छित्तिः मिश्रं। अनुदयः चतुष्कं तिर्यगानुपूर्व्यं च संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त। उदयः नवतिः। असंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ। अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यगानुपूर्व्योदयात् षट्, उदयः एकनवतिः। देशसंयते व्युच्छित्तिः अष्टौ। अनुदयः अष्टौ संयोज्य चतुर्दश।

५. असंयतके अनुदय सात और व्युच्छित्ति आठको मिलानेसे देशसंयतमें अनुदय पन्द्रह। उदय चौरासी। व्युच्छित्ति आठ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचके उदय योग्य निन्यानबेमें-से स्त्रीवेद और अपर्याप्तको घटानेपर पंचेन्द्रियपर्याप्त तिर्यंचके उदय योग्य सत्तानबे।

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति एक मिथ्यात्व। अनुदय दो सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति। उदय पंचानबे।

२. सासादनमें अनुदय तीन। व्युच्छित्ति अनन्तानुबन्धी चतुष्क। उदय चौरानबे।

३. सासादनके अनुदय तीनमें उसकी व्युच्छित्ति चारको मिलानेसे तथा उसमें तिर्यंचानुपूर्वीको जोड़ने और मिश्रके उदयमें आनेसे मिश्रगुणस्थानमें अनुदय सात। उदय नब्बे। व्युच्छित्ति एक मिश्र की।

एंदु गूडियनुदयप्रकृतिगलु पदिनाल्कु १४। उदयप्रकृतिगलेण्भत्तमूरु ८३। संदृष्टि :—

पर्य्याप्तपंचेंद्रिय ९७

०	मि	सा	मि	अ	दे
व्युच्छि	१	४	१	८	८
उदी	९५	९४	९०	९१	८३
अनु	२	३	७	६	१४

पुंसंढूणित्थिजुदा जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू।
पुण्णिदरे थी थीणति परघाददु पुण्णउज्जोवं ॥२९६॥

पुंषंढोनस्त्रीयुताः योनिमत्यामविरते न तिर्य्यगानुपूर्व्यं पूर्णेतरस्मिन् स्त्री स्त्यानगृद्धित्रय परघातद्वय पूर्णोद्योतं ॥

योनिमतितिर्य्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुगळ योग्यप्रकृतिगळु तों भत्तेळरोळु पुंवेदमुमं षंढवेदमुमं कळदु स्त्रीवेदमुमं कूडुत्तं विरलु तों भत्तारु प्रकृतिगळप्पुवु ९६। अल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्ति मिथ्यात्वप्रकृतियों देयक्कुं १। सासादनnनोळुदयव्युच्छित्तियनंतानुबंधिचतुष्टयमुं ४ तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं कूडियय्दप्पुवु ।५। एकदोडे जोणिणिए अविरदे ण तिरियाणू एंदु तिर्य्यंगानुपूर्व्यं सासादननोले व्युच्छित्तियागलुवेळ्कुमप्पुदरिंदं। मिश्रनोळुदयव्युच्छित्ति मिश्रप्रकृतियों देयक्कुं १। असंयतननोळु व्युच्छित्तिगळु

उदयस्त्र्यशीतिः ॥ २९५ ॥

योनिमत्तिर्यक्षु उदययोग्याः पंचेंद्रियपर्याप्तोक्तसप्तनवत्यां पुषंढवेदावपनीय स्त्रीवेदे निक्षिप्ते षण्णवतिर्भवति। तत्र व्युच्छित्तयः मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं तिर्यगानुपूर्व्यं चेति पंच। कुतः ? अविरदे णतिरियाण्वित्युक्तत्वात्। मिश्रे मिश्रं। असंयते तिर्यगानुपूर्व्याभावात् सप्त। देशसंयते गुण-

४. मिश्रके अनुदय सात और व्युच्छित्ति एकको मिलानेसे आठमें-से सम्यक्त्व और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय छह। उदय इक्यानवे। व्युच्छित्ति आठ।

५. असंयतके अनुदय छहमें उसकी व्युच्छित्ति आठ जोड़नेसे देशसंयतमें अनुदय चौदह। उदय तेरासी। व्युच्छिति आठ ॥२९५॥

पंचेन्द्रिय पर्याप्तके उदययोग्य सत्तानवेमें-से पुरुष वेद और नपुंसक वेदको घटाकर स्त्रीवेदको जोड़नेसे योनिमत तिर्यंचमें उदय योग्य छियानवे होती हैं। उनमें-से।

१. मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्वकी। अनुदय दो सम्यक्त्व और मिश्र। उदय चौरानवे।

२. सासादनमें अनुदय तीन। उदय तिरानवे। व्युच्छित्ति पाँच अनन्तानुबन्धी चार

तिर्य्यगानुपूर्व्यरहितमप्पुदरिंदमेळु प्रकृतिगळप्पुवु । ७ ॥ देशसंयतनोळुदयव्युच्छित्तिगळु तन्न गुणस्थानदोळु पेळ्दंटे प्रकृतिगळप्पुवु ८ ॥ यितु व्युच्छित्तिगळरियल्पडुत्तं विरलु योनिमति तिरश्चि मिथ्यादृष्टियोळानुदयप्रकृतिगळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमक्कुं २। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तनाल्कु ९४। सासादनगुणस्थानदोळु ओंदुंगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूरु ३। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तमूरु ९३। मिश्रगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळेंटरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदय-प्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळे ण्भत्तों भत्तु ८९। असंयतगुण-स्थानदोळों दुगूडियनुदयप्रकृतिगळेंटरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कलेदुदयप्रकृतिगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगलेलु ७। उयदप्रकृतिगळे ण्भत्तों भत्तु ८९। देशसंयतगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदय-प्रकृतिगलु पदिनाल्कु १४। उदय प्रकृतिगले ण्भत्तेरडु ८२। संदृष्टि :

योनिमत्तिर्य्यंच ९६

गु	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	१	५	१	७	८
उ	९४	९३	८९	८९	८२
अ	२	३	७	७	१४

पूर्णेतरस्मिन् लब्ध्यपर्य्याप्तपंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु योनिमतितिरश्चियोळु पेळ्दुदययोग्यप्रकृतिगळ्तों भत्तारररोळु स्त्रीवेदमुमं स्त्यानगृद्धित्रितयमुमं परघातनाममुमुच्छ्वास-

स्थानोक्ता अष्टौ । एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदयः चतुर्नवतिः । सासादनेऽनुदयः एकां संयोज्य तिस्रः । उदयस्त्रिनवतिः । मिश्रेऽनुदयः पंच संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । असंयतेऽनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वोदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । देशसंयतेऽनुदयः सप्त संयोज्य चतुर्दश, उदयो द्व्यशीतिः ।

लब्ध्यपर्याप्तपंचेंद्रियतिरश्चि उदययोग्या योनिमत्तिर्यगुक्तषण्णवत्यां स्त्रीवेदः स्त्यानगृद्धित्रयं परघातः

और तिर्यंचानुपूर्वी। क्योंकि पूर्वमें कहा है कि अविरत सम्यग्दृष्टी मरकर स्त्री तिर्यंच नहीं होता।

३. सासादनके अनुदय तीनमें उसकी व्युच्छित्ति पाँच मिलानेसे आठमें-से मिश्रका उदय होनेसे मिश्रमें अनुदय सात। व्युच्छिति एक मिश्र। उदय नवासी।

४. असंयतमें अनुदय सात; क्योंकि मिश्र अनुदयमें गयी और सम्यक्त्व प्रकृति उदयमें आ गयी। उदय नवासी। तिर्यंचानुपूर्वीके न होनेसे व्युच्छित्ति सात।

५. असंयतके अनुदय सातमें उसकी व्युच्छित्ति सात जोड़नेसे देशसंयतमें अनुदय चौदह। उदय बयासी। व्युच्छित्ति आठ।

योनिमत तिर्यंचके उदययोग्य छियानबेमें स्त्रीवेद, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त, उद्योत, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, यशस्कीर्ति,

नाममुमं पर्य्याप्तनाममुमं उद्योतनाममुमं ॥

सरगदिदु जसादेज्जं आदीसंठाणसंहदी पणगं ।
सुभगं सम्मं मिस्सं हीणा तेपुण्णसंढजुदा ॥२९७॥

स्वरगतिद्वयं यशस्कीर्त्यादेयमाद्यसंस्थानसंहननपंचकं सुभगं सम्यक्त्वं मिश्रं होनास्ताः अपूर्णषंढयुताः ॥

सुस्वरदुस्वरद्वयमुं २ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्वयमुं २ यशस्कीर्त्तियुं १ आदेयनाममुं १ आद्यसंस्थानपंचकमुं ५ आद्यसंहननपंचकमुं ५ सुभगनाममुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ मिश्रप्रकृतियु १ मितिप्पत्तेळ् २७ प्रकृतिगळं कळ्दपर्य्याप्तनाममुमं षंढवेदमुमं कूडुत्तं विरलेप्पत्तो दु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ७१ वेकें दोडे लब्ध्यपर्याप्तकजीवनोळो कळ्द प्रकृतिगळुदययोग्यंगळल्लप्पुदरिंदं । लब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळनितुं मिथ्यादृष्टिगळे यप्पुदरिंदमा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुं ।

अनंतरं मनुष्यगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

मणुवे ओघो थावर-तिरियादावदुग-एयवियलिंदी ।
साहरणिदरावुतियं वेगुव्वियछक्क परिहीणो ॥२९८॥

मानवे ओघः स्थावरतिर्य्यगातपद्वयैकविकलेंद्रियसाधारणेतरायुस्त्रितयं वैक्रियिकषट्कपरिहीनः ॥

उच्छ्वासः पर्याप्तं उद्योतः ॥ २९६ ॥

सुस्वरदुःस्वरद्वयं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती यशस्कीर्तिः आदेयं आद्यपंचसंस्थानपंचसंहननानि सुभगं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृती चेति सप्तविंशतिमपनीय अपर्याप्तषट्कवेदयोर्निक्षेपे एकसप्ततिः उदययोग्या भवंति । गुणस्थानमाद्यमेव ॥ २९७ ॥ मनुष्यगतावाह—

आदेय, आदिके पाँच संस्थान, आदिके पाँच संहनन, सुभग, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रप्रकृति, ये सत्ताईस घटाकर अपर्याप्त और नपुंसक वेद मिलानेसे उदययोग्य इकहत्तर होती हैं। गुणस्थान एक प्रथम ही होता है ॥२९६-२९७॥

सामान्य तिर्यंच रचना १०७

मि.	सा.	मि.	अ	दे.
५	९	१	८	८
१०५	१००	९१	९२	८४
		१६	५	२३

पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच ९७

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.
१	४	१	८	८
९५	९४	९०	९१	८३
२	३	७	६	१४

योनिमती तिर्यंच रचना ९६

मि.	सा	मि.	अ.	दे.
१	५	१	७	८
९४	९३	८९	८९	८२
२	३	७	७	१४

आगे मनुष्यगतिमें कहते हैं—

मनुष्यगतियोळु मनुष्यरुं चतुर्व्विधमप्परल्लि सामान्यमनुष्यरोळुदययोग्यप्रकृतिगळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ स्थावरद्वयमुं २ तिर्य्यग्गतिद्वयमुं २ आतपद्वितयमुं २ एकेंद्रिय द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियजातिचतुष्कमुं ४ साधारणशरीरनाममुं १ नरकतिर्य्यग्देवायुष्यमें-बितरायुस्त्रितयमुं ३। वैक्रियिकषट्कमु ६ मेंबी विंशतिप्रकृतिगळं २० कळेद शेषप्रकृतिगळु नूरेरडप्पु १०२ वल्लि :—

मिच्छमपुण्णं छेदो अणमिस्सं मिच्छगादितिसु अयदे ।
बिदियकसायणराणू दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥२९९॥

मिथ्यात्वमपूर्ण्णं छेदोऽनंतानुबंधिमिश्रं मिथ्यादित्रिषु असंयते। द्वितीयकषायनरानुपूर्व्व्यं दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तिः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुमेंबेरडुं छेदः व्युच्छित्तियक्कुं सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्कं छेदमक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे छेदमक्कु १। मितु मिथ्यादृष्ट्यादि मूरुं गुणस्थानंगळोळु छेदमरियल्पडुगुमसंयतनोळु द्वितीयकषाय-चतुष्कमुं ४ मनुष्यानुपूर्व्व्यमुं १ दुर्भगनाममुं १ अनादेयनाममुं १ अयशस्कीर्त्तिनाममु १ मितेंटु प्रकृतिगळु छेदमक्कु ॥

देसे तदियकसाया णीचं एमेव मणुसस्समण्णे ।
पज्जत्तेवि य यित्थीवेदापज्जत्तपरिहीणो ॥३००॥

देशव्रते तृतीयकषाया नीचमेवमेव मनुष्यसामान्ये। पर्य्याप्तेपि च स्त्रीवेदाऽपर्य्याप्त परिहीनं ॥

मनुष्याश्चतुर्विधाः तत्र सामान्यमनुष्ये उदययोग्याः सामान्योदयप्रकृतिषु १२२ स्थावरद्वयं तिर्यग्गति-द्वयं आतपद्वयं एकेंद्रियादिजातिचतुष्कं साधारणशरीरं नरकतिर्यग्देवायूंषि वैक्रियिकषट्कं चेति विंशतिमपनीय शेषद्व्युत्तरशतं १०२ ॥ २९८ ॥ तत्र—

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमपर्याप्तं चेति द्वयं व्युच्छित्तिः । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं मिश्रे मिश्रप्रकृतिः । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगमनादेयमयशस्कीर्तिश्चेत्यष्टौ ॥ २९९ ॥

मनुष्यके चार भेद हैं। उनमें सामान्य मनुष्यमें उदय योग्य सामान्य उदय प्रकृति १२२ में-से स्थावर सूक्ष्म, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, आतप उद्योत, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, साधारण शरीर, नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग ये बीस घटानेपर शेष एक सौ दो उदय योग्य हैं ॥२९८॥

तहाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति होती है।

सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार की, मिश्रमें मिश्रमोहनीय की, असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय अयशस्कीर्ति इन आठकी व्युच्छित्ति होती है ॥२९९॥

देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्क ४ मुं नीचैर्गोत्रमु १ मेंबय्दुं प्रकृतिगळु छेदमक्कुं ५। मेले प्रमत्तसंयतन्मोदल्गोंडु ई प्रकारदिंदं सामान्यमनुष्यरोलु छेदमयोगिकेवलिभट्टारकपर्य्यंतमरितल्पडुगुं। संदृष्टि :—

सामान्यमनुष्ययोग्याः १०२ ॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२	४	१	८	५	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	९७	९५	९१	९२	८४	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	७	११	१०	१८	२१	२६	३०	३६	४२	४३	४५	६०	९०

इल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारकद्वयमुं २ तीर्त्थकरनामसुमप्पुदुमनुदयप्रकृतिगळप्पुवु ५। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तेळु ९७। सासादनगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळेळु ७। उदयंगळु ९५ तों भत्तय्दु। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयप्रकृतिगळु पन्नों दरोळु मिश्रप्रकृतियं कलेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडिमनुष्यानुपूर्व्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कलेदनुदयंगळोळु कूडुत्तविरलनुदयप्रकृतिगळु पन्नों दु ११। उदयप्रकृतिगळुतों भत्तों दु ९१। असंयतगुणस्थानदोळों दु गूडियनुदयप्रकृतिगळु पन्नेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुममनुष्यानुपूर्व्व्यमुमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्त विरलनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळुतों भत्तेरडु ९२। देशसंयतगुणस्थानदोळु एंटुगूडियनुदयप्रकृतिगळु पविनेंदु १८। उदयप्रकृति-

देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं नीचैर्गोत्रं चेति पंच। उपरि प्रमत्तादिषु 'पंच य चउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलसतीसंबारसेति' प्रागुक्त एव छेदो ज्ञातव्यः। तत्र मिथ्यादृष्टौ अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानि ५, उदयः सप्तनवतिः। सासादने द्वे मिलित्वा अनुदयः सप्त। उदयः पंचनवतिः। मिश्रे अनुदयः चतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकादश। उदयः एकनवतिः। असंयते अनुदयः एकं मिलित्वा सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयाद् दश। उदयः द्वानवतिः। देशसंयते अष्टौ संयोज्य अनुदयः अष्टादश उदयश्च-

---

देशसंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चार और नीचगोत्रकी व्युच्छित्ति होती है। आगे प्रमत्तादिमें पूर्वमें कही व्युच्छित्ति जानना।

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्रप्रकृति, सम्यक्त्व प्रकृति, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकर ये पाँच। उदय सत्तानबे।

२. सासादनमें इन पाँचमें दो व्युच्छित्ति मिलनेसे अनुदय सात। उदय ९५।

३. सासादनके अनुदय सातमें उसकी चार व्युच्छित्ति मिलानेपर ग्यारहमें मनुष्यानुपूर्वीके अनुदयमें जानेसे और मिश्रके उदयमें आनेसे मिश्रमें अनुदय ग्यारह। उदय इक्यानबे। व्युच्छित्ति एक।

४. मिश्रके अनुदय ग्यारहमें उसकी एक व्युच्छित्ति मिलनेसे बारहमें सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे असंयतमें अनुदय दस। उदय बानबे। व्युच्छित्ति आठ।

गळेण्भत्तनाल्कु ८४। प्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तमूररोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तोंदु २१ उदयप्रकृतिगळेणभत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तारु २६ उदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्व्वकरण गुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तु ३०। उदयप्रकृतिगळु एप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरण-
५ गुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु मुवत्तारु ३६ उदयप्रकृतिगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२। उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तमूरु ४३। उदयप्रकृतिगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळुनाल्वत्तय्दु ४५। उदयप्रकृतिगळय्वत्तेळु ५७। सयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयप्रकृतिगळरुवत्तोंदरोळु तीर्त्थकरनामम कळेदुदयंगळोळु
१० कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तु ६०। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तुगूडियनुदयप्रकृतिगळु तोंभत्तु ९०। उदयंगळु पन्नेरडु १२। पज्जत्तेबियपर्य्याप्तमनुष्यरोळं स्त्रीवेदमुमनपर्य्याप्तनाममुमं सामान्यमनुष्ययोग्यप्रकृतिगळु नूरेरडरोळु कळेयुत्तं विरलु शेषनूरुं प्रकृतिगळु पर्य्याप्तमनुष्योदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु १००॥ अल्लि मिथ्यादृष्टि-

---

तुरशीतिः। प्रमत्ते अनुदयः पंच संयोज्य आहारकद्वयोदयादेकविंशतिः। उदयः एकाशीतिः। अप्रमत्तेऽनुदयः
१५ पंच संयोज्य षड्विंशतिः। उदयः षट्सप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रो मिलित्वा अनुदयस्त्रिंशत्। उदयः द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत्। उदयः (षट्-)षष्टिः। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः द्वाचत्वारिंशत्। उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिचत्वारिंशत्। उदयः एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचचत्वारिंशत् उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगेनुदयः षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयात् षष्टिः। उदयः द्वाचत्वारिंशत्। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः नवतिः। उदयो
२० द्वादश। तथा पर्याप्तमनुष्येऽपि च स्त्रीवेदापर्याप्तोनसामान्यमनुष्योक्तप्रकृतयः उदययोग्या भवंति। १००।

---

५. असंयतके अनुदय दसमें उसकी आठ व्युच्छित्ति मिलानेसे देशसंयतमें अनुदय अठारह। उदय चौरासी। व्युच्छित्ति पाँच।

६. देशसंयतके अनुदय अठारहमें उसकी पाँच व्युच्छित्ति मिलानेसे तेईस हुए। उनमें-से आहारकद्विका उदय होनेसे प्रमत्तमें अनुदय इक्कीस। उदय इक्यासी। व्युच्छित्ति पाँच।

२५ ७. अप्रमत्तमें अनुदय २१ + ५ = छब्बीस। उदय छिहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

८. अपूर्वकरणमें अनुदय २६ + ४ = तीस। उदय बहत्तर। व्युच्छित्ति छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदय ३० + ६ = छत्तीस। उदय छियासठ। व्युच्छित्ति छह।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें अनुदय ३६ + ६ = बयालीस। उदय साठ। व्युच्छित्ति एक।

११. उपशान्तकषायमें अनुदय ४२ + १ = तेंतालीस। उदय उनसठ। व्युच्छिति दो।

३० १२. क्षीणकषायमें अनुदय ४३ + २ = पैंतालीस। उदय सत्तावन। व्युच्छित्ति सोलह।

१३. संयोगीमें अनुदय तीर्थंकरका उदय होनेसे ४५ + १६ = ६१ - १ = साठ। उदय बयालीस। व्युच्छित्ति तीस।

१४. अयोगीमें अनुदय ६० + ३० = नब्बे। उदय बारह। व्युच्छित्ति बारह। तथा पर्याप्त मनुष्यमें भी सामान्य मनुष्यमें उदय योग्य। एक सौ दोमें-से स्त्रीवेद और अपर्याप्तको

गुणस्थानदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे छेदमक्कुं १। सासादननोळ् नाल्के ४। मिश्रनोळों दे १ असंयतनोळें टु ८। देशसंयतनोळय्दु ५। प्रमत्तसंयतनोळय्दु ५। अप्रमत्तसंयतनोळु नाल्कु ४। अपूर्वकरणनोळारु ६ अनिवृत्तिकरणनोळय्दु ५ एकें दोडे—स्त्रीवेदंकळेदुदप्पुर्दरिंदं मेलेल्लेडेयोळं सामान्यमनुष्यनोळें तंतेयक्कुमितु च्छेदंगळरियल्पडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारद्विकमुं तीर्त्थंकरनाममुमितय्दुं प्रकृतिगळनुदयंगळप्पुवु ५। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तय्दु ९५। सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयप्रकृतिगळारु ६। उदयप्रकृतिगळु तों भत्तनाल्कु ९४। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळु पत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडि मनुष्यानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळुतों भत्तु ९०। असंयतगुणस्थानदोळु ओंदु गूडियनुदयंगळु पन्नों दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळों भत्तु ९। उदयंगळु तों भत्तों दु ९१। देशसंयतगुणस्थानदोळें टु गूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिनेलु १७। उदयंगळें भत्तमूरु ८३। प्रमत्तसंयतनोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तेरडरोळु

तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं, सासादने चतस्रः, मिश्रे एका, असंयते अष्टौ, देशसंयते पंच, प्रमत्ते पंच, अप्रमत्ते चतस्रः, अपूर्वकरणे षट्, अनिवृत्तिकरणे पंचैव स्त्रीवेदस्यापनयनात्। उपरि सर्वत्रापि सामान्यमनुष्यवत् छेदो ज्ञातव्यः। एवं सति मिथ्यादृष्टौ अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकतीर्थकरत्वानि ५। उदयः पंचनवतिः। सासादने एकां संयोज्य अनुदयः षट्। उदयः चतुर्नवतिः। मिश्रे अनुदयः चतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयाद्दश। उदयो नवतिः। असंयते अनुदयः एकां निक्षिप्य सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयान्नव। उदय एकनवतिः। देशसंयते अष्टौ संयोज्य अनुदयः सप्तदश। उदयस्त्र्यशीतिः। प्रमत्ते

घटानेपर उदययोग्य सौ। व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सासादनमें चार, मिश्रमें एक, असंयतमें आठ, देशसंयतमें पाँच, प्रमत्तमें पाँच, अप्रमत्तमें चार, अपूर्वकरणमें छह, अनिवृत्तिकरणमें भी पाँच क्योंकि स्त्रीवेद उदयमें नहीं है। ऊपर सर्वत्र सामान्य मनुष्यके समान व्युच्छित्ति जानना। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर इन पाँचका। उदय पिचानबे। व्युच्छित्ति एक।

२. सासादनमें अनुदय पाँचमें एक मिलानेसे छह। उदय चौरानबे।

३. मिश्रमें छहमें चार मिलानेसे तथा मिश्रके उदयमें आने और मनुष्यानुपूर्वीके अनुदयमें जानेसे अनुदय दस। उदय नब्बे।

४. असंयतमें दसमें एक मिलानेसे तथा सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीके उदयमें आनेसे अनुदय नौ। उदय इकानबे।

५. देशसंयतमें नौमें आठ मिलानेसे अनुदय सतरह। उदय तेरासी।

---

१. म भत्तनोलु ४।

आहारकद्वयमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तु २०। उदयप्रकृतिगळेण्भत्तु ८०।

अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तय्दु २५। उदयप्रकृतिगळ्प्पत्तय्दु ७५। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयप्रकृतिगळिप्पत्तो भत्तु २९। उदयप्रकृतिगळ्प्पत्तो भ्दु ७१। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् मूवत्तय्दु ३५। उदयंगळरुवत्तय्दु ६५। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळो भ्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नाल्वत्तो भ्दु ४१। उदयंगळय्वत्तो भत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नाल्वत्तुमूरु ४३। उदयंगळय्वत्तंळ् ५७। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळ् पदिनारुगूडियनुदयंगळय्वत्तो भत्तरोळ् तीर्त्थमं कळेदुदयदोळ् कूडलनुदयंगळय्वत्तेंटु ५८। उदयंगळ् नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळ् मूवत्तुगूडियनुदयंगळ् एण्भत्तेंटु ८८। उदयंगळ् पन्नेरडु १२। संदृष्टिः—

पर्य्याप्तमनुष्ययोग्यं १०० ॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु.	१	४	१	८	५	५	४	६	५	१	२	१६	३०	१२
उ	९५	९४	९०	९१	८३	८०	७५	७१	६५	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	६	१०	९	१७	२०	२५	२९	३५	४०	४१	४३	५८	८८

अनुदयः पंच संयोज्य आहारकद्वयोदयाद्विंशतिः। उदयः अशीतिः। अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः पंचविंशतिः। उदयः पंचसप्ततिः। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः एकान्नत्रिंशत्। उदयः एकसप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः पंचत्रिंशत्। उदयः पंचषष्टिः। सूक्ष्मसांपराये पंच संयोज्य अनुदयः चत्वारिंशत्। उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः एकचत्वारिंशत्। उदयः एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः त्रिचत्वारिंशत्। उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगे अनुदयः षोडश संयोज्य तीर्थोदयादष्टापंचाशत्। उदयः द्वाचत्वारिंशत्। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः— अष्टाशीतिः, उदयो द्वादश ॥ ३०० ॥

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय बीस। उदय अस्सी। व्युच्छित्ति पाँच।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय पच्चीस। उदय पिचहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय उनतीस। उदय इकहत्तर। व्युच्छित्ति छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पैंतीस। उदय पैंसठ। व्युच्छित्ति पाँच।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें पाँच मिलाकर अनुदय चालीस। उदय साठ। व्युच्छित्ति एक।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय इकतालीस। उदय उनसठ। व्युच्छित्ति दो।

मणुसिणि एत्थीसहिदा तित्थयराहारपुरिससंढूणा ।
पुण्णिदरेव अपुण्णे सगाणुगदिआउगं णेयं ॥३०१॥

मनुष्यां स्त्रीसहितास्तीर्थकराहारपुरुषषंढोनाः । पूर्णेतर इव अपूर्णे स्वानुपूर्व्यगत्यायुर्ज्ञेयं ॥

मानुषियोळुदययोग्यप्रकृतिगळु तोंभत्तारप्पुवंतेंदोडे पर्य्याप्तमनुष्यनोळु पेळ्दुदययोग्यप्रकृतिगळ्नूररोळु स्त्रीवेदमुं कूडि तीर्थकरनाममुमाहारकद्वयमुमं पुरुषवेदमुमं षंढवेदमुमिन्तय्दु प्रकृतिगळं कळेदोडे तावन्मात्रमेयप्पुवरिंदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळुदयच्छेदं मिथ्यात्वप्रकृतियो देयक्कुं १ । सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्टयमुमसंयतनोळु मनुष्यानुपूर्व्योदयमिल्लप्पुदरिनिल्लि व्युच्छित्तियक्कुमंतय्दु ५ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियो देछेदमक्कु-१ । मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४ दुर्भगमुमनादेयमुमयशस्कीर्त्तियुमिंतेळु प्रकृतिगळुदयच्छेदमक्कुं । ७ । देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ नीचैर्गोत्रमुमिंतय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पुवु । ५ ।

मानुष्युदययोग्यप्रकृतयः षण्णवतिः पर्याप्तमनुष्योक्तशते स्त्रीवेदं निक्षिप्य तीर्थकरत्वाहारकद्वयपुंषंढवेदानामपनयनात् । तत्र मिथ्यादृष्टौ उदयव्युच्छेदो मिथ्यात्वं । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं मनुष्यानुपूर्व्यं च असंयतेऽनुदयात् । मिश्रे मिश्रप्रकृतिः । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कदुर्भगानादेययायशस्कीर्तयः । देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं नीचैर्गोत्रं च । प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयमेव । अप्रमत्तापूर्वकरणयोः गुणस्थानवत् चतुःषट् । अनिवृत्तिकरणभागभागेषु क्रमेण स्त्रीवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशांतकषाये वज्रनाराचं नाराचं । क्षीणकषाये षोडश । सयोगे त्रिंशत् । अयोगे तीर्थकृत्त्वाभावात् एकादश । एवं सति मिथ्यादृष्टौ

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय तैंतालीस । उदय सत्तावन । व्युच्छित्ति सोलह ।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय अंठावन । उदय बयालीस । व्युच्छित्ति तीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय अठासी । उदय बारह ॥३००॥

मानुषीके उदययोग्य प्रकृतियाँ छियानवे । क्योंकि पर्याप्त मनुष्यके कही गयी सौ प्रकृतियोंमें-से तीर्थंकर, आहारकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद घटाकर स्त्रीवेद मिलानेसे छियानवे होती हैं । उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी उदय व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मनुष्यानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है; क्योंकि यहाँ असंयतके मनुष्यानुपूर्वीका उदय नहीं होता । मिश्रमें मिश्र प्रकृतिकी व्युच्छित्ति होती है । असंयतमें दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, दुर्भग, अनादेय, अयशस्कीर्ति । देशसंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क और नीच गोत्र । प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन । अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें गुणस्थानोंकी तरह चार और छह । अनिवृत्तिकरणके सवेदभागमें स्त्रीवेद और अवेदभागमें संज्वलन क्रोध मान माया ।

सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म लोभ । उपशान्त कषायमें वज्रनाराच नाराच । क्षीणकषायमें सोलह । सयोगीमें तीस और तीर्थंकरका अभाव होनेसे अयोगीमें ग्यारह । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका । उदय चौरानबे ।

२. सासादनमें एक मिलानेसे अनुदय तीन । उदय तिरानबे । व्युच्छित्ति पाँच ।

१. म °त्रंगलेयप्पुं । २. म °त्तिगलु ५ ।

प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयमेयुदयव्युच्छित्तियक्कु-३ । मप्रमत्तनोळमपूर्व्वकरणनोळं गुणस्थानदोळपेळ्द नाल्कु ४ मारु ६ मुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । अनिवृत्तिकरणन भागभागे गळोळु स्त्रीवेदमुं १ संज्वलनक्रोधमुं १ संज्वलनमानमुं १ संज्वलनमायेयुमितु नाल्कुं ४ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभमोंदे व्युच्छित्तियक्कु १ मुपशांतकषायनोळु वज्रनाराचनाराचशरीरसंहननद्वितयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ ।

क्षीणकषायनोळु गुणस्थानदोळपेळ्द निद्रेयु १ प्रचलेयुं १ ज्ञानावरणपंचकमुं ५ मंतराय पंचकमुं ५ दर्शनावरणचतुष्टयमु ४ मिन्तु पदिनारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति गळप्पुवु १६ । सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु गुणस्थानदोळपेळ्द ३० मूवत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु । ३० । अयोगिकेवलिभट्टारकनोळन्यतरवेदनीयादि पन्नों दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिगळप्पु ११ वेकें दोडे मानुषियोळु तीर्त्थोदयमिल्लप्पुदरिंदं । यितुदयव्युच्छित्तिगळरियल्पडुत्तं विरलल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २ । उदयंगळु तों भत्त नाल्कु प्रकृतिगळु, ९४ । सासादनगुणस्थानदोळों बुगूडियनुदयंगळु मूरु ३ । उदयंगळुतोंभत्तुमूरु ९३ । मिश्रगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदयप्रकृतिगळें टरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळेळु ७ उदयप्रकृतिगळेणभत्तोंभत्तु ८९ । असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळें टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कलेबुदयंगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयंगलेलु ७ उदयंगलेणभत्तोंभत्तु ८९ । देशसंयतगुणस्थानदोलेलुगूडियनुदयप्रकृतिगळु पदिनाल्कु १४ । उदयंगलेंभत्तेरडु ८२ । प्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळों बुगुंदिप्पतु १९ । उदयंगलेप्पत्तेलु ७७ । अप्रमत्तगुणस्थानदोलु मूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२ । उदयंगळेप्पत्तनाल्कु-७४ । अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तारु २६ । उदयंगळेप्पत्तु ७० । अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु मूवत्ते-

अनुदयः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदयः चतुर्नवतिः । सासादने एकं संयोज्यानुदयः त्रीणि । उदयः त्रिनवतिः । मिश्रे अनुदयः पंच संयोज्य मिश्रप्रकृत्युदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवतिः । असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात्सप्त । उदयः एकान्ननवति । देशसंयते सप्त संयोज्य अनुदयः चतुर्दश उदयः द्व्यशीतिः । प्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः एकान्नविंशतिः । उदयः सप्तसप्ततिः । अप्रमत्ते त्रीणि संयोज्य अनुदयः द्वाविंशतिः उदयः चतुःसप्ततिः । अपूर्वकरणे चत्वारि संयोज्य अनुदयः षड्विंशतिः । उदयः सप्ततिः ।

३. मिश्रमें पाँच मिलाकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय सात । उदय नवासी । व्युच्छित्ति एक ।

४. असंयतमें एक मिलानेसे तथा सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय सात । उदय नवासी । व्युच्छित्ति सात ।

५. देशसंयतमें सात मिलाकर अनुदय चौदह । उदय बयासी ।

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय उन्नीस । उदय सतत्तर । व्यु. तीन ।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय बाईस । उदय चौहत्तर । व्यु. चार ।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय छब्बीस । उदय सत्तर । व्यु. छह ।

१. म °कमुमय्दु ५ ।

रडु ३२। उदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोलु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूवत्तारु ३६। उदयंगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोलोंदुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडियनुदयप्रकृतिगलु मूवत्तोंभत्तु ३९। उदयंगळय्वत्तेळु ५७। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोलु पदिनारुगूडियनुदयंगलय्वत्तय्दु ५५। उदयंगलु नाल्वत्तोंदु ४१। अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळमूवत्तुगूडियनुदयंगळेण्भत्तय्दु ८५। उदयंगलु पन्नोंदे ११ केंदोडे तीर्त्थोदयमिल्लप्पुदरिंदं संदृष्टि :—

योनिमतिमनुष्योदययोगप्रकृतिगळु ९६

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	१	५	१	७	५	३	४	६	४	१	२	१६	३०	११
उ	९४	९३	८९	८९	८२	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७	४१	११
अ	२	३	७	७	१४	१९	२२	२६	३२	३६	३७	३९	५५	८५

पूर्णेतरवदपूर्णे स्वानुपूर्व्यगत्यायुर्ज्ञेयं। मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टियोलुदययोग्यप्रकृतिगळ् तिर्य्यंचमिथ्यादृष्टिलब्ध्यपर्य्याप्तकनोलु पेळ्दंते एप्पत्तों दु ७१ प्रकृतिगळप्पु वल्लि तिर्य्यंगानुपूर्व्यमं तिर्य्यग्गतिनाममं तिर्य्यगायुष्यमुमं कळेदु मनुष्यानुपूर्व्यममं मनुष्यगतिनाममं मनुष्यायुष्यमं कूडुवुदेंबी विशेषमरियल्पडुगुं।

अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः द्वात्रिंशत्। उदयः चतुःषष्टि। सूक्ष्मसांपराये चत्वारि संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत्। उदयः षष्टिः। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः सप्तत्रिंशत्। उदयः एकान्नषष्टिः। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः एकान्नचत्वारिंशत्। उदयः सप्तपंचाशत्। सयोगे षोडश संयोज्य अनुदयः पंचपंचाशत्। उदयः एकचत्वारिंशत्। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदयः पंचाशीतिः। उदयः एकादश तीर्थाभावात्।

मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते उदयप्रकृतयः तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तवदेकसप्ततिः। तत्र तिरश्चः आनुपूर्व्यगत्यायूंषि नहि। मनुष्यस्य तानि ज्ञातव्यानि ॥ ३०१ ॥

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय बत्तीस। उदय चौंसठ। व्यु. चार।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें चार मिलाकर अनुदय छत्तीस। उदय साठ। व्यु. एक।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतीस। उदय उनसठ। व्यु. दो।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनतालीस। उदय सत्तावन। व्यु. सोलह।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर अनुदय पचपन। उदय इकतालीस।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय पचासी। उदय ग्यारह क्योंकि तीर्थंकरका अभाव है।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकमें उदय प्रकृतियाँ लब्ध्यपर्याप्तककी तरह इकहत्तर। इतनी विशेषता है कि यहाँ तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचगति और तिर्यंचायुके स्थानमें मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यगति और मनुष्यायुका उदय होता है ॥३०१॥

अनंतरं भोगभूमिजमनुष्यरोळं तिर्य्यंचरोलमुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

मणुसोघं वा भोगे दुब्भगचउणीच-संढ-थीणतियं ।
दुग्गदितित्थमपुण्णं संहदि-संठाणचरिमपणं ॥३०२॥
हारदुहीणा एवं तिरिये मणुदुच्चगोदमणुवाउं ।
अवणिय पक्खिव णीचं तिरियदु-तिरियाउ-उज्जोवं ॥३०३॥

मनुष्यौघवद्भोगे दुर्भगचतुर्नीचषंढस्त्यानगृद्धित्रयं दुर्गतितीर्थमपूर्णं संहननसंस्थान चरम पंच ॥

आहारद्वयहीनाः एवं तिरश्चि मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायुरपनीय प्रक्षिप नीचं तिर्य्यग्द्वय तिर्य्यंगायुरुद्योतं ॥

भोगभूमिजमनुष्यरुगळ्गुदययोग्य प्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२। स्थावरद्विकमुं २। तिर्य्यग्द्विकमुं २। आतपद्विकमुं २ मेकेंद्रियमुं १। विकलत्रयमुं ३ साधारणशरीरनाममु १ मितरायुस्त्रितयमुं वैक्रियिकषट्कमु ६ मितिप्पत्तुं प्रकृतिगळं २० कळेदु मनुष्यौघदोळु नूरेरडं तंते इल्लियुमवरोळु दुर्भगदुस्वरानादेयायशस्कीर्तियुं नीचैर्गोत्रमुं षंढवेदमुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुमप्रशस्तविहायोगतियुं तीर्थंकरनाममुमपर्य्याप्तनाममुं चरमसंहनन पंचकमु चरमसंस्थान पंचकमुं माहारकद्वयमुमितिप्पत्तनाल्कु प्रकृतिगळु २४ भोगभूमिमनुष्यरोळुदयिसुववल्लप्पुदरिंदमिवं कळेदोडेप्पत्तेंदु प्रकृतिगळप्पुवु ७८ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे छेदमक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे छेदमक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे १ च्छेदमक्कु १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयं मनुष्यानुपूर्व्यमुमितय्दुं प्रकृतिगळगे व्युच्छित्तियक्कु ५ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितेरडु प्रकृतिगळनुदयंगळु २। उदयं-

अथ भोगभूमिमनुष्यतिरश्चोर्गाथाद्वयेनाह—

भोगभूमिमनुष्याणा मनुष्यौघवदिति द्वयुत्तरशतं। तत्रापि दुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तिनीचैर्गोत्रषंढवेदस्त्यानगृद्धित्रयाप्रशस्तविहायोगतितीर्थकरत्वापर्याप्तचरमपंचसंहननपंचसंस्थानाहारकद्वयं न इत्युदययोग्यप्रकृतयः अष्टसप्ततिः। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं छेदः। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः।

योनिमन्मनुष्य रचना ९६

मि.	आ.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
१	५	१	७	५	३	४	६	४	१	२	१६	३०	११
९४	९३	८९	८९	८२	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७	४१	११
२	३	७	७	१४	१९	२२	२६	३२	३६	३७	३९	५५	८५

आगे दो गाथाओंसे भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यंचोंमें कहते हैं—

भोगभूमिके मनुष्योंमें सामान्य मनुष्यकी तरह एक सौ दो उदययोग्य हैं। किन्तु उन एक सौ दोमें-से भी दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशस्कीर्ति, नीचगोत्र, नपुंसकवेद, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, अप्रशस्तविहायोगति, तीर्थंकर, अपर्याप्त, अन्तके पाँच संहनन और

गळप्पत्तारु ७६। सासादनगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिमत्तमुदयंगळोळु मनुष्यानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयंगळेप्पत्तोंदु ७१। असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळेंटरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६ उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ संदृष्टिः—

	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	५
उ	७६	७५	७१	७२
अ	२	३	७	६

"एवं तिरश्चि मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायुष्य" में बी नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदु नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यंग्द्वयमुं तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतमुमेंब प्रकृतिपंचकमं कूडुत्तं विरलु भोगभूमितिर्य्यंचरोळुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तोंभत्तु ७९। मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियोंदे व्युच्छित्तियक्कु १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे व्युच्छित्तियक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियोंदे व्युच्छित्तियक्कु-१। मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमितय्दे प्रकृतिगळु व्युच्छित्तियक्कु ५। मितागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २ उदयंगळेप्पत्तेळु ७७। सासादनगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु ३। उदयंगळेप्पत्तारु

असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं मनुष्यायुश्च ५। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती अनुदयः। उदये षट्सप्ततिः। सासादने एकां संयोज्य अनुदये त्रीणि। उदये पंचसप्ततिः। मिश्रे अनुदये चतुर्भिर्मनुष्यानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात्सप्त। उदये एकसप्ततिः। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतिमनुष्यानुपूर्व्योदयात् षट्। उदये द्वासप्ततिः।

पाँच संस्थान तथा आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य प्रकृतियाँ अठहत्तर हैं। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्रप्रकृति और असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार मनुष्यायु इन पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुदय। उदय छिहत्तर। व्यु. १।

२ सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय पचहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

३. मिश्रमें सासादनमें अनुदय तीनमें चार व्युच्छित्ति तथा मनुष्यानुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे एक घटाकर सातका अनुदय है। उदय इकहत्तरका।

४. असंयतमें एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व प्रकृति और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे दो घटाकर अनुदय छह। उदय बहत्तर।

१. म °व्यंगलं कलेदु नीचैर्गोत्र तिर्य्यद्विक तिर्य्यगायुरुद्योतमुमेंब। २. म °यक्कु मिथ्या°।

७६। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळ् कूडि सत्तमुदयंगळोलु तिर्य्यंगानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळेलु ७। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२। असंयतगुणस्थानदळोंबुगूडियदयंगळेंरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यंगानुपूर्व्यमं कळेदुदयंगळोलु विरलनुदयंगळारु ६। उदयप्रकृतिगळेप्पत्त मूरु ७३। संदृष्टिः

भोगभूमि तिर्यंच योग्य ७९

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	५
उ	७७	७६	७२	७३
अ	२	३	७	६

एवं तिरश्चि मनुष्यद्वयोच्चैर्गोत्रमनुष्यायूंष्यपनीय नीचैर्गोत्रतिर्यग्द्वयतिर्यगायुरुद्योतेषु निक्षिप्ते भोगभूमितिरश्चि उदययोग्या एकोनाशीतिः। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं तिर्यगायुश्च ५। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वे अनुदयः। उदये सप्तसप्ततिः। सासादने एकां संयोज्य अनुदये त्रयं। उदये षट्सप्ततिः। मिश्रे अनुदयः चतुर्भिस्तिर्यगानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात्सप्त। उदयो द्वासप्ततिः। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतितिर्यगानुपूर्व्योदयात् षट् उदयः त्रिसप्ततिः॥ ३०२॥ ३०३॥

इसी प्रकार तिर्यंचमें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र और मनुष्यायु घटाकर नीचगोत्र तिर्यंचगति तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत मिलानेपर भोगभूमि तिर्यंचोंमें उदययोग्य उन्यासी ७९ हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्रप्रकृति और असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार तथा तिर्यंचायु पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय सतहत्तर। व्युच्छित्ति एक।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय छिहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

३. मिश्रमें तीनमें चार व्युच्छित्ति और तिर्यंचानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय सात। उदय बहत्तर। व्युच्छित्ति एक।

४. असंयतमें सातमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह। उदय तिहत्तर॥३०२-३०३॥

भोगभूमि मनुष्य रचना ७८

मि.	सा.	मि.	अ.
१	४	१	५
७६	७५	७१	७२
२	३	७	६

भोगभूमि तिर्यंच रचना ७९

मि.	सा.	मि.	अ.
१	४	१	५
७७	७६	७२	७३
२	३	७	६

अनंतरं देवगतियोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

भोगं व सुरे णरचउणराउवज्जूण सुरचउसुराउं ।
खिव देवे णेवित्थी इत्थिम्मि ण पुरिसवेदो य ॥३०४॥

भोगवत्सुरे नरचतुर्णरायुर्व्वज्रोनं सुरचतुः सुरायुः । क्षिप देवे नैव स्त्रीं स्त्रियां न पुरुषवेदश्च ॥ ५

भोगभूमिजरोळु पेळ्वंते सुररोळमुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेंटप्पुवरोळु मनुष्यगतित्रयमुमौदारिकद्वयमुमेंब नरचतुष्टयमुमं नरायुष्यमुमं वज्रऋषभनाराचशरीरसंहननमुमंतारुं प्रकृतिगळोळं कळेदोडेप्पत्तेरडवरोळु देवगतिद्वितयं वैक्रियिकद्वितयमुमेंब सुरचतुष्कमुं सुरायुष्यमितैदुं प्रकृतिगळं कूडुत्तं विरलु सामान्यदेवोदययोग्य प्रकृतिगळेप्पत्तेळु ७७। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमे व्युच्छित्तियक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे छेदमक्कुं १। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं सुरचतुष्कमुं सुरायुष्यमुमितो भत्तु ९ प्रकृतिगळु व्युच्छित्तियप्पुवितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। सासादनगुणस्थानदोळों दु गूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयप्रकृतिगळेप्पत्त नाल्कु ७४। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिदेवानुपूर्व्व्यमं उदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तु ७०। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयप्रकृतिगळें टरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं देवानुपूर्व्व्यमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनु- १०

अथ देवगतावाह—

सुरेषु भोगभूमिवदिति अष्टसप्ततिः । तत्र मनुष्यगतित्रयौदारिकद्वयनरायुर्वज्रऋषभनाराचसंहनान्यपनीय देवगतिद्वयवैक्रियिकद्वयसुरायुस्सु निक्षिप्तेषु सामान्यदेवोदययोग्याः सप्तसप्ततिः । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं । मिश्रे मिश्रं । असंयते द्वितीयकषायचतुष्कसुरचतुष्कसुरायूंषि । एवं सति मिथ्यादृष्टौ अनुदये मिश्रसम्यक्त्वप्रकृती । उदये पंचसप्ततिः । सासादने एकां संयोज्य अनुदयस्तिस्रः ।

आगे देवगतिमें कहते हैं—

देवोंमें भोगभूमिकी तरह अठहत्तर उदययोग्य है। किन्तु उनमें-से मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मनुष्यायु, वज्रर्षभनाराच संहनन घटाकर देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग और देवायु मिलानेसे सामान्यदेवमें उदययोग्य सतहत्तर ७७ होती हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, मिश्रमें मिश्र, असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, देवायु, वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिक अंगोपांगकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुदय। उदय पचहत्तर।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय चौहत्तर। व्युच्छित्ति चार।

१ म °मुमनितारुं प्रकृतिगलं कले°।

दयंगळारु ६ उवयंगळेप्पत्तों दु संदृष्टि :—

देवसामान्ययोग्य ७७

०	मि	सा	मि	अ
व्युच्छि	१	४	१	९
उदो	७५	७४	७०	७१
अनु	२	३	७	६

यिल्लि देवगतियोळु देवक्कळोळु पुंवेदोदयमे देवियरोळु स्त्रीवेदोदयमे नियतोदयमक्कुमप्पुदरिंदं देवक्कळोळु स्त्रीवेदमं कळेदोडे सौधर्म्माद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद सुररोळुदययोग्य प्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। यिल्लियुं सामान्यसुररोळावुदों दु कथनमदिल्लियुमरियल्पडुगुं सुगमं। संदृष्टि :—

सौधर्म्माद्युपरिमग्रैवेयकयोग्य ७६

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	९
उ	७४	७३	६९	७०
अ	२	३	७	६

उदये चतुःसप्ततिः। मिश्रे अनुदयः चतुर्भिर्देवानुपूर्व्यं संयोज्य मिश्रोदयात् सप्त। उदये सप्ततिः। असंयते अनुदय एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृतिदेवानुपूर्व्योदयात् षट्। उदये एकसप्ततिः।

देवेषु पुंवेदस्यैवोदयः। देवीषु स्त्रीवेदस्यैवेति नियमात् स्त्रीवेदेऽपनीते सौधर्माद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषूदययोग्यप्रकृतयः षट्सप्ततिः। अन्यत्सर्वं सामान्यसुरवत् ज्ञातव्यं। संदृष्टिः—

सौधर्माद्युपरिमग्रैवे = यो ७६				
व्यु	१	४	१	९
उ	७४	७३	६९	७०
अ	२ मि	३ सा	७ मि	६ अ

३. मिश्रमें चार और देवानुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे अनुदय सात। उदय सत्तर। व्यु. एक।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और देवानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय छह। उदय एकहत्तर। तथा देवोंमें पुरुषवेदका ही उदय होता है और देवांगनाओंमें स्त्री-

अनुदिशानुत्तर चतुर्दशविमानंगळोळु पेळ्दपर :—

अविरदठाणं एक्कं अणुदिसादिसु सुरोघमेव हवे ।
भवणतिकप्पित्थीणं असंजदे णत्थि देवाणू ॥३०५॥

अविरतस्थानमेकमनुदिशादिषु सुरौघ एव भवेत् । भवनत्रयकल्पस्त्रीणामसंयते नास्ति देवानुपूर्व्यं ॥ ५

अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळु असंयतगुणस्थानमो दे यक्कुमप्पुदरिंदमुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेयप्पुवु ७०। भवनत्रयदेवदेवियर्गं कल्पजस्त्रीयर्गं सुरौघमेयक्कुमदुकारणदिंदमुदययोग्यप्रकृतिगलेप्पत्तेळरोळु ७७ देवर्कळ्गेल्लं पुंवेदमे देवियर्गेल्लं स्त्रवेदमेयक्कुमदु कारणदिंदं विवक्षित देवदेवियरोळुदयप्रकृतिगळेप्पत्तारु ७६। ई भवनत्रयजरोळं कल्पजस्त्रीयरोळं सम्यग्दृष्टिगळप्पुट्टरप्पुदरिंदमसंयतगुणस्थानदोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदु सासादननोळुदयव्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु सासादनसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळय्दु ५। असंयतसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळेंटु ८। शेषकथनमनितुं सुगममक्कुं। संदृष्टि :—

भवन ३ कल्प स्त्रीयोग्य ७६

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	५	१	८
उ	७४	७३	६९	६९
अ	२	३	७	७

॥ ३०४ ॥ अनुदिशादिष्वाह—

अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानेषु असंयतगुणस्थानमेव स्यात् । तेन उदययोग्याः सप्ततिरेव । भवनत्रयदेवदेवीनां कल्पस्त्रीणां च सुरौघ एव इत्युदययोग्याः सप्तसप्ततिः ॥७७॥ केवलदेवेषु देवीषु वा षट्सप्ततिः ॥७६॥ भवनत्रये कल्पस्त्रीषु च सम्यग्दृष्ट्युत्पत्तेरसंयतगुणस्थाने देवानुपूर्व्यं नास्तीति सासादने व्युच्छित्तिः पंच ५ । असंयते अष्टौ ८ । शेषं सर्वं सुगमं ।

वेदका ही उदय होता है । अतः देवोंमें स्त्रीवेदके बिना सौधर्मसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त स्त्रीवेदके बिना छिहत्तर उदययोग्य है । अन्य सब सामान्य देवोंकी तरह जानना ॥३०४॥

अनुदिश आदिमें कहते हैं—

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानोंमें एक असंयत गुणस्थान ही होता है अतः वहाँ उदययोग्य सत्तर ही हैं । भवनत्रिकके देव और देवियोंमें तथा कल्पवासी देवांगनाओंमें सामान्यदेवकी तरह उदययोग्य सतहत्तर ७७ हैं । केवल देव और देवियोंमें उदययोग्य छिहत्तर हैं । भवनत्रिक और कल्पवासी देवियोंमें सम्यग्दृष्टि मरकर जन्म नहीं लेता इसलिए असंयत गुणस्थानमें देवानुपूर्वीका उदय नहीं होता । उसकी व्युच्छित्ति सासादनमें होनेसे

अनंतरमिंद्रियमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपरु :—

तिरिय अपुण्णं वेगे परघादचउक्क-पुण्ण-साहरणं ।
एइंदियजसथीणतिथावरजुगलं च मिलिदव्वं ॥३०६॥

तिर्य्यगपूर्णवदेकेंद्रिये परघातचतुष्कपूर्णसाधारणमेकेंद्रिययशः स्त्यानगृद्धित्रितयस्थावरयुगलं च मिलितव्यं ॥

ऋणमंगोवंगतसं संहदिपंचक्खमेवमिह वियले ।
अवणिय थावरजुगलं साहरणेयक्खमादावं ॥३०७॥

ऋणमंगोपांगत्रससंहननपंचेंद्रियमेवमिह विकले । अपनीय स्थावरयुगलं साधारणैकाक्षमातपं ॥

खिव तसदुग्गदिदुस्सरमंगोवंगं सजादिसेवट्टं ।
ओघं सयले साहारणिगिविगलादावथावरदुगूणं ॥३०८॥

क्षिप त्रसदुर्गतिदुःस्वरमंगोपांगं स्वजाति सृपाटिकासंहननं ओघः सकले साधारणैकविकलातपस्थावरद्विकोनः ॥

भवनत्रयकल्पस्त्रीयोग्य ७६

व्यु	१	५	१	८
उ	७४	७३	६९	६९
अ	२	३	७	७
	मि	सा	मि	अ

३०५ । अथेंद्रियमार्गणायां गाथात्रयेणाह—

पाँचकी व्युच्छित्ति होती है और असंयतमें आठकी व्युच्छित्ति होती है। शेष सब सुगम है ॥३०५॥

सौधर्मादि उपरिग्रै० ७६

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	१	४	१	९
उदय	७४	७३	६९	७०
अनुदय	२	३	७	६

भवनत्रिक-कल्पस्त्री—७६

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	१	५	१	८
उदय	७४	७३	६९	६९
अनुदय	२	३	७	७

आगे तीन गाथाओंसे इन्द्रिय मार्गणामें कहते हैं—

एकेंद्रिये एकेंद्रियमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळु तिर्य्यंगपर्य्याप्तपंचेंद्रियजीवंगळगे पेळ्दंप्पत्तों बु ७१ प्रकृतिगळप्पुववरोळ परघातातपोद्योतोच्छ्वासमेंब परघातचतुष्कमुमं पर्य्याप्तनाममुमं साधारणशरीरनाममुमनेकेंद्रियजातिनाममुमं यशस्कीर्त्तिनाममुमं स्त्यानगृद्धित्रयमुमं स्थावरमुमं सूक्ष्ममुमिन्तिन्तु पविमूरुं प्रकृतिगळं १३ कूडिदोडेण्भत्तनाल्कप्पुव ८४ वरोळु मत्ते ऋणं अंगोपांगमुं त्रसनाममुं सृपाटिकासंहननमुं पंचेंद्रियजातिनाममुमेंब नाल्कु प्रकृतिगळप्पु ४ ववं कळदोडेण्भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु। यिल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमातपनाममुं सूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणशरीरमेंब सूक्ष्मत्रयमुमिन्तु तन्न गुणस्थानदोळु पेळ्द प्रकृतिपंचकमुं मत्तं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं परघातनाममुं उद्योतनाममुच्छ्वासनाममुमिन्तारु ६ प्रकृतिगळु सासादननोळुदयमिल्लप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टियोळवं कूडिदोडुदयव्युच्छित्तिगळु पन्नों देयप्पुतु ११। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमुमेकेंद्रियजातिनाममुं स्थावरनाममुमिन्तारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। ६। यिल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमक्कुमुदयप्रकृतिगळेण्भत्तु ८०। सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळु पन्नों दु ११ उदयंगळरुवत्तों भत्तु ६९। संदृष्टि :—

एकेंद्रिय योग्य ८०

०	मि.	सा.
व्यु	११	६
उ	८०	६९
अ	०	११

एकेंद्रियमार्गणायां उदययोग्याः तिर्यंगपर्याप्तपंचेंद्रियवदित्येकसप्ततिः। तत्र परघातातपोद्योतोच्छ्वासपर्याप्तसाधारणैकेंद्रिया यशस्कीर्तिस्त्यानगृद्धित्रयस्थावरसूक्ष्माणि मेलयित्वा अंगोपांगत्रससृपाटिकासंहननपंचेंद्रियेष्वपनीतेष्वशीतिः स्युः। तत्र मिच्छादावं सुहुमतियमिति पंच पुनः स्त्यानगृद्धित्रयपरघातोद्योतोच्छ्वासाः सासादनानुदयात् षट् च मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः ११। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावराणि षट्। तथासति मिथ्यादृष्टौ अनुदयः शून्यं। उदयः अशीतिः ८०। सासादने अनुदये एकादश ११। उदये एकोनस-

एकेन्द्रिय मार्गणामें उदय योग्य तिर्यंचलब्ध्यपर्याप्तकी तरह इकहत्तर ७१। किन्तु उसमें परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, पर्याप्त, साधारण, एकेन्द्रिय, अयशस्कीर्ति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्थावर और सूक्ष्म मिलाकर औदारिक अंगोपांग, त्रस, सृपाटिका संहनन और पंचेन्द्रिय घटानेपर अस्सी होती हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें ग्यारहकी व्युच्छित्ति होती है— मिथ्यात्व, आताप और सूक्ष्म आदि तीन ये पाँच तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वासका सासादनमें अनुदय होनेसे छहकी व्युच्छित्ति भी मिथ्यादृष्टिमें होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर छहकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य, उदय अस्सी ८०। सासादनमें अनुदय ग्यारह ११। उदय उनहत्तर ६९।

एवमिह वियळे विकलत्रयदोळमिते एणभत्तुं ८० । प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवल्लि स्थावरमुं सूक्ष्ममुं साधारणशरीरमेकेंद्रियजातिनाममुमनातपनाममुमितय्दुं ५ प्रकृतिगळं कळेदोडे प्पत्तय्दप्पु ७५ वरोळु त्रसनाममुमं अप्रशस्तविहायोगतियुमं दुःस्वरनाममुं अंगोपांगनाममुमं स्वजातिनाममुं सृपाटिकासंहननमुमिंतारुं ६ प्रकृतिगळं प्रक्षेपिसुत्त विरलेण्तो दुदयप्रकृतिगळुदय-
५ योग्यंगळप्पु ८१ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं परघातमुच्छ्वासमुद्योतमप्रशस्तविहायोगतियुं दुःस्वरनाममुमितु पत्तुं प्रकृतिगळ्गे सासादननोळु-दयमिल्लप्पुदरिंदमा प्रकृतिगळु मिथ्यादृष्टियोळु व्युच्छित्तिगळप्पुवु १० । सासादननोळु अनंतानु-बंधिचतुष्कमुमं द्वींद्रियादिजातिनामनामत्रितयदोळु स्वजातिनाममो दं तु पंच प्रकृतिगळुदय-व्युच्छित्तियप्पु ५ वंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयंगळेण्भत्तो दु ८१ ।
१० सासादन-गुणस्थानदोळनुदयंगळ पत्तुं १० उदयंगळेप्पत्तो दु ७१ । संदृष्टि :—

विकले ३ यो० ८१

०	मि	सा
व्यु	१०	५
उ	८१	७१
अ	०	१०

सतिः ६९ । एवमिह वियले-विकलत्रये अशीतिं संस्थाप्य तत्र स्थावरसूक्ष्मसाधारणैकेंद्रियातपानपनीय त्रसाप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वरांगोपांगस्वजातिसृपाटिकासंहननेषु प्रक्षिप्तेषु एकाशीतिरुदययोग्या भवंति । तत्र मिथ्यात्वपर्याप्तस्त्यानगृद्धित्रयं पुनः परघातोच्छ्वासोद्योताप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वराः सासादने अनुदयात् मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः । १० । सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं स्वैकतरजातिश्चेति पंच । एवं सति मिथ्यादृष्टा-
१५ वनुदये शून्यं । उदये एकाशीतिः ८१ । सासादने अनुदये १० । उदये एकसप्ततिः ७१ ।

इसी प्रकार विकलत्रयमें अस्सीमें-से स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, एकेन्द्रिय और आतप-को घटाकर त्रस, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर औदारिक अंगोपांग, सृपाटिका संहनन और अपनी-अपनी जाति (दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय) मिलानेपर उदययोग्य इक्यासी होती हैं ।

२० विकलत्रयमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त तथा स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वरका सासादनमें अनुदय होनेसे मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दस १० । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और अपनी-अपनी जाति इस तरह पाँच । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य । उदय इक्यासी । सासादनमें अनुदय दस और उदय इकहत्तर ।

सकलेंद्रियंगळोळु ओघः सायान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ साधारणैकेंद्रिय विकलत्रयातपस्थावरसूक्ष्ममेंबेंटुं ८ प्रकृतिगळं कळेदोडुदययोग्यप्रकृतिगळु नूरपदिनाल्कप्पु ११४ बल्लि पंचेंद्रियत्वं चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं चतुर्दशगुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमुमपर्य्याप्तनाममुमेंबेरडुं प्रकृतिगळगुदयच्छेदमक्कुं २। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमे छेदमक्कुं ४। मिश्रनोळं मिश्रप्रकृतिये च्छेदमक्कु-१ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयादिपदिनेळुं ५ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १७। देशसंयतनोळु एंदु प्रकृतिगळगुदयच्छेदमक्कुं ८। मेले प्रमत्तादि नवगुणस्थानंगळोळु सामान्यगुणस्थानदोळपेळ्दंतप्पुवु ५ नाल्कु ४ मारु ६ मारु ६ मों दु १ मेरडु २ पदिनारुं १६ मूवत्तुं ३० पन्नेरडुं १२ प्रकृतिगळ्गे यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुं तीर्थमुमितप्पुवु प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं ५। उदयप्रकृतिगळु नूरों भत्तु १०९। सासादनगुणस्थानदोळु एरडु गूडियनुदय प्रकृतिगळेळु ७। अवरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कलेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळें टु ८। उदयंगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडिदनुदयंगळु पन्नेरडरोळु शेषानुपूर्व्यंगळु मूरुमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तंमनुदयंगळोळु मिश्रप्रकृतियनुयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडिदनुदयंगळु पदिनय्व-

सकलेंद्रियेषु ओघः द्वात्रिंशत्युत्तरशतं १२२। तत्र च साधारणैकेंद्रियविकलत्रयातपस्थावरसूक्ष्मेष्वपनीतेषु उदययोग्यं चतुर्दशोत्तरशतं ११४। गुणस्थानानि चतुर्दश। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तद्वयं छेदः २। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रप्रकृतिः १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कादिसप्तदश १७। देशसंयतेऽष्टौ। प्रमत्तादिषु गुणस्थानवत् पंच ५ चत्वारि ४ षट् ६ षट् ६ एकं १ द्वे २ षोडश १६ त्रिंशत् ३० द्वादश १२। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानुदयः। उदये नवोत्तरशतं १०९। सासादनेऽनुदयः द्वयं नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अष्टौ ८। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रेऽनुदयः चत्वारि ४ शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयाच्चतुर्दश १४। उदये शतं। असंयते अनुदयः एकां संयोज्य

पंचेन्द्रियोंमें गुणस्थानकी तरह उदय योग्य एक सौ बाईस १२२ में से साधारण, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म घटानेपर उदययोग्य एक सौ चौदह ११४। गुणस्थान चौदह। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति २। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार ४। मिश्रमें मिश्र प्रकृति १। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण आदि सतरह १७। देशसंयतमें आठ ८। प्रमत्त आदिमें गुणस्थानकी तरह पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, अहारकद्विक और तीर्थकरका अनुदय। उदय एक सौ नौ १०९। व्युच्छित्ति दो।

२. सासादनमें पाँचमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ। उदय एक सौ छह १०६। व्यु० ४

३. मिश्रमें आठमें चार तथा शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय सौ। व्यु. एक।

१. म कूडिमत्तमनुदयगं°।

रोळु चतुर्गतिगळोळमसंयतसम्यग्दृष्टि पुट्टुगुमप्पुदरिंदमानुपूर्व्यंचतुष्कमुमं सम्यक्त्वप्रकृतियुमंनितय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तं १०। उदयप्रकृतिगळु नूरनाल्कु १०४ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळु २७। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळु एंटुगूडियनुदयप्रकृतिगळु मूवत्तय्दरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु अय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेंदु ३८। उदयंगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयप्रकृतिगळु नाल्वत्तेंदु ४८। उदयगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारगूडियनुदयंगळय्वत्त नाल्कु ५४। उदयंगळरुवत्तु ६०। उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळय्वत्तय्दु ५५। उदयंगळय्वत्तोंभत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळु एरडुगूडियनुदयंगळय्वत्तेळु ५७। उदयंगळुमय्वत्तेळु ५७। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळेप्पत्तमूररोळु तीर्थंकरनाममं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेप्पत्तेरडु ७२। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। अयोगिकेवलिभट्टारक-

---

चतुर्गानुपूर्व्यसम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्दश १०। उदयः चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः सप्तविंशतिः २७। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अनुदयः अष्ट संयोज्य आहारकद्वयोदयात्त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदय एकाशीतिः। ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयोऽष्टात्रिंशत् ३८। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चत्वारि संयोज्य अनुदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२। उदयः द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः अष्टाचत्वारिंशत् ४८। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः चतुःपंचाशत् ५४। उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदये पंचपंचाशत् ५५। उदये एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदये सप्तपंचाशत् ५७। उदयेऽपि सप्तपंचाशत् ५७। संयोगे अनुदयः षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयाद् द्वासप्ततिः ७२। उदये द्वाचत्वारिंशत् ४२। अयोगे त्रिंशतं संयोज्य अनुदये

---

४. असंयतमें एक मिलाकर तथा चारों आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय दस। उदय एक सौ चार। व्यु. सतरह।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय सत्ताईस। उदय सतासी। व्यु. आठ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय तैंतीस, क्योंकि आहारकद्वयका उदय है। उदय इक्यासी। व्यु. पाँच।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय अड़तीस। उदय छिहत्तर। व्यु. चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय बयालीस। उदय बहत्तर। व्यु. छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय अड़तालीस। उदय छियासठ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय चौवन। उदय साठ। व्यु. एक।

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय पचपन। उदय उनसठ। व्यु. दो।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय सत्तावन। उदय भी सत्तावन। व्यु. सोलह।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर अनुदय बहत्तर क्योंकि तीर्थंकरका उदय है। उदय बयालीस। व्यु. तीस।

गुणस्थानदोळ् मूवत्तुगूडियनुदयप्रकृतिगळ् नूरेरडु १०२। उदयंगळ् पन्नेरडु १२। संदृष्टि :—

सकलेंद्रिययोग्य ११४

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
ध्रु	२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७	७२	१०२

अनंतरं कायमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं द्वयर्द्धगाथासूत्रदिंद पेळ्दपरु :—

एयं वा पणकाए ण हि साहारणमिणं च आदावं ।
दुसु तद्दुगमुज्जोवं कमेण चरिमम्मि आदावं ॥३०९॥

एकेंद्रियवत्पंचकाये न हि साधारणमिदं चातपः द्वयोस्तद्वयमुद्योतः क्रमेण चरमे आतपः ॥

एकेंद्रियवत्पंचकाये एकेंद्रियमार्गणेयोळु पेळ्दंते अप्पुदु कायमार्गणेगळोळुदययोग्यप्रकृतिगळे भत्तप्पुवु ८०। अवंतेंदोडे सामान्योदयप्रकृतिगळ् १२२। नूरिप्पत्तेरडरोळु नारकायुष्यमुमं १। देवायुष्यमुमं १। मनुष्यायुष्यमुमं १। उच्चैर्गोत्रमुमं १ मनुष्यद्विकमुमं २। आहारकद्विकमुमं २। वैक्रियिकषट्कमुमं ६। तीर्थमुमं १। विकलत्रयमुमं ३। स्त्रीवेदमुमं १। पुरुषवेदमुमं १। स्वरद्वयमुमं २। विहायोगतिद्वयमुमं २। आदेयनाममुमं १। संस्थानाद्यपंचकमुमं ५। संहननषट्कमुमं ६। सुभगनाममुमं १। सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १। मिश्रप्रकृतियुमं १। औदारिकांगोपांगमुमं १। त्रसनाममुमं १। पंचेंद्रियजातिनाममुम १ मिंतु नाल्वत्तेरडु प्रकृतिगळं कळे दोडेतावन्मात्रंगळप्पुदरिंदं। अल्लि साधारणमं कळेदोडे पृथ्वीकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तो भत्तप्पुवु ७९।

(८०)
मत्तमा एणभत्तुप्रकृतिगळोळु ई साधारणमुमं आतपनाममुमं कळेदोडप्कायिकोदययोग्यप्रकृति-

द्व्युत्तरशतं १०२। उदयो द्वादश। ३०६-३०८॥ अथ कायमार्गणायामाह—

एकेंद्रियमार्गणावत् पंचकायमार्गणायामशीतिः ८०। तत्र साधारणेऽपनीते पृथ्वीकायिकोदययोग्या

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय एक सौ दो। उदय बारह ॥३०६-३०८॥

विकलत्रय रचना

मि	सा
१०	५
८१	७१
०	१८

सकलेन्द्रिय योग्य ११४

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
५	८	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७	७२	१०२

आगे कायमार्गणामें कहते हैं—

एकेन्द्रिय मार्गणाकी तरह पाँच कायमार्गणामें उदययोग्य अस्सी ८०। उसमें-से

(८०)

गळेप्पत्तें टप्पुवु ७८। मत्तमा एण्भत्तुं प्रकृतिगळोळु असाधारणातपद्वयसहितमागि उद्योतनाममुमं कळेदोडे तेजस्कायिकवायुकायिकमेंबेरडेडेयोळमेप्पत्तेळुमेप्पत्तेळु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु। ते ७७। वा ७७। मत्तं कमेण चरिमम्मि आदावं ण हि वणस्पतिकायिकंगळोळाएण्भत्तरोळातपनाममों दं कळेदोडुदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तप्पुवु ७९। अंतागुत्तं विरलु पृथ्वीकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तु ७९। गुणस्थानंगळॆरडप्पुवें तेंदोडे ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेजदुगे एंदितु पारिशेषिक न्यायदिदं पृथ्वीकायिकंगळोळं अप्कायिकंगळोळं वनस्पतिकायिकंगळोळं सासादनसम्यग्दृष्टि पुट्टदुगुमप्पुदरिंदमल्लि पुट्टुवसासादनंगवस्थानकालमुत्कृष्टदिंदमारावलि जघन्यदिंदमेकसमयमेयप्पुदरिंदं तद्गुणस्थानदोळुदययोग्यमल्लद मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मनाममुं १ अपर्य्याप्तनाममुमेंब नाल्कुं ४ प्रकृतिगळुं इंद्रियपर्य्याप्तियिंदं मेलुदयिसुव स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३। उच्छ्वासपर्य्याप्तियिंदं मेलुदयिसुव उच्छ्वासनाममुं १ शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेलुदयिसुव परघातनाममु १ मुद्योतनाममुं १ मितु पत्तुं प्रकृतिगळगं मिथ्यादृष्टियोळुदव्युच्छित्तियक्कुं १०। सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममु १ मितारुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कु ६ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयप्रकृतिगळेप्पत्तों भत्तु ७९। सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळु पत्तु १० उदयंगळरुवत्तों भत्तु ६९। संदृष्टि :

एकान्नाशीतिः। ७९। पुनस्तत्राशीत्यां साधारणातपद्वयेऽपनीतेऽप्कायिकोदययोग्या अष्टसप्ततिः ७८। पुनस्तत्राशीत्यां साधारणातपोद्योतत्रयेऽपनीते तेजोवातकायिकयोरुदययोग्याः सप्तसप्ततिः ७७। पुनः क्रमेण चरिमम्हि आतपेऽपनीते वनस्पतिकायिके उदययोग्याः एकान्नाशीतिः ७९। तथासति पृथ्वीकायिकोदययोग्या एकान्नाशीतिः ७९। गुणस्थानद्वयं कुतः ? णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे। इति पारिशेष्यात् पृथ्व्यप्रत्येकवनस्पतिषु सासादनस्योत्पत्तेः। तत्रोत्पन्नसासादनस्य तद्गुणस्थाने उदययोग्यानि मिथ्यात्वातपसूक्ष्मापर्याप्तानि इंद्रियपर्याप्त्युपर्युदययोग्यस्त्यानगृद्धित्रयं उच्छ्वासपर्याप्त्युपर्युदययोग्योच्छ्वासः शरीरपर्याप्त्युपर्युदययोग्यपरघातोद्योतौ एवं दश मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः १०। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियस्थावरं

साधारण घटानेपर पृथ्वीकायिकमें उदययोग्य उन्यासी ७९। पुनः अस्सीमें-से साधारण और आतप घटानेपर अप्कायिकमें उदययोग्य अठहत्तर। पुनः अस्सीमें-से साधारण, आतप और उद्योत घटानेपर तेजकाय और वायुकायमें उदययोग्य सतहत्तर। पुनः क्रमसे अन्तिममें आतप घटानेपर वनस्पतिकायिकमें उदययोग्य उन्नासी। ऐसा होनेपर पृथ्वीकायिकके उदययोग्य उन्नासी। गुणस्थान दो क्योंकि आगममें कहा है कि सासादन मरण करके अपर्याप्तक, साधारणकाय, सूक्ष्मकाय, तेजकाय और वायुकायमें उत्पन्न नहीं होता। अतः वह पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिमें ही उत्पन्न होता है। उनमें उत्पन्न सासादनके उस गुणस्थानमें ये दस प्रकृतियाँ उदययोग्य नहीं हैं—मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त ये चार। तथा सासादन तो निर्वृत्यपर्याप्त दशामें ही रहता है और स्त्यानगृद्धि आदि तीन इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य होती हैं। इसी तरह उच्छ्वासका उदय भी उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही होता है। परघात और उद्योत शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर ही उदययोग्य है अतः इन छहका उदय भी यहाँ सासादनमें नहीं होता। इससे इनकी

पृथ्वी० यो० ७९

०।०	मि	सा
व्यु	१०	६
उ	७९	६९
अ	०	१०

अप्कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेंदु ७८। मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ सूक्ष्मनाममुं १ अपर्य्याप्तनाममुं १ स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ परघातनाममुं १ उद्योतनाममुं १ उच्छ्वासनाममु १ मितोभत्तुं ९ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं। सासादननोळनंतानुबंधिचतुष्कमुं नाल्कु ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितारुं ६ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयप्रकृतिगळेप्पत्तेंदु ७८। सासादनगुणस्थानदोळनुदयंगळोभत्तु ९। उदयंगळरुवत्तोंभत्तु ६९। संदृष्टि :—

अ० यो० ७८

०	मि	सा
व्यु	९	६
उ	७८	६९
अ	०	९

चेति षट् ६। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं। उदयः एकान्नाशीतिः ७९ सासादने अनुदयो दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९ अप्कायिकोदययोग्याष्टसप्तत्यां ७८ मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिः मिथ्यात्वं सूक्ष्मापर्याप्तं स्त्यानगृद्धित्रयं परघातोद्योतोच्छ्वासाश्चेति नव। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावराणि षट्। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं उदयोऽष्टसप्ततिः ७८। सासादने अनुदयः नव ९। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९।

व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें होती है। अतः मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति दस। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय और स्थावर छह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय उनासी ७९। सासादनमें अनुदय दस। उदय उनत्तर ६९।

अप्कायिकमें उदययोग्य अठत्तर ७८। मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास इन नौकी। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार एकेन्द्रिय स्थावर छह। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय अठहत्तर ७८। सासादनमें अनुदय नौ ९। उदय उनहत्तर ६९।

अप्कायिकयोग्य ७८ तेजस्कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेळु ७७ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो दे-वायुकायिकोदययोग्यप्रकृतिगळु मेप्पत्तेळु ७७। यिल्लियुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमोदे वनस्पति-कायिकोदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तो भत्तु ७९। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। सूक्ष्म-नाममुं १ अपर्य्याप्तनाममुं १ साधारणनाममुं १ स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। परघातनाममुं १। उच्छ्वास-नाममुं १ उद्योतनाममुं १ यितु पत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १०। सासादननोळु अनंतानु-बंधिचतुष्कमुमं ४ एकेंद्रियजातिनाममुं १ स्थावरनाममुं १ मितारुं ६ प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-यक्कु ६ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयं गळेप्पत्तो भत्तु ७९। सासादन-सम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळनुदयप्रकृतिगळु पत्तु १०। उदयप्रकृतिगळरुवत्तो भत्तु ६९। संदृष्टि :—

वनस्पतियोग्य ७९

०	मि	सा
व्यु	१०	६
उ	७९	६९
अ	०	१०

अनंतरं त्रसकायमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तेजोवातकायिकोदययोग्याः सप्तसप्ततिः ७७। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं। वनस्पतिकायिकोदययोग्यैकान्नाशीत्यां मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणस्त्यानगृद्धित्रयपरघातोच्छ्वासोद्योताः व्युच्छित्तिः १०। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावराणि ६९ तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं उदयः एकान्नाशीतिः ७९। सासादनेऽनुदयः दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः। ६९ ॥ ३०९ ॥ अथत्रसकायमार्गणायामाह—

तेजकायिक, वायुकायिकमें उदययोग्य सतहत्तर ७७। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि एक।

वनस्पतिकायिकमें उदययोग्य ७९ उन्यासी। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त, साधारण, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास इन दसकी व्युच्छित्ति। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार स्थावर सूक्ष्म छहकी व्युच्छित्ति। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय उन्यासी ७९। सासादनमें अनुदय दस १०। उदय उनहत्तर ६९ ॥३०९॥

पृथ्वीकाय रचना ७९

मि.	सा.
१०	६
७९	६९
०	१०

अप्काय रचना ७८

मि.	सा.
९	६
७८	६९
०	९

तेजोवातकाय रचना ७७

मि.
०
७७
०

आगे त्रसकाय मार्गणामें कहते हैं—

ओघं तसे ण थावरदुग-साहरणेयतावमथ ओघं ।
मणवयणसत्तगे ण हि ताविगिविगलं च थावराणुचऊ ॥३१०॥

ओघस्त्रसे न स्थावरद्विक साधारणैकेंद्रियातपं अथ ओघः । मनोवचनसप्तके न हि आतपैक विकलेंद्रियं च स्थावरानुपूर्व्यं चत्वारि ॥

त्रसकायमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळु नूर पदिनेळ ११७ प्पुवदें तेंदोडे केवलमेकेंद्रियोदययोग्यंगळप्प स्थावरनाममुं १ सूक्ष्मनाममुमं १ साधारणशरीरनाममुमं १ एकेंद्रियजातिनाममुमं १ आतपनाममुमं १ नितप्पुं ५ प्रकृतिगळं सामान्योदयप्रकृतिगळ नूरिप्पत्तेरडरोळु कळेदोडे तावन्मात्रंगळप्पुदरिंदं । चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं त्रसकायमार्गणेयोळु गुणस्थानंगळु पदिनाल्कुवप्पुवल्लि १४ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुमितरडे प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं २ । सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ विकलत्रयमु ३ मितेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे व्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतमोदल्गोंडु मेलेल्लेडेयोळं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयुदयव्युच्छित्तिगळु पदिनेळं एंदुमप्पुं नाल्कुमारुमारुमों दुमेरडुं पदिनारुं मूवत्तुं पन्नेरडुगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ आहारकद्विकमुं २ तीर्थमुं १ मितप्पुं प्रकृतिगळुगनुदयमक्कुं ५ । उदयंगळु नूर पन्नेरडु ११२ । सासादनगुणस्थानदोळेरडु गूडियनुदयंगळेळरोळु नारकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंदु ८ । उदयंगळु नूरों भत्तु १०९ । मिश्रगुणस्थानदोलेळु गूडियनुदयंगळु पदिनय्दरोळु शेषानुपूर्व्यत्रयमं कूडुत्तमल्लि मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनेळु १७ । उदयंगळु नूरु १०० । असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनु-

त्रसकायिकोदययोग्यं सप्तदशोत्तरशतं ११७ । कुतः ? स्थावरसूक्ष्मसाधारणैकेंद्रियातपानामेकेंद्रियेष्वेवोदयात् । गुणस्थानानि चतुर्दश १४ । तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तद्वयं व्युच्छित्तिः सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं विकलत्रयं च । मिश्रे मिश्रं १ । असंयतादिषु गुणस्थानवत् सप्तदशाष्ट पंच चत्वारि षट् षडेकं द्वे षोडश त्रिंशत् द्वादश । तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थकरत्वानि ५ । उदयः द्वादशोत्तरशतं ११२ । सासादने अनुदयः द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वा अष्टौ ८ । उदयः नवोत्तरशतं । मिश्रे अनुदयः

त्रसकायिकमें उदययोग्य एक सौ सतरह ११७ । क्योंकि स्थावर, सूक्ष्म, साधारण एकेन्द्रिय और आतपका उदय एकेन्द्रियोंमें ही होता है । गुणस्थान चौदह १४ । उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्तकी व्युच्छित्ति होती है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और विकलत्रय । मिश्रमें मिश्र । असंयत आदिमें गुणस्थानोंकी तरह सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थंकर पाँचका अनुदय । उदय एक सौ बारह ११२ । सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ । उदय एक सौ नौ । मिश्रमें सात और शेष तीन आनुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्र प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय ८ + ७ + ३ = १८ - १=

१. म कूडिमत्तमल्लि ।

दयंगळ्, पदिनेंटरोळ् सम्यक्त्वप्रकृतियुमं आनुपूर्व्यंचतुष्कमुमं ४ कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पदिमूरु १३। उदयंगळ् नूर नाल्कु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळ् पदिनेलु-गूडियनुदयंगलु ३० मूवत्तु, उदयंगळेण्भत्तेलु ८७। प्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु मेलेल्लेडेयोलनु-दयोदयंगलु गुणस्थानदोळ्पेळ्दंतेयप्पुवु। संदृष्टि :—

५ त्रसकाय योग्य० ११७

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
ध्रु	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

अथ मनोवचनसप्तके ओघः सत्यासत्योभयानुभयमनोयोगंगलु नाल्कुं सत्यासत्योभयवाग्यो-गंगलु मूरुमितेलुं ७ योगंगळ्गुदययोग्यप्रकृतिगलु सामान्योदयप्रकृतिगलु नूरिप्पत्तेरडप्पु १२२ वरोलातपनाममुमेकेंद्रियजातियुं विकलत्रयमुं स्थावरमुं सूक्ष्ममुं अपर्य्याप्तनाममुं साधारण-

सप्त शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयात् सप्तदश १७। उदयः शतं १००। असंयते अनुदयः
१० एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात् त्रयोदश १३। उदयश्चतुरुत्तरशतं। १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्य अनुदयः त्रिंशत् ३०। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तादिषु अनुदयोदयौ गुणस्थानवत्। संदृष्टिः—

त्रसकाययोग्य ११७।

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
ध्रु	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

अथ सत्यादिषु चतुर्षु मनोयोगेषु त्रिषु वाग्योगेषु च ओघः १२२, तत्र आतपैकेंद्रियविकलत्रयस्थावर-

सतरह। उदय सौ। असंयतमें एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व प्रकृति और चारों आनुपूर्वीका
१५ उदय होनेसे अनुदय तेरह। उदय एक सौ चार। देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय तीस। उदय सतासी। प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें अनुदय और उदय गुणस्थानवत् जानना ॥३१०॥

त्रसकाययोग्य ११७

	मि.	सा.	मि.	अ	दे.	प्र.	अ.	मि.	अ	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
ध्रु.	२	७	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ.	११२	१०९	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अनु.	५	८	१७	१३	३०	३६	४१	४५	५१	५७	५८	६०	७५	१०५

योगमार्गणामें सत्य आदि चार मनोयोगोंमें और सत्य असत्य उभय वचनयोगमें

शरीरमुमेंब स्थावरचतुष्टयमुं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमितु पदिमूरुं प्रकृतिगलं कळेदोडे नूरों भत्तु प्रकृतिगळुदययोग्यंगलप्पु १०९ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियो देयुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। सासादनोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयमुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु भाषापर्य्याप्तियिंदं मेलणयोगंगळप्पुदरिंदं नाल्कुमानुपूर्व्यंगळं कळेदु शेष पदिमूरुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३। देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं तिर्य्यंगायुष्यमुं उद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यंगतिनाममुमितेंटुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८। प्रमत्तगुणस्थानं मोदलागि सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानपर्य्यंतं पंच य च उरं छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस तीसमेंदितुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु योगमिल्लप्पुदरिंदमल्लिय पन्नेरडुं प्रकृतिगळगे सयोगिकेवलिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमवु कारणमागि सयोगकेवलिगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळु नाल्वत्तेरडुप्रकृतिगळप्पुवु ४२। अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्थमुमाहारकद्वयमुमितय्दुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं ५। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ सासादनगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयगळु आरु ६। उदयंगळु नूर मूरु १०३। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु हत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोलु कूडुत्तं विरलनुदयंगळों भत्तु ९ उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळों भत्तु ९। उदयंगळु नूरु १००॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तेलु ८७। प्रमत्तगुणस्थान-

---

सूक्ष्मपर्याप्तसाधारणचतुरानुपूर्व्याणि उदययोग्यानि नेति नवोत्तरशतं ॥ १०९ ॥ तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं १। असंयते भाषापर्याप्तेरुपरि योग्यसंभवात् आनुपूर्व्यचतुष्कं विना त्रयोदश १३। देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कं तिर्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्रतिर्यग्गतयोष्टौ ८। प्रमत्तादिसयोगपर्यंतं पंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलसतीसमिति। अयोगे योगाभावात् तद्व्दादशानां सयोगे एव व्युच्छित्तेर्द्वाचत्वारिंशत्। ४२। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वतीर्थाहारकद्वयमनुदयः ५। उदयः चतुरुत्तरशतं १०४। सासादने एकसंयोगादनुदयः षट् ६ उदयः त्र्युत्तरशतं १०३। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कं

गुणस्थानकी तरह एक सौ बाईसमें-से आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और चार आनुपूर्वी इन तेरहके उदय बिना उदययोग्य एक सौ नौ १०९। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें चार आनुपूर्वीके बिना तेरह, क्योंकि आनुपूर्वीका उदय तो नवीन भवको गमन करते समय होता है और मनोयोग वचनयोग अपनी पर्याप्ति पूर्ण होनेके पश्चात् होते हैं। इससे यहाँ आनुपूर्वीका उदय नहीं कहा। देससंयतमें तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय चार तिर्यंचायु उद्योत नीचगोच और तिर्यंचगति ये आठ ८। प्रमत्तसे सयोगीपर्यन्त क्रमसे पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह। अयोगकेवलीमें योगका अभाव होनेसे उसमें व्युच्छिन्न होनेवाली बारह प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति सयोगकेवलीमें ही होनेसे सयोगीमें बयालीसकी व्युच्छित्ति जानना।

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, तीर्थंकर, आहारकद्वय पाँचका अनुदय। उदय एक सौ चार १०४। सासादनमें एक मिलनेसे अनुदय छह। उदय एक सौ तीन १०३।

बोळंदुगूडियनुदयंगळ मूवत्तरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगलिप्पत्तेंदु २८। उदयंगलेण्भत्तोंदु ८१ ॥ अप्रमत्तगुणस्थानमादियागि यथायोग्यमागियमनुदयंगलुमुदयप्रकृतिगलुमी प्रकारदिंदं नडेसुत्तं विरलु रचनेयितुटक्कं संदृष्टि :—

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृति नूरवोंभत्तु १०९ ॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

५ अनुभयवाग्योगदोलुमौदारिककाययोगदोलमुदययोग्यप्रकृतिगलं पेळ्दपरु :—

अणुभयवचि वियलजुदा ओघमुराले ण हारदेवाऊ।
वेगुव्वछक्कणरतिरियाणु अपज्जत्तणिरयाऊ ॥३११॥

अनुभयवाचि विकलयुत ओघः औदारिके नाहारदेवायुर्व्वैक्रियिकषट् नरतिर्य्यगानुपूर्व्व्या-पर्याप्तनरकायः ॥

१० संयोज्य मिश्रोदयान्नव ९ उदयः शतं। १००। देशसंयते त्रयोदशसंयोगे अनुदयो द्वाविंशतिः २२। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अष्ट संयोज्य आहारकद्वयोदयादनुदयः अष्टविंशतिः २८। उदयः एकाशीतिः ८१। अप्रमत्तादिषु अनुदयोदययोरेवं गच्छतोः संदृष्टिः—

मनो ४ वा ३ योग्यप्रकृतयः १०९।

स	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

॥ ३१०। अनुभयवागौदारिककाययोगयोराह—

१५ मिश्रमें चार मिलनेसे तथा मिश्रका उदय होनेसे अनुदय नौ ९। उदय सौ १००। देशसंयतमें तेरह मिलनेपर अनुदय बाईस २२। उदय सत्तासी ८७। प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारक-द्विकका उदय होनेसे अनुदय अट्ठाईस २८। उदय इक्यासी ८१। अप्रमत्तादिमें अनुदय और उदय इसी प्रकार जानना ॥३१०॥

मनोयोग ४ वचनयोग ३ योग्य प्रकृतियाँ १०९

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्यु.	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उदय.	१०४	१०३	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अनु.	५	६	९	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

अनुभयवाचि अनुभयवाग्योगदोळु विकलेंद्रियजातिनामत्रितयमं कूडि नूर पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवेंक दोडनुभयवाग्योगं विकलत्रयजीवंगळगमुंटप्पुदरिंदं। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दक्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्टयक्कुद.....
.... एक्कमुदयमप्पुदरिंदमेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दक्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तिक्कुं १३॥ देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळऽ पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस बादाल प्रकृतिगळ्गे यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृत्यादि पंचप्रकृतिगळगनुदयमक्कुं ५। उदयंगळु नूरेळु १०७। सासादनगुणस्थानदोळु ओंदु गूडियनुदयंगळारु ६ उदयंगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयंगळु पदिमूररोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नेरडु १२ उदयंगळु नूरु १००।

असंयतगुणस्थानदोळों दु गूडियनुदयंगळु पदिमूररोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नेरडु १२। उदयंगळु नूरु १००। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळेंदुगूडि यनुदयंगळु मूवत्तमूररोळु आहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तोंदु ३१। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडि यनुदयंगळु मूवत्तारु ३६। उदयंगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्वकरण-

---

अनुभयवाग्योगे विकलेंद्रियत्रये मिलिते द्वादशोत्तरशतं उदययोग्यं विकलत्रयजीवेष्वपि तद्योगसंभवात्। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः १। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं विकलत्रयं च ७। मिश्रे मिश्रं १। असंयते त्रयोदश १३। देशसंयतादिषु अष्ट पंच चत्वारि षट् षडेकं द्वे षोडश द्वाचत्वारिंशत्। तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रप्रकृत्यादिपंचकमनुदयः, उदयः सप्तोत्तरशतं १०७। सासादने एकं संयोज्य अनुदयः षट् ६। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रे सप्त संयोज्य मिश्रोदयादनुदयो द्वादश १२। उदयः शतं १००। असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयः द्वादश १२। उदयः शतं १००। देशसंयते त्रयोदश संयोज्य अनुदयः पंचविंशतिः २५। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अष्टौ संयोज्य आहारकद्वयोदयादनुदयः एकत्रिंशत् ३१। उदयः एकाशीतिः

अनुभय वचनयोगमें तीन विकलेन्द्रिय मिलानेपर उदययोग्य एक सौ बारह क्योंकि विकलत्रय जीवोंमें अनुभय वचनयोग होता है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और विकलत्रय इस तरह व्युच्छित्ति सात। मिश्रमें मिश्र एक। असंयतमें तेरह १३। देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, बयालीस। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र प्रकृति आदि पाँचका अनुदय। उदय एक सौ सात। व्यु. एक।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय छह। उदय एक सौ छह १०६। व्यु. सात।
३. मिश्रमें सात मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय बारह। उदय सौ।
४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय बारह। उदय सौ।
५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय पच्चीस। उदय सत्तासी।
६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्वयका उदय होनेसे अनुदय इकतीस। उदय इक्यासी।

गुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तारु ४६। उदयंगळरुवत्तारु ६६। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान-दोळारुगूडि यनुदयंगळय्वत्तेरडु ५२। उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळोंदु-गूडिय नुदयंगळु अय्वत्तमूरु ५३। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनु-दयंगळय्वत्तय्दु ५५। उदयंगळय्वत्तेळु ५७॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनु-दयंगळेप्पत्तोंदरोळु तीर्थमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु एप्पत्तु ७०। उदयंगळ् नाल्वत्तेरडु ४२। संदृष्टि :—

अनुभयवाग्योग प्र० ११२॥

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु	१	७	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०७	१०६	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	६	१२	१२	२५	३१	३६	४०	४६	५२	५३	५५	७०

८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्य अनुदयः षट्त्रिंशत् ३६। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः चत्वारिंशत् ४०। उदयः द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्य अनुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः द्वापंचाशत् ५२ उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां संयोज्य अनुदयः त्रिपंचाशत् ५३ उदयः एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्य अनुदयः पंचपंचाशत् ५५। उदयः सप्तपंचाशत् ५७। सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयात् अनुदयः सप्ततिः ७०। उदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय छत्तीस ३६। उदय छियत्तर ७६।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चालीस ४०। उदय बहत्तर ७२।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस। उदय छियासठ।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय बावन। उदय साठ ६०।

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय तिरपन। उदय उनसठ ५९।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय पचपन ५५। उदय सत्तावन ५७।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सत्तर ७०। उदय बयालीस ४२।

अनुभय वचनयोगमें ११२

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
व्यु.	१	७	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उदय	१०७	१०६	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अनुदय	५	६	१२	१२	२५	३१	३६	४०	४६	५२	५३	५५	७०

औदारिके ओघः औदारिककाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडप्पु १२२ अवरोळु आहारकद्वयमुं देवायुष्यमुं वैक्रियिकषट्कमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ अपर्य्याप्तनाममुं नरकायुष्यमुं कूडि पविमूरुं प्रकृतिगळं कळेयुत्तं विरलु शेष नूरों भत्तु प्रकृतिगळौदारिककाययोगयोग्योदयप्रकृतिगळप्पु १०९ वल्लि तिर्य्यग्मनुष्यगतिद्वयसंबंधियोगमप्पुदरिं पविमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळपर्य्याप्तनामवर्जितचतुःप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। ५ सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमेकेंद्रियस्थावरविकलत्रयंगळे बो भत्तुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। ९॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं। १॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं दुर्भगत्रयमुमितु एळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं तिर्य्यंगायुष्यमुं उद्योतनाममुं नीचैर्गोत्रमुं तिर्य्यग्गतियुमे बेंटुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळु आहारकद्वयोदयमिल्लेकेंदोडे औदारिककाययोग- १० प्रवृत्तंगाहारककाययोगप्रवृत्तियिल्लप्पुदरिंदं स्थानगृद्धित्रयमक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। अप्रमत्तादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिदं चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस बावाळप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळाहारकद्वयवर्जितानुदयंगळु मिश्रप्रकृतिसम्यक्त्वप्रकृतितीर्त्थनाममुमितु मूरुं प्रकृतिगळप्पुवु। ३। उदयप्रकृतिगळु नूरारु १०६॥ सासादन गुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळु ७ उदयंगळु नूरेरडु १०२॥ मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तु- १५

औदारिककाययोगे द्वाविंशत्युत्तरशतमध्ये १२२ आहारकद्वयं देवायुः वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये अपर्याप्तं नरकायुश्च उदययोग्यं नेति नवोत्तरशतं १०९। गुणस्थानानि त्रयोदश। तत्र मिथ्यादृष्टौ अपर्याप्तवर्जितव्युच्छित्तिः चत्वारि ४। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कैकेंद्रियस्थावरविकलत्रयाणि नव। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं दुर्भगत्रयं च। देशसंयते तृतीयकषायचतुष्कतिर्यगायुरुद्योतनीचैर्गोत्रतिर्यग्गतयोऽष्टौ। अस्मिन् योगे आहारकयोगप्रवृत्तिर्नास्तीति प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं। अप्रमत्तादिषु क्रमेण 'चउरछक्क- २० छच्चेव इगिदुगसोलसबादालं' एवं सति मिथ्यादृष्टावनुदयः मिश्रसम्यक्त्वतीर्थकरत्वानि ३। उदयः षडुत्तरशतं १०६। सासादने चतस्रः संयोज्य अनुदयः सप्त ७। उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रे नव संयोज्य मिश्रोदया-

औदारिक काययोगमें एक सौ बाईसमें-से आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अपर्याप्त, नरकायु उदययोग्य नहीं हैं अतः एक सौ नौ १०९ २५ उदययोग्य हैं। गुणस्थान तेरह। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें अपर्याप्तको छोड़ चारकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय नौकी व्युच्छित्ति है। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, दुर्भग आदि तीन। देशसंयतमें प्रत्याख्यानावरण कषाय चार, तिर्यंचायु, उद्योत, तिर्यंचगति, नीचगोत्र ये आठ। औदारिक काययोगमें आहारक काययोगकी प्रवृत्ति न होनेसे प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि ३० तीनकी व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तादिमें क्रमसे चार, छह, छह, एक, दो, सोलह और बयालीसकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और तीर्थंकर तीनका अनुदय। उदय १०६।

२. सासादनमें चार मिलाकर अनुदय सात। उदय एक सौ दो १०२।

गूडियनुदयप्रकृतिगळु पविनाररोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनय्दु १५। उदयंगळु तों भत्त नाल्कु ९४॥ असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पविनाररोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनय्दु १५। उदयंगळु तों भत्तनाल्कु ९४। देशसंयतगुणस्थानदोळेळु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोळें टुगूडियनुदयंगळु मूवत्तु ३०। उदयंगळेप्पत्तों भत्तु ७९। अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळु मूवत्तमूरु। ३३। उदयंगळेप्पत्तारु ७६। अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तमूरु ४३। उदयंगळरुवत्तारु ६६॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तों भत्तु ४९। उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळय्वत्तु ५०। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडिदनुदयंगळय्वत्तेरडु ५२। उदयंगळय्वत्तेळु ५७॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळरुवत्तें टरोळु तीर्त्थमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तेळु ६७। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। संदृष्टि :

दनुदयः पंचदश १५। उदयः चतुर्नवतिः ९४। असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयः पंचदश १५। उदयः चतुर्नवतिः ९४। देशसंयते सप्त संयोज्य अनुदयः द्वाविंशतिः २२। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्ते अष्ट संयोज्य अनुदयः त्रिंशत् ३०। उदयः एकोनाशीतिः। अप्रमत्ते तिस्रः संयोज्य अनुदयः त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयः द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः त्रिचत्वारिंशत् ४३। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्य अनुदयः एकान्नपंचाशत् ४९। उदयः षष्टिः ६०। उपशांते एकां संयोज्य अनुदयः पंचाशत् ५०। उदयः एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयो द्वापंचाशत् ५२। उदयः सप्तपंचाशत् ५७। सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थोदयादनुदयः सप्तषष्टिः ६७। उदयः द्वाचत्वारिंशत् ४२। ३११।

---

३. मिश्रमें नौ मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह १५। उदय चौरानवे ९४।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह। उदय चौरानवे।

५. देशसंयतमें सात मिलाकर अनुदय बाईस २२। उदय सत्तासी ८७। व्युच्छित्ति आठ।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय तीस ३०। उदय उन्यासी ७९। व्युच्छित्ति तीन।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय तैंतीस ३३। उदय छियत्तर ७६। व्युच्छित्ति चार।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७। उदय बहत्तर ७२। व्युच्छित्ति छह।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय तैंतालीस ४३। उदय छियासठ। व्युच्छित्ति छह।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय उनचास ४९। उदय साठ। व्युच्छित्ति एक।

११. उपशान्तमें एक मिलाकर अनुदय पचास। उदय उनसठ ५९। व्युच्छित्ति दो।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बावन। उदय सत्तावन। व्युच्छित्ति सोलह।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सड़सठ ६७। उदय बयालीस ॥३११॥

औदारिककाययोगोदययोग्य प्रकृतिगळ् १०९।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
व्यु.	४	९	१	७	८	३	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०६	१०२	९४	९४	८७	७९	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	३	७	१५	१५	२२	३०	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

अनंतरमौदारिकमिश्रकाययोगदोळुदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिदं पेळ्दपरु :—

तम्मिस्सेऽ पुण्णजुदा ण मिस्सथीणतियसरविहायदुगं ।
परघादचउ अयदे णादेज्जदुदूभगं ण संढित्थी ॥३१२॥

तन्मिश्रे अपूर्णयुता न मिश्रस्त्यानगृद्धित्रितयस्वरविहायोगतिद्वयं । परघातचतुष्कमसंयतेऽ- ५
नादेयद्विकदुर्भगं न षंढस्त्रीवेदौ ॥

साणे तेसिं छेदो वामे चत्तारि चोद्दसा साणे ।
चउदालं वोच्छेदो अयदे जोगिम्मि छत्तीसं ॥३१३॥

सासादने तासां छेदो वामे चतस्रः चतुर्दश सासादने । चतुश्चत्वारिंशद्विच्छेदोऽसंयते योगिनि षट्त्रिंशत् ॥ १०

तन्मिश्रे अपूर्णयुताः औदारिकमिश्रकाययोगिगळोळौदारिककाययोगिगळोळु पेळ्द नूरों भत्तु प्रकृतिगळोळु अपर्य्याप्तनामम कूडि नूरहत्तुप्रकृतिगळप्पुववरोळु मिश्रप्रकृतियुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं स्वरद्विकमुं विहायोगतिद्विकमुं परघातातपोद्योतोच्छ्वासचतुष्कमुमिंतु पन्नेरडुं प्रकृतिगळं कळेवु शेषउदयप्रकृतिगळु तों भत्तेंदुदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु ९८। गुणस्थानंगळु नाल्कप्पुवु ४। सामान्यो-

---

अथौदारिकमिश्रकाययोगस्य गाथाद्वयेनाह— १५

तन्मिश्रयोगे औदारिकयोगोक्तनवोत्तरशते अपर्याप्तिं निक्षिप्य मिश्रप्रकृतिः स्त्यानगृद्धित्रयं स्वरद्विकं विहायोगतिद्विकं परघातातपोद्योतोच्छ्वासाश्चेति द्वादशस्वपनीतेषु अष्टानवतिरुदययोग्याः ९८। गुणस्थानानि

औदारिक काययोग रचना

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.
व्यु.	४	९	१	७	८	३	४	६	६	१	२	१६	४२
उदय	१०६	१०२	९४	९४	८७	७९	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अनुदय	३	७	१५	१५	२२	३०	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

औदारिक मिश्रकाययोगमें दो गाथाओंसे कहते हैं—

औदारिक मिश्रकाययोगमें औदारिकयोगमें कहीं एक सौ नौमें अपर्याप्ति मिलाकर २०
मिश्र प्रकृति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति,

दयप्रकृतिगळ नूरिप्पत्तेरडरोळाहारकद्विकमुं २। देवायुष्यमु १। वैक्रियिकषट्कमुं ६। मनुष्यतिर्य्यंगानुपूर्व्यद्वितयमु २। नरकायुष्यमुं १। मिश्रप्रकृतियुं १। स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। स्वरद्वयमुं २। विहायोगतिद्वयमुं २ परघातचतुष्कमु ४ मितु चतुव्विंशतिप्रकृतिगळं कळेदु शेषतोंभत्तेंदु प्रकृतिगळे बुदत्थं। ई प्रकृतिगळिप्पत्तनाल्कुमेकेकळेदुवें दोडे नरकगति देवगतिसंबंधिगळ पर्य्याप्तकाल संबंधिगळं विग्रहगत्युदययोग्यंगळुमप्पुदरिनी औदारिकमिश्रकाययोगिगळ्गुदययोग्यंगळल्लप्पुदरिंदं। असंयते असंयतगुणस्थानदोळनादेयायशस्कीर्त्तिदुर्भगषंढस्त्रीवेदंगळे बी पंचप्रकृतिगळ्गुदयमिल्ला प्रकृतिगळ्गे सासादननोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळु पर्य्याप्तियिदं मेलुदयिसुगुमप्पुदरिंदमातपनाममं कळेदु शेषमिथ्यात्वप्रकृतिसूक्ष्मत्रितयमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। चतुर्दश सासादने सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुमेकेंद्रिय स्थावरविकलत्रय अनादेय अयशस्कीर्त्ति दुर्भगषंढवेद स्त्रीवेदमेंब चतुर्दशप्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्टयमुं ४। देशसंयतादिक्षीणकषायपर्य्यंतमादगुणस्थानवर्त्तिगळौदारिकमिश्रकाययोगमिल्लप्पुदरिंदमा गुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंद देशसंयतनोळुद्योतवर्ज्जितसप्तप्रकृतिगळं ७ प्रमत्तनोळु एनुमिल्लेकेंदोडे आहारकद्विकमुं स्त्यानगृद्धित्रितयमुं कळेदुवप्पुदरिंदं। अप्रमत्तनोळु नाल्कु ४। अपूर्व्वकरणनोळारुं ६। अनिवृत्तिकरणन षंढस्त्रीवेदद्वयरहित-

चत्वारि ४। सामान्योदयप्रकृतिषु आहारकद्विकं देवायुर्वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये नरकायुः मिश्रप्रकृतिः स्त्यानगृद्धित्रयं स्वरद्वयं विहायोगतिद्वयं परघातचतुष्कं चेति चतुर्विंशतिः कुतो नेति चेत् नरकदेवगतिपर्याप्तकालविग्रहगतिसम्बन्धिनीनामत्रानुदयात्। असंयते अनादेयायस्कीर्तिदुर्भगषंढस्त्रीवेदानामुदयो नहि सासादने एव व्युच्छित्तेः। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सूक्ष्मत्रयं च व्युच्छित्तिः आतपस्य पर्याप्तेरपर्युदयात्। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेन्द्रियस्थावरविकलत्रयानादेयायशस्कीर्तिदुर्भगषंढस्त्रीवेदाश्चेति चतुर्दश १४। असंयते स्वस्य द्वितीयकषायचतुष्कं तथा क्षीणकषायांतेषु अस्य योगस्याभावाद्देशसंयतस्योद्योतं विना सप्त। प्रमत्तस्य

परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास ये बारह घटानेपर उदययोग अठानबे ९८। गुणस्थान चार।

शंका—सामान्य उदय प्रकृतियोंमें-से आहारकद्विक, देवायु, वैक्रियिकषट्, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, नरकायु, मिश्रप्रकृति, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, सुस्वर, दुःस्वर, दो विहायोगति, परघातादि चार, इन चौबीसका उदय यहाँ क्यों नहीं है?

समाधान—यहाँ नरकगति, देवगति, पर्याप्तकाल और विग्रहगति सम्बन्धी प्रकृतियोंका उदय नहीं होता।

असंयतमें अनादेय, अयशस्कीर्ति, दुर्भग, नपुंसक और स्त्रीवेदका उदय नहीं होता। अतः उनकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है। ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और सूक्ष्म आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि आतपका उदय पर्याप्ति पूर्ण होनेपर होता है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, अनादेय, अयशःकीर्ति, दुर्भग, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद इन चौदहकी व्युच्छित्ति है। असंयतमें अपनी अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार तथा क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त औदारिक मिश्रयोगका अभाव

चतुःप्रकृतिगळ्गं ४ सूक्ष्मसांपरायनोंदु लोभमुं १ उपशांतकषायन वज्रनाराचनाराचद्वयमुं २। क्षीणकषायन पदिनारुं १६ यितसंयतनोळु चतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४४। योगिनि षट्त्रिंशत् सयोगिकेवलिभट्टारकंगे कवाटसमुद्घातदोळौदारिकमिश्रकाययोगमुंटप्पुदरिंदमल्लि नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु स्वरद्विकमुं विहायोगतिद्विकमुं परघातमुच्छ्वासमुमितारुं प्रकृतिगळुदयमिल्लप्पुदरिंदमवं कवाटसमुद्घातयोगियोळु कळेदु शेषप्रकृतिगळ मूवत्तारक्कुदय- ५
व्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्त्थकरनाममुमेरडुमनुदयंगळप्पुवु। उदयंगळु तों भत्तारु ९६। सासादनगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडिदनुदयंगळारु ६। उदयंगळु तों भत्तेरडु ९२॥ असंयतगुणस्थानदोळु पदिनाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हत्तों भत्तु। १९। उदयंगळेप्पत्तों भत्तु ७९॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु नाल्वत्तनाल्कुगूडियनुदयंगळरुवत्त मूररोळु तीर्त्थकरनाममं कळेदु- १०
दयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयप्रकृतिगळरुवत्तेरडु ६२। उदयप्रकृतिगळु मूवत्तारु ॥३६॥ संदृष्टिः

औदारिक मिश्र० योग्य ९८।

०	मि	सा	अ	स
अनु	४	१४	४४	३६
उ	९६	९२	७९	३६
अ	२	६	१९	६२

आहारकद्वयस्त्यानगृद्धित्रयं विना शून्यं। अप्रमत्तस्य चतस्रः। अपूर्वकरणस्य षट्। अनिवृत्तिकरणस्य षंढस्त्रीवेदौ विना चतस्रः, सूक्ष्मसांपरायस्य लोभः उपशांतकषायस्य वज्रनाराचनाराचद्वयं। क्षीणकषायस्य षोडश चेति चतुश्चत्वारिंशत् ४४। योगिनि षट्त्रिंशत्। कपाटसमुद्घातकाले स्वरद्वयविहायोगतिद्वयपरघातोच्छ्वा- १५
सानामनुदयात्। तथासति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वं तीर्थं चानुदयः, उदयः षण्णवतिः। सासादनेऽनुदयः चतुःसंयोगात् षट्। उदयः द्वानवतिः ९२। असंयते चतुर्दश संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् अनुदयः एकान्नविंशतिः १९। उदयः एकान्नाशीतिः ७९। सयोगे अनुदये चतुःचत्वारिंशतं संयोज्य तीर्थोदयात् द्वाषष्टिः ६२। उदयः

होनेसे देशसंयतकी उद्योतके बिना सात, प्रमत्तकी आहारकद्वय और स्त्यानगृद्धि आदि तीनके न होनेसे शून्य, अप्रमत्तकी चार, अपूर्वकरणकी छह, अनिवृत्तिकरणकी नपुंसकवेद २०
स्त्रीवेदके बिना चार, सूक्ष्म-साम्परायका लोभ, उपशान्तकषायकी वज्रनाराच, नाराच दो, क्षीणकषायकी सोलह इस प्रकार चवालीसकी व्युच्छित्ति होती है। सयोगीमें छत्तीसकी व्युच्छित्ति होती है; क्योंकि औदारिक मिश्रयोग कपाट समुद्घातके समय होता है और उस समय सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, परघात और उच्छ्वासका उदय नहीं होता। २५

ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकरका अनुदय, उदय छियानवे। सासादनमें चार मिलानेसे अनुदय छह, उदय बानवे। असंयतमें चौदह मिलानेसे तथा सम्यक्त्व

अनंतरं वैक्रियिककाययोगिगळगुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

देवोघं वेगुव्वे ण सुराणू पक्खिवेज्ज णिरयाऊ ।
णिरयगदिहुंडसंढं दुग्गदि दुब्भगचउ ण्णीचं ॥३१४॥

देवौघो वैक्रियिके न सुरानुपूर्व्यं प्रक्षिपेन्नरकायुर्न्नरकगतिहुंडषंढं दुर्गतिदुर्भग चतुर्न्नीचं ॥

देवौघो वैक्रियिके वैक्रियिककाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२। आ नूरिप्पत्तेरडरोळु स्थावरद्विकमु २। तिर्य्यग्द्विकमुं २। आतपद्विकमुं २। एकेंद्रियजातिनाममुं १। विकलत्रयमुं ३। साधारणशरीरमुं १। मनुष्यायुष्यमुं १। तिर्य्यगायुष्यमुं १। नरकायुष्यमुं १। नारकद्विकमुं २। अपर्य्याप्तनाममुं १। आहारकद्विकमुं २। तीर्थंकरनाममुं १। षंडवेदमुं १। दुर्भगचतुष्कमुं ४। नीचैर्गोत्रमुं १। स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३। अप्रशस्तविहायोगतियुं १। संहनन-षट्कमुं ६। चरमसंस्थानपंचकमुं ५। औदारिकद्विकमुं २। मनुष्यद्विकमु २। मितु नाल्वत्तय्दुं प्रकृतिगळं ४५। कळेदुशेषमेप्पत्तेळु प्रकृतिगळु देवगतिसामान्योदययोग्यप्रकृतिगळप्पुवु ७७। देवौघो वैक्रियिके देवगतिसामान्योदययोग्यप्रकृतिगळेप्पत्तेळरोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदेप्पत्तारररोळु नरकायुष्यमुं १ नरकगतियुं १ हुंडसंस्थानमुं १ षंढवेदमुं १ अप्रशस्तविहायोगतियुं १। दुर्भग-चतुष्कमुं ४। नीचैर्गोत्रमुं-१ मितुं पत्तुं प्रकृतिगळं १० प्रक्षिपेत् कूडुवुदंतु कूडुत्तं विरलु वैक्रियिक-काययोगोदययोग्यप्रकृतिगळ् ण्भत्तारु ८६। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियो दक्कुदय-व्युच्छित्तियक्कुं १॥ सासादननोळु अनंतानुबंधिचतुष्टयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु मिश्र-प्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ देवगतियुं १ नरकगतियुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २। नारकायुष्यमुं १ देवायुष्यमुं १ दुर्भगत्रयमु ३ मितु पदिमूरुं प्रकृतिगळुदय-व्युच्छित्तियक्कु १३। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियु-मितेरडुं १ प्रकृतिगळुदयमक्कुं। उदयंगळ् ण्भत्तनाल्कु ८४। सासादनगुणस्थानदोळो दुगूडियनु-

---

षट्त्रिंशत् ३६। ३१२। ३१३। अथ वैक्रियिककाययोगस्याह—

देवगतिसामान्योक्तसप्तसप्तत्यां देवानुपूर्व्यमपनीय नरकायुः नरकगतिहुंडसंस्थाने षंढवेदः अप्रशस्तविहायोगतिर्दुर्भगचतुष्कं नीचैर्गोत्रं चेति दशसु प्रक्षिप्तेषु वैक्रियिककाययोगोदययोग्याः षडशीतिः ८६। तत्र मिथ्यादृष्टौ व्युच्छित्तिर्मिथ्यात्वं १ सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्क-

---

प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय उन्नीस। उदय उन्यासी ७९। सयोगीमें अनुदयमें चवालीस मिलानेसे तथा तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय बासठ ६२। उदय छत्तीस ३६ ॥३१२-३१३॥

आगे वैक्रियिक काययोगमें कहते हैं—

देवगति सामान्यमें कही गयीं सतहत्तर प्रकृतियोंमें-से देवानुपूर्वीको घटाकर नरकायु, नरकगति, हुण्डसंस्थान, नपुंसकवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र मिलानेपर वैक्रियिक काययोगमें उदययोग्य छियासी ८६ हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण चार, देवगति, नरकगति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग,

दयंगळु मूरु ३। उदयंगळें भत्त मूरु ८३। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६। उदयंगळेण्भत्तु ८०॥ असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळेळरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारु ६। उदयंगळेण्भत्तु ८०।

वैक्रियिककाययोग्य ८६—

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	१	४	१	१३
उ	८४	८३	८०	८०
अ	२	३	६	६

अनंतरं वैक्रियिकमिश्रकाययोगयोग्योदयप्रकृतिगळं द्वयर्द्धगाथासूत्रदिंदं पेळ्दपरु :— ५

वेगुव्वं वा मिस्से ण मिस्स-परघाद-सरविहायदुगं ।
साणे ण हुंडसंढं दुब्भगणादेज्ज अज्जसयं ॥३१५॥

वैक्रियिकवन्मिश्रे न मिश्र परघातस्वरविहायोगतिद्विकं । सासादने न हुंडषंढं दुर्भगानादेयाऽयशः ॥

णिरयगदि आउणीचं ते खित्तयदेऽवणिज्ज थीवेदं । १०
छट्ठगुणं वाहारे ण थीणतिय-संढथीवेदं ॥३१६॥

नरकगतिरायुर्नीचं ताः क्षिप्त्वाऽसंयतेऽपनयेत् । स्त्रीवेदं षष्ठगुणवदाहारे न स्त्यानगृद्धित्रयं षंढस्त्रीवेदं ॥

देवनरकगतिवैक्रियिकद्विकदेवनारकायुर्दुर्भगत्रयाणि १३। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः २। उदयश्चतुरशीतिः ८४। सासादने अनुदये एकसंयोगात्त्रयं ३ उदयस्त्र्यशीतिः ८३। मिश्रे चत्वार्यनुदये संयोज्य १५
सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयात् षट् ६। उदयः अशीतिः ८०। असंयते अनुदये एकां संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् षट्। उदयः—अशीतिः ८०॥३१४॥ अथ वैक्रियिकमिश्रयोगस्य द्वयर्धगाथासूत्रेण आह—

देवायु, नरकायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय तेरह १३ की व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय चौरासी ८४।
२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय तीन। उदय तेरासी ८३। २०
३. मिश्रमें चार मिलाकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका अनुदय होनेसे अनुदय छह। उदय अस्सी।
४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय छह। उदय अस्सी ८०॥३१४॥

डेढ़ गाथासे वैक्रियिक मिश्रयोगमें कहते हैं— २५

वैक्रियिकवन्मिश्रे वैक्रियिककाययोगवदोळेंतंते वैक्रियिकमिश्रकाययोगवदोळमेण्भत्तारप्पुवव-रोळु मिश्रप्रकृतियुं १। परघातद्विकमुं २। स्वरद्विकमुं २। विहायोगतिद्विकमुं २। मितेळं प्रकृतिगळु न नास्ति यिल्लबु कारणमागियवं कळेयुत्तिरलु यप्पत्तों भत्तु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ७९ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियों दे व्युच्छित्तियक्कुं १॥ सासादने सासादननोळु हुंडसंस्थानमुं षंडवेदमुं दुर्भगत्रयमुं ३ नरकगतियुं १ नरकायुष्यमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १। मितें टुं प्रकृतिगळुदयमिल्लेकें दोडे :—

णिरय सासणसम्मो ण गच्छदित्ति य यें ब नियममुंटप्पुदरिनी वैक्रियिकमिश्रकाययोगि-नारकं सासादननिल्लप्पुदरिंदमवनातनोळनुदयंगळं माडि यसंयतनोळु कूडुवुदु मत्तमसंयतनुदय-प्रकृतिगळोळु स्त्रीवेदमुं कळेदु सासादननोळुदयव्युच्छित्तियं माडुत्तं विरलु सासादननोळनंतानुबंधि चतुष्टयमुं स्त्रीवेदमुं मितय्दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। असंयतनोळु द्वितीयकषायच-तुष्कमुं ४। वैक्रियिकद्विकमुं २। नरकगतियुं १ नरकायुष्यमुं १। देवगतियुं १ देवायुष्यमुं १। दुर्भगत्रयमुं ३। मितु पदिमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु १३। मंतागुत्तं विरलु मिथ्या-दृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतिगनुदयमक्कुं १। उदयप्रकृतिगळेप्पत्तेंदु ७८। सासादनगुण-स्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळेरडु २। मत्तमुं पेळ्द हुंडसंस्थानाद्यष्टप्रकृतिगळनुदयदोळु कळेदनु-दयदोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तु १०। उदयंगळरुवत्तों भत्तु ६९॥ असंयतगुणस्थानदो-

---

वैक्रियिकयोगवत्तन्मिश्रयोगे इति षडशीत्यां मिश्रं परघातद्विकं स्वरद्विकं विहायोगतिद्विकं चेत्येकोना-शीतिरुदययोग्याः ७९। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादने नरकगमनाभावात् हुंडसंस्थानषंढवेद-दुर्भगत्रयनरकगतिनरकायुर्नीचैर्गोत्राण्यनुदयं कृत्वा असंयते निक्षिप्य असंयतोदयाच्च स्त्रीवेदमनंतानुबंधिचतुष्कं च व्युच्छित्तिं कुर्यात् ५। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं वैक्रियिकद्विकं देवनारकगती तदायुषी दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश। तथासति मिथ्यादृष्टावनुदयः सम्यक्त्वप्रकृतिः १ उदयः अष्टसप्ततिः ७८। सासादनेऽनुदयः सम्यक्त्व-प्रकृती मिथ्यात्वं प्रागुक्तहुंडसंस्थानाद्यष्टकं च मिलित्वा दश १०। उदयः एकान्नसप्ततिः ६९। असंयते

वैक्रियिक मिश्रयोगमें वैक्रियिक योगकी तरह छियासी प्रकृतियाँ हैं किन्तु उसमें-से मिश्र, परघात, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति ये सात न होनेसे उदययोग्य उन्यासी ७९ हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादन मरकर नरकमें नहीं जाता इसलिए सासादनमें हुण्ड संस्थान, नपुंसकवेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, नरकगति, नरकायु और नीचगोत्रका उदय नहीं होता। इसलिए इन्हें असंयतमें रखना। वहीं इनका उदय होता है। अतः सासादनमें स्त्रीवेद और अनन्तानुबन्धी चार मिलकर पाँचकी व्युच्छित्ति होती है। असंयतमें अप्रत्याख्यानावरण कषाय चार, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, देवगति, नरकगति, देवायु, नरकायु, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय इन तेरहकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें अनुदय सम्यक्त्व प्रकृति एक। उदय अठहत्तर।

२. सासादनमें सम्यक्त्व प्रकृति, मिथ्यात्व और पूर्वमें कही हुण्डसंस्थान आदि आठ मिलकर अनुदय दस। उदय उनहत्तर ६९।

ळय्दुगूडियनुदयंगळु पविनय्दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं हुंडसंस्थानाद्यष्टप्रकृतिगळुमंतु ओंभत्तु प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळारद ६। उदयंगळेप्पत्तं मूरु ७३। संदृष्टि :

वै० मि० योग्य ७९

०	मि	सा	अ
व्यु	१	५	१३
उ	७८	६९	७३
अ	१	१०	६

षष्ठगुणवदाहारे आहारककाययोगदोलुदययोग्यप्रकृतिगळु प्रमत्तगुणस्थानदोळु पेळ्दण्भत्तों दे प्रकृतिगळप्पुवल्लिरोळु स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३ षंढवेदमुं १ स्त्रीवेदमुं १। ५

दुग्गदिदुस्सरसंहदि ओरालदु चरिमपंचसंठाणं।
ते तम्मिस्से सुस्सर परघाददुसत्थगदिहीणा ॥३१७॥

दुर्गतिदुस्वरसंहननौदारिकद्विक चरम पंचसंस्थानं। ताः तन्मिश्रे सुस्वरपरघातद्विकप्रशस्तगतिहीनाः॥

अप्रशस्तविहायोगतियुं १। दुःस्वरनाममुं १। संहननषट्कमुं ६ औदारिकद्विकमुं २। चरमपंचसंस्थानंगळु ५ मितु विंशतिप्रकृतिगळाहारककाययोगिप्रमत्तसंयतनोळुदयायोग्यंगळप्पुदरिंवमवं कळेदोडे शेषमरुवत्तों दु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ६१। तास्तन्मिश्रे आहारकमिश्रकाययोगिप्रमत्तसंयतनोळा प्रकृतिगळरुवत्तों देयप्पुवरोळु सुस्वरमुमं १ परघातोच्छ्वासद्वितयमुमं २। प्रशस्तविहायोगतियु १। मिंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदोडे शेषप्रकृतिगळ्वत्तेळुदययोग्यंगळप्पुवु ५७॥

अनुदयः पंच मिलित्वा सम्यक्त्वप्रकृतिहुंडसंस्थानाद्यष्टकोदयात् षट् ६। उदयस्त्रिसप्ततिः ७३। आहारककाययोगे षष्ठगुणस्थानोक्तैकाशीत्यां ८१ स्त्यानगृद्धित्रयं षंढवेदः स्त्रीवेदः नास्ति॥ ३१५-३१६॥

अप्रशस्तविहायोगतिः दुःस्वरं संहननषट्कमौदारिकद्विकं चरमपंचस्थानानीति विंशतिर्नेत्युदययोग्याः एकान्नषष्टिः ६१। तन्मिश्रयोगे ता एवैकषष्टिः सुस्वरपरघातोच्छ्वासप्रशस्तविहायोगत्यूनाः सप्तपंचाशद्ध्रु-

३. असंयतमें मिथ्यात्व और सासादनमें व्युच्छित्ति पाँच मिलकर अनुदय छह। क्योंकि यहाँ सम्यक्त्व प्रकृति और हुण्ड संस्थान आदि आठका उदय है। अतः उदय तिहत्तर।

आहारक काययोगमें छठे गुणस्थानमें उदययोग्य इक्यासी ८१ में-से स्त्यानगृद्धि आदि तीन, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अप्रशस्त विहायोगति, दुःस्वर, संहनन छह, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, अन्तके पाँच संस्थान ये बीस उदय योग्य नहीं हैं। अतः उदययोग्य इकसठ। आहारक मिश्रयोगमें इकसठमें-से सुस्वर, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्त विहायोगतिका उदय न होनेसे उदययोग्य सत्तावन हैं ॥३१५-३१६॥

अनंतरं कार्म्मणकाययोगोदययोग्यप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

ओघं कम्मे सरगदिपत्तेयाहारुरालदुग मिस्सं ।
उवघादपणविगुव्वदु थीणतिसंठाण-संहदी णत्थि ॥३१८॥

ओघः कार्म्मणे स्वरगतिप्रत्येकाहारौदारिक द्विकमिश्रं उपघातपंचवैक्रियिकद्विकस्त्यानगृद्धि-त्रितयसंस्थानसंहननं नास्ति ॥

कार्म्मणे ओघः कार्म्मणकाययोगदोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडप्पुववरोळु सुस्वर-दुस्वरद्विकमुं २ । प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिद्विकमुं २ । प्रत्येकसाधारणशरीरद्विकमुं २ । आहारकाहारकांगोपांगद्विकमुं २ । औदारिकौदारिकांगोपांगद्विकमुं २ । मिश्रप्रकृतियुं १ । उपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासपंचकमुं ५ वैक्रियिकशरीरतदंगोपांगद्विकमुं २ । स्त्यानगृद्धित्रितयमुं ३ । संस्थानषट्कमुं ६ । संहननषट्कमु ६ मितु मूवत्तमूरुं प्रकृतिगळं ३३ कळेदोडे शेषप्रकृतिगळेण्भत्तो भत्तुदययोग्यंगळप्पुवु ८९ वल्लि । अनादिसंसारदोळु विग्रहगतियोळमविग्रहगतियोळं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सयोगकेवलिगुणस्थानमवसानमागि पदिमूरुं गुणस्थानंगळोळु कार्म्मणशरीरक्के निरंतरोदयमुंटागुत्तं विरलु विग्रहगतौ कर्म्मयोगः एंदितु सूत्रारंभमेकेंदोडे सिद्धे सत्यारंभो नियमाय एंबु विग्रहगतौ कर्म्मयोग एव नान्यो योगः एंदितीयवधारणमरियल्पडुगुमदु कारणमागि पूर्व्वभवशरीरत्यागदिंदमुत्तरभवविग्रहग्रहणार्त्थमागि गतिविग्रहगतियप्पुदरिंदमा विग्रहगतियोळु वर्त्तिसुवरु मिथ्यादृष्टि सासादनासंयतसम्यग्दृष्टिगळेंब मूरुं गुणस्थानवर्त्तिगळागळे वेळ्कुमा विग्रहगतियोळु

वंति । ५७ ॥३१७॥ अथ कार्मणयोगस्य गाथाद्वयेनाह—

कार्मणयोगे उदयप्रकृतयः द्वाविंशत्युत्तरशते सुस्वरदुस्वरे प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती प्रत्येकसाधारणे आहारकतदंगोपांगे औदारिकतदंगोपांगे मिश्रप्रकृतिः उपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासाः वैक्रियिकतदंगोपांगे स्त्यानगृद्धित्रयं संस्थानषट्कं संहननषट्कं च नेत्येकान्ननवतिः ८९ ।

ननु अनादिसंसारे विग्रहाविग्रहगत्योर्मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतगुणस्थानेषु कार्मणस्य निरंतरोदये सति 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' इति सूत्रारंभः कथं ? सिद्धे सत्यारभ्यमाणो विधिर्नियमायेति विग्रहगतौ कर्मयोग एव

आगे दो गाथाओंसे कार्मण काययोगमें कहते हैं—

कार्मण काययोगमें सामान्य उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, मिश्रप्रकृति, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, संस्थान छह, संहनन छह इन तैंतीसका उदय न होनेसे उदययोग्य नवासी ८९ ।

शंका—अनादि संसारमें विग्रहगति हो या अविग्रह गति हो उनमें मिथ्यादृष्टि आदि सयोगकेवली पर्यन्त सब गुणस्थानोंमें कार्मणका निरन्तर उदय रहता है । तब तत्त्वार्थ सूत्रमें विग्रहगतिमें कर्मयोग होता है ऐसा कथन क्यों किया ?

समाधान—'सिद्ध होते हुए भी जो विधि आरम्भ की जाती है वह नियमके लिए होती

---

१. ब सत्यारम्भो नि° ।

वत्तिसव सयोगकेवलि भट्टारकगुणस्थानमिल्लि यें तक्कुमेंदडे 'कम्मयोगो विग्रहगतावेव' एंबी नियममिल्लप्पुदरिंदमा विग्रहगतियोळ् वत्तिसव प्रतरलोकपूरणत्रिसमयसमुद्घातसयोगकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळं कार्म्मणकाययोगमेयक्कुमप्पुदरिंदमी कार्म्मणकाययोगदोळ् नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् मिथ्यात्वप्रकृतियुं १। सूक्ष्मनाममुं १। पर्य्याप्तनाममुमितु मूरुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। ५

सासादननोळ् पेळ्दपरु :—

साणे थीवेदछिदी णिरयदुणिरयाउगं ण तिसदसयं ।
इगिवण्णं पणवीसं मिच्छादिसु चउसु वोच्छेदो ॥३१९॥

सासादने स्त्रीवेदच्छेदः नरकद्विकनरकायुर्न त्रिकं दशकमेकं पंचाशत्पंचविंशतिर्मिथ्यादिषु चतुर्षु विच्छेदः ॥ १०

सासादनसम्यग्दृष्टियोळनंतानुबंधिचतुष्टयमु ४ मेकेंद्रियजातिनाममुं १। स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमुं ३ स्त्रीवेदमुमितु पत्तुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कु १०।

असंयतनोळ् वैक्रियिकद्विकवर्ज्जितमागि पदिनय्दुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं १५। मेळे देशसंयतादिक्षीणकषायावस्थानमाद गुणस्थानवर्त्तिगळोळ् केवलकार्म्मणकाययोगमिल्लप्पुदरिंदमा देशसंयतनोळुद्योतरहितप्रकृतिसप्तकमुं ७। आहारकद्वितयमुं २। स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ मी योगदोळ् कलेदुवप्पुदरिंदं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळ् शून्यमक्कु। मप्रमत्तगुणस्थानदोळंतिम संहननत्रयवर्ज्जितसम्यक्त्वप्रकृतियों दु १ अपूर्व्वकरणन षण्नोकषायंगळुं ६ अनिवृत्तिकरणन स्त्रीवेदं १५

नान्यो योगः, इत्यवधारणार्थः। तेन पूर्वभवशरीरं त्यक्त्वोत्तरभवग्रहणार्थं गच्छताऽपि तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतगुणस्थानानि स्युः। तर्हि सयोगगुणस्थाने कथं कर्मयोगः ? विग्रहगतावेवेत्यनियमात् प्रतरलोकपूरणत्रिसमयेऽपि तत्संभवात् ॥ ३१८ ॥

तन्मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु व्युच्छित्तिः—। मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सूक्ष्ममपर्याप्तं चेति त्रयं। २०
सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं एकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं स्त्रीवेदश्चेति दश। असंयते वैक्रियिकद्विकं विना

है' इस नियमके अनुसार यह कथन 'विग्रहगतिमें कार्मणयोग ही होता है, अन्य योग नहीं होता' यह अवधारण करनेके लिए किया है।

शंका—पूर्वभवका शरीर त्यागकर आगामी भव धारण करनेके लिए जो गति होती है उसे विग्रहगति कहते हैं। विग्रहगतिमें मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थान होते २५
हैं। तब सयोगकेवली गुणस्थानमें कार्मणयोग कैसे है ?

समाधान—विग्रहगतिमें ही कार्मणयोग होता है ऐसा नियम नहीं किया है अतः प्रतर और लोक पूरण समुद्घातके तीन समयोंमें कार्मण योग होता है ॥३१८॥

उसमें मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, सूक्ष्म अपर्याप्त इन तीनकी होती है। सासादनमें अनन्तानु- ३०
बन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, स्त्रीवेद दसकी होती है। असंयतमें वैक्रियिकके

सासादननोळ् व्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं तद्वर्जितप्रकृतिपंचकमुं ५। सूक्ष्मसांपरायन लोभमों दुं १। उपशांतकषायन येरडुं वज्रनाराचनाराचसंहननंगळ् २ कळेदुवप्पुदरिंदमल्लि शून्यमक्कुं। क्षीणकषायन पविनारु १६ मितु गूडियसंयतसम्यग्दृष्टियोळ् एकपंचाशत्प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५१। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळ् नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळ् वज्रर्षभनाराचसंहननमुं १ स्वरद्विकमु २। विहायोगतिद्विकमुं २। औदारिकद्विकमुं २। संस्थानषट्कमुं ६। उपघातपरघातोच्छ्वासत्रितयमुं ३। प्रत्येकशरीरमु १ मितु पदिनेळुं १७ प्रकृतिगळं कळेदु शेषपंचविंशतिप्रकृतिगळुदय व्युच्छित्तियक्कुं २५। अंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ् सम्यक्त्वप्रकृतियुं तीर्थमुमेरडुमनुदयंगळ् २ उदयंगळे ण्भत्तेलु ८७। सासादनगुणस्थानदोळ् मूरु गूडियनुदयंगळप्पुदप्पुवरोळ् णिरयदुणिरयाउगं णत्थि एंदु नरकद्विकमुमं नरकायुष्यमुमिंतु मूरुं ३ प्रकृतिगळनुदयप्रकृतिगळोळ् कळेदु अनुदयप्रकृतिगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळे ंदु ८। उदयंगळे ण्भत्तों दु ८१। असंयतगुणस्थानदोळ् पत्तु गूडियनुदयंगळ् पदिने ंटरोळ् सम्यक्त्वप्रकृतियुमं नरकद्विकमुमं नरकायुष्यमुमिंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पविनाल्कु १४। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळेकपंचाशत्प्रकृतिगळ्कूडि-

---

स्वस्य पंचदश। पुनः क्षीणकषायांतानां केवलतद्योगाभावादुद्योतं विना सप्त। आहारकद्विकस्त्यानगृद्धित्रयं विना शून्यं अंतिमसंहननत्रयं विना सम्यक्त्वप्रकृतिः षण्णोकषायाः स्त्रीवेदस्य सासादने छेदात् पंच, लोभः वज्रनाराचनाराचाभावात् शून्यं षोडश च मिलित्वा एकपंचाशत्। सयोगे वज्रर्षभनाराचसंहननस्वरद्विकविहायोगतिद्विकौदारिकद्विकसंस्थानषट्कोपघातपरघातोच्छ्वासप्रत्येकशरीराणि राशौ नेति पंचविंशतिः। तथा सति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वतीर्थकृत्त्वे अनुदयः २। उदयः सप्ताशीतिः। सासादने अनुदयः त्रयं 'णिरयदु णिरयाउगं णत्थीति त्रयं च मिलित्वाष्टौ। उदयः एकाशीतिः। असंयते दश मिलित्वा सम्यक्त्वनरकद्विकनरकायुरुदयाच्चतु-

---

२० बिना अपनी शेष पन्द्रह। पुनः क्षीणकषाय पर्यन्त कार्मण काययोग नहीं होता इससे ऊपरके गुणस्थानोंकी व्युच्छित्ति यहाँ ही करनी चाहिए। सो देशविरतकी उद्योत बिना सात, प्रमत्तकी आहारकद्विक और स्त्यानगृद्धि आदि तीनके न होनेसे शून्य, अप्रमत्तकी तीन संहननके बिना केवल एक सम्यक्त्व प्रकृति, अपूर्वकरणकी छह नोकषाय, अनिवृत्तिकरणकी पाँच क्योंकि स्त्रीवेदकी व्युच्छित्ति सासादनमें हो जाती है, सूक्ष्मसाम्परायका लोभ, उपशान्त मोह सम्बन्धी २५ वज्रनाराच और नाराचका अभाव होनेसे शून्य, क्षीणकषायकी सोलह इस तरह सब मिलकर असंयतमें इक्यावनकी व्युच्छित्ति होती है। सयोगीमें बयालीसमें-से वज्रर्षभनाराच संहनन, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थान, उपघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीरके न होनेसे पच्चीसकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होनेपर—

३० १. मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकर दोका अनुदय। उदय सत्तासी। व्यु. तीन।

२. सासादनमें नरकगतिद्विक और नरकायुका उदय न होनेसे पाँचमें तीन मिलाकर आठका अनुदय। उदय इक्यासी।

३. असंयतमें दस मिलाकर सम्यक्त्व, नरकद्विक और नरकायुका उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय पचहत्तर।

मनुदयंगळप्पत्तय्दरनोळ् तीर्थमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४। उदयंगळिप्पत्तय्दु २५। संदृष्टि :—

कार्म्मण० काय यो० योग्य ८९

०	मि	सा	अ	स
ध्रु	३	१०	५१	२५
उ	८७	८१	७५	२५
अ	२	८	१४	६४

अनंतरं वेदमार्गणेयं पेळ्दपरु :—

मूलोघं पुंवेदे थावरचउणिरयजुगलतित्थयरं । ५
इगिविगलं थीसंढं तावं णिरयाउगं णत्थि ॥३२०॥

मूलोघः पुंवेदे स्थावरचतुर्नरकयुगळ तीर्थंकरं। एकविकलं स्त्रीषंढमातपो नरकायुर्नास्ति ॥

पुंवेददोळु मूलौघं नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणचतुष्कमुं ४। नरकद्विकमुं २ तीर्थ्यरनाममुं १। एकेंद्रियजातियुं १। विकलत्रयमुं ३। स्त्रीवेदमुं १ षंढवेदमुं १ मातपनाममुं १ नरकायुष्यमुमंतु पविनय्दु १५ प्रकृतिगळुदयमिल्लद कारणमवं कळेदु शेषनूरेळु १० प्रकृतिगलुदययोग्यंगळप्पु १०७ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतिगों दक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं

र्दश १४। उदयः पंचसप्ततिः। सयोगे-अनुदयः एकपंचाशतं मिलित्वा तीर्थोदयाच्चतुःषष्टिः ६४। उदयः पंचविंशतिः ॥ ३१९ ॥ अथ वेदमार्गणायामाह—

पुंवेदे मूलौघः द्वाविंशत्युत्तरशतं। तत्र स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि नरकद्विकं तीर्थकरत्वमेकेंद्रियं विकलत्रयं स्त्रीषंढवेदौ आतपो नरकायुर्नेति सप्तोत्तरशतमुदययोग्यं १०७। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं १५

---

१३ सयोगीमें इक्यावन मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौंसठ। उदय पच्चीस ॥३१९॥

औदारिक मिश्रकाययोग ९८

मि.	सा.	अ.	स.
४	१४	४४	३६
९६	९२	७९	३६
२	६	१९	६२

वैक्रियिक मिश्र ७९

मि.	सा.	अ.
१	५	१३
७८	६९	७३
१	१०	६

कार्मणकाययोग ८९

मि.	सा	अ.	स.
३	१०	५१	२५
८७	८१	७५	२५
२	८	१४	६४

अब वेदमार्गणामें कहते हैं—

पुरुषवेदमें गुणस्थानकी तरह एक सौ बाईसमें-से स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, २० नरकद्विक, तीर्थंकर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, आतप और नरकायु इन

१ ॥ सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कवकुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियुदय-व्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ वैकियिकद्विकमुं २। सुरद्विकमुं २ सुरायुष्यमुं १। मनुष्यानुपूर्व्यमुं १। तिर्य्यंगानुपूर्व्यमुं १। दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तित्रितयमु ३ मितु पविनाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४ ॥ देशसंयतं मोदलागियपूर्व्वकरणगुणस्थान-
५ पर्य्यंतमड ८ पंच य ५ चउर ४ छक्क ६ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कु। मनिवृत्तिकरण सवेद-प्रथमभागेयोळु पुंवेदमुं १। संज्वलनक्रोधमुं १। संज्वलनमानमुं १। संज्वलनमायेयु १ मितु नाल्कुं ४। सूक्ष्मसांपरायन लोभमुं १। उपशांतकषायन वज्रनाराचसंहननद्वितयमुं २। क्षीण-कषायन पविनारुं १६। सयोगायोगिकेवलिभट्टारकद्वितयतीर्त्थरहित नाल्वत्तोंदु प्रकृतिगळु कूडियनिवृत्तिकरणनोळुदयव्युच्छित्तिगळरुवत्तनाल्कु ६४। एकं बोडे पुंवेदोदयमल्लिवरमुंटल्लिवरमा
१० मार्गणेयप्पुदरिंदं मेलण प्रकृतिगळेल्लमनिवृत्तिकरणनोळे व्युच्छित्तिगळप्पुवप्पुदरिंदं। मिथ्या-दृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुमितु नाल्कुं प्रकृतिगळनुदय-मक्कुं ४। उदयंगळु नूर मूरु १०३। सासादनगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळय्दु ५। उदय-प्रकृतिगळु नूरेरडु १०२। मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळोंभत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नोंदु ११। उदयंगळु तोंभत्तारु ९६। असंयतगुणस्थान-
१५ दोळोंदुगूडियनुदयंगळु पन्नेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं १ तिर्य्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यंगळु मूरुम-

---

व्युच्छित्तिः १। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं वैक्रियिकद्विकं सुरद्विकं सुरायुः मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये दुर्भगानादेयायशस्कीर्तयश्चेति चतुर्दश १४। देशसंयतादिचतुर्षु क्रमेणाष्टौ पंच चत्वारि षट्। अनिवृत्तिकरणसवेदप्रथमभागे पुंवेदसंज्वलनक्रोधमानमायाः सूक्ष्मलोभः वज्रनाराचनाराचे षोडश तीर्थकरत्वं विनैकचत्वारिंशच्चेति चतुःषष्टिः ६४। मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयान्यनुदयः ४ उदयः त्र्युत्तरशतं। १०३। सासादने एकां संयोज्य अनुदयः पंच ५। उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कमानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकादश ११। उदयः षण्णवतिः। ९६। असंयतेऽनुदयः एकं

पन्द्रहका उदय न होनेसे उदय योग्य एक सौ सात हैं। उसमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें अप्रत्या-
२५ ख्यानावरण कषाय चार वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, मनुष्यानु-पूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति ये चौदह १४। देशसंयत आदि चार गुणस्थानोंमें क्रमसे आठ, पाँच, चार और छह। अनिवृत्तिकरणके प्रथम सवेद भागमें पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध मान माया, सूक्ष्म लोभ, वज्रनाराच नाराच संहनन, क्षीणकषाय सम्बन्धी सोलह और तीर्थंकरके बिना केवली सम्बन्धी इकतालीस इन चौंसठकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि अनिवृत्तिकरणके सवेद भागसे आगे वेदका उदय न होनेसे वेदमें नौ
३० ही गुणस्थान होते हैं। अतः—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विक चार ४ का अनुदय। उदय १०३।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय पाँच। उदय एक सौ दो १०२।

३. मिश्रमें अनुदय चार और तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे ग्यारह ११। उदय छियानवे ९६।

नंतु नाल्कु प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडिदोडनुदयंगळेंदु ८। उदयंगळ् तों भों भत्तु ९९॥ देशसंयतगुणस्थानदोळ् पविनाल्कुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तय्दु ८५। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळेंटुगूडियनुदयंगळ् मूवत्तरोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेंदु २८। उदयंळेप्पत्तों भत्तु ७९॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळ् मूवत्तमूरु ३३। उदयंगळेप्पत्तनाल्कु ७४॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळ् मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्त ७०॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळ् प्रथमसवेदभागेयोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तमूरु ४३। उदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४॥ संदृष्टि :—

पुंवेदयोग्यं १०७।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
ध्रु	१	४	१	१४	८	५	४	६	६४
उ	१०३	१०२	९६	९९	८५	७९	७४	७०	६४
अ	४	५	११	८	२२	२८	३३	३७	४३

अनंतरं स्त्रीवेददोळुदययोग्यंगळं षंडवेदक्के सहितमागि पेळ्दपरु :—

मिलित्वा सम्यक्त्वतिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादष्टौ। उदयो नवनवतिः। देशसंयते चतुर्दश संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२। उदयः पंचाशीतिः। ८५। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्वयोदयादनुदयोऽष्टाविंशतिः २८। उदय एकोनाशीतिः ७९। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदयः चतुःसप्ततिः। ७४। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयः सप्ततिः ७०। अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे षट् संयोज्यानुदयः त्रिचत्वारिंशत् ४३। उदयः चतुःषष्टिः। ६४। ३२०। अथ स्त्रीषंढवेदयोराह—

---

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे आठ ८। उदय निन्यानवे।

५. देशसंयतमें चौदह मिलाकर अनुदय बाईस २२। उदय पिचासी।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अठाईस २८। उदय उनासी।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तैंतीस ३३। उदय चौहत्तर ७४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७। उदय सत्तर ७०।

९. अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें छह मिलाकर अनुदय तैंतालीस। उदय चौंसठ ६४॥३२०॥

पुरुषवेद रचना १०७

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
१	४	१	१४	८	५	४	६	६४
१०३	१०२	९६	९९	८५	७९	७४	७०	६४
४	५	११	८	२२	२८	३३	३७	४३

इत्थीवेदेवि तहा हारदु-पुरिसूणमित्थिसंजुत्तं ।
ओघं संढे ण हि सुरहारदुथीपुंसुराउतित्थयरं ॥३२१॥

स्त्रीवेदेपि तथा आहारकद्विक पुरुषोन स्त्रीवेदसंयुतं । ओघः षंढे न हि सुराहारद्वय स्त्रीपुरुषसुरायुस्तीर्थकरं ॥ स्त्रीवेदेपि तथा स्त्रीवेददोळं पुरुषवेददोळु पेळ्द नूरेळुं प्रकृतिगळप्पुवदरोळाहारकद्विकं पुंवेदमंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदु स्त्रीवेदमं कूडुत्तं विरलुदययोग्यप्रकृतिगळु नूरय्दु १०५। मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमो दे व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधि कषायचतुष्टयमुं ४ देवमनुष्यतिर्य्यगानुपूर्व्यत्रयमु ३ मितेळु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १। असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ देवगतियुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २। देवायुष्यमुं १ दुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तित्रयमु ३ मितु पन्नों दुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ११। देशसंयतनोळु तन्न गुणस्थानदोळपेळ्दं दुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळाहारकद्विकमिलेल्कं दोडी स्त्रीवेदोदयसंक्लिष्टरोळाहारकऋद्धिपुट्टदप्पुदरिदं। स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। अप्रमत्तनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमु ३ मंतु नाल्कुं ४ प्रकृतिगळ्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। अपूर्व्वकरणनोळु षण्नोकषायंगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६। अनिवृत्तिकरणनोळरुवत्तनाल्कुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६४। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुं प्रकृतिगळगुदयमक्कुं २। उदयंगळु नूर मूरु १०३। सासादनगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु मूरु ३। उदयंगळु नूरेरडु १०२। मिश्रगुणस्थानदोळेळुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगलोलु कूडुत्तं विरलनुदयंगळों-

---

स्त्रीवेदेऽपि तथा पुंवेदोक्तं सप्तोत्तरशतं । तत्र चाहारकद्विकं पुंवेदं चापनीय स्त्रीवेदे निक्षिप्ते उदययोग्याः पंचोत्तरशतं १०५। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं देवमनुष्यतिर्यगानुपूर्व्याणि चेति सप्त ७। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायाः देवगतिः वैक्रियिकद्वयं देवायुः दुर्भगानादेययायशस्कीर्तयश्चेत्येकादश ११। देशसंयते स्वकीयाष्टौ ८। प्रमत्ते संक्लिष्टत्वादाहारकद्वर्धनुद्गमात् स्त्यानगृद्धित्रयमेव ३। अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं च। ४। अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६। अनिवृत्तिकरणे चतुःषष्टिः ६४। तथासति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः २। उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३। सासादने

आगे स्त्रीवेद और नपुंसक वेदमें कहते हैं—

स्त्रीवेदमें भी पुरुषवेदकी तरह एक सौ सातमें-से आहारकद्विक और पुरुषवेदको घटाकर स्त्रीवेद मिलानेपर उदय योग्य एक सौ पाँच हैं। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार तथा देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी मिलकर सात। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, वैक्रियिकद्विक, देवायु, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति ये ग्यारह। देशसंयतमें अपनी आठ। प्रमत्तमें संक्लेश परिणाम होनेसे स्त्रीवेदके साथ आहारक ऋद्धिका उदय न होनेसे स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी ही व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व और अन्तके तीन संहनन चार। अपूर्वकरणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणमें चौंसठ ६४। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व दोका अनुदय। उदय एक सौ तीन।

भत्तु ९ । उदयंगळु तोभत्तारु ९६ । असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोंभत्तु ९ । उदयंगळु तोंभत्तारु ९६ ॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पन्नोंदुगूडियनुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळेण्भत्तय्दु ८५ । प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळेंदु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेंदु २८ । उदयंगळेप्पत्तेळु ७७ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळु मूवत्तोंदु ३१ । उदयंगळेप्पत्तनाल्कु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु मूवत्तय्दु ३५ । उदयंगळप्पत्तु ७० । अनिवृत्तिकरणन सवेदभागेयोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तोंदु ४१ । उदयंगळरुवत्त नाल्कु ६४ । संदृष्टि :—

स्त्रीवेदयोग्यं १०५

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्यु	१	७	१	११	८	३	४	६	६४
उ	१०३	१०२	९६	९६	८५	७७	७४	७०	६४
अ	२	३	९	९	२०	२८	३१	३५	४१

ओघः षंढे षंढवेददोळु सामान्योदयंगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ सुरद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ । स्त्रीवेदमुं १ । पुंवेदमुं १ । देवायुष्यमुं १ । तीर्थंकरनाममुमितेंदु ८ प्रकृतिगळं कळेदु नूर पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११४ ववरोळु मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १

एकं संयोज्य अनुदयः त्रयं ३ । उदयो द्व्युत्तरशतं १०२ । मिश्रेऽनुदयः सप्त संयोज्य मिश्रोदयान्नव ९ । उदयः षण्णवतिः ९६ । असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वप्रकृत्युदयान्नव । उदयः षण्णवतिः । देशसंयते एकादश संयोज्य अनुदयो विंशतिः २० । उदयः पंचाशीतिः ८५ । प्रमत्तेऽष्टसंयोज्यानुदयोऽष्टाविंशतिः २८ । उदयः सप्तसप्ततिः ७७ । अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयः एकत्रिंशत् ३१ । उदयश्चतुःसप्ततिः ७४ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्य अनुदयः पंचत्रिंशत् ३५ । उदयः सप्ततिः ७० । अनिवृत्तिकरणसवेदभागे षट् संयोज्य अनुदय एकचत्वारिंशत् ४१ । उदयश्चतुःषष्टिः ।

ओघः षंढे—तत्र सुरद्विकमाहारकद्विकं स्त्रीवेदः पुंवेदो देवायुस्तीर्थकरत्वं च नेति चतुर्दशोत्तरशतमुदय-

२. सासादनमें अनुदय दोमें एक मिलाकर तीन। उदय एक सौ दो।

३. मिश्रमें सात मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय नौ। उदय छियानवे ९६।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय नौ। उदय छियानवे। व्युच्छित्ति ग्यारह।

५. देशसंयतमें ग्यारह मिलाकर अनुदय बीस। उदय पिचासी। व्यु. ८।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय अठाईस। उदय सतहत्तर ७७। व्यु. ३।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय इकतीस ३१। उदय चौहत्तर ७४। व्यु. ४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय पैंतीस ३५। उदय सत्तर ७०। व्यु. ६।

९. अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें छह मिलाकर अनुदय इकतालीस। उदय ६४।

नपुंसकवेदमें गुणस्थानवत् एक सौ बाईसमें-से देवगति, देवानुपूर्वी, आहारकद्विक,

आतपमुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ मितय्दुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। सासादनोनलनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४। एकेंद्रियजातियुं १। स्थावरमुं १। विकलत्रयमुं ३। मनुष्यानुपूर्व्यमुं १। तिर्य्यगानुपूर्व्यमु १ मितु पन्नों दु प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ११। मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियों दे व्युच्छित्तियक्कु १। असंयतनोळु द्वितीयकषायमुं नाल्कु ४ वैक्रियिकद्विकमुं २ नरकद्विकमुं २। नरकायुष्यमुं १। दुर्भगत्रयमु ३ मितु पन्नेरडुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२। देशसंयतगुणस्थानदोळु तन्न गुणस्थानदे दुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयमुं कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३॥ अप्रमत्तनोळु तन्न गुणस्थानद सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमुमितु नाल्कु प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ अपूर्व्वकरणनोळु षण्णोकषायंगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६॥ अनिवृत्तिकरणन षंढवेदभागेयोळु अरुवत्त नाल्कुंप्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कु ६४। मितागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिद्वयमनुदयमक्कुं २। उदयंगळु नूर हन्नेरडु ११२। सासादनगुणस्थानदोळु अय्दु गूडियनुदयंगळेळु मत्तं नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळे दु ८ उदयंगळु नूरारु १०६। मिश्रगुणस्थानदोळु पन्नों दुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनें दु १८। उदयंगळु तों भत्तारु ९६॥ असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं नरकानुपूर्व्यमं कळेंदुदयंगलोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगलु पदिनेलु १७। उदयं-

---

योग्याः ११४। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमातपः सूक्ष्मत्रयं चेति व्युच्छित्तिः पंच। सासादने अनंतानुबंधिचतुष्कमेकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये चेत्येकादश ११। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं, वैक्रियिकद्विकं नरकगतिः तदानुपूर्व्यं नरकायुर्दुर्भगत्रयं चेति द्वादश १२। देशसंयते स्वकीयाष्टौ ८। प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं ३। अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतिः अंतिमसंहननत्रयं च ४। अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६। अनिवृत्तिकरणे षंढवेदभागे चतुःषष्टिः। ६४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वद्वयमनुदयः उदयो द्वादशोत्तरशतं। ११२। सासादनेऽनुदयः पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वाष्टौ ८। उदयः षडुत्तरशतं १०६। मिश्रेऽनुदय एकादश मिलित्वा मिश्रप्रकृत्युदयादष्टादश १८। उदयः षण्णवतिः ९६। असंयते एकां संयोज्य

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, देवायु और तीर्थंकर न होनेसे उदययोग्य एक सौ चौदह ११४। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, आतप और सूक्ष्मादि तीन मिलकर पाँचकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी ग्यारह। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, वैक्रियिकद्विक, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, दुर्भग आदि तीन सब बारह १२। देशसंयतमें आठ। प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृति, अन्तिम तीन संहनन सब चार। अपूर्वकरणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणके नपुंसक वेद भागमें चौंसठ ६४। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय एक सौ बारह।

२. सासादनमें पाँच तथा नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय आठ। उदय एक सौ छह।

३. मिश्रमें अनुदय ग्यारह मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अठारह। उदय ९६।

---

१ ब °भागे चतुर्भागे चतुः°।

गळु तोंभत्तेळु ९७। देशसंयत गुणस्थानदोळ् पन्नेरडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तोंभत्तु २९। उदयंगळे-ण्भत्तय्दु ८५। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे दुगूडियनुदयंगळ् मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्तेळु ७७॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळ् गूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयंगळु येप्पत्तनाळकु ७४। अपूर्व्वकरण-गुणस्थानदोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तनाल्कु ४४। उदयंगळेप्पत्तु ७०। अनिवृत्तिकरण-गुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळय्वत्तु ५०। उदयंगलरुवत्त नाळकु ६४। संदृष्टि :—

बंधयोग्यं ११४

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्यु	५	११	१	१२	८	३	४	६	६४
उ	११२	१०६	९६	९७	८५	७७	७४	७०	६४
अ	२	८	१८	१७	२९	३७	४०	४४	५०

अनंतरं कषायमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

सम्यक्त्वप्रकृतिनरकानुपूर्व्योदयादनुदयः सप्तदश १७। उदयः सप्तनवतिः। ९७। देशसंयते द्वादश संयोज्यानुदयः एकान्नत्रिंशत् २९। उदयः पंचाशीतिः ८५। प्रमत्तसंयतेऽष्ट संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयः सप्तसप्ततिः ७७। अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४०। उदयश्चतुःसप्ततिः ७४। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्य अनुदयश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४। उदयः सप्ततिः ७०। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः पंचाशत् ५० उदयश्चतुःषष्टिः। ६४। ३२१। अथ कषायमार्गणायामाह—

---

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व प्रकृति और नरकानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय सतरह। उदय सत्तानवे। व्यु. १२।

५. देशसंयतमें बारह मिलाकर अनुदय उनतीस २९। उदय पिचासी।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय सैंतीस। उदय सतहत्तर ७७। व्यु. ३।

७. अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय चालीस ४०। उदय चौहत्तर ७४। व्यु. ४।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चवालीस ४४। उदय सत्तर ७०। व्यु. ६

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पचास ५०। उदय चौंसठ ॥३२१॥

स्त्रीवेद रचना १०५

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
१	७	१	११	८	३	४	६	६४
१०३	१०२	९६	९६	८५	७७	७४	७०	६४
२	३	९	९	२०	२८	३१	३५	४१

नपुंसकवेद रचना ११४

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
५	११	१	१२	८	३	४	६	६४
११२	१०६	९६	९७	८५	७७	७४	७०	६४
२	८	१८	१७	२९	३७	४०	४४	५०

कषाय मार्गणामें कहते हैं—

तित्थयरमाणमायालोह चउक्कूणमोघमिह कोहे ।
अणरहिदे णिगिविगलं तावण कोहाणुथावरचउक्कं ॥३२२॥

तीर्थंकरमानमायालोभचतुष्कोन ओघ इह क्रोधे । अनंतानुबंधि रहितेनैकविकलत्रयातपानंतानुबंधिक्रोधानुपूर्व्यस्थावर चतुष्कं ॥

इह ई क्रोधकषायमार्गणेयोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ इतर कषायद्वादशप्रकृतिगळुं तीर्त्थंकरनाममु १ मितु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरोंभत्तु १०९ प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०९ ।

अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानद पंचप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । सासादननोळनंतानुबंधि क्रोधमुं १ एकेंद्रियजातियुं १ स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमु ३ मितारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ । असंयतनोळप्रत्याख्यानक्रोधमुं १ वैक्रियिकषट्कमुं ६ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ तिर्य्यंगानुपूर्व्यमुं १ । सुरायुष्यमुं १ नारकायुष्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मितु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४ । देशसंयतनोळु प्रत्याख्यानक्रोधमुं १ तिर्य्यंगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्गोत्रमुं २ तिर्य्यग्गतिमुं २ मितय्दुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । प्रमत्तसंयतनोळाहारकद्वयमुं २ स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ मंतय्दुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ । अप्रमत्तनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं २ अंतिमसंहननत्रितयमुं ३ मितु नाल्कुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्व्वकरणनोळु नोकषायषट्कवकुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागवेदत्रयमुं ३ । द्वितीयक्रोधकषायभोगेयोळु संज्वलनक्रोधमुं १ मंतु नाल्कुं ४ सूक्ष्मसांपरायन लोभं कलेदुदप्पुर्दारिदमल्लि शून्यमुं उपशांतकषायन वज्रनाराचनाराच-

---

इह क्रोधकषायमार्गणायां[1] सामान्योदयः इतरद्वादशकषायतीर्थन्यूनः, तेन नवोत्तरशतं भवति । तत्र मिथ्यादृष्टौ स्वकीया पंच व्युच्छित्तिः । सासादनेऽनंतानुबंधिक्रोधः एकेंद्रियं स्थावरं विकलत्रयं चेति षट् ६ । मिश्रे मिश्रं १ । असंयतेऽप्रत्याख्यानक्रोधो वैक्रियिकषट्कं मनुष्यतिर्यगानुपूर्व्ये सुरनारकायुषी दुर्भगत्रयं चेति चतुर्दश १४ । देशसंयते प्रत्याख्यानक्रोधः तिर्यगायुरुद्योतौ नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेति पंच ५ । प्रमत्तसंयते आहारकद्वयं स्त्यानगृद्धित्रयं चेति पंच ५ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं चेति चतुष्कं ४ । अपूर्वकरणे नोकषायषट्कं ६ । अनिवृत्तिकरणे प्रथमभागस्य वेदत्रयं । द्वितीयभागस्य संज्वलनक्रोधः । सूक्ष्मसांपरायस्य

क्रोध कषाय मार्गणामें सामान्य उदय एक सौ बाईसमें-से अन्य बारह कषाय और तीर्थंकर घटानेपर एक सौ नौ १०९ है । उसमें मिथ्यादृष्टीमें अपनी पाँचकी व्युच्छित्ति है । सासादनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, एकेन्द्रिय, स्थावर और विकलत्रय छह । मिश्रमें मिश्र । असंयतमें अप्रत्याख्यान क्रोध, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, देवायु, नरकायु, दुर्भग आदि तीन चौदह १४ । देशसंयतमें प्रत्याख्यान क्रोध, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र और तिर्यंचगति पाँच । प्रमत्तसंयतमें आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, पाँच । अप्रमत्तमें सम्यक्त्व, अन्तिम तीन संहनन सब ४ ।

---

१. ब °कषाये सा° ।

संहननद्वयमुं २। क्षीणकषायन पदिनारुं १६ सयोगायोगकेवलिगळ तीर्त्थरहितमप्प नाल्वत्तों दु प्रकृतिगळ्‌ ४१ अंतरुवत्तमूरुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६३। अंतागुत्तं विरळ्‌ मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानदोलु मिश्रप्रकृतियुं १ सम्यक्त्वप्रकृतियुं १। आहारकद्विकमुं २ मितु नाल्कुं प्रकृतिगळनुदयंगळप्पुवु ४। उदयंगळ्‌ नूरय्दु १०५। सासादनगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळो भत्तरोळ्‌ नरकानुपूर्व्यमनुदयदोळ्‌कळेदनुदयंगळोळ्‌ कूडिदोडनुदयंगळ्‌ पत्तु १०। उदयंगळ्‌ तों भत्तों भत्तु ९९। मिश्रगुणस्थानदोलारुगूडियनुदयंगळ्‌ पदिनाररोलु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगलळोळ्‌ कूडि मत्तमुदयंगळोळ्‌ शेषानुपूर्व्यत्रितयमं कळेदनुदयंगळोळ्‌ कूडुत्तं विरलनुदयंगलु पदिनेंदु १८। उदयंगळ्‌ तों भत्तों दु ९१। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पत्तों भत्तरोळ्‌ सम्यक्त्व-प्रकृतियुमानुपूर्व्यचतुष्कमंतय्दुं प्रकृतिगळं गळेदुदयंगलोळ्‌ कूडुत्तं विरलनुदयंगळ्‌ पदिनाळ्कु १४। उदयंगळ्‌ तों भत्तय्दु ९५॥ देशसंयतगुणस्थानदोळ्‌ पदिनाळ्कुगूडियनुदयंगलिप्पत्तेंदु २८। उदयंगळेण्भत्तों दु ८१॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तमूररोळ्‌ आहारक-द्वयमं कळेदुदयंगळोळ्‌ कूडुत्तं विरलनुदयंगळ्‌ मूवत्तों दु ३१। उदयंगळु एप्पत्तेंदु ७८॥ अप्रमत्त-गुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळ्‌ ३६ मूवत्तारु। उदयंळेप्पत्त मूरु ७३॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थान-

---

लोभापनयनात् शून्यं। उपशांतकषायस्य वज्रनाराचनाराचौ। क्षीणकषायस्य षोडश। सयोगस्य तीर्थं विनैकचत्वारिंशच्चेति त्रिषष्टिः ६३। तथासति—मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकान्यनुदयः। उदयः पंचोत्तरशतं १०५। सासादने पंच नरकानुपूर्व्यं चेत्यनुदयो दश १०। उदयः एकान्नशतं ९९। मिश्रे अनुदयः षट् शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रादयादष्टादश १८ उदय एकनवतिः। असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयाच्चतुर्दश, उदयः पंचनवतिः ९५। देशसंयते चतुःसंयोज्यानुदयेऽष्टाविंशतिः। उदयः एकाशीतिः। ८१। प्रमत्तसंयते पंच संयोज्याहारकद्विकोदयादेकत्रिंशत् ३१। उदयोऽष्टासप्ततिः। ७८। अप्रमत्ते पंच

अपूर्वकरणमें नोकषाय छह। अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें तीन वेद। दूसरे भागमें संज्वलन क्रोध। सूक्ष्म साम्परायके लोभको मूलमें न रखनेसे शून्य, उपशान्त कषायके वज्रनाराच नाराच, क्षीणकषायकी सोलह, सयोगीकी तीर्थंकरके बिना इकतालीस ये सब ६३। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ पाँच।

२. सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय दस। उदय निन्यानबे। व्युच्छित्ति छह।

३. मिश्रमें छह और तीन आनुपूर्वी मिलाकर मिश्रप्रकृतिका उदय होनेसे अनुदय अठारह १८। उदय इकानबे ९१।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय चौदह। उदय पिचानबे ९५। व्यु. १४।

५. देशसंयतमें चौदह मिलाकर अनुदय अठाईस। उदय इक्यासी ८१।

६. प्रमत्त संयतमें पाँच मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय इकतीस ३१। उदय अठहत्तर ७८।

बोळ् नाल्कुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयंगळरुवत्तो भत्तु ६९॥ अनिवृत्तिकरणन द्वितीयक्रोधकषायभागेयोळ् आरुगूडियनुदयंगलु नाल्वत्तारु ४६। उदयंगलरुवत्तमूरु ६३। अनंतानुबंधिरहिते अनंतानुबंधिरहितनोलु एकेंद्रियजातिनाममुं १ विकलत्रयमु ३ मातपनाममु १ अनंतानुबंधिक्रोधमु १ मानुपूर्व्यचतुष्कमु ४ स्थावरसूक्ष्माऽपर्य्याप्तसाधारणचतुष्कमु ४ मितु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळं मिथ्यादृष्टियुदयप्रकृतिगळ् नूरय्दरोळ् १०५ कळेदु शेष तो भत्तो वु प्रकृतिगळनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टियोळुदयप्रकृतिगळप्पुवु ९१। संदृष्टि :—

क्रोधमानमायेगळगे योग्य १०९

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
व्युच्छि	५	६	१	१४	५	५	४	६	६३
उद	१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३
अनु	४	१०	१८	१४	२८	३१	३६	४०	४६

लो ४ यो १०९

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू
व्यु	५	६	१	१४	५	५	४	६	३	६०
उ	१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३	६०
अ	४	१०	१८	१४	२८	३१	३६	४०	४६	४९

संयोज्यानुदयः षट्त्रिंशत् ३६। उदयः त्रिसप्ततिः ७३। अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४०। उदय एकान्नसप्ततिः ६९। अनिवृत्तिकरणे द्वितीयक्रोधकषायभागे षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६। उदयस्त्रिषष्टिः। अनंतानुबंधिरहिते तु एकेंद्रियविकलत्रयातपानंतानुबंधिक्रोधानुपूर्व्यचतुष्कस्थावरसूक्ष्मापर्याप्त-

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय छत्तीस ३६। उदय तिहत्तर ७३।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चालीस ४०। उदय उनहत्तर ६९।

९. अनिवृत्तिकरणमें दूसरे क्रोधकषाय भागमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस। उदय त्रेसठ।

अनन्तानुबन्धि रहित क्रोधमें मिथ्यादृष्टिमें उदययोग्य एक सौ पाँचमें-से एकेन्द्रिय, विकलत्रय, आतप, अनन्तानुबन्धी क्रोध, आनुपूर्वी चार, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ये चौदह नहीं होतीं। अतः उदय प्रकृतियाँ इक्यानबे ९१ हैं।

विशेषार्थ—जो अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आता है

एवं माणादितिये मदिसुद अण्णाणगे दु सगुणोघं ।
वेभंगेवि ण तावि गिविगलिंदी थावराणुचऊ ॥३२३॥

एवं मानादित्रये मतिश्रुताज्ञानके तु स्वगुणौघः । विभंगेपि नातापैकविकलेंद्रियस्थावरानुपूर्व्यं चत्वारि ॥

एवं मानादित्रये क्रोधचतुष्कदोळेंतंते मानचतुष्कदोळं मायाचतुष्कदोळमितरकषायद्वादशप्रकृतिगळुं तीर्त्थमुमंतु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदु नूरों भत्तु नूरों भत्तु गळप्पुवु । १०९ । १०९ । अदु कारणमागि क्रोधदोळे रचने पेळल्पट्टुदु । लोभमक्कुमंते यितरकषायद्वादशप्रकृतिगळुं तीर्त्थमुं कळेदु योग्यंगळु नूरों भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु १०९ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानावसानमागि पत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु । मतिश्रुताज्ञानयोस्तु मत्ते कुमतिकुश्रुतज्ञानंगळोळु सामान्यदिदं पेळ्द नूरिप्पत्तेरडरोळाहारकद्विकमुं २ तीर्त्थमुं १ मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळु २ मंतय्दुं कळेदु शेषप्रकृतिगळुदययोग्यंगळु नूर हदिनेळु ११७ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ नरकानुपूर्व्यमु १ मंतारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ । सासादननोळु तन्न

साधारणानि मिथ्यादृष्टयुदयपंचोत्तरशते नेत्येकेन[1]नवतिरुदयप्रकृतयो भवंति ॥३२२॥

एवं क्रोधचतुष्कवन्मानचतुष्के मायाचतुष्के च द्वादश, इतरकषायतीर्थं नेति नवोत्तरशतं तेन तद्रचना क्रोधरचनैव ज्ञातव्या । लोभेऽपि तथैव त्रयोदशप्रकृत्यभावात् उदययोग्यं नवोत्तरशतं । सूक्ष्मसांपरायांतानि गुणस्थानानि । १०९ । कुमतिकुश्रुतज्ञानयोः पुनः द्वाविंशत्युत्तरशते आहारकद्वयतीर्थमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतयो नेति

उसके कुछ काल तक अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता । उसके उस कालमें इक्यानबे प्रकृतियोंका उदय होता है ॥३२२॥

क्रोधकषाय रचना १०९

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.
५	६	१	१४	५	५	४	६	६३
१०५	९९	९१	९५	८१	७८	७३	६९	६३
४	१०	१८	१४	२८	३१	३६	४०	४६

क्रोधचतुष्ककी तरह मानचतुष्क और माया चतुष्कमें भी अन्य बारह कषाय और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं । अतः उनकी रचना क्रोध कषायकी रचनाकी तरह ही जानना । लोभमें भी तेरह प्रकृतियोंका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं । किन्तु गुणस्थान सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त होते हैं ।

कुमति और कुश्रुतज्ञानमें एक सौ बाईसमें-से आहारकद्विक, तीर्थंकर, मिश्र और

१.

मि
१
९१
०

गुणस्थानदो भत्तुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ९। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयंगळिल्लं। उदयंगळु नूर हदिनेळु ११७। सासादनगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळारेयप्पुवु ६। उदयंगळु नूर हन्नों दु १११। संदृष्टि :—

कु० कु० योग्य ११७

०	मि	सा
व्यु	६	९
उ	११७	१११
अ	०	६

विभंगे वि विभंगज्ञानदोळं आतपनाममुं १। एकेंद्रियजातिनाममुं १। विकलेंद्रियत्रयमुं ३। स्थावर सूक्ष्मापर्य्याप्त साधारणचतुष्कमुं ४ आनुपूर्व्यचतुष्कमु ४ मंतु पदिमूरुप्रकृतिगळुमं पेळ्द कुमतिकुश्रुतज्ञानयोग्यंगळु नूर हदिनेळरोळु ११७ कळेदोडे नूर नाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०४॥ मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वमों दे व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळनंतानुबंधिकषाय-चतुष्टयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयमिल्ल। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ सासादनगुणस्थानदोळों दनुदयमक्कुं १। उदयंगळु नूर मूरु १०३॥ संदृष्टि :—

सप्तदशोत्तरशतमुदययोग्यं। ११७। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वातपसूक्ष्मत्रयनारकानुपूर्व्याणि व्युच्छित्तिः ६। सासादने स्वस्य नव। मिथ्यादृष्टावनुदयो नास्ति। उदयः सप्तदशोत्तरशतं। ११७। सासादनेऽनुदयः षट् ६। उदय एकादशोत्तरशतं १११।

विभंगेऽप्येवमेव तथापि नातपैकेंद्रियविकलत्रयस्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानुपूर्व्यचतुष्कानीति चतुरुत्तर-शतमुदययोग्यं। १०४। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिथ्यादृष्टा-वनुदयो नास्ति। उदयः चतुरुत्तरशतं १०४। सासादने एकमनुदयः १। उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३॥ ३२३॥

सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ सतरह ११७ हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्मादि तीन और नरकानुपूर्वी इन छहकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अपनी नौकी व्युच्छित्ति होती है।

१. मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अनुदय नहीं है। उदय एक सौ सतरह ११७।

२. सासादनमें अनुदय छह। उदय एक सौ ग्यारह १११।

विभंगमें भी ऐसा ही जानना। किन्तु आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और चार आनुपूर्वीका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ चार १०४।

मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी और सासादनमें अनन्तानुबन्धी चारकी व्युच्छित्ति होती है। मिथ्यादृष्टिमें अनुदय नहीं है। उदय एक सौ चार १०४।

सासादनमें एकका अनुदय। उदय एक सौ तीन १०३॥३२३॥

विभंगयोग्य १०४

०।०	मि	सा
व्यु	१	४
उ	१०४	१०३
अ	०	१

सण्णाणपंचयादी दंसणमग्गणपदोत्ति सगुणोघं ।
मणपज्जवपरिहारे णवरि ण संढित्थिहारदुगं ॥३२४॥

संज्ञानपंचकादिदर्शनमार्गणापदपर्य्यंतं स्वगुणौघः । मनःपर्य्ययपरिहारयोः नवीनं न षंडस्त्र्याहारद्विकं ॥

सम्यग्ज्ञानपंचकादि दर्शनमार्गणास्थानपर्य्यंतं स्वगुणौघमेयक्कुमदेंतेंदोडे मतिश्रुतावधिज्ञानत्रितयंगळोळसंयतादिक्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं नवगुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदुदयव्युच्छित्तिगळय्दुं ५ सासादननवकमुं ९ । मिश्रन मिश्रप्रकृतियुं १ । तीर्त्थंकरनाममु १ मितु पदिनारुं प्रकृतिगळं कळेव शेषनूरारु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु । १०६ । अल्लि असंयतनोळु तन्न गुणस्थानदोळु पेळ्द द्वितीयकषायादिपदिनेळुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु १७ । देशसंयतादिगळोळु अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पु-

संज्ञानपंचकाद् दर्शनमार्गणापर्यंतं स्वगुणौघ एव तद्यथा—मतिज्ञानादित्रये गुणस्थानानि असंयतादीनि नव । उदयप्रकृतयः मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य व्युच्छित्तिः पंचदश तीर्थकरत्वं च नेति षडुत्तरशतं १०६ । तत्रासंयते स्वस्य सप्तदश व्युच्छित्तिः १७ । तत्र देशसंयतादिषु 'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' तथासति

कुमति-कुश्रुत रचना

मि.	सा.
६	९
११७	१११
०	६

विभंग रचना

मि.	सा.
१	४
१०४	१०३
०	१

पाँच सम्यग्ज्ञानसे लेकर दर्शनमार्गणा पर्यन्त अपने गुणस्थानवत् जानना। जो इस प्रकार है—

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञानमें गुणस्थान असंयतसे लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त नौ। उदययोग्य एक सौ बाईसमें-से मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें व्युच्छित्ति ५+९+१= पन्द्रह और तीर्थंकरका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ छह १०६।

वहाँ असंयतमें अपनी सतरहकी व्युच्छित्ति होती है। देशसंयत आदिमें आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलहकी व्युच्छित्ति है।

वंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकक्कनुदमक्कुं २। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळु गूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तु १९। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळं दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळरोळु २७ आहारकद्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेण्भत्तों दु ८१। अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तु ३०। उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु मूवत्त नाल्कु ३४। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तु ४०। उदयंगळरुवत्तारु ६६॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तारु ४६। उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेळु ४७। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु गूडियनुदयंगळु नाल्वत्तों भत्तु ४९। उदयंगळय्वत्तेळु ५७। संदृष्टि :—

मतिश्रुतावधि यो० १०६

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
ध्रु	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

१० असंयते आहारकद्विकमनुदयः २ उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः एकान्नविंशतिः। उदयः सप्ताशीतिः। ८७। प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदये पंचविंशतिः २५। उदय एकाशीतिः। ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रिंशत् ३०। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतस्रः संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४। उदयो द्वासप्ततिः। अनिवृत्तिकरणे षट्संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४०। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६। उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां १५ संयोज्यानुदयः सप्तचत्वारिंशत् ४७। उदय एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयः एकान्नपंचाशत् ४९। उदयः सप्तपंचाशत् ५७।

४. असंयतमें आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ चार १०४।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय उन्नीस। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विका उदय होनेसे अनुदय पच्चीस। उदय २० इक्यासी ८१।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तीस ३०। उदय छिहत्तर ७६।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय चौंतीस ३४। उदय बहत्तर ७२।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चालीस। उदय छियासठ।

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस। उदय साठ।

२५ ११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतालीस। उदय उनसठ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनचास। उदय सत्तावन।

मनःपर्य्ययज्ञानोळु मणपज्जवे णवरि ण संढित्थी हारदुगं एंदितु नाल्कुं प्रकृतिगळं प्रमत्त-संयतनुदयप्रकृतिगळेण्भत्तों दरोळु ८१ कळेवोडुदययोग्य प्रकृतिगळेप्पत्तेळु ७७। गुणस्थानंगळु प्रमत्ताविसप्तप्रमितंगळप्पुवल्लि प्रमत्तसंयतनोळु स्त्यानगृद्धित्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अप्रमत्त-संयतनोळु तन्न गुणस्थानद नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४ ॥ अपूर्व्वकरणनोळु तन्न गुणस्थानद षण्नोकषायंगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६ ॥ अनिवृत्तिकरणनोळु पुंवेदमुं संज्वलनक्रोधा- ५
दित्रितयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं । ४ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभक्कुदय-व्युच्छित्तियक्कुं १ । उपशांतकषायनोळु तन्न गुणस्थानद वज्रनाराचनाराचद्वयक्कुदयव्युच्छित्ति-यक्कुं २ ॥ क्षीणकषायनोळु तन्न गुणस्थानद द्विचरमसमयदोळु निद्राप्रचलेगळुं २ चरम समयदोळु ज्ञानावरणपंचकमु-५ । मंतरायपंचकमुं ५ दर्शनचतुष्कमुं नाल्कु ४ मंतु पदिनारुं प्रकृतिगळुदय-व्युच्छित्तियक्कु । १६ । मंतागुत्तं विरलु प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळनुदयं शून्यं उदयंगळेप्पत्तेळु ७७ ॥ १०
अप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळनुदयंगळु मूरु ३ । उदयगळेप्पत्तनाल्कु ७४ ॥ अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळेळु ७ । उदयंगळेप्पत्तु ७० ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु पविमूरु १३ । उदयंगळरुवत्त नाल्कु ६४ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळ पविनेळु १७ । उदयंगळु अरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु हविनेंदु

---

[1]मनःपर्ययज्ञाने—संढित्थीहारदुगं णेति तच्चतुष्के प्रमत्तोदयैकाशीत्यामपनीते सप्तसप्ततिः ७७ । गुणस्था- १५
नानि प्रमत्तादीनि सप्त । तत्र प्रमत्ते स्त्यानगृद्धित्रयं व्युच्छित्तिः ३ । अप्रमत्ते स्वस्य चतुष्कं ४ । अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६ । अनिवृत्तिकरणे पुंवेदः संज्वलनक्रोधादित्रयं च ४ । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपशांत-कषाये वज्रनाराचनाराचद्वयं २ । क्षीणकषाये द्विचरमसमये निद्राप्रचले, चरमे ज्ञानावरणपंचकं अंतरायपंचकं दर्शनावरणचतुष्कं च मिलित्वा षोडश १६ । एवं सति प्रमत्तेऽनुदयः शून्यं । उदयः सप्तसप्ततिः ७७ । अप्रमत्तेऽनुदयस्त्रयं ३ । उदयश्चतुःसप्ततिः ७४ । अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयः सप्त ७ । उदयः सप्ततिः २०
७० । अनिवृत्तिकरणे षट्संयोज्यानुदयस्त्रयोदश १३ । उदयश्चतुःषष्टिः ६४ । सूक्ष्मसांपराये चतुष्कं संयोज्या-

---

मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्त संयममें उदययोग्य इक्यासीमें-से नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य सतहत्तर ७७। गुणस्थान प्रमत्तादि सात। उनमें-से प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति। अप्रमत्तमें अपनी चारकी व्युच्छित्ति। अपूर्व-करणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणमें पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध आदि तीन। सूक्ष्म २५
साम्परायमें सूक्ष्मलोभ। उपशान्तकषायमें वज्रनाराच और नाराच। क्षीण कषायमें द्विचरम समयमें निद्रा प्रचला, चरम समयमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय मिलकर सब सोलह १६। ऐसा होनेपर—

६. प्रमत्तमें अनुदय शून्य। उदय सतहत्तर ७७।
७. अप्रमत्तमें अनुदय तीन। उदय चौहत्तर ७४। ३०
८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सात। उदय सत्तर ७०।
९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय तेरह। उदय चौसठ।

---

१. ब. मनःपर्ययज्ञानिनां।

१८। उदयंगळव्वत्तो भत्तु । ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तु २० । उदयंगळव्वत्तेळु ५७ ॥ संदृष्टि–मनःपर्य्ययज्ञानयोग्य ७७ ।

०	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	३	४	६	४	१	२	१६
उ	७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७
अ	०	३	७	१३	१७	१८	२०

केवलज्ञानदोळु योग्योदय प्रकृतिगळु नाल्वत्तेरडु ४२ । गुणस्थानद्वितयमल्लि सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळुदयव्युच्छित्तिगळु मूवत्तु ३० । अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पन्नेरडु १२ । संदृष्टिः–केवलिद्वययोग्य ४२ ।

०	स	अ
व्यु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

नुदयः सप्तदश १७ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकं संयोज्यानुदयोऽष्टादश १८ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ । क्षीण कषाये द्वे संयोज्यानुदयो विंशतिः २० । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ ।

केवलज्ञाने उदययोग्या द्वाचत्वारिंशत् ४२ । तत्र सयोगे व्युच्छित्तिः त्रिंशत् । अयोगे द्वादश । संदृष्टिः—

केवलिद्वययोग्यः ४२

	स	अ
व्यु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

१०. सूक्ष्म साम्परायमें चार मिलाकर अनुदय सतरह । उदय साठ ६० ।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय अठारह । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बीस । उदय सत्तावन ।

केवलज्ञानमें उदययोग्य बयालीस । उसमें-से सयोगीमें व्युच्छित्ति तीस । अयोगीमें बारह ।

संयममार्गणेयोळु सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयदोळु योग्यंगळु प्रमत्तगुणस्थानदेण्भत्तोंदु प्रकृतिगळप्पु ८१ वल्लि गुणस्थानंगळु नाल्कु। प्रमत्तसंयतादिव्युच्छित्तिगळु पंच य चउर छक्क छच्चेव एंबी उदयव्युच्छित्तिगळु। प्रमत्तगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमक्कुं। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थान दोळम्बु प्रकृतिगळनुदयंगळु ५। उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कूगूडियनुदयंगळोंभत्तु ९। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु पदिनय्दु १५। उदयंगळरुवत्तारु ६६। संदृष्टि। सा० छे० योग्य ८१। ५

०	प्र	अ	अ	अ
व्यु	५	४	६	६
उ	८१	७६	७२	६६
अ	०	५	९	१५

परिहारविशुद्धसंयमदोळु परिहारे णवरि ण संडित्थिहारदुगं एंदितो नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषप्रकृतिगळेप्पत्तेळुदययोग्यंगळु ७७। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वितयमेयक्कुं संदृष्टि :—

संयममार्गणायां सामायिकछेदोपस्थापनयोरुदययोग्याः प्रमत्तस्यैकाशीतिः ८१। गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि चत्वारि। व्युच्छित्तयः पंचयचउरछक्कछच्चेव। प्रमत्तेऽनुदयः शून्यं। उदय एकाशीतिः ८१। अप्रमत्तेऽनुदयः पंच ५। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयो नव ९। उदयो द्वासप्ततिः। ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयः पंचदश १५ उदयः षट्षष्टिः ६६। परिहारविशुद्धौ षंढित्थीहारदुगं णेति तच्चतुष्केऽपनीते सप्तसप्ततिरुदययोग्याः ७७। प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थाने द्वे। संदृष्टिः— १०

सम्यग्ज्ञानत्रय रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी
१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

मनःपर्ययज्ञान रचना ७७

प्र.	अ	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
३	४	६	४	१	२	१६
७७	७४	७०	६४	६०	५९	५७
०	३	७	१३	१७	१८	२०

केवलज्ञान रचना ४२

स.	अ.
३०	१२
४२	१२
०	३०

संयममार्गणामें सामायिक और छेदोपस्थापनामें उदययोग्य प्रमत्तसंयमकी इक्यासी ८१। गुणस्थान प्रमत्त आदि चार। व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, चार, छह, छह। प्रमत्तमें अनुदय शून्य। उदय इक्यासी। अप्रमत्तमें अनुदय पाँच, उदय छिहत्तर। अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय नौ। उदय बहत्तर ७२। अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय पन्द्रह। उदय छियासठ ६६। १५

परिहार विशुद्धिमें स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आहारकद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य

परिहारयो ७७		
०	प्र	अ
व्यु	३	४
उ	७७	७४
अ	०	३

सूक्ष्मसांपरायसंयमोदययोग्यप्रकृतिगळरुवत्तु ६०। सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमों देयक्कुं। यथाख्यातसंयमोदयप्रायोग्य प्रकृतिगळु उपशांतकषायगुणस्थानदव्वत्तों भत्तरोळु तीर्थमंकूडियरु वत्तु प्रकृतिगळप्पुवु ६० गुणस्थानंगळु नाल्कप्पुवल्लियुपशांतकषायनोळु वज्रनाराचशरीरसंहनन-द्वयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं २॥ क्षीणकषायनोळु तन्न गुणस्थानद पदिनारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्ति-यक्कु ११६॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु तद्गुणस्थानद मूवत्तुं प्रकृतिगळुदव्युच्छित्ति-यक्कुं ३०॥ अयोगिकेवलिभट्टारकनोळं तद्गुणस्थानद पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु-मंतागुत्तं विरलुपशांतकषायगुणस्थानदोळु तीर्थमों देनुदयमक्कुं १। उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळु ३। उदयंगळय्वत्तेळु ५७॥ सयोगिकेवलिभट्टारक-गुणस्थानदोळु परिनारुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु तीर्थमं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं

१ परि = यो ७७

	प्र	अ
व्यु	३	४
उ	७७	७४
अ	०	३

सूक्ष्मसांपरायस्योदयः षष्टिः ६०। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानम्। यथाख्यातसंयमस्योदयः उपशांतकषायस्य एकान्नषष्ट्यां तीर्थं मिलित्वा षष्टिः ६०। गुणस्थानान्युपशांतकषायादीनि चत्वारि। तत्रोपशांतकषाये वज्रनाराचनाराचद्वयं व्युच्छित्तिः। क्षीणकषाये षोडश। सयोगे त्रिंशत्। अयोगे द्वादश। तथा सति उपशांतकषाये तीर्थमनुदयः १। उदय एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयस्त्रयं। ३। उदयः सप्तपंचाशत् ५७।

सतहत्तर ७७। गुणस्थान दो प्रमत्त और अप्रमत्त। सूक्ष्मसाम्परायमें उदय साठ। एक गुण-स्थान सूक्ष्म साम्पराय। यथाख्यातसंयममें उपशान्तकषायमें उदययोग्य उनसठमें तीर्थंकर मिलाकर उदययोग्य साठ। गुणस्थान उपशान्तकषाय आदि चार। उनमेंसे उपशान्त कषायमें वज्रनाराच और नाराच दोकी व्युच्छित्ति। क्षीण कषायमें सोलह। सयोगीमें तीस। अयोगीमें बारह। ऐसा होनेपर—

उपशान्तकषायमें तीर्थंकरका अनुदय। उदय उनसठ ५९। क्षीणकषायमें दो मिलाकर

विरलनुदयंगळु पदिनेंदु १८। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२॥ अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु मूवत्तुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेंदु ४८। उदयंगळु पन्नेरडु १२॥ संदृष्टि :—

यथाख्यात योग्य ६०

०	उ	क्षी	स	अ
ध्रु	२	१६	३०	१२
उ	५९	५७	४२	१२
अ	१	३	१८	४८

देशसंयमदोळु देशसंयतगुणस्थानदुदयप्रकृतिगळेप्भत्तेळु ८७ उदययोग्यंगळप्पुवु॥ गुणस्थानमुमा देशसंयतगुणस्थानमों देयक्कुं। असंयमदोळु तीर्त्थकरनाममुमाहारकद्वयमुममंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषप्रकृतिगळु नूर हत्तों भत्तुवययोग्यंगळप्पुवु ११९ वल्लि मिथ्यादृष्टयादियागि नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि तंतम्म गुणस्थानद पणणव इगि सत्तरस प्रकृतिगळगे यथासंख्यमागियुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमेरडुमनुदयंगळु २। उदयंगळु नूरहदिनेळु ११७। सासादनगुणस्थानदोळप्दुगूडियनुदयंगळेळरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंदु ८। उदयंगळु नूर हन्नों दु १११॥ मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तुं गूडियनुदयंगळु हविनेळरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयंगळोळु शेषानुपूर्व्यत्रयमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हत्तों भत्तु १९। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु सम्यक्त्व-

---

सयोगे अनुदयः। षोडश संयोज्य तीर्थोदयादष्टादश १८। उदयो द्वाचत्वारिंशत् ४२। अयोगे त्रिंशत् संयोज्यानुदयोऽष्टाचत्वारिंशत् ४८। उदयो द्वादश १२। देशसंयमे तद्गुणस्थानस्य सप्ताशीतिरुदययोग्याः ८७। गुणस्थानं तदेव। असंयमे तीर्थकरत्वमाहारकद्वयं विना शेषैकान्नविंशत्युत्तरशतमुदययोग्यं ११९। मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानानि चत्वारि। व्युच्छित्तयः 'पणणव इगिसत्तरसं'। तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं चानुदयः। उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादनेऽनुदयः पंच नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वाष्टौ ८। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयो नव शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकान्नविंशतिः १९।

अनुदय तीन। उदय सत्तावन। सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय अठारह। उदय बयालीस। अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय अड़तालीस ४८। उदय बारह १२।

देशसंयममें उसी गुणस्थानमें उदययोग्य सतासी। वही एक गुणस्थान होता है। असंयममें तीर्थंकर और आहारकद्विक बिना उदय योग्य एक सौ उन्नीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार। व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह। ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय एक सौ सतरह। सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय आठ। उदय एक सौ ग्यारह। मिश्रमें नौ और शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर,

प्रकृतियुमं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमितय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पविनय्दु १५। उदयंगळ् नूर नाल्कु १०४ ॥ संदृष्टि :—

असं० योग्य ११९ ॥

०	मि	सा	मि	अ
व्यु	५	९	१	१७
उ	११७	१११	१००	१०४
अ	२	८	१९	१५

दर्शनमार्गणेयोळ् चतुर्द्दर्शनयोग्योदयप्रकृतिगळ् सामान्योदययोग्यप्रकृतिगळ् नूरिप्पत्तेरडरोळ् :—

चक्खुम्मि ण साहारणतावेगिंदितिजाइ थावरं सुहुमं ।
किण्णदुगे सुगुणोघं मिच्छे णिरयाणु बोच्छेदो ॥३२५॥

चक्षुषि न साधारणातपैकद्वित्रिजातिस्थावरं सूक्ष्मं कृष्णद्विके स्वगुणौघः मिथ्यादृष्टौ नारकानुपूर्व्यव्युच्छेदः ॥

साणे सुराउ सुरगदिदेवतिरिक्खाणु बोच्छिदी एवं ।
काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुबोच्छेदो ॥३२६॥

सासादने सुरायुः सुरगतिदेवतिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छित्तिरेवं। कापोते असंयतगुणस्थाने निरयतिर्य्यगानुपूर्व्योव्युच्छित्तिः ॥

साधारणनाममुं १। आतपनाममुं १। एकेंद्रियजातियुं १। द्वींद्रियजातियुं १। त्रींद्रियजातियुं १। स्थावरनाममुं १। सूक्ष्मनाममुं १। तीर्त्थकरनाममुं १ मितेंटुं ८। न न संति येंदिवं

उदयः शतं १००। असंयते एकं मिलित्वा सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात्पंचदश १५। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४ ॥ ३२४।

दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शने साधारणमातप एकेंद्रियं द्वींद्रियं त्रींद्रियं स्थावरं सूक्ष्मं तीर्थकरत्वं च नेति

मिश्रका उदय होनेसे अनुदय उन्नीस। उदय सौ। असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और आनुपूर्वी चारका उदय होनेसे अनुदय पन्द्रह। उदय एक सौ चार ॥३२४॥

दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शनमें साधारण, आतप, एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म और तीर्थंकर प्रकृतिका उदय नहीं होता ॥३२५-३२६॥

सामायिक छेदोप. ८१ परि. वि. ७७ यथाख्यात ६० असंयम ११९

	प्र.	अ.	अ.	अ.
व्यु.	५	४	६	६
उदय	८१	७६	७२	६६
अनु.	०	५	९	१५

प्र.	अ.
३	४
७७	७४
०	३

उ.	क्षी	स.	अ.
२	१६	३०	१२
५९	५७	४२	१२
१	३	१८	४८

मि.	सा.	मि.	अ
५	९	१	१७
११७	१११	१००	१०४
२	८	१९	१५

कळेयलु शेष नूर पविनाल्कुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११४। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टियादियागि क्षीणकषायावसानमागि पन्नेरडप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुमितेरडुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं २॥ सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुं ४ चतुरिंद्रियजाति-नाममुमितय्दुं ५ प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ मिश्रं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थान-पर्य्यंतं यथासंख्यमागि इगि सत्तरसं अडपंचय चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृति- ५
गळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियु-माहारकद्वयमुमितु नाल्कुं प्रकृतिगळ्गनुदयमक्कुं ४। उदयंगळु नूर हत्तु ११०॥ सासादनगुणस्थान-दोळेरडुगूडियनुदयंगळारररोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरल-नुदयंगळेळु ७। उदयंगळु नूरेळु १०७॥ मिश्रगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु पन्नेरडरोळु मिश्र-प्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु शेषानुपूर्व्यत्रयमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं १०
विरलनुदयंगळु पविनाल्कु १४। उदयंगळु नूरु १००। असंयतगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु पविनय्दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं आनुपूर्व्यचतुष्कमुमनंतय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयगंळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तुं १०। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पविनेळुगूडियनु-दयंगळिप्पत्तेळु २७। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तय्द-रोळाहारकद्वयमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३। उदयंगळेण्भत्तों दु ८१॥ १५

चतुर्दशोत्तरशतमुदययोग्यं ११४। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश १२। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वा-पर्याप्तव्युच्छित्तिः २। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं चतुरिंद्रियं च ५। मिश्रात् क्षीणकषायपर्यंत इगिसत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेवइगिदुगसोलस व्युच्छित्तयः। तथा सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वं आहारकद्वयं चानुदयः, उदयो दशोत्तरशतं ११०। सासादने द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वानुदयः सप्त ७। उदयः सप्तोत्तर-शतं १०७। मिश्रेऽनुदयः पंच शेषानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयाच्चतुर्दश १४। उदयः शतं १००। असंयतेऽनुदयः एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयाद्दश १०। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयः सप्तविंशतिः २७। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्वयोदयादनुदयस्त्र-

---

स्थावर, सूक्ष्म और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य एक सौ चौदह ११४ हैं। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि बारह हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दोकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार और चौइन्द्रिय पाँच। मिश्रसे क्षीणकषायपर्यन्त २५
क्रमसे एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो और सोलहकी व्युच्छिति होती है।

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय है। उदय एक सौ दस ११०।

२. सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलकर अनुदय सात। उदय एक सौ सात। ३०

३. मिश्रमें अनुदय पाँच और शेष तीन आनुपूर्वी मिलकर तथा मिश्रका उदय होनेसे चौदह १४। उदय एक सौ १००।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और चारों आनुपूर्वीका उदय होनेसे दस १०। उदय एक सौ चार १०४।

अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं केलगण गुणस्थानंगळुदयव्युच्छित्तिगळु-मननुदयंगळुमं कूडिदोडे मेलण मेलण गुणस्थानदप्रकृतिगळक्कुं। केळगण गुणस्थानदुदयव्युच्छित्तिगळं कळदुदयप्रकृतिगळु मेलण गुणस्थानदुदयप्रकृतिगळप्पुवेंब व्याप्तियरियल्पडुगुं। संदृष्टियोळी व्याप्तियतिव्यक्तमल्लि भाविसुवुदु ॥ संदृष्टि :—

चक्षुर्दर्शनयोग्य ११४

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु.	२	५	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	११०	१०७	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	७	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७

५ यस्त्रिंशत् ३३ उदयः एकाशीतिः ८१ । अप्रमत्ताक्षीणकषायपर्यंतमधस्तनव्युच्छित्त्यनुदययोग उपरितनानुदयः स्यात् । अधस्तनव्युच्छित्तौ स्वोदयेऽपनीतायामुपरितनोदयः स्यात् इति व्याप्तिर्ज्ञातव्या । संदृष्टि :—

चक्षुर्दर्शनोदययोग्यः ११४ ॥

	मि	सा	मि	अ	द	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	२	५	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	११०	१०७	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	७	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय सत्ताईस । उदय सत्तासी।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय तैंतीस ३३। उदय इक्यासी ८१ ।

१० ७. अप्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त नीचेकी व्युच्छित्ति और अनुदयको मिलानेपर ऊपरका अनुदय होता है। और नीचेकी व्युच्छित्तिको अपने उदयमें घटानेपर ऊपरका उदय होता है। ऐसी व्याप्ति जानना चाहिये। उसकी संदृष्टि—

चक्षुदर्शनमें उदययोग्य ११४

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सु.	उ.	क्षी.
व्यु.	२	५	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ.	११०	१०७	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अनु.	४	७	१४	१०	२७	३३	३८	४२	४८	५४	५५	५७

अचक्षुर्दर्शनमार्गणेयोळु तीर्त्थंकरनामरहितसामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तोंदु १२१। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिमोदलागि पन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मिथ्यादृष्ट्यादिगळोळु यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तिगळु पण णव इगि सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं। ४। उदयंगळु नूरहविनेळु ११७। सासादननोळय्दुं कूडियनुदयंगळु ओंभत्तरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळे दनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तुं १०। उदयंगळु नूर हन्नोंदु १११॥ मिश्रगुणस्थानदोळों भत्तुगूडियनुदयंगळु हत्तों भत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडिमत्तमुदयप्रकृतिगळोळानुपूर्व्यत्रितयमं कळे दनुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तोंदु २१। उदयंगळु नूरु १००॥ असंयतगुणस्थानदोळु ओंदुगूडियनुदयंगळु यिप्पत्तेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूर्व्यंचतुष्कमुमनंतु पंचप्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरळनुदयंगळु पदिनेळु १७। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळुगूडियनुदयंगळु मूवत्तनाल्कु ३४। उदयंगळे ण्भत्तेळु ८७। प्रमत्तगुणस्थानदोलेंदुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेरडरोळु आहारकद्विकमं कळे दुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु नाल्वत्तु ४०। उदयंगळु येंभत्तोंदु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुण-

---

अचक्षुर्दर्शने तीर्थकरत्वं नेत्युदयप्रकृतयः एकविंशत्युत्तरशतं १२१। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश, व्युच्छित्तयः 'पण्णवइगिसत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयान्यनुदयः ४। उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादनेऽनुदयः पंच नारकानुपूर्व्यं च मिलित्वा दश १०। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयो नवानुपूर्व्यत्रयं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकविंशतिः २१। उदयः शतं १००। असंयतेऽनुदय एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयात्सप्तदश १७। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४ उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयश्चत्वारिंशत्। उदय एकाशीतिः ८१। अप्रमत्तात् क्षीणकषायपर्यंतमनुदयः

अचक्षुदर्शनमें तीर्थंकरका उदय न होनेसे उदय प्रकृतियाँ एक सौ इक्कीस १२१ हैं। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि बारह। व्युच्छित्ति क्रमसे पाँच, नौ, एक, सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विकका अनुदय ४। उदय एक सौ सतरह।

२. सासादनमें अनुदय पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर दस १०। उदय एक सौ ग्यारह।

३. मिश्रमें अनुदय नौ और तीन आनुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस। उदय सौ १००।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे सतरह १७। उदय एक सौ चार १०४।

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय चौंतीस ३४। उदय सतासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय चालीस। उदय ८१।

स्थानपर्य्यंतमनुदयंगळ् यथाक्रमदिंद नाल्वत्तय्दु ४५। नाल्वत्तो भत्तु ४९। अय्वत्तय्दु ५५। अरुवत्तो वु ६१। अरुवत्तेरडुं ६२। अरुवत्तनाल्कु ६४ मप्पुवु। उदयंगळ् छसदरिदुसदरि छावट्ठिसट्ठी णव वण्णास सगवण्णास मुमप्पुवु। संदृष्टिरचने। अचक्षुदर्शनयोग्य १२१।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	१०	२१	१७	३४	४०	४५	४९	५५	६१	६२	६४

अवधिदर्शनमार्गणेयोळु अवधिज्ञानदोळंतंते मिथ्यादृष्टिय अय्दुं ५ सासादननोंभत्तुं ९ मिश्रनोंदुं १ तीर्त्थंमु १ मंतु पदिनारुं १६ प्रकृतिगळं कळेदुळिद नूरारुं प्रकृतिगळु दययोग्यंगळप्पुवु १०६। अल्लियसंयतादिगुणस्थानंगळोंभत्तप्पुवसंयतं मोदलागि यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तिगळ् सत्तरसं अड पंच य चउर छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस प्रकृतिगळप्पुवंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं यथाक्रमदिंदमनुदयंगळ् रडुं २। पत्तोंभत्तु १९। पिप्पत्तय्दु २५। मूवत्तुं ३०। मूवत्तनाल्कु ३४। नाल्वत्तुं ४०। नाल्वत्तारुं ४६। नाल्वत्तेळुं ४७। नाल्वत्तो-भत्तुं ४९। प्रकृतिगळप्पुवु। उदयंगळ् चदुसहियसयं नूरनाल्कु १०४। सगसोदि ८७। इगिसोदि

पंचचत्वारिंशत् ४५। एकान्नपंचाशत् ४९। पंचपंचाशत् ५५। एकषष्टिः। द्वाषष्टिः ६२ चतुःषष्टिः ६४। उदयाः छसदरीदुसदरीछावट्ठिसट्ठिणववण्णाससगवण्णास।

अवधिदर्शनमार्गणायां अवधिज्ञानवत् षडुत्तरशतमुदययोग्यं। गुणस्थानानि नव। व्युच्छित्तयः सत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेवइगिदुगसोलस। तथा सति अनुदयाः द्वयं २। एकोनविंशतिः १९। पंचविंशतिः २५। त्रिंशत् ३०। चतुस्त्रिंशत् ३४। चत्वारिंशत् ४०। षट्चत्वारिंशत् ४६। सप्तचत्वारिंशत्। ४७।

अप्रमत्तसे क्षीणकषाय पर्यन्त अनुदय क्रमसे पैंतालीस ४५, उनचास ४९, पचपन ५५, इकसठ ६१, बासठ ६२, चौंसठ ६४। उदय क्रमसे छियत्तर ७६, बहत्तर ७२, छियासठ ६६, साठ ६०, उनसठ ५९, सत्तावन ५७। संदृष्टि—

अचक्षुदर्शन रचना १२१

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
४	१०	२१	१७	३४	४०	४५	४९	५५	६१	६२	६४

अवधिदर्शन मार्गणामें अवधिज्ञानकी तरह एक सौ छह उदययोग्य हैं। गुणस्थान चारसे बारह तक नौ होते हैं। व्युच्छित्तियाँ क्रमसे सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह। ऐसा होनेपर अनुदय क्रमसे दो २, उन्नीस १९, पच्चीस २५, तीस ३०, चौंतीस

८१। छसदरी ७६। दुसदरी ७२। छावट्ठी ६६। सट्ठी ६०। णवण्णास ५९। सगवण्णास ५७। प्रकृतिगळप्पुवु। संदृष्टि। अवधिदर्शनयो० १०६ :—

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
ध्रु	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
उ	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

केवलदर्शनमार्गणेयोळु केवलज्ञानमार्गणेयोळ तंतेयक्कुमल्लियुदययोग्यंगळु नाल्वत्तेरडु प्रकृतिगळप्पुवु ४२। सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयमक्कुं। संदृष्टि। केवलदर्शनयोग्य ४२

०	स	अ
ध्रु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

एकान्नपंचाशत् ४९। उदया: चदुसहियसयं १०४। सगसीदि ८७। इगिसीदि ८१। छसदरी ७६। दुसदरी ७२। छावट्ठि ६६। सट्ठि ६०। णवपण्णास ५९। सगवण्णास ५७। केवलदर्शने केवलज्ञानवत्। संदृष्टि :— ५

केवलदर्शनयोग्य ४२

	स	अ
ध्रु	३०	१२
उ	४२	१२
अ	०	३०

३४, चालीस ४०, छियालीस ४६, सैंतालीस ४७, उनचास ४९। उदय क्रमसे एक सौ चार १०४, सत्तासी ८७, इक्यासी ८१, छियत्तर ७६, बहत्तर ७२, छियासठ ६६, साठ ६०, उनसठ ५९, सत्तावन ५७। केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना। संदृष्टि— १०

लेश्यामार्गणेयोळु किण्हदुगे सगुणोघं मिच्छे णिरयाणु बोच्छेदो एंदितु कृष्ण नील लेश्याद्वयमार्गणेयोळु[1] तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुमितु मूरुं प्रकृतिळगळं कळेदुळिद सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरहत्तों भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु ११९। मिथ्यादृष्ट्यादि चतुर्गुणस्थानंगळप्पुवेकेंदोडयदोत्ति छल्लेस्साओ एंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्टियोळु तन्न प्रकृतिगपंचकमुं नरकानुपूर्व्यमुमंतारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६। एकेंदोडे णिरयं सासण सम्मो ण गच्छदि एंदु सासादननोळा नरकानुपूर्व्योदयमिल्ल। मिश्रनोळावानुपूर्व्यंगळगमुदयमिल्लप्पुदरिनल्लियुं नरकानुपूर्व्योदयमिल्ल। असंयतसम्यग्दृष्टि द्वितीयादिपृथ्विगळोळु पुट्टनप्पुदरिंदमी तृतीयादिपृथ्वीसंबंधि नीलकृष्णलेश्याद्वयमार्गणेयोळसंयतंगे नरकानुपूर्व्योदयमिल्लदु कारणमागि मिथ्यादृष्टियोळे तदुदयव्युच्छित्तियक्कुमप्पुदरिंदं॥ सासादननोळु तन्न गुणस्थानदोंभत्तु ९ असंयतनत्तणिं बंद सुरद्विकमुं २। सुरायुष्यमुं १। तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमितु त्रयोदशप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४। नरकगतिनाममुं १ नरकायुष्यमुं १ वैक्रियिकद्वयमुं २ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १। दुर्भगत्रयमु ३ मितु पन्नेरडु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२॥ तिर्य्यगानुपूर्व्योदयमसंयतनोळ्कि[2]ल्लेंदोडे भोगापुण्णगसम्मे काउस्स

लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलयोस्तीर्थकृदाहारकद्वयं च नेत्युदययोग्यप्रकृतयः एकान्नविंशतिशतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि। कुतः? 'अयदोत्ति छल्लेस्साओ' इत्युक्तत्वात्। मिथ्यादृष्टौ स्वस्य पंच नरकानुपूर्व्यं च व्युच्छित्तिः ६ सासादनस्य नरकगमनाभावात्,। मिश्रस्यानुपूर्व्यानुदयात्, असंयतस्य द्वितीयादिपृथ्वीष्वनुत्पत्तेश्च तदानुपूर्व्यस्यात्रैव छेदात्। सासादने स्वस्य नव, असंयतागतसुरद्विकसुरायुस्तिर्यगानुपूर्व्याणि च १३। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं नरकगतिस्तदायुर्वैक्रियिकद्वयं मनुष्यानुपूर्व्यं

अवधिदर्शन रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
१७	८	५	४	६	६	१	२	१६
१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
२	१९	२५	३०	३४	४०	४६	४७	४९

केवलदर्शन ४२

स.	अ.
३०	१२
४२	१२
०	३०

लेश्या मार्गणामें कृष्ण और नीलमें तीर्थंकर और आहारकाद्विकका उदय न होनेसे उदययोग्य प्रकृतियाँ एक सौ उन्नीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार; क्योंकि आगममें कहा है कि असंयत गुणस्थान पर्यन्त छह लेश्या होती हैं।

मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँच और नरकानुपूर्वी मिलकर व्युच्छित्ति छह। क्योंकि सासादन तो मरकर नरकमें नहीं जाता। मिश्रमें आनुपूर्वीका उदय नहीं होता, और असंयत मरकर दूसरे आदि नरकोंमें उत्पन्न नहीं होता। इसलिए नरकानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति मिथ्यादृष्टिमें ही होती है। सासादनमें अपनी नौ तथा असंयत सम्बन्धी देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु और तिर्यंचानुपूर्वी मिलकर तेरह १३। मिश्रमें मिश्र एक। असंयतमें दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब बारह १२।

१. म °र्गणेगलोलु।

जहण्णियं हवे णियमा एंदु तिर्य्यगानुपूर्व्व्योदयमिल्ल। देवनारकसम्यग्दृष्टिगळु कर्म्मभूमियोळु पुट्टुवरादोडं तिर्य्यग्गतियोळ्पुट्टरु। मनुष्यानुपूर्व्व्योदयमसंयतसम्यग्दृष्टियोळ्तॆंदोडे नरकादिवं बप्पं सम्यग्दृष्टिगे कर्म्मभूमियोळुत्पत्तिनियममुंटप्पुदरिंदं तन्मनुष्यभवप्रथमकालदोळंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं पूर्व्वभवलेश्ययप्पुदरिंदं मनुष्यानुपूर्व्व्योदयं कृष्णनीललेश्याऽसंयतनोळक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोलु मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळुदयमक्कुं २ उदयंगळु नूर पदिनेळु ११७॥ सासादनगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळॆंदु ८। उदयंगळु नूर हन्नोंदु १११। मिश्र गुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तोंदरोळु कूडिमत्तमुदयप्रकृतिगळोळु मनुष्यानुपूर्व्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तोंदु २१। उदयंगळु तोंभत्तॆंदु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्व्यमुमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तु २०। उदयंगळु तोंभत्तोंभत्तु ९९। संदृष्टि :—

कृ० नी० यो ११९

०	मि	सा	मि	अ
व्युच्छि	६	१३	१	१२
उव	११७	१११	९८	९९
अनु	२	८	२१	२०

दुर्भगत्रयं च १२। तिर्यगानुपूर्व्यं कुतो न ? 'भोगापुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे' इति नियमात् देवनारकासंयतस्य तु तिर्यक्ष्वनुत्पत्तेः। मनुष्यानुपूर्व्यं कथं स्यात् ? नरकादागच्छत्सम्यग्दृष्टेः कर्मभूम्युत्पत्तिनियमात्तद्भवप्रथमकालांतर्मुहूर्तं पूर्वभवलेश्यासद्भावात्। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वेऽनुदयः, उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादने षट् संयोज्यानुदयोऽष्टौ ८। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयः त्रयोदश मनुष्यानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयादेकविंशतिः २१। उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयतेऽनुदय एकं मिलित्वा सम्यक्त्वमनुष्यानु-

शंका—यहाँ तिर्यंचानुपूर्वी क्यों नहीं है ?

समाधान—आगममें कहा है—'भोगभूमियाँ निर्वृत्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टिके कापोत लेश्याका जघन्य अंश होता है,' ऐसा नियम होनेसे देव और नारक असंयत तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होता।

शंका—तब मनुष्यानुपूर्वीका उदय यहाँ कैसे सम्भव है ?

समाधान—नरकसे आनेवाला सम्यग्दृष्टी नियमसे कर्मभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न होता है और उसके भवके प्रथम अन्तर्मुहूर्त कालमें पूर्व भवकी लेश्या रहती है इससे यहाँ असंयतमें मनुष्यानुपूर्वीका उदय सम्भव है। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्व दोका अनुदय। उदय एक सौ सतरह।

२. सासादनमें छह मिलाकर अनुदय आठ ८। उदय एक सौ ग्यारह १११।

३. मिश्रमें अनुदय तेरह और मनुष्यानुपूर्वी मिलकर मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस २१। उदय अठानबे ९८।

कपोतलेश्यामार्गणेयोळुदययोग्यंगळु कृष्णनीललेश्याद्वयदोळंतंते नूर हत्तोंभत्तु ११९। मिथ्यादृष्टयादि नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानद प्रकृतिपंचकव्युदय-व्युच्छित्तियक्कुं ५॥ सासादननोळं तन्न गुणस्थानद नवप्रकृतिगळु ९। असंयतनत्तणिंबंद सुर-द्विकमुं २ सुरायुष्यमु १ मंतु पन्नेरडुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृति-गुदयव्युच्छित्तियक्कुं॥ असंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमुं २। नरकायुष्यमुं १ वैक्रियिकद्विकमुं २। तिर्य्यंग्मनुष्यानुपूर्व्यद्विकमुं २ दुर्भगत्रयमु ३ मंतु पदिनाळ्कुं प्रकृतिगळुदय-व्युच्छित्तियक्कुं १४। मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रसम्यक्त्व प्रकृतिद्वयक्कनुदय-मक्कुं २। नूर हदिनेळु प्रकृतिगळुदयमक्कु ११७॥ सासादनगुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळेळरोळु नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळेंदु ८। उदयंगळु नूर हन्नोंदु १११॥ मिश्रगुणस्थानदोळु पन्नेरडुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयं-गळोळु कूडुत्तमुदयप्रकृतिगळोळु आनुपूर्व्यद्वयमं २ कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळि-प्पत्तोंदु २१। उदयंगळु तोभत्तेंदु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळोंदुगूडियनुदयंगळिप्पत्तरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं मूरानुपूर्व्यंगळुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनु-दयंगळु पदिनेंदु १८। उदयंगळु नूरोंदु १०१॥ संदृष्टि :—

पूर्व्योदयाद् विंशतिः २०। उदय एकान्नशतं ९९।

कपोतलेश्यायामुदययोग्यं कृष्णनीलवदेकान्नविंशतिशतं ११९। गुणस्थानानि आद्यानि चत्वारि। तत्र मिथ्यादृष्टौ निजपंच व्युच्छित्तिः। सासादने स्वकीयनवासंयतागतसुरद्विकसुरायुषी च १२। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं नरकद्विकं तदायुर्वैक्रियिकद्विकं तिर्यंग्मनुष्यानुपूर्व्यौ दुर्भगत्रयं च ११४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वे अनुदयः उदयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। सासादने पंच नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वाऽनुदयोऽष्टौ ८। उदय एकादशोत्तरशतं १११। मिश्रेऽनुदयो द्वादशानुपूर्व्यद्वयं च संयोज्य मिश्रोदयादेकविंशतिः २१। उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयतेऽनुदयः एकं संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यत्रयोदयादष्टादश १८। उदय एकोत्तरशतं १०१।

---

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व और मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे बीस २०। उदय निन्यानवे ९९।

कापोत लेश्यामें उदययोग्य कृष्ण-नीलकी तरह एक सौ उन्नीस। गुणस्थान आदिके चार। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँचकी व्युच्छित्ति। सासादनमें अपनी नौ तथा असंयत सम्बन्धी देवगति, देवानुपूर्वी और देवायु मिलाकर १२।

मिश्रमें मिश्र एक। असंयतमें दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब चौदह। ऐसा होनेपर।

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र और सम्यक्त्वका अनुदय। उदय एक सौ सतरह ११७।

२. सासादनमें पाँच और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय आठ ८। उदय एक सौ ग्यारह।

३. मिश्रमें अनुदय बारह और दो आनुपूर्वी मिलाकर तथा मिश्रका उदय होनेसे इक्कीस २१। उदय अठानवे ९८।

कपोत यो० ११९।

गु	मि	सा	मि	अ
व्यु	५	१२	१	१४
उ	११७	१११	९८	१०१
अ	२	८	२१	१८

भवनत्रयदेवक्कळनिबर्ग्गमपर्य्याप्तकालदोळ् अशुभलेश्यात्रयमे शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेले तेजोलेश्याजघन्यांशमेयप्पुदरिंदमशुभलेश्यात्रयासंयतसम्यग्दृष्टिभवनत्रयदोळ् पुट्टनप्पुदरिंदं देवद्विकमुं १ देवायुष्यमुं १ सासादनसम्यग्दृष्टियोळुदयव्युच्छित्तियादुवेकेंदोडे अशुभलेश्यात्रय सासादनना भवनत्रयदोळ् पुट्टुवनप्पुदरिंदमंते पेळल्पट्टुदु ॥

साणे सुराउसुरगदिदेवतिरिक्खाणु बोच्छिदी एवं ।
काओदे अयदगुणे णिरयतिरिक्खाणुबोच्छेदो ॥३२६॥

सासादने सुरायुः सुरगति देवगतितिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छित्तिरेवं । कापोते असंयतगुणे नरकतिर्य्यगानुपूर्व्यव्युच्छेदः ॥

अवु कारणमागि कृष्णनीललेश्याद्वय सासादननोळ् सुरायुष्यमुं सुरगतियुं देवानुपूर्व्यमुं तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरला सासादननोळ् पविमूरुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३ ॥ एवं काओदे कपोतलेश्ययोळमित नूर हत्तों भत्तुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११९ । वा कपोतलेश्याऽसंयतगुणस्थानदोळु नरकानुपूर्व्यमुं

भवनत्रयदेवानामपर्याप्तकाले अशुभलेश्यात्रयं । पर्याप्तेरुपरि तेजोलेश्याजघन्यांशः । अशुभलेश्यात्रयासंयतानां भवनत्रयाऽनुत्पत्तेर्देवद्विकं देवायुः सासादने व्युच्छित्तिः तादृक् सासादनानां तत्रोत्पत्तेः ॥३२५॥ तथैवाह—

ततः कारणात्कृष्णनीलयोः सासादने सुरगत्यायुरानुपूर्व्यतिर्यगानुपूर्व्याणि व्युच्छित्तिरेवं सति त्रयोदश

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर तथा सम्यक्त्व और तीन आनुपूर्वीका उदय होनेसे अठारह १८। उदय एक सौ एक १०१।

भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके अपर्याप्त अवस्थामें तीन अशुभ लेश्या होती हैं। और पर्याप्त होनेपर तेजोलेश्याका जघन्य अंश होता है। तीन अशुभलेश्यावाले असंयत सम्यग्दृष्टी मरकर भवनत्रिकमें उत्पन्न नहीं होते। इसलिए देवगति, देवानुपूर्वी और देवायुकी व्युच्छित्ति सासादनमें कही है; क्योंकि अशुभलेश्यावाले सासादन सम्यग्दृष्टि भवनत्रिकमें उत्पन्न हो सकते हैं ॥३२५॥

वही कहते हैं—

इसी कारणसे कृष्ण और नीलमें सासादन गुणस्थानमें देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, और तिर्यंचानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होनेसे तेरहकी व्युच्छित्ति होती है।

तिर्य्यगानुपूर्व्यमुमेरडु मुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवंतागुत्तं विरला कपोतलेश्यासंयतसम्यग्दृष्टिप्रथमपृथ्वियोळु पुट्टुवनप्पुदरिंदं द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ नरकद्विकमु २ वैक्रियिकद्विकमुं २ नारकायुष्यमुं १ तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमुं ३ मनुष्यानुपूर्व्यमुमंतु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळ्गुदयव्युच्छित्तियक्कुमेंदितु पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदं ।

अनंतरं शुभलेश्यात्रयमार्गणेयोळुदययोग्यप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तेउतिए सगुणोघं णादाविगिविगल थावरचउक्कं ।
णिरयदुतदाउतिरियाणुगं णराणू ण मिच्छदुगे ॥३२७॥

तेजस्त्रये स्वगुणौघः नातापैकविकलस्थावरचतुष्कं । नरकद्वयतदायुस्तिर्य्यगानुपूर्व्यं नरानुपूर्व्यं न मिथ्यादृष्टिद्विके ॥

तेजःपद्मशुक्ललेश्यात्रयमार्गणेयोळु स्वगुणौघमक्कुमल्लियातपनामकुं १ एकेंद्रियजातियुं १ विकलत्रयमुं ३ स्थावरमुं १ । सूक्ष्ममुं १ अपर्य्याप्तमुं १ साधारणशरीरमुं १ नरकद्विकमुं २ । नरकायुष्यमुं १ । तिर्य्यगानुपूर्व्यमुं १ यितु पदिमूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरों भत्तुं प्रकृतिगळुदय योग्यंगळप्पुवल्लि । तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयदोळु तीर्त्थमं कळेदु योग्यप्रकृतिगळु नूरेंदु

---

१३ । एवं कपोतलेश्यायामपि एकान्नविंशतिशतमुदययोग्यं भवति ११९ । तदसंयते गुणस्थाने नरकतिर्यगानुपूर्व्ये व्युच्छित्तिरेवं सति तदसंयतप्रथमपृथ्व्यामुत्पद्यते तेन द्वितीयकषायचतुष्कं नरकद्विकवैक्रियिकद्विकं नारकायुस्तिर्यगानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं मनुष्यानुपूर्व्यं चेति चतुर्दश व्युच्छित्तिरित्युक्तं ॥३२६॥ अथ शुभलेश्यात्रयस्याह—

तेजःपद्मशुक्ललेश्यासु स्वगुणौघः । तत्रातप एकेंद्रियं विकलत्रयं स्थावरं सूक्ष्ममपर्याप्तं साधारणं नरकद्विकं तदायुस्तिर्यगानुपूर्व्यं च नेति नवोत्तरशतमुदययोग्यं भवति । तत्रापि तेजःपद्मयोस्तीर्थकरत्वं नेत्यष्टोत्तरशतं

इसी प्रकार कापोत लेश्यामें भी उदययोग्य एक सौ उन्नीस ११९ हैं । वहाँ असंयत गुणस्थानमें नरकानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वीकी व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर कापोतलेश्यावाला असंयत प्रथम नरकमें उत्पन्न होता है अतः दूसरी कषाय चार, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियिकद्विक, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन और मनुष्यानुपूर्वी इन चौदहकी व्युच्छित्ति कही है ॥३२६॥

कृष्णनील रचना ११९

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	६	१३	१	१२
उदय	११७	१११	९८	९९
अनुदय	२	८	२१	२०

कापोत रचना ११९

	मि.	सा.	मि.	अ.
व्यु.	५	१२	१	१४
उदय	११७	१११	९८	१०१
अनु.	२	८	२१	१८

आगे तीन शुभ लेश्याओंमें कहते हैं—

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यामें अपने गुणस्थानवत् जानना । उनमें आतप, एकेन्द्रिय, विकलत्रय, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु और तिर्यंचानुपूर्वीका उदय न होनेसे उदययोग्य एक सौ नौ हैं । उनमें भी तेजोलेश्या और पद्म-

१०८। मिथ्यादृष्टयादि सप्तगुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियो देयुदय-व्युच्छित्तियक्कुं १। सासादननोळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्क मुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतियो देयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कु १ मसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमु ३ मंतु त्रयोदशप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायमुं तिर्य्यगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १ तिर्य्यंग्गतियु १ मंतें दुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळाहारद्विकमुं २। स्त्यानगृद्धित्रयमु ३ मंतु पंचप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतिमसंहननत्रयमुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु ४ मंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियु सम्यक्त्वप्रकृतियुं आहारकद्विकमुं २ णराणू ण मिच्छ दुगे येंदु मनुष्यानुपूर्व्यमु १ मंतय्दुं प्रकृति-गळुगनुदयंगळक्कुं ५। उदयंगळु नूर मूरु १०३॥ सासादनगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळारु ६। उदयंगळु नूररेरडु १०२॥ मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु हत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयंगळोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पत्तु १०। उदयंगळु तो भत्तेंदु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु पन्नो दरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मनुष्यानुपूर्व्यमं देवानुपूर्व्यमुमनंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु

१०८। गुणस्थानानि सप्तान्यानि। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः १। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं १। असंयते द्वितीयकषायाः सुरद्विकं वैक्रियिकद्विकं सुरायुमनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश। देशसंयते तृतीयकषायास्तिर्यगायुरुद्योतो नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेत्यष्टौ ८ प्रमत्ते आहारकद्विकं स्त्यानगृद्धित्रयं चेति पंच ५। अप्रमत्ते सम्यक्त्वमंतिमसंहननत्रयं चेति चत्वारि ४। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वमाहारकद्विकं 'णराणूण मिच्छदुगे' इति मनुष्यानुपूर्व्यं चेति पंचानुदयः ५ उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३। सासादने एकं संयोज्यानुदयः षट् उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रेऽनुदयः चतुष्कं देवानुपूर्व्यं च मिलित्वा मिश्रोदयाद्दश १०। उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयतेऽनुदये एकं संयोज्य सम्यक्त्वमनुष्यदेवानुपूर्व्योदयादष्टौ ८। उदयः शतं १००।

लेश्यामें तीर्थंकरका उदय होनेसे एक सौ आठका उदय है। गुणस्थान आदिके सात होते हैं। उनमें मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन सब तेरह १३। देशसंयतमें तीसरी कषाय चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र, तिर्यंचगति आठ। प्रमत्तमें स्त्यानगृद्धि आदि तीन आहारकद्विक ५। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व और अन्तके तीन संहनन सब चार। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और मनुष्यानुपूर्वी मिलकर अनुदय पाँच। उदय एक सौ तीन १०३।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय छह। उदय एक सौ दो १०२।

३. मिश्रमें अनुदय चार और देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे दस १०। उदय अठानवे ९८।

४. असंयतमें अनुदय एक मिलाकर सम्यक्त्व, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे आठ ८। उदय सौ १००।

कूडुत्तं विरलनुदयंगळ्गे दु ८। उदयंगळ् नूरु १००। देशसंयतगुणस्थानदोळ् पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तो दु २१ उदयंगळ्गे ण्भत्तेळ् ८७। प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळ्गे दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तो भत्तु अवरोळाहारकद्विकमं कळे दुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेल् २७ उदयंगलेण्भत्तो दु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोलप्पुगूडियनुदयंगलु मूवत्तेरडु ३२॥ उदयंगलेप्पत्तारु ७६॥ संदृष्टि :—

तेज० पद्म० योग्य १०८।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ
व्यु	१	४	१	१३	८	५	४
उ	१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६
अ	५	६	१०	८	२१	२७	३२

शुक्ललेश्यामार्गणेयोळ् योग्यप्रकृतिगळ् नूरो भत्तु १०९। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदलागि पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् मिथ्यात्वप्रकृतियो दुदयव्युच्छित्ति १। सासावननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळ् मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १॥ असंयतगुणस्थानदोळ् द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ दुर्भगत्रयमुमितु पदिमूरुं प्रकृतिगळ् दयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ देशसंयतादिगुणस्थानंगळोळ् यथाक्रमदिदं अडपंचय चउर छक्क छच्चेव इगिदुगसोळस वुदाळ प्रकृतिगळ् दयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळ् मिश्रप्रकृति सम्यक्त्वप्रकृति आहारद्विक तीर्थंकरनाम णराणू ण मिच्छदुगे एंदु मनुष्यानुपूर्व्यमुमंतु षट्प्रकृतिगळनुदयंगळ् ६ उदयंगळ्

देशसंयते त्रयोदश संयोज्यानुदयः एकविंशतिः २१। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्ट संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयः सप्तविंशतिः २७। उदय एकाशीतिः। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयो द्वात्रिंशत् ३२। उदयः षट्सप्ततिः ७६।

शुक्ललेश्यायां—उदययोग्यं नवोत्तरशतं १०९। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश १३। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं। मिश्रे मिश्रं। असंयते द्वितीयकषायचतुष्कं, सुरचतुष्कं, सुरायुर्मनुष्यानुपूर्व्यं दुर्भगत्रयं चेति त्रयोदश १३। देशसंयतादिषु यथाक्रमं 'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव

५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय इक्कीस २१। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय सत्ताईस, उदय इक्यासी ८१।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय बत्तीस ३२। उदय छियत्तर ७६।

शुक्ललेश्यामें उदययोग्य एक सौ नौ १०९। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि तेरह। मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार। मिश्रमें मिश्र। असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग आदि तीन ये तेरह। देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह,

नूर मूरु १०३। सासादनगुणस्थानदोळु ओंबुगूडियनुदयंगळेळु ७। उदयंगळु नूररेरडु १०२॥ मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कुगूडियनुदयंगळु पन्नोंदरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु देवानुपूर्व्यमं कळेदनुदयंगळोळु कुडुत्तं विरलनुदयंगळु पन्नोंदु। उदयंगळु तोंभत्तेंदु ९८॥ असंयतगुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळु पन्नेरडरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं देवानुपूर्व्यमं मनुष्यानुपूर्व्यमनंतु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोंभत्तु ९। उदयंगळु नूरु १००॥ देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७॥ प्रमत्तगुणस्थानदोळेंदु गूडियनुदयंगळु मूवत्तरोळु आहारद्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तेंदु २८। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळु मूवत्तमूरु ३३ उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु मूवत्तेळु ३७। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु आरुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तमूरु ४३। उदयंगळरुवत्तारु ६६॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तोंभत्तु ४९ उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषाय गुणस्थानदोळोंदु गूडियनुदयंगळय्वत्त ५०। उदयंगळय्त्तोंभत्तु-

---

इगिदुगसोलसवादालं'। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्विकतीर्थकरत्वानि 'णराणू ण मिच्छदुगे' इति मनुष्यानुपूर्व्यं चेत्यनुदयः ६। उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३। सासादने एकं संयोज्यानुदयः सप्त ७। उदयो द्व्युत्तरशतं १०२। मिश्रेऽनुदये चतुष्कं देवानुपूर्व्यं च संयोज्य मिश्रोदयादेकादश उदयोऽष्टानवतिः ९८। असंयते एकं संयोज्य सम्यक्त्वदेवमनुष्यानुपूर्व्योदयान्नव ९ उदयः शतं १००। देशसंयते त्रयोदश संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्याहारकद्विकौदयादनुदयोऽष्टाविंशतिः २८। उदय एकाशीतिः ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रयस्त्रिंशत् ३३। उदयः षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणे चतुष्कं संयोज्यानुदयः सप्तत्रिंशत् ३७। उदयो द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणेऽनुदयस्त्रिचत्वारिंशत् ४३। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट्संयोज्यानुदय एकान्नपंचाशत् ४९। उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकं संयोज्यानुदयः

छह एक, दो, सोलह तथा बयालीस। ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक, तीर्थंकर, मनुष्यानुपूर्वी, इन छहका अनुदय। उदय एक सौ तीन।

२. सासादनमें एक मिलाकर अनुदय सात। उदय एक सौ दो।

३. मिश्रमें अनुदय चार और देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे ग्यारह। उदय अठानबे।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व, देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय नौ। उदय एक सौ १००।

५. देशसंयतमें तेरह मिलाकर अनुदय बाईस २२। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें आठ मिलाकर आहारकद्विकका उदय होनेसे अनुदय अठाईस। उदय इक्यासी।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तेंतीस। उदय छियत्तर।

८. अपूर्वकरणमें चार मिलाकर अनुदय सैंतीस ३७। उदय बहत्तर ७२।

९. अनिवृत्तिकरणमें अनुदय तैंतालीस ४३। उदय छियासठ ६६।

५९। क्षीणकषायगुणस्थानदोळ रडु गूडियनुदयंगळय्वत्तेरडु ५२। उदयंगळय्वत्तेळु ५७॥ सयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु पदिनारुगूडियनुदयंगळरुवत्तेरोळु तीर्थमं कळे दुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तेळु ६७। उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। संदृष्टि :—

शुक्ललेश्यायोग्य १०९

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
ध्रु	१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	६	७	११	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

भव्विदरुवसमवेदगखइए सुगुणोघमुवसमे खइए।
ण हि सम्ममुवसमे पुण णादितियाणू य हारदुगं ॥३२८॥

भव्येतरोपशमवेदकक्षायिके स्वगुणौघः उपशमे क्षायिके न हि सम्यक्त्वमुपशमे पुनर्नादित्रयानुपूर्व्यं चाहारकद्विकं ॥

भव्यमार्गणेयोळमितरमभव्यमार्गणेयोळमुपशमसम्यक्त्वमार्गणेयोळं वेदकसम्यक्त्वमार्गणेयोळं क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणेयोळं स्वगुणौघमक्कुमुपशमदोळं सम्यक्त्वप्रकृतियिल्लेकें दोडे उपशमसम्यक्त्वदोळु दर्शनमोहत्रयक्के प्रशस्तोपशममुंटप्पुदरिंदमुदयक्के बारदु। क्षायिकसम्यक्त्वदोळु दर्शनमोहत्रयं क्षपियिसल्पट्टुदप्पुदरिंद नष्टमादुदप्पदरिंदं। मत्तमुपशमसम्यक्त्वदोळु

पंचाशत् ५०। उदयः एकान्नषष्टिः ५९। क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदयो द्वापंचाशत् ५२। उदयः सप्तपंचाशत् ५७। सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थकरत्वोदयादनुदयः सप्तषष्टिः ६७। उदयो द्वाचत्वारिंशत् ४२॥ ३२७॥

भव्याभव्योपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वमार्गणासु स्वगुणौघः किंतु उपशमसम्यक्त्वे दर्शनमोहस्य प्रशस्तो-

---

१०. सूक्ष्म साम्परायमें छह मिलाकर अनुदय उनचास ४९। उदय साठ ६०।

११. उपशान्त कषायमें एक मिलाकर अनुदय पचास ५०। उदय उनसठ ५९।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय बावन ५२। उदय सत्तावन ५७।

१३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय सड़सठ। उदय बयालीस ॥३२७॥

तेज-पद्मलेश्या १०८

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.
१	४	१	१३	८	५	४
१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६
५	६	१०	८	२१	२७	३२

शुक्ललेश्या १०९

मि.	सा.	मि	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.
१	४	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
१०३	१०२	९८	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
६	७	११	९	२२	२८	३३	३७	४३	४९	५०	५२	६७

भव्य, अभव्य, उपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणाओंमें अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना। किन्तु उपशम सम्यक्त्वमें दर्शनमोहका प्रशस्त उपशम

नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमुमाहारकद्विकमुमिल्लेकेंदोडे[1] प्रथमोपसम्यक्त्वदोळु प्राग्बद्धनरकतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यरादोडं मरणमिल्लेकेंदोडे :—

मिस्साहारस्सय खवगा चउमाणपढमपुव्वा य ।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥
अणसंजोजिवमिच्छे मुहुत्त अंतोत्ति णत्थि मरणं तु ।
कदकरणिज्जं जाव दु सव्वपरट्ठाण अट्ठपदा ॥

निवृत्यपर्य्याप्तकरुं आहारकमिश्रकायरुं क्षपकरुगळुमुपशमश्रेण्यारोहणप्रथमभागापूर्व्वकरणरुं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळुं सप्तमपृथ्वियगुणप्रतिपन्नरुगळुं न मरंति मरणमनेय्दरु। अनंतानुबंधियं विसंजोयिसि मिथ्यात्वमं पोद्दिदवर्गळगमंतर्म्मुहूर्त्तपर्य्यंतं मरणमिल्ल। दर्शनमोहक्षपकंगे कृतकृत्यत्वमेन्नेवरमन्नेवरं मरणमिल्ल। तु शब्ददिंदं बद्धदेवायुष्यरुगळुपशमश्रेण्यारोहणमं माडि मत्तमवतरणदोळुपशांतकषायगुणस्थानाद्यपूर्व्वकरणगुणस्थानावसानदोळु मरणमादोडे देवासंयतरप्परदु कारणदिंद प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यो-

---

पशमात् क्षायिकसम्यक्त्वे च क्षयात् सम्यत्वप्रकृतिर्न । पुनः उपशमसम्यक्त्वे नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्याहारकद्विकमपि न, प्राग्बद्धतदायुषामपि तत्रामरणात् ॥ ३२८ ॥

निर्वृत्यपर्याप्ता आहारकमिश्रकायाः क्षपका उपशमश्रेण्यारोहकप्रथमभागापूर्वकरणाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः सप्तमपृथ्वीगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियंते । अनंतानुबंधिकषायान्विसंयोज्य मिथ्यात्वं प्राप्तस्यांतर्मुहूर्तपर्यंतं[3] दर्शनमोहक्षपके च कृतकृत्यत्वं यावत्तावन्मरणं नास्ति । तुशब्दाद्बद्धदेवायुष्का उपशमश्रेण्यवतरणेऽपूर्वकरणगुणस्थानावसाने म्रियंते तदा देवासंयता एव जायंते ततो न प्रथमोपशमसम्यक्त्वे नरकतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्यो-

---

होनेसे और क्षायिक सम्यक्त्वमें क्षय होनेसे सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय नहीं होता। पुनः उपशम सम्यक्त्वमें नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी तथा आहारकद्विकका उदय नहीं होता, क्योंकि पूर्वमें जिन्होंने इन आयुओंका बन्ध किया है उनका भी उपशम सम्यक्त्वमें मरण नहीं होता ॥३२८॥

वही कहते हैं—

निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थावालोंका, आहारक मिश्रकायवालोंका, क्षपक श्रेणीवालोंका उपशमश्रेणिपर चढ़े हुए अपूर्वकरणके प्रथम भागवालोंका, प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टियोंका, और सातवें नरकमें ऊपरके गुणस्थानोंमें स्थित जीवोंका मरण नहीं होता। तथा अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन करके जो पीछे मिथ्यात्वमें आता है उसका एक अन्तर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता। दर्शन मोहका क्षय करनेवालेके जबतक कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिपना होता है तबतक मरण नहीं होता। 'तु' शब्दसे जिन्होंने पूर्वमें देवायुका बन्ध किया है वे उपशम श्रेणीसे उतरनेपर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त मरते हैं तो मरकर असंयत सम्यग्दृष्टि देव ही होते हैं। अतः प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और मनुष्यानुपूर्वी का उदय

---

१. द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळु नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमिल्लदोडं प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळीयानुपूर्व्यत्रयं घटिसदे एंदोडे पेल्दपरु—कृतकृत्यवेदकस्य प्रथमांतर्म्मुहूर्त्त पर्यंतं मरणं नास्ति । गुणस्थानच्युतिर्गतिच्युतिरित्युभयं । सव्वपरमट्ठाणं । २. द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळेंबुदु सुपाठं ॥ ३. ब °तं मरणं नास्तीति व ।

दयमिल्ल। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळावोडे देवायुष्यमं बिट्टु शेषायुष्यंगळगे सत्त्वमिल्लेकें दोडे उपशमश्रेण्यारोहणनिमित्तमागि सातिशयाप्रमत्तसंयतं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमं कैकोळगुमप्पुदरिंद मणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तु मेंदी नियममुंटप्पुदरिंदमा मूरु मायुष्यंगळगे सत्वमिल्लदु कारणदिंदमा मूरु मानुपूर्व्यंगळगुदयमिल्ल। प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोलमाहारकऋद्धिप्राप्तरिल्लप्पुदरिंदमाहारकद्विकक्कमुदयमिल्लेंदरिउवितरियत्पडुत्तं विरलु भव्य मार्गणेयोळु मूलौघमप्पुदरिंदमुदययोग्यप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ गुणस्थानंगळुमल्लि पदिनाल्कुमप्पुवु। मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु यथाक्रमदिंदमुदयव्युच्छित्तियुदयानुदयप्रकृतिगळु मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळ्दंते रचनाविशेषमं माडुत्तं विरलु संदृष्टि :—

भव्य मा० योग्य १२२।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

दयः। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वेऽपि देवायुर्विना न शेषायुःसत्त्वं उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तेनैव तत्सम्यक्त्वस्य स्वीकरणात् 'अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तु' इति नियमात् न तदानुपूर्व्यत्रयस्य सत्त्वं। तत उदयोऽपि न। उभयोपशमसम्यक्त्वे आहारकद्वयप्राप्ते न तद्द्विकोदयः। तथा सति भव्यमार्गणायां मूलौघ इत्युदययोग्यं द्वाविंशत्युत्तरशतं। गुणस्थानानि चतुर्दश। व्युच्छित्त्यादि गुणस्थानवत्। संदृष्टि :—

भव्यमार्ग = योग्य १२२।

व्यु	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

नहीं होता। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें भी देवायुके विना शेष आयुका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि उपशम श्रेणिपर आरोहण करने के लिए सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको स्वीकार करता है। और अणुव्रत महाव्रत देवायुके सिवाय अन्य आयुका बन्ध करनेवाले के होते नहीं, ऐसा नियम है। अतः उपशम सम्यक्त्वमें देव विना तीन आनुपूर्वी का सत्त्व नहीं होता। इसीसे उदय भी नहीं होता। दोनों ही उपशम सम्यक्त्वोंमें आहारकऋद्धि प्राप्त नहीं होती। अतः उपशम सम्यक्त्वमें आहारकद्विकका उदय नहीं होता।

ऐसा होनेपर भव्य मार्गणामें उदययोग्य एक सौ बाईस। गुणस्थान चौदह। व्युच्छित्ति आदि गुणस्थानवत् जानना। संदृष्टि—

अभव्यमार्गणेयोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुमल्लि सामान्योदययोग्यप्रकृतिगळु नूर हदिनेळु ११७। उपशमसम्यक्त्वमार्गणेयोळसंयतनोळुदयप्रकृतिगळु नूर नाल्करोळु णादि तियाणू य हारदुगमेंदु नरकतिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्यत्रयमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरु प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १००॥ असंयताद्यष्टगुणस्थानंगळप्पुवल्लियसंयतनोळु द्वितीयकषायचतुष्कमुं ४ सुरचतुष्कमुं ४ सुरायुष्यमुं १ नरकायुष्यमुं १ नरकगतिनाममुं १। दुर्भगत्रयमु ३ मंतु पदिनाल्कुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १४। यिल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षेयिंदं नरकगतियुं तदायुष्यमरियल्पडुगुं॥ देशसंयतनोळु तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ तिर्य्यगायुष्यमुं १ उद्योतमुं १ नीचैर्गोत्रमुं १ तिर्य्यग्गतियुं १ अंतेंटुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कु ८ मिल्लियुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षेयिंदमी तिर्य्यगायुरादिप्रकृतिचतुःकोदयमरियल्पडुगुं॥ प्रमत्तसंयतनोळु उभयोपशमसम्यक्त्वदोळमाहारकऋद्धिप्राप्तरिल्लप्पुदरिनाहारकद्वयमं कळेदु स्त्यानगृद्धित्रयक्कमयुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृतिगुदयमिल्लप्पुदरिंदमवं

अभव्यमार्गणायामेकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं। उदयप्रकृतयः सप्तदशोत्तरशतं ११७। उपशमसम्यक्त्वमार्गणायामसंयतोदये चतुरुत्तरशते 'णादितियाणूयहारदुगं' इत्याद्यानुपूर्व्यत्रयं सम्यक्त्वप्रकृतिश्च नेति शतमुदययोग्यं १००। गुणस्थानान्यसंयतादीन्यष्टौ। तत्रासंयते द्वितीयकषायचतुष्कं सुरनारकायुषी नरकगतिर्देवगतिद्विकं। वैक्रियिकद्विकं दुर्भगत्रयं चेति चतुर्दश व्युच्छित्तिः १४। अत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वापेक्षया नरकगतितदायुषी ज्ञातव्ये। देशसंयते तृतीयकषायाः तिर्यगायुरुद्योतौ नीचैर्गोत्रं तिर्यग्गतिश्चेत्यष्टौ। अत्रापि तदपेक्षयैव तिर्यगायुष्यादिचतुष्कं ज्ञातव्यं। प्रमत्तसंयते उभयोपशमसम्यक्त्वेऽप्याहारकर्द्धिप्राप्तेस्तद्द्वयाभावात् स्त्यानगृद्धित्रयं

भव्यमार्गणायोग्य १२२

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी	स.	अ.
व्यु.	५	९	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	१६	३०	१२
उदय	११७	१११	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अनुदय	५	११	२२	१८	३५	४१	४६	५०	५६	६२	६३	६५	८०	११०

अभव्यमार्गणामें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है। उदय प्रकृतियाँ एक सौ सतरह ११७।

उपशम सम्यक्त्व मार्गणामें असंयतमें उदययोग्य एक सौ चारमें से आदिकी तीन आनुपूर्वी और सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय न होने से उदययोग्य सौ हैं। गुणस्थान असंयत आदि आठ हैं। उनमें से असंयतमें दूसरी कषाय चार, देवायु, नरकायु, नरकगति, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक और दुर्भग आदि तीन इन चौदहकी व्युच्छित्ति होती है। यहाँ नरकगति और नरकायु प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षासे जानना। देशसंयतमें तीसरी कषाय चार, तिर्यंचायु, उद्योत, नीच गोत्र और तिर्यंच गति आठकी व्युच्छिति। यहाँ भी प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा ही तिर्यंचायु आदि चार जानना। प्रमत्तसंयतमें दोनों ही उपशम सम्यक्त्वमें आहारकऋद्धिका उदय न होनेसे आहारकद्विकका अभाव है। अतः

कळेदु चरमसंहननत्रयक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३॥ अपूर्व्वकरणनोळु षण्नोकषायंगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६। अनिवृत्तिकरणनोळु वेदत्रयमुं संज्वलनक्रोधादित्रयमुमंतारुं प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कुं ६॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं १॥ उपशांतकषायनोळु वज्रनाराच नाराचसंहननद्विकक्कुदयव्युच्छित्तियक्कु २ मंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळनुदर्य-
५ शून्यमेकं दोडे सम्यक्त्वप्रकृतियुमाहारकद्वयमुं २ तीर्त्थमुं राशियोळकळेदुवप्पुदरिंद उदयंगळ् नूरु॥ देशसंयतगुणस्थानदोळ् पदिनाल्कुगूडियनुदयंगळ् पदिनाल्कक्कुमप्पुवु १४। उदयंगळेंभत्तारु ८६॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळे दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेरडु २२। उदयंगळेप्पत्तेंदु ७८॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५। अपूर्वकरणगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनुदयंगळिप्पत्तेंदु २८। उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनु-
१० दयंगळ् मूवत्तनाल्कु ३४। उदयंगळरुवत्तारु ६६॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तु ४०। उदयंगळरुवत्तु ६०॥ उपशांतकषायवीतरागछद्मस्थगुणस्थानदोळ् ओंदुगूडियनुदयंगळ् नाल्वत्तोंदु प्रकृतिगळप्पुवु ४१। उदयप्रकृतिगळय्वत्तोंभत्तप्पुवु ५९। संदृष्टि :—

व्युच्छित्तिः ३। अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृत्यभावाच्चरमसंहननत्रयं ३। अपूर्वकरणे षण्णोकषायाः ६। अनिवृत्तिकरणे वेदत्रयं संज्वलनक्रोधादित्रयं च ६। सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः। उपशांतकषाये वज्रनाराचनाराचद्विकं।
१५ एवं सत्यसंयतेऽनुदयः शून्यं सम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थापनयनात्। उदयः शतं १००। देशसंयतेऽनुदयश्चतुर्दश १४ उदयः षडशीतिः ८६। प्रमत्तेऽष्टौ संयोज्यानुदयो द्वाविंशतिः २२। उदयोऽष्टसप्ततिः ७८। अप्रमत्ते त्रयं संयोज्यानुदयः पंचविंशतिः २५। उदयः पंचसप्ततिः। अपूर्वकरणे त्रयं संयोज्यानुदयोऽष्टाविंशतिः २८। उदयो द्वासप्ततिः ७२। अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् ३४। उदयः षट्षष्टिः ६६। सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४०। उदयः षष्टिः ६०। उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदय एकचत्वारिंशत्
२० ४१। उदय एकान्नषष्टिः ५९।

स्त्यानगृद्धि आदि तीनकी व्युच्छित्ति होती है। अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृतिका अभाव होनेसे अन्तके तीन संहनन की व्युच्छित्ति है। अपूर्वकरणमें छह नोकषाय। अनिवृत्तिकरणमें तीन वेद और तीन संज्वलनकषाय। सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभ। उपशान्त कषायमें वज्र नाराच और नाराच संहननकी व्युच्छित्ति होती है। ऐसा होने पर—

२५ ४ असंयतमें अनुदय शून्य क्योंकि सम्यक्त्व, तीर्थंकर और आहारक द्विक नहीं है। उदय सौ १००।

५ देश संयतमें अनुदय चौदह १४। उदय छियासी ८६।

६ प्रमत्तमें आठ मिलाकर अनुदय बाईस २२। उदय अठहत्तर ७८।

७ अप्रमत्तमें तीन मिलाकर अनुदय पचीस। उदय पचहत्तर ७५।

३० ८ अपूर्वकरणमें तीन मिलाकर अनुदय अठाईस २८। उदय बहत्तर ७२।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चौंतीस ३४। उदय छियासठ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय चालीस ४०। उदय साठ ६०।

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय इकतालीस ४१। उदय उनसठ ५९।

उपशमसम्यक्त्वयोग्यप्रकृतिगळु १००।

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
व्यु	१४	८	३	३	६	६	१	२
उ	१००	८६	७८	७५	७२	६६	६०	५९
अ	०	१४	२२	२५	२८	३४	४०	४१

वेदकसम्यक्त्वमार्गणेयोळु स्वगुणौघमप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिय प्रकृतिपंचकमुं ५ सासादननवकमुं ९ मिश्रन मिश्रमुं १ तीर्त्थमुं १ मितु पदिनारुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषस्वगुणौघमुदययोग्यप्रकृतिगळ् नूरारु १०६। असंयतादिनाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि असंयतकृतकृत्यवेदकंगे चतुर्गतित्वमुंटप्पुदरिंदं। तदपेक्षेयिं तद्गुणस्थानदोळिप्पं नाल्कानुपूर्व्यंगळुगूडि पदिनेळु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १७॥ देशसंयतनोळु तन्न गुणस्थानदंतुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ८॥ प्रमत्तसंयतनोळु आहारकऋद्धियुंटप्पुदरिंदं तन्न गुणस्थानदप्रकृतिपंचकक्कुदययव्युच्छित्तियक्कुं ५॥ अप्रमत्तसंयतनोळु तन्न गुणस्थानद नाल्कुं ४ मेले वेदकसम्यक्त्वमिल्लप्पुदरिंदमपूर्व्वकरणनारुं ६ अनिवृत्तिकरणनारु ६ सूक्ष्मसांपरायनोंदुं उपशांतकषायनेरडुं २ क्षीणकषायन पदिनारुं १६ सयोगकेवलिभट्टारक मूवत्तुं ३० अयोगिकेवलिभट्टारकन पन्नोंदु ११ मंतु एप्पत्तारुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ७६। मंतागुत्तं विरलसंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकक्कनुदयमक्कुं २ मुदयंगळु नूर नाल्कु १०४। देशसंयतगुणस्थानदोळु पदिनेळु गूडियनुदयंगळु पत्तों भत्तु १९। उदयंगळेण्भत्तेळु ८७॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळें दुगूडियनुदयंगळिप्पत्तेळरोळाहारक-

वेदकसम्यक्त्वमार्गणायां स्वगुणौघः इति मिथ्यादृष्ट्यादित्रयस्य पंचनवैकतीर्थं च नेत्युदययोग्यं षडुत्तरशतं १०६। असंयतादिचतुर्गुणस्थानानि। तत्रासंयते कृतकृत्यवेदकस्य चतुर्गतिषु संभवात्तदपेक्षया चत्वार्यानुपूर्व्याणीति सप्तदश व्युच्छित्तिः। देशसंयतेऽष्टौ ८। प्रमत्ते आहारकर्धिसद्भावात्पंच। अप्रमत्ते चतस्रः। उपरितनाश्च षट्षडेका द्वे षोडश त्रिंशदेकादश मिलित्वा षट्सप्ततिः ७६। अपूर्वकरणादिषु तत्सम्यक्त्वाभावात्। एवं सत्यसंयते आहारकद्विकमनुदयः। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयते सप्तदश

वेदक सम्यक्त्व मार्गणामें अपने गुणस्थानवत् जानना। मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें जिनकी व्युच्छित्ति होती है वे पाँच, नौ और एक तथा तीर्थंकरके न होनेसे उदय योग्य एक सौ छह १०६ हैं। असंयत आदि चार गुणस्थान होते हैं। उनमेंसे असंयतमें कृतकृत्य वेदक मरकर चारों गतियोंमेंसे किसी भी गतिमें उत्पन्न हो सकता है अतः उसकी अपेक्षासे चारों आनुपूर्वीका उदय होता है। इससे असंयतमें व्युच्छित्ति सतरह १७। देश संयतमें आठ ८। प्रमत्तमें आहारक ऋद्धि सम्भव होनेसे पाँच ५। अप्रमत्तमें चार तथा ऊपरके गुणस्थानोंकी छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और ग्यारह मिलकर छियत्तर। क्योंकि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें वेदक सम्यक्त्व नहीं होता। ऐसा होने पर—

४. असंयतमें आहारकद्विकका अनुदय। उदय एक सौ चार १०४।

द्विकमं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळिप्पत्तय्दु २५। उदयंगळेण्भत्तोंदु ८१। अप्रमत्त-गुणस्थानदोळय्दुगूडियनुदयंगळु मूवत्तु ३०। उदयंगळेप्पत्तारु ७६॥ संदृष्टि :—

वेदक योग्य १०६

०	अ	दे	प्र	अ
ध्रु	१७	८	५	७६
उ	१०४	८७	८१	७६
अ	२	१९	२५	३०

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणेयोळु मिथ्यादृष्टि ५ सासादनन ९ मिश्रन १ सम्यक्त्वप्रकृति १ अंतु पदिनारुं प्रकृतिगळं कळेदु शेषनूरारुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु १०६। अल्लि असंयतादि पन्नोंदुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि असंयतनोळु तन्न गुणस्थानद पदिनेळुं :—

खाइयसम्मो देसो णर एव तदो तहिं ण तिरियाऊ।
उज्जोवं तिरियगदी तेहिं अयदम्मि बोच्छेदो ॥३२९॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो नर एव ततस्तस्मिन्न तिर्य्यगायुरुद्योतस्तिर्य्यग्गतिस्तैरसंयते व्युच्छेदः॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियप्प देशसंयतं मनुष्यनेयप्पुदरिंदमल्लि तिर्य्यगायुष्यमुमुद्योतनाममुं तिर्य्यग्गतियुमंतु मूरुं प्रकृतिगळुदयमातनोळिल्लदु कारणमागियसंयतगुणस्थानदोळा मूरुं प्रकृति-गळुदयव्युच्छित्तियक्कुमप्पुदरिंवमउ सहितमागिप्पत्तु प्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियक्कु २०॥

संयोज्यानुदय एकान्नविंशतिः १९। उदयः सप्ताशीतिः ८७। प्रमत्तेऽनुदयेऽष्टसंयोज्याहारकद्विकोदयात् पंचविंशतिः २५। उदय एकाशीति ८१। अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदयस्त्रिंशत् ३०, उदयः षट्सप्ततिः ७६।

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यादृष्टयादित्रयस्य पंचदश सम्यक्त्वं च नेत्युदययोग्यं षडुत्तरशतं १०६। असंयताद्येकादश गुणस्थानानि। तत्रासंयते स्वस्य सप्तदश १७॥ १—२॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो मनुष्य एव ततः कारणात्तत्र तिर्यगायुरुद्योतस्तिर्यग्गतिश्चेति त्रीण्युदये न

---

५. देशसंयतमें सतरह मिलाकर अनुदय उन्नीस १९। उदय सत्तासी ८७।

६. प्रमत्तमें अनुदय आठ मिलाकर तथा आहारकद्विकका उदय होनेसे पच्चीस। उदय ८१।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय तीस ३०। उदय छियत्तर ७६।

क्षायिक सम्यक्त्व मार्गणामें मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें व्युच्छिन्न हुई पन्द्रह तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके न होनेसे उदय योग्य एक सौ छह १०६। असंयतसे लेकर ग्यारह गुणस्थान होते हैं। असंयतमें अपनी सतरह ॥३२८॥

देश संयत गुणस्थानमें क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं होता। इस कारणसे पंचम गुणस्थानमें तिर्यंचायु, उद्योत और तिर्यंचगति इन तीनका उदय यहाँ

देशसंयतनोळा मूरुं प्रकृतिगळुं कळेदुवप्पुदरिंदं तृतीयकषायचतुष्कमुं ४ नीचैर्गोत्रमुमंतय्दुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ ॥ प्रमत्तसंयतनोळु तन्न गुणस्थानद पंचप्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृति क्षपियिसल्पट्टुदप्पुदरिंदमदं कळेदु शेष मूरुं प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३ ॥ अपूर्व्वकरणं मोदल्गोंडु छक्क छच्चेव इगि दुग सोळस तीसं बारस प्रकृतिगळुगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु असंयतगुणस्थानदोळाहारकद्विकमुं २ तीर्त्थमुमनुदयमक्कुं ३ ॥ उदयंगळु नूर मुरु १०३ ॥ देशसंयतनोळिप्पत्तुगूडियनुदयंगळिप्पत्तमूरु २३ ॥ उदयंगळेण्भत्तमूरु ८३ ॥ प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळिप्पत्तें टरोळु आहारकद्विकमं कळेदुवयंगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगलिप्पत्तारु २६ । उदयंगळेण्भत्तु ८० ॥ अप्रमत्तगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळु मूवत्तों दु ३१ । उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५ ॥ अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु मूरुगूडियनुदयंगळु मूवत्तनाल्कु ३४ उदयंगळेप्पत्तेरडु ७२ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळारुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तु ४० । उदयंगळरुवत्तारु ६६ ॥ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळारु गूडियनुदयंगळु नाल्वत्तारु उदयंगळरुवत्तु ६० ॥ उपशांतकषायगुणस्थानदोळों दुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तेळु ४७ । उदयंगळय्वत्तों भत्तु ५९ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेरडु डुगूडियनुदयंगळु नाल्वत्तों भत्तु ४९ ।

संति तेन तत्त्रयस्य तत्सप्तदशभिः सहासंयतगुणस्थाने एव व्युच्छित्तिः २० । देशसंयते तत्त्रयाभावात् तृतीयकषाया नीचैर्गोत्रं चेति पंचैव ५ । प्रमत्ते स्वस्य पंच ५ । अप्रमत्ते सम्यक्त्वप्रकृतेः क्षपितत्वात्त्रयं । अपूर्वकरणादिषु 'छक्कछच्चेव इगिदुगसोलसतीसंबारस' एवं सत्यसंयते आहारकद्विकं तीर्थं चानुदयः । उदयस्त्र्युत्तरशतं १०३ । देशसंयते त्रिंशति संयोज्यानुदयस्त्रयोविंशतिः २३ । उदयस्त्र्यशीतिः ८३ । प्रमत्ते पंच संयोज्याहारकद्विकोदयादनुदयः षड्विंशतिः २६ । उदयोऽशीतिः ८० । अप्रमत्ते पंच संयोज्यानुदय एकत्रिंशत् ३१ । उदयः पंचसप्ततिः ७५ । अपूर्वकरणे तिस्रः संयोज्यानुदयश्चतुस्त्रिंशत् उदयो द्वासप्ततिः । अनिवृत्तिकरणे षट् संयोज्यानुदयश्चत्वारिंशत् ४० । उदयः षट्षष्टिः ६६ । सूक्ष्मसांपराये षट् संयोज्यानुदयः षट्चत्वारिंशत् ४६ । उदयः षष्टिः ६० । उपशांतकषाये एकां संयोज्यानुदयः सप्तचत्वारिंशत् ४७ । उदय एकान्नषष्टिः ५९ ।

नहीं होता । अतः इन तीनोंकी व्युच्छित्ति भी सतरहके साथ असंयत गुणस्थानमें होती है । अतः असंयतमें व्युच्छित्ति बीस २० है । और देशसंयतमें इन तीनका अभाव होनेसे तीसरी कषाय चार और नीचगोत्र इन पाँचकी व्युच्छित्ति होती है । प्रमत्तमें अपनी पाँच ।

अप्रमत्तमें सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय हो जानेसे तीन । अपूर्वकरण आदिमें क्रमसे छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस, बारह ।

४. असंयतमें आहारक द्विक और तीर्थंकरका अनुदय । उदय एक सौ तीन ।

५. देश संयतमें बीस मिलाकर अनुदय तेईस २३ । उदय तेरासी ८३ ।

६. प्रमत्तमें पाँच मिलाकर आहारक द्विकका उदय होनेसे अनुदय छब्बीस २६ । उदय अस्सी ८० ।

७. अप्रमत्तमें पाँच मिलाकर अनुदय इकतीस ३१ । उदय पिचहत्तर ।

८. अपूर्वकरणमें तीन मिलाकर अनुदय चौंतीस । उदय बहत्तर ७२ ।

९. अनिवृत्तिकरणमें छह मिलाकर अनुदय चालीस । उदय छियासठ ।

१०. सूक्ष्मसाम्परायमें छह मिलाकर अनुदय छियालीस । उदय साठ ।

उदयंगळय्वत्तेळु ५७ ॥ सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पदिनारु गूडियनुदयंगळरुवत्तय्दरोळ् तीर्थंकर नाममं कळेदुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलुनुदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४ । उदयंगळु नाल्वत्तेरडु ४२ ॥ अयोगिकेवलि भट्टारकगुणस्थानदोळमूवत्तुगूडियनुदयंगळु तो भत्तनाल्कु ९४ ॥ उदयंगळ् पन्नेरडु १२ । संदृष्टि :—

क्षायिक यो० १०६ ।

०	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
व्यु	२०	५	५	३	६	६	१	२	१६	३०	१२
उ	१०३	८३	८०	७५	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
अ	३	२३	२६	३१	३४	४०	४६	४७	४९	६४	९४

५ क्षीणकषाये द्वे संयोज्यानुदय एकान्नपंचाशत् ४९ । उदयः सप्तपंचाशत् ५७ । सयोगे षोडश संयोज्य तीर्थोदयादनुदयः चतुःषष्टिः, उदयो द्वाचत्वारिंशत् । अयोगे त्रिंशतं संयोज्यानुदयश्चतुर्णवतिः ९४ । उदयो द्वादश १२ ॥ ३२९ ॥

११. उपशान्तकषायमें एक मिलाकर अनुदय सैंतालीस । उदय उनसठ ।

१२. क्षीणकषायमें दो मिलाकर अनुदय उनचास । उदय सत्तावन ।

१० १३. सयोगीमें सोलह मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौसठ ६४ । उदय बयालीस ।

१४. अयोगीमें तीस मिलाकर अनुदय चौरानबे । उदय बारह ॥३२९॥

उपशम सम्यक्त्व रचना १००

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.
१४	८	३	३	६	६	१	२
१००	८६	७८	७५	७२	६६	६०	५९
०	१४	२२	२५	२८	३४	४०	४१

वेदक सम्यक्त्व रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.
१७	८	५	४
१०४	८७	८१	७६
२	१९	२५	३०

क्षायिक सम्यक्त्व रचना १०६

अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
२०	५	५	३	६	६	१	२	१६	३०	१२
१०३	८३	८०	७५	७२	६६	६०	५९	५७	४२	१२
३	२३	२६	३१	३४	४०	४६	४७	४९	६४	९४

सेसाणं सगुणोघं सण्णिस्स वि णत्थि ताव साहरणं ।
थावर-सुहुमिगिविगलं असण्णिणो वि य ण मणुदुच्चं ॥३३०॥

शेषाणां स्वगुणौघः संज्ञिनश्च नास्त्यातप साधारणं । स्थावरसूक्ष्मैकविकलमसंज्ञिनोपि च न मनुष्यद्वयोच्चं ॥

शेषमिथ्यादृष्टिसासादन मिश्ररुचिगळ्गे स्वगुणौघमक्कुमल्लि मिथ्यारुचिगळ्गे मिश्रप्रकृति- ५
सम्यक्त्वप्रकृति आहारकद्वयतीर्थंकर नाममंतप्पुं प्रकृतिगळं कळेदु नूरपविनेळुं प्रकृतिगळुदय-
योग्यंगळप्पुवु ११७ ॥ सासादनरुचिगळ्गा प्रकृतिपंचकमुं ५ मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ सूक्ष्मापर्याप्त-
साधारणत्रयमुमातपनाममुं नरकानुपूर्व्यमुमंतु पन्नों दु प्रकृतिगळं कळेदु नूर पन्नों दु प्रकृतिगळु-
दययोग्यंगळप्पुवु १११ । मिश्ररुचिगळ्गा पन्नों दुं प्रकृतिगळोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदु शेष पत्तुं प्रकृति-
गळं १० । अनंतानुबंधिचतुष्कमुं ४ । एकेंद्रियजातियुं १ स्थावरनाममुं १ विकलत्रयमुं ३ तिर्य्यंगानु- १०
पूर्व्यमुं १ मनुष्यानुपूर्व्यमुं १ देवानुपूर्व्यमु १ मितिप्पत्तेरडु प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूरुं प्रकृति-
गळुदययोग्यंगळप्पुवु १०० संज्ञिमार्गणेयोळु आतपनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ स्थावर-
नाममुं १ सूक्ष्मनाममु १ मेकेंद्रियजातिनाममुं १ विकलेंद्रियजातित्रयमुं ३ तीर्थंकरनाममुमिं
तों भत्तुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूर पदिमूरुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ११३ ॥ मिथ्यादृष्टयादि-
पन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवेकेंदोडे सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळ्गे संज्ञित्वमिल्लेकेंदोडे "संज्ञिनः १५
समनस्काः" एंदितु समनस्क रल्लप्पु दरिंदं । अंतादोडऽमनस्करेकल्लेंदोडे तिर्य्यंचरुगळ्गल्लदम-
नस्कव्यपदेशमिल्लप्पुदरिंदं । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ अपर्याप्तनाममु १ मितेरडुं

शेषाणां मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुचीनां स्वगुणौघः । तत्र मिथ्यारुचीनां मिश्रसम्यक्त्वाहारकद्वयतीर्थ-
करत्वानि नेत्युदययोग्यं सप्तदशोत्तरशतं ११७ । सासादनरुचीनां तत्पंचकं मिथ्यादृष्टिः व्युच्छित्तिपंचकं
नरकानुपूर्व्यं च नेत्येकादशोत्तरशतं १११ । मिश्ररुचीनां मिश्रं विना ता एव दश पुनः अनंतानुबंधिचतुष्कमेकें- २०
द्रियं स्थावरं विकलत्रयं तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्याणि च नेति शतं १०० ।

संज्ञिमार्गणायामातपसाधारणस्थावरसूक्ष्मैकेंद्रियविकलत्रयतीर्थकरत्वानि नेति त्रयोदशशतमुदययोग्यं ।
११३ । गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टयादीनि द्वादश । सयोगायोगौ न संज्ञिनौ भावमनोरहितत्वात् । नाप्यसंज्ञिनौ

शेष मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र सम्यक्त्वमें अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना ।
उनमें से मिथ्यारुचिमें मिश्र, सम्यक्त्व, आहारकद्विक और तीर्थंकरके न होनेसे उदययोग्य २५
एक सौ सतरह ११७ हैं । सासादनरुचिमें वे पाँचों, मिथ्यादृष्टिमें व्युच्छित्ति पाँच और
नरकानुपूर्वी नहीं होनेसे उदय योग्य एक सौ ग्यारह हैं । मिश्ररुचिमें मिश्रके बिना दस ऊपर
कही तथा अनन्तानुबन्धी चार, एकेन्द्रिय स्थावर, विकलत्रय, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी,
देवानुपूर्वी ये बाईस न होनेसे उदय योग्य सौ हैं । इन सबमें अपना-अपना एक ही गुण-
स्थान होता है । ३०

संज्ञीमार्गणामें आतप, साधारण, स्थावर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, विकलत्रय और तीर्थंकरके
न होनेसे उदययोग्य एक सौ तेरह हैं । गुणस्थान मिथ्यादृष्टिसे लेकर बारह हैं । सयोगकेवली
और अयोगकेवली संज्ञी नहीं हैं क्योंकि उनके भावमन नहीं होता । और न वे असंज्ञी हैं

प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं २॥ सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कक्कुदयव्युच्छित्तियक्कुं ४॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १ असंयतं मोदल्गोंडु क्षीणकषायावसानमाद गुणस्थानंगळोळु सप्तरस १७ अष्ट ८ पंचय ५ चउर ४ छक्क ६ छच्चेव ६ इगि १ दुग २ सोळस १६ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवु। मत्तं सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयद नाल्वत्तेरडुं प्रकृतिगळोळु तीर्थ्यमं कळेदु शेष नाल्वत्तो दु प्रकृतिगळगे क्षीणकषायगुणस्थानदोळुदय व्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरला क्षीणकषायगुणस्थानदोळय्वत्तेळुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कु-५७। मल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मिश्रप्रकृतियं १ सम्यक्त्वप्रकृतियु १ माहारकद्विकमु २ मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कु ४। उदयंगळु नूरो भत्तु १०९॥ सासादनगुणस्थानदोळेरडुगूडियनुदयंगळारररोळु ६ नरकानुपूर्व्यमनुदयंगळोळु कळेदनुनुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळेळु ७। उदयंगळ् नूरारु १०६॥ मिश्रगुणस्थानदोळु नाल्कु गूडियनुदयंगळु पन्नोंदरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयंगळोळु कूडि मत्तमुदयप्रकृतिगळोळु तिर्य्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यत्रयमं कळेदनुदयंगळोळ् कूडुत्तं विरलनुदयंगळ् पदिमूरु १३। उदयंगळु नूरु १००॥ असंयतगुणस्थानदोळो दुगूडियनुदयंगळु पदिनाल्करोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमनानुपूर्व्यचतुष्कमुमनंतय्दुं प्रकृतिगळं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळोंभत्तु ९। उदयंगळु नूर नाल्कु १०४॥ देशसंयतगुणस्थान मोदल्गोंडु यो प्रकारविननुदयोदयंगळं यथाक्रमदिदमिप्पत्तारुमेण्भत्तेळु ८७॥ मूवत्तेरडु ३२ मेण्भत्तो दु ८१। मूवत्तेळु

तिर्यग्भ्योऽन्यत्र तद्व्यपदेशाभावात्। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वमपर्याप्तं चेति द्वयं व्युच्छित्तिः। सासादनेऽनंतानुबंधिचतुष्कं ४। मिश्रे मिश्रं १। असंयतादिषु 'सत्तरसं अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलस' सयोगायोगस्य विना तीर्थकरत्वमेकचत्वारिंशत्। ४१। एवं सति मिथ्यादृष्टौ मिश्रं सम्यक्त्वमाहारकद्विकं चानुदयः ४ उदयो नवोत्तरशतं १०९। सासादने द्वे नरकानुपूर्व्यं च मिलित्वानुदयः सप्त ७। उदयः षडुत्तरशतम् १०६। मिश्रेऽनुदयश्चतस्रः तिर्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्याणि च संयोज्य मिश्रोदयात्त्रयोदश १३। उदयः शतं १००। असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वानुपूर्व्यचतुष्कोदयादनुदयो नव ९। उदयश्चतुरुत्तरशतं १०४। देशसंयतादिष्वेव-

क्योंकि असंज्ञी व्यपदेश तिर्यंचोंमें ही होता है, अन्यत्र नहीं होता। उनमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्व और अपर्याप्त दो की व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी चार ४। मिश्रमें एक मिश्र। असंयतादिमें क्रमसे सतरह, आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह तथा सयोगी अयोगीकी तीर्थंकर विना इकतालीस मिलाकर १६ + ४१ = सत्तावन। ऐसा होने पर—

१. मिथ्यादृष्टिमें मिश्र, सम्यक्त्व और आहारकद्विक चारका अनुदय। उदय एक सौ नौ १०९।

२. सासादनमें दो और नरकानुपूर्वी मिलाकर अनुदय सात। उदय एक सौ छह।

३. मिश्रमें अनुदय चार और तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे तेरह १३। उदय सौ १००।

४. असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्व और चार आनुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय नौ ९। उदय एक सौ चार १०४।

मेप्पतारं ३७ । ७६ । नालवत्तो दुमेप्पत्तेरडु ४१ । ७२ । नाल्वत्तेळुमरुवत्तारु ४७ । ६६ । अय्वत्तमूरु मरुवत्तु ५३ । ६० । अय्वत्तनाल्कुमय्वत्तो भत्तु ५४ । ५९ । अय्वत्तारुमय्वत्तेळु ५६ । ५७ । प्रकृतिगलप्पुवु । संदृष्टि :—

संज्ञि यो० ११३

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी
व्यु	२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	५७
उ	१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अ	४	७	१३	९	२६	३२	३७	४१	४७	५३	५४	५६

असण्णिणोवि य ण मणुदुच्चं ॥

वेगुव्वछ पणसंहदिसंठाण सुगमण सुभग आउतियं । ५
आहारे सगुणोघं णवरि ण सव्वाणुपुव्वीओ ॥३३१॥

वैक्रियिकषट्पंचसंहनन संस्थान सुगमन सुभगायुस्त्रयं ३ । आहारे स्वगुणौघः नविनं न सर्व्वानुपूर्व्वाणि ॥

असंज्ञिमार्गणेयोळु मनुष्यद्विकमु २ । मुच्चैर्गोत्रमुं १ वैक्रियिकषट्कमुमारु ६ माद्यसंहनन-पंचकमु ५ माद्यसंस्थानपंचकमुं ५ प्रशस्तविहायोगतियुं १ सुभगत्रयमु ३ । नरकमनुष्यदेवायुस्त्रयमुं १०

मनुदयोदयौ यथाक्रमं षड्विंशतिः सप्ताशीतिः २६, ८७ । द्वात्रिंशत् एकाशीतिः ३२, ८१ । सप्तत्रिंशत् षट् सप्ततिः । ३७।७६ । एकचत्वारिंशद् द्वासप्ततिः ४१।७२ । सप्तचत्वारिंशत् षट्षष्टिः ४७ । ६६ । त्रिपंचाशत् षष्टिः ५३ । ६० । चतुःपंचाशत् एकान्नषष्टिः । ५४ । ५९ । षट्पंचाशत् सप्तपंचाशत् । ५६ । ५७ ॥३३०॥

असंज्ञिमार्गणायां मनुद्विकमुच्चैर्गोत्रं वैक्रियिकषट्कमाद्यसंहननपंचकम आद्यसंस्थानपंचकं प्रशस्तविहायो-

५. इसी प्रकार देशसंयत आदिमें अनुदय और उदय क्रमसे २६, ८७। बत्तीस ३२, १५
इक्यासी ८१। सैंतीस ३७, छियत्तर ७६। इकतालीस ४१, बहत्तर ७२। सैंतालीस ४७, छियासठ ६६। तिरपन ५३, साठ ६०। चौवन ५४, उनसठ ५९। छप्पन ५६, सत्तावन ५७ जानना ॥३३०॥

संज्ञीमार्गणारचना ११३

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.
व्यु.	२	४	१	१७	८	५	४	६	६	१	२	५७
उ.	१०९	१०६	१००	१०४	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७
अनु.	४	७	१३	९	२६	२३	३७	४१	४७	५३	५४	५६

असंज्ञी मार्गणामें मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, आदिके पाँच संहनन, आदिके पाँच संस्थान, २०

३ यितिप्पत्तारुं प्रकृतिगळं २६ मिथ्यादृष्टिय नूर पविनेळुं प्रकृतिगळोळु कळेदु शेष तों भत्तों दु प्रकृतिगळु उदययोग्यंगळप्पुवु ९१। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानंगळेरडेयप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुं १ आतपनाममुं १ सूक्ष्मत्रयमुं ३ मितय्दुं प्रकृतिगळुं ५ स्त्यानयानगृद्धित्रयमुं ३ परघातोद्योतोच्छ्वासत्रयमुं ३ दुःस्वरमु १ मप्रशस्तविहायोगतियु १ मितेंटुं प्रकृतिगळ्गं सासादननोळुदयमिल्लेर्कदोडा सासादनन भवप्रथमदोळु कालं जघन्यदिंद मेकसमयमुत्कृष्टदिंदमारावळिकालमप्पुदरिंदमा प्रकृत्यष्टकं तंतम्म पर्य्याप्तियिंदं मेलल्लदुदयिसदप्पुदरिनातनोळा प्रकृतिगळगुदयमिल्लप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळप्पुवंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टियोळुदयव्युच्छित्तिगळु पविमूरु १३॥ सासादननोळु तन्न गुणस्थानदों भत्तुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कु-९ मंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळनुदयं शून्यमुदयंगळु तों भत्तोंदु ९१। सासादनगुणस्थानदोळु पविमूरुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं १३। उदयप्रकृतिगळप्पत्तेंदु ७८॥ संदृष्टिः—

असंज्ञि यो० ९१।

०	मि	सा
व्यु	१३	९
उ	९१	७८
अ	०	१३

गतिः सुभगत्रयं नरकमनुष्यदेवायूंषि च मिथ्यादृष्टिः सप्तदशोत्तरशते नेत्येकनवतिरुदययोग्याः ९१। गुणस्थानद्वयं। तत्र मिथ्यादृष्टौ स्वस्य पंच पुनःस्त्यानगृद्धित्रयपरघातोद्योतोच्छ्वासदुःस्वराप्रशस्तविहायोगतीना पर्याप्तेरुपर्युदयनियमात्, सासादने स्तोककालत्वात्तदघटनात् ता अष्टौ च व्युच्छित्तिः। १३। सासादने स्वस्य नव ९। तथा सति मिथ्यादृष्टावनुदयः शून्यं। उदय एकनवतिः ९१। सासादने त्रयोदश संयोज्यानुदयः त्रयोदश १३। उदयोऽष्टसप्ततिः ७८।

प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, नरकायु, मनुष्यायु, देवायु ये छब्बीस प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टिके उदय योग्य एक सौ सतरहमें से नहीं होतीं। अतः उदय योग्य इक्यानवें ९१ हैं। गुणस्थान दो हैं। उनमें से मिथ्यादृष्टिमें अपनी पाँच और स्त्यानगृद्धि आदि तीन, परघात, उद्योत, उच्छ्वास, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति ये प्रकृतियाँ पर्याप्ति पूर्ण होनेके बाद उदयमें आती हैं और सासादनका काल थोड़ा होनेसे वहाँ इनका उदय सम्भव नहीं है अतः इन आठकी व्युच्छित्ति मिलकर तेरहकी होती है। सासादनमें अपनी नौ। ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें अनुदय शून्य। उदय इक्यानवें ९१। सासादनमें तेरह मिलाकर अनुदय तेरह। उदय अठहत्तर ७८।

आहारे स्वगुणौघः आहारमार्गणेयोळु सामान्योदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडरोळु १२२ नाल्कुमानुपूर्व्यंगळं कळेदु शेष नूर पदिनेंटुं प्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पु ११८ वल्लि मिथ्यादृष्टयादि पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवु। मिथ्यादृष्टियोळु तन्न गुणस्थानदय्दुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५। सासादननोळु तन्न गुणस्थानदोंभत्तुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ९॥ मिश्रनोळु मिश्रप्रकृतिगुदयव्युच्छित्तियक्कु १। असंयतनोळानुपूर्व्यंचतुष्टयमं कळेदुळिद पदिमूरुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १३॥ देशसंयतादिगळोळु अड ८। पंच य ५ चउर ४ छक्क ६ छच्चेव ६ इगि १ दुग २ सोळस १६ बादाळ ४२ प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुं २ मिश्रप्रकृतियुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितय्दुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कु ५ उदयप्रकृतिगळु नूर पदिमूरुं ११३। सासादनगुणस्थानदोळय्दु गूडियनुदयंगळु हत्तु १०। उदयंगळु नूरेंटु १०८। मिश्रगुणस्थानदोळोंभत्तुगूडियनुदयंगळु हत्तोंभत्तरोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हदिनेंटु १८। उदयंगळु नूरु १००॥ असंयतगुणदोळोंदुगूडियनुदयंगळु हत्तोंभत्तरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु हदिनेंटु १८। उदयंगळु नूरु १००॥ देशसंयतादि सयोगिकेवलिपर्य्यंतं यथासंख्यमागियनुदयंगळुमुदयंगळु मूवत्तोंदु मेणेण्भत्तेळु ३२। ८७। मूवत्तेळुमेण्भत्तोंदु ३७। ८१॥ नाल्वत्तेरडुमेप्पत्तारुं ४२।७६। नाल्वत्तारुमेप्पत्तेरडु ४६। ७२। अय्वत्तेरडुमरुवत्तारु ५२।६६॥ अय्वत्तेंटुमरुवत्तु ५८। ६०। मय्वत्तोंभत्तु मय्वत्तोंभत्तु ५९।५९। अरुवत्तोंदु मय्वत्तेळुं ६१। ५७।

आहारमार्गणायां—द्वाविंशत्युत्तरशते चतुरानुपूर्व्यं नेत्यष्टादशोत्तरशतमुदययोग्यं। ११८। गुणस्थानानि त्रयोदश १३। तत्र मिथ्यादृष्ट्यादित्रये स्वस्य पंच नवैकं व्युच्छित्तिः। असंयते त्रयोदश १३। आनुपूर्व्यचतुष्टयस्यापनीतत्वात्। देशसंयतादिषु—'अडपंचयचउरछक्कछच्चेव इगिदुगसोलसवादालं' एवं सति मिथ्यादृष्टौ तीर्थमाहारकद्विकं मिश्रं सम्यक्त्वं चेति पंचानुदयः ५। उदयस्त्रयोदशशतं ११३। सासादने पंच संयोज्यानुदयो दश १० उदयोऽष्टोत्तरशतं १०८। मिश्रे नव संयोज्य मिश्रोदयादनुदयोऽष्टादश १८। उदयः शतं १००। असंयते एकां संयोज्य सम्यक्त्वोदयादनुदयोऽष्टादश १८, उदयः शतं १००। देशसंयतादिष्वनुदयोदयौ एकत्रिंशत् ३१। सप्ताशीतिः ८७। सप्तत्रिंशत् ३७। एकाशीतिः ८१। द्वाचत्वारिंशत् ४२। षट्सप्ततिः ७६। षट्चत्वारिंशत् ४६। द्वासप्ततिः ७२। द्वापंचाशत् ५२, षट्षष्टिः ६६। अष्टपंचाशत्

आहारमार्गणामें एक सौ बाईसमें से चार आनुपूर्वी न होनेसे उदय योग्य एक सौ ११८। गुणस्थान तेरह। मिथ्यादृष्टि आदि तीनमें अपनी पाँच, नौ और एककी व्युच्छित्ति है। असंयतमें तेरह क्योंकि चार आनुपूर्वी नहीं हैं। देशसंयत आदिमें क्रमसे आठ, पाँच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, बयालीस। ऐसा होने पर मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, मिश्र, सम्यक्त्व, पाँचका अनुदय। उदय एक सौ तेरह ११३। सासादनमें पाँच मिलाकर अनुदय दस। उदय एक सौ आठ। मिश्रमें नौ मिलाकर मिश्रका उदय होनेसे अनुदय अठारह। उदय सौ १००। असंयतमें एक मिलाकर सम्यक्त्वका उदय होनेसे अनुदय अठारह, उदय सौ १००। देश संयत आदिमें अनुदय और उदय क्रमसे इकतीस ३१, सतासी ८७। सैंतीस ३७, इक्यासी ८१। बयालीस ४२, छियत्तर ७६। छियालीस ४६,

एप्पत्तारुं नाल्वत्तेरडुं ७६।४२। प्रकृतिगळप्पुवु। संदृष्टि :—

आहारमार्गणा यो० ११८।

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स
ध्रु.	५	९	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
उ	११३	१०८	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
अ	५	१०	१८	१८	३१	३२	४२	४६	५२	५८	५९	६१	७६

कम्मेवाणाहारे पयडीणं उदयमेवमादेसे।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३३२॥

कार्म्मणे इवानाहारे प्रकृतीनामुदय एवमादेशे। कथितोयं बलमाधवचंद्रार्च्चितनेमिचंद्रेण॥

कार्म्मणे पिवानाहारे अनाहारमार्गणेयोळु कार्म्मणकाययोगदोळे तंते स्वरद्विकमुं २ विहायोगतिद्विकमुं २ प्रत्येकसाधारणद्विकमुं २ आहारकद्विकमुं २ मौदारिकद्विकमुं २ मिश्रप्रकृतियु १ मुपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासपंचकमुं ५। वैक्रियिकद्विकमुं२। स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ संस्थानषट्कमुं ६। संहननषट्कमु ६ मितु मूवत्तमूरु ३३ प्रकृतिगळं कळदेंण्भत्तों भत्तुप्रकृतिगळुदययोग्यंगळप्पुवु ८९॥ गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगायोगिकेवलिगुणस्थानमें दितय्दुं ५ गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमपर्य्याप्तनाममुं सूक्ष्मनाममुमितु मूरुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ३। सासादननोळनंतानुबंधिकषायचतुष्कमु ४ मेकेंन्द्रियजातिनाममुं १ स्थावर नाममुं १ विकलत्रयमु ३ मितों भत्तुं प्रकृतिगळुं। स्त्रीवेदमिल्लिये व्युच्छित्तियक्कुमेकें दोडऽ-

५८। षष्टिः ६०। एकान्नषष्टिरेकान्नषष्टिः ५९। ५९। एकषष्टिः सप्तपंचाशत्। ६१। ५७। षट्सप्ततिर्द्वाचत्वारिंशत्। ७६। ४२॥ ३३१॥

अनाहारमार्गणायां कार्मणकाययोगवत्स्वरविहायोगतिप्रत्येकाहारकौदारिकद्विकानि मिश्रप्रकृत्युपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासा वैक्रियिकद्विकं स्त्यानगृद्धित्रयं संस्थानषट्कं संहननषट्कं च नेत्येकान्ननवतिरुदययोग्याः ८९, गुणस्थानानि पंच। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वापर्याप्तसूक्ष्माणि व्युच्छित्तिः ३। सासादने—

बहत्तर ७२। बावन ५२, छियासठ ६६। अठावन ५८, साठ ६०। उनसठ ५९, उनसठ ५९। इकसठ ६१, सत्तावन ५७। छियत्तर ७६, बयालीस ४२ ॥३३१॥

अनाहार मार्गणामें कार्मणकाययोगकी तरह सुस्वर दुस्वर, प्रशस्त अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, साधारण, आहारकद्विक, औदारिकद्विक, मिश्रप्रकृति, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, वैक्रियिकशरीर अंगोपांग, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, छह संस्थान, छह संहनन ये तेंतीस न होनेसे उदय योग्य नवासी ८९ हैं। गुणस्थान पाँच हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्व, अपर्याप्त, सूक्ष्म तीनकी व्युच्छित्ति है। सासादनमें अनन्तानुबन्धी

संयतं स्त्रीयागि पुट्टनप्पुदरिंदमंतु पत्तं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १० ॥ असंयतनोळु वैक्रियिकद्वितयरहितमागि तन्न गुणस्थानदोळु पंचदशप्रकृतिगळु १५ उद्योतरहितमागि देशसंयतनोळेळुं ७ प्रमत्तनल्लि शून्यमप्रमत्तन सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ अपूर्व्वकरणन नोकषायषट्कमुं ६ अनिवृत्तिकरणन स्त्रीवेदरहितप्रकृतिपंचकमुं ५ सूक्ष्मसांपरायन लोभमुं १ उपशांतकषायनोळु शून्यं क्षीणकषायन पदिनारु १६ मितिगिवण्णप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं ५१ । सयोगकेवलियोळु वेदनीयमोंदुं निर्म्माणनाममुं १ स्थिरास्थिरद्विकमुं २ शुभाशुभद्विकमुं २ तैजसकार्म्मणद्विकमुं २ वर्णचतुष्कमुं ४ अगुरुलघुकमु १ मितु पदिमूरु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कु १३ ॥ अयोगिकेवलियोळु वेदनीयमोंदु १ मनुष्यगतिनाममुं १ पंचेंद्रियजातिनाममुं १ सुभगनाममुं १ त्रसत्रयमु ३ मादेयनाममुं १ । यशस्कीर्त्तिनाममुं १ तीर्त्थंकरनाममुं १ मनुष्यायुष्यमुं १ उच्चैर्गोत्रमुं १ मेंब पन्नेरडुं प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियक्कुं १२ ॥ १०

अंतागुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुं १ तीर्त्थंकरनाममु १ मितेरडुं प्रकृतिगळगनुदयमक्कुं २ । उदयप्रकृतिगळेंभत्तेळु ८७ । सासादनगुणस्थानदोळु मूरु गूडियनुदयंगळय्दरोळु नरकद्विकमुमं नरकायुष्यमुमनुदयप्रकृतिगळोळु कळेदनुदयंगळोळु कूडुत्तं विरलदयंगळेंटु ८ । उदयंगळेंभत्तोंदु ८१ ॥ असंयतगुणस्थानदोळु पत्तुगूडियनुदयंगळु पदिनेंटरोळु १८ सम्यक्त्वप्रकृतियुमं तिर्य्यग्मनुष्यदेवानुपूर्व्यत्रितयमुम ३ मंतु नाल्कुं प्रकृतिगळं १५ कळेदुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळु पदिनाल्कु १४ उदयंगळेप्पत्तय्दु ७५ ॥ सयोग-

---

अनंतानुबंधिचतुष्कमेकेन्द्रियं स्थावरं विकलत्रयं स्त्रीवेदश्चेति दश १० । असंयते वैक्रियिकद्विकं विना पंचदश उद्योतं विना सप्त शून्यं सम्यक्त्वप्रकृतिः नोकषायषट्कं स्त्रीवेदं विना पंच सूक्ष्मलोभः शून्यं षोडश चेत्येकपंचाशत् । ५१ । सयोगे सातासातैकतरनिर्माणस्थिरास्थिरशुभाशुभतैजसकार्मणानि वर्णचतुष्कमगुरुलघुकं चेति त्रयोदश १३ । अयोगे स्वस्य द्वादश १२ । एवं सति मिथ्यादृष्टौ सम्यक्त्वं तीर्थं चानुदयः । उदयः सप्ताशीतिः ८७ । सासादनेऽनुदयस्त्रय नरकद्विकं नरकायुश्च मिलित्वाष्टौ ८ । उदय एकाशीतिः ८१ । असंयते दश संयोज्य सम्यक्त्वतिर्यग्मनुष्यदेव नुपूर्व्योदयादनुदयश्चतुर्दश १४ । उदयः पंचसप्ततिः ७५ । सयोगे एकपंचाशतं

चार, एकेन्द्रिय, स्थावर, विकलत्रय और स्त्रीवेद दसकी व्युच्छित्ति है । असंयतमें वैक्रियिकद्विकके बिना पन्द्रह, उद्योतके बिना सात, शून्य, सम्यक्त्वप्रकृति, छह नोकषाय, स्त्रीवेद बिना पाँच, सूक्ष्म लोभ, शून्य, सोलह ये सब मिलकर इक्यावन ५१ । सयोगीमें साता या असाता, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्णादि चार, अगुरुलघु ये तेरह । अयोगीमें अपनी बारह । ऐसा होनेपर—

१. मिथ्यादृष्टिमें सम्यक्त्व और तीर्थंकरका अनुदय । उदय सत्तासी ८७ ।

२. सासादनमें अनुदय तीन नरकगति नरकानुपूर्वी, नरकायु मिलकर आठ । उदय इक्यासी ८१ ।

४. असंयतमें दस मिलाकर सम्यक्त्व, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वीका उदय होनेसे अनुदय चौदह १४ । उदय पचहत्तर ७५ ।

---

१. म युमं नारकद्विकमुमं नरकायुष्यमुममंतु ।

केवलिगुणस्थानदोळ्वत्तों बुगूडियनुदयंगळरुवत्तय्दरोळु तीर्थंकरनामम कळे बुदयप्रकृतिगळोळु कूडुत्तं विरलनुदयंगळरुवत्तनाल्कु ६४ उदयप्रकृतिगळिप्पत्तय्दु २५। अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु पदिमूरुगूडियनुदयंगळ्पत्तेळु ७७। उदयंगळ् पन्नेरडु १२। संदृष्टि :—

अनाहार यो० ८९

०	मि	सा	अ	स	अ
व्यु	३	१०	५१	१३	१२
उ	८७	८१	७५	२५	१२
अ	२	८	१४	६४	७७

एवमादेशे इंतु मार्गणास्थानदोळु प्रकृतीनामुदयः प्रकृतिगळुदयं। अयं इदु। बलमाधवचंद्राच्चितनेमिचंद्रेण प्रत्यक्षवंदकरप्प बलदेवनुं नारायणनुमेंदिवर्गळिंदमर्च्चितसल्पट्ट नेमितीर्थंकरपरमदेवंनिदं। कथितः पेळल्पट्टुदु। बलदेवण्णंनि श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवंनिंदमुमर्च्चितसल्पट्ट नेमिचंद्रसिद्धांत चक्रवर्त्तिगळिंदमुं मेणु पेलल्पट्टुदु। उदयप्रकरणं समाप्तमादुदु॥

सारत्रयनेत्रत्रयमारोलु गोम्मटव वृत्तिमणिवर्प्पणमा। मारहरंगल्लदे पेलसारमे जात्यंधकंगे दृग्द्वितयंगं॥

गंभीररचनेगल परिरंभणेयं बिडिसितोरिदुदने बुधप्रा-। रंभिसि गोम्मटवृत्ति सुदंभोलियिनोडयि मोहवज्राचळमं॥

संयोज्य तीर्थोदयादनुदयश्चतुःषष्टिः ६४ उदयः पंचविंशतिः २५। अयोगे त्रयोदश संयोज्यानुदयः सप्ततिः ७७। उदयो द्वादश। एवं मार्गणास्थाने उदयः, बलदेवनारायणार्चितनेमितीर्थकरेण बलदेवभ्रातृश्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवार्चितनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिना वा कथितः। इत्युदयप्रकरणं समाप्तं॥३३२॥

१३-१४ सयोगीमें इक्यावन मिलाकर तीर्थंकरका उदय होनेसे अनुदय चौंसठ ६४। उदय पचीस २५। अयोगीमें तेरह मिलाकर अनुदय सतहत्तर ७७। उदय बारह १२।

इस प्रकार मार्गणास्थानमें उदयका कथन बलदेव और नारायणसे पूजित नेमिनाथ तीर्थंकरने अथवा बलदेव भाई और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवसे पूजित नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने किया॥३३२॥

उदय प्रकरण समाप्त

आहारक रचना ११८

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.
५	९	१	१३	८	५	४	६	६	१	२	१६	४२
११३	१०८	१००	१००	८७	८१	७६	७२	६६	६०	५९	५७	४२
५	१०	१८	१८	३१	३७	४२	४६	५२	५८	५९	६१	७६

अनाहारक रचना ८९

	मि.	सा	अ.	म.	अ.
व्यु.	३	१०	५१	१३	१२
उ.	८७	८१	७५	२५	१२
अ.	२	८	१४	६४	७७

---

१. चाउंडरायनि।

अनंतरं प्रकृतिसत्वमं गुणस्थानदोळु पेळ्वपरु :—

तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छमादितिये ।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवइ ॥३३३॥

तीर्थाहारा युगपत्सत्वं तीर्थं न मिथ्यादृष्ट्यादित्रये । तत्सत्त्वकर्मणां तद्गुणस्थानं न संभवति ॥ ५

तीर्त्थाहारा युगपन्न तीर्थंकरनाममुमाहारकद्वयमुं मिथ्यादृष्टियोळु एकजीवापेक्षेयिंदं युगपत्सत्वमिल्ल । अदे तेंदोडे तीर्थसत्वमुळ्ळनोळाहारकद्वयसत्वमिल्ल । आहारकद्वयसत्वमुळ्ळनोळु तीर्थसत्वमिल्ल । उभयसत्वमुळ्ळ जीवनो मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोहुंनप्पुदरिंदं । नानाजीवापेक्षेयिंदं युगपत्सत्वमुंटु । अदु कारणमागि मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तें दुं प्रकृतिगळिगे सत्वमक्कुं १४८ ॥ सासादननोळु सव्वं न तीर्थमुमाहारकद्वयमुमेकजीवापेक्षेयिंदमुं नानाजीवापेक्षेयिंदमुं युगपत्क्रमदिंदमुं सत्वमिल्ल । मिश्रनोळु तीर्थनामसत्वं न यिल्लेकेंदोडे तत्सत्वकर्मणां आ तीर्त्थाहारकद्वयसत्वयुतजीवंगळ्गे तद्गुणस्थानं न संभवति तीर्त्थाहारकद्वयं युगपत्संभविसुव मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुं तीर्थमुमाहारकद्वयमुं संभविसुव सासादनगुणस्थानमुं तीर्त्थं संभविसुव मिश्रगुणस्थानमुं संभविसदप्पुदुकारणमागि मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तें दु प्रकृतिसत्वमुं १४८ । सासादननोळु नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमुं १४५ । मिश्रनोळु नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्वमुमक्कुं १४७॥ १०

अथ प्रकृतिसत्त्वं गुणस्थानेष्वाह—

मिथ्यादृष्टौ तीर्थकृत्वसत्त्वे आहारकद्वयसत्त्वं न, आहारकद्वयसत्त्वे च तीर्थकृत्वसत्त्वं न, उभयसत्त्वे तु मिथ्यात्वाश्रयणं न । तेन तद्द्वयं तत्र युगपदेकजीवापेक्षया न । नानाजीवापेक्षयास्ति (ततोऽष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं-सत्त्वं) । सासादने तदुभयमपि एकजीवापेक्षयाऽनेकजीवापेक्षया च क्रमेण युगपद्वा सत्त्वं नेति (पंचचत्वारिंश-दुत्तरशतं १४५) । मिश्रे तीर्थकरत्वसत्त्वं न (सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं सत्त्वं १४७) । कुतः ? तत्सत्त्वकर्मणां जीवानां तद्गुणस्थानं न संभवतीति कारणात् ॥ ३३३ ॥

आगे गुणस्थानोंमें प्रकृतियोंकी सत्ता कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जिसके तीर्थंकरकी सत्ता होती है उसके आहारकद्विककी सत्ता नहीं होती और जिसके आहारकद्विककी सत्ता होती है उसके तीर्थंकरकी सत्ता नहीं होती। जिसके दोनोंकी सत्ता होती है वह मिथ्यात्वमें आता ही नहीं। इसलिए ये दोनों मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक साथ एक जीवकी अपेक्षा नहीं हैं। किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षासे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकर और आहारकद्विक दोनोंकी सत्ता होनेसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस १४८ है। सासादनमें ये दोनों ही एक जीव और नाना जीवकी अपेक्षा क्रमसे या एक साथ नहीं रहते अतः वहाँ सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें तीर्थंकरकी सत्ता न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस; क्योंकि जिनके इन प्रकृतियोंकी सत्ता होती है उनके ये गुणस्थान नहीं होते ॥३३३॥

---

१. कोष्ठान्तर्गतः पाठो नास्ति ब प्रतौ ।

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥३३४॥

चतुर्णां क्षेत्राणामायुर्ब्बंधेन भवति सम्यक्त्वं । अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुर्म्मुक्त्वा ॥

चतुर्ग्गतिगळायुर्ब्बंधमावुदरिंदमुं जीवक्कं सम्यक्त्वमक्कु मल्लि देवगतिगायुर्ब्बंधमागिद्दं जीवक्कणुव्रतमहाव्रतंगळु संभविसुववा देवायुष्यमं बिट्टुळिद नरकतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळु बंधमाद भुज्यमान तिर्य्यंचनणुव्रतमं पडेयल्नेरेयं । भुज्यमानमनुष्यनावोडणुव्रतमहाव्रतंगळं पडेयल्नेरेयनेकें बोडा गतित्रयबध्यमानायुष्यरुगळ्ग अणुव्रतमहाव्रतपरिणामकारणविशुद्धिकषायपरिणामस्थानोदयंगळु संभविसवप्पुदरिंदं ॥

णिरयतिरिक्खसुराउग सत्ते ण हि देससयलवदिखवगा ।
अयदचउक्कं तु अणं अणियट्टीकरणचरिमम्मि ॥३३५॥

नरकतिर्य्यग्देवायुःसत्त्वे न हि देशसकलव्रतिक्षपकाः असंयतचतुष्कं त्वनंतानुबंधिनोऽनिवृत्तिकरणचरमे ॥

नरकायुष्यसत्वमुं तिर्य्यगायुष्यसत्वमुं देवायुष्यसत्वमुं भुज्यमानबध्यमानोभयप्रकारदिंदं सत्वमुंटागुत्तं विरलु यथासंख्यमागि देशव्रतिगळुं सकलव्रतिगळुं क्षपकरुं न हि इल्ल । तु मत्तम-

---

चतुर्णां क्षेत्राणां गतीनां संबंध्यायुर्बंधेनापि जीवस्य सम्यक्त्वं भवति । तत्र देवगत्यायुर्मुक्त्वा शेषैकतरगतिबद्धायुष्कस्तिर्यङ् अणुव्रतं मनुष्योऽणुव्रतं महाव्रतं वा न लभते तेषां तत्तद्व्रतपरिणामकारणविशुद्धकषायपरिणामस्थानोदयासंभवात् ॥ ३३४ ॥

नरकतिर्यग्देवायुस्सु भुज्यमानबध्यमानोभयप्रकारेण सत्त्वेषु सत्सु यथासंख्यं देशव्रताः सकलव्रताः क्षपका

चारों क्षेत्र अर्थात् गति सम्बन्धी आयुका बन्ध करनेपर भी जीवके सम्यक्त्व हो सकता है । किन्तु देवगति सम्बन्धी आयुको छोड़कर शेष गतियोंमें-से किसी एक गतिकी आयुका बन्ध करनेवाले तिर्यंचके अणुव्रत और मनुष्यके अणुव्रत अथवा महाव्रत नहीं हो सकते; क्योंकि उनके उन-उन व्रतरूप परिणामोंके कारण विशुद्ध कषाय स्थानोंकी उत्पत्ति असम्भव है ।

विशेषार्थ—यदि पहले चारों आयुमें-से किसी भी आयुका बन्ध हो चुका हो और पीछे सम्यक्त्वको धारण करे तो उसमें कोई दोष नहीं है । ऐसा हो सकता है । किन्तु यदि पहले नरकायु या तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध हुआ हो तो पीछे अणुव्रत या महाव्रत धारण नहीं कर सकता । एक देवायुका बन्ध पहले हुआ हो तो अणुव्रत महाव्रत धारण करना सम्भव है । इसका कारण यह है कि अन्य आयुका बन्ध कर लेनेवाले जीवोंके ऐसे विशुद्ध परिणाम नहीं होते जो व्रत परिणामके कारण होते हैं । यह कथन परभवकी आयुका बन्ध कर लेनेवालोंकी दृष्टिसे है । परभवकी आयुका बन्ध जिसने नहीं किया है वह तो उसी भवसे मोक्ष भी जा सकता है ॥३३४॥

जिस वर्तमान आयुको जीव भोगता है उसे भुज्यमान कहते हैं और परभवकी जो आयु बाँधी उसे बध्यमान कहते हैं । भुज्यमान और बध्यमान दोनों प्रकारकी नरकायु,

नंतानुबंधि कषायंगळनु। असंयतचतुष्कं असंयतसम्यग्दृष्टियादियागि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्ति-
गळु। अनिवृत्तिकरणचरमे अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयक्के द्वादशकषायनोकषायस्वरूपकरण
विसंयोजनविधानदोळु वोरेकोळ्व करणलब्धियोळधःप्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणपरिणामंगळोळा
व्युच्छित्यनिवृत्तिकरणचरमसमयदोळु :--

जुगवं संजोगित्ता पुणोवि अणियट्टिकरणबहुभागं ।
बोलिय कमसो मिच्छं मिस्सं सम्मं खवेइ कमे ॥३३६॥

युगपद्वियोज्य पुनरप्यनिवृत्तिकरणबहुभागं। नीत्वा क्रमशो मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्षपयति क्रमे ॥

अनंतानुबंधिकषायचतुष्कमनक्रमदिंदं युगपदोम्मोंदलोळे अनिवृत्तिकरणपरिणामकालांत-
र्मुहूर्तचरमसमयदोळं परप्रकृतिरूपदिंदं विसंयोजिसि अंतर्मुहूर्तकालं विश्रमिसि। पुनरपि
मत्तमनंतानुबंधिविसंयोजनविधानदोळे तंते दर्शनमोहक्षपणोद्योगदोळु वोरेकोळ्व करणलब्धियो-
ळधःप्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणंगळोळा व्युत्पत्त्यनिवृत्तिकरणकालांतर्मुहूर्तसंख्यातबहुभागमं

२१ ४ कळिदेकभागावशेषमादागळा प्रथमसमयं मोदल्गोंडु मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वप्रकृति येंब
४
दर्शनमोहत्रयमं यथाक्रमदिं क्षपियिसुगुमंतु क्षपियिसि असंयतादियादा नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु

नैव स्युः। तु—पुनः, असंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽनिवृत्तिकरणपरिणामकालांतर्मुहूर्तचरमसमयेऽनंतानुबंधि-
कषायचतुष्कं—॥ ३३५ ॥

युगपदेव विसंयोज्य द्वादशकषायनोकषायरूपेण परिणमय्य अंतर्मुहूर्तकालं विश्रम्य पुनरप्यनंतानुबंधि-
विसंयोजनवद्दर्शनमोहक्षपणोद्योगेपि स्वीकृतकरणलब्धावधःप्रवृतापूर्वाऽनिवृत्तिकरणेषु तदुत्पत्त्यनिवृत्तिकरण-

१
कालांतर्मुहूर्तसंख्यातबहुभागं २१४ अतीत्यैकभागे प्रथमसमयात्प्रभृतिमिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतीः क्रमेण क्षप-
४

तिर्यंचायु और देवायुका सत्त्व होनेपर क्रमसे देशव्रत, महाव्रत और क्षपकश्रेणी नहीं होती। अर्थात् मुज्यमान या बध्यमान रूपसे नरकायुका सत्त्व होनेपर अणुव्रत नहीं हो सकते। मुज्यमान और बध्यमान रूपसे तिर्यंचायुका सत्त्व होनेपर महाव्रत नहीं हो सकते। और मुज्यमान या बध्यमान रूपसे देवायुका सत्त्व होनेपर क्षपकश्रेणी नहीं होती।

असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एक गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी चार और दर्शनमोहनीय तीन इन सातोंकी सत्ताका नाश करके क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है। सो कैसे नाश करता है यह कहते हैं—प्रथम तीन करण करता है। उनमें-से अनिवृत्तिकरणके अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक साथ विसंयोजन करता है उन्हें बारह कषाय और नोकषायरूप परिणमाता है। विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्त तक विश्राम करता है। फिर दर्शनमोहको नष्ट करनेके लिए पुनः अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करता है। अनिवृत्तिकरणके काल अन्तर्मुहूर्तमें संख्यातसे भाग दें। संख्यात बहुभाग प्रमाण काल बीत जानेपर जब एक भाग काल शेष रहे तब उसके प्रथम समयसे लगाकर

क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परंतागुत्तं विरलु । तीर्त्थाहारकंगळगक्रमबोळु सत्वरहितमागि एकजीवापेक्षेयिदं क्रमदिदं सत्वमक्कुमवें तें दोडाहारकद्वयमनुद्वेल्लनं माडिद मिथ्यादृष्टि बद्धनरकायुष्यनसंयतनागि तीर्त्थमं कट्टि द्वितीयतृतीयपृथ्वीगळगे पोपागळु सम्यक्त्वमं विराधिसुगुमप्पुदरिंदं ॥ नानाजीवापेक्षेयिनक्रमदिं मिथ्यादृष्टियोळु नूर नाल्वत्तें टुं प्रकृतिगळिगे सत्वमक्कुं । १४८ । सासादननोळा प्रकृतित्रयक्के क्रमाक्रमबोळं सत्वमिल्लप्पुदरिंदं नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिगळगये सत्वमक्कु १४५ ॥ मिश्रनोळु तीर्त्थसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिगळगे सत्वमक्कुं १४७ । असंयतसम्यग्दृष्टियोळु सप्तप्रकृतिगळ सत्वमनुळ्ळवगें नूरनाल्वत्तें टु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४८ । देशसंयतनोळुमंते नरकायुर्व्वर्ज्जित नूरनाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४७ ॥ प्रमत्तसंयतनोळमंते नरकतिर्य्यगायुर्द्वयरहितमागि नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळमंते नूरनाल्वत्तारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६ । मत्तमसंयताविचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु तद्भवकर्म्मक्षयभागिगळु क्षपकश्रेण्या-

यति । ततः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । तथा सति मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने कश्चिदाहारकद्वयमुद्वेल्य नरकायुर्बध्वाऽसंयतो भूत्वा तीर्थं बद्ध्वा द्वितीयतृतीयपृथ्वीगमनकाले पुनर्मिथ्यादृष्टिर्भवतीत्येकजीवे क्रमेण नानाजीवे युगपत्तीर्थाहाराः स्युः इति तत्र सत्त्वमष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं १४८ । सासादने क्रमाक्रमाभ्यां तदसत्त्वात् पंचचत्वारिंशदुत्तरशतं १४५ । मिश्रे तीर्थकृदसत्त्वात्सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं । असंयते सप्तप्रकृतिसत्त्वजीवानामष्टचत्वारिंशदुत्तरशतं । १४८ । देशसंयते तेषामेव नरकायुरसत्त्वात्सप्तचत्वारिंशदुत्तरशतं १४७ । प्रमत्तसंयते तेषामेव नरकतिर्यगायुरसत्त्वात् षट्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४६ । अप्रमत्तेऽपि तथैव षट्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४६ ।

पहले मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय करता है, उसके पश्चात् मिश्रका और उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय करता है । तब क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है । ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें सत्ता कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक ही जीवके आहारकद्विक और तीर्थंकरका सत्त्व क्रमसे कैसे पाया जाता है यह कहते हैं । किसी जीवने ऊपरके गुणस्थानोंमें आहारकका बन्ध किया । पीछे मिथ्यात्व गुणस्थानमें आकर आहारकद्विकका उद्वेलन कर दिया । पीछे नरकायुका बन्ध करके असंयत गुणस्थानमें जाकर तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया । पश्चात् दूसरे या तीसरे नरकमें जानेके समय मिथ्यादृष्टि हो गया । इस प्रकार एक ही जीवके मिथ्यात्व गुणस्थानमें क्रमसे पहले आहारकद्विकका और उसकी उद्वेलना-बन्धका अभाव करनेके पश्चात् तीर्थंकरका सत्त्व होता है । किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षा एक साथ दोनोंका सत्त्व पाया जाता है । किसी जीवके आहारकद्विकका सत्त्व पाया जाता है और किसीके तीर्थंकरका सत्त्व पाया जाता है । इस तरह मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका सत्त्व भी पाया जानेसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस है ।

सासादनमें आहारकद्विक और तीर्थंकरका सत्त्व किसी भी प्रकारसे नहीं है । अतः सत्त्व एक सौ पैंतालीस है । मिश्रमें तीर्थंकरका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस है । असंयतादिमें जिन उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्क और तीन दर्शनमोहकी सत्ता पायी जाती है उनकी अपेक्षा असंयतमें एक सौ अड़तालीसका सत्त्व है । देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीस, प्रमत्तमें नरकायु तिर्यंचायुके बिना एक सौ छियालीस तथा अप्रमत्तमें भी एक सौ छियालीसका सत्त्व है ।

रोहणं माळ्पवर्गळ्गपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नूर मूवत्तेंदु प्रकृतिसत्वमक्कु-१३८। मेकेंदोडे अबद्धायुष्यरप्प भुज्यमानमनुष्यायुष्यरु असंयतादि चतुर्गुणस्थानंगळोळेल्लियादोडं सप्तप्रकृतिगळं किंडिसि क्षपकश्रेण्यारोहणमं माळ्परप्पुदरिंदमपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु सप्तप्रकृतिगळु नरकतिर्य्यग्देवायुष्यत्रयमुमंतु दशप्रकृतिगळगसत्वमक्कुं १०॥

मिच्छे सासणमिस्से सुण्णं एक्केक्कगं तु बिट्ठाणे।
विरदापमत्तपुव्वे सुण्णडसुण्णं च बोच्छिण्णा॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानं मोदल्गोंडु मेलण गुणस्थानंगळोळु क्षपियिसुव प्रकृतिगळ क्रममं पेळ्दपरु :—

सोलट्ठेक्किगिछक्कं चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं।
खीणे सोलमजोगे बावत्तरि तेरुवंतंते॥३३७॥

षोडशाष्टैकैकषट्कं चतुर्व्वेकं बादरेऽतः एकं। क्षीणे षोडशायोगे द्वासप्ततिस्त्रयोदशोपांतंते॥

बादरे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु क्रमदिंदं षोडश अष्ट एक एक षट्कं चतुर्व्वेकं नाल्कंडेयोळोंदोंदक्के सत्वव्युच्छित्तियक्कुं। १। १। १। १। १। १। अतः अल्लिदं मेले सुहुमे सूक्ष्मसांपरायनोळु एकं ओंदु सत्वव्युच्छित्तियक्कुं १। क्षीणे षोडश क्षीणकषायनोळु पविनारुं प्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तियप्पुवु १६॥ सयोगकेवलियोळु सत्वव्युच्छित्तिशून्यमक्कुमयोगकेवलियोळु उपांते द्विचरमसमयदोळु द्वासप्ततिप्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तिगळप्पुवु ७२। अंते चरमसमयदोळु त्रयोदश पविमूरुं प्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तियप्पुवु १३।

क्षपकश्रेण्यारूढानामपूर्वकरणेऽष्टत्रिंशदुत्तरशतं। १३८। सप्तप्रकृतीनामसंयतादिचतुर्गुणस्थानेष्वेकत्र क्षपितत्वान्नरकतिर्यग्देवायुषां चाबद्धायुष्कत्वेनासत्त्वात्॥ ३३६॥ अनिवृत्तिकरणादिषु क्षययोग्यानां क्रममाह—

अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने क्रमेण षोडशाष्टावेकमेकं षट्कं चतुर्व्वेकैकं सत्वव्युच्छित्तिः। अत उपरि सूक्ष्मसांपरायेप्येकं। क्षीणे षोडश। सयोगे शून्यं। अयोगे द्विचरमसमये द्वासप्ततिः, चरमसमये त्रयोदश॥३३७॥

किन्तु इन गुणस्थानोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टीके सात-सात प्रकृति कम होती है। अपूर्वकरणादिमें दो श्रेणी हैं—एक क्षपकश्रेणि और एक उपशमश्रेणि। प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा कहते हैं—जिसके परभवकी आयुका बन्ध नहीं होता वही जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है। अतः उसके नरक, तिर्यंच, देव तीन आयुका सत्त्व नहीं होता। तथा असंयतादि गुणस्थानमें सात प्रकृतियोंका क्षय करके वह क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है। इस तरह दस प्रकृतियोंका सत्त्व न होनेसे अपूर्वकरणमें एक सौ अड़तीस सत्त्व होता है॥३३५-३३६॥

आगे अनिवृत्तिकरण आदिमें क्षययोग्य प्रकृतियोंको कहते हैं—

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें क्रमसे सोलह, आठ, एक, एक, छह, और चार स्थानोंमें एक-एक प्रकृतिकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। उससे ऊपर सूक्ष्म साम्परायमें एक, क्षीण कषायमें सोलह, सयोगीमें शून्य, अयोगीमें द्विचरम समयमें बहत्तर और अन्त समयमें तेरहकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है॥३३७॥

---

१. म प्रतौ नास्तीयं गाथा। २. म °त्तियप्पुवु।

आ षोडशाविप्रकृतिगळवाउवें दोडे पेळ्दपरु :—

णिरयतिरिक्खदु वियलं थीणतिगुज्जोव-ताव-एइंदी ।
साहरणसुहुमथावर सोलं मज्झिमकसायट्ठं ॥३३८॥

नरकतिर्य्यग्द्विक विकलं स्त्यानगृद्धित्रिकोद्योतातपैकेंद्रियाणि । साधारणसूक्ष्मस्थावर-षोडशमध्यमकषायाष्टौ ॥ नरकद्विकमुं २ । तिर्य्यग्द्विकमुं २ । विकलेंद्रियत्रितयमुं ३ । स्त्यानगृद्धित्रयमुं ३ । उद्योतनाममुं १ । आतपमुं १ । एकेंद्रियजातिनाममुं १ साधारणशरीरनाममुं १ । सूक्ष्मनाममुं १ स्थावरनाममु १ मितु षोडशप्रकृतिगळप्पुवु । मध्यमकषायाष्टौ अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमध्यमकषायाष्टकमक्कुं । ८ ॥

संढित्थिछक्कसाया पुरिसो कोहो य माण मायं च ।
थूले सुहुमे लोहो उदयं वा होदि खीणम्मि ॥३३९॥

षंढस्त्रीषट्कषायाः पुरुषः क्रोधश्च मानं माया च । स्थूले सूक्ष्मे लोभः उदयवद्भवति क्षीणे ॥

क्रमदिंदं षंढवेदमुं स्त्रीवेदमुं नोकषायषट्कमुं पुंवेदमुं संज्वलनक्रोधमुं संज्वलनमानमुं संज्वलनमायेयुमिवु स्थूले अनिवृत्तिकरणनोळु व्युच्छित्तिप्रकृतिक्रममक्कुं । सूक्ष्मे सूक्ष्मसांपरायनोळु लोभः सूक्ष्म संज्वलनलोभमों दे सत्वव्युच्छित्तियक्कुं । क्षीणे क्षीणकषायनोळु उदयवद्भवति उदयदोळ् पेळ्द षोडशप्रकृतिगळु सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळप्पुवु । सयोगकेवलियोळु सत्वव्युच्छित्तिशून्यमप्पुदरिंदमयोगिकेवलिगुणस्थाननबुपांतांतदोळु सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु ।

ताः षोडशादिप्रकृतयः काः ? इति चेदाह—

नरकद्विकं तिर्यग्द्विकं विकलत्रयं स्त्यानगृद्धित्रयमुद्योतः आतपः एकेंद्रियं साधारणं सूक्ष्मं स्थावरं चेति षोडश । अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानकषाया अष्टौ ८ ॥ ३३८ ॥

क्रमेण षंढवेदः स्त्रीवेदो नोकषायषट्कं पुंवेदः संज्वलनक्रोधः संज्वलनमानः संज्वलनमाया एताः स्थूले अनिवृत्तिकरणे व्युच्छिन्ना भवंति । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मसंज्वलनलोभः, क्षीणकषाये उदयवत्षोडश, सयोगे

विशेषार्थ—जहाँ जिन प्रकृतियोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है उससे ऊपर उन प्रकृतियोंकी सत्ताका अभाव होता है ।

आगे उन सोलह आदि प्रकृतियोंको कहते हैं—

नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि आदि तीन, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर इन सोलहकी व्युच्छित्ति अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें होती है । अप्रत्याख्यान कषाय चार और प्रत्याख्यान कषाय चार इन आठ मध्यम कषायोंकी दूसरे भागमें व्युच्छिति होती है ॥३३८॥

नपुंसकवेदकी तीसरे भागमें, स्त्रीवेदकी चौथे भागमें, छह नोकषायोंकी पाँचवें भागमें, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमायाकी छठे, सातवें, आठवें और नवमें भागमें क्रमसे व्युच्छित्ति होती है । इस प्रकार छत्तीसकी व्युच्छित्ति स्थूल अर्थात् अनिवृत्तिकरणमें होती है । सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्मलोभकी व्युच्छित्ति है । क्षीणकषायमें

देहादीफस्संता थिरसुहसरसुरविहायदुगदुभगं ।
णिमिणं जसणादेज्जं पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ ॥३४०॥
अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा ।
उदयगबार णराणू तेरस चरिमम्मि वोच्छिण्णा ॥३४१॥

देहादिस्पर्शांताः स्थिरशुभस्वरसुरविहायोगतिद्विक दुर्भगं निर्म्माणायशस्कीर्त्यनादेयं प्रत्येकापूर्ण्ण अगुरुचतस्रः ॥

अनुदयतृतीयं नीचमयोगिद्विचरमे सत्त्वव्युच्छित्तयः । उदयगतद्वादशनरानुपूर्व्यं त्रयोदश चरमे व्युच्छिन्नाः ॥

देहादिस्पर्शांताः शरीरपंचकमुं ५ बंधनपंचकमुं ५ संघातपंचकमुं ५ संस्थानषट्कमुं ६। अंगोपांगत्रितयमुं ३। संहननषट्कमुं ६। वर्ण्णपंचकमुं ५। गंधद्विकमुं २। रसपंचकमुं ५। स्पर्शाष्टकमुं ८। स्थिरद्विकमुं २। शुभद्विकमुं २। स्वरद्विकमुं २। सुरद्विकमुं २। विहायोगतिद्विकमुं २। दुर्भगनाममुं १। निर्म्माणनाममुं १ अयशस्कीर्त्तियुं १ अनादेयमुं १ प्रत्येकशरीरमुं १ अपर्य्याप्तनाममुं १ अगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासचतुष्कमुं ४। अनुदयवेदनीयमुं १ नीचैर्गोत्रमु १ मितेप्पत्तेरडुं प्रकृतिगळयोगिद्विचरमसमयसत्वव्युच्छित्तिगळप्पुवु। चरमसमयदसत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु तद्गुणस्थानदोळुदयिसुत्तिर्द्दं तृतीयैकादि द्वादश प्रकृतिगळु मनुष्यानुपूर्व्यमुमितु पदिमूरुं प्रकृतिगळप्पुवु। अंतागुत्तं विरलनिवृत्तिकरणन प्रथमभागदोळु असत्वंगळु पत्तु १०। सत्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्तेंदु १३८। आद्वितीयस्थानदोळु पदिनारुगूडियसत्वप्रकृतिगळु

शून्यं ॥ ३३९ ॥

पंचशरीरपंचबंधनपंचसंघातषट्संस्थानत्र्यंगोपांगषट्संहननपंचवर्णद्विगंधपंचरसाष्टस्पर्शाः स्थिरशुभसुस्वरसुरविहायोगतिद्विकानि दुर्भगं निर्माणमयशस्कीर्तिरनादेयं प्रत्येकमपर्याप्तमगुरुलघूपघातपरघातोच्छ्वासा अनुदयवेदनीयं नीचैर्गोत्रं चेति द्वासप्ततिरयोगिद्विचरमसमये सत्त्वव्युच्छित्तिः । चरमसमये उदयगततृतीयैकादिद्वादश; मनुष्यानुपूर्व्यं चेति त्रयोदश । एवं सत्यनिवृत्तिकरणप्रथमभागे असत्त्वं दश सत्त्वमष्टात्रिंशदुत्तरशतं,

---

उदय व्युच्छित्तिकी तरह पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, निद्रा और प्रचला इन सोलहकी सत्त्व व्युच्छित्ति है। सयोगीमें सत्त्व व्युच्छित्ति नहीं है ॥३३९॥

पाँच शरीर, पाँच बन्धन, पाँच संघात, छह संस्थान, तीन अंगोपांग, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवानुपूर्वी, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, जिसका उदय न हो वह एक वेदनीय और नीच गोत्र इन बहत्तरकी अयोगकेवलीके द्विचरम समयमें सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। अन्तिम समयमें जिनका उदय अयोगीमें होता है वह कोई एक वेदनीय, मनुष्य-

---

१. तदियेक्कं मणुउगदि पंचिंदिय सुभग तसतिगादेज्जं ।
जसतित्थं मणुआवु उच्चं च अजोगिचरिमम्हि ॥

यिप्पत्तारु २६ । सत्वंगळु नूरिप्पत्तेरडु १२२ । तृतीयस्थानदोळे दुगूडियसत्वंगळु मूवत्तनाल्कु ३४ । सत्वप्रकृतिगळु नूरहदिनाल्कु ११४ । चतुर्थस्थानदोळु ओंदु गूडियसत्वंगळु मूवत्तय्दु ३५ । सत्वंगळु नूरहदिमूरु ११३ । पंचमस्थानदोळोंदु गूडियसत्वंगळु मूवत्तारु ३६ । सत्वप्रकृतिगळु ११२ ॥ षष्ठस्थानदोळारुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेरडु ४२ । सत्वंगळु नूरारु १०६ सप्तमस्थानदोळोंदु गूडियसत्वंगळु नाल्वत्तमूरु ४३ । सत्वंगळु नूरय्दु १०५ ॥ अष्टमस्थानदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तनाल्कु ४४ । सत्वंगळु नूर नाल्कु १०४ ॥ नवमस्थानदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तय्दु ४५ । सत्वंगळु नूर मूरु १०३ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळोंदु गूडियसत्वंगळु नाल्वत्तारु ४६ । सत्वंगळु नूर येरडु १०२ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानदोळु सूक्ष्मलोभगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेळु ४७ । सत्वंगळु नूरोंदु १०१ ॥ सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु पविनारुगूडियसत्वंगळु अरुवत्तमूरु ६३ । सत्वंगळेण्भत्तय्दु ८५ । अयोगिकेवलिगुणस्थानद्विचरमसमयपर्य्यंतमसत्वप्रकृतिगळु मरुवत्तमूरु ६३ । सत्वप्रकृतिगळेण्भत्तय्दु ८५ ॥ चरमसमयदोळेप्पत्तेरडुगूडि नूर मूवत्तय्द सत्वंगळु १३५ ॥ सत्वंगळु पविमूरु १३ ॥ संदृष्टि :—

तद्द्वितीयस्थाने षोडश संयोज्यासत्त्वं षड्विंशतिः सत्त्वं द्वाविंशत्युत्तरशतं । तृतीयस्थानेऽष्टौ संयोज्यासत्त्वं चतुस्त्रिंशत्, सत्त्वं चतुर्दशोत्तरशतं । चतुर्थस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशत्, सत्त्वं त्रयोदशोत्तरशतं । पंचमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं षट्त्रिंशत्, सत्त्वं द्वादशोत्तरशतं । षष्ठस्थाने षट्संयोज्यासत्त्वं द्वाचत्वारिंशत्, सत्त्वं षडुत्तरशतं । सप्तमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं त्रिचत्वारिंशत्, सत्त्वं पंचोत्तरशतं । अष्टमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत्, सत्त्वं चतुरुत्तरशतं । नवमस्थाने एकां संयोज्यासत्त्वं पंचचत्वारिंशत्, सत्त्वं त्र्युत्तरशतं । सूक्ष्मसांपराये एकां संयोज्यासत्त्वं षट्चत्वारिंशत् सत्त्वं द्व्युत्तरशतं । क्षीणकषाये सूक्ष्मलोभं सयोज्यासत्त्वं सप्तचत्वारिंशत् । सत्त्वमेकोत्तरशतं । सयोगे षोडश संयोज्यासत्त्वं त्रिषष्टिः सत्त्वं पंचाशीतिः । अयोगे द्विचरमसमयपर्यंतमसत्त्वं त्रिषष्टिः सत्त्वं पंचाशीतिः, चरमसमये द्वासप्ततिं संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशदुत्तरशतं, सत्त्वं त्रयोदश । ॥ ३४०–३४१ ॥

गति पंचेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशस्कीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और मनुष्यानुपूर्वी इन तेरहकी सत्त्व व्युच्छित्ति होती है । ऐसा होनेपर—

अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें असत्त्व दस । सत्त्व एक सौ अड़तीस । उसके दूसरे भागमें सोलह मिलाकर असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ बाईस । उसके तीसरे भागमें आठ मिलाकर असत्त्व चौंतीस, सत्त्व एक सौ चौदह । उसके चौथे भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतीस, सत्त्व एक सौ तेरह । उसके पाँचवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व छत्तीस, सत्त्व एक सौ बारह । उसके छठे भागमें छह मिलाकर असत्त्व बयालीस, सत्त्व एक सौ छह । उसके सातवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व तैंतालीस, सत्त्व एक सौ पाँच । उसके आठवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ चार । उसके नौवें भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतालीस, सत्त्व एक सौ तीन । सूक्ष्म साम्परायमें एक मिलाकर असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ दो । क्षीणकषायमें एक सूक्ष्म लोभ मिलाकर असत्त्व सैंतालीस, सत्त्व एक सौ एक । सयोगीमें सोलह मिलाकर असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व पिचासी । अयोगीके द्विचरम समय

*	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	०	०	०	०	०	०	०
ध्रु	०	०	०	१	१	०	८	०	१६	८	१	१	६	१	१	१
उ	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४

०	सू	क्षी	स	अ	अ
१	१	१६	०	७२	१३
१०३	१०२	१०१	८५	८५	१३
४५	४६	४७	६३	६३	१३५

अनंतरमुक्तसत्वासत्वंगळं पेळ्दपरु :—

णभतिगिणभइगि दोद्दोदसदससोलट्ठगादिहीणेसु ।
सत्ता हवंति एवं असहायपरक्कमुद्दिट्ठं ॥३४२॥

नभस्त्र्येकनभ एक द्विद्वि दश दश षोडशाष्टकादिहीनेषु। सत्वानि भवंत्येवमसहायपराक्रमोद्दिष्टं ॥

नभः मिथ्यादृष्टियोळु असत्वं शून्यमक्कुं। त्रि सासावननोळसत्वं मूरक्कुं ३। एक मिश्रनोळोंदक्कुं १। नभः असंयतनोळसत्वं शून्यमक्कुं १। एकदेशसंयतनोळु असत्वमोंदेयक्कुं १। द्वि प्रमत्तसंयतनोळसत्वमेरडक्कुं २। द्वि अप्रमत्तसंयतनोळसत्वमेरडक्कुं २। दश अपूर्व्वकरणनोळसत्वं पत्तु १०। दश अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागदोळसत्वं पत्तु १०। षोडशाष्टकादिहीनेषु अनिवृत्तिकरणद्वितीय तृतीयादिभागादिगळोळु षोडशाष्टकादिगळोळु हीनंगळागुत्तं विरलु सत्वानि भवंति सत्वंगळु पूर्व्वोक्तक्रमविदमप्पुर्दितसनायपराक्रमनप्प श्रीवीरवर्द्धमानस्वामियिवं पेळल्पट्टु-

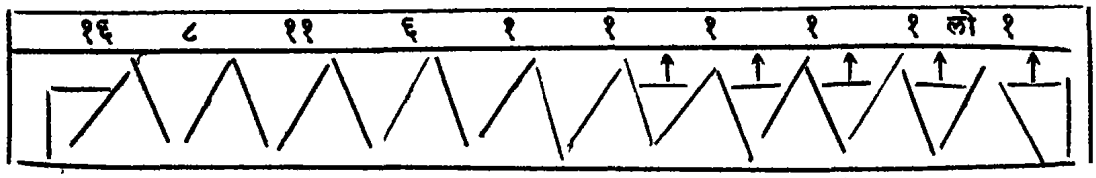
अथोक्तसत्वासत्वे प्राह—

मिथ्यादृष्टावसत्वं शून्यं। सासादने त्रिकं। मिश्रे एकं। असंयते शून्यं। देशसंयते एकं। प्रमत्ते द्वयं। अप्रमत्ते द्वयं अपूर्वकरणे दश। अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे दश। द्वितीयतृतीयादिभागेषु षोडशाष्टकादिहीनेषु पूर्वोक्तक्रमेण सत्वानि स्युरित्यसहायपराक्रमेण वर्धमानस्वामिना प्ररूपितं। अनिवृत्तिकरणगुणस्थानोक्तषोडशा-

पर्यन्त असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व पिचासी। अन्तिम समयमें बहत्तर मिलाकर असत्त्व एक सौ पैंतीस, सत्त्व तेरह ॥३४०-३४१॥ आगे उक्त सत्त्व-असत्त्वको कहते हैं—

असत्त्व मिथ्यादृष्टिमें शून्य, सासादनमें तीन, मिश्रमें एक, असंयतमें शून्य, देशसंयतमें एक, प्रमत्तमें दो, अप्रमत्तमें दो, अपूर्वकरणमें दस, अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें दस, दूसरे तीसरे आदि भागोंमें सोलह. आठ आदि मिलानेपर असत्त्व होता है। सो सत्त्व प्रकृतियोंमें-से असत्त्व प्रकृतियोंको घटानेपर उस-उस गुणस्थानमें सत्त्व प्रकृति पूर्वोक्त

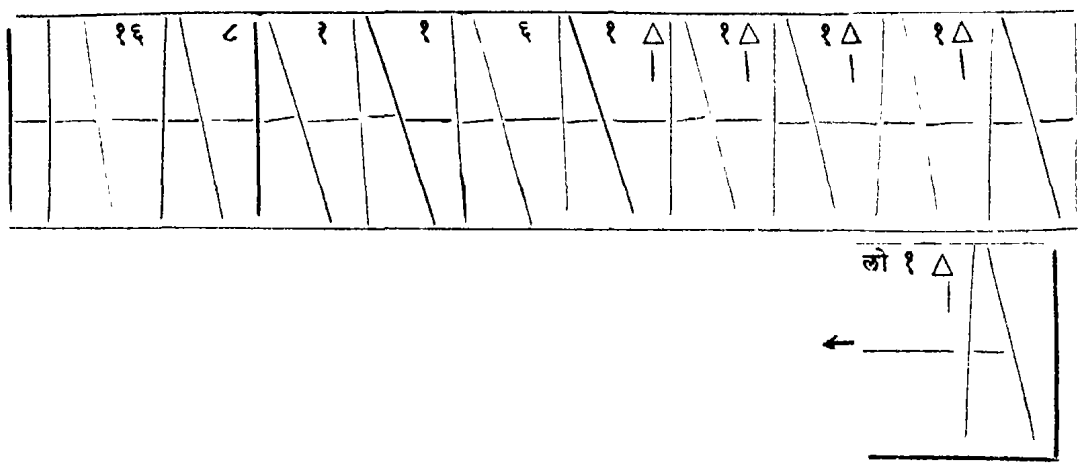
बनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु पेळल्पट्ट षोडशाष्टकादिसत्वव्युच्छित्तिगळ क्षपणाविधानरचना। संदृष्टि :—



यिल्लि बादरसंज्वलनलोभमनिवृत्तिकरणनिवं क्षपियिसल्पटुदुदें तें दोडे सूक्ष्मकृष्टिकरणमनिवृत्तिकरणनोळक्कुमदरुदयं सूक्ष्मसांपरायनोळक्कुमें बी विशेषमरियल्पडुगुं। ई क्षपणाविधानदोळुदयवंतमप्प पुवेदादिगळ्गों दु निषेकमों दसमयकालस्थितियक्कुमेरडु निषेकंगळेरडे समयकालस्थितिगप्पुवित्यादि। मत्तमनुदयंगळप्प नपुंसकवेदादिकर्म्मप्रकृतिगळ क्षपितावशेषोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकंगळ्गे परमुखोदयत्वदिंद समयाधिकावलिमात्रसमयस्थितियक्कुमें तें दोडों दु निषेक-

---

ष्टकादिसत्त्वव्युच्छित्तीनां क्षपणाविधानरचनासंदृष्टिः।

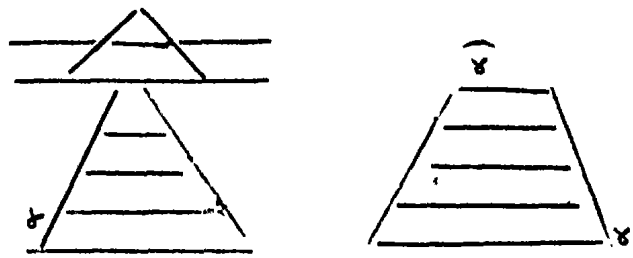


अत्रानिवृत्तिकरणे बादरलोभं क्षपयति सूक्ष्मकृष्टीः करोति। ताः कृष्टयः सूक्ष्मसांपराये उदयंतीति ज्ञातव्यं। अस्मिन् क्षपणाविधाने उदयागतपुंवेदादीनामेकनिषेकः एकसमयस्थितिकः। द्वौ निषेकौ द्विसमयस्थितिकावेवं क्रमः। अनुदयगतनपुंसकवेदादीनां च क्षपितावशेषोच्छिष्टस्य समयाधिकावलिः स्थितिः स्यात्,

---

क्रमानुसार जानना। ऐसा असहाय पराक्रमके धारी श्री वर्धमान स्वामीने कहा है। यहाँ अनिवृत्तिकरणमें बादर लोभका क्षपण करता है। उस लोभकी सूक्ष्मकृष्टि करता है। वे सूक्ष्मकृष्टियाँ सूक्ष्मसाम्परायमें उदयमें आती हैं ऐसा जानना। इस क्षपणाविधानमें उदयमें आये पुरुषवेद आदिका एक निषेक तो एक समयकी स्थितिवाला होता है। दो निषेक दो समयकी स्थितिवाले होते हैं। ऐसा क्रम जानना। जिनका उदय नहीं है उन नपुंसकवेद आदिकी क्षयके बाद अवशेष उच्छिष्ट रही सर्वस्थिति एक समय अधिक आवली प्रमाण है क्योंकि वहाँ एक निषेक दो समयकी स्थितिवाला है। दो निषेक तीन समयकी स्थितिवाले हैं इत्यादि क्रम पाया जाता है अतः उच्छिष्टावलीसे एक समय अधिक स्थिति जानना। उदयको अप्राप्त

मेरडु समयकालस्थितियक्कुमेरडु निषेकंगळु मूरु समयकालस्थितिगळप्पुवित्यादिक्रममुंटप्पुदरिंद मनुदयंगळगे परमुखोदयत्वमिदं समसमयोदयनिषेकंगळोंदोंदु निषेकंगळु स्थितोत्क संक्रमविंद संक्रमिसि पोपुवेंदितु स्वमुखोदयपरमुखोदयविशेषमरियल्पडुगुं। संदृष्टि :—

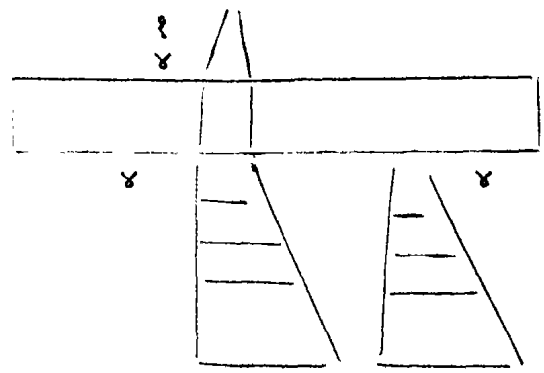


अनंतरमेकविंशति चारित्रमोहनीयोपशमविधानक्रमं पेळ्दपरु :—

खवणं वा उवसमणे णवरि य संजलण पुरिसमज्झम्मि ।
मज्झिम दो दो कोहादीया कमसोवसंता हु ॥३४३॥

क्षपणे वोपशमने नवीनं संज्वलनपुरुषमध्ये, मध्यम द्वौ द्वौ क्रोधादि कषायौ क्रमश उपशांतौ खलु ॥

एकनिषेको द्विसमयस्थितिकः, द्वौ निषेकौ त्रिसमयस्थितिकाविति क्रमस्य सद्भावात्। अनुदयगतानां परमुखोदयत्वेन समयसमयोदया एकैकनिषेकाः स्थितोक्तसंक्रमेण संक्रम्य गच्छंतीति स्वमुखपरमुखोदयविशेषोऽवमंतव्यः। संदृष्टिः—



॥३४२॥ अथैकविंशतिचारित्रमोहनीयोपशमविधानक्रममाह—

नपुंसक वेद आदिका परमुख उदयके द्वारा समान समयोंमें उदयरूप एक-एक निषेक कहे क्रमानुसार संक्रमण रूप होता है। इस प्रकार स्वमुख और परमुख उदयमें विशेष जानना। जो प्रकृति अपने रूपमें ही उदयमें आती है उसमें स्वमुख उदय है। जो प्रकृति अन्यरूप हो उदयमें आवे वहाँ परमुख उदय है ॥३४२॥

आगे चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंके उपशम करनेका विधान कहते हैं—

---

१. ब °वगंतव्यः।

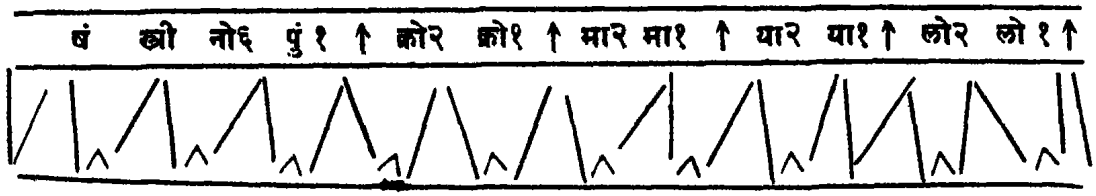
क्षपणाविधानदोळु पेळ्दंते उपशमनविधानदोळं सत्वमक्कुं। विशेषमुंटदावुदेंदोडे संज्वलनकषायपुंवेदोपशमनमध्यदोळु मध्यमंगळप्प अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधादिकषायद्वय-द्वयंगळुपशमिसल्पडुवुवु क्रमदिंदमदें तेंदोडे पुरुषवेदोपशमनानंतरं पुंवेदनवकबंध सहितमागि मध्यमक्रोधकषायद्वयमुपशमिसल्पडुगुं। तदनंतरं संज्वलनक्रोधमुपशमिसल्पडुगुमनंतरमा संज्वलन-क्रोधनवकबंधसहितमागि मध्यममानकषायद्विकमुपशमिसल्पडुगुं। तदनंतरमा संज्वलनमान-मुपशमिसल्पडुगु। मनंतरमा मानसंज्वलन नवकबंधसहितमागि मध्यममायाकषायद्वयमुपशमि-सल्पडुगुं। तदनंतरं मायासंज्वलनकषायमुपशमिसल्पडुगुं। मनंतरं मायासंज्वलन नवकबंधसहित-मागि मध्यमलोभकषायद्वयमुपशमिसल्पडुगुं। तदनंतरं संज्वलनबादर लोभमुपशमिसल्पडुगुमें बी-विशेषमिनितेपोसतु। मोहनीयकर्म्ममों दक्कल्लदुळिवेळं कर्म्मंगळुपशमविधानमिल्लप्पुदरिंदं नपुंसकवेदादिगळुगुपशमविधानमरियल्पडुगु। संदृष्टि :—

क्षपणावदुपशमविधानेऽपि सत्त्वं स्यात्। किंतु संज्वलनकषायपुंवेदमध्ये मध्यमा अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानाः द्वौ द्वौ क्रोधादयः क्रमेणोपशांताः खलु। तद्यथा—पुंवेदोपशमनानंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यमक्रोधद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनक्रोधमुपशमयति। तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यममानद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनमानमुपशमयति। तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यममायाद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्व-लनमायामुपशमयति। तदनंतरं तन्नवकबंधेन समं मध्यमलोभद्वयमुपशमयति। तदनंतरं संज्वलनबादरलोभ-मुपशमयति इति विशेषो मोहनीयस्यैव शेषकर्मणामुपशमनविधानाभावात्। नपुंसकवेदादीनामुपशमविधाने संदृष्टिः—

क्षपणाकी तरह ही उपशम विधानका भी क्रम है। किन्तु विशेष इतना है कि संज्वलन कषाय और पुरुषवेदके मध्यमें मध्यके अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दो-दो क्रोधादिका क्रमसे उपशम होता है। वही कहते हैं—

नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यादि छह और पुरुषवेदका क्रमसे उपशम होता है। पीछे पुरुषवेदका उपशम करनेके अनन्तर जो नवीन बन्ध हुआ उस सहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोधके युगलका उपशम करता है।

तत्काल पुरुषवेदका जो नवीन बन्ध हुआ उसके निषेक पुरुषवेदका उपशमन करनेके कालमें उपशम करने योग्य नहीं हुए थे। क्योंकि अचलावलीमें कर्मप्रकृतिको अन्यरूप परिण-माना अशक्य होता है। इससे पुरुषवेदके निषेक मध्यम क्रोधयुगलका उपशम करनेके कालमें उपशम किये जाते हैं। इसी प्रकार संज्वलन क्रोधादिके भी नवकबन्धका स्वरूप जानना। अनन्तर संज्वलन क्रोधका उपशम करता है। उसके अनन्तर उस संज्वलन क्रोधके नवीन-बन्ध सहित अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मान युगलका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मानका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मानके नवीनबन्ध सहित मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान मायायुगलका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मायाका उपशम करता है। उसके अनन्तर संज्वलन मायाके नवीनबन्ध सहित मध्यम अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान लोभको उपशमाता है। उसके अनन्तर बादर संज्वलन लोभको उपशमाता है। यह विशेष केवल मोहनीय कर्मका ही जानना, क्योंकि मोहनीयके



णिरयादिसु पयडिट्ठिदि-अणुभागपदेस-भेदभिण्णस्स ।
सत्तस्स य सामित्तं णेदव्वमदो जहाजोग्गं ॥३४४॥

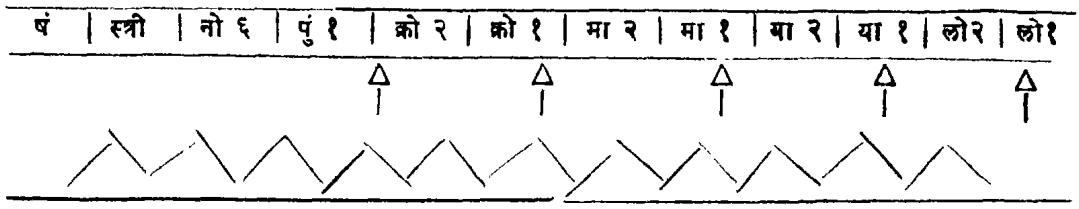
नरकादिषु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेश भेदभिन्नस्य । सत्वस्य च स्वामित्वं नेतव्यमितो यथायोग्यं ॥

नरकगत्यादिमार्गणास्थानंगळोळु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेददिंदं चतुर्व्विधमप्प सत्वक्के स्वामित्वमिल्लिवं मेले यथायोग्यमागि नेतव्यमक्कुं ।

अनंतरं परिभाषयं पेळ्दपरः—

तिरिये ण तित्थसत्तं णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि ।
आऊणि होंति सत्ता सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥३४५॥

तिरश्चि न तीर्थसत्वं नरकादिषु त्रयचतुष्क चतुस्त्रीणि । आयूंषि भवंति सत्वानि शेषमोघात् ज्ञातव्यं ॥



इतः परं नरकगत्यादिमार्गणासु प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नस्य चतुर्विधसत्त्वस्य स्वामित्वं यथायोग्यं नेतव्यं ॥३४४॥ अथ परिभाषामाह—

सिवाय अन्य कर्मोंका उपशम नहीं होता। इस प्रकार उपशम श्रेणिमें मोहको उपशमाता है उसकी सत्ताका नाश नहीं होता। अतः अपूर्वकरणसे उपशान्त गुणस्थान पर्यन्त उपशम श्रेणिवालेके नरकायु तिर्यंचायु बिना एक सौ छियालीसकी सत्ता रहती है। किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणिवालेके एक सौ अड़तीसकी सत्ता अपूर्वकरणसे उपशान्त कषाय पर्यन्त रहती है। तथा जिसके आयुबन्ध नहीं हुआ हो उस क्षायिक सम्यग्दृष्टीके असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें भी एक सौ अड़तीस ही की सत्ता होती है ॥३४३॥

यहाँसे आगे नरक गति आदि मार्गणाओंमें प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश चार प्रकारके भेदसे भिन्न कर्मोंके सत्वको यथायोग्य घटाना चाहिए ॥३४४॥

आगे परिभाषा कहते हैं—

तिर्य्यंचनोळु तीर्त्थसत्वमिल्ल । नरकगतियोळु देवायुष्यं पोरगागि भुज्यमान नरकायुष्य-सहितमागि बद्धयमानतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यद्विकं गूडि मूरायुष्यं सत्वमक्कुं ३ । तिर्यग्गतियोळु भुज्यमानतिर्य्यंगायुष्यं सहितमागि बध्यमाननरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळु नाल्कुं सत्वंगळक्कुं ४ ॥ मनुष्यगतियोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यं सहितमागि बध्यमान नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळु नाल्कुं सत्वंगळक्कुं । देवगतियोळु भुज्यमानदेवायुष्यं सहितमागि बध्यमानतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यं-गूडि मूरायुष्यंगळु सत्वंगळक्कुं ३ ॥ शेषप्रकृतिसत्वं सर्व्वं गुणस्थानवत्तर्णिवं ज्ञातव्यमक्कुं ।

अनंतरं नरकगतियोळु सत्वप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

ओघं वा णेरइए ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति ।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ तिरिए ओघं ण तित्थयरं ॥३४६॥

ओघवन्नैरयिके न सुरायुस्तीर्त्थमस्ति तृतीया पर्य्यंतं । षष्ठी पर्य्यंतं मनुष्यायुस्तिरश्चयोघो न तीर्त्थकरं ॥

नारकनोळु गुणस्थानदोळु पेळ्द देवायुर्व्वर्ज्जितसर्व्वकर्म्मप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळुमक्कुं १४७ । मल्लि तृतीयपृथ्वीपर्य्यंतं तीर्त्थसत्वमुंटु । चतुर्त्थादिपृथ्वीगळोळु तीर्त्थरहितमागिया नूर नाल्वत्तारुं प्रकृतिगळ्गो १४६ सत्वमक्कुं । आरनेय मघविपर्य्यंतं मनुष्यायुष्यं सत्वमुंटु । माघवियोळु मनुष्यायुर्व्वर्ज्जित नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिगळु सत्वमक्कुं १४५ ॥ अल्लि घर्म्मादि मूरुं

तिर्यग्जीवे तीर्थकृत्त्वसत्त्वं न स्यात् । नरकगतौ भुज्यमाननरकायुर्बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुषी चेति त्रयमेव, न देवायुः । तिर्यग्गतौ भुज्यमानतिर्यगायुः बध्यमाननरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषीति चत्वारि । मनुष्यगतौ भुज्य-मानमनुष्यायुर्बध्यमाननरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषीति चतुष्कं । देवगतौ भुज्यमानदेवायुर्बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुषी इति त्रयं । शेषप्रकृतिसत्त्वं सर्वं गुणस्थानवज्ज्ञातव्यं ॥३४५॥ अथ नरकगतौ सत्त्वमाह—

नारके गुणस्थानवन्न देवायुरिति सप्तचत्वारिंशच्छतं । तत्रापि तृतीयपृथ्वीपर्यंतं तीर्थसत्त्वमस्ति न चतुर्थ्यादिष्विति षट्चत्वारिंशच्छतं । तत्रापि षष्ठपृथ्वीपर्यंतं मनुष्यायुःसत्त्वमस्ति न माघव्यामिति पंचचत्वा-

---

तिर्यंच जीवमें तीर्थंकर प्रकृतिका सत्त्व नहीं होता। नरकगतिमें भुज्यमान नरकायु, बध्यमान तिर्यंचायु अथवा मनुष्यायु इस प्रकार तीन आयुका ही सत्त्व होता है, देवायुका नहीं। तिर्यंचगतिमें भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु इस प्रकार चारों आयुका सत्त्व होता है। मनुष्यगतिमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, इस प्रकार चारों आयुका सत्त्व है। देवगतिमें भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु या मनुष्यायु इस प्रकार तीन आयुका सत्त्व है।

विशेषार्थ—जिस आयुको जीव भोग रहा है उसे भुज्यमान कहते हैं। और आगामी भवमें उदय आनेके योग्य जिस आयुका बन्ध होता है उसे बध्यमान कहते हैं। शेष प्रकृतियोंका सत्त्व गुणस्थानोंमें जैसा कहा है उसी प्रकार जानना ॥३४५॥

आगे नरकगतिमें सत्ता कहते हैं—

नरकगतिमें गुणस्थानवत् जानना। वहाँ देवायुका सत्त्व नहीं है, इससे सत्त्व योग्य एक सौ सैंतालीस है। तथा तीर्थंकरका सत्त्व तीसरी पृथ्वी पर्यन्त होता है, अतः

पृथ्विगळोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळप्पु १४७ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळसत्वं शून्यं सत्वं नूर नाल्वत्तेळु १४७। सासाददनोळु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमुसत्वमक्कु। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थमों दे असत्वमक्कुं १। सत्वगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। असंयतगुणस्थानदोळु असत्वं शून्यमक्कुं। सत्वंगळु तीर्त्थमुमाहारकद्वयमुं सहितमागि नूरनाल्वत्तेळु १४७। संदृष्टि :— ५

घम्मे वंसे मेघयोग्य १४७।

०	मि	सा	मि	अ
सत्व	१४७	१४४	१४६	१४७
अस	०	३	१	०

अंजनेयादियागि मघवि पर्यंतं मूरुं पृथ्विगळोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळु तीर्त्थमुं देवायुष्यमुं पोरगागि योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तारप्पु १४६ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तारु १४६॥ सासादनगुणस्थानदोळाहारकद्विकमसत्वमक्कुं २। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु आहारकद्विकं सहितमागि नूरनाल्वत्तारुं सत्वप्रकृतिगळक्कुं १४६। असंयतगुणस्थानदोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तारु १४६। १०

संदृष्टि :—

रिंशच्छतं। तत्र घर्मादित्रयसत्त्वे १४७। मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं। सत्त्वं सर्वं। सासादने तीर्थाहारद्वयं असत्त्वं। सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। असंयते असत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४७।

अंजनादित्रयसत्त्वे १४६ मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४६। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं सत्त्वं च चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रे असत्त्वं शून्यं सत्त्वमाहारकद्वयसद्भावात् सर्वं १४६। असंयते असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४६। १५

चतुर्थ आदि पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ छियालीस है। वहाँ भी मनुष्यायुका सत्त्व छठी पृथ्वी तक है अतः सातवीं माघवी पृथ्वीमें एक सौ पैंतालीसका सत्त्व है। इस प्रकार घर्मा आदि तीन पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस है। सो मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य है २० अर्थात् नहीं है। सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व। सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्रमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ छियालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस।

अंजना आदि तीन पृथिवियोंमें सत्त्व एक सौ छियालीस। मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस। सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस। २५ मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व आहारकद्विककी सत्ता होनेसे सब १४६। असंयतमें असत्त्व

अं । अ । म । यो० १४६

०	मि	सा	मि	अ
सत्व	१४६	१४४	१४६	१४६
असत	०	२	०	०

माघविय़ोळ् मनुष्यायुष्यमुं तीर्त्थमुं देवायुष्यमुं पोरगागि नूर नाल्वत्तय्दुं योग्यसत्व-प्रकृत्तिगळक्कु १४५ ॥ मल्लि मिथ्यादृष्टियोळसत्वं शून्यं । सत्वंगळ् नूरनाल्वत्तय्दु १४५ । सासादननोळाहारकद्वयमसत्वं २ । सत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तमूरु १४३ ॥ मिश्रगुणस्थानदोळ-सत्वं शून्यं । सत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तय्दु १४५ ॥ असंयतगुणस्थानदोळ् असत्वं शून्यं । सत्व-प्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५ । संदृष्टि :—

माघवि योग्यं १४५

०	मि	सा	मि	अ
स	१४५	१४३	१४५	१४५
अ	०	२	०	०

तिरश्चयोघो न तीर्त्थकरं-तिर्य्यंग्गतियोळ् तीर्त्थरहितसामान्यसत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्व-त्तेळप्पु १४७ वल्लि सामान्यपंचेंद्रियपर्य्याप्त योनिमतितिर्य्यंचरुगळ्गे योग्यसत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तेळु १४७ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् असत्वं शून्यं । सत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तेळ्

माघवीसत्वे १४५ मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४५ । सासादने आहारकद्वयमसत्त्वं सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं । मिश्रेऽसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं १४५ । असंयतेऽसत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४५ ।

तिर्यंग्गतौ ओघो, न तीर्थकरमिति सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं

शून्य, सत्त्व सब १४६ । माघवीमें सत्त्व १४५ । मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व सब १४५ । सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैंतालीस । मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व सब एक सौ पैंतालीस । असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ पैंतालीस ।

	घर्मादि १४७				अंजनादि १४६				माघवी १४५			
	मि.	सा.	मि.	अ.	मि.	सा.	मि.	अ.	मि.	सा.	मि.	अ.
सत्त्व	१४७	१४४	१४६	१४७	१४६	१४४	१४६	१४६	१४५	१४३	१४५	१४५
असत्त्व	०	२	१	०	०	२	०	०	०	२	०	०

तिर्यंचगतिमें तीर्थंकरके न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस । सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक

१४७। सासादननोळु आहारकद्विकमसत्त्वं २। सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५॥ मिश्रगुणस्थानदोळसत्त्वं शून्यं। सत्त्वप्रकृतिगळ नूरनाल्वत्तेळु १४७। असंयतगुणस्थानदोळु नरकायुष्यमुं मनुष्यायुष्यमुं सत्त्वव्युच्छित्तियक्कुमेकें दोडे आ प्रकृतिद्वयसत्त्वमुळळनोळणुव्रतं घटिसदप्पुदरिंदं। देशसंयतनोळा प्रकृतिद्वयक्कं सत्त्वमिल्लप्पुदरिंदं असत्त्वं शून्यं। सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तेळु १४७। देशसंयतनोळु व्युच्छित्तिद्वयमसत्त्वमक्कुं २। सत्त्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५। संदृष्टि :—

सा। सं। प। योनि योग्य १४७

०	मि	सा	मि	अ	दे
व्यु	०	०	०	२	१[1]
उ	१४७	१४५	१४७	१४७	१४५
अ	०	२	०	०	२

एवं पंचतिरिक्खे पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ।
ओघं मणुसतिएसुवि अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ॥ ३४७॥

एवं पंचतिर्य्यक्षु पूर्णेतरस्मिन्नस्तः नरकदेवायुषी ओघो मनुष्यत्रयेष्वप्यपूर्णके पुनरपूर्णक इव ॥

एवं पंच तिर्य्यक्षु ई सामान्यतिर्य्यंचंगे पेळ्दंते सामान्यपंचेंद्रियपर्य्याप्तक योनिमतिअपर्य्याप्तकरेंब पंचप्रकार तिर्य्यंचरुगळनिवर्गमक्कुमल्लि लब्ध्यपर्य्याप्तकतिर्य्यंचग्गं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं तिर्य्यग्गतियोळु सत्त्वविरुद्धमप्प तीर्त्थमुमितु मूरुं प्रकृतिगळं कळेदु शेष नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्त्वमक्कुं १४५। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुं १ मेकें दोडे 'णहिसासणो अपुण्णे येंब

१४७। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सर्वं १४७। असंयते नारकमनुष्यायुषो व्युच्छित्तिः, तत्सत्त्वेऽणुव्रताघटनात्। असत्त्वं शून्यं सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। देशसंयते तद्द्वयमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं ॥३४६॥

एवं तिर्यग्वत्सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तयोनिमत्पर्याप्तपंचविधतिर्यक्ष्वपि भवति। तत्र लब्ध्यपर्याप्ते तु नरकदेवायुषी अपि नेति सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिरेव। कुतः ? 'णहि सासणो अपुण्णे' इति

सौ पैंतालीस। मिश्रमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस। असंयतमें नरकायु और मनुष्यायुकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि उनके सत्त्वमें अणुव्रत नहीं होते। असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ सैंतालीस। देशसंयतमें नरकायु मनुष्यायुका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस ॥३४६॥

इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच, योनिमत्तिर्यंच और अपर्याप्ततिर्यंचोंमें जानना। इतना विशेष है कि लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचमें नरकायु

१. भुज्यमानतिर्य्यगायुर्व्यच्छित्तिः ॥

विषममुंटप्पुदरिंदं। मनुष्यत्रयेष्वप्योघः मनुष्यगतियोळु सामान्यमनुष्यरुं पर्याप्तकमनुष्यरुं योनिमतिमनुष्यरेंब मूवरं तेरदे मनुष्यरोळु, योनिमतिमनुष्यरोळु क्षपकरुगळं विशेषमुंटप्पुदरिंदमा जीवंगळं बिट्टु सामान्यमनुष्यरुगळुगं पर्याप्तमनुष्यरुगळुगं योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेंटप्पु १४८ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु नानाजीवापेक्षेयिंदं नूरनाल्वत्तेंदु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४८। सासादन गुणस्थानदोळु तीर्त्थमुमाहारद्विकं पोरगागि नूरनाल्वत्तम्बु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४५॥ मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थं पोरगागि नूर नाल्वत्तेळु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४७। असंयतगुणस्थानदोळु नूरनाल्वत्तेंदु प्रकृतिसत्वमक्कुं १४८। देशसंयतनोळु नरकायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुं बद्धयमानमनुष्यायुष्यमुं पोरगागि नूर नाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कु १४६। प्रमत्तसंयतनोळमंते नूरनाल्वत्तारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६। अप्रमत्तसंयतनोळमंते नूर नाल्वत्तारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १४६। क्षपकश्रेण्यपूर्व्वकरणनोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यं पोरगागि शेषमूरायुष्यंगळुं सप्तप्रकृतिगळुं कूडि पत्तुं प्रकृतिगळ्वर्ज्जितमागि नूर मूवत्तेंदुं प्रकृतिसत्वमक्कुं-१३८। मुपशमश्रेण्यपेक्षेयिंदं नरकतिर्यंगायुद्वयरहितं नूरनाल्वत्तारुं १४६ क्षायिकसम्यक्त्वमं कुरुत्तु नूर मूवत्तेंदुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १३८। उपशमकश्रेणियोळु क्षपकश्रेणियोळं दर्शनमोहक्षपणेयिल्लप्पुदरिंदं। श्रेणियिंदं केळगण अबद्धायुष्यरप्प मनुष्यासंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु नूर मूवत्तेंदुं प्रकृतिसत्वरोळरेकेंदोडा नाल्कुं गुणस्थानदोळेल्लियादोडं दर्शनमोहक्षपणेयक्कुमप्पुदरिंदं। अपूर्व्वकरणगुणस्थानदिंदं मेलण गुणस्थानवर्त्तियनिवृत्तिकरणनोळमंते क्षपकश्रेण्यपेक्षयल्लदुपशमश्रेण्यपेक्षेयिंदं नूरनाल्वत्तारु १४६ नूर

नियमात्। मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तकयोनिमत्त्रिविधमनुष्येष्वोघः किंतु योनिमत्क्षपकेष्वेव विशेषः, तेन शेषद्वये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ नानाजीवापेक्षया सत्त्वं सर्वं। सासादने तीर्थाहारा नेति पंचचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थं नेति सप्तचत्वारिंशच्छतं। असंयते सर्वं। देशसंयते प्रमत्ताप्रमत्तयोश्च न नरकतिर्यगायुषी बध्यमानदेवायुर्भुज्यमानमनुष्यायुश्चेति षट्चत्वारिंशच्छतं। क्षपकापूर्वकरणे भुज्यमानमनुष्यायुरस्तीति शेषायुस्त्रयसप्तप्रकृत्यभावादष्टत्रिंशच्छतं। उपशमश्रेण्यपेक्षया नरकतिर्यगायुरभावात् षट्चत्वारिंशच्छतं। क्षायिकसम्यक्त्वं प्रत्यष्टत्रिंशच्छतं। अबद्धायुर्मनुष्यासंयतादिचतुर्ष्वपि तत्प्रत्यष्टत्रिंशच्छतं। अनिवृत्तिकरणे उपशमश्रे-

और देवायुके भी न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस। और गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है, क्योंकि 'ण हि सासणो अपुण्णे' इस नियमके होनेसे उसमें सासादन गुणस्थान नहीं होता।

मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य, पर्याप्तक मनुष्य और योनिमत् मनुष्योंमें गुणस्थानवत् जानना। किन्तु योनिमत् मनुष्योंमें क्षपक श्रेणीमें ही विशेष है। शेष दोनोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। उनमें मिथ्यादृष्टिमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंका सत्त्व है। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विक न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें तीर्थंकरके न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। असंयतमें सबका सत्त्व है। देशसंयत और प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानोंमें नरकायु तिर्यंचायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। वहाँ बध्यमान देवायु और भुज्यमान मनुष्यायुका ही सत्त्व होता है।

क्षपक अपूर्वकरणमें केवल भुज्यमान मनुष्यायुका ही सत्त्व होनेसे शेष तीन आयु और क्षायिक सम्यक्त्व होनेसे मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके न होनेसे सत्त्व एक सौ अड़तीस। उपशम श्रेणिकी अपेक्षा नरकायु तिर्यंचायुका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस और

मूवत्तेंदु १३८ प्रकृतिसत्वमक्कुं। क्षपकश्रेण्यपेक्षेयिंदं प्रथमभागदोळु नूर मूवत्तेंदु प्रकृतिसत्वमक्कुं १३८। द्वितीयभागदोळु नूरिप्पत्तेरडु प्रकृतिसत्वमक्कु १२२। मेकें दोडे आ प्रथमभागचरमसमयदोळु षोडश प्रकृतिगळ क्षपिसल्पट्टुवप्पुदरिंदं। तृतीयभागदोळमंतें मध्यमाष्टकषायरहितमागि नूर पदिनाल्कु प्रकृतिसत्वमक्कुं ११४। चतुर्त्थभागदोळु षंढवेदरहितमागि नूर पदिमूरु प्रकृतिसत्वमक्कुं ११३। पंचमभागदोळु स्त्रीवेदरहितमागि नूर हन्नेरडु प्रकृतिसत्वमक्कुं ११२। षष्ठभागदोळु षण्णोकषायवर्ज्जित नूरारुं प्रकृतिसत्वमक्कुं १०६। सप्तमभागदोळु पुंवेदरहितमागि नूरय्दु प्रकृतिसत्वमक्कुं १०५॥ अष्टमभागदोळु संज्वलनक्रोधवर्ज्जितनूरुनाल्कुत्तरशतप्रकृतिसत्वमक्कुं १०४॥ नवमभागदोळु संज्वलनमानरहितम्बधिकशतप्रकृतिसत्वमक्कुं १०३। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु संज्वलनमायारहितमागि नूरेरडु प्रकृतिसत्वमक्कु १०२। मुपशमश्रेण्यपेक्षेयिंदं नूर नाल्वत्तारु १४६ नूरमूवत्तेंदु १३८ प्रकृतिसत्वमक्कु। मुपशांतकषायगुणस्थानदोळु नूर नाल्वत्तारुं १४६ नूर मूवत्तेंदु १३८ प्रकृतिसत्वमक्कुं। क्षीणकषायनोळु संज्वलनलोभरहितमागि नूरों दु प्रकृतिसत्वमक्कुं १०१। सयोगिकेवलियोळु निद्राप्रचलादि षोडशप्रकृतिरहितमागि

ण्यपेक्षया षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टत्रिंशच्छतं च क्षपकश्रेण्यपेक्षया प्रथमभागे अष्टत्रिंशच्छतं द्वितीयभागे द्वाविंशतिशतं षोडशानां तत्प्रथमभागचरमसमये एव क्षपणात्। तृतीयभागे मध्यमाष्टकषायाभावाच्चतुर्दशशतं। चतुर्थभागे षंढवेदाभावात्तत्त्रयोदशशतं। पंचमभागे स्त्रीवेदाभावाद् द्वादशशतं। षष्ठमभागे षण्णोकषायाभावात् षडुत्तरशतं। सप्तमभागे पुंवेदाभावात्पंचोत्तरशतं। अष्टमभागे संज्वलनक्रोधाभावाच्चतुरुत्तरशतं। नवमभागे संज्वलनमानाभावात्त्र्युत्तरशतं। सूक्ष्मसांपराये संज्वलनमायाऽभावात् द्व्युत्तरशतं। उपशमश्रेण्यपक्षेया षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टचत्वारिंशच्छतं च। उपशांतकषाये द्वाचत्वारिंशच्छतं, अष्टत्रिंशच्छतं च। क्षीणकषाये संज्वलनलोभाभावादेकोत्तरशतं। सयोगे निद्राप्रचलादिषोडशाभावात् पंचाशीतिः। अयोगे द्विचरमसम-

---

क्षायिक सम्यग्दृष्टीके एक सौ अड़तीस। जिस मनुष्यने परभवकी आयु नहीं बाँधी है और क्षायिक सम्यग्दृष्टी है उसके असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें भी एक सौ अड़तीसका सत्त्व होता है। अनिवृत्तिकरणमें उपशम श्रेणिकी अपेक्षा सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा प्रथम भागमें एक सौ अड़तीस। और इस प्रथम भागके अन्तिम समयमें सोलह प्रकृतियोंका क्षय होनेसे दूसरे भागमें सत्त्व एक सौ बाईस। और इस दूसरे भागके अन्तिम समयमें मध्यकी आठ कषायोंका क्षय होनेसे तीसरे भागमें सत्त्व एक सौ चौदह। इसी प्रकार चतुर्थ भागमें नपुंसक वेदका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ तेरह। स्त्रीवेदका अभाव होनेसे पंचम भागमें सत्त्व एक सौ बारह। छह नोकषायोंका अभाव होनेसे छठे भागमें सत्त्व एक सौ छह। पुरुषवेदका अभाव होनेसे सातवें भागमें एक सौ पाँच। संज्वलन क्रोधका अभाव होनेसे आठवें भागमें एक सौ चार। संज्वलन मानका अभाव होनेसे नवम भागमें एक सौ तीन।

सूक्ष्म साम्परायमें संज्वलन मायाका अभाव होनेसे एक सौ दो। उपशमश्रेणिकी अपेक्षा सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। उपशान्त कषायमें एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। क्षीण कषायमें संज्वलन लोभका अभाव होनेसे एक सौ एक।

---

१. ब षट्चत्वा°। २. ब सयोगे अयोगे।

येण्भत्तप्पु प्रकृतिसत्वमक्कुं ८५। अयोगिकेवलिद्विचरमसमयदोळु तावन्मात्रमे येण्भत्तप्पु प्रकृतिसत्वमक्कुं ८५। चरम समयदोळु एप्पत्तेरड प्रकृतिरहितमागि पदिमूरु प्रकृतिसत्वमक्कुं १३। संदृष्टि–मनुष्यसामान्यपर्य्याप्तकयोग्य सत्वप्रकृतिगळु १४८।

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ
ब्यु	०	०	०	२	०	०	८	०
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४६	१४६	१४६	१३८
अ	०	३	१	०	२	२	२	१०

		अनि		१६	८	१	१	६	१	१	१
उ १४६	१३८	उ १३८।१४६		क्ष १३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४
२	१०			१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४

१	सू=	१	उ	क्षी	सयोग	अयो ७२	अयो १३	सिद्ध ०
१०३	उ १३८।१४६	≃ १०२	१३८।१४६	१०१	८५	८५	१३	०
४५	१० २	४६	१० । २	४७	६३	६३	१३५	१४८

योनिमतिमनुष्यनोळु विशेषमाउदेंदोडे क्षपकश्रेणियोळु तीर्थसत्वमिल्ला। तीर्थंकरसत्वप्रमत्तनोळु सत्वव्युच्छित्तियक्कुं। अपूर्व्वकरणनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरमूवत्तेळु १३७। असत्वं पत्तुं १०। अनिवृत्तिकरणनोळु प्रथमभागदोळं सत्वंगळु १३७। असत्वंगळु १०॥ द्वितीयभागदोळु षोडश प्रकृतिगळगूडियसत्वंगळ् इप्पत्तारु २६। सत्वंगळ् नूरिप्पत्तोंदु १२१।

यांतं च निद्राप्रचलादिषोडशभावात्पंचाशीतिः। चरमसमये द्वासप्तत्यभावात्त्रयोदश।

यानिमन्मनुष्ये तु क्षपकश्रेण्यां न तीर्थं, तीर्थसत्त्ववतोऽप्रमत्तादुपरि स्त्रीवेदत्वासंभवात्। अपूर्वकरणे सत्त्वं सप्तत्रिंशच्छतं। असत्त्वं दश। अनिवृत्तिकरणे प्रथमभागे सत्त्वं सप्तत्रिंशच्छतं। असत्त्वं दश। द्वितीयभागे

सयोगकेवलीमें निद्रा प्रचला आदि सोलहका अभाव होनेसे पचासी। अयोग केवलीके द्विचरम समयमें निद्रा प्रचलादिके न होनेसे पिचासी। अन्तिम समयमें बहत्तरके न होनेसे सत्त्व तेरह।

योनिमत् मनुष्यमें क्षपक श्रेणिमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि जिनके तीर्थंकर सत्ता होती है उनके अप्रमत्त गुणस्थानसे ऊपर स्त्रीवेदपना नहीं होता। अतः अपूर्वकरणमें

---

१. भावस्त्री यें बुदर्त्थं यिल्लि तात्पर्य्यमेनें दोडे तित्थयरो दव्वभावपुंवेदी एंबी वचनदिं चरमभवतीर्थंकरं भावदोळं स्त्रीयल्लनप्पुदरिं क्षपकश्रेणियोळु भावस्त्रीगे तीर्थंकरसत्वमिल्लें बुदु युक्तमितागुत्तिरला भावस्त्रीयप्प अप्रमत्तनोळु तीर्थंकरसत्वव्युच्छित्तियें तु घटियिसुगुमें दोडे तृतीयजन्मदोळु तीर्थंकर नामबंधमं माळ्पजीवं द्रव्यदोळु पुंवेदियें भावदोळु पुंवेदियं स्त्रीवेदियुमप्पनप्पुदरिवें दरिवुदु॥

तृतीयभागदोळु अष्ट प्रकृतिगळुगूडियसत्वंगळु मूवत्त नाल्कु ३४। सत्वंगळु नूर हविमूरु ११३। चतुर्थभागदोळु ओंदु गूडियसत्वंगळु मूवत्तय्दु ३५। सत्वप्रकृतिगळु नूर हन्नेरडु ११२। पंचमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु मूवत्तारु ३६ सत्वंगळु नूर हन्नोंदु १११। षष्ठ भागदोळु आरुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेरडु ४२। सत्वंगळु नूरय्दु १०५। सप्तमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तमूरु ४३। सत्वंगळु नूरनाल्कु १०४। अष्टमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तनाल्कु ४४। सत्वप्रकृतिगळु नूर मूरु १०३। नवमभागदोळोंदुगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तय्दु ४५। सत्वप्रकृतिगळु नूरेरडु १०२। सूक्ष्मसांपरायनोळु लोभव्युच्छित्तियक्कुं। असत्वंगळु संज्वलनमायेगूडि नाल्वत्तारु ४६। सत्वंगळु नूरोंदु १०१। क्षीणकषायनोळु लोभगूडियसत्वंगळु नाल्वत्तेळु ४७। सत्वंगळु नूरु १००। सयोगकेवलियोळु हदिनारुगूडियसत्वंगळु अरुवत्तमूरु ६३। सत्वंगळु येण्भत्तनाल्कु ८४। अयोगिकेवलिय द्विचरमसमयदोळु असत्वंगळरुवत्त मूरु ६३। सत्वंगळेण्भत्तनाल्कु ८४। चरमसमयदोळसत्वंगळु येप्पत्तेरडुगूडि नूर मूवत्तय्दु १३५। सत्वंगळु पन्नेरडु १२। संदृष्टि :—

षोडश संयोज्यासत्त्वं षड्विंशतिः। सत्त्वमेकविंशतिशतं। तृतीयभागे अष्ट संयोज्याऽसत्त्वं चतुस्त्रिंशत् सत्त्वं त्रयोदशशतं। चतुर्थभागे एकं संयोज्यासत्त्वं पंचत्रिंशत् सत्त्वं द्वादशशतं। पंचमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं षट्त्रिंशत् सत्त्वमेकादशशतं। षष्ठभागे षट् संयोज्यासत्त्वं द्वाचत्वारिंशत् सत्त्वं पंचोत्तरशतं। सप्तमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं त्रिचत्वारिंशत्, सत्त्वं चतुरुत्तरशतं। अष्टमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत्, सत्त्वं त्र्युत्तरशतं। नवमभागे एकं संयोज्यासत्त्वं पंचचत्वारिंशत्, सत्त्वं द्व्युत्तरशतं। सूक्ष्मसांपराये लोभव्युच्छित्तिः, असत्त्वं संज्वलनमायां संयोज्य षट्चत्वारिंशत्, सत्त्वमेकोत्तरशतं। क्षीणकषाये लोभं संयोज्यासत्त्वं सप्तचत्वारिंशत्, सत्त्वं शतं। सयोगे षोडश संयोज्यासत्त्वं त्रिषष्टिः, सत्त्वं चतुरशीतिः। अयोगे द्विचरमसमये असत्त्वं त्रिषष्टिः, सत्त्वं चतुरशीतिः। चरमसमयेऽसत्त्वं द्वासप्ततिं संयोज्य पंचत्रिंशदुत्तरशतं, सत्त्वं द्वादश।

सत्त्व एक सौ सैंतीस, असत्त्व दस। अनिवृत्तिकरणमें प्रथम भागमें सत्त्व एक सौ सैंतीस। असत्त्व दस। दूसरे भागमें सोलह मिलाकर असत्त्व छब्बीस, सत्त्व एक सौ इक्कीस। तीसरे भागमें आठ मिलाकर असत्त्व चौंतीस, सत्त्व एक सौ तेरह। चतुर्थ भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतीस, सत्त्व एक सौ बारह। पंचम भागमें एक मिलाकर असत्त्व छत्तीस, सत्त्व एक सौ ग्यारह। छठे भागमें छह मिलाकर असत्त्व बयालीस, सत्त्व एक सौ पाँच। सप्तम भागमें एक मिलाकर असत्त्व तैंतालीस, सत्त्व एक सौ चार। अष्टम भागमें एक मिलाकर असत्त्व चवालीस, सत्त्व एक सौ तीन। नवम भागमें एक मिलाकर असत्त्व पैंतालीस, सत्त्व एक सौ दो। सूक्ष्म साम्परायमें लोभकी व्युच्छित्ति होती है। तथा संज्वलन मायाको मिलाकर असत्त्व छियालीस, सत्त्व एक सौ एक। क्षीण कषायमें लोभ मिलाकर असत्त्व सैंतालीस, सत्त्व सौ। सयोगीमें सोलह मिलाकर असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व चौरासी। अयोगीके द्विचरम समयमें असत्त्व त्रेसठ, सत्त्व चौरासी। अन्तिम समयमें बहत्तर मिलाकर असत्त्व एक सौ पैंतीस, सत्त्व बारह।

योनिमति क्षपकयोग्य प्रकृतिगळु १३७।

*	अपू	अ									सू	क्षी	सयो	अयोगि	केवलि	*
व्यु	०	१६	८	१	१	६	१	१	१	१	१	१६	०	७२	१२	*
स	१३७	१३७	१२१	११३	११२	१११	१०५	१०४	१०३	१०२	१०१	१००	८४	८४	१२	*
अ	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५	४६	४७	६३	६३	१३५	*

अपुण्णगे पुण अपुण्णेव मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तनोळु तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तंगे पेळ्दंते तीर्त्थमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमुमक्कुं। मि १४५ ॥

अनंतरं देवगतियोळु पेळ्दपरु :—

लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्ये पुनस्तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तकवत्तीर्थनरकदेवायूंषि नेति सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिरेव ॥३४७॥ अथ देवगतावाह—

मनुष्य १४८ सत्त्व

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	अ.			सू.	उ.	उ.	क्षी.	स.	अ.	अ.
व्यु.	०	०	०	०	१	०	८		१६	८	१	१	६	१	१	१६		७२	१३
स.	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	८५	८५	१३
प्र.	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६	४२	४३	४४	४५	६३	३३	१३५

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तककी तरह तीर्थंकर नरकायु और देवायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस, गुणस्थान मिथ्यादृष्टि ही होता है ॥३४७॥

देवगतिमें कहते हैं—

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ सारोत्ति होदि तिरियाऊ ।
भवणतियकप्पवासियइत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥३४८॥

ओघो देवे न हि नरकायुः सहस्रारपर्य्यंतं भवति तिर्य्यगायुः । भवनत्रयकल्पवासिस्त्रीषु न तीर्थंकर सत्त्वं ॥

देवगतियोळु सौधर्म्मादिसहस्रारकल्पपर्य्यंतं द्वादश कल्पंगळोळु योग्यसत्त्वप्रकृतिगळु नरकायुर्व्वर्ज्जितमागि सामान्यसत्त्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तेळ्ं योग्यंगळप्पुवु १४७ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थंमसत्त्वमक्कुमेकेंदोडे "किण्ह दुग सुह तिलेस्सिय वामे वि ण तित्थयरसत्तमें ब नियममुंटप्पुदरिंदं सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६ । असत्त्व १ । सासादननोळु तीर्त्थंकरमुमाहारकद्विकमुमसत्त्वमक्कुं ३ । सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तनाल्कु १४४ । मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थंमसत्त्वमक्कुं १ । सत्त्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६ । असंयतगुणस्थानदोळु नूर नाल्वत्तेळु सत्त्वमक्कुं १४७ । मसत्त्वं शून्यं । संदृष्टि :—

सौधर्म्मादिकल्प योग्य १४७ ।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४६	१४४	१४६	१४७
अ	१	३	१	०

आनतादि चतुःकल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं नरकतिर्य्यंगायुर्द्वयरहितमागि सत्त्वयोग्यंगळु नूर नाल्वत्तारु प्रकृतिगळप्पु १४६ । अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थंमसत्त्वमक्कुं १ । सत्त्वंगळु नूर

देवगतौ ओघः किंतु नरकायुर्नहि पुनः सहस्रारपर्यंतमेव तिर्यगायुरस्ति न तत उपरि, तेन सौधर्मादिसहस्रारपर्यंतं द्वादशकल्पेषु सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ तीर्थं न 'किण्हदुगसुहतिलेस्सय वामेवि ण तित्थयरसत्त' मिति नियमात् सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं, असत्त्वमेकं । सासादने तीर्थाहारा असत्त्वं । सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं । मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । असंयते सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं, असत्त्वं शून्यं ।

आनतादिचतुःकल्पेषु नवग्रैवेयकेषु च नरकतिर्यगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं । तत्र मिथ्यादृष्टा-

---

देवगतिमें नरकायुका सत्त्व नहीं है तथा सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त ही तिर्यंचायुका सत्त्व रहता है । अतः सौधर्मसे लेकर सहस्रार पर्यन्त बारह स्वर्गोंमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि ऐसा नियम है कि कृष्ण, नील तथा तीन शुभलेश्यामें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता । अतः सत्त्व एक सौ छियालीस । असत्त्व एक । सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस । मिश्रमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ छियालीस । असंयतमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस असत्त्व शून्य ।

आनत आदि चार स्वर्गोंमें और नौ ग्रैवेयकोंमें नरकायु तिर्यंचायुका सत्त्व न होनेसे

नाल्वत्तय्दु १४५। सासादनगुणस्थानदोळु तीर्त्थकरमाहारकद्विकमुमसत्वंगळप्पुवु ३। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तमूरु १४३। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्त्थमसत्वमक्कु १। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५। असंयतगुणस्थानदोळसत्वं शून्यमक्कुं। ०। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। संदृष्टिः—

आनतादि १३ योग्य १४६।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४५	१४३	१४५	१४६
अ	१	३	१	०

अनुदिशानुत्तर चतुर्द्दशविमानंगळ सम्यग्दृष्टिगळोळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमं कळेदु सत्वयोग्यंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। भवनत्रयदोळं कल्पजस्त्रीयरोळं तीर्त्थकरत्वमुं नरकायुष्यमुं रहितमागि योग्यसत्वंगळु नूर नाल्वत्तारप्पुवु १४६। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। असत्वंगळु शून्यं। सासादनगुणस्थानदोळाहारकद्विकमसत्वमक्कुं २। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तनाल्कु १४४। मिश्रगुणस्थानदोळु असत्वं शून्यं। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६॥ असंयतगुणस्थानदोळसत्वं शून्यं। सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वतारु १४६॥ संदृष्टि।

भवनत्रय कल्पज स्त्री यो० १४६।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४६	१४४	१४६	१४६
अ	०	२	०	०

वसत्त्वं तीर्थं, सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। सासादने असत्त्वं तीर्थाहाराः सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं। मिश्रे तीर्थमसत्त्वं सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। असंयते असत्त्वं शून्यं, सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं।

नवानुदिशपंचानुत्तरविमानसम्यग्दृष्टिषु नरकतिर्यगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। भवनत्रयदेवेषु कल्पस्त्रीषु च तीर्थनरकायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं तदेव, असत्त्वं शून्यं। सासादने आहारकद्विकमसत्त्वं, सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। मिश्रासंयतयोरसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं

सत्त्व एक सौ छियालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैंतालीस। मिश्रमें तीर्थंकरका असत्त्व, सत्त्व एक सौ पैंतालीस। असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस।

नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानवासीदेव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं। उनके नरकायु तिर्यंचायुका सत्त्व न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। भवनत्रिक देवोंमें और कल्पवासी देवांगनाओंमें तीर्थंकर और नरकायु न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें

अनंतरमिंद्रियमार्गणेयोळं कायमार्गणेयोळं प्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

ओघं पंचक्खतसे सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा ।
तेउदुगे ण णराऊ सव्वत्थुव्वेल्लणा वि हवे ॥३४९॥

ओघं पंचाक्षत्रसे शेषेंद्रियकायिके अपूर्णवत् । तेजोद्विके न नरायुः सर्व्वत्रोद्वेल्लनापि भवेत् ॥

यिंद्रियमार्गणेयोळं कायमार्गणेयोळं यथासंख्यमागि पंचाक्षदोळं त्रसकायिकदोळं ओघः सामान्यगुणस्थानदोळ् पेळ्दक्रममक्कुमदु कारणदिंदं योग्यसत्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तेंटमप्पुवु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्द्दशगुणस्थानंगळप्पुवु ॥ संदृष्टि :—

व्यु	मि.	सा.	मि.	अ १	दे १	प्र ०	अ८	अ०	अ १६	८	१	१	६
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६

१	१	१	१	सू १	उ०	०	क्षी१६	स०	अ७२	१३
१०६	१०५	१०४	०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५	८	१३
४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३	६३	१३५

॥३४८॥ अथेंद्रियमार्गणायामाह—

इंद्रियकायमार्गणयोः पंचाक्षे त्रसे च ओघः इति सत्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । तद्रचना सामान्योक्तैव ज्ञातव्या । संदृष्टिः—

पंचेंद्रियत्रसकायिकयोर्योग्याः सत्त्वप्रकृतयः १४८ ।

व्यु	मि.	सा.	मि.	अ.	दे१	प्र.	अ८	अ.	अ१६	अ८	१	१
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५

६	१	१	१	१	सू१	उ	०	क्षी१६	स.	अ७२	१३
११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५	८५	१३
३	४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३	६३	१३५

सत्त्व एक सौ छियालीस, असत्त्व शून्य। सासादनमें आहारकद्विकका असत्त्व, सत्त्व एक सौ चवालीस। मिश्र और असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस ॥३४८॥

सौधर्मादि द्वादशमें १४७

	मि.	सा.	मि.	अ.
सत्त्व	१४६	१४५	१४६	१४७
असत्त्व	१	३	१	०

आनतादि नवग्रैवेयक १४६

मि.	सा.	मि.	अ.
१४५	१४३	१४५	१४६
१	३	१	०

शेषेंद्रियकायिके अपूर्णवत् एकेंद्रियविकलत्रयपृथ्विकायिक अप्कायिक वनस्पतिकायिकंगळोळु लब्ध्यपर्य्याप्तकंगे पेळ्दंते तीर्त्थंकरत्वमुं नारकायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमागि योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तय्दप्पु १४५ वल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५। असत्वं शून्यं॥ सासादननोळाहारकद्वयमसत्वमक्कुं २। सत्वंगळु नूर नाल्वत्तमूरु। १४३॥

संदृष्टिः—

ए। वि ३। पु। अ। व। योग्य १४५।

०	मि	सा
स	१४५	१४३
अ	०	२

तेजोद्विके न नरायुः तेजस्कायिकंगळोळु वायुकायिकंगळोळं मनुष्यायुष्यं सत्वमिल्लदु कारणमागि योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तनाल्कप्पु १४४ वल्लि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुमेकें दोडे–ण हि सासणो अपुण्णे साहारण सुहुमगे य तेउदुगे यें बी नियममुंटप्पुदरिंदं। सर्व्वत्रोद्वेल्लनापि भवेत् यिंद्रियमार्ग्गणेयोळं कायमार्ग्गणेयोळं सर्व्वत्र परप्रकृतिस्वरूपपरिणमनलक्षणमुद्वेल्लनमुमरियल्पडुगु। मुद्वेल्लनमें बुदेनें दोडे नेणुतुर्दियिंदं हुरि बिच्चि नेय्कें डुवंते पदिमूरुं

शेषैकद्वित्रिचतुरिंद्रियपृथ्व्यब्वनस्पतिकायिकेषु लब्ध्यपर्याप्तवत्तीर्थनरकदेवायुरभावात् सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं, असत्त्वं शून्यं। सासादने आहारकद्वयमसत्त्वं, सत्त्वं त्रिचत्वारिंशच्छतं।

तेजोद्विके मनुष्यायुरपि नेति सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमेकमेव। 'णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे' इति नियमात्। सर्वत्र इंद्रियमार्गणायां कायमार्गणायां चोद्वेल्लनापि

इन्द्रिय मार्गणामें कहते हैं—

इन्द्रिय और कायमार्गणामें पंचेन्द्रिय और त्रसकायमें गुणस्थानवत् सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान चौदह। उनमें सब रचना गुणस्थानोंकी तरह ही जानना। शेष एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पृथ्वी अप् वनस्पतिकायिकोंमें लब्ध्यपर्याप्तककी तरह तीर्थंकर नरकायु और देवायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ पैंतालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, असत्त्व शून्य। सासादनमें आहारकद्वयका असत्त्व, सत्त्व एक सौ तैंतालीस।

तेजकाय वायुकायमें मनुष्यायु भी नहीं होती अतः सत्त्व एक सौ चवालीस। उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है क्योंकि ऐसा नियम है कि लब्ध्यपर्याप्तक, साधारण-वनस्पति, सूक्ष्मकाय, तेजकाय वायुकायमें सासादन गुणस्थान नहीं होता। तथा सर्वत्र इन्द्रिय मार्गणा और कायमार्गणामें उद्वेलना भी होती है। जैसे रस्सीको बलपूर्वक उधेड़नेसे उसका रस्सीपना नष्ट हो जाता है उसी प्रकार जिन प्रकृतियोंका बन्ध किया था उनको उद्वेलन भाग-

प्रकृतिगळु संक्लिष्टजीवंगळिंदमुद्वेल्लन भागहारदिंदमपकर्षिसिकोंडु परप्रकृतिस्वरूपमप्पंतु माडि केडिसल्पडुगुमदनुद्वेल्लनमेंबुदु । आ उद्वेल्लनप्रकृतिगळाउवेंदोडे पेळ्दपरु :—

हारदु सम्मं मिस्सं सुरदुग णारयचउक्कमणुक्कमसो ।
उच्चागोदं मणुदुगमुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ॥३५०॥

मुंदे विस्तरमागियुद्वेल्लनविधानं पेळल्पडुगुमीसत्व प्रकरणदोळु प्रसंगायातमप्पुदरिंदमाहारकद्विकमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं सुरद्विकमुं नारकचतुष्कमुं उच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुमेंब पदिमूरुं प्रकृतिगळुक्तक्रमदिंदं जीवंगळिंदमुद्वेल्लनविधानदिंदं केडिसल्पडुवुवावाव जीवंगळावाव प्रकृतिगळगुद्वेल्लनमं माळ्पुवेंदोडे पेळ्दपरु :—

चदुगदिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे ।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं सपदे उप्पण्णठाणेवि ॥३५१॥

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ चतस्रः एकविकले षडपि तिस्रस्तेजोद्विके स्यादस्ति नास्ति सत्त्वं स्वपदे उत्पन्नस्थानेपि ॥

चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टियोळु नाल्कु । एकेंद्रियविकलत्रयंगळोळारु । तेजोद्विकदोळु मूरु प्रकृतिगळु । स्वस्थानदोळमुत्पन्नस्थानदोळं स्यात्सत्वंगळुं स्यादसत्वंगळुमप्पुवदेंतेंदोडे तीर्थंकरत्वमुं नरकायुष्यमुं देवायुष्यमुं सत्वमिल्लद चतुर्गतिय संक्लिष्टमिथ्यादृष्टि जीवनाहारकद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु नूरनाल्वत्तमूरु प्रकृतिगळु सत्वमक्कु-१४३ । मवरोळु

भवेत् बल्वजरज्जुभाववविनाशवत् प्रकृतेरुद्वेल्लनभागहारेणापकृष्य परप्रकृतितां नीत्वा विनाशनमुद्वेल्लनं ॥३४९॥ ताः प्रकृतीराह—

उद्वेल्लनविधानं विस्तरेण वक्ष्यमाणमप्यत्र प्रसंगायातं आहारद्विकं सम्यक्त्वप्रकृतिः मिश्रप्रकृतिः सुरद्विकं नारकचतुष्कं उच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकं चेति त्रयोदश प्रकृतयः क्रमेणोद्वेल्ल्यंते ॥३५०॥ कैर्जीवैः का इति चेदाह—

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ चतस्रः । एकविकलेंद्रियेषु षट् । तेजोद्विके तिस्रः । स्वस्थाने उत्पन्नस्थाने च सत्त्वं स्यादस्ति स्यान्नास्ति । तद्यथा—

हारके द्वारा अपकर्षण करके अन्य प्रकृतिरूप करना और इस प्रकारसे उनको नष्ट करनेका नाम उद्वेलन है ॥३४९॥

आगे उद्वेलना प्रकृतियोंको कहते हैं—

आगे उद्वेलनाका विधान विस्तारसे कहेंगे। फिर भी यहाँ प्रसंगवश कहते हैं। आहारकद्विक, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्र प्रकृति, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक अंगोपांग, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ये तेरह प्रकृतियोंकी क्रमसे उद्वेलना की जाती है ॥३५०॥

कौन जीव किस प्रकृतिकी उद्वेलना करता है, यह कहते हैं—

चारों गतिके मिथ्यादृष्टि जीवोंके चार, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके छह और तेजकाय वायुकायके तीन प्रकृतियाँ स्वस्थान और उत्पन्न स्थानमें कोई प्रकारसे हैं और कोई प्रकारसे

---

१. ब वल्वरजोरयादुद्वेलनेनैव प्रकृते°।

सम्यक्त्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे नूर नाल्वत्तरडु सत्वमक्कु १४२। मवरोळ् सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे नूरनाल्वत्तों दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४१ मितु स्वस्थानदोळ् चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टिगळोळ् द्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळ् सत्वंगळप्पुवुद्वेल्लनमं माडद पक्षदोळ् नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५। मुत्पन्नस्थानदोळे केंद्रिय द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय पृथ्विकायिक अप्कायिक-
५ वनस्पतिकायिकमें ब सप्तस्थानदोळं नूर नाल्वत्तय्दुं नूर नाल्वत्तमूरुं नूर नाल्वत्तेरडुं नूर नाल्वत्तों दुं प्रकृतिसत्वमप्पुवु। अल्ल एक विकलत्रयंगळु सुरद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु स्वस्थानदोळु नूरमूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वमक्कुमवरोळु नारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळु स्वस्थानदोळु नूर मूवत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु-१३५। मुत्पन्नस्थानदोळु तेजस्कायिक वायुकायिकंगळोळु मनुष्यायुष्यं रहितमागि नूर नाल्वत्तनाल्कुं नूर नाल्वत्तेरडुं नूर नाल्वत्तों दुं नूर नाल्वत्तुं नूर-
१० मूवत्तें दुं नूर मूवत्तनाल्कुं सत्वंगळप्पुवल्लि उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळ् नूर मूवत्तमूरु प्रकृतिगळु स्वस्थानदोळु सत्वमक्कुमवरोळ् नरकद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद पक्षदोळ् नूर मूवत्तों दु प्रकृतिगळु स्वस्थानदोळु सत्वमक्कुमुत्पन्नस्थानदोळेकेंद्रियादिसप्तस्थानंगळोळु नूर मूवत्तमूरुं नूर मूवत्तों दुं सत्वमप्पुवु। संदृष्टि :—

तीर्थकरनरकदेवायुरसत्वचातुर्गतिकसंक्लिष्टमिथ्यादृष्टेराहारकद्विके उद्वेल्लिते त्रिचत्वारिंशच्छतं सत्त्वं।
१५ पुनः सम्यक्त्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां द्वाचत्वारिंशच्छतं। पुनः सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां एकचत्वारिंशच्छतं, स्वस्थाने स्यात्। अकृतोद्वेल्लनस्य तस्य पंचचत्वारिंशच्छतमेव। उत्पन्नस्थाने एकद्वित्रिचतुरिंद्रियपृथ्व्यब्वनस्पतिकायिकेषु तानि चत्वारि सत्वानि। पुनः सुरद्विके उद्वेल्लिते स्वस्थाने एकोनचत्वारिंशच्छतं। पुनर्नारकचतुष्के उद्वेल्लिते स्वस्थाने पंचत्रिंशच्छतं। उत्पन्नस्थाने तेजोद्विके मनुष्यायुरभावाच्चतुश्चत्वारिंशच्छतं द्वाचत्वारिंशच्छतं एकचत्वारिंशच्छतं चत्वारिंशच्छतं अष्टात्रिंशच्छतं चतुस्त्रिंशच्छतं च। पुनः स्वस्थाने

---

२० नहीं हैं। अर्थात् यदि उद्वेलना न हुई तो इनका सत्त्व होता है और उद्वेलना हुई तो सत्त्व नहीं होता; जिसके तीर्थंकर, नरकायु देवायुका सत्त्व नहीं है ऐसे चारों गतिके संक्लिष्ट परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवके आहारकद्विककी उद्वेलना करनेपर एक सौ तैंतालीसका सत्त्व होता है। पुनः सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना करनेपर एक सौ बयालीसका और मिश्रमोहनीयकी उद्वेलना करनेपर एक सौ इकतालीसका सत्त्व स्वस्थानमें होता है। उद्वेलना न करनेपर
२५ उसके एक सौ पैंतालीसका ही सत्त्व होता है। उत्पन्न स्थानमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकायमें वे चारों सत्त्व एक सौ पैंतालीस, एक सौ तैंतालीस, एक सौ बयालीस, एक सौ इकतालीस होते हैं। पुनः देवगति देवानुपूर्वीकी उद्वेलना करनेपर स्वस्थानमें एक सौ उनतालीसका सत्त्व होता है। पुनः नारक चतुष्ककी उद्वेलना करनेपर स्वस्थानमें एक सौ पैंतीसका सत्त्व होता है। उत्पन्न स्थानमें तेजकाय
३० वायुकायमें मनुष्यायुका भी सत्त्व न होनेसे बिना उद्वेलना हुए सत्त्व एक सौ चवालीस, आहारकद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ बयालीस, सम्यक्त्वके उद्वेलना होनेपर एक सौ इकतालीस, मिश्र प्रकृतिकी उद्वेलना होनेपर एक सौ चालीस, देवद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ अड़तीस, नारक चतुष्ककी उद्वेलना होनेपर एक सौ चौंतीसका सत्त्व होता है। पुनः स्वस्थानमें उच्चगोत्रकी उद्वेलना करनेपर तेजकाय वायुकायमें सत्त्व एक सौ तैंतीस होता है,

ए । द्वि । त्रि । च । पृ । अ । व । योग्य १४५								
स्वस्थान	आ २ °	सं १ °	मि १ °	मि १ °	सु २ °	नार ४ °	उत्पन्न	॥
१४५	१४३	१४२	१४२	१४१	१३९	१३५	१३३	१३१

तेजो द्विक योग्य १४४								
*	अ २ °	सं १ °	मि १ °	सु २ °	ना ४ °	उ १ °	म २ °	
१४४	१४२	१४१	१४०	१३८	१३४	१३३	१३१	

अनंतरं योगमार्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

पुण्णेक्कारसजोगे साहारय मिस्सगे वि सगुणोघं ।
वेगुव्वियमिस्सेवि य णवरि ण माणुस तिरिक्खाऊ ॥३५२॥

पूर्णैकादशयोगेष्वाहारकमिश्रकेऽपि स्वगुणौघः वैक्रियिकमिश्रेऽपि च नवीनं न मानुष-तिर्य्यगायुषी ॥

पूर्णैकादशयोगेषु नाल्कु मनोयोगंगळु नाल्कु वाग्योगंगळु औदारिक वैक्रियिकाहारकमुमेंब पर्य्याप्तैकादश योगंगळोळमाहारकमिश्रकाययोगदोळं स्वगुणौघमक्कुमल्लि मनोवागौदारिकमेंबो-भत्तुं योगंगळोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेंदु १४८ गुणस्थानंगळुं मिथ्यादृष्टिमोदलागि पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

उच्चैर्गोत्रे उद्वेल्लिते त्रयस्त्रिंशच्छतं । पुनः नरकद्विके मनुष्यद्विके (?) उद्वेल्लिते एकत्रिंशच्छतं इदमंत्यसत्त्वद्वयं उत्पन्नस्थानेऽप्येकेंद्रियादिसप्तस्वप्यस्ति ॥३५१॥ अथ योगमार्गणायामाह—

पूर्णैकादशयोगेषु चतुर्मनश्चतुर्वाग्गौदारिकवैक्रियिकाहारकयोगेषु आहारकमिश्रे च स्वगुणौघः इत्याद्येषु नवसु सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । गुणस्थानानानि त्रयोदश । तस्य संदृष्टिः—

और मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर एक सौ इकतीसका सत्त्व होता है । ये अन्तके दोनों सत्त्व एक सौ तैंतीस और एक सौ इकतीस उत्पन्न स्थानमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पृथ्वी, अप्, वनस्पतिकायमें भी होते हैं ।

विशेषार्थ—ऊपर दो सत्त्व कहे हैं—स्वस्थान सत्त्व और उत्पन्न स्थानमें सत्त्व । विवक्षित पर्यायमें उद्वेलनाके बिना या उद्वेलना होनेसे जो सत्त्व होता है वह स्वस्थान सत्त्व है । और उस सत्त्वके साथ आगामी पर्यायमें जो उत्पत्ति होती है वहाँ उस सत्त्वको उत्पन्न स्थानमें सत्त्व कहते हैं ॥

आगे योग मार्गणामें कहते हैं—

चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक वैक्रियिक आहारक इन ग्यारह पूर्णयोगमें तथा आहारकमिश्रमें अपने-अपने गुणस्थानोंकी तरह जानना । इनमेंसे आदिके नौ योगोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस है और गुणस्थान बारह अथवा तेरह होते हैं । उसकी रचना

व्यु	मि०	सा०	मि०	अ १	दे १	प्र०	अ० ८	अ०	अ १६	८	१	१	६
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५	३६

१	१	१	१	सू १	उ	क्षी १६	स०
१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६ । १३८	१०१	८५
४२	४३	४४	४५	४६	२ । १०	४७	६३

आहारककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं नरकतिर्य्यगायुर्द्वयवर्ज्जितमागि प्रमत्तसंयतनोळु नूरनाल्वत्तारु सत्वमक्कु १४६। वैक्रियिककाययोगदोळु नूर नाल्वत्तें दु प्रकृतिगळु सत्वमक्कु १४८ मल्लि मिथ्यादृष्टियोळु नूरनाल्वत्तें दु प्रकृतिसत्वमक्कुमेकें दोडे तीर्त्थसत्वयुक्तंगे तृतीयपृथ्विपर्य्यंतं गमनमुंटप्पुदरिदं। सासादननोळु नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वमक्कु १४५। मसत्वंगळु मूरु ३। मिश्रनोळु नूरनाल्वत्तेळु सत्वमक्कु १४७ मसत्वमों दु १। असंयतनोळु नूर नाल्वत्तें दु सत्वमक्कु। १४८। संदृष्टि :— वैक्रियिक काययोग्य १४८

०	मि	सा	मि	अ
स	१४८	१४५	१४७	१४८
अ	०	३	१	०

मनो ४। वाग्योग ४। औदारिक काययोग १। योग्य १४८।

व्यु	मि	सा	मि	अ१	द १	प्र०	अ८	अ०	अ१६	८	१
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४
अ	०	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४

१	६	१	१	१	१	सू१	उ	०	क्षी१६	स
११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१३८	१०१	८५
३५	३६	४२	४३	४४	४५	४६	२	१०	४७	६३

आहारकतन्मिश्रयोर्नरकतिर्यगायुरभावात् प्रमत्ते षट्चत्वारिंशच्छतं। वैक्रियिकयोगेऽष्टचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सर्वं तीर्थकरसत्त्वयुक्तस्य तृतीयपृथ्व्यंतं गमनात्। सासादने पंचचत्वारिंशच्छतं सत्त्वं,

ऊपर टीकाके अनुसार जानना। आहारक आहारक मिश्रमें नरकायु तिर्यंचायुका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस है। गुणस्थान एक प्रमत्त ही होता है। वैक्रियिक योगमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सबका सत्त्व है क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तावाला मरकर नरकमें तीसरी पृथ्वी तक जाता है। सासादनमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, असत्त्व

वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु मिथ्यादृष्टियोळु तिर्य्यग्मनुष्यायुर्व्वर्ज्जितमागि नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कु १४६। मल्लियुमसत्वं शून्यमक्कुं। सासादननोळु नरकायुर्व्वर्ज्जितमागि मुन्निन मूरुं प्रकृतिगळगूडियसत्वंगळु नाल्कु ४। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेरडु १४२। असंयतनोळु नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कुं। संदृष्टि :—

वै० मि० का० योग्य १४६

०	मि	सा	अ
स	१४६	१४२	१४६
अ	०	४	०

औदारिक मिश्रकाययोगदोळु सत्वप्रकृतिगळं पेळदपरु :— ५

ओरालमिस्सजोगे ओघं सुरणिरय आउगं णत्थि ।
तम्मिस्सवामगे ण हि तित्थं कम्मेवि सगुणोघं ॥३५२॥

औदारिकमिश्रयोगे ओघः सुरनारकायुर्न्नास्ति। तन्मिश्रवामे न हि तीर्त्थं कार्म्मणेऽपि स्वगुणोघः ॥

औदारिकमिश्रकाययोगदोळु सामान्य सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेंटरोळु सुरनारकायुद्वंयमं १०
कळदु शेष नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वमक्कु १४६। मल्लि मिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थंकर सत्वमिल्लेकेंदोडे तीर्थसत्वमुळ्ळ जीवनौदारिकमिश्रकाययोगि तीर्त्थंकरकुमारनप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं

असत्त्वं त्रयं। मिश्रे सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं, असत्वमेकं। असंयते सत्त्वं सर्वं।

तन्मिश्रयोगे तिर्यंगमनुष्यायुषी नेति मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं असत्त्वं शून्यं। सासादने नरकायुस्तत्त्रयं च नेत्यसत्त्वं चत्वारि सत्त्वं द्वाचत्वारिंशत् शतं। असंयते सत्त्वं षट्चत्वारिंशत् शतं ॥३५२॥ १५
औदारिकमिश्रयोगस्याह—

औदारिकमिश्रयोगे सामान्यसत्त्वं किंतु सुरनारकायुषी न स्तः इति षट्चत्वारिंशत् शतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं पंचचत्वारिंशत् शतं, तन्मिश्रवामे तीर्थं नहीत्युक्तत्वात्। असत्वमेकं। सासादने असत्त्वं त्रयं,

तीन। मिश्रमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस, असत्त्व एक। असंयतमें सबका सत्त्व है।

वैक्रियिक मिश्रयोगमें तिर्यंचायु मनुष्यायुका सत्त्व नहीं होता। अतः मिथ्यादृष्टिमें २०
सत्त्व एक सौ छियालीस, असत्त्व शून्य। सासादनमें नरकायु तथा आहारकद्विक और तीर्थंकरके न होनेसे असत्त्व चार, सत्त्व एक सौ बयालीस। असंयतमें सत्त्व एक सौ छियालीस ॥३५२॥

औदारिक मिश्रयोगमें कहते हैं—

औदारिक मिश्रयोगमें सामान्यवत् सत्त्व है। किन्तु देवायु नरकायुके न होनेसे एक २५
सौ छियालीसका सत्त्व है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस, क्योंकि औदारिक मिश्रमें मिथ्यादृष्टिके तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता, ऐसा कहा है। अतः असत्त्व एक।

संभविसवप्पुदरिंदं तन्मिश्रवामे न हि तीर्थमेंदितु पेळल्पट्टुदु । अल्लि नूर नाल्वत्तप्पु सत्वमक्कु १४५ । मसत्वमों दु । सासादननोळ् असत्वं मूरु ३ । सत्वंगळ् नूर नाल्वत्तमूरु १४३ । असंयतनोळ् सत्वं नूर नाल्वत्तारु १४६ । सयोगकेवलियोळ् सत्वंगळेण्भत्तप्पु ८५ । असत्वंगळरुवत्तों दु ६१ । संदृष्टि :—

औ० मि० योग्य १४६ ।

०	मि	सा	अ	स
स	१४५	१४३	१४६	८५
अ	तो १	३	०	६१

कार्म्मणे स्वगुणोघः कार्म्मणकाययोगदोळु चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं भुज्यमानना।ल्का-
५ युष्यंगळ् संभविसुववप्पुदरिंदं सत्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तें टु १४८ । मिथ्यादृष्टियोळ् नूरनाल्वत्तें टु १४८ । सासादननोळ् नूरनाल्वत्तनाल्कु १४४ । सत्वमसत्वंगळ् तीर्थमुमाहारकद्विकमुं नरकायुष्यमुं नाल्कप्पुवु ४ । असंयतनोळ् सत्वंगळ् नूर नाल्वत्तें टु १४८ । सयोगकेवलियोळ् सत्वंगळेण्भत्तप्पु ८५ । असत्वंगळरुवत्तमूरु ६३ । संदृष्टि :—

कार्म्मणकाययोग्य १४८ ।

*	मि	सा	अ	स
स	१४८	१४४	१४८	८५
अ	०	४	०	६३

अनंतरं वेदादिमार्गणेगळोळु सत्वप्रकृतिगळं व्याप्तियागि पेळ्दपरु :—
१०

सत्त्वं त्रिचत्वारिंशत् शतं । असंयतेऽसत्त्वं शून्यं सत्त्वं षट्चत्वारिंशत् शतं । सयोगे सत्त्वं पंचाशीतिः । असत्त्वमेकषष्टिः ।

कार्मणयोगे चतुर्गतिभुज्यमानायुःसंभवात् मिथ्यादृष्टौ सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं, सासादने सत्त्वं चतुश्चत्वारिंशत् शतं, असत्त्वं तीर्थाहारनरकायूंषि । असंयते सत्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । सयोगे सत्त्वं पंचाशीतिः । असत्त्वं त्रिषष्टिः ॥३५३॥ अथ वेदमार्गणादिष्वाह—
१५

सासादनमें असत्त्व तीन, सत्त्व एक सौ तैंतालीस । असंयतमें असत्त्व शून्य, सत्त्व एक सौ छियालीस । सयोग केवलीमें सत्त्व पिचासी, असत्त्व इकसठ ।

कार्मणकाय योगमें चारों गति सम्बन्धी भुज्यमान आयुका सत्त्व सम्भव है अतः मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । सासादनमें सत्त्व एक सौ चवालीस । असत्त्वमें तीर्थंकर, आहारकद्विक, नरकायु ये चार । असंयतमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस । सयोगीमें
२० सत्त्व पिचासी, असत्त्व त्रेसठ ॥३५३॥

वेदादाहारोत्ति य सगुणोघं णवरि संढथीखवगे ।
किण्हदुगसुहतिलेस्सियवामेवि ण तित्थयर सत्तं ॥३५४॥

वेदादाहारपर्य्यंतं स्वगुणौघः नवीनं षंढस्त्रीक्षपके । कृष्णद्विकशुभत्रयलेश्यावामेपि न तीर्थंकर सत्वं ॥

वेदत्रयदोळु पुंवेदमार्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेंदु १४८। मिथ्यादृष्टि मोदल्गोंडु सामान्यदिदं पविनाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि गुणस्थानदोळ्पेळ्दंते सत्वप्रकृतिगळक्कुं । षंढस्त्रीक्षपके षंढवेदमार्गणेयोळं स्त्रीवेदमार्गणेयोळं गुणस्थानदोळपेळ्दंते नूर नाल्वत्तंदु प्रकृतिसत्वमल्लि क्षपकश्रेणियोळु तीर्त्थकरसत्वमिल्लेकेंदोडे तीर्त्थकरसत्वमुळळजीवं तद्वेदोदयसंक्लेशदिंदं क्षपकश्रेणियनेरुवुदिल्लदु कारणमागियपूर्व्वकरणंगे तीर्त्थरहितमागि नूर मूवत्तेळु प्रकृतिसत्वमक्कुं । शेष विधानमिनितुमनिवृत्तिकरणादिगळोळु गुणस्थानदोळु पेळ्दंते सत्वप्रकृतिगळु ओंदुगुंदियप्पुवु । संदृष्टियुं गुणस्थानदोळपेळ्दंतेयप्पुदरिंदं बरेयल्पट्टुदिल्ल । कषायमार्गणेयोळु क्रोधमानमायाकषायंगळगनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्य्यंतमोंभत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु । योग्य-

वेदमार्गणातः आहारमार्गणापर्यंतं स्वगुणौघः इति पुंवेदे सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं । गुणस्थानानि चतुर्दश । रचना गुणस्थानोक्तैव ।

षंडस्त्रीवेदयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं किंतु क्षपकश्रेण्यां न तीर्थंकरसत्त्वं तत्सत्त्वे तदुदयसंक्लिष्टस्य तत्रारोहणाभावात्, तेनापूर्वकरणादिषु सत्त्वमेकैकहीनं स्यात् ।

वैक्रियिक काययोग १४८

	मि.	सा.	मि.	अ.
सत्त्व	१४८	१४५	१४७	१४८
अस.	०	३	१	०

वैक्रियिक मिश्र १४६

मि.	सा.	अ.
१४६	१४२	१४६
०	४	०

औदारिक मिश्र १४६

मि.	सा.	अ.	सयो.
१४५	१४३	१४६	८५ →
१	३	०	६१

कार्मण १४८

मि.	सा.	अ.	स.
१४८	१४४	१४८	८५
०	४	०	६३

आगे वेदमार्गणा आदिमें कहते हैं—

वेदमार्गणासे आहारमार्गणा पर्यन्त अपने-अपने गुणस्थानवत् जानना। पुरुषवेदमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान चौदह। रचना गुणस्थानवत्। नपुंसक स्त्रीवेदमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। किन्तु क्षपक श्रेणीमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि तीर्थंकरका सत्त्व होनेपर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयके साथ संक्लेश परिणामी जीव क्षपक श्रेणीपर आरोहण नहीं कर सकता। अतः अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंमें सत्त्व एक-एक

सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। क्रोधकषायमार्गणेयोळमंते सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। मिथ्यादृष्टियादि सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टियुं विशेषमिल्लप्पुदरिं गुणस्थानदोळु पेळ्दंतेयक्कुं। ज्ञानमार्गणेयोळु कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानंगळोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळु असत्वं शून्यं सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। सासादननोळु असत्वं मूरु ३। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५। मतिश्रुतावधिज्ञानत्रयदोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। गुणस्थानंगळु असंयतादिनवकमक्कुमल्लि गुणस्थानदोळु पेळ्वंते संदृष्टियरियल्पडुगुं। मनःपर्य्ययज्ञानमार्गणेयोळु नरकतिर्य्यगायुष्यं पोरगागि योग्यसत्वप्रकृतिगळु १४६। प्रमत्तसंयतादि सप्तगुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टियुं गुणस्थानदोळ्पेळ्वंतेयक्कुं। केवलज्ञानमार्गणेयोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळ ण्भत्तय्दु ८५। सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयमक्कुं। गुणस्थानातीतरप्प सिद्धरुमोळरु॥ संयममार्गणेयोळु असंयमयोग्यप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्टियादियागि चतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

असंयमयोग्य १४८

०	मि	सा	मि	असं
स	१४८	१४५	१४७	१४८
अ	०	३	१	०

कषायमार्गणायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। गुणस्थानानि क्रोधादित्रयेऽनिवृत्तिकरणांतानि नव। लोभे सूक्ष्मसांपरायांतानि दश संदृष्टिर्गुणस्थानवत्।

ज्ञानमार्गणायां कुमतित्रये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। तत्र मिथ्यादृष्टावसत्त्वं शून्यं, सत्त्वं सर्वं। सासादनेऽसत्त्वं त्रयं। सत्त्वं पंचचत्वारिंशच्छतं। मतित्रये सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव। संदृष्टिस्तदुक्तैव। मनःपर्यये नरकतिर्यगायुरभावात्सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि सप्त, संदृष्टिस्तद्वत्। केवलज्ञाने सत्त्वं पंचाशीतिः सयोगायोगगुणस्थानद्वयं। गुणस्थानातीताः सिद्धाः।

संयममार्गणायामसंयमे सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टयादीनि चत्वारि। संदृष्टिस्त-

हीन होता है। कषाय मार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान क्रोध, मान, मायामें अनिवृत्तिकरणपर्यन्त नौ। लोभमें सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त दश। रचना गुणस्थानवत् जानना।

ज्ञानमार्गणामें कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञानमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें असत्त्व शून्य, सत्त्वमें सब। सासादनमें असत्त्व तीन, सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान असंयत आदि नौ। रचना गुणस्थानवत्। मनःपर्ययमें नरकायु तिर्यंचायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। गुणस्थान प्रमत्त आदि सात। रचना गुणस्थानवत्। केवलज्ञानमें सत्त्व पचासी। दो गुणस्थान सयोग केवली और अयोगकेवली। सिद्धोंके कोई गुणस्थान नहीं होता।

१. ब °नि रचना गुणस्थानोक्ता। २. ब गुणस्थाने सयोगायोगे।

देशसंयमदोळु सत्वप्रकृतिगळु नरकायुष्यं पोरगागि नूर नाल्वत्तॆळु १४७। देशसंयतगुणस्थानमो देयक्कुं। सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयदोळु नरकतिर्य्यगायुर्द्वयरहितमागि नूर नाल्वत्तारु सत्वप्रकृतिगळप्पुवु १४६। प्रमत्तसंयतादि नाल्कु गुणस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टियुं गुणस्थानदोळु पेळदंतेयक्कुं। परिहारविशुद्धिसंयमदोळु सत्वप्रकृतिगळु नरकतिर्यगायुर्द्वयं पोरगागि योग्यसत्वंगळु नूरनाल्वत्तारु १४६। 'परिहारं पमविदरे' एंदु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतगुणस्थानद्वयमेयप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायसंयतदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमो देयक्कुं। सत्वप्रकृतिगळु नूररेरडु १०२। यथाख्यातसंयममार्गणेयोळु नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि उपशांतकषायनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तारु १४६ नूरमूवत्तॆंटुमप्पुवु १३८। क्षीणकषाय वीतरागच्छद्मस्थनोळु सत्वंगळु नूरो ंदु १०१। सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु एण्भत्तय्दु सत्वप्रकृतिगळु ८५। अयोगिकेवलिभट्टारकनद्विचरमसमयदोळु सत्वप्रकृतिगळेण्भत्तय्दु ८५। चरमसमयदोळु पदिमूर १३।

संदृष्टि :—

यथाख्यात योग्य १४६

०	उ		क्षी १६	स०	अ ७२	१३
स	१४६	१३८	१०१	८५	८५	१३
अ	०	८	४५	६१	६१	१३३

दर्शनमार्गणेयोळु चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयदोळु नूरनाल्वत्तॆंदु सत्वप्रकृतिगळु १४८। मिथ्यादृष्टयादि द्वादशगुणस्थानंगळोळं गुणस्थानदोळु पेळदंते सत्वप्रकृतिगळप्पुवु। अवधिदर्शनदोळु

दुक्तैव। देशसंयते सत्त्वं नरकायुरभावात्सप्तचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानं तन्नाम। सामायिकछेदोपस्थापनयोर्नरकतिर्यगायुषी नेति सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं गुणस्थानानि प्रमत्तादीनि चत्वारि। संदृष्टिस्तदुक्तैव। परिहारविशुद्धौ सत्त्वं तदायुर्द्वयाभावात् षट्चत्वारिंशच्छतं गुणस्थानं प्रमत्ताप्रमत्तद्वयं। सूक्ष्मसांपराये गुणस्थानं तन्नामैव सत्त्वं द्व्युत्तरशतं। यथाख्याते गुणस्थानानि चत्वारि तत्रोपशांतकषाये सत्त्वं षट्चत्वारिंशच्छतं अष्टत्रिंशच्छतं च। क्षीणकषाये एकोत्तरशतं। सयोगे पंचाशीतिः। अयोगे द्विचरमसमयांतं पंचाशीतिः, चरमसमये त्रयोदश।

संयममार्गणामें असंयममें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार। रचना गुणस्थानवत्। देशसंयतमें सत्त्व नरकायुका अभाव होनेसे एक सौ सैंतालीस गुणस्थान एक देशसंयत ही होता है। सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें नरकायु तिर्यंचायुके न होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। गुणस्थान प्रमत्त आदि चार। रचना गुणस्थानवत्। परिहार विशुद्धि संयममें भी नरकायु तिर्यंचायुका अभाव होनेसे सत्त्व एक सौ छियालीस। गुणस्थान दो प्रमत्त और अप्रमत्त। सूक्ष्म साम्परायमें गुणस्थान एक सूक्ष्म साम्पराय नामक होता है। सत्त्व एक सौ दो। यथाख्यात संयममें गुणस्थान चार। उनमें-से उपशान्त कषायमें सत्त्व एक सौ छियालीस और एक सौ अड़तीस। क्षीणकषायमें सत्त्व एक सौ एक। सयोगीमें सत्त्व पिचासी। अयोगीमें द्विचरम समयपर्यन्त पिचासी, अन्तिम समयमें तेरह।

योग्यसत्त्वप्रकृतिगळ् नूरनाल्वत्तें टप्पुवु १४८। अल्लि असंयतादिनवगुणस्थानंगळप्पुवल्लि गुणस्थानदोळ् पेळ्वंते सत्त्वप्रकृतिगळप्पुवु। केवलदर्शनमार्गणेयोळु केवलज्ञानवंते सत्त्वप्रकृतिगळप्पुवु। सयोगायोगिगुणस्थानद्वितयमक्कुं। लेश्यामार्गणेयोळु "किण्ह दुग वामे ण तित्थयरसत्तं" एंबितु कृष्णनीललेश्याद्वयदोळु सत्त्वप्रकृतिगळ् नूर नाल्वत्तें टप्पुवु १४८ ॥ अल्लि मिथ्यादृष्टियवि नाल्कुं गुणस्थानंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळ् तीर्थमसत्त्वमक्कुं। सत्त्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तेळप्पु १४७। बेकें दोडं तीर्थसत्त्वयुक्तमनुष्यासंयतंगशुभलेश्यात्रयदोळु तीर्थबंधप्रारंभमिल्लमेंतलानुं बद्धनरकायुष्यंगे द्वितीयतृतीयपृथ्विगळोळु पुट्टुवडें सम्यक्त्वमं किडिसि मिथ्यादृष्टियागि कपोतलेश्यैयिंदं पोकुमप्पुदरिंदमी कृष्णनीललेश्याद्वयदोळु मिथ्यादृष्टि तीर्थसत्त्वमुळ्ळनिल्लें दरियल्पडुगुं। संदृष्टि :—

कृ० नी० योग्य १४८

०	मि	सा	मि	अ
स	१४७	१४५	१४७	१४८
अ	ती १	३	ती १	०

दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानान्याद्यानि द्वादश। संदृष्टिस्तदुक्तैव। अवधिदर्शने सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानान्यसंयतादीनि नव। रचना तदुक्तैव। केवलदर्शने तज्ज्ञानवत्।

लेश्यामार्गणायां कृष्णनीलयोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि। तत्र किण्हदुगवामे ण तित्थयरसत्तमितिमिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। अशुभलेश्यात्रये तीर्थबंधप्रारंभाभावात्। बद्धनारकायुषोऽपि द्वितीयतृतीयपृथ्व्योः कपोतलेश्ययैव गमनात्। संदृष्टिः—

कृष्ण नी = योग्य १४८

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४७	१४५	१४७	१४८
अ	ती १	३	ती १	०

दर्शन मार्गणामें चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान आदिके बारह। रचना गुणस्थानवत्। अवधिदर्शनमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान असंयत आदि नौ। रचना गुणस्थानवत्। केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह जानना।

लेश्यामार्गणामें कृष्ण और नीलमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चार। कृष्ण नीलमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरकी सत्ताका अभाव कहा है, क्योंकि तीन अशुभ लेश्याओंमें तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। तथा जिसने नरकायुका बन्ध किया है वह मरकर दूसरी तीसरी पृथ्वीमें यदि जाता है तो कपोतलेश्यासे ही जाता है।

कपोतलेश्यामार्गणेयोळु योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। गुणस्थानंगळु नाल्कप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तें टु १४८। सासादननोळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५। मिश्रनोळु नूर नाल्वत्तेळु १४७॥ असंयतनोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तें ट्टु १४८। संदृष्टिः — कपोतयोग्य १४८।

व्यु	मि	सा	मि	अ
स	१४८	१४५	१४७	१४८
अ	०	३	१	०

तेजःपद्मलेश्यामार्गणाद्वयदोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें ट्टु १४८। गुणस्थानंगळेंळप्पुवल्लि "सुहतिलेस्सिय वामे वि ण तित्थयरसत्तं" येंदितु तेजःपद्मलेश्यामिथ्यादृष्टियोळु तीर्त्थसत्वमिल्लेकेंदोडे नरकगतिगमनाभिमुखसंक्लिष्टजीवंगल्गल्लदे सम्यक्त्वविराधनेयिल्लदु कारणमागि शुभलेश्यात्रययुक्तंगे सम्यक्त्वविराधनेयिल्लप्पुदरिंदमी शुभलेश्याद्वयदोळु तीर्त्थसत्वमुळ्ळ मिथ्यादृष्टियिल्लेंदरियल्पडुगुमप्पुदरिंदं सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। सासादननोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तय्दु १४५। मिश्रनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। असंयतनोळु सत्वंगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। देशसंयतनोळु सत्वंगळु नरकायुष्यं पोरगागि नूरनाल्वत्तेळु १४७। प्रमत्तसंयतनोळु नरकतिर्य्यंगायुद्वंयं पोरगागि सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। अप्रमत्तनोळु सत्वंगळु नूर नाल्वत्तारु १४६। संदृष्टि :—

कपोतलेश्यायां मिथ्यादृष्टौ सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। सासादने पंचचत्वारिंशत् शतं। मिश्रे सप्तचत्वारिंशत् शतं। असंयते सर्वं। तेजःपद्मलेश्ययोः सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं गुणस्थानानि सप्त। तत्र सुहृतियलेस्सियवामेवि ण तित्थयरसत्तमिति तन्मिथ्यादृष्टौ तीर्थसत्त्वं नास्ति, कुतः ? नरकगमनाभिमुखसंक्लिष्टेभ्योऽन्येषां सम्यक्त्वविराधनाभावेन शुभलेश्यात्रये तद्विराधनासंभवात्। तेषु तन्मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सप्तचत्वारिंशत् शतं। सासादने पंचचत्वारिंशत् शतं। मिश्रे सप्तचत्वारिंशच्छतं। असंयते अष्टचत्वारिंशच्छतं देशसंयते नरकायुर्विना सप्तचत्वारिंशच्छतं। प्रमत्ते नरकतिर्यगायुषी विना षट्चत्वारिंशत् शतं। अप्रमत्तेऽपि तथैव षट्चत्वा-

---

अतः कृष्णनीलमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक सौ सैंतालीसका सत्त्व होता है। कपोत लेश्यामें मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। सासादनमें सत्त्व एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस। असंयतमें एक सौ अड़तालीस।

तेज और पद्मलेश्यामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान सात। आगममें कहा है कि शुभ तीन लेश्याओंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तीर्थंकरका सत्त्व नहीं होता, अतः मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरकी सत्ता नहीं है क्योंकि जो तीर्थंकरकी सत्तावाला नरक जानेके अभिमुख होता है उसके ही सम्यक्त्वकी विराधना होती है। अतः तीन शुभलेश्याओंमें सम्यक्त्वकी विराधना संभव नहीं है। इससे मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें एक सौ पैंतालीस। मिश्रमें एक सौ सैंतालीस। असंयतमें एक सौ अड़तालीस। देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीस। प्रमत्तमें नरकायु तिर्यंचायुके बिना एक सौ छियालीस। अप्रमत्तमें

तेजःपद्म० योग्य १४८।

व्यु	मि	सा	मि	अ १	दे १	प्र	अ
स	१४७	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६
अ	तो १	३	१	०	१	२	२

शुक्ललेश्यामार्गणेयोळु योग्यसत्वंगळु १४८। गुणस्थानंगळु मिथ्यादृष्ट्यादियागि पदिमूरप्पु वल्लियुं मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु तीर्थसत्वमिल्ल। कारणं मुंपेळ्दुदेयक्कुं। सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७। सासादनादि गुणस्थानंगळोळु गुणस्थानदोळ्पेळ्दंतेयक्कुं। संदृष्टि :--

शुक्ललेश्यायोग्य १४८

व्यु	मि	सा	मि	अ १	दे १	प्र	अ ८	अ	अ १६	८	१	१
स	१४७	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१३८	१३८	१२२	११४	११३
अ	तो १	३	१	०	१	२	२	१०	१०	२६	३४	३५

६	१	१	१	१	सू १	उ ०	क्षी १६	स
११२	१०६	१०५	१०४	१०३	१०२	१४६	१०१	८५
३६	४२	४३	४४	४५	४६	२	४७	६३

भव्यमार्गणेयोळु गुणस्थानदोळु पेळ्दंते योग्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तेंटु १४८। गुणस्थानंगळु पदिनाल्कुमप्पुवु। संदृष्टियुं गुणस्थानदोळ्पेळ्दंतेयक्कुं विशेषमिल्ल ॥

रिंशत् शतं।

शुक्ललेश्यायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश। तत्रापि मिथ्यादृष्टौ तीर्थासत्वात् सत्त्वं सप्तचत्वारिंशत् शतं। सासादनादिषु गुणस्थानोक्तैव संदृष्टिः।

भव्यमार्गणायां सत्त्वमष्टचत्वारिंशत् शतं। गुणस्थानानि चतुर्दश, संदृष्टिस्तदुक्तैव ॥३५४॥

१० भी उसी प्रकार एक सौ छियालीस।

शुक्ल लेश्यामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि तेरह। यहाँ भी मिथ्यादृष्टिमें तीर्थंकरका असत्त्व होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादन आदिमें रचना गुणस्थानवत् जानना।

भव्य मार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान चौदह। रचना गुणस्थानवत् ॥३५४॥

१. ब सासादनादौ गुणस्थानवत्।

अभव्यमार्गणेयोळु पेळ्दपरु :—

अभव्वसिद्धे णत्थि हु सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं ।
आहारचउक्कस्सवि असण्णिजीवे ण तित्थयरं ॥३५५॥

अभव्यसिद्धे नास्ति खलु सत्वं तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारचतुष्कस्याप्यसंज्ञिजीवे न तीर्थंकरं ॥

अभव्यमार्गणेयोळु तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राहारकचतुष्टयमेंबेळं प्रकृतिगळ्गे सत्वमिल्लेकेंदोडे अभव्यजीवंगे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राभिव्यक्तिसर्व्वकालदोळं संभविसदप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुं । १४१ ॥ सम्यक्त्वमार्गणेयोळु मिथ्यारुचिगळ्गे सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८ । सासादनरुचिगळ्गे सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तय्दु १४५ । मिश्ररुचिगळ्गे सत्वप्रकृतिगळु १४७ । उपशमसम्यक्त्वदोळु सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टप्पुवु । अल्लि असंयतगुणस्थानमादियागि उपशांतकषायगुणस्थानावसानमागि यें टुं गुणस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

उपशमसम्यक्त्वदोळु योग्य १४८

व्यु	अ १	दे १	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
स	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६
अ	०	१	२	२	२	२	२	२

अभव्यमार्गणायां तीर्थंकरसम्यक्त्वमिश्राणामाहारकचतुष्कस्य च सत्त्वं नास्ति, तस्य[1] सम्यग्दर्शनाद्यभिव्यक्तेः सर्वकालेऽप्यसंभवात् । गुणस्थानं मिथ्यादृष्टिसंज्ञं । सत्त्वमेकचत्वारिंशच्छतं ।

सम्यक्त्वमार्गणायां—मिथ्यारुचीनां सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । सासादनरुचीनां पंचचत्वारिंशच्छतं । मिश्ररुचीनां सप्तचत्वारिंशच्छतं । उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचत्वारिंशच्छतं । तत्रासंयतादुपशान्तकषायान्तान्यष्टौ गुणस्थानानि । संदृष्टिः—

उपशमसम्यक्त्वयोग्य १४८

व्यु	अ१	दे१	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
स	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६	१४६
अ	०	१	२	२	२	२	२	२

अभव्य मार्गणामें तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय और आहारक शरीर अंगोपांग, बन्धन संघातका सत्त्व नहीं होता; क्योंकि उसके सम्यग्दर्शन आदिकी अभिव्यक्ति कभी भी नहीं होती। गुणस्थान एक मिथ्यादृष्टि होता है। सत्त्व एक सौ इकतालीस।

१. ब सर्वदापि तस्य सम्यग्दर्शनाभिव्यक्त्यभावात् ।

वेदकसम्यक्त्वमार्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर नाल्वत्तें दु असंयतादिचतुर्गुणस्थानंगळप्पुवु।

संदृष्टि :—

वेदक सम्यक्त्वयोग्य १४८।

व्यु	अ १	दे १	प्र	अ
स	१४८	१४७	१४६	१४६
अ	०	१	२	२

क्षायिकसम्यक्त्वमार्गणेयोळु सत्वप्रकृतिगळु सप्तप्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तों दप्पुवु १४१। अल्लि असंयतनोळु नरकायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुं सत्वव्युच्छित्तियप्पुवेकें दोडे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देशसंयतं मनुष्यनेयप्पुदु कारणमागि सत्वंगळु नूर नाल्वत्तों दु। देशसंयतनोळु सत्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्तों भत्तु १३९। अप्रत्तसंयतनोळु क्षपकश्रेण्यपेक्षेयिंदं देवायुष्यं सत्वव्युच्छित्तिमक्कु १। सत्वप्रकृतिगळु नूर मूवत्तों भत्तु १३९। अपूर्व्वकरणनोळुभयश्रेण्यपेक्षेयिंदं सत्वंगळु नूर मूवत्तें दु १३८। अनिवृत्तिकरणं मोदल्गोंडु गुणस्थानदोळपेळ्दंते सत्वंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

वेदकसम्यक्त्वे सत्त्वमष्टचत्वारिंच्छतं। असंयतादिचतुर्गुणस्थानानि। संदृष्टिः—

वेदकयोग्य १४८

व्यु	अ१	दे१	प्र०	अ०
स	१४८	१४७	१४६	१४६
अ	०	१	२	२

क्षायिकसम्यक्त्वे सत्त्वं सप्तप्रकृत्यभावादेकचत्वारिंशच्छतं। तत्रासंयते नरकतिर्यगायुषी व्युच्छित्तिः। कुतः ? क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो मनुष्य एवेति कारणात्। सत्त्वमेकचत्वारिंशच्छतं। देशसंयते एकान्नचत्वारिंशच्छतं। प्रमत्तेऽप्येकान्नचत्वारिंशच्छतं। अप्रमत्ते क्षपकश्रेण्यपेक्षया देवायुर्व्युच्छित्तिः। सत्त्वमेकोनचत्वारिंशच्छतं। अपूर्वकरणे उभयश्रेण्यपेक्षयाऽष्टत्रिंशच्छतं। अनिवृत्तिकरणादिषु गुणस्थानवत्।

सम्यक्त्व मार्गणामें मिथ्यारुचि जीवोंमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। सासादन रुचि जीवोंमें तीर्थंकरके विना एक सौ सैंतालीस। उपशम सम्यक्त्वमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। वहाँ असंयतसे लेकर उपशान्त कषाय पर्यन्त आठ गुणस्थान होते हैं। वेदक सम्यक्त्वमें सत्त्व एक सौ अड़तालीस गुणस्थान असंयत आदि चार। क्षायिक सम्यक्त्वमें सत्त्व एक सौ इकतालीस क्योंकि मोहनीय सम्बन्धी सात प्रकृतियोंका अभाव है। वहाँ असंयत गुणस्थानमें नरकायु तिर्यंचायुकी व्युच्छित्ति होती है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत मनुष्य ही होता है। सत्त्व एक सौ इकतालीस। देशसंयतमें सत्त्व एक सौ उनतालीस। प्रमत्तमें भी एक सौ उनतालीस। अप्रमत्तमें क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा देवायुकी व्युच्छित्ति

क्षायिकसम्यक्त्वयोग्य १४१ ।

व्यु	अ २	दे	प्र	अ १	अ	अ १६	८	१	१	६	१	१
स	१४१	१३९	१३९	१३९	१३८	१३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५
अ	०	२	२	२	३	३	१९	२७	२८	२९	३५	३६

१	१	सू १	उ०	क्षी १६	स	अ ७२	१३
१०४	१०३	१०२	१३८	१०१	८५	८५	१३
३७	३८	३९	३	४०	५६	५६	१२८

संज्ञिमार्गणेयोळु सामान्यसत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टु १४८। अल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि यागि पन्नेरडुं गुणस्थानंगळप्पुवुळिदंतेनुं विशेषमिल्ल ॥ असंज्ञिमार्गणेयोळु असण्णिजीवे ण तित्थयरमें दितु तीर्थसत्वं पोरगागि नूर नाल्वत्तेळु सत्वप्रकृतिगळप्पुवु नूरनाल्वत्तेळु १४७। अल्लि मिथ्यादृष्टियोळ सत्वंगळु नूरनाल्वत्तेळु १४७ सासादननोळु नूरनाल्वत्तेरडु १४५ ॥ आहारमार्गणेयोळु पेळ्दपरु। सत्वप्रकृतिगळु नूरनाल्वत्तें टप्पुवु १४८। वल्लि मिथ्यादृष्ट्यादि- ५
यागि सयोगिकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिमूरुं गुणस्थानंगळप्पुवु मत्तों दु विशेषमिल्ल। गुणस्थान-दोळ्पेळ्दंते संदृष्टियुमक्कुं। अनाहारमार्गणेयोळु पेळ्दपरु :—

कम्मेवाणाहारे पयडीणं सत्तमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहवचंदच्चियणेमिचंदेण ॥३५६॥

कार्म्मणमिवानाहारे प्रकृतीनां सत्वमेवमादेशे। कथितमिदं बलमाधवचंद्रार्च्चितनेमि- १०
चंद्रेण ॥

संज्ञिमार्गणायां सामान्यसत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि द्वादश विशेषो न।

असंज्ञिमार्गणायां 'ण तित्थयरमिति सत्वं सप्तचत्वारिंशच्छतं। मिथ्यादृष्टावपि तथा। सासादने पंचचत्वारिंशच्छतं।

आहारमार्गणायां—सत्त्वमष्टचत्वारिंशच्छतं। गुणस्थानानि सयोगांतानि त्रयोदश। विशेषो १५
नास्ति ॥३५५॥

अनाहारमार्गणायां कार्मणयोगवत्, संदृष्टिः—

होती है। सत्त्व एक सौ उनतालीस। अपूर्वकरणमें उपशमश्रेणी तथा क्षपक श्रेणीकी अपेक्षा एक सौ अड़तीसका सत्त्व। अनिवृत्तिकरण आदिमें गुणस्थानवत् जानना।

संज्ञी मार्गणामें सामान्यसे सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान मिथ्यादृष्टि आदि २०
बारह। अन्य कोई विशेष नहीं है। असंज्ञिमार्गणामें तीर्थंकर न होनेसे सत्त्व एक सौ सैंतालीस। मिथ्यादृष्टिमें भी सत्त्व एक सौ सैंतालीस। सासादनमें एक सौ पैंतालीस।

आहारमार्गणामें सत्त्व एक सौ अड़तालीस। गुणस्थान सयोगीपर्यन्त तेरह। कोई विशेष नहीं है ॥३५५॥

कम्मेवि सगुणोघमें दितु कार्म्मणकाययोगदोळु पेळ्वंतनाहारमार्गणेयोळं सत्वप्रकृतिगळप्पुवु । संदृष्टि :—

ध्रु	मि	सा	अ	स	अ ७२	अ १३
स	१४८	१४४	१४८	८५	८५	१३
अ	०	४	०	६३	६३	१३५

यितुक्तप्रकारविदं मार्गणास्थानदोळु प्रकृतिगळ सत्वमिदु प्रत्यक्षवंदकरप्प बलदेववासुदेवरुगळिंदर्च्चितसल्पट्ट नेमिचंद्रतीर्त्थंकर परमभट्टारकरिंद पेळल्पट्टुदु । मेणाबलदेवण्णनिंदं श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्य देवरुगळिंदमुं पूजितसल्पट्ट नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्त्तिगळिंदं पेळल्पट्टुदु ॥

सो मे तिहुवणमहिओ सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥३५७॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः । दिशतु वरज्ञानलाभं बुधजनपरिप्रार्थितं परमशुद्धं ॥

अनाहारयोग्य १४८

ध्रु	मि	सा	अ	स	अ७२	१३
स	१४८	१४४	१४८	८५	८५	१३
अ	०	४	०	६३	६३	१३५

एवं मार्गणास्थाने प्रकृतिसत्त्वमिदं प्रत्यक्षवंदारुभ्यां बलदेववासुदेवाभ्यामर्चितनेमिचंद्रतीर्थंकरेण अथवा बलदेवभ्रात्रा श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवेनार्चितनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिना निरूपितं ॥३५६॥

स मे त्रिभुवनमहितः सिद्धो बुद्धो निरंजनो नित्यः दिशतु वरज्ञानलाभं बुधजनपरिप्रार्थितं परमशुद्धं ॥३५७॥

अनाहार मार्गणामें कार्मणकाययोगकी तरह जानना। इस प्रकार मार्गणास्थानमें यह प्रकृतियोंका सत्त्व प्रत्यक्ष वन्दना करनेवाले बलदेव और वासुदेवसे पूजित नेमिचन्द्र तीर्थंकरने कहा है। अथवा बलदेव भ्राता और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवसे अर्चित नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने कहा है ॥३५६॥

वे श्री नेमिनाथ भगवान् जो तीनों लोकोंके द्वारा पूजित हैं, सिद्ध, बुद्ध, निरंजन और नित्य हैं मुझे वह परम शुद्ध उत्कृष्ट ज्ञान दें, जो ज्ञान ज्ञानीजनोंके द्वारा प्रार्थनीय है, ज्ञानीजन जिसे चाहते हैं ॥३५७॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्राय राजगुरु मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमद्धर्म्मभूषण भट्टारकदेवप्रिय सधर्म्मनुं श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडबंधोदयसत्वयुक्तस्तवं महाधिकारं प्ररूपितमादुदु ॥ ५

इत्याचार्यनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे बंधोदयसत्त्वप्ररूपणो नाम द्वितीयोऽधिकारः ॥२॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी- १०
के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका
तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक
भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत
बन्धोदय सत्त्वनिरूपण नामक दूसरा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

अथ सत्त्वस्थानभंगाधिकारः ॥३॥

णमियूण वड्माणं कणयणिहं देवरायपरिपुज्जं ।
पयडीण सत्तठाणं ओघे भंगे समं वोच्छं ॥३५८॥

नत्वा वर्द्धमानं कनकनिभं देवराजपरिपूज्यं । प्रकृतीनां सत्वस्थानं ओघे भंगे समं वक्ष्यामि ॥

कनकवर्णनुं देवराजपरिपूज्यनुमप्प श्रीवीरवर्द्धमानस्वामियं नमस्कारमं माडि प्रकृतिगळ सत्वस्थानमं गुणस्थानंगळु भंगसहितमागि पेळ्दपनु ।

कि स्थानं को वा भंगः एंदितें दोड संख्याभेदेनैकस्मिन्जीवे युगपत्संभवत्प्रकृतिसमूहः स्थानं[1] । अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्त्तनं भंगः[2] । संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भंगः एंबितु स्थानलक्षणमुं भंगलक्षणमुमरियल्पडुगुं । गुणस्थानदोळु स्थानभंगंगळं पेळ्व प्रकारमं पेळ्दपरु :—

कनकवर्णं देवराजपरिपूज्यं श्रीवीरवर्धमानस्वामिनं नत्वा प्रकृतीनां सत्त्वस्थानं गुणस्थानेषु भंगसहितं वक्ष्यामि । किं स्थानं ? को वा भंगः ? संख्याभेदेनैकस्मिन् जीवे युगपत्संभवत्प्रकृतिसमूहः स्थानं । अभिन्नसंख्यानां प्रकृतीनां परिवर्तनं भंगः, संख्याभेदेनैकत्वे प्रकृतिभेदेन वा भंगः ॥३५८॥ गुणस्थानेषु स्थानभंगप्रतिपादनप्रकारमाह—

स्वर्णके समान रूपरंगवाले और देवोंके राजा इन्द्रके द्वारा पूजनीय श्री वर्धमान स्वामीको नमस्कार करके प्रकृतियोंके सत्त्वस्थानको गुणस्थानोंमें भंगके साथ कहूँगा । स्थान किसे कहते हैं और भंगका क्या स्वरूप है यह कहते हैं—

एक समयमें एक जीवके संख्या भेदको लिये हुए जो प्रकृतियोंका समूह पाया जाता है उसे स्थान कहते हैं । और समान संख्यावाली प्रकृतियोंमें जो प्रकृतियोंका परिवर्तन होता है उसे भंग कहते हैं । अथवा संख्या भेदसे समानता रहते हुए भी प्रकृति भेद होनेसे भंग होता है ॥३५८॥

विशेषार्थ—एक जीवके एक कालमें जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है उनके समूहका नाम स्थान है । सो जहाँ अन्य-अन्य संख्याको लिये प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है वहाँ अन्य-अन्य स्थान कहा जाता है । जैसे किन्हीं जीवोंके एक सौ छियालीसकी सत्ता पायी जाती है और किन्हीं जीवोंके एक सौ पैंतालीसकी सत्ता पायी जाती है तो यहाँ दो स्थान हुए । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । और जहाँ एक ही स्थानमें प्रकृतियाँ बदल जाती हों तो उसे भंग कहते हैं । जैसे किन्हीं जीवोंके मनुष्यायु और देवायुके साथ एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है किन्हीं जीवोंके तिर्यंचायु नरकायुके साथ एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है । सो यहाँ स्थान तो एक ही हुआ क्योंकि संख्या समान है ।

---

१. सत्त्वस्थाननिरूपणा-संख्याप्रकृतिभ्यां भेदे स्थानं । २. संख्यैकत्वे प्रकृतिभेदे भंगः ।

आउगबंधाबंधणभेदमकाऊण वण्णणं पढमं ।
भेदेण य भंगसमं परूवणं होदि बिदियम्मि ॥३५९॥

आयुर्ब्बंधाऽबंधनभेदमकृत्वा वर्णनं प्रथमं । भेदेन च भंगसमं प्ररूपणं भवति द्वितीयस्मिन् ॥

आयुर्ब्बंधाबंधभेदमं माडदे प्रथमवर्णनमक्कुं । द्वितीयदोळायुर्ब्बंधाबंधभेददोडने भंगसहितमागि प्ररूपणमक्कुमल्लि प्रथमपक्षदोळु पेळ्दपरु :—

सव्वं तिगेग सव्वं चेगं छसु दोणि चउसु छद्स य दुगे ।
छस्सगदालं दोसु तिसट्ठी परिहीण पयडिसत्तं जाणे ॥३६०॥

सर्व्वं त्रिकैकं सर्व्वं चैकं षट्सु द्वे चतुर्षु षट् दशकं द्विके । षट् सप्तचत्वारिंशत् द्वयोस्त्रिषष्टि परिहीनप्रकृतिसत्वं जानीहि ॥

मिथ्यादृष्टियोळु सर्व्वं नूर नाल्वत्तेंटुं प्रकृतिसत्वमक्कुं । सासादननोळु तीर्त्थमुमाहारकद्विकमेंब त्रिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । मिश्रनोळु तीर्त्थरहितमागि सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । असंयतनोळु सर्व्वं नूरनाल्वत्तेंटुं प्रकृतिसत्वमक्कुं । देशसंयतनोळु एकं नरकायुष्यं रहितमागि सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । षट्सु द्वे प्रमत्ताप्रमत्तरुगळुमुपशमकापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरेंबारुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नरकतिर्य्यगायुष्यमेंबेरडु प्रकृतिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं । चतुर्षु षट् मत्तमुपशमकापूर्व्वानिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरेंब नाल्कुं

आयुर्बंधाबंधभेदमकृत्वा प्रथमं वर्णनं भवति । द्वितीयस्मिन्नायुर्बंधाबंधभेदेन सह भंगसहितं प्ररूपणं भवति ॥३५९॥ तत्र प्रथमपक्षे प्राह—

मिथ्यादृष्टौ सत्त्वं सर्वमष्टचत्वारिंशच्छतं । सासादने तदेव तीर्थाहारकद्विकहीनं । मिश्रे तीर्थहीनं । असंयते सर्वं । देशसंयते नरकायुर्हीनं । प्रमत्तादिषु षट्सु नरकतिर्यगायुर्हीनं । पुनरपूर्वकरणादिषु चतुर्षु

किन्तु भंग अन्य हुआ क्योंकि प्रकृति बदल गयी है। पहलेमें मनुष्यायु देवायुकी सत्ता है और दूसरेमें तिर्यंचायु नरकायुकी सत्ता है। इसी प्रकार सर्वत्र अन्य-अन्य प्रकृतियोंकी संख्या होनेसे स्थान भेद होता है। और एक ही स्थानमें कोई प्रकृति अन्य-अन्य होनेसे भंग भेद होता है ॥३५८॥

आगे गुणस्थानोंमें स्थान और भंगके भेदोंका प्रकार कहते हैं—

आयुके बन्ध अथवा अबन्धका भेद न करके पहला वर्णन है और दूसरे वर्णनमें आयुके बन्ध और अबन्धके भेदके साथ भंगसहित वर्णन है ॥३५९॥

उनमें-से प्रथम पक्षका वर्णन करते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सत्त्व सब एक सौ अड़तालीस है। सासादनमें तीर्थंकर और आहारकद्वयसे बिना एक सौ पैंतालीसका सत्त्व है। मिश्रमें तीर्थंकरके बिना एक सौ सैंतालीसका सत्त्व है। असंयतमें सब एक सौ अड़तालीसका सत्त्व है। देशसंयतमें नरकायुके बिना एक सौ सैंतालीसका सत्त्व है। प्रमत्त आदि छह गुणस्थानोंमें उपशम सम्यक्त्वकी अपेक्षा नरकायु तिर्यंचायुके बिना एक सौ छियालीसका सत्त्व है। पुनः अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें

गुणस्थानंगळोळ् नरकतिर्य्यंगायुष्यंगळ्मनंतानुबंधिचतुष्टयमेंबारुं रहितमागि प्रत्येकं सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं। वशकद्विके क्षपकापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणरेंबेरडुं गुणस्थानंगळोळ् प्रत्येकं नरकतिर्य्यग्देवायुष्यंगळ् सप्तप्रकृतिगळ्मंतु दशप्रकृतिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं। द्वयोः षट् सप्तचत्वारिंशत् सूक्ष्मसांपराय क्षीणकषायरेंबेरडुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं सोळट्ठेक्किगि छक्कं चदुसेक्कमेंब नाल्वत्तारुं लोभसहितमागि नाल्वत्तेळु हीनमागि सर्व्वप्रकृतिसत्वमक्कुं। द्वयोस्त्रिषष्टिपरिहीनप्रकृतिसत्वं सयोगायोगकेवलिगुणस्थानद्वयदोळु घातिगळु नाल्वत्तेळु। नामकर्म्मदोळु पदिमूरु आयुष्यंगळु मूरितु त्रिषष्टिहीनप्रकृतिसत्वं प्रत्येकमक्कुं। च शब्ददिदमयोगकेवलिचरमसमयदोळु नूरमूवत्तय्दु प्रकृतिहीनमागि पदिमूरु प्रकृतिसत्वमक्कुमेंदितु त्वं जानीहि शिष्य नीनरि येंदु संबोधिसल्पट्टुदु। आ हीनप्रकृतिगळं पेळ्वपरु :—

सासण मिस्से देसे संजमदुग सामगेसु णत्थी य।
तित्थाहारं तित्थं णिरयाऊ णिरयतिरियआउ अणं ॥३६१॥

सासादनमिश्रयोर्देशसंयते संयतद्विकोपशमकेषु नास्ति च। तीर्त्थाहारं तीर्त्थं नरकायुर्न्नरकतिर्यगायुरनंतानुबंधिनः॥

सासादननोळं मिश्रनोळं देशसंयतनोळं संयतद्विकदोळमुपशमकरोळं हीनप्रकृतिगळु यथाक्रमदिदं तीर्त्थाहारत्रिकमुं तीर्त्थमुं नरकायुष्यमुं नरकतिर्य्यगायुर्द्वयमुं नरकतिर्य्यगायुष्यंगळुम-

---

नरकतिर्यगायुरनंतानुबंधिचतुष्कहीनं। क्षपकापूर्वकरणादिद्वये नरकतिर्यग्देवायुःसप्तप्रकृतिहीनं। सूक्ष्मसांपराये सोलट्ठिक्किगिछक्कं चदुसेक्कमिति षट्चत्वारिंशता हीनं। क्षीणकषाये लोभसहितया हीनं। सयोगायोगयोः घातिसप्तचत्वारिंशता नामकर्मत्रयोदशभिरायुस्त्रयेण च हीनं। चशब्दादयोगिचरमसमये पंचत्रिंशच्छतहीनं जानीहि ॥३६०॥ ता अपनीतप्रकृतीराह—

सासादने मिश्रे देशसंयते संयतद्विके उपशमके चापनीतप्रकृतयः क्रमेण तीर्थाहारत्रयं तीर्थं नरकायुष्यं नरकतिर्यगायुर्द्वयं नरकतिर्यगायुषी अनंतानुबंधिचतुष्कं चेति षट्। चशब्दात् क्षपकेषु दस य दुगे इत्यादिनोक्त-

---

नरकायु, तिर्यंचायु और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना एक सौ बयालीसका सत्त्व है। क्षपक अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु तथा मोहनीयकी सात प्रकृतियोंके बिना एक सौ अड़तीसका सत्त्व है। सूक्ष्म साम्परायमें अनिवृत्तिकरणमें व्युच्छिन्न हुईं सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एकके बिना एक सौ दोका सत्त्व है। क्षीणकषायमें लोभ सहित सैंतालीस बिना एक सौ एकका सत्त्व है। सयोगी-अयोगीमें घातिकर्मोंकी सैंतालीस, नामकर्मकी तेरह और तीन आयुके बिना पिचासीका सत्त्व है। 'च' शब्दसे अयोगीके अन्तिम समयमें एक सौ पैंतीस बिना तेरहका सत्त्व है ॥३६०॥

घटायी हुई प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

सासादन, मिश्र, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्त संयत, और उपशम श्रेणीमें घटायी हुई प्रकृतियाँ क्रमसे तीर्थंकर और आहारकद्विक ये तीन, तीर्थंकर, नरकायु, नरकायु और

---

१. ब °योगयोः सप्तचत्वारिंशद्घाति त्रयोदशनामत्र्यायुःहीनं।

नंतानुबंधिचतुष्कमुमंतारं प्रकृतिगळप्पुवु । च शब्दंदिंवक्षपकरोळु दसयदुगे एंदितिवु मोदलागि हीनप्रकृतिगळरियल्पडुवुवु । संदृष्टि :—

व्यु	मि०	सा०	मि०	अ	दे	प्र	अ	अ उ		अ० क्ष	अनिवृत्ति० उ० अ०क्ष		
स	१४८	१४५	१४७	१४८	१४७	१४६	१४६	१४६	१४२	१३८	१४६	१४२	१३८
अ	०	३	१	०	१	२	२	२	६	१०	२	६	१०

सूक्ष्म०	उ. प.	सूक्ष्म	उ		क्षी	स	अ	
१४६	१४२	१०२	१४६	१४२	१०१	८५	८५	१३
२	६	४६	२	६	४७	६३	६३	१३५

अनंतरं गुणस्थानदोळु स्थानसंख्येयं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

बिगुणणव चारि अट्ठं मिच्छतिये अयदचउसु चालीसं ।
तिसु उवसमगे संते चउवीसा होंति पत्तेयं ॥३६१॥
चउछक्कदि चउअट्ठं चउ छक्क य होंति सत्तठाणाणि ।
आउगबंधाबंधे अजोगिअंते तदो भंगं ॥३६२॥

द्विगुणनव चतुरष्टौ मिथ्यादृष्टि त्रिके असंयतचतुर्षु चत्वारिंशत् त्रिषूपशमकेषूपशांते च चतुर्विंशतिर्भवंति प्रत्येकं ॥

चतुःषट्कृति चतुरष्टौ चतुः षट् च भवंति सत्वस्थानानि । आयुर्बंधाऽबंधे अयोग्यंते ततो भंगः ॥

द्विगुण नव मिथ्यादृष्टियोळु अष्टावश स्थानंगळप्पुवु । चतुःसासादनगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु । अष्टौ मिश्रगुणस्थानदोळेंटु सत्वस्थानंगळप्पुवु । असंयतचतुर्षु चत्वारिंशत् असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्वत्तु नाल्वत्तु सत्वस्थानंगळप्पुवु । त्रिषूपशमकेषूपशांते च अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायरेंब मूवरुमुपशमकरोळमुपशान्तकषायनोळं प्रत्येकं चतुर्विंशतिः प्रत्येकमिप्पत्तनाल्कुं इप्पत्तु नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु । चतुःक्षपकश्रेणियोळपूर्व-

---

प्रकृतयोऽपि ज्ञातव्याः । अथ गुणस्थानेषु स्थानसंख्या गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्टौ सत्त्वस्थानान्यष्टादश, सासादने चत्वारि, मिश्रेऽष्टौ, असंयतादिषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारिंशत्,

---

तिर्यंचायु दो, तथा नरकायु तिर्यंचायु, अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह जानना । 'च' शब्दसे क्षपकश्रेणीमें 'दस य दुगे' इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारसे घटायी गयीं प्रकृतियाँ जानना ॥३६१॥

आगे गुणस्थानोंमें स्थानोंकी संख्या दो गाथाओंके द्वारा कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें सत्त्वस्थान अठारह, सासादनमें चार, मिश्रमें आठ, असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें प्रत्येकमें चालीस, उपशम श्रेणीके तीन गुणस्थानोंमें तथा उपशान्त कषायमें

---

१. व तान्यायुर्बन्धाबन्धविवक्षायाममयोग्यंतगुणस्थानेषु सत्त्वस्थानान्याह ।

करणनोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु । षट्कृति अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु मूवत्तारु सत्वस्थानंगळप्पुवु । चतुः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानदोळु नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु । अष्टौ क्षीणकषायगुणस्थानदोळेंटु सत्वस्थानंगळप्पुवु । चतुः सयोगकेवलिगुणस्थानदोळु नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु । षट् च भवंति सत्वस्थानानि अयोगिगुणस्थानदोळारु सत्वस्थानंगळप्पुवितायुर्बंधाऽबंधविवक्षेयोळयोगिकेवलि गुणस्थानावसानमाद गुणस्थानंगळोळु सत्वस्थानंगळ संख्ये पेळल्पट्टुदु । ततो भंगः अल्लिंद बळिक्कमा पेळ्द सत्वस्थानंगळगे भंगसंख्ये पेळल्पडुगुं :—

पण्णास बार छक्कदि वीससयं अट्ठदाल दुसु तालं ।
अडवीसा बासट्ठी अडचउवीसा य अट्ठ चउ अट्ठा ॥३६४॥

पंचाशत् द्वादश षट्कृति विंशत्युत्तरशतमष्ट चत्वारिंशद्द्वयोश्चत्वारिंशदष्टाविंशतिर्द्वाषष्टिरष्ट चतुरुत्तरविंशतिश्चाष्टचतुरष्टौ ॥

पंचाशत् मिथ्यादृष्टियोळ्पदिनेंटु स्थानंगळगप्पत्तु भंगंगळप्पुवु । द्वादश सासादनन नाल्कुं स्थानंगळगे पन्नेरडु भंगं गळप्पुवु । षट्कृति मिश्रनेंटुं स्थानंगळगे षट्त्रिंशद्भंगंगळप्पुवु । विंशत्युत्तरशतं असंयतन नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नूरिप्पत्तु भंगंगळप्पुवु । अष्टचत्वारिंशत् देशसंयतन नाल्वत्तु सत्वस्थानंगळगे नाल्वत्तेंटु भंगंगळप्पुवु । द्वयोश्चत्वारिंशत् प्रमत्ताप्रमत्तरुगळ नाल्वत्तुं नाल्वत्तुं सत्वस्थानंगळगे नाल्वत्तुं नाल्वत्तुं भंगंगळप्पुवु । अष्टाविंशतिः अपूर्वकरणनुभयश्रेणिय इप्पत्तेंटु सत्वस्थानंगळिगप्पत्तेंटु भंगंगळप्पुवु । द्विषष्टिः अनिवृत्तिकरणनुभयश्रेणिय अरुवत्तुं स्थानंगळगर्ववत्ते-

---

त्रिषूपशमकेषूपशांते च प्रत्येकं चतुर्विंशतिः, क्षपकापूर्वकरणे चत्वारि, अनिवृत्तिकरणे षट्त्रिंशत्, सूक्ष्मसांपराये चत्वारि, क्षीणकषायेऽष्टौ, सयोगे चत्वारि, अयोगे षट् । एवमायुर्बंधाबंधविवक्षायामयोग्यंतगुणस्थानेषु सत्त्वस्थानान्युक्तानि ॥३६२-३६३॥ ततोऽग्रे तेषां भंगसंख्यामाह—

मिथ्यादृष्टावष्टादशस्थानानां भंगाः पंचाशत् । सासादनस्य चतुर्णां द्वादश । मिश्रस्याष्टानां षट्त्रिंशत् । असंयतस्य चत्वारिंशतो विंशत्युत्तरशतं । देशसंयतस्य चत्वारिंशतोऽष्टचत्वारिंशत् । प्रमत्तस्याप्रमत्तस्य च चत्वारिंशतश्चत्वारिंशत् । उभयश्रेण्यपूर्वकरणस्याष्टाविंशतेरष्टाविंशतिः । उभयश्रेण्यनिवृत्तिकरणस्य षण्टेर्द्वाषष्टिः ।

प्रत्येकमें चौबीस सत्त्वस्थान होते हैं । क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणमें चार, अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस, सूक्ष्म साम्परायमें चार, क्षीणकषायमें आठ, सयोगीमें चार और अयोगीमें छह सत्त्वस्थान होते हैं । इस प्रकार आयुके बन्ध और अबन्धकी विवक्षामें अयोगी पर्यन्त चौदह गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान कहे ॥३६२-३६३॥

आगे इन स्थानोंके भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंके पचास भंग होते हैं । सासादनके चार स्थानोंके बारह भंग होते हैं । मिश्रके आठ स्थानोंके छत्तीस भंग होते हैं । असंयतके चालीस स्थानोंके एक सौ बीस भंग होते हैं । देशसंयतके चालीस स्थानोंके अड़तालीस भंग होते हैं । प्रमत्त और अप्रमत्तके चालीस स्थानोंके चालीस भंग होते हैं । दोनों श्रेणियों सम्बन्धी अपूर्वकरणके अठाईस स्थानोंके अठाईस भंग होते हैं । दोनों श्रेणी सम्बन्धी अनिवृत्तिकरणके

रडु भंगंगळप्पुवु। अष्टाविंशतिः सूक्ष्मसांपरायनुभयश्रेणिय इप्पत्तेंटु सत्वस्थानंगळिगप्पत्तेंटु भंगंगळप्पुवु। चतुर्विंशतिः उपशांतकषायन इप्पत्तनाल्कुं सत्वस्थानंगळिगप्पत्तनाल्कुं भंगंगळप्पुवु। अष्ट क्षीणकषायनें टुं सत्वस्थानंगळगें टु भंगंगळप्पुवु। चतुःसयोगिकेवलिय नाल्कुं सत्वस्थानंगळगे नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। अष्टौ अयोगिकेवलिय आरुं सत्वस्थानंगळगें टुं भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः—

★	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अपू	अनि	सू	उ	क्षी	स	अ
स्थानं	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	२४।४	२४।३६	२४।४	२४	८	४	६
भंगः	५०	१२	३६	१२०	४८	४०	४०	२८	६२	२८	२४	८	४	८

अनंतरं मिथ्यादृष्टियोळु पदिनें टुं स्थानंगळगे प्रकृतिसंख्येयनायुर्बंधाबंधविवक्षेयिंदं पेळदपरु :—

दुतिछस्सत्तट्ठणवेक्करसं सत्तरसमूणवीसमिगिवीसं।
हीणा सव्वे सत्ता मिच्छे बद्धाउगिदरमेगूणं ॥३६५॥

द्वित्रिषट्सप्ताष्टनवैकादशसप्तदशैकान्नविंशत्येकविंशतिहीनाः। सर्वसत्वानि मिथ्यादृष्टौ बद्धायुषीतरस्मिन्नेकोनं ॥

बद्धायुषि मिथ्यादृष्टौ बद्धायुष्यनप्प मिथ्यादृष्टियोळु द्विहीन त्रिहीन षड्हीन सप्तहीनाष्टहीन नवहीनैकादशहीन सप्तदशहीनैकान्नविंशतिहीनैकविंशतिहीनसर्व्वप्रकृतिसत्वमागुत्तं विरलु सत्वस्थानंगळु पत्तु १०। अबद्धायुष्यनोळु मत्तों दों दु प्रकृतिहीनमागुत्तं विरलु सत्वस्थानंगळवुं

उभयश्रेणीसूक्ष्मसांपरायस्याष्टाविंशतेरष्टाविंशतिः। उपशांतकषायस्य चतुर्विंशतेश्चतुर्विंशतिः। क्षीणकषायस्याष्टानामष्टौ। सयोगकेवलिनश्चतुर्णां चत्वारः। अयोगिनः षण्णामष्टौ ॥३६४॥ अथ मिथ्यादृष्टावष्टादशस्थानानां प्रकृतिसंख्यामायुर्बंधाबंधविवक्षयाह—

बद्धायुष्के मिथ्यादृष्टौ द्वित्रिषट्सप्ताष्टनवैकादशसप्तदशैकान्नविंशतिभिः पृथग्हीने सत्त्वे स्थानानि दश।

साठ स्थानोंके बासठ भंग होते हैं। दोनों श्रेणीसम्बन्धी सूक्ष्मसाम्परायके अठाईस स्थानोंके अठाईस भंग होते हैं। उपशान्तकषायके चौबीस स्थानोंके चौबीस भंग होते हैं। क्षीणकषायके आठ स्थानोंके आठ भंग होते हैं। सयोगकेवलीके चार स्थानोंके चार भंग होते हैं। अयोगकेवलीके छह स्थानोंके आठ भंग होते हैं ॥३६४॥

आगे मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थानोंकी प्रकृति संख्यामें आयुके बन्ध और अबन्धकी विवक्षापूर्वक कहते हैं—

जिसके आगामी आयुका बन्ध हुआ है उसे बद्धायु कहते हैं और जिसके आगामी आयुका बन्ध नहीं हुआ उसे अबद्धायु कहते हैं। बद्धायु मिथ्यादृष्टिके सर्व सत्त्वरूप एक सौ अड़तालीस प्रकृतियोंमें-से दो प्रकृति हीन पहला स्थान है। इसी प्रकार द्वितीयादि स्थान क्रमसे तीन, छह, सात, आठ, नौ, ग्यारह, सतरह, उन्नीस और इक्कीस प्रकृति हीन होते हैं।

पत्तु १०। अंतु कूडि सत्वस्थानंगळिप्पत्तरोळु पुनरुक्तस्थानद्वयमं कळेदु शेष सत्वस्थानंगळु पदिनेंटप्पुवु । संदृष्टिः—

	० २	० ३	० ६	० ७	० ८	० ९	० ११	० १७	० १९	० २१
अबद्धायुष्क मि० ८	१४६ भं १	१४५ ५	१४२ १	१४१ ५	१४० ५	१३९ ५	१३७ १	१३१ १	१२९ १	१२७ १
अबद्धायुष्क मि०	१४५	१४४	१४१	१४०	१३९	१३८	१३६	१३०	१२९	१२७
भं	१	४	१	४	४	४	४	२	पुनरुक्त	पुनरुक्त

इल्लि द्विभ्यादिहीन प्रकृतिगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

तिरियाउगदेवाउगमण्णदराउगदुगं तहा तित्थं ।
देवतिरियाउसहियाहारचउक्कं तु छच्चेदे ॥३६६॥
आउदुगहारतित्थं सम्मं मिस्सं च तह य देवदुगं ।
णारयछक्कं च तहा णराउउच्चं च मणुवदुगं ॥३६७॥

तिर्य्यगायुर्देवायुरन्यतरायुर्द्विकं तथा तीर्त्थं । देवतिर्य्यगायुःसहिताहारचतुष्कं तु षट् चैताः ॥

आयुर्द्वयाहारतीर्त्थं सम्यक्त्वं मिश्रं च तथा च देवद्विकं । नारकषट्कं च तथा नरायुरुच्चं च मानवद्विकं ॥

तिर्य्यगायुष्यमुं देवायुष्यमुमेंबेरडुं अन्यतरायुर्द्विकमुं तीर्त्थमुमेंब मूरुं देवायुष्यमुं तिर्य्यगायुष्यमुमाहारचतुष्टयमेंबारुं, अन्यतरायुर्द्वयं तीर्त्थमाहारचतुष्टयमेंबेळुं सम्यक्त्वप्रकृतिसहितमप्पेंटुं मिश्रप्रकृतिसहितमप्पोंभत्तुं देवद्विकसहितमप्प पन्नोंदुं नारकषट्कसहितमप्प पदिनेळु

१५ अबद्धायुष्के पुनरेकैकस्मिन् हीने दश । एवं विंशतिस्थानेषु पुनरुक्तद्वयेऽपनीतेऽष्टादश भवंति ॥३६५॥ तां: अपनीतप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

तिर्यग्देवायुषी अन्यतरायुषी तीर्थं चेति देवतिर्यगायुषी आहारकचतुष्कं चेति अन्यतरायुषी तीर्थमाहा-

ये दस स्थान तो बद्धायुके हैं। अबद्धायुके इनमें-से एक-एक अधिक प्रकृति हीन स्थान होते हैं यह भी दस होते हैं। इस प्रकार बीस स्थानोंमें-से दो पुनरुक्त स्थान घटानेपर मिथ्यादृष्टिमें २० सब अठारह स्थान होते हैं ॥३६५॥

आगे घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम कहते हैं—

किसी जीवके तिर्यंचायु-देवायुके बिना एक सौ छियालीसका सत्त्व होता है। किसीके भुज्यमान बध्यमान दो आयुके बिना कोई दो आयु और तीर्थंकरके बिना एक सौ पैंतालीस-

१. आहारकशरीरबंधनसंघात अंगोपांगमेंब । २. ब ताः हीनप्र° ।

नरायुष्यमुमुच्चैर्गोत्रमुं सहितमागि हतो भत्तुं मनुष्यद्विकसहितमाविप्पत्तो दु रहितमाद सत्त्वसत्व प्रकृतिगळु सत्वस्थानमक्कुमंतु बद्धायुष्यनोळु सत्वस्थानंगळु पत्तु १०। अबद्धायुष्यनोळु भुज्यमानायुष्यमो दे सत्वमप्पुदरिना पत्तुं स्थानंगळ प्रकृतिगळोळो दो दायुष्यमं कळेदु शेषप्रकृतिगळ सत्वस्थानंगळुं पत्तुं १०। अंतिप्पत्तुं सत्वस्थानंगळोळु पुनरुक्तस्थानंगळ मुंदे पेळल्पडुववं कळेदु शेषसत्वस्थानंगळु पदिनेंटप्पु १८ ववक्के भंगंगळय्वत्तप्पुववें तेंदोडे रचनेयोळु पेळ्द भंगंगळ्गनुसारियागि परमगुरूपदेशदिदं भंगंगळु पेळल्पडुवुदल्लि प्राग्बद्ध नरकायुष्यनप्प मनुष्य मिथ्यादृष्टि गृहीतवेदकसम्यक्त्वनसंयतगुणस्थानवर्त्ति केवलिद्वयोपांतदोळु षोडशभावनापरिणतं तीर्थंकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसि तीर्थसत्कर्म्मनागि मरणकालदोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रावशेषमादागळु सम्यग्दर्शनमं विराधिसि मिथ्यादृष्टियादातंगे तिर्य्यगायुष्यमुं देवायुष्यमुं रहितमागि

रचतुष्कं चेति, ता एव सप्त, सम्यक्त्वप्रकृत्याष्टौ, पुनर्मिश्रप्रकृत्या नव, देवद्विकेनैकादश, नारकषट्केन सप्तदश, नरायुरुच्चैर्गोत्राभ्यामेकान्नविंशतिः, मनुष्यद्विकेनैकविंशतिः, तेषामष्टादशस्थानानां पंचाशद्भंगाः रचनानुसारेण परमगुरूपदेशेनोच्यंते[1]—

तत्र कश्चित् प्राग्बद्धनरकायुर्मनुष्यो मिथ्यादृष्टिर्गृहीतवेदकसम्यक्त्वोऽसंयतः केवलिद्वयोपांते षोडशभावनाभिस्तीर्थबंधं प्रारभ्य तत्सत्कर्मा[2] भूत्वा मरणकाले भुज्यमानायुष्यंतर्मुहूर्तेऽवशिष्टे मिथ्यादृष्टिर्जातस्तस्य

का सत्त्व होता है। किसीके देवायु, तिर्यंचायु और आहारक चतुष्कके बिना एक सौ बयालीसका सत्त्व होता है। किसीके कोई दो आयु, आहारक चतुष्क और तीर्थंकरके बिना एक सौ इकतालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त सात और सम्यक्त्व मोहनीयके बिना एक सौ चालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त आठ और मिश्र मोहनीयके बिना एक सौ उनतालीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त नौ और देवगति-देवानुपूर्वी बिना एक सौ सैंतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त ग्यारह तथा नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर, अंगोपांग बन्धन संघात, इस नारकषट्कके बिना एक सौ इकतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त सतरह, नरकायु, उच्चगोत्र इन उन्नीसके बिना एक सौ उनतीसका सत्त्व होता है। किसीके पूर्वोक्त उन्नीस और मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वीके बिना एक सौ सत्ताईसका सत्त्व होता है। इस प्रकार ये दस स्थान बद्धायुके जानना। अबद्धायुके केवल भुज्यमान आयुकी ही सत्ता होती है, बध्यमान आयुकी सत्ता नहीं होती। अतः पूर्वोक्त सत्त्वमें एक-एक बध्यमान आयु हीन करनेसे अबद्धायुके भी दस स्थान होते हैं। उनमें-से दो पुनरुक्त स्थान घटानेपर मिथ्यादृष्टिमें अठारह स्थान होते हैं। अर्थात् मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें एक जीवके एक कालमें उक्त प्रकारसे प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जाती है। इससे भिन्न प्रकारसे कभी भी नहीं पायी जाती।

अब इन अठारह स्थानोंके पचास भंग परमगुरुके उपदेशानुसार कहते हैं—

जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया है वह मिथ्यादृष्टि मनुष्य वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत गुणस्थानवर्ती होकर केवली श्रुतकेवलीके पासमें सोलह भावनाओंके

१. ब °देशादुच्यंते। २. ब °ष्टिः वेदकसम्यग्दृष्टी संयतो भूत्वा। ३. ब तत्सत्व सन् मरणे भुं।

नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु । मिदो दे भंगमेकें दोडे बध्यमानेतर "यसः" तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यनल्प भुज्यमानमनुष्यायुष्यंगसंयतसम्यग्दृष्टिगे तीर्त्थबंधप्रारंभं नियमदिंदमिल्लेकें दोडे तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते एंब नियममुंटप्पुदरिंदं । बध्यमानदेवायुष्यनल्प मनुष्याऽसंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळ्गे सम्यग्दर्शनच्युतियिल्ल । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यं मिथ्यादृष्टियल्लनेकें दोडे षण्मासावशेषमागुत्तिरलु बद्धमनुष्यायुष्यंगे गर्भावतरणकल्याणमुंटप्पुदरिंदमदु कारणमागि भंगमो दे सिद्धमक्कु-। मा जीवं नारकनागि पर्य्याप्तिनेरेवन्नेवरमंतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टियागिक्कुमबद्धायुष्यनप्पुदरिंदं । भुज्यमाननरकायुष्यमल्लदितरतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळ् मूरुं रहितमागि नूर नाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमिदो दे भंगं । संदृष्टि :—

तिर्यग्देवायुरभावात्षट्चत्वारिंशच्छतं सत्त्वस्थानं भवति । (१) अस्य तु भंगः बध्यमानतिर्यग्मनुष्यायुर्भुज्यमानमनुष्यायुरसंयतयोस्तीर्थबंधप्रारंभाभावात्, (२) बध्यमानदेवायुर्मनुष्यासंयतादिचतुर्णां सम्यग्दर्शनप्रच्युत्यभावात् । (३) भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुषोर्मिथ्यादृष्टेर्नास्ति कुतः ? षण्मासावशेषे संभवत्तीर्थसत्त्वस्य तदा गर्भावतरणकल्याणसद्भावात् मिथ्यादृष्टित्वाघटनाच्चैक एव । स एव जीवो नारको भूत्वा पर्याप्तिनिष्पत्त्यंर्मुहूर्तं मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा तिष्ठति तस्याबद्धायुष्कत्वाद्भुज्यमानायुष्यादितरेषामभावात्पंचचत्वारिंशच्छतं सत्त्वस्थानं भवति । तत्रापि भंग एक एव । संदृष्टिः—

द्वारा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ कर तीर्थंकरकी सत्तावाला होकर मरणकाल आनेपर भुज्यमान आयुमें एक अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर मिथ्यादृष्टि हुआ। उस जीवके तिर्यंचायु और देवायुका अभाव होनेसे एक सौ छियालीस प्रकृतिस्वरूप सत्त्व स्थान होता है। यहाँ भंग एक ही होता है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—जिस असंयत सम्यग्दृष्टी मनुष्यने तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ नहीं होता। और जिसने देवायुका बन्ध कर लिया है वह असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वमें नहीं आता। तथा भुज्यमान नरकायु और बध्यमान मनुष्यायु मिथ्यादृष्टि नहीं होता क्योंकि जिसके तीर्थंकरकी सत्ता है ऐसा नारकी नरकायुके छह मास शेष रहनेपर उसका गर्भावतरण कल्याणक होता है तब वह सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यादृष्टि नहीं होता। अतः एक सौ छियालीसके सत्त्वमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु यह एक ही भंग होता है। तथा अबद्धायुके भुज्यमान एक आयुका सत्त्वके सिवाय अन्य आयुका सत्त्व सम्भव नहीं है अतः देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायुके बिना एक सौ पैंतालीसका सत्त्वस्थान होता है। उसमें भी भुज्यमान नरकायु यह एक ही भंग होता है। क्योंकि वही भुज्यमान नरकायु तथा तीर्थंकरकी सत्तावाला मनुष्य जब मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तब उसके निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मिथ्यादृष्टिपना रहता है। उस अवस्थामें अबद्धायु होनेसे भुज्यमान एक नरकायुके सत्त्वके सिवाय अन्य तीन आयुका सत्त्व न होनेसे एक सौ पैंतालीसका सत्त्व होता है, अन्यके नहीं होता।

---

१. बद्धतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यदोलु तीर्त्थसत्वं दोरेकोल्लदेंदुमुंदे तावे पेल्दपरप्पुदरिंदमिल्लियुमदे तात्पर्यं ।

२. ब °ष्टित्वा भावावेकभंगमेव । स एव जीवो।

ब	१४६ / १
अब	१४५ / १

मत्तं द्वितीयबध्यमानायुस्थानदोळु चतुर्गतिगळ विवक्षित भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमुं तीर्त्थमुमिल्लु मूरुं रहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु पन्नेरडु भंगंगळप्पुवदेंतेंदोडे भुज्यमाननारकं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनुं १। भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमाननारकायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानदेवायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवायुष्यनु १। भुज्यमानदेवं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनु १। भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यनु १ मेंदितु द्वादश भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः—

बध्यमान	ति	म	न	ति	म	दे	न	ति	म	दे	ति	म
भुज्यमान	ना	ना	ति	ति	ति	ति	म	म	म	म	दे	दे

ब	१४६ / १
अ	१४५ / १

पुनः द्वितीयं बध्यमानायुःस्थानं चतुर्गतिविवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयाच्छेषायुर्द्वयतीर्थाभावात्पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिकं। तत्र भंगाः भुज्यमाननारकबध्यमानतिर्यगायुः १ भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुः २ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमाननरकायुः ३ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानतिर्यगायुः ४ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुः ५ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानदेवायुः ६ भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननारकायुः ७ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यगायुः ८ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानमनुष्यायुः ९ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुः १० भुज्यमानदेवबध्यमानतिर्यगायुः ११ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुश्चेति १२ द्वादश भवंति।

बद्धायुका दूसरा स्थान चारों आयुओंमें-से भुज्यमान और बध्यमान दो आयुके सिवाय शेष दो आयु और तीर्थंकर इन तीनके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतियोंके सत्त्वरूप होता है। वहाँ बारह भंग इस प्रकार हैं—१ भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यंचायु, २ भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, ३ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु, ४ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु, ५ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु, ६ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु, ७. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु, ८ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु, ९. भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु, १० भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, ११ भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु, १२ भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु।

ई द्वादश भंगंगळोळु भुज्यमानतिर्य्यगायुष्यमुं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यभंगमुं भुज्यमानमनुष्यायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यभंगमुमिवेरडुं पुनरुक्तभंगंगळु। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमाननरकायुष्यनुं १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनुं १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनु १। भुज्यमानदेवं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनुं १। भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १ मितय्दुं भंगंगळु समंगळु। पुनरुक्तसमविहीनंगळु भंगंगळप्पुदरिंदं शेषभुज्यमाननारकं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनु १। भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंच बध्यमानमनुष्यायुष्यनु १। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानदेवायुष्यनु १। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवायुष्यनु १ मेंबय्दुं ५ भंगंगळगे ग्रहणमक्कुं। संदृष्टिः—

बध्यमान	ति	म	म	दे	दे
भुज्यमान	ना	ना	ति	ति	म

	१	१	०	०	१	१	०	०	०	१	०	०
बध्यमा.	ति	म	ना	ति	म	दे	ना	ति	म	दे	ति	म
भुज्यमा.	ना	ना	ति	ति	ति	ति	म	म	म	म	दे	दे

एतेषु भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुर्भुज्यमानबध्यमानमनुष्यायुषोः पुनरुक्तत्वात् भुज्यमानतिर्यंग्बध्यमाननरकायुः १–भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुः २–भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यगायुः ३–भुज्यमानदेवबध्यमानतिर्यगायुः ४–भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुषां समत्वाच्च शेषाः पंचैव ग्राह्याः। संदृष्टिः—

बध्य	ति	म	म	दे	दे
भुज्य	ना	ना	ति	ति	म

इस प्रकार बारह भंग होते हैं। इनमें-से भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु तथा भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु ये दो भंग पुनरुक्त हैं क्योंकि दोनों भंगोंमें भुज्यमान और बध्यमान प्रकृति एक-सी है। शेष दशमें-से भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान नरकायु बध्यमान तिर्यंचायु ये दो भंग समान हैं क्योंकि दोनोंमें ही नरकायु और तिर्यंचायुकी सत्ता है। इसलिए दोनोंमें-से एक ही भंग लेना। इसी प्रकार भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु इन दो भंगोंमें समानता है। भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु और भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु इनमें भी समानता है। भुज्यमान देवायु बध्यमान तिर्यंचायु और भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायुमें समानता है, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु और भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायुमें समानता है। अतः एक एक ही भंग गिननेसे पाँच भंग जानना।

अबध्यमान द्वितीयसत्वस्थानदोळु अबध्यायुष्यनं कुरुत्तु विवक्षितायुष्यमो[1]दं कळेदु नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानक्के भुज्यमाननारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवनुमें[2]ब नाल्कुं भंगंगळप्पुवल्लि प्रत्येकमितरायुस्त्रयमुं तीर्त्थमुं रहितमागि नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं। संदृष्टि :—

बध्यमान	१४५ ५
अबध्यमान	१४४ ४

तृतीयबध्यमानायुःस्थानदोळु स्वामियप्प मिथ्यादृष्टिजीवं मुन्नमप्रमत्तगुणस्थानमं पोद्दियाहारक चतुष्टयमनुपार्जिजसदे सत्वरहितं मेणऽप्रमत्तगुणस्थानमं पोद्दिदोनाहारकचतुष्टयमनुपार्जिजसि क्रमदिदं मिथ्यादृष्टियागियाहारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडितत्सत्वरहितजीवं मेणु मनुष्यं बद्धनरकायुष्यं गृहीतवेदकसम्यक्त्वनसंयतसम्यग्दृष्टिकेवलिद्वयोपांतदोळु षोडशभावनापरिणतं तीर्त्थंकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसि तीर्त्थंकर सत्कर्म्मनागि मरणकालदोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रावशेषमागुत्तिरलु द्वितीयादितृतीयपृथ्विपर्य्यंतं जिगमिषुमिथ्यादृष्टियागि वर्त्तिप-

[1] तदबध्यमानायुःस्थानं तदेकं बद्धायुर्विना चतुश्चत्वारिंशच्छतप्रकृतिकं। तस्य भंगाश्चतुर्गतिभुज्यमानायुर्भेदाच्चत्वारः। संदृष्टिः—

बध्य	१४५ ५
अब	१४४ ४

कश्चिन्मिथ्यादृष्टिः प्रागप्रमत्तगुणस्थानं गत्वाऽनुपार्जिताहारकचतुष्टयतया तदसत्त्वोऽथवा उपार्ज्य क्रमेण मिथ्यादृष्टिर्भूत्वोद्वेल्य तदसत्त्वः सन् मनुष्यो बद्धनरकायुर्गृहीतवेदकसम्यक्त्वोऽसंयतः केवलिद्वयोपांते षोडशभावनाभिस्तीर्थकरयुग्यबंधं प्रारभ्य तत्सकर्मा भूत्वा मरणे भुज्यमानायुष्यंतर्मुहूर्तेऽवशिष्टे द्वितीयतृतीयपृथ्व्योर्ग-

अबद्धायुके दूसरे स्थानमें एक सौ पैंतालीसमें-से एक बध्यमान आयुकी सत्ता घटानेसे एक सौ चवालीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है। इसमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग जानना।

कोई मिथ्यादृष्टि जीव पहले अप्रमत्त गुणस्थानमें गया किन्तु वहाँ उसने आहारक चतुष्कका बन्ध नहीं किया। अतः उसके आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं है। अथवा अप्रमत्त गुणस्थानमें आहारक चतुष्कका बन्ध करके पीछे मिथ्यादृष्टि होकर आहारक चतुष्ककी उद्वेलना कर दी। अतः उसके भी आहारक चतुष्कका सत्त्व नहीं रहा। ऐसा मनुष्य पहले नरकायुका बन्ध करके पीछे वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत गुणस्थानवर्ती होकर केवली श्रुतकेवलीके निकट सोलह भावनाके द्वारा तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करके तीर्थंकर-

[2] ब अबध्यमानद्वितीयसत्वस्थाने चाबद्धायुष्कं प्रति विवक्षितैकैकायुरभावाच्चतुश्चत्वारिंशत्शतम्। तद्भंगाश्चत्वारः।

निवोंदे भंगमक्कु । मातंगतिर्य्यंगायुष्यमुं देवायुष्यमुमाहारकचतुष्टयमुमिंतारुं प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तेरडु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमितरबद्धतिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यरोळु तीर्त्थसत्वंदोरकोळ्ळदु । बद्धदेवायुष्यं तीर्त्थंकरसत्कर्मनादोडे सम्यक्त्वच्युतियिल्ल । मनुष्यनल्लदितरगतित्रयदोळु तीर्त्थंकरबंधप्रारंभमुमिल्लप्पुदरिंदं नरकगतियोळं देवगतियोळं तीर्त्थंकरबंधमसंयतरुगळोळंतु पेळल्पट्टुदेनल्वेडे । तीर्त्थबंधप्रारंभं मनुष्यगतियोळेयक्कुं । सम्यक्त्वच्युतियिल्लविर्दोडुत्कृष्टदिंदं तीर्त्थनिरंतरबंधाद्धे । अंतर्मुहूर्त्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्व्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमितमक्कुमप्पुदरिंदं । अल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु मनुष्यायुष्यमं कळेदु भुज्यमाननारकं द्वितीय तृतीय पृथ्वियोळपर्य्याप्तकालदोळु मिथ्यादृष्टियप्पुदरिंदमातनोळु तिर्य्यंगायुष्यमुं मनुष्यायुष्यमुं देवायुष्यमुमाहारकचतुष्टयमुं रहितमागि नूरनाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमदोंदे भंगमक्कुं । संदृष्टिः—

मिष्यमानमिथ्यादृष्टिः स्यात् तस्य तृतीयं बध्यमानायुःस्थानं तिर्यग्देवायुराहारकचतुष्काभावाद्द्वाचत्वारिंशच्छतकं भवति । तस्य भंग एक एव बद्धतिर्यग्मनुष्यायुष्कयोस्तीर्थसत्त्वाभावात् । बद्धदेवायुष्के तत्सत्त्वेऽपि सम्यक्त्वप्रच्युत्यभावाच्च । तर्हि मनुष्य एव तत्प्रारंभे, देवनारकासंयतेऽपि तद्बंधः कथं ? सम्यक्त्वाप्रच्युतावुत्कृष्टतन्निरंतरबंधकालस्यांतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्वकोटिद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रत्वेन तत्रापि संभवात् । तदबद्धायुःस्थानं मनुष्यायूरहितमिति तिर्यग्मनुष्यदेवायुराहारकचतुष्काभावादेकचत्वारिंशच्छतकं । तस्य द्वितीयतृतीयपृथ्व्यपर्याप्तनारकमिथ्यादृष्टेरेव संभवाद् भंग एकः । संदृष्टिः—

की सत्तासहित हो । तथा भुज्यमान आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर दूसरे-तीसरे नरकमें जानेके योग्य मिथ्यादृष्टि हो। उस जीवके तीसरा बद्धायु स्थान तिर्यंचायु, देवायु और आहारक चतुष्क बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप होता है। उसमें भंग एक ही होता है। क्योंकि जिसने तिर्यंचायु या मनुष्यायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरका बन्ध नहीं होता। और जिसने देवायुका बन्ध कर लिया है उसके तीर्थंकरकी सत्ता हो सकती है किन्तु वह सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि नहीं होता।

शंका—यदि मनुष्य ही तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करता है तो देव और नारक असंयत सम्यग्दृष्टीके तीर्थंकरका बन्ध कैसे कहा है ?

समाधान—तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धका प्रारम्भ तो मनुष्यके ही होता है। पीछे यदि सम्यक्त्वसे भ्रष्ट न हो तो तीर्थंकर प्रकृतिका उत्कृष्ट निरन्तर बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षहीन दो पूर्व कोटि अधिक तैंतीस सागर प्रमाण होनेसे देव नारकी असंयत सम्यग्दृष्टीके भी उसका बन्ध सम्भव है।

तीसरा अबद्धायु स्थान तीन आयु और आहारक चतुष्क बिना एक सौ इकतालीस प्रकृति रूप है क्योंकि इसमें मनुष्यायुका भी सत्त्व नहीं है। सो तीर्थंकरकी सत्तावाला मनुष्य जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया था मिथ्यादृष्टि होकर मरण करके दूसरे-तीसरे नरकमें जाकर अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि ही रहता है। उसके भुज्यमान नरकायु रूप एक ही भंग होता है। चौथा बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके बिना शेष दो आयु, आहारक चतुष्क और तीर्थंकरका अभाव होनेसे एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप होता है।

बध्यमान	१४२
	१
अबध्यमान	१४१
	१

चतुर्त्थबध्यमानायुष्यस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदन्यतरायुर्द्वयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थकरमुं रहितमागि नूर नाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्द द्वादश भंगंगळोळु पुनरुक्तसमभंगविहीन पंचभंगंगळप्पु ५ वल्लियुमबद्धायुष्यनं कुरुत्तु गतिचतुष्टयंगळोळितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु चतुर्गतिजर भेदविदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । संदृष्टिः— ५

बध्यमान	१४१
	५
अबध्यमान	१४०
	४

पंचमबध्यमानायुस्थानदोळु विवक्षित भुज्यमान बध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुर्द्वयमं आहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितंदु प्रकृतिगळु रहितमाद नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळंमुं पेळ्द द्वादशभंगंगळोळु पुनरुक्तसमविहीनपंचभंगंगळप्पु ५ वल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु गतिचतुष्टयंगळोळितरायुस्त्रयमुमाहारचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमितोंभत्तु

ब	१४२
	१
अ	१४१
	१

चतुर्थं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्भ्यामितरायुर्द्वयाहारचतुष्कतीर्थाभावादेकचत्वारिंशच्छतकं । तत्र प्रागुक्तद्वादशभंगेषु पुनरुक्तसमभंगान्विहाय पंच भंगा भवंति । तदबद्धायुःस्थानं इतरायुस्त्रयाहारकचतुष्कतीर्थाभावाच्चत्वारिंशच्छतकं । तत्र चातुर्गतिकभेदाद् भंगाश्चत्वारः । संदृष्टि :— १०

ब	१४१
	५
अ	१४०
	४

पंचमं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्भ्यामितरायुर्द्वयाहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वप्रकृत्यभावाच्चत्वारिंशच्छतकं । तत्र प्राग्वद्भंगाः पंच । तदबद्धायुःस्थानं एकान्नचत्वारिंशच्छतकं । तत्र

वहाँ पूर्वोक्त बारह भंगोंमें-से पुनरुक्त सात भंगोंको छोड़ पाँच भंग होते हैं । चौथा अबद्धायुस्थान भुज्यमान बिना तीन आयु आहारक चतुष्क तीर्थंकरके बिना एक सौ चालीस प्रकृतिरूप होता है । उसमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं । १५

पाँचवाँ बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके सिवाय शेष दो आयु आहारक चतुष्क, तीर्थंकर और सम्यक्त्व मोहनीयका अभाव होनेसे एक सौ चालीस प्रकृतिरूप है । उसमें पूर्वोक्त बारह भंगोंमें-से पाँच भंग होते हैं । पाँचवाँ अबद्धायस्थान २०

प्रकृतिरहितमाद नूरमूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु चतुर्गतिजरभेदविं नाल्कु भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः—

बध्यमान	१४० ५
अबध्यमान	१३९ ४

षष्ठबध्यमानस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुद्वंयमल्लदितरायुद्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं मितों भत्तुं प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तों-
५ भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि पुनरुक्तसमविहीनचतुर्गतिसंबंधि भंगंगळय्दु ५ मप्पुवल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तु चतुर्गतिय विवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं मितु दशप्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्तें टु प्रकृतिसत्वस्थान-बोळु चतुर्गतिजर भेदविंदं नाल्कु भंगंगळप्पुवु। संदृष्टिः —

बध्यमान	१३९ ५
अबध्यमान	१३८ ४

चातुर्गतिकभेदाद्भंगाश्चत्वारः। संदृष्टि—

ब	१४० ५
अ	१३९ ४

१० षष्ठं बध्यमानायुःस्थानं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्भ्यामितरायुर्द्विकाहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्रा-भावादेकान्नचत्वारिंशच्छतकं। तत्र प्राग्वद्भंगाः पंच। तदबद्धायुःस्थानमष्टत्रिंशच्छतकं। तत्र चातुर्गतिक-भेदाद्भंगाश्चत्वारः। संदृष्टिः—

ब	१३९ ५
अ	१३८ ४

पूर्वोक्त एक सौ चालीसमें-से बध्यमान आयुके बिना एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप होता है। उसमें चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं।

१५ छठा बद्धायुस्थान विवक्षित भुज्यमान बध्यमान आयुके बिना शेष दो आयु आहारक-चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीयका अभाव होनेसे एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप है। उसके भंग पूर्ववत् पाँच हैं। छठा अबद्धायु स्थान पूर्वोक्त एक सौ उनतालीसमें-से बध्यमान आयु बिना एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप है। भंग चार आयुकी अपेक्षा चार

सप्तमबध्यमानायुःस्थानदोळु देवद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगे भुज्यमानतिर्य्यंगायुर्बध्यमानमनुष्यायुष्यमुमल्लदितरनारकदेवायुर्द्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं यितु पन्नों दु प्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानेकेंद्रियविकलत्रयविशिष्टतिर्य्यंगायुष्यं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यनुं भुज्यमानतिर्य्यंगायुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमेंबेरडुं भंगंगळोळु पुनरुक्तभंगमं कळेदोडों दे भंगमक्कुमल्लि अबद्धायुष्यंगे विवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुमंतु पन्नेरडु प्रकृतिरहितमागि नूरमूवत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु :—

उव्वेल्लिददेवंदुगे बिदियपदे चारि भंगया एवं ।
सपदे पढमो बिदियो सो चेव णरेसु उप्पण्णे ॥३६८॥
वेगुव्वट्ठय रहिदे पंचिंदियतिरियजादिसुववण्णे ।
सुरछब्बंधे तदियो णरेसु तब्बंधणे तुरियो ॥३६९॥

उद्वेल्लनमं देवद्विकक्के माडिदेकेंद्रियविकलत्रयमिथ्यादृष्टिय द्वितीयपदमप्प अबद्धायुष्यस्थानदोळु ई प्रकारदिंदं नाल्कु भंगंगळप्पुवाव प्रकारदिंदमेंदोडे देवद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रय भवदोळु प्रथम भंगमक्कुमा जीवं मनुष्यनागि पुट्टि अपर्य्याप्तकालदोळु "ओराळे वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं। मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि ॥

एंब नियममुंटप्पुदरिंदमा मिथ्यादृष्टि सुरचतुष्कमं कट्टनप्पुदरिंदमल्लि द्वितीयभंगमक्कुमेकेंदोडे संख्यैकत्वमुं[1] प्रकृतिभेदमुमुंटप्पुदरिंदं वैक्रियिकाष्टकमनुद्वेल्लनमं माडिदंतप्प एकेंद्रियविक-

---

सप्तमं बध्यमानायुःस्थानमुद्वेल्लितदेवद्विकैकेंद्रियविकलत्रयजीवस्य भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुषी त्यक्त्वा नारकदेवायुराहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकाभावात्सप्तत्रिंशच्छतकं । तत्र भंगः भुज्यमानैकेंद्रियविकलत्रयविशिष्टतिर्यग्बध्यमानतिर्यगायुष्कः भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति द्वयोः पुनरुक्तमेकं विनैकः ॥ ३६६–३६७ ॥

होते हैं। सातवाँ बद्धायुस्थान जिनके देवद्विककी उद्वेलना हुई है ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवोंके भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु बिना शेष देवायु नरकायु आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, देवद्विकका अभाव होनेसे एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप है। वहाँ भंग भुज्यमान एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय सम्बन्धी तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु तथा भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु ये दो होते हैं। उनमें-से भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु पुनरुक्त है। अतः एक ही भंग है ॥३६६–३६७॥

---

१. यिल्लि संख्यैकत्वमेंतेंदोडे आ जीवं मनुष्यनागि पुट्टि अल्लि अपर्य्याप्तकाल दोळु सुरचतुष्कमं कट्टनप्पुदरिं पूर्व्वदल्लिउद्वेल्लनमं माडिद सुरद्विककके तात्कालिकसत्वं घटिसदु। पूर्व्वदल्लि कट्टिद वैक्रियिकद्विक सत्वमुंटप्पुदरिं संख्यैकत्वमुंटु। प्रकृतिभेदमेंतेंदोडे अल्लि तिर्य्यगायुष्यं भुज्यमानमिल्लि मनुष्यायुष्यमें ब

लत्रयजीवं बद्धतिर्य्यंगायुष्यं पंचेंद्रियतिर्य्यग्जातियोळु बंदु पुट्टि पर्य्याप्तियिदं मेळे सुरषट्कमं कट्टुत्तं विरलु नरकद्विकमनागळकट्टुवनल्लनप्पुर्दारिदमल्लि संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेदमुमुंटप्पुदरिंदं तृतीयभंगमक्कु मा वैक्रियिकाष्टकमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवं बद्धमनुष्यायुष्यं मनुष्यरोळु बंदु पुट्टि पर्य्याप्तियिदं मेले सुरषट्कमं कट्टुत्तं विरलु संख्यैकत्वमुं प्रकृतिभेदमुमुंटप्पुदरिंदं चतुर्थभंगमक्कुमे बितु नाल्कु भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

बध्य०	१३७ १
अबध्य०	१३६ ४

अष्टमबध्यमानायुःस्थानदोळु नारकषट्कमनुद्वेल्लनमं माडिदंतप्पेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगे भुज्यमानतिर्य्यगायुर्ब्बध्यमानमनुष्यायुष्य मल्लदितरसुरनारकायुर्द्वयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं

तद्द्वितीयेऽबद्धायुःस्थाने षट्त्रिंशच्छतकोद्वेल्लितदेवद्विकस्यैकेंद्रियविकलत्रयमिथ्यादृष्टेः तस्मिन्नेव भवे भंग एकः । पुनस्तस्यैव मनुष्येषूत्पन्नस्यापर्याप्तकाले मिथ्यादृष्टित्वात्सुरचतुष्कस्याबंधाद् द्वितीयः, संख्यैकत्व-प्रकृतिभेदयोस्सद्भावात् । पुनस्तस्यैव वैक्रियिकाष्टके उद्वेल्लिते पंचेंद्रियतिर्यग्जातावुत्पन्नस्य पर्याप्तेरुपरि सुरषट्कबंधेन नरकद्विकस्याबंधात्तृतीयः । मनुष्येषूत्पन्नस्य सुरषट्कबंधे चतुर्थः । एवं चत्वारो भंगा भवंति ।

सातवाँ अबद्धायुस्थान एक सौ छत्तीस प्रकृतिरूप है । जिसके देवद्विककी उद्वेलना हुई है ऐसे एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवके उसी पर्यायमें आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, देवगति, देवानुपूर्वी तथा भुज्यमान तिर्यंचायु बिना शेष तीन आयु इन बारहके बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व पाया जाता है । अतः एक भंग तो यह हुआ । पुनः वही देवद्विककी उद्वेलना करनेवाला एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव मरकर मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न हुआ । वहाँ अपर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि होनेसे सुरचतुष्कका बन्ध नहीं होता । अतः पूर्वोक्त नौ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु, इस तरह बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व होता है यह दूसरा भंग है । दोनोंमें संख्या समान होते हुए भी प्रकृतिभेद होनेसे भंग है । पुनः जिसके वैक्रियिक अष्टककी उद्वेलना हुई है ऐसा वही एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर्याप्त अवस्थामें देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, बन्धन, संघात इस सुरषट्कका बन्ध किया और नरकगति नरकानुपूर्वीका बन्ध नहीं किया । वहाँ आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, नरकगति, नरकानुपूर्वी ये नौ और भुज्यमान तिर्यंचायु बिना शेष तीन आयु इन बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व पाया जाता है । यह तीसरा भंग है । पुनः वही जीव मरकर मनुष्यपर्यायमें उत्पन्न

भेदर्दिदं ॥ सुरगति सुरगत्यानुपूर्व्य वैक्रियिक तदंगोपांगबंधनसंघातरूप सुरषट्क । बंधन संघात द्वयसहित वैक्रियिकषट्क मुंपेल्द पदिमूरुद्वेल्लनप्रकृतिगळोळु वैक्रियिकवैक्रियिकांगोपांगद्वयदोळु वैक्रियिकबंधनसंघात-मंतर्भविसि येंबुदत्थं ॥

सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं नारकषट्कमुमंतु सप्तदशप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तों दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यं भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमें ब भंगद्वयदोळु पुनरुक्तभंगमनो दं कळेदोडो बे भंगमक्कुमल्लि अबद्धायुष्यनं कुरुत्तं भुज्यमानतिर्य्यंगायुष्यमल्लदितरमनुष्यायुष्यं देवायुष्यं नारकायुष्यमाहारकचतुष्टयं तीर्त्थं सम्यक्वप्रकृति मिश्रप्रकृति सुरद्विक नारकषट्कमुमंतष्टावंश प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि:--

नारकछक्कुव्वेल्ले आउगबंधुज्झिदे दुभंगा हु ।
इगिविगलेसिगिभंगो तम्मि णरे बिदियमुप्पण्णे ॥३७०॥

नारकषट्कमनुद्वेल्लनमं माडिदेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगबद्धायुष्यंगेरडु भंगंगळप्पुवेतेंदोडे-एक विकलत्रयद स्वस्थानदोळों दु भंगमक्कुमा जीवमनुष्यायुष्यमं कट्टिद मनुष्यरोळ् बंदु पुट्टिद तद्भवप्रथमकालदोळु तावन्मात्र प्रकृतिसत्वनप्पुदरिंदमुं मनुष्यायुष्यप्रकृति भेदविंदमुं द्वितीय भंगमक्कुं। संदृष्टि---

संदृष्टि:—

ब	१३७ १
अ	१३६ ४

अष्टमे बध्यमानायुःस्थाने नारकषट्के उद्वेल्लिते एकेंद्रियविकलत्रयजीवस्य भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुर्भ्यामितरसुरनारकायुराहारकचतुष्कतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकनारकषट्काभावादेकत्रिंशच्छतके भंगः भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कभुज्यमानतिर्यग्बध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति भंगद्वये पुनरुक्तमेकं त्यक्त्वैकः ॥३६८-३६९॥

हुआ। वहाँ सुरषट्कका बन्ध होनेपर पूर्वोक्त नौ और भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु, इस प्रकार बारह बिना एक सौ छत्तीसका सत्त्व होता है। यह चौथा भंग है। इस प्रकार चार भंग हुए। यहाँ सब भंगोंमें संख्या १३६ समान है अतः स्थान एक ही कहा है। और प्रकृति बदलनेसे चार प्रकार पाये जाते हैं अतः भंग चार कहे हैं।

आठवाँ बद्धायुस्थान नारकषट्ककी द्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीवके होता है। सो भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्यायु बिना देव नरक दो आयु, आहारक चतुष्क, तीर्थंकर, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, बन्धन संघात ये नारकषट्क, इन सतरह बिना एक सौ इकतीस प्रकृतिरूप जानना। वहाँ भंग दो भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु, भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान मनुष्याय। इनमें-से भुज्यमान तिर्यंच बध्यमान तिर्यंच पुनरुक्त है। अतः एक ही भंग है ॥३६८-३६९॥

आठवाँ अबद्धायुस्थान एक सौ तीस प्रकृतिरूप है। उसमें दो भंग हैं। नारकषट्ककी उद्वेलना किये एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीवके तिर्यंचायु बिना तीन आयु तथा आहारक चतुष्क

बध्यमान	१३१ १
अबध्यमान	१३० २

उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद तेजस्कायिकवायुकायिकजीवंगळ नवमबद्धायुष्यसत्वस्थानदोळु भुज्यमानतेजस्काय वायुकाय विशिष्टतिर्य्यंगायुष्यमुं बध्यमानतिर्य्यंगायुष्यमुमल्लदितरनारकमनुष्यदेवायुस्त्रितयमुमाहारकचतुष्टयमुं तीर्त्थमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं नारकषट्कमुमुच्चैर्गोत्रमुमेंब हत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरिप्पत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानमुं बध्यमानमुं तिर्य्यगायुष्यमप्प तेजोवायुकायिकजीवंगळ भंगमों देयक्कुमदुवुं पुनरुक्तभंगमादोडं ग्राह्यमादुदु। अल्लि अबद्धायुष्यनोळाऽऽबद्धायुष्यनोळु पेळ्व सत्वरहित प्रकृतिगळु हत्तों भत्तु मो जीवनोळुं सत्वरहितंगळागि नूरिप्पत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमा तेजोवायुकायिकजीवंगळ स्वस्थानभंगमों देयक्कुमदु पुनरुक्तभंगत्वदिंदमग्राह्यमक्कु। संदृष्टि :—

बध्यमान	१२९ १
अबध्यमा	१२९ पुनरुक्त

तदबद्धायुःस्थाने त्रिंशच्छतके भंगः, नारकषट्कोद्वेल्लितैकेंद्रियविकलत्रयजीवे एकः। तु-पुनस्तस्मिन्नेव जीवे मनुष्येषूत्पन्ने प्रथमकाले द्वितीयः। एवं द्वौ भंगौ खलु स्फुटं मनुष्यायुषो भेदात्। संदृष्टिः—

ब	१३१ १
अ	१३० २

उच्चैर्गोत्रोद्वेल्लिततेजोवातकायिकयोर्नवमं बद्धायुःस्थानं तत्कायविशिष्टभुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुर्भ्यामितरायुस्त्रयाहारकचतुष्टयतीर्थसम्यक्त्वमिश्रदेवद्विकनारकषट्कोच्चैर्गोत्राभावात् एकान्नत्रिंशच्छतकं। तत्र भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कतेजोवातकायिकभंग एकः। सोऽयं पुनरुक्तोऽपि ग्राह्यः। तदबद्धायुःस्थानमेकान्नत्रिंशच्छतकं तत्र तेजोवातयोः स्वस्थानभंग एकः स न ग्राह्यः पुनरुक्तत्वात्। संदृष्टिः—

आदि पन्द्रहके बिना एक सौ तीसका सत्त्व होता है। अतः यह एक भंग हुआ। वही एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय जीव मरकर मनुष्य हुआ। वहाँ अपर्याप्तकालमें मनुष्यायुके बिना तीन आयु और आहारक चतुष्क आदि पन्द्रहके बिना एक सौ तीसका सत्त्व पाया जाता है। यह दूसरा भंग हुआ।

नौवाँ बद्धायुस्थान उच्चगोत्रकी उद्वेलना होनेपर तेजकाय वायुकायमें होता है। सो पूर्वोक्त एक सौ तीसमें-से उच्चगोत्रका अभाव होनेसे एक सौ उनतीस प्रकृतिरूप होता है। यहाँ भंग एक भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान तिर्यंचायु। यह पुनरुक्त है। किन्तु यहाँ कोई अन्य भंगका प्रकार न होनेसे इसीको ग्रहण किया है। नौवाँ अबद्धायुस्थान भी एक सौ उनतीस प्रकृतिरूप है। अतः बद्धायुस्थानके समान होनेसे पुनरुक्त है। अतः इसका ग्रहण नहीं करना।

मनुष्यद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिद तेजस्कायिक वातकायिक जीवंगळ दशमबद्धायुष्यसत्वस्थानदोळुच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद जीवंगळप्पे पेळ्द सत्वरहितप्रकृतिगळु हत्तों भत्तुं मनुष्यद्विकमुं कूडिप्पत्तों दु प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरिप्पत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमानमुं बध्यमानमुं तिर्य्यंगायुष्यमप्प तेजोवायुकायिकजीवन स्वस्थानभंगमों देयक्कुमदुवुं पुनरुक्तभंगमादोडं ग्राह्यमक्कुं। अल्लि अबद्धायुष्यनोळा बद्धायुष्यनोळु पेळ्द यिप्पत्तों दु प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरिप्पत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुम। तेजोवायुकायिकजीवस्वस्थानभंगमों देयक्कुगदुवुं पुनरुक्त भंगमग्राह्यमक्कुं। संदृष्टि :—

बध्यमान	१२७ १
अबध्यमान	१२७ पुनरुक्त

ई पेळ्द सत्वस्थानंगळु पदिनेंटरोळं पुनरुक्तसमभंगंगळं कळेदु शेषभंगंगळं संख्येयं पेळ्दपरु :—

ब	१२९ १
अ	१२९ पुनरु.

मनुष्यद्विकोद्वेल्लिततेजोवायुकायिकयोर्दशमं बद्धायुःस्थानं तद्द्विकेनोच्चैर्गोत्रोद्वेल्लितस्योक्ततदसत्त्वस्थाभावात्सप्तविंशतिशतकं। तत्रापि भुज्यमानबध्यमानतिर्यगायुष्कतेजोवायुकायिकभंग एकः स च पुनरुक्तोऽपि ग्राह्यः। तदबद्धायुःस्थानं तदेकविंशतेरभावात्सप्तविंशतिशतकं। तत्र तत्तेजोवायुकायिकस्वस्थानभंग एकः, स च पुनरुक्तत्वान्न ग्राह्यः। संदृष्टिः—

बध्य	१२७ १
अब	१२७ १
पुनरु.	

॥३७०॥ अथोक्ताष्टादशसत्त्वस्थानभंगान् पुनरुक्तसमभंगेभ्यः शेषान् संख्याति—

दसवाँ बद्धायुस्थान मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर तेजकाय वायुकायके जीवके होता है। सो पूर्वोक्त एक सौ उनतीसमें-से मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वीके बिना एक सौ सत्ताईस प्रकृतिरूप जानना। यहाँ एक ही भंग है। वह पुनरुक्त है फिर भी ग्राह्य है। क्योंकि पूर्व पुनरुक्त भंग अबद्धायु स्थानमें गर्भित हो गये थे अतः उनको ग्रहण नहीं किया था। यहाँ अबद्धायुस्थानका ही ग्रहण नहीं किया है। अतः पुनरुक्त भंगको ग्रहण किया है।

दसवाँ अबद्धायुस्थान भी उसी प्रकार एक सौ सत्ताईस प्रकृतिरूप है। सो इस बद्धायुस्थान और अबद्धायुस्थानमें संख्या या प्रकृतियोंको लेकर भेद नहीं है। अतः यह स्थान ग्रहण नहीं करना ॥३७०॥

बिदिये तुरिये पणगे छट्ठे पंचेव सेसगे एक्कं ।
बिदिचउपण छस्सत्तयठाणे चत्तारि अट्ठगे दोण्णि ॥३७१॥

द्वितीये तुरीये पंचमे षष्ठे पंचैव शेषके एकः । द्वितीयचतुर्थ पंचमषष्ठसप्तमस्थाने चत्वारोऽष्टमे द्वौ ॥

द्वितीयचतुर्थपंचमषष्ठबद्धायुश्चतुःसत्वस्थानंगळोळु प्रत्येकं पंच पंच भंगंगळप्पुवु । शेषप्रथमतृतीयसप्तमाष्टमनवमदशमस्थानषट्कदोळु प्रत्येकमेकैकभंगंमक्कुमबद्धायुःसत्वस्थानंगळेंटरोळु द्वितीयचतुर्थपंचमषष्ठसप्तमस्थानंगळय्दरोळु प्रत्येकं नाल्कु नाल्कु भंगंगळप्पुवष्टमसत्वस्थानदोळु एरडु भंगंगळप्पुवु । शेषप्रथमतृतीयस्थानद्वयदोळु प्रत्येकमेकैकभंगमक्कुमंतु कूडि सत्वस्थानंगळ मिथ्यादृष्टियोळु पविनेंटप्पुवरोळु भंगंगळु पंचाशत्प्रमितंगळप्पुवु ।

अनंतरं सासादनगुणस्थानदोळं मिश्रगुणस्थानदोळं बद्धाबद्धायुष्यरुगळं विवक्षितसिकोंडु सत्वस्थानंगळमनवर भंगंगळ संख्येयुमं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपरु :—

सत्ततिगं आसाणे मिस्से तिग सत्त सत्त एयारा ।
परिहीण सव्वसत्तं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७२॥

सप्तत्रिकमासासादने मिश्रे त्रिकसप्तसप्तैकादश । परिहीणसर्वसत्वं बद्धस्येतरस्यैकोनं ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोळु सप्तप्रकृतिसत्वमुं त्रिप्रकृतिसत्वमुं परिहीनसर्वप्रकृतिसत्वस्थानद्वयमक्कुं । मिश्रनोळु त्रि सप्त सप्त एकादश प्रकृतिसत्वरहितसर्वप्रकृतिसत्वस्थानचतुष्टयमिवु बद्धायुष्यरोळप्पुवु । इतरस्य अबद्धायुष्यंगे अवरोळु प्रत्येकमेकैकप्रकृतिसत्वहीनमक्कुमा सासादन-

---

द्वितीये चतुर्थे पंचमे षष्ठे बद्धायुष्कसत्त्वस्थाने पंच पंच भंगा भवंति । शेषप्रथमतृतीयसप्तमाष्टमनवमदशमेष्वेकैक एव । अबद्धायुःस्थानेषु च द्वितीये चतुर्थे पंचमे षष्ठे सप्तमे चत्वारश्चत्वारः, अष्टमे द्वौ, शेषप्रथमतृतीययोरेकैकः, एवं मिथ्यादृष्टौ सत्त्वस्थानान्यष्टादश । भंगाः पंचाशत् ॥ ३७१ ॥ अथ सासादनमिश्रयोः स्थानभंगसंख्यां गाथाचतुष्केणाह—

सासादने सप्तभिर्हीनं त्रिभिर्हीनं च सर्वसत्त्वं बद्धायुष्कस्य । मिश्रे त्रिभिः सप्तभिः सप्तभिरेकादश-

---

पूर्वमें कहे अठारह स्थानोंके पुनरुक्त और समान भंगोंके बिना जो भंग कहे हैं उनकी संख्या कहते हैं—

दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे बद्धायुष्क स्थानमें पाँच-पाँच भंग होते हैं शेष पहले, तीसरे, सातवें, आठवें, नौवें और दसवें बद्धायुस्थानमें एक-एक भंग होता है। अबद्धायुस्थानमें दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, सातवेंमें चार-चार, आठवेंमें दो, शेष पहले और तीसरेमें एक-एक भंग होता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें स्थान अठारह और भंग पचास होते हैं ॥३७१॥

आगे सासादन और मिश्र गुणस्थानमें स्थानों और भंगोंकी संख्या चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

सासादनमें बद्धायुष्कके सर्व सत्त्वमें-से सात हीन और तीन हीन दो स्थान होते हैं।

सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टिगळ सत्वस्थानभंगंगळगे संदृष्टि :—

बध्य. ०	सासादनगे	मिश्रगे			
७	०	०	०	०	०
	३	३	७	७	११
बध्य. १४१	१४५	१४५	१४१	१४१	१३७
५	१	५	५	५	५
अबध्य. १४०	१४४	१४४	१४०	१४०	१३६
४	२	४	४	४	४

सासादनंगे सत्वरहितप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तित्थाहारचउक्कं अण्णदराउगदुगं च सत्तेदे ।
हारचउक्कं वज्जिय तिण्णि य केइं समुद्दिट्ठं ॥३७३॥

तीर्थाहारचतुष्कमन्यतरायुर्द्विकं च सप्तैतानि । आहारकचतुष्कं विवर्ज्य त्रीणि च केश्चित्- ५
समुद्दिष्टं ॥

तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लवितरायुर्द्वयमुमंतु एळुं प्रकृतिगळ् सासादननोळ्सत्वरहितप्रकृतिगळप्पुवु । अवरोळाहारकचतुष्टयमुं वर्जिसि तीर्त्थमु-मितरायुर्द्वितयमुं मूरे प्रकृतिगळ् सत्वरहितंगळाहारकचतुष्टयमुं सत्वप्रकृतिगळप्पुवेंदु केलंबरा-चार्य्यरुगळिवं पेळल्पट्टुदु ॥ १०

मिश्रनोळु सत्वरहितप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तित्थण्णदराउदुगं तिण्णिवि अणसहिय तह य सत्तं च ।
हारचउक्के सहिया ते चेव य होंति एयारा ॥३७४॥

तीर्त्थान्यतरायुर्द्विकं त्रीण्यप्यनंतानुबंधिसहितं । तथा च सप्त च आहारकचतुष्केण सहि-तानि तानि चैव भवंत्येकादश ॥ १५

मिश्रे च हीनं भवति । अबद्धायुष्कस्य पुनरेकैकहीनं भवति ॥ ३७२ ॥ सासादनस्य हीनप्रकृतीराह—

तीर्थमाहारचतुष्टयं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानाभ्यामितरायुषी चेति सप्त । तत्राहारकचतुष्के वर्जिते तिस्रः तच्चतुष्कसत्त्वं तु कैश्चिदेवोद्दिष्टं ॥ ३७३ ॥ मिश्रस्य तां आह—

मिश्रमें तीन, सात, सात और ग्यारहसे हीन चार स्थान होते हैं। अबद्धायुके स्थान बद्धायुके स्थानमें-से एक-एक बध्यमान आयुसे हीन होते हैं ॥३७२॥ २०

सासादनमें घटायी गयी प्रकृतियोंको कहते हैं—

सासादनमें तीर्थंकर, आहारक चतुष्क, भुज्यमान और बध्यमानके बिना शेष दो आयु इन सातके बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान होता है। उन सातमें आहारक चतुष्कको छोड़ देनेपर तीन प्रकृतिहीन दूसरा स्थान एक सौ पैंतालीस रूप होता है। इस एक सौ पैंतालीसमें जो आहारक चतुष्कका सत्त्व कहा है वह कुछ आचार्योंके २५
मतानुसार कहा है। अन्यथा पूर्वमें सासादन गुणस्थानमें आहारकका सत्त्व नहीं कहा है ॥३७३॥

तीर्त्थमुमन्यतरायुर्द्वयमुमितु मूरुं प्रकृतिगळुं मत्तमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयं सहितमागि एळुं प्रकृतिगळु तथा च अहंगे आहारकचतुष्टयदोडनेयुमेळुं प्रकृतिगळुमा अनंतानुबंधिकषाय चतुष्टयं सहितमागि एकादश प्रकृतिगळुं सत्वरहितमागि नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु ॥

अनंतरमा बद्धाबद्धायुष्यरुगळ सत्वस्थानंगळोळु भंगंगळ संख्येयं पेळ्दपरु :—

साणे पण इगि भंगा बद्धस्सियरस्स चारि दो चेव ।
मिस्से पण पण भंगा बद्धस्सियरस्स चउ चऊ णेया ॥३७५॥

सासादने पंचैक भंगा बद्धस्येतरस्य चत्वारो द्वौ चैव । मिश्रे पंच पंच भंगा बद्धस्येतरस्य चत्वारश्चत्वारो ज्ञेयाः ॥

सासादननोळु बद्धायुष्यंगेवुमोंदु भंगंगळप्पुवु । इतरनप्प अबद्धायुष्यंग नाल्कुमेरडुं भंगंगळप्पुवु । मिश्रनोळु बद्धायुष्यंगय्दय्दु भंगंगळप्पुवु । इतरनप्प अबद्धायुष्यंगे नाल्कु नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । अदेंतेंदोडे पेळल्पडुगुं । चतुर्गतिय सासादननप्पुदरिंदं विवक्षित भुज्यमान बद्धयमानायुद्वंयमल्लदितरायुर्द्वितयमुं तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयक चतुष्टयमुमितेळु प्रकृतिगळु रहितमागि नूरनाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्द चतुर्गतिबद्धायुष्यरुगळ द्वादश भंगंगळोळु पुनरुक्त समभंगंगळं कळेदु शेष पंच भंगंगळप्पुवु । अल्लि अबद्धायुष्यं चतुर्गतिजनप्पुदरिंदं विवक्षित भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुमंतेंटुं प्रकृतिगळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु नाल्कुं गतिय भुज्यमानायुश्चतुष्टय भेदंदिदं नाल्कु भंगंगळप्पुवुं ।

तीर्थमन्यतरायुषी चेति तिस्रः । ता एव पुनः अनंतानुबंधिचतुष्केण सप्त वा आहारकचतुष्केण सप्त । अमूः पुनः अनंतानुबंधिचतुष्केणैकादश भवंति ॥ ३७४ ॥ अथ तेषु स्थानेषु भंगसंख्यामाह—

सासादने भंगाः पंचैको बद्धायुष्कस्य । इतरस्य चत्वारो द्वौ । मिश्रे पंच पंच बद्धायुष्कस्य । इतरस्य चत्वारश्चत्वारः । तद्यथा—एकचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके चतुर्गतिबद्धायुषां द्वादशभंगेषु सप्त पुनरुक्तान्विना पंच

आगे मिश्रगुणस्थानमें घटायी गयी प्रकृतियोंको कहते हैं—

मिश्रमें तीर्थंकर और भुज्यमान बध्यमान बिना दो आयुके एक सौ पैंतालीस रूप प्रथम स्थान है। तीन ये और अनन्तानुबन्धी चतुष्क अथवा आहारक चतुष्क बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप दूसरा और तीसरा स्थान है। तथा तीन पूर्वोक्त, चार अनन्तानुबन्धी और आहारक चतुष्क इन ग्यारहके बिना एक सौ सैंतीस रूप चतुर्थ स्थान है। ये बद्धायुके स्थान हैं। इनमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायुके स्थान होते हैं॥३७४॥

आगे इनमें भंगोंकी संख्या कहते हैं—

सासादनमें बद्धायुके भंग पाँच और एक होते हैं। अबद्धायुके चार और दो होते हैं। मिश्रमें बद्धायुके पाँच-पाँच भंग होते हैं। अबद्धायुके चार-चार भंग जानना। वह इस प्रकार होते हैं—

सासादनमें एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थानमें चारों गतिके बद्धायु जीवोंकी

आ सासादन द्वितीयबद्धायुष्य सत्वस्थानदोळु तीर्थमुमन्यतरायुर्द्वितयमुमंतु त्रिप्रकृतिगळु सत्व-रहितमागि नूरनाल्वत्तप्पु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमेंदिताहारकचतुष्टयसत्वमुळ्ळ सासादननुमोळ-नें बाबायंर पक्षदोळु भंगमों देयक्कुमदें तेंदोडे बद्धदेवायुष्यनुपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्टय मनप्रमत्तगुणस्थानदोळुपार्जिसि बळिक्कं सम्यक्त्वविराधकनादोडल्लियों दें भंगमक्कुमा अबद्धा-युष्यनोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यनुपशमसम्यग्दृष्टि आहारकचतुष्टयमनुपार्जिसि अनंतानुबंधि- ५
कषायोदयदिदं सासादननाडोळियों दु भंगमक्कुं मुन्नं बद्धदेवायुष्यंगे मरणमादोडे भुज्यमानदेवा-युष्यनोळों दु भंगमक्कुं। अंतु अबद्धायुष्यनोळेरडु भंगमप्पुवु। संदृष्टि :—

बद्ध	१४५ १
अबद्ध	१४४ २

मिश्रनोळु प्रथम बद्धायुःसत्वस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमान बद्धयमानायुर्द्वयमल्लदितरायु-र्द्वितयमुं तीर्थमुमंतु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तप्पु प्रकृतिसत्वस्थानं मुं पेळ्द द्वादशभंग-गळोळु पुनरुक्तसमभंगंगळं कळेदु शेषमपुनरुक्तभंगंगळय्दप्पुववल्लि अबद्धायुःसत्वस्थानदोळु १०

भंगाः। अबद्धायुष्कस्य चत्वारिंशच्छतप्रकृतिके चतुर्गतिभुज्यमानायुर्भेदाच्चत्वारो भंगाः।

द्वितीये बद्धायुःस्थाने पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके बद्धाहारचतुष्कस्य कस्यचित्सासादनत्वप्राप्तिरित्यु-पदेशाश्रयणादेको भंगः। तदबद्धायुष्के भुज्यमानमनुष्यायुष्कस्योपशमसम्यग्दृष्टेरर्जिताहारकचतुष्कस्थानंतानु-बंध्युदयाज्जातसासादनस्यैको भंगः। प्राग्बद्धदेवायुष्कस्य मृत्वा जातभुज्यमानदेवायुष्कस्यैको भंगः, एवं द्वौ। संदृष्टि— १५

ब	१४५ १
अ	१४४ २

मिश्रे प्रथमे बद्धायुःस्थाने पंचचत्वारिंशच्छतप्रकृतिके प्राग्वद्द्वादशभंगे सप्तपुनरुक्तान्विना पंच भंगाः।

अपेक्षा बारह भंगोंमें-से सात पुनरुक्त भंगोंके बिना पाँच भंग होते हैं। अबद्धायुष्कके एक सौ चालीस प्रकृतिरूप स्थानमें चारों गति सम्बन्धी भुज्यमान आयुके भेदसे चार भंग होते हैं। दूसरे बद्धायुस्थानमें जो एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप है, जिसने आहारक चतुष्कका बन्ध किया है ऐसे किसी जीवको सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति होती है इस उपदेशका आश्रय २०
लेकर एक भंग कहा है। उसके अबद्धायु स्थानमें दो भंग इस प्रकार हैं—भुज्यमान मनुष्यायु-वाला उपशम सम्यग्दृष्टि आहारक चतुष्कका बन्ध करके मरकर सासादन हुआ सो एक भंग तो यह हुआ। पूर्वमें जिसके देवायुका बन्ध हुआ था ऐसा उपशम सम्यग्दृष्टी आहारक चतुष्कका बन्ध करके मरकर देव हो सासादन हुआ। वहाँ भुज्यमान देवायुका सत्त्व होनेसे दूसरा भंग हुआ। २५

मिश्रगुणस्थानमें बद्धायुके चारों स्थानोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे बारह भंगोंमें-से पाँच-पाँच

विवक्षितभुज्यमानायुष्यमों दल्लदितरायुस्त्रितयं तीर्थमुमंतु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु नूरनाल्वत्तु नाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं। चतुर्गतिजरुगळ भेदविं नाल्कु भंगमक्कु। संदृष्टि :—

ब	१४५ ५
अ	१४४ ४

द्वितीयबद्धायुःसत्वस्थानदोळु विवक्षितभुज्यमानबद्धयमानायुर्द्वितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधि कषायचतुष्टयमुमंतु सप्तप्रकृतिगळ्ळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तों दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्द पुनरुक्तसमभगंगळं कळेदु शेषपंचभंगंगळप्पुवल्लि अबद्धायुष्यनोळु विवक्षितभुज्यमानायुष्यमों-दल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्थमुमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुमंतेंदुं प्रकृतिगळ्ळु सत्वरहितमागि नूर नाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि नाल्कुं गतिगळ भेदविंदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :

ब	१४१ ५
अ	१४० ४

तृतीयबध्यमानायुः सत्वस्थानदोळु तीर्त्थमुं भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वितयमल्लदितरायुर्द्वितय-मुमाहारकचतुष्टयमुमंतेळ्ळं प्रकृतिगळ्ळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तों दुं प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि पुनरुक्तसमविहीनपंचभंगंगळप्पुवल्लि अबद्धायुष्यसत्वस्थानदोळु भुज्यमानायुः सत्वमल्लदितरायु-स्त्रयमुं तीर्त्थमुं आहारक चतुष्टयमुमंतेंदु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तुप्रकृतिसत्वस्थानमक्कु-मल्लि गतिचतुष्टयभेदविंदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

अबद्धायुःस्थाने चतुर्गतिकभेदाच्चत्वारो भंगा। संदृष्टिः—

ब	१४५ ५
अ	१४४ ४

एवं द्वितीयतृतीयचतुर्थबद्धाबद्धायुःस्थानेष्वपि पंच चत्वारो भंगा ज्ञातव्याः। अत्र मिश्रेऽनंतानुबंध्यसत्त्वं कथमिति चेत् असंयतादिचतुर्ष्वेकत्र करणत्रयेण तच्चतुष्कं विसंयोज्य दर्शनमोहक्षपणानभिमुखस्य संक्लिष्ट-

---

भंग होते हैं। अबद्धायुके चारों स्थानोंमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार-चार भंग होते हैं।

शंका—मिश्रमें अनन्तानुबन्धीका असत्त्व कैसे है ?

समाधान—असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एकमें तीन करणोंके द्वारा अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन किया। उसके पश्चात् दर्शनमोहनीयकी क्षपणा तो न कर सका और संक्लेश परिणामके द्वारा मिश्र मोहनीयके उदयसे मिश्र गुणस्थानवर्ती हुआ।

ब १४१ ५
अ १४० ४

मिश्र चतुर्त्थबध्यमानायुःसत्वस्थानदोळु तीर्त्थमितरायुर्द्वितयमुमाहारकचतुष्टयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु पन्नोंदुं प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तेळु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं। भंगंगळु मपुनरुक्तंगळुमय्दप्पुवल्लि अबद्धायुः—सत्वस्थानदोळु तीर्त्थमुमितरायुस्त्रयमुमाहारकचतुष्टयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु द्वादश प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु गतिचतुष्टय भेदर्दिदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :— ५

ब १३७ ५
अ १३६ ४

ई मिश्रनोळनंतानुबंधिसत्वरहितत्वमें तें दोडे असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळु अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमं करणत्रयकरणपूर्व्वकं विसंयोजनमं माडिदवर्गळु दर्शनमोहनीयमं क्षपियिसलभिमुखरल्लदवर्गळु संक्लिष्टपरिणामर्दिदं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयर्दिदं मिश्रगुणस्थानमं पोद्दियल्लियुमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयं सासादननोळु बंधव्युच्छित्तिगळादुवप्पुदरिंदमनंतानुबंधिरहितत्वं मिश्रनोळरियल्पडुगुं। १०

इंतु सासादनमिश्रगळगे सत्वस्थानंगळ भेदंगळुमनवर भंगंगळुमं पेळ्दनंतरं असंयतगुणस्थानदोळु मुंपेळ्द नाल्वत्तुं स्थानंगळगुपपत्तियमनवर भंगंगळु नूरिप्पत्तक्कं गाथाषट्कर्दिदं पेळ्दपरु :—

दुग छक्क सत्त अट्ठं णवरहियं तह य चउपडिं किच्चा।
णभमिगि चउ पणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३७६॥ १५

द्विकषट्कसप्ताष्टौ नवरहितं तथा च चतुः प्रति कृत्वा। नभ एक चतुः पंचहीनं बद्धस्येतरस्यैकोनं ॥

परिणामेन सम्यग्मिथ्यात्वोदयात्तत्र गमनात्। तद्बंधस्य सासादने एव च्छेदात् ॥ ३७५ ॥ अथासंयतोक्तचत्वारिंशत्स्थानानामुत्पत्तिं तद्विंशत्युत्तरशतभंगांश्च गाथाषट्केनाह—

उसके अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं होता। नवीनबन्ध हो तो सत्त्व हो, किन्तु नवीनबन्धकी २० व्युच्छित्ति तो सासादनमें ही हो जाती है ॥३७५॥

आगे असंयत गुणस्थानमें कहे चालीस स्थानोंकी उत्पत्ति और उनके एक सौ बीस भंगोंको छह गाथाओंसे कहते हैं—

द्विकषट्कसप्ताष्टनवप्रकृतिरहितपंचसत्वस्थानंगळं तिर्य्यक्क्रमदिनिरिसि मत्तमा प्रकारदिंदं कळकेळगे तिर्य्यक्कागि नाल्कुं पंक्तियं माडि प्रथमपंक्तियोळु शून्यमनप्पुं स्थानंगळोळ् कळेवुदु। द्वितीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु प्रत्येकमों दों दं कळेवुदु। तृतीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्कुं नाल्कं कळेदु चतुर्थपंक्तियोळु पंचमस्थानंगळोळु प्रत्येकं अय्दय्दुं कळेवुदंतु कळेद नाल्कुं पंक्तिगळोळु बद्धायुष्यंगे सत्वस्थानंगळिप्पत्तप्पुवबद्धायुष्यंगे प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपंक्तिय पंच पंच सत्वस्थानंगळोळु प्रत्येकमों दों दं कळेदु तंतम्म पंक्तिगळ केळगे केळगे स्थापिसुत्तं विरलु सत्वस्थानंगळिप्पत्तप्पुवु। अंतु असंयतंगे सत्वनंगळ् नाल्वत्तप्पुवु। यिल्लि प्रथमपंक्तिद्वयमुं तृतीयपंक्तिद्वयमुं सतीर्त्थस्थानंगळप्पुवितरद्वितीयपंक्तिद्वयमुं चतुर्थपंक्तिद्वितयमुं तीर्त्थरहितस्थानंगळेंदु पेळ्दपरु :—

तित्थाहारे सहियं तित्थूणं अह य हारचउहीणं।
तित्थाहारचउक्केणूणं इदि चउपडिट्ठाणं ॥३७७॥

तीर्त्थाहारसहितं तीर्त्थोनमथ चाहारचतुर्हीनं। तीर्त्थाहारकचतुष्केणोनमिति चतुः प्रतिस्थानं ॥

द्विकषट्कसप्ताष्टनवप्रकृतिरहितपंचस्थानानि तिर्यक्क्रमेण विन्यस्य पुनस्तथैवाधोधः चतुःपंक्तीः कृत्वा प्रथमपंक्तौ पंचस्थानेषु शून्यमानयेत्। द्वितीयपंक्तौ एकैकं, तृतीयपंक्तौ चतुष्कं चतुष्कं, चतुर्थपंक्तौ पंच पंच। एवं बद्धायुष्कस्य विंशतिः सत्त्वस्थानानि। अबद्धायुष्कस्य तथा पंचपंक्तीनां पंच पंच सत्त्वस्थानेषु प्रत्येकमेकैकमपनीय स्वस्वाधःस्थापितेषु विंशतिः, मिलित्वा असंयतस्य चत्वारिंशद्भवंति ॥ ३७६ ॥ अथोक्तपंक्तिचतुष्के तीर्थाहारयुतायुतत्वेन विशेषमाह—

दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृति रहित पाँच स्थानोंको बराबर-बराबर लिखकर पुनः उसी प्रकार नीचे-नीचे पाँच स्थानोंकी चार पंक्तियाँ लिखो। उनमें-से प्रथम पंक्तिके पाँच स्थानोंमें शून्य घटाओ। अर्थात् वे पाँचों स्थान ज्योंके त्यों दो, छह, सात, आठ और नौ प्रकृति रहित होते हैं। दूसरी पंक्तिमें-से एक-एक प्रकृति और घटाओ। अर्थात् वे पाँचों स्थान तीन, सात, आठ, नौ, दस रहित जानना। तीसरी पंक्तिके पाँचों स्थानोंमें-से चार-चार प्रकृति घटाना। अर्थात् वे पाँचों स्थान छह, दस, ग्यारह, बारह, तेरह प्रकृति रहित जानना। चौथी पंक्तिमें पाँच-पाँच प्रकृति घटाना। अतः वे पाँचों स्थान सात, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह प्रकृति रहित होते हैं।

इस प्रकार बद्धायुके बीस स्थान होते हैं। इसी प्रकार अबद्धायुकी चार पंक्तियोंके पाँच-पाँच सत्त्वस्थानोंमें-से प्रत्येकमें बध्यमान आयुरूप एक-एक प्रकृति घटानेपर बीस स्थान होते हैं। सब मिलकर असंयतमें चालीस सत्त्वस्थान होते हैं ॥३७६॥

आगे चारों पंक्तियोंमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्ककी अपेक्षा जो विशेष है उसे कहते हैं—

प्रथमपंक्तिद्वयदस्थानपंचकद्वयं तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयमुं सहितमक्कुं। द्वितीयपंक्तिद्वयद स्थानपंचकद्वयं तीर्त्थंकरप्रकृतिसत्वरहितमक्कुमाहारकचतुष्टयसहितमक्कुं। तृतीयपंक्तिद्वयद स्थानपंचकद्वयं तीर्त्थंकरप्रकृतिसत्वसहितमक्कुमाहारकचतुष्टयरहितमक्कुं। चतुर्त्थपंक्तिद्वयस्थानपंचकद्वयं तीर्त्थंकरमुमाहारकचतुष्टयमुं सत्वरहितमक्कुमितु चतुः प्रतिस्थानमरियल्पडुगुं ॥

अनंतरं दुगछक्कादि सत्वहीनप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :— ५

अण्णदर आउसहिया तिरियाऊ ते च तह य अणसहिया।
मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण खविदे हवे ठाणा ॥३७८॥

अन्यतरायुःसहितं तिर्य्यगायुस्ते च तथा चानंतानुबंधिसहितं मिथ्यात्वं मिश्रं सम्यक्त्वं क्रमेण क्षपिते भवेत् स्थानं ॥

अन्यतरायुष्यमोंदु सहितमाद तिर्य्यगायुष्यमा येरडुमनंतानुबंधिसहितमादारु मी यारुं १० मिथ्यात्वमुं कूडि येळु मी येळुं मिश्रप्रकृति गूडि येंदु ई येंटुं सम्यक्त्वप्रकृतिगूडि ओंभत्तुं प्रकृतिगळु रहितंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

प्रथमपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थाहारकचतुष्कसहितं भवति। द्वितीयपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थरहितमाहारकचतुष्टयसहितं भवति। तृतीयपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थसहितमाहारकचतुष्टयरहितं भवति। चतुर्थपंक्तिद्वयस्य स्थानपंचकद्वयं तीर्थकराहारकचतुष्टयरहितं भवति। एवं चतुःप्रकृतिकं स्थानं १५ ज्ञातव्यं ॥ ३७७ ॥ अथ दुगछक्कादिहीनप्रकृतीराह—

तिर्यगायुरन्यतरायुःसहितं तद्द्वितीयमनंतानुबंधिसहितं तत्षट्कं मिथ्यात्वसहितं तत्सप्तकं मिश्रसहितं तदष्टकं सम्यक्त्वसहितनवकमित्यपनीतप्रकृतयो भवंति ॥ ३७८ ॥ अथ भंगान् गाथाद्वयेनाह—

बद्धायु और अबद्धायुकी प्रथम दो पंक्तियोंके जो पाँच-पाँच स्थान हैं वे तीर्थंकर और २० आहारक चतुष्क सहित हैं। बद्धायु और अबद्धायुकी दूसरी दो पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थंकर रहित किन्तु आहारक चतुष्क सहित हैं। बद्धायु और अबद्धायुकी तीसरी दो पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थंकर सहित किन्तु आहारक चतुष्टय रहित हैं। बद्धायु और अबद्धायुकी चतुर्थ दोनों पंक्तियोंके पाँच-पाँच स्थान तीर्थंकर तथा आहारक चतुष्कसे रहित हैं। अर्थात् प्रथम पंक्तिसे शून्य घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क २५ हैं। दूसरीमें एक घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थंकर नहीं है, तीसरीमें चार घटानेसे मतलब है कि उसमें आहारक चतुष्क नहीं है और चौथीमें पांच घटानेसे मतलब है कि उसमें तीर्थंकर भी नहीं है और आहारक चतुष्क भी नहीं है ॥३७७॥

इसे नीचे रचना द्वारा स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक कोठेमें ऊपर प्रकृतियोंका प्रमाण है उसके नीचे भंगोंका प्रमाण है। ३०

०	०	० २	० ६	० ७	० ८	० ९
सतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४६ २	१४२ २	१४१ २	१४० २	१३९ २
सतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४५ ३	१४१ ३	१४० १	१३९ ३	१३८ ३
अतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४५ ५	१४१ ५	१४० ३	१३९ ३	१३८ ४
अतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४४ ४	१४० ४	१३९ १	१३८ ४	१३७ ४
सतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४२ २	१३८ २	१३७ २	१३६ २	१३५ २
सतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४१ ३	१३७ ३	१३६ १	१३५ ३	१३४ ३
अतीर्थं ॥ ०	बंध ॥	१४१ ५	१३७ ५	१३६ ३	१३५ ३	१३४ ४
अतीर्थं ॥ ०	अबंध ॥	१४० ४	१३६ ४	१३५ १	१३४ ४	१३३ ४

बद्धायुस्थान २०, भंग ६०

ती. आ. सहित	१४६ २	१४२ २	१४१ २	१४० २	१३९ २
तीर्थं. रहित	१४५ ५	१४१ ५	१४० ३	१३९ ३	१३८ ४
आहारक रहित	१४२ २	१३८ २	१३७ २	१३६ २	१३५ २
ती. आ. रहित	१४१ ५	१३७ ५	१३६ ३	१३५ ३	१३४ ४

अबद्धायुस्थान २०, भंग ६०

१४५ ३	१४१ ३	१४० १	१३९ ३	१३८ ३
१४४ ४	१४० ४	१३९ १	१३८ ४	१३७ ४
१४१ ३	१३७ ३	१३६ १	१३५ ३	१३४ ३
१४० ४	१३६ ४	१३५ १	१३४ ४	१३३ ४

आगे दो, छह आदि घटायी प्रकृतियोंको कहते हैं—

तिर्यंचायु और कोई एक अन्य आयु ये दो प्रकृति जानना। दो ये और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह जानना। इनमें मिथ्यात्व मोहनीय मिलानेसे सात जानना। मिश्रमोहनीय मिलानेसे आठ जानना। सम्यक्त्व मोहनीय मिलानेसे नौ जानना। ये घटाई गयी प्रकृतियाँ हैं। अर्थात् बद्धायुकी प्रथम पंक्तिका प्रथम स्थान दो आयु बिना एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप है। दूसरी पंक्तिका प्रथम स्थान तीर्थंकर बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप है। तीसरी पंक्तिका प्रथम स्थान आहारक चतुष्क बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप है। चौथी पंक्तिका प्रथम स्थान आहारक चतुष्क और तीर्थंकर बिना एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप है। इनमें बध्यमान आयुरूप एक प्रकृति और घटानेपर अबद्धायुके चार स्थान होते हैं। इस प्रकार आठ स्थान हुए। इन सबमें अनन्तानुबन्धी चतुष्करूप चार प्रकृतियोंके घटानेपर दूसरे आठ स्थान होते हैं। उनमें-से भी मिथ्यात्व घटानेपर तीसरे आठ स्थान

अनंतरं भंगंगळं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपरु :—

आदिमपंचट्ठाणे दुगदुगभंगा हवंति बद्धस्स ।
इयरस्सवि णादव्वा तिगतिग इगि तिण्णि तिण्णेव ॥३७९॥

आदिमपंचस्थाने द्विकद्विकभंगा भवंति बद्धस्य । इतरस्यापि ज्ञातव्याः त्रिकत्रिकैकत्रित्रयः ॥

मोदल पंचस्थानदोळेरडेरडु भंगंगळप्पुवु । बद्धायुष्यंगे यितराबद्धायुष्यंगे मूरु मूरुं ओंदु मूरु मूरुं भंगंगळरियल्पडुववु ॥

त्रिदियस्स वि पणठाणे पण पण तिग तिण्णि चारि बद्धस्स ।
इयरस्स होंति णेया चउ चउ इगि चारि चत्तारि ॥३८०॥

द्वितीयस्यापि पंचस्थाने पंच पंच त्रिकत्रयश्चत्वारो बद्धस्येतरस्य भवंति ज्ञेयाश्चतुश्चतुरेकश्चत्वारश्चत्वारः ॥

द्वितीयपंक्तिय पंचस्थानंगळोळु बद्धायुष्यंगे क्रमदिंदं पंच पंच त्रिकत्रिकचतुर्भंगंगळप्पुवितरंगबद्धायुष्यंगे चतुश्चतुरेक चतुश्चतुर्भंगंगळु ज्ञातव्यंगळप्पुवु ॥

आदिल्ल दससु सरिसा भंगेण य तदिय दसय ठाणाणि ।
बिदियस्स चउत्थस्स य दस ठाणाणि य समा होंति ॥३८१॥

आद्यतनदशसु सदृशानि भंगेन च तृतीयदशकस्थानानि । द्वितीयायाश्चतुर्थ्याश्च दशस्थानानि च भंगैः समानि भवंति ॥

प्रथमपंचस्थानेषु बद्धायुष्कस्य द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । अबद्धायुष्कस्य च त्रयस्त्रयः एकस्त्रयस्त्रयो भवंति ॥ ३७९ ॥

द्वितीयपंक्तेः पंचस्थानेषु बद्धायुष्कस्य पंच पंच त्रयस्त्रयश्चत्वारो भंगा भवंति । इतरस्य चत्वारश्चत्वार एकश्चत्वारश्चत्वारो भवंति ॥ ३८० ॥

आद्येषु बद्धाबद्धायुष्कदशस्थानेषूक्तभंगैः तृतीयबद्धाबद्धायुष्कदशस्थानभंगाः समानाः । द्वितीयपंक्तेर्बद्धाबद्धायुष्कदशस्थानोक्तभंगैः चतुर्थपंक्तेर्बद्धाबद्धायुष्कदशस्थानभंगाः समानाः । एवमसंयतस्य चत्वारिंशत्स्थानेषु

होते हैं। उनमें-से भी मिश्रमोहनीय घटानेपर चौथे आठ स्थान होते हैं। उनमें-से भी सम्यक्त्व मोहनीय घटानेपर पाँचवें आठ स्थान होते हैं। इस तरह सब मिलकर असंयतमें चालीस सत्त्वस्थान होते हैं ॥३७८॥

आगे दो गाथाओंसे इनमें भंग कहते हैं—

प्रथम पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं। अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे तीन-तीन, एक, तीन-तीन भंग होते हैं ॥३७९॥

दूसरी पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे पाँच-पाँच, तीन-तीन, चार भंग होते हैं। अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें क्रमसे चार-चार, एक, चार भंग होते हैं ॥३८०॥

पहली पंक्ति सम्बन्धी पाँच बद्धायु और पाँच अबद्धायुके दस स्थानोंमें जो भंग कहे हैं उन्हींके समान तीसरी पंक्तिके दस स्थानोंमें भंग जानना। तथा दूसरी पंक्ति सम्बन्धी पाँच

आद्यतनबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळोळु पेळ्द भंगंगळोडने तृतीयबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळ भंगंगळु समानंगळप्पुवु । द्वितीयपंक्तिय बद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळोळु पेळ्द भंगंगळोडने चतुर्त्थपंक्तियबद्धाबद्धायुष्यरुगळ दशस्थानंगळ भंगंगळु समानंगळप्पुवु । इंतसंयतन नाल्वत्तुं स्थानंगळोळु नूरिप्पत्तु भंगंगळप्पुववर भेदं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे—बद्धायुष्यनप्प असंयतन प्रथमपंक्तिय पंचस्थानंगळु सतीर्त्थस्थानंगळप्पुवरिंदं भुज्यमानबध्यमानायुर्द्वयमल्लदितरायुष्यमोंदुं तीर्त्थसत्वमुल्लंगे तिर्य्यगायुष्यसत्वमिल्लप्पुदरिंदं तिर्य्यगायुष्यमुमंतु प्रकृतिद्वयरहितमागि नूरनाल्वत्तारु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु । भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानदेवायुष्यनु । भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यनु । मेंदितु नाल्कुं भंगंगळोळु समभंगंगळप्प कडेयवेरडुं भंगंगळं बिट्टु भंगद्वयमक्कुमत्तमा स्थानदोळु अनंतानुबंधि चतुष्टयमं विसंयोजिसिदातंगे अन्यतरायुष्यमोंदुं तिर्य्यगायुष्यमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुमंतु षट् प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तेरडु प्रकृतिसत्वस्थानदोळं भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननारकायुष्यनु ।

विंशत्यत्तरशतं भंगा भवंति । तद्भेद उच्यते—

बद्धायुष्कस्यासंयतस्य प्रथमपंक्तिपंचस्थानानां सतीर्थत्वात्तिर्यगायुषा भुज्यमानबध्यमानाभ्यामितरायुषा च रहितषट्चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भंगाः भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुष्कः १ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुष्कः २ भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुष्कः ३ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्यायुष्कश्चेति चतुर्षु समद्वये त्यक्ते द्वौ भंगौ भवतः । तथा विसंयोजितानंतानुबंधिनस्तच्चतुष्कस्यान्यतरायुस्तिर्यगायुषोश्चाभावाद् द्वाचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितमिथ्यात्वस्य तस्यैकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितमिश्रस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने पुनः क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरेकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि तौ भुज्यमानमनुष्यबध्यमान-

---

बद्धायु और पाँच अबद्धायुके दस स्थानोंमें जो भंग कहे हैं उन्हींके समान चौथी पंक्तिके दस स्थानोंमें भंग जानना। इस तरह असंयतके चालीस स्थानोंमें एक सौ बीस भंग होते हैं। अब उन भंगोंको कहते हैं—

बद्धायु असंयत सम्यग्दृष्टीके पहली पंक्ति सम्बन्धी जो पाँच स्थान हैं वे तीर्थंकर प्रकृति सहित हैं। और तिर्यंचमें तीर्थंकरकी सत्ता नहीं होती। अतः प्रथम पंक्तिके प्रथम स्थानमें भुज्यमान या बध्यमान तिर्यंचायु और एक कोई अन्य आयुके बिना एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप है। उसमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु, भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु ये चार भंग होते हैं। इनमें-से भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान नरकायु तथा भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु भंग समान होनेसे पुनरुक्त है। तथा भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु और बध्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु यह भंग भी समान होनेसे पुनरुक्त है। अतः दो भंगोंके पुनरुक्त होनेसे शेष दो भंग होते हैं। प्रथम पंक्तिका दूसरा स्थान जिसके अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन हुआ उसके अनन्तानुबन्धी चार, तिर्यंचायु और एक अन्य आयु इन छह बिना एक सौ बयालीस प्रकृतिरूप है। जिसके मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय हुआ है उसके एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है, जिसके मिश्र मोहनीयका क्षय हुआ है उसके एक सौ चालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है।

भुज्यमानमनुष्यनु बध्यमानदेवायुष्यनें ब भंगद्वयमक्कु । मा स्थानदोळ मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसि सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तिर्प्प भुज्यमानमनुष्यंगे अन्यतरायुष्यमोंदु तिर्य्यगायुष्यमुं अनंतानुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमंतु सप्तप्रकृतिसत्वरहितमागि नूर नाल्वत्तोंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुमा भंगद्वयमेयक्कुमा स्थानदोळु मिश्रप्रकृतियं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तमिर्प्पातंगितरायुस्तिर्य्यंगायुर्द्वितयमुं अनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुमंतेंटुं प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु मुंपेळ्देरडे भंगंगळप्पुवु । आ स्थानदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसिदातंगन्यतरायुस्तिर्य्यंगायुर्द्विकमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं दर्शनमोहनीयत्रितयमुमंतु नवप्रकृतिरहितमागि नूर मूवत्तोंभत्तु प्रकृतिसत्वस्थानदोळं मुंपेळ्द भुज्यमानमनुष्यं बद्धनरकदेवायुष्यभेददेरडे भंगंगळप्पुवीबद्धायुष्यन स्थानपंचकद कळगण अबद्धायुष्यन पंक्तिय-

नरकायुःभुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुश्चेति द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । तदधस्तनाबद्धायुष्कपंक्तौ पंचस्थानेषु पंचचत्वारिंशच्छतके विसंयोजितानंतानुबंधिनः एकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमाननारकमनुष्यदेवायुर्भेदात्त्रयो भंगाः । क्षपितमिथ्यात्वस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्याणामेको भंगः । क्षपितमिश्ररयैकान्नचत्वारिंशच्छतके भुज्यमाननरकमनुष्यदेवायुर्भेदात्त्रयो भंगाः कृतकृत्यवेदकतीर्थसत्त्वमनुष्यस्य गतिद्वयजननसंभवात् । क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरष्टत्रिंशच्छतकेऽपि त एव त्रयो भंगा । असौ क्षायिकसम्यग्दृष्टिः तस्मिन्नेव भवे घातीनि

और जिसके सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय हुआ है उसके एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप पांचवाँ स्थान है। इन चारों स्थानोंमें भी पूर्ववत् भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु और भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ये दो दो ही भंग होते हैं। अबद्धायुके प्रथम पंक्ति सम्बन्धी पाँच स्थानोंमें प्रथम स्थान एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप और अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर दूसरा स्थान एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप है। इन दोनों स्थानोंमें भुज्यमान नरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीन भंग है। तथा मिथ्यात्वका क्षय होनेपर तीसरा स्थान एक सौ चालीस प्रकृतिरूप है। उसमें भुज्यमान मनुष्यायु एक ही भंग होता है। मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। उसमें भुज्यमान नरकायु, मनुष्यायु देवायुकी अपेक्षा तीन भंग हैं। क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तावाला कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी मनुष्य मरकर नरक और देवगतिमें उत्पन्न हो सकता है। अतः देवगति और नरकगतिमें भी इस प्रकारका सत्त्वस्थान सम्भव है। सम्यक्त्व मोहनीयका अभाव होनेपर एक सौ अड़तीसका सत्तारूप पाँचवाँ स्थान होता है। यहाँ भी भुज्यमान नरकायु मनुष्यायु और देवायुकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं। मनुष्यायु सहित एक सौ अड़तीस सत्त्वस्थानवाला यह क्षायिक सम्यग्दृष्टी यदि उसी भवमें घातिया कर्मोंको नष्ट कर केवली होता है तो उसके गर्भ और जन्मकल्याणक न होकर तप आदि तीन

१. इल्लि क्षायिकनप्पुदरिं भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यमुमें ब भंगंगळु कूडि नाल्कु भंगंगळुल्लडं समभंगंगळे एंदु एरडु भंगंगळं तेगदु येरडे भंगंगळेंबदर्त्थं । षट्सप्ताष्टप्रकृतिरहितस्थानदोळु नाल्कु भंगंगळिगे संभवमिल्लप्पुदरिंदेरडे भंगंगळु । एकेंदोडे अनंतानुबंधियनुमिथ्यात्वप्रकृतियनुकेडिसि मिश्रप्रकृतियं केडिसद मुन्न मरणमिल्लप्पुदरिं ।

स्थानपंचकदोळु पेळल्पडुगुं । तिर्य्यंगायुर्व्वर्ज्जितविवक्षितभुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयं रहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमाननारकं मनुष्यं देवनेंब भेदर्दिदं मूरु भंगंगळप्पुवनंतानुबंधिचतुष्कमुं विसंयोजनमं माडिदातंगेळु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तों दु प्रकृतिसत्वस्थानदोळु भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनेंब भेदर्दिदं भंगत्रयमक्कुं। मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसिदातंगे दु प्रकृतिरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लिभुज्यमानमनुष्यनों दे भंगमक्कुं। मिश्रप्रकृतियं क्षपिसिदातंगे नवप्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं तिर्य्यंगतिवर्ज्जितमागि भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनेंब भेदर्दिदं भंगत्रयमक्कुमेकेंदोडे कृतकृत्यवेदकंगे सतीर्त्थंगे मनुष्यंगे गतिद्वयजनन संभवमुंटप्पुदरिंदं। सम्यक्त्व प्रकृतियं क्षपिसिदंगोयुं भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वादिदर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तेंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमाननारकमनुष्यदेवनेंब भेदर्दिदं भंगत्रयमक्कुमी अबद्धायुष्यनप्प सतीर्त्थनप्प क्षायिकसम्यग्दृष्टि तद्भवदोळु घातिगळं केडिसिदोडे गर्भावतरणकल्याणमुं जन्माभिषवणकल्याणमुमिल्ल। अथवा तृतीयभवदोळु घातिगळं केडिसुवडे नियमदिदं देवायुष्यमं कट्टि देवनक्कुमातंगे पंचकल्याणंगळुमोळवु। बद्धनरकायुष्यनप्प सतीर्त्थंगायुं नारकनागि प्रथमद्वितीयतृतीयपृथ्विगळोळिप्पंगर्गर्भविगळु भुज्यमाननरकायुष्यावशेषमादागळु तीर्त्थकरविशिष्टमनुष्यायुष्यमं

हंति तदा गर्भावतरणजन्माभिषवणकल्याणे न स्यातां । अथ तृतीयभवे हंति तदा नियमेन देवायुरेव बध्वा देवो भवेत् तस्य पंच कल्याणानि स्युः । यो बद्धनारकायुस्तीर्थसत्त्वः स प्रथमपृथ्व्यां द्वितीयायां तृतीयायां वा जायते । तस्य षण्मासावशेषे बद्धमनुष्यायुष्कस्य नारकापसर्गनिवारणं गर्भावतरणकल्याणादयश्च भवंति । द्वितीयपंक्ते बद्धायुःपंचस्थानेषु विवक्षितभुज्यमानबध्यमानाभ्यामितरायुर्द्वयतीर्थाभावात्पंचचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने विसंयोजितानंतानुबंधिन एकचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने च तीर्थासत्त्वाच्चातुर्गतिसंबंधिद्वादशभंगेषु समभंगेषु समपुनरुक्तान्विना पंच । क्षपितमिथ्यात्वस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्यस्य बध्यमान-

ही कल्याणक होते हैं। यदि तीसरे भवमें घातिकर्मोंको नष्ट करता है तो नियमसे देवायुको बाँधता है। वहाँ देवायु सहित एक सौ अड़तीसका सत्त्व पाया जाता है। मनुष्य पर्यायमें जन्म लेनेपर उसके पाँच कल्याणक होते हैं। किन्तु जिसने मिथ्यात्वमें नरकायुका बन्ध किया है और उसके तीर्थंकरका सत्त्व है तो वह प्रथम द्वितीय या तृतीय नरकमें उत्पन्न होता है उसके एक सौ अड़तीसका सत्त्व होता है। उसकी आयुमें छह महीना शेष रहनेपर मनुष्यायुका बन्ध होता है तथा नरकमें नारकियों द्वारा किये जानेवाले उपसर्गका निवारण और पंचकल्याणक होते हैं।

दूसरी पंक्ति सम्बन्धी बद्धायुके पाँच स्थानोंमें विवक्षित भुज्यमान और बध्यमान बिना दो आयु और तीर्थंकरके बिना एक सौ पैंतालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान है। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर एक सौ इकतालीस प्रकृतिरूप दूसरा स्थान है। इन दोनों स्थानोंमें तीर्थंकर प्रकृतिका अभाव होनेसे चारों गति सम्बन्धी बारह भंगोंमें समभंग और पुनरुक्त भंगके बिना पाँच-पाँच भंग जानना। मिथ्यात्वका क्षय होनेपर एक सौ चालीस प्रकृतिरूप

कट्टिदंगे नारकोपसर्गनिवारणमुं गर्भावतरणादिकल्याणंगळुमप्पुवु। द्वितीयपंक्तिय बद्धायुष्यन सत्वस्थानपंचकंगळोळु तीर्त्थमुं विवक्षितभुज्यमानबध्यमानायुर्द्वितयमुमल्लदितरायुर्द्वितयमुमंतु त्रिप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तय्दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि तीर्त्थरहितस्थानमप्पुदरिंदं चतुर्गतिसंबंधि द्वादशभंगंगळोळु पुनरुक्तसमभंगंळेळं कळेदु शेषपंचभंगंगळप्पुवु। अनंतानुबंधिविसंयोजनमं माडिदातंगे तीर्त्थमुमन्यतरायुर्द्वितयमुं अनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतेळु सत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तो दु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुमा पंचभंगंगळप्पुवु। मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसि मिश्रप्रकृतियं क्षपियिसुत्तिर्प्पांत मनुष्यनेयप्पुदरिंदमातंगे तीर्त्थमुमितरायुर्द्वितयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वमुमंतेंटुं प्रकृतिरहितमागि नूर नाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यंगे बध्यमाननरकतिर्य्यंग्मनुष्यदेवनेंब भेदर्विदं नाल्कु भंगंगळोळु पुनरुक्तभंगमोंदं कळेदु शेषभंगंगळु मूरप्पुवु। मिश्रप्रकृतियुमं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसुत्तिर्प्प कृतकृत्यवेदकंगं तीर्त्थमुमितरायुर्द्वितयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं कूडि नव प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तोंभत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं भुज्यमानमनुष्यं बद्धनरकतिर्य्यंग्मनुष्यदेवायुष्यभेदर्विदं नाल्कु भंगंगळोळु पुनरुक्तमं कळेदु मूरु भंगंगळप्पुवु। सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसि क्षायिकसम्यग्दृष्टियाद तीर्त्थरहितंगे तीर्त्थमुमितरायुर्द्वितयमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिसत्वरहितमागि नूर मूवत्तेंटुं प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लिभुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुं। भुज्यमानतिर्य्यंचं बध्यमानदेवायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमाननरकायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानतिर्य्यगायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु। भुज्यमानमनुष्यनु बध्यमानदेवायुष्यनु। भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमेंब सप्तभंगंगळोळु भुज्यमानमनुष्यं बध्यमानमनुष्यायुष्यनेंब पुनरुक्तभंगमुमं

नरकतिर्यक्मनुष्यदेवभेदेन चतुर्षु भंगेषु पुनरुक्तमेकं विना त्रयः। क्षपितमिश्रस्यैकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि त एव त्रयः। क्षपितसम्यक्त्वप्रकृतेरष्टत्रिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमाननारकबध्यमानमनुष्यायुष्कः १ भुज्यमानतिर्यग्बध्यमानदेवायुष्कः २ भुज्यमानमनुष्यबध्यमाननरकायुष्कः ३ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानतिर्यगायुष्कः ४ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानमनुष्यायुष्कः ५ भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुष्कः ६ भुज्यमानदेवबध्यमानमनुष्या-

---

तीसरा स्थान है। वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु और बध्यमान नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु देवायुके भेदसे चार भंग होते हैं। उनमें-से भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु भंग एक ही प्रकृति होनेसे पुनरुक्त है। उसके बिना तीन भंग होते हैं। मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। वहाँ भी उसी प्रकार तीन भंग होते हैं। सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ स्थान है। वहाँ भुज्यमान नरकायु बध्यमान मनुष्यायु १ भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु २ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान नरकायु ३ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान तिर्यंचायु ४ भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान मनुष्यायु ५, भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु ६, भुज्यमान देवायु बध्यमान मनुष्यायु इन सात भंगोंमें पाँचवाँ भंग पुनरुक्त है क्योंकि एक ही मनुष्यायु है। पहला भंग

भुज्यमाननारकं बध्यमानमनुष्यायुष्यनु । भुज्यमानदेवं बध्यमानमनुष्यायुष्यनुमें बेरडुं समभंगंगळु मंतु मूरुं भंगंगळं कळेदु शेषभंगंगळु नाल्कु अप्पुवु। शेषपंचभंगंगळऽसंभवंगळप्पुवु : संदृष्टि :—

ब	ति । म	न । ति । म । दे	न । ति । म । दे	ति । म
भु	ना । ना	ति । ति । ति । ति	म । म । म । म	दे । दे
*	० । स	० । ० । ० ।	+।+।पु।+	० । स

आ द्वितीयपंक्तिय केळगण अबद्धायुष्यरुगळ सत्वस्थानपंचक दोळु विवक्षित भुज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुं कूडि नाल्कु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूर नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु । मल्लि नाल्कुं गतिजर भेदविंदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु । भज्यमानायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतु अष्टप्रकृतिसत्वरहितमागि नूरनाल्वत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु मल्लियुं चतुर्गतिजर भेदंदिदं नाल्कु भंगंगळप्पुवु । मिथ्यात्वमं क्षपिसिद सत्वस्थानदोळु भुज्यमानमनुष्यायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुं मिथ्यात्वमुमंतु नव प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तों भत्तु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यनल्लदितरगतित्रयजरल्लप्पुदरिंदमो दे भंगमक्कुं । मिश्रप्रकृतियुमं क्षपिसि सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपियिसुत्तिर्द्दातनुं कृतकृत्यवेदकनुं मेणातंगे अन्यतरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं

युष्कश्चेति ७ सप्तभंगेषु पंचमः पुनरुक्तः, प्रथमसप्तमौ च समाविति चत्वारः । शेषाः पंच न संभवंति । संदृष्टिः—

ब	ति	म	ना	ति	म	दे	ना	ति	म	दे	ति	म
भु	ना	ना	ति	ति	ति	ति	म	म	म	म	दे	दे
०	०	स	०	०	०	०	०	०	पु	०	०	स

तदधस्तनाबद्धायुष्कपंचस्थानेषु विवक्षितभुज्यमानादितरायुस्त्रयतीर्थाभावे चतुश्चत्वारिंच्छतसत्त्वस्थाने विसंयोजितानंतानुबंधिचतुष्कस्य चत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थाने चतुर्गतिजभेदाच्चत्वारः । क्षपितमिथ्यात्वस्यैकान्नचत्वारिंच्छतसत्त्वस्थाने भुज्यमानमनुष्यादितरगतित्रयजाभावादेकः । क्षपितमिश्रस्याष्टात्रिंशच्छतसत्त्वस्थाने भुज्य-

और तीसरा भंग तथा सातवाँ और छठा भंग समान है । इन तीनके बिना चार भंग होते हैं । चारों गति सम्बन्धी जो बारह भंग कहे थे उनमें-से पाँच भंग यहाँ नहीं होते । दूसरी पंक्ति सम्बन्धी अबद्धायुके पाँच स्थानोंमें-से भुज्यमान आयु बिना तीन आयु और तीर्थंकर बिना एक सौ चवालीस प्रकृतिरूप पहला स्थान है । अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर एक सौ चालीस प्रकृतिरूप दूसरा स्थान है । इन दोनोंमें भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार-चार

१. मुंपेल्द द्वादश भंगंगळोळु घटियिसुववु । अय्दु घटियिसल्बुदल्तें ॥

मिश्रप्रकृतियुमिंतु दशप्रकृतिगळ्ु सत्वरहितमागि नूर मूवत्तेंदु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि भुज्यमानमनुष्यनुं कृतकृत्यापेक्षेयिंदं नारकनुं तिर्य्यंचनुं देवनुमेंब नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। सम्यक्त्वप्रकृतियुमं क्षपिसिद क्षायिक सम्यग्दृष्टिगे यितरायुस्त्रितयमुं तीर्त्थमुमनंतानुबंधिचतुष्कमुं दर्शनमोहनीयत्रयमंतु पन्नोंदु प्रकृतिसत्वरहितमागि नूरमूवत्तेळ्ु प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियुं चतुर्ग्गतिजरुगळ भेदविंदं नाल्कुं भंगंगळप्पुवु। इंतु प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु त्रयोविंशति भंगंगळप्पुवु। द्वितीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु सप्तत्रिंशद्भंगंगळप्पुवु। इतरतृतीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानं गळोळु पेळ्दंते त्रयोविंशति भंगंगळप्पुवु। चतुर्त्थपंक्तिद्वयद दशस्थानंगळोळु द्वितीयपंक्तिद्वयद दशस्थानंगळोळु पेळ्द सप्तत्रिंशद्भंगंगळप्पुवंतसंयतगुणुस्थानदोळु सत्वस्थानंगळु नाल्वत्तरोळु पुनरुक्त समविहीनभंगंगळु नूरिप्पत्तप्पुवु ॥

अनंतरं देशसंयतादि गुणस्थानत्रयदोळु भंगगळं पेळ्परु :—

देसतिएसुवि एवं भंगा एक्केक्क देसगस्स पुणो ।
पडिरासि बिदियतुरियस्सादीबिदियम्मि दो भंगा ॥३८२॥

देशव्रतादित्रयेष्वेवं भंगा एकैके देशव्रतस्य पुनः। प्रतिराशि द्वितीयतुरीयस्यादौ द्वितीये द्वौ भंगौ ॥

मानमनुष्यः कृतकृत्यवेदकनारकतिर्यग्देवाश्चेति चत्वारः। क्षायिकसम्यग्दृष्टेः सप्तत्रिंशच्छतसत्त्वस्थानेऽपि चतुर्गतिजभेदाच्चत्वारः। एवं इतरतृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु प्रथमपंक्तिद्वयदशस्थानवत्त्रयोविंशतिभूत्वा चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषु द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानवत्सप्तत्रिंशद्भूत्वा चासंयते चत्वारिंशत्सत्त्वस्थानेषु समपुनरुक्तान्विना विंशत्युत्तरशतं भंगाः स्युः ॥३८१॥

देशसंयतादित्रये प्रतिस्थानमेकैको भंगः। देशसंयते पुनर्द्वितीयपंक्तिद्वयस्य चतुर्थपंक्तिद्वयस्य च बद्धाबद्धायुषोः प्रथमद्वितीयस्थानयोर्द्वौ द्वौ भंगौ। तथाहि—

भंग होते हैं। मिथ्यात्वका क्षय होनेपर एक सौ उनतालीस प्रकृतिरूप तीसरा स्थान है। वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु एक ही भंग होता है। मिश्रमोहनीयका क्षय होनेपर एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप चौथा स्थान है। वहाँ भुज्यमान मनुष्यायु और कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा भुज्यमान नरकायु तिर्यंचायु देवायु इस प्रकार चार भंग होते हैं। सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टीके एक सौ सैंतीस प्रकृतिरूप पाँचवाँ स्थान है। वहाँ भुज्यमान चार आयुकी अपेक्षा चार भंग होते हैं।

तीसरी पंक्तिमें पहली पंक्तिके बद्धायु अबद्धायुरूप दस स्थानोंमें आहारक चतुष्कको घटानेपर दस स्थान होते हैं। उनमें प्रथम पंक्तिकी तरह तेईस भंग जानना। चौथी पंक्तिमें दूसरी पंक्तिके बद्धायु अबद्धायु रूप दस स्थानोंमें आहारक चतुष्करूप चार-चार प्रकृति घटानेपर दस स्थान होते हैं। उनमें दूसरी पंक्तिकी तरह सैंतीस भंग होते हैं। इस प्रकार असंयतमें सब मिलकर चालीस सत्त्वस्थान और एक सौ बीस भंग होते हैं ॥३८१॥

देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन तीन गुणस्थानोंमें असंयतकी तरह ही चालीस-चालीस स्थान होते हैं। और प्रत्येक स्थानमें एक-एक भंग होता है। विशेष इतना है कि देशसंयतमें

देशसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळमप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळं प्रतिस्थानमेकैकभंगंगळप्पुवु। देशसंयतगुणस्थानदोळु मत्ते द्वितीयपंक्तिद्वयद चतुर्थपंक्तिद्वयद बद्धाबद्धायुष्यरुगळ प्रथम द्वितीयस्थानंगळोळु एरडेरडु भंगंगळप्पुवु। अदेंतेंदोडे देशसंयतादिगुणस्थानत्रयदोळमसंयतगुणस्थानदोळु पेळ्दंते दुग छक्क सत्त अट्ठ णव रहियमेंदु तिर्य्यगायुष्यमुं नरकायुष्यमुमंतेरडु मा येरडुमनंतानुबंधिचतुष्टयमुमंतारुमा आरुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमंतेळुमा एळुं मिश्रप्रकृतियुमंतेंटुमा एंटुं सम्यक्त्वप्रकृतियुमंतों भत्तुं प्रकृतिगळु क्रमदिंदं सत्वरहितंगळागि नूर नाल्वत्तारुं नूरनाल्वत्तेरडुं नूरनाल्वत्तो दु नूरनाल्वत्तु नूरमूवत्तों भत्तुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळक्कुमेकेंदोडे असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु दर्शनमोहनीय क्षपणाप्रारंभकरप्पुदरिंदमा पंचसत्वस्थानंगळं तिर्य्यक्कागि केळगे केळगे चतुः प्रतियं माडि स्थापिसिदोडे बद्धायुष्यंगे सत्वस्थानंगळप्पुवल्लि मत्तों दोंदायुष्यंगळं कुंदिसियवर केळगे केळगे स्थापिसिदोडबद्धायुष्यंगे स्थानंगळप्पुवल्लि प्रथमपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु तीर्त्थमुमाहारकचतुष्टयमुं सत्वमुंटप्पुदरिंदं शून्यमं कळेदु द्वितीयपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु प्रत्येकं तीर्त्थमों दं कळेदु तृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळु तीर्त्थमनिरिसियाहारचतुष्कमं कळेदु चतुर्त्थपंक्तिद्वय दशस्थानंगळोळु तीर्त्थमुमाहारचतुष्कमुममंतु प्रकृतिपंचकमं कळेदु स्थापिसिदेंटुं पंक्तिगळ बद्धायुष्यरुगळ पंचपंच स्थानंगळोळु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनेंबो दों दे भंगंगळप्पुवेकेंदोडे भुज्यमानमनुष्य देशसंयतादिगळगे देवायुष्यं बध्यमानमल्लदितरायुस्त्रितयं बध्यमानायुष्यमावोडे देशव्रतमुं महाव्रतमुमिल्लप्पुदरिंदं। अबद्धायुष्यरुगळ पंच

तद्गुणस्थानत्रयेऽप्यसंयतवद् दुगछक्कसत्तअट्ठनव प्रकृतयो हीना भूत्वा पंचस्थानानि तिर्यगधोधश्चतुःप्रतिकं कृत्वा स्थाप्यानि बद्धायुष्कस्य भवंति। तत्र पुनरेकैकायुरपनीय तेषामधःस्थापितेष्वबद्धायुष्कस्य भवंति। तत्र प्रथमपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तीर्थाहाराः संतीति शून्यमपनीय द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तीर्थमपनीय तृतीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु तन्निक्षिप्याहारकचतुष्कमपनीय चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषूभयमपनीय स्थापिताष्टपंक्तीनां बद्धायुष्कपंचपंचस्थानेषु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यबद्धदेवायुरित्येक एव, इतरायुस्त्रये बध्यमाने देशमहाव्रताभावात्। अबद्धायुष्कपंचपंचस्थानेषु भुज्यमानमनुष्य इत्येक एव। पुनर्देशसंयते तीर्थरहितद्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानेषु

बद्धायु और अबद्धायुकी दूसरी दो पंक्ति और चौथी दो पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें दो-दो भंग होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

देशसंयत आदि तीन गुणस्थानोंमें असंयतकी तरह दो, छह, सात, आठ, नौ प्रकृति रहित पाँच स्थान बराबर लिखकर उनके नीचे-नीचे चार पंक्ति बद्धायुकी करो। और उनके नीचे बध्यमान एक-एक आयु घटाकर चार पंक्ति अबद्धायुकी करो। उनमेंसे पहली पंक्ति तीर्थंकर आहारक सहित है। दूसरी पंक्तिमें तीर्थंकर प्रकृति घटाना। तीसरी पंक्तिमें तीर्थंकर मिलाकर आहारक चतुष्क घटाना। चौथी पंक्तिमें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क घटाना। इस प्रकार बद्धायु अबद्धायुकी आठ पंक्तियोंके चालीस स्थान हुए। उनमेंसे जो बद्धायुके बीस स्थान हैं उनमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु यह एक-एक ही भंग होता है। क्योंकि अन्य तीन आयुके बन्धमें देशव्रत और महाव्रत नहीं होते। तथा अबद्धायुके जो बीस स्थान हैं उनमें भुज्यमान मनुष्यायु यह एक-एक ही भंग होता है। किन्तु इतना विशेष है कि

पंच स्थानंगळोळु भुज्यमानमनुष्यनें बो दो दे भंगंगळप्पुवु। मत्ते देशसंयत गुणस्थानदोळु तीर्त्थ-रहितंगळप्प द्वितीयपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळु चतुर्त्थपंक्तिद्वयदशस्थानंगळोळमवर प्रथमद्वितीय-स्थानद्वयंगळोळु भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनु भुज्यमानतिर्य्यंचं बद्धदेवायुष्यनें बेरडेरडु भंगंगळु भुज्यमानमनुष्यं भुज्यमानतिर्य्यंचनुमेंबिवेरडेरडु भंगंगळप्पुवु। यितागुत्तं विरलु देशसंयतन नाल्वत्तं स्थानंगळगे नाल्वत्तें टु भंगंगळप्पुवु। प्रमत्तसंयतंगं नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नाल्वत्तें भंगंगळप्पुवु। अप्रमत्तसंयतंगे नाल्वत्तुं स्थानंगळगे नाल्वत्तें भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

देशसंयतंगे—

	० २	० ६	० ७	० ८	० ९
सतीर्थ	ब १४६ १	१४२ १	१४१ १	१४० १	१३९ १
	अ १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
अतीर्थ	ब १४५ २	१४१ २	१४० १	१३९ १	१३८ १
	अ १४४ २	१४० २	१३९ १	१३८ १	१३७ १
सतीर्थ	ब १४२ १	१३८ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १
	अ १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
अतीर्थ	ब १४१ २	१३७ २	१३६ १	१३५ १	१३४ १
	अ १४० २	१३६ २	१३५ १	१३४ १	१३३ १

प्रमत्तसंयतंगे—

	० २	० ६	० ७	० ८	० ९
सतीर्थ	ब १४६ १	१४२ १	१४१ १	१४० १	१३९ १
	अ १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
अतीर्थ	ब १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
	अ १४४ १	१४० १	१३९ १	१३८ १	१३७ १
सतीर्थ	ब १४२ १	१३८ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १
	अ १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
अतीर्थ	ब १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
	अ १४० १	१३६ १	१३५ १	१३४ १	१३३ १

→

चतुर्थपंक्तिद्वयदशस्थानेषु च प्रथमद्वितीयस्थानयोर्भुज्यमानमनुष्यबद्धदेवायुष्कभुज्यमानतिर्यग्बद्धदेवायुष्कौ भुज्यमानमनुष्यभुज्यमानतिर्यंचौ च भवतः। एवं सति देशसंयतस्य चत्वारिंशत्स्थानानामष्टचत्वारिंशद्भंगा भवंति। तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोस्तु चत्वारिंशत्स्थानानां चत्वारिंशदेव भवंतीति ज्ञातव्यं ॥३८२॥

देशसंयतमें तीर्थंकर रहित दूसरी पंक्तिके दस स्थानोंमें-से और चौथी पंक्तिके दस स्थानोंमें-से पहले और दूसरे दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं। सो बद्धायुकी दूसरी और चौथी पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु, भुज्यमान तिर्यंचायु बध्यमान देवायु ये दो-दो भंग होते हैं। तथा अबद्धायुकी दूसरी और चौथी पंक्तिके पहले और दूसरे स्थानमें भुज्यमान मनुष्यायु और भुज्यमान तिर्यंचायु ये दो-दो भंग होते हैं। इस प्रकार देशसंयतमें चालीस स्थानोंके अड़तालीस भंग होते हैं। किन्तु प्रमत्त और अप्रमत्तमें चालीस-चालीस स्थानोंके चालीस-चालीस भंग हैं ॥३८२॥

अप्रमत्तसंयतंगे—

० २	० ६	० ७	० ८	० ९
ब १४६ १	१४२ १	१४१ १	१४० १	१३९ १
अ १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
ब १४५ १	१४१ १	१४० १	१३९ १	१३८ १
← अ १४४ १	१४० १	१३९ १	१३८ १	१३७ १
ब १४२ १	१३८ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १
अ १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
ब १४१ १	१३७ १	१३६ १	१३५ १	१३४ १
अ १४० १	१३६ १	१३५ १	१३४ १	१३३ १

अनंतरमुपशमकरुगळप्प अपूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरु गळे ब नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळोळु बद्धाबद्धायुष्यरुगळगे सत्वस्थानंगळुमनवर भंगंगळुमं पेळल्वेडि मोदलोळपूर्व्वकरणंगे पेळ्दपरु :—

दुगच्छक्कतिण्णिवग्गेणूणाऽपुव्वस्स चउपडिं किच्चा ।
णभमिगि चउपणहीणं बद्धस्सियरस्स एगूणं ॥३८३॥

द्विकषट्कत्रिवर्गोनोनमपूर्व्वकरणस्य चतुः प्रति कृत्वा । नभ एक चतुःपंचरहितं बद्धस्येतरस्यैकोनं ॥

अपूर्व्वकरणस्य उपशमकापूर्व्वकरणंगे द्विकषट्कत्रिवर्गमात्रप्रकृतिगळिंदमूनमप्प सत्वस्थानत्रितयमं चतुःप्रतिकमं माडि प्रथमपंक्तियोळु शून्यमं द्वितीयपंक्तियोळु तीर्त्थमों दं तृतीयपंक्तियोळु आहारकचतुष्टयमं चतुर्त्थपंक्तियोळाहारकचतुष्टयमु तीर्त्थमुमंतय्दुं कळेदोडे बद्धायुष्यरुगळगे सत्वस्थानंगळप्पुवबद्धायुष्यरुगळगे आ नाल्कुं पंक्तिगळ तंतम्म केळगों दोंदु आयुष्यमं कुंदिसि

अथोपशमकचतुष्के वक्तुं तावदपूर्वकरणस्याह—

उपशमकापूर्वकरणस्य द्विकषट्कत्रिवर्गोनस्थानत्रयं चतुःप्रतिकं कृत्वा प्रथमपंक्तौ शून्ये द्वितीयपंक्तौ तीर्थे तृतीयपंक्तावाहारकचतुष्के चतुर्थपंक्तावुभयस्मिंश्चापनीते बद्धायुष्काणां सत्त्वस्थानानि भवंति । अबद्धा-

आगे उपशमश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें कहनेके लिये प्रथम अपूर्वकरणमें कहते हैं—

उपशमक अपूर्वकरणमें दो, छह और तीनका वर्ग नौ इन प्रकृतियोंसे रहित तीन स्थानोंकी चार पंक्तियाँ करो। पूर्ववत् प्रथम पंक्तिमें शून्य घटाना। दूसरी पंक्तिमें एक

स्थापिसिदोडवि नाल्कुं पंक्तिगळप्पुवंतेंदु पंक्तिगळगे प्रतिपंक्ति प्रकृतिसत्वस्थानंगळु मूरु मूरागुत्तं विरलिप्पत्तनाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु ॥

अनंतरं सत्वरहितप्रकृतिगळुमं भंगंगळुमं पेळ्दपरु :—

णिरयतिरियाउ दोण्णिवि पढमकसायाणि दंसणतियाणि ।
हीणा एदे णेया भंगा एक्केक्कगा होंति ॥३८४॥ ५

नरकतिर्य्यंगायुर्द्वयमपि प्रथमकषाया दर्शनमोहनीयत्रयाणि हीनान्येतानि ज्ञेयानि भंगा एकैके भवंति ॥

नरकायुष्यमुं तिर्य्यंगायुष्यमुमें बेरडुमा येरडुं प्रथमकषायंगळु नाल्कुमंतारु मा आरुं प्रकृतिगळुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंत्तों भत्तुं प्रकृतिगळु हीनमागि क्रमदिदं नूरनाल्वत्तारुं नूरनाल्वत्तेरडुं नूर मूवत्तों भत्तुं प्रकृतिसत्वस्थानत्रितयमप्पुवें दरियल्पडुवुवु । बद्धायुः स्थानपंक्तिगळु नाल्करोळु १० भुज्यमानमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनें बो दों दे भंगंगळरियल्पडुवुवु । आ पंक्तिचतुष्टयद तंतम्म केळगण अबद्धायुःस्थानत्रितयचतुःपंक्तिगळोळु भुज्यमानमनुष्यनें यें बो दों दे भंगमागुत्तिरलिप्पत्तनाल्कुं स्थानंगळिप्पत्तनाल्के भंगंगळप्पुपु ॥

युष्काणां तच्चतुःपंक्तीनां स्वस्याधः एकैकस्मिन्नायुष्यपनीते चतुःपंक्तयो भवंति । एवमष्टपंक्तीनां प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि भूत्वा चतुर्विंशतिस्थानानि भवंति ॥३८३॥ अथ ता हीनप्रकृती भंगांश्चाह— १५

नरकतिर्यगायुषी तच्च प्रथमकषायचतुष्कं च तानि च दर्शनमोहत्रयं च अमूनि क्रमेण षट्चत्वारिंशच्छतद्वाचत्वारिंशच्छतैकान्नचत्वारिंशच्छतसत्त्वस्थानेष्वपनेतव्यानि । बद्धायुःस्थानपंक्तिचतुष्के भुज्यमानमनुष्यबध्यमानदेवायुरित्येकैक एव भंगः । तत्पंक्तिचतुष्कस्याधः अबद्धायुःस्थानत्रयचतुःपंक्तिषु भुज्यमानमनुष्य इत्येकैक एव भंगः । एवं सति स्थानानि भंगाश्च चतुर्विंशतिर्भवंति ॥३८४॥

तीर्थंकर प्रकृति घटाना । तीसरी पंक्तिमें आहारक चतुष्क घटाना । चौथी पंक्तिमें तीर्थंकर २० और आहारक चतुष्क घटाना । इस तरह बद्धायुके बारह स्थान हुए । और अबद्धायुकी चारों पंक्तियोंमें सब स्थानोंमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर बारह स्थान होते हैं । इस प्रकार आठ पंक्तियोंके तीन-तीन स्थान होनेसे सब चौबीस स्थान होते हैं ॥३८३॥

आगे उन घटायी गयी प्रकृतियोंके नाम और भंग कहते हैं—

नरकायु तिर्यंचायु घटानेपर एक सौ छियालीस प्रकृतिरूप प्रथम स्थान होता है । दो २५ ये आयु और अनन्तानुबन्धी चतुष्क घटानेपर एक सौ बयालीस रूप दूसरा स्थान होता है । ये छह और तीन दर्शनमोह इन नौ को घटानेपर एक सौ उनतालीस रूप तीसरा स्थान होता है । इन तीनों स्थानोंकी पूर्ववत् चार पंक्ति करो । तब बद्धायुके बारह स्थान हुए । इन सबमें एक-एक बध्यमान आयु घटानेपर अबद्धायुके बारह स्थान होते हैं । इन चौबीस स्थानोंमें भंग एक-एक ही है । बद्धायुके स्थानोंमें तो भुज्यमान मनुष्यायु बध्यमान देवायु यह एक भंग ३० है । अबद्धाय् स्थानोंमें भुज्यमान मनुष्यायु यह एक ही भंग होता है । इस प्रकार उपशम अपूर्वकरणमें चौबीस स्थान चौबीस भंग होते हैं ॥३८४॥

इसी प्रकार उपशमक अपूर्वकरणकी तरह उपशम श्रेणिके अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-

एवं तिसु उवसमगे खवगापुव्वम्मि दसहि परिहीणं ।
सव्वं चउपडि किच्चा णभमेक्कं चारि पण हीणं ॥३८५॥

एवं त्रिषूपशमकेषु क्षपकापूर्वकरणे दशभिः परिहीनं । सर्वं चतुः प्रति कृत्वा नभ एकं चत्वारि पंचहीनं ॥

इंतुपशमकापूर्वकरणंगे पेळ्दंते शेषोपशमकानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरुगळ्गे ब नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळ्गं प्रत्येकमिप्पत्तनाल्कुं इप्पत्तनाल्कुं सत्वस्थानंगळ्गुमिप्पत्तनाल्कुमिप्पत्तनाल्कुं भंगंगळुमप्पुवितुपशमश्रेणियोळु नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळ सत्वस्थानंगळ्गं भंगंगळ्गं संदृष्टि इदु :—

उपशमकचतुष्कवके→	२४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ । २४ ।
*	० २	० ६	० ९
बद्ध	१४६ १	१४२ १	१३९ १
अब	१४५ १	१४१ १	१३८ १
बद्ध	१४५ १	१४१ १	१३८ १
अब	१४४ १	१४० १	१३७ १
० बद्ध	१४२ १	१३८ १	१३५ १
४ अब	१४१ १	१३७ १	१३४ १
० बद्ध	१४१ १	१३७ १	१३४ १
५ अब	१४० १	१३६ १	१३३ १

क्षपकापूर्वकरणे क्षपकश्रेणियोळु अपूर्वकरणंगे भुज्यमानमनुष्यायुष्यमल्लदितरायुस्त्रितयमुमनंतानुबंधिकषायचतुष्कमुं दर्शनमोहनीयत्रयमुमंतु दशप्रकृतिगळिंदं परिहीनमागि नूर मूवत्तें टु प्रकृतिस्थानमेयक्कुमेकें दोडसंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळे प्रथमकषायचतुष्टयविसंयोजकरुं

एवमुपशमकापूर्वकरणवत् अनिवृत्तिकरणाद्युपशमकत्रयेऽपि स्थानानि भंगाश्च चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिर्भवंति । क्षपकापूर्वकरणे भुज्यमानमनुष्यायुष्यादितरायुस्त्रयानंतानुबंधिचतुष्कदर्शनमोहत्रयाभावात्सत्त्वस्थान-

साम्पराय और उपशान्त मोह नामक गुणस्थानोंमें भी स्थान और भंग चौबीस-चौबीस होते हैं ।

क्षपक अपूर्वकरणमें भुज्यमान मनुष्यायु बिना तीन आयु-अनन्तानुबन्धी चतुष्क, तीन दर्शनमोह इन दस रहित एक सौ अड़तीस प्रकृतिरूप एक ही सत्त्वस्थान होता है । उसकी

दर्शनमोहनीयत्रयक्षपणाप्रारंभकरुमप्पुदरिंदमा दशप्रकृतिगळ क्षपकश्रेणियिंदवकेळगे कंडिसल्पट्टुवप्पुदरिंदमपूर्वकरणनोळु नूरमूवत्तेंटे प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवं चतुःप्रतिकमं माडि प्रथमस्थानदोळु तीर्थमाहारकचतुष्टयमुं सत्वमुंटेंदु शून्यमं कळेदु द्वितीयस्थानदोळु तीर्थमिल्लाहारक चतुष्टयसत्वमुंटेंदोंदं कळेदु तृतीयस्थानदोळु तीर्थमुंटाहारकचतुष्टयमिल्लेंदु नाल्कं कळेदु चतुर्थसत्वस्थानदोळु तीर्थमुमाहारकचतुष्टयमुमिल्लेंदय्दुमं कळेदु प्रकृतिसत्वस्थानंगळु नूरमूवत्तेंटं नूर मूवत्तेळं नूरमूवत्तनाल्कुं नूरमूवत्तमूरुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळु नाल्कक्कुमप्पुवु । ई नाल्कु स्थानंगळोळु भुज्यमानमनुष्यनेंबोंदोंदे भंगमागुत्तिरलु नाल्कुं स्थानंगळगं नाल्के भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

क्ष० अपू
१३८
१
१३७
१
१३४
१
१३३
१

एदे सत्तट्ठाणा अणियट्टिस्सवि पुणो वि खविदेवि ।
सोलस अट्ठेक्केक्कं छक्केक्कं एक्कमेक्क तहा ॥३८६॥

एतानि सत्वस्थानानि अनिवृत्तेरपि पुनरपि क्षपितेपि षोडशाष्टैकैकं षट्केकमेकमेकं तथा ।

ई क्षपकानिवृत्तिकरणंगे पेळ्द नाल्कुं सत्वस्थानंगळु क्षपकानिवृत्तिकरणंगमप्पुवु । मत्तं षोडश अष्ट एक एक षट्क एक एक एक प्रकृतिगळु क्षपियिसल्पडुत्तं विरलु क्रमदिंद नूरिप्पत्तेरडुं

मष्टात्रिंशच्छतकं स्यात् । तच्चतुःप्रतिकं कृत्वा प्रथमे तीर्थाहारः समस्तीति शून्यमपनयेत्, द्वितीये तीर्थं, तृतीये आहारकचतुष्कं, चतुर्थे उभयं एवं सत्त्वस्थानानि अष्टात्रिंशच्छतकसप्तत्रिंशच्छतकचतुस्त्रिंशच्छतकत्रयस्त्रिंशच्छतकानि चत्वारि तेषु प्रत्येकं भुज्यमानमनुष्यायुरेवेति भंगा अपि चत्वारः ॥३८५॥

एतानि क्षपकापूर्वकरणोक्तचत्वारि स्थानानि क्षपकानिवृत्तिकरणस्यापि भवंति पुनः षोडशाष्टैकैकेषु षट्कैकैकैकेषु क्षपितेषु क्रमेण द्वात्रिंशतिशतकचतुर्दशशतकत्रयोदशशतकद्वादशशतकषडुत्तरशतकपंचोत्तरशतकचतु-

---

चार पंक्ति करना । प्रथममें तीर्थंकर और आहारक चतुष्क हैं अतः शून्य घटाना । दूसरीमें तीर्थंकर, तीसरीमें आहारक चतुष्क, चौथीमें दोनों घटानेपर एक सौ अड़तीस, एक सौ सैंतीस, एक सौ चौंतीस और एक सौ तैंतीस प्रकृतिरूप चार स्थान होते हैं । उनमेंसे प्रत्येकमें भुज्यमान मनुष्यायु एक-एक ही भंग होता है । अतः भंग भी चार ही हैं ॥३८५॥

क्षपक अपूर्वकरणमें जो ये चार स्थान कहे हैं ये क्षपक अनिवृत्तिकरणमें भी होते हैं । फिर सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक प्रकृतियोंका क्षय करनेपर एक सौ बाईस, एक सौ चौदह, एक सौ तेरह, एक सौ बारह, एक सौ छह, एक सौ पाँच, एक सौ चार, एक

नूरपविनाल्कुं नूरपविमूरुं नूरपन्नेरडुं नूरारुं नूरय्दुं नूरनाल्कुं नूरमूरुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळप्पुवर्थं प्रत्येकं चतुःप्रतिकं माडि णभमेक्कं चारि पण परिहीणमेंदु स्थापिसुत्तं विरलु संदृष्टिरचने यिंतिर्क्कुं

स १३८	१२२	११४	११३	११२	१०६	१०५	१०४	१०३
अ १ ३	१२१	११३	११२ २।	१११	१०५	१०४	१०३	१०२
स १३४	११८	११०	१०९	१०८	१०२	१०१	१००	९९
अ १३३	११७	१०९	१०८ २।	१०७	१०१	१००	९९	९८

अनंतरं अनिवृत्तिकरणन मूवत्तारुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळोळु भंगंगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

भंगा एक्केक्का पुण णउंस्सयक्खविदचउसु ठाणेसु ।
बिदियतुरियेसु दोद्दो भंगा तित्थयरहीणेसु ॥३८७॥

भंगा एकैके पुनर्नपुंसकक्षपित चतुर्षु स्थानेषु । द्वितीयतुर्य्ययो र्द्वौ द्वौ भंगौ तीर्थंकर होनयोः ॥

ई क्षपकानिवृत्तिकरणसत्वस्थानंगळु मूवत्तारर्रोळं भंगंगळु प्रत्येकमो दो दे यप्पुवल्लि नपुंसकवेदमं क्षपिसिदे नाल्कुं सत्वस्थानंगळोळु तीर्त्थंकरसत्वरहिंगळप्प द्वितीयचतुर्त्थस्थानदोळेरडेरडु भंगंगळप्पुवदें तें दोडे पेळ्दपरु :—

रुत्तरशतकत्र्युत्तरशतकान्यपि भवंति । तानि सर्वाणि चतुःप्रतिकानि कृत्वा णभमेक्कचारिपणहीणमिति स्थाप्यानि ॥३८६॥ अमीषु षट्त्रिंशत्सत्त्वस्थानेषु भंगान् गाथाद्वयेनाह—

एतेषु क्षपकानिवृत्तिकरणस्य षट्त्रिंशत्सत्त्वस्थानेषु भंगः एकैकः तत्र क्षपितनपुंसकवेदचतुःस्थानेषु तीर्थकरत्वोनद्वितीयचतुर्थयोर्द्वौ द्वौ ॥३८७॥ तद्यथा—

सौ तीन रूप आठ स्थान होते हैं। इनको चार पंक्ति करके प्रथम पंक्तिमें शून्य, दूसरीमें तीर्थंकर, तीसरीमें आहारक चतुष्क, चौथीमें तीर्थंकर आहारक चतुष्क घटाना। इस प्रकार चारों पंक्तियोंके बत्तीस स्थान हुए। चार अपूर्वकरणवाले स्थान मिलानेपर क्षपक अनिवृत्ति करणमें छत्तीस स्थान होते हैं ॥३८६॥

क्षपक इन अनिवृत्तिकरणके छत्तीस स्थानोंमें दो गाथा द्वारा भंग कहते हैं—

क्षपक अनिवृत्तिकरणके छत्तीस स्थानोंमें एक-एक भंग होता है किन्तु इतना विशेष है कि जहाँ नपुंसक वेदका क्षय कहा है उन चार पंक्ति सम्बन्धी चार स्थानोंमें तीर्थंकर रहित दूसरी और चौथी पंक्ति सम्बन्धी दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं ॥३८७॥

उन्हें ही कहते हैं—

---

१. स्त्रीवेदक्षपणायोग्यचतुर्त्थस्थान । ऊर्ध्वबागिद्दं ।

थीपुरिसोदयचडिदे पुव्वं संढं खवेदि थी यत्थि ।
संढस्सुदये पुव्वं थीखविदं संढमत्थित्ति ॥३८८॥

स्त्रीपुरुषोदयचटिते पूर्व्वं षंडं क्षपयति स्त्रीवेदोस्ति षंडस्योदये पूर्व्वं स्त्रीक्षपितं षंडमस्तीति ॥

स्त्रीवेदोदयदिंदमुं पुरुषवेदोदयदिंदमुं क्षपकश्रेणियनेरिदवरंगळु मुन्नं षंडवेदमं क्षपिसुवरु । स्त्रीवेदं सत्वमुंदु । षंडवेदोदयदिंदं क्षपकश्रेणियनेरिदोडे मुन्नं स्त्रीवेदं क्षपिसल्पट्टु षंडवेदं सत्वमुंटे दितेरडेरडं भंगंगळप्पुवंतागुत्तं विरलनिवृत्तिकरणंगुभयश्रेणियोळं कूडि द्वाषष्टिभंगंगळप्पुवु । ई पक्षदोळु क्षपकानिवृत्तिकरणंगे मायासत्वरहितस्थानंगळु नाल्किल्ल । चदुसेक्कं बादरे यें दु पेळ्वाचार्य्यन पक्षदोळनिवृत्तिकरणंगे मायारहितचतुःस्थानंगळुमोळवु ।

अनंतरं क्षपकसूक्ष्मसांपरायंगं क्षीणकषायंगं सत्वस्थानंगळं पेळ्वपरु :—

अणियट्टिचरिमठाणा चत्तारिवि एक्कहीण सुहुमस्स ।
ते इगि दोण्णिविहीणं खीणस्सवि होंति ठाणाणि ॥३८९॥

अनिवृत्तिचरमस्थानानि चत्वार्य्यप्येकहीनानि सूक्ष्मस्य । तान्येकद्विहीनानि क्षीणकषायस्यापि भवंति स्थानानि ॥

क्षपकानिवृत्तिकरणन संज्वलनमानरहितमप्प नाल्कुं सत्वस्थानंगळोळु संज्वलनमायेयोंदु । सत्वरहितंगळादुवादोडे सूक्ष्मसांपरायंगे नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

स्त्रीवेदोदयेन पुंवेदोदयेन वा क्षपकश्रेणिमारूढाः पूर्वं षंढवेदं क्षपयंति स्त्रीवेदसत्त्वं स्यात् । षंढवेदोदयेनारूढाः पूर्वं स्त्रीवेदं क्षपयंति षंढवेदसत्त्वं स्यात् । तेन द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । एवं सत्यनिवृत्तिकरणस्योभयश्रेण्योर्मिलित्वा द्वाषष्टिर्भंगा भवंति । अस्मिन्पक्षे क्षपकानिवृत्तिकरणस्य मायोनचत्वारि स्थानानि न संति चदुसेक्के बादरे इति पक्षे संति ॥३८८॥ अथ क्षपकसूक्ष्मसांपरायक्षीणकषाययोराह—

क्षपकानिवृत्तिकरणस्य संज्वलनमानरहितचत्वारि स्थानानि संज्वलनमायाहीनानि भूत्वा सूक्ष्मसांपरायस्य

जो जीव स्त्रीवेद या पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि चढ़ते हैं वे पहले नपुंसक वेदका क्षपण करते हैं । उनके पूर्वोक्त दोनों स्थानोंमें स्त्रीवेदका सत्त्व रहता है । किन्तु जो नपुंसक वेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणि चढ़ते हैं वे पहले स्त्रीवेदका क्षपण करते हैं उनके नपुंसकवेदका सत्त्व रहता है । इससे दो स्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं । इस प्रकार क्षपकके छत्तीस स्थानोंके अड़तीस भंग और उपशमकके चौबीस भंग मिलाकर अनिवृत्तिकरणमें बासठ भंग होते हैं । इस पक्षमें क्षपक अनिवृत्तिकरणमें माया रहित चार स्थान नहीं होते । किन्तु 'चदुसेक्के बादरे' इत्यादि गाथा आगे कहेंगे । उस पक्षकी अपेक्षा ये चार स्थान होते हैं । यह कथन आगे करेंगे ॥३८८॥

आगे क्षपक सूक्ष्म साम्पराय और क्षीणकषायमें कहते हैं—

क्षपक अनिवृत्तिकरणमें जो संज्वलन मानरहित चार स्थान कहे थे, उन चार स्थानोंमें-से संज्वलन मायाको घटानेपर सूक्ष्मसाम्परायके चार स्थान होते हैं । वे एक सौ दो, एक

सू=
१०२
१०१
९८
९७

तान्येकविहीनानि आ सूक्ष्मसांपरायन संज्वलनमायारहितस्थानंगळु नाल्कुं संज्वलनलोभकषायमोंदरिंदं हीनंगळादुवादोडे क्षीणकषायगे द्विचरमसमयपर्य्यंतं नाल्कु सत्वस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

क्षीण क० द्विचर
१०१
१००
९७
९६

ई नाल्कु स्थानंगळु प्रत्येकं निद्राप्रचलावरणद्वयरहितंगळादोडे क्षीणकषायन चरमसमयसत्वस्थानंगळु नाल्कप्पुवु। संदृष्टि :—

क्षी चरम
९९
९८
९५
९४

अनंतरं सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानंगळोळु सत्वस्थानंगळ पेळ्दपरु :—

ते चोद्दसपरिहीणा जोगिस्स अजोगिचरिमगेवि पुणो।
बावत्तरिमडसट्ठिं दुसु दुसु हीणेसु दुग दुगा भंगा ॥३९०॥

तानि चतुर्दशपरिहीनानि योगिनोऽयोगिचरमेपि पुनर्द्वासप्ततिमष्टषष्टिं द्वयोर्द्वयोर्हीनेषु द्वौ द्वौ भंगौ ॥

भवंति। एतानि चत्वारि संज्वलनलोभहीनानि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यंतं भवंति। एतानि पुनर्निद्राप्रचलारहितानि चरमसमयस्य भवंति ॥३८९॥ अथ सयोगायोगयोराह—

सौ एक, अठानबे और सत्तानबे प्रकृतिरूप हैं। इन चारों स्थानोंमें-से संज्वलन लोभ घटानेपर एक सौ एक, एक सौ, सत्तानबे, छियानबे प्रकृतिरूप क्षीणकषायके द्विचरम समय पर्यन्त चार स्थान होते हैं। इन चारों स्थानोंमें-से निद्रा प्रचलाको घटानेपर निन्यानबे, अठानबे, पंचानबे, चौरानबे प्रकृतिरूप क्षीणकषायके अन्तिम समयमें चार स्थान होते हैं ॥३८९॥

आगे सयोगी-अयोगीमें कहते हैं—

आक्षीणकषायक्षपकन चरमसमयचतुःसत्वस्थानंगळोळ् प्रत्येकं पविनाल्कुं पविनाल्कुं प्रकृतिगळु क्षपिसल्पट्टु सत्वरहितंगळागि सयोगकेवलि भट्टारकंगेयुमयोगिकेवलि भट्टारकद्विचरमसमयपर्य्यंतमुं नाल्कुं नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

सयो०	अयो० द्वि०
८५	८५
८४	८४
८१	८१
८०	८०

अयोगिकेवलि चरमेपि पुनः अयोगिकेवलि भट्टारकन चरमसमयदोळु तन्न द्विचरमसमयचतुःसत्वस्थानंगळोळु प्रथमद्वितीयस्थानदोळेप्पत्तेरडुमनेप्पत्तेरडुमं तृतीयचतुर्त्थस्थानद्वयदोळरुवत्तेंटुमरुवत्तेंटुं प्रकृतिगळं हीनं माडुत्तिरलु शेषप्रकृतिसत्वस्थानंगळु अयोगिकेवलिचरमसमयदोळु पदिमूरुं पन्नेरडुं पदिमूरुं पन्नेरडुमितु नाल्कुं सत्वस्थानंगळप्पुवल्लि पुनरुक्तस्थानद्वयमं बिट्टेरडुमपुनरुक्त स्थानंगळप्पुवु

चरम
१३
२
१२
२

अल्लि सातोदयमुळ्ळंगे असातं सत्वमिल्ल । असातोदयमुळ्ळंगे सातं सत्वमिल्लेंदितु द्वौ द्वौ भंगौ भवतः आ एरडेरडु भंगंगळप्पुवु । यितु गुणस्थानदोळु प्रकृतिसत्वस्थानंगळु भंगसहितमागि पेळल्पट्टुवु ।

तानि क्षीणकषायचरमसमयस्थानानि चतुर्दशप्रकृतिरहितानि सयोगायोगद्विचरमसमयपर्यंतं च भवंति । पुनर्द्विचरमचतुःस्थानेषु प्रथमद्वितीययोर्द्वासप्ततौ तृतीयचतुर्थयोरष्टषष्टयां चापनीतायां चरमसमये द्वे त्रयोदशात्मके द्वादशात्मके तत्र पुनरुक्तद्वये त्यक्ते द्वे भवतः । तत्र सातोदययुतस्य नासातसत्त्वमसातोदययुतस्य न सातसत्त्वमिति द्वौ द्वौ भंगौ भवतः । एवं गुणस्थानेषु सत्त्वस्थानानि सभंगान्युक्तानि ॥३९०॥

क्षीणकषायके अन्त समय सम्बन्धी चार स्थानोंमें-से ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण चार और अन्तराय पाँच इन चौदह प्रकृतियोंको घटानेपर पिचासी, चौरासी, इक्यासी और अस्सी प्रकृतिरूप चार स्थान सयोगी तथा अयोगीके द्विचरम समय पर्यन्त होते हैं। पुनः अयोगीके द्विचरम समय सम्बन्धी चार स्थानोंमें-से प्रथम और द्वितीयमें बहत्तर तथा तीसरे और चतुर्थमें अड़सठ प्रकृति घटानेपर तेरह, बारह, तेरह, बारह ये चार स्थान अयोगीके अन्तिम समयमें होते हैं। इनमें-से दो पुनरुक्त छोड़ देनेपर दो रहते हैं। यहाँ जिसके साता-वेदनीयका उदय होता है उसके साताका ही सत्त्व होता है असाताका सत्त्व नहीं होता। और जिसके असाताका उदय होता है उसके असाताका ही सत्त्व होता है साताका नहीं। अतः इन दोनों स्थानोंमें साता-असाता प्रकृतिके बदलनेसे दो-दो भंग होते हैं। इस प्रकार गुणस्थानोंमें सत्त्वस्थान भंगसहित कहे ॥३९०॥

अनंतरं दुगछक्कतिण्णि वग्गेणूणा एंदितुपशमकरुगळुपशमश्रेणियोळनंतानुबंधिचतुष्टयसहित स्थानाष्टकंगळु पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदं तंतम्म पक्षदोळा सत्वस्थानाष्टकंगळिल्लें दित्यादि विशेषंगळुमना स्थानभंगसंख्येगळुमं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपरु :—

णत्थि अणं उवसमगे खवगापुव्वं खवित्तु अट्ठ य ।
पच्छा सोलादीणं खवणं इदि केइ णिद्दिट्ठं ॥३९१॥

नास्त्यनंतानुबंध्युपशमके क्षपकाः पूर्वं क्षपयित्वाष्टौ च । पश्चात् षोडशादीनां क्षपणेति केश्चिन्निर्दिष्टं ॥

श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्ति तीर्थसंप्रदायदोळुपशम श्रेणियोळुपशमकर्न्नाल्वरोळमनंतानुबंधिचतुष्टयसत्वयुताष्टस्थानंगळिल्ल । क्षपकरु मध्यमाष्टकषायंगळ मुन्नं क्षपिसि बळिक्क षोडशादिप्रकृतिगळ क्षपणेयं माळ्परेंदितु मत्तं केलंबराचार्य्यरुगळिंदं पेळल्पट्टुदु ॥

अथ दुगछक्कतिण्णिवग्गेणूणेत्युपशमकाना सानंतानुबंधिस्थानाष्टकयुक्तं तत्स्वपक्षे नेत्यादिविशेषं तद्भंगसंख्यां च गाथाचतुष्केणाह—

श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्तितीर्थसंप्रदाये चतुरुपशमकेष्वनंतानुबंधिचतुष्कसत्त्वयुतस्थानाष्टकं न स्यात् । क्षपका मध्यमकषायाष्टकं पूर्वं क्षपयित्वा पश्चात् षोडशादीनि क्षपयंति इति पुनः कैश्चिदुक्तं ॥३९१॥

क्षीणकषाय ८ स्थान ८ भंग सयोगी ४ स्थान ४ भंग अयोगी ६ स्थान ८ भंग

१०१	९९
१	१
१००	९८
१	१
९७	९५
१	१
९६	९४
१	१

८५
१
८४
१
८१
१
८०
१

उपान्त	अन्त
८५	१३
१	२
८४	१२
१	२
८१	१३ पु.
१	
८०	१२ पु.
१	

आगे ग्रन्थकार कहते हैं कि पूर्वमें जो अनन्तानुबन्धी सहित आठ स्थान उपशम श्रेणिमें कहे हैं वे हमारे मतानुसार नहीं हैं—

श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके मतानुसार उपशमश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके सत्त्व सहित जो बद्धायु और अबद्धायुकी चार पंक्तियोंमें आठ स्थान कहे हैं वे नहीं होते । अतः चौबीसके स्थानमें सोलह ही स्थान होते हैं । तथा क्षपक अनिवृत्तिकरण पहले तो अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान रूप आठ कषायोंका क्षपण करता है । पीछे सोलह आदि प्रकृतियोंका क्षपण करता है ऐसा किन्हीं आचार्योंका मत है ॥३९१॥

---

१. उपशमकचतुष्कस्य प्रत्येकं चतुर्विंशतिस्थानानि एकस्यां रचनायां संदर्शितानि । तत्र तिर्यक् त्रिस्थाने प्रथमसत्त्वस्थानं द्विहीनं आयुर्द्वयरहितं नत्वनंतानुबंधिचतुष्करहितं एवं व्याख्याने पूर्वोक्तप्रकारेण तस्याधः सप्तसत्त्वस्थानान्यनंतानुबंधिचतुष्कसहितानि । एवं स्थानाष्टकं अनंतानुबंधिचतुष्कसत्त्वसहितं प्रणीतं इति यावत् ॥

अणियट्टिगुणट्ठाणे मायारहिदं च ठाणमिच्छंति ।
ठाणा भंगपमाणा केइं एवं परूवेंति ॥३९२॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने मायारहितं च स्थानमिच्छंति । स्थानानि भंगप्रमाणानि केचिदेवं प्ररूपयंति ॥

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु मायारहितमप्प नाल्कुं स्थानंगळंगीकरिसल्पट्टुवु । स्थानंगळु भंगप्रमाणंगळे यें दितु केलंबराचार्य्यरुगळु पेळ्दरु । अंतागुत्तं विरलु स्थानभंगसंख्येयं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

अट्ठारह चउ अट्ठं मिच्छतिए उवरि चाल चउठाणे ।
तिसु उवसमगे संते सोलस सोलस हवे ठाणा ॥३९३॥

अष्टादश चतुरष्टौ मिथ्यादृष्ट्यादित्रये उपरि चत्वारिंशच्चतुः स्थाने त्रिषूपशमकेषूपशांते षोडश षोडश भवेयुः स्थानानि ॥

मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळं मिश्रनोळं पूर्व्वोक्तप्रकारदिंदं क्रमदिं पदिनेंटुं नाल्कुं एंटुं स्थानंगळप्पुवु । मेले असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नाल्वत्तुं नाल्वत्तुं सत्वस्थानंगळप्पुवु । उपशमकश्रेण्यवरोळमुपशांतकषायनोळं प्रत्येकमनंतानुबंधिसत्वयुतबद्धाबद्धायुष्यरुगळे ंटे ंटुं स्थानंगळु कुंदि प्रत्येकं षोडश षोडश सत्वस्थानंगळप्पुवु । क्षपकरोळु पूर्व्वोक्तक्रमदिंदमपूर्व्वकरणनोळु स्थानंगळु नाल्कु । अनिवृत्तिकरणनोळु संज्वलनमायारहितचतुःस्थानंगळुगूडि नाल्वत्तु । सूक्ष्मसांपरायनोळुस्थानंगळु नाल्कु । क्षीणकषायनोळु सत्वस्थानंगळे ंदु । सयोगरोळु सत्वस्थानंगळु नाल्कु । अयोगिकेवलियोळु सत्वस्थानंगळारु अरियल्पडुवुवु ॥

अनिवृत्तिगुणस्थाने मायारहितं स्थानचतुष्कमिच्छंति । स्थानानि भंगप्रमाणानीति केचित्प्ररूपयंति ॥३९२॥ एवं सति स्थानभंगसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानत्रये स्थानानि प्राग्वत् क्रमेणाष्टादश चत्वार्यष्टौ भवंति । उपर्यसंयतादिचतुर्षु प्रत्येकं चत्वारिंशच्चत्वारिंशत् उपशमकत्रये उपशांतकषाये चानंतानुबंधिसत्त्वरहितानि बद्धाबद्धायुष्काणामष्टावष्टौ भूत्वा षोडश षोडश, क्षपके तु पूर्वोक्तक्रमेणापूर्वकरणे चत्वारि अनिवृत्तिकरणे संज्वलनमायारहितचतुर्भिश्चत्वारिंशत्, सूक्ष्मसांपराये चत्वारि, क्षीणकषायेऽष्टौ, सयोगकेवलिनि चत्वारि, अयोगकेवलिनि

तथा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें कोई आचार्य मायाकषायसे रहित चार स्थान मानते हैं । तथा किन्हींका कहना है कि उसमें स्थान भंगोंकी संख्या समान है ॥३९२॥

ऐसा होनेपर स्थान और भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें स्थान पूर्वोक्त प्रकार अठारह, चार और आठ होते हैं । आगे असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें चालीस-चालीस स्थान होते हैं । उपशमश्रेणिके तीन गुणस्थानोंमें और उपशान्तकषायमें अनन्तानुबन्धीके सत्त्वसे रहित बद्धायु अबद्धायु-सम्बन्धी चार-चार पंक्तियोंके आठ-आठ स्थान होनेसे सोलह-सोलह स्थान होते हैं । क्षपकश्रेणिमें पूर्वोक्त क्रमसे अपूर्णकरणमें चार स्थान हैं । अनिवृत्तिकरणमें छत्तीस स्थान तो पूर्वोक्त हैं और संज्वलन माया रहित चार स्थान जो पहले सूक्ष्म साम्परायमें कहे

पण्णेक्कारं छक्कदि वीससयं अट्ठदाल दुसु तालं ।
वीसडवण्णं वीसं सोलट्ठ य चारि अट्ठेव ॥३९४॥

पंचाशदेकादश षट्कृतिविंशत्युत्तरशतं अष्टचत्वारिंशद्द्वयोश्चत्वारिंशत् विंशतिरष्टापंचाशत् विंशतिः षोडशाष्ट चतुरष्टावेव ॥

मिथ्यादृष्टियोळु पूर्व्वोक्तपंचाशद्भंगंगळेयप्पुवु । सासादननोळु पूर्व्वोक्तद्वादश भंगंगळोळु अबद्धायुःसत्वस्थानदोळु मरणमादोडे देवापर्य्याप्तकनेंब भंगमं कळेदेकादश भंगंगळप्पुवु । एकें-दोडा द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिबद्धदेवायुष्यंगे सासादनगुणस्थानमं पोद्दिदोडल्लि मरणमिल्लेंदु पेळ्वाचार्य्यर पक्षमंगीकृतमप्पुदरिंदं । मिश्रगुणस्थानदोळु मुंपेळ्द षट्त्रिंशद्भंगंगळेयप्पुवु । असंयतनोळं मुंपेळ्द विंशत्युत्तरशत भंगंगळप्पुवु । देशसंयतनोळु पूर्व्वोक्ताष्टाचत्वारिंशद्भंगंगळप्पुवु । प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळोळु पूर्व्वोक्तचत्वारिंशच्चत्वारिंशद्भंगंगळेयप्पुवु । अपूर्व्वकरणनोळुपशमश्रेणिय पदिनारुंभंगंगळुं क्षपकश्रेणिय नाल्कुं भंगंगळुं कूडि विंशतिभंगंगळप्पुवु । अनिवृत्तिकरणनोळुपशमश्रेणिय पदिनारुं भंगंगळुं क्षपकश्रेणिय मायारहित चतुर्भंगंगळुं कूडि नाल्वत्तुं नपुंसकवेदमं क्षपिसिदेडेयोळु नाल्कुं स्थानंगळोळु तीर्त्थरहितद्वितीयचतुर्त्थस्थानंगळोळु स्त्रीषंडवेदसत्वकृतभंगंगळेरडप्पुवंतु अष्टापंचाशद्भंगं गळप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायनोळुपशमश्रेणिय षोडश भंगंगळुं क्षपकश्रेणिय चतुर्भंगंगळुं कूडि विंशतिभंगंगळप्पुवु । उपशांतकषायनोळु-पशमश्रेणिय पदिनारे भंगंगळप्पुवु । क्षीणकषायनोळु द्विचरमचरमसमयसंबंधिसत्वस्थानं-

---

षट् ॥३९३॥

ते पूर्वोक्तभंगा मिथ्यादृष्टौ पंचाशत् । सासादने द्वादश स्वबद्धायुःस्थानमध्यवर्तिदेवापर्याप्तकभेदमुद्वृत्त्यैकादश, द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टेर्बद्धदेवायुष्कस्य सासादने मरणं नास्तीति पक्षांगीकरणात् । मिश्रे षट्त्रिंशत् । असंयते विंशत्युत्तरशतं । देशसंयतेऽष्टाचत्वारिंशत् । प्रमत्ताप्रमत्तयोश्चत्वारिंशत् चत्वारिंशत् । अपूर्वकरणे उपशमके षोडश, क्षपके चत्वारः, मिलित्वा विंशतिः । अनिवृत्तिकरणे उपशमके षोडश, क्षपके षट्त्रिंशत् । मायारहिताः चत्वारः । नपुंसकवेदे क्षपणास्थानस्य चतुर्षु स्थानेषु तीर्थरहितद्वितीयचतुर्थयोः स्त्रीषंढवेदकृतौ

थे वे अनिवृत्तिकरणमें ही माननेसे चालीस स्थान हैं । सूक्ष्मसाम्परायमें चार, क्षीणकषायमें आठ, सयोग केवलीमें चार और अयोगकेवलीमें छह पूर्वोक्त स्थान होते हैं ॥३९३॥

मिथ्यादृष्टिमें पूर्वोक्त भंग पचास हैं । सासादनमें बारह हैं । उनमें-से बद्धायुस्थानमें देव अपर्याप्तक भेद निकाल देनेसे ग्यारह भंग होते हैं । क्योंकि जिस द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी जीवके देवायुका बन्ध हुआ है उसका सासादनमें मरण नहीं होता इस पक्षको स्वीकार करनेसे ग्यारह भंग कहे हैं । मिश्रमें छत्तीस, असंयतमें एक सौ बीस, देशसंयतमें अड़तालीस, प्रमत्त और अप्रमत्तमें चालीस-चालीस, उपशमक अपूर्वकरणमें सोलह, क्षपकमें चार, मिलकर बीस । अनिवृत्तिकरण उपशमकमें सोलह, क्षपकमें छत्तीस पूर्वोक्त तथा चार माया रहित, तथा नपुंसक वेदकी क्षपणाके चार स्थानोंमें-से तीर्थंकर रहित दूसरे और चौथे स्थानमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके बदलनेसे दो-दो भंग हुए । इस तरह १६ + ३८ + ४ सब

गळेंटक्कमेंदु भंगंगळप्पुवु। सयोगकेवलियोळु नाल्के भंगंगळप्पुवु। अयोगिकेवलियोळु द्विचरम-चरमसमयसत्वस्थानंगळारक्कमेंदु भंगंगळप्पुवेकेंदोडे चरमसमयदोळु सातासातसत्वभेददिंदमेरडु भंगंगळधिकंगळप्पुदरिंदं इल्लि संदृष्टि रचनाविशेषमिदु।

*	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
स्थान	१८	४	८	४०	४०	४०	४०	उ १६क्ष४	उ१६क्ष४०	उ १६।४	१६	८	४	४।२
भंग	५०	११	३६	१२०	४८	४०	४०	२०	५८	२०	१६	८	४	८

एवं सत्तट्ठाणं सवित्थरं वण्णियं मए सम्मं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ णिव्वुदिं सोक्खं ॥३९५॥

एवं सत्वस्थानं सविस्तरं वर्णितं मया सम्यक्। यः पठति शृणोति भावयति स प्राप्नोति निर्व्वृतेः सौख्यं ॥

इंतु सत्वस्थानं सविस्तरमागि येंमिदं वर्णिसल्पट्टुदु। सम्यक् अवनोर्व्वनोडुगुं केळुगुं भाविसुगुमातं मोक्षसुखमनेय्दुगुं ॥

वरइंदणंदिगुरुणो पासे सोऊण सयलसिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥३९६॥

वरेंद्रनंदिगुरोः पार्श्वे श्रुत्वा सकलसिद्धांतं। श्रीकनकनंदिगुरुणा सत्वस्थानं समुद्दिष्टं ॥

द्वौ एवमष्टपंचाशत्। सूक्ष्मसांपराये उपशमके षोडश, क्षपके चत्वारः, मिलित्वा विंशतिः। उपशांतकषाये षोडश। क्षीणकषाये द्विचरमचरमसमयाष्टस्थानानामष्टौ। सयोगे चत्वारः। अयोगे द्विचरमसमयस्थानषट्कस्याष्टौ, चरमसमये सातासातसत्त्वभेदेन भंगद्वयस्याधिक्यात् ॥३९४॥

एवं सत्त्वस्थानं सविस्तरं मया वर्णितं सम्यक् यः पठति शृणोति भावयति स मोक्षसुखं प्राप्नोति ॥३९५॥

मिलकर अठावन भंग होते हैं। सूक्ष्म साम्परायमें उपशमकमें सोलह, क्षपकमें चार मिलकर बीस। उपशान्त कषायमें सोलह। क्षीणकषायमें द्विचरम और चरम समय सम्बन्धी आठ स्थानोंमें आठ। सयोगीमें चार। अयोगीमें द्विचरम और चरम समय सम्बन्धी छह स्थानोंमें आठ भंग; क्योंकि चरम समयमें साता और असाताके सत्त्वके भेदसे दो भंग अधिक होते हैं ॥३९४॥

इस प्रकार मैंने सत्त्व स्थानका विस्तारसे सम्यक् वर्णन किया। जो इसे पढ़ता है, सुनता है, भाता है वह निर्वाण सुखको पाता है ॥३९५॥

श्रेष्ठरप्पिन्द्रणंदिभट्टारक पार्श्वदोळु सकलसिद्धांतमं केळ्दु श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्त्ति-गळिंदं सत्वस्थानं सम्यक्कागि पेळल्पट्टुदु ॥

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण ।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं ॥३९७॥

यथा चक्रेण चक्रिणा षट्खंडं साधितं अविघ्नेन । तथा मतिचक्रेण मया षट्खण्डं साधितं सम्यक् ॥

एंतीगळ् चक्रदिंदं चक्रवर्त्तियिं षट्खंडक्षेत्रमविघ्नदिंदं साधिसल्पट्टुदंत मतिचक्रदिंदमेम्मिं जीवस्थानक्षुद्रकबंध । बंधस्वामित्व । वेदनाखंड । वर्गणाखंड । महाबंधमेंब षट्खंडं सिद्धांतशास्त्रं सम्यग्विघ्नरहितमागि साधिसल्पट्टुदु ॥

इंतु भगववर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्य महावाद वादीश्वरराय वादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांत-चक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचित गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडदोळु कनकनंदिव्रतिशत्गाथागुणस्थानप्रकृतिसत्वस्थानभंग-स्वरूपनिरूपणमहाधिकारं निरूपितमादुदु ॥

सूरिमतल्लिकाश्रीमदिंद्रनंदिभट्टारकपार्श्वे सकलसिद्धांतं श्रुत्वा श्रीकनकनंदिसिद्धांतचक्रवर्तिभिः सत्त्व-स्थानं सम्यक् प्ररूपितं ॥३९६॥

यथा चक्रेण चक्रवर्तिना षट्खण्डक्षेत्रमविघ्नेन साधितं तथा मतिचक्रेण मया जीवस्थानक्षुद्रकबंधबंध-स्वामित्ववेदनाखंडवर्गणाखंडमहाबंधभेदषट्खंडसिद्धांतशास्त्रं सम्यक् साधितं ॥३९७॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे कनकनंदिकृतसत्त्वस्थानभंगप्ररूपणो नाम तृतीयोऽधिकारः ॥३॥

आचार्यश्रेष्ठ श्री इन्द्रनन्दि भट्टारकके पास सकल सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके द्वारा सत्त्व स्थान सम्यक्रूपसे कहा गया ॥३९६॥

जैसे चक्रवर्ती चक्रके द्वारा छह खण्डोंको बिना विघ्नबाधाके साधता है । उसी प्रकार मैंने मतिरूपी चक्रके द्वारा जीवस्थान क्षुद्रकबन्ध, बन्ध स्वामित्व, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबन्धके भेदसे षट्खण्ड रूप सिद्धान्त शास्त्रको सम्यक् रूपसे साधा है ॥३९७॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कनकनन्दि आचार्यकृत सत्त्वस्थान भंग प्ररूपण नामक तीसरा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

अथ त्रिचूलिका अधिकार ॥४॥

उसहाइजिणवरिंदे असहायपरक्कमे महावीरे ।
पणमिय सिरसा बोच्छं तिचूलियं सुणुह एयमणो ॥३९८॥

वृषभादिजिनवरेंद्रान् असहायपराक्रमान् महावीरान् । प्रणम्य शिरसा वक्ष्यामि त्रिचूळिकां श्रुणुतैकमनसः ॥

असहायपराक्रमरुं महावीररुगळमप्प वृषभादिजिनवरेंद्ररुगळं तळेयेरकंदिदं नमस्करिसि नवप्रश्न । पंचभागहार । दशकरण भेदभिन्नमप्प त्रिचूलिकेयं पेळ्दपें केळिमेकचित्तमनुळ्ळरागि एंदितु शिष्यरुगळु संबोधिसल्पट्टरु ॥

उक्तानुक्तदुरुक्तर्चिंतनं चूलिकेयेंबुदक्कुमल्लि प्रथमोद्दिष्ट नवप्रश्नचूलिकेयं पेळ्दपरु :—

किं बंधो उदयादो पुव्वं पच्छा समं विणस्सदि सो ।
सपरोभयोदयो वा निरंतरो सांतरो उभयो ॥३९९॥

किं बंधः उदयात्पूर्व्वं पश्चात्समं विनश्यति सः । स्वपरोभयोदयो वा निरंतरः सांतर उभयः ॥

उदयव्युच्छित्तियिंदं मुन्नं बळिक्कं युगपद्बंधव्युच्छित्ति पावुदु सः आबंधं स्वोदयदिंदं परोदयदिंदमुभयोदयदिंदमाउदु वा मत्ते निरंतरं सांतरमुभयबंधमुमाउदेंदितु नव प्रश्नंगळप्पुवल्लि

असहायपराक्रमान् महावीरगुरून् वृषभादिजिनवरेंद्रांश्च शिरसा प्रणम्य नवप्रश्न-पंचभागहार-दशकरणनामत्रिचूलिकां वक्ष्यामि शृणुतैकमनसः । उक्तानुक्तदुरुक्तर्चितनं चूलिका ॥३९८॥ तत्र तावन्नवप्रश्न-चूलिकामाह—

उदयव्युच्छित्तेः पूर्वं पश्चात् युगपद्बन्धव्युच्छित्तिः का । स बंधः स्वोदयेन परोदयेनोभयोदयेन कः ? वा

जिनका ज्ञानादि शक्तिरूप पराक्रम इन्द्रिय आदिकी सहायतासे रहित है उन भगवान् महावीर और ऋषभ आदि जिनेन्द्रदेवोंको सिरसे नमस्कार करके नवप्रश्न पंचभागहार और दसकरण नामक त्रिचूलिका अधिकारको कहूँगा । तुम एकचित्त होकर सुनो । जो अर्थ कहा गया है, या नहीं कहा गया, या ठीक रीतिसे नहीं कहा गया है उस सबके चिन्तन करनेको चूलिका कहते हैं ॥३९८॥

प्रथम नवप्रश्न चूलिका कहते हैं—

पूर्वमें कही प्रकृतियोंमें-से उदय व्युच्छित्तिके पहले बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियों-की होती है ? उदय व्युच्छित्तिके पीछे बन्धकी व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है ? तथा

उदयव्युच्छित्तिगळिंदं मुन्नं बंधव्युच्छित्तिगळप्प प्रकृतिगळावुवुवेंदोडे उदयव्युच्छित्तिगळि बळिक्कं बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळुमं समंगळुमं पेळ्दु पारिशेषिकन्यायदिंद मेगभत्तों दु ८१ प्रकृतिगळप्पुवेंदु गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

देवचउक्काहारदुगज्जसदेवाउगाण सो पच्छा ।
मिच्छत्तादावाणं णराणुथावरचउक्काणं ॥४००॥

देवचतुष्काहारद्विकायशस्कीर्त्तिदेवायुषां स पश्चात् मिथ्यात्वातपयोर्नरानुपूर्व्यस्थावरचतुष्काणां ॥

पण्णरकषायभयदुगहस्सदु चउजाइपुरिसवेदाणं ।
सममेक्कत्तीसाणं सेसिगिसीदाण पुव्वं तु ॥४०१॥

पंचदशकषायभयद्विकहास्यद्विकचतुर्ज्जातीनां सममेकत्रिंशतां शेषैकाशीतीनां पूर्व्वं तु ॥

उदयदिंदं मुन्नं बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु एण्भत्तों दु ८१ । उदयव्युच्छित्तियिंदं बळिक्कं बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळेंदु ८ । उदयदोडने बंधव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु मूवत्तों दु ३१ कूडि नूरिप्पत्तप्पुववावुवेंदोडे देवचतुष्कमुमाहारद्विकमुमयशस्कीर्त्तियुं देवायुष्यमुमेंबे दुं प्रकृतिगळगे उदयव्युच्छित्तियिंदं बळिक्कं बंधव्युच्छित्तियक्कुं । संदृष्टि :—

दे	आ	अ	दे
४	२	१	१

पुनः निरंतरः सांतरः उभयरूपः कः ? इति नव प्रश्ना भवंति ॥३९९॥ तत्राद्यप्रश्नत्रयप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

देवचतुष्कमाहारकद्विकमयशस्कीर्तिर्देवायुरित्यष्टानामुदयव्युच्छित्तेः पश्चाद्बंधव्युच्छित्तिः । तथाहि-देवचतुष्कस्यासंयते उदयव्युच्छित्तिः, अपूर्वकरणषष्ठभागे बंधव्युच्छित्तिः । आहारकद्वयस्य प्रमत्ते उदयव्युच्छित्तिः,

---

उदय व्युच्छित्तिके साथ बन्ध व्युच्छित्ति किन प्रकृतियोंकी होती है। ये तीन प्रश्न हुए। अपना उदय होते हुए जिनका बन्ध होता है वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? अन्य प्रकृतियोंके उदयमें जो बँधती हैं वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? तथा जिनका बन्ध अपने भी उदयमें होता है और अन्य प्रकृतियोंके उदयमें भी होता है वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? ये तीन प्रश्न हुए। जिनका निरन्तर बन्ध होता है वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? जिनका सान्तर बन्ध होता है कभी होता है कभी नहीं होता, वे कौन हैं ? जिनका सान्तर-निरन्तर दोनों प्रकारका बन्ध होता है वे प्रकृतियाँ कौन हैं ? तीन प्रश्न ये हुए। सब नौ प्रश्न हुए ॥३९९॥

प्रथम तीन प्रश्नोंकी प्रकृतियां दो गाथाओंसे कहते हैं—

देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग ये देवचतुष्क, आहारक शरीर व अंगोपांग, अयशःकीर्ति, देवायु इन आठ प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्तिके पीछे बन्ध व्युच्छित्ति होती है। वही कहते हैं—

देव चतुष्ककी उदय व्युच्छित्ति असंयत गुणस्थानमें होती है और अपूर्वकरणके छठे भागमें बन्ध व्युच्छित्ति होती है। आहारकद्विककी उदयव्युच्छित्ति प्रमत्तमें और बन्धव्युच्छित्ति अपूर्वकरणके षष्ठ भागमें होती है। अयशःकीर्तिकी असंयतमें उदय व्युच्छित्ति होती है और

अदेंतेंदोडे देवचतुष्कमसंयतनोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमपूर्व्वकरणन षष्ठभागदोळु बंधव्युच्छित्तियक्कुमाहारकद्वयक्के प्रमत्तसंयतनोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमपूर्व्वकरणनोळु षष्ठभागदोळु बंधव्युच्छित्तियक्कुं। अयशस्कीर्त्तिगसंयतनोळुदयव्युच्छित्तियक्कुं। प्रमत्तनोळु बंधव्युच्छित्तियक्कुं। देवायुष्यक्कसंयतनोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमप्रमत्तसंयतनोळु बंधव्युच्छित्तियक्कुमी प्रकारदिदं शेषसमाधिगळोळं योजिसिकोंबुदु। मिथ्यात्वमुमातपमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणचतुष्कमुं संज्वलनलोभवर्ज्जित पंचदशकषायंगळुं भयद्विकमुं हास्यद्विकमुं एकेंद्रियादि जातिचतुष्कमुं पुरुषवेदमुमेंब मूवत्तोंदु प्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियुं बंधव्युच्छित्तियुं सममक्कुं। संदृष्टि :—

मि०	आत०	म० आनु०	स्थावर	कषाय	भय	हा०	जाति	पुंवे०
१	१	१	४	१५	२	२	४	१

शेषैकाशीतिप्रकृतिगळगुदयव्युच्छित्तियिदं मुंनं बंधव्युच्छित्तियक्कुं। संदृष्टिः—

ज्ञा	द	वे	लो	स्त्री	न	अरति	न आ	ति आ	म आ	नरक गति	तिर्य्यंग् गति	मनुष्य गति	पं	औदारिक शरीर	ते	का	संह नन	औ. अंगोपां.
५	९	२	१	१	१	२	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	६	१

सं	वर्ण	ना आनु	ति आनु	अगु०	उद्यो.	विहा	त्र	स्थि	शु	सु	सु	आदे
६	४	१	१	४	१	२	४	२	२	२	२	२

जस	नि	ति	गोत्र	अंतराय
१	१	१	२	५

अपूर्वकरणषष्ठभागे बंधव्युच्छित्तिः। अयशस्कीर्तेरसंयते उदयव्युच्छित्तिः, प्रमत्ते बंधव्युच्छित्तिः। देवायुषोऽसंयते उदयव्युच्छित्तिः अप्रमत्ते बंधव्युच्छित्तिः। एवं शेषसमयादिष्वपि योज्यं। मिथ्यात्वमातपो मनुष्यानुपूर्व्यं स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानि संज्वलनलोभवर्जितपंचदशकषायाः भयद्विकं हास्यद्विकमेकेंद्रियादिजातिचतुष्कं पुंवेदः इत्येकत्रिंशत उदयव्युच्छित्तिबंधव्युच्छित्तिश्च द्वे समं स्तः। शेषाणां पंचज्ञानावरणनवदर्शनावरणद्विवेद-

प्रमत्तमें बन्ध व्युच्छित्ति होती है। देवायुकी असंयतमें उदय व्युच्छित्ति होती है और अप्रमत्तमें बन्धव्युच्छित्ति। इसी प्रकार जिनकी बन्ध व्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति एक साथ होती है या बन्ध व्युच्छित्तिके पीछे उदय व्युच्छित्ति होती है उनका भी लगा लेना। मिथ्यात्व, आतप, मनुष्यानुपूर्वी, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, संज्वलन लोभ बिना पन्द्रह कषाय, भय-जुगुप्सा, हास्य-रति, एकेन्द्रिय आदि जाति चार, पुरुषवेद इन इकतीस प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति और उदयव्युच्छित्ति एक साथ होती है। शेष पाँच ज्ञानावरण,

ज्ञानावरणपंचक्कं सूक्ष्मसांपरायनोळु बंधव्युच्छित्तियक्कुं। क्षीणकषायनोळुदयव्युच्छित्तियक्कुमित्यादि सुगममक्कुं ॥

अनंतरं परोदयबंधंगळु पन्नों दुं ११ स्वोदयबंधंगळिप्पत्तेळं दु पेळ्दु शेषंगळु स्वोदयपरोदयोभयबंधप्रकृतिगळेण्भत्तेरडं दु गाथाद्वयदिंद पेळ्दपरु :—

सुरणिरयाऊ तित्थं वेगुव्वियछक्कहारमिदि एसिं ।
परउदयेण य बंधो मिच्छं सुहुमस्स घादीओ ॥४०२॥

सुरनारकायुषी तीर्त्थं वैक्रियिकषट्कमाहारकद्विकमिति येषां । परोदयेन च बंधः मिथ्यात्वं सूक्ष्मस्य घातिनः ॥

एषां आवुवु केलवु प्रकृतिगळगे परोदयदिंदं बंधमक्कुमें दु पेळल्पडुगुमवु सुरनारकायुर्द्वयमुं तीर्त्थमुं वैक्रियिकषट्कमुमाहारकद्वयमुमें बी पन्नों दुं प्रकृतिगळप्पुवु। संदृष्टि। सु १। ना १। ती १। वै ६। आ २। कूडि ११ ॥ मिथ्यात्वप्रकृतियुं सूक्ष्मसांपरायन घातिगळु पदिनाल्कुं ॥

तेजदुगं वण्णचऊ थिरसुहजुगलगुरुणिमिणधुवउदया ।
सोदयबंधा सेसा बासीदा उभयबंधीओ ॥४०३॥

तैजसद्वयं वर्णचतुष्कं स्थिरशुभयुगळागुरुलघुनिर्म्माणध्रुवोदयाः । स्वोदयबंधाः शेषाः द्व्यशीतिरुभयोदयबंधाः ॥

नौ दर्शनावरण, दो वेदनीय, संज्वलन लोभ, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु, नरकगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक तैजस कार्मण शरीर, छह संहनन, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थान, वर्णादि चार, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अगुरुलघु आदि चार, उच्छ्वास, विहायोगति दो, त्रसादि चार, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, गोत्र दो, पाँच अन्तराय इन इक्यासी प्रकृतियोंकी उदय व्युच्छित्तिसे पहले बन्ध-व्युच्छित्ति होती है ॥४००-४०१॥

आगे दूसरे तीन प्रश्नोंकी प्रकृतियाँ दो गाथाओंसे कहते हैं—

देवायु, नरकायु, तीर्थंकर, वैक्रियिक शरीर, अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, आहारक शरीर व अंगोपांग इन ग्यारह प्रकृतियोंका बन्ध अन्य प्रकृतियोंके

नीयसंज्वलनलोभस्त्रीनपुंसकवेदारतिशोकनारकतिर्यग्मानुष्यायुर्नारकतिर्यग्मनुष्यगतिपंचेंद्रियजात्यौदारिकतैजसकार्मणषट्संहननौदारिकांगोपांगषट्संस्थानवर्णचतुष्कनरकतिर्यगानुपूर्व्यागुरुलघुचतुष्कोच्छ्वासविहायोगतिद्वयत्रस-चतुष्कस्थिरद्विकशुभद्विकसुभगद्विकसुस्वरद्विकादेयद्विकयशस्कीर्तिनिर्माणतीर्थकरगोत्रद्विकपंचांतरायाणामेकाशीतेः उदयव्युच्छित्तेः पूर्वं बंधव्युच्छित्तिः स्यात् ॥४००—४०१॥ द्वितीयप्रश्नत्रयप्रकृतीर्गाथाद्वयेनाह—

यासां परोदयेन बंधः, ताः प्रकृतयः सुरनारकायुषी तीर्थं वैक्रियिकषट्कमाहारकद्वयं चेत्येकादश भवंति। मिथ्यात्वं सूक्ष्मसांपरायस्य चतुर्दशघातीनि ॥४०२॥

तैजसद्विकमुं वर्णंचतुष्कमुं स्थिरद्विकमुं शुभद्विकमुं अगुरुलघुवुं निर्म्माण नाममुमिंतु ई ध्रुवोदयंगळेल्लं कूडि स्वोदयबंधंगळिप्पत्तेळु प्रकृतिगळप्पुविवक्कें तलानुं बंधमक्कुमप्पोडे स्वोदयदोळेयक्कुमुदयं बंधमिल्लदेयुमक्कुं। संदृष्टि—मि १। णा ५। अं ५। द ४। तैज २। वर्ण ४। थि २। शु २। अ १। नि १। कूडि २७॥ शेषदर्शनावरणपंचकमुं वेदनीयद्विकमुं मोहनीयपंचविंशतिप्रकृतिगळुं मनुष्यायुष्यमुं तिर्य्यंगायुष्यमुं मनुष्यगतिनाममुं तिर्य्यंग्गतिनाममु मेकेंद्रियादिजातिपंचकमुं औदारिकशरीरमुं औदारिकांगोपांगमुं संहननषट्कमुं संस्थानषट्कमुं मनुष्यानुपूर्व्यमुं तिर्य्यंगानुपूर्व्यमुं उपघातपरघातातपोद्योतचतुष्कमुमुच्छ्वासमुं विहायोगतिद्विकमुं त्रसद्विकमुं बादरद्विकमुं पर्य्याप्तद्विकमु प्रत्येकसाधारणशरीरद्विकमुं सुभगद्विकमुं सुस्वरद्विकमुं आदेयद्विकमुं यशस्कीर्त्तिद्विकमुं गोत्रद्विकमुमेंबी द्व्यशीतिप्रकृतिगळुभयोदयबंधप्रकृतिगळप्पुवु॥ संदृष्टि :— द ५। वे २। मो २५। म १। ति १। म १। ति १। जा ५। औ १। औ अं १। सं ६। सं ६। म १। ति १। उ ४। उ १। वि २। त्र २। बा २। प २। प्र २। सु २। सु २। आ २। य २। गो २। कूडि ८२॥

अनंतरं निरंतरबंधप्रकृतिगळ्नाल्वत्तनाल्कु ५४। सांतरबंधप्रकृतिगळु मूवत्तनाल्कु ३४। सांतरनिरंतरोभयबंधप्रकृतिगळु मूवत्तेरडेंदु गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपरु :—

तैजसद्विकं वर्णचतुष्कं स्थिरद्विकशुभद्विकागुरुलघुनिर्माणानीति ध्रुवोदयाश्च मिलित्वा सप्तविंशतिः स्वोदयबंधा भवंति। आसां बंधः स्वोदयेनैव, उदयः अबंधेऽपि स्यात्। शेषाः पंचदर्शनावरणद्विवेदनीयपंचविंशतिमोहनीयतिर्यग्मनुष्यायुस्तिर्यग्मनुष्यगतिपंचजात्यौदारिकतदंगोपांगषट्संहननषट्संस्थानतिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्योपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतिद्विकत्रसद्विकबादरद्विकपर्याप्तद्विकप्रत्येकसाधारणसुभगद्विकसुस्वरद्विकादेय-द्विकयशस्कीर्तिद्विकगोत्रद्विकानि द्व्यशीतिप्रकृतयः उभयोदयबंधा भवंति ॥४०३॥ तृतीयप्रश्नत्रयप्रकृतीर्गाथाचतुष्टयेनाह—

उदयमें होता है, इनका उदय रहते इनका बन्ध नहीं होता। तथा मिथ्यात्व, सूक्ष्मसाम्परायमें जिनकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है वे पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय ये घातिकर्मोंकी चौदह प्रकृतियाँ। तैजस, कार्माण, वर्णादि चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण ये बारह ध्रुवोदयी हैं इनका उदय निरन्तर पाया जाता है। इनमें पूर्वोक्त पन्द्रह मिलकर सत्ताईस प्रकृतियाँ स्वोदयबन्धी हैं अर्थात् इनका बन्ध अपने ही उदयमें होता है किन्तु उदय इनके अबन्धमें भी होता है। शेष पाँच निद्रा, दो वेदनीय, पच्चीस मोहनीय, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, जाति पाँच, औदारिक शरीर व अंगोपांग, छह संहनन, छह संस्थान, तिर्यंचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति दो, त्रस दो, बादर दो, पर्याप्त दो, प्रत्येक, साधारण, सुभग दो, सुस्वर दो, आदेय दो, यशस्कीर्ति दो, गोत्र दो, ये बयासी प्रकृतियाँ उभयबन्धी हैं, इनके उदयमें भी इनका बन्ध होता है और इनका उदय न होते हुए भी इनका बन्ध होता है॥४०२-४०३॥

तीसरे तीन प्रश्नोंकी प्रकृतियाँ चार गाथाओंसे कहते हैं—

सत्तेतालधुवावि य तित्थाहाराउगा णिरंतरगा ।
णिरयदुजाइचउक्कं संहदिसंठाण पण पणगं ॥४०४॥

सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवा अपि च तीर्त्थाहारायूंषि निरंतराणि । नरकद्विकजातिचतुष्कं संहनन-संस्थानपंचकं ॥

दुग्गमणादावदुगं थावर दसगं असादसंडित्थी ।
अरदीसोगं चेदे सांतरगा होंति चोत्तीसा ॥४०५॥

दुर्गमनातापद्विकं स्थावरदशकमसातषंडस्त्रियः । अरतिः शोकश्चैताः सांतरा भवंति चतुस्त्रिंशत् ॥

ज्ञानावरणपंचकमुं दर्शनावरणीयनवकमुमंतरायपंचकमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं षोडशकषायंगळुं भयद्विकमुं तैजसद्विकमुं अगुरुलघुद्विकमुं निर्म्माणमुं वर्णंचतुष्कमुमितु ध्रुवोदयंगळु सप्तचत्वारिंशत् प्रकृतिगळुं तीर्त्थंमुमाहारकद्विकमुमायुष्यचतुष्कमुमितप्पत्तं नाल्कुं प्रकृतिगळु ध्रुवोदयबंधं गळप्पुवु । संदृष्टिः—णा ५ । द ९ । अं ५ । मि १ । क १६ । भय २ । तै २ । आ २ । णि १ । व ४ । ति १ । आ २ । आ ४ । ध्रुडि ५४ ॥ नरकद्विकमुं एकेंद्रियादि जातिचतुष्कमुं पंचसंहननंगळुं पंचसंस्थानंगळुं अप्रशस्तविहायोगतियुमातपोद्योतद्विकमुं स्थावरदशकमुं असातवेदनीयमुं षंडवेदमुं स्त्रीवेदमुं अरतियुं शोकमुमेंदितु मूवत्तनाल्कुं प्रकृतिगळु सांतरोदयबंधंगळप्पुवु ॥ संदृष्टि—णि २ । जा ४ ।

पंचज्ञानावरणनवदर्शनावरणपंचांतरायमिथ्यात्वषोडशकषायभयद्विकतैजसद्विकागुरुलघुद्विकनिर्माणवर्ण-चतुष्काणीति सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवोदयाः । तीर्थमाहारकद्विकमायुश्चतुष्कं चेति चतुःपंचाशत्प्रकृतयो निरंतरबंधा भवंति । नरकद्विकमेकेंद्रियादिजातिचतुष्कं पंचसंहननानि पंचसंस्थानान्यप्रशस्तविहायोगतिरातपोद्योतौ स्थावर-

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण, अगुरुलघुद्विक, निर्माण, वर्णादि चार, ये सैंतालीस प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं, अपनी-अपनी व्युच्छित्ति पर्यन्त सदा इनका उदय पाया जाता है । तीर्थंकर, आहारकद्विक, आयु चार, ये सात और उक्त सैंतालीस ये चौवन प्रकृतियाँ निरन्तर बन्धी हैं इनमें-से सैंतालीस प्रकृतियोंका तो व्युच्छित्तिके प्रथम समय तक सदा निरन्तर बन्ध होता है । और तीर्थंकर तथा आहारकका बन्ध प्रारम्भ होनेपर जिन गुणस्थानोंमें इनका बन्ध होता है उनमें प्रति समय बन्ध होता है। आयुका जिस कालमें बन्ध होना योग्य है वहाँ आयुबन्ध होनेके पश्चात् उस कालमें प्रति समय निरन्तर बन्ध होता है। इससे इनको निरन्तर बन्धी कहा है ।

नरकगति, नरकानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि जाति चार, पाँच संहनन, पाँच संस्थान, अप्रशस्त विहायोगति, आतप, उद्योत, स्थावर आदि दस, असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, ये चौंतीस सान्तरबन्धी हैं । जैसे किसी समय नरकगतिका बन्ध

१. निरंतरबंधंगळु एंदु पाठांतरं । थावरसुहुममपज्जत्तं साहरण सरीरमत्थिरं च असुहं दुब्भगदुस्सरणादेज्जं अजसकित्तित्ति ॥

सं ५ । सं ५ । दु १ । आ २ । था २ । सू १ । अ १ । सा १ । अ १ । अ १ । दु १ दु १ अ १ अ १ अ १ । षं १ । स्त्री १ । अ १ । शो १ कूडि मूवत्तनाल्कु ३४ ॥

सुरणरतिरियोरालिय-वेगुव्वियदुगपसत्थगदिवज्जं ।
परघाददुसमचउरं पंचेंदिय तसदसं सादं ॥४०६॥

सुरनरतिर्य्यंगौदारिकवैक्रियिकद्विक प्रशस्तगतिवज्रं । परघातद्विक समचतुरस्रं पंचेंद्रिय त्रसदशसातं ॥

हस्सरदि पुरिसगोददु सप्पडिवक्खम्मि सांतरा होंति ।
णट्ठे पुण पडिवक्खे णिरंतरा होंति बत्तीसा ॥४०७॥

हास्यरतिपुरुषगोत्रद्विकं सप्रतिपक्षे सांतरा भवंति । नष्टे पुनः प्रतिपक्षे निरंतरा भवंति द्वात्रिंशत् ॥

सुरद्विकमुं मनुष्यद्विकमुं तिर्य्यग्द्विकमुमौदारिकद्विकमुं वैक्रियिकद्विकमुं प्रशस्तविहायोगतियुं वज्रऋषभनाराचसंहननमुं परघातोच्छ्वासद्विकमुं समचतुरस्रसंस्थानमुं पंचेंद्रियजातियुं त्रसबादरपर्य्याप्त प्रत्येकस्थिर शुभ सुभग सुस्वरादेय यशस्कीर्त्ति सातवेदनीय हास्यरतिद्विक पुंवेदगोत्रद्विकमें ब द्वात्रिंशत्प्रकृतिगळु सप्रतिपक्षदोळु सांतरंगळप्पुवु । मत्ते नष्ट प्रतिपक्षंगळागुत्तं विरलु निरंतरोदयबंधंगळप्पुवु । संदृष्टि–सु २ । म २ । ति २ । औ २ । वै २ । प्र १ व १ प २ स १ पं १ त्र १० सात १ हा १ । र १ । पुंवेद १ गो २ कूडि ३२ ॥ यिल्लि सुरद्विकक्के मिथ्यादृष्टि-

---

दशकमसातं स्त्रीषंढवेदौ अरतिः शोकश्चेति चतुस्त्रिंशत्सांतरबंधा भवंति ॥४०४–४०५॥

सुरद्विकं मनुष्यद्विकं तिर्यग्द्विकं औदारिकद्विकं वैक्रियिकद्विकं प्रशस्तविहायोगतिर्वज्रवृषभनाराचं परघातोच्छ्वासौ समचतुरस्रसंस्थानं पंचेंद्रियं त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशस्कीर्तयः सातं हास्यरती पुंवेदो गोत्रद्विकं चेति द्वात्रिंशत्प्रकृतयः सप्रतिपक्षे सांतरा भवंति । तस्मिन्नष्टे निरंतरोदयबंधा

होता है किसी समय अन्य गतिका बन्ध होता है । किसी समय एकेन्द्रिय जातिका बन्ध होता है किसी समय अन्य जातिका बन्ध होता है । इस प्रकार ये प्रकृतियाँ सान्तर बन्धी हैं ॥४०४-४०५॥

देवगति, देवानुपूर्वी, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति तिर्यंचानुपूर्वी, औदारिक शरीर व अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, प्रशस्त विहायोगति, वज्रवृषभनाराच संहनन, परघात, उछ्वास, समचतुरस्रसंस्थान, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, सातावेदनीय, हास्य, रति, पुरुषवेद, गोत्र दो ये बत्तीस प्रकृतियाँ प्रतिपक्षीके रहते हुए सान्तरबन्धी हैं । और प्रतिपक्षीके नष्ट होनेपर निरन्तर बन्धी हैं । जैसे अन्य गतिका जहाँ बन्ध पाया जाता है वहाँ तो देवगति सप्रतिपक्षी है । अतः वहाँ किसी समय देवगतिका बन्ध होता है और किसी समय अन्य गतिका बन्ध होता है । जहाँ अन्य गतिका बन्ध नहीं पाया जाता केवल देवगतिका बन्ध है वहाँ देवगति अप्रतिपक्षा होनेसे प्रतिसमय देवगतिका ही बन्ध होता है । अतः देवगतिको उभयबन्धी कहा है । इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंमें जानना ।

योळु नरकद्विकमुं तिर्य्यग्द्विकमुं मनुष्यद्विकमुं प्रतिपक्षमक्कुं । सासादननोळु सुरद्विकक्के तिर्य्यद्विकमुं मनुष्यद्विकममुं प्रतिपक्षमक्कुं । मिश्रासंयतरोळु सुरद्विकक्के मनुष्यद्विकं प्रतिपक्षमक्कुं । देशसंयताद्यपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं निःप्रतिपक्षमक्कुं । भोगभूमियं कुरुत्तु सुरद्विकक्के निःप्रतिपक्षत्वमक्कुं । मनुष्यद्विकक्कानतादिकल्पंगळोळु निःप्रतिपक्षत्वमेर्कदोडे सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगमेंदु शतार सहस्रार कल्पपर्य्यंतमे तिर्य्यग्द्विकक्के बंधमुंटप्पुदरिंदं नीचैर्गोत्रक्कं तिर्य्यग्द्विकक्कं सप्तम[1] पृथ्वियोळु निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । तेजस्कायिक वातकायिक जीवंगळोळं तिर्य्यग्द्विकक्कं नीचैर्गोत्रक्कं निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । औदारिकद्विकक्के नरकदेवगतिद्वयदोळु निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं वैक्रियिकद्विकक्के मनुष्यतिर्य्यगसंयतादियोळं भोगभूमियोळं निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । प्रशस्तविहायोगति प्रकृतिप्रभृतिगळगे व्युच्छिन्नस्वप्रतिपक्षगुणस्थानोपरिणतनगुणस्थानमादियागि स्वबंधव्युच्छित्तिगुणस्थानपर्य्यंतं निष्प्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं मदेंतेंदोडे सासादनगुणस्थानदोळप्रशस्तविहायोगतिगे बंधव्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं मिश्रगुणस्थानमोदलागि अपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं निष्प्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । वज्रवृषभनाराचसंहननक्के मिथ्यादृष्टि योळं सासादननोळं सप्रतिपक्षत्वं मिश्रनोळं असंयतनोळं निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । परघातोच्छ्वासद्वयक्के पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमसादु परघाओ एंबी नियममुंटप्पुदरिंदमपर्य्याप्तनामकर्म्ममे

१५ भवंति । तत्र सुरद्विकं नरकतिर्यग्मनुष्यद्विकैर्मिथ्यादृष्टौ, तिर्यग्मनुष्यद्विकाभ्यां सासादने, मनुष्यद्विकेन मिश्रासंयतयोश्च सप्रतिपक्षं, उपर्यपूर्वकरणषष्ठभागांतं भोगभूमौ च निःप्रतिपक्षम् । मनुष्यद्विकं 'सदरसहस्सारगोत्तितिरियदुगं' इत्यानतादिकल्पेषु निःप्रतिपक्षम् । नीचैर्गोत्रं तिर्यग्द्विकं च सप्तमपृथिव्यां तेजोवातकायिकयोश्च निःप्रतिपक्षम् । औदारिकद्विकं नरकदेवगत्योर्निष्प्रतिपक्षम् । वैक्रियिकद्विकं नरतिर्यगसंयतादौ भोगभूमौ च निःप्रतिपक्षं । प्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तविहायोगतेः सासादने बंधच्छेदान्मिश्राद्यपूर्वकरणषष्ठभागपर्यंतं निष्प्र-

२० तिपक्षा । वज्रवृषभनाराचं मिथ्यादृष्टि[2]सासादनयोः सप्रतिपक्षं, मिश्रासंयतयो[3]र्निष्प्रतिपक्षं । परघातोच्छ्वासद्वयं

अब ये प्रकृतियाँ सप्रतिपक्षा कहाँ हैं और अप्रतिपक्षा कहाँ हैं यह कहते हैं—

देवगति और देवानुपूर्वी मिथ्यादृष्टिमें नरकद्विक, तिर्यंचद्विक और मनुष्यद्विकका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षा हैं। सासादनमें तिर्यंचद्विक, मनुष्यद्विकका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षा हैं। मिश्र और असंयतमें मनुष्यद्विकका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षा हैं। ऊपर अपूर्वकरणके छठे २५ भाग पर्यन्त तथा भोगभूमिमें देवद्विकका ही बन्ध होनेसे अप्रतिपक्षा हैं। मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी 'सदर सहस्सारगोत्ति तिरियदुगं' इस कथनके अनुसार आनत आदि कल्पोंमें अप्रतिपक्षा हैं। नीचगोत्र और तिर्यंचद्विक सातवीं पृथिवीमें और तेजकाय-वायुकायमें अप्रतिपक्षा हैं। औदारिकद्विक, नरकगति और देवगतिमें प्रतिपक्ष रहित है। वैक्रियिकद्विक असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य तिर्यंचमें और भोगभूमिमें अप्रतिपक्षी हैं। प्रशस्तविहायोगति- ३० अप्रशस्त विहायोगतिकी सासादनमें बन्धव्युच्छित्ति हो जानेसे मिश्रसे अपूर्वकरणके षष्ठ भागपर्यन्त अप्रतिपक्षा है। वज्रवृषभनाराच संहनन मिथ्यादृष्टि और सासादनमें सप्रतिपक्षी

१. मिस्साविरदे उच्चं मणुवदुगं सत्तमो हवे बंधो। मिच्छा सासणसम्मो मणुवदुगुच्चं ण बंधंति ॥ एंबि इदरिंदं मिथ्यादृष्टि सासादनरोलु निःप्रतिपक्षत्वं ॥ २. ब दृष्टिद्वये स° । ३. ब मिश्रद्वये निः° ।

प्रतिपक्षमक्कुमें बरियल्पडुगुमा अपर्याप्तनाम कर्ममुं मिथ्यादृष्टियोळे व्युच्छित्तियादुदरिंदं परघात-
नामप्रकृतिगे अपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्यंत निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं आतपनामकर्म्मक्के मिथ्यादृष्टि-
योळु अपर्य्याप्तनाममं कट्टिदागळु पर्य्याप्तनामदोडने निष्प्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । समचतुरस्रसंस्था-
नक्के मिश्रगुणस्थानमादियागि अपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं निष्प्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं पंचेंद्रिय-
जातिनामक्के मिथ्यादृष्टियोळु सप्रतिपक्षत्वं सासादनं मोदल्गोंडु अपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं
निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरंगळगे मिथ्यादृष्टियोळु सप्रतिपक्षत्वमेकें-
दोडे स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्तसाधारणशरीरंगळगे बंधमुंटप्पुदरिंदं मेले सासादनं मोदल्गोंडपूर्व्वकरण-
षष्ठभागपर्य्यंतं निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । स्थिरशुभयशस्कीर्त्तिनामंगळगे प्रमत्तसंयतपर्य्यंतं
सप्रतिपक्षत्वमेकें दोडस्थिरमशुभमयशस्कीर्त्तिनामंगळगे बंधमुंटप्पुदरिंदं मेलणऽप्रमत्तसंयतं मोदल्गों-
डपूर्व्वकरण षष्ठभागपर्य्यंतं निःप्रतिपक्षत्वमक्कुं । यशस्कीर्त्तिनामक्के सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं निःप्रति-
पक्षत्वमक्कुं । सुभगसुस्वरादेयंगळगे सासादनपर्य्यंतं सप्रतिपक्षत्वमेकें दोडे दुर्भगत्रयक्के सासादन-
नोळु बंधमुंटप्पुदरिंदं । मेले अपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं निःप्रतिपक्षत्वं सातवेदक्के प्रमत्तसंयतपर्यंतं
सप्रतिपक्षत्वमेकें दोडऽसातक्के प्रमत्तसंयत पर्य्यंतं बंधमुंटप्पुदरिंदं । मेले सयोगकेवलिपर्य्यंतं निःप्रति-

---

अपर्याप्तेनैव सप्रतिपक्षं, अपर्याप्तस्य मिथ्यादृष्टौ बंधच्छेदात् परघातोच्छ्वासद्वयं सासादनाद्यपूर्वकरणषष्ठभाग-
पर्यंतं निःप्रतिपक्षं । आतपः मिथ्यादृष्टावपर्याप्तबंधे पर्याप्तेन निःप्रतिपक्षः । समचतुरस्रं मिश्राद्यपूर्वकरणषष्ठभाग-
पर्यंतं निःप्रतिपक्षं । पंचेंद्रियं मिथ्यादृष्टौ सप्रतिपक्षं, सासादनाद्यपूर्वकरणषष्ठभागपर्यंतं निःप्रतिपक्षं । त्रसबादर-
पर्याप्तप्रत्येकानि मिथ्यादृष्टौ स्थावरसूक्ष्मापर्याप्तसाधारणशरीराणां बंधात्सप्रतिपक्षाणि, उपर्यपूर्वकरणषष्ठभाग-
पर्यंतं निष्प्रतिपक्षाणि । स्थिरशुभयशस्कीर्तयः प्रमत्तपर्यंतमस्थिराशुभायशस्कीर्तीनां बंधात्सप्रतिपक्षाः, उपर्य-
पूर्वकरणषष्ठभागपर्यंतं निष्प्रतिपक्षाः । यशस्कीर्तिस्तु सूक्ष्मसांपरायपर्यंतं निःप्रतिपक्षा । सुभगसुस्वरादेयानि
सासादनपर्यंतं दुर्भगत्रयबंधात् सप्रतिपक्षाणि उपर्यपूर्वकरणषष्ठभागपर्यंतं निःप्रतिपक्षाणि । सातवेदनीयं प्रमत्त-

---

है और मिश्र तथा असंयतमें अप्रतिपक्षी है । परघात और उच्छ्वास अपर्याप्त अपेक्षा सप्रतिपक्षी हैं, और अपर्याप्तकी मिथ्यादृष्टिमें बन्धव्युच्छित्ति होनेपर सासादनसे अपूर्वकरणके षष्ठ भाग पर्यन्त प्रतिपक्ष रहित हैं । आतप मिथ्यादृष्टिमें अपर्याप्तका बन्ध होते सप्रतिपक्षी है क्योंकि अपर्याप्तका बन्ध होनेपर इसका बन्ध नहीं होता । पर्याप्तके साथ अप्रतिपक्षी है । समचतुरस्रसंस्थान मिश्रसे अपूर्वकरणके षष्ठभाग पर्यन्त प्रतिपक्षरहित है । पंचेन्द्रिय जाति मिथ्यादृष्टीमें सप्रतिपक्षी है और सासादनसे अपूर्वकरणके षष्ठभाग पर्यन्त प्रतिपक्ष रहित है । त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक मिथ्यादृष्टिमें स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण शरीरका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षी हैं । ऊपर अपूर्वकरणके षष्ठ भाग पर्यन्त प्रतिपक्षरहित हैं । स्थिर शुभ यशःकीर्ति प्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त अस्थिर अशुभ अयशःकीर्तिका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षी हैं । ऊपर अपूर्वकरणके षष्ठभाग पर्यन्त अप्रतिपक्षी है । किन्तु यशःकीर्ति सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त अप्रतिपक्षी है । सुभग सुस्वर आदेय सासादन पर्यन्त दुर्भग दुःस्वर अनादेयका बन्ध होनेसे

---

१. आतपनामं सांतरप्रकृतिगळोल्पेळल्पट्टुदु ई सांतरनिरंतरप्रकृतिगळोळु उच्छ्वासनामक्के एंदु पेळबेकु विचारिसिकों बुदु ॥ २. ब परघातमपूर्व° । ३. ब °मुपर्यपूर्व° । ४. ब °गान्तं ।

पक्षत्वमरियल्पडुगुं । हास्यरतिद्वयक्कं प्रमत्तसंयतपर्य्यंतं सप्रतिपक्षत्वमेकें दोडरतिशोकंगळगे प्रमत्तसंयतपर्य्यंतं बंधमुंटप्पुदरिंदं । मेलपूर्व्वकरणचरमसमयपर्य्यंतं निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । पुंवेदक्कं सासादनपर्य्यंतं सप्रतिपक्षत्वमेकें दोडे मिथ्यादृष्टियोळु षंडवेदमुं स्त्रीवेदमुं सासादननोळु स्त्रीवेदमुं बंधमुंटप्पुदरिंदं । मेले मिश्रं मोदल्गोंडनिवृत्तिकरण सवेदभागपर्य्यंतं निप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । उच्चैर्गोत्रक्कं सासादनपर्य्यंतं सप्रतिपक्षत्वमेकें दोडे सासादनपर्य्यंतं नीचैर्गोत्रक्कं बंधमुंटप्पुदरिंदं । मेले मिश्रं मोदल्गोंडु सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं निःप्रतिपक्षत्वमरियल्पडुगुं । इंतु नवप्रश्न प्रथमचूळिकाधिकारं व्याख्यातमादुदु ॥

जत्थ वरणेमिचंदो महणेण विणा सुणिम्मलो जादो ।
सो अभयणंदि णिम्मलसुओवही हरउ पावमलं ॥४०८॥

यत्र वरनेमिचंद्रो मथनेन विना सुनिर्म्मलो जातः । सोऽभयनंदिनिर्म्मलश्रुतोदधिर्हरतु पापमलं ॥

आवुदोंदु अभयनंदिनिर्म्मलश्रुतोदधियोळु वरनेमिचंद्रं मथनमिल्लदे सुनिर्म्मलनागि पुट्टिदनंतप्पऽभयनंदिश्रुतोदधि भव्यजनंगळ पापमलमं किडिसुगे ।

पर्यंतमसातबंधात्सप्रतिपक्षं, उपरि सयोगपर्यंतं निःप्रतिपक्षं । हास्यरतिद्वयं प्रमत्तपर्यंतमरतिशोकबंधात्सप्रतिपक्षं, उपर्यपूर्वकरणचरमसमयपर्यंतं निष्प्रतिपक्षं । पुंवेदः सासादनपर्यंतं सप्रतिपक्षः, मिथ्यादृष्टौ षंढस्त्रीवेदयोः सासादने स्त्रीवेदस्य च बंधात् उपर्यनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं निःप्रतिपक्षः । उच्चैर्गोत्रं सासादनपर्यंतं नीचैर्गोत्रबंधात्सप्रतिपक्षं, उपरि सूक्ष्मसांपरायपर्यंतं निःप्रतिपक्षं ॥४०६-४०७॥ इति नवप्रश्नप्रथमचूलिका व्याख्याता ।

वरनेमिचंद्रो मथनेन विनापि सुनिर्मलो जातः सोऽभयनंदिनिर्मलश्रुतोदधिर्भव्यजनानां पापमलं हरतु ॥४०८॥

सप्रतिपक्षी हैं । ऊपर अपूर्वकरणके षष्ठभाग पर्यन्त प्रतिपक्ष रहित हैं । सातावेदनीय प्रमत्तपर्यन्त असातावेदनीयका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षी है । ऊपर सयोगीपर्यन्त अप्रतिपक्षी है । हास्य रति प्रमत्तपर्यन्त अरति शोकका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षी है । ऊपर अपूर्वकरणके अन्तिम समय पर्यन्त अप्रतिपक्षी हैं । पुरुषवेद सासादन पर्यन्त सप्रतिपक्षी है क्योंकि मिथ्यादृष्टिमें नपुंसकवेद स्त्रीवेदका और सासादनमें स्त्रीवेदका बन्ध होता है । ऊपर अनिवृत्तिकरणके सवेदभाग पर्यन्त प्रतिपक्ष रहित है । उच्चगोत्र सासादन पर्यन्त नीचगोत्रका बन्ध होनेसे सप्रतिपक्षी है । ऊपर सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त अप्रतिपक्षी है ॥४०६-४०७॥

इस प्रकार नवप्रश्नचूलिका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

पंच भागहारचूलिका

जिस अभयनन्दि आचार्यरूपी निर्मल शास्त्र समुद्रमें-से बिना ही मथन किये नेमिचन्द्र आचार्यरूपी निर्मल चन्द्रमा प्रकट हुआ वह शास्त्रसमुद्र सब जीवोंके पापमलको दूर करे ॥४०८॥

---

१. विद्यागुरु ।

उव्वेल्लणविज्झादो अद्धापवत्तो गुणो य सव्वो य ।
संकमदि जेहि कम्मं परिणामवसेण जीवाणं ॥४०९॥

उद्वेल्लनो विध्यातोऽथाप्रवृत्तो गुणश्च सर्व्वश्च संक्रमति यैः कर्म्म परिणामवशेन जीवानां ॥

यैर्भागहारैः उद्वेल्लनादि आउ केलउ भागहारंगळिंद कर्म्म ज्ञानावरणाद्यशुभकर्म्ममुं आहारकद्वयादिशुभकर्म्मंगळुं जीवानां संसारिजीवंगळ परिणामवशेन शुभाऽशुभपरिणामवशदिंदं संक्रामति परप्रकृतिस्वरूपदिंदं परिणमिसुगुमा भागहारंगळु उद्वेल्लनविध्यात अथाप्रवृत्त गुण सर्व्वसंक्रमभागहारंगळेंदितु पंचप्रकारंगळप्पुवु । संक्रमस्वरूपमं पेळ्दपरु :—

बंधे संकामिज्जदि णोबंधे णत्थि मूलपयडीणं ।
दंसणचरित्तमोहे आउचउक्के ण संकमणं ॥४१०॥

बंधे संक्रामति नोऽबंधे नास्ति मूलप्रकृतीनां । दर्शनचरित्रमोहे आयुश्चतुष्के न संक्रमणं ॥

बंधे संक्रामति बध्यमानपात्रदोळु संक्रमिसुगुमेंबुदिदुत्सर्गविधियक्कुमेकेंदोडे क्वचिद्बध्यमानदोळं संक्रममुंटप्पुदरिंदं नोबंधे अबंधदोळु संक्रमणमिल्लेंबुदनर्थकवचनमप्पुदरिंदं । दर्शनमोहनीयमं बिट्टन्यत्र बध्यमानपात्रदोळु एंदितु नियममरियल्पडुगुं । नास्ति मूलप्रकृतीनां ज्ञानावरणादिमूलप्रकृतिगळगे परस्परं संक्रमणमिल्लुत्तरप्रकृतिगळगे स्वस्थानसंक्रमणमुंटेंबुदर्त्थ-मल्लियुं दर्शनमोहनीयक्कं चारित्रमोहनीयक्कं संक्रमणमिल्ल । नारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवायुष्यंगळ्गेयुं

यैः शुभाशुभं कर्म संसारिजीवानां परिणामवशेन संक्रामति परप्रकृतिरूपेण परिणमति, ते भागहाराः उद्वेल्लनविध्याताधःप्रवृत्तगुणसर्वसंक्रमनामानः पंच संभवंति ॥४०९॥ संक्रमस्वरूपमाह—

बंधे बध्यमानमात्रे संक्रामति इत्ययमुत्सर्गविधिः क्वचिदबध्यमानेऽपि संक्रमात्, नोबंधे अबंधे न संक्रामति इत्यनर्थकवचनाद्दर्शनमोहनीयं विना शेषं कर्म बध्यमानमात्रे एव संक्रामतीति नियमो ज्ञातव्यः । मू ंप्रकृतीनां परस्परं संक्रमणं नास्ति उत्तरप्रकृतीनामस्तीत्यर्थः । तत्रापि दर्शनचारित्रमोहयोः चतुर्णामायुषां

जिन भागहारोंके द्वारा शुभ और अशुभ कर्म संसारी जीवोंके परिणामोंके वश अन्य प्रकृतिरूप होकर परिणमन करते हैं वे भागहार पाँच हैं—उद्वेलन, विध्यात, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रम, सर्वसंक्रम ॥४०९॥

संक्रमणका स्वरूप कहते हैं—

जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उस प्रकृतिमें अन्य प्रकृति उस रूप होकर परिणमन करती है । यह सामान्य कथन है क्योंकि कहीं-कहीं जिसका बन्ध नहीं है उसमें भी संक्रमण होता है । 'जिसका बन्ध नहीं है उसमें संक्रमण नहीं होता' । इससे अभिप्राय यह है कि दर्शन मोहनीयके बिना शेष कर्म जिसका बन्ध हो रहा है उसीमें संक्रमित होते हैं ऐसा नियम जानना । किन्तु मूल प्रकृतियोंमें संक्रमण नहीं होता जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि रूप नहीं होता । उत्तर प्रकृतियोंमें संक्रमण होता है । किन्तु दर्शनमोह और चारित्र-मोहमें संक्रमण नहीं होता । दर्शनमोहकी प्रकृति चारित्रमोहकी प्रकृतिरूप नहीं परिणमन करती और चारित्र मोहकी प्रकृति दर्शनमोहरूप परिणमन नहीं करती । इसी तरह चारों

परस्परसंक्रमणमिल्ल।

सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि।
सासणमिस्से णियमा दंसणतियसंकमो णत्थि ॥४११॥

सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रं स्वगुणस्थाने नैव संक्रामति। सासादनमिश्रयोर्नियमाद्दर्शनत्रय-संक्रमो नास्ति ॥

सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिथ्यात्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं स्वस्वगुणस्थानदोळु नैव संक्रामति परप्रकृतिस्वरूपदिंदं संक्रमिसुवुदे यिल्ल। सासादनमिश्ररुगळोळु नियमदिंदं दर्शनमोहनीयत्रय-संक्रमणमिल्ल। असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळुंटेंबुदत्थं।

मिच्छे सम्मिस्साणं अधापवत्तो मुहुत्त अंतोत्ति।
उव्वेल्लणं तु तत्तो दुचरिमकंडोत्ति णियमेण ॥४१२॥

मिथ्यात्वे सम्यक्त्वमिश्रयोरथाप्रवृत्तो मुहूर्त्तांतं यावत्। उद्वेल्लनस्तु ततो द्विचरमकांड-पर्य्यंतं नियमेन ॥

मिथ्यात्वे प्राप्ते मिथ्यात्वं पोर्द्दलपडुत्तिरलागळु सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिगळ्रडक्कमथाप्रवृत्त-संक्रममंतर्मुहूर्त्तपर्य्यंतं प्रवृत्तिसुगुं। तु मत्ते उद्वेल्लनभागहारसंक्रमं द्विचरमकांडकपर्य्यंतं नियम-दिंदं प्रवर्त्तिसुगुमल्लि अथाप्रवृत्तसंक्रमं फालिरूपदिंदमुद्वेल्लनसंक्रमं कांडकरूपदिंदं प्रवर्त्तिसुगुं।

च परस्परं संक्रमणं नास्ति ॥४१०॥

सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं मिश्रं च स्वस्वगुणस्थाने एव न संक्रामति, सासादनमिश्रयोर्नियमेन दर्शनमोहत्रयस्य संक्रमणं नास्ति। असंयतादिचतुष्वंस्तीत्यर्थः ॥४११॥

मिथ्यात्वे प्राप्ते सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्योरधःप्रवृत्तसंक्रमोंऽतर्मुहूर्तपर्यंतं वर्तते। तु पुनः—उद्वेल्लनभागहार-संक्रमो द्विचरमकांडपर्यंतं वर्तते नियमेन। तत्राधःप्रवृत्तसंक्रमः फालिरूपेण, उद्वेल्लनसंक्रमः कांडकरूपेण वर्तते ॥४१२॥

आयुकर्मोंमें भी परस्परमें संक्रमण नहीं होता, देवायु मनुष्यायु आदि अन्य आयुरूप परिणमन नहीं करती। यह संक्रमणका स्वरूप है ॥४१०॥

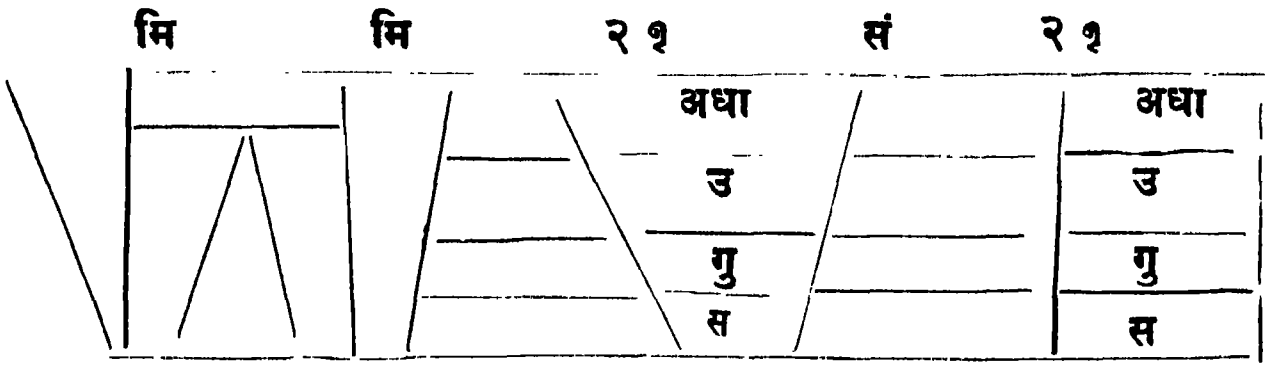
सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व और मिश्र मोहनीय अपने-अपने गुणस्थानमें संक्रमण नहीं करते। अर्थात् सम्यक्त्व मोहनीयका संक्रमण असंयत आदि गुणस्थानोंमें नहीं होता। मिथ्यात्वका संक्रमण मिथ्यात्व गुणस्थानमें और मिश्र मोहनीयका मिश्र गुणस्थानमें संक्रमण नहीं होता। तथा सासादन और मिश्रमें नियमसे दर्शनमोहकी इन तीन प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता। असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें होता है ॥४११॥

मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर सम्यक्त्व प्रकृति और मिश्र प्रकृतिका अधःप्रवृत्त संक्रमण अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होता है। तथा उद्वेलन भागहार संक्रमण नियमसे द्विचरमकाण्डक पर्यन्त होता है। उनमें-से अधःप्रवृत्त संक्रम फालि रूपसे और उद्वेलन संक्रम काण्डकरूपसे होता है। एक समयमें संक्रमण होनेको फालि कहते हैं। और बहुत समयोंमें संक्रमण हो तो उसे काण्डक कहते हैं। इनका विशेष वर्णन आगे करेंगे ॥४१२॥

उव्वेल्लणपयडीणं गुणं तु चरिमम्मि कंडये णियमा ।
चरिमे फालिम्मि पुणो सव्वं च य होदि संकमणं ॥४१३॥

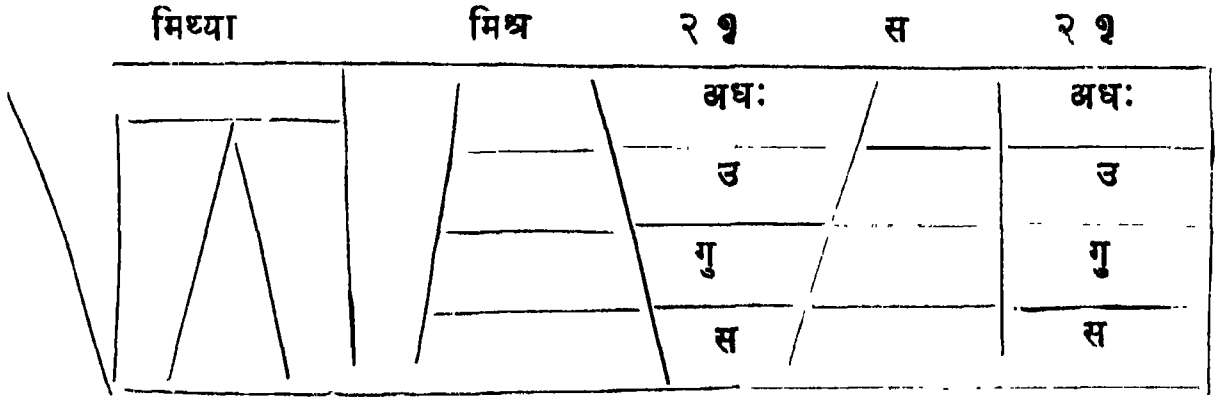
उद्वेल्लनप्रकृतीनां गुणस्तु चरमे कांडके नियमाच्चरमे फालौ पुनः सर्व्वं च च भवति संक्रमणं ॥

उद्वेल्लनप्रकृतिगळेल्लं द्विचरमकांडकपर्य्यंतमुद्वेल्लनसंक्रमणमक्कुं । चरमकांडदोळु तु मत्ते नियमदिंदं गुणसंक्रमणमक्कुं । पुनः मत्ते चरमफालियोळु सर्व्वसंक्रमणमक्कुमप्पुदरिंदं सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिगळुद्वेल्लनप्रकृतिगळप्पुदरिंदं चरमकांडकदोळु गुणसंक्रमणमुं चरमफालियोळु सर्व्वसंक्रमणमुमक्कु । संदृष्टिः



करणपरिणाममिल्ल देनेणिन तुदिर्यिवं पुरिबिच्चुवंते कर्म्मपरमाणुगळगे परप्रकृतिस्वरूपदिवं निक्षेपणमुद्वेल्लनसंक्रमणमें बुदु । विध्यातविशुद्धिकनप्पजीवंगे स्थित्यनुभागकांडगुणश्रेण्यादि

उद्वेल्लनप्रकृतीनां द्विचरमकांडकपर्यंतमुद्वेल्लनसंक्रमणं, चरमकांडके तु पुनः नियमेन गुणसंक्रमणं । चरमफालौ पुनः सर्वसंक्रमणं चास्ति तेन सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्योरुद्वेल्लनप्रकृतित्वाच्चरमकांडके गुणसंक्रमणं चरमफालौ सर्वसंक्रमणं च सिद्धं । संदृष्टिः—



करणपरिणामेन विना कर्मपरमाणूनां परप्रकृतिरूपेण निक्षेपणमुद्वेल्लनसंक्रमणं नाम । विध्यातविशुद्धि-

जो उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं उनका द्विचरम काण्डक पर्यन्त तो उद्वेलन संक्रम होता है। और अन्तके काण्डकमें नियमसे गुण संक्रम होता है। तथा अन्तिम फालिमें सर्व संक्रमण होता है। इससे चूँकि सम्यक्त्व प्रकृति और मिश्रप्रकृति भी उद्वेलन प्रकृति हैं अतः इनके भी चरम काण्डकमें गुण संक्रमण और चरमफालिमें सर्वसंक्रमण सिद्ध है।

यहाँ पाँचों संक्रमणका स्वरूप कहते हैं—

अधःप्रवृत्त आदि तीन करण रूप परिणामोंके बिना कर्म परमाणुओंका अन्य प्रकृतिरूप

परिणामंगळु निलुत्तं विरलु प्रवर्त्तिसुगुमप्पुदरिंदं विध्यातसंक्रममेंबुदक्कुं। बंधप्रकृतिगळगे स्वकबंधसंभवविषयदोळु आउदोंदु प्रदेशसंक्रमदधःप्रवृत्तसंक्रमणमेंबुदक्कुं। प्रतिसमयमसंख्येयगुणश्रेणिक्रमदिंदमाउदोंदु प्रदेशसंक्रमणमदुगुणसंक्रमणमेंबुदक्कुं। चरमकांडकचरमफालिय सर्व्वप्रदेशाग्रक्के आउदोंदु संक्रमणमदु सर्व्वसंक्रमणमेंबुदक्कुं॥

अनंतरं सर्व्वसंक्रमणमनुळ्ळ प्रकृतिगळं मुंदे पेळ्दपरल्लि तिर्य्यगेकादशप्रकृतिगळ्गेंदु पेळ्दपरदु कारणमागि या तिर्य्यगेकादश प्रकृतिगळावावुवेंदोडे पेळ्दपरु॥

तिरियदु जाइचउक्कं आदावुज्जोवथावरं सुहुमं।
साहारणं च एदे तिरियेयारं मुणेदव्वा ॥४१४॥

तिर्य्यग्द्वयं जातिचतुष्कमातपोद्योतस्थावराः सूक्ष्मः। साधारणं चैतास्तिर्य्यगेकादश मंतव्याः॥

तिर्य्यग्द्वयमुं मोदलजातिचतुष्कमुमातपमुमुद्योतमुं स्थावरमुं सूक्ष्ममुं साधारणशरीरमुमेंबी पनोंदुं प्रकृतिगळु तिर्य्यग्गतियोळल्लदितरगतियोळुदयमिल्लप्पुदरिंदं तिर्य्यगेकादशमेंवितन्वर्त्थं संज्ञेयक्कुं॥

अनंतरं उद्वेल्लनप्रकृतिगळवावुवेंदोडे पेळ्दपरु।

कस्य जीवस्य स्थित्यनुभागकांडक-गुणश्रेण्यादिपरिणामेष्वतीतेषु प्रवर्तनाद्विध्यातसंक्रमणं नाम। बंधप्रकृतीनां स्वबंधसंभवविषये यः प्रदेशसंक्रमः तदधःप्रवृत्तसंक्रमणं नाम। प्रतिसमयसंख्येयगुणश्रेणिक्रमेण यत्प्रदेशसंक्रमणं तद् गुणसंक्रमणं नाम। चरमकांडकचरमफालेः सर्वप्रदेशाग्रस्य यत्संक्रमणं तत्सर्वसंक्रमणं नाम ॥४१३॥ सर्वसंक्रमणप्रकृतिस्थतिर्यगेकादशमाह—

तिर्यग्द्वयमाद्यजातिचतुष्कमातपः उद्योतः स्थावरः सूक्ष्मं साधारणं चेत्येतौ एकादश तिर्यक्ष्वेवोदयात्तिर्यगेकादश इति संज्ञाः स्युः ॥४१४॥ अथोद्वेल्लनप्रकृतयः काः ? इति चेदाह—

परिणमना उद्वेलन संक्रमण है। मन्द विशुद्धिवाले जीवके स्थिति और अनुभागको घटानेरूप काण्डक अथवा गुणश्रेणि आदि परिणामोंके होनेके बाद जो होता है वह विध्यात संक्रमण है। बन्धरूप प्रकृतियोंके परमाणुओंका अपने बन्धके विषयमें संभवती प्रकृतियोंमें जो संक्रमण होना है उसे अधःप्रवृत्त संक्रमण कहते हैं। प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणिके क्रमसे परमाणुओंका जो अन्य प्रकृतिरूप परिणमन होता है वह गुणसंक्रम है। अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालीके सर्वप्रदेशोंमें जो परमाणु अन्य प्रकृतिरूप नहीं हुए उनका अन्य प्रकृतिरूप सर्वसंक्रमण है ॥४१३॥

आगे सर्वसंक्रमणकी प्रकृतियोंमें तिर्यक् एकादश आता है उसे स्पष्ट करते हैं—

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण इन ग्यारह प्रकृतियोंका उदय तिर्यंचमें ही होता है, इससे इन्हें तिर्यक् एकादश कहते हैं ॥४१४॥

---

१. ब °तास्ततिर्यगेकादशमिति मन्तव्याः। तासां तिर्यक्ष्वेवोदयात्।

आहारदुगं सम्मं मिस्सं देवदुग णारय चउक्कं ।
उच्चं मणुदुगमेदे तेरसमुव्वेलणा पयडी ॥४१५॥

आहारद्विक सम्यक्त्वं मिश्रं देवद्विक नारकचतुष्कं । उच्चं मनुष्यद्विकमेतास्त्रयोदशोद्वेल्लनाप्रकृतयः ॥

आहारद्विकमुं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं देवद्विकमुं नारकचतुष्टयमुमुच्चैर्गोत्रमुं मनुष्यद्विकमुमेंबी त्रयोदशप्रकृतिगळुद्वेल्लनप्रकृतिगळेंबुवक्कुं ॥

बंधे अधापवत्तो विज्झादस्सत्तमोत्ति हु अबंधे ।
एत्तो गुणो अबंधे पयडीणं अप्पसत्थाणं ॥४१६॥

बंधे अधाप्रवृत्तो विध्यातः सप्तमपर्य्यंतं खल्वबंधे इतो गुणोऽबंधे प्रकृतीनामप्रशस्तानां ॥

बंधेऽधाप्रवृत्तः प्रकृतिबध्यमानवागुत्तं विरलु स्वस्वबंधव्युच्छित्तिपर्य्यंतमधाप्रवृत्तसंक्रमणं प्रवर्त्तिसुगुं । मिथ्यात्वं बध्यमानवागुत्तं विरलुमधःप्रवृत्तसंक्रमणमिल्लेकेंदोडे—सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदि एंदिदु कारणमागि । विध्यातः सप्तमपर्य्यंतमबधे बंधव्युच्छित्तियागुत्तं विरलु असंयताद्यप्रमत्तपर्य्यंतं विध्यातसंक्रमणमक्कुं । इतः ई अप्रमत्तगुणस्थानदिंदं मेलपूर्व्वकरणाद्युपशांतकषायपर्य्यंतं बंधरहितमप्रशस्तप्रकृतिगळगे गुणसंक्रमणं प्रवर्त्तिसुगुमन्यत्र प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयमादियागंतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतमुं मत्तं मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळ पूरणकालदोळं गुणसंक्रमणमक्कुं । मिथ्यात्वक्षपणेयोळु मत्ते अपूर्व्वकरणपरिणामं मोदल्गोंडु मिथ्यात्व-

---

आहारकद्विकं सम्यक्त्वं मिश्रं देवद्विकं नारकचतुष्कमुच्चैर्गोत्रं मनुष्यद्विकं चेत्येतास्त्रयोदश उद्वेल्लनानामप्रकृतयः स्युः ॥४१५॥

प्रकृतीनां बंधे सति स्वस्वबंधव्युच्छित्तिपर्यंतमधःप्रवृत्तसंक्रमणः स्यात् न मिथ्यात्वस्य, सम्मं मिच्छं मिस्सं सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदीति[1] निषेधात् । बंधव्युच्छित्तौ सत्यामसंयताद्यप्रमत्तपर्यंतं विध्यातसंक्रमणं स्यात् । इतः अप्रमत्तगुणस्थानादुपर्युपशांतकषायपर्यंतं बंधरहिताप्रशस्तप्रकृतीनां गुणसंक्रमणं स्यात् । ततोऽन्यत्रापि प्रथमोपशमसम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयादंतर्मुहूर्तपर्यंतं पुनः मिश्रसम्यक्त्वप्रकृत्योः पूरणकाले मिथ्यात्वक्षप-

---

आहारकद्विक, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रप्रकृति, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रियिक शरीर व अंगोपांग, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी ये तेरह उद्वेलन प्रकृतियाँ हैं ॥४१५॥

प्रकृतियोंका बन्ध होनेपर अपनी-अपनी बन्ध व्युच्छित्ति पर्यन्त अधःप्रवृत्त संक्रमण होता है । किन्तु मिथ्यात्वका नहीं; क्योंकि मिथ्यात्वके संक्रमणका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें निषेध किया है, और मिथ्यात्वका बन्ध मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है । बन्धकी व्युच्छित्ति होनेपर असंयतसे अप्रमत्त पर्यन्त विध्यात संक्रमण होता है । अप्रमत्त गुणस्थानसे ऊपर उपशान्त कषाय गुणस्थान पर्यन्त बन्धरहित अप्रशस्त प्रकृतियोंका गुणसंक्रमण होता है । इससे अन्यत्र भी प्रथमोपशम सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयसे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त गुणसंक्रमण होता है । पुनः मिश्र प्रकृति और सम्यक्त्व प्रकृतिके पूरणकालमें मिथ्यात्वकी

---

१. ब नियमात् ।

चरमकांडकद्विचरमफालिपर्य्यंतमुं गुणसंक्रमणभागहारमेयक्कुं। चरमफालियोळु सर्व्वसंक्रमण-भागहारमक्कुं ॥

अनंतरं सर्व्वसंक्रमणमुळ्ळ प्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

तिरिएयारुव्वेल्लण पयडी संजलणलोहसम्ममिस्सूणा ।
मोहा थीणतिगं च य बावण्णे सव्वसंकमणं ॥४१७॥

तिर्य्यगेकादशोद्वेल्लनप्रकृतयः संज्वलनलोभसम्यक्त्वमिश्रोना मोहाः स्त्यानगृद्धित्रिकं च च द्विपंचाशत्सु सर्व्वसंक्रमणं ॥

मुं पेळ्द तिर्य्यगेकादशप्रकृतिगळु मुद्वेल्लनप्रकृतिगळु पदिमूरुं। संज्वलनलोभसम्यक्त्वप्रकृतिमिश्रप्रकृतिगळिदं विहीनमप्प पंचविंशति मोहनीयप्रकृतिगळुं स्त्यानगृद्धित्रयमुमें बी द्वापंचाशत्प्रकृतिगळोळु सर्व्वसंक्रमणमुंटु। संदृष्टि—

ति	उ	मो	थि	कूडि
११	१३	२५	३	५२

अनंतरं प्रकृतिगळगे संक्रमणनियममं पेळ्दपरु—

उगुदाल तीससत्तयवीसे एक्केक्कबारतिचउक्के ।
इगिचदुदुगतिगतिगचदुपणदुगदुगतिण्णि संकमणा ॥४१८॥

एकान्नचत्वारिंशत्त्रिंशत्सप्तविंशतावेकैक द्वादशत्रिचतुष्के । एक चतुर्द्विकत्रिकत्रिकचतुःपंच द्विक द्विक त्रीणि संक्रमणानि ॥

णायामपूर्वकरणपरिणामान्मिथ्यात्वचरमकांडकद्विचरमफालिपर्यंतं च गुणसंक्रमणं स्यात् । चरमफाली सर्व-संक्रमणं स्यात् ॥४१६॥ ताः सर्वसंक्रमणप्रकृतीराह—

प्रागुक्तितिर्यगेकादशोद्वेल्लनत्रयोदशसंज्वलनलोभसम्यक्त्वमिश्रवर्जितमोहनीयानि स्त्यानगृद्धित्रयं चेति द्वापंचाशत्प्रकृतिषु सर्वसंक्रमणं स्यात् ॥४१७॥ अथ प्रकृतीनां संक्रमणनियममाह—

क्षपणाके विषयमें अपूर्वकरण परिणामसे मिथ्यात्वके अन्तिम काण्डककी द्विचरम फालि पर्यन्त गुणसंक्रमण होता है और अन्तिम फालीमें सर्वसंक्रमण होता है ॥४१६॥

आगे सर्वसंक्रमण रूप प्रकृतियोंको कहते हैं—

पूर्वोक्त तिर्यक् एकादश, उद्वेलन प्रकृति १३, संज्वलन लोभ सम्यक्त्व मिश्रके बिना मोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियाँ और स्त्यानगृद्धि आदि तीन इन बावन प्रकृतियोंमें सर्वसंक्रमण होता है ॥४१७॥

आगे प्रकृतियोंके संक्रमणका नियम कहते हैं—

---

१. ब °मिश्रोवमो° ।

मूवत्तोंभत्तु मूवत्तु मेळुमिप्पत्तु मोंदु ओंदु पन्नेरडुं मूरेडेयोळु नाल्कुगळुभागुत्तं विरली प्रकृतिगळोळु यथाक्रमदिदमोंदुं नाल्कुमेरडुं मूरुं मूरुं नाल्कुमय्दु मेरडुमेरडुं मूरुं संक्रमणंगळप्पुवु—

३९	३०	७	२०	१	१	१२	४	४	४
१	४	२	३	३	४	५	२	२	३

अनंतर मी प्रकृतिगळुमनिवर संक्रमणंगळुमं क्रमदिदं गाथासप्तकदिदं पेळ्दपरु :—

सुहुमस्स बंधघादी सादं संजलणलोह पंचिंदी ।
तेजदुसमवण्णचऊ अगुरुगपरघाद उस्सासं ॥४१९॥

सूक्ष्मस्य बंधघाति सातं संज्वलनलोभपंचेंद्रिये । तैजसद्विकसमचतुरस्रवर्णचतुरगुरुलघु-परघातोच्छ्वासं ॥

सत्थगदी तसदसयं णिमिणुगुदाले अधापवत्तो दु ।
थीणतिबारकसाया संढित्थी अरदिसोगो य ॥४२०॥

शस्तगतित्रसदशकं निर्म्माणमेकान्नचत्वारिंशत्सु । अधाप्रवृत्तस्तु स्त्यानगृद्धित्रिक द्वादश-कषायाः षंडस्त्र्यरतिशोकं च ॥

ज्ञानावरणपंचकमुं अंतरायपंचकमुं दर्शनावरणचतुष्कमुमेंब सूक्ष्मसांपरायन बंधघाति-प्रकृतिगळप्प पदिनाल्कुं सातवेदमुं संज्वलनलोभमुं पंचेंद्रियजातियुं तैजसकार्म्मणशरीरद्वयमुं समचतुरस्रसंस्थानमुं वर्णचतुष्कमुमगुरुलघुकमुं परघातमुमुच्छ्वासमुं प्रशस्तविहायोगतियुं त्रस-बादरपर्य्याप्त प्रत्येक स्थिरशुभसुभगसुस्वर आदेययशस्कीर्तियुमेंब त्रसदशकमुं निर्म्माणमुमेंबी एकान्नचत्वारिंशत्प्रकृतिगळुद्वेल्लनप्रकृतिगळल्लप्पुदरिंदमुद्वेल्लन संक्रमणमिल्ल । विज्झादं सत्तमोत्ति हु अबंधे एंदितो प्रकृतिगळगप्रमत्तगुणस्थानाभ्यंतरदोळु बंधव्युच्छित्ति यिल्लप्पुदरिंद ।

एकान्नचत्वारिंशत्त्रिंशत्सप्तविंशत्येकैकद्वादशत्रिचतुष्केषु क्रमेणैकचतुर्द्वित्रित्रिचतुःपंचद्विद्वित्रिसंक्रमा भवंति ॥४१८॥ ताः प्रकृतीः तासां संक्रमणानि च क्रमशो गाथासप्तकेनाह—

पंचचतुर्ज्ञानदर्शनावरणपंचांतरायाः सातं संज्वलनलोभः पंचेंद्रियं तैजसकार्मणे समचतुरस्रं वर्णचतुष्क-मगुरुलघुकं परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिस्त्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगसुस्वरादेययशस्कीर्तयो निर्माणं चेत्येकान्नचत्वारिंशत्प्रकृतिष्वनुद्वेल्लनप्रकृतित्वान्नोद्वेल्लनसंक्रमणं । 'विज्झादं सत्तमोत्ति हु अबंधे'

उनतालीस, तीस, सात, बीस, एक, एक, बारह, चार, चार चार प्रकृतियोंमें क्रमसे एक, चार, दो, तीन, तीन, चार, पाँच, दो, दो, तीन संक्रमण होते हैं ॥४१८॥

आगे उन प्रकृतियोंको और उनके संक्रमणोंको सात गाथाओंके द्वारा कहते हैं—

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, सातावेदनीय, संज्वलन लोभ, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णादि चार, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर,

विध्यातसंक्रमणमिल्ल ॥ एत्तो गुणो अबंधे एंदितु गुणसंक्रमणलक्षणरहितत्ववदिंद गुणसंक्रमणमिल्ल। मुंपेळ्द बावण्णप्रकृतिगळोळु पठियिसल्पडदवप्पुदरिंदं सर्व्वसंक्रमणमिल्लदु कारणमागि अधः-प्रवृत्तसंक्रममो देयक्कुं। इंतेल्ला प्रकृतिगळगे व्यतिरेकं विचारणीयमक्कुं।

मिथ्यात्वं बध्यमानमागुत्तिदो डं मिथ्यादृष्टियोळु अधःप्रवृत्तसंक्रमणमिल्लेकेंदोडे सगुण-
५ ट्ठाणम्मि णेव संकमदि एंदितु निषेधमुंटप्पुदरिंदं। संदृष्टिः—

सू	सा	सं	पं	तै	स	व	अ	प	उ	प्र	अ	नि	कूडि
१४	१	१	१	२	१	४	१	१	१	१	१०	१	३९ १

तु मत्ते स्त्यानगृद्धित्रिकमुं द्वादशकषायंगळुं षंढवेदमुं स्त्रीवेदमुं अरतियुं शोकमुं :—

तिरिएयारं तीसे उव्वेल्लणहीण चारि संकमणा।
णिद्दापयला असुहं वण्णचउक्कं च उवघादे ॥४२१॥

तिर्य्यंगेकादश त्रिंशत्सूद्वेल्लनहीन चत्वारि संक्रमणानि। निद्राप्रचलाशुभवर्णचतुष्कोपघाते ॥

१० सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदिसंठाणदसं णीचापुण्णथिरछक्कं च ॥४२२॥

सप्तानां गुणसंक्रमोऽधःप्रवृत्तश्च दुःखमशुभगतिः। संहननसंस्थानदशकं नीचापूर्णं स्थिर-षट्कं च ॥

इत्यप्रमत्तगुणाभ्यंतरे बंधच्छेदाभावान्न विध्यातसंक्रमणं। 'एत्तो गुणो अबंधे' इति न गुणसंक्रमणं। प्रागुक्तवा-
१५ वण्णे पाठाभावान्न सर्वसंक्रमणं तेनाधःप्रवृत्तसंक्रमणमेकमेव स्यात्। एवं सर्वप्रकृतीनां व्यतिरेकं विचारयेत्। मिथ्यात्वे बध्यमाने मिथ्यादृष्टावधःप्रवृत्तसंक्रमणं न, कुतः ? सगुणट्ठाणम्मि णेव संकमदीति निषेधात्। पुनः स्त्यानगृद्धित्रयं द्वादश कषायाः षंढस्त्रीवेदौ अरतिः शोकः—॥४१९-४२०॥

आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण इन उनतालीस प्रकृतियोंमें एक अधःप्रवृत्त संक्रमण ही होता है; क्योंकि ये उद्वेलन प्रकृतियाँ नहीं हैं इसलिए इनमें उद्वेलन संक्रमण नहीं होता। विध्यात
२० संक्रमण अबन्ध दशामें सातवें गुणस्थान तक कहा है। अप्रमत्तगुणस्थान तक इनकी बन्ध व्युच्छित्ति नहीं होती। अतः विध्यात संक्रमण भी नहीं होता। इसीसे गुणसंक्रमण भी नहीं होता। वह भी अबन्धदशामें होता है। पूर्वमें कही गयीं सर्वसंक्रमणकी बावन प्रकृतियोंमें न होनेसे सर्वसंक्रमण भी नहीं होता। अतः एक अधःप्रवृत्त संक्रमण ही होता है। इसी प्रकार सभी प्रकृतियोंमें संक्रमणका विचार करना चाहिए।

२५ शंका—मिथ्यात्वका बन्ध होनेपर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अधःप्रवृत्त संक्रमण क्यों नहीं होता ?

समाधान—अपने गुणस्थानमें इनके संक्रमणका निषेध किया है।

तिर्य्यगेकादशप्रकृतिगळुमं बिंतु त्रिंशत्प्रकृतिगळोळुद्वेल्लन हीनमागि चतुःसंक्रमणंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

थि	क	षं	स्त्री	अर	शोक	ति	कूडि
३	१२	१	१	१	१	११	३० ४

मत्तं निद्रेयुं प्रचलेयुं अशुभवर्णचतुष्कमुमुपघातमुमेंब सप्तप्रकृतिगळगे गुणसंक्रमणमुं अधःप्रवृत्तसंक्रमणमुमेरडक्कुं। संदृष्टिः—

नि	प्र	अ व	उ	कूडि
१	१	४	१	७ २

असातवेदनीयमप्रशस्तविहायोगतियुं आद्यरहित संहननपंचकमुं संस्थानपंचकमुं नीचै- ५
र्गोत्रमुमपर्याप्तमुमस्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्त्तियेंबऽस्थिरषट्कमुमेंब ॥

वीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते ।
बिज्झादगुणं सव्वं सम्मे विज्झादपरिहीणा ॥४२३॥

विंशतेर्व्विध्यातोऽधःप्रवृत्तो गुणश्च मिथ्यात्वे । विध्यातगुणः सर्व्वे सम्यक्त्वे विध्यात-
परिहीनाः ॥ १०

विंशतिप्रकृतिगळगे विध्याताधाप्रवृत्तगुणसंक्रमणमेंब भागहारत्रयमक्कुं । संदृष्टिः—

अ	अ.वि	सं	सं	नि	अ	अ	अ	दु	दु	आ	अ	कूडि
१	१	५	५	१	१	१	१	१	१	१	१	२० ३

मिथ्यात्वप्रकृतियोळु विध्यातगुणसर्व्वसंक्रमणमेंब भागहारत्रयमक्कुं मि सम्यक्त्वप्रकृति-
३
योळु विध्यातपरिहीन भागहारचतुष्टयमुमक्कुं । सम्य १ ॥
४

तिर्यगेकादशं चेति त्रिंशत्प्रकृतिषूद्वेल्लनवर्जितचत्वारि संक्रमणानि स्युः । पुनः निद्रा प्रचला अशुभवर्ण-चतुष्कमुपघातश्चेति सप्तसु गुणसंक्रमणमधःप्रवृत्तसंक्रमणं च । असातवेदनीयमप्रशस्तविहायोगतिः, आद्यं विना १५
पंच पंच संहननसंस्थानानि, नीचैर्गोत्रमपर्याप्तमस्थिराशुभदुर्भगदुःस्वरानादेयायशस्कीर्तय इति ॥४२१–४२२॥

विंशतौ विध्याताधःप्रवृत्तगुणसंक्रमणानि, मिथ्यात्वे विध्यातगुणसर्वसंक्रमणानि, सम्यक्त्वप्रकृतौ

स्त्यानगृद्धि आदि तीन, बारह कषाय, नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अरति, शोक, तिर्यक् एकादश, इन तीस प्रकृतियोंमें उद्वेलन बिना चार संक्रमण होते हैं। निद्रा, प्रचला, अशुभ वर्णादि चार, उपघात इन सात प्रकृतियोंमें गुणसंक्रमण और अधःप्रवृत्त संक्रमण होते हैं । २०
असाता वेदनीय, अप्रशस्त विहायोगति, अन्तके पाँच संस्थान, पाँच संहनन, नीचगोत्र, अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय अयशस्कीर्ति, इन बीसमें विध्यात, अधः-

सम्मविहीणुव्वेल्ले पंचेव य तत्थ होंति संकमणा ।
संजलणतिए पुरिसे अधापवत्तो य सव्वो य ॥४२४॥

सम्यक्त्वविहीनोद्वेल्लनप्रकृतिषु पंचैव च तत्र भवंति संक्रमणानि । संज्वलनत्रये पुरुषे अधाप्रवृत्तश्च सर्वश्च । सम्यक्त्वप्रकृतिरहित द्वादशोद्वेल्लनप्रकृतिगळोळु उद्वेल्लनप्रकृतिगळप्पुदरिंदमुद्वेल्लनगुणसंक्रमण सर्वसंक्रमणहारत्रयं सिद्धमक्कुं । बंधे अधापवत्तो एंदितु स्वस्वबंधव्युच्छित्तिपर्यंतमधः प्रवृत्तभागहारं सिद्धमक्कुं । विज्झादस्सत्तमोत्ति हु अबद्धे एंदितु विध्यातमुं सिद्धमप्पुदरिंदं भागहारपंचकं सिद्धमक्कुं । संदृष्टि :—

अ	मि	सु	ना	उ	म	कूडि
२	१	२	४	१	२	१२
						५

संज्वलनक्रोधमानमायापुरुषवेदंगळेंब नाल्करोळु अधाप्रवृत्त सर्वसंक्रमणद्वयमक्कुमल्लि संज्वलनत्रयनवकबंधक्के बंधरहितत्वदोळु गुणसंक्रमणप्राप्ति यिल्लेकेंदोडे सूत्रोक्तहारद्वयनियमप्पुदरिंदं संदृष्टि :—

सं	क	पुं	कूडि
३		१	४
			२

ओरालदुगे वज्जे तित्थे विज्झादधापवत्तो य ।
हस्सरदिभयजुगुच्छे अधापवत्तो गुणो सव्वो ॥४२५॥

औदारिकद्विके वज्रे तीर्थे विध्याताधाप्रवृत्तौ च । हास्यरतिभयजुगुप्सास्वधाप्रवृत्तो गुणः सर्वः ॥

विध्यातवर्जितानि चत्वारि ॥४२३॥

सम्यक्त्वं विना द्वादशोद्वेल्लनप्रकृतिषु पंचैव संक्रमणानि भवंति । संज्वलनक्रोधमानमायापुंवेदेष्वधःप्रवृत्तः सर्वसंक्रमणं च । न चैषां बंधव्युच्छित्तौ गुणसंक्रमणप्राप्तिः सूत्रे हारद्वयस्यैव नियमात् ॥४२४॥

औदारिकद्विके वज्रवृषभनाराचे तीर्थे च विध्यातोऽधःप्रवृत्तश्च । तेषु प्रशस्तत्वाद् गुणसंक्रमणं नास्ति । तीर्थस्य नारकाभिमुखे नारकापर्याप्ते च मिथ्यादृष्टौ विध्यातोऽस्ति । हास्यरतिभयजुगुप्सास्वधःप्रवृत्तसंक्रमणं गुणसंक्रमणं सर्वसंक्रमणं च ॥४२५॥

प्रवृत्त और गुणसंक्रमण होते हैं। मिथ्यात्वमें विध्यात गुण और सर्व संक्रमण होते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिमें विध्यातके बिना चार संक्रमण होते हैं ॥४१९-४२३॥

सम्यक्त्व मोहनीयके बिना बारह उद्वेलन प्रकृतियोंमें पाँचों संक्रमण होते हैं। संज्वलन क्रोध मान माया और पुरुषवेदमें अधःप्रवृत्त और सर्वसंक्रमण होते हैं। इन प्रकृतियोंमें बन्धव्युच्छित्तिके होनेपर भी गुणसंक्रमण सम्भव नहीं, क्योंकि गाथामें दो ही संक्रमणका विधान किया है ॥४२४॥

औदारिक शरीर व अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच, और तीर्थंकरमें विध्यात और अधःप्रवृत्त दो संक्रमण ही होते हैं। ये प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं इससे इनमें गुणसंक्रमण नहीं होता। किन्तु नरकके अभिमुख मिथ्यादृष्टि मनुष्यके तथा उसके मरकर नरकमें उत्पन्न होनेपर अपर्याप्त अवस्थामें तीर्थंकर प्रकृतिमें विध्यात संक्रमण कहा है। हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इनमें अधःप्रवृत्त संक्रमण, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण होते हैं ॥४२५॥

औदारिकद्विक वज्रवृषभनाराच तीर्थमुमेंब नाल्कुं प्रकृतिगळोळु प्रशस्तत्वदिंदं गुणसंक्रममिल्ल। तीर्थंकरक्के नरकाभिमुखनोळं नारकापर्य्याप्तकनोळं मिथ्यादृष्टियोळु विध्यातमक्कुं। विध्यातसंक्रमणमुमधाप्रवृत्तसंक्रमणमुमेंब संक्रमणद्वयमक्कुं। संदृष्टि :— औ। व। ती। कूडि
२।१।१। ४
२

हास्यरतिभयजुगुप्से गळेंब नाल्कुं प्रकृतिगळोळाथाप्रवृत्तसंक्रमणमुं गुणसंक्रमणमुं सर्व्वसंक्रमणमुमेंब संक्रमणत्रयमक्कुं। संदृष्टि :— ह। १। र १। भ १। जु १ कूडि ४ ५
३

सम्मत्तूणुव्वेल्लणथीणति तीसं च दुक्खवीसं च।
वज्जोरालदु तित्थं मिच्छं विज्झाद सत्तट्ठी ॥४२६॥

सम्यक्त्वप्रकृतिरहितमाद पन्नेरडुमुद्वेल्लनप्रकृतिगळुं स्त्यानगृद्धित्रयादि त्रिंशत्प्रकृतिगळुमसातवेदादिविंशतिप्रकृतिगळुं वज्रवृषभनाराचशरीरसंहननमुमौदारिकद्विकमुं तीर्थमुं मिथ्यात्वप्रकृतियुमेंब सप्तषष्टिप्रकृतिगळु विध्यातसंक्रमणमनुळ्ळुवक्कुं। उ १२। थि ३०। अ २०। व १। औ २। ती १० १। मि १। कूडि विध्या ६७॥

मिच्छूणिगिवीससयं अधापवत्तस्स होंति पयडीओ।
सुहुमस्स बंधघादिं पहुडो उगुदालदुगतित्थं ॥४२७॥

मिथ्यात्वप्रकृतिगाथाप्रवृत्त संक्रममिल्लप्पुदरिंदं मिथ्यात्वप्रकृतिरहितमागि युदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तोंदु १२१। अथाप्रवृत्तसंक्रमप्रकृतिगळप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायन बंधघातिगळु मोदलादुगुदाळ- १५
प्रकृतिगळुमौदारिकद्विकमुं तीर्थमुं—

नज्जं पुं संजलणत्तिऊणगुणसंकमस्स पयडीओ।
पणहत्तरि संखाओ पयडीणियमं विजाणाहि ॥४२८॥

वज्रवृषभनाराचशरीरसंहननमुं पुंवेदमुं संज्वलनत्रयमुमिंतु नाल्वत्तेळु प्रकृतिगळिंदमूनमादुदयप्रकृतिगळु नूरिप्पत्तेरडुं १२२। ४७। गुणसंक्रमणप्रकृतिगळप्पुवेप्पत्तर्दे बुदत्थं। ७५॥ २०

सम्यक्त्वोनद्वादशोद्वेल्लनाः स्त्यानगृद्धित्रयादित्रिंशत्, असातादिविंशतिः, वज्रर्षभनाराचमौदारिकद्विकं तीर्थकरत्वं मिथ्यात्वं चेति सप्तषष्टिः विध्यातसंक्रमणाः स्युः ॥४२६॥

मिथ्यात्वोनाः एकविंशतिशतं अधःप्रवृत्तसंक्रमणप्रकृतयो भवंति। सूक्ष्मसांपरायस्य बंधघातिप्रभृत्येकान्नचत्वारिंशत् औदारिकद्विकं तीर्थकरत्वं ॥४२७॥

सम्यक्त्व प्रकृतिके बिना बारह उद्वेलना प्रकृति, स्त्यानगृद्धि तीन आदि तीस, २५
असातावेदनीय आदि बीस, वज्रवृषभनाराच, औदारिकद्विक, तीर्थंकर मिथ्यात्व, ये सड़सठ प्रकृतियाँ विध्यात संक्रमणकी हैं ॥४२६॥

मिथ्यात्व बिना एक सौ इक्कीस प्रकृतियाँ अधःप्रवृत्त संक्रमणकी हैं। सूक्ष्म साम्परायमें जिनका बन्ध होता है वे घातिकर्मोंकी चौदह प्रकृति आदि उनतालीस, औदारिकद्विक,

पूर्व्वोक्तोद्वेल्लनप्रकृतिगळु पदिमूरु १३। विध्यात ६७। अधा १२१। गुणसंक्रमप्रकृतिगळेप्पत्तप्पु ७५। सर्व्वसंक्रम प्रकृतिगळय्वत्तेरडु ५२॥

अनंतरं स्थित्यनुभागंगळ बंधक्कं प्रदेशसंक्रमणक्कं स्वामित्वगुणस्थान संख्येयं पेळ्दपरु :—

ठिदियणुभागाणं पुण बंधो सुहुमोत्ति होदि णियमेण ।
बंधपदेसाणं पुण संकमणं सुहुमरागोत्ति ॥४२९॥

स्थित्यनुभागानां पुनर्बंधः सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं भवति नियमेन । बंधप्रदेशानां पुनः संक्रमणं सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं ॥

स्थित्यनुभागंगळबंधं मत्ते सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्य्यंतमक्कुमेकेंदोडे ठिदि अणुभागा कसायदो होंति येंदु सूक्ष्मलोभकषायोदयमुळ्ळल्लि पर्य्यंत यथासंभवमागि स्थित्यनुभागबंधमक्कुमल्लिदं मेलें कारणाभावे कार्य्यस्याप्यभावः येंदितु स्थित्यनुभागबंधमिल्लप्पुदरिंदमेकसमयस्थितिकमप्प योगहेतुकसातबंधक्के प्रकृतिप्रदेशबंधमात्रमेयक्कुं नियमदिंदं। मत्ते बंधप्रदेशंगळ संक्रमणमुं सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं यथासंभवमागियक्कु मेकेंदोडे बंधे अधापवत्तो येंदु स्थितिबंधमुळ्ळल्लिपर्य्यंतं प्रदेशसंक्रममुंटप्पुदरिंदं ॥

अनन्तरं पंचभागहारंगळगल्पबहुत्वमं गाथाषट्कदिंदं पेळ्दपरु :—

सव्वस्सेकं रूवं असंखभागो दु पल्लछेदाणं ।
गुणसंकमो दु हारो ओकड्डुक्कड्ढणं तत्तो ॥४३०॥

सर्व्वस्यैकं रूपमसंख्यभागस्तु पल्यच्छेदानां । गुणसंक्रमस्तु हारोऽपकर्षणोत्कर्षणस्ततः ॥

वज्रर्षभनाराचं पुंवेदः संज्वलनत्रयं चेति सप्तचत्वारिंशदूनद्वाविंशतिशतं गुणसंक्रमप्रकृतयो भवंति, पंचसप्ततिरित्यर्थः ॥४२८॥ अथ स्थित्यनुभागबंधस्य प्रदेशबंधसंक्रमणस्य च गुणस्थानसंख्यामाह—

स्थित्यनुभागयोर्बंधः पुनः सूक्ष्मसांपरायपर्यंतमेव स्यात्, तयोः कषायहेतुत्वात् । सातस्य तदुपरि बंधेऽपि तस्य प्रकृतिप्रदेशमात्रत्वात् । पुनः प्रदेशबंधानां संक्रमणमपि सूक्ष्मसांपरायपर्यंतमेव 'बंधे अधापवत्तो' इति स्थितिबंधपर्यंतमेव तत्संभवात् ॥४२९॥ अथ पंचभागहाराणामल्पबहुत्वं गाथाषट्केनाह—

तीर्थंकर, वज्रवृषभनाराच, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध मान माया, इन सैंतालीस प्रकृतियोंसे रहित एक सौ बाईस अर्थात् पिचहत्तर प्रकृतियोंमें गुणसंक्रमण होता है ॥४२७-४२८॥

आगे स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके संक्रमणके गुणस्थानोंकी संख्या कहते हैं—

स्थिति और अनुभागका बन्ध सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त ही होता है क्योंकि वे दोनों बन्ध कषायहेतुक होते हैं। यद्यपि सातावेदनीय सूक्ष्मसाम्परायके बाद भी बँधता है तथापि वहाँ उनका प्रकृतिबन्ध प्रदेशबन्ध ही होता है। पुनः बन्धको प्राप्त हुए परमाणुओंका संक्रमण भी सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त ही होता है; क्योंकि 'बंधे अधापवत्तो' इस गाथाके अनुसार जहाँ तक स्थितिबन्ध होता है वहीं तक संक्रमण होता है ॥४२९॥

आगे पाँच भागहारोंका अल्प-बहुत्व छह गाथाओंसे कहते हैं—

सव्वसंक्रमणभागहारं सर्व्वतः स्तोकमदक्के प्रमाणमेकरूपमक्कुं । १ । तु मत्त मदं नोडलुमसंख्यातगुणमप्प पल्यच्छेदासंख्यातैकभागं गुणसंक्रमभागहारप्रमाणमक्कु छे
ə ə ə ə
मदं नोडलपकर्षणोत्कर्षणभागहारमसंख्यातगुणितमागुत्तळं पल्यच्छेदाऽसंख्यातैकभागमात्रमेयक्कु छे मदं नोडलु :—
ə ə ə

हारं अधापवत्तं तत्तो जोगंमि जो दु गुणगारो ।
णाणागुणहाणिसला असंखगुणिदक्कमा होंति ॥४३१॥

हारोऽधाप्रवृत्तस्ततो योगे यस्तु गुणकारो नानागुणहानिशलाका असंख्यगुणितक्रमा भवंति ॥

आ उत्कर्षणापकर्षणभागहारमं नोडलधाप्रवृत्तसंक्रमभागहारमसंख्यातगुणितमागुत्तळं पल्यच्छेदासंख्यातैकभागप्रमाणमेयक्कुं छे ततः अदं नोडलुं योगदोळाउदों दु गुणकारमदुवुम-
ə ə
संख्यातगुणितमागुत्तलु पल्यच्छेदाऽसंख्यातैक भागमेयक्कुं छे तु मत्तदं नोडलु स्थितिय
ə
नानागुणहानिशलाकेगळुमसंख्यातगुणितंगळागुत्तळं पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदराशिविरहितपल्यार्द्ध-
च्छेदराशिप्रमितंगळप्पुवु । छे व छे ॥

सर्वसंक्रमणभागहारः सर्वतः स्तोकस्तस्य प्रमाणमेकरूपं १ । तु-पुनः ततोऽसंख्यातगुणः पल्यच्छेदासंख्या-
तैकभागो गुणसंक्रमणभागहारः छे ततोऽपकर्षणोत्कर्षणभागहारावसंख्यातगुणावपि प्रत्येकं पल्यच्छेदासंख्या-
ə ə ə ə
तैकभागः छे ततः अधःप्रवृत्तसंक्रमभागहारोऽसंख्यातगुणितोऽपि पल्यच्छेदासंख्यातैकभागः छे ततो योगे
ə ə ə ə ə

सर्वसंक्रमण भागहार सबसे थोड़ा है । अतः उसका प्रमाण एक है । आशय यह है कि अन्तकी फालिमें जितने परमाणु शेष रहे थे; उनमें इस भागहारके प्रमाण एकसे भाग देनेपर सर्व ही परमाणु आये । वे सब अन्य प्रकृतिरूप परिणमे तो उसे सर्वसंक्रमण जानना । उससे असंख्यातगुणा गुणसंक्रमण भागहार है, जिसका प्रमाण पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग है । सो गुणसंक्रमण रूप प्रकृतियोंके परमाणुओंमें इस भागहारके प्रमाणसे भाग देनेपर जो परिमाण आवे उतने परमाणु यथायोग्य कालमें प्रतिसमय असंख्यात गुणे होकर अन्य प्रकृतिरूप परिणमन जब करें तो वह गुण संक्रमण है । उससे उत्कर्षण भागहार और अपकर्षण भागहार असंख्यात गुणे हैं । तथापि ये दोनों पृथक्-पृथक् पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । यद्यपि इन पाँच भागहारोंमें इनका कथन नहीं है तथापि जहाँ उत्कर्षण भागहार या अपकर्षण भागहारका कथन आवे वहाँ ऐसा जानना । इनसे अधः-प्रवृत्त संक्रमण भागहार असंख्यात गुणा है तथापि वह भी पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें

तत्तो पल्लसलायच्छेदहिया पल्लछेदणा होंति ।
पल्लस्स पढममूलं गुणहाणीवि य असंखगुणिदकमा ॥४३२॥

ततः पल्यशलाकाच्छेदाधिकाः पल्यच्छेदना भवंति । पल्यस्य प्रथममूलं गुणहानिरपि चाऽसंख्यातगुणितक्रमाः ॥

ततः आ स्थितिनानागुणहानिशलाकेगळं नोडलु पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदाधिकंगळु पल्यार्द्धच्छेदशलाकेगळप्पुवु । छे ॥ अदु कारणमागि नानागुणहानिशलाकेगळु पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदराशिविरहितपल्यार्द्धच्छेदप्रमितंगळेंदु पेळल्पट्टुवु । अपि आ पल्यच्छेदशलाकेगळं नोडलु पल्यप्रथममूलमसंख्यातगुणितमक्कु मू १ मेंतेंदोडे द्विरूपवर्गधारेयोळु पल्यच्छेदराशियिंदं मेले पल्यप्रथममूलमसंख्यातवर्गस्थानंगळं नडेदु पुट्टिदुदप्पुदरिंदं । च अदं नोडलु स्थितिगुणहान्यायाममसंख्यातगुणितमक्कु प १ मेंतेंदोडा प्रथममूलगुणकारं सप्ततिचतुर्वारकोटिपल्यप्रथममूलंगळं स्थितिछे व छे
नानागुणहानिशलाकेगळिंदं भागिसिदेकभागमप्पुदरिंदं । मू १ । मू १ । ७० । को ४ गुणिसिदोछे व छे
डिदु । प १ ॥
छे व छे

यो गुणकारः सोऽसंख्यातगुणेऽपि पल्यच्छेदासंख्यातैकभागः छे । तु-पुनस्ततः स्थितेर्नानागुणहानिशलाकाराशिर-
८
संख्यातगुणोऽपि पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदमात्रः छे—व—छे । ततः पल्यार्धच्छेदशलाकाराशिः पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदाधिकः छे अपि ततः पल्यप्रथममूलमसंख्यातगुणं मू १, द्विरूपवर्गधारायां तस्योपर्यसंख्यातवर्गस्थानान्यतीत्योत्पन्नत्वात् । च ततः स्थितिगुणहान्यायामोऽसंख्यातगुणः प १ स्थितिनानागुणछे—व—छे
हानिशलाकाभक्तसप्ततिचतुर्वारकोटिगुणितपल्यप्रथममूलवर्गमात्रत्वात् मू १ मू १ ७० को ४ गुणिते सत्येवं ।
छे—व—छे

भाग है । सो जो अधःप्रवृत्त संक्रमण रूप प्रकृतियाँ हैं उनके परमाणुओंमें इसका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतने परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होकर जहाँ परिणमे वहाँ अधःप्रवृत्त संक्रमण जानना । इससे योगोंके कथनमें जो गुणकार कहा है वह असंख्यात गुणा है । तथापि वह भी पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग है । उससे जघन्य योगस्थानको गुणा करनेपर उत्कृष्ट योगस्थान होता है । इससे कर्मोंकी स्थितिकी नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण असंख्यात गुणा है । सो पल्यके अर्धच्छेदोंमें-से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंको घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना है । उससे पल्यके अर्धच्छेदोंका प्रमाण अधिक है । सो पल्यकी वर्गशलाकाके जितने अर्धच्छेद होते हैं उतना अधिक है । उससे पल्यका प्रथम वर्गमूल असंख्यातगुणा है । क्योंकि द्विरूपवर्गधारामें पल्यके अर्धच्छेदरूप स्थानसे असंख्यात स्थान जानेपर पल्यका प्रथम वर्गमूल होता है । उससे कर्मकी स्थितिकी एक गुणहानिके समयोंका प्रमाण असंख्यात गुणा है । क्योंकि सात सौ को चार बार एक कोटिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उससे गुणित पल्यको स्थितिकी नाना गुणहानिके प्रमाणका भाग देनेपर यही प्रमाण आता है ।

---

१. इदर अभिप्रायं मुंदेव्यक्तमादपुदु ।

अण्णोण्णब्भत्थं पुण पल्लमसंखेज्जरूवगुणिदकमा ।
संखेज्जरूवगुणिदं कम्मुक्कस्सठिदी होदि ॥४३३॥

अन्योन्याभ्यस्तः पुनः पल्यमसंख्येयरूपगुणितक्रमौ । संख्येयरूपगुणिता कर्म्मोत्कृष्टस्थितिर्भवति ॥

पुनरन्योन्याभ्यस्तराशिः मत्ता स्थितिगुणहान्यायामं नोडलुमन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यातगुणितमक्कु प मेंतेंदोडवुवुं नानागुणहानिशलाकामात्रद्विक संवर्गसंजनितमन्योन्याभ्यस्तराशि-
व
यप्पुदरिंदं । पल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यप्रमितमक्कुमप्पुदरिंदमसंख्यातगुणितत्वं सिद्धमक्कुमदं नोडलु पल्यमसंख्यातगुणितमक्कुमन्योन्याभ्यस्तराशियं पल्यवर्गशलाकाराशियिदं गुणिसिदोडे पल्यमक्कुमप्पुदरिंदं प आ पल्यमं नोडलु कर्म्मोत्कृष्टस्थिति संख्यातरूपगुणितमक्कु प १ मा गुणकारभूत संख्यातप्रमाणमनरियल्वेडि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे एकसागरोपमक्के पत्तु कोटी कोटि पल्यंगळागुत्तं विरलेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमंगळ्गेनितु पल्यंगळप्पुवेंदितु । प्र । सा १ । फ प १० । को २ । इ सा । ७० । को २ । बंद लब्धं सप्ततिचतुर्वारकोटिपल्यंगप्पुवप्पुदरिंदं गुणकारभूत संख्यात प्रमाणं सिद्धमादुदु ॥

अंगुलअसंखभागं विज्झादुव्वेल्लणं असंखगुणं ।
अणुभागस्स य णाणागुणहाणिसला अणंताओ ॥४३४॥

अंगुलाऽसंख्यातभागो विध्यात उद्वेल्लनोऽसंख्यगुणोऽनुभागस्य नानागुणहानिशलाका अनंताः ॥

प १ ततोऽन्योन्याभ्यस्तराशिरसंख्यातगुणः प नानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नत्वात् । ततः पल्यम-
छे–व–छे
संख्यातगुणं पल्यवर्गशलाकागुणितत्वात् प । ततः कर्मोत्कृष्टस्थितिः संख्यातगुणा प १ । यद्येकसागरोपमस्य दशकोटाकोटिपल्यानि तदा सप्ततिकोटाकोटीनां कतीति सप्ततिचतुर्वारकोटिगुणकारसंभवात् । ततो विध्यातसंक्रम-

---

उससे कर्मकी स्थितिकी अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण असंख्यातगुणा है; क्योंकि नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर उन्हें परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण होता है। उससे पल्यका प्रमाण असंख्यातगुणा है; क्योंकि उस अन्योन्याभ्यस्त राशिके प्रमाणको पल्यकी वर्गशलाकासे गुणा करनेपर पल्य होता है। उससे कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण संख्यातगुणा है, क्योंकि एक सागरके दस कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं तो बहत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके कितने होंगे। चार बार एक कोटिसे सात सौको गुणा करे उतने पल्य हुए। उससे विध्यात संक्रमण भागहार असंख्यातगुणा है। वह सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सो विध्यात संक्रमणकी प्रकृतियोंके परमाणुओंको उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने परमाणु जहाँ अन्य प्रकृतिरूपसे परिणमन करें वहाँ विध्यात संक्रम जानना। उससे उद्वेलन भागहार असंख्यातगुणा है। वह भी सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सो उद्वेलन प्रकृतिके परमाणुओंको उससे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उतने

आ कर्म्मोत्कृष्टस्थितियं नोडलु विध्यात संक्रमभागहारमसंख्यातगुणितमक्कुमदुवुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागप्रमितमक्कु २ मदं नोडलुद्वेल्लनभागहारमसंख्यातगुणितमक्कुमदुवुं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागप्रमाणमक्कु २ मनुभागविषयनानागुणहानिशलाकेगळु अनंतंगळप्पुवु ख—

गुणहाणि अणंतगुणं तस्स दिवड्ढं णिसेयहारो य ।
अहियकमा अण्णोण्णब्भत्थो रासी अणंतगुणो ॥४३५॥

गुणहानिरनंतगुणा तस्या द्वयर्द्धो निषेकहारश्चाधिकक्रमौ । अन्योन्याभ्यस्तराशिरनंतगुणः ॥

अनुभागविषयनानागुणहानिशलाकेगळं नोडलनुभागविषयगुणहान्यायाममनंतगुणमक्कु । ख । ख । मदं नोडलनुभागविषयप्रथमवर्गणानयननिमित्तद्वर्द्धगुणहानि एकगुणहानि अर्द्धदिंदमधिकमक्कु ख ख ३ । मदं नोडलु दोगुणहानियुमेकगुणहान्यर्द्धदिंदमधिकमक्कु । ख । ख । २ ॥ मा २ निषेकहारमं नोडलु अनुभागविषयाऽन्योन्याभ्यस्तराशियुमनंतानंतगुणितमक्कु । ख । ख । २ । ख ।

मिल्लि समुच्चयसंदृष्टि :—

स	गण	अ । उ	अथा	यो. गु.	नाना	प	प	गुण	अन्यो	प	क. उ	४ विध्या	५ उद्वे
१	छे ३ ० ० ०	छे ० ० ०	छे ० ०	छे ०	छेछे	छे	म ११	प १ छे व छे	प व	प	प १	२ ० ०	२ ०

अनु.नाना	अनु. गु	अनु.दिवा	निषेक	अन्योन्या
ख	ख ख	ख ख ३ २	ख । ख २	ख । ख २ ख

भागहारोऽसंख्यातगुणः । स च सूच्यंगुलासंख्यातैकभागः २ तत उद्वेल्लनभागहारोऽसंख्यातगुणः सोऽपि ० ०
तदालापः २ । ततोऽनुभागस्य नानागुणहानिशलाका अनंता ख । ततो नानागुणहान्यायामोऽनंतगुणः ख ख । ततो ०
द्वयर्धगुणहानिरर्धाधिका ख ख ३ । ततो दोगुणहानिरर्धाधिका ख ख २ । ततोऽन्योन्याभ्यस्तराशिरनंतगुणः ख ख २

परमाणु जहाँ अन्य प्रकृतिरूप परिणमन करें वहाँ उद्वेलन संक्रमण जानना। उससे कर्मोंके अनुभागके कथनमें नाना गुणहानि शलाका अनन्त प्रमाण है। उससे उस अनुभागकी एक गुणहानिके आयामका प्रमाण अनन्तगुणा है। उससे उसकी ही डेढ़ गुणहानिका प्रमाण उसके आधे प्रमाण अधिक है। उससे उसकी ही दो गुणहानिका प्रमाण आधे गुणहानिके

[इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यंमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि सिद्धांत-चक्रवर्त्तिश्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्ण विरचितगोम्मटसार कर्णाटवृत्तिजीव-तत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांड पंचभागहार द्वितीयचूलिकाधिकारं निरूपिसल्पट्टुदु ॥]

अनंतरं दशकरणतृतीयचूलिकेयं चतुर्दशगाथासूत्रंगळिंद पेळलुपक्रमिसि तदादियोळु निज- ५
श्रुतगुरुगळं नमस्कारमं माडिदपं ।

जस्स य पायपसाएणणंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो णमामि तं अभयणंदिगुरुं॥४३६॥

यस्य च पादप्रसादेनानंतसंसारजलधिमुत्तीर्णो । वीरेंद्रणंदिवत्सो नमामि तमभयणंदिगुरुं ॥

आवनानोव्वं श्रुतगुरुविन पादप्रसाददिंदं वीरेंद्रणंदिवत्सं संसारजलधियनुत्तरिसिदनंतप्पऽ- १०
भयनंदिगुरुवं नमस्करिसुवें ।

बंधुक्कड्ढणकरणं संकममोकड्ढुदीरणा सत्तं ।
उदयुवसामणिधत्ती णिकाचणा होंति पडिपयडी ॥४३७॥

बंधोत्कर्षणकरणं संक्रमापकर्षणोदीरणासत्त्वमुदयोपशमनिधत्तिनिकाचना भवंति प्रति-प्रकृति ॥ १५

बंधकरणमुमुत्कर्षणकरणमुं संक्रमणकरणमुं अपकर्षणकरणमुमुदीरणाकरणमुं सत्वकरणमु-मुदयकरणमुमुपशमकरणमुं निधत्तिकरणमुं निकाचनकरणमुमेंदितु दशकरणंगळु प्रत्येकमेकैक-प्रकृतिगळप्पुवु ।

---

२ ख ॥४३०–४३५॥

इति पंचभागहाराख्या द्वितीयचूलिका व्याख्याता । २०

अथ दशकरणचूलिकां चतुर्दशगाथासूत्रैर्वक्तुमुपक्रममाणस्तदादौ निजश्रुतगुरुं नमस्यति—

यस्य श्रुतगुरोः पादप्रसादेन वीरेंद्रनंदिवत्सः अनंतसंसारजलधिमुत्तीर्णः तमभयनंदिगुरुं नमामि ॥४३६॥

बंधः उत्कर्षणं संक्रमोऽपकर्षणमुदीरणा सत्त्वमुदयः उपशमो निधत्तिर्निष्काचनेति दश करणानि प्रकृति[1] प्रकृतिं भवंति ॥४३७॥

आयाम प्रमाण अधिक है, उससे उस अनुभागकी अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण अनन्त- २५
गुणा है। इस प्रकार पाँच भागहारोंके अल्पबहुत्वके प्रसंगसे दूसरोंके भी अल्पबहुत्वका कथन किया ॥४३०–४३५॥

पंचभागहार चूलिका समाप्त ।

जिस शास्त्रगुरुके चरणोंके प्रसादसे वीरनन्दि और इन्द्रनन्दिका शिष्य मैं नेमिचन्द्रा-चार्य अनन्त संसार समुद्रके पार हो गया उस अभयनन्दि गुरुको नमस्कार करता हूँ॥४३६॥ ३०

बन्ध, उत्कर्षण, संक्रम, अपकर्षण, उदीरणा, सत्त्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना ये दस करण प्रत्येक प्रकृतिमें होते हैं ॥४३७॥

---

१. ब प्रति प्रकृति भ° ।

कम्माणं संबंधो बंधो उक्कड्ढणं हवे वड्ढी ।
संकममण्णत्थगदी हाणी ओकड्ढणं णाम ॥४३८॥

कर्म्मणां संबंधो बंध उत्कर्षणं भवेद्वृद्धिः । संक्रमोऽन्यत्रगतिर्हानिरपकर्षणं नाम ॥

आउदों दु जीवक्के मिथ्यात्वादिपरिणामंगळिंदमाउदों दु पुद्गलद्रव्यं ज्ञानावरणादिकर्म्म-स्वरूपदिंदं परिणमिसुगुमदु मत्ताजीवक्के ज्ञानादिगळं मरसुगुमेंदित्यादिसंबंधं बंधमेंबुदक्कुं । कर्म्मंगळ स्थित्यनुभागंगळ वृद्धियुत्कर्षणमेंबुदक्कुं । परप्रकृतिस्वरूपपरिणमनं संक्रममेंबुदु । स्थित्यनुभागंगळ हानि अपकर्षणमेंबुदक्कुं ॥

अण्णत्थठियस्सुदये संछुहणमुदीरणा हु अत्थित्तं ।
सत्तं सकालपत्तं उदओ होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥४३९॥

अन्यत्र स्थितस्योदये निक्षेपणमुदीरणं खलु अस्तित्वं । सत्त्वं स्वकालप्राप्तमुदयो भवतीति निर्दिष्टं ॥

उदयावलिबाह्यस्थितद्रव्यक्कपकर्षणवशदिंदमुदयावलियोळु निक्षेपणमुदीरणमेंबुदक्कुं । मस्तित्वमं सत्वमेंबुदु । स्वस्थितियनेय्दल्पट्टुदुदयमेंदु पेळल्पट्टुदु ॥

उदये संकमुदये चउसुवि दादुं कमेण णो सक्कं ।
उवसंतं च णिधत्ती णिकाचिदं होदि जं कम्मं ॥४४०॥

उदये संक्रमोदये चतुर्ष्वपि दातुं क्रमेण नो शक्यं । उपशांतं च निधत्ति निकाचितं भवति यत्कर्म्म ॥

मिथ्यात्वादिपरिणामैर्यत्पुद्गलद्रव्यं ज्ञानावरणादिरूपेण परिणमति तच्च ज्ञानादीन्यावृणोतीत्यादि संबंधो बंधः । स्थित्यनुभागयोर्वृद्धिः उत्कर्षणं । परप्रकृतिरूपपरिणमनं संक्रमणं । स्थित्यनुभागयोर्हानिरपकर्षणं नाम ॥४३८॥

उदयावलिबाह्यस्थितस्थितिद्रव्यस्यापकर्षणवशादुदयावल्यां निक्षेपणमुदीरणा खलु, अस्तित्वं सत्त्वं, स्वस्थितिं प्राप्तमुदयो भवतीति निर्दिष्टः ॥४३९॥

मिथ्यात्व आदि परिणामोंसे जो पुद्गलद्रव्य ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है और ज्ञानादिको ढाँकता है उसका सम्बन्ध होना बन्ध है । जो स्थिति अनुभाग पूर्वमें था उसमें वृद्धि होना उत्कर्षण है । जो प्रकृति पूर्वमें बँधी थी उस प्रकृतिके परमाणुओंका अन्य प्रकृति-रूप होना संक्रमण है । जो स्थिति अनुभाग पूर्वमें था उसमें हानि होना अपकर्षण है ॥४३८॥

उदयावलीके बाहर स्थित द्रव्यको अपकर्षणके द्वारा उदयावलीमें लाना उदीरणा है । अर्थात् जिन प्रकृतियोंके निषेकोंका उदयकाल नहीं है, उनकी स्थितिको घटाकर, जो निषेक आवली मात्र कालमें उदयमें आते हैं उनमें उनके परमाणुओंको मिलाना, जिससे उनके साथ ही उनका भी उदय हो वह उदीरणा है । अस्तित्वको अर्थात् पुद्गलोंका कर्मरूपसे रहना सत्त्व है । कर्मोंकी जितनी स्थिति है उस स्थितिका पूरा होना उदय है ॥४३९॥

यत्कर्म आउदों दु कर्म्मस्वरूपपरिणतपुद्गलद्रव्यं उदयावलियोळिक्कलु बारदवनुपशांतमें बुदु । उदयावलियोळिक्कलुं संक्रमियिसलुं शक्यमल्लवुवं निधत्तियें बुदु । उदयावलियोळिक्कलुं संक्रमिसलुमुत्कर्षिसलुं अपकर्षिसलुं शक्यमल्लवुदु निकाचितमें दु पेळल्पट्टुदु ॥

इंतु दशकरण लक्षणंगळं पेळ्द नंतरं प्रकृतिगळगेयुं गुणस्थानंगळगेयुं संभविसुव करणंगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :— ५

संकमणाकरणूणा णवकरणा होंति सव्वआऊणं ।
सेसाणं दसकरणा अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ॥४४१॥

संक्रमकरणोनानि नवकरणानि भवंति सर्व्वायुषां । शेषाणां दशकरणानि अपूर्व्वकरणपर्य्यंतं दशकरणानि ॥

संक्रमकरणरहितनवकरणंगळु नाल्कुमायुष्यंगळोळमक्कुं । शेषप्रकृतिगळेल्लं दशकरणंगळप्पुवु । मिथ्यादृष्टियादियागि अपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतं दशकरणंगळप्पुवु ॥ १०

आदिमसत्तेव तदो सुहुमकसाओत्ति संकमेण विणा ।
छच्च सजोगित्ति तदो सत्तं उदयं अजोगित्ति ॥४४२॥

आदिमसप्तैव ततः सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं संक्रमेण विना । षट् च सयोगपर्य्यंतं ततः सत्त्वमुदयोऽयोगिपर्य्यंतं ॥ १५

ततः अपूर्व्वकरणगुणस्थानदिंदं मेले सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्य्यंतं मोदल सप्तकरणंगळप्पुववरोळु संक्रमकरणं पोरगागि षट्करणंगळु सयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतमप्पुवल्लिदं मेले अयोगि-

---

यत्कर्म उदयावल्यां निक्षेप्तुमशक्यं तदुपशांतं नाम । उदयावल्यां निक्षेप्तुं संक्रमयितुं चाशक्यं तन्निधत्तिर्नाम । उदयावल्यां निक्षेप्तुं संक्रमयितुमुत्कर्षयितुमपकर्षयितुं चाशक्यं तन्निकाचितं नाम भवति ॥४४०॥ एवं दशकरणलक्षणं प्ररूप्य प्रकृतीनां गुणस्थानानां च संभवंति तानि गाथाद्वयेनाह— २०

चतुर्णामायुषां संक्रमकरणं विना नव करणानि भवंति । शेषसर्वप्रकृतीनां दशकरणानि भवंति । मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणपर्यंतं दशकरणानि भवंति ॥४४१॥

ततः अपूर्वकरणगुणस्थानादुपरि सूक्ष्मसांपरायपर्यंतमाद्यान्येव बंधादीनि सप्त करणानि भवंति । तत्रापि

कर्मको उदयावलीमें लानेमें असमर्थ कर देना उपशम है । कर्मका उदयावलीमें लानेमें या अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करनेमें समर्थ न होना निधत्ति है । कर्मका उदयावलीमें २५
लानेमें, अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करनेमें, उत्कर्षण या अपकर्षण करनेमें असमर्थ होना निकाचित है ॥४४०॥

इस प्रकार दस करणोंका निरूपण करके जिन प्रकृतियोंमें और गुणस्थानोंमें ये करण होते हैं उन्हें दो गाथाओंसे कहते हैं—

चारों आयुमें संक्रमकरणके बिना नौ करण होते हैं । शेष सब प्रकृतियोंमें दस करण ३०
होते हैं । मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त ये दस करण होते हैं ॥४४१॥

अपूर्वकरण गुणस्थानसे ऊपर सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त आदिके बन्ध आदि सात ही

केवलिगुणस्थानदोळु सत्वकरणमुमुदयकरणमुमेरडेयप्पुवु ॥

णवरि विसेसं जाणे संकममवि होदि संतमोहम्मि ।
मिच्छस्स य मिस्सस्स य सेसाणं णत्थि संकमणं ॥४४२॥

नविन विशेषं जानोहि संक्रमोपि भवत्युपशांतमोहे । मिथ्यात्वस्य च मिश्रस्य च शेषाणां नास्ति संक्रमणं ॥

उपशांतकषायगुणस्थानदोळु [1]विशेषमुंटप्पुददावुदेंदोडे मिथ्यात्वमिश्रप्रकृतिगळेरडक्के संक्रमणकरणमंटदें तेंदोडे मिथ्यात्वद्रव्यमुमं मिश्रप्रकृतिद्रव्यमुमं सम्यक्त्वप्रकृतिस्वरूपमागि माळपनप्पुदरिंदं शेषप्रकृतिगळ्गे संक्रमणकरणं पोरगागि षट्करणंगळेयप्पुवु । संदृष्टि :—

★	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
व्युच्छि	०	०	०	०	०	०	०	३	०	०	१
करण	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	७	७	७
असत्व	०	०	०	०	०	०	०	०	३	३	३

→

क्षी	स	अ
०	४	२
६	६	२
४	४	८

←

अपूर्व्वकरणनोळु उपशमनिधत्तिनिकाचनंगळ मूरुं व्युच्छित्तियक्कु । अनिवृत्तिकरणनोळं सूक्ष्मसांपरायनोळं व्युच्छित्तिशून्यमक्कुं । उपशांतकषायनोळु मिथ्यात्वमिश्रंगळ्गे संकमणमंटप्पु-

---

संक्रमकरणं विना षडेव सयोगपर्यंतं भवंति । तत उपर्ययोगे सत्त्वोदयकरणे द्वे एव ॥४४२॥

उपशांतकषाये विशेषोऽस्ति । स कः ? मिथ्यात्वमिश्रयोरेव संक्रमणमस्ति तद्द्रव्यस्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण करणात् । शेषप्रकृतीनां संक्रमकारणं विना षडेव । अपूर्वकरणे उपशमनिधत्तिनिकाचनत्रयं व्युच्छित्तिः,

---

करण होते हैं । उनमें-से भी सयोगी पर्यन्त संक्रमके बिना छह ही करण होते हैं । उससे ऊपर अयोगीमें सत्त्व और उदय दो ही करण होते हैं ॥४४२॥

किन्तु उक्त कथनमें विशेष यह है कि उपशान्त कषाय गुणस्थानमें मिथ्यात्व और मिश्र इन दोनोंका संक्रमण भी होता है, इनके परमाणुओंको सम्यक्त्व मोहनीयरूप परिणमाता है । शेष प्रकृतियोंमें संक्रमके बिना छह ही करण होते हैं । इस तरह अपूर्वकरणमें

---

१. म मुंटदावुदें° ।

दरिंदमा प्रकृतिद्वयमं कूर्त्तु संक्रमसहितमागि सप्तकरणंगळप्पुवु। शेषप्रकृतिगळं कुरुत्तु संक्रमण-करणव्युच्छित्ति सूक्ष्मसांपरायनोळेयक्कं अप्पुदरिंदमुपशांतकषायनोळु षट्करणमेयक्कुं। क्षीण-कषायनोळु करणव्युच्छित्तिशून्यमक्कुं। सयोगकेवलियोळु बंधोत्कर्षणापकर्षण उदीरणाकरण-चतुष्कव्युच्छित्तियक्कुमयोगिकेवलियोळु सत्वोदयकरणद्वयक्के व्युच्छित्तियक्कुं। शेष सुगमं ॥

बंधुक्कड्ढणकरणं सगसगबंधोत्ति होदि णियमेण। ५
संकमणं करणं पुण सगसगजादीण बंधोत्ति ॥४४४॥

बंधोत्कर्षणकरणे स्वस्वबंधपर्य्यंतं भवतः नियमेन। संक्रमणं करणं पुनः स्वस्वजातीनां बंधपर्य्यंतं ॥

बंधकरणमुत्कर्षणकरणमेंबेरडुं स्वस्वबंधव्युच्छित्तिपर्य्यंतमक्कुं नियमदिंदं। संक्रमणकरणं मत्ते स्वस्वजातिगळबंधव्युच्छित्तिपर्य्यंतमक्कुं ॥ १०

ओकड्ढणकरणं पुण अजोगिसत्ताण जोगिचरिमोत्ति।
खीणं सुहुमंताणं खयदेसस्सावलीयसमयोत्ति ॥४४५॥

अपकर्षणकरणं पुनरयोगिसत्वानां योगिचरमपर्य्यंतं क्षीणसूक्ष्मांतानां क्षयदेशः सावलिक-समयपर्य्यंतं ॥

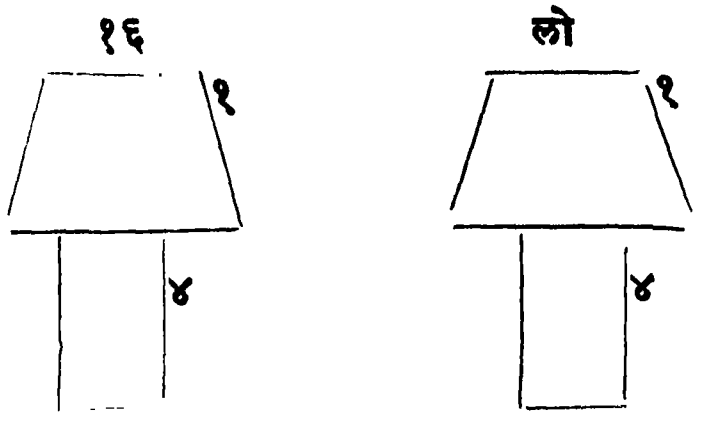
अनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसांपराये च शून्यं, उपशांतकषाये मिथ्यात्वमिश्रप्रकृती प्रति सप्त करणानि स्युः, शेषप्रकृतीः १५
प्रति संक्रमणस्य सूक्ष्मसांपराये एव छेदात् षडेव। क्षीणकषाये व्युच्छित्तिः शून्यं, सयोगे बंधोत्कर्षणापकर्षणोदी-रणकारणानि, अयोगे सत्त्वोदयौ। शेषं सुगमं ॥४४३॥

बंधकरणमुत्कर्षणकरणं च स्वस्वबंधव्युच्छित्तिपर्यंतं स्यात् नियमेन। संक्रमणकरणं पुनः स्वस्वजातीनां बंधव्युच्छित्तिपर्यंतं स्यात् ॥४४४॥

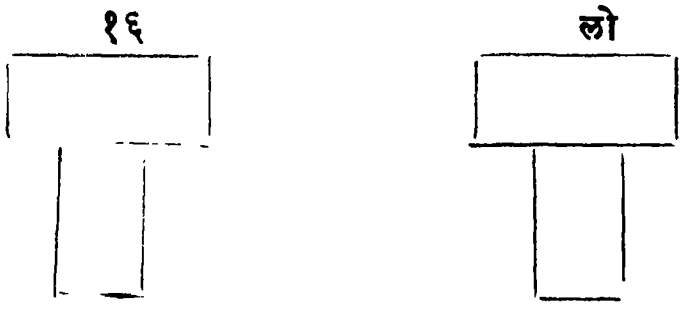
उपशम, निधत्ति, निकाचना इन तीनकी व्युच्छित्ति हो जाती है। ये तीनों आगे नहीं होते। २०
अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्पराय शून्य हैं अर्थात् इनमें किसी करणकी व्युच्छित्ति नहीं होती। उपशान्त कषायमें मिथ्यात्व और मिश्र प्रकृतिमें सातों करण होते हैं शेष प्रकृतियोंमें छह ही करण होते हैं; क्योंकि संक्रमकरणकी व्युच्छित्ति सूक्ष्म साम्परायमें ही हो जाती है। क्षीणकषायमें व्युच्छित्ति शून्य है। सयोगीमें बन्ध, उत्कर्षण, अपकर्षण और उदीरणा करणकी व्युच्छित्ति होती है। तथा अयोगीमें सत्त्व और उदयकी व्युच्छित्ति होती है। शेष कथन २५
सुगम है ॥४४३॥

बन्धकरण और उत्कर्षण करण अपनी-अपनी बन्ध व्युच्छित्ति पर्यन्त ही नियमसे होते हैं। अर्थात् जिस-जिस प्रकृतिकी जहाँ-जहाँ बन्ध व्युच्छित्ति होती है उस-उस प्रकृतिमें वहीं तक बन्ध और उत्कर्षण करण होते हैं। किन्तु संक्रमकरण अपनी-अपनी सजातीय प्रकृतियों-की बन्ध व्युच्छित्ति पर्यन्त होता है। जैसे ज्ञानावरणकी पाँचों प्रकृतियाँ सजातीय हैं। ३०
इनका संक्रमकरण जहाँ तक इनकी सजातीय प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है वहाँ तक होता है ॥४४४॥

अपकर्षणकरणमुं मत्ते अयोगिकेवलियोळु पेळद सत्वप्रकृतिगळेण्भत्तप्पक्कं सयोगकेवलिचरमसमयपर्य्यंतमक्कुं । ८५ ॥ क्षीणकषायगुणस्थानावसानमाद निद्राप्रचलाज्ञानावरणांतरायदशकदर्शनावरणचतुष्कमुमितु षोडशप्रकृतिगळगेयुं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानावसानमाद संज्वलनलोभप्रकृतिगेयुं क्षयदेशपर्य्यंतमपकर्षणकरणमक्कु । मिल्लि क्षयदेशमेंबुदाउदेंदोडे परमुखोदयदिंदं किडुव प्रकृतिगळगे चरमकांडक चरम फालियं क्षयदेशमेंबुदु । स्वमुखोदयदिंदं किडुवप्रकृतिगळगे समयाधिकावलियं क्षयदेशमेंबुददु कारणमागि क्षीणकषायन सत्वव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु पदिनारक्कं सूक्ष्मसांपरायन सत्वव्युच्छित्ति संज्वलनलोभमक्कुमुं स्वमुखोदयदिंदं किडुव प्रकृतिगळप्पुदरिंदं समयाधिकावलिपर्य्यंतमपकर्षणकरणमक्कुं । संदृष्टि :—



अपकर्षणकरणं पुनरयोगोक्तपंचाशीतिसत्त्वस्य सयोगचरमसमयपर्यंतं भवति । क्षीणकषायसत्वव्युच्छित्तिषोडशानां सूक्ष्मसांपरायसत्त्वव्युच्छित्तिसंज्वलनलोभस्य च क्षयदेशपर्यंतमपकर्षणं स्यात् । तत्र क्षयदेशो नाम परमुखोदयेन विनश्यतां चरमकांडकचरमफालिः, स्वमुखोदयेन विनश्यतां च समयाधिकावलिस्तेनैषां सप्तदशानां समयाधिकावलिपर्यंतमपकर्षणं स्यात् । संदृष्टिः—



अयोगीमें जिन पिचासी प्रकृतियोंकी सत्ता कही है उनका अपकर्षणकरण सयोगीके अन्त समय पर्यन्त होता है । क्षीणकषायमें सत्त्वसे विच्छिन्न हुई सोलह और सूक्ष्मसाम्परायमें सत्त्वसे विच्छिन्न हुआ सूक्ष्मलोभ इनका अपकर्षण करण अपने क्षयदेश पर्यन्त होता है ।

शंका—क्षयदेश क्या है ?

समाधान—जो प्रकृति अपने ही रूप उदय होकर नष्ट होती है उसे स्वमुखोदयी कहते हैं । स्वमुखोदयी प्रकृतियोंका एक समय अधिक आवली प्रमाण काल क्षयदेश है । जो प्रकृति अन्य प्रकृतिरूप उदय देकर नष्ट होती हैं वे परमुखोदयी हैं, उनका क्षयदेश अन्तिम काण्डककी अन्तिम फाली है । अतः इन सतरह प्रकृतियोंमें एक समय अधिक आवलीकाल पर्यन्त अपकर्षण होता है ॥४४५॥

उवसंतोत्ति सुराऊ मिच्छत्तिय खवगसोलसाणं च।
खयदेसोत्ति य खवगे अट्ठकसायादिवीसाणं ॥४४६॥

उपशांतकषायपर्य्यंतं सुरायुषो मिथ्यात्वत्रय क्षपकषोडशानां। क्षयदेशपर्य्यंतं क्षपकेऽष्टकषायादिविंशतीनां ॥

उपशांतकषायगुणस्थानपर्य्यंतं देवायुष्यक्कपकर्षणकरणमक्कुं। मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतित्रयक्कं–णिरयतिरिक्ख दु वियळं थीणतिगुज्जोव ताव एइंदी। साहरण सुहुमथावर सोळमेंब क्षपकन षोडशप्रकृतिगळगं क्षयदेशपर्य्यंतं चरमकांडकचरमफालिपर्य्यंतमंबुदर्त्थ। क्षपकनोळष्टकषायादि 'संडित्थिछक्कसाया पुरिसो कोहो य माणमायं च 'एंब विंशति प्रकृतिगळगं–

मिच्छत्तियसोलसाणं उवसमसेडिम्मि संतमोहोत्ति।
अट्ठकसायादीणं उवसमियट्ठाणगोत्ति हवे ॥४४७॥

मिथ्यात्वत्रयषोडशानामुपशमश्रेण्यां शांतमोहपर्य्यंतं। अष्टकषायादीनामुपशमितस्थानपर्य्यंतं भवेत् ॥

मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतित्रयक्कं नरकद्विकादिषोडशप्रकृतिगळगमुपशमश्रेणियोळुपशांतकषायपर्य्यंतमष्टकषायादिगळगे स्वस्वोपशमितस्थानपर्य्यंतमपकर्षणकरणमक्कुं ॥

पढमकसायाणं च विसंजोजकओत्ति अयद्देसोत्ति।
णिरयतिरिआउगाणमुदीरणसत्तोदया सिद्धा ॥४४८॥

प्रथमकषायाणां च विसंयोजकपर्य्यंतमसंयतदेशसंयतपर्य्यंतं नरकतिर्य्यगायुषोदीरण सत्वोदयाः सिद्धाः ॥

उपशांतकषायपर्यंतं देवायुषोऽपकर्षणकरणं स्यात्। मिथ्यात्वसम्यक्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतीनां णिरयतिरिक्खेत्यादिक्षपकषोडशानां च क्षयदेशपर्यंतं चरमकांडकचरमफालिपर्यंतमित्यर्थः। तथा क्षपकाष्टकषायादिविंशतिप्रकृतीनां स्वस्वक्षयदेशपर्यंतमपकर्षणं स्यात् ॥४४६॥

मिथ्यात्वमिश्रसम्यत्वप्रकृतीनां नरकद्विकादिषोडशानां चोपशमश्रेण्यामुपशांतकषायपर्यंतं अष्टकषायादीनां स्वस्वोपशमस्थानपर्यंतं चापकर्षणकरणं स्यात् ॥४४७॥

देवायुका अपकर्षण करण उपशान्त कषाय पर्यन्त होता है। मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति और 'णिरयतिरिक्ख' आदिमें कही अनिवृत्तिकरणमें क्षय हुई सोलह प्रकृतियोंका अपकर्षण करण क्षयदेश पर्यन्त अर्थात् अन्त काण्डकके अन्तिम फालि पर्यन्त होता है। तथा अनिवृत्तिकरणमें क्षय हुई आठ कषाय आदि बीस प्रकृतियोंका अपकर्षण करण अपने-अपने क्षयदेश पर्यन्त होता है ॥४४६॥

उपशमश्रेणिमें मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व प्रकृति और नरकद्विक आदि सोलहका अपर्षण करण उपशान्त कषाय पर्यन्त होता है। आठ कषाय आदिका अपकर्षण करण अपने-अपने उपशमन स्थान पर्यन्त होता है ॥४४७॥

अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभंगळ्गेयुं विसंयोजकपर्य्यंतमसंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु यथासंभवावसानमागियुं अपकर्षण करणमक्कुं। मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतपर्य्यंतं नरकायुष्यक्के मिथ्यादृष्ट्याद्यदेशसंयतपर्य्यंत तिर्य्यगायुष्यक्केयुमुदीरणकरणमुं सत्वकरणमुं उदयकरणमुं सिद्धं गळप्पुवु॥

मिच्छस्स य मिच्छोत्ति य उदीरणाउवसमाहिमुहियस्स ।
समयाहियावलित्ति य सुहुमे सुहुमस्स लोहस्स ॥४४९॥

मिथ्यात्वस्य मिथ्यादृष्टिपर्य्यंतमुदीरणमुपशमाभिमुखस्य । समयाधिकावलिपर्य्यंतं च सूक्ष्मे सूक्ष्मस्य लोभस्य ॥

मिथ्यात्वप्रकृतिगे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळेयुदीरणाकरणमक्कुमुपशमसम्यक्त्वाभिमुखंगे समयाधिकावलिपर्य्यंतमुदीरणकरणमक्कुमेकेंदोडल्लि पर्य्यंतं मिथ्यात्वोदयमुंटप्पुदरिंदं। सूक्ष्मसांपरायनोळे सूक्ष्मलोभक्कुदीरणमक्कु मेकेंदोडन्यगुणस्थानदोळु तदुदयमिल्लप्पुदरिंदं॥

उदये संकमुदये चउसुवि दादुं कमेण णोसक्कं ।
उवसंतं च णिधत्ती णिकाचिदं तं अप्पुव्वोत्ति ॥४५०॥

उदये संक्रमोदययोश्चतुर्ष्वपि दातुं क्रमेण नो शक्यं। उपशांतं च निधत्ति निकाचितं तदपूर्व्वपर्य्यंतं ॥

आउदों दुपशांतमाद द्रव्यमनुदयावळियोळिक्कलु शक्यमल्ल । आउदों दु निधत्तिकरणद्रव्यमं संक्रमोदयंगळ्गे कुडल्बारदु । आउदों दु निकाचितकरणद्रव्यमनुदयावळिगं संक्रमक्कुमुत्कर्षणापक-

---

अनंतानुबंधिनां विसंयोजकपर्यंतं असंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तेषु यथासंभवावसानमपकर्षणं स्यात् । नरकायुषोऽसंयतपर्यंतं तिर्यगायुषो देशसंयतपर्यंतं चोदीरणासत्त्वोदयकरणानि सिद्धानि ॥४४८॥

मिथ्यात्वप्रकृतेर्मिथ्यादृष्टौ उपशमसम्यक्त्वाभिमुखस्य समयाधिकावलिपर्यंतं उदीरणाकरणं स्यात्, तावत्पर्यंतमेव तदुदयात् । सूक्ष्मलोभस्य च सूक्ष्मसांपराये एव अन्यत्र तदुदयाभावात् ॥४४९॥

यत् उपशांतद्रव्यं उदयावल्यां निक्षेप्तुमशक्यं यत् निधत्तिकरणद्रव्यं संक्रमणोदययोर्निक्षेप्तुमशक्यं, यत्

अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अपकर्षण करण असंयत, देशसंयत, प्रमत्त, अप्रमत्तमें यथासम्भव जहाँ विसंयोजन होता है वहाँ पर्यन्त होता है। नरकायुका असंयत पर्यन्त, तिर्यगायुका देशसंयत पर्यन्त, उदीरणा, सत्त्व और उदय करण प्रसिद्ध हैं ॥४४८॥

मिथ्यात्व प्रकृतिका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्वके सम्मुख हुए जीवके एक समय अधिक आवली काल पर्यन्त उदीरणा करण होता है क्योंकि उतने पर्यन्त ही उसका उदय है। सूक्ष्मलोभका सूक्ष्मसाम्परायमें ही उदीरणा करण है क्योंकि उससे अन्यत्र उसका उदय नहीं है ॥४४९॥

जो उदयावलीमें लाये जानेमें समर्थ नहीं है वह उपशान्तद्रव्य है, जो संक्रम और उदयमें लानेमें समर्थ नहीं है वह निधत्तिकरण द्रव्य है, और जो उदयावली, संक्रम, उत्कर्षण,

षंणंगळ्गं कुडल्बारदें बुदवु अपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतमेयक्कुमल्लिवं मेलणगुणस्थानंगळोळु यथासंभवमागि शक्यमें बुदत्थं ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरुमंडलाचार्य्यंमहावादवादीश्वररायवादिपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरि सिद्धांतचक्रवर्त्ति श्रीपादपंकजरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसार कर्णाटवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांड दशकरण तृतीयचूलिकाधिकारं व्याख्यातमादुदु ॥

निकाचितकरणद्रव्यं उदयावलिसंक्रमोत्कर्षणापकर्षणेषु निक्षेप्तुमशक्यं तत् अपूर्वकरणगुणस्थानपर्यंतमेव स्यात् । तदुपरि गुणस्थानेषु यथासंभवं शक्यमित्यर्थः ॥४५०॥

इति दशकरणचूलिका ।

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे त्रिचूलिकानामचतुर्थोऽधिकारः ॥४॥

अपकर्षणरूप होनेमें समर्थ नहीं है वह निकाचितकरण द्रव्य है । ये तीनों करण अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त ही होते हैं । उससे ऊपरके गुणस्थानोंमें यथासम्भव शक्यता जानना ॥४५०॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत त्रिचूलिकानामक चतुर्थ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

स्थान समुत्कीर्तनाधिकार ॥५॥

इंतु त्रिचूलिकाधिकारनिरूपणानंतरं नेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्त्तिगळु बंधोदयसत्वयुक्तस्थानसमुत्कीर्त्तनाधिकारमं पेळलुपक्रमिसुत्तं तदादियोळु निजेष्टदेवताविशेषमं नमस्कारमं माडिदपरु :-

णमियूण णेमिणाहं सच्चजुइट्ठिरणमंसियंघिजुगं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं ठाणसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥४५१॥

नत्वा नेमिनाथं सत्ययुधिष्ठिरनमस्कृतांघ्रियुगं । बंधोदयसत्वयुक्तं स्थानसमुत्कीर्त्तनं वक्ष्यामि ।

प्रत्यक्षवंदकनप्प सत्ययुधिष्ठिरनमस्कृतांघ्रियुग्मनप्पनेमिनाथनं नमस्कारमं माडि बंधोदयसत्वयुक्तमप्प स्थानसमुत्कीर्त्तनमं पेळ्दपेनिनें दिताचार्य्यनप्रतिज्ञेयक्कुं ॥ स्थानसमुत्कीर्त्तनमेनु निमित्तं बंदुदें दोडे मुन्नं प्रकृतिसमुत्कीर्त्तनदिंदमावुवु केलवु प्रकृतिगळु प्ररूपिसल्पट्टुववक्के बंधमेनु क्रमदिंदमक्कुमो मेणक्रमदिंदमक्कुमो येंदितु प्रश्नमागुत्तं विरलु ई प्रकारदिंदमक्कुमें दितरियल्वेडिवंदुदिल्लि । स्थानमें बुदें तें दोडे—एकस्य जीवस्य एकस्मिन् समये संभवंतीनां प्रकृतीनां समूहः स्थानमें दितेकजीवक्केकसमयदोळु संभविसुवंतप्प प्रकृतिगळ समूहं स्थानमें बुवक्कु । मा स्थानसमुत्कीर्त्तनं बंधोदयसत्वभेददिंदं त्रिविधमक्कुमल्लि मुन्नं गुणस्थानदोळु मूल-

---

एवं त्रिचूलिकाधिकारं निरूप्य श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती निजेष्टदेवताविशेषनमस्कारपुरस्सरमुत्तरकृत्यामिधेयं प्रतिजानीते—

प्रत्यक्षवंदारुसत्ययुधिष्ठिरनमस्कृतांघ्रियुगं नेमिनाथं नत्वा बंधोदयसत्त्वयुक्तं स्थानसमुत्कीर्तनं वक्ष्ये । तत्किमर्थमागतं ? पूर्वं प्रकृतिसमुत्कीर्तने याः प्रकृतयः उक्तास्तासां बंधः क्रमेणाक्रमेण वेति प्रश्ने एवं स्यादिति ज्ञापयितुं । किं स्थानं ? एकस्य जीवस्यैकस्मिन् समये संभवंतीनां प्रकृतीनां समूहः ॥४५१॥ तत्स्थानसमुत्कीर्तनं

इस प्रकार त्रिचूलिका अधिकारको कहकर श्रीमान् नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती अपने इष्टदेवको नमस्कार करके आगेके कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं—

प्रत्यक्ष वन्दना करनेवाले सत्यवादी युधिष्ठिरके द्वारा जिनके चरणयुगल नमस्कार किये गये हैं उन नेमिनाथको नमस्कार करके बन्ध, उदय और सत्त्वसे युक्त स्थानसमुत्कीर्तनको कहूँगा ।

शंका—वह किस प्रयोजनसे कहेंगे ?

समाधान—पहले प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकारमें जो प्रकृतियाँ कही हैं उनका बन्ध आदि क्रमसे होता है या बिना क्रमसे होता है ? ऐसा प्रश्न होनेपर इस प्रकारसे होता है यह बतलानेके लिए यह स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार कहते हैं ।

शंका—स्थान किसे कहते हैं ?

प्रकृतिगळगे बंधोदयोदीरणासत्त्वंगळं गाथाषट्कदिंदं पेळ्दपरु :—

छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं ।
छव्विहमेक्कट्ठाणे तिसु येक्कमबंधगो एक्को ॥४५२॥

षट्सु सप्तविधमष्टविधं कर्म बध्नाति त्रिषु च सप्तविधं । षड्विधमेकस्थाने त्रिष्वेकमबंधक एकः ॥

मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि देशसंयत प्रमत्तसंयता प्रमत्तसंयतरेंबारुगुणस्थानवर्त्तिगळायुर्व्वर्ज्जितमागि सप्तमूलप्रकृतिस्थानमुमनायुष्यसहितमागष्टमूलप्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु । मिश्रापूर्व्वानिवृत्तिकरणरेंब मूरुं गुणस्थानवर्त्तिगळायुर्व्वर्ज्जितमागिये सप्तमूलप्रकृतिस्थानमं कट्टुवरु । सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्त्तियोर्व्वनें आयुर्म्मोहवर्ज्जितषण्मूलप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं । उपशांतकषायक्षीणकषायसयोगकेवलिगळेंब मूरुं गुणस्थानवर्त्तिगळोंदे वेदनीयमूलप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं । मूलप्रकृतिगळबंधकनोर्व्वनें अयोगिकेवलिगुणस्थानवर्त्तियक्कुमितष्टविधमूलप्रकृतिस्थानंगळगे गुणस्थानसंदृष्टि :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
बं	७।८	७।८	७।८	७।८	७।८	७।८	७।८	७	७	६	१	१	१	०

चत्तारि तिण्णितियचउ पयडिट्ठाणाणि मूलपयडीणं ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणि वि कमे होंति ॥४५३॥

चत्वारि त्रीणि त्रिक चतुः प्रकृतिस्थानानि मूलप्रकृतीनां । भुजाकाराल्पतरावस्थिता अपि क्रमेण भवंति ॥

तावद् गुणस्थानेषु मूलप्रकृतीनां बंधोदयोदीरणसत्त्वभेदं गाथाषट्केनाह—

मिश्रवर्जिताप्रमत्तांतषड्गुणस्थानेषु विनायुः सप्तविधं तत्सहितमष्टविधं च कर्म बध्नंति । मिश्रापूर्वानिवृत्तिकरणेषु तत्सप्तविधमेव । सूक्ष्मसांपराये आयुर्मोहवर्जितं षड्विधमेव । उपशांतक्षीणकषायसयोगेष्वेकं वेदनीयमेव । अयोगे बंधो नास्ति ॥४५२॥

समाधान—एक जीवके एक समयमें जितनी प्रकृतियाँ सम्भव हैं उनके समूहका नाम स्थान है । उसका कथन इस अधिकारमें है ॥४५१॥

गुणस्थानोंमें मूल प्रकृतियोंके बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्त्वको लिये स्थान समुत्कीर्तनको छह गाथाओंसे कहते हैं—

मिश्र गुणस्थानको छोड़कर अप्रमत्त पर्यन्त छह गुणस्थानोंमें आयु बिना सात प्रकार अथवा आयु सहित आठ प्रकारका कर्मबन्ध होता है । मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणमें आयुके बिना सात प्रकारका ही कर्म बँधता है । सूक्ष्मसाम्परायमें आयु और मोहके बिना छह प्रकारका ही कर्म बँधता है । उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगीमें एक वेदनीय कर्म ही बँधता है । अयोगीमें कर्मबन्ध नहीं होता ॥४५२॥

प्रकृतीनां मूलप्रकृतिगळ सामान्यबंधस्थानंगळ् चत्वारि नाल्कप्पुवेंतेंदोडष्टविधकर्म्मबंधस्थानमों दु. सप्तविधकर्म्मबंधस्थानमों दु, षड्विधकर्म्मबंधस्थानमों दु, एकविधकर्म्मबंधस्थानमों दितु मूलप्रकृतिगळ बंधस्थानंगळु नाल्कु । संदृष्टि १ । ६ । ७ । ८ ॥ यिवावाव गुणस्थानदोळेंदोडे अप्रमत्तपर्य्यंतमष्टविधबंधकरु मिश्रापूर्व्वानिवृत्तिकरणरायुर्व्वर्ज्जितसप्तविधकर्म्मबंधकरु सूक्ष्मसांपरायनायुर्म्मोहर्वर्ज्जितषड्विधकर्म्मबंधकनु उपशांतकषायादित्रितयगुणस्थानवर्त्तिगळु वेदनीयमेकविधकर्म्मबंधकरु इंतो नाल्कुं बंधस्थानंगळ्गे स्वामिगळप्परु । ई नाल्कुं सामान्यबंधस्थानंगळ्गुपशमश्रेण्यवतरणदोळु भुजाकारबंधस्थानंगळु मूरप्पुवु । संदृष्टि | १ | ६ | ७ | उपर्युपरिगुणस्थानारोहणदोळा सामान्यचतुर्ब्बंधस्थानंगळ्गे अल्पतरबंधविकल्पंगळु मूरप्पुवु । संदृष्टि | ६ | ७ | ८ | | ८ | ७ | ६ | मत्तमा सामान्यचतुर्ब्बंधस्थानंगळ्गे स्वस्थानदोळवस्थितबंधविकल्पंगळु नाल्कप्पुवु । | ७ | ६ | १ |

संदृष्टि | ८ | ७ | ६ | १ | यिल्लियुपशांतकषायंगवतरणदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमं पोद्दिदे | ८ | ७ | ६ | १ |

अनिवृत्यादिगुणस्थानंगळ्गनाश्रयणत्वदिंदमितप्प | १ | १ | भुजाकारबंधमिल्ल । अप्रमत्ता- | ७ | ८ |

मूलप्रकृतीनां सामान्यबंधस्थानान्यष्टप्रकृतिकं सप्तप्रकृतिकं षट्प्रकृतिकमेकप्रकृतिकमिति चत्वारि भवंति । १ । ६ । ७ । ८ । एषां च उपशमश्रेण्यवतरणे भुजाकारबंधास्त्रयः ।

१	६	७
३	७	८

उपर्युपरि गुणस्थानारोहणे अल्पतरास्त्रयः

८	७	६
७	६	१

पुनस्तेषामेव स्व-

इस प्रकार सामान्यसे मूल प्रकृतियोंके बन्ध स्थान आठ, सात, छह और एक प्रकृतिरूप चार हैं। इनमें उपशम श्रेणिसे उतरनेपर भुजकार बन्ध तीन हैं। ऊपर-ऊपर गुणस्थानोंपर आरोहण करनेपर अल्पतर बन्ध तीन हैं। पुनः उन्हींके स्वस्थानमें अवस्थित बन्ध चार हैं। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

उपशान्त कषायमें एकका बन्ध था। वहाँसे गिरकर सूक्ष्म साम्परायमें आया तो छहका बन्ध किया। एक भुजकार बन्ध यह हुआ। सूक्ष्मसाम्परायमें छहका बन्ध था। वहाँसे अनिवृत्तिकरणमें आया तब सातका बन्ध हुआ। एक भुजकार बन्ध यह हुआ। अपूर्वकरणमें सातका बन्ध था, नीचेके गुणस्थानमें आठका बन्ध हुआ। यह एक भुजकार बन्ध हुआ। इस प्रकार तीन भुजकार होते हैं। यथा—

१	६	७
६	७	८

तथा ऊपर-ऊपर गुणस्थान चढ़नेपर अल्पतर बन्ध तीन हैं। आठ कर्मको बाँधकर सातका बन्ध होनेपर एक अल्पतर होता है। सातसे छहका बन्ध होनेपर एक अल्पतर होता है। छहसे एकका बन्ध होनेपर एक अल्पतर होता है। इस प्रकार तीन अल्पतर हैं। यथा—

८	७	६
७	६	१

अपने ही स्थानमें पहले समयमें जितने कर्मोंका बन्ध होता है उतने ही कर्मोंका बन्ध आगेके समयमें होनेपर अवस्थित बन्ध होता है। वे बन्ध चार हैं—

निवृत्तिकरणग्गे साक्षादुपशांतकषायगुणस्थानारोहणक्कभावमप्पुदरिंदं $\left|\begin{matrix}८ & ७\\ १ & १\end{matrix}\right|$ मितप्पल्पतर-
बंधविकल्पाभावमुमक्कुं। इल्लिचोदकनेंदपं। उपशांतकषायंगे मरणमागुत्तं विरलु देवासंयत-
गुणप्राप्तिसंभवमप्पुदरिंद $\left|\begin{matrix}१ & १\\ ७ & ८\end{matrix}\right|$ मितप्प भुजाकारबंधमें तिल्लें दोडंतल्लेकें दोडे अबद्धायुष्यना-
दोडातंगे मरणमिल्लप्पुदरि $\begin{matrix}१\\ ७\end{matrix}$ मितप्प भुजाकारक्कभावं सिद्धमक्कुं। बद्धायुष्यंगे मरणमुंटादोडं
देवासंयतंगे स्वस्थितिषण्मासावशेषमादोडल्लदायुर्ब्बंध योग्यतेयिल्लप्पुदरिंद $\begin{matrix}१\\ ८\end{matrix}$ मितप्प भुजा- ५
कारक्कमुमभावं सिद्धमक्कुं। अल्पमं कट्टुत्तं पिरिदं कट्टिदोडे भुजाकारबंधमक्कुं। पिरिदं

स्थानेऽवस्थितबंधाश्चत्वारः $\left|\begin{matrix}८ & ७ & ६ & १\\ ८ & ७ & ६ & १\end{matrix}\right|$ उपशांतकषायस्यावतरणे सूक्ष्मसांपरायं मुक्त्वा
अनिवृत्तिकरणादौ गमनाभावादिमौ $\left|\begin{matrix}१ & १\\ ७ & ८\end{matrix}\right|$ भुजाकारौ न स्तः। नाप्यप्रमत्तानिवृत्तिकरणयोः समनंतर-
मेवोपशांतकषायेनारोहणादिमा $\left|\begin{matrix}८ & ७\\ १ & १\end{matrix}\right|$ वल्पतरौ स्तः। उपशांतकषायस्य मरणे देवासंयतगुणप्राप्तेरीदृशौ
$\left|\begin{matrix}१ & १\\ ७ & ८\end{matrix}\right|$ भुजाकारबंधौ कुतो नोक्तौ ? अबद्धायुष्कस्याऽमरणादस्या $\left|\begin{matrix}१\\ ७\end{matrix}\right|$ भावात्। बद्धायुषो मरणे १०
देवासंयतस्य स्वस्वस्थितिषण्मासावशेषे एवायुर्बंधादस्या $\left|\begin{matrix}१\\ ८\end{matrix}\right|$ भावात्। अल्पं बध्वा बहु बध्नतो भुजाकारो

पहले आठ कर्मका बन्ध था पीछे भी आठका ही बन्ध होनेपर एक अवस्थित बन्ध हुआ। सातका बन्ध करके पीछे भी सातका बन्ध होनेपर एक हुआ। छहका बन्ध करके छहका बन्ध करनेपर एक हुआ। एकका बन्ध करके पीछे भी एकका बन्ध करनेपर एक हुआ। इस तरह अवस्थित बन्ध चार हुए। १५

$\left|\begin{matrix}८ & ७ & ६ & १\\ ८ & ७ & ६ & १\end{matrix}\right|$ उपशान्त कषायसे उतरकर सूक्ष्म साम्परायको छोड़ अनिवृत्तिकरणमें नहीं आ सकता। अतः एकका बन्ध करनेके पश्चात् सात या आठका बन्ध सम्भव नहीं है इससे ये दो भुजकार बन्ध नहीं होते। इसी प्रकार अप्रमत्त या अनिवृत्तिकरणके बीचके गुणस्थानोंको छोड़ उपशान्तकषायमें आना सम्भव नहीं है। इससे आठके पश्चात् एकका बन्धरूप और सातके २० पश्चात् एकके बन्धरूप ये दो अल्पतर नहीं होते।

शंका—जो उपशान्त कषायसे मरकर असंयत गुणस्थानवर्ती देव हुआ उसके एकसे सातके या आठके बन्धरूप जो भुजकार होते हैं वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान—अबद्धायुका तो मरण होता नहीं। अतः एकसे सातके बन्धरूप भुजकारका अभाव है। और बद्धायुका मरण होता है सो देव असंयत गुणस्थानवर्ती हुआ। वहाँ २५

कट्टुत्तं किरिदं कट्टिदोडल्पतरबंधमक्कुं । स्वस्थानदोळवस्थितबंधमक्कुं । एनुमं कट्टदे बवु पिरिदनागलि किरिदनागलु कट्टिदोडवक्तव्यबंधमक्कुमो मूलप्रकृतिबंधस्थानंगळोळवक्तव्यबंधभेदमिल्लेकेंदोडे अवतरणदोळु वेदनीयमं आरोहणदोळु षट्कर्म्ममनुपशांतकषायनुं सूक्ष्मसांपरायनुं कट्टुत्तलुमवतरिसुगुमारोहणमं माळ्कुमप्पुदरिंदं ।

अट्ठुदयो सुहुमोत्ति य मोहेण विणा हु संतखीणेसु ।
घादिदठाणचउक्कस्सुदओ केवलिदुगे णियमा ॥४५४॥

अष्टोदयः सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं च मोहेन विना खलूपशांतक्षीणकषाययोर्घातीतराणां चतुष्कस्योदयः केवलिद्वये नियमात् ॥

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्य्यंतमष्टमूलप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं । उपशांतकषायक्षीणकषायरुगळोळ्कु मोहवर्ज्जितसप्तमूलप्रकृतिस्थानोदयमक्कु । मघातिचतुष्कोदयं सयोगायोगिकेवलिद्वयदोळक्कुं नियमदिंदं । संदृष्टि :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
उ	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	७	४	४

घादीणं छदुमट्ठा उदीरगा रागिणो य मोहस्स ।
तदिआऊण पमत्ता जोगंता होंति दोण्हंपि ॥४५५॥

घातीनां छद्मस्थाः उदीरकाः रागिणश्च मोहस्य । तृतीयायुषोः प्रमत्ता योग्यंताः भवंति द्वयोरपि ॥

बंधः । बहु बध्नतोऽल्पतरः । अल्पं बहु वा बध्वानंतरसमये तावदेव बध्नतोऽवस्थितः । किमप्यबध्वा पुनर्बध्नतोऽवक्तव्यः, नायं भेदो मूलप्रकृतिबंधस्थानेष्वस्ति ॥४५३॥

सूक्ष्मसांपरायपर्यंतमष्टमूलप्रकृतीनामुदयः, उपशांतक्षीणकषाययोर्मोहेन विना सप्तानामेवोदयः । सयोगायोगयोरघातिनामेव चतुर्णामुदयो नियमेन ॥४५४॥

अपनी देवायुमें छह महीना शेष रहनेपर ही आयुका बन्ध होता। अतः एकसे आठके बन्धरूप भुजकार नहीं होता।

पहले थोड़ी प्रकृतियोंको बाँधकर पीछे बहुत प्रकृतियोंको बाँधनेका नाम भुजकार बन्ध है। पहले बहुत प्रकृतियोंको बाँध पीछे थोड़ीको बाँधनेका नाम अल्पतर है। पहले जितनी प्रकृति बाँधी हो उतनी ही पीछे अनन्तर समयमें बाँधनेको अवस्थित बन्ध कहते हैं। और कुछ भी न बाँधकर पीछे बाँधनेको अवक्तव्य बन्ध कहते हैं। यह अवक्तव्य बन्ध मूलकर्मोंमें सम्भव नहीं है, उत्तर प्रकृतियोंमें ही सम्भव है। यह इन चारों बन्धोंका स्वरूप है ॥४५३॥

सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त आठों मूल प्रकृतियोंका उदय रहता है। उपशान्तकषाय क्षीणकषायमें मोहके बिना सातका ही उदय रहता है। सयोगी और अयोगीमें चार अघाति कर्मोंका ही उदय नियमसे है ॥४५४॥

घातिकर्म्मंगळु नाल्कक्कं मिथ्यादृष्टयादि क्षीणकषायावसानमाद छद्मस्थरुगळुदीरकरप्परु। तत्रापि सूक्ष्मसांपरायावसानमाद रागिगळनिबरुं मोहनीयक्कुदीरकरप्परु। वेदनीयायुष्यंगळ्गे प्रमत्तसंयतावसानमादप्रमादिगळुदीरकरप्परु। नामगोत्रंगळ्गे सयोगकेवलिपर्य्यंतमाद गुणस्थानवर्त्तिगळुदीरकरप्परु॥

मिस्सूणपमत्तंते आउस्सद्धा हु सुहुमखीणाणं।
आवलिसिट्ठे कमसो सगपणदोच्चे उदीरणा होंति ॥४५६॥

मिश्रोनप्रमत्तांते आयुषोद्धा खलु सूक्ष्मक्षीणकषाययोरावलिशिष्टे क्रमशस्सप्तपंचद्विके उदीरणा भवंति॥

मिश्रं पोरगागि प्रमत्तसंयतगुणस्थानावसानमाद गुणस्थानपंचकदोळु आयुःकर्म्माद्धे आवलिमात्रावशेषमागुत्तं विरलु सूक्ष्मसांपरायंगं क्षीणकषायंगं स्वस्वगुणस्थानकालमावलिमात्रावशेषमागुत्तं विरलु मितु मूरेडेयोळं क्रमदिंदमायुर्व्वर्ज्जितसप्तकर्म्मंगळगमायुर्व्वेदनीयमोहनीयवर्ज्जितपंचकर्म्मंगळगमायुर्व्वेदनीयमोहनीयज्ञानदर्शनावरणीयांतरायमेंब षट्कर्म्मंगळ्वर्ज्जितमागि नामगोत्रंगळेरडे कर्म्मंगळगं उदीरकरप्परु। सम्यग्मिथ्यादृष्टिगायुष्यकर्म्ममुदीरितशेषमुच्छिष्टावलिमात्रावशेषमागुत्तं विरलु नियमदिंदं गुणस्थानांतरमं पोद्दि मृतनप्पनक्कुमप्पुदरिंदमातंगे सप्तकर्म्मोदीरकत्वमिल्ल। संदृष्टि—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
८।७	८।७	८	८।७	८।७	८।७	६	६	६	६।५	५	५।२	२	०

घातिकर्मणां चतुर्णां क्षीणकषायांताश्छद्मस्था एवोदीरका भवंति। तत्रापि मोहनीयस्य सूक्ष्मसांपरायांता रागिण एव। वेदनीयायुषोः प्रमत्तांताः प्रमादिन एव। नामगोत्रयोः सयोगपर्यंता एव॥४५५॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरायुष्यावलिमात्रेऽवशिष्टे सति नियमेन गुणस्थानांतराश्रयणात्तं विना प्रमत्तांतपंचानामायुषि आवलिमात्रेऽवशिष्टे सति तथा सूक्ष्मसांपरायक्षीणकषाययोः कालेऽपि तावत्यवशिष्टे सति क्रमेणायुर्वर्जितसप्तायुर्मोहवेदनीयवर्जितपंचनामगोत्रद्वयानामेवोदीरका भवंति॥४५६॥

चार घातिकर्मोंकी उदीरणा क्षीणकषाय पर्यन्त छद्मस्थ ही करते हैं। उनमें भी मोहनीय और आयुकी उदीरणा प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त प्रमादी जीव ही करते हैं। नाम और गोत्रकी उदीरणा सयोगी पर्यन्त होती है॥४५५॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टि आयुमें आवली मात्र काल शेष रहनेपर नियमसे मिश्र गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानमें चला जाता है। अतः मिश्रगुणस्थानके बिना प्रमत्त पर्यन्त पाँच गुणस्थानोंमें आयुमें आवलीमात्र काल शेष रहनेपर आयुको छोड़ सात कर्मोंकी उदीरणा होती है। सूक्ष्मसाम्परायमें उतना ही काल शेष रहनेपर आयु मोहनीय और वेदनीयके बिना पाँचकी उदीरणा होती है। क्षीणकषायमें उतना ही काल शेष रहनेपर नाम और गोत्रकी उदीरणा होती है॥४५६॥

१. आयुःकर्म्माद्धे आवलिमात्रावशेषमादल्लि आयुर्व्वर्ज्जितसप्तप्रकृतिगळ्गे उदीरणे हिंदे अष्टकर्म्मगळ्गे उदीरणे मुंदेयुमिते योग्यवागि योजिसिकोंबुदु।

संतोत्ति अट्ठसत्ता खीणे सत्तेव होंति सत्ताणि ।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताइं ॥४५७॥

शांतपर्य्यंतमष्टसत्त्वानि क्षीणकषाये सप्तैव भवंति सत्त्वानि । योगिन्ययोगिनि च चत्वारि भवंति सत्त्वानि ॥

उपशांतकषायपर्य्यंतमष्टमूलप्रकृतिसत्वमक्कुं । क्षीणकषायनोळु मोहनीयवर्ज्जितसप्तकर्म्मसत्वमक्कुं । सयोगकेवलिभट्टारकनोळुमयोगिकेवलिभट्टारकनोळमघातिकर्म्मंगळु नाल्कुं सत्वमक्कुं । संदृष्टि :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
सत्व	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	७	४	४

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळ्गे बंधोदयसत्वस्थानंगळं पेळ्दपरल्लि भुजाकारबंधसंभवस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

तिण्णि दस अट्ठठाणाणि दंसणावरणमोहणामाणं ।
एत्थेव य भुजगारा सेसेसेयं हवे ठाणं ॥४५८॥

त्रीणि दशाष्टस्थानानि दर्शनावरणमोहनाम्नां । अत्रैव च भुजाकाराः शेषेष्वेकं भवेत्स्थानं ॥

दर्शनावरणीयमोहनीयनामकर्म्ममें बी मूरुं मूलप्रकृतिगळ उत्तरप्रकृतिगळोळु यथाक्रमदिंदं मूरुं पत्तुमेंटुं बंधस्थानंगळप्पुवल्लिये भुजाकारबंधविकल्पंगळु संभविसुववु । शेषज्ञानावरणीयपंचकक्कं वेदनीयद्वयान्तरक्कं चतुर्व्विधायुरन्यतमक्कं गोत्रद्वयान्यतरक्कं अंतरायपंचक्कं ओंदोंदे स्थानमप्पुदरिंदं । भुजाकारबंधमिवरोळु संभविसदु । संदृष्टि :

	णा	दं	वे	मो	आ	ना	गो	अ
	५	९	२	२६	४	९३	२	५
स्थान	१	३	१	१०	१	८	१	१

उपशांतकषायपर्यंतमष्टौ मूलप्रकृतयः सत्त्वं भवंति । क्षीणकषाये मोहं विना सप्तैव सत्त्वं भवंति । सयोगायोगयोरघातिचतुष्टयमेव सत्त्वं भवति ॥४५७॥ अथोत्तरप्रकृतीनां तत्समुत्कीर्तनमाह—

दर्शनावरणमोहनामकर्मणां बंधस्थानानि क्रमशः त्रीणि दशाष्टौ भवंति । तेन भुजाकारबंधा अप्येष्वेव नान्येषु । शेषेषु मध्ये ज्ञानावरणेंऽतराये च पंचात्मकं । गोत्रायुर्वेदनीयेष्वेकात्मकं चैकैकमेव बंधस्थानं भवेदिति कारणात् ॥४५८॥

उपशान्त कषाय पर्यन्त आठों मूल प्रकृतियोंकी सत्ता है । क्षीणकषायमें मोहके बिना सातका ही सत्त्व है । सयोगी और अयोगीमें चार अघातिकर्मोंका ही सत्त्व है ॥४५७॥

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें स्थानोंका कथन करते हैं—

दर्शनावरण, मोह और नाम कर्मके बन्धस्थान क्रमसे तीन, दस और आठ होते हैं । इससे भुजकार बन्ध भी इन्हींमें होते हैं, अन्यमें नहीं होते, क्योंकि शेषमें-से ज्ञानावरण और अन्तरायमें तो पाँच प्रकृतिरूप एक ही बन्ध स्थान है । गोत्र, आयु और वेदनीयमें एक प्रकृतिरूप एक-एक ही बन्ध स्थान है । इससे इनमें भुजकार बन्ध सम्भव नहीं हैं ॥४५८॥

अनंतरं दर्शनावरणीयभुजाकारबंधं संभविसुव स्थानंगळगे प्रकृतिसंख्येयं पेळ्दपरु :—

णव छक्क चउक्कं च य विदियावरणस्स बंधठाणाणि ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि य जाणाहि ॥४५९॥

नवषट्कचतुष्कं च च द्वितीयावरणस्य बंधस्थानानि । भुजाकाराल्पतराश्चावस्थिता अपि च जानीहि ॥ ५

नवषट्कचतुष्कप्रकृतिस्थानत्रयं द्वितीयावरणप्रकृतिबंधस्थानंगळप्पुवल्लि दर्शनावरण-सर्व्वोत्तर प्रकृतिगळोळ भत्तक्कमोंदु स्थानमक्कुमवरोळु स्त्यानगृद्धित्रयरहितमागि षट्प्रकृतिगळोंदु स्थानमक्कुमवरोळु निद्राप्रचलोनचतुष्प्रकृतिगळगोंदु स्थानमक्कुमितो मूरुं स्थानंगळगे भुजाकार-

---

दर्शनावरणस्य बंधस्थानानि नवप्रकृतिकं, स्त्यानगृद्धित्रयेण विना षट्प्रकृतिकं, पुनर्निद्राप्रचले विना चतुःप्रकृतिकं चेति त्रीणि । तेषां भुजाकाराल्पतरावस्थितबंधाः, अपिशब्दादवक्तव्यबंधौ च स्युरिति जानीहि । १० तद्यथा—

उपशमश्रेण्यवरोहकोऽपूर्वकरणद्वितीयभागे चतुःप्रकृतिकं बध्वा तत्प्रथमभागेऽवतीर्णः षट्प्रकृतिकं बध्नाति । प्रमत्तो देशसंयतोऽसंयतो मिश्रो वा षट्प्रकृतिकं बध्नन्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा वा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिः सासादनो भूत्वा नवप्रकृतिकं बध्नाति इति भुजाकारौ द्वौ स्तः । प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखो मिथ्यादृष्टिरनिवृत्तिकरणचरमसमये नवप्रकृतिकं बध्नन्ननंतरसमयेऽसंयतो देशसंयतोऽप्रमत्तो वा भूत्वा षट्प्रकृतिकं बध्नाति । १५ तथा तत उपशमकः क्षपको वाऽपूर्वकरणप्रथमभागचरमसमये षट्प्रकृतिकं बध्नन् द्वितीयभागप्रथमसमये चतुःप्रकृतिकं बध्नातीत्यल्पतरौ द्वौ भवतः । मिथ्यादृष्टिः सासादनो वा नवप्रकृतिकं मिश्राद्यपूर्वकरणप्रथम-भागांतःषट्प्रकृतिकं अपूर्वकरणद्वितीयभागादिसूक्ष्मसांपरायांतः चतुःप्रकृतिकं च बध्नन् अनंतरसमये तदेव

दर्शनावरणके बन्धस्थान नौ प्रकृतिरूप, स्त्यागृद्धि आदि तीनके बिना छह प्रकृतिरूप, निद्रा प्रचलाके बिना चार प्रकृतिरूप इस प्रकार तीन ही होते हैं। उनमें भुजकार बन्ध, २० अल्पतर बन्ध, अवस्थित बन्ध और अपि शब्दसे अवक्तव्यबन्ध होते हैं। वे इस प्रकार हैं—

उपशम श्रेणिसे उतरनेवाला अपूर्वकरणके दूसरे भागमें दर्शनावरणकी चार प्रकृतियों-का बन्ध करके पुनः उसीके प्रथम भागमें उतरनेपर छह प्रकृतियोंका बन्ध करता है। यह एक भुजकार हुआ। प्रमत्त, देशसंयत, असंयत अथवा मिश्र गुणस्थानवर्ती छह प्रकृतियोंका बन्ध करके मिथ्यादृष्टि होकर अथवा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी सासादन गुणस्थानमें आकर २५ नौ प्रकृतियोंका बन्ध करता है। इस प्रकार दो भुजकार होते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्यादृष्टि अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें नौ प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करके अन्तर समयमें असंयत, देशसंयत, अथवा अप्रमत्त होकर छह प्रकृतिरूप स्थान-का बन्ध करता है। यह एक अल्पतर हुआ। उपशमक अथवा क्षपक अपूर्वकरणके प्रथम भागके अन्तिम समयमें छह प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करके दूसरे भागके प्रथम समयमें ३० चार प्रकृतिरूप स्थानका बन्ध करता है। एक अल्पतर यह हुआ। इस तरह दो अल्पतर बन्ध होते हैं।

मिथ्यादृष्टि अथवा सासादन नौ प्रकृतिरूप स्थानको बाँधकर मिश्रसे लेकर अपूर्व-करणके प्रथम भाग पर्यन्त छह प्रकृतिरूप स्थानको बाँधकर तथा अपूर्वकरणके दूसरे भागसे

बंधंगळेरडुमल्पतर बंधंगळेरडुमवस्थितबंधंगळु मूरुमवक्तव्यबंधंगळेरडुमपि शब्दिंदरियल्पडुवुवु। जानीहि एंदितु शिष्यं संबोधिसल्पट्टनु।

अनंतरं दर्शनावरणीयस्थानत्रयक्के बंधस्वामिगळं गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु :—

णव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति।
चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरिमोत्ति ॥४६०॥

नव सासादनपर्य्यंतं बंधाः षट्चैवापूर्व्वं प्रथमभागपर्य्यंतं। चतस्रो भवंति ततः सूक्ष्मकषायस्य चरमपर्य्यंतं॥

नवप्रकृतिकस्थानं सासादनपर्य्यंतं बंधमक्कुं। षट्प्रकृतिकस्थानमपूर्व्वकरण प्रथमभागपर्य्यंतं बंधमक्कुं। चतुःप्रकृतिकस्थानं सूक्ष्मसांपराय चरमसमयपर्य्यंतं बंधमक्कुं। संदृष्टिः—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
९।९	९	६	६	६	६	६	६।४	४	४	०	०	०	०

यिल्लि भुजाकारात्पतरावस्थितावक्तव्यबंधविशेषं पेळल्पडुगुमेंतेंदोडे उपशमश्रेण्यारोहकनप्प सूक्ष्मकषायनुपशांतकषायगुणस्थानमं पोद्दि तद्गुणस्थानकालमंतर्म्मुहूर्तपर्य्यंतमिद्दु उपशमश्रेण्यवतरणदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि तद्गुणस्थानप्रथमसमयं मोदल्गोंडु क्रमदिंदमिळिदु अपूर्व्वकरणषष्ठभागचरमसमयपर्य्यंतं चतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं अपूर्व्वकरणावतरण सप्तमभाग प्रथमसमयदोळु निद्राप्रचलासहितमागि षट्प्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडल्लि भुजाकारबंधविकल्पमोंदक्कु। मत्तं प्रमत्तनागलु देशसंयतनागलुमसंयतनागळु मिश्रनागलु षट्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तमिद्दु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोद्दि नवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधविकल्पमक्कु—मथवा प्रथमो-

---

बध्नातीत्यवस्थितबंधास्त्रयो भवंति। उपशांतकषायः दर्शनावरणं किमप्यबध्नन् अवतरणे सूक्ष्मकषायप्रथमसमये चतुःप्रकृतिकं वा सपदि बद्धायुष्को म्रियते तदा देवासंयतो भूत्वा षट्प्रकृतिकं च बध्नातीत्यवक्तव्यबंधौ द्वौ भवतः ॥४५९॥ इममुक्तार्थं द्योतयति—

नवप्रकृतिकं सासादनपर्यंतमेव बध्नाति। उपर्यपूर्वकरणप्रथमभागपर्यंतं षट्प्रकृतिमेव। तत उपरि

लेकर सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त चार प्रकृतिरूप स्थानको बाँधकर अन्तर समयमें उतनी ही अर्थात् नौ, छह और चारको बाँधता है। इस तरह अवस्थितबन्ध तीन होते हैं।

उपशान्तकषाय दर्शनावरणका किंचित् भी बन्ध न करके उतरनेपर सूक्ष्म साम्परायके प्रथम समयमें चार प्रकृतिरूप स्थानको बाँधता है। अथवा बद्धायु अवस्थामें मरकर असंयत गुणस्थानवर्ती देव होकर छह प्रकृतिरूप स्थानको बाँधता है, इस प्रकार दो अवक्तव्य बन्ध होते हैं ॥४५९॥

इसी कहे अर्थको प्रकट करते हैं—

दर्शनावरणके नौ प्रकृतिरूप स्थानको सासादन पर्यन्त ही बाँधता है। ऊपर अपूर्व-

पशमसम्यग्दृष्टिगळु मेणु सासादनगुणस्थानमं पोद्दिदोडल्लियु ६ मितप्प ९ भुजाकारबंधविकल्प संभवमक्कुं । मितु भुजाकारबंधविकल्पंगळेरडप्पुवु । २ । अल्पतरबंधविकल्पंगळु दर्शनावरणदोळे-रडप्पुवेंतेंदोडे प्रथमोपशम सम्यक्त्वाभिमुखनप्प मिथ्यादृष्टिकरणत्रयमं माडियनिवृत्तिकरणकाल-मंतर्मुहूर्त्तं चरमसमयदोळु नवप्रकृतिस्थानसं कट्टुत्तिर्द्दनंतरसमयदोळु असंयतदेशसंयताप्रमत्त-गुणस्थानत्रयदोळन्यतमगुणस्थानममोंदं पोद्दि षट्प्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडल्लियोंदल्पतरबंध- ५ विकल्पमक्कु-। मुपशमश्रेणियोळागलु क्षपकश्रेणियोळागलपूर्व्वकरण गुणस्थान प्रथमभागचरम-समयदोळु षट्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्द्दनंतरसमयदोळु तन्न श्रेण्यारोहण द्वितीयभागप्रथमसमय-दोळु निद्राप्रचलोन चतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडल्लियुमोंदल्पतरबंधविकल्पमक्कुमिंतल्पतर बंध-विकल्पंगळ मेरडप्पुवु । २ ॥ अवस्थितबंधविकल्पंगळु मूरप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टियुं सासादननुं स्वस्थानंगळोळु नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्प्परल्लियोंदवस्थितबंधविकल्पमक्कुं । मिश्रासंयत देश- १० संयतप्रमत्ताप्रमत्तापूर्व्वकरणप्रथम भागवर्त्तिगळिवर्गंळु स्वस्थानदोळु षट्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं षट्प्रकृतिस्थानमने कट्टुत्तिरलिदोंदु अवस्थितबंधमक्कु- । मपूर्व्वकरणं तन्न द्वितीयतृतीय-चतुर्त्थपंचमषष्ठसप्तमभागंगळोळमनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्त्तिगळु स्वस्थानदोळु चतुः-प्रकृतिस्थानमं कट्टिट चतुःप्रकृतिस्थानमने कट्टुत्तिर्द्दोडिदोंदवस्थितबंधविकल्पमक्कुमितवस्थित-बंधविकल्पंगळु मूरप्पुवु । ३ ॥ अवक्तव्यबंधविकल्पंगळेरडप्पुवेंतेंदोडे अबंधकबंधोऽवक्तव्यबंधः १५ एंदितवक्तव्यबंधलक्षणमप्पुदरिंदमुपशांतकषायं दर्शनावरणमनेनुमं कट्टदे बंदु अवतरणदिं सूक्ष्म-कषायनागि तद्गुणस्थानप्रथमसमयदोळु चतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदोंदवक्तव्यबंधभेदमक्कुं मत्तमुपशांतकषायगुणस्थानवर्त्तिबद्धायुष्यं दर्शनावरणमनेनुमं कट्टदे मरणमादोडे देवासंयतनागि षट्प्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दवक्तव्यबंधभेदमक्कुमितेरडवक्तव्यबंधविकल्पंगळप्पुवु । २ ॥ इवक्के यथाक्रमदिदं संदृष्टि :— २०

दर्शनावरणस्थानंगळु मूरु ९ । ६ । ४ । इवक्के भुजाकारबंधंगळेरडु | ४ | ६ | ६ | ९ | अल्पतर-

बंधंगळेरडु | ९ | ६ | ६ | ४ | अवस्थितबंधंगळु मूरु | ९ | ६ | ४ | ९ | ६ | ४ | अवक्तव्यबंधंगळेरडु | ० | ० | ४ | ६ |

उपशमश्रेण्यवतरणदोळं मिश्रासंयत देशसंयत प्रमत्तसंयतरुगळु सासादनगुणस्थानमुमं मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानमं मेणु पोद्दिदोडं भुजाकारबंधमप्पुवु । उपर्य्युपरि गुणस्थानारोहणदोळल्पतरबंधमप्पुवु । स्वस्थानदोळवस्थितबंधमप्पुवुपशमश्रेण्यवतरणदोळं मरणदोळमवक्तव्यबंधंगळप्पुवंदरिदु बंध २५ संभवासंभव प्रकारंगळनुक्तप्रकारदिंदं विचारमं माडि मुंदेयुं मोहादिगळोळु निश्चयिसुवुदु ॥

सूक्ष्मसांपरायचरमसमयपर्यंतं चतुःप्रकृतिकमेव ॥४६०॥

करणके प्रथम भाग पर्यन्त छह प्रकृतिरूप स्थानको ही बाँधता है। उससे ऊपर सूक्ष्म साम्प-रायके अन्तिम समय पर्यन्त चार प्रकृतिरूप स्थानको ही बाँधता है ॥४६०॥

अनंतरं दर्शनावरणोदयस्थानमं गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु :—

खीणोत्ति चारि उदया पंचसु णिद्दासु दोसु णिद्दासु ।
एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पंचुदया ॥४६१॥

क्षीणकषायपर्य्यंतं चतुरुदयाः पंचसु निद्रासु द्वयोर्निद्रयोरेकस्मिन्नुदयं प्राप्ते क्षीणकषाय-द्विचरमपर्य्यंतं पंचोदयाः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादियागि क्षीणकषायचरमसमयपर्य्यंतं चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणीयमें बचतुःप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं । सनिद्ररोळु स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्राप्रचलाप्रचला निद्रा प्रचलेगळें ब पंचनिद्राप्रकृतिगळोळेकप्रकृत्युदयमनेय्दुत्तं विरलु प्रमत्तगुणस्थानपर्य्यंतं दर्शनावरणप्रकृतिपंचकमुदयस्थानमक्कुमल्लि स्त्यानगृद्धित्रयोदयव्युच्छित्तियागुत्तं विरलु अप्रमत्तादि क्षीणकषायाद्विचरमसमयपर्य्यंतं निद्राप्रचलाद्वयदोळोंदुदयमनेय्दुत्तं विरलुमय्दुं दर्शनावरणप्रकृत्युदयस्थानमक्कुमल्लि निद्राप्रचलोदयव्युच्छित्तियागुत्तं विरलु तत् क्षीणकषायचरमसमयदोळु निद्रारहितचतुःप्रकृत्युदयस्थानमक्कुमल्लिये तच्चतुःप्रकृतिगळुदयव्युच्छित्तियप्पुर्दारिंदं सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानद्वयदोळु दर्शनावरणोदयस्थान शून्यमक्कुं । संदृष्टि :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
अनिद्रा	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	०	०
सनिद्रा	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५।४	०	०

अनंतरं दर्शनावरणप्रकृतिस्थानमं गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु ।

मिच्छादुवसंतोत्ति य अणियट्टीखवगपढमभागोत्ति ।
णवसत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदू चरिमे ॥४६२॥

मिथ्यादृष्टिरुपशांतपर्य्यंतं चानिवृत्तिक्षपकप्रथमभागपर्य्यंतं । नव सत्वानि क्षीणकषायस्य द्विचरमसमयपर्य्यंतं च षट्चत्वारि चरमे ॥

दर्शनावरणस्योदयस्थानं जाग्रज्जीवे मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायचरमसमयपर्यंतं चक्षुर्दर्शनावरणादिचतुरात्मकमेव, निद्रिते तु प्रमत्तपर्यंतं स्त्यानगृद्ध्यादिपंचस्वेकस्यां उपरि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यंतं निद्राप्रचलयोरेकस्यां चोदितायां पंचात्मकमेव । उपरि दर्शनावरणोदयो नास्ति ॥४६१॥

दर्शनावरणका उदयस्थान जाग्रत् जीवमें मिथ्यादृष्टिसे क्षीणकषायके अन्तिम समय पर्यन्त चक्षु दर्शनावरण आदि चार प्रकृतिरूप ही होता है । निद्रित जीवमें प्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त स्त्यानगृद्धि आदि पाँचमें-से एकका उदय रहते और ऊपर क्षीणकषायके द्विचरम समय पर्यन्त निद्रा और प्रचलामें-से एकका उदय रहते पाँच प्रकृतिरूप ही होता है । उससे ऊपर दर्शनावरणका उदय नहीं है ॥४६१॥

---

१. चक्षुरादिचतुष्कदोळु स्त्यानगृध्यादिपंचकदोंदं कूडुत्तं विरलु प्रमत्तपर्य्यंतं पंचप्रकृत्युदयं ।

मिथ्यादृष्टिमोदल्गोंडुपशांतकषायगुणस्थानपर्य्यंतमनिवृत्तिक्षपकन प्रथमभागेपर्य्यंतमुं नवदर्शनावरणप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमा क्षपकानिवृत्तिप्रथमभागदोळु स्त्यानगृद्धित्रयं किडिसल्पट्टुदप्पुदरिनल्लिदत्तलु क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्य्यंतं दर्शनावरणषट्प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमा क्षीणकषाय द्विचरमसमयदोळु निद्राप्रचलाद्वयं किडिसल्पट्टुदरिना क्षीणकषायचरमसमयदोळु दर्शनावरणचतुःप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमा क्षीणकषायचरमसमयदोळा दर्शनावरणचतुष्कं किडिसल्पट्टुदप्पुदरिंदं सयोगायोगिकेवलिद्वयदोळु दर्शनावरणसत्वं शून्यमक्कुं। संदृष्टि :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
९	९	९	९	९	९	९	९	उ।क्ष	उ।क्ष	९	६।४	०	०
								९।६	९।६				

अनंतरं मोहनीयबंधस्थानंगळ्गे प्रकृतिसंख्येयं पेळ्दपरु।

बावीसमेककवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चदुतिय दुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥४६३॥

द्वाविंशतिरेकविंशतिः सप्तदश त्रयोदशैव नव पंच। चतुस्त्रिकद्विकं चैकं बंधस्थानानि मोहस्य ॥

द्वाविंशत्येकविंशति सप्तदशत्रयोदश नव पंच चतुः त्रि द्वि एकप्रकृतिसंख्यास्थानंगळितु मोहनीयक्के दशस्थानंगळप्पुवु। ई पत्तुं बंधस्थानंगळ्गे संदृष्टि :-२२। २१। १७। १३। ९। ५। ४। ३। २। १॥

दर्शनावरणीयस्य गुणस्थानेषु सत्त्वस्थानं मिथ्यादृष्ट्यादुपशांतकषायपर्यंतं क्षपकानिवृत्तिप्रथमभागपर्यंतं च नवात्मकमेव। उपरि क्षीणकषायद्विचरमसमयपर्यंतं षडात्मकमेव स्त्यानगृद्धित्रयस्य तत्प्रथमभागे एव विनष्टत्वात्, तच्चरमसमये चतुरात्मकमेव, निद्राप्रचलयोर्द्विचरमे एव क्षपितत्वात्। सयोगायोगयोः शून्यं ॥४६२॥

मोहस्य बंधस्थानानि द्वाविंशतिकं एकविंशतिकं सप्तदशकं त्रयोदशकं नवकं पंचकं चतुष्कं त्रिकं द्विकमेककं चेति दश ॥४६३॥

गुणस्थानोंमें दर्शनावरणीयका सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्टिसे लेकर उपशान्त कषाय पर्यन्त और क्षपकश्रेणिमें अनिवृत्तिकरणके प्रथम भाग पर्यन्त नौ प्रकृतिरूप ही है। ऊपर क्षीणकषायके द्विचरम समय पर्यन्त छह प्रकृतिरूप ही है; क्योंकि स्त्यानगृद्धि आदि तीन अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें ही नष्ट हो जाती हैं। क्षीणकषायके अन्तिम समयमें चार प्रकृतिरूप ही हैं, क्योंकि निद्रा और प्रचलाका क्षय द्विचरम समयमें ही हो जाता है। सयोगी और अयोगीमें दर्शनावरणका सत्त्व नहीं है ॥४६२॥

मोहनीय कर्मके बन्धस्थान बाईस, इक्कीस, सतरह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप दस हैं ॥४६३॥

ई मोहनीय दशबंधस्थानंगळगे स्वामिगळं गुणस्थानदोळु पेळ्दपरु :—

बावीसमेक्कवीसं सत्तर सत्तार तेर तिसु णवयं ।
थूले पणचदु तियदुगमेक्कं मोहस्स ठाणाणि ॥४६४॥

द्वाविंशतिरेकविंशतिः सप्तदश सप्तदश त्रयोदशैव त्रिषु नवकं । स्थूले पंचचतुस्त्रिकद्विकैकं मोहस्य स्थानानि ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि अपूर्वकरणपर्य्यंतं मोहनीयबंधस्थानंगळु क्रमदिंदं द्वाविंशति, एकविंशति, सप्तदश, सप्तदश, त्रयोदश नव नव नवंगळु । अनिवृत्तिकरणनोळु पंचचतुः त्रि द्वि एक प्रकृतिस्थानंगळुमप्पुवु । संदृष्टि :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ		सू	उ	क्षी	स	अ
२२	२१	१७	१३	१३	९	९	९	५।४।३।२।१		०	०	०	०	०

अनंतरमुक्तस्थानप्रकृतिगळोळु ध्रुवबंधिगळ संख्येयं पेळ्दपरु :—

उगुवीसं अट्ठारस चोद्दस चोद्दस य दस य तिसु छक्कं ।
थूले चदु तिदुगेक्कं मोहस्स य होंति धुवबंधी ॥४६५॥

एकान्नविंशत्यष्टादश चतुर्दश चतुर्दश दश त्रिषु षट्कं स्थूले चतुस्त्रिद्व्येकं मोहस्य भवंति ध्रुवबंधिन्यः ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि अनिवृत्तिकरण भागभागेगळु पर्य्यंतमुक्त द्वाविंशत्यादि प्रकृतिस्थानंगळोळु मोहनीयध्रुवबंधि प्रकृतिगळ संख्ये यथाक्रमदिंदं एकान्नविंशति अष्टादश चतुर्दश चतुर्दशदश षट् षट् षट् चतुःत्रि द्वि एकंगळप्पुवु । संदृष्टि :

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ			
१९	१८	१४	१४	१०	६	६	६	४	३	२	१

मोहनीयबंधस्थानानि गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ द्वाविंशतिकं । सासादने एकविंशतिकं । मिश्रासंयतयोः सप्तदशकं । देशसंयते त्रयोदशकं । प्रमत्तादित्रये प्रत्येकं नवकं । अनिवृत्तिकरणे पंचकं चतुष्कं द्विकमेककं च ॥४६४॥

मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणभागांतमुक्तस्थानेषु क्रमेण मोहनीयस्य ध्रुवबंधान्येकान्नविंशतिरष्टादश चतुर्दश चतुर्दश दश षट् षट् षट् चत्वारि त्रीणि द्वे एकं भवंति ॥४६५॥

इनमें-से मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तो बाईस प्रकृतिरूप स्थान है। सासादनमें इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान है। मिश्र और असंयत गुणस्थानमें सतरह प्रकृतिरूप स्थान है। देशसंयतमें तेरह प्रकृतिरूप स्थान है। प्रमत्त आदि तीनमें-से प्रत्येकमें नौ प्रकृतिरूप स्थान है। अनिवृत्तिकरणमें पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप पाँच स्थान हैं ॥४६४॥

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरणके भाग पर्यन्त जो स्थान कहे हैं उन स्थानोंमें क्रमसे उन्नीस, अठारह, चौदह, चौदह, दस, छह, छह, छह, चार, तीन, दो एक तो मोहनीयकी ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ हैं। जिनका बन्ध अवश्य होता है उन्हें ध्रुवबन्धी कहते हैं ॥४६५॥

ई ध्रुवबंधिगळोडनध्रुवबंधिगळं कूडुत्तं विरलु गुणस्थानदोळु पूर्व्वोक्तमोहनीयस्थानप्रकृतिगळुमवर भंगंगळुमप्पुवेंदु पेळ्दपरु :—

सगसंभवधुवबंधे वेदेक्के दोजुगाणमेक्के य ।
ठाणा वेदजुगाणं भंगहदे होंति तब्भंगा ॥४६६॥

स्वसंभवध्रुवबंधे वेदैकस्मिन्द्वियुगलयोरेकस्मिंश्च स्थानानि वेदयुगलानां भंगहते भवंति तद्भंगाः ॥

आ गुणस्थानंगळोळु पेळ्द स्वसंभवध्रुवबंधिप्रकृतिसंख्येगळोळु स्वयोग्यवेदमनों दं हास्यारतियुगळद्वयदोळों दु युगळमुमं कूडुत्तं विरलु स्थानप्रकृतिसंख्याप्रमाणमुं स्वसंभववेदसंख्येयं स्वसंभवयुगळसंख्येयिंदं गुणिसुत्तं विरलु स्वस्वस्थानदोळु भंगंगळुमप्पुवेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु मोहनीयबंधकूटमिदो

भ	२
हा २ । २ अ	
। १ । १ । १ ।	
कषा १६	
मि	
१	

कूटदोळु ओंदु मिथ्यात्वप्रकृतियुं षोडशकषायंगळु भयद्विकमुं मितु एकान्नविंशति प्रकृतिगळु ध्रुवबंधिगळु इवरोळु वेदत्रयदोळों दं द्विकद्वयदोळों दु द्विकमुमं कूडिदोडे द्वाविंशतिप्रकृतिगळप्पुवी स्थानदोळु हास्यद्विकक्के मूरुं वेदंगळुमरतिद्वयक्के मूरुं वेदंगळंतु षड्भंगंगळप्पुवु २२ सासादननोळु मोहनीयबंधप्रकृतिकूटमिदो

६

उक्तस्वस्वध्रुवबंधिषु पुनर्वेदेष्वेकस्मिन् हास्यरतियुग्मयोरेकस्मिंश्च मिलिते तानि स्थानानि तद्वेदयुग्मभंगे च हते तद्भंगा भवंति । तद्यथा— मिथ्यादृष्टिबंधकूटे

२	भ
२ । २	
१ । १ । १	
१६	
१	

मिथ्यात्वषोडशकषायभयद्विकध्रुवबंधिषु वेदत्रये युग्मयोश्चैकैकस्मिन् मिलिते द्वाविंशतिकं । तद्भंगा हास्यरतिद्विकाभ्यां वेदत्रये हते षट् २२ ।

६

अपने-अपने स्थानोंमें कहीं इन ध्रुवबन्धी प्रकृतियोंमें यथा सम्भव तीन वेदोंमें-से एक वेद और हास्य-शोकके युगल और रति-अरतिके युगलमें-से एक मिलानेपर स्थान होता है। तथा वेदोंके प्रमाणको युगलके प्रमाणसे गुणा करनेपर भंगोंका प्रमाण होता है। वही कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिके बन्धकूटमें एक मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा ये उन्नीस तो ध्रुवबन्धी हैं। और तीन वेदोंमें-से एक वेद तथा दो युगलोंमें-से एक युगल मिलकर बाईस प्रकृतिरूप स्थान होता है। यहाँ कूटके आकार रचना है इससे इसे कूट कहा है। तीन वेदोंको हास्य रतिके युगलसे गुणा करनेपर छह होते हैं। सो इस स्थानमें छह भंग होते हैं।

भ २ हा २।२ अ ०।१।१।१६।० कूटदोळु षोडशकषायंगळुं भयद्विकमंतुमष्टादशमोहध्रुवबंधंगळप्पु ववरोळु वेदद्वयदोळोंदं द्विकद्वयदोळोंदु द्विकमं कूडिदोडेकविंशतिप्रकृतिस्थानदोळु वेदद्वयक्कं युगलद्विकक्कं नाल्कु भंगंगळप्पुवु २१ (४) मिश्रंगे मोहनीयबंधकूटमिदो २ (२।२।१।१२) कूटदोळु द्वादशकषायंगळुं भयद्विकमुमंतु ध्रुवबंधिगळु पदिनाल्कप्पुववरोळु पुंवेदमुं द्विकद्वयदोळोंदु द्विकमुमं कूडिदोडे सप्तदश प्रकृतिस्थानमक्कुमदरोळु हास्यद्विकक्कमरतिद्विकक्कमेरडे भंगंगळप्पुवु १७ (२) असंयतंगे मोहनीयबंधप्रकृतिकूटमिदो २ (२।२।१।१२) कूटदोळु द्वादशकषायंगळुं भयद्विकमुमंतु ध्रुवबंधिगळु पदिनाल्कप्पुववरोळु द्विकद्वयदोळोंदु द्विकमुमं पुंवेदमुमं कूडिदोडे सप्तदशप्रकृतिस्थानमक्कुमदरोळु द्विकद्वयदेरडे

सासादने बंधकूटे (२ भ हा २।२। अ ०।१।१।१६।०) षोडशकषायभयद्विकध्रुवबंधिषु वेदयोर्द्विकयोश्चैकैकस्मिन्मिलिते एकविंशतिकं, तद्भंगाः वेदद्वययुग्मद्वयजाश्चत्वारः (२१ ४) मिश्रबंधकूटे (२ २।२ १ १२) द्वादशकषायभयद्विकध्रुवबंधिषु

---

१० जो इस प्रकार हैं—उन्नीस ध्रुवबन्धी और पुरुषवेद हास्य रति इस प्रकार एक भंग हुआ। पुरुषवेदकी जगह स्त्रीवेद होनेपर दूसरा भंग हुआ। नपुंसकवेद होनेपर तीसरा भंग हुआ। तथा हास्य रतिकी जगह शोक अरति होनेपर भी उसी प्रकार तीन भंग होते हैं। इस प्रकार छह भंग होते हैं। इसका मतलब यह है कि बाईसका बन्ध छह प्रकारसे होता है। इसी प्रकार आगे भी प्रकृतियोंके बदलनेसे भंग जानना।

१५ सासादन बन्धकूटमें सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा ये अठारह तो ध्रुवबन्धी हैं। इनमें पुरुष-स्त्री दो वेदोंमें-से एक वेद और दो युगलोंमें-से एक मिलानेपर इकीस प्रकृतिरूप स्थान होता है। इनमें-से दो वेदोंको दो युगलोंसे गुणा करनेपर चार भंग होते हैं।

मिश्र बन्धकूटमें बारह कषाय, भय, जुगुप्सा ये चौदह ध्रुवबन्धी, इनमें पुरुषवेद और दो युगलोंमें-से एक मिलानेपर सतरह प्रकृतिरूप स्थान होता है। यहाँ एक वेदको दो युगलसे

२० गुणा करनेपर दो भंग होते हैं।

भंगंगळप्पुवु १७ देशसंयतंगे मोहनीयबंधकूटमिदो २ कूटदोळु अष्टकषायंगळुं भयद्विकमुं कूडि
२ २।२
१
८
दश ध्रुवबंधिप्रकृतिगळप्पुववरोळु पुंवेदमुमं द्विकद्वयदोळोंदु द्विकमं कूडुत्तं विरलु त्रयोदशमोहनीय-
प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमदक्के द्विकद्वयकृतभंगद्वितयमेयक्कुं १३ प्रमत्तसंयतंगे मोहनीयबंधप्रकृति-
२
कूटमिदो २ कूटदोळु कषायचतुष्कमुं भयद्विकमुमितारुं ध्रुवबंधिगळप्पुववरोळु पुंवेदमुमं द्विक-
२।२
१
४
द्वयदोळोंदु द्विकमुमं कूडुत्तं विरलु नवप्रकृतिबंधस्थानमक्कुमवरोळु द्विकद्वितयकृतभंगद्वयमक्कु ९ ५
२
मी प्रमत्तगुणस्थानदोळु अरतिद्विकं बंधव्युच्छित्तियादुदु अप्रमत्तसंयतंगे मोहनीयप्रकृतिबंधकूट-
मिदो भ २ कूटदोळ संज्वलनकषायचतुष्कमुं भयद्विकमुमंतारुं प्रकृतिगळु ध्रुवबंधिगळप्पुववरोळु
हा २
पु १
क ४

पुंवेदे द्विकयोरेकैकस्मिंश्च मिलिते सप्तदशकं, तद्भंगाः हास्यरतिद्विकजौ द्वौ | १७ | असंयतबंधकूटे | २ |
२		२।२
		१
		१२

द्वादशकषायभयद्विकध्रुवबंधिषु द्विकयोरेकस्मिन् पुंवेदे च मिलिते सप्तदशकं, तद्भंगा द्विकद्वयजौ द्वौ | १७ |
| २ |

देशसंयतबंधकूटे | २ | अष्टकषायभयद्वयध्रुवबंधिषु पुंवेदे द्विकद्वयोरेकैकस्मिंश्च मिलिते त्रयोदशकं, तद्भंगाः १०
| २।२ |
| १ |
| ८ |

द्विकद्वयजौ द्वौ १३ । प्रमत्तबंधकूटे २ चतुष्कषायभयद्विकध्रुवबंधिषु पुंवेदे द्विकयोरेकस्मिंश्च मिलिते नवकं
२ २।२
१
४

असंयतमें भी मिश्रकी तरह सतरह प्रकृतिरूप स्थान जानना तथा भंग दो जानना।

देशसंयत बन्धकूटमें आठ कषाय, भय, जुगुप्सा ये दस ध्रुवबन्धी हैं। इनमें पुरुषवेद और दो युगलोंमें-से एकके मिलनेपर तेरह प्रकृतिरूप स्थान होता है। उसमें एक वेदको दो युगलसे गुणा करनेपर दो भंग होते हैं। १५

प्रमत्त बन्धकूटमें चार कषाय, भय, जुगुप्सा ये छह ध्रुवबन्धी हैं। इनमें पुरुषवेद और दो युगलोंमें-से एक मिलानेपर नौ प्रकृतिरूप स्थान होता है। एक वेदको दो युगलसे गुणा करनेपर दो भंग होते हैं। यहाँ अरति और शोककी बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है।

पुंवेदमुमं हास्यद्विकमुमं कूडिदोडे नवप्रकृतिबंधस्थानमक्कुमल्लियों दे भंगमक्कुं ९ अपूर्वकरणंगे
१
मोहनीयबंधप्रकृतिकूटमिदो २ कूटदोळु कषायचतुष्कमुं भयद्विकमुमंतु ध्रुवबंधिगळारप्पुववरोळु
२
१
४
पुंवेदमुमं हास्यद्विकमुमं कूडिदोडे नवप्रकृतिबंधस्थानमक्कुमल्लियुमों दे भंगमक्कु ९ मी यपूर्व-
१
करणगुणस्थानचरमसमयदोळु हास्यद्विकमुं भयद्विकमुं व्युच्छित्तियक्कुमनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु
५ मोहनीयबंधकूटं प्रथमभागदोळिदो १ कूटदोळु ध्रुवबंधिगळु कषायंगळु नाल्के यक्कुमवरोळु
४
पुंवेदमं कूडिदोडे पंचप्रकृतिस्थानमक्कुमदरोळों देभंगमक्कु ५ मिल्लि पुंवेदं व्युच्छित्तियक्कुं।
१
अनिवृत्तिद्वितीयभागदोळु मोहनीयबंधप्रकृतिकूटमिदो ४ कूटदोळी कषायचतुष्कं ध्रुवबंधिगळ-
प्पुवु। भंगमों देयक्कुं ४ यिल्लि क्रोधं निंदुदु। अनिवृत्तितृतीयभागदोळु मोहनीयबंधकूटमिदो ३
१
कूटदोळु ध्रुवबंधिगळी मूरुं कषायंगळेयप्पुवु स्थानमुमिदेयक्कुं। भंगमुमों देयक्कुं ३ इल्लि मान-
१
१० कषायं निंदुदु। अनिवृत्तिचतुर्त्थभागदोळु मोहनीयबंधकूटमिदो २ कूटदोळी कषायद्वयमे ध्रुवबंधि-
गळप्पुवु। स्थानमुं द्विप्रकृतिकमक्कुं। भंगमों देयक्कुं २ इल्लि मायाकषायं निंदुदु। अनिवृत्ति-
१

तद्भंगाः द्विकद्वयजौ द्वौ ९। अत्र रतिद्विकं बंधव्युच्छिन्नं। अप्रमत्तेऽपूर्वकरणे च बंधकूटे २ चतुःसंज्वलनभय-
२ २
१
४
द्विकध्रुवबंधिषु पुंवेदे हास्यद्विके च मिलिते नवकं, तेन तद्भंग एकः ९ अत्र हास्यद्विकभयद्विके व्युच्छिन्ने।
१
अनिवृत्तिकरणबंधकूटे १ चतुष्कषायध्रुवबंधिषु पुंवेदे मिलिते पंचकं तद्भंग एकः ५। अत्र पुंवेदो व्युच्छिन्नः।
४ १
१५ द्वितीयभागे कषायचतुष्कं ध्रुवबंधिभंग एकः ४, क्रोधो व्युच्छिन्नः। तृतीयभागे कषायत्रयं, भंग एकः ३ मानो
१ १

अप्रमत्त और अपूर्वकरण बन्धकूटमें चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा ये ध्रुवबन्धी हैं। इनमें पुरुषवेद, हास्य, रति मिलनेपर नौ प्रकृतिरूप स्थान होता है। यहाँ भंग एक ही है। यहाँ हास्य, रति, भय, जुगुप्साके बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है।

अनिवृत्तिकरणके बन्धकूटमें चार कषाय ध्रुवबन्धी हैं। उनमें पुरुषवेद मिलनेपर पाँच
२० प्रकृतिरूप स्थान होता है। यहाँ भंग एक ही है। यहाँ पुरुषवेदके बन्धकी व्युच्छित्ति हो जाती है। उसीके दूसरे भागमें कषायचतुष्क ध्रुवबन्धीरूप स्थान है। भंग एक। यहाँ क्रोधकी व्युच्छित्ति हो जाती है। उसीके तीसरे भागमें तीन कषाय ध्रुवबन्धीरूप स्थान है। भंग एक

पंचमभागदोळु मोहनीयबंधप्रकृतिकूटमिदी १ कूटदोळो लोभकषायमों दे ध्रुवबंधियक्कुमिदे एकप्रकृतिबंधस्थानमक्कुमल्लि यों दे भंगमक्कुं १ इंतुक्तनवगुणस्थानंगळोळु संदृष्टि :—

१

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ
२२	२१	१७	१७	१३	९	९	९	५।४।३।२।१।
६	४	२	२	२	२	१	१	१।१।१।१।१।

मोहनीयद्वाविंशत्यादिबंधस्थानंगळोळु भंगसंख्येयं पेळ्दपरु :—

छब्बावीसे चदुइगिवीसे दोदो हवंति छट्ठोत्ति ।
एक्केक्कमदो भंगा बंधट्ठाणेसु मोहस्स ॥४६७॥

षट्द्वाविंशत्यां चत्वार एकविंशतौ द्वौ द्वौ भवंति षष्ठपर्य्यंतं एकैकोऽतो भंगाः बंधस्थानेषु मोहस्य ॥

मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणपर्य्यंत पेळ्द मोहनीयबंधस्थानंगळोळु मोदल द्वाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानदोळु षड्भंगंगळप्पुवु । एकविंशतिप्रकृतिबंधस्थानदोळु नाल्कुभंगंगळप्पुवु । मेलें प्रमत्तपर्य्यंतमेरडेरडु भंगंगळप्पुवु । अतः अल्लिदं मेलेल्ला स्थानंगळोळोदों दे भंगंगळप्पुवु ॥

अनंतरं मोहनीयबंधसामान्यस्थानसमुच्चयसंख्येयुमनवक्के संभविसुव भुजाकारादिबंधभेदसंख्येगळुमं पेळ्दपरु :—

दस वीसं एक्कारस तित्तीसं मोहबंधठाणाणि ।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि य सामण्णे ॥४६८॥

दश विंशतिरेकादश त्रयस्त्रिंशन्मोहबंधस्थानि । भुजाकारात्पतरावस्थिता अपि च सामान्ये ॥

व्युच्छिन्नः । चतुर्थभागे कषायद्वयं भंग एकः २ माया व्युच्छिन्ना, पंचमभागे लोभ एव भंग एकः १ ॥४६६॥

१ १

उक्तभंगसंख्यामाह—

मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणांतेषूक्तमोहनीयबंधस्थानेषु भंगा द्वाविंशतिके षड् भवंति । एकविंशतिके चत्वारः । उपरि प्रमत्तपर्यंतं द्वौ द्वौ । अत उपरि सर्वस्थानेष्वेकैकः ॥४६७॥

है। यहाँ मानकी व्युच्छित्ति हुई। चौथे भागमें दो कषाय ध्रुवबन्धीरूप स्थान है। भंग एक। यहाँ मायाकी व्युच्छिति हुई। पाँचवें भागमें लोभ ध्रुवबन्धीरूप स्थान है। भंग एक है ॥४६६॥

आगे भंगोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण पर्यन्त मोहनीयके बन्धस्थानोंमें भंग बाईस प्रकृतिरूप स्थानमें छह, इक्कीस प्रकृतिरूपमें चार, ऊपर प्रमत्त पर्यन्त दो-दो तथा उससे ऊपर सब स्थानोंमें एक-एक जानना ॥४६७॥

भंगविवक्षेयं माडदे सामान्यदोळु मोहनीयबंधस्थानंगळु भुजाकारंगळु मल्पतरंगळु मवस्थितंगळुं यथाक्रमदिदं दश विंशति एकादश त्रयस्त्रिंशत्संख्येगळप्पुवु। संदृष्टि—स्था १०। भुजाकारं २०। अल्प ११। अव ३३॥

अनंतरं भुजाकार बंधादिगळगे लक्षणमं पेळ्दपरु :—

अप्पं बंधंतो बहुबंधे बहुगा दु अप्पबंधेवि।
उभयत्थ समे बंधे भुजकारादी कमे होंति ॥४६९॥

अल्पं बध्नन्बहुबंधे बहुकात्तु अल्पबंधेपि। उभयत्र समे बंधे भुजाकारादयः क्रमे भवंति॥

अल्पप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तमनंतरसमयदोळु बहुप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं विरलु भुजाकारबंधमेंबुदक्कुं। तु मत्ते बहुकात् बहुप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तमनंतर समयदोळल्पप्रकृतिस्थानमं कट्टिदनादोडे अल्पतरबंधमेंबुदक्कुं। उभयत्र समे बंधे भुजाकारात्पतरप्रकृतिस्थानबंधकं द्वितीयादिसमयंगळोळु समबंधकनागुत्तं विरलवस्थितबंधमेंबुदक्कु-। मपिशब्दादिदमवक्तव्यबंधमुमल्लियुमवस्थितबंधमुमेंटेंदरियल्पडुगुं॥

अनंतरमव्यक्तबंधमं भंगविवक्षेयं माडद सामान्यदिदं पेळ्दपरु :—

सामण्ण अवत्तव्वो ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे।
एक्कं च होदि एत्थवि दो चेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७०॥

सामान्यावक्तव्योऽवतीर्य्यमाणे एको मरणे। एकश्च भवत्यत्रापि द्वावेवावस्थितौ भंगौ॥

प्राग्मोहनीयबंधस्थानानि दशोक्तानि तेषां भंगविवक्षामंतरेण भुजाकारबंधाः विंशतिः। अल्पतरबंधा एकादश। अवस्थितबंधास्त्रयस्त्रिंशत् ॥४६८॥ एतान् लक्षयति—

अल्पप्रकृतिकं बध्नन्ननंतरसमये बहुप्रकृतिकं बध्नाति तदा भुजाकारबंधः स्यात्। पुनः बहुप्रकृतिकं बध्नन्ननंतरसमयेऽल्पप्रकृतिकं बध्नाति तदाल्पतरबंधः। तत्र उभयत्र अपिशब्दादवक्तव्यबंधद्वयेऽपि च द्वितीयादिसमयेषु समानप्रकृतिकं बध्नाति तदावस्थितबंधः ॥४६९॥ अथ सामान्यावक्तव्यभंगसंख्यामाह[1]—

पहले मोहनीयके बन्धस्थान दस कहे हैं। उनके भंगोंकी विवक्षा बिना किये भुजकार बन्ध बीस हैं, अल्पतर बन्ध ग्यारह हैं। और अवस्थित बन्ध तैंतीस हैं ॥४६८॥

भुजकारादिका लक्षण कहते हैं—

थोड़ी प्रकृतियोंका बन्ध करनेके अनन्तर समयमें बहुत प्रकृतियोंको बाँधे तो भुजाकार बन्ध होता है। बहुत प्रकृतियोंका बन्ध करनेके अनन्तर समयमें थोड़ी प्रकृतियोंको बाँधे तो अल्पतर बन्ध होता है। इन दोनों ही प्रकारके बन्धोंमें तथा 'च' शब्दसे दोनों अवक्तव्य बन्धोंमें भी जितनी प्रकृति पहले बाँधी थी पीछे द्वितीयादि समयोंमें उतनी ही बाँधे तो अवस्थित बन्ध होता है ॥४६९॥

आगे सामान्य अवक्तव्य भंगोंकी संख्या कहते हैं—

---

१. 'अथ सामान्योक्तस्थानानि तद्भुजाकारादिबंधांश्च संख्याति' पाठोऽयमभयचंद्रनामांकितायां टीकायामधिकः।

भंगविवक्षारहितमागि सामान्यदिंदमवक्तव्यबंधमुपशमश्रेणियनिळियुत्तिर्प्पातनोळु एक भंगमक्कुं। मरणमुंटादोडल्लियों दु भंगमक्कुमंतवक्तव्यबंधमेरडप्पुवा येरडरोळं द्वितीयादिसमयदोळु समप्रकृतिस्थानबंधमागुत्तं विरलु भयदोळकूडि येरडुभंगंगळवस्थितंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु सामान्यबंधस्थानंगळु हत्तक्कं वक्ष्यमाणप्रकारदिं भुजाकारबंधंगळिप्पत्तु। अल्पतरबंधंगळ्पन्नों दु। आ भुजाकाराल्पतरमुभयदोळमवस्थितबंधंगळु कूडि मूवत्तों दु। अवक्तव्यबंधद्वयद द्वितीयादि समयदोळु संभविसुव अवस्थितबंधंगळेरडंतु कूडि अवस्थितबंधंगळु मूवत्तमूरु। भुजाकाराल्पतरावस्थितदिंदं निरूपिसल्पडुदरर्त्तणिदमवक्तव्यबंधमेंबुदक्कुमवक्के क्रमदिंदं संदृष्टि :—

ठा २२। २१। १७। १३। ९। ५। ४। ३। २। १। कूडि १०॥

भुजाकार संदृष्टि :—

१।१	२।२	३।३	४।४	५।५	९।९	९।९	१३।१३।१३	१७।१७	२१
२।१७	३।१७	४।१७	५।१७	९।१७	१३।१७	२१।२२	१७।२१।२२	२१।२२	२२

अल्पतर संदृष्टि :—

२२।२२।२२	१७।१७	१३	९	५	४	३	२
१७।१३। ९	१३। ९	९	५	४	३	२	१

अवक्तव्यबंधंगळ संदृष्टि ० ० अवस्थितंगळु कूडि मूवत्तमूरु ३३। यिन्नु भुजाकारादि-
१।१७

बंधंगळु संभविसुव प्रकारं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे—उपशमश्रेण्यवतरणदोळु अनिवृत्तिकरणं संज्वलनलोभमं कट्टुतलिळिदनंतर समयदोळु संज्वलनमायेसहितमागवतरणद्वितीयप्रथमभागदोळु

सामान्येन भंगविवक्षामकृत्वा अवक्तव्यबंधः। उपशमश्रेण्यवरोहके एकः। तत्र मरणेऽप्येकः एवं द्वौ भवतः। तथा तद्द्वितीयादिसमये चावस्थितबंधावपि द्वौ भवतः। अमीषां भुजाकारादीनां संभवप्रकार उच्यते—

अवरोहकानिवृत्तिकरणः संज्वलनलोभं बध्नन्नधस्तनभागेऽवतीर्य मायासहितं बध्नाति वा स यदि बद्धायुष्को म्रियते तदा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश च बध्नातीत्येकबंधके भुजाकारौ द्वौ। पुनः तद्द्वयं बध्नन्नवतीर्याधस्तनभागे मानसहितं बध्नाति। वा तथा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश बध्नातीति द्विबंधकेऽपि द्वौ। पुनस्तत्त्रयं बध्नन्नवतीर्याधस्तनभागे चतुःसंज्वलनान् वा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश च बध्नातीति त्रिबंधके द्वौ।

सामान्यसे अर्थात् भंगोंकी विवक्षा न करके अवक्तव्य बन्ध दो होते हैं—

उपशमश्रेणिसे उतरनेपर एक और वहाँ मरनेपर एक। तथा उसके द्वितीय आदि समयमें अवस्थितबन्ध भी दो होते हैं। इन भुजाकार आदिके होनेको कहते हैं—

उपशमश्रेणिसे उतरनेवाला अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती संज्वलन लोभका बन्ध करके नीचेके भागमें उतरकर माया-लोभ दोका बन्ध करता है। अथवा यदि वह बद्धायु वहाँ मरकर देव असंयत होकर सतरहका बन्ध करता है तो इस प्रकार एक प्रकृतिरूप बन्ध स्थानमें दो भुजाकार होते हैं। पुनः उन दोनोंको बाँध नीचेके भागमें उतर मान सहित तीनका बन्ध करता है अथवा उक्त प्रकारसे असंयत देव होकर सतरहका बन्ध करता है तो दो प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें भी दो भुजाकार होते हैं। पुनः उन तीनोंको बाँध उतरकर नीचेके

येरडं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारबंधमक्कुं। मत्तमा संज्वलनलोभमं कट्टुत्तिद्दुं मरणमादोडे देवासंयतनागि पदिनेळु प्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमितेरडु। मत्तमा संज्वलनलोभमायाद्वयमं कट्टुत्तिळिदनंतरसमयदोळु अवतरणद्वितीयभागदोळ संज्वलनलोभमायामानत्रयमं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारमा द्विबंधकंगे मरणमादोडे देवासंयतनागि पदिनेळु प्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमंतु द्विबंधकनोळेरडु। मत्तमा संज्वलनलोभमायामान सहितमागि मूरं कट्टुत्तिर्द्दिळिदनिवृत्तिकरणावरणतृतीयचतुर्त्थभागदोळु नाल्कुं संज्वलनकषायप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमा त्रिबंधकंगे मरणमादोडे देवासंयतनागि पदिनेळं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमंतेरडु। मत्तमवतरणचतुर्त्थभागदोळनिवृत्तिकरणं संज्वलनकषायचतुष्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिळिदु पंचमभागदोळु पुंवेदसहितमागि पंचप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमा चतुष्कषायबंधकंगे चतुर्त्थभागदोळु मरणमादोडे देवासंयतनागि पदिनेळु प्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमंतु चतुष्कषायबंधकनोळेरडु। मत्तमा पंचप्रकृतिस्थानबंधकानिवृत्तिकरणनिळिदु अपूर्व्वकरणगुणस्थानमं पोद्दिद प्रथमसमयदोळु नवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडे इदों दु भुजाकारबंधमक्कुमा पंचप्रकृतिस्थानबंधकानिवृत्तिकरणंगे मरणमादोडे देवासंयतनागि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमंतेरडप्पुवु।

पुनस्तच्चतुष्कं बध्नन्नवतीर्यापूर्वकरणो भूत्वा सप्तदश बध्नाति। वा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश च बध्नातीति पंचबंधके द्वौ। पुनः अपूर्वकरणोऽप्रमत्तः प्रमत्तो वा नवबंधकः क्रमेणावतीर्य देशसंयतो भूत्वा त्रयोदश, वा देवासंयतो भूत्वा सप्तदश, वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वः सासादनो भूत्वैकविंशति, वा वेदकसम्यक्त्वः स मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशति च बध्नातीति नवबंधके चत्वारः। पुनः तत्त्रयोदशबंधकोऽसंयतो देवासंयतो वा भूत्वा सप्तदश वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वः स सासादनो भूत्वैकविंशति वा

भागमें चार संज्वलन कषायोंको बाँधता है अथवा असंयत देव होकर सतरहको बाँधता है तो तीन प्रकृतिरूप स्थानमें भी दो भुजकार होते हैं। पुनः उन चारको बाँध उतरकर नीचेके भागमें पुरुषवेदके साथ पाँचको बाँधता है अथवा असंयतदेव हो सतरहको बाँधता है तो इस प्रकार चार प्रकृतिरूप स्थानमें भी दो भुजकार होते हैं। पुनः उन पाँचका बन्ध करके उतरकर अपूर्वकरण गुणस्थानमें हास्य, रति, भय, जुगुप्साके साथ नौका बन्ध करता है या असंयत देव होकर सतरहका बन्ध करता है इस प्रकार पाँचके बन्धस्थानमें भी दो भुजाकार होते हैं।

पुनः अपूर्वकरण, अप्रमत्त या प्रमत्त नौका बन्ध करके क्रमसे उतरकर देशसंयत होकर तेरहका अथवा देव असंयत होकर सतरहका बन्ध करे। अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्वी सासादनमें जाकर इक्कीसका बन्ध करे अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्वी या वेदक सम्यग्दृष्टी मिथ्यादृष्टी होकर बाईसका बन्ध करे इस प्रकार नौ प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें चार भुजाकार होते हैं। पुनः तेरहको बाँधकर असंयत या देव असंयत हो सतरहको बांधे, अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्वी सासादन होकर इक्कीसको बांधे या प्रथमोपशम सम्यक्त्वी या वेदक

मत्तमा नवबंधकावतारकापूर्व्वकरणं क्रमदिंदमिळिदु प्रमत्तनागि नवबंधकनागुत्तिळिदु देशसंयतनागि त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमथवा श्रेण्यवतारकनल्लद प्रमत्तसंयतं देशसंयतनागि मेणु त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं । मत्तमा बद्धायुष्यं नवबंधकापूर्व्वकरणंगमप्रमत्तसंयतंगं प्रमत्तसंयतंगं मरणमादोडे देवासंयतनागि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुं। अवतारकापूर्वकरण चरमभागदोळु मरणमेंतु घटिसुगुमदु मरणरहित भागमेंदितु शंकिसल्वेडेकेंदोडे उपशमश्रेण्यारोहणदोळे प्रथमभागदोळु मरणमिल्लवतरणदोळल्लि मरणमुंटप्पुदरिंदं। मत्तं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियप्रमत्तसंयतं प्रमत्तसंयतनागि नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं विराधिसि अनंतानुबंधि कर्म्मोदयदिंदं सासादननागि एकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुं । मत्तमा नवबंधकं प्रमत्तसंयतं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोद्दि द्वाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमंतु नवबंधकनोळु नाल्कु भुजाकारबंधंगळप्पुवु । त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दं देशसंयतनसंयतनागि मेणु मरणमादोडे देवासंयतनागि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमिदों दु भुजाकारबंधमक्कुं । मत्तं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि देशसंयतं त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं सासादननागि एकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुं । प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियागळि वेदकसम्यग्दृष्टियागलि त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दं देशसंयतं मिथ्यात्वोदयदिंदं मिथ्यादृष्टियागि द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमितु त्रयोदशप्रकृतिस्थानबंधकंगे भुजाकारबंधंगळु मूरु संभविसुववु । सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दंसंयतसम्यग्दृष्टि प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालमावळिषट्कमवशेषमादागळु अनंतानुबंध्युदयदिंदं सासादननागि एकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमा सप्तदशप्रकृतिस्थानबंधकनसंयतं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि मेणु वेदकसम्यग्दृष्टियागलि मेणु मिश्रनागलि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं मिथ्यात्वोदयदिंदं मिथ्यादृष्टियागि द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिदों दु भुजाकारबंधमक्कुमितु सप्तदशप्रकृतिस्थानबंधकनोळु भुजाकारबंधंगळेरडप्पुवु । मत्तमेकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दं सासादनं मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमनोंदने नियमदिंदं पोद्दि तद्भवदोळं मेणु परभवदोळं द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमिदों दे प्रकारबंधमक्कु । मितु भुजाकारबंधंगळिप्पत्तुं पेळल्पट्टु विन्न-

---

प्रथमोपशमसम्यक्त्वो वेदकसम्यक्त्वश्च मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशतिं च बध्नातीति त्रयोदशबंधके त्रयः । तत्सप्तदशबंधकः प्रथमोपशमसम्यक्त्वः सासादनो भूत्वैकविंशतिं वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वो वेदकसम्यक्त्वो मिश्रश्च स मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा द्वाविंशतिं च बध्नातीति सप्तदशबंधके द्वौ । पुनस्तदेकविंशतिं बध्नन् मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा तस्मिन्न-

---

सम्यग्दृष्टी मिथ्यादृष्टी होकर बाईसको बाँधे तो इस प्रकार तेरह प्रकृतिरूप बन्ध स्थानमें तीन भुजाकार होते हैं। सतरह प्रकृतिको बाँधकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वी सासादन होकर इक्कीसको बांधे या प्रथमोपशम सम्यक्त्वी वेदक सम्यग्दृष्टी और मिश्रगुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि हो बाईसको बाँधता है तो इस प्रकार सतरहके बन्धस्थानमें दो भुजाकार होते हैं।

ल्पतरबंधंगळु विचारिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे—अनादिमिथ्यादृष्टिमेणु सादिमिथ्यादृष्टिमेणु करणत्रयमं माडि अनिवृत्तिकरणचरमसमयदोळु द्वाविंशतिप्रकृति मोहनीयस्थानमं कट्टुत्तमनंतरसमयदोळु असंयतप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियागि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडे यिदों दल्पतरबंधभेदमक्कुमथवा सादिमिथ्यादृष्टिसम्यक्त्व प्रकृत्युदयदिंद वेदकसम्यग्दृष्टियागि अप्रत्याख्यानकषायोदयदिंदमसंयतनागि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमा मिथ्यादृष्टिकरणत्रयमं माडि अनिवृत्तिकरण चरमसमयदोळु द्वाविंशतिमोहनीयबंधस्थानमं कट्टि तदनंतर समयदोळु प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियागि प्रत्याख्यानावरणोदयदिंदं देशसंयतनागि त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। अथवा सादिमिथ्यादृष्टि द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं तदनंतरसमयदोळु सम्यक्त्वप्रकृतिप्रत्याख्यानावरणोदयंगळिंदं वेदकसम्यग्दृष्टि देशसंयतनागि त्रयोदशप्रकृतिबंधस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमा साद्यनादिमिथ्यादृष्टिगळु द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दंनंतरसमयदोळप्रमत्तनागि नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमिंतपुनरुक्ताल्पतरबंधभेदंगळु द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानबंधदत्तणिंदं मूरप्पुवु। मत्तमसंयतवेदकसम्यग्दृष्टि मेणु क्षायिकसम्यग्दृष्टि सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं तदनंतरसमयदोळु प्रत्याख्यानवरणोदयदिं देशसंयतनागि त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमसंयतं सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं अनंतरसमयदोळु महाव्रतियप्रमत्तसंयतनागि नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। यितु सप्तदशप्रकृतिस्थानबंधकंगल्पतरबंधभेदंगळेरडप्पुवु। सप्तदशप्रकृतिबंधकं सम्यग्मिथ्यादृष्टिमेले असंयतगुणस्थानमं पोद्दिसप्तदशप्रकृतिस्थानमनल्लियुं कट्टुगुमप्पुदरिंदमामिश्रंगे अल्पतरबंधभेदं संभविसदु। मत्तं त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं देशसंयतं महाव्रतियप्रमत्तसंयतनागि नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमपूर्व्वकरणं नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दनिवृत्तिकरणप्रथमभागमं पोद्दि तत्प्रथमसमयदोळु पंचप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमा प्रथमभागानिवृत्ति-

---

न्यस्मिन्वा भवे द्वाविंशतिं बध्नातीत्येकः। एवं भुजाकारा विंशतिः। अथाल्पतरबंधा उच्यंते—

अनादिः सादिर्वा मिथ्यादृष्टिः करणत्रयं कुर्वन्ननिवृत्तिकरणचरमसमये द्वाविंशतिं बध्नन्ननंतरसमये प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा वा सादिमिथ्यादृष्टिरेव सम्यक्त्वप्रकृत्युदये सति वेदकसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उभयोऽप्यप्रत्याख्यानोदयेऽसंयतो भूत्वा सप्तदश बध्नाति। वा प्रत्याख्यानोदये देशसंयतो भूत्वा त्रयोदश बध्नाति, वा संज्वलनोदयेऽप्रमत्तो भूत्वा नव बध्नातीति द्वाविंशतिबंधे त्रयः। पुनः वेदकसम्यग्दृष्टिः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा

इक्कीसको बाँधकर मिथ्यादृष्टि होकर उसी भवमें या दूसरे भवमें बाईसको बाँधे तो इक्कीस प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें एक भुजाकार हुआ। इस प्रकार भुजाकार बन्ध बीस होते हैं।

अब अल्पतर बन्ध कहते हैं—अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टी तीन करण करते हुए अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें बाईसका बन्ध करके अनन्तर समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वी होकर अथवा सादि मिथ्यादृष्टी सम्यक्त्व मोहनीयके उदयसे वेदक सम्यक्त्वी होकर, दोनों ही अप्रत्याख्यानका उदय होनेसे असंयत होते हुए सतरहको बाँधे, या प्रत्याख्यानके उदयमें देशसंयत हो तेरह बाँधे, या संज्वलनका उदय होनेसे अप्रमत्त हो नौ को बाँधे इस प्रकार बाईस प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें तीन अल्पतर बन्ध होते हैं।

वेदक सम्यग्दृष्टी या क्षायिक सम्यग्दृष्टी असंयत सतरहको बाँध देशसंयत हो तेरहको

करणं पंचप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं द्वितीयभागमं पोद्दि तत्प्रथमसमयदोळु चतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमा निजद्वितीयभागानिवृत्तिकरणं चतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं निजतृतीयभागमं पोद्दि तत्प्रथमसमयदोळु त्रिप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमा तृतीयभागानिवृत्तिकरणं त्रिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं निजचतुर्थभागमं पोद्दि तत्प्रथमसमयदोळ्द्विप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। मत्तमा चतुर्थभागानिवृत्तिकरणं द्विप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं निजपंचमभागमं पोद्दि एकप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुं। इंतल्पतरबंधंगळु पन्नों दुं संभविसुव प्रकारं पेळ्पट्टुदु। अवस्थितबंधभेदंगळु मूवत्तमूरप्पुवें तेंदोडे भुजाकारबंधभेदंगळिप्पत्तमल्पतरबंधंगळु पन्नों दुमवक्तव्यबंधंगळेरडुमितु मूवत्तमूररोळं द्वितीयादिसमयंगळोळु समबंधसंभवंगळप्पुवें दु निश्चयिसुवुदु॥

ई सामान्यभुजाकाराल्पतरावस्थितावक्तव्यमें ब चतुर्व्विधबंधंगळं विशेषिसि पेळ्दपरु :-

सत्तावीसहियसयं पणदालं पंचहत्तरहियसयं।
भुजगारप्पदराणि य अवट्ठिदाणिवि विसेसेण ॥४७१॥

सप्तविंशत्युत्तरशतं पंचचत्वारिंशत्पंचसप्तत्यधिकशतं। भुजाकाराल्पतराश्चावस्थिता अपि विशेषेण॥

विशेषदिंदं भुजाकाराल्पतरावस्थितंगळु यथाक्रमदिंदं सप्तविंशत्युत्तरशतं १२७। पंचचत्वारिंशद् भेदमुं ४५। पंचसप्तत्यधिकशतमु १७५। मप्पुवदें तेंदोडे सामान्यबंधस्थानंगळु पत्तु १०।

असंयतः सप्तदश बध्नन् देशसंयतो भूत्वा त्रयोदश वा अप्रमत्तो भूत्वा नव च बध्नातीति सप्तदशबंधे द्वौ। पुनः तत्त्रयोदशबंधकोऽप्रमत्तो भूत्वा नव, नवबंधकोऽपूर्वकरणेऽनिवृत्तिकरणप्रथमभागे पंच, पंचबंधकः द्वितीयभागे चत्वारि, चतुर्बंधकस्तृतीयभागे त्रीणि, त्रिबंधकश्चतुर्थभागे द्वे, द्विबंधकः पंचमभागे एकं च बध्नातीत्येकैकः। एवमल्पतरबंधाः एकादश। उक्तभुजाकाराल्पतरावक्तव्यानां द्वितीयादिसमयेषु समबंधोऽवस्थितबंधस्त्रयस्त्रिंशत् ॥४७०॥ अथ विशेषभुजाकारादीन् संख्याति—

विशेषभुजाकाराः सप्तविंशतिशतं, अल्पतराः पंचचत्वारिंशत्, अवस्थिताः पंचसप्ततिशतं। तत्र

बाँधे या अप्रमत्त होकर नौको बाँधे, इस तरह सतरहके बन्धस्थानमें दो अल्पतर होते हैं। तथा तेरहका बन्धक अप्रमत्त हो नौको बाँधे, नौका बन्धक अपूर्वकरण या अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें पाँच बाँधे, पाँचको बाँधकर दूसरे भागमें चार बाँधे, चारको बाँध तीसरे भागमें तीन बाँधे, तीनको बाँध चौथे भागमें दो बाँधे, दोको बाँध पाँचवें भागमें एक बाँधे, इस तरह इन स्थानोंमें एक-एक अल्पतर होता है। ऐसे सब अल्पतर ग्यारह होते हैं।

तथा ऊपर कहे दो अवक्तव्य, बीस भुजाकार, ग्यारह अल्पतर ये सब मिलकर तेंतीस अवस्थित बन्ध होते हैं; क्योंकि इन बन्धोंमें जितनी प्रकृतियोंका बन्ध कहा है उतनी ही प्रकृतियोंका बन्ध द्वितीयादि समयोंमें जहाँ होता है वहाँ अवस्थित बन्ध कहा जाता है ॥४७०॥

आगे विशेष भुजाकारादिकी संख्या कहते हैं—

विशेष रूपसे भुजाकार एक सौ सत्ताईस, अल्पतर पैंतालीस, और अवस्थित एक सौ पिचहत्तर होते हैं। विशेष भुजाकार कहते हैं—

यिवक्के संभविसुव विशेषभुजाकारंगळु नूरिप्पत्तेळक्के संभवमं पेळ्वल्लि साधनमप्प रचना-विशेषमिदु :—

सा १	मिश्र१	असं २		देशसं । ३ ॥०॥			प्रमत्तको ४ ॥				अप्र १
२१	१७	१७	१७	१३	१३	१३	९	९	९	९	९
४	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	१
२२	२२	२१	२२	१७	२१	२२	१३	१७	२१	२२	१७
६	६	४	६	२	४	६	२	२	४	६	२
२४	१२	८	१२	४	८	१२	४	४	८	१२	२

अपू १	अनिवृत्तिको २									
९	५	५	४	४	३	३	२	२	१	१
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
१७	१	१७	५	१७	४	४	३	१७	२२	१७
२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२
४	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२

ई विशेषभुजाकारंगळगाळापं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे इल्लि द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्प्पं मिथ्यादृष्टिबहुलं प्रकृतिस्थानमं कट्टुवडा बहुप्रकृतिस्थानांतरासंभवमप्पुदरिंदं भुजाकारबंधमा द्वाविंशतिप्रकृतिबंधवर्त्तणिवं शून्यमक्कुं। सासादनसम्यग्दृष्टि एक भंगयुतैकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तळु षड्भंगयुत द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिरलु चतुर्भंगयुतैकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळेनितु द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानबंध भुजाकारंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडुत्तिरलु

प्र २१	फ २२	इ २१
१	६	४

बंद लब्धं चतुर्विंशति भुजाकारबंधंगळप्पुवु | २४ | सम्यग्मिथ्यादृष्टि एकभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलु षड्भंगयुत द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं क्रमदिंदं कट्टुत्तिरलु द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागलेनितु द्वाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानभुजाकारंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडुत्तिरलु

प्र	फ	इ
१७	२२	१७
१	६	२

भुजाकारो यथा—द्वाविंशतिकस्य मिथ्यादृष्टौ शून्यं, ततोऽधिकस्य मोहनीयबंधस्थानस्याभावात्। सासादनबन्धयोग्यचतुर्धैकविंशतिकस्यैकभंगस्य मिथ्यादृष्टिबंधयोग्यषोढाद्वाविंशतिकस्यैकैकभंगेन समबंधे चतुर्विंशतिः। एवं

मिथ्यादृष्टिमें बाईससे अधिकका बन्धस्थान मोहनीय का न होनेसे शून्य है। सासादनमें बन्धयोग्य इक्कीसके चार भंग कहे हैं और मिथ्यादृष्टिमें बन्धयोग्य बाईसके छह भंग कहे हैं। सासादनसे मिथ्यादृष्टिमें आवे तो एक-एक भंगकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिमें बाईसके बन्धके छह भागोंके भुजाकार ४ × ६ = चौबीस होते हैं। इसी प्रकार मिश्रमें सतरहके बन्धके

बंदलब्ध द्वादशभुजाकारबंधंगळप्पुवु १२। असंयतसम्यग्दृष्टि एकप्रकार भंगयुत सप्तदश प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलु चतुर्भंगयुतैकविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिरलु द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळेनितु एकविंशतिप्रकृतिस्थानबंधभुजाकारबंधंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडुत्तिरलु—

प्र	फ	इ
१७	२१	१७
१	४	२

बंदलब्धं भुजाकारंगळु एंदु। मत्तमा सप्तदश प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलसंयतं षड्भंगयुतद्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळु द्विभंगयुत सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलेनितु द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानभुजाकारंगळं माळ्कुमेंदितिदोंदु त्रैराशिकमं माडि

प्र	फ	इ
१७	२२	१७
१	६	२

बंद लब्धं भुजाकारंगळु पन्नेरडप्पु १२ वंतसंयतन सप्तदशप्रकृतिस्थानदत्तणिं भुजाकारंगळिप्पत्तप्पुवु २०।[1] देशसंयतं एक भंगयुत त्रयोदश प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलु द्विभंगयुत सप्तदशप्रकृतिस्थानमनसंयतनागि मेणु मिश्रनागि मेणु देवासंयतनागि कट्टुवातं द्विभंगयुतत्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेनितु भुजाकारंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडि मत्तमंते चतुर्भंगयुतैकविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं षड्भंगयुत द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं फलराशिगळं माडितु त्रैराशिकत्रितयमं माडि—

प्र	फ	इ	लब्ध	प्र	फ	इ	लब्ध	प्र	फ	इ	लब्ध
१३	१७	१३	४	१३	२१	१३	८	१३	२२	१३	१२
१	२	२		१	४	२		१	६	२	

लब्धत्रयभुजाकरविशेषंगळु त्रयोदशप्रकृतिस्थानदत्तणिंदमिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४। प्रमत्तसंयतं एकभंग-

---

सम्यग्मिथ्यादृष्टिबंधयोग्यद्विषासप्तदशकस्य मिथ्यादृष्टिषोढाद्वाविंशतिकेन द्वादश। असंयतद्विषासप्तदशकस्य सासादनचतुर्धैकविंशतिकेनाष्टौ मिथ्यादृष्टिषोढाद्वाविंशतिकेन च द्वादशेति विंशतिः। देशसंयतद्विधात्रयोदशकस्य मिश्रासंयतदेवासंयतानां द्विधासप्तदशकेन चत्वारः। सासादनचतुर्धैकविंशतिकेन चाष्टौ मिथ्यादृष्टिषोढाविंशतिकेन

दो भंग होते हैं। मिश्रसे मिथ्यादृष्टिमें आता है। अतः मिथ्यादृष्टिके बाईसके बन्धमें छह भंगोंकी अपेक्षा भुजाकार २ × ६ = बारह होते हैं।

असंयतमें सतरहके बन्धके दो प्रकार हैं। वहाँसे सासादनमें आनेपर वहाँ इक्कीसके बन्धके चार प्रकार होनेसे उनकी अपेक्षा आठ भुजाकार होते हैं। यदि सासादनसे मिथ्यादृष्टिमें आवे तो वहाँ बाईसके बन्धके छह प्रकार होनेसे उनकी अपेक्षा बारह भुजाकार होते हैं। इस प्रकार बीस हुए।

देशसंयतमें तेरहका बन्ध दो प्रकारसे होता है। वहाँसे मिश्रमें या असंयतमें या मरकर असंयत देव हो तो वहाँ सतरहके बन्धके दो प्रकार होनेसे उनकी अपेक्षा चार भुजाकार हैं। यदि सासादनमें आवे तो वहाँ इक्कीसके बन्धके चार प्रकार हैं, उनकी अपेक्षा आठ भुजाकार हुए। मिथ्यादृष्टिमें आवे तो वहाँ बाईसके बन्धके छह प्रकार हैं, उनकी अपेक्षा बारह भुजाकार हुए। इस प्रकार सब चौबीस भुजाकार हुए।

---

१. असंयतं मिश्रगुणस्थानमं पोद्दिदोडे अवस्थितमल्लदे भुजाकारबंधमिल्ल॥

युतनवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं द्विभंगयुतत्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळु द्विभंगयुतनवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेनितु भुजाकारंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकमं माडिमत्तमंते द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमुमं चतुर्भंगयुतैकविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं षड्भंगयुतद्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं फलराशिगळं माडिंतु त्रैराशिक चतुष्टयमिदं—

प्र	फ	इ	लब्ध	प्र	फ	इ	लब्ध	प्र	फ	इ	लब्ध	प्र	फ	इ	लब्ध
९	१३	९	४	९	१७	९	४	९	२१	९	८	९	२२	९	१२
१	२	२		१	२	२		१	४	२		१	६	२	

बंद लब्ध भुजाकारंगळु इप्पत्तेंदु २८। अप्रमत्तसंयतनेकभंगयुतनवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं देवासंयतनागि द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडे भुजाकारंगळु त्रैराशिकसिद्धंगळेरडप्पुवु। २। अपूर्व्वकरणंगमंते एकभंगयुतनवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं देवासंयतनागि कट्टिदोडेरडु भुजाकारंगळप्पुवु। २। अनिवृत्तिकरणं एकभंगयुतपंचप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्द्दिळिदपूर्व्वकरणनागि एकभंगयुतनवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों दु भुजाकारमक्कुं। मत्तमा येकभंगयुत पंचप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं देवासंयतनागि द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमंतु पंचबंधकनत्तणिंदं भुजाकारभंगंगळु मूरप्पुवु। मत्तं चतुर्ब्बंधकनेकभंगयुतपंचप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों दु भुजाकारमा चतुर्ब्बंधकं देवासंयतनागि द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेरडु भुजाकारंगलंतु चतुर्ब्बंधकनत्तणिंदं भुजाकारंगळु मूरप्पुवु। मत्तं त्रिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तमनिवृत्तिकरणंचतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों दु भुजाकारमक्कु। मत्तं त्रिप्रकृतिस्थानबंधकं देवासंयतनागि द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेरडु भुजाकारंगळप्पुवंतु प्रकृतिस्थानबंधकनत्तणिंदं

च द्वादशेति चतुर्विंशतिः। प्रमत्तसंयतद्विधानवकस्य देशसंयतद्विधात्रयोदशकेन चत्वारः, मिश्रासंयतद्विविधसप्तदशकेन चत्वारः, सासादने चतुर्विधैकविंशतिकेनाष्टौ मिथ्यादृष्टिषड्विधद्वाविंशतिकेन द्वादशेत्यष्टाविंशतिः। अप्रमत्तैकविधनवकस्य देवासंयतद्विभंगसप्तदशकेन द्वौ। अपूर्वकरणनवकस्यापि तथैव द्वौ। अनिवृत्तिकरणैकभंगपंचकस्यापूर्वकरणैकभंगनवकेनैकः, देवासंयतद्विभंगसप्तदशकेन द्वौ, चतुष्कस्यैकभंगपंचकेनैकः, देवासंयतद्वि-

प्रमत्तमें नौके बन्धके दो प्रकार हैं। वहांसे देशसंयतमें आवे तो वहां तेरहके बन्धके दो प्रकार हैं। अतः चार भुजाकार हुए। यदि मिश्रमें या असंयतमें आवे तो वहां सतरहके बन्धके दो प्रकार हैं। अतः चार भुजाकार हुए। सासादनमें आवे तो वहां इक्कीसके बन्धके चार प्रकार अतः आठ भुजाकार हुए। मिथ्यादृष्टिमें आवे तो वहां बाईसके बन्धके छह प्रकार हैं। अतः बारह भुजाकार हुए। इस तरह सब अट्ठाईस हुए।

अप्रमत्तमें बन्धका एक ही प्रकार है। वहांसे मरकर असंयत देव हो तो वहां सतरहके बन्धके दो प्रकार हैं। अतः दो भुजाकार हुए। प्रमत्तमें आवे तो वहां नौका ही बन्ध होता है अतः भुजाकार नहीं है। अपूर्वकरणमें नौका बन्ध है। वहां भी इसी प्रकार दो ही भुजाकार हुए।

अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें पांचके बन्धका एक प्रकार है। वहांसे अपूर्वकरणमें आवे तो वहां नौके बन्धका एक प्रकार है अतः एक भुजाकार है। यदि मरकर असंयत देव हो तो

भुजाकारंगळु मूरप्पुवु। मत्तमा द्विप्रकृतिस्थानबंधकनप्पनिवृत्तिकरणं त्रिप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों दु भुजाकारमक्कुमा द्विप्रकृतिस्थानबंधकं देवासंयतनागि द्विभंगयुतसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेरडु भुजाकारंगळप्पुर्वितु द्विप्रकृतिस्थानबंधकनत्तणिंदं मूरु भुजाकारबंधभेदंगळप्पुवु। मत्तमेकप्रकृतिबंधकं द्विप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों दु भुजाकारमक्कु। मत्तमा एक प्रकृतिस्थानबंधकं मरणमादोडे देवासंयतनागि द्विभंगयुत सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेरडु भुजाकारंगळप्पुर्वितु एकप्रकृतिस्थानबंधकनत्तणिंद भुजाकार भेदंगळु मूरप्पुर्वितनिवृत्तिकरणंगे भुजाकारबंधभेदंगळु पदिनैय्दप्पुवु १५। इंतु सर्व्वविशेषभुजाकारंगळु नूरिप्पत्तेळु १२७। र्यितु पेळल्पट्ट नूरिप्पत्तेळुं भुजाकारबंधविशेषंगळु मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळ् इनितिनितप्पुर्वेंदु संख्येयं पेळ्दपरु :—

णभ चउवीसं बारस वीसं चउरट्ठवीस दो दो य।
थूले पणगादीणं तिय तिय मिच्छादिभुजगारा ॥४७२॥

नभश्चतुर्व्विंशतिर्द्वादश विंशतिश्चतुरष्टविंशतिर्द्वौ द्वौ च। स्थूले पंचकादीनां त्रिक त्रिकं मिथ्यादृष्ट्यादि भुजाकाराः॥

मिथ्यादृष्ट्यादियागनिवृत्तिकरणपर्य्यंत विशेषभुजाकारंगळुत्तंगळु क्रमदिदं पेळल्पडुवल्लि मिथ्यादृष्टियोळु शून्यमक्कुमेकेंदोडा मिथ्यादृष्टि कट्टुव मोहनीयप्रकृतिबंधस्थानं द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमल्लदे मेलधिकप्रकृतिबंधस्थानमिल्लप्पुदरिंदं। सासादनंगे चतुर्व्विंशतिभुजाकारंगळप्पुवु। २४। मिश्रंगे द्वादशभुजाकारंगळप्पुवु ॥१२॥ असंयतंगे विंशतिभुजाकारंगळप्पुवु २०। देश-

---

भंगसप्तदशकेन द्वौ, त्रिकस्य चतुष्केणैकः, देवासंयताद्विभंगसप्तदशकेन द्वौ, द्विकस्यैकभंगत्रिकेणैकः देवासंयतद्विभंगसप्तदशकेन द्वौ, एकस्यैकभंगद्विकेनैकः, देवासंयतद्विभंगसप्तदशकेन द्वौ मिलित्वा सप्तविंशत्यग्रशतं ॥४७१॥ तानेवाह—

विशेषभुजाकाराः मिथ्यादृष्टौ शून्यं। सासादने चतुर्विंशतिः। मिश्रे द्वादश। असंयते विंशतिः।

सतरहके बन्धके दो प्रकार हैं। अतः दो भुजाकार हुए। इस तरह तीन हुए। दूसरे भागमें चारका बन्ध। वहाँसे प्रथम भागमें आकर पाँचका बन्ध करे तो उसकी अपेक्षा एक भुजाकार है। यदि मरकर देव असंयत हो तो वहाँ सतरहके बन्धके दो प्रकार हैं। अतः दो भुजाकार होनेसे सब तीन हुए।

इसी प्रकार तीसरे भागमें तीनका बन्ध। वहाँसे दूसरे भागमें आकर चारका बन्ध करे तो एक भुजाकार। मरकर देव असंयत हो तो उसकी अपेक्षा दो। इस प्रकार तीन हुए। चौथे भागमें दोका बन्ध। वहाँसे तीसरे भागमें आकर तीनका बन्ध करनेपर एक भुजाकार। देव असंयत हो सतरहका बन्ध करनेपर दो, ऐसे तीन हुए। पाँचवें भागमें एकका बन्ध। वहाँसे चौथे भागमें आकर दोका बन्ध करनेपर एक। अथवा देव असंयत होकर सतरहका बन्ध करनेपर दो, इस प्रकार तीन भुजाकार हुए। सब मिलकर भुजाकार बन्ध एक सौ सत्ताईस होते हैं ॥४७१॥

आगे उन्हींको कहते हैं—

भंगोंकी अपेक्षा विशेष भुजाकार मिथ्यादृष्टिमें शून्य, सासादनमें चौबीस,

संयतंगे चतुर्व्विंशति भुजाकारंगळप्पुवु । २४ । प्रमत्तसंयतंगे अष्टाविंशति भुजाकारंगळप्पुवु २८ ॥ अप्रमत्तंगे द्वयभुजाकारंगळप्पुवु । २ । अपूर्व्वकरणंगेयू द्विकभुजाकारंगळप्पुवु । २ । स्थूलनोळ-निवृत्तिकरणनोळु पंचकादिप्रकृतिस्थानंगळोळु त्रिकत्रिकभुजाकारंगळप्पुवु ३।३।३।३।३। संदृष्टि :—

प्रकृ. भंग			भुजाकार संख्या	अल्पतर बंध
अ	५	४	३	२
	३	३	३	३
अ	९	१	२	१
अ	९	१	२	०
प्र	९	२	२८	२
दे	१३	२	२४	२
अ	१७	२	२०	६
मि	१७	२	१२	०
सा	२१	४	२४	०
मि	२२	६	०	०

अल्पतर बंध	अनिवृत्ति				
१	५	४	३	२	१
३					
स्थू	१	१	१	१	०

अप्पदरा पुण तीसं णभ णभ छ दूदोण्णि णभ एक्कं ।
थूले पणगादीणं एक्केक्कं अंतिमे सुण्णं ॥४७३॥

अल्पतराः पुनस्त्रिंशन्नभो नभः षड् द्वौ द्वौ नभ एकः । स्थूले पंचकादीनामेकैकोऽतिमे शून्यं॥

पुनः मत्तल्पतरंगळु मिथ्यादृष्टियोळु ३० । सासादननोळु नभमेयक्कुं शून्यमें बुदर्त्थ। मा सासादनंगे भुजाकारबंध संभविसुगुमल्लदल्पतरबंधं संभविसदेकें दोडे पतनशीलनप्पुदरिंबं। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमनल्लदन्यगुणस्थानमं नियमदिदं पोद्दिनप्पुदरिंदं । मिश्रंगेयुमल्पतरबंधविशेषं शून्यमेयक्कुमेकें दोडा मिश्रनुमेलें असंयतगुणस्थानमल्लदन्यगुणस्थानांतरमं पोद्दिनप्पुदरिंदं सम-

देशसंयते चतुर्विंशतिः । प्रमत्तेऽष्टाविंशतिः । अप्रमत्ते द्वौ । अपूर्वकरणेऽपि द्वौ । स्थूले अनिवृत्तिकरणे पंचकादिषु त्रयस्त्रयो भूत्वा पंचदश मिलित्वा तावंतः ॥४७२॥

पुनः अल्पतरा मिथ्यादृष्टौ षोढाद्वाविंशतिकस्य मिश्रासंयतयोर्द्विधासप्तदशकेन द्वादश, देशसंयतद्विधात्रयोदशकेन द्वादश, अप्रमत्तैकधानवकेन षडिति त्रिंशत् । तस्यैकविंशतिकेन द्विधानवकेन च बंधः 'सासणपमत्त-

मिश्रमें बारह, असंयतमें बीस, देशसंयतमें चौबीस, प्रमत्तमें अठाईस, अप्रमत्तमें दो, अपूर्वकरणमें दो, अनिवृत्तिकरणमें पांच आदिके बन्धमें तीन-तीन भुजकार होनेसे मिलकर पन्द्रह। इस तरह एक सौ सत्ताईस भुजाकार हुए ॥४७२॥

अब अल्पतर बन्ध कहते हैं—मिथ्यादृष्टिमें बाईसका बन्ध, उसके छह प्रकार। वहांसे मिश्र या असंयतमें जानेपर सतरहका बन्ध दो प्रकार। सो एक-एक प्रकारमें छह प्रकारके बाईसके बन्धकी अपेक्षा बारह अल्पतर होते हैं। यदि देशसंयतमें गया तो वहां तेरहका बन्ध दो प्रकार। अतः बारह अल्पतर होते हैं। यदि अप्रमत्तमें गया तो वहां नौका बन्ध एक प्रकार। अतः छह अल्पतर सब तीस हुए।

बंधमक्कुमप्पुदरिंदमवस्थितबंधमेयक्कुमल्पतरबंधविशेषं संभविसदु । केळगे मिथ्यादृष्टियप्पनल्लदे सासादननागनदु कारणमागि मिश्रंगल्पतरबंधविशेषं शून्यमेंबुदु सिद्धमक्कुं ॥ असंयतनोळल्पतरंगळारप्पुवु । ६ । देशसंयतनोळेरडप्पुवु । २ । प्रमत्तसंयतनोळमेरडेयल्पतरंगळप्पुवु । २ । अप्रमत्तनोळु शून्यमक्कुमपूर्व्वकरणनोळु ओंदेयल्पतरबंधविशेषमक्कुं । स्थूलनोळु पंचकाविस्थानंगळ्गेकेकाल्पतरंगळप्पुवंतिमदोळु अल्पतरशून्यमक्कुमिवक्के संदृष्टि :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अपू।	अनि				
ठा	२२	२२	२२	१७	१७	१३	९	९	५	४	३	२	१
	६	६	६	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१
ठा	१७	१३	९	१३	९	९	९	५	४	३	२	१	
	२	२	१	२	१	१	१	१	१	१	१	१	०
भं	१२	१२	६	४	२	२	२	१	१	१	१	१	०

ई पंचचत्वारिंशदल्पतरबंधंगळ स्वरूपनिरूपणं गेय्यल्पडुगुमदेंतेंदोडे मिथ्यादृष्टिजीवं षट्प्रकार द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलुं द्विप्रकार सप्तदशप्रकृतिस्थानमं मिश्रनागि मेणसंयतनागि कट्टुत्तं विरलु द्वादशभंगंगळप्पुवु । १२ । मत्तमा मिथ्यादृष्टि षट्प्रकार द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं देशसंयतनागि द्विप्रकारत्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडे द्वादशाल्पतरबंधभेदंगळप्पुवु । १२ ॥ मत्तमा मिथ्यादृष्टि षट्प्रकारद्वाविंशति प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलुमप्रमत्तनागि एकप्रकारनवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडल्पतरबंधविकल्पंगळारप्पु ६ । वितु मिथ्यादृष्टिगल्पतरबंधभेदंगळु मूवत्तप्पुवु ३० ।

वज्जं अपमत्तं तं समल्लियइ मिच्छो' इति नियमात्, सासादनस्य पतनशीलत्वात् मिथ्यादृष्टावेव गमनादेकविंशतिकस्य भुजाकारा एव नाल्पतरमिति शून्यं । मिश्रस्यासंयते गमने बंधस्यावस्थितत्वान्मिथ्यादृष्टौ च गमने भुजाकारत्वादन्यत्रागमनाच्च सप्तदशकस्य नाल्पतरोऽस्तीति शून्यं । असंयते द्विधासप्तदशकस्य देशसंयतद्विधात्रयोदशकेन चत्वारः, अप्रमत्तैकभंगनवकेन च द्वाविति षट् । देशसंयते द्विधात्रयोदशकस्याप्रमत्तैकधानवकेन

मिथ्यादृष्टि जीव सासादन और प्रमत्त गुणस्थानोंको छोड़ अप्रमत्त तक जाता है अतः सासादनके चार प्रकारवाले इक्कीसके बन्धकी अपेक्षा और प्रमत्तके दो प्रकारवाले नौके बन्धकी अपेक्षा अल्पतर बन्ध नहीं कहे । तथा सासादनसे गिर मिथ्यादृष्टी ही होता है । इससे इक्कीसके बन्धके भुजकार बन्ध तो सम्भव हैं किन्तु ऊपर नहीं चढ़ता, इससे अल्पतरका अभाव है । इसीसे सासादनमें शून्य कहा है ।

मिश्रसे गिरे तो मिथ्यादृष्टि ही होता है अतः वहाँ भुजकार बन्ध ही होता है और ऊपर चढ़े तो असंयतमें जाता है । वहाँ भी मिश्रकी ही तरह सतरहका बन्ध है । इससे मिश्रमें अल्पतर बन्ध न होनेसे शून्य कहा है । असंयतमें दो प्रकारसे सतरहका बन्ध होता है । वहाँसे देशसंयतमें जावे तो वहाँ दो प्रकारसे तेरहका बन्ध । अतः चार अल्पतर हुए । यदि अप्रमत्तमें जावे तो वहाँ एक प्रकारसे नौका बन्ध है । अतः दो अल्पतर हुए । इस तरह छह हुए ।

मिथ्यादृष्टिजीवं सासादननुं प्रमत्तनुमागि एकविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं द्विप्रकार नवप्रकृतिस्थानमुमं कट्टनेकें दोडे—सासणपमत्तवज्जं अपमत्तं तं समल्लियइ मिच्छो एंबो नियममुंटप्पुदरिंदं। सासादननोळं मिश्रनोळं शून्यमक्कुं। द्विप्रकार सप्तदशप्रकृतिस्थानमनसंयतं कट्टुत्तमिद्दुं देशसंयतनागि द्विप्रकार त्रयोदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडल्पतरबंधभेदंगळु नाल्कप्पुवु ४। मत्तमा असंयतं द्विप्रकारसप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तमिद्दुं अप्रमत्तनागि एकप्रकार नवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेरडल्पतरबंधभेदंगळप्पुवु २। विंतसंयतंगल्पतरबंधभेदंगळारप्पुवु। ६। सप्तदशप्रकृतिस्थानबंधकसम्यग्मिथ्यादृष्टि देशसंयतगुणस्थानमुमनप्रमत्तगुणस्थानमुमं साक्षात्पोद्दुंवुदिल्लक्रमदिंदमसंयतनाद बळिकं पोद्दुंगुमेंबुदु मुंपेळ्दंते ज्ञातव्यमक्कु। मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानवर्त्तिगळु साक्षादिनितिनितु गुणस्थानंगळं पोद्दुंवरेंदु मुंदे चदुरेक्क दुपण पंच य इत्यादि सूत्रं पेळल्पडुगुमप्पुदरिंदं। मिश्रगुणस्थानवर्त्ति कळगे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमनल्लदे सासादनगुणस्थानमं पोद्दुंवुदिल्ल। द्विप्रकार त्रयोदश प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दं देशसंयतनेकप्रकारमप्प नवप्रकृतिस्थानमनप्रमत्तनागि कट्टिदोडेरडल्पतरबंध भेदंगळप्पुवु। २। द्विप्रकार नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दं प्रमत्तसंयतनप्रमत्तसंयतनागि एकप्रकार नवप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेरडेयल्पतरबंधविशेषंगळप्पु। २। [1]मिल्लि नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं प्रमत्तसंयतनप्रमत्तनागियल्लियुं नवप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमंतु कट्टत्तं विरलु अवस्थितबंधविशेषमल्लदल्पतरबंधविशेषमेंतक्कुमेंदोडे प्रमत्तसंयतंगरतिद्विकबंधमुंटु। अप्रमत्तनोळु बंधमिल्लप्पुदरिंदं। बहुप्रकृतिबंधदत्तणिंदमल्पतरप्रकृतिबंधमप्रमत्तसंयतनोळु सिद्धमप्पुदरिंदं। अप्रमत्तसंयतंगल्पतरबंधविशेषं संभविसदेकेंदोडप्रमत्तनपूर्व्वकरणनागियुमल्लियुं समानभंगनवप्रकृतिस्थानमं कट्टुगुमप्पुदरिंदमल्पतरबंधं शून्यमक्कुं। अपूर्व्वकरणसंयतनेकप्रकारनवप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिद्दुं अनिवृत्तिकरणनागि एकप्रकार

द्वौ। प्रमत्तद्विधानवकस्य अप्रमत्तैकभंगनवकेन द्वौ। कथं समसंख्याबंधेऽल्पतरत्वं? प्रमत्ते अरतिद्विकबंधच्छेदेनाप्रमत्ते प्रकृतिबंधस्याल्पतरत्वसंभवात्। अप्रमत्तेऽपूर्वकरणसमानभंगनवकबंधाच्छून्यं। अपूर्वकरणे एकधानवक-

---

देशसंयतमें तेरहका बन्ध दो प्रकारसे। यहांसे अप्रमत्तमें जावे तो वहाँ नौका बन्ध, प्रकार एक। अतः दो अल्पतर हुए।

प्रमत्तमें नौका बन्ध, दो प्रकार। यहांसे अप्रमत्तमें जावे तो वहां नौका बन्ध एक प्रकार। अतः दो अल्पतर हुए।

शंका—प्रमत्त और अप्रमत्तमें नौका ही बन्ध होता है। अतः समान संख्या होनेसे अवस्थित बन्ध ही सम्भव है। अल्पतर कैसे कहा?

समाधान—प्रमत्तमें अरति और शोकके बन्धकी व्युच्छित्ति हुई है। उसकी अपेक्षा अकृतिबन्ध अल्पतर होनेसे अल्पतर बन्ध सम्भव है।

अप्रमत्तसे अपूर्वकरणमें जानेपर दोनोंमें समान रूपसे नौका बन्ध होनेसे अल्पतर बन्ध सम्भव नहीं है। अतः शून्य कहा है।

---

१. म विल्ली। २. इदरभिप्रायं मुंपेळ्व प्रमत्ताप्रमत्तनोळु अरिवुदु।

पंचप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों देयल्पतरबंधभेदमक्कु । १ । एकप्रकार पंचप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्द्दनिवृत्तिकरणसंयतनेकविधचतुःप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडल्लियुमों देयल्पतरबंधभेदमक्कुं १ । त्रिप्रकृतिस्थानमनेकविधमं कट्टुत्तिर्द्दनिवृत्तिकरणनेकविधद्विप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों देयल्पतरबंधविशेषमक्कुं । १ । एकप्रकार द्विप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्द्दनिवृत्तिकरणसंयतनेकप्रकारैकप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडों देयल्पतरबंधविशेषमक्कुं । १ । एकप्रकारैप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्द्दनिवृत्तिकरणनेनुमं [1]कट्टदे सूक्ष्मसांपरायनादोडे अल्पतरबंधलक्षणमल्लदवक्तव्यलक्षणमप्पुदरिंदमल्लि अल्पतरबंधं शून्यमक्कुं । इंतल्पतरबंधविशेषंगळु पंचचत्वारिंशद्भेदंगळप्पुवु ४५ ॥

विशेषावस्थितबंधभेदंगळुं भुजाकारात्पतरबंधंगळ द्वितीयादिसमयंगळोळु संभविसुवंतप्पसमानप्रकृतिस्थानबंधंगळ नूरेप्पत्तेरडप्पुवु १७२ । मुंदे पेळल्पडुव विशेषावक्तव्यबंधविशेषंगळु मूररोळं द्वितीयादिसमयंगळोळु समानप्रकृतिस्थानंगळु मूरप्पुवंतु विशेषावस्थितबंधंगळु नूरेप्पत्तय्दप्पु १७५ ववरोळाळापमुं भुजाकारात्पतरंगळ बंधविशेषंगळोळु सासादननिप्पत्तों दु प्रकृतिस्थानमं चतुर्व्विधमं कट्टुत्तलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोद्दि षट्प्रकारद्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टिद द्वितीयादिसमयंगळोळमा चतुर्व्विंशतिभेदयुतद्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमनेकट्टुत्तिरलिप्पत्तनाल्कु विशेषावस्थितबंधभेदंगळप्पुवें दित्यादिबंधंगळं समंगळागि पेळ्दुकोळ्ळुवुदु । संदृष्टि :—

	सा	मि	अ		दे		प्र			अ	अ	अनि	भुजाकारोत्पन्नावस्थितर रचनेय										
ठा	२१	१७	१७	१७	१३	१३	१३	९	९	९	९	९	९	५	५	४	४	३	३	२	२	१	१
	४	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
ठा	२२	२२	२१	२२	१७	२१	२२	१३	१७	२१	२२	१७*	१७	९	१७	५	१७	४	१७	३	१७	२	१७
	६	६	४	६	२	४	६	२	२	४	६	२	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२
भं	२४	१२	८	१२	४	८	१२	४	४	८	१२	२	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२

स्यानिवृत्तिकरणैकधापंचकेनैकः । अनिवृत्तिकरणे एकधापंचकस्यैकधाचतुष्केणैकः । तच्चतुष्कस्यैकधात्रिकेणैकः । तत्त्रिकस्यैकधाद्विकेनैकः । तद्द्विकस्यैकधैकेनैकः । चरमभागे एकं बध्वा सूक्ष्मसांपरायं गतस्य बंधादवक्तव्यत्वाद-

अपूर्वकरणमें नौका बन्ध, एक प्रकार । और अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें पाँचका बन्ध, एक प्रकार । अतः एक अल्पतर है ।

अनिवृत्तिकरणमें एक प्रकार पाँचके बन्धके एक प्रकार चारके बन्धकी अपेक्षा एक । एक प्रकार चारके बन्धके एक प्रकार तीनके बन्धकी अपेक्षा एक । एक प्रकार तीनके बन्धके एक प्रकार दोके बन्धकी अपेक्षा एक । और एक प्रकार दोके बन्धके एक प्रकार एकके बन्धकी अपेक्षा एक अल्पतर है ।

अनिवृत्तिकरणके पंचम भागमें एकका बन्ध है। वहाँसे सूक्ष्मसाम्परायमें जावे तो

१. सूक्ष्मसांपरायनु मोहनीयापेक्षेयिंदेनुमं कट्टुवुदिल्लेंबुदर्त्थं यी अवक्तव्यं । अवस्थितबंधशून्यमक्कुमेकें दोडे द्वितीयादिसमयदोळु ई अवक्तव्यबंधमं कट्टनप्पुदरिं ॥

* अप्रमत्तः प्रमत्त एव भवति पश्चात् असंयतस्तद्भवापेक्षया देवासंयतत्वे सत्येवमित्यभिप्रायः । एवमपूर्व्वकरणादिसु ।

मि	मि	मि	अ	दे	प्र	अ	अनिवृ.	अल्पतरोत्पन्नावस्थित			
२२	२२	२२	१७	१७	१३	९	९	५	४	३	२
६	६	६	२	२	२	२	१	१	१	१	१
१७	१३	९	१३	९	९	९	५	४	३	२	१
२	२	१	२	१	१	१	१	१	१	१	१
१२	१२	६	४	२	२	२	१	१	१	१	१

१		कूडि अवस्थित गलु १७५
१	०	
०	१७	
	२	
अव१क्तव्य	अव२क्तव्य	जावस्थित

इल्लि विशेषावक्तव्यंगळु मूरप्पुववें तेंदोडे उपशमश्रेण्यवतरणदोळुपशांतकषायं क्रमदिदं तम्मुंहूर्त्तकालं तन्न गुणस्थानयोळिर्द्दु तदनंतरसमयदोळु सूक्ष्मसांपरायनागि तद्गुणस्थानकालमंतम्मुंहूर्त्तमात्रसमयंगळं क्रमदिदं कळिदनंतरसमयदोळनिवृत्तिकरणनागि तत्प्रथमसमयदोळु संज्वलनलोभमनोंदने कट्टिदोडों देवक्तव्यबंधविशेषमक्कुं १ मत्तमा उपशांतकषायनागलि मेणा-
१
०

रोहणावरोहणसूक्ष्मसांपरायनागलि प्राग्बद्धदेवायुष्यरुगळगे मरणमादोडे देवासंयतरागि द्विभंगयुत सप्तदशप्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडिवेरडवक्तव्यबंधविशेषंगळप्पुवंतवक्तव्यंगळु मूरप्पुववर द्वितीयादिसमयंगळोळु समबंधमादोडवस्थितंगळुमल्लि मूरप्पु ३ वेंदितरियल्पडुवुवेंदिवं मुंदण गाथासूत्रदिदं पेळ्दपरु :—

भेदेण अवत्तव्वा ओदरमाणम्मि एक्कयं मरणे ।
दो चेव होंति एत्थवि तिण्णेव अवट्ठिदा भंगा ॥४७४॥

भेदेनावक्तव्या अवतीर्य्यमाणे एको मरणे द्वावेव भवतोऽत्रापि त्रय एवावस्थिता भंगाः ॥

भेदेन विशेषदिदमवक्तव्यभंगंगळु मुंपेळ्दंते उपशमश्रेण्यवरोहकोपशांतकषायं सूक्ष्मसांपरायनागि तद्गुणस्थानचरमसमयदोळु मोहनीयमनेनुमं कट्टदनिवृत्तिकरणनागि एकप्रकृतिस्थानमं

ल्पतरशून्यं । एवमल्पतरबंधाः पंचचत्वारिंशत् । अवस्थितस्तु भुजाकाराल्पतरवक्ष्यमाणावक्तव्यानां द्वितीयादिसमयेषु बंधे पंचसप्तत्यग्रशतं ॥४७३॥

ते विशेषेणावक्तव्यास्तु सूक्ष्मसांपरायोऽस्तमोहबंधोऽवतरणेऽनिवृत्तिकरणो भूत्वा संज्वलनलोभं बध्ना-

---

वहाँ मोहनीयका बन्ध नहीं है। अतः वहाँ अवक्तव्य बन्ध सम्भव है, अल्पतर नहीं। अतः शून्य है। इस प्रकार अल्पतर बन्ध पैंतालीस हैं।

एक सौ सत्ताईस भुजाकार, पैंतालीस अल्पतर कहे और तीन अवक्तव्य कहेंगे। इन सबमें पहले समयमें जितनी-जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उतनी-उतनी ही प्रकृतियोंका बन्ध द्वितीय समयमें जहाँ हो वहाँ अवस्थित बन्ध कहलाता है। अतः अवस्थित बन्ध एक सौ पिचहत्तर हैं ॥४७३॥

भंग विवक्षा होनेपर विशेषरूपसे अवक्तव्य बन्ध कहते हैं—

सूक्ष्म साम्परायमें मोहका बन्ध नहीं होता। वहाँसे उतरकर अनिवृत्तिकरणमें

कट्टिदवोडिदो ंदवक्तव्यबंधभेदमक्कुमा उपशांतकषायनागलि मेणारोहणावरोहणसूक्ष्मसांपराय-नागलि मोहनीयमनेनुमं कट्टदे प्राग्बद्धायुष्यंगे मरणमादोडे देवासंयतनागि द्विविधसप्तदशप्रकृति-स्थानमं कट्टिदोडेरडवक्तव्यंगळप्पुवितवक्तव्यबंधभेदंगळ मूरप्पु ३ ववर द्वितीयादिसमयंगळोळु सदृशप्रकृतिस्थानबंधमागुत्तं विरलवस्थितबंधंगळ् मूरप्पुवु ३ ॥ इंतु मोहनीयक्के सामान्यविशेष-भुजाकाराल्पतरावस्थितावक्तव्यमे ंब चतुर्व्विधबंधंगळं पेळ्दनंतरं मोहनीयोदयप्रकृतिस्थानंगळनि- ५
ते ंदोडे पेळ्दपरु :—

दस णव अट्ठ य सत्त य छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च ।
उदयट्ठाणा मोहे णव चेव य होंति णियमेण ॥४७५॥

दश नवाष्ट च सप्त च षट् पंच चत्वारिद्वे एकं चोदयस्थानानि मोहे नव चैव च भवंति नियमेन ॥ १०

दश नव अष्ट सप्त षट् पंच चतुः द्वि एकप्रकृतिसंख्यावच्छिन्नंगळप्पुदयस्थानंगळु मोहनीय-दोळु नवस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि—१० । ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु मोहनीयोदयप्रकृतिसंभवासंभवंगळनुदयस्थानं-गळगे पेळ्दपरु ।

मिच्छं मिस्सं सगुणे वेदगसम्मेव होदि सम्मतं । १५
एक्का कसायजादी वेददुजुगलाणमेक्कं च ॥४७६॥

मिथ्यात्वं मिश्रं स्वगुणे वेदकसम्यग्दृष्टावेव भवति । सम्यक्त्वं एका कषायजातिर्व्वेददुयु-गलयोरेकं च ॥

मिथ्यात्वप्रकृतियं मिश्रप्रकृतियुं तंतम्मगुणस्थानदोळे उदयिसुववु । वेदकसम्यग्दृष्टिगळप्प असंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळोळे सम्यक्त्वप्रकृतित्युदयमक्कुमितो पेळल्पट्टप्रकृतिगळगे २०

तीत्येकः । स एव च यदि बद्धायुष्कः आरोहणेऽवरोहणे वा म्रियते तदा देवासंयतो भूत्वा द्विधा सप्तदशकं बध्नातीति द्वौ एवं त्रयो भवंति । अत्रापि तद्द्वितीयादिसमयेषु समबंधे त्रय एवावस्थिताश्च भवंति ॥४७४॥ एवं मोहनीयस्य सामान्यविशेषभुजाकारादिचतुर्धाबंधानुक्त्वा इदानीमुदयस्थानान्याह—

दशनवाष्टसप्तषट्पंचचतुर्द्व्येकप्रकृतिसंख्यान्युदयस्थानानि मोहनीये नवैव भवंति ॥४७५॥

मोहनीयोदयप्रकृतिषु मिथ्यात्वं मिश्रं च स्वस्वगुणस्थाने एवोदेति । सम्यक्त्वप्रकृतिः वेदकसम्यग्दृष्टावे- २५

संज्वलन लोभका बन्ध करनेपर एक अवक्तव्य बन्ध होता है । और बद्धायु सूक्ष्म साम्पराय चढ़ते या उतरते हुए मरण करे तो देव असंयत होकर दो प्रकारसे सतरह प्रकृतियोंका बन्ध करता है, उसकी अपेक्षा दो अवक्तव्य हुए । इस प्रकार तीन अवक्तव्य बन्ध हैं । यहाँ भी द्वितीयादि समयमें समान प्रकृतियोंका बन्ध होनेपर तीन अवस्थित बन्ध सम्भव हैं ॥४७४॥

इस प्रकार मोहनीयके सामान्य विशेषरूप भुजाकार आदि चार प्रकारके बन्धोंको ३०
कहकर अब मोहनीयके उदयस्थान कहते हैं—

दस, नौ, आठ, सात, छह, पाँच, चार, दो और एक प्रकृतिरूपसे नियमसे मोहनीयके नौ उदयस्थान होते हैं ॥४७५॥

मोहनीयकी उदयप्रकृतियोंमें मिथ्यात्व और मिश्रका उदय अपने-अपने मिथ्यादृष्टि

पेळल्पट्ट गुणस्थानंगळोळेयुदयनियममरियल्पडुत्तं विरलुदयकूटं पेळल्पडुगुमदें तें दोडे—एककषायें जातिः ओंदु कषायजातियुं वेदस्त्रीपुंनपुंसकमेंब वेदत्रयदोळोंदु वेदमुं हास्यद्विकमरतिद्विकमेंब युगलद्वयदोळोंदु युगलमुं :—

भयसहियं च जुगुंछासहियं दोहिवि जुदं च ठाणाणि ।
मिच्छादि अप्पुव्वंते चत्तारि हवंति णियमेण ॥४७७॥

भयसहितं च जुगुप्सासहितं द्वाभ्यामपि युतं च स्थानानि । मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वांते चत्वारि भवंति नियमेन ॥

मुंपेळ्द क्रोधादिकषायजातियोळोंदु कषायजातियुं वेदत्रयदोळोंदु वेदमुं युगलद्वयदोळोंदु युगलमेंबी प्रकृतिगळोळ्भयसहितमादोडोंदु कूटमक्कुं । जुगुप्सासहितमादोडोंदु कूटमक्कुमुभय-सहितमादोडे वोंदु कूटमक्कुं । उभयमुं रहितमादोडे च शब्दविंदमदोंदु कूटमक्कु मिंती नाल्कु कूटंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतं नाल्कु नाल्कु कूटंगळप्पुवु—

सा	२	१	१	०
मा	२।२	२।२	२।२	२।२
न्य	१११	१११	१११	१११
	४४४४	४४४४	४४४४	४४४४

वासंयतादिचतुर्षूदेति, आसां गुणस्थानेषूदयनियमं प्रदर्श्योदयकूटानि रचयति । चतसृष्वेका कषायजातिः, वेदत्रये एको वेदः, हास्यद्विकारतिद्विकारतिद्विकयोरेकं द्विकं चेतीदं ॥४७६॥

भयजुगुप्सासहितमेककूटं, भयेन युतमेककूटं, जुगुप्सया युतमेककं कूटं, चशब्दादुभयरहितमेकं कूटममीषु—

२	१	१	०
२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४
मि १	१	१	१

और मिश्रगुणस्थानमें होता है । सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय वेदक सम्यग्दृष्टीके असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें होता है । इन प्रकृतियोंका गुणस्थानोंमें उदयका नियम बतलाकर उदयके कूटोंकी रचना करते हैं ।

अनन्तानुबन्धी आदि चार कषायोंकी क्रोध, मान, माया, लोभरूप चार जातियोंमें-से एक जातिका उदय होता है । तीन वेदोंमें-से एक वेदका उदय होता है । हास्य, शोक और रति, अरतिके युगलोंमें-से एक-एकका उदय होता है ॥४७६॥

एक जीवके एक कालमें या तो भयका ही उदय हो, या जुगुप्साका ही उदय हो, या दोनोंका उदय हो या दोनोंका उदय न हो, इस अपेक्षासे चार कूट किये जाते हैं । अर्थात्

१. यिल्लि कषायजाति येंबुदनें दोडे क्रोधचतुष्कं ओंदुजाति मानचतुष्कमोंदु जाति इत्यादि । इतश्चतुर्षु गुणस्थानेषु वेदकापेक्षया रचना द्रष्टव्या ।

यी सामान्यमोहनीयोदयस्थानप्रकृतिसंख्या साधक चतुःकूटंगळोळु मिथ्यात्वप्रकृतियं कूडिदोडे अनंतानुबंधियुत मिथ्यादृष्टिगे चतुः कूटंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

मि २	१	१	०
थ्या २ २	२ २	२ २	२ २
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४
१	१	१	१

ई नाल्कु कूटंगळोळु मिथ्यात्वप्रकृतियं कळेदोडे सासादनंगे चतुरुदयकूटंगळप्पुवु । संदृष्टि—

२	१	१	०
२ २	२ २	२ २	२ २
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४

यी नाल्कुं कूटंगळोळु मिश्रप्रकृतियं कूडि अनंतानुबंधिकषायचतुष्कमं कळेदोडे मिश्रंगे मोहनीयोदय कूटंगळु नाल्कप्पुवु । आ नाल्कुं स्थानंगळगे संदृष्टि :— ५

मिथ्यात्वे युतेऽनंतानुबंधियुते मिथ्यादृष्टेर्भवंति—

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४
मि १	१	१	१

एषु मिथ्यात्वेऽपनीते सासादनस्य—

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४

एषु मिश्रप्रकृतिं निक्षिप्यानंतानुबंधिचतुष्केऽपनीते मिश्रस्य—

कूटके आकार रचना की जाती है। उसमें सबसे नीचे एक मिथ्यात्वका अंक एक लिखा। उसके ऊपर अनन्तानुबन्धी आदि चार-चार कषायोंके चार जगह चार-चारके अंक लिखे। इनमें-से जहाँ जिसका उदय हो वहाँ उसका जानना। उसके ऊपर तीन वेदोंमें-से तीन जगह एक-एक अंक लिखे। जिसका उदय जहाँ हो सो जानना। उसके ऊपर दो युगलोंमें-से एक-एक प्रकृतिका उदय, उनके दो जगह दो-दोके अंक लिखे। सो जिन हास्य रति, या अरति, शोकका उदय पाया जाये वहाँ वही जानना। उसके ऊपर प्रथम कूटमें भय-जुगुप्सा। दूसरे कूटमें केवल भय, तीसरे कूटमें जुगुप्सा। और चौथे कूटमें दोनोंका अभावरूप शून्य जानना। इसके लिए चारों कूटोंमें क्रमसे दो, एक, एक और शून्य लिखा। इस तरह चार कूट किये। प्रथम कूटमें दस प्रकृतिरूप उदयस्थान जानना। दूसरे और तीसरेमें नौ-नौ प्रकृतिरूप उदयस्थान है और चौथे कूटमें आठ प्रकृतिरूप उदय स्थान है। सो ये चारों कूट तो अनन्तानुबन्धी सहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके जानना। इन चारोंमें-से मिथ्यात्वको हटा देनेपर सासादनके चार कूट होते हैं। [कूटोंकी रचना ऊपर सं. टीकामें देखें]।

मि	२	१	१	०
श्र	२२	२२	२२	२२
	१११	१११	१११	१११
	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३
	१	१	१	१

ई नाल्कुं मिश्रकूटंगळोळु मिश्रप्रकृतियं कळेदु सम्यक्त्वप्रकृतियं कूडिदोडसंयतंगे नाल्कुमुदयकूटंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

अ	२	१	१	०
सं	२२	२२	२२	२२
	१११	१११	१११	१११
	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३
	१	१	१	१

ई असंयतन नाल्कुमुदयकूटंगळोळु अप्रत्याख्यानकषायचतुष्कमं कळेदोडे देशसंयतंगे नाल्कुमुदयकूटंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

दे	२	१	१	०
श	२२	२२	२२	२२
	१११	१११	१११	१११
	२२२२	२२२२	२२२२	२२२२
	१	१	१	१

	२	१	१	०
	२।२	२।२	२।२	२।२
	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
	मि १	१	१	१

५ एषु मिश्रमपनीय सम्यक्त्वप्रकृतौ युतायामसंयतस्य—

२	१	१	०
२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
स १	१	१	१

एष्वप्रत्याख्यानचतुष्केऽपनीते देशसंयतगुणस्थानस्य—

२	१	१	०
२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २
१	१	१	१

मिश्र गुणस्थान सम्बन्धी कूटमें मिथ्यात्वकी जगह मिश्रमोहनीय लिखा। और चार-चार कषायोंके स्थानमें तीन-तीन ही लिखे। क्योंकि ऊपरके कूटमें एक कालमें एक जीवके जो क्रोधका उदय होता है वह अनन्तानुबन्धी आदि चारोंरूप होता है। किन्तु मिश्र और १० असंयतमें अनन्तानुबन्धी बिना तीन रूप ही है। इस तरह मिश्र गुणस्थानके चार कूट जानना।

ई नाल्कुं देशसंयतन कूटंगळोळु प्रत्याख्यानकषायचतुष्कमं कळेदोडे प्रमत्तसंयतंगे मोहनीयोदयकूटंगळु नाल्कुमप्पुववक्के संदृष्टि :—

प्र	२	१	१	०
	२२	२२	२२	२२
	१११	१११	१११	१११
	११११	११११	११११	११११
	१	१	१	१

ई प्रमत्तसंयतन नाल्कुं मोहनीयोदयकूटंगळ्के अप्रमत्तसंयतंगे नाल्कुमुदयकूटंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

अ	२	१	१	०
प्र	२२	२२	२२	२२
	१११	१११	१११	१११
	११११	११११	११११	११११
	१	१	१	१

ई नाल्कुमप्रमत्तसंयतन मोहनीयोदयकूटंगळोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं कळेदोडपूर्व्वकरणंगे मोहनीयोदय कूटंगळु नाल्कुमप्पुववक्के संदृष्टि :— ५

अ	२	१	१	०
पू	२२	२२	२२	२२
	१११	१११	१११	१११
	११११	११११	११११	११११

एषु प्रत्याख्यानचतुष्केऽनीते प्रमत्ताप्रमत्तयोः—

२	१	१	०
२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १
१	१	१	१

प्रत्येकं। एषु सम्यक्त्वप्रकृतौ वियुतायामपूर्वकरणगुणस्थानस्य—

२	१	१	०
२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १

मिश्रमोहनीयके स्थानमें सम्यक्त्व मोहनीय रखनेपर वेदक सम्यक्त्व सहित अविरत सम्यग्दृष्टीके चार कूट होते हैं। १०

देशसंयत सम्बन्धी कूटमें तीन-तीन कषायके स्थानमें दो-दो कषाय लिखो; क्योंकि वहाँ अप्रत्याख्यानका भी उदय नहीं है। प्रमत्तसम्बन्धी कूटमें दो-दो कषायके स्थानपर एक-एक कषाय लिखें। प्रमत्तकी ही तरह चार कूट अप्रमत्तके हैं। इन चारों कूटोंमें-से सम्यक्त्व प्रकृतिको हटा देनेपर ये ही चार कूट अपूर्वकरणके होते हैं।

ई अपूर्व्वकरणनन्नाल्कुं मोहनीयोदयकूटंगळोळु षण्नोकषायंगळ कळेदोडे अनिवृत्तिकरणन प्रथमभागेयोळोंदे कूटमक्कुमदक्के संदृष्टि १११ ई कूटदोळु वेदत्रयमं कळेदोडे अनिवृत्तिय द्वितीयभागदोळोंदे कूटमक्कु १११ मल्लि संज्वलनक्रोधरहितमागि तृतीयभागदोळोंदु कूटमक्कु १११ मिल्लि संज्वलन मान कषायमं कळेदोडे चतुर्त्थभागदोळु अनिवृत्तिकरणंगोंदे कूटमक्कु ११ मिल्लि संज्वलनमायेयं कळेदोड निवृत्तिकरणन पंचमभागदोळु संज्वलनबादरलोभप्रकृतिकूटमोदे-यक्कुं १। सूक्ष्मसांपरायंगे सूक्ष्मलोभोदयप्रकृतियोंदेयक्कुं १॥

अनंतरं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं असंयताद्यप्रमत्तसंयतांतमाद चतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळुपशमक्षायिकसम्यग्दृष्टिगळोळं मोहनीयोदयविशेषमं पेळ्दपरु।

अणसंजोजिदसम्मे मिच्छं पत्ते ण आवलित्ति अणं।
उवसमखयिए सम्मं ण हि तत्थवि चारि ठाणाणि॥४७८॥

अनंतानुबंधिविसंयोजितसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वं प्राप्ते न आवलिपर्य्यंतमनंतानुबंधि। उपशमक्षायिके सम्यक्त्वं न हि तत्रापि चत्वारि स्थानानि॥

अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमनसंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळु वेदकसम्यग्दृष्टिगळु विसंयोजिसि मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिंदं असंयतदेशसंयतप्रमत्तगुणस्थानवर्त्तिगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोद्दुत्तं विरला मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोद्दिद प्रथमसमयं मोदल्गोंडु अनंतानुबंधिकषाय-

---

इतीमानि चत्वारि चत्वारि मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणांतमेव नियमेन। अत्र षण्णोकषायेष्वनिवृत्तिकरणप्रथमभागे एकं कूटं १ १ १ अत्र वेदत्रयेऽपनीते तद्द्वितीयभागे १ १ १ १ पुनः संज्वलनक्रोधेऽपनीते तृतीय-
१ १ १ १
भागे १ १ १ मानेऽपनीते चतुर्थभागे १ १ मायायामपनीतायां पंचमभागे बादरलोभः १ सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः १॥४७७॥ अथ मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्षु संभवद्विशेषमाह—

अनंतानुबंधिविसंयोजितवेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वकर्मोदयान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं प्राप्ते आवलिपर्यंतमनं-

---

इस तरह मिथ्यादृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण पर्यन्त नियमसे चार-चार कूट हैं। अपूर्वकरणमें हास्यादि छहकी व्युच्छित्ति होती है। अतः अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागमें चार संज्वलन कषायोंमें-से एक कषाय और तीन वेदोंमें-से एक वेदके उदयरूप एक ही कूट है। इनमें-से वेदके घटनेपर दूसरे भागमें चार संज्वलन कषायोंमें-से एकके उदयरूप एक ही कूट है। इनमें-से क्रोधको घटानेपर तीसरे भागमें तीन संज्वलन कषायोंमें-से एकके उदयरूप एक ही कूट है। इनमें-से मानको घटानेपर चौथे भागमें दो संज्वलन कषायोंमें-से एकके उदयरूप एक ही कूट है। इनमें-से मायाको घटानेपर पाँचवें भागमें बादर संज्वलन लोभके उदयरूप एक ही कूट है। सूक्ष्मसाम्परायमें सूक्ष्म लोभके उदयरूप एक ही कूट है॥४७७॥

आगे मिथ्यादृष्टि तथा असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें कुछ विशेष कथन है, वह कहते हैं—

अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाला वेदक सम्यग्दृष्टी मिथ्यात्व कर्मके उदयसे यदि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें आता है तो उसके एक आवली काल तक अनन्तानुबन्धीका

चतुष्टयमं कट्टुत्तिर्प्परा प्रथमसमयदोळु कट्टिदनंतानुबंधिकषायसमयप्रबद्धमो दचलावलिकाल-पर्य्यंतमपकर्षणकरणदिंदमपकृष्टद्रव्यमनुदयावलियोळिक्किकयुदीरणेयं माडल्बारदप्पुदरिंदमो दचलावलिपर्य्यंतमनंतानुबंधिकषायोदयमिल्ल । अदरिना मिथ्यादृष्टियोळनंतानुबंधिरहितमोहनीयोदय-चतुष्कूटंगळप्पुववक्के संदृष्टि :—

अनं.	२	१	१	०
	२२	२२	२२	२२
रहि.	१११	१११	१११	१११
मिथ्या.	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३
	१	१	१	१

असंयताद्युपशमसम्यग्दृष्टिगळोळं क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळोळं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमिल्लप्पु- ५
दरिना सम्यक्त्वप्रकृतिरहितमादऽसंयतंगं देशसंयतंगं प्रमत्तसंयतंगमप्रमत्तसंयतंगं प्रत्येकं नाल्कु नाल्कु मोहनीयोदयकूटंगळप्पुववक्के क्रमदिंदं संदृष्टि :—

वेदकरहितासंयत ।।				वेदकरहित देशसंयत ।।			
२	१	१	०	२	१	१	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
१११	१११	१११	१११	१११	१११	१११	१११
३३३३	३३३३	३३३३	३३३३	२२२२	२२२२	२२२२	२२२२

→

तानुबंध्युदयो नास्ति । तत्प्राप्तिप्रथमसमये बद्धतत्समयप्रबद्धस्यापकर्षणे कृते तावत्कालमुदयावल्यां निक्षेप्तुमशक्तः । तत्रानंतानुबंधितरहितचतुष्कूटानि—

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १
३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३
१	१	१	१

उपशमसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च सम्यक्त्वप्रकृत्युदयो नास्ति इति तद्रहितान्यसंयतचतुष्के तत्कूटानि संदृष्टि— १०

वेदकरहितासंयते—

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १
३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३	३ ३ ३ ३

वेदकरहितदेशसंयते—

२	१	१	०
२ २	२ २	२ २	२ २
१ १ १	१ १ १	१ १ १	१ १ १
२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २	२ २ २ २

उदय नहीं होता; क्योंकि मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें जो समयप्रबद्ध बाँधा, उसका अपकर्षण करके एक आवली प्रमाण काल तक उदयावलीमें लानेमें वह असमर्थ होता है। और अनन्तानुबन्धीका बन्ध मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है। पूर्वमें जो १५

वेदकरहित प्रमत्त ॥				वेदकरहित प्रमत्त ॥			
२	१	१	०	२	१	१	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
१११	१११	१११	१११	१११	१११	१११	१११
११११	११११	११११	११११	११११	११११	११११	११११

अपूर्वकरणाविगळेल्लरुमुपशमकरुं क्षायिकरुमप्पुवरिंवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमिल्ल ।

अनंतरं गुणस्थानंगळोळी विशेषकूटंगळु सहितमागि कूटसंख्येयं पेळ्वपरु :—

पुव्विल्लेसुवि मिलिदे अड चउ चत्तारि चदुसु अट्ठेव ।
चत्तारि दोण्णि एक्कं ठाणा मिच्छादिसुहुमंते ॥४७९॥

पूर्वोक्तेष्वपि मिलितेष्ट चतुश्चत्वारि चतुष्वंष्टैव । चत्वारि द्वयेकं स्थानानि मिथ्यादृष्टयादिसूक्ष्मांते ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानांतमाद गुणस्थानवर्त्तिगळोळु पूर्वोक्तकूटंगळोळी विशेषकूटंगळं कूडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टियोळेंदु कूटंगळप्पुवु । सासादननोळु नाल्कु कूटंगळप्पुवु । मिश्रनोळु नाल्कु कूटंगळप्पुवु । असंयतनोळेंदु कूटंगळप्पुवु । देशसंयत-

वेदकरहितप्रमत्ते ।

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १
१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १

वेदकरहिताप्रमत्ते ।

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १	१ । १ । १
१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १	१ १ १ १

एतेषूक्तकूटेषु पूर्वकूटेषु मिलितेषु मिथ्यादृष्टावष्टौ । 'सासादने मिश्रे च चत्वारि । असंयतादिचतुष्के-

अनन्तानुबन्धी थी उसका विसंयोजन कर दिया । अतः उसके एक आवली तक अनन्तानुबन्धीका उदय न होनेसे उसकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिमें अनन्तानुबन्धी रहित भी चार कूट होते हैं । उनमें-से प्रथम कूटमें नौ प्रकृतिरूप, दूसरे-तीसरेमें आठ प्रकृतिरूप और चौथेमें सात प्रकृतिरूप उदयस्थान होता है ।

तथा उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्वमें सम्यक्त्व मोहनीयका उदय नहीं है । अतः असंयत, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तमें जो पहले चार-चार कूट कहे हैं वे सब वेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षासे कहे हैं । उन सब कूटोंमें सम्यक्त्व मोहनीयको घटानेपर उपशम और क्षायिककी अपेक्षा असंयत, देशसंयत, प्रमत्त और अप्रमत्तमें चार-चार कूट होते हैं ॥४७८॥

पहलेके कहे कूटोंमें इन कूटोंको मिलानेपर मिथ्यादृष्टिमें आठ, सासादन और मिश्रमें

नोळंदु कूटंगळप्पुवु। प्रमत्तसंयतनोळेंदु कूटंगळप्पुवु। अप्रमत्तसंयतनोळमेंदु कूटंगळप्पुवु। अपूर्वकरणनोळु नाल्कु कूटंगळप्पुवु। अनिवृत्तिकरणनोळेरडु। सूक्ष्मसांपरायनोळोंदक्कुं। संदृष्टि :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू
८	७	७	७	६	५	५	४	१	१
९।९	८।८	८।८	८।८	७।७	६।६	६।६	५।५	२	
१०	९	९	९	८	७	७	६		
७	०	०	६	५	४	४	०	०	०
८।८			७।७	६।६	५।५	५।५			
९			८	७	६	६			
८	४	४	८	८	८	८	४	२	१

अनंतरं गुणस्थानंगळोळपुनरुक्तमोहनीयोदयस्थानंगळ पेळ्दपरु :—

दस णव णवादिचउतिय तिट्ठाण णवट्ठ सग सगादिचऊ। ५
ठाणा छादितियं च य चदुवीसगदा अपुव्वोत्ति ॥४८०॥

दश नव नवादि चतुस्त्रिकत्रिस्थाननवाष्ट सप्तसप्तकादि चतुः। स्थानानि षडादित्रयं च चतुर्विंशतिगतान्यपूर्वकरणपर्यंतं ॥

गुणस्थानंगळोळु पूर्वोक्त अडचउ चतारि इत्याद्युक्तस्थानंगळोळपुनरुक्तस्थानंगळु मिथ्यादृष्टियोळु दशादि चतुःस्थानंगळप्पुवु। १०। ९। ८। ७॥ सासादननोळु नवादि त्रिस्थानंगळप्पुवु १०
९। ८। ७॥ मिश्रनोळं नवादि अपुनरुक्तस्थानंगळु मूरप्पुवु। ९। ८। ७॥ असंयतनोळं नवादि मोहनीयोदयस्थानंगळपुनरुक्तंगळु नाल्कप्पुवु। ९। ८। ७।६॥ देशसंयतनोळु अष्टादि अपुनरुक्तस्थानंगळु नाल्कप्पुवु ८। ७। ६। ५॥ प्रमत्तसंयतनोळु सप्तादिचतुरपुनरुक्तस्थानंगळप्पुवु। ७। ६। ५। ४॥ अप्रमत्तसंयतनोळु सप्तप्रकृतिस्थानमादियागि चतुरपुनरुक्तमोहनीयोदयस्थानं-

---

ऽष्टावष्टौ। अपूर्वकरणे चत्वारि। अनिवृत्तिकरणे द्वे। सूक्ष्मसांपराये एकम् ॥४७९॥ अमीष्वपुनरुक्तोदयस्थानानि १५
गुणस्थानेष्वाह—

मिथ्यादृष्टौ दशकादीनि चत्वारि १०, ९, ८, ७। सासादने मिश्रे च नवकादीनि त्रीणि ९, ८, ७। असंयते तदादीनि चत्वारि ९, ८, ७, ६। देशसंयतेऽष्टकादीनि चत्वारि ८, ७, ६, ५। प्रमत्तेऽप्रमत्ते च

चार-चार, असंयत आदि चारमें आठ-आठ, अपूर्वकरणमें चार, अनिवृत्तिकरणमें दो और सूक्ष्मसाम्परायमें एक कूट होता है ॥४७९॥ २०

इनमें अपुनरुक्त उदय स्थान गुणस्थानोंमें कहते हैं—

मिथ्यादृष्टीमें दस आदि चार उदयस्थान हैं जो दस प्रकृतिरूप, नौ प्रकृतिरूप, आठ प्रकृतिरूप और सात प्रकृतिरूप हैं। सासादन और मिश्रमें नौ आदि तीन-तीन स्थान हैं, जो नौ, आठ और सात प्रकृतिरूप हैं। देशसंयतमें आठ आदि चार उदयस्थान हैं, जो आठ, सात, छह और पाँच प्रकृतिरूप हैं। प्रमत्त और अप्रमत्तमें सात आदि चार हैं जो सात, २५

गळप्पुवु । ७ । ६ । ५ । ४ ॥ अपूर्व्वकरणनोळु षट्प्रकृतिस्थानमादियागि अपुनरुक्तोदयस्थानंगळु मूरप्पुवु । ६ । ५ । ४ ॥ इंतीयपुनरुक्तस्थानंगळनितुं प्रत्येकं चतुर्व्विंशति भंगयुतंगळप्पुवु । संदृष्टि मि १० । ९ । ८ । ७ । भं २४ ॥ सासादननोळु ९ । ८ । ७ । भं २४ ॥ मि ९ । ८ । ७ । भं २४ ॥ अ । ९ । ८ । ७ । ६ । भं २४ ॥ दे ८ । ७ । ६ । ५ । भं २४ ॥ प्र ७ । ६ । ५ । ४ । भं २४ ॥ अ ७ । ६ । ५ । ४ । भं २४ ॥ अ ६ । ५ । ४ । भं २४ ॥

इल्लि मिथ्यादृष्टियादियागि पंचगुणस्थानंगळोळु संख्यापेक्षेयिंदमपुनरुक्तस्थानंगळोळु सादृश्यमुंटादोडं प्रकृतिभेदमुंटप्पुदरिंदमपुनरुक्तंगळेयप्पुवदें तें दोडे मिथ्यादृष्टियदशादि चतुःस्थानंगळोळं मिथ्यात्वप्रकृत्युदयमुंटु । सासादनन मूरुं स्थानंगळोळं मिथ्यात्वप्रकृत्युदयमिल्लवु कारणदिंदमपुनरुक्तंगळप्पुवु । मिश्रन मूरु स्थानंगळोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयभेदमुंटप्पुदरिंदमपुनरुक्तंगळप्पुवु । असंयतन नाल्कुं स्थानंगळोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमुळ्ळुदरिंदमपुनरुक्तंगळप्पुवु । देशसंयतन नाल्कुं स्थानंगळोळप्रत्याख्यानावरणकषायोदयमिल्लप्पुदरिंदमपुनरुक्तंगळप्पुवु ।

अनंतरं पुनरुक्तस्थानंगळु सहितमागि सर्व्वगुणस्थानंगळोळिर्द्द दशादिप्रकृतिस्थानंगळ संख्येयुमनवर भंगंगळ संख्येयुमं पेळ्दपरु :—

एक्क य छक्केयारं एयारेयारसेव णव तिण्णि ।
एदे चदुवीसगदा चदुवीसेयार दुगठाणे ॥४८१॥

एकं च षट्कमेकादशैकादशैव नव त्रीणि । एतानि चतुर्विंशतिगतानि चतुर्व्विंशतिरेकादश द्वयेकस्थाने ॥

सप्तकादीनि चत्वारि ७, ६, ५, ४ । अपूर्वकरणे षट्कादीनि त्रीणि ६, ५, ४ । अमूनि सर्वस्थानि प्रत्येकं चतुर्विंशतिभंगानि ।

अथ मिथ्यादृष्ट्यादिषु पंचस्वपुनरुक्तानां संख्यासादृश्येऽपि प्रकृतिभेदादपुनरुक्तता तद्भेदस्तु मिथ्यात्वात्सासादने तदभावात्, मिश्रे सम्यग्मिथ्यात्वात्, असंयते सम्यक्त्वप्रकृतेर्देशसंयतेऽप्रत्याख्यानाभावाच्च ज्ञातव्या ॥४८०॥

छह, पाँच और चार प्रकृतिरूप हैं । अपूर्वकरणमें छह आदि तीन स्थान हैं जो छह, पाँच और चार प्रकृतिरूप हैं । ये सब स्थान प्रत्येक चौबीस-चौबीस भंगवाला है ।

इन मिथ्यादृष्टि आदि पाँच गुणस्थानोंमें अपुनरुक्त स्थान कहे हैं उनमें-से किसीकी संख्या समान होते हुए भी प्रकृति भेदकी अपेक्षा अपुनरुक्तपना जानना । जैसे नौ-नौ प्रकृतिरूप स्थान अनेक कहे हैं । किन्तु उनमें प्रकृतियाँ अन्य-अन्य हैं । जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मिथ्यात्व सहित है । सासादनमें मिथ्यात्व नहीं है । मिश्रमें सम्यक् मिथ्यात्व है, असंयतमें सम्यक्त्व मोहनीय है । देससंयतमें अप्रत्याख्यानका अभाव है आदि । अतः प्रकृतिभेद होनेसे अपुनरुक्तता जानना ॥४८०॥

सर्व्वगुणस्थानंगळोळं कूडि दशप्रकृतिस्थानमों देयक्कुं। नवप्रकृतिस्थानंगळु षट्प्रमितंगळप्पुवु। अष्टप्रकृतिस्थानंगळेकादशप्रमितंगळप्पुवु। सप्तप्रकृतिस्थानंगळुमेकादशप्रमितंगळेयप्पुवु। षट्प्रकृतिस्थानंगळुमेकादशमात्रंगळेयप्पुवु। पंचप्रकृतिस्थानंगळु नवप्रमितंगळप्पुवु। चतुःप्रकृतिस्थानंगळु त्रिसंख्यातयुतंगळप्पुविंतिनितुं स्थानंगळनितुं प्रत्येकं चतुर्व्विंशति चतुर्व्विंशति भंगयुतंगळु। द्विप्रकृतिस्थानमों दुं चतुर्व्विंशतिभंगमनुळ्ळदु। एकप्रकृतिस्थानमों दुं एकादशभंगयुतमक्कु। ५

संदृष्टि :—

१ ल	१	११
२ ल	१	२४
४	३	२४
५	९	२४
६	११	२४
७	११	२४
८	११	२४
९	६	२४
१०	१	२४

सर्वगुणस्थानेषु मिलित्वा दशकं स्थानमेकं नवकानि षट्, अष्टकानि सप्तकानि षट्काणि चैकादशैकादश, पंचकानि नव, चतुष्काणि त्रीणि। एतानि प्रत्येकं चतुर्विंशतिभंगगतानि द्विकमेकं भंगाश्चतुर्विंशतिः, एकैकमेकं

सब गुणस्थानोंमें मिलकर दस प्रकृतिरूप स्थान तो एक ही है जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें है। नौ प्रकृतिरूप छह स्थान हैं—मिथ्यादृष्टिमें तीन, दो प्रथम कूटोंमें और एक पिछले कूटोंमें। तथा सासादन मिश्र असंयतमें पहले कूटोंमें एक-एक। इस तरह छह हैं। तथा आठ प्रकृतिरूप, सात प्रकृतिरूप, छह प्रकृतिरूप ग्यारह-ग्यारह स्थान हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टिमें पहले कूटोंमें एक, पिछले कूटोंमें दो इस प्रकार तीन। सासादन और मिश्रमें दो-दो। असंयतमें पहले कूटोंमें दो, पिछले कूटोंमें एक, इस तरह तीन। देशसंयतमें पहले कूटोंमें एक। इस तरह आठ प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान हैं। तथा पिछले कूटोंमें एक मिथ्यादृष्टिमें, एक-एक सासादन और मिश्रमें, तीन असंयतमें, एक पहले और दो पिछले कूटोंमें। देशसंयतमें तीन—दो पहले और एक पिछले कूटोंमें। प्रमत्त और अप्रमत्तके पहले कूटोंमें एक-एक। इस तरह सात प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान हैं। तथा असंयतके पिछले कूटमें एक, देशसंयतके पहले कूटमें एक, पिछले कूटमें दो इस तरह तीन, प्रमत्त-अप्रमत्तमें दो पहले कूटमें एक पिछले कूटमें इस तरह तीन-तीन, एक अपूर्वकरणमें, इस तरह छह प्रकृतिरूप ग्यारह स्थान होते हैं। १० १५ २०

पाँच प्रकृतिरूप नौ स्थान हैं। उनमें-से एक देशसंयतके पिछले कूटमें, एक पहले दो पिछले कूटमें इस तरह तीन-तीन प्रमत्त और अप्रमत्तमें और दो अपूर्वकरणमें हैं। चार प्रकृतिरूप तीन स्थान हैं। एक-एक प्रमत्त-अप्रमतके पिछले कूटमें और एक अपूर्वकरणमें। ये सर्वस्थान जानना। इनमें-से एक-एक स्थानमें चौबीस-चौबीस भंग हैं। जैसे दस प्रकृतिरूप स्थानमें चार क्रोधादि कषायोंका उदय एक-एक वेदमें होनेसे बारह भंग हुए। वे बारह भंग हास्य-रति सहित और बारह भंग अरति-शोक सहित होनेसे चौबीस हुए। इसी प्रकार २५

अनंतरमी रचनेयोळु द्वयेकप्रकृतिस्थानंगळोळु पेळदचतुर्विंशति भंगंगळगमेकादशभंगंगळग मुपपत्तियं तोरिदपरु :—

उदयट्ठाणं दोण्हं पणबंधे होदि दोण्हमेक्कस्स ।
चदुविहबंधट्ठाणे सेसेसेयं हवे ठाणं ॥४८२॥

उदयस्थानं द्वयोः पंचबंधे भवति द्वयोरेकस्य । चतुर्विधबंधस्थाने शेषेष्वेकं भवेत्स्थानं ॥

पुंवेदमुं कषायचतुष्टयमुमंतु पंचबंधकनोळु द्वयोरुदयस्थानं भवति त्रिवेदंगळोळोंदु वेदमुं चतुःकषायंगळोळोंदु कषायमुमंतु द्विप्रकृत्युदयस्थानमक्कुं । केवलं चतुष्कषायबंधकनोळु द्वयोरेकस्य च येरडरुदयस्थानमुमोंदरुदयस्थानमुमक्कुं । शेषेष्वेकं भवेत् । स्थानं शेषत्रिकषायद्विकषाय एक-कषायबंधकनोळमबंधकनोळमेकप्रकृत्युदयस्थानमक्कुं । संदृष्टि :—

भंगा एकादश ॥४८१॥ एतत्स्थानद्वयभंगानामुपपत्तिमाह—

पंचबंधकचतुर्बंधकानिवृत्तिकरणभागयोस्त्रिवेदचतुःसंज्वलनानामेकैकोदयसंभवं द्विप्रकृत्युदयस्थानं स्यात् । तत्र भंगा द्वादश द्वादशेति चतुर्विंशतिः । पक्षांतरापेक्षया चतुर्बंधकचरमसमये त्रिद्व्येकबंधकेष्वबंधके च क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकैकसंज्वलनानामेकैकोदयभवमेकोदयभवमेकोदयस्थानं स्यात् । तेन तत्र भंगाः चतुस्त्रिद्व्येकैके

अन्य स्थानोंमें जानना । दो प्रकृतिरूप एक स्थान है उसके चौबीस भंग हैं । एक प्रकृतिरूप एक स्थान है उसके ग्यारह भंग हैं ॥४८१॥

गुणस्थानोंमें उदयस्थानों और कूटोंका सूचक यन्त्र—

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.
	८	७	७	७	६	५	५	४	१	१
	९।९	८।८	८।८	८।८	७।७	६।६	६।६	५।५	२	
	१०	९	९	९	८	७	७	६		
	७			६	५	४	४			
	८।८	०	०	७।७	६।६	५।५	५।५	०	०	०
	९			८	७	६	६			
कूट	८	४	४	८	८	८	८	४	२	१

आगे दो प्रकृतिरूप स्थानोंके भंग कहते हैं—

अनिवृत्तिकरणमें जहाँ पाँच प्रकृतियोंका बन्ध होता है और जहाँ चार प्रकृतियोंका बन्ध होता है वहाँ भी कुछ काल वेदोंका उदय रहता है । इन दोनों भागोंमें तीनों वेदों और चार कषायोंमें-से एक-एकका उदय होनेसे दो प्रकृतिरूप स्थान पाया जाता है । तो चार-चार कषाय एक-एक वेदमें होनेसे बारह भंग हुए । दोनों भागोंमें मिलाकर चौबीस भंग हुए । अन्य आचार्य (कनकनन्दि) के मतसे जहाँ चार प्रकृतियोंका बन्ध होता है उसके अन्तिम समयमें वेदोंका उदय नहीं है । अतः उसमें और जहाँ तीन, दो और एक प्रकृतिका बन्ध होता है उनमें और जहाँ बन्ध नहीं होता है उसमें क्रमसे चार, तीन, दो, एक-एक संज्वलन

---

१. चौरस्यासमंतभद्रायस्याद्वादवाग्घटी सन्निधाल तिलकोपमः । श्री चौंडरससंज्ञो मे वृत्तिमत्रांतमभ्यधात् ।

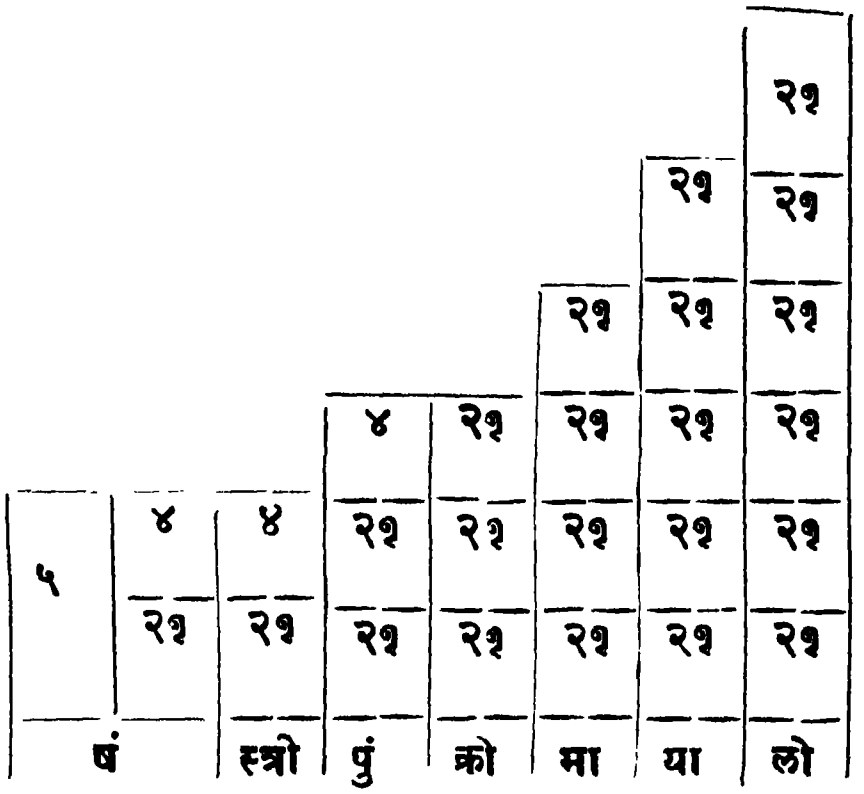
बं ५	बं ४	बं ४	बं ३	बं २	बं १	बं ०
उ २	उ २	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १
भं १२	भं १२	भं ४	भं ३	भं २	भं १	भं १

अनंतरं चतुर्ब्बंधकनोळं तु द्विप्रकृतिस्थानोदयमक्कुमें दोडक्कुपपत्तियं पेळ्दपरु :—

अणियट्टिकरणपढमा संढित्थीणं च सरिसउदयद्धा ।
तत्तो मुहुत्तअंते कमसो पुरिसादिउदयद्धा ॥४८३॥

अनिवृत्तिकरणप्रथमात् षंडस्त्रियोश्च सदृशोदयाद्धा । ततो मुहूर्तांते क्रमशः पुरुषोदयाद्धोदयाऽद्धा ॥ ५

अनिवृत्तिकरणप्रथमभागप्रथमसमयं मोदल्गोंडु षंढस्त्रीवेदंगळ्गेरडक्कं सदृशोदयाद्धा समानोदयाद्धेयक्कुं । ततः आ षंडस्त्रीवेदंगळ समानोदयाद्धेय मेले अंतर्मुहूर्त्ताधिकोदयाद्धे पुरुषवेदक्कक्कुमादिशब्दर्दिदं संज्वलनक्रोधादिगळ्गुदयाद्धेगळु मंतर्मुहूर्त्तांतर्मुहूर्त्ताधिकंगळप्पुवु ॥ ई द्वादश पुरुष संबंधिरचनेयिदु—



भूत्वैकादश ॥४८२॥ अमुमेवार्थं विशदयितुं सूत्रचतुष्टयमाह— १०

अनिवृत्तिकरणप्रथमभागप्रथमसमयमादिं कृत्वा षंढस्त्रीवेदयोरुदयाद्धा सदृशी ततः पुंवेदस्य आदिशब्दात् संज्वलनक्रोधादीनां च क्रमशोंऽन्तर्मुहूर्ताधिका भवंति । द्वादशपुरुषसंबंधिनी रचनेयं ।

कषायोंमें-से एक-एकका उदय होता है । वहाँ भंग क्रमसे चार, तीन, दो एक-एक जानना । इस प्रकार एक प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें ग्यारह भंग होते हैं ॥४८२॥

यही कथन चार गाथाओंसे करते हैं— १५

अनिवृत्तिकरणके प्रथम भागके प्रथम समयसे लगाकर नपुंसक वेद और स्त्रीवेदके उदयका काल समान है । उससे पुरुषवेद, संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभके उदयका काल क्रमसे यथासम्भव अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त अधिक है ॥४८३॥

अनंतरं पंचबंधकंगेयुं चतुब्बंधकंगेयुं सवेदावेदविभागमं पेळ्दपरु :—

पुरिसोदयेण चडिदे बंधुदयाणं च जुगवदुच्छित्ती ।
सेसोदयेण चडिदे उदयदुचरिमम्मि पुरिसबंधछिदी ॥४८४॥

पुरुषोदयेन चटिते बंधोदययोर्य्युगपद्व्युच्छित्तिः । शेषोदयेन चटिते उदयद्विचरमे पुरुषबंध-व्युच्छित्तिः ॥

पुरुषवेदोदयदिंदं श्रेण्यारोहणं माडल्पडुत्तिरला पुरुषवेदोदयमुं तद्बंधमुमेरडुं युगपद्व्युच्छित्तियप्पुवु । च शब्ददिंदमुदयद्विचरमसमयदोळु पुरुषवेदबंधव्युच्छित्तियक्कुमेंदु पक्षांतराचार्य्याभिप्रायं सूचिसल्पट्टुदा पक्षमुमंगीकृतमादुदेंतेंदोडे चतुब्बंधकनोळ द्विप्रकृत्युदयस्थानं पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदमल्लियुं द्वादश भंगंगळप्पुवेंदु मुंदण सूत्रदोळु पेळ्दपरप्पुदरिंदं । शेषषंडस्त्रीवेदोदयंगळिंदं श्रेण्यारोहणं माडल्पडुगुमप्पोडे उदयद्विचरमसमयदोळु पुरुषवेदबंधव्युच्छित्तियक्कुमंतागुत्तं विरलु :—

पणबंधगम्मि बारस भंगा दो चेव उदयपयडीओ ।
दो उदये चदुबंधे बारेव हवंति भंगा हु ॥४८५॥

पंचबंधे द्वादशभंगा द्वे एवोदयप्रकृती द्वयोरुदये चतुर्बंधे द्वादशैव भवंति भंगाः खलु ॥

						२१
					२१	२१
				२१	२१	२१
			४	२१	२१	२१	२१
	४	४	२१	२१	२१	२१	२१
	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
	षं	स्त्री	पुं	क्रो	मा	मा	लो

पुंवेदोदयेन श्रेण्यारूढे पुंवेदस्य बंधव्युच्छित्तिः उदयव्युच्छित्तिश्च द्वे युगपदेव । अथवा चशब्दाद्बंध-व्युच्छित्तिः उदयद्विचरमसमये स्यात् । शेषस्त्रीषंढवेदोदयेन श्रेण्यारूढयोरुदयद्विचरमसमये एव पुंवेदबंधव्युच्छित्तिः ॥४८४॥ तत्र—

जो पुरुषवेदके उदयके साथ श्रेणि चढ़ते हैं उनके पुरुषवेदकी बन्ध व्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति एक साथ होती है । अथवा 'च' शब्दसे बन्धकी व्युच्छित्ति उदयके द्विचरम समयमें होती है । शेष स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ जो श्रेणि चढ़ते हैं उनके उन वेदोंके उदयके द्विचरम समयमें पुरुषवेदकी बन्ध व्युच्छित्ति होती है ॥४८४॥

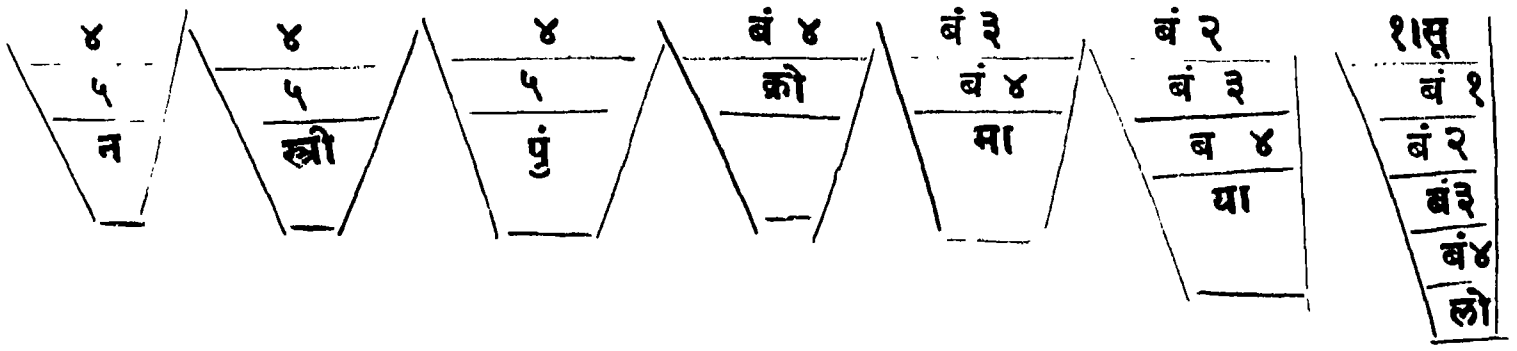
पुंवेदमुं चतुःसंज्वलनकषायमुमेंब पंचबंधकानिवृत्तिकरणनोळु द्वादश भंगंगलप्पुवु। उदय-
प्रकृतिगळोंदु वेदमुमोंदु कषायमुमंतेरडयप्पुउ बं ५ चतुर्ब्बंधे केवल चतुःप्रकृतिबंधदोळु
१११
११११
द्वयोरुदये द्विप्रकृत्युदयमागुत्तं विरलु द्वादश भंगंगळप्पुवु बं ४ पुरुषवेदोदयर्विदं श्रेण्यारोहणंगे
१११
१११
ल्दंगे पुरुषवेदोदयद्विचरमसमयदोळे पुरुषवेदबंधव्युच्छित्तियक्कुमेंबुदक्के इदे ज्ञापकमक्कुं। द्विप्रकृ-
त्युदयचतुर्ब्बंधकनोळु अष्टभंगंगळल्लदे द्वादशभंगंगळगन्यथानुपत्ति यप्पुदरिंदं ॥ ५

कोहस्स य माणस्स य मायालोहाणियट्टिभागम्मि ।
चदुतिदुगेक्कं भंगा सुहुमे एक्को हवे भंगो ॥४८६॥

क्रोधस्य च मानस्य च मायालोभानिवृत्तिभागे। चतुस्त्रिद्व्येको भंगाः सूक्ष्मे एको भवेद् भंगः ॥

क्रोधद मानद मायेय लोभदुदयदनिवृत्तिकरणभागेयोळु क्रमदिंदं चतुर्ब्बंधकनोळं १०
त्रिबंधकनोळं द्विबंधकनोळमेकबंधकनोळमबंधकनोळं नाल्कुं मूरुमेरडुमोंदुमोंदुं भंगंगळप्पुवु।
इंतनिवृत्तिकरणन सवेदावेदभागेगलोळु पंचबंधचतुर्ब्बंधभेदर्विदं द्वादशद्वादशभंगंगळगं अवेदभागेय
चतुस्त्रिद्व्येकभंगंगळगं सूक्ष्मसांपरायनेकभंगक्कं संदृष्टि—

बं ५	बं ४	बं ४	बं ३	बं २	बं १	सू. बं. ०
उ २	उ २	उ १	उ १	उ १	उ १	उ १
भं १२	भं १२	भं ४	भं ३	भं २	भं १	भं १



पंचबंधकानिवृत्तिकरणे द्वे एवोदयप्रकृती। तत्र भंगा द्वादश भवंति।

बं ५ चतुर्बंधकेऽपि द्व्युदये भंगा द्वादश खलु बं ४
१ १ १ १ १ १
१ १ १ १ १ १ १ ॥४८५॥

क्रोधमानमायालोभोदयानिवृत्तिकरणभागेषु चतुस्त्रिद्व्येकबंधकेषु क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकभंगा भवंति। १५

अनिवृत्तिकरणमें जहाँ पाँच प्रकृतियोंका बन्ध होता है वहाँ दो उदय प्रकृतियाँ हैं। तथा चार कषाय और तीन वेदोंके बारह भंग हैं। इसी प्रकार जहाँ चार प्रकृतियोंका बन्ध है वहाँ भी दोका उदय होनेसे बारह भंग हैं ॥४८५॥

क्रोध, मान, माया, लोभके उदयरूप अनिवृत्तिकरणके चार भागोंमें चार, तीन, दो और एक प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है। उनमें कषाय बदलनेकी अपेक्षा क्रमसे चार, तीन, २०

अनंतरं सर्व्वोदयस्थानसंख्येयुमनवर प्रकृतिसंख्येयुमं पेळ्दपरः—

बारससयतेसीदी ठाणवियप्पेहिं मोहिदा जीवा ।
पणसीदिसदसगेहिं पयडिवियप्पेहिं ओघम्मि ॥४८७॥

द्वादशशतत्र्यशीतिस्थानविकल्पैर्म्मोहिताः जीवाः पंचाशीतिशत सप्तभिः प्रकृतिविकल्पैरोघे ।

ओघे गुणस्थानदोळु सर्व्वमोहनीयोदयस्थानंगळ्

१०	९	८	७	६	५	४
१[1]	६	११	११	११	९	३

यिंतु द्विपंचाशत्प्रमितंगळप्पुवु[2] ५२ । इवक्के प्रत्येकं चतुर्व्विंशतिस्थानंगळागुत्तं विरलु । ५२ । २४ । गुणिसल सासिरविन्नूर नाल्वत्तेंटप्पुववरोळु १२४८ । द्विप्रकृत्युदयभंगंगळु चतुर्व्विंशति-प्रमितंगळु मनेक प्रकृत्युदय भंगंगळुमेकादशप्रमितंगळप्पुवंतु मूवत्तय्दु स्थानंगळं ३५ । प्रक्षेपिसुत्तिरलु सर्व्वमोहनीयोदयस्थानंगळु सासिरदिन्नूरेण्भत्तमूरु स्थानंगळप्पुवु १२८३ । इंतनितें मोहोदयस्थानं-गळिवं त्रिकालत्रिलोकोदरवर्त्ति चराचरजीवंगळु मोहिसल्पट्टुवा स्थानंगळ सर्व्वप्रकृतिगळु १० । ५४ । ८८ । ७७ । ६६ । ४५ । १२ । कूडि मूनूरय्वत्तेरडु प्रकृतिगळप्पु ३५२ । विवक्के प्रत्येकं

सूक्ष्मसांपराये मोहनीयबंधरहित एको भंगः ॥४८६॥ अथ सर्वोदयस्थानसंख्यास्तत्प्रतिसंख्याश्चाह—

ओघे गुणस्थानेषु सर्वमोहनीयोदयस्थानानीमानि—

१०	९	८	७	६	५	४	२
१	६	११	११	११	९	३	१

मिलित्वा त्रिपंचाशत् । प्रत्येकं चतुर्विंशतिभंगानीति तावता संगुण्यैकप्रकृतिकस्यैकादशभिर्युतानि त्र्यशी-त्यग्रद्वादशशतानि तत्प्रकृतयोऽमूः १० । ५४ । ८८ । ७७ । ६६ । ४५ । १२ । २ । मिलित्वा चतुःपंचाशत्

दो और एक भंग होते हैं। और सूक्ष्म साम्परायमें मोहनीयका बन्ध नहीं होता। वहाँ सूक्ष्मलोभके उदयरूप स्थानमें एक भंग है। इस तरह ग्यारह भंग हैं ॥४८६॥

आगे सब उदयस्थानोंकी और उनकी प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं—

गुणस्थानोंमें मोहनीयके सब उदयस्थान दस प्रकृतिरूप एक, नौ रूप छह, आठ, सात, छह प्रकृतिरूप ग्यारह-ग्यारह, पाँचरूप नौ, चार रूप तीन, दो रूप एक, सब मिलकर तिरपन हुए। एक-एकके चौबीस-चौबीस भंग होनेसे चौबीससे तिरपनको गुणा करनेपर बारह सौ बहत्तर हुए। तथा एक प्रकृतिरूप स्थानके ग्यारह भंग मिलाकर बारह सौ तिरासी हुए।

अब उन स्थानोंकी प्रकृतियोंकी अपेक्षा कहते हैं—

दस प्रकृतिरूप एक स्थानकी प्रकृति दस। नौ रूप छह स्थानोंकी चौवन, आठरूप ग्यारह स्थानोंकी अठासी, सातरूप ग्यारह स्थानोंकी सतहत्तर। छह रूप ग्यारह स्थानोंकी छियासठ। पाँचरूप नौ स्थानोंकी पैंतालीस। चार रूप तीन स्थानोंकी बारह। दोरूप एक

---

१. दशसंख्यावच्छिन्नसामान्योदयकूटमों दु नवसंख्यावच्छिन्नसामान्योदयकूट आरु इंतु मुंदेयुं ॥

२. हत्तु प्रकृत्युदयवनुळ्ळ स्थानमों दप्पुदरिं प्रकृतियुहत्ते ओंभत्तु प्रकृत्युदयस्थानंगळारप्पुदरिंदल्लि नवगुणितषट्-स्थानप्रकृतिगळु ५४ मुंदेयमिते सामान्यस्थान ५२ इवं विशेषिसे १२४८ ॥

चतुर्व्विंशतिकल्पंगलागुत्तं विरलु ३५२ । २४ । गुणिसियेंदु सासिरद नानूरनाल्वत्तेंदु प्रकृत्युदय-प्रकृतिगळोळु ८४४८ । द्विप्रकृत्युदयस्थानद नाल्वत्तेंदु प्रकृतिगळुमनेकप्रकृत्युदयस्थानद पन्नोंदु प्रकृतिगळुमनंतय्वत्तोंभत्तु ५९ प्रकृतिगळं प्रक्षेपिसुत्तं विरलु एंदु सासिरवैनूरेळु प्रकृतिगळिंदमं ८५०७ । मोहिसल्पट्टुवु ॥

अनंतरमपुनरुक्तस्थानसंख्येयुमनवरपुनरुक्तप्रकृतिगळुमं पेळदपरु :— ५

एक्क य छक्केयारं दस सग चदुरेक्कयं अपुणरुत्ता ।
एदे चदुवीसगदा बारदुगे पंच एक्कम्मि ॥४८८॥

एकं च षट्कैकादश दश सप्त चतुरेकमपुनरुक्तानि एतानि चतुर्व्विंशतिगतानि द्वादशद्विके पंचैकस्मिन् ॥

एकं च दश प्रकृतिस्थानमोंदेयक्कुं । षट्क नवप्रकृतिस्थानंगळारप्पुवु । एकादश १०
अष्टप्रकृतिस्थानंगळु पन्नोंदप्पुवु । दश सप्तप्रकृतिस्थानंगळु दशप्रमितंगळप्पुवेकेंदोडे वेदकसम-न्वितरप्प प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोलोंदु सप्तप्रकृतिस्थानं पुनरुक्तमेंदु कळेदुदप्पुदरिंद । सप्त षट्प्रकृति-स्थानंगळेळेयप्पुवेकेंदोडे वेदकसमन्वितप्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळेरडु षट्प्रकृतिस्थानंगळ्गमवेदक प्रमत्ताऽप्रमत्तरुगळ षट्प्रकृतिस्थानद्वयक्क मपूर्व्वकरणषट्प्रकृतिस्थान [1]ओंदक्कं पुनरुक्तत्वमप्पु-दरिनवेरडुमंतु पुनरुक्तषट्प्रकृतिस्थानंगळु नाल्कुं कळेदवप्पुदरिंदं । चतुः पंचप्रकृतिस्थानंगळुं १५
नाल्कुमेयप्पुवेकेंदोडे सवेदकरप्प प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळोंदु पंचप्रकृतिस्थानमुमवेदकरोळेळु पंचप्रकृति-स्थानंगळोळु नाल्कु पंचप्रकृतिस्थानंगळुं पुनरुक्तंगळप्पुवंतु पुनरुक्त पंचप्रकृतिस्थानंगळैदुं कळेदु

त्रिशतं चतुर्विंशत्या संगुण्य ८४९६ एकप्रकृतिकस्यैकादशभिर्युताः सप्ताग्रपंचाशीतिशतानि । एतैः स्थानविकल्पैश्च त्रिकालत्रिलोकोदरवर्तिचराचरजीवा मोहिताः संति ॥४८७॥ अथापुनरुक्तस्थानसंख्यां तत्प्रकृतीश्चाह—

दशकस्थानमेकं नवकानि षट् अष्टकान्येकादश सप्तकानि दशैव सवेदकप्रमत्ताप्रमत्तयोस्तदेकस्य पुनरुक्त- २०
त्वात् । षट्कानि सप्तैव सवेदकप्रमत्ताप्रमत्तयोः षट्कद्वयस्य षट्कद्वयेन अवेदकप्रमत्ताप्रमत्तयोस्तु षट्कद्वयस्या-

स्थानकी दो। सब मिलकर तीन सौ चौवन प्रकृतियाँ हुईं। उन्हें चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर चौरासी सौ छियानबे, और एक प्रकृतिरूप स्थानके ग्यारह भंग मिलानेपर पचासी सौ सात भेद सर्व प्रकृतियोंकी अपेक्षा हुए। इन स्थान-भेद और प्रकृति-भेदोंसे त्रिकाल और त्रिलोकमें वर्तमान जीव मोहित हैं ॥४८७॥ २५

आगे अपुनरुक्त स्थानोंकी संख्या और उनकी प्रकृतियाँ कहते हैं—

दस प्रकृतिरूप एक स्थान, नौ रूप छह स्थान, आठरूप ग्यारह स्थान, किन्तु सातरूप दस स्थान हैं। पहले ग्यारह कहे थे। उनमें-से पहलेके कूटोंमें सम्यक्त्व मोहनीय सहित वेदक सम्यग्दृष्टिके प्रमत्त-अप्रमत्तके सात प्रकृतिरूप दो स्थान कहे थे। वे दोनों समान हैं। अतः एक स्थान पुनरुक्त होनेसे दस कहे। छह प्रकृतिरूप सात ही हैं। पहले ग्यारह कहे थे ३०
उनमें-से वेदक सहित पहले कूटोंमें छह प्रकृतिरूप दो कूट प्रमत्तके और दो कूट अप्रमत्तके।

१. अंतु मूरु ॥

वप्पुदरिंदं एकं चतुःप्रकृतिस्थानमो दॆयक्कु मॆं तॆंदोडे अवेदकरोळु चतुःप्रकृतिस्थानद्वयं पुनरुक्तंगळॆंदु कळॆदुवप्पुदरिंदं। इंतु अपुनरुक्तस्थानंगळु नाल्वत्तेयप्पु ४० वी नाल्वत्तुं स्थानंगळुं प्रत्येकं चतुर्विंशतिभेदंगळप्पुवप्पुदरिंदमा नाल्वत्तनिप्पत्तनाल्कॆरिंदं गुणिसिदो ४०। २४। डों भङ्गनूररुवत्तु मोहनीयोदयस्थानंगळप्पु ९६० विवरोळु द्वादश द्विके द्विप्रकृत्युदयस्थानदोळु द्वादशस्थानभेदभंगंगळप्पुवॆं तॆंदोडे पुनरुक्तद्वादशस्थानभेदंगळु कळॆदु वप्पुदरिंदं पंचैकस्मिन् एकप्रकृत्युदयस्थानदोळपुनरुक्तस्थानविकल्पंगळॆंदॆयप्पुवॆं तॆंदोडे संज्वलनक्रोधादिचतुष्टयमुं[1] सूक्ष्मलोभमुमितैदे स्थानंगळप्पुवु। शेष षट्स्थानंगळु पुनरुक्तंगळॆंदु कळॆदुवप्पुदरिंदं। इंतु द्व्येक प्रकृत्युदय स्थानंगळॆरडरोळं कूडि पदिनेळु स्थानंगळप्पु १७। विवं कूडिदोडे अपुनरुक्त सर्व्वस्थानंगळों भैनूरॆप्पत्तॆळप्पु ९७७ वॆंदु मुंदण सूत्रदोळु पेळ्दपरु। संदृष्टि—

१०	९	८	७	६	५	४	२	१
१ ठा	६	११	१०	७	४	१	१	१
१० प्र	५४	८८	७०	४२	२०	४	१२	५

१० पूर्वकरणषट्केन च पुनरुक्तत्वात्। पंचकानि चत्वार्येव सवेदकप्रमत्ताप्रमत्तयोस्तद्द्वये एकस्य अवेदकतत्सप्तसु चतुर्णां च पुनरुक्तत्वात्। चतुष्कमेकमेव अवेदकं तद्द्वयस्यापूर्वकरणस्य तेन पुनरुक्तत्वात्। एतानि चत्वारिंशत् प्रत्येकं चतुर्विंशतिभेदानीति तावता गुणयित्वा द्विप्रकृतिकस्य द्वादशभिरेकप्रकृतिकस्य पंचभिश्चापुनरुक्तैर्युतानि भूत्वा ॥४८८॥

उनमें समानता होनेसे दो पुनरुक्त हुए। तथा वेदक रहित पिछले कूटोंमें छह प्रकृतिरूप १५ स्थानको लिये एक कूट प्रमत्तका और एक कूट अप्रमत्तका था। ये दोनों कूट अपूर्वकरणके छह प्रकृतिरूप कूटके समान हैं। अतः दो कूट पुनरुक्त हुए। इस प्रकार चार कूटोंके चार स्थान पुनरुक्त होनेसे घटा दिये।

पाँच प्रकृतिरूप चार ही स्थान हैं। पहले नौ कहे थे। उनमें वेदक सहित पहले कूटोंमें एक प्रमत्तका कहा था और एक अप्रमत्तका कहा था। वे दोनों समान हैं। अतः उनमें एक २० पुनरुक्त है। वेदक रहित पिछले कूटोंमें एक देशसंयतका, दो-दो प्रमत्त अप्रमत्त और अपूर्वकरणके, इन सातमें-से प्रमत्त, अप्रमत्त अपूर्वकरणके समान है। अतः चार पुनरुक्त हुए। इस प्रकार पाँच स्थान पुनरुक्त कम किये।

चार प्रकृतिरूप एक ही स्थान है। पहले तीन कहे थे। वे तीनों ही समान होनेसे दो पुनरुक्त घटा दिये। इस प्रकार जिनमें प्रकृतियोंकी समानता है ऐसे पुनरुक्त स्थान घटाने- २५ पर चालीस शेष रहते हैं। एक-एक स्थानके चौबीस-चौबीस भंग होनेसे चौबीससे गुणा करनेपर नौ सौ साठ हुए।

पहले दो प्रकृतिरूप स्थानके चौबीस भंग कहे थे। उन-मेंसे बारह पुनरुक्त छोड़े बारह रहे। और एक प्रकृतिरूप स्थानके ग्यारह भंग कहे थे। उनमें-से छह पुनरुक्त छोड़े पाँच रहे। इन सतरहको नौ सौ साठमें जोड़नेपर नौ सौ सत्तहत्तर हुए ॥४८८॥

३० १. क्रोधमानमायाबादर लोभसूक्ष्मलोभ अंतु ५ ॥

णवसयसत्तत्तरिहि[1] ठाणवियप्पेहि मोहिदा जीवा ।
इगिदालूणत्तरिसय पयडिवियप्पेहि णायव्वा ॥४८९॥

नवशतसप्तसप्ततिभिः स्थानविकल्पैर्मोहिता जीवाः । एकचत्वारिंशदेकान्न[1]सप्ततिशत-प्रकृतिविकल्पैर्ज्ञातव्याः ॥

अपुनरुक्तसर्व्व मोहनीयोदयस्थान विकल्पंगळो भैमूरेप्पत्तेळरिंदं त्रिकालत्रिलोकोदरवर्त्ति· चराचर संसारि जीवंगळु मोहिसल्पट्टुववर प्रकृतिविकल्पंगळु मारुसासिरवो भैनूर नाल्वत्तो दरिंदमुं मोहिसल्पट्टुवु । संदृष्टि स्थान । ९७७ । प्रकृतिगळु कूडि ६९४१ ॥

१०	५४	८८	७०	४२	२०	४	२४	५
२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	०	०

अनंतरं मोहनीयोदयस्थानमुमनवर प्रकृतिगळुमं गुणस्थानदोळु पयोगयोगादिगळोळु पेळ्दपरु ।

उदयट्ठाणं पयडिं सगसगउवजोगजोगआदीहिं ।
गुणयित्ता मेलविदे पदसंखा पयडिसंखा च ॥४९०॥

उदयस्थानं प्रकृतिं स्वस्वोपयोगयोगादिभिर्गुणयित्वा मिलिते पदसंख्या प्रकृतिसंख्या च ॥

उदयस्थानं, पुव्विल्लेसुवि मिळिदे अडचउ चसारि इत्यादिगाथासूत्रदिं गुणस्थानोक्तोदय-स्थानसंख्येयुमं प्रकृतिं स्वस्वगुणस्थानसंबंधि कूटंगळ दशाद्यंकंगळ मेळनदोळाद प्रकृतिसंख्येयुमं

नवशतानि सप्तसप्तत्यग्राणि तत्प्रकृतयोऽमूः—१० । ५४ । ८८ । ७० । ४२ । २० । ४ । मिलित्वा-ऽष्टाशीतिद्विशतं चतुर्विंशत्या गुणयित्वा द्विप्रकृतिकस्य चतुर्विंशत्या एकप्रकृतिकस्य पंचभिश्च युताः एकचत्वा-रिंशदग्रैकोनसप्ततिशतानि । एतैः स्थानविकल्पैः प्रकृतिविकल्पैश्च त्रिकालत्रिलोकोदरवर्तिचराचरसंसारिजीवाः मोहिताः संति ॥४८९॥ अथ मोहोदयस्थानतत्प्रकृतीर्गुणस्थानेषूपयोगादीनाश्रित्याह—

'पुव्विल्लेसुवि मिलिदे' इति सूत्रोक्तस्थानसंख्यां तत्प्रकृतिसंख्यां च संस्थाप्य स्वस्वगुणस्थाने संभव्यु-

---

इस प्रकार नौ सौ सतहत्तर हुए । इनकी प्रकृतियां कहते हैं—

दसरूप एक स्थानकी दस प्रकृति । नौरूप छह स्थानोंकी चौवन प्रकृतियाँ । आठरूप ग्यारह स्थानोंकी अठासी । सातरूप दस स्थानोंकी सत्तर । छहरूप सात स्थानोंकी बयालीस । पाँचरूप चार स्थानोंकी बीस । चार रूप एक स्थानकी चार । ये सब मिलकर दो सौ अठासी हुईं । इनको चौबीस भंगसे गुणा करनेपर उनहत्तर सौ बारह हुए । उनमें दो प्रकृतिरूपके चौबीस भंग (एक-एकके बारह-बारह) और एक प्रकृतिरूपके पांच मिलानेपर उनहत्तर सौ इकतालीस भेद हुए । इन स्थानभेद और प्रकृतिभेदसे त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती चराचर संसारी जीव मोहित हैं ॥४८९॥

आगे मोहके उदयस्थान और उनकी प्रकृतियोंको गुणस्थानोंमें उपयोग आदिकी अपेक्षा कहते हैं—

'पुव्विल्लेसुवि मिलिदे' इत्यादि गाथामें कही स्थानोंकी संख्या और उन स्थानोंकी

---

१. एकचत्वारिंशदधिकान्येकोनसप्तति ६९ मितानि शतानि प्रकृतयः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादिस्वस्वगुणस्थानसंभवोपयोगयोगंगळिंदमुमादिशब्ददिंदं संयमलेश्यासम्यक्त्वंगळिंदमुं गुणिसि कूडुत्तं विरलु स्थानसंख्येयुं तत्प्रकृतिसंख्येयुमक्कुमेंबु पेळ्दनंतरं स्वस्वगुणस्थानदोळु संभविसुव उपयोगंगळं पेळ्दपरु :—

मिच्छदुगे मिस्सतिये पमत्तसत्ते जिणे य सिद्धे य ।
पणछस्सत्त दुगं च य उवजोगा होंति दोच्चेव ॥४९१॥

मिथ्यादृष्टिद्वये मिश्रत्रये प्रमत्तसप्तसु जिनयोश्च सिद्धे च । पंच षट् सप्त द्विकं च चोपयोगा भवंति द्वौ चैव ॥

मिथ्यादृष्टिद्वये पंच मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं सासादनसम्यग्दृष्टिगुणस्थानदोळमिंती गुणस्थानद्वयदोळु प्रत्येकं कुमतिकुश्रुतविभंगमेंब ज्ञानोपयोगंगळु मूरुं चक्षुर्द्दर्शनमचक्षुर्द्दर्शनमेंब दर्शनोपयोगद्वयमंतुपयोगपंचकमक्कुं । मिश्रत्रये षट् मिश्रनोळमसंयतनोळं देशसंयतनोळं मतिश्रुतावधि चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमेंबुपयोगषट्कं प्रत्येकमक्कुं । प्रमत्तसप्तसु सप्त प्रमत्ताप्रमत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषाय क्षीणकषायरेंब सप्तगुणस्थानंगळोळु मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानोपयोगंगळु नाल्कुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनमुमेंब दर्शनोपयोगंगळु मूरुमंतु प्रत्येकं सप्तसप्तोपयोगंगळप्पुवु । जिने द्विकं च सिद्धे च द्वौ चैव यें दुपयोगंगळप्पुवु—

गु	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू
ठा	८	४	४	८	८	८	८	४	१।१	१
प्रकृ	६८	३२	३२	६०	५२	४४	४४	२०	२।१	१
उप	५	५	६	६	६	७	७	७	७।७	७
ठा वि	४०	२०	२४	४८	४८	५६	५६	२८	७।७	७
प्र वि	३४०	१६०	१९२	३६०	३१२	३०८	३०८	१४०	१४।७	७
गुणका	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	१२।४	१

पयोगयोगैः, आदिशब्दात्संयमदेशसंयमलेश्यासम्यक्त्वैश्च संगुण्य मेलने स्थानसंख्या प्रकृतिसंख्या च स्यात् ॥४९०॥ तद्यथा—

उपयोगा मिथ्यादृष्ट्यादिद्वये त्र्यज्ञानं द्विदर्शनमिति पंच । मिश्रादित्रये त्र्यज्ञानं त्रिदर्शनमिति षट् ।

प्रकृतियोंकी संख्याको अपने-अपने गुणस्थानोंमें सम्भव उपयोग योग और आदि शब्दसे संयम, देशसंयम, लेश्या, सम्यक्त्वसे गुणा करके सबको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतनी वहाँ मोहकी स्थान संख्या और प्रकृति संख्या जानना ॥४९०॥

वही कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि दो गुणस्थानोंमें तीन अज्ञान, दो दर्शन ये पाँच उपयोग होते हैं। मिश्र आदि तीनमें तीन ज्ञान तीन दर्शन ये छह उपयोग होते हैं। प्रमत्त आदि सातमें चार ज्ञान तीन दर्शन ये सात उपयोग होते हैं। सयोगी और अयोगी जिनमें तथा सिद्धोंमें केवलज्ञान, केवलदर्शन ये दो उपयोग होते हैं।

इंतुपयोगंगळिंदं गुणिसल्पट्टुदयस्थानंगळुमं तत्प्रकृतिगळुमं तंतम्मगुणस्थानदोळु स्थापिसल्पट्टुवं भाविसिदातंगनंतरमवरोळालापं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे मिथ्यादृष्टियोळु कूटद्वयदोळु दशादिचतुःस्थानंगळुं नवादिचतुःस्थानंगळुमंतुदयस्थानंगळें टुमं तन्नुपयोगंगळय्दरिंदं गुणिसिदोडुदयस्थानंगळु नाल्वत्तप्पुववर प्रकृतिगळुं प्रथमकूटदोळु मूवत्तारु ३६। द्वितीयकूटदोळु मूवत्तेरडंतरुवत्तें टप्पु

८	७
९।९	८।८
१०	९
३६	३२

६८ ववंतनुपयोगपंचकदिंदं गुणिसिदोडे मूनूरनाल्वत्तु प्रकृति ५

विकल्पंगळप्पुवा स्थानविकल्पंगळगमी प्रकृतिविकल्पंगळगं प्रत्येकं चतुर्विंशति भेदंगळप्पुववरिंदं गुणकारंगळुमिप्पत्तनाल्कप्पुवु।

सासादननोळु नवाद्येककूटदोळु चतुःस्थानंगळप्पुवु। प्रकृतिगळु मूवत्तेरडप्पु ७ ववं

८८
९
३२

तन्नुपयोगपंचकदिंदं गुणिसिदोडे उदयस्थानंगळु विंशतिप्रमितंगळप्पुवु। प्रकृतिगळु नूररुवत्तप्पुववक्कं चतुर्विंशतिगुणकारमक्कुं। मिश्रनोळु नवाद्येककूटदोळु चतुरुदयस्थानंगळुं द्वात्रिंशत्- १०
प्रकृतिगळुमप्पुवि ७ वं तन्नुपयोगं गळारिंरिं गुणिसुत्तं विरलुदयस्थानविकल्पंगळिप्पत्तनाल्कुं

८।८
९
३२

प्रमत्तादिसप्तके चतुर्ज्ञानं त्रिदर्शनमिति सप्त। जिने सिद्धे च केवलज्ञानदर्शने इति द्वौ द्वौ। तत्र मिथ्यादृष्टौ स्थानानि प्रकृतयश्च

अ ८	७
९।९	८।८
१०	९
३६	३२

स्वोपयोगैर्गुणिते सति स्थानानि चत्वारिंशत्, प्रकृतयश्चत्वारिंशदग्रत्रिंशतानि। सासादने स्थानप्रकृतयः

७
८।८
९
३२

स्वोपयोगैर्गुणिता विंशतिः षष्ट्युत्तरशतं। मिश्रे

७
८।८
९
३२

स्वोप-

मिथ्यादृष्टिमें पहले कूटमें एक दस प्रकृतिरूप, दो नौ-नौ प्रकृतिरूप, एक आठरूप ये चार स्थान हैं। इनकी प्रकृतियोंका जोड़ छत्तीस हुआ। पिछले कूटमें एक नौरूप, दो आठ-आठ रूप, और एक सातरूप ये चार स्थान हैं। इनका जोड़ बत्तीस। दोनोंको मिलानेपर आठ स्थान और अड़सठ प्रकृतियाँ हुईं। उनको पाँच उपयोगसे गुणा करनेपर चालीस स्थान और तीन सौ चालीस प्रकृतियाँ हुईं। १५

सासादनमें एक नौरूप, दो आठ-आठरूप और एक सातरूप ये चार स्थान और बत्तीस प्रकृतियाँ हैं। उनको पाँच उपयोगोंसे गुणा करनेपर बीस स्थान और एक सौ साठ प्रकृतियाँ होती हैं। २०

प्रकृतिगळु नूरतो भत्तेरडुमप्पुवु । गुणकारंगळ्गं चतुर्विंशतिप्रमितंगळप्पुवु । असंयतनोळु नवाद्यष्टादिकूटद्वयदोळु

७	६
८८	७।७
९	८
३२	२८

वयस्थानंगळे दु प्रकृतिगळरुवत्तुमप्पुवु ।ई अवं तन्नुपयोगषट्कदिंदं गुणिसिदोडे नाल्वत्तेंटु स्थानंगळं मूनूररुवत्तु प्रकृतिगळप्पुवु । गुणकारंगळुमिप्पत्तनाल्कप्पुवु । देशसंयतंगे अष्टाविंसप्रादि कूटद्वयदोळे दु स्थानंगळुमय्वत्तेरडु प्रकृतिगळप्पु

६	५
७७	६६
८	७
२८	२४

ववं तन्नुपयोगषट्कदिं गुणिसिदोडे नाल्वत्तेंटुदयस्थानंगळं मूनूरहन्नेरडु प्रकृतिविकल्पंगळुमप्पुवल्लियुं गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु । प्रमत्तसंयतंगे सप्तादिषडादिकूटद्वयदोळे दु स्थानंगळं नाल्वत्तनाल्कुप्रकृतिगळप्पुवु

५	४
६६	५५
७	६
२४	२०

इवं तन्नुपयोगसप्तकदिंदं गुणिसिदोडुदयस्थानंगळय्वत्तारप्पुवु । प्रकृतिगळु मूनूरेंटप्पुवु । गुणकारंगळ मिप्पत्तनाल्कुमप्पुवु । अप्रमत्तंगेयुं प्रमत्तनंते सप्तादि-

योगैर्गुणिताश्चतुर्विंशतिः, द्वानवत्यग्रशतं । असंयते

७	६
८।८	७।७
९	८
३२	२८

अष्टचत्वारिंशत् षष्टयग्रत्रिंशती । देशसंयते

६	५
७।७	६।६
८	७
२८	२४

अष्टचत्वारिंशत् द्वादशाग्रत्रिंशती । प्रमत्तेऽप्रमत्ते च

५	४
६।६	५।५
७	६
२४	२०

षट्पंचाशत् अष्टाग्रत्रिंशती

मिश्रमें एक नौरूप, दो आठ-आठ रूप, और एक सातरूप ये चार स्थान हैं। उनकी बत्तीस प्रकृतियां हैं। उन्हें छह उपयोगोंसे गुणा करनेपर चौबीस स्थान और एक सौ बानबे प्रकृतियां होती हैं।

असंयतमें पहले कूटोंमें नौरूप एक, आठरूप दो और सातरूप एक स्थान है। उनकी प्रकृतियां बत्तीस। पिछले कूटोंमें आठरूप एक, सातरूप दो और छहरूप एक, ये चार स्थान हैं। उनकी प्रकृतियां अट्ठाईस। दोनोंको मिलानेपर आठ स्थान और साठ प्रकृतियां होती हैं। उनको छह उपयोगोंसे गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान और तीन सौ साठ प्रकृतियां होती हैं।

देशसंयतमें पहले कूटोंमें एक आठरूप, दो सातरूप, एक छहरूप ऐसे चार स्थान हैं, प्रकृतियां अठाईस। पिछले कूटोंमें एक सातरूप, दो छहरूप और एक पांचरूप ये चार स्थान हैं। चौबीस प्रकृतियां हैं। दोनोंको मिलाकर आठ स्थान बावन प्रकृतियां होती हैं। उनको छह उपयोगोंसे गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान और तीन सौ बारह प्रकृतियाँ हैं।

षडादिकूटद्वयदोळ्ं टु स्थानंगळुं नाल्वत्तनाल्कुं प्रकृतिगळप्पुवु | ५ ४ / ६६ ५५ / ७ ६ / २४ | २० | इवं तन्नुपयोगसप्तकदिंदं गुणिसिदोडव्वत्तारुदयस्थानंगळुं मूनूरें टु प्रकृतिगळुमप्पुवु गुणकारंगळ्मिप्पत्तनाल्कुमप्पुवु ॥ अपूर्व्वकरणंगे षडादिचतुःस्थानंगळुं विंशतिप्रकृतिगळुमप्पुव्। अवं तन्नुपयोगसप्तकदिं गुणिसिदोडे मोहनीयोदयस्थानंगळिप्पत्तें टु प्रकृतिविकल्पंगळ्नूरनाल्वत्तुमप्पुवु। गुणकारंगळुमिप्पत्तनाल्कप्पुवु। इंतिल्लिगे चतुर्व्विंशतिगुणकारमनुळ्ळ मोहनीयोदयस्थानंगळु पयोगाश्रितंगळु मूनूरिप्पत्त ३२०। प्पुवु। प्रकृतिविकल्पंगळु येरडुसासिरव नूरिप्पत्तप्पुवु २१२०॥ इवं चतुर्व्विंशतिगुणकारदिंदं गुणिसिदोडे स्थानविकल्पंगळु येळु सासिरवरुनूरेंभत्तप्पुवु ७६८०। प्रकृतिविकल्पंगळुमय्वत्तु सासिरदेण्टुनूरेंभत्तप्पुवु ५०८८०। अनिवृत्तिकरणंगे उदयस्थानमों दु प्रकृतिगळेरडवं तन्नुपयोगसप्तकदिंदं गुणिसिदोडे स्थानविकल्पंगळेळुं प्रकृतिविकल्पंगळु पदिनाल्कप्पुवु। अवं द्वादश विकल्पदिंदं गुणिसिदोडुदयस्थानंगळेंभत्तनाल्कु ८४। प्रकृतिविकल्पंगळु नूररुवत्तें टु १६८। मत्तमनिवृत्तिकरणन अवेदभागेयोळुदयस्थानमों दु प्रकृतियुमोंदु। अवं तन्नुपयोगसप्तकदिंदं गुणिसिदोडे

अपूर्वकरणे | ४ / ५।५ / ६ / २० | अष्टाविंशतिः चत्वारिंशदग्रशतं। अनिवृत्तिकरणस्य स्थानं प्रकृती, १ / २ उपयोगैर्गुणिते

सप्त चतुर्दश पुनर्द्वादश भंगैर्गुणिते चतुरशीतिः अष्टशत्यग्रशतं। अवेदभागे स्थानं प्रकृतिः १ / १ उपयोगैर्गुणिते

प्रमत्त और अप्रमत्तमें पहले कूटोंमें एक सातरूप, दो छहरूप, एक पाँचरूप ये चार स्थान हैं, चौबीस प्रकृतियां हैं। पिछले कूटोंमें एक-एक छहरूप, दो पाँच-पाँच रूप, एक चाररूप ये चार-चार स्थान और बीस-बीस प्रकृतियां हैं। दोनोंको मिलानेपर दोनोंमें आठ-आठ स्थान और चवालीस-चवालीस प्रकृतियां हैं। उनको सात उपयोगसे गुणा करनेपर छप्पन-छप्पन स्थान और तीन सौ आठ-तीन सौ आठ प्रकृतियां होती हैं।

अपूर्वकरणमें छहरूप एक, पाँचरूप दो और चाररूप एक ये चार स्थान और बीस प्रकृतियां हैं। उनको सात उपयोगोंसे गुणा करनेपर अठाईस स्थान और एक सौ चालीस प्रकृतियां होती हैं। इन सब गुणस्थानोंको जोड़नेपर ४० + २० + २४ + ४८ + ४८ + ५६ + ५६ + २८ = तीन सौ बीस स्थान हुए। और सबकी प्रकृतियोंको जोड़नेपर ३४० + १६० + १९२ + ३५० + ३१२ + ३०८ + ३०८ + १४० = इक्कीस सौ बीस प्रकृतियां हुईं। उनको चौबीस भागोंसे गुणा करनेपर पचास हजार आठ सौ अस्सी प्रकृतियां हुईं।

अनिवृत्तिकरणमें दो प्रकृतिरूप एक स्थान है। उनको सात उपयोगोंसे गुणा करनेपर सात स्थान चौदह प्रकृतियाँ हुईं। उनको बारह भंगोंसे गुणा करनेपर चौरासी स्थान, एक सौ अड़सठ प्रकृतियाँ होती हैं। अनिवृत्तिकरणके अवेद भागमें एक प्रकृतिरूप एक स्थान। उनको सात उपयोगोंसे गुणा करनेपर सात स्थान सात प्रकृतियाँ हुईं। उनको चार भंगोंसे

स्थानविकल्पंगळ ७ प्रकृतिविकल्पंगळुमेळप्पुव ७ वं चतुष्कषायभेवदिंदं गुणिसिदोडे स्थानविकल्पंगळु इप्पत्तें टु २८। प्रकृतिविकल्पंगळुमिप्पत्तें टप्पुवु २८। अंतनिवृत्तिकरणन सवेदावेदभागेगळोळु स्थानविकल्पंगळु नूरहन्नेरडु ११२। प्रकृतिविकल्पंगळु नूरतोंभत्तारु १९६। सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभस्थानमों दु। प्रकृतियुमदों देयक्कुमवं तन्नुपयोगसप्तकदिंदं गुणिसिदोडे उदयस्थानविकल्पंगळु एळु ७। प्रकृतिगळु मेळु ७ मवेकविकल्पमप्पुदरिंदमनितेयप्पुवु। अनिवृत्तिकरणनुदयस्थानविकल्पंगळु नूरहन्नेरडरोळो सूक्ष्मसांपरायनुदयस्थानंगळेळं कूडिदोडे उपयोगाश्रितस्थानंगळु नूरहत्तों भत्तुं क्षेपंगळें बुवक्कुं। ११९। अनिवृत्तिकरणन नूरतोंभत्तारु प्रकृतिगळोळी सूक्ष्मसांपरायनेळुं प्रकृतिविकल्पंगळं कूडिदोडे इन्नूर मूरु २०३ प्रकृतिगळु क्षेपंगळें बुवक्कु। मी स्थानक्षेपंगळुमं प्रकृतिक्षेपंगळुमं मुन्निन स्थानविकल्पंगळु येळु सासिरवरुनूरेण्भत्तरोळं ७६८० प्रकृतिविकल्पंगळय्वत्तु सासिरदें टु नूरेण्भत्तरोळं क्रमदिदं कूडुत्तं विरलु गुणस्थानदोळुपयोगाश्रितमोहनीयोदयस्थानंगळु सर्व्वमुमेळु सासिरदेळु नूरतोंभत्तोंभत्तप्पुवु ७७९९। प्रकृतिविकल्पंगळु मय्वत्तों दु सासिरदेण्भत्तमूरप्पु ५१०८३। वें दु मुंदण गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

णवणउदिसगसयाहिय सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स।
ठाणवियप्पे जाणसु उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९२॥

नव नवतिसप्तशताधिकसप्तसहस्रप्रमाणमुदयस्य। स्थानविकल्पान् जानीहि उपयोगे मोहनीयस्य ॥

सप्त सप्त। पुनश्चतुर्भंगैर्गुणितेऽष्टाविंशतिरष्टाविंशतिः सूक्ष्मसांपराये स्थानं प्रकृतिः १ उपयोगैर्गुणिते सप्त १

सप्त। अत्रापूर्वकरणांतं स्थानानि प्रकृतीश्चैकीकृत्य चतुर्विंशत्या संगुण्य तत्र च स्थानेष्वनिवृत्तिकरणाद्येकान्नविंशत्यग्रशतस्थानानि प्रकृतिषु त्र्यग्रद्विशतं प्रकृतीश्च क्षेपं कुर्यात्।

गुणा करनेपर अठाईस स्थान अठाईस प्रकृतियाँ हुईं। सूक्ष्म साम्परायमें एक प्रकृतिरूप एक स्थान। सात उपयोगसे गुणा करनेपर सात स्थान सात प्रकृतियाँ होती हैं। यहाँ भंग एक ही है। इनको जोड़नेपर ८४ + २८ + ७ एक सौ उन्नीस स्थान और १६८ + २८ + ७ दो सौ तीन प्रकृतियाँ होती हैं। इनको अपूर्वकरण पर्यन्त कहे स्थानों और प्रकृतियोंमें मिलाइए ॥४९१॥

गुण.	८मि.	४सा.	४मि.	८अ.	८दे.	८प्र.	८अप्र.	४अ.	१अ.	१अ.	१सू.
प्रकृति	६८	३२	३२	६०	५२	४४	४४	२०	२	१	१
उपयोग	५	५	६	६	६	७	७	७	७	७	७
स्थान	४०	२०	२४	४८	४८	५६	५६	२८	७	७	७
प्रकृति	३४०	१६०	१९२	३६०	३१२	३०८	३०८	१४०	१४	७	७

नवनवतिसप्तशताधिक सप्तसहस्रप्रमाणमं ७७९९। मोहनीयोदयदुपयोगस्थानविकल्पंगळ-नरियेंदु शिष्यं संबोधिसल्पट्टनु ॥

एक्कावण्णसहस्सं तेसीदिसमण्णियं वियाणाहि ।
पयडीणं परिमाणं उवजोगे मोहणीयस्स ॥४९३॥

एकपंचाशत्सहस्रं त्र्यशीतिसमन्वितं विजानीहि । प्रकृतीनां प्रमाणं उपयोगे मोहनीयस्य ॥

त्र्यशीतिसमन्वितमप्प एकपंचाशत्सहस्रमनुपयोगदोळु मोहनीयद प्रकृतिगळ परिमाणमनरियेंदितु शिष्यं संबोधिसल्पट्टं । ५१०८३ ।

अनंतरं गुणस्थानदोळु मोहनीयोदयस्थानमं प्रकृतिगळं योगमनाश्रयिसि पेळ्दपरु :—

तिसु तेरं दस मिस्से णव सत्तसु छट्ठयम्मि एक्कारा ।
जोगिम्मि सत्तजोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥४९४॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे नव सप्तसु षष्ठे एकादश । योगिनि सप्तयोगा अयोगिस्थानं भवेच्छून्यं ॥

त्रिषु त्रयोदश मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळं असंयतनोळं प्रत्येकं त्रयोदशत्रयोदशंगळप्पुवु । दश मिश्रे मिश्रगुणस्थानदोळु दशयोगंगळप्पुवु । नव सप्तसु देशसंयताप्रमतापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायरेंब सप्तगुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं नव नव योगंगळप्पुवु । षष्ठे एकादश प्रमत्तसंयतनोळेकादशयोगंगळप्पुवु । योगिनि सप्त योगाः सयोगकेवलिभट्टारकनोळु सप्तयोगंगळप्पुवु । अयोगिस्थानं भवेच्छून्यं अयोगिकेवलिभट्टारकगुणस्थानदोळु योगशून्यमक्कुं । संदृष्टि :—

तत्रोपयोगाश्रितमोहनीयोदयस्थानविकल्पा नवनवत्यग्रसप्तशताधिकसप्तसहस्राणि जानीहि ७७९९ ॥४९२॥

उपयोगाश्रितमोहनीयप्रकृतिपरिमाणं च त्र्यशीतिसमन्वितैकपंचाशत्सहस्राणि जानीहि ५१०८३ ॥४९३॥ अथ योगमाश्रित्याह—

योगाः मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु त्रयोदश त्रयोदश । मिश्रे दश । देशसंयतादिषु सप्तसु नव नव । प्रमत्त एकादश । सयोगे सप्त । अयोगे शून्यं भवेत् ॥४९४॥

इस प्रकार उपयोगके आश्रयसे मोहनीयके उदयस्थानके भेद सात हजार सात सौ निन्यानबे ७७९९ होते हैं ॥४९२॥

तथा उपयोगके आश्रयसे मोहनीयकी प्रकृतियोंका प्रमाण ५१०८३ इक्यावन हजार तिरासी जानना ॥४९३॥

आगे योगके आश्रयसे कथन करते हैं—

योग मिथ्यादृष्टि, असंयत और सासादनमें तेरह-तेरह, मिश्रमें दस, देशसंयत आदि सात गुणस्थानोंमें नौ-नौ, प्रमत्तमें ग्यारह, सयोगीमें सात होते हैं। अयोगीमें योग नहीं होता ॥४९४॥

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
१३	१३	१०	१३	९	११	९	९	९	९	९	९	७	०

अनंतरमी गुणस्थानंगळोळ् मिश्रयोगंगळुळ्ळ गुणस्थानंगळ्गुमं केवलं पर्य्याप्तयोगंगळुळ्ळ गुणस्थानंगळ्गुमं विवरिसि पेळ्दपरु :—

मिच्छे सासण अयदे पमत्तविरदे अपुण्णजोगगदं ।
पुण्णगदं च य सेसे पुण्णगदे मेलिदं होदि ॥४९५॥

मिथ्यादृष्टौ सासादने असंयते प्रमत्तविरते अपूर्ण योगं पूर्णगतं च च शेषे पूर्णगते मिलितं भवति ॥

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळं, सासादने सासादनगुणस्थानदोळं, असंयते असंयतगुणस्थानदोळं, प्रमत्तविरते प्रमत्तविरतगुणस्थानदोळुमितु चतुर्गुणस्थानंगळोळ् अपूर्णयोगमुं पूर्णयोगमुमोळवा अपूर्णयोगगतं च अपर्य्याप्तयोगगतस्थानमुमं। पूर्णगतं च पर्य्याप्तकयोगगतस्थानमुमं मिलितं कूडिदुदं। शेषे पूर्णंगते शेषगुणस्थानंगळ पूर्णयोगगतस्थानदोळ् मिलितं कूडल्पट्टुदु । योगाश्रितसर्व्वस्थानप्रमाणमु प्रकृतिप्रमाणमुं भवति अक्कुमदंतें दोडे मिथ्यादृष्टियोळनंतानुबंधिकषायोदययुत चतुःस्थानंगळ्गमवर प्रकृतिगळ् ८ मनोयोगचतुष्कमुं वाग्योगचतुष्कमुमौदारिक-
९।९
१०
३६
काययोगमुमौदारिकमिश्रयोगमुं वैक्रियिककाययोगमुं वैक्रियिकमिश्रयोगमुं काम्मंणकाययोगमुमेंब

अथ मिश्रयोगयुक्तकेवलपर्याप्तयोगयुक्तगुणस्थानानि विशेषयति—

मिथ्यादृष्टौ सासादने असंयते प्रमत्तविरते चेति चतुर्गुणस्थानेषु अपर्याप्तयोगगतं पर्याप्तयोगगतं च मिलितं स्थानप्रमाणं प्रकृतिप्रमाणं च भवति । शेषगुणस्थानेषु केवलपर्याप्तयोगगतमेव तद्द्वयं भवति । तद्यथा—

मिथ्यादृष्टौ स्थानप्रकृतयः | ८ / ९।९ / १० | ३६ | स्वयोगैर्गुणिता द्वापंचाशत्, अष्टषष्टयग्रचतुःशतानि । विसंयोजिता-

आगे मिश्रयोगवाले और केवल पर्याप्त योगवाले गुणस्थानोंको कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत तथा प्रमत्त विरत इन चार गुणस्थानोंमें अपर्याप्त योग भी होते हैं और पर्याप्त योग भी होते हैं। अतः इनमें इन दोनोंको मिलाकर स्थानों और प्रकृतियोंका प्रमाण होता है। शेष गुणस्थानोंमें केवल पर्याप्त योग ही होते हैं अतः उन्हींको लेकर स्थान प्रमाण और प्रकृति प्रमाण होता है। वही कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिके पहले कूटोंमें चार स्थान और १०+९+९+८=छत्तीस प्रकृति हैं। उनको तेरह योगोंसे गुणा करनेपर बावन स्थान और चार सौ अड़सठ प्रकृति होती हैं। अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनरूप अन्तर्मुहूर्तमें मरण नहीं होता इसलिए पिछले चार कूटोंके चार स्थान और बत्तीस प्रकृतियोंको ९+८+८+७=दस योगोंसे गुणा करनेपर चालीस

पर्य्याप्तापर्य्याप्तयोगंगळ्‌ त्रयोदशंगळक्कुमेंदु । १३ । ४ । १३ । ३६ । गुणिसुत्तं विरलु द्विपंचाशत्-स्थानंगळ्‌ ५२ मष्टषष्टयुत्तर चतुःशतप्रकृतिगळ्‌मप्पुवु । ४६८ । मत्तमा मिथ्यादृष्टियोळ्‌ अनंतानुबंधिकषायोदयरहित चतुःस्थानंगळ्‌गं द्वात्रिंशत्प्रकृतिगळ्‌गं ७ मनोयोग चतुष्कमुं वाग्योग-
८।८
९
३२
चतुष्कमुमौदारिककाययोगमुं वैक्रियिककाययोगमुमेंब पर्य्याप्तदशयोगंगळप्पुवेंदु गुणिसुत्तं विरलु ।

नुबंधिन्यंतर्मुहूर्ते मरणाभावात्तत्पर्याप्तदशयोगैर्गुणिताः स्थानप्रकृतयः | ७ | ८।८ | ९ | ३२ | चत्वारिंशत् त्रिंशत्यग्रत्रिंशती ५

मिलित्वा स्थानानि द्वानवतिः प्रकृतयोऽष्टाशीत्यग्रसप्तशती । सासादने स्थानप्रकृतयः | ४ | ३२ | वैक्रियिकमिश्रस्य

पृथग्वक्ष्यतीति द्वादशभिर्गुणिता अष्टचत्वारिंशत् चतुरशीत्यग्रत्रिंशतो । मिश्रे | ७ | ८।८ | ९ | ३२ | दशभिर्गुणिताश्चत्वारिंशत्

त्रिंशत्यग्रत्रिंशती । असंयते | ७ | ८।८ | ९ | ३२ | ६ | ७।७ | ८ | २८ | कार्मणौदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्राणां पृथग्वक्ष्यतीति दशभिर्गुणिता

अशीतिः षट्छती । देशसंयते | ८ | ५२ | नवभिर्गुणिता द्वासप्ततिरष्टषष्ट्यग्रचतुःशती । प्रमत्तेऽप्रमत्ते च

| ५ | ६।६ | ७ | २४ | ४ | ५।५ | ६ | २० | आहारकद्वयस्य पृथग्वक्ष्यतीति नवभिर्गुणिता द्वासप्ततिः षण्णवत्यग्रत्रिंशती । अपूर्वकरणे १०

स्थान और तीन सौ बत्तीस प्रकृतियाँ हैं । सब मिलकर बानबे स्थान और सात सौ अठासी प्रकृतियाँ होती हैं । सासादनमें चार स्थान, बत्तीस प्रकृति ९+८+८+७ हैं । चूँकि वैक्रियिक मिश्रयोगको अलगसे कहेंगे, इसलिए बारह योगोंसे गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान और तीन सौ चौरासी प्रकृतियाँ होती हैं ।

मिश्रमें स्थान चार और प्रकृति ९+८+८+७=बत्तीस । उनको दस योगोंसे गुणा करनेपर चालीस स्थान और तीन सौ बीस प्रकृतियाँ होती हैं । १५

असंयतमें आठ स्थान और ९+८+८+७=३२ । ८+७+७+६=२८ । साठ प्रकृतियाँ हैं । चूँकि कार्माण, औदारिक मिश्र और वैक्रियिक मिश्रका कथन पृथक् करेंगे अतः दस पर्याप्त योगोंसे गुणा करनेपर स्थान अस्सी और प्रकृतियाँ छह सौ होती हैं ।

देशसंयतमें स्थान आठ और प्रकृतियाँ ८+७+७+६=२८ । ७+६+६+५=२४ बावन । उनको नौ योगोंसे गुणा करनेपर बहत्तर स्थान और प्रकृति चार सौ अड़सठ होती हैं । २०

४।१०। ३२। १०। चत्वारिंशत्स्थानंगळं ४०। विंशत्युत्तरत्रिंशतप्रकृतिगळुमप्पु ३२०। वेकें दोडे अनंतानुबंधिकषायोदयरहितमिथ्यादृष्टियंतर्मुहूर्त्तंकालपर्य्यंतं मरणमिल्लप्पुदरिंदमपर्य्याप्तयोगंगळु संभविसुवप्पुदरिंदं। अंतु मिथ्यादृष्टियोळभयस्थानंगळुं द्वानवतिप्रमितंगळप्पुवु ९२। प्रकृतिगळमष्टाशीत्युत्तरसप्तशतप्रमितंगळप्पुवु ७८८॥ चतुःकषायत्रिवेदद्विकद्वयभेदविंदं चतुर्व्विंशतिगुणकारंगळप्पुवु २४॥

अनंतरं सासादनासंयतप्रमत्तगुणस्थानत्रयदोळुमिश्रयोगंगळोळु विशेषमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

सासण अयदपमत्ते वेगुव्वियमिस्स तच्च कम्मइयं।
ओरालमिस्सहारे अडसोलडवग्ग अट्ठवीससयं ॥४९६॥

सासादनासंयतप्रमत्तेषु वैक्रियिकमिश्रं तच्च काम्मंणं औदारिकमिश्रे आहारे अष्ट षोडशाष्टवर्गाष्टाविंशतिशतं॥

---

४ | ५।५ | ६ | २० नवभिर्गुणिताः षट्त्रिंशदशीत्यग्रशतं। एतावत्पर्यंतं सर्वत्र स्थानप्रकृतीनां गुणकारश्चतुर्विंशतिः। अनिवृत्तिकरणसवेदभागे | १ | २ | नवभिर्गुणिता नवाष्टादश। गुणकारो द्वादश। अवेदभागे | १ | १ | तथा नव नव गुणकारश्चत्वारः। सूक्ष्मसांपरायेऽपि | १ | १ | तथा नव नव गुणकार एकः ॥४९५॥ अथापनीतयोगानां विशेषं गाथाद्वयेनाह—

प्रमत्त और अप्रमत्तमें स्थान आठ, प्रकृति ७ + ६ + ६ + ५ = २४। ६ + ५ + ५ + ४ = २०। चवालीस। आहारकद्विकका कथन पृथक् करेंगे इसलिए नौ योगोंसे गुणा करनेपर प्रत्येकमें बहत्तर स्थान और तीन सौ छियानबे प्रकृतियाँ हैं।

अपूर्वकरणमें चार स्थान और प्रकृति ६ + ५ + ५ + ४ = बीस हैं। उनको नौ योगोंसे गुणा करनेपर छत्तीस स्थान और एक सौ अस्सी प्रकृति हैं। यहाँ तक इन स्थानों और प्रकृतियोंको चौबीस भंगोंसे गुणा करें।

अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें एक स्थान और दो प्रकृति। इनको नौ योगोंसे गुणा करनेपर नौ स्थान और अठारह प्रकृति होती हैं। इनको बारह भंगोंसे गुणा करें। और अवेद भागमें एक स्थान एक प्रकृति। इनको नौ योगोंसे गुणा करनेपर नौ स्थान नौ प्रकृति होते हैं। इनको चार भंगोंसे गुणा करें।

सूक्ष्मसाम्परायमें एक स्थान एक प्रकृति, इनको नौ योगोंसे गुणा करनेपर नौ स्थान नौ प्रकृति होती हैं। इनको एक भंगसे गुणा करें ॥४९५॥

आगे पृथक् रखे योगोंका कथन दो गाथाओंसे करते हैं—

---

१. अण संजोजिदसम्मे मिच्छं संते ण आवलित्ति अणं। अण संजोजिद मिच्छे मुहुत्त अंतेत्ति णत्थि मरणं तु १०।

सासावनगुणस्थानदोळमसंयतगुणस्थानदोळं प्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळमल्लि सासादनंवैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळष्टवर्गमात्रस्थानविकल्पंगळप्पुवु । ६४ । असंयतन वैक्रियिकमिश्रकार्म्मणकाययोगद्वयदोळं षोडशवर्गप्रमितस्थानविकल्पंगळप्पुवु । २५६ । मत्तमसंयतनौदारिकमिश्रकाय-

---

सासादनस्य वैक्रियिकमिश्रयोगे स्थानान्यष्टवर्गमात्राणि प्रकृतयो द्वादशाग्रपंचशती । कुतः ? पंढवेदवर्जितकूटस्य—

२	१	१	०
२ । २	२ । २	२ । २	२ । २
० । १ । १	० १ १	० । १ । १	० । १ । १
४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४	४ ४ ४ ४

संजातचतुःस्थानद्वात्रिंशत्प्रकृतीनां

७
८।८
९
३२

षोडशभंगैर्गुणितत्वात् । असंयतस्य वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगयोः स्थानानि षोडशवर्गमात्राणि प्रकृतयो विंशत्यग्रैकान्नविंशतिशती । कुतः ? स्त्रीवेदवर्जिततत्कूटसंजाताष्टस्थानषष्टिप्रकृतीनां

७	६
८।८	७।७
९	८
३२	२८

षोडशभंगैर्योगयुग्मेन च गुणितत्वात् । पुनः असंयतस्यौदारिकमिश्रयोगे स्थानान्यष्टवर्गमात्राणि प्रकृतयोऽशीत्यग्रचतुःशती, कुतः ? स्त्रीपंढवेदवर्जितासंयताष्टकूटसंजाताष्टस्थानषष्टिप्रकृतीनां

७	६
८।८	७।७
९	८
३२	२८

अष्टभंगैर्गुणितत्वात् । प्रमत्तसंयतस्याहारकद्वये स्थानान्यष्टाविंशत्यग्रशतं प्रकृतयश्चतुरग्रसप्त-

---

सासादनके वैक्रियिक मिश्रयोगमें स्थान आठका वर्ग चौंसठ प्रमाण और प्रकृति पांच सौ बारह हैं। ये कैसे हैं ? इसका कथन करते हैं—

सासादनमें चार कूट किये थे। उनमें तीन वेदोंमें-से एकका उदय कहा था। किन्तु यहाँ नपुंसकवेदके बिना दो वेदोंमें-से एकका उदय जानना। सो नौरूप एक, आठरूप दो और सातरूप एक ये चार स्थान और बत्तीस प्रकृति। उनको चार कषाय, दो वेद और दो युगलोंसे हुए सोलह भंगोंसे गुणा करनेपर चौंसठ स्थान और पांच सौ बारह प्रकृति हुई।

असंयतके वैक्रियिक मिश्र और कार्मण योगमें पूर्वोक्त आठ कूटोंमें स्त्रीवेदके बिना दो वेदोंमें-से एकका उदय जानना। इससे उन कूटोंमें आठ स्थान और साठ प्रकृतियोंको चार कषाय, दो वेद और दो युगलोंके सोलह भंगोंसे तथा दो योगोंसे गुणा करनेपर सोलहका वर्ग दो सौ छप्पन प्रमाण स्थान और उन्नीस सौ बीस प्रकृतियाँ होती हैं।

असंयतके औदारिक मिश्रमें स्त्रीवेद-नपुंसक वेद दोनोंका उदय नहीं होता। अतः पूर्वोक्त आठ कूटोंमें तीन वेदोंके स्थानमें एक वेद लिखना। आठ कूटोंके आठ स्थान और साठ प्रकृतियोंको चार कषाय, एक वेद, दो युगलके आठ भंगोंसे और एक योगसे गुणा करनेपर आठका वर्ग चौंसठ प्रमाण स्थान और चार सौ अस्सी प्रकृतियां होती हैं।

योगदोळष्टवर्गंमात्रस्थानविकल्पंगळप्पुवु । ६४ ॥ प्रमत्तसंयतनाहारकयोगद्वयदोळष्टाविंशतिशतस्थानंगळप्पुवु । १२८ ॥

ई स्थानंगळं प्रकृतिगळगमुपपत्तियं पेळ्दपरु :--

णत्थि णउंसयवेदो इत्थीवेदो णउंसइत्थिदुगे ।
पुव्वुत्तपुण्णजोगगचउसु ट्ठाणेसु जाणेज्जो ॥४९७॥

नास्ति नपुंसकवेदः स्त्रीवेदो नपुंसकस्त्रियौ द्वये । पूर्व्वोक्ताऽपूर्णंयोगगतचतुर्षु स्थानेषु ज्ञातव्यः ॥

पूर्व्वोक्ताऽपूर्णंयोगगचतुर्षु स्थानेषु पेरगण सूत्रदोळु पेळ्दपट्ट सासादनासंयतप्रमत्तरुगळ अपर्य्याप्तयोगगतचतुःस्थानयोगंगळोळु क्रमदिदं मोदल सासादनवैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु नास्ति नपुंसकवेदः नपुंसकवेदोदयमिल्लेकेंदोडे-"णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदित्ति" एंदु सासादनसम्यग्दृष्टि नरकदोळु पुट्टनप्पुदरिंदं २ असंयतन वैक्रियिकमिश्रकार्म्मणयोगद्वयदोळु स्त्रीवेदो

२।२
०११
४।४।४।४

नास्ति स्त्रीवेदोदयमिल्लेकेंदोडे असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळोळु पुरुषनागि पुट्टुगुमप्पुदरिंदं । धर्म्मेयोळु नपुंसकनुमागि पुट्टुगुमप्पुदरिंदं २ मत्तमसंयतनौदारिकमिश्र-

२।२
१०१
३३३३

काययोगदोळं प्रमत्तसंयतनाहारकयोगद्वयदोळमंतु द्वये येरडेडेयोळं नपुंसकस्त्रियौ न भवतः नपुंसकवेदमुं स्त्रीवेदमुमिल्लेंदु ज्ञातव्यः अरियल्पडुगुमेंतेंदोडसंयतं तिर्य्यग्मनुष्यरोळु पुरुषनागि पुट्टुगुम-

---

शती । कुतः ? स्त्रीपंढवर्जिततत्कूटजाताष्टस्थानचतुश्चत्वारिंशत्प्रकृतीनां—

५	४
६।६	५।५
७	६
२४	२०

अष्टभंगैर्योग-युग्मेन च गुणितत्वात् ॥४९६॥ अथ तमपनीतवेदं स्वयं निषेधयति—

पूर्वोक्तापूर्णयोगगतचतुःस्थानेषु प्रथमे सासादने वैक्रियिकमिश्रकाययोगे नपुंसकवेदोदयो नास्ति,

---

प्रमत्तसंयतके आहारक-आहारक मिश्ररूप दो योगोंमें भी स्त्री-नपुंसक वेदरहित आठ कूटोंके आठ स्थान और चवालीस प्रकृतियोंको आठ भंगोंसे और दो योगोंसे गुणा करनेपर एक सौ अठाईस स्थान और सात सौ चार प्रकृतियाँ होती हैं ॥४९६॥

आगे उन घटाये गये वेदोंको ग्रन्थकार स्वयं कहते हैं—

पूर्वोक्त अपर्याप्त योगगत चार स्थानोंमें-से प्रथम सासादनमें वैक्रियिक मिश्रकाय योगमें नपुंसक वेदका उदय नहीं है; क्योंकि सासादन मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होता। असंयतमें वैक्रियिक मिश्र और कार्मण योगमें स्त्रीवेदका उदय नहीं है; क्योंकि असंयत

प्पुदरिंदं २ प्रमत्तसंयतं षंडस्त्रीवेदोदयमुळ्ळनादोडा संक्लिष्टनोळाहारकवृद्धिगुत्पत्तियि-
२।२
०।०।१
३३३३
१

ल्लप्पुदरिंदं । संदृष्टि--
२
२।२
०।०।१
११११
१

० न		० इ	१ ० न। इ	० ० न इ	
सासादन।		असंयत।	असंयत।	प्रमत्तसंयत।	
ठा।वि	६४	२५६	६४	१२८	स्थानविशेष
प्र०वि	५१२	१९२०	४८०	७०४	प्रकृतिविशेष
ठा०सा	४	८	८	८	स्थानसामान्य
प्र०सा	३२	७०	६०	४४	प्रकृतिसामान्य
यो	१	२	१	२	यो ॥
भं	१६	भंग १६	भं ८	भंग	

ई रचनातात्पर्य्यार्त्थं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे वैक्रियिकमिश्रकाययोगि सासादनंगे मोहनीयो-दयकूटंगळु नाल्कक्कं नाल्कु स्थानंगळप्पुवु।

२	१	१	०	७
२।२	२।२	२।२	२।२	८८
०।१।१	०।१।१	०।१।१	०।१।१	९
४४४४	४४४४	४४४४	४४४४	३२

प्रकृतिगळु मूवत्तेरडप्पुवु। ३२। इल्लि क्रोधचतुष्कादि चतुष्क दोळोंदु चतुष्कमुं स्त्रीवेदमुं पुंवेदमुमेंबेरडररोळोंदु वेदमुं द्विकद्वयदोळोंदु द्विकमुं भयद्विकमुमंतु नवादिस्थानंगळु नाल्कक्कं चतुष्कषायमुं वेदद्विकमुं द्विकद्वयमुमेंदिवर गुणितदिंदाद भंगंगळु षोडशप्रमितंगळप्पु १६ वा नाल्कुं स्थानंगळगे प्रत्येकमी षोडश भंगंगळप्पुर्वेंदु गुणिसिदोडे। ४। १६। चतुःषष्टिस्थानंगळप्पुवु।६४। आ द्वात्रिंशत्प्रकृतिगळुमनी षोडशभंगंगळिंदं गुणिसिदोडे ३२। १६। द्वादशाधिकपंचशतप्रकृतिगळप्पुवु। ५१२। ई सासादनंगुत्कृष्टदिंदं षडावलिकालमक्कुं। जघन्यदिंदमेकसमयमक्कुमातं स्त्रीवेदोदयदिंदं देवियक्कुं। पुंवेदोदयदिंद देवनक्कु--मातंगाकालदोळु क्रोधचतुष्कमुं मानचतुष्कमुं मायाचतुष्कमुं लोभचतुष्कमुमेंबिवरोळोंदु चतुष्कमुं स्त्रीवेदमुं पुंवेदमुमेंबेरडुं वेदंगळोळोंदोंदु

सासादनस्य नरकेऽनुत्पत्तेः। असंयते वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगयोः स्त्रीवेदोदयो नास्ति असंयतस्य स्त्रीष्वनुत्पत्तेः।

स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता। पुनः असंयतके औदारिक-मिश्रयोगमें और प्रमत्त संयतके आहारक-आहारक मिश्रयोगमें स्त्रीवेद-नपुंसक वेद नहीं हैं। ऐसा जानना। यहाँ मिथ्या-

वेदमुं हास्यद्विकमुमरतिद्विकमुमेंबेरडुं द्विकदोळोंदु द्विकमुं, भयद्वितयमुमंतु नवप्रकृतिगळुदयस्थानमोंदुं मत्तमा प्रकृतिगळोळु जुगुप्सेयं कळेदोडेंदु प्रकृतिस्थानमोंदु मत्तमा प्रकृतिगळोळु भयमं कळेदोडेंदु प्रकृतिस्थानमिदोंदुभयमुं जुगुप्सेयुं रहितसप्तप्रकृतिस्थानमदोंदंतु स्थानचतुष्टयमुं द्वात्रिंशत्प्रकृतिगळगे षोडशभंगंगळक्कुमेंबुवर्थं। असंयतंगे वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु मोहनीयोदयकूटंगळु सवेदकंगळु नाल्कुमवेदकंगळु नाल्कुमप्पुवु। संदृष्टि :—

२	१	१	०	२	१	१	०	कूटस्थान	प्रकृति
२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२		
१।०।१	१।०।१	१।०।१	१।०।१	१।०।१	१।०।१	१।०।१	१।०।१	८	६०
३३३३	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३	३३३३		
१	१	१	१					भं १६	भं १६

ई कूटंगळेंटक्कं कषायवेदद्वय द्विकद्वयकृत भंगंगळु प्रत्येकमोंदोंदु कूटक्के षोडशप्रमितंगप्पुवु। ८। १६। प्रकृति ६०। १६। गुणिसिदोडे नूरिप्पत्तेंदु स्थानंगळुं १२८। ओंभयिनूररुवत्तु प्रकृतिगळु ९६०। मप्पुवु। असंयतंगे कार्म्मणकाययोगदोळमिनितेस्थानंगळुं प्रकृतिगळु मागुत्तं विरलु द्विगुणिसिदोडे बेसदछप्पण्ण प्रमितस्थानंगळुं २५६। सासिरदोंभैनूरिप्पत्तु प्रकृतिगळप्पुवु। १९२०॥ मत्तमौदारिकमिश्रकाययोगियसंयतंगे सवेदकावेदकगतोदयकूटंगळेंटक्कमेंदुं स्थानंगळप्पुवु

७	६	कूडि स्थान
८८	७७	८
९	८	
३२	२८	प्र। ६०

प्रकृतिगळरुवत्तप्पुवु। भंगंगळेंटेयप्पुवेकेंदोडौदारिकमिश्रकाययोगि असंयततिर्य्यंचनुं मनुष्यनुमप्पुदरिंदं पुंवेदोदयमोंदेयप्पुदरिंदमा एंटुं भंगंगळिंदमेंदुं स्थानंगळं गुणिसिदो ८। ८। डरुवत्तनाल्कुस्थानंगळुं ६४। प्रकृतिगळुं ६०। ८। नानूरेण्भत्तप्पुवु ४८०॥

प्रमत्तसंयतंगाहारकमिश्रकाययोगदोळं सवेदकावेदकगतोदयकूटमेंटक्कमेंदु स्थानंगळप्पुवु। प्रकृतिगळुनाल्वत्तनाल्कप्पुवु। ६४। २। ३५२। २। संदृष्टि :—

२	१	१	०	२	१	१	०
२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२
०।०।१	०।०।१	०।०।१	०।०।१	०।०।१	०।०।१	०।०।१	०।०।१
१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१
१	१	१	१				

पुनः असंयतौदारिकमिश्रयोगे प्रमत्ताहारकयोश्च स्त्रीषंढवेदौ न स्तः, इति ज्ञातव्यं। अत्र मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्व-

दृष्टिसे लेकर अपूर्वकरण पर्यन्त स्थानोंको एकत्र कर चौबीस भंगोंसे गुणा करो। जो प्रमाण

५	४	कूडि स्थान ८
६६	५५	
७	६	भंग— ८
२४	२०	प्रकृति ४४ ८

इवक्के पुंवेदोदयमेयप्पुदरिंदमे टे भंगंगळप्पुवु । ८ । ८ । ई स्थानंगळुमं प्रकृतिगळुमनें टरिंद गुणिसिदोडे ४ । ४ । ८ । स्थानंगळरुवत्तनाल्कुं ६४ प्रकृतिगळु मूनूरय्वत्तेरडप्पुवु ३५२ । ई आहारकमिश्रकाययोग दोळे तंते आहारककाययोगियोळप्पुदरिंदं स्थानंगळुमं प्रकृतिगळुमं द्विगुणिसिदोडे

६४।२
३५२।२

नूरिप्पतें टु स्थानंगळुं १२८ । एळु नूर नाल्गु प्रकृतिगळुमप्पुवें दु ७०४ । निश्चैसुवुदी मूरुं गुणस्थानंगळ विशेषस्थान प्रकृतिगळं मुंदे सर्व्वस्थानप्रकृतिगळोळु क्षेपमं माडि कों डाचार्य्यं मुंदण सूत्रदोळु पेळ्दप नंतागुत्तं विरलु सासादनंगे वैक्रियिकमिश्रकाययोगं पोरतागि मुंपेळ्द पन्नेरडुं योगंगळगे योगं प्रति नाल्कु नाल्कुं स्थानंगळुं मूवत्तेरडु मूवत्तेरडु प्रकृतिगळागुत्तं विरलु—

स्थान	यो
४	१२
प्र	यो
३२	१२

नाल्वतें टुं स्थानंगळुं ४८ मूनूरेण्भत्तनाल्कु प्रकृतिगळप्पुवु । ३८४ ॥ भंगंगळु चतुर्विंशतिप्रमितंगळप्पुवु २४ । मिश्रंगे पर्य्याप्तयोगंगळु पत्तक्कं योगमेकैकं प्रति चतुःस्थानंगळुं

७ ८।८ ९ ३२ द्वात्रिंशत्प्रकृतंगळुमप्पुवु | १०।४ | १०।३२ | गुणिसिदोडे नाल्वत्तु स्थानंगळु ४० । मूनूरिप्पत्तु प्रकृतिगळप्पुवु । ३२० । भंगंगळु चतुर्विंशतिप्रमितंगळप्पुवु २४ । असंयतंगे वैक्रियिकमिश्रकाययोगमुं काम्मंणकाययोगमुमौदारिकमिश्रकाययोगमुमंतु योगत्रितयमं वर्ज्जिसि पर्य्याप्तयोगंगळु हत्तक्कं योगमेकैकं प्रति सवेदकावेदकसम्यक्त्वसंबंधि मोहनीयोदयकूटंगळें टक्कमें टुं स्थानंगळुमरुवत्तु प्रकृतिगळप्पुवु—

७	६	उभ ८ १०
८८	७७	
९	८	
३२	२८	प्र ६० १०

गुणिसिदोडें भत्तु स्थानंगळुमरुनूरुप्रकृतिगळुमप्पुवु ८० / ६००

प्रत्येकं चतुर्विंशतिभंगंगळप्पुवु २४ ॥ देशसंयतंगे पर्य्याप्तयोगंगळु मनोवाग्योगंगळें टुमौदारिककाययोगमुमितों भत्तु योगंगळप्पुवेकैकयोगं प्रति सवेदकावेदकसम्यक्त्वसंबंधिमोहनीयोदयकूटंगळें टक्कमें टु स्थानंगळुमय्वत्तेरडुं प्रकृतिगळप्पुवु

८	९
५२	९

गुणिसिदोडेप्पत्तेरडु स्थानंगळु

करणपर्यंतानि स्थानान्येकीकृत्य चतुर्विंशतिगुणकारेण संगुण्य तत्र सवेदानिवृत्तिकरणादीनां त्रिपंचाशदुत्तरशतं

आवे उसमें अनिवृत्तिके सवेद-अवेद भागके तथा सूक्ष्म साम्परायके एक सौ तरेपन स्थान

७२। नानूररुवत्तें दु ४६८। प्रकृतिगळप्पुवु। भंगगुणाकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु। २४।

प्रमत्तसंयतंगाहारकयोगद्वयरहितमागि नव पर्य्याप्तयोगंगळप्पुववक्के कयोगं प्रति सवेदवे-
वेदकसम्यक्त्वसंबंधि मोहनीयोदयकूटंगळें टक्कमें दुं स्थानंगळुं नाल्वत्त नाल्कुं प्रकृतिगळप्पुवु

५	४	उभ ८	९
६६	५५		
७	६		
२४	२०	४४	९

गुणिसिदोडेप्पत्तेरडु स्थानंगळुं मूनूरतो भत्तारुं प्रकृतिगळप्पुवु

५ | ७२ | २४ | गुणकारंगळुमिप्पत्तनाल्कप्पुवु। २४। अप्रमत्तसंयतंगे पर्य्याप्तयोगंगळु प्रमत्तसंयत-
३९६ | २४ |

नोळु पेळ्दों भत्तेयप्पुवेकैकयोगं प्रति सवेदकावेदकसम्यक्त्वसंबंधिमोहनीयोदयकूटंगळें टक्कमें दुं
स्थानंगळुं नाल्वत्तनाल्कु प्रकृतिगळप्पुवु

५	४	उभ।८	९
६६	५५		
७	६		
२४	२०	प्र।४४	९

गुणिसिदोडेप्पत्तेरडुं

स्थानंगळु ७२। मूनूरतो भत्तारुप्रकृतिगळप्पुवु ३९६। भंगगुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४॥

अपूर्व्वकरणंगे पर्य्याप्तयोगंगळो भत्तप्पुवु। प्रतियोगं नाल्कुं स्थानंगळुमिप्पत्तुप्रकृति-
१० गळप्पुवु

४	४	९
५५		
६		
२०	२०	९

गुणिसिदोडे मूवत्तारु स्थानंगळुं ३६ नूरेण्भत्तु प्रकृतिगळप्पुवु १८०।

गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४। अनिवृत्तिकरणंगे पर्य्याप्तयोगंगळो भत्तप्पुवु। प्रतियोगमो दुवय
कूटदोळों दे स्थानमुमेरडु प्रकृतिगळागुत्तं विरलु १।१।१।स्था १।९ गुणिसिदोडों भत्तु
१।१।१।१।प्र २।९

स्थानंगळुं पविनें टु प्रकृतिगळप्पुवु। स्था ९। प्र १८। गुणकारंगळु पन्नेरडप्पुवु १२। मत्तम-
निवृत्तिकरणंगे अवेदभागेयोळों दुदयकूटदो १।१।१।१। ळों दे स्थानमुं ओं दे प्रकृत्युदयमक्कु-
१५ मदनों भत्तु योगंगळिदं गुणिसुत्तं विरलु ओं भत्तेस्थानंगळप्पुवु। ९। प्रकृतिगळुमनिते विकल्पंगळु
१।९। मप्पुवु। गुणकारंगळु क्रोधादिभेदविंदं नाल्केयप्पुवु। ४। सूक्ष्मसांपरायंगेयुं सूक्ष्मलोभोदय-
स्थानमों देयप्पुवदक्के योगंगळुमों भत्तप्पुवप्पुदरिंदमों भत्ते स्थानंगळुमों भत्ते प्रकृतिगळुमप्पुवु।
स्था ९। प्र ९। गुणकारमुमों दे सूक्ष्मलोभमक्कुं। १। संदृष्टि :—

क्षेपं कृत्वा पुनः अपर्याप्तसासादनासंयतप्रमत्तानां द्वादशाग्रपंचशते मिलिते—

२० मिलाओ। तथा अपर्याप्त सासादन, असंयत और प्रमत्तके पांच सौ बारह स्थानोंको मिला-

❀	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अनिवृ.		सू
योग	१३	१२	१०	१०	९	९	९	९	९	९	९
ठाण	९२	४८	४०	८०	७२	७२	७२	३६	९	९	९
प्रकृ	७८८	३८४	३२०	६००	४६८	३९६	३९६	१८०	१८	९	९
गुण	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	१२	४	१

यिल्लि मिथ्यादृष्टियादियागि अपूर्व्वकरणपर्य्यंतमिद्दं स्थानंगळु चतुर्व्विंशतिगुणकारंगळनुळळवप्पुदरिंदं कूडिदोडय्नूरहन्नेरडु स्थानंगळप्पु ५१२। २४। ववनिप्पत्तनाल्करिंदं गुणिसिदोडे पन्नेरडुसासिरदिन्नूरें भत्तें टप्पुवु। १२२८८। अनिवृत्तिकरणादिगळ स्थानंगळु नूरय्वत्तमूरप्पुवु १५३। उभयमुं कूडि पन्नेरडु सासिरद नानूर नाल्वत्तों दु स्थानंगळप्पुवु १२४४१। इवरोळु मुपेळ्द अपर्य्याप्तसासादनासंयतप्रमत्तरुगळ अडसोळडवग्ग अट्ठवीससयमें ब स्थानंगळय्नूर हन्नेरडुमं ५१२ कूडिदडे हन्नेरडु सासिरदो भैनूरय्वत्तमूरु १२९५३। योगाश्रितसर्व्वमोहनीयोदयस्थानंगळप्पविवनाचार्य्यं मुंदणगाथा सूत्रदिंदं पेळ्दपरु :—

तेवण्णणवसयाहियबारसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु जोगं पडि मोहनीयस्स ॥४९८॥

त्रिपंचाशन्नवशताधिक द्वादशसहस्रप्रमाणमुदयस्य । स्थानविकल्पान्जानीहि योगं प्रति मोहनीयस्य ॥

एंदितु सर्व्वमोहनीयोदयस्थानंगळु योगाश्रितंगळु पन्नेरडु सासिरदो भैनूरय्वत्तमूरप्पुववं शिष्य नीनरियें दिताचार्य्यनिवं संबोधिसल्पट्टं। आ स्थानंगळ प्रकृतिविकल्पंगळं मिथ्यादृष्टियादि अपूर्व्वकरणगुणस्थानावसानमागि चतुर्व्विंशतिगुणकारंगळनुळळुवु। द्वात्रिंशदुत्तर पंचशताधिकत्रिसहस्रप्रमाणंगळप्पु। ३५३२।२४। ववं गुणिसिदोडे अष्टषष्टयुत्तर सप्तशताधिकचतुरशीतिसहस्रप्रमितंगळप्पु ८४७६८। ववरोळु अनिवृत्तिकरणादिगळेकषष्टयुत्तरद्विशतप्रकृतिगळं २६१। प्रक्षेपिसुत्तं विरलु एकान्नत्रिंशदुत्तरपंचाशीतिसहस्रप्रकृतिविकल्पंगळप्पु ८५०२९। ववरोळु कूडल्पडुव वैक्रियिकमिश्रकाययोगादिसासादनासंयतप्रमत्तरुगळ प्रकृतिविकल्पंगळं पेळ्दपरु ॥—

योगाश्रितसर्वमोहनीयोदयस्थानानि त्रिपंचाशदग्रनवशताधिकद्वादशसहस्राणीति जानीहि १२९५३। प्रकृतयोऽपि मिथ्यादृष्ट्याद्यपूर्वकरणांता एकीकृत्य चतुर्विंशत्या गुणयित्वाऽनिवृत्तिकरणादीनामेकषष्टयग्रद्विशतीक्षेपं कृत्वा (एकान्नत्रिंशदुत्तरपंचाशीतिसहस्राणि भवंति। ८५०२९॥४९८॥ अथ तेषु निक्षेपयन्नाह) पुनस्तत्र—

कर सबको जोड़ो ॥४९७॥

ऐसा करनेपर योगके आश्रयसे मोहनीयके सब उदयस्थान बारह हजार नौ सौ तरेपन होते हैं। और प्रकृतियां भी मिथ्यादृष्टिसे अपूर्वकरण पर्यन्त एकत्र कर उनको चौबीस

बिदिए बिगि पणगयदे खदु णव एक्कं ख अट्ठ चउरो य ।
छट्ठे चउ सुण्ण सगं पयडिवियप्पा अपुण्णम्मि ॥४९९॥

द्वितीये द्वयेक पंचासंयते खद्विनवैकं खाष्टचत्वारि च । षष्ठे चतुः शून्यसप्तप्रकृतिविकल्प. अपूर्णे ॥

द्वितीये अपूर्णे वैक्रियिकमिश्रकाययोगिसासादननोळु अंकक्रमदिंदं प्रकृतिविकल्पंगळु द्वयेकपंच द्वादशोत्तरपंचशतप्रकृतिगळु ५१२ । असंयतेऽपूर्णे वैक्रियिकमिश्रकार्म्मणकाययोगियोळु खद्विनवैक विंशत्युत्तरनवशताधिकसहस्रप्रकृतिविकल्पंगळु १९२० । च शब्ददिंदमौदारिकमिश्रासंयतनोळु खाष्टचत्वारि अशीत्युत्तर चतुःशतंगळु ४८० । षष्ठे प्रमत्तसंयतनोळु आहारकाहारकमिश्रकाययोगद्वयदोळु चतुःशून्यसप्त चतुरुत्तरसप्तशतप्रकृतिविकल्पंगळप्पुवु ७०४ । कूडि नाल्कुं स्थानदोळु षोडशोत्तर षट्छताधिकत्रिसहस्रप्रकृतिविकल्पंगळप्पु ३६१६ । वर्व कूडिवोडे योगाश्रितमोहनीयोदयसर्व्वप्रकृतिविकल्पंगळु पंचचत्वारिंशदुत्तर षट्छताधिकाष्टाशीतिसहस्रप्रमितंगळप्पु ८८६४५ । वी संख्येयुमनाचार्य्यं मुंदण गाथा सूत्रदिंदं पेळ्दपरु :—

पणदालछस्सयाहिय अट्ठासीदीसहस्समुदयस्स ।
पयडीणं परिसंखा जोगं पडि मोहणीयस्स ॥५००॥

पंचचत्वारिंशत् षट्छताधिकाष्टाशीतिसहस्रमुदयस्य । प्रकृतीनां परिसंख्या योगं प्रति मोहनीयस्य ॥

योगमं कूर्त्तु मोहनीयोदय प्रकृति विकल्पंगळु पंचचत्वारिंशदधिकषट्छताधिकाष्टाशीतिसहस्रप्रमितंगळप्पुवेंदितु पेळल्पट्टुवु ॥

सासादने वैक्रियिकमिश्रे क्रमेण प्रकृतिविकल्पाः द्वयेकपंच ५१२ । असंयते वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोः खद्विनवैकं १९२० । चशब्दादौदारिकमिश्रे खाष्टचत्वारि ४८० । प्रमत्ते आहारकद्वये चतुःशून्यसप्त ७०४ चैकीकृत्य निक्षिप्तेषु—

योगाश्रितमोहनीयोदयप्रकृतिविकल्पाः पंचचत्वारिंशदग्रषट्छताधिकाष्टाशीतिसहस्राणि ८८६४५ ॥५००॥

भंगोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसमें अनिवृत्तिकरणके सवेद-अवेद भाग तथा सूक्ष्मसाम्परायकी दो सौ इकसठ प्रकृति मिलानेपर पिचासी हजार उन्तीस होती हैं ॥४९८॥

इसी बातको ग्रन्थकार आगे स्वयं कहते हैं—

सासादनके वैक्रियिक मिश्रमें प्रकृति विकल्प पाँच सौ बारह हैं। असंयतमें वैक्रियिक मिश्र और कार्माणके प्रकृति विकल्प उन्नीस सौ बीस हैं। 'च' शब्दसे औदारिक मिश्रमें चार सौ अस्सी हैं। प्रमत्तमें आहारक-आहारक मिश्रमें सात सौ चार हैं। इन्हें एकत्र करके मिलानेपर—॥४९९॥

योगके आश्रयसे मोहनीयके सब उदय प्रकृतियोंके भेद अठासी हजार छह सौ पैंतालीस होते हैं ॥५००॥

अनंतरं संयममनाश्रयिसि मोहनीयोदयस्थानप्रकृतिसंख्येगळं पेळदपरु :—

तेरस सयाणि सत्तरि सत्तेव य मेलिदे हवंति त्ति ।
ठाणवियप्पे जाणसु संजमलंबेण मोहस्स ॥५०१॥

त्रयोदशशतानि सप्तति सप्तैव च मिलिते भवंतीति । स्थानविकल्पान् जानीहि संयमावलंबेन मोहस्य ॥ ५

संयमावलंबनदिंदं मोहनीयदुदयस्थानविकल्पंगळु त्रयोदशशतंगळु सप्ततियुं सप्तकमुं कूडियप्पुवेंदितरि १३७७ । यें दु संबोधिसल्पट्टुददें तेंदोडे प्रमत्तसंयतनोळु सामायिकमुं छेदोपस्थापनमुं परिहारविशुद्धिसंयममुमेंब मूरुं संयमंगळप्पुवंतागुत्तं विरलेकैकसंयमक्कें दु मोहनीयोदयस्थानंगळागुत्तं विरलु मूरुं संयमंगळिंगे चतुर्विंशतिस्थानंगळप्पुवु २४ । प्रकृतिविकल्पंगळु ४४ । ३ गुणिसिदोडे नूर मूवत्तेरडप्पुवु । १३२ । गुणकारंगळु चतुर्विंशतिप्रमितमक्कुं । २४ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळमंते मूरुं संयमंगलिंगप्पत्तनाल्कुं स्थानंगळं २४ । नूरमूवत्तेरडु प्रकृतिविकल्पंगळु १३२ । चतुर्विंशतिगुणकारंगळप्पुवु । २४ ॥ अपूर्वकरणनोळ् सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्वयक्के प्रत्येकं नाल्कु नाल्कुदयस्थानंगळागुत्तं विरलें दुदयस्थानंगळु ८ प्रकृतिविकल्पंगळिप्पत्तु २० । २ । गुणिसुत्तं विरलु नाल्वत्तप्पुवु । ४० । गुणकारंगळु चतुर्विंशतिप्रमितंगळप्पुवु । २४ । अनिवृत्तिकरणनोळु सामायिकछेदोपस्थापनासंयमद्वयक्के प्रत्येकं मोहनीयोदयस्थानमों दों दागळेरडुं संयमंगळगेरडे स्थानंगळप्पुवु । २ । प्रकृतिगळुमों दों दु संयमक्केरडेर डागलेरडुं संयमंगळगे नाल्कु प्रकृतिगळप्पुवु ४ । गुणकारंगळु हन्नेरडप्पुवु । १२ । मत्तमवेदभागेयोळनिवृत्तिकरणंगे संयमद्वयगुणितमुदयस्थानमों दक्केरडुस्थानंगळप्पुवु । २ । प्रकृतिगळु मेरडेयप्पुवु । २ । गुणकारंगळु क्रोधादि-

अथ संयममाश्रित्याह—

संयमावलंबेन मोहनीयस्योदयस्थानविकल्पास्त्रयोदशशतानि सप्तसप्तत्यग्राणि मिलित्वा भवंतीति जानीहि १३७७ ॥ तद्यथा—प्रमत्तेऽप्रमते च सामायिकादित्रयं प्रति स्थानानि चतुर्विंशतिः । प्रकृतयो द्वात्रिंशदग्रशतं । अपूर्वकरणे सामायिकादिद्वयं प्रति स्थानान्यष्टौ । प्रकृतयश्चत्वारिंशत् । एतेषु त्रिषु गुणकारश्चतुर्विंशतिः । अनिवृत्तिकरणेऽपि तद्द्वयं प्रति सवेदभागे स्थाने द्वे । प्रकृतयश्चतस्रः । गुणकारो द्वादश । अवेदभागे

आगे संयमके आश्रयसे कथन करते हैं—

संयमके अवलम्बनसे मोहनीयके उदयस्थानके भेद मिलकर तेरह सौ सतहत्तर होते हैं । उन्हें कहते हैं—

प्रमत्त और अप्रमत्तमें सामायिक आदि तीन संयम होते हैं । उनके द्वारा आठ-आठ स्थानोंको गुणा करनेपर चौबीस-चौबीस स्थान होते हैं । और उन स्थानोंकी प्रकृतियाँ चवालीस हैं । उनको तीनसे गुणा करनेपर एक सौ बत्तीस एक सौ बत्तीस प्रकृतियाँ होती हैं । अपूर्वकरणमें सामायिक आदि दो संयम होते हैं । उन दोसे चार स्थानोंको गुणा करनेपर आठ स्थान होते हैं और बीस प्रकृतियोंको गुणा करनेपर चालीस प्रकृतियाँ होती हैं । इनको चौबीस भंगोंसे गुणा करो । अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें एक स्थान और दो प्रकृति हैं । उनको दो संयमोंसे गुणा करनेपर दो स्थान चार प्रकृति होती हैं । इनको बारह

भेदविदं नाल्कप्पुवु । ४ । सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मसांपरायसंयममों देयक्कुमदक्कुदयस्थानमों दुं प्रकृतियुमों दप्पुदु । गुणकारमुं सूक्ष्मलोभसंबंधियुमों देयक्कुमिदक्के संदृष्टि :—

०	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपू	अनिवृत्तिकर		सू
सं	३	३	२	२	२	१
स्था	२४	२४	८	२	२	१
प्र	१३२	१३२	४०	४	२	१
गु	२४	२४	२४	१२	४	१

इल्लि मोदल प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणस्थानंगळिगे चतुर्विंशतिगुणकारंगळु टप्पुदरिंद कूडि अय्वत्तार ५६ निप्पत्तनाल्करिंदं २४ गुणिसिदोडे ५६ । २४ । लब्धं सासिरद मूनूरनाल्वत्तनाल्कप्पु १३४४ । ववरोळु अनिवृत्तिकरणादिगळ मूवत्तमूरुं स्थानंगळं ३३ । कूडिदोडे पूर्व्वोक्तसासिरद मूनूरेप्पत्तेळु स्थानविकल्पंगळप्पुवु । १३७७ । प्रकृतिविकल्पंगळुमा मूरुं गुणस्थानंगळोळु चतुर्विंशतिगुणकारंगळनुळळुवप्पुदरिंदं कूडि गुणिसुत्तं विरलु । ३०४ । २४ । येळु सासिरदिन्नूर तों भत्तारप्पुवु । ७२९६ । इवरोळनिवृत्तिकरणादिगळय्वत्तेळु ५७ प्रकृतिगळं कूडिकोळुत्तं विरलु येळु सासिरद मूनूरय्वत्तमूरप्पु ७३५३ । वी संख्येयं मुंदण गाथासूत्रदिदं पेळ्दपरु :—

तेवण्णतिसदसमहिय सत्तसहस्सप्पमाणमुदयस्स ।
पयडिवियप्पे जाणसु संजमलंबेण मोहस्स ॥५०२॥

त्रिपंचाशत्त्रिशताधिक सप्तसहस्रप्रमाणमुदयस्य । प्रकृतिविकल्पान्जानीहि संयमावलंबेन मोहस्य ॥

स्थाने द्वे । प्रकृती अपि द्वे । गुणकारश्चत्वारः । सूक्ष्मसांपराये तत्संयमं प्रति स्थानमेकं, प्रकृतिरेका, गुणकारोऽप्येकः । अत्र तावत्प्रमत्तादित्रयस्य स्थानान्येकीकृत्य चतुर्विंशत्या संगुण्य तत्रानिवृत्तिकरणादीनां त्रयस्त्रिंशत्ततः प्रक्षेपे कृते पूर्वोक्तसंख्यानि भवंति १३७७ ॥५०१॥

भंगोंसे गुणा करो । अवेद भागमें एक स्थान एक प्रकृति । इनको दो संयमोंसे गुणा करनेपर दो स्थान, दो प्रकृति होती हैं । इनको चार भंगोंसे गुणा करो । सूक्ष्मसाम्परायमें एक संयम और वहाँ एक स्थान एक प्रकृति और भंग भी एक ।

यहाँ प्रमत्त आदि तीनके छप्पन स्थानोंको चौबीससे गुणा करनेपर तेरह सौ चवालीस होते हैं । उनमें अनिवृत्तिकरण आदिके तैंतीस मिलानेपर तेरह सौ सतहत्तर उदयस्थान होते हैं ॥५०१॥

---

१. तिसदसहियं—मु० ।

संयमावलंबनदिंदं मोहनीयोदयद त्रिपंचाशदुत्तरत्रिशताधिकसप्तसहस्रप्रमितप्रकृतिविकल्पंगळनरियेंदु शिष्यनाचार्य्यनिदं संबोधिसल्पट्टं ॥

अनंतरं गुणस्थानदोळु संभविसुव लेश्येगळं पेळ्दपरु :—

मिच्छचउक्के छक्कं देसतिये तिण्णि होंति सुहलेस्सा ।
जोगित्ति सुक्कलेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥५०३ ॥

मिथ्यादृष्टिचतुष्के षट्कं देशव्रतित्रये तिस्रो भवंति शुभलेश्याः । योगिपर्य्यंतं शुक्ललेश्या अयोगिस्थानमलेश्यं तु ॥

मिथ्यादृष्टिचतुष्के षट्कं मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टिगळेंब गुणस्थानचतुष्कदोळु प्रत्येकं लेश्याषट्कमक्कुं । देशव्रतित्रये तिस्रो भवंति शुभलेश्याः देशसंयतप्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयतरेंब गुणस्थानत्रयदोळु प्रत्येकं शुभलेश्यात्रयमक्कुं । योगिपर्य्यंतं शुक्ललेश्यामेलपूर्व्वकरणादिसयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं शुक्ललेश्ययोंदेयक्कुं । तु मत्तं अयोगिस्थानमलेश्यं अयोगिगुणस्थानं लेश्यारहितमक्कुं । इंतु गुणस्थानदोळ् पेळल्पट्ट लेश्येगळनाश्रयिसि मोहनीयोदयस्थानविकल्पंगळ संख्येयुमं प्रकृतिविकल्पंगळ संख्येयुमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

पंचसहस्सा बेसय सत्ताणउदी हवंति उदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु लेस्सं पडि मोहणीयस्स ॥५०४॥

पंचसहस्राणि द्विशतसप्तनवतिर्भवंति उदयस्य । स्थानविकल्पान्जानीहि लेश्यां प्रतिमोहनीयस्य ॥

संयमावलंबेन मोहनीयोदयप्रकृतयोऽपि स्थानवदेकीकृते त्रिपंचाशदग्रत्रिशताधिकसप्तसहस्राणीति जानीहि ॥५०२॥ अथ गुणस्थानेषु संभवल्लेश्याः प्राह—

मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु प्रत्येकं लेश्याः षड् भवंति । देशसंयतादित्रये शुभा एव तिस्रः । उपर्यपूर्वकरणादिसयोगपर्यंतमेका शुभलेश्यैव । तु—पुनः अयोगिगुणस्थानं लेश्यारहितं ॥५०३॥ उक्तलेश्यामाश्रित्य तत्संस्थानप्रकृतिसंख्ये गाथाद्वयेनाह—

संयमका अवलम्बन लेकर मोहनीयकी उदय प्रकृतियोंको भी स्थानोंकी तरह एकत्र करके अर्थात् प्रमत्त आदि तीनकी तीन सौ चारको चौबीससे गुणा करके उनमें अनिवृत्तिकरण आदिके सत्तावन मिलानेपर सात हजार तीन सौ तिरपन प्रकृतियाँ होती हैं ॥५०२॥

अब गुणस्थानोंमें लेश्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें छह लेश्या होती हैं । देशसंयत आदि तीनमें तीन शुभलेश्या ही होती हैं । ऊपर अपूर्वकरणसे सयोगी पर्यन्त शुक्ललेश्या ही है । और अयोगी गुणस्थान लेश्यासे रहित है ॥५०३॥

उक्त लेश्याओंका आश्रय लेकर मोहके स्थानों और प्रकृतियोंकी संख्या दो गाथाओंसे कहते हैं—

सप्त नवत्युत्तर द्विशताधिक पंचसहस्रप्रमितंगळप्पुवु । ५२९७ । लेश्येयं कुरुत्तु मोहनीयदुदयस्थानविकल्पंगळनरियेंदु शिष्यं संबोधिसल्पट्टं ॥

अट्ठत्तीससहस्सा बेण्णिसया होंति सत्ततीसा य ।
पयडीणं परिमाणं लेस्सं पडि मोहणीयस्य ॥५०५॥

अष्टात्रिंशत्सहस्राणि द्विशतानि भवंति सप्तत्रिंशच्च । प्रकृतीनां परिमाणं लेश्यां प्रति मोहनीयस्य ॥

लेश्येयं कुरुत्तु मोहनीयदुदयप्रकृतिगळ परिमाणं सप्तत्रिंशदुत्तरद्विशताधिकाष्टात्रिंशत्सहस्रं गळप्पुवु ३८२३७ । वर्दे तें दोडे संदृष्टि :—

गु	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अनिवृत्तिकर		सू
ले	६	६	६	६	३	३	३	१	१		१
ठाण	८	४	४	८	८	८	८	४	१	१	१
ठाण वि	४८	२४	२४	४८	२४	२४	२४	४	१	१	१
प्र वि	४०८	१९२	१९२	३६०	१५६	१३२	१३२	२०	२	१	१
गुणका	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	१२	४	१

ई रचनाभिप्रायं सूचिसल्पडुगुमदे तें दोडे मिथ्यादृष्टियोळु दशकादि चतुस्थानंगळु ८ ९९ १०

१० नवकादिचतुस्थानंगळु ७ मंतें दुं स्थानंगळारुं लेश्यंगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु ८ । ६ नाल्वत्तें दु ८८ ९

स्थानंगळप्पुवु ४८ । प्रकृतिगळरुवत्तें टनारुं लेश्येगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु ६८ । ६ । नानूरें दु

इमा गुणस्थानेषूक्तलेश्या आश्रित्य तावत्सर्वमोहनीयोदयस्थानानि सप्तनवत्यग्रद्विशताधिकपंचसहस्राणीति जानीहि ॥५२९७॥

लेश्यां प्रति मोहनीयोदयप्रकृतिपरिमाणं सप्तत्रिंशदग्रद्विशताधिकाष्टात्रिंशत्सहस्राणि भवंति ३८२३७ । तद्यथा—मिथ्यादृष्टौ स्थानानि दशादीनि चत्वारि | ८ ९।९ १० | नवादीनि चत्वारि | ७ ८।८ ९ | मिलित्वाष्टौ, षड्-

---

गुणस्थानोंमें कहीं लेश्याओंके आश्रयसे मोहनीयके सब उदयस्थान पांच हजार दो सौ सत्तानबे जानो ॥५०४॥

तथा लेश्याओंके आश्रयसे मोहनीयकी उदय प्रकृतियोंका परिमाण अड़तीस हजार दो सौ सैंतीस हैं । उन्हें कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें स्थान दस आदि चार तथा नौ आदि चार । इन आठ स्थानोंको छह लेश्यासे गुणा करनेपर अड़तालीस स्थान हुए । उनकी अड़सठ प्रकृतियोंको छह लेश्याओंसे

प्रकृतिगळप्पुवु ४०८। गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४। सासादननोळु नवकादि चतुस्थानंगळप्पु ७ ८८ ९ ववनारु लेश्येगळिवं गुणिसुत्तं विरलु ४। ६। चतुर्विंशति स्थानंगळप्पुवु। २४। प्रकृतिगळु मूवत्तेरडनारुं लेश्येगळिवं गुणिसुत्तं विरलु ३२। ६। नूरतों भत्तेरडुदय प्रकृतिगळप्पुवु १९२। गुणकारंगळिप्पनाल्कु २४॥ मिश्रनोळु नवकादिचतुःस्थानंगळप्पु ७ ८८ ९ ववनारुं लेश्येगळिवं गुणिसुत्तं विरलु ४। ६। इप्पत्तनाल्कुं स्थानंगळप्पुवु। २४। प्रकृतिगळु मूवत्तेरडनारुं लेश्येगळिवं गुणिसुत्तं विरलु। ३२। ६। नूरतों भत्तेरडु प्रकृतिगळप्पुवु। १९२। गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु। २४। असंयतनोळु नवकादिचतुःस्थानंगळुमष्टकादिचतुःस्थानंगळुं ६ ७७ ८ कूडियेंटुं स्थानंगळनारुं लेश्येगळिवं गुणिसुत्तं विरलु। ८। ६। नाल्वत्तेंटुं स्थानंगळप्पुवु। ४८। प्रकृतिगळुमरुवत्तनारुं लेश्येगळिवं गुणिसुत्तं विरलु ६०। ६। मूनूररुवत्तु प्रकृतिगळप्पुवु। ३६०। गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु॥ देशसंयतनोळष्टकादिचतुःस्थानंगळुं ६ ७७ ८ सप्तकादि चतुःस्थानंगळुं ५ ६६ ७ कूडि यें टुं स्थानं-

---

लेश्यागुणितान्यष्टचत्वारिंशत्, प्रकृतयोऽष्टषष्टिः षड्लेश्यागुणितान्यष्टाग्रचतुःशती। सासादने स्थानानि नवादीनि चत्वारि | ७ | ८।८ | ९ | षड्लेश्यागुणितानि चतुर्विंशतिः, प्रकृतयो द्वात्रिंशत्, षड्लेश्यागुणिता द्वानवत्यग्रशतं। मिश्रे स्थानानि नवादीनि चत्वारि | ७ | ८।८ | ९ | षड्लेश्यागुणितानि चतुर्विंशतिः, प्रकृतयो द्वात्रिंशत्, षड्लेश्यागुणिता द्वानवत्यग्रशतं।

असंयते स्थानानि नवादीनि चत्वारि | ७ | ८।८ | ९ | अष्टादीनि चत्वारि | ६ | ७।७ | ८ | मिलित्वाष्टौ षड्लेश्या- १५ गुणितान्यष्टाचत्वारिंशत् प्रकृतयः षष्टिः, षड्लेश्यागुणिताः षष्टयग्रत्रिंशती। देशसंयते स्थानान्यष्टादीनि

गुणा करनेपर चार सौ आठ प्रकृतियाँ हुईं। सासादनमें नौ आदि चार स्थानोंको छह लेश्यासे गुणा करनेपर चौबीस स्थान हुए। उनकी बत्तीस प्रकृतियोंको छहसे गुणा करनेपर एक सौ बानबे प्रकृतियां हुईं। मिश्रमें स्थान नौ आदि चार, प्रकृति बत्तीस। छह लेश्यासे गुणा करनेपर स्थान चौबीस और प्रकृतियां एक सौ बानबे हुईं। असंयतमें स्थान नौ आदि चार और आठ आदि चार इस तरह आठ। उनकी प्रकृति साठ। उनको छह लेश्यासे २० गुणा करनेपर स्थान अड़तालीस, प्रकृति तीन सौ साठ हुईं। देशसंयतमें स्थान आठ आदि चार और सात आदि चार मिलकर आठ। प्रकृति बावन। तीन लेश्यासे गुणा करनेपर

गळना मूरुं शुभलेश्येगळिंदं गुणिसुत्तं विरलिप्पत्तनाल्कु स्थानंगळप्पुवु । २४ । प्रकृतिगळुमव्वत्तेरडं मूरुं शुभलेश्यगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु ५२ । ३ । नूरय्वत्तारु प्रकृतिगळप्पुवु । १५६ । गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु । २४ ॥ प्रमत्तसंयतनोळु सप्तकादिचतुःस्थानंगळुं ५ षट्कादिचतुःस्थानंगळुं
६६
६

४ कूडि यें टु स्थानंगळं मूरु लेश्यगळिंदं गुणिसूत्तं विर ८ । ३ । लिप्पत्त नालकुं स्थानंगळप्पुवु
५५
६

५ २४ । प्रकृतिगळु नाल्वत्तनाल्कं मूरुं लेश्येगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु ४४ । ३ । नूरमूवत्तेरडु १३२ । प्रकृतिगळप्पुवु । गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४ ॥

अप्रमत्तसंयतनोळमा प्रकारदिंदं सप्तकादि चतुःस्थानंगळु ५ षट्कादिचतुस्थानंगळुं ४
६६ ५५
७ ६

कूडि यें टुंस्थानंगळं मूरुं लेश्येगळिंदं गुणिसुत्तं विर ८ । ३ । लिप्पत्तनालकुं स्थानंगळप्पुवु । २४ । प्रकृतिगळु नाल्वत्तनाल्कुमशुभलेश्यात्रयदिंदं गुणिसुत्तं विरलु ४४ । ३ । नूरमूवत्तेरडु प्रकृतिगळप्पुवु । १३२ । गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४ ॥ अपूर्व्वकरणनोळु षट्कादिचतुस्थानंगळं ४ शुक्ललेश्येयोंदरिंदं गुणिसुत्तं विरलु ४ । १ । नाल्के स्थानंगळप्पुवु । ४ । प्रकृतिगळिप्पत्तु-
५५
६
मनों दे शुक्ललेश्येयिंदं गुणिसुत्तं विरलु २० । १ । इप्पत्तें प्रकृतिगळप्पुवु । २० । गुणकारंगळि-

---

चःवारि | ६ / ७।७ / ८ | सप्तादीनि चत्वारि | ५ / ६।६ / ७ | मिलित्वाष्टौ शुभलेश्यात्रयगुणितानि चतुर्विंशतिः, प्रकृतयो द्वापंचाशत्, तत्त्रयगुणिताः षट्पंचाशदग्रशतं । प्रमत्तेऽप्रमत्ते च स्थानानि सप्तादीनि चत्वारि | ७ / ६।६ / ७ | षट्कादीनि चत्वारि | ४ / ५।५ / ६ | मिलित्वाष्टौ, तत्त्रयगुणितानि चतुर्विंशतिः । प्रकृतयश्चतुश्चत्वारिंशत्, तत्त्रयगुणिता द्वात्रिंशदग्रशतं । अपूर्वकरणे स्थानानि षट्कादीनि चत्वारि | ४ / ५।५ / ६ | शुक्ललेश्यागुणितानि चत्वार्येव,

---

स्थान चौबीस, प्रकृति एक सौ छप्पन हुईं । प्रमत्त और अप्रमत्तमें स्थान सात आदि चार और छह आदि चार मिलकर आठ । प्रकृति चवालीस । तीन लेश्यासे गुणा करनेपर स्थान चौबीस, प्रकृति एक सौ बत्तीस हुईं । अपूर्वकरणमें स्थान छह आदि चार, प्रकृति बीस । शुक्ललेश्यासे गुणा करनेपर उतने ही रहे । यहाँ तक स्थानों और प्रकृतियोंको चौबास भंगोंसे गुणा करें । अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें स्थान एक, प्रकृति दो । शुक्ललेश्यासे

प्पत्तनाल्कप्पुवु । २४ ॥ अनिवृत्तिकरणनोळु द्विप्रकृतिस्थानमों दनों दे शुक्ललेश्येयिंदं गुणिसिदोडों दे स्थानमक्कुं । १ । प्रकृतिगळेरडुमनों दे शुक्ललेश्येयिंदं गुणिसिदो २ । १ डेरडे प्रकृतिगळप्पुवु । २ । गुणकारंगळु चतुष्कषायत्रिवेदोदयकृतंगळु पन्नेरडप्पुवु । १२ । मत्तमनिवृत्तिकरणन वेदरहितभागेयोळु एकप्रकृतिस्थानमनेकशुक्ललेश्येयिंदं गुणिसुत्तं विरलु एकस्थानमक्कुं । १ । प्रकृतियुमों दनों दे शुक्ललेश्येयिंदं गुणिसुत्तं विरलु ओं दे प्रकृतियक्कुं । १ । गुणकारंगळु संज्वलनक्रोधादिभेदर्दिदं नाल्कप्पुवु । ४ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु सूक्ष्मलोभोदयस्थानमों देयक्कुं १ । प्रकृतियुं सूक्ष्मलोभमों देयक्कु १ । गुणकारमुमदों देयक्कुमंतागुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टयाद्यपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतमाद गुणस्थानंगळोळु मोहनीयोदयस्थानंगळु लेश्याश्रितंगळु चतुर्व्विंशतिगुणकारंगळनुळ्ळु दप्पुदरिंदं कूडिदोडिन्नूरिप्पत्तप्पुववनिप्पत्तनाल्करिंदं गुणिसुत्तं विरलु । २२० । २४ । अप्पु सासिरविन्नूरेण्भत्तप्पुवु । ५२८० । इवरोळनिवृत्यादिगळस्थानंगळु पदिनेळं १७ । कूडिदोडे मुंपेळ्दप्पु सासिरविन्नूर तों भत्तेळप्पुवु । ५२९७ । प्रकृतिगळुं सासिरदय्नूर तों भत्तेरडप्पुववनिप्पत्तनाल्करिंदं गुणिसुत्तं विरलु । १५९२ । २४ । मूवत्तें टु सासिरविन्नूरें टु प्रकृतिगळप्पु । ३८२०८ । ववरोळनिवृत्यादिगळ प्रकृतिगळिप्पत्तों भत्तप्पुववं २९ कूडिदोडे मुंपेळ्द मूवत्तें टु सासिरविन्नूरमूवत्तें ळु प्रकृतिगळप्पुवु । ३८२३७ ॥

अनंतरं सम्यक्त्व गुणमनाश्रयिसि असंयतादिगुणस्थानंगळोळु संभविसुव सर्व्वमोहनीयोदयस्थानंगळसंख्यापुतियं पेळ्दपरु :—

अट्ठुत्तरीहि सहिया तेरसयसया हवंति उदयस्स ।
ठाणवियप्पे जाणसु सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०६॥

अष्टासप्ततिभिः सहितानि त्रयोदशशतानि भवंत्युदयस्य । स्थानविकल्पान् जानीहि सम्यक्त्वगुणेन मोहस्य ॥

प्रकृतयो विंशतिः, तया गुणिता विंशतिरेव । एतावत्पर्यंतं सर्वत्र गुणकारश्चतुर्विंशतिः । अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे स्थानं तया गुणितमेकं प्रकृती द्वे तया गुणिते द्वे एव । गुणकारो द्वादश । अवेदभागे स्थानं तया गुणितमेकं प्रकृतिस्तया गुणितैका, गुणकारश्चतुष्कं । सूक्ष्मसांपराये स्थानमेकं, प्रकृतिरेका गुणकारोऽप्येकः । अत्रापूर्वकरणपर्यंतं स्थानानि प्रकृतीश्च मेलयित्वा चतुर्विंशत्या संगुण्य तत्र स्थानेष्वनिवृत्तिकरणादीनां स्थानदशके प्रकृतिषु तत्प्रकृत्येकान्नत्रिंशत्के च प्रक्षिप्ते प्रागुक्तलेश्याश्रितमोहनीयस्थानप्रकृतिप्रमाणे स्यातां ॥५०५॥ अथ सम्यक्त्वमाश्रित्याह—

गुणा करनेपर उतने ही रहे । इनको बारह भंगोंसे गुणा करो । अवेदभागमें स्थान एक प्रकृति एक । शुक्ललेश्यासे गुणा करनेपर भी उतने ही । इनको चार भंगोंसे गुणा करो । सूक्ष्मसाम्परायमें स्थान एक, प्रकृति एक । शुक्ललेश्यासे गुणा करनेपर भी उतने ही । भंग भी एक । अपूर्वकरण पर्यन्त स्थानों और प्रकृतियोंको जोड़कर चौबीस भंगोंसे गुणा करनेपर तथा अनिवृत्तिकरणके सतरह स्थानोंको स्थानोंकी संख्यामें और उनतीस प्रकृतियोंको प्रकृतियोंकी संख्यामें मिलानेपर पूर्वोक्त स्थानभेद और प्रकृतिभेदका प्रमाण आता है ॥५०५॥

आगे सम्यक्त्वके आश्रयसे कहते हैं—

सम्यक्त्वगुणदोडने मोहनीयवुदयस्थानविकल्पंगळष्टासप्तत्युत्तरत्रयोदशशतंगळप्पुववं नोनरि-
यें दु शिष्यं संबोधिसल्पट्टं ।१३७८ ॥

अट्ठेव सहस्साइं छव्वीसा तह य होंति णादव्वा ।
पयडीणं परिमाणं सम्मत्तगुणेण मोहस्स ॥५०७॥

अष्टैव सहस्राणि षड्विंशतिस्तथैव भवंति ज्ञातव्याः । प्रकृतीनां परिमाणं सम्यक्त्वगुणेन मोहस्य ॥

मोहनीयवुदयप्रकृतिगळ परिमाणमुं सम्यक्त्वगुणदोडनें दु सासिरंगळुमंते षड्विंशतिगळु-
मप्पुवें दु ज्ञातव्यंगळप्पुवु । ८०२६ । अवें तें दोडे—असंयतसम्यग्दृष्टियोळु क्षायोपशमिकसम्यक्त्व-
मुमौपशमिकसम्यक्त्वमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुमें ब सम्यक्त्वत्रितयमक्कुमवरोळु क्षायोपशमिकसम्य-
क्त्वदोळु नवकादि चतुःस्थानंगळप्पु ७ ८८ ९ ववर प्रकृतिगळु मूवत्तेरडप्पुवु ।३२। औपशमिकदोळं
क्षायिकदोळं प्रत्येकमष्टकादिचतुश्चतुस्थानंगळुमप्पुदरिंदं ६ | ६ ७७ | ७७ ८ | ८ कूडि एंदु स्थानंगळुमवर
प्रकृतिगळु प्रत्येकमिप्प—त्तें दु मिप्पत्तें दु मागुत्तं विरलु । २८ । २८ । कूडि अय्वत्तारु प्रकृति-
गळप्पुवु । ५६ । गुणकारंगळिप्पत्तनालकप्पुवु । २४ । देशसंयतनोळुमंते क्षायोपशमिकादि सम्यक्त्व-
त्रयमक्कुमल्लि क्षायोपशमिकसम्यक्त्वदोळु अष्टकादिचतुःस्थानंगळप्पु ६ ७७ ८ ववर प्रकृतिगळिप्प-

---

सम्यक्त्वगुणेन सह मोहनीयोदयस्थानविकल्पा अष्टासप्तत्यग्रत्रयोदशशतानि १३७८ भवंतीति जानीहि ॥५०६॥

सम्यक्त्वगुणेन सह मोहनीयोदयप्रकृतिपरिमाणं अष्टैव सहस्राणि तथा च षड्विंशतिः ८०२६ ज्ञातव्या भवंति । तद्यथा—असंयते क्षायोपशमिकस्य स्थानानि नवकादीनि चत्वारि | ७ ८।८ ९ | प्रकृतयो द्वात्रि-
शत् । औपशमिकक्षायोपशमिकयोः स्थानान्यष्टकादीनि चत्वारि चत्वारि | ६ ७।७ ८ | ६ ७।७ ८ | प्रकृतयः षट्पंचा-

---

सम्यक्त्व गुणके साथ मोहनीयके उदयस्थानके भेद तेरह सौ अठत्तर जानो ॥५०६॥

सम्यक्त्वगुणके साथ मोहनीयकी उदय प्रकृतियोंका परिमाण आठ हजार छब्बीस जानना चाहिए । उसे कहते हैं—

असंयतमें क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके स्थान नौ आदि चार । उनकी प्रकृतियां बत्तीस । औपशमिक क्षायिकके स्थान आठ आदि चार । प्रकृति अठाईस । दोनों सम्यक्त्वोंको मिलानेपर स्थान आठ, प्रकृति छप्पन । देशसंयतमें क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके स्थान आठ आदि चार । प्रकृति अठाईस । औपशमिक और क्षायिकके पृथक्-पृथक् स्थान सात आदि

त्तेंटप्पुवु । २८ । औपशमिकक्षायिकंगळ्गे प्रत्येकं सप्तकादिचतुःस्थानंगळुमागलु ५ | ५ कूडि
६।६ | ६।६
७ | ७
स्थानंगळ्दुं ८ प्रकृतिगळु प्रत्येकमिप्पत्तनाल्कुमिप्पत्त नाल्कागुत्तं विरलु । २४ । २४ । नाल्वत्तेंदु प्रकृतिगळप्पुवु । ४८ । गुणकारंगळुमिप्पत्तनाल्कप्पुवु २४ । प्रमत्तसंयतनोळु क्षायोपशमिकादि-सम्यक्त्वत्रयमक्कुमल्लि क्षायोपशमिकसम्यक्त्वदोळु सप्तकादिचतुस्थानंगळु ५ मवर प्रकृतिगळु
६।६
७
मिप्पत्तनाल्कप्पुवु । २४ । औपशमिकक्षायिकंगळ्गे प्रत्येकं षट्कादि चतुःस्थानंगळु ४ | ४ ५
५।५ | ५।५
६ | ६
मिप्पत्तुमिप्पत्तुं प्रकृतिगळुमागळु कूडियेंदुस्थानंगळु ८ नाल्वत्तु प्रकृतिगळुमप्पुवु ४० । गुणकारंग-ळिप्पत्तनाल्कप्पुवु । २४ ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु क्षायोपशमिकादि सम्यक्त्वत्रयमक्कुमल्लि क्षायोप-शमिकसम्यक्त्वदोळु सप्तकादिचतुःस्थानंगळु ५ चतुर्विंशति प्रकृतिगळुमप्पुवु । २४ । औपशमिक-
६।६
७
क्षायिकंगळोळु प्रत्येकं षट्कादिचतुःचतुस्थानंगळुं विंशतिविंशति प्रकृतिगळुमागुत्तं विरलु ४ | ४
५।५ | ५।५
६ | ६
कूडि येंदु स्थानंगळुं ८ । नाल्वत्तुप्रकृतिगळु ४० मिप्पत्तनाल्कु गुणकारंगळुमप्पुवु । २४ ॥ अपूर्व- १०

शत् । देशसंयते क्षायोपशमिकस्य स्थानान्यष्टकादीनि चत्वारि | ६ | प्रकृतयोऽष्टाविंशतिः । औपशमिक-
७।७
८

क्षायिकयोः स्थानानि प्रत्येकं सप्तकादीनि चत्वारि | ५ ६।६ ७ | ५ ६।६ ७ | प्रकृतयोऽष्टचत्वारिंशत् । प्रमत्तेऽप्रमत्ते च

क्षायोपशमिके स्थानानि सप्तकादीनि चत्वारि | ५ ६।६ ७ | ५ ६।६ ७ | प्रकृतयश्चतुर्विंशतिः । औपशमिकक्षायिकयोः

स्थानानि प्रत्येकं षट्कादीनि चत्वारि | ४ ५।५ ६ | ४ ५।५ ६ | प्रकृतयश्चत्वारिंशत् । अपूर्वकरणे तु न क्षायोपशमिकं ।

चार, प्रकृति चौबीस । दोनोंके मिलकर स्थान आठ, प्रकृति अड़तालीस । प्रमत्त और अप्रमत्त- १५
में क्षायोपशमिकके स्थान सात आदि चार-चार । प्रकृति चौबीस-चौबीस । औपशमिक और क्षायिकमें स्थान छह आदि चार-चार । प्रकृति बीस-बीस । दोनों सम्यक्त्वोंके स्थान आठ-आठ । प्रकृति चालीस-चालीस । अपूर्वकरणमें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व नहीं होता ।

औपशमिक क्षायिकमें स्थान छह आदि चार, प्रकृति बीस । दोनों सम्यक्त्वोंके मिलकर स्थान आठ, प्रकृति चालीस । यहाँ तकके स्थानों और प्रकृतियोंको चौबीस भंगोंसे २०

करणनोळु क्षायोपशमिकं पोरगागियौपशमिकमुं क्षायिकमुमेंबेरडे सम्यक्त्वमक्कुमल्लि प्रत्येकं षट्कादि चतुश्चतुःस्थानंगळुं विंशतिविंशति प्रकृतिगळुमागुत्तं विरलु

४	४
५।५	५।५
६	६
२०	२०

कूडियेंटुस्थानंगळुं ८ नाल्वत्तु प्रकृतिगळुमप्पुवु ४०। गुणकारंगळुमिप्पत्तनाल्कप्पुवु। २४॥ अनिवृत्तिकरणनोळु औपशमिक सम्यक्त्वमुं क्षायिकसम्यक्त्वमुमप्पुवल्लि प्रत्येकं द्विप्रकृतिस्थानंगळोंदोंदेयप्पुवु। प्रकृतिगळुमेरडेरडेयप्पुवंतागुत्तं विरलु कूडि स्थानंगळेरडुं २ प्रकृतिगळु नाल्कुमप्पुवु। ४। गुणकारंगळु चतुःकषायत्रिवेदकृतंगळु १।१।१ १।१।१ पन्नेरडप्पुवु १२। मत्तमनिवृत्तिकरणन अवेदभागेयोळु औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वंगळ्गे प्रत्येकमेकप्रकृतिमोंदोंदे स्थानंगळागुत्तं विरलेरडु स्थानंगळप्पुवु। २। प्रकृतियुं प्रत्येकमोंदोंदागुत्तं विरलेरडे प्रकृतिगळप्पुवु २। गुणकारंगळु संज्वलनक्रोधादि भेदविदं नाल्कप्पुवु। ४॥

सूक्ष्मसांपरायनोळु औपशमिकक्षायिकंगळ्गे प्रत्येकं सूक्ष्मलोभोवयस्थानमोंदोंदागुत्तं विरलेरडु स्थानंगळप्पुवु। २। प्रकृतिगळुमेरडप्पुवु। २। गुणकारमुं सूक्ष्मलोभदिनोंदेयक्कुं १। संदृष्टि :—

४	४
५।५	५।५
६	६
२०	२०

औपशमिकक्षायिकयोः स्थानानि प्रत्येकं षट्कादीनि चत्वारि प्रकृतयश्चत्वारिंशत्। एतावत्पर्यंतं सर्वत्र गुणकारश्चतुर्विंशतिः। अनिवृत्तिकरणे औपशमिकक्षायिकयोः स्थानमेकैकं प्रकृती द्वे द्वे। गुणकारो १ १ १ द्वादश। अवेदभागे तयोः स्थानप्रकृती एकैके इति द्वे द्वे गुणकारश्चतुष्कं। सूक्ष्मसांपरायेऽपि तथा १ १ १ १ स्थानप्रकृती द्वे द्वे गुणकारः सूक्ष्मलोभः। अत्रापूर्वकरणांतं स्थानानि प्रकृतीश्चैकीकृत्य चतुर्विंशत्या गुणयित्वा तत्रानिवृत्तिकरणादेस्तद्गुणकारगुणितस्थानप्रकृतीनां प्रक्षेपे कृते तत्तदुक्तप्रमाणं स्यात्। अत्र प्रकरणे यथा

गुणा करें। अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें एक स्थान एक ओपशमिक क्षायिकमें, प्रकृति दो दो। दो सम्यक्त्वोंके मिलकर स्थान दो, प्रकृति चार। इनको बारह भंगोंसे गुणा करें। अवेद भागमें स्थान एक, प्रकृति एक। दोनों सम्यक्त्वोंके मिलकर स्थान दो, प्रकृति दो। इनको चार भंगोंसे गुणा करें। सूक्ष्म साम्परायमें एक स्थान, एक प्रकृति। दोनों सम्यक्त्वोंके दो स्थान, दो प्रकृति। इनको एक भंगसे गुणा करें।

अपूर्वकरण पर्यन्त स्थानों और प्रकृतियोंको जोड़कर चौबीससे गुणा करें। और उनमें अनिवृत्तिकरण आदिके अपने गुणकारसे गुणित स्थानों और प्रकृतियोंको मिलानेपर स्थानों और प्रकृतियोंका जो प्रमाण गाथामें कहा है वह आ जाता है।

	गुणस्थान	असं	देश	प्रमत्त	अप्रमत्त	अपू	अनि	सू
	सम्यक्त्व	३	३	३	३	२	२	२
	वेदकस्थान	४	४	४	४	०	०	०
औपश०	क्षायिक स्थान	८	८	८	८	८	२।२	२
	वेदक प्रकृति	३२	२८	२४	२४	०	०।०	०
औपश०	क्षायिक प्रकृति	५६	४८	४०	४०	४०	४।२	२
	गुणकार	२४	२४	२४	२४	२४	१२।४	१

ई रचनेयोळसंयतादि गुणस्थानंगळोळपूर्व्वकरणावसानमागि स्थानंगळुं प्रकृतिगळुं चतुर्व्विंशतिचतुर्व्विंशति गुणकारंगळनुळ्ळुवप्पुदरिं स्थानंगळुं प्रकृतिगळुं बेरेबेरे कूडुत्तं विरलु स्थानंगळय्वत्तारप्पुवु । ५६ । अवं चतुर्व्विंशतिगुणकारंगळिदं गुणिसुत्तं विरलु । ५६ । २४ । सासिरद मूनूरनाल्वत्तनाल्कप्पुवु । १३४४ । इवरोळनिवृत्तिकरणाविगळ स्थानंगळं मूवत्तनाल्कं ३४ । कूडिकोळ्ळुत्तं विरलु मुंपेळ्द सम्यक्त्वाश्रित सर्वमोहनीयोदयस्थानंगळु सासिरद मूनूरेप्पत्तेंटप्पुवु । १३७८ । प्रकृतिगळु कूडिदोडे मूनूर मूवत्तेरडप्पु । ३३२ । ववनिप्पत्तनाल्करिंदं गुणिसुत्तं विरलु ३३२ । २४ । येळु सासिरदो भैनूररवत्तेंटप्पु ७९६८ । ववरोळनिवृत्तिकरणाविगळय्वत्तेंटुं ५८ प्रकृतिगळं कूडिकोळ्ळुत्तं विरलु मुं पेळ्द येंटुसासिरदिप्पत्तारु प्रकृतिगळु ८०२६ सम्यक्त्वाश्रित-सर्व्वमोहनीयोदयप्रकृतिगळेंबुदर्थं । ई मोहनीयस्थानोदय प्रकरणदोळितु गुणस्थानोपयोग योगसंयमलेश्यासम्यक्त्वंगळनाश्रयिसि मोहनीयोदयस्थानंगळुं प्रकृतिगळुं पेळल्पट्टुवी प्रकारदिंदं जीवसमासेगळोळं गत्यादिशेषमार्गणेगळोळमागमानुसारदिंदं मोहनीयोदयस्थानंगळुं प्रकृतिगळुं योजिसिकोळल्पडुवुवु । मुंदेयुं येकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळमी युदयस्थानंगळुं प्रकृतिगळुं योजिसल्पडुवुवु ॥

अनंतरं मोहनीयसत्त्वस्थानप्रकरणमनेकादशगाथासूत्रंगळिंदं पेळ्दपरु :—

गुणस्थानेषूपयोगयोगसंयमलेश्यासम्यक्त्वान्याश्रित्य मोहनीयोदयस्थानतत्प्रकृतय उक्तास्तथा जीवसमासेषु गत्यादिविशेषमार्गणासु वक्ष्यमाणैकचत्वारिंशज्जीवपदेषु चागमानुसारेण वक्तव्याः ॥५०७॥ अथ तत्सत्त्वप्रकरणमेकादशगाथासूत्रैराह—

इस प्रकरणमें जैसे गुणस्थानोंमें उपयोग, योग, संयम, लेश्या और सम्यक्त्वके आश्रयसे मोहनीयके उदयस्थान और प्रकृतियोंकी संख्या कही है उसी प्रकार जीव समासोंमें गति आदि मार्गणाओंमें और आगे कहे गये इकतालीस जीव पदोंमें आगमके अनुसार कहना चाहिए ॥५०७॥

आगे मोहनीयके सत्त्वका प्रकरण ग्यारह गाथाओंसे कहते हैं—

अट्ठ य सत्त य छक्क य चदु तिदुगेगाधिगाणि वीसाणि ।
तेरस बारेयारं पणादिएगूणयं सत्तं ॥५०८॥

अष्ट च सप्त च षट् च चतुस्त्रिद्वयेकाधिका विंशतिः । त्रयोदशद्वादशैकादश पंचाद्येकोनकं सत्वं ॥

यें दुमेळुमूरुं नाल्कुं मूरुमेरडुमों दुमधिकमादर्विंशतिगळुं त्रयोदशमुं द्वादशमुं एकादशमुं पंचाद्येकोनमादुदुं सत्वमक्कुं ॥ संदृष्टि। २८ । २७ । २६ । २४ । २३ । २२ । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ यिल्लि दर्शनमोहनीयत्रयमुं ३ । पंचविंशति चारित्रमोहनीयमु २५ मंतष्टाविंशति प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे सप्तविंशति प्रकृतिस्थानमक्कुमवरोळु सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडिदोडे षड्विंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं मत्तमा इप्पत्तेंटर स्थानदोळनंतानुबंधिचतुष्टयमं विसंयोजनमं माडिदोडे चतुर्विंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसिदोडे त्रयोविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृतियं क्षपिसिदोडे द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमक्कुमवरोळु सम्यक्त्वप्रकृतियं क्षपिसिदोडेकविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु मध्यमाष्टकषायंगळं क्षपिसिदोडे त्रयोदश प्रकृतिस्थानमक्कुमवरोळु षंढवेदमनागलि स्त्रीवेदमनागलि क्षपिसिदोडे द्वादश प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु स्त्रीवेदमनागलि षंढवेदमनागलि क्षपियिसिदोडेकादशप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु षण्णोकषायंगळं क्षपियिसिदोडे पंचप्रकृतिस्थानमक्कुमवरोळु पुंवेदमं क्षपियिसिदोडे चतुःप्रकृतिसत्वस्थान-

---

अष्टसप्तषट्चतुस्त्रिद्वयेकाधिकविंशतयस्त्रयोदशद्वादशैकादशपंचाद्येकोनं च सत्त्वं स्यात् । अत्र त्रिदर्शनमोहपंचविंशतिचारित्रमोहमष्टाविंशतिकं । तत्र सम्यक्त्वप्रकृतावुद्वेल्लितायां सप्तविंशतिकं । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे उद्वेल्लिते षड्विंशतिकं । पुनः अष्टाविंशतिकेऽनंतानुबंधिचतुष्के विसंयोजिते चतुर्विंशतिकं । पुनः मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिकं । पुनः सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिकं । पुनः सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिकं । पुनः मध्यमकषायाष्टके क्षपिते त्रयोदशकं । पुनः षंढे स्त्रीवेदे वा क्षपिते द्वादशकं । पुनः स्त्रीवेदे वा षंढे क्षपिते एकादशकं ।

आठ, सात, छह, चार, तीन, दो और एक अधिक बीस अर्थात् अठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस तथा तेरह, बारह, ग्यारह और पाँच आदि एक-एक हीन प्रकृतिरूप सत्त्व स्थान हैं—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ । इन्हें कहते हैं—

तीन दर्शन मोह और पचीस चारित्रमोह ये अठाईस प्रकृतिरूप सत्त्व स्थान हैं । इनमें-से सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलना करनेपर सत्ताईस प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । पुनः सम्यक्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेपर छब्बीस प्रकृतिक सत्त्व होता है । पुनः अट्ठाईसमें-से अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होनेपर चौबीस प्रकृति सत्त्व होता है । उनमेंसे मिथ्यात्वका क्षय होनेपर तेईस प्रकृतिक सत्त्व होता है । मिश्र मोहनीयका क्षय होनेपर बाईस प्रकृतिक सत्त्व होता है । सम्यक्त्व मोहनीयका क्षय होनेपर इक्कीस प्रकृतिक सत्त्व होता है । अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यानरूप मध्यम कषायोंका क्षय होनेपर तेरह प्रकृतिरूप सत्त्व होता है । स्त्रीवेद और नपुंसक वेदमें-से एकका क्षय होनेपर बारह प्रकृतिरूप सत्त्व होता है ।

मक्कुमवरोळु संज्वलनक्रोधमं क्षपियिसिदोडे त्रिप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु संज्वलनमानमं क्षपियिसिदोडे द्विप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमवरोळु संज्वलनमायेयं क्षपियिसिदोडेकादशप्रकृतिसत्वस्थानमक्कु। मा बादरलोभमं क्षपियिसिदोडेकसूक्ष्मलोभप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लि लोभसामान्यविदमोंदे प्रकृतिसत्वस्थानं पेळल्पट्टुदु। इंतु मोहनीयसत्वस्थानंगळु पदिनैव्वप्पुवेंदु निर्देशिसल्पट्टुवु। १५॥

अनंतरमी पविनय्यवुं मोहनीयसत्वस्थानंगळं मिथ्यादृष्ट्याद्युपशांतकषायगुणस्थानपर्य्यंतमाबगुणस्थानंगळोळु संभविसुव सत्वस्थानंगळं संख्येयं मुंदणगाथासूत्रदिदं पेळ्दपरु :—

तिण्णेगे एगेगं दो मिस्से चदुसु पणणियट्ठीए ।
तिण्णि य थूलेक्कारं सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसंते ॥५०९॥

त्रीण्येकस्मिन् एकस्मिन्नेकं द्वे मिश्रे चतुर्षु पंचनिवृत्तौ। त्रीणि च स्थूले एकादश सूक्ष्मे चत्वारि त्रीण्युपशांते॥

त्रीण्येकस्मिन् मूरुं सत्वस्थानंगळोंदुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळप्पुवु ३॥ एकस्मिन्नेकं सासादनगुणस्थानमोंदरोळोंदे सत्वस्थानमक्कुं १॥ द्वे मिश्रे मिश्रगुणस्थानदोळेरडु सत्वस्थानंगळप्पुवु २। चतुर्षु पंच असंयतादि नाल्कुगुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं पंच अय्दय्दु सत्वस्थानंगळप्पुवु ५॥ निवृत्तौ अपूर्व्वकरणनोळु त्रीणि च मूरु सत्वस्थानंगळप्पुवु। ३॥ स्थूले अनिवृत्तिकरणनोळु एकादश पन्नोंदु सत्वस्थानंगळप्पुवु ११॥ सूक्ष्मे सूक्ष्मसांपरायनोळु चत्वारि नाल्कु सत्व स्थानंगळप्पुवु ४॥ उपशांते उपशांतकषायनोळु त्रीणि मूरु सत्वस्थानंगळप्पुवु ३॥ अनंतरमीस्थानंगळ्वाउवेंदडे पेळ्दपरु :—

पुनः षण्णोकषाये क्षपिते पंचकं। पुनः पुंवेदे क्षपिते चतुष्कं। पुनः संज्वलनक्रोधे क्षपिते त्रिकं। पुनः संज्वलनमाने क्षपिते द्विकं। पुनः संज्वलनमायायां क्षपितायामेककं। पुनः बादरलोभे क्षपिते सूक्ष्मलोभरूपमेककं। उभयत्र लोभसामान्येनैक्यं॥ ५०८ अमीषां पंचदशानां गुणस्थानसंभवमाह—

मिथ्यादृष्टौ त्रीणि सासादने एकं मिश्रे द्वे असंयतादिचतुर्षु पंच पंच अपूर्वकरणे त्रीणि अनिवृत्तिकरणे एकादश सूक्ष्मसांपराये चत्वारि उपशांतकषाये त्रीणि ॥५०९॥ तानि कानीति चेदाह—

तथा उनमें-से शेष दूसरेका क्षय होनेपर ग्यारह प्रकृतिरूप सत्त्व होता है। छह हास्यादि नोकषायोंका क्षय होनेपर पाँच प्रकृतिरूप सत्त्व होता है। पुरुषवेदका क्षय होनेपर चार प्रकृतिरूप सत्त्व होता है। संज्वलन क्रोधका क्षय होनेपर तीन प्रकृतिरूप सत्त्व होता है। संज्वलन मानका क्षय होनेपर दो प्रकृतिरूप सत्त्व होता है। संज्वलन मायाका क्षय होनेपर एक बादर लोभरूप सत्त्व होता है। बादर लोभका क्षय होनेपर सूक्ष्म लोभरूप सत्त्व होता है। बादर और सूक्ष्म लोभ एक ही प्रकृति है। इससे दोनोंका एक ही स्थान कहा है। इस प्रकार पन्द्रह सत्त्व स्थान हैं ॥५०८॥

इन पन्द्रह स्थानोंका गुणस्थानोंमें सत्त्व बतलाते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें तीन, सासादनमें एक, मिश्रमें दो, असंयत आदि चारमें पाँच-पाँच, अपूर्वकरणमें तीन, अनिवृत्तिकरणमें ग्यारह, सूक्ष्म साम्परायमें चार और उपशान्त कषायमें तीन सत्त्व स्थान होते हैं ॥५०९॥

पढमतियं च य पढमं पढमच्चवुवीसयं च मिस्सम्मि ।
पढमं चउवीस चऊ अविरददेसे पमत्तिदरे ॥५१०॥

प्रथमत्रिकं च प्रथमं प्रथमं चतुर्विंशतिकं च मिश्रे प्रथमं चतुर्विंशति चत्वारि अविरत देशसंयत प्रमत्तेतरेषु ॥

प्रथमत्रिकं च अष्टविंशत्यादि प्रथमत्रिस्थानंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु । २८।२७।२६ । एकें दोडे चतुर्गतिय मिथ्यादृष्टिजीवंगळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मिश्रप्रकृतियुमनुद्वेल्लनमं माळपनप्पुदरिंदं प्रथमं सासादननोळु प्रथममष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमों दे सत्वमक्कुं । २८ ॥ प्रथमं चतुर्विंशतिकं च मिश्रे मिश्रनोळुमष्टाविंशति प्रकृतिसत्वस्थानमुं चतुर्विंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमुमेरडेयप्पुवु । २८ । २४ । एंतें दोडनंतानुबंधिचतुष्टयमं विसंयोजिसिद असंयतादिगळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयदिंदं मिश्रपरिणामगळप्पुदरिंदं प्रथमं चतुर्विंशति चत्वारि असंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु प्रत्येकमष्टाविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमु चतुर्विंशत्यादि चतुःसत्वस्थानंगळप्पुवु । २८।२४।२३।२२।२१। एकें दोडा नाल्कुं गुणस्थानवर्तिगळें अनंतानुबंधिचतुष्टयमं विसंयोजिसुवरु । मिथ्यात्वमुमं मिश्रमुमं सम्यक्त्वप्रकृतियुमं क्रमदिदं क्षपियिसुवरुमप्पुदरिंदं मेले अपूर्वकरणाद्युपशमश्रेणिय चतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळोळं क्षपकश्रेणियोळष्टकषायानिवृत्तिपर्य्यंतं संभविसुव सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

अडचउरेक्कावीसं उवसमसेढिम्मि खवगसेढिम्मि ।
एक्कावीसं सत्ता अट्ठकसायाणियट्टित्ति ॥५११॥

अष्ट चतुरेकविंशतिरुपशमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यामेकैकविंशतिः सत्वान्यष्टकषायानिवृत्तिपर्य्यंतं ॥

मिथ्यादृष्टौ त्रीण्यष्टाविंशतिकादीनि सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्युद्वेल्लनयोश्चतुर्गतिजीवानां यत्र करणात् । सासादनेऽष्टाविंशतिकं । मिश्रे द्वे अष्टाविंशतिकचतुर्विंशतिके, विसंयोजितानंतानुबंधिनोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वोदये तत्र गमनात् । असंयतादिचतुर्षु पंच प्रत्येकं अष्टाविंशतिकं चत्वारि चतुर्विंशतिकादीनि, विसंयोजितानंतानुबंधिनः क्षपितमिथ्यात्वादित्रयाणां च तेषु संभवात् ॥५१०॥

वे कौन हैं ? यह कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें अठाईस, सत्ताईस और छब्बीस रूप तीन सत्त्व स्थान हैं; क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें चारों गतिके जीव सम्यक्त्व प्रकृति और मिश्र प्रकृतिकी उद्वेलना करते हैं । सासादनमें अठाईस प्रकृतिरूप एक ही सत्त्व होता है । मिश्रमें अठाईस और चौबीस प्रकृतिरूप दो सत्त्वस्थान हैं; क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजन करनेवाले भी सम्यक् मिथ्यात्वके उदयमें मिश्र गुणस्थानमें जाते हैं । असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें पाँच-पाँच स्थान होते हैं—अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस प्रकृतिरूप । क्योंकि अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन और मिथ्यात्व आदि तीनका क्षय इन गुणस्थानोंमें होता है ॥५१०॥

उपशमश्रेणियोळु अपूर्व्वकरणाद्युपशांतकषायपर्य्यंतमाद नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकमष्ट चतुरेकविंशतिः अष्टाविंशति प्रकृतिसत्वस्थानमुं चतुर्व्विंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमुमेकविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमुमप्पुवु । २८।२४।२१ । एंतेंदोडुपशमश्रेणियनंतानुबंधिचतुष्टयमुं विसंयोजिसदेयुं विसंयोजिसियुं दर्शनमोहनीयमं क्षपियिसियुं मेणु क्षपियिसदेयुमारोहणमं माळ्परप्पुदरिंदं, क्षपकश्रेण्यां क्षपकश्रेणियोळु अपूर्व्वकरणनोळमष्टकषायानिवृत्तिकरणपर्य्यंतं नियमदिंदमेकविंशति प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं २१ ॥

अनंतरं क्षपकाष्टकषायानिवृत्तिकरणभागेयिंदं मेले अनिवृत्तिकरणंगे सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

तेरसबारेयारं तेरसबारं च तेरसं कमसो ।
पुरिसित्थिसढंवेदोदयेण गदपणगबंधम्मि ॥५१२॥

त्रयोदश द्वादशैकादशत्रयोदश द्वादश च त्रयोदश क्रमशः । पुरुषस्त्रीषंडवेदोदयेन गतपंचकबंधे ॥

अष्टकषायक्षपणानंतरं पुंवेदोदयदिंदं क्षपकश्रेण्यारोहणं गेय्द पंचप्रकृतिबंधकानिवृत्तिकरणंगे त्रयोदश द्वादशैकादश प्रकृतिसत्वस्थानंगळप्पुवु । १३ । १२ । ११ । स्त्रीवेदोदयदिंदं क्षपकश्रेण्यारोहणं गेय्द पंचबंधकानिवृत्तिकरणनोळु त्रयोदश द्वादशत्रयोदशप्रकृतिसत्वस्थानमुं द्वादशप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं १३ । १२ । नपुंसकवेदोदयदिं क्षपकश्रेण्यारोहणं गेय्द पंचबंधकानिवृत्तिकरणनोळु त्रयोदश त्रयोदश प्रकृतिसत्वस्थानमक्कु । १३ । मदें तेंदोडे पुंवेदिपंचबंधकानिवृत्तिकरणनोळष्टकषायंगळु क्षपियिसल्पडुत्तिरलु पदिमूरुं षंडवेदं क्षपियिसल्पडुत्तिरलु पन्नेरडुं स्त्रीवेदं क्षपियिसल्प-

---

उपशमश्रेण्यां चतुर्गुणस्थानेषु प्रत्येकमष्टाविंशतिकचतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि त्रीणि विसंयोजितानंतानुबंधिनः क्षपितदर्शनमोहसप्तकस्य तत्सत्त्वस्य तत्रारोहणात् । क्षपकश्रेण्यामपूर्वकरणे अष्टकषायानिवृत्तिकरणे चैकविंशतिकमेव ॥५११॥

तत उपरि पुंवेदोदयारूढस्य पंचबंधकानिवृत्तिकरणे त्रयोदशकद्वादशकैकादशकानि । अष्टकषायक्षपणा-

---

उपशम श्रेणिके अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें अठाईस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक तीन सत्त्वस्थान होते हैं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले और अनन्तानुबन्धी तथा तीन दर्शनमोहका क्षपण करनेवालेके चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक सत्त्व होता है और ऐसे जीव उपशम श्रेणिपर आरोहण करते हैं। क्षपकश्रेणिमें अपूर्वकरणमें और अनिवृत्तिकरणमें आठ कषायोंका क्षय करनेसे पूर्व इक्कीस प्रकृतिक ही सत्त्वस्थान होता है ॥५११॥

उससे ऊपर जो पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि चढ़ता है उसके जहाँ अनिवृत्तिकरणमें पुरुषवेद और संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभका बन्ध होता है उस भागमें तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिरूप तीन सत्त्वस्थान हैं। क्योंकि आठ कषायोंके क्षयके अनन्तर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका क्रमसे क्षय होता है। जो स्त्रीवेदके उदयके साथ श्रेणि चढ़ता है उसके

डुत्तिरलु पन्नों दुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळप्पुवु । स्त्रीवेदिपंचबंधकानिवृत्तिकरणनोळमंते अष्टकषायंगळ क्षपियिसल्पडुत्तिरलु पदिमूरुं षंढवेदं क्षपियिसल्पडुत्तिरलु पन्नेरडुं प्रकृतिसत्वस्थानंगळप्पुवु । षंढवेदिपंचबंधकानिवृत्तिगेअष्टकषायक्षपणानंतरं स्त्रीवेदक्कं पुंवेदक्कं युगपत्क्षपणाप्रारंभमक्कुमप्पुदरिंदं त्रयोदशप्रकृतिसत्वस्थानमेयक्कुं । संदृष्टि रचना विशेषमिदु :—

इदर विवरणं मोहनीयत्रिसंयोगदोलु द्वयाधिकरण एकादेय त्रिप्रकारदोलुयोजिसिकों बुदु= बंधोदयसत्व=।।

	न				इ				पुं			
बं	१ २ ३ ४	स	१ २ ३ ४		बं	१ २ ३ ४	स	१ २ ३ ४	बं	१ २ ३ ४	स	१ २ ३ ४।५
नों	० ७	४	११		नो	० ७	४	११	नो	० ७	५	११
		४	१३				४	१२			इं	१२
		५	१३				५	१२			सं	१३
		१३	१३				सं	१३				२१
		२२	२१					२१				

पुरिसोदयेण चडिदे अंतिमखंडंतिमोत्ति पुरिसुदओ ।
तप्पणिधिम्मिदराणं अवगदवेदोदयं होदि ॥५१३॥

पुरुषोदयेन चटिते चरमखंडचरमसमयपर्य्यंतं पुरुषोदयः । तत्प्रणिधावितरयोरपगतवेदोदयो भवति ॥

पुरुषोदयेन पुंवेदोदयदिंदं चडिदे क्षपकश्रेण्यारूढनोळु अंतिमखंडंतिमोत्ति चरमखंड चरमसमयपर्य्यंतं पुंवेदोदयप्रथमस्थित्यायामदोळु नपुंसकवेदक्षपणाखंडमुं स्त्रीवेदक्षपणाखंडमुं पुंवेदक्षपणाखंडमुमेंब त्रिखंडंगळोळु चरमपुंवेदक्षपणाखंडचरमसमयपर्य्यंतं पुरुषोदयः पुंवेदोदयमुं

नंतरं तत्र षंढस्त्रीवेदयोः क्रमशः क्षपणात् । स्त्रीवेदोदयारूढस्य तत्र त्रयोदशकं षंढे क्षपिते च द्वादशकं षंढोदयारूढस्य तत्र त्रयोदशकमेव स्त्रीपुंवेदयोर्युगपत्क्षपणाप्रारंभात् ॥ संदृष्टिः—

तो तेरह प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान हैं और नपुंसक वेदका क्षय होनेपर बारह प्रकृतिरूप सत्त्व स्थान हैं । जो जीव नपुंसकवेदके उदयके साथ श्रेणि चढ़ता है उसके तेरह प्रकृतिरूप ही सत्त्वस्थान हैं; क्योंकि वह नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्षपण एक साथ प्रारम्भ करता है ॥५१२॥

जो पुरुषवेदसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ता है उसके अन्तिम खण्डके अन्तिम समय पर्यन्त पुरुषवेदके उदयकी प्रथम स्थितिके कालमें नपुंसक वेद क्षपणाखण्ड, स्त्रीवेद क्षपणाखण्ड और पुरुषवेद क्षपणाखण्डोंमें-से अन्तिम खण्डके अन्तिम समय पर्यन्त पुरुषवेदका उदय और

पुंवेदबंधमुं निरंतरमक्कु। तत्प्रणिधौ आसैवळियोळु इतरयोः इतरंगळप्प स्त्रीषंडवेदंगळ्गे अपगत-वेदोदयो भवति। वेदोदयरहितमक्कुमंतागुत्तं विरलु :—

तट्ठाणे एक्कारस सत्ता तिण्होदयेण चडिदाणं।
सत्तण्हं समगंछिदी पुरिसे छण्हं च णवगमत्थित्ति ॥५१४॥

तत्स्थाने येकादशसत्वं त्रयाणामुदयेन चटितानां सप्तानां समच्छित्तिः पुरुषे षण्णां च नवक- ५
मस्तीति ॥

तत्स्थाने आ पुंवेदोदयारूढानिवृत्तिसवेदचरमखंडदोळमा सैवळिय स्त्रीषंडवेदोदयारूढरुगळु वेदोदयरहितस्थानद्वयदोळं एकादशसत्वं नोकषायसप्तकमु संज्वलनकषायचतुष्कमुमेंब पन्नों दुं प्रकृतिगळुं प्रत्येकं सत्वमक्कुमवरोळु त्रयाणामुदयेनारूढानां मूरुवेदोदयंगळिवं क्षपकश्रेण्यारूढरु-

१	१		१	१		१	१	
२	२		२	२		२	२	
३	३		३	३		३	३	
बं ४	स ४		बं ४	स ४		बं ४	स ४।५	
० नो७	४	११	० नो७	४	११	० नो७	५	११
	४	१३		४	१२	इ		१२
	५	१३		५	१२	सं		१३
		१३	सं		१३			१३
		२१			२१			२१
न			इ			पुं		

पुंवेदोदयेन क्षपकश्रेण्यारूढे चरमसमयपर्यंतं पुंवेदोदयप्रथमस्थित्यायामे षंढक्षपणाखंडस्त्रीक्षपणाखंड- १०
पुंक्षपणाखंडेषु चरमे खंडे चरमसमयपर्यंतं पुंवेदस्योदयो बंधश्च निरंतरो भवति। तत्प्रणिधौ चेतरवेदयोरपगत-वेदोदयो भवति ॥५१३॥ एवं सति—

तस्मिन् पुंवेदोदयारूढानिवृत्तिसवेदचरमखंडे तत्प्रणिधौ स्त्रीषंढोदयारूढयोरवेदोदयस्थानद्वये च सप्तनो-

बन्ध निरन्तर होता है। उस पुरुषवेदकी क्षपणाके अन्तिम खण्डके निकट शेष नपुंसक वेद और स्त्रीवेदके उदयका अभाव हो जाता है ॥५१३॥ १५

ऐसा होनेपर—

पुरुषवेदके उदय सहित श्रेणि चढ़नेवालेके अनिवृत्तिकरणके सवेदभागके अन्तिम खण्डमें, उसी खण्डके निकट अनिवृत्तिकरणके उस अन्तिम खण्डके कालमें और स्त्रीवेद और

गळगे सप्तानां समच्छित्तिः सप्तनोकषायंगळगे युगपत्क्षपणा प्रारंभमुमवक्के तच्चरमखंड चरमसमयदोळु युगपत्सत्वव्युच्छित्तियुमक्कुमल्लि पुरुषे पुरुषवेदोदयारूढनोळु षण्णां च षण्णोकषायंगळगेये सत्वव्युच्छित्तियक्कुमेकें दोडे नवकमस्तीति पुंवेदनवकबंधसमयप्रबद्धंगळु क्षपितावशेषंगळु समयोनावळि प्रमितंगळुं संपूर्णसमयप्रबद्धंगळु संपूर्णावलिप्रमितंगळुमंतु समयोनद्वयावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धंगळु सत्वमुंटप्पुदरिंदमवें तें दोडे पुंवेदंनवप्रश्नाधिकारदोळु समानबंधोदयव्युच्छित्तिप्रकृतिगळु मूवत्तों दरोळु पठितमप्पुदरिंदमदक्के बंधोदयंगळु युगपद्व्युच्छित्तिगळप्पुवप्पुदरिंदं पुंवेदोदयचरमसमयदोळु समयोनद्वयावळिमात्रंगळप्पुववक्के संदृष्टि —

४।४	४।४	४।४	५	
४।११	४।११	५	११	१।२।३।४।४।४।४।४
४	४			आ ० ० ० ०बाधा
५ १३ १३	५ १२ १२	१२		० ० ०
				० ०
				०

कषायचतुस्संज्वलना इत्येकादश सत्त्वमस्ति । त्रिवेदोदयारूढानां सप्तनोकषायक्षपणाप्रारंभः चरमखंड चरमसमये सत्त्वव्युच्छित्तिश्च युगपदेव । तत्र पुंवेदोदयारूढे तु समयोनावलिमात्रक्षपितावशेषा आवलीमात्रसंपूर्णाश्च पुंवेदस्य नवकबंधसमयप्रबद्धाः संतीति षण्णोकषायाणामेव सत्त्वव्युच्छित्तिः । ते च नवकसमयप्रबद्धाः स्वस्वबंधसमयादचलावली गतायां प्रतिसमयमेकैकफालिं परमुखेनोदयंतः, आवलिकाले क्षीयमाणाः समयोनद्वयावलिकाले सर्वे उच्छिष्टावलिमात्रनिषेकैः सह क्षीयंते । गलितावशेषास्तु समयप्रबद्धांशत्वात्समयप्रबद्धा इत्युच्यंते ।

नपुंसक वेदके उदयके साथ श्रेणि चढ़नेवालेके स्त्रीवेद नपुंसकवेदके उदयका अभावरूप दो स्थानोंमें पुरुषवेद सहित छह नोकषाय और चार संजलन इन ग्यारह प्रकृतिरूप स्थान होता है। तीनोंमें-से किसी भी एक वेदके उदयके साथ श्रेणि चढ़नेवालोंके सात नोकषायोंकी क्षपणाका प्रारम्भ और अन्तिम खण्डके अन्तिम समयमें उन सात कषायोंकी सत्त्व व्युच्छित्ति एक साथ होती है। उसके होनेपर चारका ही सत्त्व रहता है। किन्तु इतना विशेष है— जो पुरुषवेदके उदयके साथ श्रेणी चढ़ा है उसके एक समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्धोंमें-से एक समय कम आवली प्रमाण क्षय होनेके पश्चात् सम्पूर्ण आवली प्रमाण पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्ध पाये जाते हैं। अतः उसके छह नोकषायोंकी ही सत्त्व व्युच्छित्ति होती है। इससे पुरुषवेद सहित श्रेणि चढ़नेवालेके पाँचका सत्त्व रहता है। जिनका बन्ध हुए थोड़ा समय हुआ हो और जो संक्रमण आदि करनेके योग्य न हों ऐसे नूतन समयप्रबद्धके निषेकोंको नवक समयप्रबद्ध कहा है। वे नवक समयप्रबद्ध अपने-अपने बन्धके प्रथम समयसे लेकर आवली प्रमाण कालमें अन्य अवस्थाको प्राप्त नहीं होते, इससे इस आवलीकालको अचलावली कहते हैं। उस अचलावलीके बीतनेपर प्रति समय वे नवक समयप्रबद्ध एक-एक फालि परमुखरूपसे उदय होकर आवलीकालमें क्षय होते हुए एक समय कम दो आवली कालमें सब उच्छिष्टावली मात्र निषेकोंके साथ क्षयको प्राप्त होते हैं। 'गलितावशेष' अर्थात् गलनेके पश्चात् अवशेष समयप्रबद्धके जो निषेक रहते हैं वे समयप्रबद्धके अंश हैं, इससे उनको भी समयप्रबद्ध कहा है।

इल्लि नवकसमयप्रबद्धक्के अंकसंदृष्टि नाल्कु ४। अवक्कचलावलिकालमाबाधेयक्कुमाय-चलावलिगेयुं नाल्कु शून्यं संदृष्टियक्कुं। आ नवकसमयप्रबद्धमचलावलिकालमं कळियलोडनावलि-मात्रपाळिगळप्पुवु। ४। अवरोळु समयं प्रत्येकैकपाळिगळ्किडुत्तं विरलावळिमात्रकालक्कुदयिसि पोपुवंतु पोगुत्तं विरलु गळितावशेषसमयप्रबद्धंगळु एकद्वित्र्यादिपाळिगळ्गं समयप्रबद्धांशत्वविंदं समयप्रबद्धमें दु पेळल्पट्टुदो समयोनद्व्यावलिमात्रनवकबंधसमयप्रबद्धंगळु पुंवेदोदयारूढचतुर्ब्बंधका- ५
निवृत्तिकरणवेदरहितभागदोळु सत्वमक्कुमक्के स्वमुखोदयमिल्लदे परमुखोदयदोळु समयोन-द्व्यावळिमात्रकालक्कुच्छिष्टावलिमात्रनिषेकंगळु सहितमागि केडुवुदें दरिवुदु। उच्छिष्टावलि-यें बुदेनें दोडे उदयमुळ्ळ प्रकृतिगळ्गावलिमात्रनिषेकंगळवशिष्टमादागळक्के स्वमुखोदयमिल्लदे परमुखोदयविंदमेयावळिमात्रकालक्के प्रतिसमयमेकैकनिषेकक्रमविंदं किडुवुदु। मत्तमुदयरहित प्रकृतिगळ्गावलिमात्रनिषेकंगळं कळेदु लक्षिसल्पट्ट चरमस्थितिकांडकचरमपाळि किडुत्तं विरलु १०
शेषोच्छिष्टावलिमात्रनिषेकंगळ्गे क्षपणे इल्लप्पुदरिंदं स्थितोत्कसंक्रमविधानविंदं परमुखोदयविंदमा-वलिमात्रकालक्के प्रतिसमयमेकैकनिषेकंगळु संक्रमिसि केट्टु पोपुवें दरिवुदु।

उक्तार्थानुवादपुरस्सरमागियानिवृत्तिकरणनोळु सत्वस्थानविशेषंगळं पेळ्दपरु।

संदृष्टिः—

ब ४	स ४	बं ४	स ४	बं ४	स ४ / ५	५	१ । २ । ३ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।
४	११	४	११			११	आ ० । ० । ० । ० । बाधा
४	१३	४	१२			१२	० ० ०
५	१३	५	१२				० ०
							०

अत्र नवकसमयप्रबद्धस्यांकसंदृष्टिश्चतुष्कं। तस्याचलावलिराबाधा। तस्याः संदृष्टिश्चतुःशून्यं। उच्छिष्टा-वलिस्तु उदयागतानामावलिमात्रका अनुदयागतानामावलिमात्रनिषेकानतीत्य लक्षितचरमस्थितिकांडकचरम- १५
फालिपतनेऽवशिष्टावलिमात्रनिषेकाश्च क्षपणां विना स्थितोक्तसंक्रमविधानेन परमुखोदयेनैव प्रतिसमयमेकैक-निषेकगलनक्रमेण विनश्यंतीति ॥५१४॥ उक्तार्थानुवादपुरस्सरमनिवृत्तिकरणे सत्त्वस्थानविशेषानाह—

संदृष्टिमें नवक समयप्रबद्धकी पहचान चारका अंक है। उस समयप्रबद्धकी अबाधा अचलावली प्रमाण है। उसमें उसका उदयादि नहीं होता। उसकी पहचान चार बिन्दी हैं। उच्छिष्टावलीका अभिप्राय—जो कर्म उदयको प्राप्त हैं उनके आवली मात्र शेष रहे निषेक २०
और जो कर्म उदयको प्राप्त नहीं हुए उनके आवली मात्र निषेकोंको लाँघकर स्थितिके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालीके पतनमें आवलीकाल मात्र शेष रहे निषेक, वे क्षपणा बिना संक्रम विधानके द्वारा अन्य प्रकृतिरूप हो परमुख उदय द्वारा प्रति समय एक-एक निषेक क्रमसे गलकर नष्ट होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि वेदके क्षपणा कालमें जो पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धका सत्त्व शेष रहता है वह क्रोध क्षपणाकालमें क्रोधरूप परिणमन करके नष्ट २५
होता है। इससे वहाँ पाँचका भी सत्त्व जानना ॥५१४॥ इस अर्थको कहकर अनिवृत्ति-करणमें सत्त्वस्थानोंका विशेष कहते हैं—

इदि चदुबंधं खवगे तेरस वारस एगार चउसत्ता ।
तिदु इगिबंधे तिदु इगि णवगुच्छिट्ठाणवविवक्खा ॥५१५॥

इति चतुर्बंधक्षपके त्रयोदशद्वादशैकादशचत्वारि सत्वानि । त्रिद्व्येकबंधे त्रिद्व्येकं नवकोच्छिष्टानामविवक्षा ॥

इंतुक्तप्रकारदिदं चतुर्बंधक्षपके नपुंसकवेदोदयारूढ सवेदानिवृत्तिकरणचरमसमयचतुर्बंधकनोळु त्रयोदशत्रयोदशप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं द्वादशस्त्रीवेदोदयारूढसवेदानिवृत्तिकरणचरमसमयचतुर्बंधकनोळु द्वादशप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं । एकादशषंडवेदस्त्रीवेदोदयारूढापगतवेदोदयानिवृत्तिकरणक्षपकचतुर्बंधकरोळेकादशप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुं । चत्वारि सत्वानि मत्तमा षंडवेद स्त्रीवेदपुंवेदोदयारूढापगतवेदोदयानिवृत्तिकरण चतुर्बंधकक्षपकरोळु चतुःप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमल्लियें मत्तमा पुंवेदोदयारूढापगतवेदोदयानिवृत्तिकरणप्रथमभागचतुर्बंधकनोळु पंचप्रकृतिस्थानमुं सत्वमक्कुमेकेंदोडे गुणस्थानविषयसत्वस्थानसंख्याप्ररूपणेयोळनिवृत्तिकरणनोळु सत्वस्थानंगळु पन्नों दु । पुंवेदनवकबंधसत्वं चतुर्बंधकानिवृत्तिकरणनोळु विवक्षिसल्पट्टुदरिंदं ।

अल्लिदं मेले नपुंसकवेदस्त्रीवेदपुंवेदत्रितयोदयारूढापगतवेदोदयानिवृत्तिकरणक्षपकरुगळु त्रिद्व्येकबंधे त्रिबंध द्विबंध एकबादरलोभकषायबंधभागेगळोळु यथाक्रमदिदं त्रिद्व्येकं त्रिबंधकनोळु त्रिप्रकृतिसत्वस्थानमुं द्विबंधकनोळु द्विप्रकृतिसत्वस्थानमुं संज्वलनलोभैकप्रकृतिबंधकनोळु संज्वलनलोभैकप्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमा त्रिद्व्येकबंधकस्थानकंगळोळु पुंवेदबंधदोळ्पेळदंते नवकोच्छिष्टानां नवकबंधसमयोनद्व्यावळिमात्रसमयप्रबद्धंगळ सत्वमुं उच्छिष्टावळिमात्रोदयावशेषप्रथम-

---

इति उक्तप्रकारेण षंढोदयारूढस्य सवेदानिवृत्तिकरणचरमसमयचतुर्बंधके सत्त्वं त्रयोदशकं । स्त्रीवेदोदयारूढस्य द्वादशकं । षंढस्त्रीवेदोदयारूढापगतवेदोदयचतुर्बंधके एकादशकं । पुनः षंढस्त्रीवेदोदयानां तत्र चतुष्कं पुंवेदोदयारूढस्य पंचकमपि तदेकादशस्थानेषु पुंवेदनवकसत्त्वस्य विवक्षितत्वात् । तत उपरि त्रिवेदो-

---

इस कहे विधानके अनुसार जो नपुंसक वेद सहित श्रेणि चढ़ता है उसके वेद सहित अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समयमें, जिसमें मोहनीयकी चार प्रकृतियोंका बन्ध होता है, तेरह प्रकृतियोंका सत्त्व है । जो स्त्रीवेदके उदय सहित श्रेणी चढ़ता है उसके उसी समयमें बारह प्रकृतियोंका सत्त्व है । जो नपुंसकवेद या स्त्रीवेदके उदयके साथ श्रेणी चढ़ता है उसके वेदके उदयसे रहित तथा चार प्रकृतियोंके बन्धवाले भागमें ग्यारहका सत्त्व है । पुनः नपुंसकवेद या स्त्रीवेद सहित श्रेणि चढ़नेवालेके सात नोकषायोंका क्षय होनेपर चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है । पुरुषवेदके उदयके साथ श्रेणि चढ़नेवालेके पाँच प्रकृतिरूप भी सत्त्वस्थान होता है । क्योंकि उसके ग्यारहके सत्त्वस्थानमें पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धकी विवक्षा है । उससे ऊपर तीनों ही वेदोंके उदय सहित श्रेणी चढ़नेवालोंके जहाँ तीन, दो और एक प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है ऐसे तीन भागोंमें क्रमसे तीनरूप, दोरूप और एकरूप सत्त्वस्थान होता है । यहाँ पूर्ववत् नवक बन्धके एक समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावली मात्र उदयसे अवशेष प्रथम स्थितिके निषेक यद्यपि हैं तथापि यहाँ उनकी विवक्षा नहीं है । जैसे पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धका सत्त्व अवशेष रहनेपर वह क्रोध

स्थितिनिषेकंगळु सत्वमुंटागुत्तमिर्द्दोडमवक्के अविवक्षा स्यात् अविवक्षेयक्कुं। इंतनिवृत्तिकरणनोळुपशमश्रेणियोळष्टाविंशतिचतुर्व्विंशत्येकविंशति ॥ त्रिस्थानगळु त्रिस्थानंगळोळु। २८। २४। २१। क्षपकश्रेणिय एकविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमुं त्रयोदशद्वादशैकादश पंचचतुस्त्रिद्व्येकप्रकृतिसत्व स्थानंगळोंभत्तप्पुववरोळेकविंशतिस्थानं पुनरुक्तमेंदु बिट्टेकादशसत्वस्थानंगळेंदु पेळल्पट्टुदु। क्षपक। १३। १२। ११। ५। ४। ३। २। १। उप। २८। २४। २१। कूडि ११ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु अष्टाविंशति चतुर्व्विंशत्येकविंशति त्रिस्थानंगळुपशमश्रेणियोळप्पुवु। क्षपकश्रेणियोळु सूक्ष्मलोभप्रकृतिस्थानं सत्वमोंदेयक्कुं। १। कूडि चतुःस्थानंगळप्पुवु। २८। २४। २१। १। इल्लि सूक्ष्मसांपरायंगे सूक्ष्मलोभसत्वमेंतेंदोडे बादरसंज्वलनलोभक्कश्वकर्णकरणसहचारितापूर्व्वस्पर्द्धककरणमुमवक्के बादरकृष्टिकरणमुमवक्के मत्ते सूक्ष्मकृष्टिकरणमुमनिवृत्तिकरणनोळनंतैकभागानुभागक्रमदिंदं माडल्पट्टुवप्पुदरिं ना सूक्ष्मकृष्टिगळगनिवृत्तिकरणनोळनुदयसत्वमक्कुमी सूक्ष्मसांपराय संयमियोळुदयसत्वमक्कुमी सूक्ष्मलोभकषायोदयानुरंजितसंयमं सूक्ष्मसांपरायसंयममेदन्वर्थं नाममक्कुमदेंतेंदोडे सूक्ष्मः सांपरायः कषायो यस्याऽसौ सूक्ष्मसांपरायः एंदितु।

दयारूढानां त्रिद्व्येकबंधभागेषु यथाक्रमं त्रिकं द्विकमेककमस्ति। अत्र प्राग्वन्नवकबंधसमयोनद्व्यावलिमात्रसमयप्रबद्धा उच्छिष्टावलिमात्रोदयावशेषप्रथमस्थितिनिषेकाश्च संत्यपि ते न विवक्षिताः। एवमनिवृत्तिकरणे उपशमश्रेण्यामष्टाविंशतिचतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि, क्षपकश्रेण्यामेकविंशतिकत्रयोदशद्वादशकैकादशकपंचकचतुष्कत्रिकद्विकैकानि। एतेषु एकमेकविंशतिकं पुनरुक्तमित्येकादशेत्युक्तं। सूक्ष्मसांपराये उपशमश्रेण्यामष्टाविंशतिचतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि। क्षपकश्रेण्यां सूक्ष्मलोभरूपैकमिति चत्वारि। तल्लोभसत्त्वं कीदृशं? अनंतैकभागानुभागक्रमेणानिवृत्तिकरणे बादरसंज्वलनलोभस्याश्वकर्णकरणसहचरितापूर्वस्पर्धककरणं तेषां च बादरकृष्टिकरणं तासां च सूक्ष्मकृष्टिकरणमिति तत्र सूक्ष्मकृष्टिरूपमनुदयगतमत्रोदयगतमिति ज्ञातव्यं।

क्षपणाकालमें क्रोधरूप होकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार क्रोध, मान, मायाके भी अवशेष रहे नवक समयप्रबद्धका सत्त्व क्रमसे मान, माया, लोभके क्षपणाकालमें परमुख होकर नष्ट हो जाता है। परन्तु उनकी विवक्षा नहीं की। यदि उनकी विवक्षा होती तो जैसे चारके सत्त्वके स्थानमें पाँचका सत्त्व कहा उसी प्रकार तीन, दो, एकके स्थानमें चार, तीन, दोका भी सत्त्व कहते। किन्तु विवक्षा न होनेसे तीन, दो, एकका ही सत्त्व कहा।

इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें उपशम श्रेणिमें तो अठाईस, चौबीस, इक्कीसरूप तीन सत्त्वस्थान हैं। क्षपक श्रेणिमें इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाँच, चार, तीन, दो और एकरूप नौ स्थान हैं। इनमें इक्कीसरूप स्थान उपशमक और क्षपक दोनोंमें कहा है इससे पुनरुक्त है। इसीसे ग्यारह सत्त्वस्थान कहे हैं।

सूक्ष्म साम्परायमें उपशमश्रेणिमें अठाईस, चौबीस, इक्कीस तीन स्थान हैं। क्षपकश्रेणिमें सूक्ष्म लोभरूप एक स्थान है। इस तरह चार स्थान हैं। वह लोभका सत्त्व किस रूप है यह कहते हैं—

अनिवृत्तिकरणमें क्रमसे अनन्तवें-अनन्तवें भाग बादर संज्वलन लोभका अश्वकर्णकरण सहित अपूर्वस्पर्धक करण होता है। फिर उन स्पर्धकोंका स्थूलखण्डरूप बादरकृष्टिकरण होता है। फिर उन बादरकृष्टियोंका सूक्ष्मखण्डरूप सूक्ष्मकृष्टिकरण होता है। उन

उपशांतकषायनोळमष्टाविंशति चतुर्विंशति एकविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानत्रितयमक्कु । २८ । २४ । २१ । मितु गुणस्थानदोळुक्तसत्वस्थानंगळ्गे संदृष्टि :—

मि ३	सा १	मि २	अ ५	दे ५	प्र ५
२८।२७।२६	२८	२८।२४	२८।२४।२३।२२।२१	२८।२४।२३।२२।२१	२८।२४।२३।२२।२१

अ ५	अ ३	अ ११	
			०
२८।२४।२३।२२।२१	२८।२४।२१	क्षप २१	२८।२४।२१।क्ष२१।१३।१२।११।५।४।३।२।१।

सू ४	उ ३	क्षी	स	अ	सि
२८।२४।२१।१।	२८।२४।२१।	०	०	०	०

अनंतरं मोहनीयबंधस्थानंगळोळु सत्वस्थानंगळनाधाराधेयभावविंदं पेळ्दपरु :—

तिण्णेव दु बावीसे इगिवीसे अट्ठवीस कम्मंसा ।
सत्तर तेरे णवबंधगेसु पंचेव ठाणाणि ॥५१६॥

त्रीण्येव तु द्वाविंशत्यां एकविंशतावष्टाविंशतिः कर्मांशाः । सप्तदश त्रयोदशसु नवबंधकेषु पंचैव स्थानानि ॥

पंचविधचदुविधेसु य छसत्त सेसेसु जाण चत्तारि ।
उच्छिट्ठावलिनवकं अविवक्खिय सत्तठाणाणि ॥५१७॥

पंचविधचतुर्व्विधयोः षट्सप्त शेषेषु विद्धि चत्वारि । उच्छिष्टावलिनवकमनपेक्ष्य सत्वस्थानानि । गाथाद्वितयं ॥

उपशांतकषायेऽष्टाविंशतिकचतुर्विंशतिकैकविंशतिकानि ॥५१५॥ अथ मोहनीयबंधस्थानेषु सत्त्वस्थानान्याधेयभावेन गाथाद्वयेनाह—

सूक्ष्मकृष्टियोंका उदय अनिवृत्तिकरणमें नहीं होता किन्तु सूक्ष्मसाम्परायमें होता है। अश्वकर्णादिका स्वरूप आगे लिखेंगे।

उपशान्तकषायमें अठाईस, चौबीस, इक्कीस तीन स्थान होते हैं। उससे ऊपर मोहनीयका सत्त्व नहीं है ॥५१५॥

क्षपक अनिवृत्तिकरणके सत्त्वस्थानोंका यन्त्र

नपुंसक वेदसहित श्रेणिमें		स्त्रीवेद सहित श्रेणिमें		पुरुषवेद सहित श्रेणिमें	
बन्ध	सत्त्व	बन्ध	सत्त्व	बन्ध	सत्त्व
१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४ वा ५

त्रयोव्येव द्वाविंशत्यां द्वाविंशति प्रकृतिबंधस्थानमं कट्टुवागळा जीवनोळ् २८। २७। २६। मूरे मोहनीयसत्वस्थानंगळ् संभविसुववु। तु मत्ते एकविंशतावष्टाविंशतिकर्म्मांशाः एकविंशति-मोहनीयप्रकृतिसत्वस्थानमं कट्टुवागळ् जीवनोळष्टाविंशति प्रकृतिगळ् अंशाः सत्वंगळप्पुवु। सप्तदशत्रयोदशसु नवबंधकेषु पंचैव स्थानानि सप्तदश प्रकृतिबंधस्थानमं कट्टुवागळा जीवनोळं त्रयोदशप्रकृति मोहनीयबंधस्थानमं कट्टुवागळा जीवनोळं नवबंधकेषु नवप्रकृतिमोहनीयबंध- ५
स्थानमं कट्टुवागळा जीवनोळं पंचैव स्थानानि प्रत्येकं पंचपंचमोहनीयसत्वस्थानंगळ् संभविसुववु। २८। २४। २३। २२। २१। पंचविधचतुर्व्विधयोः षट्सप्त पंच प्रकृतिबंधस्थानमं कट्टुवागळा जीवनोळ् षण्मोहनीयसत्वस्थानंगळ् संभविसुववु। २८। २४। २१। १३। १२। ११। चतुःप्रकृतिमोहनीयबंधस्थानमं कट्टुवागळा जीवंगे सप्तमोहनीयसत्वस्थानंगळ् संभविसुववु। २८। २४। २१। १३। १२। ११। ४। इल्लि चतुब्बंधकनोळ् पंचप्रकृतिसत्वस्थानमेकें पेळल्प- १०
डर्दं दोडे नवकोच्छिष्टंगळिगल्लि सत्वविवक्षे इल्लप्पुदु कारणमागि। शेषेषु चत्वारि शेषत्रिप्रकृति द्विप्रकृत्येकप्रकृतिमोहनीयबंधस्थानंगळं कट्टुवागळा जीवंगळ् प्रत्येकं त्रिप्रकृतिबंधकनोळ् चत्वारि ई नाल्कुं मोहनीयसत्वस्थानंगळ् संभविसुववु। २८। २४। २१। ३। द्विप्रकृतिमोहनीय-स्थानबंधकनोळ् नाल्कुं मोहनीयसत्वस्थानंगळ् संभविसुववु। २८। २४। २१। २। एकप्रकृति-मोहनीयबंधस्थानमं कट्टुवागळा जीवनोळ् मोहनीयसत्वस्थानंगळिवु नाल्कु संभविसुववु। २८। १५

द्वाविंशतिबंधे कर्मांशाः सत्त्वस्थानानि अष्टाविंशतिकसप्तविंशतिकषड्विंशतिकानि त्रीणि। एकविंशति-बंधेऽष्टाविंशतिकमेव। सप्तदशबंधे त्रयोदशबंधे नवबंधे चाष्टाविंशतिकचतुर्विंशतिकत्रयोविंशतिकद्वाविंशतिकैक-विंशतिकानि पंच पंच। पंचबंधे तान्येव पंचैकादशाग्राणि। चतुर्बंधे तान्येव षट्चतुष्काग्राणि। अत्र पंचकसत्त्वं

व्युच्छित्ति	बन्ध	सत्त्व	व्युच्छित्ति	बन्ध	सत्त्व	व्युच्छित्ति	बन्ध	सत्त्व
नोकषाय ७	४	११	नोक. ७	४	११	नोक. ७	५	११
	बन्ध ४	सत्त्व १३		बन्ध ४	सत्त्व १२		बन्ध ५	सत्त्व १२
	बन्ध ५	सत्त्व १३		बन्ध ५	सत्त्व १२		बन्ध ५	सत्त्व १३
	बन्ध ५	सत्त्व १३		बन्ध ५	सत्त्व १३		बन्ध ५	सत्त्व १३
		सत्त्व २१			सत्त्व २१			सत्त्व २१

आगे मोहनीयके बन्धस्थानोंमें सत्त्वस्थान दो गाथा द्वारा कहते हैं—

जहाँ बाईसका बन्ध है वहाँ सत्त्वस्थान अठाईस, सत्ताईस, छब्बीस प्रकृति तीन हैं। २०
इक्कीसका जहाँ बन्ध है वहाँ अट्ठाईस रूप सत्त्व स्थान है। सतरह, तेरह और नौके बन्ध-स्थानोंमें अट्ठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीसरूप पाँच-पाँच सत्त्वस्थान हैं। पाँचके बन्ध स्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह प्रकृतिरूप छह सत्त्वस्थान हैं। चारके बन्धस्थानमें छह पूर्वोक्त और एक चार प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान है। यहाँ पाँच

२४।२१।१। उच्छिष्टावलिनवकमनपेक्ष्य चतुर्ब्बंधकं मोदलागि एकबंधकावसानमादबंधकरोळु पेळ्द सत्वस्थानंगळु उच्छिष्टावलिनवकबंधंगळ सत्वमनवज्ञेयं माडि पेळल्पट्टर्वेंदितु त्वं बिद्धि नीनरि शिष्य येंदिताचार्य्यनिंदं संबोधिसल्पट्टं। उक्तार्थोपयोगियक्कुमी रचने।

बंध	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१
सत्व	३	१	५	५	५	६	७	४	४	४
	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८
	२७		२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२४
	२६		२३	२३	२३	२१	२१	२१	२१	२१
			२२	२२	२२	१३	१३ १२	३	२	१
			२१	२१	२१	१२ ११	११ ४			

अनंतरमितु मोहनीयदोळु पेळल्पट्ट बंधोदयसत्वस्थानसंख्येयननुवदिसुत्तलुमुपसंहरिसि मुंदे मत्ते नामकर्म्ममं पेळ्दपेमेंदु मुंदण सूत्रदोळु प्रतिज्ञेयं माडिदपरु।

दस णव पण्णरसाइं बंधोदयसत्तपयडिठाणाणि।
भणिदाणि मोहणिज्जे एत्तो णामं परं वोच्छं ॥५१८॥

दश नव पंचदशबंधोदयसत्वप्रकृतिस्थानानि। भणितानि मोहनीये इतो नाम परं वक्ष्यामि॥

मोहनीये मोहनीयदोळु बंधोदयसत्वप्रकृतिस्थानानि बंधप्रकृतिस्थानंगळुमुदयप्रकृतिस्थानंगळुं सत्वप्रकृतिस्थानंगळुं क्रमदिदं दश पत्तुं। नव ओंभत्तुं। पंचदश पदिनय्दुं भणितानि पेळल्पट्टुवु। इतः परं इल्लिदं मुंदे नाम वक्ष्यामि नामकर्म्मबंधोदयसत्वस्थानमं पेळ्दपें॥

इंतु मोहनीयबंधोदयसत्वप्रकृतिस्थानप्ररूपणानिरूपणं परिसमाप्तमाद्दुदु॥

तु नवकोच्छिष्टयोरविवक्षितत्वान्नोक्तं। त्रिबंधे द्विबंधे एकबंधे चाष्टाविंशतिकचतुर्विंशतेकैकविंशतिकानि क्रमशः त्रिकद्विकैकाग्राणीति चत्वारि चत्वारि जानीहि। इमान्यपि सत्त्वस्थानानि उच्छिष्टावलिनवकबंधाविवक्षयैवोक्तानि ॥५१६॥५१७॥

प्रकृतिरूप स्थान नहीं कहा; क्योंकि नवकरूप समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावलीकी यहाँ विवक्षा नहीं है। तीनके बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस और तीन प्रकृतिरूप चार सत्त्व स्थान हैं। दोके बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस और दो प्रकृतिरूप ये चार सत्त्वस्थान हैं। एकके बन्धस्थानमें अट्ठाईस, चौबीस, इक्कीस और एक प्रकृतिरूप चार सत्त्वस्थान हैं। ये सत्त्वस्थान भी उच्छिष्टावली तथा नवक समयप्रबद्धकी विवक्षाके बिना कहे हैं ॥५१६-५१७॥

एकेजिनोक्तागममं नोकरिसुविरण्णगळिर परसमयिगळं–। तेक परिभाविसिन्निमगेकांतमे जीवितं हृषीकसुखंगळ ॥

आरिमोहनीयकर्म्मद बिरुवोय्यि सत्तु नरकदुःखण्णंदोळु। गुरियप्पेनारकग्गंळगरिगट्टिद सायकवक्के मरविर्द्दंरनं ॥ अरनें बुदाउदनानरिवंदमदाउदें दु चिंतिसुतिरदों। मरमरुळुतनमनुळिनीनेरि रुचिवेरसादिजिनमुखाब्जोवितमं ॥ तत्वरुचितत्वदरितं सत्वंगळनोउवंदमादोडे दानं। सत्वदोळु पूजे जिननोळु स्वत्वं स्पर्शावलंबिगेउदो मट्टं ॥

अनंतरमेकचत्वारिंशज्जीवस्थानंगळोळु नामकर्म्मबंधोदयसत्वस्थानंगळं पेळल्वेंडि नामनिर्द्देशमं गाथाद्वयदिंदं माडिदपरु :—

णिरया पुण्णा पण्हं बादरसुहुमा तहेव पत्तेया।
वियलासण्णी सण्णी मणुवा पुण्णा अपुण्णा य ॥५१९॥
सामण्णतित्थकेवलि उहय समुग्घादगा य आहारा।
देवावि य पज्जत्ता इदि जीवपदा हु इगिदाला ॥५२०॥

नारकाः पूर्णाः पंचानां बादरसूक्ष्माः तथैव प्रत्येकाः। विकला असंज्ञी संज्ञी मानवाः पूर्णा अपूर्णाश्च ॥

सामान्यतीर्थंकेवलिनौ उभयसमुद्घातकौ च आहाराः। देवा अपि च पर्य्याप्ता इति जीवपदानि खल्वेकचत्वारिंशत् ॥

नारकाः पूर्णाः नारकरुगळेल्लरुं पर्य्याप्तकरुगळु। पंचानां बादरसूक्ष्माः पृथ्व्यकायिकाप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकसाधारणवनस्पतिकायिकमेंब पंचस्थावरंगळ बादरसूक्ष्मंगळु तथैव प्रत्येका प्रत्येकवनस्पतिगळुं विकलाः द्वींद्रियमुं त्रींद्रियमुं चतुरिंद्रियमुमसंज्ञिपंचेंद्रियमुं संज्ञिपंचेंद्रियमुं मानवाः मानवरुमेंदितु तिर्य्यंग्मनुष्यरुगळ भेदद पृथ्वीकायिक बादरादिपदंगळु पदिनेळुं पूर्णापूर्णश्च पर्य्याप्तरुगळुमपर्य्याप्तरुगळुमोळरप्पुदरिंदं मूवत्तनाल्कुं पदंगळप्पुवु। ३४। सामान्यतीर्थंकेवलिनौ सामान्यकेवलिगळुं तीर्थंकेवलिगळुं उभयसमुद्घातकौ च सामान्यसमुद्घात

मोहनीये बंधोदयसत्त्वप्रकृतिस्थानानि क्रमेण दश नव पंचदश भणितानि। इतः परं नामकर्मणस्तानि वक्ष्यामि ॥५१८॥ तदाधारत्वादेकचत्वारिंशत्पदानि तावद्गाथाद्वयेन निर्दिशति—

नारकाः सर्वे पर्याप्ता एव, पृथ्व्यादयः पंच बादराः सूक्ष्माश्च, तथा प्रत्येकं वनस्पतयः, द्वित्रिचतुरिंद्रियाः

इस प्रकार मोहनीयमें दस बन्ध स्थान, नौ उदयस्थान और पन्द्रह सत्त्वस्थान कहे। आगे नामकर्मके कहेंगे ॥५१८॥

प्रथम ही नामकर्मके स्थानोंके आधारभूत इकतालीस पदोंको दो गाथाओंसे कहते हैं—

सब नारकी पर्याप्त ही होते हैं। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण वनस्पतिकायिक ये पाँच बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पति, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी, और मनुष्य ये सतरह पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों अतः चौंतीस हुए। सामान्य केवली,

केवलियुं तीर्त्थसमुद्घातकेवलियुमाहाराः आहारकरुं देवा अपि च देवक्कळुमेंबी षट्पदंगळ पर्य्याप्ताः पर्याप्तरुगळ्. इति यितु पर्य्याप्तनारकपदयुतमागि एकचत्वारिंशत् नाल्वत्तो ंदु खलु स्फुटमागि जीवपदानि नामकर्म्मबंधस्थानविवक्षेयोळु कर्म्मपदंगळप्पुवु । उदयसत्वविवक्षेयोळु जीवपदंगळप्पुवु। अदेंतेंदोडे नरकगतिनामकर्म्ममुं पृथ्वीकायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियनामकर्म्ममुं पृथ्वीकायस्थावरविशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियनामकर्म्ममुं अप्कायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रिय नामकर्म्ममुं अप्कायस्थावरविशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियनामकर्म्ममुं तेजस्कायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियनामकर्म्ममुं तेजस्कायस्थावरविशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियनामकर्म्ममु वायुकायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियनामकर्म्ममुं वायुकायस्थावरविशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियनामकर्म्ममुं साधारणस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियनामकर्म्ममुं साधारणस्थावरविशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियनामकर्म्ममुं अहंगे स्थावरबादरविशिष्टप्रत्येकवनस्पत्येकेंद्रियनामकर्म्ममुमितिवेकेंद्रियत्वनिमित्तकर्म्मभेदंगळप्पुवु ।

त्रसविशिष्टद्वींद्रियजातिनामकर्म्ममुं त्रसविशिष्टत्रींद्रियजातिनामकर्म्ममुं त्रसविशिष्टचतुरिंद्रियजातिनामकर्म्ममुं त्रसविशिष्टासंज्ञिपंचेंद्रियजातिनामकर्म्ममुं त्रसविशिष्टसंज्ञिपंचेंद्रियजातिनामकर्म्ममुं त्रसविशिष्टमनुष्यगतिनामकर्म्ममुमेंदिनितुं पर्य्याप्तविशिष्टंगळु पृथ्वीकायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियकर्म्मपदं मोदल्गो ंडु पविनेळुं कर्मपदंगळुमपर्य्याप्तनामकर्म्मविशिष्टंगळुं पदिनेळुं कर्म्मपदंगळप्पुवु । १७ ॥ उभयकर्म्मपदंगळुं मूवत्तनाल्कप्पुवु । ३४। केवलिपदचतुष्टयं केवलं

असंज्ञिनः संज्ञिनो मानवाश्चैते सप्तदशापि पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, सामान्यकेवलिनस्तीर्थकेवलिनः एते उभये समुद्घातवंतश्च आहारका देवाश्चामी षट् पर्याप्ता एवेत्येकचत्वारिंशत्खलु स्फुटं जीवदानि, नामकर्मबंधस्थानविवक्षया कर्मपदान्युदयसत्त्वविवक्षया जीवपदानि च भवंति । तद्यथा—

नरकगतिनाम पृथ्वीकायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियं तद्विशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियं अप्कायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियं तद्विशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियं तेजस्कायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियं तद्विशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियं वायुकायस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियं तद्विशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियं, साधारणस्थावरविशिष्टबादरैकेंद्रियं तद्विशिष्टसूक्ष्मैकेंद्रियं स्थावरबादरविशिष्टप्रत्येकवनस्पत्येकेंद्रियमित्येकादश नामकर्माण्येकेंद्रियत्वनिमित्तानि। त्रसविशिष्टद्वीन्द्रियं, तद्विशिष्टत्रीन्द्रियं,

---

तीर्थंकर केवली, और समुद्घातगत सामान्य केवली, समुद्घातगत तीर्थंकर केवली ये चार, तथा आहारक और देव ये छह पर्याप्त ही हैं। ये इकतालीस जीवपद होते हैं। नामकर्मके बन्धस्थानोंकी विवक्षा होनेपर ये कर्मपद हैं क्योंकि इन प्रकृतिरूप नामकर्मका बन्ध होता है। और उदय तथा सत्त्वकी विवक्षामें ये जीवपद हैं क्योंकि इनका उदय और सत्त्व जीवमें पाया जाता है ॥ वही कहते हैं—

नरकगति नाम, पृथ्वीकाय स्थावर विशिष्ट बादर एकेन्द्रिय, पृथ्वीकाय स्थावर विशिष्ट सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अप्काय स्थावर विशिष्ट बादर एकेन्द्रिय, अप्काय स्थावर विशिष्ट सूक्ष्म एकेन्द्रिय, तेजस्काय स्थावर विशिष्ट बादर एकेन्द्रिय, तेजस्काय स्थावर विशिष्ट सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वायुकाय स्थावर विशिष्ट बादर एकेन्द्रिय, वायुकाय स्थावर विशिष्ट सूक्ष्म एकेन्द्रिय, साधारण स्थावर विशिष्ट बादर एकेन्द्रिय, साधारण स्थावर विशिष्ट सूक्ष्म एकेन्द्रिय, स्थावर बादर विशिष्ट प्रत्येक वनस्पति एकेन्द्रिय, ये ग्यारह नामकर्म एकेन्द्रिय निमित्तक हैं, त्रस विशिष्ट दोइन्द्रिय, त्रस विशिष्ट तेइन्द्रिय, त्रस विशिष्ट चौइन्द्रिय, त्रस-

जीवपदंगळेयप्पुवु। आहारपदमुं जीवपदमेयक्कुमदें तेंदोडे—आहारकद्वयं देवगतिनामकर्म्मंदोडनल्लदन्यगतित्रितयदोडने नियमदिदं बंधमागदप्पुदरिंदं तद्देवगत्यंतर्भावियक्कुं। पर्य्याप्तविशिष्टदेवगतिनामकर्म्ममुमितु पर्य्याप्तविशिष्टनारकदेवगतिनामकर्म्मद्वयमुं २। तिर्य्यंग्मनुष्यगतिद्वय पर्य्याप्तापर्य्याप्तविशिष्टचतुस्त्रिंशत्कर्मपदंगळुं ३४। कूडि षट्त्रिंशत्कर्म्मपदंगळप्पुवु। केवलं जीवपदंगळुमप्पु कूडि एकचत्वारिंशत्पदंगळप्पुवु ।४१। ई नाल्वत्तों दु पदंगळगे संदृष्टि :—

प	नि	पृ बा	पृ सू	अ।बा	अ।सू	ते।बा	ते।सू	वा बा	वा सू	सा बा	सा।सू	प्र	द्वीं
अ	०	पृ बा	पृ सू	अ।बा	अ।सू	ते।बा	ते।सू	वा बा	वा सू	सा बा	सा।सू	प्र	द्वीं

त्रीं	च	अ	सं	म	सा।के	ति।के	स। स	के	ति। स	के	अ	दे	२४
त्रीं	च	अ	सं	म	०	०	०		०		०	०	१७

अनंतरं नामकर्म्मप्रकृतिबंधस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

तेवीसं पणुवीसं छव्वीसं अट्ठवीसमुगुतीसं।
तीसेक्कतीसमेवं एक्को बंधो दु सेढिम्मि ॥५२१॥

त्रयोविंशतिः पंचविंशतिः षड्विंशतिरष्टाविंशतिरेकान्नत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशदेवमेको बंधो द्विश्रेण्यां ॥

तद्विशिष्टचतुरिंद्रियं, तद्विशिष्टासंज्ञिपंचेंद्रियं, तद्विशिष्टसंज्ञिपंचेंद्रियं मनुष्यगतिनामेमानि सप्तदशापि पर्याप्तनामविशिष्टानि पर्याप्तपदानि अपर्याप्तनामविशिष्टान्यपर्याप्तपदानि। चत्वारः केवलिनः केवलजीवपदानि आहारकमपि जीवपदं देवगतिं विनान्यगत्या सह बंधाभावात् तस्यामेव तदंतर्भावात् पर्याप्तविशिष्टदेवगतिनाम। नारकदेवगती पदे तिर्यग्मनुष्यगत्योश्चतुस्त्रिंशत्पदानि च कर्मपदानि केवलजीवपदानि पंच मिलित्वैकचत्वारिंशत् ॥५१९-५२०॥

विशिष्ट असंज्ञी पंचेन्द्रिय, त्रसविशिष्ट संज्ञी पंचेन्द्रिय और मनुष्यगति नाम। ये सतरह भी पर्याप्तनाम विशिष्ट होनेसे पर्याप्तपद हैं और अपर्याप्तनाम विशिष्ट होनेसे अपर्याप्त पद हैं। ये चौंतीस हुए। सामान्य केवली, तीर्थंकर केवली, समुद्घातगत सामान्य केवली, समुद्घातगत तीर्थंकर केवली, ये चार केवली, ये केवल जीवपद हैं। आहारक भी जीवपद हैं; क्योंकि देवगतिके बिना अन्यगतिके साथ उसका बन्ध नहीं होता। उसीमें उसका अन्तर्भाव होनेसे पर्याप्त देवगति नाम है। इस तरह नरक देवगति पद दो और तिर्यंच मनुष्यगतिके चौंतीस पद ये छत्तीस कर्मपद हैं और केवल जीवपद पाँच हैं—चार केवली और आहारक। सब मिलकर इकतालीस पद हैं ॥५१९-५२०॥

त्रयोविंशतिः त्रयोविंशति प्रकृतिबंधस्थानमुं पंचविंशतिः पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं षड्विंशतिः षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं अष्टाविंशतिः अष्टाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं एकान्नत्रिंशत् एकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुं त्रिंशत् त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुं एकत्रिंशत् एकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुं एवं यितेळुं नामकर्म्मप्रकृतिबंधस्थानंगळप्पुवु ।७। एको बंधः एकप्रकृतिस्थानबंधं द्वित्रश्रेण्यां उभयश्रेणियोळे अपूर्व्वकरणचरमभागप्रथमसमयं मोदल्गोंडु सूक्ष्मसांपरायचरमसमयपर्य्यंतं बंधमक्कुं। त्रयोविंशत्यादिसप्तबंधस्थानंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंड पूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं यथासंभवमागि मुंदे पेळ्व क्रमदिदं बंधमप्पुवु। ई त्रयोविंशत्यादिबंधस्थानंगळु।

१	प	०		
३१	प	दे		
३०	प	ति	म	दे
२९	प	ति	म	दे
२८	प	दे	नि	
२६	प	अ त	उद्यो	
२५	प	अ		
२३	अ			

अनंतरं ई येंटुं स्थानंगळितप्पितप्प प्रकृतिगळोंडने बंधंगळप्पुवेंदु मुंदण गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

नामकर्मबंधस्थानानि त्रयोविंशतिकं पंचविंशतिकं षड्विंशतिकमष्टाविंशतिकमेकान्नत्रिंशत्कं त्रिंशत्कमेकत्रिंशत्कमेककमित्यष्टौ। आद्यानि सप्तापूर्वकरणषष्ठभागपर्यंतं यथासंभवमेककमुभयश्रेण्योरपूर्वकरणसप्तमभागप्रथमसमयात् सूक्ष्मसांपरायचरमसमयपर्यंतं च बध्यते ॥५२१॥ तानि केन केन कर्मपदेन युतानि बध्यंते इति सूत्रद्वयेनाह—

नामकर्मके बन्धस्थान तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस और एक प्रकृतिरूप आठ हैं। उनमें-से आदिके सात अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त यथासम्भव होते हैं। एक प्रकृतिरूप स्थान दोनों श्रेणियोंमें अपूर्वकरणके सातवें भागके प्रथम समयसे सूक्ष्म साम्परायके अन्त समय पर्यन्त बँधता है ॥५२१॥

ये बन्धस्थान किस-किस कर्मपद सहित बँधते हैं, यह दो गाथाओंसे कहते हैं—

ठाणमपुण्णेण जुदं पुण्णेण य उवरि पुण्णगेणेव ।
तावदुगाणण्णदरेणण्णदरेणमरणिरयाणं ॥५२२॥
णिरयेण विणा तिण्हं एक्कदरेणेवमेव सुरगइणा ।
बंधंति विणा गइणा जीवा तज्जोग्गपरिणामा ॥५२३॥

स्थानमपूर्णेन युतं पूर्णेन च उपरि पूर्णकेनैव । आतपद्विकयोरन्यतरेणान्यतरेणामरनरकयोः ॥ ९
नरकेण विना त्रयाणामेकतरेणैदमेव सुरगत्या । बध्नंति विना गत्या जीवास्तद्योग्य-परिणामाः ॥

त्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानमं अपूर्णेन युतं अपर्य्याप्तनामकर्म्मंयुतमागियुं पंचविंशतिप्रकृति-बंधस्थानमं पूर्णेन च पर्य्याप्तनामकर्म्मंयुतमागियुं च शब्ददिंदं अपर्य्याप्तनामकर्म्मंयुतमागियुं उपरि-पूर्णकेनैव षड्विंशतिप्रकृतिस्थानं मोदल्गोंडु मेलेल्ला बंधस्थानंगळुमं पर्य्याप्तनामकर्म्मंदोडनेयुं १०
षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं आतपद्विकयोरन्यतरेण आतपोद्योतंगळेरडरोळन्यतरप्रकृतियुमागियुं अष्टाविंशति प्रकृतिबंधस्थानमं अन्यतरेणामरनरकयोः देवगतिनरकगतिनामकर्म्मंगळेरडरोळन्यतर प्रकृतियुतमागियुं एकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमं नरकेण विना त्रयाणामेकतरेण नरकगतिनाम-कर्म्मरहितमागि शेषतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतित्रयंगळोळगेकतरप्रकृतियुतमागियुं त्रिंशत्प्रकृतिबंध-स्थानमं एवमेव मुं पेळ्दंते नरकगतिनामकर्म्मं पोरमागि तिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिप्रकृतित्रितयंगळोळे- १५
कतरप्रकृतियुतमागियुं एकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमं सुरगत्या देवगतिनामकर्म्मंयुतमागियुं विना गत्या एकप्रकृतिबंधस्थानमनाव गतियुतमल्लदेयुं जीवाः जीवंगळु तद्योग्यपरिणामाः तत्तद्योग्याः तद्योग्याः तद्योग्याः परिणामाः येषां ते जीवास्तद्योग्यपरिणामाः तत्तत्प्रकृतिबंधकारणयोग्य-परिणामंगळनुळ्ळवु बध्नंति कट्टुवउ । संदृष्टि मुंपेळ्दुदेयक्कुं ।

त्रयोविंशतिकं अपर्याप्तेन युतं । पंचविंशतिकं पर्याप्तेन युतं । चशब्दादपर्याप्तेन युतं च । उपरितनानि २०
षड्विंशतिकादीनि पर्याप्तेन युतान्यपि षड्विंशतिकं आतपोद्योतान्यतरेण युतं । अष्टाविंशतिकं देवगतिनरक-गत्यन्यतरेण युतं । एकान्नविंशत्कं त्रिंशत्कं च तिर्यंगादिगतित्रयान्यतमेन युतं । एकत्रिंशत्कं देवगत्या युतं । एकैकं कयापि गत्या युतं न भवति । एतानि स्थानानि जीवाः तत्तत्स्थानबंधयोग्यपरिणामाः संतो बंध्नंति ॥५२२-५२३॥ तौ चातपोद्योतौ प्रशस्तत्वात्केन पदेन सह बध्नंतीति चेदाह—

तेईस प्रकृतिरूप स्थान अपर्याप्त प्रकृतिके साथ बँधता है । पच्चीसरूप स्थान पर्याप्त- २५
प्रकृतिके साथ बँधता है । 'च' शब्दसे अपर्याप्त सहित भी बँधता है । ऊपरके छब्बीस आदि स्थान पर्याप्त सहित बँधते हैं । छब्बीसरूप स्थान आतप और उद्योतमें-से किसी एक प्रकृति सहित बँधता है । अठाईस प्रकृतिक स्थान देवगति, नरकगतिमें-से किसी एक गतिके साथ बँधता है । उनतीस और तीस प्रकृतिरूप स्थान तिर्यंचगति आदि तीन गतियोंमें-से किसी एक गतिके साथ बँधता है । इकतीस प्रकृतिरूप स्थान देवगतिके साथ बँधता है । एक ३०
प्रकृतिरूप स्थान किसी भी गतिके साथ नहीं बँधता । इन स्थानोंको जीव उस-उस स्थानके योग्य परिणाम होनेपर बाँधते हैं ॥५२२-५२३॥

अनंतरमातपनामकर्म्ममुद्योतनामकर्म्ममुं प्रशस्तविशेषप्रकृतिगळप्पुदरिंदं बंधकालदोळावाव कर्म्मपदयुतमागि बंधमक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

भूबादरपज्जत्तेणादावं बंधजोग्गमुज्जोवं ।
तेउतिगूणतिरिक्खपसत्थाणं एगदरगेण ॥५२४॥

भूबादरपर्य्याप्तेनातपो बंधयोग्यः उद्योतः । तेजस्त्रिकोनतिर्य्यक्प्रशस्तानामेकतरेण ॥

भूबादरपर्य्याप्तेन पृथ्विकायबादरपर्य्याप्तकर्म्मपददोडने आतपो बंधयोग्यः आतपनामकर्म्म बंधयोग्यमक्कु । मन्यकर्म्मपदंगळोळ्तेल्लियुं बंधमिल्लेंब नियममुंटप्पुदरिंदं । उद्योतः उद्योतनामकर्म्मं तेजस्त्रिकोनतिर्य्यक्प्रशस्तानामेकतरेण बंधयोग्यः तेजस्कायवायुकायसाधारणवनस्पतिकायंगळ बादरमुमं सूक्ष्ममुमनन्यकर्म्मपदंगळ सूक्ष्मंगळुमप्रशस्तंगळप्पुदरिंदमउ सहितमागि बिट्टु शेषतिर्य्यंचरुगळ संबंधि बादरपर्य्याप्तादिप्रशस्तकर्म्मपदंगळ मध्यदोळेकतर कर्म्मपददोडने बंधयोग्यमक्कुमदु कारणमागि पृथ्वीकायबादरपर्य्याप्तकर्म्मपददोडने आतपनामकर्म्मयुत षड्विंशति प्रकृतिबंधस्थानमुमुद्योतनामकर्म्मयुतषड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानंगळेरडुं संभविसुववु । अप्कायबादरपर्य्याप्तकर्म्मपददोडनुद्योतनामकर्म्मयुतषड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं संभविसुवुदु । प्रत्येकवनस्पतिकायपर्य्याप्तकर्म्मपददोडनेयुमुद्योतनामकर्म्मयुत षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानसंभवमक्कुं । द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय असंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रिय कर्म्मबंधपदंगळोडनुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानसंभवमक्कुमितु तिर्य्यंकप्रशस्तकर्म्मपदंगळ मध्यदोळेकतरकर्म्मपददोडने बंधमागुत्तिरळेंदु कर्म्मपदंगळोळुद्योतनामकर्म्मं बंधयोग्यमक्कु ॥

पृथ्वीकायबादरपर्याप्तेनातपः बंधयोग्यो नान्येन । उद्योतस्तेजोवातसाधारणवनस्पतिसंबंधिबादरसूक्ष्माण्यन्यसंबंधिसूक्ष्माणि च अप्रशस्ततत्वात् त्यक्त्वा शेषतिर्यक्संबंधिबादरपर्याप्तादिप्रशस्तानामन्यतरेण बंधयोग्यः, ततः पृथ्वीकायबादरपर्याप्तेनातपोद्योतान्यतरयुतं, बादराप्कायपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिपर्याप्तयोरन्यतरेणोद्योतयुतं च षड्विंशतिकं, द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियकर्मान्यतरेणोद्योतयुतं त्रिंशत्कं च भवति ॥५२४॥

आतप और उद्योत प्रशस्त प्रकृति होनेसे किस पदके साथ बँधती हैं यह कहते हैं—

आतप प्रकृति पृथ्वीकाय बादर पर्याप्तके साथ ही बन्धयोग्य है, अन्यके साथ उसका बन्ध नहीं होता । तेजस्काय, वायुकाय और साधारण वनस्पति सम्बन्धी बादर सूक्ष्म तथा अन्य सम्बन्धी सूक्ष्म ये सब अप्रशस्त हैं । अतः इन्हें छोड़कर शेष तिर्यंच सम्बन्धी बादर पर्याप्त आदि प्रशस्त प्रकृतियोंमें-से किसी एकके साथ उद्योत प्रकृति बन्धयोग्य है । अतः पृथ्वीकाय बादर पर्याप्त सहित आतप उद्योतमें-से किसी एकके साथ छब्बीस प्रकृतिरूप स्थान होता है । अथवा बादर अप्कायिक पर्याप्त, प्रत्येक वनस्पति पर्याप्तमें-से किसी एकके साथ उद्योत प्रकृति सहित छब्बीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान होता है । दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रियमें-से किसी एक प्रकृति सहित तथा उद्योत प्रकृति सहित तीस प्रकृतिरूप बन्धस्थान होता है ॥५२४॥

अनंतरं तीर्त्थकरनामसुमाहारकद्वयमुं प्रशस्तविशेषप्रकृतिगळप्पुदरिंदमिवाबकर्म्मंपददोडने-बंधंगळप्पुव दोडे पेळ्दपरु :—

णरगइणामरगइणा तित्थं देवेण हारमुभयं च ।
संजदबंधट्ठाणं इदराहि गईहि णत्थि त्ति ॥५२५॥

नरकगत्यामरगत्या तीर्थं देवेनाहारमुभयं च। संयतबंधस्थानमितराभिर्गतिभिर्न्नास्तीति ॥

नरगत्या सह मनुष्यगतिनामकर्म्म पददोडनेयुं अमरगत्या सह देवगतिनामकर्म्मंपददोडनेयुं तीर्त्थं केवलं तीर्त्थंकरनामकर्म्ममं बध्नंति जीवाः एंबिदक्काहार्द्यंमक्कुं। असंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळु देवर्क्कळुं नारकरुं मनुष्यगतिनामकर्म्मंपददोडने कट्टुवरु। मनुष्यरुगळु देवगतिनामकर्म्मंपददोडने कट्टुवरु। देवेन देवगत्या सहैव देवगतिनामकर्म्मंपददोडनेये तीर्त्थरहितमागि केवलमाहारकद्वयमनप्रमत्तसंयतरे कट्टुवरु। उभयं च तीर्त्थंकरनामकर्म्ममुमनाहारकद्वयमुमनंतुभयमुमं देवगत्या सहैव देवगतिनामकर्म्मंपददोडनेये बध्नंति अप्रमत्तसंयतरे कट्टुवरितरगतित्रयकर्म्मंपददोडने केवलमाहारकद्वयमुमं तीर्त्थाहारकोभयमुमं कट्टुवरल्लरेकेंदोडे संयतबंधस्थानं अप्रमत्तसंयतरु कट्टुव केवलमाहारकद्वययुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुमं तीर्त्थाहारोभययुतमेकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुमं देवगतिनामकर्म्मंपददोडनेये कट्टुवरप्पुदरिंदं। इतराभिर्ग्गतिभिः इतरगतित्रयकर्म्मंपददोडने नास्ति बंधमिल्लेंदु इति यितु पेळल्पट्टुदु। अदु कारणमागि तीर्त्थयुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमं मनुष्यगतिनामकर्म्मंपददोडनसंयतदेवनारकरुगळ् कट्टुवरेंदरियल्पडुगुं। तीर्त्थाहारद्वययुतैकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमनप्रमत्तापूर्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतमाबसंयतरुगळु देवगतिनामकर्म्मंपददोडनेये कट्टुवरेंदरियल्पडुगु। मनंतरमा त्रयोविंशत्याद्यष्टनामकर्म्मप्रकृतिबंधस्थानंगळ प्रकृतिसंख्यानिमित्तमप्प नामकर्म्म प्रकृतिपाठक्रममं गाथात्रयदिदं पेळ्दपरु :—

तीर्थाहाराणां प्रशस्तविशेषत्वात् तीर्थं मनुष्यगत्यैवासंयतदेवनारकाः देवगत्यैवासंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्तिमनुष्याश्च बध्नंति। आहारकद्वयं तीर्थाहारकोभयं च देवगत्यैव बध्नंति। कुतः ? संयतबंधस्थानमितराभिर्गतिभिर्न बध्नातीति कारणात्। अनेन सूत्रेणैते देवनारका मनुष्यगतित्रिंशत्कमेते मनुष्याः देवगतिनवविंशतिकं, अप्रमत्तापूर्वकरणषष्ठभागांतं देवगतियुते आहारकद्वयत्रिंशत्कतीर्थाहारोभयैकत्रिंशत्के च बध्नंतीत्युक्तं

तीर्थंकर और आहारक विशेष प्रशस्त प्रकृतियाँ हैं। अतः तीर्थंकरको असंयत देव नारकी तो मनुष्यगति सहित ही बाँधते हैं। और असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य देवगति सहित ही बाँधते हैं। आहारकद्विक तथा तीर्थंकर और आहारकद्विक देवगतिके साथ ही बाँधते हैं। क्योंकि संयतके योग्य बन्धस्थान अन्य गतियोंके साथ नहीं बँधते हैं।

इसी गाथासूत्रसे यह बात कही गयी जानना कि असंयत देव नारकी मनुष्यगति सहित तीस प्रकृतिरूप स्थानको और मनुष्य देवगति सहित उनतीस प्रकृतिरूप स्थानको तीर्थंकर सहित ही बांधते हैं। तथा अप्रमत्तसे अपूर्वकरणके छठे भागपर्यन्त देवगतिके साथ आहारकद्विक सहित तीसको तथा तीर्थंकर आहारकद्विक सहित इकतीस प्रकृतिक स्थानको बाँधते हैं ॥५२५॥

णामस्स णव धुवाणि य सरूणतसजुम्मगाणमेक्कदरं ।
गइजाइदेहसंठाणाणूणेक्कं च सामण्णा ॥५२६॥

नाम्नो नवध्रुवाश्च स्वरोनत्रसयुग्मानामेकतरं । गतिजातिदेहसंस्थानानुपूर्व्याणामेकतरं तु सामान्याः ॥

तसबंधेण य संहदि अंगोवंगाणमेगदरगं तु ।
तप्पुण्णेण य सरगमणाणं पुण एगदरगं तु ॥५२७॥

त्रसबंधेन च संहननांगोपांगानामेकतरं तु । तत्पूर्णेन च स्वरगमनानां पुनरेकतरं तु ॥

पुण्णेण समं सव्वेणुस्सासो णियमसा दु[1] परघादो ।
जोग्गट्ठाणे तावं उज्जोवं तित्थमाहारं ॥५२८॥

पूर्णेन समं सर्व्वेणोच्छ्वासो नियमतस्तु परघातः । योग्यस्थाने आतपः उद्योतस्तीर्थमाहाराः । यितु गाथात्रयं ॥

नाम्नो नव ध्रुवाः नामकर्म्मद तैजसकार्म्मणशरीरद्वयमुं अगुरुलघूपघातद्वयमुं निर्म्माणनामकर्म्ममुं वर्णंचतुष्कमुमें ब नव ध्रुवप्रकृतिगळ्. स्वरोनत्रसयुग्मानामेकतरं सुस्वर दुःस्वरयुग्मरहितमाद [2]त्रसबादरपर्य्याप्त प्रत्येकशरीरस्थिरशुभसुभगादेययशस्कीर्त्तितदितरयुतनवयुग्मंगळोळो दों दुं गतिजातिदेहसंस्थानानुपूर्व्याणामेकतरं तु गतिचतुष्कजातिपंचकदेहत्रयसंस्थानषट्क आनुपूर्व्यचतुष्कमें बी पिंडप्रकृतिगळोळो दों दु । इंती त्रयोविंशति प्रकृतिगळ् सामान्याः सामान्याः साधारणप्रकृतिगळप्पुवु । ई त्रयोविंशतिप्रकृतिगळ मेले यथायोग्यमागियुत्तर वक्ष्यमाणप्रकृतिगळु

भवति ॥५२५॥ अथ त्रयोविंशतिकादीनां प्रकृतिसंख्यानिमित्तं तत्पाठक्रमं गाथात्रयेणाह—

नामकर्मणः तैजसकार्मणागुरुलघूपघातनिर्माणवर्णचतुष्काणीति ध्रुवप्रकृतयो नव । स्वरयुग्मोनत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरशुभसुभगादेययशस्कीर्तियुग्मानामेकैकेत्यपि नव चतुर्गतिपंचजातित्रिदेहषट्संस्थानचतुरानुपूर्व्यानामेकैकेति पंच मिलित्वा त्रयोविंशतिः सामान्याः साधारणाः । तु-पुनः चशब्दद्वयमत्रावधारणार्थं तेन त्रसा-

आगे तेईस आदि स्थानोंकी प्रकृतियाँ जाननेके लिये तीन गाथाओंसे उन प्रकृतियोंका पाठक्रम कहते हैं—

नामकर्मकी तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, वर्णादि चार ये नौ ध्रुवबन्धी, इनका बन्ध सब जीवोंके निरन्तर होता रहता है, तथा स्वरके युगल बिना त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्तिके युगलोंमें-से एक-एक, ये भी नौ हुईं। चार गति, पाँच जाति, तीन शरीर, छह संस्थान, चार आनुपूर्वी, इनमें-से भी एक-एकका बन्ध

१. °मदो दु मु० ।
२. त्रयोविंशतिप्रकृत्यपेक्षेयं स्थावरमेंबुदर्त्थ ।

पेच्चि पेच्चि स्थानाष्टकप्रकृतिसंख्येगळप्पुवप्पुदरिंदं । त्रसबंधेन च संहननांगोपांगानामेकतरं तु । तु मत्ते त्रसनामकर्म्मबंधदोडने संहननषट्क अंगोपांगत्रयंगळोळ् दो दुं तत्पूर्णेन च तत्त्रसपर्य्याप्तंगळोडने स्वरगमनानां पुनरेकतरं तु सुस्वरदुःस्वर प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिगळोळ् ब द्विकद्वयंगळोळ् दो दुं च शब्दंगळेरडुमवधारणार्थंगळप्पुवप्पुदरिंदं त्रसापर्य्याप्तनामकर्म्मंदोडनेयुं त्रसपर्य्याप्तनामकर्म्मंदोडनेयुं संहननांगोपांगंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । त्रसपर्य्याप्तनामकर्म्मंदोडनेये स्वरविहायोगतिनाम कर्म्मंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवें बुदत्थं । पूर्णेन समं सर्व्वेणोच्छ्वासो नियमात्परघातः पर्य्याप्तनाम-कर्म्मदोडनेये सर्व्वेण त्रसस्थावरंगळोडने नियमदिंदमुच्छ्वासमुं परघातनामकर्म्ममुं बंधयोग्यमप्पुवु । योग्यस्थाने आतप उद्योतस्तीर्त्थमाहाराः योग्यमप्प नामकर्म्मंपदंगळोळे आतपनामकर्म्ममु मुद्योत-नामकर्म्ममु तीर्त्थमुमाहारकंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । ई प्रकृति पाठक्के संदृष्टिरचनेः—

ते।अ।नि।व	त्र	बा	प	प्र	दे	शु	सु।अ।ज	गा।जा।दे।संअ	त्रा।अ।प	त्र । प	प रि
२।२।१।४	२	२	२	२	२	२	२।२।२	४।५।३।६।४	सं।६।अं ३	स्व२। वि २	उ प आ उ ती अ १ १ १ १ १ १ २
९	१	१	१	१	१	१	१ १ १	१ १ १ १ १	१ १	१ १	

प	ना	पु।बा	पु।सू	आ।बा	आ।सू	ते।बा	ते।सू	बा।बा	बा।सू	सा।बा	सा।सू	प्र	बी
स्था	२८	२६		२५		२५	२५	२५	२५	२५	२५	२६	३०
	१	८		८		८	४	८	४	४	४	८	८
		२६		२६									
		८		८									
		२५	२५		२५							२५	२९
		८	४		४							८	८
अ	०	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२५
		१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

पर्याप्तत्रसपर्याप्तयोरन्यतरबंधेनैव षट्संहननानां त्र्यंगोपांगानां चैकतरं बंधयोग्यं नान्येन, पुनः त्रसपर्याप्तबंधेनैव सुस्वरदुःस्वरयोः प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योश्चैकतरं बंधयोग्यं नान्येन, तु-पुनः पर्याप्तेनैव समं वर्तमानसर्वत्रत्रस-स्थावराभ्यां नियमादुच्छ्वासपरघातौ बंधयोग्यौ नान्येन, तु-पुनः योग्यनामपदे एवातपनामोद्योतनामतीर्थकर-

होता है। ये पाँच मिलकर तेईस प्रकृति सामान्य हैं। इनका बन्ध सब जीवोंके होता है। गाथामें आये दो 'च' शब्द अवधारणके लिए हैं। अतः त्रस अपर्याप्त और त्रस पर्याप्तमें-से किसी एक सहित छह संहनन और तीन अंगोपांगमें-से एक-एक बन्धयोग्य है, अन्यके साथ नहीं। पुनः त्रसपर्याप्तके बन्धके साथ ही सुस्वर, दुःस्वर और प्रशस्त, अप्रशस्त विहायो-गतिमें-से एक-एक बन्ध योग्य है, अन्यके साथ नहीं। पुनः पर्याप्तके साथ ही वर्तमान सर्व त्रस-स्थावरके साथ नियमसे उच्छ्वास-परघात बन्धयोग्य हैं अन्यके साथ नहीं। पुनः

ति	च	अ	सं	म	सा|के	तो|के	सा|स	वी|स	अ	दे	अ
३०	३०	३०	३०	३०	०	०	०	०	०	३०	३१|२९|२८|१
८	८	८								१	१ ८ ८|१
			२९	२९							
२९	२९	२९	४६०८	४६०८							
८	८	८									
२५	२५	२५	२५	२५							
१	१	१	१	१							

तित्थेणाहारदुगं एक्कसराहेण बंधमेदीदी ।
पक्खित्ते ठाणाणं पयडीणं होदि परिसंखा ॥५२९॥

तीर्थेनाहारकद्विकं युगपद्बंधमेतीति । प्रक्षिप्ते स्थानानां प्रकृतीनां भवति परिसंख्या ॥

तीर्थदोडनाहारकद्वयं युगपद्बंधमनेय्दुगुमेंदितु सामान्यत्रयोविंशति प्रकृतिगळ मेलें योग्य-प्रकृतिगळं प्रक्षेपिसुत्तं विरलु स्थानंगळ संख्येयुं प्रकृतिगळ संख्येयुमक्कुमदें तेंदोडे गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

एयक्ख अपज्जत्तं इगिपज्जत्तबितिचपणराऽपज्जत्तं ।
एइंदियपज्जत्तं सुरणिरयगईहि संजुत्तं ॥५३०॥

एकेंद्रियापर्य्याप्तं एकेन्द्रियपर्याप्त बिति च प नरापर्य्याप्तं । एकेंद्रियपर्य्याप्तं सुरनरक-गतिभ्यां संयुक्तं ॥

पज्जत्तगबिदिचप-मणुस्स-देवगदिसंजुदाणि दोण्णि पुणो ।
सुरगइजुदमगइजुदं बंधट्ठाणाणि णामस्स ॥५३१॥

पर्य्याप्तक बितिचप मनुष्यदेवगतिसंयुते द्वे पुनः । सुरगतियुतमगतियुतं बंधस्थानानि नाम्नः ॥

माहारकद्वयं च बंधयोग्यं भवति ॥५२६-५२८॥

तीर्थेन सहाहारकद्वयं युगपद् बंधमेति तेन सामान्यत्रयोविंशतौ योग्यप्रकृतिप्रक्षेपे स्थानसंख्या प्रकृति-संख्या च स्यात् ॥५२९॥ तामेव गाथाद्वयेनाह—

योग्य नामपदमें ही आतपनाम, उद्योतनाम, तीर्थंकर और आहारकद्विक बन्धयोग्य हैं ॥५२६-५२८॥

तीर्थंकरके साथ आहारद्विकका भी एक साथ बन्ध होता है। अतः पूर्वोक्त सामान्य तेईस प्रकृतियोंके बन्धमें यथायोग्य प्रकृतियाँ मिलानेपर स्थानोंकी और प्रकृतियोंकी संख्या होती है ॥५२९॥

उसको ही दो गाथाओंसे कहते हैं—

एकेंद्रियापर्य्याप्तं नामबंधस्थानप्रकृतिसंख्याहेतु पूर्व्वोक्त "णामस्स णव धुवाणि य" इत्यादि पाठक्रमदोळु नामकर्म्मनव ध्रुवप्रकृत्याद्यानुपूर्व्यावसानमाद यथायोग्यत्रयोविंशतिप्रकृतिबंधस्थानं स्थावरापर्य्याप्ततिर्य्यग्गत्येकेंद्रियचतुःप्रकृतियुतबंधस्थानमप्पुदरिंदमेकेंद्रियापर्य्याप्तयुतबंधस्थानमेयक्कुं। २३।ए।अ। पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानं एकेंद्रियपर्य्याप्तक। बितिच पनरापर्य्याप्तं। एकेंद्रियपर्य्याप्तयुतमागियुं द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय मनुष्यापर्य्याप्तयुतबंधस्थानमुमक्कुमदें तेंदोडे एकेंद्रियापर्य्याप्तयुतत्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानदोळु अपर्य्याप्तनाममं कळदु पर्य्याप्तोच्छ्वासपरघातत्रयमं कूडिदोडो पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमेकेंद्रियपर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कुं। मत्तमा पंचविंशतिप्रकृतिस्थानदोळु स्थावरपर्याप्तैकेंद्रियोच्छ्वासपरघातंगळं बं पंचप्रकृतिगळं कळेदु त्रसापर्य्याप्तद्वींद्रियसंहननांगोपांगंगळं बं पंचप्रकृतिगळं कूडिदोडो पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानं द्वींद्रियापर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु। मल्लि द्वींद्रियजातिनाममं तेगदु त्रींद्रियजातिनाममं कूडिदोडो पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानं त्रींद्रियापर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु। मल्लि त्रींद्रियजातिनाममं कळेदु चतुरिंद्रियजातिनाममं कूडिदोडो पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानं चतुरिंद्रियापर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु। मल्लि चतुरिंद्रियजातिनाममं कळेदु पंचेंद्रियजातिनाममं कूडिदोडो पंचविंशति प्रकृतिबंधस्थानं पंचेंद्रियपर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु। मल्लि तिर्य्यग्गतिनाममं कळेदु मनुष्यगतिनाममं कूडिदोडो पंचविंशति-

---

तन्नवध्रुवाद्यानुपूर्व्यांतप्रकृतिबंधत्रयोविंशतिकं। स्थावरापर्याप्ततिर्यग्गत्येकेंद्रिययुतं तदेकेंद्रियापर्याप्तयुतं
१
२३ ए अ। तत्रापर्याप्तमपनीय पर्याप्तोच्छ्वासपरघातेषु निक्षिप्तेषु पंचविंशतिकमेकेंद्रियपर्याप्तयुतं। पुनः
१
स्थावरपर्याप्तैकेंद्रियोच्छ्वासपरघातान् पंचापनीय त्रसपर्याप्तद्वींद्रियसंहननांगोपांगेषु पंचसु निक्षिप्तेषु तद्द्वींद्रियापर्याप्तयुतं पुनः द्वींद्रियमपनीय त्रींद्रिये निक्षिप्ते तत्त्रींद्रियापर्याप्तयुतं, पुनःत्रींद्रियमपनीय चतुरिंद्रिये निक्षिप्ते तच्चतुरिंद्रियापर्याप्तयुतं पुनः चतुरिंद्रियमपनीय पंचेंद्रिये निक्षिप्ते तत्पंचेंद्रियापर्याप्तयुतं। पुनः

नामकर्मके एक जीवके एक समयमें बन्धयोग्य बन्धस्थान कहते हैं—

पूर्वोक्त नौ ध्रुवबन्धी आदि आनुपूर्वी पर्यन्त तेईस प्रकृतियाँ। इनमें-से स्थावर, अपर्याप्त, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति सहित जो बन्ध है वह एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित तेईसका बन्धस्थान है। २३ ए. अ.। इसमें अपर्याप्त प्रकृति घटाकर पर्याप्त, उच्छ्वास, परघात
१
मिलानेपर एकेन्द्रिय पर्याप्तयुत पच्चीसका बन्धस्थान होता है। इनमें-से स्थावर, पर्याप्त, एकेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास, परघात इन पाँचको घटाकर त्रस अपर्याप्त, दो इन्द्रिय जाति, सृपाटिका संहनन, औदारिक अंगोपांग मिलानेपर दो-इन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान होता है। इनमें-से दोइन्द्रिय जाति घटाकर तेइन्द्रिय जाति मिलानेपर तेइन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीसका बन्धस्थान होता है। इनमें-से तेइन्द्रिय जाति घटाकर चौइन्द्रिय जाति मिलानेपर चौइन्द्रिय जाति सहित पच्चीसका स्थान होता है। इनमें-से चौइन्द्रिय जाति घटाकर पंचेन्द्रिय जाति मिलानेपर पंचेन्द्रिय अपर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान होता है। इनमें-से तिर्यंचगति घटाकर मनुष्यगति मिलानेपर मनुष्य अपर्याप्तयुत पच्चीसका स्थान होता है। ऐसे पच्चीस प्रकृतिरूप छह बन्धस्थान हुए।

प्रकृतिबंधस्थानं मनुष्यापर्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु । २५ । ए । प । बिति च प म । अ । मी मनुष्यापर्य्याप्त पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानद मेलण षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानं एकेंद्रियपर्य्याप्तं एकेंद्रियपर्य्याप्तयुतमेयक्कुमें तेंदोडे मनुष्यापर्य्याप्तयुतपंचविंशतिप्रकृतिस्थानदोळु त्रसापर्य्याप्त मनुष्यगतिपंचेंद्रिय जातिसंहननांगोपांगगळेंब षट्प्रकृतिगळं कळेदु स्थावरपर्य्याप्ततिर्य्यंग्गति-
५ एकेंद्रियजाति उच्छ्वासपरघातगळेंब षट्प्रकृतिगळुमनातपनाममुमिंतेळ्दं प्रकृतिगळं कूडिदोडी षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमेकेंद्रियपर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु । मल्लि आतपनाममं कळेदुद्योतनाममं कूडिदोडी षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुमेकेंद्रियपर्य्याप्तयुतबंधस्थानमक्कु । २६ । ए । प । मी एकेंद्रियपर्य्याप्तयुत षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानद मेलणष्टाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानं सुरनरकगतिम्यां संयुक्तं देवगतिनरकगतिगळिंदं कूडिदुदक्कुमदें तेंदोडे तैजसद्विकमुमगुरुलघुद्विकमुं
१० वर्णचतुष्कमुं निर्म्माणनाममुमेंब नव ध्रुवबंधप्रकृतिगळुं त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरंगळुं स्थिरास्थिरंगळोळेकतरमुमं शुभाशुभंगळोळेकतरमुं सुभगमुमादेयमुं यशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्तिगळोळेकतरमुं देवगतियुं पंचेंद्रियजातियुं वैक्रियिकशरीरमुं प्रथमसंस्थानमुं देवगत्यानुपूर्व्यमुं वैक्रियिकशरीरांगोपांगमुं सुस्वरमुं प्रशस्तविहायोगतियुमुच्छ्वासमुं परघातमुमितु देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमक्कुं । मत्तं नव ध्रुवबंधप्रकृतिगळुं त्रसबादरपर्य्याप्तप्रत्येकशरीरास्थिरा-
१५ शुभदुर्भगानादेयायशस्कीर्त्तिनरकगतिपंचेंद्रियजातिवैक्रियिकशरीरहुंडसंस्थान नरकगत्यानुपूर्व्य-

तिर्यग्गतिमपनीय मनुष्यगतौ निक्षिप्तायां तन्मनुष्यापर्याप्तयुतं २५ ए प वि ति च प म अ । तत्र त्रसापर्याप्तमनुष्यगतिपंचेंद्रियसंहननांगोपांगानि षडपनीयस्थावरपर्याप्ततिर्यग्गत्येकेंद्रियोच्छ्वासपरघातेषु षट्स्वातपे च निक्षिप्तेषु षड्विंशतिकमेकेंद्रियपर्याप्तयुतं । पुनः आतपमपनीयोद्योते निक्षिप्तेऽपि तदेव २६ ए प । अष्टाविंशतिकं तु नवध्रुवत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरैकतरशुभाशुभैकतरसुभगादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्येकतरदेव-
२० गतिपंचेंद्रियवैक्रियिकप्रथमसंस्थानदेवगत्यानुपूर्व्यवैक्रियिकांगोपांगसुस्वरप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासपरघातं तद्देवगतियुतं नवध्रुवत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकास्थिराशुभदुर्भगानादेययशस्कीर्तिनरकगतिपंचेंद्रियवैक्रियिकशरीरहुंडसंस्थाननरकगत्यानुपूर्व्यवैक्रियिकांगोपांगदुःस्वराप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासपरघातं तन्नरकगतियुतं २८ दे नि ।

फिर मनुष्यगति सहित पच्चीसके स्थानमें त्रस, अपर्याप्त, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सृपाटिका संहनन, औदारिक अंगोपांग ये छह प्रकृतियाँ घटाकर स्थावर, पर्याप्त,
२५ तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, उच्छ्वास, परघात, और आतपको मिलानेपर एकेन्द्रिय पर्याप्तयुत छब्बीसका स्थान होता है । इनमें-से आतप घटाकर उद्योत मिलानेपर भी एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित छब्बीसका बन्धस्थान होता है । इस तरह छब्बीस प्रकृतिरूप दो स्थान हुए ।

आगे अठाईस प्रकृतिरूप स्थान कहते हैं—

नौ ध्रुवबन्धी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिरमें-से एक, शुभ-अशुभमें-से
३० एक, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्तिमें-से एक । देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, प्रथम संस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक अंगोपांग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, परघात इन अट्ठाईसरूप देवगति सहित अठाईसका बन्धस्थान होता है । पुनः नौ ध्रुवबन्धी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति,

वैक्रियिकशरीरांगोपांग दुःस्वराप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वास परघातगळेंदी नरकगतियुताष्टाविंशति-प्रकृतिबंधस्थानमक्कुं । २८ । दे । नि ॥

अल्लिंद मेलण एकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुं त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुमेंबी रडे येरडुं स्थानंगळु पर्य्याप्तक बिति च प मनुष्यदेवगतिसंयुते पर्य्याप्तक द्वींद्रिय त्रींद्रियचतुरिंद्रिय पंचेंद्रियजातिमनुष्यगतिदेवगतियुतबंधस्थानंगळप्पुवुदेंतेंदोडे नवध्रुवबंधप्रकृतिगळुं त्रसबादर-पर्य्याप्त प्रत्येकशरीरं स्थिरास्थिरंगळोळेकतरमुं शुभाशुभंगळोळेकतरमुं दुर्भगमुमनादेयमुं यश-स्कीर्त्ययशस्कीर्त्तिगळोळेकतरमुं तिर्य्यग्गतियुं द्वींद्रियजातियुं औदारिकशरीरमुं हुंडसंस्थानमुं तिर्य्यग्गत्यानुपूर्व्यमुमसंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुमौदारिकांगोपांगमुं दुःस्वरमुमप्रशस्तविहायोगतियु-मुच्छ्वासमुं परघातमुमेंबिवु पर्य्याप्तद्वींद्रिययुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमल्लि द्वींद्रिय-जातिनाममं कळेदु त्रींद्रियजातियं कूडुत्तं विरलदु पर्य्याप्तत्रींद्रियजातिनामयुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृति-बंधस्थानमक्कुमल्लि त्रींद्रियजातिनाममं कळेदु चतुरिंद्रियजातिनाममं कूडुत्तं विरलदु पर्य्याप्त-चतुरिंद्रियजातिनामकर्म्मयुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमल्लि चतुरिंद्रियजातिनाममं कळेदु पंचेंद्रियजातिनाममं कूडुत्तं विरलदु पर्य्याप्तपंचेंद्रियजातियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमा

एकान्नत्रिंशत्कं च नवध्रुवत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरैकतरशुभाशुभैकतरदुर्भगानादेययशस्कीर्त्ययशस्की-र्त्येकतरतिर्यग्गतिद्वींद्रियौदारिकशरीरहुंडसंस्थानतिर्यग्गत्यानुपूर्व्यासंप्राप्तासृपाटिकौदारिकांगोपांगदुःस्वराप्रशस्त-विहायोगत्युच्छ्वासपरघातं तस्य द्वींद्रिययुतं । तत्र द्वींद्रियमपनीय त्रींद्रिये निक्षिप्ते तत्पर्याप्तत्रींद्रिययुतं । पुनः त्रींद्रियमपनीय चतुरिंद्रिये निक्षिप्ते तत्पर्याप्तचतुरिंद्रिययुतं । पुनः चतुरिंद्रियमपनीय पंचेंद्रिये निक्षिप्ते तत्पर्याप्तपंचेंद्रिययुतं । अत्र स्थिरास्थिरशुभाशुभसुभगदुर्भगादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तिषट्संस्थानषट्संहनन-सुस्वरदुःस्वरप्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्येकतरमिति विशेषः । तत्र तिर्यग्गतितदानुपूर्व्ये अपनीय मनुष्यगतितदानु-

---

नरकगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, हुण्डक संस्थान, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक अंगोपांग, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, परघात ये नरकगति सहित अट्ठाईसका बन्धस्थान होता है। ये दो अट्ठाईसके बन्धस्थान हुए। नौ ध्रुवबन्धी, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिरमें-से एक, शुभ-अशुभमें-से एक, दुर्भग, अनादेय, यशःकीर्ति-अयशः-कीर्तिमें-से एक, तिर्यंचगति, दोइन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, हुण्डक संस्थान, तिर्यंचानु-पूर्वी, सृपाटिका संहनन, औदारिक अंगोपांग, दुःस्वर, अप्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, परघात, ये दो इन्द्रिय पर्याप्तयुत उनतीसका स्थान है।

इनमें-से दोइन्द्रियजाति घटाकर तेइन्द्रिय जाति मिलानेसे तेइन्द्रिय पर्याप्त सहित उनतीसका स्थान होता है। इनमेंसे तेइन्द्रिय जाति घटाकर चौइन्द्रिय जाति मिलानेपर चौइन्द्रिय पर्याप्त सहित उनतीसका स्थान होता है। उनमें-से चौइन्द्रिय जाति घटाकर पंचेन्द्रिय जाति मिलानेपर पंचेन्द्रिय पर्याप्त सहित उनतीसका स्थान होता है। किन्तु यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, सुस्वर-दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति इनमें-से कोई एक-एक प्रकृति ग्रहण करना। इन उनतीसमें-से तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी घटाकर मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी मिलानेपर पर्याप्त मनुष्य सहित उनतीसका स्थान होता है। पुनः नौ ध्रुवबन्धी,

स्थानदोळु स्थिरास्थिर शुभाशुभ सुभगदुर्भगादेयानादेययशस्कोत्ययशस्कीर्ति संस्थानषट्क संहनन-षट्कसुस्वरदुःस्वर प्रशस्ताप्रशस्त विहायोगतिगळोळेकतरबंधमक्कुमेंदी विशेषमरियल्पडुगुं ।

अपर्य्याप्तपंचेंद्रियजातियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळु तिर्य्यंग्गतितिर्य्यंग्गत्यानुपूर्व्यमं कळेदु मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्व्यमं कूडुत्तं विरलु पर्य्याप्तमनुष्यगतियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृति-बंधस्थानमक्कुं । मत्तं नवध्रुवप्रकृतिगळुं त्रसबादर-पर्य्याप्त-प्रत्येकशरीरंगळुं स्थिरास्थिरदोळेकतरमुं शुभाशुभदोळेकतरमुं सुभगमुमादेयमुं यशस्कोत्ययशस्कीर्त्तिगळोळेकतरमुं देवगतियुं पंचेंद्रियजातियुं वैक्रियिकशरीरमुं प्रथमसंस्थानमुं देवगत्यानुपूर्व्यमुं वैक्रियिकांगोपांगमुं सुस्वरमुं प्रशस्तविहायोग-तियुमुच्छ्वासमुं परघातमुं तीर्त्थकरमुमेंबी देवगतियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमदं मनुष्या-संयतादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु यथायोग्यरु कट्टुवरु । २९ ॥ प । त्रि । ति । च । प । म । दे ॥

अपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियजातियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळुद्योत-नाममं कूडिकोळुत्तं विरलापर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रिययुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळु यथाक्रमदिंनप्पुवु । मनुष्यगतियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळु तीर्त्थमं कूडिकोळुत्तं विरलु देवनारकासंयतसम्यग्दृष्टिगळु कट्टुव मनुष्यगतियुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमल्लिस्थिरास्थिर शुभाशुभ यशस्कोर्त्ययशस्कोर्त्तिसुभगदुर्भगंगळोळेकतरयुतमेंबी विशेषमरियल्पडुगुं । मत्तं देवगति-युतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळु तीर्त्थंकर नाममं कळेदाहारकद्वयमं कूडिकोळ्ळुत्तिरलु देवगति-युतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुमदनप्रमत्तसंयतने कट्टुगुं । ३० । प । त्रि । ति । च । प । म । दे । सुरगतियुतं एकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानं देवगतियुतबंधस्थानमेयक्कुमदें तेंदोडे देवगतियुं तीर्त्थंकर-

---

पूर्व्यनिक्षेपे तत्पर्याप्तमनुष्यगतियुतं । पुनः नवध्रुवत्रसबादरपर्याप्तप्रत्येकस्थिरास्थिरैकतरशुभाशुभैकतरसुभगा-देययशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्येकतरदेवगतिपंचेंद्रियवैक्रियिकशरीरप्रथमसंस्थानदेवगत्यानुपूर्व्यवैक्रियिकांगोपांगसुस्वरप्रश-स्तविहायोगत्युच्छ्वासपरघाततीर्थकरं तद्देवगतियुतं मनुष्यासंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनो बध्नंति प २९ वि ति च प म दे । एतेष्वाद्यानि चत्वार्युद्योतयुतानि पर्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रिययुतं त्रिंशत्कानि । मनुष्य-गत्येकान्नत्रिंशत्कं तीर्थयुतं देवनारकासंयतबंधयोग्यं मनुष्यगतित्रिंशत्कं स्यात् । तच्च स्थिरास्थिरशुभाशुभयश-स्कीर्त्ययशस्कीर्तिसुभगदुर्भगैकतरयुतमिति विशेषः । पुनः देवगत्येकान्नत्रिंशत्कं तीर्थमपनीयाहारकद्वययुतं देव-

---

त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर-अस्थिरमें-से एक, शुभ-अशुभमें-से एक, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति-अयशकीर्तिमें-से एक, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, प्रथम संस्थान, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिक अंगोपांग, सुस्वर, प्रशस्तविहायोगति, उच्छ्वास, परघात, तीर्थंकर, इनरूप देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसका स्थान होता है। इसका बन्ध असंयत आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही करता है। इस प्रकार उनतीस प्रकृतिरूप छह स्थान कहे।

दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत उनतीसके स्थानमें उद्योत प्रकृति मिलानेपर दोइन्द्रिय सहित तीसका, तेइन्द्रिय सहित तीसका, चौइन्द्रिय सहित तीसका और पंचेन्द्रिय सहित तीसका बन्धस्थान होता है। पर्याप्त मनुष्य सहित उनतीसके स्थानमें तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर असंयत सम्यग्दृष्टी देव व नारकीके बन्धयोग्य मनुष्यगति सहित तीसका बन्धस्थान होता है। इतना विशेष है कि यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-

नाममुं युतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळु आहारकद्वयमं कूडिकोळुत्तं विरलवुवु मप्रमत्तसंयतं देवगतियुतभागि कट्टुव युगपत्तीर्थाहारयुतैकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमक्कुं। ३१। सु। एक प्रकृतिबंधस्थानं अगतियुतं आवगतियुतबंधस्थानमल्लेकें दोडे अपूर्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं गतियुतबंधस्थानंगळप्पुवु। तद्गुणस्थानचरमभागमादियागि सूक्ष्मसांपराय चरमसमयपर्य्यंतं बंधमागुत्तिर्द्द यशस्कीर्त्तिनामप्रकृतियो दे गतियुतमल्लद बंधस्थानमक्कुं १। उक्तार्थं समुच्चय संदृष्टि :— ५

१							
३१	सु	तीर्थ - आहा २			उद्यो तिर्य्य	ती	आहा
३०	प	बि	ति	च	पं	म	दे
२९	प	बि	ति	च	पं	म	दे
२८	दे	णि			तिर्य्यं		तीर्थं
२६	प	ए					
२५	प	ए	अ प	बि	ति	च	पं	म
२३	अ	ए					

अनंतरमी बंधस्थानंगळ्गे संभविसुव भंगंगळं पेळ्दपरु :—

संठाणे संघडणे विहायजुम्मे य चरिमछज्जुम्मे ।
अविरुद्धेक्कदरादो बंधट्ठाणेसु भंगा हु ॥५३२॥

संस्थाने संहनने विहायो युग्मे च चरमषडयुग्मे । अविरुद्धैकतरतो बंधस्थानेषु भंगाः खलु ॥ १०

गतित्रिंशत्कं स्यात्। तच्चाप्रमत्तो बध्नाति ३० प वि ति च प म दे। पुनः देवगतितीर्थयुतैकान्नत्रिंशत्कं आहारकद्वययुतं अप्रमत्तबंधयोग्यं एकत्रिंशत्कं स्यात् ३१ सु। एकमगति अपूर्वकरणषष्ठभागादासूक्ष्मसांपरायांता बध्नंति ॥५३१॥ एवं नामबंधस्थानान्युक्त्वा तद्भंगानाह—

अयशःकीर्ति, सुभग-दुर्भगमें-से कोई एक प्रकृति सहित स्थान होता है। देवगति सहित उनतीसके स्थानमें तीर्थंकर प्रकृति घटाकर आहारकद्विक मिलानेसे देवगति सहित तीसका स्थान होता है। इसे अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती बाँधता है। इस तरह तीस प्रकृतिरूप छह स्थान हुए। १५

देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसके स्थानमें आहारकद्विक मिलानेपर अप्रमत्तके बन्धयोग्य देवगति सहित इकतीसका स्थान होता है। इस प्रकार अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त बन्धयोग्य इकतीस प्रकृतिरूप एक स्थान है। एक यशःकीर्ति प्रकृतिरूप एक स्थान है। उसे अपूर्वकरणके सातवें भागसे सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त जीव बाँधते हैं। ऐसे नामकर्मके बन्धस्थान कहे ॥५३०-५३१॥ २०

संस्थानषट्कदोळं संहननषट्कदोळं विहायोगतियुग्मदोळं स्थिरशुभ सुभग आदेय यशस्कीर्त्तिस्वरनाममें ब चरमषड्युग्मंगळोळमविरुद्धैकतरप्रकृतिग्रहणविदं बंधस्थानंगळोळु भंगंगळप्पुवें दक्षसंचारविधानमं कटाक्षिसि स्थानंगळोळु भंगंगलुत्पत्तिक्रममं पेळ्दपरदेतें दोडे :—

यशस्कीर्त्ययंयशस्कीर्त्ति	१	१			
आदेयानादेय	१	१			
सुस्वरदुस्वर	१	१			
सुभगदुर्भग	१	१			
शुभाशुभ	१	१			
स्थिरास्थिर	१	१			
प्रशस्ताप्रशस्त वि	१	१			
संहनन	१	१	१	१	१
संस्थान	१	१	१	१	१

षट् स्थानानि षट् संहननानि विहायोगतियुग्मं प्रत्येकस्थिरशुभसुभगादेययशस्कीर्तियुग्मानि चोपर्युपरि

५ नामकर्मके बन्धस्थानोंका यन्त्र

तेईसका स्थान १	
एकेन्द्रिय अपर्याप्तयुत	२३
पच्चीसके स्थान ६	
१ एकेन्द्रिय पर्याप्तयुत	२५
२ दोइन्द्रिय अपर्याप्तयुत	२५
३ तेइन्द्रिय अपर्याप्तयुत	२५
४ चौइन्द्रिय अपर्याप्तयुत	२५
५ पंचेन्द्रिय अपर्याप्तयुत	२५
६ मनुष्य अपर्याप्तयुत	२५
छब्बीसके स्थान २	
१ एकेन्द्रिय पर्याप्त आतपयुत	२६
२ एकेन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत	२६
अठाईसके स्थान २	
१ देवगतियुत	२८
२ नरकगतियुत	२८
उनतीसके स्थान ६	
१ दोइन्द्रिय पर्याप्तयुत	२९
२ तेइन्द्रिय पर्याप्तयुत	२९
३ चौइन्द्रिय पर्याप्तयुत	२९
४ पंचेन्द्रिय पर्याप्तयुत	२९
५ मनुष्य पर्याप्तयुत	२९
६ देवतीर्थयुत	२९
तीसके स्थान ६	
१ दोइन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत	३०
२ तेइन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत	३०
३ चौइन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत	३०
४ पंचेन्द्रिय पर्याप्त उद्योतयुत	३०
५ मनुष्य तीर्थयुत	३०
६ देव आहारकयुत	३०
इकतीसका स्थान १	
१ देव आहारक तीर्थयुत	३१
एकका स्थान १	
१ यशस्कीर्ति	१

ई नवस्थानंगळोळक्षमं प्रत्येकमिरिसि "पढमक्खो अंतगवो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो। दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो॥" एंदितु जीवकांडदोळु प्रमत्तसंयतंगे प्रमादविकल्पंगळं पेळ्दल्लि पेळ्दंते भंगंगळु तरल्पडुवंतु तरल्पडुत्तिरलु संस्थानषट्कमं संहनन-षट्कदिं गुणिसि। ६। ६। लब्धभूत षट्त्रिंशद् भंगंगळं ३६। सप्तद्विकंगळिदं। २। २। २। २। २। २। २। गुणिसिदोडे। ३६। १२८। अष्टोत्तरषट्छताधिक चतुः सहस्रप्रमितभंगंगळु ४६०८ अप्पुवु। इवरोळु नरकगतियुतबंधस्थानदोळं सर्व्वापर्य्याप्तयुतस्थानंगळोळमेनितेनितु भंगंगळु संभविसुगुमेंदडे पेळ्दपरु :—

तत्थासत्थो णारयसव्वापुण्णेण होदि बंधो दु।
एक्कदराभावादो तत्थेक्को चेव भंगो दु ॥५३३॥

तत्राशस्तो नारकसर्व्वाऽपूर्ण्णेन भवति बंधस्तु। एकतराभावात्तत्रैकश्चैव भंगस्तु॥

तत्र तेषु मध्ये आ बंधस्थानंगळोळु नारकसर्व्वापूर्ण्णेन नरकगतिनामकर्म्मंदोडनेयुं तु मत्ते त्रसस्थावरयुतसर्व्वापूर्ण्णेन सर्व्वापर्य्याप्तदोडनेयुं बंधः बंधं अशस्तो भवति अप्रशस्तमेयक्कुमेकंदोडे एकतराभावात् इतरप्रतिपक्षे[1] प्रकृतिबंधाभावमक्कुमप्पुदरिंदमदु कारणदिंदं तत्रैकश्चैव भंगस्तु आ नरकगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानदोळं सर्व्वत्रसस्थावरापर्य्याप्तयुतत्रयोविंशति-पंचविंशति प्रकृतिबंधस्थानंगळोळं तु मत्ते एकभंगमेयक्कुं २३। २५ अदु कारणमागि मुंपेळ्देक
१ १
चत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु बंधविवक्षेयिंदं भाविभवजातकर्म्मपदंगळमूवत्तारप्पुववरोळु नरकगति-युताष्टाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमोदेयक्कुमदक्के भंगमुमोंदेयक्कुं २८। १ एकेंद्रियभेदंगळप्प
१

संस्थाप्य अविरुद्धैकतरग्रहणाद् बंधस्थानेषु खल्वष्टाग्रषट्छताधिकचतुःसहस्रीं भंगा भवंति ४६०८॥५३२॥
अत्र नरकगतियुतस्य सर्वापर्याप्तयुतानां च कतीति चेदाह—

तत्र प्रशस्ताप्रशस्तबंधमध्ये नरकगत्या त्रसस्थावरयुतसर्वापर्याप्तेन च बंधः, अप्रशस्त एव स्यात्

इन नामकर्मके बन्धस्थानोंके भंग कहते हैं—

छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, आदेय, यशः-कीर्तिके युगल, इन सबको ऊपर-ऊपर स्थापित करके अविरुद्ध एक-एकका ग्रहण करें; क्योंकि इनमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। अतः ६×६×२×२×२×२×२×२×२ इनको परस्परमें गुणा करनेपर चार हजार छह सौ आठ भंग होते हैं।

भावार्थ यह है कि प्रकृतिके बदलनेसे भंग होता है। जैसे प्रथम संस्थान सहित स्थान कहा। पीछे दूसरे सहित कहा। इस तरह एक-एक प्रकृतिके बदलनेसे भंग होते हैं॥५३२॥

उन प्रशस्त और अप्रशस्त बन्धरूप प्रकृतियोंमें-से नरकगतिके साथ हुण्डक संस्थान अप्रशस्त विहायोगति आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है। इसी प्रकार त्रसस्थावर सहित अपर्याप्तके साथ दुर्भग-अनादेय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है। क्योंकि इनमें बन्धयोग्य प्रकृतिकी प्रतिपक्षी प्रकृतिका बन्ध नहीं है। संस्थान आदिमें-से

---

१. क °पक्षप्रशस्त प्र°।

कर्म्मपदंगळोळपर्य्याप्तयुतत्रयोविंशति प्रकृतिबंधस्थानं प्रत्येकमो दोदरोळेकैकभंगमेयक्कुं। त्रसापर्य्याप्तयुत द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियासंज्ञि संज्ञि मनुष्यगतियुतापर्य्याप्तयुतषट्कर्म्मपदंगळोळं प्रत्येकं पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमक्कुं। भंगमुमेकमेयक्कुमें बुदत्थं ॥

तत्थासत्थं एदि हु साहारणथूलसव्वसुहुमाणं ।
पज्जत्तेण य थिरसुहजुम्मेक्कदरं तु चदुभंगा ॥५३४॥

तत्राशस्तमेति खलु साधारणस्थूलसर्व्वसूक्ष्माणां। पर्य्याप्तेन च स्थिरशुभयुग्मैकतरं तु चतुर्भंगाः ॥

तत्र आ एकेंद्रियभेदंगळोळु साधारणस्थूलसर्व्वसूक्ष्माणां पर्य्याप्तेन च साधारणवनस्पतिबादरपर्य्याप्तदोडनेयं सर्व्वसूक्ष्मंगळपर्य्याप्तदोडनेयुं बंधमप्प पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानपंचकं अशस्तमेति खलु अप्रशस्तप्रकृतिबंधमनेय्दुगुमंतेय्दुवडं तु मत्ते विशेषमुंटदावुदें दोडे स्थिरशुभयुग्मैकतरं स्थिरास्थिरशुभाशुभयुगमंगळोळेकतरप्रकृतिबंधमनेय्दुगुमदु कारणमागि चतुर्भंगाः नाल्कु भंगंगळप्पुवु २५ ४ यितु साधारणबादरवनस्पतिपर्य्याप्तयुत पंचविंशति प्रकृतिबंधस्थानदोळं पृथ्व्यप्तेजोवायुधारणंगळ सूक्ष्मपर्य्याप्तयुतपंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानपंचकदोळं नाल्कु नाल्कु भंगंगळप्पुवें बुदत्थं ॥

कुतः ? एकतरप्रतिपक्षबंधाभावात्। तेन प्रागुक्तैकचत्वारिंशत्पदेषु नरकगतियुताष्टाविंशतिकेषु एकेंद्रियापर्याप्तयुतैकादशत्रयोविंशतिकेषु, त्रसापर्याप्तयुतषट्पंचविंशतिकेषु चैकैक एव भंगः स्यात् ॥५३३॥

तत्र तेषु एकेंद्रियभेदेषु साधारणवनस्पतिबादरपर्याप्तेन सर्वसूक्ष्माणां पर्याप्तेन च पंचविंशतिकं खलु अप्रशस्तं बंधमेति तेन स्थिरशुभयुग्मयोरेकैकप्रकृतिबंधाच्चत्वारो भंगा भवंति २५ । ४ साधारणबादरवनस्पतिपर्याप्तयुतपंचविंशतिके पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणानां सूक्ष्मपर्याप्तयुतपंचविंशतिकपंचके च चत्वारो भंगा भवंतीत्यर्थः ॥५३४॥

जिसका बन्ध होता है उसी एक-एक प्रकृतिका ही बन्ध होता है। अतः पूर्वमें कहे इकतालीस पदोंमें-से नरकगति सहित अट्ठाईसके स्थानमें और एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित ग्यारह पदोंके तेईस बन्धक स्थानोंमें तथा त्रस सहित छह पदोंके अपर्याप्त सहित पच्चीसके स्थानोंमें एक-एक ही भंग होता है ॥५३३॥

उन एकेन्द्रियके ग्यारह भेदोंमें-से साधारण वनस्पति बादरपर्याप्त और सब सूक्ष्मोंके पर्याप्त सहित पच्चीसके बन्धस्थानमें अप्रशस्तका ही बन्ध होता है। किन्तु स्थिर और शुभके युगलमें-से एक-एक प्रकृतिका ही बन्ध होता है। अर्थात् स्थिर-अस्थिरमें-से या तो स्थिरका ही बन्ध होता है या अस्थिरका ही बन्ध होता है। इसी तरह शुभ-अशुभमें-से या तो शुभका ही बन्ध होता है या अशुभका ही बन्ध होता है। इससे साधारण, बादर, वनस्पति पर्याप्त सहित पच्चीसके स्थानमें और पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारणके सूक्ष्म पर्याप्त सहित पच्चीसके पाँच स्थानोंमें उक्त दो युगलोंके चार-चार भंग होते हैं ॥५३४॥

---

१. | २३ | २५ |
| --- | --- |
| १ | १ |

पुढवी आऊ तेऊ वाऊ पत्तेय वियलसण्णीणं ।
सत्तेण असत्थं थिरसुहजसजुम्मट्ठभंगा हु ॥५३५॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकविकलासंज्ञिनां । शस्तेनाशस्तं स्थिरशुभयशोयुग्माष्ट भंगाः खलु ॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पति द्वींद्रियत्रींद्रिय चतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियंगळ अविरुद्ध भावि भवजातंगळ पंचविंशति षड्विंशत्येकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळ । २५ । २६ । २९ । ३० । शस्तेनाशस्तं बंधमेति त्रसबादरपर्याप्तादि यथायोग्यप्रशस्तप्रकृतियोडने दुर्भगानादेयाद्यप्रशस्तप्रकृतियुं बंधनेय्दुगुमंतेय्दिवोडं स्थिरशुभयशोयुग्माष्टभंगाः खलु स्थिरास्थिरशुभाशुभयशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्तियुग्मत्रयैकतरबंधकृतभंगंगळ्गे टेंटप्पुवु २५ | २६ | २९ | ३० (८ | ८ | ८ | ८) यितु पृथ्वीकायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशति प्रकृतिबंधस्थानमुं आतपयुतषड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुमुद्योतयुत षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुमप्कायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशतिप्रकृति-बंधस्थानमुमुद्योतयुत-षड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं तेजस्कायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं वायुकायबादरपर्याप्तयुत पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं प्रत्येकवनस्पतिपर्याप्तयुत पंचविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुमुद्योतयुतषड्विंशतिप्रकृतिबंधस्थानमुं द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानद्वयंगळुमिविनितुमष्टाष्टभंगंगळनुळ्ळुवप्पुवे बुदर्त्थं ॥ शेषतिर्य्यंकपंचेंद्रियपर्याप्तयुतसंज्ञियोळं मनुष्यगतिपर्याप्तयुतमनुष्यकर्म्मभूमिजदोळमेकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळु भंगंगळं पेळ्दा भंगंगळु मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थानंगळोळिनितिनितु भंगंगळें बु पेळ्दपरु :—

पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिद्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियाणामविरुद्धभाविभवजातपंचविंशतिकषड्विंशतिकैकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्कानां त्रसबादरपर्याप्तादियथायोग्यप्रशस्तदुर्भगानादेयाद्यप्रशस्तेन बंधमेति । तेन स्थिरशुभयशोयुग्मकृतभंगाः खल्वष्टावष्टौ भवंति २५ २६ २९ ३० । पृथ्वीकायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशतिकमातपयुत(८ ८ ८ ८)षड्विंशतिकं उद्योतयुतषड्विंशतिकं अप्कायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशतिकमुद्योतयुतषड्विंशतिकं तेजस्कायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशतिकं वायुकायबादरपर्याप्तयुतपंचविंशतिकं प्रत्येकवनस्पतिपर्याप्तयुतपंचविंशतिकं उद्योतयुत-

---

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक वनस्पति, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञि पंचेन्द्रिय जीवके भविष्यमें जिन भवोंमें जन्म ले सकते हैं उनके अनुकूल पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीसके बन्धस्थानोंमें त्रस-बादर पर्याप्त आदि यथायोग्य प्रशस्त और दुर्भग अनादेय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है। किन्तु स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इन तीन युगलोंमें-से एक-एकका बन्ध होता है।

अतः इन तीन युगलोंकी प्रकृति बदलनेसे आठ-आठ भंग होते हैं। अर्थात् पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसमें-से प्रत्येकके आठ भंग होते हैं। पृथ्वीकाय बादरपर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान, आतप अथवा उद्योत सहित छब्बीसका स्थान, अप्काय बादर पर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान अथवा उद्योत सहित छब्बीसका स्थान, तेजस्काय बादर पर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान, वायुकाय बादर पर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान, प्रत्येक वनस्पति

सण्णिस्स मणुस्सस्स य ओघेक्कदरं तु मिच्छभंगा हु ।
छादालसयं अट्ठ य बिदिये बत्तीससयभंगा ॥५३६॥

संज्ञिनो मनुष्यस्य च ओघे एकतरं तु मिथ्यादृष्टिभंगाः खलु । षट्चत्वारिंशच्छतमष्टौ च द्वितीये द्वात्रिंशच्छतभंगाः ॥

५ तिर्यंग्गतिपर्य्याप्तयुतसंज्ञिय येकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळमुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळं मनुष्यगतिपर्य्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुमें बिवरोळु । २९ । ३० । २९ । ओघे सामान्यषट्संस्थान षट्संहनन युग्म सप्तकंगळोळु एकतरं बंधमेति एकतरप्रकृतिबंधमनेय्दुगु मप्पुदरिंदं षट्चत्वारिंशच्छतमष्टौ च अष्टाधिक षट्छताधिक चतुःसहस्रमित भंगंगळप्पु–४६०८ । बबुं मिथ्यादृष्टिय भंगंगळप्पुवु । खलु स्फुटमागि । मि । ति । २९ । ३० । ४६०८ । ४६०८ ।

१० मि म । २९ यितु तिर्य्यंग्गतिपर्य्याप्तपंचेंद्रिययुतसंज्ञिकर्म्मपददोळुद्योतरहित सहितैकान्नत्रिंशत्रि- ४६०८
शत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळं मनुष्यगतिपर्य्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळं अष्टोत्तरषट्छताधिकचतुःसहस्रप्रमितभंगंगळप्पुववु । मिथ्यादृष्टियोळेयप्पुवें बुदत्थं । मनुष्यगतियुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानं देवनारकासंयतसम्यग्दृष्टिगळु तीर्त्थयुतमागि कट्टुव स्थानमप्पुदरिंद मिथ्यादृष्टिस्थानभंगंगळोळु पेळल्पडदु । मुंदे यसंयतसम्यग्दृष्टियोळु पेळ्दपरु :—

---

१५ षड्विंशतिकं द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्कं त्रिंशत्कानि चेति सर्वाण्यष्टाष्टभंगानीत्यर्थः ॥५३५॥ शेषतिर्यक्पंचेंद्रियपर्याप्तयुतसंज्ञिकर्मपदे मनुष्यगतिपर्याप्तयुतमनुष्यकर्मपदे चैकान्नत्रिंशत्कत्रिंशत्कयोर्भंगान् वक्तुं गुणस्थानेषु विभजयति—

तिर्यग्गतिपर्याप्तयुतसंज्ञिनः एकान्नत्रिंशत्कोद्योतयुतत्रिंशत्कयोः मनुष्यगतिपर्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्के च सामान्यषट्संस्थानषट्संहननसप्तयुग्मेष्वेकतरबंधमेतीति तेषु खल्वष्टाग्रषट्चत्वारिंशच्छतानि भंगा भवंति । ते
२० च मिथ्यादृष्टेरेव—मिति २९ ३० मि म २९ । मनुष्यगतियुतत्रिंशत्कं तु तीर्थयुतमसंयतदेवनाराकाणामेव
४६०८ ४६०८ ४६०८

पर्याप्त सहित पच्चीसका स्थान अथवा उद्योत सहित छब्बीसका स्थान, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त सहित उनतीस और तीसका स्थान, इन सबमें आठ-आठ भंग होते हैं ॥५३५॥

शेष तिर्यंच पंचेन्द्रिय पर्याप्त सहित संज्ञी कर्मपदमें और मनुष्यगति पर्याप्तयुत मनुष्य-
२५ कर्मपदमें उनतीस और तीसके स्थानोंके भंग कहनेके लिए गुणस्थानोंमें विभाग करते हैं—

तिर्यंचगति पर्याप्त सहित संज्ञीके उनतीसके स्थानमें और उद्योत सहित तीसके स्थानमें तथा मनुष्यगति पर्याप्त सहित उनतीसके स्थानमें सामान्य छह संस्थान, छह संहनन और विहायोगति आदि सात युगलोंमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। अतः छह संस्थान आदिमें-से एक-एकके बदलनेसे पूर्वोक्त एक-एक स्थानमें ६×६×२×२×२×२×२×२×
३० २ = ४६०८ छियालीस सौ आठ भंग होते हैं। ये भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होते हैं।

सासादनंगुद्योतनामकर्म्मबंधमुंटप्पुदरिंदमुद्योतरहितसहितैकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळं द्वात्रिंशच्छत प्रमितभंगंगळप्पुवें तेंदोडे मिथ्यादृष्टियोळु हुंडसंस्थानमुं मसंप्राप्तसृपाटिकासंहननमुं बंधव्युच्छिन्नंगळादुवप्पुदरिंदं पंचपंचसंस्थानसंहननंगळिंदं सप्तद्विकंगळिंदं संजातभंगंगळु ५।५।१२८। गुणिसिदोडे तावन्मात्रंगळेयप्पुवप्पुदरिंदं। सा २९।३० ३२००।३२०० मत्तमा सासादनन मनुष्यगति पंचेंद्रियपर्य्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळं तावन्मात्र भंगंगळेयप्पुवु— ५

सा २९
३२००

अनंतरं मिश्रगुणस्थानादिगळोळु पेळ्दपरु :—

मिस्साविरदमणुस्सट्ठाणे मिच्छादिदेवजुदठाणे ।
सत्थं तु पमत्तंते थिरसुहजसजुम्मगट्ठभंगा हु ॥५३७॥

मिश्राविरतमनुष्यस्थाने मिथ्यादृष्टादिदेवयुतस्थाने। शस्तं तु प्रमत्तांते स्थिरशुभयशोयुग्माष्टभंगाःखलु ॥ १०

देवनारकगतिजमिश्रासंयतगुणस्थानवर्त्तिगळु पर्य्याप्तमनुष्यगतियुतैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमं कट्टुवरंता स्थानदोळं मत्तं देवनारकगतिजाऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळु मनुष्यगतिपर्य्याप्ततीर्थयुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमं कट्टुवरन्ता स्थानदोळं स्थिरशुभयशोयुग्माष्टभंगंगळेयप्पुवेकें दोडे सासादननोळु दुर्भगदुःस्वरानादेयाप्रशस्तत्रिहायोगति चतुःप्रतिपक्षप्रकृतिगळ्गे बंधव्युच्छित्तिया-

---

बंधान्मिथ्यादृष्टिस्थानभंगेषु नोक्तं। सासादनस्योद्योतरहितैकान्नत्रिंशत्के तद्युतत्रिंशत्के च पंचसंस्थानपंचसंहनन- १५
सप्तद्विककृताः द्वात्रिंशच्छतान्येव सा २९ ३०। सासादनस्य मनुष्यगतिपंचेंद्रियपर्याप्तयुतैकान्नत्रिंशत्केऽपि
३२०० ३२००
तावंतः सा २९ ॥५३६॥ अथ मिश्रगुणस्थानादिष्वाह—
३२००
देवनारकमिश्रासंयतयोः पर्याप्तमनुष्यगतियुतैकान्नत्रिंशत्के तद्द्वयासंयतस्य मनुष्यगतिपर्याप्ततीर्थयुत-

---

मनुष्यगति सहित तीसका स्थान तीर्थंकर सहित है। इसलिए उसका बन्ध असंयत सम्यग्दृष्टी देव नारकियोंमें ही होता है। इसलिए मिथ्यादृष्टिके बन्धस्थानके भंगोंमें इसे २०
नहीं कहा।

सासादनके उद्योत रहित उनतीसके स्थानमें और उद्योत सहित तीस के स्थानमें पाँच संस्थान, पाँच संहनन और सात युगलोंमें-से एक-एकका ही बन्ध होता है। अतः इनमें-से एक-एक प्रकृति बदलनेसे बत्तीस सौ-बत्तीस सौ भंग होते हैं। सासादनके मनुष्यगति पंचेन्द्रिय पर्याप्त सहित उनतीसके स्थानमें भी इसी प्रकार बत्तीस सौ भंग होते हैं ॥५३६॥

आगे मिश्र गुणस्थान आदिमें कहते हैं— २५

देव नारकी मिश्र और असंयत गुणस्थानवर्तीके पर्याप्त मनुष्यगति सहित उनतीसके स्थानमें तथा देव नारकी असंयत गुणस्थानवर्तीके मनुष्यगति पर्याप्त और तीर्थंकर सहित तीसके स्थानमें स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशकीर्ति-अयशस्कीर्ति इन तीन युगलोंमें-से किसी

दुवप्पुरिंदं शस्तप्रकृतिये बंधमनेय्दुगुमप्पुदरिंदं मि २९ असं २९ ३० तिर्य्यंग्मनुष्यगति-
८ ८ ८
जरप्प मिश्रासंयतरुगळ्गे मनुष्यगतियुतस्थानद्वयमेकें पेळल्पडदें दोडे वज्जं ओराळमणुवु यित्याद्यसंयतबंधषट्प्रकृतिगळ्गं सासादननोळु बंधव्युच्छित्तियुंटप्पुदरिंदं तद्गतिजग्गें तद्बंधस्थानंगळ्गऽभावमक्कुमप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्ट्याविदेवयुतस्थाने प्रमत्तांते मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतरुगळ देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिबंधस्थानदोळं मत्तमसंयतन देवगतितीर्थयुतयिकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानदोळं देशसंयतन देवगतियुत तीर्थरहित सहिताष्टाविंशत्येकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळं प्रमत्तसंयतन देवगतियुत तीर्थरहित सहिताष्टाविंशत्येकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळमितु मिथ्यादृष्ट्याविं प्रमत्तसंयतावसानमाद गुणस्थानंगळोळु देवगतियुताष्टाविंशति एकान्नत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळं शस्तं बंधमेति प्रशस्तप्रकृतिबंधमक्कुमादोडं अस्थिराशुभायशस्कोर्त्तिनामप्रकृतिगळ्गे प्रमत्तसंयतनोळु व्युच्छित्तियप्पुदरिंदं। प्रमत्तपर्य्यंतं स्थिरशुभयशोयुग्माष्टभंगंगळप्पुवु।

खलु स्फुटमागि | मि २८ | सा २८ | मि २८ | अ २८ | २९ | दे २८|२९ | प्र २८।२९
| ८| ८| ८| ८| ८| ८ ८| ८ ८

अप्रमत्तसंयतंगमपूर्व्वकरणंगं देवगतियुताष्टाविंशति तीर्थयुतैकान्नत्रिंशत्। तीर्थरहिताहारकद्वययुतत्रिंशत्। तीर्थाहारयुतैकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानंगळोळु एकैकभंगमेयक्कुमेकें दोडे प्रमत्तसंयतनोळु अस्थिराशुभायशस्कोर्त्तिनामकर्म्मप्रकृतिगळ्गे बंधव्युच्छित्तियुंटप्पुदरिंदमेकतरबंधाभावमप्पुदरिंदं प्रशस्तप्रकृतिबंधमेयक्कुमप्पुदरिंदं।

त्रिंशत्के च स्थिरशुभयशोयुग्मकृतभंगा अष्टावष्टौ दुर्भगदुःस्वरानादेयाप्रशस्तविहायोगतिबंधस्य सासादने एव च्छेदात्। मि २९ असं २९ ३० । तिर्यंग्मनुष्यमिश्रासंयतयोस्तु मनुष्यगतियुतबंधस्य सासादने छेदात्तत्स्थानद्वयं न
८ ८ ८
बध्नाति। मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतानां देवगतियुताष्टाविंशतिके असंयतस्य देवगतितीर्थयुतैकान्नत्रिंशत्के देशसंयतस्य प्रमत्तस्य च देवगतियुततीर्थयुतवियुताष्टाविंशतिकैकान्नत्रिंशत्कयोश्च प्रशस्तं बंधमेत्यप्यस्थिराशुभायशस्कीर्तीनां प्रमत्तपर्यंतं बंधात् तत्त्रियुग्मकृत्या अष्टावष्टौ भंगा भवंति खलु स्फुटं मि २८। सा २८। मि २८। अ २८,
८ ८ ८ ८

एक-एक ही प्रकृतिका बन्ध होता है। दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगतिके बन्धका विच्छेद सासादनमें ही हो जाता है। अतः तीन युगलोंकी प्रकृतियाँ बदलनेसे आठ-आठ भंग होते हैं। तिर्यंच और मनुष्य मिश्र तथा असंयत गुणस्थानवर्तीके मनुष्यगतिके बन्धका विच्छेद सासादनमें ही हो जाता है। इससे यहाँ उन दोनों स्थानोंका बन्ध नहीं होता। मिथ्यादृष्टि आदि असंयत गुणस्थान पर्यन्त जीवोंके देवगति सहित अठाईसके स्थानमें और असंयत सम्यग्दृष्टीके देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसके स्थानमें तथा देशसंयत और प्रमत्तमें देवगतियुत अठाईसके स्थान और देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसके स्थानमें प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है। तथापि अस्थिर, अशुभ और अयशस्कीर्तिका बन्ध प्रमत्त गुणस्थान तक ही होता है। इससे इन स्थानोंमें इन तीन युगलोंके आठ-आठ भंग होते हैं।

अ प्र २८ २९ ३० ३१ अपू २८ २९ ३० ३१ अपूर्वकरणचरमभागप्रथम-
१ १ १ १ १ १ १ १
समयं मोदल्गोंडु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमयपर्य्यंतं यशस्कीर्त्तिनामकर्म्मबंधमेकप्रकृति-
स्थानदोळेकभंगमेयक्कुमवावगतियुतमल्तु ।

अनंतरं भवच्यवनोत्पत्तिगळं पेळ्दपरु :—

णेरइयाणं गमणं सण्णीपज्जत्तकम्म तिरियणरे ।
चरिमचऊ तित्थूणे तेरिच्छे चेव सत्तमिया ॥५३८॥

नारकाणां गमनं संज्ञिपंचेंद्रियकर्म्म तिर्य्यग्नरे । चरमचतसृणां तीर्थोने तिरश्च्येव सप्तम्याः ॥

नारकाणां गमनं घर्म्मेयुं वंशेयुं मेघेयुमेंबी मूरुं पृथ्विगळ नारकरुगळगे स्वस्वायुः-स्थितिक्षयवशदिंदं मृतरागि नारकभवमं पत्तुविट्टु बंदावेडेयोळाव गतिजरोळु पुट्टुवरेंदोडेया मूरुं पृथ्विगळ नारकरुळगे गर्भज पंचेंद्रियपर्य्याप्तसंज्ञिकर्म्मभूमितिर्य्यग्मनुष्यरोळु जननमक्कुमदेंतेंदोडप्पुं मंदरंगळ पूर्व्वापर पंचविदेहंगळुं पंचभरतंगळुं पंचैरावतंगळुमेंब पंचदशकर्म्म भूमिगळोळु यथायोग्यमेल्लियादोडं तीर्त्थंकरं चरमांगरु मा यिर्व्वरुमल्लद सामान्यपर्य्याप्तमनुष्यरागियुं जनियिसुवरु । मत्तमा पंचदश कर्म्मभूमिगळोळं कर्म्मभूमिप्रतिबद्धस्वयंप्रभाचलापरभाग स्वयं भूरमण द्वीपार्द्धदोळं स्वयंभूरमणसमुद्रदोळं गर्भजपंचेंद्रियपर्य्याप्त संज्ञितिर्य्यग्जीवंगळागियुं जनियिसुवरु । कर्म्मभूमिविशेषणत्वदिंदमा पंचमंदरंगळ दक्षिणोत्तरदिग्भागस्थित निषधनीलगजदंत पर्व्वत द्वितयांतरितदेवकुरूत्तरकुरूत्तम भोगभूमिगळ्पत्तरोळं (ळंतरित) हिमवन्निषधांतरित हरिक्षेत्र-

---

२९ । दे २८ । २९ । प्र २८ । २९ अप्रमत्तापूर्वकरणयोः देवगतियुताष्टाविंशतिके तीर्थयुतैकान्नत्रिंशत्के तीर्थ-
८ ८ ८ ८ ८
वियुताहारकद्वययुतत्रिंशत्के तीर्थाहारकयुतैकत्रिंशत्के च भंग एकैक एव । अप्र २८ २९ ३० ३१
१ १ १ १
अपू २८ २९ ३० ३१ । अपूर्वकरणचरमभागप्रथमसमयादासूक्ष्मसांपरायचरमसमयं यशस्कीर्तिबंधरूपैकके
१ १ १ १
भग एकः ॥५३७॥ अथ भवच्यवनोत्पत्ती प्राह—

नारकाणां गमनं—मृत्वोत्पत्तिः, घर्मादित्रयजानां गर्भजपंचेंद्रियपर्याप्तसंज्ञिकर्मभूमितिर्यग्मनुष्येष्वेव,

---

अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें देवगति सहित अठाईसका, तीर्थंकर सहित उनतीस, तीर्थंकर रहित आहारकद्विक सहित तीस और तीर्थंकर आहारकद्विक सहित इकतीस इन चारों स्थानोंमें प्रतिपक्षी अप्रशस्त प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। अतः एक-एक ही भंग होता है। अपूर्वकरणके अन्तिम भागके प्रथम समयसे सूक्ष्म साम्परायके अन्तिम समय पर्यन्त एक यशस्कीर्तिका बन्धरूप ही स्थान है तथा एक ही भंग है ॥५३७॥

आगे एक भवको छोड़ने और दूसरे भवमें उत्पन्न होनेका नियम कहते हैं—

नारकियोंका गमन अर्थात् मरकर उत्पन्न होना कहते हैं। घर्मा आदि तीन नरकोंके नारकी मरकर गर्भज पंचेन्द्रिय पर्याप्त संज्ञी कर्मभूमिया तिर्यंच और मनुष्योंमें ही जन्म लेते

पंचकमुं नीलरुग्मि कुलपर्व्वतांतरित रम्यकक्षेत्र पंचकमुमंतु पत्तुं मध्यमभोगभूमितलंगळोळं हिमवन्महाहिमवंतकुलपर्व्वतद्वयांतरित पंचहैमवत क्षेत्रंगळुं रुक्मिशिखरिकुलपर्व्वतद्वयांतरित पंच हैरण्यवत क्षेत्रंगळु मंतु पत्तुं जघन्यभोगभूतलंगळोळं षण्णवतिकुमानुष्य भोग भूतलंगळोळमा मनुष्यरुं तिर्य्यंचरागि पुट्टरु। मानुषोत्तरस्वयंप्रभाचलद्वितयांतरितजघन्यतिर्य्यग्भोगभूप्रतिबद्धंगळप्प जंबूद्वीप धातकीषंड पुष्कर स्वयंभूरमणमेंब नाल्कुं द्वीपशलाकापरिहीनंगळप्पेरडुवरेयुद्धारसागरोपमार्द्धं प्रमित द्वीपंगळोळं पुष्करद्वीपोत्तरार्द्धदोळं स्वयंप्रभाचलार्व्वाचीनार्द्धदोळं[2] स्थलचरखचरतिर्य्यंचरुगळुमागियुं पुट्टरु। लवणोदकालोदस्वयंभूरमण मेंब मूरुं समुद्रशलाका परिहीनंगळप्पेरडुवरेयुद्धारसागरोपमार्द्धप्रमितसमुद्रंगळु तिर्य्यग्भोगावनिप्रतिबद्धंगळादोडमा समुद्रंगळोळु जल मिक्षुरसस्वादुवुं जलचरंगळुमिल्ल। सर्व्वभोगभूतलंगळोळु जलमिक्षुरसस्वादुवुं विकलेंद्रियजीवंगळुत्पत्तियुमिल्ल। चरमचतसृणां अंजनेयुमरिष्टेयुं मघवियुं माघवियुमेंब नाल्कुं पृथ्विगळ नारकरुगळोळगे सप्तमपृथ्वियनारकरुगळं बिट्टु मूरुं पृथ्विगळ नारकरुगळगे स्वस्वायुःक्षितिक्षयवर्शदिवं मरणमादोडे जननमावेडेयोळावावगतिगळोळक्कुमेंदोडे तीर्थमिने मुंपेळद पंचदश कर्म्मभूमिगळोळु तीर्थकरल्लद यथायोग्यमागि क्वचिच्चरमांगरुं[3] साधारणमनुष्यरुगळुमागियुं गर्भजपर्य्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रिय संज्ञितिर्य्यंग्जीवंगळु मागियुं जनियिसुवरु। मुंपेळ्द तिर्य्यक्कर्मभूमियोळं स्थलचरजलचर खचर गर्भज पर्य्याप्तपंचेंद्रिय संज्ञितिर्य्यंग्जीवंगळु मागियुं लवणकालोदक समुद्रंगळ जलचरगर्भजपर्य्याप्तपंचेंद्रियसंज्ञितिर्य्यंचरागियुं जनियिसुवरु। सप्तम्याः तिरश्चि चैव माघविय नारकरुगळगे स्वस्वायु-

---

कुतः ? अर्धसकलचक्रिबलभद्रवर्जितपंचदशकर्मभूमितिर्यग्मनुष्येषु लवणोदकालोदस्वयंप्रभाचलापरभागस्वयंभूरमणद्वीपापरार्धतत्समुद्रतद्बहिश्चतुष्कोणजलस्थलखेचरेषु च तादृक्चैवोत्पत्तेः। त्रिंशत्षण्णवतिभोगकुभोगभूमितिर्यग्मनुष्यमानुषोत्तरस्वयंप्रभाचलांतरालस्थलजघन्यतिर्यग्भोगभूमिजेषु चानुत्पत्तेः। अंजनजानां गमनं धर्मा-

---

हैं। क्योंकि उनकी उत्पत्ति अर्धचक्री, सकलचक्री और बलभद्र अवस्थाको छोड़कर पन्द्रह कर्मभूमिके तिर्यंच—मनुष्योंमें, लवणसमुद्र, कालोद समुद्र, स्वयंप्रभाचलके परे स्वयंभूरमणद्वीपके आधे भागमें, स्वयंभूरमण-समुद्रमें और उसके बाहरके चारों कोनोंमें जलचर, थलचर और नभचरोंमें होती है।

विशेषार्थ—त्रस नाली चौकोर है और स्वयंभूरमण समुद्र गोल है। इससे उन चारों कोनोंमें भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच हैं उनमें उत्पत्ति बतलायी है।

तीस भोगभूमियों और छियानबे कुभोगभूमियोंके तिर्यंच मनुष्योंमें, मानुषोत्तर और स्वयंप्रभाचलके मध्यमें असंख्यात द्वीप और समुद्रोंमें जघन्य भोगभूमि हैं वहाँके तिर्यंचोंमें वे

---

१. तिर्य्यक् भोगभूमिस्थसमुद्रेषु जलचरजीवाभावात्।

२. स्वयंप्रभाचलद वोळ भागमेंबुदर्त्थ। वोळ भागमनेके पेळदरेंदोडे अपर भागं कर्म्मभूमियप्पुदरिंदं वोळभागं भोगभूमियप्पुदरिनिल्लिगे प्रकृतं भोगभूमियेयप्पुदरिंदं स्वीकरिसल्पट्टुदु॥

३. णिरयचरो णत्थि हरीबलचक्की तुरियपहुडि णिस्सरिदो। तित्थचरमग्गसंजुद मिस्सतियं (मिश्रासंयतदेशसंयत) णत्थि णियमेण॥

स्थितिक्षयवशदिंदं मृतरादोडावंडेयोळावगतियोळु जननमक्कुमेंदोडे मुंपेळ्द पंचदशकर्म्मभूमिगळं गर्भजपर्य्याप्तपंचेंद्रिय संज्ञितिर्य्यग्जीवंगळोळं कर्म्मभूप्रतिबद्धतिर्य्यक्कर्म्मभूमियोळं लवणोदकालोदसमुद्रंगळोळं यथायोग्यमागि स्थलचरखचरजलचरगर्भजपर्य्याप्तपंचेंद्रियसंज्ञितिर्य्यग्जीवंगळागिये नियमदिंदं जनियिसुवरु। एकेंदोडा सप्तमपृथ्विय नारकरुगळनिबरुं तिर्य्यगायुष्यमल्लवितरायुस्त्रितयमं नियमदिंदं कट्टरप्पुवरिंदं ॥ ५

तत्थतणऽविरदसम्मो मिस्सा मणुवदुगमुच्चयं णियमा ।
बंधदि गुणपडिवण्णा मरंति मिच्छेव तत्थ भवा ॥५३९॥

तत्रतनाविरतसम्यग्दृष्टिर्मिश्रो मनुष्यद्विकमुच्चकं नियमाद् बध्नाति गुणप्रतिपन्नाः म्रियंते मिथ्यादृष्टावेव तत्र भवाः ॥

तत्रतनाविरतसम्यग्दृष्टिर्मिश्रः तत्सप्तमभूसंजातासंयतसम्यग्दृष्टियुं मिथ्यादृष्टियुं स्वस्वगुण- १०
स्थानंगळोळे मनुष्यद्वितयमुमुच्चैर्गोत्रमुमं नियमदिंदं कट्टुवरु। तत्र भवाः तत्सप्तमभूमिजरप्पनारकरुगळ गुणप्रतिपन्नाः सासादनमिश्रासंयतगळागिद्दंवरुगळु स्वस्वायुःस्थितिक्षयवशदिं मृतरप्पोडे मिथ्यादृष्टावेव नियमदिंदं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोद्दिद बळिक्क म्रियंते मृतरप्परु। अंतु मृतरागि बंदु मुंपेळ्द नियमस्थानदोळु तिर्य्यंचरागि जनिसुवरेंबुदत्थं।

नारकनुमागि तिर्य्यग्घोरमहादुःखयोनियोळ्पुट्टदे नीं। १५
सारद श्रीजिनपदमं बेरिदं कोळ्दु दुरघवृक्षाटविगं ॥

अनंतरं तिर्य्यग्गतियोळु मृतरागिबंद जीवंगळावावंडेयोळावाव गतिगळोळु पुट्टुगुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

दित्रयोक्तजीवेष्वेव तीर्थंकरोनेषु, अरिष्टाजानां पुनश्चरमांगोनेषु, मघवीजानां पुनः सकलसंयम्यूनेषु, माघवीजानां देशसंयतासंयतमिश्रसासादनवर्जिततादृक्मिथ्यादृष्टितिर्यक्ष्वेव अन्यायुषस्तेषामबंधात् ॥५३८॥ २०

तत्रतनः—सप्तमनरकोत्पन्नः असंयतसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिश्च स्वस्वगुणस्थाने मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं च नियमेन बध्नाति तत्र भवाः सासादनमिश्रासंयतगुणप्रतिपन्नास्तु यदा म्रियंते तदा मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने गत्वैव ॥५३९॥

नारकी मरकर उत्पन्न नहीं होते। अंजना नरकके नारकी तीर्थंकर बिना, अरिष्टावाले चरमशरीरी बिना, और मघवीवाले सकल संयम बिना पूर्वोक्त तिर्यंच या मनुष्योंमें उत्पन्न २१
होते हैं। माघवीवाले नारकी देशसंयत, असंयत, मिश्र और सासादन बिना पूर्वोक्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंमें ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि सातवें नरकमें तिर्यंच आयुके सिवाय अन्य आयुका बन्ध नहीं होता ॥५३८॥

सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ जीव असंयत सम्यग्दृष्टी और सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर अपने-अपने गुणस्थानमें नियमसे मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्रका बन्ध करता ३०
है। किन्तु वहाँ उत्पन्न होनेके पश्चात् सासादन, मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानको प्राप्त हुए जीव जब मरते हैं तब मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जाकर ही मरते हैं ॥५३९॥

तेउदुगं तेरिच्छे सेसेग अपुण्ण बियलगा य तहा ।
तित्थूणण रेवि तहाऽसण्णी घम्मे य देवदुगे ॥५४०॥

तेजोद्विकं तिरश्चि शेषैकापूर्णविकलाश्च तथा । तीर्थोननरेपि तथाऽसंज्ञी घर्म्मायां देवद्विके ॥

तेजोद्विकं तिरश्चि तेजस्कायिकबादरसूक्ष्मपर्य्याप्रापर्य्याप्रजीवंगळुं वायुकायिक बादरसूक्ष्मपर्य्याप्रापर्य्याप्तजीवंगळु नियमदिंद तिर्य्यग्गतियोळे जायंते एंदध्याहारिसल्पडुगुं । जनियिसुवरु । एकेंदोडा जीवंगळु तद्भवदोळु तिर्य्यंगायुष्यमनल्लदितरायुस्त्रितयमं कट्टरेंब नियममुंटप्पुदरिंदमंतादोडा जीवंगळावेडेयोळावाव तिर्य्यग्जीवंगळोळु जनियिसुवरेंदोडेरडुवरे द्वीपंगळोळु मुंपेळ्दुत्तममध्यमजघन्यत्रिशद्भोगभूमितिर्य्यग्गर्भजपर्य्याप्ता-पर्य्याप्तपंचेंद्रियसंज्ञितिर्य्यग्जीवंगळुमं मत्तं तिर्य्यग्भोगावनी प्रतिबद्धंगळप्प मुंपेळ्द द्वीपंगळोळाव गर्भजपर्य्याप्तपंचेंद्रियसंज्ञिस्थलचरखचरतिर्य्यग्जीवंगळुमं बिट्टु अशेषजगत्प्रदेशंगळोळिर्द्दं पृथ्वीकायिकबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त, अप्कायिकबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त, तेजस्कायिकबादरपर्य्याप्तापर्य्याप्त, सूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त, वायुकायिकबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त, साधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त, प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिपर्य्याप्तापर्य्याप्त, अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिपर्य्याप्तापर्य्याप्त, द्वींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त, त्रींद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त, चतुरिंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त असंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त, संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त तिर्य्यग्जीवंगळोळु यथायोग्यमेल्लियादोडं स्वस्वोपार्जितकर्म्मोदयवशदिंदं चराचरतिर्य्यग्जीवंगळागि जनियिसुवरें बुदत्थं । शेषैकेंद्रियापूर्णविकलाश्च तथा ई पेळल्पट्ट स्थावरतेजस्कायिक वायुकायिकबादरसूक्ष्मपर्य्याप्ततिर्य्यगेकेंद्रियजीवंगळल्लद शेषाशेषपर्य्याप्तपृथ्वीकायिक बादरसूक्ष्म अप्कायिकपर्य्याप्तबादरसूक्ष्म साधारणवनस्पतिनित्यनिगोद[1] पर्य्याप्तबादरसूक्ष्मचतुर्ग्गतिनिगोदपर्य्याप्तबादरसूक्ष्म

बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ततेजोवातकायिकाः नियमेन तिर्यग्गतावेवोत्पद्यंते सर्वभोगभूमिजपंचेंद्रियवर्जितत्रिलोकोदरवर्तिसर्वबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणपर्याप्तापर्याप्तप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःसंज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रियतिर्यगायुषामेव बंधात् । शेषाः बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तपृथ्व्यप्कायिकनित्यचतुर्गतिनिगोदाः

बादर और सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव मरकर नियमसे तिर्यंचगतिमें ही उत्पन्न होते हैं । क्योंकि उनके सर्वभोगभूमिज पंचेन्द्रियोंको छोड़कर सर्व त्रिलोकवर्ती सर्व बादर सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण तथा पर्याप्त-अपर्याप्त प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी और संज्ञी पंचेन्द्रिय, इन सर्व तिर्यंचोंकी ही आयुका बन्ध होता है । इससे तेजकाय-वायुकायके जीव मरकर इन सर्व प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें ही उत्पन्न होते हैं किन्तु भोगभूमिके तिर्यंचोंमें उत्पन्न नहीं होते ।

१. चतुर्ग्गतिनिगोद ।

प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितपर्य्याप्ततिर्य्यंगेकेंद्रियजीवंगळु शेषाऽशेषाऽपूर्णं आ तेजस्कायिकवायुकायिकबादरसूक्ष्मापर्य्याप्ततिर्य्यंगेकेंद्रियंगळल्लद पृथ्वीकायिकबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तरुं अप्कायिकबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तरुं साधारणवनस्पतिकायिकनित्यनिगोदबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तरुं चतुर्गतिनिगोदबादरसूक्ष्मापर्याप्तरुं, प्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तरुं अप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्य्याप्तरुं, द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियापर्य्याप्तरुं विकलाश्च द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपर्य्याप्तरुमिंती तिर्य्यंग्जीवंगळु स्वस्वायुःस्थितिक्षयवशदिंदं मृतरागि बंदु तथा तिरश्चि तथा शब्दं तिरश्चि एंबितु संबंधिसल्पडुगुमदु कारणदिंदमा तेजस्कायिक वायुकायिक बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवंगळिगे जननस्थानजीवभेदंगळुमंतु पेळल्पट्टंतेयुमी जीवंगळगमा तिर्य्यंग्जीवंगळ तिर्य्यंग्गतियोळं तीर्त्थोननरेपि तीर्त्थंकरर्कगळल्लद मनुष्यरोळं जनियिसुवरी जीवंगळिंतु तिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यंगळोळन्यतरायुष्यमं कट्टुदरे बागमोक्तियुंटप्पुदरिंदं ॥

यिल्लि नित्यचतुर्गंतिसूक्ष्मनिगोदंदिंदं पोरमट्टुत्तरानंतरभवदोळन्यत्राऽनुत्पन्ननागि बंदु मनुष्यनागि पुट्टिद मनुष्यंगे सम्यक्त्वमुं देशसंयममुं दोरेकोळ्गुं। सकलसंयमं संभविसदेंबी विशेषोपदेशमरियल्पडुगुं। नि नियमेन गां क्षेत्रं शरीरमनंतानंतजीवानां ददातीति निगोदंकर्म्म। एकेंद्रियस्थावरविशिष्टसाधारणोत्तरोत्तरप्रकृतिनिगोदौदारिकशरीरनामकर्म्मोदयाज्जातोपि निगोदजीवः एंदी निगोदजीवंगे नोकर्म्माहारं साधारणमादोडं कर्म्माहारमसाधारणमक्कुमादोडमो॑दु निगोदशरीरदोळिर्प्पं जीवंगळु विवक्षितवर्त्तमानकालदिंदं पेरगणनंतानंतातीतकालदोळाद सिद्धपरमेष्ठिगळु सर्वजीवराश्यनंतैकभागप्रमितरप्परंतादोडमभव्यसिद्धराशियं नोडलनंतगुणमप्परंतप्प सिद्धराशियं नोडलुमनंतगुणितमप्पुदी निगोदजीवंगळगे नोकर्म्माहारमुमुच्छ्वासनिश्वासमुं साधारणमप्पुदरिंदं साधारणनिगोदंगळे॑दु संज्ञियक्कुमा निगोदजीवंगळो॑दु शरीरदोळु बादरंगळुं सूक्ष्मंगळुं। मिश्रमिल्ल। बादरशरीरंगळोळु बादरंगळें। सूक्ष्मशरीरदोळु सूक्ष्मंगळेयिर्प्पुदें बरियल्पडुवुदु। आ बादरसूक्ष्मशरीरंगळोळिर्प्पनंतानंतजीवंगळोळो॑दु जीवं मृतमादोडेकनिगोदशरीरस्थानंतानंतजीवंगळनितक्कं मरणमक्कुमो॑दु शरीरदोळो॑दु जीवमक्कुत्पत्तियादोडनंतानंतजीवंगळुत्पत्तियक्कु-। मी निगोदजीवंगळ सर्व्वशरीरंगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवा शरीरंगळुं साधारणवनस्पतिस्कंधंगळोळं प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरस्कंधंगळोळि-

---

पर्याप्तापर्याप्तप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकाः पर्याप्तापर्याप्तद्वित्रिचतुरिंद्रियाश्च तेजोद्विकोक्ततिर्यक्षु त्रिषष्टिशलाकापुरुषवर्जितमनुष्येषु च। तत्र नित्यचतुर्गतिसूक्ष्मनिगोदागतमनुष्याः सम्यक्त्वं देशसंयमं च गृह्णीयुर्न सकलसंयम-

---

शेष बादर सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, नित्य निगोदिया, चतुर्गतिनिगोदिया, पर्याप्त-अपर्याप्त प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक, पर्याप्त-अपर्याप्त दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, ये सब जीव मरकर तेजकाय वायुकायके समान उक्त सब तिर्यंचोंमें और तरेसठ शलाका पुरुष रहित मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। किन्तु इतना विशेष है कि नित्य और चतुर्गति सूक्ष्म निगोदसे आकर मनुष्य हुए जीव सम्यक्त्व और देशसंयमको तो ग्रहण करते हैं किन्तु सकलसंयमको ग्रहण नहीं करते, ऐसा परम्परागत उपदेश है।

र्प्पुवा प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरंगळुमवावुवें दोडे पृथिव्यादिचतुष्टयमुं केवल्याहार देवनारकांगंगळुमें टु-मप्रतिष्ठितंगळु । शेषाशेषजीवशरीरंगळनितुं प्रतिष्ठितंगळप्पुवु । असंज्ञि तथा तिरश्चि तीर्त्थोन-नरेपि असंज्ञिजीवनुं आ पृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिप्रत्येकवनस्पति द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय-सर्व्वबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्तजीवंगळु स्वस्वायुःस्थितिक्षयवशदिंदं भोगभूपंचेंद्रियतिर्य्यंचरं बिट्टु भुवनत्रयोदरवर्त्तिसर्व्वैकेंद्रियबादरसूक्ष्मविकलत्रयासंज्ञिसंज्ञि-पंचेंद्रिय-पर्य्याप्तापर्य्याप्त-तिर्य्यंचरोळें तु पुट्टुवरंता तिर्य्यंग्गतियोळं तीर्त्थोनसामान्यमनुष्यरोळमसंज्ञिजीवं पुट्टुगुं । मत्तमाजीवंगळ्-पुट्टल्नेरेयद प्रथमनरकदोळं भावनरोळं व्यंतरोळं पुट्टुगुमें तें दोडे असंज्ञिजीवं नरकायुष्यक्कं देवायुष्यक्कमुत्कृष्टदिंदं पल्योपमासंख्येयभागमने स्थितिबंधमं माळ्कुमप्पुदरिंदं ज्योतिरमर-रोळ्पुट्टनेकें दोडा ज्योतिरमररुगळुत्कृष्टस्थिति पळितोपममक्कुं । जघन्यस्थिति पळितोपमाष्टम-भागमक्कुमप्पुदरिंदं प्रथमनरकदोळु पल्योपमासंख्येयभागमात्रस्थिति संभविसुगुमप्पुदरिंदमा प्रथमनरकदोळे पुट्टुगुं । द्वितीयपृथ्वियोळसमयाधिकैकसागरोपमं जघन्यस्थितियप्पुदरिंदमा द्वितीयादिनरकंगळोळमसंज्ञिजीवं पुट्टुवनल्लं । स्वस्वायुःस्थितिक्षयवशदिंदं पूर्व्वभवत्यागमागुत्ति-रलुत्तरानंतरभवोत्पत्तिनियममिल्लेल्लेडेयोळप्पुदें दरियल्पडुगुमेकें दोडनादिसंसारदोळु द्रव्यादि पंचपरावर्त्तनंगळिदं मेट्टद नेलनुं पुट्टद योनियुमिल्लप्पुदरिंदं ॥

सण्णीवि तहा सेसे णिरये भोगेवि अच्चुदंतेवि ।
मणुवा जांति चउग्गदिपरियंतं सिद्धिठाणं च ॥५४१॥

संज्ञ्यपि तथा शेषे नरके भोगेऽप्यच्युतांतेऽपि । मनुष्या यांति चतुर्गतिपर्य्यंतं सिद्धिस्थानं च ॥

संज्ञ्यपि तथा संज्ञिपंचेंद्रिय तिर्य्यंचजीवनु मसंज्ञिजीवनंते भुवनत्रयोदरवर्त्ति सर्व्वैकेंद्रिय-बादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त विकलत्रयपर्य्याप्तापर्य्याप्त असंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तापर्य्याप्त जीवंगळोळु स्वायुःस्थितिक्षयवशदिंदं तिर्य्यग्गतियोळं पुट्टुगुं । तीर्त्थंकरचक्रवर्त्तिबलदेववासुदेवप्रतिवासुदेव-रहितपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरोळं प्रथमनरकदोळं भावनामरनिकायदोळं व्यंतरामरनिकायदोळं पुट्टुगु मसंज्ञिजीवं पुट्टल्नेरेयद शेषद्वितीयादिषट्पृथ्विगळोळं ज्योतिरमररोळं सौधर्म्मादिअच्युतांत-

---

मित्युपदेशः । असंज्ञी पृथ्वीकायिकोक्तितिर्यग्मनुष्येषु प्रथमनरके भावनव्यंतरयोश्च न शेषदेवनारकेषु । कुतः ? तदायुःस्थितिबंधस्योत्कृष्टेन पल्यासंख्येयभागमात्रत्वात् ॥५४०॥

संज्ञितिर्यङप्यसंज्ञ्युक्तसर्वजीवेषु सर्वनारकेषु सर्वभोगभूमिजेष्वच्युतांतसर्वदेवेषु च जायते । कर्मभूमि-

---

असंज्ञी पंचेन्द्रिय मरकर पृथिवीकायिकके समान तिर्यंच मनुष्योंमें, प्रथम नरकमें और भवनवासी तथा व्यन्तरदेवोंमें उत्पन्न होता है, शेष देवों और शेष नारकियोंमें उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि असंज्ञीके आयुका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होता है ॥५४०॥

संज्ञी तिर्यंच भी असंज्ञी पंचेन्द्रियवत् सब जीवोंमें तथा सब नारकियोंमें, सब भोग-भूमियोंमें और अच्युत स्वर्ग पर्यन्त सब देवोंमें उत्पन्न होता है। कर्मभूमिया पर्याप्त मनुष्य

सानमाद कल्पजरोळं स्वायुःस्थितिपरिक्षयदिंदमुत्तरानंतर भवदोळ्पुट्टुगुं। मनुष्याः कर्म्मभूपर्य्याप्तमनुष्यरु स्वायुःस्थितिपरिक्षयवशदिंदं नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळोळेनितनितु जीव भेदंगळोळवनितरोळं यथा प्रवचनं तथैव संहनन विशेषंगळिंदमेल्ला नरकंगळोळं त्रसस्थावरपर्य्याप्तापर्य्याप्त कर्म्मस्थित्यनुभागसंस्थानसंहननादिविशेषंगळिंदं सर्व्वतिर्य्यंचरोळं त्रसपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यगति संस्थानसंहनन कर्म्मस्थित्यनुभागविशेषंगळिंदं तीर्त्थंकरचक्रधरबलदेव वर्ज्जित सर्व्वमनुष्यरोळं त्रसपर्य्याप्त देवगति देवायुर्व्वैक्रियिकशरीर संस्थानवर्ण्णगंधरसस्पर्शकर्म्मस्थिति कर्म्मानुभागादिविशेषंगळिंदं भवनत्रयादिसर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतमाद सर्व्ववेदनिकायदोळं स्वायुःस्थितिक्षयवशदिंदं पोगि पुट्टुवरु-। मपर्य्याप्तमनुष्यं कर्म्मभूमिपर्य्याप्तापर्य्याप्तमनुष्यरोळं सर्व्वत्र सर्व्वतिर्य्यग्जीवंगळेनितोळवनितरोळं स्वायुःस्थितिक्षयवशदिंदमनंतरोत्तरभवदोळ्पुट्टुगुं। मुंपेळ्देरडुवरे द्वीपद मूवत्तु भोगभूसम्यग्दृष्टिमनुष्यरुगळं तिर्य्यग्जघन्य भोगावनिज सम्यग्दृष्टि तिर्य्यंचरुगळं सौधर्म्मकल्पद्वयदोळ्पुट्टुवरु। तत्रतनमिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिमनुष्यरुगळं कुमानुष्यरुगळं स्वायुःस्थितिक्षयवशदिंद मनंतरोत्तरभवदोळु भवनत्रयामररागि पुट्टुवरु। सिद्धिट्ठाणं च पंचदशकर्म्मभूमिगळोळेरडुवरे द्वीपद मनुष्यलोकदोळुळ्ळ मनुष्यरुगळोळ्केलंबरु तीर्त्थंकररुकेलंबरु चरमांगरु केलंबरु सामान्यमनुष्यरप्परवर्गळोळु तीर्त्थंकरमनुष्यरुगळं चरमांगरुगळुमप्प मनुष्यरुगळु तिर्य्यक्संज्ञि जीवनेय्दल्नेरेयद स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धिस्थानमुमनेय्दुवरु ॥

आहारगा दु देवे देवाणं[1] होदि कम्म तिरियणरे।
पत्तेयपुढवि आऊ बादरपज्जत्तगे गमणं ॥५४२॥

आहारका त्तु देवे देवानां भवति कर्म्म तिर्य्यग्नरे। प्रत्येकपृथ्व्यब्बादरपर्य्याप्तके गमनं ॥

आहारकाद्देहान्मृतानां गमनं देवे भवतीति वाक्यसंबंधः स्यात्। प्रमत्तसंयतरुगळाहारक देहदिंदं मृतरादरादोडे कल्पजरोळं कल्पातीतजरोळं जननमक्कुं। देवानां गमनं सौधर्म्मादिकल्पज

मनुष्याः पर्याप्ताः संज्ञ्युक्तसर्वजीवेषु कल्पातीतदेवेषु च, तदपर्याप्ताः पर्याप्तापर्याप्तकर्मभूमिसर्वतिर्यग्सामान्यमनुष्येषु, त्रिंशद्भोगभूमितिर्यग्मनुष्या जघन्यतिर्यग्भोगभूमितिर्यंचश्च सम्यग्दृष्टयः सौधर्मद्वये तन्मिथ्यादृष्टिसासादनाः कुमनुष्याश्च भवनत्रये, चरमांगाः स्वात्मोपलब्धिलक्षणं सिद्धिस्थानमाप्नुवंति ॥५४१॥

आहारकदेहेन मृतप्रमत्तसंयतानां गमनं वैमानिकेष्वेव भवति। देवानामुत्पत्तिः सर्वार्थसिद्धयंतानां

संज्ञी पंचेन्द्रियवत् सब जीवोंमें और कल्पातीत अहमिन्द्र देवोंमें उत्पन्न होता है। अपर्याप्त मनुष्य कर्मभूमिके पर्याप्त-अपर्याप्त सब तिर्यंचोंमें और सामान्य मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं। तीस भोगभूमिके तिर्यंच और मनुष्य तथा असंख्यात द्वीप समुद्र सम्बन्धी जघन्य तिर्यंच भोगभूमिके तिर्यंच यदि सम्यग्दृष्टी होते हैं तो सौधर्म ईशानमें उत्पन्न होते हैं। और मिथ्यादृष्टि या सासादन तथा कुभोगभूमिके मनुष्य भवनत्रिकके देवोंमें उत्पन्न होते हैं। और चरमशरीरी मनुष्य स्वात्मोपलब्धिरूप सिद्धिस्थानको प्राप्त होते हैं ॥५४१॥

आहारकशरीरके साथ मरे प्रमत्त संयतोंका गमन वैमानिक देवोंमें ही होता है।

---

१. °णं सण्णिकं°-मु०।

रुगळगं कल्पातीतजरुगळगं स्वस्वायुस्थितिक्षयवशंविदं मृतरादरादोडे पंचदशकर्म्मभूमितिर्य्यंच-पंचेंद्रिय संज्ञिपर्य्याप्तरोळं स्वयंभूरमण द्वीपार्द्धमुं स्वयंभूरमणसमुद्रमुमेंबिवरोळु पर्य्याप्ततिर्य्यंकपंचेंद्रियसंज्ञिस्थलचरखचरजलचरतिर्य्यंचरुगळुमागियुं यथायोग्यं पुट्टुवरु। नाल्वत्तय्दुं लक्षयोजन-प्रमाणमप्प मनुष्यलोकद कर्म्मभूमिगळपदिनैदरोळु तीर्थंकररुं चक्रधररुं बलदेववासुदेवरुगळेंब विशेषपुरुषरुं सामान्यमनुष्यरुमागियुं पुट्टुवरु। आकल्पजरुगळोळु सौधर्म्मद्वयदेवर्कळुगळगे प्रत्येकवनस्पति पृथ्व्यब्बादरपर्य्याप्तजीवंगळोळं जननमक्कुं ॥

भवणतियाणं एवं तित्थूणणरेसु चेव उप्पत्ती ।
ईसाणंता[1] एगे सदरदुगंता हु सण्णीसु ॥५४३॥

भवनत्रयाणामेवं तीर्थोननरेषु चैवोत्पत्तिः। ईशानांतादेकेंद्रिये शतारद्विकांतात्खलु संज्ञिषु ॥

भवनत्रयदेवर्कळुगळगं कल्पजरुगळगे पेळदंते मनुष्यलोकतिर्य्यग्लोकंगळ प्रतिबद्धकर्म्मभूमिगळोळु संजातपंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्ततिर्य्यक् जीवंगळोळं कर्म्मभूमिप्रतिबद्धम्लेच्छखंडार्य्यखंडज-पर्य्याप्तमनुष्यरोळु तीर्त्थंकररुं बलदेववासुदेवादिगळल्लद मनुष्यरुगळुमागियुं जनिसुवरु। ईशान-कल्पावसानादितो देवानां गमनं भवनत्रयं मोदलागीशानकल्पावसानमाद देवर्कळ गळगेकेंद्रिय जीवंगळोळं जननमक्कुं। शतारद्विकांतादितो देवानां गमनं संज्ञिषु खलु भवनत्रयं मोदल्गोंडु शतारसहस्रारकल्पद्विदमित्तलाद देवर्कळुगळगे मनुष्यलोकप्रतिबद्ध पंचदशकर्म्मभूमिजपर्य्याप्त-पंचेंद्रिय संज्ञितिर्य्यग्जीवंगळोळं तिर्य्यग्लोककर्म्मभूमिप्रतिबद्धस्वयंभूरमणद्वीपापरभागयुतस्वयंभू-रमणचरमसमुद्रदोळं लवणोदकाळोदसमुद्रंगळोळं पर्य्याप्तपंचेंद्रियसंज्ञि स्थलचरखचरजलचर तिर्य्यग्जीवंगळोळं जननमक्कुं। यितु चतुर्गतिजीवंगळगे तद्भवपरित्यागमागुत्तिरलनंतरभव-ग्रहणनियमलक्षणच्यवनोपपादंगळ संक्षेपदिंदं पेळल्पट्टुवु ॥

क ॥ नानाविधजीवंगळोळेनुं तोडळिल्लवंतु पुट्टुव दुःखं। नानागतिजन्मदिंरिदेनुं तडदिरदे पिडि जिनश्रीपदमं ॥

पंचदशकर्मभूमिमनुष्येष्वेव नान्यत्र। सहस्रारांतानां तेषु च पंचदशकर्मभूमिलवणोदककालोदकस्वयंभूरमणद्वीप-परार्धतत्समुद्रसंज्ञिपर्याप्तजलस्थलखचरतिर्यक्षु च ईशानांतानां तेषु च बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पति-भेदैकेंद्रिये च। भवनत्रयाणां तेष्वपि मनुष्येषु तीर्थकरादित्रिषष्टिशलाकापुरुषवर्जितेष्वेव ॥ ५४२–५४३ ॥

सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देवोंकी उत्पत्ति पन्द्रह कर्मभूमियोंके मनुष्योंमें ही होती है, अन्यत्र नहीं। सहस्रार पर्यन्त देवोंकी उत्पत्ति उन मनुष्योंमें तथा पन्द्रह कर्मभूमि, लवण समुद्र, कालोद-समुद्र, स्वयंभूरमण द्वीपका अपरार्ध, स्वयंभूरमण समुद्रमें संज्ञी पर्याप्त जलचर, थलचर, नभचर तिर्यंचोंमें होती है। ईशान पर्यन्त देवोंकी उक्त मनुष्य तिर्यंचोंमें और बादर पर्याप्त पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति एकेन्द्रियोंमें होती है। भवनत्रिकके देवोंकी भी उत्पत्ति ईशान स्वर्गवत् जानना। किन्तु मनुष्योंमें वे तीर्थंकर आदि त्रेसठ शलाका पुरुषोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं ॥५४२–५४३॥

---

१. ईसाणंताणेगे सदरदुगंत.ण सण्णीसु ।–मु० ।

अनंतरं नामकर्म्मबंधस्थानंगळं चतुर्द्दश मार्ग्गणगळोळु गाथाष्टकदिंदं योजिसिदपरु :—

णामस्स बंधठाणा णिरयादिसु णव य वीस तीसमदो ।
आदिमछक्कं सव्वं पण छण्णव वीस तीसं च ॥५४४॥

नाम्नो बंधस्थानानि नारकादिषु नव विंशतित्रिंशदतः । आदितनषट्कं सर्व्वं पंच षड् नव विंशतित्रिंशच्च ॥

नामकर्म्मबंधस्थानंगळु नरकादिचतुर्ग्गतिगळोळु क्रमदिंदं नरकगतियोळु नव विंशति-प्रकृतिस्थानमुं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमेंबेरडुं स्थानंगळनेय्दुं नरकंगळ नारकरुगळु कट्टुवरु । नारकगति २९ । ३० । अल्लि नवविंशतिप्रकृतिस्थानमं पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुतमागियुं पर्य्याप्तमनुष्यगतियुतमागियुं माघविपर्य्यंतमाद नारकरु कट्टुवरु । त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं पंचेंद्रिय-पर्य्याप्ततिर्यंग्गतियुमुद्योतनामयुतमागियुं माघविपर्य्यंतमाद नारकरु कट्टुवरु । पर्य्याप्तमनुष्यगति-तीर्त्थंयुतमागियु मेघे पर्य्यंतमाद नारकरु कट्टुवरु । २९ । ति । म । ३० । ति । उ । म । ति ॥ यिल्लि नरकगत्यादिमार्ग्गणेगळोळ गुणस्थानविवक्षेइंदं बंधस्थानंगळु ग्रंथगौरवभयदिंदं योजि-सल्पडवा योजनिकेयुं सुगममेयक्कुमेंतेंदोडे गतींद्रियपर्य्याप्तादिविशेषंगळु प्रतिस्थानं पेळल्पड्डु-मप्पुदरिंदमंतु पेळल्पड्डुत्तिरलु मिथ्यादृष्टिनारकरुं सासादननारकरुंगळुं तिर्य्यग्गतियुतमागियुं मनुष्यगतियुतमागियुं नवविंशतिस्थानमं कट्टुवरु । सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकरनिबरुं मनुष्य-गतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरेकेंदोडे सासादननोळु तिर्य्यग्गतिद्वयमुमुद्योतमुं

एवं चतुर्गतिजानां च्यवनोपपादान् संक्षेपेणोक्त्वाधुना तानि बंधस्थानानि चतुर्दशमार्गणासु गाथाष्टकेनाह—

नामबंधस्थानानि नरकादिगतिषु क्रमेण नरकगतौ नवविंशतिकं त्रिंशत्कं च । तत्र नवविंशतिकं पंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुतं पर्याप्तमनुष्यगतियुतं च मघवीपर्यंता बध्नंति । त्रिंशत्कं पंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुत-मुद्योतयुतं च माघवीपर्यंताः बंध्नंति । पर्याप्तमनुष्यगतितीर्थयुतं मेघापर्यंता बध्नंति । मार्गणासु गुणस्थान-विवक्षया तद्योजनिका सुगमा, गतींद्रियपर्याप्तादिविशेषाणां प्रतिस्थानं प्राक् प्रतिपादनात् । तत्र नारका मिथ्या-दृष्टयः सासादनाश्च तिर्यग्गतियुतं मनुष्यगतियुतं च नवविंशतिकं बध्नंति । सम्यग्मिथ्यादृष्टयः मनुष्यगतियुतमेव ।

इस प्रकार चारों गतिके जीवोंका जन्ममरण संक्षेपसे कहकर अब उन नामकर्मके बन्धस्थानोंको चौदह मार्गणाओंमें आठ गाथाओंसे कहते हैं—

नामकर्मके बन्धस्थान नरकादि गतियोंमें-से क्रमसे नरकगतिमें उनतीस और तीस दो बँधते हैं । उनमें-से पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति सहित और मनुष्यगति सहित उनतीसको मघवी पर्यन्त नारकी बाँधते हैं । और पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति सहित उनतीसको व उद्योत सहित तीसको माघवी पर्यन्त नारकी बाँधते हैं । और पर्याप्त मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसके स्थानको मेघा पृथ्वी पर्यन्त ही बाँधते हैं ।

मार्गणाओंमें गुणस्थानोंकी विवक्षासे बन्धस्थानोंका लगाना सुगम है; क्योंकि गति, इन्द्रिय, पर्याप्त आदि विशेषोंको पहले प्रत्येक स्थानके साथ कहा है । उनमें-से मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टी नारकी तिर्यंचगति सहित और मनुष्यगति सहित उनतीसके स्थान-को बाँधते हैं । सम्यक्मिथ्यादृष्टि नारकी मनुष्यगति सहित ही उनतीसका स्थान बाँधते हैं ।

व्युच्छित्तियागि पोदुदप्पुदरिंदं। असंयतसम्यग्दृष्टिनारकरनिवरुं मनुष्यगतियुतमागि नवविंशतिस्थानमं कट्टुवरु। केलंबरुगळु मोदल मूरुं नरकंगळोळु मनुष्यगतिपर्याप्तदोडने तीर्त्थयुतमागि कट्टुवरेंदितु मोदलाद योजनिके सुगममक्कुमेंबुदर्त्थमदु कारणमागि यथा प्रवचनं तथा परमागमकोविदरिंदं गुणस्थानविवक्षेयिंदमुमा नामकर्म्मबंधस्थानंगळु योजिसल्पडुववेंम्मिवं ग्रंथगौरवभयदिंदं योजिसल्पडवु। अतः मुंदण तिर्य्यग्गतियोळु तिर्य्यग्जीवंगळु आदितनषट्स्थानंगळं कट्टुवरु। तिर्य्यग्गति। २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ यिल्लि तिर्य्यग्गतियोळितिर्य्यग्जीवंगळु त्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानमं स्थावरबादरापर्य्याप्तैकेंद्रिययुतमागियुं स्थावरसूक्ष्मापर्य्याप्ततिर्य्यग्गत्येकेंद्रिययुतमागियुं कट्टुवरु। पंचविंशतिप्रकृतिस्थानमनेकेंद्रियबादरपर्य्याप्तयुतमागियुं मत्तमेकेंद्रियसूक्ष्मपर्य्याप्तयुतमागियुं त्रसापर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियतिर्य्यग्गतियुतमागियुं त्रसापर्य्याप्तमनुष्यगतियुतमागियुं कट्टुवरु। षड्विंशतिप्रकृतिस्थानमं पृथ्वीकायविशिष्टबादरैकेंद्रियातपनाम तिर्य्यग्गतियुतमागियुं मत्तं तेजोवायुसाधारणवनस्पतिरहितशेषैकेंद्रियबादरपर्याप्तोद्योततिर्य्यग्गतियुतमागियुं कट्टुवरु। अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमं त्रसपर्य्याप्तनरकगतियुतमागियुं कट्टुवरु। त्रसपर्य्याप्तदेवगतियुतमागियुं कट्टुवरु। नवविंशति स्थानमं त्रसपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रिय [चतुरिंद्रिय] पंचेंद्रियतिर्य्यग्गतियुतमागियुं कट्टुवर। त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं

तिर्यग्गतिद्वयोद्योतबंधस्य सासादने छेदात्। असंयता मनुष्यगतियुतं च नवविंशतिकं तत्केचिदाद्यत्रिनरके मनुष्यगतिपर्याप्ततीर्थयुतं त्रिंशत्कं च। तिर्यग्गतौ आद्यान्येव षट्। तत्र त्रयोविंशतिकं स्थावरबादरापर्याप्तैकेंद्रिययुतं स्थावरसूक्ष्मापर्याप्ततिर्यग्गत्येकेंद्रिययुतं च। पंचविंशतिकमेकेंद्रियबादरपर्याप्तयुतमेकेंद्रियसूक्ष्मपर्याप्तयुतं, त्रसापर्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रिययुतं त्रसापर्याप्तमनुष्यगतियुतं च। षड्विंशतिकं पृथ्वीकायविशिष्टबादरैकेंद्रियातपतिर्यग्गतियुतं तेजोवायुसाधारणोनैकेंद्रियं बादरापर्याप्तोद्योततिर्यग्गतियुतं च। अष्टाविंशतिकं त्रसपर्याप्तनरकगतियुतं त्रसपर्याप्तदेवगतियुतं च। नवविंशतिकं त्रसपर्याप्तद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्गतियुतं

क्योंकि तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी और उद्योतके बन्धकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है। असंयत सम्यग्दृष्टी नारकी मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध करते हैं। उनमें-से आदिके तीन नरकोंमें कोई-कोई मनुष्यगति पर्याप्त तीर्थंकर सहित तीसका बन्ध करते हैं।

तिर्यंचगतिमें आदिके छह ही बन्धस्थान हैं। उनमें-से तेईसका बन्धस्थान स्थावर बादर अपर्याप्त एकेन्द्रिय सहित या स्थावर सूक्ष्म अपर्याप्त तिर्यंचगति एकेन्द्रिय सहित बँधता है। पच्चीसका बन्धस्थान एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त सहित, या एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त सहित, या त्रस अपर्याप्त दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति सहित या त्रस अपर्याप्त मनुष्यगति सहित बँधता है। छब्बीसका बन्धस्थान पृथ्वीकाय विशिष्ट बादर एकेन्द्रिय आतप तिर्यंचगति सहित या तेजकाय, वायुकाय साधारण बिना अन्य एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त तिर्यंचगति उद्योत सहित बँधता है। अठाईसका स्थान त्रसपर्याप्त नरकगति सहित या त्रस पर्याप्त देवगति सहित बँधता है। उनतीसका स्थान त्रसपर्याप्त दो-इन्द्रिय,

---

१. म °मागियुं देव°।

त्रसबादरपर्य्याप्त द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियतिर्य्यग्गतियुतोद्योतयुतमागिये कट्टुवरें बुवर्त्थं। लब्ध्यपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुगळु अष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि शेषस्थानंगळ्कटुमं कट्टुवरु। २३। २५। २६। २९। ३०॥ मनुष्यगतियोळु मनुष्यजोवंगळु सर्व्वं सर्व्वस्थानंगळं कट्टुवरु। मनुष्यगतिजरु २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१॥ देवगतियोळु देवर्क्कळु पंचविंशति षड्विंशति नवविंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानचतुष्टयमं कट्टुवरु। देवगति। २५। ए प २६। ए आ उ २९। ति। म ३०। ति उ। म ति। यितु गतिमार्गणेयोळु नामबंधस्थानंगळं पेळ्दनंतरमिंद्रियादिमार्गणेगळोळु नामबंधस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

पंचक्खतसे सव्वं अडवीसूणादि छक्कयं सेसे।
चदुमणवयणोराले सड देवं वा विगुव्वदुगे ॥५४५॥

पंचाक्षत्रसयोः सर्व्वमष्टविंशत्यूनाद्यषट्कं शेषे। चतुर्म्मनोवचनौदारिकेष्वष्टौ देववद्वैक्रियिकद्विके॥

यिंद्रियमार्गणेयोळंनेवरं पंचेंद्रियमार्गणेयोळु पेळ्दपरल्लि सर्व्वं सर्व्वनामबंधस्थानमक्कुं। संदृष्टि :—पंचेंद्रियबंध २३। ए अ। २५। ए प। त्र। अ। २६। ए अ। उ। २८। न। दे। २९। बि। ति। च। अ। सं। म। दे। ति। ३०। बि। ति। च। अ। सं। ति। उ। म। ति। दे। आ। ३१। दे। ति। आ। ७। १। अ गति॥ ई पंचेंद्रियत्वं नारकरोळमसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळं मनुष्यरोळं देवर्क्करोळमक्कुमेकें दोडे भवप्रथमसमयदोळु पंचेंद्रियजातिनामकर्म्म-

---

त्रसपर्याप्तमनुष्यगतियुतं च। त्रिंशत्कं त्रसबादरपर्याप्तद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्गत्युद्योतयुतं। लब्ध्यपर्याप्तेषु तान्येवाष्टाविंशतिकं विना पंच। मनुष्यगतौ सर्वाणि। देवगतौ पंचविंशतिकषड्विंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कानि ॥५४४॥ अथेंद्रियादिमार्गणास्वाह—

इंद्रिये[1]मार्गणायां पंचेंद्रिये कायमार्गणायां त्रसे च सर्वाणि, शेषासु एकेंद्रियादिषु चतसृषु पृथ्वीकायादिषु

तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति तिर्यंचगति सहित या त्रसपर्याप्त मनुष्यगति सहित बँधता है। तीसका स्थान त्रस बादर पर्याप्त दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, तिर्यंचगति और उद्योत सहित बँधता है।

लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंच अठाईसके बिना पाँच स्थान बाँधता है। मनुष्यगतिमें सब ही स्थान बँधते हैं। देवगतिमें पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस चार ही स्थान बँधते हैं॥५४४॥

इन्द्रियादि मार्गणाओंमें कहते हैं—

इन्द्रिय मार्गणामें पंचेन्द्रियमें, और कायमार्गणामें त्रसमें सब बन्धस्थान हैं। शेष एकेन्द्रिय आदि चारमें और पृथ्वीकायादि पाँचमें आदिके छह स्थानोंमें-से अठाईस बिना पाँच-पाँच स्थान हैं। चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिककाय योगमें सब बन्धस्थान हैं। वैक्रियिक योग और वैक्रियिक मिश्रमें देवगतिकी तरह चार बन्धस्थान हैं॥५४५॥

---

१. एतद्गाथायाष्टीका अभयचंद्रनामांकितायां टीकायां विभिन्नतयोपलब्धा। सा च यथा—इंद्रियमार्गणायां पंचेंद्रिये सर्वं २३। ए अ। २५। ए प। त्र अ। २६। ए आ। उ। २८। न। दे। २९। वि ति च अ सं म दे ती। ३०। वि ति च अ सं ति उ म ती दे आ। ३१ दे ती आ। १ अगति। इदं पंचेंद्रियत्वं नारकेषु

विपाकजीवविपाकित्वविनाविर्भूतंगळप्प पंचइंद्रियाणि एष्विति पंचेंद्रिया जीवा येंदितु पंचेंद्रियत्व-सादृश्यसामान्यव्यापकमिंदं व्याप्त नारकतिर्य्यंग्मनुष्यदेवक्कळोळु व्याप्यत्वमिंदं पंचेंद्रियत्वं सिद्धमक्कुमेकेंदोडे—

"व्यापकं तदतन्निष्ठं व्याप्यं तन्निष्ठमेव हि ।
व्याप्यं तु गमकं प्रोक्तं व्यापकं गम्यमिष्यते ॥"

एंदितु व्यापकमप्प पंचेंद्रियत्वं तन्निष्ठमुमतन्निष्ठमुमक्कुं । व्याप्यं तन्निष्ठमेयप्पुवरिंदं पंचेंद्रियत्वं नारकरोळं तिर्य्यंचादिगळोळमक्कुं ।

नारकत्वं नारकरोळेयक्कुं तिर्य्यंगादित्वं तिर्य्यंगादिगळोळेयक्कुमेंबुदर्त्थं । मत्तं तद्भव-सामान्यपेक्षेयिंदं ॥

"धर्म्मे धर्म्मेऽन्य एवार्थो धर्म्मिणोऽनंतधर्म्मणः ।
अंगित्वेन्यतमांतस्य शेषांतानां तदंगता ॥"—आप्तमी० २२ का० ।

पंचसु च मार्गणासु तदादिषट्कमष्टाविंशतिकं विना, चतुश्चतुर्मनोवाग्योगेष्वौदारिककाययोगे च सर्वाणि वैक्रियिकतन्मिश्रयोगयोर्देवगत्युक्तानि चत्वारि ॥५४५॥

विशेष—केशववर्णीकी कन्नड़ टीका गा. ५४५ में विस्तारसे नयोंकी चर्चा है । उसके संस्कृत रूपान्तरकार नेमिचन्द्र टीकाकारने उसे अपनी संस्कृत टीकामें छोड़ दिया है । इसीसे पं. टोडरमलजीकी टीकामें भी उसका अनुवाद नहीं आ सका है ।

गोम्मटसारके कलकत्ता संस्करणमें कर्मकाण्ड पृ. ७०४ पर टिप्पण रूपमें लिखा है कि अभयचन्द्रके नामसे अंकित इसकी टीकामें नीचे लिखा अधिक पाठ पाया जाता है । हमने उसे कन्नड़ टीकासे मिलाया तो वह अक्षरशः मिल गया । इससे यहाँ उसका हिन्दी अनुवाद दिया जाता है—सं.

[यह पंचेन्द्रियत्व नारकियोंमें, संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंचोंमें, मनुष्योंमें और देवोंमें होता है । भवके प्रथम समयमें पंचेन्द्रिय नामकर्मके उदयसे प्रकट पाँच इन्द्रियां इनमें हैं, अतः पंचेन्द्रिय हैं ।

पंचेन्द्रियत्वरूप सादृश्य सामान्य व्यापक है और वह नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवोंमें व्याप्त है । कहा है—

'जो व्यापक होता है वह तत्में भी रहता है और अतत्में भी रहता है, किन्तु जो व्याप्य होता है वह तत्में ही रहता है । अतः व्यापक गमक होता है और व्यापक गम्य होता है ।' अतः पंचेन्द्रियत्व व्यापक है क्योंकि वह नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव सबमें पाया जाता है । किन्तु नारकपना नारकियोंमें ही पाया जाता है, तिर्यंचपना तिर्यंचोंमें ही पाया जाता है । यह तद्भव सामान्यकी अपेक्षा जानना । कहा है—

संज्ञ्यसंज्ञितिर्यक्षु मनुष्येषु देवेषु च स्यात् । भवप्रथमसमये पंचेंद्रियनामोदयाविर्भूतपंचेंद्रियाण्येष्विति पंचेंद्रियाः, तस्य सादृश्यसामान्यत्वात् ।

धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनंतधर्मणः । अंगित्वेऽन्यतमांगस्य शेषांतानां तदंगता ॥१॥

वस्तुविन पूर्व्वोत्तरपर्य्यायरूप धर्म्मंगळ विवक्षेयिंदमनंतधर्म्मंणः अनंतानंतधर्म्मंगळनुळळ धर्म्मिणः धर्म्मियप्प वस्तुविन धर्म्मे धर्म्मे तत्पर्य्यायरूप धर्म्मं धर्म्मंदप्पदे अन्य एवार्थः पेरतोंदु पेरतोंदुमर्त्थमेयक्कुमा पृथग्भूतार्त्थंगळोळु अन्यतमांतस्यांगित्वे सति ओंदानुमोंदु विवक्षितमप्प धर्म्ममक्कक्कवयवित्वमागुत्तं विरलु शेषातांनां शेषभूतभविष्यत्पर्य्यायरूपधर्म्मंगळेल्लं तदंगता तदवयवता अदक्कवयवत्वमक्कुमेंदितूर्ध्वतासामान्यविवक्षेयिंदमनंतानंतधर्म्मंगळनुळळ धर्म्मियप्प जीवन विवक्षितपंचेंद्रियत्वैकधर्म्मंक्केकांतत्वमुमनेकातत्वमुं समर्त्थिसल्पट्टुवा जीवविवक्षित-पंचेंद्रियत्व धर्म्मैकांतमदु नयविषयमेंदु पेळल्पट्टुदर्दं तें दोडे—

"अनेकांतात्मकादर्थादपोद्धृत्यांजसान्नयः ।
तत् प्राप्त्युपायमेकांतं तदंशं व्यावहारिकं ॥" [ ]

अनेकांतात्मकादर्थात् अनेकधर्म्मात्मकमप्प वस्तुविनर्त्तणिदं तत्प्राप्त्युपायमेकांतं वस्तु-विननेकांतप्राप्तिगुपायभूतनिश्चयनयविषयमेकांतमं तदंशं व्यावहारिकं आ निश्चयनयविषयैकान्त-वस्तुविनअंशमदुव्यवहारनयविषयमक्कुमदं अपोद्धृत्य बेक्केय्दिदोंडदु नयः नयविषयमप्पुदरिंदं नयमक्कुं ॥

"प्रकाशयन्न मिथ्या स्याच्छब्दात्तच्छास्त्रवत्स हि ।
मिथ्याऽनपेक्षोनेकांतक्षेपान्नान्यस्तदत्ययात् ॥ [ ]

सः आ प्रमाणविषयात्यंदेकदेशग्राहियप्प निश्चयव्यवहारनयं तां पिडिदिर्द्दैकांतमं स्याच्छ-ब्दात् स्यात्पदर्दिदं प्रकाशयन् बेळगिसुत्तं न मिथ्या स्यात् सुनयमक्कुं । हि तथा हि अंतेयक्कुमल्ते । यत् आउदोंदु स्याच्छब्दात्प्रकाशयच्छास्त्रं स्यात्पदर्दिदं विज्ञंभिसुत्तंविर्द्दं शास्त्रं न मिथ्या स्यात् ।

'धर्मी वस्तु अनन्त धर्मवाली होती है। उसके प्रत्येक धर्मका प्रयोजन भिन्न-भिन्न होता है। उनमें-से एक धर्मके मुख्य होनेपर शेष धर्म गौण हो जाते हैं।'

इस प्रकार ऊर्ध्वता सामान्यकी विवक्षासे भी उनके पंचेन्द्रियत्वका समर्थन होता है। वही पंचेन्द्रियत्व नयका विषय भी होता है। कहा है—

'अनेकान्तात्मक अर्थसे उस अनेकान्तात्मक अर्थकी प्राप्तिके उपायभूत उसके एक-एक अंशको पृथक् करके कहना नय है, वह नयका विषय है।'

प्रमाणके विषयभूत पदार्थके एकदेशको ग्रहण करनेवाला निश्चयनय अथवा व्यवहार-

---

पूर्वोत्तरपर्यायरूपधर्माणां विवक्षयाऽनंतधर्मणो धर्मे धर्मे धर्मं धर्मं प्रति अन्य एवार्थः पृथक् पृथगेवार्थः। तेषु पृथगर्थेष्वन्यतमस्य कस्यचिद्विवक्षितस्य धर्मस्यावयवित्वे सति शेषधर्माणां तदंगता तदवयवता इत्यूर्ध्वता-सामान्यविवक्षयापि तत्पंचेंद्रियत्वं एकांतत्वानेकांताभ्यां समर्थितं। तदेव पंचेंद्रियत्वं पुनर्नयविषयमपि। तथाहि—

अनेकांतात्मकादर्थादपोद्धृत्यांजसान्नयः। तत्प्राप्त्युपायमेकांतं तदंशं व्यावहारिकं ॥१॥

अनेकांतात्मकादर्थात्सकाशात् तदनेकांतात्मकार्थस्य प्राप्त्युपायभूतं व्यावहारिकं प्रवृत्तिनिवृत्तिसाधकं तदंशं एकांतं एकस्वभावं पृथक्कृत्योच्यते स परमार्थतो नयः स्यात् नयविषयत्वात्।

प्रकाशयन्न मिथ्या स्याच्छब्दात्तच्छास्त्रवत्स हि। मिथ्याऽनपेक्षोऽनेकांतक्षेपान्नान्यस्तदत्ययात् ॥१॥

स प्रमाणविषयार्थस्यैकदेशग्राही निश्चयनयो व्यवहारनयो वा स्वगृहीतमेकांतं स्याच्छब्दात्प्रकाशयन्

यें तु मिथ्यारूपमल्तंते पेळल्पट्टुदु। स्यात्कारः सत्यलांछनः एंदितु अनपेक्षो नयः स्यात्पद-निरपेक्षमप्प नयं मिथ्यः मिथ्येयनुळ्ळुदक्कु। मिल्लि मिथ्यः एंदितु अभ्रादियाकृतिगणमप्पुदरिंदं मत्वर्थीयाऽप्रत्ययांतमक्कुं। स्याच्छब्दनिरपेक्षमादोडेके दुर्नयमक्कुमें दोडे अनेकांतक्षेपात् स्याच्छब्द-निरपेक्षमादोडा एकांतमनेकांतत्वदिंदं तोलगुगुमंतनेकांतत्वदिंदं तोलगिदोडेनाटुवें दोडे तदत्य-यान्नान्यः अनेकांतातिक्रममादोडे वस्तु अनन्यमक्कुमा एकांतमों देयक्कुमंतागुत्तं विरलवस्तुवक्कुमदु जिनमतमल्तु। श्रीसमंतभद्रस्वामिंयिदं निरूपिसल्पट्टुदु।

"सधर्म्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः।
स्यात्कारप्रविभक्तार्थविशेष व्यंजको नयः ॥—[आप्तमी० १०६]

स्यादनेकांतं वस्तु स्यादेकांतं वस्तु एंदितु सधर्म्मणैव समानधर्म्ममनुळ्ळुदरिंदमे प्रमाणनय-साधनंगळिंदं साध्यस्य साध्यमप्पनेकांतद साधर्म्यादविरोधतः सदृशधर्म्मंत्वदत्तणिंदं विरोधमिल्लप्पु-दरिंदं स्यादनेकांतं वस्तु एंदितु स्यात्कारप्रविभक्तार्थं स्यात्कारदिंदं बेर्प्पडिसल्पट्ट वस्तुविन विशेषः एकांतमदु व्यंज्यमक्कुमदक्के व्यंजकः व्यंजकमप्पुदु। नयः नयमें दु पेळल्पट्टुदु।

"नयोपनयैकांतानां त्रिकालानां समुच्चयः।
अविभ्राड्भावसंबंधो द्रव्यमेकमनेकधा ॥" [आप्तमी० १०७]

---

१५ नय अपने द्वारा गृहीत एकान्तको स्यात् शब्द पूर्वक प्रकाशित करनेसे मिथ्या नहीं है किन्तु सुनय है। क्योंकि निरपेक्षनय मिथ्या होता है। स्यात् सापेक्षनय सच्चा होता है। कहा है—स्यात्कार सत्यका चिह्न है। स्यात् निरपेक्षनय मिथ्या है, दुर्नय है; क्योंकि वह अनेकान्तका तिरस्कार करता है। अनेकान्तका तिरस्कार करनेपर तो अनेकान्त नहीं, एकान्त ही रहता है और वह अवस्तु है।

२० स्वामी समन्तभद्रने कहा है—वस्तु स्यात् अनेकान्तात्मक है स्यात् एकान्तात्मक है इस प्रकार प्रमाण और नयरूप साधनसे साध्य अनेकान्तात्मक वस्तुकी सिद्धि होनेमें कोई विरोध नहीं है। वस्तु स्यात् अनेकान्तरूप है इस प्रकार स्यात्कारसे प्रविभक्त वस्तुके विशेष-का व्यंजक नय है। और भी कहा है—

न मिथ्या स्यात् सुनयः स्यात् हि यस्मात्कारणात्तन्निरपेक्षो मिथ्यः। किंवत् ? स्याच्छब्दसापेक्षनिरपेक्षशास्त्रवत्
२५ 'स्यात्कारः सत्यलांछनः' इति वचनात्। मिथ्य इत्यभ्राद्याकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयाऽप्रत्ययांतः स्याच्छब्दनिरपेक्षः कथं दुर्नयः स्यात् ? अनेकांतक्षेपात्। तत्क्षेपाच्चानेकांतो न, एकांत एव स्यात् तथा सति अवस्तु, तन्न जिनमतं। श्रीसमंतभद्रस्वामिनोक्तं—

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधतः। स्यात्कारप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नयः ॥१॥

स्यादनेकांतं वस्तु स्यादेकांतं वस्तु इति सधर्मणैव समानधर्मणैव प्रमाणनयसाधनेन साध्यस्य अनेकांतस्य
३० साधर्म्यादविरोधतः सदृशधर्मत्वादविरोधात् स्यादनेकांतं वस्त्विति स्यात्कारप्रविभक्तार्थस्य वस्तुनो विशेष एकांतः व्यंग्यः, तस्य व्यंजको नयः। तथा चोक्तं—

नयोपनयैकांतानां त्रिकालानां समुच्चयः। अविभ्राड्भावसंबंधो द्रव्यमेकमनेकधा ॥१॥

त्रिकालानां मूरुं कालंगळ नयोपनयैकांतानां नयाश्च उपनयाश्च नयानामंशा उपनयाः। नयोपनयास्त एवैकांतास्तेषां नयोपनयैकांतानां निश्चयव्यवहारनयविषयंगळप्पेकांतंगळ समुच्चयः समुदयं अविभ्राड्भावसंबंधः अनश्वरवस्तुसंबंधमक्कुमवु कारणदिंदं द्रव्यमेकमनेकधा द्रव्यमों दु-मनेकप्रकारमक्कुं।

"मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकांततास्ति न।
अनपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतोऽर्थकृत् ॥ —[आप्तमी० १०८]

नयोपनय विषय मनितु मेकान्त मेयक्कुमप्पुवरिना त्रिकालगोचरंगळप्प एकांतंगळ समुच्चयं मिथ्यासमूहमागलेवेळ्कु-। मा मिथ्यासमूहं अमिथ्येयक्कुमप्पोडे नयविषयत्वदिंदमदेल्लमुं सत्यमक्कुमप्पोडे मिथ्यानयैकांता नास्ति मिथ्यानयैकांतत्व मेंबुदिल्लदे पोकुमेंदितु न न वाच्यं नुडियल्वेडेकेंदोडे अनपेक्षा नया मिथ्या स्यात्कारानपेक्षमप्प नयंगळनितुं मिथ्यानयंगळप्पुवु। स्यात्कारसापेक्षमप्प नयंगळनितुं वस्तुतोर्थकृत् वस्तुवृत्तियिंदमिष्टप्रयोजनमं माळ्कुं।

यितु पेळल्पट्ट सामान्यनयं निश्चयव्यवहारनयभेदर्दिदं द्विविधमक्कु-। मा निश्चयनयं शुद्धाशुद्धभेदर्दिदं द्विविधमक्कुं। व्यवहारनयं सद्भूतासद्भूत भेदर्दिदं द्विविधमक्कुमल्लि सद्भूतनयं शुद्धमुमशुद्धमुं मेणनुपचरितसमुद्भूतमुमुपचरितसमुद्भूतमुमेंदु द्विविधमक्कु-। मनुपचरितासद्भू-तमुमुपचरितासद्भूतमुमेंबसद्भूतमुं द्विविधमक्कु मितु षण्णयंगळप्पुवेंतेंदोडे :—

त्रिकालगोचर नयैकान्त और उपनयैकान्त अर्थात् निश्चय और व्यहारनयके विषय-भूत अर्थोंका समुदाय, जो सदा अविनाशी अभिन्न सम्बन्धरूप है वह द्रव्य है और वह एक तथा अनेकरूप है।

शायद कोई कहें कि नय और उपनय तो एकान्त—एकधर्मको विषय करते हैं अतः उनका समुदाय भी मिथ्या एकान्तोंका समूह होनेसे मिथ्या है। किन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि स्यात् पदसे निरपेक्षनय मिथ्या होते हैं और स्यात् सापेक्ष नय वस्तुरूप होनेसे इष्टसाधक होते हैं।

यह सामान्य नय निश्चय और व्यवहारके भेदसे दो प्रकारका है। निश्चयनय भी शुद्ध-अशुद्धके भेदसे दो प्रकार है तथा व्यवहारनय भी सद्भूत और असद्भूतके भेदसे दो प्रकारका है। उनमें-से सद्भूत व्यवहारनय भी शुद्ध-अशुद्धके भेदसे अथवा उपचरित-अनुपचरितके भेदसे दो प्रकारका है। असद्भूतनय भी अनुपचरित और उपचरितके भेदसे

त्रिकालानां त्रिकालगोचराणां नयोपनयैकांतानां नयाश्च तदंशाः—उपनयाश्च नयोपनयाः त एव एकांताः निश्चयव्यवहारनयविषयधर्माः तेषां समुच्चयः समुदायः अविभ्राट् भावसंबंधः अनश्वरवस्तुसंबंधः स्यात् ततः कारणात् द्रव्यमेकमनेकधा अनेकप्रकारं स्यात्।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकांततास्ति न। अनपेक्षो नयो मिथ्या सापेक्षो वस्तुतोऽर्थकृत् ॥१॥

नयोपनयानामेकांतविषयत्वात् तदेकांतानां समुच्चयैः मिथ्यासमूहः स मिथ्यैव चेत्तन्न, नयविषयत्वेन सत्यत्वात् तदा मिथ्यानयैकांतता अस्ति तदपि न स्यात्कारानपेक्षो नयो मिथ्या सापेक्षस्तु वस्तुतः वस्तुवृत्त्या अर्थकृदिष्टसाधकः। सोऽयं सामान्यनयः निश्चयव्यवहारभेदाद् द्वेधा। तत्र निश्चयनयोऽपि शुद्धाशुद्धभेदाद् द्वेधा व्यवहारनयोऽपि सद्भूतासद्भूतभेदाद् द्वेधा। तत्र सद्भूतनयोऽपि शुद्धाशुद्धभेदादनुपचरितोपचरितभेदाद्वा द्वेधा।

कर्त्राद्या वस्तुनो भिन्ना येन निश्चयसिद्धये ।
साध्यंते व्यवहारोऽसौ निश्चयस्तवभेददृक् ॥"—[अन. ध. १।१०२।]

वस्तुविन कर्त्रादिधर्म्मंगळु वस्तुविनत्तणिदं भिन्नंगळागि साधिसल्पडुवुवेकेंदोडे निश्चयसिद्धिनिमित्तवागि येन आउदोंदरिंदमदु व्यवहारनयमेंबुदक्कुं । निश्चयनयमेंबुदा कर्त्रादिधर्म्मंगळगे वस्तुविनोळभेदमं काणु ॥

"सर्वेऽपि शुद्धबुद्धैक-स्वभावाश्चेतना इति ।
शुद्धोऽशुद्धश्च रागाद्या एवात्मेत्यस्ति निश्चयः ॥"—[अन. ध. १।१०३।]

सर्वेऽपि चेतनाः येल्ला जोवंगळुं शक्तियोळं व्यक्तियोळं शुद्धबुद्धैकस्वभावाः शुद्धंगळ् बुद्धंगळुमेंबेकस्वभावंगळेयप्पुवु । इति यिंतेंदु शुद्धः शुद्धनिश्चयनयमक्कुं । तु मत्ते रागाद्या एवात्मेति रागादिगळे आत्मनिंदितु अशुद्धः अशुद्धनिश्चयनयमक्कुं ॥

सद्भूतेतरभेदाद्व्यवहारः स्यात् द्विधा भिदुपचारः ।
गुणगुणिनोरभिधायामपि सद्भूतो विपर्य्ययादितरः ॥—[अन. ध. १।१०४]

सद्भूतेतरभेदात् सद्भूतमुमसद्भूतमुमेंब भेददत्तणिदं व्यवहारः स्याद्द्विद्वधा व्यवहारनयमेरडु प्रकारमक्कुमल्लि गुणगुणिनोरभिधायामपि गुणगुणिगळे अभेदमुंटागुत्तं विरलु भिदुपचारः भेदमनुपचरिसुउदु सद्भूतः सद्भूतव्यवहारनयमक्कुं । विपर्य्ययात् गुणमुं गुणियुमल्लदल्लि भेदमुंटागुत्तं विरलु अभेदमनुपचरिसुवुदु । इतरः असद्भूतव्यवहारनयमक्कुं ॥

दो प्रकारका है । इस प्रकार छह नय हैं । कहा है—

जिसके द्वारा निश्चयकी सिद्धिके लिए कर्ता आदि धर्म वस्तुसे भिन्न साधे जाते हैं वह व्यवहारनय है । और जो वस्तुमें कर्ता आदिके अभेदको देखता है वह निश्चयनय है ।

सभी चेतन प्राणी शक्ति और व्यक्ति रूपसे (?) एक शुद्ध-बुद्ध स्वभाववाले हैं, यह शुद्ध निश्चयनयका उदाहरण है । तथा आत्मा रागादिरूप है यह अशुद्ध निश्चयनयका उदाहरण है ।

सद्भूत और असद्भूतके भेदसे व्यवहारनयके भी दो भेद हैं । गुण और गुणीमें

असद्भूतोऽप्यनुपचरितोपचरितभेदाद् द्वेधा । इति षण्णयाः । तद्यथा—

कर्त्राद्या वस्तुनो भिन्ना येन निश्चयसिद्धये । साध्यते व्यवहारोऽसौ निश्चयस्तदभेददृक् ॥१॥

कर्त्रादयो धर्मा वस्तुनः सकाशाद्भिन्नाः साध्यंते । किमर्थं ? निश्चयसिद्धये येनासौ व्यवहारनयः स्यात् । निश्चयनयस्तु तेषां कर्त्रादिधर्माणां वस्तुन्यभेददर्शनं ।

सर्वेऽपि शुद्धबुद्धैकस्वभावाश्चेतना इति । शुद्धोऽशुद्धश्च रागाद्या एवात्मेत्यस्ति निश्चयः ॥

सर्वेऽपि चेतनाः प्राणिनः शक्तितो व्यक्तितश्च शुद्धबुद्धैकस्वभावाः इति शुद्धनिश्चयनयः स्यात् । तु—पुनः रागाद्या एवात्मेत्यशुद्धनिश्चयनयः स्यात् ।

सद्भूतेतरभेदाद् व्यवहारः स्याद् द्विधा भिदुपचारः ।
गुणगुणिनोरभिदायामपि सद्भूतो विपर्ययादितरः ॥१॥

सद्भूतःशुद्धेतरभेदात् द्वेधा तु चेतनस्य गुणः ।
केवलबोधादय इति शुद्धोनुपचरितसंज्ञो ऽसौ ॥—[अन. ध. १ ।१०५।]

तु मत्तमा सद्भूतः सद्भूतव्यवहारनयं शुद्धेतर भेदात् शुद्धाशुद्धभेदवर्त्तिंदं द्वेधा द्विप्रकारमक्कुमल्लि चेतनस्य गुणाः चेतनगुणंगळु केवलबोधादयः इति केवलज्ञानादिगलेंदितु शुद्धः शुद्धसद्भूतव्यवहारनयमक्कुं । असौ अदु अनुपचरितसंज्ञः अनुपचरितमेंब पेसरनुळ्ळ सद्भूतव्यवहारनयमक्कुं ॥

मत्यादिविभावगुणाश्चित इत्युपचरितकः स चाशुद्धः ।
देहो मदीय इत्यनुपचरितसंज्ञस्त्वसद्भूतः ॥—[अन. ध. १।१०६।]

मत्यादिविभावगुणाः मतिज्ञानादिगळु विभावगुणंगळप्पुववु । चित इति जीवन गुणंगळेंदितु उपचरितकः उपचरितसद्भूतव्यवहारनयमक्कुं स चाशुद्धः अदुवुमशुद्ध सद्भूतव्यवहारनयमुमेंदु मक्कुं । तु मत्तं देहो मदीय इति देहमेंनदेंदितु अनुपचरितसंज्ञः अनुपचरितमेंब संज्ञेयनुळ्ळ-असद्भूतः असद्भूतव्यवहारनयमक्कुं ॥

देशो मदीय इत्युपचरितसमाह्वः स एव चेत्युक्तं ।
नयचक्रमूलभूतं नयषट्कं प्रवचनपटिष्ठैः ॥—[अन. ध. १।१०७।]

मदीयो देश इति येन देशमेंदितु उपचरितसमाख्यः उपचरितमेंब पेसरनुळ्ळदु । स एव

अभेद होनेपर भी भेदका उपचार सद्भूत व्यवहारनय है। और भेदमें अभेदका उपचार असद्भूत व्यवहार नय है ।

सद्भूत व्यवहारनय शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकार है। चेतनके गुण केवलज्ञानादि हैं यह शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है। इसीको अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय कहते हैं ।

मतिश्रुत आदि वैभाविक गुण जीवके हैं यह उपचरित नामक अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनय है। 'शरीर मेरा है' यह अनुपरित नामक असद्भूत व्यवहारनय है। 'यह देश मेरा है' यह उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है। इस प्रकार ये छह नय प्रवचनोपेदष्टा गणधर आदिने नयचक्रशास्त्रके मूलभूत कहे हैं ।

सद्भूतासद्भूतभेदाद् व्यवहारनयो द्विधा तत्र गुणगुणिनोरभेदे सत्यपि भेदोपचारः स सद्भूतव्यवहारनयः । भेदे चाभेदोपचारः स असद्भूतव्यवहारनयः स्यात् ।

सद्भूतः शुद्धेतरभेदाद् द्वेधा तु चेतनस्य गुणाः । केवलबोधादय इति शुद्धोऽनुपचरितसंज्ञोऽसौ ॥१॥

तु—पुनः स सद्भूतव्यवहारनयः शुद्धाशुद्धभेदात् द्वेधा ॥ तत्र चेतनस्य गुणाः केवलज्ञानादयः इति शुद्धसद्भूतव्यवहारनयः । असौ पुनः अनुपचरितनामा स्यात् ।

मत्यादिविभावगुणाश्चित इत्युपचरितकः स चाशुद्धः ।
देहो मदीय इत्यनुपचरितसंज्ञस्त्वसद्भूतः ॥१॥

मतिश्रुतादिविभावगुणा जीवस्येत्युपचरितनामा स चाशुद्धसद्भूतव्यवहारनयः स्यात् । तु—पुनः देहो मदीय इत्यनुपचरितनामा असद्भूतव्यवहारनयः स्यात् ।

देशो मदीय इत्युपचरितसमाह्वः स एव चेत्युक्तं । नयचक्रमूलभूतं नयषट्कं प्रवचनपटिष्टैः ॥१॥

चेति आ असद्भूतव्यवहारनयमक्कुमें दितु नयचक्रमूलभूतं नयचक्रशास्त्रक्क कारणमप्प नयषट्कं षण्नयंगळु प्रवचनपटिष्ठैः परमागमपटुगळप्प गणधरादिमुनिमुख्यरिंदं उक्तं पेळल्पट्टुदु ॥

व्यवहारपराचीनो निश्चयं यश्चिकीर्षति ।
बीजादीनां विना मूढः स सस्यानि सिसृक्षति ॥—[अन. ध. १।१००।]

व्यवहारनयक्के परांमुखनप्प मूढनावनानुमोव्वनु निश्चयमने माडलिच्छयिसुगु मातं बीजादिसामग्रियिल्लदे ससिगळं पुट्टिसलिच्छयिसुगुं ॥

व्यवहारमभूतार्थं प्रायो भूतार्थविमुखजनमोहात् ।
केवलमुपयुंजानो व्यंजनवद्भ्रश्यति स्वार्थात् ॥—[अन. ध. १।९९।]

व्यवहारनयविषयमविद्यमानार्थमदं भूतार्थविमुखजनंगळ ज्ञानदर्शनिदं निश्चयव्यतिरिक्त-व्यवहारमों दने उपयोगिसुवेनें बातनुपदंशगळने मेल्दु स्वार्थान्नादिगळर्तणिदं किडुगुं ॥

भूतार्थे रज्जुवत्स्वैरं विहर्तुं वंशवन्मुहुः ।
श्रेयो धीरैरभूतार्थो हेयस्तद्विहृतीश्वरैः ॥—[अन. ध. १।१०१।]

भूतार्थे निश्चयनयविषयमप्पर्थदोळु रज्जुवत् मिळियोळें तंते स्वैरं मुहुर्विहर्तुं तंनिच्छेयिं मरळ मरळि विहरिसल्वेडि वंशवत् बिदिरनें तु पिडिदोडे श्रेयः ओल्लिस्तंते व्यवहारनयमोळितक्कुं । धीरैस्तद्विहृतीश्वरैर्हेयः भूतार्थदोळु स्वैरविहारपरिणतरप्प धीररुगळिवमा व्यवहारविषयमप्प अभूतार्थं हेयमक्कुं । त्याज्यमक्कुमें बुदर्थं । मुळिदवरगें ल्लं व्यवहारनयं हेयलर्तें बुदर्थं ॥

जो मूढ़ व्यवहारसे विमुख होकर निश्चयको प्राप्त करना चाहता है वह बीज आदि सामग्रीके बिना धान्य उत्पन्न करना चाहता है। व्यवहार अभूतार्थ है। जो भूतार्थसे विमुख जनोंके मोहवश केवल उसीका उपयोग करता है वह अन्नके बिना केवल दाल-शाक आदि व्यंजनोंका उपयोग करनेवाले पुरुषकी तरह स्वार्थ-मोक्षसे भ्रष्ट होता है। जैसे नट रस्सीपर स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करनेके लिए बार-बार बांसका सहारा लेता है और उसमें दक्ष हो जानेपर उसे छोड़ देता है, उसी प्रकार धीर मुमुक्षुको निश्चयनयमें निरालम्बन-पूर्वक विहार करनेके लिए बार-बार व्यवहारनयका आलम्बन लेना चाहिए और उसमें समर्थ हो जानेपर उसे छोड़ देना चाहिए।]

मदीयो देश इत्युपचरितनामा असद्भूतव्यवहारनयः स्यात् । इत्येवं नयचक्रशास्त्रस्य मूलभूत नयषट्कं प्रवचनपटिष्ठैर्गणधरादिभिरुक्तं ।

व्यवहारपराचीनो निश्चयं यश्चिकीर्षति । बीजादिना विना मूढः स सस्यानि सिसृक्षति ॥१॥

व्यवहारे पराङ्मुखो यो मूढो निश्चयमुत्तादयितुमिच्छति स बीजादिसामग्रीं विना सस्यान्युत्पादयितुमिच्छति ।

व्यवहारमभूतार्थं प्रायो भूतार्थविमुखजनमोहात् । केवलमुपयुंजानो व्यंजनवद् भ्रश्यति स्वार्थात् ॥१॥

व्यवहारनयं—अविद्यमानेष्टविषयं निश्चयनयविमुखजनजनिताज्ञानान्निश्चयनिरपेक्षं व्यवहारमेवैकमुपयुंजानो विवक्षितार्थात्प्रच्यवते केवलं शालीनमुपयुंजानोऽन्नादेर्यथा ।

भूतार्थे रज्जुवत्स्वैरं विहर्तुं वंशवन्मुहुः । श्रेयोधीरैरभूतार्थो हेयस्तद्विहृतीश्वरैः ॥१॥

निश्चयनयविषये स्वैरं मुहुर्विहर्तुं धीरैः व्यवहारनयः श्रेयः रज्ज्व्यां यथा वारणैर्वेणुर्यथा भूतार्थे स्वैरविहारपरिणतैस्तु हेयः न शेषैरित्यर्थः ।

मत्तमनेकांतात्मकमप्प वस्तुविनोळविरोधदिंदं हेत्वर्प्पणेयिंदं साध्यविशेषयाथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगं नयमेंदितु सामान्यलक्षणमनुळळ नयं नैगमादिभेददिंदं सप्तविधमक्कुमल्लि द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गमक्कुं। तद्विषयं द्रव्यार्त्थिकनयमक्कुं। पर्य्यायं विशेषमेंबुदर्त्थमदुवुं व्यावृत्तियेंबुबुदर्त्थं। तद्विषयं पर्य्यायार्त्थिकनयमक्कु—। मा येरडर भेदंगळु नैगमादिनयंगळक्कुमवक्के विशेषलक्षणं पेळल्पडुगुमेतें दोडभिनिर्वृतार्त्थं संकल्पमात्रग्राही नैगमः। अनिष्पन्नार्त्थसंकल्पग्राहि नैगमनयमदेंतेनें कैयोळु कोडलियं पिडिदु पोप पुरुषनोव्वं कंडु बेसगोळगु 'मेनुनिमित्तं पोपे' येंदितु बेसगोंडोडातं नां बळळमं तरल्पोंपेनेंगु मागळा बळळमनिष्पन्नमक्कुमादोडमदर निष्पत्तिनिमित्तं संकल्पमात्र बळळद व्यवहरणमक्कुमंते कट्टिगेयुं नीरुमं कोंडु बर्प्पंनतोव्वं बेसगोळगु मेनं माडिदपे नीनेंदितु बेसगोंडोडातं पेळगुमोगरमनट्टपेनेंदितागळा ओगरद पर्य्यायमनिष्पन्नमादोडं तन्निमित्तमुद्युक्तनक्कुमी प्रकारदिंदं लोकव्यवहारममनिष्पन्नार्त्थं संकल्पमात्रविषयं नैगमनयगोचरमक्कुं॥ स्वजात्यविरोधदिंदं मेकत्वमनाश्रयिसि पर्य्यायंगळनु आक्रांत भेददर्त्तिणिदं। समस्तग्रहणात्संग्रहः। एंदितु संग्रहनयमक्कुं। सत् द्रव्यं घट इति येंदितु संग्रहनयमक्कुं। मल्लि सत्

अनेकान्तात्मक वस्तुमें विरोधके बिना हेतुकी अपेक्षासे साध्यविशेषके यथार्थ स्वरूपको प्राप्त करानेमें समर्थ प्रयोगको नय कहते हैं। यह नय सामान्यका लक्षण है। नैगम आदिके भेदसे उसके सात भेद हैं। द्रव्य अर्थात् सामान्य या उत्सर्गको विषय करनेवाला द्रव्यार्थिक नय है और पर्याय अर्थात् विशेष या व्यावृत्तिको विषय करनेवाला पर्यायार्थिकनय है। उन दोनोंके भेद नैगम आदि हैं। उनका लक्षण कहते हैं—

अनिष्पन्न अर्थके संकल्प मात्रको ग्रहण करनेवाला नैगमनय है। जैसे हाथमें कुठार लेकर जाते हुएसे किसीने पूछा—किस लिए जाते हो? वह बोला—रस्सी लाने जाता हूँ। उस समय रस्सी बनी नहीं है फिर भी रस्सी बनानेके संकल्प मात्रमें रस्सीका व्यवहार करता है। इसी प्रकार पानी लेकर आते हुए पुरुषसे किसीने पूछा—क्या करते हो? वह बोला—भात पकाता हूँ। उस समय भात तैयार नहीं हुई है। फिर भी उसीके लिए उसका प्रयत्न है। इस प्रकार अनिष्पन्न अर्थके संकल्प मात्रको ग्रहण करनेवाला लोक-व्यवहार नैगम नयका विषय है। अपनी जातिका अविरोधपूर्वक सब भेदसहित पर्यायोंमें एकत्व लाकर सबको ग्रहण करनेवाला संग्रहनय है। इसके तीन उदाहरण हैं—सत्, द्रव्य और घट। 'सत्' कहनेपर 'सत्' इस प्रकार वचन और विज्ञानकी प्रवृत्तिरूप लिंगसे अनुमित सत्ताके आधारभूत सब

पुनः—अनेकांतात्मके वस्तुन्यविरोधेन हेत्वर्पणया साध्यविशेषयाथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नय इति सामान्यलक्षणम्। स च नैगमादिभेदात्सप्तधा। तत्र द्रव्यं सामान्यमुत्सर्गः तद्विषयः द्रव्यार्थिकः। पर्यायः विशेषः व्यावृत्तिरित्यर्थः। तद्विषयः पर्यायार्थिकः। तयोर्भेदा नैगमादयः तेषां लक्षणमुच्यते। तद्यथा—अभिनिर्वृत्तार्थसंकल्पमात्रग्राही नैगमः, यथा हस्ते कुठारं गृहीत्वा गच्छन् केनचिद् दृष्ट्वा पृष्टः—'किमर्थं यासि? रज्जुमानेतुं' तदा रज्जुरनिष्पन्ना तथापि रज्जुनिष्पत्तिनिमित्तं संकल्पमात्ररज्जोर्व्यवहरणम्। तथा एवं नीरं च गृहीत्वा समागच्छन् कश्चित्पृष्टः 'किं करोषि?' ओदनं पचामीत्युक्तवांस्तदौदनपर्यायोऽनिष्पन्नस्तथापि तन्निमित्तमुद्युक्तो भवेत्। एवं लोकस्य व्यवहारः अनिष्पन्नार्थसंकल्पमात्रविषयो नैगमनयगोचरः स्यात्।

स्वजात्यविरोधेनैकत्वमाश्रित्य पर्यायाक्रांतभेदात्समस्तग्रहणात्संग्रहः। सत् द्रव्यं घटः इति। अत्र

येंदितु पेळल्पडुत्तिरलु सत्तेंब वाग्विज्ञान अनुप्रवृत्ति लिंगानुमितसत्ताधार भूतंगळ विशेषरहितविंदमेल्लवर संग्रहमक्कुमंते द्रव्यमेंदितु नुडियल्पडुत्तिरलु द्रवति गच्छति तांस्तान्यपर्य्यायानिति द्रव्यमेंदितुपलक्षित जीवाजीवतद्भेदप्रभेदंगळ संग्रहमक्कु मंते घटयेंदितु नुडियल्पडुत्तिरलु घटबुद्धि अभिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहमक्कुमी प्रकारमन्यमुं संग्रहनयविषयमक्कुं ॥

संग्रहनयदोळिक्कल्पट्टर्थंगळ्गे विधिपूर्व्वकमवहरणं व्यवहारमेंदितु भेदग्रहणं व्यवहारनयमक्कुं। विधियेंबुदाउदेंदोडे आउदो दु संग्रहनयगृहीतार्थं तदनुपूर्व्वंविंदमे व्यवहारं प्रवर्त्तिसुगुमेंदितु विधियेंबुदक्कुं अदेंतेंदोडे पेळल्पडुगुं। सर्व्वसंग्रहविंदमाउदो दु सत्संग्रहिसल्पट्टुदवुमनपेक्षितविशेषं संव्यवहारक्के योग्य मल्तेंदु यत्सत्तद्द्रव्यं गुणो वा येंदितु व्यवहारनयमनाश्रयिसल्पडुगुं। संग्रह नयविषयद्रव्यंविंदमुं संग्रहाक्षिप्तजीवाजीव विशेषानपेक्षमप्पुदरिंदं संव्यवहारं शक्यमल्तेंदु यद्द्रव्यं तज्जीवमजीवद्रव्यमेंदितु व्यवहारनयमनाश्रयिसल्पडुगुं। मत्तमा जीवाजीवंगळेरडुं संग्रहाक्षिप्तंगळादोडं संव्यवहार योग्यंगळल्तेंदु प्रत्येकं देवनारकादियुं घटादियुं व्यवहारनयविंदमाश्रयिसल्पडुगु-। मिंती नयमन्नेवरेगं वर्त्तिसुगुमेन्नेवरं पुनर्व्विभागमिल्लं ॥

पदार्थोंका ग्रहण होता है। तथा द्रव्य कहनेपर—जो उन-उन पर्यायोंको द्रवति-प्राप्त करता है वह द्रव्य है अतः उससे उपलक्षित जीव-अजीव और उसके भेद-प्रभेदोंका ग्रहण होता है। तथा घट कहनेपर घट बुद्धि और घट शब्दके अनुगम लिंगसे अनुमित सब पदार्थोंका ग्रहण होता है। इसी प्रकार अन्य भी संग्रहनयका विषय होता है।

संग्रहनयके द्वारा संगृहीत पदार्थोंका विधिपूर्वक भेद ग्रहण करना व्यवहारनय है। संग्रहनयमें जिस क्रमसे ग्रहण किया गया हो उसी क्रमसे भेद करना यह विधि है। जैसे सर्व संग्रहके द्वारा जिस सत्का ग्रहण किया है जबतक उसके भेद न किये जायें वह व्यवहारके योग्य नहीं होता है। अतः जो सत् है वह द्रव्य या गुण है ऐसा व्यवहार नयका आश्रय लिया जाता है। संग्रहनयके विषय द्रव्यसे भी जीव-अजीव भेदोंकी अपेक्षा किये बिना व्यवहार शक्य नहीं हैं, अतः जो द्रव्य है वह जीव-अजीवके भेदसे दो प्रकारका है ऐसा व्यवहारनयका आश्रय लेना चाहिए। संग्रहसे आक्षिप्त जीव और अजीवसे भी व्यवहार नहीं चलता। प्रत्येकके भेद देव-नारकी आदि और घट-पट आदिका आश्रय लेना होता है। इस प्रकार यह नय तबतक चलता है जबतक भेदकी गुंजाइश नहीं रहती।

सदित्युक्ते सत्तेति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिर्लिंगानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः स्यात्। तथा द्रव्यमित्युक्ते द्रवति गच्छति तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यमित्युपलक्षितजीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां ग्रहणं स्यात्। तथा घट इत्युक्ते घटबुद्ध्यभिधानानुगमलिंगानुमितसकलार्थसंग्रहः स्यात्। एवमन्योऽपि संग्रहनयविषयो भवेत्।

संग्रहे निक्षिप्तार्थानां विधिपूर्वकमवहरणं भेदग्रहणं व्यवहारः। यः संग्रहनयगृहीतार्थस्तदनुपूर्वेणैव व्यवहारः प्रवर्तते इति विधिः। स कथं ? उच्यते—सर्वसंग्रहेण यत्सत् संगृहीतं तदनपेक्षितविशेषाणां संव्यवहारायोग्यत्वात् यत्सत् तद् द्रव्यं गुणो वेति व्यवहारनय आश्रेयः। संग्रहनयविषयद्रव्येणापि संग्रहाक्षिप्तजीवाजीवविशेषानपेक्षत्वेन संव्यवहाराशक्यत्वात् यद् द्रव्यं तज्जीवोऽजीव इति व्यवहारनय आश्रेयः। पुनः तौ जीवाजीवौ द्वावपि संग्रहाक्षिप्तौ तदापि संव्यवहारायोग्यौ इति प्रत्येकं देवनारकादिर्घटादिर्व्यवहारनयेनाश्रेयौ। इत्ययं नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्विभागो न स्यात्।

ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तंत्रयति स्वीकरोतीति ऋजुसूत्रः पूर्व्वापरंगळप्प त्रिकालविषयंगळं त्यजिसि वर्त्तमान विषयंगळं स्वीकरिसुगु मतीतानागतंगळ्गे विनष्टानुत्पन्न मागुत्तं विरलु संव्यवहाराभावदत्तणिनवुवुं वर्त्तमानसमयमात्रमक्कुं। तद्विषयपर्य्यायमात्र ग्राहियक्कुमी ऋजुसूत्रनयमंतादोडे संव्यवहारलोपप्रसंगमक्कु मेंदेनल्वेकेंदोडे नयक्के विषयमात्रप्रदर्शनं माडल्पट्टु दावुदों दु सर्व्वनयसमूह साध्यमदु लोकव्यवहारमक्कुमप्पुदरिंदं। लिंगसंख्या साधनादि व्यभिचार निर्व्वृत्तिप्रधानं शब्दनयमक्कुं। अल्लि पुष्यस्तारका नक्षत्रमेंतिदु लिंगव्यभिचारमेंबुदु। जलमापो वर्षाः एंदितिदु संख्याव्यभिचारमेंबुदु। सेना वनमध्यास्ते यें दितिदु साधनव्यभिचारमेंबुदु कारकव्यभिचारमक्कुं। आदिशब्ददिंदं एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पिता एंबुदु पुरुषव्यभिचारमक्कुं। विश्वेदृश्वाऽस्यां पुत्रो जनिता एंबिदु कालव्यभिचारमक्कुं। संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति एंबिदुपग्रहव्यभिचारमक्कुमिंती प्रकार व्यवहारमनो शब्दनयमंन्याय्यमेंदु बगेगुमेकेंदोडे अन्यार्थंवकन्यार्थंदोडने संबंधाभावमप्पुदरिंदं। यितादोडीनयं लोकसमयविरोध-

---

ऋजु अर्थात् सीधे सरलको जो स्वीकार करता है वह ऋजुसूत्रनय है। यह नय भूत और भाविको छोड़कर वर्तमान विषयोंको ही ग्रहण करता है, क्योंकि अतीत तो नष्ट हो गये और जो भावि है वे उत्पन्न नहीं हुए अतः उनसे व्यवहार नहीं चलता। इस तरह वर्तमान समय मात्रको ग्रहण करनेवाला ऋजुसूत्रनय है। ऐसा होनेसे व्यवहारका लोप हो जायेगा ऐसा न कहना। यहाँ तो नयका विषय मात्र दिखलाते हैं, लोक व्यवहार तो सब नयोंके समूह द्वारा ही साधा जाता है। लिंग, संख्या साधन आदिके व्यभिचारकी निवृत्ति करनेमें तत्पर शब्दनय है। पुष्य, तारका, नक्षत्र ये शब्द भिन्न लिंगवाले हैं। इनका समान रूपसे प्रयोग लिंग व्यभिचार है। 'जलं आपो वर्षाः' ये तीनों शब्द भिन्न वचनवाले हैं इनका समान रूपसे प्रयोग संख्या व्यभिचार है। सेना वनमें है, यह कारक व्यभिचार है। आदि शब्दसे उत्तम पुरुषके स्थानमें मध्यम पुरुषका और मध्यमके स्थानमें उत्तम पुरुषका प्रयोग पुरुष व्यभिचार है। इसका पुत्र विश्वद्रष्टा—जिसने विश्वको देख लिया है—होगा यह काल व्यभिचार है। सतिष्ठते-प्रतिष्ठते, विरमति-उपरमतिका संस्कृत प्रयोग उपग्रह व्यभिचार है। इस प्रकारके व्यवहारको शब्दनय उचित नहीं मानता। क्योंकि इसके मतसे अन्य अर्थका अन्य अर्थके साथ विरोध है।

ऋजु प्रगुणं सूत्रयति तंत्रयति स्वीकरोतीति ऋजुसूत्रः। पूर्वापरान् त्रिकालविषयान् त्यक्त्वा वर्तमानविषयानेव स्वीकरोति। अतीतानागतानां विनष्टानुत्पन्नत्वेन संव्यवहाराभावात्। सोऽपि वर्तमानः समयमात्रः तद्विषयपर्यायमात्रग्राही स्यादयं ऋजुसूत्रनयः। तथा सति संव्यवहारलोपप्रसंग इति न वाच्यं नयस्य विषयमात्रप्रदर्शकत्वात् लोकव्यवहारस्य च सर्वनयसमूहसाध्यत्वात्।

लिंगसंख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिप्रधानः शब्दनयः। तत्र पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति लिंगव्यभिचारः। जलमापो वर्षाः इति संख्याव्यभिचारः। सेना वनमध्यास्ते इति साधनव्यभिचारः—कारकव्यभिचारः। आदिशब्दात् एहि मन्ये रथेन यास्यसि यातस्ते पिता इति पुरुषव्यभिचारः। विश्वदृश्वास्यां पुत्रो जनिता इति

---

१. कारकादि—कारक। २. क्विप्—प्रत्यय—उपसर्ग—लौकिकशास्त्रविरोधमक्कुं। इदंनात्—विश्वदृश्वात्—सामस्त्यात्—ग्रामादिभेदनात्।

मक्कुमेंदेंबोडे विरोधमावोडमक्कुं। तत्वविचारमितुटेयक्कुं। न भैषज्यमातुरेच्छानुवर्त्तियल्ता-बोडं प्रयोगिसल्पडुगुं॥ नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः। आउदोंदु कारणदिदं नानार्थंगळं परित्यजिसि ओंदर्थमनभिमुखत्वदिदं रूढमदु समभिरूढमक्कुं। गौः एंदिती शब्दं गवादिगळोळु वर्त्तमानं पशुविनोळु रूढमक्कुं। अथवा अर्थज्ञप्त्यर्थमागि शब्दप्रयोगमक्कुमल्लि एकार्थंक्केक-शब्ददिदं ज्ञातार्थत्वदत्तणिदं पर्य्यायशब्दप्रयोगमनर्थंकमक्कुं। शब्दभेदमुंटक्कुमप्पोडर्थंभेदमुंटप्पुदु। मा यर्थं भेददिंदमवश्यं संभविसल्पडदेंदितु नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः एंदितु पेळल्पट्टुदु। इंदनादिंद्रः शकनाच्छक्रः पूर्दारणात्पुरंदरः एंदिती प्रकारदिंदं सर्व्वत्रमरियल्पडुगुं। अथवा शब्द-मेल्लि अभिरूढमदल्लि बंदभिमुखत्वदिंदमभिरोहणदत्तणिदमुं समभिरूढमक्कु। मेंतीगळु क्व भवानास्ते आत्मनि एंदितेकेंदोडे वस्त्वंतरदोळु वृत्यभावमप्पुदरिंदं। यितल्लदेत्तलानुमन्यक्क-न्यत्रवृत्तियक्कुमप्पोडे ज्ञानादिगळगं रूपादिगळगमुमाकाशदोळु वृत्तियक्कुं॥

किन्तु इससे लोक और शास्त्रका विरोध होनेका भय नहीं करना चाहिए। यह तत्त्व विचार है। औषधि रोगीकी इच्छाके अनुसार नहीं दी जाती। नाना अर्थोंका समभिरोहण करनेसे समभिरूढ़ नय है—अर्थात् नाना अर्थोंको त्यागकर एक अर्थमें मुख्यतासे रूढ़ होने-वाला समभिरूढ़ नय है, जैसे गौ शब्द गाय आदि अर्थोंमें वर्तमान रहते हुए भी पशुओंके अर्थमें रूढ है। अथवा अर्थका ज्ञाता ज्ञाप्य अर्थके अनुरूप शब्दका प्रयोग करता है। एक अर्थका बोध एक शब्दसे होनेपर पर्याय शब्दका प्रयोग व्यर्थ है। यदि शब्द भिन्न है तो अर्थमें भी भेद होना ही चाहिए। इस प्रकार नाना शब्दोंके नाना अर्थ माननेवाला समभि-रूढ है। जैसे इन्द्र, शक्र, पुरन्दर तीन शब्द एकार्थवाचक माने जाते हैं किन्तु उनके अर्थ भिन्न हैं। इन्दन करनेसे इन्द्र, शक्तिशाली होनेसे शक्र और नगरोंको दारण करनेसे पुरन्दर कहा जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। अथवा जो जहाँ अधिरूढ़ है वह मुख्य रूपसे वहीं अधिरूढ़ है। जैसे इस समय आप कहाँ स्थित हैं? उत्तर है—आत्मामें। क्योंकि एक वस्तु दूसरी वस्तुमें नहीं रहती। यदि ऐसा न हो तो जीवके ज्ञानादि और पुद्गलके रूपादि आकाशमें रहने लगें।

कालव्यभिचारः। संतिष्ठते प्रतिष्ठते विरमते उपरमति इत्ययं प्रग्रहव्यभिचारः। एवंप्रकारः शब्दनयन्यायः (?)। कुतः? अन्यार्थस्यान्यार्थेनासंबंधात्। एवं चेदयं नयः लोकसमयविरोधः इति न वाच्यं तत्त्वविचार एवं स्यात् भैषज्यमातुरेच्छानुवर्ति न तथापि प्रयोक्तव्यम्।

नानार्थसमभिरोहणात्समभिरूढः। यतः कारणात् नानार्थान् हि परित्यज्यैकार्थमभिमुखत्वेन रूढः। गौ इति शब्दः गवादिषु वर्तमानः पशुषु रूढः। अथवा अर्थज्ञः ज्ञाप्यार्थानुरूपं शब्दं प्रयुंक्ते तत्रैकार्थस्यैकशब्देन ज्ञातत्वात् पर्यायशब्दप्रयोगोऽनर्थकः। शब्दभेदोऽस्ति चेदर्थभेदो भवेत्तेनार्थभेदेनावश्यं न संभवतीति नानार्थ-समभिरोहणात्समाभिरूढः, इंदनानिंद्रः, शकनाच्छक्रः, पूर्दारणात्पुरंदरः इत्येवंप्रकारेण सर्वत्र ज्ञातव्यं। अथवा यः शब्दो यत्राभिरूढः स तत्रागत्याभिमुखत्वेनाभिरोहणात्समभिरूढः। इदानीं क्व भवानास्ते? आत्मनि, वस्त्वंतरे वृत्यभावात्। अन्यथा ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्तिः स्यात्।

येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीत्येवंभूतः । स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षणदोळेतच्छब्दं युक्तमक्कुमन्यकालदोळु युक्तमल्तु । एंतेंदोडेयदैवेंवंति तदैवेंद्रः नाभिषेचको नापि पूजकः एंदिंतु । यदैव गच्छति तदैव गौः न स्थितो न शयितः एंदिंतु । अथवा एनात्मना येन ज्ञानेन भूतः परिणतः तेनैवाध्यवसाययति । यर्थेंद्राग्निज्ञानपरिणत आत्मा इंद्रोऽग्निः एंदिंतु एवंभूतनयमरियल्पडुगुं ॥

इंतु पेळल्पट्ट नैगमादिनयंगळुत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वदिंदमी क्रमं पूर्व्वं पूर्व्वहेतुकत्वदिंदमुमरियल्पडुवुदिंति नयंगळु पूर्व्वंपूर्व्वंविरुद्धमहाविषयंगळुमुत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयंगळुमप्पुवेंतेंदोडे द्रव्यक्कनंतशक्तियत्तणिदं प्रतिशक्तिभिद्यमानंगळागि बहुविकल्पंगळप्पुवु । अदिर्वेल्ला नयंगळु गौणमुख्यतेयिंदं परस्परतंत्रंगळु पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यदत्तणिदं सम्यग्दर्शनहेतुगळु ।

इंतु तद्भवसामान्य सादृश्यसामान्यंगळनाश्रयिसि जीवक्के पंचेंद्रियत्वदोळु प्रमाणनयविषयत्वदिंदमनेकांतत्वमुमेकांतत्वमुं सिद्धमादुदिवुपलक्षणमिंते सर्व्वमुक्तजीवद्रव्यंगळगे सर्व्वकर्म्मविप्रमोक्षलक्षणमोक्षदोळु संसारिजीवंगळगमेकेंद्रियादिजातिनामकर्म्मोदयजनित एकेंद्रियादिपर्य्यायंगळोळं तत्सामान्यद्वयविवक्षेयिंदं प्रमाणनयविषयत्वदिंदमनेकांतत्वमुमेकांतत्वमुमरियल्पडुगुं ।

जो जिस रूप है उसको उसी रूप जानना एवंभूत है, शब्दका जो वाच्यार्थ है उस क्रियारूप परिणमनके समय ही उस शब्दका प्रयोग युक्त है, अन्य समयमें नहीं। जैसे जिस समय इन्दन क्रियाशील है उसी समय इन्द्र है अभिषेक या पूजा करते समय नहीं। जब चले तभी गौ है बैठा या सोते हुए नहीं। अथवा जिस आत्मा अर्थात् ज्ञानरूपसे परिणत हो उसी रूप जानना एवंभूतं नय है जैसे 'इन्द्रके ज्ञानरूप परिणत आत्मा इन्द्र है' आगको जाननेवाला आत्मा आग है।

नैगम आदि नयोंका विषय उत्तरोत्तर सूक्ष्म होता है इसीसे उनका यह क्रम रखा गया है। इनका विषय पूर्व-पूर्वमें महान् है और विरुद्ध है किन्तु उत्तरोत्तर अनुकूल और अल्प विषय है। क्योंकि द्रव्य अनन्त शक्तिवाला है अतः प्रत्येक शक्तिके भेदसे बहुत विकल्प होते हैं। ये सब नय गौणता और मुख्यतामें परस्परसे सम्बद्ध हैं, उनमें पुरुषार्थकी क्रियाको साधनेकी सामर्थ्य है तभी वे सम्यग्दर्शनमें निमित्त होते हैं।

इस प्रकार तद्भव सामान्य और सादृश्य सामान्यको लेकर जीवका पंचेन्द्रियत्व

येनात्मना भूतस्तेनैवाध्यवसाययतीत्येवंभूतः । स्वाभिधेयक्रियापरिणतिक्षणे एव तच्छब्दो युक्तो नान्यकाले यदा इदंति तदैवेंद्रः नाभिषेचको नाभिपूजकः । यदैव गच्छति तदैव गौः न स्थितो न शयित इति । अथवा येनात्मना ज्ञानेन भूतः परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति यर्थेंद्राग्निज्ञानपरिणत आत्मा इंद्राग्निः । नैगमादीनामुत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वेनायं क्रमः । पूर्वपूर्वहेतुका अमी पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषयाः स्युः । कुतः ? द्रव्यस्यानंतशक्तितः प्रतिशक्तिभिद्यमानत्वे बहुविकल्पाः स्युः । ते सर्वे नया गौणमुख्यतया परस्परतंत्राः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्सम्यग्दर्शनहेतवः ।

एवं तद्भवसामान्यसादृश्यसामान्ये आश्रित्य जीवस्य पंचेंद्रियत्वे प्रमाणनयविषयत्वेनानेकांतत्वमेकांतत्वं

"अडवीसूणावि छक्कयं सेसे" शेषैकेंद्रियादिचतुरिंद्रिय पर्य्यंतं बंध नामस्थापनंगळ्मष्टाविंशत्यूनादिषट्कमक्कुं। ए। बि। ति। च। बंध। २३। ए अ। २५। ए प। त्र अ। २६। ए प। आ उ। २९। बि। ति। च। पं। म ३०। बि। ति। च। पं। ति उ। त्रसंगळोळु बंध २३। ए अ २५। ए प। त्र अ २६। ए प। आ। उ २८। न। सु। २९। बि। ति। च। पं। ति। म। दे। ति। ३०। बि। ति। च। पं। ति। उ। म। ति। दे। अ। ३१। दे। ति। आ। ०। १। अगति। शेष पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिगळ्गे बंध। २३। ए अ २५। ए प। त्र अ। २६। एप। अ उ। २९। बि। ति। च। पं ति। म। ३०। बि। ति। च। पं। ति। उ। चतुर्म्मनोवचनौदारिकेप्यष्टौ ८। सत्यासत्योभयानुभयमनोवचनौदारिककाययोगंगळ्बोंभत्तुं योगंगळोळु नामबंधस्थानंगळु त्रयोविंशत्यादियागि एकप्रकृतिस्थानपर्य्यंतमादर्वेंटुं ८ बंधयोग्यंगळप्पुवु। संदृष्टिः—म ४। व ४। औ १ बंध २३। ए अ २५। ए प। त्र अ २६। ए प। आ उ २८। न। दे। २९। बि। ति। च। पं। ति। म। दे। ति। ३०। बि। ति। च। पं। ति। उ। म ति। दे। आ ३१। दे। ती। आ। १। अ ग ति। देववद्वैक्रियिकद्विके वैक्रियिककाययोगद्वोळं वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळं देवगतियोळ्पेळ्दंते पंचविंशतिषड्विंशेति नवविंशति त्रिंशदेंब चतुःस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। वै वै मि। बंध २५। ए प। २६। ए प। आ उ। २९। ति। म ३०। ति उ। म ति॥

अडवीसदु हारदुगे सेसदुजोगेसु छक्कमादिल्लं।
वेदकसाए सव्वं पढमिल्लं छक्कमण्णाणे ॥५४६॥

अष्टाविंशति द्विकमाहारद्विके शेषद्वियोगयोः षट्कमाद्यतनं। वेदकषायेषु सर्व्वं प्रथमतनषट्कमज्ञाने॥

प्रमाण और नयका विषय होनेसे अनेकान्त और एकान्तरूप सिद्ध होता है, अतः सर्व मुक्त जीवोंके सब कर्म बन्धनसे छूटने रूप मोक्षमें और संसारी जीवोंके एकेन्द्रिय आदि जाति नामकर्मके उदयसे उत्पन्न एकेन्द्रियादि पदार्थोंमें भी जीवपना जानना।

च सिद्धं। तदुपलक्षणं तेन सर्वमुक्तानां सर्वकर्मविप्रमोक्षलक्षणे मोक्षे संसारिणां चैकेंद्रियादिजातिनामोदयजनितैकेंद्रियत्वादिपर्यायेष्वपि ज्ञातव्यं। 'अडवीसूणादिछक्कयं सेसे।' शेषैकेंद्रियादिचतुरिंद्रियपर्यंतं चतुरिंद्रियमार्गणासु पृथ्वीकायादिपंचकायमार्गणासु च बंधस्थानान्यष्टाविंशतिकोनाद्यानि षट् २३ ए अ। २५ ए प त्र अ। २६ ए प आ उ। २९ वि ति च प म। ३० वि ति च पं ति उ। सत्यासत्योभयानुभयमनोवाग्योगेष्वौदारिककाययोगे चाष्टौ २३ ए अ। २५ ए प त्र अ। २६ ए प आउ। २८ न दे। २९ वि ति च पं ति म वे ती। ३० वि ति च पं ति उ म ती दे आ। ३१ दे ती आ। १ अगति। देवगतिवद्वैक्रियिकतन्मिश्रयोः २५ ए प। २६ ए प आ उ। २९ ति म ३० ति उ म ती।

आहारकाहारकमिश्रकाययोगद्विकदोळु अष्टाविंशत्यादिस्थानद्विकमक्कुं। संदृष्टि। आ। आ मि। बंध। २८। दे २९। दे ति। शेषद्वियोगयोः षट्कमाद्यतनं कार्म्मणकाययोगदोळं औदारिकमिश्रकाययोगदोळं त्रयोविंशत्यादि स्थानषट्कंबंधमक्कुं॥ संदृष्टि :—औदारिमिश्रकार्म्मणकायबंधः। २३। ए अ २५। ए प। त्र अ २६। ए प। आ उ २८। दे। २९। बि। ति। च। पं। म दे ति। ३०। बि। ति च। पं ति। उ। म ति। देवगतियुतमुमाहारकद्वययुतस्थानमप्रमत्तापूर्व्वकरणरोळल्लदे संभविसदवर्गंळोळी योगं संभविसदु। कार्म्मणकाययोगमेंबुदु कार्म्मणशरीरनामकर्म्मोदयदिनाद कार्म्मणशरीरं कार्म्मणकायमेंबुदक्कु–। मा कार्म्मणकायवर्गणा संयोगदिंदं पुट्टिव जीवप्रदेशप्रचयकर्म्मादानशक्तिजीवप्रदेशपरिस्पंदलक्षणमदु कार्मणकाययोगमा योगं नारकादि चतुर्गतिजरुगळ विग्रहगतियोळेक द्वित्रि समयंगळोळक्कुमंते उक्तं। एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः एंदितु पूर्व्वभवशरीरपरित्याग मागुत्तं विरलुत्तर भव शरीरग्रहणमिल्लदवर्गे नारकादिकत्वमी विग्रहगतियोळे तक्कु मेंदोडे गतिनामकर्म्मोदयदिंदं नारकादिपर्य्यायंगळ्, आनुपूर्व्व्योदयदिंदं तत्तत्क्षेत्रसंबंधमुमायुष्कर्म्मोदयदिंदं तत्तद्भवनारकादित्वमुं संभविसुगुमप्पुदरिंदं। तंनारकादित्वमा कालदोळु सिद्धमक्कुं। यी योगद्वयदोळु मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतगुणस्थानत्रयमुं सयोगगुणस्थानमुं संभविसुगुं। अल्लि नरकगतिजरोळु मिथ्यादृष्ट्यसंयत गुणस्थानद्वयमे संभविसुगुं। देवगतियोळु मिथ्यादृष्टि सासादनासंयत गुणस्थानत्रयं संभविसुगुं। अष्टाविंशति बंधस्थानं मनुष्यकार्म्मणकाययोगिगळप्प मिथ्यादृष्टियोळं मिथ्यादृष्टि तिर्य्यंचरोळं बंधमिल्लेंदोडे कम्मे वुराळमिस्सं व एंदितु कार्म्मणकाय योगंगळोळ् औदारिकमिश्रकाययोगिगळोळु पेळ्दंते नरकद्विकं देवद्विकं बंध-

---

आहारकतन्मिश्रयोगयोः अष्टाविंशतिकनवविंशतिके द्वे। शेषयोः कार्मणौदारिकमिश्रयोस्तान्याद्यानि षट्, नात्र देवगत्याहारकद्वययुतं अप्रमत्तापूर्वकरणयोरेव तद्बंधसंभवात्। नापि तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टावष्टाविंशतिकं 'कम्मे उरालमिस्सं'वेति देवनारकद्विकयोरबंधात् तिर्यग्मनुष्यकार्मणयोगसासादने सर्वैकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तत्रयोविंशतिकपंचविंशतिकषड्विंशतिकनरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिकविकलत्रययुतनवविंशतिकत्रिंशत्क -

---

आहारक आहारक मिश्रयोगमें अट्ठाईस उनतीस ये दो बन्धस्थान हैं। शेष कार्माण और औदारिक मिश्रमें आदिके छह बन्धस्थान हैं। यहाँ देवगति और आहारकद्विक सहित स्थान सम्भव नहीं है; क्योंकि इनका बन्ध अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें ही होता है। कार्माण व औदारिक मिश्र सहित तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टिमें अठाईसका बन्धस्थान नहीं होता; क्योंकि 'कम्मे उरालमिस्संवा' इस गाथाके अनुसार उनमें देवद्विक और नरकद्विकका बन्ध नहीं होता। कार्माण योग सहित तिर्यंच और मनुष्य सासादन गुणस्थानवर्तीके सब एकेन्द्रिय बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त सहित तेईस, पच्चीस, छब्बीस और नरकगति देवगति सहित

---

१. णिरयं सासणसम्मो गच्छदित्ति—मिश्रगुणस्थाने मरणाभावात्—मिथ्यादृष्ट्यसंयतौ संभवतः—उराळमिस्सं वेत्युक्तं तर्हि औदारिकमिश्रे कथमिति चेत्, ओराळं वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउहारणिरय दुगं। मिच्छदुगे देव चऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि॥ इत्यत्र नरकद्विक-देवद्विकयोरबंधः।

मिल्लेंब नियममुंटप्पुदरिंदं। तिर्य्यग्मनुष्यकार्म्मणकाययोगिगळप्प सासादनरु सर्व्वैकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्तयुतंगळप्प त्रयोविंशति पंचविंशति षड्विंशति नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशति द्वींद्रियादिविकलत्रययुत नवविंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळुं पोरगागि शेषतिर्य्यंचपंचेंद्रियमनुष्यगतियुतंगळप्प नवविंशतित्रिंशत् स्थानद्वयमने कट्टुवरु। सासादनंगे देवगतियुताष्टाविंशतिबंधस्थानं विरोधमिल्लप्पुदरिंदमेकें सासादननोळु तद्बंधस्थानं निषेधिसल्पट्टुदें दोडे मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि एंदितु कार्म्मणकाययोगिगळप्प मिथ्यादृष्टि सासादनरुगळगे औदारिकमिश्रकाययोगिगळोळु पेळ्दंते निषेधमुंटप्पुदरिंदं तद्बंधमिल्ल। तिर्य्यग्मनुष्य कार्म्मणकाययोगासंयतसम्यग्दृष्टिगळगे देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमुं मनुष्यकार्म्मण काययोगासंयत सम्यग्दृष्टियोळें देवगतितीर्त्थयुत नवविंशतिस्थानबंधमक्कु-। मितु पंचदशयोगंगळोळु नामकर्म्मबंधस्थानंगळु योजिसल्पट्टवु ॥

वेदकषायेषु सर्व्वं पुंवेदस्त्रीवेदषंढवेदत्रितयदोळं क्रोधमानमायालोभकषायचतुष्टयदोळं त्रयोविंशतिस्थानमादियागि सर्व्वनामकर्म्मप्रकृतिस्थानंगळें दुं बंधंगळप्पुवु। वे ३। क ४। बंध २३। ए अ। २५। ए प। त्र अ। २६। ए प। अ। उ। २८। न। दे। २९। बि। ति। च। प ति। म। दे ति। ३०। बि। ति। च। प ति। उ। म ति। दे आ। ३१। दे ति आ। १।

वर्जितशेषतिर्यक्पंचेंद्रियमनुष्यगतियुतनवविंशतिकत्रिंशत्के द्वे। देवगत्यष्टाविंशतिकाभावस्तु 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहीति' वचनात्। तिर्यग्मनुष्यकार्मणयोगासंयते तच्च तन्मनुष्ये देवगतितीर्थयुतनवविंशतिकं च। त्रिषु वेदेषु चतुर्षु क्रोधादिषु च सर्वाणि, षंढे नवविंशतिकद्वयं त्वाद्यनरकं प्रति, तिर्यग्गतौ एकेंद्रियबादरसूक्ष्मापर्याप्तयुतत्रयोविंशतिकं एकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्याप्तयुतत्रसापर्याप्तद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्गतिमनुष्यगतियुतपंचविंशतिकं एकेंद्रियबादरपर्याप्तातपोद्योतयुतषड्विंशतिकं तिर्यग्मनुष्यगतिपर्याप्तनवविंशतिकं, तिर्यग्गतिपर्याप्तोद्योतयुतत्रिंशत्कं

अठाईस तथा विकलत्रय सहित उनतीस तीसको छोड़ शेष तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्यगति सहित उनतीस और तीसके दो बन्धस्थान होते हैं। यहां देवगति सहित अठाईसके स्थानका अभाव है क्योंकि 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थंणहि' ऐसा कथन है।

कार्माण सहित तिर्यंच मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टिके देवगति सहित अठाईसका स्थान और कार्माण सहित मनुष्य असंयतमें देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसका भी स्थान होता है।

तीनों वेदों और चारों कषायोंमें सब बन्धस्थान होते हैं। विशेष इस प्रकार है—नपुंसकवेदमें उनतीस और तीसके स्थान आदिके तीन नरकोंमें होते हैं। नपुंसक वेद सहित तिर्यंचगतिमें एकेन्द्रिय बादर सूक्ष्म अपर्याप्त सहित तेईसका, एकेन्द्रिय बादर सूक्ष्म पर्याप्त सहित पच्चीसका, त्रस अपर्याप्त दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंचगति मनुष्यगति सहित पच्चीसका एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त आतप उद्योत सहित छब्बीसका तिर्यंच या मनुष्यगति पर्याप्तयुत उनतीसका, तिर्यंचगति पर्याप्त उद्योत सहित तीसका स्थान होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय नपुंसक वेदीके नरक देवगति युत अठाईसका भी स्थान होता है।

अगति । इल्लि षंड वेदमो दे नारकरोळक्कुं । तिर्य्यंचरोळं मनुष्यरोळं पुंवेदमुं स्त्रीवेदमुं षंडवेदमुं संभविसुवउ । देवगतिजरोळु पुंवेदं पुरुषदेवर्क्कळोळ्, स्त्रीवेदं देवियरोळक्कुमेकेंदोडे देवगतियोळ् द्रव्यदिदं भावदिदं समानं वेदिगळप्परप्पुदरिंदं ॥ नारकषंडवेदिगळोळु नरकगतियोळु पेळ्द नवविंशतिद्विकं बंधमक्कुं । नारकषंड बंध २९ । ति म ३० । ति उ । म ति । तिरियंचरोळेकेंद्रिय-बादरसूक्ष्मद्वित्रि चतुरिंद्रिय पर्य्याप्तापर्य्याप्त जीवंगळनितुं षंडरप्पुदरिनवक्केल्लं यथाप्रवचनं तथा एकेंद्रियबादरसूक्ष्मापर्य्याप्तयुत त्रयोविंशति प्रकृतिस्थानमुं एकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तयुत पंचविंशतिस्थानमुं त्रसापर्य्याप्तद्वित्रिचतुः पंचेंद्रिय तिर्य्यंग्गतियुतमुं । मनुष्यगतियुतमागियुं पंचविंशति-स्थानमुमेकेंद्रिय बादरयुतपर्य्याप्तातपोद्योतयुतषड्विंशतिस्थानमुं तिर्य्यंग्मनुष्यगतिपर्य्याप्तयुत नवविंशतिस्थानमुं तिर्य्यंग्गतिपर्य्याप्तोद्योतयुतत्रिंशत्स्थानमुं बंधमुमप्पुवु । तिर्य्यक्पंचेंद्रियषंडवेदि-गळोळु ई पेळ्द पंचस्थानंगळुं नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमुं बंधमप्पुदु । तिर्य्यंक्पंचेंद्रिय पुंवेदिगळोळं स्त्रीवेदि गळोळमंते षड्बंधस्थानंगळ् बंधमप्पुवु । मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तरनिबरुं षंडवेदि-गळेयप्परा जीवंगळ नितुं नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि शेषबादरसूक्ष्मैकेंद्रिया-पर्य्याप्तयुत त्रयोविंशतिस्थानमुमं । एकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तयुत पंचविंशतिस्थानमुमं । त्रसा-पर्य्याप्तद्वींद्रियत्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रियतिर्य्यंग्गतियुतमागियुं मनुष्यगतियुतमागियुं पंचविंशति-स्थानमं कट्टुवरु । मत्तमा जीवंगळु बादरैकेंद्रिय पृथ्वीकायपर्य्याप्तातपयुतमागियुं षड्विंशति-स्थानमुमं मत्तमेकेंद्रिय तेजोवायु साधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त वर्जितशेषैकेंद्रिय-पर्य्याप्तोद्योतयुतमागियुं षड्विंशतिस्थानमं तिर्य्यंग्मनुष्यगतिपर्य्याप्तयुत नवविंशति स्थानमुमं तिर्य्यंग्गतिपर्य्याप्तोद्योतयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु । मनुष्यपर्य्याप्तरु केलंबरु द्रव्यषंडरुगळु । पुरुषस्त्रीषंढवेदोदयंगळिदं भावपुरुषस्त्रीषंडरप्परु । केलंबरु द्रव्यस्त्रीयरु भावपुरुष स्त्रीषंडरुगळु-मप्परु । केलंबरु द्रव्यपुरुषरु । भावषंडस्त्रीपुरुषरुगळुमप्परितु षंडस्त्रीपुंवेदोदयंगळिदं षंडरं स्त्रीयरुं पुरुषरुगळुं भावदिदं प्रत्येकं त्रिविधमप्परल्लि संदृष्टि :—द्रव्यषंड भावषंड । द्रव्यषंड भावस्त्री । द्रव्यषंड भावपुरुष । द्रव्यस्त्री भावस्त्री । द्रव्यस्त्री भावषंड । द्रव्यस्त्री भावपुरुष । द्रव्यपुरुष

च तत्पंचेंद्रियषंढे तानि च नरकगतिदेवगतियुताष्टविंशतिकं च । तत्स्त्रीपुंवेदयोस्तानि षट् । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते एकविकलेंद्रियोक्तानि पंच । पर्याप्तमनुष्याः द्रव्यषंढस्त्रीपुंवेदाः पुंस्त्रीषंढवेदोदयेन भावपुंस्त्रीषंढा भवंति विना तीर्थकरं । तत्र भावतः षंढे स्त्रियां पुंसि च गुणस्थानानि तत्तत्सवेदानिवृत्तिकरणांतानि । नव नव बंधस्थानानि

तिर्यंच स्त्रीवेदी पुरुषवेदीके छह स्थान होते हैं। मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकके एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियमें कहे पाँच स्थान होते हैं।

पर्याप्त मनुष्य जो द्रव्यसे नपुंसकवेदी, स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी हैं वे पुरुष स्त्री और नपुंसक वेदके उदयसे भाव पुरुष, भावस्त्री, भावनपुंसकवेदी होते हैं तीर्थंकर बिना। भावसे नपुंसक वेदी, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदीमें गुणस्थान अपने-अपने सवेद अनिवृत्तिकरण पर्यन्त होते हैं। उनमें नौ-नौ बन्धस्थान होते हैं। किन्तु भावस्त्रीवेदी और भाव नपुंसकवेदी

भावपुरुष। द्रव्यपुरुष भावस्त्री। द्रव्यपुरुष भावषंड एंबितु नवविधमप्परल्लि। तीर्थंकर परम देवरुगळनिबरुं द्रव्यदिंदं भावदिंदं पुंवेदिगळेयप्परु। शेषमनुष्यरुगळु यथासंभवमप्परु। पर्य्याप्त-मनुष्य भावषंडवेदिगळोळु मिथ्यादृष्टियादियागि अनिवृत्तिकरणषंडवेदभागे पर्य्यंतमों भत्तुं गुणस्थानंगळप्पुवु। अल्लि यथाप्रवचनं तथा सर्व्वनामबंधस्थानंगळप्पुवु। भावस्त्रीवेदिगळोळुमंते सर्व्वबंधस्थानंगळुमप्पुवु। ई षंडस्त्रीवेदि क्षपकरोळु देवगतितीर्थयुत नवविंशतियुमेकत्रिंशत्-स्थानमुं बंधमिल्लेकेंदोडिल्लि चोदने—तीर्थंकरपरमदेवरुगळगे द्रव्यदिंदं भावदिंदं पुंवेदमेयक्कु-मप्पुदरिंद। मी क्षपकश्रेण्यारूढरप्प षंढस्त्रीवेदिगळोळे तु तीर्थदेवगतियुत नवविंशतिस्थानमुं देवगति तीर्थं आहारकद्वययुतैकत्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानमुमिंतो तीर्थयुतस्थानद्वयबंधाबंधविचार-मेत्तणिदमें दोडे पेळ्दें।

सौधर्म्मकल्पमादियागि सर्व्वार्थसिद्धिपर्य्यंतमाद कल्पजकल्पातीतज तीर्थसत्कर्म्मरुगळगं घर्मादिमेघावसानमाद पृथ्विज तीर्थसत्कर्म्मरुगळगं गर्भावतरणादिपंचकल्याणंगळुं द्रव्यभावपुंवे-दंगळुमप्पुवु। चरमांगरागि तीर्थरहितरागिर्द्द द्रव्यपुरुषभावषंडस्त्रीवेदिगळु केवलिश्रुतकेवलिद्वय श्रीपादोपांतदोळिर्द्दु षोडश भावनाबलदिंदं तीर्थबंधमं प्रारंभिसि[1] तीर्थसत्कर्म्मरागिर्द्द असंयत-देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानवर्त्तिगळोळु असंयतदेशसंयतरुगळगे परिनिष्क्रमणकल्याणसमन्वित-मागि त्रिकल्याणमक्कुं। प्रमत्ताप्रमत्ततीर्थं सत्कर्म्मरुगळगे दीक्षाकल्याण मिल्ल। केवलज्ञानकल्या-णादिकल्याणद्वितयमक्कु-। मंतवर्गळु क्षपकश्रेण्यारोहणं माळ्पागळु षंडस्त्रीवेदंगळुदमं पत्तुविट्टु पुंवेदोदयदिंदमे क्षपकश्रेण्यारोहणमं माळ्परेंदितुपेळ्दमेकेंदोडे "वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाण-मोघंतु" एंदितु षंढवेददोळं स्त्रीवेददोळं तीर्थबंधमुंटप्पुदरिंदं। भावपुंवेदिगळोळमंते मिथ्यादृष्ट्यादि-पुंवेदोदयभागानिवृत्तिकरणपरियंतमाद गुणस्थानंगळोळ भत्तुमप्पुवु। आ गुणस्थानंगळोळु यथा-प्रवचनं तथाऽष्ट नामकर्म्मबंधस्थानंगळप्पुवेंबुदर्त्थं॥

सर्वाणि, न च स्त्रीषंढक्षपके देवगतितीर्थयुतनवविंशतिकैकत्रिंशत्के, चरमांगाणां केषांचित्तत्र तीर्थबंधसंभवेऽपि क्षपकश्रेण्यां पुंवेदोदयेनैवारोहणात्। तीर्थबंधप्रारंभश्चरमांगाणामसंयतदेशसंयतयोस्तदा कल्याणानि निष्क्रमणा-दीनि त्रीणि, प्रमत्ताप्रमत्तयोस्तदा ज्ञाननिर्वाणे द्वे, प्राग्भवे तदा गर्भावतरादीनि पंचेत्यवसेयम्।

क्षपक श्रेणिवालेके देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसका और इकतीसका स्थान नहीं होता। यद्यपि किन्हीं चरम शरीरियोंके वहाँ तीर्थंकरका बन्ध सम्भव भी है किन्तु वे पुरुषवेदके उदयसे ही श्रेणि चढ़ते हैं। यदि चरमशरीरियोंके तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ असंयत और देशसंयत गुणस्थानोंमें होता है तब उनके तप आदि तीन ही कल्याणक होते हैं। यदि प्रमत्त अप्रमत्तमें तीर्थंकरका बन्ध होता है तो उनके ज्ञान निर्वाण दो ही कल्याणक होते हैं। यदि पूर्वभवमें तीर्थंकरका बन्ध किया है तो गर्भावतरण आदि पाँचों कल्याणक होते हैं, इतना विशेष जानना।

---

१. "तित्थयरसत्थकम्मा तदियभवे तब्भवे हु सिज्झेइ।"

कषायमार्गणेयोळु क्रोधचतुष्टयक्कं मानचतुष्टयक्कं मायाचतुष्टयक्कं लोभचतुष्टयक्कं ग्रहणमक्कु। मंतादोडनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभादिषोडशकषायंगळगे जात्याश्रयणदिंदमभेदविवक्षेयिदमें तु साधारणक्रोधमानमायालोभचतुष्टयकथनमक्कुमें दोडे शक्तिप्रधानकथनमप्पुदरिंदमभेदविवक्षेयिद पेळल्पट्टुदें तेदोडे द्वादशकषायंगलगे देशघातिस्पर्द्धकंगळिल्ल। सर्व्वमुं सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळेयप्पुवु। संज्वलनकषायचतुष्टयक्का सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळुं देशघातिस्पर्द्धकंगळुमप्पुवदु कारणमनंतानुबंधिक्रोधोदयमुळ्ळ जीवनोळु नियमदिंदमितर क्रोधकषायत्रयोदयमुंटु। मत्तमनंतानुबंधिमानोदयमुळ्ळ जीवनोळु नियमदिंद मितरमानकषायत्रयोदयमुंटु। मत्तमनंतानुबंधिमायोदयमुळ्ळ जीवनोळु नियमदिंदमितरमायाकषायत्रयोदयमुंटु। मत्तमनंतानुबंधिलोभोदयमुळ्ळ जीवनोळु नियमदिंदमितरलोभकषायत्रयोदयमुंटु। अदु कारणदिंदमनंतानुबंधिकषायोदयक्कें तु जीवगुण सम्यक्त्वसंयमोभयघातनशक्तिसिद्धमंतितर कषायत्रयोदयक्कमुंटप्पुदरिंदं। मत्तमंते अप्रत्याख्यान क्रोधमानमायालोभोदयंगळुळ्ळ जीवंगळोळिनयमदिंदमितर प्रत्याख्यानसंज्वलनद्वय क्रोधमानमायालोभोदयंगळुं क्रमदिनुंटेकें दोडे प्रत्याख्यानक्रोधादिगळुदयंगळगे जीवगुणसंयमासंयमघातनशक्तियें तंता। प्रत्याख्यानसंज्वलनद्वयक्रोधादिकषायोदयंगळगमा शक्तियुंटप्पुदरिंदं। मत्तमंते प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयंगळुळ्ळ जीवंगळोळु नियमदिंदं संज्वलनक्रोधमानमायालोभोदयंगळुं क्रमदिनुंटेकें दोडे प्रत्याख्यानक्रोधोदयक्के जीवगुणसकलसंयमघातनशक्ति-

कषायमार्गणायां क्रोधादीनामनंतानुबंध्यादिभेदेन चतुरात्मकत्वेऽपि जात्याश्रयेणैकत्वमभ्युपगतं शक्तिप्राधान्येन भेदस्याविवक्षितत्वात्। तद्यथा—द्वादशकषायाणां स्पर्धकानि सर्वघातीन्येव न देशघातीनि। संज्वलनानामुभयानि तेनानंतानुबंध्यन्यतमोदये इतरेषामुदयोऽस्त्येव तदुदयसहचरितेतरोदयस्यापि सम्यक्त्वसंयमगुणघातकत्वात्। तथा—अप्रत्याख्यानान्यतमोदये प्रत्याख्यानाद्युदयोऽस्त्येव तदुदयेन समं तद्द्वयोदयस्यापि देशसंयमघातकत्वात् तथा प्रत्याख्यानान्यतमोदये संज्वलनोदयोऽस्त्येव प्रत्याख्यानवत्तस्यापि सकलसंयमघातकत्वात्। न

कषाय मार्गणामें क्रोधादिके अनन्तानुबन्धी आदिके भेदसे यद्यपि चार-चार भेद होते हैं तथापि जातिके आश्रयसे एकपना स्वीकार किया है; क्योंकि यहाँ शक्तिकी प्रधानतासे भेदोंकी विवक्षा नहीं है। वही कहते हैं—बारह कषायोंके स्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं, देशघाती नहीं। संज्वलनके स्पर्धक देशघाती भी हैं और सर्वघाती भी हैं। अतः अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभमें-से किसी एकका उदय होनेपर अप्रत्याख्यान आदि तीनोंका भी उदय है ही, क्योंकि अनन्तानुबन्धीके उदय सहित अन्य कषायोंके उदयके भी सम्यक्त्व और संयमगुणका घातकपना है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यान क्रोधादिमें-से किसी एकका उदय होनेपर प्रत्याख्यानादि दोका भी उदय है ही क्योंकि अप्रत्याख्यानके उदयके साथ उन दोनोंका भी उदय देशसंयमको घातता है। तथा प्रत्याख्यान क्रोधादिमें-से किसी एकका उदय होनेपर संज्वलनका उदय है ही; क्योंकि प्रत्याख्यान कषायकी तरह संज्वलन कषाय भी सकलसंयमकी घातक है। किन्तु केवल संज्वलन कषायका उदय होनेपर प्रत्याख्यान आदि तीन कषायोंका उदय नहीं है; क्योंकि उनके स्पर्धक सकलसंयम घाती हैं, केवल

येंतंता संज्वलनक्रोधमानमायालोभोदयंगळगमा शक्तियुमुंटप्पुदरिंदं। मत्तं केवलमा देशघातिशक्ति संज्वलनक्रोधमानमायालोभोदयमेकैकंगळुळ्ळ जीवंगलोळु क्रमदिंदं नियमदिंदमितरप्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानानंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभोदयंगळु संभविस वेकेंदोडी संज्वलनकषायचतुष्टयक्के देशघातिस्पर्द्धकंगळुळ्ळंतितर द्वादशकषायंगळिगल्लमा द्वादशकषायंगळगे सकलसंयमविघातन-समर्थं सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळेयक्कुमप्पुदरिंदं। अहंगे केवलं प्रत्याख्यानसंज्वलन कषायद्वयोदयमुळ्ळ जीवनोळु नियमदिंदमितराप्रत्याख्यानानंतानुबंधिकषायोदयमिल्लेकेंदोडे अवक्काऽऽजीवगुणसंयमा-संयम सकलसंयम निर्म्मूलनकरणसमर्त्थसर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळल्लदितरशक्तिसंभविसदप्पुदरिंदं। मत्तमंते केवलमप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलनकषायोदयंगळुल्ल जीवंगळोळु नियमदिंदमनंतानु-बंधिकषायोदयमिल्लेकेंदोडदक्का जीवगुणसम्यक्त्वसंयमासंयमसकलसंयमसर्व्वविघातन समर्त्थ सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळल्लदितरशक्ति संभविसदप्पुदरिंद। मदु कारणमागियनंतानुबंधिकषायक्के सम्यक्त्वसंयमोभयविघातनशक्तियक्कु। मप्रत्याख्यानावरणं चारित्रमोहनीयमे यप्पुवादोडमनंतानुबंधियोडननंतानुबंधिकार्य्यमं माडुगु मेकेंदोडदरुदयदोडने तनगेयु मा शक्तियुदयमुंटप्पुदरिंदं। प्रत्याख्यानसंज्वलन कषायद्वयमुमंतेयनंतानुबंधियुदयदोडनुदयिसि तामुमनंतानुबंधि कार्य्यमं माडुवुवेकेंदोडदरुदयदोडने तमगेयुमा शक्तियुदयमुंटप्पुदरिंदं। अनंतानुबंध्युदयरहितमागि अप्रत्या-ख्यानप्रत्याख्यान संज्वलनत्रयंगळुं संयमासंयमप्रतिघातमं माळ्पुवु। अप्रत्याख्यानोदयरहितमागि प्रत्याख्यान संज्वलनकषायोदयंगळु सकलसंयमप्रतिघातकंगलप्पुवु। प्रत्याख्यानावरणोदयरहित-

---

च केवलं संज्वलनोदये प्रत्याख्यानादीनामुदयोऽस्ति तत्स्पर्धकानां सकलसंयमविरोधित्वात्। नापि केवलप्रत्या-ख्यानसंज्वलनोदये शेषकषायोदयः तत्स्पर्धकानां देशसकलसंयमघातित्वात्। नापि केवलाप्रत्याख्यानादित्रयोद-येऽनंतानुबंध्युदयः तत्स्पर्धकानां सम्यक्त्वदेशसकलसंयमघातकत्वात्, इत्यनंतानुबंधिनां तदुदयसहचरिताप्रत्या-ख्यानादीनां च चारित्रमोहत्वेऽपि सम्यक्त्वसंयमघातकत्वमुक्तं तेषां तदा तच्छक्तेरेवोदयात्। अनंतानुबंध्युदयर-हिताप्रत्याख्यानाद्युदयाः देशसंयमं घ्नंति। अप्रत्याख्यानोदयरहितप्रत्याख्यानसंज्वलनोदयाः सकलसंयमं प्रत्याख्यानोदयरहितसंज्वलनदेशघात्युदयाः यथाख्यातमिति शक्तिसाधारणविवक्षया षोडशकषायाणां क्रोधादि-

---

प्रत्याख्यान और संज्वलनका उदय होते हुए शेष दो कषायोंका उदय नहीं है; क्योंकि उनके स्पर्धक देशसंयम और सकलसंयमके घाती हैं।

केवल अप्रत्याख्यान आदि तीन कषायोंका उदय रहते अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं है क्योंकि अनन्तानुबन्धीके स्पर्धक सम्यक्त्व, देशसंयम और सकलसंयमके घातक हैं। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीके और उसके उदयके साथ सहचारी अप्रत्याख्यानादिके चारित्र-मोहपना होते हुए भी सम्यक्त्व संयमका घातकपना कहा। क्योंकि उस समयमें उनमें उसी शक्तिका ही उदय होता है। अनन्तानुबन्धीके उदयसे रहित अप्रत्याख्यान आदिके उदय देश-संयमको घातते हैं। अप्रत्याख्यानके उदयसे रहित प्रत्याख्यान और संज्वलनके उदय सकलसंयमको घातते हैं। प्रत्याख्यानके उदयसे रहित संज्वलनका उदय यथाख्यातको घातता

मागि संज्वलनदेशघातिकषायोदयं यथाख्यातचारित्रप्रतिघातियक्कु । मी शक्ति साधारणविवक्षेयिंदं षोडशकषायंगळ्गे जात्याश्रयण क्रोधमानमायाळोभ साधारण चतुर्व्विधत्वमंगीकरिसल्पट्टुदप्पुदरिंदं सम्यक्त्वसंयमासंयमसकलसंयमंगलाऽसंयत देशसंयत प्रमत्तसंयतादिगळोळु संभवं सिद्धमक्कु । मनंतानुबंधिकषायचतुष्टयशक्तियोडनितरकषायशक्तिसमानमेंतक्कुमेंदोडे—

आवरणदेसघादंतराय संजळण पुरिस सत्तरसं ।
चदुविह भावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥ ५

देशघात ज्ञानावरणचतुष्क दर्शनावरणत्रय अंतरायपंचक संज्वलन चतुष्क पुंवेदमेंब सप्तदश-प्रकृतिगळु चतुर्व्विधानुभागपरिणतंगळु शेषमिश्रोन केवळणाणावरणं दंसणछक्कमित्यादिर्विंशति सर्व्वघातिगळुं नोकषायाष्टकमुं पंचसप्तत्यघातिगळुं त्रिविध भावपरिणतंगळप्पुवु । येंदितु मिथ्यात्वमनंतानुबंधिचतुष्कमप्रत्याख्यानचतुष्कं प्रत्याख्यानचतुष्कं संज्वलनचतुष्क सर्व्वघातिशक्तियुं समानमक्कुमदक्के संदृष्टि— १०

भेदेन चतुर्धात्वमंगीकृतं तेन सम्यक्त्वदेशसंयमसकलसंयमानां असंयतदेशसंयतप्रमत्तादिषु संभवः सिद्धः । कथमनंतानुबंधिशक्त्येतरकषायशक्तेः सादृश्यं उच्यते ?

आवरणदेसघादंतरायसंजलणपुरिससत्तरसं । चदुर्विधभावपरिणदा तिविहा भावा हु सेसाणं ॥१॥

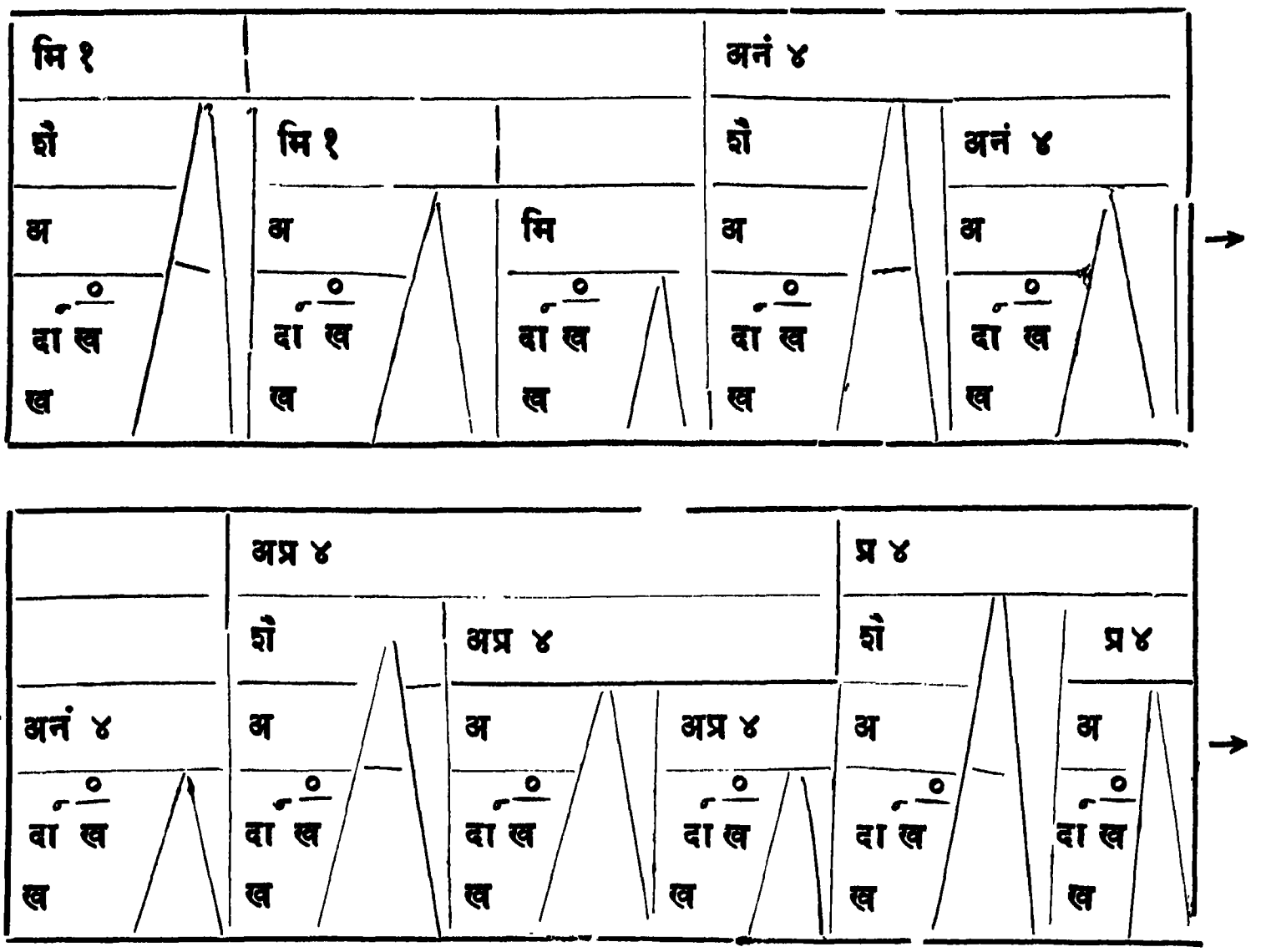
देशघातिचतुस्त्रिज्ञानदर्शनावरणपंचांतरायचतुःसंज्वलनपुंवेदाः सप्तदशापि चतुर्धानुभागपरिणताः शेषमिश्रोनकेवलज्ञानावरणादिसर्वघातिर्विंशतिः नोकषायाष्टकमघातिपंचसप्ततिश्च त्रिधा भावपरिणता भवंति ।

संदृष्टिः—

है । इस प्रकार शक्ति सामान्यकी विवक्षासे सोलह कषायोंको क्रोधादिके भेदसे चार प्रकार-का स्वीकार किया है । इससे सम्यक्त्व, देशसंयम और सकलसंयमका असंयत, देशसंयत, प्रमत्त आदिमें होना सिद्ध होता है । २०

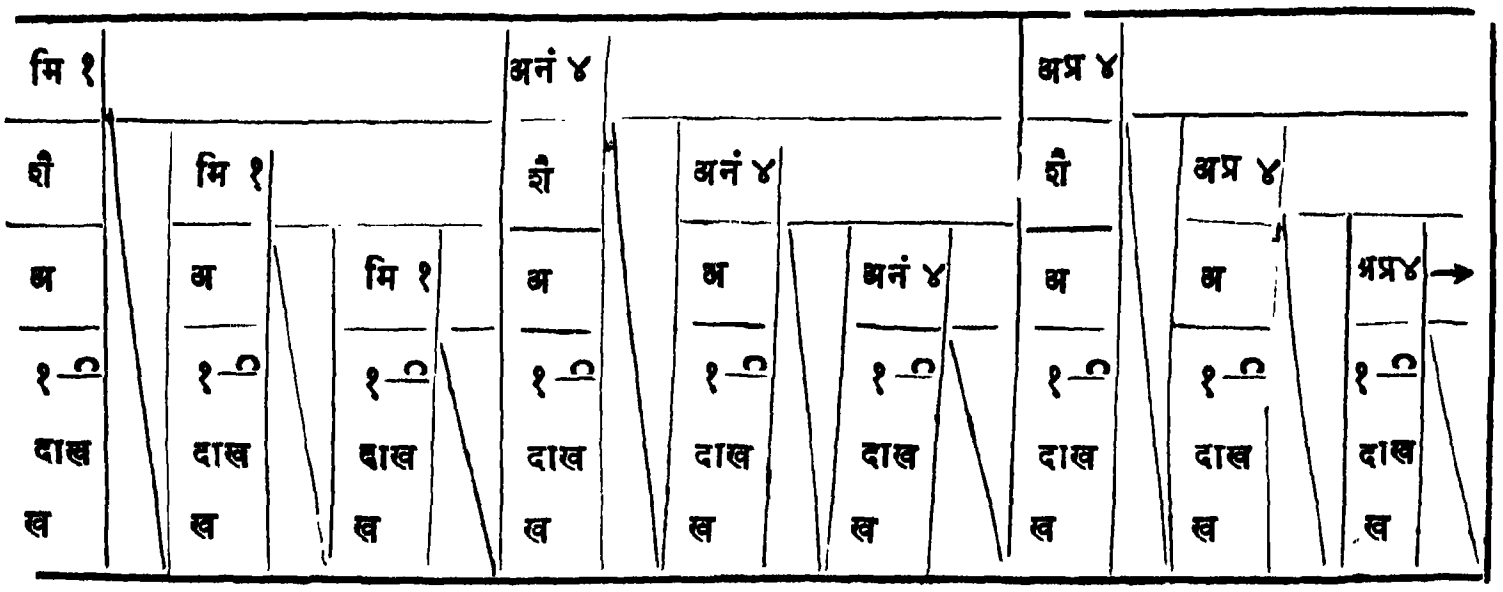
शंका—अनन्तानुबन्धी शक्ति और अन्य कषायोंकी शक्तिमें समानता कैसे होती है ?

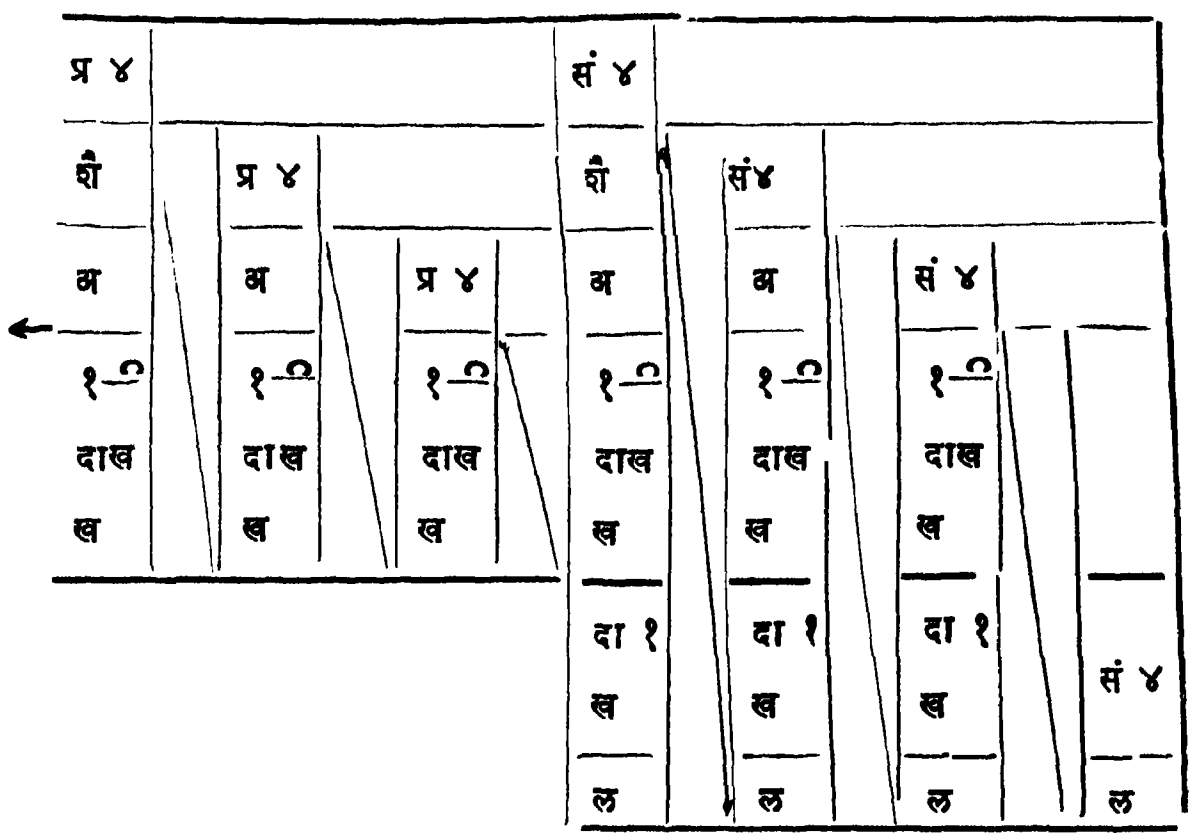
समाधान—पहले अनुभागबन्धके कथनमें कहा है कि देशघाती चार ज्ञानावरण, तीन दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, चार संज्वलन, एक पुरुषवेद ये सतरह प्रकृतियाँ तो चार प्रकार-के अनुभागरूप परिणमती हैं । शेष मिश्र मोहनीय बिना केवलज्ञानावरण आदि बीस, आठ नोकषाय, पिचहत्तर अघातिया ये तीन प्रकारके अनुभागरूप परिणमती हैं । अतः अनुभाग २५ शक्तिकी विशेषतासे अनन्तानुबन्धीकी तरह अन्य कषायोंके भी सम्यक्त्व आदिका घात करनेसे समानता होती है । सो मिथ्यात्व सहित उदयप्राप्त कषाय सम्यक्त्वको घातती है । अनन्तानुबन्धीके साथ उदयागत कषाय सम्यक्त्व और संयमको घातती है । अप्रत्याख्यान-के साथ उदयागत कषाय देशसंयम सकलसंयमको घातती है । प्रत्याख्यान सहित उदयागत कषाय सकलसंयमको घातती है । संज्वलनके देशघाती स्पर्धकोंका उदय यथाख्यातको ३० घातता है । इस तरह बारह कषाय सर्वघाती और संज्वलनोंमें कथंचित् भेद होनेपर भी शक्तिकी समानतासे और समान कार्य करनेसे क्रोधादिके भेदसे चार भेद जानना ।



यिल्लि मिथ्यात्वकर्म्मंदोडनुदयिसुवनंतानुबंध्यप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलन सर्व्वघाति-शक्तिगळसमानंगळप्पुदरिंदं मिथ्यात्वकर्म्मंदंते सम्यक्त्वघातंगळप्पुवु । मिथ्यात्वरहितमागि अनंतानुबंधिकर्म्मंदोडनुदयिसुव अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानसंज्वलन सर्व्वघाति स्पर्द्धकंगळ शक्ति समानमप्पुदरिंदमनंतानुबंधिकषायदंते सम्यक्त्व संयमोभयघातंगळप्पुवु । अनंतानुबंधि रहिताप्रत्याख्याना-

वरणोदयदोडनुदयिसुव प्रत्याख्यानसंज्वलन सर्व्वघातिस्पर्द्धकंगळ शक्ति समानमप्पुदरिंदमप्रत्याख्यानकषायवंते देशसकलसंयमघातकंगळप्पुव प्रत्याख्यानावरणरहितमागि प्रत्याख्यानावरणदोडनुदयिसुव संज्वलनसर्व्वघातिस्पर्द्धकोदयं सकलसंयममं प्रत्याख्यानावरणवंते घातिसुगुं। संज्वलनदेशघातिस्पर्द्धकोदयं यथाख्यातचारित्रमं घातिसुगुमेंबुदु सुसिद्धमादुदु।





अत्र मिथ्यात्वेन सहोदीयमानाः कषायाः सम्यक्त्वं घ्नंति। अनंतानुबंधिना च सम्यक्त्वसंयमौ। अप्रत्याख्यानेन देशसकलसंयमौ। प्रत्याख्यानेन सकलसंयमं संज्वलनदेशघात्युदयो यथाख्यातमिति सिद्धम्। एवं द्वादशकषायाणां सर्वघातिसंज्वलनानां च कथंचिद्भेदेऽपि शक्तिसादृश्यात्समानकार्यकरणाच्च क्रोधादिभेदाच्चा-तुर्विध्यं ज्ञातव्यम्। तत्र क्रोधे नामबंधस्थानानि नारकेषु द्वे २९।३०। तिर्यग्गतावाद्यानि षट्। मनुष्येषु सर्वाणि, देवगतौ चत्वारि २५ २६ २९ ३०। एवं मानादित्रयेऽपि ज्ञातव्यं ज्ञानमार्गणायामज्ञानत्रये आद्यानि षट्। ५

क्रोधकषायमें नामके बन्धस्थान नारकियोंमें उनतीस और तीस दो हैं। तिर्यंचगतिमें आदिके छह हैं। मनुष्योंमें सब हैं। देवगतिमें चार हैं—पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस। १०

यितु द्वादश कषायंगळ्गं संज्वलन सर्व्वघातिशक्तिगं कथंचिच्छक्तिभेदविंदं भेदमिल्ल। सदृशशक्तित्वदिंदं समानकार्य्यत्वदिंदं समानंगळप्पुदरिं॥ जात्याश्रयणदिंदं क्रोधमानमायालोभभेददिंदं कषायमार्गणेयोळ चतुर्भेदमेंब प्रकृतार्थमुं सुसिद्धमादुदल्लि क्रोधकषायोदय जीवंगळु चतुर्गतिगळोळ मोळरप्पुदरिंदं नारकरोळु द्विस्थानबंधमक्कुं। २९। ३०। तिर्य्यग्गतियोळाद्य षट्स्थानंगळु बंधमप्पुवु। मनुष्यरोळु मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणपर्य्यंतं सर्व्वस्थानंगळु बंधमप्पुवु। देवगतियोळु चतुस्थानंगलिवु बंधमप्पुवु। २५। २६। २९। ३०। ज्ञानमार्गणेयोळु प्रथमतन षट्कमज्ञाने कुमति कुश्रुतविभंगमेंब अज्ञानत्रयदोळु मोदल षट्स्थानंगळु बंधमक्कु २३।२५।२६। कु। कु। वि २८। २९। ३० मर्दे तेंदोडे नारकरोळं तिर्य्यंचरोळं मनुष्यरोळं देवक्कंळोळं मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळु कुमतिकुश्रुत ज्ञानिगळुं। कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिगळु मोळरप्पुदरिंदं। तत्तदुपयोगविवक्षेयिदं नारककुमतिकुश्रुत विभंगज्ञानिगळु संज्ञिपंचेंद्रिय पर्य्याप्त तिर्य्यग्गतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमुमनुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं। मनुष्यगतिपर्य्याप्तयुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। तिर्य्यंचरोळेकेंद्रिय बादरसूक्ष्म विकलत्रयबादरपर्य्याप्तापर्य्याप्त कुमतिकुश्रुत ज्ञानिजीवंगळु नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि यथायोग्यतिर्य्यग्मनुष्यगतियुत त्रयोविंशत्यादि पंचनामकर्म्मस्थानंगळं कट्टुवरु। पंचेंद्रियतिर्य्यग्मनुष्यापर्य्याप्त कुमतिकुश्रुतज्ञानि मिथ्यादृष्टिगळुमा पंचस्थानंगळं कट्टुवरु। पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यक्कुमतिकुश्रुतविभंग ज्ञानि मिथ्यादृष्टि सासादनरुगळु यथायोग्यमागि चतुर्गतियुत नामकर्म्मबंधस्थानंगळारुमं कट्टुवरु। मनुष्यकुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानि मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळुं यथायोग्यचतुर्गतियुत षट्स्थानंगळं कट्टुवरु। देवक्कंळोळु भवनत्रय सौधर्म्मकल्पद्वय कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानि मिथ्यादृष्टि सासादनरुगळु यथायोग्य पंचविंशति षड्विंशति नवविंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळं तिर्य्यग्गतियुतमागि नवविंशतिस्थानमं मनुष्यगतियुतमागि कट्टुवरु। शेष सानत्कुमारादि शतारसहस्रारावसानमाद देवक्कंळोळु कुमतिकुश्रुतविभंग-

---

तत्र नारकेषु तिर्यग्गतिमनुष्यगतिपर्याप्तयुतनवविंशतिकोद्योतयुतत्रिंशत्के द्वे। एकविकलेंद्रिये कुमतिकुश्रुते नरकदेवगतियुताष्टाविंशतिकवर्जितयोग्यतिर्यग्मनुष्यगतियुतत्रयोविंशतिकादीनि पंच। पंचेंद्रियतिर्यग्मनुष्यापर्याप्तकुमतिकुश्रुतिमिथ्यादृष्टावपि तानि पंच, कुज्ञानत्रये मिथ्यादृष्टिसासादने पर्याप्तपंचेंद्रियतिर्यग्मनुष्ये योग्यचतुर्गतियुतानि षट्। भवनत्रयसौधर्मद्वये तिर्यग्गतियुतयोग्यपंचविंशतिकषड्विंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कमनुष्यगति-

---

इसी तरह मानादि तीनमें जानना। ज्ञानमार्गणामें तीन अज्ञानोंमें आदिके छह हैं। उनमें-से नारकोंमें तिर्यंचगति, मनुष्यगति पर्याप्त सहित उनतीस और उद्योत सहित तीस ये दो हैं। एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियमें कुमति-कुश्रुतमें नरकगति देवगति सहित अठाईसको छोड़ तिर्यंचगति मनुष्यगति सहित तेईस आदि पाँच हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त कुमति कुश्रुत सहित मिथ्यादृष्टिमें भी वे ही पाँच हैं। तीन कुज्ञान सहित मिथ्यादृष्टि सासादनमें और पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्योंमें यथायोग्य चतुर्गतियुत छह स्थान हैं। भवनत्रिक और सौधर्म युगलमें तिर्यंचगति सहित यथायोग्य पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस तथा

ज्ञानिमिथ्यादृष्टिसासादनरुगळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुत नवविंशतिस्थानमुमं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुद्योतयुतमुमं मनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। मेलानताविकल्पजरोळं नवग्रैवेयकंगळोळं कुमतिकुश्रुतविभंग ज्ञानिमिथ्यादृष्टिसासादनरुगळु मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमों दने कट्टुवरेकेंदोडे तदो णत्थि सदरचऊ एंब नियममुंटप्पुदरिदं ॥

सण्णाणे चरिमपणं केवलजहखादसंजमे सुण्णं ।
सुदमिव संजमतिदये परिहारे णत्थि चरिमपदं ॥५४७॥

संज्ञाने चरमपंच केवलयथाख्यातसंयमे शून्यं । श्रुतमिव संयमत्रितये परिहारे नास्ति चरमपदं ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यय सत् ज्ञानचतुष्टयदोळु त्रयोविंशति षड्विंशति प्रकृतिनामकर्म्मबंधस्थानंगळ कळेदु शेषाष्टाविंशत्यादि पंचस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । म । श्रु । अ । म । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । मतिश्रुतावधिज्ञानत्रयंगळु नारकरोळं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंचरोळं मनुष्यपर्य्याप्तरोळं भवनत्रयादि सर्व्वार्थसिद्धि पर्य्यंवसानमाद देवर्क्कळोळमप्पुवल्लि सप्तपृथ्विगळ नारकासंयत सम्यग्दृष्टिगळु मनुष्यगतियुतनवविंशतिस्थानमं कट्टुवरु मेघे पर्य्यंतमाद मूरुं पृथ्विगळ असंयतसम्यग्दृष्टिगळु मनुष्यगतितीर्त्थयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु । सौधर्मादिदेवर्क्कळुगळा मनुष्यगतियुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं तीर्त्थमनुष्यगतियुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। भवनत्रयत्रिज्ञानिगळु मनुष्यगतियुत नवविंशतिस्थानमों दने कट्टुवरु।

युतनवविंशतिकानि । सानत्कुमारादिसहस्रारांते संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यंग्मनुष्यगतियुतनवविंशतिकोद्योतयुतत्रिंशत्के द्वे । आनतादिनवग्रैवेयके मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमेव 'तदो णत्थि सदरचऊ' इति नियमात् ॥५४६॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानेष्वष्टाविंशतिकादीनि पंच त्रयोविंशतिकपंचविंशतिषड्विंशतिकाभावात्, मतिज्ञानादित्रयं पर्याप्तापर्याप्तनारकसंज्ञितिर्यग्मनुष्यदेवेषु । तत्र नारके मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमाद्यपृथ्वीत्रये तु मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कमपि, सौधर्मादिदेवे ते एव द्वे, भवनत्रये मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमेव, तिरश्चि

मनुष्यगति सहित उनतीस ये पांच स्थान हैं। सानत्कुमारसे सहस्रार पर्यन्त संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यगति सहित उनतीस, तथा उद्योत सहित तीस ये दो स्थान हैं। आनतादि नौ ग्रैवेयक पर्यन्त मनुष्यगति सहित उनतीसका ही स्थान है; क्योंकि 'तदो णत्थि सदरचऊ' इस वचनके अनुसार वहाँ तिर्यंचगति सहित स्थान नहीं होता ॥५४६॥

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें अठाईस आदि पाँच स्थान हैं, उनमें तेईस, पच्चीस और छब्बीसके स्थान नहीं होते।

मतिज्ञान आदि तीन पर्याप्त अपर्याप्त नारकी, संज्ञीतिर्यंच तथा मनुष्यों और देवोंमें होते हैं। उनमेंसे नारकियोंमें मनुष्यगति सहित उनतीसका स्थान होता है। प्रथम तीन नरकोंमें मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीस भी होता है। सौधर्म आदिके देवोंमें भी वे ही दो स्थान होते हैं। भवनत्रिकमें मनुष्यगति सहित उनतीसका ही स्थान होता है। तिर्यंचमें देवगति सहित अठाईसका स्थान होता है। मनुष्यमें देवगति सहित अठाईस और देवगति तीर्थंकर सहित उनतीस ये दो स्थान होते हैं।

तिर्य्यंचमतिश्रुतावधिज्ञानिगळप्प असंयतसम्यग्दृष्टिगळुं देशसंयतरुगळुं देवगतियुताष्टाविंशति स्थानमनो दने कट्टुवरु। मनुष्यगतिय मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिगळं देशसंयतरुगळप्प मतिश्रुतावधिज्ञानिगळुं देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमुमं देवगतितीर्त्थयुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। मतिश्रुतावधिमनःपर्य्यय ज्ञानिगळप्प प्रमत्तसंयतरुगळुं देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमुमं देवगतितीर्त्थयुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। अप्रमत्तापूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतमाद चतुर्ज्ञानधररुगळु देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमुमं देवगतितीर्त्थयुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं देवगत्याहारकद्वययुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं देवगतितीर्त्थाहारकद्वययुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। अपूर्व्वकरणसप्तमभागं मोदलागि अपूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायचतुर्ज्ञानदिव्यसंयमिगळु यशस्कीर्त्तिनामकर्म्मबंधस्थानमनो दने कट्टुवरेंबुदत्थं। केवलज्ञानिगळोळु नामकर्म्मबंध शून्यमक्कुं। के। ० ॥ सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिगळेंब संयमत्रितये संयमत्रितयदोळु श्रुतमिव श्रुतज्ञानदोळु पेळ्वंतेयक्कुमेंदितु चरमपंचस्थानंगळप्पुवल्लि परिहारे नास्ति चरमपदं एंदितु परिहारविशुद्धि संयमिगळोळु चरमपदमेकप्रकृति नामकर्म्मबंधस्थानमिल्ल। सा। छे। २८। २९। ३०। ३१। १। परिहार। २८। २९। ३०। ३१। अदेंतेंदोडिल्लि सम् एंदितु सम् शब्दमेकीभावार्त्थदोळु वर्त्तिसुगुमदेंतेंदोडे घृतसंगतं तैलमेंदितेकीभूतमादुदेंबुदत्थंमंते सम् एकत्वेन अयोगमनं समयः समय एव सामायिकं समयः प्रयोजनमस्येति वा सामायिकं येंदिती निरुक्ति सिद्धमप्प सामायिकमिनितु क्षेत्रदोळिनितु कालदोळेंदितु नियमिसल्पडुत्तिरलु सामायिकसंयमदोळिरुत्तिर्द्द

देवगतियुताष्टाविंशतिकं, मनुष्ये तच्च देवगतितीर्थयुतनवविंशतिकं च। चतुर्ज्ञानप्रमत्ते ते द्वे, तदप्रमत्तापूर्वकरणषष्ठभागांते तद्द्वयं च, देवगत्याहारकद्वययुतत्रिंशत्कदेवगतितीर्थाहारयुतैकत्रिंशत्के च। तत्सप्तमभागादिसूक्ष्मसाम्परायांते यशस्कीर्तिरूपैकं। केवलज्ञाने नामबंधशून्यं। सामायिकादिसंयमत्रये श्रुतमिव पंच स्थानानि। तत्र परिहारविशुद्धौ न चरमपदं नैककं स्थानमस्ति। तत्र सम्-एकीभावेन अयः-गमनं समयः, समय एव सामायिकं। समयः प्रयोजनमस्येति वा सामायिकं। एतावति क्षेत्रे काले च नियमिते सति स्थितस्य मुनेर्महाव्रतं स्यात्, न केवलं कृतस्थूलसूक्ष्मजीवहिंसादिनिवृत्तेः तस्यास्तद्घात्युदयेऽर्हच्छ्रुतलिंगवन्मिथ्यादृष्टावपि संभवात्कुल राज-

---

चार ज्ञान सहित प्रमत्तमें अठाईस, उनतीस दो स्थान हैं। अप्रमत्त और अपूर्वकरणके षष्ठ भाग पर्यन्त भी वे दो तथा देवगति आहारकद्विक सहित तीस और देवगति तीर्थंकर आहारद्विक सहित इकतीस ये चार स्थान होते हैं। अपूर्वकरणके सप्तम भागसे सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त एक यशस्कीर्तिरूप एक स्थान है। केवलज्ञानमें नामकर्मका बन्ध नहीं होता।

सामायिक आदि तीन संयममें श्रुतज्ञानकी तरह पाँच स्थान हैं। किन्तु परिहारविशुद्धिमें एक प्रकृतिक बन्धस्थान नहीं होता।

'सम्' अर्थात् एकीभावसे 'अयः' अर्थात् गमनको समय कहते हैं। और समय ही सामायिक है। अथवा समय जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है। इतने क्षेत्र और इतने कालका नियम लेकर स्थित मुनिके महाव्रत होता है केवल स्थूल और सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा आदिका त्याग करनेसे महाव्रत नहीं होता क्योंकि ऐसी क्रिया तो चारित्रमोहके उदय होते हुए अर्हन्तलिंगके धारी मिथ्यादृष्टिके भी होती है। जैसे राजकुलमें सर्वत्र गतिवाले चैत्र

मुनिगे महाव्रतत्वमरियल्पडुगुं। स्थूलसूक्ष्मजीवंगळोळु माडल्पट्ट हिंसादिनिवृत्तियिदमा संयम-
मक्कुमेनल्वेडेकें दोडदक्के मिथ्यादृष्टिगळोळर्हच्छ्रुतमहर्लिगवंतरोळु[1] घातिकर्म्मोदयसद्भावमप्पु-
दरिंदं। अंतादोडदक्के महाव्रतत्वाभावमक्कुमें दोडागदेकें दोडदक्कुचार महाव्रतत्वमक्कु मे तीगळु
[2]राजकुलसव्वंगत [3]चैत्रंगे तदभिधानमें तंते। यितु देशकालंगळ इयत्ता परिच्छित्तियिदमेकत्ववृत्ति-
वर्त्तनं सामायिकमें बुदा सकलसावद्याद्विरतोस्मि यें दितु के यिक्किद्दं सामायिकसंयमियोळु पंच- ५
महाव्रतंगळुं पंचसमितिगळुं त्रिगुप्तिगळुमें ब त्रयोदशविधचारित्रं पडेयल्बप्पुंवल्लि पंचमहाव्रतंग-
ळें बवु प्रमादयोगंगळिंदं प्राणव्यपरोपणलक्षण हिंसानिवृत्तिलक्षणाहिंसाव्रतपरिपालनार्त्थमनृतस्ते-
याब्रह्म परिग्रह निवृत्तिलक्षण सत्यादिमहाव्रतंगप्पुवु। पंचसमितिगळें बुवु सम्यगीर्य्येयुं सम्यग्भा-
षेयुं सम्यगेषणेयुं सम्यगादाननिक्षेपणंगळुं सम्यगुत्सर्गमुं विदितजीवस्थानादिविधियनुळ्ळ
मुनिगे प्राणिपीडापरिहाराभ्युपायंगळप्पुदरिनो पंचसमितिगळुं गुप्तित्रयमें बवु। सम्यग्योगनिग्रहो १०
गुप्तिः यें दितिल्लि कायवाङ्मनोव्यापारमं योगमें बुदु। आकायवाग्मनोव्यापारक्कं स्वेच्छाप्रवृत्ति-
निवर्त्तनमं निग्रहमें बुदु। अदुवुं विषयसुखाभिलाषार्त्थवृत्तिनिषेधार्त्थमादुदादोडे सम्यक्कें बुदक्कु—।
मा संक्लेशप्रादुर्भावकारणमल्लद कायवाग्मनोव्यापारनिग्रहलक्षणगुप्रियुमिविनितु महिंसाव्रतपरि-
पालन सम्यगुपायंगळप्पुदरिंदमी त्रयोदशविधचारित्रमुमा सामायिकसंयमांतर्भावियप्पुदरिंदं।
श्रीवर्द्धमानस्वामियिदं पेरगण चिरंतनोत्तम संहननयुतजिनकल्पाचरण परिणतरोळेकविध १५
सामायिकसंयममक्कुं। श्रीवीरवर्द्धमानस्वामियिदं यी पंचमकाल स्थविरकल्पाल्पसंहननयुत

सर्वगतचैत्रस्य राजाभिधानवत्तस्योपचारेणैव तदभिधानात्। तत एव देशकालयोरियत्तापरिच्छित्त्यैकत्ववृत्तिरेव
सामायिकं सिद्धं। 'प्रमादयोगैः प्राणव्यपरोपणं हिंसा' तन्निवृत्तिरहिंसा महाव्रतं। अनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रह-
निवृत्तयः सत्यादिमहाव्रतानि। सम्यगीर्याभाषैषणादाननिक्षेपणोत्सर्गाः पंच समितयः। सम्यग्योगनिग्रहास्तिस्रो
गुप्तयः। कायवाङ्मनोव्यापारा योगाः। तेषां स्वेच्छाप्रवृत्तिनिवृत्तयः निग्रहास्ते च विषयसुखाभिलाषानु- २०
वृत्तिनिषेधार्थजाताः सम्यगित्युच्यंते। सत्यादयोऽहिंसाव्रतपरिपालनसम्यगुपायाः। ते चामी त्रयोदश सर्व-

---

नामक व्यक्तिको उपचारसे राजा कह देते हैं उसी प्रकार उस क्रियाको उपचारसे महाव्रत कहते हैं। इसीसे देश और कालकी मर्यादा करके एकत्वरूप वृत्ति ही सामायिक है यह सिद्ध होता है।

प्रमादयोगके द्वारा प्राणोंके घातको हिंसा कहते हैं और उसकी निवृत्ति अहिंसा महा- २५
व्रत है। असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहसे निवृत्ति सत्यादि महाव्रत है। सम्यक् ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समिति हैं। सम्यक् योगनिग्रहरूप तीन गुप्ति हैं। मन-वचन-कायके व्यापारको योग कहते हैं। उनकी स्वेच्छाचारपूर्वक प्रवृत्तिसे निवृत्ति-को निग्रह कहते हैं। वे गुप्तियाँ विषयसुखकी अभिलाषाकी अनुवृत्तिका निषेध करनेके लिए होनेसे सम्यक् कही जाती हैं। सत्य आदि अहिंसा व्रतका परिपालन करनेके समीचीन ३५
उपायरूप हैं। ये तेरह 'मैं सर्वसावद्यसे विरत हूँ' इस प्रकार स्वीकार किये गये सामायिक

---

१. संयमघ्नाति। २. राजालय। ३. सर्व्वस्थानमनैदिद कश्चित्पुरुषंगे यिदेनेंबुदेंदोडे राजालयदोळसलिगेयुळळ पुरुषनोर्व्वंगे स्थिति योंदेडेयोळप्पोडं राजालयदोळेल्लियु मितगे येंब सर्व्वगतत्वमेंतंते एंबुदर्त्थं। कोर्त्थ।

संयमिगळोळु त्रयोदशविधत्वदिंदं पेळल्पट्टुदु। तत्सामायिक संयमनियतक्षेत्रद्विविधकालप्रमाद-कृतानर्थप्रबंधविलोपनदोळु सम्यक्प्रतिक्रिये च्छेदोपस्थापनमेंबुदु विकल्पनिवृत्ति मेणु छेदोप-स्थापनमक्कुं।

परिहरणं परिहारः। प्राणिवध निवृत्ति येंबुदर्थं। परिहारेण विशिष्टा विशुद्धिर्य्यस्मिन्स परिहारविशुद्धिस्संयमः। एंदितु प्राणिपीडानिवृत्ति विशिष्ट विशुद्धियुताचरणं परिहारविशुद्धि-संयममेंबुदक्कुं॥ सूक्ष्मः सांपरायः कषायो यस्मिन्स सूक्ष्मसांपरायस्संयमः एंदितु संज्वलन लोभ सूक्ष्मकृष्टयनुभागानुभवयुताचरणं सूक्ष्मसांपरायसंयममेंबुदु॥ मोहनीयस्य निरवशेषस्योपशमात् क्षयाच्चात्मस्वभावावस्थोपेक्षालक्षणं यथाख्यातं चारित्रमित्याख्यायते। पूर्वंचारित्रानुष्ठायि-भिर्म्मोहक्षयोपशमाभ्यां प्राप्तं यथाख्यातं। न तथाख्यातं। यथाशब्दस्यानंतर्य्यार्थवृत्तित्वान्निखशेष-मोहक्षयोपशमानंतरमाविर्भवतीत्यर्थः। तथाख्यातमिति वा। यथात्मस्वभावोऽवस्थितः तथैवा-ख्यातत्वात्। एंदितु प्रमत्तसंयताद्यनुष्ठातृगळिंदं दर्शनचारित्रमोहक्षयोपशमंगळिंदमनुष्ठिसल्पट्टुदेंतु पेळल्पट्टुदंतल्लिदु मोहनीयनिरवशेषोपशम क्षयंगळिंदमाचरिताचरणं यथाख्यातचारित्रमेंबुदक्कुं। यथाशब्दवकांतर्य्यार्थवृत्तित्वमुंटप्पुदरिंदं। न तथाख्यातं यथाख्यातं येंदितिल्लि न तथाख्यातमेंबुदेंतु पडेयल्बक्कुमेंदोडे यथाख्यातशब्दसामर्थ्यदिंदं पडेयल्बक्कुं। तथाख्यातमेंदितु मेणु यथात्मस्वभावमवस्थितमंते पेळल्पट्टुदरर्त्तणिंदं। येंदितु सिद्धस्वरूपंगळप्प पंचसंयमंगळोळु

सावद्याद्विरतोऽस्मीति स्वीकृतसामायिकेऽतर्भवंति। तत एव श्रीवर्धमानस्वामिना प्रोक्तमोत्तमसंहननजिनकल्पा-चरणपरिणतेषु तदेकधा चरित्रं। पंचमकालस्थविरकल्पाल्पसंहननसंयमिषु त्रयोदशधोक्तं। तन्नियतक्षेत्रद्विधा-कालप्रमादकृतानर्थप्रबंधविलोपने सम्यक्प्रतिक्रिया विकल्पनिवृत्तिर्वा छेदोपस्थापनं। परिहरणं परिहारः प्राणि-वधनिवृत्तिरित्यर्थः। तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिन्स परिहारविशुद्धिः। सूक्ष्मः सांपरायः कषायो यस्मिन् स सूक्ष्मसांपरायः। मोहनीयस्य निरवशेषोपशमात् क्षयाद्वात्मस्वभावावस्थोपेक्षालक्षणः यथाख्यातः। पूर्वचारित्रा-नुष्ठायिभिर्मोहक्षयोपशमाभ्यां प्राप्तं यथाख्यातं न तथाख्यातं यथाशब्दस्यानंतर्यार्थवृत्तित्वान्निरवशेषमोहक्षयोप-

---

चारित्रमें गर्भित हैं। इसीसे श्रीवर्धमान स्वामीने पूर्वमें उत्तम संहननके धारी जिनकल्प आचरण परिणत मुनियोंके चारित्र सामायिकरूपमें एक प्रकारका कहा है। और पंचमकाल-के हीन संहननवाले स्थविरकल्पियोंमें वही चारित्र तेरह प्रकारका कहा है।

सामायिक संयममें निर्धारित क्षेत्र और नियत-अनियत कालमें प्रमादवश किये गये अनर्थको दूर करनेके लिए जो सम्यक् प्रतिक्रिया है अर्थात् उस दोषकी शुद्धिका उपाय वह छेदोपस्थापना चारित्र है। अथवा सर्वसावद्यके भेद करके त्याग करनेको छेदोपस्थापना चारित्र कहते हैं। प्राणिहिंसासे निवृत्ति परिहारका अर्थ है। उससे विशिष्ट शुद्धि जिसमें हो वह परिहारविशुद्धि चारित्र है। जिसमें सूक्ष्म कषाय है वह सूक्ष्म साम्पराय चारित्र है। समस्त मोहनीय कर्मके उपशमसे या क्षयसे आत्मस्वभावमें अवस्थिति, उपेक्षालक्षण-वाला यथाख्यात चारित्र है। पूर्वचारित्रके धारियोंने मोहका उपशम या क्षय करके जिसे प्राप्त किया वह यथाख्यात चारित्र है। यथा (अथ) शब्द अनन्तरवाची है। सो समस्त

सामायिकच्छेदोपस्थापन संयमद्वयं प्रमत्ताप्रमत्तापूर्व्वानिवृत्तिकरणगुणस्थान चतुष्टयदोळमक्कुमल्लि प्रमत्तगुणस्थानदोळु देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमुं देवगतितीर्त्थयुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुं बंधमक्कुमप्रमत्तसंयतगुणस्थानदोळमपूर्व्वकरणषष्ठभागपर्य्यंतं देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुं देवगतितीर्त्थयुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुं देवगत्याहारकयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं देवगतितीर्त्थहारयुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं नालकुं बंधमप्पुवु। अपूर्व्वकरणचरमभागं मोदल्गोंडु अनिवृत्तिकरणनोळमेकप्रकृतिस्थानं बंधमक्कुं। यथाख्यातसंयमदोळं सूक्ष्मसांपरायसंयमदोळं मुंदे पेळ्दपरु।

परिहारविशुद्धिसंयमं प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरोळेयक्कुमप्पुदरिंदं परिहारे नास्ति चरमपदं येंदितु पेळल्पट्टुदु। अल्लि देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुं। देवगतितीर्त्थयुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमुं। परिहारविशुद्धिसंयमि प्रमत्तनोळक्कुं। देवगतियुताष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळप्रमत्तपरिहारविशुद्धिसंयमियोळक्कुं। २८। २९। ३०। ३१।

परिहारविशुद्धि संयमदोळु श्रेण्यारोहणमिल्लप्पुदरिंदं। चरमपदमेकप्रकृतिस्थानं बंधमिल्ल॥

अंतिमठाणं सुहुमे देसाविरदीसु हारकम्मं वा।
चक्खूजुगले सव्वं सगसग णाणं व ओहिदुगे॥५४८॥

अंतिमस्थानं सूक्ष्मे देशाविरत्योराहारकार्म्मणवत्। चक्षुर्द्वयुगळे सर्व्वं स्वस्वज्ञानवदवधिद्विके॥

शमानंतरमाविर्भवतीत्यर्थः। तथाख्यातमिति वा यथात्मस्वभावोऽवस्थितस्तथैवाख्यातत्वात्। तत्राद्यसंयमद्वये प्रमत्ते देवगतियुताष्टाविंशतिकदेवगतितीर्थयुतत्रिंशतिके द्वे। अप्रमत्तापूर्वकरणषष्ठभागांते तद्द्वयं च देवगत्याहारकद्विकद्वययुतत्रिंशत्कदेवगतितीर्थाहारयुतैकत्रिंशत्के च सप्तमभागेऽनिवृत्तिकरणे चैककं। परिहारविशुद्धौ प्रमत्ताप्रमत्तयोः सामायिकोक्तानि द्वे चत्वारि, नात्र श्रेण्यारोहणाभावादेकैकमस्ति॥५४७॥

मोहका उपशम या क्षय होनेके अनन्तर प्रकट होनेसे उसे अथाख्यात कहते हैं। अथवा उसे तथाख्यात भी कहते हैं। क्योंकि जैसा आत्माका स्वभाव है वैसा ही इसका स्वरूप कहा है।

इनमेंसे सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें प्रमत्त गुणस्थानमें देवगति सहित अठाईस और देवगति तीर्थंकर सहित उनतीस ये दो बन्धस्थान हैं। अप्रमत्त और अपूर्वकरणके षष्ठ भाग पर्यन्त उक्त दोनों तथा देवगति आहारकद्विक सहित तीस और देवगति, तीर्थंकर आहारकद्विक सहित इकतीस ये चार स्थान होते हैं। अपूर्वकरणके सातवें भाग और अनिवृत्तिकरणमें एक प्रकृतिक एक ही बन्धस्थान है इस तरह प्रथम दो संयमोंमें पाँच बन्धस्थान हैं।

परिहारविशुद्धिमें प्रमत्त और अप्रमत्तमें सामायिकमें कहे दो और चार स्थान हैं। यहाँ एकबन्धक स्थान नहीं है क्योंकि परिहारविशुद्धिवाला श्रेणिपर आरोहण नहीं कर सकता॥५४७॥

सूक्ष्मसांपरायसंयमदोळु अंतिमस्थानमो देबंधमक्कुं । सू १ । य । सं । यथाख्यातचारित्रदोळु केवलज्ञानदोळु पेळ्दंते नामकर्म्मबंधं शून्यमक्कुं । देशविरत्यविरत्योराहारककार्म्मणवत् देशविरतियोळाहारकदोळ्पेळ्दंते देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुं देवगतितीर्थयुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमुं बंधमप्पुवु । देश । २८ । २९ ॥ तिर्य्यक्संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तकर्म्मभूमिजदेशसंयतनोळु देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमो देयक्कुं । दे । तिर्य्य । २८ ॥ अविरतियोळु कार्म्मणकाययोगदोळु पेळ्दंते अद्यतन षट्स्थानंगळु बंधमप्पुवु । अविरति । २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ई अविरति चतुर्गतिजरोळमक्कुमप्पुदरिंदं । नारकमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतरोळं तिर्य्यंचमिथ्यादृष्टि सासादन मिश्रासंयतरोळं मनुष्यमिथ्यादृष्टि सासादनमिश्रासंयतरोळं देवमिथ्यादृष्टि सासादनमिश्रासंयतरोळमसंयममेयप्पुदरिंदमल्लि नारकमिथ्यादृष्टियोळु पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंग्गतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं । मनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमुं बंधमप्पुवु । सासादननारकासंयमियोळु मिथ्यादृष्टियोळे तंता स्थानद्वयमुं बंधमप्पुवु । मिश्रनारकासंयमियोळु मनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमोंदे बंधमप्पुदु । नारकासंयतासंयमियोळु घर्म्मादिमेघावसानमाद त्रिभूमिजरोळु मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुं मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं बंधमप्पुवु । शेषपृथ्वीज नारकासंयतासंयमिगळोळु मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमो दे बंधमक्कुं । तिर्य्यग्गतिय मिथ्यादृष्टि सर्व्वतिर्य्यंचासंयमिगळोळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळु बंधमप्पुवल्लि विशेषमुंटदाउदें दोडे पृथ्वीकायैकेंद्रियबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्तंगळु मोदलागि सर्व्वैकेंद्रियंगळुं विकलत्रयपर्य्याप्तापर्य्याप्तरुं पंचेंद्रियापर्य्याप्तजीवंगळु नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमं कट्टरेकें दोडे पुण्णिदरं इगिविगळे येंदितेकेंद्रिय-

---

सूक्ष्मसांपरायसंयमे अंतिमस्थानं बध्यते । यथाख्याते केवलज्ञानवन्नामबंधशून्यं । देशविरते आहारकवद्देवगतियुताष्टाविंशतिकदेवगतितीर्थयुतनवविंशतिके द्वे । तत्तिरश्चि देवगतियुताष्टाविंशतिकमेव । अविरतौ कार्मणवदाद्यानि षट् । अत्र नारके मिथ्यादृष्टौ सासादने च पंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुतमनुष्यगतियुतनवविंशतिकोद्योतयुतत्रिंशत्के द्वे । मिश्रे मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमेव । असंयते घर्मादित्रये तच्च मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कं च । शेषपृथ्वीषु मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमेव । तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टौ त्रयोविंशतिकादीनि षट् । तत्र पर्याप्तापर्याप्तसर्वैकविकलेंद्रियेष्वपर्याप्तपंचेंद्रिये च, न च नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिकं 'पुण्णिदरं विगि-

---

सूक्ष्मसाम्पराय संयममें अन्तका ही स्थान बँधता है । यथाख्यातमें केवलज्ञानकी तरह नामकर्मके बन्धका अभाव है । देशविरतमें आहारकवत् देवगति सहित अठाईस और देवगति तीर्थंकर सहित उनतीस ये दो स्थान हैं । देशसंयमी तिर्यंचमें देवगति सहित अठाईसका ही बन्ध स्थान है । अविरतमें कार्माणकी तरह आदिके छह स्थान हैं । नारकी मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टीके पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति सहित या मनुष्यगति सहित उनतीस, उद्योत सहित तीस ये दो स्थान हैं । मिश्रमें मनुष्यगति सहित उनतीसका ही बन्धस्थान है । असंयतमें धर्मादि तीनमें मनुष्यगति सहित उनतीस और मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीस ये दो हैं । शेष नरकोंमें मनुष्यगति सहित उनतीसका ही स्थान है । तिर्यंचगतिमें मिथ्यादृष्टिमें तेईस आदि छह हैं । किन्तु वहां पर्याप्त-अपर्याप्त सब एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियोंमें और अपर्याप्त

विकलत्रयसर्व्वजीवंगळोळं बंधयोग्यमल्तप्पुदरिंदं। तेजोवायुकायिकबादरसूक्ष्मपर्य्याप्तापर्य्याप्त-जीवंगळु मनुष्यगत्यपर्य्याप्तपंचविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं कट्टरु। पर्य्याप्तमनुष्यगतियुत नवविंशति-प्रकृतिस्थानमुमं कट्टरु। कारणमेनेंदोडे "मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्मि" एंदितु जिनदृष्टमप्पुदरिंदं। शेषमिथ्यादृष्टयसंयमितिर्य्यंचरुगळु तिर्य्यग्गति मनुष्यगतियुतमागि यथायोग्यं षट्स्थानंगळं कट्टुवरु। तिर्य्यंचसासादनासंयमिगळु नियमदिंदं संज्ञिपंचेंद्रिय पर्य्याप्तितिर्यंच नेयक्कुमा जीवं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि असंयतनक्कुमथवा देशव्रतमुमं प्रथमोपशम सम्यक्त्वमुमं युगपत्स्वीकरिसि देशव्रतियक्कुमागियुमा ईर्व्वरुमनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सासादन-नक्कुमा जीवनोळु तिर्य्यग्गतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं मनुष्यगति-युतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुं देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमुं बंधमप्पुवु। मी सासादनासंयमि-जीवंगे मरणमादोडे नरकगतिवर्जितमागि शेषतिर्य्यग्गतियोळं मनुष्यगतियोळं देवगतियोळं सासादनासंयमियुत्कृष्टदिंदं समयोनषडावलिकालपर्य्यंतमुं जघन्यदिमेकसमयं सासादनासंयमि-गळप्परल्लि तिर्य्यंचसासादनरप्पोडे 'ण हि सासणो अपुण्णे साहारण सुहुमगेसु तेउदुगे' यें दिति-निंतु स्थानंगळोळु पुट्टुवरल्लं। शेषैकेंद्रियविकलत्रयपंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञि जीवंगळोळ्पुट्टुगु-। मल्लि एकेंद्रियविकलत्रय पंचेंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिजीवंगळोळु पुट्टिदवसासादननुं नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमं कट्टुवनल्लं। शरीरपर्य्याप्ति नेरेयद मुन्नमा सासादनत्वं पोगि नियमदिं मिथ्या-दृष्टियेयक्कु। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु पर्य्याप्तियिदं मेलल्लदे नरकगतियुताष्टाविंशतिप्रकृति-स्थानं बंधमिल्ल।

विगले' इति तेषु तदबंधात्। नापि बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ततेजोवायुषु 'मनुष्यगत्यपर्याप्तयुतपंचविंशतिक-पर्याप्तमनुष्यगतियुतनवविंशतिके 'मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं णहि तेउ वाउम्मीति तेषु तद्बंधनिषेधात्। प्रथमो-पशमसम्यक्त्वं तद्युतदेशव्रतं वा विराध्य जातसासादनस्तिर्यङ् तिर्यग्गतियुतमनुष्यगतियुतनवविंशतिकोद्योतयुत-त्रिंशत्कदेवगतियुताष्टाविंशतिकानि बध्नाति। मरणे नरकवर्जितगतिषूत्कृष्टेन समयोनषडावलिकालं जघन्येनैक-समयं सासादनस्तिर्यङ् तदा 'णहि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे' इति शेषैकेंद्रियविकलत्रयसंज्ञ्य-संज्ञ्येव नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिकमबध्नन् शरीरपर्याप्तेः प्राक् सासादनत्वं त्यक्त्वा नियमेन मिथ्यादृष्टि-

---

पंचेन्द्रियमें नरकगति, देवगति सहित अट्ठाईसका स्थान नहीं है; क्योंकि 'पुण्णिदरं विगि-विगले'के अनुसार वहाँ उसका बन्ध नहीं होता। तथा बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त-तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यगति अपर्याप्त सहित पच्चीसका और पर्याप्त मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध नहीं होता। क्योंकि उनमें उनके बन्धका निषेध है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व और उससे युक्त देशव्रतकी विराधना करके सासादन हुआ तिर्यंच, तिर्यंचगति या मनुष्यगति सहित उनतीस और उद्योत सहित तीसका तथा देवगति सहित अठाईसका बन्ध करता है। मरण होनेपर नरकगतिके बिना अन्य गतियोंमें उत्कृष्टसे एक समय हीन छह आवली और जघन्यसे एक समय पर्यन्त अपर्याप्तदशामें सासादन होता है। अतः सासादन तिर्यंच 'ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे' इस वचनके अनुसार एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी जीव ही अपर्याप्त सासादन होता है। सो

असंज्ञिसंज्ञिजीवंगळ्गे देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमेके बंधमिल्लेंदु पेळ्दरेकेंदोडे "मिच्छ दुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि एंदिंता असंज्ञिसंज्ञितिर्य्यंचसासादननोळं देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुं बंधमिल्लेंदितु निश्चइसुवुदु। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंचने मिश्रतिर्य्यंचासंयमियप्पुदरिंदं। देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुगुमेकेंदोडे सासादनगुणस्थानदोळे तिर्य्यग्गतिगं मनुष्यगतिगं बंधव्युच्छित्तियक्कुमेंतेंदोडे "उवरिमछण्णं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा" एंदितु पेळल्पट्टुदरिंदं। असंयततिर्य्यंचासंयमियोळु देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमोंदे बंधमक्कुमेकेंदोडे 'तिरिये ओघो तित्थाहारूणा' येंदु तीर्त्थाहारकद्वयबंधं निषेधिसल्पट्टुदप्पुदरिंदं। मिथ्यादृष्टिमनुष्याऽसंयमियोळु अपर्य्याप्तमनुष्या संयमियेंदुं पर्य्याप्तमनुष्यासंयमियेंदितु मनुष्यमिथ्यावृष्टयसंयमिगळु द्विविधमप्परल्लि लब्ध्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टयसंयमिगळु नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानं पोरगागि शेषतिर्य्यग्मनुष्यगतियुत त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळं कट्टुवरु। पर्य्याप्तमनुष्य मिथ्यादृष्टयसंयमिगळुमा अष्टाविंशति प्रकृतिस्थानयुतमागि यथायोग्यं त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळं चतुर्गतियुतमागि कट्टुवरु। सासादनमनुष्यासंयमिगळेबवरुगळु "चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो। पढमुव-

---

भूत्वा पर्याप्तेरुपरि बध्नाति। संज्ञ्यसंज्ञिनावपि तत्कथं न बध्नतः? 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं णहीति अस्मिन् सासादने तयोरपि तदघटनात्। तिर्यग्मिश्रोऽसंयतो वा संज्ञिपर्याप्त एव तन्मिश्रे देवगतियुताष्टाविंशतिकमेव 'उवरिमछण्हं च छिदी सासणसम्मे' इति तिर्यग्मनुष्यगत्योरस्य बंधाभावात्। तदसंयतेऽपि तदेव तिर्यग्जीवे तीर्थाहाराणामबंधात्। मनुष्ये मिथ्यादृष्टौ लब्ध्यपर्याप्ते नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिकवर्जिततिर्यग्मनुष्यगतियुतत्रयोविंशतिकादीनि षट्। पर्याप्ते चतुर्गतियुतानि तानि षट्, चदुगदिमिच्छो सण्णीत्यादिसामग्रीसंपन्नः

नरकगति या देवगति सहित अट्ठाईसका बन्ध न करके शरीर पर्याप्तिके पूर्व ही सासादनपनेको छोड़ नियमसे मिथ्यादृष्टि होकर पर्याप्त होनेपर ही नरकगति अथवा देवगति सहित अट्ठाईसके स्थानको बाँधता है।

शंका– संज्ञी और असंज्ञी भी अठाईसके स्थानको क्यों नहीं बाँधते?

समाधान—'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि' इस आगम वचनके अनुसार सासादनमें संज्ञी-असंज्ञीके भी अठाईसका बन्ध नहीं होता।

मिश्र और असंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच संज्ञी पर्याप्त ही होता है। सो मिश्रमें तो देवगति सहित अठाईसको ही बाँधता है। क्योंकि 'उवरिम छण्हं च छिदी' इत्यादि वचनके अनुसार तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें उसके बन्धका अभाव है। तथा असंयतमें भी वही स्थान बँधता है क्योंकि तिर्यंचके तीर्थंकर और आहारकका बन्ध नहीं होता। मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टि लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यके तो नरकगति देवगति सहित अठाईसके बिना तेईस आदि छह स्थानोंका बन्ध होता है। और पर्याप्त मनुष्यके चारों गति सहित छहों स्थान बँधते हैं।

तथा 'चदुगति मिच्छो सण्णी' इत्यादि सामग्रीसे सम्पन्न जीव करणलब्धिके अन्तिम समयमें दर्शनमोहका उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्वी हुआ या प्रथमोपशम सम्यक्त्व

सम्मं गेण्हदि पंचमवरलद्धि चरिमम्हि ॥" एंदितो सामग्रो विशेषविशिष्ट मनुष्यमिथ्यादृष्टिकरण-त्रयस्वरूपपंचम लब्धिपरिणतननिवृत्तिकरणचरमसमयदोळु दर्शनमोहनीयमनुपशमिसि प्रथमोपशमसम्यक्त्वमनसंयतादि चतुर्गुणस्थानंगळोळाउदानुमोंदु गुणस्थानदोळु यथायोग्यमप्पुदरोळ् स्वीकरिसि कथंचिदनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमुमं सम्यक्त्वदेशव्रतमुमं सम्यक्त्व-महाव्रतमुमं केडिसि सासादनसम्यग्दृष्टियसंयमियक्कु मेकें दोडनंतानुबंधिकषायक्के दर्शन-मोहक्कें तु प्रशस्तोपशम विधानमुटंतदक्किकल्लप्पुदरिंदं प्रशस्तोपशमदिनिरुत्तिर्द्दनंतानुबंधि-कषायोदयमुभयप्रतिबंधियप्पुदरिंदं। अंतप्प मनुष्यसासादनासंयमि पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुत-मागि नवविंशति प्रकृतिस्थानमुमनुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमनितु तिर्य्यग्गतियुतमागि द्विस्थान-मनेकट्टुगुमेकें दोडे मिथ्यादृष्टियोळेकेंद्रियविकलत्रयंगळ्गे बंधव्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं। मत्तमा मनुष्यसासादनासंयमिमनुष्यगति पर्य्याप्तयुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुगुमो मनुष्यसासादनासंयमिगे मरणमादुदादोडे नरकगति पोरगागि मूरुं गतिगळोळु पुट्टुगुमल्लि तिर्य्यंग्मनुष्यगतिगळोळु पुट्टुवडे "ण हि सासणो अपुण्णे साहारणसुहुमगे य तेउदुगे" एंदितिर्निंतुं स्थानंगळोळ् पुट्टनप्पुदरिमवं बिट्टु शेष तिर्य्यंग्मनुष्य गतिगळोळु पुट्टुगुमा तिर्य्यंग्मनुष्यसासादनासंयमिगळ् नरकगतियुताष्टाविंशतिस्थानमं "मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि" एंदितु देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमुमं कट्टरप्पुदरिंदमा स्थानं पोर-गागि स्वगुणस्थान कालमेन्नेवर मंनेवरं नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळने कट्टुवरु। मनुष्यतिर्य्यंच-सासादनासंयमिगळिगे मरणमागि देवगतियोळ्पुट्टिदरादोडमल्लियुमा नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळने कट्टुवरु। स्वगुणस्थानकालं पोदिं बळिक्क मिथ्यादृष्टिगळागि शेषमिश्रकालदोळु अष्टाविंशति

करणलब्धिचरमसमये दर्शनमोहमुपशमय्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वं तत्सहितदेशव्रतं तत्सहितमहाव्रतं वा प्राप्य तत्कालांतर्मुहूर्ते एकसमयतः षडावल्यंतेषु कालेष्वेकस्मिन्नवशिष्टेऽनंतानुबंधिनामप्रशस्तोपशांतानामन्यतमोदयेन लब्धगुणं हत्वा जातसासादनः एकविकलेंद्रियाणां मिथ्यादृष्टावेव बंधात् पंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्यगतियुतनव-विंशतिकोद्योतयुतत्रिंशत्कदेवगतियुताष्टाविंशतिकानि बध्नाति। मरणे तिर्यङ् मनुष्यो देवो वा सासादनकाले नवविंशतिकादिद्वयं, न च नरकगतिदेवगत्यष्टाविंशतिकं। तत्काले परिसमाप्ते मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा शेषमिश्रकाले

सहित देशव्रती या महाव्रती हुआ। उसके उपशम सम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त कालमें एक समयसे लेकर छह आवली काल शेष रहते अनन्तानुबन्धी कषायका अप्रशस्त उपशम हुआ था सो उसमें-से किसी एक क्रोधादि कषायका उदय होनेसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वका घात करके सासादन गुणस्थानवर्ती हुए मनुष्यके एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियका बन्ध तो मिथ्यादृष्टिमें ही होता है अतः पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति अथवा मनुष्यगति सहित उनतीसका स्थान या उद्योत सहित तीसका स्थान या देवगति सहित अठाईसका स्थान बँधता है। मरनेपर तिर्यंच, या मनुष्य या देव जबतक अपर्याप्त दशामें सासादन रहते हैं तबतक तो उनतीस या तीस दोका ही बन्ध करते हैं, नरकगति या देवगति सहित अठाईसको नहीं बाँधते। सासादनका काल पूर्ण होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर जबतक निर्वृत्यपर्याप्त रहते हैं तबतक अठाईसके बिना पच्चीस आदि पाँच स्थानोंको बाँधते हैं। और पर्याप्त होनेपर अठाईस

प्रकृतिस्थानं पोरगागि पंचविंशत्यादिपंचस्थानंगळं पर्य्याप्तियोळमंते कट्टुवरु । मनुष्यगतिय मिश्रासंयमि देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुगु मेकेंदोडुवरिम "छण्हं च छिदो सासण सम्मे हवे णियमा" एंदितु मनुष्यद्विकमुं सासादनासंयमियोळें बंधव्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं ।

मनुष्यासंयतासंयमिगळोळु देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमं सामान्यमनुष्यासंयतासंयमिगळप्प कर्म्मभूमिजमनुष्यरुं चरमांगरुगळुं भोगभूमिजा संयतासंयमिगळुं कट्टुवरु । देवगतियुत तीर्त्थयुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमं गर्भावतरण जन्माभिषेककल्याणद्वययुततीर्त्थंकर कुमाररुगळुं तृतीयभवदोळु तीर्त्थंकररुगळप्प मनुष्यासंयतरुगळु केवलिद्वय श्रीपादोपांतदोळु षोडशभावनाबलदिंदं तीर्त्थंकरनामकर्मं बंधमं प्रारंभिसिद्दं बद्धनरकायुर्द्देवायुष्यरुगळुं मत्तं गर्भावतरण कल्याणमुं जन्माभिषेककल्याणमुं रहितमागि तद्भवदोळे तीर्त्थंकरागल्वेडिद्दं चरमांगरु गळप्प तीर्त्थसत्कर्म्मासंयतासंयमिगळुं कट्टुवरु । गर्भावतरणकल्याणपुरःसरं नरकगति देवगतिगळिवं बरुत्तिद्दं तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळु विग्रहगतियोळं मिश्रकालदोळं देवगतियुत नवविंशतिस्थानमं कट्टुवरु । तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळप्प नारकदेवासंयतरुगळु स्वायुः क्षयमागुत्तं विरलु तीर्त्थंकरल्लदन्यमनुष्यरल्लरप्पुदरिंदं । देवासंयमिगळु चतुर्ग्गुणस्थानवर्त्तिगळप्परल्लि मिथ्यादृष्टि देवासंयमिगळु पर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिदेवासंयमिगळेंदु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टि देवासंयमिगळेंदुं द्विविधमप्परल्लि भवनत्रयसौधर्म्मद्वयपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टयसंयमिगळु एकेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुत पंचविंशतिस्थानमुमं आतपोद्योतयुतषड्विंशतिप्रकृतिस्थानमुमं पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुतमुं मनुष्यगतियुतमुमप्प नवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं तिर्य्यग्गतियुद्योतयुत मागि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु । सानत्कु-

---

विनाष्टाविंशतिकं पञ्चविंशतिकादीनि पंच । पर्याप्तौ तु अष्टाविंशतिकमपि । कर्मभोगभूमिमिश्रासंयतौ देवगत्यष्टाविंशतिकमेव नरकतिर्यग्गत्योः सासादने बंधच्छेदात् । विग्रहगतितीर्थकृत् मिश्रतीर्थकृत् गर्भतीर्थकृत् जन्मतीर्थकृत् कुमारतीर्थकृत् बद्धदेवनरकायुः प्रारब्धतद्बंधः तत्सत्त्वचरमांगश्च देवगतितीर्थयुतनवविंशतिकं, देवः पर्याप्तो मिथ्यादृष्टिः भवनत्रयसौधर्मद्वयजः एकेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुतपंचविंशतिकातपोद्योतयुतषड्विंशतिकपंचेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्यगतियुतनवविंशतिकतिर्यग्गत्युद्योतयुतत्रिंशत्कानि, सानत्कुमारादिदशकल्पजः मनुष्य-

---

सहित छह स्थानोंको बांधते हैं । कर्मभूमिका मनुष्य मिश्र और असंयत गुणस्थानमें देवगति सहित अठाईसका ही बन्ध करता है क्योंकि नरकगति और तिर्यंचगतिके बन्धकी व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है ।

तीर्थंकर यदि विग्रहगतिमें हों, या निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें हों, या गर्भावस्थामें हों, या जन्म अवस्थामें हों या कुमार अवस्थामें हों, या जिसके पूर्वमें नरकायु या देवायुका बन्ध हुआ है और पीछे तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ किया है ऐसा जीव, या तीर्थंकरकी सत्ताका धारी चरम शरीरी मनुष्य असंयत गुणस्थानमें देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसका ही स्थान बाँधता है ।

देवगतिमें भवनत्रिक और सौधर्म युगलका पर्याप्त मिथ्यादृष्टि देव एकेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति सहित पचीसका या आतप उद्योत सहित छब्बीसका या पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका, इस प्रकार चार स्थानों-

मारादि दशकल्पज मिथ्यादृष्टिदेवासंयमिगळु नवविंशतियं मनुष्यतिर्य्यग्गतियुतमागियुं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं तिर्य्यग्गत्युद्योतयुतमागि कट्टुवरु। आनतादिकल्पज मिथ्यादृष्टिगळुं नवग्रैवेयक मिथ्यादृष्टिगळुं मनुष्यगतियुत नवविंशतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिदेवर्क्कळ्गे पेळल्पडुगुमें तेंदोडे—मनुष्यलोकप्रतिबद्धजघन्यमध्यमोत्कृष्ट त्रिंशद्भोगभूमिसमुद्भूततिर्य्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळुं मानुषोत्तराचलापरभागार्द्धपुष्करद्वीपमादियागि स्वयंप्रभाचलार्व्वाचीनभागस्वयंभूरमणद्वीपार्द्धपर्य्यंतमाद जघन्यतिर्य्यग्भोगभूमिसंज्ञिपंचेंद्रिय तिर्य्यग्मिथ्यादृष्टिजीवंगळु षण्णवतिकुमानुष्यद्वीपंगळ कुमानुष्यरुगळुं नियमदिदं देवायुष्यमं स्वस्थितिनवमासावशेषमादागळष्टापकर्षंगळोळे येल्लियानुमोंदु त्रि भागावशेषमादागळु कट्टि भुज्यमानायुःस्थितिक्षयवशदिदं भवनत्रयदेवर्क्कळोळं कल्पस्त्रीयरोळं मिथ्यादृष्टिगळागि पुट्टि यावच्छरीरमपूर्ण्ण तावत्कालं निर्व्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टिदेवासंयमिगळप्परु। इल्लिगे प्रस्तुतगाथासूत्रमिदु :—

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा।
सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ॥—त्रि० सा० ५४६ गा०।

एंदितु भोगभूमिजमिथ्यादृष्टिगळं तापसरुगळं वरमुत्कृष्टदिदं भवनत्रयदोळु पुट्टुवरप्पुदरिंदं शेषत्रिगतिजरागरेंबुदत्थं। मत्तं मनुष्यक्षेत्रप्रतिबद्धकर्म्मभूमिभरतैरावतविदेहंगळ संज्ञि-

---

तिर्यग्गतियुतनवविंशतिकतिर्यग्गत्युद्योतयुतत्रिंशत्के। आनतादिकल्पनवग्रैवेयकजः मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमेव। मनुष्यलोकप्रतिबद्धत्रिंशद्भोगभूमितिर्यग्मनुष्यः मानुषोत्तरात्स्वयंप्रभाचलांतरालवर्तिजघन्यतिर्यग्भोगभूमिसंज्ञितिर्यङ्षण्णवतिकुमानुष्यद्वीपकुमानुष्यश्च नियमेन देवायुष्यं स्वस्थितिनवमासावशेषेऽष्टापकर्षेषु क्वचित्त्रिभागावशेषे बद्ध्वा भुज्यमानायुःस्थितिक्षयवशेन भवनत्रये कल्पस्त्रीषु वा मिथ्यादृष्टिर्भूत्वोत्पद्य यावच्छरीरमपूर्णं तावत् निर्वृत्यपर्याप्तो भवति। अत्र प्रस्तुतगाथा—

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा। सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ॥१॥

को बाँधते हैं। और सानत्कुमार आदि दस स्वर्गोंके देव मनुष्य या तिर्यंचगति सहित उनतीसका या तिर्यंचगति उद्योत सहित तीसका बन्ध करते हैं। आनतादि स्वर्ग और नौ ग्रैवेयकोंके देव मनुष्यगति सहित उनतीसके स्थानको बाँधते हैं।

आगे देवोंके निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें बन्ध कहते हैं। अतः देवोंमें कौन कैसे उत्पन्न होता है यह कहते हैं—

मनुष्यलोक सम्बन्धी तीस भोगभूमियोंके तिर्यंच और मनुष्य तथा मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वतके मध्यवर्ती असंख्यात द्वीप समुद्र सम्बन्धी जघन्य तिर्यंच भोगभूमिके संज्ञी तिर्यंच तथा लवण और कालोद समुद्रोंके छियानबे द्वीपवासी कुमनुष्य नियमसे अपनी आयुके नौ महीने शेष रहनेपर आठ अपकर्षोंमें-से किसी एकमें त्रिभाग शेष रहनेपर देवायुको बाँधकर भुज्यमान आयुकी स्थितिका क्षय होनेसे भवनत्रिकमें अथवा कल्पवासी स्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टि होकर उत्पन्न होते हैं और जबतक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक निर्वृत्यपर्याप्त रहते हैं। इस विषयमें प्रासंगिक गाथा कहते हैं—

महाव्रती सम्यग्दृष्टी सर्वार्थसिद्धि तक उत्पन्न होते हैं। भोगभूमिया सम्यग्दृष्टी

पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यंच भद्रमिथ्यादृष्टि जीवंगळ्‌ स्वयंभूरमणद्वीप स्वयंप्रभाचलापरभागार्द्धद्वीपदोळं स्वयंभूरमणसमुद्रदोळं लवणकालोदसमुद्रंगळोळं केलवु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तस्थलचरखचर जलचरभद्रमिथ्यादृष्टितिर्य्यंचरुगळ्‌ मत्तं मनुष्यक्षेत्रप्रतिबद्धकर्म्मभूमिभरतैरावतविदेहंगळोळ्‌-पशमब्रह्मचर्य्यसमन्वितरप्प वानप्रस्थरुगळ्‌ क जटिशतजटि सहस्रजटि नग्नांड कांजिभिक्षु कंदमूल पत्रपुष्पफलभोजिगळ्‌ मकामनिर्ज्जराबालपांसि देवस्य "एंविंतेकदंडि त्रिदंडि मिथ्यातपश्चरणपरिणतरुगळ्‌ कायक्लेशाचरणंगळिंदं केलंबरु स्वस्व विशुध्यनुसारिंदं देवायुष्यमं कट्टि भुज्यमानमनुष्यायुष्यक्षयवशदिंदं मृतरागि भवनत्रयं मोदल्गोंडुत्कृष्टदिंदमच्युतकल्पपर्य्यंतं पुट्टि यावच्छरीरमपूर्णं तावत्कालपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तदेवासंयमिगळप्परु । इल्लि अकामनिर्ज्जरे यें बुदु बंधनदिंदं चार निरोधमकामर्मे बुदु । बंधनंगळोळ्‌ क्षुत्पिपासानिरोधब्रह्मचर्य्य भूशयन मलधारणपरितापादिगळ्‌ बुदर्त्थमदरिंदं बयसुव वेदनाविपाकलक्षणनिर्ज्जरणमल्तप्पुदरिंदमकामनिर्ज्जरेयें दु पेळल्पट्टुदु । बालपंगळ्‌ बुवु मिथ्यादर्शनोपेतंगळ्‌ । मनुपायकायक्लेशप्रचुरंगळ्‌ निष्कृतिबहुलव्रतधारणंगळुमप्पुवी बालतपंगळ्‌ तप्परोळ्‌ दोडिल्लिगे प्रस्तुतगाथासूत्रंगळ्‌ :—

चरया य परिव्वाजा बह्मोंतच्चुदपदोत्ति आजोवा ।
अणुदिस अणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जांति ॥—[त्रि. सा. ५४७ गा.]

मिथ्यादृष्टयो भोगभूमिजास्तापसाश्च वरमुत्कृष्टेन भवनत्रये उत्पद्यंते नान्यत्र । भरतैरावतविदेहजाः स्वयंभूरमणद्वीपापरार्धतत्समुद्रलवणोदकालोदजाश्च केचित् जलस्थलखचरसंज्ञिपर्याप्तभद्रमिथ्यादृष्टयः उपशमब्रह्मचर्याकितवानप्रस्थाः एकजटिशतजटिसहस्रजटिनग्नांडकांजीभिक्षुकंदमूलपत्रपुष्पफलभुजः अकामनिर्जरा एकदंडित्रिदंडिमिथ्यातपश्चरणपरिणताश्च कायक्लेशाचरणैः केचित् स्वस्वविशुद्धचनुसारेण भवनत्रयाद्यच्युतांतमुत्पद्यंते । अकामैः अनभिलषितैः बंधनेन क्षुत्पिपासानिरोधब्रह्मचर्यभूशयनमलधारणपरितापादिभिर्निर्जरा अकामनिर्जरेत्युच्यते । मिथ्यादर्शनोपेताः अनुपायकायक्लेशप्रचुराः निकृतिबहुलव्रतधराः बालतपसः । तदुत्पत्तिप्रस्तुतगाथासूत्रं—

सौधर्मयुगलमें उत्पन्न होते हैं। और मिथ्यादृष्टि भोगभूमिया तथा उत्कृष्ट तापसी भवनत्रिकमें उत्पन्न होते हैं। अन्यत्र उत्पन्न नहीं होते।

भरत-ऐरावत-विदेहमें उत्पन्न हुए, तथा स्वयंभूरमण द्वीपके अपरार्ध, स्वयंभूरमण, लवणोद कालोद समुद्रोंके वासी कोई जीव थलचर, नभचर, संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि, तथा उपशम ब्रह्मचर्य सहित वानप्रस्थ, तथा एकजटी, शतजटी, सहस्रजटी, नग्नाण्डक, कांजी भक्षण करनेवाले, कन्दमूल पत्र पुष्प फलके खानेवाले, अकामनिर्जरा करनेवाले, एकदण्डी, त्रिदण्डी, मिथ्यातपश्चरण करनेवाले कायक्लेशरूप आचरणके द्वारा अपनी-अपनी विशुद्धिके अनुसार भवनत्रयसे लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। अकाम अर्थात् अपनी इच्छाके बिना बन्धनमें पड़नेपर भूख-प्यासको सहना, ब्रह्मचर्य धारण करना, पृथ्वीपर सोना, मलधारण, परिताप आदिके द्वारा जो निर्जरा होती है वह अकाम निर्जरा है। मिथ्यादर्शन सहित और मोक्ष उपायरहित, बहुत कायक्लेश पूर्वक कपटरूप व्रत धारण करना बालतप है। इनसे भी देवगतिमें जन्म होता है। इस विषयमें प्रासंगिक गाथा कहते हैं—

चरकरेंदडे नग्नांडरु। परिव्राजकरेंदोडेकदंडित्रिदंडिगळिवरग्गंळुत्कृष्टदिंदं भवनत्रयं मोदल्गोंडु ब्रह्मकल्पपरियंतं पुट्टुवरु। आजीवा कांजिभिक्षुगळुत्कृष्टदिंदं भवनत्रयं मोदल्गोंडु अच्युतकल्पपर्य्यंतं पुट्टुवरु। अनुदिशानुत्तरविमानंगळिंदं बंदवरग्गंळु नव वासुदेव प्रतिवासुदेवरागि पुट्टरेकेंदोडवरग्गंळु द्विचरमांगरप्पुदरिंदमी नरकगामिगळागि पुट्टरेंबुदर्त्थं। मत्तं सादि अनादि अभव्यरेंब त्रिविधमिथ्यादृष्टिळु अर्हंच्छ्रुतमर्हल्लिंगवंतरुगळु अनशनावमोदर्य्यवृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशयनासन कायक्लेशमेंब बाह्यषड्विधतपश्चरणनिरतरुं त्रिकालदेववंदनादि समेतरुगळप्परुं दर्शनमोहचारित्रमोहघातिकर्म्मोदयसद्भावमुळ्ळवरग्गंळु उपशमब्रह्मचर्य्यादि समेतरुमळु कळंबरु मनुष्यरुगळु मिथ्यादृष्टि द्रव्य महाव्रतिगळुपरिमग्रैवेयकपर्य्यंतमुत्कृष्टदिंद मेकत्रिंशत्सागरोपमदेवायुःस्थितिबंधमं माडि भुज्यमानमनुष्यायुःक्षयवशदिंदं मृतरागि पोगि नवग्रैवेयकंगळोळु यथायोग्यार्हमिंद्ररुगळु मागियुं पुट्टि यावच्छरीरमपूर्णं तावत्कालं निर्व्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टि देवासंयमिगळप्परिल्लिदं मेलणनुदिशानुत्तरविमानंगळोळु मिथ्यादृष्टिगळु पोगि पुट्टुवरु मिल्लल्लियुं मिथ्यात्वकर्म्मोदयमुमिल्ल मिल्लिगुपयोगिगाथासूत्रमिदु :—

णरतिरिय देसअयदा-उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा।
ण अयददेस मिच्छा गेवेज्जंतोत्ति गच्छंति ॥—[त्रि. सा. ५४५ गा.]

चरया य परिव्वाजा ब्रह्मोत्तच्चुदपदोत्ति आजीवा।
अणुदिसअणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जंति ॥१॥

चरकाः नग्नांडाः परिव्राजकाः एकत्रिदंडिनः एते उत्कृष्टेन भवनत्रयादिब्रह्मकल्पांतमुत्पद्यंते। आजीवाः कांजीभिक्षवः उत्कृष्टेन भवनत्रयाद्यच्युतांतमुत्पद्यंते। अनुदिशानुत्तरविमानागताः द्विचरमांगत्वात् वासुदेवप्रतिवासुदेवेषु नरकगामिषु नोत्पद्यंते। साद्यनाद्यभव्यमिथ्यादृष्टयः अर्हंच्छ्रुतलिंगधराः बाह्यषड्विधतपोनिरतास्त्रिकालदेववंदनादिसमेताः दर्शनचारित्रमोहघातिकर्मोदयाः उपशमब्रह्मचर्यादिसमेताः केचिद् द्रव्यमहाव्रताः उपरिमग्रैवेयकांतमुत्पद्यंते न तत उपरि। अत्रोपयोगिगाथा सूत्रं—

णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा।
णरअयददेसमिच्छा गेवज्जंतोत्ति गच्छंति ॥१॥

चरक अर्थात् नग्नाण्डक, परिव्राजक अर्थात् एकदण्डी त्रिदण्डी संन्यासी, ये उत्कृष्टसे ब्रह्मोत्तर स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। आजीवक अर्थात् कांजीका आहार करनेवाले भिक्षु उत्कृष्टसे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। अनुदिश अनुत्तर विमानवासी देव द्विचरम शरीरी होते हैं अतः मरकर नरकगामी नारायण प्रतिनारायण आदि नहीं होते। सादि वा अनादि अभव्य मिथ्यादृष्टि जो अर्हन्तके द्रव्यलिंगके धारी होते हैं, छह प्रकारके बाह्य तपमें मग्न रहते हैं, त्रिकाल देववन्दना आदि क्रिया करते हैं, किन्तु जिनके दर्शनमोह चारित्रमोह नामक घातिकर्मका उदय रहता है, उपशम ब्रह्मचर्य आदि सहित होते हैं ऐसे द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं उससे ऊपर नहीं। यहाँ उपयोगी गाथा कहते हैं—

देशसंयत अथवा असंयत तिर्यंच मनुष्य उत्कृष्टसे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।

मनुष्यतिर्य्यंचरुगळप्प देशसंयतरु गळुमसंयतरुगळु मुत्कृष्टदिंदमच्युतकल्पपर्य्यंतं पुट्टुवरु। द्रव्यदिंदं जिनरूप महाव्रतिगळु भावदिंदमसंयतदेशसंयतरुं मिथ्यादृष्टिजीवंगळु मुपरिमग्रैवेयकपर्य्यंतं पोगि पुट्टुवरु। इंतप्प निर्व्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टि देवासंयमिगळोळु भवनत्रय कल्पजस्त्री सौधर्म्मद्वय निर्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टि देवासंयमिगळुमेकेंद्रियपर्य्याप्तयुतपंचविंशति प्रकृतिस्थानमुमनातपोद्योतयुत पर्य्याप्त तिर्य्यंग्गत्येकेंद्रिययुत षड्विंशतिस्थानमुमं पंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं उद्योतयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। सानत्कुमारादि दशकल्पज मिथ्यादृष्टि निर्व्वृत्यपर्य्याप्त देवासंयमिगळु पंचेंद्रियपर्य्याप्त तिर्य्यंग्गतियुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं मनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमुमनुद्योतयुततिर्य्यक्पंचेंद्रिययुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरेकेंदोडे "आईसाणोत्ति सत्त वाम छिदी" एंदिल्लि येकेंद्रियपर्य्याप्तयुतादि बंधस्थानंगळिल्लप्पुदरिंदं। आनताद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद कल्पजरुगळु कल्पातीतजरुगळप्प निर्व्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टि देवासंयमिगळु मनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थान मनोंदने कट्टुवरेकेंदोडे "सदरसहस्सारगोत्ति तिरियदुगं। तिरियाऊ उज्जोओ अत्थि तदो णत्थि सदरचऊ।" एंदितु तिर्य्यग्गतियुत नवविंशतित्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळ बंधमिल्लप्पुदरिंदं॥ यितु संक्षेपदिंदं देवगत्यसंयमिमिथ्यादृष्टिगळ्गे नामकर्म्मबंध

तिर्यग्मनुष्या देशसंयता असंयताश्चोत्कृष्टेनाच्युतांतमुत्पद्यंते। द्रव्यतो जिनरूपमहाव्रताः भावतोऽसंयतदेशसंयतमिथ्यादृष्टयः उपरिमग्रैवेयकांतमुत्पद्यंते। सोऽयं निर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिः भवनत्रयकल्पस्त्रीसौधर्मद्वयजः तदा एकेंद्रियपर्याप्तयुतपंचविंशतिकातपोद्योतयुतपर्याप्ततिर्यग्गत्येकेंद्रिययुतषड्विंशतिकपंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुतमनुष्यगतियुतनवविंशतिकोद्योतयुतत्रिंशत्कानि बध्नाति। सानत्कुमारादिदशकल्पजस्तदा पंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्गतियुतमनुष्यगतियुतनवविंशतिकोद्योतयुततिर्यक्पंचेंद्रिययुतत्रिंशत्के एव, आईसाणोत्ति सत्तवामछिदीत्येकेंद्रियपर्याप्तादियुतस्थानानामबंधात्। आनताद्युपरिमग्रैवेयकांतजस्तदा मनुष्यगतियुतनवविंशतिकमेव। तिरियदुगं तिरियाऊ उज्जोओ णत्थीति तिर्यग्गतियुतनवविंशतिकत्रिंशत्कयोरबंधात्।

तथा द्रव्यसे जिनरूप महाव्रतके धारी और भावसे असंयत अथवा देशसंयत अथवा मिथ्यादृष्टि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं।

इन उत्पन्न हुए देवोंमें निर्वृत्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि भवनत्रिक देव, वा कल्पवासिनी स्त्री और सौधर्म युगलके देव, एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित पच्चीसका, आतप उद्योतके साथ पर्याप्त तिर्यंचगति एकेन्द्रिय सहित छब्बीसका, अथवा पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति सहित या मनुष्यगति सहित उनतीसका अथवा उद्योत सहित तीसका बन्ध करते हैं; सानत्कुमार आदि दस कल्पोंमें उत्पन्न हुए देव पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति या मनुष्यगति सहित उनतीसका अथवा उद्योत तिर्यंचगति पंचेन्द्रिय सहित तीसका बन्ध करते हैं। क्योंकि 'आईसाणोत्ति सत्तवामछिदी' इस कथनके अनुसार एकेन्द्रिय पर्याप्त आदि सहित स्थानोंका बन्ध उनके नहीं होता। आनतादि उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुए देव मनुष्यगति सहित उनतीसका ही बन्ध करते हैं। क्योंकि इनमें तिर्यंचगति सहित उनतीस और तीसका बन्ध नहीं होता। इस प्रकार संक्षेपसे देवगतिमें असंयमी मिथ्यादृष्टियोंके नामकर्मके बन्धस्थान कहे।

स्थानंगळु योजिसल्पट्टुविल्लि जीवसमासपर्य्याप्तिप्राणाविगळु विवक्षितमागि बंधस्थानंगळु योजिसल्पडवेकेंदोडे ग्रंथगौरवभयमुंटप्पुदरिंदं । परमागम प्रवीणरुगळु योजिसि कोंबुदेंबुदत्थं ॥

यिनु देवासंयमिसासादनरुगळ्गे नामकर्म्मबंधस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमल्लि सासादनदेवासंयमिगळु द्विविधमप्परल्लि तिर्य्यंग्गतिमनुष्यगतिगळोळुपशमसम्यक्त्वमननंतानुबंधिकषायोदयदिंदं केडिसि सासादनरागि स्वस्वभुज्यमानायुःस्थितिक्षयवशदत्तणिंदं मृतरागि बंदिल्लि सासादननिर्व्वृत्यपर्य्याप्तदेवासंयमिगळप्परदेंतेंदोडे संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तगर्भजविशुद्धसाकारोपयोगयुततिर्य्यंचमिथ्यादृष्टि तिर्य्यंग्जघन्यभोगभूमिजनादनादोडे जातिस्मरणदिंदं मेणु देवप्रतिबोधनदिंदं गृहीतप्रथमोपशमसम्यक्त्वनसंयतनेयक्कुं । मत्तं मनुष्यलोकभोगभूमिप्रतिबद्ध त्रिंशज्जघन्यमध्योत्तमभोगभूमिगळोळु मिथ्यादृष्टितिर्य्यंचरुगळु केळंबरु जातिस्मरणंदिंदं केलंबर्द्देवप्रतिबोधदिंदं केलंबच्चारण प्रतिबोधदिंदं मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसियसंयतसम्यग्दृष्टिगळप्परु । मत्तं मनुष्यलोकदिंदं पोरगण चरमस्वयंभूरमणद्वीपार्द्धापरभागकर्म्मभूमिप्रतिबद्ध द्वीपदोळं स्वयंभूरमणसमुद्रदोळं यथासंभवमागि केलंवर्त्तिर्य्यंचरुगळु जातिस्मरणदिंदं केलंबद्देवप्रतिबोधनदिंदं मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि असंयतरुं केलंबरु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं देशव्रतमुमं युगपत्कैकोंडु देशसंयतरप्परु । मत्तं मनुष्यलोकप्रतिबद्ध कर्म्मभूभरतैरावतविदेहंगळोळु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्त गर्भजविशुद्धि साकारोपयोगयुततिर्य्यंग्मिथ्यादृष्टिगळु केलंब्रज्जातिस्मरणदिंदं केलंबम्मनुष्यदेवप्रतिबोधनदिंदं केलंबर्ज्जिनबिंबदर्शनदिंदं मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु केलंबर्प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि असंयतरप्परु । केलंबरु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं

एवं संक्षेपाद् देवगत्यसंयमि मिथ्यादृष्टीनां नामबंधस्थानानि योजितानि । अत्र जीवसमासपर्याप्तिप्राणादिविवक्षया ग्रंथगौरवभयान्न योजितानि परमागमप्रवीणैर्योजयितव्यानि ।

अथ संज्ञिपर्याप्तो गर्भजो विशुद्धः साकारोपयोगो मिथ्यादृष्टिः तिर्यग्भोगभूमिजस्तदा जातिस्मरणाद्देवप्रतिबोधनाद्वा त्रिंशद्भोगभूमिजस्तदा तद्द्वयाच्चारणप्रतिबोधनाद्वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा संयतः स्यात् । स्वयंप्रभाचलबाह्यकर्मभूमिजस्तदा तद्द्वयात्तथा स्यात् । कश्चिच्च प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन समं देशव्रतं गृहीत्वा देशसंयतः स्यात् । पंचदशकर्मभूमिजस्तदा जातिस्मरणाद्देवमनुष्यप्रतिबोधनाज्जिनबिंबदर्शनाद्वा तथा

यहाँ ग्रन्थके विस्तारके भयसे जीवसमास, पर्याप्ति प्राणादिकी विवक्षासे बन्धस्थान नहीं कहे हैं । परमागममें प्रवीण पाठकोंको स्वयं लगा लेना चाहिए ।

संज्ञी पर्याप्तक गर्भज विशुद्धता सहित साकार उपयोगवाला मिथ्यादृष्टि तिर्यंच भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ जीव जातिस्मरण या देवोंके सम्बोधनेसे, और तीस भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ तिर्यंच जातिस्मरण, देव सम्बोधन अथवा चारणऋद्धिके धारक मुनियोंके सम्बोधनसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत सम्यग्दृष्टी होता है । स्वयं प्रभाचल पर्वतके बाहरकी कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ, तिर्यंच जातिस्मरण या देवसम्बोधनसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके असंयत सम्यग्दृष्टि होता है । प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ देशव्रत ग्रहण करके देशसंयत होता है । पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुआ तिर्यंच जातिस्मरणसे अथवा देव और मनुष्यके सम्बोधनसे अथवा जिनबिम्बके दर्शनसे असंयत सम्यग्दृष्टी

देशव्रतमुमं युगपत्स्वीकरिसि देशसंयतरप्परु। मत्तं मनुष्यलोकप्रतिबद्धत्रिंशद्भोगभूमिगळोळु केलंबर्म्मिथ्यादृष्टिमनुष्यरुगळु जातिस्मरणदिंदं केलंबर्चारणदेवप्रतिबोधनदिंदं मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि असंयतरप्परु। मत्तं मनुष्यलोककर्म्मंभूमिभरतैरावतविदेहंगळोळु चरमांगरल्लद केलंबर्म्मिथ्यादृष्टिगळु जातिस्मरणदिंदं केनचित्स्वसंभवसाधनदिंदं मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु केलंबत्प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि असंयतरप्परु। केलंबत्प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं देशव्रतमुमं युगपत्स्वीकरिसि देशसंयतरप्परु। केलंबरु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं महाव्रतमुमं युगपत्स्वीकरिसि अप्रमत्तरप्परु। बळिक्कलवप्रमत्तरप्परु। केलंबश्रेण्यारोहणमं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमं कैकोंडुमाडि बळिक्कवतरणदोळु क्रमदिनिळिदु अप्रमत्तप्रमत्त देशसंयतासंयतगुणस्थानंगळं चारित्रमोहोदयंगळिदं पोद्दिववर्गंळु केलंबरु द्वितीयोपशमसम्यत्क्वयुतासंयतरुं केलंबरु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वयुतदेशसंयतरुं। केलबर्द्वितीयोपशमसम्यक्त्वयुतप्रमत्तरुगळप्परु। अप्रमत्तरनिल्लि ग्रहिंयिसल्वेडेकेंदोडवस्संम्यक्त्वमं विराधिसि सासादनरागरप्पुदरिंदं।

येंदिनितुं प्रकारद प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळुं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिगळुं तंतम्म भवचरमकालदोळादवर्गंळु केलकेलंबरुगळु। अनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं प्राग्बद्धदेवायुष्यरादोडे केलंबम्मृंतरागि अनंतरसमयदोळुत्तरभवदेवसासादनासंयमिगळप्परा सासादननिर्वृत्यपर्य्याप्तकर कालमुत्कृष्टदिंदं षडावलिप्रमितमक्कुं। केलंबरुगळनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि सासादनरागि भुज्यमानायुः स्थितिक्षयवशदिंदं मृतरागि पोगि निर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनदेवासंयमिगळप्परु। केलंबरबद्धायुष्यरुगळनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं तद्भवदोळु सासादनरागि देवायुष्यमं कट्टि मृतरागि सासादननिर्वृत्यपर्य्याप्तदेवासंयमिगळप्परु। अंतागुत्तं केलंबरु भवनत्रयदोळं

द्विविधः स्यात्। तादृक्मनुष्यस्तदा तथा द्विविधः, कश्चित्प्रथमोपशमसम्यक्त्वेन समं महाव्रतं स्वीकृत्याऽप्रमत्तोऽपि स्यात्। अयमप्रमत्तः कश्चित्प्रमत्तः स्यात्। कश्चिच्च द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं स्वीकृत्य श्रेणिमारुह्य क्रमेणावतरन्नसंयतः देशसंयतः प्रमत्तो वा स्यात्। अमी प्रथमद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टयः स्वभवचरमे स्वसम्यक्त्वकाले जघन्येनैकसमये उत्कृष्टेन षडावलिमात्रेऽवशिष्टेऽनंतानुबंध्यन्यतमोदयेन सासादना भूत्वा प्राग्बद्धदेवायुष्का मृत्वा अबद्धायुष्काः केचिद्देवायुर्बध्वा च देवनिर्वृत्यपर्याप्तसासादनाः स्युः। ते च भवनत्रयकल्पस्त्रीसौधर्म-

---

अथवा देशसंयत होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी असंयत अथवा देशसंयत होता है। कोई मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ महाव्रत धारण करके अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती भी होता है। यह अप्रमत्त उतरकर प्रमत्त गुणस्थानवर्ती होता है। कोई मनुष्य द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको धारण करके श्रेणीपर चढ़ तथा क्रमसे उतरकर असंयत या देशसंयत या प्रमत्त गुणस्थानवर्ती होता है।

ये प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके धारी जीव अपने भवके अन्तमें जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छह आवली शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे सासादन गुणस्थानवर्ती होकर जिन्होंने पूर्वमें देवायुका बन्ध किया है वे मरकर और जिन्होंने पूर्वमें देवायुका बन्ध नहीं किया वे अन्त समयमें देवायुका बन्ध करके मरकर सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृत्यपर्याप्त देव होते हैं। वे यदि भवनत्रिक या कल्पवासी स्त्री

केलंबक्कंल्पजस्त्रीयरोळं केलंबस्सौधर्म्मकल्पद्वयदोळं केलंबस्सानत्कुमारादिदशकल्पदोळं केलंबरानतादिकल्पंगळोळं नवग्रैवेयकंगळोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनदेवासंयमिगळप्परल्लि। भवनत्रयकल्पजस्त्रीसौधर्म्मद्वयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनदेवासंयमिगळु एकेंद्रियपर्य्याप्तयुतपंचविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं उद्योतातपैकेंद्रियपर्य्याप्तयुतषड्विंशतिप्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवुदिल्लेकें दोडे सासादनकालं परिसमाप्तियागुत्तं विरलु नियमदिदं मिथ्यादृष्टिगळागि तत्प्रथमसमयं मोदल्गोंडु यावच्छरीरमपूर्णं तावत्कालं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिदेवासंयमियागि कट्टुगुमप्पुदरिंदमा सासादनं पंचेंद्रियतिर्य्यंग्गतिपर्य्याप्तयुतनवविंशतिस्थानमुमं पर्य्याप्तमनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमनुद्योतपर्य्याप्तितिर्य्यग्गतियुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुगुं। सानत्कुमारादिदशकल्पंगळ सासादनरुगळुमंते द्विस्थानंगळं कट्टुवरु। आनतादिकल्पजरुं नवग्रैवेयकंगळहमिंद्रसासादनरुगळुं मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। सासादनत्वं पोगुत्तिरलु मिथ्यादृष्टिगळागि यावच्छरीरमपूर्णं तावत्कालपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे पेळ्दंते नामकर्म्मबंधस्थानंगळं कट्टुवरु। भवनत्रयं मोदल्गोंडुपरिमग्रैवेयकावसानमावकल्पजरुं कल्पातीतजरुगळप्पमिश्ररुचिगळप्पऽसंयमिगळु मनुष्यगतिपर्य्याप्तयुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। देवासंयतासंयमिगळु द्विविधमप्परें तें दोडे निर्व्वृत्यपर्य्याप्तासंयतदेवासंयमिगळें दुं पर्य्याप्तासंयतदेवासंयमिगळें दितल्लि भवनत्रयकल्पजस्त्रीयरोळं तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळु पुट्टरप्पुदरिंदं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळं पर्य्याप्तकालदोळं तीर्त्थमनुष्यगतियुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं बंधमिल्ल। केवलं मनुष्यगतियुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमनोंदने पर्य्याप्तकरु कट्टुवरु। सौधर्म्मकल्पद्वयादि सर्व्वार्थसिद्धिपर्य्यंतमाद कल्पजरुं कल्पातीत जरुगळुं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळं पर्याप्तकाळदोलं मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं तीर्त्थसत्कर्म्मरल्लवर्गळेल्लरुगळु मोंदने कट्टुवरु। तीर्त्थसत्कर्म्मरु-

---

द्वयजास्तदा पंचेंद्रियतिर्यग्मनुष्यगतिपर्याप्तयुतनवविंशतिकतिर्यग्गत्युद्योतपर्याप्तयुतत्रिंशत्के बध्नंति। सासादनकालमतीत्य मिथ्यादृष्टय एव भूत्वा तद्द्वयं यावच्छरीरमपूर्णं तावदेकेंद्रियपर्याप्तयुतपंचविंशतिकोद्योतातपैकेंद्रियपर्याप्तयुतषड्विंशतिके च सानत्कुमारादिदेशकल्पजास्तदा तद्द्वयमेव आनतादिकल्पनवग्रैवेयकजास्तदा मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव। सासादनत्वेऽतीते तन्निर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिवद्बध्नंति। भवनत्रयाद्युपरिमग्रैवेय-

---

या सौधर्म युगलमें उत्पन्न हुए हैं तो पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति या मनुष्यगति सहित उनतीसका या तिर्यंचगति उद्योत सहित तीसका बन्ध करते हैं। सासादनका काल पूरा होनेपर मिथ्यादृष्टि होकर उन दोनों स्थानोंको और जबतक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित पचीसको अथवा उद्योत आतप एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित छब्बीसको बाँधते हैं।

सानत्कुमार आदि दस कल्पवाले उन उनतीस और तीस दो ही स्थानोंको बाँधते हैं। आनतादि स्वर्ग और नौ ग्रैवेयकोंके देव मनुष्यगति सहित उनतीसका ही बन्ध करते हैं। सासादनका काल बीतनेपर निर्वृत्यपर्याप्त मिथ्यादृष्टिके समान स्थान बाँधते हैं। भवनत्रिकसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मिश्रगुणस्थानवर्ती और पर्याप्त भवनत्रिक तथा कल्पवासी

गळादवग्गंळेल्लरुगळुं तीर्त्थमनुष्यगतियुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरेकेंदोडे सम्यक्त्वयुतमागि देवगतियोळं नरकगतियोळं पुट्टुव तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळेल्लं तीर्त्थयुतमनुष्यगतिपर्य्याप्तदोडने कट्टुव त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं तत्तद्भवचरमसमयपर्य्यंतं बंधमप्पुवु। एकेंदोडे अंतर्म्मुहूर्त्ताधिकाष्टवर्षन्यूनपूर्व्वकोटि द्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं तीर्त्थबंध निरंतराद्धेयप्पुदरिंदं। चक्षूजुगळे सर्व्वं चक्षुर्द्दर्शनदोळमचक्षुर्द्दर्शनदोळं सर्व्वनामकर्म्मबंधस्थानंगळुं बंधमप्पुवु। संदृष्टि। चक्षु। अच। २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १। यिल्लि चक्षुर्द्दर्शनं सर्व्वनारकरोळं चतुरिंद्रियादि सर्व्वतिर्य्यंचरोळं सर्व्वमनुष्यरोळं सर्व्वदेवरोळमक्कु-। मल्लि नारकरुगळगे नवविंशति त्रिंशत्प्रकृति बंधस्थानद्वयं यथायोग्यं बंधमप्पुवु। तिर्य्यंचचतुरिंद्रियादिगळोळु चतुरिंद्रियंगळगष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि शेषतिर्य्यग्गतिमनुष्यगतियुत त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळु बंधमप्पुवु। शेष पंचेंद्रिय चक्षुर्द्दर्शनिगळोळु त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळुं बंधमप्पुवु। मनुष्यचक्षुर्द्दर्शनिगळोळु सर्व्वमुमष्टस्थानंगळुं बंधमप्पुवु। देवचक्षुर्द्दर्शनिगळोळु यथायोग्यं पंचविंशति षड्विंशति नवविंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळु नाल्कुं बंधयोग्यंगळप्पुवु। अचक्षुर्द्दर्शनं शेषेंद्रियोपयोगमप्पुदरिंदं नारकरेल्लरोळं एकेंद्रियादिसर्व्वतिर्य्यंचरोळं सर्व्वमनुष्यरोळं सर्व्वदेवर्क्कळोळमक्कुमप्पुदरिंदमल्लिनारकरोळु चक्षुर्द्दर्शनिगळगे पेळ्दंते बंधस्थानद्वयं बंधमक्कु। तिर्य्यंचरोळु येकेंद्रियं मोदल्गोंडु चतुरिंद्रियतिर्य्यंचरु पर्य्यंतं नरकगति देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानं पोरगागि त्रयोविंशत्यादि तिर्य्यग्गतिमनुष्यगति युतमागि यथायोग्यं षट्स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु। पंचेंद्रियंगळोळु नरकगतिदेवगतियुताष्टाविंशतिस्थानयुतमागि त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवु। मनुष्याचक्षुर्द्दर्शनिगळगे सर्व्वत्रयोविंशत्यादि यष्टस्थानंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवु। देवर्क्कळु गळोळ-

---

कांतमिश्ररुचयः पर्याप्तभवनत्रयकल्पस्त्र्यसंयताश्च मनुष्यगतियुतनवविंशतिकं वैमानिकास्तीर्थरहितास्तदेव सतीर्थाः मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कमेव।

चक्षुर्दर्शनेऽचक्षुर्दर्शने च सर्वाणि। तत्र चक्षुर्दर्शने नारकाः नवविंशतिकत्रिंशत्के द्वे। चतुरिंद्रिया विनाष्टाविंशतिकं तिर्यग्गतिमनुष्यगतियुतत्रयोविंशतिकादीनि षट्। पंचेंद्रियाः त्रयोविंशतिकादीनि षट्। मनुष्याः सर्वाणि। देवा यथायोग्यपंचविंशतिकषड्विंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कानि। अचक्षुर्दर्शने नारकाः चक्षुर्दर्शनोक्ते

स्त्री असंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्यगति सहित उनतीसके स्थानको बांधते हैं। तीर्थंकर प्रकृतिसे रहित वैमानिक देव उसी उनतीसके स्थानको बाँधते हैं, और तीर्थंकर सहित वैमानिकदेव मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसके स्थानको बांधते हैं।

चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनमें सब बन्धस्थान हैं। चक्षुदर्शन सहित नारकी उनतीस और तीस दो स्थानोंको बांधता है। चौइन्द्रिय जीव अठाईसके बिना तिर्यंचगति या मनुष्यगति सहित तेईस आदि छह स्थानोंको बांधते हैं। पंचेन्द्रिय तेईस आदि छह स्थानोंको बाँधते हैं। मनुष्य सब स्थानोंको बाँधते हैं। देव यथायोग्य पच्चीस, छब्बीस, उनतीस तीस चार स्थानोंको बाँधते हैं।

अचक्षुदर्शन सहित नारकी चक्षुदर्शनमें कहे दो स्थानोंको बांधते हैं। एकेन्द्रिय आदि

चक्षुर्द्दर्शनिगळप्प भवनत्रयादि सर्व्वार्थसिद्धिपर्य्यंतं तत्तद्योग्यंगळप्प पंचविंशति षड्विंशति नवविंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळ् बंधंगळप्पुवु । २५ । ए प । २६ । ए प । अ उ । २९ । ति । म । ३० । ति । उ । म । ति । "सग सग णाणं व ओहिदुगे" अवधिदर्शनदोळं केवलदर्शनदोळं क्रमदिंदवधिज्ञानदोळं केवलज्ञानदोळं पेळ्वंते चरमपंचस्थानंगळु शून्यमुमप्पुवु । अव । दर्शनं । २८ । दे । २९ । म । दे ति । ३० । मति । आ । २ । दे ३१ । दे । आ २ । ति । १ । के ० । दर्शं । ० । इल्लि अवधिज्ञानदोळु पेळ्दंतवधिदर्शनदोळेंदु पेळ्दुदरिंदं देशावधि परमावधि सर्व्वावधि भेददि नवधिज्ञानं त्रिविधमक्कुमल्लि देशावधिज्ञानं नारकासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळं पंचेंद्रियसंज्ञिपर्य्याप्तासंयतदेशसंयत तिर्य्यंचरोळं देवासंयतरोळं असंयतादि क्षीणकषायावसानमाद मनुष्यरोळं देशावधिज्ञानमक्कुं । प्रमत्तसंयतादि क्षीणकषायावसानमाद चरमांगररोळे परमावधि सर्व्वावधिज्ञानंगळप्पुवप्पुदरिंदमिवरोळेल्लमवधिदर्शनमक्कुमेंबुदत्थं । अल्लि घम्मे वंशे मेघेगळ नारकासंयतावधिदर्शनिगळु तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळल्लद सम्यग्दृष्टिगळु मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । तीर्त्थसत्कर्म्मरप्प सम्यग्दृष्टयवधिदर्शनिगळु तीर्त्थमनुष्यगतियुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । अंजने मोदलाद चतुःप्पृथ्विगळ नारकासंयतावधिदर्शनिगळु मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानम नोंदने कट्टुवरु । संज्ञिपंचेंद्रिय तिर्य्यंगसंयत देशसंयतरुमवधिदर्शनिगळु देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुमनोंदने कट्टुवरु । मनुष्यगतियोळु तीर्त्थंकर कुमाररुं चक्रवर्त्तिगळुं त्रिकल्याणभाजनरप्प तीर्त्थसत्कर्म्मरुं चरमांगरुं केलंबरचरमांगरुगळप्प असंयत देशसंयतरुं प्रमत्तादि महाव्रतिगळुं देशावधिज्ञानिदर्शनिगळु यथायोग्यं देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमुमं देवगतितीर्त्थयुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु । २८ । दे । २९ । दे ति । परमावधि

द्वे । एकेंद्रियादिचतुरिंद्रियांताः नरकदेवगत्यष्टाविंशतिकं विना योग्यत्रयोविंशतिकादीनि षट् । पंचेंद्रियास्तद्युतानि षट् । मनुष्याः सर्वाणि । देवाः चक्षुर्दर्शनोक्तानि चत्वारि । अवधिदर्शनेऽवधिज्ञानवच्चरमाणि पंच । असंयतदेवनारके असंयतदेशसंयतसंज्ञिपर्याप्ततिरश्च्यसंयतादिक्षीणकषायांतमनुष्ये च देशावधिः प्रमत्तादिक्षीणकषायांतचरमांगे च परमावधिसर्वावधी, तथावधिदर्शनमपि । तत्र घर्मादित्रयजाः सतीर्थाः तीर्थमनुष्यगतित्रिंशत्कं तत्रातीर्थाः अंजनादिजाश्च मनुष्यगतिनवविंशतिकं । तिर्यंचः देवगतियुताष्टाविंशतिकं । मनुष्यास्तदा-

---

चौइन्द्रिय पर्यन्त जीव नरकगति देवगति सहित अठाईसके बिना अपने योग्य तेईस आदि छह स्थानोंको बाँधते हैं । पञ्चेन्द्रिय अठाईस सहित छह स्थानोंको बांधते हैं । मनुष्य सब स्थानों को बांधते हैं । देव चक्षुदर्शनमें कहे चार स्थानोंको बांधते हैं ।

अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानकी तरह अन्तके पांच स्थानोंका बन्ध होता है । असंयत देव नारकियोंमें असंयत, देश संयत संज्ञी पर्याप्त तिर्यञ्चोंमें और असंयतादि क्षीणकषाय पर्यन्त मनुष्योंमें देशावधि ज्ञान होता है । प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यन्त चरम शरीरी मनुष्योंमें परमावधि सर्वावधि ज्ञान होते हैं । तथा इनमें अवधिदर्शन भी होता है ।

अवधिदर्शनवाले घर्माआदि तीन नरकोंके नारकी, जिनके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध हुआ है, तीर्थंकर मनुष्यगति सहित तीसके स्थानको बाँधते हैं । तथा तीर्थंकरकी सत्तासे रहित धर्मादि तीन नरकोंके नारकी और अंजना आदिके नारकी मनुष्यगति सहित उनतीस-

सर्व्वावधिज्ञानिगळप्प चरमांगमहाव्रतिगळु पंचकल्याण द्विकल्याण भाजन तीर्त्थंकर महाव्रतिगळु गणधरदेवरुगळु केळंबरु श्रुतकेवलि चरमांगरुगळप्प एल्ला महाव्रत्यवधिदर्शनिगळु प्रमत्ताप्रमत्तरुगळु मुपशमक्षपकश्रेण्यारूढापूर्व्वानिर्वृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय संयमिगळु यथायोग्यमागि देवगतियुताष्टाविंशत्यादि पंचस्थानंगळं कट्टुवरु । २८ । दे । २९ । दे ति । ३० । आ । २ । दे । ३१ । दे आ २ । ति १ । सौधर्म्मकल्पादि सर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतमाद देवाऽसंयतावधिदर्शनिगळु तीर्त्थसत्कर्म्मरेल्लं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं मनुष्यगतितीर्त्थयुतमादुदनोंदने कट्टुवरु । ३० । म । ति । भवनत्रयादि सर्व्वार्त्थसिद्धि पर्य्यंतमाद तीर्त्थरहितासंयतसम्यग्दृष्टयवधि दर्शनिगळेल्लं मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २९ । म । उपशांतादिचतुर्गुणस्थानदोळु नामकर्म्मबंधमिल्ल ॥

कम्मं वा किण्हतिये पणवीसा छक्कमट्ठवीस चऊ ।
कमसो तेऊजुगले सुक्काए ओहिणाणव्वा ॥५४९॥

कार्म्मणवत् कृष्णतिसृषु पंचविंशतिषट्कमष्टाविंशति चत्वारि क्रमशस्तेजोयुगळे शुक्लाया-मवधिज्ञानवत् ॥

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयदोळु कार्म्मणकाययोगदोळु पेळ्दाद्यतनषट्स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । कृ । नी । क । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । अ सं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । न । दे । २९ । म । ति । दे ति । ३० । ति उ । तेजोलेश्ययोळु पंचविंशति षट्कं बंधयोग्यमप्पुदु । तेजो ले । २५ । ए प । २६ । ए प । आ उ । २८ । न । दे । २९ । ति । म । दे ति । ३० । ति उ । म ति । दे । आ । २ । ३१ । दें । आ २ । ती । अष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळु पद्मलेश्ययोळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । पद्म २८ । दे २९ । दे ति । म ति । ३० । ति उ । म ति दे । अ २ । ३१ । दे आ २ । ति । शुक्ललेश्ययोळवधिज्ञानदोळु पेळ्दंते चरमपंचस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । शु । ले । २८ । दे । २९ । दे ति । म ३० । दे आ २ । म ती । ३१ । दे आ २ । ती । १ । यिल्लि :—

दीनि पंच । सौधर्मादयस्तीर्थसत्त्वा मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कं । भवनत्रयादयस्तदसत्त्वाः मनुष्यगतिनवविंशतिकं । केवलदर्शने केवलज्ञानवच्छून्यं ॥५४८॥

कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रये बंधस्थानानि कार्मणयोगवदाद्यानि षट् । तेजोलेश्यायां पंचविंशतिकादीनि षट् ।

के स्थानको बांधते हैं। तिर्यंच देवगति सहित अठाईसके स्थानको बाँधते हैं। मनुष्य देवगति सहित अठाईससे लेकर एक पर्यन्त पाँच स्थानोंको बांधते हैं। तीर्थंकरकी सत्तावाले सौधर्मादि देव मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसका स्थान बांधते हैं। तीर्थंकरकी सत्तासे रहित भवनादिदेव मनुष्यगति सहित उनतीसके स्थानको बाँधते हैं। केवलदर्शनमें केवलज्ञानकी तरह नामकर्मके बन्धस्थान नहीं हैं ॥५४८॥

कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओंमें कार्मणयोगकी तरह आदिके छह बन्धस्थान हैं। तेजोलेश्यामें पच्चीस आदि छह हैं। पद्मलेश्यामें अठाईस आदि चार हैं। शुक्ललेश्यामें अवधिज्ञानकी तरह अन्तके पाँच बन्धस्थान होते हैं।

णामोदयसंपादिद सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
मोहुदयखओवसमोवसमक्खयजजीवफंदणं भाओ ॥

येंदितु मोहोदय मोहक्षयोपशम मोहोपशम मोहक्षयज जीवस्पंदन लक्षण भावलेश्ये विवक्षिसल्पट्टुदु । वर्णनामकर्म्मोदयजनित शरीरवर्णमविवक्षितमप्पुदरिंदमी भावलेश्येयशुभलेश्यात्रयमेंदुं शुभलेश्यात्रयमेंदित्तेरनप्पुदल्लि कृष्णनीलकपोतभेदविंदमितशुभलेश्ये त्रिविधमक्कुं । तेजः पद्मशुक्ललेश्याभेदविंदं शुभलेश्येयुं त्रिविधमक्कुमसंयतांतचतुर्गुणस्थानंगळोळारु लेश्येगळुं देशविरतत्रयदोळु शुभलेश्यात्रयमुमपूर्व्वकरणादिषट्स्थानंगळोळु शुक्ललेश्येयक्कुमप्पुदरिंदं नारकरोळं तिर्य्यंचरोळं मनुष्यरोळं देवर्कळोळमसंयतांत चतुर्गुणस्थानंगळोळं कृष्णनीलकपोतंगळु संभविसुगुमल्लि नारकरोळु 'काऊ काऊ तह काऊ णीळणीळा य णीळ किण्हा य । किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥" एंवितु प्रथमनरकदोळु सीमंत । नरक । रौरव । भ्रांत । उद्भ्रांत । संभ्रांत । तप्त । असंभ्रांत । विभ्रांत । त्रसित । वक्रांत । अवक्रांत । विक्रांतमेंवितु पदिमूरिंद्रकंगळप्पुवु । १३ ॥ द्वितीयपृथ्वियोळु ततक । स्तनक । वनक । मनक । खडा । खडिग । जिह्वा । जिह्विका । लोलिक । लोलवत्स । स्तनलोले येंवितु पन्नोंदिंद्रकंगळप्पुवु । ११ ॥ तृतीयनरकदोळु तप्त । तपित । तपन । तापन । दाघ । उज्वलित । प्रज्वलित । संज्वलित । संप्रज्वलितमेंदिंतिंद्रकनवकमक्कुं । ९ ॥ चतुर्त्थनरकदोळु आरा । मारा । तारा । चर्च्चा । तमकी । घाटा । घटा एंदिंतवेळुमिंद्रकंगळप्पुवु । ७ ॥ पंचमनरकदोळु तमका । भ्रमका । झषक । अंधेंद्रक । तिमिश्र एंदितैदिंद्रकंगळप्पुवु । ५ ॥ षष्ठनरकदोळु हिम । वर्द्दल । लल्लकि येंदितिवु मूरिंद्रकंगळप्पुवु । ३ ॥ सप्तमनरकदोळु अवधिस्थानमेंबुदोंदे यिंद्रकमप्पुवु । १ ।

प्रथम नरकद सीमंतेंद्रकदोळु कपोतलेश्याजघन्यमक्कु । मुत्कृष्टं तृतीयनरकद संज्वलितेंद्रकदोळक्कुं । नीललेश्याजघन्यमदर केळगण संप्रज्वलितेंद्रकदोळक्कुं । तदुत्कृष्टं पंचमनरकवंध्रें-

---

पद्मलेश्यायामष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि । शुक्ललेश्यायामवधिज्ञानवच्चरमाणि पंच । वर्णनामोदयसंपादितशरीरवर्णो द्रव्यलेश्या सा नात्र विवक्षिता । मोहोदयोपशमक्षयक्षयोपशमजनितजीवस्पंदनं भावलेश्या, सा च कृष्णादिभेदेन षोढा । प्रथमनरकप्रथमेंद्रके कपोतजघन्यांशः । तृतीयनरकद्विचरमेंद्रके तदुत्कृष्टांशः । तच्चरमेंद्रके नीलजघन्यांशः । पंचमनरकद्विचरमेंद्रके तदुत्कृष्टांशः । तच्चरमेंद्रके कृष्णजघन्यांशः । सप्तमनरकावधिस्थानेंद्रके तदुत्कृष्टांशः । तयोस्तयोर्मध्ये स्वस्वमध्यमांशो भवति । तत्रोत्पत्तियोग्यमिथ्यादृष्टिजीवाः घर्मायां कर्मभूमिषट्-

---

वर्णनाम कर्मके उदयसे उत्पन्न शरीरका वर्ण द्रव्यलेश्या है उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है। मोहके उदय, उपशम, क्षय या क्षयोपशमसे उत्पन्न जीवकी चंचलता भावलेश्या है। वह कृष्ण आदिके भेदसे छह प्रकारकी है। प्रथम नरकके प्रथम इन्द्रकमें कपोत लेश्याका जघन्य अंश है। तीसरे नरकके द्विचरम इन्द्रकमें कपोतका उत्कृष्ट अंश है। तीसरे नरकके अन्तिम इन्द्रकमें नीलका जघन्य अंश है। पंचम नरकके द्विचरम इन्द्रकमें नीलका उत्कृष्ट अंश है। पंचम नरकके अन्तिम इन्द्रकमें कृष्णका जघन्य अंश है। सप्तम नरकके अवधिस्थान इन्द्रकमें कृष्णका उत्कृष्ट अंश है। इन जघन्य उत्कृष्ट

द्रकदोळक्कु । मवर कॆळगण तिमिश्रेंद्रकदोळु कृष्णलेश्याजघन्यमक्कु । मदरुत्कृष्टमवधिस्थानेंद्रकदोळक्कु । मी कपोतनीलकृष्णलेश्या मध्यंगळु तंतम्म जघन्योत्कृष्टंगळ मध्यंगळोळप्पुवु । अल्लि घर्म्मेय निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु मिथ्यादृष्टिगळुमसंयतसम्यग्दृष्टिगळुमोळरुळिवारं नरकंगळोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तनारकरॆल्लरुं मिथ्यादृष्टिगळेयप्परुं । घर्म्मेय निर्व्वृत्यपर्य्याप्तनारकमिथ्यादृष्टिगळोळु कर्म्मभूमिजषट्संहनन युतासंज्ञिपंचेंद्रियंगळुं सरीसृपंगळुं पक्षिगळु भुजंगमंगळुं सिंहंगळुं वनितेयरुगळुं मत्स्यमनुष्यरुगळुं पुट्टुवरु। वंशेय निर्व्वृत्यपर्य्याप्तनारकमिथ्यादृष्टिगळोळु असंज्ञिजीवगळपोरगागि सरीसृपंगळुं पक्षिगळुं भुजंगमंगळु सिंहंगळुं स्त्रीयरुं मत्स्यमानुषरुगळु षट्संहननरुगळु पुट्टुवरु । मेघेय नारकनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळोळु असंज्ञिगळुं सरीसृपंगळं पोरगागि पक्षिगळं भुजंगमंगळं केसरिगळं वामेयरुं मत्स्यमनुष्यरुगळं षट्संहननरुगळं पुट्टुवरु । अंजनेयोळु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिनारकरोळु असंज्ञिगळं सरीसृपंगळं पक्षिगळं पोरगागि शेषभुजंगमंगळुं केसरिगळं नितंबिनियरुं मत्स्यमनुष्यरुगळं असंप्राप्तसृपाटिकासंहनहीनप्रथमपंचसंहननजीवंगळु पुट्टुवरु । अरिष्टेय नारकनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळोळु असंज्ञिगळं सरीसृपंगळं पक्षिगळं भुजंगमंगळं पोरगागि शेषकेसरिगळं वनितेयरुं मत्स्यमर्त्यरुगळं चरमसंहननहीन प्रथमपंचसंहननजीवंगळु पुट्टुवरु । मघविय निर्व्वृत्यपर्य्याप्त नारकमिथ्यादृष्टिगळोळु असंज्ञिगळुं सरीसृपंगळु पक्षिगळुं भुजंगमंगळं केसरिगळं पोरगागि शेषवनितेयरुं मत्स्यमनुष्यरुगळं कीलितासंप्राप्तसृपाटिकासंहननद्वयरहिताद्यचतुःसंहननजीवंगळुं पुट्टुवरु । सप्तममाघवियोळु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिनारकरोळु असंज्ञिगळं सरीसृपंगळं पक्षिगळं भुजंगमंगळुं केसरिगळु स्त्रीयरुगळं पोरगागि वज्रऋषभनाराचसंहननतिर्य्यंग्मत्स्यमनुष्यरुगळं पुट्टुवरंतु पुट्टियावच्छरीरमपूर्णं तावत्कालं तिर्य्यंग्मनुष्यगतियुतद्विस्थानंगळने कट्टुवरु ॥ २९ । ति म ३० । ति उ ॥

शरीरपर्य्याप्तिविदं मेलेयुं मिथ्यादृष्टिगळा द्विस्थानमने कट्टुवरु । २९ । ति । म । ३० । ति उ ॥

संहननाः असंज्ञिसरीसृपपक्षिभुजंगसिंहवनितामत्स्यमनुष्या एव । तत्रापि वंशायां सरीसृपादय एव । मेघाय पक्ष्यादय एव । अंजनायां आद्यपंचसंहनना एव भुजंगादय एव । अरिष्टायां केसर्यादय एव । मघव्यां आद्यचतुःसंहनना एव वनितादय एव । माघव्यामाद्यसंहनना एव मत्स्यमनुष्या एव । ते च तत्रोत्पन्नाः शरीरे पूर्णेऽपूर्णे

अंशोंके मध्यमें उन-उन लेश्याओंका मध्यम अंश होता है। उन नरकोंमें उत्पन्न होनेके योग्य मिथ्यादृष्टि जीव इस प्रकार जानना—घर्मामें कर्मभूमिया छहो संहननधारी असंज्ञी सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह, स्त्री, मच्छ और मनुष्य ही मरकर उत्पन्न होते हैं। उनमेंसे भी वंशामें सरीसृप आदि ही जन्म लेते हैं, असंज्ञी जन्म नहीं लेते। मेघामें पक्षी आदि ही जन्म लेते हैं। अंजनामें आदिके पाँच संहननके धारी सर्प सादि ही मरकर उत्पन्न होते हैं। अरिष्टामें सिंह आदि ही मरकर उत्पन्न होते हैं। मघवीमें आदिके चार संहननके धारी स्त्री आदि ही जन्म लेते हैं। माघवीमें प्रथम संहननके धारी मच्छ और मनुष्य

अपर्य्याप्तसप्तमपृथ्विय नारकरुं पर्य्याप्तनारकरुं मिथ्यादृष्टिगळु तिर्य्यंगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमुमं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु। २९। ति। ३०। ति उ॥

सर्व्वपृथ्विगळ सासादनरुं तिर्य्यंग्मनुष्यगतियुतद्विस्थानंगळं कट्टुवरु। २९। ति। म ३०। ति उ॥

मिश्ररुगळेल्लं मनुष्यगतियुतस्थानमनोंदने कट्टुवरु। २९। म॥ सर्व्वपृथ्विगळ पर्य्याप्ता संयतनारकरुगळु मनुष्यगतियुतस्थामनोंदने कट्टुवरु। असं। २९। म॥ घर्म्मेय निर्व्वृत्य पर्य्याप्तासंयतरु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळु वेदकसम्यग्दृष्टिगळु कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिगळु नवविंशतिस्थानमं मनुष्यगतियुतमनोंदने कट्टुवरु। २९। म। सतीर्त्थरुगळु मनुष्यगतितीर्त्थयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु ३०। म ति॥ शरीरपर्य्याप्तियोळमी प्रकारदिंदमे कट्टुवरु। घना २९। म ३० म ती। वंशे मेघेगळोळु मिथ्यादृष्टिगळागिद्दंडपर्य्याप्तसतीर्त्थनारकरुगळु

च तिर्य्यग्मनुष्यगतिनवविंशतिकत्रिंशत्के द्वे बध्नंति। सप्तम्यां ते द्वे तिर्यग्गतियुते एव। तत्सासादनाः ते तिर्यग्मनुष्यगतियुते। मिश्रा असंयताश्च मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव। घर्मायां निर्वृत्यपर्याप्ताः पर्याप्ताश्च क्षायिकवेदककृतकृत्यवेदकास्तदेव, सतीर्थाः मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कमेव। वंशामेघयोः सतीर्थाः पर्याप्तत्वे

ही मरकर उत्पन्न होते हैं।

उन नरकोंमें उत्पन्न हुए वे नारकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने या पूर्ण न होनेपर तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीस और तीस दो ही स्थान बांधते हैं। किन्तु सातवें नरकमें ये दोनों स्थान तिर्यंचगति सहित ही बँधते हैं। वहाँ सासादन गुणस्थानवाले भी तिर्यंच या मनुष्यगति सहित दो स्थानोंको बाँधते हैं। मिश्र और असंयत गुणस्थानवाले मनुष्यगति सहित उनतीसको ही बांधते हैं।

घर्मामें निर्वृत्यपर्याप्त या पर्याप्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदक सम्यग्दृष्टी तथा कृतकृत्य वेदक मनुष्यगति सहित उनतीसका स्थान बाँधते हैं। जिनके तीर्थंकरकी सत्ता होती है वे मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसको बाँधते हैं। वंशा और मेघामें उत्पन्न हुए नारकी जिनके तीर्थंकरकी सत्ता होती है वे पर्याप्ति पूर्ण होनेपर नियमसे मिथ्यात्वको त्याग सम्यग्दृष्टी होकर तीसका ही बन्ध करते हैं।

१. यिल्ली घर्म्मेय नारकापर्य्याप्तनोळु वेदकसम्यत्वं घटिसदु। "उत्पद्यते हि वेदक दृष्टिः स्वमरेषु कर्म भूमिनृषु।" एंदाराधनासारदोळु नियमं पेळल्पट्टुदप्पुदरिं यिल्लि आगमकोविदरु विचारिसिकोंबुदु, वेदकसम्यग्दृष्टिगळोळु येंदादरू पठिसूदु॥ (इतरटिप्पण):—लब्ध्यपर्य्याप्त लब्ध्यपर्य्याप्तपर्य्याप्त—निर्व्वृत्यपर्य्याप्त-अपर्य्याप्तासंयतत्वं भोगभूम्यपेक्षयिदल्लदे कर्म्मभूमियोळु घटियिसदु। अल्लि कपोतलेश्याजघन्यमेंब नियमं षड्लेश्यासंभवं घटियिसदागि विचारिसिकोंबुदु॥

मुंपेळ्द एकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु तिर्य्यग्गतिसंबंध्यपर्य्याप्तपदंगळु पदिनारु। अवरोळु साधारणबादरसूक्ष्मप्रत्येकपदंगळ्मूरुं कळेदोडे पदिमूरू। अवरोळु आ कळेद मूरं नित्यचतुर्ग्गतिनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठित प्रत्येक भेददि भेदिसि आर ६ कूडुत्तिरलु १९—पृथ्व्यप्तेजोवायुबादरसूक्ष्मलब्ध्यपर्य्याप्तंगळ कूडियेंटु ८ द्वींद्रिय त्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रिया संज्ञिसंज्ञि अंतु १३ साधारणबादरसूक्ष्म प्रत्येक १६॥

मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु नियमदिंदं सम्यग्दृष्टिगळागि तीर्त्थयुतस्थानमनोंदने कट्टुवरु । ३० । म तो । तिर्य्यंग्गतियोळु ॥ "णरतिरियाणं ओघो यिगिविगळे तिण्णि चउ असण्णिस्स । सण्णि अपुण्णगमिच्छे सासणसम्मे वि असुहतियं ॥" तिरियंचरोळु षड्लेश्येगळप्पुवादोडमेकेंद्रिय भेदंगळोळं विकलत्रयंगळोळेल्ला लब्ध्यपर्य्याप्त निर्व्वृत्यपर्य्याप्त पर्य्याप्तरोळमशुभलेश्यात्रय-मक्कुं । संज्ञिपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळोळं नरकगत्यादिगळिंबंदु पुट्टिद सासादनरोळमशुभलेश्यात्रय-मेयक्कुं । अपर्य्याप्तासंयतरोळं पर्य्याप्तासंयतरोळं पर्य्याप्तसासादनरोळं षड्लेश्येगळप्पुवु । असंज्ञिपंचेंद्रिय लब्ध्यपर्य्याप्तनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तजीवंगळोळमशुभलेश्यात्रितयमेयक्कुं । पर्य्याप्ता-संज्ञिमिथ्यादृष्टियोळु कृष्णादि चतुर्लेश्येगळप्पुवु ।

भोगा पुण्णग सम्मे काउस्स जहण्णयं हवे णियमा ।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ॥

एंदितु भोगभूमिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळु कपोतलेश्याजघन्यमेयक्कुं । नियमदिंदं । मत्तमा भोगभूमिजमिथ्यादृष्टिगळोळं मेणु सम्यग्दृष्टिगळोळं शरीरपर्य्याप्तिपरि-पूर्णमागुत्तं विरलेल्ला जीवंगळं तेजः पद्मशुक्लंगळेंब शुभलेश्यात्रयमेयक्कु—। मिल्लि एकान्न-विंशतिविधतिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तरोळपुट्टुव जीवंगळवावुवेंदोडे पृथ्व्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्ग्गति-निगोदबादरसूक्ष्मजीवंगळु प्रतिष्ठितप्रत्येक अप्रतिष्ठितप्रत्येक द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रिया संज्ञि संज्ञि लब्ध्यपर्य्याप्त पर्य्याप्त मिथ्यादृष्टिगळं मनुष्यलब्ध्यपर्य्याप्तपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळुमितु

नियमेन मिथ्यात्वं त्यक्त्वा सम्यग्दृष्टयो भूत्वा तत्त्रिंशत्कमेव । तिर्यग्गतौ पर्याप्तादित्रिविधसर्वैकद्वित्रिचतुरिंद्रियेषु लब्ध्यपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तासंज्ञिनि मिथ्यादृष्टिनरकाद्यागतसासादनापर्याप्तसंज्ञिनि च लेश्या अशुभा एव तिस्रः । पर्याप्तमिथ्यादृष्टयसंज्ञिनि कृष्णाद्याश्चतस्रः । पर्याप्तसासादनमिश्रपर्याप्तापर्याप्तासंयतसंज्ञिनि षट् भोगभूमौ निर्वृत्यपर्याप्तासंयते कापोतजघन्यं । मिथ्यादृष्टौ सम्यग्दृष्टौ वा तत्पर्याप्ते शुभा एव तिस्रः । तत्रत्यानां शरीरप-र्याप्तौ पूर्णायां तत्त्रये एवागमनात् । एषामुक्ततिर्यग्जीवानां मध्ये ये बादरसूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोद-प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तास्ते च तेभ्यो वा तदेकान्नविंशतिविधपर्याप्तेभ्यो वा

तिर्यंचगतिमें पर्याप्त आदि तीन प्रकारके सब एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रियोंमें तथा लब्ध्यपर्याप्त निवृत्यपर्याप्त असंज्ञीमें, नरकसे आये मिथ्यादृष्टियोंमें और सासादन अपर्याप्त संज्ञीमें तीन अशुभलेश्या ही होती हैं । पर्याप्त मिथ्यादृष्टि असंज्ञीमें कृष्ण आदि चार लेश्या होती हैं । पर्याप्त सासादन और मिश्र तथा पर्याप्त अपर्याप्त असंयत संज्ञीमें छह लेश्या होती हैं । भोगभूमिमें निर्वृत्यपर्याप्त असंयतमें कापोतका जघन्य होता है । और पर्याप्त अवस्थामें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टीके तीन शुभलेश्या होती हैं । क्योंकि भोगभूमिमें उत्पन्न हुए जीव शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर तीन शुभलेश्याओंमें ही आते हैं ।

इन ऊपर कहे तिर्यंच जीवोंमें-से बादर, सूक्ष्म, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गति निगोद, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित, प्रत्येक, दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय उन्नीस प्रकारके तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक और इन उन्नीस प्रकारके लब्ध्यपर्याप्तकोंसे अथवा तिर्यंच पर्याप्तकोंसे और पर्याप्त अथवा अपर्याप्त कर्मभूमियोंसे, इन सब मिथ्या-

नाल्वत्तुं तेरद मिथ्यादृष्टिगळु यथायोग्य तिर्य्यंगायुष्यंगळं कट्टि मृतरागि बंदु एकान्नविंशतिविध-तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळागि नरकगति देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानं पोरगागि त्रयोविंशत्यादिस्वस्वयोग्य पंचस्थानंगळं कट्टुवरु। २३। ए अ २५। ए प। बि ति च। अ। सं। म। अ प २६। ए प। आ। उ २९। बि। ति। च। पं। म। प ति। ३०। बि ति च। अ। सं। प ति। उ॥ तेजोवायुकायिकंगळु तिर्य्यंग्गतियुतमागिये कट्टुवरु। मत्तमी एकान्न- ५
विंशतिविधमप्प तिर्य्यंचलब्ध्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टि जीवंगळुं मत्तमेकान्नविंशति विधपर्य्याप्त तिर्य्यंच-मिथ्यादृष्टिगळुं लब्ध्यपर्य्याप्तमनुष्यरुं पर्य्याप्तकर्म्मभूमि मनुष्यरुगळुं मिथ्यादृष्टिगळु तिर्य्यंगायुष्यमं स्वयोग्यंगळं कट्टि मृतरागि बंदी एकान्नविंशतिविधमिथ्यादृष्टि निर्व्वृत्यपर्य्याप्ततिर्य्यंच-रप्परु। अल्लिविशेषमुंटदावुदेंदोडे तेजोवायुकायंगळोळु पुट्टुव जीवंगळुं अशुभत्रयलेश्या मध्य-मांशदिंदं पुट्टुवरु। मत्तं भवनत्रयादि सौधर्म्मकल्पद्वय पर्य्यंतमादमिथ्यादृष्टिदेवर्क्कळोळु कलंबरु १०
तिर्य्यंगायुष्यमनेकेंद्रियसंबधियं कट्टि तेजोलेश्यामध्यमांशदिदं मृतरागि बंदु पृथ्व्यब्बादरप्रतिष्ठित-प्रत्येकवनस्पतिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु मिथ्यादृष्टिगळागि पुट्टुवरु। तिर्य्यंग्मनुष्यरुगळा त्रिस्थान-कंगळोळु पुट्टुवडे कृष्णादि चतुर्म्मध्यम लेश्यांशंगळिंदं पुट्टुवरु। मत्तं भवनत्रयं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतमाद मिथ्यादृष्टिदेवर्क्कळु मत्तं प्रथमनरकं मोदल्गोंडु सप्तमनरकपर्य्यंतमाद नारकमिथ्यादृष्टिगळु तिर्य्यंगायुष्यमं स्वस्वयोग्यमं कट्टि मृतरागि बंदी कर्म्मभूमिसंज्ञिगर्भजनिर्व्वृ- १५
त्यपर्य्याप्तरोळु स्वस्वलेश्यैगळिंदं मिथ्यादृष्टितिर्य्यंचरागि पुट्टुवरु। यितेकान्नविंशतिविधनिर्व्वृत्य-पर्य्याप्ततिर्य्यंचरुगळु मिथ्यादृष्टिगळुं सासादनरुमसंयतसम्यग्दृष्टिगळुमेंबितु त्रिविधमप्परल्लि

पर्याप्तापर्याप्तकर्मभूमिमनुष्येभ्यश्च मिथ्यादृष्टिभ्य एवागत्याशुभलेश्यात्रयेणोत्पद्यंते ते च विनाष्टाविंशतिकं त्रयोविंशतिकादीनि पंच बध्नंति। तेजोवायुकायिकास्तु तिर्यग्गतियुतान्येव। ते चत्वारिंशद्विध मिथ्यादृष्टयः, अशुभ-लेश्यात्रयेण मृतास्तदेकान्नविंशतिविधपर्याप्ततिर्यग्मिथ्यादृष्टिषूत्पद्यंते। तत्र तेजोवायुषु त्र्यशुभलेश्यामध्यमांशैरेव, २०
भवनत्रयसौधर्मद्वयमिथ्यादृष्टयः तेजोमध्यमांशेन तिर्यग्मनुष्या अशुभत्रयमध्यमांशेन च मृताः केचिद्बादरपृथ्व्य-प्रतिष्ठितप्रत्येकेषूत्पद्यंते। भवनत्रयादिसहस्रारांतदेवसर्वनारकमिथ्यादृष्टयः बद्धतिर्यगायुषः स्वस्वलेश्याभिर्मृताः

दृष्टियोंसे आकर जो तीन अशुभ लेश्या सहित तिर्यंच जीव उत्पन्न होते हैं वे अठाईसके बिना तेईस आदि पाँच स्थानोंका बन्ध करते हैं। तेजकाय, वायुकायके जीव तो तिर्यंचगति-के साथ ही उन पाँच स्थानोंको बाँधते हैं। उन्नीस प्रकारके लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंच, उन्नीस २५
प्रकारके पर्याप्त तिर्यंच और दो प्रकारके मनुष्य ये सब चालीस प्रकारके मिथ्यादृष्टि तीन अशुभ लेश्याओंसे मरकर पूर्वोक्त उन्नीस प्रकारके पर्याप्त तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंमें उत्पन्न होते हैं। इतना विशेष है कि तेजकाय, वायुकायमें तो अशुभ लेश्याओंके मध्यम अंशसे ही उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिक और सौधर्मयुगलके मिथ्यादृष्टि देव तेजोलेश्याके मध्यम अंशसे तथा तिर्यंच और मनुष्य तीन अशुभलेश्याओंके मध्यम अंशसे मरकर कोई बादर पृथ्वी, ३०
अप्रतिष्ठित प्रत्येकोंमें उत्पन्न होते हैं।

भवनत्रिकसे लेकर सहस्रार पर्यन्त देव और सब नारकी मिथ्यादृष्टि जिन्होंने तिर्यंचायुका बन्ध किया है वे सब अपनी-अपनी लेश्यासे मरकर कर्मभूमिया गर्भज संज्ञी

नाल्कुं गतिगळिंदं बंदु पुट्टुव निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टितिर्य्यंचरुगळु पेळल्पट्टरु-। मवरुगळेल्लरुमष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि शेषत्रयोविंशत्यादि पंचस्थानंगळं कट्टुवरु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि ति च प म । अ प २६ । ए प । आ उ । २९ । बि ति च प म । अ प । ३० । बि ति च प । प उ ॥

सासादनरुगळावाव गतिगळिंद बंदो कर्म्मभूमिय एकान्नविंशतिविधनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळेल्लेल्लि पुट्टुवरेंदोडे तिर्य्यंग्गतियोळु संज्ञिपर्य्याप्तगर्भजकर्म्मभूमितिर्य्यंग्मिथ्यादृष्टियुं मनुष्यपर्य्याप्तकर्मभूमिमिथ्यादृष्टियुं तिर्य्यंगायुष्यंगळं कट्टि मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसियनंतानुबंधिकषायोदयदिंद सम्यक्त्वमं केडिसि मृतरागि बंदो पृथ्व्यब्बादर प्रत्येकवनस्पतिविकलत्रयासंज्ञिसंज्ञिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तजीवंगळोळु सासादनरागि पुट्टुवरु । मत्तमा तिर्य्यंग्मनुष्यप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळऽबद्धायुष्यरुगळाद पक्षदोळु मरणकालदोळनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि सासादनरागि तिर्य्यंगायुष्यंगळं कट्टि मृतरागि बंदो निर्व्वृत्यपर्य्याप्ततिर्य्यग्जीवंगळोळु मुंपेळ्दंतु स्थानंगळोळु निर्व्वृत्यपर्य्याप्त सासादनरप्परु । मत्तमीशानकल्पावसानमाद देवक्कळं मिथ्यात्वपरिणामदिंदं तिर्य्यंगायुष्यमुमनुपार्ज्जिसि प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि अनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि सासादनरागि मृतरागि बंदो पृथ्व्यब्बादरप्रत्येकवनस्पतिगळोळु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरप्परु । बद्धायुष्यरल्लद पक्षदोळवरुगळं सासादनरागि तिर्य्यंगायुष्यमं कट्टि मृतरागि बंदु मुंपेळ्देकेंद्रियंगळोळु किरिदुपाळ्तु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरप्परु । मत्तमा भवनत्रयादि सहस्रार कल्पावसानमाद सुररुं प्रथमनरकमादियागि षष्ठनरकपर्य्यंतनारकरुगळु मिथ्यात्व परिणामंगळिंदं तिर्य्यंगायुष्यमनुपार्ज्जिसि प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि अनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि स्वस्वलेश्येगळिंदं मृतरागि बंदु यी कर्म्मभूमि-

---

कर्मभूमिगर्भसंज्ञितिर्यक्षूत्पद्यंते । ते च एकान्नविंशतिधाचतुर्गत्यागतनिर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टयः सर्वाण्यष्टाविंशतिकोनत्रयोविंशतिकादीनि पंच बध्नंति । अनंतानुबंध्यन्यतमोदयेन प्रथमोपशमसम्यक्त्वं विराध्य सासादना भूत्वा प्राग्बद्धतिर्यगायुष्का मृत्वा अबद्धायुष्काः केचित्तदैव तिर्यगायुर्बध्वा मृत्वा च कर्मभूमितिर्यग्मनुष्यास्तदा बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकविकलत्रयसंज्ञ्यसंज्ञिषु देवास्तदा स्वस्वलेश्याभिरीशानांता बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकेषु भवनत्रयादिसहस्रारांता षष्ठनरकांतनारकाश्च कर्मभूमिगर्भजसंज्ञितिर्यक्षु च सासादना भूत्वा तिर्यग्मनुष्यगतिपर्याप्तनवविंश-

---

तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं। वे चारों गतिसे आकर उत्पन्न हुए उन्नीस प्रकारके तिर्यंच निर्वृत्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि सब अठाईसके बिना तेईस आदि पाँचका बन्ध करते हैं।

अनन्तानुबन्धीमें-से किसी एक कषायके उदयसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी विराधना करके सासादन होकर जिन्होंने पूर्वमें तिर्यंचायुका बन्ध किया है वे जीव मरकर, और जिनके पूर्वमें आयुबन्ध नहीं हुआ वे अन्त समयमें तिर्यंचायुको बाँध मरकर तिर्यंचमें उत्पन्न होते हैं। कर्मभूमिया तिर्यंच मनुष्य तो बादर, पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति, विकलत्रय, और संज्ञी-असंज्ञीमें उत्पन्न होते हैं। ईशान पर्यन्त देव अपनी-अपनी लेश्याके साथ मरकर बादर, पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पतिमें उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिकसे लेकर सहस्रार पर्यन्त देव तथा छठे नरक तकके नारकी कर्मभूमिया गर्भज संज्ञी तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं। वे सासादन

पंचेंद्रिय संज्ञिगर्भजनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरागि पुट्टुवरु। बद्धायुष्यरल्लव पक्षदोळल्लिये सासादनरागि तिर्य्यंगायुष्यंगळं कट्टि मृतरागि बंदु किरिदु पोळ्तु मुंपेळ्द संज्ञिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्त तिर्य्यंचरोळु सासादनरप्परु। यी सासादनरुगळुं तिर्य्यंग्गतिमनुष्यगतिपर्य्याप्त नवविंशत्यादिद्विस्थानंगळं कट्टुवरु। २९। बि ति च प। ति। म। ३०। बि। ति। च। प। ति। प। रि। उ॥ यी सासादनरुगळेल्लरुगळुं तंतम्म सासादनकालं पोर्विं बळिक्केल्लरुगळुं नियमदिंदं मिथ्यादृष्टिगळागि यावच्छरीरमपूर्णं तावत्कालं मिथ्यादृष्टिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरागि मिथ्यादृष्टिगळोळु पेळ्वंते त्रयोविंशत्यादि यथायोग्यमागि नामप्रकृतिबंधस्थानंगळं कट्टुवरु। इल्लि शोदकनेंदपं—सासादनकालमुत्कृष्टदिंदं षडावलिकालमक्कु—। मायुर्ब्बंधाद्धे जघन्यदिनुत्कृष्टदिनंतर्म्मुहूर्त्तप्रमितमक्कु मदरिनेंतो सासादनतिर्य्यग्मनुष्यदेवनारकरोळमुत्तरभवदोळं सासादनत्व संभवमेंदोडे विरोधमिल्लेंतेंदोडे जघन्यदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तमेकावलि कालप्रमितमक्कुमदर मेले समयोत्तर क्रमदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तविकल्पंगळागुत्तं पोगि समयोनैकमुहूर्त्तमुत्कृष्टांतर्म्मुहूर्त्तमक्कुमप्पुदरिंदमंतर्म्मुहूर्त्तंगळसंख्यात विकल्पंगळप्पुवप्पुदरिंदं—

२ | १ | २ | विक २ | १ | २७-२। २७-१ मत्तमी निर्व्वृत्यपर्य्याप्त संज्ञि पंचेंद्रियगर्भजा-
| २ | २ | | ७ |

संयत सम्यग्दृष्टिगळोळावाव गतिगळिंदं बंदु पुट्टुवरेंदोडे नरकगतिदेवगतिद्वयदिंदमे बंदु सम्यग्दृष्टिगळ्पुट्टुवरेकेंदोडितरतिर्य्यग्मनुष्यगतिजरुगळप्प बद्धतिर्य्यगायुष्यसम्यग्दृष्टिगळो तिर्य्यग्गतियोळ्पुट्टरवर्गळ्गे भोगभूमिजतिर्य्यंचरोळे जनन नियममुंटप्पुदरिंदं। आ नारकामरवेदकसम्यग्दृष्टिगळु बद्धतिर्य्यगायुष्यरुगळु मरणकालदोळु सम्यक्त्वमं पत्तुविडदे स्वस्वलेश्येगलिंदं मृतरागि बंदो कर्म्मभूमि संज्ञिपंचेंद्रिय गर्भज निवृत्यपर्य्याप्त तिर्य्यंचासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळे

तिकत्रिंशत्के बध्नंति। स्वस्वसासादनकालमतीत्य नियमेन मिथ्यादृष्टयो भूत्वा यावच्छरीरमपूर्णं तावन्निर्वृत्यपर्याप्ताः मिथ्यादृष्ट्युक्तत्रयोविंशतिकादीनि पंच बध्नंति। ननूत्कृष्टः सासादनकालः षडावलिः आयुर्बंधाद्धा जघन्याप्यंतर्मुहूर्तमात्री तर्हि पूर्वोत्तरभवयोः कथं सासादनत्वमिति ? तन्न, आवलितः समयाधिकक्रमेण समयोनमुहूर्तपर्यंतानां कालविशेषाणां अंतर्मुहूर्तत्वेन विरोधाभावात्। तिर्यंगसंयते प्राग्बद्धतिर्यगायुर्देवनारकवेदकसम्यग्-

---

अवस्थामें तिर्यंच या मनुष्यगति पर्याप्त सहित उनतीस अथवा तीसका बन्ध करते हैं। और अपना-अपना सासादन काल पूरा होनेपर नियमसे मिथ्यादृष्टि होकर जबतक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तबतक निर्वृत्यपर्याप्त रहकर मिथ्यादृष्टिमें कहे तेईस आदि पाँच स्थानोंको बाँधते हैं।

शंका—सासादनका उत्कृष्ट काल छह आवली है और आयुबन्धका जघन्य भी काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है। तब पूर्व और उत्तर दो भवोंमें सासादनपना कैसे सम्भव है ?

समाधान—एक आवलीसे लगाकर एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते, एक समयहीन मुहूर्त पर्यन्त जितने कालभेद हैं वे सब अन्तर्मुहूर्त हैं। इससे कोई विरोध नहीं है।

तिर्यंच असंयतमें जिन्होंने पहले तिर्यंचायुका बन्ध किया है, ऐसे देव नारकी वेदक

पुट्टुवरप्पुदरिंदं मूरुं लेश्येगळप्पुवु । आ देवनारकरुगळु क्षायिक सम्यग्दृष्टिगळिल्लि पुट्टरेकेंदोडवर्गळु तिर्य्यगायुष्यमं कट्टुवुदुमिल्ल । मनुष्यायुष्यमं कट्टि मृतरागि बंदी पंचवशमनुष्यलोकप्रतिबद्धार्य्याखंडंगळोळु चरमांगरागि पुट्टि घातिकर्मंगळं केडिसुवरप्पुदरिंदं । सप्तमपृथ्विय नारकासंयत सम्यग्दृष्टिगळुं बंबिल्लि पुट्टरेकेंदडवर्ग्गा सम्यग्दृष्टि गुणस्थानदोळु मरणमिल्लप्पुदरिंदं । मरणकालदोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमं पोंद्दि मृतरप्परु मंते सासादननुं मिश्रनुमागिर्द्द नारकरुं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमने पोंद्दि मृतरप्परु । तिर्य्यंचनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तासंयतरिगे देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमो दे बंधमप्पुवु । ई तिर्य्यंचनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरल्लरुगळुं पर्य्याप्तियिंदं मेले मिथ्यादृष्टिगळुं सासादनरुं मिश्ररुं असंयतसम्यग्दृष्टिगळुं देशसंयतरुगळुमेंब पंचगुणस्थानवर्त्तिगळप्परा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानपर्य्यंतं षड्लेश्येगळु मप्पुवु । देशसंयतरोळु शुभलेश्यात्रयमेयक्कु मी शुभाशुभलेश्येगळु मेकजीवनोळु क्रमदिंदं संभविसुगुमो मेणक्रमदिंदं संभविसुगुमो येंदितु प्रश्नमादोडे क्रमदिंदं संभविसुगुमदेंतेंदोडे—

असुहाणं वरमज्झिम अवरंसे किण्हणीळ काउतिये ।
परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किळेसस्स ॥
काऊ णीळं किण्हं परिणमदि किळेसवड्ढिदो अप्पा ।
एवं किळेसहाणीवड्ढीदो होदि असुहतियं ॥

येंदितु कृष्णनीलकपोतमेंब मूरुं लेश्येगळु कषायानुभागस्थानोदयानुरंजित कायवाग्मनस्कर्म्मलक्षणंगळु कृष्णलेश्योत्कृष्टं मोदल्गोंडु संक्लेशहानियिंदं कपोतलेश्याजघन्यपर्य्यंतमप्पुववरोळु जीवंक्रमदिंदमसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतित लेश्यास्थानंगळोळु परिणमिसुगुं । मत्तं संक्लेशवृद्धियिंदं क्रमदिंदं कपोतलेश्याजघन्य मोदल्गोंडुत्कृष्ट कृष्णलेश्यास्थानपर्य्यंतमसंख्यात-

---

दृष्टयः स्वस्वलेश्याभिरुत्पद्यंते । तेऽपि न सप्तमपृथ्वीजाः मिथ्यादृष्टित्वे एवैषां मरणात् । ते चोत्पन्नतिर्यगसंयता देवगत्यष्टाविंशतिकं बध्नंति । पर्याप्तेरुपरि देशसंयतांतगुणस्थाना भवंति । तत्र असंयतांतं षड्लेश्याः, देशसंयते शुभत्रिलेश्याः ।

ननु शुभाशुभलेश्यास्वेकजीवः क्रमेण परिणमेदक्रमेण वा ? उच्यते—आत्मा संक्लेशहान्या कृष्णोत्कृष्टादाक-

---

सम्यग्दृष्टी अपनी-अपनी लेश्याके साथ मरकर उत्पन्न होते हैं । किन्तु सातवें नरकके नारकी तिर्यंच असंयतमें उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि वे मिथ्यादृष्टि अवस्थामें ही मरते हैं । वे उत्पन्न हुए असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंच देवगति सहित अठाईसका बन्ध करते हैं । पर्याप्ति पूर्ण होनेपर देशसंयत गुणस्थान पर्यन्त होते हैं । उनमें असंयत पर्यन्त छह लेश्या होती हैं और देशसंयतमें तीन शुभलेश्या होती हैं ।

शंका—शुभ और अशुभ लेश्यामें एक जीव क्रमसे परिणमन करता है या एक साथ ?

समाधान—संक्लेशकी हानिसे आत्मा कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट अंशसे लेकर कपोत लेश्याके जघन्य अंश तक और संक्लेशकी वृद्धिसे कपोतके जघन्य अंशसे लेकर कृष्णके

लोकमात्रषट्स्थानपतित लेश्यास्थानंगळोळु परिणमिसुगुं । मत्तमंते :—

तेऊ पम्मे सुक्के सुहाण अवरादि अंसगे अप्पा ।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि ॥

तेजोलेश्येयोळं पद्मलेश्येयोळं शुक्ललेश्येयोळमिवरजघन्याद्यंशंगळोळु विशुद्धिवृद्धियिंदं जीवंगे परिणमनमक्कुं । विशुद्धिहानियिंदमन्यथा परिणमनमक्कुमदर विपरीतपरिणमनमक्कुमेंबुदर्त्थं । मी शुभाशुभलेश्येगळनितुं भावलेश्येगळप्पुवी भावलेश्यासाधनमुं मोहोदय मोहक्षयोपशम मोहोपशम मोहक्षयजनितजीवप्रदेशपरिस्पंदमक्कुमा मोहमुं दर्शनमोहमेंदुं चारित्रमोहमेंदुं द्विविधमक्कुमा दर्शनमोहोदयदिंदमुं चारित्रमोहोदयदिंदमुं दर्शनचारित्रमोहक्षयोपशमदिंदमुं दर्शनचारित्रमोहोपशमनदिंदमुं दर्शनचारित्रमोहक्षयदिंदमुं यथायोग्यमागि संभविसुव मिथ्यादृष्टयादि पत्तुंगुणस्थानंगळोळु पुट्टुव शुभाशुभलेश्येगळ्गे मूलकारणं । कषायानुभागस्थानोदयंगळिंदमनुरंजिसल्पट्ट योगप्रवृत्तियक्कुमप्पुदरिंदमा कषायंगळु चतुर्व्विधंगळप्पुवगरोळु विवक्षितक्रोधकषायानुभागस्थानोदयं जीवनं नरकतिर्य्यग्मनुष्यदेवगतिगळोळुत्पादकमक्कुमा शक्तियुं शिलाभेदपृथ्वीभेद धूलीराजि जलराजिसमानमप्पुदल्लि :— सर्व्वघातिशक्तियुतोदयस्थानंगळिंदं केळगण प्रमत्ताप्रमत्तादिसंयमिगळोळे संभविसुव देशघातिस्पर्द्धकंगळ्गे पूर्व्वस्पर्द्धकंगळेंब पेसरक्कुमा पूर्व्वस्पर्द्धकंगळिंदं केळगे केळगे अपूर्व्वस्पर्द्धकबादरकृष्टिपर्य्यंतमप्पुवु । लोभकषायदोळु सूक्ष्मसांपरायंगे सूक्ष्मकृष्टिगळप्पुवितशेषक्रोधकषायानुभागोदयस्थानंगळु-

---

पोतजघन्यं संक्लेशवृद्धया कपोतजघन्यादाकृष्णोत्कृष्टं चासंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितलेश्यास्थानेषु क्रमेण परिणमति । विशुद्धवृद्धया तेजःपद्मशुक्लजघन्याद्यंशेषु विशुद्धिहान्या तेष्वन्यथा च परिणमति । तासां च लेश्यानां मूलकारणं कषायोदयानुभागस्थानानुरंजितयोगप्रवृत्तिः । ते कषायाश्चत्वारः । तेषु विवक्षितक्रोधकषायानुभागस्थानोदयः जीवनरकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिषूत्पादकः । तच्छक्तिः शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलिराजिजलराजिसमाना । तत्र सर्वघातिशक्तियुतोदयस्थानेभ्योऽधस्तनी प्रमत्तादिसंयमिष्वेव संभविनी देशघातिनी पूर्वस्पर्धकनामा । तदधोधः अपूर्वस्पर्धकनामा बादरकृष्टिनामा लोभकषाये सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मकृष्टिनामापि । तान्यशेषक्रोधकषायानुभागोदयस्थानान्यसंख्यातलोकमात्रषड्ढानिवृद्धिपतितासंख्यातलोकमात्राणि तेष्वसंख्यातलोकभक्तबहुभागमा-

---

उत्कृष्ट अंश तक असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानपतित वृद्धि-हानिको लिये लेश्यास्थानोंमें क्रमसे परिणमन करता है । तथा विशुद्धताकी वृद्धिसे तेज-पद्म-शुक्लके जघन्यादि अंशोंमें और विशुद्धताकी हानिसे शुक्ल-पद्म-तेजोलेश्याके उत्कृष्ट आदि अंशोंमें क्रमसे परिणमन करता है । उन लेश्याओंका मूल कारण कषायोंके उदयरूप अनुभागस्थानोंसे अनुरंजित योगोंकी प्रवृत्ति है । वे कषाय चार हैं । उनमें-से विवक्षित क्रोधकषायके अनुभाग स्थानका उदय जीवको नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें उत्पन्न कराता है । उस क्रोधकी शक्ति शिलाभेद, पृथ्वीभेद, धूलरेखा और जलरेखाके समान है । उनमेंसे सर्वघाती शक्तिसे युक्त उदयस्थानोंसे नीचे, प्रमत्त आदि संयमियोंमें ही होनेवाली देशघाती शक्तिको पूर्वस्पर्धक कहते हैं । उसके नीचे-नीचे अपूर्वस्पर्द्धक नामवाली, बादरकृष्टि नामवाली, लोभकषायमें सूक्ष्मसाम्पराय,

संक्लेशस्थानंगळु असंख्यातलोकभक्तासंख्यातबहुभागंगळप्पुवेकभागमात्रंगळु विशुद्धिकषायोदय-स्थानंगळप्पुवा संक्लेशविशुद्धिसर्व्वकषायोदयस्थानंगळोळु पविनाल्कुं लेश्यापदंगळप्पुवा पविनाल्कुं लेश्यापदंगळोळु लेश्यांशंगळिप्पत्तारप्पुवु । अवरोळु मध्यमाष्टांशंगळायुर्ब्बंधनिबंध-नंगळक्कुं । संदृष्टि :

≡२८ । शि । भे । तीव्रतर ९	नरक
उ ० ० ० १	०००ज
कृ १ १ १ १ १ १ १ १ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० न १ १ १ १ उ	

पुं भे ।≡२८ । तीव्र । तिर्य्यग्गति ९९	धू । रा ।
१ २ ३ ४	५ ६
नी क १११११२२२२३३३३३३३३३३ ०००० ०००० ०००००००००० १११११११११११११२३३४४ उ उ ज	ते प शु → ४४४४।५५५५।६६६६ ०००० ०००० ०००० ४४४४४४४४४४४४ ज

मंद । मनुष्यगतिनिबंधनंगळु ≡ ० ८ ९ ९ ९	जल । रा । देव । मंदतर। ≡०१ ९९९
६ ५ ४ ३ २ १	१
← कृ नी का ते प ६६६६६६६६।५५५।४४४४।३३३३३३३।२२२२। ०००००००००।०००।०००।०००००००।०००० । ४४४। ३३३३।२२२२।१११११११।००००००० ज ज उ उ	शु १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० उ

५ त्राणि संक्लेशस्थानानि तदेकमात्रभागमात्राणि विशुद्धिस्थानानि । तेषु लेश्यापदानि चतुर्दश लेश्यांशाः षड्विंशतिः । तत्र मध्यमा अष्टौ आयुर्बंधनिबंधनाः । संदृष्टिः—

≡०८ शि । भे । तीव्रतर । नर ९	पृ । भे≡०८ तीव्र । तिर्य्यंगतिनिबंधनानि ९।९
उ ० ० ० १ ० ० ० ज	१ २ ३ ४ ५ ६
कृ १ १ १ १ १ १ १ १ ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० न १ १ १ १ उ	ते क शु प नी → १११२२२३३३३३३३३३४४४५५५६६६ ००००००००००००००००००००००००० १११११११११११२२३३३४४४४४४४४४४ उ उ ज ज ज

धू । रा । मंद । मनुष्यगतिनिबंधनानि ≡ ० । ८ ९ । ९ । ९	जल = रा । देव । मंदतर≡०१ ९।९।९
५ ४ ३ २ १	१
← कृ नी क ते प ६६६६६६६६६६५५५४४४३३३२२२१११ ००००००००००००००००००००००००० ४४४३३३२२२१११११११११११००००००० ज ज ज उ उ	शु ११११ १११ ०००० ००० ००००००० उ

इल्लि चतुर्ग्गत्यायुर्ब्बंधनिबंधनंगळप्प लेश्यामध्यमाष्टांशंगळाउर्वे दोडे तेजोजघन्य-स्थानानंतर स्वमध्यमानंतगुणवृद्धिस्थानं मोदल्गोंडु कपोतलेश्याजघन्यस्थानानंतर स्वमध्यमानंत-गुणवृद्धिस्थानपर्य्यंतमथवा कपोतलेश्याजघन्यस्थानानंतर स्वमध्यमानंतगुणवृद्धिस्थानं मोदल्गोंडु तेजोलेश्याजघन्यस्थानानंतर स्वमध्यमानंत गुणवृद्धिस्थानपर्य्यंतमप्प पद्मशुक्लकृष्णनीललेश्या-जघन्यांशंगळु नाल्कुं शेषचतुर्ग्गत्यायुर्ब्बंधनिबंधनंगळप्प मध्यमांशंगळु नरकायुर्ब्बर्ज्जितायु- स्त्रितयबंधनिबंधनंगळप्प मध्यमांशंगळुं नरकतिर्य्यगायुर्ब्बर्ज्जितायुर्द्वयबंधनंगळप्पमध्यमांशंगळुं केवलं देवायुर्ब्बंधनिबंधनंगळप्प मध्यमांशंगळुमितु मध्यमांशंगळुं नाल्कुं कूडियष्टांशंगळप्पुवु। यिल्लि पद्मशुक्लकृष्णनीलजघन्यांशंगळगे मध्यमत्वमेंतेंदोडे शुभाशुभलेश्येगळविभागापेक्षेइनवक्के मध्यमांशत्वं पेळल्पट्टुदु। शेषाष्टादशांशंगळु चतुर्ग्गतिगमनकारणंगळप्पुववरोळ अशुभलेश्या-त्रयनवांशंगळु नरकगतियोळं तिर्य्यंग्गतियोळमुत्पादकंगळु पेळल्पट्टुवु। मुंदे तिर्य्यंग्मनुष्य-देवगतिगमनकारण शुभाशुभांशंगळु पेळल्पट्टुवु। इल्लि लेश्यासंक्रमणं पेळल्पडुगुमेकेंदोडे मोहो-

---

ते मध्यमांशास्तु तेजोलेश्याजघन्यस्थानानंतरस्वमध्यमानंतगुणवृद्धिस्थानमादिं कृत्वा कपोतलेश्याजघन्य-स्थानानंतरस्वमध्यमानंतगुणवृद्धिस्थानपर्यंतं वा कपोतलेश्याजघन्यस्थानानंतरस्वमध्यमानंतगुणवृद्धिस्थानमाद्यं कृत्वा तेजोलेश्याजघन्यस्थानानंतरस्वमध्यमानंतगुणवृद्धिस्थानपर्यंतं पद्मशुक्लकृष्णनीलजघन्यांशाश्चत्वारः चतुर्गत्यायुर्बंधनिबंधननरकवर्जितत्र्यायुर्बंधनिबंधननरकतिर्यग्वर्जिततद्द्वयायुर्बंधनिबंधनकेवलदेवायुर्बंधनाश्चत्वारः एवमष्टौ। अत्र पद्मशुक्लकृष्णनीलजघन्यांशानां मध्यमत्वं तु शुभाशुभलेश्याविभागापेक्षं शेषाष्टादशांशाः चतुर्गति-

---

गुणस्थानमें सूक्ष्मकृष्टि नामवाली शक्तियाँ हैं। इस प्रकार समस्त क्रोधकषायके अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यात लोकमात्र षट्स्थान पतित वृद्धि हानिको लिये असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण तो संक्लेश स्थान हैं और एक भाग प्रमाण विशुद्धिस्थान हैं। उनमें लेश्यापद चौदह हैं और लेश्याके अंश छब्बीस हैं। उनमेंसे मध्यके आठ अंश आयुके बन्धके कारण हैं। (यहाँ संदृष्टि आदि जीवकाण्डके कषायमार्गणा अधिकारमें पहले कहा है वही जानना।)

वे मध्यम अंश तेजोलेश्याके जघन्यस्थानके अनन्तर अपने अनन्त गुणवृद्धिरूप मध्यम-स्थानसे लगाकर कपोतलेश्याके जघन्यस्थानके अनन्तर अनन्तगुणवृद्धियुक्त उसीके मध्यम-स्थान पर्यन्त जानना। अथवा कपोतलेश्याके जघन्यस्थानके अनन्तर उसीके अनन्तगुणवृद्धि-रूप मध्यमस्थानसे लगाकर तेजोलेश्याके जघन्यस्थानके अनन्तर उसीके अनन्तगुणवृद्धिरूप मध्यमस्थान पर्यन्त पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नीलके जघन्य अंश चार और चार गति सम्बन्धी आयुके कारण अथवा नरक बिना तीन आयुके अथवा नरकतिर्यंच बिना दो आयुके या केवल देवायुके बन्धके कारण चार अंश इस प्रकार आठ मध्यम अंश आयुबन्धके कारण हैं।

यहाँ जो पद्म, शुक्ल, कृष्ण, नील लेश्याके जघन्य अंशोंको मध्यम अंश कहा है उसका कारण यह है कि शुभ-अशुभ लेश्याके भेदकी अपेक्षा ये बीचके अंश हैं इसलिए इन्हें मध्यम अंश कहा है। शेष अठारह अंश, जो कृष्णादिके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदरूप हैं, चारों गतियोंमें गमनके कारण हैं। इन अठारह अंशोंमें मरण होता है। उनमेंसे तीन अशुभ

दयादिजनितगुणस्थानंगळोळ्‌ चतुर्गतिजीवंगळोळ्‌ संभविसुव शुभाशुभलेश्यगेगळं साधिसल्बक्कु-मप्पुदरिंदं ।

संकमणं संठाण परट्ठाणं होदि किण्हसुक्काणं ।
बड्ढीसु हि संठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभयेवि ॥

यिल्लि लेश्यगेळगे स्वस्थानपरस्थानसंक्रमणमेंदुं संक्रमणमेरडुप्रकारमप्पुदल्लि कृष्ण-लेश्यगेगं शुक्ललेश्यगेगं वृद्धिगळोळु स्वस्थानसंक्रमणमेयक्कुं । स्वस्थानसंक्रमणमुं परस्थानसंक्रमणमुं-मेंबुभयसंक्रमणमा कृष्णलेश्यगेगं शुक्ललेश्यगेगं हानियोळक्कुं । शेषनीलकपोततेजःपद्मंगळ स्वजघन्य-मादियागि स्वस्वोत्कृष्टपर्य्यंतमप्प वृद्धियोळं स्वोत्कृष्टं मोदल्गोंडु स्वजघन्यपर्य्यंतमप्प हानियोळं स्वस्थानसंक्रमणमुं परस्थानसंक्रमणमक्कुमदें तेंदोडे कृष्णशुक्लंगळगे स्वजघन्यं मोदल्गोंडु स्वोत्कृष्टपर्य्यंतं स्वस्थानसंक्रमणमेयक्कुमेकेंदोडे शुक्लपद्मतेजःकपोतनीलंगळोळं कृष्णनील-कपोततेजः पद्मंगळोळं संकरमिल्लेकेंदोडे लक्षणतः सिद्धंगळप्पुदरिंदं । मत्तं हानियोळमा कृष्ण-शुक्लंगळगे स्वोत्कृष्टं मोदल्गोंडु स्वजघन्यपर्य्यंतं स्वस्थानसंक्रमणमुं मुंदण नीलकपोततेजः-पद्मशुक्ललेश्योत्कृष्टपर्य्यंतमुं पद्मतेजःकपोतनीलकृष्णोत्कृष्टपर्य्यंतमुं परस्थानसंक्रमणमुमक्कुं शेषनीलकपोतंगळ पद्मतेजंगळ स्वस्वोत्कृष्टं मोदल्गोंडु स्वस्वजघन्यपर्य्यंतंहानियोलु स्वस्थान-संक्रमणमुं स्वस्वजघन्यंगळिदं मुंदण लेश्यगेळोळ, शुक्ललेश्योत्कृष्टपर्य्यंतमुं कृष्णलेश्योत्कृष्ट-पर्य्यंतमुं परस्थानसंक्रमणमुमक्कुं । मत्तमा नाल्कर वृद्धियोळ्‌ स्वस्वजघन्यं मोदल्गोंडु स्वस्वोत्कृष्टपर्य्यंतं स्वस्थानसंक्रमणमुं स्वस्वोत्कृष्टंगळ मुंदण कृष्णोत्कृष्ट पर्य्यंतमुं शुक्ललेश्यो-त्कृष्टपर्य्यंतमुं परस्थानसंक्रमणमुमक्कुं । सर्व्वत्र परस्थानसंक्रमणंगळोळ्‌ परलेश्यापरिणमनमप्पंतु

गमनकारणानि तेषु सुभगत्रयस्य नवांशाः नरकगतौ तिर्यग्गतौ चोत्पादकाः । अग्रतनाः शुभाशुभलेश्यांशास्तु तिर्यग्मनुष्यदेवगतिगमनकारणानि । लेश्यासंक्रमणं तु कृष्णशुक्लयोर्वृद्धावग्रेऽन्यलेश्याभावात्स्वस्थाने एव हानौ स्वोत्कृष्टात्स्वजघन्यपर्यंतं स्वस्थाने कृष्णायाः नीलकपोततेजःपद्मशुक्लोत्कृष्टपर्यंतं शुक्लायाः पद्मतेजःकपोतनील-कृष्णोत्कृष्टपर्यंतं च परस्थाने स्यात् । शेषाणां हानौ स्वस्वोत्कृष्टादास्वस्वजघन्यं स्वस्थाने परस्थाने तु नील-

---

लेश्याओंके नौ अंश तो नरकगति और तिर्यंचगतिमें उत्पन्न कराते हैं । आगेके शुभ-अशुभ लेश्याओंके अंश तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें गमनके कारण हैं ।

आगे लेश्याओंका संक्रमण कहते हैं—

एक स्थानसे दूसरे स्थानको प्राप्त होनेका नाम संक्रमण है । वृद्धिमें कृष्ण और शुक्ल-लेश्याका संक्रमण स्वस्थानमें ही है क्योंकि संक्लेश या विशुद्धिकी वृद्धि होनेपर कृष्ण या शुक्लको छोड़ अन्य लेश्याको प्राप्त नहीं होता । हानिमें अपने-अपने उत्कृष्टसे अपने-अपने जघन्य अंश पर्यन्त स्वस्थानमें और कृष्णका नील, कपोत, तेज, पद्म, शुक्लके उत्कृष्ट पर्यन्त तथा शुक्लका पद्म, तेज, कपोत, नील, कृष्णके उत्कृष्ट पर्यन्त परस्थानमें संक्रमण होता है । शेष लेश्याओंका संक्लेश या विशुद्धताकी हानि होनेपर अपने-अपने उत्कृष्टसे अपने-अपने जघन्य पर्यन्त तो स्वस्थान संक्रमण है । और नील तथा कपोतका अपने-अपने जघन्यसे

स्वस्थानसंक्रमणदोळु परलेश्यासदृशशक्तिस्थानगळोळु संक्रमणमिल्लेकेंदोडे स्वस्वलेश्यालक्षणत्याज्यमिल्लप्पुदरिंदं ।

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ॥

सर्व्वलेश्येगळ स्वस्थानदोळुत्कृष्टदिंदमनंतरस्वस्वमध्यमस्थानदोळु अवरहानियक्कुमेकेंदोडे उत्कृष्टलेश्यास्थानंगळनितुं वुर्व्वंकंगळप्पुदरिंदमनंतभागहानियेयक्कुं । सर्व्वलेश्येगळ जघन्यस्थानानंतरमध्यमस्थानदोळु वृद्धियुमनंतभागवृद्धियेयक्कुमेकेंदोडेल्ला लेश्येगळ जघन्यंगळादिगळष्टांकंगळप्पुदरिंदमनंतरमध्यमवृद्धिस्थानदोळमवरवृद्धियक्कुमप्पुदरिंदं । सर्व्वलेश्येगळजघन्यदत्तणिदं परस्थानसंक्रमणदोळु नियमदिंदं अनंतगुणहानियेक्कुमेकेंदोडितरलेश्यापेक्षेयिंदमा जघन्यंगळेल्लमष्टांकंगळेयप्पुवप्पुदरिंदं । "छट्ठाणाणं आदी अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं" एंदितदरिंदं लेश्येगळेल्लव उत्कृष्टदत्तणिदं हानियुं जघन्यदत्तणिदं वृद्धियुं स्वस्थानसंक्रमणदोळुमनंतभागहानियुमनंतभागवृद्धियुमक्कुमेल्ला लेश्येगळ जघन्यस्थानदत्तणिदं परस्थानसंक्रमणदोळमनंतगुणहानियेयक्कुमेंबुदु तात्पर्य्यं ॥

यितु तिर्य्यग्गति पर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळोळु मिथ्यात्वमनंतानुबंध्यप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानसंज्वलन सर्व्वघातिक्रोधचतुष्कमुं मानचतुष्कमुं मायाचतुष्कमुं लोभचतुष्कमुमेंबी कषायचतुष्ट-

---

कपोतयोः स्वस्वजघन्यादाशुक्लोत्कृष्टं पद्मतेजसोराकृष्णोत्कृष्टं च स्यात् । वृद्धौ स्वस्थाने स्वस्वजघन्यादास्वस्वोत्कृष्टं । परस्थाने तु नीलकपोतयोः स्वस्वोत्कृष्टादाकृष्णोत्कृष्टं पद्मतेजसोराशुक्लोत्कृष्टं च स्यात् । न च स्वस्थाने परस्थानवत्परलेश्यासदृशशक्तिस्थानं संक्रामति स्वस्वलक्षणस्यात्यजनात् । स्वस्थानसंक्रमणे सर्वलेश्यानामुत्कृष्टानंतरस्वमध्यमस्थाने हानिरनंतभागातिका तदुत्कृष्टस्योर्ध्वं कृत्वा च तासां जघन्यादनंतरस्वमध्यमस्थाने वृद्धिरपि सैव तज्जघन्यस्याष्टांकत्वात् । परस्थानसंक्रमणे तासां जघन्याद्धानिरनंतगुणा इतरलेश्या-

---

शुक्लके उत्कृष्ट पर्यन्त तथा पद्म और तेजका अपने-अपने जघन्यसे कृष्णके उत्कृष्ट पर्यन्त परस्थान संक्रमण है । वृद्धिमें अपने-अपने जघन्यसे अपने-अपने उत्कृष्ट पर्यन्त तो स्वस्थान संक्रमण है । नील और कपोतका अपने-अपने उत्कृष्टसे कृष्णके उत्कृष्ट पर्यन्त तथा पद्म और तेजका अपने-अपने उत्कृष्टसे शुक्लके उत्कृष्ट पर्यन्त परस्थान संक्रमण है । स्वस्थानमें संक्रमण होनेपर परस्थानकी तरह अन्य लेश्याके समान शक्तिरूप स्थानको प्राप्त नहीं होते; क्योंकि अपने-अपने लक्षणको नहीं छोड़ते ।

स्वस्थान संक्रमणमें सब लेश्याओंके उत्कृष्टसे अनन्तर अपने-अपने मध्यमस्थानमें कृष्णादि तीनमें संक्लेशकी और पीतादि तीनमें विशुद्धताकी हानि अनन्तभागरूप है क्योंकि लेश्याओंका उत्कृष्ट स्थान अपने अनन्तरवर्ती मध्यमस्थानसे उर्वक अर्थात् अनन्तभागरूप कहा है । तथा उन लेश्याओंके जघन्यके अनन्तर अपने मध्यम स्थानमें वृद्धि भी अनन्तभागरूप है; क्योंकि उन लेश्याओंका जघन्य स्थान अष्टांकरूप है अर्थात् अपने अनन्तरवर्ती स्थानसे अनन्तगुणरूप है । परस्थान संक्रमणमें उन लेश्याओंके जघन्यसे अनन्तगुणहानि पायी जाती है क्योंकि अन्य लेश्याकी अपेक्षा उनका जघन्य अष्टांकरूप है ।

योदयमक्कुं ।। सासादननोळु मिथ्यात्वोदयरहितमागि अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलन-सर्व्वघाति क्रोधमानमायालोभचतुष्टयोदयमक्कुं ।। मिश्रनोळु मिथ्यात्वानंतानुबंधिकषायरहिता-प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान संज्वलन सर्व्वघातिक्रोधत्रितयादि कषायचतुष्टयोदयमुं जात्यंतरसर्व्वघाति दर्शनमोह सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयमुमक्कुं ।। असंयतसम्यग्दृष्टियोळु मिथ्यात्वानंतानुबंधि कषायोदय रहितमागि दर्शनमोहक्षयोपशमदोळाद देशघातिसम्यक्त्वप्रकृत्युदयदोडनप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलनसर्व्वघातिक्रोधत्रितयादिकषायचतुष्कोदयमुं मेणु दर्शनमोहोपशमनमुं क्षयमुम-प्रत्याख्यान प्रत्याख्यान संज्वलनसर्व्वघातिक्रोधत्रियादि चतुःकषायोदयमुमक्कुं । तिर्य्यग्देशसंयत-नोळु मिथ्यात्वानंतानुबंधि अप्रत्याख्यानरहितमागि दर्शनमोहक्षयोपशमदेशघातिसम्यक्त्वप्रकृत्यु-दयमुं प्रत्याख्यान संज्वलनसर्व्वघातिक्रोधद्वितयादि चतुःकषायोदयमुं मेणु दर्शनमोहोपशमयुत प्रत्याख्यान संज्वलन सर्व्वघातिक्रोधद्वयादि चतुष्कषायोदयमुमक्कुमादोडमी तिर्य्यग्देशसंयतनोळु संक्लेशहानियोळाद शुभलेश्यात्रयकारणंगळप्प कषायोदयस्थानंगळसंख्यातैकभागमात्रं गळागियु-मसंख्यात लोकमात्रंगळप्पुवु । ई साधनंगळिनुपलक्षिसल्पट्ट षड्लेश्योदयस्थानंगळु मिथ्यादृष्टि-योळं सासादननोळं मिश्रनोळमसंयतनोळमप्पुवा पर्य्याप्ततिर्य्यंचसामान्य मिथ्यादृष्टियोळु यथायोग्यं नामकर्म्मबंधस्थानंगळोळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळु बंधमप्पुवु । २३ । ए अ । २५ ।

पेक्षया तज्जघन्यानामष्टांकत्वात् । तस्तिर्यग्मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वेन सहानंतानुबंध्यादिसर्वघातिक्रोधचतुष्कं वा मानचतुष्कं वा मायाचतुष्कं वा लोभचतुष्कमुदेति । सासादने तदेव बिना मिथ्यात्वं । मिश्रे पुनरनंतानुबंध्यूनं युतं जात्यंतरसर्वघातिसम्यग्मिथ्यात्वेन । असंयते सम्यग्मिथ्यात्वोनं दर्शनमोहस्य क्षयोपशमे युतं देशघातिसम्य-क्त्वप्रकृत्या वियुतमुपशमे क्षये च । देशसंयते पुनरप्रत्याख्यानोनं युतं दर्शनमोहस्य क्षयोपशमे तया वियुतमुपशमे तथापि तिर्यग्देशसंयते संक्लेशहानौ जातानि (त्रिशुभ-)लेश्याकारणकषायोदयस्थानान्यसंख्यातैकभागत्वेऽप्यसंख्या-तलोकमात्राणि शेषबहुभागाः षड्लेश्योदयस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुष्के भवंति । तत्र मिथ्यादृष्टौ त्रयो-

---

तिर्यंच मिथ्यादृष्टिमें मिथ्यात्वके साथ अनन्तानुबन्धी आदि सर्वघाती क्रोध-चतुष्क, मानचतुष्क, मायाचतुष्क अथवा लोभचतुष्कका उदय होता है। सासादनमें मिथ्यात्वके बिना अनन्तानुबन्धी चतुष्कोंका उदय होता है। मिश्रमें अनन्तानुबन्धी बिना जात्यन्तर सर्वघाती सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कषायका उदय होता है। असंयतमें सम्यग्-मिथ्यात्वके बिना दर्शनमोहके क्षयोपशममें देशघाती सम्यक्त्व प्रकृतिके साथ और दर्शन मोहके उपशम और क्षयमें सम्यक्त्व मोहनीयके बिना कषायका उदय होता है। देशसंयतमें अप्रत्याख्यान रहित तथा दर्शनमोहके क्षयोपशममें सम्यक्त्व मोहनीय सहित और उपशममें उससे रहित उदय होता है। किन्तु तिर्यंच देशसंयतमें संक्लेशकी हानिसे हुए तीन शुभ लेश्याओंके कारण कषायोंके उदयस्थान सब कषायोंके उदयस्थानोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण होनेपर भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। शेष बहुभाग प्रमाण कषायोंके उदयस्थान, जो छह लेश्याओंके कारण हैं, मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें होते हैं।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तेईस आदि छह स्थान बँधते हैं। सासादनमें अठाईस आदि तीन बँधते हैं। मिश्र आदि तीन गुणस्थानोंमें एक अट्ठाईसका ही स्थान बँधता है।

ए प । बि । ति । च । अ । सं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । न । दे । २९ । बि । ति । च । अ । सं । म । परि । ३० । बि । ति । च । अ । सं । परि । उ ॥ पर्य्याप्तसासादनरोळु त्रिस्थानंगळु बंगधमप्पुवु । २८ । दे । २९ । पं ति । म । परि । ३० । सं । परि । उ । मिश्रनोळु देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमों दे बंधमप्पुदु । २८ । दे । एकें दोडुवरिमछण्णं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा एंदितिदरिनरियल्पडुगुमप्पुदरिंदं ॥ असंयतनोळु देवगतियुताष्टाविंशति प्रकृतिस्थानमों दे बंधमक्कुं । २८ । दे ॥ देशसंयतनोळमष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमुमदे बंधमक्कुं । २८ । दे ॥ भोगभूमिसंज्ञिपंचेंद्रिय गर्भजतिर्य्यंचरुगळ निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरुगळुमें दु द्विविधमप्परल्लि निर्व्वृत्यपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुगळुं मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतरुगळें दु त्रिविधमप्परल्लि निर्व्वृत्यपर्य्याप्त-मिथ्यादृष्टिजीवंगळावाव गतिगळिंदं बंदु पुट्टिदवर्गळें दोडे मनुष्यगतिय मिथ्यादृष्टिजीवंगळु विधिपूर्व्वकमागि योग्यद्रव्यंगळं दातृगुणसमन्वितरागियुत्तममध्यमजघन्य पात्रंगळाहारदानदानानु-मोदंगळिंदं । तिर्य्यंचरुगळु दानानुमोदंगळिंदं बद्धतिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यरुगळु मेणबद्धायुष्यरुगळु तिर्य्यगायुष्यक्के त्रिद्व्येकपल्योपमस्थितिबंधमं माडि मृतरागि बंदुत्तममध्यमजघन्य भोगभूमिगळोळु त्रिद्व्येकपल्योपमायुष्यर्न्निर्व्वृत्यपर्य्याप्तशुभलेश्यात्रितयमिथ्यादृष्टितिर्य्यंचरागि पुट्टुवरेकें दोडे "सण्णि अपुण्णगमिच्छे सासणसम्मे वि असुहतियमें दु संज्ञिलब्ध्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टितिर्य्यंचनोळे अशुभलेश्यात्रयमल्लदे निर्व्वृत्यपर्य्याप्तनोळु शुभाशुभलेश्येगळु संभविसुगु मप्पुदरिंदं नरकादिगति-गळिंदं बंदु पुट्टिद संज्ञिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादननोळमशुभलेश्येगळेयक्कुमा मिथ्यादृष्टिगे—

भोगेसुरट्ठवीसं सम्मो मिच्छो य मिच्छगअपुण्णो ।
तिरिउगुतीसं तीसं णरउगुतीसं च बंधदि हु ॥

विंशतिकादीनि षट् बध्यंते । सासादनेऽष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि मिश्रादित्रये उवरिमछण्हं च छिदी सासणसम्मे इत्यष्टाविंशतिकमेव । मनुष्यपूर्वभवे योग्यद्रव्यदातृगुणस्त्रिधा पात्रदानेन तदनुमोदेन वा तिर्यङ् दानानुमोदेनैव मिथ्यादृष्टित्वेन तिर्यगायुर्बध्वा अशुभलेश्याभिर्भोगभूमितिर्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा अपुण्णे तिरियुगुतीसं तीसं णरउ-गुतीसं च बंधदि । बद्धतिर्यगायुर्मरणे प्रथमोपशमसम्यक्त्वमनंतानुबंध्युदयेन विराध्य तिर्यग्मनुष्यो वा भोगभूमौ नारकादिकर्मभूमौ च त्र्यशुभलेश्याभिस्तिर्यक्सासादनो भूत्वा तद्द्वयमेव । मिच्छदुगे देव चऊ तित्थं णेति

मनुष्य पूर्वभवमें योग्यद्रव्य दाताके गुणसहित तीन प्रकारके पात्रोंको दान देकर अथवा उसकी अनुमोदना करके और तिर्यंच दानकी अनुमोदना ही करके मिथ्यादृष्टि होनेके कारण तिर्यंचायुको बाँध, तीन अशुभ लेश्याओंके साथ मरकर भोगभूमिमें तिर्यंच मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होता है । वह अपर्याप्त दशामें तिर्यंचगति सहित उनतीस या तीसका और मनुष्य-गति सहित उनतीसका स्थान बाँधता है । जिसके तिर्यंचायुका बन्ध हुआ है और मरते समय अनन्तानुबन्धीके उदयसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी विराधना करके तिर्यंच और मनुष्य तो भोगभूमिमें और नारक आदि कर्मभूमिमें तीन अशुभ लेश्याओंके साथ सासादन तिर्यंच उत्पन्न होकर उनतीस और तीसको ही बाँधते हैं । क्योंकि 'मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि' इस आगम वचनके अनुसार देवगति सहित अट्ठाईसका बन्ध पर्याप्तदशामें ही होता है । कर्मभूमिका वेदक सम्यग्दृष्टी तिर्यंच या मनुष्य वा क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्य, जिसने

येंबितु भोगभूमिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टियोळु नवविंशत्यादिद्वित्स्थानंगळु बंधमप्पुवु । २९ । ति । म । ३० । ति । उ ॥ भोगभूमिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनतिर्य्यंचरुगळं मनुष्यतिर्य्यग्गतिगळोळु बद्धतिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यरुगळु गृहीतप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळु मरणकालदोळु अनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि बंदु भोगभूमिसासादननिर्व्वृत्यपर्य्याप्ततिर्य्यंचरुमशुभलेश्यात्रितयिगळक्कु-। मवरोळ्गेयुं नवविंशत्यादिद्वित्स्थानंगळे बंधमक्कु २९ । ति म ३० । ति उ । मेकेंदोडे "मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि" येंब नियममुंटप्पुदरिंदं । सुराष्टाविंशतिस्थानं पर्य्याप्तरोळे बंधमक्कुमेंबुदत्थं । भोगभूमितिर्य्यंचनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तवेदकसम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळाव गतियिंदं बंदु पुट्टिदवरोळप्परेंदोडे कर्म्मभूमिय तिर्य्यंग्मनुष्यरु वेदकक्षायिक सम्यग्दृष्टिगळु प्राग्बद्धतिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यरुगळुत्तममध्यमजघन्यपात्रदान दानानुमोदंगळिंदं तिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यंगळ्गे त्रिद्व्येकपल्योपमस्थितिगळं माडि मृतरागि बंदी उत्तममध्यमजघन्य भोगभूमिगळोळु कपोतलेश्याजघन्यांशदिंदं पुट्टिवर्गळेंबुदत्थं-। मिल्लि कृतकृत्यवेदकरुं वेदकरुगळुं क्षायिकरुगळुं देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरेकेंदोडे 'भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो' येंबितु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरुं पर्य्याप्तरुं कट्टुगुमप्पुदरिंदं । पर्य्याप्तियिंदं मेलेल्लरुगळुं चतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळुं शुभलेश्यात्रितयिगळुमक्कुमल्लि मिथ्यादृष्टिगळ्गे सुराष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । ति म । ३० । ति उ ॥ सासादनरुगळ्गेयुमष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । ति । म । ३० । ति । उ ॥ मिश्ररुगळ्गे देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमोंदे बंधयोग्यमक्कुं । २८ । दे । एकेंदोडे तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळु "उवरिमछण्हं च छिदो सासणसम्मो हवे णियमा" येंबितु तिर्य्यग्गतियुत स्थानबंधंगळु सासादननोळे बंधव्युच्छित्तिगळावुवप्पुदरिंदं ॥

सुराष्टाविंशतिकं पर्याप्तेष्वेत्यर्थः । कर्मभूमेस्तिर्यग्मनुष्यवेदकसम्यग्दृष्टिः मनुष्यक्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा प्राग्बद्धतिर्यगायुस्त्रिधापात्रदानतदनुमोदेन त्रिद्व्येकपल्यप्रमाणं कृत्वा त्रिधाभोगभूमौ कपोतलेश्याजघन्यांशेनोत्पद्य वेदकसम्यग्दृष्टिः कृत्यकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिः क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वा देवगत्यष्टाविंशतिकमेव । भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो इति नियमात् । पर्याप्तेरुपरि चतुर्गुणस्थानवर्ती शुभत्रिलेश्य एव । तत्र मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च सुराष्टाविंशतिकादित्रयं २८ दे २९ ति म ३० ति उ । मिश्रोऽसंयतश्च देवगत्यष्टाविंशतिकमेव तिर्यग्मनुष्यगतियुतस्थान-

---

पहले तिर्यंचायुका बन्ध किया है, तीन प्रकारके पात्रोंको दान देकर या उसकी अनुमोदना करके तीन भोगभूमियोंमें तीन-दो-एक पल्यकी आयु धारण करके कपोतलेश्याके जघन्य अंशके साथ उत्पन्न हुआ। उस अपर्याप्त दशामें वेदक सम्यग्दृष्टी, कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी अथवा क्षायिक सम्यग्दृष्टी देवगति सहित अट्ठाईसके ही स्थानको बाँधते हैं। क्योंकि कहा है कि भोगभूमिमें सम्यग्दृष्टी देवगति सहित अट्ठाईसका स्थान बाँधता है। पर्याप्त होनेपर चारों गुणस्थानवर्ती भोगभूमिया तीन शुभलेश्यायुक्त होते हैं। उनमें-से मिथ्यादृष्टी और सासादन देवगति सहित अठाईसका अथवा तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीसका या उद्योत सहित तीसका स्थान बाँधते हैं। तथा मिश्र और असंयत देवगति सहित अठाईसका ही स्थान

असंयतंगर्मिते मनुष्यगतियोळु लब्ध्यपर्य्याप्तरुगळेल्लमशुभलेश्यात्रितयिगळप्परु । निर्व्वृत्य-पर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिसासादनासंयतरुगळोळु षड्लेश्यैगळप्पुवें तेंदोडे चतुर्ग्गतिजरुं मिथ्यादृष्टि-सासादनरोळं नरकदेवगतिजवेदकसम्यग्दृष्टिगळुमसंयतनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु पुट्टुवरप्पुदरिंदं । यिल्लि बंधस्थानंगळु मिथ्या २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । सासादन । २९ । ३० । असंय । २८ । दे २९ । दे ति । पर्य्याप्तियिंदं मेलेयुमसंयतगुणस्थानपर्य्यन्तं षड्लेश्यायुतरप्परल्लि मिथ्यादृष्टि-योळुत्रयोविंशत्याविषट्स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २३ । ए अ २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ । उ । २८ । न । दे । २९ । ति । बि । ति । च । पं । म । ३० । बि । ति । च । पं । ति । उ । सासादननोळु अष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । ति । म । ३० । ति उ ॥ मिश्रनोळु देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमों दे बंधयोग्य-मप्पुदु । २८ । दे ॥ असंयतनोळु देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानद्वयं बंधयोग्यमप्पुवु । २८ । दे । २९ । दे ति ॥ देशसंयतन शुभलेश्यात्रयदोळु देवगतियुताष्टाविंशतिद्विस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । दे ति । प्रमत्तरोळं द्विस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । दे ति । अप्रमत्तरुगळ शुभलेश्यात्रयदोळु अष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । दे ति । ३० । दे आ ३१ । दे । आ । ति ॥ अपूर्व्वकरणन शुक्ललेश्ययोळु अष्टाविंशत्यादि पंचस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । दे ति । ३० । दे

योस्सासादने एवच्छेदात् ।

मनुष्यगतौ लब्ध्यपर्याप्ते त्र्यशुभलेश्ये निर्वृत्यपर्याप्ते च षड्लेश्ये मिथ्यादृष्टौ २३, २५, २६, २९, ३० । सासादने २९, ३० । असंयते २८, २९ दे ति । पर्याप्तेरुपरि षड्लेश्ये मिथ्यादृष्टौ त्रयोविंशतिकादीनि षट्, सासादनेऽष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि २८, दे २९ ति म ३० ति उ । मिश्रे देवगत्यष्टाविंशतिकमेव । असंयते शुभलेश्यात्रये देशसंयतादिद्वये च तदादिद्वयं २८ दे २९ दे ती । अप्रमत्ते ते चेमे च ३० दे आ २ ३१ दे आ २

बाँधते हैं । क्योंकि तिर्यंचगति और मनुष्यगति सहित स्थानोंकेबन्धकी व्युच्छित्ति सासादन-में ही हो जाती है ।

इस प्रकार लेश्यासहित तिर्यंचोंमें नामकर्मके बन्धस्थान कहे, अब मनुष्यगतिमें कहते हैं—

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यमें तीन अशुभ लेश्या होती है । और निर्वृत्यपर्याप्तकमें छह लेश्या होती है । सो मिथ्यादृष्टिमें तो तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीसके स्थान बँधते हैं । सासादनमें उनतीस, तीसके स्थान बँधते हैं । असंयतमें देवगति सहित अठाईस या देवगति तीर्थंकर सहित उनतीसके स्थान बँधते हैं । पर्याप्तदशामें छहों लेश्या होती हैं । वहाँ मिथ्यादृष्टिमें तेईस आदि छह स्थान बँधते हैं । सासादनमें अठाईस आदि तीन स्थान बँधते हैं—देवगति सहित २८, तिर्यञ्चगति या मनुष्यगति सहित २९ और तिर्यञ्च गति उद्योत सहित तीस । मिश्रमें देवगति सहित अठाईसका ही स्थान बँधता है । असंयतमें और तीन शुभलेश्या सहित देशसंयत तथा प्रमत्तमें देवसहित अठाईस और देव तीर्थ सहित उनतीसके स्थान बँधते हैं । अप्रमत्तमें वे दोनों तथा आहारक सहित तीस, इकतीसके स्थान

आ ३१। दे आ ति। १॥ बादरनिवृत्तिकरणनोळं सूक्ष्मसांपरायनोळं शुक्ललेश्ययोळु अगतिस्थानमो दे बंधमप्पुदु। १। केवलं मोहोपशमक्षयजनितयोगप्रवृत्तिलक्षणशुक्ललेश्ययोळु नामबंधमिल्लप्पुदरिंदमुपशांतकषायक्षीणकषाय सयोगभट्टारकरोळु नामबंधमिल्ल। भोगभूमिज-मनुष्यरुगळ्गे भोगभूमितिर्य्यंग्गतियोळे पेळल्पट्टुदु। देवगतियोळु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरं पर्य्याप्तरुमप्परल्लि निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरुगळोळु मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतगुणस्थानत्रयमक्कुं। पर्य्याप्तरोळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतगुणस्थानचतुष्टयमक्कुमल्लि "तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च। एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादि देवाणं॥" "तेऊ तेऊ तह तेऊ पम्म पम्माय पम्मसुक्का य। सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा॥" येंबितु भवनत्रयदोळु कृष्णादि चतुर्ल्लेश्ययेगळक्कुं। सौधर्म्मैशानकल्पद्वयद ऋतु। विमल। चंद्र। वल्गु। वीर। अरुण। नंदन। नलिन। कांचन। रोहित। चंचत्। मरुत्। ऋद्धीश। वैडूर्य्य। रुचक। रुचिर। अंक। स्फटिक। तपनीय। मेघ। अभ्र। हारिद्र। पद्म। लोहित। वज्र। नंद्यावर्त्त। प्रभंकर। पृष्ठक। गज। मित्रक। प्रभाविमानमेंबेकत्रिंशदिंद्रकंगळोळु ऋत्विंद्रकदोळमदर दिक्चतुष्टय श्रेणिबद्धविमानंगळोळं प्रकीर्णकविमानंगळोळं समुद्भूत दिविजरुगळनिबर्गं तेजोलेश्याजघन्यांशमेयक्कुं। विमल विमानं मोदल्गो डु सानत्कुमार माहेंद्रकल्पद्वयदोळु संभविसुव नंदन। वनमाला। नाग। गरुड। लांगल। बलभद्र। चक्रमेंब सप्तपटलमध्यस्थितंगळप्प सप्तेंद्रकंगळोळु बलभद्रविमानपर्य्यंतं तेजोलेश्यामध्यमांशंगळप्पुवु। आ चरमचक्रेंद्रकश्रेणीबद्धंगळोळु तेजोलेश्योत्कृष्टांशमक्कुमा चक्रेंद्रकदोळु पद्मलेश्याजघन्यांशमक्कुं। ब्रह्मब्रह्मोत्तरकल्पद्वयद अरिष्ट। सुर+समिति। ब्रह्मब्रह्मोत्तरमेंब नाल्कुमिंद्रकंगळोळं लांतवकापिष्ठद्वयदब्रह्महृदय। लांतवमेंबिंद्रकद्वयदोळं शुक्रमहाशुक्रमेंब

ती। अपूर्वकरणे शुक्ललेश्ये तानि चेदं च। बादरानिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसांपराये चैककमेव। नोपशांतादिषु नामबंधः। भोगभूमौ तत्तिर्यग्वक्तव्यं। देवगतौ भवनत्रये अपर्याप्ते त्र्यशुभलेश्याः। पर्याप्ते तेजोजघन्यांशः। पर्याप्तापर्याप्तवैमानिकेषु सौधर्मद्वयस्याद्येंद्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकेषु तेजोजघन्यांशः। द्वितीयेंद्रकादासनत्कुमारद्वयस्य षष्ठेंद्रकं तेजोमध्यमांशः सप्तमेंद्रकश्रेणीबद्धेषु तदुत्कृष्टपद्मजघन्यांशो ब्रह्मद्वयस्येंद्रकेषु चतुर्षु लांतवद्वयस्य द्वयोः

बँधते हैं। अपूर्वकरणमें शुक्ल लेश्या ही होती हैं। वहाँ उक्त चारों तथा अन्तमें एक इस प्रकार पाँचका बन्ध है। बादर अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्परायमें एकका ही बन्ध है। उपशान्त आदिमें नामकर्मके बन्धका अभाव है। भोगभूमिमें भोगभूमियां तिर्यञ्चवत् जानना।

देवगतिमें कहते हैं—

देवगतिमें भवनत्रिकमें अपर्याप्तदशामें तीन अशुभ लेश्या होती हैं। पर्याप्तदशामें तेजोलेश्याका जघन्य अंश होता है। पर्याप्त-अपर्याप्त वैमानिकोंमें सौधर्मयुगलके प्रथम इन्द्रक श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णकोंमें तेजोलेश्याका जघन्य अंश होता है। दूसरे इन्द्रकसे सानत्कुमारयुगलके षष्ठम इन्द्रक पर्यन्त तेजोलेश्याका मध्यम अंश है। सप्तम इन्द्रक और श्रेणीबद्धोंमें तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्याका जघन्य अंश है। ब्रह्मयुगलके चार

---

१. निरवशेष।

कल्पद्वयद शुक्रेंद्रकमो देयक्कुमल्लियुं पद्मलेश्यामध्यमांशमक्कुं । शतारसहस्रारकल्पद्वयद ओं देश-तारेंद्रकमक्कुमदरोळु पद्मलेश्योत्कृष्टमुं शुक्ललेश्याजघन्यांशमुमक्कुं । आनतप्राणतारणाच्युतकल्प-चतुष्टयद आनत । प्राणत । पुष्पक । सातक । आरण । अच्युतमें बीयारुमिंद्रकंगळोळं अधोग्रैवेयकद सुदर्शन । अमोघ । सुप्रबुद्धमें ब मूरुमिंद्रकंगळोळं मध्यमग्रैवेयकदयशोधर । सुभद्र । सुविशालमें ब मूरु मिंद्रकंगळोळु उपरिमग्रैवेयद सुमनस । सौमनस । प्रीतिकरमें ब मूरुमिंद्रकंगळोळं अनुदिश- ५
विमानंगळ आदित्येंद्रकमो दरोळं अनुत्तरविमानंगळाबियागिर्द्द विजयादिश्रेणीबद्धंगळोळं शुक्ल-लेश्यामध्यमांशमक्कुं । अनुत्तरविमानंगळ सर्व्वार्त्थसिद्धींद्रकदोळु शुक्ललेश्योत्कृष्टांशमक्कुं । "भवणतियापुण्णगे असुहा" अशुभलेश्यात्रयं भवनत्रयापर्य्याप्तरोळेयक्कुमन्यत्र देवगत्यपर्य्याप्तरोळं पर्य्याप्तरोळं तंतम्म लेश्येगळेयक्कुमें बुदु तात्पर्यं ॥

यितु पूर्णापूर्णवैमानिकरुगळगे जन्मावासंगळरुवत्त मूरु पटलंगळप्पुवु । भावनरुगळावा- १०
संगळु रत्नप्रभावनियखरभागदोळगेळु कोटियुमेप्पत्तेरडु लक्षभवनंगळप्पुवु । व्यंतरवासंगळुम-संख्यातद्वीपसागरंगळोळु यथायोग्यंगळप्पुवु । ज्योतिष्करावासंगळु मनुष्यलोकद सुदर्शनमेरुवं सासिरद नूरिप्पत्तों दु योजनमं तोलगि चित्रावनियग्रभागदिंदं मेलेळुनूरतों भत्तु योजनमं नेगेदु नूरपत्तु योजनबाहल्यदिंदं संख्यातपण्णट्ठि प्रतरांगुलभक्तप्रतरप्रमितचंद्रसूर्य्यग्रहनक्षत्रतारकाविमानं-गळु लोकांतपर्य्यंतमिप्पुवो भवनत्रयंगळ निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु कर्म्मभूमिमनुष्यरुं संज्ञिगर्भज- १५
तिर्य्यंचरुगळुं कृष्णादिचतुर्लेश्यामिथ्यादृष्टिजीवंगळु मृतरागि पोगि भवनत्रयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु
मिथ्यादृष्टिगळागि पुट्टुवरु । मत्तमा कर्म्मभूमिगर्भजपर्य्याप्तपंचेंद्रियासंज्ञिमिथ्यादृष्टिजीवं तेजो-

---

शुक्रद्वयस्येकस्मिंश्च पद्ममध्यमांशः । शतारद्वयस्यैकस्मिंस्तदुत्कृष्टशुक्लजघन्यांशौ । आनतचतुष्कस्य षट्सु नवग्रै-वेयकानां नवस्वनुदिशानामेकस्मिन्ननुत्तरश्रेणीबद्धेषु च शुक्लमध्यमांशः सर्वार्थसिद्धावुत्कृष्टांशः । जन्मावासास्तु वैमानिकानां त्रिषष्टिपटलानि । भावनानां रत्नप्रभाखरभागे द्वासप्ततिलक्षाधिकसप्तकोटिभवनानि । व्यंतराणाम- २०
संख्यातद्वीपसमुद्राः । ज्योतिष्काणां सुदर्शनमेरुं तिर्यगेकविंशत्येकादशशतयोजनानि मुक्त्वा चित्रात उपरि नवत्यग्रसप्तशतयोजनानि गत्वा दशाग्रशतयोजनबाहुल्येन लोकांतं स्थितानि संख्यातपण्णट्ठिप्रतरांगुलभक्त-जगत्प्रतरमात्रविमानानि । मिथ्यादृष्टीनामुत्पत्तिः कर्मभूमिमनुष्यसंज्ञिगर्भजतिरश्चोः कृष्णादिचतुर्लेश्ययोर्भवनत्रये

इन्द्रकमें लान्तव युगलके दो इन्द्रकों-में और शुक्रयुगलके एक इन्द्रकमें पद्मलेश्याका मध्यम अंश है । शतारयुगलके एक इन्द्रकमें पद्मका उत्कृष्ट और शुक्लका जघन्य अंश है । आनतादि २५
चार स्वर्गोंके छह इन्द्रकोंमें नौ ग्रैवेयकों और अनुदिशोंके एक इन्द्रकमें तथा अनुत्तरोंके श्रेणी-बद्ध विमानोंमें शुक्लका मध्यम अंश है । सर्वार्थसिद्धिमें शुक्लका उत्कृष्ट अंश है । वैमानिक देवोंके जन्मावास—जहाँ उनका जन्म होता है ऐसे आवास-तरेसठ पटल हैं । भवनवासियों के रत्नप्रभा पृथिवीके खर पंक भागमें सात कोटि बहत्तर लाख भवन हैं । व्यन्तरोंके असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । ज्योतिषियोंके सुदर्शन मेरुसे तिर्यक् ग्यारह सौ इक्कीस योजन ३०
छोड़कर चित्रासे ऊपर सात सौ नब्बे योजन जाकर एक सौ दस योजनकी मोटाईमें लोक-पर्यन्त संख्यात पण्णट्ठी प्रमाण प्रतरांगुलोंसे भाजित जगत प्रतर प्रमाण विमान हैं । मिथ्या-दृष्टी कर्मभूमिया मनुष्य और संज्ञी गर्भज तिर्यञ्च, जिनके कृष्णादि चार लेश्या होती हैं,

लेश्यापरिणतनागि देवायुष्यमं पल्यासंख्यातैकभागस्थितिबंधयुतमं कट्टि मृतनागि बंदु भावनव्यंतरिगरुगळोळ् निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टियक्कुमेकें ज्योतिष्करोळ् पुट्टनेंदोडसंज्ञिजीवंगळुत्कृष्टंविद देवायुष्यक्के स्थितिबंधमं पल्यासंख्यातैकभागमात्रमने कट्टुगुमदु कारणमागि "तदष्ट भागोऽपरा" एंदितु ज्योतिष्करोळ् सर्व्वजघन्यायुष्यं पल्याष्टमभागविदं किरिदिल्लप्पुदरिंदमा ज्योतिष्करोळसंज्ञिजीवंगळ्पुट्टरेंबुदु सिद्धमक्कुं। मत्तमा भवनत्रयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळ् तिर्य्यग्जघन्यभोगभूमिजरुगळुं मनुष्यलोकस्थितोत्तममध्यमजघन्यभोगभूमितेजोलेश्यामिथ्यादृष्टि तिर्य्यग्मनुष्यरुगळुं कुमानुष्यरुगळुं देवायुष्यमं तद्योग्यमं कट्टि "भवणतिगामी मिच्छा" एंदितु मृतरागि बंदी भवनत्रयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरप्परागि मिथ्यादृष्टिगळ पंचविंशत्यादिचतुःस्थानंगळुं कट्टुवरु। २५। ए प २६। ए प। आ उ। २९। ति। म। ३०। ति। उ॥ भवनत्रयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरुगळावाव गतियिंदं बंदु पुट्टिदवरुगळेंदोडे तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळबद्धदेवायुष्यरुगळप्प प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिजीवंगळनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि कृष्णादिचतुर्लेश्याजीवंगळु मृतरागि बंदु पुट्टुवरु। सम्यग्दृष्टिगळारुं भवनत्रयदोळ् पुट्टरु। अदु कारणमागि निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु सम्यग्दृष्टिगळिल्ल। आ सासादनरुगळु द्विस्थानमने कट्टुवरु। २९। ति म। ३०। ति उ। वैमानिकरोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरु पर्य्याप्तरुगळुमप्परल्लि निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरु-

---

गर्भजासंज्ञिनस्तेजोलेश्यस्य भावनव्यंतरयोरेव तद्देवायुरुत्कृष्टस्थितिबंधस्य पल्यासंख्येयभागमात्रत्वात्। तिर्यग्जघन्यभोगभूमित्रिविधमनुष्यभोगभूमिषण्णवतिकुभोगभूमिजानां तेजोलेश्यानां भवनत्रये, न च सम्यग्दृष्टीनां बद्धदेवायुस्तिर्यग्मनुष्यप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टेरप्यनंतानुबंध्यन्यतमोदयेन तत्सम्यक्त्वं हृत्वैव कृष्णादिचतुर्लेश्याभिस्तत्रोत्पत्तेः। तेन निर्वृत्यपर्याप्ता मिथ्यादृष्टयोऽष्टाविंशतिकं विना पंचविंशतिकादीनि चत्वारि बध्नंति २५ ए प २६ ए प आ उ २९ ति म ३० ति उ। सासादने द्वे २९ ति म ३० ति उ। सौधर्मद्वयमिथ्यादृष्टिषु

मरकर भवनत्रिकमें जन्म लेते हैं। गर्भज असंज्ञी तेजोलेश्यावाले भवनवासी और व्यन्तरोंमें ही जन्म लेते हैं, क्योंकि असंज्ञीके उत्कृष्ट देवायुका स्थितिबन्ध पल्यके असंख्यातवें भाग ही होता है। तिर्यंच सम्बन्धी जघन्य भोगभूमि, जो मानुषोत्तर और स्वयंप्रभाचलके मध्यमें हैं, तीन प्रकारकी मनुष्य भोगभूमि, और छियानवे कुभोग भूमिमें उत्पन्न हुए तेजोलेश्यावाले जीव मरकर भवनत्रिकमें जन्म लेते हैं। किन्तु सम्यग्दृष्टि भवनत्रिकमें जन्म नहीं लेते हैं। क्योंकि जिसने देवायुका बन्ध किया है ऐसा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी तिर्यंच या मनुष्य भी अनन्तानुबन्धी कषायमें से किसी एकके उदयके द्वारा उस सम्यक्त्वका घात करके ही अर्थात् सासादन सम्यग्दृष्टी होकर कृष्ण आदि चार लेश्याओंके साथ भवनत्रिकमें उत्पन्न होता है।

अतः भवनत्रिकके निर्वृत्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि देव अठाईसके बिना पच्चीस आदि चारका बन्ध करते हैं—एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित २५ एकेन्द्रिय पर्याप्त आतप उद्योत सहित २६, तिर्यंच या मनुष्यगति सहित २९, तिर्यंचगति उद्योत सहित ३०। सासादन उनतीस-तीस दोको बाँधता है। सौधर्मयुगल सम्बन्धी मिथ्यादृष्टियोंमें मनुष्य अथवा तिर्यग्लोक सम्बन्धी कर्मभूमियाँ तिर्यंच, चरक, परिव्राजक आदि तथा द्रव्य जिनलिंगी आदि तेजोलेश्याके साथ मरकर उत्पन्न होते हैं। वे निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्थामें पच्चीस, छब्बीस, उनतीस और तीस-

गळोळु मिथ्यादृष्टिगळु सासादनरुं असंयतसम्यग्दृष्टिगळुमोळरल्लि सौधर्म्मकल्पद्वयद ऋतु-विमानमादियागि प्रभाविमानावसानमाद मूवत्तोंदुं पटलंगळोळिंद्रकश्रेणिबद्धप्रकीर्णकविमानंगळोळमार्वेल्ल उत्तरद क्षीणकल्पजदिविजग्गं तेजोलेश्ययेयक्कुमप्पुदरिंदं। तत्रत्य निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळोळावावगतिगळिंदं बंदु पुट्टुवरेंबोडे तिर्य्यग्लोकसंबंधिकर्म्मभूमितिर्य्यंचमिथ्यादृष्टिगळुं मनुष्यलोककर्म्मभूमितिर्य्यंचमिथ्यादृष्टिगळुं चरकपरिव्राजादिमिथ्यादृष्टिगळुं द्रव्यजिनलिंगधारिगळुमादियागि तेजोलेश्यामिथ्यादृष्टिगळु बद्धदेवायुष्यर्म्मृतरागि बंदी सौधर्म्मकल्पद्वयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळागि पुट्टुवरवर्गळुं पंचविंशतिषड्विंशतिनवविंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळं कट्टुवरु। २५। ए प। २६। ए प। आ। उ। २९। ति म। ३०। ति। उ॥

आ सौधर्म्मकल्पद्वयसासादनरोळु तिर्य्यग्मनुष्यासंयताविगुणस्थानत्रितयवर्त्तिगळु प्रथमोपशम द्वितीयोपशम सम्यक्त्वंगळननंतानुबंधि कषायोदयदिंदं किडिसि बद्धदेवायुष्यरुगळु मृतरागि बंदिल्लि सासादनरागि पुट्टवरवर्गळु स्वयोग्यनवविंशत्यादि द्विस्थानमं कट्टुवरु। २९। ति। म। ३०। ति उ॥ आ सौधर्म्मकल्पद्वयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तासंयत सम्यग्दृष्टिगळोळु सर्व्वभोगभूमिगळवेदकसम्यग्दृष्टिगळु कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळागिद्दुं क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्प जीवंगळुं क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळुं कर्म्मभूमितीर्त्थरहिततिर्य्यग्मनुष्यासंयतदेशसंयतरुगळुं मनुष्यप्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळुं सतीर्त्थासंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु बद्धदेवायुस्तेजोलेश्यासम्यग्दृष्टिगळु मृतरागि बंदी सौधर्म्मकल्पद्वयद निर्व्वृत्यपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळागि पुट्टुवर-अवर्गळु सतीर्त्थरादवर्गळेल्लं मनुष्यगतितीर्त्थयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। ३०। म। ती। तीर्त्थरहितरल्लं मनुष्य-

---

नरतिर्यग्लोककर्मभूमितिर्यंचः चरकपरिव्राजादयः द्रव्यजिनलिंग्यादयश्च तेजोलेश्ययोत्पद्यंते। ते निर्वृत्यपर्याप्तकपंचविंशतिकषड्विंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कानि २५ ए प २६ ए प आ उ २९ ति म ३० ति उ। तत्सासादनेषु देशसंयतांततिर्यंचः प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्रमत्तांतमनुष्या उभयोपशमसम्यक्त्वे च विराध्य बद्धदेवायुषः तेजोलेश्ययोत्पद्यंते ते स्वयोग्यनवविंशतिकादिद्वयं २९ ति म ३० ति उ। तदसंयतेषु सर्वभोगभूमिवेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टयः कर्मभूम्यसंयततिर्यंचः सतीर्थातीर्थासंयताद्यप्रमत्तांतमनुष्याश्च बद्धदेवायुष्कास्तेजोलेश्ययोत्पद्यन्ते

का बन्ध करते हैं। जिनके देवायुका बन्ध हुआ है ऐसे देशसंयत पर्यन्त तिर्यञ्च प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी और प्रमत्तगुणस्थान पर्यन्त मनुष्य प्रथम और द्वितीय उपशमसम्यक्त्वकी विराधना करके तेजोलेश्याके साथ सौधर्मयुगलमें सासादन सम्यग्दृष्टी होकर उत्पन्न होते हैं। वे निर्वृत्यपर्याप्तक दशामें उनतीस और तीसका बन्ध करते हैं। जिन्होंने देवायुका बन्ध किया है ऐसे सब भोग-भूमियोंके वेदक और क्षायिक सम्यग्दृष्टी, कर्मभूमिके देशसंयत पर्यन्त तिर्यञ्च, तीर्थंकर प्रकृतिकी सत्तासे सहित और रहित असंयतसे लेकर अप्रमत्त पर्यन्त मनुष्य तेजोलेश्याके साथ सौधर्मयुगलमें असंयत सम्यग्दृष्टी होकर उत्पन्न होते हैं। उनमें जिनके तीर्थंकरकी सत्ता होती है वे मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसका बन्ध करते हैं और जिनके नहीं होती वे मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध करते हैं। पद्म-शुक्ललेश्या सहित भोगभूमिया असंयत भी मरते समय तेजोलेश्यावाले होकर सौधर्मयुगलमें उत्पन्न

गतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २९ । म ॥ भोगभूमिजरोळु पद्मशुक्ललेश्याऽसंयतरुगळ्ल्लमेल्लि पुट्टुवरेंदोडे अवर्गळु मी सौधर्म्मकल्पद्वय निर्व्वृत्यपर्य्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिगळागिये पुट्टुवरेकेंदोडे "सोहम्म दु जाइणो सम्मा" येंदु त्रिलोकसारदोळु अवर्गेंयुमिल्लिये जननिनियमं पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदमा पद्मशुक्ललेश्या जीवंगळु मरणकालदोळु पद्मशुक्लंगळं परिहरिसि परस्थानसंक्रमणदिंदं तेजोलेश्ययोळु परिणमिसि मृतरागि बंदु पुट्टुवरप्पुदरिंदं । पद्मशुक्ललेश्यासंयताद्विचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळागमपूर्व्वकरणादि शुक्ललेश्यासंयमिगळागमिल्लि जननमिल्लेकेंदोडिल्लितल्लेश्येगळऽभावमप्पुदरिंदं । परस्थानलेश्यासंक्रमणदिंदं तेजोलेश्या परिणतरादोडे पुट्टुवरु । यिल्लि सौधर्म्मैशानकल्पविभागमेंतेंदोडे—

'उत्तरसेढीबद्धा वायव्वीसाण कोणगपइण्णा ।
उत्तरइंदणिबद्धा सेसा दक्खिणदिसिंदपडिबद्धा ॥' —त्रि. सा. ४७६ गा. ।

एंदितेल्ला उत्तरदक्षिणेंद्रप्रतिबद्धकल्पविभागमरियल्पडुगुं । सानत्कुमारकल्पद्वयद नंदनेंद्रकं मोदल्गोंडु सप्तमचक्रेंद्रकश्रेणीबद्धविमानादिगळोळं तेजोलेश्यासंभवमुंटादोडं भोगभूमिजरुगळागा कल्पद्वयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळु जननमिल्ल । शेषरुगळगे जननमुंटु । आ निर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे तिर्य्यग्मनुष्यगतियुतस्थानद्वयमे बंधमप्पुवु । २९ । ति । म । ३० । ति उ ॥ सासादनरु गळगमंते बंधमक्कुं । २९ । ति । म । ३० । ति उ ॥ तत्रत्यासंयतसम्यग्दृष्टिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरुगळु मनुष्यगति मनुष्यगतितीर्त्थयुतद्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । म ३० । म ति । आ सानत्कुमारकल्पद्वय चरमचक्रेंद्रकं मोदल्गोंडु शतारेंद्रकावसानमादेंटुं पटलंगळोळेंटुं कल्पंगळ निर्व्वृत्य-

---

ते सतीर्थाः मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कं, अतीर्थाः मनुष्यगतिनवविंशतिकं, भोगभूमिपद्मशुक्ललेश्यासंयता अपि सोहम्मदुजाइणो सम्मेति मरणे तेजोलेश्यां प्राप्य तत्रोत्पद्यन्ते । असंयतादिपद्मशुक्ललेश्या अपूर्वकरणादिशुक्ललेश्या अपि तामेव प्राप्य तत्रोत्पद्यन्ते

उत्तरसेढीबद्धा वायव्वीसाणकोणगपइण्णा ।
उत्तरइंदणिबद्धा सेसा दक्खिणदिसिंदपडिबद्धा ॥१॥

इति सौधर्मैशानविभागः । सानत्कुमारद्वये चक्रेंद्रकश्रेणीबद्धादिपर्यंतं तेजोलेश्यास्वपि न भोगभूमिजानां तत्रोत्पत्तिः, शेषाणां स्यात् । तन्निर्वृत्यपर्याप्ताः मिथ्यादृष्टिसासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतियुते द्वे २९ ति म ३० ति उ । असंयताः मनुष्यगतियुतमनुष्यगतितीर्थयुते द्वे २९ म ३० म ति । उपर्यष्टकल्पेषु चरकादिकर्म-

---

होते हैं । पद्म-शुक्ललेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टी और शुक्ललेश्यावाले अपूर्वकरण आदि भी मरते समय तेजोलेश्यावाले होकर ही सौधर्मयुगलमें उत्पन्न होते हैं ।

उत्तर दिशाके श्रेणीबद्ध और वायव्य तथा ईशान कोनेके प्रकीर्णक विमान तो उत्तरेन्द्रके अधीन होते हैं । और शेष दक्षिणेन्द्र सौधर्मके अधीन होते हैं । यह सौधर्म और ईशानका विभाग है ।

सानत्कुमारयुगलमें चन्द्र इन्द्रक श्रेणिबद्ध पर्यन्त तेजोलेश्या है फिर भी वहाँ भोगभूमिजोंकी उत्पत्ति नहीं है, शेष जीवोंकी उत्पत्ति है । वहाँ निर्वृत्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि और सासादन तिर्यञ्च या मनुष्यगति सहित उनतीस और तीसके स्थानको बाँधते हैं । असंयत

पर्य्याप्तदिविजरोळ्ल्लं पद्मलेश्ययेयक्कुमप्पुदरिंदं। तत्रत्य निर्व्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टिजीवंगळोळु पूर्वोक्तचरकादि पद्मलेश्यामिथ्यादृष्टिगळं कर्म्मभूमितिर्य्यंग्मनुष्यपद्मलेश्याजीवंगळुं बद्धदेवायुष्यर्म्मृतरागि बंदु पुट्टुवरु। पुट्टिट तिर्य्यंग्गतिमनुष्यगतियुतद्विस्थानंगळं कट्टुवरु। २९ ति। म। ३०। ति। उ। तत्रत्यसासादनरुगळुमाद्विस्थानंगळने कट्टुवरु। २९। ति। म। ३०। ति उ॥ तत्रत्यासंयतनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरुगळुं स्वयोग्यनवविंशत्यादि द्विस्थानंगळं कट्टुवरु। २९। म। ३०। म ति॥ शतारेंद्रकं मोदल्गोंडु प्रीतिकरविमानावसानमाद पदिनय्दुं पटलंगळ चतुष्कल्पजरुगळुं नवग्रैवेयकसमुद्भूतरुगळप्पहमिंद्ररुगळुं शुक्ललेश्यरुगळेयप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टिगळु मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। २९। म। तत्रत्य सासादनरुगळु मा स्थानमनोंदने कट्टुवरु। २९। म। तत्रत्यासंयतसम्यग्दृष्टिगळुं मनुष्यगतियुतनवविंशतिस्थानमुमं तीर्त्थमनुष्यगतियुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थामुमं कट्टुवरु। २९। म। ३०। म ती॥ आदित्येंद्रकं मोदल्गोंडु सर्व्वार्थसिद्धिपर्य्यंतमाद दिविजरोळेल्लगं शुक्ललेश्ययेयक्कुमसंयतसम्यग्दृष्टिगळेयप्परवग्गंळोळु नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळु बंधमप्पुवु। २९। म। ३०। म ति॥

इल्लिगे प्रस्तुतगाथासूत्रंगळु—

'णरतिरिय देस अयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा।
णर अयददेसमिच्छा गेवेज्जंतोत्ति गच्छंति॥
सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा।
सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं॥

भूमितिर्यग्मनुष्या बद्धदेवायुषः पद्मलेश्ययोत्पद्यंते। तन्मिथ्यादृष्टिसासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतियुते द्वे २९ ति म ३० ति उ। असंयताः स्वयोग्ये द्वे २९ म ३० म ती। आनतादिचतुःकल्पनवग्रैवेयकशुक्ललेश्यामिथ्यादृष्टिसासादनाः मनुष्यगतिनवविंशतिकं। तदसंयताः नवानुदिशपंचानुत्तरशुक्ललेश्यासंयताश्च तच्च तीर्थमनुष्यगतित्रिंशत्कं च। अत्र प्रस्तुतगाथा—

णरतिरिय देसअयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा। णर अयददेसमिच्छा गेवेज्जंतोत्ति गच्छंति॥५४५॥

सम्यग्दृष्टि मनुष्यगति सहित उनतीस और मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसका बन्ध करते हैं। ऊपरके आठ कल्पोंमें जिन्होंने देवायुका बन्ध किया है ऐसे चरक आदि कर्मभूमिया तिर्यंच मनुष्य पद्मलेश्याके साथ उत्पन्न होते हैं। वे मिथ्यादृष्टि और सासादन तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीस-तीसका बन्ध करते हैं। और असंयत मनुष्यगति सहित उनतीस या मनुष्यगति तीर्थ सहित तीस का बन्ध करते हैं। आनत आदि चार कल्प, और नौ ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्या है। वहाँ मिथ्यादृष्टि और सासादन मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध करते हैं। तथा वहाँके असंयत और नौ अनुदिश पाँच अनुत्तरवासी असंयत मनुष्यगति सहित उनतीस और मनुष्यगति तीर्थ सहित तीसको बाँधते हैं। यहाँ प्रासंगिक गाथा कहते हैं—

देशव्रती और असंयत मनुष्य तथा तिर्यञ्च उत्कृष्टसे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। द्रव्यसे निर्ग्रन्थ और भावसे असंयत, देशसंयत या मिथ्यादृष्टि ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न

चरया य परिव्वाजा बम्मोत्तच्चुद पदोत्ति आजीवा ।
अणुदिस अणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जांति ॥
सोहम्मो वर देवो सलोगवाला य दक्खिणमरिंदा ।
लोयंतियसव्वट्ठा तद्दो चुदा णिव्वुदिं जांति ॥
णरतिरियगदीहिंतो भवणतियादो य णिग्गया जीवा ।
ण लहंते ते पदवि[illegible] सलागपुरिसाणं ॥
सुहसयणग्गे देवा जायंते दिणयरोव्व पुव्वणगे ।
अंतोमुहुत्तपुण्णा सुगंधि[illegible]सुहफासु सुचिदेहा ॥
आणंदतूर जयथुदिरवेण जम्मं विबुज्झे संपत्तं ।
दट्ठूण सपरिवारं गयजम्मं ओहिणा णच्चा ॥
धम्मं पसस्सिदूण ण्हादूण वहेभिसेयलंकारं ।
लद्धा जिणाभिसेयं पूजं कुव्वंति सुद्दिट्ठी ॥

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा । सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ॥५४६॥
चरया य परिव्वाजा बह्मोत्तरचुदपदोत्ति आजीवा । अणुदिसअणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जंति ॥
सोहम्मो वरदेवो सलोगवाला य दक्खिणमरिंदा । लोयंतिय सव्वट्ठा तदो चुदा णिव्वुदिं जंति ॥
णरतिरियगदीहिंतो भवणतियादो य णिग्गया जीवा । ण लहंते ते पदवि तेसट्ठिसलागपुरिसाणं ॥
सुहसयणग्गे देवा जायंते दिणयरोव्व पुव्वणगे । अंतोमुहुत्तपुण्णा सुगंधिसुहफाससुचिदेहा ॥
आणंदतूरजयथुदिरवेण जम्मं विबुज्झ संपत्तं । दट्ठूण सपरिवारं गयजम्मं ओहिणा णच्चा ॥
धम्मं पसंसिदूणं ण्हादूण दहेभिसेयलंकारं । लद्धा जिणाभिसेयं पुज्जं कुव्वंति सुद्दिट्ठी ॥८॥

होते हैं । सम्यग्दृष्टी महाव्रती सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं । भोगभूमिया सम्यग्दृष्टी सौधर्मयुगलमें और मिथ्यादृष्टी भवनत्रिकमें जन्म लेते हैं । उत्कृष्ट तापसी भवनत्रिकमें जन्म लेते हैं । चरक और परिव्राजक ब्रह्मोत्तर पर्यन्त जन्म लेते हैं । आजीवक अच्युत-पर्यन्त जन्म लेते हैं । अनुदिस अनुत्तरसे च्युत हुए जीव नारायण-प्रतिनारायण नहीं होते ।

सौधर्मदेवकी इन्द्राणी शची, लोकपाल सहित दक्षिण दिशाके सौधर्म आदि इन्द्र, लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धिके देव च्युत होनेपर मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं । मनुष्यगति, तिर्यंचगति, और भवनत्रिकसे निकले हुए जीव तरेसठ शलाका पुरुषोंकी पदवीको प्राप्त नहीं करते ।

सुख शय्या पर—उपपाद शय्याको प्राप्त हुए देव ऐसे जन्म लेते हैं जैसे पूर्व दिशामें उदयाचलपर सूर्य उगता है । अन्तर्मुहूर्तमें ही उनका शरीर पूर्ण होकर सुगन्ध, शुभ स्पर्शसे पवित्र हो जाता है ।

आनन्दके वादित्र और जयकारकी ध्वनिके शब्दसे अपने प्राप्त जन्मको जान परिवार सहित सबको देख अवधिज्ञानके द्वारा अपने विगत जन्मको जानता है । तब धर्मकी प्रशंसा करके सरोवरमें स्नान कर और वस्त्राभूषणसे भूषित हो सम्यग्दृष्टी देव जिनदेवके

सुरबोहिया वि मिच्छा पच्छा जिणपूजणं पकुव्वंति ।
सुहसायरमज्झगया देवा ण विदंति गयकालं ॥
महपूजासु जिणाणं कल्लाणेसु य पजांति कप्पसुरा ।
अहमिंदा तत्थ ठिया णमंति मणि मौलिघडिदकरा ॥
विविहतवरयणभूसा णाणसुचीसीलवत्थसोम्मंगा । ५
जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छी य ॥'—त्रि. सा. ५४५-५५४ गा. ।

ई सूत्रार्थंगळेल्लं सुगमंगळु । यिल्लि चतुर्गंतिसाधारणमिथ्यादृष्टयादि चतुर्ग्गुणस्थानंगळु ।

अयदोत्तिछलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।
तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्संतु ॥

एंदितु मिथ्यादृष्टि गुणस्थानदोळु षड्लेश्येगळुं सासादनमिश्रासंयतरु गळोळं षड्लेश्येगळुं १०
तिर्य्यंमनुष्यापेक्षेयिंदं देशसंयतनोळु त्रिलेश्येगळुं शेषगुणस्थानंगळोळेल्लं मनुष्यापेक्षेयिंदं शुक्ल-
लेश्येयुं पेळल्पट्टुविंतु अशुभलेश्यात्रयदोळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळुं तेजोलेश्येयोळु पंचविं-
शत्यादिषट्स्थानंगळुं पद्मलेश्येयोळु अष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळुं शुक्ललेश्येयोळु अष्टाविंशत्या-
दिपंचस्थानंगळुं मिथ्यादृष्टयादि सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं यथासंभवंगळप्पुवंते पेळल्पट्टुवु ॥

सुरबोहियावि मिच्छा पच्छा जिणपूजणं पकुव्वंति । सुहसायरमज्झगया देवा ण विदंति गयकालं ॥ १५
महपूजासु जिणाणं कल्लाणेसु य पजांति कप्पसुरा । अहमिंदा तत्थ ठिया णमंति मणिमौलिघडिदकरा ॥
विविहतवरयणभूसा णाणसुचीसीलवत्थसोम्मंगा । जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छी य ॥
अत्र— अयदोत्ति छल्लेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये । तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगठाणं अलेस्सं तु॥१॥
इत्यशुभलेश्यात्रये बंधस्थानानि त्रयोविंशतिकादीनि षट्, तेजोलेश्यायां पंचविंशतिकादीनि षट्,
पद्मलेश्यायामष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि, शुक्ललेश्यायां तदादीनि पंच, सूक्ष्मसांपरायांतं यथासंभवं ॥५४९॥ २०

अभिषेकपूर्वक पूजन करते हैं ।

जो मिथ्यादृष्टि देव होते हैं वे भी अन्य देवोंके द्वारा समझाये जानेपर जिनपूजन करते हैं । सुख-सागरमें निमग्न देव बीते कालको नहीं जान पाते—इतना समय कैसे बीत गया यह उन्हें पता नहीं चलता ।

कल्पवासी देव जिन-भगवान्की महापूजाओंमें तथा तीर्थंकरोंके कल्याणकमहोत्सवों- २५
में सम्मिलित होते हैं । किन्तु अहमिन्द्र देव अपने स्थानपर रहकर ही दोनों हाथ मणिजटित शिरोमुकटसे लगाकर नमस्कार करते हैं ।

जो विविध प्रकारके तपश्चरणसे भूषित हैं, ज्ञानसे पवित्र हैं, शीलरूपी वस्त्रसे जिनके सौम्य अंग वेष्टित हैं, देवलक्ष्मी और मुक्तिलक्ष्मी उन्हींके वशमें होती है । अस्तु ।

चतुर्थ असंयत गुणस्थान तक छह लेश्या तथा देशविरत आदि तीन गुणस्थानोंमें तीन ३०
शुभलेश्या होती है । उसके पश्चात् शुक्ललेश्या होती है । अयोगी लेश्यारहित हैं ।

तीन अशुभ लेश्याओंमें तेईस आदि छह बन्धस्थान होते हैं । तेजोलेश्यामें पचीस आदि छह बन्धस्थान होते हैं । पद्मलेश्यामें अठाईस आदि चार बन्धस्थान होते हैं । शुक्लमें अठाईस आदि पाँच बन्धस्थान होते हैं । ये बन्धस्थान सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान पर्यन्त यथायोग्य जानना ॥५४९॥ ३५

भव्वे सव्वमभव्वे किण्हं वा उवसमम्मि खइए य ।
सुक्कं वा पम्मं वा वेदगसम्मत्त ठाणाणि ॥५५०॥

भव्ये सर्व्वंमभव्ये कृष्णवत् उपशमे क्षायिके च । शुक्लवत् पद्मवद्वेदकसम्यक्त्वस्थानानि ॥

भव्यमार्गणेयोळु सर्व्वमुं बंधयोग्यंगळप्पुवेकेंदोडे चतुर्गतिसाधारणमप्पुदरिंदं । मिथ्या-
दृष्टियोळु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि ति च । अ । सं । म । अ प २६ । ए प । आ उ । २८ । न । दे । २९ । बि ति च अ । सं । म ३० । बि ति च अ । सं । प उ ॥ सासादननोळु २८ । दे । २९ । म । ति । ३० । ति उ ॥ मिश्रनोळु । २८ । दे २९ । म ॥ असंयतनोळु । २८ । दे । २९ । दे ति । म ३० । मति ॥ देशसंयतनोळु । २८ । दे २९ । दे । ति ॥ प्रमत्तनोळु २८ । दे २९ । दे ति ॥ अप्रमत्तनोळु २८ । दे २९ । दे । ति । ३० । दे । आ । २ । ३१ । दे आ ति ॥ अपूर्व्वकरण-
नोळु २८ । दे । २९ । दे ति । ३० । दे आ । २ । ३१ । दे । आ । ती । १ ॥

अनिवृत्तिकरणनोळु । १ ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु । १ ॥ अभव्यनोळु कृष्णलेश्ययोळ् पेळ्द चतुर्गतियुतत्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळप्पुवु । मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमो देयक्कुं । २३ । ए आ २५ । ए प । बि ति । च । अ । सं । म । अ प । २६ । ए प । आ । उ । २८ । न । दे । २९ । म । ति । ३० । ति । उ ॥ सम्यक्त्व मार्गणेयोळु उपशमसम्यक्त्वदोळं क्षायिकसम्यक्त्वदोळं शुक्ललेश्ययोळु पेळ्दंते अष्टविंशत्यादि पंचस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । उपशमदोळु २८ । दे । २९ । दे ति । म । ३० । दे । आ । म । ती । ३१ । दे । आ । ति । १ ॥ क्षायिकसम्यक्त्वदोळु २८ । दो २९ । म । दे । ति । ३० । दे आ । म । ति । ३१ । दे आ ती । १ ॥ वेदकसम्यक्त्वदोळु पद्मलेश्ययोळु पेळ्द अष्टाविंशत्यादिचतुःस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २८ । दे । २९ । दे । ति । म ३० । दे आ । मति । ३१ । दे आ ती ॥ इल्लि सम्यक्त्वमें बुदें तेंदोडे सम्यग्भावः सम्यक्त्वमें दितु संसारविच्छेद-
कारणजीवादिपदार्थयाथात्म्यप्रतिपत्तिश्रद्धानलक्षणभव्यजीवपरिणामविशेषमें बुदर्थं । अंतप्प सम्यक्त्वमुपशमक्षायिकवेदकभेदर्दिदं त्रिविधमक्कुमल्लियुपशमसम्यक्त्वं प्रथमोपशम-द्वितीयोपशम भेदर्दिदं द्विविधमक्कुमल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वं चतुर्गतिजपर्य्याप्तरोळल्लदे अपर्य्याप्तरोळु संभविसदेकेंदोडे :--

---

भव्यमार्गणायां सर्वाणि सर्वगुणस्थानसंभवात् । अभव्ये कृष्णलेश्यावच्चतुर्गतियुतत्रयोविंशतिकादीनि षट् मिथ्यादृष्टिसंबंधीन्येव । सम्यक्त्वमार्गणायामुपशमक्षायिकयोः शुक्ललेश्यावदष्टाविंशतिकादीनि पंच । वेदके पद्मलेश्यावत्तदादीनि चत्वारि । सम्यक्त्वं सम्यग्भावः, संसारछेदकारणजीवादिपदार्थयाथात्म्यप्रतिपत्तिश्रद्धा-

---

भव्यमार्गणामें सब बन्धस्थान हैं क्योंकि उसमें सब गुणस्थान होते हैं। अभव्यमें कृष्णलेश्याकी तरह चार गति सहित तेईस आदि छह बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि सम्बन्धी ही होते हैं। सम्यक्त्व मार्गणामें उपशम और क्षायिकमें शुक्ललेश्याकी तरह अठाईस आदि पाँच बन्धस्थान होते हैं। वेदकमें पद्मलेश्याकी तरह अठाईस आदि चार होते हैं। सम्यक्-भावको सम्यक्त्व कहते हैं। वह संसारके छेदका कारण है। जीवादि पदार्थोंकी यथार्थ प्रतिपत्तिपूर्वक श्रद्धान उसका लक्षण है। वह भव्यजीवका परिणाम विशेष है। उसके तीन

दंसणमोहक्खवणा खवगा चडमाण पढमपुव्वा य ।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥

येंबितु प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळु मरणमिल्लप्पुदरिंदं । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं मनुष्यपर्य्याप्तरोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तविबिजरोळं संभविसुगुं । क्षायिकसम्यक्त्वं चतुर्ग्गतिजपर्य्याप्तरोळं घर्म्मेय निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळं भोगभूमितिर्य्यग्मनुष्यनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळं सौधर्म्मादिसर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतमाद विबिजरोळमक्कुं । वेदकसम्यक्त्वं चतुर्ग्गतिजपर्य्याप्तरोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळमक्कुमल्लि प्रथमोपशमसम्यक्त्वमें तप्प पर्य्याप्तरोळमक्कुमें दोडे :—

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो ।
पढमुवसम्मं गेण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्मि ॥

एंबितु नारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवपर्य्याप्तरोळमक्कुमल्लि । तिर्य्यंचरोळसंज्ञिजीवव्यवच्छेदार्त्थं संज्ञिजीवंगळें दु पेळल्पट्टुवा संज्ञिजीवंगळोळु लब्धपर्य्याप्त निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरं व्यवच्छेदिसल्वेडि पूर्णरुं अपर्य्याप्तरोळु संभूच्छिमंगळं कळेयल्वेडि गब्भजरुमा गर्भजरोळु संक्लिष्टरं परिहरिसल्वेडि विशुद्धरुमा विशुद्धरोळु अनाकारोपयोगरं परिहरिसल्वेडि साकारोपयोगयुक्तरुमप्प

नलक्षणभव्यजीवपरिणामविशेषः । तच्चौपशमिकं क्षायिकं वेदकमिति त्रेधा । तत्राद्यं प्रथमद्वितीयभेदाद्वेधा । तत्र प्रथमं—

दंसणमोहक्खवणा खवगा चडमाणपढमपुव्वा य ।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥

इति चतुर्गतिपर्याप्तेष्वेव नापर्याप्तेषु । द्वितीयं पर्याप्तमनुष्यनिर्वृत्यपर्याप्तवैमानिकयोरेव । क्षायिकं घर्मानारकभोगभूमितिर्यग्भोगकर्मभूमिमनुष्यवैमानिकेष्वेव पर्याप्तापर्याप्तेषु । वेदकं चातुर्गतिपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तेषु । तत्र तत्प्रथमं कीदृग्जीवो गृह्णीयात् ?

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्धसागारो ।
पढमुवसम्मं गेण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमम्मि ॥

भेद हैं—औपशमिक, क्षायिक और वेदक । औपशमिकके दो भेद हैं— प्रथम और द्वितीय । 'दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले, क्षपकश्रेणीवाले, चढ़ते अपूर्वकरणके प्रथम भागवाले, प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले, और सातवें नरकमें सासादन आदि गुणस्थानोंमें चढ़े जीव मरते नहीं हैं ।' अतः उन दोनोंमें-से प्रथमोपशम सम्यक्त्व चारों गतिमें पर्याप्त जीवोंमें ही होता है, अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होता । द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पर्याप्त मनुष्य और निर्वृत्यपर्याप्त वैमानिक देवोंमें होता है ।

क्षायिक सम्यक्त्व घर्मापृथिवीके नारकी, भोगभूमिया तिर्यञ्च, भोगभूमि और कर्मभूमिके मनुष्य और वैमानिक देवोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त दशामें होता है । वेदक सम्यक्त्व चारों गतिके पर्याप्तक और निर्वृत्यपर्याप्तक जीवोंके होता है । प्रथमोपशम सम्यक्त्वको कैसा जीव ग्रहण करता है, यह कहते हैं—

---

१. मिस्सा आहारस्सय इति पूर्व्वपाठः ।

चतुर्गतिय सादिमिथ्यादृष्टिजीवंगळ्गे मिथ्यात्वानंतानुबंधिकषायोदयंगळिंदं जिनोक्तजीवादिपदार्थयाथात्म्यप्रतिपत्तिश्रद्धानलक्षणसम्यक्त्वपराङ्मुखंगें दोरेकोंड क्षयोपशमविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यताकरणलब्धि प्रभावंगळिंदं सम्यक्त्वपराङ्मुखत्वहेतु मिथ्यात्वानंतानुबंधिघातिकर्म्मंगळगुदयमागदंतु प्रशस्तोपशमनविधानदिंदमुपशमिसि एकचत्वारिंशद्दुरितंगळ बंधमं केडिसुत्तमसंयतदेशसंयताप्रमत्तरोळुदयिसिद प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्त्तप्रमाणदोळप्रमत्तसंयतंगे प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्त्तसहस्रंगळक्कुमप्पुदरिंदं प्रमत्तसंयतनोळं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमक्कुमें बुदर्थं ॥ मेणी प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मिश्रप्रकृतियुमनुद्वेल्लनमं माडिद चतुर्गतिय सादिमिथ्यादृष्टियुमनादिमिथ्यादृष्टियुं मेणा करणत्रयपरिणामंगळिंदमनंतानुबंधिकषायंगळनु मिथ्यात्वप्रकृतियुमनेयुपशमिसि स्वीकरिसि सम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु सादिमिथ्यादृष्टिचरनें तु गुणसंक्रमणदिंदं प्रथमोपशमसम्यक्त्वपरिणामयंत्रदिंदं कोद्रवदोळें तंते मिथ्यात्वद्रव्यक्के त्रिधाकरणमक्कुमप्पुदरिंदं सम्यक्त्वप्रकृतियुं मिश्रप्रकृतियुं सत्वमप्पुवु । अल्लि नारकरुगळ्रो घर्म्मे वंशे मेघेगळोळु नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळु बंधमप्पुवु । २९ । म । ३० । म ती । शेष पृथ्विगळ नारकरुगळोळु मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमों दे बंधमक्कु । २९ । म । मो पर्य्याप्तविषयप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळोळु तीर्त्थयुतबंधस्थानमें तु संभविसुगुमेंदोडे :—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादि चत्तारि ।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥

एंदितु केवलिद्वयश्रीपादोपांतदोळिद्दु मनुष्यं षोडशभावनाप्रभावदिंदं तीर्त्थबंधमं प्रारंभिसुगुमल्लदो पर्य्याप्तनारकप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियोळु तीर्त्थयुतनामबंधस्थानं विरुद्धमक्कुमें केंदोडे विरुद्धमिल्लेकेंदोडे नीनें दंते केवलिद्वय श्रीपादोपांतदोळु तीर्त्थकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसिद वेदकप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिमनुष्यरुगळु प्राग्बद्धनरकायुष्यरुगळु मरणकालदोळु मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिंदं सम्यक्त्वमं केडिसि घर्म्मादित्रयदोळु पुट्टिशरीरपर्य्याप्तिगळिंदं मेलेयुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि तत्तीर्त्थयुतस्थानमं नियमदिंदं कट्टुवरप्पुदरिंदं । सम्यक्त्वग्रहणकालदोळु साकारोपयोगयुक्तनागल्वेळ्कुमें ब नियमनुंटप्पुदरिनिल्लि नारकरुगंतर्थावबोधमें तक्कुमें दोडे तृतीयपृथ्वीवरं

इति चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिरेव, सोऽपि नासंज्ञी ततः संज्ञ्येव, सोऽपि न लब्ध्यपर्याप्तः निर्वृत्यपर्याप्तश्च ततः पूर्ण एव । सोऽपि न संमूर्छिमस्ततो गर्भज उपपादजो वा । सोऽपि न संक्लिष्टस्ततो विशुद्ध एव, सोऽपि न

चारों गतिका मिथ्यादृष्टि ही प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करता है। वह भी असंज्ञी नहीं ग्रहण करता। अतः संज्ञी ही ग्रहण करता है। संज्ञी भी लब्ध्यपर्याप्त या निर्वृत्यपर्याप्त ग्रहण नहीं करता। अतः पर्याप्तक ही ग्रहण करता है। पर्याप्तक भी सम्मूर्छन-

---

१. ज्ञानोपयोगः । २. तत्त्वज्ञानं-नैसर्गिकसम्यक्त्वमपि तत्त्वबोधपूर्वकमेव तथापि सम्यक्त्वग्रहणकाले परोपदेशाभावात्तस्य सम्यक्त्वस्य व्यपदेशः तदुक्तं:—विना परोपदेशेन सम्यक्त्वग्रहणक्षणे । तत्त्वबोधो निसर्गः स्यात्तद्धृतोधिगमश्च सः ॥ इति ॥ जिनबिंबावलोकादिनिसर्गोऽल्पप्रयासतः । ज्ञेयश्चाधिगमस्तत्त्वविचारचतुरा मतिः ॥ इत्याचारसारे ॥

देवप्रतिबोधनमुंटप्पुदरिंदं । अथवा तन्निसर्गादधिगमाद्वा सम्यक्त्वमुत्पद्यते एंबितु पेळल्पट्टुदिल्लि निसर्गमेंबुदु स्वभावमक्कुमधिगममेंबुदर्थावबोधमक्कुमल्लि निसर्गजदोळर्थावबोधमुंटो मेणिल्लमो येंतलानुमर्थावबोधमुंटक्कुमप्पोडदुवुमधिगमजमक्कुमर्थांतरमल्तेंतलानुमर्थावबोधरहितमक्कुमप्पोडेंतनवबुद्धतत्वंगर्थश्रद्धानमेंदितेंबोडदु बोधमल्तेकेंबोडे निसर्गजदोळमधिगमजदोळमंतरंगकारणं समानमक्कुमदाउदें बोडे दर्शनमोहोपशममुं दर्शनमोहक्षयमुं दर्शनमोहक्षयोपशममुमेंबीयंतरंगकारणमुंटागुत्तिरलावुदों दाचार्य्यविगळुपदेशमिल्लदेयुं सम्यक्त्वं पुट्टदुगुमदु नैसर्गिकमक्कुमावुदों दाचार्य्यादिगळिनर्थोपदेशपूर्व्वकं जीवाद्यधिगमनिमित्तमदधिगमजमेंदितेंदरोळमिदु भेदमक्कुमदुकारणदिदं । दर्शनमोहोपशमविनादुदुपशमसम्यक्त्वमक्कुमप्पुदरिंदं । नैसर्गिकं देशनानिरपेक्षकमुमक्कुमेंबुदर्थं ॥

तिर्य्यंचरोळ् संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तगर्भजविशुद्धसाकारोपयोगयुक्तं मिथ्यादृष्टिप्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसुत्तमप्रत्याख्यानावरणोदयदिंदमसंयतनक्कुं । प्रत्याख्यानावरणोदयदिंदं देशसंयतनुमक्कुमा प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्त्तसंपर्य्यंतं देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २८ । दे ॥ मनुष्यगतियोळं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमक्कुमप्पोडं :—

चत्तारि वि छेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥

एंबितु मनुष्यरुगळुं नाल्कुं गतिगळगे बद्धायुष्यरादोडं सम्यक्त्वमं स्वीकरिसुवरु । तत्रापि देवायुष्यमल्लवितरायुस्त्रितयं सत्वमुळ्ळ जीवनोळु अणुव्रतमहाव्रतंगळागवु । एंबितु चतुर्गतिबद्धायुष्यरुमबद्धायुष्यरुगळुमप्प विशुद्धसाकारोपयोगयुक्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळु सप्तप्रकृतिगळनुपशमिसि अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानावरणसंज्वलन-देशघातिस्पर्द्धकोदयंगळिंदमसंयतनुं देशसंयतनुम-

---

अनाकारोपयोगस्ततः साकारोपयोग एव, सोऽपि:—

चत्तारि वि छेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥

इत्यबद्धायुष्को बद्धायुष्को वा, सोऽपि सादिरनादिर्वा । तत्र सादिर्यदि सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिसत्त्वस्तदा सप्तप्रकृतेः तदसत्त्वस्तदा सोऽप्यनादिरपि मिथ्यात्वानंतानुबंधिनः पंचैव क्षयोपशमविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यता-

---

जन्मवाला ग्रहण नहीं करता। अतः गर्भज या उपपाद जन्मवाला होना चाहिए। वह भी संक्लेशी न हो, अतः विशुद्ध परिणामी होना चाहिए। वह भी दर्शनोपयोग अवस्थामें न हो, ज्ञानोपयोगकी अवस्थामें हो। कहा है—

'पूर्वमें चारों गतिकी आयु बाँधी हो फिर भी सम्यक्त्व हो सकता है। किन्तु अणुव्रत और महाव्रत देवायुको छोड़ अन्य आयुका बन्ध जिसके हुआ है उसके नहीं होते।'

इस वचनसे वह बद्धायुष्क हो या अबद्धायुष्क हो, सादि मिथ्यादृष्टि हो या अनादि मिथ्यादृष्टि हो। यदि वह सादि मिथ्यादृष्टि है और उसके सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीयका सत्त्व है तो उसके तीन दर्शनमोह और चार अनन्तानुबन्धी ये सात प्रकृतियाँ हैं।

प्रमत्तप्रमत्तरुगळुमप्परल्लि असंयतदेशसंयतप्रमत्तसंयतरुगळु देवगतियुताष्टाविंशत्यादि द्वित्रिस्थानंगळं कट्टुवरेकेंदोडे २८। दे २९। दे ती। प्रथमोपशमसम्यक्त्वदोळं तीर्थबंध प्रारंभमुंटप्पुदरिंदं। अप्रमत्तसंयतनोळु अष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळं बंधमप्पुवु। २८। दे। २९। दे ति। ३०। दे आ। ३१। दे आ ती। देवगतियोळु भवनत्रयं मोदलागियुपरिमग्रैवेयकावसानमादविबिजमिथ्यादृष्टिगळं विशुद्धसाकारोपयोगयुक्तरुगळुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वमं स्वीकरिसि तत्कालांतर्मुहूर्तपर्य्यंतं मनुष्यगतियुत नवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। २९। म। यिल्लि तीर्थयुतस्थानबंधमिल्लेकेंदोडे बिबिजमिथ्यादृष्टिगळोळु तीर्थसत्वं खपुष्पोपमानमक्कुमदेंतेंदोडे तीर्थबंधप्रारंभकमनुष्यं बद्धदेवायुष्यनादोडमबद्धायुष्यनादोडं सम्यक्त्वविराधकनल्लप्पुदरिंद तद्बंधस्थानाभावमक्कुं। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं मनुष्यपर्य्याप्तरोळं निर्वृत्यपर्य्याप्तबिबिजरोळं संभविसुगुमदेंतेंदोडे :—

इगिवीसमोहसत्तवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं।
पढमं अधापवत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो॥

करणलब्धिपरिणामैः प्रशस्तोपशमनविधानेन युगपदेवोपशमय्यांतर्मुहूर्तकालं प्रथमोपशमसम्यक्त्वं स्वीकुर्वन् कश्चिदप्रत्याख्यानकषायोदयादेकचत्वारिंशद्दुरितबंधं निवारयन्नसंयतः, कश्चित्प्रत्याख्यानकषायोदयादेकपंचाशद्बन्धमपाकुर्वन् देशसंयतः, कश्चित्संज्वलनोदयादेकषष्टिबंधं निराकुर्वन्नप्रमत्तसंयतो वा स्यात्। सोऽप्रमत्तः प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसंख्यातसहस्राणि करोति। तत्सम्यक्त्वग्रहणप्रथमसमयाद्गुणसंक्रमणेन तत्परिमाणेन यंत्रेण कोद्रववन्मिथ्यात्वद्रव्यं त्रिधा करोति। तत्र नारकस्तदा असंयत एव भूत्वा घर्मादित्रये नवविंशतिकादिद्वयं बध्नाति २९ म ३० म ती। शेषपृथ्वीषु मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव। नन्वविरतादिचतुर्ष्वितित्थयरबंधारंभया

और यदि सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोहनीयका सत्त्व नहीं है तो पाँच प्रकृतियाँ हैं। अनादिमिथ्यादृष्टिके भी पाँच ही प्रकृतियाँ होती हैं। इन प्रकृतियोंको क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धिरूप परिणामोंके द्वारा प्रशस्तोपशम विधानसे एक साथ उपशमाकर अन्तर्मुहूर्त कालके लिए प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके कोई जीव अप्रत्याख्यान कषायके उदय होनेसे इकतालीस पाप प्रकृतियोंके बन्धको रोकता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टी होता है। अथवा कोई जीव प्रत्याख्यान कषायके उदयसे इकावन प्रकृतियोंके बन्धको रोककर देशसंयत होता है। कोई संज्वलनके उदयसे इकसठ प्रकृतियोंके बन्धको रोकता हुआ अप्रमत्त संयत होता है। वह अप्रमत्त संख्यात हजार बार अप्रमत्तसे प्रमत्त और प्रमत्तसे अप्रमत्तमें आवागमन करता है। उस प्रथमोपशम सम्यक्त्वके ग्रहणके प्रथम समयसे गुणसंक्रमणके द्वारा उस सम्यक्त्वरूप परिणामसे मिथ्यात्वके द्रव्यको तीन रूप करता है। जैसे चाकीसे दलनेपर कोदोंके तीन रूप हो जाते हैं।

नारकी तो असंयत ही रहकर घर्मा आदि तीन नरकोंमें उनतीस और तीसका बन्ध करता है। शेष नरकोंमें मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध होता है।

शंका—आगममें कहा है कि अविरत आदि चार गुणस्थानवाले मनुष्य ही केवली

---

१. गुडखंडशर्करामृत—विषहालाहलशक्तियं निंबकांजीरंगळ सदृशमप्पंतु।

एंदितु एकविंशतिचारित्रमोहोपशमननिमित्तमागि वेदकसम्यग्दृष्टियप्प महाव्रत्यप्रमत्तसंयतं मुंनं करणत्रयपरिणामविंदं सप्तप्रकृतिगळनुपशमिसि द्वितीयोपशमसम्यक्त्वस्वीकारमं माडि बळिक्कमंतर्मुहूर्तं प्रमितमप्प तद्द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालप्रथमसमयदोळु देवगतियुताष्टाविंशत्यादिचतुःस्थानंगळं कट्टुगुं। २८। वे। २९। वे ति। ३०। वें आ। ३१। वे आ तो।

यितु कट्टुत्तलुमुपशमश्रेण्यारोहणनिमित्तमागि माळ्प करणत्रयंगळोळु मोदल अधःप्रवृत्तकरणमनी सातिशयाप्रमत्तसंयतं माळ्कुमा करणदोळु नाल्कावश्यकंगळं माळ्कुमवावुवेंदोडे प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धिसातादिप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धियिं चतुःस्थानानुबंधअसाताद्यप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणहानियिं द्विस्थानानुभागबंध स्थितिबंधापसरणमेंबिवं प्रवर्त्तिसुत्तमपूर्वकरणगुणस्थानमं पोद्दुवुगुमा गुणस्थानप्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्गुणस्थानषष्ठभागपर्य्यंतमा चतुःस्थानंगळं कट्टुवरु। २८। वे। २९। वे ति ३०। वें। आ ३१। वे आ तो ॥ सप्तमचरमभागदोळु एकप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु ॥१॥ तदनंतरसमयदोळनिवृत्ति-

---

णरा केवलिदुगंते इत्युक्तं तदा नारकेषु तद्युतस्थानं कथं बध्नाति ? तन्न। प्राग्बद्धनरकायुषां प्रथमोपशमसम्यक्त्वे वेदकसम्यक्त्वे वा प्रारब्धतीर्थबंधानां मिथ्यादृष्टित्वेन मृत्वा तृतीयपृथ्व्यंतं गतानां शरीरपर्याप्तेरुपरि प्राप्ततदन्यतरसम्यक्त्वानां तद्बंधस्यावश्यंभावात्। तत्प्राप्तौ खलु साकारोपयोगेन भाव्यं तत्र स कथं संभवेत् ? तन्न, तृतीयपृथ्व्यंतं देवप्रतिबोधनान्निसर्गाद्वा तत्रापि तत्संभवात्। तर्हि निसर्गजेऽर्थावबोधः स्यान्न वा ? यदि स्यात्तदा तदप्यधिगमजमेव। यदि न स्यात्तदानवगततत्त्वः श्रद्दधीतेति ? तन्न। उभयत्रांतरंगकारणे दर्शनमोहस्योपशमे क्षये क्षयोपशमे वा समाने च सत्याचार्याद्युपदेशेन जातमधिगमजं तद्विना जातं नैसर्गिकमिति भेदस्य सद्भावात्। स चायं प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिर्यदि तिर्यङ् तदा असंयतो देशसंयतो वा भूत्वा देवगत्यष्टाविंशतिकं

द्विकके निकट तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करते हैं, तब नरकमें तीर्थंकरसहित स्थानका बन्ध कैसे सम्भव है ?

समाधान—जिस मनुष्यके पूर्वमें नरकायुका बन्ध हुआ, पीछे प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा वेदक सम्यक्त्वमें तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करे तो मरते समय मिथ्यादृष्टि होकर तीसरे नरक तक जाता है वहाँ शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर दोनों सम्यक्त्वोंमें-से एक सम्यक्त्व प्राप्त करके तीर्थंकरका भी बन्ध करने लगता है।

शंका—सम्यक्त्वकी प्राप्तिके लिए साकारोपयोग होना चाहिए। वह वहाँ कैसे होता है ?

समाधान—तीसरी पृथ्वी पर्यन्त देवोंके सम्बोधनेसे अथवा सहज स्वभावसे साकारोपयोग होता है।

शंका—निसर्गज सम्यग्दर्शनमें पदार्थोंका ज्ञान होता है या नहीं ? यदि होता है तो वह भी अधिगमज ही हुआ। यदि पदार्थोंका ज्ञान नहीं है तो तत्त्वोंके ज्ञानके बिना श्रद्धान कैसा ?

समाधान—निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शनमें अन्तरंग कारण दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम समान है। उसके होते हुए जहाँ आचार्यादिके उपदेशसे तत्त्वज्ञान होता है वह अधिगमज है और जहाँ उसके बिना तत्त्वज्ञान होता है वह निसर्गज है। यह इन दोनोंमें भेद है।

करणगुणस्थानप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतमा येकप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। १। तदनंतर समयदोळु सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानमं पोद्दि तद्गुणस्थानचरमसमयपर्य्यंतमा एकप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। १। तदनंतरसमयदोळुपशांतकषायगुणस्थानमं पोद्दि तद्गुणस्थानचरमसमयपर्य्यंतमा एकप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु। १। तदनंतरसमयदोळुपशांतकषायगुणस्थानमं पोद्दि तद्गुणस्थानचरमसमयपर्य्यंतं नामकर्म्मबंधरहितरागिगुं मत्तमवतरणदोळं क्रमदिंदमिळिदु अप्रमत्तगुणस्थानमं पोद्दि मुंनिनंते अष्टाविंशत्यादि चतुस्थानंगळं कट्टुवरु। अंतु कट्टुत्तलुं प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्रंगळं माडुत्तं प्रमत्तगुणस्थानदोळु प्रमत्ताष्टाविंशत्यादि द्विस्थानंगळं कट्टुत्तं। २८। दे २९। दे ति। संक्लेशवशदिंदं प्रत्याख्यानावरणोदयदिंदं देशसंयतगुणस्थानमं पोद्दि प्रमत्तसंयतनंते द्विस्थानंगळं कट्टुत्तं। २८। दे। २९। दे ती॥ अप्रत्याख्यानावरणोदयदिंदमसंयतसम्यग्दृष्टिगळागियुं देशसंयतनंते द्विस्थानंगळं कट्टुवरितु। २८ दे। २९॥ दे ती॥ उपशमश्रेण्यारोहणावरोहणविवक्षेयिंदं। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वदोळसंयतादिगुणस्थानाष्टकं संभविसुववु। बद्धदेवायुष्यरुगळगे तलानुमपूर्व्वकरणारोहकप्रथमभागमं बिटटु शेषभागशेषगुणस्थानंगळोळेल्लियादोडं मरणं संभविसुगु। मंतु मरणमागुत्तं विरलु सौधर्मकल्पं मोदल्गोंडु

बध्नाति। मनुष्यस्तदा असंयतः देशसंयतः प्रमत्तश्च तदादित्रयं। अस्मिन् सम्यक्त्वेऽपि तीर्थबंधप्रारंभात्। अप्रमत्तस्तदादीनि चत्वारि २८ दे २९ दे ती ३० दे आ ३१ दे आ ती। देवस्तदा असंयत एव भूत्वा उपरिमग्रैवेयकावसानः मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव न तीर्थयुतं प्रारब्धतीर्थबंधस्य बद्धदेवायुष्कवदबद्धायुष्कस्यापि सम्यक्त्वप्रच्युत्यभावात्। तद्द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं वेदकसम्यग्दृष्ट्यप्रमत्त एव करणत्रयपरिणामैः सप्तप्रकृतीरुपशमय्य गृह्णाति। तत्कालांतर्मुहूर्तप्रथमसमये देवगत्यष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि बध्नाति। अयं चोपशमश्रेणिमारोढुं करणत्रयं कुर्वन्नधःप्रवृत्तकरणं सातिशयाप्रमत्त एव करोति। तत्र प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धवृद्धि सातादि-

---

वह प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी यदि तिर्यञ्च है तो असंयत या देशसंयत होकर देवगति सहित अठाईसका बन्ध करता है। यदि मनुष्य है तो असंयत, देशसंयत या प्रमत्त होकर देवगति सहित अठाईसका या देवगति तीर्थसहित उनतीसका बन्ध करता है। इस सम्यक्त्वमें भी तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ होता है। यदि अप्रमत्त है तो अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस चारका बन्ध करता है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्वी देव असंयत ही होता है और वह उपरिमग्रैवेयक पर्यन्त ही होता है। वह मनुष्यगति सहित उनतीसको ही बाँधता है, तीर्थंकर सहित तीसको नहीं, क्योंकि जिसने देवायुका बन्ध करके तीर्थंकरका बन्ध प्रारम्भ किया है जैसे वह सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता वैसे ही जिसने देवायुका बन्ध नहीं किया है वह भी तीर्थंकरका बन्ध प्रारम्भ करके देवायुका बन्ध करनेपर मरते समय सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता। और सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें आये बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होता।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व वेदक सम्यग्दृष्टी अप्रमत्तके ही तीन करणरूप परिणामोंके द्वारा सातों प्रकृतियोंका उपशम होनेपर होता है। उसका काल अन्तर्मुहूर्त है। उसके प्रथम समयमें देवगति सहित अठाईस आदि चारका बन्ध होता है।

यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी उपशम श्रेणिपर आरोहण करनेके लिए तीन करण करता

सर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतं यथासंभवमागि निर्व्वृत्यपर्य्याप्तविविजासंयतसम्यग्दृष्टिगळागि मनुष्यगतियुत नवविंशत्यादिद्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । म ३० । म तो ॥ इल्लियुभयोपशमसम्यक्त्वदोळु एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमसत्वमुळ्ळ प्रमत्तसंयतनोळु मिथ्यात्वकर्मोदयमिल्ल । तीर्त्थकरसत्वमुमाहारकसत्वमुमुळ्ळ प्रमत्तदेशसंयतासंयतरोळनंतानुबंधिकषायोदयमिल्ल । तीर्त्थसत्वमुळ्ळरोळ मिश्रप्रकृत्युदयमिल्लेकेंदोडे :— ९

तित्थाहारं जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये ।
तं सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवइ ॥—गो. क. ३३३ गा.

एंदितु निषेधिसल्पट्टुदप्पुदरिंदं । क्षायिकसम्यक्त्वग्रहणकालदोळु सामग्रीविशेषमुंटवावुदेंदोडे :—

प्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धया चतुःस्थानानुभागबंधं असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनंतगुणहान्या १०
द्विस्थानानुभागबंधं स्थितिबंधापसरणं च कुर्वन्नपूर्वकरणगुणस्थानं गतः । तत्प्रथमसमयादाषष्ठभागं तान्येव चत्वारि बध्नन् सप्तमभागेऽनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसांपराये चैककमेव बध्नाति ।

उपशांतकषाये आ तच्चरमसमयं नामकर्माबध्नन् क्रमेणावतरन् प्राग्वद्बध्नन् अप्रमत्तगुणस्थानं गतः । प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि कुर्वन् संक्लेशवशेन प्रत्याख्यानावरणोदयाद्देशसंयतो भूत्वा पुनः अप्रत्याख्यानावरणोदयादसंयतो भूत्वा च प्रमत्तोक्ते द्वे बध्नाति इत्यसावसंयताद्यष्टगुणस्थानः स्यात् । स च बद्धदेवायुष्क १५

हुआ सातिशय अप्रमत्त अवस्थामें ही अधःकरण करता है। वहाँ प्रतिसमय अनन्तगुण विशुद्धिको करता हुआ साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका गुड़, खण्ड, शर्करा, अमृतरूप चार प्रकारके अनुभागबन्धको प्रतिसमय अनन्तगुणा बढ़ाता है और असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभाग बन्धको प्रतिसमय घटाते हुए नीम और कांजीरूप दो प्रकारका बाँधता है। तथा सब प्रकृतियोंके स्थितिबन्धको घटाता हुआ अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता २० है। अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लगाकर छठा भाग पर्यन्त उन्हीं चार स्थानोंको बाँधता है। सातवें भागमें, अनिवृत्तिकरणमें और सूक्ष्मसाम्परायमें एक प्रकृतिक बन्धस्थानको बाँधता है।

उपशान्तकषाय गुणस्थानमें अन्तिम समय पर्यन्त नामकमको नहीं बाँधता। क्रमसे उतरते हुए पहले की तरह नामकर्मके बन्धस्थानोंका बन्ध करते हुए अप्रमत्त गुणस्थानको २५ प्राप्त होता है। फिर अप्रमत्तसे प्रमत्तमें और प्रमत्तसे अप्रमत्तमें हजारों बार आवागमन करता हुआ संक्लेशवश प्रमत्तसे प्रत्याख्यानावरणके उदयसे देशसंयत होकर पुनः अप्रत्याख्यानावरणके उदयसे असंयत होकर प्रमत्तकी तरह दो स्थानोंका बन्ध करता है। इस प्रकार द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें असंयत आदि आठ गुणस्थान होते हैं। उसने यदि पूर्वमें

---

१. एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानसत्वमुळ्ळ प्रमत्तंगे मिथ्यात्वोदयदिं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानप्राप्तियागदेंबुदर्त्थं । येकेंदोडे तीर्त्थसत्कर्मंगे प्राग्बद्धनरकायुष्यंगल्लदे मिथ्यादृष्टिगुणस्थानप्राप्तियिल्ल । बद्धनरकायुष्यंगे अप्रमत्तगुणस्थानप्राप्तिपूर्व्वकाहारक द्वयबंधमुं प्रमत्तगुणस्थानप्राप्तियुं घटियिसदु एकेंदोडे "चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं । अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥" एंबागमवचनमुंटप्पुदरिं । मिथ्यात्वोदयरहितानंतानुबंधिकषायोदयो नास्ति । सासादनगुणस्थानप्राप्तिर्नास्तीत्यर्थः ॥

दंसणमोहक्खवणा पट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुजो।
तित्थयरपादमूळे केवळिसुदकेवळीमूळे ॥
णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाण भोगावणीसु घम्मे य।
कदकरणिज्जो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥—लब्धि. १११०-१११ गा.

एंदितो सामग्रीविशेषयुतप्रस्थापक मनुष्यासंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु मुंनमनंतानुबंधिकषायमं विसंयोजिसुवल्लि उदयावलिबाह्योपरितनस्थितियोळिद्दं निषेकंगळे-ल्लमनपकर्षिसि विसंयोजिसुत्तमनिवृत्तिकरणचरमसमयदोळु निरवशेषमागि विसंयोजिसुगुं। द्वादशकषाय नव नोकषायस्वरूपिंदं परिणमनमप्पंतु माळ्कुमेंबुदर्थं। इंतप्प विसंयोजनमं वेदकसम्यग्दृष्टि असंयतनुं देशसंयतनुं प्रमत्तसंयतनुमप्रमत्तसंयतनुमधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिंदं वर्द्धमानरागुत्तं सातादिप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रति-समयमनंतगुणवृद्धियिं चतुःस्थानानुभागबंधमनसाताद्यप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणहानियिं

आरोहणेऽपूर्वकरणप्रथमभागादन्यत्रावतरणे सर्वत्र क्वचिद्यदि म्रियते तदा वैमानिकेषु यथासंभवं निर्वृत्यपर्याप्तो भूत्वा मनुष्यगतिनवविंशतिकादिद्वयं बध्नाति २९ म ३० म ती। उभयोपशमसम्यक्त्वे एकत्रिंशत्कसत्त्वप्रमत्ते मिथ्यात्वं तीर्थसत्त्वाहारकसत्त्वासंयतादित्रयेऽनंतानुबंधी तीर्थसत्त्वे मिश्रं च नोदेति, तत्तत्कर्मसत्त्वजीवानां तत्तद्गुणस्थानस्य संभवाभावात्।

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजो मणुजो। तित्थयरपादमूले केवलिसुदकेवलीमूले ॥
णिट्ठवगो तट्ठाणे विमाणभोगावणीसु घम्मे य। कदकरणिज्जो चदुसु वि गदीसु उप्पज्जदे जम्हा ॥

देवायुका बन्ध किया है तो वह चढ़ते अपूर्वकरणके प्रथम भाग बिना अन्यत्र और उतरते सर्वत्र यदि कहीं मरण करता है तो यथासम्भव वैमानिक देव होता है। वहाँ निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामें मनुष्यगति सहित उनतीस और तीसका बन्ध करता है।

दोनों ही प्रकारके उपशम सम्यक्त्वमें इकतीस प्रकृतिरूप नामकर्मके बन्धस्थानका सत्त्ववाला प्रमत्तगुणस्थानवर्ती प्रमत्तसे मिथ्यात्वमें नहीं आता। तीर्थंकर और आहारकको सत्तावाले असंयत आदि तीनमें अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता। अतः वे उन गुणस्थानों-से च्युत होकर सासादनमें नहीं आते। तथा तीर्थंकरके सत्त्वमें मिश्र मोहनीयका उदय नहीं होता। अतः वह तीसरे गुणस्थानमें नहीं आता। क्योंकि उस उस कर्मकी सत्तावाले जीवोंके वह वह गुणस्थान नहीं होता।

विशेषार्थ—एक जीवके तीर्थंकर और आहारकका सत्त्व होनेपर मिथ्यादृष्टि गुण-स्थान नहीं होता। आहारकका सत्त्व होते सासादन गुणस्थान नहीं होता और तीर्थंकरका सत्त्व होते मिश्रगुणस्थान नहीं होता।

अब क्षायिक सम्यक्त्वमें कहते हैं। यहां प्रासंगिक कहते हैं—

"दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ तो कर्मभूमिया मनुष्य तीर्थंकर केवली या श्रुत-केवलीके पादमूलमें करता है। और निष्ठापक वहीं, या वैमानिक देवोंमें या भोगभूमिमें या प्रथम नरकमें होता है क्योंकि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टी चारों गतिमें जन्म लेता है॥" वही कहते हैं—

---

१. प्रारंभक इत्यर्थः।

द्विस्थानानुभागबंधमं शुभाशुभकर्म्मंगळगे स्थितिबंधापसरणमं प्रवर्त्तिसुत्तलुमधःप्रवृत्तकरण-परिणतियं मोरि तदनंतरसमयदोळपूर्व्वकरणपरिणाम-परिणतरागियुमा नाल्कु मावश्यकंगळ्वेरसु गुणश्रेणीगुणसंक्रमस्थितिकांडकघातानुभागकांडकघातंगळुमं प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तिगुणश्रेणि-द्रव्यमं नोडलुं देशसंयतगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्यातगुणमदं नोडलुं सकलसंयतगुणश्रेणीद्रव्यमसंख्यात-गुणमदं नोडलुमसंख्यातगुणद्रव्यमनोयनंतानुबंधिकषायविसंयोजकनपकर्षिसि अपूर्व्वकरणानिवृत्ति-करणकालद्वयमं नोडलु साधिकमागियुं संयतरगुणश्रेण्यायाममं नोडलु संख्यातगुणहीनमुं समयं-प्रतिगलितावशेषमुमप्प गुणश्रेण्यायामदोळु द्रव्यनिक्षेपणमुमननुभागकांडकाययाममं पूर्व्वमं नोडल-नंतगुणमुमं स्थितिकांडकायाममुमं पूर्व्वमं नोडलुं संख्यातगुणायाममुमं अनंतानुबंधिगळगे गुण-संक्रममुंटप्पुदरिंदं गुणसंक्रमद्रव्यमुमं पूर्व्वमं नोडलुमसंख्यातगुणमुमप्पिनितु संख्यातसहस्रस्थिति-कांडकंगळिंदं तावन्मात्रस्थितिबंधापसरणंगळिंदमुमो[1]दु स्थितिकांडकं बोळ्व कालदोळु संख्यात-सहस्रानुभागकांडकंगळ प्रमाणदिंद संख्यातसहस्रानुभागकांडकघातंगळं प्रवर्त्तिसुत्तमपूर्व्वकरण-

---

इति सामग्रीविशेषविशिष्टोऽसंयतादिचतुर्गुणस्थानान्यतमवेदकसम्यग्दृष्टिरधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयात्प्रागुक्तचतुरावश्यकानि कुर्वन् तं करणं नीत्वानंतरसमयेऽपूर्वकरणं गतः तैः समं प्रतिसमयं प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तिदेशसंयतसकलसंयतगुणश्रेणिद्रव्येभ्यः असंख्यातासंख्यातगुणमनंतानुबंधिद्रव्यमनंतानुबंधिविसंयोजकः, अपकृष्यापूर्वकरणानिवृत्तिकरणकालद्वयात्साधिकेऽपि संयतगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणहीने गलितावशेषगुणश्रेण्यायामे निक्षिपन् अनंतानुबंधिनः गुणसंक्रमणसद्भावात् पूर्वतोऽसंख्यातगुणं गुणसंक्रमणद्रव्यं संक्रामन् पूर्वतः

सामग्रीविशेषसे विशिष्ट वेदक सम्यग्दृष्टी असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसीमें तीन करण करता है। अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर पूर्वोक्त चार आवश्यक करता है—विशुद्धताका बढ़ाना, साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्ध बढ़ाना, असाता आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभागबन्ध घटाना, सब प्रकृतियोंका स्थिति-बन्ध घटाना। अधःप्रवृत्तको पूर्ण करके अनन्तर समयमें अपूर्वकरणको करता है। वहाँ पूर्वोक्त चार आवश्यकोंके साथ प्रतिसमय जो प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, देशसंयतमें, वा सकलसंयतमें असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा गुणश्रेणीरूप द्रव्य है उससे असंख्यातगुणा अनन्तानुबन्धीका द्रव्य अपकर्षण करके पृथक् रखता है। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे यहाँ गुणश्रेणी आयामका काल कुछ अधिक है तथापि सकलसंयमके गुणश्रेणीके कालसे संख्यातगुणा हीन है। गलितावशेष उस गुणश्रेणीके कालमें उस अपकर्षण किये हुए द्रव्यको देता है।

विशेषार्थ—सत्तारूप मोहनीय कर्मके परमाणुओंमें जितने अनन्तानुबन्धीके परमाणु हैं, उनमें-से पूर्वोक्त गुणश्रेणीमें देनेके लिए अपकर्षण करके जितने परमाणु पृथक् किये, उतने परमाणु पूर्वोक्त गुणश्रेणी कालके जितने समय हों, उनमें प्रतिसमय असंख्यात-असंख्यात गुणे होकर निर्जरारूप परिणत करता है।

अनन्तानुबन्धीमें गुणसंक्रम होनेसे पूर्वसे असंख्यात गुणे संक्रम द्रव्यको संक्रमाता है। अर्थात् अनन्तानुबन्धीके द्रव्यको अन्य कषायरूप परिणमाता है।

---

१. असंज्ञिजीवमिथ्यात्वकर्म्मक्के स्थितियनिष्टुप्रमाणमं सा १००० माळ्पनप्पुदरिं तत्प्रमितमक्कुमेंबुदत्थं ॥

परिणाममं मोरि तदनंतरसमयदोळनिवृत्तिकरणपरिणाममं पोद्दि तत्प्रथमसमयं मोदल्गोंडु क्रियमाणविशेषमुंटवाउदें दोडे :—

अणियट्टी अद्धाए असण्ण चत्तारि होंति पव्वाणि ।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टि उच्छिट्ठं ॥—लब्धि. ११३ गा.

अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयदोळनंतानुबंधिगळगे स्थितिसत्वं सागरोपमलक्ष पृथक्त्वमक्कुं । स्थितिकांडकायाममुं स्थित्यनुसारमप्पुदरिंद पूर्वमं नोडलु संख्यातगुणहीनमागियुं पल्यासंख्यातैकभागमागि लक्षिसल्पडुगुंमितप्प स्थितिकांडकंगळनिवृतिकरणदोळु संख्यातबहुभागकालं पोगुत्तं विरलेकभागावशेषमादागळु संख्यातसहस्रंगळप्पुदवरिंदं कुंदि स्थितिसत्वमसंज्ञिजीवस्थितिबंध समानमप्प सागरोपमसहस्रप्रमितमक्कुमल्लिदं मेलेयुं पल्यसंख्यातैकभागमात्रायामस्थितिकांडक-

---

संख्यातगुणायामानि संख्यातसहस्राणि स्थितिकांडकानि घातयन् तावंति स्थितिबंधापसरणानि कुर्वन् एकैकस्मिन् स्थितिकांडकघातकाले पूर्वतोऽनंतगुणायामानि तावंत्यनुभागकांडकानि घातयंश्चापूर्वकरणं नीत्वानंतरसमयेऽनिवृत्तिकरणं गच्छति ।

अणियट्टे अद्धाए असण्ण चत्तारि होंति पव्वाणि ।
सायरलक्खपुधत्तं पल्लं दूरावकिट्टिउच्छिट्ठं ॥

तत्प्रथमसमयेऽनंतानुबंधिनां स्थितिसत्त्वं सागरोपमलक्षपृथक्त्वमात्रं । तत उपरि तत्कालसंख्यातबहुभागे गते पल्यसंख्यातैकभागायामैः संख्यातसहस्रस्थितिकांडकैर्हीनमसंज्ञिस्थितिबंधसमं सहस्रसागरोपममात्रं । तत उपरि तदायामैस्तावद्भिस्तैर्हीनं चतुरिंद्रियस्थितिबन्धसमं शतसागरोपममात्रं । तत उपरि तदायामैस्तावद्भिस्तैर्हीनं त्रींद्रियं स्थितिबन्धसमं पंचाशत्सागरोपममात्रं । तत उपरि तदायामैस्तावद्भिस्तैर्हीनं द्वींद्रियस्थितिबन्धसमं पंचविंशतिसागरोपममात्रं । तत उपरि तदायामैस्तावद्भिस्तैर्हीनमेकेंद्रियस्थितिबन्धसममेकसागरोपममात्रं ।

पूर्वसे असंख्यातगुणे आयाम—समयोंका प्रमाण—को लेकर संख्यात हजार स्थिति काण्डकोंका घात करता है अर्थात् जो पूर्वमें कर्मोंकी स्थिति सत्तामें थी उसको घटाता है। उतने ही नये कर्मोंके स्थितिबन्धका अपसरण करता है—स्थितिबन्धको घटाता है। एक-एक स्थितिकाण्डकके घात करनेके कालमें पूर्वसे अनन्तगुणे अनुभागके अविभाग प्रतिच्छेदादि रूप आयामको लिये अनुभागकाण्डकोंका नाश करता है। ऐसा करते हुए अपूर्वकरणको पूर्ण करता है। उसके अनन्तर समयमें अनिवृत्तिकरण करता है।

अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका स्थितिसत्त्व या सत्त्वरूप स्थिति पृथक्त्व लाख सागर प्रमाण है। उसके ऊपर—उस अनिवृत्तिकरणके कालमें संख्यातका भाग देकर, एक भाग बिना शेष बहुभाग प्रमाण काल बीतनेपर—पल्यके संख्यातवें भाग प्रमाण एक-एक काण्डक—एक-एक बार इतनी स्थिति घटाना, ऐसे संख्यात हजार स्थितिके काण्डकोंके द्वारा एक हजार सागर प्रमाण स्थिति रहती है जो असंज्ञीके स्थितिबन्ध जितनी है। उसके ऊपर उतने ही प्रमाण उतने ही काण्डकोंके द्वारा चौइन्द्रियके बन्धके समान सौ सागरकी स्थिति रहती है। उससे ऊपर उतने ही प्रमाणवाले उतने ही काण्डकों द्वारा तेइन्द्रियके स्थितिबन्धके समान पचास सागरकी स्थिति रहती है। उसके ऊपर उतने ही प्रमाणवाले उतने ही काण्डकोंके द्वारा दोइन्द्रियके स्थितिबन्धके समान पच्चीस सागरकी स्थिति रहती है। उसके ऊपर उतने ही आयामको लिये काण्डकोंके घटानेपर एकेन्द्रियके बन्धके समान

सहस्रांगळिवं कुंदि चतुरिंद्रियजीवस्थितिबंधसमानशतसागरोपमस्थितिसत्वमक्कुमल्लिवं मेलेयुं पल्यासंख्यातैकभागायामस्थितिकांडक सहस्रायामंगळिवं कुंदित्रींद्रियजीवस्थितिबंध समान पंचाशत् सागरोपमप्रमितस्थितिसत्वमक्कुमल्लिवं मेलेयुं पल्यासंख्यातैकभागायामस्थितिकांडकसहस्रंगळिवं कुंदि द्वींद्रियजीवस्थितिबंधसमानपंचविंशतिसागरोपमस्थितिसत्वमक्कुमल्लिवं मेलेंयुं पल्यासंख्यातैकभागायामस्थितिकांडकसहस्रंगळिवं कुंदि एकेंद्रियजीवस्थितिबंधसमानैकसागरोपमस्थितिसत्वमक्कुमल्लिवं मेलेयुं तावन्मात्रायामसंख्यातसहस्रस्थितिकांडकंगळिवं कुंदि पल्यप्रमितस्थितिसत्वमक्कुमी द्वितीयपर्व्वपल्यप्रमितस्थितिसत्वंदिवं मेले पल्यासंख्यातैकभागमात्रदूरापकृष्टिस्थितिपर्य्यंतं पल्यासंख्यातबहुभागायामस्थितिकांडकसहस्रंगळिवं कुंदि दूरापकृष्टि येंब तृतीयपर्व्वस्थितिमितपल्यासंख्यातैकभागमात्रस्थितिसत्वमक्कुमल्लिवं मेले उच्छिष्टावलिपर्य्यंतं पल्यासंख्यातबहुभागायामस्थितिकांडकंगळु संख्यातसहस्रंगळिवं कुंदि अनंतानुबंधिस्थितिसत्वमावलिप्रमितमक्कुमिदुच्छिष्टावलियेंबुदक्कुमिदक्के पेसरेंतक्कुमेंदोडा-

---

तत उपरि तदायामैस्तावद्भिस्तैर्हीनं पल्यमात्रं । (अत उपरि पल्यमात्रं) अत उपरि पल्यासंख्यातबहुभागायामैस्तावद्भिस्तैर्हीनं दूरापकृष्टिसंज्ञं पल्यासंख्यातैकभागमात्रं । तत उपर्येतदायामैस्तावद्भिर्हीनमुच्छिष्टावलिसंज्ञमावलिमात्रं । एतावत्स्थतावशिष्टायां विसंयोजनोपशमनक्षपणाक्रिया नेतीदमुच्छिष्टावलिनाम । ते निषेकाः आवलिकाले परप्रकृतिरूपेण भूत्वा गलंति इत्येवं तच्चतुष्कं तच्चरमसमये सर्वं विसंयोजितं द्वादशकषायनवनोकषायरूपं नीतं ।

अंतो मुहुत्तकालं विस्समिय पुणोवि तिकरणं करिय ।
अणयट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेई ॥

तदनंतरमंतर्मुहूर्तं विश्रम्यानंतानुबंधिचतुष्कं विसंयोज्यांतर्मुहूर्तानंतरं करणत्रयं कृत्वानिवृत्तिकरणकाले संख्यातबहुभागे गते शेषैकभागे मिथ्यात्वं ततः सम्यग्मिथ्यात्वं ततः सम्यक्त्वप्रकृतिं च क्रमेण क्षपयति, दर्शन-

---

एक सागरकी स्थिति रहती है । उसके ऊपर उतने ही आयामको लिये उतने ही काण्डकोंके घटानेपर पल्यप्रमाण स्थिति रहती है । उसके ऊपर पल्यके असंख्यातवें भागमें-से एक भाग बिना बहुभाग प्रमाण आयामको लिये उतने ही काण्डकोंके द्वारा स्थितिको घटानेपर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति रहती है उसे दूरापकृष्टि कहते हैं। उसके ऊपर उतने ही आयामको लिये उतने ही काण्डकोंके द्वारा आवली प्रमाण स्थिति रहती है। उसे ही उच्छिष्टावली कहते हैं; क्योंकि उतनी स्थिति शेष रहनेपर विसंयोजन या उपशमन या क्षपणा क्रिया नहीं हो सकती। ये शेष रहे आवलीकालके निषेक उस आवलीकालमें एक-एक निषेक रूपसे अन्य प्रकृति रूप परिणमन करके गल जाते हैं। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्क उस उच्छिष्टावलीके अन्तिम समयमें विसंयोजनरूप होकर अन्य बारह कषाय और नव नोकषाय रूप हो जाता है।

उसके पश्चात् एक अन्तमुंहूर्त तक विश्राम लेता है। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेके बाद एक अन्तर्मुहूर्त बीतनेपर पुनः तीन करण करता है। उनमें-से अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात भागोंमें-से बहुभाग बीतकर एक भाग शेष रहनेपर पहले मिथ्यात्वका, फिर सम्यग्मिथ्यात्वका, फिर सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय करता है। दर्शनमोहकी क्षपणाके प्रारम्भके प्रथम समयसे लेकर सम्यक्त्वमोहनीयकी प्रथम स्थितिके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने तक तो

वलिमात्रावशिष्टमावागळाव कर्म्मंगळगावोडं विसंयोजनक्रियेयुमुपशमनक्रियेयुं क्षपणेयुमिल्लप्पुदरिंदमुच्छिष्टावलियेंदु पेसरक्कुमा उच्छिष्टावलिमात्र निषेकंगळ्गं तावन्मात्रकालक्के परप्रकृतिस्वरूपदिंदं परिणमिसि पोपुववक्के स्वमुखोदयमिल्लप्पुदरिंदं। यितनंतानुबंधिविसंयोजनमनिवृत्तिकरणपरिणामचरमसमयदोळु क्रोधमानमायालोभंगळनक्रमदिंदं विसंयोजिसि किडिसियंतर्म्मुहूर्त्तकालमं विश्रमिसि कळेदु :—

अंतोमुहुत्तकाळं विस्समिय पुणोवि तिकरणं करिय।
अणियट्टीए मिच्छं मिस्सं सम्मं कमेण णासेदी॥

एंदितु करणत्रयमं माडि अनिवृत्तिकरणकालदोळु संख्यातबहुभागं पोगि एकभागावशेषमावागळु मिथ्यात्वप्रकृतियुमं बळिक्कं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुमं बळिक्कं सम्यक्त्वप्रकृतियुमं क्रमदिंद केडिसि दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभप्रथमसमयदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियोळु स्थापिसिद प्रथमस्थित्याममंतर्म्मुहूर्त्तमात्रावशेषमावागळु चरमसमयप्रस्थापकनक्कुमनंतरसमयं मोदल्गोंडु आ प्रथमस्थितिचरमनिषेकपर्य्यंतं निष्ठापकनक्कुमीदर्शनमोहक्षपकरुगळु, प्रस्थापकरुगळुं निष्ठापकरुगळुमेंदु द्विविधरप्परल्लि। प्रस्थापकर्मनुष्यासंयतादि चतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळक्कुं। निष्ठापकरुगळु बद्धायुष्यरुगळपेक्षेयिंदं वैमानिकनिर्व्वृत्यपर्य्याप्त सत्तीर्त्थातीर्थंकृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळुं भोगभूमिजनिर्व्वृत्यपर्य्याप्ताऽतीर्थंकृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्यतिर्य्यंचरुगळुं। धर्म्मेय निर्वृत्य-

मोहक्षपणाप्रारंभप्रथमसमयस्थापितसम्यक्त्वप्रकृतिप्रथमस्थित्यायामांतर्मुहूर्तावशेषे चरमसमयप्रस्थापकः। अनंतरसमयादाप्रथमस्थितिचरमनिषेकं निष्ठापकः, प्रस्थापकोऽयमसंयतादिचतुर्ष्वन्यतमो मनुष्य एव। निष्ठापकस्तु बद्धायुष्कापेक्षया वैमानिकषर्मानारकभोगभूमितिर्यग्मनुष्यनिर्वृत्यपर्याप्तः। अबद्धायुष्कापेक्षया मनुष्य एव स च निष्ठापकः। कृतकृत्यवेदककालांतरमुहूर्ते गते क्षायिकसम्यग्दृष्टिः स्यात्। अयं कश्चित्कर्मभूमिमनुष्यः तीर्थबंधं प्रारभ्य न प्रारभ्य वा चरमांगः तस्मिन्नेव भवे क्षपकश्रेणिमारुह्य घातीनि हत्वा सातिशयनिरतिशयकेवली

प्रस्थापक कहाता है। उसके अनन्तर समयसे लेकर प्रथम स्थितिके अन्तिम निषेक पर्यन्त निष्ठापक कहाता है। सो प्रस्थापक तो असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एक गुणस्थानवर्ती मनुष्य होता है। निष्ठापक बद्धायुकी अपेक्षा वैमानिक देव या प्रथम नरकका नारकी या भोगभूमिका मनुष्य या तिर्यंच निर्वृत्यपर्याप्तक भी होता है। किन्तु अबद्धायुकी अपेक्षा मनुष्य ही निष्ठापक होता है। कृतकृत्यवेदकका काल अन्तर्मुहूर्त बीतनेपर क्षायिक सम्यग्दृष्टी होता है।

यह क्षायिक सम्यग्दृष्टी कोई कमभूमिका मनुष्य तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ कर अथवा न प्रारम्भ कर चरमशरीरी उसी भवमें क्षपकश्रेणि चढ़ घातिया कर्मोंको नष्ट कर सातिशय या निरतिशय केवली होता है। और जो तीसरे भवमें मुक्त होना होता है तो देवायुको बाँध

१. तित्थयरसत्तकम्मा तदियभवे तम्भवे हु सिज्झेइं। खायियसम्मत्तो पुण उक्कस्सेण चउत्थभवे॥ देवेसु देवमणुवे सुरणरतिरिये चउग्गईसुं पि। कदकरणिज्जुप्पत्ति कमेण अन्तोमुहुत्तेण॥ अस्या गाथाया विवरणं—कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकाले चतुर्भागीकृते प्रथमसमयादारभ्यांतर्मुहूर्त्तं प्रथमभागे मृतो देवेषूत्पद्यते। नान्यगतिजेषु। तत्कालमितरगतित्रयगमनकारणसंक्लेशपरिणामाभावात्॥

पर्य्याप्त सतीर्त्थ तीर्त्थकृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळुमप्पुदरिंदं चतुर्गतिजरुगळप्परु । आ चतुर्गतिजरुगळेल्लरुगळ् तंतम्म कृतकृत्यवेदक कालमंतर्मुहूर्त्तमात्रं पोगुत्तं विरलु क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परु । अबद्धायुष्कापेक्षेयिंदं मनुष्यासंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळ् निष्ठापकरुगळु तंतम्म कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वकालं पोगुत्तं विरलु असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळु सतीर्त्थरुमतीर्त्थरुगळ् क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळप्परंता अतीर्त्थबद्धायुष्करुगळ् तीर्त्थकरश्रीपादमूलदोळमितरकेवलिश्रुतकेवलिद्वयश्रीपादोपांतदोळु षोडशभावनाबलदिंदं तीर्त्थबंधप्रस्थापकरप्परंतप्प क्षायिक सम्यग्दृष्टि सतीर्थातीर्त्थरुगळु कॆलंबर्च्चरमांगरादोडा भवदोळे क्षपकश्रेण्यारोहणं गॆय्दु घातिगळं किडिसुवर्क्कॆडिसि अतिशयकेवलिगळ् निरतिशयकेवलिगळुमप्पर्क्कॆलंबर्तृतीयभवदोळु घातिगळं किडिसुव पक्षदोळु देवायुष्यमनोंदने कट्टि सौधर्मकल्पं मोदल्गोंडु सर्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतं पुट्टि दिव्यभोगंगळननुभविसि बंदु पंचदशकर्म्मभूमिगळोळुत्तमसंहननरुगळागि पुट्टि कॆलंबर्प्पंचकल्याणयुतरुं कॆलंबर्क्षायिक सम्यग्दृष्टिगळु चरमांगरुगळागिए घातिगळं किडिसुवरा क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळॆल्लं बंधयोग्यमप्प नामकर्म्मं बंधस्थानंगळु यथासंभवंगळु अष्टाविंशत्यादि पंचस्थानंगळप्पुवॆंदु पेळल्पट्टुदु सुघटमक्कुं २८ । दे । २९ । दे ति म ३० । दे आ २ । म तो ३१ । दे आ २ । तो । १ ॥ वेदकसम्यक्त्वं द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिगळप्प असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळप्प मनुष्यरुगळोळु तत्सम्यक्त्वकालांतर्म्मुहूर्त्तं चरमसमयानंतरसमयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि तत्सम्यक्त्वप्रथमसमयं मोदल्गोंडु मनुष्यासंयतनष्टाविंशत्यादि द्विस्थानंगळं कट्टुगुं । २८ । दे २९ । दे ति । मनुष्यदेशसंयतनुं प्रमत्तसंयतनुं द्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २८ । दे २९ । दे ति । अप्रमत्तसंयतनुमा द्विस्थानंगळुमं देवगत्याहारद्विकयुतमागि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं देवगत्याहारकतीर्त्थयुत एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुवरु । २८ । दे । २९ । दे ति ।

स्यात् । तृतीयभवे सेत्स्यन् देवायुरेव बध्वा वैमानिकेष्वेवावतीर्य दिव्यभोगाननुभूयागत्य पंचदशकर्मभूमिषूत्तमसंहननो भूत्वा घातीनि हंति । एते क्षायिकसम्यग्दृष्टयो यथा संभवमष्टाविंशतिकादीनि पंच बध्नंति । असंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्तिमनुष्यद्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टयः केचिन्मृत्वा वैमानिकासंयतेषूत्पन्नास्ते च कर्मभूमिमनुष्यप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टयश्च स्वस्वांतर्मुहूर्तकाले गते सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दृष्टयो जायंते । कर्मभूमिमनुष्यसादिमिथ्यादृष्टयः सम्यक्त्वप्रकृत्युदयेन मिथ्यात्वोदयनिषेकानुत्कृष्यासंयतादिचतुर्गुणस्थानवेदकसम्यग्दृष्टयो भूत्वा तीर्थं बध्नीयुः । केचिन्न बध्नीयुः ।

वैमानिक देवोंमें उत्पन्न हो दिव्य भोगोंको भोग, वहाँसे चयकर पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्तम संहननका धारी होकर घातिकर्मोंको नष्ट करता है । ये क्षायिकसम्यग्दृष्टी यथासम्भव अठाईस आदि पाँचका बन्ध करते हैं । आगे वेदकमें कहते हैं—

असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्य द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टी कोई मरकर वैमानिक देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टी रूपमें जन्म लेते हैं वे वेदकसम्यग्दृष्टी होते हैं । तथा कर्मभूमिया मनुष्य प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टी अपने उपशम सम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्तकाल बीतनेपर सम्यक्त्व मोहनीयके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टी होता है । तथा कर्मभूमिया मनुष्य सादिमिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे मिथ्यात्वके उदयरूप निषेकोंका अभाव कर असंयतादि चार गुणस्थानोंमें वेदक सम्यग्दृष्टी होकर तीर्थंकर प्रकृतिको बाँधता है, कोई नहीं बाँधता है ।

३० । दे आ २ । ३१ दे आ तो ॥ आ द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिगळगे मरणमाद पक्षदोळु सौधर्म्मादि सर्व्वार्थसिद्धिपर्य्यंतमाद देवासंयतरुगळोळु तदुपशमसम्यक्त्वकाल चरमसमयानंतर समयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि तत्प्रथमसमयं मोदल्गोंडु मनुष्यगतितीर्त्थयुतद्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । म ३० । म ती ॥ अथवा मनुष्यगतिय कर्म्मभूमि सादि मिथ्यादृष्टिजीवंगळु मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं मिथ्यात्वप्रकृत्युदयनिषेकंगळनुत्कर्षिसि वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि असंयतादि नाल्कुं गुणस्थानमं पोद्दुंवरवर्गळु केवलिद्वयश्रीपादोपांतदोळु षोडशभावनेगळं भाविसि तीर्त्थंकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसिदवर्गंगळोळसंयतनोळं देशसंयतनोळं प्रमत्तसंयतनोळमष्टाविंशत्यादि द्विस्थानंगळु बंधमप्पुवु । २८ । दे २९ । दे ति ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु अष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळु बंधमप्पुवु । २८ । दे २९ । दे ती । ३० । दे आ २ । ३१ । दे आ तो ॥ प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळप्प नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिकर्म्मभूमिमनुष्यरुगळोळसंयतं तत्प्रथमोपशमसम्यक्त्वकालमंतर्म्मुहूर्त्तमात्रमदु पोगुत्तिरलु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टियक्कुमा प्रकारदिंदं देशसंयतनुं प्रमत्तनुं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि देवगतियुताष्टाविंशत्यादिद्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २८ । दे २९ । दे ती ॥ अप्रमत्तप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टियुं तत्सम्यक्त्वकालं पोंदि बळिक्के सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टियागियुं तद्द्विस्थानंगळुमं देवगत्याहार देवगत्याहारतीर्त्थंयुतस्थानमनंतु नाल्कुं स्थानमं कट्टुवं । २८ । दे २९ । दे ती । ३० । दे आ ३१ । दे आ ती ॥ मत्तमी मनुष्यगतिय कृतकृत्यवेदकरुगळं नाल्कुं गुणस्थानवर्त्तिगळुमी प्रकारदिंदं कट्टुवरु । नरकगतियोळु नारकप्रथमोपशमसम्यक्त्वकाल चरमसमयानंतरसमयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि मोदल मूरुं नरकंगळोळु असंयतरुगळु सतीर्त्थातीर्त्थमनुष्यगतियुतनवविंशति आदि द्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । म । ३० । म ती ॥

एते वेदकाः कृतकृत्यवेदकाश्चाष्टाविंशतिकादीन्यसंयतादित्रयो द्वे अप्रमत्तश्चत्वारि बध्नंति । नरकगतौ प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टयः स्वकालानंतरसमयं प्राप्य सम्यग्मिथ्यादृष्टिसादिमिथ्यादृष्टयः मिश्रमिथ्यात्वप्रकृत्युदयनिषेकानुत्कृष्य च सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दृष्टयो भूत्वा घर्मादित्रये सतीर्थातीर्थनवविंशतिकादिद्वयं बध्नंति । शेषपृथ्वीषु मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव । कर्मभोगभूमितिर्यंचो भोगभूमिमनुष्याश्च प्रथमोपशमसम्यक्त्वं त्यक्त्वा सादिमिथ्यादृष्टितिर्यंचो मिथ्यात्वोदयनिषेकानुत्कृष्य च सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दृष्टयो जायंते ते च भोगभूमिकृतकृत्यवेदकाश्च देवगत्यष्टाविंशतिकं बध्नंति देवकृतकृत्यवेदका नवविंशतिकादिद्वयं २९ म ३० म ती ।

ये वेदकसम्यक्त्वी और कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी असंयत आदि तीन तो अठाईस, उनतीस दोको और अप्रमत्त अठाईस आदि चारको बाँधते हैं ।

नरकगतिमें प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टी अपने कालके अनन्तर समयको प्राप्त होकर जो मिश्रगुणस्थानी या सादि मिथ्यादृष्टी होते हैं वे मिश्रप्रकृति वा मिथ्यात्व प्रकृतिके उदय निषेकोंको मिटाकर सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टी होकर घर्मा आदि तीन नरकोंमें तो तीर्थंकर सहित या तीर्थंकर रहित उनतीस और तीसके स्थानको बाँधते हैं । शेष नरकोंमें मनुष्यगति सहित उनतीसको ही बाँधते हैं । कर्मभूमिया या भोगभूमिया तिर्यंच और

कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळ् घर्म्मेयोळे संभविसुगुमप्पुदरिंदमा जीवंगळोळमा द्वित्थानंगळुं बंधमप्पुवु । २९ । म ३० । म ती ॥ शेषचतुःपृथ्विगळोळु प्रथमोपशमसम्यक्त्वचरमसमयानंतर समयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि मनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २९ । म ॥ सर्व्वपृथ्विगळ नारकरुगळोळु मिश्ररुगळुं सादिमिथ्यादृष्टिगळुं मिश्रमिथ्यात्वप्रकृत्युदयनिषेकंगळनुत्कर्षिसि सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि मोदल मूरुं नरकंगळ नारकरुगळु सतीर्त्थातीर्त्थनवविंशत्यादि द्वित्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । म ३० । म ती ॥ शेष पृथ्विगळ मिश्ररुं सादिमिथ्यादृष्टिजोवंगळुं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २९ म ॥ तिर्य्यंचप्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळ् तत्सम्यक्त्वकाल चरमसमयानंतरसमयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि तत्सम्यक्त्वप्रथमसमयं मोदंल्गोंडु मुंनिनंते देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २८ । दे ॥ सादिमिथ्यादृष्टिगळप्प तिर्य्यंचरुगळुं मिथ्यात्वप्रकृत्युदयनिषेकंगळनुत्कर्षिसि सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागियुमा स्थानमने कट्टुवरु । २८ । दे ॥ भोगभूमितिर्य्यंग्मनुष्यरुगळु प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिगळु तत्सम्यक्त्वचरमसमयानंतर समयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवर । २८ दे ॥ कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळुमा स्थानमनोंदने कट्टुवरु । २८ । दे ॥ दिविजनिर्व्वृत्यपर्य्याप्रकृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिगळ् नवविंशत्यादिद्वित्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । म । ३० ॥ म ती । प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिसुररुगळु तत्सम्यक्त्वकालचरमसमयपर्य्यंतं मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुत्तिद्दु अनंतरसमयदोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळागियुमा स्थानमनोंदने कट्टुवरु । २९ म ॥ सादिमिथ्यादृष्टिदिविजरुगळु भवनत्रयाद्युपरिमग्रैवेयकावसानमादवर्गंळु करणत्रयमं माडियुं मेण्माडदेयुं यथासंभवमागि सम्यक्त्वप्रकृत्युदयदिंदं मिथ्यात्वमं पत्तुविट्टु वेदकसम्यग्दृष्टिगळागि मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनोंदने कट्टुवरु । २९ । म ॥

प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टयस्तत्र जातवेदकसम्यग्दृष्टयश्च तन्नवविंशतिकमेव । भवनत्रयाद्युपरिमग्रैवेयकांतसादिमिथ्यादृष्टयः करणत्रयमकृत्वा कृत्वा वा यथासंभवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयान्मिथ्यात्वं त्यक्त्वा वेदकसम्यग्दृष्टयो भूत्वा तदेव बध्नंति ॥५५०॥

भोगभूमिया मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोड़ सादिमिथ्यादृष्टि होकर मिथ्यात्वके उदय निषेकोंको मिटाकर सम्यक्त्वमोहनीयके उदयसे वेदकसम्यग्दृष्टी होते हैं। वे जीव और भोगभूमिया कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टी देवगति सहित अठाईसको ही बाँधते हैं। देव कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टी उनतीस और तीसको बाँधते हैं। प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टी देव तथा देवपर्यायमें ही जिन्हें वेदकसम्यक्त्व हुआ है ऐसे देव मनुष्यगति सहित उनतीसको ही बाँधते हैं। भवनत्रिकसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त सादिमिथ्यादृष्टि जीव तीन करणोंको (करके) या न करके यथासम्भव सम्यक्त्वमोहनीयके उदयसे मिथ्यात्वको त्याग सम्यग्दृष्टी होकर मनुष्यगति सहित उनतीसको ही बाँधते हैं ॥५५०॥

अडवीसतिय दु साणे मिस्से मिच्छे दु किण्हुलेस्सं वा।
सण्णी आहारिदरे सव्वं तेवीसछक्कं तु ॥५५१॥

अष्टाविंशतित्रिकं द्वे सासादने मिश्रे मिथ्यादृष्टौ तु कृष्णलेश्ययैव। संज्ञ्याहारयोरितरयोः सर्व्वं त्रयोविंशतिषट्कं तु ॥

सासावनरुचिगळ्गेल्लमष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळ् बंधयोग्यंगळप्पु। २८। दे। २९। ति। म। ३०। ति उ॥ मिश्ररुचिगळ्गेल्ल मष्टाविंशत्यादि द्विस्थानंगळे बंधयोग्यंगळप्पुवु। २८। दे। २९। म॥ मिथ्यारुचिगळोळ् मत्ते कृष्णलेश्ययेयोळ् पेळ्द त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळ् बंधयोग्यंगळप्पुवु। २३ ए अ २५। ए प। बि ति च अ। सं। म। अ प। २६। ए प। आ उ। २८। न दे। २९। बि। ति। च। अ। सं। म। ३०। बि। ति। च। अ। सं। प उ॥ यिल्लि सासादनरुगळ् निर्व्वृत्यपर्य्याप्तपर्य्याप्तरुमेंदु द्विविधमप्परल्लि नरकगतियोळ् निर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरुगळ् खपुष्पोपमानमेंतेंदोडे "णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदि" एंदितु नरकगतियोळ् सासादनरु पुट्टरप्पुदरिदं। पर्य्याप्तसासादननारकरुगळ् नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळं कट्टुवरु। २९। ति। म। ३०। ति उ॥ तिर्य्यग्गतियोळ् पृथ्व्यब्बादरप्रत्येकवनस्पति द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञि पंचेंद्रियनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरुगळ् मष्टाविंशति प्रकृतिस्थानं पोरगागि नवविंशति द्विस्थानंगळं कट्टुवरु। २९। ति म। ३०। ति उ॥ पृथ्वीकायादि असंज्ञिपर्य्यंतं पर्य्याप्तसासादनरुगळ् शशशृंगोपमानरप्परु। संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तसासादनं देवगतियुताष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळं कट्टुगुं

सासादनरुचावष्टाविंशतिकादित्रयमेव। तत्र निर्वृत्यपर्याप्तबादरपृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञितिर्यग्मनुष्येषु पर्याप्तनारकोभयभवनत्रयादिसहस्रारांतदेवेषु च नवविंशतिकादिद्वयमेव। २९ ति म ३० ति उ। पर्याप्तसंज्ञितिर्यग्मनुष्ययोर्देवगत्यष्टाविंशतिकादित्रयं २८ दे २९ ति म ३० ति उ। उभयानताद्युपरिमग्रैवेयकांतेषु मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव। अनुदिशानुत्तरयोः सासादनो नास्ति। मिश्ररुचावष्टाविंशतिकादिद्वयं बध्नाति। तत्र पर्याप्तयोर्देवनारकयोर्मनुष्यगतिनवविंशतिकं। तिर्यग्मनुष्ययोश्च देवगत्यष्टाविंशतिकं। अनुदिशानुत्तरयोर्मिश्रो नास्ति। मिथ्यारुचौ कृष्णलेश्यावत्त्रयोविंशतिकादीनि षट् बध्नंति। तत्र निर्वृत्यपर्याप्तपर्याप्त-

---

सासादन सम्यक्त्वमें अठाईस आदि तीनका ही बन्ध होता है। वहां निर्वृत्यपर्याप्तक बादर, पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, संज्ञी असंज्ञी तिर्यंच मनुष्योंमें, पर्याप्त नारकियोंमें, और पर्याप्त-अपर्याप्त भवनत्रिकसे लेकर सहस्रार पर्यन्त देवोंमें उनतीस आदि दोका ही बन्ध होता है—तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीस अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका। पर्याप्त संज्ञी तिर्यंच मनुष्योंमें देवगतिसहित अठाईस आदि तीनका बन्ध होता है। पर्याप्त अपर्याप्त आनतादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मनुष्यगति सहित उनतीसका ही बन्ध होता है। अनुदिश और अनुत्तर विमानोंमें सासादन नहीं होता।

मिश्ररुचि अर्थात् सम्यक्मिथ्यादृष्टि अवस्थामें अठाईस आदि दोका ही बन्ध होता है। वहां पर्याप्त देव नारकी मनुष्यगति सहित उनतीसको ही बांधते हैं। तिर्यंच और मनुष्य देवगति सहित अठाईसको ही बाँधते हैं। अनुदिश अनुत्तरोंमें मिश्र गुणस्थान नहीं होता।

मिथ्यारुचि अर्थात् मिथ्यात्वमें कृष्णलेश्याकी तरह तेईस आदि छह स्थानोंको बाँधते हैं। वहाँ निर्वृत्यपर्याप्त और पर्याप्त नारकी छह नरकोंमें तिर्यंच या मनुष्यगतिसहित

२८। दे २९। ति म। ३०। ति उ॥ मनुष्यगतिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरुगळं नर्वविंशत्यादि द्विस्थानंगळने कट्टुवरु। २९। ति। म। ३०। ति उ॥ मनुष्यपर्य्याप्तसासादनरुगळु मष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळं कट्टुवरु। २८। दे। २९। ति म। ३०। ति उ॥ एकें दोडे निर्वृत्यपर्य्याप्ततिर्य्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिसासादनरुगळोळु 'मिच्छदुगेदेवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि' एंबितु पर्य्याप्तरोळु देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानबंधमक्कुमप्पुदरिंदं। देवगतिय भवनत्रयादिसहस्रारकल्पावसानमाद निर्वृत्यपर्य्याप्तसासादनरोळं पर्य्याप्तसासादनरोळं नर्वविंशत्यादि द्विस्थानंगळु बंधमप्पुवु। २९। ति म। ३०। ति उ॥ आनतादुपरिमग्रैवेयकावसानमाद निर्वृत्यपर्य्याप्तसासादनसुररुगळं पर्य्याप्तसुरसासादनरुगळं मनुष्यगतियुतनर्वविंशतिस्थानमनों दने कट्टुवरु। २९। म॥ अनुदिशानुत्तर विमानंगळोळु सासादनरिल्ल। चतुर्गतिय मिश्ररुगळेल्लं पर्य्याप्तरुगळेयप्परु। निर्वृत्यपर्य्याप्तरुगळिल्लल्लि। नरकदेवगतिद्वयद मिश्ररुगळेल्लं मनुष्यगतियुतनर्वविंशतिप्रकृतिस्थानमनों दने कट्टुवरु। अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळु मिश्ररुगळिल्ल। तिर्य्यंग्मनुष्यगतिय मिश्ररुगळु देवगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमनों दने कट्टुवरु। २८। दे॥ मिथ्यारुचिगळोळु नरकगतिय निर्वृत्यपर्य्याप्तरुं पर्य्याप्तरुं मिथ्यादृष्टिगळु नर्वविंशतिद्विस्थानंगळं सप्तमपृथ्विय मिथ्यादृष्टिगळपोरगागि शेषनारकरेल्लं कट्टुवरु। २९। ति म। ३०। ति उ॥ सप्तमपृथ्विय निर्वृत्यपर्य्याप्तरुं पर्य्याप्तरुं मिथ्यादृष्टिगळु तिर्य्यंग्गतियुतद्विस्थानंगळने कट्टुवरु। २९। ति ३०। ति उ॥ तिर्य्यंग्गतिय पृथ्व्यप्तेजोवायु साधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मप्रत्येकवनस्पति द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तनिर्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळु मष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानं पोरगागि। शेषत्रयोविंशत्यादि पंचस्थानंगळं कट्टुवरु। २३। ए अ। २५। ए प। वि। ति। च। अ। सं म। अ प २६। ए प। आ उ। २९। बि। ति। च। अ। सं। म। ३०। बि।

नारकेषु नवविंशतिकादिद्वयं। षट्पृथ्वीषु तिर्यग्मनुष्यगतियुतं। २९ ति म ३० ति उ। सप्तम्यां तिर्यग्गतियुतमेव २९ ति म ३० ति उ। तिर्यग्गतौ लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तबादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणप्रत्येकवनस्पतिद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञितिर्यग्मनुष्येष्वष्टाविंशतिकं विना त्रयोविंशतिकादीनि पंच। तेजोवायुषु तु—'मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं णेति मनुष्यगतियुतपंचविंशतिकनवविंशतिके न स्तः। पर्याप्तासंज्ञिसंज्ञितिर्यग्मनुष्येषु त्रयोविंश-

---

उनतीस और तीसको ही बाँधते हैं। सातवें नरकमें तिर्यंचगतिसहित ही उनतीस, तीसको बाँधते हैं। तिर्यंचगतिमें लब्ध्यपर्याप्तक, निर्वृत्यपर्याप्तक, बादर, सूक्ष्म, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण, प्रत्येक वनस्पति, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी, तिर्यंच और मनुष्योंमें अठाईसके बिना तेईस आदि पाँच स्थान बँधते हैं। इतना विशेष है कि तेजकाय और वायुकायमें मनुष्यगति सहित पचीस और उनतीसका बन्ध नहीं होता। पर्याप्त, संज्ञी, असंज्ञी, तिर्यंच मनुष्योंमें तेईस आदि छहका बन्ध होता है। लब्ध्यपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्योंमें अठाईसके बिना पाँचका ही बन्ध है।

---

१. ओराळे वा मिस्से ण हि सुरणिरयाउ हारणिरय दुगं। मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थी॥ कम्मे उराळमिस्सं वेत्युक्तत्वात्। मनुष्य तिर्य्यन्निर्वृत्यपर्याप्तसासादने अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानं नास्ति॥

ति । च । अ सं । प उ ॥ इल्लि विशेषमुंटदाउदें दोडे तेजोवायुकायिकंगळोळु मनुष्यगतियुत-पंचविंशति नवविंशतिस्थानद्वितयमा बादरसूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तरोळं संभविसवेकें दोडे "मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं ण हि तेउवाउम्मि" एंदितु बंधयोग्यंगळल्लप्पुदरिंदं। पंचेंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्टिगळु त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळं कट्टुवरु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । अ । सं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । न दे । २९ । बि । ति । च । अ । सं । म । ३० । बि । ति । च । अ । सं । प उ ॥ मनुष्यगतिय लब्ध्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळुमष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानं पोरगागि शेषपंचत्रयोविंशत्यादि स्थानंगळं कट्टुवरु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । अ । सं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २९ । बि । ति । च । अ । सं । म । ३० । बि । ति । च । अ । सं । प उ ॥ निर्वृत्यपर्याप्तमनुष्यमिथ्यादृष्टिगळुमा पंचस्थानंगळने कट्टुवरु । पर्याप्तमनुष्यमिथ्यादृष्टिजीवंगळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळं कट्टुवरु । २३ । ए । अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । नु दे । २९ । बि । ति । च । पं । म । ३० । बि । ति । च । पं । प उ ॥ देवगतियोळु भवनत्रयादि सौधर्मकल्पद्वयपर्यंतमाद निर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिगळु पर्याप्तमिथ्यादृष्टिगळु पंचविंशति षड्विंशति नवविंशतित्रिंशत्प्रकृतिस्थानचतुष्टयमं कट्टुवरु । २५ । ए प । २६ । ए प । आ । उ । २९ । ति । म । ३० । ति । उ ॥ मत्तं सानत्कुमारादिदशकल्पनिर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळु पर्याप्तमिथ्यादृष्टिजीवंगळु नवविंशत्यादिद्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । ति । म । ३० । ति उ ॥ आनताद्युपरिमग्रैवेयकावसानमादनिर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिगळु पर्याप्तमिथ्यादृष्टिगळु मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमनों दने कट्टुवरु । २९ । म ॥ अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळ मिथ्यादृष्टिगळिल्ल । मितु सम्यक्त्वमार्गणेयोळु नामकर्मबंधस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवु ॥

इल्लिगे प्रस्तुतमप्प गाथासूत्रमिदु :—

तिकादीनि षट् । लब्धिनिर्वृत्यपर्याप्तमनुष्येषु तान्यष्टाविंशतिकं विना पंच । देवगतौ निर्वृत्यपर्याप्तापर्याप्तयोर्भवनत्रयादीशानांतेषु पंचविंशतिकषड्विंशतिकनवविंशतिकत्रिंशत्कानि चत्वारि । सानत्कुमारादिदशकल्पेषु नवविंशतिकादिद्वयं । आनताद्युपरिमग्रैवेयकांतेषु मनुष्यगतिनवविंशतिकमेव । अनुदिशानुत्तरेषु मिथ्यादृष्टिर्नास्ति । अत्र प्रस्तुतगाथासूत्रं—

देवगतिमें निर्वृत्यपर्याप्त और पर्याप्त में भवनत्रिकसे ईशानपर्यन्त तो पचीस, छब्बीस, उनतीस, तीस ये चार स्थान बँधते हैं। और सानत्कुमार आदि दस स्वर्गोंमें उनतीस, तीस दो स्थान बँधते हैं। आनतादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मनुष्यगति सहित उनतीसका ही बन्ध होता है। अनुदिश अनुत्तरोंमें मिथ्यादृष्टि नहीं होते। यहाँ प्रासंगिक गाथा—अपना गुणस्थान त्यागकर अनन्तर समयमें किस-किस गुणस्थानको जीव प्राप्त होता है, यह कहते हैं—

---

१. पृथ्वीकायादिचतुरिंद्रियावसानमाद पर्याप्तजीवंगळ्गेयुं तदपर्याप्तजीवंगळ्गे पेळ्द त्रयोविंशत्यादि पंचस्थानंगळे बंधयोग्यंगळप्पुदरिं बेरे पेळल्पट्टुदिल्ल ॥

चदुरेक्कदु पण पंच य छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता ।
तिण्णुवसमगा सत्ता तियतियतियदोण्णि गच्छंति ॥

मिथ्यादृष्टिजीवंगळ त्रयोविंशत्यादि मिथ्यात्वमं बिट्टनंतरसमयदोळु नाल्कुं गुणस्थानं पोद्दुवरें तेंदोडे मिश्ररुमसंयतरुं देशसंयतरुमप्रमत्तरुगळुमप्परप्पुदरिंदं ॥ सासादनरुगळु सासादनकालावसानदनंतरसमयदोळु नियमदिंदं मिथ्यात्वगुणस्थानमनों दने पोद्दुवरु ॥ मिश्ररुगळु मिश्रपरिणामदिंदं परिच्युतरादनंतरसमयदोळु असंयतरुगळु मेणु मिथ्यादृष्टिगळक्कुमप्पुदरिंदं गुणस्थानद्वयप्राप्तरप्परु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टिगळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रदेशसंयताप्रमत्तगुणस्थानपंचकमं पोद्दुवरप्पुदरिंदं पंचगुणस्थानप्राप्तरप्परु ॥ देशसंयतरुगळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयताप्रमत्तरुगळप्परप्पुदरिंदं पंचगुणस्थानप्राप्तरप्परु ॥ प्रमत्तसंयतरुगळु मिथ्यादृष्टिगळुं सासादनरुगळुं मिश्ररुगळुमसंयतरुगळु देशसंयतरुगळुमप्रमत्तसंयतरुगळुमक्कुमप्पुदरिंदं । षड्गुणस्थानप्राप्तरप्परु ॥ अप्रमत्तसंयतरुगळु प्रमत्तरुमपूर्वकरणरुगळुं मरणमादोडे देवासंयतरुगळुमप्परप्पुदरिं । गुणस्थानत्रयप्राप्तरप्परु ॥ अपूर्वकरणरुगळुमनिवृत्तिकरणरुगळुं सूक्ष्मसांपरायसंयमिगळुमुपशमश्रेण्यारोहणावरोहणदोळु क्रमदिंदमारोहणमुमवरोहणमुमप्पुदरिंदं । गुणस्थानद्वयमं मरणमादोडे देवासंयतरुगळप्परप्पुदरिनसंयतगुणस्थानमुमिनितु मूरुं गुणस्थानंगळं पोद्दुगुमप्पुदरिंदं गुणस्थानत्रयप्राप्तरप्परु ॥ उपशांतकषायरुगळु गुणस्थानद्वयप्राप्तरुगळेयप्परें तेंदोडे अवरवतरणदोळु सूक्ष्मसांपरायरुं मरणमादोडे देवासंयतरुगळेयप्परप्पुदरिंदं ॥ गत्यनुवाददोळु नारकमिथ्यादृष्टिगळु मिश्ररुमसंयतरुमप्परु ।

चतुरेक्कदुपण पंच य छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता ।
तिण्णुवसमगे संतेत्ति य तियतियदोण्णि गच्छंति ॥१॥

स्वगुणस्थानं त्यक्त्वानंतरसमये मिथ्यादृष्टयः सासादनप्रमत्तं वर्जित्वा मिश्राद्यप्रमत्तांतानि चत्वारि गुणस्थानानि गच्छंति । सासादनाः मिथ्यात्वमेव । मिश्रा मिथ्यात्वासंयताख्ये द्वे । असंयता देशसंयताश्च प्रमत्तहीनान्यप्रमत्तांतानि पंच पंच । प्रमत्ताः अप्रमत्तांतानि षट् । अप्रमत्ताः प्रमत्तापूर्वकरणे मरणे देवासंयतं च । अपूर्वकरणादित्र्युपशमकाः आरोहंत्यवरोहंति मरणे देवासंयतं चेति त्रीणि त्रीणि त्रीणि । उपशांतकषाया अवतरणे सूक्ष्मसांपरायं मरणे देवासंयतं चेति द्वे ।

मिथ्यादृष्टी सासादन और प्रमत्त गुणस्थानको छोड़ अप्रमत्त पर्यन्त चार गुणस्थानोंको प्राप्त होता है । सासादन एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको ही प्राप्त होता है । मिश्र मिथ्यादृष्टि और असंयत इन दोको प्राप्त होता है । असंयत और देशसंयत प्रमत्तको छोड़ अप्रमत्त पर्यन्त पाँच गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । प्रमत्त अप्रमत्त पर्यन्त छहको प्राप्त होता है । अप्रमत्त प्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानको प्राप्त होता है । मरण होनेपर असंयत देव होता है । अपूर्वकरण आदि तीन उपशमश्रेणिवाले ऊपरके गुणस्थानमें चढ़ते हैं, नीचेके गुणस्थानमें उतरते हैं और मरनेपर देव असंयत होते हैं । इस तरह तीनों तीन-तीन गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । उपशान्तकषाय गिरनेपर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानको और मरनेपर देव असंयत होता है ।

सासादनरु मिथ्यादृष्टिगळेयप्परु । मिश्ररुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ् मसंयतरुगळ् मप्परु । असंयतरु मिश्ररुं सासादनरुं मिथ्यादृष्टिगळ् मप्परु । तिर्य्यंचरुगळोळ् मिथ्यादृष्टिगळ् मिश्ररुमसंयतरु देशसंयतरुमप्परु । सासादनरुमिथ्यादृष्टिगळेयप्परु । मिश्ररुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ् मसंयतरुमप्परु । असंयतरुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ् सासादनरुं मिश्ररुं देशसंयतरुमप्परु । देशसंयतरुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ् सासादनरुं मिश्ररुमसंयतरुमप्परु । मनुष्यगतिजरुगळोळ् मिथ्यादृष्टिगळ् मिश्ररुमसंयतरुं देशसंयतरुमप्रमत्तगळ् मप्परु । सासादनरुगळ् मिथ्यादृष्टिगळेयप्परु । मिश्ररुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ्मसंयतरुमप्परु । असंयतरुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ् सासादनरुं मिश्ररुं देशसंयतरुमप्रमत्तरप्परु ॥ देशसंयतरु मिथ्यादृष्टिगळ् सासादनरुं मिश्ररुमसंयतरुमप्रमत्तरुमप्परु ॥ प्रमत्तसंयतरुगळ् मिथ्यादृष्टिगळ् सासादनरुमिश्ररुमसंयतरुं देशसंयतरुमप्रमत्तरुमप्परु । अप्रमत्तसंयतरु कॆळगॆ प्रमत्तरुं मेले अपूर्व्वकरणरुं मरणमादोडे देवासंयतरुमप्परु । अपूर्व्वकरणरु आरोहणदोळनिवृत्तिकरणरुमवरोहणदोळप्रमत्तसंयतरुं मरणरहितारोहणप्रथमभागमल्लदतम्म गुणस्थानदोळारोहणावरोहणदोळॆल्लियानुं मरणमादोडे देवासंयतरप्परु ॥ अनिवृत्तिकरणरारोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनुमवरोहणदोळपूर्व्वकरणनुं मरणमादोडे देवासंयतनुमप्परु । सूक्ष्मसांपरायनु आरोहणदोळुपशांतकषायनुमवरोहणदोळनिवृत्तिकरणनुं मरणमादोडे देवासंयतनुमक्कुं ॥ उपशांतकषायनु अवरोहणदोळु सूक्ष्मसांपरायनुं मरणमादोडे देवासंयतनुमक्कुं ॥ क्षपकश्रॆणियोळारोहकरल्लदवरोहकरिल्लप्पुदरिंदं । मरणरहितरप्पुदरिंदमुमपूर्व्वकरणननिर्वृत्तिकरणनक्कु । मनि-

---

गत्यनुवादे तु नारकमिथ्यादृष्टयः मिश्रमसंयतं च । सासादनाः मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमेव । मिश्रा मिथ्यादृष्टयसंयतं च । असंयता मिश्रांतानि त्रीणि । तिर्यग्मिथ्यादृष्टयः मिश्रादिदेशसंयतांतानि । सासादना मिथ्यादृष्टि । मिश्रा मिथ्यादृष्टयसंयतं च । असंयतांता देशसंयतांतानि । देशसंयता असंयतांतानि । मनुष्यमिथ्यादृष्टयः विना सासादनप्रमत्तमप्रमत्तांतानि । सासादना मिथ्यादृष्टि । मिश्रा मिथ्यादृष्टयसंयतं च । असंयता विना प्रमत्तमप्रमत्तांतानि पंच । देशसंयताश्च तथा । प्रमत्ता अप्रमत्तांतानि । अप्रमत्ताः प्रमत्तमपूर्वकरणं मरणे देवासंयतं च । अपूर्वकरणाः आरोहणेऽनिवृत्तिकरणमवरोहणे अप्रमत्तं, आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागादन्यत्र मरणे देवासंयतं च । अनिवृत्तिकरणा आरोहणे सूक्ष्मसांपरायमवरोहणेऽपूर्वकरणं मरणे देवासंयतं च । सूक्ष्मसांपराया आरोहणे उपशांतकषायमवरोहणेऽनिवृत्तिकरणं मरणे देवासंयतं च । उपशांत-

---

गतिकी अपेक्षा नारकी मिथ्यादृष्टि मिश्र और असंयतको, सासादन एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको, मिश्र मिथ्यादृष्टि और असंयत गुणस्थानको, असंयत मिश्र पर्यन्त तीन गुणस्थानोंको प्राप्त होता है। तिर्यंच मिथ्यादृष्टि मिश्रसे लेकर देशसंयत गुणस्थान तक प्राप्त होता है। सासादन मिथ्यादृष्टिको, मिश्र मिथ्यादृष्टि और असंयतको, असंयत देशसंयतपर्यन्त चारको, देशसंयत असंयत पर्यन्त चार गुणस्थानोंको प्राप्त होता है। मनुष्य मिथ्यादृष्टि सासादन और प्रमत्तको छोड़ अप्रमत्तपर्यन्त चारको, सासादन मिथ्यादृष्टिको, मिश्र मिथ्यादृष्टि और असंयतको, असंयत प्रमत्त बिना अप्रमत्त पर्यन्त पाँचको, देशसंयत प्रमत्त बिना अप्रमत्त पर्यन्त पाँचको, प्रमत्त अप्रमत्त पर्यन्त छहको, अप्रमत्त प्रमत्त और अपूर्वकरणको तथा मरण होनेपर देवअसंयतको, अपूर्वकरण चढ़नेपर अनिवृत्तिकरण-,

वृत्तिकरणं सूक्ष्मसांपरायनक्कुं । सूक्ष्मसांपरायं क्षीणकषायनक्कुं । क्षीणकषायं सयोगकेवलियक्कुं । सयोगिकेवलि अयोगिकेवलियक्कुमयोगकेवलि सिद्धपरमेष्ठियक्कुं ॥ देवगतिजरोळु मिथ्यादृष्टिगळु मिश्ररुमसंयतरुमप्परु । सासादनरु मिथ्यादृष्टिगळेयप्परु । मिश्ररुगळु मिथ्यादृष्टिगळुमसंयतरुगळुमप्परु । असंयतरुगळु मिथ्यादृष्टिगळुं सासादनरुं मिश्ररुमप्परु ॥

संज्ञिमार्गणेयोळमाहारमार्गणेयोळं सर्व्वनामकर्म्मबंधस्थानंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवु ॥ असंज्ञ्य- ५
नाहारमार्गणेगळोळु त्रयोविंशत्यादिषट् स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । अल्लि सर्व्वपृथ्वीगळ नारकरुं संज्ञिपंचेंद्रिय तिर्यंचरुं सर्व्वमनुष्यरुं सर्व्वदिविजरुं संज्ञिगळप्परल्लि नरकगतियोळु नवविंशत्यादि-द्विस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २९ । ति म । ३० । ति । उ । म ति । तिर्य्यग्गतियोळु तीर्त्थाहार-युतबंधविकल्पस्थानंगळं कळेदु शेषतिर्य्यग्मनुष्यगतियुतबंधस्थानंगळु त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ । १०
उ । २८ । न दे । २९ । बि । ति । च । पं । म । ३० । बि । ति । च । पं । प उ ॥ मनुष्यगतियोळु सर्व्वस्थानंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । न । दे । २९ । बि । ति । च । पं । म । दे । ति । ३० । बि । ति । च । पं । प उ । म ति । दे । आ २ । ३१ । दे । आ ति । १ ॥ देवगतियोळु पंचविंशत्यादि चतुःस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २५ । ए प । २६ । ए प । आ उ । २९ । ति म । ३० । ति उ । म ती । असंज्ञि- १५
मार्गणे तिर्य्यंग्गतियोळेयक्कुमल्लि । पृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मप्रत्येकवनस्पति-द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियमिनितुमसंज्ञिजीवंगळप्पुदरिंदमी असंज्ञिलब्ध्यपर्य्याप्तनिर्वृत्य-पर्य्याप्तपर्य्याप्तजीवंगळ्गे बंधयोग्यंगळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळप्पुवु । २३ । ए अ । २५ । ए प ।

कषायमवरोहणेऽनिवृत्तिकरणं मरणे देवासंयतं च । उपशांतकषाया अवरोहणे सूक्ष्मसांपरायं मरणे देवासंयतं च । क्षपकश्रेण्यामारोहणमेव नावरोहणमरणे तेनापूर्वकरणोऽनिवृत्तिकरणमनिवृत्तिकरणः सूक्ष्मसांपरायं, सूक्ष्म- २०
सांपरायः क्षीणकषायं, क्षीणकषायः सयोगकेवलिनं, सयोगकेवली अयोगकेवलिनं, अयोगकेवली सिद्धं ।

देवमिथ्यादृष्टयः मिश्रमसयतं च, सासादनाः मिथ्यादृष्टि, मिश्रा मिथ्यादृष्टयसंयतं च, असंयता मिश्रांतानि, संज्ञ्याहारमार्गणयोर्नामबंधस्थानानि सर्वाणि, असंज्ञ्यनाहारयोस्त्रयोविंशतिकादीनि षट् । तत्र

को उतरनेपर अप्रमत्तको और मरनेपर देवअसंयतको, अनिवृत्तिकरण चढ़नेपर सूक्ष्म-साम्पराय को, उतरनेपर अपूर्वकरणको, मरनेपर देवअसंयतको, सूक्ष्मसाम्पराय २५
चढ़नेपर उपशान्तकषायको, उतरनेपर अनिवृत्तिकरणको मरनेपर देव असंयतको, उपशान्त-कषाय उतरनेपर सूक्ष्मसाम्परायको और मरनेपर देवअसंयतको प्राप्त होता है । क्षपकश्रेणिमें चढ़ना ही है, उतरना या मरण नहीं होता । अतः अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणको, अनिवृत्ति-करण सूक्ष्मसाम्परायको, सूक्ष्मसाम्पराय क्षीणकषायको, क्षीणकषाय सयोगीको, सयोगी अयोगीको और अयोगी सिद्धपदको प्राप्त होता है । ३०

देवमिथ्यादृष्टि मिश्र और असंयतको, सासादन मिथ्यादृष्टिको, मिश्र मिथ्यादृष्टि और असंयतको, असंयत मिश्र पर्यन्त तीनको प्राप्त होता है । संज्ञी और आहारमार्गणामें नामकर्मके सब बन्धस्थान होते हैं । असंज्ञी और अनाहारकमें तेईस आदि छह होते हैं ।

बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ । उ । २८ । न । दे । २९ । बि । ति । च । पं । म । ३० । बि । ति । च । पं । प उ ॥ आहारमार्गणे [1]नोकर्म्महारविवक्षेयिनप्पुदरिंदं चतुर्गतिसाधारणमक्कुमल्लि । नारकरोळु नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळुबंधयोग्यंगळप्पुवु । २९ । ति । म । ३० । ति उ । म ती ॥ तिर्य्यग्गतियोळु पृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पति-बादरसूक्ष्मप्रत्येकवनस्पतिविकलत्रयपंचेंद्रियासंज्ञिसंज्ञिगळिविनितुमाहारिगळप्पुदरिंदं त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ । उ । २८ । न । दे । २९ । बि । ति । च । प । म । ३० । बि । ति । च । पं । प उ ॥ मनुष्यगतियोळु मनुष्यरेल्लरुगळुमाहारिगळु यथायोग्यमागि त्रयोविंशत्यादि सर्व्वस्थानंगळं कट्टुवरु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । न । दे । २९ । बि । ति । च । पं । म । दे ती । ३० । बि । ति । च । पं । प उ । दे आ । ३१ । दे आ । २ । ती । १ ॥ देवगतियोळु नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळं कट्टुवरु । २९ । ति । म । ३० । ति । उ । म ती ॥ अनाहारमार्गणे चतुर्गगतिसाधारणमप्पुदरिंदं विग्रहगतिय नारकानाहारकरोळु नवविंशत्यादिद्विस्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २९ । ति । म । ३० । ति उ । म ती । एकांनविंशतिविधतिर्य्यंचानाहारकरोळुत्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ प । २६ । ए प । आ उ । २८ । [1]दे । इदु असंयता-

संज्ञिनि नारके नवविंशतिकादिद्वयं २९ ति म ३० ति उ म ती । तिरश्चि तीर्थाहारवर्जिताद्यानि षट्, मनुष्ये सर्वाणि, देवेऽष्टाविंशतिकं विना पंचविंशतिकादीनि चत्वारि २५ ए प २६ ए प आउ २९ ति म ३० ति उ म ती । असंज्ञिमार्गणायां लब्धिनिर्वृत्त्यपर्याप्तापर्याप्तबादरसूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणप्रत्येकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियेषु तीर्थाहारवर्जिताद्यानि षट् । आहारमार्गणायां देवनारकेषु तन्नवविंशतिकादिद्वयं २९ ति म ३० ति उ म ती । तिर्यक्षु त्रयोविंशतिकादीनि षट् । मनुष्येषु सर्वाणि । अनाहारमार्गणायां विग्रहगतौ देवनारकेषु ते द्वे २९ ति म ३० ति उ म ती । एकान्नविंशतिविधतिर्यक्षु त्रयोविंशतिकादीनि षट् २३ ए अ, २५ ए प वि ति च पं म

संज्ञी मार्गणामें नारकीमें उनतीस, तीस दो बन्धस्थान हैं। तिर्यंचमें तीर्थंकर और आहारकसे रहित छह बन्धस्थान हैं। मनुष्यमें सब बन्धस्थान हैं। देवोंमें अठाईसके बिना पच्चीस आदि चार बन्धस्थान हैं—एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित पच्चीस और छब्बीस, तिर्यंच मनुष्यगति सहित उनतीस, तिर्यंच उद्योत सहित या मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीस।

असंज्ञी मार्गणामें लब्ध्यपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त, पर्याप्त, बादर, सूक्ष्म, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण, प्रत्येक, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियमें तीर्थंकर आहारक रहित आदिके छह स्थान होते हैं।

आहारमार्गणामें देवों और नारकियोंमें उनतीस और तीस दो स्थान हैं। तिर्यंचोंमें तेईस आदि छह हैं। मनुष्योंमें सब हैं। अनाहारमार्गणामें, विग्रहगतिमें, देवों और नारकियोंमें उनतीस और तीस दो स्थान हैं। उन्नीस प्रकारके तिर्यंचोंमें तेईस आदि छह हैं। उनमें-से

१. °कर्म्माहार° ।

पेक्षेयिवक्कुं । २९ । बि । ति । च । पं । म । ३० । बि । ति । च । पं । प उ ॥ मनुष्यानाहारकरोळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळु बंधयोग्यंगळप्पुवु । २३ । ए अ । २५ । ए प । बि । ति । च । पं । म । अ । प । २६ । ए प । आ उ । २८ । दे । २९ । बि । ति । च । पं । म । दे तो । ३० । बि । ति । च । पं । प उ ॥ देवानाहारकरोळु नवविंशत्यादि द्विस्थानंगळ बंधयोग्यंगळप्पुवु । २९ । ति । म । ३० । ति । उ । म तो । यितु नामकर्म्मबंधस्थानंगळु गत्यादिमार्गणेगळोळु योजिसल्पट्टुवु ॥ ५

तत्वदरुचि सम्यक्त्वं तत्वंगळनोळिळतागियरिउवु बोधं । तत्वं तन्नोळु नेरदिरे सत्वंगळ नोविनेगळडदुवे चरित्रं ॥

अनंतरं नामबंधस्थानंगळोळु पुनरुक्त भंगंगळं तोरिदपरु :—

णिरयादिजुदट्ठाणे भंगेणप्पप्पणम्मि ठाणम्मि ।
ठविदूण मिच्छभंगे सासणभंगा हु अत्थित्ति ॥५५२॥ १०

नरकादियुतस्थानानि भंगेनात्मात्मनि स्थाने स्थापयित्वा मिथ्यादृष्टि भंगे सासादन भंगाः खलु संतीति ॥

नरकगत्यादि युतस्थानंगळनु तंतम्म भंगगळु सहितमागि तंतम्म गुणस्थानदोळु स्थापिसि नोडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिय बंधस्थानंगळ भंगंगळोळुसासादनबंधस्थानंगळ भंगंगळुटेंदितु मत्तं :—

अविरदभंगे मिस्स य देसपमत्ताण सव्वभंगा हु । १५
अत्थित्ति ते दु अवणिय मिच्छाविरदापमादेसु ॥५५३॥

अविरतभंगे मिश्रदेशसंयतप्रमत्तानां सर्व्वभंगाः खलु संतीति तान् त्वपनीय मिथ्यादृष्ट्य-विरताप्रमादेषु ॥

अ, २६ ए प आ उ, २८ दे । इदमेकसंयतं प्रति २९ वि ति च पं म । ३० विति च पं प उ । मनुष्येषु त्रयोविंशतिकादीनि षट् २३ ए अ २५ ए अ २५ ए प वि ति च पं म अ २६ ए प आउ २८ दे २९ वि ति च पं म दे ती ३० वि ति च पं उ । तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं । तत्त्वानां सम्यग्ज्ञानं बोधः । तद्द्वयपूर्वकं जीवाविराधनं चारित्रं ॥५५१॥ अथापुनरुक्तभंगानाह—

नारकादिगतियुतस्थानानि स्वस्वभंगैः सह स्वस्वगुणस्थाने संस्थाप्य तन्मिथ्यादृष्टिबंधस्थानभंगेषु

अठाईस (देवगति सहित) असंयतमें ही होता है । मनुष्योंमें तेईस आदि छह हैं । तत्त्व-रुचि सम्यक्त्व है । तत्त्वोंका सम्यक्ज्ञान बोध है । उन दोनोंके साथ जीवोंकी विराधना न करना चारित्र है ॥५५१॥ २५

आगे अपुनरुक्त भंग कहते हैं—

नरक आदि गति सहित स्थानोंको अपने-अपने भंगोंके साथ अपने-अपने गुणस्थानमें स्थापित करो । तो मिथ्यादृष्टिके बन्धस्थानोंके भंगमें सासादनके बन्धस्थानोंके भंग आ

---

१. यिल्लियनाहारदोळु कार्म्मणकाययोगमक्कुं । कम्मे उराळमिस्सं वा ॥ ओराळे वा मिस्से ण हि सुरणिर- ३०
याउहारणिरयदुगं । मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थी ॥ एंदु पेळ्वुदरिं ॥

असंयतनभंगंगळोळु मिश्रदेशसंयत प्रमत्तरुगळ बंधस्थानंगळ सर्व्वभंगंगळमुंटे दितु तान् आ सासादनमिश्रदेशसंयतप्रमत्तरुगळ बंधस्थानंगळ भंगंगळं कळेदु मिथ्यादृष्टि अविरताप्रमादरुगळ बंधस्थानंगळोळु भुजाकारादिबंधंगळप्पुवेंदरियल्पडुगुं । संदृष्टि :—मिथ्यादृष्टिय नरकगतियुतस्थानं २८ न तिर्य्यग्गतियुतस्थानंगळु २३ २५ २६ २९ ३० मनुष्यगतियुतस्थानंगळु—
१ १ ८ ८ ४६०८ ४६०८

५ २९ २५ देवगतियुतस्थानं २८ सासादनंगे नरकगतियुतस्थानबंधं शून्यमक्कुं ।
४६०८ १ ८

तिर्य्यग्गतियुतस्थानंगळु २९ ३० मनुष्यगतियुतबंधस्थानं २९ म देवगति-
३२०० ३२००
३२००

युतबंधस्थानं २८ यितु सासादनन मूरुं गतियुतबंधस्थानंगळोळु संभविसुव भंगंगळनितुं मिथ्या-
८

दृष्टिय चतुर्ग्गतिय बंधस्थानंगळ भंगंगळोळु संभविसुववु । मत्तमसंयतंगे नरकगतियुतबंधस्थानमुं तिर्य्यंग्गतियुतबंधस्थानंगळुं संभविसवु । मनुष्यगतियुतबंधस्थानंगळु २९ ३० देवगतियुत-
८ ८

१० स्थानंगळु २८ २९ मिवरोळु मिश्रंगे नरकगतियुतबंधस्थानंगळुं शून्यंगळु । मनुष्यगतियुत-
८ ८

बंधस्थानं २९ म देवगतियुतबंधस्थानं २८ ई मिश्रनगतिद्वययुतद्विस्थानंगळ भंगंगळुं
८ ८

देशसंयतंगे नरकगतियुतबंधस्थानंगळुं तिर्यग्गतियुतबंधस्थानंगळुं मनुष्यगतियुतबंधस्थानंगळुं

सासादनबंधस्थानभंगाः खलु संतीति कारणात् । पुनः असंयतबंधस्थानभंगेषु मिश्रदेशसंयतप्रमत्तबंधस्थानसर्व-भंगाः खलु संतीति कारणाच्च तान् सासादनभंगान् मिथ्यादृष्टिभंगेषु मिश्रदेशसंयतप्रमत्तभंगान् असंयतभंगेषु
१५ चापनीय मिथ्यादृष्ट्यविरताप्रमत्तेषु बंधस्थानभंगा भवंति ।

संदृष्टिः—मिथ्यादृष्टेर्नरक २८ तिर्यग् २३ २५ २६ २९ ३० मनुष्य २९ २५ देवगति-
१ १ ८ ८ ४६०८ ४६०८ ४६०८ १

युतानि २८ । सासादनस्य नरकगतियुतं नास्ति । तिर्यग् २९ ३० मनुष्य २९ देवगतियुतानि
८ ३२०० ३२०० ३२००

जाते हैं । और असंयतके बन्धस्थानोंके भंगोंमें मिश्र, देशसंयत और प्रमत्तके भंग आ जाते हैं । क्योंकि उनमें परस्परमें समानता है । अतः मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें सासादनके भंगोंको
२० और असंयतके भंगोंमें मिश्र, देशसंयत और प्रमत्तके भंगोंको घटाकर मिथ्यादृष्टि अविरत और अप्रमत्तमें बन्धस्थानोंके भंग होते हैं । मिथ्यादृष्टिमें नरकगतियुक्त अठाईसके स्थानका भंग एक है । तिर्यंचगतियुक्त तेईसका एक, पचीसके आठ, छब्बीसके आठ, उनतीसके छियालीस सौ आठ और तीसके छियालीस सौ आठ भंग हैं । मनुष्यगतियुक्त पच्चीसमें एक और उन्तीसमें छियालीस सौ आठ भंग हैं । देवगति सहित अठाईसमें आठ भंग हैं ।
२५ सासादनमें नरकगति सहित भंग नहीं हैं । तिर्यंचगति सहित उनतीसमें बत्तीस सौ, तीसमें बत्तीस सौ, मनुष्यगति सहित उनतीसमें बत्तीस सौ, देवगति सहित अठाईसमें आठ भंग

शून्यमक्कुं। देवगतियुतबंधंगळु २८ २९ ई देशसंयतन देवगतियुतबंधद्विस्थानंगळ
८ ८
भंगंगळुं प्रमत्तसंयतंगमा देशसंयतनंते नरकगत्यादि गतित्रययुतबंधस्थानंगळु शून्यमक्कुं। देवगति-
युतबंधस्थानंगळु २८ २९ ई प्रमत्त देवगतियुत द्विस्थानभंगंगळुमसंयतन बंधस्थानंगळोळु
८ ८
संभविसुगुमदु कारणमागियासासादन बंधस्थानंगळ भंगंगळुमनी मिश्रदेशसंयतप्रमत्तरुगळ बंधस्थान-
भंगंगळुमं कळेदु मिथ्यादृष्टिय असंयतन प्रमादरहितर बंधस्थानंगळोळु भुजाकारादि चतुब्बंध- ५
स्थानंगळोळु भंगंगळप्पुवेंबुदत्थं ॥

आ भुजाकारादिबंधंगळु स्वस्थानपरस्थान सर्व्वपरस्थानंगळोळु संभविसुगुमेंदु पेळदपरु :—

भुजगारा अप्पदरा अवट्ठिदावि य सभंगसंजुत्ता।
सव्वपरट्ठाणेण य णेदव्वा ठाणबंधम्मि ॥५५४॥

भुजाकारा अल्पतरा अवस्थिता अपि च स्वभंगसंयुक्ताः। सर्व्वपरस्थानेन च नेतव्याः १०
स्थानबंधे ॥

भुजाकारबंधंगळुं अल्पतरबंधंगळु अवस्थितबंधंगळुं चशब्ददिंदमवक्तव्यबंधंगळुं स्वस्व-
भंगसंयुक्तंगळागिये नामस्थानबंधदोळु स्वस्थानबंधदोडनेयुं परस्थानबंधदोडनेयुं सर्व्वपरस्थानबंध-
दोडनेयुं नडेसल्पडुववु ॥

स्वस्थानपरस्थानसर्व्वपरस्थानंगळेंबुवंतेंदोडे पेळ्दपरु :— १५

२८। मिश्रासंयतयोर्न च नरकतिर्यग्गतियुतानि। मिश्रस्य मनुष्य २९ देवगतियुते २८ असंयतस्य मनुष्य
८ ८ ८
२९ ३० देव २८ २९ गतियुतानि। देशसंयतस्य प्रमत्तस्य च केवलदेवगतियुते २८ २९ ॥५५२-५५३॥
८ ८ ८ ८ ८ ८

तद्बंधा भुजाकारा अल्पतरा अवस्थिताः, चशब्दादवक्तव्याश्चेति चत्वारः, स्वस्वभंगसंयुक्ता नामस्था-
नबंधविषये स्वस्थानेन परस्थानेन सर्वपरस्थानेन च सह नेतव्याः ॥५५४॥ तानि स्वस्थानादीनि लक्षयति—

हैं। मिश्र और असंयतमें नरकगति और तिर्यञ्चगति सहित स्थान नहीं हैं। मिश्रमें मनुष्य- २०
गति सहित उनतीस और देवगति सहित अठाईसके आठ-आठ भंग हैं। असंयतमें मनुष्यगति
सहित उनतीस, तीस और देवगति सहित अठाईस, उनतीसके आठ-आठ भंग हैं। देशसंयत
और प्रमत्तमें केवल देवगति सहित अठाईस, उनतीसके आठ-आठ भंग हैं ॥५५२-५५३॥

विशेष—पं. टोडरमलजीने अपनी टीकामें मिश्रमें मनुष्यगतियुत् उनतीसके तथा
असंयतमें मनुष्ययुत् उनतीस-तीसके और देवगतियुत् अठाईस-उनतीसके चार-चार भंग २५
लिखे हैं। और देवगतियुत् अठाईस, उनतीस, उनतीस, तीस इन चारोंके आठ-आठ भंग
लिखे हैं। कलकत्तासे मुद्रित संस्करणमें इसपर टिप्पणी भी है कि कुछ पाठ संस्कृत टीकाके
पाठसे अधिक प्रतीत होता है।

पूर्वोक्त बन्धके भुजकार अल्पतर अवस्थित और 'च' शब्दसे अवक्तव्य इस तरह
चार प्रकार हैं। अपने-अपने भंगोंसे संयुक्त नामकर्मके बन्धस्थानोंमें स्वस्थान, परस्थान ३०
और सर्वपरस्थानके साथ लाने चाहिए ॥५५४॥

अप्पपरोभयठाणे बंधट्ठाणाण जो दु बंधस्स ।
सट्ठाण परट्ठाणं सव्वपरट्ठाणमिदि सण्णा ॥५५५॥

आत्मपरोभयस्थाने बंधस्थानानां यस्तु बंधस्य । स्वस्थानपरस्थानं सर्व्वपरस्थानमिति संज्ञा ॥

आत्मपरोभयस्थाने मिथ्यादृष्टयसंयताप्रमादरुगळ आत्म स्वस्वगुणस्थानदल्लियुं, पर स्वस्व-गुणस्थानमं त्यजिसि परगुणस्थानदल्लियुं, उभयस्थाने परगति परगुणस्थानदल्लियुमितु त्रिस्थान-दोळमा मिथ्यादृष्टयसंयताप्रमादरुगळ त्रयोविंशत्यादिबंधस्थानंगळसंबंधि भुजाकाराल्पतरावस्थि-तावक्तव्यरूपमप्प यस्तु बंधस्तस्य आउदोंदु बंधमा बंधक्के क्रमदिदं स्वस्थान भुजाकारादिबंधमेंदुं परस्थानभुजाकारादिबंधमेंदुं सर्व्वपरस्थानभुजाकारादिबंधमेंदुं संज्ञेयक्कुं ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्टयादि स्वस्वगुणस्थानस्थित जीवंगळगे स्वस्वगुणस्थानच्युतियागुत्तं विरलेनितनितु गुणस्थानप्राप्तियक्कुमेंदोडे पेळ्दपरु :—

चदुरेक्कदुपण पंच य छत्तिगठाणाणि अप्पमत्तंता ।
तिसु उवसमगे संतेति य तिय तिय दोण्णि गच्छंति ॥५५६॥

चतुरेकद्वि पंच पंच च षट् त्रिक स्थानान्यप्रमत्तांतानि । त्रिषूपशमकेषु शांते त्रिक त्रिक द्वि गच्छंति ॥

मिथ्यादृष्टि जीवं नाल्कु गुणस्थानंगळं पोद्दुगुं । सासादननोंदे गुणस्थानमनेय्दुगुं । मिश्रनेरडे गुणस्थानमनेय्दुगुं । असंयतनुं देशसंयतनुमय्दु मय्दु गुणस्थानंगळनेय्दुवरु । प्रमत्तनारु गुणस्थानंगळनेय्दुगुं । अप्रमत्तं मूरुं गुणस्थाननंगळनेय्दुगुं । अपूर्व्वकरणादि मूवरुमुपशमकरुं प्रत्येकं मूरुं मूरुं गुणस्थानंगळं पोद्दुगुं । उपशांतकषायनेरडे गुणस्थानंगळं पोद्दुगुं ॥

आत्मस्थानं स्वगुणस्थानं, परस्थानं परगुणस्थानं, उभयस्थानं परगतिपरगुणस्थानं । अस्मिंस्त्रये यस्तु मिथ्यादृष्टयसंयताप्रमत्तबंधस्थानसंबंधो भुजाकारादिबंधः स क्रमेण स्वस्थानभुजाकारादिः परस्थानभुजाकारादिः सर्वपरस्थानभुजाकारादिरितिसंज्ञः स्यात् ॥५५५॥

मिथ्यादृष्टयः स्वस्वगुणस्थानं त्यक्त्वा अप्रमत्तांताः क्रमेण चत्वार्येकं द्वे पंच पंच षट् त्रीणि गुण-स्थानानि गच्छंति । अपूर्वकरणादित्र्युपशमकास्त्रीणि त्रीणि, उपशांतकषाया द्वे । ॥५५६॥

स्वस्थान आदिका लक्षण कहते हैं—

आत्मस्थान अर्थात् विवक्षित अपना गुणस्थान और परस्थान अर्थात् विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थान तथा उभयस्थान अर्थात् अन्यगति और अन्यगुणस्थान, इन तीनोंमें जो मिथ्यादृष्टि, असंयत और अप्रमत्तके बन्धस्थान सम्बन्धी भुजकारादि बन्ध हैं उनकी क्रमसे स्वस्थान भुजकार आदि परस्थान भुजकार आदि और सर्वपरस्थान भुजकारादि संज्ञा है ॥५५५॥

मिथ्यादृष्टि आदि अपने-अपने गुणस्थानको छोड़कर अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त क्रमसे चार, एक, दो, पाँच, पाँच, छह और तीन गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं। अपूर्वकरण आदि तीन उपशमश्रेणिवाले तीन-तीनको और उपशान्त कषायवाले दो गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं ॥५५६॥

ई संख्याविषयगुणस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

सासणपमत्तवज्जं अपमत्तंतं समल्लियइ मिच्छो ।
मिच्छत्तं बिदियगुणो मिस्सो पढमं चउत्थं च ॥५५७॥

सासादनप्रमत्तवर्ज्याप्रमत्तांतं समाश्रयति । मिथ्यादृष्टिर्म्मिथ्यात्वं द्वितीयगुणः मिश्रः प्रथमं चतुर्थं च ॥

सासादनप्रमत्तगुणस्थानद्वयवर्ज्जितमप्प मिश्राद्यप्रमत्तांतगुणस्थानचतुष्टयमं मिथ्यादृष्टिजीवं समाश्रयिसुगुं । द्वितीयो गुणो यस्य स द्वितीयगुणः सासादनः सासादनं मिथ्यात्वमं समाश्रयिसुगुं । मिश्रः मिश्रपरिणामिजीवं प्रथमं मिथ्यात्वमं चतुर्त्थं असंयतगुणस्थानमुमं समाश्रयिसुगुं ॥

अविरदसम्मो देसो पमत्तपरिहीणमप्पमत्तंतं ।
छट्ठाणाणि पमत्तो छट्ठगुणं अप्पमत्तो दु ॥५५८॥

अविरतसम्यग्दृष्टिर्द्देशविरतः प्रमत्तपरिहीनमप्रमत्तांतं । षट्स्थानानि प्रमत्तः षष्ठगुणमप्रमत्तस्तु ॥

अविरतनुं देशविरतनुं प्रमत्तपरिहीनमप्रमत्तांतं पंचगुणस्थानंगळं समाश्रयिसुवरु । प्रमत्तसंयतनप्रमत्तांतं षट्स्थानंगळं समाश्रयिसुगुं । अप्रमत्तस्तु अप्रमत्तनुं षष्ठगुणस्थानमुमं तु शब्ददिंदमुपशमक्षपकश्रेण्यारोहणदोळ पूर्व्वकरणगुणस्थानमुमं मरणमादोडे देवासंयतगुणस्थानमुमनंतु गुणस्थानत्रितयमं समाश्रयिसुगुं ॥

उवसामगा दु सेढिं आरोहंति य पडंति य कमेण ।
उवसामगेसु मरिदो देवतमत्तं समल्लियइ ॥५५९॥

उपशमकास्तु श्रेणिमारोहंति च पतंति च क्रमेण । उपशमकेषु मृतो देवतमत्वं समाश्रयति ॥

तानि गुणस्थानानि कानीति चेदाह—

मिथ्यादृष्टिः सासादनप्रमत्तं वर्जित्वा मिश्राद्यप्रमत्तांतानि चत्वारि गुणस्थानानि समाश्रयति । द्वितीयगुणः सासादनः मिथ्यात्वं । मिश्रः प्रथमं चतुर्थं च । अविरतो देशविरतश्च प्रमत्तपरिहीनाप्रमत्तांतानि पंच । प्रमत्तः—अप्रमत्तांतानि षट् । अप्रमत्तः षष्ठं । तुशब्दात् उपशमकक्षपकापूर्वकरणं देवासंयतं च ॥५५७–५५८॥

उन गुणस्थानोंको कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि सासादन और प्रमत्तको छोड़ मिश्रसे अप्रमत्त पर्यन्त गुणस्थानोंको प्राप्त होता है। दूसरे सासादन गुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको ही प्राप्त होता है। मिश्र पहले और चौथे गुण स्थानको प्राप्त होता है। असंयत और देशसंयत प्रमत्त बिना अप्रमत्त पर्यन्त पाँच-पाँच ही गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं। प्रमत्त अप्रमत्त पर्यन्त छह गुणस्थानोंको प्राप्त होता है। अप्रमत्त छठेको और 'तु' शब्दसे उपशमक क्षपक अपूर्वकरणको और मरण होनेपर देव असंयतको प्राप्त होता है ॥५५७–५५८॥

अपूर्व्वकरणाद्युपशमकरुगळुपशमश्रेणियनारोहणमुमनवरोहणमुमं क्रमदिंदं माळ्परु । उपशमकरोळु मृतनादातं देवमर्द्धिकत्वमं समाश्रयिसुगुमंतादोडे मरणमुपशमश्रेणियोळल्लदेयोळं संभविसुगुमें दोडे पेळ्दपरु :—

मिस्सा आहारस्स य खवगा चडमाण पढमपुव्वा य ।
पढमुवसम्मा तमतमगुणपडिवण्णा य ण मरंति ॥५६०॥

मिश्रा आहारस्य च क्षपका आरुह्यमाण प्रथमाऽपूर्व्वाश्च । प्रथमोपशमसम्यक्त्वास्तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च न म्रियंते ॥

मिश्राः मिश्रगुणस्थानवर्त्तिगळुं आहारस्य च नोकर्म्माहार[1]मिश्रकाययोगिगळुं क्षपकाः क्षपकरुगळुं आरोहत्प्रथमापूर्व्वाश्च उपशमश्रेण्यारूढप्रथमभागापूर्व्वकरणरुं प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वमनुळ्ळवरुं तमस्तमोगुणप्रतिपन्नाश्च महातमःप्रभेयोळाद सासादनमिश्रासंयतरें ब गुणप्रतिपन्नरुगळुं न म्रियंते सायरु ।

अणसंजोजिदमिच्छे मुहुत्त अंतोत्ति णत्थि मरणं तु ।
कदकरणिज्जं जाव दु सव्वपरट्ठाण अत्थपदा ॥५६१॥

अनंतानुबंधीनि विसंयोज्य मिथ्यात्वं गते अंतर्मुहूर्त्तपर्य्यंतं नास्ति मरणं तु । कृतकरणीयं यावत्सर्व्वपरस्थानात्थपदानि ॥

अनंतानुबंधिकषायंगळं विसंयोजिसि मिथ्यात्वमं पोर्द्दिदंगंतर्मुहूर्त्तपर्य्यंतं मरणमिल्ल । दर्शनमोहक्षपकंगमेन्नेवरं कृतकृत्यनल्तन्नेवरं मरणमिल्ल । कृतकृत्यंगे बद्धायुष्यगपेक्षेयिंदं सर्व्वपर-

---

अपूर्वकरणाद्युपशामका उपशमश्रेणिं क्रमेणारोहंत्यवरोहंति च । उपशामकेषु मृता देवमर्धिकत्वं समाश्रयंति ॥५५९॥ उपशमश्रेण्यां क्व म्रियंते ? इति चेदाह—

मिश्रगुणस्थानवर्तिन आहारकमिश्रकाययोगिनः क्षपका आरुह्यमाणोपशमकापूर्वकरणप्रथमभागाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वाः महातमःप्रभोत्पन्नसासादनमिश्रासंयताश्च न म्रियन्ते ॥५६०॥

विसंयोज्यानन्तानुबन्धिचतुष्कं मिथ्यात्वं प्राप्तोऽन्तर्मुहूर्तं यावत् दर्शनमोहक्षपकश्च कृतकृत्यत्वं यावत्तावन्न

अपूर्वकरण आदि उपशमश्रेणिवाले उपशमश्रेणिपर क्रमसे चढ़ते हैं और क्रमसे उतरते हैं । उपशमश्रेणिमें मरे हुए महर्द्धिक देव होते हैं ॥५५९॥

उपशमश्रेणिमें कहाँ मरण होता है, यह कहते हैं—

मिश्रगुणस्थानवर्ती, निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थारूप मिश्रकाययोगी, क्षपक श्रेणिवाले, चढ़ते अपूर्वकरणके उपशमकके प्रथम भागवाले और प्रथमोपशम सम्यक्त्वके धारी तथा सातव नरकमें सासादन, मिश्र और असंयत नारकी मरणको प्राप्त नहीं होते ॥५६०॥

अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन कर जो मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसका एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त मरण नहीं होता । दर्शनमोहका क्षय करनेवाला जबतक कृतकृत्य नहीं होता तबतक मरण नहीं होता ॥५६१॥

---

१. नोकर्म्मवेनिसिद आहारकमिश्रकाययोगिगळेंबुदर्त्थं ।

स्थानात्थंपेदंगळु सर्व्वपरस्थानप्रयोजनस्थानंगळ पेळल्पडुगुमवावुवेंदोडे :—

देवेसु देवमणुवे सुरणरतिरिये चउग्गईसुंपि ।
कदकरणिज्जुप्पत्ती कमसो अंतोमुहुत्तेण ॥५६२॥

देवेषु देवमनुष्ययोः सुरनरतिर्य्यक्षु चतुर्ग्गतिष्वपि । कृतकरणीयोत्पत्तिः क्रमशोऽतर्म्मुहूर्त्तेन ॥

कृतकृत्यवेदककालमंतर्म्मुहूर्त्तप्रमितमक्कुमा कालमं चतुर्भागमं माडिदल्लि क्रमदिंदं प्रथमभागांतर्म्मुहूर्त्तदिंदं मरणमादोडे दिविजरोळुत्पत्तियक्कुं । द्वितीयभागांतर्म्मुहूर्त्तदिंदं मरणमादोडे दिविजरोळुत्पत्तियक्कुं । द्वितीयभागांतर्म्मुहूर्त्तदिंदंमरणमादोडे देवमनुष्ययोः देवमनुष्यरोळपुट्टुगुं । तृतीयभागांतर्म्मुहूर्त्तदोळु मरणमादोडे देवमनुष्यतिर्य्यंक्षु देवमनुष्यतिर्य्यंग्गतिगळोळु पुट्टुगुं । चतुर्त्थभागांतर्म्मुहूर्त्तस्थानदोळमरणमादोडे चतुर्ग्गतिगळोळमुत्पत्तियक्कुं ॥

अनंतरं भुजाकारादिस्थानबंधमं पेळ्दपरु :—

तिविहो दु ठाणबंधो भुजगारप्पदरवट्ठिदो पढमो ।
अप्पं बंधंतो बहुबंधे बिदियो दु विवरीयो ॥५६३॥

त्रिविधस्तु स्थानबंधो भुजाकारालपतरावस्थितः प्रथमः । अल्पं बध्नन् बहुबंधे द्वितीयस्तु विपरीतः ॥

तु मत्ते स्थानबंधः नामकर्म्मप्रकृतिस्थानबंधं त्रिविधः त्रिविधमक्कुमेंतेंदोडे भुजाकारालपतरावस्थितात् भेदात् भुजाकारादिगळ बंधभेददत्तणिंदमल्लि प्रथमः मोदल भुजाकारबंधमाव प्रकारदिंदमेंदोडे अल्पं बध्नन् बहुबंधे अल्पप्रकृतिगळं कट्टुत्तं बहुप्रकृतिबंधमागुत्तं विरलु संभविसुगुं ।

म्रियते ॥५६१॥ कृतकृत्यं बद्धायुष्कं प्रति सर्वपरस्थानानामर्थवन्ति पदान्याह—

कृतकृत्यवेदककालोऽन्तर्मुहूर्तः । तस्मिंश्चतुर्भागीकृते क्रमेण प्रथमभागान्तर्मुहूर्तेन मृतो दिविजे जायते । द्वितीयभागान्तर्मुहूर्तेन मृतो देवमनुष्ययोः, तृतीयभागान्तर्मुहूर्तेन मृतो देवमनुष्यतिर्यक्षु, चतुर्थभागान्तर्मुहूर्तेन मृतश्चतुर्गतिष्वप्येकत्र ॥६२॥

तु—पुनः नामस्थानबन्धस्त्रिधा । भुजाकारोऽल्पतरोऽवस्थितश्चेति । तत्र प्रथमोऽल्पप्रकृतिकं बध्नतो

कृतकृत्य होनेके पश्चात् मरता है सो बद्धायु कृतकृत्यके प्रति पूर्वोक्त तीन स्थानोंमें सर्व परस्थानोंके अर्थवान पद कहते हैं—

कृतकृत्यवेदकका काल अन्तर्मुहूर्त है । उसके चार भाग करें । क्रमसे अन्तर्मुहूर्तके प्रथम भागमें मरकर देवगतिमें उत्पन्न होता है । दूसरे भागमें मरा देवों या मनुष्योंमें उत्पन्न होता है । तीसरे भागमें मरा देव, मनुष्य या तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है । चौथे भागमें मरा देव, मनुष्य, तिर्यंच या नारकी होता है ॥५६२॥

नामकर्मके बन्धस्थानके तीन प्रकार हैं—भुजाकार, अल्पतर, अवस्थित । पहले थोड़ी प्रकृतियोंको बाँधकर बहुत प्रकृतियोंको बाँधनेपर भुजकार बन्ध होता है । पहले बहुत

१. नाल्कु गतिगळु सर्व्वपरस्थानंगळेंबुदु । कृयकृत्यवेदककालचतुर्भागंगळु अवने प्रयोजनंगळागुळ्ळ पदंगळेंबुदर्थं ॥

द्वितीयः अल्पतरबंधमें बुदुमदर विपरीतमक्कुमदें तेंदोडे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानादित्रयोविंशतिपर्य्यंतं बहुप्रकृतिगळं कट्टुत्तमल्पप्रकृतिगळं कट्टुवुदेयोळक्कुमप्पुदरिंदं :—

तदियो सणामसिद्धो सव्वे अविरुद्धठाणबंधभवा ।
ताणुप्पत्तिं कमसो भंगेण समं तु वोच्छामि ॥५६४॥

तृतीयः स्वनामसिद्धः सर्वेऽविरुद्धस्थानबंधभवाः । तेषामुत्पत्तिं क्रमशो भंगेन समं तु वक्ष्यामि ॥

तृतीयं अवस्थितबंधं स्वनामसिद्धमक्कुमवस्थितरूपबंधनप्पुदरिंद । सर्व्वभुजाकारविबंधंगळुमविरुद्धस्थानबंधसंभूतंगळप्पुववरुत्पत्तियं क्रमदिंदं भंगदोडने कूडि तु मत्ते वक्ष्यामि पेळ्दपेनु । अदें तेंदोडे :—

भूबादर तेवीसं बंधंतो सव्वमेव पणुवीसं ।
बंधदि मिच्छाइट्ठी एवं सेसाणमाणेज्जो ॥५६५॥

भूबादरत्रयोविंशतिं बध्नन् सर्व्वमेव पंचविंशतिं । बध्नाति मिथ्यादृष्टिरेवं शेषाणामानेतव्यः॥

पृथ्वीकायिकबादरादिबंधनामकर्म्मपदंगळेकचत्वारिंशत्प्रमितंगळोळु मुंनं स्थापिसल्पट्ट त्रयोविंशत्यादिस्थानंगळु भंगंगळु वेरसिर्द्दपवल्लि त्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानंगळु पन्नों दु ११ । अष्ट भंगयुत पंचविंशतिगळप्दु ५ । चतुर्भंगयुतंगळुमारु ६ एकभंगयुतंगळुमारु ६ अन्तु १७ स्थानंगळगं बहुप्रकृतिकबन्धे स्यात् । तु-पुनः द्वितीयः बहुप्रकृतिकं बध्नतोऽल्पप्रकृतिकबन्धे स्यात् । तृतीयः स्वनामतः सिद्धः स्यात् अवस्थितरूपत्वात् । ते सर्वे भुजाकारादयः अविरुद्धस्थानसंभूता भवन्ति ॥५६३-५६४॥ तदुत्पत्तिं पुनः पुनः क्रमेण भंगैः सह वक्ष्यामि तद्यथा—

भूबादराद्येकचत्वारिंशन्नामपदयुतस्थानेषु त्रयोविंशतिकान्येकादश । २३ पंचविंशतिकान्यष्टधापंचचतु- ११

प्रकृतियोंको बाँधकर थोड़ी प्रकृति बाँधनेपर दूसरा अल्पतर बन्ध होता है। तीसरा अपने नामसे ही सिद्ध है। जितनी प्रकृति पूर्वसमयमें बाँधी उतनी ही दूसरे समयमें बाँधे तो उसे अवस्थित कहते हैं। ये सब भुजकार आदि अविरुद्ध बन्धस्थान द्वारा होते हैं। आगे उनकी उत्पत्तिको क्रमसे भंगोंके साथ कहते हैं ॥५६३-५६४॥

पूर्वमें बादर पृथ्वीकायादिक इकतालीस पद कहे थे। उनमें भंगसहित स्थान कहते हैं—

अपर्याप्त पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण ये बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पति, इन एकेन्द्रियके ग्यारह भेदोंके द्वारा तेईसका बन्धस्थान ग्यारह प्रकारका है। उनमें भंग एक-एक होनेसे ग्यारह हुए। पचीसके स्थानमें बादर पर्याप्त, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येकके भेदसे पांच प्रकार हुए। इनमें स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश-अयशके विकल्पसे आठ-आठ भंग पाये जाते हैं। अतः चालीस हुए। तथा पर्याप्त साधारण, बादर और सूक्ष्म, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, साधारण इन छहमें स्थिर और शुभके युगलसे चार-चार भंग होनेसे चौबीस हुए। तथा अपर्याप्त दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य इन छहमें अप्रशस्तका ही बन्ध होनेसे एक-एक ही भंग होता है। अतः उनके छह भंग हुए।

भंगंगळु ७०। षड्विंशतिप्रकृतिस्थानंगळुमष्टभंगयुतंगळु २६। ४ नाल्करोळं मूवत्तेरडु भंगंगळु
८
अष्टाविंशतिस्थानंगळेरडरोळ २ भंगंगळु ओंभत्तु २८ नवविंशतिस्थानंगळष्टभंगयुतंगळु नाल्कु
९
२९। ४ नाल्कु साविरवरु नूरेंदु भंगंगळ स्थानंगळेरडु २९। २ अंतु नवविंशतिप्रकृतिस्थानंगळा-
८ ४६०८
ररोळं भंगंगळु ९२४८। अप्पुवु। त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळुमष्टभंगयुतंगळु नाल्कु ३०।४ नाल्कु
८
सासिरवरुनूरेंटु भंगंगळ स्थानमोंदु १ अंतु ३०।५ त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळोळय्दरोळं भंगंगळु ५
४६०८ ४६४०

षविडेकषाषडिति सप्ततिः २५ षड्विंशतिकान्यष्टधाचत्वारीति द्वात्रिंशत् २६ अष्टाविंशतिकादीन्यष्टधैकमिति
७० ३२
नव २८ नवविंशतिकान्यष्टधाचत्वारि चतुःसहस्रषट्शद्छताष्टधा द्वे इत्येतावन्ति २९ त्रिंशत्कान्यष्टधा चत्वारि
९ ९२४८

इस प्रकार पचीसके बन्धस्थानमें सत्तर भंग होते हैं। छब्बीसके स्थानमें बादर, पृथ्वीकाय, आतप और उद्योत सहित दो और उद्योत सहित अप्काय, वनस्पतिकाय इन चारोंमें स्थिर शुभ और यशके युगलसे आठ-आठ भंग होते हैं। इस तरह छब्बीसके स्थानमें बत्तीस भंग १०
होते हैं। अठाईसके स्थानमें देवगति सहितमें तीन युगलोंके आठ भंग होते हैं। और नरकगति सहितमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होनेसे एक ही भंग होता है अतः अठाईसके स्थानमें नौ भंग होते हैं।

उनतीसके स्थानमें पर्याप्त दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रियमें तीन युगलोंके आठ-आठ भंग होनेसे बत्तीस हुए। और तिर्यंचगति सहित तथा मनुष्यगति सहित १५
दो स्थानोंमें प्रत्येकके छह संस्थान, छह संहनन और सात युगलोंसे (६×६×२×२×२×२×२×२×२×२) छियालीस सौ आठ भंग होनेसे बानबे सौ सोलह हुए। सब मिलाकर उनतीसके स्थानमें बानबे सौ अड़तालीस भेद हुए।

तीसके स्थानमें उद्योत सहित पर्याप्त दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय इन चारोंमें उन ही तीन युगलोंके आठ-आठ भंग होनेसे बत्तीस हुए। और संज्ञी तिर्यंच २०
उद्योत सहितमें छियालीस सौ आठ भंग हुए। सब मिलाकर तीसके स्थानमें छियालीस सौ चालीस भेद हुए। ये बन्धस्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके हैं। इनके भुजकार आदि कहते हैं—

तेईसके स्थानको बांधनेके अनन्तर पचीस आदिको बांधनेपर भुजकार बन्ध होता है। सो बादर पृथ्वीकाय सहित तेईसको बाँधकर पीछे पचीस आदि स्थानोंके सब भेदों-को बाँधे तो तेईसके ग्यारह भेदोंको बांधते हुए कितने भेदोंको बाँधता है? इस प्रकार पाँच २५
त्रैराशिक करना। उन पांच त्रैराशिकोंमें प्रमाणराशि तो सर्वत्र तेईसका एक भंग ही है। फलराशि क्रमसे पचीसके सत्तर भंग, छब्बीसके बत्तीस भंग, अठाईसके नौ भंग, उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस, और तीसके छियालीस सौ चालीस भंग हुए। इच्छाराशि सर्वत्र तेईसके ग्यारह भंग। सो फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाण राशिका भाग देनेपर सब भंगोंका प्रमाण होता है। सर्वत्र इच्छाराशि ग्यारह ही है। अतः सर्व फलराशियोंको ३०
७०+३२+९+९२४८+४६४० जोड़नेपर तेरह हजार नौ सौ निन्यानबे १३९९९ हुए।

नाल्कु सासिरदरुनूरनाल्वत्तप्पुविवेल्लमुं मिथ्यादृष्टिबंधयोग्यस्थानभंगंगळप्पुवल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमेंतेंदोडे—भूबादरयुतत्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानमनेकविधमं कट्टुवातं सप्ततिविध सर्व्वपंचविंशतिस्थानंगळं कट्टुगुमा मिथ्यादृष्टि पन्नोंदुं तेरव त्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानंगळनितुं पंचविंशतिस्थानंगळं कट्टुगुमेंदितो प्रकारदिंदं शेषषड्विंशत्यादिस्थानंगळोळमानेतव्यमक्कुं। त्रैराशिकंगळगे संदृष्टि :—

२३	३०	२३	२५	३०	२५	२६	३०	२६	२८	३०	२८	२९	३०	२९
१	४६४०	११	१	४६४०	७०	१	४६४०	३२	१	४६४०	९	१	४६४०	९२४८
२३	२९	२३	२५	२९	२५	२६	२९	२६	२८	२९	२८	प्र	फ	इ
१	९२४८	११	१	९२४८	७०	१	९२४८	३२	१	९२४८	९			
२३	२८	२३	२५	२८	२५	२६	२८	२६	प्र	फ	इ			
१	९	११	१	९	७०	१	९	३२						
२३	२६	२३	२५	२६	२५	प्र	फ	इ						
१	३२	११	१	३२	७०									
२३	२५	२३	प्र	फ	इ									
१	७०	११												
प्र	फ	इ												

चतुःसहस्रषट्छताष्टाधिकमित्येतावन्ति ३० अमूनि मिथ्यादृष्टिबन्धस्थानानि, अत्रैकं भूत्वा बादरयुतत्रयोविंशतिकं ४६४०
बध्नन् सप्तति पंचविंशतिकानि बध्नाति तदैकादशत्रयोविंशतिकानि बध्नन् कति पंचविंशतिकानि बध्नाति ?। एवं शेषषड्विंशतिकादिष्वप्यानेतव्यं। तत्संदृष्टिः—

२३	३०	२३	२५	३०	२५	२६	३०	२६	२८	३०	२८	२९	३०	२९
१	४६४०	११	१	४६४०	७०	१	४६४०	३२	१	४६४०	९	१	४३४०	९२४८
२३	२९	२३	२५	२९	२५	२६	२९	२६	२८	२९	२८	प्र	फ	इ
१	९२४८	११	१	९२४८	७०	१	९२४८	३२	१	९२४८	९			
२३	२८	२३	२५	२८	२५	२६	२८	२६	प्र	फ	इ			
१	९	११	१	९	७०	१	९	३२						
२३	२६	२३	२५	२६	२५	प्र	फ	इ						
१	३२	११	१	३२	७०									
२३	२५	२३	प्र	फ	इ									
१	७०	११												
प्र	फ	इ												

अत्र पञ्चस्थानेषु पृथक्पृथक्स्वस्वफलभूतभंगराशीनेकीकृत्य स्वस्वैकैकेच्छाराशिभंगसंख्यया गुणिते आद्यत्रैराशिकपंचके गुणिते आद्यत्रैराशिकपंचके गुण्यं त्रयोदशसहस्रनवशतनवनवतयः, गुणकारः एकादश १३९९९।११। तदनन्तरत्रैराशिकचतुष्के गुण्यं त्रयोदशसहस्रनवशतैकान्नत्रिंशतः, गुणकारः सप्ततिः

इनको इच्छाराशि ग्यारहसे गुणा करनेपर एक लाख तरेपन हजार नौ सौ नवासी १५३९८९ भंग हुए। इसे प्रमाणराशि एकसे भाग देनेपर उतने ही रहे। अतः तेईसके मुजाकार इतने हुए।

तथा पचीसका बन्ध करके छब्बीस आदि सब स्थानोंके सब भेदोंको बाँधनेपर

यिल्लि त्रयोविंशत्यादि भुजाकारंगळ त्रैराशिकंगळोळु प्रथमत्रयोविंशतिस्थान भुजाकार गुण्यंगळु पंचविंशतिस्थानं मोदल्गोंडु मेले मेले त्रिंशत्प्रकृतिस्थानपर्य्यंतमाद फलभूतस्थानंगळोळु सप्तत्यादि भंगंगळं कूडिदोडे पविमूरु सासिरदोंदु गुंदे सासिरमक्कुमल्लि गुणकारं पन्नोंदक्कुं। १३९९९। ११। पंचविंशतिभुजाकारगुण्यंगळु फलभूतभंगंगळु पविमूरुसासिरदोंभैनूरिप्पत्तोंभत्तक्कुमल्लि गुणकारंगळु एप्पत्तप्पुवु। १३९२९। ७०। षड्विंशतिस्थान भुजाकारगुण्यंगळु। पविमूरुसासिरदेंटुनूरतोंभत्तेळक्कु मल्लि। गुणकारंगळु मूवत्तेरडक्कुं। १३८९७। ३२॥ अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानद भुजाकारंगळ गुण्यंगळु पविमूरुसासिरदेंटु नूरेंभत्तेंटक्कुमल्लि गुणकारंगळुमोंभत्तक्कुं। १३८८८। ९॥ नवविंशतिस्थानद भुजाकारंगळ गुण्यंगळु नाल्कु सासिरदरुनूर नाल्वत्तक्कुमल्लि गुणकारंगळु मोंभत्तु सासिरविन्नूरनाल्वत्तंटक्कुं। ४६४०। ९२४८। आ गुण्यगुणकारंगळं गुणिसिदोडे त्रयोविंशति प्रकृतिस्थानद भुजाकारंगळु लक्षमुमय्वत्तमूरु सासिरदोंभैनूरेंभत्तोंभत्त-

१३९२९।७०। तदनन्तरत्रैराशिकत्रये त्रयोदशसहस्राष्टशतसप्तनवतयः। गुणकारो द्वात्रिंशत्।१३८९७।३२। तदनन्तरत्रैराशिकद्वये गुण्यं त्रयोदशसहस्राष्टशताष्टाशीतयः। गुणकारो नव।१३८८८।९। नवविंशतिके गुण्यं चतुःसहस्रषट्छतचत्वारिंशतः। गुणकारो नवसहस्रद्विशताष्टचत्वारिंशतः ४६४०।९२४८। गुण्यगुणकारे गुणिते

भुजाकार होता है। सो एक भेदरूप पच्चीसका बन्ध करके छब्बीस आदि सब स्थानोंके सब भेदोंको बाँधे तो पच्चीसके सत्तर भंगोंके कितने भंग होंगे। इस प्रकार चार त्रैराशिक करो। यहाँ प्रमाणराशि सर्वत्र पच्चीसका एक भेद। फलराशि छब्बीसके बत्तीस भेद, अठाईसके नौ भेद, उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस, तीसके छियालीस सौ चालीस। इच्छाराशि सर्वत्र पच्चीसके सत्तर भेद। सब फलराशियोंको जोड़नेपर ३२+९+९२४८+४६४०=तेरह हजार नौ सौ उनतीस १३९२९ हुए। उसको इच्छाराशि सत्तरसे गुणा करनेपर नौ लाख पिचहत्तर हजार तीस ९७५०३० हुए। इतने पच्चीसके भुजाकार होते हैं।

छब्बीसका बन्ध करके अठाईस आदिका बन्ध करनेपर भुजाकार होता है। सो छब्बीसके एक भेदका बन्ध करके सब अठाईस आदिके सब भेदोंका बन्ध करे तो छब्बीसके बत्तीस भेदोंके द्वारा कितने बन्धभेद हों, इस प्रकार यहाँ तीन त्रैराशिक करना। उनमें प्रमाणराशि तो सर्वत्र छब्बीसका एक भेद। फलराशि क्रमसे अठाईसके नौ भेद, उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस भेद, तीसके छियालीस सौ चालीस भेद। इच्छाराशि सर्वत्र छब्बीसके बत्तीस भेद। सर्व फलराशिको जोड़नेपर ९+९२४८+४६४०=तेरह हजार आठ सौ सतानबे हुए। उनको इच्छाराशि बत्तीससे गुणा करनेपर चार लाख चवालीस हजार सात सौ चार ४४४७०४ होते हैं। इतने छब्बीसके भुजाकार जानना।

अठाईसका बन्ध करके उनतीस-तीसका बन्ध करनेपर भुजाकार होता है। सो एक प्रकार अठाईसका बन्ध कर उनतीस-तीसके सब भेदोंका बन्ध करे तब नौ प्रकार अठाईसका बन्ध करनेपर कितने भेद हों, इस प्रकार दो त्रैराशिक करना। उनमें सर्वत्र प्रमाणराशि अठाईसका एक भेद। फलराशि क्रमसे उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस भेद और तीसके छियालीस सौ चालीस भेद। इच्छाराशि सर्वत्र अठाईसके नौ भेद। फलराशिको जोड़नेपर ९२४८-४६४०=१३८८८ तेरह हजार आठ सौ अठासी हुए। उसे इच्छाराशि नौसे गुणा करनेपर एक लाख चौबीस हजार नौ सौ बानबे १२४९९२ हुए। इतने अठाईसके स्थान-

प्पुवु । २३ १५३९८९ पंचविंशतिस्थानद भुजाकारंगळु मो भत्तुलक्षमुमेप्पत्तप्पु सासिरद मूवत्तप्पुवु-

२५ ९७५०३० षड्विंशतिप्रकृतिस्थानद भुजाकारंगळु नाल्कुलक्षमुं नाल्वत्त नाल्कुसासिरवेळ्नूरनाल्क-

प्पुवु २६ ४४४७०४ अष्टाविंशतिस्थानद भुजाकारंगळुमेकलक्षमुमिप्पत्तनाल्कु सासिरद ओंभैनूर

तोंभत्तेरडक्कुं २८ १२४९९२ नवविंशतिस्थानद भुजाकारंगळु नाल्कु कोटियुमिप्पतोंभत्तु लक्षमुं

५ पत्तुसासिरदेळु नूरिप्पत्तु अक्कुं २९ ४२९१०७२० ई भुजाकारबंधंगळेल्लं मिथ्यादृष्टिगळाप्पुवेंदु

पेळ्दपरु :—

त्रयोविंशकस्यैकलक्षत्रिपंचाशत्सहस्रनवशतैकान्ननवतयः २३ १५३९८९ पंचविंशतिकस्य नवलक्षपंचसप्ततिसह-

स्रत्रिंशतः २५ ९७५०३० षड्विंशतिकस्य चतुर्लक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्रसप्तशतचत्वारि २६ ४४४७०४ अष्टाविंशतिकस्यै-

कलक्षचतुर्विंशतिसहस्रनवशतद्वानवतयः २८ १२४९९२ नवविंशतिकस्य चतुष्काद्येकान्नत्रिंशल्लक्षदशसहस्रसप्तशत-

१० विंशतयः २९ ४२९१०७२० ॥५६५॥

के भुजाकार होते हैं। उनतीसका बन्ध करके तीसका बन्ध करनेपर भुजाकार होता है। सो उनतीसके एक भेदको बन्ध करके तीसके सब भेदोंको बन्ध करे तो उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस भेदोंका बन्ध करनेके साथ कितने भेद हों। इस प्रकार एक त्रैराशिक हुआ। उसमें प्रमाणराशि उनतीसका एक भेद, फलराशि तीसके छियालीस सौ चालीस भेद। इच्छाराशि उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस भेद। सो फलराशि छियालीस सौ चालीसको

१५ इच्छाराशि बानबेसौ अड़तालीससे गुणा करनेपर चार कोटि उनतीस लाख दस हजार सात सौ बीस भेद होते हैं। इतने उनतीसके भुजकार हुए ॥५६५॥

नामकर्मके स्थानोंके भुजाकार बन्ध लानेका त्रैराशिक यन्त्र

२३	३०	२३	२५	३०	२५	२६	३०	२६	२८	३०	२८	२९	३०	२९
१	४६४०	११	१	४६४०	७०	१	४६४०	३२	१	४६४०	९	१	४६४०	९२४८
२३	२९	२३	२५	२९	२५	२६	२९	२६	२८	२९	२८	प्र.	फल	इच्छा
१	९२४८	११	१	९२४८	७०	१	९२४८	३२	१	९२४८	९			
२३	२८	२३	२५	२८	२५	२६	२८	२६	प्रमा.	फल	इच्छा			
१	९	११	१	९	७०	१	९	३२						
२३	२६	२३	२५	२६	२५	प्रमा.	फल	इच्छा						
१	३२	११	१	३२	७०									
२३	२५	२३	प्रमा.	फल	इच्छा									
१	७०	११												
प्रमा.	फल	इच्छा												

तेवीसट्ठाणादो मिच्छत्तीसोत्ति बंधगो मिच्छो ।
णवरि हु अट्ठावीसं पंचिंदियपुण्णगो चेव ॥५६६॥

त्रयोविंशतिस्थानात्प्रभृति मिथ्यादृष्टि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानपर्य्यंतं बंधको मिथ्यादृष्टिर्नवमस्ति खल्वष्टाविंशतिं पंचेंद्रिय पूर्णकश्चैव ॥

त्रयोविंशतिस्थानमोदल्गों डु मिथ्यादृष्टिय त्रिंशत्प्रकृति स्थानपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टिजीवं भुजाकारबंधबंधकनवक्कु—मल्लि विशेषमुंटदाउदें दोडे अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमं पंचेंद्रिय पर्य्याप्तकने कट्टुगुं खलु स्फुटमागि । मिथ्यादृष्टिय भुजाकारंगळु संदृष्टि—

२३	१५३९८९
२५	९७५०३०
२६	४४४७०४
२८	१२४९९२
२९	४२९१०७२०

मत्तं भोगभूमियमिथ्यादृष्टिगे भुजाकारबंधविशेषमुमं सम्यग्दृष्टिगं पेळ्दपरु :—

भोगे सुरट्ठवीसं सम्मो मिच्छो य मिच्छगअपुण्णो ।
तिरि उगुतीसं तीसं णर उगुतीसं च बंधदि हु ॥५६७॥

भोगभूमौ सुराष्टाविंशति सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च मिथ्यादृष्टिरपूर्णः तिर्य्यगेकान्नत्रिंशतं त्रिंशतं मनुष्यैकान्नत्रिंशतं च बध्नाति खलु ॥

भोगभूमियोळु पंचेंद्रियपर्य्याप्त सम्यग्दृष्टियुं मिथ्यादृष्टियुं सुराष्टाविंशतिस्थानमं कट्टुवरु । च शब्दविंदं भोगभूमिजसम्यग्दृष्टि निर्व्वृत्यपर्य्याप्तनुं कट्टुगुं । भोगभूमिनिर्व्वृत्यपर्य्याप्त मिथ्यादृष्टिजीवं तिर्य्यग्गतियुतनवविंशतिस्थानमुमं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमं मनुष्यगतियुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुगुं स्फुटमागि ।

एतान् त्रयोविंशतिकादितः मिथ्यादृष्टि त्रिंशत्कान्तं उक्तभुजाकरान्मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति, किन्तु खलु तत्राष्टाविंशतिकं पर्याप्तपंचेन्द्रिय एव बध्नाति ॥५६६॥ तथा भोगभूमेस्तानाह—

भोगभूमौ पर्याप्तपंचेन्द्रियः सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यादृष्टिश्च चशब्दान्निर्वृत्यपर्याप्तसम्यग्दृष्टिश्च सुराष्टाविंशतिकं बध्नाति । निर्वृत्यपर्याप्तमिथ्यादृष्टिः खलु तिर्यग्गतिनवविंशतिकत्रिंशत्के मनुष्यगतिनवविंशतिकं च बध्नाति ॥५६७॥

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें तेंतीससे लेकर तीस पर्यन्त कहे भुजाकारोंको मिथ्यादृष्टि जीव बाँधता है । किन्तु उनमें-से अट्ठाईसको पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही बाँधता है ॥५६६॥

भोगभूमियोंमें कहते हैं—

भोगभूमिमें पर्याप्त पंचेन्द्रिय सम्यग्दृष्टी अथवा मिथ्यादृष्टि और 'च' शब्दसे निर्वृत्यपर्याप्त सम्यग्दृष्टी देवगति सहित अठाईसको ही बाँधता है । और निर्वृत्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि तिर्यंचगतिसहित उनतीस या तीसको और मनुष्यगतिसहित उनतीसको बाँधता है ॥५६७॥

अनंतरं मिथ्यादृष्टिय स्थानंगळ भंगंगळं पेळ्दपरु :—

मिच्छस्स ठाणभंगा एयारं सदरि दुगुण सोल णवं ।
अडदालं बाणउदी सदाल छादाल चत्तधियं ॥५६८॥

मिथ्यादृष्टेः स्थानभंगा एकादश सप्तति द्विगुण षोडश नवाष्टचत्वारिंशद् द्वानवतिशतानां षट्चत्वारिंशच्चत्वारिंशदधिकाः ॥

मिथ्यादृष्टिय त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळ सर्व्वभंगंगळु क्रमदिंदं एकादश । २३ । ११ । सप्ततिः । २५ । ७० । द्विगुण षोडश । २६ । ३२ । नव । २८ । ९ । अष्टचत्वारिंशद्द्वानवति । २९ । ९२ । ४८ । शतानां षट्चत्वारिंशच्चत्वारिंशदधिका ३० । ४६४० । येंदिंती संख्याप्रमितंगळप्पुवु । मिथ्यादृष्टिगे—

३०		
२९		
२८		
२६		
२५		
२३		

अनंतरमल्पतर भंगंगळं पेळ्दपरु :—

विवरीयेणप्पदरा होंति हु तेरासिएण भंगा हु ।
पुव्वपरट्ठाणाणं भंगा इच्छा फलं कमसो ॥५६९॥

विपरीतेनाल्पतरा भवंति खलु त्रैराशिकेन भंगाः खलु । पूर्व्वपरस्थानानां भंगाः इच्छा फलं क्रमशः ॥

अल्पतरा भंगाः अल्पतरबंधस्थानभंगंगळु भुजाकारबंधभंगंगळ्गे माडिद त्रैराशिकंगळ्गे विपरीतत्रैराशिकंगळिदमप्पुवेंतेंदोडल्लि त्रयोविंशत्यादि मिथ्यादृष्टिबंधस्थानंगळोळु पूर्व्वस्थान[1]

प्रागुक्ता मिथ्यादृष्टेः स्थानभेदाः—त्रयोविंशतिकस्यैकादश, पंचविंशतिकस्य सप्ततिः, षड्विंशतिकस्य द्विगुणषोडश, अष्टाविंशतिकस्य नव, नवविंशतिकस्य द्वानवतिशताष्टचत्वारिंशः, त्रिंशत्कस्य षट्चत्वारिंशच्छतचत्वारिंशतः ॥५६८॥ अथाल्पतरभंगानाह—

अल्पतरभंगाः खलु भुजाकारभंगार्थंकृतत्रैराशिकेभ्यो विपरीतत्रैराशिकैर्भवन्ति । कुतः ? तत्पूर्वस्थान-

---

पूर्वोक्त प्रकारसे मिथ्यादृष्टिके स्थानभेद तेईसके ग्यारह, पचीसके सत्तर, छब्बीसके बत्तीस, अठाईसके नौ, उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस और तीसके छियालीस सौ चालीस होते हैं ॥५६८॥

आगे अल्पतर भंगोंको कहते हैं—

मुजाकार भंग लानेके लिए जो त्रैराशिक किये थे उनको विपरीत करनेसे अल्पतर

---

१. यी संदृष्टियोळु फलराशिगळ भंगंगळं ९३७० । इवक्के इच्छाराशिगळ भंगंगळं ४६४० गुणकारंगळं माळ्पुदेल्लेडयोळमिते तत्तद्योग्यमागि योजिसिकोंबुदु ॥

भंगंगळु इच्छाराशिगळागि परस्थानभंगंगळु फलराशिगळागि क्रमदिंदं त्रैराशिकंगळु माडल्पडुवव्पुदरिंदं । संदृष्टि—[1]

प्र	फ	इ
३०	२३	३०
१	११	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२३	२९
१	११	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२३	२८
१	११	९

प्र	फ	इ
२६	२३	२६
१	११	३२

प्र	फ	इ
२५	२३	२५
१	११	७०

प्र	फ	इ
३०	२५	३०
१	७०	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२५	२९
१	७०	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२५	२८
१	७०	९

प्र	फ	इ
२६	२५	२६
१	७०	३२

प्र	फ	इ
३०	२६	३०
१	३२	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२६	२९
१	३२	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२६	२८
१	३२	९

प्र	फ	इ
२६	२६	२६
१	३२	३२

प्र	फ	इ
२५	२६	२५
१	३२	७०

प्र	फ	इ
३०	२८	३०
१	९	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२८	२९
१	९	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२८	२८
१	९	९

प्र	फ	इ
२६	२८	२६
१	९	३२

प्र	फ	इ
२५	२८	२५
१	९	७०

प्र	फ	इ
२४	२८	२४
१	९	११

प्र	फ	इ
३०	२९	३०
१	९२४८	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२९	२९
१	९२४८	९

प्र	फ	इ
२८	२९	२८
१	९२४८	९

प्र	फ	इ
२६	२९	२६
१	९२४८	३२

प्र	फ	इ
२५	२९	२५
१	९२४८	७०

प्र	फ	इ
२४	२९	२४
१	९२४८	११

प्र	फ	इ
२३	२९	२३
१	९२४८	११

भंगानामिच्छाराशित्वेन परस्थानभंगानां फलराशित्वेन च क्रमशो विधानात् । संदृष्टिः—

प्र	फ	इ
३०	२३	३०
१	११	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२३	२९
१	११	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२३	२८
१	११	९

प्र	फ	इ
२६	२३	२६
१	११	३२

प्र	फ	इ
२५	२३	२५
१	११	७०

प्र	फ	इ
३०	२५	३०
१	७०	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२५	२९
१	७०	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२५	२८
१	७०	९

प्र	फ	इ
२६	२५	२६
१	७०	३२

प्र	फ	इ
२५	२५	२५
१	७०	७०

प्र	फ	इ
३०	२६	३०
१	३२	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२६	२९
१	३२	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२६	२८
१	३२	९

प्र	फ	इ
२६	२६	२६
१	३२	३२

प्र	फ	इ
२५	२६	२५
१	३२	७०

प्र	फ	इ
३०	२८	३०
१	९	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२८	२९
१	९	९२४८

प्र	फ	इ
२८	२८	२८
१	९	९

प्र	फ	इ
२६	२८	२६
१	९	३२

प्र	फ	इ
२५	२८	२५
१	९	७०

प्र	फ	इ
२४	२८	२४
१	९	११

प्र	फ	इ
३०	२९	३०
१	९२४८	४६४०

प्र	फ	इ
२९	२९	२९
१	९२४८	९

प्र	फ	इ
२८	२९	२८
१	९२४८	९

प्र	फ	इ
२६	२९	२६
१	९२४८	३२

प्र	फ	इ
२५	२९	२५
१	९२४८	७०

प्र	फ	इ
२४	२९	२४
१	९२४८	११

प्र	फ	इ
२३	२९	२३
१	९२४८	११

भंग होते हैं । अर्थात् पहले स्थान रूप भंगोंको इच्छाराशि और पिछले स्थानके भंगोंको फलराशि करनेपर क्रमसे अल्पतर भंग होते हैं । यथा— ५

तीसका बन्ध करके उनतीस आदिका बन्ध करनेपर अल्पतर होता है । सो तीसके एक भेदका बन्ध करके उनतीस आदिके सब भेदोंका बन्ध करे तो तीसके छियालीस सो चालीस भेदोंका बन्ध करके उनका बन्ध करनेपर कितने अल्पतर बन्ध होंगे । यहाँ पाँच त्रैराशिक करना । उनमें सर्वत्र प्रमाणराशि तीसका एक भेद । फलराशि क्रमसे उनतीसके

१. भुजाकारबंधत्रैराशिकस्य प्र २३ । फ २५ । इ २३ । चरमराशिं प्रति पूर्व्वभूतफलराशि २५ रल्पतरबंधे १०
१ ७० ११
इच्छाराशिः स्यात् । तत्फलराशिं प्रति परमूते २३ च्छाराशिरल्पतरबंधे फलराशिः स्यात् । तदेवम-
११
ल्पतरबंधे प्र २५ । फ २३ । इ २५ ॥ (चतुर्त्थपंक्तौ) मेले मेले मिलितंगळु ।
१ ११ ७०

इल्लि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळल्पतर गुण्यंगळु ९३७०। गुणकारंगळु ४६४०। नवविंशतिस्थानाल्पतर-गुण्यंगळु १२२। गुणकारंगळु ९२४८। अष्टाविंशतिस्थानदोळु गुण्यंगळु ११३। गुणकारंगळु ९। षड्विंशतिस्थानदोळु गुण्यंगळु ८१। गुणकारंगळु ३२। पंचविंशतिस्थानदोळु गुण्यंगळु ११। गुणकारंगळु ७०। गुण्यगुणकारंगळं गुणिसिद लब्धं त्रिंशत्प्रकृत्यादिगळोळु क्रमदिंदं संदृष्टि भंगंगळु मिथ्यादृष्टयल्पतर भंगंगळु

३०	४३४७६८००
२९	११२८२५६
२८	१०१७
२६	२५९२
२५	७७०

अत्र त्रिंशत्के गुण्यं ९३७०। गुणकारः ४६४०। नवविंशतिके गुण्यं १२२ गुणकारः ९२४८। अष्टाविंशतिके गुण्यं ११३ गुणकारः ९। षड्विंशतिके गुण्यं ८१ गुणकारः ३२। पंचविंशतिके गुण्यं ११ गुणकारः ७० गुण्यगुणकारे गुणिते त्रिंशत्कादिषु क्रमेण संदृष्टिः—

३०	४३४७६८००
२९	११२८२५६
२८	१०१७
२६	२५९२
२५	७७०
	४६४०९४३५

बानबे सौ अड़तालीस भेद, अठाईसके नौ, छब्बीसके बत्तीस, पचीसके सत्तर, तेईसके ग्यारह। इच्छाराशि सर्वत्र तीसके छियालीस सौ चालीस भेद। फलराशिको जोड़नेपर तेरानबे सौ सत्तर हुआ। उसको इच्छारूप छियालीस सौ चालीससे गुणा करनेपर चार कोटि चौतीस लाख छियत्तर हजार आठ सौ हुए। सो इतने तीसके स्थानके अल्पतर हुए।

उनतीसका बन्ध करनेके पश्चात् अठाईस आदिका बन्ध करने पर अल्पतर होता है। सो उनतीसके एक भेदका बन्ध करके सब अठाईस आदिके भेद बाँधे तो बानवै सौ अड़तालीस भेदरूप उनतीसका बन्ध करके सबको बाँधे तो कितने भेद हुए इस प्रकार यहाँ चार त्रैराशिक करना। उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र उनतीसका एक भेद, फलराशि क्रमसे अठाईसके नौ, छब्बीसके बत्तीस, पचीसके सत्तर, तेईसके ग्यारह। इच्छाराशि सर्वत्र उनतीसके बानबे सौ अड़तालीस भेद। फलराशिको जोड़नेपर एक सौ बाईस हुए। उसको इच्छाराशि बानवै सौ अड़तालीससे गुणा करनेपर ग्यारह लाख अठाईस हजार दो सौ छप्पन हुए। इतने उनतीसके अल्पतर हैं।

अठाईसका बन्ध करके छब्बीस आदिका बन्ध करनेपर अल्पतर होता है। सो अठाईसके एक भेदका बन्ध करके सब छब्बीस आदिके भेदोंका बन्ध करे तो अठाईसके नौ भेदोंके द्वारा कितना बन्ध हो इस प्रकार यहाँ तीन त्रैराशिक करना। उनमें प्रमाणराशि सर्वत्र अठाईसका एक भेद, फलराशि क्रमसे छब्बीसके बत्तीस, पचीसके सत्तर, तेईसके ग्यारह। इच्छाराशि सर्वत्र अठाईसके नौ। फलराशिको जोड़नेपर एक सौ तेरह हुए। इच्छाराशि नौसे गुणा करनेपर एक हजार सतरह हुए। इतने अठाईसके अल्पतर भंग होते हैं।

अनंतरं भुजाकारात्पतरादि भंगंगळं मिथ्यादृष्टिगे लघुकरणदिंदं पेळ्दपरु :—

लहुकरणं इच्छंतो एयारादीहि उवरिमं जोग्गं ।
संगुणिदे भुजगारा उवरीदो होंति अप्पदरा ॥५७०॥

लघुकरणमिच्छत एकादशादिभिरुपरिमं योगं, संगुणिते भुजाकारा उपरितो भवंत्यल्पतराः ॥

मिथ्यादृष्टिय भुजाकारबंधभंगंगळुमनल्पतरबंधभंगंगळुमंतरल्पडुवल्लि लघुकरणमनिच्छियिपंगे एकादशाद्यंकंगळिंदमुपरिमांकंगळ योगमं संगुणं माडुत्तिरलु भुजाकारबंधभंगंगळप्पुवु । मेगणिदं केळगण अंकयोगमं संगुणं माडुत्तं विरलल्पतरबंधभंगंगळुमप्पुवु । अदेंतेंदोडे संदृष्टिः

३०	४६४०
२९	९२४८
२८	९
२६	३२
२५	७०
२३	११

यिल्लि त्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानभंगंगळेकादश प्रमितंगळप्पुववर मेगण सप्तत्याद्यंकंगळ-

---

इयत्प्रमाणका अल्पतरभंगाः सर्वे ॥५६९॥ अथ भुजाकारात्पतरादिभंगान् मिथ्यादृष्टेर्लघुकरणेनाह—

लघुकरणमिच्छन् एकादशाद्यंकैरुपरितनांकयोगे संगुणिते भुजाकारबन्धभंगा भवन्ति । तद्यथा संदृष्टिः—

३०	४६४०
२९	९२४८
२८	९
२६	३२
२५	७०
२३	११

छब्बीसका बन्ध करके पश्चात् पचीस आदिका बन्ध करनेपर अल्पतर होता है। सो छब्बीसके एक भेदका बन्ध करके पचीस-तेईसके सब भेदोंको बाँधे तो छब्बीसके बत्तीस भेदोंके द्वारा कितने बन्धके भेद होंगे। इस तरह यहां दो त्रैराशिक करना। उनमें सर्वत्र प्रमाणराशि छब्बीसका एक भेद, फलराशि क्रमसे पचीसके सत्तर और तेईसके ग्यारह भेद। इच्छाराशि सर्वत्र छब्बीसके बत्तीस भेद। फलराशिके जोड़ इक्यासीको इच्छाराशि बत्तीससे गुणा करनेपर पचीस सौ बानबे हुए। इतने छब्बीसके अल्पतर हैं।

पचीसको बाँधकर तेईस बाँधनेपर अल्पतर होता है। सो पचीसके एक भेदको बाँधकर तेईसके ग्यारह भेदोंको बाँधे तो पचीसके सत्तर भेदोंके द्वारा कितने बन्धके भेद होंगे। यहाँ एक ही त्रैराशिक है। उसमें प्रमाणराशि पचीसका एक भेद। फलराशि तेईसके ग्यारह भेद। इच्छाराशि पचीसके सत्तर भेद। सो फल ग्यारहको इच्छा सत्तरसे गुणा करनेपर सात सौ सत्तर हुए। इतने पचीसके अल्पतर जानना ॥५६९॥

आगे मिथ्यादृष्टिके भुजाकार अल्पतर आदि भंगोंको लघु प्रक्रियाके द्वारा कहते हैं—

थोड़ेमें जानने की इच्छावालेको ग्यारह आदि अंकोंके द्वारा ऊपरके अंकोंके जोड़को गुणा करनेपर भुजाकार होते हैं। सो सत्तर, बत्तीस, नौ, बानबेसौ अड़तालीस, छियालीस

नय्दुं राशिगळं कूडि पन्नों दरिंदं गुणिसिदोडे १३९९९।११। लब्धमिदु। २३।१५३९८९॥ मत्तं पंचविंशतिस्थानभंगंगळु सप्ततिप्रमितंगळप्पुववर मेगण द्वात्रिंशदादि चतुःस्थानांकंगळ योगमं सप्तत्यंकदिंदं संगुणं माडुत्तिरलु १३९२९।७०। लब्धमिदु २५।९७५०३०। मत्तं षड्विंशतिप्रकृतिस्थानभंगंगळु द्वात्रिंशत्प्रमितंगळप्पुववर मेगण नवादि त्रिस्थानांकंगळ योगमं द्वात्रिंशद्गुणकारदिंदं गुणिसुत्तं विरलु १३८९७।३२। लब्धमिदु। २६।४४४७०४। मत्तमष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानभंगंगळु नवप्रमितंगळप्पुववर मेलण अष्टचत्वारिंशदुत्तरद्वानवतिशतादि द्विस्थानांकंगळ योगमं नवांकदिंदं संगुणं माडुत्तं विरलु १३८८८।९। लब्धमिदु। २८।१२४९९२॥ मत्तं नवविंशतिस्थानभंगंगळुमष्टचत्वारिंशदुत्तरद्वानवतिशतप्रमितंगळप्पुववरिं मेलण चत्वारिंशदुत्तरषट्चत्वारिंशच्छतमंगुणिसुत्तं विरलु। ४६४०।९२४८। लब्धमिदु। २९।४२९१०७२०॥ यितीयय्दुं राशिगळयुति मिथ्यादृष्टिय सर्व्वभुजाकार भंगंगळप्पुवु। ४४६०९४३५। अल्पतरंगळुमंते मेगणिदं त्रिंशत्प्रकृत्यादिगळ भंगंगळिदमधस्तनाधस्तनांकंगळ युतियं गुणिसुत्तं विरलु लब्धराशिगळु मिथ्यादृष्टिय सर्व्वाल्पतरभंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :

गुण्य	गुणकार		
९३७०	४६४०	लब्ध ३०	४३४७६८००
१२२	९२२८	लब्ध २९	११२८२५६
११३	९	लब्ध २८	१०१७
८१	३२	लब्ध २६	२५९२
११	७०	लब्ध २५	७७०

एकादशभिः सप्तत्यादीनेकीकृत्य १३९९९ गुणिते त्रयोविंशतिकस्य २३। १५३९८९। द्वात्रिंशदादीनेकीकृत्य १३९२९ सप्तत्या गुणिते पंचविंशतिकस्य २५। ९७५०३०। नवादीनेकीकृत्य १३८९७ द्वात्रिंशता गुणिते षड्विंशतिकस्य २६।४४४७०४। उपरिमस्थानद्वयभंगानेकीकृत्य १३८८८ नवभिर्गुणितेऽष्टाविंशतिकस्य २८।१२४९९२। अष्टचत्वारिंशदग्रद्वानवतिशतैरुपरितनचत्वारिंशदग्रषट्चत्वारिंशच्छतेषु गुणितेषु नवविंशति-

---

सौ चालीसको ७०+३२+९+९२४८+४६४०=जोड़नेपर १३९९९ तेरह हजार नौ सौ निन्यानबे हुए। उसे ग्यारहसे गुणा करनेपर तेबीसके मुजाकार एक लाख तरेपन हजार नौ सौ नवासी १५३९८९ होते हैं। बत्तीस आदि ३२+९+९२४८+४६४० को जोड़नेपर तेरह हजार नौ सौ उनतीस १३९२९ होते हैं। उसे सत्तरसे गुणा करने पचीसके नौ लाख पिचहत्तर हजार तीस ९७५०३० भंग होते हैं। नौ आदि ९+९२४८+४६४० को जोड़नेपर तेरह हजार आठ सौ सतानबे होते हैं, उसे बत्तीससे गुणा करनेपर छब्बीसके चार लाख चवालीस हजार सात सौ चार होते ४४४७०४ हैं। ऊपरके दो स्थानोंके भंगों ९२४८+४६४० को जोड़ने पर १३८८८ तेरह हजार आठ सौ अठासी होते हैं। उसे नौ से गुणा करनेपर अठाईसके एक लाख चौबीस हजार नौ सौ बानबे होते हैं १२४९९२। ऊपरके छियालीस सौ चालीसको बानवे सौ अड़तालीससे गुणा करनेपर उनतीसके चार करोड़ उनतीस लाख दस हजार सात सौ बीस ४२९१०७२० होते हैं। ये सब मिलकर मिथ्यादृष्टिके

यितीयप्पुं राशिगळं कूडुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिय सर्व्वाल्पतर बंधभंगंगळप्पुवु । ४४६०९४३५ । उभययोगं मिथ्यादृष्टिय सर्व्वावस्थितबंधभंगप्रमाणमक्कुं । ८९२१८८७० ॥

अनंतरमितु साधितंगळप्प मिथ्यादृष्टिय भुजाकारालपतरभंगसमासमं पेळ्दपरु :—

भुजगारप्पदराणं भंगसमासो समो हु मिच्छस्स ।
पणतीसं चउणवदी सट्ठी चोदालमंककमे ॥५७१॥

भुजाकारालपतराणां भंगसमासः समोऽमिथ्यादृष्टेः । पंचत्रिंशच्चतुर्न्नवतिः षष्टिश्चश्चत्वारिंशदंकक्रमे ॥

मिथ्यादृष्टिय सर्व्वंभुजाकारालपतरंगळ भंगयुतिसदृशमक्कुं स्फुटमागि । एनितु प्रमाणंगळ्गे दोडे अंकक्रमदोळु पंचत्रिंशच्चतुर्न्नवतियुं षष्टियुं चतुश्चत्वारिंशत्प्रमितंगळप्पुवु । ४४६०९४३५ ॥

अनंतरमसंयतन भुजाकारादिगळं पेळ्दपरु :—

कस्य २९।४२९१०६२० । मिलित्वा मिथ्यादृष्टेः सर्वभुजाकारभंगा भवन्ति ४४६०९४३५ । तदल्पतरभंगास्तु उपरितः त्रिंशत्कादिभंगैरधस्तनाधस्तनांकसंयोगैर्गुणिते सति भवन्ति । संदृष्टिः—

गुण्यं	गुणकारः	लब्धं	
९३७०	४६४०	३०	४३४७६८००
१२२	९२४८	२९	११२८२५६
११३	९	२८	१०१७
८१	३२	२६	२५९२
११	७०	२५	७७०

अमी पंच राशयो मिलिताः ४४६०९४३५ उभययोगः मिथ्यादृष्टेः सर्वावस्थितबन्धभंगाः ८९२१८८७० ॥५७०॥

मिथ्यादृष्टेरुक्तो भुजाकारभंगसमासोऽल्पतरभंगसमासश्च खलु सदृशः । तर्हि किंसंख्यः ? अंकक्रमेण पंचत्रिंशच्चतुर्नवतिषष्टिचतुश्चत्वारिंशन्मात्रः ४४६०९४३५ ॥५७१॥ असंयतस्य तानाह—

भुजाकार भंग ४४६०९४३५ होते हैं। उसके अल्पतर भंग लानेके लिये ऊपरके तीस आदि स्थानोंके भंगोंसे नीचेके सब भंगोंको जोड़-गुणा करनेपर अल्पतर होते हैं। यह कथन ऊपर कर आये हैं। उसकी संदृष्टि ऊपर संस्कृत टीकासे जानना। उसका जोड़ भी ४४६०९४३५ होता है। भुजाकार और अल्पतर दोनोंको जोड़नेपर मिथ्यादृष्टिके अवस्थित भंग ८९२१८८७० होते हैं ॥५७०॥

मिथ्यादृष्टिके कहे भुजाकार और अल्पतर भंगोकी संख्या समान है उसकी संख्या अंकोके क्रमसे पैतीस चौरानवे साठ चवालीस है। इन्हें क्रमसे लिखने पर चार करोड़ छियालीस लाख नौ हजार चार सौ पैतीस ४४६०९४३५ होती है। इतने भुजाकार है और इतने ही अल्पतर हैं। इन दोनोंको मिलानेपर आठ करोड़ बानवै लाख अठारह हजार आठ सौ सत्तर ८९२१८८७० होते हैं इतने ही अवस्थित भंग हैं; क्योंकि भुजाकार या अल्पतर भंगोमें जिस जिस प्रकृति भंगका बन्ध होता है उस ही का बन्ध द्वितीयादि समयमें होनेपर अवस्थित बन्ध होता है ॥५७१॥

आगे असंयतमें कहते हैं—

देवट्ठवीस णरदेउगुतीस मणुस्स तीस बंधयदे ।
ति छ णव णव दुग भंगा तित्थविहीणा हु पुणरुत्ता ॥५७२॥

देवाष्टाविंशति नरदेवैकान्नत्रिंशन्मनुष्यत्रिंशद्बंधासंयते । त्रिषड्नवनवद्विभंगास्तीर्थविहीनाः खलु पुनरुक्ताः ॥

देवाष्टाविंशति नरदेवैकान्नत्रिंशत् मनुष्यत्रिंशद्बंधा संयतनोळु २८ २९ २९ ३० त्रिषड्-
दे म दे म
नव नवद्वि ३६९९२ । प्रमित भुजाकारंगळप्पुवदें तेंदोडे :—

देवट्ठवीसबंधे देउगुतीसंमि भंग चउसट्ठी ।
देउगुतीसे बंधे मणुवत्तीसे वि चउसट्ठी ॥५७३॥

देवाष्टाविंशति बंधे देवैकान्नत्रिंशत्प्रकृतौ भंग चतुःषष्टिः । देवैकान्नत्रिंशद्बंधे मनुष्य त्रिंशत्प्रकृतावपि चतुःषष्टिः ॥

देवाष्टाविंशति प्रकृतिस्थानबंधमं माडुत्तिर्द्द मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टि तीर्त्थकरपुण्यबंधमं प्रारंभिसि तीर्त्थयुत देवैकान्न त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिरलल्लि चतुःषष्टि भंगंगळप्पुवु । मत्तं मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टितीर्त्थयुत देवैकान्नत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तिर्द्दु मरणमादोडे देवासंयतं मेणु नारकासंयतनुमागि तीर्त्थयुतमनुष्य त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं विरलल्लियुं चतुष्षष्टि भंगंगळप्पुवु । मत्तं :—

देवाष्टाविंशतिकनरदेवैकान्नत्रिंशत्कमनुष्यत्रिंशत्कबन्धासंयते २८।२९।२९।३० त्रिषट्नवनवद्वि ३६९९२
दे म दे म
मात्रभुजाकारा भवन्ति ॥५७२॥ तद्यथा—

देवाष्टाविंशतिकं बध्वा मनुष्यासंयतः तीर्थबन्धं प्रारभ्य तद्युतदैवैकान्नत्रिंशत्कं बध्नाति तदा चतुःषष्टिः । पुनः तीर्थयुतदेवैकान्नत्रिंशत्कं बध्वा मनुष्यासंयतो देवासंयतो नरकासंयतो वा भूत्वा तीर्थयुतमनुष्यत्रिंशत्कं बध्नाति तदापि चतुष्षष्टिः ॥५७३॥ पुनः—

देवगति सहित अठाईस, मनुष्यगति सहित उनतीस, देवगति सहित उनतीस और मनुष्यगति सहित तीसमें तीन छह नौ नौ दो इन अंकोके अनुसार छत्तीस हजार नौ सौ बानवे भुजाकार होते हैं ॥५७२॥

इनमें तीर्थंकर रहित भंग पुनरुक्त हैं वे मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें आ जाते हैं। यही आगे कहते हैं—

देवगति सहित अठाईसको बाँधकर असंयत मनुष्य तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करे तो तीर्थंकर सहित उनतीसको बाँधता है। तब दोनोंके आठ आठ भंगको परस्परमें गुणा करने पर चौसठ भंग हुए। पुनः तीर्थंकर और देवगति सहित उनतीसको बांधकर मनुष्य असंयत पीछे देव या नारकी असंयत होकर वहाँ तीर्थंकर और मनुष्यगति सहित तीसको बांधता है। वहाँ भी दोनोंके आठ आठ भंगोको परस्परमें गुणा करनेपर चौसठ होते हैं ॥५७३॥

तित्थयरसत्तणारयमिच्छ णरऊण तीसबंधो जो ।
सम्मम्मि तीसबंधो तियछक्कडछक्कचउभंगा ॥५७४॥

तीर्त्थंकरसत्त्व नारक मिथ्यादृष्टिर्न्नरैकान्नत्रिंशद्बंधको यः । सम्यग्दृष्टिः त्रिंशत्प्रकृतिबंधक त्रिकषट्काष्टषट्कचतुर्भंगाः ॥

यः आवनानोव्वं तीर्त्थंकरसत्वनारकमिथ्यादृष्टि जीवन्नेन्नेवरं शरीरपर्य्याप्तिरहितनन्नेवरमष्टोत्तरषट्चत्वारिंशच्छतभंगयुत नर नवविंशति प्रकृतिस्थानबंधकनक्कुमातं शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेलें सम्यक्त्व स्वीकार मागुत्तं विरलु तीर्त्थयुतमनुष्यत्रिंशत्प्रकृतिस्थानबंधकनक्कुमल्लि । भुजाकार भंगंगळु चतुःषष्टयुत्तराष्टशतयुत षट्त्रिंशत्सहस्रप्रमितंगळप्पुवु । ३६८६४ ॥ १२८ कूडि असंयतन भुजाकार भंगंगळु पूर्व्वोक्त त्रिक षट्क नव नव द्वि प्रमितंगळप्पुवु । ३६९९२ ॥

अनंतरमसंयतंगल्पतर बंधभंगंगळं पेळ्दपरु :—

बावत्तरि अप्पदरा देउगुतीसा दु णिरय अडवीसं ।
बंधंत मिच्छभंगेणवगयतित्था हु पुणरुत्ता ॥५७५॥

द्वासप्ततिरल्पतरा देवैकान्नत्रिंशत्प्रकृतेस्तु नारकाष्टाविंशति । बध्नतो मिथ्यात्वभंगेनापगततीर्त्थाः खलु पुनरुक्ताः ॥

प्राग्बद्ध नरकायुर्म्मनुष्यासंयतं तीर्त्थंकरदेवगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं नरकगतिगमनाभिमुखं मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिंदमंतर्म्मुहूर्त्तंकालपर्य्यंतं मनुष्यमिथ्यादृष्टियागि नरकगतियुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानबंधमं माडुत्तमिर्प्पातंगे अष्टभंगंगळप्पुवा अष्टभंगसहितमागि मत्तं

यस्तीर्थंसत्त्वनारकमिथ्यादृष्टिः यावदपूर्णशरीरस्तावदष्टाग्रषट्चत्वारिंशच्छतधानरनवविंशतिकबन्धकः स शरीरपर्याप्तेरुपरि सम्यक्त्वं प्राप्य तीर्थयुतमनुष्यत्रिंशत्कं बध्नाति तदा चतुःषष्टयग्राष्टशतषट्त्रिंशत्सहस्री ३६८६४ मिलित्वासंयतभुजाकारभंगास्तावन्तो भवन्ति । ३६९९२ ॥५७४॥ अथासंयतस्याल्पतरबन्धभंगानाह—

प्राग्बद्धनरकायुर्मनुष्यासंयतः तीर्थबन्धं प्रारभ्य तीर्थंकरदेवगतिनवविंशतिकं बध्नन्, नरकगतिगमनाभिमुखोऽन्तर्मुहूर्तं मनुष्यमिथ्यादृष्टिः सन् नरकगत्यष्टाविंशतिकं बध्नाति तदाष्टौ । पुनः देवो नारको वाऽसंयतः

तीर्थंकरकी सत्तावाला नारकी मिथ्यादृष्टी अपर्याप्त अवस्थामें छियालीस सौ आठ भंगके साथ मनुष्यगति सहित उनतीसको बाँधता है । पीछे शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर सम्यक्त्वको पाकर तीर्थंकर और मनुष्यगति सहित तीसको बाँधता है । तब उसके आठ भंगोंसे पूर्वके छियालीस सौ आठ भंगोंको गुणा करनेपर छत्तीस हजार आठ सौ चौंसठ भंग ३६८६४ होते हैं । इनमें पूर्वोक्त एक सौ अठाईसको मिलानेपर छत्तीस हजार नौ सौ बानवे असंयतमें भुजाकार भंग होते हैं ॥५७४॥

आगे असंयतमें अल्पतर कहते हैं—

जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया है ऐसा असंयत मनुष्य तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करके तीर्थंकर और देवगति सहित उनतीसको बाँधता है । उसके आठ भंग हैं । पीछे

देवनारकासंयतसम्यग्दृष्टिगळु तीर्त्थयुतमनुष्यत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तलु मृतरागि पंचकल्याण-भाजन तीर्त्थंकर परमदेवासंयतसम्यग्दृष्टिगळु जिनजननीगर्भंक्कवतरिसुत्तं तीर्त्थयुतदेव नवविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुवरल्लि अल्पतरभंगंगळरुवत्त नाल्कप्पुवंतु द्वासप्तत्यल्पतर भंगंगळ संयतरोळप्पुवु। ७२। तीर्त्थरहितमनुष्यगतियुत नवविंशति प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं देवगतियुताष्टा-विंशति प्रकृतिस्थानमुमं कट्टुगुमल्लि चतुःषष्टियल्पतर भंगंगळप्पुवा भंगंगळु पुनरुक्तंगळप्पुवेंतें-दोडातन अल्पतरंगळोळु पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदं। संदृष्टि :—

असंयतन भुजाकारंगळु			असंयतन अल्पतरंगळु		असंयत पुनरुक्तं	असंयत युति
६४	६४	३६८६४	८	६४	६४	भु ३६९९२
दे २९	म ३०	म ३०	न २८	दे २९	दे २८	
८	८	८	१	८	८	अल्पतर ७२
दे २९	दे २९	म २९	दे २९	म ३०	म २९	
८	८	४६०८	८	८	८	अवस्थि ३७०६४

अनंतरं प्रमादरहितरोळु भुजाकारबंधभंगंगळं पेळ्दपरु :

देवजुदेक्कट्ठाणे णरतीसे अप्पमत्त भुजगारा।
पणदालिगिहारुभये भंगा पुणरुत्तगा होंति ॥५७६॥

देवयुतैकस्थाने नरत्रिंशत् स्थाने अप्रमत्त भुजाकाराः। पंचचत्वारिंशदेकहारोभये भंगाः पुनरुक्ता भवंति ॥

तीर्थयुतमनुष्यत्रिंशत्कं बध्नन्मृत्वा तीर्थकरत्वेन जननीगर्भेऽवतीर्य तीर्थयुतदेवनवविंशतिकं बध्नाति तदा चतुः-षष्टिः। एवं द्वासप्ततिरल्पतरभंगा असंयते भवन्ति। तीर्थोनमनुष्यगतिनवविंशतिकं बध्वा देवगत्यष्टाविंशतिकं बध्नतः चतुःषष्टिरल्पतरभंगास्ते पुनरुक्ताः मिश्रमिथ्यादृष्टावुक्तत्वात् ॥५७५॥ अथाप्रमत्तादिषु भुजाकारबन्ध-भंगानाह—

मरते समय जब नरक गतिमें जानेके अभिमुख हुआ तो एक अन्तर्मुहूर्तके लिए मिथ्यादृष्टि होकर नरकगति सहित अठाईसका बन्ध करता है उसका एक भंग है। दोनोंको परस्परमें गुणा करनेपर आठ भंग हुए। पुनः देव या नारकी असंयत तीर्थंकर मनुष्यगति सहित तीस-को बाँधे तो उसके आठ भंग हुए। पीछे मरकर तीर्थंकरके रूपमें माताके गर्भमें अवतरण करके तीर्थंकर देवसहित उनतीसको बाँधता है उसके भी आठ भंग हुए। इनको परस्परमें गुणा करनेपर चौंसठ हुए। दोनोंको जोड़नेपर बहत्तर अल्पतर भंग असंयतमें होते हैं। तथा तीर्थंकर रहित मनुष्यगति सहित उनतीसको बाँधकर पीछे देवगति सहित अठाईसको बाँधनेपर चौंसठ भंग पुनरुक्त है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके भंगोंमें आ जाते हैं। इससे यहाँ नहीं कहा ॥५७५॥

आगे अप्रमत्त आदिमें भुजाकार कहते हैं—

देवगति युतैकभंगस्थानदोळं मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळमप्रमादरुगळ भुजाकारभंगंगळु नाल्वत्तप्पुवु । ४५ । यिगिहारुभये तीर्थंयुत तीर्थंरहिताहारयुत तीर्थाहारोभय युतस्थानत्रयदोळु भंगंगळु पुनरुक्तंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

प्र २९	अ ३०	अ ३१	म ३०	अ ३१	अ ३१	२८	२९	३०	३१	पुन
८	१	१	८	१	१	१	१	१	१	२९
अ २८	प्र २८	प्र २८	अ २९	प्र २९	अ ३०	१	१	१	१	१ अ →
१	८	८	१	८	१	१	१	२	१	२८
										१ अ

पुन	पुन	अप्रमादरुगळ
३०	३१	भुजाकारंग·
१ अ	१ अ	ळु ४५
२८	२८	अल्पतर ३६
१ अ	१ अ	

अनंतरमा नाल्वत्तय्दुं भुजाकारंगळुपपत्तियं पेळ्दपरु :—

इगि अड अट्ठिगि अट्ठिगिभेदड अट्ठड दु णव य वीस तीसेक्के ।
अडिगिगि अडिगिगिविह उण खिगि खिगि इगितीस देवचउ कमसो ॥५७७॥

एकाष्टाष्टैकाऽष्टैकभेदे अष्टाष्टाष्ट द्विनवविंशति त्रिंशदेकस्मिन्नष्टैकैकाष्टैकैकविधैकान्न चैक चैकैकत्रिंशद्देवचत्वारि क्रमशः ॥

देवगतियुतैकस्थाने मनुष्यगतितीर्थयुतत्रिंशत्कस्थाने चाप्रमत्तभुजाकारबन्धभंगा पंचचत्वारिंशत्स्युः ४५ । तीर्थेनाहारकद्वयेन तदुभयेन च युतस्थानत्रयं भंगास्ते पुनरुक्ताः ॥५७६॥ तत्पंचचत्वारिंशत उपपत्तिमाह— १०

देवगति सहित एक स्थानमें और मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसके स्थानमें अप्रमत्त गुणस्थानमें पैंतालीस भुजाकार होते हैं। तथा तीर्थंकर सहित, आहारकद्वय सहित और तीर्थंकर आहारक दोनों सहित तीन स्थानोंमें जो भंग हैं वे पुनरुक्त हैं ॥५७६॥

उन पैंतालीस भुजाकारोंकी उपपत्ति कहते हैं—

१.

प्र	अ	अ	म	अ	अ					पुन अ	पुन अ	पुन अ	अप्रमादानां
२९	३०	३१	३०	३१	३१	२८	२९	३०	३१	२९	३०	३१	भुजाकाराः ४५
८	१	१	८	१	१	१	१	१	१	१	१	१	
प्र	प्र	प्र	अ	प्र	अ					अ	अ	अ	
२८	२८	२८	२९	२९	३०	१	१	१	१	२८	२८	२८	
१	८	८	१	८	१	१	१	१	१	१	१	१	

अधस्तनपंक्तिय एक अष्ट अष्ट एक अष्ट एक एक एक एक एकभेदे भेदंगळनुळ्ळ भंगंगळनुळ्ळ अष्ट अष्ट अष्ट नव नव विंशतिगळुं त्रिंशत् एक एक एक एक स्थानंगळोळु परितनपंक्तिय अष्ट एक एक अष्ट एक एक एक एक एक एक भंगंगळनुळ्ळ ओंबुगुंबियुं ख एक ख एक युत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळुं एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं देवचतुःस्थानंगळुं क्रमदिंदमप्पुवप्पु वरिंदमप्रमादरु गळोळु नाल्वत्तय्दे भुजाकारबंधभंगंगळप्पुवु। ई भुजाकारंगळभिप्रायं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे अप्रमत्तनेकभंगयुत देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमं कट्टुत्तं प्रमत्तनागि तीर्थबंधमं प्रारंभिसि सतीर्थ्यदेवगतियुतस्थानमनष्टभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८। मत्तं पमत्तसंयतनष्टभंगयुताष्टाविंशतिस्थानमं कट्टुत्तमप्रमत्तनागि देवगत्याहारद्वययुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेकभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८॥ मत्तं प्रमत्तगुणस्थानदोळु देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमनष्टभंगयुतमं कट्टुत्तमप्रमत्तनागि तीर्थाहारद्वययुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेकभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८॥ मत्तमप्रमत्तसंयतं तीर्थदेवगतियुतनवविंशतिस्थानमं कट्टुत्तं मरणमादोडे देवासंयतनागि मनुष्यगतितीर्थयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनष्टभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८॥ मत्तं प्रमत्तगुणस्थानदोळु तीर्थदेवगतियुतनवविंशतिस्थानमनष्टभंगयुतमं कट्टुत्तमप्रमत्तगुणस्थानमं पोद्दि तीर्थाहारद्वययुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेकभंगयुतमागि

अधस्तनपंक्तेरेकाष्टाष्टैकाष्टैकैकैकैकभंगाष्टाष्टाष्टनवनवविंशतित्रिंशदेकैकैकैकप्रकृतिकेषु, उपरितनपंक्तेरष्टैकैकाष्टैकैकैकैकैकैकवैकोनखैकखैकयुतत्रिंशत्कान्येकत्रिंशत्कं देवचतुःस्थानानि च क्रमेणेति पंचचत्वारिंशद्भवन्ति । तद्यथा—

अप्रमत्तः देवगत्येकषाष्टाविंशतिकं बध्नन् प्रमत्ते गत्वा तीर्थबन्धं प्रारभ्य सतीर्थाष्टधादेवगतिनवविंशतिकं बध्नातीत्यष्टौ । पुनः प्रमत्तोऽष्टधाष्टाविंशतिकं बध्नन्नप्रमत्तो भूत्वा देवगत्याहारकद्वययुतैकषात्रिंशत्कं बध्नातीत्यष्टौ । पुनः प्रमत्तोऽष्टधाष्टाविंशतिकं बध्नन्नप्रमत्ता भूत्वैकषातीर्थाहारैकत्रिंशत्कं बध्नातीत्यष्टौ । पुनरप्रमत्तः तीर्थदेवगतिनवविंशतिकं बध्नन्मृत्वा देवासंयतो भूत्वाष्टधा मनुष्यगतितीर्थत्रिंशत्कं बध्नातीत्यष्टौ । पुनः प्रमत्तः

नीचेकी पंक्तिके एक आठ आठ एक आठ एक एक एक एक एक भंग सहित अठाईस अठाईस अठाईस उनतीस उनतीस तीस इकतीस इकतीस इकतीस इकतीस रूप स्थानोंको बाँधकर ऊपरकी पंक्तिके आठ एक एक आठ एक एक एक एक एक एक भंग सहित उनतीस तीस इकतीस तीस इकतीस इकतीस और देवगति सहित चार स्थानोंको क्रमसे बाँधे। तो एक एक ऊपरकी पंक्तिके स्थान भंगोंसे एक एक नीचेकी पंक्तिके स्थान भंगोंको गुणा करनेपर सब पैंतालीस भुजाकार होते हैं। वही कहते हैं—

अप्रमत्त गुणस्थानवाला एक भंग सहित देवगतियुक्त अठाईसका बन्ध करके, प्रमत्त गुणस्थानमें जाकर, तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करके, तीर्थंकर देवगति सहित उनतीसको आठ भंग सहित बाँधे तो उन दोनोंके भंगोंको परस्परमें गुणा करनेपर आठ हुए। पुनः प्रमत्त गुणस्थानवर्ती आठ भंग सहित देवगतियुत अठाईसको बाँधकर अप्रमत्त होकर देवगति आहारक द्विक सहित तीसको एक भंगके साथ बाँधे तो आठ भंग हुए। पुनः प्रमत्त आठ भंग सहित अठाईसको बाँध अप्रमत्त होकर तीर्थंकर आहारक सहित इकतीसको एक भंगके साथ बाँधे तो आठ भंग हुए। पुनः अप्रमत्त तीर्थंकर देवगति सहित उनतीसको एक भंगके साथ बाँधकर मरकर देव असंयत होकर आठ भंग सहित मनुष्यगति तीर्थंकर सहित तीसको बाँधे

कट्टुगुं । ८ ॥ मत्तमप्रमत्तसंयतनाहारयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेकभंगयुतमं कट्टुत्तलुं तीर्त्थबंधमं प्रारंभिसि एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेक भंगयुतमागि कट्टुगुं । मत्तमुपशमश्रेण्यवतरणदोळु अपूर्व्वकरणनेकभंगयुतैकप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं देवगतियुतमागियुं देवगतितीर्त्थयुतमागियुं देवगत्याहारद्वययुतमागियुं देवगत्याहारद्वयतीर्त्थयुतमागियुं कट्टुगुमप्पुदरिंदमवु नाल्कु भंगंगळुमप्पुवु । ४ ॥ कूडि पंचचत्वारिंशद् भंगंगळप्पुवें बुदत्थं ॥

अनंतरं प्रमादरहितरुगळ अल्पतरभंगंगळं पेळ्दपरु :—

इगिविहिगिगिखखतीसे दस णव णवडधियवीसमट्ठविहं ।
देवचउक्केक्केक्कं अपमत्तप्पदरछत्तीसा ॥५७८॥

एकविधे एकैक खखाधिकत्रिंशत्के दशनव नवाष्टाधिकविंशतिरष्टविधा देवचतुष्के एकस्मिन्नेकोप्रमत्ताल्पतर षट्त्रिंशत् ॥

एकैकभंगंगळनुळ्ळ एक एक खखाधिक त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळोळु दश नव नव अष्टाधिकविंशतिप्रकृतिस्थानंगळु प्रत्येकमष्टाष्टभंगयुतंगळप्पुवु । देवचतुष्कदोळों दरोळों दु भंगमागुत्तं विरलु नाल्कक्कं नाल्कु भंगंगळप्पु ४ वितप्रमत्ताल्पतर षट्त्रिंशद् भंगंगळप्पुवु । ३६ ॥ संदृष्टि :—

देवगत्यष्टधानवविंशतिकं बध्नन्नप्रमत्तो भूत्वा तीर्थाहारैकधैकत्रिंशत्कं बध्नातीत्यष्टौ । पुनरप्रमत्तः एकधाहारत्रिंशत्कं बध्नंस्तीर्थबन्धं प्रारभ्यैकत्रिंशत्कं बध्नातीत्येकः । पुनरवरोहकापूर्वकरणः एकधैककं बध्नन् देवगतियुतं देवतीर्थयुतं देवगत्याहारकयुतं देवगत्याहारकतीर्थयुतं च बध्नातीति चत्वारः । एवं पंचचत्वारिंशदित्यर्थः ॥५७७॥ अथाप्रमत्तादीनामल्पतरभंगानाह—

एकैकधैकैकखखाधिकत्रिंशत्केष्वष्टाष्टधादशनवनवाष्टाधिकविंशतिकान्येकैकधादेवचतुष्कं चेत्यप्रमत्ताल्पतराः षट्त्रिंशत् । तद्यथा—

तो आठ भंग होते हैं । पुनः प्रमत्त देवगति तीर्थसहित उनतीसको आठ भंगोंके साथ बाँध अप्रमत्त होकर तीर्थ आहारक सहित इकतीसको एक भंगके साथ बाँधे तो आठ भंग हुए । पुनः अप्रमत्त आहारक सहित तीसको एक भंगके साथ बाँध तीर्थंकरके बन्धको प्रारम्भ कर एक भंग सहित इकतीसको बाँधे तो एक भंग हुआ । पुनः उतरता हुआ अपूर्वकरण एक भंग सहित एकको बाँधकर नीचे आकर देवगतियुत अठाईसको या देवगति तीर्थ सहित उनतीसको या देवगति आहारक सहित तीसको या देवगति आहारक तीर्थ सहित इकतीसको एक भंगके साथ बांधनेपर चार भंग होते हैं । इस प्रकार पैंतालीस भुजाकार होते हैं ॥५७७॥

आगे अप्रमत्तमें अल्पतर भंग कहते हैं—

एक एक भंगसहित एक एक शून्य शून्य अधिक तीस प्रकृतिरूप स्थानोंको बाँधकर आठ आठ भंग सहित दस नौ नौ आठ अधिक बीस प्रकृतिरूप स्थान और एक एक भंगके साथ देवगति सहित चार स्थानोंको बाँधनेपर अप्रमत्तमें छत्तीस अल्पतर होते हैं । वही कहते हैं—

अप्रमादाल्पतर								अवक्तव्य भंग			
म ३०	२९	३६ २९	२८	१	१	१	१	१	म २९	म ३०	अल्पतर
८	८ प्र	८ प्र	८ प्र	१	१	१	१	१	८	८	३६
३१	३१	३०	३०	२८	२९	३०	३१				अवक्तव्य
१	१	१	१	१	१	१	१	०	०	०	१७

इल्लि रचनाभिप्रायं सूचिसल्पडुगुमें तें दोडे अप्रमत्तसंयतं देवगतितीर्त्थाहारयुत एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेकभंगयुतमागि कट्टुत्तं मरणमादोडे देवासंयतनागि मनुष्यगतितीर्त्थयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनष्टभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८ । मत्तमप्रमत्तसंयत नेकभंगयुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं प्रमत्तसंयतनागि देवगतितीर्त्थयुतनवविंशतिस्थानमनष्टभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८ ॥ मत्तमप्रमत्तसंयत नेकभंगयुत देवगत्याहारयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं प्रमत्तसंयतनागि तीर्त्थबंधप्रारंभमं माडि देवगतितीर्त्थयुत नवविंशतिस्थानमनष्टभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८ ॥ मत्तमप्रमत्तसंयतनाहार देवगतियुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमनेकभंगयुतमं कट्टुत्तं प्रमत्तसंयतनागि देवगतियुताष्टाविंशतिस्थानमनष्टभंगयुतमागि कट्टुगुं । ८ ॥ मत्तमपूर्व्वकरणनारोहणदोळेकं भंगयुत देवगतियुत चतुःस्थानंगळं कट्टुत्तं स्वसप्तम भागभं पोद्दि एकभंगयुतैकप्रकृतिस्थानमं कट्टुत्तं विरलु नाल्कुं स्थानंगळोळु नाल्कु भंगंगळप्पु—४ वितु प्रमादरहितरुगळल्पतरभंगंगळु षट्त्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवेंबुदर्त्थं ॥

अप्रमत्तः एकधा देवगतितीर्थाहारैकत्रिंशत्कं बध्नन् मृत्वा देवासंयतो भूत्वाष्टधा मनुष्यगतितीर्थत्रिंशत्कं बध्नातीत्यष्टौ । पुनः अप्रमत्तः एकधैकत्रिंशत्कं बध्नन् प्रमत्तो भूत्वा देवगतितीर्थनवविंशतिकं बध्नातीत्यष्टौ । पुनरप्रमत्त एकधा देवगत्याहारकत्रिंशत्कं बध्नन् प्रमत्तोभूत्वा तीर्थबन्धं प्रारभ्याष्टधा देवगतितीर्थनवविंशतिकं बध्नातीत्यष्टौ । पुनरप्रमत्तः एकधाहारदेवगतित्रिंशत्कं बध्नन् प्रमत्तो भूत्वा अष्टधा देवगत्याष्टविंशतिकं बध्नातीत्यष्टौ । पुनः अपूर्वकरणआरोहण एकैकधादेवगतिचतुःस्थानानि बध्नन् सप्तमभागं गत्वा एकधैककं बध्नातीति

देवगति आहारक तीर्थ सहित इकतीसको एक भंगके साथ बाँधकर अप्रमत्त मरकर देव असंयत होकर आठ भंगके साथ मनुष्यगति तीर्थ सहित तीसको बाँधे तो आठ भंग हुए। तथा अप्रमत्त एक भंगके साथ इकतीसको बाँध प्रमत्त होकर आठ भंगके साथ देवगति तीर्थ सहित उनतीसको बाँधे तो आठ हुए। अप्रमत्त एक भंगके साथ देवगति आहारक सहित तीसको बाँधकर तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करके आठ भंगके साथ देवगति तीर्थ सहित उनतीसको बाँधे तो आठ हुए। अप्रमत्त एक भंगके साथ आहारक देवयुत तीसको बाँध प्रमत्त होकर आठ भंगके साथ देवगति सहित अठाईसको बाँधे तो आठ हुए। अपूर्वकरण चढ़ता हुआ एक एक भंग सहित देवगति सहित अठाईस, देवगति तीर्थ सहित उनतीस, देवगति आहारक सहित तीस, देवगति आहारक तीर्थ सहित इकतीसके स्थानको बाँधकर सातवें भागमें एक भंग सहित एक प्रकृति रूप स्थानको बाँधे तो चार भंग होते हैं, इस प्रकार छत्तीस अल्पतर होते हैं ॥५७८॥

अनंतरं मिथ्यादृष्टयसंयताप्रमादरुगळ भुजाकारादिगळं कूडिदोडे सर्व्वभुजाकारादिगळप्पुवें दु पेळ्दपरु :—

सव्वपरट्ठाणेण य अयदपमत्तिदरसव्वभंगा हु ।
मिच्छस्स भंगमज्झे मिलिदे सव्वे हवे भंगा ॥५७९॥

सर्व्वपरस्थानेन च असंयतप्रमत्तेतर सर्व्वभंगाः खलु । मिथ्यादृष्टेर्भंगमध्ये मिलिते सर्व्वे भवेयुर्भंगाः ॥

सर्व्वपरस्थानदोळनेयुं च शब्दिंदं स्वस्थानदोळनेयुं परस्थानदोळनेयुं कूडिद असंयता । प्रमादरुगळसर्व्वभुजाकारादिभंगंगळु मिथ्यादृष्टिय भुजाकारादिभंगमध्यदोळु कूडुत्तंविरलु नामकर्म्मंसर्व्वंभुजाकारादिभंगंगळप्पुवल्लि मिथ्यादृष्टयसंयतादिगळ भुजाकारादिगळगे संदृष्टि :

मि ४४६०९४३५	मि अल्पतर ४४६०१४३५	मि अवस्थि ८९२१८८७०	उपशांतकषाया-
असं भुजा ३६९९२	असंयताल्पतर ७२	असंयताव ३७०६४	वक्तव्य भंग
अप्रमाद भुजा ४५	अप्रमादाल्पतर ३६	अप्रमादावस्थितं ८१	१७ ॥
युति ४४६४६४७२	युति ४४६०९५ ४३	उपशांतावस्थित १७	
		युति ८९२५६० ३२	

अनंतरं भुजाकारादि भंगंगळुत्पत्तिसाधारणोपायमं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

भुजगारा अप्पदरा हवंति पुव्ववरठाणसंताणे ।
पयडिसमोऽसंताणोऽपुणरुत्तोत्ति य समुद्दिट्ठो ॥५८०॥

भुजाकाराल्पतरा भवंति पूर्व्वापरस्थानसंताने । प्रकृतिसमोऽसंतानोऽपुनरुक्त इति समुद्दिष्टः ॥

चत्वारः । एवं षट्त्रिंशत् ॥५७८॥ अथ भुजाकारादीनेकीकरोति—

सर्वपरस्थानैः चशब्दात्स्वस्थानैः स्वपरस्थानैश्चाश्रिताः असंयताप्रमत्तादिसर्वभुजाकारादिभंगाः खलु मिथ्यादृष्टिभुजाकारादिभंगेषु मिलंति तदा नामकर्मणः सर्वे भुजाकारादिभंगाः स्युः संदृष्टिः—

भुजाकार	अल्पतर	अवस्थित	
मि ४४६०९४३५	मि ४४६०९४३५	मि ८९२१८८७०	
असं० ३६९९२	असं ७२	असं० ३७०६४	उपशान्त
अप्र० ४५	अप्र० ३६	अप्र० ८१	कषायावक्त-
युति ६४६४६४७२	युति ४४६०'५४३	उपशां० १७	व्यभंगाः
		युति ८९२५६०३२	१७

५७९ । अथ तेषामुत्पत्तिसाधरणोपायं गाथाद्वयेनाह—

आगे भुजाकार आदिको एकत्र करते हैं—

सर्व परस्थान, स्वस्थान और स्व-परस्थानके आश्रयसे जो असंयत अप्रमत्त आदिके सब भुजकारादि बन्ध होते हैं उनको मिथ्यादृष्टिके भुजकारादि भंगोंमें मिलानेपर नामकर्मके सब भुजकारादि बन्ध होते हैं उनकी संदृष्टि ऊपर दी है ॥५७९॥

आगे उन भंगोंकी उत्पत्तिका साधारण उपाय दो गाथाओंसे कहते हैं—

पूर्व्वापरस्थानसंताने पूर्व्वापराऽपरपूर्व्वस्थानसमुदायदोळु २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१।१। अनुसंधानकरणमागुत्तं विरलु भुजाकारंगळुमल्पतरंगळुमप्पुवु। प्रकृतिसमोऽसन्तानः सदृशाक्षापेक्षे इंदं प्रकृतिसंख्यासममनुळ्ळुदावोडं असंतानः प्रकृतिसमुदायभेदमुळ्ळुदु अपुनरुक्त इति निर्दिष्टः अपुनरुक्तमेंदु पेळल्पट्टुदु। अदेंतेंदोडे नवविंशतिप्रकृतिस्थानदोळु संहननभेदविंदं तीर्त्थभेदविंदं प्रकृतिसमुदायक्के समत्वमादोडमपुनरुक्तत्वं सिद्धमेंतंते ॥

भुजगारे अप्पदरेऽवत्तव्वे ठाइदूण समबंधे ।
होदि अवट्ठिदबंधो तब्भंगा तस्स भंगा हु ॥५८१॥

भुजाकारान् अल्पतरानवक्तव्यान् स्थापयित्वा समबंधे भवत्यवस्थितबंधः तद्भंगास्तस्य भंगाः खलु ॥

भुजाकारंगळनू अल्पतरंगळनू अवक्तव्यंगळनू बेरे बेरे स्थापिसि द्वितीयादि समयंगळोळु समानबंधमागुत्तं विरलु अवस्थितबंधमक्कुमदु कारणमागि तद्भंगाः तेषां भुजाकारादीनां भंगास्तद्भंगाः। आ भुजाकाराकारादिगळ भंगंगळु तस्य भंगाः खलु अवस्थितभंगगळप्पुवु। स्फुटमागि॥

अनंतरमवक्तव्य भंगंगळं पेळ्दपरु :—

पडिय मरिएक्कमेक्कूणतीस तीसं च बंधगुवसंते ।
बंधो दु अवत्तव्वो अवट्ठिदो बिदियसमयादी ॥५८२॥

पतितमृतेकैकोनत्रिंशत्त्रिंशच्च बंधकोपशांते । बंधस्त्ववक्तव्योऽवस्थितो द्वितीयसमयादिः ॥

पूर्वस्थानस्याल्पप्रकृतिकस्य बहुप्रकृतिकेनानुसंधाने भुजाकारा भवंति । परस्थानस्य बहुप्रकृतिकस्याल्पप्रकृतिकेनानुसंधानेऽल्पतरा भवंति । प्रकृतिसंख्यासमानोऽपि यः असंतानः प्रकृतिसमुदायभेदयुक् सोऽपुनरुक्त इति निर्दिष्टः यथा—संहननेन तीर्थेन वा युते नवविंशतिके प्रकृतिसमुदायस्य समत्वेऽप्यपुनरुक्तत्वं ॥५८०॥

भुजकारानल्पतरानवक्तव्यांश्च संस्थाप्य द्वितीयादिसमयेषु समानं बध्नाति तदावस्थितबन्धः स्यात् । ततस्तेषां भंगा यावंतस्तावन्तः खल्ववस्थितभंगा भवन्ति ॥५८१॥ अथ तानवक्तव्यभंगानाह—

थोड़ी प्रकृतिरूप पूर्वस्थानको बहु प्रकृति रूप स्थानके साथ लगानेपर भुजाकार होता है। बहु प्रकृति रूप पिछले स्थानको थोड़ी प्रकृति रूप स्थानके साथ लगानेपर अल्पतर होता है। प्रकृतियोंकी संख्या समान होते हुए भी जो असन्तान है अर्थात् प्रकृति भेदयुक्त है वह अपुनरुक्त कहा है। जैसे तीर्थ बिना संहनन सहित भी उनतीसका बन्ध है और तीर्थ सहित संहनन बिना भी उनतीसका बन्ध है। इन दोनोंमें उनतीसकी संख्या समान होते हुए भी तीर्थंकर और संहनन प्रकृतिका भेद होनेसे अपुनरुक्तपना कहा है ॥५८०॥

भुजकार अल्पतर और अवक्तव्य भंगोंको स्थापित करके द्वितीयादि समयोंमें जब समान बन्ध होता है तब अवस्थित बन्ध होता है। अतः उन तीनोंके जितने भंग होते हैं उतने ही अवस्थित भंग होते हैं ॥५८१॥

आगे अवक्तव्य भंगोंको कहते हैं—

अवरोहणपतितैकबंधकोपशांतकषायनोळं मृतैकोनत्रिंशत्त्रिंशत्प्रकृतिबंधकोपशांतकषायनोळुमवक्तव्यबंधमक्कुं। तु मत्ते द्वितीयसमयादियागुळ्ळ बंधमवस्थितबंधमक्कुमेंदरियल्पडुगुं। भुजाकारादिगळेंदु पेळल्पडदवक्तव्यंगळप्पुवु। एंतेंदोडे उपशांतकषायनवतरणदोळु नामकर्मबंधकनल्लदिर्द्देकप्रकृतिस्थानमं सूक्ष्मसांपरायनागि कट्टिदोडों दु भंगमुं मरणमादोडे देवासंयतनागि मनुष्यगतियुताष्टभंगयुतनवविंशतिस्थानमं कट्टिदोडेंदु भंगंगळुं सतीर्त्थाष्टभंगयुतमनुष्यगतियुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टिदोडेंदु भंगंगळुमंतु पदिनेळु भंगंगळप्पुवु १७॥ द्वितीयादिसमयंगळवस्थित भंगंगळोळवस्थित भंगंगळुमितुपदिनेळप्पुवेंबुदत्थं ॥१७॥

घोरसंसारवाराशितरंगनिकरोपमैः। नामबंधपदैर्ज्जीवा वेष्टितास्त्रिजगद्भुवाः॥

अनंतरं नामकर्म्मोदयस्थानप्ररूपणप्रकरणमं द्वाविंशतिगाथासूत्रंगळिद पेळलुपक्रमिसुत्तं नामकर्म्मोदयस्थानंगळ्गे पंचकालंगळप्पुवेंदु पेळ्दपरु :—

विग्गहकम्मसरीरे सरीरमिस्से सरीरपज्जत्ते।
आणावचिपज्जत्ते कमेण पंचोदये काला ॥५८३॥

विग्रहकार्म्मणशरीरे शरीरमिश्रे शरीरपर्य्याप्तौ। आनापानवाक्पर्य्याप्त्योः क्रमेण पंचोदये कालाः॥

विग्रहगतिय कार्म्मणशरीरदोळं शरीरमिश्रदोळं शरीरपर्य्याप्तियोळं आनापानपर्य्याप्तियोळं भाषापर्य्याप्तियोळंमितो क्रमदिदं नामकर्म्मप्रकृतिस्थानोदयंगळ्गवसरकालंगळ्दप्पुवु। यिल्लि विग्रहगतियोळेंदोडे साल्गुं। विग्रहगतिय कार्म्मणशरीरदोळेंदेनलेकेंदोडे विग्रहगतियोळल्लदे

अवक्तव्यास्तु उपशान्तकषाये किमपि नामाबध्नन् पतितः सूक्ष्मसांपरायं गत एकं बध्नाति वा मरणे देवासंयतो भूत्वा मनुष्यगतिनवविंशतिकं मनुष्यगतितीर्थत्रिंशत्कं चाष्टाष्टधा बध्नातीति सप्तदश भवन्ति। पुनः तद्द्वितीयादिसमयेष्ववस्थितबन्धः स्यात्तेन तेऽपि तावन्तः।

घोरसंसारवाराशितरंगनिकरोपमैः।
नामबन्धपदैर्जीवा वेष्टितास्त्रिजगद्भुवाः॥१॥ ५८२।

अथ नामोदयस्थानानि द्वाविंशतिगाथाभिराह—

तेषां स्थानानामुदयस्य नियतकालत्वात्ते कालाः विग्रहगतिकार्मणशरीरे शरीरमिश्रे शरीरपर्याप्तौ

उपशान्त कषायमें किसी भी नामकर्म प्रकृतिको न बाँधकर पीछे सूक्ष्म साम्परायमें आकर एकको बाँधता है। अथवा मरनेपर देव असंयत होकर मनुष्यगति सहित उनतीस या मनुष्यगति तीर्थ सहित तीसको आठ-आठ भंग सहित बाँधता है। इस तरह सतरह अवक्तव्य बन्धके भंग होते हैं। द्वितीयादि समयमें भी उतना ही बन्ध होनेपर अवस्थित बन्ध भी उतने ही जानना ॥५८२॥

अब नामकर्मके उदयस्थान बाईस गाथाओंसे कहते हैं—

नामकर्मके उदय स्थानोंका काल नियत है। जिस-जिस कालमें उदय योग्य हैं वहाँ ही उनका उदय होता है वे काल पाँच हैं—विग्रहगति या कार्मण शरीर, मिश्रशरीर, शरीर पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, और भाषापर्याप्ति काल। कार्मण शरीर जब पाया जाये वह

कार्म्मणकायावसरं समुद्घातकेवलियोळुंटप्पुदरिंदं तत्कालावसरग्रहणनिमित्तमागि विग्रहकार्म्मण-शरीरग्रहणमक्कुमेंदरियल्पडुगुमल्लि विग्रहगत्याविगळ कालप्रमाणमं क्रमदिंदं पेळ्दपरु :—

एक्कं व दो व तिण्णि व समया अंतोमुहुत्तयं तिसुवि ।
हेट्ठिमकालूणाओ चरिमस्स य उदयकालो दु ॥५८४॥

एको वा द्वौ वा त्रयो वा समया अंतर्मुहुर्त्तस्त्रिष्वपि । अधस्तनकालोनायुश्चरमस्य चोदय-कालस्तु ॥

विग्रहगतिय कार्म्मणशरीरदोळु उदयकालमेकद्वित्रिसमयंगळप्पुवु । १ । २ । ३ । शरीर मिश्रदोळुदयकालमंतर्म्मुहूर्त्तप्रमितमक्कुमंते शरीरपर्य्याप्तियोळं उच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळ-मक्कुं । २१ । भाषापर्य्याप्तियोळमा नाल्कुं कालंगळ युतियुमंतर्म्मुहूर्त्तप्रमितमक्कु प ३२ मदरिंद-स ३
२१३

मूनमप्प भुज्यमानायुष्प्रमाणमेनितनितुमुदयकालप्रमाणमक्कुं । विग्रहगतिशरीरमिश्रशरीरपर्य्याप्ति उच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्ति भाषापर्य्याप्तिगळोळु नियतोदयनामस्थानंगळोळवप्पुदरिनी कालप्रमाणं पेळल्पट्टुदु ।

ई पंचकालंगळं जीवसमासेयोळु योजिसिदपरु :

आनपानपर्याप्तौ भाषापर्याप्तौ च क्रमेण पंच भवन्ति । अत्र विग्रहगतावित्येतावत एव ग्रहणं समुद्घातकेवलिनः कार्मणकायस्य ग्रहणार्थं ॥५८३॥

तेषां कालानां प्रमाणं क्रमेण विग्रहगतेः कार्मणशरीरे एको वा द्वौ वा त्रयो वा समयाः, शरीरमिश्रे शरीरपर्याप्तौ उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तौ च प्रत्येकमन्तर्मुहूर्तः, भाषापर्याप्तौ उक्तचतुःकालोनं सर्वं भुज्यमा-नायुः प ३ ॥५८४॥ तान् पंचकालान् जीवसमासेषु योजयति—
स ३
२१३

कार्मण शरीरकाल है । जबतक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक मिश्रशरीर काल है । शरीर पर्याप्ति पूर्ण होनेपर जबतक श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक शरीर पर्याप्तिकाल है । श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण होनेपर जबतक भाषा पर्याप्ति पूर्ण न हो तबतक श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिकाल है । भाषा पर्याप्ति पूर्ण होनेपर सब आयु प्रमाण काल भाषापर्याप्तिकाल है । यहाँ विग्रहगति और कार्माण दोका ग्रहण समुद्घात केवलीके कार्माणको ग्रहण करनेके लिए किया है ॥५८३॥

उन पाँच कालोंका प्रमाण क्रमसे विग्रहगतिके कार्मणशरीरमें एक समय, दो समय या तीन समय है । मिश्र शरीर, शरीर पर्याप्ति, और उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्तिमें प्रत्येकका अन्तर्मुहूर्त काल है । भाषापर्याप्तिमें उक्त चार कालोंका प्रमाण घटानेपर शेष सम्पूर्ण भुज्यमान आयु प्रमाण काल जानना ॥५८४॥

उन पाँच कालोंको जीव समासोंमें लगाते हैं—

सव्वापज्जत्ताणं दोण्णिवि काला चउक्कमेयक्खे ।
पंच वि होंति तसाणं आहारस्सुवरिमचउक्कं ॥५८५॥

सर्व्वापर्य्याप्तानां द्वावपि कालौ चतुष्कमेकाक्षे । पंचापि भवंति त्रसानामाहार शरीरस्योपरितनचतुष्कं ॥

सर्व्वलब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळ्गे विग्रहगतिय कार्म्मणशरीरकालमुमौदारिकशरीरमिश्रकालमुमेरडेयप्पुवु । एकेंद्रियंगळ्गे विग्रहगतिशरीरमिश्रशरीरपर्य्याप्ति उच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तिगळेंब नाल्कुं कालंगळप्पुवु । त्रसजीवंगळ्गे पंचकालंगळुमप्पुवु । आहारकशरीरदोळु विग्रहगतिवर्ज्जितोपरितन चतुःकालंगळप्पुवु ।

अनंतरं समुद्घातकेवलियोळु संभविसुव कालंगळं पेळ्दपरु :—

कम्मोरालियमिस्सं ओरालुस्सासभास इदि कमसो ।
काला हु समुग्घादे उवसंहरमाणगे पंच ॥५८६॥

कार्म्मणौदारिकमिश्रमौदारिकोच्छ्वास भाषा इति क्रमशः । कालाः खलु समुद्घाते उपसंहरमाणे पंच ॥

कार्म्मणशरीरकालमुमौदारिकमिश्रकालमुमौदारिकशरीरपर्य्याप्तिकालमुमुच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिकालमुं भाषा पर्य्याप्तिकालमुमेंब पंचकालंगळोळु समुद्घातोपसर्प्पणोपसंहरमाणरोळु क्रमदिदं मूरुमप्पुं कालंगळप्पुववाउदेंदोडे :

ओरालं दंडदुगे कवाडजुगले य तस्स मीसंतु ।
पदरे य लोगपूरे कम्मे व य होदि णायव्वो ॥५८७॥

औदारिक शरीरपर्य्याप्तिकालं दंडद्वयदोळक्कुं । कवाटयुगळदोळु तदौदारिकमिश्रकालमक्कुं ।

ते कालाः सर्वलब्ध्यपर्याप्तेष्वाद्यौ द्वौ । एकेन्द्रियेषु आद्याश्चत्वारः । त्रसेषु पंच । आहारकशरीरे आद्यं विनोपरितनाश्चत्वारो भवन्ति ॥८८५॥

समुद्घातकेवलिनि खलु कालाः कार्मणः औदारिकमिश्रः औदारिकशरीरपर्याप्तिः उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिश्चेति क्रमेण पंच । अमी उपसंहरमाणके एव उपसर्पमाणके त्रयस्यैव संभवात् ॥५८६॥ तद्यथा—

दण्डद्वये कालः औदारिकशरीरपर्याप्तिः, कवाटयुगले तन्मिश्रः प्रतरयोर्लोकपूरणे च कार्मण इति

वे काल सब लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आदिके दो ही हैं । एकेन्द्रियोंमें आदिके चार हैं । त्रसोंमें पाँचों हैं । आहारक शरीरमें पहलेके बिना ऊपरके चार काल हैं ॥५८५॥

समुद्घात केवलीमें कार्मण, औदारिक मिश्र, औदारिक शरीर पर्याप्ति, उच्छ्वास-निःश्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति ये क्रमसे पाँच काल होते हैं । ये पाँचों काल प्रदेशोंको संकोचते समय होते हैं । फैलाते समय तीन ही होते हैं ॥५८६॥

वही कहते हैं—

दण्ड रूप करने तथा समेटने रूप दोमें औदारिक शरीर पर्याप्तिकाल है । कपाट

प्रतरद्वयलोकपूरणंगळोळु कार्म्मणशरीरकालमक्कुमेंदरियल्पडुगुं मूलशरीरप्रवेशप्रथमसमयं मोडल्गों डु संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तनोळेंतंते पर्य्याप्तिगळ परिपूर्णंगळप्पुवु ।

दंड	३०	३१
कवाट	२६	२७
प्रतर	२०	२१
लोकपू.	२०	२१

भाषा	३०	३१
उच्छ्वा	२९	३०
इंद्रि	२८	२९
शरीर	२८	२९
आहा	२८	२९
मूलश	२८	२९

लो १

प्रका		प्र
क । मि		क
दं औ		दं औ

अनंतरं नामकर्म्मोदयस्थानंगळगुत्पत्तिक्रममं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपरु :—

ज्ञातव्यः । मूलशरीरप्रथमसमयात्संज्ञिवत्पर्याप्तयः पूर्यन्ते—

दं	३०	३१
क	२६	२७
प्र	२०	२१
लो	२०	२१

भा	३०	३१
उ	२९	३०
इ	२८	२९
श	२८	२९
मू	२८	२९

लो १

प्र		प्र
क		क
दं		दं

॥५८७॥ अथ नामोदयस्थानानामुत्पत्तिक्रमं गाथाचतुष्टयेनाह—

रूप करने तथा समेटने रूप दोमें औदारिक मिश्रशरीर काल है। प्रतर रूप करने और समेटनेमें तथा लोकपूरणमें कार्मणकाल है। इस तरह फैलाते समय तो तीन ही काल हैं और समेटतेमें मूलशरीरमें प्रवेश करनेके प्रथम समयसे लगाकर संज्ञी पंचेन्द्रियकी तरह क्रमसे पर्याप्ति पूर्ण करता है अतः पाँचों काल होते हैं ॥५८७॥

आगे नामकर्मके उदय स्थानोंका क्रमसे उत्पन्न होनेका विधान चार गाथाओंसे कहते हैं—

णाम धुओदय बारस गइजाईणं च तसतिजुम्माणं ।
सुभगादेज्जजसाणं जुम्मेक्कं विग्गहे वाणू ॥५८८॥

नाम ध्रुवोदया द्वादश गतिजातीनां च त्रसत्रियुग्मानां सुभगादेययशसां युग्मैकं विग्रह एवानुपूर्व्यं ॥

"तेजद्वुगं वण्णचऊ थिरसुहजुगऊ गुरुणिमिण धुवउदया" एंब नाम ध्रुवोदयप्रकृतिगळु पन्नेरडुं .चतुर्गतिगळोळं पंचजातिगळोळं त्रसस्थावरबादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तत्रियुग्मंगळोळं सुभगदुर्भगादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्तिगळेंब युग्मत्रयदोळो दोंदुगळु विग्रहगतियोळे आनुपूर्व्यंचतुष्कदोळो दुदयक्केबक्कुं । विग्रहगतियोळल्लदे ऋजुगतियोळानुपूर्व्योदयमिल्लेंबुदर्त्थमा ऋजुगतियोळु चतुर्विंशत्यादिगळक्कुं ॥

मिस्सम्मि तिअंगाणं संठाणाणं च एगदरगं तु ।
पत्तेयदुगाणेक्को उवघादो होदि उदयगदो ॥५८९॥

मिश्रे त्र्यंगानां संस्थानानां चैकतरं तु । प्रत्येकद्वयोरेकमुपघातो भवत्युदयगतः ॥

त्रसस्थावरंगळ शरीरमिश्रकालदोळौदारिकवैक्रियिकाहारकगळेंब शरीरत्रयदोळं षट्संस्थानंगळोळमेकतरमुं तु मत्ते प्रत्येक साधारणद्वयदोळेक प्रकृतियुमुदयागतोपघातनामकर्म्ममुं—

तेजदुगं वण्णचऊ थिरसुहजुगलागुरुणिमिणेति नामध्रुवोदयाः द्वादश, चतुर्गतिषु पंचजातिषु त्रसस्थावरयोर्बादरसूक्ष्मयोः पर्याप्तापर्याप्तयोः सुभगदुर्भगयोरादेयानादेययोर्यशस्कीर्त्ययशस्कीर्त्योः चतुरानुपूर्व्येषु चैकैकमित्येकविंशतिकं तदानुपूर्व्ययुतत्वाद्विग्रहगतावेवोदेति न ऋजुगतौ तस्यां चतुर्विंशतिकादीनामेवोदयात् ॥५८८॥

पुनस्तस्मिन्नेकविंशतिके आनुपूर्व्यमपनीय औदारिकादित्रिशरीराणां षट्संस्थानानां चैकतरं प्रत्येकसाधारणयोरेकं उपघातश्चेति चतुष्कमुदयगतं मिलितं तदा चतुर्विंशतिकं भवति । तच्च त्रसस्थावरमिश्रकाले एवोदेति ॥५८९॥

तैजस, कार्मण, वर्णादि चार, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अगुरुलघु, निर्माण ये बारह नामकर्मकी ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। इनका उदय सबके निरन्तर पाया जाता है। चार गतियोंमें, पाँच जातियोंमें, त्रसस्थावरमें, बादरसूक्ष्ममें, पर्याप्तअपर्याप्तमें, सुभगदुर्भगमें, आदेयअनादेयमें, यशःकीर्ति अयशःकीर्तिमें और चार आनुपूर्वीमें-से एक-एकका ही उदय होता है। ऐसे इक्कीस प्रकृति रूप स्थानका विग्रहगतिमें ही उदय होता है क्योंकि आनुपूर्वीका उदय विग्रह गतिमें ही होता है। ऋजुगतिमें इक्कीसके स्थानका उदय नहीं है उसमें चौबीस आदिका ही उदय है ॥५८८॥

उस इक्कीसके स्थानमें आनुपूर्वीको घटाकर औदारिक आदि तीन शरीरोंमें-से एक, छह संस्थानोंमें-से एक, प्रत्येक और साधारणमें-से एक, तथा उपघात ये चार मिलानेपर चौबीसका उदयस्थान होता है। यह त्रस और स्थावरके शरीरमिश्रकालमें उदय होता है ॥५८९॥

तसमिस्से ताणि पुणो अंगोवंगाणमेगदरगं तु ।
छण्हं संहडणाणं एगदरो उदयगो होदि ॥५९०॥

त्रसमिश्रे तानि पुनरंगोपांगानामेकतरं तु । षण्णां संहननानामेकतर उदयगो भवति ॥

त्रसमिश्रवोळु पूर्व्वोक्तप्रकृतिगळ्गं मत्ते अंगोपांगंगळ्गेकतरमुं षट्संहननंगळोळेकतरमुमु ५ दयागतमक्कुं ॥

परघादमंगपुण्णे आदावदुगं विहायमविरुद्धे ।
सासवची तप्पुण्णे कमेण तित्थं च केवलिणि ॥५९१॥

परघातोगपूर्ण्णे आतपद्वयं विहायोगतिरविरुद्धे । उच्छ्वासवाचौ तत्पूर्ण्णे क्रमेण तीर्त्थं च केवलिनि ॥

१० परघातनामं त्रसस्थावरंगळ शरीरपर्य्याप्तियोळुदयक्के बक्कुं । आतपोद्योतंगळुं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगतिगळुं यथायोग्यं स्थावरत्रसंगळ पर्य्याप्तियोळविरुद्धमागुदयिसुगुं । उच्छ्वासमुं स्वरद्वयमुं स्वस्वपर्य्याप्तियोळुदयमनेय्दुगुं । तीर्त्थंकरनामकर्म्ममुं केवलज्ञानियोळुदइसुगु मी प्रकृतिगळुदयक्रममुं कालक्रममुमी रचनाविशेषदोळरियल्पडुगु मप्पुदरिंदमदक्के संदृष्टि :—

विग्रह											शरीरमिश्र				
ते । व । थि । सु । अ । णि							ग । जा । त । बा । प । सु । आ । ज । आ				श । सं । प्र । उ				→
२ । ४ । २ । २ । १ । १							४ । ५ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । ४				३ । ६ । २ । १				
१२							१ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १ । १				१ । १ । १ । १				

त्रसमिश्र			शरीरपर्य्याप्ति			उच्छ्वा. पर्य्या.	भा. प.	केवळियोळु
←	अ । सं । ह ।		प । आ । वि ।			उच्छ्वास	स्वर	तीर्त्थ ॥
	३ । ६ ।		१ । २ । २ ।			१	२	१
	१ । १ ।		१ । १ । १ ।				१	

अनंतरमेकजीवनोळेकसमयदोळु नामकर्म्मप्रकृत्युदयस्थानंगळं नानापेक्षेयिंदं पेळ्दपरु :—

१५ तानि पूर्वोक्तानि चत्वारि, पुनः अंगोपांगेष्वेकतरं षट्संहननेष्वेकतरं चेति षट्कं त्रसमिश्रे उदयगतं स्यात् । परघातः त्रसस्थावराणां शरीरपर्याप्तावुदेति । आतपोद्योतौ प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगती चाविरुद्धं योग्यत्रसस्थावराणां पर्याप्तौ, उच्छ्वासः स्वरद्वयं च स्वस्वपर्याप्तौ, तीर्थं केवलिनि ॥५९०-५९१॥ अथैकैकस्मिन् जीवे एकैकसमये सम्भवन्ति नामोदयस्थानानि नानाजीवं प्रत्युक्तानि तान्येवाह—

पूर्वोक्त चार, तीन अंगोपांगमें-से एक, छह संहननमें-से एक, ये छह मिश्रशरीर २० त्रसमें उदय योग्य हैं । परघात त्रस और स्थावरोंमें शरीर पर्याप्तिकालमें उदय योग्य है । आतप-उद्योत और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति अविरुद्ध योग्य त्रस-स्थावरोंके पर्याप्त कालमें ही उदययोग्य हैं । उच्छ्वास और स्वरद्विक अपने-अपने पर्याप्तिकालमें ही उदययोग्य हैं । तीर्थंकरका उदय केवलीमें ही होता है ॥५९०-५९१॥

आगे एक-एक जीवमें एक-एक समयमें सम्भव नामकर्मके उदयस्थान नाना जीवोंके २५ प्रति कहे, उन्हींको कहते हैं—

वीसं इगि चउवीसं तत्तो इगितीसओत्ति एयधियं ।
उदयट्ठाणा एवं णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥५९२ ॥

विंशतिरेक चतुर्विंशतिस्तत एकत्रिंशत्पर्य्यंतमेकाधिकान्युदयस्थानान्येवं नवाष्ट च भवंति नाम्नः ॥

विंशतियुमेकविंशतियुं चतुर्व्विंशतियुमल्लिवत्तमेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानपर्य्यंतमेकाधिकक्रमदिंदं नामकर्म्मोदयस्थानंगळप्पुवु । मत्तमंते नवाष्टप्रकृतिस्थानद्वय मुमक्कुं । २० । २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ॥

ई पन्नेरडुं नामकर्म्मोदयस्थानंगळगे यथाक्रमदिंदं स्वामिगळं पेळदपरु :—

चदुगदिया एइंदी विसेसमणुदेवणिरय एइंदी ।
इगिबितिचपसामण्णा विसेससुरणारगेइंदी ॥५९३॥

चातुर्गतिकाः एकेंद्रियाः विशेषमनुष्यदेवनारकैकेंद्रियाः । एकद्वित्रिचपसामान्या विशेषसुरनारकैकेंद्रियाः ॥

सामण्णसयलवियलबिसेसमणुस्ससुरणारया दोण्हं ।
सयलवियलसामण्णा सजोगपंच्चक्खवियलया सामी ॥५९४॥

सामान्यसकलविकल विशेषमनुष्यसुरनारका द्वयोः । सकलविकलसामान्याः सयोगपंचाक्षविकलकाः स्वामिनः ॥

एकविंशतिप्रकृतिगे चतुर्गतिजरुं स्वामिगळप्परु । चतुर्व्विंशतिप्रकृत्युदयस्थानवकेकेंद्रियंगळे स्वामिगळप्परु । पंचविंशतिस्थानवक्के विशेषमनुष्यदेवनारकैकेंद्रियजीवंगळु स्वामिकळप्परु । षड्विंशतिस्थानक्के एकेंद्रिय द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय सामान्यरुं स्वामिगळप्परु । सप्तविंशतिस्थानक्के विशेषपुरुषरुं सुररुं नारकरुमेकेंद्रियंगळुं स्वामिगळप्परु । अष्टाविंशतिस्थानक्केयुं नवविंशति प्रकृत्युदय स्थानक्केयुं सामान्यपुरुषरुं सकलंगळुं विकलंगळुं विशेषपुरुषरुं

विंशतिकमेकविंशतिकं चतुर्विंशतिकं ततः पंचविंशतिकाद्येकैकाधिकमेकत्रिंशत्कान्तं पुनः नवकमष्टकं चेति द्वादश नामोदयस्थानानि भवन्ति ॥५९२॥

तेषां स्थानानां स्वामिनः एकविंशतिकस्य चतुर्गतिजाः । चतुर्विंशतिकस्यैकेन्द्रियाः । पंचविंशतिकस्य विशेषमनुष्यदेवनारकैकेन्द्रियाः । षड्विंशतिकस्यैकद्वित्रिचतुःपंचेन्द्रियसामान्यजीवाः । सप्तविंशतिकस्य विशेष-

---

बीसका, इक्कीसका, चौबीसका आगे एक-एक अधिक इकतीस पर्यन्त तथा नौका, आठका ये बारह नामकर्मके उदय स्थान हैं ॥५९२॥

उन स्थानोंके स्वामी इस प्रकार हैं—इक्कीसके स्थानके स्वामी चारों गतिके जीव हैं । चौबीसके स्वामी एकेन्द्रिय हैं । पच्चीसके स्वामी विशेष मनुष्य, देव, नारकी और एकेन्द्रिय हैं । छब्बीसके एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सामान्य जीव स्वामी हैं । सत्ताईसके विशेष मनुष्य, देव, नारकी और एकेन्द्रिय स्वामी हैं । अट्ठाईस-उनतीसके सामान्य पुरुष, सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, विशेष पुरुष, देव, नारकी स्वामी हैं ।

सुरकुं नारकरुं स्वामिगळप्परु । त्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानदक्के सकलंगळुं विकलंगळं सामान्यपुरुषरुगळुं स्वामिगळप्परु । एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानदक्के सयोगिकेवलिगळुं पंचेंद्रियंगळुं द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियजीवंगळु स्वामिगळप्परु । नवाष्टस्थानंगळ्गे अयोगिकेवलिगळु स्वामिगळप्परु ॥ संदृष्टि :—

८	अ	ति	के	अयोगि			
९		ति	के	अ	यो		
३	१	के	पं	बि	ति	च	
३	१	स	बि	ति	च	सा	
२	९	सा	स	वि	वि	सु	ना
२	८	सा	स	वि	वि	सु	ना
२	७	वि	सु	ना	ए		०
२	६	ए	बि	ति	च	पं	सा
२	५	विम	दे	ना	ए		
२	४	ए					
२	१	ना	ति	म	दे		
२	०	के					

इल्लि नामध्रुवोदय द्वादशप्रकृतिगळुं १२। गतिचतुष्टयदोळोंदु १ । जातिपंचकदोळोंदु १ । त्रसद्वयदोळोंदु १ । बादरद्वयदोळोंदु १ । पर्य्याप्तद्वयदोळोंदु १ । सुभगद्वयदोळोंदु १ । आदेयद्वयदोळोंदु १ । यशस्कीर्तिद्वयदोळोंदु १ । आनुपूर्व्यचतुष्टयदोळु स्वस्वगतिसंबंधियोंदोंदुदयिसुत्तं

पुरुषाः सुरनारकैकेन्द्रियाश्च । अष्टाविंशतिकनवविंशतिकयोः सामान्यपुरुषाः सकला विकला विशेषपुरुषाः सुरा नारकाश्च । त्रिंशत्कस्य सकला विकला सामान्यपुरुषाश्च । एकत्रिंशत्कस्य सयोगकेवलिनः पंचद्वित्रिचतुरिन्द्रियाश्च, नवकाष्टकयोरयोगकेवलिनः ।

अत्र नामध्रुवोदया द्वादश, चतुर्गतिपंचजातिद्वित्रसबादरपर्याप्तसुभगादेययशस्कीर्तिचतुरानुपूर्व्योदयेष्वेकैकः मिलित्वैकविंशतिकं । तत्तु । कार्मणशरीरचतुर्गतिजविग्रहगत्योरेवोदेति नान्यत्र आनुपूर्व्ययुतत्वात् । तत्र

तीसके सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सामान्य पुरुष स्वामी हैं। इकतीसके सयोग केवली, पंचेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय स्वामी हैं। नौके और आठके स्वामी अयोगकेवली हैं। जिस स्थानका जो स्वामी है उसके उस स्थान सम्बन्धी प्रकृतियोंका उदय होता है।

आगे उन स्थानोंका कथन करते हैं—

नामकर्मकी ध्रुवोदयी १२, चार गतियोंमें-से एक, पाँच जातियोंमें-से एक, त्रस बादर पर्याप्त सुभग आदेय यशःकीर्ति और इनके प्रतिपक्षी छह युगल, उनमें-से एक-एक तथा चार

विरलिंतु विग्रहगतियकार्म्मणशरीरदोळे एकजीवनोळेकसमयदोळु युगपदेकविंशतिप्रकृतिगळुदयिसुत्तं विरलु नारकतिर्य्यंग्मनुष्यदेवगतिजरुगळ्गे प्रत्येकमेकविंशतिप्रकृत्युदयस्थानमक्कुमदुवुं विग्रहगतियोळल्लदेल्लियुं संभविसदेकें दोडानुपूर्व्यनामकर्म्मोदययुतमप्पुदरिंदं। २१। न। ति। म। दे॥ मत्तमानुपूर्व्योदयरहितमाद विंशतिप्रकृतिगळुमौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरंगळोळन्यतरमुं संस्थानषट्कदोळन्यतममुं प्रत्येकसाधारणशरीरद्वयद्वयदोळन्यतरमुं उपघातमुमितु चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळेकेंद्रियजीवन शरीरमिश्रकाल दोळल्लदेल्लियुमुदयमिल्लेकें दोडे एकेंद्रियंगळ्गेल्लंगोपांगसंहननोदयंगळिल्लप्पुदरिंदं। मत्तमेकेंद्रियजीवन शरीरपर्य्याप्तियोळु परघातमं कूडिदोडे पंचविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २५ ए। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु आहारकशरीरं विवक्षितमादोडे-आहारकांगोपांगमं कूडिदोडाहारकशरीरमिश्रदोळं पंचविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २५। विशेषमनुष्यमत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु वैक्रियिकशरीरं विवक्षितमादोडे वैक्रियिकांगोपांगमं कूडुत्तं विरलु देवनारकरुगळ्गे शरीरमिश्रकालदोळु पंचविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २५। दे। ना। शरी० मिश्र। मत्तमेकेंद्रियंगळ शरीरपर्य्याप्तिय पंचविंशतिप्रकृत्युदयस्थानदोळु आतपनाममं मेणुद्योतनाममं कूडुत्तं विरलेकेंद्रियंगळ शरीरपर्य्याप्तियोळ् षड्विंशति प्रकृतिस्थानोदयमुमक्कुं। २६। ए। प। आ। उ। अथवा आतपोद्योतंगळं बिट्टुच्छ्वासमं कूडुत्तं विरलेकेंद्रियंगळ्गुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळं षड्विंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २६। ए। प। उ। मत्तमा चतुर्व्विंशति-

वानुपूर्व्यमपनीयौदारिकादित्रिशरीरेषु षट्संस्थानेषु प्रत्येकसाधारणयोश्चैकैकस्मिन्नुपघाते च निक्षिप्ते चतुर्विंशतिकं, तत्तु एकेन्द्रियाणां शरीरमिश्रयोगे एवोदेति नान्यत्र, तेषामंगोपांगसंहननोदयाभावात्। पुनः एकेन्द्रियस्य शरीरपर्याप्तौ तत्र परघाते युते इदं २५ वा विशेषमनुष्यस्याहारकशरीरमिश्रकाले तदंगोपांगे युते इदं २५। वा देवनारकयोः शरीरमिश्रकाले वैक्रियिकांगोपांगे युते इदं २५।

पुनः एकेन्द्रियस्य पंचविंशतिके तच्छरीरपर्याप्तौ आतपे उद्योते वा युते इदं २६। वा तस्यैवोच्छ्वा-

---

आनुपूर्वियोंमें-से एक इस तरह इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होता है। इसका उदय कार्मणशरीर सहित चारों गति सम्बन्धी विग्रह गतिमें होता है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि यह स्थान आनुपूर्वी सहित है। इसमें-से आनुपूर्वीको घटाकर औदारिक आदि तीन शरीरोंमें-से एक, छह संस्थानोंमें-से एक, प्रत्येक साधारणमें-से एक और उपघात इन चारोंको मिलानेपर चौबीस प्रकृतिरूप स्थान होता है। इस स्थानका उदय एकेन्द्रियोंके अपर्याप्त दशामें शरीर मिश्र योगमें ही होता है, अन्यत्र नहीं; क्योंकि एकेन्द्रियोंमें अंगोपांग और संहननका उदय नहीं होता। इसमें परघात मिलानेपर एकेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें उदययोग्य पच्चीसका स्थान होता है। अथवा इसमें आहारक अंगोपांग मिलानेपर विशेष मनुष्यके आहारक शरीरके मिश्रकालमें उदययोग्य पच्चीसका स्थान होता है। अथवा वैक्रियिक अंगोपांग मिलानेपर देव नारकीके शरीर मिश्रकालमें उदययोग्य पच्चीसका स्थान होता है। इस तरह पच्चीसके तीन स्थान होते हैं।

एकेन्द्रियके उदययोग्य पच्चीसके स्थानमें आतप या उद्योत मिलानेपर एकेन्द्रियके शरीरपर्याप्तिकालमें उदययोग्य छब्बीसका स्थान होता है। अथवा एकेन्द्रियके पच्चीसके

प्रकृतिगळोळु त्रसौदारिकशरीरविवक्षेयादोडौदारिकांगोपांगं संहननं सहितमादोडे द्वींद्रियत्रींद्रिय-चतुरिंद्रिय पंचेंद्रियंगळगे शरीरमिश्रकालदोळु षड्विंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २६। बि। ति। च। प। मिश्र। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु मनुष्यगति विवक्षितमादोडेयुमंगोपांगसंहनन-युतमागि सामान्यमनुष्यसंसारिजीवनशरीरमिश्रदोळं निरतिशयकेवलिकवाटसमुद्घातद्वयदौदारिक-शरीरमिश्रदोळं षड्विंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २६। सा। म। सा के। औ। मिश्रं। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु आहारकशरीरं विवक्षितमादोडे अंगोपांगपरघातप्रशस्तविहायोगतिगळं कूडिदोडे आहारकशरीरपर्य्याप्तप्रमत्तनोळु सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २७। प्र। आ. श प। मत्तमा सामान्यकेवलिय औदारिकमिश्र षड्विंशतिप्रकृतिगळोळु तीर्त्थयुतमादुदादोडमा कवाटद्वय-समुद्घातविशेषमनुष्यौदारिकमिश्रदोळं सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २७। ती के। श. मि। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु नरकसुरगतिगळु विवक्षितमादोडे वैक्रियिकांगोपांगपरघाता-विरुद्धविहायोगतियुतमादोडे देवनारकशरीरपर्य्याप्तियोळु सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं २७। दे। ना। श. परि। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु एकेंद्रियजातिनाममुं विवक्षितमादोडे परघातमुमातपमुं मेणुद्योतमुमुच्छ्वासमुं युतमागि एकेंद्रियोच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळु सप्तविंशति-प्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २७। ए उ. प। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु मनुष्यगतिविवक्षितमा-दोडे अंगोपांगसंहननपरघातविरुद्धविहायोगतियुतमागि सामान्यमनुष्यशरीरपर्य्याप्तियोळु अष्टा-विंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २८। सा। म। श। परि। मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्य-

सनिःश्वासपर्याप्तौ उच्छ्वासे युते इदं २६। वा चतुर्विंशतिके द्वित्रिचतुष्पंचेन्द्रियाणां सामान्यमनुष्यस्य निरतिशयकेवलिकवाटद्वयस्य च औदारिकमिश्रकाले तदंगोपांगसंहनने युते इदं २६।

तत्रैवाहारकांगोपांगपरघातप्रशस्तविहायोगत्याहारकशरीरपर्याप्तिप्रमत्ते इदं २७। सामान्यकेवल्यौ-दारिकमिश्रषड्विंशतिके तीर्थे युते कवाटद्वयसमुद्घातविशेषमनुष्यौदारिकमिश्रे इदं २७। पुनः चतुर्विंशतिके प्रमत्तस्य शरीरपर्याप्तौ वैक्रियिकांगोपांगपरघातविरुद्धविहायोगतिषु युतास्विदं। २७। वा तत्रैवैकेन्द्रिय-

स्थानमें श्वासोच्छ्वास मिलानेपर एकेन्द्रियके उच्छ्वास निःश्वास पर्याप्तिमें उदय योग्य छब्बीसका स्थान होता है। अथवा चौबीसके स्थानमें औदारिक अंगोपांग और एक संहनन मिलानेपर दो-इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, सामान्य मनुष्य, निरतिशय केवलीका कपाटयुगल, इनके औदारिक मिश्रकालमें उदय योग्य छब्बीसका स्थान होता है। इस प्रकार छब्बीसके तीन स्थान हुए।

चौबीसके स्थानमें आहारक अंगोपांग, परघात, प्रशस्त विहायोगति ये तीन मिलानेपर प्रमत्त गुणस्थानीके आहारक शरीर पर्याप्तिकालमें उदययोग्य सत्ताईसका स्थान होता है। अथवा पूर्वोक्त समुद्घातगत केवलीके छब्बीसके स्थानमें तीर्थंकर प्रकृति मिलनेपर तीर्थंकर समुद्घात केवलीके उदय योग्य सत्ताईसका स्थान होता है। अथवा पूर्वोक्त चौबीसके स्थानमें वैक्रियिक अंगोपांग, परघात तथा नारकीके अप्रशस्त विहायोगति और देवके प्रशस्त विहायोगति ये तीन मिलनेपर देव नारकीके शरीर पर्याप्तिकालमें उदय योग्य सत्ताईसका स्थान होता है। अथवा पूर्वोक्त चौबीसके स्थानमें परघात, और आतप उद्योतमें-से एक

केवलिय शरीरपर्य्याप्तियोळमा अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २८। सा। के। श। परि। मत्तमा चतुर्व्विंशति प्रकृतिगळोळु तिर्य्यग्गतित्रसंगळु विवक्षितमागुत्तं विरलु अंगोपांगसंहननपरघातविहायोगतिगळं कूडुत्तं विरलु द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय पंचेंद्रियजीवंगळ शरीरपर्य्याप्तियोळष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २८॥ द्वि। त्रि। च। पं। श. उ. परि॥ मत्तमा चतुर्विंशतिप्रकृतिगळोळु आहारकांगोपांगपरघातप्रशस्तविहायोगतियुच्छ्वासगळं कूडुत्तं विरलु आहारक ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तनोळु आहारकशरीरोच्छ्वासपर्य्याप्तियोळष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं २८। प्र. आ. श. उ परि। मत्तमा चतुर्व्विंशतिप्रकृतिगळोळु नरकदेवगतिगळु विवक्षितंगळादोडे वैक्रियिकांगोपांगपरघातावरुद्धविहायोगतियुच्छ्वासमुमं कूडुत्तं विरलु देवनारकोच्छ्वासपर्य्याप्तियोळु अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २८। दे। ना। उ. परि॥ मत्तमा सामान्यमनुष्यन शरीरपर्य्याप्तिय अष्टाविंशतिप्रकृतिगळोळुच्छ्वासमं कूडुत्तं विरलुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळु सामान्य-

---

स्योच्छ्वासपर्याप्तौ परघाते आतपोद्योतैकतरस्मिन्नुच्छ्वासे च युते इदं २७।

पुनः तत्रैव सामान्यमनुष्यस्य मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्यकेवलिनः द्वित्रिचतुष्पंचेन्द्रियाणां च शरीरपर्याप्तौ अंगोपांगसंहननपरघातावरुद्धविहायोगतिषु युतास्विदं ॥२८॥ वा प्राप्ताहारकर्धेस्तच्छरीरोच्छ्वासपर्याप्त्योस्तदंगोपांगपरघातप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेष्विदं ॥२८॥ वा देवनारकयोरुच्छ्वासपर्याप्तौ वैक्रियिकांगोपांगपरघातावरुद्धविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेष्विदं ॥२८॥ पुनः तत्सामान्यमनुष्याष्टाविंशतिके तस्य च मूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातसामान्यकेवलिनश्चोच्छ्वासपर्याप्तौ उच्छ्वासे युते इदं ॥२९॥ वा तच्चतुर्विंशतिके द्वित्रिचतुष्पंचेन्द्रियाणां शरीरपर्याप्तावुद्योतेन समं, उच्छ्वासपर्याप्तौ च उच्छ्वासेन समं अंगोपांगसंहननपरघातविहायोगतिषु युतास्विदं ॥२९॥ वा समुद्घातकेवलिनः शरीरपर्याप्तावंगोपांगसंहनन-

---

तथा उच्छ्वास ये तीन मिलनेपर एकेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदययोग्य सत्ताईसका स्थान होता है। ऐसे सत्ताईसके चार स्थान होते हैं।

चौबीसके स्थानमें औदारिक अंगोपांग, एक संहनन, परघात, यथायोग्य विहायोगति ये चार मिलनेपर सामान्य मनुष्य या मूल शरीरमें प्रवेश करता समुद्घातगत सामान्य केवली या दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके शरीर पर्याप्तिमें उदययोग्य अठाईसका स्थान होता है। अथवा चौबीसमें आहारक अंगोपांग, परघात, प्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास ये चार मिलनेपर आहारक ऋद्धिसे सम्पन्न प्रमत्तके आहारक शरीरकी उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदययोग्य अठाईसका स्थान होता है। अथवा चौबीसमें वैक्रियिक अंगोपांग, परघात, यथायोग्य विहायोगति, उच्छ्वास ये चार मिलानेपर देव नारकीके उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदययोग्य अठाईसका स्थान होता है। ऐसे तीन अठाईसके स्थान हुए।

सामान्य मनुष्य या समुद्घात केवलीके अठाईसके स्थानमें उच्छ्वास प्रकृति मिलनेपर सामान्य मनुष्य या मूल शरीरमें प्रवेश करते समुद्घात केवलीके उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदययोग्य उनतीसका स्थान होता है। अथवा चौबीसमें औदारिक अंगोपांग, एक संहनन, परघात, एक विहायोगति, उद्योत मिलानेपर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके शरीर पर्याप्तिमें उदययोग्य उनतीसका स्थान होता है। अथवा चौबीसमें एक अंगोपांग, एक संहनन, परघात, एक विहायोगति और उच्छ्वास मिलनेपर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदययोग्य उनतीसका स्थान होता है। अथवा

मनुष्यंगे नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २९। सा म। उ. परि। समुद्घातसामान्यकेवलिय मूलशरीरप्रविष्टोच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळं नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २९। सा के। उ. परि। मत्तमा तिर्य्यंग्गतित्रसंगळु विवक्षितसल्पडुत्तिरला चतुर्विंशतिप्रकृतिगळोळु अंगोपांग-संहननपरघातोद्योतविहायोगतिगळं कूडुत्तं विरलु द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय पंचेंद्रियंगळ शरीर-पर्य्याप्तियोळु नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २९। बि। ति। च। प। श. परि। उ। मत्त-मल्लियुद्योतरहितोच्छ्वासयुतमागियुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळु नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदय-मक्कुं। २९। बि। ति। च। प। उ. परि। मत्तमा चतुर्विंशतिप्रकृतिगळोळु मनुष्यगति विवक्षित-मागुत्तं विरलु अंगोपांगसंहननपरघातप्रशस्तविहायोगतितीर्त्थयुतमागि समुद्घातकेवलियोळु शरीरपर्य्याप्तियोळु नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २९। ती के। श. परि। मत्तमा चतु-र्विंशतिप्रकृतिगळोळाहारकशरीरं विवक्षितमागुत्तं विरलु आहारकांगोपांगपरघातप्रशस्त-विहायोगति उच्छ्वास सुस्वरयुतमागि विशेषमनुष्यप्रमत्तनोळाहारकशरीरभाषापर्य्याप्तियोळु नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। २९। प्र। आ. भा. परि। मत्तं सुरनारकरुगळ भाषापर्य्याप्ति-योळु अविरुद्ध स्वरमों दं कूडिदोडे देवनारकरुगळ भाषापर्य्याप्तियोळु नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदय-मक्कुं। २९। दे। ना। भा. परि। मत्तमा चतुर्विंशतिप्रकृतिगळोळु अंगोपांगसंहननपरघातोद्योत-विहायोगति उच्छ्वासमं कूडिदोडे द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिय पंचेंद्रियंगळ उच्छ्वासपर्य्याप्तियोळु

परघातप्रशस्तविहायोगतितीर्थेषु युतेष्विदं ॥२९॥ वा प्रमत्तस्याहारकशरीरभाषापर्याप्त्यास्तदंगोपांगपर-घातप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वाससुस्वरेषु युतेष्विदं ॥२९॥ वा देवनारकयोर्भाषापर्याप्तौ अविरुद्धैकस्वरे युते इदम् ॥२९॥

पुनः तत्रैव द्वित्रिचतुष्पंचेन्द्रियाणामुच्छ्वासपर्याप्तावुद्योतेन समं, सामान्यमनुष्यसकलविकलानां भाषापर्याप्तौ स्वरद्वयान्यतरेण समं चांगोपांगसंहननपरघातविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेष्विदं ॥३०॥ वा समुद्घाततीर्थंकरकेवलिनः उच्छ्वासपर्याप्तौ तीर्थेन समं, सामान्यसमुद्घातकेवलिनो भाषापर्याप्तौ स्वरद्वया-

---

चौबीसमें औदारिक अंगोपांग, संहनन, परघात, प्रशस्त विहायोगति, तीर्थंकर मिलनेपर समुद्घात तीर्थंकर केवलीके शरीर पर्याप्तिमें उदययोग्य उनतीसका स्थान होता है। अथवा चौबीसमें आहारक अंगोपांग, परघात, प्रशस्त विहायोगति, उच्छ्वास, सुस्वर मिलनेपर प्रमत्तके आहार शरीरकी भाषापर्याप्तिमें उदययोग्य उनतीसका स्थान होता है। अथवा देव नारकीके अठाईसके स्थानमें देवके सुस्वर, नारकीके दुःस्वर मिलानेपर देव नारकीके भाषा पर्याप्तिमें उदय योग्य उनतीसका स्थान होता है। इस तरह उनतीसके छह स्थान होते हैं।

चौबीसके स्थानमें अंगोपांग, संहनन, परघात, विहायोगति, उच्छ्वास मिलनेपर उनतीस हुए। इनमें उद्योत मिलनेपर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदययोग्य तीसका स्थान होता है। अथवा दो स्वरोंमें-से एक मिलनेपर सामान्य मनुष्य अथवा पंचेन्द्रिय अथवा विकलत्रयमें भाषा पर्याप्तिमें उदययोग्य तीसका स्थान होता है। अथवा चौबीसमें औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभ नाराच संहनन, परघात, प्रशस्त विहायोगति और उच्छ्वास मिलनेपर उनतीस होते हैं, उसमें तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर

त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। ३०। बि। ति। च। प। उ। परि। उद्यो। मत्तमा चतुर्विंशति प्रकृतिगळोळु सामान्यमनुष्यगतिविवक्षितमागुत्तं विरलु अंगोपांगसंहननपरघातविहायोगत्युच्छ्वास-स्वरद्वितयदोळन्यतरमं कूडुत्तं विरलु सामान्यमनुष्यरुगळ भाषापर्य्याप्तियोळ त्रिंशत्प्रकृतिस्थानो-दयमक्कुं। ३०। साम। भा. परि।

मत्तमुद्योतरहित सकलविकलंगळोळु स्वरद्वयदोळोंदं कूडिदोडे सकलविकलंगळ भाषा- ५
पर्य्याप्तियोळु त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। ३०। बि। ति। च। पं। भा.परि। मत्तं चतुर्विंशति-प्रकृतिगळोळु अंगोपांगसंहननपरघातप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासतीर्थमुमं कूडुत्तं विरलु तीर्थ-समुद्घातकेवलियुच्छ्वासपर्य्याप्तियोळ त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमक्कुं। ३०। ती के। उ. परि। मत्तं सामान्यसमुद्घातकेवलिय भाषापर्य्याप्तियोळु स्वरद्वयदोळन्यतरमं कूडुत्तं विरलु भाषापर्य्याप्ति-केवलियोळु त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। ३०। सा के भा. परि। सयोगकेवलिय भाषापर्य्याप्त- १०
स्थानदोळु तीर्थमं कूडुत्तं विरलु भाषापर्य्याप्तियुततीर्थंकेवलियोळु एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदय-मक्कुं। ३१। ती के। भा. परि। मत्तं चतुर्विंशतिप्रकृतिगळोळु अंगोपांगसंहननपरघातोद्योत-विहायोगतियुच्छ्वासस्वरद्वितयदोळन्यतरमं कूडुत्तं विरलु द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रिय जीवंगळ भाषापर्य्याप्तियोळेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमक्कुं। ३१। बि। ति। च। प। भा. परि। उद्यो।

एगे इगिवीस पणं इगिछव्वीसट्ठवीस तिण्णि णरे। १५
सयले वियलेवि तहा इगितीसं चावि वचिठाणे ॥५९५॥
सुरणिरयविसेसणरे इगि पण सगवीस तिण्णि समुघादे।
मणुसं वा इगिवीसे वीसं रूवाहियं तित्थं ॥५९६॥
वीस दु चउवीसचऊ पण छव्वीसादि पंचयं दोसु।
उगुतीस तिपण काले गयजोगे होंति णव अठ्ठ ॥५९७॥ २०

एकेंद्रियंगळोळप्पुवु कालदोळु क्रमदिंदमेकविंशत्यादिपंचस्थानंगळप्पुवु। २१। २४। २५। २६। २७॥

न्यतरेण समं चांगोपांगसंहननपरघातप्रशस्तविहायोगत्युच्छ्वासेषु युतेष्विदं ॥३०॥

पुनः तत्सयोगकेवलिस्थाने भाषापर्याप्तौ तीर्थे युते इदं ॥३१॥ वा चतुर्विंशतिके द्वित्रिचतुष्पंचेन्द्रियाणां भाषापर्याप्तावंगोपांगसंहननपरघातोद्योतविहायोगत्युच्छ्वासस्वरद्वयान्यतरेषु युतेष्विदं ॥३१॥५९३-५९४॥ २५

समुद्घात तीर्थंकर केवलीके उच्छ्वास पर्याप्तिमें उदयोग्य तीसका स्थान होता है। अथवा दो स्वरोंमें-से एक मिलनेपर सामान्य समुद्घात केवलीके भाषा पर्याप्तिमें उदययोग्य तीसका स्थान होता है। ऐसे तीसके चार स्थान हुए।

सामान्य सयोग केवलीके भाषा पर्याप्ति सम्बन्धी तीसके स्थानमें तीर्थंकर प्रकृति मिलानेपर तीर्थंकर केवलीके भाषा पर्याप्तिमें उदययोग्य इकतीसका स्थान होता है। अथवा ३०
पूर्वोक्त चौबीसमें अंगोपांग, संहनन, परघात, उद्योत, विहायोगति, उच्छ्वास, सुस्वर-

मनुष्यरोळु एकविंशति षड्विंशत्यष्टाविंशत्यादि त्रितयमुमप्पुवु । २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ सकलेंद्रिय विकलेंद्रियंगळोमा प्रकारविंदमेकविंशति षड्विंशत्यष्टाविंशत्यादित्रितयः—

वाचि	०	२९	२९	३१ ३०	३०	३०	३१	२९
आणा	२७ २६	२८	२८	३० २९	२९	२९	३०	२८
शरी	२६ २५	२७	२७	२९ २८	२८	२८	२९	२७
स मी	२४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
वि का	२१	२१	२१	२१	२१	२७	२१	०
	एकेंद्रि	देव	नरक	तिर्य्य	मनु	सा केव	तीर्थ के	विशेष मनु

मुमेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं भाषापर्य्याप्तियोळप्पुदु । २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ सुरनारकविशेषमनुष्यरोळु एकविंशति पंचविंशति सप्तविंशत्यादित्रयमक्कुं । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ समुद्घातकेवलियोळु तीर्थरहितरोळु मनुष्यनोळें तंतक्कुमल्लि विशेषमुंटदावुदं दोडे इगिवीसे वीसं एकविंशतियोळु विंशतियक्कुं । २० । २६ । २८ । २९ । ३० । तीर्थसमुद्घातकेवलियोळु रूपाधिकस्थानंगळप्पुवु । २१ । २७ । २९ । ३० । ३१ । इंतागुत्तं विरलु केवलि काम्मंणंगळोळं विग्रहकाम्मंणशरीरदोळं । २० । २१ । २ । विंशत्येकविंशतिगळुमेकविंशतिगळु मप्पुवु । शरीरमिश्रकालदोळु चउवीसचऊ चतुर्विंशति पंचविंशति षड्विंशतिगळप्पुवु । २४ । २५ । २६ । २७ । शरीरपर्य्याप्तिकालदोळं आनापानपर्य्याप्तियोळं यथासंख्येयिंदं पंचविंशत्यादि पंचस्थानंगळुं

पंचकालेषु क्रमेणैकेन्द्रियेष्वेकविंशतिकादीनि पंच । मनुष्येष्वेकविंशतिकं षड्विंशतिकमष्टाविंशतिकादित्रयं च । सकलेन्द्रिये विकलेन्द्रियेऽपि तथैवैकविंशतिकषड्विंशतिकाष्टाविंशतिकत्रयं । एकत्रिंशत्कं तु भाषापर्याप्तौ । सुरनारकविशेषमनुष्येष्वेकविंशतिकं पंचविंशतिकं सप्तविंशतिकादित्रयं च । समुद्घातकेवलिनि तीर्थोने मनुष्यवदप्येकोनविंशतिकस्थाने विंशतिकं स्यात् । तीर्थसमुद्घातकेवलिनि तान्येव रूपाधिकानि । एवं सति केवलिकार्मणे विंशतिकैकविंशतिके द्वे । विग्रहकाले एकविंशतिकं शरीरमिश्रकाले चतुर्विंशतिकादि-

दुःस्वरमें-से एक ये सात मिलनेपर दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके भाषा पर्याप्तिमें उदययोग्य इकतीसका स्थान होता है । ऐसे इकतीसके दो स्थान होते हैं ॥ ५९३-५९४॥

पूर्वोक्त पाँच कालोंमें क्रमसे एकेन्द्रियोंमें उदययोग्य इक्कीस आदि पांच स्थान हैं । मनुष्योंमें इक्कीसका, छब्बीसका और अठाईस आदि तीन उदययोग्य हैं । सकलेन्द्रिय विकलेन्द्रिय तिर्यंचोंमें भी उसी प्रकार इक्कीस, छब्बीस, अठाईस आदि तीन उदययोग्य हैं । किन्तु इकतीसका स्थान भाषा पर्याप्तिमें उदययोग्य है । देव, नारकी और आहारक या केवल सहित विशेष मनुष्योंमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस आदि तीन उदययोग्य हैं । तीर्थरहित समुद्घात केवलीमें मनुष्यकी तरह इक्कीसके स्थानमें आनुपूर्वी बिना बीसका ही उदय स्थान होता है, तीर्थंकर समुद्घात केवलीके तीर्थंकर सहित इक्कीसका उदयस्थान है । इस तरह केवलीके कार्माणमें बीस-इक्कीस दो उदयस्थान हैं । और विग्रहगति सम्बन्धी

षड्विंशत्यादि पंचस्थानंगळुमप्पुवु । शरीर प० २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । आनापान प २६। २७ । २८।२९ ।३० ॥ भाषापर्य्याप्तिकालदोळु उगुतोसति नव विंशत्यादित्रिस्थानंगळप्पुवु । २९ । ३० । ३१ ॥ यितु पंचकालंगळरियल्पडुगुं ॥ गयजोगे अयोगिकेवलियोळ् तीर्त्थयुतमागि नवप्रकृतिस्थानमुं तीर्त्थरहितमागि अष्टप्रकृतिस्थानमुमक्कुं । तो । अयोगि । के ९ । अति । अयोगि । के । ८ ॥

चतुष्कं । शरीरपर्याप्तिकाले पंचविंशतिकादि पंचकं । आनापानपर्याप्तौ षड्विंशतिकादिपंचकं, भाषापर्याप्ति- ५
काले नवविंशतिकादित्रयं, अयोगे सतीर्थे नवकमतीर्थेऽष्टकं ॥५९५-५९७॥

वचि	०	२९	२९	३० ३१	३०	३०	३१	२९
आणु	२७ २६	२८	२८	३० २९	२९	२९	३०	२८
शरी	२६ २५	२७	२७	२९ २८	२८	२८	२९	२७
शमि	२४	२५	२५	२६	२६	२६	२७	२५
विका	२१	२१	२१	२१	२१	२०	२१	०
	एकेन्द्रिय	देव	नारक	तिर्यग्	मनुष्य	साके	तीर्थकेव	विशेष मनुष्य

अस्यायोगस्थानद्वयस्योपपत्तिमाह—

कार्माणमें इक्कीसका ही उदयस्थान है । शरीर मिश्रकालमें चौबीस आदि चार हैं । शरीर पर्याप्तिकालमें पच्चीस आदि पाँच हैं । श्वासोच्छ्वासपर्याप्तिकालमें छब्बीस आदि पाँच हैं । भाषा पर्याप्तिकालमें उनतीस आदि तीन हैं । अयोगोमें तीर्थंकरके नौ और सामान्यके आठका उदय होता है ॥५९५-५९७॥ अयोगीगुणस्थानके दो स्थानोंकी उपपत्ति कहते हैं— १०

नामकर्मके उदयस्थानोंका मन्त्र

बीसका स्थान एक १ समुद्घात केवलीके कार्माणमें उदययोग्य ।२०।	चौबीसका स्थान एक ॥१॥ एकेन्द्रियके मिश्र शरीरमें उदययोग्य ॥२४॥
इक्कीसके स्थान २ दो चारों गतिके विग्रहगतिमें उदययोग्य ।२१। तीर्थंकर केवलीके कार्माणामें ,, ॥२१॥	पच्चीसके स्थान तीन ॥३॥ एकेन्द्रियके शरीर पर्याप्तिमें उदययोग्य ॥२५॥ १५ आहारकके मिश्रकालमें उदययोग्य ॥२५॥ देव नारकके शरीर मिश्रकालमें उदय ॥२५॥

अनंतरमयोगिकेवलिय नामस्थानद्वयकुपपत्तियं पेळ्दपरु :—

गयजोगस्स य बारे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु ।
णामस्स य णव उदया अट्ठेव य तित्थहीणेसु ॥५९८॥

गतयोगिनो द्वादशसु तृतीयायुर्गोत्रमिति विहीनेषु । नाम्नो नवोदया अष्टैव च तीर्थहीनेषु ॥

अयोगिकेवलि भट्टारकनुदयप्रकृतिगळु पन्नेरडरोळु वेदनीयायुर्गोत्रत्रयमं कळेदोडे नामकर्म्मप्रकृतिगळु नवप्रमितंगळप्पुवु । ९ । तीर्थरहितरोळे टे प्रकृतिगळप्पुवु । ८ ॥

अयोगकेवलिनः द्वादशोदयप्रकृतिषु वेदनीयायुर्गोत्रेष्वपनीतेषु नाम्नो नव भवन्ति । पुनः तीर्थेऽपनीतेऽष्टौ भवन्ति ॥५९८॥ अथ नामोदयस्थानेषु भंगानाह—

छब्बीसके स्थान तीन ॥३॥
एकेन्द्रियके शरीर पर्याप्ति कालमें ॥२६॥
एकेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्ति कालमें ॥२६॥
दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय,
सामान्य मनुष्य, निरतिशय केवलीके
औदारिक मिश्रकालमें उदययोग्य ॥२६॥

सत्ताईसके स्थान चार ॥४॥
आहारक शरीर पर्याप्तिमें उदययोग्य ॥२७॥
तीर्थंकर समु. केवलीके उदययोग्य ॥२७॥
देव नारकीके शरीर पर्याप्तिकालमें ॥२७॥
एकेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्तिमें ॥२७॥

अठाईसके स्थान तीन ॥३॥
सामान्य मनुष्य, सामान्य केवली,
दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके
शरीर पर्याप्तिमें उदययोग्य ॥२८॥
आहारकमें उच्छ्वास पर्याप्तिमें उ. ॥८२॥
देव नारकीके उच्छ्वास पर्याप्तिमें ॥२८॥

उनतीसके स्थान छह ॥६॥
समुद्घातकेवलीके उच्छ्वास पर्याप्तिमें॥२९॥

दोइन्द्रिय आदिके शरीर पर्याप्तिमें ॥२९॥
दोइन्द्रिय आदिके उच्छ्वास पर्याप्तिमें ॥२९॥
समुद्घात तीर्थंकरके शरीर पर्याप्तिमें ॥२९॥
आहारक शरीरके भाषा पर्याप्तिमें ॥२९॥
देव नारकीके भाषा पर्याप्तिमें ॥२९॥

तीसके स्थान चार ॥४॥
दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय,
पंचेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्तिमें ॥३०॥
सामान्य मनुष्य, पंचेन्द्रिय,
विकलत्रयके भाषा पर्याप्तिमें ॥३०॥
तीर्थं. समु. केवली उच्छ्वास पर्याप्तिमें ॥३०॥
सामान्य समु. केवलीके
भाषा पर्याप्तिमें उदय. ॥३०॥

एकतीसके स्थान दो ॥२॥
तीर्थंकर केवलीके भाषा पर्याप्तिमें ॥३१॥
दोइन्द्रिय, आदि पंचेन्द्रियके
भाषा पर्याप्तिमें ॥३१॥

नौका स्थान एक ॥१॥ अयोग केवलीके

आठका स्थान एक ॥१॥ अयोग केवलीके

अयोग केवलीके उदय प्रकृतियाँ बारह हैं । उनमें-से वेदनीय, आयु, गोत्र तीन प्रकृतियाँ घटानेपर नामकर्मका नौ प्रकृतिरूप उदय स्थान होता है । और तीर्थंकर बिना आठका उदयस्थान होता है ॥५९८॥

अनंतरं नामकर्म्मं प्रकृत्युदयस्थानंगळोळु भंगंगळं पेळ्वपरु :—

संठाणे संहडणे विहायजुम्मेव चरिमचदुजुम्मे ।
अविरुद्धेककदरादो उदयट्ठाणेसु भंगा हु ॥५९९॥

संस्थाने संहनने विहायोयुग्मे च चरम चतुर्य्युग्मे । अविरुद्धैकतरादुदयस्थानेषु भंगाः खलु ॥

संस्थानषट्कदोळं संहननषट्कदोळं विहायोगतिद्वयदोळं सुभगसुस्वरादेययशस्कीर्त्ति चरम-चतुर्य्युग्मदोळं अविरुद्धैकतरग्रहणदिंदमुदयस्थानदोळु भंगंगळप्पुवु । स्फुटमागि । अल्लि संस्थान-षट्कमुमं संहननषट्कमुमं गुणिसिदोडे मूवत्तारुपंचयुगळं गुणिसिदोडे मूवत्तेरडु । ३२ । ३६ । आ येरडुं गुण्य गुणकारंगळं गुणिसिदोडे सासिरव नूरय्वत्तेरडुं :—

	य । अ		११
	आ । अ		११
	सु । दु		११
	सु । दु		११
	प्र । अ		११
सं	११	११	११
सं	११	११	११
युति		११५२ ॥	

ई भंगंगळोळु नारकाद्येकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु संभविसुव उदयस्थानंगळ्गे भंगंगळं गाथात्रयदिंदं पेळ्वपरु :—

तत्थासत्था णारयसाहारणसुहुमगे अपुण्णे य ।
सेसेगविगलऽसण्णिजुदठाणे जसजुगे भंगा ॥६००॥

तत्राशस्ता नारकसाधारणसूक्ष्मेष्वपूर्णे च । शेषैकविकलासंज्ञियुतस्थाने यशोयुग्मे भंगाः ॥

संस्थानषट्के संहननषट्के विहायोगतिद्वये सुभगद्वये सुस्वरद्वये आदेयद्वये यशस्कीर्तिद्वये च अविरुद्धै-कैकतरग्रहणेन भंगा भवन्ति । ते खलु द्वापंचाशदधिकैकादशशतानि ।११५२। ॥५९९॥ तेषु नारकाद्येकचत्वा-रिंशज्जीवसम्भविनो गाथात्रयेणाह—

नामकर्मके उदय स्थानोंमें भंग कहते हैं—

छह संस्थान, छह संहनन, दो विहायोगति, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इनमें-से अविरुद्ध एक-एक ग्रहण करनेसे भंग होते हैं। सो ६×६×२×२×२×२×२ को परस्परमें गुणा करनेसे ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं ॥५९९॥

उनमें-से नारक आदि इकतालीस जीवपदोंमें सम्भव भंगोंको तीन गाथाओंसे कहते हैं—

आ स्थानोदय प्रकृतिगळोळु अप्रशस्तंगळु नारकरोळं साधारणवनस्पतिगळोळं सर्व्वसूक्ष्म-मं गळोळं सर्व्वलब्ध्यपर्य्याप्तरुगळोळमक्कुमप्पुदरिंदमवर पंचकालंगळ सर्व्वोदयस्थानंगळोळेल्लमे-कैकभंगमेयप्पुवु । शेषैकविकलासंज्ञिजीवंगळुदयस्थानंगळोळु यशस्कीर्त्तिद्वयोदयकृतद्विभंगं-गळप्पुवु ॥

सण्णिम्मि मणुस्सम्मि य ओघेक्कदरं तु केवले वज्जं ।
सुभगादेज्जजसाणि य तित्थजुदे सत्थमेदीदि ॥६०१॥

संज्ञिनि मनुष्ये च ओघेष्वेकतरस्तु केवले वज्रं । सुभगादेययशांसि च तीर्थयुते शस्तमेतीति ॥

संज्ञिपंचेंद्रियदोळं मनुष्यनोळं संस्थानादिसामान्यभंगंगळेल्लमप्पुवु । केवलज्ञानदोळु वज्र-ऋषभनाराचसंहननमो दयक्कुं । सुभगादेययशस्कीर्त्तित्रयोदयमेयक्कुमेकें दोडे असंयतनोळु दुर्भगत्रयक्के व्युच्छित्ति यादुदप्पुदरिंदं । तीर्थयुतकेवलज्ञानदोळु प्रशस्तप्रकृतिगल्गुदयमेयप्पु-दरिंदमल्लिय स्थानंगळोळेकैकभंगमेयक्कु मेकें दोडे चरमपंचसंस्थानमुमप्रशस्तविहायोगतियुं दुःस्वरमुमिल्लप्पुदरिंदं ॥

तत्रोदयप्रकृतिषु नारके साधारणवनस्पतौ सर्वलब्ध्यपर्याप्ते वाऽप्रशस्ता एवोद्यन्तीति तत्पंचकालसर्वो-दयस्थानेषु भंग एकैकः । शेषैकेन्द्रियविकलासंश्युदयस्थानेषु यशस्कीर्तिद्वयकृतौ द्वौ द्वौ भंगौ भवतः ॥६००॥

संज्ञिजीवे मनुष्ये च संस्थानादिसामान्यकृताः सर्वे भंगा भवन्ति । केवलज्ञाने वज्रवृषभनाराचसंहननं सुभगादेययशस्कीर्तय एवोद्यन्ति, "दुर्भगत्रयादेयस्यासंयते छेदात् ।" सतीर्थे च प्रशस्तमेव तेन तत्स्थानेष्वेकैकः, चरमपंचसंस्थानाप्रशस्तविहायोगतिदुःस्वराणां तत्रानुदयात् ॥६०१॥

उन उदय प्रकृतियोंमें-से नारकी, साधारण वनस्पति, सब सूक्ष्म और सब लब्ध्य-पर्याप्तकोंमें अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय होता है । अतः उनके पाँच काल सम्बन्धी सब उदयस्थानोंमें एक-एक भंग है । शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रियमें भी अप्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय है । किन्तु यशःकीर्ति और अयशःकीर्तिमें-से किसी एकका उदय होता है अतः उनके उदयस्थानोंमें दो-दो भंग होते हैं एक यशःकीर्ति सहित और एक अयशःकीर्ति सहित उदयस्थान ॥६००॥

संज्ञी जीव और मनुष्यमें छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति आदि पाँच युगलोंमें-से एक-एकका ही उदय होनेसे सामान्यकी तरह सब ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं । केवलज्ञान सम्बन्धी स्थानोंमें वज्रवृषभनाराचसंहनन, सुभग, आदेय, यशःकीर्तिका ही उदय होता है अतः उनमें छह संस्थान और दो युगलोंमें-से एक-एकका उदय होनेसे चौबीस भंग होते हैं । तीर्थंकर केवलीके अन्तके पाँच संस्थान, अप्रशस्त विहायोगति और दुःस्वरका उदय भी नहीं होता । सब प्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय होता है । अतः उनके उदयस्थानोंमें एक-एक ही भंग होता है ॥६०१॥

देवाहारे सत्थं कालवियप्पेसु भंगमाणेज्जो ।
वोच्छिण्णं जाणित्ता गुणपडिवण्णेसु सव्वेसु ॥६०२॥

देवाहारे शस्ताः कालविकल्पेषु भंगा आनेयाः । व्युच्छिन्नां ज्ञात्वा गुणप्रतिपन्नेषु सर्व्वेषु ॥

चतुर्निकायदेवक्कळोळं आहारकऋद्धिप्राप्तप्रमत्तसंयतरोळं प्रशस्तप्रकृत्युदयंगळप्पुदरिंदमा देवाहारकरुगळ सर्व्वंकालोदयस्थानंगळोळु प्रशस्तप्रकृत्युदयंगळप्पुदरिंदमेकैकभंगंगळेयप्पुवु । सासादनादिगुणप्रतिपन्नरुगळोळु विग्रहकार्म्मणशरीरादिकालविकल्पंगळोळु व्युच्छिन्नप्रकृतिगळनरिदु भंगंगळु तरल्पडुवुवु । एकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळुदयस्थानभंगंगळ संदृष्टिरचने :

०	नि	बा	सू	बा	अ सु	बा	ते सु	बा धा सु	बा	सासु	प्र	बि	ति	च	अ
भाष	२९ १	भं २	१	२	१	२	१	२	१	१	१	२	२ ३१ ३०	२ ३१ ३०	२ ३१ ३०	२ ३१ ३०
आ. प	२८ १	२७ २७ २६	२६	२७ २६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२७ २६	३० २९	३० २९	३० २९	३० २९
श. प	२७ १	२६ उ २६ अ २६	२५	२६ २५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२६ २५	२९ २८	२९ २८	२९ २८	२९ २८ →
श. मि	२५ १	२४	२४	२४	२४	२४	२१	२४	२४	२४	२४	२४	२६	२६	२६	२६
वि का	२१ १	२१	२१	२१	२१	२१	२४	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
लब्ध प.	श. मि	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२४ १	२६ १	२६ १	२६ १	२६ १
पर्य्याप्तक	वि का	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १	२१ १

चतुर्निकायदेवेष्वाहारकर्धिप्राप्तप्रमत्ते च प्रशस्तमेवोदेतीति तत्सर्वकालोदयस्थानेष्वेकैको भंगः । सासादनादिगुणप्रतिपन्नेषु विग्रहकार्मणशरीरादिकालविकल्पेषु व्युच्छिन्नप्रकृतीर्ज्ञात्वा भंगा आनेतव्याः ॥६०२॥

चार निकायके देवोंमें, आहारक ऋद्धि प्राप्त प्रमत्तमें प्रशस्त प्रकृतियोंका ही उदय होता है । अतः उनके सर्वकाल सम्बन्धी उदयस्थानोंमें एक-एक ही भंग है । सासादन आदि गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंमें तथा विग्रहगतिके कार्मण शरीर आदि कालोंमें व्युच्छिन्न हुई प्रकृतियोंको जानकर शेष प्रकृतियोंके भंग लाने चाहिए ॥६०२॥

सण्णि	मणु	सा के	ति के	स के सा	स के ती	आहा	दे
११५२ ३१ ३०	११५२ ३०	१ ८ २४ ३०	१ ९ ३१ १	२४ भं ३०	३१ १	२९ १	२९ १
५७६ ३० २९	५७६ २९	०	०	२९ १२	३० १	२८ १	२८ १
५७६ २९ २८	५७६ २८	०	०	२८ १२	२९ १	२७ १	२७ १
२८८ २६	२८८ २६	०	०	२६ ६	२७ १	२५ १	२५ १
२१ ८	२१ १	०	०	२० १	२१ १	०	२१ १
२६ १	२६ १						
२१ १	२१ १						

ई एकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु विंशत्यादिस्थानोदयभंगंगळं गाथात्रयदिंदं पेळ्दपरु :—

वीसादीणं भंगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो ।
एक्कं सट्ठिं चेव य सत्तावीसं च उगुवीसं ॥६०३॥

विंशत्यादिनां भंगा एकचत्वारिंशत्पदेषु संभवाः क्रमशः । एकः षष्टिश्चैव सप्तविंशतिरेकान्न-
५ विंशतिः ॥

वीसुत्तरछच्चसया बारसपण्णत्तरीहिं संजुत्ता ।
एक्कारससयसंखा सत्तरससयाहिया सट्ठी ॥६०४॥

विंशत्युत्तरषट् च शतं द्वादश पंचसप्ततिभिः संयुक्तैकादशशतसंख्यासप्तदशशत-
समधिकषष्टिः ॥

१० ऊणत्तीससयाहिय एक्कावीसा तदो वि एकट्ठी ।
एक्कारससयसहिया एक्केक्कविसरिसगा भंगा ॥६०५॥

एकान्नत्रिंशच्छताधिकैकविंशति ततोप्येकषष्टिरेकादशशतसहिता एकैकविसदृशा भंगाः ॥

एंदितु विंशत्यादिस्थानंगळ भंगंगळु एकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु संभविसुवंतप्पुवु ।

विंशतिकादीनां स्थानानामेकचत्वारिंशज्जीवपदेषु सम्भवन्तो भंगाः क्रमेण विंशतिकं सामान्यसमुद्-

---

१५ बीस आदि जो स्थान कहे हैं उनमें इकतालीस जीवपदोंकी अपेक्षा जो भंग होते हैं उन्हें क्रमसे कहते हैं—

बीसका उदय सामान्य समुद्घात केवलीके प्रतर और लोकपूरणके कार्मणकालमें

क्रमशः क्रमदिंदं पेळल्पडुगुमल्लि । विंशतिप्रकृतिस्थानं सामान्यसमुद्घातकेवलिय प्रतरलोकपूरणंगळोळ् सामान्य समुद्घातकेवलिय प्रतरलोकपूरणंगळोळ् कार्म्मणकायदोळुदयिसुव तीर्त्थरहितमोंदेयक्कुं । २० ॥ मत्तमेकविंशतिप्रकृत्युदयस्थानंगळ् देवगतिय विग्रहकार्म्मणदोळोंदु २१ (१) तीर्त्थसमुद्घात केवलियोळोंदु २१ (१) मनुष्यगतिविग्रहगतियोळु सुभगादेययशस्कीर्त्तियुग्मत्रयदोळेंटप्पुवु २१ (८) संज्ञिपंचेंद्रियदोळमंते एंटप्पुवु २१ (८) विकलासंज्ञिजीवंगळोळ् प्रत्येकयशोयुग्मकृत भंगंगळिंदमेरडेरडागल्वेंटप्पुवु वि २१ (८) पृथ्व्यप्तेजोबादरवायुप्रत्येकवनस्पतिगळोळमा प्रकारदिंदमेरडेरडु भंगंगळागळु मवरोळ् पत्तप्पुवु २१ (१०) मत्तं पृथ्व्यप्तेजोवायुसूक्ष्मंगळोळं साधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मंगळोळं प्रत्येकमेकैक भंगमप्पुदरिंदमवरोळ् आरु भंगंगळप्पुवु २१ (६) नारकरोळोंदु २१ (१) अंतु पर्य्याप्तरोळु नाल्वत्तमूरु २१ (४३) लब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळोळु पदिनेळु २१ (१७) कूडि एकविंशतिस्थानदोळ् भंगंगळरुवत्तप्पुवु २१ (६०) पर्य्याप्तजीवंगळ शरीरमिश्रकालदोळु पृथिव्यप्तेजोवायु-

घातकेवलिनः प्रतरलोकपूरणकार्मणकाये उदययोग्यमतीर्थमेकं २० । एकविंशतिकानि पर्याप्तानां देवगति- (१)

विग्रहकार्मणे एकं, तीर्थसमुद्घाते एकं, मनुष्यगतिविग्रहगतौ सुभगादेययशस्कीर्तियुग्मकृतान्यष्टौ । संज्ञिन्यपि तथैवाष्टौ । विकलासंज्ञिषु प्रत्येकं यशोयुग्मकृते द्वे द्वे भूत्वाष्टौ । बादरपृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकेष्वपि तथा दश । सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुषूभयसाधारणयोश्चैकैकं भूत्वा षट् । नारकेष्वेकं । लब्ध्यपर्याप्ते सप्तदशेति षष्टिः २१ । (६०)

होता है । उसमें एक ही भंग है । इक्कीसके भंग कहते हैं–देवगतिमें विग्रहगतिरूप कार्माणमें एक ही भंग है । तीर्थंकरके समुद्घात सम्बन्धी कार्माणमें एक ही भंग है । मनुष्यगतिमें विग्रहगति सम्बन्धी कार्माणमें सुभग, आदेय, यशःकीर्ति इन तीन युगलोंमें-से एक-एकका उदय होनेसे आठ भंग हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्बन्धी कार्माणमें भी उसी प्रकार आठ भंग हैं । दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके कार्माणमें यशःकीर्तिके युगलसे दो-दो भंग होनेसे आठ भंग होते हैं । बादर पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक बनस्पति इन पाँचोंके भी कार्माणमें यशःकीर्तिके युगलसे दो-दो भंग होनेसे दस भंग होते हैं । सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सूक्ष्म बादर साधारण इन छहोंके कार्माणमें एक-एक ही भंग होनेसे छह भंग होते हैं । नारकीके कार्माणमें एक ही भंग है । लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायादिके भेदसे सतरह प्रकार है । उनके कार्माणमें एक-एक ही भंग होनेसे सतरह हुए । इस प्रकार इक्कीसके स्थानमें १ + १ + ८ + ८ + ८ + १० + ६ + १ + १७ = ६० भंग होते हैं ।

१. अत्र पर्याप्तशब्देन निर्व्वृत्यपर्य्याप्ता एव गृह्यंते । कथमिति चेत् पर्य्याप्तनामकर्म्मोदयसद्भावात् ।

प्रत्येकबादरंगळोळु २४ पृथ्व्यप्तेजोवायुसूक्ष्मंगळोळं साधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मंगळोळमेकैक-
१०
भंगंगळप्पुदरिंदनारु २४ लब्ध्यपर्याप्तकजीवंगळोळु पन्नों दु २४ कूडि चतुर्विंशतिप्रकृतिस्थान-
६ ११
दोळु सप्तविंशति भंगंगळप्पुवु २४ पंचविंशति स्थानदोळु देवाहारकनारकरुगळ शरीरमिश्र-
२७
काळदोळु प्रत्येकमेकैकभंगंगळप्पुदरिंदं मूरु २५ पृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिगळ शरीर-
३
पर्य्याप्तियोळु बादरंगळोळेरडेरडु भंगंगळप्पुदरिंद पत्तु २५ मत्तं पृथ्व्यप्तेजोवायुगळ सूक्ष्मंगळ
१०
शरीरपर्य्याप्तियोळं साधारणवनस्पतिबादर सूक्ष्मंगळ शरीरपर्य्याप्तियोळमेकैकभंगंगळप्पुदरिंदमारु
२५ कूडि पंचविंशतिस्थानदोळु भंगंगळकान्नविंशतिप्रमितंगळप्पुवु २५ षड्विंशतिस्थानदोळु
६ १९
द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवंगळ शरीरमिश्रकालदोळु प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुदरिंद नाल्क-
रोळुमेंदु २६ संज्ञिपंचेंद्रियदोळं मनुष्यनोळं शरीरमिश्रकालदोळु प्रत्येकं षट् संहनन षट्संस्थान-
८
सुभगादेययशस्कीर्त्तियुग्मत्रयकृत भंगंगळु ३६ । ८ । इन्नूरेंभत्तेंटागुतं विरळेरडरोळ मेनूरेप्पत्तारु

चतुर्विंशतिकानि पर्याप्तानां शरीरमिश्रकाले बादरपृथ्व्यप्तेजोवायुप्रत्येकेषु द्वे द्वे भूत्वा दश । सूक्ष्मपृथ्व्यप्ते-
जोवायुषूभयसाधारणयोश्चैकैकं भूत्वा षट् । लब्ध्यपर्याप्तेष्वेकादशेति सप्तविंशतिः २४ ।
२७

पंचविंशतिकानि देवाहारकनारकाणां शरीरमिश्रकाले एकैकं भूत्वा त्रीणि, शरीरपर्याप्तौ बादरपृथ्व्य-
प्तेजोवायुप्रत्येकानां द्वे द्वे भूत्वा दश । सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायूनामुभयसाधारणयोश्चैकैकं भूत्वा षडित्येकान्न-
विंशतिः २५ ।
१९

षड्विंशतिकानि शरीरमिश्रकाले द्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिनां द्वे द्वे भूत्वाष्टौ । संज्ञिनि मनुष्ये च प्रत्येकं
षट्संहननषट्संस्थानसुभगादेययशस्कीर्तियुग्मकृताष्टाशीत्यग्रद्विशती भूत्वा षट्सप्तत्यग्रपंचशती, अतीर्थसमुद्घात-

अब चौबीसके स्थानमें भंग कहते हैं— चौबीसका उदय मिश्रकालमें है सो बादर, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रत्येक इन पाँचमें यशःकीर्तिके युगलसे दो-दो भंग होनेसे दस हुए। सूक्ष्म पृथ्वी अप् तेज वायु बादर सूक्ष्म साधारण इनमें एक-एक भंग होनेसे छह हुए। ग्यारह लब्ध्यपर्याप्तकोंके शरीर मिश्रकालमें एक-एक भंग होनेसे ग्यारह हुए। इस प्रकार चौबीसके स्थानमें १० + ६ + ११ = सत्ताईस भंग होते हैं।

पच्चीसके स्थानमें देव, आहारक नारकीके एक-एक भंग होनेसे तीन हुए। शरीर पर्याप्तिमें बादर, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सूक्ष्म बादर साधारणके एक-एक भंग होनेसे छह हुए। इस प्रकार पच्चीसके स्थानमें ३ + १० + ६ = उन्नीस भंग होते हैं।

छब्बीसके स्थानमें शरीर मिश्रकालमें दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके यशःकीर्तिके युगलसे दो-दो भंग होनेसे आठ हुए। संज्ञी तिर्यंच और मनुष्योंमें छह संहनन, छह संस्थान, सुभग, आदेय, यशःकीर्तिके युगल द्वारा दो सौ अठासी, दो सौ अठासी भंग

२६ तीर्त्थरहितसमुद्घातकेवलिय शरीरमिश्रकालदोळु संस्थानषट्कदिंदमारु २६ लब्ध्यपर्य्याप्त-
५७६ ६
रुगळ शरीरमिश्रकालदोळारु २६ पृथ्वीकायबादरशरीरपर्य्याप्तियोळु आतपोद्योतयुतद्विस्थानंग-
६
ळोळु प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुवर्दरिंदं नाल्कप्पुवु २६ अप्कायप्रत्येकवनस्पतिगळ बादरंगळ शरीर-
४
पर्य्याप्तियोळं प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुवर्दरिंदं नाल्कु २६ पृथ्व्यप्तेजोवायुबादरोच्छ्वासनिःश्वास-
४
पर्य्याप्तियोळु प्रत्येकवनस्पतियोळं प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुवर्दरिंदं पत्तु २६ पृथ्व्यप्तेजोवायुगळ ५
१०
सूक्ष्मंगळोळानापानपर्य्याप्तियोळं साधारणवनस्पतिबादरसूक्ष्मंगळोळनापान पर्य्याप्तियोळं
प्रत्येकमेकैकभंगंगळप्पुवर्दरिंदमारु २६ अंतु षड्विंशति प्रकृतिस्थानदोळु सर्व्वभंगंगळु मरुनूरिप्प-
६
त्तप्पुवु। २६ सप्तविंशत्युदयस्थानदोळु भंगंगळु पेळल्पडुगुं :—
६२०

सतीर्त्थसमुद्घातकेवलिय शरीरमिश्रकालदोळोंदु २७ देवाहार नारकरुगळ शरीरपर्य्याप्ति-
१
योळु प्रत्येकमेकैकमागलु मूरु २७ पृथ्वीकायबादरदोळानापानपर्य्याप्तियोळातपोद्योतयुतस्थान- १०
३
द्वयदोळं नाल्कु २७ अप्कायिकप्रत्येकवनस्पतिगळ बादरंगळोळानापानपर्य्याप्तियोळु प्रत्येकमेरडे-
४

केवलिनः संस्थानषट्केन षट्। लब्ध्यपर्याप्तेष्वपि षट्। शरीरपर्याप्तौ बादरपृथ्वीकायस्यातपोद्योतस्यानद्वये द्वे द्वे भूत्वा चत्वारि। बादराप्कायप्रत्येकयोर्द्वे द्वे भूत्वा चत्वारि। उच्छ्वासपर्याप्तौ बादरपृथ्व्यप्तेजोवायु-प्रत्येकेषु द्वे द्वे भूत्वा दश। सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायूभयसाधारणेष्वेकैकं भूत्वा षडिति विंशत्यग्रषट्छती २६।
६२०

सप्तविंशतिकानि सतीर्थसमुद्घातशरीरमिश्रकाले एकं देवाहारकनारकशरीरपर्याप्तावेकैकं भूत्वा १५
त्रीणि। आनापानपर्याप्तौ बादरपृथ्वीकायस्यातपोद्योतस्थानयोर्द्वे द्वे भूत्वा चत्वारि। बादराप्प्रत्येकयोर्द्वे द्वे

होते हैं। मिलकर पाँच सौ छिहत्तर हुए। तीर्थरहित सामान्य समुद्घात केवलीके छह संस्थानोंके बदलनेसे छह भंग होते हैं। छह लब्ध्यपर्याप्तकोंके एक-एक भंग होनेसे छह होते हैं। शरीर पर्याप्ति कालमें बादर-पृथ्वीकायके आतप या उद्योतपनेसे दो स्थान हैं। उनमें यशःकीर्तिके युगलसे दो-दो भंग होनेसे चार होते हैं। बादर, अप्काय, प्रत्येक वनस्पतिमें २०
भी दो-दो भंग होनेसे चार हुए। उच्छ्वास पर्याप्तिकालमें बादर पृथ्वी, अप्, तेज, वायु प्रत्येकमें यशःकीर्तिके युगल द्वारा दो दो भंग होनेसे दस होते हैं। सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सूक्ष्म बादर साधारणमें एक-एक भंग होनेसे छह हुए। इस प्रकार छब्बीसके स्थानमें ८ + ५७६ + ६ + ६ + ४ + ४ + १० + ६ = ६२० छह सौ बीस भंग होते हैं।

सत्ताईसके स्थानमें तीर्थंकर समुद्घात केवलीके शरीर मिश्रकालमें एक भंग होता है। २५
देवनारक आहारकके शरीर पर्याप्तिकालमें एक-एक भंग होनेसे तीन भंग होते हैं। उच्छ्वास पर्याप्तिकालमें बादर-पृथ्वीकायके आतप-उद्योतसे दो स्थान, उनमें दो-दो भंगसे चार भंग

रडु भंगंगळप्पुवरिंवं नाल्कु २७ अंतु सप्तविंशति प्रकृत्युदयस्थानदोळ् पन्नेरडे भंगंगळप्पुवु २७
४ १२

अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानदोळ् भंगंगळ् पेळल्पडुगुं :—

निरतिशयसमुद्घातकेवलियशरीरपर्य्याप्तियोळ् विहायोगतिद्वयगुणितसंस्थान

षट्कमप्पुवरिंवं पन्नेरडु २८ मनुष्यनोळं संज्ञिपंचेंद्रियदोळं प्रत्येकं शरीरपर्य्याप्तिकालदोळ्
१२

५ सुभगादेययशस्कीर्त्तिविहायोगतिचतुर्द्वंयगुणितसंस्थानसंहननषट्कमप्पुवरिंवं ३६ । १६ ।

अय्नूरेप्पत्तागलु मेरडरोळं सासिरद नूरय्वत्तेरडप्पुवु २८ द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञि-
११५२

पंचेंद्रियंगळोळ् शरीरपर्य्याप्तियोळ् प्रत्येकमेरडेरडुभंगंगळेयप्पुवरिंवमा नाल्करोळ्मेंदु २८
८

मत्तं देवाहारक नारकरुगळोळानापानपर्य्याप्तियोळ् प्रत्येकमेकैकभंगंगळप्पुवरिंवं मूरु २८ कूडि
३

अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानदोळ् सर्व्वभंगंगळ् सासिरव नूरेप्पत्तय्दप्पुवु । २८ नवविंशतिप्रकृति-
११७५

१० स्थानदोळ् भंगंगळ् पेळल्पडुगुं ।

भूत्वा चत्वारीति द्वादश २७ ।
१२

अष्टाविंशतिकानि शरीरपर्याप्तौ निरतिशयसमुद्घातकेवलिनः द्विविहायोगतिषट्संस्थानकृतानि द्वादश । मनुष्ये संज्ञिनि च प्रत्येकं सुभगादेययशस्कीर्तिविहायोगतियुग्मषट्संस्थानषट्संहननकृतानि षट्सप्तत्यग्रपंचशती भूत्वा द्वापंचाशदग्रैकादशशती । द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिषु द्वे द्वे भूत्वाष्टौ । देवाहारकनारकानापानपर्याप्तावेकैकं भूत्वा
१५ त्रीणीति पंचसप्तत्यग्रैकादशशती २८ ।
११७५

हुए। बादर-अप् प्रत्येकके दो दो भंग होनेसे चार हुए। इस तरह सत्ताईसके स्थानमें १ + ३ + ४ + ४ = १२ बारह भंग होते हैं।

अठाईसके स्थानमें शरीर पर्याप्तिकालमें निरतिशय समुद्घात केवलीके विहायोगति युगल और छह संस्थानके बदलनेसे बारह भंग होते हैं। मनुष्य और संज्ञी तिर्यंचमें सुभग,
२० आदेय, यशःकीर्ति और विहायोगति युगल, छह संस्थान, छह संहनन द्वारा प्रत्येकके पाँच सौ छिहत्तर भंग होनेसे दोनोंके ग्यारह सौ बावन हुए। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीमें यशःकीर्तिके युगलसे दो-दो भंग होनेसे आठ हुए। देव नारकी आहारकमें श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिकालमें एक-एक भंग होनेसे तीन हुए। इस प्रकार अठाईसके स्थानमें १२ + ११५२ + ८ + ३ = ११७५ ग्यारह सौ पचहत्तर भंग होते हैं।

तीर्थसमुद्घातकेवलिय शरीरपर्य्याप्तियोळोंदु २९ संज्ञिपंचेंद्रियदोळ् द्योतयुतशरीरपर्य्या-
१
प्तियोळ् मुंपेळ्वंतय्नूरेप्पत्तारु २९ द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिगळोळ् शरीरपर्य्याप्तियोळ्-
५७६
द्योतयुतदोळ् प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुर्दरिंदमेंटु २९ मत्तं निरतिशयसमुद्घातकेवलियोळाना-
८
पानपर्य्याप्तियोळ् संस्थानविहायोगतिकृत भंगंगळ् २९ मनुष्यसंज्ञिपंचेंद्रियंगळोळ् प्रत्येकमा-
१२
नापानपर्य्याप्तियोळ् संहननसंस्थानसुभगादेययशस्कीर्त्तिविहायोगतिकृत–३६ । १६ । अय्नूरेप्पत्तारु ५
भंगंगळागुत्तं विरलु एरडरोळं सासिरवनूरय्वत्तेरडु २९ द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिगळोळा-
११५२
नापान पर्य्याप्तियोळुद्योतरहित स्थानदोळ् प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुर्दरिंदमेंटु २९ मत्तं देवा-
८
हारकनारकरुगळ भाषापर्य्याप्तियोळ् प्रत्येकमेकैकस्थानमप्पुर्दरिंदं मूरु । २९ अंतु नवविंशति-
३
प्रकृतिस्थानदोळ् सर्व्वभंगंगळु सासिरदेळ् नूररुवत्तु भंगंगळप्पुवु २९ त्रिंशत्प्रकृतिस्थान-
१७६०
दोळ् भंगंगळ् पेळल्पडुगुं :— १०

नवविंशतिकानि शरीरपर्याप्तौ तीर्थसमुद्घातकेवलिन्येकं । संज्ञिनि प्राग्वत् सोद्योतषट्सप्तत्यग्रपंचशती । द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिषु सोद्योते द्वे द्वे भूत्वाष्टौ । उच्छ्वासपर्याप्तौ निरतिशयसमुद्घातकेवलिनः संस्थानविहायोगतिकृतानि द्वादश । मनुष्ये संज्ञिनि प्रत्येकं प्राग्वत् षट्सप्तत्यधिकपंचशती भूत्वा द्वापंचाशदग्रैकादशशती । द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिष्वनुद्योते द्वे द्वे भूत्वाष्टौ । भाषापर्याप्तौ देवाहारकनारकाणामेकैकं भूत्वा त्रीणीति षष्टयग्रसप्तदशशती २९ । १५
१७६०

उनतीसके स्थानमें शरीर पर्याप्तिकालमें तीर्थंकर समुद्घात केवलीके एक भंग है। संज्ञी तिर्यंच उद्योत सहितके पूर्वोक्त प्रकारसे पाँच सौ छिहत्तर भंग हैं। उद्योत सहित दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके दो-दो भंग होनेसे आठ भंग हैं। उच्छ्वास पर्याप्तिमें निरतिशय समुद्घात केवलीके छह संस्थान और विहायोगति युगलके बदलनेसे बारह भंग होते हैं। मनुष्य और संज्ञी पंचेन्द्रियमें पूर्वोक्त प्रकारसे प्रत्येकके पाँच सौ छिहत्तर २०
भंग होनेसे ग्यारह सौ बावन होते हैं। उद्योत रहित दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके दो-दो भंग होनेसे आठ भंग होते हैं। भाषा पर्याप्तिकालमें देव आहारक नारकीके एक-एक भंग होनेसे तीन भंग होते हैं। इस प्रकार उनतीसके स्थानमें १+५७६+८+१२+ ११५२+८+३ = १७६० सतरह सौ साठ भंग होते हैं।

तीर्त्थसमुद्घातकेवलिय आनापानपर्य्याप्तियोळु ओंदु ३० संज्ञिपंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळुद्योत-
१
युतानापानपर्य्याप्तियोळु संस्थानसंहननसुभगादेययशस्कीर्त्तिविहायोगतियुग्मचतुष्टयकृत ३६ । १६
भंगंगळु—मय्नूरेप्पत्तारु ३० द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिगळोळानापानपर्य्याप्तियोळुद्योत-
५७६
युतस्थानदोळु प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळागुत्तं विरलु नाल्करोळमेंदु भंगंगळप्पुवु ३० तीर्त्थरहित-
८
केवलिय भाषापर्य्याप्तियोळु संस्थानषट्कविहायोगतिद्वयस्वरद्वयकृत ६ । ४ । भंगंगळिप्पत्तनाल्कु-
३० मत्तं मनुष्यभाषापर्य्याप्तियोळु संस्थानषट्क-संहननषट्क-सुभगादेययशस्कीर्त्तिविहायोगति
२४
स्वरमेंब युग्मपंचकमेंबिवरिं ३६ । ३२ । भंगंगळु सासिरद नूरय्वत्तेरडु ३० संज्ञिपंचेंद्रिय
११५२
३० द्योळुद्योतरहित भाषापर्य्याप्तियोळु मनुष्यनोळेंतंते सासिरद नूरय्वतेरडप्पुवु ३० द्वींद्रिय-
११५२
त्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवंगळोळु भाषापर्य्याप्तियोळु प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळागलु नाल्करोळमेंदु
भंगंगळप्पुवु ३० अंतु कूडि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु सर्व्वभंगंगळुमेरडु सासिरदोंभैनूरिप्पत्तोंदप्पुवु
८
३० तीर्त्थरहितसमुद्घातकेवलिय भाषापर्य्याप्तियोळु चतुर्विंशति भंगंगळु पुनरुक्तंगळप्पुवु ।
२९२१

त्रिंशत्कान्युच्छ्वासपर्याप्तौ तीर्थसमुद्घातकेवलिन्येकं संज्ञिनि प्राग्वत्सोद्योतषट्सप्तत्यग्रपंचशती । द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिषु सोद्योते द्वे द्वे भूत्वाष्टौ । भाषापर्याप्तौ तीर्थोनकेवलिनः संस्थानविहायोगतिस्वरकृतानि चतुर्विंशतिः । मनुष्ये संस्थानसंहननसुभगादेययशस्कीर्तिविहायोगतिस्वरकृतानि द्वापंचाशदग्रैकादशशती । संज्ञिनोऽपि तथा उद्योतरहितानि भवन्ति । द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिषु ते द्वे द्वे भूत्वाष्टावित्येकविंशत्यग्रैकान्नत्रिंशच्छती ३० तीर्थोनसमुद्घातकेवलिभाषापर्याप्तौ चतुर्विंशतिभंगास्ते पुनरुक्ताः ।
२९२१

तीसके स्थानमें उच्छ्वास पर्याप्ति कालमें तीर्थंकर समुद्घात केवलीके एक भंग है। उद्योत सहित संज्ञीके पूर्वोक्त पाँच सौ छिहत्तर भंग हैं। उद्योत सहित दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रियके दो-दो भंग होनेसे आठ भंग हैं। भाषापर्याप्तिकालमें तीर्थरहित सामान्य केवलीके छह संस्थान, विहायोगति युगल, स्वर युगलके चौबीस भंग हैं। मनुष्यमें छह संस्थान, छह संहनन, सुभग आदेय, यशःकीर्ति, विहायोगति और स्वरके युगल द्वारा ग्यारह सौ बावन भंग हैं। उद्योत सहित संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें भी उसी प्रकार ग्यारह सौ बावन भंग होते हैं। दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके दो-दो भंग होनेसे आठ भंग होते हैं। ऐसे तीसके स्थानमें १+५७६+८+२४+११५२+११५२+८=२९२१ उनतीस सौ इक्कीस भंग होते हैं।

तीर्थ रहित समुद्घात केवलीके भाषा पर्याप्ति कालमें चौबीस भंग हैं। वे पुनरुक्त हैं क्योंकि पूर्वमें कहे भंगोंसे इनमें भेद नहीं है।

एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु सतीर्त्थकेवलिय भाषापर्य्याप्तियोळ्ओंदु ३१ संज्ञिपंचेंद्रिय भाषापर्य्या- १
प्तियोळुद्योतसहितस्थानदोळु षट्संस्थानषट्संहननयुग्मपंचककृत ३६। ३२ भंगंगळु सासिरद
नूरय्वत्तेरडप्पुवु ३१ द्वींद्रियत्रींद्रिय चतुरिंद्रियासंज्ञिजीवंगळोळुद्योतयुतस्थानंगळोळु प्रत्येकमेर- ११५२
डेरडु भंगंगळ संभविसुत्तं विरलु नाल्करोळु मेंदु भंगंगळप्पुवु ३१ अंतु कूडि एकत्रिंशत्प्रकृति- ८
स्थानदोळु भाषापर्य्याप्तियोळु सासिरव नूररुवत्तोंदु भंगंगळप्पुवु ३१ तीर्त्थसमुद्घातकेवलियो- ११६१
ळोंदु भंगं पुनरुक्तभंगमक्कुमयोगिकेवलियोळु सतीर्त्थरोंभत्तरोळोंदुमतीर्त्थरेंटरोळोंदु भंगं- ५
लप्पु ९ ८ इंतुक्तस्थानभंगंगळगे संदृष्टि :— १ १

२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९।	८
१	६०	२७	१९	६२०	१२	११७५	१७६०	२९२१	११६१	१	१

इंतिवेल्लमुमपुनरुक्तभंगंगळप्पुवु। सर्व्वभंगंगळु ७७५८

अनंतरं समुद्घातकेवलिय तीर्त्थरहितरुगळ भाषापर्य्याप्तियोळु त्रिंशत्प्रकृतिस्थानद चतु-
र्विंशतिभंगंगळुं तीर्त्थयुतरोळेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळोंदुं स्थानमुं पुनरुक्तमेंदु पेळ्दपरु :—

सामण्णकेवलिस्स समुग्घादगदस्स तस्स वचि भंगा। १०
तित्थस्सवि सगभंगा समेदि तत्थेक्कमवणिज्जो ॥६०६॥

सामान्ये केवलिनः समुद्घातगतस्य तस्य वाग्भंगास्तीर्त्थस्यापि स्वकभंगौ समाविति तत्रैकमपनेयः॥

एकत्रिंशत्कानि भाषापर्याप्तौ सतीर्थंकेवलिन्येकं। संज्ञिनि सोद्योतानि तथा द्वापंचाशदग्रैकादशशती। द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिषु सोद्योते द्वे द्वे भूत्वाष्टावित्येकषष्टयग्रैकादशशती ३१ । तीर्थसमुद्घातकेवलिन्येकं १५ ११६१
पुनरुक्तं। अयोगकेवलिनि सतीर्थंनवकमेकं, अतीर्थाष्टकमेकं ९। ८ मिलित्वा सर्वाणि ७७५८ ॥६०३-६०५॥
तानि पुनरुक्तान्याह— १। १

इकतीसके स्थानमें भाषा पर्याप्तिमें तीर्थंकर केवलीके एक है। उद्योत सहित संज्ञी पंचेन्द्रियके पूर्वोक्त प्रकारसे ग्यारह सौ बावन भंग हैं। उद्योत सहित दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रियके दो-दो भंग होनेसे आठ होते हैं। इस प्रकार इकतीसके स्थानमें १+११५२+८=११६१ ग्यारह सौ इकसठ भंग होते हैं। २०

तीर्थ सहित समुद्घात केवलीका एक भंग पुनरुक्त है। अयोग केवलीमें तीर्थंकर सहित नौका एक भंग है। तीर्थंकर रहित आठका एक भंग है। इस प्रकार सब मिलकर सात हजार सात सौ अठावन भंग होते हैं ॥६०३-६०५॥

पुनरुक्त भंगोंको कहते हैं—

सामान्यकेवलियोळं समुद्घातसामान्यकेवलियोळं भाषापर्य्याप्तिय त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु चतुर्व्विंशतिभंगंगळुं तीर्त्थंकेवलियोळं समुद्घाततीर्त्थंकेवलियोळमेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानद्वयमुं समर्मे दो दोंदं पुनरुक्तमेंदु बिडुत्तं विरलिप्प २५ तप्पु भंगंगळु कळेयल्पडुवुवु ।

अनंतरं गुणस्थानदमेले नामोदयस्थानभंगंगळं योजिसिदपरु :—

णारयसण्णिमणुस्ससुराणं उवरिमगुणाण भंगा जे ।
पुणरुत्ता इदि अवणिय भणिया मिच्छस्स भंगेसु ॥६०७॥

नारकसंज्ञिमनुष्यसुराणामपरितनगुणानां भंगा ये । पुनरुक्ता इत्यपनीय भणिताः मिथ्यादृष्टेर्भंगेषु ॥

नारकरुगळ संज्ञिपंचेंद्रिय जीवंगळ मनुष्यरुगल सुररुगळ उपरितनगुणस्थानंगळोळावुवु केलवु भंगंगळपु पुनरुक्तंगळेंदितु मिथ्यादृष्टिय भंगंगळोळु कळेदु पेळल्पट्टुवु । अदेंतेंदोडे संदृष्टि :—

मिथ्यादृष्टिगे	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१
	५९	२७	१८	६१४	१०	११६२	१७४६	२८९६	११६०

सासादनंगे	२१	२४	२५	२६	२९	३०	३१	मिश्रंगे	२९	३०	३१
	३१	६	१	५८४	२	२३०४	११५२		२	२३०४	११५२

असंयतंगे	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	देश संयतंगे	३०	३१
	४	२	३७	२	७५	७६	२३९५	११५२		२८८	१४४

भाषापर्याप्तौ सामान्यकेवलिसमुद्घातसामान्यकेवलिनस्त्रिंशत्कस्य चतुर्विंशतिश्चतुर्विंशतिः । तीर्थकेवलिसमुद्घाततीर्थकेवलिनोरेकत्रिंशत्कस्यैकैकश्च भंगाः समाना इति पंचविंशतिरपनेतव्याः ॥६०६॥ अथ गुणस्थानेषु तान् भंगानाह—

नारकसंज्ञितिर्यग्मनुष्यसुराणामुपरितनगुणस्थानेषु ये भंगास्ते पुनरुक्ता इति मिथ्यादृष्टिभंगेष्वपनीय भणिताः । तद्यथा—

भाषापर्याप्तिकालमें सामान्य केवली और समुद्घात सहित सामान्य केवलीके तीसके स्थानके चौबीस-चौबीस भंग समान हैं । तथा तीर्थंकर केवली और समुद्घात तीर्थंकर केवलीके इकतीसके स्थानमें एक-एक भंग समान है । अतः ये पच्चीस भंग पुनरुक्त होनेसे नहीं लेना चाहिए ॥६०६॥

आगे गुणस्थानोंमें उन भंगोंको कहते हैं—

नारकी, संज्ञी तिर्यंच, मनुष्य, देव इनके ऊपरके सासादन आदि गुणस्थानोंमें जो भंग हैं वे पुनरुक्त हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टिके भंगोंके समान हैं । अतः उन पुनरुक्त भंगोंको दूर कर मिथ्यादृष्टिके भंगोंसे ही उन्हें भी कहा है । वही कहते हैं—

प्रमत्तसंगे	२५	२७	२८	२९	३०	अप्रमत्तसंगे	३०	अपूर्व्व-	३०	३०	अनिवृत्ति-	३०	३०
	१	१	१	१	१४८		१४८	करणंगे	७२	२४	करणंगे	७२	२४

सूक्ष्म-	३०	३०	उपशांत-	३०	क्षीण-	३०	सयोग	२०	२१	२६	२७	२८
सांपरायंगे	७२	२४	कषायंगे	७२	कषायंगे	२४	केवलिगे	१	१	६	१	१२

२९	३०	३१	अयोगि-	९	८
१३	२५	१	केवलियोळु	१	१

इंतागुत्तं विरलेकविंशतिस्थानसर्व्वभंगंगळरुवत्तरोळु तीर्त्थयुतभंगमोंदं कळेदु शेषमोंदु-
गुंविदरुवत्तुभंगंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २१ चतुर्व्विंशतिप्रकृत्युदयस्थानदोळिप्पत्तेळु भंगंगळ-
५९
प्पुववनितुं मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २४ पंचविंशतिस्थानभंगंगळु पत्तोंभत्तरोळु आहारकशरीरमिश्र-
२७
भंगमोंदं कळेदु शेषपदिनेंटु भंगंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २५ षड्विंशतिस्थानभंगंगळुमरुनूरि-
१८
प्पत्तरोळु सामान्यसमुद्घातकेवलिय संस्थानभेदषड्भंगंगळं कळेदु शेषमरुनूर पदिनाल्कु ५
भंगंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २६ सप्तविंशतिस्थानंगळ पन्नेरडुं भंगंगळोळु आहारतीर्त्थसंबंधि-
६१४
भंगंगळेरडं कळेदु शेषपत्तुं भंगंगळुं मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २७ अष्टाविंशतिस्थानभंगंगळु साविरव
१० १३
नूर येप्पत्तय्दरोळु ११७५ सामान्यसमुद्घातकेवलिय पन्नेरडुमनाहारकदोंदुमनंतु पदिमूरं कळेदु
शेष सासिरद नूररुवत्तेरडु भंगंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २८ नवविंशतिस्थानभंगंगळु साविरदेळु-
११६२

एकविंशतिकस्य षष्टौ तीर्थजो नेत्येकाग्नषष्टिः । चतुर्विंशतिकस्य सप्तविंशतिः । पंचविंशतिकस्यैकाग्न- १०
विंशतावाहारकशरीरमिश्रजो नेत्यष्टादश । षड्विंशतिकस्य विंशत्यग्रषट्छत्यां सामान्यसमुद्घातकेवलि-
संस्थानजाः षड्नेति चतुर्दशाग्रषट्छती । सप्तविंशतिकस्य द्वादशस्वाहारकतीर्थजौ नेति दश । अष्टाविंशतिकस्य
पंचसप्तत्यग्रैकादशशत्यां सामान्यसमुद्घातकेवलिनो द्वादश, आहारकस्यैकश्च नेति द्वाषष्टयग्रैकादशशती ।

मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके साठ भंगोंमें तीर्थंकर सम्बन्धी एक भंगके बिना उनसठ भंग हैं। चौबीसके सत्ताईस भंग हैं। पच्चीसके उन्नीस भंगोंमें-से आहारक शरीरमिश्र सम्बन्धी १५
एक भंगके बिना अठारह हैं। छब्बीसके छह सौ बीसमें-से सामान्य समुद्घात केवलीके संस्थानजन्य छह भंग बिना छह सौ चौदह हैं। सत्ताईसके बारह भंगोंमें आहारक और तीर्थंकरके दो बिना दस भंग हैं। अठाईसके ग्यारह सौ पचहत्तरमें-से सामान्य समुद्घात

नूररुवत्तरोळु सामान्यसमुद्घातकेवलिय पन्नेरडुमं तीर्थसमुद्घातकेवलियोळोंदुमं आहारकर्वोदुमनंतु पदिनाल्कुमं कळेवु शेष सासिरदेळुनूर नाल्वत्तारु भंगंगळुमिथ्यादृष्टियोळप्पुवु २९ १७४६

त्रिंशत्प्रकृतिस्थानभंगंगळु एरडुसासिरदोंभैनूरिप्पत्तोंद २९२१ रोळु सामान्यकेवलियं चतुर्व्विंशतिभंगंगळुमं तीर्थंकेवलियदोंदुमनंतु पंचविंशतिभंगंगळं कळेवु शेषमेरडु सासिरदें टुनूर तों भत्तारुभंगंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु ३० एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानभंगंगळु ११६१ रोळु तीर्थभंगंमोंदं २८९६

कळेवु शेषमेकसासिरव नूररुवत्तु भंगंगळु मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु ३१ सासादनगुणस्थानदोळु ११६०

एकविंशतिस्थानभंगंगळु बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिगळोळारुं द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियाऽसंज्ञिगळोळें टुं संज्ञिपंचेंद्रियंगळोळें टुं मनुष्यरोळें टुं देवगतियदोंदुमंतु सासादनंगेकविंशतिस्थान भंगंगळु मूवत्तोंदप्पुवु २१ सासादनंगे चतुर्व्विंशतिस्थानंगळु पृथ्व्यप्प्रत्येकवनस्पतिगळ बादरं- १३

गळोळारेयप्पुवु २४ सासादनंगे पंचविंशतिस्थानंळोळु देवगतियदोंदेयक्कुं २५ सासादनंगे ६ १

षड्विंशतिस्थानंगळोळु द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियासंज्ञिगळोळें टुं २६ संज्ञिपंचेंद्रियदोळिनूरें- ८

भत्तें टु २६ मनुष्यनोळिनूरें भत्तें टुं २६ कूडि षड्विंशतिप्रकृत्युदयस्थानभंगंगळैनूरें भत्तनाल्क- २८८ २८८

प्पुवु २६ सासादनंगे सप्तविंशतिस्थानमुमष्टाविंशतिस्थानमुमिल्लेकें दोडे शरीरमिश्रकालदोळल्ल- ५८४

नवविंशतिकस्य षष्टचग्रसप्तदशशत्यां सामान्यसमुद्घातकेवलिनो द्वादश, तीर्थसमुद्घातकेवलिन एकः, आहारकस्यैकश्च नेति षट्चत्वारिंशदग्रसप्तदशशती। त्रिंशत्कस्यैकविंशत्यग्रैकान्नत्रिंशच्छत्यां सामान्यकेवलिनश्चतुर्विंशतिः तीर्थकेवलिन एकश्च नेति षण्णवत्यग्राष्टविंशतिशती। एकत्रिंशत्कस्यामीषु ११६१ तीर्थजो नेति षष्टयग्रैकादशशती। सासादने एकविंशतिकस्य बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकेषु षट्। द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिष्वष्टौ। संज्ञिन्यष्टौ। मनुष्येऽष्टौ। देवगतावेकः इत्येकत्रिंशत्। चतुर्विंशतिकस्य बादरपृथ्व्यप्प्रत्येकेषु षट्। पंचविंशतिकस्य देवगतेरेकः। षड्विंशतिकस्य द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिष्वष्टौ। संज्ञिमनुष्ययोः प्रत्येकमष्टाशीत्यग्रद्विशती इति चतुरशीत्यग्रपंचशती।

केवलीके बारह, आहारकका एक, इन तेरहके बिना ग्यारह सौ बासठ भंग हैं। उनतीसके सतरह सौ साठ भंगोंमें-से सामान्य समुद्घात केवलीके बारह, तीर्थंकर समुद्घात केवलीका एक, आहारकका एक, इन चौदहके बिना सतरह सौ छियालीस भंग हैं। तीसके उनतीस सौ इक्कीस भंगोंमें सामान्य केवलीके चौबीस, तीर्थंकर केवलीका एक, इन पच्चीस बिना अठाईस सौ छियानबे भंग हैं। इकतीसके ग्यारह सौ इकसठ भंगोंमें तीर्थंकरका एक बिना ग्यारह सौ साठ भंग हैं।

सासादन गुणस्थानमें इक्कीसके बादर, पृथ्वी, अप् प्रत्येकके छह, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके आठ, संज्ञीके आठ, मनुष्यके आठ, देवका एक इस प्रकार इकतीस भंग हैं। चौबीसके बादर, पृथ्वी, अप् प्रत्येकके ही छह भंग होते हैं। पच्चीसका देवगतिका एक भंग है। छब्बीसके दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञीके आठ, संज्ञी पंचेन्द्रियके दो सौ

दन्यशरीरपर्य्याप्त्यादिकालंगळोळु सासादनरुगळु मिथ्यादृष्टिगळागि पोपरप्पुदरिंदमातंगे शरीर-
पर्य्याप्त्यादिकालस्थानंगळु संभविसवु। सासादनंगे नवविंशतिप्रकृतिस्थानंगळ देवनारकरुगळो-
ळों दों दागलेरडे भंगंगळप्पुवु २९ सासादनंगे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु तिर्य्यंग्मनुष्यरुगळ भाषा-
२
पर्य्याप्तिस्थानभंगंगळु प्रत्येकं सासिरदनूरय्वत्तेरडागलेरडरोळमेरडु सासिरव मूनूर नाल्कुं ३०
२३०४
सासादनंगे एकत्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानदोळु संज्ञिजीवनुद्योतयुतभाषापर्य्याप्तियोळु सासिरदनूरय्व- ५
त्तेरडु भंगंगळप्पुवु ३१ मिश्रंगे देवनारकरुगळ भाषापर्य्याप्तियोळु नवविंशतिस्थानंगळेरडेयप्पुवु
११५२
२९ दे। ना। मिश्रंगे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु संज्ञिपंचेंद्रियमनुष्यरुगळोळेरडु सासिरव मूनूर
२
नाल्कु भंगंगळप्पुवु ३० मिश्रंगे एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळु संज्ञिपंचेंद्रियतिर्य्यंचनोळुद्योतयुत-
२३०४
स्थानभंगळु सासिरव नूरय्वत्तेरडप्पुवु ३१ असंयतनोळु चतुर्गतिजरोळं प्रत्येकमों दों दु
११५२
स्थानमागलु नाल्कुगतिगळगमेकविंशतिस्थाननंगळु नाल्कप्पुवु २१ मत्तमसंयततंगे पंचविंशति- १०
४
स्थानदोळु घर्म्मेयनारक सौधर्म्मादिदेवर्कळ संबंधिद्विभंगंगळप्पुवु २५ असंयतंगे षड्विंशति-
२
स्थानदोळु संज्ञिभोगभूमितिर्य्यंचंगे सर्व्वमुं शुभप्रकृत्युदयमप्पुदरिंदमल्लियों दुं २६ कर्म्मभूमिसंज्ञि-
१

नात्र सप्तविंशतिकाष्टविंशतिकोदयः शरीरपर्याप्त्यादिकालेषु मिथ्यादृष्टित्वसंभवात्। नवविंशतिकस्य देवनारकयो-
रेकैक इति द्वौ। त्रिंशत्कस्य तिर्यंग्मनुष्ययोर्भाषापर्याप्तौ प्रत्येकं द्वापंचाशदग्रैकादशशतीति चतुरग्रत्रयोविंशतिशती।
एकत्रिंशत्कस्य संज्ञिनो भाषापर्याप्तावुद्योतयुतद्वापंचाशदग्रैकादशशतो। मिश्रे देवनारकयोर्भाषापर्याप्तौ नव- १५
विंशतिके द्वौ। त्रिंशत्कस्य संज्ञिमनुष्ययोश्चतुरग्रत्रिंशतद्विसहस्रो। एकत्रिंशत्कस्य संज्ञिनि सोद्योतद्वापंचाशद-
ग्रैकादशशती। असंयते एकविंशतिकस्य चतुर्गतिजेष्वेकैको भूत्वा चत्वारः। पंचविंशतिकस्य घर्मानारकवैमा-

---

अठासी, मनुष्यके दो सौ अठासी इस प्रकार पाँच सौ चौरासी भंग होते हैं। इस गुणस्थान-
में सत्ताईस-अठाईसके उदयस्थान नहीं होते। क्योंकि शरीरपर्याप्ति आदि कालोंमें एकेन्द्रिय
आदिमें मिथ्यादृष्टिपना ही सम्भव है। उनतीसके देवनारकीके एक-एक मिलकर दो भंग २०
हैं। तीसके भाषापर्याप्तिमें संज्ञी तिर्यंचके ग्यारह सौ बावन, मनुष्यके ग्यारह सौ बावन
इस तरह तेईस सौ चार भंग हैं। इकतीसके संज्ञीके भाषापर्याप्तिमें उद्योत सहित स्थानके
ग्यारह सौ बावन भंग हैं।

मिश्र गुणस्थानमें उनतीसके देवनारकीके भाषापर्याप्तिमें एक-एक मिलकर दो भंग
हैं। तीसके संज्ञी और मनुष्यके मिलाकर तेईस सौ चार भंग हैं। इकतीसके उद्योत सहित २५
संज्ञीके ग्यारह सौ बावन भंग हैं।

असंयत गुणस्थानमें इक्कीसके चारों गतिकी अपेक्षा चार भंग हैं। पच्चीसके घर्मा-
नारक और वैमानिक देवके एक-एक मिलकर दो भंग हैं। छब्बीसके भोगभूमि तिर्यंचके छह

पंचेंद्रियंगल संस्थान संहननभेदयुत षट्त्रिंशद्भंगंगलु मंतु सप्तत्रिंशद्भंगंगलप्पुवु २६ ३७ मत्तमसंयतंगे सप्तविंशतिस्थानदोलु धर्म्मेय नारक सौधर्म्मादिकल्पजरुगल संबंधि द्विभंगंगलप्पुवु २७ २ मत्तम-संयतंगे अष्टाविंशति प्रकृत्युदयस्थानदोलु भोगभूमि संज्ञिपंचेंद्रियजीवसंबंधि शरीरपर्य्याप्तियोलु धर्म्मेय नारक सौधर्म्मादिकल्प कल्पातीतजरुगल संबंध्यानापान पर्य्याप्तियोलु त्रिभंगंगलु २८ ३ मनुष्यरोलु संस्थान संहननविहायोगति कृत भंगंगलेप्पत्तेरडुं २८ ७२ कूडि २८ ७५ मत्तमसंयतंगे नवविंशतिस्थानदोलु भोगभूमिसंज्ञिपंचेंद्रिय मनुष्यरुगलानापानपर्य्याप्तियोलु द्विभंगंगलुं देवनारक-रुगळ भाषापर्य्याप्तियोळु द्विभंगंगळु कर्म्मंभूमिमनुष्य संस्थानसंहननविहायोगतिकृतानापानपर्य्याप्ति-योळु एप्पत्तेरडु भंगंगळुं कूडि एप्पत्तारु भंगंगळप्पुवु २९ ७६ मत्तमसंयतन त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु भोगभूमि संज्ञिपंचेंद्रियोद्योतयुतानापानपर्य्याप्तियोळोंदुं भाषापर्य्याप्तियुत संज्ञिपंचेंद्रियतिर्य्यंग्मनुष्य-रुगळ भंगंगळु मेरडु सासिरद मूनूर नाल्कु कूडि येरडु सासिरद मूनूरव्वप्पुवु ३० २३०५ मत्तमसंयत-नेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु संज्ञिपंचेंद्रिय तिर्य्यंचन सासिरद नूरव्वत्तेरडु भंगंगळप्पुवु। ३१ ११५२

देशसंयतंगे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु संज्ञिपंचेंद्रियतिर्य्यंग्मनुष्यरुगल संस्थानसंहननविहायोगतिस्वरकृत

निकदेवयोरेकैक इति द्वौ। षड्विंशतिकस्य भोगभूमितिरश्चां शुभोदयादेकः। कर्मभूमि संज्ञिनां संस्थानसंहननजाः षट्त्रिंशदिति सप्तत्रिंशत्। सप्तविंशतिकस्य घर्माजवैमानिकयोर्द्वौ। अष्टाविंशतिकस्य भोगभूमिजघर्माजवैमा-निकानामुच्छ्वासपर्याप्तौ त्रयः। मनुष्ये संस्थानसंहननविहायोगतिजा द्वासप्ततिरिति पंचसप्ततिः। नवविंश-तिकस्य भोगभूमितिर्यग्मनुष्ययोरानापानपर्याप्तौ द्वौ। देवनारकयोर्भाषापर्याप्तौ द्वौ। कर्मभूमिमनुष्यस्यानापा-नपर्याप्तौ प्राग्वद्द्वासप्ततिरिति षट्सप्ततिः। त्रिंशत्कस्य भोगभूमितिर्यंक्ष्वानापानपर्याप्तौ सोद्योत एकः। संज्ञितिर्यग्मनुष्ययोर्भाषापर्याप्तौ चतुरग्रत्रयोविंशतिशती पंचाग्रत्रिंशद्द्विसहस्री। एकत्रिंशत्कस्य संज्ञिनो

शुभका ही उदय होनेसे एक और कर्मभूमियाँ संज्ञी तिर्यंचके छह संस्थान, छह संहननके बदलनेसे छत्तीस, इस प्रकार सैंतीस भंग हैं। सत्ताईसके और घर्मानारक वैमानिक देवका एक-एक भंग मिलाकर दो भंग हैं।

अठाईसके भोगभूमिया तिर्यंच, धर्मा नारकी, वैमानिक देवोंमें उच्छ्वास पर्याप्तिमें एक-एक भंग मिलकर तीन, मनुष्यके छह संस्थान छह संहनन विहायोगति युगलसे बहत्तर, इस प्रकार पचहत्तर भंग हैं। उनतीसके भोगभूमिया तिर्यंच मनुष्यके प्रशस्तका ही उदय होनेसे एक-एक, उनके श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें दो, देव नारकीके भाषापर्याप्तिमें एक-एक भंग मिलकर दो, और कर्मभूमिया मनुष्यके श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें पूर्वोक्त प्रकारसे बहत्तर इस तरह छिहत्तर भंग हैं। तीसके भोगभूमियाँ तिर्यंच उद्योत सहितके श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें एक संज्ञीतिर्यंच व कर्मभूमिया मनुष्य इन दोनोंके मिलाकर तेईस सौ चार इस तरह तेईस सौ पाँच भंग हैं। इकतीसके संज्ञीतिर्यंचके ही ग्यारह सौ बावन भंग हैं।

भंगंगळ नूरें भत्तें दु ३० संज्ञिपंचेंद्रियोद्योतयुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु नूरनाल्वत्तनाल्कु-
२८८
मप्पुवु। ३१ प्रमत्तसंयतनोळाहारक शरीरमिश्रदोळु पंचविंशति प्रकृतिस्थानमों दु २५
१४४ १
आशरीरपर्य्याप्तियोळु सप्तविंशति प्रकृतिस्थानमों दु २७ आनापानपर्य्याप्तियोळष्टाविंशतिप्रकृति-
१
स्थानमों दु २८ आ भाषापर्य्याप्तियोळु नवविंशति प्रकृत्युदयस्थानमों दु २९ औदारिकशरीर
१ १
भाषापर्य्याप्तियोळुसंस्थानसंहननविहायोगतिस्वरभेदसंजनितचतुश्चत्वारिंशदुत्तरैकशतभंगयुतत्रिंशत्प्र - ५
कृतिस्थानमुमक्कुं ३० अप्रमत्तसंयतनोळ चतुश्चत्वारिंशदुत्तरैकशतभंगयुतत्रिंशत्प्र-
१४४
कृतिस्थानमुदयमक्कु। ३० मपूर्व्वकरणोपशमंगे संस्थानषट्क संहननत्रय विहायोगतिस्वरभेद
१४४
संजनित द्विसप्ततिभंगयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमक्कु ३० मा क्षपकंगे संस्थानषट्कसंहननैकविहायो-
७२
गतिद्वयस्वरद्वयसंजनितचतुर्व्विंशतिभंगयुतत्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानमक्कु ३० मी प्रकारदिंद-
२४

	उ	क्ष		उ	क्ष	
मनिवृत्तिकरणनोळं सूक्ष्मसांपरायनोळमक्कुं। अनि	३०	३०	सूक्ष्म—	३०	३०	१०
	७२	२४		७२	२४	

उपशांतकषायनोळु द्वासप्ततिभंगयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमक्कुं। ३० क्षीणकषायनोळु चतुर्व्विंशति
७२

द्वापंचाशदग्रैकादशशती। देशसंयते त्रिंशत्कस्य संज्ञितिर्यग्मनुष्ययोः संस्थानसंहननविहायोगतिस्वरप्रकृता अष्टाशीत्यग्रशती। सोद्योतैकत्रिंशत्कस्य संज्ञिनः चतुश्चत्वारिंशदग्रशतं। प्रमत्ते आहारकशरीरमिश्रपंच-विंशतिकस्यैकः। शरीपर्याप्तौ सप्तविंशतिकस्यैकः। आनापानपर्याप्तावष्टाविंशतिकस्यैकः, भाषापर्याप्तौ नवविंशतिकस्यैकः। त्रिंशत्कस्यौदारिकशरीरभाषापर्याप्तौ संस्थानसंहननविहायोगतिस्वरजाश्चतुश्चत्वारिंशदग्रैक १५
शतं। अप्रमत्ते त्रिंशत्कस्य तथा तावंतः। उपशमकेषु चतुर्षु प्रत्येकं संस्थानत्रिसंहननस्वरविहायोगतिजा

देश संयत गुणस्थानमें तीसके संज्ञीतिर्यंचके संस्थान छह, संहनन छह, विहायोगति-युगल और स्वरयुगलसे एक सौ चवालीस, इसी प्रकार मनुष्यके एक सौ चवालीस मिलकर दो सौ अठासी भंग हैं। उद्योत सहित इकतीसके संज्ञी पंचेन्द्रियके पूर्वोक्त प्रकार एक सौ चवालीस भंग हैं। २०

प्रमत्तमें आहारकके शरीर मिश्रमें पच्चीसका एक, शरीर पर्याप्तिमें सत्ताईसका एक, श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें अठाईसका एक, भाषापर्याप्तिमें उनतीसका एक भंग है। औदारिक शरीरके भाषा पर्याप्ति सम्बन्धी तीसके छह संस्थान, छह संहनन, विहायोगति युगल, स्वर-युगलसे एक सौ चवालीस भंग हैं।

अप्रमत्तमें तीसके उसी प्रकार एक सौ चवालीस भंग हैं। उपशम श्रेणिके चार गुण- २५
स्थानोंमेंसे प्रत्येकके छह संस्थान, तीन संहनन, स्वरयुगल, विहायोगति युगलसे बहत्तर-

भंगयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमक्कुं ३० सयोगकेवलि भट्टारकतीर्थरहितसमुद्घातकेवलियोळु
२४
कार्म्मणशरीरदोळेक भंगयुत विंशति प्रकृतिस्थानमुं तीर्थयुतैकविंशतिस्थानमक्कुं २० २१
१ १
तीर्थरहित कवाटसमुद्घातकेवलियोळु औदारिकशरीरमिश्रकालदोळु संस्थानषट्कसंजनित षड्-
भंगयुत षड्विंशति प्रकृतिस्थानोदयमक्कु- २६ मा कालदतीर्थयुतरोळु सप्तविंशति प्रकृतिस्थानो-
६
५ दयमक्कुं २७ मूलशरीरप्रवेशदोळु तीर्थरहितशरीरपर्य्याप्तियोळु संस्थानषट्कविहायोगतिद्वय-
१
जनितद्वादशभंगयुताष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं २८ आ शरीरपर्य्याप्तियोळु तीर्थयुतमागि
१२
नवविंशतिप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं २९ तीर्थरहितरोळानापानपर्य्याप्तियोळु द्वादश भंगयुत नवविंशति-
१
प्रकृतिस्थानोदयमुमक्कु २९ मंतु त्रयोदशभंगयुतनवविंशति प्रकृतिस्थानमक्कुं २९ मत्तमाना-
१२ १३
पानपर्य्याप्तियोळु तीर्थयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमों दक्कुं ३० तीर्थरहितभाषापर्य्याप्तियोळु संस्थान-
१
१० षट्कविहायोगतिद्वयस्वरद्वयसंजनितचतुर्व्विंशतिभंगयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमुमक्कु ३० मंतु
२४
त्रिंशत्प्रकृतिस्थानदोळु पंचविंशति भंगंगळप्पुवु ३० मत्तं तीर्थयुतैकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयं भाषा-
२५
पर्य्याप्तियोळेक्कु ३१ मयोगिकेवलि भट्टारकरोळु तीर्थयुतनवप्रकृतिस्थानोदयमों दक्कुं ९
१ १
तीर्थरहिताष्टप्रकृतिस्थानोदयमुमों दक्कु ८
१

द्वासप्ततिः । क्षपकेषु चतुर्षु तथा संस्थानैकसंहननविहायोगतिस्वरजाः चतुर्विंशतिः । सयोगे समुद्घाते कार्मणे
१५ विंशतिकस्यैकः । सतीर्थे एकविंशतिकस्यैकः । औदारिकमिश्रे षड्विंशतिकस्य संस्थानजाः षट् । सतीर्थे सप्तविंशतिकस्यैकः । अष्टविंशतिकस्य मूलशरीरप्रवेशे पर्याप्तौ संस्थानविहायोगतिना द्वादश, सतीर्थे नवविंशति-
कस्यैकः, आनापानपर्याप्तौ द्वादशेति त्रयोदश । सतीर्थे त्रिंशत्कस्यैकः । भाषापर्याप्तौ संस्थानस्वरविहायोगति-
जाश्चतुर्विंशतिरिति पंचविंशतिः । सतीर्थे एकत्रिंशत्कस्यैकः । अयोगे नवकस्यैकोऽष्टकस्यैकः ॥६०७॥

बहत्तर भंग हैं। क्षपणश्रेणिके चार गुणस्थानोंमें छह संस्थान, एक संहनन, विहायोगति
२० युगल, स्वरयुगलसे चौबीस-चौबीस भंग हैं। सयोगीमें समुद्घात रूप कार्माणमें बीसका एक ही भंग है। तीर्थ सहित इक्कीसका एक भंग है। औदारिक मिश्रमें छब्बीसके छह संस्थानोंके छह भंग हैं। तीर्थ सहित सत्ताईसका एक ही भंग है। अठाईसका मूल शरीरमें प्रवेश करते हुए शरीर पर्याप्तिमें छह संस्थान और विहायोगति युगलसे बारह भंग हैं। तीर्थ सहित उनतीसका एक तथा सामान्य केवलीके श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिमें बारह ऐसे तेरह भंग हैं।
२५ तीर्थ सहित तीसका एक, भाषापर्याप्तिमें सामान्य केवलीके छह संस्थान, स्वरयुगल, विहायो-गति युगलके चौबीस इस तरह पच्चीस भंग हैं। तीर्थ सहित इकतीसका एक भंग है। अयोगीमें नौका एक और आठका एक भंग है ॥६०७॥

अनंतरं विंशत्यादिनामकर्म्मोदयस्थानंगळ्‌ पन्नेरडरोळमपुनरुक्तभंगंगळेनितेंबु युतियं पेळ्दपरु :—

अडवण्णा सत्तसया सत्तसहस्सा य होंति पिंडेण ।
उदयट्ठाणे भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥६०८॥

अष्टपंचाशत्सप्तशतानि सप्तसहस्राणि च भवंति पिंडेन। उदयस्थाने भंगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥

नामकर्म्मोदयस्थानंगळोळ्‌ सर्व्वसंयोगविदंमसहायपराक्रमनुळ्ळ श्रीवीरवर्द्धमानस्वामिगळिं पेळल्पट्ट भंगंगळेळ्‌ सासिरमुमेळ्‌नूरुमय्वत्तेंटप्पुवु । ७७५८ यिल्लि नारकसंज्ञिपंचेंद्रियतिर्य्यंच-मनुष्यदेवर्क्कळ्‌गळोळ्‌ तंतम्म मिथ्यादृष्टियभंगंगळोळ्‌ तंतम्म गुणप्रतिपन्नरुगळ भंगंगळ्‌ पडेय-ल्बक्कुमप्पुदरिंदमा गुणप्रतिपन्नरुगळ भंगंगळ्‌ पुनरुक्तंगळप्पुवेंदरियल्पडुवुवु ।

कं। येनितक्कुं भंगंगळ्‌मनितुदयस्थानसंख्येयक्कुममोघं । इनितेनवेंडिवु चित्रमवनितुं त्रिजगच्छरीरिनियहाक्रमिंगळ्‌ ।

अनंतरं नामसत्त्वस्थानप्रकरणमनेकान्नविंशति गाथा सूत्रंगळिंवं पेळल्पक्रमिसि मोदलोळ्‌ नामकर्म्मसत्त्वस्थानंगळ्‌ पविमूरप्पुवेंबु पेळ्दपरु :—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदोअहियसीदि सीदी य ।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥

त्रिद्व्येकनवतिर्न्नवतिरष्टचतुर्द्व्यधिकाशीतिरशीतिश्च । ऊनाशीत्यष्टसप्ततिसप्तसप्तति-दशकनवसत्त्वानि ॥

त्रिनवति द्विनवत्येकनवति नवतिगळ्‌मष्टाधिकाशीतियुं चतुरधिकाशीतियुं द्व्याधिकाशी-तियुमशीतियुमेकोनाशीतियुमष्टसप्ततियुं सप्तसप्ततियुं दशकमुं नवकमुमितु नामकर्म्मसत्त्वस्थानंगळ्‌ पविमूरप्पुवु । संदृष्टि :—

| ९३ | ९२ | ९१ | ९० | ८८ | ८४ | ८२ | ८० | ७९ | ७८ | ७७ | १० | ९ |

असहायपराक्रमेण श्रीवर्धमानस्वामिना विंशतिकादिद्वादशनामोदयस्थानेष्वपुनरुक्तभंगाः पिंडेनाष्ट-पंचाशदग्रसप्तशतसप्तसहस्री समुद्दिष्टा भवंति ।७७५८। अत्र नारकसंज्ञितिर्यग्मनुष्यदेवमिथ्यादृष्टिभंगेषु स्वस्व-गुणप्रतिपन्नभंगोपलब्धेः पुनरुक्तत्वं ज्ञातव्यं ॥६०८॥ अथ नामसत्त्वस्थानप्रकरणमेकान्नविंशतिगाथाभिराह— त्रिनवतिर्द्विनवतिरेकनवतिर्नवतिरष्टाशीतिश्चतुरशीतिर्द्व्यशीतिरशीतिरेकोनाशीतिरष्टसप्ततिः सप्त-

---

सहायरहित पराक्रमवाले वर्धमान स्वामीने बीस आदि बारह नामकर्मके उदय-स्थानोंमें अपुनरुक्त भंग मिलकर सात हजार सात सौ अठावन कहे हैं ७७५८। यहाँ नारकी, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, देवोंके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें जो भंग कहे हैं उनमें अपने-अपने सासादन आदिमें कहे भंगोंके जो समान हैं उन्हें पुनरुक्त जानना ॥६०८॥

आगे नामकर्मके सत्त्वस्थानका प्रकरण उन्नीस गाथाओंसे कहते हैं—

तिरानवे, बानवे, इक्यानवे, नब्बे, अठासी, चौरासी, बयासी, अस्सी, उन्यासी, अठहत्तर, सतहत्तर, दस और नौ प्रकृतिरूप तेरह सत्त्वस्थान नामकर्मके हैं ॥६०९॥

अनंतरं नामसत्त्वस्थानंगळगे प्रकृतिसंख्योपपत्तियं तोरिदपरु :—

सव्वं तित्थाहारुभऊणं सुरणिरयणरदुचारिदुगे ।
उव्वेल्लिदे हदे चउ तेरेऽजोगिस्स दस णवयं ॥६१०॥

सव्वं तीर्थाहारोभयोनं सुरनारकनरद्विचतुर्द्विके । उद्वेल्लिते हते चत्वारि त्रयोदशसु अयोगिनो दशनवकं ॥

सव्वं समस्तनामप्रकृतिस्थानं मोदलदक्कुं । मत्तं क्रमदिंदं तीर्त्थहीनमादोडे तो भत्तेरडर स्थानमक्कुं । तीर्त्थयुतमाहारकहीनमागि तो भत्तो ंदर स्थानमक्कुं । तीर्त्थाहारोभयहीनमादोडे तो भत्तरस्थानमक्कुं । अल्लि सुरद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदोडे अष्टाशीतिस्थानमक्कुं । अल्लि नारकचतुष्टयमनुद्वेल्लमं माडिदोडेण्भत्तनाल्कर स्थानमक्कुं । अल्लि मनुष्यद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदोडेण्भत्तेरडर स्थानमक्कु । मत्तमा त्रिनवतिस्थानदोळु णिरयतिरिक्ख दु वियळमित्यादि त्रयोदशप्रकृतिगळ क्षपितंगळागुत्तं विरलशीतिप्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुं । द्वानवतिस्थानदोळमा त्रयोदशप्रकृतिगळ क्षपितंगळागुत्तं विरलेकोनाशीति प्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुं । मत्तमेक नवतिस्थानदोळमा त्रयोदशप्रकृतिगळ क्षपितंगळागुत्तं विरलु अष्टसप्ततिप्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुं । मत्तं नवतिस्थानदोळमा त्रयोदशप्रकृतिगळ क्षपितंगळागुत्तं विरलु सप्तसप्ततिप्रकृतिसत्त्वस्थानमक्कुं । ७७ । मत्तमयोगिकेवलियोळ दशनवप्रकृतिसत्त्वस्थानद्वयमक्कुं ।

अनंतरमयोगिय सत्त्वस्थानद्वयप्रकृतिगळं पेळ्दपरु :—

सप्ततिर्दश नव च प्रकृतयः नामकर्मसत्त्वस्थानानि त्रयोदश भवंति ॥६०९॥ तेषामुपपत्तिमाह—

सर्वनामप्रकृतयः प्रथमं तदेव तीर्थाहारकद्वयतदुभयैः क्रमेणोनितं द्वानवतिकैकनवतिकनवतिकत्वं प्राप्नोति । तन्नवतिकं पुनः सुरद्विके पुनः नारकचतुष्के पुनः मनुष्यद्विके चोद्वेल्लितेऽष्टाशीतिकचतुरशीतिकद्व्यशीतिकत्वं । पुनः तानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि 'णिरयतिरिक्खदुवियलमित्यादित्रयोदशसु क्षपितेषु अशीतिकैकाग्नशीतिकाष्टासप्ततिकसप्तसप्ततिकत्वं दशकं, नवकं चायोगकेवलिनि ॥६१०॥ तयोः प्रकृतीराह—

उनकी उपपत्ति कहते हैं—

सब नामकर्मकी प्रकृतिरूप प्रथम तिरानबेका स्थान है । सब प्रकृतियोंमें-से तीर्थंकर घटानेपर बानबेका स्थान होता है । आहारकद्विक घटानेपर इक्यानबेका स्थान है । तीर्थंकर, आहारकद्विक दोनों घटानेपर नब्बेका है । उस नब्बेके स्थानमें देवगति और आनुपूर्वीकी उद्वेलना होनेपर अठासीका स्थान होता है । उसमें-से नारक चतुष्ककी उद्वेलना होनेपर चौरासीका स्थान होता है । उसमेंसे मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर बयासीका स्थान होता है । पुनः तिरानबेमें-से 'णिरयतिरिक्खदुवियलं' इत्यादि गाथामें अनिवृत्ति करण गुणस्थानमें क्षय हुई तेरह प्रकृति घटानेपर अस्सीका स्थान होता है । उन्हें बानबेमें-से घटानेपर उन्यासीका स्थान होता है । इक्यानबेमें-से घटानेपर अठहत्तरका स्थान होता है । नब्बेमें-से घटानेपर सतहत्तरका स्थान होता है । अयोग केवलीमें दस और नौका स्थान है । इस प्रकार नामकर्मके सब सत्त्वस्थान हैं ॥६१०॥

आगे दस और नौके स्थानकी प्रकृतियाँ कहते हैं—

गयजोगस्स दु तेरे तदियाउगगोद इदि विहीणेसु ।
दस णामस्स य सत्ता णव चेव य तित्थहीणेसु ॥६११॥

गतयोगस्यतु त्रयोदशसु तृतीयायुर्गोत्रमिति विहीनेषु । दशनाम्नः सत्त्वानि नव चैव च तीर्थहीनेषु ॥

तु मत्ते गतयोगकेवलिय सत्त्वप्रकृतिगळ् "उदयगतवारणराणू" एंब त्रयोदशप्रकृतिगळोळु तृतीयवेदनीयमो दुं आयुः मनुष्यायुष्यमुं गोत्र उच्चैर्गोत्रमुमितु मूरुं प्रकृतिगळ् हीनमागुत्तं विरलु शेषदशप्रकृतिगळ स्थानमयोगिकेवलियोळक्कुमल्लि तीर्थरहितमादोडे नवप्रकृतिस्थानमक्कुं ।

अनंतरमुद्वेल्लितस्थानविशेषमं पेळ्दपरु :—

गुणसंजादं पयडिं मिच्छे बंधुदयगंधहीणम्मि ।
सेसुव्वेल्लणपयडिं णियमेणुव्वेल्लदे जीवो ॥६१२॥

गुणसंजाता प्रकृतिर्मिथ्यादृष्टौ बंधोदयगंधहीने । शेषोद्वेल्लनप्रकृतिर्नियमेनोद्वेल्लयति जीवः ॥

मिथ्यादृष्टियोळु सव्वंकालमुद्वेल्लनप्रकृतिगळ बंधोदयगंधमुमिल्लप्पुदरिंदमा गुणसंजाताहारसम्यक्त्वप्रकृतिसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुमं शेषोद्वेल्लनप्रकृतिगळुमं मिथ्यादृष्टिजीवनुद्वेल्लनमं माडि किडिसुगुं नियमदिंदं ।

अनंतरमुद्वेल्लनप्रशस्तप्रकृति मोदल्गों दु क्रमदिंदमुद्वेल्लनमं माळ्कुमें दु पेळ्दपरु :—

सत्थत्तादाहारं पुव्वं उव्वेल्लदे तदो सम्मं ।
सम्मामिच्छं तु तदो एगो विगलो य सयलो य ॥६१३॥

प्रशस्तत्वादाहारं पूर्वमुद्वेल्लयति ततः सम्यक्त्वं । सम्यग्मिथ्यात्वं तु तत एको विकलश्च सकलश्च ।

तु—पुनः अयोगिबलिसत्त्वप्रकृतयः 'उदयगवारणराणू' इति त्रयोदशसु वेदनीयमनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रेष्वपनीते दश स्युः । तत्र तीर्थेऽपनीते नव स्युः ॥६११॥ अथोद्वेल्लितस्थानविशेषमाह—

मिथ्यादृष्टौ सर्वदापि बन्धोदयगन्धो नेति सम्यग्दर्शनादिगुणसंजातसम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यात्वाहारकद्वयप्रकृतीः शेषोद्वेल्लनप्रकृतीश्च नियमेन मिथ्यादृष्टिरेवोद्वेल्लयति ॥६१२॥ तत्क्रममाह—

अयोग केवलीकी सत्त्व प्रकृतियाँ 'उदयगवारणराण' इत्यादि गाथाके द्वारा तेरह कही हैं । उनमें-से वेदनीय, मनुष्यायु और उच्चगोत्र घटानेपर दस प्रकृतिका सत्त्वस्थान होता है । तथा उन दसमें-से तीर्थंकर घटानेपर नौ प्रकृतिरूप सत्त्व स्थान होता है ॥६११॥

आगे उद्वेलना स्थानोंका विशेष कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें जिनके बन्ध और उदयकी गन्ध भी सर्वदा नहीं होती और जो सम्यक्दर्शन आदि गुणोंके कारण उत्पन्न होती हैं ऐसी सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, आहारद्विक प्रकृतियोंकी तथा शेष उद्वेलन प्रकृतियोंकी उद्वेलना नियमसे मिथ्यादृष्टि ही करता है ॥६१२॥

उनका क्रम कहते हैं—

प्रशस्तप्रकृतित्वदिंदमाहारकमं मुन्नं चतुर्गतियमिथ्यादृष्टिजीवनुद्वेल्लनमं माळ्कुं। ततः पश्चात् सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माळ्कुं। तु बळिक्कं सम्यग्मिथ्यात्वं मिश्रप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडि किडिसुगुं। ततः बळिक्कं शेषसुरद्विकाद्युद्वेल्लनप्रकृतिगळुद्वेल्लनमनेकः एकेंद्रियमुं विकलश्च विकलेंद्रियंगळुं सकलश्च सकलेंन्द्रियंगळुं माळ्कुं ॥

अनंतरमुद्वेल्लनप्रकृतिगळ्गुद्वेल्लनावसरकालमं पेळ्दपरु :—

वेदगजोग्गे काले आहारं उवसमस्स सम्मत्तं।
सम्ममिच्छं चेगे वियले वेगुव्वछक्कं तु ॥६१४॥

वेदकयोग्ये काले आहारमुपशमस्य सम्यक्त्वं। सम्यग्मिथ्यात्वं चैकेंद्रियविकले वैक्रियिकषट्कं तु ॥

वेदकयोग्यकालदोळाहारकमुद्वेल्लनमं माडुगुमुपशमकालदोळु सम्यक्त्वप्रकृतियुमं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुमनुद्वेल्लनमं माळ्कुं। एकेंद्रियदोळं विकलत्रयदोळं वैक्रियिकषट्कमुद्वेल्लनमक्कुं ॥

अनंतरं वेदकयोग्यकालमुमनुपशमकालमुमं पेळ्दपरु :—

उदधिपुधत्तं तु तसे पल्लासंखूणमेगमेयक्खे।
जाव य सम्मं मिस्सं वेदगजोग्गो य उवसमस्स तदो ॥६१५॥

उदधिपृथक्त्वं च त्रसे पल्यासंख्योनमेकमेकाक्षे। यावत्सम्यक्त्वं मिश्रं वेदकयोगश्चोपशमस्य ततः ॥

प्रशस्तत्वादाहारकद्वयं पूर्वं चतुर्गतिकमिथ्यादृष्टिः उद्वेल्लयति, ततः पश्चात् सम्यक्त्वप्रकृतिं, ततः पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिं, ततः पश्चात् शेषसुरद्विकादीन्येकेन्द्रियो विकलेन्द्रियसकलेन्द्रियश्च ॥६१३॥ तदुद्वेल्लनावसरकालमाह—

वेदकयोग्यकाले आहारकद्वयमुद्वेल्लयति। उपशमकाले सम्यक्त्वप्रकृतिं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिं च। एकविकलेन्द्रियेषु वैक्रियिकषट्कं ॥६१४॥ तौ कालौ लक्षयति—

आहारकद्विक प्रशस्त प्रकृति है अतः चारों गतिके मिथ्यादृष्टि पहले आहारकद्विककी उद्वेलना करते हैं। उसके पश्चात् सम्यक्त्व प्रकृतिकी, उसके पश्चात् सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना करते हैं। उसके पश्चात् शेष देवद्विक आदिकी उद्वेलना एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय करते हैं ॥६१३॥

उस उद्वेलनाके अवसरका काल कहते हैं—

वेदकयोग्यकालमें आहारकद्विककी उद्वेलना करता है। और उपशम कालमें सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना करता है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव वैक्रियिकषट्ककी उद्वेलना करते हैं ॥६१४॥

इन दोनों कालोंके लक्षण कहते हैं—

---

१. म °मनुद्वे

त्रसे त्रसजीवमावोडे सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिगळ्गे स्थितिसत्त्वमेन्नेवरमुदधिपृथक्त्वमवशिष्टमक्कुमन्नेवरं वेदकयोग्यकालमें बुदक्कु । मेकाक्षे सति एकेंद्रियजीवमावोडे तत्सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिगळ्गे स्थितिसत्त्वमेन्नेवरं पल्यासंख्यातैकभागोनैकसागरोपममवशिष्टमक्कुमन्नेवरं वेदकयोग्यकालमंबुदक्कुं । ततः अल्लिवं मेले उपशमस्य कालः । आ त्रसैकेंद्रियंगळ्गे उपशमकालंगळंदु पेळल्पट्टुदु । ५

अनंतरं तेजोद्वयक्कुद्वेल्लनयोग्यप्रकृतियं पेळ्दपरः—

तेउदुगे मणुवदुगं उच्चं उव्वेल्लदे जहण्णिदरं ।
पल्लासंखेज्जदिमं उव्वेल्लणकालपरिमाणं ॥६१६॥

तेजोद्विके मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रमुद्वेल्यते जघन्येतरं । पल्यासंख्यातैकभागमुद्वेल्लनकाल प्रमाणं ॥ १०

तेजोवायुकायिकजीवंगळोळु मनुष्यद्विकमुमुच्चैर्गोत्रमुमुद्वेल्लनमं माडल्पडुवुवु । उद्वेल्लनमं माळ्पकालमुं जघन्योत्कृष्टविदं पल्यासंख्यातैकभागमात्रमेयक्कुमदं पेळ्दपरु :—

पल्लासंखेज्जदिमं ठिदिमुव्वेल्लदि मुहुत्तअंतेण ।
संखेज्जसायरठिदिं पल्लासंखेज्जकालेण ॥६१७॥

पल्यासंख्यातैकभागां स्थितिमुद्वेल्लयत्यंतर्मुहूर्त्तकालेन । संख्येयसागरस्थितिं पल्यासंख्यातैकभागेन ॥ १५

सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्याः स्थितिसत्वं यावत्त्रसे उदधिपृथक्त्वं एकाक्षे च पल्यासंख्यातैकभागोनसागरोपममवशिष्यते तावद्वेदकयोग्यकालो भण्यते । तत उपर्युपशमकाल इति ॥६१५॥ तेजोद्वयस्योद्वेल्लनप्रकृतीराह—

तेजोवातकायिकयोर्मनुष्यद्विकमुच्चैर्गोत्रं चोद्वेल्यते । जघन्यमुत्कृष्टं चोद्वेल्लनकारणकालप्रमाणं पल्यासंख्यातैकभागः ॥६१६॥ तदेवाह— २०

सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीयका स्थिति सत्त्व अर्थात् पूर्वमें जो स्थिति बँधी थी वह सत्तारूप स्थिति जबतक त्रसके तो पृथक्त्व सागर प्रमाण शेष रहती है और एकेन्द्रियके पल्यके असंख्यातवें भाग हीन एक सागर प्रमाण शेष रहती है तबतकके कालको वेदक योग्य काल कहते हैं । उससे ऊपर उससे भी हीन स्थिति सत्त्व होनेपर उपशमयोग्य काल होता है ॥६१५॥ २५

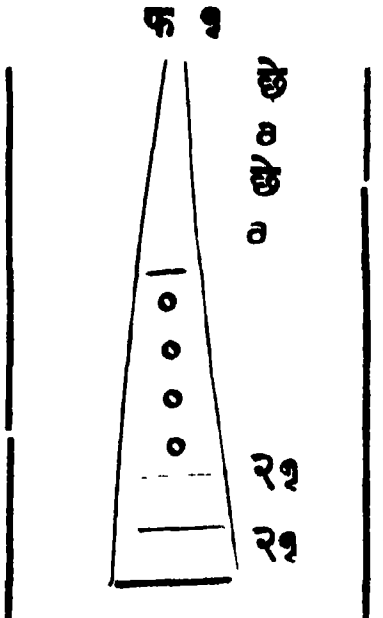
आगे तेजकाय, वायुकायके उद्वेलन योग्य प्रकृतियाँ कहते हैं—

तेजकाय, वायुकायमें मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र ये तीन उद्वेलन रूप होती हैं। उस उद्वेलनमें कारण कालका प्रमाण जघन्य और उत्कृष्ट पल्यके असंख्यातवें भाग हैं। इतने कालमें उनकी सब स्थितिके निषेकोंको उद्वेलनारूप करता है ॥६१६॥

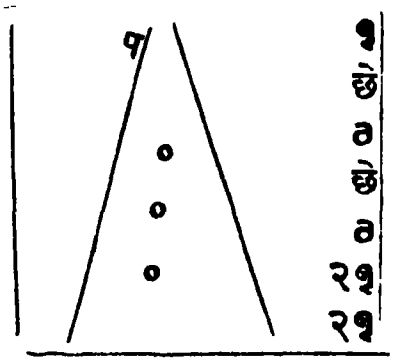
वही कहते हैं । ३०

अंतर्मुहूर्त्तकालदिंदं पल्यासंख्यातैकभागमं स्थितियनुद्वेल्लनमं माळ्कु । मातं संख्यातसागरोपमस्थितियनेंतितु कालदिंदुद्वेल्लनमं माळ्कुमेंदितु त्रैराशिकसिद्धमप्प पल्यासंख्यातैकभागमात्रकालदिंदमाळ्कुमेंबुदत्थं । आ त्रैराशिकमं माळ्प क्रममेंतेंदोडे उद्वेल्लनकालदोळु संख्यातसागरस्थितिय अग्रभागदोळु पल्यच्छेदासंख्यातैकभागं कांडकरूपमुं केळगधोगलनरूपमंतर्मुहूर्त्तमंतेरडुं कूडि प्रमाणराशियक्कुमंतागुत्तंविरलु फलराशियंतर्मुहूर्त्तकालमक्कुमिच्छाराशियं संख्यातसागरमप्पुदरिंदंसंख्यातपल्यप्रमितमक्कुमा त्रैराशिकमिदु :— प्र २१ । फ २१ । इ प १ लब्ध प

छे
अ



अन्तर्मुहूर्तकालेन पल्यासंख्यातैकभागस्थितिमुद्वेल्लयति । स संख्यातसागरोपमस्थितिं कियत्कालेनेति प्रश्ने पल्यासंख्यातैकभागेनेत्युत्तरं । तद्यथा—



अस्याः स्थितेरग्रतनभागे पल्यच्छेदासंख्यातैकभागकांडक अधोगलनरूपान्तर्मुहूर्तेनाधिकं प्रमाणं २१
छे
अ

पूर्वमें बँधी सत्तारूप स्थिति पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाणकी उद्वेलना एक अन्तर्मुहूर्तमें करता है तो वह संख्यात सागर प्रमाण मनुष्यद्विक आदिकी सत्तारूप स्थितिकी उद्वेलना कितने कालमें करेगा ? इसका उत्तर इस प्रकार है कि पल्यके असंख्यातवें भागकालमें उस सब स्थितिकी उद्वेलना करता है । उसका विवरण इस प्रकार है—

इस स्थितिके अग्रतन भागमें पल्यके अर्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण काण्डक अधोगलनरूप अन्तर्मुहूर्तसे अधिक प्रमाण है । उसको प्रमाणराशि करो । उस काण्डकका

अनंतरं सम्यक्त्वादि विराधनावारंगळं पेळ्वपरु :—

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोजणविहिं च उक्कस्सं ।
पल्लासंखेज्जदिमं वारं पडिवज्जदे जीवो ॥६१८॥

सम्यक्त्वं देशयममनंतानुबंधिविसंयोजनविधिं चोत्कृष्टं पल्यासंख्यातैकभागान्वारान्प्रतिपद्यते जीवः ॥

प्रथमोपशमसम्यक्त्वमुमं वेदकसम्यक्त्वमुमं देशसंयमुमननंतानुबंधिविसंयोजनविधियुमनुत्कृष्टदिं पल्यासंख्यातैकभागवारंगळं जीवं पोद्दुंगुं । मेलें नियमदिंदं सिद्धियनेय्दुगुं ।

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो ।
बत्तीसं वाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि ॥६१९॥

चतुरो वारानुपशमश्रेणिमारोहति क्षपितकर्म्मांशः । द्वात्रिंशद्वारान्संयममुपलभ्य निर्व्वाति ॥

उत्कृष्टदिंदमुपशमश्रेणियं नाल्कुवारमारोहणं माळ्कुं क्षपितकर्म्मांशनप्प जीवं मेलें नियमदिंदं क्षपकश्रेणियनल्लदेरनु द्वात्रिंशद्वारंगळं संयममनुत्कृष्टदिंदं पोद्दिनियमदिंदं मेलें निर्व्वाणमनेय्दुगुं ।

तत्कांडकपतनकालोंतर्मुहूर्तः फलं २१ स्थितिः संख्यातसागरत्वात्संख्यातपल्यानि इच्छा प १ । लब्धं प

॥६१७॥ अथ सम्यक्त्वादिविराधनावारानाह—

प्रथमोपशमसम्यक्त्वं वेदकसम्यक्त्वं देशसंयममनंतानुबन्धिविसंयोजनविधिं चोत्कृष्टेन पल्यासंख्यातैकभागवारान् प्रतिपद्यते जीवः । उपरि नियमेन सिद्धयत्येव ॥६१८॥

उपशमश्रेणिमुत्कृष्टेन चतुर्वारानेवारोहति । क्षपितकर्मांशो जीवः, उपरि नियमेन क्षपकश्रेणिमेवारोहति । संयममुत्कृष्टेन द्वात्रिंशद्वारान् प्राप्य ततो निर्वात्येव ॥६१९॥

पतनकाल अर्थात् उद्वेलनारूप होनेका काल अन्तर्मुहूर्त है । इसको फलराशि करो । सब स्थिति संख्यात सागर प्रमाणको इच्छाराशि करो । फलको इच्छासे गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर पल्यका असंख्यातवाँ भाग लब्धराशिका प्रमाण होता है ।

यहाँ अन्तर्मुहूर्तमें जितने स्थितिके निषेक उद्वेलनारूप किये उसका ही नाम काण्डक जानना ॥६१७॥

आगे सम्यक्त्व आदिकी विराधनाके बार कहते हैं कि कितनी बार विराधना होती है—

प्रथमोपशम सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, देशसंयम और अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन विधान इन चारको एक जीव उत्कृष्ट रूपसे पल्यके असंख्यातवें भागमें जितने समय होते हैं उतनी बार छोड़कर ग्रहण करता है । उसके पश्चात् नियमसे मोक्ष प्राप्त करता है ॥६१८॥

उपशमश्रेणिपर उत्कृष्टसे चार बार ही चढ़ता है । पीछे क्षपितकर्मांश होकर अर्थात् कर्मोंका अंश क्षय करके नियमसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ता है । सकल संयमको उत्कृष्टसे बत्तीस बार ही धारण करता है । पश्चात् मोक्षको प्राप्त करता है ॥६१९॥

तित्थाहाराणुभयं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवइ ॥

तीर्थाहाराणामुभयं सर्वं तीर्थं न मिथ्यादृष्टित्रितये। तत्सत्वकर्म्मणां तद्गुणस्थानं न संभवति ॥

तीर्थाहारकोभयसत्वयुतस्थानं मिथ्यादृष्टियोळु सत्वमिल्ल। तीर्थयुतस्थानमुमाहारकयुतसत्वस्थानमुं नानामिथ्यादृष्टियोळु संभविसुगुं। सासादननोळु नानाजीवापेक्षेयिंदमुमाहारकमुं तीर्थसत्वस्थानंगळुं संभविसवु। मिश्रगुणस्थानदोळु तीर्थयुतसत्वस्थानं संभविसदु। आहारयुतस्थानं संभविसुगुमेकें दोडे तत्सत्वकर्म्मंरुगळप्प जीवंगळ्गे तद्गुणस्थानंगळु संभविसुववल्लेकें दोडे तीर्थाहारोभयसत्वयुतनोळु मिथ्यात्वकर्मोदयमिल्ल। तीर्थमुं मेणाहारकसत्वमुमुळ्ळ जीवनोळनंतानुबंधिगुदयमिल्ल। तीर्थसत्वमुळ्ळनोळु सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयमिल्लप्पुदरिंदं ॥

अनंतरं चतुर्गतिविवक्षितमागि गुणस्थानंगळोळु नामकर्म्मसत्वस्थानंगळं योजिसिदपरः—

सुरणरसम्मे पढमो सासणहीणेसु होदि बाणउदी।
सुरसम्मे णरणारयसम्मे मिच्छे य इगिणउदी ॥६२०॥

सुरनरसम्यग्दृष्टौ प्रथमं सासादनहीनेषु भवति द्वानवतिः। सुरसम्यग्दृष्टौ नरनारकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ चैकनवतिः ॥

तीर्थाहारकयोरुभयेन युतं सत्त्वस्थानं मिथ्यादृष्टौ नास्ति। तीर्थयुतमाहारकद्वययुतं च नानाजीवापेक्षयास्ति। सासादने नानाजीवापेक्षयाप्याहारकतीर्थयुतानि न सन्ति। मिश्रगुणस्थाने तीर्थयुतं नाहारयुतं चास्ति। तत्र कारणमाह। तत्तत्कर्मसत्त्वजीवानां तत्तद्गुणस्थानं न सम्भवति। कुतः? तीर्थाहारोभयसत्त्वे मिथ्यात्वस्य तीर्थाहारयोरन्यतरसत्त्वेऽनंतानुबन्धिनां तीर्थसत्त्वे सम्यग्मिथ्यात्वस्य चानुदयात्। १। अथ चतुर्गतिविवक्षया गुणस्थानेषु नानासत्त्वस्थानानि योजयति—

मिथ्यादृष्टिमें एक जीवकी अपेक्षा तीर्थंकर और आहारकद्विक सहित स्थान नहीं है। एक मिथ्यादृष्टि जीवके या तो तीर्थंकरका ही सत्त्व होता है या आहारकद्विकका ही सत्त्व होता है। नाना जीवोंकी अपेक्षा तो दोनोंका सत्त्व होता है। सासादनमें नाना जीवोंकी अपेक्षा भी आहारक और तीर्थंकर सहित सत्त्वस्थान नहीं है। मिश्र गुणस्थानमें तीर्थंकर सहित सत्त्वस्थान है, आहारक सहित नहीं है। इसका कारण यह है कि जिन जीवोंके इन कर्मोंकी सत्ता होती है वे जीव इन गुणस्थानोंमें नहीं जाते। अर्थात् तीर्थंकर आहारकद्विककी सत्ता जिसके हैं उसके मिथ्यात्वका उदय नहीं होता। तीर्थंकर या आहारकद्विकमें-से एकका भी सत्त्व होते हुए मिथ्यात्वरहित अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता। तीर्थंकरकी सत्ता रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वका उदय नहीं होता ॥६१९॥

आगे चार गतिकी विवक्षा करके गुणस्थानोंमें नामकर्मके सत्त्वस्थानोंकी योजना करते हैं—

---

१. केवल० अदु कारणदिं सासादननोळु नानाजीवैकजीवापेक्षेगळिंदमुं सत्वमिल्लें बुदर्त्थं ॥

सुरसम्यग्दृष्टियोळं मनुष्यासंयतादिसम्यग्दृष्टिगळोळं त्रिनवतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुं। सासादनगुणस्थानरहितमाद चतुर्गतिजरोळं द्वानवतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुं। सुरसम्यग्दृष्टियोळं मनुष्यनारकसम्यग्दृष्टियोळं मिथ्यादृष्टिगळोळमेकनवतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुं।

णउदी चदुग्गदिम्मि य तेरस खवगोत्ति तिरियणरमिच्छे ।
अडचउसीदी सत्ता तिरिक्खमिच्छम्मि बासीदी ॥६२१॥

नवतिश्चतुर्गतिजेषु च त्रयोदश क्षपकपर्यंतं तिर्यंग्नरमिथ्यादृष्टावष्टचतुरशीतिसत्त्वे तिर्यग्मिथ्यादृष्टौ द्व्यशीतिः ॥

चतुर्गतिजरोलं मनुष्यरोळत्रयोदश क्षपकानिवृत्तिकरणपर्यंतं सर्व्वत्र नवतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुं। तिर्यंग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळोळे अष्टाशीतिसत्त्वस्थानमुं चतुरशीतिसत्त्वस्थानमुं संभविसुगुमेंतेंदोडे 'सपदे उप्पण्णट्ठाणेवि' एंदु संभवमुंटप्पुदरिंदं। तिर्यंग्मिथ्यादृष्टिजीवनोळे द्व्यशीतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुमेकेंदोडे मनुष्यद्विकमुद्वेल्लनमं माडुव जीवंगळु तेजोवायुकायिकंगळप्पुदरिना जीवंगळ्गे तिर्यग्गतियोळल्लदन्यगतियोळु जननमिल्लप्पुदरिंदं।

सुरसम्यग्दृष्टौ मनुष्यासंयतादिसम्यग्दृष्टौ च त्रिनवतिकं सम्भवति। सासादनवर्जितचातुर्गतिकेषु द्वानवतिकं। सुरसम्यग्दृष्टौ मनुष्यनारकसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टौ चैकनवतिकं ॥६२०॥

चतुर्गतिकेष्वात्रयोदशक्षपकानिवृत्तिकरणांतं सर्वत्र नवतिकं सम्भवति। तिर्यंग्मनुष्यमिथ्यादृष्टावेवाष्टाशीतिकं चतुरशीतिकं च सपदे उप्पण्णठाणेवीत्युक्तत्वात्। तिर्यग्मिथ्यादृष्टौ द्व्यशीतिकं। मनुष्यद्विकोद्वेल्लकतेजोवाय्वोस्तिर्यग्गतेरन्यत्रानुत्पत्तेः ॥६२१॥

तिरानबेका सत्त्वस्थान देव असंयत सम्यग्दृष्टि और मनुष्य असंयत आदि सम्यग्दृष्टिमें होता है। बानबेका सत्त्वस्थान सासादन रहित चारों गतिके जीवोंमें होता है। इक्यानबेका सत्त्वस्थान देव सम्यग्दृष्टीमें और मनुष्य नारकी सम्यग्दृष्टी या मिथ्यादृष्टिमें होता है ॥६२०॥

नब्बेका सत्त्वस्थान चारों गतिके जीवोंमें, क्षपक अनिवृत्तिकरणमें जहाँ तेरह प्रकृतियोंका क्षय होता है वहाँ तक सर्वत्र होता है। अठासी और चौरासीके सत्त्वस्थान तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टिमें ही होते हैं। क्योंकि 'सपदे उप्पणठाणेवि' के अनुसार एकेन्द्रिय आदिमें जहाँ देवद्विक आदिकी उद्वेलना होती है वहाँ भी वैसी सत्ता पायी जाती है और वह जीव मरकर तिर्यंच या मनुष्यमें जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ भी वैसी सत्ता पायी जाती है।

बयासीका सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्टि तिर्यंचमें ही होता है क्योंकि मनुष्यद्विककी उद्वेलना तेजकाय वायुकायमें होती है अतः वहाँ बयासीकी सत्ता पायी जाती है। तथा वह मरकर भी तिर्यंचमें ही उत्पन्न होता है, अन्यत्र नहीं, अतः वहाँ भी बयासीकी सत्ता पायी जाती है ॥६२१॥

---

१. नामकर्मसंबंधित्रयोदशप्रकृतयः साधारणचतुर्जात्यादय अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे क्षपणायोग्या भवंत्यतः तत्प्रथमभागपर्यन्तमित्यर्थः। चदुगदिमिच्छे चउरो इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे। सिय अत्थि णत्थि सत्तं सपदे उप्पण्णठाणेवि ॥ तेउदुगं तेरिच्छे इत्युक्तत्वात् ॥ (ताड. पंचमपंक्ति)—मनुष्यनारक।

सीदादि चउट्ठाणा तेरस खवगादु अणुवसमगेसु ।
गयजोगस्स दुचरिमं जाव य चरिमम्मि दसणवयं ॥६२२॥

अशीत्यादि चतुःस्थानानि त्रयोदश क्षपकादनुपशमकेषु । गतयोगस्य द्विचरमं यावच्चरमे-दशनवकं ॥

त्रयोदशक्षपकाशीत्यादि चतुस्थानंगळा त्रयोदशक्षपकानिवृत्तिकरणं मोदल्गोंडु क्षपक-श्रेण्यारूढरुगळोळयोगिद्विचरमसमयपर्य्यंतं संभविसुववयोगि चरमसमयदोळु दशनवकंगळप्पुर्विंतु गुणस्थानदोळु नामसत्वस्थानंगळु पेळल्पट्टुवु । चतुर्गतिगळगुणस्थानसंदृष्टि :—

नरकगतिय मिथ्यादृष्टियोळु ९२ । ९१ । ९० ॥ सासादननोळु ९० ॥ मिश्रनोळु ९२ । ९० ॥ असंयतनोळु ९० । ९१ । ९० ॥ निर्य्यंग्गतिय मिथ्यादृष्टियोळु ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ सासादननोळु ९० ॥ मिश्रनोळु ९२ । ९० ॥ असंयतनोळु ९२ । ९० ॥ देशसंयतनोळु ९२ । ९० ॥ मनुष्यगतिय मिथ्यादृष्टियोळु ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ ॥ सासादननोळु ९० ॥ मिश्रनोळु ९२ । ९० ॥ असंयतनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ देशसंयतनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ प्रमत्तसंयत-नोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अप्रमत्तसंयतनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अपूर्व्वकरणोपशमक-नोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनुपशमकनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनिवृत्तिकरणोपशमक-नोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनुपशमकनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ सूक्ष्मसांपरायोपशमकनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनुपशमकनोळु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ उपशांतकषायनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ क्षीणकषायनोळु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ सयोगि-केवलियोळु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ अयोगिद्विचरमसमयदोळु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ चरम-समयदोळु १० । ९ ॥ देवगतिय मिथ्यादृष्टियोळु ९२ । ९० ॥ सासादननोळु ९० ॥ मिश्रनोळु ९२ । ९० ॥ असंयतनोळु ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥

अनंतरं नामप्रकृतिसत्त्वस्थानंगळं एकचत्वारिंशज्जीवपदंगळोळु योजिसिदपरु :—

णिरए बाइगिणउदी णउदी भूवादिसव्वतिरिएसु ।
बाणउदी णउदी अडचउबासोदी य होंति सत्ताणि ॥६२३॥

नारके द्व्येकनवतिर्न्नवतिर्भूवादिसर्व्वतिर्य्यक्षु । द्वानवतिर्न्नवतिरष्ट चतुर्द्व्यशीतिश्च भवंति सत्त्वानि ॥

अशीतिकादीनि चत्वारि तत्त्रयोदशक्षपकानिवृत्तिकरणादा अयोगद्विचरमसमयं, चरमसमये दशकं नवकं च ॥६२२॥ अथैकचत्वारिंशज्जीवपदेष्वाह—

अस्सी आदि चार सत्त्वस्थान तेरह प्रकृतियोंके क्षयसहित अनिवृत्तिकरणसे लगाकर अयोगीके द्विचरम समय पर्यन्त होते हैं । तथा दस और नौका सत्त्वस्थान अयोगीके अन्त समयमें होता है ॥६२२॥

आगे इकतालीस जीव पदोंमें कहते हैं—

नारकरोळु द्वानवतियुमेकनवतियुं नवतियुं सत्वंगळप्पुवु । ९२ । ९१ । ९० ॥ पृथ्वी-कायिकादि सर्व्वतिर्य्यंग्जीवंगळोळु द्वानवतिनवतियष्टाशीतिचतुरशीतिद्वयशीतिपंचसत्वस्थानंगळप्पुवु । ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥

बासीदिं वज्जित्ता बारस ठाणाणि होंति मणुएसु ।
सीदादि चउट्ठाणा छट्ठाणा केवलिदुगेसु ॥६२४॥ ५

द्वयशीतिं वर्ज्जयित्वा द्वादशस्थानानि भवंति मनुष्येषु । अशीत्यादिचतुःस्थानानि षट्-स्थानानि केवलिद्वयोः ॥

मनुष्यरोळु द्वयशीतिस्थानमं वर्ज्जिसि शेषद्वादशस्थानंगळनितुं सत्वंगळप्पुवु ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥ अल्लि सयोगकेवलियोळशीत्यादि चतुःस्थानंगळप्पुवु ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ अयोगिकेवलियोळशीत्यादि षट्स्थानंगळु सत्वंगळप्पुवु १० ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥

अनंतरमा सयोगायोगिकेवलिगळ सत्वस्थानंगळोळु तीर्त्थंकरकेवलिगळगमतिरकेवलिगळगं संभवस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

समविसमट्ठाणाणि य कमेण तित्थिदरकेवलीसु हवे ।
तिदुणउदी आहारे देवे आदिमचउक्कं तु ॥६२५॥ १५

समविषमस्थानानि क्रमेण तीर्त्थेतरकेवलिनोर्भवेयुः । त्रिद्विनवतिराहारे देवे आद्यतन चतुष्कं तु ॥

सयोगायोगिगळोळु पेळ्द चतुःस्थानषट्स्थानंगळोळु समस्थानंगळु तीर्त्थंकेवलियोळप्पुवु । ८०।७८ ॥ अतीर्त्थंकेवलियोळु विषमस्थानंगळप्पुवु । ७९ ।७७ ॥ अयोगितीर्त्थंकेवलियोळु समस्थानंगळु । ८०।७८ । १० ॥ अतीर्त्थायोगियोळु विषमस्थानंगळु मूरु ७९ । ७७ । ९ ॥ २०

सत्त्वस्थानानि नारकेषु द्वानवतिकैकनवतिकनवतिकानि त्रीणि भवन्ति । पृथ्वीकायिकादिसर्वतिर्यक्षु द्वानवतिकनवतिकाष्टशीतिकचतुरशीतिकद्वयशीतिकानि पंच ॥६२३॥

सत्त्वस्थानानि मनुष्ये द्वयशीतिकं वर्जित्वा शेषाणि द्वादश भवन्ति । सयोगे अशीतिकादीनि चत्वारि । अयोगे च षट् ॥६२४॥

केवल्युक्तस्थानेषु सयोगायोगयोः चतुःषट्सु सतीर्थातीर्थयोः क्रमेण समविषमाणि स्युः । आहारके २५

नामकर्मके सत्त्वस्थान नारकियोंमें बानबे, इक्यानबे, नब्बे ये तीन होते हैं । पृथ्वीकाय आदि सब तिर्यंचोंमें बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासी, बयासी ये पाँच होते हैं ॥६२३॥

मनुष्योंमें बयासीको छोड़कर शेष बारह सत्त्वस्थान होते हैं । सयोग केवलीमें अस्सी आदि चार स्थान होते हैं । अयोगीमें अस्सी आदि छह स्थान होते हैं ॥६२४॥

केवलीमें कहे सयोगीमें चार अयोगीमें छह स्थानोंमें-से तीर्थंकर सहितमें समरूप ३० स्थान होते हैं और तीर्थंकर रहितमें विषमरूप स्थान होते हैं । अर्थात् तीर्थंकर सहित सयोगीमें अस्सी और अठहत्तर तथा तीर्थंकर सहित अयोगीमें वे दोनों और दस ये सत्त्व-

आहारकदोळु त्रिद्विनवतिस्थानद्वयंगळप्पुवु। आ ९३। ९२ ॥ देवक्कंळोळु सौधर्मादिगळोळु प्रथमतन चतुःस्थानंगळप्पुवु ।९३।९२।९१।९० ।

अनंतरं भवनत्रयभोगभूमिजरोळं सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

बाणउदि णउदिसत्ता भवणतियाणं च भोगभूमीणं ।
हेट्ठिमपुढविचउक्कभवाणं च य सासणे णउदी ॥६२६॥

द्वानवति नवतिसत्वं भवनत्रयाणां च भोगभूमिजानामधस्तनपृथ्वीचतुष्कभवानां च च सासादने नवतिः ॥

भवनत्रयविविजरुगळ्गे द्वानवतियुं नवतियुं सत्वमक्कुं। सर्व्वभोगभूमिगळ मनुष्यतिर्य्यंचरुगळ्गेयुं द्वानवति नवति द्विस्थानसत्वमक्कुं। भवन ३। ९२। ९० ॥ भो ९२। ९०॥ अंजनेमोदल्गोंडु केळगण नाल्कुं पृथ्विगळोळाद नारकरुगळ्गेयुं द्वानवति नवतिद्वय सत्वमक्कुं। ९२। ९० ॥ सर्व्वसासादनरुगळ्गेल्लं नवतिसत्वस्थानमों देयक्कुं। सा ९० ॥ संदृष्टि :—

	पृथि		अप्		तेज		वायु		साधारण			प्र	बि	ति	च	अ	सं
प	नि	बा	सू	बा	सू	बा	सू	बा	सू	बा	सू						
र्य्या	९०	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२
प्र	९१	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४
*	९२	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
*	*	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०
*	*	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२
*	*	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२	८२
*	*	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४	८४
अप	*	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८	८८
र्य्या	*	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०	९०
प्र	*	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२	९२

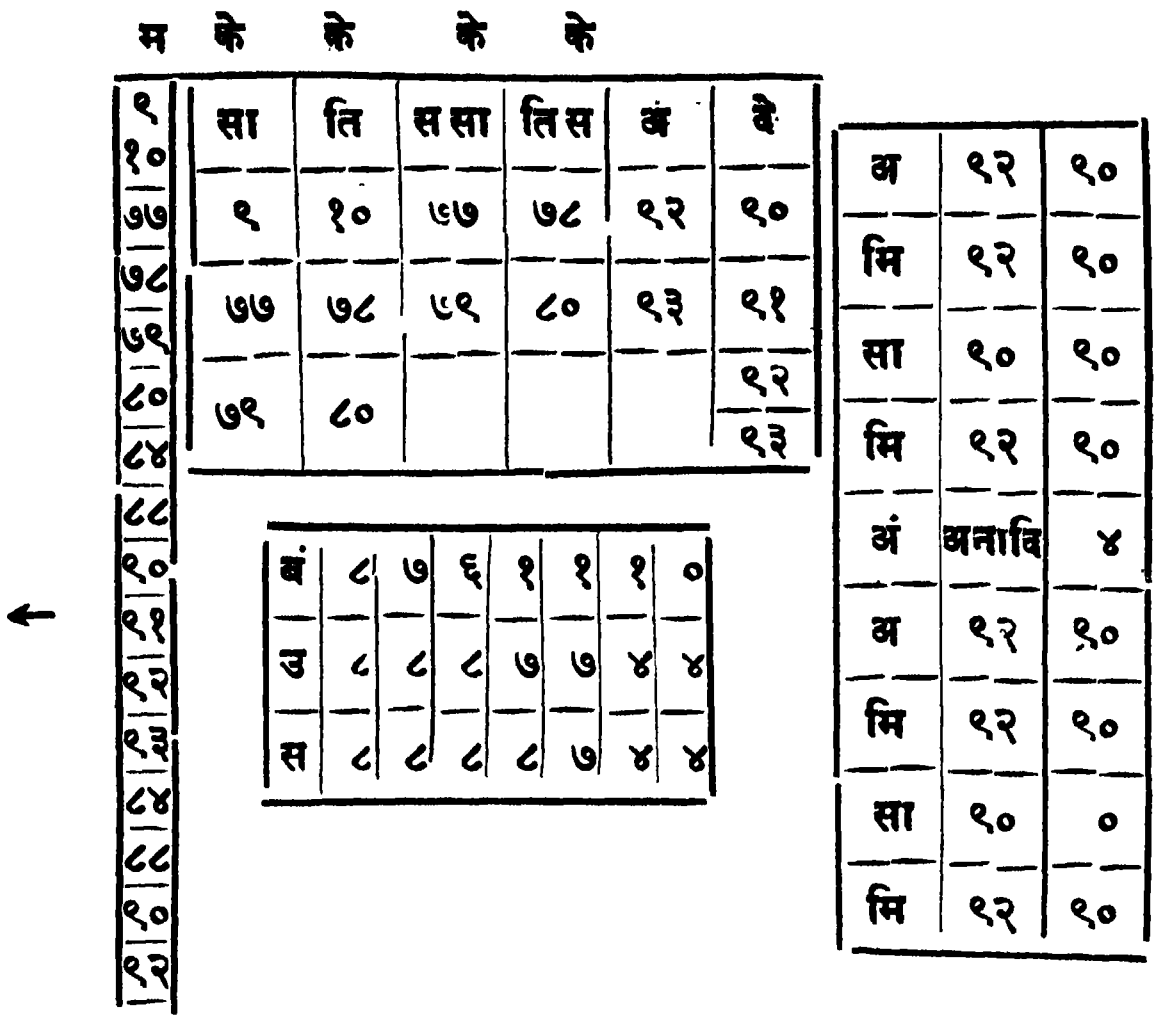
→

त्रिनवतिकद्विनवतिके द्वे । वैमानिकेष्वाद्यानि चत्वारि ॥६२५॥

सत्त्वस्थानानि भवनत्रयदेवानां सर्वभोगभूमितिर्यग्मनुष्याणामंजनाद्यधस्तनचतुःपृथ्वीनारकाणां च

स्थान होते हैं। और तीर्थंकर रहित अयोगीमें उन्न्यासी, सत्तहत्तर तथा तीर्थंकर रहित अयोगीमें वे दोनों और नब्बे स्थान होते हैं। आहारकमें तिरानबे, बानबे दो सत्त्वस्थान हैं। वैमानिक देवोंमें आदिके चार सत्त्वस्थान हैं ॥६२५॥

भवनत्रिक देवोंके सब भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंचोंके और अंजना आदि नीचेकी



अनंतरं बंधोदय सत्व संयोगदोळु भंगंगळं पेळ्दपरु :—

मूलुत्तरपयडीणं बंधोदयसत्तठाणभंगा हु ।
भणिदा हु तिसंजोगे एत्तो भंगे परूवेमो ॥६२७॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां बंधोदयसत्वस्थानभंगाः खलु । भणिताः खलु त्रिसंयोगे इतो भंगान् प्ररूपयामः ॥

मूलोत्तरप्रकृतिगळ बंधोदयसत्वस्थानभंगंगळु पेळल्पट्टुवु । स्फुटमागि । इतः प्रभृति मिल्लिंदं मेले त्रिसंयोगे बंधोदयसत्वसंयोगदोळु भंगान् भंगंगळं प्ररूपिसिदपेवर्वे ते दोडे :—

द्वानवतिकनवतिके द्वे । सर्वसासादनानां नवतिकमेव ॥६२६॥

मूलोत्तरप्रकृतीनां बन्धोदयसत्त्वस्थानभंगाः खलु भणिताः । इतोऽग्रे त्रिसंयोगे भंगान् प्ररूपयामः खलु ॥६२७॥ तद्यथा—

चार पृथिवियोंके नारकीके बानबे और नब्बे दो ही सत्त्वस्थान हैं । सब सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंके एक नब्बेका ही सत्त्वस्थान होता है ॥६२६॥

मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतियोंके बन्ध उदय और सत्त्वरूप स्थान तथा भंग कहे । यहाँसे आगे बन्ध, उदय, सत्त्वके त्रिसंयोगमें स्थान और भंगोंको कहेंगे ॥६२७॥

वही कहते हैं—

अट्ठबिहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा ।
एयविहे तिवियप्पो एयवियप्पो अबंधम्मि ॥६२८॥

अष्टविध सप्त षड् बंधकेष्वष्टैवोदयकर्म्मांशाः । एकविधे त्रिविकल्पः एकविकल्पोऽबंधे ॥

अष्टविध सप्तविधषड्विधबंधकरुगळोळु उदयमुं सत्वमुमष्टाष्टविधंगळप्पुवु । एकविधबंधकनोळु त्रिविकल्पमक्कुमें तेंदोडे—एकविधबंध सप्ताष्टविधोदयसत्वमुमेकविधबंध चतुश्चचतुरुदय सत्वमुमितु त्रिविधमक्कु—। म बंधदोळु चतुश्चतुरुदयसत्वमेकविकल्पमेयक्कुं ।

ई त्रिसंयोगभंगंगळं गुणस्थानदोळु योजिसिदपरु । :—

मिस्से अपुव्वजुगले बिदियं अपमत्तवोत्ति पढमजुगं ।
सुहुमादिसु तदियादी बंधोदयसत्त भंगेसु ॥६२९॥

मिश्रे अपूर्व्वयुगळे द्वितीयमप्रमत्तपर्य्यंतं । प्रथमद्विकं सूक्ष्मादिषु तृतीयोदयो बंधोदयसत्वभंगेषु ॥

बंधोदयसत्वभंगंगळोळु द्वितीयविकल्पं मिश्रनोळमपूर्व्वकरणनोळमनिवृत्तिकरणनोळमक्कुमप्रमत्तपर्य्यंतं प्रथमद्विविकल्पंगळप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायं मोवल्गोंडयोगिकेवलिभट्टारकपर्य्यंतं क्रमादिंदं तृतीयादिविकल्पंगळप्पुवु । संदृष्टिः—

अष्टविधसप्तविधषड्विधबंधकेषु उदयसत्त्वे अष्टाष्टविधे स्तः । एकविधबन्धके तु सप्ताष्टविधे सप्तसप्तविधे चतुश्चतुर्विधे च स्तः । अबन्धके चतुश्चतुर्विधे स्तः ॥६२८॥ अथ तत्त्रिसंयोगभंगान् गुणस्थानेषु योजयति—

तेषु बन्धोदयसत्त्वभंगेषु गुणस्थानं प्रति मिश्रेऽपूर्वानिवृत्तिकरणयोश्च सप्ताष्टाष्टबन्धोदयसत्त्वो द्वितीयभंगः स्यात् । शेषाप्रमत्तांतेषु षट्सु अष्टाष्टबन्धोदयसत्त्वप्रथमभंगो द्वितीयभंगश्च स्यात् । सूक्ष्मसांपरायाद्ययोगांतेषु

जिस जीवके मूल प्रकृतियोंका आठ प्रकार, सात प्रकार या छह प्रकारका बन्ध होता है उसके उदय और सत्त्व आठ प्रकारका ही होता है । जिसके एक प्रकारका मूल प्रकृति-बन्ध होता है उसके उदय सात प्रकार, सत्त्व आठ प्रकार अथवा उदय और सत्त्व दोनों सात-सात प्रकार अथवा उदय और सत्त्व दोनों चार-चार प्रकार होते हैं । जिसके एक भी मूलप्रकृतिका बन्ध नहीं है उसके उदय और सत्त्व दोनों चार-चार प्रकारके होते हैं ॥६२८॥

ब.	८	७	६	१	१	१	०
उ.	८	८	८	७	७	४	४
स.	८	८	८	८	७	४	४

आगे त्रिसंयोगी भंगोंको गुणस्थानोंमें जोड़ते हैं—

उन बन्ध, उदय और सत्त्वके भंगोंमें गुणस्थानोंके प्रति मिश्रमें और अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणमें सातका बन्ध, आठका उदय और आठका सत्त्वरूप दूसरा भंग पाया जाता है । मिश्रके बिना शेष मिथ्यादृष्टि आदि अप्रमत्त पर्यन्त छह गुणस्थानोंमें आठका बन्ध, उदय सत्त्वरूप प्रथम भंग और सातका बन्ध, आठका उदय, आठका सत्त्वरूप दूसरा भंग पाया है । सूक्ष्म साम्परायसे अयोगीपर्यन्त गुणस्थानोंमें तीसरे आदि छहका बन्ध, आठका

मि	सासा	मि	असंय	देशसं	प्रमत्त	अप्रम
बं ८।७	बं ८।७	बं ।७	बं ८।७	बं ८।७	बं ८।७	बं ८।७
उ ८।८	उ ८।८	उ ८	उ ८।८	उ ८।८	उ ८।८	उ ८।८
स ८।८	स ८।८	स ।८	स ८।८	स ८।८	स ८।८	स ८।८

अपू	अनिवृ	सूक्ष्म	उपशां	क्षीणक	सयो	अयोगि
बं ७	बं ७	बं ६	बं १	बं १	बं १	बं ०
उ ८	उ ८	उ ८	उ ७	उ ७	उ ४	उ ४
स ८	स ८	स ८	स ८	स ७	स ४	स ४

यिल्लि आयुष्यकर्म्मसहितमागियष्टबंधकरु आयुर्व्वर्ज्जितमागि सप्तविधबंधकरु आयुर्म्मोह-कर्म्मवर्ज्जितमागि षट्कर्म्मबंधकरु वेदनीयमो दरबंधमुमबंधस्थानमुमप्पुवु ।

अनंतरमुत्तरप्रकृतिगळ्गे त्रिसंयोगदोळु भंगंगळं पेळ्दपरः—

बंधोदयकम्मंसा णाणावरणंतराइये पंच ।
बंधोवरमे वि तहा उदयंसा होंति पंचेव ॥६३०॥

बंधोदयकर्म्मांशा ज्ञानावरणांतरायययोः पंच । बंधोपरमे पि तथा उदयांशा भवंति पंचैव ॥

बंधोदयसत्वंगळु ज्ञानावरणांतरायंगळ्गे पंच पंच प्रकृतिगळेयप्पुवु । तद्बंधोपरतरोळं तथा

पंचसु क्रमेण तृतीयादयः षडष्टाष्टबन्धोदयसत्त्वैकसप्ताष्टबन्धोदयसत्त्वैकसप्तसप्तबन्धोदयसत्त्वैकचतुश्चतुर्बन्धोदय-सत्त्वशून्यचतुश्चतुर्विधोदयसत्त्वभंगाः स्युः ॥६२९॥ अथोत्तरप्रकृतिष्वाह—

ज्ञानावरणान्तरायययोः सूक्ष्मसाम्परायपर्यंतं बन्धोदयसत्त्वानि पंच पंच प्रकृतयो भवन्ति । बन्धोपर- १०

उदय, आठका सत्त्व, एकका बन्ध, सातका उदय, आठका सत्त्व, एकका बन्ध, सातका उदय, सातका सत्त्व, एकका बन्ध, चारका उदय, चारका सत्त्व तथा बन्धका अभाव, चारका उदय, चारका सत्त्व ये भंग पाये जाते हैं ॥६२९॥

	मि.	सा.	मि	असं.	देश	प्र.	अप्र.	अप.	अनि.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
ब.	८।७	८।७	७	८।७	८।७	८।७	८।७	७	७	६	१	१	१	०
उ.	८।८	८।८	८	८।८	८।८	८।८	८।८	८	८	८	७	७	४	४
स.	८।८	८।८	८	८।८	८।८	८।८	८।८	८	८	८	८	७	४	४

आगे उत्तर प्रकृतियोंमें कहते हैं—

सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त ज्ञानावरण और अन्तरायकी पाँच-पाँच प्रकृतियाँ बन्ध, उदय १५

अहंगे उदयांशंगळु पंच पंचप्रकृतिगळप्पुवु।

णाणा	अंतराय			
बं	५	५	०	०
उ	५	५	५	५
स	५	५	५	५

ज्ञानावरणांतरायंगळ्गे

गुणस्थानदोळु त्रिसंयोग रचने :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्ष
बं	५	५	५	५	५	५	५	५	५	१	०	०
उ	५	५	५	५	१	५	५	५	५	५	५	५
स	५	५	५	५	१	५	१	५	५	५	५	५

अनंतरं दर्शनावरणोत्तरप्रकृतिगळ्गे त्रिसंयोगभंगंगळं पेळ्दपरु :—

बिदियावरणे णवबंधगेसु चदुपंच उदय णवसत्ता।
छब्बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छडंसा य ॥६३१॥

द्वितीयावरणे नवबंधकेषु चतुःपंचोदयनवसत्त्वानि। षड्बंधकेष्वेवं तथा चतुर्बंधके षडंशाश्च ॥

उवरदबंधे चदुपंच उदय णव छच्च सत्त चदुजुगलं।
तदियं गोदं आउं विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥६३२॥

उपरतबंधे चतुःपंचोदय नव षट्सत्त्व चतुर्युगलं। तृतीयं गोत्रमायुर्व्विभज्य मोहं वक्ष्यामि ॥

द्वितीयावरणदोळु नवबंधकरोळु चतुःपंचोदयंगळुं नवसत्वमुमक्कुं। षड्बंधकरोळुमंते चतुः पंचोदयंगळु नवसत्वमुमक्कुं। अहंगे चतुर्ब्बंधकरोळु चतुःपंचोदयंगळुं चशब्ददिंदं नवांशंगळुं

मेऽप्युपशान्तक्षीणकषाययोरुदयसत्त्वे तथा पंच पंच प्रकृतयः स्तः ॥६३०॥

दर्शनावरणे मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्नबन्धकयोश्चत्वारि पंच चोदयः। सत्त्वं नव। षड्बन्धकेषु मिश्रादयुभयश्रेण्यपूर्वकरणप्रथमभागांतेष्वप्युदयसत्त्वे एवमेव। चतुर्बंधके तद्द्वितीयभागादा उपशमकसूक्ष्म-

---

और सत्त्वरूप हैं। बन्धका अभाव हो जानेपर भी उपशान्तकषाय क्षीणकषायमें पाँच-पाँच प्रकृतिका उदय और पाँच-पाँचका सत्त्व है ॥६३०॥

दर्शनावरणमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें नौका बन्ध होता है किन्तु उदय चार या पाँचका है। सत्त्व नौका है। मिश्रसे लेकर दोनों श्रेणिरूप अपूर्वकरणके प्रथम भाग पर्यन्त बन्ध छहका है। उदय चार या पाँचका है और सत्त्व नौ है। अपूर्वकरणके दूसरे भागसे लेकर उपशमक सूक्ष्म साम्पराय पर्यन्त और सोलह प्रकृतिका जहाँ क्षय होता है क्षपक

---

१. उदय सत्वंगळु। (ताड. पंक्ति ३):—णोत्ति चरिमउदया पंचसु हट्ठासु दोसु णिद्दासु। एक्के उदयं पत्ते खीणदुचरिमोत्ति पंचुदया ॥ (संबंधः कल्प्यतां) (ताड. पंक्ति ६):—अणुदयतदियं णीचमजोगि दुचरिमम्मि सत्त बोच्छिण्णा। येंदनुदयागतवेदनीयक्के द्विचरमदोळु व्युच्छित्तियादुदरिंदुदयागतमे सव्वमक्कु मी प्रकारदिंदमुंदे पेळ्वगोत्रक्कं योजिसिकोंबुदु ॥ चरमे (संबंधो न ज्ञायते)।

षडंशंगळुमप्पुवु । उपरतबंधकरोळु चतुःपंचोदयंगळुं नवषट्सत्वंगळुं चतुश्चतुरुदयसत्वंगळुमप्पुवु । संदृष्टि :—

बं ९	६	४	४	०	०	०
उ ५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४
स ९	९	९	६	९	६	४

ई दर्शनावरणत्रिसंयोग भंगंगळं गुणस्थानदोळु योजिसिद संदृष्टिरचना विशेषमिदु :—

मि	सा	मि	असं	देश	प्र	अप्र	अ. उ. क्ष.	अनि.उक्ष	सू. उ	क्ष	उ	क्षी
बं।९	९	६	६	६	६	६	६।४।६।४	४।४	४	४	०	०।०
उ।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५।४।५	४।५।४।५	४।५	४।५	४।५	४।५।४
स।९	९	९	९	९	९	९	९।९	९।९।६	९	६	९	६।४

अनंतरं वेदनीयमुमं गोत्रमुमं आयुष्यमुमं त्रिसंयोगदोळु भंगंगळं विभाजिसि गुणस्थानंगळोळु योजिसि बळिक्कं मुंदे मोहनीयमं पेळ्दपेमेंदु वेदनीयमं पेळ्दपरु :— ५

सादासादेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे ।
दो सत्ता जोगित्ति य चरिमे उदयागदं सत्तं ॥६३३॥

सातासातैकतरा बंधोदया भवंति संभवस्थाने । सत्त्वे अयोगिपर्य्यंतं चरमे उदयागतं सत्त्वं ॥

छट्ठोत्ति चारि भंगा दो भंगा होंति जाव जोगिजिणे । १०
चउभंगाऽजोगिजिणे ठाणं पडि वेयणीयस्स ॥६३४॥

षष्ठपर्य्यंतं चतुर्भंगाः द्वौ भंगौ भवंति यावद्योगिजिने । चतुर्भंगा अयोगिजिने स्थानं प्रति वेदनीयस्य । द्वितयं ॥

सांपरायांतं, षोडशक्षपकानिवृत्त्यंतं चोदयस्तथैव, सत्त्वं नव, षोडशक्षपकादुपरि तत्सूक्ष्मसांपरायांतं च उदयस्तथैव सत्त्वं षट् । उपरतबन्धे उदयस्तथैव, सत्त्वं उपशान्ते नव क्षीणद्विचरमांते षट् । चरमे उभयमपि चत्वारि । वेदनीयगोत्रायुस्त्रिसंयोगभंगान् भक्त्वा गुणस्थानेषु संयोज्याग्रे मोहनीयं वक्ष्यामि ॥६३१–६३२॥ १५

अनिवृत्तिकरणके उस भाग पर्यन्त उदय चार या पाँचका है। सत्त्व नौका है। सोलह प्रकृतिके क्षयसे ऊपर सूक्ष्म साम्पराय क्षपक पर्यन्त उदय तो वैसा ही है, सत्त्व छहका है। जिनके दर्शनावरणका बन्ध नहीं है उनके उदय तो चार या पाँचका है। सत्त्व उपशान्त कषायमें नौ और क्षीणकषायके द्विचरम समय पर्यन्त छहका है। क्षीणकषायके अन्त समयमें उदय और सत्त्व दोनों चार-चारका है। वेदनीय गोत्र और आयुके त्रिसंयोगी भंगोंको विभाग करके गुणस्थानोंमें उनकी योजना करेंगे। फिर मोहनीयमें कहेंगे ॥६३१-६३२॥ २०

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अप्र.	अपूर्व. उ.	अपूर्व. क्ष.	अनि. उ.	अनि. क्ष.	सूक्ष्म. उ.	सूक्ष्म. क्ष.	उ.	क्षी.
ब.	९	९	६	६	६	६	६	६।४	६।५	४	४	४	४	०	०
उ.	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५	४।५।४
स.	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९।६	९	६	९	६।४

सातासातैकतरं सातासातंगळोळु योग्यस्थानकदोळु बंधोदयंगळेकैकंगळप्पुवु । द्विप्रकृतिसत्त्वं सयोगकेवलिपर्य्यंतमप्पुदयोगिकेवलियोळु द्विप्रकृतिसत्वमुदयागतं सत्वमक्कुमंतागुत्तं विरलु षष्ठगुणस्थानपर्य्यंतं चतुर्भंगंगळप्पुवु । अप्रमत्तसंयतं मोदल्गोंडु सयोगकेवलिगुणस्थानपर्य्यंतं द्विभंगंगळप्पुवु । अयोगकेवलियोळु चतुर्भंगंगळप्पुवु । वेदनीयस्थानापेक्षेयिंदं संदृष्टि :—

बं	सा	सा	अ	अ	०	०	०	०	*
उ	सा	अ	सा	अ	सा	अ	सा	अ	*
स	२	२	२	२	२	२	सा	अ	

यिल्लि प्रथमचतुर्भंगंगळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानंमोदल्गोंडु प्रमत्तसंयतपर्य्यंतमारुं गुणस्थानंगळोळक्कुं

सा	सा	अ	अ
सा	अ	सा	अ
२	२	२	२

मेकेंदोडे सातासातबंधं प्रमत्तसंयतपर्य्यंतमुंटप्पुदरिंदं । अप्रमत्तगुणस्थानं मोदल्गोंडु सयोगकेवलिजिनरु पर्य्यंतं सातबंधमोंदेयप्पुदरिंदं प्रथमभंगद्वितयमक्कुं

सा	सा
सा	अ
२	२

अयोगिजिनरोळु चतुर्भंगंगळप्पुवेंतेंदोडे सातोदयोभयसत्त्वं । १ । सातोदयसातसत्त्वं १ । असातोदयोभयसत्त्वं १ । असातोदयासातसत्त्वं १ । मंतु नाल्कु भंगंगळप्पुवु

गुणस्थानसंदृष्टि :—

०	०	०	०
सा	अ	सा	अ
२	२	सा	अ

०	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
भं	४	४	४	४	४	४	२	२	२	२	२	२	२	४

सातामातैकतरमेव योग्यस्था॰ बन्ध उदयो वा स्यात् । सत्त्वं सयोगांतं द्वे द्वे । अयोगे ते उदयागते, तेन वेदनीयस्य गुणस्थानं प्रति भंगाः षष्ठांतं । सातबन्धोदयोभयसत्त्वं सातबन्धासातोदयोभयसत्त्वं । असातबन्धसातोदयोभयसत्त्वं असातबन्धोदयोभयसत्त्वमिति चत्वारः । उपरि सयोगांतं केवलं सातस्यैव बन्धात् तद्बन्धतदुदयोभयसत्त्वं तद्बन्धासातोदयोभयसत्त्वमिति द्वौ । अयोगे सातोदयोभयसत्त्वं, असातोदयोभयसत्त्वं

साता और असातामें-से एकका ही बन्ध और उदय योग्य स्थानमें होता है किन्तु सत्त्व सयोगी पर्यन्त दोनोंका ही होता है । अयोगीमें जिसका उदय होता है उसीका सत्त्व होता है । इससे वेदनीयके गुणस्थानोंमें भंग छठे प्रमत्तपर्यन्त तो साताका बन्ध, साताका उदय, सत्त्व दोनोंका, अथवा साताका बन्ध, असाताका उदय सत्त्व दोनोंका, अथवा असाताका बन्ध साताका उदय, सत्त्व दोनोंका, अथवा असाताका बन्ध असाताका उदय सत्त्व दोनोंका इस प्रकार चार होते हैं । ऊपर सयोगी पर्यन्त केवल साताका ही बन्ध है । इसलिए साताका ही बन्ध, साताका ही उदय और सत्त्व दोनोंका अथवा साताका बन्ध, असाताका उदय, दोनोंका सत्त्व इस तरह दो भंग हैं । अयोगीमें बन्धका तो अभाव है ।

अनंतरं गोत्रक्के पेळ्दपरु :—

णीचुच्चाणेक्कदरं बंधुदया होंति संभवट्ठाणे ।
दो सत्ताऽजोगित्ति य चरिमे उच्चं हवे सत्तं ॥६३५॥

नीचोच्चयोरेकतरं बंधोदयौ भवतः संभवत्स्थाने । द्वे सत्त्वेऽयोगिपर्यंतं चरमे उच्चं भवेत्सत्वं ॥ ५

उच्चनीचगोत्रंगळेरडुं बंधसंभविसुव स्थानदोळु उच्चनीचंगळोंदोंदु बंधोदयंगळप्पुवु । अयोगिद्विचरमसमयपर्य्यंतमुच्चनीचोभयसत्त्वमक्कुं। चरमसमयदोळु उच्चैर्गोत्रमोंदे सत्त्वमक्कुं

बं	नी	नी	उ	उ	०	०	नी
उ	नी	उ	उ	नी	उ	उ	नी
स	२	२	२	२	२	उ	नी

उच्चुव्वेल्लिदतेऊवाउम्मि य णीचमेव सत्तं तु ।
सेसिगिवियले सयले णीचं च दुगं च सत्तं तु ॥६३६॥

उच्चोद्वेल्लित तेजोवाय्वोश्च नीचमेव सत्त्वं तु । शेषैकविकले सकले नीचं च द्विकं च १०
सत्त्वं तु ॥

सातोदयसत्त्वमसातोदयसत्त्वमिति चत्वारः ॥६३३-६३४॥ अथ गोत्रस्याह—

गोत्रद्वयबन्धसम्भवस्थाने उच्चनीचैकतरमेव बन्धोदयौ स्तः । सत्त्वमयोगिद्विचरमसमयपर्यन्तमुभयं स्यात् । चरमसमये सत्त्वमुच्चमेव ॥६३५॥

अतः साताका उदय दोनोंका सत्त्व या असाताका उदय दोनोंका सत्त्व अथवा साताका १५
उदय साताका सत्त्व या असाताका उदय, साताका सत्त्व इस प्रकार चार भंग हैं ॥६३३-६३४॥

छठे गुणस्थान पर्यन्त भंग ४

बन्ध	सा.	सा.	अ.	अ.
उ.	सा.	अ.	सा.	अ.
स.	२	२	२	२

सयोगी पर्यन्त भंग २

सा	सा
सा	अ.
२	२

अयोगीमें भंग ४

०	०	०	०
सा	अ.	सा	अ.
२	२	सा	अ.

आगे गोत्रका कथन करते हैं—

जहाँ दोनों गोत्रोंके बन्धकी सम्भावना है वहाँ उच्च और नीचमें-से एकका ही बन्ध और उदय होता है। सत्त्व अयोगी के द्विचरम पर्यन्त दोनोंका है। अन्त समयमें उच्चका ही सत्त्व है ॥६३५॥ २०

बं.	नी.	नी.	उ.	उ.	०	०
उ.	नी.	उ.	उ.	नी	उ	उ
स.	२	२	२	२	२	उ

उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद तेजस्कायिक जीवनोळं वायुकायिकजीवनोळं नीचैर्गोत्रमे सत्त्वमक्कुं। तु मत्ते शेषैकेंद्रियविकलेंद्रिय सकलेंद्रियंगळोळु नीचैर्गोत्र सत्त्वमुमुभयसत्त्वमुमक्कुमेंतेंदोडे :—

उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सेसे य वियलसयलेसु।
उप्पण्णपढमकाले णीचं एयं हवे सत्तं ॥६३७॥

उच्चोद्वेल्लिततेजोवायू शेषैकविकलसकलेषूत्पन्न प्रथमकाले नीचमेकं भवेत्सत्त्वं ॥

उच्चैर्गोत्रमनुद्वेल्लनमं माडिद तेजोवायुकायिकजीवंगळु शेषैकेंद्रियविकलेंद्रिय सकलेंद्रिय जीवंगळोळु जनियिसिद प्रथमकालमंतम्मुंहूर्त्तपर्य्यंतं नीचैर्गोत्रमेकमे सत्वमक्कु-। मल्लिदं मेले उच्चैर्गोत्रमं कट्टिदोडुभयसत्त्वमक्कुमेंबुदत्थं- । मी भंगंगळं गुणस्थानदोळु योजिसिदपरु :—

मिच्छादिगोदभंगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु।
एक्केक्का जोगिजिणे दो भंगा होंति णियमेण ॥६३८॥

मिथ्यादृष्ट्यादिगोत्रभंगाः पंचचतुस्त्रिषु द्वावष्टस्थानेष्वेकैके योगिजिने द्वौ भंगौ भवतो नियमेन ॥

नीचबंधनीचोदयोभयसत्त्व १। नीचबंधोच्चोदयोभयसत्त्व १। उच्चबंधोच्चोदयोभयसत्त्व १। उच्चबंधनीचोदयोभयसत्त्व १। नीचबंधनीचोदयनीचसत्त्व १-। मितु मिथ्यादृष्टियोळु पंचगोत्र भंगंगळप्पुवु। सासादननोळमी पेळ्द मिथ्यादृष्टिय पंचभंगंगळोळु चरमभंगमं बिट्टु शेष-

---

उच्चोद्वेल्लिततेजोवाय्वोस्तु सत्त्वं नीचमेव स्यात्। तु-पुनः शेषैकविकलसकलेन्द्रियेषु सत्त्वं नीचं चोभयं च स्यात् ॥६३६॥ तद्यथा—

उच्चोद्वेल्लिततेजोवाय्वोस्तदागतशेषैकविकलेन्द्रियेषूत्पन्नप्रथमकालान्तमुहूर्ते चैकं नीचमेव सत्त्वं स्यात्। उपर्युच्चं बध्नाति तदोभयसत्त्वं स्यादित्यर्थः ॥६३७॥

गोत्रस्य भंगाः गुणस्थानेषु नियमेन मिथ्यादृष्टौ नीचबन्धोदयोभयसत्त्वं। नीचबन्धोच्चोदयोभयसत्त्वं, उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं, उच्चबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं नीचबन्धोदयसत्त्वं चेति पंच भवन्ति। सासादने चरमो

जिनके उच्चगोत्रकी उद्वेलना हुई है उन तेजकाय, वायुकायमें नीच गोत्रका ही सत्त्व है। शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रियके सत्त्व नीचका अथवा दोनोंका है ॥६३६॥

उच्चगोत्रकी उद्वेलना करनेवाले तेजकाय, वायुकायमें एक नीच गोत्रका ही सत्त्व है। वे मरकर जहाँ उत्पन्न होते हैं उन एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें एक नीचका ही सत्त्व होता है। आगे उच्चको बाँधनेपर दोनोंका सत्त्व होता है ॥६३७॥

नियमसे गुणस्थानोंमें गोत्रके भंग इस प्रकार हैं—

मिथ्यादृष्टिमें नीचका बन्ध, नीचका उदय, दोनोंका सत्त्व, १ नीचका बन्ध, उच्चका उदय, सत्त्व दोनोंका २, उच्चका बन्ध, उच्चका उदय, सत्त्व दोनोंका ३, उच्चका बन्ध, नीचका उदय, सत्त्व दोनोंका ४, अथवा नीचका ही बन्ध उदय सत्त्व ५, इस तरह पाँच भंग हैं। सासादनमें नीचका बन्ध उदय सत्त्वरूप अन्तिम भंग नहीं है, क्योंकि सासादन

चतुर्भंगंगळप्पुवें तेंदोडे सासादनं तेजोवायुंगळोळु पुट्टदुवुदुमिल्लुच्चैर्गोत्रोद्वेल्लनमुं घटियिसु-दिल्लप्पुदरिंदं। मिश्रासंयतदेशसंयतरुगळोळु द्विभंगंगळप्पुववाउदें दोडे उच्चबंधोच्चोदयोभयसत्त्व १। उच्चबंधनीचोदयोभयसत्त्व १। यितु द्विभंगंगळक्कुं। प्रमत्तसंयतं मोदल्गोंडु सयोगकेवलि चरमसमयपर्य्यंतमेंदु गुणस्थानंगळोळु उच्चबंधोच्चोदयोभयसत्त्वं ओंदे भंगमक्कुमदें तेंदोडे सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतमुच्चबंधोच्चोदयोभयसत्त्वमिल्लं मेले सयोगिपर्य्यंतमुच्चोदयोभयसत्त्वमुमेंदितु अयोगिकेवलिगुणस्थानदोळु उपरतबंधरप्पुदरिंदं उच्चोदयोभयसत्त्व-१। उच्चोदयोच्चसत्त्वमितेरडु भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ	क्षी	स	अ
३	४	२	२	२	१	१	१	१	१	१	१	१	२

अनंतरमायुष्यक्के त्रयोदश गाथासूत्रं गळिदं पेळदपरु :—

सुरणिरया णरतिरियं छम्मासवसिट्ठगे सगाउस्स ।
णरतिरि । सव्वाउं तिभागसेसम्मि उक्कस्सा ॥६३९॥

सुरनारका नरतिर्य्यंचौ षण्मासावशिष्टे स्वकायुष्ये। नरतिर्य्यंचः सर्व्वायूंषि त्रिभागशेषे उत्कृष्टात् ॥

नेति चत्वारः तस्य तेजोद्वयेऽनुत्पत्तेरुच्चानुद्वेल्लनात्। मिश्रादित्रये उच्चबन्धोदयोभयसत्त्वं उच्चबन्धनीचोदयोभयसत्त्वं चेति द्वौ द्वौ। प्रमत्तादिसूक्ष्मसाम्परायान्तमुच्चबन्धोदयोभयसत्त्वमित्येकः। उपरि सयोगान्तमुच्चोदयोभयसत्त्वमित्येकः। अयोगिजिने उच्चोदयोभयसत्त्वं उच्चोदयसत्त्वं चेति द्वौ ॥६३८॥ अथायुषस्त्रयोदशगाथासूत्रैराह—

मरकर तेजकाय, वायुकायमें उत्पन्न नहीं होता और न वहाँ उच्चगोत्रकी उद्वेलना ही होती है। अतः चार ही भंग होते हैं। मिश्र आदि तीनमें उच्चका बन्ध, उच्चका उदय, दोनोंका सत्त्व अथवा उच्चका बन्ध, नीचका उदय, दोनोंका सत्त्व ये दो-दो भंग हैं। प्रमत्तसे सूक्ष्मसाम्पराय पर्यन्त उच्चका बन्ध, उच्चका उदय, दोनोंका सत्त्व यह एक ही भंग है। ऊपर सयोगी पर्यन्त बन्धका अभाव है अतः उच्चका उदय, सत्त्व दोनोंका ऐसा एक ही भंग है। अयोगीमें उच्चका उदय, दोनोंका सत्त्व और उच्चका ही उदय सत्त्व ये दो भंग हैं ॥६३८॥

गुणस्थानोंमें गोत्रकर्मके भंगका यन्त्र

	मिथ्यादृष्टि					सासादन				मिश्रा. तीन		प्रमत्तसे सू.	सयो.	अयोगी	
ब.	नी.	नी.	उ	उ	नी.	नी.	नी.	उ	उ	उ	उ	उ	०	०	०
उ.	नी.	उ.	उ	नी.	नी	नी.	उ.	उ	नी.	उ	नी.	उ	उ	उ	उ
स.	२	२	२	२	नी	२	२	२	२	२	२	२	२	२	उ

आयुके भंग तेरह गाथाओंसे कहते हैं—

सुररुं नारकरुमुत्कृष्टदिंदं स्वभुज्यमानायुष्यं षण्मासावशिष्टमागुत्तं विरलु परभवायुष्यंगळं नरतिर्य्यंगायुष्यंगळं कट्टुवरु। नररुं तिर्य्यंचरुं भुज्यमानायुष्यमुत्कृष्टदिंदं त्रिभागशेषमागुत्तं विरलु परभवायुष्यंगळ नाल्कुमं कट्टुवरु। सर्व्वायुष्यंगळुं बंधयोग्यंगळप्पुवें बुदत्थं।

भोगभुमा देवाउं छम्मासवट्ठिगे पबद्धंति।
इगिविगला णरतिरियं तेउदुगा सत्तमा तिरियं ॥६४०॥

भोगभौमा देवायुः षण्मासावशिष्टे प्रबध्नंति। एकविकलाः नरतिर्य्यक् तेजोद्वितयाः सप्तमास्तिर्य्यक् ॥

भोगभूमरुत्कृष्टदिदं भुज्यमानायुः षण्मासावशिष्टमादागळु देवायुष्यमनों दने कट्टुवरु। एकेंद्रियंगळु विकलेंद्रियंगळुं नरतिर्य्यंगायुष्यमं कट्टुवरु। तेजस्कायिकंगळुं वायुकायिकंगळुं सप्तमपृथ्विजरुं तिर्य्यगायुष्यमने कट्टुवरु॥ इंतायुर्ब्बंधप्रकारं पेळल्पट्टुदनंतरमुदयसत्वप्रकारंगळं पेळ्दपरु :—

सगसगगदीणमाऊ उदेदि बंधे उदिण्णगेण समं।
दो सत्ता हु अबंधे एक्कं उदयागदं सत्तं ॥६४१॥

स्वस्वगतीनामायुरुदेति बंधे उदीर्णकेन समं। द्वे सत्वे खल्वबंधे एकमुदयागतं सत्त्वं ॥

नारकतिर्य्यग्मनुष्यदिविजरुगळगे स्वस्वगतिगळायुष्यमे नियमदिंदमुदयिसुगुं। परभवायुर्ब्बंधमागुत्तं विरलु उदयागतायुष्यसहितमागि आयुर्द्वितयं सत्त्वमक्कुं। परभवायुर्ब्बंधमिल्लदिरुत्तिरलु उदयागतमायुष्यमों दे सत्वमक्कुं—

परभवायुः स्वभुज्यमानायुष्युत्कृष्टेन षण्मासेऽवशिष्टे देवनारका नारं तैरश्चं च बध्नन्ति तद्बन्धे योग्याः स्युरित्यर्थः। नरतिर्यंचस्त्रिभागेऽवशिष्टे चत्वारि। भोगभूमिजाः षण्मासेऽवशिष्टे दैवं, एकविकलेन्द्रिया नारं तैरश्चं च। तेजोवायवः सप्तमपृथ्वीजाश्च तैरश्चमेव ।६३९-६४०॥ एवमायुर्बन्धस्य प्रकारमुक्त्वोदय-सत्त्वयोराह—

नारकादीनामेकं स्वस्वगत्यायुरेवोदेति सत्त्वं परभवायुर्बन्धे खलूदयागतेन समं द्वे स्तः। अबद्धायुष्ये सत्त्वमेकमुदयागतमेव ॥६४१॥

जिस आयुको वर्तमानमें भोगते हैं उस भुज्यमान आयुके उत्कृष्टसे छह मास शेष रहनेपर देव और नारकी परभव सम्बन्धी मनुष्यायु या तिर्यंचायुको बाँधते हैं अर्थात् उस कालमें उस आयुको बाँधनेके योग्य होते हैं। मनुष्य और तिर्यंच भुज्यमान आयुका तीसरा भाग शेष रहनेपर चारों आयुको बाँधते हैं। भोगभूमिया छह मास शेष रहनेपर देवायुको ही बाँधते हैं। एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय मनुष्यायु या तिर्यंचायुको ही बाँधते हैं। तेजकायिक वायुकायिक और सातवें नरकके नारकी तिर्यंचायुको ही बाँधते हैं ॥६३९-६४०॥

इस प्रकार आयुबन्धके प्रकारको कहकर उदय और सत्त्वको कहते हैं—

नारकी आदिके अपनी-अपनी गति सम्बन्धी ही एक आयुका उदय होता है। सत्त्व परभवकी आयुका बन्ध होनेपर उदयागत आयुके साथ दोका होता है। एक जो भोग रहे हैं और एक जो बाँधी है। किन्तु जिसने परभवकी आयु नहीं बाँधी है उसके एक भुज्यमान आयुका ही सत्त्व होता है ॥६४१॥

एक्के एक्कं आऊ एक्कभवे बंधमेदि जोग्गपदे ।
अडवारं वा तत्थवि तिभागसेसेव सव्वत्थ ॥६४२॥

एकस्मिन्नेकमायुरेकभवे बंधमेति योग्यपदे । अष्टवारान्वा तत्रापि त्रिभागावशेष एव सर्व्वत्र ॥

एकस्मिन् एकजीवनोळु एकमायुः ओंदायुष्यं एकभवे ओंदु भवदोळु योग्यपदे बंधयोग्य- ५
कालंगळोळ अष्टवारान्वा एंटु वारंगळनुमेणु बंधमेति बंधमनेय्दुगुं । तत्रापि आ बंधयोग्यस्थान कंगळ्ंटरोळु सर्व्वत्र एल्लेडेयोळं त्रिभागशेषे एव त्रिभागशेषमागुत्तं विरले बंधमनेय्दुगुं ॥

इगिवारं वज्जित्ता वड्ढी हाणी अवट्ठिदं होदि ।
ओवट्टणघादो पुण परिणामवसेण जीवाणं ॥६४३॥

एकवारं वर्ज्जयित्वा वृद्धिहान्यवस्थितं भवति । अपवर्त्तनघातं पुनः परिणामवशेन १०
जीवानां ॥

एकवारं वर्ज्जयित्वा प्रथमापकर्षणायुर्ब्बंधमं वर्ज्जिसि शेषापकर्षणंगळोळु वृद्धिहान्यवस्थितं भवति बध्यमानायुष्यक्के वृद्धिहान्यवस्थितमक्कु-। मदें तेंदोडे ओव्वंजीवं प्रथमापकर्षणदोळे- सागरोपमायुः स्थितियं कट्टिवातं द्वितीयवारदोळा स्थितियं नोडलधिकमं मेणु हीनमं मेणवस्थितमं कट्टुगुमप्पुदरिंदमल्लि द्वितीयवारदोळु पूर्व्वमं नोडलधिकमं कट्टिदनादोडा द्वितीयदोळु कट्टिद १५
कस्थितिये प्रधानमक्कुं । पूर्व्वहीनस्थितियप्रधानमक्कुं । द्वितीयादिस्थितियं नोडलु प्रथमवारं कट्टिद स्थितियधिकमादोडे द्वितीयादिवारंगळ हीनस्थितियप्रधानमक्कुमेंदरियल्पडुगुं । पुनः मत्तमायुर्ब्बंधकनप्प जीवन परिणामद वशदिंदं बंधमाद परभवायुष्यक्कपवर्त्तनघातमक्कुमपवर्त्तन-घातमेंतेंदोडे बध्यमानस्यापवर्त्तनमपवर्त्तनघातः । उदीयमानस्यापवर्त्तनं कदलीघातः एंदितु

एकजीव एकमेवायुः एकभवे योग्यकालेऽष्टवारमेव बध्नाति । तत्र सर्वत्रापि त्रिभागशेष एव ॥६४२॥ २०

अपकर्षेषु मध्ये प्रथमवारं वर्जित्वा द्वितीयादिवारे बध्यमानस्यायुषो वृद्धिर्हानिरवस्थितिर्वा भवति । यदि वृद्धिस्तदा द्वितीयादिवारे बद्धाधिकस्थितेरेव प्राधान्यं । अथ हानिस्तदा पूर्वबद्धाधिकस्थितेरेव प्राधान्यं । पुनः आयुर्बन्धं कुर्वतां जीवानां परिणामवशेन बध्यमानस्यायुषोऽपवर्तनमपि भवति तदेवापवर्तनघात इत्युच्यते

एक जीव एक भवमें योग्यकालमें एक ही आयुको बाँधता है । योग्यकालमें भी आठ बार ही बाँधता है । तथा सर्वत्र तीसरा भाग शेष रहनेपर ही बाँधता है । ये त्रिभाग आठ २५
बार होते हैं इसीसे आयुबन्ध भी आठ बार कहा है ॥६४२॥

आठ अपकर्षोंमें प्रथम बारको छोड़कर द्वितीयादि बारमें प्रथम बारमें बाँधी हुई आयुकी स्थितिमें या तो वृद्धि होती है या हानि होती है या अवस्थिति रहती है । यदि वृद्धि होती है तो द्वितीय आदि बारमें बाँधी गयी अधिक स्थितिकी ही प्रधानता रहती है । यदि हानि होती है तो पहले बाँधी हुई अधिक स्थितिकी ही प्रधानता रहती है । पुनः आयुबन्ध ३०
करनेवाले जीवोंके परिणामोंके वश अपवर्तन भी होता है । अपवर्तनका अर्थ है घटना । इससे उसे अपवर्तनघात कहते हैं । उदय प्राप्त आयुके अपवर्तनको ही कदलीघात कहते हैं ।

पेळल्पट्टुदरिंदं । त्रिभागशेषमागुत्तं विरलायुर्ब्बंधमं माळ्कुमेंबेकांतमिल्लों दुं दु बंधप्रायोग्यमक्कुमेंदरियल्पडुगुं ॥

एवमबंधे बंधे उवरदबंधेवि होंति भंगा हु ।
एक्कस्सेक्कम्हि भवे एक्काउं पडि तये णियमा ॥६४४॥

एवमबंधे बंधे उपरतबंधेपि भवंति भंगाः खलु । एकस्यैकस्मिन्भवे एकायुः प्रति त्रयो नियमात् ॥

यिंती प्रकारदिंदं आयुर्ब्बंधदोळमबंधदोळमुपरतबंधदोळं स्फुटमागि भंगंगळप्पुवु । एकस्य ओंदु जीवक्के एकस्मिन् भवे ओंदु भवदोळु एकायुः प्रति ओंदायुष्यमं कुरुत्तु त्रयो भंगाः नियमात् नियमदिंदं मूरु भंगंगळप्पुवु । अंतागुत्तं विरलु त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदें तेंदोडे नरकदेवगतियोळों-दों दायुष्यक्के अबंध बंध उपरतबंधमेंब मूरुं भंगंगलागुत्तं विरलेरडायुष्यक्केनितु भंगंगळप्पुवेंदिंती त्रैराशिकदिंदं प्र १ । फ ३ । इ २ । बंध लब्धं प्रत्येकमारारु भंगंगळप्पुवु । नरक ६ । सुर ६ । तिर्य्यंग्मनुष्यगतिगळोळों दों दायुष्यंगळगे मूरु मूरु भंगंगळागुत्तं विरलु नाल्कु नाल्कायुष्यंगळगेनितेनितु भंगंगळप्पुवेंदितु त्रैराशिकं माडल्पडुत्तिरलु प्र १ । फ ३ । इ ४ । बंध लब्ध भंगंगळु तिर्य्यंग्मनुष्यगतिगळगे प्रत्येकं पन्नेरडु पन्नेरडु भंगंगळप्पुवु । ति १२ । म १२ । यिंतु नरकदेवगतिगळोळु बंधयोग्यंगळप्प तिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यंगळगं । तिर्य्यंग्मनुष्यगतिगळोळु बंधयोग्यंगळप्प नाल्कु नाल्कायुष्यंगळगं भंगसंदृष्टि रचने :—

नरकगति							तिर्य्यंग्गति														
बं	०	ति	उप	०	म	उ	०	न	उ	०	ति	उ	०	म	उ	०	दे	उ	→
उ	न	न	न	न	न	न	ति	ति	ति	ति	ति	ति	ति	ति	ति	ति	ति	ति			
स	१	२	२	१	२	२	१	२	२	१	२	२	१	२	२	१	२	२			

उदीयमानायुरपवर्तनस्यैव कदलीघातसंज्ञाभिधानात् । त्रिभागशेषे त्रिभागशेषे सत्यायुर्बध्नात्येकांतो नास्ति तत्र तत्र योग्यतास्तीति ज्ञातव्यं ॥६४३॥

एवमुक्तरीत्यायुर्बन्धे अबन्धे उपरतबन्धे च स्फुटं एकजीवस्यैकभवे एकायुः प्रति त्रयो भंगा नियमाद्भवन्ति ॥६४४॥

तथा प्रत्येक तीसरा भाग शेष रहनेपर आयुका बन्ध करता ही है ऐसा एकान्त नहीं है । तीसरा भाग शेष रहनेपर आयुबन्धकी योग्यता होती है । उस कालमें आयु बँधे, न भी बँधे । किन्तु त्रिभागके सिवाय अन्यत्र आयुबन्ध नहीं होता, यह नियम है ॥६४३॥

इस तरह पूर्वोक्त रीतिके अनुसार एक जीवके एक भवमें एक आयुके नियमसे तीन भंग (भेद) होते हैं—बन्ध, अबन्ध, उपरतबन्ध । वर्तमानमें जहाँ परभव सम्बन्धी आगामी आयुका बन्ध होता है और एक भुज्यमान तथा एक बध्यमान इस तरह दो आयु पाई जाती हैं उसे बन्ध कहते हैं । जो परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध न पहले हुआ और न वर्तमानमें हो रहा है वहाँ अबन्ध है । वहाँ एक भुज्यमान आयु ही पायी जाती है । जहाँ परभव सम्बन्धी आयुका बन्ध पूर्वमें हो चुका है, वर्तमानमें नहीं हो रहा वहाँ पूर्वबद्ध और

	मनुष्यगति												देवगति					
←	०	न	उ	०	ति	उ	०	म	उ	०	दे	उ	०	ति	उ	०	म	उ.
	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	म	दे	दे	दे	दे	दे	दे
	१	२	२	१	२	२	१	२	२	१	२	२	१	२	२	१	२	२

एक्काउस्स तिभंगा संभवआऊहि ताडिदे णाणा ।
जीवे इगि भवभंगा रूऊण गुणूणमसरिच्छे ॥६४५॥

एकायुषस्त्रिभंगाः संभवायुर्भिस्ताडिते नानाजीवे एक भव भंगा रूपोन गुणोनमसदृशे ॥

ई रचनेयोळोंदोंदायुष्यंगळगे मूरु मूरु भंगंगळप्पुदरिंदं तत्तद्गतिसंभवायुष्यंगळिंदं गुणिसुत्तं विरलु नानाजीवदोळेकभवभंगंगळ संख्येगळप्पुववरोळ सदृशभंगापेक्षेयोळु रूपोनगुणकारोन प्रमित भंगंगळप्पुवंतेंदोडे नारकरुगळगे ओंदु तिर्य्यंगायुष्यबंधक्के मूरु भंगंगळागुत्तं विरला गतियोळु बंधसंभवायुष्यंगळु तिर्य्यंग्मनुष्यायुष्यंगळेरडेयप्पुदरिंदमेरडरिंदं गुणिसिदो ३ । २ । डारु भंगंगळप्पुवु ६ । अवरोळपुनरुक्त भंगंगळेनितेंदोडे आ सर्व्वभंगंगळोळु रूपोन गुणोन ५
$\overset{\circ}{६-२}$ । प्रमितंगळप्पुवु । ५ । तिर्य्यंग्गतियोळु त्रिभंगमं संभवायुष्यंगळु नाल्करिंदं गुणिसिदोडे ३ । ४ । पन्नेरडु भंगंगळप्पुवु । १२ । मनुष्यगतियोळमंते पन्नेरडु भंगंगळप्पुववरोळु १२ । रूपोन १०
गुणोनंगळादोडे—१२ । ४ १२ । ४ तिर्य्यंग्गतियोळं मनुष्यगतियोळमसदृशभंगंगळोंभत्तु मोंभत्तुमप्पुवु । ९ । ९ ॥ देवगतियोळु त्रिभंगंगळं संभवायुष्यंगळिंदं गुणिसिदो ३ । २ । डारु भंगंगळप्पु ६ ववरोळु रूपोनगुणकार प्रमितंगळं $\overset{\circ}{२}$ । कळेदोडे पंचभंगंगळप्पुवु । ५ । संदृष्टि :—

ते एकैकायुषस्त्रयस्त्रयो भंगा विवक्षितगतौ बध्यमानत्वेन सम्भवदायुःसंख्यया गुण्यन्ते तदा नानाजीवेष्वेकैकभवभंगा भवन्ति । देवनारकगत्योः प्रत्येकं षट् । नरतिर्यग्गत्योः प्रत्येकं द्वादश द्वादशामी । असदृशेष्वपुनरुक्तेषु विवक्षितेषु रूपोनेन सम्भवदायुःसंख्यागुणकारेणोना भवन्ति । देवनारकगत्योः प्रत्येकं पंच पंच । १५

मुज्यमान दो आयुकी सत्ता है उसे उपरतबन्ध कहते हैं । इस प्रकार एक-एक आयुके तीन भंग होते हैं ॥६४४॥

इन एक-एक आयुके तीन-तीन भंगोंको विवक्षित गतिमें जितनी आगामी आयुका बन्ध सम्भव है उनकी संख्यासे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने नाना जीवोंकी अपेक्षा २०
एक-एक भव सम्बन्धी भंग होते हैं । सो देव और नरकगतिमें तिर्यंच और मनुष्य दो ही आयुका बन्ध सम्भव होनेसे दोसे तीन भंगोंको गुणा करनेपर छह-छह भंग होते हैं । मनुष्य और तिर्यञ्चगतिमें चारों आयुका बन्ध सम्भव है अतः चारसे तीन भंगोंको गुणा करनेपर बारह-बारह भंग होते हैं । असदृश अर्थात् अपुनरुक्त भंगोंकी विवक्षा होनेपर बध्यमान आयुकी संख्यारूप गुणकारमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना पूर्वोक्त भंगोंमेंसे घटानेपर २५
अपुनरुक्त भंग होते हैं । सो देवगति नरकगतिमें बध्यमान आयु दो गुणकार था उसमें एक

ना	ति	म	दे
पुन । अपु. ६ । ५	१२ । ९	१२ । ९	६ । ५

अनंतरमसदृशभंगसंख्येयळं नरकविगतिगतिगळोळु पेळ्दा भंगंगळं गुणस्थानदोळु योजिसिदपरु :—

पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु होंति मिच्छम्मि ।
णिरयाउबंधभंगेणूणा ते चेव बिदियगुणे ॥६४६॥

पंचनव नवपंचभंगा आयुश्चतुर्षु भवंति मिथ्यादृष्टौ । नरकायुर्बंधभंगेनोनास्ते चैव द्वितीय-गुणे ॥

नरतिर्यग्गत्योर्नव नव ॥६४५॥

घटानेपर एक रहा । पूर्वोक्त छह-छह भंगोंमें-से एक-एक घटानेपर पाँच-पांच अपुनरुक्त भंग होते हैं । इसी प्रकार मनुष्यगति और तिर्यञ्चगतिमें नौ-नौ भंग होते हैं ।

विशेषार्थ—नरकगतिमें बन्ध एक मनुष्यायु, सत्ता दो मनुष्यायु नरकायु, अथवा बन्ध एक तिर्यंचायु, उदय एक नरकायु, सत्ता दो नरकायु तिर्यंचायु, इस तरह दो बन्धकी अपेक्षा भंग हैं । इसी प्रकार देवगतिमें नरकायुकी जगह देवायु कहना । अबन्धकी अपेक्षा मनुष्यायु तिर्यंचायुका बन्ध न होनेसे दो भंग हैं किन्तु दोनों समान हैं क्योंकि दोनोंमें बन्धका अभाव, उदय अपनी भुज्यमान आयु, सत्ता एक अपनी भुज्यमान आयु ये दो भंग होते हैं । अतः समान होनेसे दोनोंमें एक लिया । उपरतबन्धकी अपेक्षा पूर्वमें मनुष्यायु या तिर्यंचायुका बन्ध हुआ । उसकी अपेक्षा दो-दो भंग होते हैं । दोनोंमें बन्धका अभाव, उदय एक अपनी भुज्यमान आयु, सत्ता एक भंगमें अपनी भुज्यमान आयु और मनुष्यायु, दूसरे भंगमें अपनी भुज्यमान आयु और तिर्यंचायु इस प्रकार दो भंग हुए । इस प्रकार देव और नारकियोंमें पाँच-पांच अपुनरुक्त भंग होते हैं । इसी प्रकार मनुष्यगति और तिर्यंचगतिमें बध्यमान आयुके प्रमाणरूप चार गुणकार हैं । उनमें एक घटानेपर तीन रहे । सो पूर्वोक्त बारह-बारह भंगोंमें तीन-तीन घटानेपर नौ-नौ अपुनरुक्त भंग होते हैं । उनमें आयुबन्धकी अपेक्षा नरक तिर्यंच मनुष्य देवकी आयुके बन्धरूप चार भंग हैं । उनमेंसे बन्ध तो क्रमसे नरक तिर्यंच मनुष्य देव आयुका जानना । उदय तिर्यंचगतिमें तिर्यंचायुका और मनुष्यगतिमें मनुष्यायुका जानना । सत्ता एक भुज्यमान आयु और एक बध्यमान आयु इस तरह दो-दोकी जानना । उनमें भी जो आयु भुज्यमान हुई वही बध्यमान हो तो वहाँ एक आयुकी ही सत्ता होती है । ऐसे भंग चार हैं । आयुके अबन्धमें चारों आयुका बन्ध नहीं, इस अपेक्षा चार भंग हुए । परन्तु ये चारों समान हैं; क्योंकि सबोंमें बन्धका अभाव, उदय तथा सत्ता अपनी भुज्यमान आयु एक । अतः चारोंमें-से एक लिया । उपरत बन्धका अभाव, उदय व सत्ता जैसे बन्धकी अपेक्षा कहे वैसे ही जानना । इस प्रकार चार भंग हैं । इस प्रकार मनुष्य और तिर्यंचमें नौ-नौ भंग होते हैं ॥६४५॥

अपुनरुक्तभंगंगळु नरकादिचतुर्गतिगळोळु क्रमदिंदं पंच नव नव पंच प्रमितंगळप्पुवनितुं मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु । मि । ५ । ९ । ९ । ५ । ई मिथ्यादृष्टिय भंगंगळोळु नरकायुर्ब्बंधभंगंगळं कळेदोडे आ भंगंगळु सासादननोळप्पुवु । सा ५ । ८ । ८ । ५ ॥

सव्वाउबंधभंगेणूणा मिस्सम्मि अयदसुरणिरये ।
णरतिरिये तिरियाऊ तिण्हाउगबंधभंगूणा ॥६४७॥

सर्व्वायुर्ब्बंधभंगेनोनाः मिश्रे असंयतसुरनारके नरतिरश्चि तिर्य्यगायुस्त्रितयायुर्ब्बंधभंगोनाः ॥

मिश्रगुणस्थानदोळु सर्व्वायुर्ब्बंधभंगरहित भंगंगळप्पुवु । मिश्र । ३ । ५ । ५ । ३ ॥ सुरनारकासंयतरोळं नरतिर्य्यंगसंयतरोळं क्रमदिदं तिर्य्यंगायुर्ब्बंधभंगंगळु नरतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यबंधभंगंगळु रहितमाद भंगंगळप्पुवेकेंदोडे 'उवरिमछण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा' येंदितु तिर्य्यग्मनुष्यसासादननोळे व्युच्छित्तियादुवप्पुदरिंदं । मिथ्यादृष्टियोळु नरकायुष्यं निदुदु सासादननोळु सुरनरकगतिजरोळु तिर्य्यंगायुष्यमुं तिर्य्यग्मनुष्यगतिजरुगळपेक्षेयिदं मनुष्यतिर्य्यंगायुष्यंगळुं व्युच्छित्तियादुवप्पुदरिंदं अबंधायुर्ब्भंगमोंदोंदुं तिर्य्यंगायुरूपरतभंगमोंदोंदुं मनुष्यायुर्ब्बंधोपरतभंगंगळेरडेरडुमंतु नाल्कुनाल्कु भंगंगळप्पुवु । ना । सु । असं । ४ । ० । ० ४ । तिर्य्यंग्मनुष्यासंयतनोळु अबंधायुष्य भंगमोंदोंदुं नरकायुष्योपरतभंगमोंदोंदुं तिर्य्यंगायुष्योपरतबंधभंगमोंदोंदुं मनुष्यायुष्योपरतबंधभंगमोंदोंदुं देवायुष्यबंधोपरतभंगंगळेरडेरडुमंतारारु भंगंगळप्पुवु । ० । ६ । ६ । ० । कूडि असंयतनायुस्त्रिसंयोग भंगंगळ संदृष्टि :—४ । ६ । ६ । ४ ॥

ते असदृशभंगा गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ नरकादिगतिषु क्रमेण पंच नव नव पंच भवन्ति । सासादने ते नरकायुर्बन्धभंगेनोनाः पंचाष्टाष्टपंच भवन्ति ॥६४६॥

मिश्रे ते सर्वायुर्बन्धभंगेनोनास्त्रयः पंच पंच त्रयो भवन्ति । असंयते सुरनारकयोस्तिर्यगायुर्बन्धभंगेनोनाश्चत्वारश्चत्वारः तयोस्तस्य सासादने छेदात् । नरतिरश्चोस्तु नरकतिर्यग्मनुष्यायुर्बन्धभंगेनोनाः षट् षट् तयोर्नरकायुर्बन्धस्य मिथ्यादृष्टौ, नरतिर्यगायुर्बन्धयोः सासादने च छेदात् ॥६४७॥

वे अपुनरुक्त भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें नरक आदि गतियोंमें क्रमसे पाँच नौ-नौ पाँच जानना । दूसरे सासादन गुणस्थानमें मनुष्य तिर्यंचमें आयुबन्धकी अपेक्षा जो चार भंग कहे थे उनमेंसे नरकायुका बन्धरूप भंग न होनेसे नरकादि गतिमें क्रमसे पाँच आठ-आठ पांच भंग होते हैं ॥६४६॥

मिश्र गुणस्थानमें जो आयुबन्धकी अपेक्षा भंग कहे थे वे सब घटानेपर नरकादि गतियोंमें क्रमसे तीन, पाँच, पाँच, तीन भंग होते हैं । असंयतमें देवगति नरकगतिमें आयुबन्धकी अपेक्षा तिर्यंचायुका बन्धरूप भंग नहीं है अतः चार भंग हैं क्योंकि तिर्यञ्चायुकी बन्धव्युच्छित्ति सासादनमें हो जाती है । तथा मनुष्यगति तिर्यंचगतिमें आयुबन्धकी अपेक्षा नरक तिर्यंच मनुष्यायुके बन्धरूप तीन भंग नहीं हैं । अतः छह-छह

देसणरे तिरिये तिय तिय भंगा होंति छट्ठसत्तमगे ।
तियभंगा उवसमगे दो दो खवगेसु एक्केक्को ॥६४८॥

देशसंयतनरे तिरश्चि त्रयः त्रयो भंगा भवंति षष्ठे सप्तमे । त्रि त्रि भंगा उपशमकेषु द्वौ द्वौ क्षपकेष्वेकैको भंगः ॥

मनुष्यदेशसंयतनोळु अबंधायुब्भंगमो दुं देवायुब्बंधोपरतभंगद्वयमुमंतु त्रिभंगंगळप्पुवु । म । देश । ० । ० । ३ । ० । तिर्य्यंच देशसंयतनोळु अबंधायुब्भंगमो दुं देवायुब्बंधोपरतभंगद्वयमुमंतु त्रिभंगंगळप्पुवु । ति । देश । ० । ३ । ० । ० । कूडि देशसंयतंगे । दे । ० । ३ । ३ । ० ॥ षष्ठनोळं सप्तमनोळं देवायुरबंध बंधोपरतमेंब मूरु मूरुं भंगंगळप्पुवु । प्र । ० । ० । ३ । ० । अ प्र । ० । ० । ३ । ० । उपशमकरोळु प्रत्येकं देवायुरबंधोपरतबंधभेददेरडेरडुं भंगंगळप्पुवु । अ । अ । सू । उ । ० । ० । २ । ० ॥ क्षपकरोळु देवायुरबंधभंगमेकैकमेयक्कुं । क्षप । अ । अ । सू । क्षी । ० । ० । १ । ० । सर्व्वं संदृष्टि :— मि । ५ । ९ । ९ । ५ । सा । ५ । ८ । ८ । ५ । मि । ३ । ५ । ५ । ३ । अ । ४ । ६ । ६ । ४ । दे । ० । ३ । ३ । ० । प्र । ० । ० । ३ । ० । अ । ० । ० । ३ । ० । अ । उ । ० । ० । २ । ० । क्ष । ० । ० । १ । ० । अनि उ । ० । ० । २ । ० । क्ष । ० । ० । १ । ० । सू । उ । ० । ० । २ । ० ॥ क्ष । ० । ० । १ । ० । उप । ० । ० । २ । ० ॥ क्षी । ० । ० । १ । ० ॥ सयो । ० । ० । १ । ० ॥ अयो । ० । ० । १ । ० ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु सर्व्वायुब्भंगयुतियं पेळ्दपरु :—

अड छव्वीसं सोलस वीसं छत्तिगतिगं च चदुसु दुगं ।
असरिस भंगा तत्तो अजोगिअंतेसु एक्केक्को ॥६४९॥

अष्ट षड्विंशतिः षोडश विंशतिः षट्त्रिकत्रिकं च चतुर्षु द्विकं । असदृशभंगास्ततोऽयोग्यंतेष्वेकैकः ॥ .

देशसंयते तिर्यग्मनुष्ययोरेव देवायुरबन्धबन्धोपरतबन्धभंगास्त्रयस्त्रयः । षष्ठे सप्तमे च त एव त्रयस्त्रयः उपशमकेषु देवायुरबन्धोपरतबन्धौ द्वौ द्वौ । क्षपकेष्वायुरबन्धभंग एकैकः ॥६४८॥ अथ गुणस्थानेषु सर्वायुर्बन्धभंगयुतिमाह—

भंग हैं । क्योंकि नरकायुके बन्धका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें और मनुष्यायु तिर्यंचायुके बन्धका सासादनमें ही व्युच्छेद हो जाता है ॥६४७॥

देशसंयतमें तिर्यंच और मनुष्योंमें देवायुके अबन्ध, बन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा तीन-तीन भंग होते हैं । छठे और सातवें गुणस्थानमें मनुष्यगतिमें देवायुके ही बन्ध अबन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा तीन-तीन भंग होते हैं । उपशमश्रेणिमें देवायुका बन्ध भी नहीं है । अतः देवायुके अबन्ध और उपरतबन्धकी अपेक्षा दो-दो भंग हैं । क्षपकश्रेणिमें उपरतबन्ध भी नहीं है । अतः अबन्धकी अपेक्षा एक-एक ही भंग है ॥६४८॥

आगे गुणस्थानोंमें सब आयुबन्धके भंगोंका जोड़ कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळोळु क्रमदिंदमष्टाविंशतियुं षड्विंशतियुमप्पुवु । मिश्रनोळु षोडश प्रमितंगळुमप्पुवु । असंयतनोळु विंशति भंगंगळप्पुवु । देशसंयतनोळु षड्भंगंगळप्पुवु । प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु प्रत्येकं मूरु मूरु भंगंग ळप्पुवु । उपशमकचतुष्टयदोळु प्रत्येकमेरडेरडु भंगंगळप्पुवु । ई भंगंगळिनितुमसदृशभंगंगळेयप्पुवु । मेलेल्लेडेयोळमेकैकभंगमेयक्कुं । संदृष्टि— मि २८ । सा २६ । मि १६ । अ २० । दे ६ । प्र ३ । अ ३ । अ २ । १ । अ २ । १ । सू १ । १ । उ २ । क्षी १ । स १ । अ । १ ॥

अनंतरं वेदनीयगोत्रायुष्कम्मंगळ मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु सर्व्वभंगयुतियं पेळ्दपरु :

बादालं पणुवीसं सोलस अधियं सयं च वेयणिये ।
गोदे आउम्मि हवे मिच्छादिअजोगिणो भंगा ॥६५०॥

द्विचत्वारिंशत्पंचविंशतिः षोडशाधिकशतं च वेदनीये । गोत्रें आयुषि भवेत् मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगिनां भंगाः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादियागि अयोगिकेवलि गुणस्थानावसानमाद सर्व्वगुणस्थानंगळोळु वेदनीयत्रिसंयोग भंगंगळु द्विचत्वारिंशत्प्रमितंगळप्पुवु । ४२ । गोत्रदोळु पंचविंशतिप्रमितंगळप्पुवु । गो २५ । आयुष्यदोळु षोडशाधिक शतप्रमितंगळप्पुवु । आ । ११६ ॥

अनंतरं पूर्व्वोक्तवेदनीयगोत्रायुष्यंगळ सामान्यमूल भंगंगळ संख्येयं पेळ्दपरु :—

वेयणिये अडभंगा गोदे सत्तेव होंति भंगा हु ।
पण णव णव पण भंगा आउचउक्केसु विसरिच्छा ॥६५१॥

वेदनीयेऽष्टभंगा गोत्रे सप्तैव भवंति भंगाः खलु । पंच नव नव पंच भंगाः आयुश्चतुर्षु विसदृशाः ॥

मिलित्वा असदृशभंगा मिथ्यादृष्टावष्टाविंशतिः । सासादने षड्विंशतिः, मिश्रे षोडश । असंयते विंशतिः । देशसंयते षट् । प्रमत्ताप्रमत्तयोस्त्रयस्त्रयः । उपशमकेषु द्वौ द्वौ । क्षपकेष्वेकैकः ॥६४९॥ अथ वेदनीयगोत्रायुषां मिथ्यादृष्ट्यादिसर्वभंगयुतिमाह—

प्राग्मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगांतेषूक्तास्ते भंगा वेदनीये द्वाचत्वारिंशत् । गोत्रे पंचविंशतिः । आयुषि षोडशाग्रशतं ॥६५०॥ अथ पूर्वोक्तानां वेदनीयगोत्रायुःसामान्यमूलभंगानां संख्यां कथयति—

मिलकर अपुनरुक्त भंग मिथ्यादृष्टिमें अठाईस, सासादनमें छब्बीस, मिश्रमें सोलह, असंयतमें बीस, देशसंयतमें छह, प्रमत्त और अप्रमत्तमें तीन-तीन, उपशमश्रेणिके गुणस्थानोंमें दो-दो और क्षपकश्रेणिके गुणस्थानोंमें अयोगी पर्यन्त एक-एक भंग होता है ॥६४९॥

आगे वेदनीय गोत्र और आयुके मिथ्यादृष्टि आदि सब गुणस्थानोंमें सब भंगोंका जोड़ कहते हैं—

पूर्वमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगी पर्यन्त गुणस्थानोंमें जो भंग कहे हैं उनका जोड़ देनेपर वेदनीयके बयालीस, गोत्रके पच्चीस और आयुके एक सौ सोलह भंग होते हैं ॥६५०॥

आगे पूर्वमें कहे वेदनीय गोत्र आयुके सामान्यसे मूल भंगोंकी संख्या कहते हैं—

वेदनीयदोळ्दुं ८। गोत्रदोळ् ७। आयुष्यदोळु विसदृशभंगंगळु नाल्कुं गतिगळायुष्यंगळु नाल्करोळं क्रमदिदं पंच नव नव पंच भंगंगळप्पुवु ॥

अनंतरं मोहनीयत्रिसंयोगभंगंगळं पेळ्दपरु :—

मोहस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु ।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६५२॥

मोहस्य च बंधोदयसत्त्वस्थानानां सर्व्वभंगाः खलु प्रत्येकोक्तवद्भवेत् त्रिसंयोगेपि सर्व्वत्र ॥

मोहनीयकर्म्मक्केयुं बंधोदयसत्त्वस्थानंगळ सर्व्व भंगंगळु त्रिसंयोगदोळं सर्व्वत्र प्रत्येक बंधोदयसत्त्वस्थानंगळोळु पेळ्दंते भंगंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु गुणस्थानदोळु बंधोदयसत्त्वस्थान संख्येयं पेळ्दपरु :—

अट्ठसु एक्को बंधो उदया चदुतिदुसु चउसु चत्तारि ।
तिण्णि य कमसो सत्तं तिण्णेगदु चउसु पणगतियं ॥६५३॥

अष्टस्वेको बंधः उदयाश्चत्वारस्त्रयो द्वयोश्चतुर्षु चत्वारस्त्रयश्च क्रमशः सत्वं त्रीण्येकं द्वेचतुर्षु पंचत्रिकं ॥

अणियट्टी बंधतियं पण दुग एक्कारसुहुमउदयंसा ।
इगि चत्तारि य संते सत्तं तिण्णेव मोहस्स ॥६५४॥

अनिवृत्तेर्बंधत्रयं पंच द्विकैकादशसूक्ष्मोदयांशाः । एकं चत्वारश्च शांते सत्वं त्रीण्येव मोहस्य ॥

तेषु खलु विसदृशभंगा वेदनीयेऽष्टौ भवन्ति । गोत्रे सप्त, चतुष्कायुस्सु क्रमेण पंच नव नव पंच ॥६५१॥

अथ मोहनीयत्रिसंयोगभंगानाह—

मोहनीयस्य बन्धोदयसत्त्वस्थानसर्वभंगाः खलु त्रिसंयोगेऽपि सर्वत्र प्रत्येकोक्तवद्भवन्ति ॥६५२॥

अथ गुणस्थानेषु स्थानसंख्यामाह—

उन पूर्वोक्त भंगोंमें अपुनरुक्त मूल भंग वेदनीयमें आठ, गोत्रमें सात, चारों आयुमें क्रमसे पाँच, नौ-नौ पाँच होते हैं ॥६५१॥

अब मोहनीयके त्रिसंयोगी भंग कहते हैं—

मोहनीयके बन्ध-उदय-सत्त्व स्थानोंमें सब भंग जैसे पहले पृथक् बन्ध उदय-सत्त्वका कथन करते हुए कहे थे, वैसे ही बन्ध-उदय-सत्त्वके संयोगरूप त्रिसंयोगमें भी होते हैं ॥६५२॥

आगे गुणस्थानोंमें मोहनीयके स्थानोंकी संख्या कहते हैं—

मिथ्यादृष्टियादियागि अपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतमें दुं गुणस्थानंगळोळेकैकबंधस्थानमक्कु-मुदयस्थानंगळु क्रमदिंदमा यें दुं गुणस्थानंगळोळु नाल्कुमेरडेडेयोळु मूरु मूरुं नाल्केडेयोळु नाल्कु नाल्कुमों बेडेयोळु मूरुमप्पुवु। सत्त्वस्थानंगळु क्रमदिंदं मूरुमों दुमेरडुं नाल्केडेयोळप्पुमप्पु गळप्पुवु। ओं बेडेयोळु मूरु सत्त्वस्थानंगळप्पुवु। अनिवृत्तिकरणन बंधोदयसत्त्वंगळु क्रमदिंदं पंचकमुं द्विकमुमेकादश स्थानंगळप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायनोळुदयसत्त्वंगळु क्रमदिंदमेकस्थानमुं चतुः-स्थानंगळुमप्पुवु। उपशांतकषायनोळु सत्त्वस्थानंगळे मूरप्पुवु। संदृष्टि :—

	मि	सा	मि	अ	दे	प्र	अ	अ	अ	सू	उ
बं	१	१	१	१	१	१	१	१	५	०	०
उ	४	३	३	४	४	४	४	३	२	१	०
स	३	१	२	५	५	५	५	३	११	४	३

अनंतरमो गुणस्थानंगळोळु पेळ्व बंधोदय सत्त्वंगळुमवावुवें दोडे पेळ्दपरु :—

बावीसं दसयचऊ अडवीसतियं च मिच्छबंधादी ।
इगिवीसं णवयतियं अट्ठवीसे च बिदियगुणे ॥६५५॥

द्वाविंशतिर्द्दशादि चत्वारि अष्टाविंशतित्रयं मिथ्यादृष्टिबंधादीनि एकविंशतिन्नंवकत्रिकमष्टा-विंशतिरेव द्वितीयगुणे ॥

मिथ्यादृष्टियोळु द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमों दे बंधमक्कुं। उदयस्थानंगळु दशादि चतुः-स्थानंगळप्पुवु। सत्त्वस्थानंगळुमष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळप्पुवु। मि बं २२। उ १०। ९। ८। ७॥ स २८। २७। २६। उ ७। स २८॥ सासादनंगे एकविंशतिप्रकृतिबंधस्थानमों देयक्कु-

---

तत्राद्येष्वष्टसु बन्धस्थानान्येकैकं। उदयस्थानान्याद्ये चत्वारि। द्वयोस्त्रीणि त्रीणि, चतुर्षु चत्वारि चत्वारि। एकस्मिंस्त्रीणि भवन्ति। सत्त्वस्थानानि क्रमेण त्रीण्येकं द्वे चतुर्षु पंच पंच, एकस्मिंस्त्रीणि भवन्ति। अनिवृत्तिकरणे बन्धादित्रयस्थानानि पंच द्वे एकादश। सूक्ष्मसाम्पराये उदयस्थानमेकं सत्त्वस्थानानि चत्वारि। उपशान्तकषाये सत्त्वस्थानान्येव त्रीणि ॥६५३-६५४॥ तानि कानीति चेदाह—

मिथ्यादृष्टौ बन्धस्थानं द्वाविंशतिकं। उदयस्थानानि दशकादीनि चत्वारि। सत्त्वस्थानान्यष्टाविंशति-

---

पहले जो मोहनीयके बन्धस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थान कहे थे उनमेंसे आदिके आठ गुणस्थानोंमें बन्धस्थान एक-एक है। उदयस्थान आदिके गुणस्थानोंमें चार, उससे ऊपर दोमें तीन-तीन, चारमें चार-चार एकमें तीन होते हैं। सत्त्वस्थान क्रमसे मिथ्यादृष्टिमें तीन, सासादनमें एक, मिश्रमें दो, ऊपर चार गुणस्थानोंमें पाँच-पाँच और एकमें तीन होते हैं। अनिवृत्तिकरणमें बँध उदय सत्त्वस्थान क्रमसे पाँच दो ग्यारह होते हैं। सूक्ष्म साम्प-रायमें उदयस्थान एक, सत्त्वस्थान चार हैं। उपशान्त कषायमें सत्त्वस्थान तीन हैं। बन्ध और उदयस्थान नहीं हैं ॥६५३-६५४॥

वे स्थान कौन हैं ? यह कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें बन्धस्थान एक बाईसका है। उदयस्थान दस आदि चार हैं। सत्त्व-

मुदयस्थानंगळु नवादित्रिस्थानंगळप्पुवु । सत्त्वस्थानंगळु अष्टाविंशतिस्थानमो देयक्कुं । सा । बं २१ । उ ९ । ८ । ७ । स २८ ॥

सत्तरसं णवयतियं अडचउवीसं पुणोवि सत्तरसं ।
णवचउ अडचउवीस य तिवीसतियमंसयं चउसु ॥६५६॥

सप्तदश नव त्रयमष्ट चतुर्विंशतिः पुनरपि सप्तदश नव चतुरष्ट चतुर्विंशतिश्च त्रयोविंशति-त्रयमंशकं चतुर्षु ॥

मिश्रगुणस्थानदोळु सप्तदशप्रकृतिबंधस्थानमो देयक्कु । मुदयस्थानंगळुनवादित्रयमक्कुं । सत्त्वस्थानंगळुमष्टाविंशतियुं चतुर्विंशतिस्थानमुमप्पुवु । मिश्र बं । १७ । उ । ९ । ८ । ७ । स । २८ । २४ । असंयतनोळु पुनरपि सप्तदशप्रकृतिबंधस्थानमो देयक्कु । मुदयस्थानंगळु नवादि चतुःस्थानंगळक्कुं । सत्त्वस्थानंगळुमष्ट चतुर्विंशतिगळुं त्रयोविंशतित्रयमुमक्कुं । असं । बं १७ । उ । ९ । ८ । ७ । ६ । स । २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ ई सत्त्वस्थानंगळप्पुवु मुंदे अप्रमत्त-पर्य्यंतमप्पुवु ॥

तेरट्ठचऊ देसे पमदिदरे णव सगादिचत्तारि ।
तो णवगं छादितियं अडचउरिगिवीसयंच बंधतियं ॥६५७॥

त्रयोदशाष्टचत्वारि देशसंयते प्रमत्तेतरयोर्न्नव सप्तादि चत्वारि ततो नवकं षडादित्रिकमष्ट चतुर्विंशतिरेकविंशतिश्च बंधत्रिकं ॥

देशसंयतनोळु त्रयोदशबंधस्थानमो देयक्कु- मुदयस्थानंगळुमष्टादि चतुःस्थानंगळप्पुवु । सत्त्वस्थानंगळु असंयतनोळु पेळ्द पंचस्थानंगळप्पुवु । दे । बं १३ । ऊ ८ । ७ । ६ । ५ । स २८ । २४ । २३ । २२ । २१ । प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळोळु नव नव प्रकृतिबंधस्थानंगळो दो देयप्पुवु ।

कादीनि त्रीणि । सासादने बन्धस्थानमेकविंशतिकं । उदयस्थानानि नवकादीनि त्रीणि । सत्त्वस्थानमष्टा-विंशतिकमेव ॥६५५॥

मिश्रे बन्धस्थानं सप्तदशकं । उदयस्थानानि नवकादीनि त्रीणि । सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे । असंयते पुनः बन्धस्थानं सप्तदशकं । उदयस्थानानि नवकादीनि चत्वारि । सत्त्वस्थानान्यष्टचतुर्दशविंशतिके द्वे, त्रयोविंशतिकादित्रयं च । इमान्येव पंचाप्रमत्तांतं ज्ञेयानि ॥६५६॥

देशसंयते बन्धस्थानं त्रयोदशकं । उदयस्थानान्यष्टकादीनि चत्वारि । प्रमत्ताप्रमत्तयोर्बंधस्थानं नवकं ।

स्थान अठाईस आदि तीन हैं । सासादनमें बन्धस्थान एक इक्कीसका ही है । उदयस्थान नौ आदि तीन हैं । सत्त्वस्थान अठाईसका ही है ॥६५५॥

मिश्रमें बन्धस्थान एक सतरहका ही है । उदयस्थान नौ आदि तीन हैं । सत्त्वस्थान अठाईस और चौबीस दो हैं । असंयतमें बन्धस्थान सतरहका एक ही है । उदयस्थान नौ आदि चार हैं । सत्त्वस्थान अठाईस चौबीस दो, और तेईस आदि तीन, इस तरह पाँच हैं । ये ही पाँच सत्त्वस्थान अप्रमत्त पर्यन्त जानना ॥६५६॥

देशसंयतमें बन्धस्थान तेरहका एक ही है । उदयस्थान आठ आदि चार हैं । सत्त्व-

उदयस्थानंगळु सप्तादि चतुःस्थानंगळु प्रत्येकमप्पुवु । सत्वस्थानंगळु पूर्वोक्तासंयतन पंच पंच स्थानं गळप्पुवु । प्र । बं ९ । उ ७ । ६ । ५ । ४ । स २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ अप्र बं ९ । उ ७ । ६ । ५ । ४ । सत्व २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ ततः अल्लिंदत्त अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु नवबंधस्थानमो देयक्कुं । उदयस्थानंगळु षडादित्रितयमक्कुं । सत्वस्थानंगळुमष्ट चतुरेकविंशति-गळक्कुं । अपू बं ९ । उ ६ । ५ । ४ । सत्व २८ । २४ । २१ ॥ क्ष २१ ॥

पंचादिपंचबंधो णवमगुणे दोण्णि एक्कमुदयो दु ।
अट्ठचदुरेक्कवीसं तेरादीअट्ठयं सत्तं ॥६५८॥

पंचादि पंचबंधो नवमगुणे द्वे एका उदयस्तु । अष्ट चतुरेकविंशतिस्त्रयोदशादीन्यष्ट सत्वं ॥

नवमगुणस्थानदोळु पंचप्रकृत्यादिपंचबंधस्थानंगळप्पुवु । उदयस्थानंगळु द्विप्रकृतिस्थानमु मेकप्रकृतिस्थानमुमक्कुं । सत्वस्थानंगळुमष्ट चतुरेकविंशतिस्थानंगळप्पुवु क्षपकश्रेणियोळे त्रयोदशाद्यष्टस्थानं गळप्पुवु । अनि । बं । ५ । ४ । ३ । २ । १ । उ । २ । १ । सत्व २८ । २४ । २१ ॥ क्ष । २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥

लोहेक्कुदओ सुहुमे अडचउरिगिवीसमेक्कयं सत्तं ।
अडचउरिगिवीसंसा संते मोहस्स गुणठाणे ॥६५९॥

लोभैकोदयः सूक्ष्मे अष्टचतुरेकविंशतिरेकं सत्वं । अष्टचतुरेकविंशत्यंशाः शांते मोहस्य गुणस्थाने ॥

सूक्ष्मसांपरायनोळु मोहनीयस्य मोहनीयद लोभैकोदयः सूक्ष्मैकलोभोदयमक्कुं । सत्वमष्ट चतुरेक विंशतिगळु मेकप्रकृतिस्थानमुमक्कुं । सूक्ष्म बं उ १ । सत्व २८ । २४ । २१ । १ ॥ उपशांते

उदयस्थानानि सप्तकादीनि चत्वारि । ततोऽपूर्वकरणे बन्धस्थानं नवकं । उदयस्थानानि षट्कादीनि त्रीणि । सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि त्रीणि । क्षपकेऽप्येकविंशतिकं ॥६५७॥

नवमगुणे बन्धस्थानानि पंचकादीनि पंच । उदयस्थानानि द्विकैकके द्वे । सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्र-विंशतिकानि । क्षपके त्रयोदशकादीन्यष्टौ । उपरि बन्धो नास्ति ॥६५८॥

सूक्ष्मसाम्पराये उदयस्थानं सूक्ष्मलोभः । सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्रविंशतिकान्येककं च । उपरि

स्थान पाँच हैं । प्रमत्त-अप्रमत्तमें बन्धस्थान एक नौका ही है । उदय स्थान सात आदि चार हैं । सत्त्वस्थान पाँच हैं । अपूर्वकरणमें बन्धस्थान एक नौका ही है । उदयस्थान छह आदि तीन हैं । सत्त्वस्थान अठाईस चौबीस इक्कीस तीन हैं ।

क्षपकमें भी इक्कीसका ही है ॥६५७॥

नवम गुणस्थानमें बन्धस्थान पाँच आदि पांच हैं । उदयस्थान दो और एक प्रकृति-रूप दो हैं । सत्त्वस्थान अठाईस, चौबीस इक्कीस तीन हैं । क्षपणश्रेणिवालेके तेरह आदि आठ सत्त्वस्थान हैं । ऊपर मोहके बन्धका अभाव है ॥६५८॥

सूक्ष्मसाम्परायमें उदयस्थान एक सूक्ष्मलोभ रूप ही है । सत्त्वस्थान अठाईस चौबीस

गुणस्थाने उपशांतकषायगुणस्थानदोळ् मोहस्य मोहनीयद सत्वस्थानंगळ् अष्टचतुरेकविंशति त्रिस्थानंगळप्पुवु । बं । उ ० । सत्व । २८ । २४ । २१ ॥ संदृष्टि :—मि बं २२ । उ १० । ९ । ८ । ७ । स २८ । २७ । २६ ॥ उ ७ । स २८ ॥ सासा । बं २१ । उ ९ । ८ । ७ । स २८ ॥ मि बं १७ । उ ९ । ८ । ७ । स २८ । २४ ॥ असं बं १७ । उ ९ । ८ । ७ । ६ । स २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ देश बं । १३ । उ ८ । ७ । ६ । ५ । स २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ प्र बं ९ । उ ७ । ६ । ५ । ४ । स २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ अप्र. बं । ९ । उ ७ । ६ । ५ । ४ । स २८ । २४ । २३ । २२ । २१ ॥ अपू बं ९ । उ ६ । ५ । ४ । स २८ । २४ । २१ ॥ क्ष २१ ॥ अनि बं ५ । ४ । ३ । २ । १ । उ २ । १ । स २८ । २४ । २१ ॥ क्ष २१ । १३ । १२ । ११ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ सू बं । ० । उ १ । सत्व २८ । २४ । २१ । क्ष १ । उपशांत बं । ० । उ ० । सत्व २८ । २४ । २१ ॥ क्षीणकषायादिगळोळु मोहबंधोदयसत्वं सर्व्वथाऽभावमक्कुं ॥

अनंतरं मोहनीयबंधोदयसत्वस्थानंगळगे त्रिसंयोग विशेषमं पेळ्दपरु :—

बंधपदे उदयंसा उदयट्ठाणेवि बंधसत्तं च ।
सत्ते बंधुदयपदं इगिअधिकरणे दुगादेज्जं ॥६६०॥

बंधपदे उदयांशाः उदयस्थानेपि बंध सत्वं च । सत्वे बंधोदयपदमेकाधिकरणे द्वयादेयं ॥

बंधस्थानदोळुदयसत्वस्थानंगळुमुदयस्थानदोळु बंधसत्वस्थानंळुं सत्वस्थानदोळु बंधोदयस्थानंगळु इंतु एकाधिकरणमागुत्तं विरलुद्वयादेयमक्कु—

बंध	उद	सत्व
उ । स	बं । स	बं । उ

अनंतरं यथोद्देशस्तथा निर्द्देश एंदितु बंधस्थानदोळु उदयसत्वस्थानंगळं योजिसिदपरु :—

मोहोदयो नास्ति । उपशान्तकषाये सत्त्वस्थानान्येवाष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि । उपरि मोहसत्त्वं नास्ति ॥६५९॥ अथ मोहनीयबन्धोदयसत्त्वस्थानानां त्रिसंयोगविशेषमाह—

बन्धस्थाने उदयसत्त्वस्थानद्वयं, उदयस्थाने बन्धसत्त्वस्थानद्वयं, सत्त्वस्थाने बन्धोदयस्थानद्वयमित्येकाधिकरणे द्वयमाधेयं भवति ॥६६०॥

इक्कीस और क्षपकके एक प्रकृतिरूप एक ही है । ऊपर मोहका उदय नहीं है । उपशान्तकषायमें सत्त्वस्थान ही अठाईस चौबीस इक्कीस तीन जानना । ऊपर मोहका सत्त्व नहीं है ॥६५९॥

आगे मोहनीयके बन्ध उदय सत्त्वस्थानोंके त्रिसंयोगमें जो विशेष है उसे कहते हैं—

बन्धस्थानमें उदयस्थान सत्त्वस्थान ये दो, उदयस्थानमें बन्धस्थान सत्त्वस्थान दो और सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान उदयस्थान दो, इस तरह एक अधिकरणमें दो आधेय हैं ॥६६०॥

बावीसयादिबंधेसुदयंसा चदुतितिगि चऊ पंच ।
तिसु इगि छद्दो अट्ठ य एक्कं पंचेव तिट्ठाणे ॥६६१॥

द्वाविंशत्यादिबंधेषूदयांशाश्चतुः त्रिष्येकं चतुःपंच । त्रिष्वेक षट् द्वयष्टौ च एक पंचैव त्रिस्थाने ॥

द्वाविंशत्यादि प्रकृतिबंधस्थानाधिकरणंगळोळु उदयांशंगळु क्रमदिदं चतुस्त्रितयंगळुं त्र्येकंगळुं त्रिषु मूरेडेयोळु चतुःपंचस्थानंगळुं एकषट्स्थानंगळुं द्वयष्टस्थानंगळुं त्रिस्थानदोळु एकपंचस्थानंगळुमप्पुवु । संदृष्टि :—

बं	२२	२१	१७	१३	९	५	४	३	२	१
उ	४≡	३	४	४	४	१	२	१	१	१
सत्व	३	१	५	५	५	६	८	५	५	५

अनंतरमुदितादेयभूतोदयसत्त्वस्थानंगळं पेळ्दपरु[1] :—

दसयचऊ पढमतियं णवतियमडवीसयं णवादिचऊ ।
अडचउतिदुइगिवीसं अडचउ पुव्वंव सत्तं तु ॥६६२॥

दशकचतुः प्रथमत्रिकं नवत्रयमष्टाविंशतिः नवादिचतुरष्ट चतुस्त्रिद्व्येकविंशतिरष्टादि चत्वारि पूर्ववत्सत्वं तु ॥

द्वाविंशतिबंधकंगे दशादिचतुरुदयस्थानंगळु प्रथमत्रयसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु । बं २२ । उ १० । ९ । ८ । ७ । स २८ । २७ । २६ ॥ एकविंशतिबंधकंगे नवादित्रयोदयस्थानंगळुमष्टाविंशतिसत्त्वस्थानमोंदेयक्कुं । बं २१ । उ ९ । ८ । ७ । स २८ ॥ सप्तदशबंधकंगे नवादिचतुरुदयस्थानंगळु

तत्र तावद्बंधस्थानेषु द्वाविंशतिकादिषूदयसत्त्वस्थानान्यांद्ये चत्वारि त्रीणि, द्वितीये त्रीण्येकं, त्रिषु प्रत्येकं चत्वारि पंच, एकस्मिन्नेकं षट्, अन्यस्मिन् द्वे अष्टौ, त्रिष्वेकं पंच ॥६६१॥

तानि द्वाविंशतिके उदयस्थानानि दशकादीनि चत्वारि । सत्त्वस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि ।

प्रथम बन्धस्थानमें उदय और सत्त्वस्थान कहते हैं—बाईस आदि बन्धस्थानोंमें-से प्रथम बाईसके स्थानमें उदयस्थान आदिके चार सत्त्वस्थान तीन हैं । दूसरे बन्धस्थानमें उदयस्थान तीन सत्त्वस्थान एक है । आगे तीन बन्धस्थानोंमें-से प्रत्येकमें उदयस्थान चार सत्त्वस्थान पाँच हैं । आगे एक बन्धस्थानमें उदयस्थान एक सत्त्वस्थान छह हैं । अन्य एक बन्धस्थानमें उदयस्थान दो सत्त्वस्थान आठ हैं । तीन बन्धस्थानोंमें उदयस्थान एक, सत्त्वस्थान पाँच हैं ॥६६१॥

बाईसके बन्धस्थानमें उदयस्थान दस आदि चार हैं । सत्त्वस्थान अठाईस आदि तीन हैं । अर्थात् जिस जीवके जिस कालमें बाईसका बन्ध है उसके उदय दसका या नौका, या आठका या सातका होता है । और सत्त्व अठाईसका या सत्ताईसका या छब्बीसका

---

१. पूर्वस्मिन्मुक्तादेय—अनंतानुबंधिरहित सहितमिथ्यादृष्टिय उदयकूट ८ रोळगे संख्यासादृश्यककूटंगळु ४ । पुनरुक्तंगळ सासादनादिगळोळं यितु पुनरुक्तंगळंयोजिसि कोक्कुदुदु ॥

मष्टचतुस्त्रिद्वयेकविंशतिसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु। बं १७। उ ९। ८। ७। ६॥ सत्त्व २८। २४। २३। २२। २१॥ त्रयोदशबंधकंगे अष्टादिचतुरुदयस्थानंगळु पूर्व्वोक्तसत्त्वस्थानपंचकमुमक्कुं। बं १३। उ। ८। ७। ६। ५। स २८। २४। २३। २२। २१॥

सगचउ पुव्वं वंसा दुगमडचउरेक्कवीस तेरतियं।
दुगमेक्कं च य सत्तं पुव्वं वा अत्थि पणगदुगं ॥६६३॥

सप्तचत्वारि पूर्व्ववदंशाः द्विकमष्ट चतुरेकविंशति त्रयोदश त्रयं द्विकमेकं च च सत्त्वं पूर्व्ववदस्ति पंचद्विकं॥

नवबंधकनोळ् सप्तादिचतुरुदयस्थानंगळुं पूर्व्वोक्तसत्त्वस्थानगळे अप्पुवु। बं ९। उ ७। ६। ५। ४। स २८। २४। २३। २२। २१। पंचबंधकनोळ् द्विप्रकृत्युदयस्थानमोदेयक्कुं। अष्टचतुरेकविंशतित्रयोदशाविस्त्रितयमुं सत्त्वस्थानंगळप्पुवु। बंध ५। उ २। स २८। २४। २१। १३। १२। ११॥ चतुर्ब्बंधकनोळ् द्विकैकप्रकृत्युदयस्थानंगळुं पूर्व्ववत्सत्त्वस्थानंगळप्पुवु॥ मत्तं पंचादिद्वित्थानंगळुमुंटु। बं ४। उ २। १। स २८। २४। २१। १३। १२। ११। ५। ४॥

तिसु एक्केक्कं उदओ अडचउरिगिवीससत्तसंजुत्तं।
चदुतिदयं तिदयदुगं दो एक्कं मोहणीयस्स ॥६६४॥

त्रिष्वेकैकदयोष्टचतुरेकविंशतिसत्त्वसंयुक्तं। चतुस्त्रितयं त्रितयद्विकं द्वयेकं मोहनीयस्य॥

एकविंशतिके उदयस्थानानि नवकादीनि त्रीणि। सत्त्वस्थानमष्टाविंशतिकं। सप्तदशके उदयस्थानानि नवकादीनि चत्वारि। सत्त्वस्थानान्यष्टचतुस्त्रिद्वयेकाग्रविंशतिकानि। त्रयोदशके उदयस्थानान्यष्टादीनि चत्वारि। सत्त्वस्थानानि पूर्वोक्तानि पंच ॥६६२॥

नवके उदयस्थानानि सप्तकादीनि चत्वारि। सत्त्वस्थानानि पूर्वोक्तानि पंच पंच। पंचके उदयस्थानं द्विकं। सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि त्रयोदशकादित्रयं च। चतुष्के उदयस्थानानि द्विकैकके द्वे। सत्त्वस्थानानि पूर्वोक्तानि षट्। पुनः पंचकादिद्वयं च ॥६६३॥

होता है। इक्कीसके बन्धस्थानमें उदयस्थान नौ आदि तीन हैं। सत्त्वस्थान एक अठाईसका है। सतरहके बन्धस्थानमें उदयस्थान नौ आदि चार हैं। सत्त्वस्थान अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस पाँच है। तेरहके बन्धस्थानमें उदयस्थान आठ आदि चार हैं। सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पाँच हैं ॥६६२॥

नौके बन्धस्थानमें उदयस्थान सात आदि चार हैं। सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पाँच हैं। पाँचके बन्धस्थानमें उदयस्थान दोका है। सत्त्वस्थान उपशमकके अठाईस, चौबीस, इक्कीस तीन और क्षपकके तेरह आदि तीन इस प्रकार छह हैं। चारके बन्धस्थानमें उदयस्थान दो और एक प्रकृतिरूप हैं, सत्त्वस्थान पूर्वोक्त छह तथा पाँच आदि दो, इस प्रकार आठ हैं ॥६६३॥

त्रिबंधकनोळं द्विबंधकनोळं एकबंधकनोळ्मितु त्रिस्थानकंगळोळु प्रत्येकमेकैकप्रकृत्युदय-मेयक्कुं। प्रत्येकं सत्त्वस्थानंगळुमष्टचतुरेकविंशतिस्थानत्रययुतंगळप्प चतुस्त्रितयंगळं त्रितय-द्विकंगळुं द्वयेकसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु। बं ३। उ १। स २८। २४। २१। ४। ३॥ द्विबंधकनोळु बं २। उ १। स २८। २४। २१। ३। २। एकबंधकनोळु बं १। उ १। स २८। २४। २१।२।१॥

इंतु मोहनीयद बंधाधिकरणोदयसत्त्वाधेयं प्रतिपादितमाय्तु। ई बंधस्थानाधिकरणदोळु गुणस्थानविवक्षेयिंदमी रचनाविशेषंदमरियल्पडुगे। बं २२। उ १०। ९। ८। ७। स २८। २७। २६॥ बं २१। उ ९। ८। ७॥ स २८॥ बं १७। उ ९। ८। ७। स २८। २४॥ बं १७। उ ९। ८। ७। ६। स २८। २४। २३। २२। २१॥ बं १३। उ ८। ७। ६। ५। स २८। २४। २३। २२। २१॥ बं ९। उ ७। ६। ५। ४। स २८। २४। २३। २२। २१॥ बं ९। उ ७। ६। ५। ४। स २८। २४। २३। २२। २१॥ बं ९। उ ६। ५। ४। स २८। २४। २१॥ बं ५। उ २। स २८। २४। २१। १३। १२। ११॥ बंध ४। उ २। १॥ स २८। २४। २१। १३। १२। ११। ५। ४॥ बं ३। उ। १। स २८। २४। २१। ४। ३॥ बं २। उ १। सत्त्व २८। २४। २१। ३। २॥ बं १। उ १। स २८। २४। २१। २। १। सू बं। ०। उ। सू। लो १। स २८। २४। २१। १॥ इल्लि बंधकूट २।२।१।१।१।१६।१ उदयकूट २।२।१।१।१।४।४।४।४।१ ई बंधोदयकूटंगळोळु तत्तद्गुणस्थानदोळु व्युच्छित्तिगळनरिदु बंधस्थानंगळुमनुदयस्थानंगळुमं योजिसिकों बुदु॥ १५

अनंतरमुदयाधिकरणं बंधसत्त्वाधेयप्रकारमं पेळ्दपरु :—

त्रिकद्विकैककेषूदयस्थानमेककं सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि त्रीण्यपि त्रिके चतुष्कत्रिकाग्राणि। द्विके त्रिकाद्विकाग्राणि, एकके द्विकैककाग्राणि। अयं बन्धाधिकरणोदयसत्त्वाधेयभंगो गुणस्थानविवक्षयापि तत्प्रकृतीनां बन्धोदयव्युच्छित्तिक्षपणोद्वेल्लनाम्यां सत्त्वव्युच्छित्तिं च स्मृत्वा वक्तव्यः ॥६६४॥ अथोदया-धिकरणबन्धसत्त्वाधेयभंगमाह—

तीन दो और एक प्रकृतिरूप तीन बन्धस्थानोंमें उदयस्थान एक प्रकृति रूप ही है। सत्त्वस्थान अठाईस, चौबीस, इक्कीस ये तीन तथा तीनके बन्धस्थानमें चारका या तीनका इस तरह पांच हैं। दोके बन्धस्थानमें दोका और तीनका, इस तरह पाँच हैं। एकके बन्ध-स्थानमें दोका, एकका इस तरह पांच हैं।

यहाँ बन्धस्थान अधिकरण हैं और उदय सत्त्व आधेय हैं। उनका कथन गुणस्थान विवक्षाके द्वारा किया है। तथापि उन-उन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छिति, उदयव्युच्छित्ति, क्षपण और उद्वेलनाके द्वारा हुई सत्त्वव्युच्छित्तिको स्मृतिमें रखकर उनका कथन करना चाहिए ॥६६४॥

आगे उदयस्थानको अधिकरण और बन्ध तथा सत्त्वको आधेय बनाकर भंगोंका कथन करते हैं—

दसयादिसु बंधंसा इगितियतिय छक्क चारिसत्तं च ।
पण पण तिय पण दुग पणमिगितिग दुग छच्चऊ णवयं ॥६६५॥

दशादिषु बंधांशाः एक त्रिकत्रिकषट्कचतुः सप्त पंच पंच त्रिक पंच द्विक पंच एक त्रिक द्विक षट् चत्वारि नवकं ॥

उदयस्थानाधिकरणदोळु दशाद्युदयस्थानंगळोळु आदेयभूतबंधसत्त्वंगळु एक त्रिकमुं त्रिषट्कमुं चतुः सप्तकमुं पंच पंचकंगळं त्रिपंचकंमळुं द्विपंचकंगळुं एकत्रिकमुं द्विषट्कमुं चतुर्नवबंधसत्त्वस्थानसंख्येगळ क्रमदिंदप्पुवु । संदृष्टि :—

उ	१०	९	८	७	६	५	४	२	१
बं	१	३	४	५	३	२	१	२	४
स	३	६	७	५	५	५	३	६	९

अनंतरमादेयभूतबंधसत्त्वसंख्याविषयस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

पढमं पढमतिचउपण सत्तरतिगचदुसु बंधयं कमसो ।
पढमति छस्सगमडचउतिदुइगि बीसस्सयं दोसु ॥६६६॥

प्रथमं प्रथमत्रिचतुःपंचसप्तदशत्रिकं चतुर्षु बंधकं क्रमशः । प्रथमत्रिषट्सप्ताष्ट चतुस्त्रिद्व्येकविंशतिद्वयोः ॥

प्रथमं द्वाविंशति प्रकृतिबंधस्थानमोदक्कुं । नवादि चतुरुदयस्थानंगळोळु क्रमदिंदं बंधस्थानंगळु प्रथमादि त्रिस्थानंगळं प्रथमादिचतुःस्थानंगळं प्रथमादिपंचस्थानंगळं सप्तदशादित्रिस्थानंगळुमप्पुवु । सत्वस्थानंगळुमल्लि क्रमदिंदं प्रथमत्रिस्थानंगळं प्रथमषट्स्थानंगळं प्रथमसप्तस्थानंगळु अष्टचतुस्त्रिद्व्येकविंश त्यंशंगळुमेरडेरडेयोळप्पुवु ॥

उदयस्थानेषु दशकादिषु क्रमेण बन्धसत्त्वस्थानानि एकत्रिकं त्रिकषट्कं चतुःसप्तकं पंचपंचकं त्रिपंचकं द्विपंचकं एकत्रिकं द्विषट्कं चतुर्नवकं ॥६६५॥ तानि कानीति चेदाह—

दशकादिषु पंचसु क्रमेण बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकं, तदादित्रयं तदादिचतुष्कं तदादिपंचकं सप्तदशकादित्रयं च भवन्ति । सत्त्वस्थानान्यष्टाविंशतिकादित्रयं तदादिषट्कं तदादिसप्तकं अष्टचतुस्त्रिद्व्येकाग्रविंश-

---

दस आदि उदयस्थानोंमें क्रमसे बन्धस्थान और सत्त्वस्थान एक तीन, तीन छह, चार सात, पाँच-पाँच, तीन पाँच, दो पाँच, एक तीन, दो छह और चार नौ होते हैं ॥६६५॥

वे कौनसे हैं, यह कहते हैं—

दस आदि पाँच उदय स्थानोंमें-से पहलेमें बन्धस्थान बाईसका होता है अर्थात् जिस जीवके जिस कालमें दसका उदय होता है उसके उस कालमें बाईसका ही बन्ध है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । दूसरेमें बन्धस्थान बाईस आदि तीन हैं । तीसरेमें बाईस आदि चार हैं । चौथेमें बाईस आदि पाँच हैं । पाँचवेंमें सतरह आदि तीन हैं । सत्त्वस्थान पहले उदयस्थानमें अठाईस आदि तीन हैं । अर्थात् जिस समय दसका उदय है उस समय किसीके अठाईसका, किसीके सत्ताईसका और किसीके छब्बीसका सत्त्व पाया जाता है । दूसरेमें अठाईस आदि छहका सत्त्व है । तीसरेमें अठाईस आदि सातका सत्त्व है । चौथे

तेरदु पुव्वंवंसा णवमडचउरेक्कवीससत्तमदो ।
पणदुगमडचउरेक्कावीसं तेरसतियं सत्तं ॥६६७॥

त्रयोदशद्वयं पूर्व्ववंशाः नवाष्टचतुरेकविंशतिसत्त्वमतः । पंचद्वयमष्टचतुरेकविंशति त्रयोदशत्रिकं सत्त्वं ॥

पंचोदयस्थानदोळु त्रयोदशादि द्विस्थानबंधमुं पूर्व्वोक्तांशंगळप्पुवु । चतुरुदयस्थान- ९
दोळु नवबंधस्थानमों दुं अष्टचतुरेकविंशतिसत्वस्थानत्रितयमुमक्कु-। मतः परं द्विप्रकृत्युदयस्थान-
दोळु पंचादिद्विबंधस्थानंगळुमष्टचतुरेकविंशतिसत्वस्थानंगळु त्रयोदशादित्रिस्थानसत्वंगळप्पुवु ॥

चरिमे चदुतिदुरेक्कं अट्ठ य चदुरेक्कसंजुदं वीसं ।
एक्कारादी सव्वं कमेण ते मोहणीयस्य ॥६६८॥

चरमे चतुस्त्रिद्व्येकमष्टचतुरेकसंयुता विंशतिरेकादशादि सर्व्वं क्रमेण तानि मोहनीयस्य ॥ १०

चरमैकोदयस्थानदोळु चतुस्त्रिद्व्येकबंधस्थानचतुष्टयमुमष्टचतुरेकसंयुतविंशतिगळुं एका-
दशादि तन्मोहनीयद सर्व्वसत्वस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि। उ १०। बं २२। स २८। २७।
२६। उ ९। बं २२। २१। १७। १३। स २८। २७। २६। २४। २३। २२। २१। उ ८। बं
२२। २१। १७। १३। स २८। २७। २६। २४। २३। २२। २१। उ ७। बं २२। २१। १७।
१३। ९। स २८। २४। २३। २२। २१। उ ६। बं १७। १३। ९। स २८। २४। २३। २२। १५
२१। उ ५। बं १३। ९। स २८। २४। २३। २२। २१ ॥ उ ४। बं ९। स २८। २४। २१।
उ २। बं ५। ४। स २८। २४। २१। १३। १२। ११। उ १। बं ४। ३। २। १। सत्व २८।
२४। २१। ११। ५। ४। ३। २। १ ॥ इंतुदयाधिकरणदोळु बंधसत्वादेयप्रकारं निरूपितमादुदु ॥

तिकानि पंच द्वयोर्भवन्ति ॥६६६॥

पंचके बन्धस्थानानि त्रयोदशकादिद्वयं सत्त्वस्थानानि पूर्वोक्तानि पंच। चतुष्के बन्धस्थानं नवकं, २०
सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि। अतः परं द्विकबन्धस्थानानि पंचकादिद्वयं सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्र-
विंशतिकानि त्रयोदशकादित्रयं च ॥६६७॥

एकके बन्धस्थानानि चतुष्कत्रिकद्विकैककानि। सत्त्वस्थानान्यष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि एकादशकादीनि

पाँचवेंमें अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीसके पाँच-पाँच सत्त्व है ॥६६६॥

पाँचके उदयस्थानमें बन्धस्थान तेरह आदि दो हैं। सत्त्वस्थान पूर्वोक्त पाँच हैं। २५
चारके उदयस्थानमें बन्धस्थान नौका ही है। सत्त्वस्थान अठाईस, चौबीस, इक्कीसके तीन हैं। आगे दोके उदयस्थानमें बन्धस्थान पाँच आदि दो हैं। सत्त्वस्थान अठाईस, चौबीस, इक्कीस तथा तेरह आदि तीन, इस प्रकार छह हैं ॥६६७॥

अन्तिम एकके उदयस्थानमें बन्धस्थान चार तीन दो एक ये चार हैं। सत्त्वस्थान अठाईस चौबीस इक्कीस और ग्यारह आदि छह इस प्रकार नौ हैं वे सब मोहनीयके ३०
जानना ॥६६८॥

---

१. (ताड. पंक्ति :—९) एंबल्लु सत्वस्थानंगळु (इत्यस्य टिप्पणस्य संबंधो न ज्ञायते)

अनंतरमाधारभूत सत्वस्थानंगळोळादेयभूतबंधोदयस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

सत्तपदे बंधुदया दस णव इगिति दुसु अडड तिपण दुसु ।
अडसगदुगि दुसु बिबिगिगि दुगि तिसु इगिसुण्णमेक्कं च ॥६६९॥

सत्वपदे बंधोदयाः दश नवैक त्रिद्वयोष्टाष्टत्रिपंचद्वयोः । अष्टसप्तद्वयेकं द्वयोर्द्विद्विरेकैकं द्वयेकं त्रिण्वेक शून्यमेकं च ॥

अष्टाविंशतिसत्वस्थानाधारदोळु आदेयबंधोदयस्थानंगळु क्रमदिंदं दशनवबंधस्थानंगळु पत्तुं उदयस्थानंगळुमो भत्तुमप्पुवु

स	२८
बं	१०
उ	९

एक द्वित्रिद्वयोः सप्तविंशतिसत्वस्थानाधारदोळं षड्विंशतिसत्वस्थानाधारदोळं एकैक बंधस्थानंगळुं त्रिउदयस्थानंगळुमप्पुवु

स	२७	२६
बं	१	१
उ	३	३

चतुर्विंशतिसत्वस्थानाधारदोळु अष्टाष्ट अष्टबंधस्थानंगळु मष्टोदयस्थानंगळुमप्पुवु

स	२४
बं	८
उ	८

त्रिपंचद्वयोः त्रयोविंशतिसत्वस्थानाधारदोळं द्वाविंशतिसत्वस्थानाधारदोळं प्रत्येकं त्रिपंचबंधोदयस्थानंगळप्पुवु ।

स	२३	स	२२
बं	३	बं	३
उ	५	उ	५

अष्टसप्तएकविंशति सत्वस्थानाधारदोळु बंधोदयस्थानंगळेंटु मेळमप्पुवु :—

स	२१
बं	८
उ	७

द्वेयकं द्वयोः त्रयोदशसत्वस्थानाधारदोळं द्वादश सत्वस्थानाधारदोळं प्रत्येकं बंधोदयस्थानंगळु मेरडु मो दुमप्पुवु

स	१३	स	१२
बं	२	बं	२
उ	१	उ	१

द्विद्विरेकैकं एकादशसत्वस्थाना-

च । तानि मोहनीयस्य सर्वाणि ॥ ६६८ ॥ एवमुदयाधिकरणबन्धसत्वाधेयमुक्त्वा सत्त्वाधिकरणबन्धोदयाधेयमाह—

सत्त्वस्थानेष्वष्टाविंशतिकादिषु क्रमेण बन्धोदयसत्त्वस्थानानि दशनव । द्वयोरेकत्रीणि, अष्टाष्टौ

आगे सत्त्वको अधिकरण और बन्ध उदयको आधेय बनाकर कथन करते हैं—

अठाईस आदि सत्त्वस्थानोंमें क्रमसे बन्धस्थान और उदयस्थान इस प्रकार हैं—पहले सत्त्वस्थानमें दस नौ, आगे दोमें एक तीन, एकमें आठ-आठ, दोमें तीन पाँच, एकमें

द्वादशकोळं पंचसत्वस्थानाधारद्वोळं क्रमदिंदं बंधोदय स्थानंगळु द्विद्विरेकैकंगळप्पुवु

स	११	स	५
बं	२	बं	१
उ	२	उ	१

द्व्येकं त्रिषु चतुः सत्वस्थानाधारत्रिसत्वस्थानाधार द्विसत्वस्थानाधारंगळोळु बंधस्थानंगळेरडेरडु मुदयस्थानंगळों दोंदप्पुवु

स	४	स	३	स	२
बं	२	बं	२	बं	२
उ	१	उ	१	उ	१

एकशून्यमेकं च एकप्रकृतिसत्वस्थानाधारदोळु बंधस्थानमों दुं शून्यमुं उदयस्थानमों दुमक्कुं—

स	१
बं	१।०
उ	१

सर्व्व संदृष्टि—

स	२८	२७	२६	२४	२३	२२	२१	१३	१२	११	५	४	३	२	१
बं	१०	१	१	८	३	३	८	२	२	२	१	२	२	२	१।०
उ	९	३	३	८	५	५	७	१	१	२	१	१	१	१	१

ई संख्याविषयबंधोदयस्थानंगळं गाथात्रितयदिंदं पेळ्वपरु :—

सव्वं सयलं पढमं दसतियदुसु सत्तरादियं सव्वं ।
णवयप्पहुडीसयलं सत्तरति णवादिपण दुपदे ॥६७०॥

सव्वं सकलं प्रथमं दशत्रयं द्वयोः सप्तदशादिसर्व्वं नवकप्रभृतिसर्व्वं सप्तदशत्रिनवादि पंच द्विपदे ॥

सर्व्वं सकलं अष्टाविंशति सत्त्वस्थानाधिकरणदोळु द्वाविंशत्यादि सर्व्वबंधस्थानंगळुं दशादिसकलोदयस्थानंगळुमप्पुवु। स २८। बं। २२। २१। १७। १३। ९। ५। ४। ३। २। १॥ उ १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। २। १॥ प्रथमं दशत्रयं द्वयोः। सप्तविंशति षड्विंशति सत्त्वस्थानाधिकरणद्वयदोळु द्वाविंशतिबंधस्थानमुं दशादित्रयोदयस्थानंगळुमप्पुवु। स २७। बं २२। उ १०। ९। ८॥ स २६। बं २२। उ १०। ९। ८॥ सप्तदशादि सर्व्वं नवादिसर्व्वं चतुर्विंशति-

---

द्वयोस्त्रिपंच अष्टसप्त द्वयोर्द्वयेकं द्विद्वि एकैकं त्रिषु द्व्येकं एकशून्यैकं ॥६६९॥

तान्यष्टाविंशतिके बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकादीनि सर्वाणि, उदयस्थानानि दशकादीनि सकलानि। सप्तविंशतिकषड्विंशतिकयोर्बंधस्थानं द्वाविंशतिकं, उदयस्थानानि दशकादित्रयं च। चतुर्विंशतिके बन्धस्थानानि

आठ सात, दोमें दो एक, एकमें दो-दो, एकमें एक-एक, तीनमें दो एक, एकमें एक या शून्य और एक हैं ॥६६९॥

अठाईसके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान बाईस आदि सब हैं। अर्थात् जिनके जिस समय अठाईसका सत्त्व है उस समय उनमें-से किसीके बाईसका, किसीके इक्कीसका इस प्रकार सभी स्थानोंका बन्ध पाया जाता है। तथा उदयस्थान दस आदि सब हैं। यहाँ भी

सत्त्वस्थानाधिकरणदोळु सप्तदशादिसर्व्वबंधस्थानंगळ्गे टुं नवाद्युदयसर्व्वस्थानंगळुमप्पुवु । स २४ । बं १७ । १३ । ९ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ उ ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ॥ सप्तदश त्रिनवादि पंचकं द्विपदे त्रयोविंशतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळं द्वाविंशतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळं सप्तदशादित्रिबंधस्थानंगळुं नवादिपंचोदयस्थानंगळुमप्पुवु । स २३ । बं १७ । १३ । ९ ॥ उ ९ । ८ । ७ । ६ । ५ । स २२ । बं १७ । १३ । ९ । उ ९ । ८ । ७ । ६ । ५ ॥

सत्तरसादि अडादी सव्वं पण चारि दोणि दुसु तत्तो ।
पंचचउक्कदुगेकं चदुरिगि चदु तिण्णि एक्कं च ॥६७१॥

सप्तदशाद्यष्टादयः सर्व्वं पंचचतुर्द्वयं द्वयोः ततः । पंचचतुष्कद्वयेकं चतुरेकं चतुस्त्रीण्येकं च ॥

सप्तदशाद्यष्टादयः सर्व्वं एकविंशतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु सप्तदशादिसर्व्वबंधस्थानंगळुमष्टादिसर्व्वोदयस्थानंगळुमप्पुवु । स २१ । बं १७ । १३ । ९ । ५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ उ ८ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । १ ॥ पंचचतुर्द्वयं द्वयोः त्रयोदशद्वादशसत्त्वस्थानाधिकरणंगळेरडरोळं पंचचतुर्ब्बंधस्थानंगळुं द्विप्रकृतिस्थानोदयमुमप्पुवु । स १३ । बं ५ । ४ । उ २ । स १२ । बं ५ । ४ । उ २ ॥ ततः पंचचतुष्कद्वयेकं बळिक्कमेकादशप्रकृतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु पंचचतुःप्रकृतिबंधस्थानद्वयमुं द्वयेकप्रकृत्युदयस्थानद्वयमुमक्कुं । स ११ । बं ५ । ४ । उ २ । १ ॥ चतुरेकं पंचप्रकृतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु चतुःप्रकृतिबंधस्थानमुं एकप्रकृत्युदयस्थानमुमक्कुं । स ५ । बं ४ । उ १ । चतुस्त्रीण्येकं च चतुः प्रकृतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु चतुःप्रकृतिबंधस्थानमुं त्रिप्रकृतिबंधस्थानमुमेकप्रकृत्युदयस्थानमुमक्कुं । स ४ । बं ४ । ३ । उ १ ॥

सप्तदशकादीनि सर्वाणि । उदयस्थानानि नवकाद्यष्टकं । त्रयोविंशतिकद्वाविंशतिकयोर्बंधस्थानानि सप्तदशकादित्रयं, उदयस्थानानि नवकादिपंचकं ॥६७०॥

एकविंशतिके बन्धस्थानानि सप्तदशकादीनि सर्वाणि । उदयोऽष्टकादिः सर्वः । त्रयोदशकद्वादशकयोर्बंधः पंचकचतुष्के द्वे, उदयो द्विकं । ततः एकादशके बन्धः पंचकचतुष्के द्वे उदयः द्विकैके द्वे । पंचके बन्धश्चतुष्कं उदय एककं । चतुष्के बन्धश्चतुष्कत्रिके द्वे उदय एककं ॥६७१॥

अठाईसके सत्त्वमें किसी जीवके दसका, किसीके नौका आदि उदय पाया जाता है। सत्ताईस और छब्बीसके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान बाईसका ही है। उदयस्थान दस आदि तीन हैं। चौबीसके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान सतरह आदि सब हैं। उदयस्थान नौ आदि सब आठ हैं। तेईस और बाईसके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान सतरह आदि तीन हैं। उदयस्थान नौ आदि पाँच हैं ॥६७०॥

इक्कीसके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान सतरह आदि सब हैं। उदयस्थान आठ आदि सब हैं। तेरह और बारहके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान पाँच और चार दो हैं। उदय दोका ही है। ग्यारहके सत्त्वस्थानमें बन्ध पाँच और चार दोका है और उदय दो और एकका है। पाँचके सत्त्वस्थानमें बन्ध चारका और उदय एकका है। चारके सत्त्वस्थानमें बन्ध चार और तीनका तथा उदय एकका ही है ॥६७१॥

तत्तो तियदुगमेकं दुप्पयडी एक्कमेक्कठाणं च।
इगिणभबंधो चरिमे एक्कुदओ मोहणीयस्स ॥६७२॥

ततस्त्रयद्वयमेकं द्विप्रकृत्येकमेकस्थानं च। एक नभो बंधश्चरमे एकोदयो मोहनीयस्य ॥

ततस्त्रयद्वयमेकं वळिकं त्रिप्रकृतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु त्रिप्रकृतिबंधस्थानमुं द्विप्रकृतिबंधस्थानमुमक्कुमेकप्रकृत्युदयस्थानमुमक्कुं। स ३। बं ३। २। उ १॥ द्विप्रकृत्येकस्थानं च द्विप्रकृतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु द्विप्रकृतिबंधस्थानमुमेकप्रकृतिबंधस्थानमुमेकप्रकृत्युदयस्थानमुमक्कुं। स २। बं २। १। उ १॥ एकं नभोबंधश्चरम एकोदयो मोहनीयस्य मोहनीयद चरमैकप्रकृतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु एकप्रकृतिबंधस्थानमुं बंधशून्यमुमक्कु। मेकप्रकृत्युदयमक्कुं। स १। बं १। ०। उ १॥ समुच्चय संदृष्टि :—

स २८। बं २२। २१। १७। १३। ९। ५। ४। ३। २। १॥ उ १०। ९। ८। ७। ६। ५। ४। २। १॥ स २७। बं २२। उ १०। ९। ८॥ स २६। बं २२। उ १०। ९। ८। स २४। बं १७। १३। ९। ५। ४। ३। २। १॥ उ ९। ८। ७। ६। ५। ४। २। १॥ स २३। बं १७। १३। ९॥ उ ९। ८। ७। ६। ५॥ स २२। बं १७। १३। ९॥ उ ९। ८। ७। ६। ५। सं २१। बं १७। १३। ९। ५। ४। ३। २। १॥ उ ८। ७। ६। ५। ४। २। १॥ स १३। बं ५। ४। उ २॥ स १२। बं ५। ४। उ २। स ११। बं ५। ४। उ २। १॥ स ५। बंध ४। उ १। स ४। बं ४। ३॥ उ १। स ३। बं ३। २। उ १। स २। बं २। १। उ १। स १। बं १। ०। उ १॥

अनंतरं मोहनीयबंधोदयसत्त्वस्थानत्रिसंयोगदोळु द्विस्थानाधारमेकस्थानादेयमं पेळ्व प्रकारमं पेळ्वपरु :—

बंधुदये सत्तपदं बंधंसे णेयमुदयठाणं च।
उदयंसे बंधपदं दुट्ठाणाधारमेक्कमाधेज्जं ॥६७३॥

बंधोदये सत्त्वपदं बंधांशे ज्ञेयमुदय आदेयश्च उदयांशे बंधपदं द्विस्थानाधारमेकमाधेयं ॥

ततस्त्रिके बन्धः त्रिकद्विके द्वे उदय एककं, द्विके बन्धः द्विकैककै द्वे उदय एककं, मोहनीयस्यैकैके बन्ध एककं शून्यं च, उदय एककं ॥६७२॥ अथ मोहनीयस्य बन्धादित्रये द्वयमाधारमेकं वाधेयं कृत्वाह—

आगे तीनके सत्त्वस्थानमें बन्ध तीन और दोका और उदय एकका ही है। दोके सत्त्वस्थानमें बन्ध दो और एकका तथा उदय एकका ही है। मोहनीयके एकके सत्त्वस्थानमें बन्ध एकका अथवा शून्य (बन्धका अभाव) उदयस्थान एकका ही है ॥६७२॥

आगे मोहनीयके बन्धादि तीनमें-से दोको आधार और एकको आधेय बनाकर कथन करते हैं—

बंधोदयस्थानद्वयाधारदोळु सत्त्वस्थानाधेयमुं बंधसत्त्वस्थानद्वयाधारदोळुदयमाधेयमुं दय-सत्त्वस्थानाधारदोळु बंधस्थानाधेयमुमितु द्विस्थानाधारमेकमाधेयमुं ज्ञातव्यमक्कुं

बं उ	बं स	उ स
स	उ	बं

अनंतरमी त्रिप्रकारंगळोळु मोदल बंधोदयाधारसत्त्वाधेय प्रकारमं गाथाषट्कदिंदं पेळ्दपरु :

बावीसेण णिरुद्धे दसचउरुदये दसादिठाणतिये ।
अट्ठावीसतिसत्तं सत्तुदये अट्ठवीसेव ॥६७४॥

द्वाविंशत्या निरुद्धे दशचतुरुदये दशादिस्थानत्रितये । अष्टाविंशति त्रिसत्वं सप्तोदयेऽष्टविंशतिरेव ॥

द्वाविंशतिबंधदिदोडने निरुद्धनागुत्तिर्द्द जीवनोळु उदयिसुत्तिर्द्द दशादिचतुरुदयस्थानंगळोळु दशाद्युदयस्थानत्रयदोळु अष्टाविंशत्यादित्रिस्थानसत्त्वमक्कुं । आ सप्तप्रकृत्युदयस्थानदोळष्टाविंशतिसप्तसत्त्वस्थानमोदेयक्कुं । बं २२ । उ १० । ९ । ८ स २८ । २७ । २६ । मत्तं बंध २२ । उ ७ । स २८ ॥

इगिवीसेण णिरुद्धे णवयतिये सत्तमट्ठवीसेव ।
सत्तरसे णवचदुरे अडचउतिदुगेक्कवीसंसा ॥६७५॥

एकविंशत्या निरुद्धे नवत्रये सत्वमष्टाविंशतिरेव । सप्तदशसु नवचतुष्वंष्ट चतुस्त्रिद्वयेक विंशतिरंशाः ॥

बन्धोदये सत्त्वं बन्धसत्त्वे उदय उदयसत्त्वे बन्ध इति त्रिधा द्विस्थानाधारैकस्थानाधेयो ज्ञातव्यः ॥६७३॥ तत्र प्रथमं प्रकरणं गाथाषट्केनाह—

द्वाविंशतिकबन्धेन निरुद्धे जीवे सम्भविषु दशकादिचतुरुदयस्थानेषु मध्ये सत्त्वमष्टाविंशतिकादित्रयं । सप्तकेऽष्टाविंशतिकमेव ॥६७४॥

बन्धस्थान और उदयस्थानमें सत्त्वस्थान, बन्धस्थान और सत्त्वस्थानमें उदयस्थान, उदयस्थान और सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान इस प्रकार दो स्थानोंको आधार और एक स्थानको आधेय बनानेके तीन प्रकार हैं ॥६७३॥

विशेषार्थ—इतनेका बन्ध और उदय जिसके होता है उसके इतनेका सत्त्व पाया जाता है । यहाँ बन्ध उदय आधार और सत्त्व आधेय होता है । जिसके इतनेका बन्ध और इतनेका सत्त्व होता है उसके इतनेका उदय होता है । यहाँ बन्ध सत्त्व आधार और उदय आधेय होता है । जिसके इतनेका उदय और इतनेका सत्त्व होता है उसके इतनेका बन्ध पाया जाता है । यहाँ उदय सत्त्व आधार और बन्ध आधेय होता है । इस तरह तीन प्रकार होते हैं ॥६७३॥

इनमें-से प्रथम प्रकारको छह गाथाओंसे कहते हैं—

बाईसके बन्ध सहित जीवके सम्भव दस आदि चार उदयस्थान हैं । उनमें-से दस आदि तीनमें तो सत्त्व अठाईस आदि तीनका है । किन्तु सातके उदयस्थानमें सत्त्व अट्ठाईसका ही है ॥६७४॥

एकविंशति प्रकृतिबंधस्थानविदं सिक्कुत्तं विद्दं जीवनोळुदयिसुत्तिद्दं नवाद्युदयस्थानत्रयदोळष्टाविंशतिसत्वस्थानमोंदेयक्कुं। बं २१। उ ९। ८। ७। स २८॥ सप्तदश प्रकृतिबंधस्थानदोळमुदयिसुव नवाद्युदय चतुःस्थानंगळोळु अष्टचतुस्त्रिद्व्येकविंशति सत्वस्थानंगळप्पुवल्लि :—

इगिवीसं णहि पढमे चरिमे तिदुवीसयं ण तेरणवे ।
अडचउ सगचउरुदये सत्तं सत्तरसयं व हवे ॥६७६॥

एकविंशतिर्न्नं हि प्रथमे चरमे त्रिद्विविंशतिर्न्नं त्रयोदशनवस्वष्ट चतुः सप्तचतुरुदये सत्वं सप्तदशवद्भवेत् ॥

एकविंशतिर्न्नं हि प्रथमे चरमे त्रिद्वि विंशतिर्न्नं सप्तदशप्रकृतिबंधकन प्रथम नवोदयस्थानदोळु एकविंशतिप्रकृतिसत्वस्थानमिल्ला। चरम षट्प्रकृत्युदयस्थानदोळु त्रिद्वियुतविंशति सत्वस्थानद्वयमिल्ल। बं १७। उ ८। ७। स २८। २४। २३। २२। २१। मत्तं बं १७। उ ९। स २८। २४। २३। २२। मत्तं बं १७। उ ६। स २८। २४। २१॥ त्रयोदशबंधक नवबंधकरु गळष्टादिसप्तादि चतुरुदयस्थानंगळोळु क्रमदिंदं सत्वस्थानंगळु सप्तदशबंधकनोळु पेळ्दंतेयप्पुवु। बं १३। उ ८। स २८। २४। २३। २२॥ मत्तं बं १३। उ ७। ६ स २८। २४। २३। २२। २१। मत्तं बं १३। उ ५। स २८। २४। २१। बं ९। उ ७। स २८। २४। २३। २२। मत्तं बं ९। उ ६। ५। स २८। २४। २३। २२। २१। मत्तं बं ९। उ ४। स २८। २४। २१॥

णवरि य अपुव्व णवगे छादितियुदयेवि णत्थि तिदुवीसा ।
पणबंधे दोउदये अडचउरिगिवीसतेरसादितियं ॥६७७॥

नवीनं च अपूर्व्वनवके षडादित्रयुदयेपि नास्ति त्रिद्विविंशतिः। पंचबंधे द्वयुदयेऽष्टचतुरेकविंशतित्रयोदशादित्रिकं ॥

एकविंशतिकबन्धेन निरुद्धे जीवे उदयनवकादित्रये सत्त्वमष्टाविंशतिकमेव। सप्तदशकबन्धेनोदयनवकादिचतुर्षु सत्त्वमष्टचतुस्त्रिद्व्येकाग्र्यविंशतिकानि ॥६७५॥ किन्तु

नवकोदये एकविंशतिकं नहि, षट्कोदये च न त्रयोविंशतिकद्वयं। त्रयोदशकबन्धेऽष्टकादिषु नवकबन्धे सप्तकादिषु च चतुर्षूदयस्थानेषु क्रमेण सत्त्वं सप्तदशबन्धवद्भवति ॥६७६॥

इक्कीसके बन्ध सहित जीवके नौ आदि तीनके उदयमें सत्त्व अठाईसका है। सतरहके बन्ध सहित जीवमें नौ आदि चारके उदयमें सत्त्व अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीसका है ॥६७५॥

किन्तु नौके उदयमें इक्कीसका सत्त्व नहीं होता। और छहके उदयमें तेईस-बाईसका सत्त्व नहीं होता। तेरहके बन्ध सहित आठ आदि चार उदयस्थानोंमें और नौके बन्ध सहित सात आदि चार उदयस्थानोंमें क्रमसे सत्त्व सतरहके बन्धसहितमें जैसे कहा है वैसे ही जानना ॥६७६॥

अपूर्व्वकरण नवबंधकनोळु विशेषमुंटवाउदेंदोडे षडादित्रिस्थाननोदयदोळु त्रिद्व्युत्तर विंशतिसत्वस्थानद्वयमिल्ल । बं ९ । उ ६ । ५ । ४ । स २८ । २४ । २१ ॥ पंचबंधकन द्विप्रकृतिस्थानोदयदोळु अष्टचतुरेकविंशतित्रयोदशादि त्रिस्थानसत्वमक्कुं । बं ५ । उ २ । स २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ ॥

चदुबंधे दोउदये सत्तं पुव्वंव तेण एक्कुदये ।
अडचउरेक्काबीसा एयारतिगं च सत्ताणि ॥६७८॥

चतुर्ब्बंधे द्व्युदये सत्वं पूर्व्ववत् तेनैकोदयें अष्टचतुरेकविंशत्येकादश त्रयं च सत्वानि ॥

चतुर्ब्बंधकन द्विप्रकृत्युदयस्थानदोळु मुन्नं पंचबंधकनोळु पेळद सत्वस्थानंगळेयप्पुवु । बं ४ । उ २ । स २८ । २४ । २१ । १३ । १२ । ११ । तेन सह आ चतुर्ब्बंधस्थानदोडनुदयिसुत्तिर्द्देक-प्रकृतिस्थानदोळु अष्टचतुरेकविंशति एकादशादित्रिस्थानंगळुं सत्वमप्पुवु । बं ४ । उ १ । स २८ । २४ । २१ । ११ । ५ । ४ ॥

तिदुइगिबंधेक्कुदये चदुतियठाणेण तिदुगठाणेण ।
दुगिठाणेण य सहिदा अडचउरिगिवीसया सत्ता ॥६७९॥

त्रिद्वेयकबंधैकोदयें चतुस्त्रिकस्थानेन त्रिद्विकस्थानेन । द्व्येकस्थानेन च सहितान्यष्ट चतुरेकविंशति सत्वानि ॥

त्रिबंधद्विबंधएकबंधयुतरुगळ एकप्रकृत्युदयस्थानंगळोळु क्रमदिंदं चतुस्त्रिस्थानद्वययुतंगळुं त्रिद्विस्थानद्वययुतंगळुं द्व्येकस्थानद्वययुतंगळुमप्प अष्टचतुरेकविंशतिसत्वस्थानत्रयंगळुमप्पुवु । बं ३ । उ १ । स २८ । २४ । २१ । ४ । ३ । बं २ । उ १ । स २८ । २४ । २१ । ३ । २ । बं १ ।

तत्रापूर्वकरणनवकबन्धे षट्कादित्रयोदयेन त्रयोविंशतिकद्वयमस्तीति (–यं नास्तीति) विशेषः पंचक-बन्धस्य द्विकोदये सत्वमष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि त्रयोदशकादित्रयं च ॥६७७॥

चतुष्कबन्धस्य द्विकोदये सत्वं पंचबन्धवद्भवति । चतुष्कबन्धस्यैककोदये त्वष्टचतरेकाग्रविंशतिकान्ये-कादशकादित्रयं ॥६७८॥

त्रिकद्विकैकबन्धिषष्वैककोदये सत्वमष्टचतुरेकाग्रविंशतिकानि पुनः क्रमेण चतुष्कत्रिकाभ्यां त्रिकद्विकाभ्यां

किन्तु इतना विशेष है कि अपूर्वकरणमें नौके बन्धसहित छह आदि तीन उदयस्थानों-में तेईस और बाईसका सत्त्व नहीं है। पाँचके बन्धसहित दोके उदयमें सत्त्व अठाईस, चौबीस, इक्कीस तथा तेरह आदि तीनका होता है ॥६७७॥

चारके बन्धके साथ दोके उदयमें सत्त्व पाँचके बन्ध सहितमें जैसा कहा वैसा जानना। चारके बन्धके साथ एकका उदय होते सत्त्व अठाईस, चौबीस, इक्कीस तथा ग्यारह आदि तीनका जानना ॥६७८॥

तीन, दो, एकके बन्धके साथ एकके उदयमें सत्त्वस्थान अठाईस, चौबीस, इक्कीसका तथा तीनके बन्धसहितमें चार और तीनका, दोके बन्ध सहितमें तीन और दोका, एकके

उ।१।स २८।२४।२१।२।१॥ समुच्चय संदृष्टि—बं २२। उ १०। ९। ८। स २८। २७। २६। बं २२। उ ७। स २८। बं २१। उ ९।८।७। स २८। बं १७। उ ९। स २८। २४।२३।२२। बं १७। उ ८।७। स २८। २४। २३। २२। २१। बं १७। उ ६। स २८। २४। २१। बं १३। उ ८। स २८। २४।२३।२२। बं १३। उ ७। स २८। २४। २३। २२। २१। बं १३। उ ५। स २८। २४। २१। बं ९। उ ७। स २८। २४। २३। २२। बं ९। उ ६। ५। स २८। २४। २३। २२। २१। बं ९। उ ४। स २८। २४। २१॥ अपूर्वकरण बं ९। उ ६। ५। ४। स २८। २४। २१। बं ५। ४। उ २। स २८। २४। २१। १३। १२। ११। बं ४। उ १। स २८। २४। २१। ११। ५। ४। बं ३। उ १। स २८। २४। २१। ४। ३। बं २। उ १। स २८। २४। २१। ३। २। बंध १। उ १। स २८। २४। २१। २। १॥

ई रचनाभिप्रायं पेळल्पडुगुमेंतेंदोडे मोहनीयबंधप्रकृतिगळु सर्व्वमुं षड्विंशतिप्रमितंगळप्पुववरोळु द्वाविंशतिप्रकृतिस्थानमं मिथ्यादृष्टि कट्टुगु। मा मिथ्यादृष्टियुं चतुर्ग्गतिजनक्कुमातंगपुनरुक्तंगळुं मिथ्यात्वकर्म्मयुतदशादिचतुरुदयस्थानंगळप्पुवनंतानुबंधिकषायोदयसहितरहितभेददिनेंदुमुदयकूटंगळोळु संभविसुगुमल्लि दशाद्युदयत्रिस्थानंगळेकजीवापेक्षेयिं क्रमदिंदमुदयिसुववु। नानाजीवापेक्षेयिं युगपदुदयिसुवा द्वाविंशतिप्रकृतिबंधमुं दशादित्रिस्थानोदयंगळोळेकतरस्थानोदयमनुळ्ळ जीवंगेकजीवापेक्षेयिंद अष्टाविंशतित्यादिसत्त्वस्थानत्रयदोळेकतरस्थानं सत्त्वमक्कुं। नानाजीवापेक्षेयिं त्रिस्थानंगळुं युगपत्सत्त्वंगळप्पुवु। मत्तमा द्वाविंशतिप्रकृतिबंधकमिथ्यादृष्टिगे अनंतानुबंधिरहितोदयसप्तप्रकृतिस्थानोदयमक्कुमा जीवनोळु अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वस्थानमो देयक्कुमदेंतेंदोडा मिथ्यादृष्टिजीवं परेगसंयतादिचतुर्गुणस्थानंगळोळेल्लियानुमिद्दनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमं मुंपेळ्द क्रमदिंदं विसंयोजिसि किडिसि मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिंदं मिथ्यादृष्टियागि

द्विकैकाभ्यां च युतानि। अत्रायमर्थः—

मोहस्य सर्वबन्धप्रकृतिषु चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ द्वाविंशतिकबन्धे मिथ्यात्वयुतानन्तानुबन्धियुतवियुताष्टकूटसम्भूताऽपुनरुक्तदशकादिचतुरुदयस्थानेष्वेकजीवापेक्षया क्रमेण नानाजीवापेक्षया युगपत्सम्भवत्सु त्रिषु सत्त्वमेकजीवापेक्षयाष्टाविंशतिकादित्रयं क्रमेण, नानाजीवापेक्षया युगपत्। सप्तोदयस्थाने तु अष्टाविंशतिमेव न सप्तविंशतिकषट्विंशतिके। कुतः ? असंयतादिषु चतुर्ष्वेकत्रानन्तानुबन्धिनो विसंयोज्य मिथ्यात्वोदयान्मिथ्या-

---

बन्धसहितमें दो और एकका इस तरह पाँच-पाँच सत्त्वस्थान होते हैं। इसका अर्थ इस प्रकार है—

मोहनीयकी सर्वबन्ध प्रकृतियोंमें चारों गतिका मिथ्यादृष्टी जीव बाईसका बन्ध करता है। उसके मिथ्यात्व सहित और अनन्तानुबन्धी सहित तथा रहित आठ कूट कहे थे। उनसे उत्पन्न अपुनरुक्त दस आदि चार उदयस्थानोंमें एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा युगपत् सम्भव तीनमें तो सत्त्व एक जीवकी अपेक्षा तो क्रमसे और नाना जीवोंकी अपेक्षा युगपत् अठाईस आदि तीनका होता है। किन्तु सातके उदयस्थानमें अठाईसका ही सत्त्व है, सत्ताईस और छब्बीसका नहीं है; क्योंकि असंयत आदि चार गुणस्थानोंमें-से किसी एकमें अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके मिथ्यात्वके उदयसे मिथ्या-

तत्प्रथमसमयदोळु द्वाविंशतिप्रकृतिबंधकनप्पुदरिंदमनंतानुबंधियुमनल्लि एकसमयप्रबद्धमं कट्टुगुमंतु कट्टिद समयप्रबद्धक्कुदीरणेयं माळ्पडमोदचलावळि पर्य्यंतमाबाधकालमप्पुदरिनुवयावलियोळिक्कल्बारदु कारणमचलावलिकालपर्य्यंतमनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टियेंदु पेळल्पट्टना मिथ्यादृष्टिगे वेदककालमं कळिदुपशमकालदोळल्लदे सम्यक्त्वप्रकृतियुमं सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतियुमनुद्वेल्लनमं माडल्बारदरिंदं सप्तविंशति षड्विंशतिस्थानद्वयसत्त्वं संभविसदप्पुदरिंदं। एकविंशतिप्रकृतिबंधं सासादननोळेयक्कुमा सासादननुं चतुर्गतिजनक्कुमा जीवक्केकजीवापेक्षेयिं नवाद्युदयत्रिस्थानंगळोळन्यतरस्थानोदयमक्कुं। नानाजीवापेक्षेयिंद युगपत्त्रिस्थानोदयमक्कुमा सासादनंगष्टाविंशतिस्थानमोंदे सत्त्वमक्कुमेकेंदोडा सासादनं मुन्नं सादिमिथ्यादृष्टियादोडमनादिमिथ्यादृष्टियादोडं करणत्रयपरिणामदिंदं दर्शनमोहनीयमनुपशमिसियसंयतादिचतुर्गुणस्थानमं यथायोग्यमं पोंद्दि तत्सम्यक्त्वकालदोळु मिथ्यात्वप्रकृतियर्त्तणिंदं गुणसंक्रमविधानदिंदं मिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिगळनुपार्ज्जिसि तत्सम्यक्त्वकालमावलिषट्कमवशिष्टमादागळा कालप्रथमसमयं मोदल्गोंडु षडावलिचरमसमयपर्य्यंतमेल्लियादोडमनंतानुबंधिकषायोदयदिंदं सासादननक्कुमप्पुदरिंदं सम्यक्त्वप्रकृत्युद्वेल्लितसप्तविंशतिसत्त्वमुं मिश्रप्रकृत्युद्वेल्लितषड्विंशतिसत्त्वमुं संभविसवु। चतुर्व्विंशतिसत्त्वस्थानमुं संभविसदेकेंदोडनंतानुबंधिविसंयोजकरु असंयतादिचतुर्गुणस्थानवर्त्तिगळु नियमदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदमवरोळेत्तलानुं मिथ्यात्वकर्म्ममुदयिसि मिथ्यादृष्टिगळेयप्परप्पु-

दृष्टित्वं गतः तत्प्रथमसमये द्वाविंशतिकबन्धे बद्धानन्तानुबन्ध्येकसमयप्रबद्धस्य तदुदीरणाया अचलावलिकालमसम्भवात्तदुदयरहितस्य तस्य सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिवेदककालत्वादुपशमकालाभावात्सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्यनुद्वेल्लनात्।

चतुर्गतिसासादनैकविंशतिकबन्धे एकजीवापेक्षया क्रमेण नानाजीवापेक्षया युगपदुदयन्नवकादित्र्युदयस्थानेषु सत्त्वमष्टाविंशतिकमेव न सप्तविंशतिकषड्विंशतिके। कुतः ? उपशमसम्यक्त्वादेव सासादने गमनात्तत्स्थितेश्चैकसमयात्षडावलिपर्यंतसमयोत्तरकालविकल्पात्मकत्वात्सम्यक्त्वमिश्रप्रकृत्युद्वेल्लनावसरस्योपशमकालस्यानवतारात्। नापि चतुर्विंशतिकं, अनन्तानुबन्धिविसंयोजकानां नियमेन वेदकसम्यग्दृष्टित्वात्सासादने नागम-

---

दृष्टि होकर वहाँ प्रथम समयमें बाईसका बन्ध किया। उसमें बाँधी गयी अनन्तानुबन्धीके एक समयप्रबद्धकी उदीरणा अचलावली काल पर्यन्त तो सम्भव नहीं है। और अनन्तानुबन्धीके उदयरहित उस जीवके सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयका वेदककाल है, उपशम काल नहीं है। इससे उसके सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयकी उद्वेलना नहीं होती। पूर्वमें वेदककाल और उपशमकालका लक्षण कह आये हैं और वेदककालमें इनकी उद्वेलनाका अभाव भी कह आये हैं।

चारों गतिके सासादनमें इक्कीसका बन्ध है। उसमें एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नाना जीवोंकी अपेक्षा युगपत् नौ आदि तीन उदयस्थान हैं। उनमें अठाईसका ही सत्त्व है, सत्ताईस या छब्बीसका नहीं है; क्योंकि उपशम सम्यक्त्वसे भ्रष्ट होकर सासादन होता है। उसकी स्थिति एक समयसे लगाकर एक-एक समय बढ़ते हुए छह आवली पर्यन्त होती है। और सम्यक्त्व मोहनीय मिश्रमोहनीयकी उद्वेलना उपशमकालमें ही होती है वह यहाँ सम्भव नहीं है। तथा यहाँ चौबीसका भी सत्त्व सम्भव नहीं है; क्योंकि अनन्तानुबन्धीका

दरिंदं सप्तदशप्रकृतिबंधं मिश्रनोळमसंयतनोळमक्कुमवर्गंळ्गं चतुर्गतिजरप्परल्लि । मिश्रनोळु नवादित्रितयोदयस्थानंगळऽपुनरुक्तंगळेकजीवापेक्षेयिं क्रमदिनुदयिसुववु । नानाजीवापेक्षेयिंदं युगपदुदयंगळप्पुवल्लियष्टाविंशति चतुर्व्विंशतिस्थानद्वयं । नानाजीवापेक्षेयिंदं युगपत्सत्त्वंगळुमप्पुवेकजीवापेक्षेयिनन्यतरत्सत्त्वमक्कुं । त्रयोविंशतिद्वाविंशतिस्थानद्वयं सत्त्वमिल्लेकेंदोडे मिश्रप्रकृत्युदयमुळ्ळंगे दर्शनमोहनीयक्षपणाप्रारंभं संभविसदप्पुदरिंदं । ५

मत्तमा सप्तदशप्रकृतिबंधकासंयतनुं चतुर्गतिजनक्कुमातनोळु नवादिचतुरुदयस्थानंगळेकजीवापेक्षेयि नन्यतरप्रकृतिस्थानमुदयिसुगुं । नानाजीवापेक्षेयिं चतुरुदयस्थानंगळुं युगपदुदयिसुववु। अल्लि सप्तदशस्थानबंधमुं नवप्रकृत्युदयमुळ्ळं वेदकसम्यग्दृष्टियक्कुमप्पुदरिंद मल्लि येकजीवापेक्षेयिंदमष्टाविंशति चतुर्व्विंशति त्रयोविंशति द्वाविंशति सत्वस्थानंगळोळन्यतरत्सत्वमक्कुं । नानाजीवापेक्षेयिं युगपत्सत्वंगळप्पुवल्लि । एकविंशतिस्थानं संभविसदेंबुदु सिद्धमक्कुमेकेंदोडा १० सत्वस्थानं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळल्लदेल्लियुं घटियिसदप्पुदरिंदमीतं वेदकसम्यग्दृष्टियप्पुदरिंदं दर्शनमोहनीयक्षपणाप्रारंभकत्वं कर्म्मभूमिमनुष्यासंयतनोळु संभविसुगुमप्पुदरिंदमनंतानुबंधिरहित सत्वस्थानमुं मिथ्यात्वरहितसत्वस्थानमुं मिश्रप्रकृतिरहितसत्वस्थानमुमिल्लि पेळल्पट्टुवु। मत्तमा सप्तदश प्रकृतिबंधकासंयतसम्यग्दृष्टिगष्टसप्तोदयस्थानद्वयं सम्यक्त्वत्रयुतजीवसाधारणोदयस्थानंगळप्पुदरिंदमेकजीवापेक्षेयिंदमेकतरस्थानोदयमक्कुं । नानाजीवापेक्षेयिंदं युगपदुदयि- १५

नात् । चतुर्गतिमिश्रसप्तदशकबन्धे एकजीवापेक्षया क्रमेण नानाजीवापेक्षया युगपदुदयन्नवकादिष्युदयस्थानेषु सत्त्वमष्टाविंशतिकचतुर्विंशतिके नानाजीवापेक्षया युगपदेकजीवापेक्षया क्रमेण न त्रयोविंशतिकद्वाविंशतिके । कुतः ? मिश्रोदये दर्शनमोहस्य क्षपणाप्रारम्भाभावात् । चतुर्गत्यसंयमसप्तदशकबन्धे एकजीवापेक्षया क्रमेण नानाजीवापेक्षया युगपदुदयचतुरुदयस्थानेषु नवकोदये सत्त्वं वेदकसम्यग्दृष्टित्वाद्दर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भादनन्तानुबन्धिमिथ्यात्वमिश्रसहितरहितस्थानसम्भवात् । कर्मभूमिमनुष्ये एकजीवापेक्षयाष्टचतुस्त्रिद्व्यग्रविंशतिकानि क्रमेण, नानाजीवापेक्षया युगपत् नैकविंशतिकं क्षायिकसम्यग्दृष्टावेव तत्सत्त्वात् । अष्टकसप्तकोदये सत्त्वं २०

विसंयोजन वेदकसम्यग्दृष्टीके ही होता है, और वेदक सम्यग्दृष्टी सासादनमें आता नहीं है। चारों गति सम्बन्धी मिश्रगुणस्थानमें सतरहका बन्ध होता है । वहाँ एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नाना जीवकी अपेक्षा युगपत् नौ आदि तीन उदयस्थान हैं। उनमें अठाईस और चौबीसका ही सत्त्व है तेईस या बाईसका नहीं; क्योंकि मिश्रमोहनीयके उदयमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं होता। २५

चारों गतिके असंयतमें सतरहका बन्ध है। वहाँ एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नाना जीवोंकी अपेक्षा युगपत् चार उदयस्थान होते हैं। उनमें-से नौके उदय रहते वेदक सम्यग्दृष्टी होता है। अतः दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ होनेसे अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व और मिश्रमोहनीयसे सहित तथा रहित सत्त्वस्थान हो सकते हैं। अतः कर्मभूमिया मनुष्यमें ३० एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नाना जीवोंकी अपेक्षा युगपत् अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईसका सत्त्व सम्भव है। इक्कीसका सत्त्व क्षायिक सम्यग्दृष्टीके ही होता है अतः वह सम्भव नहीं है। तथा आठ और सातके उदयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वमें अठाईसका ही

पुवल्लि प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टयपेक्षेयिंदमष्टाविंशतिस्थानमोंदे सत्वमक्कुं। द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टयपेक्षेयिंदमष्टाविंशति चतुर्विंशतिस्थानद्वयं सत्वमक्कुं। वेदकसम्यग्दृष्टयपेक्षेयिंदमष्टाविंशति चतुर्विंशति त्रयोविंशतिद्वाविंशतिस्थानंगळोळेक जीवापेक्षेयिंद मन्यतरत्सत्वमक्कुं। नानाजीवापेक्षेयिंदं युगपत्सत्वंगळप्पुवु। क्षायिकसम्यग्दृष्टयपेक्षेयिंदमेकविंशतिस्थानमोंदे सत्वमक्कुं। मत्तमा सप्तदशस्थानबंधकंगे षट्प्रकृत्युदयस्थानमुदइसिदोडातं क्षायिक सम्यग्दृष्टयसंयतनुमुपशमसम्यग्दृष्टयसंयतनक्कुमेकें दोडातनुदयकूटदोळु सम्यक्त्वप्रकृतिरहितमागि कषायत्रयमुमेकवेदमुं हास्यरत्यादिद्विकद्वयदोळोंदु द्विकमुमंतु षट्प्रकृतिगळप्पुवप्पुदरिंदमल्लि एकविंशतिस्थानमोंदे सत्वं क्षायिकसम्यग्दृष्टयसंयतनोळक्कु—। मुपशमसम्यग्दृष्टयसंयतनोळु अष्टाविंशति चतुर्विंशतिस्थानद्वयसत्वमक्कुं। त्रयोदश प्रकृतिबंधकं देशसंयतनेयक्कुमा देशसंयतनुपशमसम्यग्दृष्टियुं वेदकसम्यग्दृष्टियुमप्प तिर्य्यंचनुमुपशमवेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टियप्प मनुष्यनुमक्कु मातंगे अष्टप्रकृतिस्थानादि चतुरुदयस्थानंगळप्पुवल्लि—। यष्टप्रकृत्युदयस्थानं वेदकसम्यग्दृष्टितिर्य्यग्मनुष्यरोळक्कुमल्लि अष्टाविंशति चतुर्विंशतिस्थानद्वयं तिर्य्यंचदेशसंयतनोळु सत्वमक्कुमष्टाविंशति चतुर्विंशति त्रयोविंशति द्वाविंशति सत्वस्थानचतुष्टयं मनुष्यवेदकसम्यग्दृष्टि देशसंयतनोळक्कुं। सप्तषट्प्रकृत्युदयस्थानद्वयमुपशमवेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टिसाधारणोदयस्थानंगळप्पुदरिंदमुपशमसम्यग्दृष्टि तिर्य्यंग्मनुष्यदेशसंयतरोळु अष्टाविंशति चतुर्विंशतिस्थानद्वय सत्वमक्कुं। तिर्य्यंचवेदकसम्यग्दृष्टियोळमा सत्वस्थानद्वयमेयक्कुं। मनुष्यवेदकसम्यग्दृष्टियोळु अष्टाविंशतिचतुर्विंशतित्रयोविंशति द्वाविंशतिसत्वस्थानचतुष्टयमक्कुं। क्षायिकसम्यग्दृष्टि देशसंयतं मनुष्यमेयक्कु—। मातंगेकविंशतिसत्वस्थानमोंदेयक्कुं। मत्तमा त्रयोदश प्रकृतिबंधक देशसंयतनोळु पंचप्रकृत्युदय-

---

प्रथमोपशमसम्यक्त्वेऽष्टाविंशतिकं द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे तच्चतुर्विंशतिकं च, वेदकसम्यक्त्वे तद्द्वयं च त्रिद्वयग्रविंशतिके एकजीवापेक्षया क्रमेण नानाजीवापेक्षया युगपत्, क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकमेव। षट्कोदये सम्यक्त्वप्रकृतिरहितत्वात् क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकं, उपशमसम्यक्त्वेऽष्टाविंशतिकचतुर्विंशतिके द्वे। त्रयोदशकबन्धे देशसंयते तिर्यग्मनुष्योपशमवेदकसम्यक्त्वे मनुष्यक्षायिकसम्यक्त्वे चाष्टकोदये सत्त्वं वेदकसम्यक्त्वे तिरश्च्यष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे, मनुष्ये तद्द्वयं च त्रिद्वयग्रविंशतिके च। सप्तकषट्कोदये तिर्यग्मनुष्योपशमसम्यक्त्योपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे। वेदकसम्यक्त्वे तिरश्चि तद्द्वयं, मनुष्ये तद्द्वयं च

सत्त्व है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वमें अठाईस या चौबीसका सत्त्व है। और वेदक सम्यक्त्वमें अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईसका सत्त्व एक जीवकी अपेक्षा क्रमसे और नाना जीवकी अपेक्षा युगपत् सम्भव है। क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीसका ही सत्त्व है। छहके उदयमें सम्यक्त्व मोहनीयके न होनेसे क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीसका ही सत्त्व है। उपशम सम्यक्त्वमें अठाईसका या चौबीसका सत्त्व है।

तेरहके बन्धसहित देशसंयतमें तिर्यंच या मनुष्यके उपशम या वेदक सम्यक्त्व होता है। क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्यके ही होता है। वहाँ आठके उदयमें सत्त्व वेदक सम्यक्त्वी तिर्यंचमें तो अठाईस और चौबीसका तथा मनुष्यमें अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईसका है। सात अथवा छहके उदयमें तिर्यंच और मनुष्यके उपशम सम्यक्त्वमें तो अठाईस, चौबीसका

स्थानमुपशमक्षायिकसम्यग्दृष्टिगळोळे संभविसुगुमल्लियुपशमसम्यग्दृष्टि तिर्य्यंग्मनुष्य देशसंयत-रोळष्टाविंशति चतुर्व्विंशति सत्वस्थानद्वय मक्कुं। क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्यनोळु एकविंशति सत्वस्थानमक्कुं। नवप्रकृतिबंधकरुगळु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळप्पेवर्ग्गळोळु सप्ताविचतुरुदय-स्थानंगळप्पुववर्ग्गंळुमुपशमवेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टि गळप्परल्लि वेदकसम्यग्दृष्टिगळोळे सप्तप्रकृतिस्थानोदयमक्कुमवरोळु अष्टाविंशति चतुर्विंशति त्रयोविंशति द्वाविंशतिप्रकृतिस्थान-चतुष्टयं सत्वमक्कु मुपशमवेदक क्षायिकसम्यग्दृष्टिसाधारणोदयषट्पंचप्रकृतिस्थानद्वयमप्पुदरिंदं मुपशमसम्यग्दृष्टिगळोळु मुन्नं त्रयोदशबंधकनोळु पेळ्दंते अष्टाविंशति चतुर्व्विंशतिस्थानद्वयं-सत्वमक्कुं। वेदकसम्यग्दृष्टिगळोळु अष्टाविंशतिचतुर्व्विंशति त्रयोविंशति द्वाविंशति सत्वस्थानंग-ळप्पुवु। क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळोळु एकविंशतिस्थानमों दे सत्वमक्कुं। मत्तमा नवबंधकचतुः-प्रकृत्युदयस्थानमुमुपशम क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळक्कु मल्लियुपशमसम्यग्दृष्टि-गळोळु अष्टाविंशति चतुर्व्विंशतिस्थानद्वयमक्कुं। क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळोळेकविंशतिसत्वस्थान-मों देयक्कुं। नवबंधकापूर्व्वकरणनोळु षट्पंचचतुःप्रकृत्युदयस्थानत्रयमक्कु मल्लियुपशम-सम्यग्दृष्टियोळु अष्टाविंशति चतुर्व्विंशतिस्थानद्वयं सत्वमक्कुं। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळेकविंशति-स्थानमों देसत्वमक्कुं। पंचचतुःप्रकृतिबंधकननिवृत्तिकरणनेयक्कु मल्लि द्विप्रकृत्युदयस्थानमों दे-

---

त्रिद्वयग्रविंशतिके च, क्षायिकसम्यक्त्वे देशसंयतस्य मनुष्यत्वादेकविंशतिकमेव। तत्पंचकोदये उपशमसम्यग्दृष्टि-तिर्यग्मनुष्येऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे, क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्ये एकविंशतिकमेव। नवकबन्धे प्रमत्ताप्रमत्ते चतुर्षूद-यस्थानेषु सप्तकोदये वेदकसम्यक्त्वे सत्त्वमष्टचतुस्त्रिद्वयग्रविंशतिकानि। षट्कपंचकोदये उपशमसम्यक्त्वेऽष्ट-चतुरग्रविंशतिके द्वे। वेदकसम्यक्त्वे तद्द्वयं च त्रिद्वयग्रविंशतिके च। क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकमेव। तच्चतुष्कोदये उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे। क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकमेव। नवकबन्धेऽपूर्वकरणे षट्कपंचकचतुष्कोदये सत्त्वमुपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे। क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकमेव।

तथा वेदक सम्यक्त्वी तिर्यंचमें भी वे ही दोनों तथा वेदक सम्यक्त्वी मनुष्यमें अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईसका सत्त्व है। क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्य ही होता है। उसके इक्कीसका सत्त्व है। पाँचके उदयमें उपशम सम्यग्दृष्टी तिर्यंच और मनुष्यमें अट्ठाईस और चौबीसका सत्त्व है। क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्यमें इक्कीसका सत्त्व है। नौके बन्धसहित प्रमत्त अप्रमत्त-में चार उदयस्थानोंमें-से सातके उदयमें वेदकसम्यक्त्वी ही होता है। अतः अठाईस, चौबीस, तेईस, बाईसके चार सत्त्व हैं। छह और पाँचके उदयमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस और चौबीसका सत्त्व है। वेदक सम्यक्त्वमें अठाईस चौबीस तेईस बाईसका सत्त्व है। क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीसका सत्त्व है। चारके उदयमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस, चौबीसका सत्त्व है। क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीसका ही सत्त्व है।

नौके बन्ध सहित अपूर्वकरणमें छह पाँच या चारके उदयमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस चौबीसका सत्त्व है। क्षायिक सम्यक्त्वमें इकईसका सत्त्व है।

पाँच, चारका बन्ध और दोके उदय सहित अनिवृत्तिकरणमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस, चौबीसका और क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारहका सत्त्व है।

यक्कुमल्लि युपशमसम्यग्दृष्टियोळु अष्टाविंशति चतुर्व्विंशति सत्वस्थानमक्कु । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळु येकविंशति त्रयोदशद्वादश एकादश प्रकृतिसत्वस्थान चतुष्टयमक्कुं । चतुर्बंधकमेकप्रकृत्युदयानिवृत्तिकरणनोळुपशमसम्यग्दृष्टियोळु अष्टाविंशतिचतुर्व्विंशतिस्थानद्वयसत्वमक्कुं । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळेकविंशति एकादश पंच चतुः प्रकृतिसत्वस्थान चतुष्टयमकुं । त्रिःप्रकृतिबंधकमेकप्रकृत्युदयानिवृत्तिकरण नोळुपशमसम्यग्दृष्टियोळु अष्टाविंशति चतुर्व्विंशतिसत्वस्थानद्वयमक्कुं । शेष एकविंशति चतुस्त्रिप्रकृतिसत्वस्थानत्रितयं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळक्कुं । द्विप्रकृतिबंधकमेक प्रकृत्युदयानिवृत्तिकरण नोळुपशमसम्यग्दृष्टियोळु अष्टाविंशति चतुर्व्विंशति सत्वस्थानद्वयमक्कुं । शेष एकविंशति त्रिद्विप्रकृतिसत्वस्थानत्रयं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळक्कुं । एकप्रकृतिबंधमेकप्रकृत्युदयानिवृत्तिकरणनोळुपशमसम्यग्दृष्टियोळष्टाविंशति चतुर्व्विंशतिस्थानद्वयमक्कुं । शेष एकविंशतिद्वि एकप्रकृतिसत्वस्थान त्रयं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोळक्कुं । यिल्लियुमो दु विशेषमुंटदाउदेंदोडे क्षपकानिवृत्तिकरणनोळु चतुस्त्रिद्व्येकप्रकृतिबंधकनोळु क्रमदिदं पंच चतुश्चतुस्त्रित्रिद्विद्व्येकसत्वस्थानंगळोळु पूर्व्वपूर्व्वप्रकृतिनवकबंधसत्वमुमुच्छिष्टावलिसत्वं विवक्षिसल्पटुदु वेंदरियल्पडुगुं ॥

अनंतरं बंधसत्वस्थानद्वयाधिकरणमुदयस्थानादेयत्रिसंयोगप्रकारं गाथापंचकदिदं पेळ्दपडुगुं :—

पंचचतुष्कबन्धद्विकोदयेऽनिवृत्तिकरणे सत्त्वमुपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे, क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकत्रिद्व्येकाग्रदशकानि । चतुष्कबन्धैककोदये उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे, क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकैकादशकपंचकचतुष्काणि । त्रिकबन्धैककोदये उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे; क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकचतुष्कत्रिकाणि । द्विकबन्धैककोदयानिवृत्तिकरणे उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे । क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकत्रिकद्विकानि । एकबन्धकोदये उपशमसम्यक्त्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिके द्वे क्षायिकसम्यक्त्वे एकविंशतिकद्विकैकानि । अत्र क्षपकानिवृत्तिकरणे चतुस्त्रिद्व्येकबन्धे क्रमेण पंचचतुश्चतुस्त्रित्रिद्विद्व्येकसत्त्वेषु पूर्वपूर्वनवकबन्धोच्छिष्टावलिसत्त्वे विवक्षिते ज्ञातव्ये ॥६७९॥ अथ बन्धसत्त्वद्वित्स्थानाधारोदयैकस्थानाधेयं गाथापंचकेनाह—

चारका बन्ध और एकके उदय सहितमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस, चौबीसका और क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीस, ग्यारह, पाँच, चारका सत्त्व है। तीनका बन्ध एकके उदयसहितमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस चौबीसका और क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीस, चार, तीनका सत्त्व है। दोका बन्ध एकके उदय सहित अनिवृत्तिकरणमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस, चौबीसका और क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीस, तीन, दोका सत्त्व है। एकका बन्ध एकके उदयसहितमें उपशम सम्यक्त्वमें अठाईस, चौबीसका, क्षायिक सम्यक्त्वमें इक्कीस, दो, एकका सत्त्व है। यहाँ क्षपक अनिवृत्तिकरणमें चार, तीन, दो एकके बन्धमें क्रमसे पाँच चार, चार तीन, तीन दो, दो एकका सत्त्व है। उसमें पूर्वपूर्व वेद और कषायके नवकबद्ध समयप्रबद्धके जो उच्छिष्टावली मात्र निषेक रहते हैं उनकी विवक्षा जानना ॥६७९॥

आगे बन्ध-सत्त्वको आधार और उदयको आधेय मानकर पाँच गाथाओंसे कथन करते हैं—

बावीसे अडवीसे दसचउरुदओ अणे ण सगवीसे ।
छव्वीसे दस य तियं इगिअडवीसे दु णवयतियं ॥६८०॥

द्वाविंशतावष्टा विंशतौ दशचतुरुदयोऽनेन सप्तविंशत्यां । षड्विंशत्यां दशत्रिकं एकाष्टाविंशत्यां तु नवकत्रयं ॥

चतुर्गतिज द्वाविंशति प्रकृतिबंधक मिथ्यादृष्टियोळष्टाविंशति प्रकृतिसत्वस्थानमक्कुमप्पोडल्लि दशाद्युदयस्थानचतुष्टयमक्कुमेकेंदोडे अल्लिये अनंतानुबंधिरहित मिथ्यादृष्टि संभविसुगुमप्पुदरिंद–। मा द्वाविंशतिप्रकृतिबंधदोडने सप्तविंशति षड्विंशति सत्वस्थानंगळोळु दशादि त्रिस्थानंगळप्पुवा मिथ्यादृष्टिजीवं सम्यक्त्वप्रकृतियुमं मिश्रप्रकृतियुमनुद्वेल्लनमं क्रमदिंदं माडिद संक्लिष्टचतुर्गतिजनेंबरियल्पडुगुमप्पुदरि नल्लि अनंतानुबंधिरहितोदयचतुःकूटंगळु संभविसर्वेंबुदत्थं । एकविंशतिबंधकं चतुर्गतिजसासादननक्कुमातनोळु अष्टाविंशतिसत्वस्थानमोंदेयक्कुमल्लि मिथ्यात्वप्रकृत्युदयरहितत्वदिंदं नवाद्यपुनरुक्तोदय त्रिस्थानंगळप्पुवु ॥

सत्तरसे अडचउरिगिवीसे णवयचदुरुदयमिगिवीसे ।
णो पढमुदओ एवं तिदुवीसे णंतिमस्सुदओ ॥६८१॥

सप्तदशस्वष्टचतुरेकविंशत्यां नवकचतुरुदयः एकविंशत्यां । नो प्रथमोदयः एवं त्रिद्विविंशत्यां नांतिमस्योदयः ॥

सप्तदशप्रकृतिबंधं चतुर्गतिजनप्प मिश्रनोळमसंयतनोळमक्कुमवर्गळोळु अष्टचतुरेकविंशतिसत्त्वस्थानंगळु संभविसुगुमल्लि अष्टाविंशतिचतुर्व्विंशतिसत्त्वस्थानंगळु क्रमदिंदमनंतानुबंधिसहितरहितस्थानगळप्पुवा सत्त्वस्थानयुतरोळु मिश्रप्रकृत्युदययुतचतुःकूटंगळोळ पुनरुक्तन-

---

द्वाविंशतिकबन्धके चतुर्गतिमिथ्यादृष्टौ अष्टाविंशतिकसत्त्वे उदयस्थानानि दशकादीनि चत्वारि अनन्तानुबन्धिरहितस्याप्यत्र सम्भवात् । द्वाविंशतिकबन्धेन समं सप्तषडधिकविंशकसत्त्वे तु तदादीनि त्रीण्येव सम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिकृतोद्वेल्लनत्वेनानन्तानुबन्ध्युदयरहितत्वाभावात् । एकविंशतिबन्धकचतुर्गतिसासादनेऽष्टाविंशतिकसत्त्वे मिथ्यात्वानुदयान्नवकादीनि त्रीणि ॥६८०॥

सप्तदशकबन्धे वा चतुर्गतिष्वेऽष्टचतुरग्रविंशतिकसत्त्वे उदयस्थानान्यपुनरुक्तानि नवकादीनि चत्वारि ।

बाईसके बन्धक चारों गतिके मिथ्यादृष्टी जीवके अठाईसके सत्त्वमें उदयस्थान दस आदि चार हैं; क्योंकि यहाँ अनन्तानुबन्धी रहित उदयस्थान भी सम्भव हैं। बाईसके बन्ध सहित सत्ताईस, छब्बीसका सत्त्व होनेपर दस आदि तीन ही उदयस्थान होते हैं क्योंकि यहाँ सम्यक्त्व मोहनीय मिश्रमोहनीयकी उद्वेलना युक्त होनेसे अनन्तानुबन्धी रहितपना सम्भव नहीं है। इक्कीसके बन्धसहित चारों गतिके सासादनमें अठाईसके सत्त्वमें मिथ्यात्वका उदय न होनेसे नौ आदि तीन उदयस्थान हैं ॥६८०॥

सतरहके बन्ध सहित चारों गतिके जीवोंमें अठाईस और चौबीसके सत्त्वमें नौ आदि चार उदयस्थान हैं। किन्तु मिश्रमें मिश्रमोहनीय सहित चार कूटोंमें उत्पन्न हुए तीन ही उदयस्थान हैं।

वादि त्रिस्थानंळप्पुवसंयतनोळु सम्यक्त्वप्रकृत्युदययुतचतुःकूटंगळोळपुनरुक्तनवादित्रिस्थानंगळ्
तत्सम्यक्त्वप्रकृत्युदयरहितोपशमक्षायिकसम्यक्त्वयुतचतुर्गतिजासंयतनोळष्टादिचतुःस्थानंगळोळपु -
नरुक्त षट्प्रकृत्युदयस्थानमुमंतु नवादिचतुरुदयस्थानंगळु पेळल्पट्टुवु । मत्तमेकविंशतिसत्त्व-
स्थानयुतसप्तदशबंधकं चतुर्गतिजक्षायिकसम्यग्दृष्टियसंयतनप्पुदरिनातन विवक्षेयिंदं सम्यक्त्वप्रकृ-
५ त्युदयरहितचतुःकूटंगळोळपुनरुक्ताष्टादित्रिस्थानंगळे संभविसुगुमप्पुदरिंद मल्लि प्रथमनवोदय-
स्थानमिल्लेंदितु पेळल्पट्टुदु । मत्तमा त्रिद्विविंशतिसत्त्वस्थानद्वयं मनुष्यसप्तदशबंधकासंयतनोळेय-
क्कुमातनुं वेदकसम्यक्त्वयुतदर्शनमोहक्षपकनेयक्कुमप्पुदरिंदं सम्यक्त्वप्रकृत्युदययुतनवादित्रिस्था-
नंगळे संभविसुगुमप्पुदरिंदमल्लिचरमषट्प्रकृतिस्थानोदयमिल्लेंदितु पेळल्पट्टुदु ॥

तेरणवे पुव्वंसे अडादिचउ सगचउण्हमुदयाणं ।
सत्तरसंव वियारो पणगुवसंतंसगेसु दो उदया ॥६८२॥
१०

त्रयोदशनवसु पूर्व्ववदंशेष्वष्टादि चतुःसप्तचतुर्णामुदयानां । सप्तदशवद्विकारः पंचकोपशांतांश-
केषु द्वावुदयौ ॥

त्रयोदशप्रकृतिनवप्रकृतिबंधकरुगळ् क्रमदिंदंतिर्य्यंग्मनुष्यदेशसंयतरुगळं, प्रमत्ताप्रमत्तो-
पशमकक्षपकापूर्व्वकरणरुगळुमप्परवर्गंळोळ् पूर्व्वं सप्तदशबंधकनोळ् पेळ्द सत्त्वस्थानंगळेयप्पु-
१५ वल्लि अष्टादिचतुरुदयस्थानंगळं सप्तादिचतुरुदयस्थानंगळं क्रमदिंदमष्टाविंशति चतुर्विंशति-
सत्त्वस्थानद्वयंगळनुळ्ळ त्रयोदशबंधकनोळं नवबंधकनोळमप्पुवा अष्टादिचतुरुदयस्थानंगळोळु
प्रथमाष्टप्रकृत्युदयस्थानमेकविंशतिसत्त्वस्थानयुतरुगळोळिल्ल, त्रिद्विंशतिसत्त्वस्थानयुतरोळ् अंतिम

मिश्रे मिश्रप्रकृतियुतचतुःकूटजानि त्रीणि । असंयते सम्यक्त्वप्रकृतियुतवियुतकूटाष्टकजानि चत्वारि । सप्तदशकबन्धैकविंशतिकसत्त्वे चतुर्गत्यसंयते क्षायिकसम्यग्दृष्टित्वात्सम्यक्त्वप्रकृतियुतचतुष्कूटाभावान्न प्रथमं
२० नवोदयस्थानं तेनाष्टकादीनि त्रीणि । सप्तदशकबन्धत्रिद्व्यधिकविंशतिकसत्त्वे दर्शनमोहक्षपकमनुष्यवेदकसम्यग्दृ-
ष्टयसंयते सम्यक्त्वप्रकृत्युदययुतत्वादन्तिमं षडुदयस्थानं नेति नवकादीनि त्रीणि ॥६८१॥

त्रयोदशकबन्धे तिर्यग्मनुष्यदेशसंतते नवकबन्धे प्रमत्ताप्रमत्तोभयापूर्वकरणे च सप्तदशकबन्धोक्तमेव सत्त्वं, तत्राष्टकादीनि सप्तकादीन्युदयस्थानानि चत्वारि । किन्तु एकविंशतिकसत्त्वे त्रयोदशकबन्धे प्रथमं अष्टोदय-

---

असंयतमें सम्यक्त्व प्रकृति सहित और रहित आठ कूटोंसे उत्पन्न हुए चार उदय-
स्थान हैं । सतरहके बन्ध सहित इक्कीसके सत्त्वमें चारों गतिके असंयतमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि
२५ होनेके कारण सम्यक्त्व प्रकृति सहित चार कूट न होनेसे पहला नौका उदयस्थान नहीं है,
अतः आठ आदि तीन उदयस्थान हैं । सतरहके बन्धसहित तेईस, बाईसके सत्त्वमें दर्शन
मोहकी क्षपणासे युक्त मनुष्य वेदक सम्यग्दृष्टी असंयतमें सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसहित कूट
होनेसे अन्तिम छहका उदयस्थान नहीं है, अतः नौ आदि तीन ही उदयस्थान हैं ॥६८१॥

तेरहके बन्धसहित तिर्यंच और मनुष्य देशसंयतमें तथा नौके बन्धक प्रमत्त, अप्रमत्त
३० और दोनों श्रेणीके अपूर्वकरणमें, सतरहके बन्धकमें जो सत्त्व कहा है उस सत्त्वके होनेपर
देशसंयतमें आठ आदि चार, और शेषमें सात आदि चार उदयस्थान हैं । किन्तु इक्कीसके
सत्त्व सहित तेरहके बन्धकमें तो पहला आठका उदयस्थान नहीं है । और नौके बन्धकमें

पंचप्रकृतिस्थानोदयमिल्ल । सप्तादिचतुरुदयस्थानंगळोळ् नवबंधकन एकविंशतिसत्त्वस्थानदोळ् प्रथमसप्तप्रकृतिस्थानोदयमिल्ल । त्रिद्विविंशतिसत्त्वनवबंधकनोळ् चरमचतुःप्रकृतिस्थानोदयं संभविसदें बी पल्लटमरियल्पडुगुं । पंचप्रकृतिबंधमुमुपशांतकषायन सत्त्वस्थानंगळप्प अष्टचतुरेकविंशतिसत्त्वस्थानंगळनुळ्ळनिवृत्तिकरणनोळ् द्विप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं । मत्तमा पंचप्रकृतिबंधकनोळं चतुःप्रकृतिबंधकनोळं द्विप्रकृत्युदयमक्कुमा बादरनोळ् सत्त्वस्थानसंभवविशेषमं पेळ्दपरु :— ५

तेणेवं तेरतिये चदुबंधे पुव्वसत्तगेसु तहा ।
तेणुवसंतंसेयारतिये एक्को हवे उदओ ॥६८३॥

तेनैवं त्रयोदशत्रये चतुर्बंधे पूर्वसत्त्वकेषु तथा । तेनोपशांतांशैकादशत्रये एको भवेदुदयः ॥

तेन सह आ पंचप्रकृतिबंधदोडने कूडिदनिवृत्तिक्षपकनोळ् त्रयोदशद्वादशैकादशप्रकृतिस्थानत्रयसत्त्वदोळ् एवं द्वित्रिगे द्विप्रकृत्युदयस्थानमक्कुं । चतुर्बंधे पूर्वसत्त्वकेषु तथा मत्तं चतुः १० प्रकृतिबंधकमष्टाविंशत्यादि एकादशप्रकृतिस्थानावसानमाद पूर्वसत्त्वस्थानंगळनुळ्ळ बादरनोळमंते द्विप्रकृतिस्थानोदयमक्कुं । तेनोपशांतांशैकादशत्रये मत्तमा चतुर्बंधयुतोपशांतकषायाष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानसत्त्वमुमेकादशादित्रिस्थानसत्त्वबादरनोळ् एको भवेदुदयः एकप्रकृत्युदयस्थानमक्कुं ॥

स्थानं न । नवकबन्धे सप्तकोदयस्थानं न । त्रिद्व्यधिकविंशतिकसत्त्वे त्रयोदशकबन्धे अन्तिमं पंचकोदयस्थानं न । नवकबन्धे चतुष्कोदयस्थानं न तत्स्वकीयोदयस्थानानां चतुर्णां सप्तदशकबन्धवद्विचार इति प्रतिपादनात् । १५ पंचकबन्धे उपशान्तकषायोक्ताष्टचतुरेकाग्रविंशतिकसत्त्वेऽनिवृत्तिकरणे द्विकोदयः । पुनः तत्पंचकबन्धे चतुष्कबन्धे च द्विकोदयः स्यात् ॥६८२॥

तत्पंचकबन्धेन सहितेऽनिवृत्तिक्षपके त्रिद्व्येकाग्रदशकसत्त्वे तथा चतुष्कबन्धेऽष्टाविंशतिकाद्येकादशकांतपूर्वसत्त्वेऽप्येवं द्विकोदयः स्यात् । पुनः तच्चतुर्बंधे उपशान्तकषायाष्टाविंशतिकादित्रिसत्त्वे एकादशकादित्रिसत्त्वे च बादरे एककोदयः स्यात् ॥६८३॥ २०

सातका उदयस्थान नहीं है । तेईस, बाईसके सत्त्वके साथ तेरहके बन्धमें अन्तिम पाँचका उदयस्थान नहीं है तथा नौके बन्ध सहितमें चारका उदयस्थान नहीं है; क्योंकि अपने चार उदयस्थानोंमें सतरहके बन्धकी तरह विचार है ऐसा कहा है अर्थात् सतरहके बन्धमें जैसे क्षायिक और दर्शनमोहके क्षपक वेदक सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा कहा है वैसा ही जानना । पाँचके बन्धक अनिवृत्तिकरणमें उपशान्त कषायमें कहे अठाईस चौबीस इक्कीसके सत्त्वमें २५ दोका उदय है । पुनः पाँचके और चारके बन्ध सहितमें भी दोका उदय है ॥६८२॥

वही कहते हैं—

पाँचके बन्धसहित क्षपक अनिवृत्तिकरणमें तेरह बारह ग्यारहके सत्त्वमें तथा चारके बन्ध सहित अठाईस आदि तीन और तेरह आदि तीनका सत्त्व होते हुए भी दोका उदयस्थान होता है । चारके बन्धसहित अनिवृत्तिकरणमें उपशान्त कषायमें कहे अठाईस आदि ३० तीन व ग्यारह आदि तीनके सत्त्वमें एकका उदय है ॥६८३॥

तिदुइगिबंधे अडचउरिगिवीसे चदुतियेण तिदुगेण ।
दुगिसत्तेण य सहिदे कमेण एक्को हवे उदओ ॥६८४॥

त्रिद्व्येकबंधेऽष्टचतुरेकविंशत्यां चतुस्त्रयेण त्रिद्विकेन द्व्येकसत्त्वेन च सहिते क्रमेणैको भवेदुदयः ॥

त्रिद्व्येकबंधे त्रिबंधकद्विबंधक एकबंधकबादरनोळष्टचतुरेकविंशत्यां अष्टचतुरेकाधिकविंशतिसत्त्वस्थानत्रयंगळ प्रत्येकमप्पुववरोळ क्रमेण क्रमदिंद चतुस्त्रयेण चतुःप्रकृतित्रिःप्रकृतिस्थानद्वयदोडनेयुं त्रिद्विकेन त्रिप्रकृतिद्विप्रकृतिस्थानद्वयदोडनेयुं द्व्येकसत्त्वेन च द्विप्रकृत्येकप्रकृतिसत्त्वस्थानद्वयदोडनेयुं कूडि सत्त्वंगळप्पुवल्लि त्रिस्थानकदोळं एको भवेदुदयः एकप्रकृत्युदयस्थानमों देयक्कुं। संदृष्टि :—

बं २२। स २८। उ १०।९। ८।७॥ बं २२। स २७। २६। उ १०। ९।८। बं २१। स २८। उ ९। ८। ७। बं १७। स २८। २४। उ ९। ८। ७। ६। बं १७। स २१। उ ८। ७। ६॥ बं १७। स २३। २२। उ ९। ८। ७। बं १३। स २८। २४॥ उ ८। ७। ६। ५। बं। १३। स २१। उ ७। ६। ५। बं १३। स २३। २२। उ ८। ७। ६। बं ९। स २८। २४। उ ७। ६। ५। ४॥ बं ९। स २१। उ ६। ५। ४। बं ९। स २३। २२। उ ७। ६। ५। बं। ५। ४। स २८। २४। २१। १३। १२। ११। उ २। बं ४। स २८। २४। २१। ११। ५। ४। उ १। बं ३। स २८। २४। २१। ४। ३। उ १। बं २। स २८। २४। २१। ३। २। उ १। बं १। स २८। २४। २१। २। १। उ १॥

अनंतरमुदयसत्त्वाधिकरणबंधाधेयत्रिसंयोगप्रकारमं गाथासप्तकदिंदं पेळ्दपरु :—

दसगुदये अडवीसतिसत्ते बावीसबंध णव अट्ठे ।
अडवीसे बावीस तिचउबंधो सत्तवीसदुगे ॥६८५॥

दशकोदयेऽष्टाविंशतित्रिसत्त्वे द्वाविंशतिबंधो नवाष्टस्वष्टाविंशतौ द्वाविंशतित्रिचतुर्बंधः सप्तविंशतिद्वये ॥

त्रिकद्विकैकबन्धबादरेषु अष्टचतुरेकाग्रविंशतिकसत्त्वेषु चतुष्कत्रिकसत्त्वाभ्यां त्रिकद्विकसत्त्वाभ्यां द्विकैकसत्त्वाभ्यां च क्रमेण सहितेष्वेकोदयः स्यात् ॥६८४॥ अथोदयसत्त्वाधारबन्धाधेयं गाथासप्तकेनाह—

तीन दो और एकके बन्धक अनिवृत्तिकरणमें अठाईस चौबीस इक्कीसके सत्त्वमें व चार और तीनके सत्त्वमें, तीन और दोके सत्त्वमें तथा दो और एकके सत्त्वमें एक-एकका ही उदय है ॥६८४॥

आगे उदय और सत्त्वको आधार तथा बन्धको आधेय बनाकर सात गाथाओंसे कथन करते हैं—

दशप्रकृतिस्थानोदयमप्पागळु अष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानसत्त्वसंभवमक्कुमल्लि द्वाविंशति-प्रकृतिबंधमक्कुमो मिथ्यादृष्टि सर्वमोहनीयसत्त्वयुतनुं सम्यक्त्वप्रकृतियनुद्वेल्लनमं माडि किडिसिदातनुं मिश्रप्रकृतियुमनुद्वेल्लनमं माडि केडिसिदातनुमक्कुमेंबुदत्थं। नवाष्टसु नवप्रकृति-स्थानोदयमुमष्टप्रकृतिस्थानोदयमुमुळ्ळरोळु मष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वस्थानदोळु क्रमदिंदं नव-प्रकृत्युदययुतमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतनोळं अष्टप्रकृत्युदयमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयत-देशसंयतनोळं द्वाविंशत्यादिबंधस्थानत्रयमुं द्वाविंशत्यादिचतुर्ब्बंधस्थानंगळुमप्पुवु। मत्तमा नवाष्टप्रकृत्युदयंगळोळ क्रमदिंदं सप्तविंशत्यादिद्विस्थानंगळुं सप्तविंशत्यादिद्विस्थानंगळुमप्पु-वल्लि द्वाविंशतिस्थानमुं द्वाविंशतिस्थानमुं बंधमक्कुमेकें दोडवर्म्मिथ्यादृष्टिगळे सम्यक्त्वमिश्र-प्रकृत्युद्वेल्लकरप्पुदरिंदमें दु पेळदपरु :—

बावीसबंधचदुतिदुवीसंसे सत्तरसयददुगबंधो।
अट्ठुदये इगिवीसे सत्तरबंधं विसेसं तु ॥६८६॥

द्वाविंशतिबंध चतुस्त्रिद्विंविंशत्यंशे सप्तदशासंयतद्विकबंधः। अष्टोदये एकविंशत्यां सप्तदश-बंधो विशेषस्तु ॥

द्वाविंशतिप्रकृतिबंधमेयक्कुं। मत्तमा नवाष्टोदयंगळोळु प्रत्येकं चतुस्त्रिद्विविंशतित्रिस्थानंग-ळप्पुवल्लि नवोदयसंबंधि त्रिस्थानसत्वंगळोळु चतुर्व्विंशतिस्थानं मिश्रनोळु संभविसुगुमसंयत-नोळु चतुर्व्विंशत्यादित्रिस्थानंगळुं संभविसुगुमप्पुदरिंदं सप्तदशप्रकृतिबंधस्थानमेयक्कु। मष्ट-प्रकृत्युदयसंबंधि चतुर्ब्बंधस्थानंगळप्पुवल्लियु मिश्रनोळमसंयतनोळं मुं पेळ्द प्रकारदिंदं देशसंयत-नोळं चतुर्व्विंशत्यादित्रिस्थानंगळुं संभविसुगुमप्पुदरिंदं सप्तदशबंधस्थानमुं त्रयोदशबंधस्थानमु-

---

दशकोदयेऽष्टाविंशतिकादित्रिसत्त्वे द्वाविंशतिकबन्धः। अयं मिथ्यादृष्टिकः सर्वमोहनीयसत्त्वोपरो-वोद्वेल्लितसम्यक्त्वप्रकृतिकोऽन्यो वोद्वेल्लितसम्यक्त्वमिश्रप्रकृतिको ज्ञातव्यः। नवकोदयेऽसंयतान्तेषु अष्टकोदये देशसंयतान्तेषु चाष्टाविंशतिकसत्त्वे क्रमेण बन्धस्थानानि द्वाविंशतिकादीनि त्रीणि चत्वारि। पुनस्तयोरेव सप्तविंशतिकादिद्वयसत्त्वे तु—

द्वाविंशतिकबन्धः स्यात्। पुनस्तयोरेवोदययोर्मिश्रस्य चतुर्विंशतिकसत्त्वे, असंयतस्य तदादित्रयसत्त्वे च सप्तदशकबन्धः, अष्टकोदये तत्त्रयसत्त्वे देशसंयते त्रयोदशकबन्धः, एकविंशतिकसत्त्वे क्षायिकसम्यग्दृष्टय-

---

दसके उदयसहित अठाईस आदि तीनके सत्त्वमें बाईसका बन्ध है। यह मिथ्यादृष्टि-के होता है तथा वह सर्वमोहनीयके सत्त्व सहित, वा सम्यक्त्व मोहनीयकी उद्वेलना सहित अथवा सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्रमोहनीयकी उद्वेलना सहित जानना। नौके उदयसहित असंयत पर्यन्त तथा आठके उदय सहित देशसंयत पर्यन्त अठाईसके सत्त्वमें क्रमसे बाईस आदि तीन तथा चार बन्धस्थान होते हैं ॥६८५॥

उन्हीं दोनोंमें सत्ताईस और छब्बीसका सत्त्व होनेपर बाईसका बन्ध है। पुनः उन्हीं नौ और आठके उदयमें मिश्रमें चौबीसका सत्त्व रहते और असंयतमें चौबीस आदि तीनका सत्त्व रहते सतरहका बन्ध है। आठके उदयके साथ चौबीस आदि तीनका सत्त्व

मप्पुवु। मष्टोदयमुमेकविंशतिसत्वस्थानं क्षायिकसम्यग्दृष्टियसंयतनोळु संभविसुगुमप्पुदरिंदं सप्तदशबंधं विशेषविंदमक्कुं ॥

सत्तुदये अडवीसे बंधो बावीसपंचयं तेण ।
चउवीसतिगे अयदतिबंधो इगिवीसगयददुगबंधो ॥६८७॥

सप्तोदयेऽष्टविंशत्यां बंधो द्वाविंशतिपंचकं तेन। चतुर्विंशतित्रिकेऽसंयतत्रिबंधः एकविंशतिके असंयतद्विकबंधः ॥

सप्तप्रकृत्युदयमष्टाविंशति प्रकृतिसत्वयुतनोळु द्वाविंशत्यादिपंचस्थानंगळु बंधमप्पुवें तेदोडा अष्टाविंशतिसत्वस्थानमुं सप्तप्रकृत्युदयस्थानमनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टियोळं भयजुगुप्साद्वयरहितसासादननोळं भयजुगुप्सान्यतरोदययुतमिश्रनोळं वेदकसम्यग्दृष्ट्यसंयतनोळं देशसंयतवेदकोपशमसम्यग्दृष्टिगळोळं वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्ताप्रमत्तरोळं संभविसुगुमप्पुदरिंदं। मत्तमा सप्तप्रकृत्युदयस्थानमुं चतुर्विंशत्यादित्रिस्थानसत्वयुतरोळु सप्तदशप्रकृत्यादि त्रिस्थानबंधंगळप्पुवें तेंदोडा सप्तप्रकृत्युदयमुं चतुर्विंशतिसत्वमुं भयजुगुप्साद्वयोदयरहित मिश्रनोळमसंयतनोळं मत्तं दर्शनमोहनीयक्षपणाप्रारंभकमनुष्यासंयतनोळु त्रयोविंशतिस्थानमुं द्वाविंशतिस्थानमसंयतचतुर्गतिजरोळं अनंतानुबंधिसत्वरहितदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरोळु चतुर्विंशतिस्थानमुं दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभकमनुष्य देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळं त्रयोविंशत्यादि द्विस्थानंगळं संभविसुगुमप्पुदरिंदं। मत्तमा सप्तप्रकृत्युदयमेकविंशतिसत्वयुतरुगळु चतुर्गतिजासंयतक्षायिकसम्यग्दृष्टिगळं मनुष्य-

संयते सप्तदशकबन्धः विशेषेण ॥६८६॥

सप्तकोदयेऽष्टाविंशतिकसत्त्वे द्वाविंशतिकादिपंचबन्धः। अनन्तानुबन्धिरहितमिथ्यादृष्टौ भयजुगुप्सारहितसासादने तदन्यतरयुतमिश्रे वेदकसम्यग्दृष्ट्यसंयते वेदकोपशमसम्यग्दृष्टिदेशसंयते वेदकसम्यग्दृष्टिप्रमत्ताप्रमत्तयोश्च तदुदयसत्त्वसद्भावात्। पुनः सप्तकोदये चतुर्विंशतिकादित्रिसत्त्वे सप्तदशकादित्रिबन्धः। कुतः? चतुर्विंशतिकसत्त्वभयजुगुप्सोनमिश्रासंयतयोस्त्रिद्व्यधिकविंशतिकसत्त्वदर्शनमोहक्षपणाप्रारम्भकचतुर्विंशतिकसत्त्वा-

होते देशसंयतमें तेरहका बन्ध है। इक्कीसके सत्त्वमें क्षायिक सम्यग्दृष्टी असंयतमें सतरहका बन्ध है ॥६८६॥

सातके उदय सहित अठाईसके सत्त्वमें बाईस आदि पाँच बन्धस्थान हैं; क्योंकि अनन्तानुबन्धी रहित मिथ्यादृष्टिमें, भयजुगुप्सा रहित सासादनमें, भय जुगुप्सामेंसे एक सहित मिश्रमें, वेदक सम्यग्दृष्टी असंयतमें, वेदक उपशम सम्यदृष्टी देशसंयतमें, वेदक सम्यग्दृष्टी प्रमत्त अप्रमत्तमें सातका उदय और अठाईसका सत्त्व सम्भव है। पुनः सातके उदयसहित चौबीस आदि तीनके सत्त्वमें सतरह आदि तीन बन्धस्थान हैं; क्योंकि चौबीसके सत्त्वसे युक्त भय जुगुप्सा रहित मिश्र और असंयतमें, तेईस चौबीसके सत्त्व युक्त दर्शनमोहकी क्षपणाके प्रारम्भमें और चौबीसके सत्त्वयुक्त अनन्तानुबन्धी रहित मनुष्य असंयतादि चार गुणस्थानवर्तियोंमें सातका उदय सम्भव है। सातके उदय और इक्कीसके सत्त्वमें

१. म °प्सान्यतरद्वयरहित।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि देशसंयतनोळं संभविसुगुमप्पुदरिंदं सप्तदशप्रकृतिबंधमुं त्रयोदशप्रकृतिबंधमुमप्पुवु ॥

छप्पण उदये उवसंतंसे अयदतिगदेसदुगबंधो ।
तेण तिदोवीसंसे देसदु णवबंधयं होदि ॥६८८॥

षट्पंचोदये उपशांतांशे असंयतत्रय देशसंयतद्वयबंधस्तेन त्रिद्विंविंशत्यंशे देशसंयतद्वयं नवबंधो भवति ॥

षट्प्रकृत्युदयदोळं पंचप्रकृत्युदयदोळमुपशांतकषायन सत्वस्थानत्रयमक्कु मल्लि क्रमदिंदं सप्तदशादित्रिस्थानबंधमुं त्रयोदशादिदेशसंयतबंधादिद्विस्थानंगळुं बंधमप्पुवें तेंदोडल्लि षट्प्रकृत्युदयमुमष्टाविंशति चतुर्व्विंशत्येकविंशतित्रयमसंयतदेशसंयत प्रमत्ताप्रमत्तापूर्व्वकरणरोळुपशमक्षायिकसम्यक्त्ववेदकसम्यक्त्वभेददिंदं यथासंभवमागियप्पुवप्पुदरिंदं सप्तदश त्रयोदश नवप्रकृतिबंधस्थानत्रयसंभवं पेळल्पट्टुदु । पंचप्रकृत्युदयसंबंधियप्पष्टाविंशति चतुर्व्विंशत्येकविंशतिसत्वस्थानंगळु देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तापूर्व्वकरणरुगळोळुपशमक्षायिकसम्यक्त्वभेददिंदं त्रयोदशनवप्रकृतिबंधस्थानद्वयं संभविसुगुमें बुदर्त्थं । तेन त्रिद्विंविंशत्यंशे मत्तमा षट्पंचप्रकृत्युदयंगळोळु कूडिद त्रिद्विंविंशति सत्वस्थानयुतरोळु क्रमदिंदं देशसंयतत्रयोदशादि द्विस्थानबंधमुं नवप्रकृतिबंधमुमक्कुमें तेंदोडा षट्प्रकृत्युदयमुं त्रयोविंशतिस्थानसत्वमुं दर्शनमोहक्षपकदेशसंयतं सम्यक्त्वप्रकृत्युदययुतंगे मिथ्यात्वमं क्षपिसि त्रयोविंशतिसत्वस्थानयुतंगे त्रयोदशप्रकृतिबंधमक्कुं । मिश्रप्रकृतियं क्षपिसि द्वाविंशतिसत्वस्थानयुतंगेयुं त्रयोदशप्रकृतिबंधमेयक्कुं । प्रमत्ताप्रमत्तरुगळुमा प्रकारदिंदं वेदकसम्यग्दृष्टिगळु मिथ्यात्वमिश्रप्रकृतिगळं क्रमदिंदं क्षपिसि त्रयोविंशति द्वाविंशतिसत्वयुतर्गे नवबंधकसत्वं संभविसुगुं । मत्तं पंचप्रकृत्युदयमुं त्रयोविंशतिसत्वस्थानमुं द्वाविंशतिसत्वस्थानमुं मिथ्यात्वमिश्रप्रकृतिगळं क्षपिसि प्रमत्ताप्रमत्तरुगळ्गे सत्वमक्कुमप्पुदरिंदं नवबंधकरप्परु :—

नन्तानुबन्धिरहितमनुष्यासंयतादिचतुर्षु च सप्तकोदयसम्भवात् । पुनः सप्तकोदयैकविंशतिकसत्त्वक्षायिकसम्यग्दृष्टौ चतुर्गत्यसंयते सप्तदशकबन्धः, मनुष्यदेशसंयते च त्रयोदशकबन्धः ॥६८७॥

षट्कोदयेऽष्टचतुरेकाग्रविंशतिकसत्त्वे सप्तदशकादित्रिबन्धः । पंचकोदये तत्सत्त्वे त्रयोदशकादिद्विबन्धः । असंयतादिपंचसु षट्कोदयस्य उपशमक्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतादिचतुर्षु पंचकोदयस्य च सद्भावात् । पुनः षट्कोदयवेदकसम्यग्दृष्टौ मिथ्यात्वं क्षपित्वा त्रयोविंशतिकसत्त्वे मिश्रं क्षपित्वा द्वाविंशतिकसत्त्वे च देशसंयते

क्षायिक सम्यग्दृष्टि चारों गतिके असंयतमें सतरहका बन्ध है। देशसंयत मनुष्यमें तेरहका बन्ध है ॥६८७॥

छहके उदयसहित अठाईस चौबीस इकईसके सत्त्वमें सतरह आदि तीन बन्धस्थान हैं। पाँचके उदयके साथ उक्त तीनोंके सत्त्वमें तेरह आदि दो बन्धस्थान हैं, क्योंकि असंयत आदि पाँचमें छहका उदय और उपशम तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टी देशसंयत आदि चारमें पाँचका उदय पाया जाता है। छहके उदयसहित वेदक सम्यग्दृष्टीमें मिथ्यात्वको क्षयकर

चउरुदयुवसंतंसे णवबंधो दोण्णि उदयपुव्वंसे ।
तेरसतियसत्तेवि य पणचउठाणाणि बंधस्स ॥६८९॥

चतुरुदयोपशांतांशे नवबंधो द्व्युदयपूर्व्वांशे । त्रयोदशत्रयसत्वेऽपि च पंचचतुःस्थानानि बंधस्य ॥

चतुःप्रकृत्युदयमुमुपशांतकषायसत्वस्थानंगळोळु नवप्रकृतिबंधमक्कुमेंतेंदोडा चतुःप्रकृत्युदयापूर्व्वकरणोपशमकक्षपकरुगळ्गे उपशमश्रेणियोळा त्रिस्थानंगळुं क्षपकश्रेणियोळेकविंशति सत्वस्थानं संभविसुगुमल्लि नवबंधकनक्कुमेंबुदत्थं । द्विप्रकृत्युदयमुमष्टाविंशत्यादिषट्स्थानंगळुमनिवृत्तिकरणोपशमकक्षपकरुगळोळु संभविसुगुमल्लि पंचप्रकृतिबंधस्थानमुं चतुःप्रकृतिबंधस्थानमक्कुमेंतेंदोडे उपशमश्रेणियोळु सवेदभागानिवृत्तिकरणरोळु पुंवेदोदय चरमसमयपर्य्यंतं अष्टाविंशति आदि त्रिस्थानंगळ सत्वमुं पंचप्रकृतिबंधमुमक्कुं । षंडस्त्रीवेदोदयंगळिदमुपशमश्रेण्यारूढरुगळोळा त्रिस्थानसत्वमुं चतुर्ब्बंधकत्वमुमक्कुं । क्षपकश्रेणियोळु द्विप्रकृत्युदयमुमेकविंशतिसत्वस्थानमं त्रयोदशसत्वस्थानमुं द्वादशसत्वस्थानमुमेकादशसत्वस्थानमुं क्रमदिदमष्टकषाय नपुंसकवेद स्त्रीवेदंगळं क्षपिसि पुंवेदानिवृत्तिकरणनोळु सत्वमप्पुवल्लि सर्व्वत्र पंचबंधकनेयक्कु-। मितरवेदोदययुतत्रयोदशादि द्विस्थानसत्वयुतरोळु चतुर्ब्बंधमुमक्कुमेंबुदत्थं ।

एक्कुदयुवसंतंसे बंधो चतुरादिचारि तेणेव ।
एयारदु चदुबंधो चदुरंसे चदुतियं बंधो ॥६९०॥

एकोदयोपशांताशे बंधश्चतुरादिबंधश्चतुर्णां तेनैवैकादशद्वये चतुर्ब्बंधश्चतुरंशे चतुस्त्रिकं बंध ॥

त्रयोदशकबन्धः । पंचकोदयप्रमत्ताप्रमत्ते च नवकबन्धः स्यात् ॥६८८॥

चतुष्कोदयोभयापूर्वकरणे उपशांतकषायसत्त्वे नवबन्धः । द्विकोदये सवेदानिवृत्तिकरणे तत्सत्त्वे पुंवेदोदयचरमसमयपर्यंतं पंचकबन्धः । षंढस्त्रीवेदोदयारूढे तु चतुष्कबन्धः । क्षपकेऽष्टकषायषंढस्त्रीपुंक्षपणाभागेष्वेकविंशतिकत्रिद्व्येकाग्रदशकसत्त्वेषु पंचकबन्धः । इतरवेदोदययुतत्रयोदशकादिद्वितत्त्वे तु चतुष्कबन्धः ॥६८९॥

तेईसका सत्त्व होनेपर, मिश्रमोहनीयको क्षयकर बाईसका सत्त्व होनेपर देशसंयतमें तेरहका बन्धस्थान है। पाँचके उदय सहित प्रमत्त अप्रमत्तमें नौका बन्ध है ॥६८८॥

चारके उदयसहित दोनों श्रेणिके अपूर्वकरणमें उपशान्त कषायमें पाये जानेवाले अठाईस चौबीस इक्कीसके सत्त्वमें नौका बन्ध है। दोके उदय सहित सवेद अनिवृत्तिकरणमें उक्त तीनका सत्त्व होते पुरुषवेदके उदयके चरम समय पर्यन्त पाँचका बन्ध है।

नपुंसक और स्त्रीवेदके उदयके साथ श्रेणी चढ़नेवालेके चारका बन्ध है। क्षपकश्रेणीमें आठ कषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, पुरुषवेदके क्षपणरूप भागोंमें इक्कीस तेरह बारह ग्यारहका सत्त्व होते पाँचका बन्ध है। अन्यवेदके उदयसहित तेरह बारहका सत्त्व होते चारका बन्ध है ॥६८९॥

एकप्रकृत्युदयमुमुपशांतसत्त्वस्थानत्रययुतानिवृत्तिकरणनोळुपशमश्रेणियोळु चतुःप्रकृतिस्थानादिचतुर्ब्बंधस्थानंगळप्पुवु। मत्तं तदेकोदययुतनोळु एकादशपंचप्रकृतिसत्त्वस्थानद्वयं संभविसुगुमल्लि चतुःप्रकृतिस्थानबंधमेयक्कुं। मत्तमेकोदयं चतुःप्रकृतिसत्त्वमुमुळ्ळनिवृत्तिकरणनोळु चतुस्त्रिप्रकृतिस्थानद्वयं बंधमक्कुं।

तेण तिये तिदुबंधो दुगसत्ते दोण्णि एक्कयं बंधो।
एक्कंसे इगिबंधो गयणं वा मोहणीयस्स ॥६९१॥

तेन त्रये त्रिद्विबंधः द्विकसत्त्वे द्वयेकबंधः। एकांशे एकबंधो गगनंवा मोहनीयस्य ॥

आ येकोदयमुं त्रिप्रकृतिसत्त्वमुमुळ्ळनोळु अनिवृत्तिकरणनोळु त्रिप्रकृतिबंधस्थानमुं द्विप्रकृतिबन्धस्थानमु मक्कुं। द्विप्रकृतिसत्त्वयुतनोळु द्विप्रकृतिबंधमुमेकप्रकृतिबंधमुमक्कुमेकप्रकृत्युदयमुमेकप्रकृतिसत्त्वमुमुळ्ळनोळु अनिवृत्तिकरणनोळु एकप्रकृतिबंधमु अबंधस्थानमुमक्कुमितु उदयसत्त्वाधारबंधादेयत्रिसंयोगप्रकारं पेळल्पट्टुदर संदृष्टि। उ १०। स २८। २७। २६। बं २२। उ ९। स २८। बं २२। २१। १७। उ ९। स २७। २६। बं २२। उ ९। स २४। २३। २२। बं १७। उ ८। स २८। बं २२। २१। १७। १३। उ। ८। स २७। २६। बं २२। उ ८। स २४। २३। २२। बं १७। उ ७। स २८ बं २२। २१। १७। १३। ९। उ ७। स २४। २३। २२। बंध १७। १३। ९। उ ७। स २१। बं १७। १३। उ ६। स २८। २४। २१। बं १७। १३। ९। उ ६। स २३। २२। बं १३। ९। उ ५। स २८। २४। २१॥ बं १३। ९। उ ५। स २३। २२। बं ९। उ ४। स २८। २४। २१। बं ९। उ २। स २८। २४। २१। १३। १२। ११। बं ५। ४। उ १। स २८। २४। २१। बंध ४। ३। २। १। उ १। स ११। ५। बं ४। उ १। स ४॥ बं ४। ३। उ १। स ३। बं ३। २। उ १। स २। बं २। १। उ १। स १। बं १॥

एककोदयानिवृत्तिकरणोपशमके उपशांतकषायसत्त्वे चतुष्कादिचतुःस्थानबन्धः। पुनः तदैककोदयैकादशकपंचकसत्त्वे चतुष्कबन्धः। पुनः तदैककोदयैकादशकपंचकसत्त्वे चतुष्कबन्धः। पुनरेककोदयचतुष्कसत्त्वे चतुष्कत्रिकबन्धः ॥६९०॥

तदेककोदयानिवृत्तिकरणे त्रिकसत्त्वे त्रिकद्विकबन्धः द्विकसत्त्वे द्विकैककबन्धः। एककोदयसत्त्वैककबन्धः

एकके उदयसहित अनिवृत्तिकरण उपशमकमें उपशान्त कषायमें कहे अठाईस चौबीस इक्कीसके सत्त्वमें चार आदि चार बन्धस्थान हैं। एकके उदय सहित ग्यारह और पाँचके सत्त्वमें चारका बन्ध है। एकके उदयसहित चारके सत्त्वमें चार और तीनका बन्ध है ॥६९०॥

एकके उदयसहित अनिवृत्तिकरणमें तीनका सत्त्व रहते तीनका व दोका बन्ध है। एकके उदयसहित दोके सत्त्वमें दोका व एकका बन्ध है। एक ही का उदय और सत्त्व रहते एकका ही बन्ध है। अथवा बन्धका अभाव है। इस प्रकार मोहनीयके तीन संयोगी भंग कहे ॥६९१॥

अनंतरं नामकर्म्मस्थानंगळ्गे त्रिसंयोगप्रकारमं पेळ्वपरु :—

णासस्स य बंधोदयसत्तट्ठाणाण सव्वभंगा हु ।
पत्तेउत्तं व हवे तियसंजोगेवि सव्वत्थ ॥६९२॥

नाम्नश्च बंधोदयसत्त्वस्थानानां सर्व्वभंगाः खलु प्रत्येकोक्तवद्भवे त्रिसंयोगेपि सर्व्वत्र ॥

नामकर्म्मक्के युं बंधोदयसत्वस्थानंगळ सर्व्वभंगंगळं यथास्वरूपंगळ्। अवुं प्रत्येकदोळु पेळल्पट्टंते ई पेळल्पडुत्तिद्द त्रिसंयोगदोळं सर्व्वत्रमक्कुमेंबु स्फुटमागरियल्पडुगु—। मिल्लि केवलं बंधोदयसत्त्वस्थानंगळे पेळल्पट्टपुवु। भंगंगळु विवक्षितल्पडवु। मोहनीयदोळु पेळ्दंते त्रिसंयोगदोळु तदंतर्भावमरियल्पडुगुमेंबुवर्त्थं ॥

अनंतरं बंधोदयसत्त्वस्थानंगळं मिथ्यादृष्टि आदि चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु नानाजीवापेक्षेयिंदं युगपत्संभविसुव स्थानंगळ संख्येगळं पेळ्वपरु :—

छण्णवच्छत्तियसगइगिदुमतिगदुगतिण्णि अट्ठ चत्तारि ।
दुगदुगचदुदुगपणचदु चदुरेयचदू पणेयचदू ॥६९३॥

षड्नवषट्त्रिकसप्तैकद्विकत्रिकद्विकाऽष्टचत्वारि। द्विकद्विकचतुर्द्विक पंचषतुश्चतुरेकचतुः पंचैकचत्वारि ॥

एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छदुमट्ठकेवलिजिणाणं ।
एगचदुरेगचदुरो दोचदु दोछक्कउदयंसा ॥६९४॥

एकैकमष्टैकैकमष्टछद्मस्थ केवलिजिनानामेकचतुरेकचतुर्द्विचतुर्द्विषट्कमुदयांशाः ॥ गाथाद्वयं ॥

षड्नवषट् मिथ्यादृष्टियोळ् बंधोदयसत्त्वस्थानंगळ् क्रमदिदं षट्नवषट् प्रमितंगळप्पुवु। मिथ्या बं ६। उ ९। स ६। त्रिकसप्तैक सासादननोळु बंधोदयसत्वस्थानंगळु त्रिक सप्त एक प्रमितं-

---

शून्यं च। मोहनीयस्य त्रिकसंयोग उक्तः ॥६९१॥ अथ नामकर्मस्थानानां त्रिसंयोगमाह—

नाम्नः बन्धोदयसत्त्वानां सर्वभंगाः प्रत्येकोक्तरीत्यैवास्मिंस्त्रिसंयोगेऽपि सर्वत्र स्युरिति स्फुटं ज्ञातव्यं ॥६९२॥

तद्बन्धोदयसत्त्वस्थानानि गुणस्थानेषु क्रमेण मिथ्यादृष्टौ षट् नव षट्। सासादने त्रीणि सप्तैकं। मिश्रे द्वे त्रीणि द्वे। असंयते त्रीण्यष्टौ चत्वारि। देशसंयते द्वे द्वे चत्वारि। प्रमत्ते द्वे पंच चत्वारि। अप्रमत्ते

आगे नामकर्मके स्थानोंके त्रिसंयोगी भंग कहते हैं—

नामकर्मके बन्ध उदय सत्त्व स्थानोंके सब भंग जैसे प्रत्येक पृथक्-पृथक् कहे थे वैसे ही त्रिसंयोगमें भी सर्वत्र जानना ॥६९२॥

नामकर्मके बन्धस्थान उदयस्थान सत्त्वस्थान गुणस्थानोंमें क्रमसे मिथ्यादृष्टिमें छह नौ छह, सासादनमें तीन सात एक, मिश्रमें दो तीन दो, असंयतमें तीन आठ चार, देशसंयतमें

---

१. चदुम. मु.। २. दो छक्क बंध उ. मु.।

गळप्पुवु। सासा बं ३। उ ७। स १। द्विक त्रिक द्विक। मिश्रनोळु क्रमदिंदं द्विक त्रिक द्विक-प्रमितंगळप्पुवु। मिश्र बं २। उ ३ स २। असंयतनोळु क्रमदिंदं त्र्यष्टचतुःप्रमितंगळप्पुवु। असं। बं ३। उ ८। स ४। देशसंयतनोळु क्रमदिंदं द्विकद्विकचतुप्रमितंगळप्पुवु। देश। बं २। उ २। स ४। प्रमत्तसंयतनोळु द्विकपंच चतुःप्रमितंगळप्पुवु। प्रम। बं २। उ ५। सत्व ४।

अप्रमत्तसंयतनोळु चतुरेक चतुः प्रमितंगळप्पुवु। अप्र। बं ४। उ १। स ४॥ ५

अपूर्व्वकरणनोळु पंचैकचतुःप्रमितंगळप्पुवु। अपू। बं ५। उ १। स ४॥ अनिवृत्तिकरण-नोळु एकैकमष्टप्रमितंगळप्पुवु। अनिवृत्ति। बं १। उ १। स ८॥ सूक्ष्मसांपरायनोळमेकैकाष्टप्रमि-तंगळप्पुवु। सूक्ष्म बं १। उ १। स ८॥ छद्मस्थरप्पुपशांतकषाय क्षीणकषायवीतरागरोळु एकचतुरेकचतुःस्थानंगळु क्रमदिनप्पुवु। उपशांत बं। ०। उ १। स ४॥ क्षीणकषायनोळु बंध। ०। उ १। स ४॥ केवलिजिनरुगळोळु द्वि चतुर्द्विषट्कप्रमितोदयसत्वस्थानंगळु क्रमदिंदमप्पुवु। १०
सयोगिबं। ०। उ २। स ४॥ अयोगि बं। ०। उ २। स ६। ०॥

णामस्स य बंधोदयसत्ताणि गुणं पडुच्च उत्ताणि।
पत्तेयादो सव्वं भणिदव्वं अत्थजुत्तीए ॥६९५॥

नाम्नश्चबंधोदयसत्वानि गुणं प्रतीत्योक्तानि। प्रत्येकात्सव्वं भणितव्यमर्त्थयुक्त्या॥

नामकर्म्मक्के प्रत्येकबंधोदयसत्वस्थानंगळु मुन्नं गुणस्थानदोळु पेळल्पट्टु वप्पुदरिंदम- १५
वरर्त्तणिदमर्त्थयुक्तियिंदमदेल्लमिल्लि पेळल्पडुगु-। मा मिथ्यादृष्टयादियागि पेळल्पट्ट षड्नव षड्बंधोदयसत्वस्थानादिगळ संख्याविषयस्थानंगळवावुवें दोडे पेळ्दपरु :—

तेवीसादी बंधा इगिवीसादीणि उदयठाणाणि।
बाणउदादी सत्तं बंधा पुण अट्ठवीसतियं ॥६९६॥

त्रयोविंशत्यादिबंधाः एकविंशत्याद्युदयस्थानानि। द्वानवत्यादिसत्वं बंधाः पुनरष्टा- २०
विंशतित्रिकं॥

चत्वार्येकं चत्वारि। अपूर्वकरणे पंचैकं चत्वारि। अनिवृत्तिकरणे एकमेकमष्टौ। सूक्ष्मसांपरायेऽप्येकमेकमष्टौ। उपरि बन्धे शून्यं। उदयसत्त्वयोरेव उपशान्तकषाये एकं चत्वारि। क्षीणकषायेऽप्येकं चत्वारि। सयोगे द्वे चत्वारि। अयोगे द्वे षट् ॥६९३॥६९४॥

नाम्नो बन्धोदयसत्त्वस्थानानि गुणस्थानेषूक्तानि तान्येव प्रत्येकतोऽर्थयुक्त्या सर्वाण्युच्यंते ॥६९५॥ २१

दो-दो चार, प्रमत्तमें दो पाँच चार, अप्रमत्तमें चार एक चार, अपूर्वकरणमें पाँच एक चार, अनिवृत्तिकरणमें एक-एक आठ, सूक्ष्मसाम्परायमें भी एक-एक आठ हैं। ऊपर बन्धका तो अभाव है केवल उदय और सत्त्व ही है। सो उपशान्तकषायमें एक चार, क्षीणकषायमें भी एक चार, सयोगीमें दो चार और अयोगीमें दो छह जानना ॥६९३-६९४॥

नामकर्मके बन्ध उदय सत्त्वस्थान गुणस्थानोंमें कहे उन सबको पृथक्-पृथक् अर्थकी युक्तिसे कहते हैं ॥६९५॥ ३०

मिथ्यादृष्टियोळु पेळ्द षड्बंधस्थानंगळु त्रयोविंशत्यादिगळप्पुवु । उदयस्थानंगळुमेकविंशत्यादि नवकंगळप्पुवु । सत्वस्थानषट्कमुं द्वानवत्यादिगळप्पुवु । मिथ्या । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उद २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सत्व ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । सासावननोळु पेळ्द बंधस्थानत्रयमष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळप्पुवु ॥

इगिवीसादी एक्कत्तीसंता सत्त अट्ठवीसूणा ।
उदया सत्तं णउदी बंधा पुण अट्ठवीसदुगं ॥६९७॥

एकविंशत्याद्येकत्रिंशदंताः सप्ताष्टाविंशत्यूनाः उदयाः सत्वं नवतिः बंधौ पुनरष्टाविंशति द्वौ ॥

उदयस्थानंगळुमेकविंशत्याद्येकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानावसानमाद स्थानंगळोळु सप्तविंशत्यष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानद्वयरहित सप्तोदयस्थानंगळप्पुवु । नवति सत्वस्थानमोंदेयक्कुं । सासा । बं २८ । २९ । ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २९ । ३० । ३१ । स ९० । तु मत्ते मिश्रनोळा द्विबंधस्थानंगळावुवेंदोडे अष्टाविंशतिद्वयमक्कुं ॥

एगुणतीसंतिदयं उदयं बाणउदिणउदियं सत्तं ।
अयदे बंधट्ठाणं अट्ठावीसत्तियं होदि ॥६९८॥

एकोनत्रिंशत् त्रितयः उदयः द्वानवतिर्न्नवतिश्च सत्वं । असंयते बंधस्थानमष्टाविंशतित्रिकं भवति ॥

आमिश्रनोळेकोनत्रिंशत् त्रितयमुदयमक्कुं । द्वानवतिनवति स्थानद्वयं सत्वमक्कुं । मिश्र बं । २८ । २९ । उ २९ । ३० । ३१ । सत्व ९२ । ९० ॥ असंयतनोळु पेळ्द बंधस्थानंगळुमष्टाविंशतित्रितय मक्कुं ॥

मिथ्यादृष्टौ बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादीनि षट् । उदयस्थानान्येकविंशतिकादीनि नव । सत्वस्थानानि द्वानवतिकादीनि षट् । सासादने बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि ॥६९६॥

उदयस्थानान्येकविंशतिकादीनि सप्ताष्टाग्रविंशतिकोनान्येकत्रिंशत्कान्तानि सप्त, सत्वस्थानं नवतिकं, तु–पुनः मिश्रे बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादिद्वयं ॥६९७॥

उदयस्थानान्येकोनत्रिंशत्कादीनि त्रीणि सत्वस्थाने द्वानवतिकादिद्वयं । असंयते बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि ॥६९८॥

मिथ्यादृष्टिमें बन्धस्थान तेईस आदि छह हैं । उदयस्थान इक्कीस आदि नौ हैं । सत्वस्थान बानवे आदि छह हैं । सासादनमें बन्धस्थान अठाईस आदि तीन हैं ॥६९६॥

उदयस्थान सत्ताईस अठाईसके बिना इक्कीस आदि इकतीस पर्यन्त होते हैं । सत्वस्थान नब्बेका है । मिश्रमें बन्धस्थान अठाईस आदि दो हैं ॥६९७॥

उदयस्थान उनतीस आदि तीन हैं । सत्वस्थान बानवे-नब्बे दो हैं । असंयतमें बन्धस्थान अठाईस आदि तीन हैं ॥६९८॥

उदया चउवीसूणा इगिवीसप्पहुडि एक्कतीसंता ।
सत्तं पढमचउक्कं अपुव्वकरणोत्ति णायव्वं ॥६९९॥

उदयाश्चतुर्विंशत्यूनाः एकविंशतिप्रभृति एकत्रिंशदंताः । सत्त्वं प्रथमचतुष्कमपूर्वकरणपर्यंतं ज्ञातव्यं ॥

आ असंयतनोळु उदयस्थानंगळु चतुर्विंशतिस्थानं पोरगागि एकविंशतिस्थानप्रभृत्येकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानांतमावष्टस्थानंगळप्पुवु । एतेंदोडा चतुर्विंशतिस्थानमेकेंद्रियदोळल्लदेल्लियुं संभविसदप्पुदरिंदमा उदयस्थानं कळेयल्पट्टुदेंदरियल्पडुगुं । सत्वस्थानंगळु प्रथम चतुःस्थानंगळप्पुवु । मेलेयुमपूर्व्वकरणगुणस्थानपर्य्यंतमी प्रथमचतुःस्थानंगळे सत्वंगळप्पुवेंदरियल्पडुगुं । असंयत बं । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥

अडवीसदुगं बंधो देसे पमदे य तीसदुगुमुदओ ।
पणुवीससत्तवीसप्पहुडी चत्तारि ठाणाणि ॥७००॥

अष्टाविंशतिद्विकं बंधो देशसंयते प्रमत्ते च त्रिंशद्द्विकमुदयः । पंचविंशतिः सप्तविंशत्यादिचत्वारि स्थानानि ॥

देशसंयतनोळष्टाविंशतिद्विस्थानबंधमक्कुं । त्रिंशत्प्रकृतिस्थानद्विकमुदयमक्कुं । सत्वस्थानंगळसंयतनोळु पेळ्द प्रथमचतुःस्थानंगळप्पुवु । देश । बं २८ । २९ । उ ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । प्रमत्तसंयतनोळं बंधस्थानंगळु देशसंयतंगे पेळ्दंते अष्टाविंशत्यादिद्विस्थानंगळुं उदयस्थानंगळु पंचविंशतियुं सप्तविंशत्यादिचतुःस्थानंगळुमप्पुवु । सत्वस्थानंगळसंयतनोळु पेळ्द प्रथमचतुःस्थानंगळप्पुवु । प्रमत्त बं २८ । २९ । उ २५ । २७ । २८ । २९ । ३० । सत्व ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥

उदयस्थानान्येकविंशतिकादीनि चतुर्विंशतिकोनान्येकत्रिंशत्कान्तान्यष्टौ तस्यैकेन्द्रियेष्वेवोदयात् । सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि । इमान्येवापूर्वकरणांतं ज्ञातव्यानि ॥६९९॥

देशसंयते बन्धस्थानेऽष्टाविंशतिकादिद्वयं च उदयस्थाने त्रिंशत्कादिद्वयं । सत्त्वमसंयतोक्तं । प्रमत्ते बन्धस्थाने देशसंयतोक्ते द्वे । उदयस्थानानि पंचविंशतिकं सप्तविंशतिकादीनि चत्वारि च । सत्त्वस्थानान्यसंयतोक्तानि ॥७००॥

उदयस्थान चौबीसके बिना इक्कीससे इकतीस पर्यन्त आठ हैं । चौबीसका उदयस्थान एकेन्द्रियके होता है इससे वह असंयतमें नहीं होता । सत्त्वस्थान तिरानबे आदि चार हैं । ये चार सत्त्वस्थान अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त जानना ॥६९९॥

देशसंयतमें बन्धस्थान अठाईस आदि दो हैं । उदयस्थान तीस आदि दो हैं । सत्त्वस्थान असंयतके समान चार हैं । प्रमत्तमें बन्धस्थान देशसंयतमें कहे दो हैं । उदयस्थान पच्चीस तथा सत्ताईस आदि चार हैं । सत्त्वस्थान असंयतमें कहे चार हैं ॥७००॥

अपमत्ते य अपुव्वे अडवीसादीण बंधमुदओ दु ।
तीसमणियट्टिसुहुमे जसकित्ती एक्कयं बंधो ॥७०१॥

अप्रमत्ते चापूर्व्वेऽष्टाविंशत्यादीनां बंधः उदयस्तु । त्रिंशदनिवृत्तिसूक्ष्मयोर्य्यशस्कीर्त्तिरेकको बंधः ॥

अप्रमत्तनोळमपूर्व्वकरणनोळमष्टाविंशत्यादिचतुःस्थानंगळु पंचस्थानंगळु बंधमप्पुवु । तु मत्तमुदयस्थानंगळु प्रत्येकं त्रिंशत् त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमक्कुं । सत्वस्थानंगळु मुंपेळ्द प्रथमचतुःस्थानंगळेयप्पुवु । अप्रमत्त बं २८ । २९ । ३० । ३१ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । अपूर्व्वकरण बं २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । अनिवृत्ति सूक्ष्मयोः अनिवृत्तिकरणनोळं सूक्ष्मसांपरायनोळं प्रत्येकं यशस्कीर्त्तिनाममो दे बंधमक्कुं ॥

उदओ तीसं सत्तं पढमचउक्कं च सीदिचउसंत्ते[1] ।
खीणे उदओ तीसं पढमचऊ सीदिचउ सत्तं ॥७०२॥

उदयः त्रिंशत्सत्वं प्रथमचतुष्कं चाशीति चत्वारि । उपशांते क्षीणकषाये उदयस्त्रिंशत्प्रथमचतुरशीति चतुःसत्वं ॥

अनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायरुगळोळुदयस्थानमो दे त्रिंशत्प्रकृतिकमक्कुं । सत्त्वस्थानंगळु प्रत्येकं प्रथमचतुष्कमुमशीति चतुष्कमुमक्कुं । अनिवृत्ति । बं १ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । सूक्ष्मसांपराय बं १ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । उपशांतकषायनोळं क्षीणकषायनोळं उदयस्थानं प्रत्येकं त्रिंशत्प्रकृतिकमक्कुं । सत्वस्थानंगळु यथाक्रमं प्रथमचतुःस्थानंगळुमशीतिचतुःस्थानंगळुमप्पुवु । उपशांतबंध । ० । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । क्षीणकषाय बं । ० । उ ३० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥

अप्रमत्तापूर्वकरणयोर्बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि पंच । तु पुनः उदयस्थानं त्रिंशत्कं । सत्त्वमसंयतोक्तं । अनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्पराययोर्बन्धस्थानं यशस्कीर्तिनाम ॥७०१॥

उदयस्थानं त्रिंशत्कं, सत्त्वस्थानानि प्रत्येकं त्रिनवतिकादीनि चत्वार्यशीतिकादीनि चत्वारीत्यष्टौ । उपशान्तक्षीणकषाययोरुदयस्थानं त्रिंशत्कं सत्त्वस्थानान्युपशान्तकषाये त्रिनवतिकादीनि चत्वारि, क्षीणकषाये-ऽशीतिकादीनि चत्वारि ॥७०२॥

अप्रमत्त और अपूर्वकरणमें बन्धस्थान अठाईस आदि चार तथा पाँच क्रमसे जानना। उदयस्थान तीसका ही है। सत्त्वस्थान असंयतमें कहे चार जानना। अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें बन्धस्थान एक यशस्कीर्तिरूप ही है ॥७०१॥

उदयस्थान तीसका ही है। सत्त्वस्थान तिरानबे आदि चार और अस्सी आदि चार इस तरह आठ हैं। उपशान्तकषाय और क्षीणकषायमें उदयस्थान तीसका ही है। सत्त्वस्थान उपशान्तकषायमें तिरानबे आदि चार और क्षीणकषायमें अस्सी आदि चार हैं ॥७०२॥

---

१. मु. सत्तं ।

जोगिम्मि अजोगिम्मि य तीसिगितीसं णवट्ठयं उदओ ।
सीदादिचऊ छक्कं कमसो सत्तं समुद्दिट्ठं ॥७०३॥

योगिन्ययोगिनि च त्रिंशदेकत्रिंशत् नवाष्टकमुदयः । अशीत्यादि चतुः षट्कं क्रमशः सत्वं समुद्दिष्टं ॥

सयोगकेवलिजिनरोळं अयोगिजिनरोळं क्रमदिनुदयं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं— ५

बं	उ	स
१	८	९
३१	९	१०
३०	३१	७७
२९	३०	७८
२८	२९	७९
२६	२८	८०
२५	२७	८२
२३	२६	८४
	२५	८८
	२४	९०
	२१	९१
	२०	९२
		९३

तुदयस्थानद्वयमुमयोगिकेवलियोळु नवप्रकृतिस्थानमुमंतुदयस्थानद्वयमुं सत्वस्थानंगळुमशीत्यादिचतुःस्थानंगळु । मशीत्यादि षट्स्थानंगळु मप्पुवु । सयोग बं । ० । उ ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । अयोगि बं । ० । उ ९ । ८ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥

यितु चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु नामकर्म्मबंधोदय सत्वस्थानंगळ त्रिसंयोगप्रकारमं पेळ्दनंतरं चतुर्द्दशजीवसमासंगळोळु अपर्य्याप्तजीवसमासंगळेळरोळं पर्य्याप्तजीवसमासंगलोळेळरोळु सूक्ष्मंगळोळं बादरंगळोळं विकलत्रयंगळोळमसंज्ञिगळोळं संज्ञिगलोलं त्रिसंयोगस्थानसंख्येगळं पेळ्वपर :— १०

सयोगायोगयोः क्रमेणोदयस्थाने त्रिंशत्कैकत्रिंशत्के द्वे, नवकाष्टके द्वे । सत्त्वस्थानान्यशीतिकादीनि चत्वारि षट् । सयोग बं., उ ३० ३१ । स ८० ७९ ७८ ७७ । अयोगि बं., उ ९ । ८, स ८० ७९ ७८ ७७ १० । ९ ॥७०३॥ अथ चतुर्दशजीवसमासेष्वाह— १५

सयोगीमें उदयस्थान तीस-इकतीसके दो और अयोगीमें नौ-आठ ये दो हैं । सत्त्वस्थान सयोगीमें अस्सी आदि चार और अयोगीमें अस्सी आदि छह हैं ।—सयोगीमें बन्ध उदय ३०, ३१ । सत्त्व ८०, ७९, ७८, ७७ । अयोगीमें बन्ध शून्य, उदय ९, ८ । सत्त्व ८०, ७९, ७८, ७७, १०, ९ ॥७०३॥ २०

आगे चौदह जीव समासोंमें कहते हैं—

पण दो पणगं पण चदु पणगं बंधुदयसत्त पणगं च ।
पण छक्क पणग छच्छक्कपणगमट्ठट्ठमेयारं ॥७०४॥

पंच द्वे पंचकं पंचचतुः पंचकं बंधोदय सत्त्व पंचकं च । पंच षट् पंच षट् षट्कपंचकमष्टाष्टैकादश ॥

अपर्याप्तकसप्तकदोळु बंधोदयसत्वस्थानंगळु क्रमदिदं पंचक द्वे पंचकंगळप्पुवु । सर्व्वसूक्ष्मंगळोळु पंचचतुः पंचकंगळप्पुवु । सर्व्वबादरंगळोळु बंधोदयसत्वस्थस्थानंगळु पंचकंगळप्पुवु । विकलत्रयदोळु पंचषट्पंचकंगळुं क्रमदोळप्पुवु । असंज्ञिगळोळु षट्षट्पंचकंगळप्पुवु । संज्ञिगळोळु अष्टअष्टएकादशस्थानंगळु क्रमदिंदमप्पुवु ।

ई पेळ्द संख्याविषयभूतस्वामिगळं पेळ्दपरु :—

सत्तेव अपज्जत्ता सामी सुहुमो य बादरो चेव ।
वियलिंदिया य तिविहा होंति असण्णी कमा सण्णी ॥७०५॥

संदृष्टि :—

अप		सू	बा	वि ३	असं	संज्ञि
बं	५	५	५	५	६	८
उद	२	४	५	६	६	८
सत्व	५	५	५	५	५	११

ई पेळ्द संख्याविषयभूतस्थानंगळावुवेंदोडे पेळ्दपरु :—

बंधा तिय पण छण्णव वीसं तीसं अपुण्णगे उदओ ।
इगिचउवीसं इगिछव्वीसं थावरतसे कमसो ॥७०६॥

बंधः त्रिकपंच षण्णवति विंशति त्रिंशदपूर्णके उदयः । एकचतुर्व्विंशतिरेक षड्विंशतिः स्थावरे त्रसे क्रमशः ॥

अपर्य्याप्तसप्तककदोळु त्रयोविंशति पंचविंशति षड्विंशति नवविंशतिगळुं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुमितु पंचबंधस्थानंगळप्पुवु । २३ ॥ ए अ २५ । ए प । बि । ति । च । प । म । अ प २६ । ए प । अ । उ २९ । बि । ति । च । पं । म । परि । ३० । बि । ति । च । पं । परि । उ ॥ एकविंशतियुं

अपर्याप्तसप्तके बन्धोदयसत्त्वस्थानानि पंच द्वे पंच । सर्वसूक्ष्मेषु पंच चत्वारि पंच । सर्वबादरेषु पंच पंच पंच । विकलत्रये पंच षट् पंच । असंज्ञिषु षट् षट् पंच । संज्ञिष्वष्टाष्टैकादश ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥ तानि कानीति चेदाह—

अपर्याप्तसप्तके बन्धस्थानानि त्रिपंचषट्नवाग्रविंशतिकत्रिंशत्कानि पंच । उदयस्थानानि स्थावरलब्ध्य-

---

अपर्याप्त सात जीव समासोंमें बन्ध उदय सत्त्वस्थान क्रमसे पाँच, दो, पाँच हैं । सब सूक्ष्मजीवोंमें पाँच, चार, पाँच हैं । सब बादर जीवोंमें पाँच, पाँच, पाँच हैं । विकलत्रयमें पाँच, छह, पाँच हैं । असंज्ञीमें छह, छह, पाँच हैं । संज्ञीमें आठ, आठ, ग्यारह हैं ॥७०४-७०५॥

वे कौन हैं ? यह कहते हैं—

अपर्याप्त सात जीवसमासोंमें बन्धस्थान तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस ये

चतुर्व्विंशतियुं स्थावरलब्ध्यपर्य्याप्तंगळोळुदयस्थानद्वयमक्कुं। त्रसलब्ध्यपर्त्तापंगळोळु एकविंशतियुं षड्विंशतियुमुदयस्थानद्वयमक्कुं। स्थावर २१। ति ॥ विग्रहगति २४। ए। त्रस २१। ति म। विग्रहगति। २६। बि। ति। च। पं। सा। म। सत्वस्थानंगळं।

बाणउदी णउदिचऊ सत्तं एमेव वंधयं अंसा।
सुहुमिदरे वियलतिये उदया इगिवीसयादिचउपणयं ॥७०७॥

द्वानवतिनंवति चत्वारि सत्वमेवमेव बंधांशाः। सूक्ष्मेतरस्मिन्विकलत्रये उदयाः एकविंशत्यादिचतुः पंच ॥

आ लब्ध्यपर्य्याप्तजीवंगळगे तीर्त्थरहितद्वानवतियुं तीर्त्थाहाररहितनवत्यादिसुरद्विकनारक चतुष्कमनुष्यद्विकरहितंगळप्प नाल्कुं सत्वंगळप्पुवु। ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ समुच्चय संदृष्टि :—

लब्ध्य प.	७	बं ५	उ २	स ५	०
बंध	२३	२५	२६	२९	३०
उद	२१	२४	त्रस२१	२६	०
सत्व	९२	९०	८८	८८	८२

एकमेव इंद्रियंगेये सूक्ष्मंगळोळं बादरंगळोळं विकलत्रयदोळं बंधांशंगळप्पुवु। उदयस्थानंगळोळु सूक्ष्मंगळोळु एकविंशत्यादिचतुःस्थानंगळप्पुवु। बादरंगळोळु एकविंशत्यादि पंचस्थानंगळप्पुवु। सत्वस्थानंगळु मुपेळ्दुवक्कु।

इगिछक्कडणववीसं तीसिगितीसं च वियलठाणं वा।
बंधतियं सण्णिदरे भेदो बंधदि हु अडवीसं ॥७०८॥

एकषडष्टनवविंशतित्रिंशदेकत्रिंशच्च विकलस्थानवद्बंधत्रयं संज्ञीतरस्मिन् भेदो बध्नाति खल्वष्टविंशतिं ॥

विकलत्रयदोळु बंधांशंगळु सूक्ष्मगळोळु पेळ्दुवेयप्पुवु। उदयस्थानंगळु पेळल्पडुगुमेकविंशतियुं षड्विंशतियुंमष्टाविंशतियुं नवविंशतियुं त्रिंशदेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळप्पुवु।

पर्याप्तेष्वेकचतुरग्रविंशतिके द्वे। त्रसलब्ध्यपर्याप्तेष्वेकषडग्रविंशतिके द्वे ॥७०६॥

सत्त्वस्थानानि द्वानवतिकं नवतिकादिचतुष्कं च। एवमेव सूक्ष्मेषु बादरेषु विकलेन्द्रियेषु च बंधांशौ स्यातां। उदयस्थानानि सूक्ष्मेष्वेकविंशतिकादीनि चत्वारि बादरेषु पंच। सत्त्वं प्रागुक्तमेव ॥७०७॥

विकलत्रये बन्धांशौ सूक्ष्मोक्तावेव। उदयस्थानान्येकषडष्टनवदशैकादशाग्रविंशतिकानि। असंज्ञिषु

पाँच हैं। उदयस्थान स्थावर लब्ध्यपर्याप्तकोंमें इक्कीस-चौबीस दो हैं। त्रस लब्ध्यपर्याप्तकोंमें इक्कीस-छब्बीस ये दो हैं ॥७०६॥

सत्त्वस्थान बानबे और नब्बे आदि चार हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म बादर और विकलेन्द्रियोंमें बन्धस्थान और सत्त्वस्थान अपर्याप्तवत् होते हैं। उदयस्थान सूक्ष्मजीवोंमें इक्कीस आदि चार हैं, बादरोंमें पाँच हैं सत्त्वस्थान पूर्वोक्त ही हैं ॥७०७॥

विकलत्रयमें बन्ध और सत्त्व सूक्ष्मजीवोंके समान जानना। उदयस्थान इक्कीस,

सूक्ष्मंगळगे बं ५ । उ ४ । स ५	बादरंगळगे बं ५ । उ ५ । स ५	विकलत्रयंगळगे बं ५। उ ६ । स ५
बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३०	बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३०	बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० ।
उ २१ । २४ । २५ । २६	उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७	उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।
स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२	स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२	स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ।

मत्तमसंज्ञियोळं विकलेंद्रियंगळोळु पेळ्दबंधोदयसत्वस्थानंगळेयप्पुवादोडं भेदमुंटदावुदेंदोडे अष्टाविंशतिं बध्नाति अष्टाविंशतिस्थानमुमं कट्टुगुं।

सण्णिम्मि सव्ववंधो इगिवीसप्पहुडि एक्कतीसंता ।
चउवीसूणा उदओ दस णवपरिहीणसव्वयं सत्तं ॥७०९॥

संज्ञिनि सर्व्वबंधः एकविंशतिप्रभृत्येकत्रिंशदंताश्चतुर्विंशत्यूना उदयाः दशनवपरिहीन सर्व्वं सत्वं ॥

संज्ञियोळु सर्व्वबंधस्थानंगळप्पुवु। उदयस्थानंगळुमेकविंशत्यादि एकत्रिंशत्कपर्य्यंतमाद चतुर्व्विंशतिस्थानं पोरगागि शेषाष्टस्थानंगळप्पुवु। एकेंदाडा चतुर्व्विंशतिस्थानमेकेंद्रियसंबंधियप्पुदरिंदमिल्लिगुदययोग्यमल्लप्पुदरिंदं। सत्वस्थानंगळु दशनवपरिहीनमागि सर्व्वमुं सत्वमक्कुं। संदृष्टि :—

संज्ञिगे	बं ध ८ ।	उदय	८ ।	सत्व	११॥						
बं	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	*	*	*
उद	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	*	*	*
सत्व	९३	९२	९१	९०	८८	८४	८२	८०	७९	७८	७७

अनंतरं चतुर्द्दशमार्गणेगळोळु नामकर्म्मबंधोदय सत्वत्रिसंयोगमं पेळ्लुपक्रमिसि मोदल गतिमार्गणेयोळु बंधोदय सत्वस्थानसंख्येगळं पेळ्दपरु :—

दोछक्कट्ठचउक्कं णिरयादिसु णामबंधठाणाणि ।
पण णव एगार पणयं तिपंचबारसचउक्कं च ॥७१०॥

द्विषडष्टचतुष्कं नरकादिषु नामबंधस्थानानि । पंचनवैकादश पंचकं त्रिपंचद्वादश चतुष्कं च ॥

बन्धोदयसत्त्वस्थानानि विकलेन्द्रियोक्तानि । किन्तु अष्टाविंशतिकमपि बध्नाति ॥७०८॥

संज्ञिषु बन्धस्थानानि सर्वाणि । उदयस्थानान्येकविंशतिकाद्येकत्रिंशत्कान्तानि चतुर्विंशतिकोनान्यष्टौ । सत्त्वस्थानानि दशनवकपरिहीनसर्वाणि ॥७०९॥ अथ चतुर्दशमार्गणास्वाह—

छब्बीस, अठाईस, उनतीस, इकतीसके पाँच हैं। असंज्ञीमें बन्ध उदय सत्त्वस्थान विकलत्रयवत् जानना। किन्तु असंज्ञी अठाईसको भी बाँधता है अतः बन्धस्थान छह हैं ॥७०८॥

संज्ञीमें बन्धस्थान सब हैं। उदयस्थान चौबीसके बिना इक्कीससे इकतीस पर्यन्त आठ हैं। सत्त्वस्थान दस और नौ बिना सब हैं ॥७०९॥

आगे चौदह मार्गणामें कहते हैं—

नरकादिगतिगळोळु क्रमदिंदं नामबंधस्थानंगळु द्विषडष्टचतुष्कंगळप्पुवु। उदयस्थानंगळु पंचनवैकादशपंचकंगळप्पुवु। सत्वस्थानंगळु त्रिपंचद्वादशचतुष्कंगळप्पुवु यथाक्रमदिंदं। संदृष्टि :—

नरकगति	बंध २	उदय ५	सत्व ३
तिर्य्यंग्गति	बंध ६	उदय ९	सत्व ५
मनुष्यगति	बंध ८	उदय ११	सत्व १२
देवगति	बंध ४	उदय ५	सत्व ४

इंद्रियमार्ग्गणेयोळु पेळ्दपरु :—

एगे वियले सयले पण पण अड पंच छक्केगारपणं।
पण तेरं बंधादी सेसादेसेवि इदि णेयं ॥७११॥

एकेंद्रिये विकले सकले पंच पंचाष्टपंचषट्कैकादश पंच। पंच त्रयोदशबंधादयः शेषादेशेऽपि इति ज्ञेयं॥

एकेंद्रियदोळं विकलत्रयदोळं पंचेंद्रियदोळं क्रमदिंदं बंधस्थानंगळु पंचपंचाष्ट प्रमितंगळप्पुवु। उदयस्थानंगळुमंते पंचषट्कैकादशप्रमितंगळप्पुवु। सत्वस्थानंगळुमंते पंच पंच त्रयोदश स्थानंगळप्पुवु। शेषादेशे उळिद कायादिमार्ग्गणेगळोळमी प्रकारदिंदमे कथनमरियल्पडुगुं। संदृष्टि—

एकेंद्रिय	बं ५	उ ५	सत्व ५
विकलेंद्रिय	बं ५	उ ६	सत्व ५
पंचेंद्रिय	बं ८	उ ११	सत्व १३

इंतु नरकादिगतिमार्ग्गणेगळोळमेकेंद्रियविकलेंद्रियपंचेंद्रियंगळोळं पेळल्पट्ट बंधोदय सत्वस्थानंगळ संख्येगे विषयस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

नरकादिगतिषु क्रमेण नाम्नो बन्धस्थानानि द्वे षडष्टौ चत्वारि। उदयस्थानानि पंचनवैकादशपंच। सत्त्वस्थानानि त्रीणि पंच द्वादश चत्वारि ॥७१०॥ इन्द्रियमार्गणायामाह—

एकेन्द्रिये विकलत्रये पंचेन्द्रिये च क्रमेण बन्धस्थानानि पंचपंचाष्टौ। उदयस्थानानि पंचषडेकादश। सत्त्वस्थानानि पंच पंच त्रयोदश। एवं शेषकायादिमार्गणास्वपि ज्ञातव्यं ॥७११॥ तानि कानीति चेदाह—

नरक आदि गतियोंमें नामकर्मके बन्धस्थान दो, छह, आठ, चार; उदयस्थान पाँच, नौ, ग्यारह, पाँच और सत्त्वस्थान तीन, पाँच, बारह, चार क्रमसे जानना ॥७१०॥

इन्द्रियमार्गणामें कहते हैं—

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियमें क्रमसे बन्धस्थान पाँच, पाँच, आठ हैं। उदयस्थान पाँच, छह, ग्यारह हैं। सत्त्वस्थान पाँच, पाँच, तेरह हैं। इसी प्रकार शेष कायादि मार्गणाओंमें भी जानना ॥७११॥

वे कौन हैं ? यह कहते हैं—

णिरयादिणामबंधा उगुतीसं तीसमादिमं छक्कं ।
सव्वं पणछक्कुत्तरवीसुगतीसं दुगं होदि ॥७१२॥

नरकादिनामबंधाः एकान्नत्रिंशत्त्रिंशदाद्यतन षट्कं । सर्व्वं पंच षट्कोत्तरविंशत्येकान्नत्रिंशद्वयं भवति ॥

नरकादिगतिगळोळमेकेंद्रियादींद्रियंगळोळं बंधस्थानंगळु पेळल्पडुगुमल्लि नरकगतियोळेकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळप्पुवु । तिर्य्यंग्गतियोळु आद्यतनत्रयोविंशत्यादिषट्कं बंधमक्कुं । मनुष्यगतियोळु सर्व्वबंधस्थानंगळु बंधमप्पुवु । देवगतियोळु पंचविंशति षड्विंशत्येकान्नत्रिंशत्त्रिंशच्चतुःस्थानंगळु बंधमप्पुवु ॥

उदया इगिपणसगअडणववीसं एक्कवीसपहुडि णवं ।
चउवीसहीणसव्वं इगिपणसगअट्ठणत्रवीसं ॥७१३॥

उदया एकपंच सप्ताष्ट नवविंशतिरेकविंशतिप्रभृति नव चतुर्व्विंशति हीन सर्व्वं एक पंच सप्ताष्टनवविंशतिः ॥

आ पेळ्द बंधस्थानंगळं कट्टुव नरकादिगतिजरुगळोळुदयस्थानंगळु पेळल्पडुगुमल्लि-नरकगतिजरोळु एक पंच सप्ताष्ट नवोत्तरविंशत्युदयस्थानपंचकमक्कुं । तिर्य्यंग्गतियोळु एकविंशतिप्रभृतिनवोदयस्थानंगळप्पुवु । मनुष्यगतियोळु चतुर्व्विंशत्युदयस्थानं पोरगागि सर्व्वोदयस्थानंगळप्पुवु । देवगतियोळेकविंशति पंचविंशति सप्तविंशति अष्टाविंशति नवविंशति उदयस्थानपंचकमक्कुं :—

सत्ता बाणउदितियं बाणउदीणउदिअट्ठसीदितियं ।
बासीदिहीणसव्वं तेणउदिचउक्कयं होदि ॥७१४॥

सत्वानि द्वानवतित्रयं द्वानवतिनवत्यष्टाशीति त्रिकं । द्व्यशीतिहीनसर्व्वं त्रिनवतिचतुष्कं भवति ॥

नाम्नो बन्धस्थानानि नरकगतावेकान्नत्रिंशत्कत्रिंशत्के द्वे । तिर्यग्गतावाद्यानि त्रयोविंशतिकादीनि षट् । मनुष्यगतौ सर्वाणि । देवगतौ पंचषण्णवाग्रविंशतिकानि त्रिंशत्कं च ॥७१२॥

उदयस्थानानि नरकगतावेकपंचसप्ताष्टनवाग्रविंशतिकानि पंच । तिर्यग्गतावेकविंशतिकादीनि नव । मनुष्यगतौ चतुर्विंशतिकं विना सर्वाणि । देवगतावेकपंचसप्ताष्टनवाग्रविंशतिकानि पंच ॥७१३॥

नामकर्मके बन्धस्थान नरकगतिमें उनतीस-तीस ये दो हैं। तिर्यंचगतिमें आदिके तेईस आदि छह हैं। मनुष्यगतिमें सब हैं। देवगतिमें पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीस ये चार हैं ॥७१२॥

उदयस्थान नरकगतिमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसके पांच हैं। तिर्यंचगतिमें इक्कीस आदि नौ हैं। मनुष्यगतिमें चौबीसके बिना सब हैं। देवगतिमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसके पाँच हैं ॥७१३॥

आ पेळ्द बंधोदयस्थानंगळनुळ्ळ नारकादिगळ्गे सत्वस्थानंगळ्पेळल्पडुगु-। मल्लि नरकगतिजरोळ् द्वानवतियुमेकनवति त्रिनवति त्रिस्थानंगळु सत्वमक्कुं। तिर्य्यंग्गतिजरोळु द्वानवति नवत्यष्टाशीत्यादित्रिकमुं सत्वमक्कुं। मनुष्यगतियोळु द्व्यशीति हीनमागि सव्वंद्वादशस्थानंगळुं सत्वमक्कुं। देवगतियोळु त्रिनवत्यादिचतुःस्थानंगळं सत्वमप्पुवु। संदृष्टि :—

नरकगति बंध २ उ ५ सत्व ३	तिर्य्यंग्गति बंध ६। उद ९।स५।
बंध २९।३०।	बं २३।२५।२६।२८।२९।३०
उद २१।२५।२७।२८।२९	उ २१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१
सत्व ९२।९१।९०	सत्व ९२।९०।८८।८४।८२।

मनुष्य बं ८।उ ११।स १२	देवग बं ४ उ ५।सत्व ४
बं २३।२५।२६।२८।२९।३०।३१	बं २५।२६।२९।३०।
उ २०।२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।९ ८	उ २१।२५।२७।२८।२९।
स ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७	स९३।९२।९१।९०
सत्व ९३।९२।९१।९०।८८।८४।८०।७९।७८।७७।१०।९।	

इगिविगलबंधठाणं अडवीसूणं तिवीसछक्कं तु ।
सयलं सयले उदया एगे इगिबीसपंचयं वियले ॥७१५॥

एकविकलं बंधस्थानमष्टाविंशत्यूनं त्रिंविंशतिषट्कं तु। सकलं सकले उदयाः एकेंद्रिये एकविंशति पंचकं विकले ॥

इंद्रियमार्गणेयोळु पेळ्द संख्येय बंधस्थानंगळु पेळल्पडुगुमल्लि एकेंद्रियंगळोळं विकलत्रयंगळोळं प्रत्येकमष्टत्रिंशत्यूनत्रयोविंशत्यादि षड्बंधस्थानंगळप्पुवु। सकलेंद्रियदोळु सकलबंधस्थानंगळप्पुवु। उदयाः आ एकविकल सकलंगळ्गुदयं पेळल्पडुगुमल्लि एकेंद्रियदोळु एकविंशतिपंचकमुदयमक्कुं। विकलेंद्रियसकलेंद्रियंगळ्गे पेळ्दपरु :—

सत्त्वस्थानानि नरकगतौ द्व्येकखाधिकनवतिकानि । तिर्यग्गतौ द्वानवतिकनवतिके द्वे, अष्टाशीतिकादित्रयं च । मनुष्यगतौ द्व्यशीतिकोनसर्वाणि । देवगतौ त्रिनवतिकादिचतुष्कं ॥७१४॥

इन्द्रियमार्गणायां बन्धस्थानान्येकेन्द्रिये विकलत्रये चाष्टाविंशतिकोनत्रयोविंशतिकादीनि षट् । पंचेन्द्रियेषु सर्वाणि । उदयस्थानान्येकेन्द्रिये एकविंशतिकादीनि पंच ॥७१५॥

सत्त्वस्थान नरकगतिमें बानवे, इक्यानबे, नब्बे ये तीन हैं। तिर्यंचगतिमें बानवे, नब्बे और अठासी आदि तीन इस प्रकार पाँच हैं। मनुष्यगतिमें बयासीके बिना सब हैं। देवगतिमें तिरानबे आदि चार हैं ॥७१४॥

इन्द्रिय मार्गणामें बन्धस्थान एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियमें अठाईसके बिना तेईस आदि छह हैं। पंचेन्द्रियमें सब हैं। उदयस्थान एकेन्द्रियमें इक्कीस आदि पाँच हैं ॥७१५॥

इगिछक्कडणववीसं तीसदु चउवीसहीणसव्वुदया ।
णउदिचऊ बाणउदी एगे वियले य सव्वयं सयले ॥७१६॥

एकषडष्टनवविंशतित्रिंशद्वयं चतुर्विंशतिहीन सर्वोदयाः । नवति चत्वारि द्वानवतिरेकेंद्रिये विकले च सर्वं सकलेंद्रिये ॥

विकलेंद्रियदोळुदयस्थानंगळु एकषडष्टनवविंशति प्रकृतिस्थानंगळुं त्रिंशदेकत्रिंशत्कंगळु कूडि षड्डयस्थानंगळप्पुवु । सकलेंद्रियंगळोळु चतुर्विंशतिहीनसर्वोदयस्थानंगळप्पुवु । सत्वस्थानंगळोळेकेंद्रियंगळोळं विकलेंद्रियंगळोळं प्रत्येकं द्वानवति नवत्यष्टाशीतिचतुरशीति द्व्यशीतिसत्वस्थानंगळप्पुवु । पंचेंद्रियंगळोळु सर्वसत्वस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

एकें	बं	२३	२५	२६	२९	३०		उ	२१	२४	२५	२६	२७	०				
विकलें	बं	२३	२५	२६	२९	३०		उ	२१	२६	२८	२९	३०	३१				
सकल	बं	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	उ	२०	२१	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	१	८

सत्त्व	९२	९०	८८	०	८४	८२												
सत्त्व	९२	९०	८८	०	८४	८२												
सत्त्व	९३	९२	९१	०	९०	८८	८४	८२	८०	८९	७८	७७	१०	९				

अनंतरं कायमार्गणेयोळु नामत्रिसंयोगमं पेळ्दपरु :—

पुढवीयादीपंचसु तसे कमा बंधउदयसत्ताणि ।
एयं वा सयलं वा तेउदुगे णत्थि सगवीसं ॥७१७॥

पृथिव्यादिपंचसु त्रसे क्रमाद्बंधोदयसत्त्वान्येकेंन्द्रियवत् सकलेंद्रियवत्तेजोद्विके नास्ति सप्तविंशतिः ॥

पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिगळेंब पंचकायिकंगळोळं त्रसकायिकदोळं क्रमात् क्रमविदं बंधोदयसत्त्वस्थानंगळेकेंद्रियदोळु पेळ्दंतेयुं पंचेंद्रियदोळ्पेळ्दंतेयुमप्पुवु । तेजोद्विकदोळु सप्तविंशतिप्रकृत्युदयस्थानमिल्लेकेंदोडा सप्तविंशतिस्थानमेकेंद्रियपर्य्याप्तंगळोडनातपोद्योतंगळोळन्यतरोदय-

---

विकलेन्द्रियेषु एकषडष्टनवाग्रविंशतिकादीनि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्के च । सकलेन्द्रियेषु चतुर्विंशतिकोनसर्वाणि । सत्त्वस्थानान्येकेन्द्रिये विकलत्रये च द्वानवतिकनवतिकाष्टचतुर्द्व्यग्राशीतिकानि । पंचेन्द्रियेषु सर्वाणि ॥७१६॥

कायमार्गणायां पृथ्व्यादिपंचसु बन्धोदयसत्त्वस्थानान्येकेन्द्रियवत् । त्रसे पंचेन्द्रियवत् । न तेजोद्विके

विकलेन्द्रियमें इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस ये छह हैं। पंचेन्द्रियमें चौबीसके बिना सब हैं। सत्त्वस्थान एकेन्द्रिय और विकलत्रयमें बानवे, नब्बे, अठासी, चौरासी, बयासी हैं। पंचेन्द्रियमें सब हैं ॥७१६॥

कायमार्गणामें पृथ्वी आदि पाँच स्थावरोंमें बन्ध उदय सत्त्वस्थान एकेन्द्रियके समान

युतस्थानमप्पुदरिंदमा जीवंगळोळु "तेउतिगूणतिरिच्छेसुज्जोओ बादरेसु पुण्णेसु" एंदितुदय-निषेधमुंटप्पुदरिंदं 'भूपुण्णबादरेताओ' एंदितु आतपनामोदययुतमाद सप्तविंशत्युदयस्थानमुमा-जीवंगळोळु संभविसदप्पुदरिंदं। संदृष्टि :—पृथ्वी बं ५। उ ५। स ५। बं २३। २५। २६। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७॥ स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ अप्कायिक बं ५। उ ५। स ५। बं २३। २५। २६। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७॥ स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२। तेजस्कायिक बं ५। उ ४। स ५। बं २३। २५। २६। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ वायुकायिकंगळगे बं ५। उ ४। सत्त्व ५। बंध २३। २५। २६। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। सत्त्व ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ वनस्पति-कायिकंगळगे बं ५। उ ५। सत्त्व ५। बं २३। २५। २६। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ त्रसकायिकंगळगे बं ८। उ ११। स १३। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १। उ २०। २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ९। ८। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ८०। ७९। ७८। ७७। १०। ९॥

अनंतरं योगमार्गणेयोळु नामत्रिसंयोगमं गाथाचतुष्टयदिंदं पेळ्दपरु :—

मणवचि बंधुदयंसा सव्वं णववीसतीसइगितीसं।
दसणवदुसीदिवज्जिद सव्वं ओरालतम्मिस्से ॥७१८॥

मनोवाग्बंधोदयांशाः सर्व्वं नवविंशतित्रिंशदेकत्रिंशद्दश नव द्व्यशीतिवर्ज्जित सर्व्वमौदारिक-तन्मिश्रयोः ॥

मनोवाग्योगंगळ बंधोदयसत्त्वस्थानंगळ्पेळल्पडुववल्लि बंधस्थानंगळु प्रत्येकं सर्व्वम्-मक्कुमुदयस्थानंगळु नवविंशतित्रिंशदेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानत्रितयमक्कुं। सत्त्वस्थानंगळु दशनव-द्व्यशीतिवर्ज्जितसर्व्वसत्त्वस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि—मनोयोगक्के बं ८। उ ३। स १०। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८०। ७९। ७८। ७७॥ वाग्योगचतुष्टयदोळु। बं ८। उ ३। स १०। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १। उ २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८०। ७९। ७८। ७७॥

सप्तविंशतिकं तस्यैकेन्द्रियपर्याप्तयुतातपोद्योतान्यतरयुतत्वात् तत्रानुदयात् ॥७१७॥

योगमार्गणायां मनोवाक्षु बंधस्थानानि प्रत्येकं सर्वाणि। उदयस्थानानि नवविंशतिकत्रिंशत्कैक-त्रिंशत्कानि। सत्त्वस्थानानि दशकनवकद्व्यशीतिकोनसर्वाणि ॥७१८॥

होते हैं। त्रसमें पंचेन्द्रियके समान हैं। किन्तु तेजकाय वायुकायमें सत्ताईसका उदय नहीं है; क्योंकि सत्ताईसका उदयस्थान एकेन्द्रिय पर्याप्तके साथ आतप या उद्योत सहित होता है और वायुकाय तेजकायमें इनका उदय नहीं है ॥७१७॥

योगमार्गणामें मन वचनयोगमें बन्धस्थान सब हैं। उदयस्थान उनतीस, तीस, इकतीस तीन हैं। सत्त्वस्थान दस, नौ और बयासीके बिना सब हैं ॥७१८॥

औदारिककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं त्रिसंयोगमं पेळ्दपरु :—

सव्वं तिवीसछक्कं पणुवीसादेक्कतीसपेरंतं ।
चउछक्कसत्तवीसं दुसु सव्वं दसयणवहीणं ॥७१९॥

सर्व्वंत्रयोविंशतिषट्कं पंचविंशतेरेकत्रिंशत्पर्य्यंतं । चतुष्षट्सप्तविंशतिर्द्वयोस्सर्व्वं दशनव परिहीनं ॥

औदारिककाययोगदोळु सर्व्वमुं बंधस्थानंगळप्पुवु । तन्मिश्रकाययोगदोळु त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळप्पुवु । उदयस्थानंगळौदारिककाययोगदोळु पंचविंशतिस्थानमोदल्गोंडेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानपर्य्यंतमाद सप्तस्थानंगळप्पुवु । तन्मिश्रकाययोगदोळु चतुर्व्विंशतियुं षड्विंशतियुं सप्तविंशतियुमितु त्रिस्थानंगळुदयमप्पुवु । सत्त्वस्थानंगळौदारिककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं दशनवपरिहीनसर्व्वसत्त्वस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि—औदारिककाययोगदोळु बं ८ । उ ७ । स ११ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ । उ २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ औदारिकमिश्रकाययोगदोळु बं ६ । उ ३ । स ११ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २४ । २६ । २७ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥

वेगुव्वे तम्मिस्से बंधंसा सुरगदीव उदयो दु ।
सगवीसतियं पणजुदवीसं आहारतम्मिस्से ॥७२०॥

वैक्रियिके तन्मिश्रे बंधांशाः सुरगतिरिवोदयस्तु । सप्तविंशतित्रिकं पंचयुतविंशतिराहारतन्मिश्रयोः ॥

वैक्रियिककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं बंधस्थानंगळुं सत्त्वस्थानंगळुं देवगतियोळु पेळ्दंतेयप्पुवु । तु मत्तं उदयस्थानंगळु सप्तविंशतित्रिकमुं पंचविंशतिस्थानमक्कुं । संदृष्टि :— वैक्रियिककाययोगदोळु बं ४ । उ ३ । स ४ । बं २५ । २६ । २९ । ३० ॥ उ २७ । २८ । २९ ।

औदारिके बन्धस्थानानि सर्वाणि । तन्मिश्रे त्रयोविंशतिकादीनि षट् । उदयस्थानान्यौदारिके पंचविंशतिकाद्येकत्रिंशत्कांतानि सप्त । तन्मिश्रे चतुःषट्सप्तविंशतिकानि । सत्त्वस्थानान्यौदारिके तन्मिश्रे च दशकनवकोनसर्वाणि ॥७१९॥

वैक्रियिके तन्मिश्रे च बन्धस्थानानि सत्त्वस्थानानि च देवगत्युक्तानि । तु—पुनः उदयस्थानानि

औदारिकमें बन्धस्थान सब हैं । औदारिक मिश्रमें तेईस आदि छह हैं । उदयस्थान औदारिकमें पच्चीससे इकतीस पर्यन्त सात हैं । औदारिक मिश्रमें चौबीस, छब्बीस, सत्ताईस ये तीन उदयस्थान हैं । सत्त्वस्थान औदारिक औदारिक मिश्रमें दस और नौके बिना सब हैं ॥७१९॥

वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रमें बन्धस्थान सत्त्वस्थान तो देवगतिकी तरह जानना ।

स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु बं ४ । उ १ । स ४ । बं २५ । २६ । २९ । ३० । उ २५ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥

आहारक तन्मिश्रयोगंगळोळं कार्म्मणकाययोगदोळं पेळ्दपरु :—

वंधतियं अडवीसदु वेगुव्वं वा तिणउदिबाणउदी ।
कम्मे वीसदुगुदओ ओरालियमिस्सयं व बंधंसाः ॥७२१॥

बंधत्रयमष्टाविंशतिद्वि वैक्रियिकवत् त्रिनवतिर्द्वानवतिश्च कार्म्मणे विंशतिद्विउदयः औदारिक मिश्रवद्बंधांशाः ॥

आहारककाययोगदोळं तन्मिश्रकाययोगदोळं बंधोदयसत्त्वस्थानंगळ्पेळल्पडुगुमल्लि बंधस्थानंगळु प्रत्येकमष्टाविंशति नवविंशतिद्वयमक्कुं । वैक्रियिककाययोगदोळु पेळ्वंते सप्तविंशत्यादित्रिस्थानोदयंगळुं मिश्रदोळु पंचविंशतिस्थानमक्कुं । सत्त्वस्थानंगळु प्रत्येकं त्रिनवतियुं द्वानवतियुमप्पुवु । संदृष्टि—आहारककाययोगदोळु बं २ । उ ३ । स २ । बं २८ । २९ । उ २७ । २८ । २९ । स ९३ । ९२ ॥ आहारकमिश्रदोळु बं २ । उ १ । स २ । बं २८ । २९ । उ २५ । स ९३ । ९२ ॥ कार्म्मणकाययोगदोळु विंशतियुमेकविंशतियुमुदयंगळप्पुवु । बंधांशंगळौदारिकमिश्रदोळु पेळ्वंतेयप्पुवु । संदृष्टि—कार्म्मणकाययोगदोळु बं ६ । उ २ । स ११ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २० । २१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥

अनंतरं वेदमार्गणेयोळं कषायमार्गणेयोळं नामत्रिसंयोगमं पेळ्दपरु :—

वेदकसाये सव्वं इगिवीसणवं तिणउदि एक्कारं ।
थीपुरिसे चउवीसं सीदडसदरी ण थी संढे ॥७२२॥

वेदकषाययोः सर्व्वमेकविंशति नव त्रिनवत्येकादश स्त्रीपुरुषयोश्चतुर्व्विंशतिरशीत्यष्टसप्ततिर्न्न स्त्रीषंडयोः ॥

सप्तविंशतिकादित्रिकं पंचविंशतिकं च ॥७२०॥

आहारके तन्मिश्रे च बंधस्थानान्यष्टनवाग्रविंशतिके द्वे द्वे । उदयस्थानानि वैक्रियिकवत् सप्तविंशतिकादीनि त्रीणि । मिश्रे पंचविंशतिकमेव । सत्त्वस्थानान्युभयत्र त्रिद्व्यग्रनवतिके द्वे । कार्मणे उदयस्थानानि विंशतिकैकविंशतिके द्वे बंधांशौ औदारिकमिश्रोक्तावेव ॥७२१॥

उदयस्थान सत्ताईस आदि तीन हैं । किन्तु मिश्रमें पच्चीसका ही है ॥७२०॥

आहारक आहारक मिश्रमें बन्धस्थान अठाईस-उनतीसके दो-दो हैं । उदयस्थान वैक्रियिकवत् सत्ताईस आदि तीन हैं । आहारक मिश्रमें पच्चीसका ही है । सत्त्वस्थान दोनोंमें तिरानबे-बानबे दो हैं । कार्माणमें उदयस्थान बीस-इक्कीस ये दो हैं । बन्ध और सत्त्व औदारिक मिश्रवत् हैं ॥७२१॥

वेदमार्गणेयोळं कषायमार्गणेयोळं प्रत्येकं सर्व्वबंधस्थानंगळप्पुवु । एकविंशत्यादिनवोदयस्थानंगळप्पुवु । त्रिनवत्याद्येकादश सत्त्वस्थानंगळप्पुवु ।

इल्लि विशेषमुंटदावुदेंदोडे स्त्रीवेददोळं पुरुषवेददोळं चतुर्व्विंशतिप्रकृतिस्थानमुदयमिल्लेकेंदोडवक्केकेंद्रियदोळल्लवुदयमिल्ल । स्त्रीपुरुषवेदोदयं पंचेंद्रियदोळल्लदेल्लियुं संभविसदप्पुदरिंदं स्त्रीवेददोळं षंडवेददोळमशीत्यष्टसप्ततिस्थानद्वयं सत्त्वमिल्लेकेंदोडा स्त्रीषंडवेदोदयंगळिंदं क्षपकश्रेण्यारोहणमिल्लप्पुदरिंदं । आ तीर्त्थयुतद्विस्थानसत्वं संभविसदेंबुदत्थं । संदृष्टि :—

पुंवेदक्के बं ८ । उ ८ । स ११ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ॥ उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ स्त्रीवेदक्के बं ८ । उ ८ । स ९ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ॥ उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ७९ । ७७ ॥ षंडवेदक्के बं ८ । उ ९ । स ९ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ॥ उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ७९ । ७७ ॥ कषायमार्गणेयोळु कषायचतुष्टयदोळं बं ८ । उ ९ । स ११ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ॥ उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥

अनंतरं ज्ञानमार्गणेयोळु नामत्रिसंयोगमं सार्द्धगाथात्रयदिंदं पेळ्दपरु :—

अण्णाणदुगे वंधो आदी छ णउंसयं व उदओ दु ।
सत्तं दुणउदिछक्कं विभंगबंधा हु कुमदिंव ॥७२३॥

अज्ञानद्विके बंधः आदिषट् नपुंसकवदुदयस्तु । सत्त्वं तु नवतिषट्कं विभंगबंधाः खलु कुमतिवत् ॥

कुमतिकुश्रुतज्ञानंगळोळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळु बंधमक्कुं । तु मत्ते उदयः उदयं नपुंसकवत् नपुंसकवेददोळु पेळ्द स्थानंगळप्पुवु । सत्त्वं सत्त्वमुं द्विनवतिषट्कं द्वानवत्यादिषट्क-

---

वेदकषायमार्गणयोर्बंधस्थानानि सर्वाणि । उदयस्थानान्येकविंशतिकादीनि नव । सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीन्येकादश । अत्र स्त्रीपुंसोर्नवचतुर्विंशतिकं तस्यैकेन्द्रियेष्वेवोदयात् । स्त्रीषंढयोर्नाशीतिकाष्टसप्ततिके । तीर्थसत्त्वस्य पुंवेदोदयेनैव क्षपकश्रेण्यारोहात् ॥७२२॥

ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतयोर्बंधस्थानानि त्रयोविंशतिकादीनि षट् । तु—पुनः उदयस्थानानि

वेद और कषायमार्गणामें बन्धस्थान सब हैं उदयस्थान इक्कीस आदि नौ हैं । सत्त्वस्थान तिरानबे आदि ग्यारह हैं । इतना विशेष है कि स्त्रीवेद पुरुषवेदमें चौबीसका उदय नहीं है क्योंकि उसका उदय एकेन्द्रियमें ही होता है । तथा स्त्रीवेद नपुंसकवेदमें अस्सी और अठहत्तरका सत्त्व नहीं है; क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तावाला पुरुषवेदके उदयसे ही क्षपक श्रेणी चढ़ता है ॥७२२॥

ज्ञान मार्गणामें कुमति कुश्रुत ज्ञानमें बन्धस्थान तेईस आदि छह हैं । उदयस्थान

मक्कुं। संदृष्टि—कु। कु। बं ६। उ ९। स ६। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१ ॥ स ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२ ॥ विभंग-बंधाः खलु विभंगज्ञानदोळु बंधस्थानंगळु कुमतिवत् कुमतिज्ञानदोळु पेळ्द त्रयोविंशत्यादिषट्कमक्कुं स्फुटमागि ॥ आ विभंगदोळुदयसत्त्वंगळ पेळ्दपरु। —

उदया उणतीसतियं सत्ता णिरयं व मदिसुदोहीए।
अडवीसपंचबंधा उदया पुरिसव्व अट्ठेव ॥७२४॥

उदयाः एकान्नत्रिंशत्त्रयः सत्वानि नरकवत् मतिश्रुतावधिष्वष्टाविंशतिपंचबंधाः उदयाः पुरुषवदष्टैव ॥

विभंगज्ञानदोळुदयस्थानंगळु एकान्नत्रिंशत् त्रिस्थानंगळप्पुवु। सत्वस्थानंगळु नरकगतियोळु पेळ्द द्वानवतित्रितयमक्कुं। संदृष्टि। विभंग। बं ६। उ ३। स ३। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३० ॥ उ २९। ३०। ३१। स ९२। ९१। ९० ॥ मतिश्रुतावधिषु मतिश्रुतावधिज्ञानंगळोळु अष्टाविंशत्यादि पंचबंधस्थानंगळप्पुवु उदयस्थानंगळु पुंवेददोळपेळ्देकविंशत्याद्यष्ट स्थानंगळेयप्पुवु ॥ सत्वस्थानंगळोळं पेळ्दपरु :—

पढमचऊ सीदिचऊ सत्तं मणपज्जवम्हि बंधंसा।
ओहिव्व तीसमुदयं ण हि बंधो केवले णाणे ॥७२५॥

प्रथमचतुरशीति चतुः सत्त्वं मनःपर्य्यये बंधांशाः। अवधिवत् त्रिंशदुदयः नास्ति बंधः केवले ज्ञाने ॥

आ मतिश्रुतावधिज्ञानंगळोळु प्रथमत्रिनवत्यादि चतुःस्थानंगळु मशीत्यादिचतुः स्थानंगळुमप्पुवु ॥ संदृष्टि—म। श्रु। अ बं ५। उ ८। स ८। बं २८। २९। ३०। ३१। १। उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७ ॥ मनःपर्यये मनःपर्य्ययज्ञानदोळु बंधस्थानंगळं सत्वस्थानंगळुमवधिज्ञानदोळु पेळ्दष्टाविंशत्यादिपंचस्थानंगळुं त्रिनवत्यादि चतुःस्थानंगळुमशीत्यादि चतुःस्थानंगळुमप्पुवु। त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमों-

---

षंढवन्नव। सत्त्वं द्वानवतिषट्कं। विभंगे बन्धस्थानानि कुमतिवत्खलु ॥७२३॥

उदयस्थानान्येकान्नत्रिंशत्कादीनि त्रीणि। सत्त्वस्थानानि नरकगत्युक्तानि। मतिश्रुतावधिषु बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि पंच। उदयस्थानानि पुंवेदवदष्टौ ॥७२४॥

सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादिचतुष्कमशीतिकादिचतुष्कं च। मनःपर्यये बन्धसत्त्वस्थानान्यवधिवत्।

नपुंसकवेदकी तरह नौ हैं। सत्त्वस्थान बानवे आदि छह हैं। विभंगमें बन्धस्थान कुमतिकी तरह जानना ॥७२३॥

उदयस्थान उनतीस आदि तीन हैं। सत्त्वस्थान नरकगतिवत् हैं। मति-श्रुत-अवधिमें बन्धस्थान अठाईस आदि पाँच हैं। उदयस्थान पुरुषवेदकी तरह आठ हैं ॥७२४॥

सत्त्वस्थान तिरानवे आदि चार और अस्सी आदि चार मिलकर आठ हैं। मनः-

देयुदयमक्कुं। संदृष्टि—मनःपर्य्ययज्ञान बं ५। उ १। स ८। बं २८। २९। ३०। ३१। १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७॥ नास्ति बंधः केवलज्ञाने केवलज्ञानदोळ् नामकर्म्मबंधमिल्लुदयसत्वंगळं पेळ्दपरु :—

उदओ सव्वं चदुपणवीसूणं सीदिछक्कयं सत्तं।
सुदमिव सामायियदुगे उदओ पणवीस सत्तवीसचऊ ॥७२६॥

उदयः सर्व्वंश्चतुःपंचविंशत्यूनोऽशीतिषट्कं सत्त्वं। श्रुतमिव सामायिकद्विके उदयाः पंचविंशतिः सप्तविंशति चत्वारि॥

केवलज्ञानदोळुदयस्थानंगळु चतुर्व्विंशतियुं पंचविंशतियुं रहितमप्प विंशत्यादिसर्व्वंमुमक्कुं। सत्त्वस्थानंगळुमशीत्यादिषट्स्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि :—केवलज्ञान बं। ०। उ १०। स ६। बं। ०। उ २०। २१। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ९। ८। स ८०। ७९। ७८। ७७। १०। ९॥ श्रुतमिव सामाइकद्विके संयममार्गणेयोळु त्रिसंयोगपेळल्पडुगुमल्लि सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमद्विकदोळु बंधस्थानंगळुं सत्त्वस्थानंगळुं श्रुतज्ञानदोळु पेळ्दष्टाविंशत्यादिपंचस्थानंगळु त्रिनवत्यादि चतुःस्थानंगळुमशीत्यादिचतुःस्थानंगळप्पुवु। उदयस्थानंगळु पंचविंशतिस्थानमं सप्तविंशत्यादि चतुःस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि :—सा। छे। बं ५। उ ५। स ८। बं २८। २९। ३०। ३१। १। उ २५। २७। २८। २९। ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७॥

परिहारे बंधतियं अडवीसचऊ य तीसमादिचऊ।
सुहुमे एक्को बंधो मणं व उदयंसठाणाणि ॥७२७॥

परिहारे बंधत्रयमष्टाविंशतिचतुष्कं त्रिंशत् आदि चत्वारि। सूक्ष्मे एको बंधः मनःपर्य्ययबदुदयांशस्थानानि॥

उदयस्थानं त्रिंशत्कं। केवलज्ञानं नामबन्धो नास्ति ॥७२५॥

उदयस्थानानि चतुःपंचाग्रविंशतिकोनसर्वाणि। सत्त्वस्थानान्यशीतिकादीनि षट्। संयममार्गणायां सामायिकछेदोपस्थापनयोर्बन्धसत्त्वस्थानानि श्रुतज्ञानवत्। उदयस्थानानि पंचविंशतिकं, सप्तविंशतिकादिचतुष्कं च ॥७२६॥

पर्ययज्ञानमें बन्धस्थान और सत्त्वस्थान अवधिज्ञानकी तरह हैं। उदयस्थान तीस हीका है। केवलज्ञानमें नामकर्मका बन्ध नहीं है ॥७२५॥

उदयस्थान चौबीस-पच्चीसके बिना सब हैं। सत्त्वस्थान अस्सी आदि छह हैं। संयममार्गणामें सामायिक छेदोपस्थापनामें बन्धस्थान सत्त्वस्थान श्रुतज्ञानकी तरह हैं। उदयस्थान पच्चीसका और सत्ताईसका आदि चार हैं ॥७२६॥

परिहारविशुद्धिसंयमदोळ् बंधादित्रितयं यथाक्रमविंदमष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळुं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमुं त्रिनवत्यादि चतुःस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि—परिहारविशुद्धि बं ४। उ १। स ४। बं २८। २९। ३०। ३१। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ सूक्ष्मे सूक्ष्मसांपरायसंयमदोळ् एको बंधः एकप्रकृतिये बंधमक्कुं। उदयस्थानमुं मनःपर्य्ययज्ञानदोळ् पेळ्द त्रिंशदुदयस्थानमुं त्रिनवत्यादिचतुःसत्त्वस्थानंगळ् मशीत्यादिचतुःस्थानंगळुं सत्त्वमप्पुवु। संदृष्टि—सूक्ष्मसांपरायसंयम बं १। उ १। स ८। बं १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०।८०। ७९। ७८।७७॥

जहखादे बंधतियं केवलयं वा तिणउदिचउ अत्थि।
देसे अडवीसदुगं तीसदु तेणउदिचारि बंधतियं ॥७२८॥

यथाख्याते बंधत्रयं केवलवत् त्रिनवतिचत्वारि संति। देशसंयमेऽष्टाविंशतिद्वयं त्रिंशद्वयं त्रिनवतिचत्वारि बंधत्रिकं॥

यथाख्यातसंयमदोळ् बंधोदयसत्त्वंगळ् केवलज्ञानदोळु पेळ्दुवेयप्पुवादोडं त्रिनवत्यादिचतुःस्थानंगळुं सत्त्वमप्पुवु। संदृष्टि :—यथाख्यातसंयम बं। उ १०। स १०। बं ०। उ २०। २१। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ९। ८। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७। १०। ९॥ देशसंयमे देशसंयमदोळ् अष्टाविंशतिद्वयमुं त्रिंशद्वितयमुं त्रिनवतिचतुष्टयमुं बंधादित्रितयमक्कुं। संदृष्टि—देशसंयत बं २। उ २। स ४। बं २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०॥

अविरमणे बंधुदया कुमदिं व तिणउदिसत्तयं सत्तं।
पुरिसं वा चक्खिदरे अत्थि अचक्खुम्मि चउवीसं ॥७२९॥

अविरमणे बंधोदयाः कुमतिवत् त्रिनवतिसप्तकं सत्त्वं। पुरुषवच्चक्षुरितरयोरस्त्यचक्षुषि चतुर्विंशतिः॥

परिहारविशुद्धौ बन्धादित्रयं क्रमेणाष्टाविंशतिकादिचतुष्कं त्रिंशत्कं त्रिनवतिकादिचतुष्कं, सूक्ष्मसांपराये बन्ध एककं। उदयांशौ मनःपर्ययवत् ॥७२७॥

यथाख्याते बन्धोदयसत्त्वानि केवलज्ञानवदपि सत्त्वं त्रिनवतिकादिचतुष्कमप्यस्ति। देशसंयते बन्धादित्रयं अष्टाविंशतिकादिद्वयं त्रिंशत्कादिद्वयं त्रिनवतिकादिचतुष्कं ॥७२८॥

परिहारविशुद्धिमें बन्ध उदय सत्त्व क्रमसे अठाईस आदि चारका बन्ध, तीसका उदय और तिरानबे आदि चारका सत्त्व है। सूक्ष्मसाम्परायमें बन्ध एकका है। उदय सत्त्व मनःपर्ययज्ञानकी तरह हैं ॥७२७॥

यथाख्यातमें यद्यपि बन्ध उदय सत्त्व केवलज्ञानकी तरह हैं किन्तु तिरानबे आदि चारका भी सत्त्व है। देशसंयतमें अठाईस आदि दोका बन्ध, तीस आदि दोका उदय और तिरानबे आदि चारका सत्त्व है ॥७२८॥

असंयमदोळु बंधस्थानंगळुमुदयस्थानंगळु कुमतिज्ञानदोळु पेळ्दे त्रयोविंशत्यादिषट् स्थानंगळुमेकविंशत्याद्यष्टस्थानंगळु चतुर्व्विंशतिस्थानमुमुंटु। सत्त्वस्थानंगळु त्रिनवत्यादिस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि—असंयमदोळु बं ६। उ ९। स ७। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२॥ दर्शनमार्गणेयोळु त्रिसंयोगं पेळल्पडुगुमल्लि चक्षुरितरयोः चक्षुःदर्शनदोळमचक्षुर्दर्शनदोळं बंधोदयसत्त्वंगळु पेळल्पडुगुमल्लि पुंवेददोळु पेळ्दंते बंधोदयसत्त्वस्थानंगळप्पुवादोडं अचक्षुर्दर्शनदोळु चतुर्व्विंशतिप्रकृतिस्थानोदयमुमुंटु। संदृष्टि :—चक्षुर्दर्शन बं ८। उ ८। स ११। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ८०। ७९। ७८। ७७॥ अचक्षुर्दर्शन बं ८। उ ९। स ११। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ८०। ७९। ७८। ७७॥

ओहिदुगे बंधतियं तण्णाणं वा किलिट्ठलेस्सतिये।
अविरमणं वा सुहजुगलुदओ पुंवेदयं व हवे ॥७३०॥

अवधिद्विके बंधत्रयस्तदज्ञानवत् क्लिष्टलेश्यात्रिके। अविरमणवत् शुभयुगळोदयः पुंवेदवद्भवेत् ॥

अडवीसचऊबंधा पणछब्बीसं च अत्थि तेउम्मि।
पढमचउक्कं सत्तं सुक्के ओहिंव वीसयं चुदओ ॥७३१॥

अष्टाविंशति चतुर्बंधाः पंच षट्विंशतिश्चास्ति तेजसि। प्रथमचतुष्कं सत्त्वं शुक्लेऽवधिवद्विंशतिश्चोदयः ॥

अवधिद्विके अवधिदर्शनदोळं केवलदर्शनदोळं बंधत्रिकं बंधोदयसत्त्वंगळु तद्ज्ञानवत् तंतम्म ज्ञानमार्गणेयोळु पेळ्दष्टाविंशत्यादि पंचबंधस्थानंगळु अबंधमुं एकविंशतिपंचविंशत्याद्यष्टोदयस्थानंगळुं विंशत्येकविंशतिषड्विंशत्यादिदशोदयस्थानंगळुं त्रिनवतिचतुष्कमुमशीतिचतुष्कमुमंतेंदु सत्त्वस्थानंगळ् मशीत्यादि षट्स्थानंगळुं सत्त्वमप्पुवु। संदृष्टि—अवधिदर्शन बं ५।

असंयमे बन्धोदयस्थानानि कुमतिज्ञानवत्। सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि सप्त। दर्शनमार्गणायां चक्षुरचक्षुषोर्बंधोदयसत्त्वानि पुंवेदवदप्यचक्षुर्दर्शने चतुर्विंशतिकमप्युदयोऽस्ति ॥७२९॥

अवधिकेवलदर्शनयोर्बंधोदयसत्त्वानि तज्ज्ञानवत्। लेश्यामार्गणायां कृष्णादित्रये बन्धोदयसत्त्वस्थानान्य-

---

असंयतमें बन्ध और उदयस्थान कुमतिज्ञानकी तरह हैं। सत्त्वस्थान तिरानबे आदि सात हैं। दर्शनमार्गणामें चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शनमें बन्ध उदय सत्त्व पुरुषवेदकी तरह है किन्तु अचक्षुदर्शनमें चौबीसका भी उदयस्थान है ॥७२९॥

अवधिदर्शन केवलदर्शनमें बन्ध उदय सत्त्व अवधिज्ञान और केवलज्ञानकी तरह हैं। लेश्यामार्गणामें कृष्ण आदि तीनमें बन्ध उदय सत्त्व असंयतकी तरह हैं। तेज और पद्म-

उ ८। स ८। बं २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७। केवलदर्शन बं। ०। उ १०। स ६। बं। ०। उ २०। २१। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ९। ८॥ स ८०। ७९। ७८। ७७। १०। ९॥ क्लिष्टलेश्यात्रिके कृष्णनीलकपोतलेश्येगळोळसंयमदोळु पेळ्द त्रयोविंशत्यादिषड्बंधस्थानंगळु-मेकविंशत्यादिनवोदयस्थानंगळुं त्रिनवत्यादिसप्तस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि :—कृ। नी। क। बं ६। उ ९। स ७। बं। २३। २५। २६। २८। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२॥ शुभयुगळोदयः पुंवेदवद्भवेत्। तेजोलेश्येयोळं पद्मलेश्येयोळमुदयस्थानंगळु पुंवेददोळु पेळ्द एकविंशति पंचविंशत्यादि अष्टोदय-स्थानंगळप्पुवु।

बंधसत्त्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

अडवोसचऊबंधा यित्यादिबंधस्थानंगळुमष्टाविंशत्यादि चतुःस्थानंगळु पद्मलेश्येयोळु बंध-मप्पुवु। तेजोलेश्येयोळु पंचविंशतिषड्विंशतियुमंतु षड्बंधस्थानंगळुं प्रथमचतुष्कमेयुभयदोळु सत्त्वमक्कुं। संदृष्टि :—तेजोलेश्ये बं ६। उ ८। स ४। बं २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ पद्मलेश्ये बं ४। उ ८। स ४। बं २८। २९। ३०। ३१। उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ शुक्ललेश्येयोळु अवधिज्ञानदोळु पेळ्द बंधोदयसत्त्वस्थानंगळप्पुवु। विंशतिश्चोदयः विंशत्युदयस्थानमुमुंटु। संदृष्टि—शुक्ललेश्ये बं ५। उ ९। स ८। बं २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २०। २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७॥

भव्वे सव्वमभव्वे बंधुदया अविरदिव्व सत्तं तु।
णउदिचउ हारबंधणदुगहीणं सुदमिदुवसमे बंधो ॥७३२॥

भव्ये सर्व्वमभव्ये बंधोदया अविरतिवत् सत्त्वं तु। नवतिचतुराहारबंधनद्विकहीनं श्रुत-मिवोपशमे बंधः॥

संयमवत्। तेजःपद्मोदयस्थानानि पुंवेदवत्, बन्धस्थानानि पद्मायामष्टाविंशतिकादीनि चत्वारि। तैजस्यां तानि च पंचविंशतिकषड्विंशतिके च। उभयत्र सत्त्वं प्रथमं चतुष्कं स्यात्। शुक्लायां बन्धोदयसत्त्वान्यवधिवद्विंश-तिकोदयश्च ॥७३०॥७३१॥

लेश्यामें उदयस्थान पुरुषवेदके समान हैं। बन्धस्थान पद्मलेश्यामें अठाईसका आदि चार हैं। तेजोलेश्यामें बन्धस्थान अठाईस आदि चार तथा पचीस-छब्बीसके इस प्रकार छह हैं। दोनोंमें सत्त्वस्थान प्रथम चार हैं। शुक्ललेश्यामें बन्ध उदय सत्त्व अवधिज्ञानकी तरह है, किन्तु बीसका भी उदय है ॥७३०-३१॥

भव्यमार्गणेयोळु सर्व्वबंधस्थानंगळुं सर्व्वोदयस्थानंगळुं सर्व्वसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि :—भव्य बं ८। उ १२। स १३। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १। उ २०। २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ९। ८। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ८०। ७९। ७८। ७७। १०। ९॥

अभव्यमार्गणेयोळु बंधोदयस्थानंगळविरतियोळ् पेळ्द त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळुमेकविंशत्यादिनवोदयस्थानंगळुमप्पुवु। तु मत्ते सत्त्वं सत्त्वस्थानंगळु नवत्यादि चतुःस्थानंगळप्पुवु। बंधदोळु आहारद्वययुतत्रिंशत्प्रकृतिबंधभेदमिल्लुद्योतयुतत्रिंशत्प्रकृतिस्थानमे संभविसुगुमेंबुदर्त्थं॥ संदृष्टि—

अभव्य बं ६। उ ९। स ४। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ स ९०। ८८। ८४। ८२॥ श्रुतमिवोपशमे बंधः उपशमसम्यक्त्वदोळु बंधस्थानंगळु श्रुतज्ञानदोळ्पेळ्दष्टाविंशत्यादिपंचस्थानंगळप्पुवु॥ उदयसत्त्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

उदया इगिपणवीसं णववीसतियं च पढमचउसत्तं।
उवसम इव बंधंसा वेदगसम्मे ण इगिबंधो॥ ७३३॥

उदयाः एकपंचविंशतिर्न्नवविंशतित्रिकं प्रथमचतुःसत्त्वमुपशमवद्बंधांशाः वेदकसम्यक्त्वेकबंधः॥

आ उपशमसम्यक्त्वदोळुदयस्थानंगळेकविंशतियुं पंचविंशतियुं नवविंशतित्रितयमुमक्कुं। सत्त्वस्थानंगळु त्रिनवत्यादिचतुःस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि—उपशमसम्यक्त्व बं ५। उ ५। स ४। बं २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २१। २५। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ वेदकसम्यक्त्वे वेदकसम्यक्त्वदोळु उपशमवद्बंधांशाः उपशमसम्यक्त्वदोळु पेळ्द अष्टाविंशत्यादि पंचबंधस्थानंगळप्पुवु। अवरोळेक प्रकृतिबंधस्थानमिल्ल। शेषचतुर्ब्बंधस्थानंगळप्पुवु। त्रिनवत्यादिचतुःसत्त्वस्थानंगळप्पुवु॥ उदयस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

भव्यमार्गणायां बन्धोदयसत्त्वस्थानानि सर्वाणि। अभव्यमार्गणायां बन्धोदयस्थानान्यविरत्युक्तानि। तु—पुनः सत्त्वस्थानानि नवतिकादीनि चत्वारि। बन्धे नाहारद्वययुतं, त्रिंशत्कमुद्योतयुतमेव स्यादित्यर्थः। सम्यक्त्वमार्गणायां उपशमे बन्धस्थानानि श्रुतज्ञानवत्॥७३२॥

उदयस्थानान्येकपंचाग्रविंशतिके द्वे नवविंशतिकादित्रयं च। सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वारि,

---

भव्यमार्गणामें बन्ध उदय सत्त्वस्थान सब ही हैं। अभव्य मार्गणामें बन्ध और उदयस्थान तो असंयतकी तरह हैं सत्त्वस्थान नव्वे आदि चार हैं। बन्धमें आहारकद्विक सहित तीसका बन्ध नहीं है, उद्योत सहित तीसका बन्ध है इतना विशेष है। सम्यक्त्वमार्गणामें उपशम सम्यक्त्वमें बन्धस्थान श्रुतज्ञानवत् हैं॥७३२॥

उदयस्थान इक्कीस, पच्चीस ये दो और उनतीस आदि तीन हैं। सत्त्वस्थान तिरानवे आदि चार हैं। वेदक सम्यक्त्वमें बन्ध और सत्त्व तो उपशम सम्यक्त्वके समान हैं किन्तु

उदया मदिव्व खयिये बं ादी सुदमिवत्थि चरिमदुगं ।
उदयंसे वीसं च य साणे अडवीसतियबंधो ॥७३४॥

उदयाः मतिवत् क्षायिके बंधोदयश्रुतमिवास्ति चरमद्वयमुदयांशे विंशतिश्च च सासादनेऽष्टाविंशतित्रितयबंधः ॥

उदयाः आ वेदकसम्यक्त्वदोळुदयस्थानंगळु मतिवत् मतिज्ञानदोळु पेळ्देकविंशत्याष्टस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि—वेदकसम्यक्त्व बं ४ । उ ८ । स ४ । बं २८ । २९ । ३० । ३१ । उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ क्षायिकसम्यक्त्वदोळु बंधोदयांशंगळु श्रुतमिव श्रुतज्ञानदोळ्पेळ्दें तंते अष्टाविंशत्यादि पंचबंधस्थानंगळुमेकविंशत्याद्यष्टोदयस्थानंगळं त्रिनवत्यशीत्याद्यष्टसत्वस्थानंगळुमप्पुवल्लि । उदयांशे उदयदोळं सत्वदोळं तंतम्म चरमद्वित्थानंगळुमुंटु । उदयदोळु विंशतिस्थानमुमुंटु । संदृष्टि—क्षायिकसम्यक्त्व बं ५ । उ ११ । स १० । बं २८ । २९ । ३० । ३१ । १ ॥ उ २० । २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ ॥ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥ सासादने सासादनरुचियोळु अष्टाविंशत्यादित्रिस्थानबंधमक्कुं ॥

उदयसत्वंगळं पेळ्दपरु :—

उदया इगिवीसचऊ णववीसतियं च णउदियं सत्तं ।
मिस्से अडवीसदुगं णववीसतियं च बंधुदया ॥७३५॥

उदयाः एकविंशति चत्वारि नवविंशतित्रिकं च नवतिकं सत्वं । मिश्रेऽष्टाविंशतिद्विकं नवविंशतित्रितयं च बंधोदयाः ॥

उदयाः आ सासादनरुचियोळुदयस्थानंगळुमेकविंशत्यादि चतुःस्थानंगळुं नवविंशत्यादित्रितयमुमंतु सप्तोदयस्थानंगळप्पुवु । सत्वं नवतिकमक्कुं । संदृष्टि—सासादन बं ३ । उ ७ । स १ ।

वेदके बन्धांशवदुपशमसम्यक्त्ववदप्येकबन्धो नास्ति ॥७३३॥

उदयस्थानानि मतिज्ञानवदष्टौ । क्षायिके बन्धोदयांशाः श्रुतज्ञानमिव पंचाष्टाष्टौ । पुनः उदयसत्त्वयोः स्वस्वचरमस्थानद्वयं उदये विंशतिकमप्यस्ति । सासादनरुचौ बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि त्रीणि ॥७३४॥

उदयस्थानान्येकविंशतिकादिचतुष्कं नवविंशतिकादित्रयं च । अत्र सप्ताष्टाग्रविंशतिके तु अनयोरुदय-

---

एकका बन्धस्थान नहीं है ॥७३३॥

उदयस्थान मतिज्ञानकी तरह आठ हैं। क्षायिकमें बन्ध उदय सत्त्व श्रुतज्ञानकी तरह पाँच, आठ, आठ हैं। इतना विशेष है कि उदय और सत्त्वमें अपने-अपने अन्तके दो स्थान भी होते हैं तथा उदयमें बीसका भी स्थान होता है। सासादन सम्यक्त्वमें बन्धस्थान अठाईस आदि तीन हैं ॥७३४॥

उदयस्थान इक्कीस आदि चार और उनतीस आदि तीन हैं। यहाँ सत्ताईस-अठाईस

---

१. म °दोळेंतंते ।

बं २८। २९। ३०। उ। २१। २४। २५। २६। २९। ३०। ३१ ॥ इल्लि सप्तविंशतिस्थानमुमष्टाविंशतिस्थानोदयपर्य्यंतं सासादनगुणावस्थानमिल्लप्पुदरिंदमवकक्कसंभवमक्कुं। स ९० ॥ मिश्रे मिश्ररुचियोळु बंधस्थानंगळु मुदयस्थानंगळु क्रमदिंदमष्टाविंशत्यादि द्वित्थानंगळुं नवविंशत्यादित्रितयमुमक्कुं ॥ सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

बाणउदिणउदिसत्तं मिच्छे कुमदिव्व होदि बंधतियं ।
पुरिसं वा सण्णीये इदरे कुमदिव्व णत्थि इगिणउदि ॥७३६॥

द्वानवति नवतिसत्त्वं मिथ्यारुचौ कुमतिवद्भवति बंधत्रिकं। पुंवेदवत्संज्ञिनीतरस्मिन्कुमतिवन्नास्त्येकनवतिः ॥

द्वानवति नवतिसत्वं आ मिश्ररुचियोळु द्वानवतियुं नवतियुं सत्वमक्कुं। संदृष्टि—मिश्ररुचि बं २। उ ३। स २। बं २८। २९॥ उ २९। ३०। ३१ ॥ स ९२। ९० ॥ मिथ्यारुचौ मिथ्यारुचियोळु कुमतिज्ञानदोळु पेळ्द त्रयोविंशत्यादि षड्बंधस्थानंगळु मेकविंशत्यादि नवोदयस्थानंगळुं द्वानवत्यादिषट्सत्वस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि—मिथ्यारुचि बं ६। उ ९। स ६। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२॥ पुंवेदवत्संज्ञिनि संज्ञियोळु पुंवेददोळपेळ्द त्रयोविंशत्याद्यष्टबंधस्थानंगळुमेकविंशत्याद्यष्टोदयस्थानंगळुं त्रिनवत्याद्येकादश सत्वस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि—संज्ञि बं ८। उ ८। स ११। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१॥ १। उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१ ॥ स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ८०। ७९। ७८। ७७ ॥ इतरस्मिन् असंज्ञियोळ् कुमतिवन्नास्त्येकनवतिः कुमतिज्ञानदोळु पेळ्द त्रयोविंशत्यादि षड्बंधस्थानंगळुमेकविंशत्यादि नवोदयस्थानंगळुमेकनवतिसत्वस्थानरहित द्वानवत्यादिपंचसत्वस्थानंगळप्पुवु। संदृष्टि :—

कालगमनपर्यन्तं सासादनत्वासंभवान्नोक्ते। सत्त्वं नवतिकमेव। मिश्ररुचौ बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादिद्वयं। उदयस्थानानि नवविंशतिकादित्रयं ॥७३५॥

सत्त्वं द्वानवतिकनवतिके द्वे। मिथ्यारुचौ बन्धोदयसत्त्वस्थानानि कुमतिवत्। संज्ञिनि पुंवेदवत्। असंज्ञिनि कुमतिवत् किन्तु नास्त्येकनवतिकसत्त्वं ॥७३६॥

न कहनेका कारण यह है कि इनके उदयमें आनेके काल तक सासादनपना सम्भव नहीं है। सत्त्व नब्बेका है। मिश्ररुचिमें बन्धस्थान अठाईस आदि दो हैं। उदयस्थान उनतीस आदि तीन हैं ॥७३५॥

सत्त्वस्थान बानबे और नब्बेके दो हैं। मिथ्यारुचिमें बन्ध उदय सत्त्वस्थान कुमतिज्ञानकी तरह हैं। संज्ञीमार्गणामें बन्ध उदय सत्त्व पुरुषवेदके समान हैं। असंज्ञीमें कुमतिज्ञानकी तरह हैं। किन्तु इक्यानबेका सत्त्व नहीं है ॥७३६॥

असंज्ञि बं ६। उ ९। स ५। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। उ २१। २४। २५।२६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स। ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥

आहारमार्गणेयोळ् त्रिसंयोगमं पेळ्दपरु :—

आहारे बंधुदया संढं वा णवरि णत्थि इगिवीसं ।
पुरिसं वा कम्मंसा इदरे कम्मंव बंधतियं ॥७३७॥

आहारे बंधोदयाः षंडवन्नवीनमस्ति नास्त्येकविंशतिः। पुंवेदवत्कर्म्मांशाः इतरस्मिन्कार्म्मणवद् बंधत्रयं ॥

आहारे आहारमार्गणेयोळ् बंधस्थानंगळुमुदयस्थानंगळुं षंडवेददोळु पेळ्द त्रयोविंशत्याद्यष्टबंधस्थानंगळुमेकविंशतिस्थानरहितमादमष्टोदयस्थानंगळुमप्पुवु । सत्वस्थानंगळु पुंवेददोळु पेळ्द त्रिनवत्याद्येकादशसत्वस्थानंगळुमप्पुवु। संदृष्टि—आहार बं ८। उ ८। स ११। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। १॥ उ २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ८०। ७९। ७८। ७७॥ इतरस्मिन् अनाहारमार्गणेयोळु कार्म्मणकाययोगदोळु पेळ्द त्रयोविंशत्यादि षट्स्थानंगळुं विंशत्येकविंशत्युदयस्थानद्वयमुं त्रिनवत्याद्येकादशसत्त्वस्थानंगळुं मत्तं—

अत्थि णवट्ठपदुदओ दस णवसत्तं च विज्जदे एत्थ ।
इदि बंधुदयप्पहुडी सुदणामे सारमादेसे ॥७३८॥

अस्ति नवाष्टपदोदयो दश नवसत्त्वं च विद्यते अत्र । इति बंधोदयप्रभृतिर्विश्रुतनाम्नि सारमादेशे ॥

अनाहारकत्वमयोगिकेवलियोळमुंटप्पुदरिंदं तदुदयनवाष्टस्थानद्वयमुं दशनवसत्त्वस्थानद्वयमुमिल्लियुंदु। इंतु बंधोदयसत्त्वत्रिसंयोगं विश्रुतनामकर्म्मदोळ आदेशे आदेशदोळु मार्गणेयोळु

आहारमार्गणायां बन्धोदयस्थानानि षंढवत् किन्तु एकविंशतिकमुदयस्थानं नास्ति सत्त्वस्थानानि पुंवत्, अनाहारे कार्मणयोगवत् ॥७३७॥ पुनः—

तत्रानाहारे अयोगिन उदयो नवाष्टके द्वे स्तः। सत्त्वं दशकनवके द्वे विद्येते। एवं बन्धोदयसत्त्वत्रिसंयोगो विश्रुते नामकर्मणि मार्गणायां सार उक्तः ॥७३८॥

चारुसम्यग्दर्शनधरणे कुवलयसंतोषणे च समर्थेन माधवचन्द्रेण महावीरेण परमार्थतो विस्तरितः

आहार मार्गणामें बन्ध और उदयस्थान नपुंसकवेदके समान हैं किन्तु इक्कीसका उदयस्थान नहीं है। सत्त्वस्थान पुरुषवेदके समान हैं। अनाहारमें बन्ध उदय सत्त्व कार्मणकाययोगकी तरह है ॥७३७॥

किन्तु अनाहारमें अयोगीके उदय नौ और आठका है तथा सत्त्व दस और नौका है। इस प्रकार प्रसिद्ध नामकर्ममें चौदह मार्गणामें बन्ध उदय सत्त्वका त्रिसंयोग साररूपमें कहा ॥७३८॥

उत्कृष्ट सम्यग्दर्शनको धारण करनेमें और पृथ्वीमण्डलको आनन्द देनेमें समर्थ

सारमावुदु कथितमावुदु । संदृष्टि :—अनाहार बं ६ । उ ४ । स १३ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २० । २१ । ९ । ८ ॥ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥

चारुसुदस्सणधरणे कुवलयसंतोसणे समत्थेण ।
माधवचंदेण महावीरेणत्थेण वित्थरिदो ॥७३९॥

चारुसुदर्शनधरणे कुवलयसंतोषणे समर्त्थेन । माधवचंद्रेण महावीरेणार्त्थेन विस्तरितः ॥

चारु सम्यग्दर्शनधरणदोळं कुवलयसंतोषणदोळं समर्त्थनप्प माधवचंद्रदिंदं महावीरनिंदं परमार्त्थंदिंदं विस्तरिसल्पट्टुदु ।

अनंतरं नामस्थानत्रिसंयोगमनेकाधिकरणद्वयाधेयरूपदिंदं पेळ्दळि मोदलोळु बंधस्थानमनाधारमं माडि उदयसत्त्वस्थानंगळनाधेयंगळं माडि गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

णवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णुवीसछव्वीसे ।
अट्ठचदुरट्ठ वीसे णवसत्तुगु तीस तीसम्मि ॥७४०॥

नवपंचोदयसत्त्वानि त्रयोविंशतौ पंचविंशतौ षड्विंशतौ अष्टचतुरष्टविंशतौ नवसप्तैकान्नत्रिंशत्त्रिंशत्सु ॥

एगेगं इगितीसे एगे एगुदयमट्ठसत्ताणि ।
उवरदबंधे दस दस उदयंसा होंति णियमेण ॥७४१॥

एकैकमेकत्रिंशत्सु एकस्मिन्नेकोदयोऽष्टसत्त्वानि । उपरतबंधे दशदशोदयांशा भवंति नियमेन ॥

त्रयोविंशतिपंचविंशति षड्विंशतिस्थानैकबंधाधिकरणदोळु प्रत्येकमुदयस्थानंगळु सत्त्वस्थानंगळु नवस्थानंगळुं पंचस्थानंगळुमप्पुवु । अष्टविंशतिबंधस्थानाधिकरणदोळुदयस्थानंगळुं सत्त्वस्थानंगळुमष्टचतुःस्थानंगळप्पुवु । एकान्नत्रिंशत्त्रिंशद्बंधाधिकरणंगळ्गेदोळु प्रत्येकमुदयसत्त्व-

॥७३९॥ अथोक्तत्रिसंयोगस्यैकाधिकरणो द्वयाधेयं ब्रुवन्स्तावद्बन्धाधारे उदयसत्त्वाधेयं गाथाद्वयेनाह—

त्रिपंचषडग्रविंशतिकेषूदयस्थानानि नव । सत्त्वस्थानानि पंच । अष्टाविंशतिके उदयस्थानान्यष्टौ । सत्त्वस्थानानि चत्वारि । एकान्नत्रिंशत्के त्रिंशत्के चोदयस्थानानि नव । सत्त्वस्थानानि सप्त । एकत्रिंशत्के

माधवचन्द्र और महावीरने परमार्थसे विस्तार किया ॥७३९॥

विशेषार्थ—माधवचन्द्र तो नेमिनाथ तीर्थंकर और महावीर वर्धमान तीर्थंकरका नाम जानना । तथा माधवचन्द्र नेमिचन्द्राचार्यके शिष्य और सहयोगी थे । पं. टोडरमलजीने महावीरसे वीरनन्दि आचार्यका ग्रहण किया है जो नेमिचन्दजीके गुरुजनोंमें थे । इन दोनोंका पूर्ण सहयोग इस ग्रन्थकी रचनामें था ।

ऊपर कहे इस त्रिसंयोगमें एकको आधार और दोको आधेय बनाकर कथन करते हुए प्रथम बन्धको आधार और उदय सत्त्वको आधेय करके दो गाथाओंसे कहते हैं—

तेईस, पच्चीस, छब्बीसके बन्धस्थानमें उदयस्थान नौ और सत्त्वस्थान पाँच हैं । अठाईसके बन्धस्थानमें उदयस्थान आठ और सत्त्वस्थान चार हैं । उनतीस और तीसके

स्थानंगळु नवसप्तप्रमितंगळप्पुवु । एकत्रिंशद्बंधाधिकरणदोळु एकैकमुदयसत्त्वस्थानंगळप्पुवु । एकप्रकृतिबंधाधिकरणदोळु दयसत्त्वंगळुमेकाष्टस्थानंगळप्पुवु । उपरतबंधाधिकरणदोळु दशदशोदय-सत्त्वस्थानंगळप्पुवु नियमदिंदं । संदृष्टि :—

बं	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	०
उ	९	९	९	८	९	९	१	१	१०
स	५	५	५	४	७	७	१	८	८

अनंतरमुक्तोदयसत्त्वसंख्याविषयस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

तियपण छवीसबंधे इगिवीसा देक्कतीस चरिमुदया ।
बाणउदीणउदिचऊ सत्तं अडवीसगे उदया ॥७४२॥

त्रिपंचषड्विंशतिबंधे एकविंशतिरेकत्रिंशच्चरमोदयः । द्वानवतिन्नंवतिचतुःसत्त्वं अष्टा-विंशता उदयाः ॥

त्रिपंचषड्विंशतिबंधाधिकरणदोळु पेळ्द नवोदयस्थानंगळे कविंशति मोदलागि एकत्रिंशत्-प्रकृतिस्थानं चरमोदयस्थानमक्कुं । द्वानवतियुं नवत्यादिचतुःस्थानंगळुमप्पुवु ।

अष्टाविंशतिबंधाधिकरणदोळुदयंगळु पेळल्पडुगुं :—

पुव्वंव ण चउवीसं बाणउदिचउक्कसत्तमुगुतीसे ।
तीसे पुव्वं उदया पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४३॥

पूर्व्ववन्न चतुर्विंशतिद्वानवतिचतुष्कसत्त्वमेकान्नत्रिंशत्सु । (त्रिंशत्सु) पूर्व्ववदुदयाः प्रथम-तनसप्तकं सत्त्वं ॥

उदयस्थानमेकं सत्त्वस्थानमेकं । एकके उदयस्थानमेकं सत्त्वस्थानान्यष्टौ । उपरतबन्धे दशदशोदयसत्त्वस्थानानि नियमेन भवन्ति ॥७४०॥७४१॥

त्रिपंचषडग्रविंशतिकबन्धेषूदयस्थानान्येकविंशतिकादीन्येकविंशत्कांतानि नव । सत्त्वस्थानं द्वानवतिकं नवतिकादिचतुष्कं च ॥७४२॥

बन्धस्थानमें उदयस्थान नौ और सत्त्वस्थान सात हैं। इकतीसके बन्धस्थानमें उदयस्थान एक और सत्त्वस्थान एक है। एकके बन्धस्थानमें उदयस्थान एक सत्त्वस्थान आठ हैं। बन्ध-रहित स्थानमें दस उदयस्थान और दस सत्त्वस्थान नियमसे होते हैं। इसका आशय है कि जिस जीवके जिस कालमें इतनी-इतनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उस कालमें उस जीवके किसीके कोई, किसीके कोई, इस तरह नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त उदयस्थान और सत्त्व-स्थान पाये जाते हैं ॥७४०-७४१॥

वे कौन-से हैं ? यह कहते हैं—

तेईस, पच्चीस, छब्बीसके बन्धस्थानोंमें इक्कीससे इकतीस पर्यन्त नौ उदयस्थान हैं। सत्त्वस्थान बानवे और नब्बे आदि चार हैं ॥७४२॥

आ अष्टविंशतिबंधाधिकरणदोळु पूर्व्वोक्तैकविंशत्यादि नवोदयस्थानंगळोळु चतुर्व्विंशतिस्थानमं बिट्टु शेषाष्टस्थानंगळुवयमक्कुमल्लि द्वानवतिचतुःसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु । एकान्नत्रिंशद्बंधदोळं त्रिंशद्बंधदोळं पूर्व्वोक्तैकविंशत्यादिनवोदयस्थानंगळं मोदल त्रिनवत्यादिसप्तसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु ।

इगितीसे तीसुदओ तेणउदी सत्तयं हवे एगे ।
तीसुदओ पढमचऊ सीदादिचउक्कमवि सत्तं ॥७४४॥

एकत्रिंशत्सु त्रिंशदुदयः त्रिनवतिः सत्त्वं भवेत् एकस्मिन् एकत्रिंशदुदयः प्रथमचतुष्कमशीत्यादिचतुष्कमपि सत्त्वं ॥

एकत्रिंशद्बंधस्थानाधिकरणदोळु त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमुं त्रिनवतिसत्त्वस्थानमेकमे सत्त्वमक्कुं । एकप्रकृतिबंधाधिकरणदोळु त्रिंशदेकस्थानोदयमुं प्रथमत्रिनवत्यादिचतुःस्थानंगळुं अशीत्यादिचतुःस्थानंगळं सत्त्वमक्कुं ।

उवरदबंधेसुदया चउपणवीसूण सव्वयं होदि ।
सत्तं पढमचउक्कं सीदादीछक्कमवि होदि ॥७४५॥

उपरतबंधेषूदयाः चतुःपंचविंशत्यून सर्वं भवति । सत्त्वं प्रथमचतुष्कमशीत्यादिषट्कमपि भवति ॥

उपरतबंधाधिकरणदोळुदयस्थानंगळु चतुः पंचविंशतिस्थानद्वयरहितमाद दशोदयस्थानंगळुं त्रिनवत्यादि चतुःस्थानंगळुमशीत्यादि षट्स्थानंगळुं सत्त्वमप्पुवु । संदृष्टि—बं २३ । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । बं २ । ५ । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । बं २६ । उ २१ । २४ ।

अष्टाविंशतिके उदयस्थानानि पूर्ववन्नव न चतुर्विंशतिकं । सत्त्वस्थानानि द्वानवतिकचतुष्कं । एकान्नत्रिंशत्के त्रिंशत्के चोदयस्थानानि तान्येव नव । सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि सप्त ॥७४३॥

एकत्रिंशत्के उदयस्थानं त्रिंशत्कं । सत्त्वस्थानं त्रिनवतिकं । एकके उदयस्थानं त्रिंशत्कं । सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वार्यशीतिकादीनि चत्वारि च ॥७४४॥

७४५ तमाया गाथाया अधोलिखितपाठः अभयचन्द्रनामांकितायां टीकायामधिकः समुपलब्धस्तद्यथा—

अठाईसके बन्धस्थानमें उदयस्थान पूर्ववत् नौ हैं किन्तु उनमें चौबीसका न होनेसे आठ हैं । सत्त्वस्थान बानवे आदि चार हैं । उनतीस और तीसके बन्धस्थानमें उदयस्थान पूर्ववत् नौ हैं और सत्त्वस्थान तिरानबे आदि सात हैं ॥७४३॥

इकतीसके बन्धस्थानमें उदयस्थान तीसका है । सत्त्वस्थान तिरानवेका है । एकके बन्धस्थानमें उदयस्थान तीसका है । और सत्त्वस्थान तिरानबे आदि चार तथा अस्सी आदि चार इस प्रकार आठ हैं ॥७४४॥

बन्धरहितमें उदयस्थान चौबीस-पच्चीसके बिना सब दस हैं । सत्त्वस्थान तिरानबे आदि चार और अस्सी आदि छह इस तरह दस हैं । अब इनको स्पष्ट करते हैं—

२५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ बं २८ । उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९२ । ९१ । ९० । ८८ । बं २९ । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । बं ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । बं १ । उ ३० । स ९३ ॥ बं १ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । बं । ० । उ २० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ९ । ८ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । ० । ९ ॥ इल्लि त्रयोविंशति बंधस्थानैधिकरणदोळु एकविंशत्यादिनवोदयस्थानंगळुं द्वानवतिनवतिचतुष्टयं सत्त्वस्थानंगळुमाधेयमप्प त्रिसंयोगदोळु बं २३ उ ९ स ५ त्रयोविंशतिस्थानबंधस्वामिगळु मिथ्यादृष्टिगळेयप्परें तें दोडा त्रयोविंशतिबंधस्थानमेकेंद्रियापर्याप्तयुतमप्पुदरिंदमा प्रकृतिद्वयक्के मिथ्यादृष्टियोळे बंधव्युच्छित्तियप्पुदरिंदमा त्रयोविंशतिस्थानमं मिथ्यादृष्टिगळे कट्टुवुदु सिद्धमक्कु । मामिथ्यादृष्टिगळुं चतुर्गतिजरुगळरप्परल्लि देवनारकमिथ्यादृष्टिगळु आ त्रयोविंशतिस्थानमं कट्टुवरल्लरवर्गळगे बंधयोग्यस्थानमल्तें तें दो "उवरिम बारससुरचउसुराउआहारयमबंधा" यें दितु नारकरुगळु कट्टुवरल्लरु । "आइसाणोत्ति सत्तवामछिदी" यें दितु भवनत्रितय सौधर्म्मद्वय संभूतरुगळुं कट्टुवरल्लदु कारणमागि त्रसस्थावरमिथ्यादृष्टिगळुं मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळुं पुट्टुवरा त्रयोविंशति स्थानमंकट्टुवागळु नानाजीवापेक्षेयिंदमा नवोदयस्थानंगळुं पंचसत्त्वस्थानंगळुं युगपत्संभविसुववु । एकजीवापेक्षेयिंदमेकेकस्थानंगळागि क्रमदिंदं संभविसुववल्लि एकविंशति-

[उपरतबन्धे चतुर्विंशतिकपंचविंशतिकोनदशोदयस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वार्यशीतिकानि षट् सत्त्वानि । अत्र चाद्ये त्रिसंयोगे बं २३ त्रयोविंशतिकं बन्धस्थानमेकेन्द्रियापर्याप्तयुतं । तत्प्रकृतिद्वयं मिथ्यात्वहेतुकबन्धं तेन उ ९ स ५ मिथ्यादृष्टय एव बध्नंति तेऽपि न देवनारकाः । 'उवरिमवारससुरचउ सुराउ आहारयमबंधा, इति नारकाणां, आ ईसाणोत्तिसत्तवामछिदीति भवनत्रयसौधर्मद्वयजानां च निषेधात् । शेषत्रसस्थावरमनुष्या एव बध्नंतीत्यर्थः । त्रयोविंशतिकबन्धकाले नानाजीवापेक्षया तानि नवोदयस्थानानि पंच सत्त्वस्थानानि च युगपत्संभवंत्येकजीवा-

विशेष—कलकत्तासे प्रकाशित संस्करणमें छपा है कि ७४५वीं गाथाकी अभयचन्द्र नामसे लिखित टीकामें आगेका पाठ अधिक पाया जाता है। हमने उस पाठका मिलान कन्नड टीकासे किया तो उससे भी वह मिल गया। अतः उसका अर्थ यहाँ दिया जाता है जो पं. टोडरमलजीकी टीकामें नहीं है। और ब्रेकेटमें उस टीकाको भी दिया है—

उपरतबन्ध अर्थात् जो नामकर्मके बन्धसे रहित हैं उनमें उदयस्थान चौबीस-पच्चीसके बिना दस हैं। सत्त्वस्थान तिरानवे आदि चार और अस्सी आदि छह हैं। यहाँ प्रथम त्रिसंयोगमें तेईसका बन्धस्थान एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित है। एकेन्द्रिय और अपर्याप्त प्रकृतियोंका बन्ध मिथ्यात्व हेतुक होनेसे मिथ्यादृष्टि ही उनका बन्ध करते हैं। वे भी देव और नारकी नहीं करते क्योंकि आगममें उनके उनका बन्धका निषेध है। अतः शेष त्रस,

स्थानोदयं क्षेत्रविपाकितिर्य्यग्मनुष्यानुपूर्व्योदययुतस्थानमप्पुवरिंदं विग्रहगतियोळल्लदेल्लियुमुदयमिल्ला विग्रहगतियोळु प्रथमसमयदोळु वर्त्तिसुत्तिप्पंनाहारकत्रसस्थावरतिर्य्यग्मनुष्यपर्य्यायकार्य्यक्कुपादानकारणभूतनारकतिर्य्यग्मनुष्यदेवाहारकचरमसमयपर्य्यायमदु द्रव्यार्त्थिकनयदिंदमा चरमसमयदोळुंटु । पर्य्यायार्त्थिकनयदिंदमनंतरसमयदोळेयनाहारकत्रसस्थावरतिर्य्यग्मनुष्यपर्य्यायोत्पत्तिरूपदिंदं क्षयमादुदु । अदुकारणदिंदं कारणक्के प्रध्वंसाभावमुं कार्य्यक्के प्रागभावमुमोडंबडल्पट्टुवंत पेळल्पट्टुदु ॥

कार्य्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात् पृथक् ।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥५८–आ. मी. ।

कार्य्योत्पत्तियें बुदुपादानकारणक्षयमेयक्कुं नियमदिंदमंतादोडा कारणकार्य्यंगळगे पृथग्भावमें तेंदोडे लक्षणदिंदमक्कुं । जातिद्रव्यगुणस्थानदिंदमेकत्वमुंटागुत्तं विरलु तौ न भवतः कारणकार्य्यंगळे बुदिल्लदु कारणदिंदं कारणकार्य्यंगलनपेक्षेयें बुदु गगनकुसुमोपममक्कुं नारकादिनोकर्म्माहारकचरमपर्य्यायक्षयदोळमनाहारकत्रसस्थावरतिर्य्यंग्मनुष्यपर्य्यायदोळं द्रव्यगुणच्युति-

---

पक्षयैककमेव । तत्रैकविंशतिकमुदयस्थानं क्षेत्रविपाकितिर्यग्मनुष्यानुपूर्व्ययुतत्वात् विग्रहगतावेवोदेति । तत्प्रथमसमयवर्त्यनाहारकत्रसस्थावरतिर्यग्मनुष्यपर्यायकार्यस्योपादानकारणभूतो नारकतिर्यग्मनुष्यदेवाहारकचरमसमयपर्यायो द्रव्यार्थिकनयेन तच्चरमसमये स्यात् । पर्यायार्थिकनयेनानंतरसमये स एवानाहारकत्रसस्थावरतिर्यग्मनुष्यपर्यायोत्पत्तिरूपेण क्षीणस्ततः कारणात् कारणस्य प्रध्वंसाभाव एव कार्यस्य प्रागभावः । तथैवोक्तं—

कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात्पृथक् ।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षाः खपुष्पवत् ॥५८॥ आ. मी.

कार्योत्पत्तिः उपादानकारणक्षय एव स्यान्नियमेन । तर्हि तयोः पृथग्भावः कथं स्यात् ? लक्षणात्स्यात् । जातिद्रव्यगुणाद्यवस्थानेनैकत्वे कारणकार्ये न स्यातामिति कारणात्तदनपेक्षा गगनकुसुमोपमा स्यात् । नारका-

---

स्थावर और मनुष्य ही उनको बाँधते हैं। तेईसके बन्ध कालमें भी नाना जीवोंकी अपेक्षा नौ उदयस्थान और पाँच सत्त्वस्थान सम्भव होते हैं। एक जीवकी अपेक्षा तो एक-एक ही होता है। उनमेंसे इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान क्षेत्रविपाकी तिर्यगानुपूर्वी या मनुष्यानुपूर्वी सहित होनेसे विग्रहगतिमें ही होता है। विग्रहगतिके प्रथम समयवर्ती अनाहारक त्रस, स्थावर, तिर्यंच और मनुष्य पर्याय रूप कार्यका उपादानकारणभूत नारक, तिर्यंच, मनुष्य या देव आहारककी चरम समयवर्ती पर्याय है। वह पर्याय द्रव्यार्थिकनयसे उसके चरम समयमें होती है। पर्यायार्थिकनयसे अनन्तर समयमें वही अनाहारक त्रस, स्थावर, तिर्यंच या मनुष्य पर्यायकी उत्पत्ति रूपसे क्षयको प्राप्त हुआ। अतः कारणका प्रध्वंसाभाव ही कार्यका प्रागभाव है। कहा भी है—

'उपादानका पूर्व आकाररूपसे क्षय ही कार्यका उत्पाद है अर्थात् मिट्टीकी पिण्डपर्यायका विनाश घटका उत्पाद है, दोनोंका एक ही कारण है। जो घटकी उत्पत्तिका कारण है वही मिट्टीकी पिण्डपर्यायके विनाशका कारण है। फिर भी लक्षणके भेदसे दोनोंमें भेद है। सामान्यरूपसे दोनों भिन्न नहीं हैं। निरपेक्ष माननेपर उनका सत्त्व नहीं हो सकता।'

यिल्लप्पुदरिंदं जीवं ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मकनक्कुमेंबुदत्थंमल्लि एकजीवक्केकसमयदोळेकवृत्तियप्पुदरिंदमेकसमयवर्त्ति त्रसस्थावरविवक्षिततिर्य्यंग्मनुष्यानाहारकंगा त्रयोविंशतिस्थानबंधमुमेकविंशति-प्रकृतिस्थानोदयमुमप्पुदुं योग्यसत्वस्थानंगळोळु यथायोग्यमोंदु सत्त्वस्थानमक्कुमंते पेळल्पट्टुदु ॥

एकस्यानेकवृत्तिर्न्नं भागाभावाद्बहूनि वा ।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥ आ. मी. ६२ ।

एकस्यानेकवृत्तिन्नं ओंदुजीवक्कनेकवृत्तियिल्लदेकेंदोडे भागाभावात् विभागक्कभाववर्त्तिणिदं बहूनिवा एत्तलानुमेकनिगोदशरीरस्थितानंतानंतजीवंगळ्गं भागित्वात् सुखदुःखानुभवनस्वातंत्र्यलक्षणविभागित्वदर्त्तिणिदमा जीवसमूहक्कमेकत्वमुमिल्ल वृत्तिगं दोषमनार्हतदोळेयक्कुं । सर्व्वथैकांतदोळल्लदे अर्हन्मतदोळिल्लेंबुदत्थं । इल्लि चोदकनेंदपं—जीवक्कस्तिकायत्वं परमागमप्रसिद्धमप्पुदरिंदं प्रदेशप्रचयसद्भावमक्कुमा प्रदेशप्रचयसद्भाववर्त्तिणिदं । एकजीवनोळं भागित्वमक्कुमा-विभागित्वदिंदमनेकवृत्तिसद्भावमक्कुमेंदोडंतल्लेकेंदोडे धर्म्माधर्म्माकाश एकजीवद्रव्यंगळगे अस्तिकायत्वमुंटागुत्तिर्दोडमखंडद्रव्यंगळप्पुदरिंदं विभागिगळल्तेंतेंदोडे अणुवत् अणुविगेंतु विभागित्वमिल्लंते अखंडैकद्रव्यक्के एकवृत्तित्वं सिद्धमक्कुं । अदुकारणमागि अखंडद्रव्यमप्पुदरिंद-

दिनोकर्माहारकचरमपर्यायक्षयेऽनाहारकत्रसस्थावरतिर्यंग्मनुष्यपर्याये च द्रव्यगुणप्रच्युतिर्नेति जीवो ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मक इत्यर्थः । तत्रैकजीवः एकसमये एकवृत्तिः तेनैकसमयवर्तित्रसस्थावरविवक्षिततिर्यंग्मनुष्यानाहारकस्य तत्त्रयोविंशतिकबंधः, एकविंशतिकोदयः, पंचसत्त्वस्थानेषु योग्यैकसत्त्वं च स्यात् तथैवोक्तं—

'एकस्यावेकवृत्तिर्न भागाभावाद्बहूनि वा ।
भागित्वाद्वास्य नैकत्वं दोषो वृत्तेरनार्हते ॥६२॥'

एकजीवस्यानेकवृत्तिर्न स्यात् भागाभावात् । वा पुनः एकनिगोदशरीरस्थितानतानन्तजीवानां सुख-दुःखानुभवनस्वार्तन्त्र्यलक्षणविभागित्वादेकत्वं न स्यात् तद्वृत्तेर्दोषः अनार्हते एव सर्वथैकान्तमते एव नार्हन्मते । ननु जीवस्यास्तिकायत्वं परमागमप्रसिद्धं तेन प्रदेशप्रचयत्वं स्यात् ततश्चैकस्मिन्नपि भागित्वादनेकवृत्तिः स्यादिति तन्न धर्माधर्माकाशैकजीवानां तथात्वेऽप्यखंडद्रव्यत्वेनाणुवदविभागित्वादेकवृत्तित्वसिद्धेः । न च तत

अतः नारक आदि नोकर्म आहारक रूप अन्तिम पर्यायका क्षय होकर अनाहारक त्रसस्थावर रूप तिर्यंचपर्याय या मनुष्यपर्यायके उत्पन्न होनेपर द्रव्यगुणका विनाश नहीं होता। अतः जीव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है। इससे एक समयवर्ती त्रसस्थावररूप तिर्यंच या मनुष्य अनाहारकके विग्रहगतिमें तेईसका बन्ध, इक्कीसका उदय और पाँच सत्त्व-स्थानोंमें यथायोग्य एकका सत्त्व होता है। कहा भी है—एक जीवकी अनेकत्र वृत्ति नहीं होती क्योंकि वह अखण्ड है। यदि एक निगोदशरीरमें स्थित अनन्तानन्त जीवोंका सुख-दुःखके अनुभवनरूप स्वातन्त्र्य लक्षण विभाग होनेसे एकत्व न माना जाये तो यह दोष सर्वथा एकान्त मतमें ही सम्भव है, जैनमतमें नहीं।

शंका—जीव अस्तिकाय है यह परमागममें प्रसिद्ध है। अस्तिकाय होनेसे वह बहु-प्रदेशी हुआ। तब एक जीव अपने अनेक प्रदेशोंमें रहनेसे अनेकवृत्ति हुआ ?

१. म मुंटादोडमं° ।

मणुविनंते अविभागियप्प जीवद्रव्यमणुवेंदु व्यवहरिसल्पडुगुमल्लदे अणुमात्रमल्तेकेंदोडे स्वोपात्तशरीरप्रमितमुं लोकमात्रमप्पुदरिंदं पूर्व्वभवचरमसमयदोळ् वर्त्तिसुत्तिर्द्दैकनिगोदशरीरस्थितानंतानंतजीवंगळगे नोकर्म्माहारं साधारणमादोडं कर्म्माहारं पृथक्-पृथगेयमक्कु मल्लि साधारणैकशरीरदोळ् संस्थितानंतानंतजीवंगळोळ् विवक्षितैकजीवक्के स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षेयिंदं कथंचित्सत्त्वमक्कुमी कथंचिच्छब्दमा विवक्षितजीवक्केये अस्तित्वमुमं तच्छरीरावगाहस्थितशेषानंतानंतजीवपुद्गलधर्म्माधर्माकाशकालद्रव्यंगळगविवक्षितमप्प गौणमुमं पेळ्दुमा स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षेयिंदं कथंचित्सद्रूपमप्प विवक्षितैकजीवमदक्के मत्तं तत्साधारणैकनिगोदशरीरस्थितशेषानंतानंतजीवपुद्गलधर्म्माधर्म्माकाशकालद्रव्यंगळ पररूपादिचतुष्टयापेक्षेयिंदं कथंचिदसत्त्वमक्कुमविवक्षितक्के गौणत्वमुंटप्पुदरिंदमहंगे पेळल्पट्टुदु ।

कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्व्वथा ॥१४॥ आ. मी.

इष्टं विवक्षितमप्प वस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षेयिंदं कथंचित्सत्त्वमेयक्कुं । तदेव वस्तु परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षेयिंदं कथंचिदसत्त्वमेयक्कुं । जिनमतदोळे तथा अहंगे उभयं सदसद्रूपमुं अवाच्यमुं च शब्दविदं सदवक्तव्यमुमसदवक्तव्यमुं सदसदवक्तव्यमुं वस्तु कथंचिदप्पुदु । नय-

---

एवाणुमात्रः स्वोपात्तशरीरप्रमितत्वेऽपि लोकमात्रत्वात् । पूर्वभवचरमसमयवर्तिनामेकनिगोदशरीरस्थानन्तानन्तजीवानां नोकर्माहारस्य साधारण्येऽपि कर्माहारः पृथक् पृथगेव । तेषु जीवेषु विवक्षितैकजीवः स्वद्रव्यादि चतुष्टयापेक्षया कथंचित्सन् । अयं कथंचिच्छब्दो विवक्षितस्यैवास्तित्वं तच्छरीरावगाहस्थशेषानंतानंतजीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालानामविवक्षितानां गौणं कथयति । स एव जीवः पुनस्तच्छेषानंतानंतजीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालानां पररूपादिचतुष्टयापेक्षया कथंचिदसन् अविवक्षितस्य गौणत्वात् । तथा चोक्तं—

कथं चित्तत् सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत् ।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥१४॥

इष्टं विवक्षितं वस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया सत्तदेव परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया असत्स्यात् । जिनमते

समाधान—नहीं, धर्म-अधर्म, आकाश और एक जीवके बहुप्रदेशी होनेपर भी अणुके समान अखण्ड द्रव्य होनेसे विभाग नहीं है अतः वह एकवृत्ति है। किन्तु इससे वह अणुरूप नहीं है यद्यपि वह अपने प्राप्त शरीर प्रमाण है फिर भी लोकमात्र प्रदेशी है। पूर्वभवके चरम समयवर्ती एक निगोद शरीरमें स्थित अनन्त जीवोंका नोकर्मरूप आहार समान होनेपर भी कर्मरूप आहार भिन्न-भिन्न है। उन जीवोंमेंसे विवक्षित एक जीव स्व-द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा कथंचित् सत् है। यह कथंचित् शब्द विवक्षित जीवका ही अस्तित्व कहता है और उस शरीरकी अवगाहनामें स्थित शेष अनन्त जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, काल जिनकी विवक्षा नहीं है उनको गौणता देता है। वही जीव शेष अनन्त जीव पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश, कालकी पररूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा कथंचित् असत् है। जिसकी विवक्षा नहीं होती वह गौण होता है। कहा भी है—

इष्ट अर्थात् विवक्षित वस्तु स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा सत् ही है और वही परद्रव्यादि

विषयमेकांतमादोडल्लियुं कथंचिदप्पुदु । नयविषयमप्पेकांतमुं कथंचिदल्लदोडवक्कनेकांतत्याग-मक्कुमनेकांतत्यागमागुत्तं विरलु तदेकांतमनन्यमेयक्कुं । सर्व्वथैकांतमेयक्कुमेंबुदर्थं । मत्तक्का धर्म्ममल्लदे परिणामांतराभावमक्कुमप्पुदरिंदमवस्तुमक्कुमप्पुदरिंदं ई कथंचिच्छब्दमुं स्याच्छ-ब्दार्थप्रतिपादनमक्कुमंते पेळल्पट्टुदु ।

कथंचित्केनचित्कश्चित्कुतश्चित्कस्यचित् क्वचित् ।
कदाचिच्चेति पर्य्यायाः स्यादर्थं प्रतिपादकाः ॥

येंदितोविनितुं शब्दपर्य्यायंगळ् स्यादर्थंप्रतिपादकंगळेयप्पुवेंदितु । यितु सदसद्रूपंगळागि-पूर्व्वभवचरमसमयदोळ् वर्त्तिसुत्तिर्द्द त्रसस्थावरसंबंधिबद्धतिर्य्यग्मनुष्यायुष्यरुगळप्प साधारण-शरीरमोंदरोळ् संस्थितानंतानंतसाधारणजीवंगळ्गे मरणमागुत्तं विरलुत्तरभवप्रथमसमयदोळ् त्रसस्थावरसंबंधितिर्य्यग्मनुष्यायुष्यं तद्गत्यानुपूर्व्ययुतनामकर्म्मैकविंशतिप्रकृतिस्थानमुदयिसि विग्रहगतियोळ् नोकर्म्मानाहारकरागि साधारणत्वक्कं समवायत्वक्कं कारणभूतसाधारणशरीर-नामकर्म्मोदयमिल्लप्पुदरिंदमा विग्रहगतियोळ् साधारणत्वमुं समवायत्वमुं पिंगि पृथक्-पृथग्रूपंग-ळागि कार्म्मणशरीरोदयदिं कार्म्मणकाययोगदोळ्कूडि कर्म्माहारिगळप्पनंतानंतजीवंगळ् लब्ध्य-

---

एव । तथा सदसत् अवाच्यं चशब्दात्सदवक्तव्यं असदवक्तव्यं सदसदवक्तव्यं च स्यात् । नयविषयैकान्तेऽपि कथंचित् स्यात् । अन्यथा तस्यानेकान्तत्यागे तदेकान्तोऽनन्य एव स्यात् । सर्वथैकान्त एवेत्यर्थः । तस्य तद्धर्माभावे परिणामांतराभावः ततोऽवस्तु स्यात् । तत एवायं कथंचिच्छब्दोऽपि स्याच्छब्दार्थप्रतिपादकः । तथा चोक्तं—

कथंचित्केनचित्किंचित्कश्चित्कस्यचित्क्वचित् ।
कदाचिच्चेति पर्यायाः स्यादर्थप्रतिपादकाः ॥१॥

इति सदसद्रूपपूर्वभवचरमसमयवर्तित्रसस्थावरसंबन्धिबद्धतिर्यंग्मनुष्यायुष्कसाधारणैकशरीरस्थानंतानंत-जीवाः मरणे उत्तरभवप्रथमसमये त्रसस्थावरसंबंधितिर्यंग्मनुष्यायुस्तद्गत्यानुपूर्व्ययुतैकविंशतिकोदया विग्रहगतौ नोकर्मानाहारका भूत्वा साधारणत्वसमवायत्वकारणसाधारणानामनुदयात्तद्द्वयं त्यक्त्वा पृथक् पृथग्भूत्वा

चतुष्टयकी अपेक्षा असत् है । तथा दोनोंकी क्रमशः विवक्षामें कथंचित् सत् कथंचित् असत् है । दोनोंकी युगपत् विवक्षामें अवक्तव्य है । 'च' शब्दसे स्यात् सदवक्तव्य, स्यादसदवक्तव्य और स्यात् सदसदवक्तव्य है । ऐसा कथन नयदृष्टिसे है सर्वथा नहीं है । अन्यथा अनेकान्तका त्याग कर देनेपर सर्वथा एकान्त आ जायेगा । एकान्तरूप वस्तुको माननेपर उसमें परिणमन न होनेसे वह अवस्तु हो जायेगी । इसीसे यह कथंचित् शब्द स्यात् शब्दके अर्थका प्रतिपादक है । कहा है—'कथंचित्, केनचित्, किंचित्, कश्चित्, कस्यचित्, क्वचित्, और कदाचित् ये पर्याय शब्द स्यात् अर्थके प्रतिपादक हैं ।'

इस प्रकार सत्-असत्रूप पूर्वभवके चरमसमयवर्ती त्रस स्थावर सम्बन्धी तिर्यंचायु या मनुष्यायुका जिनने बन्ध किया है वे साधारण शरीरमें स्थित अनन्तानन्त जीव मरनेपर उत्तरभवके प्रथम समयमें, जिनके त्रसस्थावर सम्बन्धी तिर्यंचायु या मनुष्यायु और तद्गति-सम्बन्धी आनुपूर्वीसे युक्त इक्कीस प्रकृतियोंका उदय होता है, वे विग्रहगतिमें नोकर्म अनाहारक होकर साधारणत्वके साथ समवायत्वके कारण साधारण नामका उदय न होनेसे

पर्य्याप्तपर्य्यायसहकारिकारणत्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळा जीवंगळोळु यथायोग्यपंचसत्वस्थानंगळोळेकैकसत्वस्थानयुतरागिप्पुवु । पेळल्पट्टुदु :—

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः ।
अंतरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः ॥ —६५ आ. मी. ।

सामान्यमुं समवायमुमो दो दरोळु समाप्तियप्पुदरिंदं सामान्यसमवायंगळगनंतरमक्कुमदरिंदं साधारणरूपदिंदं समवायरूपदिनिर्द्द नाशोत्पादिद्रव्यंगळोळु को विधिः सामान्यसमवायप्रमाणविषयमावुदु ? अवरोळो दु जीवद्रव्यमुं साधारणत्वक्कं समवायत्वक्कं विषयमल्तें बुदर्त्थं एकें दोडवु विशेषरूपदिंदं पृथग्रूपदिनिर्द्दुपुवप्पुदरिंदं । विधिशब्दमें तु प्रमाणवाचकमक्कुमें दोडे :—

सदेक नित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः ।
सर्व्वथेति प्रदूष्यंति पुष्यंति स्यादितीहते ॥—स्वयंभू स्तो. १०१ श्लो.

सदेकनित्यवक्तव्यंगळुमवर विपक्षंगळु असदनेकानित्यावक्तव्यंगळु नयंगळप्पुवें तें दोडे नयविषयत्वदिंदं इह ई नयविषयंगळल्लि सर्व्वथेति सर्व्वथा यें दितु प्रदुष्यंति दुर्न्नयंगळप्पुवु । स्यादिति स्यात्तें दितु पुष्यंति सुनयंगळप्पुवु ते तव मते जिनागमदोळु ।

कार्मणशरीरोदयात्तत्काययोगेन जातकर्माहारा लब्ध्यपर्याप्तपर्यायसहकारिकारणत्रयोविंशतिकबन्धकाले योग्यपंचसत्वस्थानेष्वेकतरसत्त्वाः स्युः । उच्यते—

सामान्यं समवायश्चाप्येकैकत्र समाप्तितः ।
अंतरेणाश्रयं न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधिः ॥६५॥

सामान्यं समवायश्च एकैकस्मिन् समाप्तत्वात्तयोरंतरं स्यात् तेन साधारणरूपेण समवायरूपेण स्थितिनाशोत्पादिद्रव्येषु सामान्यसमवायप्रमाणाविषयकः । तयोरेकजीवद्रव्यं साधारणत्वस्य समवायत्वस्य च विषयो न स्यादित्यर्थः । कुतः ? तयोर्विशेषरूपेण पृथगवस्थानात् । विधिशब्दः कथं प्रमाणवाचक इति चेत् ।

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः ।
सर्वथेति प्रदुष्यंति पुष्यंति स्यादितीहते ॥१॥ स्वयंभू स्तोत्र १०१ श्लोक ।

सदेकनित्यवक्तव्याः तद्विपक्षा असदनेकानित्यावक्तव्याश्च नयाः स्युः नयविषयत्वात् । इह नयविषये सर्वथेति प्रदुष्यंति दुर्णया भवंति । स्यादिति पुष्यंति सुनया भवंति तवागमे । तेषां सदसदादीनां प्रमाणनय-

---

उन दोनोंको त्याग पृथक्-पृथक् होकर कार्मण शरीरका उदय होनेसे कार्मणकाययोगके द्वारा आहारक होकर लब्ध्यपर्याप्त पर्यायके सहकारि कारण तेईस प्रकृतियोंके बन्धकालमें उसके योग्य पाँच सत्त्वस्थानोंमें-से किसी एककी सत्तावाले होते हैं । कहा भी है—

सामान्य और समवाय एक-एक व्यक्तिमें ही समाप्त हो जाते हैं । अतः आश्रयके बिना जो द्रव्य नष्ट और उत्पन्न होते हैं उनमें सामान्य और समवाय कैसे रहेंगे ।

आशय यह है कि एक जीवद्रव्य साधारणत्व और समवायत्वका विषय नहीं हो सकता । क्योंकि दोनों विशेषरूपसे पृथक् रहते हैं । विधि शब्द प्रमाणका वाचक कैसे है ?

सत्, एक, नित्य, वक्तव्य और इनके विपक्षरूप असत्, अनेक, अनित्य, अवक्तव्य ये जो नयपक्ष हैं वे सर्वथा रूपमें तो अतिदूषित होते हैं अर्थात् दुर्नय होते हैं । और स्यात् पदपूर्वक सुनय होते हैं ।

ई सदसदादिगळे प्रमाणविषयमुं नयविषयमुमप्पुवेंदु पेळ्दपरु :—

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम् ।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्न्नयः सदृष्टांतसमर्त्थनस्ते ॥—स्वयंभू. श्लो. ५२ श्लो. ।

विषक्तं युक्तं प्रतिषेधरूपं येन सः युक्तप्रतिषेधरूपः विधिः विधिः स्यात्स एव विधिः प्रमाण-विषयत्वात्प्रमाणं भवति । अत्र अनयोर्व्विधिनिषेधयोर्म्मध्ये अन्यतरत्प्रधानं स्यात् । अपरोऽन्यो गुणः गौणः स्यात् । तथापि गुणो मुख्यनियामहेतुः स्यात् मुख्यव्यवस्थाहेतुरित्यर्थः । न निरात्मकः न निःस्वभावः स्यात् । विधिनिषेधयोरन्यतरत्प्रधानं यत्तद्वस्तु नयविषयत्वान्नयः स्यात् । सदृष्टांत-समर्त्थनः प्रमाणविषयो नयविषयो वा दृष्टांते समर्त्थनं दृष्टांतसमर्त्थनं तेन सह वर्त्तंत इति सदृष्टांतसमर्त्थनस्तव मते एंदितु प्रमाणविषयं नयविषयं मेणु दृष्टांतसमर्त्थनदोडने वर्त्तिसुगु-। मा नयविषयविधिनिषेधंगळ्गे प्रधानाप्रधानत्वलक्षणमं पेळ्दपरु :—

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते ।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधेः कार्य्यकरं हि वस्तु ॥
—स्वयंभू. स्तो. ५३ श्लो. ।

विषयत्वं व्यनक्ति—

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः प्रमाणमत्रान्यतरत्प्रधानम् ।
गुणोऽपरो मुख्यनियामहेतुर्नयः सदृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥१॥ स्वयंभू ५२ श्लोक ।

विषक्तं युक्तं प्रतिषेधरूपं येन स विधिः स्यात् । स एव प्रमाणविषयत्वात्प्रमाणं । अत्रानयोर्विधि-प्रतिषेधयोरन्यतरत्प्रधानं, अपरो गुणः । तथापि गुणो मुख्यनियामहेतुः मुख्यव्यवस्थाहेतुरित्यर्थः । न निरात्मकः न निःस्वभावः स्यात् । विधिप्रतिषेधयोरन्यतरत्प्रधानं यत्तद्वस्तु नयविषयत्वान्नयः स्यात् । सदृष्टान्तसमर्थनः प्रमाणविषयो नयविषयो वा दृष्टान्ते समर्थनेन सहितो वर्तते तव मते । तन्नयविषयविधिनिषेधयोः प्रधाना-प्रधानत्वलक्षणमाहुः—

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते ।
तथारिमित्रानुभयादिशक्तिर्द्वयावधेः कार्यकरं हि वस्तु ॥ स्वयंभू ५३ ।

वे सत्-असत् आदि प्रमाण और नयको व्यक्त करते हैं। कहा है—हे भगवन्, आपके मनमें प्रतिषेधसे युक्त विधि प्रमाणका विषय होनेसे प्रमाण है। इन विधि और प्रतिषेधमें-से एक मुख्य और एक गौण है तथापि गौण मुख्यकी व्यवस्थामें हेतु होता है। वह निःस्वभाव नहीं है। विधि और प्रतिषेधमें-से जो कोई प्रधान होता है वह नयका विषय होनेसे नय है। तथा वह दृष्टान्तमें समर्थनसे सहित होता है।

जो विधि और निषेधमें-से प्रधान और गौण होते हैं उनका लक्षण कहते हैं—

जो कथनके लिए इष्ट होता है चाहे वह विधि हो या प्रतिषेध वही मुख्य कहाता है। जिसकी विवक्षा नहीं होती वह विधि और निषेधमें-से कोई एक गौण होता है। किन्तु वह निरात्मक-निःस्वभाव नहीं होता। इस प्रकार एक ही वस्तु शत्रु, मित्र और अनुभय आदि शक्तियोंको लिये हुए होती है। वास्तवमें विधि-निषेध, सामान्य-विशेष, द्रव्य-पर्याय इस तरह दो-दो सापेक्ष धर्मोंका आश्रय लेकर ही वस्तु अर्थक्रियाकारी होती है।

वक्तुमिष्टो विवक्षितः आ विधि निषेधंगळोळु नुडियल्किष्टमप्पुदु विवक्षितमक्कुमदु मुख्यमेंदु पेळल्पट्टुदु । अन्यः आ विवक्षितक्कितरमप्प विधियुं निषेधमुं मेणु अविवक्षितमप्पुदु गुणः गौणमक्कुं । न निरात्मकः निस्स्वभावमल्तु । जिन ! निन मतदोळ् । तथा तथा हि अन्तेयल्ते । अरिमित्रानुभयादिशक्तियनुळ्ळ वस्तु द्वयावधेः सदसदेकानेकनित्यानित्यवक्तव्यावक्तव्यंगळ सीमेयत्तणिदित्तलु कार्य्यंकरमक्कु—। मितो प्रमाणनयविषयंगळप्प विग्रहगतिय प्रथमसमयदोळु वर्त्तिसुत्तिर्प्पं नोकर्म्मानाहारकानंतानंततिर्य्यग्मनुष्यजीवसमूहं लब्ध्यपर्य्याप्तपर्य्यायक्के सहकारिकारणत्रयोविंशतिप्रकृतिस्थानस्थितापर्य्याप्तनामकर्म्मोपार्ज्जनमोंदु देशकालदोळु तदुदयसंजनित कार्य्यंरूपलब्ध्यपर्य्याप्तकत्वमोंदु देशकालदोळु संभविसुगुमेंबुदु विरुद्धमल्तेंतेंदोडे वस्तुवृत्तियंतुंटप्पुदरिदं पेळल्पट्टुदु :—

देशकालविशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धिवत् ।
समानदेशता न स्यान्मूर्त्तिः (तं-) कारणकार्य्ययोः ॥ —आप्तमी. ६३ श्लो. ।

देशकालविशेषदोळं कार्य्यकारणंगळ व्यक्ति कथंचित्समानदेशतेयागदु । एंतागदेंदोडे स्याच्छब्दवृत्तियुतसिद्धि सुसिद्धमेंतक्कुमंते कार्य्यकारणंगळ व्यक्ति याव प्रकारदिंदक्कु मा प्रकारदिंदमक्कुमेंबुदर्थमदु कारणमागि सयोगिकेवलिभट्टारकनोळु इंद्रियविषयसुखकारणसातवेदबंधमुदयात्मकमप्पुदरिंदंकारण कार्य्यंगळगे समानदेशतेयादुदंतादोडा सयोगभट्टारकनोळु विषय-

---

वक्तुमिष्टो विधिर्निषेधो वा विवक्षितः स मुख्य इत्युच्यते । अन्यो विधिर्निषेधो वा अविवक्षितो गौणः स्यान्न निरात्मको निःस्वभावो जिन ! तव मते । तथाहि—अरिमित्रानुभयादिशक्तिविशिष्टं वस्तु सदसदेकानेकनित्यानित्यवक्तव्यावक्तव्यद्वयस्यावधेः सीमांतोऽर्वाक् कार्यकरं स्यात् इत्येतत्प्रमाणनयविषयस्य विग्रहगतिप्रथमसमये नोकर्मानाहारकानंतानंततिर्यग्मनुष्यजीवसमूहस्य लब्ध्यपर्याप्तपर्यायसहकारिकारणत्रयोविंशतिकस्थानस्थितापर्याप्तनामोपार्जनं तदुदयकार्यलब्ध्यपर्याप्तकत्वं चैकदेशकाले न संभवतीति न विरुद्धं तथात्वाद्वस्तुवृत्तेः उच्यते—

देशकालविशेषेऽपि स्याद्वृत्तिर्युतसिद्धिवत् ।
समानदेशता न स्यान्मूर्तकारणकार्ययोः ॥६३॥

देशकालविशेषेऽपि कार्यकारणव्यक्तिः कथंचित्समानदेशता न स्यात् । कथं न स्यादिति चेत् स्याच्छब्दवृत्तिर्युतसिद्धिवत्स्यादिति । ततः कारणात्सयोगकेवलिनीन्द्रियविषयसुखकारणसातवेदनीयबन्ध उदयात्मकः स्यादिति कारणकार्ययोः समानदेशता स्यात् । तर्हि तत्र विषयसुखसंवेदनं स्यादिति न वाच्यं तत्र मोहनीय-

---

अतः विग्रहगतिके प्रथम समयमें नोकर्म अनाहारक अनन्तानन्त तिर्यञ्च मनुष्य जीव समूहका लब्ध्यपर्याप्त पर्यायका सहकारिकारण तेईस प्रकृतिरूप बन्धस्थानमें स्थित अपर्याप्त नामकर्मका उपार्जन और उसके उदयका कार्य लब्ध्यपर्याप्तपना एकदेश एक कालमें होना विरुद्ध नहीं है; क्योंकि वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है। कहा है—'देशकालका भेद होनेपर भी युतसिद्धवत् वृत्ति होती है। मूर्तिमान अवयव और अवयवी समानदेशमें नहीं रह सकते। अतः सयोगकेवलीमें इन्द्रिय सुखका कारण वेदनीय कर्मका बन्ध उदयात्मक होता है अतः कारण और कार्यका समानदेश हो सकता है।

शायद कहा जाये कि तब तो केवलीमें विषयसुखवेदन होना चाहिए। किन्तु ऐसा

सुखसंवेदने यक्कुमेंबेनल्बेडेकेंदोडा सयोगकेवलिभट्टारकंगे मोहनीयकर्म्मनिरवशेषप्रक्षयदिंदं स्वात्मोत्थानंतानंताक्षयसुखसंवेदने निरंकुशवृत्तियिंदं वर्त्तिसुत्तं विरलु कवलाहारादिविषयसुखसंवेदने विरोधिसल्पडुगुमेंतेंदोडे मोहनीयकर्म्मोदयबलाधानरहितसातवेदोदययक्के बहिर्विषय सन्निधीकरण सामर्त्थमल्लदे तद्विषयसुखसंवेदनेयं पुट्टिसुव सामर्त्यमिल्ल । पेळल्पट्टुदु :—

"घादिव्व वेदणीयं मोहस्स बळेण घादवे जीवमेंदितु ॥ ५

अथवा मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययज्ञानावरणंगळ क्षयंबेरे काणल्पट्टुदिल्ल । क्षीणकषायगुणस्थानचरमसमयदोळे "णाणंतरायदसयं दंसण चत्तारि चरिमम्मि" एंदितु ज्ञानावरणपंचकांतरायपंचकंगळुं दर्शनावरणचतुष्टयमुं युगपत्प्रणष्टंगळादु बप्पुदरिंदं जीवस्वभावगुणंगळप्प केवलज्ञानदर्शनोपयोगोपयुक्तसयोगिकेवलिभट्टारकंगक्षयानंतशक्तिसंयुक्तंगे क्षयोपशमभिकविभावगुणंगळप्प मत्यादिज्ञानोपयोगंगळ संभवमप्पुदरिंदमथवा सातवेदनीयोदयसंजनितेंद्रियविषयकबलाहारादिगळत्तणिंदं विषयसुखसंवेदने केवलज्ञानदिंदमो ? मेणिंद्रियज्ञानदिंदमो ? इंद्रियज्ञानदिंदु मेंदोडे केवलज्ञानोपयोगक्कभावमागि बक्कुमेंतेंदोडे "एकस्यानेकवृत्तिन्नं भागाभावात्" १०

१५

कर्मनिरवशेषप्रक्षयात्स्वात्मोत्थानंतानंताक्षयसुखसंवेदनं निरंकुशवृत्त्या वर्तमाने सति कवलाहारादिविषयसुखसंवेदनं विरुध्यते । मोहनीयोदयबलाधानरहितसातवेदोदयस्य बहिर्विषयसंनिधीकरणसामर्थ्यमेव स्यान्न तद्विषयसुखसंवेदनोत्पादकसामर्थ्यं । तथा चोक्तं—

घादिं व वेदणीयं मोहस्स बलेण घादवे जीवं । इति

अथवा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानां क्षयः पृथगेव न दृश्यते क्षीणकषायचरमसमये एव णाणांतरायदसयं दंसणचत्तारीति चतुर्दशानां युगपत्प्रणष्टत्वाज्जीवस्वभावगुणकेवलज्ञानदर्शनोपयोगोपयुक्तसयोगस्याक्षयानंतशक्तेः क्षयोपशमिकविभावगुणमत्यादिज्ञानोपयोगानामसंभवात् । अथवा सातवेदनीयोदयसंजनितेन्द्रियविषयकवलाहारादिभ्यो विषयसुखसंवेदनं केवलज्ञानेनेन्द्रियज्ञानेन वा । इन्द्रियज्ञानेन चेत् केवल- २०

कहना ठीक नहीं है । क्योंकि केवलीमें मोहनीय कर्मका सम्पूर्ण क्षय हो चुका है । अतः अपनी आत्मासे उत्पन्न अनन्तानन्त अक्षय सुखका संवेदन रहते हुए केवलीमें कवलाहार आदि जन्य विषयसुखका संवेदन सम्भव नहीं है ।

मोहनीयकी उदयकी सहायतासे रहित सात वेदनीयके उदयमें बाह्य विषयोंको लानेकी सामर्थ्य ही होती है । विषयसुखका संवेदन उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं होती । २५ कहा भी है—

वेदनीय कर्म मोहका बल पाकर जीवका घात करता है ।

अथवा मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानोंके आवरणोंका क्षय पृथक्-पृथक् नहीं होता । क्षीणकषायके अन्तिम समयमें ही पाँचों ज्ञानावरण, पाँच अन्तराय और चार दर्शनावरणोंका एक साथ विनाश होता है । अतः जीवके स्वाभाविक गुण केवलज्ञान और ३० केवलदर्शनरूप उपयोगसे उपयुक्त तथा अक्षय अनन्तशक्तिसे सम्पन्न सयोगकेवलीके क्षायोपशमिक वैभाविक गुण मति आदि ज्ञानोपयोगका होना असम्भव है ।

अथवा सातावेदनीयके उदयसे उत्पन्न इन्द्रियविषय कवलाहार आदि सम्बन्धी विषयसुखका संवेदन केवली केवलज्ञानसे करते हैं या इन्द्रिय ज्ञानसे । यदि इन्द्रिय ज्ञानसे

एंबितेककालदोळेकजीवनोळेकवृत्तियल्लदनेकवृत्ति संभविसदप्पुदरिंदमुं वीतरागभट्टारकंगे क्षायोपशमिकज्ञानप्रसंगमक्कुं। केवलज्ञानदिंदमे बोडे अनंताक्षयसुखतृप्तंगे अशुचिवस्तुदर्शनांतरायपरिवर्जितताहारप्रवृत्ति गगनकुसुमोपममक्कुमप्पुदरिंदं। अंता त्रयोविंशतिबंधमेकेंद्रियापर्याप्तयुतबंधस्थानमप्पुदरिंदं तिर्य्यंग्गतिजमिथ्यादृष्टिगळुं मनुष्यगतिजमिथ्यादृष्टिगळुं बंधस्वामिगळप्परल्लि तिर्य्यंचरुगळोळेकेंद्रियादि सर्व्वंतिर्य्यंच मिथ्यादृष्टिगळुं बंधयोग्यस्थानमप्पुदरिंदमा त्रयोविंशतिस्थानमं कट्टुवागळु जीवंगळगे बं २३। ए अ। उ व २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ आ तिर्य्यंचसासादनाविगळोळारोळमी त्रयोविंशतिबंधस्थानमिल्ल। मनुष्यगतिय मनुष्यरोळु कर्म्मभूमिजमिथ्यादृष्टिगळे स्वामिगळप्पुदरिंदमा स्थानमं कट्टुवागळा जीवंगळगे बं २३। ए अ। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ पंचविंशति प्रकृतिबंधस्थानमेकेंद्रियपर्य्याप्तयुतमुं त्रसापर्य्याप्तयुत बंधस्थानमप्पुदरिंदमा पंचविंशति प्रकृतिबंधस्वामिगळु तिर्य्यंचरुं मनुष्यरुं विविजरुगळुमप्परल्लि तिर्य्यंग्गतिजरोळु सर्व्वंतिर्य्यंचरुगळु मिथ्यादृष्टिगळे कट्टुवरप्पुदरिंदमा जीवंगळु पंचविंशतिस्थानमं कट्टुवागळु

ज्ञानोपयोगस्याभावः प्रसज्यते एकस्यानेकवृत्तेरभावात्। अन्यथा क्षायोपशमिकज्ञानं प्रसज्यते। अथ केवलज्ञानेन तदाऽनंताक्षयसुखतृप्तस्याशुचिवस्तुदर्शनांतरायपरिवर्जिताहारप्रवृत्तिगगनकुसुमोपमा स्यादिति। तथा तत्त्रयोविंशतिकमेकेन्द्रियापर्याप्तयुतमिति तिर्यग्मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टय एव बध्नंति। तदा तेषामेकेन्द्रियादिसर्वतिरश्चामिति।]

उपरतबन्धे उदयस्थानानि चतुःपंचाग्रविंशतिकोनानि दश। सत्त्वस्थानानि त्रिनवतिकादीनि चत्वार्यशीतिकादीनि षट् च। अत्राद्यत्रिसंयोगे—

बं	२३
उ	९
स	५

त्रयोविंशतिकमेकेन्द्रियापर्याप्तयुतत्वाद्देवनारकेभ्योऽन्ये त्रसस्थावरमनुष्यमिथ्यादृष्टय एव बध्नंति। तत्रैकेन्द्रियादिसर्वतिरश्चां बं २३ ए अ। उ २१ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ स ९२। ९०। ८८।

करते हैं तो केवल ज्ञानोपयोगका अभाव प्राप्त होता है क्योंकि एक जीवके एक समयमें अनेक उपयोग नहीं हो सकते। अन्यथा केवलीके क्षायोपशमिक ज्ञानका प्रसंग आता है। यदि केवलज्ञानसे करते हैं तो अक्षय अनन्तसुखसे तृप्त केवलीके अशुचि वस्तुको देखनेरूप अन्तरायके कारण त्यागे हुए आहारमें प्रवृत्ति असम्भव हो जायेगी।

तथा तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें एकेन्द्रिय अपर्याप्तसे सहित तेईस प्रकृतिक स्थानको मिथ्यादृष्टि ही बाँधते हैं।]

प्रथम त्रिसंयोगमें तेईसके बन्धस्थानमें नौ उदयस्थान और पाँच सत्त्वस्थान कहे। सो तेईसका बन्धस्थान एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित होनेसे उसे देवनारकियोंको छोड़ त्रस स्थावर और मनुष्य मिथ्यादृष्टि ही बाँधते हैं। सो एकेन्द्रिय आदि सब तिर्यंचोंके बन्ध एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित तेईसका होता है वहाँ उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीस और इकतीसका। सत्त्व बानवे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी,

आजीवंगळ्गे बं २५। ए। प। त्र। अ। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ तिर्य्यंचसासादनाविगळो पंचविंशतिस्थानमं कट्टरेकेंदोडे-केंद्रियविकलत्रयापर्य्याप्तकर्म्मंगळु मिथ्यादृष्टियोळे बंधमप्पु बप्पुदरिं, मनुष्यगतियोळु मनुष्यमिथ्या-दृष्टिगळोळे पंचविंशतिस्थानबंधमप्पुदरिंदमा जीवंगळा स्थानमं कट्टुवागळु बं। २५। ए। प। त्र अ। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ मनुष्यसासादनाविगळोळे- ५
ल्लियुं पंचविंशतिस्थानबंधमिल्ल। देवगतियोळु भवनत्रयसौधर्म्मकल्पद्वयदिविजमिथ्यादृष्टिगळोळे पंचविंशति प्रकृतिबंधस्थानमेकेंद्रियपर्य्याप्तयुतमागि बंधं संभविसुगुमप्पुदरिना स्थानमं कट्टुवागळु दिविजमिथ्यादृष्टिगळ्गे बं २५। ए प। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ स ९२। ९०। दिविजसासादनाविगळ्गेल्लियुं पंचविंशतिस्थानबंधमिल्ल। षड्विंशतिबंधस्थानमेकेंद्रियपर्य्याप्तो-द्योतातपोन्यतरयुतबंधस्थानमप्पुदरिंदं। तिर्य्यंचरुं मनुष्यरुं दिविजरुं बंधस्वामिगळप्परल्लि सर्व्व- १०
तिर्य्यंच मिथ्यादृष्टिगळोळु तेजोवायुसाधारणसूक्ष्मपर्य्याप्तांगळोळुदयमिल्लदे बंधमुंटप्पुदरिंदं सर्व्व-तिर्य्यंचमिथ्यादृष्टिगळा स्थानमं कट्टुवागळु बं २६। ए प। उ। आ। उ २१। २४। २५। २६।

८४। ८२। मनुष्येषु कर्मभूमिजानामेव बं २३। ए अ। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८।८४। पंचविंशतिकमेकेन्द्रियपर्याप्तत्रसापर्याप्तयुतत्वात्तिर्यग्मनुष्यदेवमिथ्यादृष्टय एव बध्नंति। तत्र सर्वतिरश्चां बं २५ ए प त्र अ उ। २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। १५
८४। ८२। मनुष्यगतौ बं २५ ए प। त्र अ। उ २१, २६, २८, २९, ३०। स ९२, ९०, ८८, ८४। देवेषु भवनत्रयसौधर्मद्वयजानामेवैकेन्द्रियपर्याप्तयुतमेवं बं २५ ए प। उ २१, २५, २७, २८, २९, स ९२, ९०। षड्विंशतिकमेकेन्द्रियपर्याप्तोद्योतातपान्यतरयुतत्वात्तिर्यग्मनुष्यदेवमिथ्यादृष्टय एव बध्नन्ति। तत्रापि तेजोवायु-साधारणसूक्ष्मापर्याप्तेषु तदुदय एव न, बन्धस्तु भवत्येव। तत्तिरश्चां—बं २६। ए प उ आ। उ २१, २४,

---

बयासीका है। मनुष्योंमें कर्मभूमियोंके ही एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित तेईसका बन्ध होता है २०
वहाँ उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासीका है।

पच्चीसका बन्ध एकेन्द्रिय पर्याप्त या त्रस अपर्याप्त सहित होता है। अतः उसका बन्ध तिर्यंच मनुष्य देव मिथ्यादृष्टि ही करते हैं। उनमेंसे सब तिर्यंचोंके एकेन्द्रिय पर्याप्त या त्रस अपर्याप्त सहित पच्चीसका बन्ध होनेपर उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, २५
अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासीका है। मनुष्यगतिमें एकेन्द्रिय पर्याप्त या त्रस अपर्याप्त सहित पच्चीसके बन्धमें उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासीका है। देवोंमें भवनत्रिक और सौधर्म युगलके देवोंके ही एकेन्द्रिय पर्याप्त सहित पच्चीसका बन्ध होता है। वहाँ उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। ३०

छब्बीसका बन्ध एकेन्द्रिय पर्याप्त और आतप उद्योतमें-से एक सहित है। अतः उसे तिर्यंच मनुष्य देव मिथ्यादृष्टि ही बाँधते हैं। उनमें भी तेजकाय, वायुकाय साधारण सूक्ष्म अपर्याप्तोंमें उसका उदय नहीं है बन्ध तो होता ही है। तिर्यंचोंके एकेन्द्रिय पर्याप्त उद्योत या आतप सहित छब्बीसका बन्ध होनेपर उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस,

।२७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळा षड्विंशतिस्थानमं कट्टुवागळु बं २६। ए प। आ उ। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ विविध्रभवनत्रयसौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टिगळा स्थानमं कट्टुवागळु बं २६। ए प। आ उ। उ २१। २५। २७। २८। २९। अष्टाविंशतिबंधस्थानं नरकदेवगतियुतबंधस्थानमप्पुदरिंदं तिर्य्यग्मनुष्यरुगळ बंधस्वामिगळप्परल्लि तिर्य्यंग्गतियोळु शरीरपर्य्याप्तासंज्ञिपंचेंद्रियमिथ्यादृष्टियुं संज्ञियुं कट्टुवागळु बं २८। न। दे। उ २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। संज्ञितिर्य्यंचसासादनंगे बं २८। दे। उ। ३०। ३१। स ९०॥ तिर्य्यंच मिश्रंगे बं २८। दे। उ ३०। ३१। स ९२। ९०॥ तिर्य्यंग असंयतंगं बं २८। दे। उ २१। २६। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। देशसंयततिर्य्यंचंगे बं २८। दे। उ ३०। ३१। स ९२। ९०। ई तिर्य्यंग्गतियोळष्टाविंशतिबंधस्थानं मिथ्यादृष्टियोळु विग्रहगतियोळं शरीरमिश्रकालदोळं बंधमिल्लेकेंदोडे :—

"ओराळे वा मिस्से णहि सुरणिरयाउहारणिरयदुगं।
मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि।"

२५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१। स ९२, ९०, ८८, ८४, ८२। तन्मनुष्याणां बं २६। ए प आ उ। उ २१, २६, २८, २९, ३०। स ९२, ९०, ८८, ८४। भवनत्रयसौधर्मद्वयजानां बं २६। ए प आ उ। उ २१, २५, २७, २८, २९। स ९२, ९०। अष्टाविंशतिकं नरकदेवगतियुतत्वादसंज्ञिसंज्ञितिर्यंककर्मभूमिमनुष्या एव विग्रहगतिशरीरमिश्रकालावतीत्य पर्याप्तशरीरकाले एव बध्नंति। तत्तिरश्चां मिथ्यादृष्टेः बं २८ न। दे, उ २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। तत्सासादनस्य बं २८ दे। उ ३०। ३१। स ९०। मिश्रस्य बं २८ दे। उ ३०। ३१। स ९२। ९०। असंयतस्य बं २८ दे, उ २१। २६। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। देशसंयतस्य बं २८ दे, उ ३०। ३१। स ९२। ९०। द्व्यशीतिकं हि तत्सत्त्वयुततेजोवायुभ्यां पंचेन्द्रियेषूत्पद्य

अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका और सत्त्व बानवे नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासीका होता है। मनुष्योंके उसी प्रकारका बन्ध होनेपर उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस और सत्त्व बानवे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासीका है। भवनत्रिक और सौधर्मयुगलके देवोंके वैसा ही बन्ध होनेपर उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, सत्त्व बानवे, नब्बेका है।

अठाईसका बन्ध नरकगति या देवगति सहित होनेसे असंज्ञी संज्ञी तिर्यंच मनुष्य ही विग्रहगति और शरीर मिश्रकालको बिताकर पर्याप्त शरीरकालमें बाँधते हैं। वहाँ तिर्यंच मिथ्यादृष्टि नरक देवगति सहित अठाईसका बन्ध होनेपर उदय अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका और सत्त्व बानवे, नब्बे, अट्ठासीका है। सासादनमें देवगति सहित अठाईसका बन्ध होनेपर उदय तीस, इकतीस और सत्त्व नब्बेका होता है। मिश्रमें बन्ध होनेपर उदय तीस, इकतीस तथा सत्त्व बानवे, नब्बेका है। असंयतमें होनेपर उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका तथा सत्त्व बानवे नब्बेका है। देशसंयतमें देवगति सहित

---

१. (ताड पृ. २०६ पं. १)—अष्टाविंशतिबंधदोळु एकविंशतिषड्विंशति उदयमिल्लेंबुदु व्यक्तमाय्तु॥ (पृ. २०६, पं २)—कम्मे ओराळमिस्सं वा यी गाथाभिप्रायमं योजिसिकोंबुदु॥—(संबंधोऽत्र न ज्ञायते)

एंदिता विग्रहगतियोळं शरीरमिश्रकालदोळमा बंधस्थानं संभविसुवुदल्ते बुदत्थंमल्लि-द्वयशीतिचतुरशीतिसत्त्वस्थानंगळुं संभविसवेंतेंदोडे द्वयशीतिसत्त्वस्थानमुळळ तेजोवायुकायिक-जीवंगळा पंचेंद्रियासंज्ञिसंज्ञिमिथ्यादृष्टिगळोळु पुट्टुवरंतु पुट्टिदोडमा विग्रहगतियोळं शरीरमिश्र-योगकालदोळमा सत्त्वस्थानं कथंचिदुंटु कथंचिदिल्लमवेंतेंदोडे आ विग्रहगतियोळं शरीरमिश्र-कालदोळं तिर्य्यंग्गतियुतमागि त्रयोविंशतिपंचविंशति षड्विंशतिस्थानंगळुमं नवविंशतित्रिंशत्प्रकृति- ५
स्थानंगळुमं तिर्य्यंग्गतियुतमागि कट्टुवागळु मनुष्यद्विकं बंधमिल्लप्पुदरिंदं तत्सत्त्वस्थानं संभवि-सुगुमा विग्रहगतियोळं शरीरमिश्रयोगकालदोळं मनुष्यगतिद्वययुतपंचविंशतिस्थानमुमं नवविंशति-स्थानमुमं कट्टुवागळु तद्द्वयशीतिसत्त्वस्थानं संभविसदप्पुदरिंदं। मत्तमा अष्टाविंशतिस्थानमं शरीरपर्य्याप्तियोळु कट्टुव पंचेंद्रियासंज्ञिसंज्ञिमिथ्यादृष्टिगळुमेकेंद्रियविकलत्रयभवदोळु नारक चतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडि बंदी असंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्तरोळु पुट्टुवरंतु पुट्टिदोडमा विग्रह- १०
गतियोळं शरीरमिश्रयोगकालदोळं नियमदिंदमा सत्त्वस्थानं संभविसुगुमेंतेंदोडा चतुरशीतिसत्त्व-स्थानयुतजीवंगळा कालदोळु मिथ्यादृष्टिगळप्पुदरिंद देवद्विकमुं नारकचतुष्टयमुं बंधमागदप्पुदरिंदमी अष्टाविंशतिस्थानबंधकालं शरीरपर्य्याप्तियुतकालमप्पुदरिंदं नारकचतुष्टयमं कट्टिदोडमा जीवं-गळोळष्टाशीतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुं मेणु सुरचतुष्टयमं कट्टिदोडमा जीवंगळोळु अष्टाशीतिप्रकृति-सत्त्वस्थानं संभविसुगुमप्पुदरिंदमा असंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियमिथ्यादृष्टिगळोळु द्वानवतिनवत्यष्टाशीति- १५
सत्त्वस्थानत्रयसंभवं पेळल्पट्टुदु। मनुष्यगतियोळु मिथ्यादृष्टिजीवंगळगे अष्टाविंशतिस्थानं तिर्य्यक्पंचेंद्रियपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळगे पेळ्दंते शरीरपर्य्याप्तियोळु नरकगतियुतमागियुं देवगति-

---

नानाविग्रहगतिशरीरमिश्रकालयोस्तिर्यग्गतियुतत्रिपंचषड्नवदशाग्रविंशतिकानि बध्नतां संभवति। मनुष्यद्विक-युतपंचनवाग्रविंशतिके बध्नतां न संभवति। चतुरशीतिकं चैकविकलेन्द्रियभवे नारकचतुष्कमुद्वेल्य पंचेन्द्रिय-पर्याप्तेषूत्पद्य तस्मिन्नेव कालद्वये संभवति ततोऽस्मिन्नष्टाविंशतिकबन्धकाले तयोः सत्त्वं नोक्तं। २०

मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेः बं २८। न दे, उ २८। २९। ३०। स ९२। ९१। ९०। ८८। उद्वेल्लितानुद्वेल्लित-मनुष्यद्विकतेजोवायूनां मनुष्यायुरबन्धादत्रानुत्पत्तेर्न द्वयशीतिकसत्त्वं, उद्वेल्लितनारकचतुष्कैकविकलेन्द्रियाणा-

---

सहित अठाईसका बन्ध होने पर उदय तीस, इकतीस, सत्त्व बानबे, नब्बेका है। बयासीके सत्त्वसहित तेजकाय वातकायसे मरकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो विग्रहगति और शरीर मिश्र-कालमें तिर्यंचगति सहित तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीसका बन्ध होनेपर बयासीका २५
सत्त्व होता है। मनुष्यद्विक सहित पच्चीस और उनतीसका बन्ध होते बयासीका सत्त्व नहीं होता। चौरासीका सत्त्व एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके भवमें नारक चतुष्ककी उद्वेलना करके पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होनेपर पूर्वोक्त दोनों कालोंमें होता है। इसलिए अठाईसके बन्ध होनेके कालमें बयासी और चौरासीका सत्त्व नहीं कहा। मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टिके नरक या देवगति सहित अठाईसके बन्धमें उदय अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, ३०
इक्यानबे, नब्बे और अट्ठासीका है। मनुष्यद्विककी उद्वेलना जिनकी हुई है या नहीं हुई है ऐसे तेजकाय, वायुकायके मनुष्यायुका बन्ध न होनेसे वे मनुष्योंमें उत्पन्न नहीं होते। इससे बयासीका सत्त्व नहीं होता। तथा जो नारक चतुष्ककी उद्वेलना सहित एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय

युतमागियुं बंधमक्कुमा विग्रहगतियोळु शरीरमिश्रकालदोळं ओराळे वा मिस्से एंदित्यादि सूत्रेष्टबिदं तद्बंध तत्कालदोळु संभविसदप्पुदरिंदमा मिथ्यादृष्टिमनुष्यनंकम्मंभूमिजरे शरीरपर्य्याप्तियोळकूडितवष्टाविंशतिस्थानमं कट्टुवागळु बं २८। न। दे। उ २८। २९। ३०। स ९२। ९१। ९०। ८८। इल्लि तेजस्कायिकवायुकायिकंगळु मनुष्यद्विकमनुद्वेल्लनमं माडियुं माडदेयुमी मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळोळु पुट्टरेंतेंदोडे "मणुवदुगं मणुवाऊ उच्चं णहि तेउवाउम्मि" एंबितु मनुष्यायुर्ब्बंधसंभवमिल्लप्पुदरिंदमा द्वयशीतिसत्त्वस्थानमं संभविसदु। नारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडि बंदु एकेंद्रियतिर्य्यंचरुं विकलत्रयतिर्य्यंचरुं बंदु पुट्टुवप्पुदरिंदमा जीवंगळगमी मनुष्यशरीरमिश्रकालदोळं विग्रहगतियोळमा चतुरशीतिसत्त्वस्थानं नियमदिंदं संभविसुगुमेकेंदोडा जीवंगळगाकालदोळष्टाविंशतिबंधस्थानं नियमदिंदमिल्लेंतेंदोडोराळे वा मिस्से येंदित्यादि सूत्राभिप्रायदिंदमा कालदोळु तदष्टाविंशतिबंधनिषेधमुंटप्पुदरिंदमी शरीरपर्य्याप्तियोळष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळुमा चतुरशीतिसत्त्वस्थानमुभयप्रकारदिंदं संभविसदेंतेंदोडे शरीरपर्य्याप्तियोळष्टाविंशतिस्थानमं नारकचतुष्टययुतमागि कट्टुवागळुमष्टाशीतिसत्त्वस्थानमक्कुमथवा देवचतुष्टययुतमागि कट्टुवागळुमष्टाशीतिसत्त्वस्थानमे सत्त्वमक्कुमप्पुदरिंदं एकनवतिसत्त्वस्थानमी मनुष्यमिथ्यादृष्टियोळेंतु संभविसुगुमेकेंदोडे प्राग्बद्धनरकायुष्यनप्प असंयतसम्यग्दृष्टिद्वितीयादिपृथ्विगळोळु पुट्टनभिमुखनप्पागळु सम्यक्त्वमं विराधिसि केडिसि मिथ्यादृष्टियागि नरकगतियुताष्टाविंशति स्थानमं कट्टुत्तमिर्प्पातंगे त्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानमुमेकनवतिसत्त्वस्थानमुं संभविसुगुमप्पुदरिंदं मनुष्यसासादनंगे बं २८। दे। उ ३०। स ९०। मनुष्यमिश्रंगे बं २८। दे। उ ३०। स ९२। ९०॥ मनुष्यासंयतंगे बं २८। दे। उ २१। २६। २८। २९। ३०॥ स ९२।

मत्रोत्पन्नानां विग्रहगतिमिश्रशरीरकालयोरष्टाविंशतिकाबन्धान्न चतुरशीतिकसत्त्वं। शरीरपर्याप्तौ तद्बन्धे तु नारकचतुष्केण देवचतुष्केण वाष्टाशीतिकसत्त्वमेव न तत् एकनवतिकसत्त्वं प्राग्बद्धनरकायुरसंयतस्य द्वितीयतृतीयपृथ्व्युत्पत्त्यभिमुखस्य मिथ्यादृष्टित्वं गत्वा नरकगतियुताष्टाविंशतिं बध्नतस्त्रिंशत्कोदयेन सह संभवति। सासादनस्य बं २८ दे। उ ३०। स ९०। मिश्रस्य बं २८ दे। उ ३०। स ९२। ९०। असंयतस्य बं २८ दे। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। नात्रैकनवतिकसत्त्वं प्रारब्धतीर्थबन्धस्याप्यत्र बद्धनरकायुष्का-

---

मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उनके विग्रह गति और मिश्रशरीर कालमें अठाईसका बन्ध न होने से चौरासीका सत्त्व नहीं होता। शरीर पर्याप्तिकालमें उसका बन्ध होनेपर नारकचतुष्क या देवचतुष्कके साथ अट्ठासीका ही सत्त्व होता है। पूर्वमें जिसने नरकायुका बन्ध किया है ऐसा असंयत सम्यग्दृष्टी जब दूसरी या तीसरी पृथिवीमें जानेके अभिमुख होता है तो मिथ्यादृष्टि होकर नरकगति सहित अठाईसका बन्ध करता है तब तीसके उदयके साथ इक्यानबेका सत्त्व होता है। मनुष्य सासादनके देवगति सहित अठाईसके बन्धमें उदय तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें देवगति सहित अठाईसका बन्ध करने पर उदय तीसका तथा सत्त्व बानबे और नब्बेका है। असंयतमें देवगति सहित अठाईसके बन्धमें उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व नब्बे, बानबेका है। यहाँ इक्यानबेका सत्त्व नहीं है; क्योंकि तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ होनेके पश्चात् सम्यक्त्वसे च्युत वही

९०॥ तीर्थयुतैकनवतिसत्त्वस्थानमष्टाविंशतिबंधकनोळु संभविसदे तेंदोडे—सम्यग्दृष्टिगळोळु तीर्थरहितबंधस्थानं संभविसवेकेंदोडवर्गे तलानु नरकगतिगमनकालदोळु तीर्थबंधप्रारंभ-प्राग्बद्धनरकायुष्यनप्प मनुष्यासंयतंगे मिथ्यात्वोदयदिदं मिथ्यादृष्टियादोडे तीर्थबंधं माण्बुदल्लदे अन्यत्र सम्यग्दृष्टिगळोळु बंधमिल्लप्पुदिल्लेंतेंदोडे तीर्थनिरंतरबंधकालमुत्कृष्टदिदमंतर्म्मुहूर्त्ताधिकाष्टवर्षोन्यूनपूर्व्वकोटिवर्षद्वयाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालप्रमितमप्पुदरिंदं। अदुकारणमी सम्यग्दृष्टियोळष्टाविंशतिबंधकनोळेकनवतिसत्त्वस्थानं संभविसदु। मिथ्यादृष्टियोळु संभविसुगुमेंबुदत्थं। मनुष्यदेशसंयतंते बं २८। दे। उ ३०। स ९२। ९०॥ मनुष्यप्रमत्तसंयतंगे बं २८। दे। उ २५। २७। २८। २९। ३०। स ९२। ९०॥ अप्रमत्तसंयतंगे बं २८। दे। उ ३०। स ९२। ९०॥ अपूर्व्वकरणंगे बं २८। दे। उ ३०। स ९२। ९०॥ नवविंशतिबंधं द्वींद्रियादित्रसपर्य्याप्तयुत-तिर्य्यग्गतियुतमुं मनुष्यगतियुतमुं देवगतितीर्थयुतमुमप्पुदरिंदमदक्के स्वामिगळु नारकरुं तिर्य्यंचरुं मनुष्यरुं विविजरुमप्परल्लि नारकमिथ्यादृष्टिगळगे बं २९। पं। ति। म। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९१। ९०॥ इल्लि एकनवतिस्थानं घर्म्मादित्रयावनिजापर्य्याप्तरोळे संभवमेंदरियल्पडुगुं। नारकसासादनंगे बंध २९। पं। ति। म। उ २९। स ९०॥ नारकमिश्रंगे बं २९। म। उ २९। स ९२। ९०। नारकासंयतंगे बं २९। म। उदयं घर्म्मेयोळु २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९०॥ वंशेय मेघेय नारकासंयतर्गे बं २९। उ २९। सत्त्व ९२। ९०॥

त्सम्यक्त्वाप्रच्युतिर्नेति तीर्थबन्धस्य नैरंतर्यादष्टाविंशतिकाबन्धात्। देशसंयतस्य बं २८ दे। उ ३०, स ९२। ९०, प्रमत्तस्य बं २८ दे। उ २५। २७। २८। ६०। स ९२। ९०। अप्रमत्तस्य बं २८ दे। ३०। स ९२। ९०। अपूर्वकरणस्य बं २८ दे। उ ३०। स ९२। ९०। नवविंशतिकं द्वींद्रियादित्रसपर्याप्तेन तिर्यग्गत्या वा देवतीर्थेन वा युतत्वाच्चतुर्गतिजा बध्नंति। तत्र नारकमिथ्यादृशां बं २९ पं ति म। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९१। ९०। अत्रैकनवतिकं घर्मादित्रयापर्याप्तेष्वत्र संभवति। सासादनस्य बं २९ पं ति म। उ २९। स ९०। मिश्रस्य बं २९ म। उ २९। स ९२। ९०। असंयतस्य घर्मायां बं २९ म। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९०। वंशामेघयोः बं २९ म। उ २९। स ९२। ९०

होता है जिसने पूर्वमें नरकायुका बन्ध किया है, और तीर्थंकरका बन्ध निरन्तर होता है इससे उसके अठाईसका बन्ध नहीं है। देशसंयतमें उदय तीसका और सत्त्व बानबे नब्बेका है। प्रमत्तमें उदय पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। अप्रमत्तमें उदय तीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। अपूर्वकरणमें उदय तीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। उनतीसका बन्ध दोइन्द्रिय आदि त्रसपर्याप्त सहित या तिर्यंचगति सहित या मनुष्यगति सहित या देवगति तीर्थंकर सहित होता है। इसे चारों गतिके जीव बाँधते हैं। नारक मिथ्यादृष्टिके पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीसके बन्धमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। यहाँ इक्यानबेका सत्त्व धर्मादि तीन नरकोंमें अपर्याप्तकालमें ही होता है। सासादनमें उसी प्रकारसे उनतीसके बन्धमें उदय उनतीसका सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें मनुष्यगति सहित ही उनतीसका बन्ध होता है। वहाँ उदय उनतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। असंयतमें भी मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध होता है। सो धर्मानरकमें उदय इक्कीस, पच्चीस,

अंजनादिचतुःपृथ्विगळोळु बं २९। ति। म। उदय २९। स ९२। ९०॥ तिर्य्यंग्गतिय मिथ्यादृष्टियोळु बं २९। बि। ति। च। प। म। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ सत्त्व ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ तिर्य्यंचसासादनंगे बं २९। प। ति। म। उ। २१। २४। २६। ३०। स ९०। पंचविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशतिनवविंशतिस्थानोदयंगळोळु सासादनगुणमिल्ल। तिर्य्यंचमिश्रगुणस्थानदोळु नवविंशतिबंधस्थानबंधं संभविसदेकेंदोडे "उवरिमछण्हं च छिदी सासणसम्मे हवे णियमा" येंदितु मनुष्यगतियुं सासादननोळु व्युच्छित्तियादुदप्पुदरिंदं। मिश्रंगे पेरगेपेळदष्टाविंशतिदेवगतियुतस्थानमे बंधमक्कुमेंबुदत्थं। तिर्य्यंचासंयतदेशसंयतरुगळोळी तिर्य्यंग्मनुष्यगतियुतनवविंशतिप्रकृतिस्थानबंधं योग्यमल्लप्पुदरिंदं संभविसदु। मनुष्यगतियोळु मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळ्गे बं २९। बि। ति। च। पं। ति। म। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। यिल्लि तेजोवायुकायिकंगळु पुट्टवप्पुदरिंदं द्वयशीतिसत्त्वं संभविसदु। बद्धनरकायुष्यमनुष्यायुसंयतं तीर्त्थबंधमं केवलिद्वयोपांतदोळु प्रारंभिसि नरकगतिगमनाभिमुखनप्पागळु वेदकसम्यक्त्वमं कैकिसि मिथ्यादृष्टियागि मनुष्यगतियुतनव-

(अंजनादिषु बं २९ म। उ २९। ९२) तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टेः बं २९ बि ति च पं ति म। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२। सासादनस्य बं २९ पं ति म। उ २१। २४। २६। ३०। स ९०। नात्र पंचसप्ताष्टनवाग्रविंशतिकोदयः मिश्रादित्रये नास्य बन्धः। उपरिम छण्णं च छिदी सासण सम्मे हवे इति नियमात् तिर्यग्मनुष्यगत्योः सासादने छेदात्। देवगत्यष्टाविंशतिकमेव बध्नातीत्यर्थः। मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ बं २९ बि ति च पं ति म। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। अत्र तेजोवायूनामनुत्पत्तेर्न द्वयशीतिकसत्त्वं। प्राग्बद्धनरकायुः प्रारब्धतीर्थबंधासंयतस्य नरकगमनाभिमुखमिथ्यादृष्टित्वे मनुष्यगतियुतं तत्स्थानं बध्नतः, त्रिंशत्कोदयेनैकनवतिकसत्त्वं।

२० सत्ताईस, अठाईस, उनतीस और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। वंशा मेघामें उदय उनतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। अंजनादिमें उदय उनतीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है।

तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टिमें दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका बन्ध होता है। वहाँ उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका है और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, २५ बयासीका है। सासादनमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसके बन्धमें उदय इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, तीसका है सत्त्व नब्बेका है। यहाँ पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका उदय नहीं है। मिश्रादि तीन गुणस्थानोंमें उनतीसका बन्ध नहीं है क्योंकि तिर्यंचोंमें तिर्यंचगति और मनुष्यगतिकी बन्ध व्युच्छित्ति सासादनमें ही हो जाती है। वहाँ देवगति सहित अठाईसका ही बन्ध होता है।

३० मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टिमें दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य सहित उनतीसका बन्ध होता है। वहाँ उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है, सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासीका है। यहाँ तेजकाय, वायुकायकी उत्पत्ति मनुष्योंमें नहीं होती इससे बयासीका सत्त्व नहीं कहा। पूर्वमें नरकायुका बन्ध करके तीर्थंकरके बन्धका प्रारम्भ करनेवाला असंयत सम्यग्दृष्टी जब नरकमें जानेके अभिमुख

विंशतिस्थानमं कट्टुवागळातंगे त्रिंशत्प्रकृतिउदयस्थानमुमेकनवतिसत्त्वस्थानमुं संभविसुगुमेंदरि-यल्पडुगुमेकेंदोडे मिथ्यादृष्टिगळु संक्लिष्टरुं विशुद्धरुं मनुष्यगतियुमं कट्टुवरप्पुदरिंदं, मनुष्य-सासादनंगे बंध २९। पं। ति। म। उ २१। २६। ३०। स ९०॥ मनुष्यमिश्रंगे नवविंशतिबंध-स्थानबंधं संभविसदु। मनुष्यासंयतंगे बं २९। दे। ति। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९३। ९१॥ देशसंयतंगे बं २९। दे। ति। उ ३०। स ९३। ९१॥ प्रमत्तसंयतंगे बं २९। दे। तो। उ २५। २७। २८। २९। ३०। स ९३। ९१॥ अप्रमत्तसंयतंगे बं २९। दे। तो। उ ३०। स ९३। ९१। अपूर्व्वकरणंगे बं २९। दे। तो। उ ३०। स ९३। ९१। देवगतिय विविजमिथ्यादृष्टिगळ्गे भवनत्रयं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतं संज्ञिपंचेंद्रियपर्य्याप्ततिर्य्यग्गतियुतमागियुं मनुष्यगतियुत-मागियुं नवविंशतिस्थानमं कट्टुवरवर्गळ्गे बं २९। पं। ति। म। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादनरुगळ्गे बं २९। पं। ति। म। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९०। तत्रत्यविविजमिश्रंगे बं २९। म। उ २९। स ९२। ९०। तत्रत्यविविजासंयतंगे बं २९। म। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ भवनत्रयजासंयतंगे बं २९। म। उ २९। उभयत्र सत्त्वस्थानंगळु ९२। ९०। आनताद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद विविजमिथ्यादृष्टिगळ्गे बं २९। म।

सासादने बं २९ पं ति म। उ २१। २६। ३०। स ९०। मिश्रे नास्य बन्धः। असंयते बं २९ दे ती। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९३। ९१। देशसंयते बं २९। दे ती। उ ३०। स ९३। ९१। प्रमत्ते बं २९ दे। तो। उ २५। २७। २८। २९। ३०। स ९३। ९१। अप्रमत्ते बं २९ दे ती। उ ३०। स ९३। ९१। अपूर्वकरणे बं २९। दे ती। उ ३०। स ९३। ९१। देवगतौ भवनत्रयादिसहस्रारान्ते मिथ्यादृष्टौ संज्ञिपंचेन्द्रियपर्याप्ततिर्यग्गत्या मनुष्यगत्या वा युतमेव बं २९ प ति। म उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९०। सासादने बं २९। पं। ति। म। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९०। मिश्रे बं २९ म। उ २९। स ९२। ९०। असंयते बं २९ म। उ २१। २५। २७। २८। २९।

मिथ्यादृष्टि होता है तब मनुष्यगति सहित उनतीसका बन्ध करता है उसके तीसका उदय और इक्यानबेका सत्त्व होता है। सासादनमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यगति सहित उनतीसके बन्धमें उदय इक्कीस, छब्बीस, तीसका और सत्त्व नब्बेका होता है। मिश्रमें उनतीसका बन्ध नहीं है। असंयतमें देवगति तीर्थसहित उनतीसके बन्धमें उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व तेरानबे, इक्यानबेका होता है। देशसंयतमें देवगति तीर्थसहित उनतीसके बन्धमें उदय तीसका और सत्त्व तिरानबे, इक्यानबेका है। प्रमत्तमें देवगति तीर्थसहित उनतीसके बन्धमें उदय पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीसका, सत्त्व तिरानबे, इक्यानबेका होता है। अप्रमत्तमें देवगति तीर्थसहित उनतीसके बन्धमें उदय तीसका सत्त्व तिरानबे, इक्यानबेका है। अपूर्वकरणमें भी उदय तीसका सत्त्व तिरानबेका है।

देवगतिमें भवनत्रिकसे सहस्रार पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें संज्ञीपंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचगति या मनुष्यगति सहित उनतीसके बन्धमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस-का और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें उसी प्रकारके बन्धमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें मनुष्यगति सहित उनतीसके

उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ सत्वस्थानंगळु ९२ । ९० ॥ तत्रत्य सासादनरुगळ्गे बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९० ॥ तत्रत्यमिश्ररुगळ्गे बं २९ । म । उ २९ । स ९२ । ९० ॥ तत्रत्यासंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० ॥ अनुदिशानुत्तरत्रयोदशविमानजरुगळ्गे असंयतसम्यग्दृष्टिगळ्गे बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० । त्रिंशत्प्रकृतिबंधस्थानं त्रसपर्य्याप्तोद्योततिर्य्यग्गतियुतमुं मनुष्यगतितीर्त्थयुतमुं देवगत्याहारकद्वययुतमुमप्पुदरिंबं नारकरुं तिर्य्यंचरुं मनुष्यरुं दिविजरुं बंधस्वामिगळप्परु । अल्लि नारकरुगळोळु रत्नशर्क्करावाळुकापंकधूमतमोमहातमःप्रभाभूमिसंभूतमिथ्यादृष्टिगळ्गे बं ३० । पं । ति । उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० ॥ तत्रत्यनारकसासादनरुगळ्गे बं ३० । पं । ति । उ । उ २९ । स ९० ॥ तत्रत्यमिश्रनारकंगे तत्तिंत्रशत्प्रकृतिबंधस्थानं संभविसदातंगे मुंपेळ्दनवविंशतिस्थानमे मनुष्यगतियुतमे बंधमक्कुं । धर्म्मेय नारकासंयतंगे मनुष्यगतितीर्त्थयुतमागि बंधमप्पागळु बं ३० । म । ती । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९१ । वंशेय मेघेय

भवनत्रयासंयते बं २९ म । उ २९ । सत्त्वमुभयत्र । ९२ । ९० । आनतादुपरिमग्रैवेयकान्ते मिथ्यादृष्टौ बं २९ म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० । सासादने बं २९ म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९० । मिश्रे बं २९ । स ९२ । ९० । असंयते बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० । अनुदिशानुत्तरासंयते बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० । त्रिंशत्कं त्रसपर्याप्तोद्योतयुततिर्यग्गतियुतमनुष्यगतितीर्थयुतदेवगत्याहारकद्वययुतत्वाच्चतुर्गतिजा बध्नंति ।

तत्र सर्वनारकमिथ्यादृष्टौ बं ३० पं ति उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९२ । ९० । सासादने । बं ३० पं ति । उ २९ । स ९० । मिश्रे नास्य बन्धः । धर्मासंयते मनुष्यगतितीर्थयुतं । बं ३० म

बन्धमें उदय उनतीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका होता है । असंयतमें मनुष्यगति सहित उनतीसके बन्धमें भवनत्रिकमें उदय उनतीसका ही है शेषमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । सत्त्व सबमें बानबे और नब्बेका है । आनतादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मनुष्य सहित उनतीसके बन्धमें मिथ्यादृष्टिमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस और सत्त्व बानबे नब्बेका है । सासादनमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व नब्बेका है । मिश्रमें उदय उनतीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है । असंयतमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है । अनुदिश अनुत्तरमें असंयतमें मनुष्यगति सहित उनतीसके बन्धमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है ।

तीसका बन्ध त्रसपर्याप्त उद्योत तिर्यंचगति सहित या मनुष्यगति तीर्थसहित या देवगति आहारकद्विक सहित होता है । इसे चारों गतिके जीव बाँधते हैं । उनमेंसे सब नारक मिथ्यादृष्टि और सासादनमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच उद्योत सहित तीसका बन्ध होता है । मिथ्यादृष्टिमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है । सासादनमें उदय उनतीसका सत्त्व नब्बेका है । मिश्रमें तीसका बन्ध नहीं है । असंयतमें मनुष्यगति तीर्थ सहित तीसका बन्ध होता है । घर्मामें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस,

नारकासंयतसम्यग्दृष्टिगळगे बं ३०। म। ती। उ २९॥ स ९१। अंजनादिचतुःपृथ्विगळोळ-संयतसम्यग्दृष्टिगळ्गनिवर्गं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानबंधककसंभवमक्कुं मुंपेळ्द नवविंशतिमनुष्यगति-युतस्थानमेबंधमक्कुमेंबुदत्थं। तिर्य्यग्गतियोळु सर्व्वतिर्य्यंचरुं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे बंध ३०। ति। उ। उ। २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०॥ स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ तत्रत्यसासादनंगे योग्यमनतिक्रमिसदे बं ३०। ति। उ। उ २१। २४। २६। ३०। ३१। स ९०। तिर्य्यंचमिश्रासंयतदेशसंयतरुगळ्गे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानबंधं संभविसदु। तिर्य्यंग्गतियुतमवरोळु संभविसदु। मनुष्यगतितीर्त्थयुतमुमसंभवमप्पुदरिंदं मुंपेळ्दष्टा-विंशतिस्थानं देवगतियुतमदं कट्टुवरेंबुदत्थं। मनुष्यगतियोळु मिथ्यादृष्टियोळु बं ३०। बि। ति। च। प। ति। उ। उ २१।२६।२८।२९।३०। स ९२।९०।८८।८४॥ सासादनंगे बं ३०। ति उ। उ २१। २६। ३०। स ९०॥ मिश्रनोळमसंयतनोळं देशसंयतनोळं प्रमत्तसंयतनोळं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं संभविसदु। अप्रमत्तसंयतंगमपूर्व्वकरणंगं बं ३०। दे आ २। उ ३०। स ९२॥ देवगतियोळु भवनत्रयं मोदल्गोंडु सहस्रारकल्पपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टिगळु द्योततिर्य्यंग्गतियुतमागि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुवागळा जीवंगळ्गे बं ३०। ति उ। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादन

ती। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९१। वंशामेघयोः बं ३०। म ती। उ २९। स ९१। अंजना-दिषु नास्ति।

तिर्यग्गतौ सर्वमिथ्यादृष्टौ। बं ३० पं ति उ। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२। सासादने बं ३० ति उ। उ २१। २४। २६। ३०। ३१। स ९०। मिश्रादित्रये नास्य बन्धः। मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ बं ३० वि ति च पं ति। उ २१। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४। सासादने बं ३० ति उ। उ २१। २६। ३०। स ९०। मिश्रादिचतुष्के नास्य बन्धः। अप्रमत्तादिद्वये बं ३०। दे आ २। उ ३०। स ९२। देवगतौ भवनत्रयादि-

---

अठाईस, उनतीसका सत्त्व इक्यानबेका है। वंशा मेघामें उदय उनतीसका सत्त्व इक्यानबेका है। अंजना आदिमें यह बन्ध नहीं होता।

तिर्यंचगतिमें मिथ्यादृष्टिमें तिर्यंच उद्योत सहित तीसका बन्ध होता है। वहाँ उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका है और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासीका है। सासादनमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच उद्योत सहित तीसके बन्धमें उदय इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, तीस, इकतीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रादि तीन गुणस्थानोंमें इसका बन्ध नहीं होता।

मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टिमें दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यंच उद्योत सहित तीसके बन्धमें उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासीका होता है। सासादनमें तिर्यंच उद्योत सहित तीसके बन्धमें उदय इक्कीस, छब्बीस, तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रादि चार गुणस्थानोंमें इसका बन्ध नहीं है। अप्रमत्त अपूर्वकरणमें देवगति आहारकद्विक सहित तीसके बन्धमें उदय तीसका सत्त्व बानबेका है।

देवगतिमें भवनत्रिकसे सहस्रार पर्यन्त तिर्यंच उद्योत सहित तीसके बन्धमें मिथ्या-

गळ्गे बं ३०। ति उ। उ २१। २५। २९। स ९०॥ तत्रत्यमिश्रविविजरुगळ्गे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानबंधं संभविसदु। भवनत्रयासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानबंधं संभविसदु। मुं पेळ्द नवविंशतिस्थानमा मिश्रासंयतरोळु मनुष्यगतियुतमागि बंधमक्कुं। सौधर्म्मादिसहस्रारकल्पपर्य्यंतमाद कल्पजासंयतरोळु मनुष्यगतितीर्त्थयुतमागि त्रिंशत्प्रकृतिस्थानबंधमक्कुमल्लि। बं ३०। म। ति उ। २१। २५। २७। २८। २९। स ९३। ९१॥ आनताद्युपरिमग्रैवेयकपर्य्यंतं मिथ्यादृष्टिगळु सासादनरुं मिश्ररुं गतिस्वभावर्विंदं तिर्य्यग्गत्युद्योतयुतस्थानमं कट्टुरप्पुदरिंदं तत्रत्य तद्विविजरोळु तद्बंधस्थानबंधं संभविसदु। तदानतादिसर्व्वार्त्थसिद्धिपर्य्यंतमादऽसंयतसम्यग्दृष्टिगळु मनुष्यगतितीर्त्थयुत त्रिंशत्प्रकृतिस्थानमं कट्टुवरंतु कट्टुवागळवर्गळ्गे बं ३०। म ती। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९३। ९१॥ एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं देवगत्याहारद्वयतीर्त्थयुतबंधस्थानमप्पुदरिंदं अप्रमत्तापूर्व्वकरण द्वितयसंयमिगळ्गे बंधस्थानमप्पुदरिंदमा स्थानमं कट्टुवागळवरुगळ्गे बं ३१। दे। आ २। ती १। उ ३०। स ९३॥ एकप्रकृतिबंधस्थानं निर्ग्गंतिस्थानमदुवुमपूर्व्वकरणंगे बंधमप्पागळु बं १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ अनिवृत्तिकरणोपशमकक्षपकरोळु बं १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ ८०। ७९। ७८। ७७॥ सूक्ष्मसांपरायंगे बं १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७॥ उपशांतकषायंगे बं ०। उ ३०।

सहस्रारांतेषूद्योततिर्यग्गतियुतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ बं ३० ति उ। उ २१। २५। २७। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। सासादने बं ३०। ति उ। उ २१। २५। २९। स ९०। मिश्रे भवनत्रयासंयते च न त्रिंशत्कं। किं तर्हि ? तन्मनुष्यगतियुतं च नवविंशतिकमेव संभवति। सौधर्मादिसहस्रारांतासंयते मनुष्यगतितीर्थयुतं। बं ३० म ती। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९३। ९१। आनताद्युपरिमग्रैवेयकांतमिथ्यादृष्ट्यादित्रये नास्य बन्धः। आनतादिसर्वार्थसिद्ध्यंतासंयते तु मनुष्यगतितीर्थयुतं। बं ३०। म। ती। उ २१। २५। २७। २८। २९। स ९३। ९१। एकत्रिंशत्कं देवगत्याहारद्वयतीर्थयुतत्वादप्रमत्तापूर्वकरणा एव बध्नंति। बं ३१। दे आ २ ती। उ ३०। स ९३। एकबन्धोविगतिरपूर्वकरणे बं १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०। अनिवृत्तिकरणे बं १। उ ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८०। ७९। ७८। ७७। सूक्ष्मसांपराये

दृष्टिमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका सत्त्व तिरानबे, इक्यानबेका है। सासादनमें उदय इक्कीस, पच्चीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें भवनत्रिकमें असंयतमें तीसका बन्ध नहीं है। मनुष्यगतियुत उनतीसका ही बन्ध है। सौधर्मसे सहस्रार पर्यन्त असंयतमें मनुष्य तीर्थ सहित तीसके बन्धमें उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व तिरानबे, इक्यानबेका है। आनतादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टि आदि तीनमें तीसका बन्ध नहीं है। आनतादि सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त असंयतमें मनुष्य तीर्थ सहित तीसका बन्ध होता है, वहाँ उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका और सत्त्व तिरानबे, इक्यानबेका है।

इकतीसका बन्ध देवगति आहारकद्विक तीर्थंकर सहित होता है इससे उसको अप्रमत्त अपूर्वकरण ही बाँधते हैं। वहाँ उदय तीसका सत्त्व तिरानबेका है। अपूर्वकरणमें एकके बन्धमें उदय तीस सत्त्व तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। अनिवृत्तिकरणमें एकके बन्धमें उदय तीसका, सत्त्व तिरानबे आदि चार तथा अस्सी आदि चारका है। सूक्ष्म-

स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ क्षीणकषायंगे बं ० । उ ३० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ सयोग-केवलिगे स्वस्थानदोळु बं । ० । उ ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ समुद्घातसयोगकेवलि-गळगे बं ० । उ २० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ अयोगिकेवलिगळगे बं । ० । उ ३० । ३१ । ९ । ८ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥

रंजिसि ति जगत्त्रयजनंगळ नेत्रमनेय्दे होन्नु
हेण्मंजिन पुंजमिद्रधनु संजेयकें पनेपोल्तुर्कतवं ।
भुंजिप मूढरंतिरलि तद्गुणवर्ज्जन वक्षनक्षि
गळगंजनमं जनाललितनृत्यमेनल्जडरेंतु काण्वरो ॥

इंतु बंधैकाधिकरणदोळु उदयसत्त्वस्थानंगळु सयोगि सल्पट्टुवनंतरमुदयैकाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानसंख्येगळं पेळ्दपरु :—

वीसादिसु बंधंसा णभदुछणवपणपणं च छस्सत्तं ।
छण्णव छड दुसु छद्दस अट्ठदसं छक्कछक्क णभतिदुसु ॥७४६॥

विंशत्यादिसु बंधांशाः नभद्विषण्णवपंच पंच च षट्सप्त षण्णव षडष्ट द्वयोः षड्दशाष्टदश-षट्क षट्कं नभस्त्रिद्वयोः ॥

विंशत्याद्युदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वंगळु पेळल्पडुगु—। मल्लि विंशत्युदयस्थानाधिकरण-दोळु यथाक्रमदिंदं बंधस्थानमुं सत्त्वस्थानमुं नभमुं द्वितयमुमक्कुं । उ २० । बं । ० । स २ । एकविंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळु षड्बंधथानंगळु नवसत्त्वस्थानंगळुमप्पुवु । उ २१ । बं ६ । स ९ ॥ चतुर्विंशतिस्थानाधिकरणदोळु पंच पंचबंध सत्त्वस्थानानंगळप्पुवु । उ २४ । बं ५ । स ५ ॥

बं १ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ । उपशान्तकषाये बं ० उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । क्षीणकषाये बं ० उ ३० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । सयोगे स्वस्थाने बं ० उ ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । समुद्घाते बं ० उ २० । २१ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । अयोगे बं ० उ ३० । ३१ । ९ । ८ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ ॥७४५॥ अथ द्वितीयभेदमाह—

विंशतिकाद्युदयस्थानेषु बन्धसत्त्वस्थानानि क्रमेण विंशतिके नभः द्विकं, एकविंशतिके षण्णव,

---

साम्परायमें एकके बन्धमें उदय तीसका, सत्त्व तिरानबे आदि चार तथा अस्सी आदि चार-का है । अबन्धमें उपशान्त कषायमें उदय तीसका सत्त्व तिरानबे आदि चारका है । क्षीण-कषायमें उदय तीसका सत्त्व अस्सी आदि चारका है । सयोगीमें स्वस्थान केवलीके उदय तीस, इकतीसका सत्त्व अस्सी आदि चारका है । समुद्घातकेवलीमें उदय बीस, इक्कीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, इकतीसका और सत्त्व अस्सी आदि चारका है । अयोगीमें उदय तीस, इकतीस, नौ, आठका है । सत्त्व अस्सी आदि चार तथा दस, नौका है ॥७४५॥

आगे उदयको आधार और बन्ध सत्त्वको आधेय करके कथन करते हैं—

बीस आदि उदयस्थानोंमें बन्धस्थान और सत्त्वस्थान क्रमसे बीसमें शून्य दो, इक्कीसमें छह नौ, चौबीसमें पाँच-पाँच, पच्चीसमें, छह सात, छब्बीसमें छह नौ, सत्ताईस-

पंचविंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळु षट्सप्तबंधसत्वस्थानंगळप्पुवु । उ २५ । बं ६ । स ७ ॥ षड्विंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळु षड्नवबंध सत्व स्थानंगळप्पुवु उ २६ । बं ६ । स ९ ॥ सप्तविंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळमष्टाविंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळं प्रत्येकं बंधसत्वस्थानंगळु षडष्टंगळुमप्पुवु । उ २७ । बं ६ । स ८ । मत्तं उ २८ । बं ६ । स ८ ॥ नवविंशतिस्थानोदयाधिकरणदोळु षड् दश स्थानंगळप्पुवु । उ २९ । बं ६ । स १० । त्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानाधिकरणदोळष्टदश बंधसत्वबंधसत्त्वस्थानंगळप्पुवु । उ ३० । बं ८ । स १० ॥ एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयाधिकरणदोळु षट्कषट्कबंधसत्वस्थानंगळप्पुवु । उ ३१ । बं ६ । स ६ ॥ नवोदयस्थानाधिकरणदोळमष्टप्रकृत्युदयस्थानाधिकरणदोळं प्रत्येकं नभत्रिबंधसत्वस्थानंगळप्पुवु । उ ९ । बं । ० । स ३ ॥ मत्तं उ ८ । बं । ० । स ३ ॥ सर्व्वसमुच्चयसंदृष्टि :

उ	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
बं	०	६	५	६	६	६	६	६	८	६	०	०
सत्व	२	९	५	७	९	८	८	१०	१०	६	३	३

विंशत्याद्युदयस्थानंगळोळु पेळल्पट्ट बंधसत्वस्थानसंख्याविषयभूतस्थानंगळावावउवं दोडे पेळ्वपरु ।

वीसुदये बंधो णहि उणसीदी सत्तसत्तरी सत्तं ।
इगिवीसे तेवीसं पहुडी तीसंतया बंधा ॥७४७॥

विंशत्युदये बंधो न ह्येकोनाशीति सप्तसप्ततिसत्वमेकविंशत्या त्रयोविंशतिप्रभृतित्रिंशबंधानि बंधाः ॥

विंशतिप्रकृतिस्थानोदयदोळुबंधमिल्ल । एकोनाशीतियुं सप्तसप्ततियुं सत्वंगळप्पुवु । उ २० । बं । ० । स ७९ । ७७ ॥ एकविंशतिस्थानोदयदोळु त्रयोविंशतिप्रभृति त्रिंशदंतमाद बंधस्थानंगळप्पुवु । सत्वस्थानंगळं पेळ्वपरु :—

चतुर्विंशतिके पंच पंच, पंचविंशतिके षट् सप्त, षड्विंशतिके षड्नव सप्ताष्टाग्रविंशतिकयोः षडष्टौ । नवविंशतिके षड् दश, त्रिंशत्केऽष्टौ दश । एकत्रिंशत्के षट् षट् नवकाष्टकयोर्नभस्त्रीणि ॥७४६॥ तानि कानीति चेदाह—

विंशतिके बन्धो नहि । सत्त्वं नवसप्ताग्रससप्ततिके द्वे । एकविंशतिके बन्धः त्रयोविंशतिकादीनि त्रिंशत्कान्तानि षट् ॥७४७॥

अठाईसमें छह आठ, उनतीसमें, छह दस, तीसमें आठ दस, इकतीसमें छह-छह, नौ और आठमें शून्य तीन जानना । अर्थात् इतनी-इतनी प्रकृतियोंके उदयमें उक्त प्रकारसे नानाजीवोंके बन्धस्थान और सत्त्वस्थान होते हैं ॥७४६॥

वे कौनसे हैं यह कहते हैं—

बीसके उदयस्थानमें बन्ध नहीं है । सत्त्व उन्यासी, सतहत्तर दो हैं । इक्कीसके उदयमें बन्धस्थान तेईस आदि तीस पर्यन्त छह हैं ॥७४७॥

सत्तं तिणउदिपहुडी सीदंता अट्ठसत्तरी य हवे ।
चउवीसे पढमतियं णववीसं तीसयं बंधो ॥७४८॥

सत्वं त्रिनवति प्रभृत्यशीति अंतान्यष्टसप्ततिश्च भवेत् । चतुर्विंशत्यां प्रथमत्रयं नवविंशति-त्रिंशच्च बंधः ॥

त्रिनवतिप्रभृत्यशीत्यंतमावष्टसप्ततियुं सत्वमक्कुं । उ २१ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । ८० । ७९ ॥ चतुर्विंशत्युदयस्थानदोळु बंधस्थानंगळु प्रथमत्रयमुं नवविंशतित्रिंशत्स्थानमुमप्पुवु ॥ सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु ।—

बाणउदीणउदिचऊ सत्तं पणछस्सगट्ठणवबीस ।
बंधा आदिमछक्कं पढमिल्लं सत्तयं सत्तं ॥७४९॥

द्वानवतिन्नंवतिचतुःसत्वं पंचषट्सप्ताष्टनविंशत्यां । बंधः आदिमषट्कं प्रथमतनसप्तकं सत्वं ॥ द्वानवतियुं नवतिचतुःस्थानंगळुं सत्वमक्कु । उ २४ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । सत्व ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥

पंचविंशतिषड्विंशतिसप्तविंशति अष्टाविंशतिनवविंशत्युदयस्थानंगळोळु बंधस्थानंगळु त्रयोविंशत्यादिषट्स्थानंगळु प्रत्येकमप्पुवल्लि पंचविंशतिस्थानोदयदोळु प्रथमतनसप्तस्थानंगळु सत्वमक्कुं । उ २५ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ षड्विंशत्याद्युदयस्थानंगळोळु सत्वंगळं पेळ्दपरु ।—

ते णवसगसदरिजुदा आदिमछस्सीदि अट्ठसदरीहिं ।
णवसत्तसत्तरीहिं सीदिचउक्केहि सहिदाणि ॥७५०॥

तानि नवसप्तसप्ततियुतानि आदिमषडशीत्यष्टसप्तत्या । नवसप्तसप्तत्याऽशीतिचतुर्भिः सहितानि ॥

सत्त्वं त्रिनवतिकादीन्यशीतिकान्तान्यष्टसप्ततिकं च स्यात् । चतुर्विंशतिके बन्धः प्रथमत्रयं नवविंशतिकं त्रिंशत्कं च ॥७४८॥

सत्त्वं द्वानवतिकं नवतिकादिचतुष्कं च । पंचषट्सप्ताष्टनवाग्रविंशतिकेषु बन्धस्त्रयोविंशतिकादीनि षट्, सत्त्वं पंचविंशतिके आद्यसप्तकं ॥७४९॥

सत्त्व तिरानबेसे अस्सी पर्यन्त तथा अठहत्तरका होता है । चौबीसके उदयमें बन्ध प्रथम तीन, उनतीस, तीस ऐसे पाँच हैं ॥७४८॥

सत्त्व बानबे और नब्बे आदि चारका है । पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसके उदयमें बन्ध तेईस आदि छहका है । और सत्त्व पच्चीसमें आदिके सातका है ॥७४९॥

षड्विंशत्युदयस्थानदोळु सत्वस्थानंगळु तानि मुन्नं पंचविंशत्युदयस्थानदोळु पेळ्द त्रिनवत्यादिसप्तस्थानंगळ्गं नवसप्तति सप्तसप्ततिस्थानद्वययुतंगळप्पुवु। उ २६। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८२। ७९। ७७॥ सप्तविंशत्युदयस्थानदोळु सत्वस्थानंगळु मा प्रथमतन षट्स्थानंगळु मशीत्यष्टासप्ततिद्वयसहितंगळप्पुवु। उ २७। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८०। ७८॥ अष्टविंशत्युदयस्थानदोळु सत्वस्थानंगळु मा प्रथमतन षट्स्थानंगळं नवसप्तति सप्तसप्ततियुतंगळु मप्पुवु। उ २८। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ७९। ७७॥ नवविंशत्युदयस्थानदोळु प्रथमतन षट्स्थानंगळु मशीत्यादिचतुःस्थानंगळं सत्वमक्कु। उ २९। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८०। ७९। ७८। ७७॥

तीसे अट्ठवि बंधो एउणतीसंव होदि सत्तं तु।
इगितीसे तेवीसप्पहुडी तीसंतयं बंधो ॥७५१॥

त्रिंशत्स्वष्टावपि बंधः एकान्नत्रिंशद्ध्रुवति सत्त्वं तु। एकत्रिंशत्सु त्रयोविंशतिप्रभृति त्रिंशदंतो बंधः॥

त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयदोळु अष्टबंधस्थानंगळप्पुवु। सत्त्वस्थानंगळेकान्नत्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानदोळु पेळ्द त्रिनवत्यादि षट्स्थानंगळु मशीत्यादिचतुःस्थानंगळु मप्पुवु। उ ३०। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। ३१। स ९३। ९२। ९१। ९०। ८८। ८४। ८०। ७९। ७८। ७७। एकत्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानदोळु बंधंगळु त्रयोविंशतिप्रभृतित्रिंशत्प्रकृत्यंतमाद षड्बंधस्थानंगळप्पुवु।

सत्त्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

षड्विंशतिके तानि नवसप्ताग्रसप्ततिकयुतानि। सप्तविंशतिके आद्यानि षडशीतिकाष्टसप्ततिकयुतानि। अष्टाविंशतिके तान्येव षट् नवसप्ताग्रसप्ततिकयुतानि। नवविंशतिके तान्येव षडशीतिकादीनि चत्वारि च ॥७५०॥

त्रिंशत्के बन्धस्थानान्यष्टौ। सत्त्वस्थानान्येकान्नत्रिंशत्कोदयोक्तानि दश। एकत्रिंशत्के बन्धः त्रयोविंशतिकादीनि त्रिंशत्कान्तानि षट् ॥७५१॥

छब्बीसके उदयमें सत्त्व आदिके सात और उन्यासी-सतहत्तर ये नौ हैं। सत्ताईसके उदयमें सत्त्व आदिके छह तथा अस्सी, अठहत्तर ये आठका है। अठाईसके उदयमें सत्त्व आदिके छहका तथा उन्यासी सतहत्तर ऐसे आठका है। उनतीसके उदयमें सत्त्व आदिके छह और अस्सी आदि चारका है ॥७५०॥

तीसके उदयमें बन्धस्थान आठ और सत्त्वस्थान उनतीसके उदयमें कहे गये दस हैं। इकतीसके उदयमें बन्ध तेईससे तीस पर्यन्त छह हैं ॥७५१॥

सत्तं दुणउदिणउदीतिय सीदडहत्तरी य णवगट्ठे ।
बंधो ण सीदिपहुडिसु समविसमं सत्तमुद्दिट्ठं ॥७५२॥

सत्त्वं द्वानवतिनवतित्रयमशीत्यष्टसप्ततिश्च नवाष्टसु बंधो न अशीति प्रभृतिषु समविषमं सत्त्वमुद्दिष्टं ॥

द्वानवतियुं नवतित्रयमुमशीतियुमष्टसप्ततियं सत्त्वमक्कुं । उ ३१ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८० । ७८ ॥ नवप्रकृत्युदयस्थानदोळमष्टप्रकृत्युदयस्थानदोळं बंधस्थानमिल्ल । सत्त्वस्थानंगळु क्रमदिदमशीत्यादिषट्सत्वस्थानंगळोळु समत्रिस्थानंगळं विषमत्रिस्थानंगळुं सत्वमक्कुं । उ ९ । बं ० । स ८० । ७८ । १० ॥ मत्तमुदय ८ । बं । ० । स ७९ । ७७ । ९ ॥ यिल्लि विंशतिप्रकृत्युदयस्थानं तीर्त्थरहितसमुद्घातकेवलियोळुमक्कुमल्लि नामकर्म्मबंधमिल्ल । सत्वस्थानंगळु तीर्त्थरहितनवसप्ततिस्थानमुं सप्तसप्ततिस्थानमुमप्पुवु । उ २० । बं ० । स ७९ । ७७ । एकविंशत्युदयस्थानमानुपूर्व्यरहिततीर्त्थसहितं प्रतरद्वयलोकपूरणसमुद्घातकेवलियोळं चतुर्गतिजरोळमप्पुदानुपूर्व्ययुतोदयस्थानमप्पुदरिंदं विग्रहगतियोळुदयमक्कुमल्लि समुद्घातकेवलियोळु नामबंधमिल्ल । सत्वं तीर्त्थयुतंगळप्पशीतियुमष्टसप्ततियुमप्पुवु । उदय २१ । ती । बं । ० । स ८० । ७८ ॥ नारकरोळु रत्नप्रभादित्रितयदोळु नारकानुपूर्व्ययुतैकविंशतिस्थानोदयमिथ्यादृष्टियोळु उ २१ । बं २९ । पं । ति । म ३० । ति । उ । स ९२ । ९१ । ९० ॥

सत्त्वं द्वानवतिकं नवतिकत्रयमशीतिकमष्टसप्ततिकं च । नवकेऽष्टके च बन्धो नहि सत्त्वं क्रमेणाशीतिकादिषट्के समविषमाणि । विंशतिकं वितीर्थसमुद्घाते तत्र न नाम बन्धः । सत्त्वं नवसप्ताग्रसप्ततिके द्वे । एकविंशतिकं सतीर्थप्रतरद्वयलोकपूरणे तत्रापि न नाम बन्धः । सत्त्वं दशाष्टाग्रसप्ततिके द्वे, सानुपूर्व्यं चतुर्गतिविग्रहगतौ । तत्र नारकेषु घर्मादित्रये मिथ्यादृष्टौ—

उ २१ बं २९ पं, ति, म, ३० ति, उ, स, ९२, ९१, ९० । न सासादनमिश्रयोः । असंयते घर्मायामेव

सत्त्व बानबे, नब्बे आदि तीन, अस्सी और अठहत्तर इस प्रकार छहका है । नौ और आठके उदयमें बन्ध नहीं है । सत्त्व क्रमसे अस्सी आदि छहमें-से समरूप अर्थात् अस्सी और अठहत्तर नौमें और विषमरूप उन्यासी, सतहत्तर आठमें जानने ॥७५२॥

आगे इनका विस्तारसे कथन करते हैं—

बीसका उदय तीर्थंकर रहित सामान्य केवलीके समुद्घातमें होता है वहाँ बन्धका अभाव है । सत्त्व उन्यासी, सतहत्तरका है । इक्कीसका उदय तीर्थंकर केवलीके प्रतरके विस्तार संकोचमें तथा लोकपूरणमें होता है । वहाँ भी बन्ध नहीं है । सत्त्व अस्सी और अठहत्तर दो हैं ।

आनुपूर्वी सहित इक्कीसका उदय चारों गतिके विग्रहगति कालमें होता है । उसमें नरकगतिमें घर्मादि तीनमें मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है । सासादन और मिश्रमें इक्कीसका उदय नहीं होता । असंयतमें घर्मामें ही इक्कीसका उदय है । वहाँ बन्ध मनुष्यगति सहित उनतीसका या तीर्थ सहित तीसका है । सत्त्व बानबे,

आ मोवल मूरुं पृथ्विगळ सासादननोळं मिश्रनोळमेकविंशत्युदयमिल्ल। घर्म्मेय असंयतंगे उ २१। बं २९। म ३०। म ती। सत्व ९२। ९१। ९०॥ वंशे मेघेगळोळसंयतरुगळोळेकविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। अंजनादिचतुःपृथ्विगळ मिथ्यादृष्टिगळोळु उ २१। बं २९। पं। ति। म ३०। ति। उ। स ९२। ९०॥ तदंजनादि नाल्कुं पृथ्विगळ सासादनमिश्रासंयतरोळेकविंशत्युदयमिल्ल। तिर्य्यग्गतिमिथ्यादृष्टिगळ्गे विग्रहगतियोळष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि पंचबंधस्थानंगळुमप्पुवु। सत्वस्थानंगळु द्वानवतिनवत्यादिचतुःस्थानंगळप्पुवु। उ २१। बं २३। २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ तिर्य्यंचसासादननोळु उ २१। बं २९। पं। ति। म ३०। ति। उ। स ९०॥ तिर्य्यंचमिश्रनोळेकविंशत्युदयं संभविसदु। तिर्य्यंचासंयतनोळु उ २१। बं २८। दे। स ९२। ९०॥ तिर्य्यंचदेशसंयतनोळेकविंशत्युदयं संभविसदु। मनुष्यगतिजमिथ्यादृष्टियोळु उ २१। बं २३। २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ मनुष्यसासादनंगे उ २१। बं २९। पं ति। म ३०। ति उ। स ९०। मनुष्यमिश्रंगेकविंशत्युदयं संभविसदु। मनुष्यासंयतंगे उ २१। बं २८। दे २९। दे ती। स ९३। ९२। ९१। ९०। मनुष्यदेशसंयतादिगळोळेल्लियुं एक-

---

उ २१, बं २९, म ३० ती, स ९२, ९१, ९०। अंजनादौ मिथ्यादृष्टौ उ २१ बं २९ पं ति म ३० ति, उ, स, ९२, ९०। न सासादनादौ।

तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टौ उ २१, बं २३, २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४, ८२। सासादने उ २१ बं २९, पं, ति म, ३० ति, उ, स ९०। न मिश्रदेशसंयतयोः। असंयते उ २१, बं २८ दे, स ९२, ९०।

मनुष्ये मिथ्यादृष्टौ उ २१, बं २३, २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४। सासादने उ २१। बं २९ पं ति म। ३० ति। स ९०। न मिश्रे। असंयते उ २१ बं २८ दे। ती। स ९३, ९२, ९१ (९०) न देशसंयतादौ।

इक्यानबे, नब्बेका है। अंजनादिमें मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंचसहित या मनुष्यसहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बेका है। यहाँ सासादन आदिमें इक्कीसका उदय नहीं होता।

तिर्यंचगतिमें मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासीका है। सासादनमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यसहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्र और देशसंयतमें इक्कीसका उदय नहीं है। असंयतमें है वहाँ बन्ध देवसहित अठाईसका और सत्त्व बानबे नब्बेका है।

मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीका है। सासादनमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यसहित उनतीसका और तिर्यंच उद्योत सहित तीसका तथा सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें इक्कीसका, उदय नहीं। असंयतमें इक्कीसके उदयमें बन्ध देवसहित अठाईस, या देवतीर्थ सहित उनतीसका, सत्त्व तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। देशसंयत आदिमें इक्कीसका उदय नहीं है।

विंशत्युदयं संभविसदु। देवगतियोळु भवनत्रयकल्पजस्त्रीयर्गे मिथ्यादृष्टिगळोळु उ २१। बं २५। २६। २९। ३०॥ स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादनंगे उ २१। बं २९। पं ति। म ३०। ति। उ। स ९०। तत्रत्यमिश्रनोळेकविंशत्युदयं संभविसदु। तद्भवनत्रयदिविजरोळं कल्पजस्त्रीयरोळ-संयतरोळेकविंशत्युदयमिल्ल। सौधर्म्मकल्पद्वयसुररोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २१। बं २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९० तत्सासादनंगे उ २१। बं २९। पं ति। म ३०। ति उ। स ९०। तत्रत्य-मिश्रनोळेकविंशत्युदयं संभविसदु। तत्सौधर्मद्वयाऽसंयतंगे उ २१। बं २९। म ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ सानत्कुमारादिदशकल्पजरोळु मिथ्यादृष्टिगळोळु उ २१। बं २९। पं ति। म ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादनंगे उ २१। बं २९। पं ति। म ३०। ति उ। स ९०। तत्रत्यमिश्ररोळेकविंशत्युदयं संभविसदु। तत्सानत्कुमारादि दशकल्पजासंयतंगे उ २१। बं २९। म ३०। म ती। सत्त्व ९३। ९२। ९१। ९०॥ आनतादुपरिमग्रैवेयकावसानमाद दिविजरोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २१। बं २९। म। स ९२। ९०॥ आ सासादनंगे उ २१। बं २९। म। स ९०। तत्रत्यमिश्रंगे तदेकविंशत्युदयं संभविसदु। तदानतादुपरिमग्रैवेयकावसानमाद-दिविजासंयतंगे उ २१। बं २९। म ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ अनुदिशानुत्तरचतुर्दश-विमानवासिसम्यग्दृष्टिदिविजरोळु उ २१। बं २९। म ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥

भवनत्रयकल्पस्त्रीषु मिथ्यादृष्टौ उ २१, बं २५, २६ (२८) २९, ३०, स ९२, ९०। सासादने। उ २१। बं २९। पं ति म। ३० ति उ। स ९०। न मिश्रे। असंयते उ २१। बं २९। म। ३० म ती। स ९३, ९२, ९१, ९०। उपरि दशकल्पेषु मिथ्यादृष्टौ उ २१। बं २९ पं ति, म, ३० ति, उ, स ९२, ९०। सासादने उ २१। बं २९ पं ति म। ३०। ति, उ, स ९०। न मिश्रे। असंयते। उ २१। बं २९ म। ३० म। ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। उपरिमग्रैवेय-

---

भवनत्रिक और कल्पवासी स्त्रियोंके मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका और तिर्यंच उद्योत सहित तीसका तथा सत्त्व नब्बेका है। मिश्र और असंयतमें यहाँ इक्कीसका उदय नहीं है। सौधर्मयुगलमें मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें इक्कीसका उदय नहीं है। असंयतमें इक्कीसके उदयमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका तथा सत्त्व तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। ऊपरके दस स्वर्गोंमें मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें इक्कीसके उदयमें बन्ध पंचेन्द्रिय-तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें इक्कीसका उदय नहीं है। असंयतमें इक्कीसके उदयमें बन्ध मनष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका सत्त्व तिरानबे, बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। ऊपर ग्रैवेयक

इंतेकविंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु चतुर्गतिजरोळु योजिसल्पट्टुवनंतरं चतुर्विंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमेंतेंदोडे—चतुर्विंशत्युदयस्थानमेकेंद्रियलब्ध्यपर्य्याप्तरोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळमल्लदेल्लियमुदयिसुवुदिल्लल्लि लब्ध्यपर्य्याप्तैकेंद्रियजीवंगळोळुमुदयिसुगुमा मिथ्यादृष्टिगळोळु उ २४। बं २३। २५। २६। २९। ३० स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ निर्व्वृत्यपर्य्याप्तैकेंद्रियमिथ्यादृष्टिगळोळु उ २४। बं २३। २५। २६। २९। ३०॥ स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ इल्लि तेजोवायुकायिकजीवंगळग मनुष्यगतियुतबंधस्थानभेदंगळु वर्जिजसल्पडुवुवु। सर्व्वसूक्ष्मापर्य्याप्ततेजोवायुसाधारणंगळोडनातपोद्योतयुतबंधभेदं त्यजिसल्पडुगुं।

यितु चतुर्विंशत्युदयस्थानदोळु बंधसत्त्वंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं पंचविंशत्युदयस्थानाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमा पंचविंशति उदयं चतुर्गतिजरोळुदयिसुगुमल्लि नारकमिथ्यादृष्टियोळु निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु उ २५। बं २९। पं ति। म ३०। ति उ। स ९२। ९१। ९०॥ नारकसासादननोळा पंचविंशतिस्थानोदयं संभविसदेकेंदोडे "णिरयं सासणसम्मो ण गच्छदि" एंबी नियममुंटप्पुदरिंदं मिश्रगुणस्थानदोळमा पंचविंशतिस्थानोदयं संभविसदेकेंदोडे

कान्तेषु मिथ्यादृष्टौ उ २१, बं २९, म, स ९२ ९०। सासादने उ २१। बं २९ म, स ९०, न मिश्रे। असंयते—उ २१, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। उपरि चतुर्दशविभागेषु सम्यग्दृष्टौ—उ २१, बं २९, म ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। चतुर्विंशतिकमपर्याप्तैकेन्द्रियमिथ्यादृष्टावेव तत्र लब्ध्यपर्याप्ते—

उ २४, बं २३, २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४, ८२। निर्वृत्यपर्याप्ते उ २४, बं २३ २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४, ८२। अत्र तेजोवायूनां मनुष्यगतियुतबन्धस्थानभेदाः सर्वसूक्ष्मापर्याप्ततेजोवायुसाधारणैः सहातपोद्योतयुतबन्धभेदाश्च त्याज्याः।

पंचविंशतिकं चतुर्गत्यपर्याप्तेषु पर्याप्तैकेन्द्रियेषु च। तत्र नारके मिथ्यादृष्टौ—उ, २५, बं २९ पं, ति, म, ३० ति, उ, स ९२, ९१, ९० न सासादनेऽत्र मृतस्य नरकेऽनुत्पत्तेः। नापि मिश्रे, अत्रामरणात्।

पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें इक्कीसके उदयमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें इक्कीसके उदयमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका, सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें इक्कीसका उदय नहीं। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका और सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। ऊपरके चौदह विमानोंमें सम्यग्दृष्टीमें इक्कीसके उदयमें बन्ध और सत्त्व इसी प्रकार दो और चारका है।

चौबीसका उदय अपर्याप्त एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिके ही है। वहाँ लब्ध्यपर्याप्तकमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासी, बयासीका है। निर्वृत्यपर्याप्तमें भी ऐसा ही है। विशेष इतना है कि तेजकाय वातकाय जीवोंके मनुष्यसहित बन्धस्थानोंके भेद और सब सूक्ष्म अपर्याप्त तेजकाय वायुकाय साधारण सहित आतप उद्योत सहित बन्धभेद छोड़ देना।

पच्चीसका उदय चारों गतिके जीवोंके अपर्याप्तकालमें और पर्याप्त एकेन्द्रियमें होता है। सो पच्चीसके उदयमें सब नारकी मिथ्यादृष्टियोंमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य-

आ मिश्रंगे मिश्रपरिणामदोळु मरणमिल्लप्पुदरिंदमा निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालोदयस्थानोदयकसंभवमप्पुदरिंदं नारकासंयतसम्यग्दृष्टिगळोळु घर्म्मेय नारकासंयतंगे उ २५। बं २९। म ३०। म। ति। स ९१। ९२। ९०। वंशे मेघेगळोळऽसंयतंगे पंचविंशतिस्थानोदयं संभविसदेकेंदोडे शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेलल्लदे सम्यक्त्वग्रहणमिल्लप्पुदरिंदं। अंजने मोदलाद नाल्कुं पृथ्विगळोळसंयतंगे पंचविंशतिस्थानोदयमुमिल्ल। तिर्य्यंग्गतियोळेकेंद्रियपर्य्याप्तरोळु परघातोदययुतपंचविंशतिस्थानोदयदोळु उ २५। ए प। बं। २३। २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ मत्तमा तिर्य्यंग्गतिजलळब्ध्यपर्य्याप्तनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तत्रसजीवंगळोळु पंचविंशत्युदय संभविसदेंतेंदोडंगोपांगसंहननद्वययुतमागि षड्विंशत्युदयं संभविसुगुमल्लदे पंचविंशत्युदयस्थानं संभविसदप्पुदरिंदं॥ मनुष्यगतियोळमाहारकऋद्धियुतप्रमत्तसंयतंगाहारकशरीरदोळु संहननरहितांगोपांगयुतनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळाहारकशरीरदोळु उ २५। बं २८। दे। २९। दे ति। स ९३। ९२॥ देवगतियोळु भवनत्रयकल्पजस्त्रीयरुगळ्गे निर्व्वृत्यपर्य्याप्तकालदोळु उ २५। बं २५। २६। २९। ३०। सत्व ९२। ९०॥ आ सासादनंगे उ २५। बं २९। पं ति। म ३०। ति उ। स ७०॥ तन्मिश्ररुगळ्गे पंचविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतंगं तदुदयस्थानं संभविसदेंतेंदोडा भवनत्रयकल्पजस्त्रीयरोळु सम्यग्दृष्टिगळप्पुट्टरप्पुदरिंदं।

सौधर्मद्वयनिर्व्वृत्यपर्य्याप्तमिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २५। बं २५। २६। २९। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ आ सासादनरुगळ्गे उ २५। बं। २९। पं ति। म ३०। ति उ। स। ९०। तत्रत्य

असंयते घर्मायां उ २५, बं २९ म, ३० म ती, स ९२, ९१, ९०, न वंशामेघयोः शरीरपर्याप्तेरुपर्येतत्सम्यक्त्वोत्पत्तेः, नांजनादौ। एकेन्द्रियेषु परघातयुतं उ २५, ए प, बं २३, २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४, ८२, न त्रसेषु तत्रांगोपांगसंहननयुतषड्विंशतिकोदयसंभवात्, प्रमत्तस्याहारकशरीरे संहननोनांगोपांगयुतं उ २५, बं २८ दे, २९ दे ती। स ९३, ९२।

भवनत्रयकल्पजस्त्रीषु मिथ्यादृष्टौ उ २५, बं २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०। सासादने उ २५, बं

सहित उनतीस या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व बानवे आदि तीनका है। सासादनमें नहीं है क्योंकि सासादनमें मरकर नरकमें उत्पन्न नहीं होता और मिश्रमें मरण नहीं होता। असंयतमें घर्मामें बन्ध मनुष्यसहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थसहित तीसका सत्त्व बानबे आदि तीनका है। वंशा मेघा आदि नरकोंमें अपर्याप्त अवस्थामें असंयत गुणस्थान नहीं होता क्योंकि शरीर पर्याप्ति होनेपर ही वहाँ सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। एकेन्द्रियमें परघात सहित पच्चीसका उदय होता है। वहाँ बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासी, बयासीका है। त्रसमें पच्चीसका उदय नहीं है क्योंकि उनमें अंगोपांग सहित छब्बीसका ही उदय होता है। प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मनुष्यके आहारक शरीरमें संहनन और अंगोपांग सहित पच्चीसका उदय होता है। वहाँ बन्ध देवसहित अठाईसका या देव तीर्थसहित उनतीसका और सत्त्व तिरानबे, बानबेका है। भवनत्रिक और कल्पवासी स्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टिमें पच्चीसके उदयमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें पचीसके उदयमें बन्ध

मिश्ररोळु तत्पंचविंशत्युदयं संभविसदु। तत्सौधर्मद्वयासंयतंगे शरीरमिश्रकालदोळु उ २५। बं। २९। म ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ सानत्कुमारादि दशकल्पजमिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २५। बं। २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ तद्विजसासादनंगे उ २५। बं २९। पं ति। म। ३०। ति उ। स ९०। तद्विजमिश्ररोळी पंचविंशत्युदयं संभविसदु। तत्रस्थासंयतसम्यग्दृष्टिगे उ २५। बं २९। म। ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ आनतादुपरिमग्रैवेयकपर्य्यंतमाद मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २५। बं २९। म। स ९२। ९०॥ तत्र भव सासादनंगे उ २५। बं २९। म। स ९०॥ तन्मिश्रनोळु तदुदयस्थानं संभविसदु। तत्सुरासंयतंगे शरीरमिश्रकालदोळु उ २५। बं २९। म ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळु शरीरमिश्रकालदोळु सम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदं उ २५। बं। २९। म। ३०। म ती। स ९३। ९२। ९१। ९०॥

मितु पंचविंशत्युदयस्थानदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं षड्विंशत्युदयस्थानदोळु बंधसत्वंगळु योजिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे—षड्विंशत्युदयस्थानं तिर्य्यग्गतियोळं मनुष्यगतियोळमुदयिसुगुं। नरकदेवगतिजरोळुदयिसवेकेंदोडे संहननयुतत्रसलब्ध्यपर्याप्तनिर्व्वृत्यपर्याप्तजोवंगळोळमेकेंद्रियंगळ शरीरपर्याप्तकालदोळातपोद्योतयुतमा गुदयिसुगुमप्पुदरि मल्लि तिर्य्यग्म-

---

१५ २९ पं ति म, ३० ति उ, स ९०। न मिश्रे नाप्यसंयते सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तेः, सौधर्मद्वये मिथ्यादृष्टौ उ २५, बं २५, २६, २९, ३० ति उ। स ९२, ९०। सासादने उ २५, बं २९ पं ति म, ३०, ति उ, स ९०। न मिश्रे, असंयते उ २५, बं २९ म, ३० म ती। स ९, ३, ९२, ९१, ९०। उपरिमदशकल्पेषु मिथ्यादृष्टौ उ २५, बं २९ पं ति म, ३० ति उ। सासादने उ २५, बं २९ पं ति म, ३० ति उ, स ९०। न मिश्रे। असंयते उ २५। बं २९ म, ३० म ती। स ९३, ९२, ९१, ९०, उपरिमग्रैवेयकांतेषु मिथ्यादृष्टौ उ २५ बं २९ म, २० स ९२, ९०, सासादने उ २५, बं २९ म, स ९०। न तन्मिश्रे। असंयते उ २५ बं २९ म। ३० म ती। स ९३, ९२, ९१, ९०।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्र और असंयतमें वहाँ पचीसका उदय नहीं है क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर उनमें जन्म नहीं लेता। सौधर्मयुगलमें पचीसके उदयमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पचीस, २५ छब्बीस, उनतीस, तीसका सत्त्व बानवे, नब्बेका है। सासादनमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका तथा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थसहित तीसका और सत्त्व तिरानवे आदि चारका है। ऊपरके दस कल्पोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सासादनमें भी इसी ३० प्रकार है। सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्यतीर्थ सहित तीसका, सत्त्व तिरानवे आदि चारका है। उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्यगति सहित उनतीसका और सत्त्व बानवे, नब्बेका है। सासादनमें भी ऐसा ही है। मिश्रमें नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका सत्त्व तिरानवे आदि चारका है।

तिय त्रसलब्ध्यपर्य्याप्तरोळं निर्व्वृत्यपर्य्याप्तरोळमुदयिसुवागळु मिथ्यादृष्टिगळोळु त्रयोविंशत्यादि षड्बंधस्थानंगळोळष्टाविंशतिस्थानं पोरगागि शेषपंचस्थानंगळमे बंधसंभवमक्कुमागळु द्वानवति-नवत्यादिचतुःस्थानंगळ सत्वं संभविसुगुं। तिर्य्यग्मिथ्या उ २६। बंध २३। २५। २६। २९। । ३०। सत्व ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ एकेंद्रिय मिथ्यादृष्टिय शरीरपर्य्याप्तियोळातपोद्योत-युतमुं मेणुच्छ्वासनिश्वासयुतोदयषड्विंशतिस्थानदोळु उ २६। बं २३। २५। २६ । २९। ३०। सत्व ९२। ९०। ८८। ८४। ८२॥ ई एकेंद्रियंगळ षड्विंशत्युदयस्थानं सासादननोळु संभविसदे-कें दोडे तदुदयकालदिंदं मुन्न मेतद्गुणस्थान पोपुदप्पुदरिंदं। चतुर्विंशतिस्थानोदयदोळे सासादन गुणं संभविसुगु मेंबुदु तात्पर्य्य॥ तिर्य्यंचसासादनसम्यग्दृष्टियोळु षड्विंशतिस्थानोदयदोळु नव-विंशति त्रिंशत्प्रकृतिस्थानद्वय बंधमुं नवति सत्वस्थानमक्कुं। तिर्य्यंच सासादन उ २६। बं २९। म ति। ३०। ति उ। स ९०॥ ई सासादनंगष्टाविंशतिस्थानबंधमिल्लेकें दोडे औदारिकनिर्व्वृत्य-पर्य्याप्तकालदोळु "मिच्छदुगे देवचऊ तित्थं ण हि अविरदे अत्थि" येंदितु तद्बंधनिषेधमुंटप्पु-दरिंदं मिश्रगुणस्थानदोळु षड्विंशत्युदयस्थानं संभविसदु। असंयतसम्यग्दृष्टितिर्य्यंचरोळु षड्विं-शतिस्थानोदयदोळु अष्टाविंशतिस्थानमों दे बंधमक्कुं। सत्वं द्वानवति नवतिस्थानद्वयमे संभविसुगुं। तिर्य्यं. असंय.। उ २६। बंध। २८। दे। सत्व ९२। ९०॥ देशसंयततिर्य्यंचरोळु षड्विंशति-स्थानोदयं संभविसदु। मनुष्यगतिजमिथ्यादृष्टियोळु उ २६। बं २३। २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ मनुष्यसासादनंगे उ २६। बं २९। ति म। ३०। ति उ। स ९०। मिश्रंगे

षड्विंशतिकं त्रसलब्धिनिर्वृत्त्यपर्याप्ते संहननयुतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादीनि त्रिंशत्कांतान्यष्टाविंशतिकं विना पंच। सत्त्वस्थानानि द्वानवतिकं नवतिकादिचतुष्कं च। एकेन्द्रिये मिथ्यादृष्टौ शरीरपर्याप्तावातपोद्योतयुतमुच्छ्वासनिश्वासयुतं च। उ २६, बं २३, २५, २६, २९, ३०। स ९२, ९०, ८८, ८४, ८२। न सासादने तदुदयात्प्रागेव सासादनत्यजनादत्र चतुर्विंशतिकमुदेतीत्यर्थः। तिर्यक्सासादने बन्धो नवविंशतिकस्त्रिंशत्के। सत्त्वं नवतिकं। मिच्छदुगे देवचऊ णेति नाष्टाविंशतिकबंधः। न मिश्रे। असंयते बन्धोऽष्टाविंशतिकं। सत्त्वं द्वानवतिकनवतिके द्वे। न देशसंयते। मनुष्येषु मिथ्यादृष्टौ उ २६, बं २३, २५,

---

छब्बीसका उदय त्रस लब्ध्यपर्याप्तक निर्वृत्यपर्याप्तकके संहनन सहित होता है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें बन्धस्थान अठाईसके बिना तेईससे तीस पर्यन्त पाँच हैं। सत्त्वस्थान बानबे और नब्बे आदि चार हैं। एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिमें शरीर पर्याप्तिमें आतप या उद्योत उच्छ्वास सहित छब्बीसका उदय है। वहाँ बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका है और सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासी, बयासीका है। सासादनमें नहीं है क्योंकि छब्बीसका उदय होनेसे पहले ही सासादन छूट जाता है वहाँ चौबीसका उदय होता है। तिर्यंच पंचेन्द्रियके सासादनमें छब्बीसके उदयमें बन्ध उनतीस, तीसका और सत्त्व नब्बेका है। 'मिच्छदुगे देवचउ ण हि' इस वचनसे यहाँ अठाईसका बन्ध नहीं है। मिश्रमें छब्बीस-का उदय नहीं। असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। देशसंयतमें छब्बीसका उदय नहीं। मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीका है। सासादनमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य

षड्विंशतिस्थानोदयं संभविसदु। असंयतसम्यग्दृष्टिगे उ २६। बं २८। दे २९। दे। स ९३। ।९२ ।९१ ।९० ॥ देशसंयतादिगळोळु षड्विंशत्युदयस्थानं संभविसदु। तीर्थरहितकवाट-समुद्घातकेवलियोळौदारिकमिश्रकाययोगमुंटप्पुदरिंदमल्लि उ २६। बं।०। स। ७९। ७७॥ षड्विंशतिस्थानोदयैकाधिकरणं पेळल्पट्टुदु ॥

अनंतरं सप्तविंशतिस्थानोदयैकाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमदें तेंदोडे-सप्तविंशतिस्थानोदयं चतुर्गतिजरोळक्कुमल्लि रत्नप्रभादियाद मूरुं पृथ्विगळोळु शरीरपर्य्याप्ति-कालदोळु नारकरोळदयिसुगुमल्लि मिथ्यादृष्टिगळगे उ। २७। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ तीर्थयुतसत्त्वस्थानमिल्लि संभविसदेकें दोडे शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेले तीर्थ-सत्कर्म्मरुगळप्प मिथ्यादृष्टिगळगे सम्यक्त्वमक्कुमप्पुदरिंदं। सासादनंगे सप्तविंशत्युदयं संभविसदु। मिश्रंगं संभविसदु। आ असंयतंगे घर्म्मेयोळु उ २७। बं २९। म ३०। म। तीर्थ। ९२। ९१। ९०॥ वंशे मेघेगळ तीर्थसत्कर्म्ममिथ्यादृष्टिगळगे शरीरपर्य्याप्तिकालदोळु सम्यक्त्वमक्कु मप्पुदरिंदमा असंयतरुगळगे उ २७। बं। ३०। म। तीर्थ। सत्त्व। ९१। पंकप्रभादि मूरुं पृथ्वि-गळोळु मिथ्यादृष्टिगळगे उ २७। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ माघवियोळु मिथ्यादृष्टिगळगे उ २७। बं। २९। ति। ३०। ति उ॥ ई पंकप्रभादि नाल्कुं पृथ्विगळ सासादनमिश्रासंयतरुगळोळु सप्तविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तिर्य्यग्गतिजरोळु एकेंद्रियंगळगे

२६, २९, ३०, स ९२ ९०, ८८, ८४। सासादने उ २६। बं २९ ति, म, ३०, ति उ। स ९० न मिश्रे। असंयते उ २६, बं २८ दे। २९ दे ती, स ९३, ९२, ९१, ९०, न देशसंयतादौ। वितीर्थकवाटे उ २६, बं., स ७९, ७७।

सप्तविंशतिकं चतुर्गतिशरीरपर्याप्त्येकेन्द्रियोच्छ्वासपर्याप्तिकाले। तत्र घर्मादित्रये मिथ्यादृष्टौ उ २७, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०, तीर्थयुतसत्त्वस्थानमत्र न सम्भवति शरीरपर्याप्तेरुपरितत्सत्त्वमिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वोत्पत्तेः। न सासादनमिश्रयोः। असंयते घर्मायां—उ २७, बं २९ म, ३० म ती, स ९२, ९१ ९०।

सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें छब्बीसका उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका या देवतीर्थ सहित उनतीस-का है सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। देशसंयत आदिमें छब्बीसका उदय नहीं है। तीर्थंकर रहित सामान्य केवलीके कपाट समुद्घातमें छब्बीसका उदय होता है। वहाँ बन्ध नहीं है। सत्त्व उन्यासी और सतहत्तरका है।

सत्ताईसका उदय चारों गतिमें शरीर पर्याप्तिकालमें और एकेन्द्रियके उच्छ्वास पर्याप्ति कालमें होता है। सत्ताईसके उदयमें घर्मा आदि तीन नरकोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बेका है। यहाँ तीर्थंकर सहित सत्त्वस्थान सम्भव नहीं है; क्योंकि शरीर पर्याप्तिके ऊपर तीर्थसत्त्व सहित नारकी मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है। सासादन और मिश्रमें सत्ताईसका उदय नहीं होता। असंयतमें घर्मामें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या तीर्थ मनुष्य सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। वंशा मेघामें बन्ध मनुष्य

उच्छ्वासनिश्वासयुतातपनामं मेणुद्योतोदययुत जीवंगळोळे सप्तविंशतिस्थानमुदयियिसुगुमल्लि उ २७। बं २३।।२५।२६।२९।३०॥ स ९२। ९०। ८८। ८४॥ इल्लि द्व्यशीति सत्त्वस्थानं संभविसवेकेंदोडे एकेंद्रियजीवंगळुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तिकालदिदं मुन्नमे शरीर-मिश्रकालदोळे संभविसुगु मल्लदीयवसरदोळु मनुष्यद्विकमुं तेजोवायुकायिकंगळल्लदुळि वेकेंद्रियप्राणिगळु कट्टुवरप्पुदरिंदं तत्सत्त्वस्थानं संभविसदप्पुदरिंदं। ५

मनुष्यगतिजरोळु आहारकऋद्धियुतप्रमत्तसंयतरुगळाहारक शरीरपर्य्याप्तिकालदोळु सप्तविंशतिस्थानोदयमक्कुं। उ २७। बं २८। दे। २९। दे तीर्त्थं। स ९३। ९२॥ तीर्त्थयुतकवाट-समुद्घातकेवलियोळु उ २७। बं। ०। स ८०। ७८॥ देवगतिजरोळु भवनत्रयकल्पजस्त्रीयरुगळ्गे शरीरपर्य्याप्तिकालदोळु मिथ्या। उ २७। बं २५। २६। २९। ति म ३०। ति। उ। स ९२। ९०। तत्रत्यसासादनमिश्रासंयतरुगळोळी सप्तविंशतिस्थानोदयमिल्ल। सौधर्म्मकल्पद्वयजरुगळ्गे १० शरीरपर्य्याप्तिकालदोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २७ बं २५। २६। २९। ति। म। ३०। ति। उ। स ९२। ९०। तत्रत्यसासादन मिश्ररुगळ्गे सप्तविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतरुगळ्गे शरीर-

---

बंधामेधयोः उ २७, बं ३० म ती, स ९१, अंजनादित्रये मिथ्यादृष्टौ उ २७, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०, माघव्यां उ २७, बं २९ ति, ३० ति उ, स ९२, ९०, न सासादनादौ। एकेन्द्रियेषूच्छ्वासनिश्वास-युतातपोद्योतान्यतरयुतं। उ २७, बं. २३, २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४, द्व्यशीतिकं तु विकल्प्यं १५ तेजोवायुभ्यः शेषैकेन्द्रियेषूच्छ्वासपर्याप्तिकाले मनुष्यद्विकस्य बन्धात्। आहारकर्द्धौ उ २७, बं २८ दे, २९ दे तो, स ९३, ९२, सतीर्थकवाटे उ २७, बं, स ८०, ७८, भवनत्रयकल्पजस्त्रीषु मिथ्यादृष्टौ उ २७, बं २५, २६, २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०, न सासादनादौ। सौधर्मद्वये मिथ्यादृष्टौ उ २७ बं २५, २६, २९, ति

तीर्थसहित तीसका और सत्त्व इक्यानबेका है। अंजनादि तीनमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बेका २० है। माधवीमें बन्ध तिर्यंच सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादन आदिमें सत्ताईसका उदय नहीं है।

एकेन्द्रियोंमें उच्छ्वास निःश्वास और आतप उद्योतमें-से एक सहित सत्ताईसका उदय होता है। वहाँ बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका है सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीका है। बयासीका सत्त्व हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता; क्योंकि तेजकाय, २५ वायुकायको छोड़ शेष एकेन्द्रियोंमें उच्छ्वास पर्याप्तिकालमें मनुष्यद्विकका बन्ध होता है। आहारक शरीरवालेके सत्ताईसका उदय होता है। वहाँ बन्ध देवगतिके साथ अठाईसका या देवतीर्थ सहित उनतीसका है। सत्त्व तिरानबे, बानबेका है। तीर्थंकर सहित कपाट समुद्घातमें सत्ताईसका उदय होता है। वहाँ बन्ध नहीं है। सत्त्व अस्सी, अठहत्तरका है।

देवगतिमें भवनत्रिक और कल्पवासी स्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस ३० तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीस और तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे या नब्बे-का है। सासादन आदिमें सत्ताईसका उदय नहीं है। सौधर्म युगलमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पच्चीस-छब्बीस, मनुष्य या तिर्यंच सहित उनतीस या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादन और मिश्रमें सत्ताईसका उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य

पर्य्याप्तिकालदोळु उ २७। बं २९। म। ३०। म। तीर्त्थ। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ सानत्कुमारादि दशकल्पजरुगळ्गे शरीरपर्य्याप्तिकालदोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २७। बं २९। ति म। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादनमिश्ररुगळळोळु सप्तविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तदसंयतंगे उ। २७। बं २९। म। ३०। म। तीर्त्थ। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ आनतादुपरिम-ग्रैवेयकावसानमाद विविजरुगळोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २७। बं २९। म। स ९२। ९०। तत्रत्यसासादनमिश्ररुगळोळु सप्तविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतरुगळ्गे उ २७। बं २९। म ३०। म। तीर्त्थ। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ अनुविशानुत्तरविमानजासंयतरुगळ्गे उ २७। बं २९। म। ३०। म तीर्त्थ। स। ९३॥ ९२। ९१। ९०॥

यितु सप्तविंशतिस्थानोदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं अष्टाविंशतिस्थानोदयैकाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्वस्थानंगळु योजिसल्पडुगु—। मर्वेंतेंदोडष्टाविंशतिस्थानोदयं चतुर्गतिजरोळक्कुमल्लि घर्म्मेय नारकरोळुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तिकालदोळुदयिसुगुमल्लि मिथ्यादृष्टियोळु उ २८। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ यिल्लि तीर्त्थयुतैकनवतिसत्त्वस्थानं संभविसदेकेंदोडे युच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तिकालदोळु तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळ्गे मिथ्यात्वकर्म्मोदयाभावदिंदं सम्यक्त्वमक्कुमप्पुदरिंदं मिथ्यादृष्टियोळु तत्सत्त्वस्थानं

म, ३० ति उ, स ९२, ९०, न सासादनमिश्रयोः, असंयते उ २७, बं २९ ति, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०, उपरि दशकल्पेषु मिथ्यादृष्टौ उ २७, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०, न सासादनमिश्रयोः, असंयते उ २७, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। उपरि ग्रैवेयकान्तेषु मिथ्यादृष्टौ उ २७, बं २९ म, स ९२, ९०, न सासादनमिश्रयोः। असंयते। उ २७ बं २९, म ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। अनुदिशानुत्तरासंयते उ २७। बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। अष्टाविंशतिकं तिर्यग्मनुष्यशरीरपर्याप्तिदेवनारकोच्छ्वासपर्याप्त्योः। तत्र नारके घर्मायां मिथ्यादृष्टौ उ २८। बं २९ ति म,

---

सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थयुत् तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। ऊपर दस कल्पोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन मिश्रमें सत्ताईसका उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्यतीर्थ सहित तीसका सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन मिश्रमें नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। अनुदिश अनुत्तरमें असंयतमें भी इसी प्रकार हैं।

अठाईसका उदय तिर्यंच मनुष्यके शरीर पर्याप्ति कालमें और देव नारकियोंके उच्छ्वास पर्याप्तिमें होता है। वहाँ नारकियोंमें घर्मामें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। यहाँ इक्यानबेका सत्त्व नहीं है, क्योंकि इक्यानबेकी सत्तावाला यदि घर्मामें जाता है तो सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता।

संभविसदप्पुदरिंदं। घम्मेयोळसंयतंगे उ २८। बं २९। म। ३०। म तीर्त्थं। सत्त्व। ९२। ९१। ९०॥ वंशे मेघेगळ मिथ्यादृष्टियोळ् उ २८। बं २९। ति। म। ३०। ति। उ। स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादनमिश्रद्वयगळोळ् तदष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतसम्यग्दृष्टिगे उ २८। बं ३०। म। तीर्त्थं। स ९१॥

अंजनारिष्टे मघविगळोळ् मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २८। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९२। ९१॥ तत्रत्यसासादन मिश्रासंयतर्गीयष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। माघवियोळ् मिथ्यादृष्टिगे उ २८। बं २९। ति। ३०। ति उ। स ९२। ९०॥ तत्रत्यसासादनमिश्रासंयतद्वयगळोळी अष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तिर्य्यग्गतियोळ् मिथ्यादृष्टिगे शरीरपर्य्याप्तियोळ् उ २८। बं। २३। २५। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ तत्रत्यसासादनमिश्रद्वयगळोळीयष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तद्गतिजासंयतंगे उ २८। बं २८। दे। स ९२। ९०। तिर्य्यग्देशसंयतंगीयष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। मनुष्यगतियोळ् शरीरपर्य्याप्तिकालदोळ् मिथ्यादृष्टिगे उ २८। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४॥ तत्सासादननोळं मिश्रनोळमष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतंगे उ २८। बं २८। दे। २९। दे तीर्त्थं। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ मनुष्यदेशसंयतनोळीयष्टाविंशतिस्थानोदयं

३०, ति उ, स ९२, ९०। नात्रैकनवतिकसत्त्वं तत्र गंतुस्तत्सत्त्वस्य सम्यक्त्वात्यजनात्। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २८, बं २९ म, ३० म ती। स ९२, ९१, ९०। वंशामेघयोर्मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०। न सासादनमिश्रयोः। असंयते। उ २८, ३० म, ती, स ९१। अंजनादित्रये मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २९, ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०। न सासादनादौ। माघव्यां मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २३, २५, २६, २८ ति, ३० ति उ, स ९२ ९०। न सासादनादौ। तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २८, बं २८ दे, स ९२, ९०। न देशसंयते। मनुष्यगतौ मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, स ९२,

---

सासादन मिश्रमें अठाईसका उदय नहीं होता। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थयुत् तीसका है। सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। वंशा मेघामें मिथ्यादृष्टीमें बन्ध तिर्यंच मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन मिश्रमें नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य तीर्थयुत् तीसका और सत्त्व इक्यानबेका है। अंजनादि तीनमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन आदिमें अठाईसका उदय नहीं है।

तिर्यंचमें अठाईसके उदयमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बे, अठासी, चौरासीका है। सासादन मिश्रमें ऐसा उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका सत्त्व बानबे-नब्बेका है। देशसंयतमें अठाईसका उदय नहीं है।

मनुष्यगति मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीका है। सासादन मिश्रमें उदय नहीं है। असंयतमें

संभविसदु। प्रमत्तसंयतंगाहारकशरीरोच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळु उ २८। बं २५। दे। २९। दे ति। स ९३। ९२॥ दंडसमुद्घात तीर्त्थरहित केवलिगौदारिककाययोगदोळु उ २८। बं। ०। स ७९। ७७॥

देवगतिजरोळु भवनत्रयकल्पजस्त्रीयरुगळ्गे उच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तिकालदोळु तदुच्छ्वासनिश्वासनामकर्म्मयुतमागि मिथ्यादृष्टिगे उ २८। बं २५। २६। २९। ३०। स ९२। तत्रत्यसासादनमिश्रासंमतरुगळोळो यष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। सौधर्म्मद्वयविजरुगळोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २८। बं २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९०॥ सासादनमिश्ररोळीयष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतंगे उ २८। बं २९। म ३०। तीर्थं। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ सानत्कुमारादिदशकल्पजरोळ् मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २८। बं २९। ति। म। ३०। ति। उ। स ९२। ९०। तत्रत्यसासादन मिश्ररुगळोळीयष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतंगे उ २८। बं २९। म ३०। म तीर्थं। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ आनतादुपरिमग्रैवेयकावसानमाद दिविजरोळ् मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २८। बं २९। म। स ९२। ९०। तत्रस्थसासादन मिश्ररुळोळीयष्टाविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्रत्यासंयतंगे उ २८। बं २९। म ३०। म।

९०, ८८, ८४। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २८, बं २८ दे, ३० दे ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। न देशसंयते। आहारकद्वयुच्छ्वासपर्याप्तौ उ २८, बं २८ दे। २९ दे ती। स ९३, ९२। वितीर्थदंडसमुद्घातस्यौदारिकयोगे उ २८, बं, स ७९, ७७। भवनत्रयकल्पजस्त्रीषु मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०। न सासादनादौ। सौधर्मद्वये मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २५, २६, ३०, स ९२, ९०। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २८, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९० उपरि दशकल्पेषु मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २८, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०। आनतादुपरिमग्रैवेयकान्तेषु मिथ्यादृष्टौ उ २८, बं २९ म, स ९२, ९०। न

बन्ध देवसहित अठाईसका या देवतीर्थ सहित उनतीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। देशसंयतमें ऐसा उदय नहीं है। आहारकमें उच्छ्वास पर्याप्तिमें अठाईसका उदय होता है। वहाँ बन्ध देवसहित अठाईसका या देवतीर्थ सहित उनतीसका है। सत्त्व तिरानबे-बानबेका है। तीर्थंकर रहित दण्ड समुद्घातमें औदारिक योगमें अठाईसका उदय होता है। वहाँ बन्ध नहीं होता। सत्त्व उनासी व सतहत्तरका है।

देवगतिमें भवनत्रिक और कल्पवासी स्त्रियोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका, सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादन आदिमें नहीं है। सौधर्म युगलमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन मिश्रमें अठाईसका उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थसहित तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। ऊपर दस कल्पोंमें मिथ्यादृष्टीमें बन्ध तिर्यंच मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन मिश्रमें उदय नहीं। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। आनतादि उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टीमें बन्ध मनुष्यगति सहित तीसका और सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादन

तीर्त्थं । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळसंयतरुगळेयप्परल्लि उ २८ । बं २९ । म ३० । म । तीर्त्थं । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥

यितष्टाविंशतिस्थानोदयाधिकरणदोळ् बंधसत्त्वस्थानंगळ् योजिसल्पट्टुवनंतरं नवविंशतिस्थानोदयाधिकरणदोळ् बंधसत्त्वस्थानंगळ् योजिसल्पडुगुमदें तेंदोडे :—

नवविंशतिस्थानं चतुर्ग्गंतिजरोळुदयिसुगुमल्लि धर्म्मेय नारकरोळ् मिथ्यादृष्टिगळगे भाषापर्य्याप्तिकालदोळ् दुःस्वरयुतमागि उ २९ । बं २९ । ति म । ३० । ति । उ । स ९२ । ९० । सासादनंगे उ २९ । बं २९ । ति । म ३० । ति उ । स ९० ॥ मिश्रंगे उ २९ । बं २९ । म । स ९२ । ९० ॥ असंयतंगे । उ २९ । बं २९ । म ३० । म ति । सत्व ९२ । ९१ । ९० ॥ वंशे मेघेगळ मिथ्यागळ्गे उ २९ । बं २९ । ति । म ३० । ति उ । स ९२ । ९० ॥ सासादनंगे उ २९ । बं २९ । म ति । ३० । ति उ । स ९० ॥ मिश्रंगे उ २९ । बं २९ । म । सत्व ९२ । ९० ॥ असंयतंगे उ २९ । बं २९ । म ३० । म तीर्त्थं । स ९२ । ९१ । ९० ॥ अंजनारिष्टे मघविगळोळ् मिथ्यादृष्टिगळ्गे उ २९ । बं २९ । ति । म । ३० । ति उ । स ९२ । ९० ॥ आसासादनंगे उ २९ । बं २९ । ति । म । ३० । ति । उ । स ९० ॥ मिश्रंगे उ २९ । बं २९ । म । स ९२ । ९० ॥ असंय-

---

सासादनमिश्रयोः । असंयते उ २८, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९० । अनुदिशानुत्तरासंयते उ २८, बं २९ म, ३० म, ती, स ९३, ९२, ९१, ९० ।

नवविंशतिकं नारकेषु भाषापर्याप्तिकाले दुःस्वरयुतं । न घर्मायां मिथ्यादृष्टौ उ २९ । बं २९ ति म, ३० ति, उ, स ९२, ९० । सासादने उ २९, बं २९ ति म, ३० ति, उ, स ९०, मिश्रे उ २९, बं २९ म, स ९२, ९० । असंयते उ २९, बं २९ म, ३० म ती, स ९२, ९१, ९० । वंशामेघयोर्मिथ्यादृष्टौ उ २९, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२ । ९० । सासादने उ २९ । बं २९ म ति । ३० ति उ । स ९० । मिश्रे उ २९, बं २९ म, स ९२, ९० । असंयते । उ २९ म । ३० म ती । स ९२, ९१, ९० । अंजनादित्रये मिथ्यादृष्टौ उ २९ । बं २९ ति म । ३० ति, उ, स ९२, ९० । सासादने उ २९,

---

मिश्रमें उदय नहीं। असंयतमें बंध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। अनुदिश अनुत्तरमें असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थयुत तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है।

उनतीसका उदय नारकियोंमें भाषापर्याप्तिकालमें दुःस्वर सहित होता है। घर्मामें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादनमें बन्ध इसी प्रकार है सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध मनुष्यसहित उनतीसका और सत्त्व बानबे-नब्बेका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। वंशा मेघामें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें बन्ध मनुष्य तिर्यंच सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व मिथ्यादृष्टिमें बानबे-नब्बेका और सासादनमें नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका और सत्त्व बानबे-नब्बेका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका या मनुष्य तीर्थ सहित तीसका है। सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। अंजनादि तीनमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें बन्ध पूर्ववत् उनतीस और तीसका है। सत्त्व

तंगे उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०॥ माघविगळोळु मिथ्यादृष्टिगे उ २९। बं २९। ति ३०। ति उ। सत्व ९२। ९०॥ सासादनंगे उ २९। बं २९। ति ३०। ति उ। स ९०॥ मिश्रंग उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०॥ आ असंयतंगे उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०॥

तिर्य्यंग्गतिजरोळु त्रसजीवंगळ्गे शरीरपर्य्याप्तियोळुद्योतयुतमागि उ। २९। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०। ८८। ८४। सासादनमिश्रद्वयंगळोळु नवविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तिर्य्यंग्गतिजतत्कालासंयतंगे उ २९। बं २८। दे। स ९२। ९०॥ देशसंयतंगे नवविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। मनुष्यगतिजरोळु मिथ्यादृष्टिजीवंगळुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळु उच्छ्वासनिश्वासोदययुतमागि उ २९। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०। स ९२। ९०॥ सासादनंगेयुं मिश्रंगेयुं नवविंशतिस्थानोदयं संभविसदु। तत्कालासंयतंगे उ २९। बं २८। दे २९। दे ति। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ देशसंयतंगो कालदोळो नवविंशत्युदयं संभविसदु। प्रमत्तसंयतंगाहारकशरीरभाषापर्य्याप्तियोळु सुस्वरनामयुतमागि उ २९। बं २८। दे। ती। स ९३। ९२॥ तीर्थ्ययुतदंडसमुद्घातकेवलिगळ्गे उ २९। बं।०। स ८०। ७८॥

बं २९ ति म। ३० ति उ, स ९०। मिश्रे। उ २९, बं २९ म, स ९२, ९०। असंयते उ २९, बं २९ म, स ९२ ९०। माघव्यां मिथ्यादृष्टौ उ २९। बं २९ ति। ३० ति उ। स ९२, ९०। सासादने उ २९। बं २९ ति। ३० ति उ। स ९०। मिश्रे। २९। बं २९ म। स ९२। ९०। असंयते उ २९। बं २९ म। स ९२। ९०। तिर्यक्त्रसे शरीरपर्याप्तावुद्योतयुतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ उ २९, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २९, बं २८ दे, स ९२, ९०। न देशसंयते। मनुष्येषूच्छ्वासपर्याप्तावुच्छ्वासयुते। तत्र मिथ्यादृष्टौ उ २९ बं २३, २५, २६, २८ २९, ३०, स ९२, ९०। न सासादनमिश्रयोः। असंयते उ २९, बं २८ दे। २९ दे ती। स ९३, ९२, ९१, ९०। न देशसंयते। आहारकद्विभाषापर्याप्तौ सुस्वरयुतं। उ २९, बं २८। दे २९ दे ती। स ९३, ९२

मिथ्यादृष्टिमें बानबे-नब्बेका और सासादनमें नब्बेका है। मिश्रमें असंयतमें बन्ध मनुष्य-सहित उनतीसका सत्त्व बानबे-नब्बेका है। माघवीमें मिथ्यादृष्टि और सासादनमें बन्ध तिर्यंच सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है और सत्त्व मिथ्यात्वमें बानबे-नब्बेका तथा सासादनमें नब्बेका है। मिश्र और असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका और सत्त्व बानबे-नब्बेका है।

त्रस तिर्यंचोंके शरीर पर्याप्तिकालमें उद्योत सहित उनतीसका उदय होता है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बे अठासी, चौरासीका है। सासादन मिश्रमें उनतीसका उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका है। सत्त्व बानबे-नब्बेका है। देशसंयतमें उनतीसका उदय नहीं है।

मनुष्यमें उच्छ्वास पर्याप्तिकालमें उच्छ्वास सहित उनतीसका उदय है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादन मिश्रमें उनतीसका उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईस या देवतीर्थ सहित उनतीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। देशसंयतमें उनतीसका उदय नहीं है।

तीर्त्थरहितमूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातकेवलिगळगुच्छ्वासनिश्वासनामकर्म्मोदययुतमागि उ २९। बं। ०। स ७९। ७७॥ देवगतिजरोळु भवनत्रयदेवदेविकल्पजस्त्रीयरुगळगे भाषापर्य्याप्तियोळु सुस्वरनामकर्म्मोदययुतमागि उ २९। बं २५। २६। २९। ३०। स ९२। ९०॥ सासादनंगे उ २९। बं २९। ति म। ३०। ति उ। स ९०॥ आ मिश्रंगे उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०॥ आ असंयतंगे उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०॥ सौधर्म्मद्वयदिविजरोळु मिथ्यादृष्टिगळगे उ २९। बं २९। ति। म। ३०। ति। उ। स ९२। ९०॥ आ सासादनंगे उ २९। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९०। मिश्रंगे। उ २९। बं २९।म। स ९२। ९०॥ असंयतंगे उ २९। बं २९। म। ३०। म ति। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ सानत्कुमारादि दशकल्पजरोळु मिथ्यादृष्टिगळगे उ २९। बं २९। ति। म ३०। ति। उ। ९२। ९०। आ सासादनरुगळगे उ २९। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९०॥ मिश्ररुळगे उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०। तद्दशकल्पजासंयतरुगळगे उ २९। बं २९। म ३०। म ति। स ९३। ९२। ९१। ९०॥ आनताद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद दिविजरोळु मिथ्यादृष्टिगळगे उ २९। बं २९। म। स ९२। ९०॥ आ सासादनरुगळगे उ २९। बं २९। म। स ९०। मिश्ररुगळगे उ २९। बं २९।

सतीर्थदंडसमुद्घाते। उ २९। बं। स ८०। ७८। वितीर्थकेवलिनो मूलशरीरप्रविष्टोच्छ्वासपर्याप्तावुच्छ्वास-युतं। उ २९, बं ०, स ७९, ७७। भवनत्रयकल्पस्त्रीषु भाषापर्याप्तौ सुस्वरयुतं। तत्र मिथ्यादृष्टौ उ २९, बं २५, २६, २९, ३०, स ९२, ९०। सासादने। उ २९ बं २९ ति म। ३० ति, उ, स ९०। मिश्रे उ २९, बं २९ म, स ९२, ९०। असंयते। उ २९। बं २९ म। स, ९२, ९०। सौधर्मद्वये मिथ्यादृष्टौ उ २९। बं २९, ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०, सासादने उ २९, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९०, मिश्रे २९, बं २९ म, स ९२, ९०, असंयते। उ २९, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०, उपरिदशकल्पेषु मिथ्यादृष्टौ उ २९, बं २९ ति म, ३० ति उ, स ९२, ९०, सासादने उ २९, बं २९ ति म। ३० ति

आहार शरीरके भाषा पर्याप्तिकालमें सुस्वर सहित उनतीसका उदय है। बन्ध देव-सहित अठाईसका या देवतीर्थ सहित उनतीसका है। सत्त्व तिरानबे-बानबेका है। तीर्थंकर सहित दण्ड समुद्घातमें उनतीसका उदय है। वहाँ बन्ध नहीं है। सत्त्व अस्सी-अठहत्तरका है। तीर्थरहित केवलीके मूल शरीरमें प्रविष्ट उच्छ्वास पर्याप्तिकालमें उच्छ्वास सहित उनतीसका उदय है। वहाँ बन्ध नहीं है। सत्त्व उन्यासी-सतहत्तरका है।

देवगतिमें भवनत्रिक और कल्पवासी स्त्रियोंमें भाषा पर्याप्तिमें सुस्वर सहित उनतीस का उदय है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें बन्ध तिर्यंच मनुष्य सहित उनततीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीस-का सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध मनुष्यसहित उनतीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। असंयत-में भी इसी प्रकार है। सौधर्म युगलमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है, सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें बन्ध मिथ्यादृष्टिकी तरह उनतीस-तीसका सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका सत्त्व बानबे-नब्बेका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या तीर्थ मनुष्य सहित तीसका है। सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। ऊपरके दस कल्पोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच मनुष्य सहित

म । स ९२ । ९० ॥ असंयतरुगळ्गे उ २९ । बं २९ । म । ३०।। म ती । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानजरुगळनिबरुं सम्यग्दृष्टिगळेयप्पुदरिंदं तन्नस्थरुगळ्गे उ २९ । बं २९ । म ३० । म ती । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ यितु नवविंशतिस्थानोदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळ योजिसल्पट्टुवनंतरं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळं योजिसल्पडुगुमदंतें दोडे—त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयं तिर्य्यंग्मनुष्यगतिद्वयजरोळेयक्कुं । नरकदेवगतिजरुगळोळुदययोग्यमल्तेंतेदोडे संहननोदययुतस्थानमप्पुदरिंदमल्लि तिर्य्यंग्गतिजरोळुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळुद्योतयुतमागियुमुद्योतरहित भाषापर्य्याप्तियोळु सुस्वरदुस्वरान्यतरोदययुतमागियुं मेणु त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमक्कु । मल्लियुद्योतयुतमागि मिथ्यादृष्टियोळु उ ३० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । सासादनंगं मिश्रंगं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयं संभविसदु ॥ असंयतंगे उ ३० । बं २८ दे । स ९२ । ९० ॥ देशसंयतंगे तदुदयं संभविसदु । भाषापर्य्याप्तियोळुद्योतरहितमागि मिथ्यादृष्टियोळु उ ३० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ स ९२ । ९० । ८८ । ८४ ॥ इल्लियष्टाशीतिचतुरशीतिसत्त्वस्थानंगळु विकलत्रयजीवंगळपेक्षेयिंदं सत्त्वसंभवमरि-

---

उ, स ९०, मिश्रे उ २९, बं २९ म, स ९२, ९०, असंयते उ २९, बं २९ म ती, स ९३, ९२, ९१, ९०, उपरिमग्रैवेयकान्तेषु मिथ्यादृष्टौ उ २९, बं २९ म, स ९२, ९०, सासादने उ २९ बं २९ म, स ९० । मिश्रे उ २९, बं २९, म, स ९२, ९० । असंयते उ २९, बं २९ म, ३० म तो, स ९३, ९२, ९१, ९० । अनुदिशानुत्तरासंयते उ २९, बं २९ म, ३० म ती, स ९३, ९२, ९१ ९० । त्रिंशत्कं तिर्यग्मनुष्ययोरेव संहननयुतत्वात् । तत्र तिर्यक्षूच्छ्वासपर्याप्तावुद्योतयुतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ उ ३०, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४ । न सासादनमिश्रयोः । असंयते उ ३०, बं २८ दे, स ९२, ९० । न देशसंयते । भाषापर्याप्तौ उद्योतवियुतसुस्वरदुःस्वरान्यतरयुतं । तत्र मिथ्यादृष्टौ उ ३०, बं २३, २५, २६, २८, २९,

---

उनतीस या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। सासादनमें बन्ध मिथ्यादृष्टिके समान और सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थसहित तीसका सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका सत्त्व बानबे-नब्बेका है। सासादनमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध मनुष्यसहित उनतीसका सत्त्व बानबे-नब्बेका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीस या मनुष्य तीर्थसहित तीसका और सत्त्व तिरानबे आदि चारका है। अनुदिश अनुत्तरमें असंयतमें बन्ध मनुष्यसहित उनतीस या मनुष्य तीर्थसहित तीसका है और सत्त्व तिरानबे आदि चारका है।

तीसका उदय तिर्यंच और मनुष्योंके ही है क्योंकि इसमें संहननका भी उदय सम्मिलित है। उनमें भी तिर्यंचोंमें उच्छ्वास पर्याप्तिमें उद्योत सहित तीसका उदय होता है। वहाँ मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है। सत्त्व बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीका है। सासादन मिश्रमें यह उदय नहीं है। असंयतमें बन्ध देव-सहित अठाईसका सत्त्व बानबे, नब्बेका है। देशसंयतमें यह उदय नहीं है। तिर्यंचोंमें भाषा पर्याप्तिमें उद्योत रहित और सुस्वर-दुःस्वरमेंसे एक सहित भी तीसका उदय होता है।

यल्पडुगुमें तें देोडा विकलत्रय जीवंगळ्ु सुरद्विकमुं नारकचतुष्टयमुमनुद्वेल्लनमं माडि पुनर्ब्बंधमं माळ्प योग्यतेयिल्लिप्पुदरिंदं पेळल्पट्टुदु। "पुण्णिवरं विगिविमळे" एंबितल्लि "सुरणिरयाउ-अपुण्णे वेगुव्वियछक्कमवि णत्थि" एंबितु तज्जीवंगळोळ्ु तद्बंधनिषेधमरियल्पडुगुं। भाषा-पर्य्याप्तियुत सासादनतिर्य्यंचगे उ ३०। बं २९। ति। म। ३०। ति उ। स ९०॥ मिश्रंगे उ ३०। बं २८। दे। स ९२। ९०॥ असंयतंगे उ ३०। बं २८। दे। स ९२। ९०॥ देशसंयतंगे उ ३०। बं २८। दे। स ९२। ९०॥ मनुष्यगतिजरोळ्ु तीर्त्थयुतमूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातकेवलियो-ळ्ुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळ्ुच्छ्वासनिश्वासोदययुतमागि उ ३०। बं।०। स ८०। ७८। तीर्त्थरहितमूलशरीरप्रविष्टसमुद्घातकेवलिगे भाषापर्य्याप्तियोळ्ु सुस्वरदुस्वरान्यतरोदययुतमागि उ ३०। बं।०। स ७९। ७७॥ मनुष्यमिथ्यादृष्टिगळगे भाषापर्य्याप्तियोळ्ु सुस्वरदुस्वरान्यतरो-दययुतमागि उ ३०। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ स ९२। ९१। ९०॥ इल्लि तीर्त्थयुत-सत्त्वस्थानं नरकगमनाभिमुखजीवनोळ्ु संभविसुगुमेंदरियल्पडुगुं। सासादनंगे उ ३०। बं २८। दे। २९। तिम। ३०। ति उ। स ९०॥ मिश्रंगे उ ३० बं २८। दे। स ९२। ९०॥ असंयतंगे उ

३०, स ९२, ९०, ८८, ८४। अत्राष्टाशीतिकचतुरशीतिकसत्त्वं विकलत्रयापेक्षं। एषामेव सुरद्विकनारकचतु-ष्कोद्वेल्लने कृते पुनर्बंधस्याभावात्। सासादने उ ३०, बं २९ ति म, ३० ति, उ, स ९०। मिश्रे उ ३०, बं २८ दे, स ९२, ९०, असंयते उ ३०, बं २८ दे, स ९२, ९०। देशसंयते उ ३०, बं २८ दे, स ९२, ९०। मनुष्येषु सतीर्थमूलशरीरप्रविष्टयोरुच्छ्वासयुतं। उ ३०, बं०, स ८०, ७८। वितीर्थमूलशरीरप्रविष्टस्य भाषापर्याप्तौ सुस्वरदुःस्वरान्यतरयुतं। उ ३०, बं०। स ७९, ७७। मिथ्यादृष्टौ भाषापर्याप्तौ सुस्वरदुः-स्वरान्यतरयुतं उ ३०, बं २३, २५, २६, २८, २९ (३०) स ९२, ९१, ९०। अत्र सतीर्थसत्त्वं नरक-गमनाभिमुखापेक्षं। सासादने उ ३०। बं २९ ति म। ३० ति उ। स ९०। मिश्रे उ ३०। बं २८ दे,

वहाँ मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है और सत्त्व बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासीका है। यहाँ अठासी-चौरासीका सत्त्व विकलत्रयकी अपेक्षा कहा है। क्योंकि इन्हींके सुरद्विक और नारक चतुष्ककी उद्वेलना होनेपर पुनः बन्धका अभाव है। सासादनमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व नब्बेका है। मिश्र असंयत देशसंयतमें बन्ध देवगति सहित अट्ठाईसका और सत्त्व बानबे-नब्बेका है।

मनुष्योंमें तीर्थंकरके मूल शरीरमें प्रवेश करते हुए उच्छ्वास सहित तीसका उदय होता है। वहाँ बन्ध नहीं है। सत्त्व अस्सी, अठहत्तरका है। तीर्थंकर रहितके मूल शरीरमें प्रविष्ट होनेपर भाषा पर्याप्तिमें सुस्वर या दुःस्वर सहित तीसका उदय होता है। वहाँ बन्ध नहीं है। सत्त्व उन्यासी सतहत्तरका है। सामान्य मनुष्यके भाषा पर्याप्तिमें सुस्वर या दुःस्वर सहित तीसका उदय है। वहाँ बन्ध मिथ्यादृष्टिमें तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व बानबे, इक्यानबे, नब्बेका है। यहाँ इक्यानबेका सत्त्व नरक जानेके अभिमुख तीर्थंकरकी सत्तावालेकी अपेक्षा कहा है। सासादनमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका और तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। सत्त्व नब्बेका है। मिश्रमें बन्ध देवसहित अठाईसका और सत्त्व बानबे-नब्बेका है। असंयतसे अपूर्वकरणके छठे

३० । बं २८ । दे ।२९। दे ति । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ देशसंयतंगे उ ३० । बं २८ । दे । २९ । दे । ती । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ प्रमत्तसंयतगे उ ३० । बं २८ । दे ।२९। दे ती । स ९३ । ९२। ९१।९० ॥ अप्रमत्तसंयतंगे उ ३० । बं २८ । दे । २९ । दे । ती । ३० दे । आ । ३१ । दे ती । आ । स ९३ । ९२ ।९१ । ९० ॥ अपूर्व्वकरणंगुभयश्रेणियोळं षष्ठभागपर्य्यंतं उ ३० । बं २८ । दे । २९ । दे । ती । ३० दे आ । ३१ । दे आ । ती । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अपूर्व्वकरणसप्तम भागदोळु उ ३० । बं ९१ स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ अनिवृत्तिकरणंगे उ ३० । बं १ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ सूक्ष्म सांपरायंगे उ ३० । बं १ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ उपशांतकषायंगे उ ३० । बं । ० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ क्षीणकषायंगे उ ३० । बं । ० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ सयोगिकेवलि भट्टारकंगे उ ३० । बं ० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ अयोगिकेवलि भट्टारकंगे त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमिल्ल ॥

यितु त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरमेळत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमें तें दोडेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं तिर्य्यग्मनुष्यगतिजरोळे उदयिसुगुमल्लि तिर्य्यग्गतिजरोळु त्रसमिथ्यादृष्टिजीवंगळगे उद्योतयुतमागि भाषापर्य्याप्तियोळु सुस्वरदुःस्वरान्यतरोदयंयुतमागि उ ३१ । बं २३ । २५ । २६ ।२८। २९ । ३० । स ९२ ९०। ८८। ८४ ॥ सासादनंगे उ ३१ । बं २८ । दे । २९ । ति । म । ३० । ति उ । स ९० ॥

स ९२, ९० । असंयते उ ३० बं २८ दे, २९ दे ती, स ९३, ९२, ९१, ९० । देशसंयते उ ३०, बं, २८ दे, २९ दे ती, स ९३, ९२, ९१, ९० । प्रमत्ते उ ३०, बं २८ दे, २९ दे ती, स ९३, ९२, ९१, ९०, अप्रमत्ते उ ३०, बं २८ दे, २९ दे ती, ३० दे आ, ३१ दे ती आ, स ९३, ९२, ९१, ९०, उभयापूर्वकरणषष्ठभागे उ ३०, बं २८ दे, २९ दे ती, ३० दे आ, ३१ दे ती आ, स ९३, ९२, ९१, ९०, सप्तमभागे उ ३०, बं १, स ९३, ९२, ९१, ९०, अनिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायथोः उ ३०, बं १, स ९३, ९२, ९१, ९०, ८०, ७९, ७८, ७७, उपशान्तकषाये उ ३०, बं०, स ९३, ९२, ९१, ९०, क्षीणकषाये उ ३०, बं०, स ८०, ७९, ७८, ७७, सयोगे उ ३०, बं०, ८०, ७९, ७८, ७७, नायोगे ।

एकत्रिंशत्कं तिर्यक्त्रसमिथ्यादृष्टावुद्योतयुतं । भाषापर्याप्तौ सुस्वरदुःस्वरान्यतरयुतं । उ ३१, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, स ९२, ९०, ८८, ८४, सासादने उ ३१, बं २८ दे, २९, ति म, ३० ति उ,

---

भाग तक बन्ध देव सहित अठाईसका या देव तीर्थ सहित उनतीसका है । सत्त्व तिरानवे आदि चारका है । (अप्रमत्त और अपूर्वकरणके षष्ठ भाग पर्यन्त देव और आहारक सहित तीसका तथा देव आहारक तीर्थ सहित इकतीसका भी बन्ध होता है ।)

अपूर्वकरणके सातवें भागमें बन्ध एकका सत्त्व तिरानवे आदि चारका है । अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्परायमें बन्ध एकका, सत्त्व तिरानवे आदि चारका और अस्सी आदि चारका है । उपशान्त कषायमें बन्ध शून्य, सत्त्व तिरानवे आदि चारका है । क्षीणकषाय और सयोगीमें बन्ध नहीं, सत्त्व अस्सी आदि चारका है । अयोगीमें तीसका उदय ही नहीं है । इकतीसका उदय त्रस उद्योत सहित भाषापर्याप्तिमें सुस्वर या दुःस्वरके साथ तिर्यंचोंके होता है, मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पचीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका और सत्त्व

मिश्रगळगे उ ३१ । बं २८ । दे । स ९२ । ९० ॥ असंयतगळगे उ ३१ । बं २८ । दे । स ९२ । ९० ॥ देशसंयतगळगे उ ३१ । बं २८ । दे । स ९२ । ९० ॥ मनुष्यगतिजरोळ मिथ्यादृष्टियादियागि क्षीणकषायगुणपर्य्यंत मेल्लियुमेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयं संभविसदु । सयोगिकेवलि भट्टारकनोळु तीर्त्थयुतमागि भाषापर्य्याप्तियोळु उ ३१ । बं । ० । स ८० । ७८ ॥

यिंतेकत्रिंशत् प्रकृतिस्थानोदयाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं नवोदयस्थानदोळु बंध संभविसदु । सत्त्वस्थानंगळु योजिसल्पडुगुं मेंतेंदोडे अयोगिकेवलि भट्टारकनोळु "तदि एक्कं मणुवगदी पंचिंदियसुभगतसतिगादेज्जं । जसतित्थं मणुवाऊ उच्चं च अजोगिचरिमम्मि ॥" यॆंदितो द्वादशोदय प्रकृतिगळोळु नामकर्म्मप्रकृतिगळोळु तीर्त्थयुतमागि नवप्रकृतिगळप्पुवल्लि उ ९ । बं । ० । स ८० । ७८ । १० ॥ तीर्त्थरहितमागि उ ८ । बं । ० । स ७९ । ७७ । ९ ॥

यिंतुदयस्थानैकाधिकरणदोळु बंधसत्त्वस्थानंगळु परमागमाऽविरोधिंदं योजिसल्पट्टुवनंतरं सत्त्वैकस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळं गाथासप्तकिंदं आचार्य्यंतिदं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे —

सत्ते बंधुदया चदुसगस गणव चदुसगं च सगणवयं ।
छण्णव पणणव पणचदु चदुसिगिछक्कं णमेक सुण्णेगं ॥७५३॥

सत्वे बंधोदयाश्चतुः सप्त सप्त नव चतुः सप्त च सप्तनवकं । षण्नव पंचनव पंचचत्वारि चतुर्ष्वेकषट्कं नभ एकं शून्यैकं ॥

स ९०, मिश्रे उ ३१, बं २८ दे, स ९२, ९०, असंयते उ २१, बं २८ दे, स ९२, ९०, देशसंयते उ ३१, बं २८ दे, स ९२, ९०, मनुष्येषु न क्षीणकषायांतं । सयोगे सतीर्थं । भाषापर्याप्तौ उ ३१, बं०, स ८०, ७८ ।

नवकमयोगिचरमसमय एव । उ ९, बं०, स ८०, ७८, १०, अष्टकमपि तत्रैव तीर्थवियुते उ २८, बं०, स ७९, ७७, ९ ॥७५२॥ एवमुदयस्थानाधिकरणे बन्धसत्त्वस्थानान्याधेयत्वेनागमाविरोधेन योजयित्वा सत्त्वस्थानाधिकरणे बन्धोदयसत्त्वस्थानान्याधेयत्वेन गाथासप्तकेनाह—

बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीका है । सासादनमें बन्ध देवसहित अठाईस, तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीस या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । सत्त्व नब्बेका है । मिश्रमें बन्ध देव सहित अठाईस और सत्त्व बानबे-नब्बेका है । असंयतमें बन्ध देवगति सहित अठाईसका और सत्त्व बानबे नब्बेका है । देश संयतमें बन्ध देवगति सहित अठाईसका और सत्त्व बानबे नब्बेका है ।

मनुष्योंमें क्षीणकषाय पर्यन्त इकतीसका उदय नहीं है । तीर्थंकरके भाषापर्याप्तिमें उदय है । वहाँ बन्ध नहीं है । सत्त्व अस्सी-अठहत्तरका है । नौका उदय अयोग केवलीके हैं । वहां सत्त्व अस्सी, अठहत्तर, दसका है । आठका उदय भी वहीं सामान्य केवलीके होता है । वहाँ सत्त्व उन्यासी, सतहत्तर, नौका है । दोनोंमें बन्ध नहीं है ॥७५२॥

इस प्रकार उदयस्थानरूप आधारमें बन्धस्थान और सत्त्वस्थानको आधेय बनाकर आगमानुसार कथन करके आगे सत्त्वस्थानको आधार और बन्धस्थान उदयस्थानको आधेय बनाकर सात गाथाओंसे कथन करते हैं—

त्रिनवत्यादिसत्वस्थानंगळोळु क्रमदिदं बंधस्थानंगळुं उदयस्थानंगळुं चतुः सप्त सप्त नव चतुःसप्त सप्त नव षण्णव पंच नव पंच चतुः स्थानंगळुं नाल्कैदेयोळेक षड्बंधोदयस्थानंगळुं नभ-एकमुं शून्यैकमुमप्पुवु । संदृष्टिः—

स	९३	९२	९१	९०	८८	८४	८२	८०	७९	७८	७७	१०	९
बं	४	७	४	७	६	५	२	१	१	१	१	०	०
उ	७	९	७	९	९	९	४	६	६	६	६	१	१

अनंतरमी त्रिनवत्यादिसत्वस्थानंगळोळु पेळल्पट्ट बंधोदयस्थान संख्याविषयस्थानंगळवाडव दोडे क्रमदिदं पेळदपरः—

तेणउदीये बंधा उगुतीसादिचउक्कमुदओ दु ।
इगिपणछस्सग अट्ठ य णववीसं तीसयं णेयं ॥७५४॥

त्रिनवत्यां बंधाः एकान्नत्रिंशदादिचतुष्कमुदयस्तु । एक पंच षट्सप्ताष्ट नवविंशतिस्त्रिंशच्च ज्ञेयं ॥

त्रिनवतिसत्वस्थानाधिकरणदोळु नवविंशत्यादि चतुः स्थानंगळु बंधंगळप्पुवु । उदयस्थानंगळुमेक पंच षट् सप्ताष्ट नवविंशतिस्थानंगळुं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयमुमरियल्पडुगुं ॥ संदृष्टिः— सत्व ९३ । बं २९ । ३० । ३१ । १ ॥ उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० ॥

बाणउदीए बंधा इगितीसूणाणि अट्ठठाणाणि ।
इगिवीसादी एक्कत्तीसं ता उदयठाणाणि ॥७५५॥

द्वानवत्यां बंधाः एकत्रिंशदूनानि अष्टस्थानानि । एकविंशत्याद्येकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानां तान्युदयस्थानानि ॥

त्रिनवतिकादिसत्त्वस्थानेषु बन्धोदयस्थानानि क्रमेण चतुःसप्त सप्तनव चतुःसप्त सप्तनव षण्णव पंचनव पंचचत्वारि चतुर्ष्वेकषट् नभ एकं, शून्यैकं ॥७५३॥ तानि कानीति चेदाह—

त्रिनवतिके बन्धस्थानानि नवविंशतिकादीनि चत्वारि । उदयस्थानान्येकपंचषट्सप्ताष्टनवाग्रविंशतिकानि त्रिंशत्कं च ज्ञेयानि ॥७५४॥

तिरानबे आदि सत्त्वस्थानोंमें बन्धस्थान और उदयस्थान क्रमसे चार सात, सात नौ, चार सात, सात नौ, छह नौ, पाँच नौ, पाँच चार, एक छह, शून्य एक, शून्य एक होते हैं ॥ ७५३ ॥

वे कौन हैं ? यह कहते हैं—

तिरानबेके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान उनतीस आदि चार हैं और उदयस्थान इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीसके हैं ॥७५४॥

द्वानवतिसत्वस्थानाधिकरणदोळेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं पोरगागि शेषसप्तस्थानंगळं बंधंगळप्पुवु । एकविंशतिस्थानमादियागेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानावसानमाद नवस्थानंगळुदयंगळप्पुवु । संदृष्टिः—सत्व ९२ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । १ ॥ उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥

इगिणउदीए बंधा अडवीसं तिदयमेक्कयं चुद्दओ ।
तेणउदिं वा णउदीबंधा बाणउदीयं व हवे ॥७५६॥

एकनवत्यां बंधा अष्टाविंशति त्रितयमेककं चोदयस्त्रिनवतिवन्नवतिबंधा द्वानवतिवद् भवेत् ॥

एकनवतिसत्वस्थानाधिकरणदोळष्टाविंशत्यादि त्रिस्थानंगळुमेकप्रकृतियुमितु चतुःस्थानंगळु बंधमप्पुवु । उदयस्थानंगळु त्रिनवतिसत्वस्थानदोळु पेळ्द सप्तस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टि—सत्व ९१ । बं २८ । २९ । ३० । १ ॥ उ २१ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० ॥ नवति सत्वस्थानाधिकरणदोळु बंधस्थानंगळु द्वानवतिसत्वस्थानदोळु पेळ्द त्रयोविंशत्यादिसप्तस्थानंगळप्पुवु ॥ उदयस्थानंगळं मुंदण सूत्रदोळु पेळ्दपरु ।:—

चरिमदुवी सूणुदओ तिसु दुसु बंधा छ तुरियहीणं च ।
बासीदी बंधुदया पुव्वं विगिवीसचत्तारि ॥७५७॥

चरमद्वयविंशत्यूनोदयास्त्रिषु द्वयोर्बंधाः षट्तुरीयहीनं च । द्व्यशीत्यां बंधोदयाः पूर्ववदेकविंशतिचत्वारि ॥

नवतिसत्वस्थानदोळुदयस्थानंगळु चरमद्वित्स्थानोदयमुं विंशतिस्थानोदयमुमितु त्रिस्थानरहितमागि सर्व्वोदयस्थानंगळप्पुवु । संदृष्टिः—स ९० : बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । १ । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ त्रिषु शब्दादिदमष्टाशीति चतुरशीतिसत्वस्थानद्वयदोळमी पेळ्दुदयस्थानंगळु नवनवंगळेयप्पुवु । बंगस्थानंगळु षट् त्रयोविंशत्यादि

द्वानवतिके बन्धस्थानान्येकत्रिंशत्कं बिना शेषाणि सप्त । उदयस्थानान्येकविंशतिकादीन्येकत्रिंशत्कान्तानि नव ॥७५५॥

एकनवतिके बन्धस्थानान्यष्टाविंशतिकादीनि त्रीण्येककं च । उदयस्थानानि त्रिनवतिकोक्तानि सप्त । नवतिके बन्धस्थानानि द्वानवतिकोक्तानि सप्त ॥७५६॥

उदयस्थानानि चरमद्वयेन विंशतिकेन वोनसर्वाणि । त्रिषु शब्देनाष्टाशीतिकचतुरशीतिकयोरप्यमून्येव

बानबेके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान इकतीसके बिना शेष सात हैं । उदयस्थान इक्कीससे इकतीस पर्यन्त नौ हैं ॥७५५॥

इक्यानबे के सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान अठाईस आदि तीन और एक ऐसे चार हैं । उदयस्थान तिरानबेकी तरह सात हैं । नौवेंके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान बानबेकी तरह सात हैं ॥७५६॥

उदयस्थान अन्तके दो और बीसके बिना सब नौ हैं । 'तिसु' अर्थात् अठासी और चौरासीके सत्त्वस्थानमें भी ये ही नौ उदयस्थान हैं । अठासी-चौरासीमें बन्धस्थान तेईस

षट्स्थानंगळुं चतुर्त्यष्टाविंशतिबंधस्थानरहित शेषपंचबंधस्थानंगळप्पुवुक्रमदिंदं। संदृष्टिः—सत्व ८८। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ स ८४। बं २३। २५। २६। २९। ३०॥ उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥॥ द्वयशीतिसत्वस्थानाधिकरणदोळु बंधस्थानंगळुमुदयस्थानंगळुं क्रमदिंदं पूर्ववच्चतुरशीति सत्वस्थानदोळु पेळदष्टाविंशत्यून त्रयोविंशत्यादि पंचस्थानंगळुमेकविंशत्यादि चतुरुदयस्थानंगळु मप्पुवु। सत्व ८२। बं २३। २५। २६। २९। ३०। उ २१। २४। २५। २६॥

सीदादिचउसु बंधा जसकित्ती समपदे हवे उदओ।
इगिसगणवधियवीसं तीसेक्कं तीसणवगं च ॥७५८॥

अशीत्यादिचतुर्षु बंधो यशस्कीर्त्तिः समपदे भवेदुदयः। एकसप्तनवाधिकविंशतिस्त्रिंशदेकत्रिंशं नवकं च॥

अशीत्यादि चतुःसत्वस्थानंगळोळु क्रमदिंदं बंधं यशस्कीर्त्तिनामकर्म्मं मेकमेयक्कु मा नाल्कुं स्थानंगळोळु समपदंगळोळे भक्तेप्पत्तेंटु गळे बेरडेडेगळोळुदयस्थानंगळुमेकविंशति सप्तविंशतिनवविंशति त्रिंशदेकत्रिंशन्नवकमुमक्कुं॥

वीसं छडणववीसं तीसं छट्ठं च विसमठाणुदया।
दसणवगे णहि बंधो कमेण णव अट्ठयं उदओ ॥७५९॥

विंशतिः षडष्टनव विंशति त्रिंशच्चाष्ट च विषमस्थानोदयाः। दशनवके न हि बंधः क्रमेण नवाष्टकमुदयः॥

नवसप्तति सप्तसप्तति विषमसत्त्वस्थानद्वयदोळु क्रमदिंदमुदयस्थानंगळु विंशतियुं षड्विंशतियुमष्टाविंशतियुं नवविंशतियुं त्रिंशत्प्रकृतिकमुमष्टप्रकृतिकमुमितु षट् षट् स्थानोदयंगळप्पुवु। संदृष्टि :—सत्व ८०। बं १। उ २१। २७। २९। ३०। ३१। ९॥ स ७९। बं १। उ २०। २६। २८। २९। ३०। ८॥ स ७८। बं १। उ २१। २७। २९। ३०। ३१। ९। स ७७। बं १।

नव। बन्धस्थानानि त्रयोविंशतिकादीनि षट्। अष्टाविंशतिकोनानि पंच। द्वयशीतिके बन्धोदयस्थानानि क्रमेण चतुरशीतिकोक्तानि पंच। एकविंशतिकादीनि चत्वारि॥७५७॥

अशीतिकादिषु चतुर्षु बंधो यशस्कीर्तिः। उदयस्थानानि समपदयोरेकसप्तनवाधिकविंशतिकानि त्रिंशत्कैकत्रिंशत्कनवकानि च॥७५८॥

विषमयोर्विंशतिकषडष्टनवाग्रविंशतिकत्रिंशत्काष्टकानि षट्। दशकनवकयोर्नापि बन्धः शून्यं, उदयः

आदि छह और अठाईस बिना पाँच हैं। बयासीके सत्त्वस्थानमें बन्धस्थान चौरासीकी तरह पाँच हैं। उदयस्थान इक्कीस आदि चार हैं॥७५७॥

अस्सी आदि चार सत्त्वस्थानोंमें बन्ध एक यशकीर्तिका होता है। उदयस्थान समगणनारूप अस्सी-अठहत्तरमें इक्कीस, सत्ताईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौके हैं॥७५८॥

विषमगणनारूप उनासी-सतहत्तरके सत्त्वस्थानमें बीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस,

उ २० । २६ । २८ । २९ । ३० । ८ ॥ दश नव सत्त्वस्थानंगळोळु नामकर्म्मबंधशून्यं । उदयस्थानंगळु नवाष्टैकैकस्थानंगळेयप्पुवु । संदृष्टि :—स १० । बं । ० । उ ९ । स ९ । बं । ० । उ ८ ॥

अनंतरमी सत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळनुक्तंगळं चतुर्गतिजरुगळ गुणस्थानंगळोळु योजिसल्पडुगुमेंतेंदोडे त्रिनवतिसत्त्वस्थानं मनुष्यदेवगतिजरोळक्कुमल्लि मनुजरोळु मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररोळु संभविसदेंतेंदोडे "तित्थाहारं जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिये" एंबितु तद्गुणस्थानत्रयदोळु तत्सत्त्वक्कसंभवमप्पुदरिंदं । मनुष्यासंयतनोळु सत्त्व ९३ । बं २९ । दे । ती । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ देशसंयतंगे सत्त्व ९३ । बं २९ । दे ती । उ ३० । प्रमत्तसंयतंगे सत्त्व ९३ । उ २९ । दे ती । उ २५ । २७ । २८ । २९ । ३० ॥ अप्रमत्तसंयतंगे सत्त्व ९३ । बं २९ । दे ती । ३१ । दे ती । आ । उ ३० ॥ अपूर्व्वकरणंगे स ९३ । बं २९ । दे ती । ३१ । दे ती । आ । उ ३० ॥ अनिवृत्तिकरणंगे स ९३ । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायंगे सत्त्व ९३ । बं १ । उ ३० । उपशांतकषायंगे सत्त्व ९३ । बं । ० । उ ३० ॥ क्षीणकषायादिगुणस्थानत्रितयदोळु त्रिनवतिसत्त्वं संभविसदु । अपूर्व्वकरणादिगळोळुपशमश्रेण्यपेक्षेयिंदं त्रिनवति सत्त्वं संभवमेंदरियल्पडुगुं ॥ देवगतियोळु सौधर्माविसर्व्वार्थसिद्धिपर्य्यंतमाद दिविजासंयतरुगळ्गे स ९३ । बं ३० । म ती । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ यी त्रिनवतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु अष्टाविंशतिबंध-

---

क्रमेण नवकमष्टकं । उक्ताधाराधेयं चतुर्गतिगुणस्थानं प्रति योजयति—

तत्र त्रिनवतिकं कर्मभूमिपर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तमनुष्यवैमानिकयोरेव । तत्रापि तित्थाहारेत्यादिना न मिथ्यादृष्ट्यादित्रये । तत्र मनुष्येऽसंयते स ९३, बं २९ दे ती, उ २१, २६, २८, २९, ३०, देशसंयते स ९३, बं २९, दे ती, उ ३०, प्रमत्ते स ९३, बं २९ दे ती, उ २५, २७, २८, २९, ३०, अप्रमत्ते स ९३, बं २९ दे ती, ३१ दे ती आ, उ ३०, उपशमकेऽपूर्वकरणे स ९३, बं २९ दे ती, ३१ दे ती आ, उ ३०, अनिवृत्तिकरणे स ९३, बं १, उ ३०, सूक्ष्मसाम्पराये स ९३ । बं १ । उ ३० उपशान्तकषाये । स ९३, बं ०, उ

तीस, आठके उदयस्थान हैं । दस और नौके सत्त्वस्थानमें बन्ध नहीं है । उदय क्रमसे नौ और आठका है ।

उक्त आधार-आधेयको चारों गतिके गुणस्थानोंमें लगाते हैं—

उक्त सत्त्वस्थानोंमें-से तिरानबेका सत्त्व कर्मभूमिया पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य और वैमानिक देवोंमें ही पाया जाता है । उनमें भी 'तित्थाहारा' इत्यादि वचनके अनुसार मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें तिरानबेका सत्त्व नहीं है । असंयत मनुष्यके तिरानबेके सत्त्वमें बन्ध देव तीर्थसहित उनतीसका और उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । देशसंयतमें बन्ध देव तीर्थ सहित उनतीसका, उदय तीसका है । प्रमत्तमें बन्ध देव तीर्थ सहित उनतीसका, उदय पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस तीसका है । अप्रमत्तमें बन्ध देव तीर्थ सहित उनतीसका या आहारक तीर्थ सहित इकतीसका और उदय तीसका है ।

उपशमक अपूर्वकरणमें अप्रमत्तके समान है । अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म साम्परायमें बन्ध एकका, उदय तीसका है । उपशान्त कषायमें बन्ध नहीं, उदय तीसका है । क्षीणकषाय आदिमें तिरानबेका सत्त्व नहीं है ।

स्थानमसंयतादिगळोळेकिल्लें दोडे नरकगमनाभिमुखनं बिट्टु मत्तेल्लियुं तीर्त्थबंधमुपरत मागदप्पुदरिंदमष्टाविंशतिस्थानबंधं संभविसदु । त्रिनवतिसत्त्वंगे विराधनेयुमिल्ल ।

इंतु त्रिनवतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं द्वानवतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळ् बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमदें तें दोडे :—

द्वानवतिस्थानसत्त्वं चतुर्गतिजरोळवकुमल्लि नरकगतियोळ् घर्म्मेय मिथ्यादृष्टिगळगे सत्त्व ९२ । बं २९ । ति । म । ३० । ति उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । तत्रत्य सासादनंगे द्वानवतिसत्त्वं संभविसदु । मिश्रंगे स ९२ । बं २९ । म । उ २९ ॥ असंयतंगे स ९२ । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । वंशादिमघविपर्य्यंतमाद मिथ्यादृष्टिगळगे स ९२ । बं २९ । ति । म ३० । ति । उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । तत्रत्यसासादनंगे द्वानवति सत्त्वं संभविसदु ॥ मिश्रंगे स ९२ । बं २९ । म । उ २९ ॥ असंयतंगे स ९२ । बंध २९ । म । उ । २९ ॥ महातमःप्रभेय मिथ्यादृष्टिगळगे सत्त्व ९२ । बं २९ । ति । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ तत्रत्यसासादनंगे द्वानवतिसत्त्वं संभविसदु ॥ मिश्रंगे स ९२ । बं २९ । म । उ २९ ॥ असंयतंगे स ९२ । बं २९ । म । उ २९ ॥ तिर्य्यंग्गतिजरोळु मिथ्यादृष्टिगळगे स ९२ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ ।

३०, न क्षीणकषायादौ । वैमानिकासंयते स ९३, बं ३० म ती, उ २१, २५, २७, २८, २९, एतेष्वसंयतादिषु कुतोऽष्टाविंशतिकं न बध्नाति ? नरकगमनाभिमुखं मुक्त्वा तीर्थं बध्नतां विश्रांत्यभावेन तद्घटनात् ।

द्वानवतिकं चतुर्गतिषु तत्र नरके घर्मायां मिथ्यादृष्टौ स ९२, बं २९ ति म, ३० ति उ, उ २१, २५, २७, २८, २९, न सासादने । मिश्रे स ९२, बं २९ म, उ २९, असंयते स ९२ बं २९, म, उ २१, २५, २७, २८, २९, आमघवीं मिथ्यादृष्टौ स ९२, बं २९ ति म, ३० ति उ । उ २१, २५, २७, २८, २९, न सासादने । मिश्रे स ९२, बं २९ म, उ २९, असंयते स ९२, बं २९ म, उ २९, माघव्यां मिथ्यादृष्टौ । स ९२, बं २९, ति उ, उ २१, २५, २७, २८, २९, न सासादने । मिश्रे स ९२, बं २९ म, उ २९, असंयते

वैमानिक देवोंमें असंयतमें तिरानबेका सत्त्व होता है । वहां बन्ध मनुष्य तीर्थ सहित तीसका और उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । यहाँ असंयतादिमें अठाईसका बन्ध नहीं होता; क्योंकि नरक जानेके सम्मुख जीवको छोड़कर तीर्थंकरकी सत्तावाले अन्य जीव सदा तीर्थंकरका बन्ध करते हैं अतः अठाईसका बन्ध नहीं घटित होता ।

बानबेका सत्त्व चारों गतिमें पाया जाता है । नारकियोंके बानबेके सत्त्वमें घर्मामें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । सासादनमें बानबेका सत्त्व नहीं है । मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका और उदय भी उनतीसका है । असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । वंशासे मघवी पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें घर्माके समान बन्ध उदय है । सासादनमें बानबेका सत्त्व नहीं । मिश्रमें और असंयतमें बन्ध उदय उनतीसका है । माघवीमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । उदय घर्माके समान है । सासादनमें नहीं है । मिश्र और असंयतमें बन्ध उदय उनतीसका है ।

३० ॥ उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ सासादनंगे द्वानवति सत्त्वमिल्ल ॥ मिश्रंगे स ९२ । बं २८ । दे उ ३० । ३१ ॥ असंयतंगे स ९२ । बं २८ । दे । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ तिर्य्यंग्देशसंयतंगे स ९२ । बं २८ । दे । उ ३० । ३१ ॥ मनुष्यगतिजमिथ्यादृष्टिगे स ९२ । बंध २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ सासावनंगे द्वानवतिसत्वमिल्ल ॥ मिश्रंगे स ९२ । बं २८ । दे । उ ३० ॥ मनुष्यासंयतंगे स ९२ । बं २८ । दे । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ देशसंयतंगे स ९२ । बं २८ । दे । उ ३० । प्रमत्तसंयतंगे स ९२ । बं २८ । दे । उ । द २५ । २७ । २८ । २९ । ३० ॥ अप्रमत्तसंयतंगे । स ९२ । बं २८ । दे । ३० । दे । आ । उ । ३० ॥ अपूर्व्वकरणंगे सत्त्व ९२ । बं २८ । दे ३० । दे । आ । १ । उ ३० ॥ अनिवृत्तिकरणंगे स ९२ । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायंगे सत्त्व ९२ । बं १ । उ ३० ॥ उपशांतकषायंगे स ९२ । बं । ० । उ ३० ॥ क्षीणकषायादिगळोळु द्वानवतिसत्त्वमिल्ल । देवगतियोळु भवनत्रयमिथ्यादृष्टिगळगे सत्व ९२॥ बं २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २८ । २७ ।

स २९, बं २९ म, उ २९, तिर्यक्षु मिथ्यादृष्टौ । स ९२, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, उ २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, न सासादने । मिश्रे स ९२, बं २८ दे, उ ३०, ३१, असंयते स ९२ । बं २८ दे, उ २१, २६, २८, २९, ३०, ३१, देशसंयते स ९२, बं २८, दे, उ ३०, ३१, मनुष्येषु मिथ्यादृष्टौ स ९२, बं २३, २५, २६, २८, २९, ३०, उ २१, २६, २८, २९, ३०, न सासादने । मिश्रे स ९२, बं २८ दे, उ ३०, असंयते स ९२, बं २८, दे, उ २१, २६, २८, २९, ३०, देशसंयते । स ९२, बं २८, दे, उ ३०, प्रमत्ते स ९२, बं २८ दे, उ २५, २७, २८, २९ ३०, अप्रमत्ते स ९२, बं २८ दे, ३० दे आ, उ ३० । अपूर्वकरणे स ९२, बं २८ दे, ३० दे आ, उ ३०, अनिवृत्तिकरणे स ९२, बं १, उ ३०, सूक्ष्मसाम्पराये । स ९२, बं १, उ ३०, उपशान्तकषाये स ९२, बं ०, उ ३०, न क्षीणकषायादौ ।

तिर्यंचोंमें बानबेके सत्त्वमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका है । सासादनमें नहीं है । मिश्रमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय तीस, इकतीसका है । असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका है । देशसंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय तीस, इकतीसका है ।

मनुष्योंमें बानबेके सत्त्वमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका तथा उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । सासादनमें बानबेका सत्त्व नहीं होता । मिश्रमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय तीसका है । असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । देशसंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय तीसका है । प्रमत्तमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । अप्रमत्त अपूर्वकरणमें बन्ध देवसहित अठाईसका देव आहारक सहित तीसका और उदय तीसका । है । अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्परायमें बन्ध एकका उदय तीसका है । उपशान्त कषायमें बन्ध नहीं, उदय तीसका है । क्षीणकषायमें बानबेका सत्त्व नहीं ।

२८। २९॥ तत्रत्यसासादनंगे द्वानवतिसत्वमिल्ल। भवनत्रयमिश्रंगे स ९२। बं २९। म। उ २९। भाषा॥ भवनत्रयासंयतंगे स ९२। बं २९। म। उ २९। भाषा॥ सौधर्म्मकल्पद्वयमिथ्यादृष्टिगळ्गे सत्व ९२। बं २५। २६। २९। ३०। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ तत्रत्यसासादनंगे द्वानवतिसत्वं संभविसदु। मिश्रंगे स ९२। बं २९। म। उ २९। भाषा॥ असंयतंगे स ९२। बं २९। म। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ सानत्कुमारादिदशकल्पजमिथ्यादृष्टिगळ्गे स ९२। बं २९। ति। म। ३०। ति उ॥ उ २१। २५। २७। २८। २९॥ सासादनंगे द्वानवतिसत्वमिल्ल॥ मिश्रंगे स ९२। बं २९। म। उ २९। भाषा॥ असंयतंगे स ९२। बं २९। म। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ आनताद्युपरिमग्रैवेयकावसानमादविविज मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ९२। बं। २९। म। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ सासादनंगे द्वानवतिसत्वं संभविसदु। मिश्रंगे स ९२। बं २९। म। उद. २९। भाषा॥

असंयतंगे स ९२। बं २९। म। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानजाऽसंयतरुगळ्गे स ९२। बं। २९। म। उ २१। २५। २७। २८। २९॥

देवगतौ भवनत्रये मिथ्यादृष्टौ स ९२, बं २५, २६, २९, ३०, उ २१, २५, २९, २८, २९, न सासादने। मिश्रे स ९२, बं २९ म, उ २९ भाषा। असंयते स ९२, बं २९ म, उ २९ भाषा, सौधर्मद्वये मिथ्यादृष्टौ स २९, बं २५, २६, २९, ३०, उ २१, २५, २७, २८, २९, न सासादने। मिश्रे स ९२, बं २९ म, उ २९ भा, असंयते स ९२, बं २९ म, उ २१, २५, २७, २८, २९, उपरि दशकल्पेषु मिथ्यादृष्टौ स ९२, बं २९ ति म, ३० ति उ, उ २१, २५, २७, २८, २९, न सासादने। मिश्रे स ९२, बं २९ म, उ २९ भा, असंयते स ९२, बं २९ म, उ २१, २५, २७, २८, २९। उपरि ग्रैवेयकान्तेषु मिथ्यादृष्टौ, स ९२, बं २९ म, उ २१, २५, २७, २८, २९, न सासादने। मिश्रे, स ९२, बं २९ म, उ २९ भा, असंयते स ९२, बं २९ म, उ २१, २१, २७, २८, २९, अनुदिशानुत्तरासंयते, स ९२, बं २९ म, उ २१, २५,२७,२८,२९।

देवोंमें बानबेके सत्त्वमें भवनत्रिक व सौधर्म युगलमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका, उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। सासादनमें बानबेका सत्त्व नहीं। मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय उनतीसका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका, उदय भवनत्रिकमें तो उनतीस ही का है। सौधर्मद्विकमें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। ऊपर दस कल्पोंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है। उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। सासादनमें नहीं। मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय उनतीसका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका, उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। सासादनमें नहीं। मिश्रमें बन्ध मनुष्यसहित उनतीसका उदय उनतीसका है। असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। अनुदिश अनुत्तरमें असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है।

यिंतु द्वानवतिसत्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरमेकनवतिसत्व-स्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे पेळल्पडुगुं :—एकनवतिस्थान-सत्वं नारकरोळु मनुष्यरोळु दिविजरोळमक्कुं। तिर्य्यग्गतिजरोळिल्लेकेंदोडे तीर्त्थपुतसत्व-स्थानमप्पुदरिंदं। "तिरिये ण तित्थसत्त" मेंदिंतु तिर्य्यग्गतिजरोळु तत्सत्वं विरुद्धमप्पुदरिंदं। नारकरोळु घर्म्मावनिजमिथ्यादृष्टिगळगे स ९१। बं २९। म। उ २१। २५॥ सप्तविंशत्यादि- ५
स्थानोदयं संभविसदेकेंदोडे शरीरपर्य्याप्तियिंदं मेले तीर्त्थसत्कर्म्मरप्प मिथ्यादृष्टिगळगे सम्यक्त्व-मक्कुमप्पुदरिंदं तदुदयस्थानोदयं संभविसदेंबोदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिगळभिप्रायं॥ आ सासादनमिश्ररुगळोळेकनवतिस्थानसत्वं परमागमविरोधमप्पुदरिंद संभविसदु। घर्म्मावनिजा-संयतंगे सत्व ९१। बं ३०। म ती। उ २१। २५। २७। २८। २९॥ वंशेमेघेगळोळु मिथ्या-दृष्टिगळगे स ९१। बं २९। म। उ २१। २५॥ सासादनमिश्ररुगळोळेकनवतिस्थानसत्वं संभवि- १०
सदु॥ असंयतरुगळगे स ९१। बं ३०। म। ती। उद। २७। २८। २९॥ अंजनाविनाल्कुं पृथ्विजरोळेकनवतिस्थानसत्वं संभविसदेकेंदोडे तीर्त्थसत्कर्म्मरुगळगे तत्पृथ्वीचतुष्टयदोळुत्पत्ति संभविसदप्पुदरिंदं॥ मनुष्यगतिजरोळु मिथ्यादृष्टिगे स ९१। बं २८ न। २९। म। उ ३०॥ मनुजसासादनमिश्ररुगळगेकनवतिसत्वं विरुद्धमप्पुदरिंदं संभविसदु॥ मनुष्यासंयतरुगळगे। स ९१। बं २९। दे ती। उ २१। २६। २८। २९। ३०॥ मनुष्यदेशसंयतंगे स ९१। बं २९। दे १५

एकनवतिकं तिरिये ण तित्थसत्तमिति देवनारकमनुष्येष्वेव। तत्र नारकेषु घर्मायां मिथ्यादृष्टौ स ९१, बं २९ म, उ २१, २५, नात्र सप्तविंशतिकाद्युदयः। शरीरपर्याप्तेरुपरि तीर्थसत्त्वमिथ्यादृष्टेः सम्यग्दृष्टित्व-सम्भवात्। न सासादनमिश्रयोः। असंयते। स ९१, बं ३०, म ती, उ २१, २५, २७, २८, २९, वंशामेघयो-र्मिथ्यादृष्टौ स ९१, बं २९ म, उ २१, २५, न सासादनमिश्रयोः। असंयते, स ९१, बं ३०, म ती, उ २७, २८, २९, नांजनादौ कुतः ? तीर्थसत्त्वस्य तत्रानुत्पत्तेः। २०

मनुष्येषु मिथ्यादृष्टौ स ९१। बं २८ न। २९ म। उ ३०। न सासादनमिश्रयोः। असंयते स ९१। बं २९ दे ती। उ २१। २६। २८। २९। ३०। देशसंयते। स ९१। बं २९। दे। ती। उ ३०। प्रमत्ते

इक्यानबेका सत्त्व 'तिरिये ण तित्थसत्तं' इस वचनके अनुसार तिर्यंचमें नहीं होता नारकी मनुष्य और देवोंमें होता है। नारकियोंमें इक्यानबेके सत्त्वमें घर्मामें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय इक्कीस, पच्चीसका है। यहाँ सत्ताईस आदिका उदय २५
नहीं है; क्योंकि शरीरपर्याप्ति होनेपर तीर्थंकरकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टी हो जाता है। सासादन मिश्रमें इक्यानबेका सत्त्व नहीं है। असंयतमें बन्ध मनुष्य तीर्थ सहित तीस-का उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। वंशा मेघामें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय इक्कीस, पच्चीसका है। सासादन मिश्रमें नहीं। असंयतमें बन्ध मनुष्य तीर्थ सहित तीसका उदय सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है। ३०
अंजनादिमें इक्यानबेका सत्त्व नहीं है क्योंकि तीर्थंकरकी सत्तावाला उनमें उत्पन्न नहीं होता। इक्यानबेके सत्त्वमें मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध नरकगति सहित अठाईसका या मनुष्य सहित उनतीसका, उदय तीसका है। सासादन मिश्रमें नहीं है। असंयतमें बन्ध देवतीर्थ सहित उनतीसका उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है। देश-

ती । उ ३० ॥ प्रमत्तसंयतंगे स ९१ । बं २९ । दे । ती । उ ३० ॥ अप्रमत्तसंयतंगे स ९१ । बं २९ । दे ती । उ ३० ॥ अपूर्व्वकरणंगे स ९१ । बं २९ । दे ती । १ । उ ३० ॥ अनिवृत्तिकरणंगे स ९१ । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायंगे स ९१ । बं १ । उ ३० ॥ उपशांतकषायंगे स ९१ । बं । ० । उ ३० ॥ देवगतिजमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुगळोळी एकनवतिसत्त्वस्थानं संभविसदु । सौधर्म्मादि-
५ सर्व्वार्त्थसिद्धिजर्प्पर्य्यंतमाद देवासंयतरुगळ्गे स ९१ । बं ३० । म । ती । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ यिंतेकनवतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं नवतिसत्त्व-स्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे :—नवतिस्थानसत्त्वं चतुर्ग्गतिजरोळं संभविसुगुमल्लि नरकगतिरोळु घर्म्मेय नारकमिथ्यादृष्टिगळ्गे स ९० । बं २९ । ति । म । ३० । ति उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ घर्म्मेय सासादरुगळ्गे स ९० । बं २९ । ति । म । ३० ।
१० ति । उ २९ । भा ॥ घर्म्मेय मिश्ररुगळ्गे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ घर्म्मावनिजासंयतंगे स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ वंशादिमघविपर्य्यंतमाद नारकमिथ्या-दृष्टिगळ्गे स ९० । बं २९ । ति । म । ३० । ति । उ । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ आ सासादनरुगळ्गे स ९० । बं २९ । ति । म । ३० । ति । उ । उ २९ । भा ॥ आ मिश्ररुगळ्गे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ तत्रत्यासंयतरुगळ्गे स ९० । बं २९ । म । उ । २९ । भा ॥ माघ-
१५ विय मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ९० । बं २९ । ति ३० । ति । उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥

स ९१ । बं २९ । दे । ती । उ ३० । अप्रमत्ते स ९१ । बं २९ । दे । ती । उ ३० । अपूर्वकरणे स ९१ । बं २९ । दे ती । उ ३० । अनिवृत्तिकरणे स ९१ । बं १ । उ ३० । सूक्ष्मसाम्पराये स ९१ । बं १ । उ ३० उपशान्तकषाये स ९१ । बं । उ ३० । देवेषु तु भवनत्रयकल्पस्त्रीवर्जितेष्वेव । तत्रापि न मिथ्यादृष्ट्यादित्रये । असंयते स ९१ । बं ३० । म ती । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ।

२० नवतिके घर्मामिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २९ । ति म । ३० । ति उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने स ९० । बं २९ । ति म । ३० ति उ । उ २९ भा । मिश्रे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा । असंयते । स ९० । बं २९ म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । वंशादिमघव्यंतमिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २९ ति म । ३० ति । उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने स ९० । बं २९ । ति म । ३० ति । उ । उ २९ भा । मिश्रे स ९० । बं २९ । म उ २९ । भा । असंयते स ९० । बं २९ । म । उ २९
२५ भा । माघवी मिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २९ ति । ३० ति उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने

संयतमें बन्ध देवतीर्थ सहित उनतीसका उदय तीसका है । प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरणके छठे भाग पर्यन्त इसी प्रकार है । अपूर्वकरणके सातवें भाग, अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म साम्पराय-में बन्ध एकका उदय तीसका है । उपशान्त कषायमें बन्ध नहीं, उदय तीसका है ।

देवोंके इक्यानबेका सत्त्व भवनत्रिक और कल्पवासी स्त्रियोंको छोड़कर शेष
३० वैमानिक देवोंमें असंयत गुणस्थानमें ही होता है । वहाँ बन्ध मनुष्य तीर्थ सहित तीसका उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है ।

नब्बेके सत्त्वमें मिथ्यादृष्टिमें सब नारकियोंमें बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है किन्तु माघवीमें मनुष्य सहित बन्ध नहीं

आ सासादनरुगळ्गे स ९० । बं २९ । ति । ३० । ति उ । उ २९ । भा ॥ आ मिश्ररुगळ्गे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ माधविजासंयतंगे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ तिर्य्यंग्गतिज-रोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ९० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ सासादनरुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे । २९ । ति । म । ३० । ति । उ । उ २१ । २४ । २६ । ३० । ३१ ॥ तिर्य्यंग्मिश्ररुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । ३१ । ५
तिर्य्यंगसंयतरुगळ्गे स ९१ । बं २८ । दे । उद २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ तिर्य्यग्देश-संयतंगे स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । ३१ ॥ मनुष्यगतिजमिथ्यादृष्टिगे स ९० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ आ सासादनरुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे २९ । ति । म ३० । ति उ । उ २१ । २६ । ३० ॥ मिश्ररुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे । उ ३० ॥ मनुष्यासंयतरुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ मनुष्यदेशसंयतरु- १०
गळ्गे स ९० । बं २८ । दे । उ ३० ॥ प्रमत्तसंयतरुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । अप्रमत्त-संयतरुगळ्गे स ९० । बं २८ । दे । उ ३० ॥ अपूर्व्वकरणंगे सत्त्वं ९० । बं २८ । दे । १ । उ ३० ॥

स ९० । बं २९ ति । ३० ति उ । उ २९ भा । मिश्रे स ९० । बं २९ । म । उ २९ भा । असंयते । स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा । तिर्यग्मिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । सासादने स ९० । बं २८ । दे २९ ति म । ३० १५
ति उ । उ २१ । २४ । २६ । ३० । ३१ । मिश्रे स ९० । बं २८ दे । उ ३० । ३१ । असंयते । स ९० । बं २८ दे । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । ३१ । देशसंयते स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । ३१ । मनुष्यमिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । सासादने स ९० । बं २८ दे । २९ ति । म । ३० ति । उ । उ २१ । २६ । ३० । मिश्रे स ९० । बं २८ ।

है । उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । सासादनमें बन्ध मिथ्या- २०
दृष्टिकी तरह है उदय उनतीसका है । मिश्रमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका उदय उनतीसका है । असंयतमें बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका है । उदय घर्मामें इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । शेषमें उनतीसका है ।

तिर्यंचोंमें नब्बेके सत्त्वमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका २५
है । सासादनमें बन्ध देवसहित अठाईस या तिर्यंच मनुष्य सहित उनतीस या तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । उदय इक्कीस, चौबीस, छब्बीस, तीस, इकतीसका है । मिश्रमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय तीस, इकतीसका है । असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका तथा उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका है । देशसंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय तीस, इकतीसका है ।

मनुष्योंके नब्बेके सत्त्वमें मिथ्यादृष्टिमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका, उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । सासादनमें बन्ध देवसहित अठाईसका या तिर्यंच वा मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । उदय इक्कीस, छब्बीस, तीसका है । मिश्रमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय

अनिवृत्तिकरणगंगे स ९० । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायंगे स ९० । बं १ । उ ३० ॥ उपशांतकषायंगे स ९० । बं । ० । उ ३० ॥ देवगतिजरोळु भवनत्रयमिथ्यादृष्टिगळगे स ९० । बं २५ । २६ । २९। ३० ॥ उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ आ सासादनरुगळगे स ९० । बं २९ । ति । उ । उ २१ । २५ । २९ ॥ भवनत्रयमिश्ररुगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ भवनत्रितयासंयतरुगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ सौधर्म्मद्वयमिथ्यादृष्टिगळगे स ९० । बं २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सौधर्मद्वय सासादनरुगळगे स ९० । बं २९ । ति । म । ३० । ति उ । उ २१ । २५ । २९ । भा ॥ आ मिश्ररुगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ सौधर्म्मद्वयजासंयतरुगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ सानत्कुमारादिदशकल्पजमिथ्यादृष्टिगळगे स ९० । बं २९ । ति । म ३० । ति । उ । २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ सासादनरुगळगे स ९० । बं २९ । ति । म ३० । ति उ । उ २१ । २५ । २९ । भा ॥ आ मिश्ररुगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ तत्रत्यासंयतरुगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ आनताद्युपरिमग्रैवेयकावसानमाद सुररोळु मिथ्यादृष्टिगळगे स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ आ सासादनरुगळगे स ९० । बं २९ ।

दे । उ ३० । असंयते स ९० । बं २८ । दे । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । देशसंयते स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । प्रमत्ते स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । अप्रमत्ते स ९० । बं २८ । दे । उ ३० । अपूर्वकरणे स ९० । बं २८ दे १ । उ ३० । अनिवृत्तिकरणे स ९० । बं १ । उ ३० । सूक्ष्मसाम्पराये स ९० । बं १ । उ ३० । उपशान्तकषाये स ९० । बं० । उ ३० । भवनत्रयमिथ्यादृष्टौ स ९० बं २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने स ९० । बं २९ ति म । ३० ति उ । उ २१ । २५ । २९ । मिश्रे स ९० । बं २९ म । उ २९ भा । असंयते स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा । सौधर्मद्वये मिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने स ९० । बं २९ ति म । ३० ति । उ । उ २१ । २५ । २९ । भा । मिश्रे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा । असंयते स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । उपरि दशकल्पमिथ्यादृष्टौ । स ९० । बं २९ ति म । ३० । ति उ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने स ९० । बं २९ । ति म । ३० ति । उ । उ २१ ।

तीसका है । असंयतमें बन्ध देवसहित अठाईसका उदय इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है । देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्तमें बन्ध देवसहित अठाईसका, अपूर्वकरणमें देवसहित अठाईसका वा एकका है । अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसाम्परायमें बन्ध एकका, उपशान्तकषायमें बन्ध नहीं, उदय देशसंयतसे उपशान्त कषाय पर्यन्त तीसका ही है ।

देवोंके नब्बेके सत्त्वमें मिथ्यादृष्टिमें भवनत्रिक और सौधर्म द्विकमें बन्ध पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका है । सहस्रार पर्यन्त बन्ध तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त मनुष्य सहित उनतीसका ही बन्ध है । उदय ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । सासादनमें बन्ध सहस्रार पर्यन्त तिर्यंच या मनुष्य सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका है । ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त मनुष्य सहित तीसका है । उदय ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त इक्कीस, पच्चीस, उनतीसका है । मिश्रमें ऊपर ग्रैवेयक पर्यन्त बन्ध मनुष्य सहित

म । उ २१ । २५ । २९ ॥ आ मिश्रगळ्गे स ९० । बं २९ । म । उ २९ । भा ॥ तत्रत्यासंयतरुगळ्गे स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ अनुदिशानुत्तरविमानंगळोळ्क्षायिकसम्यग्दृष्टिगळेयप्परिल्लि स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥

इंतु नवति सत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं अष्टाशीतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे :—अष्टाशीतिसत्त्वं तिर्य्यंग्मनुष्यगतिद्वयदोळे संभविसुगु मितरनरकदेवगतिगळ देवनारकरोळु संभविसदे कें दोडे अष्टाशीतिसत्त्वस्थानमेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगळ्गे देवगतिद्वयोद्वेल्लनस्थानमप्पुदरिंदं स्वस्थानदोळमुत्पन्नस्थानदोळं क्वचिदुंटु क्वचिदिल्लप्पुदरिंदमल्लि तिर्य्यंग्गतिजरोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ८८ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ आ सासादनमिश्रासंयत देशसंयतरोळष्टाशीतिसत्त्वं संभविसदु । मनुष्यगतिजरोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ८८ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ सासादनादिगळोळो सत्त्वस्थानं संभविसदु । इल्लि तिर्य्यक्पंचेंद्रियजीवंगळोळं मनुष्यरोळं शरीरपर्य्याप्तिकालदोळष्टाशीति सत्त्वस्थानसंभवमेंतेंदोडे शरीरपर्य्याप्तियोळु नरकगतियुतमागष्टाविंशतिस्थानमुं मिथ्यादृष्टिगळु कट्टिदोडमष्टाशीतिसत्त्वस्थानं संभविसुगुमथवा तिर्य्यंग्मनुष्यगतियुतमागि कट्टिदोड-

---

२५ । २९ । भा । मिश्रे स ९० । बं २९ । म । उ २९ भा । असंयते स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । उपरि ग्रैवेयकान्तमिथ्यादृष्टौ स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । सासादने स ९० । बं २९ म । उ २१ । २५ । २९ भा । मिश्रे स ९० । बं २९ म । उ २९ । भा । असंयते स ९० । बं २९ म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । अनुदिशानुत्तरासंयते स ९० । बं २९ । म । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ।

अष्टाशीतिकमुद्वेल्लितदेवद्विकैकविकलेन्द्रियाणां स्वस्थानोत्पन्नस्थानयोः । तत्र तिर्यग्मिथ्यादृष्टौ स ८८ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २४ २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । न सासादनादौ । मनुष्यमिथ्यादृष्टौ स ८८ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । न सासादनादौ । इदमष्टाशीतिकं सत्त्वं तु पंचेन्द्रियतिर्यग्मनुष्यौ मिथ्यादृष्टी शरीरपर्याप्तावष्टाविंशतिकं नरकगतियुतं तिर्यग्मनुष्यगतियुतं वा बध्नतस्तदरा वा । विकलेन्द्रियो नारकचतुष्कमुद्वेल्य पंचेन्द्रिय-

---

उनतीसका उदय उनतीसका है । असंयतमें भवनत्रिकमें बन्ध मनुष्यसहित उनतीसका उदय उनतीसका है । सौधर्मादि अनुत्तर पर्यन्त बन्ध मनुष्य सहित उनतीसका है । उदय इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसका है । अट्ठासीका सत्त्व देवद्विककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके होता है । वे मरकर जहाँ उत्पन्न होते हैं वहाँ भी होता है । सो तिर्यंच मनुष्य मिथ्यादृष्टिके अट्ठासीके सत्त्वमें बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है। उदय तिर्यंचोंके इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसका है । मनुष्योंके इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीसका है ।

यह अट्ठासीका सत्त्व पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टिके शरीर पर्याप्तिकालमें नरकगति सहित अठाईसका या तिर्यंच मनुष्यगति सहित उनतीसका अथवा तिर्यंच उद्योत सहित तीसका बन्ध करता है तब पाया जाता है। अथवा एकेन्द्रिय विकलत्रय नारक

मष्टाशीतिसत्त्वं संभविसुगुमथवा नारकचतुष्टयमुमनुद्वेल्लनमं माडिद जीवंगळुत्पन्नतिर्य्यक्-पंचेंद्रियजीवंगळोळं मनुष्यरोळं शरीरपर्य्याप्तियोळु सुरचतुष्यटमं कट्टिदोडमष्टाशीतिसत्त्वं संभविसगुमेंदरिवुदु ॥ इंतष्टाशीतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयंगळु पेळल्पट्टुवनंतरं चतुरशीतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयंगळु पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे :—

चतुरशीतिसत्वस्थानं तिर्य्यंग्गतियोळं मनुष्यगतियोळं संभविसुवु । नरकगतिदेवगतिजरोळु संभविसदल्लि तिर्य्यंग्गतिजरोळेकेंद्रियविकलत्रयजीवंगळे नारकचतुष्टयमनुद्वेल्लनमं माडल्पट्ट सत्वस्थानमप्पुदरिंदमवर स्थानदोळमुत्पन्नस्थानदोळं विवक्षिसल्पट्ट मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ८४ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ सासादनादिगळोळेल्लियुमी चतुरशीति सत्त्वं संभविसदु । मनुष्यगतिजरोळुत्पन्नस्थानदोळु मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ८४ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ इल्लि शरीरपर्य्याप्त्यादिगळोळु तिर्य्यंग्मनुष्यगतियुतस्थानंगळं कट्टुवन्नवरं तत्सत्वस्थानं संभविसुगुं । नरकगतिदेवगतियुतमागि कट्टुवागळु तत्सत्वं पंचेंद्रियतिर्य्यंचरोळं मनुष्यरोळं संभविसदेंदरियल्पडुगुं । सासादनादिगुणस्थानंगळोळेल्लियुमी चतुरशीतिसत्त्वं मनुष्यरोळु संभविसदु ॥

यितु चतुरशीतिसत्त्वस्थानदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं द्व्यशीतिसत्त्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयंगळु योजिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे—द्व्यशीतिसत्त्वंस्थानं तिर्य्यंग्गतियोळे संभविसुगुमेकेंदोडा सत्त्वस्थानं तेजोवायुकायिकजीवंगळु मनुष्यद्विकमनुद्वेल्लनमं माडिदसत्त्वस्थानमप्पुदरिंदमा जीवंगळ विवक्षेयिदं स्वस्थानदोळमुत्पन्नस्थानदोळं तज्जीवंगळ विवक्षेयिदं मिथ्यादृष्टिगळ्गे स ८२ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ ॥ यिल्लि

तिर्यमनुष्येषूत्पन्नः शरीरपर्याप्तौ सुरचतुष्कं बध्नाति तदा च सम्भवति ।

चतुरशीतिकमुद्वेल्लितनारकचतुष्कस्य स्वस्थानोत्पन्नस्थानयोः । तत्र तिर्यग्मिथ्यादृष्टौ स ८४ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० । उ २१ । न सासादनादौ । मनुष्यमिथ्यादृष्टौ स ८४ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० । उ २१ । २६ । २८ । २९ । ३० । न सासादनादौ । इदं सत्त्वं शरीरपर्याप्त्यादौ तिर्यग्मनुष्यगतिबन्धे स्यान्न पंचेन्द्रियतिर्यग्मनुष्ययोर्देवनारकगतिबन्धे ।

द्व्यशीतिकमुद्वेल्लितमनुष्यद्विकतेजोवाय्वोः स्वस्थानोत्पन्नस्थानयोर्मिथ्यादृष्टौ स ८२ । बं २३ । २५ ।

चतुष्ककी उद्वेलना कर मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य होकर शरीरपर्याप्तिकालमें देवचतुष्कका बन्ध करता है तब होता है ।

चौरासीका सत्त्व नारक चतुष्ककी उद्वेलना होनेपर एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियके होता है । वे मरकर तिर्यंच या मनुष्यमें जहाँ उत्पन्न होते हैं मिथ्यादृष्टि ही होते हैं । वहाँ बन्ध और उदय अठासीके सत्त्वमें कहे अनुसार ही जानना । विशेष इतना कि यहाँ अठाईसका बन्ध नहीं है । यह चौरासीका सत्त्व शरीर पर्याप्ति काल आदिमें तिर्यंच या मनुष्यगतिका बन्ध होनेपर ही होता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्यके देव या नरकगतिका बन्ध होनेपर ऐसा सत्त्व नहीं होता ।

बयासीका सत्त्व मनुष्यद्विककी उद्वेलना होनेपर तेजकाय, वायुकायके होता है । वे

तेजोवायुकायिकंगळ शरीरपर्य्याप्तियोळमुच्छ्वासनिश्वासपर्य्याप्तियोळमातपोद्योतोदयमिल्लप्पुदरिंदं पंचविंशतिषड्विंशतिस्थानोदयंगळे पेळल्पट्टुवेंदरियल्पडुगुं । एकेंद्रियाद्यन्यतनतिर्य्यंचरोळुत्पत्तितेजोवायुकायिकंगळ्गे संभवमुळ्ळोडमवु विवक्षिसल्पडदेकेंदोडा एकेंद्रियादिजीवंगळ्गे मनुष्यगतियुतस्थानबंधमुंटप्पुदरिंदमा मनुष्यद्विकक्के सत्वमादुदादोडा द्वयशीतिसत्वस्थानं संभविसदे पोकुमप्पुदरिंदं ॥ ५

अनंतरमशीतिसत्वस्थानाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पडुगुमदेंतेंदोडे— अशीतिसत्वस्थानं मनुष्यगतिजरोळल्लदेल्लियुं संभविसदेकेंदोडे क्षपकश्रेणियोळु क्षपकरोळं स्नातकरोळं संभविसुव सत्वस्थानमप्पुदरिंदमल्लियनिवृत्तिकरणक्षपकनोळु स ८० । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु स ८० । बं १ । उ ३० ॥ क्षीणकषायनोळु स ८० । बं ० । उ ३० । स्वस्थान सयोगकेवलियोळु स ८० । बं । ० । उ ३० ॥ समुद्घातसयोगकेवलियोळु स ८० । बं । ० । उ २१ । २७ । २९ । ३० । ३१ ॥ अयोगिकेवलियोळु स ८० । बं । ० । उ ९ ॥ १०

मत्तमा क्षपकश्रेणियोळे अनिवृत्तिकरणदोळु तीर्त्थसत्वरहितमागि स ७९ । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु स ७९ । बं १ । उ ३० ॥ क्षीणकषायनोळु स ७९ । बं । ० । उ ३० ॥ स्वस्थानसयोगकेवलियोळु स ७९ । बं । ० । उ ३० ॥ समुद्घातकेवलियोळु स ७९ । बं । ० । उ २० । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ अयोगिकेवलियोळु स ७९ । बं । ० । उ ८ ॥ मत्तमा क्षपकश्रेणियोळे तीर्त्थसत्त्वयुतमागियाहारकद्वयसत्वरहितमागि अनिवृत्तिकरणक्षपकनोळु स ७८ । बं १ । उ ३० ॥ सूक्ष्मसांपरायनोळु स ७९ । बं १ । उ ३० ॥ क्षीणकषायनोळु स ७८ । बं । ० । उ ३० ॥ स्वस्थानसयोगकेवलियोळु स ७८ । बं । ० । उ ३१ ॥ समुद्घातकेवलियोळु स ७८ । बं । ० । उ २१ । २७ । २९ । ३० । ३१ ॥ अयोगिकेवलियोळु स ७९ । बं । ० । उ ८ ॥ मत्तमा १५

---

२६ । २९ । ३० । उ २१ । २४ । २५ । २६ । अत्र तेजोवाय्वोरातपोद्योतानुदयाच्छरीरपर्याप्तौ उच्छ्वासपर्याप्तौ च पंचविंशतिकमेव । षड्विंशतिके न द्वयशीतिकं । मनुष्यद्विकबन्धे तदन्यतिर्यक्षु । २०

अशीतिकं क्षपकस्नातकयोरेव । तत्रानिवृत्तिकरणे स ८० । बं १ । उ ३० । सूक्ष्मसाम्पराये स ८० । बं १ । उ ३० । क्षीणकषाये स ८० । बं । उ ३० । सयोगे स्वस्थाने स ८० । बं । उ ३० । समुद्घाते स ८० । बं० । उ २१ । २७ । २९ । ३० । ३१ । अयोगे । स ८० । बं । उ ९ । अतीर्थेऽनिवृत्तिकरणे स ७९ । बं १ । उ ३० । सूक्ष्मसाम्पराये स ७९ । बं १ । उ ३० । क्षीणकषाये स ७९ बं ० । उ ३० । सयोगे स्वस्थाने स ७९ । बं ० । उ ३० । समुद्घाते स ७९ । बं ० । उ २० । २६ । २८ । २९ । ३० । अयोगे स ७९ । बं ० । उ ८ । आहारसत्त्वरहितेऽनिवृत्तिकरणे स ७८ । बं १ । उ ३० । सूक्ष्मसाम्पराये २५

मरकर तिर्यंचमें उत्पन्त होते हैं वहां भी होता है । वहां बन्ध तेईस, पच्चीस, छब्बीस, उनतीस, तीसका है । उदय इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीसका है । तेजकाय, वातकायमें आतप उद्योतका उदय न होनेसे शरीर पर्याप्ति और उच्छ्वास पर्याप्तिमें पच्चीसका ही उदय है छब्बीसका नहीं है । ३०

अस्सीका सत्त्व क्षपक श्रेणीवाले अनिवृत्तिकरण आदिमें तथा तीर्थंकर केवलीके होता है । अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्परायमें बन्ध एकका है । उससे ऊपर बन्ध नहीं है ।

क्षपकश्रेणियोळे तीर्त्थाहारसत्वरहितानिवृत्तिकरणनोळु स ७७। बं। १। उ ३०॥ सूक्ष्मसांपरायक्षपकनोळु स ७७। बं १। उ ३०। क्षीणकषायनोळु स ७७। वं। ०। उ ३०॥ स्वस्थानसयोगकेवलियोळु स ७७। बं। ०। उ ३०॥ समुद्घातकेवलियोळु स ७७। बं। ०। उ २०। २६। २८। २९। ३०॥ अयोगिकेवलियोळु स ७७। बं। ०। उ ८॥ मत्तं चरमसमयायोगिकेवलियोळु तीर्त्थयुतमागि स १०। बं। ०। उ ९॥ तीर्त्थरहितायोगिकेवलिजिननोळु स ९। बं। ०। उ ८॥

यितु सत्वस्थानैकाधिकरणदोळु बंधोदयस्थानंगळु योजिसल्पट्टुवनंतरं बंधोदयस्थानद्वयाधिकरणदोळु सत्वस्थानंगळनाचार्य्यं गाथानवकदिंदं निरूपिसिदपं :—

तेवीसबंधगे इगिवीसणवुदयेसु आदिमचउक्के।
बाणउदिणउदि अडचउवासीदी सत्तठाणाणि॥७६०॥

त्रयोविंशतिबंधके एकविंशति नवोदयेष्वादिमचतुष्के। द्वानवतिनवत्यष्टचतुर्द्व्यशीति सत्त्वस्थानानि॥

त्रयोविंशतिबंधकनोळे एकविंशत्यादि नवोदयस्थानंगळोळु आदिमस्थानचतुष्टयदोळु द्वानवतिनवत्यष्टाशीतिचतुरशीतिद्व्यशीतिसत्त्वस्थानंगळप्पुवु। बं २३। उ २१। २४। २५।

स ७८। बं १। उ ३०। क्षीणकषाये स ७८। बं ०। उ ३०। सयोगे स्वस्थाने स ७८। वं ०। उ ३१। समुद्घाते स ७८। बं ०। उ २१। २७। २९। ३०। ३१। अयोगे स ७८। बं ०। उ ९। तीर्थाहारासत्वेऽनिवृत्तिकरणे स ७७। बं १। उ ३०। सूक्ष्मसाम्पराये स ७७। बं १। उ ३०। क्षीणकषाये स ७७। बं ०। उ ३०। सयोगे स्वस्थाने स ७७। बं ०। उ ३०। समुद्घाते स ७७। बं ०। उ २०। २६। २८। २९। ३०। अयोगे स ७७। बं ०। उ ८। चरमसमये सतीर्थे स १०। बं ०। उ ९। वितीर्थे स ९। बं ०। उ ८॥७५९॥ ते सत्त्वस्थानाधारे बन्धोदयसत्त्वस्थानान्याधेयत्वेन संयोज्य बन्धोदयद्वयाधारे सत्त्वस्थानान्याधेयतया गाथानवकेनाह—

उदय क्षीणकषाय पर्यन्त तीसका है। सयोगीमें स्वस्थान केवलीके तीसका और समुद्घात केवलीके इक्कीस, सत्ताईस, उनतीस, तीस, इकतीसका उदय है। अयोगीके नौका उदय है।

उन्यासीका सत्त्व तीर्थंकर रहित है। अठत्तरका सत्त्व तीर्थंकर सहित आहारक रहित है। सतहत्तरका सत्त्व तीर्थंकर और आहारकद्विक रहित है। इन तीनोंमें बन्ध उदय क्षपक अनिवृत्तिकरणसे क्षीणकषाय पर्यन्त तो जैसे अस्सीके सत्त्वमें कहे वैसे ही जानने। सयोगीमें उन्यासी और सतहत्तरके सत्त्वमें स्वस्थान केवलीके तीसका और समुद्घात केवलीके बीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीसका उदय है। अठत्तरके सत्त्वमें अस्सीके सत्त्वके समान जानना। अयोगीमें उन्यासी, सतहत्तरके सत्त्वमें आठका उदय है और अठत्तरके सत्त्वमें नौका उदय है। अयोगीके चरम समयमें दसका सत्त्व तीर्थरहित है। वहाँ बन्ध नहीं है। उदय क्रमसे नौ और आठका है॥७५९॥

इस प्रकार सत्त्वस्थानको आधार और बन्ध उदयको आधेय बनाकर व्याख्यान किया। आगे बन्ध उदयको आधार और सत्त्वको आधेय करके नौ गाथाओंसे कथन करते हैं। यहाँ इतनेके बन्ध और इतनेके उदयमें सत्त्व कितनेका पाया जाता है ऐसा कथन है—

२६ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥

तेणुवरिमपंचुदये ते चेवंसा विवज्ज बासीदिं ।
एवं पणछव्वीसे अडवीसे एक्कवीसुदये ॥७६१॥

तेनोपरिमपञ्चोदये ते चैवांशा विवर्ज्य द्व्यशीतिमेवं पंचषड्विंशत्याम्मष्टाविंशत्यामेकविंशत्युदये ॥

तेन सह आ त्रयोविंशतिस्थानबंधयुतमागियुपरितनसप्तविंशत्यादि पंचस्थानोदयंगळोळु ते चैवांशाः आ पूर्व्वोक्तद्वानवत्यादि पंचसत्त्वस्थानंगळे यप्पुवादडं द्व्यशीतिस्थानं वर्ज्जिसल्पट्टुदक्कुं । बं २३ । उ २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ ॥ एवं पंच षड्विंशत्यां इहिंगे पंचविंशति षड्विंशतिस्थानद्वयबंधदोळुदयसत्त्वंगळरियल्पडुगुं । बं २५ । २६ ॥ उ २१ । २४ । २५ । २६ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ उपरितनसप्तविंशत्यादि पंचोदयंगळोळु बं २५ । २६ । उ २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ ॥ अष्टाविंशतिबंधमुमेकविंशत्युदयमु मुळ्ळरोळु सत्त्वंगळं पेळ्दपरु :—

बाणउदिणउदिसत्तं एवं पणुवीसयादिपंचुदये ।
पणसगत्तीसे णउदी विगुव्वणे अत्थि णाहारे ॥७६२॥

द्वानवतिनवतिसत्त्वमेवं पंचविंशत्यादि पंचोदये पंच सप्तविंशत्यां नवतिर्व्विकुर्व्वणेऽस्ति नाहारे ॥

द्वानवतियुं नवतियुं सत्त्वमक्कुं । बंध २८ । उ २१ । स ९२ । ९० ॥ इहिंगे पंचविंशत्यादि पंचोदयस्थानंगळोळमक्कुमादोडमल्लि पंचविंशति सप्तविंशतिस्थानोदयद्वयदोळु नवतिसत्त्वस्थानं

त्रयोविंशतिकबन्धे एकविंशतिकादिनवोदयेष्वादिमचतुष्के सत्त्वस्थानानि द्वानवतिकनवतिकाष्टचतुर्द्वयग्राशीतिकानि ॥७६०॥

तेन त्रयोविंशतिकबन्धेन सहोपरितनसप्तविंशतिकादिपंचोदयेषु सत्त्वस्थानानि तान्येव पंच द्व्यशीतिकोनानि । पंचषडग्रविंशतिकबंधयोरुदयसत्त्वानि त्रयोविंशतिकबन्धोक्तप्रकारेण ज्ञातव्यानि ॥७६१॥ अष्टाविंशतिकबन्धैकविंशतिकोदये तु—

द्वानवतिकनवतिकसत्त्वं स्यात् । एवं पंचविंशतिकादिपंचोदयेष्वपि । किंतु पंचसप्ताग्रविंशतिकयोर्नव-

---

तेईसके बन्धमें इक्कीस और नौ उदयस्थान होते हैं । उनमेंसे प्रथम चार उदयस्थानोंमें बानबे, नब्बे, अट्ठासी, चौरासी, बयासीके पाँच सत्त्वस्थान हैं ॥७६०॥

ऊपरके सत्ताईस आदि पाँच उदयस्थानोंमें सत्त्वस्थान उक्त पाँचमें-से बयासीके बिना चार होते हैं । पच्चीस, छब्बीसके बन्धमें उदयस्थान और सत्त्वस्थान तेईसकी तरह ही हैं ॥७६१॥

आगे अठाईसके बन्ध सहित इक्कीसके उदयमें कहते हैं—

अठाईसके बन्ध और इक्कीसके उदयमें बानबे और नब्बेका सत्त्व है । इसी प्रकार अठाईसके बन्धके साथ पच्चीस आदि पाँचके उदयमें सत्त्व होता है । इतना विशेष है कि

विक्रयर्द्धियुतरोळुंदु । आहारकर्द्धियुतरोळिल्ल । बं २८ । उ २६ । २८ । २९ । स ९२ । ९० ॥ आहारकर्द्धियुक्तरोळु बं २८ । उ २५ । २७ । स ९२ ॥

तेण णभिगितीसुदये बाणउदिचउक्कमेक्कतीसुदये ।
णवरि ण इगिणउदिपदं णववीसिगिवीसबंधुदये ॥७६३॥

तेन नभ एक त्रिंशदुदये द्वानवतिचतुष्कमेकत्रिंशदुदये । नवमस्ति नैक नवतिपदं नवविंशत्येकविंशति बंधोदये ॥

तेन सह आ अष्टाविंशतिस्थानबंधयुतमागि नभोयुतैकयुतत्रिंशदुदयंगळोळु क्रमदिंदं द्वानवतिचतुष्कं सत्वमक्कुमल्लि एकत्रिंशदुदयदोळु शेषमुंटदावुदेंदोडे नैकनवतिपदं एकनवतिसत्वस्थानं संभविसदु । संदृष्टि । बं २८ । उ ३० । स ९२ । ९१ । ९० । ८८ ॥ मत्तं बंध २८ । उ ३१ । स ९२ । ९० । ८८ ॥ नवविंशतिबंधमुमेकविंशत्युदयदोळु सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

तेणउदिसत्तसत्तं एवं पणछक्क वीसठाणुदये ।
चउव्वीसे बाणउदी णउदिचउक्कं च सत्तपदं ॥७६४॥

त्रिनवति सप्तसत्वमेवं पंच षड्विंशति स्थानोदये । चतुर्व्विंशत्यां द्वानवतिप्रभृतिचतुष्कं च सत्वपदं ॥

नवविंशत्येकविंशति बंधोदयंगळोळु त्रिनवत्यादि सप्त सत्वस्थानंगळप्पुवु । बंध २९ । उ २१ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ एवं पंचविंशति षड्विंशतिस्थानोदयंगळोळक्कुं । बं २९ । उ २५ । २६ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ चतुर्व्विंशत्यां चतुर्व्विंशत्युदयस्थानदोळु द्वानवतियुं नवतिचतुष्कमुं सत्वमक्कुं । बं २९ । उ २४ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥

तिकसत्त्वं सविक्रियर्द्धिषु नाहारकर्द्धिषु ॥७६२॥

तेनाष्टाविंशतिकबन्धनयुतशून्यैकाधिकत्रिंशत्कोदये सत्त्वं द्वानवतिकचतुष्कं किंत्वेकत्रिंशत्कोदये नैकनवतिकं ॥७६३॥ नवविंशतिकबन्धैकविंशतिकोदये—

सत्त्वं त्रिनवतिकादीनि सप्त । एवं पंचषडग्रविंशतिकयोरपि । चतुर्विंशतिकोदये द्वानवतिकं नवतिकादिचतुष्कं च ॥७६४॥

पच्चीस और सत्ताईसके उदयमें जो नब्बेका सत्त्व है वह वैक्रियिक अपेक्षा है आहारक अपेक्षा नहीं है ॥७६२॥

अठाईसके बन्धके साथ तीस, इकतीसके उदयमें बानबे आदि चारका सत्त्व है । इतना विशेष है कि इकतीसके उदयमें इक्यानबेका सत्त्व नहीं है ॥७६३॥

उनतीसके बन्ध सहित इक्कीसके उदयमें तेरानबे आदि सातका सत्त्व है । इसी प्रकार उनतीसके बन्ध सहित पच्चीस छब्बीसके उदयमें भी सत्त्व है । उनतीसके बन्ध सहित चौबीसके उदयमें बानबे और नब्बे आदि चारका सत्त्व है ॥७६४॥

सगवीसचउक्कुदये तेणउदीछक्कमेवमिगितीसे ।
तिगिणउदी ण हि तीसे इगिपणसगअट्ठणवयवीसुदये ॥७६५॥

सप्तविंशतिचतुष्कोदये त्रिनवतिषट्कमेवमेकत्रिंशदुदये । त्र्येकनवतिर्न्नहि त्रिंशद्बंधे एक पंचसप्ताष्टनवविंशत्युदये ॥

नवविंशतिबंधमुं सप्तविंशत्यादिचतुःस्थानोदयंगळोळ् त्रिनवत्यादि षट्स्थानंगळ् सत्त्वमप्पुवु । बं २९ । उ २७ । २८ । २९ । ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ ॥ एवमेक- ५
त्रिंशदुदये इन्तेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानोदयदोळमक्कुमादोडं त्रिनवत्येकनवतिस्थानंगळ् सत्वमिल्ल । बंध २९ । उ ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ ॥

यिन्नु त्रिंशत्प्रकृतिबंधमुमेकविंशतिपंचविंशतिसप्तविंशत्यष्टाविंशतिनवविंशत्युदयंगळोळ् १०
सत्वस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

तेणउदिछक्कसत्तं इगिपणवीसेसु अत्थि बासीदि ।
तेण छचउवीसुदये बाणउदी णउदिचउसत्तं ॥७६६॥

त्रिनवतिषट्कसत्वमेकपंचविंशत्यामस्ति द्व्यशीतिः । तेन षट्चतुर्विंशत्युदये द्वानवति-र्न्नवतिचतुः सत्वं ॥

त्रिनवत्यादिषट्कं सत्वमक्कुमदरोळेकविंशति पंचविंशत्युदयंगळोळ् द्व्यशीतिसत्वमक्कु- १५
मतरोदयंगळोळ् द्व्यशीतिसत्वं संभविसदेंदरियल्पडुगुं । बं ३० । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥ तेन सह आ त्रिंशत्प्रकृतिबंधदोडने चतुर्विंशति षड्विंशत्युदयदोळ् द्वानवतियुं नवत्यादिचतुःस्थानसत्वमक्कुं । बंध ३० । उ २४ । २६ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ ॥

नवविंशतिकबन्धसप्तविंशतिकादिचतुर्षूदयेषु सत्त्वं त्रिनवतिकादिषट्कं । एवमेकत्रिंशत्कोदयेऽपि किंतु न त्रिनवतिकैकनवतिके द्वे ॥७६५॥ त्रिंशत्कबंधैकपंचसप्ताष्टनवाधिकविंशतिकोदयेष्वेवमाह —

सत्त्वं त्रिनवतिकादिषट्कं । तत्र द्व्यशीतिकं त्वेकपंचाधिकविंशतिकोदययोरेव नेतरोदयेषु । तेन त्रिंशत्कबन्धेन सह चतुःषडग्रविंशतिकोदययोः सत्त्वं द्वानवतिकं नवतिकादिचतुष्कं च ॥७६६॥

उनतीसके बन्ध सहित सत्ताईस आदि चारके उदयमें सत्त्व तेरानबे आदि छहका है । इकतीसके उदयमें भी इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि यहाँ तिरानबे, इक्यानबेका सत्त्व नहीं है ॥ ७६५॥

तीसके बन्धके साथ इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसके उदयमें सत्त्व तिरानबे आदि छहका है । इतना विशेष है कि बयासीका सत्त्व इक्कीस-पच्चीसके उदयमें ही होता है, अन्य उदयोंमें नहीं होता । अतः तीसके बन्ध सहित चौबीस, छब्बीसके उदयमें बानबे और नब्बे आदि चारका सत्त्व है ॥७६६॥

एवं खिगितीसे ण हि बासीदी एक्कतीसबंधेण ।
तीसुदये तेणउदी सत्तपदं एक्कमेव हवे ॥७६७॥

एवं खैयकत्रिंशदुदयेन न हि द्व्यशीतिः एकत्रिंशद्बंधेन । त्रिंशदुदये त्रिनवतिः सत्वपदमेकमेव भवेत् ॥

एवमी प्रकारमे त्रिंशद्बंधमुं त्रिंशदेकत्रिंशदुदयमुमुळ्ळ जीवनोळु पूर्व्वोक्तसत्वस्थानंगळेयक्कुमादोडं द्व्यशीतिसत्वमिल्ल । बं ३० । उ ३० । ३१ ॥ स ९२ । ८८ । ८४ ॥ एकत्रिंशद्बंधदोडने त्रिंशदुदयदोळु त्रिनवतिसत्वस्थानमेयक्कुं । बं ३१ । उ ३० । स ९३ ॥

इगिबंधट्ठाणेण दु तीसट्ठाणोदये णिरुद्धम्मि ।
पढमचऊसीदिचऊ सत्तट्ठाणाणि णामस्स ॥७६८ ॥

एकबंधस्थानेन तु त्रिंशत्स्थानोदये निरुद्धे । प्रथमचतुरशीतिचतुःसत्वस्थानानि नाम्नः ॥

एकबंधस्थानदोडने तु मत्ते त्रिंशत्स्थानोदयमवस्थानमागुत्तं विरलु नामकर्म्मद प्रथमचतुःसत्वस्थानंगळुमशीत्यादिचतुःसत्वस्थानंगळुं सत्वमप्पुवु । बं १ । उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥

अनंतरं बंधसत्वस्थानद्वयाधिकरणदोळुदयस्थानंगळं गाथाषट्कदिदं पेळ्दपरु :—

तेवीसबंधठाणे दुखणउदडचदुरसीदिसत्तपदे ।
इगिवीसादीणउदओ बासीदे एक्कवीसचऊ ॥७६९॥

त्रयोविंशतिबंधस्थाने द्विखनवत्यष्टचतुरशीति सत्वपदे । एकविंशत्यादि नवोदयः द्व्यशीत्यामेकविंशतिचत्वारि ॥

त्रिंशत्कबन्धत्रिंशत्कैकत्रिंशत्कोदये सत्त्वं प्राग्वन्न हि द्व्यशीतिकं । एकत्रिंशत्कबन्धेन समं त्रिंशत्कोदये सत्त्वं त्रिनवतिकमेवैकं स्यात् ॥७६७॥

एकबन्धेनावस्थिते तु त्रिंशत्कोदये नाम्नः सत्त्वं प्रथमचतुष्कमशीतिकादिचतुष्कं च ॥७६८॥ अथ बन्धसत्त्वस्थानाधारे उदयस्थानान्याधेयत्वेन गाथापट्केनाह—

तीसके बन्धके साथ तीस-इकतीसके उदयमें सत्त्व चौरासी आदिकी ही तरह है किन्तु बयासीका सत्त्व नहीं है । इकतीसके बन्धके साथ तीसके उदयमें सत्त्व तिरानबेका ही है ॥७६७॥

एकके बन्धके साथ तीसके उदयमें नामकर्मका सत्त्व तिरानबे आदि चार और अस्सी आदि चारका होता है ॥७६८॥

आगे बन्ध सत्त्वको आधार और उदयस्थानको आधेय बनाकर छह गाथाओंसे कहते हैं—

त्रयोविंशतिबंधस्थानदोळु द्विनवतियुं खनवतियुं अष्टाशीतियुं चतुरशीतियुं सत्वस्थानंगळागुत्तं विरलेकविंशत्यादि नवोदयस्थानंगळप्पुवु। बं २३। स ९२। ९०। ८८। ८४। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ मत्तमा त्रयोविंशतिबंधकनोळु द्वयशीतिसत्वस्थानमागुत्तं विरलेकविंशत्यादिचतुरुदयस्थानंगळप्पुवु। बं २३। स ८२। उ २१। २४। २५। २६॥

एवं पणछव्वीसे अडवीसे बंधगे दुणउदंसे।
इगिवीसादिणवुदया चउवीसट्ठाणपरिहीणा ॥७७०॥

एवं पंचषड्विंशत्यामष्टाविंशत्यां बंधके द्विनवत्यंशे। एकविंशत्यादिनवोदयाश्चतुर्विंशतिस्थानपरिहीनाः॥

एवं ई प्रकारदिंदमे पंचविंशतिषड्विंशतिबंधस्थानद्वयदोळं सत्वोदयस्थानंगळप्पुवु। बं २५। २६। स ९२। ९०। ८८। ८४। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ मत्तमा द्विस्थानबंधदोळु द्वयशीतिसत्वमागुत्तं विरलुदयंगळुमेकविंशत्यादिचतुःस्थानंगळप्पुवु। बं। २५। २६। स ८२। उ २१। २४। २५। २६॥ अष्टाविंशतिबंधकनोळु द्विनवत्यंशदोळुदयस्थानंगळेकविंशत्यादि नवोदयस्थानंगळप्पुवादोडमल्लि चतुर्विंशत्युदयस्थानपरिहीनंगळप्पुवु। बं २८। स ९२। उ २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥

इगिणउदीए तीसं उदओ णउदीए तिरियसण्णिं वा।
अडसीदीए तीसदु णववीसे बंधगे तिणउदीए ॥७७१॥

एकनवत्यां त्रिंशदुदयो नवत्यां तिर्यक्संज्ञिवत्। अष्टाशीतौ त्रिंशद्द्वयं नवविंशत्यां बंधके त्रिनवत्यां॥

त्रयोविंशतिकबन्धस्थाने द्विखाधिकनवतिकाष्टचतुरधिकाशीतिकसत्त्वे उदयस्थानान्येकविंशतिकादीनि नव। तद्बंधद्वयशीतिसत्त्वे एकविंशतिकादीनि चत्वारि ॥७६९॥

पंचषडग्रविंशतिकबंधयोरपि सत्त्वोदयस्थानान्येवं त्रयोविंशतिकवद्भवंति। अष्टविंशतिकबन्धे द्विनवतिकसत्त्वे एकविंशतिकादीनि नव चतुर्विंशतिकोनानि ॥७७०॥

तेईसके बन्धस्थानके साथ बानबे, नब्बे, अठासी, चौरासीके सत्त्वमें इक्कीस आदि नौ उदयस्थान होते हैं। तेईसके बन्धके साथ बयासीके सत्त्वमें इक्कीस आदि चार उदयस्थान हैं ॥७६९॥

पच्चीस-छब्बीसके बन्धके साथ सत्त्वस्थान और उदयस्थान तेईसके समान होते हैं। अठाईसके बन्ध सहित बानबेके सत्त्वमें चौबीसके बिना इक्कीस आदि नौ उदयस्थान होते हैं ॥७७०॥

अष्टाविंशतिबंधमुमेकनवतिसत्वमुळळनोळु त्रिंशदुदयमक्कुं। बं २८। सत्व ९१। उ ३०॥ मत्तमष्टाविंशतिबंधमुं नवतिसत्वमुळळनोळु तिर्य्यंक्संज्ञियोळु पेळ्दुदयस्थानंगळप्पुवु। बं २८। सत्व ९०। उ २१। २६। २८। ३०। ३१॥ मत्तमष्टाविंशतिबंधमुमष्टाशीतिसत्वनोळु त्रिंशदेकत्रिंशदुदयंगळप्पुवु। बं २८। स ८८। उ ३०। ३१॥ नवविंशतिबंधकनोळु त्रिनवतिस्थानसत्वदोळु उदयस्थानंगळं पेळ्दपरु :—

इगिवीसादट्ठुदओ चउवीसूणो दुणउदिणउदितिये ।
इगिवीसणविगिणउदे णिरयं व छवीस तीसधिया ॥७७२॥

एकविंशत्याद्यष्टोदयः चतुर्विंशत्यूनः द्विनवतिनवतित्रय एकविंशति नव एकनवत्यां नरकवत् षड्विंशतित्रिंशदधिकाः॥

एकविंशत्याद्यष्टोदयं गळप्पुवल्लि चतुर्विंशत्युदरहितंगळप्पुवु। बं २९। स ९३। उदय २१। २५। २६। २७। २८। २९। ३०॥ मत्तमा नवविंशति बंधमुं द्विनवति नवतित्रयमुंसत्वमुळळनोळु एकविंशत्यादिनवोदयस्थानंगळप्पुवु। बं २९। स ९२। ९०। ८८। ८४। उ २१। २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१॥ मत्तं नवविंशतिबंधमुमेकनवतिसत्वयुतनोळु नरकगतियोळु पेळ्दुदयस्थानंगळुं मत्तं षड्विंशत्रिंशदुदयस्थानंगळुमधिकंगळप्पुवु। बंध २९। सत्व ९१। उदय २१। २५। २७। २८। २९। ३०॥

बासीदे इगिचउपणछव्वीसा तीसबंधतिगिणउदे ।
सुरमिव दुणउदी णउदी चउसुदओ ऊणतीसं वा ॥७७३॥

द्व्यशीत्यामेकचतुःपंचषड्विंशतिः त्रिंशद्बंधत्र्येकनवत्यां सुरवत् द्विनवतिनवति चतुर्नूदय एकान्नत्रिंशद्वत् ॥

तद्बन्धैकनवतिकसत्त्वे उदयस्त्रिंशत्कं। तद्बन्धनवतिकसत्त्वे तिर्यक्संज्ञयुक्तैकषडष्टनवदशैकादशाधिकविंशतिकानि। तद्बन्धाष्टाशीतिकसत्त्वे त्रिंशत्कैकत्रिंशत्के द्वे ॥७७१॥ नवविंशतिकबंधे त्रिनवतिकसत्त्वे आह—

उदयस्थानान्येकविंशतिकादीन्यष्टौ चतुर्विंशतिकोनानि। पुनस्तद्बन्धद्विनवतिकनवतिकत्रयसत्त्वे एकविंशतिकादीनि नव। पुनः तद्बन्धैकनवतिकसत्त्वे नरकगत्युक्तैकपंचसप्ताष्टनवाधिकविंशतिकानि षड्विंशतिकत्रिंशत्काधिकानि ॥७७२॥

अठाईसके बन्धके साथ इक्यानबेके सत्त्वमें उदय तीसका होता है। अठाईसके बन्धके साथ नब्बेके सत्त्वमें संज्ञीतिर्यंचमें कहे इक्कीस, छब्बीस, अठाईस, उनतीस, तीस, इकतीसके उदयस्थान हैं। अठाईसके बन्धके साथ अठासीके सत्त्वमें तीस-इकतीसका उदय है ॥७७१॥

उनतीसके बन्धके साथ तिरानबेके सत्त्वमें चौबीसको छोड़ इक्कीस आदि आठ उदयस्थान हैं। उनतीसके बन्धके साथ बानबेका तथा नब्बे आदि तीनके सत्त्वमें इक्कीस आदि नौ उदयस्थान हैं। उनतीसके बन्धके साथ इक्यानबेके सत्त्वमें नरकगतिमें कहे इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अठाईस, उनतीसके तथा छब्बीस और तीसके उदयस्थान होते हैं ॥७७२॥

नवविंशतिबंधमुं द्व्यशीतिसत्त्वमुळ्ळनोळुदयस्थानंगळुमेकविंशति चतुर्विंशति पंचविंशति षड्विंशतिगळुमप्पुवु । बं २९ । स ८२ । उ २१ । २४ । २५ । २६ ॥ त्रिंशद्बंधमुं त्र्येकनवतिसत्त्वमुळ्ळरोळुदयस्थानंगळु देवगतियोळु पेळ्दुवक्कुं । बं ३० । स ९३ । ९१ । उ २१ । २५ । २७ । २८ । २९ ॥ मत्तं त्रिंशद्बंधमुं द्विनवतिनवति चतुःस्थानसत्वंगळनुळ्ळरोळुदयस्थानंगळु नवविंशतिबंधकनोळु पेळ्दुवक्कुं । बंध ३० । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । उ २१ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ॥ मत्तं त्रिंशद्बंधकनोळु द्व्यशीतिसत्त्वस्थानदोळुदयंगळु नवविंशतिबंधकनोळे तंतेकविंशत्यादि चतुःस्थानंगळप्पुवु । बं ३० । स ८२ । उ २१ । २४ । २५ । २६ ॥

इगितीसबंधठाणे तेणउदे तीसमेव उदयपदं ।
इगिबंधतिणउदिचऊ सीदिचउक्केवि तीसुदओ ॥७७४॥

एकत्रिंशद्बंधस्थाने त्रिनवत्यां त्रिंशदेवोदयपदं । एकबंधत्रिनवतिचतुरशीतिचतुष्केऽपि त्रिंशदुदयः ॥

एकत्रिंशद्बंधस्थानदोळु त्रिनवतिसत्वमागुत्तं विरलु त्रिंशदुदयस्थानमो देयक्कुं । बं ३१ । स ९३ । उ ३० ॥ एकबंधमुं त्रिनवतिचतुष्कमु मशीति चतुष्कमुं सत्त्वमुळ्ळवर्गंळोळु त्रिंशदुदयमो देयक्कुं । बं १ । सत्व ९३ । ९२ । ९१ । ९० । ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ उ ३० ॥ नामबंधरहितरोळु सत्त्वोदयंगळु विवक्षिसल्पडवेकं दोडे द्व्याधारैकाधेयं विवक्षितमप्पुदरिंदं ॥

अनंतरमुदयसत्त्वस्थानद्वयाधिकरणदोळु बंधस्थानंगळं गाथादशकदिदं पेळ्दपरु :—

तद्बन्धद्व्यशीतिकसत्त्वे उदयस्थानान्येकचतुष्पंचषडधिकविंशतिकानि, त्रिंशत्कबंधस्येकनवतिकसत्त्वे देवगत्युक्तानि पंच । तद्बन्धद्विनवतिकनवतिकादिचतुष्कसत्त्वे नवविंशतिकबन्धोक्तानि नव । तद्बंधद्व्यशीतिकसत्त्वे तु नवविंशतिकबन्धवच्चत्वारि ॥७७३॥

एकत्रिंशत्कबन्धस्थाने त्रिनवतिकसत्त्वे उदयस्थानं त्रिंशत्कं । एकबन्धत्रिनवतिकादिचतुष्काशीतिकादिचतुष्कसत्त्वेऽपि तदेव । अग्रे बंधाभावे द्व्याधारैकाधेयत्वं न संभवति ॥७७४॥ अथोदयसत्त्वस्थानाधारे बन्धस्थानान्याधेयत्वेन गाथादशकेनाह—

उनतीसके बन्धके साथ बयासीके सत्त्वमें इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीसके उदयस्थान हैं । तीसके बन्धके साथ तिरानबे-इक्यानबेके सत्त्वमें देवगतिमें कहे पाँच उदयस्थान होते हैं । तीसके बन्धके साथ बानबे तथा नब्बे आदि चारके सत्त्वमें उनतीसके बन्धके साथ कहे नौ उदयस्थान होते हैं । तीसका बन्ध और बयासीके सत्त्वमें उनतीसके बन्धके साथकी तरह चार उदयस्थान होते हैं ॥७७३॥

इकतीसके बन्धके साथ तिरानबेके सत्त्वमें तीसका उदयस्थान होता है । एकके बन्धके साथ तिरानबे आदि चारका तथा अस्सी आदि चारका सत्त्व होनेपर उदयस्थान तीसका ही होता है । आगे बन्धका अभाव होनेसे दो आधार एक आधेय सम्भव नहीं है ॥७७४॥

आगे उदय और सत्त्वस्थानको आधार बन्धस्थानको आधेय बनाकर दस गाथाओंसे कहते हैं—

इगिवीसट्ठाणुदये तिगिणउदे णवयवीसदुगबंधो ।
तेण दुखणउदीसत्ते आदिमछक्कं हवे बंधो ॥७७५॥

एकविंशतिस्थानोदये त्र्येकनवत्यां नवविंशतिद्विकबंधः । तेन द्विखनवतिसत्वे आदिमषट्कं भवेद्बंधः ॥

एकविंशतिस्थानोदयदोळु त्रिनवत्येकनवतिसत्त्वंगळोळु नवविंशतियुं त्रिंशत्प्रकृतिबंधमक्कुं । उ २१ । स ९३ । ९१ । बं २९ । ३० ॥ मत्तमा एकविंशत्युदयदोडने द्विनवति खनवति सत्त्वद्वयमागलादिमषड्बंधस्थानंगळप्पुवु । उ २१ । स ९२ । ९० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥

एवमडसीदितिदये ण हि अडवीसं पुणो वि चउवीसे ।
दुखणउदडसीदितिये सत्ते पुव्वं व बंधपदं ॥७७६॥

एवमष्टाशीतित्रये नह्यष्टाविंशतिः पुनरपि चतुर्विंशत्यां । द्विखनवत्यष्टाशीतित्रये सत्वे पूर्ववद्बंधपदं ॥

एवं इंतेकविंशत्युदयदोळष्टाशीतित्रयसत्त्वदोळु अष्टाविंशतिस्थानबंधमिल्ल । उ २१ । स ८८ । ८४ । ८२ ॥ बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० ॥ पुनरपि-चतुर्विंशत्युदयदोळु द्वानवति खनवत्यष्टाशीतित्रितयसत्त्वस्थानंगळोळु पूर्वोक्तत्रयोविंशत्यादि पंचस्थानंगळे बंधमप्पुवु । उ २४ । स ९२ । ९० । ८८ । ८४ । ८२ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० ॥

पणवीसे तिगिणउदे एगुणतीसं दुगं दुणउदीए ।
आदिमछक्कं बंधो णउदिचउक्केवि णडवीसं ॥७७७॥

पंचविंशत्यां त्र्येकनवत्यामेकान्नत्रिंशद्विकं द्विनवत्यामादिमषट्कं बंधो नवतिचतुष्केऽपि नाष्टाविंशतिः ॥

एकविंशतिकोदये त्र्येकाधिकनवतिकसत्त्वयोर्बन्धस्थानानि नवविंशतिकत्रिंशत्के द्वे । पुनस्तदुदयेन द्विनवतिकनवतिकसत्त्वयोराद्यान्येव षट् ॥७७५॥

पुनः तदुदयाष्टाशीतिकादित्रयसत्त्वे बन्धस्थानानि तान्येव षट् न ह्यष्टाविंशतिकं । चतुर्विंशतिकोदये द्वानवतिकनवतिकाष्टाशीतिकादित्रयसत्त्वे पूर्वोक्तान्येव पंच ॥७७६॥

इक्कीसके उदयसहित तिरानबेके सत्त्वमें उनतीस, तीस दो बन्धस्थान हैं । इक्कीसके उदय सहित बानबे-नब्बेके सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान हैं ॥७७५॥

इक्कीसके उदय सहित अठासी आदि तीनके सत्त्वमें बन्धस्थान अठाईसके बिना आदिके छहमें-से पाँच हैं । चौबीसके उदय सहित बानबे, नब्बे और अठासी आदि तीनके सत्त्वमें पूर्वोक्त पाँच बन्धस्थान हैं ॥७७६॥

पंचविंशतिस्थानोदयदोळु त्रिनवतियुमेकनवतियुं सत्त्वमागुत्तं विरलेकान्नत्रिंशत् त्रिंशद्बंधं-गळप्पुवु । उ २५ । स ९३ । ९१ । बं २९ । ३० ॥ मत्तमा पंचविंशत्युदयदोळु द्विनवतिसत्वमागि-रलु बंधस्थानंगळुमादिमषट्कमक्कुं । उ २५ । स ९२ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ मत्तमा पंचविंशत्युदयमुं नवत्यादि चतुःसत्त्वंगळोळु अष्टाविंशतिरहिताद्यषड्बंधस्थानंगळप्पुवु । उ २५ । स ९० । ८८ । ८४ । ८२ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० ॥

छव्वीसे तिगिणउदे उणतीसं बंध दुगखणउदीए ।
आदिमछक्कं एवं अडसीदितिए ण अडवीसं ॥७७८॥

षड्विंशत्यां त्र्येकनवत्यामूनत्रिंशद्बंधः द्विकखनवत्यामाद्यषट्कमेवमष्टाशीतित्रये नाष्टा-विंशतिः ॥

षड्विंशत्युदयदोळु त्रिनवत्येकनवति सत्त्वंगळोळ नवविंशतिबंधस्थानमोंदेयक्कुं ॥ उ २६ । स ९३ । ९१ ॥ बं २९ ॥ मत्तमा षड्विंशत्युदयदोळु द्विनवतियुं खनवतियुं सत्त्वमागलु त्रयोविंशत्यादियादादिम षड्बंधस्थानंगळप्पुवु । उ २६ । स ९२ । ९० । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ एवं षड्विंशत्युदयदोळष्टाशीतित्रयसत्त्वदोळु अष्टाविंशतिबंधरहितत्रयोविंशत्यादि षट्कमक्कुं । उ २६ । स ८८ । ८४ । ८२ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० ॥

सगवीसे तिगिणउदे णववीसदुबंधयं दुणउदीए ।
आदिमछण्णउदितिए एवं अडवीसयं णत्थि ॥७७९॥

सप्तविंशत्यां त्र्येकनवत्यां नवविंशतिद्विकबंध द्विनवत्यामादिम षट्नवतित्रये एवमष्टाविंश-तिर्नास्ति ।

पंचविंशतिकोदये त्र्येकाधिकनवतिकसत्त्वे बन्धस्थानान्येकान्नत्रिंशत्कत्रिंशत्के द्वे । पुनः तदुदये द्विनवतिक-सत्त्वे आदिमषट्कं । पुनस्तदुदयनवतिकादिचतुःसत्त्वेष्वपि तदेवादिमषट्कमष्टाविंशतिकोनं ॥७७७॥

षड्विंशतिकोदये त्र्येकाधिकनवतिकसत्त्वयोर्बंधस्थानानि नवविंशतिकं । पुनस्तदुदये द्विनवतिकनवतिक-सत्त्वे आद्यानि षट् । पुनस्तदुदयेऽष्टाशीत्यादित्रयसत्त्वे तान्येव षट् नाष्टाविंशतिकं ॥७७८॥

पच्चीसके उदय सहित तिरानबे और इक्यानबेके सत्त्वमें उनतीस, तीस दो बन्धस्थान हैं। पच्चीसका उदय और बानबेके सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान हैं। पच्चीसके उदय सहित नब्बे आदि चारके सत्त्वमें भी अठाईसके बिना आदिके छह बन्धस्थान हैं ॥७७७॥

छब्बीसके उदयसहित तिरानबे और इक्यानबेके सत्त्वमें उनतीसका बन्धस्थान है। छब्बीसके उदयसहित बानबे-नब्बेके सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान हैं। छब्बीसके उदयके साथ अठासी आदि तीनके सत्त्वमें अठाईसके बिना आदिके छह बन्धस्थान हैं ॥७७८॥

सप्तविंशत्युदयदोळ् त्रिनवतियुमेकनवतियुं सत्त्वमागलु नवविंशतिद्वयं बंधमक्कुं। उद २७। स ९३। ९१। बं २९। ३०॥ मत्तमा सप्तविंशत्युदयमुं द्विनवतियुं सत्त्वमादोडे आद्य षड्बंधस्थानंगळप्पुवु। उ २७। स ९२। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ मत्तमा सप्तविंशत्युदयमुं नवतित्रयमुं सत्वमागलुमंते बंधंगळु मष्टाविंशतिपोरगागि आद्यषड्बंधस्थानंगळप्पुवु। उ २७। स ९०। ८८। ८४। बं २३। २५। २६। २९। ३०॥

अडवीसे तिगिणउदे उणतीसदु दुजुदणउदि णउदितिये।
बंधो सगवीसं वा णउदीए अत्थि [1]णडवीसं ॥७८०॥

अष्टाविंशत्यां त्र्येकनवत्यामेकान्नत्रिंशद्विकं द्वियुतनवतिनवतित्रये। बंधः सप्तविंशतिवत् नवत्यामस्त्यष्टाविंशतिः॥

अष्टाविंशतिस्थानोदयदोळु त्र्येकनवतिसत्त्वमागुत्तं विरलु नवविंशतियुं त्रिंशद्बंधमुमक्कुं। उ २८। स ९३। ९१। बं २९। ३०॥ मत्तमष्टाविंशत्युदयमुं द्वानवतियुं नवत्यादित्रयसत्त्वस्थानंगळोळु बंधस्थानंगळु सप्तविंशत्युदयदोळु पेळ्दंत संभविसुगुमल्लि नवतिस्थानदोळमष्टाविंशतिबंधमुंटु। उ २८। स ९२। ९०। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ मत्तं उ २८। स ८८। ८४। बं २३। २५। २६। २९। ३०॥

अडवीसमिवुणतीसे तीसे तेणउदिसत्तगे बंधो।
णववीसेक्कत्तीसं इगिणउदे अट्ठवीसदुगं ॥७८१॥

अष्टाविंशतिरिव नवविंशत्यां त्रिंशदुदये त्रिनवतिसत्त्वेकबंधो। नवविंशत्येकत्रिंशदेकनवत्यामष्टाविंशतिद्विकं॥

सप्तविंशतिकोदये त्र्येकाधिकनवतिकसत्त्वे बन्धस्थानानि नवविंशतिकादिद्वयं। पुनस्तदुदये द्विनवतिकसत्त्वे आद्यानि षट्। पुनस्तदुदये नवतिकादित्रिसत्त्वे तान्येव षट् नाष्टाविंशतिकमस्ति ॥७७९॥

अष्टाविंशतिकोदये त्र्येकाधिकनवतिकसत्त्वे बन्धस्थानानि नवविंशतिकत्रिंशत्के द्वे। तदुदये द्वानवतिकसत्त्वे नवतिकादित्रिसत्त्वे च सप्तविंशतिकोदयस्येव न नवतिकसत्त्वेऽष्टाविंशतिकबंधोऽस्ति ॥७८०॥

सत्ताईसके उदय सहित तिरानबे, इक्यानबेके सत्त्वमें उनतीस आदि दो बन्धस्थान हैं। सत्ताईसके उदय सहित बानबेके सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान हैं। सत्ताईसका उदय नब्बे आदि तीनके सत्त्वमें अठाईसके बिना आदिके छह बन्धस्थानोंमें-से पाँच बन्धस्थान हैं ॥७७९॥

अठाईसके उदय सहित तिरानबे, इक्यानबेके सत्त्वमें उनतीस-तीस दो बन्धस्थान हैं। अठाईसका उदय बानबेके और नब्बे आदि तीनके सत्त्वमें सत्ताईसके उदय सहितमें कहे अनुसार ही बन्धस्थान होते हैं। इतना विशेष है कि नब्बेके सत्त्वमें अठाईसका बन्ध नहीं होता ॥७८०॥

---

१. अडवीसं [ता०]।

नवविंशत्युदयदोळु अष्टाविंशत्युदयदोळु पेळ्दंते सत्त्वस्थानंगळुं बंधस्थानंगळुमप्पुवु। उ २९। स ९३। ९१। बं २९। ३०॥ मत्तं उ २९। सत्व ९२। ९० बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ मत्तं उ २९। स ८८। ८४। बं २३। २५। २६। २९। ३०॥ त्रिंशत्प्रकृत्युदयदोळु त्रिनवतिसत्वमादोडे नवविंशतियुमेकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानंगळु बंधमप्पुवु। उ ३०। स ९३। बं २९। ३१॥ मत्तं त्रिंशदुदयमुमेकनवतिसत्वमुमुळ्ळ नरकगमनाभिमुखनप्प मनुष्यमिथ्यादृष्टि तीर्थ- ५
सत्कर्म्मंगे अष्टाविंशति नवविंशति बंधंगळप्पुवु। उ ३०। स ९१। बं २८। २९॥

तेण दुणउदे णउदे अडसीदे बंधमादिमं छक्कं।
चुलसीदेवि य एवं णवरि ण अडवीसबंधपदं ॥७८२॥

तेन द्विनवत्यां नवत्यामष्टाशीतौ बंध आद्यषट्कं। चतुरशीतावप्येवं नवमस्ति नाष्टा- १०
विंशतिबंधपदं॥

तेन सह आ त्रिंशत्प्रकृत्युदयदोडने द्विनवतियुं नवतियुमष्टाशीतियुं सत्वमागुत्तं विरलु बंधमाद्यषट्स्थानंगळप्पुवु। उ ३०। स ९२। ९०। ८८। बं २३। २५। २६। २८। २९। ३०॥ मत्तमा त्रिंशदुदयमुं चतुरशीतिसत्वपददोळमंते षड्बंधस्थानंगळप्पुवु। विशेषमुंटवादोडे दोडे अष्टाविंशतिपदं बंधमिल्ल। उ ३०। स ८४। बं २३। २५। २६। २९। ३०॥

नवविंशतिकोदये त्र्येकाधिकनवतिकसत्त्वे द्वानवतिकसत्त्वे अष्टचतुरधिकाशीतिकसत्त्वे च बन्धस्थानान्य- १५
ष्टाविंशतिकोदयस्येव ज्ञातव्यानि। त्रिंशत्कोदये त्रिनवतिकसत्त्वे नवविंशतिकैकत्रिंशत्के द्वे। तदुदयैकनवतिकसत्त्वे नरकगमनाभिमुखतीर्थसत्त्वमनुष्यमिथ्यादृष्टेरष्टनवाग्रविंशतिके द्वे ॥७८१॥

तदुदयेन सह द्विनवतिकनवतिकाष्टाशीतिकसत्त्वे बन्धस्थानान्याद्यषट्कं। पुनस्तदुदये चतुरशीतिक- २०
सत्त्वेऽपि तदेव षट्कं। किंतु नाष्टाविंशतिकबन्धस्थानं ॥७८२॥

उनतीसके उदयके साथ तिरानबे-इक्यानबेके सत्त्वमें, बानबे-नब्बेके सत्त्वमें और अठासी-चौरासीके सत्त्वमें बन्धस्थान अठाईसके उदय सहितमें कहे अनुसार ही होते हैं। तीसके उदयसहित तिरानबेके सत्त्वमें उनतीस-तीस दो बन्धस्थान हैं। तीसके उदयके साथ इक्यानबेके सत्त्वमें नरकगमनके सम्मुख तीर्थंकर सत्त्ववाले मिथ्यादृष्टि मनुष्यके अठाईस, उनतीस दो बन्धस्थान होते हैं ॥७८१॥

तीसके उदयके साथ बानबे-नब्बे, अठासीके सत्त्वमें आदिके छह बन्धस्थान हैं। तीसके उदयके साथ चौरासीके सत्त्वमें भी अठाईसके बन्धस्थानके बिना वे ही छह बन्ध- २५
स्थान होते हैं ॥७८२॥

तीसुदयं विगितीसे सजोगणाणउदिणउदितियसत्ते ।
उवसंतचउक्कुदये सत्ते बंधस्स ण वियारो ॥७८३॥

त्रिंशदुदयवदेकत्रिंशदुदये स्वयोग्यद्वानवतिनवतित्रयसत्त्वे उपशांतचतुष्कोदये सत्त्वे बंधस्य न विचारः ॥

त्रिंशत्प्रकृत्युदयदोळु पेळ्दंते एकत्रिंशत्प्रकृत्युदयदोळं सत्वबंधस्थानंगळप्पुवादोडं मल्लि स्वयोग्यद्वानवतिनवतित्रयसत्वस्थानंगळोळे बंधस्थानंगळरियल्पडुगुं । उ ३१ । स ९२ । ९० । ८८ । बं २३ । २५ । २६ । २८ । २९ । ३० ॥ मत्तं उ ३१ । स ८४ । बं २३ । २५ । २६ । २९ । ३० ॥ उपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानंगळोळुदयसत्वस्थानंगळरियल्पडुगुमा नाल्कु गुणस्थानंगळोळु बंधस्थानविचारं माडल्पडदेकेंदोडे नामकर्म्मबंधरहितरप्पुदरिंदं । उपशांतकषायंगे उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० ॥ बंधशून्यं ॥ क्षीणकषायंगे उ ३० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ बंधशून्यं ॥ सयोगकेवलियोळु उ द ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ ॥ बंधशून्यं ॥

अयोगिकेवलियोळु उ । ९ । ८ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ । बंधशून्यं ॥

णामस्स य बंधादिसु दुतिसंजोगा परूविदा एवं ।
सुदवणवसंतगुणगणसायरचंदेण सम्मदिणा ॥७८४॥

नाम्नश्च बंधादिषु द्वित्रिसंयोगाः प्ररूपिता एवं । श्रुतवनवसंतगुणगणसागरचंद्रेण सन्मतिना ॥

एकत्रिंशत्कोदये स्वयोग्यद्वानवतिकनवतिकाष्टाशीतिकसत्त्वेषु चतुरशीतिकसत्त्वे च बन्धस्थानानि त्रिंशत्कोदयवदाद्यानि षडष्टाविंशतिकं बिना पंच । उपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानानामुदयसत्त्वस्थानेषु नामबन्धस्थानविचारो नास्ति तेषु तदभावात् । तथाहि—

उपशान्तकषाये उ ३० । स ९३ । ९२ । ९१ । ९० । बं० । क्षीणकषाये उ ३० । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । बं. । सयोगे उ ३० । ३१ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । बं. । अयोगे उ ९ । ८ । स ८० । ७९ । ७८ । ७७ । १० । ९ । बं. ॥७८३॥

इकतीसके उदयमें अपने योग्य बानबे, नब्बे, अठासीके सत्त्वमें तथा चौरासीके सत्त्वमें बन्धस्थान क्रमसे तीसके उदय सहितमें कहे अनुसार आदिके छह तथा अठाईसके बिना पाँच होते हैं । उपशान्त कषाय आदि चार गुणस्थानोंमें जो उदयस्थान और सत्त्वस्थान हैं उनमें नामकर्मके बन्धस्थानोंका विचार नहीं है; क्योंकि उनमें नामकर्मका बन्ध नहीं है। उपशान्त कषायमें उदय तीसका और सत्त्व तिरानबे आदि चारका है । क्षीणकषायमें उदय तीसका सत्त्व अस्सी आदि चारका है । सयोगीमें उदय तीसका व इकतीसका और सत्त्व अस्सी आदि चारका है । अयोगीमें उदय नौ और आठका तथा सत्त्व अस्सी आदि चारका व दस और नौका है ॥७८३॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वरचारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यं महावादवादीश्वररायवादीपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्र-वर्त्तिचारुचरणारविंदरजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति-जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडबंधोदयसत्वयुतस्थानप्ररूपणमहाधिकारं निरूपितमादुदु ॥

नाम्नश्च बन्धादिषु द्वित्रिसंयोगाः प्ररूपिताः एव श्रुतवनवसतगुणगणसागरचंद्रेण सन्मतिना ॥७८४॥ ५

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे बन्धोदयसत्त्वस्थानप्ररूपणो नाम पंचमोऽधिकारः ॥५॥

इस प्रकार नामकर्मके बन्ध उदय सत्त्वस्थानोंमें द्विसंयोगी-त्रिसंयोगी भंग जैनागम-रूपीवनको विकसित करनेमें वसन्तऋतुके समान और गुणसमूहरूपी समुद्रके लिए चन्द्रके समान भगवान् महावीरने कहे हैं ॥७८४॥ १०

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्व प्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित १५ सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत बन्ध-उदय सत्त्वस्थान प्ररूपणा नामक पाँचवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

आस्रवाधिकारः ॥६॥

अनंतरं प्रत्ययाधिकारं पेळलुपक्रमिसि तदादियोळु निर्व्विघ्नदिंदं तत्परिसमाप्तिनिमित्तमागि स्वेष्टगुरुजननमस्कारमं माडिदपं :—

णमियूण अभयणंदिं सुदसायरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥७८५॥

नत्वाभयनंदिमुनिं श्रुतसागरपारगेंद्रनंदिगुरुं। वरवीरनंदिनाथं प्रकृतीनां प्रत्ययं वक्ष्यामि ॥

अभयनंदिमुनीश्वरनुमं। श्रुतसागरपारगेंद्रणंदिगुरुवुमं। वरवीरणंदिनाथनुमं नमस्करिसि। प्रकृतिगळ प्रत्ययमं पेळ्दपं ॥

अनंतरं प्रकृतिगळ मूलोत्तरप्रत्ययंगळ नामनिर्द्देशमं माडुत्तलुमवरभेदमुमं पेळ्दपरु :—

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
पण बारस पणुवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥७८६॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषाययोगाश्चास्रवा भवंति। पंच द्वादश पंचविंशति पंचदश भवंति तद्भेदाः ॥

मिथ्यात्वमुमविरमणमुं कषायमुं योगमुमेंदितु ई नाल्कुं ज्ञानावरणादिप्रकृतिगळगे आस्रवंगळप्पुवु। आस्रवमेंदेनेंदोडे आस्रवंत्यागच्छंति ज्ञानावरणादिकर्म्मरूपतां कार्म्मणस्कंधा एभिरित्यास्रवा—एंबी निरुक्तिसिद्धंगळप्प मिथ्यात्वादिजीवपरिणामंगळु ज्ञानावरणादिकर्म्मागमकारणं-

---

अथ प्रत्ययाधिकारमुपक्रममाणो निर्विघ्नतत्परिसमाप्त्यर्थं स्वेष्टगुरूनमस्यति—

अभयनन्दिमुनीश्वरं श्रुतसागरपारगेन्द्रनन्दिगुरुं वरवीरनन्दिनाथं च नत्वा प्रकृतीनां प्रत्ययं वक्ष्यामि ॥७८५॥

मिथ्यात्वमविरमणं कषायो योगश्चेति चत्वारो मूलप्रत्यया आस्रवा भवन्ति, आस्रवन्त्यागच्छन्ति

आगे प्रत्ययाधिकारको प्रारम्भ करते हुए उसकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए अपने इष्ट गुरुको नमस्कार करते हैं। प्रत्यय अर्थात् कर्मोंके आनेमें कारण आस्रवके अधिकारको प्रारम्भ करते हैं—

अभयनन्दि नामक मुनीश्वर, शास्त्ररूप समुद्रके पारगामी इन्द्रनन्दि गुरु और उत्कृष्ट वीरनन्दि स्वामीको नमस्कार करके कर्मप्रकृतियोंका कारण जो आस्रव है उसको कहूँगा ॥७८५॥

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग, ये चार मूल प्रत्यय अर्थात् आस्रव हैं। क्योंकि

गळिवक्कास्रवंगळें दुं प्रत्ययंगळुमें बु मन्वर्थनामंगळप्पुवु । तद्भेदाः अवरभेदंगळु यथाक्रमदिदं पंच द्वादशपंचविंशतिपंचदशप्रमितंगळप्पुउ । संदृष्टि । मि ५ । अ १२ । क २५ । यो १५ । कूडि ५७ ॥

अनंतरमी मूलप्रत्ययंगळु नाल्कुमं मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानंगळोळु संभवंगळं पेळ्दपरु :—

चदुपच्चइगो बंधो पढमेऽणंतरतिगे तिपच्चइगो ।
मिस्सगबिदियं उवरिमदुगं च देसेक्कदेसम्मि ॥७८७॥

चतुःप्रत्ययिको बंधः प्रथमे अनंतरत्रिके त्रिप्रत्ययिकः । मिश्रकद्वितीयमुपरितनद्विकं च देशैकदेशे ॥

प्रथमे मिथ्यादृष्टियोळु चतुःप्रत्ययिकमप्प बंधमक्कुं । चतुःप्रत्ययिकमें बुदें तें दोडे चत्वारः प्रत्ययाश्चतुःप्रत्ययास्ते संत्यस्मिन्निति ठप्रत्यये चतुःप्रत्ययिकः । मिथ्यात्वाऽविरमण कषाययोगमें ब नाल्कुं प्रत्ययंगळनुळ्ळ बंधमक्कुमें बुदर्थमनंतरत्रये सासादनमिश्रासंयतरुगळें ब अनंतरगुणस्थानत्रयदोळु त्रिःप्रत्ययिको बंधः मिथ्यात्वभेदरहितमागि अविरमणकषाययोगमें ब त्रिप्रत्ययिकबंधमक्कुं । देशैकदेशे देशसंयतनोळु देशसंयतंगे देशैकदेशत्वमें तें दोडे देशेन लेशेन एकमसंयमं दिशति परिहरतीति देशैकदेशस्तस्मिन्नें बितु ई निरुक्तिसिद्धमप्पुदरिंदमा देशसंयतनोळु त्रिप्रत्ययिक-

कर्मरूपतां कार्मणस्कन्धा एभिरिति कारणात् । तेषां भेदाः क्रमेण पंच द्वादश पंचविंशतिः पंचदश च भवन्ति । मिलित्वोत्तरप्रत्यया अमी सप्तपंचाशत् ॥७८६॥ अथ मूलप्रत्ययान् गुणस्थानेष्वाह—

मूलप्रत्यया गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ बन्धश्चतुष्प्रत्ययिकः । सासादनादित्रये मिथ्यात्वं विना त्रिप्रत्ययिकः । देशेन लेशेन एकमसंयमं दिशति परिहरतीति देशैकदेशः देशसंयतः । तत्रापि त्रिप्रत्ययिकः । ते प्रत्यया

इनके द्वारा कार्मणस्कन्ध 'आस्रवन्ति' अर्थात् कर्मरूपताको प्राप्त होते हैं। उनके भेद क्रमसे पाँच, बारह, पच्चीस, पन्द्रह होते हैं। सब मिलकर सत्तावन उत्तर प्रत्यय होते हैं ॥७८६॥

विशेषार्थ—एकान्त, विनय, संशय, विपरीत, अज्ञान ये पाँच मिथ्यात्व हैं। पाँच इन्द्रियों और छठे मनके वशीभूत होना तथा पाँच स्थावर और छठे त्रसकी दया नहीं करना बारह अविरत हैं। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ ये सोलह कषाय तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ये नौ नोकषाय इस प्रकार पच्चीस कषाय हैं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय रूप चार मनोयोग, सत्य असत्य, उभय अनुभयरूप चार वचनयोग, औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्माण ये सात काययोग, इस तरह पन्द्रह योग हैं। ये सब सत्तावन उत्तर प्रत्यय हैं ॥७८६॥

आगे मूल प्रत्ययोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

गुणस्थानोंमें मूलप्रत्यय इस प्रकार हैं—मिथ्यादृष्टिमें बन्धके चारों प्रत्यय हैं। सासादन आदि तीनमें मिथ्यात्वके बिना तीन प्रत्यय हैं। देश अर्थात् लेशरूपसे एक असंयमको जो 'दिशति' अर्थात् त्यागता है उसे 'देशैकदेश' या देशसंयत कहते हैं। उसमें भी बन्धके

बंधमक्कुमा प्रत्ययंगळवाउवेंदोडे मिश्रकद्वितीयमुपरितनद्विकं च मिश्रं विरमणेन मिश्रकं मिश्रकं च । द्वितीयं चाविरमणं तन्मिश्रकद्वितीयं । विरतियोळकूडिदविरमणमुं कषायमुं योगमुमितु त्रिप्रत्ययंगळनुळ्ळ बंधं देशसंयतनोळक्कुमेंबुदत्थं ॥

उवरिल्लपंचये पुण दु पच्चया जोगपच्चओ तिण्हं ।
सामण्णपच्चया खलु अट्ठण्णं होंति कम्माणं ॥७८८॥

उपरितनपंचके पुनर्द्वौ प्रत्ययौ योगप्रत्ययस्त्रयाणां । सामान्यप्रत्ययाः खल्वष्टानां भवंति कर्म्मणां ॥

देशसंयतनिंदं मेलणवेदुं गुणस्थानंगळोळु कषाययोगगळेंबी द्विप्रत्ययंगळेयप्पुवु । मेलणुपशांतकषायक्षीणकषायसयोगकेवलिगळेंब मूरुं गुणस्थानंगळोळु योगप्रत्ययमोंदेयक्कुमितो सामान्यचतुष्प्रत्ययंगळेंटुं कर्म्मंगळेयप्पुवु स्फुटमागि । संदृष्टि । मि ४ । सा ३ । मि ३ । अ ३ । दे ३ । प्र २ । अ २ । अ २ । अ २ । सू २ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ ० ॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळुत्तरप्रत्ययंगळं गाथाद्वयदिंदं पेळ्दपरु :—

पणवण्णा पण्णासा तिदालछादाल सत्ततीसा य ।
चदुवीसा बावीसा बावीसमपुव्वकरणोत्ति ॥७८९॥

पंचपंचाशत् पंचाशत् त्रिचत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशत् सप्तत्रिंशत् चतुर्विंशतिर्द्वाविंशतिर्द्वाविंशतिरपूर्व्वकरणपर्य्यंतं ॥

थूले सोलसपहुडी एगूणं जाव होदि दस ठाणं ।
सुहुमादिसु दस णवयं णवयं जोगिम्मि सत्तेव ॥७९०॥

स्थूले षोडशप्रभृत्येकोनं यावद्भवति दशस्थानं । सूक्ष्मादिषु दशनवकं नवकं योगिनि सप्तैव ॥

विरमणेन मिश्रमविरमणं कषायो योगश्चेति ॥७८७॥

पुनः उपरितनेषु पंचसु द्वौ द्वौ प्रत्ययौ तौ योगकषायौ । उपशान्तकषायादिषु एको योगप्रत्ययः । इत्येवं खलु सामान्यप्रत्यया अष्टकर्मणां भवन्ति ॥७८८॥ अथोत्तरप्रत्ययान् गुणस्थानेषु गाथाद्वयेनाह—

तीन ही कारण हैं । इतना विशेष है कि योग कषायके साथ अविरति विरतिसे मिली हुई है ॥७८७॥

ऊपरके पाँच गुणस्थानोंमें योग और कषाय दो ही प्रत्यय हैं । उपशान्त कषाय आदि तीनमें एक ही प्रत्यय योग है । इस प्रकार गुणस्थानोंमें आठ कर्मोंके कारण सामान्य प्रत्यय हैं ॥७८८॥

मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	अ.	सू.	उ.	क्षी.	स.	अ.
४	३	३	३	३	२	२	२	२	२	१	१	१	०

आगे उत्तर प्रत्ययोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

मिथ्यादृष्टियोळाहारकद्विकं पोरगागि पंचपंचाशदुत्तरप्रत्ययंगळप्पु ५५ ववरोळु सासादनंगे मिथ्यात्वपंचकमं कळेदु शेषपंचाशदुत्तरप्रत्ययंगळप्पु ५० ववरोळु मिश्रंगौदारिकमिश्रयोगमुमं वैक्रियिकमिश्रयोगमुमं कार्म्मणकाययोगमुमनंतानुबंधिकषायचतुष्टयमुमिंतु सप्तप्रत्ययंगळं कळेदु शेषत्रिचत्वारिंशदुत्तर प्रत्ययंगळप्पु ४३ ववरोळु असंयतंगे औदारिकमिश्र वैक्रियिकमिश्रकार्म्मण-काययोगमेंबी मूरुं प्रत्ययंगळं कूडुत्तं विरलु षट्चत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययंगळप्पुवु । ४६ । अवरोळु देशसंयतंगे औदारिकमिश्र वैक्रियिकमिश्र वैक्रियिककाययोग कार्म्मणकाययोग त्रसासंयममप्रत्या-ख्यानावरणकषायचतुष्कमिंतु नवप्रत्ययंगळं कळेदु शेषसप्तत्रिंशदुत्तरप्रत्ययंगळप्पुवु । ३७ ॥ अवरोळु प्रमत्तसंयतंगे शेषासंयमैकादशंगळु प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्कमुमिंतुं पदिनय्दु प्रत्ययंगळं कळदु शेष द्वाविंशतिप्रत्ययंगळोळाहारकद्वयमं कूडिदोंगे चतुर्विंशतिप्रत्ययंगळप्पु २४ ववरोळु अप्रमत्तसंयतंगाहारकद्विकं कळेदु शेषद्वाविंशति उत्तरप्रत्ययंगळप्पुवु २२ । अपूर्वंकरणंगम-वेयुत्तरप्रत्ययंगळु द्वाविंशतिगळप्पु २२ ववरोळु स्थूलनोळु षण्नोकषायंगळं कळेदु शेष षोडशोत्तर-प्रत्ययंगळप्पु १६ ववरोळु नपुंसकवेदमं कळेदोडातंगे पंचदशोत्तरप्रत्ययंगळप्पु १५ ववरोळु स्त्रीवेदमं कळेदोडातंगे चतुर्दशोत्तर प्रत्ययंगळप्पु १४ । ववरोळु पुंवेदमं कळेदोडातंगे त्रयोदशोत्तर-प्रत्ययंगळप्पु १३ । ववरोळु क्रोधकषायमं कळेदोडातंगे द्वादशोत्तरप्रत्ययंगळप्पु १२ । ववरोळु मानकषायमं कळेदोडातंगेकादशोत्तर प्रत्ययंगळप्पु ११ ववरोळु मायाकषायमं कळेदोडातंगे दशोत्तरप्रत्ययंगळप्पु १० ववरोळु सूक्ष्मसांपरायंगे बादरलोभमं कळेदु सूक्ष्मलोभमं कूडिदोडे दशोत्तरप्रत्ययंगळप्पु १० । ववरोळुपशांतकषायंगे सूक्ष्मलोभमं कळेदु नवोत्तरप्रत्ययंगळप्पु ९ ।

उत्तरप्रत्ययाः गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टावाहारकद्वयं नेति पंचपंचाशत् । सासादने मिथ्यात्वपंचकं नेति पंचाशत् । मिश्रे औदारिकमिश्रवैक्रियिकमिश्रकार्मणयोगानन्तानुबन्धिनो नेति त्रिचत्वारिंशत् । असंयते मिश्रापनीतयोगत्रयमस्तीति षट्चत्वारिंशत् । देशसंयते तत्त्रयवैक्रियिकयोगत्रसासंयमाप्रत्याख्यानचतुष्कं नेति सप्तत्रिंशत् । प्रमत्ते शेषैकादशासंयमप्रत्याख्यानचतुष्कं नाहारकद्विकमस्तीति चतुर्विंशतिः । अप्रमत्तादिद्वये तद्द्विकं नेति द्वाविंशतिः । स्थूले षण्णोकषाया नेति षोडश । षंढवेदो नेति पंचदश । स्त्रीवेदो नेति चतुर्दश । पुंवेदो नेति त्रयोदश । क्रोधो नेति द्वादश । मानो नेत्येकादश । माया नेति दश । सूक्ष्मसाम्पराये बादरलोभो

गुणस्थानोंमें उत्तर प्रत्यय इस प्रकार हैं—मिथ्यादृष्टिमें आहारक, आहारक मिश्र न होनेसे पचपन प्रत्यय हैं । सासादनमें पाँच मिथ्यात्व न होनेसे पचास प्रत्यय हैं । मिश्रमें औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र, कार्मण योग, अनन्तानुबन्धी चतुष्क न होनेसे तैंतालीस प्रत्यय हैं । मिश्रमें घटाये तीन योगोंको मिलानेसे असंयतमें छियालीस प्रत्यय हैं । देश-संयतमें वे तीनों मिश्रयोग, वैक्रियिककाय योग, त्रसहिंसा रूप अविरति और अप्रत्याख्यान कषाय चार न होनेसे सैंतीस प्रत्यय हैं । प्रमत्तमें शेष ग्यारह अविरति और प्रत्याख्याना-वरण चार न होनेसे तथा आहारकद्विकके होनेसे चौबीस प्रत्यय हैं । अप्रमत्त आदि दोमें आहारकद्विक न होनेसे बाईस प्रत्यय हैं । अनिवृत्तिकरणमें छह नोकषाय न होनेसे सोलह, नपुंसक वेद न होनेसे पन्द्रह, स्त्रीवेद न होनेसे चौदह, पुरुषवेद घटनेसे तेरह, संज्वलन क्रोध न रहनेसे बारह, मान न रहनेपर ग्यारह, माया न रहनेपर दस प्रत्यय हैं । सूक्ष्म साम्पराय-

वरोळु क्षीणकषायंगेयुमा नवोत्तरप्रत्ययंगळप्पुवु । सयोगिकेवलि भट्टारकंगे सत्यानुभयमनोवाग्योगंगळुं नाल्कुं औदारिकयोगद्विकमुं काम्मंणकाययोगमुमिंतु सप्तप्रत्ययंगळे यप्पुवु ।७। अयोगिजिनस्वामिगळोळु प्रत्ययं शून्यमक्कुं । संदृष्टि :—मि ५५ । सा ५० । मि ४३ । अ ४६ । दे ३७ । प्र २४ । अ २२ । अ २२ । अ १६ । १५ । १४ । १३ । १२ । ११ । १० । सू १० । उ ९ । क्षी ९ । स ७ । अ ० ॥ इंतु गुणस्थानदोळु पेळल्पट्ट प्रत्ययंगळगे प्रत्ययव्युच्छित्ति प्रत्ययानुदयंगळे ंब भंगद्वयमुमना प्रत्ययंगळमुमं पेळ्वल्लिगुपयोगिगाथाषट्कं केशवण्णंगळिंदं पेळल्पडुगुं ।

पण चदुसुण्णं णवयं पण्णारस दोण्णि सुण्ण छक्कं च ।
एक्केक्कं दस जाव य एक्कं सुण्णं च चारि सग सुण्णं ॥
दोण्णि य सत्त य चोद्दसऽणुदएवि येगारवो स तेत्तीसं ।
पणतीसदु सिगिदाळं सत्तेताळट्ठ दाळ दुसु पण्णं ॥

प्रत्यय व्युच्छित्ति	मि ५	सा ४	मि	अ ९	दे १५	प्र २	अ	अ ६	अ १
प्रत्ययोदय	५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६
प्रत्ययानुदय	२	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१

१	१	१	१	बा १	सू	उ०	क्षी ४	स ७	अ०
१५	१४	१३	१२	११	१०	९	९	७	०
४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४८	५०	५७

न सूक्ष्मलोभोऽस्तीति दश । उपशान्तक्षीणकषाययोः सोऽपि नेति नव । सयोगे सत्यानुभयमनोवागौदारिकद्विककार्मणयोगाः सप्त । अयोगे शून्यं ॥७८९॥७९०॥ अत्र व्युच्छित्त्यनुदयोपयोगिगाथाषट्कं केशववर्णिभिरुच्यते—

में बादर लोभ नहीं है, सूक्ष्मलोभ है अतः दस प्रत्यय हैं । उपशान्त कषाय, क्षीणकषायमें सूक्ष्मलोभ न रहनेसे नव प्रत्यय हैं । सयोगीमें सत्य और अनुभय मनोयोग, सत्य और अनुभय वचनयोग औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्माण ये सात प्रत्यय हैं । अयोगीमें कोई प्रत्यय नहीं ॥७८९-७९०॥

आगे प्रत्ययोंकी व्युच्छित्ति या अनुदयको बतलानेवाली छह गाथाएँ कर्णाटक वृत्तिके रचयिता केशववर्णीने अपनी टीकामें कही हैं उनका अर्थ इस प्रकार है—

	मि.	सा.	मि.	अ.	दे.	प्र.	अ.	अ.	सू.	नि.	वृ	ति	क	र	ण	सू.
प्रत्यय व्यु.	५	४	०	९	१५	२	०	६	१	१	१	१	१	१	१	१
प्रत्ययोदय	५५	५०	४३	४६	३७	२४	२२	२२	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	१०
प्रत्ययानुदय	२	७	१४	११	२०	३३	३५	३५	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४७

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें क्रमसे पाँच चार शून्य नव पन्द्रह दो, शून्य छह, पश्चात् जहाँ दस आश्रव रहते हैं वहाँ तक एक एक, पुनः एक, शून्य चार सात शून्य, इतने आस्रवोंकी व्युच्छित्ति होती है । उन गुणस्थानोंमें अनुदय अर्थात् आश्रवोंका अभाव क्रमसे दो, सात, चौदह, ग्यारह, बीस, तैंतीस, पैंतीस, पैंतीस, इकतालीस, सैंतालीस, अड़तालीस, अड़तालीस, पचासका होता है ।

टिप्पणः—पूर्वोक्तपंचादि व्युच्छित्तिप्रत्ययानां रेगानी नाम कथ्यते ।

इंतु प्रत्ययंगळगे भंगत्रयमरियल्पडुगु। मिल्लि मिथ्यादृष्ट्यादिगळोळावुवु व्युच्छित्तिप्रत्ययंगळ दोडे गाथाचतुष्टयदिंदं पेळल्पडुगुं :—

मिच्छे पण मिच्छत्तं पढमकसायं तु सासणे मिस्से।
सुण्णं अविरदसम्मे बिदियकसायं विगुव्वदुगकम्मं ॥
ओराळमिस्सतसवह णवयं देसम्मि अविरदेक्कारा।
तदियकसायं पण्णर पमत्तविरदम्मि हारदुगछेदो ॥
सुण्णं पमादरहिदेऽपुव्वे छण्णोकसाय बोच्छेदो।
अणियट्टिम्मि य कमसो एक्केक्कं वेदतिय कसायतियं ॥
सुहुमे सुहुमो लोहो सुण्णं उवसंतगेसु खीणेसु।
अलियुभयवयणमणचउ जोगिम्मि य सुणह बोच्छामि ॥
सच्चाणुभयं वयणं मणं च ओराळकायजोगं च।
ओराळमिस्सकम्मं उवयारेणेव सव्भाओ ॥

इंतुक्त प्रत्ययंगळगे विशेषकथनाधिकारंगळं निर्देशिसिदपरः—

अवरादीणं ठाणं ठाणपयारा पयारकूडा य।
कूडुच्चारणभंगा पंचविहा होंति इगिसमये ॥७९१॥

जघन्यादीनां स्थानं स्थानप्रकाराः प्रकारकूटाश्च। कूटोच्चारणभंगाः पंचविधा भवंत्येकस्मिन्समये ॥

ते के ?—

अथ विशेषं वक्तुमधिकारान्निर्दिशति—

मिथ्यात्वमें पाँच मिथ्यात्वकी व्युच्छित्ति होती है। अर्थात् ये पांच ऊपरके गुणस्थानोंमें नहीं रहते। सासादनमें प्रथम चार कषाय, मिश्रमें शून्य, अविरतमें दूसरी चार कषाय, वैक्रियिकद्विक कार्माण औदारिक मिश्र त्रसहिंसा ये नौ, देशसंयतमें ग्यारह अविरति तीसरी चार कषाय ये पन्द्रह, प्रमत्तविरतमें आहारकद्विक, अप्रमत्तमें शून्य, अपूर्वकरणमें छह नोकषाय, अनिवृत्तिकरणमें क्रमसे एक-एक करके तीन वेद तीन कषाय, सूक्ष्म साम्परायमें सूक्ष्म लोभ, उपशान्त कषायमें शून्य, क्षीणकषायमें असत्य और उभय मनोयोग तथा वचनयोगकी व्युच्छित्ति होती है। सयोगीमें सत्य अनुभय वचन तथा मन और औदारिक औदारिक मिश्र कार्माण ये सात योग उपचारसे हैं ॥७९०॥

आगे आस्रवोंका विशेष कथन करनेके लिए अधिकार कहते हैं—

जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थानंगळुमा स्थानप्रकारंगळुमा स्थानगतप्रत्ययसंख्याहेतु कूटप्रकारंगळुं कूटोच्चारणविधानमुं भंगंगळुमेंब पंचप्रकारंगळु प्रत्ययंगळगे एककालदोळप्पुवु ॥

अनंतरमा पंचप्रकारंगळं क्रमदिंदं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु गाथाषट्कदिंदं पेळ्दपरु ।

दस अट्ठारस दसयं सत्तर णव सोलसं च दोण्हंपि ।
अट्ठय चोद्दस पणयं सत्ततिये दुतिदुगेगमेगमदो ॥७९२॥

दशाष्टादश दश सप्तदश नव षोडश द्वयोरपि । अष्ट चतुर्दश पंचसप्तत्रये द्वित्रिद्विकमेकमेकमतः ॥

मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानंगलोळु क्रमदिंदं जघन्यादि स्थानंगळु दशाष्टादश मिथ्यादृष्टियोळु दशप्रत्ययस्थानं सर्व्वजघन्यमक्कुं । अल्लिंदं मेलेकैकप्रत्ययाधिक क्रमदिंदं नडदुत्कृष्टमष्टादशप्रत्ययस्थानमक्कुं । मिथ्यादृष्टि १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ ॥ सासादनंगे दशसप्तदश दश प्रत्ययस्थानं जघन्यक्कुमल्लिंदं मेलेकैकप्रत्ययवृद्धिक्रमदिंदं नडदुत्कृष्टं सप्तदश प्रत्ययस्थान मक्कुं । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ ॥ मिश्रंगे नव षोडश नव प्रत्ययस्थानं जघन्यमक्कुं । मेलेकैकवृद्धिक्रममदिंदं नडदुत्कृष्टं षोडशप्रत्ययस्थानमक्कुं । मिश्र ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ ॥ असंयतंगे द्वयोरपि शब्ददिंदं नवप्रत्ययस्थानमादि यागि एकैकवृद्धिक्रमदिंदं नडदुत्कृष्टं षोडशप्रत्ययस्थानमक्कुं । असंय ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ ॥ देशसंयतनोळष्ट चतुर्दश अष्टप्रत्ययादि चतुर्दशप्रत्ययस्थानपर्य्यंतं सप्तस्थानंगळप्पुवु देशसंय ८ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ ॥ प्रमत्तसंयतादिगुणस्थानत्रयदोळु प्रत्येकं पंचसप्त पंच षट्

जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थानानि स्थानप्रकाराः कूटप्रकाराः कूटोच्चारणविधानभंगाश्चेति पंचप्रकाराः प्रत्ययानामेककाले भवन्ति ॥७९१॥ तान् प्रकारान् क्रमेण गाथाषट्केनाह—

एकजीवस्यैकस्मिन् समये सम्भवत्प्रत्ययसमूहः स्थानं । तच्च गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ जघन्यं दशकं मध्यमं एकैकाधिकं यावदुत्कृष्टमष्टादशकं । सासादने दशकं जघन्यं तथा मध्यममुत्कृष्टं सप्तदशकं । मिश्रे नवकं जघन्यं तथा मध्यममुत्कृष्टं षोडशकं । तथाऽसंयमेऽपि द्वयोरपीति वचनात् । देशसंयतेऽष्टकं जघन्यं तथा मध्यमं

एक कालमें प्रत्ययोंके पाँच प्रकार होते हैं—जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट स्थान, स्थान प्रकार, कूट प्रकार और कूटोच्चारण विधान ॥७९१॥

उन प्रकारोंको क्रमसे छह गाथाओंके द्वारा कहते हैं—

एक जीवके एक समयमें होनेवाले प्रत्ययोंके समूहको स्थान कहते हैं। उन्हें गुणस्थानोंमें कहते हैं—मिथ्यादृष्टिमें जघन्य दसका, और उत्कृष्ट स्थान अठारहका है। दससे एक-एक अधिक उत्कृष्टसे पूर्व सब मध्यमस्थान हैं। इसका आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानमें एक जीवके एक कालमें सत्तावन प्रत्ययोंमें-से जघन्य दस होते हैं। मध्यम ग्यारहसे सतरह तक होते हैं, उत्कृष्ट अठारह होते हैं। इसी प्रकार आगे भी जानना। सासादनके जघन्य दस, मध्यम एक-एक अधिक उत्कृष्ट सतरह होते हैं। मिश्रमें जघन्य नव, मध्यम एक-एक अधिक उत्कृष्ट सोलह होते हैं। अविरतमें भी मिश्रकी तरह जघन्य नव और उत्कृष्ट सोलह होते हैं। देश संयतमें जघन्य आठ, मध्यम एक एक अधिक, उत्कृष्ट चौदह

सप्तप्रत्ययस्थानत्रयमक्कुं प्रमत्त ५ । ६ । ७ ॥ अप्रमत्त ५ । ६ । ७ ॥ अपूर्व्वकरणंगे ५ । ६ । ७ ॥ अनिवृत्तिकरणनोळु द्वित्रिद्विप्रत्ययस्थानमुं त्रिप्रत्ययस्थानमुमक्कुं । अनिवृत्ति २ । ३ ॥ सूक्ष्मसाम्परायंगे द्विकं द्विप्रत्ययस्थानमक्कुं । सू २ ॥ उपशान्तकषायंगे एकं एकप्रत्ययस्थानमक्कुं । उपशान्तक १ ॥ क्षीणकषायंगे एकं एकप्रत्ययस्थानमक्कुं । क्षी १ ॥ सयोगकेवलिगळगे अत एकमेंदिंतेकप्रत्ययस्थानमक्कुं । स १ ॥ अयोगिकेवलिगळगे प्रत्ययं शून्यमक्कुं । अ० ॥ इंतुं गुणस्थानदोळु जघन्यादिस्थानंगळु पेळल्पट्टुविवक्के स्थानव्यपदेशमेंतादुदेंदोडे कस्य जीवस्यैकस्मिन्समये सम्भवप्रत्ययसमूहः स्थानमेंदिंतक्कुमनन्तरं स्थानप्रकारंगळं पेळ्दपरु—

एक्कं च तिण्णि पंच य हेट्ठुवरीदो दु मज्झिमे छक्कं ।
मिच्छे ठाणपयारा इगिदुगमिदरेसु तिण्णि देसोत्ति ॥७९३॥

एकश्च त्रयः पंच च अधउपरितस्तु मध्यमे षट्कं । मिथ्यादृष्टौ स्थानप्रकारा एकद्विकमितरेषु त्रयो देशसंयतपर्य्यंतं ॥

मिथ्यादृष्टौ मिथ्यादृष्टियोळु अध उपरितः जघन्यं मोदलागि केळगणिंदमुमुत्कृष्टं मोदलागि मेगणिंदमुं स्थानप्रकाराः स्थानभेदंगळु क्रमदिंदमेक त्रिपंच प्रमितंगळप्पुवु । मध्यमे शेषमध्यमंगळोळेल्लळं षट् षट् स्थानभेदंगळप्पुवु—

तु मत्ते इतरसासादनादि देशसंयतपर्य्यंतमाद गुणस्थानंगळोळु स्थानप्रकाररंगळुमध उपरितः जघन्यदत्तणिंदमुमुत्कृष्टदत्तणिंदमुमेकद्विकंगळुं मध्यमदोळु त्रिभेदंगळुमप्पुवु । संदृष्टि ॥

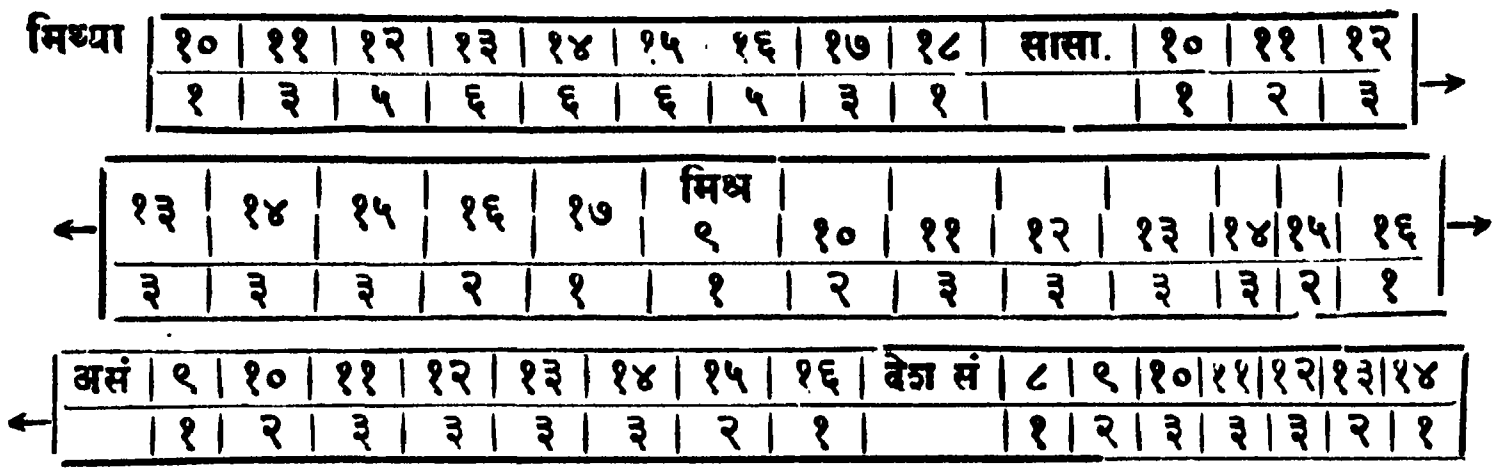
चतुर्दशकं उत्कृष्टं । प्रमत्तादित्रये प्रत्येकं पंचकसप्तकानि । अनिवृत्तिकरणे द्विकत्रिके । सूक्ष्मसाम्पराये द्विकं । उपशान्तकषायादित्रये एककं । अयोगे शून्यं ॥७९२॥ अथ स्थानप्रकारानाह—

मिथ्यादृष्टेः स्थानेष्वधस्तनानि दशकैकादशकद्वादशकानि त्रीणि उपरितनान्यष्टादशकसप्तदशकषोडशकानि त्रीणि च क्रमेण एकत्रिपंच भवन्ति । मध्यमानि त्रयोदशकचतुर्दशकपंचदशकानि षड् भवन्ति । सासादनादिदेशसंयतांतानां अधस्तनानि प्रथमद्वितीयानि उपरितनानि चरमद्विचरमाणि चैकद्विप्रकाराणि । मध्यमानि

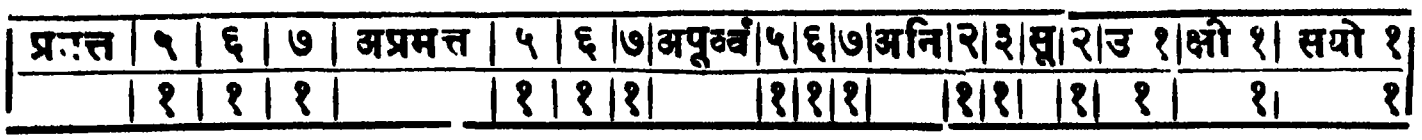
हैं । प्रमत्त आदि तीनमें-से प्रत्येकमें जघन्य पाँच, मध्यम छह, उत्कृष्ट सात हैं । अनिवृत्तिकरणमें जघन्य दो । मध्यम नहीं है । उत्कृष्ट तीन है । सूक्ष्म साम्परायमें जघन्य आदि भेद बिना दोका एक ही स्थान है । उपशान्त कषाय आदिमें जघन्य आदि भेदके बिना एकका एक ही स्थान है । अयोगीमें शून्य है ॥७९२॥

इन स्थानोंके प्रकार कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें कहे स्थानोंमें-से नीचेके दस, ग्यारह, बारह तीन स्थान, और ऊपरके अठारह, सतरह, सोलह, तीन स्थान, इनमें क्रमसे एक तीन पाँच प्रकार हैं । अर्थात् दस और अठारहके स्थान तो एक-एक प्रकारके ही हैं । ग्यारह और सतरहके स्थान तीन-तीन प्रकारके हैं । बारह और सोलहके स्थान पाँच-पाँच प्रकारके हैं । मध्यके तेरह, चौदह, पन्द्रहके स्थान छह-छह प्रकारके हैं । सासादनसे देशसंयत पर्यन्त नीचेके पहला और दूसरा स्थान तथा ऊपरका अन्तका व अन्तसे नीचेका स्थान एक और दो प्रकारके हैं । अर्थात् पहला और



शेषप्रमत्त संयतादिगळोळेल्ल मेकैकभेदमेयक्कुं ॥



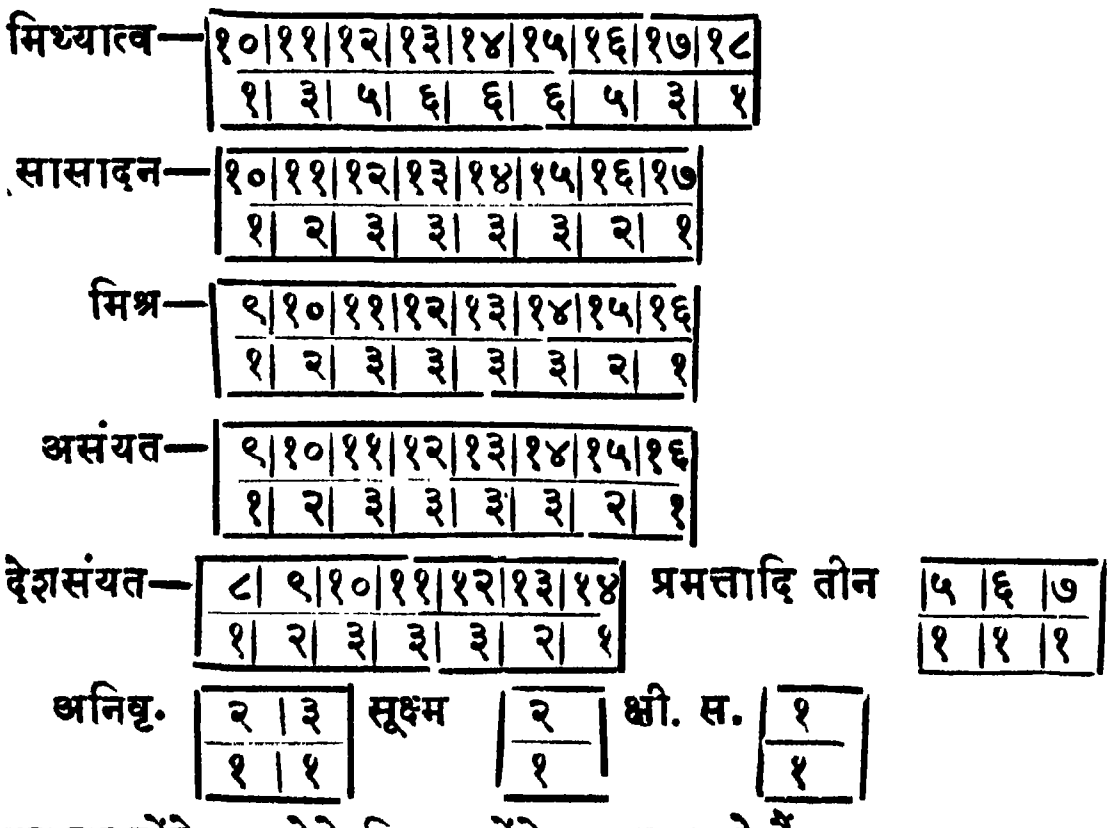
अनंतरं कूटप्रकारंगळं पेळ्दपरु :—

भयदुगरहियं पढमं एक्कदरजुदं दुसहियमिदि तिण्णि ।
सामण्णा तियकूडा मिच्छा अणहीणतिण्णि वि य ॥७९४॥

भयद्विकरहितं प्रथमं एकतरयुतं द्विसहितमिति त्रीणि । सामान्यानि त्रिकूटानि मिथ्यादृष्टि-संबंधीनि अनंतानुबंधिहीन त्रीण्यपि च ॥

त्रित्रिप्रकाराणि । प्रमत्तादीनां सर्वस्थानान्येकैकप्रकाराणि ॥७९३॥ अथ कूटप्रकारानाह—

अन्तका स्थान तो एक-एक प्रकारका है तथा दूसरा और अन्तके-से लगता निचला स्थान दो-दो प्रकारका है । इनके मध्य जितने स्थान हैं वे सब तीन प्रकारके हैं । प्रमत्तादिके सब ही स्थान एक प्रकारके हैं ॥७९३॥



इन स्थानोंके जाननेके लिए कूटोंके प्रकार कहते हैं—

भयजुगुप्साद्वयरहितं प्रथमकूटमक्कुं। भयजुगुप्सान्यतरयुतं द्वितीयकूटमक्कुं। भयजुगुप्साद्वययुतं तृतीयकूटमक्कुमितु सामान्यदिदं मूलकूटंगळु मूरप्पुवु॥ मिथ्यादृष्टिगनंतानुबंधिसहित कूटंगळु मूरु मनंतानुबंधिरहितकूटंगळु मूरुमंतु षट्कूटंगळप्पुवु। सासादनंगे मिथ्यात्वपंचकरहित सामान्यत्रिकूटंगळु अप्पुवु। मिश्रंगे मिथ्यात्वपंचकमुमनंतानुबंधियुं मिश्रयोगत्रयमुं रहितमागि सामान्यमूलकूटंगळु मूरप्पुवु। असंयतंगे मिश्रनंते त्रिकूटंगळप्पुवादडं मिश्रयोगत्रयमुं संभविसुगुं। देशसंयतंगे पंचमिथ्यात्वमुमनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानकषायद्वयमुं त्रसासंयममुं वैक्रियिककाययोगमुं पोरगागि मिश्रयोगत्रयमुं पोरगागियुं त्रिकूटंगळप्पुवु। प्रमत्तसंयतंगे संज्वलनचतुष्टय वेदत्रय द्विकद्वय नवयोगंगळोळाहारद्वयमुं कूडि पन्नोंदुयोगयुत त्रिकूटंगळप्पुवु। अप्रमत्तकंगाहारकद्विकरहित प्रमत्तन त्रिकूटंगळेयप्पुवु। अपूर्वकरणंगमुमप्रमत्तन त्रिकूटं गळेयप्पुवु। अनिवृत्तिकरणंगे भागे पर्य्यंतमक्कुं। सूक्ष्मसांपरायंगे सूक्ष्मलोभमुं नवयोगंगळुमप्पुवु। उपशांत क्षीणकषायरुगळगे नव नव योगंगळेयप्पुवु। सयोगकेवलिगळगे सप्तयोगंगळप्पुवु। अयोगियोळु योगं शून्यमक्कुं। संदृष्टि :—

पंच मिथ्यात्वानि षडिंद्रियाण्येकद्वित्रिचतुष्पंचषट्कायवधान् चत्वारि क्रोधादिचतुष्काणि त्रीन्वेदान् हास्ययुग्मारतियुग्मे आहारकद्वयं विना त्रयोदशयोगांश्चोपर्युपरि तिर्यग्रचयित्वा इदं भयजुगुप्सारहितं प्रथमं, तदन्यतरयुतं द्वितीयं, तद्द्वययुतं तृतीयमिति सामान्यमूलकूटानि त्रीणि। अनन्तानुबन्ध्यूनानि च त्रीणि मिलित्वा मिथ्यादृष्टौ षड् भवन्ति। सासादने तानि सामान्यकूटानि पंच मिथ्यात्वोनानि। मिश्रे एतानि चतुरनन्तानुबन्धि-

---

कूटोंके आकार रचना करके सबसे नीचे पाँच मिथ्यात्व एक-एक करके बराबर स्थापित करो; क्योंकि एक जीवके एक कालमें एक ही मिथ्यात्व होता है। उनके ऊपर पाँच इन्द्रिय और एक मन इन छहमें-से एक जीवके एक कालमें एक ही की प्रवृत्ति होती है सो छह जगह एक-एक लिखो। उनके ऊपर छह कायकी हिंसामें-से एक जीव एक समयमें एक कायकी हिंसा करता है या दो-तीन, चार, पाँच, छहकायकी हिंसा करता है सो एक, दो, तीन, चार, पांच, छह के अंक क्रमसे बराबरमें लिखना। उनके ऊपर सोलह कषायोंमें-से एक जीवके एक कालमें अनन्तानुबन्धी आदि चार क्रोधोंका या चार मानोंका या चार मायाका या चार लोभोंका उदय पाया जाता है सो इनको स्थापित करना। अर्थात् चार जगह चारके अंक लिखो। उनके ऊपर तीन वेदोंमें-से एक जीवके एक समय एक वेदका ही उदय होता है सो तीन जगह एक-एक लिखो। उनके ऊपर एक जीवके एक समयमें हास्य रति या शोक अरतिका उदय होता है सो दो जगह दोके अंक लिखो। उनके ऊपर पन्द्रह योगोंमें-से आहारकद्विक मिथ्यादृष्टिके नहीं होता अतः तेरह योगोंमें-से एक जीवके एक समयमें एक ही योग पाया जानेसे तेरह जगह एक-एक का अंक लिखना। इस प्रकारसे तीन कूट करो। उनमेंसे पहला कूट भय जुगुप्सासे रहित है अतः ऊपर बिन्दी लिखो। दूसरा कूट भय जुगुप्सामें-से एक सहित है इससे ऊपर-ऊपर दो जगह एकका अंक लिखो। तीसरा कूट भय जुगुप्सा दोनोंसे सहित है अतः ऊपर दोका अंक एक जगह लिखो। क्योंकि किसी जीवके किसी कालमें भय जुगुप्सा दोनों नहीं होते, या दोनोंमें कोई एक होता है या दोनों ही होते हैं। यथा—

मिथ्यादृष्टि			
यो १३ ।	१३	१३	१३
भजु ।०।	१	१	२
हा ।२। अ २।	२।२।	२।२।	२।२
वे १।१।१।	१।१।१।	१।१।१।	१।१।१।
क ४।४।४।४।	४।४।४।४।	४।४।४।४।	४।४।४।४
प्र १।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६
इं १।१।१।१।१।१।	१।१।१।१।१।१।	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१
मि १।१।१।१।१।	१।१।१।१।१	१।१।१।१।१	१।१।१।१।१

अनंतानुबंधिरहित मिथ्यादृष्टिकूट १०			
१०	१०	१०	१०
०	१	१	२
२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
३।३।३।३	३।३।३।३	३।३।३।३	३।३।३।३
१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६
१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१
१।१।१।१।१	१।१।१।१।१	१।१।१।१।१	१।१।१।१।१

सासादन			मिश्र		
१३	१३	१३	१०	१०	१०
०	१	२	०	१	२
२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
४।४।४।४	४।४।४।४	४।४।४।४	३।३।३।३	३।३।३।३	३।३।३।३
१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६
१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१
०	०	०	०	०	०

मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धी सहित तीन कूट

	०						११						२					
यो.	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
हा. र.	२					२	२					२	२					२
वे.	१		१			१	१		१			१	१		१			१
क.	४		४		४	४	४		४		४	४	४		४		४	४
षट्काय	१	२	३	४	५	६	१	२	३	४	५	६	१	२	३	४	५	६
इन्द्रिय	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
मि.		१	१	१		१	१	१		१	१	१	१	१		१		१

इस प्रकार तीन कूट किये। ये तीन तो मूल कूट हुए। अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाला मिथ्यादृष्टी हो जाता है तो उसके एक आवली पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका उदय नहीं होता। इससे तीन कूट अनन्तानुबन्धी रहित करना। उसमें चार जगह चार कषायोंके स्थानपर तीन-तीन लिखना। यह अनन्तानुबन्धीके विसंयोजनवाला मिथ्यादृष्टी पर्याप्त ही

असंयत			देशसंयत		
१३	१३	१३	९	९	९
०	१	२	०	०	२
२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
३।३।३।३	३।३।३।३	३।३।३।३	२।२।२।२	२।२।२।२	२।२।२।२
१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५।६	१।२।३।४।५	१।२।३।४।५	१।२।३।४।५
१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१	१।१।१।१।१।१
०	०	०	०	०	०

प्रमत्तसंयत			अप्रमत्तसंयत		अपूर्वकरण			
११	११	११	९	९	९	९	९	९
०	१	२	०	१	२	०	१	२
२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२	२।२
१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१	१।१।१
१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१

त्रिमिश्रयोगोनानि । असंयते एतानि सत्रिमिश्रयोगानि । देशसंयते एतानि चतुरप्रत्याख्यानत्रसासंयमवैक्रियिककायत्रिमिश्रयोगोनानि । प्रमत्ते एतान्येकादश संयमचतुःप्रत्याख्यानोनं वाहारकद्वययुतानि । अप्रमत्तादिद्वये एतान्याहारकद्वयोनानि । अनिवृत्तिकरणे तत्तद्भागादुपरि तत्तद्वेदकषायहास्यादिषट्कं विना कूटमेकैकमेव

भयद्विकाभावात् । सूक्ष्मसाम्पराये तदेव बादरलोभोनं । उपशान्तकषायादिद्वये एतदेव सूक्ष्मलोभोनं । सयोगे

होता है इससे तेरहके स्थानपर दस ही योग लिखना। इस तरह मिथ्यादृष्टिमें छह कूट होते हैं। सासादनके तीन कूटोंमें मिथ्यात्वके स्थानपर शून्य लिखो।

मिश्रमें अनन्तानुबन्धी नहीं है अतः चार-चार कषायोंके स्थानपर तीन-तीन ही लिखो। तथा तीन मिश्रयोग न होनेसे तेरहके स्थानपर दस योग लिखो। ऐसे तीन कूट करो। असंयतमें तीनों मिश्रयोग होते हैं अतः तेरह योग लिखकर तीन कूट करो। देशसंयतमें चार अप्रत्याख्यान कषाय नहीं है अतः चारके स्थान पर दो-दो कषाय लिखो। तथा त्रसहिंसा नहीं है इससे कायबधमें छहका अंक नहीं लिखना। तथा तीन मिश्रयोग और वैक्रियिक योग नहीं होता इससे तेरहके स्थानमें नौ योग लिखना। ऐसे तीन कूट करना। प्रमत्तमें बारह अविरति नहीं हैं अतः इन्द्रिय और कायबधके स्थानमें शून्य लिखना। प्रत्याख्यान कषाय भी नहीं अतः एक ही कषाय लिखना। आहारकद्विकके होनेसे योग ग्यारह लिखना। ऐसे तीन कूट बनाना। अप्रमत्तमें आहारकद्विक नहीं अतः योग नौ ही लिखना। ऐसे तीन कूट करना। अपूर्वकरणमें भी ऐसे ही तीन कूट करना।

अनिवृत्तिकरणमें जिस-जिस भागमें वेद, कषाय और हास्यादि छहका अभाव हुआ हो उस-उस भागमें उस-उस जगह शून्य लिखना। और एक-एक ही कूट करना, क्योंकि यहाँ भय-जुगुप्साका अभाव है। सूक्ष्म साम्परायमें बादर लोभ नहीं है, सूक्ष्म लोभ है। अतः कषायोंके स्थानमें तीन जगह शून्य और एक जगह एकका अंक लिखना। इस तरह एक कूट करना। उपशान्त कषाय क्षीण कषायमें सूक्ष्म लोभ भी नहीं है। अतः कषायोंके स्थानपर

अनिवृत्तिकरण			सूक्ष्म			बादरसूक्ष्म			उपशांत क्षीण		
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	७	अयोगि
१।१।१	१।१	१									
१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१।१	१।१।१	१।१	१	सू १	०	०	सयोगि	०

ई मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु पेळ्द कूटप्रकारंगळोळु मिथ्यादृष्टियोळनंतानुबंधिरहिता पुनरुक्तमप्पुरं कूटंगळोळु मोदल भयद्विकरहितकूटदोळु दशैकादशद्वादशत्रयोदश चतुर्दशपंचदशस्थानप्रकारंगळारप्पुवु। अदेंतेंदोडे पंचमिथ्यात्वंगळोळोंदु मिथ्यात्वमुमोंदिंद्रियासंयममोंदु पृथ्वीकायिकवधासंयममुमनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभरहितचतुस्त्रयंगळोळोंदु कषायत्रयमुं वेदत्रयदोळोंदु वेदमुं हास्यरतिद्विकद्वयदोळोंदु द्विकमुमनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टिपर्य्याप्तकनेयप्पुदरिंदं दशपर्य्याप्तयोगंगळोळोंदु योगमुमितु दशप्रत्ययस्थानप्रकारमोंदेयक्कुं॥ मत्तमा कूटदोळे ओंदु मिथ्यात्वमोंदिंद्रियासंयममुं पृथ्व्यप्कायिकद्वयवधासंयममुं कषायचतुस्त्रयंगळोळोंदु त्रयमुं वेदत्रयदोळोंदु वेदमुं द्विकद्वयदोळोंदु द्विकमुं दशयोगंगळोळोंदु योगमुं इंतेकादश प्रत्ययस्थानप्रकारमोंदक्कुं।

---

१० एतदेवासत्योभयमनोवचसी विना। अयोगे शून्यं।

अत्रानन्तानुबन्ध्यूनमिथ्यादृष्टिप्रथमकूटे मिथ्यात्वेऽप्येकं। इन्द्रियेष्वेकं पृथ्वीवधः अनन्तानुबन्धिभावाच्चतुर्षु कषायत्रिकेष्वेकं वेदेष्वेकः। द्विकद्वये एकं पर्याप्तत्वादस्य दशपर्याप्तयोगेष्वेकः मिलित्वा दशकं स्यात्। अत्र पृथ्वीवधमपनीय पृथ्व्यादिचतुष्कवधे निक्षिप्ते एकादशकं। अत्र तमपनीय पृथ्व्यादित्रयवधे निक्षिप्ते द्वादशकं। अत्र तमपनीय पृथ्व्यादिचतुष्कबधे निक्षिप्ते त्रयोदशकं। अत्र तमपनीय पृथ्व्यादिपंचवधे निक्षिप्ते चतुर्दशकं। अत्र तमपनीय पृथ्व्यादिषट्कवधे निक्षिप्ते पंचदशकं। एतानि षट्। एवं तद्द्वितीयकूटे एकादशकादीनि षट्। तृतीयकूटे द्वादशकादीनि षट्। पुनः अनन्तानुबन्धिसहिततत्प्रथमकूटे एकादशकादीनि षट्। द्वितीयकूटे द्वादशकादीनि षट्। तृतीयकूटे त्रयोदशकादीनि षट्। एतेषु दशकमष्टादशकं चैकैकं एकादशकसप्तदशकानि त्रीणि त्रीणि। द्वादशकषोडशकानि पंच पंच। त्रयोदशकचतुर्दशकपंचदशकानि षट् षट् मिलित्वा षट्त्रिंशत् तथा सासादनेष्वप्यनयैव दिशा तत्स्थानानि स्थानप्रकाराश्च ज्ञातव्याः। एतत्सर्वं मनसि धृत्वा प्राक्तनसूत्रद्वयमुक्तमाचार्यैः।

[एषु गुणस्थानकूटप्रकारेषु मिथ्यादृष्टावनंतानुबन्ध्यूनत्रिकूटेषु भयद्विकोनकूटे दशकैकादशकद्वादशकत्रयोदशकचतुर्दशकपंचदशकस्थानानि भवन्ति। तद्यथा—एकं मिथ्यात्वं एक इन्द्रियासंयमः एकः पृथ्वीकायिकबधासंयमः। अनन्तानुबन्ध्यूनकषायचतुस्त्रिकेष्वेकं। त्रिवेदेष्वेकः। हास्यरतिद्विकयोरेकं। अस्य मिथ्यादृष्टेः पर्याप्तत्वाद्दशपर्याप्तयोगेष्वेकः इति दशकं स्यात्। पुनस्तस्मिन्नेव कूटे एकं मिथ्यात्वमेक इन्द्रियासंयमः। पृथ्व्यप्कायिकबधासंयमौ। कषायचतुस्त्रयेष्वेकं। त्रिवेदेष्वेकः। द्विद्विकयोरेकं। दशयोगेष्वेकः इत्येकादशकं। पुनस्तत्रैव मिथ्यात्वेष्वेकं इन्द्रियेष्वेकं पृथ्व्यादित्रिवधासंयमाः। कषायचतुस्त्रयेष्वेकं। त्रिवेदेष्वेकः। द्विद्विक-

---

सर्वत्र शून्य लिखना। ऐसे एक-एक कूट बनाना। सयोगीमें असत्य और उभय मन वचन नहीं हैं। अतः सात योग लिखकर एक ही कूट करना। अयोगीमें सर्वत्र शून्य ही है।

इन कूटोंमें अनन्तानुबन्धी रहित मिथ्यादृष्टीके पहले कूटमें मिथ्यात्वोंमें-से एक, इन्द्रियविषयोंमें-से एक, षट्कायकी हिंसामें-से एक, अनन्तानुबन्धी बिना क्रोधादि चार कषायोंके त्रिकमें-से एक त्रिक, वेदोंमें-से एक, दो युगलोंमें-से एक युगल और पर्याप्त होनेसे दस योगोंमें-से एक योग, ये सब मिलकर दसका आस्रव है। इनमें एकके स्थानपर दो की

मत्तमा प्रथमकूटदोळे मिथ्यात्वंगळोळों दु इंद्रियंगळोळों दु पृथ्व्यप्तेजस्कायिकजीवत्रयवधासंयमत्रयमुं कषायचतुस्त्रयदोळु ओंदुत्रयमुं वेदत्रयदोळों दु वेदमुं द्विकद्वयदोळों दु द्विकमुं दशयोगंगळोळों दु योगमुं इंतु द्वादशप्रत्ययस्थानप्रकारमों दक्कुं। मत्तमा प्रथमकूटदोळे मिथ्यात्वंगळोळों दुमिंद्रियंगळोळों दुं पृथ्व्यप्तेजोवायुकायिकजीववधासंयमचतुष्टयमुं, चतुःकषायत्रयदोळों दु त्रयमुं वेदत्रयदोळों दु वेदमुं द्विकद्वयदोळों दु द्विकमुं दशयोगंगळोळों दुयोगमुमितु त्रयोदशप्रत्ययस्थानप्रकारमों देयक्कुं। मत्तमा प्रथमकूटदोळे मिथ्यात्वंगळोळों दुमिंद्रियंगळोळों दुं, पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकजीववधासंयमपंचकमुं, चतुःकषायत्रयंगळोळों दु त्रयमुं, वेदत्रयदोळों दु वेदमुं, द्विकद्वयदोळों दु द्विकमुं, दशयोगंगळोळों दु योगमुमितु चतुर्दशप्रत्ययंगळस्थानप्रकारमों दक्कुं।

मत्तमा प्रथमकूटदोळे मिथ्यात्वंगळोळों दु मिथ्यात्वमुमिंद्रियंगळोळिंद्रियासंयममुं, पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसजीववधासंयमषट्कमुं, चतुःकषायत्रयदोळों दुकषायत्रयमुं, वेदत्रयंगळोळों दु वेदमुं, द्विकद्वयदोळों दु द्विकमुं दशयोगंगळोळों दु योगमुमितु पंचदशप्रत्ययंगळ स्थानप्रकारमोंदक्कुमिते सर्व्वगुणस्थानकूटंगळोळु स्थानप्रकारंगळु साधिसल्पडुवुवदु कारणंबिदमनंतानुबंधिरहित मिथ्यादृष्टिय द्वितीयकूटदोळमेकादशादिषोडशावसानमाद षट्स्थानप्रकारंगळप्पुवु। आ तृतीयकूटदोळु द्वादशादिसप्तदशावसानमाद षट्स्थानप्रकारंगळप्पुवितनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टियोळ- पुनरुक्तकूटत्रयस्थानप्रकार संदृष्टि :—

१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६
१२	१३	१४	१५	१६	१७

इवं कूडिदोडे दश-

योरेकं। दशयोगेष्वेकः, इति द्वादशकं। पुनः मिथ्यात्वेष्वेकं। इन्द्रियेष्वेकं। पृथ्व्यादिचतुर्वधासंयमाः। चतुःकषायत्रयेष्वेकं। त्रिवेदेष्वेकः। द्विद्विकयोरेकं। दशयोगेष्वेकः इति त्रयोदशकं। पुनः मिथ्यात्वेष्वेकं। इन्द्रियेष्वेकं। पृथ्व्यादिपंचवधासंयमाः। चतुःकषायत्रयेष्वेकं। त्रिवेदेष्वेकः। द्विद्विकयोरेकं। दशयोगेष्वेकः। इति चतुर्दशकं। पुनः मिथ्यात्वेष्वेकं। इन्द्रियेष्वेकं। पृथ्व्यादिषट्कायवधासंयमाः। चतुःकषायत्रयेष्वेकं इति पंचदशकं। एवं द्वितीयकूटे एकादशकादिषोडशकांतानि षट्। तृतीयकूटे द्वादशकादिसप्तदशकांतानि षट्। संदृष्टिः—

१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६
१२	१३	१४	१५	१६	१७

हिंसा मिलानेसे ग्यारहका आस्रव होता है। दो के स्थानमें तीन कायकी हिंसा मिलानेसे बारहका आस्रव होता है। तीनके स्थानमें चार कायकी हिंसा मिलानेपर तेरहका आस्रव होता है। चारके स्थानमें पाँच कायकी हिंसा होनेपर चौदहका आस्रव होता है। पाँचके स्थानमें छह कायकी हिंसा होनेपर पन्द्रहका आस्रव है। इस तरह अनन्तानुबन्धी रहित प्रथम कूटमें दस आदि छह स्थान हुए। दूसरे कूटमें भय जुगुप्सामें-से एकके मिलानेसे ग्यारह आदि छह स्थान होते हैं। तीसरे कूटमें भयजुगुप्सा दोनोंके मिलनेसे बारह आदि

स्थानप्रकारमोंदु १० एकादशस्थानप्रकारंगळेरडु ११ द्वादशस्थानप्रकारंगळु मूरु १२
१ २ ३
त्रयोदशस्थानप्रकारंगळु मूरु १३ चतुर्दशस्थानप्रकारंगळु मूरु १४ पंचदशस्थानप्रकारंगळु
३ ३
मूरु १५ षोडशस्थानप्रकारंगळु एरडु १६ सप्तदशस्थानप्रकारंगळु ओंदु १७ यिवेल्लमुं
३ २ १
कूडि पदिनेंदु स्थानप्रकारंगळप्पुवु । १८ ॥ संदृष्टि :—

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
१	२	३	३	३	३	२	१

मत्तमिते मिथ्यादृष्टियोळनंतानुबंधि-
युतापुनरुक्तकूटत्रयदोळु प्रथमभयद्विरहितकूटदोळेकादशादिषट्स्थानंगळुं द्वितीयभयद्विकान्यतर-
युतकूटदोळु द्वादशादिषट्स्थानप्रकारंगळप्पुवु । आ भयद्विकयुततृतीयकूटदोळु त्रयोदशादिषट्-
स्थानप्रकारंगळप्पुवु । संदृष्टि :—

११	१२	१३	१४	१५	१६
१२	१३	१४	१५	१६	१७
१३	१४	१५	१६	१७	१८

यिंती मूरुं कूटंगळ पदिनेंदु स्थानप्रकारंगळं माडुत्तं विरलेकादशस्थानप्रकारमोंदेयक्कु
११ द्वादशस्थानप्रकारंगळेरडु १२ त्रयोदशस्थाप्रकारंगळु मूरु १३ चतुर्दशस्थानप्रकारं-
१ २ ३
गळु मूरु १४ पंचदशस्थानप्रकारंगळु मूरु १५ षोडशस्थानप्रकारंगळु मूरु १६ सप्त-
३ ३ ३
दशस्थानप्रकारंगळुमेरडु १७ अष्टादशस्थानप्रकारमोंदु १८ समुच्चय । संदृष्टि :—
२ १

अत्र दशकस्य प्रकार एकः १० एकादशकस्य द्वौ ११ द्वादशकस्य त्रयः १२ त्रयोदशकस्य त्रयः १३ चतुर्दशकस्य
१ २ ३ ३
त्रयः १४ पंचदशकस्य त्रयः १५ षोडशकस्य द्वौ १६ सप्तदशकस्यैकः १७ मिलित्वाऽष्टादश भवन्ति १८ । पुनः
३ ३ २ १
मिथ्यादृष्टावनन्तानुबंधियुतत्रिकूटेषु प्रथमे एकादशकादीनि षट् । द्वितीये द्वादशकादीनि षट् । तृतीये त्रयोदश-
कादीनि षट् । संदृष्टि :—

११	१२	१३	१४	१५	१६
१२	१३	१४	१५	१६	१७
१३	१४	१५	१६	१७	१८

अत्रैकादशकस्य प्रकार एकः ११ द्वादशकस्य द्वौ १२ त्रयोदशकस्य त्रयः १३ चतुर्दशकस्य त्रयः १४
१ २ ३ ३

छह स्थान होते हैं। अनन्तानुबन्धी सहित तीन कूटोंमें एक अनन्तानुबन्धी कषाय बढ़ जाती है। इससे प्रथम कूटमें ग्यारह आदि छह स्थान हैं, दूसरे कूटमें बारह आदि छह स्थान हैं। तीसरे कूटमें तेरह आदि छह आस्रव स्थान हैं। इस तरह इन कूटोंमें दस और अठारहका
आस्रव तो एक-एक ही प्रकार है क्योंकि दसका आस्रव तो अनन्तानुबन्धीरहित प्रथम कूटमें

११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१	२	३	३	३	३	२	१

मुन्नं पेळल्पट्ट अनंतानुबंधिरहितकूटत्रयद पदिनेंदु स्थानंगळुमनो पेळ्दनंतानुबंधियुतकूटत्रयद पदिनेंटुं स्थानप्रकारंगळुमं कूडुत्तं विरलु षट्त्रिंशत्प्रत्ययस्थानप्रकारंगळप्पुववनितक्कं संदृष्टि रचने :—

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१	३	५	६	६	६	५	२	१

ई प्रकारदिंद सासादनप्रथमकूटदोळु दशादिषट्स्थानप्रकारंगळप्पुवु । द्वितीयकूटदोळु एकादशादिषट्स्थानंगळप्पुवु । तृतीयकूटदोळु द्वादशादिषट्स्थानप्रकारंगळप्पुवितष्टदशस्थानप्रकारंगळप्पुवु ।

१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६
१२	१३	१४	१५	१६	१७

इवं कूडिदोडे सासादनंगे

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
१	२	३	३	३	३	२	१

मिश्रन त्रिकूटंगळोळु

९	१०	११	१२	१३	१४
१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६

कूडि मिश्रंगे

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	३	३	३	२	१

असंयत सम्यग्दृष्टिगे

९	१०	११	१२	१३	१४
१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६

पंचदशकस्य त्रयः १५ षोडशकस्य त्रयः १६ सप्तदशकस्य द्वौ १७ अष्टादशकस्यैकः १८ एतेषु प्रागुक्ताष्टादशसु
३ ३ २ १

मिलितेषु षट्त्रिंशद्भवन्ति । तत्संदृष्टिः—

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१	३	५	६	६	६	५	३	१

एवं सासादनस्य प्रथमकूटे दशकादीनि षट् । द्वितीये एकादशकादीनि षट् । तृतीये द्वादशकादीनि षट् । १०

१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६
१२	१३	१४	१५	१६	१७

मिलित्वाष्टादश

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
१	२	३	३	३	३	२	१

मिश्रस्य त्रिकूटेषु—

९	१०	११	१२	१३	१४
१०	११	१२	१३	१४	१५
११	१२	१३	१४	१५	१६

ही है और अठारहका आस्रव अनन्तानुबन्धीसहित अन्तिम कूटमें ही है। इसी तरह ग्यारह

कूडि असंयतसम्यग्दृष्टिगे संदृष्टि

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	३	३	३	२	१

देशसंयतन कूटत्रयदोळु

८	९	१०	११	१२
९	१०	११	१२	१३
१०	११	१२	१३	१४

कूडि देशसंयतंगे

८	९	१०	११	१२	१३	१४
१	२	३	३	३	२	१

प्रमत्त संयतंगे मूरु कूटंगळु, प्रथमकूटदोळु पंचप्रत्ययस्थान मोंदेयक्कुं। द्वितीयकूटदोळु षट्प्रत्ययस्थान प्रकारमु मोंदेयक्कुं। तृतीयकूटदोळु सप्तप्रत्ययस्थानप्रकारमोंदेयक्कुं। अवक्के संदृष्टि ५ अप्रमत्तंगमी प्रकारदिंदं त्रिकू- ६ ७

टंगळोळुमक्कुं ५ अपूर्व्वकरणंगर्मिते त्रिकूटंगळोळमक्कुं ५ अनिवृत्तिकरणन सवेदभागेयोळु ६ ६ ७ ७

५ कूटंगळु मूररोलं त्रिप्रत्ययस्थानप्रकारमोंदेयक्कुं। अवेद भागेय कूट चतुष्टयदोळु द्विप्रत्ययस्थान-प्रकारमोंदेयक्कुं। संदृष्टि ३।२ सूक्ष्मसाम्परायंगेककूटदोळु द्विप्रत्ययस्थानप्रकार मोंदेयक्कुं २
१।१ १

मिलित्वा—

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	३	३	३	२	१

असंयतस्य—

९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	३	३	३	२	१

देशसंयतस्य—

८	९	१०	११	१२	१३
९	१०	११	१२	१३	१४
१०	११	१२	१३	१४	१५

१० प्रमत्तसंयतस्य—

८	९	१०	११	१२	१३	१४
१	२	३	३	३	२	१

प्रथमकूटे पंचकमेकं द्वितीये षट्कं। तृतीये सप्तकमेव स्यात्। संदृष्टिः ५ तथाऽप्रमत्तापूर्वकरणयोरपि ५
६ ६
७ ७

और सतरहके आस्रव स्थान तीन-तीन प्रकार हैं। बारह-सोलहके पाँच-पाँच प्रकार हैं। तेरह, चौदह, पन्द्रहके छह-छह प्रकार हैं।

१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१	३	५	६	६	६	५	३	१

उपशान्तकषायंगेककूटदोळेकयोगप्रत्यय स्थानप्रकार मों देयक्कुं यो १ १ क्षीणकषायंगेकयोग

प्रत्ययस्थानप्रकारमों देयक्कुं यो १ १ सयोगकेवलिभट्टारकंगेकयोगप्रत्ययस्थानमों देयक्कुं यो १ १

अयोगि केवलिभट्टारक नोळु प्रत्ययं शून्यमक्कु । मितिनितुं प्रक्रियेयं मनदोळिरिसि याचार्य्यनिवं दस अट्ठारसदसयं सत्तरेत्यादियिदं जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थानंगळ एकं च तिण्णि पंचयेत्यादिस्थान-प्रकारंगळं भयदुगरहियमित्यादिकूटप्राकारंगळं पेळळपट्टुवें दितु ज्ञातव्यमक्कुं ॥ ५

अनंतरं कूटोच्चारण प्रकारमं पेळ्दपरः—

मिच्छत्ताणण्णदरं एक्केणक्खेण एक्ककायादी ।
तत्तो कसायवेददुजुगलाणेक्कं च जोगाणं ॥७९५॥

मिथ्यात्वानामन्यतरत् एकेनाक्षेणैककायादयः । ततः कषायवेदद्वियुगलानामेकं च योगानां ॥

मिथ्यात्वपंचकदोळन्यतरमुमिंद्रियषट्कदोडमेकाकायादिगळुमल्लिदं मेले कषायंगळोळों दु १० जातियुं वेदंगळोळों दु वेदमुं द्वियुगळंगळोळों दुयुगळमुं चशब्ददिदं संभविसुवेडेयोळु भयजुगुप्सा-द्वयदोळन्यतरमुमों देडेयोळु उभयमुंयोगंगळोळों दु मिदु कूटोच्चारण प्रकारमक्कुमवें तें दोडे येकांतमिथ्यादृष्टियोळं स्पर्शनेन्द्रियदोळं पृथ्वीकायदोळं क्रोधत्रयदोळं षंडवेददोळं षंडवेददोळं

अनिवृत्तिकरणस्य सवेदभागे त्रिकूटेषु त्रिकमेकं । अवेदभागे चतुःकूटेषु द्विकमेकं स्यात् ३ । २ सूक्ष्मसाम्पराय-

१ । १

स्यैककूटे द्विकमेकं २ उपशान्तकषायक्षीणकषायसयोगेष्वेकैकं योगप्रत्ययकमेव १ अयोगे प्रत्ययशून्यं इत्येतन्मनसि १५
१ १

कृत्वाचार्यो दस अट्ठारस दसयं सत्तारेत्यादिना जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थानानि, एकं च तिण्णि पंचयेत्यादिस्थान-प्रकारान् भयदुगरहियमित्यादि कूटप्रकारांश्चोक्तवान् । एवंविधः पाठभेदः, अभयचन्द्रनामांकितायां टीकायां] । ॥७९४॥ अथ कूटोच्चारणप्रकारमाह—

मिथ्यात्वानामन्यतरत् षण्डिंद्रियाणामेकेन सहैककायादि ततः कषायेष्वेका जातिः । वेदेष्वेकः । युगलद्वये एकं । चशब्दात्सम्भवस्थाने भयजुगुप्सयोरेकं, अन्यत्रोभयं च । योगेष्वेकः । इति कूटोच्चारणप्रकारः । २० तद्यथा—

सासादन आदिमें जो कूट कहे हैं उनमें भी इसी प्रकार विचार कर आस्रवोंके स्थान और उनके प्रकार जानना। ये सब मनमें रखकर आचार्यने पूर्वमें दो गाथाओंके द्वारा स्थान तथा स्थानोंके प्रकार कहे हैं ॥७९४॥

आगे कूटोच्चारणके प्रकार कहते हैं— २५

मिथ्यात्वोंमें-से कोई एक और छह इन्द्रियोंमें-से एकके साथ एक-दो कायादि, उनके पश्चात् कषायोंमें-से एक जाति, वेदोंमें-से एक तथा दो युगलोंमें-से एक, 'च' शब्दसे सम्भव स्थानमें भय जुगुप्सामें-से एक वा दोनों और योगोंमें-से एक। इस तरहसे कूटोंके उच्चारण करनेका विधान है। वही कहते हैं—

विशेषार्थ—जीवकाण्डके गुणस्थान अधिकारमें विकथा आदिके अक्षसंचार आदि ३०

हास्यद्विकदोळं सत्यमनोयोगदोळमनंतानुबंरहित मिथ्यादृष्टिय प्रथमकूटदोळि हंसपदाकाशमप्प अक्षवनिट्टुच्चरिसुवुदु । एकांतमिथ्यादृष्टिःस्पर्शनेन्द्रियवशंगतः पृथ्वीकायवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । मत्तमंते एकांतमिथ्यादृष्टिःस्पर्शनेन्द्रियवशंगतोऽप्कायवधकः त्रिक्रोधी षंडवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । मत्तमते एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेन्द्रियवशंगतः तेजस्कायिकवधकः त्रिक्रोधी षंडवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो वायुकायिकवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेन्द्रियवशंगतो वनस्पतिकायिकवधकस्त्रिक्रोधि षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशगतः त्रसकायिकवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । येंदितनंतानुबंधिरहितमिथ्यादृष्टिय प्रथमकूटदोळु पृथ्वीकायादित्रसकायिकपर्य्यंतं प्रत्येकं भेदाक्षसंचरणदोळुच्चारणषट्कमक्कुं

पृ	अ	ते	वा	व	त्र
१	१	१	१	१	१

मत्तमा कूटदोळु मुन्निनंते एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशगतः पृथ्व्यप्कायिकवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । १ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिःस्पर्शनेंद्रियवशंगतः पृथ्वीतेजस्कायिकद्वयवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । २ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंन्द्रियवशगतः पृथ्वीवायुकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ३ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशशंगतः पृथ्वीवनस्पतिकायिकद्वयवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ४ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिःस्पर्शनेंद्रियवशगतः पृथ्वीत्रसकायिक-

---

अनन्तानुबन्ध्यूनप्रथमकूटे एकान्तमिथ्यात्वे स्पर्शनेन्द्रियपृथ्वीकाये क्रोधत्रये षंढवेदे हास्यद्विके सत्यमनोयोगे चाक्षे धृते एकान्तमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेन्द्रियवशगतः पृथ्वीकायवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगीत्येकः । अत्र पृथ्वीकायवधमुद्धृत्य पंचस्वप्कायादिवधेष्वेकैकस्मिन् मिलितेऽमी प्रत्येकभंगाः षट् । पंचदशसु पृथ्व्यादिद्विसंयोगवधेष्वेकैकस्मिन् मिलितेऽमी द्विसंयोगभंगाः पंचदश । विंशतौ पृथ्व्यप्तेजस्कायत्रयादित्रिसंयोगवधेष्वेकैकस्मिन्मिलितेऽमी त्रिसंयोगभंगा विंशतिः । पंचदशसु पृथ्व्यप्तेजोवायुचतुष्कादिचतुःसंयोगवधेष्वे-

---

द्वारा जैसे प्रमादोंके भंग किये हैं; उसी प्रकार पाँच मिथ्यात्व आदिके अक्षसंचार आदि द्वारा आस्रवके भंग होते हैं। वही कहते हैं—

अनन्तानुबन्धी रहित प्रथम कूटमें एकान्त मिथ्यात्व, स्पर्शन इन्द्रिय, पृथ्वीकायकी हिंसा, तीन प्रकारका क्रोध, नपुंसकवेद, हास्यरतिका युगल, सत्य मनोयोग (असत्यमनोयोग ?) में अक्ष रखनेपर एकान्त मिथ्यादृष्टि, स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत, पृथ्वीकायका हिंसक, तीन प्रकारके क्रोधका धारक, नपुंसकवेदी, हास्यरतियुक्त, सत्यमनोयोगी जीवके आस्रवका एक भंग होता है। इस भंगमें पृथ्वीकायकी हिंसाके स्थानमें पाँच जलकाय आदिमेंसे एक-एक मिलानेपर प्रत्येक भंग छह होते हैं। पृथ्वी, जल या पृथ्वी, अग्नि आदि दो संयोगरूप पन्द्रह भेदोंमें-से एक-एकका हिंसक मिलानेपर द्विसंयोगी भंग पन्द्रह होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि या पृथ्वी, जल, पवन आदि तीनके संयोगरूप बीस भेदोंमें-से एक-एक हिंसक मिलानेपर त्रिसंयोगी भंग बीस होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु या पृथ्वी, जल,

वधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ५ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतोऽग्नेजस्कायिकद्वयकवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ६ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिःस्पर्शनेंद्रियवशंगतोऽब्वाबुकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ७ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतोऽब्वनस्पति कायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ८ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतोऽब्त्रसकायिकद्वयवधकः त्रिक्रोधी षंढवेदीहास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ९ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतः तेजोवातकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । १० ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतस्तेजोवनस्पतिकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । ११ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतस्तेजस्त्रसकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । १२ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतो वातवनस्पतिकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंडवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । १३ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतो वायुत्रसकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । १४ ॥ एकांतमिथ्यादृष्टिः स्पर्शनेंद्रियवशंगतो वनस्पतित्रसकायिकद्वयवधकस्त्रिक्रोधी षंढवेदी हास्यरतियुतः सत्यमनोयोगवान् । १५ ॥ यें दितु षड्जीवनिकायद्विसंयोगाक्षसंचारविधानदिदं जीववधासंयमभंगंगलोडनुच्चरण भेदंगळु पदिनय्दप्पुवु ॥ यितु षड्जीवनिकायदोळु द्विसंयोगंगळप्पुवु ।

पृ	अ	ते	वा	व	त्र
+	+				

कैकस्मिन्मिलितेऽमी चतुःसंयोगभंगाः पंचदश । षट्सु पंचसंयोगवधेष्वेकैकस्मिन्मिलितेऽमी पंचसंयोगभंगाः षट् । एकस्मिन् षट्संयोगवधे मिलिते षट्संयोगभंग एकः, मिलित्वा त्रिषष्टिः ।

पुनः तदेकान्तमिथ्यात्वाक्षे द्वितीये विपरीतमिथ्यात्वगतेऽपि त्रिषष्टिः । एवं पंचसु मिथ्यात्वेषु गत्वादावागते स्पर्शनेन्द्रियाक्षः रसनेन्द्रिये गच्छति । अयं च सर्वेन्द्रियेषु गत्वा मिथ्यात्वाक्षयुतः आदावागच्छति

अग्नि, वनस्पति आदि चार संयोगरूप पन्द्रह भेदोंमें-से एक-एकका हिंसक मिलानेपर चतुःसंयोगी भंग पन्द्रह होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति या पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, त्रस आदि पाँचके संयोगरूप छह भंगोंमें-से एक-एकका हिंसक मिलानेपर पंचसंयोगी भंग छह होते हैं। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, त्रस इन छहोंके संयोगरूप एकका हिंसक मिलानेपर छह संयोगी भंग एक होता है। ये सब मिलकर तिरसठ भंग होते हैं।

एकान्त मिथ्यात्वरूप अक्षकी तरह दूसरे विपरीत मिथ्यात्वरूप अक्षमें भी तिरसठ भंग होते हैं। इस तरह पाँचों मिथ्यात्वोंके तीन सौ पन्द्रह भंग होते हैं। इन सबोंमें स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूतके स्थानमें रसना इन्द्रियके वशीभूत रखनेपर भी उतने ही भंग होते हैं। इस तरह पाँचों इन्द्रियों और छठे मनके अठारह सौ नब्बे भंग होते हैं। इन सबोंमें तीन प्रकार क्रोधके स्थानमें तीन प्रकारके मानको मिलानेपर भी उतने ही भंग होते हैं। इस तरह लोभपर्यन्त चार कषायोंके पचहत्तरसौ साठ भंग होते हैं। इन सबोंमें नपुंसकवेदके स्थानमें

ई प्रकारदिंदं षड्जीवनिकायदोळु मत्तं त्रिसंयोगवधासंयमदोडने विंशति विधोच्चरणंगळु चतुःसंयोगवधासंयमदोडने पंचदशोच्चरण भेदंगळुं पंचसंयोगवधाऽसंयमदोडने षड्विधोच्चरणंगळु षट्संयोगवधासंयमदोडनेकविधोच्चरणमुमक्कुं। संदृष्टि—प्र ६। द्वि १५। त्रि २०। च १५। पं ६। ष १॥

इंतु त्रिषष्टिप्रमितवधासंयमदोडनुच्चरणंगळुं मिथ्यादृष्टिय प्रथमकूट प्रथमांकिताक्ष सप्तकदोळु त्रिषष्टिप्रमितंगळप्पुवु। इल्लि मत्तमी प्रत्येकादिभंगंगळं साधिसुवुपायमोंदुंटवाउदें दोडे प्रत्येक द्विसंयोग त्रिसंयोग चतुःसंयोग पंचसंयोग षट्संयोग वधंगळं क्रमदिंदं स्थापिसियवर केळगेकद्वित्रिचतुः पंचषट् हारंगळं स्थापिसि

६	५	४	३	२	१
१	२	३	४	५	६

यिल्लि योंदरिंदं मारं भागिसिदोडवु प्रत्येक भंगंगळारप्पुवु। ६। मत्तमा भाज्यराशिगरुमं पंचसंयोगमुमं गुणिसि हारमनवर केळगिर्द्दोंदुमनेरडुमं गुणिसि भागिसिदोडे लब्धं द्विसंयोग भंगंगळुं पदिनय्दप्पुवु—

३०	४	३	२	१	+
२	३	४	५	६	+

मत्तमा मूवत्तुमं मुंदण नाल्कुमं गुणिसि केळगणेरडुं मूरुं हारंगळं गुणिसि भागिसिबंद लब्धं त्रिसंयोग भंगंगळिप्पत्तप्पुवु

१२०	३	२	१
६	४	३	६

मत्तमा नूरिप्पत्तुमं मुंदण त्रिसंयोगदिंदं गुणिसिदोडे मूनूररुवत्तक्कुमदं केळगण आरुं नाल्कुं हारंगळं गुणिसि भागिसिद लब्धं चतुःसंयोगभंगंगळु पदिनय्दप्पुवु

३६०	२	१
२४	५	६

मत्तं मूनूररुवत्तं मुंदण द्विसंयोगदिंदं गुणिसिदोडेळु नूरिप्पत्तक्कु—। मदं केळगण इप्पत्त नाल्कुमय्दु हारंगळं गुणिसिदोडे नूरिप्पत्तप्पुदरिंदं भागिसिद लब्धं पंचसंयोग भंगंगळारप्पुवु

१२०	१	
१२०	६	

मत्तमा येळुनूरिप्पत्तं मुंदणेकवर्धदिंदं गुणिसिदोडे राशि तावन्मात्रमे एळुनूरिप्पत्तक्कु—। मदं केळगण नूरिप्पत्तमारु हारंगळं गुणिसिदोडवुवुमेळुनूरिप्पत्तक्कु मदरिंदं भागिसिद लब्धं षट्संयोग भंगमोंदेयक्कुं ७२०

७२०

तदा क्रोधत्रयाक्षः मानत्रये गच्छति। अयं च प्राग्वच्चरमलोभत्रयपर्यन्तं गत्वा इन्द्रियाक्षमिथ्यात्वाक्षाभ्यां सहादावागच्छति तदा षंढवेदाक्षः स्त्रीवेदे गच्छति। अयं च प्राग्वच्चरमपुंवेदपर्यन्तं गत्वा कषायाक्षेन्द्रियाक्षमिथ्यात्वाक्षैः सहादावागच्छति तदा हास्यद्वयाक्षः अरतिद्वये गच्छति। अयं च वेदाक्षकषायाक्षेन्द्रियाक्षमिथ्या-

---

स्त्रीवेद मिलानेपर भी उतने ही भंग होते हैं। इस तरह तीनों वेदोंके बाईसहजार छह सौ अस्सी भंग होते हैं। इन सब भेदोंमें हास्यरति युगलके स्थानमें शोकअरति मिलानेपर भी उतने ही भंग होते हैं। तब दोनों युगलोंके पैंतालीसहजार तीनसौसाठ भंग होते हैं। इस कूटमें भयजुगुप्सा नहीं है। अतः इन सबमें सत्यमनोयोगके स्थानमें असत्यमनोयोग मिलानेपर भी उतने ही भंग होते हैं। ऐसा करनेसे अन्तिम वैक्रियिकयोगपर्यन्त दस योगोंके चारलाख तिरपनहजार छहसौ भंग होते हैं। मिथ्यात्वमें अनन्तानुबन्धीका अनुदय पर्याप्त दशामें ही होता है इससे औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कर्माणयोगका ग्रहण नहीं किया है। अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यादृष्टि कूटमें इतने भंग होते हैं।

मितिदोंदु क्रममरियल्पडुगुं । प्र ६ । द्वि १५ । त्रि २० । च १५ । पं ६ । ष १ ॥ मितु त्रिषष्टि प्रमितभंगंगळो देकांतमिथ्यात्वस्पर्शनेंद्रियक्रोधत्रयषंडवेदहास्यद्विकसत्यमनोयोगमेंबिवरोळ्-डल्पवृक्षमो दक्कप्पुवल्लि प्रथमैकांतमिथ्यात्वाक्षं द्वितीयविपरीतमिथ्यात्वक्के संचरिसिदोडमिते त्रिषष्टिप्रमितोच्चरणभेदंगळप्पुर्वितेल्ला मिथ्यात्वंगळय्दरोळं संचरिसिवक्षं मोदलिगे बंदागळु स्पर्शनेंद्रियदोळिर्द्दं द्वितीयाक्षं स्वस्थानद्वितीयरसनेंद्रियक्कक्षं संचरिसुगु-। मा परस्थानद्वितीयेंद्रियाक्षं तन्नेल्ला यिंद्रियंगळोळं संचरिसि तानुं मिथ्यात्वाक्षमुमेरडुं मोदलिगे वरलोडं कोधत्रयदोळिर्द्दं परस्थानतृतीयाक्षं स्वस्थानमानत्रयक्के संचरिसुगुमवुवुं पूर्व्वोक्तक्रमदिं चरमलोभत्रयपर्य्यंतं संचरिसि तानुमिंद्रियमिथ्यात्वाक्षद्वययुतमागि मोदलगे वरलोडं षंडवेददोळिर्द्दं परस्थानचतुर्थाक्षं स्त्रीवेदक्के संचरिसुगुमदुवुं पूर्व्वोक्तक्रमदिदं चरमपुंवेद पर्य्यंतं पोगि तानुं क्रोधेंद्रियमिथ्यात्वाक्षत्रययुतमागि मोदलगे वरलोडं हास्यद्वयदोळिर्द्दं परस्थानपंचमाक्षमरतिद्वयक्के संचरिसुगुमी रतिद्वयदोळिर्द्दं परस्थानपंचमाक्षं तानुं वेदक्रोधेंद्रियमिथ्यात्वाक्षचतुष्टययुतमागि मोदलगे वरलोडनिदु भयद्वयरहितप्रथमकूटमप्पुदरिदं सत्यमनोयोगदोळिर्द्दं परस्थानषष्टाक्षं स्वस्थानदोळुतन्न द्वितीयभेदमप्प असत्यमनोयोगक्के संचरिसुगुमी परस्थानषष्टयोगाक्षं पूर्व्वोक्तक्रमदिदंतन्न चरमवैक्रियिक काययोग पर्य्यंतं संचरिसि निदोडागळा केळगणक्षंगळनितु तम्म तम्म चरम दोळिर्द्दोडागळा कूटोच्चरणं परिसमाप्तियक्कु-। मीयोंदोंदु परस्थानाक्षं संचरिपागळु पृथ्व्यादिगळ वधासंयमभेदंगळु त्रिषष्टिप्रमितंगळागुत्तं बप्पुवें बिन्तरियल्पडुगु-। मितुळिद मिथ्यादृष्टिय सर्व्वकूटंगळोळं सासादनादिगुणस्थानंगळ कूटंगळोळं यथासंभवमुच्चरणविधानमिते यक्षसंचारविधानदिदमरियल्पडुगु-। मनंतरं भंगानयनप्रकारमं पेळ्दपरु :—

अणरहिदसहिदकूडे बावत्तरिसय सयाण तेणउदी ।
सट्ठी धुवा हु मिच्छे भयदुगसंजोगजा अधुवा ॥७९६॥

अनंतानुबंधितरहित सहितकूटे द्वासप्ततिशतं शतानां त्रिनवतिः । षष्टिध्रुवाः खलु निथ्यादृष्टौ भयद्विकसंयोगजा अध्रुवाः ॥

त्वाक्षैस्सहादावागच्छति तदा भयद्वयोनकूटत्वात्सत्यमनोयोगाक्षः असत्यमनोयोगे गच्छति । अयं च प्राग्वच्चरमवैक्रियिकयोगपर्यन्तं गच्छति तदा तदधस्तनाक्षाः सर्वे स्वचरमे स्युरिति तत्कूटोच्चरणं समाप्तं । एवं शेषमिथ्यादृष्टिकूटसासादनादिकूटेष्वपि ज्ञातव्यं ॥७९५॥ अथ भंगानयनप्रकारमाह—

यहाँ अक्षके अपने अन्ततक पहुँचनेपर उस सहित सब पहले अक्ष आदि स्थानमें आ जाते हैं। और उत्तर अक्ष दूसरे स्थानपर आ जाता है। जैसे पाँच मिथ्यात्वका अक्ष जब अज्ञान मिथ्यात्वतक पहुँचा तब मिथ्यात्वका अक्ष एकान्त मिथ्यात्वपर आ गया और उत्तर इन्द्रियअक्ष रसनारूप दूसरे स्थानको प्राप्त हुआ। ऐसा होते-होते सब अक्ष जब अन्त स्थान को प्राप्त होते हैं तब अक्ष संचार समाप्त होता है। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीरहित मिथ्यादृष्टीके प्रथम कूटके उच्चारणका विधान हुआ। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिके शेष कूट तथा सासादन आदिके कूटके उच्चारणका विधान जानना ॥७९५॥

आगे भंगोंका प्रमाण लानेका प्रकार कहते हैं—

अनंतानुबंधिरहित कूटदोळं सहितकूटदोळं यथासंख्यमागि द्वासप्ततिशतमुं त्रिनवतिशतयुतषष्टिप्रमितंगळुं मिथ्यादृष्टियोळु ध्रुवभंगंगळिवु गुण्यंगळप्पुवु। भयद्विकरहितसहितमेकतरयुतंगळेंब चतुःकूटगुणितपृथिव्यादिसंयोगजनितत्रिषष्टिभंगंगळवध्रुवभंगगुणकारंगळप्पुवदेंतेंदोडे अनंतानुबंधिरहितप्रथमकूटदोळु मिथ्यात्वपंचकमिंद्रियषट्कं कषायत्रिचतुष्टयं त्रिवेदद्विकद्वय दशयोग ५। ६। ४। ३। २। १०। मिवं परस्परं गुणिसिदोडेळु सासिरदिन्नूरु भंगंगळप्पुवु। ७२००॥ अनंतानुबंधिसहितकूटदोळु ५। ६। ४। ३। २। १३। यिवं परस्परं गुणिसिदोडे ओंभत्तुसासिरद मूनूररुवत्तु भंगंगळप्पुवु ९३६०॥ ई एरडुं राशिगळं कूडिदोडे पदिनारुसासिरदैनूररुवत्तु ध्रुवगुण्यभंगंगळु मिथ्यादृष्टिगळगप्पुवु १६५६०॥ इल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगु। मोंदु ध्रुवभंगक्कध्रुवभंगंगळु त्रिषष्टिप्रमितंगळागलुमिनितु ध्रुवभंगंगळगेनितध्रुवभंगंगळप्पुवेंदिंतु त्रैराशिकमं माडि प्र १। फ ६३। इ १६५६०। बंद लब्धमुमिनितक्कु १६५६०। ६३॥ मतमोंदनंतानुबंधिरहितसहितकूटद्विकविकनितागुत्तं विरला द्विकचतुष्टयक्कनितु भंगंगळप्पुवेंदितिल्लियुमो त्रैराशिकदिंदं नाल्कुगुणाकारमक्कु। १६५६०। ६३। ४॥ मिवं परस्परं गुणिसिदोडे मिथ्यादृष्टियोळु सव्वंप्रत्ययभंगंगळप्पुवु। अवुं नाल्वत्तोंदु लक्षमुमेप्पत्तमूरु सासिरद नूरिप्पत्तप्पुवु। ४१७३१२०॥ सासादनंगे अनंतानुबंधिसहितकूटंगळेयप्पुदरिंदं प्रथमकूटदोळु इंद्रियंगळारु। कषायगुणकारंगळु नाल्कु। वेदंगळु मूरु। द्विकद्वययोंगंगळु पन्नेरडु ६। ४। ३। २। १२। इवं परस्परं गुणिसिदोडे सासिरदेळ्नूरिप्पत्तेंटप्पुवु। १७२८॥ मत्तं सासादनंगे वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु षंडत्वेदमिल्लेकेंदोडे

मिथ्यादृष्टौ ध्रुवभंगा अनन्तानुबन्ध्यूनकूटे सप्तसहस्रद्विशती, तद्युतकूटे खलु षष्ट्यग्रनवसहस्रत्रिंशती। कायभंगवर्जितमिथ्यात्वादिसंख्यांकेषु परस्परं गुणितेषु तत्प्रमाणस्य सम्भवात्। उभये मिलित्वा षष्ट्यग्रपंचशतषोडशसहस्री गुण्यं, एकैकं प्रतिभयद्विकजोभयकूटचतुष्कं कायभंगजत्रिषष्टिश्चास्तीत्यनेन ६३। ४। अध्रुवगुणकारेण गुणितं सर्वप्रत्ययभंगा विंशत्यग्रैकशतत्रिसप्ततिसहस्रैकचत्वारिंशल्लक्षाणि भवन्ति ४१७३१२०। सासादने प्रथमकूटे षडिंद्रियचतुष्कषायजातित्रिवेदद्विकद्वादशयोगेषु परस्परं गुणितेष्वष्टाविंशत्यग्रसप्तदशशती, वैक्रियिक-

मिथ्यात्व आदिकी संख्याको परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है वही भंगोंका प्रमाण है। अतः मिथ्यादृष्टिमें अनन्तानुबन्धीरहित कूटोंमें पाँच मिथ्यात्व, छह इन्द्रिय, चार कषायत्रिक, तीन वेद, हास्य और शोकका दो युगल, दस योग ५×६×४×३×२×१० को परस्पर गुणा करनेसे बहत्तर सौ होते हैं। अनन्तानुबन्धी सहित कूटमें पाँच मिथ्यात्व, छह इन्द्रिय, चार कषाय, तीन वेद, हास्य शोक दो युगल, तेरह योग ५×६×४×३×२×१३ को परस्परमें गुणा करनेसे तिरानबे सौ साठ होते हैं। दोनोंको मिलानेपर सोलह हजार पाँच सौ साठ तो ध्रुव गुण्य हुए। तथा एक भय जुगुप्सा रहित, एक भय सहित, एक जुगुप्सा सहित एक भय जुगुप्सा सहित ये चार भंग होते हैं। तथा कायहिंसाके तेरसठ भंग होते हैं। ये चार और तेरसठ अध्रुव गुणकार हैं। अतः उक्त ध्रुव गुण्यको चार और तेरसठसे गुणा करनेपर मिथ्यादृष्टिमें सब प्रत्ययोंके भंग इकतालीस लाख तिहत्तर हजार एक सौ बीस हैं।

सासादनमें छह इन्द्रिय, चार कषाय, तीन वेद, दो युगल, वैक्रियिक मिश्र बिना बारह

आ सासादनं नरकं बुगनप्पुदरिंदं पुंवेदमुं स्त्रीवेदमुं सासादनंगे देवगतियोळु घटिसुगुमप्पुदरिंदमा वैक्रियिकमिश्रकाययोगदोळु सासादनंगे इं ६। क ४। वे २। द्वि २। वै यो १। इवं परस्परं गुणिसिदोडे ध्रुवभंगंगळुतों भत्तारप्पुवु। ९६॥ उभयमुं ध्रुवं १८२४॥ अध्रुवगुणकारंगळं चतुर्ग्गुणितत्रिषष्टियक्कु। १८२४। ६३। ४॥ मिवं परस्परं गुणिसिदोडे सासादनंगे सर्व्वभंगंगळु नाल्कुलक्षमुमय्वत्तों भत्तुसासिरदरुनूर नाल्वत्तें टप्पुवु। ४५९६४८॥ मिश्रंगे इं ६। क ४। वे ३। द्वि २। यो १०॥ यिवं परस्परं गुणिसिदोडे ध्रुवभंगगुण्यंगळु सासिरद नानूरनाल्वत्तक्कुं। १४४० अध्रुवगुणकारंगळं चतुर्ग्गुणितत्रिषष्टिप्रमितमक्कु १४४०। ६३। ४॥ मिवं परस्परं गुणिसिदोडे मिश्रंगे सर्व्वभंगंगळु मूरुलक्षमुमरुवत्तेरडु सासिरदें टुनूरें भत्तक्कुं। ३६२८८०।

असंयतंगे इं ६। क ४। वे ३। द्वि २। यो १०। यिवं परस्परं गुणिसिदोडे सासिरदनानूर नाल्वत्तक्कुं १४४०॥ मत्तमसंयतंगे वैक्रियिकमिश्रकाययोगकार्म्मणकाययोगद्वयदोळं स्त्रीवेदोदयं घटिसदप्पुदरिंदं। इं ६। क ४। वे २। द्वि २। यो २। यिवं परस्परं गुणिसिदोडे ध्रुवगुण्यंगळु नूरतों भत्तेरडप्पुवु। १९२॥ मत्तमसंयतंगौदारिकमिश्रकाययोगदोळु पुंवेदोदयमों देयप्पुदरिंदं। इं ६। क ४। वे १। द्वि २। यो १। इवं परस्परं गुणिसिदोडे नाल्वत्तें टु ध्रुवगुण्यंगळप्पुवी मूरुं राशिगळं कूडियध्रुवंगळिंदं गुणिसिदोडे १६८०। ६३। ४ इवं परस्परं गुणिसिदोडे असंयतन सर्व्वप्रत्ययभंगंगळु नाल्कुलक्षमुमिप्पत्तमूरु सासिरदमूनूररुवत्तु भंगंगळप्पुवु।

मिश्रे च इं ६। क ४। वे २ षंढोनं। द्वि २। यो १ गुणिते षण्णवतिः मिलित्वा चतुर्विंशत्यग्राष्टादशशतो ध्रुवगुण्यं प्राक्तनाध्रुवगुणकारेण गुणितं सर्वभंगाश्चतुर्लक्षैकान्नषष्टिसहस्रषड्शताष्टचत्वारिंशतो भवन्ति। मिश्रे इं ६। क ४। वे ३। द्वि २। यो १० गुणिते ध्रुवगुण्यं चत्वारिंशदग्रचतुर्दशशती तेनाध्रुवकारेण गुणितास्त्रिलक्षद्वाषष्टिसहस्राष्टशताशीतयो भवन्ति। असंयते इ ६। क ४। वे ३। द्वि २। यो १० गुणिते चत्वारिंशदग्रचतुर्दशशतो। वैक्रियिकमिश्रकार्मणयोः स्त्री नेति इं ६। क ४। वे २। द्वि २। यो २। गुणिते द्वानवत्यग्रशतं। औदारिकमिश्रे पुमानेवेति इं ६। क ४। वे १। द्वि २। यो १। गुणितेऽष्टचत्वारिंशत्। मिलित्वा ध्रुवगुण्यमशीत्यग्रषोडशशती। अध्रुवगुणकारगुणितः सर्वभंगाश्चतुर्लक्षत्रयोविंशतिसहस्रत्रिंशतषष्टयो भवन्ति।

योग, इनको परस्परमें गुणा करनेपर सत्तरह सौ अट्ठाईस होते हैं। वैक्रियिक मिश्रमें यहाँ नपुंसक वेद नहीं होता। अतः छह इन्द्रिय, चार कषाय, दो वेद, दो युगल एक योगको परस्परमें गुणा करनेसे छियानवे हुए। दोनों मिलकर अट्ठारह सौ चौबीस ध्रुव गुण्य हुआ। इसको चार और त्रेसठ अध्रुव गुणकारसे गुणा करनेपर सब भंग चार लाख उनसठ हजार छह सौ अड़तालीस होते हैं। मिश्र में छह इन्द्रिय, चार कषाय, तीन वेद, दो युगल, दस योगको परस्पर गुणा करनेसे ध्रुव गुण्य चौदह सौ चालीस होता है, इसको अध्रुव गुणकार चार और तेरसठसे गुणा करनेपर तीन लाख बासठ हजार आठ सौ अस्सी भंग होते हैं, असंयतमें छह इन्द्रिय, चार कषाय, तीन वेद, दो युगल, पर्याप्त सम्बन्धी दस योगोंको परस्परमें गुणा करनेपर चौदह सौ चालीस हुए। तथा वैक्रियिक मिश्र और कार्माण योगमें यहाँ स्त्रीवेद नहीं होता। अतः छह इन्द्रिय, चार कषाय, दो वेद, दो युगल, दो योगको गुणा करनेपर एक सौ बानबे हुए और औदारिक मिश्रमें एक पुरुषवेद ही है। अतः छह इन्द्रिय, चार कषाय, एक वेद, दो युगल, एक योगको गुणा करनेपर अड़तालीस हुए। इन तीनोंको जोड़नेपर ध्रुव गुण्य

४२३३६० ॥ देशसंयतंगे वैक्रियिककाययोगमुमिल्लप्पुदरिंदं इं ६ । क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ ॥ इवं परस्परं गुणिसिदोडे सासिरदिन्नूरतोंभत्तारप्पुविल्लि अध्रुवगुणकारंगळु त्रसवधासंयममिल्लप्पुदरिंदं

५	४	३	२	१
१	२	३	४	५

प्रत्येक भंगंगळैदु । द्विसंयोगंगळु पत्तु । त्रिसंयोगंगळु पत्तु । चतुःसंयोगंगळुमैदु । पंचसंयोगमों दु । ५ । १० । १० । ५ । १ ॥ यितु देशसंयतंगध्रुवगुणकारंगळु चतुःकूटगुणितंगळेकत्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु । १२९६ । ३१ । ४ ॥ यिवं परस्परं गुणिसिदोडे लक्षमुमरुवत्तु सासिरदेळ्नूर नाल्कप्पुवु । १६०७०४ ॥ प्रमत्तसंयतंगे क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ । यिवं परस्परं गुणिसिदोडिन्नूरपदिनारप्पुवु । २१६ ॥ मत्तमाहारकशरीरदोळु क ४ । वे १ । द्वि २ । यो २ । इवं परस्परं गुणिसिदोडे पदिनारप्पुवु । कूडि ध्रुवंगळु २३२ ॥ अध्रुवंगळु चतुःकूटप्रकार नाल्करिंदं गुणिसिदोडे २३२ । ४ ॥ सर्व्वप्रत्ययभंगंगळु प्रमत्तंगों भैनूरिप्पत्तेंटप्पुवु । ९२८ ॥ अप्रमत्तंगे क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ । इव परस्परं गुणिसि अध्रुवचतुष्कदिंदं गुणिसिदोडे २१६ । ४ । एंटुनूररुवत्तनाल्कप्पुवु । ८६४ ॥ अपूर्व्वकरणं क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ । इवं परस्परं गुणिसियध्रुवचतुष्कदिंदं गुणिसिदोडे २१६ । ४ ॥ एंटुनूररुवत्तनाल्कु भंगंगळप्पुवु । ८६४ ॥ अनिवृत्तिकरणंगे सवेदभागेयोळु क ४ । वे ३ । यो ९ ॥ इवं परस्परं गुणिसिदोडे नूरय्वत्तु भंगंगळप्पुवु । १०८ ॥ मत्तमा भागेयोळु क ४ । वे २ । यो ९ । इवं परस्परं गुणिसिदोडप्पत्तेरडप्पुवु

देशसंयते वैक्रियिकयोगो नेति इं ६ । क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ । गुणिते षण्णवत्यग्रद्वादशशती । अध्रुवगुणकारेण त्रसकायबधो नेत्येकत्रिंशच्चतुष्कात्मकेन गुणितैकलक्षषष्टिसहस्रसप्तशतचत्वारो भवन्ति । प्रमत्ते क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ । गुणिते षोडशाग्रद्विशतं । आहारकशरीरे क ४ । वे १ । द्वि २ । यो २ । गुणिते षोडश, मिलित्वा द्वात्रिंशदग्रद्विशती । अध्रुवकूटचतुष्केण गुणिता सर्वभंगा अष्टाविंशत्यग्रनवशती । अप्रमत्ते क ४ । वे ३ । द्वि २ । यो ९ । संगुण्याध्रुवचतुष्केण गुणिते चतुःषष्टचग्राष्टशती । अपूर्वकरणेऽपि तथा

सोलह सौ अस्सी होता है । इसको अध्रुव गुण्य चार और तेरसठसे गुणा करनेपर सब भंग चार लाख तेईस हजार तीन सौ साठ होते हैं ।

देशसंयतमें वैक्रियिक योग भी नहीं है । अतः छह इन्द्रिय, चार कषाय, तीन वेद, दो युगल, नौ योगको परस्परमें गुणा करनेसे बारह सौ छियानबे हुए । यहाँ त्रसबध नहीं है अतः पाँच स्थावर बधकी अपेक्षा संयोगी भंग इकतीस तथा चार भय जुगुप्सा सम्बन्धी अध्रुव गुणकारोंसे उक्त ध्रुव गुण्यको गुणा करनेपर एक लाख साठ हजार सात सौ चार भंग होते हैं ।

प्रमत्तमें चार कषाय, तीन वेद, दो युगल, नौ योगको परस्परमें गुणा करनेपर दो सौ सोलह हुए । तथा आहारक योगमें चार कषाय, एक पुरुषवेद, दो युगल, दो योगको गुणा करनेपर सोलह मिलकर दो सौ बत्तीस हुए । इनको भय जुगुप्सा सम्बन्धी चार अध्रुव गुणकारोंसे गुणा करनेपर सब भंग नौ सौ अठाईस हुए ।

अप्रमत्तमें चार कषाय, तीन वेद, दो युगल, नौ योगको परस्पर गुणा करनेपर दो सौ सोलह हुए । इसे अध्रुव गुणकार चारमें गुणा करनेपर आठसौ चौसठ भंग हुए । अपूर्वकरणमें भी इसी प्रकार आठसौ चौसठ होते हैं ।

७२ ॥ मत्तमवेदभागेयोळु क ४ । यो ९ । गुणिसिदोडे मूवत्तारु ३६ । मत्तं क्रोधरहितभागेयोळु क ३ । यो ९ । गुणिसिदोडे इप्पत्तेळप्पुवु २७ । मत्तं मानरहितभागेयोळु क २ । यो ९ ॥ गुणिसिदोडे पदिनेंटप्पुवु । १८ । मत्तं मायारहितभागेयोळु क १ । यो ९ । गुणिसिदोडे ओंभत्तप्पुवु । ९ ॥ इंतनिवृत्तिकरणनारु राशिगळुं कूडिनूरेप्पत्तप्पुवु । २७० ॥ सूक्ष्मसांपरायंगे क १ । यो ९ । गुणिसिदोडों भत्ते भंगंगळप्पुवु । ९ ॥ उपशांतकषायंगे योगभेददों भत्ते भंगंगळप्पुवु । ९ ॥ क्षीणकषायंगं योगभेद दों भत्ते भंगंगळप्पुवु । ९ ॥ सयोगकेवलि भट्टारकंगं योगभेददिंदं प्रत्ययभंगंगळेळेयप्पुवु । ७ ॥ अयोगिजिनस्वामियोळु प्रत्ययं शून्यमक्कुं ॥

अनंतरमी भंगंगळनुच्चरिसि तोरिदपरु :—

चउवीसट्ठारसयं तालं चोद्दसयसीदिसोलसयं ।
छण्णउदी बारसयं बत्तीसं बिसद सोल बिसदं च ॥७९७॥

चतुर्विंशत्यष्टादशशतं चत्वारिंशच्चतुर्दश अशीति षोडश । षण्णवतिद्वादशशतं द्वात्रिंशत् द्विशतं षोडश द्विशतं च ॥

मिथ्यादृष्टियोळु मुंपेळ्दु पोदुदप्पुदरिंदं सासादनादिगळोळु पेळ्दपरु :—

सासादनंगे ध्रुवगुण्यंगळु चतुर्विंशत्युत्तराष्टादश शतमक्कुं । १८२४ ॥ मिश्रनोळु चत्वारिंशदुत्तरचतुर्दशशतमक्कुं । १४४० ॥ असंयतनोळु अशीत्युत्तर षोडशशतकमक्कुं । १६८० ॥ देश-

तावंतः । अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे क ४ । वे ३ । यो ९ । गुणितेऽष्टोत्तरशतं । पुनस्तत्रैव क ४ । वे २ । यो ९ । गुणिते द्वासप्ततिः । अवेदभागे क ४ । यो ९ । गुणिते षट्त्रिंशत् । अक्रोधभागे क ३ । यो ९ । गुणिते सप्तविंशतिः । अमानभागे क २ । यो ९ । गुणितेऽष्टादश । अमायभागे क १ । यो ९ । गुणिते नव । मिलित्वा सप्तत्यग्रद्विशती । सूक्ष्मसाम्पराये क १ । यो ९ । गुणिते नव । उपशान्तकषाये योगभेदेन नव । क्षीणकषायेऽपि नव । सयोगे सप्त । अयोगे प्रत्ययशून्यं ॥७९६ ॥ उक्तभंगानाह—

ध्रुवगुण्यमपूर्वकरणांतं क्रमशो मिथ्यादृष्टौ प्रागुक्तं । सासादने चतुर्विंशत्यग्राष्टादशशती । मिश्रे

अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें चार कषाय, तीन वेद, नौ योगोंको परस्परमें गुणा करनेपर एक सौ आठ हुए । यहाँसे अध्रुव गुणकार नहीं है । उसी सवेद भागमें चार कषाय, दो वेद, नौ योगोंको गुणा करनेपर बहत्तर भंग होते हैं । अवेद भागमें चार कषाय और नौ योगोंको परस्परमें गुणा करनेपर छत्तीस भंग होते हैं । क्रोधरहित भागमें तीन कषाय और नौ योगोंका गुणा करनेपर सत्ताईस भंग होते हैं । मान रहित भागमें दो कषाय और नौ योगोंको गुणा करनेपर अठारह होते हैं । माया रहित भागमें एक कषाय और नौ योगोंको गुणा करनेपर नौ भेद होते हैं । सब मिलकर अनिवृत्तिकरणमें दो सौ सत्तर भंग होते हैं । सूक्ष्म साम्परायमें कषाय एक और नौ योगोंको गुणा करनेपर नौ भंग होते हैं । उपशान्त कषायमें केवल नौ योग ही होनेसे नौ भंग हैं । क्षीणकषायमें भी नौ भंग हैं । सयोगीमें भी योगोंसे ही सात भंग होते हैं । अयोगीमें कोई प्रत्यय नहीं होता ॥७९६॥

उक्त भंगोंको कहते हैं—

ध्रुवगुण्य अपूर्वकरण पर्यन्त क्रमसे मिथ्यादृष्टीमें तो पूर्वोक्त है । सासादनमें अठारह

संयतनोळु षण्णवत्युत्तरद्वादशशतमक्कुं। १२९६ ॥ प्रमत्तसंयतनोळु द्वात्रिंशदुत्तरद्विशतमक्कुं। २३२। अप्रमत्तनोल षोडशोत्तरद्विशतमक्कुं। २१६ ॥ अपूर्व्वकरणादिगळोळु पेळ्दपरु :—

सोलस बिसदं कमसो धुवगुणगारा अपुव्वकरणोत्ति ।
अद्धुवगुणिदे भंगा धुवभंगाणं ण भेदादो ॥७९८॥

षोडश द्विशतं क्रमशो ध्रुवगुणकारा अपूर्व्वकरणपर्य्यंतं। अध्रुवगुणिते भंगा ध्रुवभंगानां न भेदात् ॥

अपूर्व्वकरणनोळु ध्रुवगुण्यंगळु षोडशोत्तरद्विशतमक्कुं २१६ ॥ यितो क्रमदिदं मिथ्यादृष्ट्यादियागियपूर्व्वकरणपर्य्यंतं ध्रुवगुण्यभंगंगळुमध्रुवगुणकारंगळुं भेदंगळुंटप्पुदरिंदं ध्रुवगुण्यंगळप्पुविवं तम्म अध्रुवगुणकारं गळिदं गुणिसुत्तं विरलु तंतम्म भंगंगळप्पुविल्लि ध्रुवभंगानां ई पेळल्पट्ट ध्रुवभंगंगळनितु मेकैकंगळप्पुदरिंदं न भेदात् आध्रुवभंगंगळिगन्ना प्राणासंयमदंते द्विसंयोगादि भेदंगळिल्लप्पुदरिंदं मिथ्यात्वेंद्रियादिगळ्गे संभविसुव भंगंगळनितु ध्रुवभंगंगळेयप्पुवेंबुदत्थं ॥

अनंतरमा प्राणासंयमगळ्गे प्रत्येकद्विसंयोगादिभेदंगळुंटेंदिरा भेदंगळं साधिसुवुपायमाउदेंदोडे अक्षसंचारं ज्ञातार्त्थमवल्लदिदोंदु प्रकारदिंदं प्रत्येक द्विसंयोगादिगळं साधिसुवुपायमं पेळ्दपरु :—

छप्पंचादेयंतं रूउत्तरभाजिदे कमेण हदे ।
लद्धं मिच्छचउक्के देसे संजोगगुणगारा ॥७९९॥

षट्पंचाद्येकांतं रूपोत्तर भाजिते क्रमेण हते। लब्धं मिथ्यादृष्ट्यादि चतुष्के देशसंयते संयोगगुणकाराः ॥

षट्पंचांकंगळादियागि एकांकावसानमागि स्थापिसिदुवं पूर्व्वोक्तक्रमदिंदं एकाद्येकोत्तरमागवर केळगे हारंगळं स्थापिसि भागिसुत्तिरलु प्रथमलब्धं प्रत्येकभंगप्रमाणमारप्पुवु। ६। मत्तं

चत्वारिंशदशग्रचतुर्दशशती। असंयतेऽशीत्यग्रषोडशशती। देशसंयते षण्णवत्यग्रद्वादशशती। प्रमत्ते द्वात्रिंशदग्रद्विशती। अप्रमत्ते द्वात्रिंशदग्रद्विशती। अप्रमत्ते षोडशाग्रद्विशती। अपूर्वकरणे षोडशाग्रद्विशती। अमीषु गुण्येषु स्वस्वाध्रुवगुणकारेण गुणितेषु तत्र भंगाः स्युः। उपरि केवलध्रुवभंगाणामेव भेदान्नाध्रुवगुणकारः द्विसंयोगादिजनितत्वाभावात्। ॥७९७॥७९८॥ प्रागुक्तप्रत्येकादिभंगसाधनेऽक्षसंचारो जातार्थः, इत्युपायान्तरमाह—

षडादीनेकपर्यंतानंकान् संस्थाप्य तदधोहारानेकादीनेकोत्तरान् संस्थाप्य—

सौ चौबीस, मिश्रमें चौदह सौ चालीस, असंयतमें सोलह सौ अस्सी, देशसंयतमें बारह सौ छियानबे, प्रमत्तमें दो सौ बत्तीस, अप्रमत्तमें दो सौ सोलह, अपूर्वकरणमें दो सौ सोलह है। इन ध्रुव गुण्योंको अपने-अपने अध्रुव गुणकारसे गुणा करनेपर अपने-अपने भंग होते हैं। ऊपरके गुणस्थानोंमें केवल ध्रुव भंग ही हैं; क्योंकि उनमें भय जुगुप्सा और अविरतिका अभाव है अतः अध्रुव गुणकार नहीं होते ॥७९७-७९८॥

पूर्वोक्त प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंगोंके साधनेमें अक्षसंचार कहा। अब उनके साधनेके लिये अन्य उपाय कहते हैं—

षट् पंचांकंगळं गुणिसिद भाज्यमनेकद्विकमं गुणिसिदं कंडिदं भागिसुत्तं विरला बंद लब्धं पदिनैदु द्विसंयोगंगळ भंगंगळप्पुविंतु पूर्व्वोक्तक्रमदिदं मुंदे मुंदे भाज्य भागहारांकंगळं गुणिसि गुणिसि भागिसुत्तं विरलु त्रिसंयोग चतुःसंयोग पंचसंयोगषट्संयोग भंगंगळ ध्रुवगुणकारंगळप्पुववरिंदं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानंगळोळं देशसंयत नोळं गुणिसुत्तं विरलु सर्व्व प्रत्ययभंगंगळं तम्मल्लियप्पुवु। संदृष्टि :— ५

ध्रुव १६५६०। अध्रुव ६३। ४। भंगं ४१७३१२०॥ सासादनंगे ध्रु १८२४। अध्रुव ६३। ४॥ भंगंगळु ४५९६४८॥ मिश्रंगे ध्रुव १४४०। अध्रुव ६३। ४। भंगंगळु ३६२८८०॥ असंयतंगे ध्रुव १६८०। अध्र ६३। ४। भंगंगळ् ४२३३६०॥ देशसंयतंगे ध्रुव १२९६। अध्रु ३१। ४। भंगं १६०७०४॥ प्रमत्तसंयतंगे ध्रुव २३२। अध्र ४। भंगंगळ् ९२८॥ अप्रमत्तंगे ध्रुव २१६।

६	५	४	३	२	१
१	२	३	४	५	६

अत्र प्रथमहारेण स्वांशे भक्ते लब्धं प्रत्येकभंगाः षट्। पुनः परस्पराहतषट्पंचांशेऽन्योन्याहतैकद्विहारेण भक्ते लब्धं द्विसंयोगभंगाः पंचदश। पुनः परस्पराहततत्त्रिंशच्चतुरंशे तथाकृतद्विहारेण भक्ते लब्धं त्रिसंयोगा विंशतिः। पुनः तथाकृतविंशत्यधिकशतत्र्यंशे तथाकृतषट्चतुर्हारेण भक्ते लब्धं चतुःसंयोगाः पंचदश। पुनः १०

यदि प्रत्येक, द्विसंयोगी आदि भेद करने हों तो विवक्षितका जो प्रमाण हो उस प्रमाणसे लगाकर एक-एक घटाते हुए एक अंक तक क्रमसे लिखो। ये भाज्य हुए। इनके नीचे एकसे लेकर एक-एक बढ़ाते हुए उस विवक्षित प्रमाण अंक पर्यन्त क्रमसे लिखो। ये भागहार हुए। भाज्यको अंश और भागहारको हार कहते हैं। भिन्न गणितमें जो विधान है उसके द्वारा क्रमसे पूर्व अंशोंके द्वारा अगले अंशोंको और पूर्व हारके द्वारा अगले हारको गुणा करके जो जो अंशोंका प्रमाण हो उसको हार प्रमाणका भाग देनेसे जो प्रमाण आवे उतने-उतने भंग वहाँ जानना। सो मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें कायबधका प्रमाण छह है। सो छह, पाँच, चार, तीन, दो एक अंश क्रमसे लिखो और उनके नीचे एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह ये हार लिखो—

६	५	४	३	२	१
१	२	३	४	५	६

यहाँ प्रथम अंश छहको हार एकका भाग देनेपर छह आये। सो प्रत्येक भंग छह हैं। फिर प्रथम छहसे अगले पाँचको गुणा करनेपर तीस अंश हुए, इसको एकसे अगले दोको गुणा करनेपर दो हारसे भाग दिया पन्द्रह आये। इतने द्विसंयोगी भंग हुए। पुनः तीससे आगेके चारको गुणा करनेपर एक सौ बीस अंश हुए। इनको पूर्व दो से आगे के तीनसे गुणा करनेपर हुए छह हारसे भाग देनेपर बीस आये। इतने त्रिसंयोग भंग हैं। पुनः पूर्व एक सौ बीससे अगले तीनको गुणा करनेपर तीन सौ साठ अंश हुए। उन्हें पूर्व छहसे अगले चारसे गुणा करनेपर हुए हार चौबीसका भाग देनेपर पन्द्रह आये। इतने चतुःसंयोगी भंग हैं। पुनः तीन सौ साठसे आगेके दो को गुणा करनेपर सात सौ बीस अंश हुए। उनको पूर्व चौबीससे आगेके पाँचसे गुणा करनेपर हुए हार एक सौ बीससे भाग देनेपर छह आये। इतने पंचसंयोगी भंग हैं। पुनः सात सौ बीससे आगेके एकको गुणा करनेपर सात सौ बीस अंश हुए।

अध्रु ४। भंगंगळु ८६४ ॥ अपूर्व्वकरणंगे ध्रु २९६। अध्रु ४। भंगंगळु ८६४ ॥ अनिवृत्तिकरणंगे १०८। ७२। ३६। २७। १८। ९। कूडि २७०॥ सूक्ष्मसांपरायंगे भंगंगळु ९॥ उपशान्त कषायगे भंगंगळु ९। क्षीणकषायंगे भंगंगळु ९॥ सयोगिकेवलि भट्टारकंगे भंगंगळु ७॥ अयोगिकेवलि-स्वामियोळु प्रत्ययं शून्यमक्कुं ॥

अनंतरमी प्रत्ययोदयकार्य्यभूतजीवपरिणामंगळु ज्ञानावरणादिकर्म्मंगळगे बंधकारणंगळे दु तत्प्रतिपत्त्यर्थमागि पेळ्दपरु :—

तथाकृतषष्ट्यधिकत्रिशतद्व्यंशे तथाकृतचतुर्विंशतिपंचहारेण भक्ते लब्धं पंचसंयोगाः षट्। पुनः तथाकृत-विंशत्यधिकसप्तशतैकांशे तथाकृतविंशत्यधिकशतषट्हारेण भक्ते लब्धं षट्संयोगा एकः, मिलित्वा त्रिषष्टिः। प्रत्येकं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुष्के संयोगगुणकारा भवन्ति। तथा पंचादीनेकपर्यंतानेकान् संस्थाप्य तदभोहारानेका-दीनेकोत्तरान् संस्थाप्य—

५	४	३	२	१
१	२	३	४	५

प्राग्वद् भक्त्वा लब्धं प्रत्येकभंगाः पंच। द्विसंयोगा दश। त्रिसंयोगा दश। चतुःसंयोगाः पंच। पंचसंयोग एकः, मिलित्वैकत्रिंशद्भेदसंयते संयोगगुणकारः स्यात् ॥७९९॥ अथ प्रत्ययोदयकार्यजीवपरिणामानां ज्ञानावरणादिबंधकारणत्वे प्रतिपत्तिमाह—

उनको पूर्व एक सौ बीससे आगेके छहको गुणा करनेपर हुए हार सात सौ बीसका भाग देनेपर एक आया। छह संयोगी भाग एक हुआ। इस तरह सब मिलकर त्रेसठ भंग हुए।

देशसंयतमें त्रसबध न होनेसे पाँचकी ही हिंसा है। जो क्रमसे पाँचसे एक पर्यन्त लिखो। उनके नीचे एकसे पाँच पर्यन्त हार लिखो यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे पाँचको एक का भाग देनेपर पाँच आये। सो इतने प्रत्येक भंग हैं। आगे पाँचसे चारको गुणा करनेपर बीस अंश हुए। उसको एकसे गुणित दो हारका भाग देने-पर दस आये। इतने द्विसंयोगी हुए। पुनः बीससे गुणित तीन अंशको दो से गुणित तीन हारका भाग देनेपर दस आये। इतने त्रिसंयोगी भंग हुए। पुनः साठसे गुणित दो अंशोंको छहसे गुणित चार हारका भाग देनेपर पाँच आये। इतने चतुःसंयोगी हुए। पुनः एक सौ बीससे गुणित एक अंशको चौबीससे गुणित पाँच भागहारका भाग देनेपर एक आया। एक पंचसंयोगी भंग हुआ। ये सब मिलकर देशसंयतमें कायबधके इकतीस भेद होते हैं। ये कायबध सम्बन्धी अध्रुव गुणकार हैं सो छह कायकी हिंसामें पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति त्रसमेंसे एक-एक की हिंसा करनेसे प्रत्येक भेद छह हुए। पुनः पृथ्वी अप्की, पृथ्वी तेजकी, पृथ्वी वायुकी, पृथ्वी वनस्पतिकी, पृथ्वी त्रसकी, अप् तेजकी, अप् वायुकी, अप् वनस्पतिकी, अप् त्रसकी, तेज वायुकी, तेज वनस्पतिकी, तेज त्रसकी, वायु वनस्पतिकी, वायु त्रसकी, वनस्पति त्रसकी हिंसाके भेदसे द्विसंयोगी पन्द्रह हुए। इसी प्रकार आगे भी जानना ॥७९९॥

५	४	३	२	१
१	२	३	४	५

आगे प्रत्ययोंके उदयके कार्य जो जीवके परिणाम हैं उन्हें ज्ञानावरण आदिके बन्धका कारण बतलाते हैं—

पडिणीगमंतराये उवघादे तप्पदोसणिण्हवणे ।
आवरणदुगं भूयो बंधदि अच्चासणाए वि ॥८००॥

प्रत्यनीकेंऽतराये उपघाते तत्प्रदोषे निह्नवे । आवरणद्वयं भूयो बध्नात्यत्यासादनेऽपि ॥

श्रुतश्रुतधरादिष्वविनयवृत्तिः प्रत्यनीकं प्रतिकूलतेत्यर्थः । ज्ञानव्यवच्छेदकरणमंतरायः । प्रशस्तज्ञानदूषणमुपघातः । मनसा दूषणं वा उपघातः । अध्येतृषु क्षुद्रबाधाकरणं वा उपघातः । तत्त्वज्ञानेषु हर्षाभावः प्रद्वेषः । तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य कीर्त्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहरतोंतः पैशुन्यपरिणामः प्रदोषः । कुतश्चित्कारणाज्जानन्नपि नास्ति न वेद्मीति व्यपलपनं निह्नवः । अप्रसिद्धगुरूनपलप्य प्रसिद्धगुरुकथनं वा निह्नवः ॥ कायवाग्भ्यामननुमननमासादनं । कायेन वाचा च परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्ज्जनमासादनं । इंतु प्रत्यनीकांतरायोपघात तत्प्रदोषनिह्नवात्यासादनंगळोळु जीवं ज्ञानदर्शनावरणद्वयमं कट्टुगुं । प्रचुरवृत्तियिंदं स्थित्यनुभागंगळं कट्टुगुमंबुदर्त्थ । मीप्रत्यनीकांतरायादिगळु ज्ञानदर्शनावरणद्वयक्कं युगपद्बंधकारणंगळप्पुवेकेंदोडा ज्ञानदर्शनावरणद्वयं युगपद्बंधंगळप्पुवप्पुदरिंदं मथवा विषयभेदादास्रवभेदः एंदितु प्रत्यनीकादिगळु ज्ञानविषयंगळादोडे

श्रुततद्धरादिषु—अविनयवृत्तिः प्रत्यनीकं प्रतिकूलतेत्यर्थः । ज्ञानविच्छेदकरणमन्तरायः । मनसा वाचा वा प्रशस्तज्ञानदूषणमध्येतृषु क्षुद्रबाधाकरणं वा उपघातः । तत्प्रदोषः तत्त्वज्ञाने हर्षाभावः । तस्य मोक्षसाधनस्य कीर्तने कृते कस्यचिदनभिव्याहारतोंऽतःपैशुन्यं वा प्रद्वेषः । कुतश्चित्कारणात् जानन्नपि नास्ति न वेद्मीति व्यपलपनमप्रसिद्धगुरून्नपलप्य प्रसिद्धगुरुकथनं वा निह्नवः । कायवाक्ष्यामननुमननं कायेन वाचा वा परप्रकाश्यज्ञानस्य वर्जनं वेत्यासादना । एतेषु षट्सु सत्सु जीवो ज्ञानदर्शनावरणद्वयं भूयो बध्नाति—प्रचुरवृत्त्या स्थित्यनुभागौ बध्नातीत्यर्थः । ते च षडपि तद्द्वयस्य युगपद्बंधकारणानि तु तथा बन्धात् । अथवा विषयभेदादास्रव-

---

शास्त्र और शास्त्रके धारक आदिके विषयमें अविनयरूप प्रवृत्ति करना, उनके प्रत्यनीक अर्थात् प्रतिकूल होना । ज्ञानमें विच्छेद करना अन्तराय है । मनसे अथवा वचनसे प्रशस्त ज्ञानमें दूषण लगाना या पढ़नेवालोंमें छोटी-मोटी बाधा करना उपघात है । तत्त्वज्ञानके प्रति हर्ष प्रकट न करना अथवा मोक्षके साधनभूत तत्त्वज्ञानका उपदेश होनेपर किसीका मुखसे कुछ न कहकर अन्तरंगमें दुष्ट भाव होना प्रदोष है । किसी कारणसे जानते हुए भी मैं नहीं जानता ऐसा कहना अथवा अपने अप्रसिद्ध गुरुका नाम छिपाकर प्रसिद्ध व्यक्तिको अपना गुरु बतलाना निह्नव है । काय और वचनके द्वारा सम्यग्ज्ञानकी अनुमोदना न करना अथवा काय और वचनसे दूसरेके द्वारा प्रकाशित ज्ञानका तिरस्कार करना आसादन है । इन छह कार्योंके करनेपर जीव ज्ञानावरण और दर्शनावरणका बहुत बन्ध करता है अर्थात् उनमें स्थिति और अनुभाग अधिक बाँधता है ।

इसका आशय यह है कि ज्ञानावरण-दर्शनावरणका बन्ध तो संसारी जीवके सदा होता है । उक्त कार्योंके करनेपर स्थिति अनुभाग विशेष पड़ता है । यही बात आगेके सम्बन्धमें भी जानना । उक्त छहों एक साथ ज्ञानावरण-दर्शनावरण दोनोंके बन्धके कारण हैं । अथवा विषय भेदसे आस्रवमें भेद है । ज्ञानके विषयमें उक्त छह बातें करनेसे ज्ञानावरणका

ज्ञानावरणीयबंधकारणंगळप्पुवु । दर्शनविषयंगळादोडे दर्शनावरणीयबंधकारणंगळप्पुवु ॥

भूदाणुकंपवदजोगजुज्जिदो खंतिदाणगुरुभत्तो ।
बंधदि भूयो सादं विवरीयो बंधदे इदरं ॥८०१॥

भूतानुकंपाव्रतयोगयुक्तः क्षांतिदानगुरुभक्तः । बध्नाति भूयः सातं विपरीतो बध्नातीतरत् ॥

तासु तासु गतिषु कर्मोदयवशाद्भवंतीति भूतानि प्राणिन इत्यर्थः तेष्वनुकंपनमनुकंपा भूतानुकंपा । व्रतान्यहिंसादीनि योगः समाधिः सम्यक्प्रणिधानमित्यर्थः । भूतानुकंपा च व्रतानि च योगश्च भूतानुकंपाव्रतयोगास्तैर्युक्तः यें बितु भूतानुकंपनव्रतयोगंगळें दिवरोळ्कूडिदनुं क्रोधादिनिवृत्तिलक्षणक्षांतिचतुर्व्विधदानमुमें बिवनुळ्ळनुं पंचगुरुभक्तिसंपन्नमुमप्प जीवं सातवेदनीयप्रकृतिगे भागमं माळ्कुं । विपरीतं भूतानुकंपारहितनुं व्रतमिल्लदनुं चित्तसमाधानरहितनुं क्षांतिदानशून्यनुं पंचगुरुभक्तिरहितनुं असातवेदनीयबंधप्रकृतिगे तीव्रानुभागमं कट्टुगुं ।

अरहंतसिद्धचेदियतवसुदगुरुधम्मसंघपडिणीगो ।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण ॥८०२॥

अर्हत्सिद्धचैत्यतपोगुरुश्रुतधर्म्मसंघप्रत्यनीकः । बध्नाति दर्शनमोहमनंतसंसारी येन ॥

येन—आउदों दु दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वकर्म्मोदयकारणदिदमर्हत्सिद्धचैत्यतपोगुरुश्रुतधर्म्मं संघप्रतिकूलनप्प अनंतसंसारिजीवनु दर्शनमोहनीयकर्म्ममं कट्टुगुं ॥

भेदः ज्ञानविषयत्वेन ज्ञानावरणस्य दर्शनविषयत्वेन दर्शनावरणस्येति ॥८००॥

गतौ गतौ कर्मोदयवशाद्भवन्तीति भूताः प्राणिनः तेष्वनुकम्पा । व्रतानि हिंसादिविरतिः । योगः समाधिः सम्यक्प्रणिधानमित्यर्थः तैर्युक्तः । क्रोधादिनिवृत्तिलक्षणक्षांत्या चतुर्विधदानेन पंचगुरुभक्त्या च सम्पन्नः स जीवः सातं तीव्रानुभागं भूयो बध्नाति । तद्विपरीतस्तादृगसातं बध्नाति ॥८०१॥

योऽर्हत्सिद्धचैत्यतपोगुरुश्रुतधर्मसंघप्रतिकूलः स तद्दर्शनमोहनीयं बध्नाति येनोदयागतेन जीवोऽनन्तसंसारी स्यात् ॥८०२॥

प्रचुर बन्ध होता है और दर्शनावरणके सम्बन्धमें करनेसे दर्शनावरणका प्रचुर बन्ध होता है ॥८००॥

कर्मोदयवश नाना गतियोंमें जो होते हैं उन्हें भूत या प्राणी कहते हैं । उनमें दयाभाव, हिंसादिके त्यागरूप व्रत तथा योग अर्थात् समाधि सम्यक् एकाग्रता इनसे जो युक्त होता है तथा क्रोधादिकी निवृत्तिरूप क्षमा, चार प्रकारके दान और पंचपरमेष्ठीकी भक्तिसे सम्पन्न होता है वह जीव सातावेदनीयको तीव्र अनुभागके साथ बांधता है । इसके विपरीत आचरण वाला असातावेदनीयको तीव्र अनुभागके साथ बाँधता है ॥८०१॥

जो व्यक्ति अरहन्त, सिद्ध, जिन प्रतिमा, तप, निर्ग्रन्थ गुरु, श्रुत, धर्म, संघके प्रतिकूल होता है, उनको झूठा दोष लगाता है वह जीव दर्शन मोहनीयका बन्ध करता है । उसके उदयसे जीवके संसारका अन्त नहीं होता ॥८०२॥

तिव्वकसायो बहुमोहपरिणदो रागदोससंसत्तो ।
बंधदि चरित्तमोहं दुविहंपि चरित्तगुणघादी ॥८०३॥

तीव्रकषायो बहुमोहपरिणतो रागद्वेषसंसक्तः । बध्नाति चरित्रमोहं द्विविधमपि चरित्र-गुणघातो ॥

कषाय नोकषायंगळ तीव्रोदयमनुळ्ळनुं बहुमोहपरिणतनुं रागद्वेषसंसक्तनुं चारित्रगुणमं किडिसुवशीलमनुळ्ळ जीवं कषायनोकषाय भेददिंदं द्विविधमप्प चारित्रमोहनीयकर्म्ममं कट्टुगुं ॥

मिच्छो हु महारंभो णिस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो ।
णिरयाउवं णिबद्धइ पावमई रुद्दपरिणामो ॥८०४॥

मिथ्यादृष्टिः खलु महारंभो निःशीलस्तीव्रलोभसंयुक्तः । नरकायुर्न्निबध्नाति पापमतो रौद्र-परिणामः ॥

बह्वारंभमनुळ्ळनुं निःशीलनुं तीव्रलोभयुक्तनुं मिथ्यादृष्टियप्प जीवं रौद्रपरिणाममनुळ्ळनुं पापकारणबुद्धिगळनुं स्फुटमागि नरकायुष्यमं कट्टुगुं ॥

उम्मग्गदेसगो मग्गणासगो गूढहियय माइल्लो ।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधदे जीवो ॥८०५॥

उन्मार्गदेशको मार्गनाशको गूढहृदय मायावी । शठशीलश्च सशल्यस्तिर्य्यगायुर्ब्बध्नाति जीवः ॥

उन्मार्गोपदेशकनुं सन्मार्ग्गनाशकनुं गूढहृदयमायावियुं शठशीलनुं सशल्यनुमप्प जीवं तिर्य्यगायुष्यमं कट्टुगुं ॥

यः तीव्रकषायनोकषायोदययुतः बहुमोहपरिणतः रागद्वेषसंसक्तः चारित्रगुणविनाशनशीलः स जीवः कषायनोकषायभेदं द्विविधमपि चारित्रमोहनीयं बध्नाति ॥८०३॥

यः खलु मिथ्यादृष्टिः बह्वारम्भः निश्शीलः तीव्रलोभसंयुक्तः रौद्रपरिणामः स जीवो नरकायु-र्बध्नाति ॥८०४॥

यः उन्मार्गोपदेशकः सन्मार्गनाशकः गूढहृदयो मायावी शठशीलः सशल्यः स जीवस्तिर्यगायु-र्बध्नाति ॥८०५॥

जिसके तीव्र कषाय और नोकषायका उदय है, बहुत मोह युक्त है राग द्वेषसे घिरा है, चारित्र गुणको नष्ट करनेका जिसका स्वभाव है वह जीव कषाय नोकषायके भेदसे दो रूप चारित्र मोहका बन्ध करता है ॥८०३॥

जो जीव मिथ्यादृष्टी है, बहुत आरम्भवाला है, शील रहित है, तीव्र लोभी है, रौद्र परिणामी है, जिसकी बुद्धि पाप कार्यमें रहती है वह जीव नरकायुको बाँधता है ॥८०४॥

जो विपरीत मार्गका उपदेशक है, सन्मार्गका नाशक है, गूढ़ हृदय है, मायाचारी है, स्वभावसे दुष्ट है, मिथ्यात्व आदि शल्योंसे युक्त है वह तिर्यंच आयुको बाँधता है ॥८०५॥

पयडीए तणुकसाओ दाणरदी सीलसंजमविहीणो ।
मज्झिमगुणेहि जुत्तो मणुवाउं बंधदे जीवो ॥८०६॥

प्रकृत्या तनुकषायो दानरतिः शीलसंयमविहीनः । मध्यमगुणैर्युक्तो मनुष्यायुर्बध्नाति जीवः ॥

स्वभावविंदमंदकषायोदयनुं दानदोळु प्रीतिमेनुळ्ळनुं शीलंगळिवं संयमविंदं विहीननुं मध्यमगुणंगळिंदं कूडिदनुमप्प जीवनुं मनुष्यायुष्यमं कट्टुगुं ।

अणुवदमहव्वदेहि य बालतवाकामणिज्जराये य ।
देवाउवं णिबद्धइ सम्माइट्ठी य जो जीवो ॥८०७॥

अणुव्रतमहाव्रतैश्च बालतपोऽकामनिर्जरया च । देवायुर्बध्नाति सम्यग्दृष्टिश्च यो जीवः ॥

यो जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिश्च आवनोर्व्वनुं सम्यग्दृष्टिजीवनुं मिथ्यादृष्टिजीवनुं आ जीवं अणुव्रतंगळिंदमुं महाव्रतंगळिंदमुं देवायुष्यमं कट्टुगुं । मिथ्यादृष्टिगें तणुव्रतमहाव्रतंगळें दोडे द्रव्यविंदमुपचारमणुव्रतमहाव्रतंगळक्कुं । सम्यग्दृष्टिजीवं केवलं सम्यक्त्वविंदमुमनुपचाराणुव्रतमहाव्रतंगळिंदमुं देवायुष्यमं कट्टुगुं । द्रव्यभावलिंगिमिथ्यादृष्टिजीवनज्ञानतपश्चरणविंदमकामनिर्ज्जरेयिंदमुं देवायुष्यमं कट्टुगुं ।

मणवयणकायवक्को मायिल्लो गारवेहि पडिबद्धो ।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहि सुहणामं ॥८०८॥

मनोवचनकायवक्रो मायावी गारवैः प्रतिबद्धः । अशुभं बध्नाति नाम तत्प्रतिपक्षैः शुभनाम ॥

यः स्वभावेन मन्दकषायोदयः दानप्रीतिः शीलैः संयमेन च विहीनः मध्यमगुणैर्युक्तः स जीवो मनुष्यायुर्बध्नाति ॥८०६॥

यः सम्यग्दृष्टिर्जीवः स केवलं सम्यक्त्वेन साक्षादणुव्रतैर्महाव्रतैर्वा देवायुर्बध्नाति । यो मिथ्यादृष्टिर्जीवः स उपचाराणुव्रतमहाव्रतैर्बालतपसा अकामनिर्जरया च देवायुर्बध्नाति ॥८०७॥

यः मनोवचनकायैर्वक्रः मायावी गारवत्रयप्रतिबद्धः स जीवो नरकतिर्यग्गत्याद्यशुभं नामकर्म बध्नाति ।

जो जीव स्वभावसे ही मन्द कषायवाला है, दान देनेका प्रेमी है, शील और संयमसे रहित है, मध्यम गुणोंसे युक्त है वह मनुष्यायुका बन्ध करता है ॥८०६॥

जो जीव सम्यग्दृष्टी है वह केवल सम्यक्त्वसे अथवा अणुव्रत महाव्रतोंके द्वारा देवायुका बन्ध करता है । जो मिथ्यादृष्टी होता है वह उपचार रूप अणुव्रत महाव्रतोंसे तथा बालतप और अकामनिर्जरासे देवायुका बन्ध करता है ॥८०७॥

जिसका मन, वचन, काय, कुटिल है, जो मायाचारी है, तीन प्रकारके गारवसे बँधा

मनोवचनकायंगळ वक्रमनुळ्ळनुं मायेयनुळ्ळनुं गारवत्रयप्रतिबद्धनुमप्प जीवं नरकतिर्य्यग्गत्याद्यशुभनामकर्म्मंगळं कट्टुगुं। तत्प्रतिपक्षंगळिंदं ऋजुमनोवचनकायंगळिंदमुं निर्म्मायित्वदिंदमुं गारवत्रयरहितत्वदिंदमुं शुभनामकर्म्ममं कट्टुगुं जीवं।

अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुची पढणुमाणगुणपेही।
बंधदि उच्चागोदं विवरीयो बंधदे इदरं ॥८०९॥

अर्हंदादिषु भक्तः सूत्ररुचिः पाठानुमानगुणप्रेक्षी। बध्नात्युच्चैर्गोत्रं विपरीतो बध्नातीतरत्॥

अर्हंदादिगळोळु भक्तियनुळ्ळनुं गणधरप्रोक्ताद्यागम सूत्रंगळोळु श्रद्धानमुळ्ळनुं अध्ययनार्थविचारविनयादिगुणदर्शियुमप्प जीवनुच्चैर्गोत्रकर्म्ममं कट्टुगुं। विपरीतः अर्हंदादिगळोळु भक्तिरहितमं आगमसूत्रंगळोळु श्रद्धानमिल्लदनुं अध्ययनार्थविचारविनयादिगुणविवर्ज्जितनुमप्प जीवं नीचैर्गोत्रमं कट्टुगुं।

पाणवधादीसु रदो जिणपूजामोक्खमग्गविग्घयरो।
अज्जेइ अंतरायं ण लहइ जं इच्छियं जेण ॥८१०॥

प्राणवधादिषु रतः जिनपूजामोक्षमार्गविघ्नकरोऽर्ज्जयत्यंतरायं न लभते यदीप्सितं येन॥

येन आउदों दंतरायकर्म्मोदयदिंदं यदीप्सितार्थं न लभते आउदों दु तन्नीप्सितार्थमं पडेयलरियनंतप्पंतरायकर्म्ममं प्राणवधादिषु रतः द्वित्रिचतुरिंद्रियाः प्राणाः गुळे जिगुळे मोदलाद द्वींद्रियंगळुमं पेनुं कूरेयुं तगुणे मिरुपेयुं मोदलाद त्रींद्रियंगळुं नोणं नोंजु मोदलाद चतुरिंद्रियजीवंगळुमं तां कोलुव कोलेगळोळं पेरक्कोंलुव कोलेगळोळं प्रीतियनुळ्ळनुं जिनपूजेगळं मोक्षमार्गमप्प रत्नत्रयंगळ प्राप्तिगे तनगं पेरगं विघ्नकारियुमप्प जीवनंतरायकर्म्ममनुपार्ज्जिसुगुं।

तत्प्रतिपक्षपरिणामैर्हि शुभं नामकर्म बध्नाति ॥८०८॥

यः अर्हदादिषु भक्तः गणधरोक्तागमेषु श्रद्धाध्ययनार्थविचारविनयादिगुणदर्शी स जीवः उच्चैर्गोत्रं बध्नाति। तद्विपरीतो नीचैर्गोत्रं बध्नाति ॥८०९॥

यः द्वित्रिचतुरिंद्रियवधेषु स्वपरकृतेषु प्रीतः। जिनपूजायां रत्नत्रयप्राप्तेश्च स्वान्ययोर्विघ्नकरः स जीवस्तदन्तरायकर्मार्जयति येनोदयागतेन यदीप्सितं तन्न लभते ॥८१०॥

है वह नरकगति तिर्यंचगति आदि अशुभ नामकर्मको बाँधता है। और इनसे विपरीत अर्थात् जो कपट रहित है, गारव रहित है वह शुभ नामकर्मको बाँधता है ॥८०८॥

जो अरहन्त आदिमें भक्ति रखता है, गणधर आदिके द्वारा कहे शास्त्रोंमें श्रद्धावान् है, उनके अध्ययनके लिए विचार विनय आदि गुणोंमें अनुरागी है वह उच्चगोत्रका बन्ध करता है। उससे विपरीत नीच गोत्रका बन्ध करता है ॥८०९॥

जो जीव अपने द्वारा अथवा दूसरेके द्वारा किये गये दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, जीवोंकी हिंसासे प्रेम करता है, जिनपूजा रत्नत्रयकी प्राप्तिमें अपने लिए भी दूसरोंके लिए भी बाधा डालता है। वह जीव अन्तराय कर्मका बन्ध करता है जिसके उदयसे जीव इच्छित वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकता ॥८१०॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदितपुण्यपुंजायमानश्रीमन्नायराजगुरु मंडलाचार्य्यमहावाद वादीश्वररायवादीपितामह सकलविद्वज्जनचक्रवर्त्तिश्रीमदभयसूरिसिद्धांतचक्रवर्त्तिचारुचरणारविंदरजोरुंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडप्रत्ययमहाधिकारं निगदितमादुदु ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ कर्मकाण्डे प्रत्ययप्ररूपणो नाम षष्ठोऽधिकारः ॥६॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत प्रत्ययप्ररूपणा नामक छठा अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

अथ भावचूलिकाधिकारः ॥७॥

अनंतरं भावचूळिकेयं पेळलुपक्रमिसि तदादियोळु निर्व्विघ्नपरिसमाप्तियं बयसि तन्निष्ट-विशिष्टदेवतानमस्कारमं माडिदपं :—

गोम्मटजिणिंदचंदं पणमिय गोम्मटपयत्थसंजुत्तं ।
गोम्मटसंगहविसयं भावगयं चूलियं वोच्छं ॥८११॥

गोम्मटजिनेंद्रचंद्रं प्रणम्य गोम्मटपदार्त्थसंयुक्तं। गोम्मटसंग्रहविषयं भावगतां चूळिकां वक्ष्यामि ॥

गोम्मटजिनेंद्रचंद्रनं नमस्कारमं माडि समीचीनपदार्त्थसंयुक्तमप्प गोम्मटसंग्रहविषयमप्प भावगतचूळिकेयं पेळ्दपें :—

जेहि दु लक्खिज्जंते उवसमआदीसु जणिदभावेहिं ।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं ॥८१२॥

यैस्तु लक्ष्यंते उपशमादिषु जनितभावैर्जीवास्ते गुणसंज्ञा निर्दिष्टाः सर्व्वदर्शिभिः ॥

यैः आवुवु कैलवु उपशमादिषु जनितभावैः प्रतिपक्षकर्म्मोपशमादिगळोळु जनितभावंगळिंदं जीवाः जीवंगळु लक्ष्यंते लक्षिसल्पडुवुवु, ते आ उपशमादिगळोळ् जनितभागंगळु गुणसंज्ञाः गुणंगळेंब संज्ञेयनुळ्ळुवेंदु सर्व्वदर्शिभिर्निर्द्दिष्टाः सर्व्वज्ञरिंदं पेळल्पट्टुवु ।

अथ भावचूलिकामुपक्रममाणो निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं स्वेष्टविशिष्टदेवतां नमस्यति—

गोम्मटजिनेन्द्रचन्द्रं नमस्कृत्य समीचीनपदार्थसंयुक्तां गोम्मटसंग्रहविषयां भावगतचूलिकां वक्ष्ये ॥८११॥

यैः प्रतिपक्षकर्मोपशमादिषु सत्सु संजनितभावैर्जीवाः लक्ष्यन्ते ते भावाः गुणसंज्ञाः सर्वदर्शिभिर्निर्दिष्टाः ॥८१२॥

भावचूलिकाको प्रारम्भ करते हुए उसकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए अपने इष्ट देवताको नमस्कार करते हैं—

गोम्मटजिनेन्द्र अर्थात् महावीरस्वामी अथवा नेमिनाथके प्रतिबिम्बरूपी चन्द्रमाको नमस्कार करके समीचीन पद और अर्थसे युक्त अथवा समीचीन पदार्थोंके वर्णनसे युक्त भावचूलिकाको जो गोम्मटसारके अन्तर्गत है, कहूँगा ॥८११॥

जिन अपने प्रतिपक्षी कर्मोंके उपशम आदिके होनेपर उत्पन्न हुए भावोंसे जीव पहचाने जाते हैं, उन भावोंको सर्वज्ञ देवने गुणनामसे कहा है ॥८१२॥

आ मूलभावंगळ नामनिर्देशमं माडिदपरु :—

उवसमखइयो मिस्सो ओदइयो पारिणामियो भाओ ।
भेदा दुगु णव तत्तो दुगुणिगिवीसं तियं कमसो ॥८१३॥

औपशमिकः क्षायिको मिश्रः औदयिकः पारिणामिको भावो । भेदा द्वयं नव ततो द्विगुण एकविंशतिस्त्रयः क्रमशः ॥

औपशमिकमुं क्षायिकमुं मिश्रमुमौदयिकमुं पारिणामिकमुमेंदु भावंगळु पंचप्रकारंगळप्पुविवर भेदंगळु द्वयमुं नवमुं नवद्विगुणमुमेकविंशतियुं त्रयमुमप्पुवु । क्रमदिंदं औपशमिक २ । क्षायिक ९ । मिश्र १८ । औदयिक २१ । पारिणामिक ३ ॥

कम्मुवसमम्मि उवसममाओ खीणम्मि खयियभावो दु ।
उदओ जीवस्स गुणो खओवसमिओ हवे भाओ ॥८१४॥

कर्म्मोपशमे उपशमभावः क्षये क्षायिको भावः तु । उदयो जीवस्य गुणः क्षयोपशमिको भवेद्भावः ॥

प्रतिपक्षकर्म्मोपशमदिंदमौपशमिकभावमक्कुं । प्रतिपक्षकर्म्मनिरवशेषक्षयदिंदं क्षायिकभावमक्कुं । तु मत्ते प्रतिपक्षकर्म्मोदयमुं जीवगुणमुमेरडुं मिश्रमागि क्षायोपशमिकभावमक्कुं ॥

कम्मुदयजकम्मिगुणो ओदइयो तत्थ होदि भावो दु ।
कारणणिरवेक्खभवो सभावियो होदि परिणामो ॥८१५॥

कर्म्मोदयजनितसंसारिजीवगुण औदयिकस्तस्मिन्भवति भावस्तु । कारणनिरपेक्षभवः स्वाभाविको भवति पारिणामिकः ॥

कर्म्मोदयजनितसंसारिजीवगुणं अल्लि पुट्टिदुदु औदयिकभावमेंबुदक्कु—। मुपशमक्षयक्षयोप-

---

तत्र मूलभावा औपशमिकः क्षायिकः मिश्रः औदयिकः पारिणामिकश्चेति पंच । ततः पश्चात्तेषां भेदाः क्रमशो द्वौ नवाष्टादशैकविंशतिस्त्रयो भवन्ति ॥८१३॥

प्रतिपक्षकर्मोपशमे सत्यौपशमिकभावः स्यात् । तन्निरवशेषक्षये क्षायिकभावः स्यात् । तु—पुनः तदुदयो जीवगुणश्चेति द्वयं मिश्रं क्षायोपशमिकभावः स्यात् ॥८१४॥

कर्मोदयजनितसंसारिजीवगुण उदयः, तत्र भव औदयिकभावः स्यात् । उपशमक्षयक्षयोपशमोदयनिर-

---

मूलभाव पाँच हैं—औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक, पारिणामिक । उनके भेद क्रमसे दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन हैं ॥८१३॥

प्रतिपक्षी कर्मका उपशम होनेपर औपशमिकभाव होता है । प्रतिपक्षी कर्मका पूर्ण रूपसे क्षय होनेपर क्षायिकभाव होता है । तथा प्रतिपक्षी कर्मका उदय भी रहे और जीवका गुण भी प्रकट रहे इस तरह दोनोंके मिश्र रूप होनेपर क्षायोपशमिकभाव होता है ॥८१४॥

कर्मके उदयसे उत्पन्न संसारी जीवके गुणको उदय कहते हैं । उससे होनेवाला

---

१. म °गुणं औद° ।

शमोदयनिरपेक्षद्वोळादुदु पारिणामिकभावमें बुदक्कुं ।

उवसमभावो उवसमसम्मं चरणं च तारिसं खयिओ ।
खायियणाणं दंसण सम्मं चरित्तं च दाणादी ॥८१६॥

उपशमभाव उपशमसम्यक्त्वं चरणं च तादृशं क्षायिकः । क्षायिकज्ञानं दर्शनं सम्यक्त्वं चरित्रं च दानादयः ॥

आ पंचभावंगळोळु मोदलुपशमभावमदु उपशमसम्यक्त्वमुमुपशमचारित्रमेंदितु द्विविधमक्कुमंते क्षायिकभावमुं क्षायिकज्ञानं क्षायिकदर्शनं क्षायिकसम्यक्त्वं क्षायिकचारित्रं क्षायिकदानादिपंचकमुमितु नवविधमक्कुं ।

खाओवसमियभावो चउणाण तिदंसणं तिअण्णाणं ।
दाणादिपंच वेदग-सरागचारित्त-दसंजमं ॥८१७॥

क्षायोपशमिकभावश्चतुर्ज्ञानत्रिदर्शनत्र्यज्ञानं । दानादिपंचवेदक सरागचारित्रदेशसंयमं ॥

क्षायोपशमिकभावं मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययमेंब चतुर्ज्ञानंगळुं चक्षुरचक्षुरवधिगळेंब त्रिदर्शनंगळुं कुमतिकुश्रुतविभंगमेंब त्र्यज्ञानंगळुं दानलाभभोगोपभोगवीर्य्यमेंब दानादिपंचकमुं वेदकसम्यक्त्वमुं सरागचारित्रमुं देशसंयममुमेंदितष्टादशभेदमक्कुं ।

ओदयिया पुण भावा गदिलिंगकसाय तह य मिच्छत्तं ।
लेस्सासिद्धासंजम अण्णाणं होंति इगिवीसं ॥८१८॥

औदयिकाः पुनर्भावाः गतिर्लिंगकषायास्तथा मिथ्यात्वं । लेश्याऽसिद्धासंयमाज्ञानं भवंत्येकविंशतिः ॥

पेक्षायां भवः पारिणामिकभावः स्यात् ॥८१५॥ उक्तोत्तरभेदसंख्याविषयभावान् व्यनक्ति—

उपशमभावाः—उपशमसम्यक्त्वं उपशमचारित्रं चेति द्वेधा, क्षायिकभावाः क्षायिकं ज्ञानं दर्शनं सम्यक्त्वं चारित्रं तादृक्दानादयश्चेति नवधा ॥८१६॥

क्षायोपशमिकभावाः—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानानि, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनानि, कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानानि, दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि, वेदकसम्यक्त्वं, सरागचारित्रं देशसंयमश्चेत्यष्टादशधा ॥८१७॥

औदयिकभाव है । उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदयकी अपेक्षाके अभावमें होनेवाला भाव पारिणामिक है ॥८१५॥

आगे उत्तर भेदोंकी संख्याके विषयभूत भावोंको कहते हैं—औपशमिकभाव उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्रके भेदसे दो प्रकार है । क्षायिकभाव क्षायिकज्ञान दर्शन सम्यक्त्व, चारित्र, दान, लाभ, भोग-उपभोग वीर्यके भेदसे नौ प्रकार हैं ॥८१६॥

क्षायोपशमिकभाव मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय ये चार ज्ञान, चक्षु अचक्षु अवधि ये तीन दर्शन, कुमति कुश्रुत विभंग ये तीन अज्ञान, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, वेदक सम्यक्त्व, सरागचारित्र और देशसंयमके भेदसे अठारह प्रकार है ॥८१७॥

औदयिकभावंगळु गतिचतुष्कमुं लिंगत्रितयमुं कषायचतुष्टयमुं तथा मिथ्यात्वमुं लेश्याषट्कमुमसिद्धत्वमुमसंयममुमज्ञानमुमेंदिंतेकविंशतिप्रमितंगळप्पुवु ॥

जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तादी भवंति परिणामा ।
इदि मूलुत्तरभावा भंगवियप्पे बहुं जाणे ॥८१९॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वादयो भवंति परिणामाः । इति मूलोत्तरभावा भंगविकल्पे बहून् जानीहि ॥

जीवत्वमुं भव्यत्वमुमभव्यत्वमुमेंबिउ मोदलादउ पारिणामिकंगळप्पुवितु मूलभावंगळ-ष्टक्कमुत्तरभावंगळु त्रिपंचाशत्प्रमितंगळप्पुवेंदरियल्पडुगुं ।

मूलभावंगळगमुत्तरभावंगळगं संदृष्टि :—औपशमिक २ । क्षायिक ९ । क्षायोपशमिक १८ । औदयिक २१ । पारिणामिक ३ । इउ भंगविकल्पदोळु बहुविकल्पंगळप्पुवेंदु नोनरि भव्य ।

ओघादेसे संभवभावं मूलुत्तरं ठवेदूण ।
पत्तेये अविरुद्धे परसगजोगेवि भंगा हु ॥८२०॥

ओघे आदेसे संभवभावं मूलोत्तरं स्थापयित्वा । प्रत्येकेऽविरुद्धे परसुगयोगेपि भंगाः खलु ॥

ओघे गुणस्थानदोळं आदेशे मार्गणास्थानदोळं संभवभावं संभविसुव भावमं मूलोत्तरं मलभावमनुत्तरभावेमं स्थापयित्वा स्थापिसि प्रत्येकेऽविरुद्धे आ स्थापिसिद मूलोत्तरभावदोळु

औदयिकभावाः पुनः चतुर्गतित्रिलिंगचतुःकषायाः, तथा च मिथ्यात्वं पड्लेश्या असिद्धासंयमाज्ञानानि इत्येकविंशतिर्भवन्ति ॥८१८॥

जीवत्वं भव्यत्वं अभव्यत्वादयश्च पारिणामिकभावा भवन्ति । इत्येवं मूलभावाः पंच उत्तरभावास्त्रिपंचाशत् भंगविकल्पा बहव इति जानीहि ॥८१९॥

गुणस्थाने मार्गणास्थाने च सम्भवतो मूलभावानुत्तरभावांश्च संस्थाप्याक्षसंचारक्रमेण प्रत्येके

औदयिकभाव चार गति, तीन वेद, चार कषाय, एक मिथ्यात्व, छह लेश्या, असिद्ध, असंयम, अज्ञानके भेदसे इक्कीस हैं ॥८१८॥

विशेषार्थ—सामान्यकर्मके उदयरूप सिद्ध पदका अभाव असिद्धत्व है । चारित्रमोहके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयसे चारित्रका अभाव असंयम है । ज्ञानावरणके उदयसे जो ज्ञान प्रकट नहीं वह अज्ञान है । मिथ्यादृष्टि छद्मस्थके जितना ज्ञान प्रकट होता है वह क्षयोपशम रूप अज्ञान है जिसे मिथ्याज्ञान कहते हैं । और जितना ज्ञान प्रकट नहीं है सब जीवोंके वह अज्ञान औदयिक है ॥८१८॥

जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व आदि पारिणामिक भाव होते हैं । इस प्रकार मूलभाव पाँच हैं उत्तरभाव तरेपन हैं इनके भंग विकल्प बहुत हैं ॥८१९॥

विशेषार्थ—जीवत्व तो द्रव्य स्वभाव है ही । भव्यत्व अभव्यत्व भी किसी कर्मके निमित्तसे नहीं होते, अनादि हैं । अतः इन्हें पारिणामिक कहा है ॥

---

१. म °परस्वयो° ।

परस्वयोगे परसंयोगदोळं स्वसंयोगदोळं भंगा हु भंगगळप्पुवु स्फुटमागि । अदेंतेंदोडे अन्नेवरं गुणस्थानदोळु पेळ्दपडुगुं । मिथ्यादृष्टियोळु संभविसुव मूलभावंगळु क्षायोपशमिकमुमौदयिमुं पारिणामिकमुमेंबी मूरुं भावंगळु संभविसुगुमेंदु स्थापिसिमि । औ । पा । यितु स्थापिसिदी मूरुं प्रत्येकभंगमूरक्कुं ।३। द्विसंयोगभंगं मिश्रौदयिकमुं

मि	औ	पा
+	+	

मिश्रपारिणामिउमुं

मि	औ	पा
+		+

औदयिकपारिणामिकमं

मि	औ	पा
	+	+

५

अविरुद्धपरसंयोगे स्वसंयोगे च भंगा भवन्ति स्फुटं । तत्र गुणस्थानेषु यथा मिथ्यादृष्ट्यादित्रये मूलभावाः

ओघ अर्थात् गुणस्थान और आदेश अर्थात् मार्गणास्थानमें होनेवाले मूलभावों और उत्तरभावोंको स्थापित करके जैसे जीवकाण्डके गुणस्थान अधिकारमें प्रमादोंके कथनमें अक्ष-संचारका विधान कहा है वैसे ही यहाँ अक्षसंचार विधानके द्वारा भावोंके बदलनेसे प्रत्येक भंग तथा विरोध रहित परसंयोगी स्वसंयोगी भंग होते हैं। जहाँ जुदे-जुदे भाव कहे जाते १० हैं वहाँ प्रत्येक भंग होते हैं। और जहाँ अन्य-अन्य भावके संयोग रूप भंग होते हैं उन्हें परसंयोगी कहते हैं। जैसे जहाँ औदयिकके किसी भेदके साथ औपशमिक आदिका कोई भेद पाया जाता है वहाँ परसंयोगी भंग कहाता है। और जहाँ अपने भावके भेदोंका संयोग रूप भंग होता है वहाँ स्वसंयोगी कहा जाता है। आगे गुणस्थानोंमें कहते हैं—

मूलभाव मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें औदयिक क्षायोपशमिक पारिणामिक १५ तीन होते हैं। असंयत आदि आठमें पाँचों भाव होते हैं। क्षीणकषायमें औपशमिक बिना चार हैं। सयोगी अयोगीमें औदयिक पारिणामिक क्षायिक तीन हैं। सिद्धोंमें क्षायिक पारिणामिक दो हैं। अब उत्तरभाव कहते हैं—

मिथ्यादृष्टिमें औदयिकके इक्कीस, क्षायोपशमिकके तीन अज्ञान दो दर्शन पांच लब्धि ये दस, और पारिणामिक तीन ये चौंतीस भाव हैं। सासादनमें मिथ्यात्व बिना औदयिकके २० बीस, क्षायोपशमिकके तीन अज्ञान दो दर्शन पाँच लब्धि ये दस, पारिणामिक जीवत्व भव्यत्व दो ये बत्तीस भाव हैं। मिश्रमें मिथ्यात्व बिना औदयिकके बीस, क्षायोपशमिकके मिश्र रूप तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पाँच लब्धि ये ग्यारह, पारिणामिक दो जीवत्व भव्यत्व ये तैंतीस भाव हैं। असंयतमें मिथ्यात्व बिना औदयिकके बीस, क्षायोपशमिकके तीन ज्ञान तीन दर्शन पाँच लब्धि, सम्यक्त्व ये बारह, औपशमिक सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व, दो २५ पारिणामिक ये छत्तीस भाव हैं। देशसंयतमें औदयिकके मनुष्य तिर्यंच दो गति चार कषाय तीन लिंग तीन लेश्या असिद्धत्व अज्ञान ये चौदह, क्षायोपशमिकके तीन ज्ञान तीन दर्शन पाँच लब्धि सम्यक्त्व देशचारित्र ये तेरह, औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, दो पारिणामिक ये इकतीस भाव हैं। इनमें तिर्यंचगति और देशचारित्र घटाकर मनःपर्ययज्ञान सरागचारित्र मिलानेपर प्रमत्त अप्रमत्तमें इकतीस-इकतीस भाव होते हैं। इनमें पीत पद्म ३० लेश्या, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चारित्र घटाकर औपशमिक चारित्र क्षायिक चारित्र मिलाने-पर अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणमें उनतीस-उनतीस भाव हैं। इनमें लोभ बिना तीन कषाय और तीन लिंग घटानेपर सूक्ष्म साम्परायमें तैंतीस भाव हैं। इनमें लोभ कषाय क्षायिक

१. म °यक्कुं ।

एंविंतु मूरु भंगमक्कुं ३ । त्रिसंयोगमो दे भंगमक्कु । १ ॥ मिंतु परसंयोग भंगमेळेयप्पुवु ।७ ॥ स्व-संयोगं मिश्रवे ळ् मिश्रमुं औदयिकदोळौदयिकमुं पारिणामिकदोळु पारिणामिकमुमिंतु स्वसंयोगंगळु मूरप्पुवु ।३॥ इंतु मूलभावंगळय्दरोळु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानदोळु संभविसुव मूरुं मूलभावंगळ्गं परसंयोग स्वसंयोगभंगंगळु पत्तप्पुवु । मिथ्या मू भा-३ । भं १० । सासादनंगे युमितेयप्पुवु । सासा । मू भा ३ । भं १० । मिश्रंगेयुमितेयक्कुं । मिश्र मू भा ३ । भं १० । असंयतादिचतुर्ग्गुणस्थानदोळु मूलभावंगळप्पुं संभविसुगुं । औप । क्षा । मि । औ पा । इल्लि प्रत्येकभंगंगळु अय्दप्पुवु ।५ ॥

क्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकास्त्रयस्त्रयः । तत्र परसंयोगे प्रत्येकभंगास्त्रयस्त्रयः । द्विसंयोगास्त्रयः । त्रिसंयोगे एकः । स्वसंयोगे मिश्रे मिश्रः । औदयिके औदयिकः । पारिणामिके पारिणामिकः इति त्रयः मिलित्वा दश । असंगतादिचतुष्के मूलभावाः पंच पंच । तत्र प्रत्येकभंगाः पंच । द्विसंयोगा नवैव औपशमिकक्षायिकयोर-

चारित्र घटानेपर उपशान्त कषायमें इक्कीस भाव हैं। इनमें औपशमिक सम्यक्त्व चारित्र घटाकर क्षायिक चारित्र मिलानेपर क्षीण कषायमें बीस भाव हैं। सयोगीमें मनुष्यगति शुक्ललेश्या असिद्धत्व ये तीन औदयिक, क्षायिक नौ, दो पारिणामिक ये चौदह भाव हैं। इनमेंसे शुक्ललेश्या घटानेपर अयोगीमें तेरह भाव हैं। सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्य ये चार क्षायिक और जीवत्व पारिणामिक ये पाँच भाव सिद्धोंमें हैं।

ये नाना जीव और नाना काल अपेक्षा जानना।

आगे एक जीवके एक कालमें जितने भाव सम्भव हैं वह कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानोंमें मूल भाव तीन होते हैं। परसंयोगमें प्रत्येक भंग तीन औदयिक मिश्र पारिणामिक होते हैं। द्विसंयोगी भंग तीन हैं—औदयिक मिश्र, औदयिक पारिणामिक, मिश्र पारिणामिक। तीनोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक औदयिक मिश्र पारिणामिक। स्वसंयोगी भंग तीन—औदयिकमें औदयिक, मिश्रमें मिश्र, पारिणामिकमें पारिणामिक। इस प्रकार सब दस हुए।

विशेषार्थ—प्रत्येक द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग लानेकी विधि जैसे आस्रवाधिकार-में कहा था वैसे ही जानना। विवक्षित संख्याके प्रमाणरूप अंकसे लगाकर एक-एक हीन संख्या लिखो। वे तो अंश हुए। उनके नीचे एकसे लगाकर एक-एक अधिक अंक लिखो। उन्हें हार जानना। उनमें पहले अंशसे आगेके अंशको और पहले हारसे आगेके हारको गुणा करके अंशके प्रमाणमें हारके प्रमाणसे भाग देनेपर क्रमसे प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंगों-का प्रमाण आता है। सो मिथ्यादृष्टि आदि तीनमें मूलभाव तीन हैं। सो तीनसे लेकर एक-एक हीन अंक लिखो-तीन दो एक। उनके नीचे एक दो तीन लिखो। पहले तीनको एकका

३	२	१
१	२	३

भाग देनेसे तीन आये। सो तीन प्रत्येक भंग हुए। तीनको दोसे गुणा करके उसे एकसे गुणित दोका भाग देनेपर तीन आये। तीन द्विसंयोगी भंग जानना। फिर छहको एकसे गुणा करके उसमें दो गुणित तीनका भाग देनेपर एक आया। सो एक त्रिसंयोगी भंग हुआ। इसी प्रकार मूलभावों और उत्तरभावोंमें प्रत्येक द्विसंयोगी त्रिसंयोगी भंगोंकी विधि जानना।

द्विसंयोगंगळोळ भत्तेयप्पुवेंतेंदोडे आ नाल्कुं गुणस्थानदोळु उपशमक्षायिकंगळ द्विसंयोगं विरुद्धमप्पुदरि ना भंगंकुंदिदोडो भत्ते भंगंगळप्पुवप्पुदरिंदं, त्रिसंयोगभंगंगळुमंतेयुपशमक्षायिकयुतत्रिसंयोगमं बिट्टु शेष सप्तभंगमप्पुवु । ७ ॥ चतुःसंयोगभंगगळेरडेयप्पुवेंतेंदोडुपशमयुतमागियो दु

उ	क्षा	मि	औ	पा
+		+	+	+

क्षायिक भावदोडनो दक्कुं ।

उ	क्षा	मि	औ	पा
२	+	+	+	+

इंतेरडु ॥

पंचसंयोगभंग मीनाल्कुं गुणस्थानदोळु संभविसकें दोडे कारणं द्विसंयोगत्रिसंयोगदोळु पेळ्दुदेयक्कुं । ५
ई परसंयोगभंगंगळगे संदृष्टि प्र ५ । द्वि ९ । त्रि ७ । च २ । स्वसंयोगभंगं मिश्रदोळुमौदयिकदोळं पारिणामिकदोळं मूरे भंगमक्कु-३ । मिंता नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं मूलभावंगळप्पुदुं परस्वसंयोगभंगंगळुमिप्पत्तारप्पुवु । असं मू भा ५ । भं २६ । देशसंयतंगे मू । भा ५ । भं २६ । प्रमत्तसं मू । भा ५ । भंग २६ । अप्रमत्त मू । भा ५ । भंग २६ । उपशमश्रेणियोळु मूलभावंगळय्दुं संभविसुववल्लि परसंयोग भंगं प्रत्येकं संयोगभंगंगळय्दु ५ । द्विसंयोगभंगंगळु पत्तुं १० । त्रिसंयोगभंगंगळु १० । १०
चतुःसंयोगभंगमय्दु ५ । पंचसंयोगभंगमो दु १ । स्वसंयोगभंगं क्षायिकदोळु क्षायिकभंगमं बिट्टु शेष नाल्कु ४ भंगमक्कु । यिंतु आ नाल्कु गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं मूलभावभंगमय्दुं । ५ । परस्वसंयोगभंगंगळु मूवत्तय्दप्पुवु ३५ । संदृष्टि—अपूर्व्व मू भा ५ । भंग ३५ । अनिवृत्तिकरणंगे मू

संयोगात् । त्रिसंयोगाः सप्त । चतुःसंयोगा औपशमिकक्षायिकाभ्यां द्वौ । पंचसंयोगो नास्ति । स्वसंयोगा मिश्रौदयिकपारिणामिकास्त्रयः । एवं परस्वसंयोगाः षड्त्रिंशतिः । उपशमकचतुष्के मूलभावाः पंच पंच । तत्र १५
परसंयोगे प्रत्येकभंगाः पंच । द्विसंयोगा दश । त्रिसंयोगा दश । चतुःसंयोगाः पंच । पंचसंयोग एकः ।

असंयतादि चार गुणस्थानोंमें मूलभाव पाँच-पाँच होते हैं। पूर्वोक्त विधानसे प्रत्येक भंग तो पाँच ही हुए। द्विसंयोगी दस होते हैं। किन्तु यहाँ औपशमिक क्षायिकका संयोगरूप एक भंग नहीं है। अतः नौ हैं। त्रिसंयोगी भंग दस होते हैं। किन्तु यहाँ औपशमिक क्षायिक और एक औदयिक वा क्षायोपशमिक वा पारिणामिकमेंसे कोई एक इन तीनके संयोग रूप २०
तीन भंग न होनेसे सात ही हैं। चतुःसंयोगी पाँच होते हैं किन्तु उनमेंसे औपशमिक क्षायिक और दो औदयिक क्षायोपशमिक अथवा क्षायोपशमिक पारिणामिक अथवा औदयिक पारिणामिकमें-से इनके संयोग रूप तीन भंग यहाँ नहीं होते। अतः दो ही हैं। यहाँ उपशम और क्षायिकका मिलन न होनेसे पंचसंयोगी भंग नहीं होता। स्वसंयोगी भंग तीन हैं— मिश्रमें मिश्र, औदयिकमें औदयिक, पारिणामिकमें पारिणामिक। यहाँ उपशम सम्यक्त्वमें २५
उपशमचारित्र और क्षायिक सम्यक्त्वमें क्षायिकचारित्र सम्भव न होनेसे औपशमिकमें औपशमिक और क्षायिकमें क्षायिक ये दो भंग नहीं कहे। सब मिलकर छब्बीस भंग हुए।

उपशमश्रेणीके चार गुणस्थानोंमें पाँच-पाँच मूलभाव हैं। उनमें परसंयोगीमें प्रत्येक भंग पाँच, द्विसंयोगी दस, त्रिसंयोगी दस, चतुःसंयोगी पाँच और पंचसंयोगी एक भंग होता है। यहाँ क्षायिक सम्यक्त्वके होते उपशमचारित्र होता है अतः उपशम और क्षायिक- ३०
का संयोग जानना। स्वसंयोगीमें क्षायिकमें क्षायिक सम्भव नहीं है; क्योंकि यहाँ क्षायिक सम्यक्त्वके साथ अन्य क्षायिकभाव नहीं होता। अतः चार ही भंग होते हैं। सब पैंतीस भंग हुए।

भा ५। भंग ३५। सूक्ष्मसांपरायंगे मू भा ५। भंग ३५। उपशांतकषायंगे मू भा ५। भंग ३५। क्षपकश्रेणियोळु नाल्कुं गुणस्थानदोळु संभविसुव भावंगळु क्षायिकमुं मिश्रमुमौदयिकमुं पारिणामिकमुमितु नाल्कप्पुवु। क्षा। मि। औ। पा। इल्लि परसंयोगभंगंगळु प्रत्येकभंगंगळु नाल्केयप्पुवु। ४। द्विसंयोगभंगंगळारु। ६। त्रिसंयोगभंगंगळु नाल्कप्पुवु। ४। चतुःसंयोगभंगमों देयक्कुं। १। स्वसंयोगभंगंगळुं नाल्कप्पुवु। ४। कूडियपूर्व्वकरणनोळु मूलभा ४। भंग १९। अनिवृत्तिकरणनोळु मू भा ४। भं १९। सूक्ष्मसांपरायनोळु मू भा ४। भं १९॥ क्षीणकषायनोळु मू भा ४। भं १९। सयोगकेवलि भट्टारकनोळमयोगेकेवलिभट्टारकनोळं मूलभावंगळु क्षा। औ। पा। इल्लि प्रत्येक भंग ३। द्विसंयोगभंग ३। त्रिसंयोगभंग १। स्वसंयोगभंग ३। कूडि सयोगरिगे मू भा ३। भंग १०॥ अयोगरिगे मू भा ३। भंग १०। सिद्धपरमेष्ठियोळु मूलभावंगळु क्षा। पा। इल्लि प्रत्येक भंग २। द्विसंयोगभंगं स्वसंयोगभंग २ कूडि सिद्धपरमेष्ठियोळु मू भा २। भंग ५॥

अनंतरमितु गुणस्थानदोळु मूलभावसंख्येयुमं स्वपरसंयोग भंगसंख्येयुमं पेळ्दपरु।—

मिच्छतिये तिचउक्के दोसु वि सिद्धेवि मूलभावा हु।
तिगपणपणगं चउरो तिग दोण्णि य संभवा होंति ॥८२१॥

मिथ्यादृष्टित्रये त्रिचतुष्के द्वयोरपि सिद्धेपि मूलभावाः खलु। त्रिकपंचपंचचतुस्त्रिकद्वयं च संभवा भवंति॥

स्वसंयोगाः क्षायिके क्षायिकं विना चत्वारः। एवं परस्वसंयोगाः पंचत्रिंशत्। क्षपकचतुष्के क्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका मूलभावाश्चत्वारश्चत्वारः। तत्र परसंयोगे प्रत्येकभंगाश्चत्वारः। द्विसंयोगाः षट्। त्रिसंयोगाश्चत्वारः। चतुःसंयोग एकः। स्वसंयोगाश्चत्वारः। मिलित्वैकान्नविंशतिः। सयोगायोगयोर्मूलभावास्त्रयस्त्रयः। तत्र प्रत्येकभंगास्त्रयः। द्विसंयोगास्त्रयः। त्रिसंयोग एकः। स्वसंयोगास्त्रयः मिलित्वा दश। सिद्धे मूलभावौ द्वौ। तत्र प्रत्येकभंगौ द्वौ। द्विसंयोग एकः स्वसंयोगौ द्वौ। मिलित्वा पंच ॥८२०॥ उक्तमूलभावसंख्यां स्वपरसंयोगसंख्यां चाह—

क्षपकश्रेणीके चार गुणस्थानोंमें क्षायिक, मिश्र, औदयिक, पारिणामिक, चार ही भाव होते हैं। परसंयोगमें प्रत्येक भंग चार, द्विसंयोगी छह, त्रिसंयोगी चार, चतुःसंयोगी एक भंग है। स्वसंयोगी चार होते हैं। सब मिलकर उन्नीस हुए।

सयोगी-अयोगीमें क्षायिक, औदयिक, पारिणामिक ये मूल तीन भाव हैं। उनमें प्रत्येक भंग तीन, द्विसंयोगी तीन और त्रिसंयोगी एक और स्वसंयोगी तीन मिलकर दस भंग होते हैं।

सिद्धोंमें मूलभाव दो हैं—क्षायिक, पारिणामिक। इनमें प्रत्येक भंग दो, द्विसंयोगी एक, स्वसंयोगी दो सब पाँच हुए ॥८२०॥

उक्त मूलभावोंकी संख्या और स्वपरसंयोगी भंगोंकी संख्या कहते हैं—

---

१. म °भंगमुं।

मिथ्यादृष्टित्रये मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्ररुगळें ब मूरुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकं मिश्रऔदयिक-पारिणामिकमें ब मूरुं भावंगळु संभवंगळु असंयतदेशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरुमुपशमकापूर्व्वानिवृत्ति-सूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायरुगळ्ं क्षपकापूर्व्वंकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायक्षीणकषायरुगळुमेंब मूरेडेय नाल्करोळं सयोगकेवलिभट्टारकं अयोगकेवलिभट्टारकरुगळें बेरडेडेयोळं सिद्धपरमेष्ठियोळं क्रमदिदं मूलसंभवभावंगळु त्रिकमुं पंच पंच चतुःत्रिद्विप्रमितंगळु मुंपेळ्दुवेयक्कुं। मिथ्यादृष्टित्रयदोळु मि। औ। पा। असंयतचतुष्टयदोळु उ। क्षा। मि। औ। पा। उपशमचतुष्कदोळु उ। क्षा। मि। औ। पा। क्षपकचतुष्कदोळु क्षा। मि। औ। पा। सयोगायोगरोळु क्षा। औ। पा। सिद्धरोळु क्षा। पा॥

तत्थेव मूलभंगा दस छव्वीसं कमेण पणतीसं।
उगवीसं दस पणगं ठाणं पडि उत्तरं वोच्छं ॥८२२॥

तत्रैव मूलभंगा दश षड्विंशति क्रमेण पंचत्रिंशत्। एकान्नविंशतिः दश पंचकं स्थानं प्रत्युत्तरं वक्ष्यामि॥

तत्रैव तन्मिथ्यादृष्टित्रितयादिस्थानकंगळोळु मूलभंगा मूलभावंगळ परस्परसंयोगभंगंगळु मुंपेळ्दंते मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानत्रितयदोळु प्रत्येकं दश पत्तुं। असंयतादिगुणस्थानचतुष्टयदोळु प्रत्येकं परस्परसंयोगजनितंगळ षड्विंशतिः षड्विंशतिगळप्पुवु। उपशमकचतुष्टयदोळु प्रत्येकं परस्परसंयोगभंगंगळु पंचत्रिंशत्। पंचत्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु। क्षपकचतुष्टयदोळु प्रत्येकं एकान्नविंशतिप्रमितंगळप्पुवु। सयोगायोगकेवलिद्वयदोळु प्रत्येकं परस्वसंयोगभंगगळु दश। दशप्रमितंगळप्पुवु। सिद्धपरमेष्टियोळु परस्वसंयोगभंगंगळु पंच पंचप्रमितंगळप्पुवु॥

स्थानं प्रतिगुणस्थानमं कुरुत्तु भंगंगळनुत्तरं उत्तरभावंगळोळु पेळ्दपरं :—

मिथ्यादृष्ट्यादित्रये असंयताद्युपशमकापूर्वकरणादित्रिचतुष्केषु सयोगद्वये सिद्धे च क्रमेण मूलसम्भव-भावास्त्रयः पंच पंच चत्वारस्त्रय द्वौ भवन्ति ॥८२१॥

तथैवोक्तषट्स्थलेषु क्रमेण मूलभंगाः दश षड्त्रिंशतिः पंचत्रिंशत् एकान्नविंशतिः दश पंच भवन्ति ॥८२२॥ अथ गुणस्थानं प्रति उत्तरभावान् वक्ष्ये—

मिथ्यादृष्टि आदि तीनमें, असंयत आदि चारमें, उपशमश्रेणीके चारमें, क्षपकश्रेणीके चारमें, सयोगी आदि दोमें, सिद्धोंमें क्रमसे मूलभाव तीन, पाँच, पाँच, चार, तीन, दो हैं ॥८२१॥

उक्त छह स्थानोंमें क्रमसे मूल भंग दस, छब्बीस, पैंतीस, उनतीस, दस, पाँच हैं ॥८२२॥

आगे गुणस्थानोंमें उत्तरभावोंको कहेंगे—

---

१. म °गलु पंच।

उत्तरभंगा दुविहा ठाणगया पदगयात्ति पढमम्मि ।
सगजोगेण य भंगाणयणं णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥८२३॥

उत्तरभंगा द्विविधाः स्थानगताः पदगताः इति प्रथमे स्वकयोगेन च भंगानयनं नास्तीति निर्दिष्टं ॥

उत्तरभंगंगळु द्विविधंगळप्पुवेंतेंदोडे स्थानगतंगळेंदुं पदगतंगळुमेंदितल्लि प्रथमदोळु युगपत्संभवीभावसमूहविंदमादुदों दुस्थानदोळु स्थानांतराभावमप्पुदरिंदमल्लि पेरगे पेळ्वंते स्वसंयोगदिंदं भंगानयनमिल्लेंदु पेळल्पट्टुदु ।

मिच्छदुगे मिस्सतिये पमत्तसत्ते य मिस्सठाणाणि ।
तिगदुगचउरो एक्कं ठाणं सव्वत्थ ओदइयं ॥८२४॥

मिथ्यादृष्टिद्वये मिश्रत्रये प्रमत्तसप्तके च मिश्रस्थानानि । त्रिक द्विक चत्वारि एकं स्थानं सर्व्वत्रौदयिकं ॥

मिथ्यादृष्टिसासादनने बी एरडुं गुणस्थानंगळोळं मिश्रासंयतदेशसंयतने बी मूरुं गुणस्थानदोळं प्रमत्ताप्रमत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायरेंबी येळुं गुणस्थानदोळं मिश्रस्थानानि क्षायोपशमिकभावंगळु पविनेंटरोळं येकसमयदोळु युगपत्संभविसुवभावंगळ समूहमं स्थानमेंबुदा स्थानं यथाक्रमदिंदं आ द्वि त्रि सप्तगुणस्थानंगळोळु त्रिस्थानंगळुं-चतुःस्थानंगळुमप्पुवु । मि ३ । सा ३ । मि २ । अ २ । दे २ । प्र ४ । अ ४ । अ ४ । अ ४ । सू ४ । उ ४ । क्षी ४ ॥ सव्वंत्र मिथ्यादृष्टियादियागि अयोगिगुणस्थानपर्य्यंतं पदिनाल्कुं गुणस्थानंगळोळु प्रत्येकमेकस्थानमौदयिकदोळक्कुं । औदयिक । मि १ । सा १ । मि १ । अ १ । दे १ । प्र १ । अ १ । अ १ । अ १ । सू १ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ १ ॥

उत्तरभंगा द्विविधाः स्थानगताः पदगताश्चेति । तत्र प्रथमे युगपत्सम्भविभावसमूहरूपे स्थाने स्थानान्तरं नेति स्वसंयोगेन भंगानयनं नास्तीति निर्दिष्टं ॥८२३॥

क्षायोपशमिकभावस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादिद्वये त्रीणि । मिश्रादित्रये द्वे । प्रमत्तादिसप्तके चत्वारि । (अग्रे त्रिषु शून्यं ।) औदयिकभावस्थानं चतुर्दशगुणस्थानेष्वेकमेव ॥८२४॥

उत्तरभावोंके भंगके दो प्रकार हैं—स्थानगत और पदगत। एक जीवके एक समयमें जितने भाव पाये जाते हैं उनके समूहका नाम स्थान है। उनकी अपेक्षासे हुए भंगोंको स्थानगत कहते हैं। एक जीवके एक कालमें जो भाव पाये जाते हैं उनकी एक जातिका अथवा जुदे-जुदेका नाम पद है। उसकी अपेक्षा किये गये भंग पदगत कहे जाते हैं। एक जीवके एक कालमें एक स्थानमें अन्य कोई स्थान सम्भव न होनेसे स्थानगत भंगोंमें स्वसंयोगी भंग नहीं होते, ऐसा कहा है ॥८२३॥

मिथ्यादृष्टि आदि दोमें, मिश्रादि तीनमें, प्रमत्तादि सातमें क्रमसे क्षायोपशमिकभावके स्थान तीन, दो, चार जानने । औदयिकभावका स्थान चौदह गुणस्थानोंमें एक-एक ही है ॥८२४॥

तत्थावरणजभावा पणछस्सत्तेव दाणपंचेव ।
अयदचउक्के वेदगसम्मं देसम्मि देसजयं ॥८२५॥

तत्रावरणजभावाः पंच षट्सप्तैव दानपंचैव । असंयतचतुष्के वेदकसम्यक्त्वं देशसंयते देशसंयमं ॥

मुं पेळ्व क्षायोपशमिक भावंगळु ज्ञा ४ । द ३ । अ ३ । दा ५ वे १ । स रा १ । देश १ । यिती पदिनेंटुं भावंगळोळु युगपदेकसमयसंभविगळु । तत्र आ मिथ्यादृष्टिद्वय मिश्रत्रयप्रमत्तसप्तकदोळु क्रमदिदं मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळोळु अज्ञानत्रितयमुं चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमेंब आवरणजभावंगलुपंचप्रमितंगळप्पुवु । मि ५ । सा ५ ॥ मिश्रत्रयदोळु मतिश्रुतावधित्रयमुं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रयमुमितावरणजभावंगळारप्पुवु । मि ६ । अ ६ । दे ६ । प्रमत्तसप्तकदोळु मत्यादिचतुर्ज्ञानंगळुं दर्शनत्रितयमुमितावरणजभावंगळेळप्पुवु । प्र ७ । अ ७ । अ ७ । अ ७ । सू ७ । उ ७ । क्षी ७ । दानपंचैव इल्लि मिथ्यादृष्ट्यादियागि क्षीणकषायगुणस्थानपर्य्यंतं दानादिपंचकमुमप्पुवप्पुदरिंदं कूडिकोळुत्तं विरलु मि १० । सा १० । मि ११ । मि १ । अ ११ । दे ११ । प्र १२ । अ १२ । अ १२ । अ १२ । सू १२ । उ १२ । क्षी १२ । असंयतचतुष्के वेदकसम्यक्त्वं देशसंयते देशसंयममेंदितु पेळल्पट्टुदप्पुदरिंदं वेदकसम्यक्त्वमनसंयतादिनालकुं गुणस्थानंगळोळु कूडिकोंबुदु । देशचारित्रमं देशसंयतनोळु कूडिकोंबुदु ॥ मत्तं :—

रागजमं तु पमत्ते इदरे मिच्छादिजेट्ठठाणाणि ।
वेभंगेण विहीणं चक्खुविहीणं च मिच्छदुगे ॥८२६॥

रागयमस्तु प्रमत्ते इतरस्मिन् मिथ्यादृष्ट्यादिज्येष्ठस्थानानि । विभंगेन विहीनं चक्षुर्व्विहीनं च मिथ्यादृष्टिद्वये ॥

सरागचारित्रमं प्रमत्तसंयतनोळमप्रमत्तसंयतनोळं कूडिकोळ्वुत्तं विरलु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानंगळोळेल्लं क्षायोपशमिकभावंगळोळोकसमयदोळ् युगपत्संभविसुव ज्येष्ठस्थानमेल्ला गुणस्थानं-

---

तत्र स्थानत्रये क्षायोपशमिकेष्वावरणजभावा मिथ्यादृष्ट्यादिद्वये त्र्यज्ञानाद्यद्विदर्शनानि । मिश्रत्रये आद्यत्रिज्ञानत्रिदर्शनानि । प्रमत्तसप्तके तानि च मनःपर्ययश्च । क्षीणकषायान्तं दानादयः पंच । असंयतादिचतुष्के वेदकसम्यक्त्वं । देशसंयते देशसंयमः ॥८२५॥

तु—पुनः प्रमत्ते अप्रमत्ते च सरागचारित्रं तेन क्षायोपशमिकभावज्येष्ठस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादिष्व-

---

उक्त तीनमें क्षायोपशमिकके ज्ञानावरण-दर्शनावरणके निमित्तसे होनेवाले भाव मिथ्यादृष्टि और सासादनमें तीन अज्ञान दो दर्शन ये पाँच हैं। मिश्रादि तीनमें आदिके तीन ज्ञान तीन दर्शन हैं। प्रमत्तादि सातमें मनःपर्यय सहित चार ज्ञान तीन दर्शन हैं। दानादि पाँच भाव मिथ्यादृष्टिसे क्षीणकषायपर्यन्त हैं। वेदकसम्यक्त्व असंयत आदि चारमें देशसंयम देशसंयत गुणस्थानमें है ॥८२५॥

सरागचारित्र प्रमत्त-अप्रमत्तमें है। इनको यथासम्भव मिलानेपर मिथ्यादृष्टिसे क्षीण-

---

१. गुणस्थानमं कुरुत्तु ।

गळोळमक्कुं। मि १०। सा १०। मि ११। अ १२। दे १३। प्र १४। अ १४। अ १२। अ १२। सू १२। उ १२। क्षी १२।

ई ज्येष्ठस्थानंगळोळु मिथ्यादृष्टिद्वयदोळु विभंगविहीनमागळु नवस्थानमक्कुमल्लि चक्षुर्दर्शनविहीनमागलुमष्ट भावस्थानमुमक्कुं। मत्तं :—

अवधिदुगेण विहीणं मिस्सतिये होहि अण्णठाणं तु ।
मणणाणेणवधिदुगेणुभयेणूणं तदो अण्णे ॥८२७॥

अवधिद्वयेन विहीनं मिश्रत्रये भवत्यन्यस्थानं तु । मनःपर्ययज्ञानेनावधिद्वयेनोभयेनोनं ततोऽन्यस्मिन् ॥

मिश्रत्रये मिश्रासंयतदेशसंयतरुगळुत्कृष्टस्थानदोळवधिद्विकं हीनमागुत्तं विरलु क्रमदिंदं मिश्रनोळोंभत्तुं। असंयतनोळु पत्तु। देशसंयतनोळु पन्नोंदुमप्पुवु। तु मत्ते अन्यस्थानं अन्येषां प्रमत्तादीनां स्थानं प्रमत्तादिगळुत्कृष्टस्थानं मनःपर्य्ययज्ञानेनोनं मनःपर्य्ययज्ञानदिंदमूनमागलु प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु पदिमूरु पदिमूरुस्थानंगळप्पुवु। अपूर्व्वानिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषाय-क्षीणकषायरुगळ ज्येष्ठस्थानदोळु मनःपर्य्ययमं कळेदोडे पनोंदु भावस्थानं प्रत्येकमक्कु। मत्तं मनःपर्य्यय सहितमागियवधिद्विकहीनमादोडा प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु पन्नेरडरस्थानमुं शेषरुगळोळु दशभावस्थानमक्कुं।

मानि—मि १०। सा १०। मि ११। अ १२। दे १३। प्र १४। अ १४। अ १२। अ १२। सू १२। उ १२। क्षी १२। पुनरपि मिथ्यादृष्टिद्वये तज्ज्येष्ठं विभंगेन हीनं तदा नवकं स्यात्। पुनरपि चक्षुर्दर्शनेन हीनं तदाष्टकं स्यात् ॥८२६॥

मिश्रत्रये स्वस्वोत्कृष्टं अवधिद्विकेन विहीनं तदा मिश्रे नवकं। असंयते दशकं। देशसंयते एकादशकं स्यात्। प्रमत्तादयुत्कृष्टं मनःपर्ययेनावधिद्विकेन तदुभयेन च पृथग्विहीनं तदा प्रमत्तद्वये त्रयोदशकद्वादशकैकादशकं,

कषायपर्यन्त क्रमसे क्षायोपशमिकके उत्कृष्ट स्थान दस, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, चौदह, बारह, बारह, बारह, बारह, बारह रूप जानना।

मिथ्यादृष्टी और सासादनमें तीन अज्ञान, दो दर्शन, पाँच दानादि इस प्रकार दस-दसका उत्कृष्ट स्थान होता है। मिश्रमें तीन ज्ञान, तीन दर्शन, पाँच दानादि ऐसे ग्यारहका उत्कृष्ट स्थान है। असंयतमें वेदकसम्यक्त्व सहित बारहका है। देशसंयतमें देशसंयम सहित तेरहका है। प्रमत्त-अप्रमत्तमें देशसंयमके बिना सरागसंयम मनःपर्यय सहित चौदहका है। अपूर्वकरणसे क्षीणकषायपर्यन्त चार ज्ञान, तीन दर्शन, पाँच दानादि इस तरह बारह-बारह-का उत्कृष्ट स्थान है।

मिथ्यादृष्टि आदि दोमें एक तो दसका उत्कृष्ट स्थान, एक विभंगरहित नौका स्थान, एक चक्षुदर्शन रहित आठका स्थान इस प्रकार तीन-तीन स्थान हैं ॥८२६॥

मिश्रादि तीनमें एक अपना-अपना उत्कृष्ट स्थान तथा अवधिज्ञान दर्शन रहित मिश्रमें नौका, असंयतमें दसका, देश संयतमें ग्यारहका, इस तरह दो-दो स्थान हैं। प्रमत्तादि सातमें एक-एक अपना उत्कृष्ट स्थान तथा एक-एक मनःपर्ययरहित, एक-एक अवधिज्ञान दर्शनरहित

मत्तं उभयोनं मनःपर्य्ययावधिद्वयमुमंतु भावत्रयं होनमागलु प्रमत्ताप्रमत्तरोळु पन्नोंदर-स्थानमुं शेषरुगळोळु नवभावस्थानमुमक्कुं । संदृष्टि :—क्षायोपशमिकभावस्थानंगळु मि १० । ९ । ८ । सा १० । ९ । ८ । मि ११ । ९ । अ १२ । १० । दे १३ । ११ । प्र १४ । १३ । १२ । ११ । अ १४ । १३ । १२ । ११ । अपू १२ । ११ । १० । ९ । अ १२ । ११ । १० । ९ । सू १२ । ११ । १० । ९ । उ १२ । ११ । १० । ९ । क्षी १२ । ११ । १० । ९ । ततोऽन्यस्मिन् इल्लिवं मेलौदयिक-भावदोळु पेळ्दपरु :—

मुं पेळ्दौदयिकभावंगळु ग ४ । लिं ३ । क ४ । मि १ । ले ६ । असि १ । असं १ । अज्ञा १ । यिंतो एकविंशतिभावंगळोळु ओंदु समयदोळु ओंदु जीवक्के युगपत्संभविसुवौदयिक-भावंगळु मिथ्यादृष्टियोळु गतिचतुष्टयदोळोंदु गतियुं १ वेदत्रयदोळोंदु वेदमुं १ कषायचतुष्टयदो ळोंदु कषायमुं १ । मिथ्यात्वमुं १ । षड्लेश्यंगळोळोंदु लेश्ययुं १ । असिद्धत्वमुं १ । असंयममुं १ । अज्ञानमु १ । मितष्टभावंगळु मिथ्यादृष्टिगळप्पुवु । ८ ॥

सासादनंगे मिथ्यात्वं पोरगागि सप्तभावस्थानमक्कुं । ७ ॥ मिश्रंगेयुमंते सप्तभावस्थान-मक्कुं । ७ ॥ असंयतंगेयुमंते सप्तभावस्थानमक्कुं । ७ ॥ देशसंयतंगे असंयतमं पोरगागि षड्भाव-स्थानमक्कुं । ६ । प्रमत्तसंयतनोळमंते षड्भावस्थानमक्कुं । ६ ॥ अप्रमत्तनोळमंते षड्भावस्थान-मक्कुं । ६ । अपूर्व्वकरणनोळमंते षड्भावस्थानमक्कुं । ६ । अनिवृत्तिकरणंगे सवेदभागेयोळु षड्भावस्थानमक्कुं ६ । अवेद भागेयोळु लिंगरहितपंचभावस्थानमक्कुं । ५ । सूक्ष्मसांपरायनोळ्-मंते पंचभावस्थानमक्कुं । ५ ॥ उपशांतकषायंगे कषायरहितमागि चतुर्भावस्थानमक्कुं । ४ ॥ क्षीणकषायंगमंते चतुर्भावस्थानमक्कुं । ४ ॥ सयोगकेवलिभट्टारकंगे अज्ञानरहितमागि त्रिभावस्थान-मक्कुं । ३ ॥ अयोगिकेवलिभट्टारकंगे लेश्यारहितमागि द्विभावस्थानमक्कुं २ । मदुवुं मनुष्यगति-भावमुमसिद्धत्वमुमेरडे यें बुदत्थं ॥

अपूर्वकरणादिपंचके एकादशकदशकनवकं स्यात् । औदयिकभावेष्वेकविंशतौ मिथ्यादृष्टौ एकजीवस्यैकसमये चतुर्गतित्रिवेदे चतुःकषायषट्लेश्यास्वेकैकः, मिथ्यात्वं असिद्धत्वं असंयमः अज्ञानं चेत्यष्टौ । सासादनादित्रये मिथ्यात्वं विना सप्त । देशसंयतादिनिवृत्तिकरणसवेदभागे असंयमं विना षट् । अवेदभागे सूक्ष्मसाम्पराये च लिंगं विना पंच । उपशान्तक्षीणकषाययोः कषायं विना चत्वारः । सयोगे अज्ञानं बिना त्रयः । अयोगे लेश्यां

और एक-एक अवधिज्ञान अवधिदर्शन मनःपर्यय रहित स्थान होनेसे प्रमत्त अप्रमत्तमें तेरह बारह, ग्यारहके अपूर्वकरणादि पांचमें ग्यारह, दस, नौके तीन स्थान और होते हैं, इस तरह चार-चार स्थान होते हैं ।

औदयिकके इक्कीस भावोंमें एक जीवके एक समयमें मिथ्यादृष्टिमें चार गति, तीन वेद, चार कषाय, छह लेश्याओंमें एक-एक तथा मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व ये आठ भाव होते हैं। सासादन आदि तीनमें मिथ्यात्वके बिना सात भाव होते हैं । देशसंयत-से अनिवृत्तिकरणके सवेद भाग पर्यन्त असंयमको छोड़ छह-छह भाव होते हैं । अवेद भाग और सूक्ष्म साम्परायमें वेद बिना पाँच भाव होते हैं । उपशान्तकषाय क्षीणकषायमें कषाय

अनंतरमौ औदयिकभावस्थानभंगंगळं मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु पेळ्दपरु :—

लिंगकसाया लेस्सा संगुणिदा चदुगदीसु अविरुद्धा ।
बारस बावत्तरियं तत्तियमेत्तं च अडदालं ॥८२८॥

लिंगकषायाः लेश्याः संगुणिताः चतुर्गतिष्वविरुद्धा । द्वादशद्वासप्ततिस्तावन्मात्रमष्टाचत्वारिंशत् ॥

चतुर्गतिषु नरकादिचतुर्गतिगळोळु अविरुद्धाः अविरुद्धंगळप्प लिंगकषायलेश्यैगळु संगुणिताः परस्परं गुंणिसल्पट्टुवु । नरकादिगतिगळोळु क्रमदिदं द्वादश द्वासप्तति तावन्मात्राष्टाचत्वारिंशत्प्रमितभंगंगळप्पुवु । अदें तेंदोडे नरकगतियोळविरुद्धमप्प लिंगकषायलेश्यैगळु षंडवेदमों दुं चतुःकषायंगळुमशुभलेश्यात्रितयंगळुमप्पुवु । लिंग १ । कषाय ४ । ले ३ । यिवं परस्परं गुणिसिदोडे पन्नेरडु भंगंगळप्पुवु । १२ । तिर्य्यग्गतियोळविरुद्धमागि त्रिलिंगंगळुं चतुःकषायंगळुं षड्लेश्यगळुमप्पुवु । लि ३ । क ४ । ले ६ । इवं परस्परं गुणिसिदोडे द्वासप्ततिभंगंगळप्पुवु ७२ । मनुष्यगतियोळुमिते लि ३ । क ४ । ले ६ । यिवं परस्परं गुणिसिदोडे द्वासप्तति भंगंगळप्पुवु । ७२ । देवगतियोळु अविरुद्धमागि लि २ । क ४ । ले ६ । यिल्लि भवनत्रयापर्य्याप्तरं कुरुत्तु अशुभलेश्यात्रयमरियल्पडुगुं । इवं परस्परं गुणिसिदोडष्टाचत्वारिंशद् भंगंगळप्पुवु । ४८ । यी नाल्कुं गतिगळ भंगंगळुं कूडि प्रत्येकं मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळु अप्पुवु । मि २०४ । सा २०४ । यी भंगंगळु गुण्यंगळप्पुवेंदरिवुदु । मिश्रांगमसंयतांगं नरकगतियोळु अविरुद्धमागि नपुंसकवेदमुं चतुःकषायंगळुमशुभलेश्यात्रयमुमप्पुवु । लिं १ । क ४ । ले ३ । इवं परस्परं गुणिसिदोडे द्वादशभंगंगळप्पुवु । १२ । तिर्य्यग्गतियोळु योग्यमप्प लि १ । क ४ । ले ६ । यिवं परस्परं गुणिसिदोडे द्वासप्ततिभंगंगळप्पुवु ।

विना द्वौ, तौ हि मनुष्यगत्यसिद्धत्वे ॥८२७॥ अथौदयिकस्थानभंगान् गुणस्थानेष्वाह—

चतुर्गतिष्वविरुद्धाः लिंगकषायलेश्याः । तत्र नरकगतौ षंढवेदचतुःकषायत्र्यशुभलेश्याः, तिर्यग्मनुष्यगत्योस्त्रिलिंगचतुःकषायषड्लेश्याः, देवगतौ स्त्रीपुंलिंगचतुष्कषायत्रिशुभलेश्याः भवनत्रयापर्याप्ते त्र्यशुभलेश्याः अपि सर्वत्र गुणिताः क्रमेण द्वादश द्वासप्ततिः द्वासप्ततिरष्टचत्वारिंशद्भवन्ति । मिलित्वा २०४, मिथ्यादृष्टौ

बिना चार होते हैं। सयोगीमें अज्ञान बिना तीन होते हैं। अयोगीमें लेश्या बिना मनुष्यगति और असिद्धत्व ये दो होते हैं ॥८२७॥

आगे औदयिक स्थानोंके भंगोंको गुणस्थानोंमें कहते हैं—

चारों गतियोंमें अविरुद्ध लिंग कषाय लेश्याको परस्परमें गुणा करें। सो नरकगतिमें तो नपुंसक वेद, चार कषाय, तीन अशुभ लेश्याओंको परस्परमें गुणा करनेसे बारह होते हैं। तिर्यंच और मनुष्यगतिमें तीन वेद, चार कषाय, छह लेश्याओंको परस्परमें गुणा करनेसे बहत्तर-बहत्तर होते हैं। देवगतिमें स्त्री-पुरुष दो लिंग, चार कषाय, तीन शुभ लेश्याको और भवनत्रिकमें अपर्याप्त दशामें तीन अशुभ लेश्या भी होती हैं अतः छह लेश्याको परस्परमें गुणा करनेपर अड़तालीस होते हैं। सब मिलकर दो सौ चार हुए। सो इतना तो मिथ्यादृष्टि और सासादनमें गुण्य होता है ॥८२८॥

विशेषार्थ—जिसको गुणकारसे गुणा करते हैं उसे गुण्य कहते हैं। आगे इन्हें गुण-

७२। मनुष्यगतियोळु लिं ३। क ४। ले ६। इवं परस्परं गुणिसिदोडे द्वासप्तति भंगंगळप्पुवु ॥७२॥ देवगतियोळु पेळ्दपरु। :—

णवरि विसेसं जाणे सुरमिस्से अविरदे य सुहलेस्सा।
चउवीस तत्थ भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८२९॥

नवीनविशेषं जानीहि सुरमिश्रेऽविरते च शुभलेश्याश्चतुर्विंशतिस्तत्र भंगा असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥

देवगतियोळु मिश्रंगमसंयतंगं नवविशेषमुंटदाउदें दोडे शुभलेश्यात्रयमेयक्कुमें तें दोडे भवनत्रयापर्य्याप्तकरोळल्लदेल्लियुमशुभलेश्याऽसंभवमप्पुदरिंद अंते पेळल्पट्टुदु। 'भवणतिया पुण्णगे असुहा' येंदितु। अदु कारणमागि देवगतिय मिश्रासंयतरोळु चतुर्विंशतिभंगंगळप्पुवु। लिं २। क ४। ले ३। लब्धभंगंगळु २४। चतुर्व्विंशतिप्रमितंगळप्पुवें दु श्रीवीरवर्द्धमान स्वामिंयिदं पेळल्पट्टुवु। अंतु मिश्रंगे गुण्यभंगंगळु नूरें भत्तु १८०। असंयतंगं गुण्यभंगंगळु १८०। देशसंयतंगे तिर्य्यग्मनुष्यगतिगळोळु प्रत्येक लिं ३। क ४। ले ३। इवं गुणिसिदोडे देशसंयतंगे तिर्य्यग्गतियोळु ३६। मनुष्यगतियोलु ३६। कूडि भंगंगळु द्वासप्ततिप्रमितंगळप्पुवु। ७२। प्रमत्तसंयतंगे मनुष्यगतियोळे लिं ३। क ४। ले ३। यिवनडरे गुणिसिदोडे गुण्यरूपभंगंगळु मूवत्तारु। ३६। अप्रमत्तसंयतन मनुष्यगतियोळु लिं ३। क ४। ले ३। यिवं संगुणं माडिदोडे मूवत्तारु भंगंगळप्पुवु ३६। अपूर्व्वकरणन मनुष्यगतियोळु लिं ३। क ४। ले १। शु। गुणिसिदोडे पन्नेरडु गुण्यरूपभंगंगळप्पुवु। १२॥ अनिवृत्तिकरणन मनुष्यगतियोळु सवेदभागेयोलु लिं ३। क ४। ले १। इवं संगुणिसिदोडे

सासादने च गुण्यं स्याप्यं ॥८२८॥

मिश्रे असंयते च प्राग्वन्नरकगतौ द्वादश। तिर्यग्मनुष्यगत्योर्द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः। देवगतौ शुभलेश्यात्रयमेवेति नवीनं विशेषं जानीहि, भवनत्रयापर्याप्तस्यात्रासम्भवात्तेन भंगा स्त्रीपुंलिंगचतुष्कषायत्रिशुभलेश्याकृताश्चतुर्विंशतिः श्रीवर्धमानस्वामिना निर्दिष्टाः मिलित्वाशीत्यग्रशतं। देशसंयते लिं ३ क ४ ले ३ गुणिते ३६। मिलित्वा तिर्यग्मनुष्यगत्योर्द्वासप्ततिः। प्रमत्तादिद्वये मनुष्यगतौ लिं ३ क ४ ले ३ गुणिते षट्त्रिंशत्। अपूर्वकरणे सवेदानिवृत्तिकरणे च लिं ३ क ४ ले १ गुणिते द्वादश। अवेदभागे मनुष्यगतौ चतुष्कषायशुक्ललेश्या-

---

कारसे गुणा करेंगे इससे इन्हें गुण्य कहा है। अक्षसंचारके द्वारा भावोंके बदलनेसे जितने भंग होते हैं उतने ही परस्परमें गुणा करनेसे होते हैं।

मिश्र और असंयतमें पूर्ववत् नरकगतिमें बारह, तिर्यंच और मनुष्यगतिमें बहत्तर-बहत्तर भंग होते हैं। किन्तु देवगतिमें यहाँ तीन शुभ लेश्या हैं, भवनत्रिकका अपर्याप्तपना इन गुणस्थानोंमें सम्भव नहीं है अतः स्त्रीवेद पुरुषवेद चार कषाय तीन शुभलेश्याको परस्परमें गुणाकरनेसे देवगतिमें चौबीस ही भंग होते हैं। ऐसा वर्धमान स्वामीने कहा। ये सब मिलकर एक सौ अस्सी हुए।

देशसंयतमें तीन लिंग, चार कषाय, तीन शुभलेश्याको परस्पर गुणा करनेसे तिर्यंच और मनुष्यगतिमें छत्तीस-छत्तीस होते हैं मिलकर बहत्तर हुए। प्रमत्त-अप्रमत्तमें मनुष्यगतिमें तीन लिंग, चार कषाय, तीन शुभलेश्याको गुणा करनेसे छत्तीस हुए। अपूर्वकरण और सवेद

गुण्यरूपभंगंगळु पन्नेरडप्पुवु १२। मत्तमा गुणस्थानदोळवेदभागेयोळु वेदशून्यं मनुष्यगतियोळु कषायचतुष्टयमक्कुं। शुक्ललेश्ययों देयक्कुं। म मति १। क ४। ले शु १। ळब्धं नाल्केयक्कुं ४। मानकषायभागेयोळु मनुष्यगतिकषायत्रय शुक्ललेश्ययों दु १। मनुगति १। क ३। शुले १। लब्धभंग ३। मायाभागेयोळु मनुष्यगति १। क २। शुले १। गुणिसिदोडे लब्धगुण्यभंगं २। लोभकषायभागेयोळु मनुष्यगति १। क लो १। शु ले १। गुणिसिदोडे भंगं १॥ सूक्ष्मसांपरायंगे मनुष्यगति १। क सू लो १। शु ले १। गुणिसिदोडे ळब्धभंगं १। उपशांतकषायंगे मनुष्यगतियों दु १। क शून्यं। शु ले। गुणिसिदोडे लब्ध १। क्षीणकषायंगे मनुष्यगति १। शु ले १। गुणिसिदोडे लब्धभंगं १। योगकेवळिभट्टारकंगे मनुष्यगति १। शु ले १। गुणिसिदोडे लब्धभं १। अयोगिभट्टारकंगे मनुष्यगति १॥

चक्खूण मिच्छसासणसम्मा तेरिच्छगा हवंति सदा।
चारिकसायतिलेस्साणब्भासे तत्थ भंगा हु ॥८३०॥

चक्षुरूनमिथ्यादृष्टिसासानसम्यग्दृष्टितिर्य्यंचौ भवतः। सदा चतुःकषायत्रिलेश्यानामभ्यासे तत्र भंगाः खलु॥ चक्षुर्दर्शनरहितमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिगळे बोर्व्वरुं सव्वदा तिर्य्यंचरुगळेय्प्परु कारणदिंदमा जीवंगळोळु षंडवेदमुं चतुष्कषायंगळुमशुभलेश्यात्रयंगळ परस्पराभ्यासदिंदं द्वादशभंगंगळेय्प्पुवु। १२। संदृष्टि—चक्षूरहितमिथ्यादृष्टिगे भंगंगळु गुण्यरूपंगळु १२। सासादनंगे भंगं १२।

कृताश्चत्वारः। मानभागे मनुष्यगतिकषायत्रयैकलेश्याकृतास्त्रयः। मायाभागे मनुष्यगति १ क २ शुभले १ गुणिते द्वौ। लोभभागे मनुष्य १ क १ लो शु ले १ गुणिते एकः। सूक्ष्मसाम्पराये मनुष्यगति १ क—सू, लो १ शु ले १ गुणिते १ उपशान्तकषायादित्रये मनुष्यगतिः १ क शून्यं, शु ले १ गुणिते एकैकः। अयोग मनुष्यगतिरिति १ ॥८२९॥

चक्षुर्दर्शनरहितमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टयः सदा तिर्यंच एव स्युस्तेन तत्र भंगाः षंढवेदचतुःकषायत्र्यशुभलेश्यानां गुणने द्वादश द्वादश खलु ॥८३०॥

अनिवृत्तिकरणमें मनुष्यगतिमें तीन लिंग, चार कषाय, एक शुक्ललेश्याके गुणन करनेसे बारह हुए। अवेद अनिवृत्तिकरणमें मनुष्यगतिमें चार कषाय और शुक्ललेश्यासे चार हुए। अनिवृत्तिकरणके मान भागमें मनुष्यगति तीन कषाय शुक्ललेश्याके तीन हुए। मायाभागमें मनुष्यगति दो कषाय शुक्ललेश्याके दो हुए। लोभभागमें मनुष्यगति बादर लोभ शुक्ल लेश्यासे एक हुआ। सूक्ष्म साम्परायमें मनुष्यगति सूक्ष्म लोभ शुक्ललेश्याका एक ही हुआ। उपशान्त कषायादि तीनमें कषाय नहीं है अतः मनुष्यगति शुक्ललेश्याका एक ही हुआ। अयोगीमें मनुष्यगति रूप एक हुआ। इस प्रकार जो ये भंग हुए इन्हें गुण्यरूपमें स्थापित करें ॥८२९॥

चक्षुदर्शन रहित मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि सदा तिर्यंच ही होते हैं। अतः उनमें तिर्यंचगतिमें ही नपुंसक वेद, चार कषाय, तीन अशुभ लेश्याको परस्परमें गुणा करनेसे बारह-बारह भंग होते हैं ॥८३०॥

खाइय अविरदसम्मे चउ सोल बिहत्तरी य बारं च ।
तद्देसो मणुसेव य छत्तीसा तब्भवा भंगा ॥८३१॥

क्षायिकाविरतसम्यग्दृष्टौ चत्वारः षोडश द्वासप्ततिश्च द्वादश च । तद्देशसंयतो मनुष्य एव च षट्त्रिंशत्तद्भवा भंगाः ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिनरकगतियसंयतनोळु षंढलिंगमुं चतुष्कषायंगळुं कपोतलेश्ययुमक्कुं । लिं १ । क ४ । ले १ । लब्धभंगंगळु नाल्कु ४ । तिर्य्यग्गतिय क्षायिकासंयतसम्यग्दृष्टिगे पुंवेदलिंगमुं कषायचतुष्टयमुं लेश्याचतुष्टयमुमक्कुमेंतेंदोडे "भोगा पुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे णियमा" यें दितु शुभलेश्यात्रयमुं कपोतलेश्ययुमंतु नाल्कप्पुवेंबुदत्थं । लिंग १ पुं । क ४ । ले ४ । इवं गुणिसुत्तं विरलु भंगंगळु षोडशप्रमितंगळप्पुवु । १६ । मनुष्यगतियोळु क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यसंयतंगे लिंगत्रितयमुं चतुःकषायंगळुं षड्लेश्यंगळुमप्पुवु । लिंग ३ । क ४ । ले ६ । यिवं गुणं माडिदोडे द्वासप्तति भंगंगळप्पुवु । ७२ ॥ देवगतियोळु क्षायिकासंयत सम्यग्दृष्टिगे पुंवेदलिंगमुं चतुष्कषायमुं शुभलेश्यात्रयमुमक्कुं । लिं १ । क ४ । ले ३ । इवं गुणिसिदोडे लब्धभंगंगळु द्वादशप्रमितंगळप्पुवु । १२ ॥ यितु चतुर्गतिय क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यसंयतंगे गुण्यरूपभंगंगळु कूडि नूर नाल्कप्पुवु । १०४ ॥ तद्देशसंयतः क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतं मनुष्य एव मनुष्यनेयक्कु । मप्पुदरिंद लिंग ३ । क ४ । लेश्यात्रयमुं शुभंगळेयक्कुं । लेश्ये ३ । इवं संगुणं माडुत्तिरलु क्षायिक देशसंयतंगे षट्त्रिंशत्तद्भवभंगाः मूवत्तारप्पुवु । भंगंगळु ३६ ॥ इंतुक्तगुणस्थानंगळोळु भंगसंदृष्टि—मिथ्या २०४ । चक्षूरहितमिथ्यादृष्टियोळु १२ । सासादनंगे २०४ । चक्षूरहितंगे १२ । मिश्रंगे १८० । असंयतंगे १८० । क्षायिकसम्यग्दृष्टिगे १०४ । देशसंयतंगे ७२ । क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतंगे ३६ । प्रमत्तसंयतंगे ३६ । अप्रमत्तसंयतंगे ३६ । अपूर्व्वकरणंगे १२ । अनिवृत्तिकरणंगे १२ । ४ । ३ । २ । १ । सू १ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ १ ॥

अनंतरं पारिणामिकभावस्थानमं पेळ्दपरु :—

क्षायिकसम्यग्दृष्ट्यसंयते नारके षंढलिंगं कषायचतुष्कं कपोतलेश्येति भंगाश्चत्वारः । तिरश्चि पुंलिंगं कषायचतुष्कं लेश्याचतुष्कमिति षोडश । मनुष्ये लिंगत्रयं कषायचतुष्कं लेश्याषट्कमिति द्वासप्ततिः । देवे पुंलिंगं कषायचतुष्कं शुभलेश्यात्रयमिति द्वादश मिलित्वा चतुरग्रशतं । क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतः मनुष्य एवेति तत्र लिं ३ क ४ शु ले ३ तद्भवभंगाः षट्त्रिंशत् ॥८३१॥

क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयतमें नारकीके नपुंसक वेद चार कषाय कपोत लेश्यासे चार भंग होते हैं । तिर्यंचमें पुरुषवेद, चार कषाय, चार लेश्यासे सोलह भंग होते हैं । मनुष्यमें तीन वेद, चार कषाय, छह लेश्यामें बहत्तर भंग होते हैं । देवगतिमें पुरुषवेद चार कषाय, तीन शुभलेश्यासे बारह भंग होते हैं । इस प्रकार मिलकर एक सौ चार भंग हुए । तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत मनुष्य ही होता है वहाँ तीन वेद, चार कषाय, तीन शुभलेश्यासे छत्तीस भंग हुए ॥८३१॥

परिणामो दुट्ठाणो मिच्छे सेसेसु एक्कठाणो दु ।
सम्मे अण्णं सम्मं चारित्ते णत्थि चारित्तं ॥८३२॥

परिणामो द्विस्थानो मिथ्यादृष्टौ शेषेष्वेकस्थानं तु । सम्यक्त्वेऽन्यत्सम्यक्त्वं चारित्रे नास्ति चारित्रं ॥

पारिणामिकभावं द्विस्थानमनुळ्ळुदप्पुददें तेंदोडे जीवत्वभव्यत्वमेंदुं जीवत्वाभव्यत्वमेंदितेरडुं स्थानंगळं मिथ्यादृष्टियोळप्पुवु । शेषगुणस्थानंगळोळं गुणस्थानातीतरप्प सिद्धपरमेष्टिगळोळं जीवभव्यत्वमेंबुदो दे स्थानमक्कुं । संदृष्टि मि २ । सा १ । मि १ । अ १ । दे १ । प्र १ । अ १ । अ १ । अ १ । सू १ । उ १ । क्षी १ । स १ । अ १ । सि १ ॥

अनंतरं गुणस्थानंगळोळ संभवभावंगळ प्रत्येकद्विसंयोगादिभंगंगळं साधिसुवल्लि सम्यक्त्वमोंदुळ्ळ स्थानदोळ सम्यक्वांतरमिल्ल । चारित्रमोंदुळ्ळेडेयोळु चारित्रांतरमिल्लेंबुदनवधरिसुउदु ॥ । मत्तमा भंगंगळंतप्पलि विशेषमं पेळ्दपरु :—

मिच्छदुगयदचउक्के अट्ठट्ठाणेण खइयठाणेण ।
जुदपरजोगजभंगा पुध आणिय मेलिदव्वा हु ॥८३३॥

मिथ्यादृष्टिद्वयासंयतचतुष्केऽष्टस्थानेन क्षायिकस्थानेन । युतपरयोगजभंगाः पृथगानीय मेलयितव्याः खलु ॥

मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळं चक्षूरहिताष्टस्थानदोडने कूडिद परसंयोगजनित भंगंगळं बेरे तंदु बळिकं राशियोळु कूडिकोंबुदु । असंयतादि चतुर्गुणस्थानंगळोळु क्षायिकसम्यक्त्वस्थानदोडने कूडिद परसंयोगजनितभंगंगळं बेरे तंदु तंतम राशिय भंगंगळोळु कूडिकोळल्पडुवुदु ॥

पारिणामिकभावो मिथ्यादृष्टौ जीवत्वभव्यत्वं जीवत्वाभव्यत्वमिति द्विस्थानः । शेषगुणस्थानेषु सिद्धे च जीवत्वभव्यत्वमित्येकस्थान एव । अग्रे गुणस्थानेषु प्रत्येकद्विसंयोगादीन् वक्तुमाह—सम्यक्त्वयुतस्थाने सम्यक्त्वांतरं चारित्रयुतस्थाने चारित्रांतरं च नास्ति ॥८३२॥ पुनः—

मिथ्यादृष्ट्यादिद्वये चक्षुरूनाष्टस्थानयुतान् असंयतादिचतुष्के क्षायिकसम्यक्त्वस्थानयुतांश्च परसंयोगज-

---

मिथ्यादृष्टिमें पारिणामिक भावके दो स्थान हैं—जीवत्व भव्यत्व और जीवत्व अभव्यत्व । शेष गुणस्थानोंमें और सिद्धोंमें जीवत्व भव्यत्व रूप एक ही स्थान है । आगे गुणस्थानोंमें प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भेद कहनेके लिए कहते हैं—सम्यक्त्व सहित स्थानमें अन्य सम्यक्त्व नहीं होता । चारित्र सहित स्थानमें अन्य चारित्र नहीं होता । अर्थात् जहाँ उपशम सम्यक्त्व होता है वहाँ वेदक या क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता ॥८३२॥

मिथ्यादृष्टि सासादनमें चक्षुदर्शन रहित क्षायोपशमिकके आठके स्थानमें जो औदयिकके भंग कहे हैं उन सहित तथा असंयत आदि चारमें क्षायिक सम्यक्त्वके स्थानमें जो औदयिकके भंग कहे हैं उन सहित परसंयोगी भंगोंको पृथक्-पृथक् निकालकर अपनी-अपनी राशिमें मिलावें ॥८३३॥

अनंतरं तंतम्म गुणस्थानदोळु संभवभावस्थानंगळोळक्षसंचारविदं प्रत्येकद्विसंयोगादि-भंगंगळं साधिसि तंदा भंगंगळु गुण्यभंगंगळगे गुणकारंगळु क्षेपंगळुमप्पुवेंदु पेळ्दपरु :—

उदयेणक्खे चडिदे गुणगारा एव होंति सव्वत्थ ।
अवसेसभावठाणेणक्खे संचारिदे खेवा ॥८३४॥

उदयेनाक्षे चळिते गुणकारा एव भवंति सर्व्वत्र । अवशेषभावस्थानेनाऽक्षे संचारिते क्षेपाः ॥ ५

औदयिकभावस्थानदोडनक्षं संचलिसल्पडुत्तिरला भंगंगळनितुं सर्व्वत्र प्रत्येकद्विसंयोगत्रि-संयोगादिगळनितुं गुणकारभंगंगळप्पुवु। औदयिकस्थानमं बिट्टु अवशेषभावस्थानंगळोडनक्ष संचारमागुत्तं विरला प्रत्येकद्विसंयोगादि भंगंगळनितुं राशिगे क्षेपकंगळप्पुवु। अदेंतेंदोडे मिथ्या-दृष्टियोळु चतुर्गतिय लिंग कषायलेश्या संजनितगुण्यभावंगळगे पूर्व्वोक्तचतुरुत्तरद्विशतभंगंगळगे २०४। इवक्के गुणकारंगळुं क्षेपंगळुमेतेंदोडे मिथ्यादृष्टिगे मिश्रभावस्थानंगळु पत्तुमोंभत्तुवु १० मितु द्विस्थानंगळु औदयिकभावदोळष्टस्थानमोंदु पारिणामिकभावस्थानमेरडुमप्पुविवं स्थापिसि

मि	औ	पा
१०	८	भ
९		अ २

यिल्लि औदयिकभावस्थानदोळिट्ट प्रत्येकभंगाक्षं गुणकारमक्कुं। शेष

भंगान् पृथगानीय स्वस्वराशौ निक्षिपेत् ॥८३३॥ उक्तगुण्यानां गुणकारक्षेपावुद्भावयति—

गुणस्थानं प्रति प्रागुक्तमिश्रौदयिकपारिणामिकभावस्थानानि भंगोत्पादनक्रमेण संस्थाप्य तत्र औदयिक-भावस्थानेनाक्षे चलिते सर्वत्र ये भंगास्ते गुणकारा एव स्युः। शेषभावस्थानैरक्षे संचारिते तु क्षेपाः स्युः। तद्यथा—

मिथ्यादृष्टौ तत्स्थानानीत्थं संस्थाप्य

मि	औ	पा
१०	८	भ
९	०	अ

अत्राष्टकस्य प्रत्येकभंगो गुणकारः शेषा-

उक्त गुण्योंके गुणकार और क्षेप कहते हैं—

गुणस्थानोंमें पूर्वमें कहे मिश्र औदयिक और पारिणामिक भावके स्थानोंको अक्ष संचार विधानके द्वारा भंग उत्पन्न करनेके लिए क्रमसे स्थापित करो। उनमें औदयिकभावके स्थान द्वारा अक्षका संचार करके जो भंग होते हैं उन्हें गुणकार जानो। और शेष भावोंके स्थानोंमें अक्ष संचार द्वारा जो भंग हों उन्हें क्षेपक जानो।

विशेषार्थ—भावोंके जो स्थान कहे हैं उनको यथासम्भव जुदा-जुदा कहना प्रत्येक भंग हैं। उनमें औदयिकके स्थान रूप प्रत्येक भंगको तो गुणकार जानना। शेष भावोंके स्थान रूप प्रत्येक भंगोंको क्षेप रूप जानना। जहाँ दो, तीन आदि भाव स्थानोंका संयोग किया जाये वहाँ दो संयोगी, तीन संयोगी आदि भंग होते हैं। उनमें भी जहाँ औदयिक भावके संयोग सहित दो संयोगी आदि भंग होते हैं उन्हें गुणकार रूप जानो। और जिनमें औद-यिक भावका संयोग न होकर अन्य भावोंके संयोगसे दो संयोगी आदि भंग हों उन्हें क्षेपक रूप जानो। जिससे गुणा किया जाता है उसे गुणकार कहते हैं और जिनको मिलाया जाता है उन्हें क्षेपक कहते हैं। सो पहले जो गुण्य कहे थे उनको कहते हैं।

मिश्रभावस्थानंगळोळेरडुं पारिणामिकभावस्थानंगळोळेरडुमंतु प्रत्येकभंगंगळु नाल्कुं क्षेपंगळळप्पुवु । प्र गु १ । क्षे ४ । द्विसंयोगभंगंगळुमंते औदयिकभावस्थानदोळिट्टक्षवोडने मिश्रभावस्थानंगळेरडुं पारिणामिकभावस्थानंगळेरडुमंतु द्विसंयोग भंगंगळु नाल्कुं गुणकारंगळप्पुवु शेषस्थानंगळ द्विसंयोगभंगंगळु मिश्रभावदशस्थानदोळिट्टक्षवोडने पारिणामिकभावस्थानंगळोळेरडुं मत्तं मिश्रभावनवस्थानदोळिट्टक्षं पारिणामिकभावस्थानंगळेरडरोळेरडु मंतु द्विसंयोगक्षेपंगळु नाल्कप्पुवु । द्वि गु ४ । क्षे ४ । त्रिसंयोगदोळमंते मिश्रभावदशस्थानदोळं औदयिकभावाष्टस्थानदोळं पारिणामिकभाव जीवभव्यत्वदोळमिती मूरेडेयोळिट्टक्षमों दु भंगमक्कु-। मा जीवभव्यत्वदोळिद्दंक्षं जीवाभव्यत्वक्के संचरिसिदोडल्लियों दु भंगं द्वितीयमक्कुं । मत्तं मिश्रभावदशस्थानदोळिद्दंक्षं नवस्थानक्के संचरिसिदोडदरोडनेयुमौदयिकाष्टस्थानदोळं पारिणामिकजीव भव्यत्वदोळु त्रिसंयोगतृतीयभंगमक्कु मा जीवभव्यत्वदोळिद्दंक्षं जीवाभव्यत्वक्के संचरिसिदोडे त्रिसंयोगचतुर्त्थभंगमक्कुमितु त्रिसंयोगगुणकारभंगंगळु नाल्कप्पुवु । त्रिसंयोगक्षेपंगळु संभविसवितु मिथ्यादृष्टियोळु गुणकारभंगंगळों भत्तु क्षेपंगळ ट्टप्पुवु । गुण्य २०४ । गु ९ । क्षे ८ । लब्धभंगंगळु १८४४ । मत्तं चक्षरून मिथ्यादृष्टिगे

मि	औ	पा
८	८	भ
		अ २

इल्लि प्रत्येकभंगक्षेपमों देयक्कुमेर्कों दोडे औदयिकपारिणामिककंगळ प्रत्येक भंगंगळ पुनरुक्तंगळप्पुवु । अदुकारणमागि । मत्तं द्विसंयोगगुणकार

इत्यत्वारः क्षेपाः । द्विसंयोगेऽष्टकेन दशकनवकयोर्द्वौ भव्यत्वाभव्यत्वयोर्द्वौ च गुणकाराः नवकदशकाभ्यां भव्यत्वाभव्यत्वयोर्द्वौ द्वौ क्षेपाः । त्रिसंयोगे दशकेनाष्टकेनाष्टके भव्यत्वाभव्यत्वाभ्यां द्वौ नवकेन च द्वौ गुणकाराः । क्षेपो नास्ति मिलित्वा प्रागुक्तचतुरग्रद्विशत्याः गुणकारा नव क्षेपः अष्टौ । चक्षुरूने तु तत्स्थानानीमानि—

मिथ्यादृष्टिमें मिश्रके दस और नवके दो स्थान, औदयिकका आठका एक स्थान और पारिणामिकके जीवत्व सहित भव्य-अभव्य रूप दो स्थान इस तरह पाँच स्थान हैं। तथा प्रत्येक भंग पाँच हैं उनमें-से औदयिकका आठ स्थान रूप एक प्रत्येक भंग तो गुणकार है। शेष दो मिश्रके और दो पारिणामिकके ये चार भंग क्षेप रूप हैं। तथा दो संयोगी भंगोंमें औदयिकके आठके स्थान सहित मिश्रके दस और नौके स्थान रूप दो भंग और पारिणामिकके दो भंग ये चार भंग तो गुणकार रूप हैं। मिश्रका दसके स्थान सहित पारिणामिकके भव्य-अभव्य रूप दो स्थानोंके दो भंग तथा मिश्रका नौके स्थान सहित उसी पारिणामिकके दो स्थानोंके संयोग रूप दो भंग ये चार क्षेप रूप हैं। त्रिसंयोगीमें औदयिकका आठका स्थान और मिश्रका दसके स्थान सहित पारिणामिकके दो स्थानोंके दो भंग तथा औदयिकका आठका स्थान और मिश्रका नौका स्थान सहित पारिणामिकके दो स्थानोंके दो भंग, ये चार भंग गुणकार रूप हुए। यहाँ औदयिकके संयोगके बिना त्रिसंयोगी भंग नहीं बनता इससे त्रिसंयोगीमें क्षेप नहीं है। ये सब मिलकर नौ गुणकार और आठ क्षेप हुए। पूर्वमें औदयिक भावोंके भंगोंको लेकर मिथ्यादृष्टिमें दो सौ चार गुण्य कहा था। उसको गुणकार नौसे गुणा करनेपर अठारह सौ छत्तीस हुए। उसमें आठ क्षेप मिलानेपर अठारह सौ चौवालीस भंग हुए। चक्षुदर्शन रहित मिथ्यादृष्टिमें मिश्रका आठ रूप स्थान, औदयिकका

भंगमो देयक्कुं। शेषद्विसंयोगगुणकारभंगंगळ् पुनरुक्तंगळ्। मत्तं द्विसंयोग क्षेपंगळ् मिश्रभावाष्ट-स्थानदोडने पारिणामिकभावस्थानद्वयदोळ् रडप्पुवु। द्वि गु १। क्षे २। त्रिसंयोगगुणकार भंगमेरडे-यक्कुं। त्रि गु २। कूडि चक्षुरून मिथ्यादृष्टियगुण्य पूर्व्वोक्तद्वादशभंगगळ्गे गुणकारभंगंगळ्मूरुं क्षेपंगळ्मूरप्पुवु। गुण्य भंग १२। गु ३। क्षे ३। लब्धभंगंगळ् ३९। उभयमिथ्यादृष्टिय सर्व्व भंगंगळ् सासिरदेंटु नूरेंभत्तमूरप्पुवु। १८८३॥ सासादनंगे

मि	औ	पा
११	७	भ
९		

इल्लि प्र गु १।

मि	औ	पा
८	८	भ
		अ

अत्र मिश्राष्टस्वेव प्रत्येकभंगो ग्राह्यः। शेषाणां पुनरुक्तत्वात्। स च क्षेपः।

द्विसंयोगेऽपि तथात्वाद् गुणकारः एकः। मिश्राष्टकस्य भव्यत्वाभव्यत्वाभ्यां द्वौ क्षेपौ। त्रिसंयोगे गुणकारावेव द्वौ। मिलित्वा प्रागुक्तद्वादशानां गुणकारास्त्रयः। क्षेपास्त्रयः। भंगा एकान्नचत्वारिंशत्। उभये मिलित्वा मिथ्यादृष्टौ सर्वभंगा त्र्यशीत्यग्राष्टादशशतानि।

आठ रूप स्थान और पारिणामिकके दो स्थान ये चार स्थान हैं। यहाँ प्रत्येक भंग चार हैं। उनमें-से एक मिश्रका आठ स्थान रूप प्रत्येक भंग ग्रहण करना, क्योंकि अन्य तीन प्रत्येक भंग पुनरुक्त हैं—चक्षुदर्शन सहित मिथ्यादृष्टिमें कहे पूर्व भंगोंके समान है। अतः एकका ही ग्रहण किया। सो क्षेप रूप है। दो संयोगीमें मिश्रका आठका स्थान और औदयिकका आठका स्थान इन दोनोंके संयोग रूप एक भंग गुणकार है। यहाँ औदयिकके स्थान और भव्य-अभव्य रूप पारिणामिकके दो स्थानोंके संयोगसे जो दो-दो संयोगी भंग होते हैं वे पुनरुक्त हैं अतः उनका ग्रहण नहीं किया। मिश्रका आठका स्थान और भव्य-अभव्य रूप पारिणामिकके संयोगसे जो दो-दो संयोगी भंग होते हैं वे क्षेपरूप हैं। त्रिसंयोगीमें मिश्रका आठका स्थान, औदयिकका आठका स्थान, और पारिणामिकके भव्य-अभव्यरूप दो स्थानोंके संयोगसे जो दो भंग होते हैं वे गुणकार रूप हैं। इस तरह चक्षु दर्शन रहित मिथ्यादृष्टीके जो पहले बारह गुण्य कहा था उसका तीन गुणकार और तीन क्षेप हुए। गुण्यको गुणकारसे गुणा करके क्षेप मिलानेसे उनतालीस भंग हुए। इस प्रकार चक्षु दर्शन सहित और रहित मिथ्यादृष्टिके सब भंग मिलकर अठारह सौ तिरासी होते हैं।

विशेषार्थ—प्रत्येक गुणस्थानमें जितने भावोंके स्थान पाये जाते हैं उतने तो प्रत्येक भंग जानना। औदयिकके स्थान गुणकार जानना। अन्य भावोंके स्थान क्षेपरूप जानना। दो तीन आदि भावोंके संयोगसे होनेवाले भावोंको दो संयोगी त्रिसंयोगी जानना। उनमें भी औदयिक भाव और अन्य किसी भावके संयोगसे जो दो संयोगी आदि भंग हों उन्हें गुणकार रूप जानना। औदयिक भाव बिना अन्य भावोंके संयोगसे जो दो संयोगी आदि भंग हों उन्हें क्षेपरूप जानना। पहले कहे भंगोंके समान जो पीछे भंग हों उन्हें पुनरुक्त जानकर उनको ग्रहण नहीं करना। ऐसा करनेपर जो गुणकार हों उन्हें जोड़कर पूर्वमें कहे गुण्यसे उनका गुणा करके जो प्रमाण हो उसमें क्षेपको मिलाकर जितना प्रमाण हो उतने भंग जानना।

क्षे ३। द्वि गु ३। क्षे २। त्रि गु २॥ अंतु सासादनंगे गुण्यभंगंगळु २०४। गु ६। क्षे ५। लब्ध भंगंगळु १२२९। मत्तं चक्षुरूनसासादनंगे

मि	औ	पा
८	७	भ

प्रक्षे १। द्विगु १। क्षे १ त्रि गु १। अंतु गुण्य १२। गु २ क्षे २। लब्ध भंगंगळु २६। उभयसासादन भंगंगळु १२५५। मिश्रंगे

मि	औ	पा
८	७	भ
९		

प्र गु १। क्षे ३। द्वि गु ३। क्षे २। त्रि गु २। अंतु मिश्रंगे पूर्वोक्त गुण्य भंगंगळु १८०। गु ६। क्षे ५। लब्धभंगंगळु १०८५। असंयतंगे

उ	मि	औ	पा
१	१२	७	भ
	१०		

प्र गु १। क्षे ४। द्वि गु ४।

सासादने—

मि	औ	पा
१०	७	भ
९		

अत्र प्र गु १ क्षे ३, द्वि गु ३ क्षे २, त्रि गु २, मिलित्वा गुण्यं २०४। गु ६ क्षे ५ भंगाः १२२९। पुनश्चक्षूरूने

मि	औ	पा
८	७	भ

अत्र प्र क्षे १ द्विगु १ क्षे १ त्रिगु १ मिलित्वा गुण्यं १२। गु २ क्षे २ भंगा २६ उभये १२५५।

मिश्रे—

मि	औ	पा
११	७	भ
९		

प्रगु १ क्षे ३। द्विगु ३ क्षे २। त्रिगु २ मिलित्वा गुण्यं १८० गु ६ से ५ भंगाः १०८५।

सासादनमें मिश्रके दस और नौके दो स्थान; औदयिकका सातका एक स्थान, पारिणामिकका भव्यरूप एक स्थान, ऐसे चार स्थान हैं। उनमें प्रत्येक भंगोंमें एक गुणकार तीन क्षेप हैं। दो संयोगीमें गुणकार तीन क्षेप दो, तीन संयोगीमें गुणकार दो। सब मिलकर गुणकार छह और क्षेप पाँच हुए। गुण्य दो सौ चारसे गुणा करनेपर बारह सौ उनतीस भंग हुए। चक्षुदर्शन रहित सासादनमें मिश्रका आठका स्थान, औदयिकका सातका स्थान, पारिणामिकका एक भव्यका स्थान ये तीन स्थान हैं। प्रत्येक भंगमें एक क्षेप है। शेष पुनरुक्त हैं। दो संयोगीमें गुणकार एक क्षेप एक, त्रिसंयोगीमें गुणकार एक मिलकर दो गुणकार हुए दो क्षेप हुए। गुण्य पूर्वोक्त बारहमें गुणा करनेसे सब भंग छब्बीस हुए। दोनों मिलानेपर सासादनमें सब भंग बारह सौ पचपन होते हैं। मिश्र गुणस्थानमें मिश्रके ग्यारह और नौके दो, औदयिकका सातका एक और पारिणामिकका एक भव्य ऐसे चार स्थान हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप तीन, दो संयोगीमें गुणकार तीन क्षेप दो, तीन संयोगीमें दो गुणकार, सब मिलकर छह गुणकार और पाँच क्षेप हुए। पूर्वोक्त गुण्य एक सौ अस्सीको छहसे गुणा करके, पाँच जोड़नेपर सर्व भंग एक हजार पचासी होते हैं।

क्षे ५। त्रि गु ५। क्षे २। च गु २। अंतु असंयतंगे गुण्य पूर्व्वोक्तभंग १८०। गु १२। क्षे ११। लब्ध भंग २१७१। क्षायिक सम्यग्दृष्टिगे

क्षा	मि	औ	पा
१	१२	७	भ
	१०		

इल्लि प्रत्येकगुणकारं पुनरुक्तमक्कुं। प्र। क्षे १। द्वि गु १। शेषभंगंगळ पुनरुक्तंगळु। द्वि। क्षे ३। त्रि गु ३। क्षे २। च गु २। अंतु क्षायिकासंयतंगे पूर्व्वोक्तगुण्यंगळु १०४। गु ६। क्षे ६। लब्धभंगंगळु ६३०। उभयासंयतभंगंगळु २८०१॥ इल्लि उपशम सम्यक्त्वदोडनेयुं क्षायिकसम्यक्त्वदोडनेयुं मिश्रभावस्थानदोळिर्द्द वेदकसम्यक्त्वं पोरगागि विवक्षितमें दु निश्चैसुवुदु॥ देशसंयतंगे

उ	मि	औ	पा
१	१३	६	भ
	११		०

इल्लि प्र गु १। क्षे ४। द्वि गु ४। क्षे ५। त्रि गु ५। क्षे २। च गु २। कूडि देशसंयतंगे गुण्यभंगंगळु पूर्व्वोक्तंगळु ७२। गु १२। क्षे ११। लब्धभंगंगळु ८७५। क्षायिकसम्यग्दृष्टि देशसंयतंगे

असंयते—

उ	मि	औ	पा
१	१२	७	भ
	१०		

प्र गु १ क्षे ४। द्विगु ४ क्षे ५। त्रिगु ५ क्षे २। च गु २ मिलित्वा गुण्यं १८० गु १२ क्षे ११ भंगाः २१७१।

क्षायिकसम्यग्दृष्टौ—

क्षा	मि	औ	पा
१	१२	७	भ
	१०		

अत्र प्रत्येकगुणकारः पुनरुक्तः। प्रक्षे १। द्विगु १ शेषाः पुनरुक्ताः। द्वि क्षे ३। त्रिगु ३ क्षे २। चगु २ मिलित्वा गुण्यं १०४। गु ६। क्षे ६ भंगाः ६३०। उभये भंगाः २८०१। अत्रोपशमक्षायिकसम्यक्त्वाभ्यां मिश्रभावस्थानं वेदकं विना विवक्षितं।

असंयतमें औपशमिकका उपशम सम्यक्त्व रूप एक, मिश्रके बारह और दस ये दो, औदयिकका सात रूप एक तथा पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक ऐसे पांच स्थान हैं। वहाँ प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप चार, दो संयोगीमें गुणकार चार क्षेप पांच, तीन संयोगीमें गुणकार पांच क्षेप दो, चार संयोगीमें गुणकार दो। सब मिलकर गुणकार बारह और क्षेप ग्यारह हुए। पूर्वोक्त गुण्य एक सौ अस्सीको बारहसे गुणा करके ग्यारह जोड़नेपर सब भंग इक्कीस सौ इकहत्तर होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टीके क्षायिकका क्षायिक सम्यक्त्व रूप एक, मिश्रके बारह और दस ये दो, औदयिकका सात रूप एक, पारिणामिक का भव्यत्व एक इस प्रकार पांच स्थान हैं। वहां प्रत्येक भंगमें एक क्षेप, दो संयोगीमें गुणकार एक क्षेप तीन, तीन संयोगीमें गुणकार तीन क्षेप दो, चार संयोगीमें गुणकार दो हैं। शेष गुणकार और क्षेप पुनरुक्त होते हैं। सब मिलकर गुणकार छह और क्षेप छह हुए। पूर्वोक्त गुण्य एक सौ चारको छहसे गुणा करके छह जोड़नेपर सब भंग छह सौ तीस होते हैं। दोनोंको मिलानेपर असंयतमें सब भंग अठाईस सौ एक होते हैं। यहाँ उपशम सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्वके साथ मिश्र भाव स्थान वेदक सम्यक्त्वके बिना विवक्षित हैं।

क्षा	मि	औ	पा
१	१३	६	भ
	११		

इल्लि प्रत्येकगुणकारं पुनरुक्तमक्कुं । क्षे १ । द्वि गु १ । शेषद्विसंयोग-गुणकारंगळु पुनरुक्तंगळु । द्वि क्षे ३ । त्रि गु ३ । शेषगुणकार भंगंगळु पुनरुक्तंगळ् । त्रि क्षे २ । च गु २ । कूडि क्षायिकदेशसंयतंगे गुण्यंगळु ३६ । गु ६ । क्षे ६ । लब्ध भंगंगळु २२२ । उभय-भंगंगळु देशसंयतंगे १०९७ । प्रमत्तसंयतंगे

उ	क्षा	मि	औ	पा
१	१	१४	६	भ
		१३		
		१२		
		११		

यिल्लि प्र गु १ । ५ क्षे ७ । द्वि गु ७ । क्षे १४ । त्रि गु १४ । क्षे ८ । च गु ८ । कूडि गुण्यभंगंगळु ३६ । गु ३० ।

देशसंयते—

उ	मि	औ	पा
१	१३	६	भ
	११		

अत्र प्रगु १ क्षे ४ । द्विगु ४ क्षे ५ । त्रिगु ५ क्षे २ । चगु २ मिलित्वा गुण्यं ७२ गु १२ क्षे ११ भंगाः ८७५ ।

क्षायिकसम्यक्त्वे—

क्षा	मि	औ	प
१	१३	६	भ
	११		

अत्र प्रत्येकगुणकारः पुनरुक्तः । क्षे १ । द्विगु १ शेषद्विसंयोगगुणकाराः पुनरुक्ताः । द्वि क्षे ३ । त्रिगु ३ शेषगुणकाराः पुनरुक्ताः । त्रि क्षे २ । चगु २ मिलित्वा गुण्यं ३६ गु ६ क्षे ६ भंगाः २२२ । उभयभंगाः १०९७ ।

देश संयतमें औपशमिक भावका उपशम सम्यक्त्व रूप एक, मिश्रके तेरह और ग्यारह-के दो, औदयिकका छहका एक तथा पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक, ऐसे पाँच स्थान हैं । उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप चार, दो संयोगीमें गुणकार चार, क्षेप पाँच, तीन संयोगीमें गुणकार पाँच क्षेप दो, चार संयोगीमें गुणकार दो । सब मिलकर गुणकार बारह और क्षेप ग्यारह हुए । पूर्वोक्त गुण्य बहत्तरको बारहसे गुणा करके ग्यारह जोड़नेपर सब भंग आठ सौ पचहत्तर होते हैं ।

क्षायिक सम्यक्त्वमें उपशमके स्थानमें क्षायिक सम्यक्त्व रूप क्षायिकका स्थान कहना । शेष पूर्ववत् है । वहाँ प्रत्येक भंगमें क्षेप एक, दो संयोगीमें गुणकार एक क्षेप तीन, तीन संयोगीमें गुणकार तीन क्षेप दो, चार संयोगीमें गुणकार दो । शेष गुणकार और क्षेप पुनरुक्त हैं । सब मिलकर गुणकार छह और क्षेप छह हुए । पूर्वोक्त गुण्य छत्तीससे गुणा करनेपर सब भंग दो सौ बाईस होते हैं । दोनोंको मिलाकर देशसंयतमें सब भंग एकहजार सत्तानबे होते हैं ।

क्षे २९। लब्ध भंगंगळु ११०९। अप्रमत्तसंयतंगे

उ	क्षा	मि	औ	पा
१	१	१४	६	भ

१३
१२
११

इल्लि प्र गु १। क्षे ७। द्वि गु ७। क्षे १४। त्रि गु १४। क्षे ८। चतु गु ८। कूडि अप्रमत्तंगे गुण्यभंगमूवत्तारु ३६। गु ३०। क्षे २९। लब्धभंगंगळु ११०९। अपूर्व्वकरणंगे क्षपकंगे

क्षा	मि	पा
२	१२	भ

११
१०
९

यिल्लि प्रगु १। क्षे ६। द्विगु ६। क्षे ९। त्रिगु ९। क्षे ४। च गु ४। कूडि क्षपकापूर्व्वं करणंगे गुण्य १२। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगळु २५९। अनिवृत्तिकरणक्षपकंगे सवेदभागेयोळु ५

प्रमत्ते—

उ	क्षा	मि	औ	पा
१	१	१४	६	भ

१३
१२
११

अत्र प्रगु १ क्षे ७। द्विगु ७ क्षे १४। त्रिगु १४ क्षे ८। चगु ८। मिलित्वा गुण्यं ३६ गु ३० क्षे २९ भंगाः ११०९।

अप्रमत्ते—

उ	क्षा	मि	औ	पा
१	१	१४	६	भ

१३
१२
११

अत्र प्रगु १ क्षे ७। द्विगु ७ क्षे १४। त्रिगु १४ क्षे ८। चगु ८। मिलित्वा गुण्यं ३६। गु ३० क्षे २९ भंगाः ११०९।

प्रमत्तमें औपशमिकका उपशम सम्यक्त्व रूप एक, क्षायिकका क्षायिक सम्यक्त्व रूप एक, मिश्रके चौदह, तेरह, बारह, ग्यारहके चार, औदयिकका छह रूप एक, पारिणामिकका भव्यत्व एक, ऐसे आठ स्थान हैं। उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप सात, दो संयोगीमें गुणाकार सात क्षेप चौदह, तीन संयोगीमें गुणाकार चौदह क्षेप आठ, चार संयोगीमें गुणाकार आठ। सब मिलकर गुणकार तीस और क्षेप उनतीस हुए। पूर्वोक्त गुण्य छत्तीससे गुणा करनेपर सब भंग ग्यारह सौ नौ होते हैं। १०

अप्रमत्तमें प्रमत्तकी तरह स्थान आठ, गुणकार तीस और क्षेप उनतीस होनेसे सब भंग ग्यारह सौ नौ होते हैं। १५

गु १२। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगलोळु २५९। अवेदभागेयोळु—

क्षा	मि	औ	पा
२	१२	५	भ
	११		
	१०		
	९		

इल्लि गुण्यं ४। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगळु ९९। क्रोधरहितभागेयोळु गुण्य ३। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगळु ७९। मानरहितभागेयोळु गुण्य २। गु २०। क्षे १९। ळब्धभंगंगलु ५९। मायारहितभागेयोळु गु १। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगळु ३९। सूक्ष्मसांपरायंगे गुण्यभंग १। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगळु ३९। क्षीणकषायंगे गुण्य १। गु २०। क्षे १९। लब्धभंगंगळु ३९। सयोगकेवलिभट्टारकंगे

क्षा	औ	पा
२	३	भ

इल्लि प्र गु १। क्षे २। द्वि २। क्षे १। त्रिसंगु १। कूडि गुण्य १।

क्षपकेऽपूर्वकरणे—

क्षा	मि	औ	पा
२	१२	६	भ
	११		
	१०		
	९		

अत्र प्रगु १ क्षे ६। द्विगु ६ क्षे ९। त्रिगु ९ क्षे ४। चगु ४ मिलित्वा गुण्यं १२। गु २० क्षे १९ लब्धभंगाः २५९।

अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे गुण्यं १२ गु २० क्षे १९ भंगाः २५९। अवेदभागे—

क्षा	मि	औ	पा
२	१२	५	भ
	११		
	१०		
	९		

अत्र गुण्यं ४ गु २० क्षे १९ भंगाः ९९। अक्रोधभागे गुण्यं ३

क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरण गुणस्थानमें क्षायिकका सम्यक्त्व चारित्ररूप एक स्थान, मिश्रके बारह, ग्यारह, दस, नौ ये चार स्थान, औदयिकका छहका एक स्थान, और पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक स्थान, इस प्रकार सात स्थान हैं। उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप छह, दो संयोगीमें गुणकार छह क्षेप नौ, तीन संयोगीमें गुणकार नौ क्षेप चार, चार संयोगीमें गुणकार चार। सब मिलकर गुणकार बीस और क्षेप उन्नीस हुए। पूर्वोक्त गुण्य बारहसे गुणा करनेपर सब भंग दो सौ उनसठ होते हैं।

अनिवृत्तिकरणमें वेद सहित भागमें अपूर्वकरणकी तरह चार भावोंके सात स्थान हैं। तथा गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस हैं। पूर्वोक्त गुण्य बारह हैं। अतः दो सौ उनसठ भंग होते हैं। वेद रहित भागमें भी उसी प्रकार चार भावोंके सात स्थान हैं। इतना विशेष है कि यहाँ औदयिकका पाँचका स्थान होता है। अपूर्वकरणकी तरह ही गुणकार बीस और क्षेप उन्नीस होते हैं। किन्तु गुण्य चार होनेसे भंग निन्यानबे होते हैं। क्रोध रहित भागमें भी

गु ४। क्षे ३। लब्धभंगंगळु ७। अयोगिभट्टारकंगेयुमिते प्र गु १। क्षे २। द्वि गु २। क्षे १। त्रि गु १ कूडि गुण्य १। गु ४। क्षे ३। लब्धभंगंगळु ७। सिद्ध परमेष्ठिगे

क्षा	पा
२	जी

इल्लि प्र क्षे २। द्विसंयोगक्षे १। कूडि भंगंगळु ३। उपशमकापूर्व्वकरणंगे

उ	क्षा	मि	औ	पा
२	१	१२	६	भ

११
१०
९

इल्लि प्र

गु २० क्षे १९ भंगाः ७९। अमानभागे गुण्यं २ गु २० क्षे १९ भंगाः ५९। अमायभागे गुण्यं १ गु २० क्षे १९ भंगाः ३९।

सूक्ष्मसाम्पराये गुण्यं १ गु २० क्षे १९ भंगाः ३९। क्षीणकषाये गुण्यं १ गु २० क्षे १९ भंगाः ३९।

सयोगे—

क्षा	औ	पा
१	३	भ

अत्र प्रगु १ क्षे २। द्विगु २ क्षे १। त्रिगु १। मिलित्वा गुण्यं १ गु ४ क्षे ३ भंगाः ७।

अयोगे—

क्षा	औ	पा
१	२	भ

अत्र प्रगु १ क्षे २। द्विगु २ क्षे १। त्रिगु १ मिलित्वा गुण्यं १ गु ४ क्षे ३ भंगाः ७।

सिद्धे—

क्षा	पा
१	जी

अत्र प्रक्षे २ द्विक्षे १ मिलित्वा भंगाः ३।

वेदरहित भागकी तरह जानना। अतः गुणकार बीस और क्षेप उन्नीस हैं। किन्तु गुण्य तीन होनेसे उन्यासी भंग होते हैं। मानरहित भागमें भी उसी प्रकार गुणकार बीस और क्षेप उन्नीस होते हैं। किन्तु गुण्य दो होनेसे भंग उनसठ होते हैं। मायारहित भागमें भी गुणकार बीस और क्षेप उन्नीस होते हैं। किन्तु गुण्य एक होनेसे भंग उनतालीस होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायमें भी उसी प्रकार गुणकार बीस और क्षेप उन्नीस हैं तथा गुण्य एक होनेसे उनतालीस भंग होते हैं।

क्षीणकषायमें भी उसी प्रकार गुणकार बीस, क्षेप उन्नीस और गुण्य एक होनेसे भंग उनतालीस होते हैं। सयोगीमें क्षायिकका एक, औदयिकका तीनरूप एक और पारिणामिक एक, इस प्रकार तीन स्थान हैं। उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप दो, दो संयोगीमें गुणकार दो क्षेप एक, तीन सयोगीमें गुणकार एक। सब मिलकर गुणकार चार क्षेप तीन और एक गुण्य होनेसे सात भंग होते हैं। अयोगीमें क्षायिकका एक, औदयिकका दो रूप एक तथा पारिणामिक एक, इस प्रकार तीन स्थान हैं। उनमें सयोगीकी तरह गुणकार चार क्षेप तीन और गुण्य एक होनेसे सात भंग होते हैं।

सिद्धोंमें क्षायिकका एक, पारिणामिकका जीवत्वरूप एक इस तरह दो स्थान हैं। वहाँ प्रत्येक भंगमें क्षेप दो, दो संयोगीमें क्षेप एक मिलकर तीन भंग होते हैं।

गु १। क्षे ७। द्वि गु ७। क्षे १५। त्रि गु १५। क्षे १३। चतु गु १३। क्षे ४। पंच गु ४। कूडि गुण्य १२। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु ५१९॥ अनिवृत्तिकरणंगे सवेदभागेयोळु गुण्य १२। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु ५१९। अनिवृत्तिय अवेदभागेयोळु गुण्यंगळु ४। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु १९९। क्रोधरहितभागेयोळु गुण्य ३। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु १५९। मानरहितभागेयोळु गुण्य २। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु ११९। मायारहितभागेयोळु गुण्य १। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु ७९। सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगे गुण्य १। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु ७९। उपशांतकषायंगे गुण्य १। गु ४०। क्षे ३९। लब्धभंगंगळु ७९॥ अनंतरमी गुण्यादिभंगंगळनुच्चरिसितोरिदपरु—

उपशमकेष्वपूर्वकरणे—

उ	क्षा	मि	औ	पा
२	१	१२	६	भ

अत्र प्रगु १ क्षे ७ द्विगु ७ क्षे १५।

११
१०
९

त्रिगु १५ क्षे १३। चगु १३ क्षे ४। पंगु ४। मिलित्वा गुण्यं १२ गु ४० क्षे ३९ भंगाः ५१९।

अनिवृत्तिकरणे सवेदभागे गुण्यं १२ गु ४० क्षे ३९ भंगाः ५१९। अवेदभागे गुण्यं ४ गु ४० क्षे ३९ भंगाः १९९। अक्रोधभागे गुण्यं ३ गु ४० क्षे ३९ भंगाः १५९। अमानभागे गुण्यं २ गु ४० क्षे ३९ भंगाः ११९। अमायभागे गुण्यं १ गु ४० क्षे ३९ भंगाः ७९।

सूक्ष्मसाम्पराये गुण्यं १ गु ४९ क्षे ३९ भंगाः ७९। उपशान्तकषाये गुण्यं १ गु ४० क्षे ३९ भंगाः ७९ ॥८३४॥ उक्तगुण्यादीनुच्चरति—

उपशमश्रेणीमें अपूर्वकरणसे लेकर उपशान्तकषायपर्यन्त उपशमका सम्यक्त्व चारित्र रूप एक स्थान है, मिश्रके बारह, ग्यारह, दस, नौके चार स्थान हैं, औदयिकका अपूर्वकरण और वेदसहित अनिवृत्तिकरणमें छहका तथा ऊपर उपशान्तकषायपर्यन्त पाँचका एक स्थान है, पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक स्थान है। ऐसे आठ-आठ स्थान हैं। उनमें प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप सात, दो संयोगीमें गुणकार सात, क्षेप पन्द्रह, तीन संयोगीमें गुणकार पन्द्रह क्षेप तेरह, चार संयोगीमें गुणकार तेरह क्षेप चार, पाँच संयोगीमें गुणकार चार। सब मिलकर गुणकार चालीस और क्षेप उनतालीस हुए। तथा अपूर्वकरणमें गुण्य बारह होनेसे भंग पाँच सौ उन्नीस हैं। अनिवृत्तिकरणके सवेद भागमें भी गुण्य बारह होनेसे भंग पाँचसौ उन्नीस होते हैं। वेदरहित भागमें गुण्य चार होनेसे भंग एक सौ निन्यानबे होते हैं। क्रोधरहित भागमें गुण्य तीन होनेसे भंग एक सौ उनसठ होते हैं। मानरहित भागमें गुण्य दो होनेसे भंग एक सौ उन्नीस होते हैं। मायारहित भागमें गुण्य एक होनेसे भंग उन्नासी होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायमें भी उन्नासी होते हैं। उपशान्त कषायमें भी भंग उन्नासी होते हैं ॥८३४॥

आगे उन गुण्य आदिको कहते हैं—

दुसु दुसु देसे दोसु वि चउरुत्तरदुसदमसीदिसहिदसदं ।
बावत्तरि छत्तीसा बारमपुव्वे गुणिज्जपमा ॥८३५॥

द्वयोर्द्वयोर्देशसंयतेद्वयोरपि चतुरुत्तरद्विशतमशीतिसहितशतं । द्वासप्ततिः षट्त्रिंशत् द्वादशापूर्व्वे गुण्यप्रमा ॥

बार चउतिदुगमेक्कं थूले तो इगि हवे अजोगित्ति ।
पुण बार बार सुण्णं चउसद छत्तीस देसोत्ति ॥८३६॥

द्वादश चतुस्त्रिद्व्येकं स्थूले तत एकं भवेदयोगि पर्य्यंतं । पुनर्द्वादश द्वादश शून्यं चतुरुत्तरशतं षट्त्रिंशद्देशसंयतपर्य्यंतं ॥

यो दितौदयिकभावगुणस्थानभंगंगळु द्वयोः मिथ्यादृष्टिसासादनरुगळोळु प्रत्येकं चतुरुत्तरद्विशतमक्कुं । मत्तं द्वयोः मिश्रासंयतरुगळोळु प्रत्येकमशीतिसहितशतमक्कुं । देशसंयते देशसंयतनोळु द्वासप्ततिगुण्यभंगंगळप्पुवु । द्वयोरपि प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळोळु प्रत्येकं गुण्यभंगंगळु षट्त्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु । अपूर्व्वे अपूर्व्वकरणनोळु गुण्यप्रमा गुण्यसंख्ये द्वादश पर्य्यरडप्पुवु । स्थूले अनिवृत्तिकरणनोळु क्रमदिदं भाग भागेगळोळु द्वादश चतुः त्रि द्वि एकगुण्यभंगंगळप्पुवु । ततः मेलयोगिगुणस्थानपर्य्यंतं प्रत्येकमेकगुण्यमेयक्कुं । पुनः मत्तं मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयत देशसंयतपर्य्यंतमिल्लि क्रमदिदं गुण्यभंगंगळु द्वादश द्वादश शून्यं चतुरुत्तरशतं षट्त्रिंशत्संख्येगळप्पुवु ॥ अनंतरमा गुणस्थानंगळोळु गुणकारक्षेपंगळं कंठोक्तं माडि संख्येयं पेळ्दपरु ।

वामे दुसु दुसु दुसु तिसु खीणे दोसुवि कमेण गुणगारा ।
णवछब्बारस तीसं वीसं वीसं चउक्कं च ॥८३७॥

वामे द्वयोर्द्वयोर्द्वयोस्त्रिषु क्षीणकषाये द्वयोरपि क्रमेण गुणकाराः । नवषड्द्वादश त्रिंशत् विंशतिर्विंशतिश्चतुष्कं च ॥

औदयिकस्य गुण्यभंगा मिथ्यादृष्ट्यादिद्वये चतुरग्रद्विशती । मिश्रादिद्वयेऽशीत्यग्रशतं । देशसंयते द्वासप्ततिः । प्रमत्तादिद्वये षट्त्रिंशत् । अपूर्वकरणे द्वादश । अनिवृत्तिकरणभागभागेषु द्वादश चत्वारः त्रयः द्वौ एकः । तत उपर्या अयोगातमेकैकः । पुनरा देशसंयतांतं द्वादश द्वादश शून्यं चतुरग्रशतं षट्त्रिंशत् ॥८३५-८३६॥

औदयिकके गुण्यरूप भंग मिथ्यादृष्टि आदि दो गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें दो सौ चार हैं । मिश्र आदि दोमें-से प्रत्येकमें एक सौ अस्सी हैं । देशसंयतमें बहत्तर हैं । प्रमत्त आदि दोमें छत्तीस हैं । अपूर्वकरणमें बारह हैं । अनिवृत्तिकरणके भागोंमें क्रमसे बारह, चार, तीन, दो, एक हैं । उससे ऊपर अयोगीपर्यन्त एक-एक हैं । पुनः मिथ्यादृष्टिसे देश संयत पर्यन्त चक्षुदर्शन रहित और क्षायिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा क्रमसे बारह-बारह, शून्य, एक सौ चार और छत्तीस गुण्यरूप भंग हैं ॥८३५-८३६॥

वामे मि। मिथ्यादृष्टियोळु गुणकारा नवगुणकारंगळोंभत्तप्पुवु । द्वयोः सासादनमिश्ररुगळोळु प्रत्येकं गुणकारंगळु षट् आरप्पुवु । द्वयोः गुणकारा द्वादश असंयतदेशसंयतरुगळोळु द्वादशगुणकारंगळप्पुवु । द्वयोः प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु गुणकारभंगंगळु त्रिंशत् प्रत्येकं मूवत्तप्पुवु । त्रिषु अपूर्व्वकरणानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायरुगळोळु विंशतिः प्रत्येकं विंशतिगळप्पुवु । क्षीणकषाये क्षीणकषायनोळु गुणकारंगळु विंशतिः विंशतिगळप्पुवु । द्वयोरपि सयोगायोगिगुणस्थानंगळोळु गुणकारंगळु प्रत्येकं चतुष्कं च नाल्कप्पुवु ।

पुणरवि देसोत्ति गुणो तिदुणभछच्छक्कयं पुणो खेवा ।
पुव्वपदेसडपंचयमेगारमुगतीसमुगुवीसं ॥८३८॥

पुनरपि देशसंयतपर्य्यंतं गुणास्त्रिद्विनभः षट्षट्कं पुनः क्षेपाः पूर्व्वपदेष्वष्ट पंचक एकादशैकान्नत्रिंशदेकान्नविंशतिः ॥

पुनरपि मत्तं गुणकारंगळु मिथ्यादृष्टयादि देशसंयतपर्य्यंतं त्रि द्वि नभः षट्षट्कंगळप्पुवु । पुनः क्षेपाः मत्ते क्षेपंगळु पूर्व्वपदेषु पूर्व्वोक्तवामे दुसु दुसु इत्यादिस्थानकंगळोळु क्रमदिंद मिथ्यादृष्टियोळेंटुं सासादनमिश्ररुगळोळैदप्पुवु । असंयतदेशसंयतरुगळोळु प्रत्येकं पन्नोंदप्पुवु । प्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु प्रत्येकमेकान्नत्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु । अपूर्व्वानिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायरुगळोळु एकान्नविंशतियप्पुवु । क्षीणकषायादिगळोळु क्षेपमं पेळ्दपरु :—

उगुवीसतियं तत्तो तिदुणभछच्छक्कयं च देसोत्ति ।
चउसुवसमगेसु गुणा तालं रूऊणया खेवा ॥८३९॥

एकान्नविंशतिः त्रयं ततस्त्रिद्विनभःषट् षट्कं च । देशसंयतपर्य्यंतं चतुर्ष्वपशमकेषु गुणाः चत्वारिंशद्रूपोनकाः क्षेपाः ॥

तद्गुणकाराः क्रमेण मिथ्यादृष्टौ नव सासादनादिद्वये षट् । असंयतादिद्वये द्वादश । प्रमत्तादिद्वये त्रिंशत् । अपूर्वादित्रये क्षीणकषाये च विंशतिः । सयोगायोगयोश्चत्वारः ॥८३७॥

पुनरप्यादेशसंयतांतं क्रमेण त्रयः द्वौ नभः षट् षट् । पुनः क्षेपाः पूर्वोक्तपदेषु मिथ्यादृष्टौ । सासादनमिश्रयोः पंच । असंयतादिद्वये एकादश । प्रमत्तादिद्वये एकान्नत्रिंशत् । अपूर्वकरणादित्रये एकान्नविंशतिः ॥८३८॥

उन गुण्योंके गुणकार क्रमसे मिथ्यादृष्टिमें नौ, सासादन आदि दोमें छह, असंयत आदि दोमें बारह, प्रमत्त आदि दोमें तीस, अपूर्वकरण आदि तीनमें तथा क्षीण कषायमें बीस, सयोगी और अयोगीमें चार हैं ॥८३७॥

पुनः चक्षुदर्शन रहित और क्षायिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा देशसंयत पर्यन्त गुणकार क्रमसे तीन, दो, शून्य, छह, छह जानना। पुनः गुण्यको गुणकारसे गुणा करके जो प्रमाण आवे उसमें मिलाये जानेवाले क्षेप पूर्वोक्त स्थानोंमें-से मिथ्यादृष्टिमें आठ, सासादन और मिश्रमें पांच, असंयत आदि दोमें ग्यारह, प्रमत्त आदि दोमें उनतीस और अपूर्वकरण आदि तीनमें उन्नीस हैं ॥८३८॥

क्षीणकषायनोळ् एकान्नविंशतिक्षेपंगळप्पुवु । सयोगायोगिकेवलिगळोळु त्रयः क्षेपंगळु मूरु मूरप्पुवु । ततः मत्ते मिथ्यादृष्टयादिदेशसंयतपर्य्यंतं क्रमदिवं क्षेपंगळु त्रि द्वि नभः षट् षट्कंगळप्पुवु । नाल्कुमुपशमकगुणस्थानंगळोळु गुणकारंगळु प्रत्येकं चत्वारिंशत्प्रमितंगळं एकोनचत्वारिंशत्क्षेपंगळप्पुवु ।

अनंतरमुक्तगुण्यगुणकारंगळं गुणि सिक्षेपंगळं कूडिकोंड मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थानंगळोळ् भावस्थानभंगसमुच्चयसंख्येयं पेळ्दपरु ।

मिच्छादिठाणभंगा अट्ठारसया हवंति तेसीदा ।
बारसया पणुवण्णा सहस्ससहिया हु पणसीदा ॥ ८४०॥

मिथ्यादृष्टयादिस्थानभंगाः अष्टादशशतं च भवंति त्र्यशीतिः । द्वादशशतं पंचपंचाशत् सहस्रसहिताः खलु पंचाशीतिः ॥

मिथ्यादृष्टियोळु उत्तरस्थानभंगंगळु सासिरदेंटु नूरेण्भत्तमूरप्पुवु । १८८३ । सासादनंगे सासिरदिन्नूरप्पत्तय्दपुवु । १२५५ । मिश्रंगे सासिरदेण्भत्तय्दप्पुवु । १०८५ ।

असंयतादिगळोळु पेळ्दपरु :—

रूवहियडवीससया सगणउदा दससया णवेणहिया ।
एक्कारसया दोण्हं खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८४१॥

रूपाधिकाष्टाविंशतिशतानि सप्तनवतिर्द्वंशशतं नवभिरधिकमेकादशशतं द्वयोः क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोळु येरडु सासिरदेंटुनूरोंदु स्थानभंगंगळप्पुवु । २८०१ ॥ देशसंयतंगे सासिरद तोंभत्तेळु स्थानभंगंगळप्पुवु । १०९७ ॥ द्वयोः प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरुगळोळ् प्रत्येकं सासिरदनूरोंभत्तु स्थानभंगंगळप्पुवु । प्र ११०९ । अप्र ११०१ ।

क्षीणकषाये एकान्नविंशतिः । सयोगायोगयोः त्रयः । पुनः आ देशसयतान्तं पुनस्त्रयः द्वौ नभ षट् षट् चतुर्षूपशामकेषु प्रत्येकं गुणकाराः चत्वारिंशत् । क्षेपा एकोनचत्वारिंशत् ॥८३९॥

प्रागुक्तगुण्यगुणकारान् गुणयित्वा क्षेपेषु निक्षिप्तेषु उत्तरभावस्थानभंगा मिथ्यादृष्टौ त्र्यशीत्यग्राष्टादशशतानि । सासादने पंचपंचाशदग्रद्वादशशतानि । मिश्रे पंचाशीत्यग्रदशशतानि ॥८४०॥

असंयते एकाग्राष्टाविंशतिशतानि । देशसंयते सप्तनवत्यग्रदशशतानि । प्रमत्तादिद्वये नवाग्रैकादशशतानि ।

क्षीण कषायमें उन्नीस, सयोगी अयोगीमें तीन हैं । पुनः चक्षुदर्शनरहित और क्षायिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा देशसंयत पर्यन्त तीन, दो, शून्य, छह, छह क्षेप हैं । उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें गुणकार चालीस तथा क्षेप उनतालीस हैं ॥८३९॥

पूर्वोक्त गुण्योंको गुणकारोंसे गुणा करके उनमें क्षेप मिलानेपर उत्तर भावोंके स्थानोंके भंग मिथ्यादृष्टीमें अठारह सौ तिरासी, सासादनमें बारह सौ पचपन तथा मिश्रमें एक हजार पच्चासी होते हैं ॥८४०॥

असंयतमें अठाईस सौ एक, देश संयतमें दस सौ सत्तानबे, प्रमत्त आदि दो में ग्यारह

क्षपकरोळु यथाक्रमदिंदं पेळ्दपेमेंदु पेळ्दपरु :—

पुव्वे पंचणियट्टी सुहुमे खीणे दहाण छव्वीसा ।
तत्तियमेत्ता दस अड छच्चदुचदु चदु य एगूणं ॥८४२॥

पूर्व्वे पंचानिवृत्तिषु सूक्ष्मे क्षीणकषाये दशानां षड्विंशतिः । तावन्मात्रं दशाष्टषट्चतुश्चतुश्चतुश्चैकोनं ॥

पूर्व्वे द्वितीयानिवृत्तिकरणापेक्षेयिंदं पूर्व्वमप्पपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु क्षपकापूर्व्वकारणनोळु दशानां षड्विंशतिः इन्नूररुवत्तु एकोनं वोंदु गुंदुगुं । २५९ ॥ पंचानिवृत्तिषु अनिवृत्तिकरणगुणस्थानदोळु क्षपकानिवृत्तिकरणपंचभागंगळोळु प्रथमभागानिवृत्तिकरणनोळु तावन्मात्रमेकोनं दशषड्विंशतियोळोंदुगुंविदनितेयक्कुं । २५९ ॥ द्वितीयभागानिवृत्तिकरणक्षपकनोळु दशदशैकोनं दशप्रमितदशंगळोळोंदुकुंदुगुं । ९९ ॥ तृतीयभागानिवृत्तिक्षपकनोळु दशाष्टैकोनं दशप्रमिताष्टकदोळोंदुगुंदुगुं । ७९ ॥ चतुर्त्थभागानिवृत्तिकरणक्षपकनोळु दशषडेकोनं दशप्रमितषट्कंगळोळोंदुगुंदुग । ५९ ॥ पंचमभागानिवृत्तिकरणक्षपकनोळ दशचतुरेकोनं दशप्रमितचतुष्कदोळोंदुगुंदुगुं । ३९ ॥ सूक्ष्मसांपरायक्षपकनोळु दशचतुरेकोनं दशप्रमितचतुष्कमेकोनमक्कुं । ३९ । क्षीणकषायनोळु दशचतुश्चैकोनं दशप्रमितचतुष्कमोंदुगुंदुगुं । ३९ ॥

उवसामगेसु दुगुणं रूवहियं होदि सत्त जोगिम्मि ।
सत्तेव अजोगिम्मि य सिद्धे तिण्णेव भंगा हु ॥८४३॥

उपशमकेषु द्विगुणं रूपाधिकं भवति सप्तयोगिनि । सप्तैवायोगिनि च सिद्धे त्रीण्येवं भंगाः खलु ॥

उपशमकापूर्व्वकरणादि नाल्कुं गुणस्थानंगळोळु क्षपकापूर्व्वादिचतुर्ग्गुणस्थानदोळु पेळ्द भंगंगळं द्विगुणिसि लब्धदोळेकरूपं कूडिदोडुपशमकरुगळु नाल्वग्गं स्थानभंगंगळप्पुवु । अल्लि अपूर्व्वकरणोपशमकंगे अपूर्व्वकरणक्षपकन भंग २५९ । मिव द्विगुणिसि २५९ । २ लब्धदोळेकरूपं

क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्ये ॥८४१॥

अपूर्वकरणे अनिवृत्तिकरणपंचभागेषु सूक्ष्मसाम्पराये क्षीणकषाये चेत्यष्टसु क्षपकेषु भंगाः क्रमेण दशगुणा षड्विंशतिरेकोना २५९ । पुनश्च तावन्तः २५९ । दशगुणा दशैकोनाः ९९ । दशगुणा अष्टावेकोनाः ७९ । दशगुणा षडेकोनाः ५९ । दशगुणाश्चत्वार एकोनाः । ३९ । दशगुणाश्चत्वार एकोनाः ३९ दशगुणाश्चत्वार एकोनाः ३९ भवन्ति ॥८४२॥

उपशामकेषु चतुर्षु खलु तदेव क्षपकचतुष्कोक्तं भंगप्रमाणं द्विगुणं रूपाधिकं स्यात् । सयोगे सप्त ।

सौ नौ होते हैं । क्षपक श्रेणीमें क्रमसे कहते हैं ॥८४१॥

अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणके पाँच भाग, सूक्ष्म साम्पराय, और क्षीण कषाय इन आठ क्षपकोंमें भंग क्रमसे दो सौ उनसठ, दो सौ उनसठ, निन्यानबे, सन्यासी, उनसठ, उनतालीस, उनतालीस उनतालीस होते हैं ॥८४२॥

उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें, क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें जितने भंग कहे हैं

कूडिदोडे ५१९। इंतु अपूर्व्वंकरणोपशमकंगे भंगंगळप्पुवु। अल्लिंगे अनिवृत्तिकरणोपशमकंगे ५१९। १९९। १५९। ११९। ७९॥ सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगे भंगंगळेप्पत्तोंभत्तु ७९। उपशान्तकषायंगे भंगंगलेप्पत्तांभत्तु ७९॥ सप्तयोगिनि सयोगकेवलिभट्टारकंगे भंगंगळु ७। सप्तैवायोगिनि च अयोगकेवलियोळु स्थानभंग ७। सिद्धे सिद्धरोळु त्रीण्येव भंगाः खलु मूरे भंगंगळप्पुवु। इंतुक्तगुण्यंगळगं गुणकारंगळगं क्षेपंगळगं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानमादियागि सर्व्वगुणस्थानंगळोळु पृथक्पृथग्रूपदिंदं समुच्चयं संदृष्टि वृत्तिकारनिं तोरल्पडुगुं :—

०	मि	च. रहि	सासा.	च. रहि	मिश्र	असं	क्षाइ	देश	क्षाइ
गुण्य	२०४	१२	२०४	१२	१८०	१८०	१०४	७२	३६
गुणकारा	९	३	६	२	६	१२	६	१२	६
क्षेप	८	३	५	२	५	११	६	११	६
भंग	१८	८३	१२	५९	१०८५	२८०	१	१०	९७

प्रम	अप्रम	अपूर्व	उपश	अनिवृ	क्षपकंगे—			
३६	३६	१२	१२	१२	४	३	२	१
३०	३०	२०	४०	२०	२०	२०	२०	२०
२९	२९	१९	३९	१९	१९	१९	१९	१९
११०९	११०९	२५९	५१९	२५९	९९	७९	५९	३९

अनिवृत्तिकरणोपशमकंगे					सूक्ष्म	उप.	क्षी	सयो	अयो	सिद्ध
१२	४	३	२	१	१	१	१	१	१	०
४०	४०	४०	४०	४०	२०	४०	४०	२०	४	४	०
३९	३९	३९	३९	३९	१९	३९	३९	१९	३	३	३
५१९	१९९	१५९	११९	७९	३९	७९	७९	३९	७	७	३

यितुत्तरभावस्थानगतभंगंगळं पेळ्दनंतरं पदगतभंगंगळं पेळ्दपरु :—

दुविहा पुण पदभंगा जादिगपदसव्वपदभवात्ति हवे।
जातिपदखयिगमिस्से पिंडेव य होदि सगजोगो ॥८४४॥

द्विविधाः पुनः पदभंगा जातिगपदसर्व्वपदभवा इति भवेत्। जातिपदक्षायिकमिश्रे पिंडे एव च भवति स्वसंयोगः ॥

१०

अयोगेऽपि सप्त। सिद्धे त्रय एव ॥८४३॥

उनके दूनेसे एक अधिक भंग होते हैं। सयोगीमें सात, अयोगीमें सात और सिद्धोंमें तीन ही भंग होते हैं ॥८४३॥

पुनः मत्ते पदभंगाः पदभंगंगळु द्विविधाः द्विविधंगळक्कुं। एंतेदोडे जातिपदभंगंगळेंबुं सर्व्वपदभवभंगंगळुमेंबितल्लि जातिपदंगळप्प क्षायिकभावदोळं मिश्रभावदोळं पिंडपदभावंगळोळु स्वसंयोगो भवति स्वसंयोगमक्कुं ॥

अयदुवसमगचउक्के एक्कं दो उवसमस्स जातिपदो ।
खइयपदं तत्थेक्कं खवगे जिणसिद्धगेसु दुपणचदू ॥८४५॥

असंयतोपशमक चतुष्के एकं द्वे उपशमस्य जातिपदानि । क्षायिकपदं तत्रैकं क्षपके जिनसिद्धेषु द्विपंचचत्वारि ॥

असंयतादिचतुष्कदल्लियुमुपशमकचतुष्कदोळु मुपशमद जातिपदंगळु क्रमदिंदं असंयत चतुष्कदोळुपशशमसम्यक्त्वजातिपदमेकमक्कु—। मुपशमकरोळुपशमसम्यक्त्वमुमुपशमचारित्रमुमेंबेरडुं जातिपदंगळक्कुं। तत्र आ अ संयतादिचतुष्कदोळ मुपसमक चतुष्कदोळं क्षायिक जातिपदमों दे क्षायिकसम्यक्त्वमक्कुं। क्षपकचतुष्कदोळं सयोगायोगिजिनरोळं सिद्धरोळं यथाक्रमदिंदं क्षायिकजातिपदमेरडुं अय्दुं नाल्कुमप्पुवु ॥

पुनः अनन्तरं पदभंगा उच्यन्ते ते च जातिपदभंगाः सर्वपदभंगाश्चेति द्विविधाः । तत्र जातिपदरूपक्षायिकभावमिश्रभावपिंडपदभावेषु स्वसंयोगो भवति ॥८४४॥

उपशमस्य जातिपदान्यसंयतादिचतुष्के उपशमसम्यक्त्वमित्येकं । उपशमचतुष्के उपशमसम्यक्त्वचारित्रे द्वे । क्षायिकजातिपदानि तदुभयचतुष्के क्षायिकसम्यक्त्वं । क्षपकचतुष्के द्वे । सयोगायोगयोः पंच । सिद्धे चत्वारि ॥८४५॥

इस प्रकार स्थान भंगको कहकर पदभंग कहते हैं—पद भंगके दो भेद हैं–जातिपद भंग और सर्वपद भंग। जहाँ एक जातिका ग्रहण करके जो भंग किये जाते हैं उन्हें जातिपद भंग कहते हैं। जैसे मिश्र भावमें ज्ञानके चार भेद होते हुए भी एक ज्ञान जातिका ग्रहण करना। और जो जुदे-जुदे सब भावोंको ग्रहण करके भंग किये जायें उन्हें सर्वपद भंग जानना। उनमें जातिपद रूप क्षायिकभाव और मिश्रभावमें पिण्डपद रूप जो भाव हैं उनमें स्वसंयोगी भंग भी होते हैं। जैसे क्षायिक भावमें लब्धिके पाँच भेद हैं अतः लब्धि पिण्डपदरूप है। मिश्रभावमें ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि पिण्डपदरूप हैं। सो इनमें जहाँ एक भेद होते अन्य भेद भी पाया जाता है जैसे दान होते लाभ पाया जाता है वहाँ स्वसंयोगी भी भंग होते हैं ॥८४४॥

औपशमिक भावका जातिपद असंयत आदि चारमें सम्यक्त्वरूप एक ही है। उपशम श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व और चारित्र दो जातिपद हैं। क्षायिक भावके जातिपद असंयत आदि चारमें क्षायिक सम्यक्त्व रूप एक है। क्षपक श्रेणीके चार गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व और चारित्र दो जातिपद हैं। सयोग और अयोगीमें सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लब्धि ये पाँच हैं। सिद्धोंमें चारित्रके बिना चार हैं ॥८४५॥

मिच्छतिए मिस्सपदा तिण्णि य अयदम्मि होंति चत्तारि ।
देशतिये पंचपदा तत्तो खीणोत्ति तिण्णि पदा ॥८४६॥

मिथ्यावृष्टित्रये मिश्रपदानि त्रीणि च असंयते भवंति चत्वारि । देशसंयतत्रये पंचपदानि ततः क्षीणकषायपर्य्यंतं त्रीणि पदानि ॥

मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रगळोळु प्रत्येकं मिश्रपदंगळु मूरुमूरप्पुवु । असंयतसम्यग्दृष्टियोळु नाल्कु मिश्रपदंगळप्पुवु । देशसंयतादि त्रयदोळु पंच पंच मिश्र पदंगळप्पुवु । अल्लिंद मेले क्षीणकषायपर्य्यंतं प्रत्येकं मूरुं मूरु मिश्रपदंगळप्पुवु ॥

मिच्छे अट्ठुदयपदा तो तिसु सत्तेव तो सवेदोत्ति ।
छस्सुहुमोत्ति य पणगं खीणोत्ति जिणेसु चदुतिदुगं ॥८४७॥

मिथ्यादृष्टावष्टोदयपदानि ततस्त्रिषु सप्तैव ततः सवेदपर्य्यंतं षट् सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं पंचकं क्षीणकषाय पर्य्यंतं जिनयोश्चतुस्त्रिद्वयं ॥

मिथ्यादृष्टियोळौदयिकपदंगळेंटप्पुवु । सासादनादित्रयदोळु प्रत्येकं सप्तपदंगळप्पुवु । मेले देशसंयतादि सवेदानिवृत्तिपर्य्यंतं प्रत्येकं षट्पदंगळप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंतं पंचपंचपदंगळप्पुवु । क्षीणकषायपर्य्यंतं सयोगरोळमयोगरोळं क्रमदिंदं नाल्कुं मूरुमेरडुमप्पुवु ॥

मिच्छे परिणामपदा दोण्णि य सेसेसु होदि एक्कं तु ।
जातिपदं पडि वोच्छं मिच्छादिसु भंगपिंडं तु ॥८४८॥

मिथ्यादृष्टौ परिणामपदे द्वे च शेषेषु भवत्येकं तु । जातिपदं प्रति वक्ष्यामि मिथ्यादृष्ट्यादिषु भंगपिंडं तु ॥

मिश्रपदानि मिथ्यादृष्ट्यादित्रये त्रीणि । असंयते चत्वारि । देशसंयतादित्रये पंच । तत उपरि क्षीणकषायान्तं त्रीणि ॥८४६॥

औदयिकपदानि मिथ्यादृष्टावष्टौ । सासादनादित्रये सप्त । उपरि सवेदानिवृत्त्यन्तं षट् । सूक्ष्मसाम्परायान्तं पंच । क्षीणकषायान्तं चत्वारि । सयोगे त्रीणि । अयोगे द्वे ॥८४७॥

मिश्रभावके जातिपद मिथ्यादृष्टि और सासादनमें अज्ञान, दर्शन, लब्धि ये तीन हैं। और मिश्र गुणस्थानमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि ये तीन हैं। असंयतमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व ये चार हैं। देशसंयत आदि तीनमें ज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व इन चारोंके साथ देशसंयतमें देशसंयम और प्रमत्त अप्रमत्तमें सरागसंयम होनेसे पाँच हैं। उससे ऊपर क्षीणकषायपर्यन्त ज्ञान, दर्शन, लब्धि तीन जातिपद हैं ॥८४६॥

औदयिकभावके जातिपद मिथ्यादृष्टिमें आठ हैं—गति, कषाय, लिंग, लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम और असिद्धत्व। सासादन आदिमें मिथ्यात्वके बिना सात हैं। ऊपर अनिवृत्तिकरणके सवेद भागपर्यन्त असंयमके बिना छह हैं। उससे ऊपर सूक्ष्मसाम्परायपर्यन्त वेदके बिना पाँच हैं। उससे ऊपर क्षीणकषायपर्यन्त कषायके बिना चार हैं। सयोगीमें अज्ञानके बिना तीन हैं तथा अयोगीमें लेश्या बिना दो हैं ॥८४७॥

मिथ्यादृष्टियोळु परिणामपदंगळेरडप्पुवु। तु मत्ते शेषगुणस्थानदोळं गुणस्थानातीत सिद्धपरमेष्ठिगळोळ मेकपदमेयक्कुं। संदृष्टि :—

०	मि	सा	मिश्र	अ	दे	प्र	अप्र	अपु उ	क्ष	अनि	क्ष	सू	क्ष	उ	क्षी	स	अ	सि
उप	०	०	०	१	१	१	१	२	०	२	०	२	२	२	०	०	०	०
क्षायि	०	०	०	१	१	१	१	१	२	१	२	१	०	१	२	५	५	४
मिश्र	३	३	३	४	५	५	५	३	३	३	३	३	३	३	३	०	०	०
औद	८	७	७	७	६	६	६	६	६	६	६	५	५	४	४	३	२	०
पारि	२	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

तु मत्ते अनंतरं जातिपदं प्रति मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानंगळोळु भंगपिंडमं पेळ्दपेनें तु पेळ्दपन दें ते दोडे—

उपशम	क्षाइक भावंगळु					क्षायोपशमिक भावंगळ्					
सं	चा	सं	चा	णा	दं	ल ५	णा ४	अ ३	द ३	ल ५	वे १	चा १	दे १

औदयिक भावंगळु								पारिणामिक		
ग ४	क ४	लिं ३	मि १	अ १	अ १	अ १	ले ६	भ १	अ १	जी १

इंतु जातिपदंगळु उपशमदोळेरडु २। क्षायिकजातिपदंगळु ५। क्षायोपशमिक जातिपदंगळ् ७। औदयिक जातिपदंगळु ८। पारिणामिक जातिपदंगळु मूरु ३। ई सामान्यपदंगळोळु मिथ्या-

---

परिणामपदानि मिथ्यादृष्टौ द्वे। तु— पुनः शेषगुणस्थानेषु सिद्धे चैकैकं स्यात्। तु पुनः—अनन्तरं जातिपदं प्रति गुणस्थानेषु भंगपिंडं वक्ष्ये तद्यथा—

जातिपदेषु द्व्युपशमकपंचक्षायिकसप्तक्षायोपशमिकाष्टौदयिकत्रिपारिणामिकेषु मिथ्यादृष्टौ

पारिणामिकभावके जातिपद मिथ्यादृष्टिमें भव्य-अभव्यरूप दो हैं। शेष गुणस्थानोंमें भव्यरूप एक ही है। सिद्धोंमें जीवत्वरूप एक ही है।

आगे जातिपदकी अपेक्षा गुणस्थानोंमें भंगोंका समुदाय कहते हैं—जातिपद दो औपशमिकके, पाँच क्षायिकके, सात क्षायोपशमिकके, आठ औदयिकके और तीन पारिणामिकके हैं। उनमें-से औदयिकके जितने जातिपद होते हैं उतने तो गुण्य जानना। उनके गुणकार और क्षेप कहनेके लिए प्रत्येक भंगादि करनेमें मिश्रादिके जितने जातिपद हों उतने भेद ग्रहण करना। किन्तु औदयिकका जातिपदका समूहरूप एक ही भेद ग्रहण करना। ऐसा करके प्रत्येक भंगमें औदयिकका भेद तो गुणकार रूप जानना तथा अन्य भावोंके भेद क्षेपरूप जानना। तथा दो संयोगी आदि भंगोंमें औदयिकका भेद और अन्य भावोंके भेद सहित जो भंग हों उन्हें गुणकार जानना। तथा औदयिक बिना अन्य

१.

उपशमभा	क्षायिकभाव					क्षायोपशमिकभाव						
सं चा	सं। चा। णा। दं। ल ५					णा ४। अ ३। द ३। ल ५। वे १ चा १। दे १						
औदयिकभाव								पारिणामिकभाव		
ग ४। क ४। लिं ३। मि १। अ १। अ १। अ १ ले ६।								भ १। अ १। जी १		

वृष्टि

मिश्र			औ	पारि	
अ	दं	ल	८	भ	अ

यिल्लि औदयिक भावंगळे दु जातिपदंगळु गुण्यंगळप्पुवु।

गुण्य ८। प्र १। क्षे ५। द्वि गु ५। क्षे ६। त्रि गु ६। स्वसंयोगक्षेपंगळु ३। इल्लि स्वसंयोगमे तें-दोडे जातिपदत्वदिंदं अज्ञानदोळं दर्शनदोळं लब्धिगळोळं संभविसुगुमे दरिउदु कूडि मिथ्यादृष्टिगे गुण्य ८। गु १२। क्षे १४। ई गुण्यगुणकारंगळं गुणिसि क्षेपंगळं कूडिद लब्धभंगंगळु ११०।

सासादनंगे

मिश्र			औदइ	पारि	
अ	द	ल	७	भ	

इल्लि गुण्यंगळु ७। प्र गु १ क्षे ४। द्वि गु ४। क्षे ३। त्रि सं गु ३। स्व सं क्षे ३ कूडि सासादनंगे गुण्य ७। गु ८। क्षे १०। लब्ध भंग ६६। मिश्रंगे

मिश्र			औ	पारि	
अ	दं	ल	८	भ	अ

औदयिकान्यष्टौ गुण्यं ८। प्रगु १ क्षे ५। द्विगु ५ क्षे ६। त्रिगु ६।

स्वसंयोगक्षेपाः कुज्ञानान्तरं दर्शने दर्शनान्तरं लब्धौ लब्ध्यन्तरमिति त्रयः ३। मिलित्वा गुण्यं ८ गु १२ क्षे १४ गुण्यगुणकारान् संगुण्य क्षेपेषु निक्षिप्तेषु लब्धभंगाः ११०।

सासादने

मिश्र			औ	पारि	
अ	दं	ल	७	भ	

गुण्यं ७ प्रगु १ क्षे ४। द्विगु ४ क्षे ३। त्रिगु ३ स्वसंक्षे ३

मिलित्वा गुण्यं ७। गु ८ क्षेप १० भंगाः ६६।

भावोंके संयोगसे जो दो संयोगी आदि भंग हों उन्हें क्षेपरूप जानना। तथा क्षायिक या मिश्रके एक जातिपदके भेदमें उसीके अन्य भेद जहाँ सम्भव हों वहां स्वसंयोगी भंग होते हैं उन्हें क्षेपरूप जानना। इस प्रकार गुण्यको गुणकारसे गुणा करके क्षेपको जोड़नेपर जितने हों, उतने भंग जानना।

सो मिथ्यादृष्टिमें मिश्रके अज्ञान, दर्शन, लब्धि ये तीन, औदयिकके आठ और पारिणामिकके भव्य-अभव्यरूप दो जातिपद हैं। उनमें-से औदयिकके आठ तो गुण्य जानना। प्रत्येक भंगमें औदयिकका आठका समूहरूप एक तो गुणकार जानना, और तीन मिश्रके, दो पारिणामिकके ये पाँच क्षेप जानना। दो संयोगीमें औदयिकके आठका समूहरूप एकका योग लिये तीन मिश्रके और दो पारिणामिकके ये पाँच तो गुणकार जानना। तथा तीन मिश्रके संयोग सहित दो पारिणामिकके भेदरूप छह दोसंयोगी क्षेप जानना। तीन संयोगी-में औदयिकके आठका समूहरूप एक और अभव्य पारिणामिकके इन दोनोंके साथ तीन मिश्रको मिलानेसे हुए छह भंग गुणकाररूप जानना। स्वसंयोगीमें एक अज्ञान होते दूसरा अज्ञान पाया जाता है जैसे कुमतिके साथ कुश्रुत आदि होते हैं। इसी तरह एक दर्शन होते अन्य दर्शन पाये जाते हैं। जैसे चक्षुदर्शन होते अन्य दर्शन होते हैं। इसी तरह एक लब्धि होते अन्य लब्धि होती है जैसे दान होते लाभादि होते हैं। ये तीन भंग क्षेप जानना। सब मिलकर गुण्य आठ, गुणकार बारह, क्षेप चौदह होते हैं। गुण्यको गुणकारसे गुणा करके क्षेपको जोड़नेपर एक सौ दस भंग होते हैं।

इसी प्रकार सासादनमें मिश्रभावके अज्ञान, दर्शन, लब्धि ये तीन, औदयिकके सात, पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक जातिपद है। उसमें गुण्य सात हैं। तथा प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप चार हैं। दो संयोगी भंगमें गुणकार चार क्षेप तीन हैं। तीन संयोगीमें

मिश्र			औदयि	पारिणा
णा	द	ल	७	भ

इल्लि गुण्य ७। प्र गु १। क्षे ४। द्वि गु ४। क्षे ३। त्रि गु ३। स्वसं क्षे ३। कूडि गुण्य ७। गु ८। क्षे १०। लब्ध भंग ६६॥ असंयतगे

उपश	क्षायि	मिश्र				औ	पारि
सं १	सं १	ण	द	अ	ल	७	भ १

इल्लि गुण्य ७। प्र गु १। क्षे ७। द्वि गु ७। क्षे १२। त्रि गु १२। क्षे ६। चतु गु ६। स्वसंक्षे ३। कूडि असंयतंगे गुण्य ७। गु २६। क्षे २८। लब्धभंगंगळु असंयतंगे २१०॥ देशसंयतंगे

उ	क्षा	मि				औ	पा
सं	सं	णा	द	ल	वे	चा	६	भ

यिल्लिगुण्यंगळु ६। प्र गु १। क्षे ८। द्वि गु ८। क्षे १५। त्रि गु १५। क्षे ८। च गु ८। स्वसं

मिश्रे

मिश्र			औ	पारि
णा। दं। ल			७	भ

गुण्यं ७ प्रगु १ क्षे ४। द्विगु ४ क्षे ३। त्रिगु ३ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ७ गु ८। क्षे १० भंगाः ६६।

असंयते

बं	उप	क्षा	मिश्र			औ	पा
सं १	सं १	सं १	णा। दं। ल।			७	भ

गुण्यं ७ प्रगु १ क्षे ७। द्विगु ७ क्षे १२। त्रिगु १२ क्षे ६ चगु ६ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ७ गु २६ क्षे २८ भंगाः २१०।

देशसंयतादित्रये प्रत्येकं

उप	क्षा	मिश्र				औ	पा
सं	सं	णा। दं। ल। वे चा।				६	भ

गुण्यं ६ प्रगु १ क्षे

गुणकार तीन है। स्वसंयोगीमें क्षेप तीन हैं। सब मिलकर गुण्य सात, गुणकार आठ और क्षेप दस होनेसे भंग छियासठ हैं।

मिश्र गुणस्थानमें मिश्रभावके ज्ञान, दर्शन, लब्धि ये तीन, औदयिकके सात, पारिणामिकके भव्यत्वरूप एक जातिपद है। यहाँ गुण्य सात हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप चार, दो संयोगी भंगमें गुणकार चार क्षेप तीन, तीन संयोगीमें गुणकार तीन, स्वसंयोगीमें क्षेप तीन। सब मिलकर गुण्य सात, गुणकार आठ, क्षेप दस होनेसे भंग छियासठ होते हैं।

असंयतमें औपशमिकका एक सम्यक्त्व, क्षायिकका एक सम्यक्त्व, मिश्रके तीन ज्ञान दर्शन लब्धि, औदयिकके सात, पारिणामिकका भव्यत्वरूप एक जातिपद है। वहां गुण्य सात हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप सात, दो संयोगीमें गुणकार सात क्षेप बारह, तीन संयोगीमें गुणकार बारह, क्षेप छह, चार संयोगीमें गुणकार छह। पाँच संयोगीका अभाव है क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व और उपशम सम्यक्त्वका संयोग नहीं होता। स्वसंयोगीमें क्षेप तीन। सब मिलकर गुण्य सात, गुणकार छब्बीस और क्षेप अठाईस होनेसे भंग दो सौ दस होते हैं।

देशसंयत आदि तीनमें औपशमिकका एक सम्यक्त्व, क्षायिकका एक सम्यक्त्व, मिश्रके चार—ज्ञान दर्शन लब्धि वेदक चारित्र, औदयिकके छह, पारिणामिक एक भव्यत्व जातिपद है। यहां गुण्य छह हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप आठ हैं। दो संयोगीमें

क्षे ३। कूडि देशसंयतंगे गुण्य ६। गु ३२। क्षे ३४। लब्ध भंग २२६॥ प्रमत्तसंयतंगेयु मिते गुण्य ६। गु ३२। क्षे ३४। लब्धभंग २२६॥ अप्रमत्तसंयतंगेयुमिते गुण्य ६। गु ३२। क्षे ३४। लब्ध भंग २२६॥ अपूर्व्वकरणोपशमकंगे

उपश	क्षायि	मिश्र			औदइ	पारि
स चा	सं १	णा	दं	ल	६	भ १

यिल्लि उपशमकापूर्व्वकरणंगे गुण्य ६। प्र गु १। क्षे ७। द्वि गु ७। क्षे १६। त्रि गु १६। क्षे १३। च गु १३। क्षे ३। पं गु ३। स्व सं क्षे ३। कूडि अपूर्व्वकरणंगे गुण्य ६। गु ४०। क्षे ४२। लब्ध भंग २८२। सवेदानिवृत्तिकरणोपशमकंगेयुमिते गुण्य ६। गु ४०। क्षे ४२। लब्ध भंग २८२॥ अवेदानिवृत्तिकरणोपशमकंगे

उपश	क्षायि	मिश्र			औद	पारि
सं चा	सं १	णा	दं	ल	५	भ

इल्लि अ वेदानिवृत्तिगे गुण्य ५। प्र गु १। क्षे ७। द्वि गु ७। क्षे २६। त्रिगु १६। क्षे १३। च गु १३। क्षे ३। पं गु ३। स्वसं क्षे ३। कूडि गुण्य ५। गु ४०। क्षे ४२। लब्धभंग २४२। इल्लि अनिवृत्तिकरणंगे कषाय-

---

८ द्विगु ८ क्षे १५। त्रिगु १५ क्षे ८ चगु ८ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ६ गु ३२ क्षे ३४ भंगाः २२६।

उपशमकेष्वपूर्वसवेदानिवृत्तिकरणयोः

उपश	क्षा	मिश्र			औ	पा
सं। चा	सं १	णा। दं। ल			६	भ

गुण्यं ६।

प्रगु १ क्षे ७ द्विगु ७ क्षे १६ त्रिगु १६ क्षे १३ चगु १३ क्षे ३ पंगु ३ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ६ गु ४० क्षे ४२ भंगाः २८२।

अवेदभागसूक्ष्मसाम्परायोः

उपश	क्षा	मिश्र			औ	पा
सं। चा	सं १	णा। दं। ल			५	भ

गुण्यं ५ प्रगु १ क्षे

गुणकार आठ, क्षेप पन्द्रह हैं। तीन संयोगीमें गुणकार पन्द्रह क्षेप आठ हैं। चार संयोगीमें गुणकार आठ हैं। स्वसंयोगीमें क्षेप तीन हैं। सब मिलकर गुण्य छह, गुणकार बत्तीस, क्षेप चौंतीस होनेसे भंग दो सौ छब्बीस हैं।

उपशम श्रेणीमें अपूर्वकरण और वेद सहित अनिवृत्तिकरणमें औपशमिकके दो—सम्यक्त्व और चारित्र, क्षायिकका एक सम्यक्त्व, मिश्रके तीन ज्ञान दर्शन लब्धि, औदयिकके छह और पारिणामिकका एक भव्यत्व ये जातिपद हैं। यहाँ गुण्य छह हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप सात हैं। दो संयोगीमें गुणकार सात क्षेप सोलह हैं। तीन संयोगीमें गुणकार सोलह क्षेप तेरह हैं। चार संयोगीमें गुणकार तेरह क्षेप तीन हैं। पाँच औपशमिक संयोगीमें गुणकार तीन हैं। यहाँ क्षायिक सम्यक्त्वके साथ चारित्र होनेसे पाँच संयोगी भी होता है। स्वसंयोगीमें क्षेप तीन हैं। सब मिलकर गुण्य छह, गुणकार चालीस और क्षेप बयालीस होनेसे भंग दो सौ बयासी होते हैं।

वेद रहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें औपशमिक दो सम्यक्त्व और चारित्र, क्षायिक एक सम्यक्त्व, मिश्र तीन ज्ञान दर्शन लब्धि, औदयिक पाँच, पारिणामिक एक भव्यत्व ये जातिपद हैं। गुण्य पाँच हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप सात हैं। दो संयोगीमें गुणकार सात क्षेप सोलह हैं। तीन संयोगीमें गुणकार सोलह क्षेप तेरह हैं। चार

रहितभागे संभविसदेकें दोडे कषाय जातिपदं विवक्षिसल्पट्टुदप्पुदरिंदं सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगेयुमिते गुण्य ५। गु ४०। क्षे ४२। लब्धभंग २४२॥ उपशांतकषायंगे—

उपश	क्षायि	मिश्र				औदइ		पारि
सं	चा	सं १	णा	दं	ल		४	भ १

यिल्लि गुण्य ४। प्र गु १। क्षे ७। द्वि गु ७। क्षे १६। त्रि गु १६। क्षे १३। चतु गु १३। क्षे ३। पं गु ३। स्व सं क्षे ३। कूडि उपशांतकषायं गुण्य ४। गु ४०। क्षे ४२। लब्धभंगंगळु २०२॥ क्षपकापूर्व्वकरणंगे

क्षाइ	मिश्र भाव				औद		पारि
सं	चा	णा	दं	ल		६	भ १

यिल्लि अपूर्व्वंकरणक्षपकंगे गुण्य ६। प्र गु १। क्षे ६। द्वि गु ६। क्षे ११। त्रि गु ११। क्षे ६। च गु ६। स्व सं क्षे ३। कूडिअपूर्वंकरणक्षपकंगे गुण्य ६। गु २४। क्षे २६। लब्धभंगंगळु १७०। क्षपकानिवृत्तिकरणसवेदभागेयोळुमिते गुण्य ६। गु २४। क्षे २६। लब्ध भंग १७०। वेदरहित भागेयोलु

क्षायि	मिश्र भावंग		औ	पा
सं	चा	णा दं	ल ५	भ १

गुण्य ५।

उपशान्तकषाये—

उपश	क्षा	मिश्र	औ	पा
सं । चा	सं १	णा । दं । ल	४	भ १

गुण्यं ४। प्रगु १ क्षे ७ द्विगु ७ क्षे १६ त्रिगु १६ क्षे १३ चगु १३ क्षे ३ पंगु ३ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ४ गु ४० क्षे ४२ भंगाः २०२।

क्षपकेष्वपूर्वसवेदानिवृत्तिकरणयोः

क्षायि	मिश्रभाव	औ	पारि
सं । चा	णा । दं । ल	६	भ १

गुण्यं ६। प्रगु १ क्षे ६ द्विगु ६ क्षे ११ त्रिगु ११ क्षे ६ चगु ६ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ६ गु २४ क्षे २६ लब्धभंगाः १७०।

संयोगीमें गुणकार तेरह क्षेप तीन हैं। पाँच संयोगीमें गुणकार तीन हैं। स्वसंयोगीमें क्षेप तीन हैं। सब मिलकर गुण्य पाँच, गुणकार चालीस, क्षेप बयालीस होनेसे भंग दो सौ बयालीस हैं। यहाँ कषायका जातिपद एक लिया है इससे कषायरहित भागोंके भेद नहीं किये हैं। उपशान्त कषायमें भी सूक्ष्म साम्परायकी तरह जातिपद हैं विशेष इतना है कि औदयिकके जातिपद चार हैं। अतः गुण्य चार होनेसे तथा गुणकार और क्षेप पूर्ववत् होनेसे भंग दो सौ दो होते हैं।

क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरण और वेद सहित अनिवृत्तिकरणमें क्षायिक दो सम्यक्त्व और चारित्र, मिश्र तीन ज्ञान दर्शन लब्धि, औदयिक छह और पारिणामिक एक भव्यत्व ये जातिपद हैं। यहाँ गुण्य छह हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक, क्षेप छह, दो संयोगीमें गुणकार छह क्षेप ग्यारह हैं। तीन संयोगीमें गुणकार ग्यारह क्षेप छह हैं। चार संयोगीमें गुणकार छह ह। स्वसंयोगीमें क्षेप तीन हैं। सब मिलकर गुण्य छह, गुणकार चौबीस और क्षेप छब्बीस होनेसे भंग एक सौ सत्तर होते हैं।

प्र गु १। क्षे ६। द्वि गु ६। क्षे ११। त्रि गु ११। क्षे ६। च गु ६। स्व सं क्षे ३। कूडि गुण्य ५। गु २४। क्षे २६। लब्ध भंग १४६। इल्लियुं क्षपकश्रेणियोळु अनिवृत्तिकरणक्षपकंगे कषायरहित भागे संभविसदु एकेंबोडे जातिपदविवक्षेयप्पुदरिंदं। सूक्ष्मसांपराय क्षपकंगेयुमिंते गुण्य ५। गु २४। क्षे २६। लब्ध भंग १४६। इल्लियुं क्षपक श्रेणियोळु अनिवृत्तिकरणक्षपंगे कषायरहित भागे संभविसदु। क्षीणकषायंगे कषायपदरहितमप्पुदरिंदं

क्षायि	मिश्र भाव	औदयि	पारि
सं चा	णा दं ल	४	भ १

यिल्लि गण्य ४। प्र गु १। क्षे ६। द्वि गु ६। क्षे ११। त्रि गु ११। क्षे ६। च ग ६। स्व सं क्षे ३। कूडि गुण्य ४। गु २४। क्षे २६। लब्ध भंग १२२॥

सयोगकेवलिभट्टारकंगे

क्षायिक भावंगळु					औद	पारि
णा	दं	सं	चा	ल	४	भ १

इल्लि गुण्य ३। प्र गु १। क्षे ६। द्वि गु ६। क्षे ५। त्रि गु ५। स्वसंयोगक्षेपं लब्धिगळोळोंदु १ कूडि गुण्य ३। गु १२। क्षे १२। लब्ध भंग ४८॥ अयोगिकेवलिभट्टारकंगे

क्षायिकभावं					औ	पा
णा	दं	सं	चा	ल	२	भ

इल्लि गुण्य २।

अवेदभागसूक्ष्मसाम्परायय़ोः

क्षा	मिश्रभाव	औ	पा
स । चा	णा । दं । ल	५	भ १

गुण्यं ५। प्रगु १ क्षे ६ द्विगु ६ क्षे ११ त्रिगु ११ क्षे ६ चगु ६ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ५ गु २४ क्षे २६ भंगाः १४६। नात्राप्य-कषायभागः।

क्षीणकषाये कषायपदं नेति

क्षायि	मिश्रभाव	औ	पा
स । चा	णा । दं । ल	४	भ १

गुण्यं ४। प्रगु १ क्षे ६ द्विगु ६ क्षे ११ त्रिगु ११ क्षे ६ चगु ६ स्वसंक्षे ३ मिलित्वा गुण्यं ४ गु २४ क्षे २६ भंगाः १२२।

सयोगे

क्षायिकभाव					औ	पा
णा । दं । सं । चा । ल					३	भ

गुण्यं ३ प्रगु १। क्षे ६। द्विगु ६ क्षे ५। त्रिगु ५। स्वसंयोगक्षेपो लब्धिष्वेकः मिलित्वा गुण्यं ३ गु १२ क्षे १२ भंगाः ४८।

वेदरहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्परायमें भी जातिपद अपूर्वकरणकी तरह है। विशेष इतना है कि औदयिकके पाँच जातिपद होनेसे गुण्य पाँच हैं तथा गुणकार चौबीस और क्षेप छब्बीस हैं। अतः भंग एक सौ छियालीस हैं। क्षीण-कषायमें भी जातिपद इसी प्रकार है। किन्तु औदयिकके चार जातिपद होनेसे गुण्य चार हैं। गुणकार चौबीस और क्षेप छब्बीस हैं। अतः भंग एक सौ बाईस हैं। सयोगीमें क्षायिकके पाँच ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व चारित्र लब्धि, औदयिकके तीन और पारिणामिकका एक जातिपद है। यहाँ गुण्य तीन हैं। प्रत्येक भंगमें गुणकार एक क्षेप छह हैं। दो संयोगीमें गुणकार छह क्षेप पाँच हैं। तीन संयोगीमें गुणकार पाँच हैं। स्वसंयोगीमें किसी एक क्षायिक लब्धिके साथ अन्य क्षायिक लब्धि पायी जानेसे क्षेप एक है। सब मिलकर गुण्य तीन, गुणकार बारह और क्षेप बारह होनेसे भंग अड़तालीस हैं।

प्र गु १ । क्षे ६ । द्वि गु ६ । क्षे ५ । त्रि गु ५ । स्वसंक्षे १ । कूडि गुण्य २ । गुण १२ । क्षे १२ । लब्धभंग ३६ । सिद्धपरमेष्ठिगे

क्षायिक भा			
सं	ज्ञा	द	ल	जी

इल्लि प्रक्षे ५ । द्विक्षे ४ । कूडि भंगंगळु ९ ॥ यितुक्त गुण्य गुणकारक्षेपमंगमिवर संख्येयं पेळ्दपरः—

अट्ठगुणिज्जा वामे तिसु सग छच्चउसु छक्क पणगं च ।
थूले सुहुमे पणगं दुसु चउ तियदुगुमदो सुण्णं ॥८४९॥

अष्टौ गुण्यं वामे त्रिषु सप्त षट्चतुर्षु षट्कपंचकं च । स्थूले सूक्ष्मे पंचकं द्वयोश्चत्वारि त्रयं द्वयमतः शून्यं ॥

यितु गुण्यंगळु मिथ्यादृष्टियोळ्दुं सासादनमिश्रसंयतरुगळोळ्कुं देशसंयत प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत क्षपकोपशमकापूर्वक :

०	मिथ्या	सासा	मिश्र	असं	देश	प्रम	अप्रम	अपूक्ष	उपश
गुण्य	८	७	७	७	६	६	६	६	६
गुणका	१२	८	८	२६	३२	३२	३२	२४	४०
क्षेपग	१४	१०	१०	२८	३४	३४	३४	२६	४२
भंग	११०	६६	६६	२१०	२२६	२२६	२२६	१७०	२८२

अनिक्ष	अनि उ	सू क्ष	सू उ	उप क	क्षीण	सयो	अयो	सिद्ध
६।५	६।५	५	५	४	४	३	२	०
२४	४०	२४	४०	४०	२४	१२	१२	०
२६	४२	२६	४२	४२	२६	१२	१२	९
१७०	२८२	१४६	२४२	२०२	१२२	४८	३६	९
१४६	२४२							

अयोगे

क्षायिकभाव					औ	पा
णा । दं । स । चा । ल					२	भ

गुण्यं २ प्रगु १ क्षे ६ द्विगु ६ क्षे ५ त्रिगु ५ स्वसंक्षे १ मिलित्वा गुण्यं २ गु १२ क्ष १२ भंगाः ३६ ।

सिद्धे

क्षायिक				पा
सं । णा । दं । ल				जी

प्र क्षे ५ । द्वि क्षे ४ । मिलित्वा भंगाः ९ ॥८४८॥ उक्तगुण्यादिसंख्या आह—

अयोगीमें भी जातिपद सयोगीकी तरह हैं । किन्तु औदयिकके दो ही जातिपद होनेसे गण्य दो हैं । और गुणकार बारह तथा क्षेप बारह होनेसे भंग छत्तीस हैं ।

सिद्धोंमें क्षायिकके चार—सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन और तीर्थरूप लब्धि तथा पारिणामिकका एक जीवत्व जातिपद हैं । प्रत्येक भंगमें क्षेप पाँच हैं । दो संयोगीमें क्षेप चार हैं । सब मिलकर नौ भंग होते हैं ॥८४८॥

आगे गुण्य आदिकी संख्या कहते हैं—

रणरुगळोळ् गुण्यंगळारारप्पुवु। अनिवृत्तिकरणक्षपकोपशमकरुगळोळ् प्रत्येकमारुमत्तुं गुण्यंगळप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायक्षपकोपशमकरुगळोळ् प्रत्येकं पंचकं गुण्यमक्कुं। उपशांतकषायक्षीणकषायरुगळोळ् प्रत्येकं नाल्कु नाल्कु गुण्यंगळप्पुवु। सयोगरोळ् मूरुगुण्यंगळप्पुवु। अयोगिगळोळेरडु गुण्यंगळप्पुवु। मेलें सिद्धरोळ् शून्यमक्कुं॥

बारट्ठट्ठ छव्वीसं तिसु तिसु बत्तीसयं च चउवीसं।
तो तालं चउवीसं गुणगारा बार बार णभं ॥८५०॥ ५

द्वादशाष्टाष्टषट्विंशतयः त्रिषु त्रिषु द्वात्रिंशच्च चतुर्विंशतिः ततश्चत्वारिंशत् चतुर्विंशतिः गुणकाराः द्वादशद्वादशनभः॥

गुणकारंगळु मिथ्यादृष्टियोळपन्नेरडुं सासादनमिश्ररुगळोळेंटेंटुं असंयतनोळिप्पत्तारुं देशसंयतादिगुणस्थानत्रयदोळ् प्रत्येकं मूवत्तेरडुगळुं अपूर्वकरणादिक्षपकत्रयदोळ् प्रत्येकं चतुर्विंशतिगळुं अल्लिंद मेलें उपशमकचतुष्टयदोळ् प्रत्येकं नाल्वत्तुगळुं क्षीणकषायनोळ् चतुर्विंशतियुं सयोगरोळ् पन्नेरडुमयोगिगळोळ् पन्नेरडुं सिद्धरोळ् शून्यमक्कुं॥ १०

वामे चउदस दुसु दस अडवीसं तिसु हवंति चोत्तीसं।
तिसु छव्वीस दुदालं खेवा छव्वीस बार बारणवं ॥८५१॥

वामे चतुर्दश द्वयोर्दश अष्टाविंशतिः त्रिषु भवंति चतुस्त्रिंशत्। त्रिषु षड्विंशतिर्द्विचत्वारिंशत् क्षेपाः षड्विंशतिर्द्वादश द्वादशनव॥ १५

गुण्यानि मिथ्यादृष्टावष्टौ। सासादनादित्रये सप्त। देशसंयतादित्रये क्षपकोपशमकापूर्वकरणयोश्च षट्। तदनिवृत्तिकरणयोः षट्पंच। सूक्ष्मसाम्परायिकयोः पंच। उपशान्तक्षीणकषाययोश्चत्वारि। सयोगे त्रीणि। अयोगे द्वे। सिद्धे शून्यं ॥८४९॥

गुणकारा मिथ्यादृष्टौ द्वादश। सासादनादिद्वये अष्टावष्टौ। असंयते षड्विंशतिः। देशसंयतादित्रये द्वात्रिंशत्। क्षपकापूर्वकरणादित्रये चतुर्विंशतिः। तत उपशमकचतुष्के चत्वारिंशत्। क्षीणकषाये चतुर्विंशतिः। सयोगायोगयोर्द्वादश। सिद्धे शून्यं ॥८५०॥ २०

मिथ्यादृष्टिमें आठ, सासादन आदि तीनमें सात, देशसंयत आदि तीनमें और क्षपक व उपशमक अपूर्वकरणमें छह, अनिवृत्तिकरणमें छह और पाँच, सूक्ष्मसाम्परायमें पाँच, उपशान्तकषाय और क्षीणकषायमें चार, सयोगीमें तीन और अयोगीमें दो गुण्यका प्रमाण है। सिद्धोंमें गुण्य नहीं है ॥८४९॥ २५

मिथ्यादृष्टिमें बारह, सासादन आदि दोमें आठ-आठ, असंयतमें छब्बीस, देशसंयत आदि तीनमें बाईस, क्षपक अपूर्वकरण आदि तीनमें चौबीस, उपशमश्रेणीके चार गुणस्थानोंमें चालीस-चालीस, क्षीणकषायमें चौबीस, सयोगी और अयोगीमें बारह गुणकार हैं। सिद्धोंमें गुणकार नहीं हैं ॥८५०॥ ३०

क्षेपंगळु मिथ्यादृष्टियोळु पदिनाल्कु। सासावनमिश्ररुगळोळु प्रत्येकं पत्तुं असंयतनोळु अष्टाविंशति देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु प्रत्येकं मूवत्तनाल्कु। अपूर्व्वकरणादि क्षपकत्रयदोळु प्रत्येकं षड्विंशतियुं उपशमकचतुष्टयदोळु प्रत्येकं नाल्वत्तेरडुगळुं क्षीणकषायनोळु षड्विंशतियुं सयोगरोळु द्वादशमुमयोगिगळोळु द्वादशमुं सिद्धरोळु नवंगळुमप्पुवु ॥

एक्कारं दसगुणियं दुसु छावट्ठि दसाहियं विसयं ।
तिसु छव्वीसं विसयं वेदुवसामोत्ति दुसयबासीदी ॥८५२॥

एकादशदशगुणिताः द्वयो षट्षष्टिर्दशाधिकं द्विशतं । त्रिषु षड्विंशतिर्द्विशतं वेदकोपशमकपर्य्यंतं द्विशतद्वयशीतिः ॥

मिथ्यादृष्टियोळु नूरपत्तु भंगंगळप्पुवु। सासादननोळं मिश्रनोळं प्रत्येकमरुवत्तारुगळप्पुवु। असंयतनोळु दशाधिकद्विशतभंगंगळप्पुवु। देशसंयतप्रमत्ताप्रमत्तरुगळोळु प्रत्येकं इन्नूरिप्पत्तारुगळप्पुवु। उपशमकापूर्व्वकरण सवेदानिवृत्तिकरणरोळु प्रत्येकं यिन्नूरेण्भत्तेरडप्पुवु ॥

बादालं बिण्णिसया तत्तो सुहुमोत्ति दुसय दोसहियं ।
उवसंतम्मि य भंगा खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८५३॥

द्विचत्वारिंशद्द्विशतं ततः सूक्ष्मपर्य्यंतं द्विशतं द्विशतसहितं उपशांते च भंगाः क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥

ततः आ सवेदानिवृत्तियुपशमकनिवं मेले अवेदानिवृत्तियुपशमकनोळं सूक्ष्मसांपरायोपशमकनोळं प्रत्येकं द्विचत्वारिंशद्द्विशतभंगंगळप्पुवु। उपशांतकषायनोळु द्व्युत्तरद्विशत भंगंगळप्पुवु। क्षपकरोळु यथाक्रमविदं पेळ्दपेवें दु पेळ्दपं :—

क्षेपा मिथ्यादृष्टौ चतुर्दश । सासादनमिश्रयोर्दश । असंयतेऽष्टाविंशतिः । देशसंयतादित्रये चतुस्त्रिंशत् । क्षपकापूर्वकरणादित्रये षड्विंशतिः उपशमकचतुष्के द्वाचत्वारिंशत् । क्षीणकषाये षड्विंशतिः । सयोगायोगयोर्द्वादश । सिद्धे नव भवन्ति ॥८५१॥

भंगा मिथ्यादृष्टौ दशाग्रशतं । सासादनमिश्रयोः षट्षष्टिः । असंयते दशाग्रद्विशती । देशसंयतादित्रये षड्विंशत्यग्रद्विशती । उपशमकापूर्वसवेदानिवृत्तिकरणयोर्द्व्यशीत्यग्रद्विशती ॥८५२॥

तत उपर्युपशमकावेदानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्पराययोः द्विचत्वारिंशदग्रद्विशती । उपशांतकषाये

मिथ्यादृष्टिमें चौदह, सासादन और मिश्रमें दस, असंयतमें अट्ठाईस, देशसंयत आदि तीनमें चौंतीस, क्षपकश्रेणीके अपूर्वकरण आदि तीनमें छब्बीस, उपशमश्रेणीके चार गुणस्थानोंमें बयालीस, क्षीणकषायमें छब्बीस, सयोगी और अयोगीमें बारह तथा सिद्धोंमें नौ क्षेप होते हैं ॥८५१॥

अब भंगोंकी संख्या कहते हैं—मिथ्यादृष्टिमें एक सौ दस, सासादन और मिश्रमें छियासठ, असंयतमें दो सौ दस, देशसंयत आदि तीनमें दो सौ छब्बीस, उपशमक अपूर्वकरण और वेदसहित अनिवृत्तिकरणमें दो सौ बयासी भंग होते हैं ॥८५२॥

उससे ऊपर उपशमक वेदरहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें दो सौ

सत्तरसं दसगुणिदं वेदित्ति सयाहियं तु छादालं ।
सुहुमोत्ति खीणमोहे बावीससयं हवे भंगा ॥८५४॥

सप्तदश दशगुणिताः सवेदानिवृत्तिपर्य्यंतं शताधिकं तु षट्चत्वारिंशत् सूक्ष्मसांपराय-पर्य्यंतं क्षीणमोहे द्वाविंशतिशतं भवेद्भंगाः ॥

अपूर्व्वकरणक्षपकनोळं सवेदानिवृत्तिकरणक्षपक नोळं प्रत्येकं नूरेप्पत्तु भंगंगळप्पुवु। अवेदानिवृत्तियोळं सूक्ष्मसांपरायक्षपकनोळं प्रत्येकं नूरनाल्वत्तारु भंगंगळप्पुवु। क्षीणकषायनोळ् नूरिप्पत्तेरडु भंगंगळप्पुवु ॥

अडदालं छत्तीसं जिणेसु सिद्धेसु होंति णव भंगा ।
एत्तो सव्वपदं पडि मिच्छादिसु सुणह वोच्छामि ॥८५५॥

अष्टचत्वारिंशत् षट्त्रिंशत् जिनयोः सिद्धेषु भवंति नवभंगाः। इतः सर्व्वपदं प्रति मिथ्या-दृष्ट्यादिषु शृणुत वक्ष्यामि ॥

सयोगजिनरोळष्टाचत्वारिंशद्भंगंगळप्पुवु । अयोगिजिनरोळ् षट्त्रिंशद् भंगंगळप्पुवु। सिद्धपरमेष्टिगळोळ् नवभंगंगळप्पुवु। इल्लिदं मेले सर्व्वपदंगळं कुरुत्तु मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्था-नंगळोळ् पेळ्दपें केळि भव्यरुगळिरा ॥

अनंतरं सर्व्वपदंगळं पेळ्वल्लि पिंडपदंगळोळेकैकपदंगळेकसमयदोळु संभविसुवर्वंतु पेळ्वपरु :—

भव्विदराणण्णदरं गदीण लिंगाण कोहपहुडीणं ।
इगिसमये लेस्साणं सम्मत्ताणं च णियमेण ॥८५६॥

भव्येतरयोरन्यतरत्पदं गतीनां लिंगानां क्रोधप्रभृतीनां एकसमये लेश्यानां सम्यक्त्वानां च नियमेन ॥

द्वयग्रद्विशती । क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्ये ॥८५३॥

अपूर्वसवेदानिवृत्तिकरणयोः सप्तत्यग्रशतं । अवेदानिवृत्तिसूक्ष्मसाम्पराययोः षट्चत्वारिंशदग्रशतं । क्षीणकषाये द्वाविंशत्यग्रशतं ॥८५४॥

सयोगेऽष्टचत्वारिंशत्, अयोगे षट्त्रिंशत्, सिद्धे नव भवति । इतः उपरि सर्वपदान्याश्रित्य मिथ्या-दृष्ट्यादिषु वक्ष्ये शृणुत ॥८५५॥

बयालीस, उपशान्तकषायमें दो सौ दो भंग होते हैं। आगे क्षपकमें क्रमानुसार कहते हैं ॥८५३॥

अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरणमें एक सौ सत्तर, वेदरहित अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायमें एक सौ छियालीस, क्षीणकषायमें एक सौ बाईस भंग हैं ॥८५४॥

सयोगीमें अड़तालीस, अयोगीमें छत्तीस और सिद्धोंमें नौ भंग होते हैं। यहाँसे आगे ८६ पदोंका आश्रय लेकर मिथ्यादृष्टी आदिमें भंग कहता हूँ तुम सुनो ॥८५५॥

सर्व्वपदभंगंगळंतप्पल्लि पिंडपदंगळु प्रत्येकपदंगळुमेंदित्तेरनप्पुववेकसमयदोळु भव्या भव्यद्विकदोळन्यतरत्पदमुमंते गतिगळोळोंदु लिंगंगळोंदोंदुं क्रोधादिकषायंगळोळोंदोंदुं लेश्याषट्कदोळोंदोंदुं सम्यक्त्वंगळोळोंदोंदुं मिथ्यादृष्टयादि चतुर्द्दशगुणस्थानंगळोळु यथायोग्यंगळागि नियमदिदं युगपत्संभविसुववु ॥

अनंतरं मिथ्यादृष्टियोळु प्रत्येकपदंगळं संभवंगळं पेळ्दपरु :—

पत्तेयपदा मिच्छे पण्णरसा पंच चेव उवजोगा ।
दाणादी ओदयिये चत्तारि य जीवभावो य ॥८५७॥

प्रत्येकपदानि मिथ्यादृष्टौ पंचदश पंच चैवोपयोगाः । दानादयः औदयिके चत्वारि च जीवभावश्च ॥

मिथ्यादृष्टियोळु पंचदश प्रमितंगळु प्रत्येकपदंगळप्पुववावुवेंदोडे कुमतिकुश्रुतविभंगमेंबज्ञानंगळुं चक्षुरचक्षुर्द्दर्शनद्वयमुमेंदी युपयोगपंचकमुं दानलाभभोगोपभोग वीर्य्यंगळेंबी दानादिपंचकमुं मिथ्यादर्शनमुमज्ञानमुमसंयममुमसिद्धत्वमुमेंबौदयिकभावदोळु नाल्कुं जीवत्वमुमेंवितु प्रत्येकपदंगळु पदिनय्दप्पुवु । १५ ॥

पिंडपदा पंचेव य भव्विदरदुगं गदी य लिंगं च ।
कोहादी लेस्सावि य इदि वीसपदा हु उड्ढेण ॥८५८॥

पिंडपदानि पंचैव भव्येतरद्विकं गतिश्च लिंगं च । क्रोधादयो लेश्या अपि च इति विंशतिपदानि खलूर्ध्वेन ॥

तानि तु सर्वपदानि पिंडप्रत्येकभेदाद्द्विविधानि । तत्र पिंडपदेषु एकसमये भव्याभव्ययोः गतिषु लिंगेषु क्रोधादिषु लेश्यासु सम्यक्त्वेषु चैकैकमेव गुणस्थानेषु यथायोग्यं नियमेन युगपत् सम्भवति ॥८५६॥

युगपत्संभवानि प्रत्येकपदानि मिथ्यादृष्टौ पंचदशैव । तानि कानि ? अज्ञानाद्यद्विदर्शनान्येवं पंचोपयोगा दानादयः पंच औदयिके मिथ्यात्वाज्ञानासंयमासिद्धत्वानि चत्वारि जीवत्वं चेति ॥८५७॥

वे सर्वपद दो प्रकारके हैं—पिण्डपद और प्रत्येकपद । जिस भाव समूहमें-से एक समयमें एक जीवके एक-एक ही होता है सब नहीं होते उस भाव समूहको पिण्डपद कहते हैं । जैसे चारों गतियोंमें-से एक जीवके एक कालमें एक गति ही होती है, चारों नहीं होती । अतः गति पिण्डपद है । और जो भाव एक जीवके एक कालमें एक साथ भी होते हैं उनको प्रत्येकपद कहते हैं । सो भव्य, अभव्य, गति, लिंग, क्रोधादि चार, लेश्या और सम्यक्त्व ये पिण्डपद हैं । क्योंकि इनमें-से एक समयमें एक जीवके गुणस्थानोंमें यथायोग्य एक-एक ही नियमसे युगपद् होता है ॥८५६॥

एक साथ सम्भव प्रत्येकपद मिथ्यादृष्टिमें पन्द्रह होते हैं, वे इस प्रकार हैं—तीन अज्ञान, दो दर्शन, ये पाँच उपयोग, दान आदि पाँच लब्धियाँ, औदयिकमें-से मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व ये चार और जीवत्व पारिणामिक ॥८५७॥

यिल्लि युगपत्संभविगळं प्रत्येकपदंगळें बुदु सहानवस्थायिगळं पिंडपदंगळें बुदु। अल्लि पूर्वोक्त पंचदश प्रत्येकपदंगळिदं मेले मेले भव्याभव्यद्विकमुं गतियुं लिंगमुं क्रोधादियुं लेश्येगळु मेंबी विंशति पदंगळु मिथ्यादृष्टियोळु मेले मेलेयप्पुवु ॥

पत्तेयाणं उवरिं भव्विदरदुगस्स होदि गदिलिंगे ।
कोहादिलेस्ससम्मत्ताणं रयणा तिरिच्छेण ॥८५९॥

प्रत्येकानामुपरि भव्येतरद्विकस्य भवति गतिलिंगक्रोधादिलेश्या सम्यक्त्वानां रचना तिर्य्यग्रूपेण ॥

प्रत्येकपदंगळु पदिनय्दर मेले तिर्य्यग्रूपदिंदं भव्याभव्यद्वयमक्कुं। गतिलिंगक्रोधादि कषाय-लेश्या सम्यक्त्वंगळगे रचनेगळु तिर्य्यग्रूपदिंदमेयक्कुं। संदृष्टि मिथ्यादृष्टिग—

कु	कु	वि	च	अ	दा	ला	भो	उ	वी	मि	अ	अ	अ	जी	भ	न	स्त्री	क्रो	कु
															अ	ति	पु	मा	नी
															म	न	माया	क	
															दे		लो	पो	
																		प	
																		शु	

तदुपरि पिंडपदानि पंचैव। तानि तु भव्येतरद्वयं गतिः लिंगं क्रोधादिः लेश्या चेति। इत्येतानि विंशतिपदानि खलु मिथ्यादृष्टावूर्ध्वरूपेण स्थाप्यानि ॥८५८॥

सर्वत्र प्रत्येकपदानामुपरिस्थितानां भव्याभव्ययोः गतीनां लिंगानां क्रोधादिकषायाणां लेश्यानां सम्यक्त्वानां च रचना तिर्यग्रूपेण कार्या भवन्ति ॥८५९॥

उन पन्द्रह प्रत्येक पदोंके ऊपर मिथ्यादृष्टिमें पिण्डपद पाँच ही हैं, भव्य-अभव्य दोनों, गति, लिंग, क्रोधादि और लेश्या। ये बीस पद मिथ्यादृष्टिमें ऊपर-ऊपर स्थापित करो ॥८५८॥

सर्वत्र प्रत्येक पदोंके ऊपर स्थापित भव्य, अभव्य, गति, लिंग, क्रोधादि कषाय, लेश्या और सम्यक्त्वकी रचना तिर्यग् रूपसे बराबरमें करना चाहिए ॥८५९॥

विशेषार्थ—नीचे तो प्रत्येक पद ऊपर लिखना चाहिए। उनके ऊपर मूल पिण्डपद ऊपर-ऊपर लिखना चाहिए।

कु। कु। वि। च। अ। दा। ला। भो। उ। वी। मि। अ। अ। अ। जी।

भ	न	स्त्री	क्रो	कु
अ	ति	पु.	मा	नी
म	न.	मा.	क	
दे	०	लो	ते	
			प	
			शु.	

एक्कादी दुगुणकमा एक्केक्कं रुंधियूण हेट्ठम्मि ।
पदसंजोगे भंगा गच्छं पडि होंति उवरुवरिं ॥८६०॥

एकादयो द्विगुणक्रमादेकैकमवलंब्याऽधः पदसंयोगे भंगाः गच्छं प्रति भवंत्युपर्युपरि ॥ एकमादियागि द्विगुणद्विगुण क्रमदिंदमेकैकपदंगळमवलंबिसियधस्तनपदसंयोगदोळु गच्छं प्रति मेले मेले भंगंगळप्पुवु । अदें तेंदोडे कुमतिज्ञानमों दु यिल्लि प्रत्येकभंगमों देयक्कुं १ ॥

कुश्रुतदोळु प्रत्येकभंगमों दुं १ । तदधस्तन कुमतिज्ञानदोडने संयोगमागुत्तं विरलु द्विसंयोगभंग १ कूगि भंगमेरडु २ । विभंगज्ञानदोळु प्रत्येक भंगमों दु १ । तदधस्तन कुश्रुतादिगळोडने द्विसंयोगभंगमेरडु । २ । त्रिसंयोगभंगमों दु । १ । कूडि भंगंगळु नाल्कु ४ । चक्षुर्दर्शनदोळु प्रत्येकभंगमों दु । १ । तदधस्तनविभंगज्ञानादिगळोडने द्विसंयोगभंगंगळु मूरु ३ । त्रिसंयोगभंगंगळु मूरु ३ । चतुःसंयोगमों दु १ कूडि भंगमें टु ८ । अचक्षुर्दर्शनदोळु प्रत्येकभंगमों दु १ । तदधस्तनचक्षुर्दर्शनादिगलोडने द्विसंयोगभंगंगळु नाल्कु ४ । त्रिसंयोगभंगंगळारु ६ । चतुःसंयोगभंगंगळु नाल्कु । ४ । पंचसंयोग भंगमों दु १ । कूडि भंगंगळु पदिनारु १६ । दानलब्धियोळु

एकमादिं कृत्वा द्विगुणद्विगुणक्रमाः एकैकपदमवलंब्याधस्तनपदसंयोगे गच्छं प्रत्युपर्युपरि भंगा भवन्ति । तद्यथा—

कुमतौ प्रत्येकभंग एकः । कुश्रुते प्रत्येकभंग एकः । तदधस्तनेन संयोगे द्विसंयोगेऽप्येकः मिलित्वा द्वौ । विभंगे प्रत्येकभंग एकः । तदधस्तनकुश्रुतादिना द्विसंयोगौ द्वौ । त्रिसंयोग एकः, मिलित्वा चत्वारः । चक्षुर्दर्शने प्रत्येकभंग एकः । तदधस्तनविभंगादिना द्विसंयोगास्त्रयः । त्रिसंयोगास्त्रयः । चतुःसंयोग एकः । मिलित्वाष्टौ । अचक्षुर्दर्शने प्रत्येकभंग एकः । तदधस्तनचक्षुरादिना द्विसंयोगाश्चत्वारः । त्रिसंयोगाः षट् । चतुःसंयोगाश्चत्वारः

एकसे लगाकर क्रमसे दूने-दूने एक-एक पदका अवलम्ब लेकर नीचे-नीचेके पदोंके संयोगसे जितनेवाँ पद हो उसके ऊपर-ऊपर भंग होते हैं । वही कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें प्रत्येक पद सबमें नीचे कुमतिज्ञानका स्थापन किया । उसका प्रत्येक भंग एक ही है । उसके ऊपर कुश्रुत स्थापित किया । उसका प्रत्येक भंग एक और उसके नीचे स्थापित कुमतिके संयोगसे दो संयोगी भंग एक । इस प्रकार दो भंग हुए । उसके ऊपर विभंगको स्थापित किया । उसका प्रत्येक भंग एक और उसके नीचे स्थापित कुश्रुत और कुमतिके संयोगसे दो संयोगी भंग दो । तथा तीनोंके संयोगसे तीन संयोगी भंग एक । इस प्रकार चार भंग हुए । उसके ऊपर चक्षुदर्शन । उसका प्रत्येक भंग एक और उसके नीचे स्थापित विभंग कुश्रुत कुमतिके संयोगसे दो संयोगी भंग तीन । और चक्षु कुमति कुश्रुत अथवा चक्षु कुमति विभंग या चक्षु कुश्रुत विभंगके संयोगसे तीन संयोगी भंग तीन । चारोंके संयोगसे चार संयोगी भंग एक । ऐसे आठ हुए । उसके ऊपर अचक्षुदर्शन । उसमें प्रत्येक भंग एक । उसके नीचे चक्षुदर्शन, विभंग, कुश्रुत, कुमतिका संयोग क्रमसे होनेपर दो संयोगी भंग चार । तथा अचक्षु चक्षु कुमति, या अचक्षु चक्षु कुश्रुत, या अचक्षु चक्षु विभंग या अचक्षु कुमति कुश्रुत, या अचक्षु कुमति विभंग या अचक्षु कुश्रुत विभंगके संयोगसे तीन संयोगी भंग छह । तथा अचक्षु चक्षु कुमति कुश्रुत या अचक्षु चक्षु कुमति विभंग या अचक्षु चक्षु

प्रत्येकभंगमों दु १। तदधस्तन चक्षुर्दर्शनादिगळोडने द्विसंयोगभंगंगळय्दु ५। त्रिसंयोगंगळु पत्तु १०। चतुःसंयोगंगळु पत्तु १०। पंचसंयोगंगळय्दु ५। षट्संयोगमों दु १। कूडि भंगंगळु ३२। यितु पदंपदं प्रति द्विगुणद्विगुण भंगंगळागुत्तं पोगि प्रत्येकपदंगळ पदिनेदनेय जीवपददोळु प्रत्येक भंगमों दु १। पंचदशसंयोग भंगमुमों दु १। द्विसंयोगंगळ् चतुर्दशसंयोगंगळ् प्रत्येकं पदिनाल्कु १४।१४। त्रिसंयोगभंगंगळ् त्रयोदशसंयोगभंगंगळ् प्रत्येकं द्विरूपोनगच्छेय एकबार संकलन- ५
मात्रंगळप्पुवु। | १३ | १४ | लब्ध ९१। ९१। चतुसंयोगभंगंगळ् द्वादश संयोग भंगंगळ्
| २ | १ |
प्रत्येकं त्रिरूपोनगच्छेय द्विकवारसंकलन मात्रंगळप्पुवु।
| १२ | १३ | १४ | लब्ध ३६४।३६४। पंचसंयोग भंगंगळ् एकादशसंयोगभंगंगळु प्रत्येकं चतूरूपोन-
| ३ | २ | १ |
गच्छेय त्रिवार संकलनमात्रंगळप्पुवु | ११ | १२ | १३ | १४ | लब्ध १००१। १००१।
| ४ | ३ | २ | १ |
षट्संयोभंगंगळ् दश- १०

पंचसंयोग एकः। मिलित्वा षोडश। दानलब्धौ प्रत्येकभंग एकः। तदधस्तनाचक्षुरादिना द्विसंयोगाः पंच। त्रिसंयोगा दश। चतुःसंयोगा दश। पंचसंयोगाः पंच। षट्संयोग एकः। मिलित्वा द्वात्रिंशत्। एवं प्रतिपदं द्विगुणा भूत्वा पंचदशे जीवपदे प्रत्येकभंगः पंचदशसंयोगश्चैकः। द्विसंयोगाश्चतुर्दशसंयोगाश्च चतुर्दश। त्रिसंयोगाः त्रयोदशसंयोगाश्च द्विरूपोनगच्छस्यैकवारसंकलनमात्राः १३। १४। लब्धं ९१। ९१। चतुस्संयोगा
२ १
द्वादशसंयोगाश्च त्रिरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनमात्राः १२। १३। १४। लब्धं ३६४। ३६४। १५
३। २। १

कुश्रुत विभंग, या अचक्षु कुमति कुश्रुत विभंगके संयोगसे चार संयोगी भंग चार। तथा अचक्षु चक्षु विभंग कुश्रुत कुमति इन पाँचोंके संयोगसे पंचसंयोगी भंग एक। ये मिलकर सोलह हुए। इसी प्रकार उसके ऊपर दान लब्धि रखो। उसका प्रत्येक भंग एक। और उसके नीचे चक्षुदर्शन आदि हैं। उनके संयोगसे दो संयोगी भंग पाँच। तीन संयोगी दस, चार संयोगी दस, पाँच संयोगी पाँच, छह संयोगी एक मिलकर बत्तीस हुए। इसी प्रकार ऊपर- २०
ऊपर एक-एक पदको रखकर उनके भंग दूने-दूने होते हैं। उनमें प्रत्येक संयोगी भंग तो एक होता है। और दो संयोगी आदि भंग नीचेके भावोंके संयोगके बदलनेसे जितने-जितने हों उतने-उतने जानना। सो लाभ लब्धिमें चौंसठ, भोग लब्धिमें एक सौ अट्ठाईस, उपभोगमें दो सौ छप्पन, वीर्यमें पाँच सौ बारह, मिथ्यात्वमें एक हजार चौबीस, अज्ञानमें दो हजार अड़तालीस, असंयममें चार हजार छियानवे। असिद्धत्वमें इक्यासी सौ बानवे, जीवत्वमें २५
सोलह हजार तीन सौ चौरासी भंग होते हैं। पन्द्रहवें जीवपदमें इतने भंग कैसे होते हैं यह स्पष्ट करते हैं—

प्रत्येक भंग एक। दो संयोगी और चौदह संयोगी चौदह-चौदह। तीन संयोगी और तेरह संयोगी भंग दो हीन गच्छ प्रमाणका एक बार जोड़ मात्र हैं। गच्छका प्रमाण पन्द्रह है। दो कम करनेसे तेरह रहे। एकसे तेरह तकका जोड़ इक्यानवे होता है सो इक्यानवे ३०
इक्यानवे भंग हैं। इसी तरह चार संयोगी और बारह संयोगी भंग तीन हीन गच्छका दो बार जोड़-मात्र हैं। सो तीन सौ चौंसठ तीन सौ चौंसठ भंग होते हैं। पाँच संयोगी और ग्यारह संयोगी भंग चार हीन गच्छका तीन बार जोड़मात्र होनेसे एक हजार एक, एक

संयोगभंगंगळु पंच रूपोनगच्छेय चतुर्वार संकलन मात्रंगळप्पुवु

१०	११	१२	१३	१४
५	४	३	२	१

लब्धं २००२। २००२। सप्तसंयोग भंगंगळु नवसंयोग भंगंगळु षड्रूपोनगच्छेय पंचवार संकलन मात्रंगळप्पुवु।

९	१०	११	१२	१३	१४
६	५	४	३	२	१

लब्धं ३००३।३००३। अष्टसंयोग भंगंगळु सप्तरूपोन गच्छेय षड्वारसंकलनमात्रंगळप्पुवु

८	९	१०	११	१२	१३	१४
७	६	५	४	३	२	१

लब्ध ३४३२। कूडि प्रत्येक पदंगळोळु पदिनय्दनेय जीवभावदोळु पदिनारु सासिरद मूनूरेण्भत्तनाल्कु भंगंगलप्पुवु १६३८४।

पंचसंयोगा एकादशसंयोगाश्च चतूरूपोनगच्छस्य त्रिकवारसंकलनमात्राः ११। १२। १३। १४ लब्धं
४। ३। २। १

१००१। १००१। षट्संयोगा दशसंयोगाश्च पंचरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलनमात्राः १०। ११। १२।
५। ४। ३।

१३। १४ लब्धं २००२। २००२। सप्तसंयोगा नवसंयोगाश्च षड्रूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलनमात्राः—
२। १

९। १०। ११। १२। १३। १४ लब्धं ३००३। ३००३। अष्टसंयोगाः सप्तरूपोनगच्छस्य षड्वारसंकलन-
६। ५। ४। ३। २। १

मात्राः ८। ९। १०। ११। १२। १३। १४ लब्धं ३४३२। मिलित्वा तत्र षोडशसहस्रत्रिशतचतुरशीति-
७। ६। ५। ४। ३। २। १

हजार एक हैं। छह संयोगी और दस संयोगी भंग पाँच हीन गच्छका चार बार जोड़मात्र होनेसे दो हजार दो, दो हजार दो हैं। सात संयोगी और नौ संयोगी भंग छह हीन गच्छका पाँच बार जोड़मात्र हैं अतः तीन हजार तीन, तीन हजार तीन हैं। आठ संयोगी भंग सात हीन गच्छका छह बार जोड़मात्र हैं अतः चौंतीस सौ बत्तीस हैं। ये सब मिलकर पन्द्रहवें जीवपदके सोलह हजार तीन सौ चौरासी भंग होते हैं। यह पण्णट्ठीका चौथा भाग है क्योंकि पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीसको पण्णट्ठी कहते हैं।

विशेषार्थ—यहाँ जीवपद पन्द्रहवाँ होनेसे गच्छका प्रमाण पन्द्रह है। दो हीन गच्छका एक बार जोड़ करनेके लिए पूर्वोक्त सूत्रके अनुसार तेरह, चौदहको परस्परमें गुणा करे। फिर दो और एकको परस्परमें गुणा करके उसका भाग देनेपर इक्यानबे होते हैं। तीन हीन गच्छका दो बार जोड़ करनेके लिए बारह, तेरह, चौदहको परस्परमें गुणा करके, फिर तीन, दो, एकको परस्परमें गुणा करके उससे भाग देनेपर तीन सौ चौंसठ होते हैं। चार हीन गच्छका तीन बार जोड़ करनेके लिए ग्यारह, बारह, तेरह, चौदहको परस्परमें गुणा करके और उसमें चार, तीन, दो, एकको परस्परमें गुणा करके उससे भाग देनेपर एक हजार एक होते हैं। पाँच बार गच्छका चार बार जोड़नेके लिए दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदहको परस्परमें गुणा करके उसमें पाँच, चार, तीन, दो, एकको परस्परमें गुणा करके उससे भाग देनेपर दो हजार दो होते हैं। छह हीन गच्छका पाँच बार जोड़ करनेके लिए नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदहको परस्परमें गुणा करके उसमें छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकको परस्परमें गुणा करके उससे भाग देनेपर तीन हजार तीन होते हैं। सात हीन गच्छका

इदु पण्णत्तिय चतुर्त्थांशमक्कुं ६५ = १ संदृष्टि :—
४

जी १ । १४ । ९१ । ३६४ । १००१ ।	२००२|३००३|३४३२|३००३|२००२|१००१|३६४|९१|१४|१|
०	
०	
१५	
वा १ । ५ । १० । १० । ५ । १ । ३२ ।	
अ १ । ४ । ६ । ४१ । १६ ।	
च १ । ३ । ३ । १ । ८ ।	
वि १ । २ । १ । ४ ।	
कु १ । १ । २ ।	
कु १ । १ ।	

इल्लि गुपयोगीयप्प संकलनसूत्रमं पेळ्दपरु—

इट्ठपदे रूऊणे दुगसंवग्गम्मि होदि इट्ठधणं ।
असरिच्छाणंतधणं दुगुणेगूणे सगीयसव्वधणं ॥८६१॥

इष्टपदे रूपोने द्विकसंवर्गे भवतीष्टधनं । असदृशानामंतधनं द्विगुणैकोने स्वकीयसर्वधनं ॥ ५

इल्लि यिष्टपदं विवक्षितपदं जीवभावं पदिनय्दनेयदादोडा पदसंख्येयोळोंदुरूपं कुंदिसि १५–१ । शेषमं पदिनाल्कं १४ । विरळिसि प्रतिरूपं द्विकमनित्तु संवर्गं माडल्पडुत्तिरलु बंद लब्धमिष्टधनं पदिनारुसासिरद मूनूरेण्भत्तनाल्पप्पुवदु । १६३८४ । पण्णट्ठिय चतुर्त्थांशमक्कुमेंबुदर्त्थमा असदृशानामंतनं ई प्रत्येकपदंगळोळ्पुट्टिद अवसानधनमना पण्णट्ठिय चतुर्त्थांशमं अंतधणं गुणगुणियं आदिविहीणं रूऊणुत्तरभजियमेंदितु द्विगुणिसियोंदु रूपं कळेयुत्तं विरलु स्वकीयेष्टस्थानदोळु १०

सर्वधनमक्कुं संदृष्टि $\left|\frac{६५=१}{४}\right|$ २ । ऋण $\frac{१}{०}$ इदनपवर्त्तिसिदोडे संदृष्टि $\left|\frac{६५=१}{२}\right|$ ऋण $\frac{१}{०}$

भंगाः १६३८४ । इदं पंण्णट्ठिचतुर्थांशः ६५ = १ ॥८६०॥ अथोत्तरत्रयभंगसंकलनसूत्रमाह —
४

१—

इष्टपदं विवक्षितभावः जीवत्वं तदा पंचदशसु रूपे ऊने १५ । शे १४ मात्रद्विकसंवर्गे कृते इष्टधनं स्यात्

छह बार जोड़ लानेके लिए आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदहको परस्परमें गुणा करके उसमें सात, छह, पाँच, चार, तीन, दो, एकको परस्परमें गुणा करके उससे भाग देने- १५
पर चौंतीस सौ बत्तीस होते हैं ॥८६०॥

आगे भंगोंको मिलानेके लिए सूत्र कहते हैं—

विवक्षित पदकी संख्या जितनी हो उसमें एक घटानेपर जितना रहे उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर विवक्षितपदके भंगोंके प्रमाणरूप इष्ट धन होता है । जैसे जीवपदकी संख्या पन्द्रह है । उसमें एक घटानेपर चौदह रहे । सो चौदह जगह दोके अंक २०

अनंतरमिल्लि मत्तों दु प्रकारदिंदमा प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगविगळं साधिसुवुपायं तोरल्पडुगुमदें तेंदोडे आ प्रथमकुमतिज्ञानदोळु प्रत्येक भंगमों देयक्कुं। १। कुश्रुतभावदोळु कुमतिज्ञानदोळें तंते प्रत्येकभंगमों देयक्कुं। १। कुमतिज्ञानप्रत्येकसंयोगसंख्येयदु कुश्रुतज्ञानदोळुद्विसंयोगसंख्येयक्कुं १। अंतु कुश्रुतदोळु भंगंगळेरडु २। विभंगदोळु कुश्रुतदोळें तंते प्रत्येक भंगमों दु १। तदधस्तनकुश्रुतद प्रत्येकभंगमं द्विसंयोगभंगमुमं कूडिदोडे द्विसंयोगभंगमेरडु २। अधस्तनद्विसंयोगमों देयुपरितन त्रिसंयोगप्रमाणमक्कुं। १। कूडि विभंगदोळु भंगंगळ नाल्कु ४। चक्षुर्दर्शनदोळु तदधस्तनप्रत्येकसंयोगप्रमाणमे प्रत्येक भंगमों देयक्कुं। १। आ विभंगज्ञान प्रत्येक भंगमुमं द्विसंयोगमुमं कूडिदोडे द्विसंयोगभंगंगळु मूरु ३। विभंगद्विसंयोगमुमं त्रिसंयोगमुमं कूडिदोडे त्रिसंयोगप्रमाणमक्कु—३। मी भंगत्रिसंयोगप्रमाणमे चतुःसंयोगप्रमाणमक्कुं १। कूडि चक्षुर्दर्शनदोळु भंगमें टु ८। अचक्षुर्दर्शनदोळु तदधस्तन प्रत्येकभंगमों देयक्कुं। १। अहंगे चक्षुर्दर्शन प्रत्येक भंगमुमं द्विसंयोगभंगमुमं कूडिदोडे द्विसंयोगभंगंगळु नाल्कप्पुवु। ४। मत्तमा चक्षुर्दर्शनद्विसंयोगमुमं त्रिसंयोगमुमं कूडिदोडे त्रिसंयोगभंगंगळारप्पुवु। ६। आ त्रिसंयोगमुमं चतुःसंयोगमुमं कूडिदोडे चतुःसंयोगभंगंगळु नाल्कप्पुवु। ४। आ चतुःसंयोगप्रमाणमे पंचसंयोगमक्कुं। १॥ कूडियचक्षुर्दर्शनदोळु भंगंगळु पविनारु १६। दानलब्धियोळु अधस्तन प्रत्येकभंग प्रमाणमे प्रत्येकभंगप्रमाणमों देयक्कुं। १। आ प्रत्येकभंगमुमं द्विसंयोगभंगमुमं कूडिदोडुपरितनदानलब्धिय द्विसंयोगप्रमाणमक्कुं। ५। आ अधस्तनद्विसंयोगमुमं त्रिसंयोगमुमं कूडिदोडे त्रिसंयोगभंगंगळु पत्तप्पुवु। १०। अधस्तनत्रिसंयोगमुमं चतुःसंयोगमुमं कूडिदोडे चतुःसंयोगभंगंगळु पत्तप्पुवु। १०। आ चतुःसंयोगमं पंचसंयोगमं कूडिदोडे पंचसंयोगभंगंगळेयप्पुवु। ५। पंचसंयोगप्रमाणमे षट्संयोगमों देयक्कुं। १। कूडि दानलब्धियोळु भंगंगळु मूवत्तेरडप्पुवु। ३२। लाभपददोळु प्रत्येकभंगमों दु १। अधस्तन प्रत्येकभंगमं द्विसंयोगभंगमुमं कूडिदोडे द्विसंयोगभंगंगलारप्पुवु ६। अधस्तन द्विसंयोगमुमं त्रिसंयोगमुमं कूडिदोडुपरितनत्रिसंयोगमक्कुमप्पुदरिंदं त्रिसंयोगभंगंगळु पदिनय्दप्पुवु। १५। अधस्तनत्रिसंयोगमुमं चतुःसंयोगमुमं कूडिदोडुपरितन चतुःसंयोगप्रमाणमप्पुदरिंदं चतुःसंयोग-

---

१६३८४। इदमेव प्रत्येकपदानामन्तधनं द्वाभ्यां संगुण्यैकरूपेऽपनीते स्वेष्टस्थाने सर्वधनं स्यात् ६५ = १। २।
० ० ४।

रखकर परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हजार तीन सौ चौरासी होते हैं। इतने ही जीवपदके भंग हैं। उस इष्टधनको दूना करके उसमें-से एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना प्रथमपदसे लेकर विवक्षितपदपर्यन्त सब पदोंके भंगोंका जोड़रूप सर्वधन होता है। जैसे विवक्षित जीवपद पन्द्रहका इष्टधन पण्णट्ठीका चौथा भाग है। उसको दूना करके उसमें-से एक घटानेपर प्रथमपदसे लेकर पन्द्रहवें पदपर्यन्त सब पदोंके भंगोंके जोड़का प्रमाण होता है। तथा जो जीवपदमें इष्टधन कहा उसका दूना आधा पण्णट्ठी प्रमाण होता है उतने भव्यभावके भंग हैं और उतने ही अभव्यभावके भंग हैं। दोनोंके मिलकर पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। उनको दूना करनेपर एक गतिके भंग होते हैं। सो नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवगतिके इतने-इतने भंग

ळिप्पत्तु । २० । अधस्तनचतुःसंयोगमुमं पंचसंयोगमुमं कूडिदोडुपरितन पंचसंयोगमक्कुमप्पुदरिंदं पंचसंयोगंगळु पदिनय्दु । १५ । अधस्तनपंचसंयोगषट्संयोगमुमं कूडिदोडुपरितन षट्संयोगंगळारु । ६ । अधस्तनषट्संयोगमेयुपरितन सप्तसंयोगप्रमाणमप्पुदरिंदमो वेयक्कुं । १ । इंतु लाभपददोळु कूडि भंगंगळु चतुःषष्टिप्रमितंगळप्पुवु । ६४ । संदृष्टि :

लाभ । १ । ६ । १५ । २० । १५ । ६ । १ । कूडि ६४ ।
दान । १ । ५ । १० । १० । ५ । १ । कूडि ३२ ।
अच० । १ । ४ । ६ । ४ । १ । कूडि १६ ।
चक्षु । १ । ३ । ३ । १ । कूडि ८ ।
विभं । १ । २ । १ । कूडि ४ ।
कुश्रु । १ । १ । कूडि २ ।
कुम । १ । कूडि १ ।

इंतु भोगोपभोगादिगळोळु तंतम्मधस्तन प्रत्येकभंगमे उपरितन प्रत्येकमुं अधस्तनप्रत्येक-द्विसंयोगंगळुपरितनद्विसंयोगमुं अधस्तनद्विसंयोगत्रिसंयोगंगळुपरितन त्रिसंयोगंगळु अधस्तन-त्रिसंयोग चतुःसंयोगंगळुपरितन चतुःसंयोगंगळुं अधस्तनचतुःसंयोगंगळु पंचसंयोगंगळु मुपरितन पंचसंयोगंगळुं अधस्तनपंचसंयोगंगळुं षट्संयोगंगळुपरितनषट्संयोगंगळुं अधस्तनषट्संयोगंगळुं सप्तसंयोगंगळुपरितन सप्तसंयोगंगळागुत्तं पोपुवेन्नेवरं पविनय्दनेय जीवपदमक्कुमन्नेवरमल्लिबंमेले पिंडभावंगळोळु भंगं पेळल्पडुगुमदेंतेंदोडे—

अधस्तन प्रत्येकभाव पदंगळोळु द्विगुणसंकलनधनमनिदं ६५ = १ बेरों देडेयळु मुंदे स्थापिसि
२
जीवभावपद सर्व्वधनमनिदं ६५ = १ द्विगुणिसिदोडे उपरितनपिंड भावंगळोळु प्रथमभव्य भावपद-
४
दोळु संभविसुव भंगंगळप्पुवु । संदृष्टि ६५ = १।२ अपवर्त्तितमिदु ६५ = १ मत्तमभव्यभाव पददोळु-
४ २
मनिते भंगंगळप्पुवप्पुदरिंदं ६५ = १ कूडि द्विगुणितमप्पुवु ६५ = १।२ अपवर्त्तितमिदु ६५ = १ इदं
२ २
द्विगुणिसिदोडे गतिप्पुवु चतुष्टयदोळों बु नरकगतियोळु भंगंगळ । ६५=१।२ वों बु गतिगिनितु भंगं-

---

ऋण १ अपवर्तिते ६५ = १ ऋणं १ पुनस्तदेवेष्टधनं ६५ = १ द्विगुणितं उपरितनभव्यभावस्य भवति
२ ४
६५ = १ तथा अभव्यभावस्य ६५ = १ मिलित्वेदं ६५ = १ इदं द्विगुणितमेकगतेर्भवति ६५ = १ । २ पुन-
२ २
श्चतुर्गुणितं चतुर्गतीनां ६५ = १ । ८ पुनस्तदेकगतिधनं ६५ = । १ । २ द्विगुणितमेकलिंगस्य ६५ = १ । २ । २

जानना । चारों गतिके भंग आठ पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं । एक गतिके भंग दो पण्णट्ठीप्रमाण हुए । उनसे दूने एक लिंगके भंग होते हैं । उनको नरकगतिमें एक लिंग, तिर्यंचगतिमें तीन लिंग, मनुष्यगतिमें तीन लिंग और देवगतिमें दो लिंग मिलाकर नौसे गुणा करनेपर छत्तीस पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं । तथा एक लिंगके भंग पण्णट्ठीसे चौगुने होते हैं । उनको दूना करनेपर एक कषायके भंग होते हैं । उनको नरकगतिमें एक लिंग सहित चार कषाय होनेसे

ळागळु नाल्कुं गतिगळगे नितप्पुवें दु नाल्करिंदं गुणिसिदोडे लब्धमिदो राशियं ६५ = १।२।४ लब्ध ६५ = १।८ नरकगतियोळु षंडवेदमों दु १। तिर्य्यग्गतियोळु लिंगत्रयमक्कुं। ३। मनुष्यगतियोळं लिंगत्रयमक्कुं ३। देवगतियोळु लिंगद्वयमक्कु २। मंतु लिंगं नवप्रमितंगळप्पुवु। ९। अल्लियोंदु नरकगतिय भंगंगल निवं ६५ = १। २। द्विगुणिसिदोडों दु नरकगतिय लिंगदोळिनितु भंगंगळप्पुवु। ६५ = १। २। २। ओंदु लिंगक्किनितु भंगंगळागुत्तं विरला नवलिंगंगळगेनितु भंगंगळप्पुवेंदु क्षोंभत्तरिंदं गुणिसिदोडिनितप्पुवु। ६५ = १। २। २। ९। लब्धं ६५=१। २६। मत्तमों दं लिंगद भंगंगळनिवं ६५ = १। २। २। द्विगुणिसिदोडों कषाय भंगंगळप्पुवु ६५ = १। २। २। २॥ चिंतागुत्तं विरलु नरकगतियोलों दु लिंगक्कें नाल्कु कषायंगळु ४ तिर्य्यग्गतियमूरु लिंगंगळगे पन्नेरडुं कषायंगळु १२। मनुष्यगतिय मूरुं लिंगंगळगे पन्नेरडु कषायंगळु १२। देवगतिय लिंगद्वयक्कष्ट कषायंगळु। संदृष्टि

न	ति	म	दे
४	१२	१२	८

कूडि कषायंगळु मूवत्तारप्पुवों दु कषायक्किनितु भंगंगळागळु। ६५ = १। २। २। २। मूवत्तारक्केनितु भंगंगळप्पुवेंदु मूवत्तारिंदं गुणिसुत्तं विरलु ६५ = १। २। २। ३६। लब्धभंगंगळु ६५ = २८८॥ मत्तमा ओंदु कषाय भंगंगळं ६५ = १। २। २। २। द्विगुणिसिदोडोदु लेश्या भंगंगळप्पुवु। ६५ = १। २। २। २। २। अंतागुत्तं विरलु नरकगतिय नाल्कु कषायंगळगे प्रत्येकमशुभलेश्यात्रयमागुत्तं विरलु द्वादशलेश्ये-गळप्पुवु। १२। तिर्य्यंग्गतिय पन्नेरडुं कषायंगळगे प्रत्येकमारारु लेश्येगळागलु द्वासप्ततिलेश्येगळप्पुवु ७२। मनुष्यगतियोळमनिते लेश्येगळप्पुवु ७२। देवगतियोलें दु कषायंगळगे प्रत्येकमारारु लेश्येगळागळु नाल्वत्तें दु लेश्येगळप्पुवु। ४८। संदृष्टि—नरकगति १। लिंग १। कषाय ४। लेश्ये ३। तिर्य्यंग्गति १। लिंग ३। क ४। ले ६। मनुष्यगति १। लिंग ३। कषाय ४। ले ६। देवगति १। लिंग २। क ४। ले ६। कूडि लेश्येगळु नरकगतियोळु १२। ति ७२। म ७२।

पुनः नरकादिगतीनामेकत्रित्रिद्विलिंगैर्नवभिर्गुणितं लिंगानां ६५ = १। २। २। ९ लब्धं ६५ = १। ३६। पुनस्तदेकलिंगधनं ६५ = १। २। २ द्विगुणितमेककषायस्य ६५ = १। २। २। २। एकैकलिंगस्य चत्वारश्चत्वारः कषाया इति षट्त्रिंशता गुणितं कषायाणां ६५ = १। २। २। २। ३६ लब्धं ६५ = १। २८८ पुनस्तदेककषायधनं ६५ = १। २। २। २। द्विगुणितमेकलेश्यायाः ६५ = १। २। २। २। २। पुनः नरकादिगतिषु लिंगाश्रयत्वाच्चतुर्द्वादशद्वादशाष्टकषायैः सह त्रिषड्लेश्याकृतचतुरग्रद्विशत्या गुणितं लेश्यानां

चारसे गुणा करो, तिर्यंचगतिमें तीन लिंग सहित चार कषाय होनेसे बारहसे गुणा करो, मनुष्यगतिमें भी तीन लिंग सहित चार कषाय होनेसे बारहसे गुणा करो। देवगतिमें दो लिंग सहित चार कषाय होनेसे आठसे गुणा करो। सो मिलकर छत्तीस हुए। उससे पण्णट्ठी-से आठ गुणे भंगोंको गुणा करनेपर दो सौ अट्ठासी पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं।

एक कषायके भंग आठ पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं। उनसे दूने एक लेश्याके भंग होते हैं। उनको नरकगतिमें एक लिंग चार कषाय सहित तीन लेश्या होनेसे बारहसे गुणा करो। तिर्यंचमें तीन लिंग चार कषाय सहित छह लेश्या होनेसे बहत्तरसे गुणा करो। मनुष्यमें भी तीन लिंग चार कषाय सहित छह लेश्या होनेसे बहत्तरसे गुणा करो। देवगतिमें दो लिंग

दे ४८। कूडि २०४। ओंदु लेश्येगिनितु भंगंगळागुत्तं विरलु ६५ = १।२।२।२।२। इन्नूर-
नाल्कु लेश्येगळगेनितु भंगंगळप्पुवेंदिन्नूर नाल्कर्रिदं गुणिसिदोडिनितु भंगंगळप्पुवु।
६५ = १।२।२।२।२।२०४। लब्ध ३२६४। यितु पिंड भंगंगळु

६५=१	३२६४	लेश्या
६५=१	२८८	कषाय
६५=१	३६	लिंग
६५=१	८	गति
६५=१	१	भव्याभव्य

कूडि सर्व्वमुं पिंड भंगंगळ ६५ = १। ३५९७॥ इवरोळ अधस्तन प्रत्येक भंगंगल सर्व्वधनमनिवं
२
६५ = १ कूडुवागळु द्विकर्दिदं समच्छेदमं माडिदोडे संदृष्टि ६५ = ७१९४ इव-रोला एकरूपं कूडि- ५
२ २
दोडे मिथ्यादृष्टिय सर्व्वपद भंगंगळिनितप्पु। संदृष्टि ६५ = ७१९५ इल्लि मिथ्यादृष्टिय सर्व्वपद
२
भंगंगळोळ पिंडभावपदंगळ तात्पर्य्यार्थं पेळल्पडुगुमवें तेंदोडे कुमतिभावपदं मोदलागोंडु जीवभाव-
पदपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदं नडेद प्रत्येकपदद्विगुण संकलनधनमिदु ६५ = १ मेले पिंडभाव-
२
पदंगळप्पुवल्लि भव्यभावपददोळ अधस्तन जीवभावपद भंगंगलं नोडलु द्विगुणमप्पुद रंद मिनितु
भंगंगळप्पुवु। ६५ = १।२ अपवर्त्तितमिदु ६५ = १ अभव्यभावदोळमिनिते भंगंगळप्पुवु ६५ = १ १०
४ २ २
वुभयमुं कूडि ६५ = १। उपरितन नरकगति भाव दोळु अधस्तनभव्यभावंगळं नोडळ्
द्विगुणमप्पुदरिंद मिनितप्पुवु। ६५ = २ अपवर्त्तितमिदु। ६५ = १। नारकत्वदोळमभव्यत्वमुंटप्पु-
२
दरिंदमदक्कमुमनिते भंगंगळप्पुवु। ६५ = १। वुभयमुं नरकगतिगिनितु भंगंगळप्पुवु।
६५ = १।२। ओंदु गतिगिनितु भंगंगळागुत्तं विरलु नाल्कुं गतिगळगे चतुर्गुणितमप्पुवु। १५

---

६५ = १।२।२।२।२।२०४ लब्धं ६५ = ३२६४। सर्वे पिंडपदभंगाः—

६५ = १	३२६४	लेश्या
६५ = १	२८८	कषाय
६५ = १	३६	लिंग
६५ = १	८	गति
६५ = १	१	भव्याभव्य

मिलित्वामी ६५ = १। ३५९७। अत्राधस्तनप्रत्येकपदसर्वभंगेषु ६५ = १ मिलितेषु मिथ्यादृष्टौ
२

चार कषाय सहित छह लेश्या होनेसे अड़तालीससे गुणा करो सो सब मिलकर दो सौ चार हुए। दो सौ चारसे सोलह पण्णट्ठीको गुणा करनेपर बत्तीस सौ चौसठ पण्णट्ठीप्रमाण भंग होते हैं। सब मिलकर पिण्ड पदोंके भंग १+८+३६+२८८+३२६४=३५९७ पैंतीस सौ सत्तानबे पण्णट्ठीप्रमाण होते हैं। नीचेके प्रत्येक पदोंके भंग एक कम पण्णट्ठीसे आधे कहे थे। २०

६५ = १ । २ । ४ ॥ गुणितलब्धमिदु । ६५ = ८ । तदुपरितनषंडभावपददोळु अधस्तन नरकगति भावपदभंगंगळं नोडलु द्विगुणमप्पुदरिंदमिनितु भंगंगळप्पुवु । ६५ = १ । २ । नारकषंडभावदोळम-भव्यत्वमुंटप्पुदरिंदमदक्कमिनिते भंगंगळप्पुवु । ६५ = १।२ । वुभयमुं कूडि नारकषंडभावदोळु भंगंगळिनितप्पुवु । ६५ = १२ । २ । इंतागुत्तं विरलु ओंदु षंडभावक्किनितागलु नवलिंगंगळ्गेनितु भंगंगळप्पुववें दु नवगुणितमागुत्तं विरलु लिंगभावपदभंगंगळुमिनितप्पुवु । ६५ = १ । २।२ । ९ । गुणितलब्धमिदु ६५ = ३६ । तदुपरितनक्रोधकषायभावपददोळु तदधस्तन भव्याभव्यनारकषंडलिंग-नोडलुं द्विगुणमप्पुदरिंदमिनितु भंगंगळप्पुवु । ६५ = २ । २ । २ ॥ लब्धभंग ६५ = ८ । इंतागुत्तं विरलों दु नारकभव्याभव्यषंडक्रोधभावदोळिनितु भंगंगळागुत्तं विरलु न ४ । ति १२ । म १२ । दे ८ । कूडि चतुर्गतिय षट्त्रिंशत्कषायंगळ्गेनितु भंगंगळप्पुवें दु षट्त्रिंशद्गुणितमागुत्तं विरलिनितु भंगंगळप्पुवु । ६५ = ८ । ३६ । लब्धकषायसर्व्वभंगंगळुमिनितप्पुवु । ६५ = २८८ । तदुपरितन कृष्णलेश्या भावदोळु तदधस्तन भव्याभव्य नारकषंडक्रोधभावपदभंग संख्येयं नोडलु द्विगुणमप्पुदरिंदमिनितप्पुवु । ६५ = २ । २ । २ । २ । इंतागुत्तं विरलु ओंदु लेश्येगिनितु भंगंगलागुत्तं विरलु न १२ । ति ७२ । म ७२ । दे ४८ । कूडि चतुर्गतिय ह्नूर नाल्कु लेश्येगळ्गे नितु भंगंगळप्पुवें दिन्नूर नाल्करिंदं गुणिसिदोडिनितु भंगंगळप्पुवु । ६५ = १६ । २०४ ॥ लब्धं लेश्याभावभंगंगळु ६५=३२६४ । सर्व्वसंदृष्टि

६५ =	३२६४	लेश्या
६५ =	२८८	कषाय
६५ =	२६	लिंग
६५ =	८	गति
६५ =	१	भव्याभ

कूडि ६५ = ३५९७ ।

इवरोळु प्रत्येकपद भंगंगळनिवं ६५ = १ समच्छेदमं माडि कूडिदोडे मिथ्यादृष्टिय सर्व्वपद
२
भंगंगळिनितप्पुवु । ६५ = ७१९५ वेंबुदु तात्पर्य्यार्त्थं । अथवा कुमतिज्ञानभवं मोदल्गोंडु पदि-
२
नप्पुं प्रत्येकभावपदंगळुमं मेलण भव्याभव्यादि पंचपिंड भावंगळुमनंतु विंशति पदंगळं क्रमदिंदं द्विगुणद्विगुणद्विगुणमागि स्थापिसि पिंडशेषंगळुमं स्थापिसिदोडे इवु कु १ कु २ । वि ४ । च ८ ।

सर्वपदभंगा भवन्ति ६५ = ७१९५ । सासादने. मिथ्यात्वाभव्यत्वे नेति प्रत्येकपदानि पंचदश । पिंडपदानि
२
चत्वारि, प्राग्वदानीतैषां भंगसंदृष्टिः—कु १ । कु २ । वि ४ । च ८ । अ १६ । दा ३२ । ला ६४ । भो

उनको मिलानेपर मिथ्यादृष्टिके सब पदभंग पण्णट्ठीको सात हजार एक सौ पंचानबेके आधे-से गुणा करके उसमें एक घटानेपर जो प्रमाण रहे उतने जानना । इसकी संदृष्टि नीचे दी जाती है । पण्णट्ठीका चिह्न ६५= ऐसा जानना ।

अ १६। बा ३२। ला ६४। भो १२८। उ २५६। वी ५१२। मि १०२४। अ २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। जी १६३८४।—

भव्य	६५=$\frac{1}{2}$	गति नरक	६५=१	लिंग षंड	६५=२	कषाय क्रो	६५=२।२	लेश्या कृष्ण	६५=२।२।२।
अभ	६५=$\frac{1}{2}$	शेषगति	६५=७	शेषलिंग	६५=३४	शेष कषाय	६५=२८४	शेष लेश्या	६५=३२५६

१२८। उ २५६। वी ५१२। अ १०२४। अ २०४८। अ ४०९६। जी ८१९२। म १६३८४।[1]

नरक—लिंग १ क ४, ले. ३ भंग ६५ = १६	तिर्यंच लिं.३ क ले. ६ भंग ६५=१६	मनुष्य लिंग ३ क. ४, ले. ६ भंग ६५=१६	देव लिंग २ क. ४, ले. ६ भंग ६५=१६	भंग ६५=३२६४
नरक लिंग १ क. ४ भंग ६५=८	तिर्यंच लिं. ३ क ४ भंग ६५=८	मनुष्य लिं. ३ क. ४ भंग ६५ = ८	देव लिं. २ क. ४ भंग ६५ = ८	भंग ६५ = २८८
नरक लिंग १ भंग ६५=४	तिर्यंच लिं. ३ भंग ६५=४	मनुष्य लि.३ भंग ६५ = ४	देव लिं. २ भंग ६५=४	भंग ६५=३६
नरक गति ६५=२	तिर्यंच भंग ६५=२	मनुष्य भंग ६५=२	देव भंग ६५=२	भंग ६५=८
	भव्यत्व भंग ६५=२	अभव्य ६५=२	६५=भंग	

जीव १६३८४	अ. ८१९२	अ. ४०९६	अ. २०४८	मि. १०२४	वी. ५१२	उ. २५६	भो. १२८	ला. ६४	बा. ३२	अ. १६	ब. ८	लि. ४	क्षु. २	क्षु. १

१. इतः पुरस्सरं—तद्भंगसंकलनमिदं—इष्टे पंचदशे भव्यपदे १५ रूपेणोने १४ शेषमात्रद्विकसंवर्गे पण्णट्ठ्याश्चतुर्थांशः ६५ = १ इष्टघनं भवति। इदं प्रत्येकपदांत्यधनं ६५ = १ द्विगुणितं रूपोनं ५
४ ४

६५ = १ । २ । ऋ । १ स्वेष्टघनं स्यात् ६५ = १ ऋ १ एषां राशीनां संदृष्टिः—
४ २

प्रत्येकघनं ६५ = १ २
गतिघनं ६५ = २
लिंगघनं ६५ = ९
कषायघनं ६५ = ७२
लेश्याघनं ६५ = ८१६

श्रीमदभयचन्द्रनामांकितायामयं पाठोऽधिकः

यिल्लिप्पत्तनेय लेश्याभावमंत धनमिदु ६५ = ८। अंतधणं गुणगुणिय मेंबितु संकलनमं तं वोडिदु ६५ = १६। इदरोळु अभव्यादि शेषभंगंगळं कूडिदोडिदु ६५ = ७१६३॥ ई राशियोळु पूर्व्वानीतसंकलितधनव पविनारनेरडरिंदं समच्छेदमं माडिदोडिदु ६५ = ३२ इदं कूडिदोडे मिथ्या-
२
दृष्टिय सर्व्वपदभंगंगळु मिनितप्पुवु। ६५ = ७१९५ = । इल्लिदं मेले सासादनंगे सर्व्वपदभंगंगळु तरल्पडुगुमदंतेंदोडे सासादनंगे मिथ्यादृष्टिगे पेळ्दंते भंगंगळप्पुवादोडं विशेषमुंटदाउदेंदोडे सासादनंगे मिथ्यात्वमुमभव्यत्वमुमिल्ल। प्रत्येकभावपदंगळु पदिनैदप्पुवु। पिंडभावंगळ पदंगळं नाल्केयप्पुवदंतेंदोडा प्रत्येकभावंगळं पिंडभावपदंगळगं संदृष्टिरचने तोरल्पडुगुमदंतेंदोडे कु १। कु २। वि ४। च ८। अ १६। वा ३२। ला ६४। भो १२८। उ प २५६। वी ५१२। अ १०२४। अ २०४८। अ ४०१६। जी ८१९२। भ १६३८४।

नरकगति ६५ = १/२	लिंगनरक १।६५ = १	कषा = नरक १। लिंग क ६५ = २
तिर्य्यग्गति ६५ = १/२	लिंगतिर्य्यं ३।६५ = १	कषा = तिर्य्यं १। लिं ३। क ४।६५ = २
मनुष्यगति ६५ = १/२	लिंग मनु ३।६५ = १	कषा = मनु १। लिं ३। क ४। ६५ = २
देवगति ६५ = १/२	लिंग देवगति २।६५ = १	कषा = देवग १। लिं २। क ४।६५ = २
कूडि ६५ = १/२।४	कूडि ६५ = १।९। लिंग	कूडि कषाय ६५ = २।३६ लब्ध ६५ = ७२

नरक लिंग १ कषा ४ लेश्ये ३। ६५ = २। २
तिर्य्यग्ग लिं ३ कषाय ४ लेश्ये ३। ६५ = २। २
मनुष्य लिं ३। कषा ४। लेश्ये ६। ६५ = २। २
देवगति लिं २। कषा ४ लेश्ये ६। ६५ = २। २
कूडि ६५ = २। २। २०४। लब्ध ६५ = ८१६

नरकगति ६५ = १/२	लिंगनरक १। ६५ = १	कषाय। नरक १ लिं १ क ४। ६५ = २
तिर्यग्गति ६५ = १/२	लिंग। तिर्य्य ३। ६५ = १	कषाय। तिर्य्य १ लिं ३ क ४। ६५ = २
मनुष्यगति ५६ = १/२	लिंग। मनुष्य ३। ६५ = १	कषाय। मनुष्य १ लिं ३ क ४। ६५ = २
देवगति ६५ = १/२	लिंग। देवगति २। ६५ = १	कषाय। देवगति १ लिं २ क ४।६५ = २
मिलित्वा ६५ = १/२। ४	मिलित्वा ६५ = १। ९ लिंग	मिलित्वा कषाय ६५ = २।३६।लब्ध ६५ = ७२

जैसे मिथ्यादृष्टिमें भंग और रचनाका विधान किया उसी प्रकार सासादन आदिमें भी यथासम्भव जानना। सासादनमें मिथ्यात्व नामक प्रत्येकपद नहीं है। तथा भव्य-अभव्य पिण्डपद कहा था। किन्तु सासादनमें अभव्यत्वका अभाव होनेसे भव्यत्वको भी प्रत्येकपदमें ले लेना। इस तरह प्रत्येकपद पन्द्रह और पिण्डपद चार रहे। पूर्वोक्त प्रकार

इल्लि प्रत्येकपदंगळ भंगसंकलनमें तेंदोडे इट्टपदे रूऊणे इष्टपदं पविनैदनेय भव्यत्वपदं १५। रूपोनमादोडे। १४। दुगसंवग्गम्मि आ रूपोनपदमं विरळिसि द्विकसंवग्गं माडुत्तिरलु पण्णट्ठियचतुर्त्थांशमक्कुं ६५ = १ होइ इट्टधणं अदल्लिय इष्टधनमक्कुं। असरिच्छाणंतधणं आ ४
असदृश पदंगळ प्रत्येकपदंगळ अवसानधनं ६५ = १ दुगुणेगूणे द्विगुणिसि रूपं कळेदोडिदु ४

६५ = १। २। ॠ °१। सगिट्ठधणं स्वकेष्टधनमक्कुं। ६५ = १। भ °१। ई राशिगळगे संकलना ५
४ २

निमित्तवागि संदृष्टि

प्रत्येक धन ६५ = ½ °१	
गतिगळ ६५ = २	
लिंग धन ६५ = ९	
कषाय धन ६५ = ७२	
लेश्या धन ६५ = ८१६	

कूडि सव्वंमुं ६५ = १७९९। ॠ °१ ॥
२

नरकलिंग १ क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २
तिर्य्य । लिंग ३ क ४ । ले ६ । ६५=२ । २
← मनुष्य । लिंग ३ क ४ । ले ६ । ६५=२ । २
देवगति । लिंग २ क ४ । ले ६ । ६५=२ । २
मिलित्वा कषाय ६५ = २ । २ । २०४ । लब्ध ६५ = ८१६

कुमति १, कुश्रुत २, विभंग ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, दान ३२, लाभ ६४, भोग १२८, उपभोग २५६, वीर्य ५१२, अज्ञान १०२४, असंयम २०४८, असिद्धत्व ४०९६, जीवत्व ८१९२, भव्यत्व १६३२४ इस प्रकार इनके दूने-दूने भंग होते हैं।

इस प्रकार भव्यत्वके भंग पण्णट्ठीके चतुर्थ भाग हुए। उनको दूना करनेपर आधी पण्णट्ठी प्रमाण एक गतिके भंग होते हैं। उनको चौगुना करनेपर चारों गतिके भंग दो पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं। एक गतिके भंग दूना करनेपर एक पण्णट्ठी प्रमाण भंग एक लिंगके होते हैं। उन्हें नरकगतिमें एकसे, तिर्यंचमें तीनसे, मनुष्यमें तीनसे और देवगतिमें दो लिंगोंसे गुणा करनेपर सब मिलकर नौ पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। एक लिंगके भंगसे दूने एक कषायके भंग पण्णट्ठीसे दूने होते हैं। उनको नरकमें एक वेदसहित चार कषायसे, तिर्यंचमें तीन वेदसहित चार कषायसे, मनुष्यमें भी तीन वेदसहित चार कषायसे, देवगतिमें दो वेद-सहित चार कषायसे गुणा करनेपर सब मिलकर पण्णट्ठीसे दूनेको छत्तीससे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने भंग होते हैं। एक कषायके भंगोंसे दूने एक लेश्याके भंग चार पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं। उनको नरकगतिमें एक लिंग चार कषाय तीन लेश्यासे, तिर्यंचमें तीन वेद चार कषाय छह लेश्यासे, मनुष्यमें भी तीन वेद चार कषाय छह लेश्यासे और देवमें दो वेद

अनंतरं मिश्रगुणस्थानदोळु सर्व्वपदभंगंगळु तरल्पडुगुमदेंतेंदोडे मिश्रनोळु मतिश्रुतावधिज्ञानंगळु मिश्रंगळप्पुवु। चक्षुरचक्षुरवधिमिश्रदर्शनंगळु दानलाभभोगोपभोगवीर्य्यभावंगळु-मज्ञानमसंयममसिद्धत्वमुं जीवत्वमुं भव्यत्वमुमेंबिंतु पदिनारुं प्रत्येकपदंगळप्पुवु। मेले पिंडपदंगळु गतिलिंगकषायलेश्येगळु नाल्कु पदंगळप्पुवंतिप्पत्त पदंगळु द्विगुणभंगक्रमंगळप्पुवु। संदृष्टि मिश्रंगे म १। श्रु २। मिश्रावधि ४। चक्षु ८। अचक्षु १६। अव ३२। दा ६४। ला १२८। भो २५६। उ ५१२। वी १०२४। अ २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। जी १६३८४। भ ६५=१।
२

नरक गति ६५ =	नरक गति लिंग। १।६५ = २	नरक गति लिंग। १। क ४। ६५=२।२।
तिर्य्यग्गति ६५ =	तिर्य्यग्गति लिंग। ३।६५ = २	तिर्य्यग्गति लिंग। ३। क ४। ६५=२।२।
मनुष्यगति ६५ =	मनुष्यगति लिंग। ३।६५ = २	मनुष्यगति लिंग। ३। क ४। ६५=२।२।
देवगति ६५ =	देवगति लिंग। २। ६५ = २	देवगति लिंग। २। क ४। ६५=२। २।
कूडि ६५ = ४	कूडि लिंग । ९ । ६५ = २	कूडि ६५ = २। २। ३६।

मिलित्वा सर्वपदधनं ६५ = १७९९ऋ १।
२

मिश्रे मिश्रमतिश्रुतावधिज्ञानदर्शनानि दानादयः पंचाज्ञानासंयमासिद्धत्वजीवत्वभव्यत्वानि प्रत्येकपदानि गतिलिंगकषायलेश्याः पिंडपदानि। एषां भंगसंदृष्टिः म १। श्रु २। अ। ४ च ८। अच १६। अ ३२। दा ६४। ला १२८। भो २५६। उ ५१२। बी १०२४। अ २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। जी १६३८४। भ ६५ = १।
२

चार कषाय छह लेश्यासे गुणा करनेपर सब मिलकर ४×२०४=८१६ आठ सौ सोलह पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक पद और पिण्डपदों के मिलकर सासादनमें पण्णट्ठीको सत्रहसे निन्यानबेके आधेमें गुणा करके उसमें एक घटानेपर सर्वपद भंग होते हैं।

मिश्रगुणस्थानमें प्रत्येकपद मिश्ररूप मति १, श्रुत २, अवधि ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, अवधिदर्शन ३२, दान ६४, लाभ १२८, भोग २५६, उपभोग ६१२, वीर्य १०२४, अज्ञान २०४८, असंयम ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, जीवत्व १६३८४ और भव्यत्व ३२७६८ इस प्रकार दूने-दूने भंग होते हैं। पिण्डपद गति, लिंग, कषाय, लेश्या हैं। सो भव्यत्वके भंग पण्णट्ठीसे आधे होते हैं। उनको दूना करनेपर एक गतिके भंग होते हैं। अतः नरक तिर्यंच मनुष्य

१. इतोऽग्रे अत्र प्रत्येकपदसंकलनधनमिदं ६५ = १ ऋ १ एषां राशीनां संकलनार्थं संदृष्टिः—

प्रत्येकधनं ६५	= १
गतिधनं ६५	= ४
लिंगधनं ६५	= १८
कषायधनं ६५	= १४४
लेश्याधनं ६५	= १४४०

इत्यान् पाठोऽधिकः।

नरकगति लिंग । १ । क ४	ले ३ । ६५ = २ । २ । २
तिर्य्यंग्गति लिंग । ३ । क ४	ले ६ । ६५ = २ । २ । २
मनुष्यगति लिंग । ३ । क ४	ले ६ । ६५ = २ । २ । २
देवगति लिंग । २ । क ४	ले ३ । ६५ = २ । २ । २
कूडि ६५ = ८ । १८०	

इल्लि प्रत्येकपदसंकलनधनं तरल्पडुगुमर्दे तेंदोडे इट्टपदे रूऊणे इष्टपदं पविनारनेय भव्यत्वमक्कुं १६ । रूपोनमादोडे १५ । दुगसंवग्गम्हिआ रूपोनपदमं विरळिसि रूपं प्रति द्विकमनित्तु संवग्गं माडिदोडे लब्धं पण्णट्ठियर्द्धमक्कु । ६५ = १ । अदु होदि अंतधणं अंतधनमक्कुं ।
२

असरिच्छानंतधणं आ असदृशपदंगळ प्रत्येक पदंगळ अवसानधनमं दुगुणेगूणे द्विगुणिसि एकरूपं कळेयुत्तिरलु सगिट्ठधणं स्वकेष्टधनमक्कुं । ६५ = १ । २ ॠ १ । अपवर्त्तितं । ६५ = १ । ॠ १ । ९
२ ० ०

ई राशिगळगे संकलन निमित्तमागि संदृष्टि :—

प्रत्येक धन ६५ = १
गति धन ६५ = ४
लिंग धन ६५ = १८
कषाय धन ६५ = १४४
लेश्या धन ६५ = १४४०

कूडि मिश्रंगे सर्व्वपद भंगंगळु ६५ = १६०७ ॥

नरकगति । ६५ = १	नरकलिंग १ । ६५ = २	नरकलिंग १ । क ४ । ६५ = २ । २
तिर्यग्गति । ६५ = १	तिर्य्यंलिंग ३ । ६५ = २	तिर्य्यंलिंग ३ । क ४ । ६५ = २ । २
मनुष्यगति । ६५ = १	मनुष्यलिंग ३ । ६५ = २	मनुष्यलिंग ३ । क ४ । ६५ = २ । २
देवगति । ६५ = १	देवगलिंग २ । ६५ = २	देवगलिंग २ । क ४ । ६५ = २ । २
मिलित्वा । ६५ = ४	मिलित्वा ६५ = २ । ९	मिलित्वा ६५ = २ । २ । ३६

नरकलिंग १ । क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २ । २
तिर्य्यंलिंग ३ । क ४ । ले ६ । ६५ = २ । २ । २
मनुष्यलिंग ३ । क ४ । ले ६ । ६५ = २ । २ । २
देवगलिंग २ । क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २ । २
मिलित्वा ६५ = ८ । १८०

देवगतिके मिलकर चार पण्णट्ठी भंग होते हैं। एक गतिके भंगसे दूने एक लिंगके भंग होते हैं। उनको नरकमें एक, तिर्यंचमें तीन, मनुष्यमें तीन, देवमें दो लिंगोंसे गुणा करनेपर सब मिलकर अठारह पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। एक लिंगके भंगोंसे दूने एक कषायके भंग चार पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं। उनको नरकमें एक वेद सहित चार कषायसे, तिर्यंचमें तीन वेद सहित चार कषायसे, मनुष्यमें तीन वेद सहित चार कषायसे और देवगतिमें दो वेद सहित चार कषायसे गुणा करनेपर सब मिलकर ४ × ३६ = १४४ एक सौ चौवालीस पण्णट्ठी प्रमाण १०

अनंतरमसंयतंगे सर्व्वपदभंगंगळु पेळल्पडुगुमर्दते दोडे असंयतंगे प्रत्येकपदंगळु मतिश्रुतावधिचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनदानादिपंचकमज्ञानासंयमासिद्धत्वजीवत्वभव्यत्वमेंदिवु पविनारुमसदृशपदंगळप्पुवु। गतिलिंगकषायलेश्यासम्यक्त्वमेंब पंचपदंगळु सदृशपदंगळप्पुवंतु एकविंशति पदंगळु द्विगुणद्विगुण क्रमंगळप्पुवु। संदृष्टिः—मति १। श्रु २। अ ४। च ८। अ १६। अ ३२। दा ६४। ला १२८। भो २५६। उ ५१२। वी १०२४। अ २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। जी ६५ = १। भ ६५ = १॥
४ २

नरकगति	६५ =	नरक लिंग	१। ६५ = २	नरक लिंग १। क ४। ६५ = २।२	→
तिर्य्यंग्गति	६५ =	तिर्य्यंगलिंग	३। ६५ = २	तिर्य्य लिंग ३। क ४। ६५ = २।२	
मनुष्यगति	६५ =	मनुष्य लिंग	३। ६५ = २	मनुष्य लिंग ३। क ४। ६५ = २।२	
देवगति	६५ =	देव लिंग	२। ६५ = २	देव लिंग। २। क ४। ६५ = २।२	
कूडि	६५ = ४	कूडि	६५ = २।९	कूडि ६५ = ४। ३६	

नरक लिंग २। क ४। ले ३। ६५ = ८		सम्यक्त्व उपश =	६५ = १६। १८०
तिरि लिंग ३। क ४। ले ६। ६५ = ८		वेदक	६५ = १६। १८०
मनु लिंग ३। क ४। ले ६। ६५ = ८	←	क्षायि=नर लि १। क ४। ले । क १।६५ = १६	
देव लिंग। २। क ४। ले ३। ६५ = ८		तिरि लि क ४। ले ४। ६५ = १६	
कूडि ६५ = ८। १८०		मनु लिंग ३। क ४। ले ६। ६५ = १६	
		देव लिंग १। क ४। ले ३। ६५ = १६	

मिलित्वा सर्वधनं ६५ = १६०७।

असंयते प्रत्येकपदान्युक्तान्येव षोडश, पिंडपदानि सम्यक्त्वेन समं पंच। संदृष्टिः—म १। श्रु २। अ ४। च ८। अ १६। अ ३२। दा ६४। ला १२८। भो २५६। उ ५१२। वी १०२४। अ २०४८।

भंग होते हैं। एक कषायके भंगोंसे दूने एक लेश्याके भंग आठ पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं। उनको नरकमें एक वेद चार कषाय सहित तीन लेश्यासे, तिर्यंचमें तीन वेद चार कषाय सहित छह लेश्यासे, मनुष्यमें भी तीन वेद चार कषाय सहित छह लेश्यासे, देवमें दो वेद चार कषाय सहित छह लेश्यासे गुणा करनेपर सब मिलकर ८×१८० = १४४० चौदह सौ चालीस पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। इस प्रकार मिश्रमें प्रत्येकपद और पिण्डपद मिलकर पण्णट्ठीको सोलहसे सातसे गुणा करके उसमें-से एक घटानेपर जो प्रमाण हो उतने सर्वपद भंग होते हैं।

असंयतमें प्रत्येक पद सोलह—मति १, श्रुत २, अवधि ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, अवधि ३२, दान ६४, लाभ १२८, भोग २५६, उपभोग ५१२, वीर्य १०२४, अज्ञान २०४८, असंयम ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, जीवत्व १६३८४, भव्यत्व ३२७६८ हैं। उनमें दूने-दूने भंग होते हैं। पिण्डपद चार पूर्वोक्त और एक सम्यक्त्व ये पाँच हैं। भव्यत्वमें आधी पण्णट्ठी प्रमाण भंग हुए। उनसे दूने एक पण्णट्ठी प्रमाण एक गतिके भंग होते हैं। प्रत्येक गतिके मिलानेपर चार पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। एक गतिके भंगोंसे दूने एक लिंगके भंग दो पण्णट्ठी हुए। उन्हें नरकमें एक लिंग, तिर्यंचमें तीन लिंग, मनुष्यमें तीन लिंग, देवमें दो लिंग-से गुणा करनेपर सब मिलकर अठारह पण्णट्ठी हुए। एक लिंगके भंगोंसे दूने एक कषायके

कूडि क्षायिक ६५ = १६ । १०४ ॥ इल्लि असदृशपदसंकलनं पेळल्पडुगुं । इट्टपदे रूऊणे इष्टं विवक्षितं पदं पदिनारनेय भव्यत्वपदमक्कु । १६ । रूपोनमादोडिदु १५ । इदं दुव संवग्गम्मि विरलिसि रूपं प्रति द्विकमनित्तु संवर्ग्गवं माडिद लब्धमदु पण्णट्ठिय अर्द्धपदमक्कुमदु ६५ = १ । होइ
२

इट्ठधणं इष्टधनमक्कुमा असरिच्छाणंतधणं आ असदृशपदंगळ अंतधनमं दुगुणेगूणे द्विगुणिसि रूपोनमं माडिदोडे ६५ = १ । ऋ १ । सगिट्ठधणं स्वकेष्टधनमक्कुं । ६५ = १ । ऋ १ । ई राशिगळगे संदृष्टि ५
२

प्रत्येक धन	६५ =	१
गतिधन	६५ =	४
लिंगधन	६५ =	१८
कषाय धन	६५ =	१४४
लेश्या धन	६५ =	१४४०
उप=वेद=ध	६५ =	५७६०
क्षायि धन	६५ =	१६६४

कूडि असंयतंगे सर्व्वपदभंग ६५ = ७३६७ । ऋ १ क्षा =

अ ४०९६ । अ ८१९२ । जी ६५ = १ म ६५ = १ ।
४ २

नर = गति	६५ = १	नर = लिंग	१ । ६५ = २	नर = लि १ । क ४ । ६५ = २ । २	
तिरि = गति	६५ = १	तिरि = लि	३ । ६५ = २	तिरि = लि ३ । क ४ । ६५ = २ । २	
मनुष्यगति	६५ = १	मनु = लि	३ । ६५ = २	मनु = लि ३ । क ४ । ६५ = २ । २	→
देवगति	६५ = १	देव = लि	२ । ६५ = २	देव = लि २ । क ४ । ६५ = २ । २	
मिलित्वा	६५ = ४	मिलित्वा	६५ । २ । ९	मिलित्वा ६५ = ४ । ३६	

भंग चार पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं । उनको नरकमें एक लिंग सहित चार कषायसे, तिर्यंचमें तीन लिंग सहित चार कषायसे, मनुष्यमें तीन लिंग सहित चार कषायसे, देवमें दो लिंग सहित चार कषायसे गुणा करनेपर सब मिलकर ४×३६ = १४४ एक सौ चौवालीस पण्णट्ठी १०
भंग होते हैं । कषायके भंगसे दूने लेश्याके भंग आठ पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं । उनको नरकमें एक लिंग चार कषाय सहित तीन अशुभ लेश्यासे, तिर्यंचमें तीन लिंग चार कषाय सहित छह लेश्यासे, मनुष्यमें तीन लिंग चार कषाय सहित छह लेश्यासे, देवमें दो लिंग चार

---

१. संदृष्टेरग्रे अत्रासदृशपदसंकलनमिदं ६५ = १ ऋ १ । एषां राशीनां संदृष्टिः—

प्रत्यकघनं ६५ = १
गतिघनं ६५ = ४
लिंगघनं ६५ = १८
कषायघनं ६५ = १४४
लेश्याघनं ६५ = १४४०
उप = वेदघनं ६५ = ५७६
क्षायिकघनं ६५ = १६६४

इयान् पाठोऽधिकः ।

६५ = १६६४। देशसंयतंगे सर्व्वपदभंगं तरल्पडुगुमदें तेंदोडे—देशसंयतंगे असदृशपदंगळु मति-श्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनदानादिपंचकमज्ञानदेशसंयममसिद्धत्वमं जीवत्वभव्यत्वमें दिवु पादिनारु पदंगळप्पुवु। सदृशपदंगळु गतिलिंगकषायलेश्यासम्यक्त्वभेदविंदमय्दप्पुवंतु एकविंशति-पदंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमदिदं भंगंगळप्पुवु। संदृष्टि। म १। श्रु २। अ ४। च ८। अ १६। अ ३२। दा ६४। लाभ १२८। भोग २५६। उप ५१२। वी १०२४। अ २०४८। दे ४०९६। अ ८१९२। जी १६३८४ भ ६५ = १ ॥—
२

नर = लिं १ क ४ ले। ३। ६५ = ८	सम्यक्त्व उपश ६५ = १६। १८०
तिर्य्य = लिं ३ क ४। ले ६। ६५ = ८	वेदक ६५ = १६। १८०
मनु = लिं ३ क ४। ले ६। ६५ = ८	क्षानर = लिं १ क ४ ले। १। ६५ = १६
देव = लिं २ क ४। ले ३। ६५ = ८	तिरि = लिं १ क ४ ले ४। ६५ = १६
मिलित्वा ६५ = ८। १८०	मनु = लिं ३। क ४। ले ६। ६५ = १६
	देव = लिं १। क ४। ले ३। ६५ = १६
	मिलित्वा क्षायिक। ६५ = १६। १०४

०

मिलित्वा सर्वधनं ६५ = ७३६७ ऋ १। क्षायिक ६५ = १६६४।

देशसंयते पदानि तान्येवैकविंशतिः (?) किन्तु असंयमस्थाने देशसंयमः, न देवनरकगती। संदृष्टिः—म १। श्रु २। अ ४। च ८। अ १६। अ ३२। दा ६४। ला १२८। भो २५६। उ ५१२। वी १०२४।

१० कषाय सहित तीन शुभलेश्यासे गुणा करनेपर सब मिलकर ८×१८०=चौदह सौ चालीस पण्णट्ठी भंग होते हैं। एक लेश्याके भंगोंसे दूने एक सम्यक्त्वके भंग सोलह पण्णट्ठी होते हैं। उनको नरकमें एक लिंग चार कषाय तीन लेश्यासे, तिर्यंचमें तीन लिंग चार कषाय छह लेश्यासे, मनुष्यमें भी तीन लिंग, चार कषाय छह लेश्यासे और देवमें दो लिंग चार कषाय तीन लेश्यासे गुणा करनेपर सब मिलकर १६×१८०=२८८० अट्ठाईस सौ अस्सी पण्णट्ठी
१५ प्रमाण भंग उपशम सम्यक्त्वके, इतने ही भंग वेदक सम्यक्त्वके होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व-का कथन भिन्न है। सो एक लेश्याके भंगोंसे दूने सोलह पण्णट्ठी प्रमाण भंग क्षायिक सम्यक्त्वके हैं। इनको नरकमें एक लिंग चार कषाय एक लेश्यासे, तिर्यंचमें एक लिंग चार कषाय चार लेश्यासे, मनुष्यमें तीन लिंग चार कषाय छह लेश्यासे, देवमें एक लिंग चार कषाय तीन लेश्यासे गुणा करनेपर सब मिलकर १६×१०४=१६६४ सोलह सौ चौंसठ
२० पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं। इस प्रकार असंयतमें प्रत्येक पद और पिण्डपदोंके भंगोंको जोड़नेपर पण्णट्ठीको तिहत्तर सौ अड़सठसे गुणा करके उसमें एक घटानेपर सर्वपद भंग होते हैं।

देशसंयतमें असंयमके स्थानपर देशसंयम रखना। तथा देवगति और नरकगति नहीं होतीं। सो प्रत्येक पद सोलह—मति १, श्रुत २, अवधि ४, चक्षु ८, अचक्षु १६, अवधि ३२,
२५ दान ६४, लाभ १२८, भोग २५६, उपभोग ५१२, वीर्य १०२४, अज्ञान २०४८, देशसंयम ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, जीवत्व १६३८४, भव्यत्व ३२७६८ हैं। भंग दूने-दूने होते हैं। भव्यत्वके भंग आधी पण्णट्ठी प्रमाण हैं। उनसे दूने एक पण्णट्ठी प्रमाण भंग एक गतिके हैं।

तिरि = गति । ६५ =	तिरि लिं ३ । ६५ = २	तिरि लिं ३ । क ४ । ६५ = २ । २
मनुगति ६५ =	मनु लिं ३ । ६५ = २	मनु लिं ३ । क ४ । ६५ = २ । २
कूडि ६५ = २	कूडि ६५ = २ । ६	कूडि ६५ = ४ । २४

→

तिरि = लिं ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २ । २	उपश ६५ = १६ । ७२
मनु लिं ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २ । २	वेदक ६५ = १६ । ७२
कूडि ६५ = ८ । ७२	क्षायि = मनु = लिं ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = १६ । ३६
	कूडि ६५ = १६ । १४४ । क्षा ६५ = ५७६

←

इंती प्रत्येकगतिलिंगकषायलेश्यासम्यक्त्वभंगराशिगळ्गे संदृष्टि :—

प्रत्येकधन	६५ =	१
गतिधन	६५ =	२
लिंगधन	६५ =	१२
कषायधन	६५ =	९६
लेश्याधन	६५ =	५७६
सम्यक्त्वधन	६५ =	२३०४
क्षायि धन	६५ =	५७६

यितु कूडि देशसंयतंगे सर्व्वपदभंगंगळ्ु ६५ = २९९१ । ऋ $\overset{०}{१}$ ।

अ २०४८ । दे ४०९६ । अ ८१९२ । जी १६३८४ । भ ६५ = $\overset{१}{२}$

तिरगति ६५ = १	तिरि लिं ३ । ६५ = २	ति लिं ३ क ४ । ६५ = २ । २
मनुगति ६५ = १	म लिं ३ । ६५ = २	मनु लिं ३ क ४ । ६५ = २ । २
मिलित्वा ६५ = २	मिलित्वा ६५ = २ । ६	मिलित्वा ६५ = २ । २ । २४

→

उनको तिर्यंच और मनुष्यगतिसे गुणा करनेपर दो पण्णट्ठी भंग हुए। एक गतिसे दूने एक लिंगके भंग दो पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं। उनको तिर्यंचगतिमें तीन लिंग और मनुष्यगतिमें तीन लिंगसे गुणा करनेपर बारह पण्णट्ठी भंग होते हैं। एक लिंगके भंगोंसे दूने एक कषायके भंग चार पण्णट्ठी होते हैं। उनको तिर्यंचगतिमें तीन लिंग सहित चार कषाय और मनुष्यगतिमें तीन लिंग सहित चार कषायसे गुणा करनेपर मिलाकर ४×२४=९६ छियानबे पण्णट्ठी भंग होते हैं। एक कषायके भंगोंसे दूने एक लेश्याके भंग आठ पण्णट्ठी होते हैं। उनको तिर्यंचमें तीन लिंग चार कषाय तीन लेश्या और मनुष्यमें तीन लिंग चार कषाय

१. संदृष्टेरग्रे—प्रत्येकपिंडपदभंगराशीनां संदृष्टिः—

प्रत्येकधनं	६५ = १
गतिधनं	६५ = २
लिंगधनं	६५ = १२
कषायधनं	६५ = ९६
लेश्या	६५ = ५७६
सम्य	६५ = २९९१
क्षायि	६५ = ५७६

खा ६५५७६ ॥ प्रमत्तसंयतंगे सर्व्वंपदभंगं पेळ्दपडुगुं । प्रमत्तंगे प्रत्येकपदंगळ् मतिज्ञानादि मनुष्यगतिपर्य्यंतं पदिनेंदुं पदंगळप्पुवु । सदृशपदंगळ् लिंगकषायलेश्यासम्यक्त्वभेददिंदं नाल्कप्पुवंतु द्वाविंशतिपदंगळ् द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदमप्पुवु । संदृष्टि—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सकलसंय १६३८४ । जो ६५ = १ । भ ६५ = म गति ६५ = २ । पिंडपदं :

	तिलि ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २ । २ ।	उ ६५ = १६।७२
←	म लि ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = २ । २ । २	वे ६५ = १६।७२
	मिलित्वा । ६५ = ८ । ७२	क्षा मनुलि३।क४।ले३।६५ = १६।३६
		मिलित्वा । उ । वे ।६५ = १६।१४४
		क्षा ३५ = ५७६

मिलित्वा सर्वपदघनं ६५ = २९९१ ऋ १ । क्षा ६५ = ५७६ ।

प्रमत्ते प्रत्येकपदानि मनुष्यगत्यंतान्यष्टादश सदृशपदानि लिंगकषायलेश्यासम्यक्त्वानि संदृष्टिः—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सकलसंयम १६३८४ । जो—६५ = १ भ ६५ = १ । म गति

१० सहित तीन लेश्यासे गुणा करनेपर सब मिलकर ८×७२ = ५७६ पाँच सौ छिहत्तर पण्णट्ठी भंग हुए । एक लेश्याके भंगसे दूने एक सम्यक्त्वके भंग सोलह पण्णट्ठी होते हैं । उनको तिर्यंचमें तीन लिंग चार कषाय छह लेश्या और मनुष्यमें तीन लिंग चार कषाय छह लेश्यासे गुणा करनेपर १६×७२=११५२ ग्यारह सौ बावन पण्णट्ठी भंग होते हैं । इतने भंग उपशम सम्यक्त्वके और इतने ही वेदक सम्यक्त्वके जानना । क्षायिक सम्यक्त्वमें मनुष्यगतिमें
१५ तीन लिंग चार कषाय तीन लेश्यासे सोलह पण्णट्ठीको गुणा करनेपर १६×३६ = ५७६ पाँच सौ छिहत्तर पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं । इस प्रकार देशसंयतमें सब मिलकर उनतीस सौ इक्यानबे गुणित पण्णट्ठीमें एक कम और क्षायिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा पाँच सौ छिहत्तर पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं ।

प्रमत्तमें मनःपर्ययज्ञान प्रत्येकपद बढ़ जाता है । तथा देशसंयम की जगह सराग-
२० संयम हो जाता है । तथा दूसरी गति न होनेसे मनुष्यगति भी प्रत्येकपद हो जाता है । इस प्रकार प्रत्येकपद अठारह हुए—मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, सकलसंयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व पण्णट्ठी ६५= मनुष्य गति दो पण्णट्ठी, इस तरह दूने-दूने भंग होते हैं । पिण्डपद चार हैं—लिंग, कषाय, लेश्या,
२५ सम्यक्त्व । अन्तिम प्रत्येक पद मनुष्यगतिके भंग दो पण्णट्ठी प्रमाण हैं । उनसे दूने एक लिंगके भंग चार पण्णट्ठी हुए । उनको तीन लिंगसे गुणा करनेपर बारह पण्णट्ठी हुए । एक लिंगके भंगोंसे दूने एक कषायके भंग आठ पण्णट्ठी होते हैं । उनको तीन वेद सहित चार कषायसे गुणा करनेपर छियानबे पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं । एक कषायके भंगोंसे दूने एक लेश्याके भंग सोलह पण्णट्ठी होते हैं । उनको तीन लिंग चार कषाय सहित तीन लेश्यासे

मनु लिंग ३।६५ = २।२	मनु लिंग ३ । क ४। ६५ = २।२।२
कूडि लब्ध । ६५ = १२	कूडि लब्ध ६५ = ९६

→

←

मनु लिंग ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = २।२। २ । २	सम्यक्त्व ३ । ले ३६ । ६५ = ३२
कूडि लब्ध लेश्या धन ६५ = ५७६	गुणित लब्ध ६५ = ३४५६

ई राशिगळगे संदृष्टि :

प्रत्येकधन	६५ =	४
लिंग धन	६५ =	१२
कषाय धन	६५ =	९६
लेश्या धन	६५ =	५७६
सम्यक्त्वधन	६५ =	३४५६

यितु प्रमत्तसंयतन सर्व्वपदभंग ६५ = ४१४४ । अप्रमत्तंगमिते ६५ = ४१४४ ॥

---

० २

६५ = २ ऋ १ । [1]

म लिं ३ । ६५ = २ । २	म । लिं ३ । क ४ । ६५ = २ । २ । २
मिलित्वालब्ध । ६५ = १२	मिलित्वा लब्ध ६५ = ९६

→

←

म । लिं ३ । क ४ । ले ३ । ६५ = २।२।२।२	सम्य ३ । ले ३६ । ६५ = ३२
मिलित्वा लब्धलेश्याधनं ६५ = ५७६	गुणितलब्ध ६५ = ३४५६

० ०

मिलित्वा सर्वपदधनं ६५ = ४१४४ ऋ १ । तथा अप्रमत्तेऽपि ६५ = ४१४४ ऋ १ ।

गुणा करनेपर १६ × ३६ = ५७६ पाँच सौ छिहत्तर पण्णट्ठी भंग होते हैं । एक लेश्याके भंगोंसे दूने भंग एक सम्यक्त्वके बत्तीस पण्णट्ठी होते हैं । उनको तीन वेद चार कषाय तीन लेश्या सहित तीन सम्यक्त्वसे गुणा करनेपर ३२ × १०८ = ३४५६ चौंतीस सौ छप्पन पण्णट्ठी भंग होते हैं । सब मिलकर प्रमत्तमें एक कम इकतालीस सौ चौवालीस पण्णट्ठी प्रमाण सर्वपद भंग होते हैं ।

अप्रमत्तमें भी प्रमत्तकी तरह ही एक कम इकतालीस सौ चौवालीस पण्णट्ठी भंग होते हैं ।

---

१. इतः परं—एषां राशीनां संदृष्टिः—

प्रत्येकधनं ६५ = ४
लिंगधनं ६५ = १२
कषायधनं ६५ = ९६
लेश्याधनं ६५ = ५७६
सम्यक्त्वधनं ६५ = ३४५६

इयान् पाठोऽधिकः ।

अनंतरमुपशमापूर्व्वकरणंगे पेळल्पडुगुं । :— उपशमकापूर्व्वकरणंग असदृशपदंगळु शुक्ललेश्यापर्य्यंतं एकान्नविंशतिपदंगळप्पुवु । सदृशपदंगळु लिंगकषायसम्यक्त्वभेदविंदं पदत्रितयमक्कुं मंतु द्वाविंशतिपदंगळुं द्विगुणद्विगुणक्रमविंदं नडेववु । संदृष्टि :—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५ = १ । भ ६५ = १ । म गति ६५ = २ । क शुक्ललेश्या ६५=२२ ।

२

मनुष्यगति लिंग ३ । ६५ = ८ लब्ध ६५ = २४	मनुष्यगति लिंग ३ । क ४ लब्ध ६५ = १९२	६५ = १६ ६५ = १९२

उप=क्षा = २६५ = ३२१२ लब्ध ६५ = ७६८	यिल्ली प्रत्येक संकलन	६५ = ८
	लिंग धन	६५ = २४
	कषाय धन	६५ = १९२
	सम्यक्त्व धन	६५ = ७६८

उपशमकेष्वपूर्वकरण असदृशपदानि शुक्ललेश्यांतान्येकान्नविंशतिः । सदृशपदानि लिंगकषायसम्यक्त्वानि । संदृष्टिः—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५ = १ भ ६५ = १

२

म गति ६५ = २ । शु ले ६५ = २ । २ ।

मनुष्यगतिलिंग ३।६५ = ८ लब्ध ६५ = २४	मनुलिंग ३ । क ४ । ६५ = १६ लब्ध ६५ = १९२	उप = क्षायिक २-६५ = ३२।१२ लब्ध ६५ = ७६८

अत्र प्रत्येकसंकलनं ६५ = ८
लिंगधनं ६५ = २४
कषायधनं ६५ = १९२
सम्यक्त्वधनं ६५ = ७६८

उपशमश्रेणीमें अपूर्वकरणमें अन्य लेश्या न होनेसे शुक्ल लेश्या भी प्रत्येक पद है। वहाँ मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, औपशमिक चारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व पण्णट्ठी ६५=, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी शुक्ललेश्या चार पण्णट्ठी, ये प्रत्येक पद हैं उनके दूने-दूने भंग हैं। पिण्डपद लिंग, कषाय, सम्यक्त्व तीन हैं। अन्तिम प्रत्येक पद शुक्ललेश्याके भंग चार पण्णट्ठी प्रमाण होते हैं। उनसे दूने एक लिंगके पद आठ पण्णट्ठी होते हैं। उनको तीन लिंगसे गुणा करनेपर चौबीस पण्णट्ठी भंग होते हैं। एक लिंगके भंगसे दूने एक कषायके भंग सोलह पण्णट्ठी होते हैं। उनको तीन लिंग सहित चार कषायसे गुणा करनेपर १६ × १२=१९२ एक सौ बानबे पण्णट्ठी भंग होते हैं। एक कषायके भंगसे दूने एक सम्यक्त्वके भंग बत्तीस पण्णट्ठी होते हैं। उनको तीन लिंग चार कषाय सहित दो सम्यक्त्वसे गुणा करनेपर ३२ × २४ = ७६८ सात सौ अड़सठ पण्णट्ठी भंग होते हैं। सब मिलकर अपूर्वकरणमें नौ सौ बानबे पण्णट्ठीमें-से एक

यितूपशमापूर्व्वकरणन सर्व्वपद भंग ६५=९९२॥ ऋ $\overset{०}{१}$। इल्लिगे सवेदानिवृत्तिकरणंगं भंगंगळप्पुवु। ६५=९९२। ऋ $\overset{०}{१}$। कषायानिवृत्तिकरणंगे म १। श्रु २। अ ४। म ८। च १६। अ ३२। अ ६४। दा १२८। ला २५६। भो ५१२। उ १०२४। वी २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। सं १६३८४। जो ६५=$\frac{१}{२}$। भ ६५=मनु =गति ६५=२। शुक्ललेश्या ६५=२। २।

मनुलिंग ३। क ४।६५=८	उपशम ६५=१६।४	इल्लि प्रत्येक पद संकलन धन ६५=८ ऋ $\overset{०}{१}$	
कूडि ६५=३२	क्षायिक ६५=१६।४	कषाय धन	६५=३२
यिल्लि प्रत्येक पद धन ६५=१६	लब्ध ६५=१६।१२८	सम्यक्त्व	६५=१२८
सम्यक्त्व धन ६५=३२			

यितु कूडि कषायानिवृत्तिकरणन सर्व्वपदभंग ६५=१६८॥ सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगे सर्व्व- ५
पदभंगंगळु पेळल्पडुगुमल्लि प्रत्येक पदंगळु इप्पत्तु। सम्यक्त्वमो दे सदृशपदमक्कुमंतु एकविंशति-

---

मिलित्वा सर्वपदभंगाः—६५=९९२ ऋ $\overset{०}{१}$। तथा सवेदावृत्तिकरणस्यापि ६५=९९२ ऋ $\overset{०}{१}$। कषायनिवृत्तिकरणस्य म १ श्रु २। अ ४। म ८। च १६। अ ३२। अ ६४। दा १२८। ला २५६। भो ५१२। उ १०२४। वी २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। सं १६३८४। जी ६५=$\frac{१}{२}$। भ ६५=१। मनुष्यगति ६५=२। शुक्ललेश्या ६५=२। २। १०

म—लिंग०। क ४। ६५=८	उप—६५=१६। ४	०
मिलित्वा लब्ध ६५=३२	क्षा ६५=१६। ४	अत्र प्रत्येकसंकलनधनं=८। ऋ १
	लब्ध ६५=१२८	कषायधनं ६५=३२
		सम्यक्त्वधनं ६५=१२८

मिलित्वा सर्वपदभंगाः ६५=१६८।

सूक्ष्मसाम्परायस्य प्रत्येकपदानि विंशतिः सदृशपदं सम्यक्त्वं। संदृष्टिः—म १। श्रु २। अ ४। म ८।

कम भंग प्रत्येकपद और पिण्डपदके होते हैं। वेदसहित अनिवृत्तिकरणमें भी अपूर्वकरणकी तरह एक कम नौ सौ बानवे पण्णट्ठी भंग होते हैं।

वेदरहित अनिवृत्तिकरणमें प्रत्येकपद मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, १५
अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, औपशमिकचारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व एक पण्णट्ठी, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी, शुक्ललेश्या चार पण्णट्ठी हैं इस प्रकार भंग दूने-दूने हैं। पिण्डपदोंमें-से शुक्ललेश्याके चार पण्णट्ठी प्रमाण भंगोंसे दूने एक कषायके भंग आठ पण्णट्ठी हैं। उनको चार कषायसे गुणा करनेपर बत्तीस पण्णट्ठी प्रमाण भंग हुए। एक २०
कषायके भंगोंसे दूने सम्यक्त्वके भंग सोलह पण्णट्ठी होते हैं। उनको चार कषाय सहित दो सम्यक्त्वोंसे गुणा करनेपर १६×८=१२८ एक सौ अठाईस पण्णट्ठी प्रमाण भंग होते हैं इस प्रकार प्रत्येकपद और पिण्डपदके भंग एक कम एक सौ अड़सठ पण्णट्ठीमें होते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायमें प्रत्येक पद मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु

पदंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु । संदृष्टिः—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५=१/२ । भ ६५=१ । मनु गति ६५=२ । शुक्ललेश्ये ६५=२ । २ । सू लो ६५=२ । २ । २ ः

सम्यक्त्व उपशम = ६५=१६	कूडि सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगे सर्व्वपदभंगंगळु इनित-
क्षायिक ६५=१६	

प्पुवु ६५=४८ । ऋ १/० ॥

उपशांतकषायंगे प्रत्येकपदंगळे कान्नविंशतिप्रमितंगळप्पुवु । सम्यक्त्वपदमों दे पिंडपद— मक्कुमंतु विंशति पदंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु । अदक्के संदृष्टि :—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । ४०९६ । अ ८१९२ । संय १६३८४ । जी ६५=१/२ । भ ६५=१ । म गति ६५=२ । शुक्ललेश्ये ६५=४ । सम्यक्त्व २ । ६५=८ । यितुपशांतकषायंगे प्रत्येक पद धन ६५=८ कूडि सर्व्व-सम्यक्त्व धन ६५=१६

च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५=१/२ भ ६५—मनुष्यगति ६५=२ । शुक्ललेश्या ६५=२ । २ । सूक्ष्मलोभ ६५=२ । २ । २ ।

सम्यक्त्व उपशम ६५=१६	प्रत्येकधनं ६५=१६
क्षायिक ६५=१६	सम्यक्त्वधनं ६५=३२

मिलित्वा सर्वपदधनं ६५=४८ ऋ १/० ।

उपशान्तकषाये प्रत्येकपदान्येकान्नविंशतिः । सम्यक्त्वमेव पिंडपदं । संदृष्टिः—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५=१/२ । भ ६५—१ । म ग ६५=२ शु ले ६५=४ । सम्यक्त्व २ । ६५=८ ।

३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, औपशमिकचारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व ६५=पण्णट्ठी, मनुष्य दो पण्णट्ठी, शुक्ललेश्या चार पण्णट्ठी, सूक्ष्मलोभ आठ पण्णट्ठी हैं, इस तरह भंग दूने-दूने होते हैं । पिण्डपदमें सम्यक्त्वके भंग सूक्ष्मलोभके आठ पण्णट्ठीसे दूने होते हैं । उनको उपशम और क्षायिक सम्यक्त्वसे गुणा करनेपर बत्तीस पण्णट्ठी प्रमाण भंग हुए। प्रत्येक पद और पिण्डपदके मिलकर अड़तालीस पण्णट्ठीमें एक कम सर्वपद भंग होते हैं ।

उपशान्तकषायमें प्रत्येक पद मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, औपशमिकचारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व एक पण्णट्ठी, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी, शुक्ललेश्या चार पण्णट्ठी होते हैं । इस प्रकार भंग दूने-दूने होते

पदभंगमुपशांतकषायंगिनितप्पुवु । ६५ = २४ ॥ क्षपकापूर्व्वानिवृत्तिगळ्गे प्रत्येकपदंगळु क्षायिक-सम्यक्त्वपर्य्यंतमिप्पत्तु लिंगकषायंगळ्रडुं पिंडपदंगळप्पुवंतु द्वाविंशतिपदंगळु द्विगुणद्विगुण क्रमंगळप्पुवु । संदृष्टि :—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५ = १ । भ ६५ = १ । म गति ६५ = २ । शुक्ललेश्ये ६५ = ४ । क्षायिकसम्यक्त्व ६५ = ८ ।

लिंग ३ । ६५ = १६	लिंग ३ । कषाय ४ । ६५ = ३२	यिल्लि प्रत्येक धन ६५ = १६
लब्ध ६५ = ४८	लब्ध ६५ = ३८४	लिंग धन ६५ = ४८
		कषाय धन ६५ = ३८४

प्रत्येकपदधनं ६५ = ८
सम्यक्त्वधनं ६५ = १६

०

मिलित्वा सर्वपदधनं ६५ = ४८ ऋ १ ।

क्षायिकेत्यपूर्वकरणे प्रत्येकपदानि क्षायिकसम्यक्त्वांतानि विंशतिः । लिंगकषायौ पिंडपदे । संदृष्टिः—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ । अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । सं १६३८४ । जी ६५ = १ भ ६५ = १ । म ग २५ = २ । शुक्ल ले ६५ = ४ । क्षा-सम्य-६५ = ८ । ०

लिंग ३ । ६५ = १६	लिंग ३ कषाय ४ । ६५ = २३	प्रत्येकधनं ६५ = १६
लब्ध ६५ = ४८	लब्ध ६५ = ३८४	लिंगधनं ६५ = ४८
		कषायधनं ६५ = ३८४

मिलित्वा सर्वपदधनं ६५ = ४४८ । ऋ १ । तथा सवेदानिवृत्तिकरणेऽपि-६५ = ४४८ । ऋ १ ।

२ ० ० १०

हैं । पिण्डपदमें शुक्ललेश्याके चार पण्णट्ठी प्रमाण भंगोंसे दूने एक सम्यक्त्वके भंग हैं इतने ही उपशमसम्यक्त्वके और इतने ही क्षायिकसम्यक्त्वके मिलकर सोलह पण्णट्ठी होते हैं । प्रत्येक पद और पिण्डपद मिलकर चौबीस पण्णट्ठीमें एक कम सर्वपद भंग होते हैं ।

क्षपकश्रेणीमें अपूर्वकरणमें प्रत्येकपद और उनके भंग मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनः- १५
पर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, क्षायिकचारित्र १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व एक पण्णट्ठी, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी, शुक्ललेश्या चार पण्णट्ठी, क्षायिक-सम्यक्त्व आठ पण्णट्ठी हैं । क्षायिक सम्यक्त्वके भंग आठ पण्णट्ठीसे दूने एक लिंगके भंग हैं । उनको तीन लिंगोंसे गुणा करनेपर अड़तालीस पण्णट्ठी भंग हुए । एक लिंगके भंगोंसे दूने २०
एक कषायके भंग बत्तीस पण्णट्ठी हैं । उनको तीन वेदसहित चार कषायोंसे गुणा करनेपर ३२ × १२ = ३८४ तीन सौ चौरासी पण्णट्ठी भंग हुए । सो प्रत्येकपद और पिण्डपदके मिल-कर चार सौ अड़तालीस पण्णट्ठीमें एक कम सर्वपद भंग होते हैं । इसी प्रकार वेदसहित अनिवृत्तिकरणमें भी चार सौ अड़तालीस पण्णट्ठीमें एक कम सर्वपद भंग होते हैं ।

कूडि क्षपकापूर्व्वकरणंगे सर्व्वपदभंग ६५=४४८॥ सवेदानिवृत्तिकरणंगमुमिनिते सर्व्वपद-भंगंगळप्पुवु। ६५=४४८॥ कषायानिवृत्तिक्षपकंगे प्रत्येकपदंगळु क्षायिकसम्यक्त्वपर्य्यंत विंशतिपदंगळप्पुवु। कषाय पदमो दे सदृशपदमक्कुमितु एकविंशति पदंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु। आ पदंगळगे संदृष्टिरचने इदु। म १। श्रु २। अ ४। म ८। च १६। अ ३२। अ ६४। दा १२८। ला २५६। भो ५१२। उ १०२४। वी २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। सं १६३८४। जी ६५=१। भ ६५=१। मनु=गति=६५=२। शुक्ललेश्ये ६५=२। २। क्षायिक सम्य६५=८।

कषाय ४। ६५=१६। इल्लि प्रत्येक धन ६५=१६। ऋ १	०
लब्ध ६५=६४। कषाय धन ६५=६४	

कूडि कषायानिवृत्ति सर्व्वपद-भंगंगळिनितप्पुवु। ६५=८०। ऋ १ ॥

सूक्ष्मसांपरायक्षपकंगे सर्व्वपदभंगं तरल्पडुगुमल्लि असदृश पदंगळु सूक्ष्मसांपरायपर्य्यंत मिप्पत्तों दु पदंगळप्पुवु। संदृष्टि :—म १। श्रु २। अ ४। म ८। च १६। अ ३२। अ ६४। दा १२८। ला २५६। भो ५१२। उ १०२४। वी २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। सू सं १६३८४।

कषायानिवृत्तिकरणे प्रत्येकपदानि क्षायिकसम्यक्त्वांतानि विंशतिः। कषायाः सदृशपदं संदृष्टिः—म १। श्रु २। अ ४। म ८। च १६। अ ३२। अ ६४। दा १२८। ला २५६। भो ५१२। उ १०२४। वी २०४८। अ ४०९६। अ ८१९२। सं १६३८४। जी ६५=१ भ ६५=१ म-ग ६५=२। शु-ले ६५=४। क्षा-स ६५=८।

कषाय ४। ६५=१६	२
लब्ध ६५=६४	

मिलित्वा सर्वपदधनं ६५=८०। ऋ १। ०

सूक्ष्मसाम्पराये असदृशपदान्येव सूक्ष्मलोभांतान्येकविंशतिः। संदृष्टिः म १। श्रु २। अ ४। म ८। च १६। अ ३२। अ ६४। दा १२८। ला २५६। भो ५१२। उ १०२४। वी २०४८। अ ४०९६।

वेदरहित अनिवृत्तिकरणमें प्रत्येक पद और उनके भंग इस प्रकार हैं—मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, क्षायिक संयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व एक पण्णट्ठी, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी, शुक्ललेश्या चार पण्णट्ठी, क्षायिकसम्यक्त्व आठ पण्णट्ठी। पिण्डपदमें क्षायिकसम्यक्त्वके आठ पण्णट्ठी भंगोंसे दूने एक कषायके भंग होते हैं। उनको चार कषायोंसे गुणा करनेपर चौंसठ पण्णट्ठी होते हैं। प्रत्येक पद और पिण्डपदके मिलकर सर्वपद भंग अस्सी पण्णट्ठीमें एक कम होते हैं।

आगे सूक्ष्म साम्पराय आदिमें प्रत्येक पद ही हैं, पिण्डपद नहीं हैं। सूक्ष्म साम्परायमें मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ

---

१. म सूक्ष्मलोभप०।

जी ६५=१ । भ ६५=१ । म गति=६५=२ । शुक्कले ६५=४ । क्षा=सम्य ६५=८ ।
२
सूक्ष्मलोभ ६५=१६ । इट्टुपदे रूऊणे इत्याद्यानीतसंकलनधनं सूक्ष्मसांपरायक्षपकन सर्व्वपद
भंगंगळिनितप्पुवु । ६५=३२ ऋ १ ॥ क्षीणकषायंगे सर्व्वपद भंगंगळु पेळल्पडुगुमल्लि प्रत्येकपदंगळु
विंशति प्रमितंगळु द्विगुणक्रमदिनप्पुवु । संदृष्टि :—म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ ।
अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । ५
संय १६३८४ । जी ६५=१ । भ ६५=१ । म गति ६५=२ । शुक्कले ६५=२ । २ । क्षायिक-
२
सम्यक्त्व ६५=८ । अंतधणं गुणगुणियमित्याद्यानीतसंकलनधनमिदु ६५=१६ । ऋ १ ॥

सयोगकेवलिभट्टारकंगे असदृशपदंगळे पदिनाल्कप्पुवु । संदृष्टि :—केवलज्ञान १ । केवल-
दर्शन २ । क्षायिकसम्यक्त्व ४ । यथाख्यातचारित्र ८ । क्षा दान १६ । क्षा लाभ ३२ । क्षा भो ६४ ।
क्षा उपभोग १२८ । अनंतवीर्य २५६ । असिद्धत्व ५१२ । जीवत्व १०२४ । भव्यत्व २०४८ । १०
मनुष्यगति ४०९६ । शुक्कलेश्ये ८१९२ । अंतधणं गुणगुणियं इत्याद्यानीतलब्धं सयोगकेवलि

अ ८१९२ । सू सं १६३८४ । जी ६५=१ भ ६५=१ म–ग ६५=२ शु–ले ६५=४ । क्षा–सं ६५=८ ।
२ ०
सू लो ६५=१६ । भंगाः ६५=३२ । ऋ १ ।

क्षीणकषाये प्रत्येकपदान्येव विंशतिः । संदृष्टिः म १ । श्रु २ । अ ४ । म ८ । च १६ । अ ३२ ।
अ ६४ । दा १२८ । ला २५६ । भो ५१२ । उ १०२४ । वी २०४८ । अ ४०९६ । अ ८१९२ । १५
म १६३८४ । जी ६५=१ भ ६५=१ म–ग ६५=२ । शु–ले ६५=४ । क्षा–सं ६५=८ । अन्तधणं
२
गुणगुणियमित्याद्यानीतभंगाः ६५=१६ ऋ १ ।
०

सयोगे असदृशपदान्येव चतुर्दश । संदृष्टिः—के–ज्ञा १ के–द २ । क्षा–स ४ । य–चा ८ । क्षा–दा १६ ।
क्षा–ला ३२ । क्षा भो ६४ । क्षा उ १२८ । अनन्तवी २५६ । असिद्धत्व ५१२ । जी १०२४ । भ २०४८ ।

२५६, भोग ५१२, उपभोग १०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, संयम २०
१६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व एक पण्णट्ठी, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी, शुक्कलेश्या चार पण्णट्ठी, क्षायिकसम्यक्त्व आठ पण्णट्ठी, सूक्ष्मलोभ सोलह पण्णट्ठी प्रत्येक पद और भंग हैं। सब भंग बत्तीस पण्णट्ठीमें एक कम होते हैं।

क्षीणकषायमें बीस प्रत्येक पद और भंग इस प्रकार हैं—मति १, श्रुत २, अवधि ४, मनःपर्यय ८, चक्षु १६, अचक्षु ३२, अवधि ६४, दान १२८, लाभ २५६, भोग ५१२, उपभोग २५
१०२४, वीर्य २०४८, अज्ञान ४०९६, असिद्धत्व ८१९२, संयम १६३८४, जीवत्व ३२७६८, भव्यत्व एक पण्णट्ठी, मनुष्यगति दो पण्णट्ठी, शुक्कलेश्या चार पण्णट्ठी, क्षायिकसम्यक्त्व आठ पण्णट्ठी। ये सब भंग मिलकर सोलह पण्णट्ठीमें एक कम होते हैं। सयोगीमें प्रत्येक पद और उनके भंग इस प्रकार हैं—केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, क्षायिकसम्यक्त्व ४,

भट्टारकंगे सर्व्वपदभंगमिनितप्पुवु । २५६ । ६४ । ऋ १ गुणितलब्धमिदु १६३८४ । अयोगिकेवलि-भट्टारकंगे असदृशपदंगळे पविमूरप्पुवु । अवक्के संदृष्टि :—केवलज्ञान १ । केवलदर्शन २ । क्षायिकसम्यक्त्व ४ । यथाख्यातचारित्र ८ । क्षा दा १६ । क्षा ला ३२ । क्षा भो ६४ । क्षा उपभोग १२८ । क्षा वी २५६ । असिद्धत्व २५६।२ । जीवत्व २५६ । २ । २ । भव्यत्व २५६ । २ । २ । २ । मनुष्यगति २५६ । १६ । अंतधणं गुणगुणियमित्याद्यानीतसंकलितधन मयोगिभट्टारकंगे सर्व्वपद भंगप्रमाणमिदु २५६ । ३२ । ऋ १ ॥ सिद्धपरमेष्टिगळगे केवलज्ञान १ । केवलदर्शन २ । क्षायिक-सम्यक्त्व नाल्कु ४ । अनंतवीर्य्य ८ । जीवत्व १६ । अंतुसिद्धपरमेष्टिगळगे असदृश पदंगळ्दप्पुवु । तत्संकलितधनं मूवत्तों दु भंगंगळप्पुवु ३१ ॥

इंतुक्त मिथ्यादृष्टयादिगुणस्थानंगळोळु पिंडपदंगळु तिर्य्यंग्रूपदिंदं रचियिसल्पडुवुवु । अल्लि असंयत देशसंयतरुगळ क्षायिकसम्यक्त्वमं बिट्टु अन्यत्र संभवं कुरुत्तु गुणस्थानंगळोळु क्षायिक-सम्यक्त्वक्केयुं भंगंगळु तरल्पडुवुर्वेंदु पेळ्दपरु । :—

म–ग ४०९६ । शु–ले ८१९२ । भंगाः २५६ । ६४ । ऋ १ गुणिते १६३८४ ।

अयोगे असदृशपदान्येव त्रयोदश । संदृष्टिः—के–ज्ञा १ । के–द २ । क्षा–स ४ । य–चा ८ । क्षा–दा १६ । क्षा ला ३२ । क्षा भो ६४ । क्षा–उ १२८ । क्षा–वी २५६ । असि २५६ । २ । जी २५६ । २ । २ । भ २५६ । २ । २ । २ । म–ग २५६ । १६ । भंगाः २५६ । ३२ । ऋ १ । ४०९६ × २ = ८१९२ ।

सिद्धे के– ज्ञा १ । के–दा २ । क्षा–स ४ । अ–वी ८ । जी १६ । इत्यसदृशपदानि पंच, भंगा एकत्रिंशत् ॥८६१॥

यथाख्यातसंयम ८, क्षायिकदान १६, लाभ ३२, भोग ६४, उपभोग १२८, वीर्य २५६, असिद्धत्व ५१२, जीवत्व १०२४, भव्यत्व २०४८, मनुष्यगति ४०९६, शुक्ललेश्या ८१९२। सब मिलकर २५६ × ६४=दो सौ छप्पनसे चौंसठ गुणेमें एक कम भंग होते हैं।

अयोगीमें केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, क्षायिकसम्यक्त्व ४, यथाख्यात संयम ८, दान १६, लाभ ३२, भोग ६४, उपभोग १२८, वीर्य २५६, असिद्धत्व ५१२, जीवत्व १०२४ भव्यत्व २०४८, मनुष्यगति ४०९६, प्रत्येक पद और भंग हैं। सब मिलकर २५६ × ३२ दो सौ छप्पनसे बत्तीस गुनेमें एक कम भंग होते हैं।

सिद्धोंमें केवलज्ञान १, केवलदर्शन २, क्षायिकसम्यक्त्व ४, अनन्तवीर्य ८, जीवत्व १६ प्रत्येक पद है। भंग सब मिलकर इकतीस हैं।

प्रत्येक पदको असदश पद भी कहते हैं क्योंकि इनका प्रतिपक्षी नहीं होता। पिण्डपद-को सदश पद भी कहते हैं। उनका समान प्रतिपक्षी होता है ॥८६१॥

आगे उक्त कथनको गाथा द्वारा कहते हैं—

तेरिच्छा हु सरिच्छा अविरददेसाण खयियसम्मत्तं ।
मोत्तूण संभवं पडि खयिगस्स वि आणए भंगे ॥८६२॥

तिर्य्यक्खलु सदृशा अविरतदेशव्रतानां क्षायिकसम्यक्त्वं मुक्त्वा संभवं प्रति क्षायिकस्यापि आनयेद्भंगान् । पिंडभावंगळं तिर्य्यग्रूपदिंदं रचियिसुवुदु । अल्लि असंयत देशसंयतरुगळ क्षायिक-सम्यक्त्वक्के बेरे भंगंगळु तरल्पडुवुदप्पुदरिंदमदं बिट्टु संभवगुणस्थानदोळु क्षायिक सम्यक्त्वक्कं भंगंगळंतप्पुवु ।

उड्ढतिरिच्छपदाणं सव्वसमासेण होदि सव्वधणं ।
सव्वपदाणं भंगे मिच्छादिगुणेसु णियमेण ॥८६३॥

ऊर्ध्वतिर्य्यक्पदानां सर्व्वसमासेन भवति सर्व्वधनं । सर्व्वपदानां भंगे मिथ्यादिगुणेषु नियमेन ॥

सर्व्वपदभंगानयनविधानदोळु मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानंगळोळु ऊर्ध्वपदंगळ धनमुमं तिर्य्यक्पदंगळ धनमुमं तंदु तद्धनंगळ सर्व्वसमासदिंदं तत्तद्गुणस्थानद सर्व्वधननियमदिंदक्कु ॥

अनंतरमुक्तगुणस्थानंगळ प्रत्येकपदसंख्येयं पेळ्दपरु :—

मिच्छादीणं दुति दुसु अपुव्वअणियट्टिखवगसमगेसु ।
सुहुमुवसमगे संते सेसे पत्तेयपदसंखा ॥८६४॥

मिथ्यादृष्टयादीनां द्वित्रिद्वयोः अपूर्व्वानिवृत्तिक्षपकोपशमकेषु । सूक्ष्मोपशमके शांते शेषे प्रत्येकपद संख्या वक्ष्यंते ॥

गुणस्थानोक्तपिंडभावान् खलु तिर्यग्रूपेण रचयित्वा तत्रासंयतदेशसंयतयोः क्षायिकसम्यक्त्वं पृथक्कथनात्त्यक्त्वा तत्संभवगुणस्थानान्याश्रित्य क्षायिकसम्यक्त्वस्यापि भंगानानयेत् ॥८६२॥

सर्वपदभंगानयने मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानेषु ऊर्ध्वपदधनं तिर्यक्पदधनं चानीय तयोः समासेन तत्तद्गुणस्थानस्य सर्वधनं भवति नियमेन ॥८६३॥

गुणस्थानोंमें कहे पिण्डपदरूप भावोंको तिर्यक् रूपसे बराबरमें रचकर गुणस्थानोंके आश्रयसे यथासम्भव भंग लाना चाहिए। उनमें-से असंयत और देशसंयतमें क्षायिक-सम्यक्त्वका कथन पृथक् होनेसे उसे छोड़ देना चाहिए। तथा क्षायिकसम्यक्त्वमें सम्भव गुणस्थानोंको लेकर क्षायिकसम्यक्त्वके भी अलगसे भंग लाना चाहिए ॥८६२॥

सर्वपदोंके भंग लानेके लिए मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें, जिनकी ऊर्ध्वरूप रचना है ऐसे प्रत्येकपदोंका भंगरूप धन तथा जिनकी तिर्यक्रूप रचना है ऐसे पिण्डपदोंका भंग-रूप धन लाकर उन दोनोंको मिलाकर उस-उस गुणस्थानमें सर्वपदोंका भंगरूप सर्वधन नियमसे होता है ॥८६३॥

१. दव्वस० मु० ।

मिथ्यादृष्टिसासादनगुणस्थानद्वयदोळं मिश्रासंयतदेशसंयतगुणस्थानत्रयदोळं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानद्वयदोळं अपूर्व्वानिवृत्तिक्षपकोपशमकरुगळोळं सूक्ष्मसांपरायोपशमकनोळं उपशांतकषायनोळं शेषसूक्ष्मसांपरायक्षपकक्षीणकषायादिगळोळं प्रत्येकपदंगळ संख्येयं मुंदण सूत्रदिंदं पेळ्दपरु :—

पण्णर सोलट्ठारस वीसुगुवीसं च वीसमुगुवीसं ।
इगिवीस वीस चोद्दस तेरस पणगं जहाकमसो ॥८६५॥

पंचदश षोडशाष्टदश विंशत्येकान्नविंशतिश्च विंशतिरेकान्नविंशतिश्च । एकविंशतिर्विंशतिश्चतुर्दश त्रयोदश पंचकं यथाक्रमशः ॥

मिथ्यादृष्टियोळं सासादननोळं प्रत्येकपदंगळु पदिनैदुं पदिनय्दुमप्पुवु । मिश्रासंयत देशसंयतरुगळोळु प्रत्येकं पदिनारु पदिनारु प्रत्येक पदंगळप्पुवु । प्रमत्ताप्रमत्तसंयतरोळु प्रत्येकं पदिनेंटुं पदिनेंटुं प्रत्येकपदंगळप्पुवु । अपूर्व्वकरणानिवृत्तिकरण क्षपकोपशमकरुगळोळु विंशतियुमेकान्नविंशतियुं प्रत्येकं प्रत्येकपदंगळप्पुवु । सूक्ष्मसांपरायोपशमकनोळु प्रत्येकपदंगळिप्पत्तप्पुवु । उपशांतकषायनोळु एकान्नविंशति प्रत्येकपदंगळप्पुवु । शेषसूक्ष्मसांपरायक्षपकनोळु प्रत्येकपदंगळेकविंशतियुं क्षीणकषायनोळु विंशतियुं सयोगिकेवलिगळोळु पदिनाल्कुं अयोगिकेवलिगळोळु पदिमूरुं सिद्धपरमेष्ठिगळोळु पंचकमुं क्रमदिंदमिंतु प्रत्येकपदंगळप्पुवु । संदृष्टिः—मि १५ । सा १५ । मि १६ । अ १६ । दे १६ । प्र १८ । अ १८ । अ = क्ष २० । उप १९ । अनि क्ष २० । उप १९ । सू उप २० । क्षप २१ । उपशांत कषाय १९ । क्षी २० । स १४ । अ १३ । सि ५ ॥

अनंतरं पूर्व्वोक्तमिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानंगळोळु क्षीणकषायपर्य्यंतमाद पन्नेरडुं गुणस्थानंगळोळु सर्व्वपदभंगंगळगे गुण्य पण्णट्ठिप्रमितमेंदु पेळ्दपरु ।

तानि प्रत्येकपदानि क्रमेण मिथ्यादृष्ट्यादिद्वये प्रत्येकं पंचदश । मिश्रादित्रये षोडश । प्रमत्तादिद्वयेऽष्टादश । उभयश्रेण्यपूर्वकरणादिद्वये विंशतिरेकान्नविंशतिः उपशमकसूक्ष्मसाम्पराये विंशतिः । उपशान्तकषाये एकान्नविंशतिः । क्षपकसूक्ष्मसाम्पराये एकविंशतिः क्षीणकषाये विंशतिः । सयोगे चतुर्दश । अयोगे त्रयोदश । सिद्धे पंच ॥८६४-८६५॥

वे प्रत्येकपद क्रमसे मिथ्यादृष्टि आदि दो गुणस्थानोंमें-से प्रत्येकमें पन्द्रह होते हैं । मिश्र आदि तीनमें सोलह-सोलह, प्रमत्त आदि दोमें अठारह, दोनों श्रेणियोंके अपूर्वकरण आदि दो गुणस्थानमें बीस और उन्नीस, उपशम सूक्ष्मसाम्परायमें बीस, उपशान्तकषायमें उन्नीस, क्षपक सूक्ष्मसाम्परायमें इक्कीस, क्षीणकषायमें बीस, सयोगीमें चौदह, अयोगीमें तेरह और सिद्धोंमें पाँच होते हैं ॥८६४-८६५॥

---

१. म सूत्रदोलु ।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडिं खीणकसाओत्ति सव्वपदभंगा ।
पण्णट्ठिं च सहस्सा पंचसया होंति छत्तीसा ॥८६६॥

मिथ्यादृष्टिप्रभृति क्षीणकषायपर्यंतं सर्वपदभंगाः । पंचषष्टिसहस्राणि पंचशतानि भवंति षट्त्रिंशत् ॥

मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं मोदल्गोंडु क्षीणकषायगुणस्थानपर्यंतं सर्वपदभंगंगळु पंचषष्टि-सहस्रंगळु पंचशतंगळु षट्त्रिंशत्प्रमितं गुण्यराशियक्कुं । ६५५३६ ॥

अनंतरमा गुण्यभंगंगळगे गुणकारभंगंगळं मिथ्यादृष्टियादियागि क्षीणकषायपर्यंतं क्रमदिंदं पेळ्दपरु :—

तग्गुणगारा कमसो पणणउदेयत्तरीसयाण दलं ।
ऊणट्ठारसयाणं दलं तु सत्तहियसोलसयं ॥८६७॥

तद्गुणकाराः क्रमशः पंचनवतिरेकसप्तत्यधिकशतानां दलं ऊनाष्टादशशतानां दलं तु सप्ताधिकषोडशशतं ॥

मिथ्यादृष्टियोळु गुण्यभूत पण्णट्ठिगे गुणकारंगळु एळु सासिरद नूर तोंभत्तय्दु गळर्द्धंमक्कुं । सासादनंगे गुण्यभूत पण्णट्ठिगे गुणकारभंगंगळं रूपोनाष्टादशशतंगळर्द्धंमक्कुं ॥ मिश्रंगे तु मत्ते पण्णट्ठिगे गुणकारंगळु सासिरदरुनूरेळप्पुवु ॥

तेवत्तरिं सयाइं सत्तावट्ठीय अविरदे सम्मे ।
सोलस चेव सयाइं चउसट्ठी खइयसम्मस्स ॥८६८॥

त्रिसप्ततिशतानि सप्तषष्टिश्चाविरतसम्यग्दृष्टौ षोडश चैव शतानि चतुःषष्टिः क्षायिकसम्यक्त्वस्य ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोळु एळु सासिरद मूनूररुवत्तेळु गुणकारंगळुं क्षायिकसम्यक्त्वदोळु

मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतसर्वपदभंगा उच्यन्ते । तत्र पंचषष्टिसहस्राणि पंचशतानि षट्त्रिंशच्च गुण्यं भवति ॥८६६॥

तस्य गुण्यस्य गुणकाराः क्रमेण मिथ्यादृष्टौ सप्तसहस्रैकशतपंचनवत्यर्द्धं, तु-पुनः सासादने रूपोनाष्टादशशतार्धं । मिश्रे सप्ताग्रषोडशशतानि ॥८६७॥

असंयतसम्यग्दृष्टौ सप्तषष्ट्यधिकत्रिशताग्रसप्तसहस्रो । तत्क्षायिकसम्यक्त्वे चतुःषष्ट्यग्रषोड-

---

मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायपर्यन्त सर्वपदोंके भंग कहते हैं । उनमें पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस गुण्य हैं । इसे ही पण्णट्ठी कहते हैं ॥८६६॥

आगे इस गुण्यके गुणकार कहते हैं—

उक्त गुण्यके गुणकार क्रमसे मिथ्यादृष्टिमें इकहत्तर सौ पंचानबेका आधा प्रमाण है । सासादनमें एक कम अठारह सौका आधा प्रमाण है । मिश्रमें सोलह सौ सात है ॥८६७॥

असंयतसम्यग्दृष्टीमें तिहत्तर सौ सड़सठ है । क्षायिकसम्यक्त्वमें गुणकार सोलह सौ

सासिरदरुनूररुवत्तनाल्कु गुणकारंगळु गुण्यभूतपण्णट्ठिगळप्पुवु ।

ऊणत्तीससयाइं एक्काणउदी य देसविरदम्मि ।
छावत्तरि पंचसया खयियणरे णत्थि तिरियम्मि ॥८६९॥

एकोनत्रिंशच्छतानि एक नवतिश्च देशविरते । षट्सप्तति पंचशतानि क्षायिकनरे नास्ति तिरश्चि ॥

देशसंयतन गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु येरडु सासिरदो भैनूर तो भत्तो दप्पुवु । क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्यनोळु आ गुण्यक्के गुणकारंगळैनूरेप्पत्तारप्पुवु । नास्ति तिरश्चि तिर्य्यंच-क्षायिकसम्यग्दृष्टि देशसंयतरिल्लप्पुदरिंदमा तिर्य्यंचरोळु गुण्यगुणकार मिल्ल ॥

इगिदालं च सयाइं चउदालं च य पमत्त इदरे य ।
पुव्वुवसमगे वेदाणियट्टिभागे सहस्समट्ठूणं ॥८७०॥

एकचत्वारिंशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशच्च च प्रमत्ते इतरस्मिंश्च अपूर्व्वोपशमके वेदानिवृत्ति-भागे सहस्रमष्टोनं ॥

प्रमत्तसंयतरोळु गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु नाल्कु सासिरदनूर नाल्वत्त नाल्कप्पुवु । अप्रमत्तसंयतनोळमंते आ गुण्यक्के गुणकारंगळु मनिते यप्पुवु । अपूर्व्वकरणोपशमकंगे गुण्यभूत-पण्णट्ठिगे गुणकारंगळु वो भैनूर तो भत्तेरडप्पुवु । वेदानिवृत्तिभागेयोळुपशमकंगे गुण्यभूतपण्ण-ट्ठिगे गुणकारंगळु मो भैनूरतो भत्तेरडप्पुवु ॥

अडसट्ठी एक्कसयं कसायभागम्मि सुहुमगे संते ।
अडदालं चउवीसं खवगेसु जहाकमं वोच्छं ॥८७१॥

अष्टषष्टिरेकशतं कषायभागे सूक्ष्मसांपराये उपशांतकषाये अष्टचत्वारिंशत् चतुर्विंशतिः क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥

शशतानि ॥८६८॥

देशसंयते एकनवत्यग्रनवशतद्विसहस्री । तत्क्षायिकसम्यग्दृष्टिमनुष्ये षट्सप्तत्यग्रपंचशतानि । तिरश्चि क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्देशसंयतो नेति गुण्यगुणकारौ न स्तः ॥८६९॥

प्रमत्ते अप्रमत्ते च चतुश्चत्वारिंशदग्रैकशतचतुःसहस्री । उपशमकेष्वपूर्वकरणे सवेदानिवृत्तिकरणे च द्वानवत्यग्रनवशती ॥८७०॥

चौंसठ है ॥८६८॥

देश संयतमें गुणकार दो हजार नौ सौ इक्यानवे हैं । यहाँ क्षायिक सम्यग्दृष्टी मनुष्य-में गुणकार पाँच सौ छिहत्तर है । तिर्यंचगतिमें देशसंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टी नहीं होता । इसलिए वहाँ गुण्य-गुणकार दोनों नहीं हैं ॥८६९॥

प्रमत्त और अप्रमत्तमें इकतालीस सौ चौवालीस है । उपशमश्रेणीके अपूर्वकरण और सवेद अनिवृत्तिकरणमें गुणकार आठ कम एक हजार है ॥८७०॥

उपशमकषायानिवृत्तिभागेयोळु गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु नूररुवत्तेंटप्पुवु। सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगे गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु नाल्वत्तेंटप्पुवु। उपशांतकषायंगे गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळिप्पत्तनाल्कप्पुवु॥ क्षपकरुगळोळु यथाक्रमदिंदं गुण्यगुणकारंगळं पेळ्दें :—

अडदालं चारिसया अपुव्वअणियट्टिवेदभागे य।
सीदी कसायभागे तत्तो बत्तीस सोलं तु ॥८७२॥

अष्टचत्वारिंशच्चतुःशतानि अपूर्वानिवृत्तिभागवेदयोश्च अशीतिः कषायभागे ततो द्वात्रिंशत् षोडश तु॥

अपूर्व्वकरण क्षपकनोळु गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु नानूर नाल्वत्तेंटप्पुवु। क्षपकानिवृत्तिवेदभागेयल्लियुं गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु नानूर नाल्वत्तेंटप्पुवु। क्षपककषायानिवृत्ति भागेयोळु गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळेण्भत्तप्पुवु। ततः मेळे सूक्ष्मसांपरायक्षपकंगे गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळेण्भत्तप्पुवु। ततः मेळे सूक्ष्मसांपरायक्षपकंगे गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु द्वात्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवु। क्षीणकषायंगे गुण्यभूतपण्णट्ठिगे गुणकारंगळु पदिनारप्पुवु॥

जोगिम्मि अजोगिम्मि य बेसदछप्पण्णयाण गुणगारा।
चउसट्ठी बत्तीसा गुणगुणिदेक्कूणया सव्वे ॥८७३॥

योगिन्ययोगिनि च द्विशतषट्पंचाशतां गुणकाराः। चतुःषष्टि द्वात्रिंशत् गुणगुणितैकोनाः सर्वे॥

सयोगकेवलिभट्टारकनोळु गुण्यं बेसदछप्पण्णनक्कुं। गुणकारंगळरुवत्तनाल्कप्पुवु। अयोगिकेवलिभट्टारकनोळु बेसदछप्पण्णगुण्यक्के गुणकारंगळु मूवत्तेरडप्पुवु। यिवेल्लमुं द्विगुणगुणकार-

---

कषायानिवृत्तिभागेष्वष्टषष्टयग्रशतं। सूक्ष्मसांपरायेऽष्टचत्वारिंशत्। उपशान्तकषाये चतुर्विंशतिः। क्षपकेषु यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥८७१॥

अपूर्वकरणेऽनिवृत्तिसवेदभागे चाष्टाचत्वारिंशदग्रचतुःशती। कषायभागेऽशीतिः। तत उपरि सूक्ष्मसाम्पराये द्वात्रिंशत्। क्षीणकषाये तु षोडश ॥८७२॥

सयोगे बेसदछप्पण्णस्स गुणकाराः चतुःषष्टिः। अयोगे द्वात्रिंशत्। तत्तद्गुणकारेण गुण्ये गुणिते

वेदरहित किन्तु कषायसहित अनिवृत्तिकरणमें गुणकार एक सौ अड़सठ है। सूक्ष्मसाम्परायमें अड़तालीस है। उपशान्तकषायमें चौबीस है। अब क्रमसे क्षपकश्रेणीमें कहेंगे ॥८७१॥

अपूर्वकरण और वेदसहित अनिवृत्तिकरणमें गुणकार चार सौ अड़तालीस है। अनिवृत्तिकरणके वेदरहित कषायसहित भागमें गुणकार अस्सी है। उससे ऊपर सूक्ष्मसाम्परायमें बत्तीस है। क्षीणकषायमें सोलह है ॥८७२॥

सयोगी और अयोगीमें दो सौ छप्पन गुण्य हैं और गुणकार सयोगीमें चौंसठ तथा अयोगीमें बत्तीस है। अपने-अपने गुणकारसे गुण्यको गुणा करनेपर जो प्रमाण आवे, उसमें-

गुणितंगळागि रूपोनगळंबरियल्पडुगुं ॥

सिद्धेसु सुद्धभंगा एक्कतीसा हवंति णियमेण ।
सव्वपदं पडि भंगा असहायपरक्कमुद्दिट्ठा ॥८७४॥

सिद्धेषु शुद्धभंगा एकत्रिंशद्भवंति नियमेन । सर्व्वपदं प्रति भंगाः असहायपराक्रमोद्दिष्टाः ॥

सिद्धपरमेष्ठिगळोळु शुद्धभंगंगळु गुण्यगुणकारभेदमिल्लदे मूवत्तो देयप्पुवु नियमदिंदं । यिंतु सर्व्वपदं प्रतिभंगंगळु असहायपराक्रमोद्दिष्टंगळु पेळल्पट्टुवु ॥ यिंतु सर्व्वपदं प्रति ऊर्ध्वतिर्य्यक्पद गुण्यगुणकारंगळ्गे गुणस्थानदोळु संदृष्टिः— मिथ्या० ऊर्ध्व १५ । तिर्य्यं ५ । गुण्य ६५ । गुण ७१९५ । ऋ १° ॥ सासा । ऊ १५ । ति ४ । गुण्य ६५ । गुण १७९९ । ऋ १° । मिश्र ऊ १६ । ति ४ । ति ४ । गुण्य ६५=गुण १६०७ । ऋ १° ॥ असं० ऊ १६ । ति ५ । गुण्य ६५= गुण ७३६७ । ऋ १° । क्षासं गुण्य ६५ । गुण १६६४ ॥ देश उ १६ । ति ५ । गुण्य ६५ = गुण-२९९१= ऋ १° क्षा गुण्य ६५ । गुण ५७६ । प्रम ऊ १८ । ति ४ । गुण्य ६५ = गुण ४१४४ । ऋ १° । अप्र ऊ=पद १८ । ति पद ४ । गुण्य ६५ । गुण ४१४४ । ऋ १° । अपूर्व्व उप । ऊ १९ । ति ३ । गुण्य ६५ । गुण ९९२ । ऋ १° ॥ अनिवृत्तिकरणोपशमक ऊ १९ । ति ३ । गु ६५ । गु ९९२ । ऋ १° ॥ कषायानिवृत्युपशम ऊ १९ । ति ३ । गुण्य ६५ । गु १६५ ॥ सूक्ष्मसांपरायोपशमकंगे

समुत्पन्नराशयः सर्वे एकैकोनाः कर्तव्याः ॥८७३॥

सिद्धेषु शुद्धाः गुण्यगुणकारभेदरहिता भंगा नियमेनैकत्रिंशद्भवन्ति इत्यसहायपराक्रमेण सर्वपदं प्रति भंगा उद्दिष्टाः ।

[१ एवं सर्वपदं प्रति ऊर्ध्वतिर्यक्पदगुण्यगुणकाराणां गुणस्थाने संदृष्टिः—मिथ्या–ऊर्ध्व १५ । तिर्य ५ । गुण्य ६५=। गुण ७१९५ । ऋ १° । सासा ऊ १५ । ति ४ । गुण्य ६५=। गु १७९९ । ऋ १° । मिश्र ऊ १६ । ति ४ । गुण्य ६५=। गुण १६०७ ऋ १° । असं ऊ १६ । ति ५ । गु ६५=। गुण ७३६७ । ऋ १° । क्षा–असं–गुण्य ६५=। गुण १६६४ । ऋ १° । देश ऊ १६ । ति ५ । गुण्य ६५=गुण २९९१ । ऋ १° । क्षा गुण्य ६५=। गुण ५७६ । ऋ १° । प्रमत्त ऊ १८ । ति ४ गुण्य ६५=गुण ४१४४ । ऋ १° । अप्र ऊ–पद १८ । ति–पद ४ । गुण्य ६५=। गुण ४१४४ । ऋ १° । अपूर्व उप–ऊ १९ । ति ३ । गुण्य ६५=। गुण ९९२ । ऋ १° । अनिवृत्तिकरणोपशम ऊ १९ । ति ३ । गुण्य ६५=। गु ९९२ । ऋ १° । कषायानिवृत्युपशम

से सर्वत्र एक-एक घटा देना । ऐसा करनेसे सर्वपद भंगोंका प्रमाण आता है ॥८७३॥

सिद्धोंमें गुण्य-गुणकार दोनों न होनेसे शुद्ध भंग नियमसे इकतीस होते हैं । इस प्रकार असहाय पराक्रमी भगवान् महावीरने सर्वपदोंके भंग कहे हैं ॥८७४॥

ऊ २०। ति १। गुण्य ६५। गुण ४८। ॠ १॥ उगशा. ऊ १९। ति १। गुण्य ६५। गुण २४। ॠ १। अपूक्ष ऊ २०। ति २। गु ६५। गुण ४४८। ॠ १॥

सवेदनिवृत्ति क्षप ऊ २०। ति २। गुण्य ६५। गुण ४४८। ॠ १॥ कषायानिवृत्ति क्षउ २०। ति १। गुण्य ६५। गुण ८० ॠ १। सूक्ष्मसांपरायक्षपक ऊ २१। गुण्य ६५। गुण ३२। ॠ १। क्षीण उ २०। गुण्य ६५। गुण १६। ॠ १॥ सयोग ऊ १४। गुण्य २५६। गुण ६४। ॠ १॥ अयोग ऊ १३। गुण्य २५६। गु ३२। ॠ १॥ सिद्धपरमेष्ठि ऊ ५। शुद्धभंग ३१॥

आदेसेवि य एवं संभवभावेहि ठाणभंगाणि।
पदभंगाणि य कमसो अव्वामोहेण आणेज्जो ॥८७५॥

आदेशेऽपि चैवं संभवभावैः स्थानभंगाः। पदभंगाश्च क्रमशोऽव्यामोहेनानेतव्याः॥

मार्ग्गणस्थानदोळमिंते संभवभावंगळिंदं स्थानभंगंगळुं पदभंगंगळुं क्रमदिंदमव्यामोहदिंवं तरल्पडुवुवु॥ अनंतरमेकांतमतभेदंगळं पेळ्दपरु। :—

असिदिसदं किरियाणं अकिरियाणं च आहु चुलसीदी।
सत्तट्ठण्णाणीणं वेणयियाणं तु बत्तीसं ॥८७६॥

अशीतिशतं क्रियाणामक्रियाणां चाहुश्चतुरशीतिं सप्तषष्टिमज्ञानिनां वैनयिकानां तु द्वात्रिंशत्॥

ऊ १९। ति २। गुण्य ६५=। गुण १६८। ॠ १। सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य ऊ २०। ति १। गु ६५=। गुण ४८। ॠ १। उपशान्त ऊ १९। ति १। गुण्य ६५=। गुण २४। ॠ १। अपूर्व-क्षा ऊ २०। ति २। गु ६५=। गु ४४८। ॠ १। सवेदानिवृत्तिक्षपक ऊ २०। ति २। गुण्य ६५=। गु ४४८। ॠ १। कषायानिवृत्तिक्षपक ऊ २०। ति १। गुण्य ६५=। गु ८०। सूक्ष्मसाम्परायक्षप-ऊ २१। गुण्य ६५=। गुण ३२। ॠ १। क्षीण ऊ २०। गुण्य ६५। गु १६। ॠ १। सयोग ऊ १४ गुण्य २५६। गुण ६४। ॠ १। अयोगि स १३। गुण्य २५६ गुण ३२। ॠ १। सिद्धपरमेष्ठि ऊ ५। शुद्धभंग ३१। अधिकः पाठः।] ॥८७४॥

मार्गणास्थानेऽप्येवं सम्भवद्भिर्भावैरव्यामोहेन स्थानभंगाः पदभंगाश्च क्रमश आनेतव्याः ॥८७५॥ अथैकान्तमतभेदानाह—

जैसे गुणस्थानोंमें कहे ऐसे ही मार्गणास्थानमें भी यथासम्भव होनेवाले भावोंके द्वारा स्थानभंग और पदभंग क्रमसे मोह रहित होकर सावधानतापूर्वक जानना चाहिए ॥८७५॥

आगे एकान्त मतोंके भेद कहते हैं—

क्रियावादंगळशीतिशतमुमक्रियावादंगळु चतुरशीतियुं अज्ञानवादंगळु सप्तषष्टिप्रमितमुं वैनैकवादंगळु द्वात्रिंशत्प्रमितंगळप्पुवेंदु गणधरादिदिव्यज्ञानिगळु पेळ्दवरल्लि क्रियावादंगळ नूरेंभत्तर मूलभंगंगळं पेळ्दपरु । :—

अत्थि सदो परदोवि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था ।
कालीसरप्पणियदिसहावेहि य तेहि भंगा हु ॥८७७॥

अस्ति स्वतःपरतोपि च नित्यानित्यत्वेन च नवार्थाः । कालेश्वरात्मनियतिस्वभावैस्तैरभंगाः खलु ॥

इल्लि अस्तित्वदमेले स्वतःपरतः नित्यत्वेनानित्यत्वेन एंदी नाल्कु तिर्य्यग्रूपगळिदं बरेयल्पडुवुवु । अवरमेळे जीवाजीव पुण्यपाप आस्रवसंवरनिर्जराबंधमोक्षमेंबी नवपदार्थंगळु तिर्य्यग्रूपगळिदं रचियिसल्पडुवुवु । अवर मेले काल ईश्वर आत्म नियति स्वभावमेंदिवरिंदं तिर्य्यग्रूपगळिदं रचियिसल्पडुवुवु । इंतु रचिसल्पडुत्तिरलु :—

काल ।	ईश्व ।	आत्म ।	निय ।	स्वभा ५ ।				
जी ।	अ ।	पु ।	पा ।	आ ।	सं ।	नि ।	बं ।	मो । ९ ।
स्वतः ।	परतः ।	नित्यत्वेन ।	अनित्यत्वेन ४ ।					
अस्ति १ ।								

बळिक्कमक्षसंचारदिंदं नूरेण्भत्तु भंगंगळुच्चरिसल्पडुववदेंतेंदोडे—स्वतः सन् जीवः काले नास्ति क्रियते परतो जीवः काले नास्ति क्रियते । (परतो जीवः काले नास्ति क्रियते ।) नित्यत्वेन जीवः काले नास्ति क्रियते । अनित्यत्वेन जीवः काले नास्ति क्रियते । (अनित्यत्वेन जीवः काले-

---

क्रियावादानामशीतिशतमाहुः, अक्रियावादानां चतुरशीतिं, अज्ञानवादानां सप्तषष्टिं, वैनयिकवादानां तु द्वात्रिंशं ॥८७६॥ तत्र क्रियावादानां मूलभंगानाह—

प्रथमतः अस्तिपदं लिखेत् । तस्योपरि स्वतः परतः नित्यत्वेन अनित्यत्वेन इति चत्वारि पदानि लिखेत् । तेषामुपरि जीवः अजीवः पुण्यं पापं आस्रवः संवरः निर्जरा बंधः इति नव पदानि लिखेत् । तदुपरि काल ईश्वर आत्मा नियतिः स्वभाव इति पंच पदानि लिखेत् । तैः खल्वक्षसंचारक्रमेण भंगा उच्यन्ते तद्यथा—

स्वतः सन् जीवः कालेनास्ति क्रियते । परतो जीवः कालेनास्ति क्रियते । नित्यत्वेन जीवः कालेनास्ति

क्रियावादियोंके एक सौ अस्सी, अक्रियावादियोंके चौरासी, अज्ञानवादियोंके सड़सठ और वैनयिकोंके बत्तीस भेद हैं ॥८७६॥

क्रियावादियोंके मूलभंग कहते हैं—

प्रथम तो 'अस्ति' पद लिखो । उसके ऊपर स्वतः, परतः, नित्य रूपसे, अनित्य रूपसे, ये चार पद लिखो । उसके ऊपर जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष, ये नौ पद लिखो । उनके ऊपर काल, ईश्वर, आत्मा, नियति, स्वभाव ये पाँच पद लिखो । उनको लेकर अक्षसंचार क्रमके द्वारा जैसे जीवकाण्डके गुणस्थान अधिकारमें प्रमादोंके भंगोंका कथन किया था उसी प्रकार भंग कहते हैं—

स्वतः होते हुए जीव कालके द्वारा अस्ति किया जाता है । परतः जीव कालके द्वारा अस्ति किया जाता है । नित्य होते हुए जीव कालके द्वारा अस्ति किया जाता है । अनित्य

नास्ति क्रियते) एंबिंतु जीवदोडने नाल्कु भंगंगळप्पुवु । बळिक्कं । पठमक्को अंतगदो आदिगदे संकमेदि बिदियक्खो । दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो ॥ एंबितु अस्तित्वांकमों दं मेलण स्वतादिगळु नाल्कर्रिदं गुणिसि मत्तमदं पदार्त्थनवर्कर्रिदं गुणिसि मत्तमवं कालादिपंचकदिंदं गुणिसुत्तिरलु । १ । ४ । ९ । ५ । लब्धं क्रियावादंगळ नूरेण्भत्तु भेदंगळप्पुवु । १८० ॥ इल्लिः—

अत्थि सदो परदो वि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था । ५
एसिं अत्था सुगमा कालादीणं तु वोच्छामि ॥८७८॥

अस्ति स्वतः परतोपि च नित्यानित्यत्वेन च नवार्थाः । एषामर्थाः सुगमाः कालादीनां तु वक्ष्यामि ॥

अस्ति स्वतः परतोपि च नित्यानित्यत्वेन नवार्त्था एंबितिवर अर्त्थंगळु सुगमंगळप्पुवु । तु मत्ते कालादिगळर्त्थमं क्रमदिंदं पेळ्वमवरोळु कालवादमें बुदे तें दोडे पेळ्वपरु । :— १०

कालो सव्वं जणयदि कालो सव्वं विणस्सदे भूदं ।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि ण सक्कदे वं चिदुं कालो ॥८७९॥

कालः सर्व्वं जनयति कालः सर्व्वं विनाशयति भूतं । जागर्त्ति खलु सुप्तेष्वपि न शक्यते वंचितुं कालः ॥

कालमे सर्व्वमं पुट्टिसुगुं । कालमे सर्व्वमं भूतमं किडिसुगुं । निद्रेगेय्दवरोळं कालमेच्चर्त्तिक्कुं । १५

क्रियते । अनित्यत्वेन जीवः कालेनास्ति क्रियते । तथा अजीवादिपदार्थं प्रति चत्वारश्चत्वारो भूत्वा कालेनैकेन सह षट्त्रिंशत् । एवमीश्वरादिपदैरपि षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशद् भूत्वाऽशीत्यग्रशतं क्रियावादभंगाः स्युः ॥८७७॥

अस्ति स्वतः परतः नित्यत्वेनानित्यत्वेन नव पदार्थाश्चेत्येषां चतुर्दशानामर्थाः सुगमाः । तु-पुनः कालवादादीनामर्थं क्रमेण वक्ष्यामि ॥८७८॥

काल एव सर्वं जनयति । काल एव सर्वं विनाशयति । निद्रितेष्वपि काल एव स्फुटं जागर्ति । कालो २०

होते हुए जीव कालके द्वारा अस्ति किया जाता है । तथा जीवके स्थानपर अजीव आदि पदार्थोंको लेकर प्रत्येकके चार-चार भंग होनेसे कालके साथ छत्तीस भंग होते हैं । इसी प्रकार ईश्वर आदि पदोंको लेकर भी छत्तीस-छत्तीस भंग होते हैं । ऐसे पाँच पदोंके एक सौ अस्सी भंग क्रियावादके होते हैं ॥८७७॥

अस्ति, स्वतः, परतः, नित्यरूपसे, अनित्यरूपसे और नौ पदार्थ, इन चौदहका अर्थ २५
तो सुगम है । आगे काल आदिका अर्थ क्रमसे कहते हैं ।

विशेषार्थ—'अस्ति'का अर्थ 'है' । क्रियावादी वस्तुको अस्तिरूपसे अस्तिरूप मानकर क्रियाका विस्तार करता है । वह वस्तुको स्वरूपसे अस्ति मानता है । पररूपसे भी अस्ति मानता है । नित्य होते हुए अस्ति मानता है । अनित्य अर्थात् क्षणिक मानकर अस्तिरूप मानता है । इस प्रकार जीव आदि नौ पदार्थोंको मानता है और मानकर क्रियावादकी ३०
स्थापना करता है कि क्रियासे ही मोक्ष होता है ॥८७८॥

काल ही सबको उत्पन्न करता है और काल ही सबको नष्ट करता है । प्राणियोंके

स्फुटमागि ॥ कालमें तुं वंचिसल्पडवुं एंदितु नुडिवभिप्रायं कालवादमक्कुं ॥ ईश्वरवादमं पेळ्दपरु :-

अण्णाणी हु अणीसो अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च ।
सग्गं णिरयं गमणं सव्वं इसरकयं होदि ॥८८०॥

अज्ञानी खलु अनीशः आत्मा तस्य च सुखं च दुखं च । स्वर्गं नरकं गमनं सर्व्वं ईश्वरकृतं भवति ॥

आत्मनज्ञानियुमनाथनुं स्फुटमागि आ आत्मंगे सुखमुं दुःखमुं स्वर्ग्गमुं नरकमुं गमनमुमागमनादिगळु सर्व्वमुमीश्वरकृतमक्कुमें बिदीश्वरवादमें बुदक्कुं ॥ आत्मवादमं पेळ्दपरु । :—

एक्को चेव महप्पा पुरिसो देवो य सव्ववावी य ।
सव्वंगणिगूढोवि य सचेयणो णिग्गुणो परमो ॥८८१॥

एक एव महात्मा पुरुषो देवश्च सर्व्वव्यापी च सर्व्वांगनिगूढोपि च सचेतनो निर्ग्गुणः परमः ॥

यितें बभिप्रायमात्मवादमक्कुं । सुगमं ॥ नियतिवादमं पेळ्दपरु । :—

जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा ।
तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु ॥८८२॥

यत्तु यदा येन यथा यस्य च नियमेन भवति तत्तु तदा । तेन तथा तस्य भवेदिति वादो नियतिवादस्तु ॥

आउदों दु मत्ते आगळोम्मे आउदों दरिंदमाउदों दु प्रकारदिंदमावनोव्वंगे नियमदिंदमक्कुमदु मत्ते आगळदरिंदमा प्रकारदिंदमातंगक्कुमें दितें बुदु नियतिवादमें बुदक्कुं ।

स्वभाववादमं पेळ्दपरु :—

वंचितुं न शक्यत एवेति कालवादार्थः ॥८७९॥

आत्मा अज्ञानी अनाथश्च स्फुटं । तस्यात्मनः सुखदुःखस्वर्गनरकगमनागमनादि सर्वमीश्वरकृतमिति ईश्वरवादार्थः ॥८८०॥

एक एव महात्मा पुरुषो देवः सर्वव्यापी सर्वांगनिगूढः सचेतनो निर्गुणः परमश्चेत्यात्मवादार्थः ॥८८१॥

यत्तु यदा येन यथा यस्य नियमेन भवति तत्तु तदा तेन तथा तस्यैव भवेदिति नियतिवादार्थः ॥८८२॥

सोनेपर भी काल जाग्रत् रहता है । कालको कोई नहीं ठग सकता, उसे धोखा देना सम्भव नहीं है । यह कालवादका अर्थ है ॥८७९॥

आत्मा अज्ञानी है, असमर्थ है—कुछ करनेमें समर्थ नहीं है । उसका सुख, दुःख, स्वर्ग या नरकमें जाना सब ईश्वरके अधीन है । ऐसा ईश्वरवादका अर्थ है ॥८८०॥

एक ही महान् आत्मा है । वही पुरुष है, देव है, सर्वव्यापी है, सर्वांगसे गुप्त है, चेतना सहित है, निर्गुण है, सर्वोत्कृष्ट है ऐसा मानना आत्मवाद है ॥८८१॥

जो, जब जिस द्वारा जैसे जिसका नियमसे होनेवाला है, वह उसी कालमें, उसीके द्वारा, उसी रूपसे नियमसे उसका होता है, ऐसा मानना नियतिवाद है ॥८८२॥

को करइ कंटयाणं तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं।
विविहत्तं तु सहाओ इदि सव्वंपि य सहाओ त्ति ॥८८३॥

कः करोति कंटकानां तीक्ष्णत्वं मृगविहंगमादीनां विविधत्वं तु स्वभाव इति सर्व्वमपि च स्वभाव इति ॥

कंटकंगळ्गे तीक्ष्णत्वं मृगविहंगंगळ विविधत्वमुमनावं माळ्कुं। मति दुःस्वभावमेंदिंते सर्व्वमुं स्वभावमेंदें बुदु स्वभाववादमेंबुदक्कुं।

इंतु क्रियावादंगळ्नूरेण्भत्तुं पेळल्पट्टुवनंतरं चतुरशीतिप्रमितक्रियावादंगळ मूलभंगमं पेळ्दपरु :—

णत्थि सदो परदोवि य सत्तपयत्था य पुण्णपाऊणा।
कालादियादिभंगा सत्तरि चदुपंतिसंजादा ॥८८४॥

नास्ति स्वतः परतोपि च सप्तपदार्थाश्चा पुण्यपापोनाः। कालादिका अपि भंगाः सप्ततिश्चतुःपंक्तिसंजाताः ॥

नास्तित्वद मेले स्वतः परतः एंदिवं स्थापिसि मेले मत्ते पुण्यपापोनंगळं सप्तपदार्थंगळं स्थापिसि मेले काल ईश्वर आत्म नियति स्वभावपंचकमं स्थापिसि इंतु चतुःपंक्तिगळोळक्षसंचार-संजातभंगंगळेप्पत्तप्पुवु। इवक्के संदृष्टि :—

का। ई। आ। नि। स्व ५
जी। अ। आ। सं। नि। बं। मो ७
स्वतः परतः २
नास्ति १

स्वतो जीवः काले नास्ति क्रियते इत्यादि १। २। ७। ५। लब्धभंगंगळु सप्ततिप्रमितंगळप्पुवु। ॥७०॥ मत्तं :—

को नाम कंटकादीनां तीक्ष्णत्वं मृगविहंगमादीनां च विविधत्वं करोतीति प्रश्ने स्वभाव एवेति सर्वं स्वभाववादार्थः ॥८८३॥ इति क्रियावादा उक्ताः। अथाक्रियावादानां मूलभंगानाह—

नास्ति। तस्योपरि स्वतः परतश्च। तदुपरि पुण्यपापोनपदार्थाः सप्त। तदुपरि कालादिकाः पंचेति चतसृषु पंक्तिषु प्राग्वत्संजाता भंगाः स्वतो जीवः कालेन नास्ति क्रियते इत्यादयः सप्ततिः ॥८८४॥

काँटे आदिको तीक्ष्ण किसने बनाया ? मृग, पशु-पक्षी नाना प्रकारके किसने बनाये। ऐसा पूछनेपर उत्तर देता है—स्वभावसे ही ऐसा है। उसमें अन्य कोई कारण नहीं है, ऐसा मानना स्वभाववाद है ॥८८३॥

इस प्रकार क्रियावादी मत कहे। अब अक्रियावादके मूलभंग कहते हैं।

पहले नास्ति पद लिखो। उसके ऊपर स्वतः और परतः लिखो। उसके ऊपर पुण्य और पापको छोड़ शेष सात पदार्थ लिखो। उसके ऊपर काल आदि पाँच लिखो। इस प्रकार चार पंक्ति करके पूर्ववत् अक्ष संचार द्वारा भंग होते हैं। जैसे जीव स्वतः कालसे नहीं किया जाता। परतः जीव कालसे नहीं किया जाता। इसी प्रकार जीवके स्थानमें अजीवादि कहनेसे चौदह भंग कालसे होते हैं। इसी तरह ईश्वर आदि पाँचोंकी अपेक्षा चौदह भेद होनेसे सत्तर भंग होते हैं ॥८८४॥

णत्थि य सत्त पदत्था णियदीदो कालदो तिपंतिभवा ।
चोद्दस इदि णत्थित्ते अक्किरियाणं च चुलसीदी ॥८८५॥

नास्ति च सप्तपदार्थाः नियतितः कालतस्त्रिपंक्तिभवाः । चतुर्दश इति नास्तित्वे अक्रियाणां चतुरशीतिः ॥

नास्तित्वमं सप्तपदार्थंगळं नियतिकालंगळं मेलें मेलें त्रिपंक्तियं माडि स्थापिसि जोवो नियतितो नास्ति क्रियते इत्याद्यक्षसंचारसंजनिता

नियति । काल २ ।						
जी । अ । आ । बं । नि । बं । मो ७						
नास्ति १						

क्रियावादंगळु पदिनाल्कुं । १।७। २ । कूडि सर्व्वमुमक्रियावादंगळु चतुरशीति प्रमितंगळप्पुवु । ८४ ॥

अनंतरमज्ञानवाद भेदंगळं पेळ्दपरु :—

को जाणइ णवभावे सत्तमसत्तं दयं अवच्चमिदि ।
अवयणजुदसत्ततयं इदि भंगा होंति तेसट्ठी ॥८८६॥

को जानीते नव भावान् सत्वमसत्वं द्वयमवक्तव्यमिति । अवचनयुतसत्वत्रयमिति भंगा भवंति त्रिषष्टिः ॥

जीवाजीवपुण्यपापास्रवसंवरनिर्ज्जराबंधमोक्षंगळं अस्ति । नास्ति । अस्ति नास्ति । अवक्तव्यं । अस्त्यवक्तव्यं । नास्त्यवक्तव्यं । अस्तिनास्त्यवक्तव्यमें विदनाररिवरें दु नुडिव वादंगळु ९ । ७ । लब्ध भंग ६३ अप्पुवु । जीवोऽस्तीति को जानीते । जीवो नास्तीति को जानीते । जीवोऽस्ति नास्तीति को जानीते । जीवोऽवक्तव्य इति को जानीते । जीवोऽस्त्यवक्तव्य इति को जानीते ।

नास्तित्वं सप्तपदार्थान् नियतिकालौ चोपर्युपरिपंक्तीः कृत्वा जीवो नियतितो नास्ति क्रियते इत्यादयश्चतुर्दश स्युः । इत्येवमक्रियावादाश्चतुरशीतिः ॥८८५॥ अज्ञानवादस्य भेदानाह—

जीवादिनवपदार्थेष्वेकैकस्य अस्त्यादिसप्तभंगेष्वेकैकेन जीवोऽस्तीति को जानाति ? जीवो नास्तीति को

पहले नास्ति पद लिखो । उसके ऊपर सात पदार्थ लिखो । उसके ऊपर नियति, काल ये दो लिखो । जीव नियतिसे नहीं है, जीव कालसे नहीं है । जीवकी जगह अजीवादि रखनेसे चौदह भेद होते हैं । इस तरह सब चौरासी भेद होते हैं ।

विशेषार्थ—अक्रियावादियोंमें दो मत जान पड़ते हैं । एक जो काल आदि पाँचोंसे जीवादिको नास्तिरूप कहते हैं । और दूसरे जो केवल काल और नियतिसे नास्तिरूप कहते हैं ॥८८५॥

अज्ञानवादके भेद कहते हैं—

जीव और नौ पदार्थोंमें-से एक-एकके अस्ति आदि सात भंगोंमें-से एक-एकसे जीव है, ऐसा कौन जानता है । अर्थात् जीव है ऐसा कौन जानता है ? जीव नहीं है ऐसा कौन जानता है । जीव है भी और नहीं भी है ऐसा कौन जानता है । जीव अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है ? जीव अस्ति अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है । जीव नास्ति अवक्तव्य है

जीवो नास्त्यवक्तव्य इति को जानीते। जीवो अस्ति नास्ति अवक्तव्य इति को जानीते। एंदितेकजीवंगेळु भंगमागलु नवपदार्थंगळगमरुवत्तमूरु भंगंगळप्पुवें बुदत्थं। मत्तं :—

को जाणइ सत्तचऊ भावं सुद्धं खु दोण्णिपंतिभवा।
चत्तारि होंति एवं अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी ॥८८७॥

को जानीते सत्वचतुर्भावं शुद्धं खलु द्विपंक्तिभवाश्चत्वारो भवंत्येवमज्ञानिनां तु सप्तषष्टिः॥

शुद्धभावमं पदार्थमनो दु पंक्तियागिरिसि मेले अस्ति। नास्ति। अस्ति नास्ति। अवक्तव्यंगळं तिर्य्यग्रूपदिंदं स्थापिसि :—

अस्थि।	नास्थि।	अस्थि नास्थि	अवक्तव्य। ४
शुद्ध पदार्थं १			

द्विपंक्ति भवंगळु शुद्धपदार्थोस्तीति को जानीते। पदार्थो नास्तीति को जानीते। पदार्थोस्ति नास्तीति को जानीते। पदार्थोवक्तव्य इति को जानीते एंदितु नाल्कु भंगंगळप्पुवु। उभयमुमरुवत्तेळुमज्ञानंगळ वादंगळप्पुवु। ६७॥

अनंतरं द्वात्रिंशद्वैनयिकवादंगळ मूलभंगंगळं पेळ्दपरु :—

मणवयणकायदाणगविणवो सुरणिवइणाणिजदिबुड्ढे।
बाले मादुपिदुम्मि य कायव्वो चेदि अट्ठचऊ ॥८८८॥

मनोवचनकायदानग विनयः सुरनृपतिज्ञानियतिवृद्धेषु। बाले मातरि पितरि च कर्त्तव्यश्चेत्यष्टचत्वारः॥

जानाति ? इत्याद्यालापे कृते त्रिषष्टिभवंति ॥८८६॥ पुनः—

शुद्धपदार्था इति लिखित्वा तदुपरि अस्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति, अवक्तव्यः इति चतुष्कं लिखित्वा एतत्पंक्तिद्वयसम्भवाः खलु भंगाः शुद्धपदार्थोऽस्तीति को जानीते ? इत्यादयश्चत्वारो भवन्ति। एवं मिलित्वा अज्ञानवादाः सप्तषष्टिः ॥८८७॥ वैनयिकवादानां मूलभंगानाह—

ऐसा कौन जानता है ? जीव अस्ति नास्ति अवक्तव्य है ऐसा कौन जानता है। इसी प्रकार जीवकी जगह अजीवादि रखनेसे तिरसठ भेद होते हैं ॥८८६॥

पहले शुद्ध पदार्थ लिखो। उसके ऊपर अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य चार लिखो। इन दोनों पंक्तियोंके मेलसे चार भंग होते हैं। यथा शुद्ध पदार्थ है ऐसा कौन जानता है आदि। ये मिलकर अज्ञानवादके सड़सठ भंग होते हैं।

विशेषार्थ—अज्ञानवादी अज्ञानको ही पुरस्कृत करते हैं। ज्ञानके विषयभूत नौ पदार्थ हैं और उपायभूत सात तत्त्व हैं। उनके निषेधरूप तिरसठ भंग होते हैं। तथा ज्ञानका विषय शुद्ध पदार्थ है और मौलिक भंग चार होनेसे उनके निषेधरूप चार भंग होते हैं। शेष तीन भंग अवक्तव्यके साथ आध तीन भंगोंके मेलसे बनते हैं। इसलिए उन्हें छोड़ दिया है। शुद्ध द्रव्यमें उनका उपयोग सम्भव नहीं होता। इस तरह अड़सठ भंग होते हैं ॥८८७॥

देव नृपति ज्ञानि यतिवृद्ध बाल मातृपितृगळेंबी एंटु स्थानदोळु मनोविनय वचनविनय कायविनयदानविनयंगळु कर्त्तव्यंगळेंदितु द्वात्रिंशद्वैनयिकवाद भेदंगळप्पुवु । ३२ ॥ देवे मनोवचनकायदानविनयः कर्त्तव्यः एंदितु देवनोळु नाल्कु विनयमागलु देवादिगळेंटरोळं मूवत्तेरडु भंगंगळप्पुवेंबुदत्थं ॥

सच्छंददिट्ठिहि वियप्पियाणि तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि ।
पासंडिणं वाउलकारणाणि अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि ॥८८९॥

स्वच्छंददृष्टिभिर्विकल्पितानि त्रिषष्टियुक्तानि शतानि त्रीणि । पाषंडिनां व्याकुलकारणानि । अज्ञानि चित्तानि हरंति तानि ॥

स्वच्छंददृष्टिगळिंदं विकल्पिसल्पट्ट मूनूररुवत्तमूरुं पाषंडिगळ व्याकुलकारणवचनंगळु अज्ञानिगळ चित्तंगळं मिथ्यात्वकर्म्मोदयदिंदं बेळमाडुवु ॥ मत्तं :—

आलस्सड्ढो णिरुत्थाहो फलं किंचिण्ण भुंजदे ।
थणं खीरादिपाणं वा पउरुसेण विणा ण हि ॥८९०॥

आलस्याढ्यो निरुत्साहः फलं किंचिन्न भुंक्ते । स्तन क्षीरादि पानवत् पौरुषेण विना न हि ॥

एंदितु पौरुषवादमक्कुं ।

देव-नृपति-ज्ञानि-यति-वृद्ध-बाल-मातृ-पितृष्वष्टसु मनोवचनकायदानविनयाश्चत्वारः कर्तव्याश्चेति द्वात्रिंशद्वैनयिकवादाः स्युः ॥८८८॥

स्वच्छन्ददृष्टिभिर्विकल्पितानि त्रिषष्टियुतत्रिशतानि पाखंडिनां व्याकुलकारणवचनानि तान्यज्ञानिचित्तानि हरंति मिथ्यात्वोदयात् ॥८८९॥ पुनः—

आलस्याढ्यो निरुत्साहः फलं किंचिन्न भुंक्ते स्तनक्षीरादिपानवत् पौरुषेण विना न होति पौरुषवादः ॥८९०॥

वैनयिकवादके मूल भंग कहते हैं—

देव, राजा, ज्ञानी, यति, वृद्ध, बालक, माता-पिताकी मन, वचन, काय और दान-सम्मानसे विनय करना चाहिए। इस तरह आठ प्रकारके व्यक्तियोंकी चार प्रकारसे विनय करनेसे बत्तीस भेद होते हैं।

विशेषार्थ—सब देवों और सब धर्मोंको समान मानकर सबकी समान विनय करना वैनयिकवाद है। उक्त आठ व्यक्तियोंमें प्रायः सभी गर्भित हो जाते हैं। विनयवादमें विवेकको स्थान नहीं है ॥८८८॥

इस प्रकार स्वच्छन्द दृष्टिवालोंके द्वारा कल्पित तीन सौ तिरसठ मतोंके वचन जीवोंमें व्याकुलता पैदा करनेमें कारण हैं। मिथ्यात्वसे ग्रस्त अज्ञानीजन उन वचनोंको सुनकर मुग्ध हो जाते हैं ॥८८९॥

अन्य भी एकान्तवादोंको कहते हैं—

जो आलस्यसे भरपूर है, जिसे कुछ भी करनेका उत्साह नहीं है वह कुछ भी फल भोगनेमें नहीं है। बिना पौरुषके माताके स्तनसे दूध भी नहीं पिया जा सकता है। अतः पौरुषसे ही कार्य सिद्धि होती है। यह पौरुषवाद है ॥८९०॥

दइवमेव परं मण्णे धिप्पउरुसमण्णत्थयं ।
एसो सालसमुत्तुंगो कण्णो हण्णइ संगरे ॥८९१॥

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकं । एष सालसमुत्तुंगः कर्णो हन्यते संगरे ॥

एंदितु दैववादमक्कुं ।

संजोगमेवेत्ति वदंति तण्णा णेवेककचक्केण रहो पयादि ।
अंधो य पंगू य वणप्पविट्ठा ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा ॥८९२॥

संयोगमेवेति वदंति तज्ज्ञा नैवैकचक्रेण रथः प्रयाति । अंधश्च पंगुश्च वनं प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टौ ॥

एंदितु संयोगवाद मक्कुं ॥

सइउट्ठिया पसिद्धी दुव्वारा मेलिदेहि वि सुरेहिं ।
मज्झिमपंडवखित्ता माला पंचसुवि खित्तेव ॥८९३॥

सकृदुत्थिता प्रसिद्धिर्दुर्व्वारा मिलितैरपि सुरैः । मध्यमपांडवक्षिप्ता माला पंचस्वपि क्षिप्तेव ॥

यें दितिदुलोकवादमक्कुं ॥ किं बहुना ।

जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा ।
जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया ॥८९४॥

यावंतो वचनमार्गा स्तावंत एव नयवादाः । यावंतो नयवादास्तावंत एव परसमयाः ॥

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकं एष सालसमुत्तुंगः कर्णो हन्यते संगरे इति दैववादः ॥८९१॥

संयोगमेवेति वदंति तज्ज्ञा नैवैकचक्रेण रथः प्रयाति । अन्धश्च पंगुश्च वनं प्रविष्टौ तौ संप्रयुक्तौ नगरं प्रविष्टाविति संयोगवादः ॥८९२॥

सकृदुत्थिता प्रसिद्धिर्दुर्वारा मिलितैरपि सुरैः, मध्यमपांडवक्षिप्ता माला पंचस्वपि क्षिप्तैयेति लोकवादः किं बहुना ॥८९३॥

यावन्तो वचनमार्गास्तावन्तो एव भवन्ति नयवादाः यावन्तो नयवादास्तावन्त एव भवन्ति परसमयाः ॥८९४॥ अथ परसमयिवचनानामसत्यत्वे कारणमाह—

मैं दैव—भाग्यको सर्वोत्कृष्ट मानता हूँ । पौरुष निरर्थक है उसे धिक्कार हो । देखो; सालवृक्षकी तरह ऊँचा कर्ण महाभारतके युद्धमें मारा गया । यह दैववाद है ॥८९१॥

दैव और पौरुषको जाननेवाले उन दोनोंके संयोगको ही मानते हैं । क्योंकि एक पहियेसे रथ नहीं चलता । उदाहरण है—एक अन्धा और एक लँगड़ा वनमें फँस गये । अचानक दोनोंका वहाँ मिलाप हुआ और अन्धेके ऊपर लँगड़ा पुरुष बैठ गया और इस तरह दोनों नगरमें आ गये । यह संयोगवाद है ॥८९२॥

एक बार जो बात लोकमें फैल जाती है उसे सब देव भी मिलकर मिटा नहीं सकते । जैसे द्रौपदीने अर्जुनके गलेमें वरमाला डाली थी । किन्तु लोकमें प्रसिद्ध हो गया कि पाँचों पाण्डवोंके गलेमें माला डाली है । अर्थात् लोकवाद भी एक मिथ्यावाद है ॥८९३॥

जितने वचनके मार्ग हैं उतने ही नयवाद हैं । और जितने नयवाद हैं उतने पर समय हैं ॥८९४॥

अनंतरं परसमयिगळ वचनंगळ असत्यक्के कारणमं पेळ्दपरु :—

परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होइ सव्वहा वयणा ।
जइणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचिवयणादो ॥८९५॥

परसमयानां वचनं मिथ्या खलु भवति सर्व्वथा वचनात् । जैनानां पुनर्व्वचनं सम्यक्खलु कथंचिद्वचनतः ॥

परसमयानां वचनं मिथ्या खलु भवति सर्वथा वचनात् । जैनानां पुनर्वचनं सम्यक् खलु कथंचिद्वचनात् ॥८९५॥

पर समय अर्थात् अन्य दर्शनोंका वचन मिथ्या है क्योंकि वे वस्तुको सर्वथा एकरूप ही मानते हैं। किन्तु जैनोंका वचन सत्य है; क्योंकि वे वस्तुको कथंचित् उस रूप कहते हैं ॥८९५॥

विशेषार्थ—जैनमतके अनुसार वस्तु अनेकान्तात्मक है। उसमें परस्परमें विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनेक धर्म रहते हैं। एक ही वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। एक भी है अनेक भी है। भावरूप भी है और अभावरूप भी है। स्वरूपसे भावरूप है और पररूपसे अभावरूप है। जैसे घट घटरूपसे सत् है और पटरूपसे असत् है। यदि ऐसा न माना जाये और घटको केवल सत् ही माना जाये तो जैसे घट-घट रूपसे सत् है वैसे ही पटरूपसे भी सत् हो जायेगा, क्योंकि आप उसे सर्वथा सत् मानते हैं। सर्वथाका मतलब है सब रूपसे या सब प्रकारसे। अतः जो वस्तुको सर्वथा सत् कहते हैं उनका कथन मिथ्या है। प्रत्येक वस्तुका वस्तुत्व दो बातोंपर निर्भर है—स्वरूपका ग्रहण और पररूपका त्याग। स्वरूपका ग्रहण भावरूप है और पररूपका त्याग अभावरूप है। अतः वस्तु भावाभावात्मक है। इसलिए जैनदर्शन वस्तुको कथंचित् सत् और कथंचित् असत् कहता है। कथंचित्का मतलब है किसी अपेक्षासे, सर्वथा नहीं। इसी प्रकार वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्यरूपसे नित्य है और पर्यायरूपसे अनित्य है। अतः किसीको सर्वथा नित्य और किसीको सर्वथा अनित्य कहना भी मिथ्या है। वस्तुके इन अनेक धर्मोंमें-से एक धर्मको ग्रहण करनेका नाम नय है। नय सम्यक् भी होते हैं और मिथ्या भी। यदि एक धर्मको ग्रहण करके वस्तुको उस एक धर्मरूप ही सर्वथा कहा जाता है तो वह मिथ्या है। और यदि एक दृष्टिसे ही उसे उस रूप कहा जाता है तो वह सम्यक् है। इसलिए वस्तुको कथन करनेके जितने मार्ग हैं वे सब नयवाद हैं। और एक-एक नयको ही यथार्थ मानकर उसीका आग्रह करना एकान्तवाद है। प्रत्येक एकान्तवाद परसमय है—मिथ्यामत है। और सब एकान्तोंको सापेक्षरूपसे स्वीकार करना अनेकान्तवाद है। वही जैनमत है। अतः जैनदर्शन समस्त एकान्तवादी दर्शनोंका सापेक्ष समन्वयरूप है ॥८९५॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्व वंदनानंदित पुण्यपुंजायमान श्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरि चारुचरणार-विंद रजोरंजितललाटपट्टं श्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्तिजीवतत्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांडभावचूळिकामहाधिकारं व्याकृतमादुदु ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकांडे भावचूलिका नाम सप्तमोऽधिकारः ।

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयनन्दी सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णीके द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमलरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें कर्मकाण्डके अन्तर्गत भावचूलिका नामक सातवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

॥ छंद—कन्दपद्य ॥

देसेवलिगैय्यदे माण्बुवे बिसटं बरिवेदु मिंद्रियंगळ् नररं ॥
असुगतिगे पोगवे दुर्व्यसनदिनोंदोंदरिंदमसुभृन्निवहम् ॥१॥
बसदागि वसेगे वनकरि बिसिलोळु बंधनदिनिर्प्प दुःस्थितियदु ।
दुर्व्यसन स्पर्शनमोंदरिमसुभृद्गणमेंदुविषयदिं बदंपुदे ? ॥२॥
रसनविषयातिलंपट विसारभं बडिशगरण नेत्राश्रुगळिं ।
गसणिगोळु तिर्प्पुदं कॆळ्बेसनिग । भक्ष्यविनुपस्थितं दुःस्थितियम् ॥३॥

पंचेन्द्रिय विषयवासनाएँ मानवको अपनी इच्छानुसार नचाकर दिग् भ्रमित कर देती हैं । संसारके सभी जीवराशि इन पाँचों में से एक-एक इन्द्रियवासनाके दुर्व्यसनोंमें फँसकर अनेक भव-भवान्तरोंमें उत्पन्न होकर दुःख अनुभव करते हैं तो पाँचों इन्द्रिय वासनाओंकी बात ही क्या बतावें ॥१॥

मदोन्मत्त जंगली हाथी धूपमें खड़ा है । चारों ओरसे दावाग्निके स्पर्शसे बन्धनमें फँसकर दारुण दुःखका अनुभव करता है । इस प्रकार एक स्पर्शनेन्द्रिय वासनामें फँसकर वह इतनी दुःस्थितिको प्राप्त करता है तो पाँचों इन्द्रियोंके वशीभूत होकर ये जीवराशि सुखसे जीवित रह सकता है क्या ? ॥२॥

मछुवा डोरी की एक ओर सूई और माँस का टुकड़ा बाँधकर पानीमें डाल देता है । रसनेन्द्रिय लालसासे आयी हुई मछली उसमें फँसकर आँसू बहाती है । और छटपटाती है । हे व्यसनि मानव ! देखो, खानेकी अभिलाषासे प्राप्त दुःस्थितिको । तुम्हारी भी यही दुःस्थिति होगी ॥३॥

भरदोंद्रिय विषयक्कुरवणिसि निमग्ननागे दौःस्थित्यमवम् ।
खरकर किरणमे पेळ्गुं दुरक्षशिक्षा क्षमावलंम्बन दक्षा ॥ ४ ॥
ओंद्रिद्रियद पोंडप्पि बंदोलवि पाय्व शलभनिवहक्कावा- ॥
वंदद दौःस्थित्यमदं मंदिर मंदिरद दीपनिवहमे पेळ्गुम् ॥५॥
'स रि ग म प ध नि गळोळ् नगसरित्समं परियुतिर्प्पुदौंद्रियदिम् ॥
शरहतियिं दौःस्थित्यमनरण्य पक्कणगणं समंतदे पेळ्गुम् ॥६ ।
कोलें·पुसि·कळवु·सतोजननिळोलनतिकांक्षि जिनवचन रुचिरहितम् ॥
तोळल्वंते जगत्त्रयदोलु तोळल्गुं पंचाक्षनायकं मनमनिशम् ॥७॥
विषयमशेषं विषयिगे विषदिदं विषममेंदोडिनितरिनेना ॥
विषयमनुरदने जिनवाग्विषयं तानागदंदु विषयि दुरात्मम् ॥८॥
गोम्मटसारद वृत्तियदोम्मेयुमिंद्रियचयक्के सुविषयमागलु ॥
घम्मनतींद्रिय-सौख्यद नेम्पुगेयं बुधर्गे माळ्पुदोंदच्चरियें ? ॥९॥

अब देखो, नासेन्द्रिय (घ्राणेन्द्रिय) विषय वासनाके परिणामको—एक नासेन्द्रियकी विषय वासनाकी ओर आकृष्ट होकर और उसमें तल्लीन रहकर प्राणी दुःस्थितिको प्राप्त करता है (यहाँ उदाहरण नहीं दिया गया है) इस दुष्ट इन्द्रिय वासनासे क्षमाशील समर्थ व्यक्ति ही शिक्षा पा सकता है यह बात सूर्य किरणकी तरह स्पष्ट है, सत्य है ॥४॥

अब नेत्रेन्द्रियकी वासना—प्रत्येक मन्दिरोंमें देदीप्यमान दीपमालाएँ जगमगाती हैं। उनपर नेत्रेन्द्रिय चपलतामें फँसे अनेकों शलभों (कीड़े-मकोड़ों) के समूह मुग्ध होकर आ गिरते हैं और प्राणार्पणकी दुःस्थितिको प्राप्त कर लेते हैं। नेत्रेन्द्रिय वासनाके परिणामोंको वे दीपमालाएँ ही साक्षी दे रही हैं ॥५॥

'स रि ग म प ध नि' नामक सप्त स्वरोंके लयबद्ध तालके अनुसार पर्वतोंसे नीचे कलकल करती नदियाँ बहती हैं। उस नादको अनुकरण करनेवाले व्याधोंके धनुषकी सिंजिनीके झंकारसे मुग्ध होकर शिकारी जीव उसके बाणाघातसे प्राणार्पणकी दुःस्थितिको प्राप्त कर लेते हैं। इन तमाशाओंका वर्णन उन अरण्यवासी शिकारीपुरके व्याधबंधुओंके मुखसे ही सुनें तो ठीक रहेगा ॥६॥

हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्रीव्यामोह और अत्याशाके वशीभूत मानव श्रीजिनेश्वरके बताये पंचाणुव्रतों पर रुचि रखता नहीं है और जीवनमें अनेकों दुःख भोगता है। इसी प्रकार तीनों लोकमें स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्रेन्द्रिय वासनामें फँसा यह मानव-मन सदा काल-भवभवान्तरमें दुःखोंका अनुभव करता रहता है ॥७॥

पंचेन्द्रियोंकी विषयवासनाएँ, इन विषयोंपर असक्त लम्पट व्यक्तिको कालकूट विषसे भी अत्यन्त विषमतर हैं। ऐसा कहनेपर भी जो भगवान् जिनेश्वरके बताये मार्गपर चलनेको उद्युक्त नहीं होता अर्थात् इन विषयवासनाओंको त्यागनेको तैयार नहीं होता तो इसके बराबर लम्पट और दुरात्मा और कौन होगा ? ॥८॥

इस गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) की (केशवण्णकी रची) कर्नाटक भाषाकी वृत्तिको जो अपने पाँचों इन्द्रियोंके लिए अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु बना लेता है यानी एक बार मन-वचन-कायसे इसका स्वाध्याय कर लेता है ऐसे विद्वान् भव्योंको अतीन्द्रिय सुख-मुक्तिकी प्राप्ति हो, इसमें आश्चर्य क्या है। अर्थात् उन्हें मोक्ष प्राप्ति सुलभ है ॥९॥

अथ त्रिकरणचूलिकाधिकारः ॥८॥

णमह गुणरयणभूसण सिद्धंतामियमहद्धिभवभावं ।
वरवीरणंदिचंदं णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥८९६॥

नमत गुणरत्नभूषण सिद्धांतामृतमहाब्धिभवभावं । वरवीरणंदिचंद्रं निर्म्मलगुणमिंद्रनंदि-गुरुं ॥ सुगमं ॥

इगिवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापवत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो ॥८९७॥

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तत्र । प्रथममधःप्रवृत्तकरणं तु करोत्यप्रमत्तः ॥

अनंतानुबंधिरहित द्वादशकषाय नवनोकषायमें बेकविंशतिमोहनीयकर्म्मक्षपणोपशमननिमित्तं-गळधःप्रवृत्तापूर्व्वकरणानिवृत्तिभेददिंदं त्रिकरणंगळप्पुववरोळु प्रथममधःप्रवृत्तकरणमनप्रमत्त-संयतं माळ्कुमातं सातिशयाप्रमत्तनें बोनक्कुं।

जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहि सरिसगा होंति ।
तम्हा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥८९८॥

यस्मादुपरिमभावा अधस्तनभावैः सदृशा भवंति । तस्मात्प्रथमं करणमधःप्रवृत्तमिति निर्द्दिष्टं ॥

नमत गुणरत्नभूषण सिद्धान्तामृतमहाब्धिभवभावं वरवीरनन्दिचन्द्रं निर्मलगुणमिंद्रनन्दिगुरुं ॥८९६॥

अनन्तानुबन्धिभ्योऽन्यैकविंशतिचारित्रमोहनीयानां क्षपणाया उपशमस्य च कारणानि त्रीण्यधः-प्रवृत्तापूर्वानिवृत्तिकरणानि तेषु प्रथममधःप्रवृत्तकरणं तु सातिशयाप्रमत्त एव करोति ॥८९७॥

गुणरूपी रत्नके आभूषणोंसे शोभित हे चामुण्डराय ! सिद्धान्तरूपी अमृतके महासमुद्र-से प्रकट होनेवाले आचार्य वीरनन्दिरूपी चन्द्रमाको तथा निर्मल गुणोंसे शोभित आचार्य इन्द्रनन्दि गुरुको नमस्कार करो ॥८९६॥

विशेषार्थ—आचार्य नेमिचन्द्रने चामुण्डरायके लिए गोम्मटसारकी रचना की थी। वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि उनके गुरु थे। इस प्रकरणमें अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण इन तीन करणोंका कथन है जो जीवकाण्डके प्रारम्भमें आ चुका है। यहाँ आचार्य उनको लेकर एक पृथक् अधिकार द्वारा कथन करते हैं। जो बात यहाँ स्पष्ट न हो उसे जीव-काण्डसे जानना चाहिए ॥८९६॥

अनन्तानुबन्धी चारके बिना चारित्रमोहकी इक्कीस प्रकृतियोंकी क्षपणा और उपशमनामें कारण तीन प्रकारके परिणाम हैं। उन्हें अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-करण कहते हैं। उनमें-से प्रथम अधःप्रवृत्तकरणको अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती करता है ॥८९७॥

आउदों दु कारणदिंदमुपरितनसमयभावंगळुमधस्तनभावंगळोडने समानंगळप्पुवदु कारणदिंद प्रथमकरणमधःप्रवृत्तमें दितन्वर्त्थनामं पेळल्पट्टुदु ।

अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा ।
लोगाणमसंखपमा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥८९९॥

अंतर्मुहूर्त्तमात्रस्तत्कालो भवेत्तत्र परिणामाः । लोकानामसंख्यप्रमा उपर्युपरि सदृशवृद्धिं गताः ॥

आ अधःप्रवृत्तकरणकालमंतर्मुहूर्त्तमात्रमक्कुमा कालदोळु संभविसुव विशुद्धिकषाय परिणामंगळुमसंख्यातलोकप्रमितंगळप्पुवल्लि प्रथमसमयानंतर द्वितीयसमयं मोदल्गोंडु मेले मेले सदृशप्रचययुतंगळप्पुवु । अदें तेंदोडे आ प्रथमादिसमयंगळोळु संभविसुव परिणामसंख्यानयनविधानमनंकसंदृष्टियिंदं पेळ्दपरु :—

बावत्तरितिसहस्सा सोलसचउचारि एक्कयं चेव ।
धण अद्धाणविसेसे तियसंखा होइ संखेज्जे ॥९००॥

द्वासप्ततित्रिसहस्राणि षोडश चतुश्चत्वारि एकं चैव । धनमध्वानविशेषे त्रिकसंख्या भवति संख्येये ॥

अधःप्रवृत्तकरणसर्व्वपरिणामंगळ धनमेंबुदा धनमंकसंदृष्टियोळु द्वासप्तत्युत्तरत्रिसहस्रंगळप्पुवु। ३०७२ ॥ अध्वानमेंबुदेरडु तेरनक्कुमल्लि अधःप्रवृत्तकरणकालमूर्ध्वाध्वानमक्कुमदक्के षोडशांकसंदृष्टियक्कुं । ऊ १६ । अनुकृष्टयध्वानं तिर्य्यगध्वानमक्कुमदरल्लि संदृष्टि नाल्कुरूप-

---

यस्मात्कारणादुपरितनसमयभावा अधस्तनसमयभावैः सह समाना भवन्ति तस्मात्कारणात्तत्प्रथमं अधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टं ॥८९८॥

तस्याधःप्रवृत्तकरणस्य कालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रो भवति । तत्र काले सम्भवन्तो विशुद्धिकषायपरिणामाः असंख्यातलोकमात्राः सन्ति । ते च तत्प्रथमसमयमादिं कृत्वा उपर्युपरि सर्वत्र सदृशप्रचयवृद्धया वर्धंते ॥८९९॥

तत्र तावदंकसंदृष्ट्या धनं द्वासप्तत्यग्रत्रिसहस्री ३०७२ । ऊर्ध्वाध्वानः षोडशांकः १६ । तिर्यगध्वानश्च-

---

क्योंकि इस अधःप्रवृत्तकरणमें ऊपरके समय सम्बन्धी भाव नीचेके समय सम्बन्धी भावोंके समान होते हैं। अर्थात् जैसे किसी जीवके दूसरे-तीसरे आदि समयोंमें जैसा भाव होता है वैसा ही भाव किसी जीवके पहले समयमें ही होता है। इससे इस पहले करणको अधःप्रवृत्त कहते हैं ॥८९८॥

उस अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है। उस कालमें होनेवाले विशुद्धतारूप कषायपरिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। वे परिणाम प्रथम समयसे लगाकर ऊपर-ऊपर सर्वत्र समान चयवृद्धिसे बढ़ते हुए होते हैं। अर्थात् पहले समयके परिणामोंसे दूसरे समयके परिणामोंमें जितनी वृद्धि होती है, दूसरे समयके परिणामोंसे तीसरे समयके परिणामोंमें भी उतनी ही वृद्धि होती है। इस प्रकार अन्तिम समय पर्यन्त वृद्धि होती जाती है ॥८९९॥

उन्हें प्रथम अंकसंदृष्टिसे दर्शाते हैं। सर्वधन तीन हजार बहत्तर है। ऊर्ध्वरूप गच्छका

गळक्कुं । ४ । विशेषमेंबुदु प्रचयमक्कुमा प्रचयं ऊर्ध्वप्रचयमेंदुं तिर्य्यक्प्रचयमेंदु मेरडु भेदमक्कुमल्लि ऊर्ध्वविशेषदोळु संदृष्टि नाल्कु रूपुगळप्पुवु । ४ ॥ तिर्य्यग्विशेष दोळेकरूपं संदृष्टियक्कुं । १ । प्रचयमं साधिसुवल्लि त्रिसंख्ये संख्यातक्के संदृष्टियक्कुं । ३१ ॥ यितागुत्तं विरलु :—

आदिधणादो सव्वं पचयधणं संखभागपरिमाणं ।
करणे अधापवत्ते होदि त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥९०१॥

आदिधनात्सर्व्वं प्रचयधनं संख्यभागपरिमाणं । करणे अधःप्रवृत्ते भवेदिति जिनैर्निर्दिष्टं ॥

यिल्लियधःप्रवृत्तकरणदोळु आदिधनमेंदं प्रचयधनमेंदु धनमित्तेरनक्कुमल्लि आदिधनमं नोडलु सव्वं प्रचयधनं सप्तविंशतिपंचभागमप्पुदरिंदं संख्यातैकभागप्रमाणमक्कु

आदि धन
२५९२
२७
५

एंदितु जिनरिंदं पेळल्पट्टुदु । अदेंतेंदोडे इल्लि प्रचय धनमंतप्पल्लि मुन्नं प्रचयप्रमाणमरियल्पडुगुमप्पुदरिं पदकदिसंखेण भाजिदे पचयमेंदितिल्लि पदमेंबुदधःप्रवृत्तकरणकालप्रमाणमक्कुमदक्के पदिनारेंदु संदृष्टियप्पुदरिंदमदर कृतियनिदं १६ । १६ । पूर्व्वोक्त त्रिकसंख्यासंख्यातदिंदं

तुरंकः ४ । ऊर्ध्वविशेषोऽपि चतुरंकः ४ । तिर्यग्विशेषो रूपं १ । प्रचयसाधनसंख्यातस्त्र्येकः ३ ॥९००॥

अधःप्रवृत्तकरणे सर्वं प्रचयधनं आदिधनतः संख्यातैकभागमात्रं स्यात् २५९२ तद्यथा—पद १६ । २७ ५

प्रमाण सोलह । तिर्यग्रूप गच्छ चार । ऊर्ध्वरूप विशेष चार । तिर्यग्रूप विशेष एक । चयके साधनके लिए संयातका चिह्न तीन है ॥९००॥

विशेषार्थ—करणके सब समय सम्बन्धी परिणामोंकी संख्या सर्वधन तीन हजार बहत्तर है । करणके कालमें जितने समय हों, उनकी रचना ऊपर-ऊपर होती है अतः उसके समयोंके प्रमाणको ऊर्ध्व गच्छ कहा है । एक समयवर्ती किसी जीवके कितने परिणाम होते हैं, किसीके कितने होते हैं । इस प्रकार एक समयमें जितने खण्ड हों उनकी रचना बराबरमें करना । अतः उन खण्डोंका जो प्रमाण हो उसे अनुकृष्टिका तिर्यग् गच्छ कहते हैं । प्रति समय जितने परिणाम क्रमसे बढ़ते हैं उनको ऊर्ध्वरूप अनुकृष्टिको विशेष या चय कहते हैं । आगे चयका प्रमाण जाननेके लिए संख्यातसे भाग दिया जायेगा इससे अंक संदृष्टिमें संख्यातका चिह्न तीनका अंक रखा है । तीनसे संख्यात जानना ॥९००॥

अधःप्रवृत्तकरणमें सर्व चयधन आदिधनके संख्यातवें भाग है । सब समयोंके चयके जोड़का जो प्रमाण होता है उसे चयधन कहते हैं । और जितना-जितना चय बढ़ता है उसको छोड़कर सब समयोंके आदिधनको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उसे आदिधन कहते हैं । करण सूत्रके अनुसार पदकी कृति और संख्यातसे सर्वधनमें भाग देनेपर ऊर्ध्वचयका प्रमाण होता है । पद अर्थात् सोलहके कृति अर्थात् वर्ग दो सौ छप्पन और संख्यातका चिह्न तीनका भाग सर्वधन तीन हजार बहत्तरमें देनेपर चार पाये । यही ऊर्ध्वचयका प्रमाण जानना । तथा

गुणिसि १६ । १६ । ३ । उभयधनमं ३०७२ । भागिसुत्तं विरलु $\frac{३०७२}{१६।१६।३}$ बंद लब्धं नाल्क-प्पुवु ४ । तद्ऊर्ध्वप्रचयमेंबुदक्कुं । व्येकपद १६ । १ । अर्द्धं १५/२ । घ्नचय १५/२ । ४ । गुणो गच्छ १५/२ । ४ । १६ उत्तर धनमेंदिदधःप्रवृत्तकरणदोळुत्तरधनमेंबुदक्कु । ४८० ॥ मी प्रचयधनमं सर्व्व-धनदोळु कळेदोडे शेषमिदादिधनमक्कु २५९२ । मिदर संख्यातैकभागं सर्व्वप्रचयधनप्रमाण-मक्कुमेंबुदु तात्पर्य्यार्थं २५९२ । ५/२७ अपवर्त्तितमिदु ९६ । ५ । गुणित लब्धमिदु ४८० । अदें तें दोडे प्र ४८० । फ श १ । इ २५९२ । लब्धशलाके २७/५ मत्तं प्र श २७/५ फ २५९२ । इ १ । लब्ध-धन—९६ । ५ । गुणितलब्ध ४८० । ई प्रचयधनमादि धनद संख्यातैकभागमेंदु जिनरिंदं पेळल्-पट्टुदु । एकें दोडादिधनद सप्तविंशतिपंचभागमप्पुदरिंदं ।

उभयधणे सम्मिलिदे पदकदिगुणसंखरूवहदपचयं ।
सव्वधणं तं तम्हा पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ॥९०२॥

उभयधने सम्मिलिते पदकृतिगुणसंख्यरूपहतप्रचयः । सर्व्वधनं तत् तस्मात्पदकृतिसंख्येन भाजिते प्रचयः स्यात् ॥

कृत्या १६ । १६ । संख्यातेन च ३ सर्वधने ३०७२ । भक्ते ३०७२/१६ । १६ । ३ ऊर्ध्वप्रचयप्रमाणं स्यात् ४ । व्येकपद १६–१ । अर्ध १५/२ घ्नचय १५/२ । ४ गुणो गच्छ १५/२ । ४ । १६ उत्तरधनं ४८० । एतस्मिन् सर्वधनादपनीते शेषमादिधनं स्यात् २५९२ । प्र ४८० । फ श १ । इ २५९२ । लब्धशलाकाः २७/५ पुनः प्र श २७/५ फ २५९२ । इ १ लब्ध ४८० । इति प्रचयधनमादिधनस्य संख्यातैकभागः इति जिनैर्निर्दिष्टं, आदिधनस्य सप्तविंशतिपंचभागमात्रत्वात् ॥९०१॥

एक कम पदके आधेको चयसे और पदसे गुणा करनेपर चयधन होता है । सो एक कम पद पन्द्रहके आधे साढ़े सातको चयसे गुणा करनेपर तीस हुए। उसे पद सोलहसे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी चयधन या उत्तरधनका प्रमाण होता है। इसको तीन हजार बहत्तरमें घटानेपर पचीस सौ बानबे रहे, यही आदिधन है । तथा प्रमाण राशि ४८०, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि पच्चीस सौ बानबे। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणसे भाग देनेपर सत्ताईसका पाँचवाँ भागमात्र शलाका हुई । तथा प्रमाण राशि सत्ताईस शलाकाका पाँचवाँ भाग, फलराशि पच्चीस सौ बानबे, इच्छा एक शलाका । फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाण-का भाग देनेपर चार सौ अस्सी पाये । ऐसे त्रैराशिक करके सर्वधन तीन हजार बहत्तरको सत्ताईसके पाँचवें भागसे भाग देनेपर चयधन चार सौ अस्सी होता है । अतः चयधन या उत्तरधन आदिधनके संख्यातवें भाग कहा है ॥९०१॥

आदिधनमनुत्तरधनमुमं कूडुत्तं विरलवर प्रमाणमेनितक्कुमेंते दोडे पदकृतिगुणितसंख्यरूपविदं १६ । १६ । ३ । हतप्रचयप्रमाणमक्कुम । ४ । २५६ । ३ । दु सर्व्वधनं द्विसप्तत्युत्तरत्रिसहस्रप्रमितमक्कुमेंबुदर्त्थमवु कारणमागि पदकृति । २५६ । संख्ये न । ३ । भाजिते । ३०७२ । प्रचयः
२५६ । ३
लब्धं प्रचयप्रमाणमेंवु पेळल्पट्टुदु । ४ ।

चयधणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं । ५
आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणं ॥९०३॥

चयधनहीनं द्रव्यं पदभाजिते भवत्यादिपरिमाणं । आदौ चये वृद्धे प्रतिसमयधनं तु भावानां ॥

चयधन ४८० । रहित द्रव्य सर्व्वधनं ३०७२ । आदिधनं शेषमदं २५९२ । पदभजिदे अप्पुवानदिंदं भागिसुत्तिरळु | २५९२ | आदिधनं भवेत् आदि धनमक्कु १६२ । मादौ ई आदिधनद
१६
मेलें मेलो प्रतिसमयं चयं पेच्चुंत्तविरलू तु मत्तो प्रतिसमय धनं स्याद् भावानां एंदितु अधः प्रवृत्त १०
करणप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतमाद विशुद्धपरिणामंगळ प्रतिसमयधनमक्कुं । १६२ । १६६ । १७० । १७४ । १७८ । १८२ । १८६ । १९० । १९४ । १९८ । २०२ । २०६ । २१० । २१४ । २१८ । २२२ ॥

आद्युत्तरधने सम्मिलिते पदकृतिगुणितसंख्यरूप १६ । १६ । ३ । हतप्रचयप्रमाणं ४ । २५६ । ३ । भवति तत्सर्वधनं तस्मात्कारणात् पदकृति २५६ । संख्येन ३ भाजिते ३०७२ प्रचयः स्यादित्युक्तं ॥९०२॥ १५
२५६।३
तत्सर्वधनं ३०७२ चयधनेन ४८० हीनं कृत्वा २५९२ पदेन भक्तं सत् २५९२ आदेः प्रथमसमयधनस्य
१६
परिमाणं स्यात् १६२ । तस्योपर्येकैकस्मिन् चये ४ वृद्धे सति तु-पुनः अधःप्रवृत्तकरणस्य विशुद्धपरिणामानां प्रतिसमयधनं समागच्छति । १६२ । १६६ । १७० । १७४ । १७८ । १८२ । १८६ । १९० । १९४ । १९८ । २०२ । २०६ । २१० । २१४ । २१८ । २२२ ॥९०३॥

आदिधन और उत्तरधनको मिलानेपर सर्वधन होता है । वह सर्वधन पद या गच्छके २०
वर्गको संख्यातसे और चयसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है । सो गच्छ सोलहके वर्ग दो सौ छप्पनको संख्यात तीनसे गुणा करनेपर सात सौ अड़सठ होता है और उसे चारसे गुणा करनेपर तीन हजार बहत्तर होता है । इतना ही आदिधन और उत्तरधनको मिलानेपर होता है । अतः पदके वर्ग और संख्यातका भाग सर्वधनमें देनेपर चयका कहा है ॥९०२॥

सर्वधन तीन हजार बहत्तरमें चयधन चार सौ अस्सी घटानेपर पच्चीस सौ बानबे २५
रहते हैं । उसको गच्छ सोलहका भाग देनेपर एक सौ बासठ आते हैं । यही प्रथम समय सम्बन्धी विशुद्ध परिणामोंका प्रमाण है । उसमें एक चय चार मिलानेपर एक सौ छियासठ दूसरे समय सम्बन्धी परिणाम होते हैं । उसमें एक चय मिलानेपर एक सौ सत्तर तीसरे समय सम्बन्धी परिणाम होते हैं । इस प्रकार ऊपर-ऊपर रचना करके एक-एक चय बढ़ाते-बढ़ाते अधःप्रवृत्तकरणके परिणामोंका प्रमाण आता है । यथा—१६२ । १६६ । १७० । १७४ । ३०
१७८ । १८२ । १८६ । १९० । १९४ । १९८ । २०२ । २०६ । २१० । २१४ । २१८ । २२२ ॥९०३॥

पचयधणस्साणयणे पचयप्पभवं तु पचयमेत्त हवे ।
रूऊण पदं तु पदं सव्वत्थ वि होइ णियमेण ॥९०४॥

प्रचयधनस्यानयने प्रचयः प्रभवस्तु प्रचय एव भवेत् । रूपोनपदंतु पदं सर्व्वत्रापि भवति नियमेन ॥

प्रचयधनमंतप्पल्लि पोल्लोडियोळं प्रचयमुं प्रभवमुं प्रच १५ ० ० यमेयक्कुं । तु मत्तो रूपोनपदमे
४ । ४ । ४
४ । ४
४ । उ
आ

पदमक्कुं नियमदिदं । आ ४ । उ ४ । ग १५ । एकें दोडे प्रथमस्य हानिर्व्वा नास्ति वृद्धिर्व्वा नास्ति यें दु प्रथमदोळ् प्रचयमिल्लप्पुदरिंदं ॥ पदमेगेण विहीणं दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं । पभवजुदं पदगुणिदं पदगणिदं होइ सव्वत्थ ॥ एंदु । पद १५ मेगेण विहीणं १४ दुभाजिदं १४ । उत्तरेण
२
संगुणिदं १४ । ४ । पभवजुदं २४८ । कूडि ३२ । पदगुणिदं ३२ । १५ । पदगूणिदं होइ सव्वत्थ
२
एंदु लब्धं नानूरें भत्तक्कुं । ४८० ॥

अनंतरमनुकृष्टि प्रथमखंडप्रमाणमं पेळ्दपरु :—

प्रचयधनस्यानयने सर्वत्रापि प्रचयप्रभवौ तु प्रचय एव स्यात् । गच्छस्तु प्रथमे प्रचयाभावाद्रूपोनतत्पदमेव स्यान्नियमेन । आ ४ । उ ४ । ग १५ । पद १५ । मेगेणविहीणं १४ दुभाजिदं १४ उत्तरेण संगुणिदं
२
१४ । ४ । पभवजुदं ३२ पदगुणिदं ३२ । १५ पदगुणिदं होदि सव्वत्थेति लब्धमशीत्यग्रचतुःशतानि ४८०
२
॥९०४॥ अथानुकृष्टिप्रथमखंडप्रमाणमाह—

प्रचयधन लानेके लिए विधान कहते हैं—जितनी-जितनी वृद्धि होती है उसे प्रचय कहते हैं । और जो आदिमें होता है उसे प्रभव कहते हैं । ये दोनों यहाँ प्रचयके जोड़का जो प्रमाण है उतना जानना । प्रथम स्थानमें तो चयका अभाव है । अतः यहाँ गच्छका प्रमाण विवक्षित गच्छके प्रमाणसे एक कम जानना । यहाँ ऊर्ध्व रचनामें चयका प्रमाण चार है । अतः आदि चार और उत्तर चार और गच्छके प्रमाण सोलहमें एक घटानेपर गच्छ पन्द्रह रहा । सो करणसूत्रके अनुसार एक हीन पदको दोसे भाग दो, चयसे गुणा करो, और प्रभव अर्थात् आदिको मिलाकर गच्छसे गुणा करो तो गच्छका जोड़ होता है । यह करणसूत्रका अर्थ है । सो यहाँ गच्छ पन्द्रहमें एक घटानेपर चौदह रहे । उसमें दोका भाग देनेपर सात रहे । उसमें चय चारसे गुणा करनेपर अठाईस हुए । उसमें आदि चार मिलानेपर बत्तीस हुए । उसे गच्छ पन्द्रहसे गुणा करनेपर चार सौ अस्सी हुए । यही द्रव्यका प्रमाण है ॥९०४॥ आगे अनुकृष्टि (नीचे और ऊपरके समयोंमें समानता) के प्रथम खण्डका प्रमाण कहते हैं—

पडिसमयधणेवि पदं पचयं पभवं च होइ तेरिच्छे ।
अणुकड्डिपदं सव्वद्धाणस्स य संखभागो दु ॥९०५॥

प्रतिसमयधने पि पदं प्रचयं प्रभवश्च भवति तिरश्चि । अनुकृष्टिपदं सर्व्वाध्वानस्य च संख्यभागस्तु ॥

प्रतिसमयधनदोळं पदमुं प्रचयमुं प्रभवमुं तिर्य्यग्रूपदोळक्कु माद्युत्तरगच्छेगळक्कुमेंबुदत्थं । तु मत्तो आ तिर्य्यगनुकृष्टि गच्छे सर्व्वाध्वानव संख्यातैकभागमक्कु । मदक्के संदृष्टि |१६/४| नाल्कु रूपु लब्धमक्कुं । ४ ॥ इंतनुकृष्टिपदं ज्ञातमागुत्तं विरलु :—

अणुकड्डिपदेण हिदे पचये पचयो दु होइ तेरिच्छे ।
पचयधणूणं दव्वं सगपदभजिदं हवे आदी ॥९०६॥

अनुकृष्टिपदेन हृते प्रचये प्रचयस्तु भवेत्तिरश्चि । प्रचयधनोनं द्रव्यं स्वकपदभक्तं भवेदादिः ॥

ऊर्ध्वचयमननुकृष्टिपदर्दिदं भागिसुत्तं विरलु अनुकृष्टिप्रचयमक्कु ४/४ मी प्रचयमं मुन्निनंते व्येकपद ४/२ द्धं ४/२ घ्नचयमं माडि ३/२ । १ मत्तर्दरिदं गुणो गच्छ ३/२ । १ । ४ । उत्तरधनमिदु ६ । चयधनमक्कुमंतु चयधनमागुत्तं विरलु चयधनहीनं द्रव्यं १६२ । शेषमिदु १५६ । यिदं पदभजिदे १५६ ।

अपि पुनः अनुकृष्टेः प्रतिसमयघनानयने तद्गच्छचयादयः तिर्यगेव स्युः । तत्र गच्छः सर्वाध्वानस्य संख्यातैकभागोंकसंदृष्टया १६ चतुरंकः ४ ॥९०५॥
४

अनुकृष्टिपदेनोर्ध्वचये भक्ते तत्प्रचयः स्यात् ४/४ ततः व्येकपदा ४/२ द्धं ४/२ घ्नचयः ३/२ । १ गुणो गच्छ

अनुकृष्टिका प्रतिसमय धन लानेके लिए अनुकृष्टिका गच्छ आदि सब तिर्यक् रूप ही है । अर्थात् पहले समय सम्बन्धी परिणाम जहाँ लिखे हैं उसीके बराबरमें पहले समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके खण्डोंके परिणाम लिखना चाहिए । इसी प्रकार सब समयोंकी तिर्यक् रचना करना चाहिए । उनमेंसे अनुकृष्टिका गच्छ ऊर्ध्वगच्छके संख्यातवें भाग है । अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा ऊर्ध्व गच्छ सोलह है । उसमें संख्यातके चिह्न चारसे भाग देनेपर अनुकृष्टिका गच्छ चार होता है ॥९०५॥

अनुकृष्टिके गच्छका भाग ऊर्ध्व चयमें देनेपर जो प्रमाण हो उसे अनुकृष्टिका चय जानना । सो अनुकृष्टिके गच्छ चारका भाग ऊर्ध्वचय चारमें देनेपर एक आया । वही अनुकृष्टिका चय है । तथा करणसूत्रके अनुसार एक कम गच्छ तीनका आधा डेढ़को चय एकसे गुणा करनेपर भी डेढ़ रहा । उसे गच्छसे गुणा करनेपर छह हुए । यह अनुकृष्टिमें चयधन जानना । सो प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम एक सौ बासठ है । यही प्रथम समय-सम्बन्धी अनुकृष्टिका सर्वधन है । उसमें चयधन छह घटानेपर एक सौ छप्पन रहे । उसमें

होदि आदि परिमाणा मेंदु लब्धमादि मूवत्तों भत्तक्कुं । ३९ ॥

इंतनुकृष्टियोळावियरियल्पडुत्तिरलु :—

आदिम्मि कमे वड्ढदि अणुकड्डिस्स य चयं तु तेरिच्छे ।
इदि उड्ढतिरियरयणा अधापवत्तम्मि करणम्मि ॥९०७॥

आदौ क्रमेण वर्द्धतेऽनुकृष्टेश्च चयस्तु तिरिश्चि । इत्यूर्ध्वतिर्य्यग्रचनाऽधाप्रवृत्ते करणे ॥

तवनुकृष्ट्यादियिंदं मेले द्वितीयादिखंडंगळोळ क्रमदिंदं तिर्य्यगनुकृष्टिचयं पेच्चुंगुमिंतूर्ध्व-तिर्य्यग्रचनाद्वयमधाप्रवृत्तकरणपरिणामदोळक्कु । संदृष्टि :—

१६२	१६६	१७०	१७४	१७८	१८२	१८६	१९०	१९४	१९८	२०२	२०६	२१०	२१४	२१८	२२२	
३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	
४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	→
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	
४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	

अंकसंदृष्टि द्रव्य ३०७२		अत्थ संदृष्टि द्रव्य	≡ ə
परिणामाध्वान १६		अध्वान	२ । १ १ १ ।
अनुकृष्ट्यध्वान ४		अनुकृष्टि	२ । १ १ ।
परिणाम विशेष ४	←	परिणाम विशेष	≡ ə । २ । १ १ १ । २ । १ १ १ । १
			ə
अनुकृष्टि विशेष १		अनुकृष्टि विशेष	ə १ १ १ १ । २ १ १ १ । २ १ १ १ ।
संख्यात रूप १		संख्यात	१

३ । १ । ४ इति चयधनेन ६ द्रव्यं १६२ हीनं कृत्वा १५६ । पदेन भक्ते १५६ तदादि भवति ३९ ॥९०६॥

४

तदादेरुपरि द्वितीयादिखंडेषु क्रमेण तिर्यगनुकृष्टिचयो वर्धते इत्येवमूर्ध्वतिर्यग्रचनाद्वयमधःप्रवृत्तपरिणामे स्यात् ।

अनुकृष्टि गच्छ चारसे भाग देनेपर उनतालीस आये । यही प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिका प्रथम खण्ड है ॥९०६॥

उस प्रथम खण्डसे दूसरे आदि खण्डोंमें क्रमसे तिर्यक् रूपसे अनुकृष्टिका एक-एक चय बढ़ानेपर उनतालीस, चालीस, इकतालीस, बयालीस प्रमाण होता है । इसी प्रकार दूसरे समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके खण्डोंमें चालीस, इकतालीस, बयालीस, तैंतालीस प्रमाण होता है । यहाँ दूसरे समयसम्बन्धी और प्रथम समयसम्बन्धी चालीस, इकतालीस और बयालीस-में समानता हुई । इसी प्रकार तीसरे आदि समयोंमें अनुकृष्टि रचना करके नीचेके समय-सम्बन्धी परिणामोंमें समानता जानना चाहिए । इस तरह अधःकरणमें ऊर्ध्वरूप और तिर्यग् रूप रचना जानना । जैसा ऊपर संदृष्टिमें बताया गया है ।

अर्थसंदृष्टियोळधःप्रवृत्तकरणपरिणाम रचनाविशेषं तोरल्पडुगुमवें तें दोडे सर्व्वद्रव्यमिदु ।

≡ a इदं पदकदिसंखेण भाजिदे पचयमें दिदु प्रचयमक्कुं ≡ a १ व्येकप-
२ १ १ १ २ १ १ १ । १

दार्द्धघ्नचयगुणोगच्छ उत्तरधनमें दितिदु चयधनमक्कु । ≡a २ १ १ १ । — १ । २ १ १ १ मिवनप-
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २

वर्त्तिसिदोडे ≡ a २ १ १ १ — १ ई उत्तरधनमं चयधणहीणं दव्वं कळेदुळिद शेषमिदु
२ १ १ १ । १ । २

≡a २ १ १ १ । १ । २ इदं पदभजिदे होदि आदि परिमाण में दिदु प्रथमसमयादि धनमक्कुं
२ १ १ १ । १ । २

≡a २ १ १ १ । १ । २ यिदरोळों दु चयम ≡a १ निः कूडि-
२ १ १ १ । १ । २ १ १ १ । २ १ १ १ । १

धन……३
वोडे द्वितीयसमयधनमिनितक्कुं ≡a २ १ १ १ १ । २ प्रतिसमय प्रथमधनदोळु
२ १ १ १ । १ । २ । २ १ १ १

अर्थसंदृष्टौ तु सर्वद्रव्यमिदं ≡ a । पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ≡ a । १
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १

व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं ≡ a । २ १ १ १ — १ । २ १ १ १ अपवर्तितं
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २

≡ a २ १ १ १ — १ अनेन हीणं दव्वं— ≡ a । २ १ १ १ । १ । २ पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं
२ १ १ १ । १ २ २ १ १ १ । १ । २

≡ a । २ १ १ १ । १ । २ अत्रैकचये ≡ a । १ निक्षिप्ते द्वितीयसमयधनं—
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ २ १ १ १ । २ १ १ १ । १

इस प्रकार अंकोंके द्वारा दृष्टान्त रूप कथन किया है। इसी प्रकार अर्थसंदृष्टि रूपमें जानना। जो इस प्रकार है—अधःप्रवृत्तकरणके सब परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण है। यह सर्वधन जानना। अधःप्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त है उसके समयोंका प्रमाण गच्छ जानना। गच्छके वर्गको संख्यातसे गुणा करके उसका भाग सर्वधनमें देनेपर जो प्रमाण आवे उसे ऊर्ध्वचय जानना। एक कम गच्छके आधेको चयसे गुणा करके फिर गच्छसे गुणा करनेपर चयधन आता है। उसको सर्वधनमें घटानेपर जो शेष रहे उसमें गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आये वह प्रथम समयसम्बन्धी परिणामोंका प्रमाण है। उसमें एक चय

मत्तमा प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमखंडधनदोळेकानुकृष्टिचयमं द्विकर्तिदं समच्छेदमं माडिर्दिदं ≡ ० । २ कूडिदोडे द्वितीयसमयानुकृष्टिप्रथमखंडधनमक्कु । २ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ २

≡ ० २ १ १ १ १ । २ मिदरोळु रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयंगळं द्विकर्तिदं २ १ १ १ । २ १ १ १ १ । २ १ १ २

समच्छेदमं माडि ≡ ० २ १ १ । १ । २ इदरऋणरूपं गुणकारसहित तेगदेरडु २ १ १ १ । २ १ १ १ १ । २ १ १ । २

रूपुगळं धनद नाल्कुं रूपुगळोळगेरडु धनरूपुगळं सरिगळेदु द्विगुणपदमात्रंगळं कूडिदोडेरडु धन-

रूपुगळु सहितमागिदु तच्चरमानुकृष्टिखंडधनमक्कुं ≡ ० २ १ १ १ १ २ मत्तमा २ १ १ १ । २ १ १ १ १ । २ १ १ । २

ऋणरूपद्वयं धनरूपद्वयेन समानमिति दत्त्वा वृद्धे प्रथमानुकृष्टिचरमखण्डधनं स्यात् ।

≡ ० । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

पुनः तत्प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डधने एकानुकृष्टिचये द्वाभ्यां समच्छेदेन ≡ ० । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

वृद्धे द्वितीयसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डधनं स्यात् ≡ ० । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अत्र रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचये द्वाभ्यां समच्छेदेन ≡ ० । २ १ १ १—१ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

ऋणरूपं सगुणाकारं गृहीत्वा धनचतुष्कस्य रूपद्वयं समानमिति दत्त्वा शेषे द्विगुणपदमात्रे निक्षिप्ते रूपद्वयसहितं

भूत्वा तच्चरमानुकृष्टिखण्डधनं स्यात् ≡ ० । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अन्तिम खण्डका प्रमाण होता है। उस प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिके प्रथम खण्डके प्रमाणमें अनुकृष्टिका एक चय मिलानेपर दूसरे समय सम्बन्धी अनुकृष्टिके प्रथम खण्डका प्रमाण होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि खण्डोंमें एक-एक चय मिलाते-मिलाते एक कम अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर दूसरे समय सम्बन्धी अनुकृष्टिके अन्तिम

प्रथमसमयानुकृष्टि प्रथमखंडधनदोळु द्विरूपोनोर्ध्वपदमात्रानुकृष्टिचयंगळं द्विकदिंदं समच्छेदमं माडिदो राशियं ≡ ० २ १ १ १—२।२ कूडिदोडधःप्रवृत्तकरणद्विचरमसमयानु-
२ १ १ १ । २ १ १ १ १ । २ १।१ २

कृष्टि प्रथमखंडधनमक्कुं । ≡ ० २ । २ १ १ १ १ । २ यो राशियोळु रूपोनानु-
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

कृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयंगळं द्विकदिंदं समच्छेदमं माडि ≡ ० २ १ १ । १ । २
२ १ १ १ १।२ १ १।१।२ १ १ । २

दो राशियं कूडिदोडे तद्द्विचरमसमयानुकृष्टि चरमखंडधनमक्कुं ≡ ० । २ १ १ १ १ । २ ऋ ४
२ १ १ १।२ १ १ १।१।२ १ १ । २

मत्तमा द्विचरमसमयानुकृष्टि प्रथमखंडदोळेकानुकृष्टिचयमं द्विकदिंदं समच्छेदमं माडि ≡ ० १ । २ दो राशियं कूडिदोडे चरमसमयानुकृष्टि प्रथम-
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

पुनस्तत्प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डधने द्विरूपोनोर्ध्वपदमात्रानुकृष्टिचये समच्छेदेन—
≡ ० । २ १ १ १—२ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । २ १ १ । २

वृद्धे द्विचरमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डधनं स्यात् ≡ ० । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अत्र रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचये समच्छेदेन ≡ ० । २ १ १—१ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

वृद्धे द्विचरमसमयानुकृष्टिचरमखण्डधनं स्यात्— ≡ ० । २ १ १ १ । १ । २ ऋ ४
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

पुनस्तद्द्विचरमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डे एकानुकृष्टिचये समच्छेदेन ≡ ०—१ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ ।२११। २

खण्डका प्रमाण होता है। तथा प्रथम समय सम्बन्धी अनुकृष्टिके प्रथम खण्डके प्रमाणमें दो कम ऊर्ध्वगच्छ प्रमाण अनुकृष्टिके चय मिलानेपर द्विचरम समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके प्रथम खण्डका प्रमाण होता है। उसके द्वितीयादि खण्डोंमें एक-एक चय मिलाते हुए एक कम अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर उसके अन्तिम खण्डका प्रमाण होता है। द्विचरम समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके प्रथम खण्डके प्रमाणमें एक अनुकृष्टि चय मिलानेपर

खंडघनमक्कुं। ≡ ० २ १ १ १ १ । २ मी घनदोळु रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानु-
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २
चयंगळं द्विकविदं समच्छेदमं माडि ≡ ० २ १ १—१ । २ बी राशियं कूडि
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

दोडिदु चरमसमयानुकृष्टि चरमखंडघनप्रमाणमक्कुं ≡ ० २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

यितर्थसंदृष्टियोळाद्यंतद्विसमयद्विसमयंगळ ऊर्ध्वंतिर्य्यंग्रचना संदृष्टि :—

≡०२१११। १।२ ऋ १ २ १ १ १ । २१११ । १।२	≡ ० २ १ १ १ १ । २ २ १११ । २ १११ । २ १ ॥ २	≡०२११ १ १।२ ऋ २ २१११ । २१११।१ । २ १ १ । २
≡०२१११ १।२ ऋ ३ २१११ । २ १११ । १ । २	≡ ० १ १ १ १।२ ऋ २ २ १११ । २ ११११ । २ ११ २	≡ ० २११ १ १।२ ऋ ४ २१११ । २१११ । २ । १ १। २
≡ ० २ १११ १।२ घन ३ २१११ । २ १११ । १ । २	≡० २ १ १ १ १।२ घन ४ २ १११ । २ १११ । २ ११ २	≡०२११ १ १।२ घन २ २ १११ । २ १११ । २ १ १ २
≡० २ १११ १।२ घन १ २ १११ । २ १ १ १ । १ । २	≡०२ ११ १ १।२ घन २ २१११।२१११।१। २ ११ । २	≡ ० २ १ १ १ १।२ २१११।२१११ । १ । २१ १ । २

वृद्धे चरमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डघनं स्यात् ≡ ० २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

१० अत्र रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचये समच्छेदेन— ≡ ० । २ १ १—१ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

वृद्धे चरमसमयानुकृष्टिचरमखण्डघनं स्यात्[1] ≡ ० । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अन्त समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके प्रथम खण्डका प्रमाण होता है। उसके द्वितीयादि खण्डोंमें एक-एक चय मिलाते-मिलाते एक कम अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर अधःप्रवृत्त-करणके अन्त समयसम्बन्धी अनुकृष्टिके अन्तिम खण्डका प्रमाण होता है।

१५ १. अत्रोपकारिणी रचना जीवकाण्डे ४९ तमगाथायां दृष्टव्या।

एक जीव	एक जीव	नाना जीव	नाना जीव	अनि २ १
ए। का	नाना	ए। का	ना का	अपू २११
१	२१११	१०८	≡ ०	अधः २१११

अनंतरमधःप्रवृत्तकरणरचनाभिप्रायं पेळल्पडुगुं। अदें तें दोडे अप्रमत्तसंयतनुपमश्रेण्यारोहणनिमित्तमागियुं मेणु क्षपकश्रेण्यारोहणनिमित्तमागियुमधःप्रवृत्तकरणमं माळ्कुमा करणकालमुं अंतर्म्मुहूर्त्तं प्रमाणमक्कुमादोडमनिवृत्तिकरणकालमनिदं। २१। नोडलपूर्व्वकरणकालमिवु। २११। संख्यातगुणितमक्कु-। मदं नोडलधःप्रवृत्तकरणकालं संख्यातगुणितमक्कु-। २१११। मा कालदोळु संभविसुव संज्वलनदेशघातिस्पर्द्धकक्रोधादिकषायविशुद्धिपरिणामस्थानंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुववुं संज्वलनक्रोधादिकषायंगळ सर्व्वघातिस्पर्द्धककषायसंक्लेशस्थानंगळं नोडलसंख्यातैक भागमात्रंगळप्पुवु। आ संज्वलनसर्व्वघाति स्पर्द्धकोदयस्थानंगळगनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधादिकषायंगळोडनल्लदुदयमिल्लप्पुदरिनी यप्रमत्तसंयतनोळुदयमिल्ल-। मधःप्रवृत्तकरण

अप्रमत्तसंयतः उपशमश्रेणिं क्षपकश्रेणिं वारूढमधःप्रवृत्तकरणं करोति। तस्य कालोंऽतर्मुहूर्तोऽप्यनिवृत्तिकरणकालात्संख्यातगुणापूर्वकरणकालात्संख्यातगुणः २ १ १ १ तत्र संज्वलनदेशघातिस्पर्धकविशुद्धिपरिणामस्थानानि शेषकषायसहचरिततत्सर्वघातिस्पर्धकसंक्लेशस्थानेभ्योऽसंख्यातैकभागमात्राण्यप्यंख्यातलोकमात्राणि। तत्राप्यनुकृष्टिजघन्यखण्डस्य जघन्यविशुद्धिपरिणामस्थानं जिनदृष्टोऽष्टांकः। ततस्तदुत्कृष्टमनंतगुणं। कुतः? तस्योपर्यनंतभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राण्यतीत्य सकृदसंख्यातभागवृद्धिस्थानं। इमान्यपि तथा तावंत्यतीत्य पुनरेकवारमावर्तितस्य चरमेऽसंख्यातभागवृद्धिस्थाने संख्यातभागवृद्धिस्थानं। इमान्यपि तथा तावंत्यतीत्य पुनरेकवारमावर्तितस्य चरमे संख्यातभागवृद्धिस्थाने संख्यातगुणितवृद्धिस्थानं। इमान्यपि तथा तावंत्यतीत्य पुनरेकवारमावर्तितस्य चरमे संख्यातगुणवृद्धिस्थाने असंख्यातगुणवृद्धिस्थानं। इमान्यपि तथा तावंत्यतीत्य पुनरेकवारमावर्तितस्य चरमेऽसंख्यातगुणवृद्धिस्थानेऽनंतगुणवृद्धिस्थानानि। मिलित्वेमानि रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातस्य घनगुणितवर्गमात्राण्येकं षड्वृद्धिस्थानं एतानि तत्रासंख्यातलोकाः सन्तीति कारणात्। ततस्तद्द्वितीयखण्डस्य जघन्यविशुद्धिस्थानमनन्तगुणं अष्टांकत्वात्। एवं सर्वखण्डेषु स्वस्वजघन्यस्थानात्स्वस्वोत्कृष्टस्थानं ततोऽनंतरखण्डस्य जघन्यस्थानं चानन्तगुणमनन्तगुणं ज्ञातव्यं। तत्प्रथमखण्डस्य प्रथमखण्डचरमखण्डस्य चरमखण्डं च विनोपरितनखण्डपरिणामाः अधस्तनखण्डपरिणामैः सह यथासम्भवं सदृशा इत्ययं करणोऽधःप्रवृत्तसंज्ञः स्यात्॥

[अप्रमत्तसंयतः उपशमश्रेण्यारोहणनिमित्तं वा क्षपकश्रेण्यारोहणनिमित्तमधःप्रवृत्तकरणं करोति। तस्य कालोंऽतर्मुहूर्तोऽप्यनिवृत्तिकरणकालतः २ १ संख्यातगुणात्पूर्वकरणकालात् २ १ १ संख्यातगुणः २ १ १ १ तत्र सम्भविसंज्वलनदेशघातिस्पर्धकक्रोधादिकषायविशुद्धिपरिणामस्थानान्यसंख्यातलोकमात्राणि। तानि च संज्वलनक्रोधादिकषायसर्वघातिस्पर्धककषायसंक्लेशस्थानेभ्योऽसंख्यातैकभागमात्राणि। तत्संज्वलनसर्वघाति-

---

तथा अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी चढ़नेके लिए भी अधःप्रवृत्तकरण करता है। उसका भी काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। फिर भी अनिवृत्तिकरणके कालसे संख्यातगुणा काल अपूर्वकरणका है और उससे भी संख्यातगुणा काल अधःप्रवृत्तकरण-

प्रथमसमयप्रथमानुकृष्टिखंडजघन्यविशुद्धिपरिणामस्थानं जिनदृष्टमष्टांकमक्कु–। मदं नोडलु तदुत्कृष्टविशुद्धिस्थानमनंतगुणमक्कु मेकेंदोडा खंड जघन्याष्टांकस्थानदमेले अनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडेवु ओम्मे असंख्यातभागवृद्धिस्थानमक्कुमदर मेले मुन्निनंते अनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रस्थानंगळु नडेदु मत्तोम्मे असंख्यातभागवृद्धिस्थानमक्कु–। मितनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडेदोम्मे असंख्यातैकभागवृद्धिस्थानंगळागुत्तं विरलु मा असंख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रवृद्धिस्थानंगळप्पुवंतागुत्तं विरलु मत्तमनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडवोम्मे संख्यातभागवृद्धिस्थानमक्कु–। मदर मेले मुन्निनंतेयनंतभागवृद्धिस्थानंगळागि योम्मोम्मे असंख्यातभागवृद्धिस्थानंगळागुत्तमुमः असंख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळागि मुंदनंतभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडद मत्तमोम्मे संख्यातभागवृद्धिस्थानमक्कुमी प्रकारदिंदमो संख्यातभागवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळागुत्तं विरलु मुंदे मत्तमनंतभागादिवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडनडदोम्मे संख्यातगुणवृद्धिस्थानमक्कु–। मितु मुन्निनंते अनंगभागवृद्धिस्थानंगळु असंख्यातैकभागवृद्धिस्थानंगळु संख्यातैकभागवृद्धिस्थानंगळु मावर्त्तिसि यावर्त्तिसि योम्मोम्मे संख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळागुत्तमा संख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळ, सूच्यंगुलासंख्यातैकभागवृद्धिस्थानंगळप्पुवु।

स्पर्धकोदयस्थानानामनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानक्रोधादिकषायैरेवोदयादत्राप्रमत्ते उदयो नास्ति। अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयप्रथमानुकृष्टिखण्डस्य जघन्यविशुद्धिपरिणामस्थानं जिनदृष्टोऽष्टांकः। ततस्तदुत्कृष्टमनन्तगुणं। कुतः? तस्योर्ध्वमनन्तभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राण्यतीत्य सकृदसंख्यातभागवृद्धिस्थानं। तस्योपरि पूर्ववदनन्तभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि गत्वा पुनरेकवारमसंख्यातभागवृद्धिस्थानं। एवमसंख्यातभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि स्युस्तदा पुनरनन्तभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि गत्वैकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानं स्यात् तस्योपरि पूर्ववदनन्तभागवृद्धिसहचरितासंख्यातभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि। तदग्रेऽनन्तभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि गत्वा पुनरेकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानं। एवं संख्यातभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि नीत्वाग्रे पुनरनन्तभागादिवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राण्यतीत्यैकवारं संख्यात-

---

का है। उसमें जो संज्वलन कषायके देशघातिस्पर्धकोंके उदयरूप विशुद्धिपरिणामोंके स्थान हैं वे अन्य प्रत्याख्यानादि कषायोंके साथ उदयमें आनेवाले संज्वलन कषायके सर्वघाती स्पर्द्धकोंके उदयरूप संक्लेश स्थानोंके असंख्यातवें भाग हैं फिर भी वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं। वहाँ भी अनुकृष्टिका जघन्य पहले खण्डका जघन्य विशुद्धिपरिणाम स्थान सर्वज्ञके द्वारा देखे गये अष्टांक प्रमाण अनन्त गुण वृद्धिको लिये हुए है। अर्थात् पूर्व परिणामके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणसे अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेदोंका समूहरूप स्थान है। कषायोंके उदयरूप स्थान असंख्यात हैं। उनमें अविभाग प्रतिच्छेदोंके रूपमें परिणामोंका प्रमाण अनन्त हैं। सो जैसे-जैसे निर्मलता होती है वैसे-वैसे विशुद्धताके अविभाग प्रतिच्छेद

मुंदेयुमंते अनंतभागादिवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडदु ओम्मे असंख्यातगुणवृद्धिस्थानमक्कु मी असंख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळं मुन्निनंते अनंतभागवृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि स्थानंगळु क्रमदिंद सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रस्थानंगळावर्त्तिसियावर्त्तिसियोम्मोम्मे असंख्यातगुणवृद्धिस्थानमागुत्तलु मी यसंख्यातगुणवृद्धिस्थानंगळं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रवृद्धिस्थानंगळागुत्तं विरलु मुंदे मत्तमनंतभागादिवृद्धिस्थानंगळु सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रंगळु नडनडदु ओम्मे अनंतगुणवृद्धिस्थानमक्कु मितोंदु षड्वृद्धिस्थानंगळु रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैकभागदघनमुं वर्गमुंगुणिसिदनितप्पुवु—

१— १— १— १— १—
२ २ २ २ २
ə ə ə ə ə

अंकसंदृष्टि :—

८	१				
७	२				
	१—				
६	२	२			
	१—	१—			
५	२	२	२		
	१—	१—	१—		
४	२	२	२	२	
	१—	१—	१—	१—	
३	२	२	२	२	२

गुणवृद्धिस्थानं। एवं पूर्ववदनन्तभागवृद्धिस्थानानि असंख्यातैकभागवृद्धिस्थानानि संख्यातैकभागवृद्धिस्थानानि चापवर्त्यापवर्त्यैकैकवारं संख्यातगुणवृद्धिस्थानं भूत्वा-भूत्वा संख्यातगुणवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि स्युः। अग्रे तथैवानन्तभागवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि गत्वा एकवारमसंख्यातगुणवृद्धिस्थानं स्यात्। एतानि पूर्ववदनन्तभागवृद्ध्यसंख्यातभागवृद्धिसंख्यातभागवृद्धिसंख्यातगुणवृद्धिस्थानानि क्रमेण सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राण्यपवर्त्यापवर्त्यैकैकवारमसंख्यातगुणवृद्धिस्थानं इतोमान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि नीत्वा अग्रे पुनरनन्तभागादिवृद्धिस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि गत्वा एकवारमनंतगुणवृद्धिस्थानं। एवमेकषड्वृद्धिस्थानानि रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैकभागस्य घनवर्गगुणितमात्राणि भवन्ति।

२ २ २ २ २
ə ə ə ə ə

बढ़ते हैं। इससे यहाँ अनन्त गुणापन सम्भव होता है। उस पहले खण्डके जघन्यसे उसका ही उत्कृष्ट अनन्तगुणा है। क्योंकि उस जघन्यके ऊपर सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अनन्त भागवृद्धिरूप स्थान होनेपर एक बार असंख्यात भागवृद्धि स्थान होता है। इसी प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यात भागवृद्धि स्थान होनेपर पुनः एक बार पूर्ववत् करनेपर अन्तिम असंख्यात भागवृद्धिके स्थानपर संख्यात भागवृद्धि होती है। इसी प्रकार सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण संख्यात भाग वृद्धि स्थान होनेपर पुनः एक बार पूर्ववत् करनेपर अन्तमें संख्यात भागवृद्धिके स्थानपर संख्यात गुणवृद्धि होती है। इसी प्रकार उतने ही संख्यात गुणवृद्धि स्थान होनेपर पुनः एक बार पूर्ववत् करनेपर अन्तमें संख्यात गुणवृद्धिके स्थानपर असंख्यात गुणवृद्धि होती है। इसी प्रकार उतने ही असंख्यात गुणवृद्धि स्थान होनेपर पुनः एक बार पूर्ववत् करनेपर अन्तमें असंख्यात गुणवृद्धिके स्थानपर अनन्त गुणवृद्धि होती है।

सर्व्वमेलने एवं भवति–१ १ १ १ १ इंतागुत्तं विरलु इंतप्प षट्स्थानंगळा प्रथमसमयप्रथम-
२ २ २ २ २
मानुकृष्टि खंडदोळु असंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवप्पुदरिंदमनंतगुणित्वं सिद्धमक्कु मदं नोडलु तत्प्रथमसमयद्वितीयानुकृष्टिखंडजघन्यवृद्धिस्थानमष्टांकमप्पुदरिंदमनंतगुणमक्कुमेकें दोडे छट्ठाणाणं आदो अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकमेंबिंतेल्ला प्रथमसमयसमस्तानुकृष्टिखंडंगळजघन्यंगळष्टांकंगळप्पुवु। उत्कृष्टमुर्व्वंकंगळेयप्पुर्वेंतु स्वजघन्यमं नोडलु स्वोत्कृष्टस्थानंगळमनंतगुणंगळप्पुवु। पूर्व्वखंडोत्कृष्ट मुर्व्वंकमदं नोडलुत्तरखंडजघन्यस्थानमनंतगुणमेंब व्याप्ति एल्लेडेयोळमरियल्पडुगुं। इल्लि प्रथमसमयानुकृष्टि प्रथमखंड सर्व्वस्थानंगळुमसदृशंगळु। द्वितीयसमयप्रथमखंडं मोदल्गोंडु द्विचरमखंडपर्य्यंतमाद सर्व्वस्थानंगळु प्रथमसमयद्वितीयखंडमोदल्गोंडु चरमखंडपर्य्यंतमाद समस्तस्थानंगळोडने समानंगळप्पुवु। इंतु निर्व्वर्गणकांडकपर्य्यंतमुपरितनोपरितनखंडविशुद्धिस्थानंगळ-

८	१
७	२
६	२ २
५	२ २ २
४	२ २ २ २
३	२ २ २ २ २
सर्वसम्मेलने एवं	
	१ ८ ८ ८ ८
	२ २ २ २ २

इतीदृशषट्स्थानानि तत्प्रथमसमयानुकृष्टिखण्डे असंख्यातलोकमात्राणि संतीत्यनन्तगुणत्वं सिद्धं। ततस्तत्प्रथमसमयद्वितीयानुकृष्टिखण्डजघन्यवृद्धिस्थानं अष्टांकत्वादनन्तगुणं। कुतः? छट्ठाणाणं आदो अट्ठंकं होदि चरममुव्वंकमिति स्वजघन्यात्स्वोत्कृष्टस्थानमनन्तगुणं पूर्वखण्डोत्कृष्टादुत्तरखण्डजघन्यस्थानमनन्तगुणमिति व्याप्तिसद्भावात्। अत्र प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमखण्डसर्वस्थानानि द्वितीयसमयप्रथममादिं कृत्वा द्विचरमखण्डपर्यंतसर्वस्थानानि प्रथमसमयद्वितीयखण्डमादिं कृत्वा चरमखण्डपर्यंतसमस्तस्थानैः सह समानि एवं निर्वर्गणकाण्डक-

इस प्रकार एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागके घनसे उसीके वर्गको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाण वृद्धियोंके होनेपर एक षट्स्थान पतित वृद्धिरूप स्थान होता है। जीवकाण्डके ज्ञानमार्गणाधिकारमें पर्यायसमास श्रुतज्ञानके वर्णनमें षट्स्थान वृद्धिका जैसा कथन किया है वैसा ही यहाँ भी जानना। ये षट्स्थान उन कषाय स्थानोंमें असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं इससे जघन्यसे उत्कृष्टको असंख्यात गुणा कहा है।

प्रथम खण्डके उत्कृष्टसे दूसरे खण्डका जघन्य अनन्तगुणा है क्योंकि षट्वृद्धिस्थानमें अनन्तगुण वृद्धि—जिसका चिह्न आठका अंक है, पीछे ही पीछे होती है तब दूसरे खण्डका जघन्य स्थान होता है। उससे उसीका उत्कृष्ट अनन्तगुणा है। इस प्रकार सब खण्डोंमें अपने-अपने जघन्यसे अपना-अपना उत्कृष्ट अनन्तगुणा है। और उस उत्कृष्टसे उससे

धस्तनाधस्तनखंडस्थानंगळोडने यथासंभवमागि समानंगळप्पुवप्पुदरिंनिदु अधःप्रवृत्तपरिणामस्थानंगळप्पुदरिंदमी करणक्कधःप्रवृत्तकरणमेंब पेसरन्वर्थमक्कुं। इंतु ॥

अंतोमुहुत्तकालं गमियूण अधापवत्तकरणं तं ।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समल्लियइ ॥९०८॥

अंतर्मुहूर्त्तकालं नीत्वातदधः प्रवृत्तकरणकालं तं । प्रतिसमयं शुध्यन्नपूर्वकरणं समाश्रयति ॥ ५

तदधः प्रवृत्तकरणकालावसानमागियंतर्म्मुहूर्त्तकालमधः प्रवृत्तकरणकालमं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धियिंदं पेच्चुंत्तं कळिदु सातिशयाप्रमत्तनपूर्व्वकरणगुणस्थानमं पोद्दुगु। मा परिणामदोळु धनाध्वानपरिणामविशेषसंख्यातरूपुगळंकसंदृष्टियं पेळ्दपरु। :—

छण्णउदिचउसहस्सा अट्ठ य सोलसधणं तदद्धाणं ।
परिणामविसेसो वि य चउ संखापुव्वकरणम्मि ॥९०९॥ १०

नाल्कु सासिरद तोंभत्तारु ४०९६ धनमुं अध्वानमंदु ८। परिणामविशेषं पदिनारु १६। संख्यातरूपुगळु नाल्कु। ४। मपूर्व्वकरणपरिणामदोळप्पुवु ॥

पर्यंतमुपरितनोपरितनखण्डविशुद्धिस्थानानि अधस्तनाधस्तनस्थानैर्यथासम्भवममानानीत्यधःप्रवृत्तत्वादस्याधःप्रवृत्तकरणमित्यन्वर्थनाम। पाठोऽयं कथंचिद्विशेषमादधानः अभयचन्द्रीयटीकायां।] ॥९०७॥

तमधःप्रवृत्तकरणमन्तर्मुहूर्तकालं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानः सातिशयाप्रमत्तो नीत्वाऽ- १५
पूर्वकरणं समाश्रयति ॥९०८॥

तत्रापूर्वकरणेऽकसंदृष्टिधनं षण्णवत्यग्रचतुःसहस्रं। अध्वानोऽष्टौ। परिणामविशेषः षोडश। संख्यातरूपाणि चत्वारि ॥९०९॥

अनन्तर स्थानका जघन्य अनन्तगुणा है। यहाँ प्रथम समयके प्रथम खण्ड और अन्तिम समयके अन्तिम खण्डको छोड़ सब ऊपरके खण्ड सम्बन्धी परिणाम और नीचेके खण्ड २०
सम्बन्धी परिणाम परस्परमें यथासम्भव समानता रखते हैं। इसीसे इसे अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं ॥९०७॥

प्रति समय अनन्तगुण विशुद्धिसे बढ़ता हुआ सातिशय अप्रमत्त उस अधःप्रवृत्तकरणके अन्तर्मुहूर्त कालको बिताकर अपूर्वकरणको करता है ॥९०८॥

उस अपूर्वकरणमें अंक संदृष्टिके रूपमें सर्वधन चार हजार छियानबे है। कालका २५
प्रमाण आठ है। परिणाम विशेष सोलह हैं। और संख्यातका प्रमाण चार है। आशय यह है कि अपूर्वकरणके सब स्थानोंके प्रमाण तो सर्वधन है जो चार हजार छियानबे हैं। अपूर्वकरणके कालके समयोंका प्रमाण आठ है। प्रति समय जितनी वृद्धि हो वह परिणाम विशेष सोलह है। इसीका नाम चय है। चय लानेके लिए संख्यातका प्रमाण चार है ॥९०९॥

---

१. ण °संदिट्ठी मु.। ३०

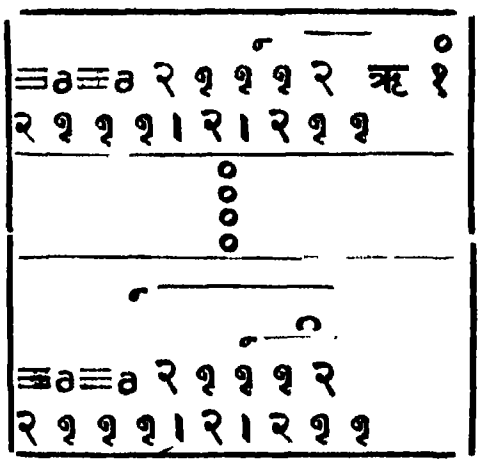
अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा ।
कमउड्ढापुव्वगुणे अणुकड्डी णत्थि णियमेण ॥९१०॥

अंतर्म्मुहूर्त्तमात्रे प्रतिसमयमसंख्यलोकपरिणामाः । क्रमवृद्धा अपूर्व्वगुणे अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन ॥

अपूर्व्वकरणगुणस्थानदोळु अंतर्म्मुहूर्त्तकालमक्कु । २ १ १ । मा कालदोळु प्रतिसमयमसंख्यातलोकमात्रपरिणामंकळप्पुवादोडं प्रथमसमयं मोदल्गोंडु द्वितीयादिसमयंळोळेल्लं चरमसमयपर्य्यंतं सदृशचयर्दिदं पेर्च्चुववोयपूर्वकरणपरिणामंगळोळनुकृष्टि यें ब भेदमिल्लेकें दोडुपरितन परिणामस्थानंगळुमधस्तनसमयपरिणामंगळोडनोरत्तंगळल्ल वप्पुदरिदं । इल्लि धनमिदु ४०९६ । इदं पदकदिसंखेण भाजिदे पचयमें दितु $\frac{४०९६}{८।८।४}$ इदर लब्धं प्रचयं १६ । व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणोगच्छ उत्तरधनमें दितु $\frac{८}{२}$ । १६ । ८ लब्धमुत्तरधनमिदु । ४४८ । इन्नु चयधनहीनं द्रव्यं पदभजिते भवत्यादिप्रमाणणमें दितु चयधनरहितद्रव्यमिदु ३६४८ । यिदं पदिं भागिसिदोडादिप्रमाणमक्कुं $\frac{३६४८}{८}$ लब्धमादिधनमिदु । ४५६ ॥ आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणंतु भावाणमें दिदु प्रतिसमय धनमक्कुं

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६

अर्थसंदृष्टियिदु :—



तस्यापूर्वकरणस्य कालेऽन्तर्मुहूर्त २ १ १ मात्रे प्रतिसमयं परिणामा असंख्यातलोकमात्रा अत्र प्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यंतं सदृशचयवृद्धाः सन्ति । तेषु चानुकृष्टिरचना नास्ति । उपरितनपरिणामानामधस्तनपरिणामैरसादृश्यात् ।

उस अपूर्वकरणका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। उसमें प्रति समय असंख्यात लोक परिणाम होते हैं। वे प्रथम समयसे लेकर अन्त समय पर्यन्त समान चयको लिये हुए बढ़ते जाते हैं। यहाँ अनुकृष्टि रचना नहीं है, क्योंकि ऊपर समयके परिणामोंकी नीचेके समयोंके परिणामोंके साथ समानता नहीं पायी जाती है। किसी जीवका प्रथम समयमें उत्कृष्ट परिणाम हो और किसीका दूसरे समयमें जघन्य परिणाम हो, फिर भी उसके उससे अधिकता ही पायी जाती है।

पदकदिसंखेण भाजिदे पचयमेंदिदु प्रचयमक्कं। ≡a≡a ण्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो-
२१११२११।१

गच्छउत्तरधनमेंदिदुत्तरधनमक्कुं २११−१। ≡a≡a११ अपवर्त्तितोत्तरधनमिदु
२११।२११।१।२

≡a≡a २११−१ चयघणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणमेंदिदु प्रथमसमयधन-
२११।१।२

मक्कुं ≡a≡a २११११२ चरमसमय धनमेनितक्कुमेंदोडादिधनदोळु रूपोनगच्छमात्र-
२११।१२११।२

५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६

तद्धनं ४०९६। पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ४०९६। लब्धं १६। ण्येकपदार्धघ्नचयगुणो ५
८।८।४

गच्छ उत्तरधनं ८। १६। ८ लब्धं ४४८। चयघणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदि-
२

परिमाणं ३६४८। लब्धं ४५६ आदिम्मि चये उड्ढे पडिसमयधणं तु भावाणमिति।
८

अर्थसंदृष्टी धनं ≡ a ≡ a पदकदिसंखेण भाजिदे पचयं ≡ a ≡ a
२११।२११।१

व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं २११ ≡ a ≡ a। २११ अपवर्तितं ≡ a ≡ a २११—१
२११।२११।१।२ २११।१।२

चयघणहीणं दव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं— ≡ a ≡ a २११।१।२ १०
२११।२११।१।२

जिन जीवोंको अपूर्वकरण करे पहला समय है उन अनेक जीवोंके परिणाम समान भी होते हैं और असमान भी होते हैं। परन्तु जिनको अपूर्वकरण करे द्वितीयादि समय हुए हैं उनके परिणामोंमें कभी भी समानता नहीं होती। इसी प्रकार जिनको अपूर्वकरण करे द्वितीयादि समय हुआ है उनके परस्परमें समानता भी होती है और असमानता भी होती है, किन्तु ऊपरके तथा नीचेके समयवालोंके साथ परिणामोंकी असमानता ही होती है। १५ इसीसे इसका नाम अपूर्वकरण है। प्रति समय अपूर्व-अपूर्व—जो पहले नहीं हुए ऐसे परिणाम होते हैं।

वहाँ सर्वधन चार हजार छियानवे है। तथा करण सूत्रके अनुसार पद या गच्छ आठका वर्ग चौंसठ तथा संख्यातका चिह्न चारसे सर्वधनमें भाग देनेपर चयका प्रमाण सोलह आता है। और दूसरे सूत्रके अनुसार एक कम गच्छके आधे साढ़े तीनको चय सोलह- २० से गुणा करके गच्छ आठसे गुणा करनेपर चार सौ अड़तालीस होते हैं। यही चयधन है। तथा तीसरे सूत्रके अनुसार चयधन चार सौ अड़तालीसको सर्वधन चार हजार छियानवेमें-से घटानेपर छत्तीस सौ अड़तालीस रहे। उसमें गच्छ आठसे भाग देनेपर चार सौ छप्पन

चयंगळं $\frac{\equiv a \equiv a \; २ \; १ \; १}{२ \; १ \; १ \; । \; १ \; २ \; । \; १ \; १}$ द्विकर्विदं समच्छेदमं माडि $\frac{\equiv a \equiv a \; । \; २ \; १ \; १ - १ \; । \; २}{२ \; १ \; १ \; १ \; । \; २ \; १ \; १ \; । \; २}$ कूडिदोडे

चरमसमय धनमिदु $\frac{\equiv a \equiv a \; । \; २ \; १ \; १ \; १ \; । \; २ \; \overset{\circ}{\Rightarrow} \; १}{२ \; १ \; १ \; १ \; । \; २ \; १ \; १ \; । \; २}$ ई अपूर्व्वकरणचनाभिप्रायं पेळल्पडुगुम-

दें तें दोडे अधःप्रवृत्तकरणपरिणाम धनमं नोडलु $\equiv a$। अपूर्व्वकरणपरिणामधनमसंख्यातलोक-गुणमक्कु $\equiv a \equiv a$ मी परिणामंगळोळपूर्व्वकरणप्रथमसमयविशुद्धिपरिणामंगळसंख्यातलोकमात्रं-गळप्पुवं नोडलु द्वितीयादिसमयविशुद्धिपरिणामंगळु मसंख्यातलोकमात्रंगळेयप्पुवादोडं प्रतिसमयं चयाधिकंगळप्पुवल्लि अपूर्व्वकरणप्रथमसमयजघन्यविशुद्धिपरिणामस्थानमधःप्रवृत्तकरणचरम-समयचरमानुकृष्टिखंडसर्व्वोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामस्थानमं नोडलनंतगुणविशुद्धिपरिणामस्थान-मक्कुमा जघन्यविशुद्धिस्थानमं नोडलु तत्प्रथमसमयसर्व्वोत्कृष्टापूर्व्वकरण विशुद्धिस्थानमनंतगुण-मक्कुमेकें दोडल्लियसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानंगळप्पुवप्पुदरिंदमा प्रथमसमय सर्वोत्कृष्टविशुद्धिपरि-णामस्थानमं नोडलु द्वितीयसमयापूर्व्वकरणसर्व्वजघन्यविशुद्धिस्थानमनंतगुणमक्कु। मा जघन्यमं नोडलु द्वितीयसमयसर्व्वोत्कृष्टविशुद्धिस्थानमनंतगुणमक्कुमेकें दोडा द्वितीयसमयजघन्यस्थानं

अत्र रूपोनगच्छमात्रचयेषु $\frac{\equiv a \equiv a \; २ \; १ \; १}{२ \; १ \; १ \; । \; १ \; । \; २ \; १ \; १}$ द्वाभ्यां समच्छेदेन $\frac{\equiv a \equiv a \; २ \; १ \; १ - १ \; । \; २}{२ \; १ \; १ \; । \; १ \; । \; २ \; १ \; १ \; । \; २}$

वृद्धेषु चरमसमयधनं स्यात् $\frac{\equiv a \equiv a \; २ \; १ \; १ \; १ \; २ \; । \; \overset{\circ}{\Rightarrow} \; १}{२ \; १ \; १ \; । \; १ \; । \; २ \; १ \; १ \; । \; २}$। अत्रायमर्थः—अपूर्वकरणघनमधःप्रवृत्तकरण-घनादसंख्यातलोकगुणं $\equiv a \equiv a$ तत्र प्रथमसमयपरिणामाः असंख्यातलोकमात्राः। तेभ्यो द्वितीयादिसमयेषु तदालापा अपि प्रतिसमयं चयाधिकाः सन्ति। तत्प्रथमसमयजघन्यविशुद्धिपरिणामोऽधःप्रवृत्तकरणचरमखण्डोत्कृष्ट-विशुद्धिपरिणामादनंतगुणः। ततस्तदुत्कृष्टोऽनन्तगुणः कुतः ? तत्राप्यसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानसम्भवात्। ततो

पाये। यही प्रथम समयसम्बन्धी परिणामोंका प्रमाण है। तथा चतुर्थ सूत्रके अनुसार आदिके प्रमाणमें एक-एक चयका प्रमाण सोलह-सोलह क्रमसे मिलानेपर आगेके समयोंमें परिणामोंका प्रमाण होता है। जैसे प्रथम समयमें चार सौ छप्पन है। उनमें एक चय मिलानेपर दूसरे समयमें चार सौ बहत्तर होते हैं। उनमें एक चय मिलानेपर तीसरे समयमें चार अट्ठासी होते हैं। इसी प्रकार अन्त समयपर्यन्त जानना। यह तो दृष्टान्त मात्र है।

यथार्थमें अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनको असंख्यात लोकसे गुणा करनेपर अपूर्वकरणका सर्वधन होता है। अपूर्वकरणके कालके समयोंका प्रमाण गच्छ है। गच्छके वर्गको संख्यातसे गुणा करके उसका भाग सर्वधनमें देनेपर चयका प्रमाण होता है। एक कम गच्छके आधेको चयसे गुणा करके फिर गच्छसे गुणा करनेपर चयधनका प्रमाण होता है। चयधनको सर्वधनमें-से घटाकर शेषको गच्छका भाग देनेपर प्रथम समयके

मोवल्गों डसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानंगळु नडवु पुट्टिवप्पुवरिंद । मितु अधस्तनपूर्व्वपूर्व्वसमयोत्कृष्ट-विशुद्धिस्थानमं नोडलुपरितनोपरितनसमयसर्व्वजघन्यविशुद्धिस्थानमनंतगुणमक्कुं । स्वजघन्यमं नोडलु स्वोत्कृष्टमनंतगुणमक्कु । मीयपूर्व्वकरणप्रतिसमयविशुद्धिस्थानंगळोळुपरितनोपरितन-समयविशुद्धिस्थानंगळधस्तनाधस्तनविशुद्धिपरिणामस्थानंगळोडनों दुं समानमल्लप्पुवरिंदमी करणमपूर्व्वंकरणमें ब पेसरनुळ्ळुदावुदु । अवुकारणदिंदमपूर्व्वंकरणपरिणामंगळगनुकृष्टि विशेष- ५
मिल्लेदु पेळल्पट्टुदपूर्व्वंकरणकाल प्रथमसमयं मोवल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतमेकजीवापेक्षेयिं प्रति-समयमनंतगुण विशुद्धिस्थानंगळप्पुवु । नानाजीवापेक्षेयिंदं त्रिकालगोचरंगळप्प विशुद्धिस्थानंगळु सदृशंगळुं मेणनंतभागासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणासंख्यातगुणानंतगुणविशुद्धिस्थानंग-लप्पुवें बुदपूर्व्वंकरणरचनाभिप्रायमक्कु । मनंतरमनिवृत्तिकरणपरिणामस्वरूपमं पेळदपरु । :—

एक्कम्मि कालसमये संठाणादीहि जह णिवट्टंति । १०
ण णिवट्टंति तहंवि य परिणामेहिं मिहो जे हु ॥९११॥

एकस्मिन्कालसमये संस्थानादिभिर्य्यथा निवर्त्तंते । न निवर्त्तंते तथैव च परिणामैर्मिथो ये खलु ॥

द्वितीयसमयजघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनन्तगुणः । ततस्तदुत्कृष्टोऽनन्तगुणः एवमाचरमसमयं ज्ञातव्यं । यत उपरितनसमयपरिणामा अधस्तनसमयपरिणामैः सदृशा न ततोऽयमपूर्वकरण इत्याख्यायते ॥९१०॥ अथानि- १५
वृत्तिकरणस्वरूपमाह—

परिणामोंका प्रमाण होता है । द्वितीयादि समयोंमें परिणामोंका प्रमाण लानेके लिए एक-एक चय मिलाना चाहिए । इस प्रकार एक कम गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर अन्त समय सम्बन्धी परिणामोंका प्रमाण होता है ।

ऊपर टीकामें जो संदृष्टि दी है उसका अर्थ इस प्रकार है— २०

अपूर्वकरणका सर्वधन अधःप्रवृत्तकरणके सर्वधनसे असंख्यात लोक गुणा है । उसमें प्रथम समयसम्बन्धी परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण है । उससे द्वितीयादि समयोंमें भी असंख्यात लोक प्रमाण ही परिणाम है । तथापि एक-एक चय बढ़ते-बढ़ते हुए हैं । प्रथम समयसम्बन्धी जघन्य विशुद्धि परिणाम अधःप्रवृत्तकरणके अन्तसमयके अन्तिम अनुकृष्टि खण्डके विशुद्धि परिणामसे अनन्तगुणे हैं । उससे प्रथम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धि २५
परिणाम अनन्तगुणा है । क्योंकि अपूर्वकरणमें भी असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थान होते हैं । उससे दूसरे समय सम्बन्धी जघन्य विशुद्धि परिणाम अनन्तगुणा है । इसी प्रकार अन्तिम समय पर्यन्त जानना । यहाँ ऊपरके समयोंमें होनेवाले परिणाम नीचेके समयमें होनेवाले परिणामोंके समान कभी भी नहीं होते इसीसे इसका नाम अपूर्वकरण है ॥९१०॥

आगे अनिवृत्तिकरणका स्वरूप कहते हैं— ३०

ये खलु जीवाः आउवु केलवु जीवंगळु स्फुटमागि विवक्षितैकसमयदोळु संस्थानवर्णवयोवेषभाषादिगळिंदमे तु ओरोव्वंरोळु विसदृशरप्परंते परिणामंगळिंदं मिथः परस्परं विसदृशरप्परल्तु विशुद्धिपरिणामंगळिंदं विवक्षितैकसमयदोळधःप्रवृत्तापूर्व्वकरणंगळोळु विसदृशविशुद्धियुक्तरें तोळरंतेयनिवृत्तिकरणरोळिल्लें बुदर्त्थं । न विद्यते निवृत्तिः परिणामभेदो एषु करणेषु परिणामेषु तेऽनिवृत्तयः । अनिवृत्तयः करणाः परिणामा एषां तेऽनिवृत्तिकरणाः । एंदितनिवृत्तिकरणरें ब पेसरन्वर्त्थमक्कुं । ई यर्त्थमने स्फुटीकरिसिदपरु :—

होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जस्सि एक्कपरिणामा ।
विमलयरझाणहुदवहसिहाहिणिद्दड्ढ कम्मवणा ॥९१२॥

भवेयुरनिवृत्तयस्ते प्रतिसमयं यस्मिन्नेकपरिणामाः । विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्न्निर्द्दग्धकर्म्मवनाः ॥

यस्मिन्ननिवृत्तिकरणे प्रतिसमयमेकपरिणामाः । विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्न्निर्द्दग्धकर्म्मवनास्तेनिवृत्तयो भवेयुः ॥ सुगमं ।

अनिवृत्तकरणपरिणामाध्वानक्कंकसंदृष्टि नाल्कु ४ । अर्त्थसंदृष्टियंतर्म्मुहूर्त्तं २ १ १
१
१
१

ईयनिवृत्तिकरणरचनाभिप्रायं पेळल्पडुगुमदें तेंदोडे :—अपूर्व्वकरणकालमंतर्म्मुहूर्त्तमदं कळिदु अनिवृत्तिकरणपरिणामम पोद्दि तत्कालप्रथमसमयं मोदल्गोंडु चरमसमयपर्य्यंतं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धिपरिणामयुतरप्परादोडं विवक्षितसमयदोळनिबरु जीवंगळिद्दोंडमनिबग्गं वर्गादि-

---

ये जीवा अनिवृत्तिकरणकालस्य विवक्षितैकसमये संस्थानवर्णवयोवेषभाषादिभिर्मिथो यथा निवर्तन्ते भिद्यन्ते तथा परिणामैः खल्वधःप्रवृत्तापूर्वकरणवन्न निवर्तन्ते ॥९११॥ अमुमेवार्थं स्फुटीकरोति—

यस्मिन्करणे प्रतिसमयमेकैकपरिणामास्ते विमलतरध्यानहुतवह्निशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवना अनिवृत्तयो

जो जीव अनिवृत्तिकरण कालके विवक्षित एक समयमें परस्परमें शरीरके आकार, रूप, वय, वेष, भाषा आदिसे भिन्न-भिन्न होते हैं अर्थात् किसी जीवका आकार आदि किसी प्रकारका होता है किसी जीवका किसी प्रकारका होता है, उनमें समानता नहीं होती। उस प्रकार अधःकरण अपूर्वकरणकी तरह उनमें परिणामोंका भेद नहीं होता अर्थात् जिनको अनिवृत्तिकरणमें आये पहला समय है उन सब त्रिकालवर्ती अनन्त जीवोंके परिणाम समान ही होते हैं, अन्य-अन्य रूप नहीं होते, इसी तरह द्वितीयादि समयवर्ती जीवोंके परिणामोंमें भी समानता पायी जाती है ॥९११॥

इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—

जिस करणमें प्रतिसमय जीवोंके एक-एक ही परिणाम होता है और वह परिणाम

भेदमुळ्ळोडमेकप्रकारविशुद्धिपरिणामयुतरप्परेकें बोडनिवृत्तिकरणसमयवर्त्तिगळगे परिणामांतरं संभविसदें बुदु तात्पर्य्यं ॥

इंतु भगवदर्हत्परमेश्वर चारुचरणारविंदद्वंद्ववंदनानंदित पुण्यपुंजायमानश्रीमद्रायराजगुरु-मंडलाचार्य्यंमहावादवादीश्वररायवादिपितामहसकलविद्वज्जनचक्रवर्त्ति श्रीमदभयसूरिचारुचरणा-रविंदरजोरंजितललाटपट्टश्रीमत्केशवण्णविरचितमप्प गोम्मटसारकर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकेयोळु कर्म्मकांड त्रिकरणचूलिकामहाधिकारं व्याख्यातमावुदु ॥

उरियोळ् शैत्यमनुग्रनोळ्विनयमं वृद्ववृत्तनोळ्सत्यमं
दुरहंकारनोळिंद्र्येयं जरठनोळ्दक्षत्वमं पंदियो-।
ळ्घुरधीरत्वमनार्हतागमसुधासंतृप्तनोळ्दोषमं
घोरेगट्टोडुपयोगशून्यनें वलं पेळ्गुं बुधं पेळ्गुमे ॥

भवन्ति । तस्याद्यानोऽकसंदृष्ट्या चतुरंकः । अर्थसंदृष्ट्यांतर्मुहूर्तः ॥९१२॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां कर्मकाण्डे त्रिकरणचूलिकानाम अष्टमोऽधिकारः ॥८॥

अतिशय निर्मल ध्यानरूप आगकी शिखाके द्वारा कर्मरूपी वनको जला देनेवाले होते हैं उन्हें अनिवृत्ति कहते हैं। उसका काल अंकसंदृष्टिसे चार है और अर्थ रूपसे अन्तर्मुहूर्त है ॥९१२॥

इस प्रकार आचार्य श्री नेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार अपर नाम पंचसंग्रहकी भगवान् अर्हन्त देव परमेश्वरके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दनासे प्राप्त पुण्यके पुंजस्वरूप राजगुरु मण्डलाचार्य महावादी श्री अभयसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणकमलोंकी धूलिसे शोभित ललाटवाले श्री केशववर्णी-के द्वारा रचित गोम्मटसार कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिकाकी अनुसारिणी संस्कृतटीका तथा उसकी अनुसारिणी पं. टोडरमल रचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीकाकी अनुसारिणी हिन्दी भाषा टीकामें त्रिकरणचूलिका नामक आठवाँ अधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

सिद्धे विसुद्धनिलये पणट्ठकम्मे विणट्ठसंसारे ।
पणमिय सिरसा वोच्छं कम्मट्ठिदिरयणसब्भावं ॥९१३॥

सिद्धान्शुद्धात्मप्रदेशान् प्रणष्टकर्म्मणो विनष्टसंसारान् । प्रणम्य शिरसा वक्ष्यामि कर्म्मस्थितिरचनासद्भावं ॥

प्रणष्टघात्यघातिकर्म्मरुं विनष्टसंसाररुं शुद्धात्मप्रदेशरुमप्प सिद्धपरमेष्ठिगळगं तले एरकविदं नमस्कारमं माडि कर्म्मस्थितिरचनासद्भावमं पेळ्वेमेंदिताचार्य्यरु प्रतिज्ञेयं माडि पेळ्दरु ।

कम्मसरूवेणागयदव्वं ण य एदि उदयरूवेण ।
रूवेणुदीरणस्स य आबाहा जाव ताव हवे ॥९१४॥

कर्म्मस्वरूपेणागतद्रव्यं न चैत्युदयरूपेण । रूपेणोदीरणायाश्चाबाधा यावत्तावद्भवेत् ॥

कर्म्मस्वरूपदिंदं परिणमिसिद कार्म्मणद्रव्यमुदयरूपदिंदमुदीरणारूपदिंदमुमेन्नेवरं परिणमनमनेय्दद्दन्नेवरमदक्का कालमाबाधे येंदु पेळल्पट्टुदु । इल्लि उदयापेक्षेयिनाबाधेयं पेळ्दपरु :—

उदयं पडि सत्तण्हं आबाहा कोडकोडिउवहीणं ।
वाससयं तप्पडिभागेण य सेसट्ठिदीणं च ॥९१५॥

उदयं प्रति सप्तानामाबाधा कोटीकोटयुदधीनां । वर्षशतं तत्प्रतिभागेन च शेषस्थितीनां च ॥

प्रणष्टघात्यघातिकर्मणः विनष्टसंसारान् शुद्धात्मप्रदेशान् सिद्धपरमेष्ठिनः शिरसा प्रणम्य कर्मस्थितिरचनासद्भावं वक्ष्ये ॥९१३॥

कर्मस्वरूपेण परिणतकार्मणद्रव्यं यावदुदयरूपेण उदीरणारूपेण वा नैति न परिणमति तावदाबाधेत्युच्यते ॥९१४॥

जिनके घाती और अघाती कर्म पूर्ण रूपसे नष्ट हो गये हैं अतएव जिन्होंने संसारको विशेषरूपसे नष्ट कर दिया है, तथा विशुद्ध आत्मप्रदेश ही जिनका वासस्थान है उन सिद्ध परमेष्ठीको मस्तकसे नमस्कार करके कर्मस्थिति रचनाके सद्भावको कहते हैं ।

विशेषार्थ—कर्मोंकी स्थितिमें प्रतिसमय निषेकोंमें कितना-कितना कार्माण द्रव्य पाया जाता है ऐसी रचनाके अस्तित्वका कथन करते हैं । यह कथन पहले भी जीवकाण्डके योगमार्गणाधिकारमें तथा कर्मकाण्ड बन्ध उदय सत्त्व अधिकारमें कहा है ॥९१३॥

कर्मरूपसे परिणमा कार्माण द्रव्य जबतक उदयरूपसे या उदीरणारूपसे परिणमन नहीं करता तबतक उस कालको आबाधाकाल कहते हैं ॥९१४॥

आयुर्व्वर्ज्जितसप्तमूल प्रकृतिगळ स्थिति कोटीकोटिसागरोपमंगळ्गे शतवर्षंमाबाधेयक्कुमंतागुत्तं विरलु तत्प्रतिभागदिंदं शेषस्थितिगळ्गेयुमाबाधाप्रमाणमरियल्पडुगु—। मदें तेंदोडे ओंदु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे उदयमं कुरुत्ताबाधे वर्षशतप्रमितमागुत्तिरलु ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयांतरायंगळ मूवत्तुं कोटीकोटिसागरोपमंगळ्गे नितबाधेयक्कुमेंदिंतु त्रैराशिकं माडल्पडुत्तिरला कोटीकोटिसागरापमंगळु प्रतिभागमप्पुवु। भागहारंगळप्पुवेंबुदत्थं। प्र = सा को २। फ। आ = वर्ष १००। इ=सा ३०। को २। लब्धमाबाधे मूरु सासिर वर्षंगळप्पुवु। ३०००। ई प्रकारदिंदं मोहनीयदेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमंगळाबाधे सप्तसहस्रवर्षंगळप्पुवु। व ७०००। नामगोत्रंगळिप्पत्तुकोटीकोटिसागरोपमंगळ्गाबाधे येरडु सासिरवर्षंगळप्पुवु। व २०००॥ मत्तमाबाधाविशेषमं पेळ्दपरु :—

अंतो कोडाकोडिट्ठिदिस्स अंतोमुहुत्तमाबाहा।
संखेज्जगुणविहीणं सव्वजहण्णट्ठिदिस्स हवे ॥९१६॥

अंतःकोटीकोटिस्थितेरंतर्मुहूर्त्तं आबाधा। संख्येयगुणविहीना सर्व्वजघन्यस्थितेर्भवेत्॥

अंतःकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे आबाधेयंतर्मुहूर्त्तं प्रमितमक्कु—। मंतागुत्तं विरलु सर्व्वजघन्यस्थितियुं संख्यातगुणहीनांतःकोटीकोटिसागरोपमंगळप्पु वदक्काबाधेयुं संख्यातगुणहीनांतर्मुहूर्त्तमक्कुमदें तेंदोडे—ओंदु वर्षक्के दिनंगळु मूनूररुवत्तु ३६०। ओंदु दिनक्के मूवत्तु मुहूर्त्तंगळु। ३०। नूरु वर्षंगळ्गे पत्तुलक्षमु मेण्भत्तुसासिर मुहूर्त्तंगळप्पुवु। १०८०००० ॥ इन्नु त्रैराशिकं

आयुषः पृथग्वक्ष्यतीति सप्तमूलप्रकृतीनामुदयं प्रत्याबाधा कोटिकोट्यब्धिस्थितेर्वर्षशतं स्यात्। शेषस्थितीनामपि तत्प्रतिभागेन ज्ञातव्या। तद्यथा—एककोटीकोट्यब्धीनां वर्षशतमाबाधा तदा द्व्यावरणवेदनीयांतरायाणां त्रिंशत्कोटीकोट्यब्धीनां कियतीति लब्धा त्रिसहस्रवर्षाणि व ३०००। एवं मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोट्यब्धीनां सप्तसहस्रवर्षाणि व ७०००। नामगोत्रयोर्विंशतिकोटीकोट्यब्धीनां द्विसहस्रवर्षाणि व २००० ॥९१५॥ पुनर्विशेषमाह—

सागरोपमानां कोटेरधिकायाः कोटाकोटेर्हीनायाः स्थितेरंतःकोटाकोटित्वादेककांडकायाम ७४०७४०७

आयुकर्मका कथन अलगसे करेंगे। अतः सात मूलकर्मोंकी आबाधा उदयकी अपेक्षा एक कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिमें सौ वर्ष है। शेष स्थितियोंकी भी आबाधा इसी प्रतिभागके अनुसार जानना। जो इस प्रकार है—

एक कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी आबाधा सौ वर्ष है तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय अन्तरायकी तीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी कितनी आबाधा होगी? यहाँ प्रमाणराशि एक कोड़ाकोड़ी सागर, फलराशि सौ वर्ष, इच्छाराशि तीस कोड़ाकोड़ी सागर। फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर तीन हजार वर्षकी आबाधा होती है। इसी प्रकार मोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी सात हजार वर्ष आबाधा होती है। नाम और गोत्रकी बीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी दो हजार वर्ष आबाधा होती है ॥९१५॥

कुछ विशेष कहते हैं—

एक कोटिसे ऊपर और कोड़ाकोड़ीसे नीचेको अन्तःकोटाकोटी कहते हैं। अन्तःकोटा-

माडल्पडुगु । प्र मुं १०८०००० । फ = स्थि सा को २ । इ मु १ । लब्धमेकमुहूर्त्ताबाधेगे स्थिति एककांडकायामन्यून पत्तु कोटिसागरोपमंगळप्पुवु । सा ९२५९२५९२ । १६ ऊनकांडकायाममिवु । २७

७४०७४०७ भा ११ कूडि पत्तु कोटि सागरोपममें बुदर्त्थं । ई स्थितिगाबाधेयुमुत्कृष्टांतर्मुहूर्त्तमु- २७

मक्कुमदुवुमेकसमयोनमुहूर्त्तमात्रमक्कुमदु कारणमागि एकसमयोनत्वमनवगणिसि संपूर्णैकमुहूर्त्ता बाधेगे एककांडकायामन्यूनपत्तु कोटिसागरोपमस्थिति येंदु ज्ञातव्यमक्कुमेकें दोडा एककांडका- यामन्यूनमेकमुहूर्त्ताबाधास्थितिकोटियिंदं मेले कोटिकोटियिंदं केळगेयप्पुदरिंवं मंतः कोटिकोटि येंदु पेळल्पडुगु- । मी स्थितिय ९२५९२५९२ १६ संख्यातैकभागं ९२५९२५९२ १६ सर्व्वजघन्य- २७ २७

स्थिति येंदु पेळल्पट्टुददक्काबाधेयुमुत्कृष्टांतर्म्मुहूर्त्तंद संख्यातैकभागमेंदु पेळल्पट्टुदु ।

मु २७° उत्कृष्टांतःकोटीकोटिगे संदृष्टि :—९२५९२५९२ १६ आबाधे मु २१° ॥ जघन्यांतः ४ २७

कोटि कोटि ९२५९२५९२ १६ आबाधे मु २१° २७ ४

अनंतरमायुष्यकर्म्मस्थितिगाबाधेयं पेळ्दपरु :—

पुव्वाणं कोटितिभागादासंखेपअद्धओत्ति हवे ।
आउस्स य आबाहा ण ट्ठिदिपडिभागमाउस्स ॥९१७॥

पूर्व्वाणां कोटि त्रिभागादोसंक्षेपाद्धा पर्य्यंतं भवेदायुषश्चाबाधा न स्थितिप्रतिभाग- मायुषः ॥

भा ११ न्यूनदशकोटेः सा ९२५९२५९२ १६ आबाधा उत्कृष्टांतर्मुहूर्तः २१° ततः संख्यातगुणहीनायाः २७ २७

सर्वजघन्यस्थितेः असंख्यातेन सा ९२५९२५९२ १६ गुणहीना स्यात् २१° ॥९१६॥ आयुष आह— १ २७ ४

कोटी सागरकी स्थितिकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त मात्र होती है । एक काण्डकका प्रमाण चौहत्तर लाख सात हजार चार सौ सात तथा ग्यारहका सत्ताईसवाँ भाग ७४०७४०७११/२७ है । इसको दस कोड़ाकोड़ी सागरमें-से घटानेपर नौ कोटि पच्चीस लाख बानबे हजार पाँच सौ बानबे और सोलहका सत्ताईसवाँ भाग रहा । इतनी स्थितिकी आबाधा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । उससे संख्यातगुणी हीन जघन्य स्थितिकी आबाधा उससे संख्यातगुणी हीन है अर्थात् उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तके संख्यातवें भाग है ॥९१६॥

आयुकी आबाधा कहते हैं—

आयुषश्च आयुष्य कर्म्मंक्के पूर्व्वकोटिवर्षं त्रिभागं मोदल्गोंडु आ संक्षेपाद्धे पर्य्यंतं समयोनक्रमदिनेनितु विकल्पंगळप्पुवनितु विकल्पाबाधेगळप्पुवु । आयुषः आयुष्यकर्म्मंक्के स्थितिप्रतिभागमिल्लमनुपातत्रैराशिकं माडल्पड दें बुदर्त्थमें तें दोडे पूर्व्वकोटिवर्षायुष्यक्के पूर्व्वकोटिवर्षत्रिभागमुत्कृष्टाबाधेयागलु त्रिपल्योपमाद्यायुष्यंगळगे नितबाधेयक्कुमें बुदु मोदलाद प्रतिभागमायुष्य कर्म्मंदोळिल्ले बुदर्त्थं । असंक्षेपाद्धेयें बुदें तें दोडे न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपोऽसंक्षेपः । स चासावद्धा चाऽसंक्षेपाद्धा एंबितावलिय असंख्यातैकभागं सर्व्वजघन्याबाधेयायुष्कर्म्मंदोळक्कु मिल्लिदं किरिदिल्ले बुदर्त्थं ॥

अनंतरमुदीरणेयं कुरुत्तु आबाधेयं पेळ्दपरु :—

आवलियं आबाहा उदीरणमासेज्ज सत्तकम्माणं ।
परभविय आउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण ॥९१८॥

आवलिका आबाधोदीरणामाश्रित्य सप्तकर्म्मणां । परभवायुषश्चोदीरणा नास्ति नियमेन ॥

उदीरणेयं कुरुत्तु आयुर्व्वर्ज्जसप्तकर्म्मंगळगेल्लमेकावलिमात्रमाबाधेयक्कु । परभवायुष्यक्के नियमर्विदमुदीरणे यिल्लेकें दोडुदीरणेयुदयप्रकृतिगळगल्लदिल्लप्पुदरिंदमी परभवायुष्यमें बुदु बध्यमानायुष्यमप्पुदरिंदं भुज्यमानायुष्यक्कुदीरणेयुं तिर्य्यग्मनुष्यायुष्यंगळगल्लदिल्लल्लियुमौप-

---

आयुष्कर्मणः आबाधा पूर्वकोटिवर्षत्रिभागादा असंक्षेपाद्धांताः एकैकसमयोनाः सर्वे विकल्पा भवन्ति, न खलु स्थितिप्रतिभागमाश्रित्यायुषः साध्याः, पूर्वकोटिवर्षस्य तत्त्रिभाग आबाधा तदा त्रिपल्यस्य कियतीत्यादिना तदसिद्धेः । न विद्यतेऽस्मात्पर आयुराबाधायां संक्षेपः असंक्षेपः स चासावद्धा चासंक्षेपाद्धा ॥९१७॥ अथोदीरणां प्रत्याह—

उदीरणामाश्रित्यायुर्वर्जितसप्तकर्मणामाबाधा आवलिमात्रो स्यात् । परभवायुषो नियमेनोदीरणा नास्ति

आयुकर्मकी आबाधा एक कोटि पूर्व वर्षके तीसरे भागसे लगाकर आसंक्षेपाद्धापर्यन्त एक-एक समय हीन सब भेद लिये हुए है । आयुकी आबाधा स्थितिके प्रतिभागके अनुसार साध्य नहीं है । एक पूर्वकोटि वर्षकी आबाधा उसका त्रिभाग है तो तीन पल्यकी स्थितिकी आबाधा कितनी होगी । इस प्रकारसे स्थितिके प्रतिभागसे आयुकी आबाधाका प्रमाण सिद्ध नहीं होता; क्योंकि जितनी भुज्यमान आयु शेष रहनेपर परभवकी आयु बँधती है उतनी ही उसकी आबाधाका प्रमाण होता है । सो कर्मभूमिमें आयुका त्रिभाग शेष रहनेपर, भोगभूमिमें नौ मास और देव नारकीमें छह मास आयु शेष रहनेपर परभवकी आयुके बन्धकी योग्यता होती है । अतः उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटि वर्षका त्रिभाग है । जिससे आयुकी आबाधाका संक्षेप—हीनपना नहीं पाया जाता ऐसे अद्धा अर्थात् कालको 'आसंक्षेपाद्धा' कहते हैं । सो जघन्य आबाधा आसंक्षेपाद्धा प्रमाण होती है । यह उदयकी अपेक्षा आबाधा कही । बँधनेके बाद यदि उदय हो तो इतना काल बीतनेपर ही होगा ॥९१७॥

आगे उदीरणाकी अपेक्षा कहते हैं—

उदीरणाकी अपेक्षा आयु बिना सात कर्मोंकी आबाधा आवली मात्र है । बँधनेके बाद यदि उदीरणा हो तो आवलीकाल बीतनेपर हो जाती है । किन्तु परभवकी बाँधी हुई

पादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषोनपवर्त्यायुषः। देवनारकभुज्यमानायुष्यदोळं तिर्य्यग्मनुष्यरुगळ असंख्यातवर्षायुष्यदोळं संख्यातवर्षायुष्यरप्प कर्म्मभूमिय भोगभूमिकालद तिर्य्यग्मनुष्यरायुष्यंगळोळं चरमोत्तमदेहरुगळप्प तीर्त्थंकरुगळु गणधरदेवरुगळ भुज्यमानायुष्यदोळमुदीरणे संभविसदु।

आबाहूणियकम्मट्ठिदी णिसेगो दु सत्तकम्माणं।
आउस्स णिसेगो पुण सगट्ठिदी होदि णियमेण ॥९१९॥

आबाधोनितकर्म्मस्थितिर्न्निषेकस्तु सप्तकर्म्मणां। आयुषो निषेकः पुनः स्वस्थितिर्भवेन्नियमेन॥

आयुष्कर्म्मवर्जितंगळप्प ज्ञानावरणादिसप्तकर्म्मंगळ तंतम्मुत्कृष्टस्थितिगळोळगे तंतम्मुत्कृष्टाबाधास्थितियं कळेदु शेषस्थितियनितुं निषेकस्थितियक्कुं | △ नि / आ | अहंगे जघन्यस्थितियोळं जघन्याबाधेयं कळेदु शेषस्थितियनितुं निषेकस्थितियक्कु | △ नि / आ | मायुष्यकर्म्मदोळं तल्लु मत्तेन्तेंदोडे आयुष्यकर्म्मस्थिति येनितनितुं निषेकस्थितियक्कुं नियमदिंदमेकें दोडायुष्यकर्म्मदाबाधे भुज्यमानायुष्यस्थितियल्लप्पुदरिंदं।

अंतागुत्तं विरलु :—

आबाहं बोलावि य पढमणिसेगम्मि देइ बहुगं तु।
तत्तो विसेसहीणं बिदियस्सादिमणिसेओत्ति ॥९२०॥

आबाधामतिक्रम्य च प्रथमनिषेके ददाति बहुकं तु। ततो विशेषहीनं द्वितीयस्याद्यनिषेकपर्य्यंतं॥

उदयागतस्यैवोपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुर्म्योऽन्यत्र तत्सम्भवात् ॥९१८॥

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुत्कृष्टादिस्थितौ तत्तदाबाधायामपनीतायां शेषस्थितिर्निषेकः स्यात् | △ न / अ |

आयुःकर्मणो निषेकः पुनः यावती स्वकीया सर्वस्थितिस्तावानेव स्यान्नियमेन तदाबाधायाः पूर्वभवायुष्यंत्र गतत्वात् ॥९१९॥

आयुकी उदीरणा इस भवमें नहीं होती यह नियम है। उदयमें आयी हुई भुज्यमान आयुकी ही उदीरणा होती है वह भी देव, नारकी, चरम शरीरी और असंख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्यों और तिर्यंचोंको छोड़कर ही होती है। क्योंकि ये सब पूरी आयु भोगकर ही मरते हैं। इनकी अकालमृत्यु नहीं होती ॥९१८॥

आयुको छोड़ शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट आदि स्थितिमें आबाधाकाल घटानेपर जो शेष रहे उस कालके समयोंका जितना प्रमाण हो उतने ही निषेक सात कर्मोंके होते हैं। किन्तु आयुकर्मकी जितनी स्थिति हो उसके समयोंका जो प्रमाण हो उतना ही निषेकोंका प्रमाण होता है। क्योंकि आयुकर्मकी आबाधा पूर्वभवकी आयुके साथ ही बीत जाती है ॥९१९॥

ज्ञानावरणादिकर्म्मंगळ आबाधास्थितियनतिक्रमिसि प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु द्रव्यमं बहुकमं कुडुगुमल्लिदं मेलेकैकविशेषहीनक्रमदिदं द्रव्यमं द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकपर्य्यंतं कुडुगुमी द्रव्यनिक्षेपदोळु द्रव्यहानियं पेळ्दपरु :—

बिदिये बिदियणिसेये हाणी पुव्विल्लहाणिअद्धं तु ।
एवं गुणहाणिं पडिं हाणी अद्धद्धयं होदि ॥९२१॥

द्वितीयायां द्वितीयनिषेकहानिः पूर्व्वहान्यर्द्धं तु । एवं गुणहानिं प्रति हानिरर्द्धार्द्धं स्यात् ॥

द्वितीयगुणहानिद्वितीयनिषेकदोळु हानिप्रमेनितक्कुमें दोडे पूर्व्वहान्यर्द्धमक्कुं । यितु गुणहानिं गुणहानिं प्रति हानियर्द्धार्द्धमक्कु ।

मनंतरमा द्रव्यनिक्षेपदोळु द्रव्यादिगळ नामनिर्द्देशमं माडिदपरु :—

दव्वट्ठिदिगुणहाणीणद्धाणं दलसलाणिसेयछिदी ।
अण्णोण्णगुणसलावि य जाणेज्जो सव्वठिदिरयणे ॥९२२॥

द्रव्यस्थितिगुणहान्योरध्वानं दलशलाकानिषेकच्छेदोन्योन्यगुणशलाका अपि च ज्ञातव्याः सर्व्वस्थितिरचनायां ॥

सर्व्वकर्म्मंगळ स्थितिरचनेयोळु द्रव्यमं स्थित्यायाममुं गुणहान्यायाममुं दलशलाकेगळें बुवु नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवुवुं । निषेकच्छेदमें बुदु दोगुणहानियप्पुदुवुं अन्योन्यगुणशलाकेगळें बुवु अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुमदुवुं । यितारुं राशिगळु ज्ञातव्यंगळप्पुवु ।

ज्ञानावरणादिकर्मणामाबाधामतीत्य प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके द्रव्यं बहुकं ददाति ततः उपरि द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकपर्यंतमेकैकचयहीनं ददाति ॥९२०॥

ततो द्वितीयगुणहानिद्वितीयनिषेके हानिः पूर्वहानेरर्धं स्यात् । एवमुपर्यपि गुणहानिं गुणहानिं प्रति हानिरर्धार्धं स्यात् ॥९२१॥

सर्वकर्मस्थितिरचनायां द्रव्यं स्थित्यायामः गुणहान्यायामः दलशलाकाः—नानागुणहानिः निषेकच्छेदः—दोगुणहानिः अन्योन्याभ्यस्तश्चेति षड्राशयो ज्ञातव्याः ॥९२२॥

ज्ञानावरण आदि कर्मोंकी स्थितिमेंसे आबाधाकाल बीतनेके बाद प्रथम गुणहानि सम्बन्धी प्रथम निषेकमें बहुत द्रव्य दिया जाता है उससे ऊपर द्वितीय गुणहानिके प्रथम निषेक पर्यन्त एक-एक चय घटता हुआ द्रव्य दिया जाता है ॥९२०॥

दूसरी गुणहानिके दूसरे निषेकमें उसीके पहले निषेकमें जितनी हानि हुई थी उससे आधी हानि होती है । इस तरह पहली गुणहानिमें जो प्रत्येक निषेकमें हानिरूप चयका प्रमाण था उससे दूसरी गुणहानिमें हानिरूप चयका प्रमाण आधा होता है । इसी प्रकार ऊपर भी प्रत्येक गुणहानिमें हानिरूप चयका प्रमाण आधा-आधा होता है ॥९२१॥

सब कर्मोंकी स्थिति रचनामें छह राशि ज्ञातव्य हैं—द्रव्य, स्थिति आयाम, गुणहानि आयाम, दल शलाका अर्थात् नाना गुणहानि, निषेकच्छेद अर्थात् दो गुणहानि और अन्योन्याभ्यस्त राशि ।

विशेषार्थ—कर्मरूप परिणमे पुद्गल परमाणुओंके प्रमाणको द्रव्यराशि कहते हैं ।

अल्लि द्रव्यादिगळगंकसंदृष्टियं पेळ्दपरु :—

तेवट्ठिं च सयाइं अडदाला अट्ठ छक्क सोलसयं ।
चउसट्ठिं च विजाणे दव्वादीणं च संदिट्ठी ॥९२३॥

त्रिषष्टिं च शतानामष्टचत्वारिंशदष्टौ षट्कं षोडशचतुःषष्टिं चापि जानीहि द्रव्यादीनां च संदृष्टिं ।

त्रिशतोत्तर षट्सहस्रंगळु नाल्वत्तेंटुमें टुमारुं पदिनारुमरुवत्तनाल्कुं क्रमदिंदं द्रव्यादिगळिगे संदृष्टियप्पुवेंदु नोनरि शिष्या ? येंदिताचार्य्यनिदं संबोधिसल्पट्टं ।

अंकसंदृष्टि	द्रव्य ६३००	स्थिति ४८	गुणहा ८	नाना गुणहा ६	दोगुणहा १६
अर्थसंदृष्टि	द्रव्य स ० १	स्थिति प १	गुण=प १ छे व छे	नाना गुणहा = छे व छे	दोगुणहा प १।२ छे व छे

अन्योन्याभ्यस्त ६४
अन्योन्याभ्यस्त प व

अनंतरमर्थसंदृष्टिय द्रव्यादिगळ प्रमाणमं पेळ्दपरु :—

दव्वं समयपबद्धं उत्तपमाणं तु होदि तस्सेव ।
जीवसहत्थणकालो ठिदि अद्धासंखपल्लमिदा ॥९२४॥

द्रव्यं समयप्रबद्धः उक्तप्रमाणस्तु भवेत् तस्यैव जीवसहावस्थानकालस्थित्यद्धा संख्यपल्यमिता ॥

तत्रांकसंदृष्टौ द्रव्यं त्रिषष्टिशतानि जानीहि स्थितिमष्टचत्वारिंशतं गुणहानिमष्टौ नानागुणहानि षट् दोगुणहानि षोडश अन्योन्याभ्यस्तं चतुःषष्टिं ॥९२३॥

१५ कर्मोंकी स्थितिके समयोंके प्रमाणको स्थिति आयाम कहते हैं । जिसमें दूना-दूना घटता हुआ द्रव्य दिया जाये वह गुणहानि है । उस एक गुणहानिके समयोंका प्रमाण गुणहानि आयाम है । सब स्थितियोंमें जितनी गुणहानियाँ हों उनका प्रमाण नाना गुणहानि है । गुणहानि आयामके प्रमाणके दूनेको दो गुणहानि कहते हैं । नाना गुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह अन्योन्याभ्यस्त राशि है ॥९२२॥

२० अंकसंदृष्टिके रूपमें द्रव्य तिरसठ सौ, स्थिति अड़तालीस, गुणहानि आयाम आठ, नानागुणहानि छह, दो गुणहानि सोलह और अन्योन्याभ्यस्तराशि चौंसठ जानना ॥९२३॥

द्रव्यमें बुदु समयप्रबद्धमक्कुमदुवुं द्रव्यविभंजनदोळुक्तप्रमाणमनुळळवक्कुमा द्रव्यक्के जीवनोडने सहावस्थानकालं स्थित्यद्धे यें दु पेळल्पट्टुदुवुं संख्यातपल्यमितमक्कुं।

मिच्छे वग्गसलायप्पहुडिं पल्लस्स पढममूलोत्ति ।
वग्गहदी चरिमो त्तच्छिदिसंकलिदं चउत्थो य ॥९२५॥

मिथ्यात्वकर्मणि वर्गशलाका प्रभृति पल्यस्य प्रथममूलपर्यंतां। वर्गहतिश्चरमस्तच्छेद- संकलितं चतुर्थां च ॥

इल्लि द्रव्यस्थितिगुणहानि दोगुणहानि यें ब नाल्कर संदृष्टिगळु सप्तकर्म्मंगळगे साधारणमक्कुं। नानागुणहानिशलाकेगळुमन्योन्याभ्यस्तराशियुं साधारणंगळल्तवु कारणमागि तद्विशेषकथनदोळु मिथ्यात्वकर्म्मणि एंदितु पेळल्पट्टुद । मिथ्यात्वकर्म्मंदोळु अन्योन्याभ्यस्तराशियुं नानागुणहानिशलाकेगळुमेनितेनितप्पुवें दोडे चरमराशियप्प अन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं पेळल्पडुगुमदें तें दोडे :—द्विरूपवर्गधारेयं पल्यपर्यंतं स्थापिसि अवर केळगे तत्तद्राशिगळ अर्द्धच्छेदंगळं स्थापिसि अवर केळगे तत्तद्वर्गशलाकेगळं स्थापिसि संदृष्टि :—

२	४	१६	२५६	६५=	४२=	१८=	०००	व	व व	छे	छे छे	०००	मू ३	मू २	मू १	प
१	२	४	८	१६	३२	६४	०००	छे	छे २	व	व २	०००	छे २२२	छे २२	छे २	छे
०	१	२	३	४	५	६	०००	व	व	छे	छे	०००	व ३	व २	व १	व

अर्थसंदृष्टौ तु द्रव्यं प्रागुक्तप्रमाणः समयप्रबद्धः स्यात् । स्थित्यद्धा संख्यातपल्यानि सा च जीवेन सह समयप्रबद्धस्यावस्थानकालः ॥९२४॥

द्रव्यस्थितिगुणहानिदोगुणहानिसंदृष्टयः सप्तकर्मणां साधारणाः नानागुणहान्यन्योन्याभ्यस्तराशी चासाधारणौ तेन तयोर्विशेषं वक्तुमिच्छे इत्युक्तवान् । तत्र द्विरूपवर्गधारायाः पल्यवर्गशलाकादिपल्यपर्यंतराशीन्

और अर्थसंदृष्टि अर्थात् यथार्थ कथनके रूपमें द्रव्य तो पूर्वोक्त प्रमाण समयप्रबद्ध है। अर्थात् एक समयमें जितने परमाणु बँधते हैं उनका कथन पहले प्रदेशबन्धाधिकारमें कर आये हैं। उनका प्रमाण द्रव्य है। बँधा हुआ समयप्रबद्ध जितने समय तक जीवके साथ अवस्थित रहता है वह स्थितिआयाम है। सो स्थितिआयाम संख्यातपल्य प्रमाण है। उसके समयोंका प्रमाण स्थितिराशि है ॥९२४॥

द्रव्य, स्थिति, गुणहानि आयाम, दो गुणहानि, इनकी संदृष्टि तो सातों कर्मोंके समान है। यहाँ यद्यपि द्रव्य और स्थिति हीनाधिक है तथापि सामान्यसे द्रव्य समयप्रबद्ध प्रमाण और स्थिति संख्यात पल्य प्रमाण है। किन्तु नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्त राशि समान नहीं है। इससे इनके सम्बन्धमें विशेष कथन करना चाहते हैं—प्रथम ही मिथ्यात्व नामक कर्मको लेकर कहते हैं जिसकी स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है।

बळिक्कं तां स्थापिसिद मूरुं राशिगळ पंक्तिगळोळु प्रथमद्विरूपवर्गधारेयोळु पुट्टिद पल्यवर्गशलाकाराशि मोदल्गोंडु पल्यप्रथममूलपर्य्यंतमिर्द्दवर्गंराशिगळ संवर्गंविदं पुट्टिद राशि पल्यमं पल्यवर्गंशलाकाराशियिदं भागिसिदनितक्कु प मिदु चरमप्प अन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमक्कुमें वु
व
पेळल्पट्टुदु । चरमत्रमिदक्कें तावुदें दोडे मुं पेळ्द निर्द्देशविधियोळु पेळद द्रव्यादिगळोळ्षष्ठचरम-
५ राशियप्पुदरिंदं । मत्तमा पल्यवर्ग्ग वर्गंशलाकाराशिगर्द्धच्छेदंगळु पल्यवर्गंशलाकार्द्धच्छेदराशि-
प्रमाणंगळप्पुवु । व छे । मेलेद्विगुणद्विगुणक्रमदिदं पोगि प्रथममूलराशिगर्द्धच्छेदंगळु पल्यच्छेदार्द्धप्रमितं-
गळप्पुवु छे इवर संकलनधनं अंतधणं छे गुणगुणियं छे २ आदिविहीणं छे व छे रूऊणु रभजिय
० २ २

तदर्धच्छेदान् तद्वर्गशलाकाश्च संस्थाप्य पंक्तित्रयं कृत्वा, तत्र वर्गशलाकादिपल्यप्रथममूलपर्यंतराशीनां संवर्गः पल्यवर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः चरमः अन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् । तदर्धच्छेदराशीनामंतधणं छे गुणगुणियं छे
२ २

---

१० द्विरूप वर्गधाराके पल्यकी वर्गशलाकासे लेकर पल्यके प्रथम वर्गमूल पर्यन्त स्थानोंको, उनके अर्द्धच्छेदोंको और उनकी ही वर्गशलाकाओंको स्थापन करके तीन पंक्ति करो। प्रथम पंक्तिमें तो पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण नीचे लिखो। उसके ऊपर उसका वर्ग लिखो। इस प्रकार क्रमसे प्रथम मूलपर्यन्त वर्गस्थान लिखो। दूसरी पंक्तिमें पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे लगाकर दूने-दूने पल्यके प्रथम वर्गमूलके अर्द्धच्छेद पर्यन्त लिखो। तीसरी पंक्ति-
१५ में पल्यकी वर्गशलाकाकी शलाकासे लगाकर एक-एक बढ़ाते हुए पल्यके प्रथम मूलकी वर्गशलाका पर्यन्त लिखो। प्रथम पंक्तिकी राशिको परस्परमें गुणा करनेपर पल्यकी वर्गशलाकाका भाग पल्यमें देनेपर जो प्रमाण आवे उतना होता है। वही अन्तिम छठी अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण जानना। दूसरी पंक्तिको जोड़नेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंके प्रमाणको पल्यके अर्द्धच्छेदोंके प्रमाणमें-से घटानेपर जो रहे उतना होता है। वह कैसे होता
२० है यही कहते हैं—

द्विरूप वर्गधारामें अर्द्धच्छेद प्रत्येक स्थानके दूने-दूने कहे थे। उन्हें 'अद्धंन्तधणं गुणगुणियं आदि विहीणं रूऊणुत्तरपदभजियं' सूत्रके अनुसार जोड़िए। गुणकार करते हुए अन्तमें जो प्रमाण हो उसको जितनेका गुणकार हो उससे गुणा करें। उसमें-से पहले जितना प्रमाण हो उसे घटावें। जो प्रमाण हो उसमें एक हीन गुणकारका भाग दें। ऐसा करनेपर जो प्रमाण
२५ हो वही गुणकाररूप सब स्थानोंका जोड़ जानना। सो यहाँ अन्तमें पल्यके अर्द्धच्छेदोंसे आधे पल्यके प्रथम मूलके अर्द्धच्छेद हैं। उनको यहाँ गुणकार दोसे गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंका प्रमाण होता है। उसमें-से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंके प्रमाणको घटानेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन पल्यकी अर्द्धच्छेद राशिका जो प्रमाण है उतना होता है। गुणकार दोमें-से एक घटानेपर एक रहा। उससे भाग देनेपर उतने ही रहे। सो
३० यहाँ चतुर्थ राशि नानागुणहानिका प्रमाण जानना। इस कथनको अंकसंदृष्टिसे स्पष्ट करते हैं।

कल्पना करें कि पल्यका प्रमाण पण्णट्ठी ६५५३६ है। उसकी वर्गशलाका चार, उसका वर्ग सोलह और उसका वर्ग पण्णट्ठीका प्रथम वर्गमूल दो सौ छप्पन, इन तीनोंको प्रथम

एंदुतंद संकलित धनमिदु। चतुर्त्था च चतुर्त्थमप्प नानागुणहानिशलाकाराशियक्कु। मी राशिगे दलशलाके यें पेसरक्कुमेकें दोडा अन्योन्याभ्यस्तराशिय दलवारंगळप्पुदरिंदं नानागुणहानिशलाकेगळगे दलशलाकेगळें दु पेळल्पट्टुवु। अदुकारणमागि :—

वग्गसलागेणवहिदपल्लं अण्णोण्णगुणिदरासी हु ।
णाणागुणहाणिसला वग्गसलच्छेदणूणपल्लछिदी ॥९२६॥

वर्गशलाकयाऽपहृतपल्यमन्योन्याभ्यस्तराशिः खलु नानागुणहानिशलाकावर्गशलाकाच्छेदनेनपल्यच्छेदाः ॥

पल्यवर्गशलाकेगलिंदं भागिसल्पट्ट पल्यमन्योन्याभ्यस्तराशि स्फुटमागियक्कुमप्पुदरिंदमा राशिय दलवारंगळप्पुदरिंदं नानागुणहानिशलाकेगळुं पल्यवर्गशलाकाराशिच्छेदनोनपल्यच्छेद प्रमितंगळप्पुवें दु अन्वयव्यतिरेकमुखदिंदं समर्त्थिसल्पट्टुवु ॥ अनंतरं गुणहान्यायामप्रमाणमं पेळ्दपरु :—

सव्वसलायाणं जदि पयदणिसेये लहेज्ज एक्कस्स ।
किं होदित्ति णिसेये सलाहिदे होइ गुणहाणी ॥९२७॥

सर्व्वशलाकानां यदि प्रकृतनिषेकान् लभेत एकस्य किं भवेदिति निषेकान् शलाकाभिर्हृते भवेद्गुणहानिः ॥

---

२ आदिविहीणं छे-व-छे इति संकलनं चतुर्थो नानागुणहानिशलाकाराशिः स्यात् ॥९२५॥

पल्यवर्गशलाकाभक्तपल्यमन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात्। नानागुणहानिशलाकाराशिः खलु पल्यवर्गशलाकानामर्धच्छेदैर्न्यूनपल्यच्छेदमात्रः ॥९२६॥ अथ गुणहान्यायामप्रमाणमाह—

पंक्तिमें लिखो। इन तीनोंके अर्द्धच्छेद—चारके दो, सोलहके चार और दो सौ छप्पनके आठ, इन तीनोंको दूसरी पंक्तिमें लिखो। इन तीनोंकी वर्गशलाका—चारकी एक, सोलहकी दो, दो सौ छप्पनकी तीन, ये तीनों तीसरी पंक्तिमें लिखो। प्रथम पंक्तिके चार, सोलह, दो सौ छप्पनको परस्परमें गुणा करनेपर सोलह हजार तीन सौ चौरासी होते हैं। तथा पण्णट्ठीमें चारका भाग देनेपर भी इतने ही होते हैं। दूसरी पंक्तिके दो, चार, आठको 'अन्तधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार जोड़नेपर अन्तधन आठको गुणकार दोसे गुणा करनेपर सोलह हुए। उसमें आदि दो घटानेपर चौदह रहे। एक हीन गुणकार एकका भाग देनेपर भी चौदह ही रहे। यही तीनोंका जोड़ है। तथा पण्णट्ठीके अर्द्धच्छेद सोलहमें-से पण्णट्ठीकी वर्गशलाका चारके अर्द्धच्छेद दो घटानेपर भी चौदह ही होते हैं। तीसरी पंक्तिका यहाँ प्रयोजन नहीं है।

इस प्रकार सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थितिवाले मिथ्यात्व कर्मकी अन्योन्याभ्यस्त राशि और नानागुणहानि कही। अन्य कर्मोंकी आगे कहेंगे ॥९२५॥

इस प्रकार पल्यकी वर्गशलाकाका भाग पल्यमें देनेपर जो प्रमाण होता है उतना अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण जानना। तथा पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंको पल्यके अर्द्धच्छेदोंमें घटानेपर जो प्रमाण रहे उतना नानागुणहानिका प्रमाण जानना ॥९२६॥

आगे गुणहानि आयामका प्रमाण कहते हैं—

सर्व्वनानागुणहानिशलाकेगळ्गे एत्तलानुं प्रकृति सर्व्वस्थितिनिषेकंगळं पडेगुमप्पोडोदुं गुणहानिशलाकेगेनितु निषेकंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमंमाडि निषेकान् सर्व्वस्थितिनिषेकंगळं शलाकेगळिदं भागिसुत्तं विरलु प्र । छे व छे । फ । प १ । इ । श १ । लब्धं गुणहान्यायामक्कुं । प १ ॥
छे व छे

अनंतरं दोगुणहानिप्रमाणमुमनदर प्रयोजनमुमं पेळ्दपरु । :—

दोगुणहाणिपमाणं णिसेयहारो दु होइ तेण हिदे ।
इट्ठे पढमणिसेये विसेसमागच्छदे तत्थ ॥९२८॥

द्विगुणहानिप्रमाणं निषेकहारस्तु भवेत्तेन हृते । इष्टान्प्रथमनिषेकान्विशेषमागच्छति तत्र ॥

तु मत्ते गुणहानियं द्विगुणिसिदोडे तत्प्रमाणं निषेकहारमक्कुमा निषेकहारदिंदमिष्टगुणहानिप्रथमनिषेकमं भागिसिदोडा गुणहानियोळु विशेषप्रमाणमक्कुमितु द्रव्यस्थितिगुणहानि नानागुणहानि निषेकहार अन्योन्याभ्यस्तराशिगळेंदी षड्राशिगळ प्रमाणं ज्ञापितमागुत्तं विरलु :—

सर्वनानागुणहानिशलाकानां यदि प्रकृतसर्वस्थितिनिषेका लभ्यन्ते तदा एकगुणहानिशलाकायाः किं स्यादिति त्रैराशिकेन निषेके नानागुणहानिशलाकाभक्ते प्र छे—व—छे । फ—प १ । इ श १ लब्धं गुणहान्यायामः स्यात् प १ ॥९२७॥ अथ दोगुणहानिप्रमाणं तत्प्रयोजनं चाह—
छे व छे

तु पुनः द्विगुणितं तद्गुणहानिप्रमाणं निषेकहारः स्यात् । तेन हारेण इष्टगुणहानिप्रथमनिषेके भक्ते तद्गुणहानौ विशेषप्रमाणं स्यात् ॥९२८॥ एवं द्रव्यादीनां प्रमाणं ज्ञापयित्वोत्तरकृत्यमाह—

सर्व नानागुणहानि शलाकाओंके यदि स्थितिके सब निषेक होते हैं तो एक गुणहानि शलाकाके कितने निषेक होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करे । प्रमाण राशि नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण है । सो यहाँ पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण है । तथा फलराशि सब स्थितिके निषेक है । सो यहाँ संख्यात पल्य प्रमाण है । और इच्छाराशि एक शलाका है । सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतना ही गुणहानि आयामका प्रमाण जानना । जैसे अंकसंदृष्टिमें प्रमाण राशि नानागुणहानि छह, फलराशि स्थिति अड़तालीस, इच्छाराशि एक गुणहानि । सो फलसे इच्छाको गुणा करके प्रमाणका भाग देनेपर गुणहानि आयामका प्रमाण आठ होता है । एक गुणहानिमें आठ निषेक पाये जाते हैं ॥९२७॥

आगे गुणहानिका प्रमाण और उसका प्रयोजन कहते हैं—

गुणहानि आयामके प्रमाणको दुगुना करनेपर दो गुणहानि होती है । इसीका नाम निषेकहार है । इस दो गुणहानि प्रमाण भागहारका भाग विवक्षित गुणहानिके प्रथम निषेकमें देनेपर जो प्रमाण आवे वही उस गुणहानिमें विशेषका प्रमाण होता है । इसे ही चय कहते हैं ॥९२८॥

इस प्रकार द्रव्यादिका प्रमाण बतलाकर आगेका कार्य कहते हैं—

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुणकमो आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ॥९२९॥

रूपोनान्योन्याभ्यस्तापहृतद्रव्यं तु चरमगुणहानिद्रव्यं । भवेत्ततो द्विगुणक्रमः आद्यगुणहानिद्रव्यपर्य्यंतं ॥

विवक्षितमिथ्यात्व कर्म्मसमयप्रबद्धद्रव्यमं ६३०० । रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं भागिसुत्तं विरलु ६३०० बंद लब्ध नानागुणहानिगळोळुचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणमक्कु १०० । मल्लिदं बलिक्क केळगे केळगे प्रथमगुणहानि पर्य्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रममक्कु

१००	१
१००	२
१००	४
१००	८
१००	१६
१००	३२

मितु नानागुणहानिगळ द्रव्यं ज्ञातमागुतं विरलु । :—

रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयभागहारेण ।
हदगुणहाणिविभजिदे सगसगदव्वे विसेसा हु ॥९३०॥

रूपोनाध्वानार्द्धेनोनेन निषेकभागहारेण । हतगुणहानिविभक्ते स्वस्वद्रव्ये विशेषाः खलु ॥

विवक्षितमिथ्यात्वकर्मसमयप्रबद्धद्रव्यं ६३०० रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्तं ६३ ०० नानागुणहानिषु चरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं स्यात् १०० । ततः पश्चात् अधोधः प्रथमगुणहानिपर्यन्तं द्विगुणक्रमं स्यात्

१००	१
१००	२
१००	४
१००	८
१००	१६
१००	३२

॥९२९॥ एवं नानागुणहानिद्रव्येषु ज्ञातेषु किंकर्तव्यमित्यत आह —

एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग सर्वद्रव्यको देनेपर जो प्रमाण आवे वही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य जानना । इससे दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त होता है । जैसे अंकसंदृष्टिमें मिथ्यात्वका सर्व द्रव्य तिरसठ सौ है । उसको एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशि तिरसठका भाग देनेपर सौ पाये । यह अन्तकी गुणहानिका सर्वद्रव्य जानना । इससे पाँचवीं आदि गुणहानिमें दूना-दूना द्रव्य प्रथम गुणहानि पर्यन्त होता है । यथा—१००। २००।४००।८००।१६००।३२०० ॥९२९॥

इस प्रकार नानागुणहानियोंका द्रव्य जाननेपर क्या करना, यह कहते हैं—

आ तंतम्म गुणहानिद्रव्यमं रूपोनाध्वानार्द्धंविदमूननिषेकभागहारविदं गुणिसल्पट्ट गुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु तंतम्म गुणहानिद्रव्यदोळु चयद्रव्यं स्फुटमागप्पुदर्वतेंदोडे प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं। ३२००। रूपोनाध्वानार्द्धोननिषेकभागहारगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु ३२००

$$\frac{८।१६।८}{२}$$

लब्धप्रथमगुणहानिविशेषप्रमाणमिनितक्कुं। ३२। द्वितीयगुणहानिद्रव्यमनिदं १६०० मुन्निनंते रूपोनाध्वानार्द्धोननिषेक भागहारगुणगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु १६०० लब्धं द्वितीयगुण-

$$\frac{८।१६।८}{२}$$

हानिद्रव्यदोळुविशेषप्रमाणनितक्कु। १६। मितु स्वस्वगुणहानिद्रव्यमं रूपोनाध्वानार्द्धोननिषेकभागहारगुणगुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु स्वस्वगुणहानिद्रव्यदोळु विशेषप्रमाणं बक्कुं। सदृष्टि १ इंतु स्वस्वगुणहानिविशेषप्रमाणं ज्ञातव्यमागुत्तं विरलु :—

२
४
८
१६
३२

तत्तद्गुणहानिद्रव्ये ३२०० । १६०० । ८०० । ४०० । २०० । १०० । रूपोनगुणहान्यर्धेनोननिषेकभागहारेण गुणितगुणहान्या भक्ते सति तत्तद्गुणहानिचयाः स्युः—

३२०० $\frac{८।१६-८}{२}$	१६०० $\frac{८।१६-८}{२}$	८०० $\frac{८।१६-८}{२}$ →
४०० $\frac{८।१६-८}{२}$	२०० $\frac{८।१६-८}{२}$	१०० $\frac{८।१६-८}{२}$

← ३२ । १६ । ८ । ४ । २ । १ ॥९३०॥

एक हीन गुणहानि आयामके प्रमाणके आधेको निषेक भागहाररूप दो गुणहानिमें-से घटानेपर जो शेष रहे उससे गुणहानि आयामको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उसका भाग विवक्षित गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर जो आवे वही इस गुणहानिमें विशेष या चयका प्रमाण होता है। जैसे अंकसंदृष्टिमें गुणहानि आयामका प्रमाण आठ है। उसमें एक घटानेपर सात रहे। उसका आधा साढ़े तीनको निषेक भागहार सोलहमें घटानेपर साढ़े बारह रहे। उससे गुणहानि आयाम आठको गुणा करनेपर सौ हुए। उसका भाग प्रथम गुणहानिके द्रव्य बत्तीस सौमें देनेपर बत्तीस पाये। यही प्रथम गुणहानिमें चयका प्रमाण होता है। दूसरी गुणहानिका द्रव्य सोलह सौ है। उसमें भाग देनेपर सोलह पाये। यही द्वितीय गुणहानिमें चय है। इसी प्रकार तृतीय आदि गुणहानिके द्रव्य आठ सौ, चार सौ, दो सौ, एक सौमें भाग देनेपर आठ, चार, दो, एक पाये। ये ही उन गुणहानियोंमें चयका प्रमाण है ॥९३०॥

पचयस्स य संकलणं सगसगगुणहाणिदव्वमज्झम्मि ।
अवणिय गुणहाणिहिदे आदिपमाणं तु सव्वत्थ ॥९३१॥

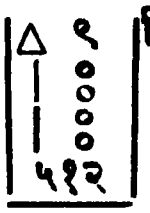
प्रचयस्य च संकलितं स्वस्वगुणहानिद्रव्यमध्येऽपनीय गुणहानिहृते आदिप्रमाणं तु सर्वत्र ॥

चयद संकलित धनमं तंतम्म गुणहानियोळु तंदु स्वस्वगुणहानिद्रव्यदोळु कळेदु शेषधनमं गुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु तंतम्म गुणहानिप्रथमनिषेक प्रमाणमधिकसंकलनरूपदिनक्कुमवें तें- ५
दोडे प्रथमगुणहानिद्रव्यचयधनमिदु ८ ३२।८ लब्धचयधनमिदु। ८९६। इदं प्रथमगुणहानि-
२
द्रव्यदोळु ३२००। कळेदुळिद शेषमं २३०४। गुणहानियिंदं भागिसिदोडे अधिकसंकलनक्रमंविद-
मादिनिषेकप्रमाणमिनितक्कु २८८। मिदरमेले स्वविशेषंगळ रूपोनगच्छमात्रंगलु पेच्चुत्तं पोगि-
०
तच्चरमदोळु रूपोनगच्छमात्रचयंगळ ३२।८ पेच्चिदुदिनितक्कु ५१२। मी प्रथमगुणहानिगे
संदृष्टि २८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०। ५१२॥ द्वितीयगुणहानिचयधनमिदु १०
०
८।१६ ८ गुणिसिद लब्धमिदं ४४८। द्वितीयगुणहानिद्रव्यमिदरोळु १६००। कळेद शेषमिदं।
२
११५२। गुणहानियिंदं भागिसिदोड ११५२ धिकसंकलनरूपिंदमादिनिषेकप्रमाण १४४। मिदर
८

तत्तच्चयस्य संकलितधनमानीय स्वस्वगुणहानिद्रव्यमध्येऽपनीय शेषे गुणहान्या भक्ते स्वस्वगुणहानि-
०
प्रथमनिषेकप्रमाणमधिकसंकलनरूपेण स्यात्। तत्र प्रथमगुणहानौ चयधनमिदं ८।३२।८। लब्धं ८९६।
२
तत्सर्वद्रव्ये ३२००। अपनीय शेषं २३०४ गुणहान्या भक्तमादिनिषेकप्रमाणं स्यात् २८८ अस्योपर्येकैकस्व- १५
विशेषवृद्धौ संदृष्टिः—२८८। ३२०। ३५२। ३८४। ४१६। ४४८। ४८०। ५१२। तथा द्वितीयगुणहानि

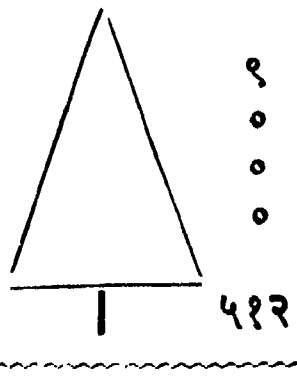
विवक्षित गुणहानिके सर्वचय धनका प्रमाण निकालकर उसे अपनी-अपनी गुणहानि-के सर्वद्रव्यमें-से घटानेपर जो प्रमाण शेष रहे, उसमें गुणहानि आयामका भाग देनेपर अपनी-अपनी गुणहानिके प्रथम निषेकका प्रमाण होता है। उसमें एक-एक चय बढ़ानेपर द्वितीयादि निषेकोंका प्रमाण होता है। जैसे अंकसंदृष्टि रूपसे—प्रथम गुणहानिका चयधन— २०
एक हीन गच्छ आठका आधा साढ़े तीनको चय बत्तीससे गुणा करनेपर एक सौ बारह हुए। उन्हें गच्छ आठसे गुणा करनेपर आठ सौ छियानबे हुए। यही चयधन है। इसको सर्वद्रव्य बत्तीस सौमें-से घटानेपर शेष तेईस सौ चार रहे। उसमें गुणहानि आठसे भाग देनेपर दो सौ अट्ठासी पाये। यही आदि निषेकका प्रमाण है। उसमें एक-एक चय बत्तीस-बत्तीस बढ़ाने-पर द्वितीयादि निषेकोंका प्रमाण होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि गुणहानिमें चयका प्रमाण २५
आधा-आधा होनेसे चयधन भी आधा-आधा है। इसी तरह उनका सर्वद्रव्य भी आधा-आधा है। उसमें घटानेपर जो शेष रहे उसमें गुणहानि आयामसे भाग देनेपर अपना-अपना आदि निषेक आता है। उसमें अपना-अपना एक चय मिलानेपर अन्य निषेक होते हैं।

मेले चयाधिकक्रमदिंदं द्वितीयगुणहानिचरमपर्य्यंतं पोकु। संदृष्टि :—१४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। यिंतु तृतीयादिगुणहानिगळोळमी क्रमदिंदं तरल्पडुत्तिरलु तृतीयगुणहानियोळु ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८॥ चतुर्त्थ ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४॥ पंचम १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२॥ षष्ठ ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६॥ इंतु पेळल्पट्ट स्थितिरचनांक संदृष्टि



यिंतु

१४४। १६०। १७६। १९२। २०८। २२४। २४०। २५६। तृतीयगुणहानि ७२। ८०। ८८। ९६। १०४। ११२। १२०। १२८। चतुर्थगुणहानि ३६। ४०। ४४। ४८। ५२। ५६। ६०। ६४। पंचगुणहानि १८। २०। २२। २४। २६। २८। ३०। ३२। षष्ठगुणहानि ९। १०। ११। १२। १३। १४। १५। १६। उक्तस्थितिरचनांकसंदृष्टिः—



अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा निषेकोंका यन्त्र इस प्रकार है—

	प्रथम गु.	द्वितीय गु.	तृ. गु.	चतु. गु.	पंचम गु.	षष्ठ गु.
	२८८	१४४	७२	३६	१८	९
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड़	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००

विशेषार्थ—यहाँ दो सौ अट्ठासीको प्रथम निषेक इस दृष्टिसे कहा है कि उसके ऊपर ही चयकी वृद्धि होकर आगेके निषेक बनते हैं। किन्तु यथार्थमें यह अन्तिम निषेक है। प्रथम निषेक पाँच सौ बारह है। इसी प्रकार आगेकी गुणहानियोंमें भी जानना। निषेक रचना पाँच सौ बारहसे प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर एक-एक चय घाट होती जाती है। अतः अन्तिम गुणहानिका अन्तिम निषेक नौ जानना।

पेळल्पट्ट स्थितिनिषेकरचनाभिप्रायं पेळल्पडुगुमवें तें दोडे मिथ्यात्वाविरमणकषाययोगबंधकारणं-
गळिंदं मिथ्यादृष्टिजीवं विवक्षितैकसमयदोळायुर्व्वर्ज्जितज्ञानावरणादिसप्तविधकर्म्मरूपसमय
प्रबद्धमं सर्व्वात्मप्रदेशंगळिंदमाहरिसुगुमा समयप्रबद्धोत्कृष्टद्रव्यमिदु । स छे । नपवर्त्तसिबुदनिदु ।
अ
स अ । नेळ्द कर्म्मंगळ्गे भागिसिदोडों दु मोहनीयकर्म्मंद्रव्यमिदं स अ देशघातिसर्व्वघातिगळ्गनंतविदं
१
खंडिसिदोडेकभागं सर्व्वघाति संबंधद्रव्यमिदं स अ १ मिथ्यात्व षोडशकषायंगळेंब सप्तदशप्रकृति- ५
१ । ख
गळ्गे भागिसिदोडों दु मिथ्यात्वकर्म्मंद्रव्यमिनितक्कु स । अ । १ मी समयप्रबद्धद्रव्यमवक्का
१ । ख । ११
बंधसमयदोळेककषायबंधाध्यवसायस्थानोदयविशेषविंदं स्थितियं सप्ततिकोटिकोटिसागरोपममं
कट्टुगुमा स्थितिगे स्थित्यनुसारविंदं नानागुणहानिशलाकेगळु पल्यवर्गंशलाकार्द्धच्छेदराशिरहित-
पल्यार्द्धच्छेदराशिप्रमितंगळप्पु छे व छे वी नानागुणहानिशलाकेगळं विरळिसि रूपं प्रति
द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडुत्तं विरलु लब्धं पल्यमं पल्यवर्गंशलाकाराशियिदं भागिसिदनितक्कु १०
प मेंतेंदोडे :—
व

विरळिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि होणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहवो हारो उप्पण्णरासिस्स ॥[1]

अत्रायमर्थः—कश्चिद्विवक्षिते समये मिथ्यात्वाविरमणं कषाययोगैरायुर्विना सप्तकर्मणामुत्कृष्टसमयप्रबद्धं
सर्वात्मप्रदेशैराहरति तदिदं स छे अपवर्त्य सप्तभिर्भक्तं मोहनीयस्य स अ पुनरनन्तेन भक्तं सर्वघातिनः स अ १ १५
अ १ १ ख
पुनः मिथ्यात्वषोडशकषायैर्भक्तं मिथ्यात्वस्य स अ १ पुनः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्वस्थितेः पल्यवर्ग-
१ ख ११

उक्त कथन तो समझानेके लिए है। अर्थरूपमें कहते हैं यही यथार्थ है—कोई जीव किसी एक विवक्षित समयमें मिथ्यात्व अविरति कषाय योगके द्वारा आयुके बिना सात कर्मोंके उत्कृष्ट समयप्रबद्धको ग्रहण करता है। वह उत्कृष्ट समयप्रबद्ध जघन्य समयप्रबद्धसे पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भाग गुणा है। अपवर्तन करनेपर जघन्य समयप्रबद्धसे २० असंख्यात गुणा है। इस उत्कृष्ट समयप्रबद्धके परमाणुओंके प्रमाणरूप द्रव्यको सातसे भाग देनेपर मोहनीयका द्रव्य आता है। उसमें अनन्तसे भाग देनेपर मोहनीयका सर्वघाती द्रव्य होता है। इसमें एक मिथ्यात्व और सोलह कषाय इन सत्रहसे भाग देनेपर मिथ्यात्वका द्रव्य होता है। यही सर्वद्रव्यका प्रमाण जानना। इस मिथ्यात्वकी स्थिति सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरके जितने समय हों उतनी स्थिति जानना। पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन २५ पल्यके अर्द्धच्छेदोंका जितना प्रमाण उतनी नानागुणहानि है। नानागुणहानि प्रमाण दोके

१. इल्लि प्रथमयेंदु धने अंत्यमेंबुदु चरम येंदु धने प्रथमे येंबुदु येकेंदोडे अंतधणं गुणगुणियमेंब गाथाभिप्रायदिदं ।

एंबितु सिद्धमक्कुमप्पुर्दरिंदमी पल्यवर्गशलाकाराशिभक्तपल्यमुं मिथ्यात्वकर्म्मस्थिति-निषेकरचनाविषयदोळन्योन्याभ्यस्तराशियेंबु पेळल्पट्टुदीयन्योन्याभ्यस्तराशियोळेकरूपं कुंविसि मिथ्यात्वकर्म्मसमयप्रबद्धद्रव्यमं भागिसिदोडे चरमगुणहानि संबंधिद्रव्यमक्कु स । ड । १ ⌐० / १ । ख । ११ । अ

द्वितीयादिगळधस्तनाधस्तनगुणहानिगळ द्रव्यंगळु प्रथमगुणहानिद्रव्यपर्य्यंतं द्विगुणेद्विगुणक्रमंगळप्पुवु।

१ संदृष्टि :—

स ड । १ / १ । ख । ११ ।	⌐० चरम अ
स ड । २ / १ । ख । ११	⌐० अ
	० ०
स ड / १ । ख । ११ । २ । २ ।	अ ⌐० अ
स ड । / १ । ख । ११ ।	अ ⌐० अ । २ प्रथम

ई गुणहानि द्रव्यंगळनंतधणं गुणगुणियं आदिवि-

होणं रूऊणुत्तरभजियमेंबितु संकलिसिदोडे मूलद्रव्यप्रमाणमेयक्कुमेंबुदर्त्थमिल्लि प्रथमगुणहानि-

---

शलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदमात्रनानागुणहानिमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नेनान्योन्याभ्यस्तेन पल्यवर्गशलाकाभक्तपल्य-मात्रेण रूपोनेन भक्तं चरमगुणहानिः स ड १ ⌐० तदधोधः प्रतिगुणहानि द्विगुणं द्विगुणं संदृष्टिः—
१ ख ११ अ

चरम स ड १ / १ ख ११ अ ⌐०
स ड २ / १ ख ११ अ ⌐०
० ० ०
स ड अ / १ ख ११ । २ । २ । अ ⌐०
प्रथम स ड अ / १ ख ११ अ २ ⌐०

अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। उसका प्रमाण पल्यकी वर्गशलाकासे भक्त पल्य है। अन्योन्याभ्यस्त राशिमें-से एक घटाकर उसका भाग सर्वद्रव्यमें देनेपर जो प्रमाण हो वही अन्तिम गुणहानिका द्रव्य होता है। उससे आदिकी गुणहानि पर्यन्त

---

१. म कममप्पुवु

द्रव्यमं स ० अ पूर्व्वोक्तक्रमदिदं "रूऊणद्धाणद्धेणूणेण णिसेयभागहारेण । हदगुण-
१ । ख २ । ११ । $\overset{\circ}{\underset{}{\text{अ}}}$
हाणि विभजिदे सगसगदव्वे विसेसा हु" एंदितु साधिसल्पट्ट सर्व्वगुणहानिगळ विशेषद्रव्यंगळ्गे संदृष्टि तोरल्पडुगुं । रूऊणद्धाण $\overset{\circ}{\underset{}{\text{गु}}}$ अद्धेण $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ऊणेण णिसेयभागहारेण $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३ हदगुणहाणि गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३ भजिदे सगसग दव्वविसेसा हु ।

चरम गुणहानि विशेष	स ० १ १ । ख । ११ $\overset{\circ}{\underset{}{\text{अ}}}$ गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३
द्विचरमगुणहानि विशेष	स ० २ १ । ख । ११ $\overset{\circ}{\underset{}{\text{अ}}}$ गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३
० ० ०	० ० ०
द्वितीय गुणहानि विशेष	स ० । अ १ । ख ११ । २२ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३
प्रथम गुणहानि विशेष	स ० अ १ । ख । ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ । २ । गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३

येंदितु प्रथमगुणहानि मोदल्गोंडु चरमगुणहानिपर्य्यंतमिवु विशेषप्रमाणंगळप्पुविवरोळु प्रथमगुणहानि विशेषधनमं पूर्व्वोक्तक्रमदिदं "पचयस्स य संकलणं सगसगगुणहाणिदव्वमज्झम्मि । अवणिय गुणहाणिहिदे आदि पमाणं तु सव्वत्थ" एंदितु प्रथमादि गणहानिप्रचयधनंगळं साधिसिदोडिंतिप्पुंवु । संदृष्टि :—

ततः रूऊणद्धाण $\overset{\circ}{\underset{}{\text{गु}}}$ अद्धेण $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ऊणेण णिसेयभागहारेण $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३ हदगुणहाणि गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ३ विभजिदे सगसगगुणहाणिदव्वे विसेसा हु ततः प्रथमादिगुणहानीनामानीतप्रचयधनानि संदृष्टिः—

द्रव्य दूना-दूना जानना। 'रूऊणद्धाणद्धेणूणेण' इत्यादि सूत्रके अनुसार एक हीन गुणहानि आयाम प्रमाण गच्छके आधेको दो गुणहानिमें घटानेपर जो प्रमाण रहा उसको गुणहानि आयामसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उसका भाग विवक्षित गुणहानिके द्रव्यमें देनेपर जो

स ० २ १ । ख ११ । अ गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$	गु गु ३ २
स ० २ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ गु $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$	गु गु ३ २
० ० ०	
स ० । अ १। ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ । २।२ $\underset{\text{गु}}{\text{गु}}$	गु गु ३ २
स ० अ १ । ख । ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ । २ । $\underset{\text{गु}}{\text{गु}}$	गु गु ३ २ २

चरम स ० १ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ गु गु ३ २	स ० । १ गु $\overset{\circ}{\text{गु}}$ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ गु । गु ३ २
द्विचरम स ० २ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ गु गु ३ २	स ० । २ गु $\overset{\circ}{\text{गु}}$ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ गु गु ३ २
० ० ०	० ० ०
द्वितीय स ० अ १ ख ११ । $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २ । २ । गु गु ३ २	स ० अ गु $\overset{\circ}{\text{गु}}$ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २ । २ । गु ३ । २ २
प्रथम स ० अ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २ गु गु ३ २	स ० अ गु $\overset{\circ}{\text{गु}}$ १ ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २ । गु गु ३ । २ २

प्रमाण आवे उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानिमें चयका प्रमाण होता है।

ई चयधनंगळं तंतम्म गुणहानिद्रव्यंगळोळु कळेदु शेषमं गुणहानियिंदं भागिसुत्तं विरलु तंतम्म गुणहानिगळ आदिनिषेकमधिकसंकलनक्रमदिंदमप्पुववर तंतम्म कॆळगे कॆलगे द्विचरमादि निषेकं मोदल्गोंडु तंतम्म गुणहानि प्रथमनिषेकपर्य्यंतं तंतम्म गुणहानि संबंधि येकैकचयदिन्नधिकमागुत्तं पोपुवल्लि प्रक्रियाविशेषं तोरल्पडुगुमें तें दोडे प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदरोळु स ० अ

१ । ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २

चयधनमं कळेयल्वेडि स्थापिसिदो स ० अ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ गु चयधनदोळिर्द्द भाज्यभागहारंगळं ५
२

१ । ख । ११ । $\overset{\circ}{\text{आ}}$ २ । गु $\overset{\frown\circ}{\text{गु}}$ ३
२

लेसागि निरोक्षिसि गुणहानिगे गुणहानियनपवर्त्तिसि कळेदोडिदु स ० अ $\overset{\circ}{\text{गु}}$ इल्लि

१ । ख ११ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २ $\overset{\frown\circ}{\text{गु}}$ ३ । २
२

हारभूतरूपाधिकत्रिगुणगुणहानिगे हारमागिर्द्द द्विकमं हारस्य हारो गुणकोंशराशेः येंबितंशराशिगे गुणकारमप्पुदरिंदमा द्विकमं रूपोनगुणहानिगे हारमागिर्द्द द्विकदोडनपवर्त्तिसिदोडितिक्कुं :—

मो चयधनदगुणहानिय मेलण ऋणरूपं ऋणस्य ऋणं राशेर्द्धनं भवति

स ० । अ $\overset{\circ}{\text{गु}}$

१ ख १ १ $\overset{\circ}{\text{अ}}$ २ । $\overset{\frown}{\text{गु}}$ ३

एंदिता ऋणरूपंराशिगे धनमक्कुमें दु बेरे तॆगेदिरिसिदोडिदु स ० अ १ शेषचय- १०

१ ख १ १ $\overset{\frown\circ}{\text{अ}}$ २ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ ३

धनमिदं स ० अ गु प्रथमगुणहानिद्रव्यदोळु कळेयल्वेडि समच्छेदमं

१ ख १ १ $\overset{\frown}{\text{अ}}$ २ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ ३

एतानि स्वस्वगुणहानिद्रव्येभ्यो गृहीत्वा शेषेषु गुणहान्या भक्तेषु स्वस्वगुणहानीनामादिनिषेका अधिकसंकलनक्रमेण स्युः । ते चाधोधः स्वस्वप्रथमनिषेकपर्यंतं स्वस्वैकैकचयाधिकाः स्युः । तद्यथा—

प्रथमगुणहानिद्रव्यं स ० । अ उपर्यधो रूपाधिकत्रिगुणहान्या संगुण्य स ० । अ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ ३

१ ख ११ $\overset{\frown\circ}{\text{अ}}$ २ १ ख ११ $\overset{\frown\circ}{\text{अ}}$ २ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ ३

तथा 'व्येकपदार्द्धं' इत्यादि सूत्रके अनुसार एक हीन गुणहानि आयाम प्रमाण गच्छके आधेको अपने-अपने चयसे गुणा करके फिर गच्छसे गुणा करनेपर जो-जो प्रमाण हो उतना-उतना अपनी-अपनी गुणहानिमें चयधन होता है। चयधनको अपनी-अपनी गुणहानिके द्रव्य- १५

रूपाधिक त्रिगुणहानि यिंदं केळगेयुं मेगेयुं गुणिसि माडिदो प्रथमगुणहानिद्रव्यदोळु भाज्यराशीभूतत्रिगुणहानियोळिर्द्धिकरूपं तेगेदु पूर्व्वं स्थापिसिद ऋण

स ० अ गु ३

१ । ख १ १ अ २ गु ३

ऋणमप्पेकरूपदोळ समच्छेदमुंटप्पुद १ ख ११ अ २ गु ३ रिदं धन धनयोरैक्यमें दु कूडि स्थापि- सिदोडिदु स ० अ २ यिल्लिय गुणकारभूतद्विकमं हारभूतरूपाधिकत्रिगुणगुणहानिगे

१ । ख १ १ अ २ गु ३

५ हारमं माडि स्थापिसिरिसि स ० अ १ बळिक्का समच्छेदमं माडिद प्रथम-

१ ख ११ अ २ गु ३

२

गुणहानिद्रव्यदोळु स ० अ गु ३ चयधनमनिदं स ० अ गु १

१ ख १ १ अ २ गु ३ १ ख १ १ अ २ गु ३

कळेदोडे शेषप्रथमगुणहानिद्रव्यमिदु स ० अ गु २ ई द्रव्यद गुणहानिगे

१ ख । १ १ अ २ गु ३

अंशस्थिताधिकरूपं पृथक्कृत्य–स ० अ १ चयधन स ० अ गु गु स्थांशहारगुणहानो

१ ख ११ अ २ गु ३ १ ख ११ अ २ गु गु ३ । २

२

अपवर्त्य स ० अ गु हाररूपाधिकत्रिगुणगुणहानेर्हारद्विकं गुणहारद्विकेनापवर्त्य

१ ख ११ अ २ गु ३ । २

२

१० स ० अ गु गुणहान्युपरिस्थितं ऋणरूपं ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति पृथग्धृतरूपे

१ ख ११ अ २ गु ३ २

निक्षिप्य स ० अ २ गुणकारद्विकं हाररूपाधिकत्रिगुणहानेर्हारं कृत्वा पृथग्धृत्वा

१ ख ११ अ २ गु ३

में-से घटानेपर जो शेष रहे उसमें गुणहानि आयामका भाग देनेपर जो-जो प्रमाण हो वह-वह अपनी-अपनी गुणहानिके अन्तिम निषेकका द्रव्य होता है। उसमें अपना-अपना एक-एक चय मिलानेपर अन्य निषेकोंका प्रमाण होता है। अन्तिम निषेकमें एक हीन गुणहानि

गुणकारमागिद्दं द्विकमं केळगे हारमागिद्दं रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिगे हारमं माडिरिसिदोंडितिक्कु स ० अ गु मी धनराशियोळु मुन्नं बेरे स्थापिसिरिसिद धनरूपनिदं

१ ख ११। अ २ गु ३
२

स ० अ अंशराशिगे गुणकारभूतगुणहानियोळु समच्छेदमुंटप्पुदरिंदं कूडि-

१ ख ११। अ २ गु ३
२

दोंडितिक्कुं। स ० अ गु मी चयधनरहितप्रथमगुणहानिद्रव्यमं गुणहाणिहिदे

१ ख १ १। अ २ गु ३

आदिपमाणं तु सव्वत्थ एंदितु गुणहानियिदं भागिसुत्तं विरलु लब्धराशिधिक द्विकसंकलनक्रमदिंदं ५

प्रथमगुणहानि प्रथमस्थिति २८८ निषेकद्रव्यमक्कु स ० अ गु मिदर

१ ख ११ अ । २ गु ३ गु
२

केळगे केळगे चयाधिकक्रमदिंद पोगि प्रथमगुणहानिचर ५१२ मस्थितिनिषेकदोळु रूपोन-

---

स ० अ १ तच्चयधनशेषेण स ० अ गु १

१ ख ११ अ २ गु ३ १ ख ११ अ २ गु ३
२

ऊनयित्वा स ० अ गु २ गुणहानेर्गुणकारद्विकं हाररूपाधिकत्रिगुणगुणहानेर्हारं कृत्वा

१ ख ११ अ २ गु ३

स ० अ गु पृथग्घृतं धनं स ० अ १ निक्षिप्य गुणहान्या १०

१ ख ११ अ २ गु ३ १ ख ११ अ २ गु ३
२

स ० अ गु भक्तं अधिकसंकलक्रमेण प्रथम २८८ निषेकः स ० अ गु

१ ख ११ २ गु ३ १ ख ११ अ २ गु ३ गु
२

प्रमाण चय मिलानेपर आदि निषेकका प्रमाण दो गुणहानिसे चयको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। इस प्रकार अन्तिम निषेकको आदिमें स्थापित करके क्रमसे चय बढ़ाता

गुणहानिमात्र प्रथमगुणहानिसंबंधि चयंगळनिनितं स ० अ गु कूडिदोडे

१ ख १ १ अ २ गु गु ३/२

दो गुणहानिमात्रचयंगळप्पुवु स ० अ गु २ मुन्नं त्रिकोणरचना घनसंकलित

१ । ख १ १ । अ २ गु ३/२ गु

दोर्ऋमिते हीनसंकलितक्रमविदं पेळल्पट्टुदर्दे तेंदोडे अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमाग-च्छदि एंदितु प्रथमगुणहानिसर्व्वधनमं गुणहानियिंदं खंडिसिदोडे मध्यमधनमक्कु । मा मध्यमधनमं

५ स ० अ तं रूऊण अद्धाण गु अद्धेण गु/२ ऊणेण णिसेयभागहारेण । ई रूपोन गुण-

अ २ । गु

हान्यर्द्धदिदं हीनमप्पदोगुणहानियिंदं गु ३/२ मज्झिमधणमवहिरिदे पचयं मध्यमधनमं

भागिसुत्तं विरलु प्रचयमक्कु स ० । अ मी प्रचयमं दोगुणहानियिंदं गुणिसि-

अ २ । गु गु ३/२

दोडादिस्थितिनिषेकं हीनसंकलनक्रमविदमक्कुं स ० । अ । गु २ मेले द्वितीय-

अ । २ । गु । गु ३/२

अधः चयाधिकक्रमेण चरमो ५१२ रूपोनगुणहानिमात्रचया— स ० अ गु

१ ख १ १ अ २ गु ३/२ गु

१० धिको भूत्वा दोगुणहानिमात्रचयो भवति स ० अ गु २ हीनक्रमेण तु त्रिकोणरचनावज्ज्ञातव्यं ।

१ ख १ १ अ २ गु ३ गु

तद्यथा—प्रथमगणहानिघने गुणहान्या भक्ते मध्यधनं स ० अ तच्च रूपोनार्धाना गु द्वेन गु/२ निषेक-

अ २ गु

हुआ कथन किया है। किन्तु प्रथम निषेकसे अन्तिम निषेक पर्यन्त क्रमसे घटता-घटता त्रिकोण रचनाकी तरह जानना। वही कहते हैं—

निषेकं मोदल्गोंडु तत्प्रथमगुणहानिचरमस्थितिनिषेकपर्य्यंतमेकैकचयहीनक्रमदिदं नडवु चरम-निषेकप्रमाणमेनितक्कुमेंदोडे प्रथमगुणहानि प्रथमनिषेकदोळु रूपोनगुणहानिमात्रविशेषंगळनिवं

$$\text{स ० । अ } \overset{\frown}{\text{गु}}$$

कळेदोडे प्रथमगुणहानिचरमस्थितिनिषेकद्रव्यं रूपाधिकगुणहानिमात्र

$$\text{अ २ । गु । } \overset{\frown}{\text{गु}}_{\text{२}}^{\text{३}}$$

चयंगळप्पुवु

$$\text{स ० । अ } \overset{\frown}{\text{गु}}$$

ई प्रथमगुणहानिस्थितिनिषेकरचना विशेषमेंतु

$$\text{अ २ । गु । } \overset{\frown}{\text{गु}}_{\text{२}}^{\text{३}}$$

पेळल्पट्टुदंते शेषगुणहानिगळोळं स्थितिरचनाक्रममक्कुमल्लि विशेषमुंटवाउदें दोडे तंतम्म गुण- ५
हानिद्रव्यमुं तत्तत्प्रचयमुमरिल्पडुवुवु। शेषविधानमेकप्रकारमेयक्कुमंतागुत्तं विरलु अधस्तनाधस्तन-गुणहानिप्रथमनिषेकंगळं नोडलुपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमनिषेकंगळु चयहीनसंकलनक्रमदिंव-मर्द्धार्द्धक्रमदिनिर्प्पुवु। तत्तद्गुणहानिचयंगळुमर्द्धार्द्धक्रमदिनिर्प्पुवु। अवक्कंक संदृष्टि :—

हारेण $\overset{\frown}{\text{गु}}_{\text{२}}^{\text{३}}$ अपहृतं प्रचयः स ० अ स च दोगुणहान्या गुणित आदिनिषेकः स ० अ गु २ उपर्येकैकचयहीनो

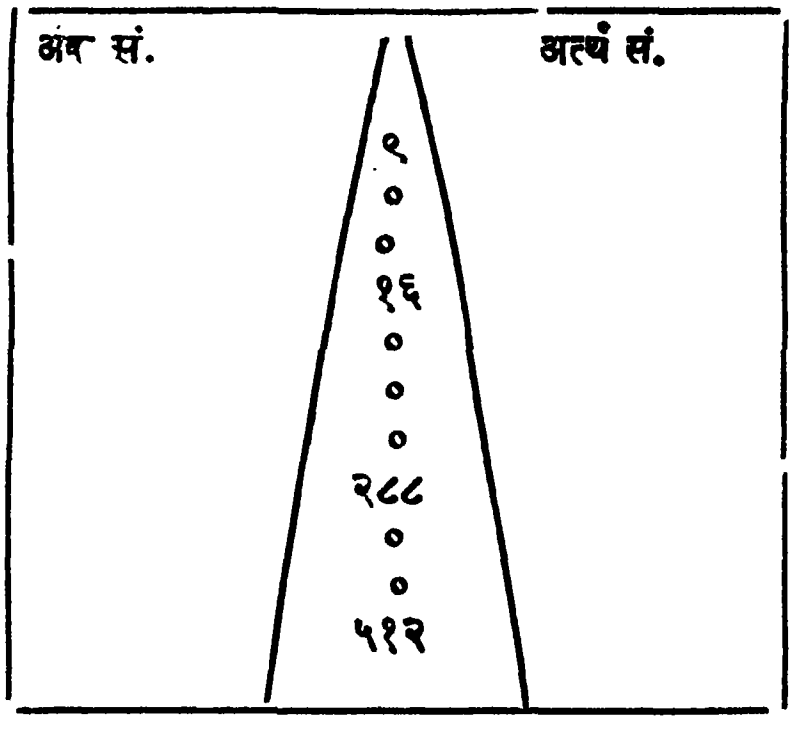
$$\text{अ २ गु } \overset{\frown}{\text{गु}}_{\text{२}}^{\text{३}}$$

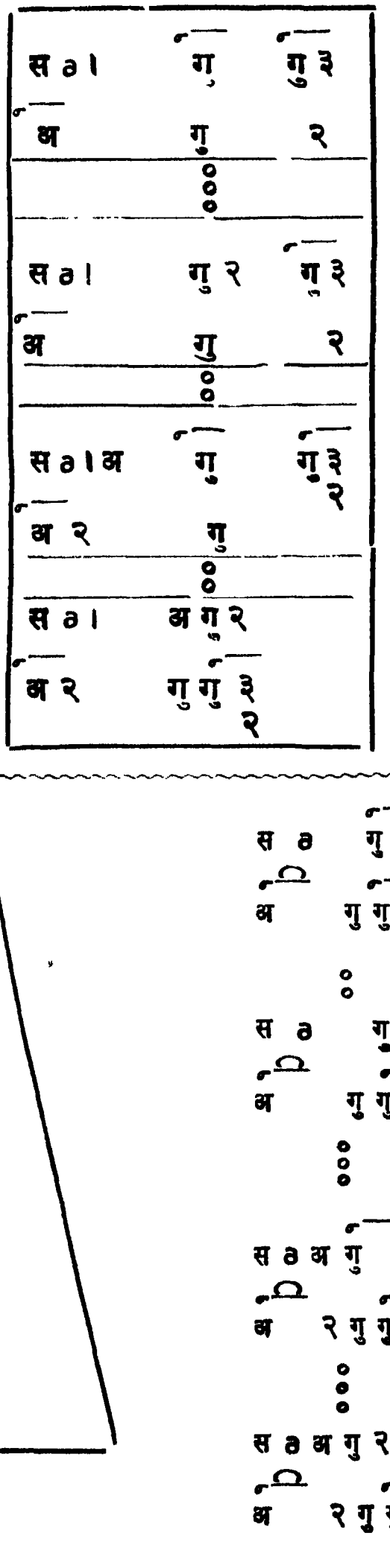
$$\text{अ २ गु } \overset{\frown}{\text{गु}}_{\text{२}}^{\text{३}}$$

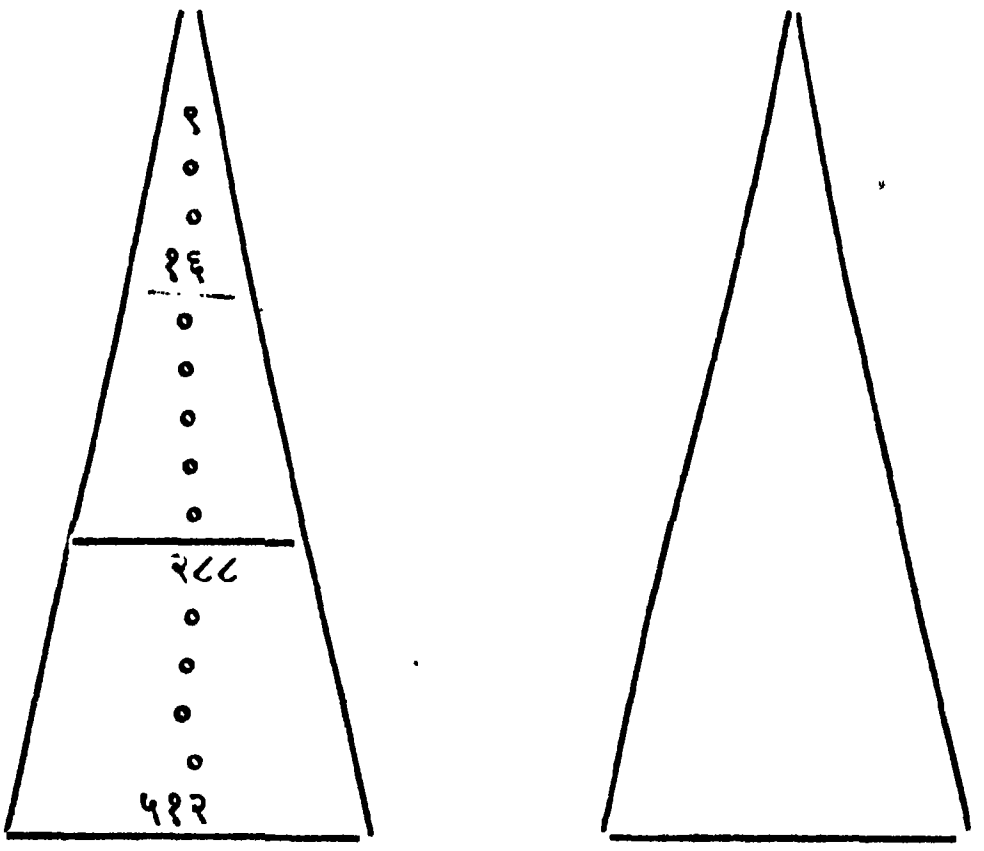
भूत्वा चरमो रूपाधिकगुणहानिमात्रचयो भवति स ० । अ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ एवं शेषगुणहानिष्वपि कृते तदंकार्थसंदृष्टी— १०

$$\text{अ २ गु } \overset{\frown}{\text{गु}}_{\text{२}}^{\text{३}}$$

प्रथम गुणहानिके द्रव्यको गुणहानि आयामसे भाग देनेपर मध्यमधन होता है। जैसे प्रथम गुणहानिके द्रव्य बत्तीस सौको गुणहानि आयाम आठका भाग देनेपर मध्यधन चार सौ होता है। चौथा और पाँचवाँ निषेकके प्रमाणको जोड़कर आधा करनेपर भी मध्यधन होता है। एक हीन गुणहानि आयामके आधेसे हीन निषेक भागहारसे मध्यधनमें भाग देने-पर चयका प्रमाण होता है। जैसे एक हीन गुणहानि सातका आधा साढ़े तीनको निषेक १५
भागहार सोलहमें घटानेपर साढ़े बारह रहे। उसका भाग मध्यधन चार सौमें देनेपर चय-का प्रमाण बत्तीस आता है। इस चयको दो गुणहानिसे गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है। जैसे चय प्रमाण बत्तीसको दो गुणहानि सोलहसे गुणा करनेपर पाँच सौ बारह प्रथम निषेक-का प्रमाण होता है। इसमें एक-एक चय घटानेपर अन्तिम निषेक एक अधिक गुणहानि प्रमाण चयरूप होता है। जैसे गुणहानि आठमें एक अधिक करनेपर नौ हुए। नौसे चयके २०







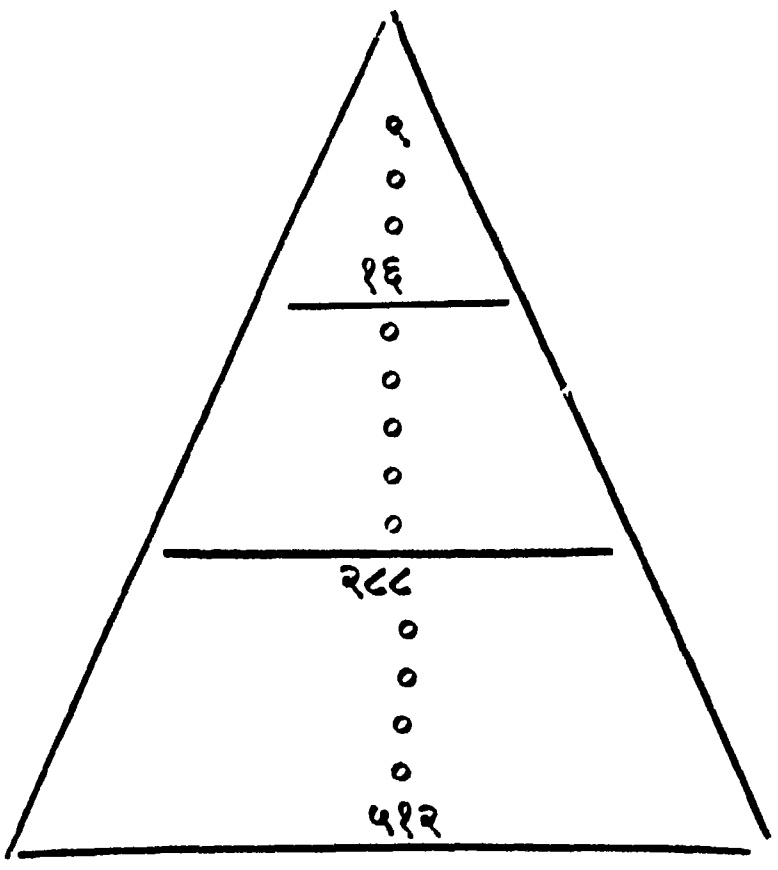
प्रमाण बत्तीसको गुणा करनेपर दो सौ अट्ठासी अन्तिम निषेकका प्रमाण है ऐसे ही अन्य गुणहानियोंमें भी जानना। संदृष्टि—

यितायुर्व्वर्जितसप्तकर्म्मंगळ्गर्मितं स्थितिनिषेकरचनादिरचनं प्रतिसमयमुमप्पुवेंदरियल्प-डुगुमिल्लि मूलप्रकृतिगळ्गमुत्तरप्रकृतिगळ्गं स्थितिनिषेकरचनाकरणदोळु एकगुणहान्यायामादि सामग्रीविशेषमं पेळ्दपरु । :—

सव्वासिं पयडीणं णिसेयहारो य एयगुणहाणी ।
सरिसा हवंति णाणागुणहाणिसलाओ वोच्छामि ॥९३२॥

सर्व्वासां प्रकृतीनां निषेकहारश्चैकगुणहानिः । सदृशाः स्युर्नानागुणहानिशलाका वक्ष्यामि ॥

एवमायुर्विना सप्तकर्मणां स्थितिनिषेकरचना प्रतिसमयं स्यात् । किन्तु—



उक्त संदृष्टिमें प्रथम गुणहानिका आदि निषेक पाँच सौ बारह ! मध्य निषेकोंके ग्रहण के लिए बिन्दी लिखीं। अन्तिम निषेक दो सौ अट्ठासी। मध्यकी गुणहानियोंके निषेकोंको ग्रहण करनेके लिए बीचमें बिन्दी लिखी हैं। अन्तिम गुणहानिका प्रथम निषेक सोलह। बीचके निषेकोंके लिए बिन्दी है। अन्तिम निषेक नौ। यह केवल अंकसंदृष्टि है।

इस प्रकार मिथ्यात्वका कथन उत्कृष्ट स्थिति व उत्कृष्ट समयप्रबद्धकी अपेक्षा जानना। अन्यत्र जैसी जहाँ स्थिति और समयप्रबद्ध हो वैसा स्थिति और द्रव्यका प्रमाण जानना। दो गुणहानि और गुणहानि आयामका प्रमाण सर्वत्र समान हैं। नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्त राशि स्थितिके अनुसार जानना ॥९३१॥

वही कहते हैं—

सव्वंमूलप्रकृतिगळ्गमुत्तरप्रकृतिगळ्गं निषेकहारमुमेकगुणहान्यायाममुं समानंगळप्पुवु। नानागुणहानिशलाकेगळ्गे स्थित्यनुसारमुंटप्पुदरिंदं विसदृशंगळप्पुवदु कारणमागियां नानागुणहानिशलाकेगळं पेळ्दपेमेंदु मुंदण सूत्रंगळोळु पेळ्दपरु। :—

मिच्छस्सत्त य उत्ता उवरीदो तिण्णि तिण्णि सम्मिलिदा।
अट्ठगुणेणूणकमा सत्तसु रयिदा तिरिच्छेण ॥९३३॥

मिथ्यात्वकर्म्मणश्चोक्ता उपरितस्त्रयस्त्रयः सम्मिलिताष्टगुणेनोनक्रमाः सप्तसु रचितास्तिरश्चा ॥

मिथ्यात्वकर्म्मदुत्कृष्टस्थितिगे मुं पेळल्पट्ट नानागुणहानिशलाकेगळु एंतादुवं बोडे द्विरूपवर्गधारेयोळु पल्यवर्गशलाकाराशियादियागि पल्यप्रथममूलपर्य्यंतमाद राशिगळर्द्धच्छेदंगळु तत्पल्यवर्गशलाका व छे र्द्धच्छेदराशियादियागि पल्यार्द्धच्छेदराश्यर्द्धपर्य्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदमिर्द्दं तदर्द्धच्छेदराशिगळुं स्थापिसल्पडुत्तिरलुभयराशिगळुं क्रमदिंदमितिप्पुंवु :—

२	४	१६	२५६	६५ =	४२ =	१८ =	०००	→
१	२	४	८	१६	३२	६४	०००	

	व	वव१	व२	व३	व४	व५	व६	व७	व८	
←	वछे	वछे२	वछे४	वछे ८	वछे१६	वछे३२	वछे६४	वछे१२८	वछे२५६	→
	वछे ७			वछे ८।७।			वछे ८।८।७			

	००००००	मूल९	मूल८	मूल७	मूल६	मूल५	मूल४	मूल३	मूल२	मूल१	प
←	०००२००	छे व २९	छे व २८	छे व २७	छे व २६	छे व २५	छे व २४	छे व २३	छे व २२	छे व २१	छे
	००००००	छे।७ ८।८।८।१			छ ७ ८।८।१			छे ७ ८।१।			

सर्वमूलोत्तरप्रकृतीनां निषेकहारः एकगुणहान्यायामश्च द्वौ सदृशौ। नानागुणहानिशलाकाः स्थित्यनुसारित्वाद्विसदृशाः स्युः। ता वक्ष्यामि ॥९३२॥

मिथ्यात्वस्य ये पल्यवर्गशलाकादितत्प्रथममूलांतानां द्विगुणद्विगुणार्धच्छेदा उक्तास्ते संस्थाप्य उपरि-

सब मूल प्रकृतियोंका निषेकहार अर्थात् दो गुणहानि और एक गुणहानि आयाम ये दोनों समान हैं। किन्तु नानागुणहानि शलाका स्थितिके अनुसार होनेसे समान नहीं हैं। अतः उनको कहते हैं ॥९३२॥

मिथ्यात्व प्रकृतिका पल्यकी वर्गशलाकासे लेकर पल्यके प्रथममूलपर्यन्त अर्द्धच्छेद दूने-दूने कहे थे। उन्हें स्थापन करके ऊपरसे अर्थात् पल्यके प्रथममूलसे लगाकर तीन-तीन वर्गस्थानोंकी अर्द्धच्छेद राशिको मिलानेपर वे क्रमसे आठ-आठ गुना घाट होते हैं।

वही कहते हैं—

उपरितस्त्रयस्त्रय संमिलिताः मेलण मेलण पल्यप्रथममूलार्द्धच्छेदंगळप्प पल्यार्द्धच्छेदराश्यर्द्धमादियागि मूरं मूरु राशिगळु कूडल्पडुत्तिरळु अष्टगुणोनक्रमदिंदमिर्प्पुवदेंतेंदोडे पल्यप्रथममूलच्छेदंगळुमवर केळगण द्वितीयमूलच्छेदंगळु मवर केळगण तृतीयमूलच्छेदंगळुमर्द्धार्द्धक्रमदिनिर्प्पुवल्लि छे अंतधणं छे गुणगुणियं छे २ आदि छे विहीणं छे १ रूऊणुत्तर भजिय

२ २ २ ८ ८
छे
२२
छे
२२२

छे १ एंदिदुपरितन त्रिराशिगळ युतियक्कुं। तदधस्तनपल्यचतुर्त्थमूलार्द्धच्छेदंगळु मवर केळगण ५
८ १

पंचममूलार्द्धच्छेदंगळुमवर केळगण षष्ठमूलार्द्धच्छेदंगळुमर्द्धार्द्धक्रमदिनिर्प्पुवल्लि छे

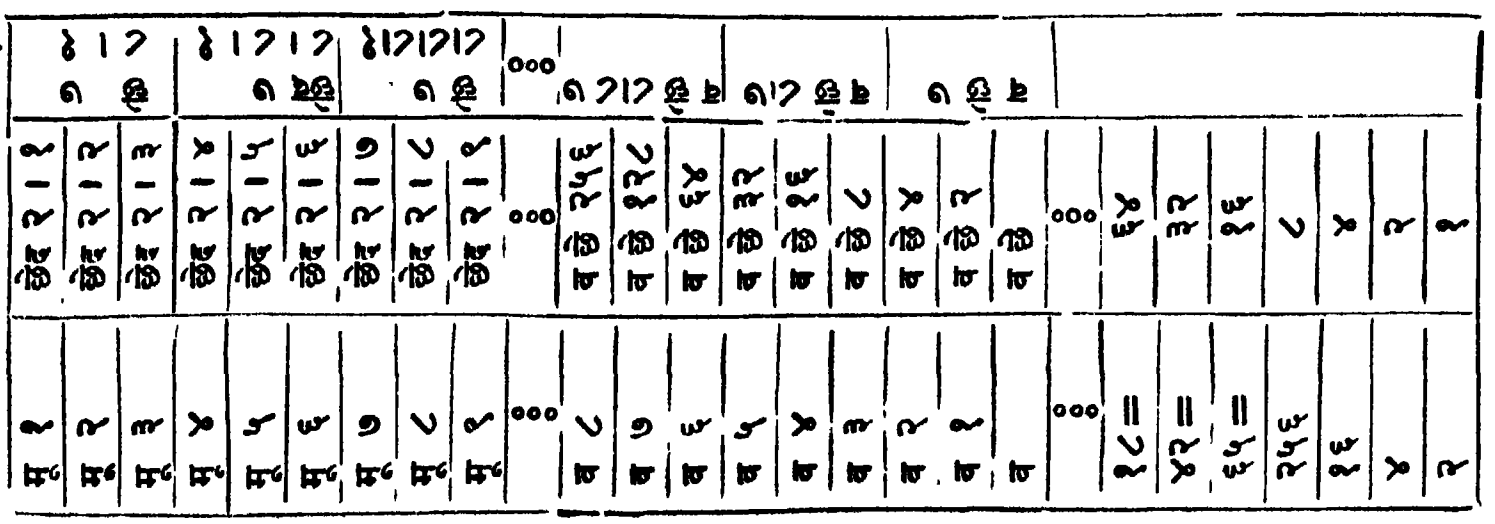
८।२
छे
८।२।२
छे
८।२।२।२

तस्त्रयस्त्रयो राशयो मिलिता अष्टाष्टगुणोनहीनक्रमाः स्युः। तद्यथा—पल्यस्य प्रथमद्वितीयतृतीयमूलार्धच्छेदाः छे अन्तधणं छे गुणगुणियं छे २ आदि छे विहोणं छे ७ रूऊणुत्तरभजियमिति मिलिताः छे ७ तथा

२ २ २ ८ ८ ८।१
छे
२।२
छे
२।२।२

पल्यके प्रथम वर्गमूलके अर्द्धच्छेद पल्यके अर्द्धच्छेदोंसे आधे होते हैं। उनसे आधे पल्यके दूसरे वर्गमूलके अर्द्धच्छेद होते हैं। उनसे आधे पल्यके तीसरे वर्गमूलके अर्द्धच्छेद होते हैं। इन तीनोंको करणसूत्रके अनुसार जोड़ें। अन्तिम धन पल्यके अर्द्धच्छेदोंसे आधे पल्यके प्रथममूलके अर्द्धच्छेद हैं। उनको दोसे गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण होते हैं। इनमें आदिको घटाइए। आदि है—पल्यके तीसरे मूलके अर्द्धच्छेद जो पल्यके अर्द्धच्छेदोंके आठवें भाग हैं। घटानेपर सातगुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका आठवाँ भाग आया। उसमें

---

१. 

अंतधणं छे गुणगुणियं छे।२ आदि छे विहीणं छे।७ रूऊणुत्तरभजियं छे।७
८।२ ८।२ ८।८ ८।८ ८।८।१

एंविदु द्विचरमत्रिराशियुतियक्कुं। तदधस्तनपल्य सप्तमूलार्द्धच्छेदंगळुमष्टमूलार्द्धच्छेदंगळुं नवम-मूलार्द्धच्छेदंगळुमर्द्धार्द्धक्रमदिनिर्प्पुवल्लि छे अंतधणं छे गुणगुणियं छे २
८।८।२ ८।८।२ ८।८।२
छे
८।८।४
छे
८।८।८

आदि छे विहीणं छे।१ रूऊणुत्तर भजियं छे।१ एंविदु त्रिचरमराशि-
८।८।८ ८।८।८ ८।८।८।१

त्रितययुतियक्कुमी क्रमदिंदमिळिदिळिदु मूरुं मूररागिगळं कूडुत्तं पोगि पल्यवर्गशलाकाराशियष्टम-वर्गदर्द्धच्छेदंगळुं सप्तमवर्गार्द्धच्छेदंगळुं षष्ठवर्गार्द्धच्छेदंगळुमर्द्धार्द्धक्रमदिंदमिर्प्पुवल्लि

व छे।८।८।४
व छे ८।८।२
व छे ८।८।१

अंतधणं व छे ८।८।४ गुणगुणियं व छे ८।८।२।२।२ आदि

व छे ८।८ विहीणं व छे ८।८।७ रूऊणुत्तर भजियं व छे ८।८।७ एंविदु तृतीय-
१

चतुर्थपंचमषष्ठमूलार्धच्छेदाः छे मिलिताः सप्तमाष्टमनवमूलार्धच्छेदा छे
८।२ ८।८।२
छे छे
८।२।२ ८।८।४
छे छे
८।२।२।२ ८।८।८

मिलिता छे।७ एवमवतीर्यावतीर्य पल्यवर्गशलाकानामष्टमसप्तमषष्ठवर्गार्धच्छेदाः व छे ८।८।४
८।८।८ व छे ८।८।२
व छे ८।८।१

एक हीन गुणकार एकका भाग देनेपर उतना ही रहा। वही उन तीनों राशिका जोड़ होता है। इसी प्रकार पल्यके चौथे, पाँचवें, छठे वर्गमूलके अर्द्धच्छेद पल्यके अर्द्धच्छेदोंसे सोलहवें, बत्तीसवें और चौंसठवें भाग हैं। उन तीनों राशियोंको पूर्ववत् जोड़नेपर सातगुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका चौंसठवाँ भाग हुआ। यह पहलेकी तीन राशियोंके जोड़से आठ गुना घटता हुआ है। इसी प्रकार पहले-पहलेसे आधे-आधे सातवाँ, आठवाँ, नवाँ वर्गमूलके अर्द्धच्छेदों, को जोड़नेपर सातगुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका पाँच सौ बारहवाँ भाग हुआ। यह भी पहलेके जोड़से आठ गुना घाट है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर तीन-तीन वर्गस्थानोंके अर्द्धच्छेदोंको जोड़नेपर आठ-आठ गुना घाट होता है।

उतरते-उतरते पल्यकी वर्गशलाकाके आठवें, सातवें, छठे वर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे दो सौ छप्पन गुने, एक सौ अठाईस गुने और चौसठ गुने होते हैं। तीनोंका जोड़ पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे चार सौ अड़तालीस गुना हुआ। तथा

राशित्रितययुतियक्कुं । तदधस्तनपल्यवर्गशलाकापंचमवर्गराश्यर्द्धच्छेदंगळुं चतुर्थवर्ग-राश्यर्द्धच्छेदंगळुं तृतीयवर्गराश्यर्द्धच्छेदंगळुमर्द्धार्द्धक्रमदिनिर्प्पुवल्लि व छे । ८ । ४ । अंतधणं व छे । ८ । ४ । गुणगुणियं व छे ८ । ४ । २ । आदि । व छे ८ । १ । विहीणं । व छे । ८ । ७ । रूऊणुत्तर भजियं । व छे । ८ ७ एंविदु द्वितीयराशित्रितययुतियक्कुं । तदधस्तन-
१

द्वितीयवर्गराश्यर्द्धच्छेदंगळुं तदधस्तनप्रथमवर्गराश्यर्द्धच्छेदंगळुं तदधस्तनवर्गशलाकार्द्धच्छेदं- ५
गळुमर्द्धार्द्धक्रमदि । व छे ८ । २ । निर्प्पुवल्लि । व छे ४ । अंतधणं । व छे ४ । गुणगुणियं । व छे ४ । २ । आदि । व छे । १ । विहीणं । व छे । ७ । रूऊणुत्तरभजियं व छे । १ । एंविदु प्रथमराशित्रययुतियक्कु । मिंती राशियुतिगळुमष्टगुणोन क्रमंगळप्पुवी राशिगळु तिर्प्पंपूर्पदिवमेळेडेयोळु रचियिसल्पडुवुवु । एकेंदोडे पत्तु कोटीकोटिसागरोपममिप्पत्तुकोटीकोटि-सागरोपम । व छे ८ । १ । मूव । व छे २ । त्तु कोटीकोटिसागरोपम । नाल्वत्तु कोटीकोटि- १०
सागरोपममय्वत्तुकोटीकोटिसागरोपम । मेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिगळ संबंधिगळप्प

मिलिताः व छे ८ । ८ । ७ पंचमचतुर्थतृतीयवर्गार्धच्छेदाः व छे ८ । ४ मिलिताः व छे ८ । ७
१ व छे ८ । २ १
व छे ८ । १

द्वितीयप्रथमवर्गयोर्वर्गशलाकानां चार्धछेदाः व छे ४ मिलिताः व छे ७ अमी मिलितराशयः सर्वे समसु
व छे २ १
व छे १

पल्यकी वर्गशलाकाके पाँचवें, चौथे, तीसरे वर्गके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदों-से बत्तीस, सोलह और आठ गुने होते हैं। उन तीनोंका जोड़ पल्यकी वर्गशलाकाके १५
अर्धच्छेदोंसे छप्पन गुणा होता है। वे पूर्व राशिसे आठ गुणे कम हुए। तथा पल्यकी वर्ग-शलाकाके दूसरे वर्ग, पहले वर्ग और वर्गशलाका, इन तीनोंके अर्धच्छेद पल्यकी वर्गशलाका-के अर्धच्छेदोंसे चौगुने, दुगुने और एक गुने हैं। इन तीनोंका जोड़ पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदोंसे सात गुणा होता है। यह भी पूर्वराशिसे आठ गुणा घाट हुआ इस तरह आठ-आठ गुना घाट होता है। २०

पल्यका वर्गमूल प्रथम वर्गमूल जानना। प्रथम वर्गमूलका वर्गमूल दूसरा जानना। दूसरे मूलका वर्गमूल तीसरा जानना। इसी प्रकार चौथा आदि जानना। तथा पल्यकी वर्गशलाकाका वर्ग प्रथम वर्ग जानना। प्रथम वर्गका वर्ग दूसरा वर्ग जानना। उसका वर्ग तीसरा वर्ग जानना। ऐसे ही चौथा आदि वर्ग जानना। सो पल्यके पहले, दूसरे, तीसरे मूल-के अर्धच्छेद जोड़नेपर जो राशि हो उससे लगाकर तीन-तीन स्थानोंके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर २५

---

१. म क्रमदि निप्पुवल्लि व छे । ४ अंत°
व छे । २
व छे । १

२. म मय्वत्तु कोटिकोटिसागरोपममरुवत्तु कोटिकोटिसागरोपमेप्पत्तु ।

नानागुणहानिशलाकेगळं साधिसल्वेडि यितेलेडेयोळु तिर्य्यंप्रभूपंविदंस्थापि। व छे १। सल्पवेडुगुमेंबुदर्त्थमवक्के संदृष्टिरचने इदु।

छे।७	छे।७	छे।७	छे।७	छे।७	छे।७	छे।७
८	८	८	८	८।८	८।८	८।८
छे।७	छे ७	छे ७	छे ७	छे।७	छे।७	छे।७
८।८	८।८	८।८	८।८	८।८	८।८	८।८
छे ७	छे।७	छे।७	छे।७	छे।७	छे।७	छे।७
८।८।८	८।८।८	८।८।८	८।८।८	८।८।८	८।८।८	८।८।८
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०
व छे।७।८।८	वा।छे।७।८।८	वा।छे।७।८।८	व छे।७।८।८	व छे७।८।८	व छे।७।८।८	व छे।७।८।८
व छे।७।८	व छे।७।८	व छे ७।७	व छे ७।८	व छे।७।८	व छे ।७।८	व छे । ७।८
व छे।७	व छे।७	व छे ।७	व छे । ७	व छे ।७	व छे । ७	व छे । ७

इंतु स्थापिसल्पट्ट सप्तपंक्तिगळोळु प्रथमपंक्तिगतराशिगळनष्टगुणोनक्रमदि निर्द्दुवं प्रत्येकं फलराशिगळं माडि मोहनीयोत्कृष्टसप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितियं प्रमाणराशियं माडि पत्तु-। मिप्पत्तु। मूवत्तु। नाल्वत्तु-। मय्वत्तु-। मरुवत्तु-। मेप्पत्तु-। कोटीकोटिसागरोपमंगळमेकैकपंक्तिगळिगच्छाराशिगळं माडि त्रैराशिकंगळं माळ्पुदेंबुदं सूचिसि तल्लब्धराशियं प्रथमपंक्तियोळु पत्तु कोटिकोटिसागरोपमप्रतिबद्धदोळाद्यंतराशिगळं पेळ्दपरु :—

तत्थंतिमं छिदिस्स य अट्ठमभागो सलायछिदा हु।
आदिमरासिपमाणं दसकोडाकोडिपडिबद्धे ॥९३४॥

तत्र चरमछेदराशेरष्टमभागः शलाकाच्छेदाः खल्वाद्यराशिप्रमाणं दशकोटिकोटिप्रतिबद्धे ॥

स्थानेष्वग्रेऽग्रे रचयितव्याः ॥९३३॥

तासु सप्तपंक्तिषु मध्ये प्रथमपंक्तिगतराशीन् प्रत्येकं फलं कृत्वा दशकोटीकोटिसागरोपमाणीच्छां कृत्वा

जो-जो राशि पल्यकी वर्गशलाकाका दूसरा, पहला वर्ग और पल्यकी वर्गशलाका इन तीनोंके अर्धच्छेदोंको जोड़नेपर जो-जो राशि हो वहाँ तक सब जोड़ी हुई असंख्यात राशि जुदे-जुदे सात स्थानोंमें आगे-आगे रचनारूप करना चाहिए ॥९३३॥

उक्त सात पंक्तियोंमें-से पहली पंक्तिमें जो-जो तीन-तीनका जोड़ देनेपर राशि हुई उन सबको जुदा-जुदा फल राशि करो। और सबोंमें दस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण इच्छाराशि करो तथा सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण राशि करो। इस प्रकार त्रैराशिक करके फलराशिको इच्छा राशिसे गुणा करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो-जो प्रमाण हो उन सबको जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतनी दश कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिकी नाना गुणहानि

---

१. म स्थापिसल्पडुगुमेंबुदर्थमवक्के ।

मुन्नं तिर्य्यग्रूपदिंद मेळ्दु स्थानदोळु स्थापिसल्पट्ट पंक्तिगळोळु प्रथमपंक्तियं दशकोटीकोटि-सागरोपमप्रतिबद्धमं माडि तत्प्रथमपंक्तिगतराशिगळं फलराशिगळं माडि प्रतिराशियं पत्तु कोटी-कोटिसागरोपमनिच्छाराशियं माडि गुणिसि सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणराशियिंदं भागिसि बंद लब्धराशिगळोळु चरमराशिप्रमाणं पल्यच्छेदाष्टमभागमक्कुमाद्यराशिप्रमाणं पल्यवर्ग-शलाकार्द्धच्छेदंगळप्पुवल्लि अंतधणं छे । १ गुणगुणियं छे । ८ आदि । व छे । विहीणं । ५
८ ८

छे ८ व छे । रूऊणुत्तरभजिय छे व छे मं दिंतिदु पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिप्रतिबद्धनाना-
७

गुणहानिशलाकेगळप्पुवु । ई नानागुणहानिशलाकेगळान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमेनितक्कुमेंदोडे पेळ्दपेमेतेंदोडे छे व छे ई नानागुणहानिशलाके गळोळिर्द्द ऋणमं तेगदु बेरे स्थापिसल्पडुवुदु
७

व छे शेषराशिप्रमाणमनिदं छे संदृष्टि :—
७ ७

प्र = सा = ७०। को २	फ = छे ७ / ८	इ = सा = १० को २	लब्ध छे । १ / ८
प्र = सा = ७०। को २	फ = छे / ८।८	इ = सा = १०को २	लब्ध छे । १ / ८ । ८
प्र = सा = ७०। को २	फ = छे।७ / ८।८।८	इ = सा = १० को २	लब्ध छे । १ / ८।८।८
०	०	०	०
०	०	०	०
०	०	०	०
प्र = सा = ७०। को २	फ = व छ ।८।८।७	इ = सा = १०। को २	लब्ध व छे । ८।८
प्र = सा = ७०। को २	फ = व छे ।८।७	इ = सा = १०। को २	लब्ध व छे । ८।१
प्र = सा = ७०। को २	फ = व छे ।७	इ = सा = १०। को २	लब्ध व छे । १

संगुण्य ससतिकोटीकोटिसागरोपमप्रमाणेन भक्ते लब्धं चरिमं छे १ गुणिगुणियं छे ८ आदि व छे विहीणं १०
८ ८

छे—व—छे एऊणुत्तरभजियं छे—व—छे इति दशकोटीकोटिसागरोपमस्थितिप्रतिबद्धनानागुणहानिशलाका भवन्ति ।
७

शलाका जानना । उनके जोड़नेका विधान कहते हैं—

'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रके अनुसार पल्यके पहले, दूसरे, तीसरे वर्गमूलके अर्द्धच्छेद मिलकर सात गुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंके आठवें भाग होते हैं। उनको दस कोड़ाकोड़ी सागरसे गुणा करके सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरका भाग देनेपर १५ पल्यके अर्द्धच्छेदोंका आठवाँ भाग हुआ। उसे यहां अन्तधन जानना। चूँकि प्रत्येक जोड़में गुणकार आठ है इससे इसे आठसे गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण होता है। उसमेंसे आदि घटाना चाहिए। सो पल्यकी वर्गशलाकाका दूसरा और पहला वर्ग तथा पल्यकी वर्गशलाका इन तीनोंके अर्द्धच्छेद मिलकर सात गुने पल्यकी

निमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुमेंटरिंदं गुणिसि छे।८ इवरोळेकरूपं तेगवु बेरे स्था-
७।८

पिसि छे १ शेषम छे।७ पर्वात्तितमिदु छे इवक्के :—
७।८ ७।८ ८

भज्जमिद दुगगुण्णठिदरासि मूलाणि हारछिदिपमिदं ।
गंतूण चरिममूलं लद्धमिद दुगाहदो जणिदं ॥

५ एंदितो सूत्रेष्टविदं हारमागिद्दं अष्टरूपुगळद्धंच्छेदंगळु मूरप्पुवु । तावन्मात्र मा पल्यच्छेदंगळगे द्विक संवर्गविदं पुट्टिद राशि पल्यमदर प्रथमादिमूलंगळनिळिदु पुट्टिद राशि पल्यतृतीयमूलमन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमक्कु-। मू ३ । मी राशिगे मुन्नं तेगदिरिसिद धनरूपमिदरोळु छे।१ मोदलु तेगेदिरिसिद वर्गशलाकार्द्धंच्छेदसप्तमभागमनिदं व छे किंचिन्यूनमं माडि
७।८ ७

छे- तन्मात्रद्विकसंवर्गमं माडुत्तं विरलु लब्धराशियुं हारार्द्धंच्छेदमात्रमूलंगळं केळगिळिदु
७।८

१० पुट्टुगुमप्पुदरिंद -१ मसंख्यातगुणपल्यपंचममूलप्रमितमक्कु- मू ५।० मिदु गुणकारमक्कु-मेकेंदोडे :—

विरळिदरासीदो पुण जेत्तिय मेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेत्तिं अण्णोण्णहदी गुणगारो लद्धरासिस्स ॥

एंदितु लब्धराशिगे गुणकारमक्कुमप्पुदरिं पत्तुकोटीकोटिसागरोपम स्थितिप्रतिबद्ध नाना-
१५ गुणहानिशलाकेगळिवक्के छे व छे अन्योन्याभ्यस्तराशियिदंमू ३ मू ५।० । ई गुणकारभूता
७

तथा तन्नानागुणहानिस्थमृणं पृथग्धृत्य व छे शेषं छे संदृष्टयर्थमुपधोऽष्टभिर्हृत्वा छे ८ एकरूपं पृथग्धृत्य छे १
७ ७ ७।८ ७ ८

शेषं छे ७ अपवर्त्य छे तन्मात्रद्विकसंवर्गे हारार्धंच्छेदमात्रवर्गस्थानान्यधोऽवतीर्योत्पन्नराशित्वात्पल्यतृतीयमूलं
७ ८ ८

मू ३ इदं पृथग्धृतवर्गशलाकार्धंच्छेदसप्तमभागमात्रऋणन्यूनापनीतैकरूप छे १—मात्रद्विकसंवर्गेणासंख्यातपल्य-
७।८

वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेद हुए। उनको दस कोड़ाकोड़ी सागरसे गुणा करके सत्तर कोड़ाकोड़ी
२० सागरसे भाग देनेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेद प्रमाण होता है वही आदिधन जानना। इसके घटानेपर जो अवशेष रहा उसको गुणकार आठमें एक घटानेपर सात रहे उसका भाग दो, तब पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग प्रमाण हुआ। यही दस कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति सम्बन्धी नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना। इतने प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त-
२५ राशि होती है। उसका प्रमाण लानेके लिए उस नानागुणहानिमें ऋणरूप पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग कहा था उसे जुदा रखनेपर शेष पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग रहा। उसकी सहनानी (चिह्न) के लिए आठका गुणा करो और आठ ही से भाग दो।

संख्यात पंचमूलंगळं गुणकारमनसंख्यातमें बु पल्यतृतीयमूलक्के गुणकारमनाचाय्यं माडि रचनेयोळ्वरदं । मू ३ ० । ई प्रकारदिंदं शेषषट् पंक्तिगळ्गेयु मरियल्पडुगुमल्लि द्वितीयपंक्तियनिप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपम स्थितिप्रतिबद्धमं माडि तृतीयपंक्तियंत्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिप्रतिबद्धमं माडि चतुर्थपंक्तियं चत्वारिंशत्सागरोपम कोटीकोटिस्थिति प्रतिबद्धमं माडि पंचमपंक्तियं पंचाशत्सागरोपम कोटीकोटिस्थितिप्रतिबद्धमं माडि षष्ठपंक्तियं षष्टिसागरोपमकोटीकोटि स्थितिप्रतिबद्धमं माडि सप्तमपंक्तियं सप्ततिसागरोपमकोटीकोटिस्थितिप्रतिबद्धमं माडि त्रैराशिकसिद्धलब्धैकैकपंक्तिगळं तत्तत्स्थितिनानागुणहानिशलाकापंक्तिगळु मन्योन्याभ्यस्तराशिगळप्प तत्तन्मूलंगळुमप्पुवें बु मुंबण सूत्रंगळिंदं व्याप्तिरूपदिंदं पेळ्दपरु :—

इगिपंतिगदं पुध पुध अप्पिट्ठेण य हदे हवे णियमा ।
अप्पिट्ठस्स य पंति णाणागुणहाणिपडिबद्धा ॥९३५॥

एकपंक्तिगतं पृथक्पृथगात्मेष्टेन च हते भवेन्नियमात् । आत्मेष्टस्य च पंक्तिर्नानागुणहानिप्रतिबद्धा ॥

आ सप्तपंक्तिगळोळेक पंक्तिगत प्रथमपंक्तिगतराशिगळ दशकोटीकोटिसागरोपमस्थिति-

---

पंचमूलमात्रेण मू ५ ० असंख्यातीकृतेन ० विरलितराश्यधिकरूपोत्पन्नत्वाद् गुणितं तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् मू ३ ० ॥९३४॥ अथ विंशतिकोटीकोटिसागरोपमादिस्थितिकानां नानागुणहानिशलाकान्योन्याभ्यस्तराशी आह—

तासु शेषषट्पंक्तिष्वेकैकपंक्तिगतं सर्वं पृथक् फलराशिं कृत्वा तत्र प्रथमपंक्तिगतं आत्मेष्टेन विंशति-

---

सो गुणकारमें-से एक घटाकर उसे जुदा रखो शेष सातका गुणाकार रहा और पहले सातका भागहार था। सो दोनोंको समान जानकर अपवर्तन करनेपर दोनों ही नहीं रहे। ऐसा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंका आठवाँ भाग हुआ। इतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यका तीसरा वर्गमूल हुआ। क्योंकि भागहारके जितने अर्द्धच्छेद होते हैं उतने वर्गस्थान भाज्यराशिसे नीचे जानेपर उत्पन्न राशिका प्रमाण होता है। सो यहाँ भागहार आठ है उसके अर्द्धच्छेद तीन हुए। सो पल्यसे नीचे तीसरा वर्गस्थान पल्यका तीसरा वर्गमूल है। तथा जो गुणकारमें-से एक जुदा रखा था वह पल्यका छप्पनवाँ भाग गुणकार था इससे पल्यका छप्पनवाँ भाग प्रमाण रहा। उसमें ऋणरूप पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग घटानेपर जो शेष रहे उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर असंख्यात गुणा पल्यका पाँचवाँ वर्गमूलमात्र असंख्यातका प्रमाण हुआ।

'विरलिदरासीदो पुण' इत्यादि सूत्रके अनुसार अधिक राशिको परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि होती है वह गुणकार रूप होती है। अतः उस असंख्यातसे पल्यके तीसरे वर्गमूलको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना दस कोड़ाकोड़ीकी अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना ॥९३४॥

आगे बीस कोड़ाकोड़ी आदि स्थितिकी नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्त राशि कहते हैं—

जैसे दस कोड़ाकोड़ी सागरकी प्रथम पंक्तिमें सब तीन-तीन स्थानोंकी जोड़रूप राशि-

यिदेंतु गुणिसिदंते शेष षट्पंक्तिगळ राशिगळं वेरे बेरे तन्निष्टविंद विंशतिसागरोपमकोटीकोट्या-दिस्थितिविकल्पंगळिंदं गुणिसि सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमस्थितिइंदं भागिसुत्तं विरलु बंद लब्धंगळु विंशतिकोटीकोटिसागरोपमादिस्थितिप्रतिबद्धनानागुणहानिशलाकापंक्तिगळप्पुवु। आ राशि-पंक्तिगळगे संदृष्टिरचने इदु :—

प्र=सा=७० को २	फल छे ७ / ८	इ सा=२० को २	लब्ध छे। २ / ८
प्र=सा=७० को २	फल छे। ७ / ८।८	इ सा = २० को २	लब्ध छे। २ / ८।८
प्र=सा=७० को २	फल छे। ७ / ८।८।८	इ सा = २० को २	लब्ध छे। २ / ८।८।८
० / ०	० / ०	० / ०	० / ०
प्र=सा=७० को २	फल व छे ७।८।८	इ सा=२० को २	लब्ध व छे। / ८।८।२
प्र=सा=७० को २	फल व छे ७।८	इ सा=२० को २	लब्ध व छे। / ८।२
प्र=सा=७० को २	फल व छे। ७	इ सा = २० को २	लब्ध व छे। २।

५ कोटीकोटिसागरोपमैः, द्वितीयपंक्तिगतं त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमैः तृतीयपंक्तिगतं चत्वारिंशत्कोटीकोटिसाग-रोपमैः चतुर्थपंक्तिगतं पंचाशत्कोटीकोटिसागरोपमैः, पंचमपंक्तिगतं षष्टिकोटाकोटिसागरोपमैः, षष्टपंक्तिगतं सप्ततिकोटाकोटिसागरोपमइच्छाराशीनां गुणयित्वा सर्वत्र सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमैः प्रमाणराशिना भक्त्वा लब्धानि आत्मेष्टस्य विंशतिकोटीकोटिसागरोपमादेः प्रतिबद्धा नानागुणहानिशलाकापंक्तयो भवन्ति ॥९३५॥

को जुदा-जुदा फलराशि किया था वैसे ही शेष छह पंक्तियोंमें फलराशि करो। प्रथम पंक्तिमें
१० इच्छाराशि दस कोड़ाकोड़ी सागर कहा था और उस इच्छाराशिसे फलराशिको गुणा किया था। यहाँ छह पंक्तियोंमें-से अपने-अपने इष्टरूप प्रथम पंक्तिमें बीस कोड़ाकोड़ी सागर, दूसरी पंक्तिमें तीस कोड़ाकोड़ी सागर, तीसरी पंक्तिमें चालीस कोड़ाकोड़ी सागर, चौथी पंक्तिमें पचास कोड़ाकोड़ी सागर, पाँचवीं पंक्तिमें साठ कोड़ाकोड़ी सागर, छठी पंक्तिमें सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण इच्छाराशि रखकर गुणा करो। तथा जैसे प्रथम पंक्तिमें प्रमाण
१५ राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरका भाग दिया था वैसे ही यहाँ भी सर्वत्र प्रमाण राशि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरका भाग दो। ऐसा करनेसे जो-जो प्रमाण आवे वह-वह अपनी इष्ट बीस कोड़ाकोड़ी सागर आदि स्थिति सम्बन्धी नानागुणहानि शलाका होती है ॥९३५॥

प्र=सा=७० को २	फल छे । ७ / ८	इ सा = ३० को २	लब्ध छे । ३ / ८
प्र=सा=७० को २	फल छे । ७ / ८ । ८	इ सा = ३० को २	लब्ध छे । ३ / ८ । ८
प्र=सा=७० को २	फल छे । ७ / ८ । ८ । ८	इ सा = ३० को २	लब्ध छे । ३ / ८ । ८ । ८
० / ०	० / ०	० / ०	० / ०
प्र=सा=७० को २	फल व छे । ७ । ८ । ८	इ सा = ३० को २	लब्ध व छे । / ८ । ८ । ३
प्र=सा=७० को २	फल व छे । ७ । ८	इ सा = ३० को २	लब्ध व छे । / ८ । ३
प्र=सा=७० को २	फल व छे । ७ ।	इ सा = ३० को २	लब्ध व छे । ३

प्र । सा ७० । को २	फ । छे ७ / ८	इ । सा २० को २	ल । छे २ / ८
प्र । सा ७० । को २	फ । छे ७ / ८ । ८	इ । सा २० को २	ल । छे २ / ८ । ८
प्र । सा ७० । को २	फ । छे ७ / ८ । ८ । ८	इ । सा २० को २	ल । छे २ / ८ । ८ । ८
• / ० / ०	० / ० / ०	० / ० / •	० / ० / ०
प्र । सा ७० । को २	फ । व छे ७ / ८ । ८	इ । सा २० को २	ल । व छे / ८ । ८ । २
प्र । सा ७० । को २	फ । व छे / ७ । ८	इ । सा २० को २	ल । व छे / ८ । २
प्र । सा ७० । को २	फ व छे ७	इ । सा २० को २	ल । व छे २

प्र = सा = ७० को २	फल । छे । ७ / ८	इ सा = ४० को २	लब्ध छे । ४ / ८
प्र = सा = ७० को २	फल । छे । ७ / ८ । ८	इ सा = ४० को २	लब्ध छे । ४ / ८ । ८
प्र = सा = ७० को २	फल । छे । ७ / ८ । ८	इ सा = ४० को २	लब्ध छे । ४ / ८ । ८ । ८
० / ०	० / ०	० / ०	० / ०
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८ । ८	इ सा = ४० को २	लब्ध व छे । / ८ । ८ । ४
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८	इ सा = ४० को २	लब्ध व छे । / ८ । ४
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । ७	इ सा = ४० को २	लब्ध व छे । ४

प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८	इ । सा ३० को २	ल । छे ३ / ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ७	इ । सा ३० को २	ल । छे ३ / ८ । ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ८ । ८	इ । सा ३० को २	ल । छे ३ / ८ । ८ । ८
० / ० / ०	० / ० / ०	० / ० / ०	० / ० / ०
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७ / ८ । ८	इ । सा ३० को २	ल । व छे / ८ । ८ । ३
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७ । ८	इ । सा ३० को २	ल । व छे / ८ । ३
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७	इ । सा ३० को २	ल । व छे ३

प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८	इ सा = ५० को २	लब्ध छे । ५ / ८
प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८ । ८	इ सा = ५० को २ / ,,	लब्ध छे । ५ / ८ । ८
प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८ । ८ । ८	इ सा = ५० को २	लब्ध छे । ५ / ८ । ८ । ८
← ० / ०	० / ०	• / ०	० / ०
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८ । ८	इ सा = ५० को २	लब्ध व छे । / ८ । ८ । ५
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८	इ सा = ५० को २	लब्ध व छे । / ८ । ५
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । ७	इ सा = ५० को २	लब्ध व छे । ५

प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८	इ । सा ४० को २	ल । छे ४ / ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ८	इ । सा ४० को २	ल । छे ४ / ८ । ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ८ । ८	इ । सा ४० को २	ल । छे ४ / ८ । ८ । ८
⋮	⋮	⋮	⋮ →
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७ । ८ । ८	इ । सा ४० को २	ल । व छे / ८ । ८ । ४
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७ । ८	इ । सा ४० को २	ल । व छे / ८ । ४
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७	इ । सा ४० को २	ल । व छे ४

प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८	इ सा = ६० को २	लब्ध छे । ६ / ८
प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८ । ८	इ सा = ६० को २	लब्ध छे । ६ / ८ । ८
प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८ । ८ । ८	इ सा = ६० को २	लब्ध छे । ६ / ८ । ८ । ८
० / ०	० / ०	० / ०	० / ०
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८ । ८	इ सा = ६० को २	लब्ध व छे । / ८ । ८ । ६
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८	इ सा = ६० को २	लब्ध व छे । / ८ । ६
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । ७	इ सा = ६० को २	लब्ध व छे । ६

प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८	इ । सा ५० को २	ल । छे ५ / ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ८	इ । सा ५० को २	ल । छे ५ / ८ । ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ८ । ८	इ । सा ५० को २	ल । छे ५ / ८ । ८ । ८
० / ० / ०	० / ० / ०	० / ० / ०	० / ० / ०
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७ । ८ । ८	इ । सा ५० को २	ल । व छे / ८ । ८ । ५
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७ । ८	इ । सा ५० को २	ल । व छे / ८ । ५
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७	इ । सा ५० को २	ल । व छे ५

प्र = सा = ७० को २	फल छे ७ / ८	इ सा = ७० को २	लब्ध छे । ७ / ८
प्र = सा = ७० को २	फल छे ७ / ८।८	इ सा = ७० को २	लब्ध छे । ७ / ८।८
प्र = सा = ७० को २	फल छे । ७ / ८।८।८	इ सा = ७० को २	लब्ध छे । ७ / ८।८।८
← ० ०	० ०	० ०	० ०
प्र = सा = ७० को २	फल व छे ७ । / ८ । ८	इ सा = ७० को २	लब्ध व छे ८ । / ८ । ७
प्र = सा = ७० को २	फल व छे । / ७ । ८	इ सा = ७० को २	लब्ध व छे । / ८ । ७
प्र = सा = ७० को २	फल व छे ७	इ सा = ७० को २	लब्ध व छे ७

प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८	इ । सा ६० को २	ल । छे ६ / ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८ । ८	इ । सा ६० को २	ल । छे ६ / ८।८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ / ८।८।८	इ । सा ६० को २	ल । छे ६ / ८ । ८ । ८
० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ० →
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७।८।८	इ । सा ६० को २	ल । व छे / ८। ८ । ६
प्र । सा ७० को २	फ । व छे / ७ । ८	इ । सा ६० को २	ल । व छे / ८ । ६
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७	इ । सा ६० को २	ल । व छे ६

अप्पिट्ठपंतिचरमो जेत्तियमेत्ताणि वग्गमूलाणं ।
छेदणिवहोत्ति णिहाणिय सेसं च य मेलिदे इट्ठा ॥९३६॥

आत्मेष्टपंक्तिचरमो यावन्मात्राणां वर्गमूलानां । छेदनिवहः इति निर्द्धार्य्यं शेषांश्च मिलिते इष्टाः स्युः ॥

ई पंक्तिगळोळिष्टपंक्तिय चरमलब्धमेनितनेय मूलंगळ छेदनिवहमंदु निर्द्धारिसि संकलिसुत्तं विरलु इष्ट नानागुणहानियक्कुमेंदोडो रचनयोळिप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपम प्रतिबद्धपंक्तियोळु अंतधणं छे २ गुणगुणियं छे । २ । ८ आवि । व छे । २ । विहीणं छे २ । रूऊणुत्तरभजियं
८ ८

प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ ८	इ । सा ७० को २	ल । छे ७ ८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ ८।८	इ । सा ७० को २	ल । छे ७ ८।८
प्र । सा ७० को २	फ । छे ७ ८।८।८	इ । सा ७० को २	ल । छे ७ ८।८।८
← ० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७।८।८	इ । सा ७० को २	ल । व छे ८।८।७
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७।८	इ । सा ७० को २	ल । व छे ८।७
प्र । सा ७० को २	फ । व छे ७	इ । सा ७० को २	ल । व छे ७

निजेष्टपंक्तेश्चरमलब्धं यावत् वर्गमूलानां छेदनिवह इति निधार्य संकलिते इष्टस्य नानागुणहानिः स्यात् । तद्यथा—विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणां लब्धपंक्तौ अन्तधनं छे २ गुणगुणियं छे २ । ८ आदि व छे
८ ८

अपनी-अपनी इष्ट पंक्तिमें अन्तिम स्थानपर्यन्त जितने स्थान हों उतने वर्गमूलोंके अर्द्धच्छेदोंके समूहको निर्धारित करके सबके मिलानेपर अपने-अपने विवक्षित इष्टकी नाना-गुणहानि होती है। मिलानेका विधान दस कोड़ाकोड़ी सागर सम्बन्धी पंक्तिमें जैसा कहा वैसा ही जानना। इतना विशेष है कि दस कोड़ाकोड़ी सागर सम्बन्धी पंक्तिमें जो अन्तधन और आदिका प्रमाण कहा है यहाँ इन छहों पंक्तियोंमें क्रमसे दूना, तिगुना, चौगुना, पाँच-गुना, छहगुना और सातगुना जानना। क्योंकि इच्छाराशिके दुगुना, तिगुना आदि होनेपर सब ही दुगुने, तिगुने आदि होते हैं।

सो बीस कोड़ाकोड़ी सागर सम्बन्धी पंक्तिमें अन्तधन पल्यके अर्द्धच्छेदोंके चतुर्थ भाग है। उसको गुणकार आठसे गुणा करनेपर पल्यके अर्द्धच्छेदोंसे दूना हुआ। उसमें आदिका प्रमाण—पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे चौदह गुणा घटाओ। यह प्रमाण किंचित् कम करना। फिर उसे एक हीन गुणकार सातका भाग दो। ऐसा करनेपर किंचित् कम दूना

छे २ इवं संदृष्टिनिमित्तं केळगेयुं मेगेयुमेंटरिदं गुणिसि छे २८ एकरूपं तेगदु बेरे स्थापिसि
७ ७।८
छे २।१। शेषमपवर्त्तितमिदु। छे। ई राशि नानागुणहानिशलाकेगळप्पुदरिं विरळिसि द्विक-
७।८ ४
मनित्तु वर्गितसंवर्गं माडुत्तिरलु पल्यद्वितीयमूलमक्कु। मू २। मिदक्के बेरे स्थापिसिदेकरूपमिदं
छे।२।१ विरळिसि द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडिदोडे लब्धं तद्योग्यासंख्यातमक्कु अ मदु
७।८
पूर्व्वोक्तपल्यद्वितीयमूलक्के गुणकारमक्कु। मू २। अ। मिदु विंशति कोटीकोटिसागरोपमस्थिति- ५
प्रतिबद्धान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमक्कुं। त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिनानागुणहानिशलाका-
पंक्तियोळु अंतधणं छे ३ गुणगुणियं छे। ३।८ आदि। व छे ३। विहीणं। छे ३। रूऊणुत्तर
८ ८
भजियं छे ३ यें दितिदु नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवु। इदं मुन्निनंते संदृष्टिनिमित्तमेंटरिदं मेलेयुं
७
केळगेयुं गुणिसि छे ३।८ एकरूपं तेगदु बेरे स्थापिसि छे ३-१ शेषननिदं छे ३।८ अपवर्त्ति-
७।८ ७।८ ७।८

---

२ विहीणं छे-२ रूउणुत्तरभजियमिति संकलितायां नानागुणहानिराशिः स्यात् छे-२ तं च संदृष्टयर्थमुपर्यधोऽ- १०
७
ष्टभिः संगुण्य छे-२।८ एकरूपं पृथग्धृत्या छे-२।१ पवर्त्य छे-तन्मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यद्वितीयमूलं मू-२
७।८ ७।८ ४
पृथग्धृतैकरूप छे-२।१ मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नतद्योग्यासंख्यातेन गुणितं मू-२। अ तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात्।
७।८
त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणां लब्धपंक्तौ प्राग्वत्संकलितायां छे। ३ नानागुणहानिराशिः स्यात्। तं च
७
संदृष्टयर्थमुपर्यधोऽष्टभिः संगुण्य छे-।३।८ एकरूपं पृथग्धृत्य छे-।३।१ शेष छे-।३।८ मपवर्त्य
७ ।८ ७ ।८ ७ ।८

पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग प्रमाण जोड़ हुआ। इतनी नानागुणहानि जानना। इस १५
प्रमाणको पूर्वोक्त प्रकार आठसे गुणा करके आठका ही भाग दो। सो गुणकारमें एक जुदा रखकर शेष सात गुणकार रहा। पहले सातका भागहार था। दोनोंके समान होनेसे सातसे सातका अपवर्तन करो। शेष किंचित् कम पल्यके अर्द्धच्छेदोंका चतुर्थ भाग रहा। इतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर किंचित् कम पल्यका दूसरा मूल हुआ। तथा जो एक गुणकार जुदा रखा था वह किंचित् कम दूना पल्यके अर्द्धच्छेदोंके छप्पनवाँ भागका गुणकार २०
था। अतः उतने प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर यथायोग्य असंख्यात हुआ। उससे गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण असंख्यात गुणित किंचित् कम पल्यका दूसरा वर्गमूल हुआ।

तीस कोड़ाकोड़ी सागर सम्बन्धी पंक्तिमें पूर्वोक्त प्रकारसे जोड़ देनेपर कुछ कम तिगुने पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग होता है। इतनी नानागुणहानि राशि है। उसको आठसे २५
गुणा करके आठसे भाग दो। गुणकारमें-से एक जुदा रख शेष सातका गुणकार रहा। पहले

सिवोडिदु छे ३ यिदं विरळिसि द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडिदोडे लब्धमन्योन्याभ्यस्तराशिपल्य-
८
तृतीयमूलमात्रद्वितीयमूलंगळप्पु । मू २ । मू ३ । वें तें दोडे गुणकारभूतत्रिरूपदोलोंदुरूपिंगे तृतीय-
मूलमक्कुं । शेषद्विरूपंगळिगे द्वितीयमूलमक्कुमप्पुदरिंद बेरे तेगेदेकरूपंधनमप्पुदरिं छे ३ । १
७ । ८
तावन्मात्रद्विकसंवर्गं माडिदोडे लब्धराशियुं यथायोग्यमसंख्यातमक्कुमदुवुं तृतीयमूलक्के गुणकार-
मक्कु । मू २ । मू ३ ० । मिदु त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे अन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुं ।
चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिनानागुणहानिपंक्तियोळु अंतधणं छे ४ गुणगुणियं छे ४ । ८
८ ८
अपवर्त्तितमिदु । छे ४ । आदि । व छे ४ । विहीणं । छे ४ । रूऊणुत्तरभजिय छे ४ मे विदु
७
चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिनानागुणहानिशलाकेगळप्पुवु । यिदं मुन्निनंते संदृष्टिनिमित्तं
केळगेयु मेगेयुमेर्टरिंदं गुणिसि छे ४ । ८ गुणकारदोळेकरूपं तेगदु बेरिरिसि छे ४ । १ शेषबहु-
७ । ८ ७ । ८

---

१० छे–३ अत्रत्यगुणकारस्यैकरूपमात्रद्विकाहत्युत्पन्नपल्यतृतीयमूलहृतद्विरूपमात्र द्विकाहत्युत्पन्नद्वितीयमूलं मू । २ मू ।
८
३ । पृथग्कृतैकरूप छे– । ३ । १ मात्रद्विकाहत्युत्पन्नतद्योग्यासंख्यातेन गुणितं मू । २ । मू । ३ । ० तदन्यो-
७ । ८
न्याभ्यस्तराशिः स्यात् ।

चत्वारिंशत्कोटाकोटिसागरोपमाणां लब्धपंक्तौ प्राग्वत्संकलितायां छे–४ नानागुणहानिराशिः स्यात् ।
७

सातका भागहार था । दोनोंका अपवर्तन करनेपर किंचित् कम तिगुना पल्यके अर्द्धच्छेदोंका
१५ आठवाँ भाग हुआ । तिगुनामें-से एक गुणा प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यका तीसरा मूल हुआ । और शेष दो गुणा प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यका दूसरा मूल हुआ । इन दोनोंका परस्परमें गुणा करनेपर पल्यके तीसरे वर्गमूलसे गुणित पल्यका दूसरा वर्गमूल प्रमाण हुआ । उसमें किंचित् कम करना । एक गुणकार जुदा रखा था वह किंचित् कम तिगुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका छप्पनवाँ भागका गुणकार था । अतः
२० उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर यथायोग्य असंख्यात हुआ । उससे गुणा करनेपर असंख्यात गुणित किंचित् कम पल्यके तीसरे मूलसे गुणित पल्यके दूसरे वर्गमूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है ।

चालीस कोड़ाकोड़ी सागर सम्बन्धी पंक्तिमें पूर्वोक्त प्रकार जोड़ देनेपर किंचित् कम चौगुना पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग होता है । इतनी नानागुणहानि राशि जानना ।
२५ इसको आठसे गुणा करके आठसे भाग दें । गुणकारमें-से एक जुदा रखनेपर सातका गुणकार

---

१. चत्वारिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणामपि तत्पंक्तौ अन्तधणं गुणगुणियं छे ४ । ८ अपवर्त्य छे ४ आदि व
८
छे ४ विहीणं छे–४ रूऊणुत्तरभजियमिति छे–४ नानागुणहानिप्रमाणं स्यात् । इयानधिकः पाठः ।
७ ७

भागमनिदं छे ४।७ अपवर्त्तिसिदोडिदु छे एतावन्मात्रद्विकंगळं वर्गितसंवर्गं माडिदोडे लब्ध-
७।८ २
राशिपल्यप्रथममूलमक्कु। मू १। मिदक्के मुन्नं तेगेदिरिसिद धनरूपमिदक्कं छे ४।१ द्विकसंवर्गमं
७।८
माडि लब्धराशियुं तद्योग्यासंख्यातमक्कुमदुगुणकारमक्कु। मू १।अ। मिदु चत्वारिंशत्कोटी-
कोटिसागरोपमस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुं। मत्तं पंचाशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिनाना-
गुणहानिपंक्तियोळु अंतधणं छे ५ गुणगुणियं छे ५।८ आदि। व छे ५। विहीणं। छे ५-। ५
८ ८
रूऊणुत्तरभजियं छे ५- यिल्लियुं संदृष्टिनिमित्तं केळगेयुं मेगेयुमंटरिं गुणिसि छे ५।८ गुण-
७ ७।८
कारदोळों दु रूपं तेगदु बेरिरिसि छे ५।१ शेषमनिदं छे ५।७ अपवर्त्तिसिदुदं छे ५ विरळिसि
७।८ ७।८ ८
द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडिदोडे लब्धराशिप्रमाणं पल्यतृतीयमूलमात्रपल्यप्रथममूलंगळप्पु-

---

तं च संदृष्टयर्थमुपर्यधोऽष्टभिः संगुण्य छे-४। ८ एकरूपं पृथग्धृत्वा छे- ।४।१ शेष छे-४।७ मपवर्त्य
७।८ ७ ।८ ७।८
छे-तन्मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यप्रथममूलं मू-१ पृथग्धृतैकरूपमात्रद्विकसंववर्गोत्पन्नतद्योग्यासंख्यातेन गुणितं १०
२
मू-१।अ तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात्।

पंचाशत्कोटीकोटिसागरोपमाणां लब्धपंक्तौ प्राग्वत्संकलितायां छे-५ नानागुणहानिराशिः स्यात्।
७
तं च संदृष्टयर्थमुपर्यधोऽष्टभिः संगुण्य छे-५।८ एकरूपं पृथग्धृत्वा छे-५। शेष छे-५ ७ मपवर्त्य छे-५
८।८ ७।८ ७।८ ८

रहा। और पहले सातका भागहार था। दोनोंका अपवर्तन करनेपर किंचित् कम पल्यके अर्द्धच्छेदोंसे आधे रहे। इतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर कुछ कम पल्यका १५ प्रथम वर्गमूल हुआ। जो एक जुदा गुणकार रखा था सो वह किंचित् कम चौगुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका छप्पनवाँ भागका गुणकार था। अतः उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर यथायोग्य असंख्यात हुआ। उससे गुणा करनेपर असंख्यात गुना किंचित् कम पल्यके प्रथम मूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है।

पचास कोड़ाकोड़ी सागर सम्बन्धी पंक्तिमें पूर्वोक्त प्रकारसे जोड़नेपर किंचित् कम २० पाँच गुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग होता है। इतनी नाना गुणहानि राशि जानना। उसे आठसे गुणा करके आठसे भाग दें। गुणकारमें-से एक जुदा रखकर शेष सातका गुणकार रहा और पहले सातका भागहार था। सो दोनोंका अपवर्तन करनेपर किंचित् कम पाँच गुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका आठवाँ भाग प्रमाण हुआ। यहाँ पाँच गुणा कहा है उसमें-से एक

---

१. पंचाशत्कोटीकोटिसागरोपमाणां तत्पंक्तौ अन्तधणं छे ५ गुणगुणियं छे।५।८ आदि व छे ५ विहीणं २५
८ ८
छे-५ रूऊणुत्तरभजियमिति छे-५। पाठोऽधिकः।
८

बेंतेंबोडे गुणकारभूतपंचरूपंगळोळेकरूपं तेगदडक्के द्विकमनितु संवर्गं माडिदोडे पल्यतृतीयमूलं गुणकारमक्कुं। शेषमं नाल्कुरूपुगळनेंटरोडनपवर्त्तिसिदोडे पल्यच्छेदार्द्धमक्कुमदक्के द्विकसंवर्गं माडिदोडे लब्धराशिपल्यप्रथममूलं गुण्यमक्कुमेंबुदत्थं। मुन्नं तेगेदिरिसिदेकरूपिंगे छे ५१ द्विक-
७।८

संवर्गमं माडुत्तं विरलु यथायोग्यासंख्यातं तृतीयमूलक्के गुणकारमक्कु । मू १ । मू ३ अ । मिदु पंचाशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे अन्योन्याभ्यस्तराशिप्रक्कुं। मत्तं षष्ठिसागरोपमकोटीकोटि-स्थितिनानागुणहानिपंक्तियोळु अंतधणं छे ६ गुणगुणियं छे ६ आदि। व छे। ६। विहीणं।
८ ८

। छे ६ रूऊणुत्तरभजियं छे ६ एंदिदु षष्टिसागरोपमकोटीकोटिस्थितिनानागुणहानिराशि
७

प्रमाणमक्कु । मिदं मुन्निनंते संदृष्टिनिमित्तमागि केळगेयुं मेगेयुमेंटरिंदं गुणिसि छे ६ । ८ गुणकार-
७।८

दोळेकरूपं तेगदु बेरिरिसि छे ६ । १ शेषबहुभागमनपवर्त्तिसिदोडिदु छे ३ एतावन्मात्रद्विक-
७।८ ४

---

१० अत्रत्यगुणकारस्यैकरूपमात्रद्विकाहृत्युत्पन्नपल्यतृतीयमूलहृतशेषरूपमात्रद्विकाहृत्युत्पन्नप्रथममूलं पृथक्कृतैरूपो छे । ५ । १ त्पन्नासंख्यातेन गुणितं मू १ । मू ३ । अ तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् ।
७।८

षष्टिकोटाकोटीसागरोपमलब्धपंक्तौ प्राग्वत्संकलितायां छे–६ नानागुणहानिराशिः स्यात् तं च
७

संदृष्ट्यर्थमुपर्यधोऽष्टभिः संगुण्य छे–६ । ८ एकरूपं पृथग्धृत्य छे–६ । १ शेषमपवर्त्य छे–३ तन्मात्रद्विकाहृत्यु-
७।८ ७।८ ४

गुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंके आठवें भाग प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यका तीसरा मूल होता है। शेष रहा चार गुणा। उतने प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्यका प्रथम मूल होता है। दोनोंको परस्परमें गुणा करनेपर जो राशि हो उसको—जो एक गुणकार जुदा रखा था वह किंचित् कम पाँच गुणे पल्यके अर्द्धच्छेदोंके छप्पनवाँ भागका गुणकार था। उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर असंख्यात होता है—उससे गुणा करें। तब असंख्यात गुणित किंचित् कम पल्यके तीसरे वर्गमूलसे गुणित पल्यके प्रथम मूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है।

साठ कोड़ाकोड़ी स्थिति सम्बन्धी पंक्तिमें पूर्वोक्त प्रकारसे जोड़नेपर किंचित् कम छह गुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंका सातवाँ भाग होता है। सो इतनी नाना गुणहानि जानना। उसे आठसे गुणा करके आठसे भाग दें। गुणकारमें-से एक जुदा रख शेष सातका गुणकार रहा। पहले सातका भागहार था। दोनोंका अपवर्तन करनेपर किंचित् कम तिगुणा पल्यके

---

१. पुनः सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणां तत्पंक्तौ छे ७ गुणगुणियं छे ७ । ८ अपवर्त्य छे ७ आदि व छे ७
८ ८

विहीणं छे ७– । व छे ७ रूऊणुत्तरभजियं छे ७–व छे ७ अपवर्त्य छे–व–छे । अधिकः पाठः ।
७ ७

संवर्गं माडिदोडे लब्धराशि पल्यद्वितीयमूलमात्रप्रथममूलंगळप्पुवु । मू १ । मू २ । बेरे तेगेदिरिसिद धनरूपं विरळिसि छे ६ । १ द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडिदोडे
७।८
लब्धराशि यथायोग्यासंख्यातमक्कुमदु द्वितीयमूलक्के गुणकारमक्कु । मू १ । मू २ । a । मिदु षष्टिसागरोपमकोटीकोटिस्थितिगन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणमक्कुं । मत्तं सप्ततिकोटीकोटि सागरोपमस्थितिनानागुणहानिपंक्तियोळु अंतधणं छे ७ गुणगुणियं छे ७ । ८ अपवर्तित-
८ ८
मिदु । छे ७ । आदि । व छे । ७ । विहीण मेंदिदसंख्यातगुणहीनराशियप्पुदरिंदं गुणकारक्के गुणकारमेळुरूपं तोरि किंचिन्न्यूनमं माडिदोडिदु । छे ७ । रूऊणुत्तरभजियं छे ७ अपवर्तितमिदु ।
७
छे । इदक्के द्विकसंवर्गमं माडुत्तं विरलु लब्धं पल्यमक्कु । मा विरलनराशिय रुणं पल्यवर्गशलाकार्द्धच्छेदंगळिनितप्पुदरिंदं व छे ७ अपवर्तितमिदक्के । व छे । द्विकसंवर्गं माडिद लब्धराशि
७
पल्यवर्गशलाकामात्रमक्कुमदु पल्यक्के हारमक्कु प मिदेप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितिगन्यो-
व

तन्नपल्यद्वितीयमूलमात्रप्रथममूलं मू १ । मू २ पृथग्घृतैकरूपमात्र छे—६ । १ द्विकाहत्युत्पन्नासंख्यातेन a ।
७।८
गुणितं मू १ । मू २ । a तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् ।

संसातिकोटीकोटिसागरोपमलब्धपंक्तौ प्राग्वत्संकलितायां छे—व—छे नानागुणहानिशलाकाराशिः स्यात् । अत्रत्य-छेदमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यं तदूणमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नतद्वर्गे शलाकाराशिना हीनरूपत्वाद्भक्तं प
व

अर्द्धच्छेदोंका चौथा भाग हुआ। इतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर किंचित् कम पल्यके द्वितीय मूलसे गुणित पल्यके प्रथम मूल प्रमाण होता है। जो एक गुणकार जुदा रखा था वह किंचित् कम छह गुणा पल्यके अर्द्धच्छेदोंके छप्पनवाँ भागका गुणकार था। अतः उतने दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर असंख्यात हुआ। उससे गुणा करनेपर असंख्यातगुणा किंचित् न्यून पल्यके द्वितीय मूलसे गुणित प्रथममूल प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है।

सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति सम्बन्धी पंक्तिमें पूर्ववत् जोड़नेपर पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण नाना गुणहानि जानना। पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर पल्य होता है। 'विरलिद रासीदो पुण' इत्यादि सूत्रके अनुसार जितने हीनरूप थे उन प्रमाण परस्परमें गुणा करनेसे जो राशि होती है वह उत्पन्न राशिका भागहार होती है। अतः पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेद प्रमाण

---

१. पुनः षष्टिकोटाकोटिसागरोपमाणां तत्पंक्तौ अन्तधणं छे—६ गुणगुणियं छे—६ । ८ आदि व छे—६ विहीणं
८ ८
छे—६ रूऊणुत्तरभजियमिति छे—६ नानागुणहानिप्रमाणं । इत्यधिकः पाठः ।
७

न्याभ्यस्तराशि प्रमाणमक्कुं। समुच्चयसंदृष्टि :—

नाना = छेवछे। ७	अन्योन्या मू ३ अ	सा १० को २
नाना = छे। २ ७	अन्योन्या मू २ अ	सा २० को २
नाना = छे। ३ ७	अन्योन्या मू २ अ	सा ३० को २
नाना = छे। ४ ७	अन्योन्या मू १ अ	सा ४० को २
नाना = छे। ५ ७	अन्योन्या मू १। ३ अ	सा ५० को २
नाना = छे। ६ ७	अन्योन्या मू १। २ अ	सा ६० को २
नाना = छे। ७ ७	अन्योन्या मू। प व	सा ७० को २

अनंतरमी नानागुणहानिशलाकेगळ्गे द्विकमनित्तु वर्गितसंवर्गं माडिवोडे तंतम्म स्थितिगळन्योन्याभ्यस्तराशिगळप्पुवें दु पेळ्दपरु। :—

इट्ठसलायपमाणे दुगसंवग्गे कदे दु इट्ठस्स।
पयडिस्स य अण्णोण्णब्भत्थपमाणं हवे णियमा ॥९३७॥

इष्टशलाकाप्रमाणानि द्विकसंवर्गं कृते तु इष्टायाः प्रकृतेरन्योन्याभ्यस्तप्रमाणं भवेन्नियमात् ॥

ई नानागुणहानिशलाकेगळोळु तन्निष्टमप्प शलाकेगळ प्रमाणंगळं द्विकंगळं संवर्गं माडुत्तं विरलु लब्धराशि तन्निष्टप्रकृतिगळन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं नियमदिंदमक्कु। मंतु द्विकसंवर्गं माडि लब्धराशिगळोळितप्प राशियितप्प प्रकृतिगळगन्योन्याभ्यस्तराशियक्कुमें दु पेळ्दपरु। :—

तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् ॥९३६॥ उक्तान्योन्याभ्यस्तराशीनाह—

स्वेष्टशलाकाप्रमाणद्विकसंवर्गे कृते स्वेष्टप्रकृतेरन्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं नियमात्स्यात् ॥९३७॥ तत्किं कस्य कर्मणः स्यादिति प्रश्ने आह—

दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेसे पल्यकी वर्गशलाका होती है, उसे घटाओ। इस प्रकार पल्यकी वर्गशलाकासे हीन पल्य प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि होती है। इस तरह स्थितिकी अपेक्षा नानागुणहानि और अन्योन्याभ्यस्त राशि कही। सो जिस कर्मप्रकृतिकी जितनी स्थिति हो उसकी उस स्थिति सम्बन्धी जानना ॥९३६॥

ऊपर कही अन्योन्याभ्यस्त राशिको गाथा द्वारा कहते हैं —अपनी-अपनी इष्टशलाका—नाना गुणहानि शलाका प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें गुणा करनेपर अपनी इष्ट प्रकृतिकी अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण नियमसे होता है ॥९३७॥

आवरणवेदणीये विग्घे पल्लस्स बिदियतदियपदं ।
णामागोदे बिदियं संखातीदं हवंति त्ति ॥९३८॥

आवरणवेदनीये विघ्ने पल्यस्य द्वितीयतृतीयपदं । नामगोत्रयोर्द्वितीयं संख्यातीतं भवेयुरिति ॥

ज्ञानावरणीयदोळं दर्शनावरणीयदोळं वेदनीयदोळमंतरायदोळमिती मूलप्रकृतिगळ्नाल्कक्कं मूवत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितियुत्कृष्टमप्पुदरिनवक्के अन्योन्याभ्यस्तराशि प्रत्येकं पल्यद्वितीयमूलमुमसंख्याततृतीयमूलमप्पुवु । नामगोत्रंगळ्गे प्रत्येकमिप्पत्तु कोटीकोटिसागरोपमस्थितियप्पुदरिंदमन्योन्याभ्यस्तराशि प्रत्येकमसंख्यातपल्यद्वितीयमूलंगळप्पुवु ॥

अनंतरमायुःकर्म्मक्के विलक्षणस्थितिभेदमप्पुदरिंदमदक्के प्रतिभागमिदं नानागुणहानिशलाकेगळं पेल्दपरु ।—

आउस्स य संखेज्जा तप्पडिभागा हवंति णियमेण ।
इदि अत्थपदं जाणिय इट्ठठिदिस्साणए मदिमं ॥९३९॥

आयुषश्च संख्येयास्तत्प्रतिभागा भवंति नियमेन । इत्यर्थपदं ज्ञात्वा इष्टस्थितेरानयेन्मतिमान् ॥

आयुष्यकर्म्मक्के तत्प्रतिभागंगळु संख्येयभागंगळप्पुवु नियमदिंदमिंते अभीष्टस्थानमनरिवु इष्टस्थितिगे नानागुणहानिगळुमं मतिवंतं तंदु कोंबुवु । अदेंतेंदोडे एप्पत्तुकोटीकोटिसागरोपमस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळुमिनितागलु मूवत्तमरु सागरोपमस्थितिगेनितु नानागुणहानिशलाकेगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडि प्र सा ७० । को २ । फ छे व छे । इ सा ३३ । बंद लब्धमवु आयुष्यकर्म्मक्के नानागुणहानिशलाकेगळ प्रमाणं संख्यातैकभागंगळप्पुवु । आयुः नाना ।

ज्ञानदर्शनावरणयोर्वेदनीयेऽन्तराये चोत्कृष्टेन त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमस्थितित्वादन्योन्याभ्यस्तराशिः प्रत्येकं पल्यद्वितीयमूलसंख्याततृतीयमूलगुणं स्यात् । नामगोत्रयोर्विंशतिकोटीकोटिसागरोपमस्थितित्वादसंख्यातानि पल्यद्वितीयमूलानि भवन्ति ॥९३८॥

आयुषो विलक्षणः स्थितिभेदोऽस्तीति तन्नानागुणहानिशलाकास्तु प्रतिभागाः संख्येयाः स्युरिति नियमात् सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणामेतावत्यः छे—व—छे तदा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां कतीति लब्धाः

वह किस कर्मका होता है ? ऐसा पूछनेपर कहते हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है । अतः इनकी अन्योन्याभ्यस्तराशि पल्यके द्वितीय मूलको असंख्यात तीसरे मूलोंसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतनी है । नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर है । अतः इनकी अन्योन्याभ्यस्त राशि असंख्यातगुणा पल्यका द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है ॥९३८॥

आयुकर्मका स्थितिभेद सबसे विलक्षण है । अतः उसकी नाना गुणहानिशलाका स्थितिके प्रतिभागके अनुसार नियमसे होती हैं । सो सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिकी नाना गुणहानि शलाका पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्द्धच्छेद प्रमाण होती हैं तो तैंतीस सागर स्थितिकी कितनी नाना गुणहानि शलाका होंगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर

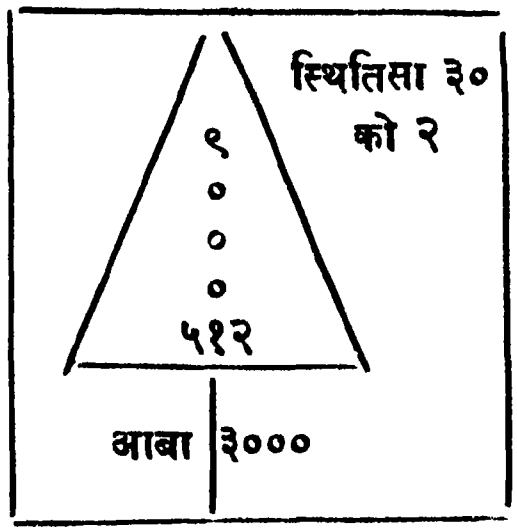
छे व छे ३३। ई प्रकारदिंद मतिवंतं तन्निष्टस्थितिगे नानागुणहानिशलाकेगळं तंदु कोंबुदु ॥ ७० को २

यितु गुणहान्यध्वानमुं नानागुणहानिशलाकेगळु निषेकभागहारमुमन्योन्याभ्यस्तराशियु मरियल्पडुत्तिरलु। गु ८। नाना ६। दो गुण १६। अन्योन्याभ्यस्त ६४ ॥

उक्कस्सट्ठिदिबंधे सयलाबाहा हु सव्वठिदिरयणा।
तक्काले दीसदि तो [1]दो दो बंधट्ठिदीणं च ॥९४०॥

उत्कृष्टस्थितिबंधे सकलाबाधा खलु सर्व्वास्थितिरचना। तत्काले दृश्यते ततो दो दो बंधस्थितीनां च ॥

उत्कृष्टस्थिति विवक्षितप्रकृतिगे बंधमागुत्तं विरला स्थितिगे उत्कृष्टाबाधेयक्कुं स्फुटमागि सर्व्वस्थितिरचनेयुमक्कुमा कालदोळे बंधमाद समयदोळे उत्कृष्टस्थित्युत्कृष्टचरमनिषेकस्थितियत्तणिंदं केळगे केळगे समयोत्तरहीनतेयुं काणल्पडुगुं :—



संख्यातैकभागः छे-व-छे ३३ इत्थमेवेष्टस्थानं ज्ञात्वा मतिमान् स्वेष्टस्थितेर्नानागुणहानिशलाका आनयेत्। एवं ७० को २

गुणहान्यध्वाननानागुणहानिशलाकानिषेकभागहारान्योन्याभ्यस्तराशिषु ज्ञातेषु गु ८। नाना ६। दोगु १६। अन्योन्या ६४ ॥९३९॥

विवक्षितप्रकृतेरुत्कृष्टस्थितिबन्धे ज्ञाते तद्बंधसमये एव उत्कृष्टाबाधा सर्वस्थितिरचना च दृश्यते। तत्स्थितिचरमनिषेकादधोऽधः स्थितिबन्धस्थितीनां समयोत्तरहीनता दृष्टव्या

जो लब्धराशि आवे उतनी नाना गुणहानि शलाका जानना। इस प्रकार विवक्षित स्थानको जानकर बुद्धिमान् जीव विवक्षित स्थितिकी नाना गुणहानि शलाकाका प्रमाण लाता है। इस तरह गणहानि आयाम, नाना गुणहानि शलाका, निषेक भागहार और अन्योन्याभ्यस्त राशि जान लेनेपर क्या होता है सो कहते हैं ॥९३९॥

विवक्षित प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होते ही उसके बन्धके समयमें ही उत्कृष्ट आबाधा और सर्वस्थितिकी रचना देखी जाती है। उस स्थितिके अन्तिम निषेकसे नीचे-नीचे प्रथम निषेक पर्यन्त स्थितिबन्धरूप स्थिति एक-एक समय हीन होती है। अर्थात् अन्तिम निषेककी स्थिति तो विवक्षित समयप्रबद्धकी स्थिति प्रमाण ही होती है। उसके नीचे

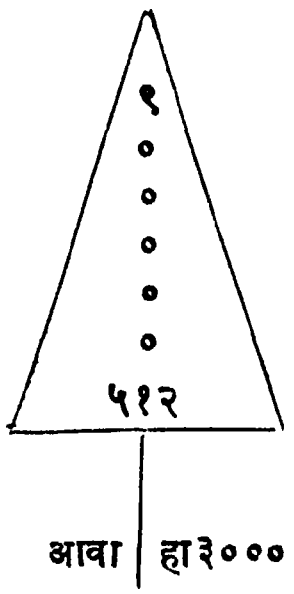
१. धो धो मु.।

अनंतरमधिकरूपिंदमें तु काणल्पडुगुमें दोडे पेळ्दपरु । :—

आबाधाणं बिदियो तदियो कमसो हि चरिमसमयो दु ।
पढमो बिदियो तदियो कमसो चरिमो णिसेओ दु ॥९४१॥

आबाधानां द्वितीयस्तृतीयः क्रमशो हि चरमसमयस्तु । प्रथमो द्वितीयस्तृतीयः क्रमशश्चरमो निषेकस्तु ॥

सर्व्वप्रकृतिगळ बंधमाद समयदोळे सर्व्वाबाधेयुं सर्व्वस्थितिनिषेकरचनेयुमागिद्दं स्थितिय अनंतरसमयंगळोळाबाधासमयंगळ द्वितीयसमयमुं तृतीयसमयमुमिंतु क्रमदिंदं चरमसमयमक्कुं । तु मत्ते तदनंतरनिषेकप्रथमसमयमुं द्वितीयनिषेकद्वितीयसमयमुं तृतीयनिषेकस्थितितृतीयसमयमुं क्रमदिंदमिंतु नडवु चरमनिषेकस्थिति चरमनिषेकमक्कु । मिदेनें बुदर्त्थमें दोडे कर्म्मप्रकृतिबंधसमयदोळे आबाधायुतनिषेकस्थितिरचनेयक्कुं । द्वितीयादिसमयं मोदल्गोंडु आबाधाचरमसमयपर्य्यंतं तत्कालबंधमाद समयप्रबद्धद्रव्यक्के समयाधिकाबाधाकालदिंदं हीनस्थितियुतपरमाणुगळु कर्म्मप्रकृतिगळ्गल्लें बुदर्त्थमाबाधाकालं पोगुत्तिरलु अनंतरसमयदोळुदयप्रकृतिगळ प्रथमनिषेकमुदयिसि



स्थिति सा
३० को २

॥९४०॥ आधिक्यं च कथं दृश्यते इत आह—

सर्वप्रकृतीनां बन्धसमये सर्वाबाधासर्वस्थितिनिषेकरचनारूपस्थितायाः स्थितेरनंतरसमयेषु आबाधासमयानां द्वितीयः तृतीयः एवं गत्वा चरमः समयः स्यात् । तु-पुनः तदग्रे प्रथमः द्वितीयः तृतीयः एवं गत्वा

द्विचरम निषेककी उससे एक समय हीन स्थिति है। इसी प्रकार प्रथम निषेक पर्यन्त एक-एक समय हीन स्थिति जानना ॥९४०॥

इस प्रकार स्थितिकी अधिकता कैसे है ? यह कहते हैं—

सब प्रकृतियोंके बन्धसमयमें सर्व आबाधा और सब स्थितिकी निषेकरूप रचना होनेके अनन्तर समयोंमें आबाधा कालका दूसरा समय, तीसरा समय इस प्रकार एक-एक समय बढ़ते-बढ़ते आबाधा कालके अन्तमें अन्तिम समय होता है। उसके आगे प्रथम निषेक, दूसरा निषेक, तीसरा निषेक इस प्रकार जाकर स्थितिके अन्तिम समयमें अन्तिम निषेक होता है। सो आबाधाकाल बीतनेपर जिस-जिस समयमें जितने परमाणुओंका समूहरूप निषेक होता है उस-उस समयमें उतने परमाणु उदयरूप होते हैं। उस उदयरूप समयके

अनंतरसमय दोळु कर्म्मप्रकृतिस्वरूपमं पत्तुविडुगुमितु द्वितीयादिसमयंगळोळु द्वितीयादिनिषेकंगळु क्रमदिदं प्रकृतिस्वरूपमं पत्तुविडुत्तं पोगि चरमनिषेकमुत्कृष्टस्थितिचरमसमयदोळु कर्म्मप्रकृतिस्वरूपमं पत्तुविट्टु पोकुदेंबुदत्थं ॥ अनन्तरसमयप्रबद्धप्रमाणमुमं वर्त्तमानसमयदोळु ओंदु समयप्रबद्धं बंधमक्कु । मोंदु समयप्रबद्धमुदयमक्कुमेंबुदुमं पेळ्दपरु । :—

समयपबद्धपमाणं होदि तिरिच्छेण वट्टमाणम्मि ।
पडिसमयं बंधुदओ एक्को समयप्पबद्धो दु ॥९४२॥

समयप्रबद्धप्रमाणं भवेत्तिर्य्यग्रूपेण वर्त्तमाने । प्रतिसमयं बंधोदयमेकसमयप्रबद्धस्तु ॥

प्रागुक्तसमयप्रबद्धप्रमाणं द्रव्यं त्रिकोणरचनेयोळु विवक्षितवर्त्तमानसमयदोळु मोहनीयकर्म्म प्रकृत्याबाधारहितोत्कृष्टस्थितिमात्रगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळोळु प्रथमसमयप्रबद्धचरमनिषेकं मोदल्गोंडु चरमसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकपर्य्यंतं तिर्य्यग्रूपदिदमेकैकनिषेकंगळु संपूर्णैकसमयप्रबद्धद्रव्यप्रमाणमक्कुमितु प्रतिसमयमेकसमयप्रबद्धमुदयमुं बंधमुमक्कु । संदृष्टि :—

४१६।४४८।४८०	९
४४८।४८०।५१२	१०
४८०।५१२। ०	०
५१२। ० ०	०
० ० ०	०
९।१०।१०।१०।१०।१०	०
९।१०।११।१०।१०।१०।१०	०
९।१०।११।१२।१०।१०।१०।१०	३५२।३८४
९।१०।११।१२।१३।१०।१०।१०।१०	३८४।४१६
९।१०।११।१२।१३।१४।१०।१०।१०।१०।२४०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८	
९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१०।१०।१०।१०।२५६।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०	
९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६।१०।१०।१०।१०।२८८।३२०।३५२।३८४।४१६।४४८।४८०।५१२	

चरमो निषेकः स्यात् । तत्समये उदेत्यनन्तरसमये कर्मस्वभावं त्यजेदित्यर्थः ॥९४१॥ अथ समयप्रबद्धप्रमाणद्रव्यं वर्तमानसमये बध्नात्युदेति चेत्याह—

त्रिकोणरचनायां विवक्षितवर्तमानसमये विवक्षितमोहनीयकर्मणः आबाधारहितोत्कृष्टस्थितिमात्रगलितावशेषसमयप्रबद्धेषु प्रथमसमयप्रबद्धचरमनिषेकमादिं कृत्वा चरमसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकपर्यंतं तिर्यगेकैकनिषेको

अनन्तर वे परमाणु कर्म स्वभावको छोड़ देते हैं । इस प्रकार प्रथम निषेकसे दूसरे निषेककी और दूसरेसे तीसरे निषेककी स्थिति एक-एक समय अधिक होते-होते अन्तिम निषेककी पूरी स्थिति होती है ॥९४१॥

आगे कहते हैं कि समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य वर्तमान एक समयमें बँधता है और उदयरूप होता है—

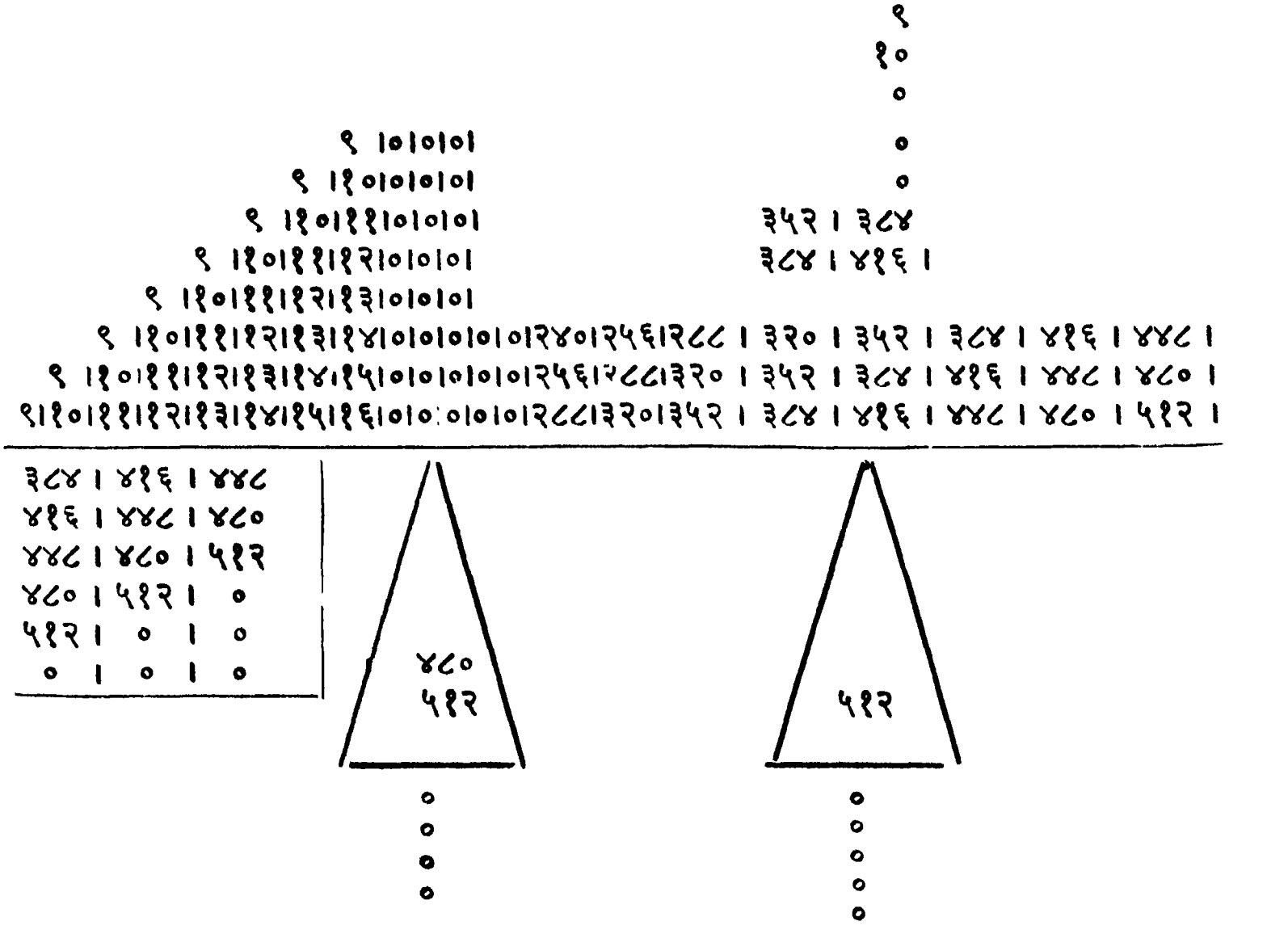
त्रिकोण रचनामें विवक्षित किसी एक वर्तमान समयमें विवक्षित मोहनीय कर्मकी आबाधा रहित उत्कृष्ट स्थिति मात्र कालमें समय-समयमें बँधनेवाले समयप्रबद्धोंमें-से जिन निषेकोंकी निर्जरा हो गयी उनकी तो निर्जरा हो गयी, शेष रहे निषेकोंमें-से प्रथम समय प्रबद्धका अन्तिम निषेकसे लगाकर अन्तिम समयप्रबद्धके प्रथम निषेक पर्यन्त तिर्यग् रचना-

अनंतरं प्रतिसमयमुदयमुं बंधमुमेकसमयप्रबद्धमप्पुदरिं वर्त्तमानसमयदोळु बंधोदयात्मकमेकसमयप्रबद्धमे सत्वमक्कुमेंब शंकेयं परिहरिसि सत्वं प्रतिसमयं किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धमेंदु तत्प्रमाणक्कुपपत्तियं तोरिदपरु । :—

सत्तं समयपबद्धं दिवड्ढगुणहाणि ताडियं ऊणं ।
तियकोणसरूवट्ठिददव्वे मिलिदे हवे णियमा ॥९४२॥

सत्वं समयप्रबद्धो द्वयर्द्धगुणहानिताडित ऊनः । त्रिकोणस्वरूपस्थितद्रव्ये मिलिते भवेन्नियमात् ॥

भूत्वा सम्पूर्णैकसमयप्रबद्धद्रव्यं स्यात् इति प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्ध उदेति । एकैकश्च बध्नाति । संदृष्टिः—



॥९४२॥ अथ बन्धोदययोः प्रतिसमयमेकैकः समयप्रबद्धोऽस्तीति तदुभयात्मकं सत्त्वमपि च वर्तमानसमये तावदेव भविष्यतीति शंकां परिहर्तुं सोपपत्ति तत्प्रमाणमाह—

रूप एक-एक निषेक मिलकर सम्पूर्ण एक समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्य होता है । उसका वर्तमान समयमें उदय होता है । इस प्रकार प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका उदय होता है और प्रति समय एक-एक समयप्रबद्धका ही बन्ध होता है ॥९४२॥

यतः प्रतिसमय एक-एक समयप्रबद्धका बन्ध और उदय होता है इससे उन दोनोंका समुदायरूप सत्त्व भी उतना ही होगा, ऐसा सन्देह दूर करनेके लिए कहते हैं—

प्रतिसमयकिंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धं नियमादिदं सत्त्वमक्कु-। मदुवुं त्रिकोण-स्वरूपदिनिर्द्दं द्रव्यमं कूडुत्तं विरलु तावन्मात्रसमयप्रबद्धमप्पुवप्पुदरिंदं । स ० १२ ॥

सत्त्वद्रव्यं तु प्रतिसमयं त्रिकोणस्वरूपस्थितद्रव्ये मिलिते किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं नियमात् स्यात् स ० १२- ॥९४३॥ तद्यथा—

सत्तारूप परमाणुओंका समूहरूप सत्त्व द्रव्य कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समय-प्रबद्ध प्रमाण होता है। यह नियम है ॥९४३॥

विशेषार्थ—त्रिकोण रचनाके सर्व द्रव्यका जोड़ इतना ही होता है। पहले जीवकाण्ड-के योगाधिकारमें और कर्मकाण्डके बन्ध-उदय-सत्त्वाधिकारमें त्रिकोण यन्त्र लिखा है। वहाँ कैसे प्रतिसमय समयप्रबद्ध प्रमाण द्रव्यका उदय होता है और कैसे किंचित् न्यून डेढ़ गुण-हानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व रहता है यह कहा है। यहाँ अंकसंदृष्टिको स्पष्ट करते हैं—

जिस समयप्रबद्धके सर्वनिषेक सत्तामें हैं उसके अड़तालीस निषेक नीचे-नीचे लिखे। उसके ऊपर जिस समयप्रबद्धका प्रथम निषेक गल गया उसके सैंतालीस निषेक लिखे। उसके ऊपर जिसका पहला और दूसरा निषेक गल गया उसके छियालीस निषेक लिखे। इस प्रकार एक-एक निषेक हीन लिखते-लिखते अन्तमें जिस समयप्रबद्धके सैंतालीस निषेक गल गये उसका एक अन्तिम निषेक लिखा। यह सत्ताकी अपेक्षा रचना जाननी। तथा वर्तमान विवक्षित समयसे आगे जैसे एक समयप्रबद्धका बन्ध होता है वैसे ही एक समय प्रबद्धकी निर्जरा होती है। अतः जैसे सत्ताकी रचना कही वैसे ही जानना। इस त्रिकोण-यन्त्रकी रचनाका जोड़ किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। यही सत्त्व द्रव्यका प्रमाण है। विवक्षित वर्तमान समयमें जिस समयप्रबद्धके सैंतालीस निषेक पहले गल गये उसका एक अन्तिम निषेक उदयरूप होता है। जिसके छियालीस निषेक गल गये उसका द्विचरम निषेक उदयरूप है। अन्तका निषेक आगामी समयमें उदयमें आयेगा। इसी क्रमसे जिसका एक भी निषेक नहीं गला उसका प्रथम निषेक उदयरूप है, अन्य निषेक आगामी समयोंमें क्रमसे उदयमें आवेंगे। इस प्रकार अन्तके निषेकसे लगाकर प्रथम निषेक पर्यन्त सब निषेकोंको जोड़ देनेपर एक समय प्रबद्धका उदय होता है। उसके ऊपर उस विवक्षित समयके अनन्तर जो वर्तमान समय होता है उसमें जिस समयप्रबद्धका पहले अन्त निषेक उदयमें आया था उसके तो सर्व निषेक गल चुके। किन्तु जिसका द्विचरम निषेक उदयमें आया था उसका यहाँ अन्तका निषेक उदयरूप होता है। इस तरह पूर्वोक्त प्रकारसे एक-एक निषेकका उदय होते जिसके प्रथम निषेकका उदय पहले हुआ था उसका यहाँ दूसरे निषेकका उदय होता है और उस समयप्रबद्धके पीछे जो समयप्रबद्ध बँधा था उसका प्रथम निषेक उदयरूप होता है। इस प्रकार से इस दूसरे विवक्षित समयमें भी समयप्रबद्धका ही उदय होता है। इस प्रकार प्रतिसमय एक समयप्रबद्धका उदय होता है। इसीसे त्रिकोणरचना दो रूपमें की है। उनमें कुछ आदि निषेक और कुछ अन्त निषेक लिखे हैं और बीचमें बिन्दी लिखी हैं। सो उसका अभिप्राय है कि उनके स्थानमें मध्यके निषेक जान लेना ॥९४३॥

अनंतरं त्रिकोणरचनेयोळिद्दं नानागुणहानिगतद्रव्यंगळिनितप्पुववं कूडिदोडे किंचिन्न्यून-द्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुर्वेंदु पेळ्दपरु :—

उवरिमगुणहाणीणं धणमंतिमहीणपढमदलमेत्तं ।
पढमे समयपबद्धं ऊणकमेण ट्ठिया तिरिये ॥९४४॥

उपरितनगुणहानीनां धनमंत्यहीनप्रथमदलमात्रं । प्रथमसमयप्रबद्धः ऊनक्रमेण स्थितास्तिर्य्यग्रूपेण ॥

त्रिकोणरचनेयोळु विवक्षितवर्त्तमानसमयदोळु प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु तिर्य्यग्रूपविदं संपूर्णसमयप्रबद्धद्रव्यमिक्कुं । शेषद्वितीयनिषेकं मोदल्गोंडूर्ध्वरूपदिं चरमगुणहानि चरमनिषेकपर्य्यंतं विशेषहीनक्रमदिदं पोगि मतमंते तिर्य्यग्रूपदिनिद्दं द्वितीयादिगुणहानिगळ धनं अंत्यगुणहानिद्रव्यहीन स्वकीय स्वकीय प्रथमगुणहानिद्रव्यार्द्धमात्रमक्कुं । प्रथमगुणहानिधनमुं गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धमक्कुमदेंतेंदोडे त्रिकोणरचनेयोळनादिबंधनबद्धगळितावशेषसमयप्रबद्धंगळु विवक्षितमोहनीयमूलप्रकृतिगाबाधारहितोत्कृष्टस्थितिसमयमात्रंगळु तत्प्रथमसमयप्रबद्धचरमनिषेकं मोदल्गोंडु चरमसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकपर्य्यंतं तिर्य्यग्रूपदिं विशेषाधिकक्रमदिनिर्द्दुबनेकैकनिषेकंगळं कूडिदोडे विवक्षितवर्त्तमानसमयदोळोंदु समयप्रबद्धमुदयमक्कुमा समयदोळोंदु

त्रिकोणरचनायां विवक्षितवर्तमानसमये प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके तिर्यक्सम्पूर्णं समयप्रबद्धद्रव्यं स्यात् । द्वितीयनिषेकमादिं कृत्वा चरमगुणहानिचरमनिषेकपर्यंतं चयहीनक्रमेण गत्वा तिर्यक्स्थितद्वितीयादिगुणहानिधनं अन्त्यगुणहानिद्रव्यहीनस्वस्वप्रथमगुणहानिद्रव्यार्धमात्रं स्यात् प्रथमगुणहानिधनं तु गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमितं । तद्यथा—

त्रिकोणरचनायामनादिबन्धनबद्धगलितावशेषसमयप्रबद्धाः विवक्षितमोहनीयमूलप्रकृतेराबाधारहितोत्कृष्टस्थितिमात्राः स्युः । तत्प्रथमसमयप्रबद्धचरमनिषेकमादिं कृत्वा चरमसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकपर्यन्तं तिर्यग्विशेषा-

---

आगे इस सत्तारूप त्रिकोण यन्त्रके जोड़ देनेका विधान कहते हैं—

त्रिकोण रचनामें विवक्षित वर्तमान समयमें प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें तो तिर्यक्रूपसे लिखे निषेकोंका समुदायरूप सम्पूर्ण समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। उसके ऊपर दूसरे निषेकसे लगाकर अन्तकी गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त एक-एक चयहीनके क्रमसे जाकर तिर्यक्रूपसे स्थित द्वितीय आदि गुणहानिका धन अन्तकी गुणहानिके जोड़को अपनी-अपनी पहली गुणहानिके जोड़में-से घटानेपर जो-जो प्रमाण हो उसका आधा-आधा होता है। किन्तु प्रथम गुणहानिका धन (जोड़) तो गुणहानिके प्रमाणसे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है।

विशेषार्थ—उक्त कथनका भाव यह है कि त्रिकोण रचनामें जो नीचे-नीचे प्रथम पंक्तिमें तिर्यक्रूपसे लिखा उसको प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक कहते हैं। उसके ऊपरकी पंक्तिमें जो लिखे उनको प्रथम गुणहानिका द्वितीयादि निषेक कहते हैं। गुणहानि आयाम प्रमाण पंक्ति पूर्ण होनेपर उसके ऊपर जो पंक्ति है उसको द्वितीय गुणहानिका प्रथम निषेक

---

१. तिरिया मु.।

समयप्रबद्धं बंधमक्कु । मा समयदोळु सत्वद्रव्यमुं किंचिन्न्यूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धमक्कु- । मल्लि प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकदोळु नानासमयप्रबद्धसंबध्येकैकनिषेकंगळं कूडिदोडे संपूर्ण-समयप्रबद्धमक्कुं । आ प्रथमगुणहानि द्वितीयादितिर्य्यग्निषेकंगळु समयप्रबद्धप्रथमनिषेकाद्येकैक-

---

धिकक्रमेण स्थितेरेकैकनिषेका मिलित्वा विवक्षितवर्तमानसमये एकः समयप्रबद्ध उदेति । तस्मिन्नेव समये एकः समयप्रबद्धो बध्नाति । सत्त्वद्रव्यं किंचिदूनद्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं तिष्ठति । तत्र प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेके

कहते हैं। उसके ऊपरकी पंक्तिको दूसरा निषेक कहते हैं। इस तरहसे गुणहानि प्रमाण पंक्ति पूर्ण होनेपर उसके ऊपरकी पंक्तिको तीसरी गुणहानिका प्रथम निषेक कहते हैं। इसी प्रकार अन्तकी गुणहानि पर्यन्त जानना। इसे अंकसंदृष्टिरूप त्रिकोणयन्त्रमें दिखाते हैं—नीचे ही नीचे बराबर पंक्ति रूपमें नौका निषेकसे लेकर पाँच सौ बारह पर्यन्त सब निषेक लिखे हैं। उनको प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक कहते हैं। इसका जोड़ सम्पूर्ण समयप्रबद्ध प्रमाण तिरसठ सौ होता है। उससे ऊपर दूसरी पंक्तिमें नौके निषेकसे लगाकर चार सौ अस्सीके निषेक पर्यन्त निषेक लिखे हैं। उसको प्रथम गुणहानिका दूसरा निषेक कहते हैं। इसका जोड़ पाँच सौ बारह चय हीन समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। उससे ऊपर तीसरी पंक्तिमें नौके निषेकसे लगाकर चार सौ अड़तालीसके निषेक पर्यन्त लिखे हैं। उसको प्रथम गुणहानिका तीसरा निषेक कहते हैं। इसका जोड़ इससे पूर्वकी पंक्तिके जोड़में-से चार सौ अस्सी घटाने-पर जो शेष रहे उतना है। इस प्रकार अन्तकी गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त जोड़ एक-एक निषेकरूप चय हीन होता जाता है। इस प्रकार अड़तालीस पंक्तियाँ होती हैं। उनमें नीचे से लगाकर आठ पंक्ति पर्यन्त प्रथम गुणहानिका प्रथमादि निषेक कहते हैं। उसके ऊपर नौवीं पंक्तिसे लगाकर सोलहवीं पंक्ति पर्यन्त द्वितीय गुणहानिका प्रथमादि निषेक कहते हैं। इस प्रकार आठ-आठ पंक्तियोंकी एक गुणहानि जानना। उनमें जो चय घटाये थे उनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिके तिरसठ सौको आठ गुणहानिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना है। उसमें-से अन्तकी गुणहानिके जोड़ आठ गुणा सौ है, उसे घटानेपर आठ गुणा बासठ सौ होता है। उसका आधा आठ गुणा इकतीस सौ होता है। यही दूसरी गुणहानिका जोड़ है। उसमें अन्तकी गुणहानिका जोड़ आठ गुणा सौ घटानेपर आठ गुणा तीस सौ होता है। उसका आधा आठ गुणा पन्द्रह सौ होता है। यही तीसरी गुणहानिका जोड़ है। इसी प्रकार अन्तकी गुणहानि पर्यन्त जानना। इन सबको जोड़नेकी विधि—प्रथम गुणहानिमें जो चय घटे थे उनको जोड़नेपर प्रथम गुणहानिमें ऋण होता है। उसका आधा दूसरी गणहानि-में ऋण होता है। इसी प्रकार अन्तकी गुणहानि पर्यन्त आधा-आधा होता है। इन सबको जोड़कर पूर्व प्रमाणमें-से घटानेपर जो शेष रहे वही त्रिकोणयन्त्रका जोड़ होता है। वही दिखाते हैं—

त्रिकोणरचनामें अनादि कालसे बँधे और उनमें-से निर्जरारूप होकर गल जानेसे शेष रहे, विवक्षित मोहनीय मूलप्रकृतिके समयप्रबद्ध आबाधा रहित उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होते हैं। उनमें-से प्रथम समयप्रबद्धके अन्तिम निषेकमे लगाकर अन्तिम समयप्रबद्धके प्रथम निषेक पर्यन्त तिर्यक् रूपसे स्थित तथा एक-एक चय अधिक एक-एक निषेक मिलकर एक समयप्रबद्ध विवक्षित वर्तमान समयमें उदयमें आता है। उसी समयमें एक समयप्रबद्ध बँधता भी है। तथा सत्तारूप द्रव्य किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण

निषेकाधिकक्रमदिंदं होनंगळप्पुवंतागुत्तं

५१२	७
५१२	६
५१२	५
५१२	४
५१२	३
५१२	२
५१२	१
	०

विरला होननिषेकंगळं ऋणमनिक्किदोडे प्रथमगुणहानिधनं ऋणसहितमा ५१२ गि गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पुवु । ६३०० । ८ । इल्लि ३२।१६ प्रथमनिषेकदोळु ऋणमिल्लप्पुदरिंदं द्वितीयादिनिषेकंगळोळेकाद्येकोत्तरमागि समयप्रबद्धप्रथम-निषेकंगळिक्कल्पट्टुविवं संकलिसिदोडे रूपोनगच्छेय एकवारसंकलनमात्रंगळप्पु ५१२ $\frac{८^{०}}{२}$ ८ १ विल्लि प्रथमनिषेकमुं दोगुणहानिमात्रचयंगळप्पुदरिंदं भेदिसि स्थापिसिदोडे ऋणमिनितक्कुं । ३२ । ८ । २ । $\frac{८^{०}}{२}$ । ८ अदं तेदोडिल्लियुं तृतीयादिनिषेकंगळोळु संकलनार्थं द्विकवारसंकलनक्रम-

---

नानासमयप्रबद्धसम्बन्ध्येकैको निषेको मिलित्वा सम्पूर्णसमयप्रबद्धः स्यात् । द्वितीयादिनिषेकेषु प्रथमादिनिषेकैः क्रमेणैकैकाधिकैरूनोऽस्तीति तावति ऋणे निक्षिप्ते प्रथमगुणहानिधनं ऋणसहितगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं भवति । ६३०० । ८ तदूणं त्वेकोत्तररूपोनगुणहानिगच्छक्रमेण प्रथमनिषेकान् —

५१२ । ७
५१२ । ६
५१२ । ५
५१२ । ४
५१२ । ३
५१२ । २
५१२ । १

संकलय्य ५१२ $\frac{८^{०}}{२}$ । ८ अत्रस्थप्रथमनिषेकं दोगुणहान्या संभेद्य ३२ । ८ । २ । $\frac{८^{०}}{२}$ । ८ । उपर्यधस्त्रिभिः

रहता है । उसमें प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकमें अनेक समयप्रबद्धोंका एक-एक निषेक मिलकर सम्पूर्ण समयप्रबद्धका प्रमाण होता है । तथा द्वितीयादि निषेकोंमें प्रथमादि निषेकों-से क्रमसे एक-एक अधिक चय घटता होता है । इस घटते हुए प्रमाणको ज्योंका त्यों मिलाने-पर प्रथम गुणहानिका जोड़ गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है । यहाँ अंकसंदृष्टि-के द्वारा कथन दिखानेपर आठ गुणा तिरसठ सौ होता है । इसमें-से जितना घटाना है उसे ऋण कहते हैं । उसका प्रमाण कहते हैं—

एक हीन गुणहानिके प्रमाणरूप गच्छमें क्रमसे एकको आदि देकर एक-एक अधिकसे गुणित प्रथम निषेकका जोड़ दो । सो पाँच सौ बारहको क्रमसे एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सातसे गुणा करके जोड़ दो । तब पाँच सौ बारहको एक हीन आठ और आठसे गुणा

विदं प्रथमगुणहानिचयंगळिक्कल्पट्टुवप्पुदरिंदमा ऋणद ऋणमुमिनितप्पुवु

३२	२१
३२	१५
३२	१०
३२	६
३२	३
३२	१

इवं संकलिसिदोडे ऋणार्णं द्विरूपोनगच्छेय द्विकवारसंकलनमात्रचयंगळप्पुवु ३२।०।८।८
२२।१
८
३

ई ऋणमना ऋणदोळु शोधिसुवागळु मूररिंदं समच्छेदमं माडिदोडे षड्गुणहानियक्कुमल्लि एकरूपं कळेदु ऋणद ऋणं धनमेंदु द्विरूपमं पंचगुणहानिगळगे धनमागिरिसिदोडे शुद्धऋणमितटक्कुं

५ ३२।२।५।८।८। ई प्रथमगुणहानिधनमं नोडलु द्वितीयादिगुणहानिधनंगळु चरमगुणहानि-
८ ६

संगुण्य ३२।८।६।८।८ षड्गुणहानितः एकरूपं पृथग्धृत्वा ३२।८।१।८।८ तत्र तृतीयादिनिषेकेषु
३ २ १ ३ २ १

द्विकवारसंकलनक्रमेणाधिकपतितप्रथमगुणहानिचयान् ३२।२१ संकलय्य द्विरूपोनगच्छस्य
३२।१५
३२।१०
३२।६
३२।३
३२।१

द्विकवारसंकलनमात्रान् ३२।८।८।८ ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति संशोध्य शेषे ३२।२।८।८
३ २ १ २ १

करो और दोको एकसे गुणा करके उसका भाग दो। तब इतना हुआ—५१२×८।८। यहाँ
१×२

१० प्रथम निषेकका दो गुणहानिसे भेदन करनेपर पाँच सौ बारहके स्थानमें बत्तीस गुणित आठ,
१
गुणित दो हुए। यथा—३२।८।२।८।८। यहाँ गुणकार और भागहारको तीनसे गुणा
२।१

करनेपर गुणकार और भागहारमें दोके स्थानपर छह हुआ—३२।८।६।८।८। छहमें
६

६ १
एकको जुदा रखा। तब उसका जोड़ ३२।८।१।८।८ तेईस सौ नवासी और दोका छठा
६

पर्य्यंतं "अंतिमहीणपढमदळमेत्तं पढमे समयपबद्धं" एंबितु पेळल्पट्टुदु। तन्निमित्तमा चरमगुणहानि ऋणसहितमप्प धनमिनितक्कु—। १००। ८ मिवं प्रथमगुणहानि ऋणसहितधनदोळु कळेदुवनिवं ६२००। ८। दळियिसिदोडिदु। ३१००। ८। द्वितीयगुणहानिधनमक्कुमी क्रमदिंदं चरमगुणहानिधनरहितार्द्धार्द्धक्रमदिंदं चरमगुणहानिपर्य्यंतं सर्व्वगुणहानि धनंगळितिप्पुंवु

१००	८
२००	८
७००	८
१५००	८
३१००	८
६३००	८

यिल्लि संकलननिमित्तमागि सर्व्वत्र चरमगुणहानिधनमात्र १००। ८। ऋणमनिक्किद्विकदिंदं भेदिसि स्थापिसिदोडितिप्पुंवु।

१००	८। २
२००	८। २
४००	८। २
८००	८। २
१६००	८। २
३२००	८। २

यिवं संकलिसिदोडे अंतधणं। ३२००। ८। २।

२— २

रूपद्वये पुनः प्राक्तनपंचगुणहानीनामुपरि दत्ते एतावत् ३२। ८। ५ ८ ८ प्रथमगुणहानिऋणसहितधनं च

६

चरमगुणहानिऋणसहितधनेन १००। ८। ऊनयित्वा। ६२००। ८ अन्वितं ३१००। ८ द्वितीयगुणहानिधनं स्यात्। एवमुपर्यपि सर्वगुणहानिधनानि साध्यानि। संदृष्टिः १०० । ८। अत्र सर्वत्र चरमगुणहानिमात्रं १००।

३०० । ८।
७०० । ८।
१५०० । ८।
३१०० । ८।
६३०० । ८।

भाग हुआ। तथा तीसरे आदि निषेकोंमें पहले कहे संकलन विधानसे दो बार संकलनके क्रमसे प्रथम गुणहानिके चयको जोड़ दीजिए। इस तरह दो हीन गच्छका दो बार संकलनमात्र प्रथम गुणहानिके चयको जोड़िए। तब चय बत्तीसको एक, तीन, छह, दस, पन्द्रह, इक्कीससे क्रमसे गुणा करके जोड़नेपर बत्तीसको दो हीन आठसे और एक हीन आठसे तथा आठसे

२— १— ८

गुणा करके छहका भाग दीजिए ३२। ८। ८। १। ऐसा करनेपर सत्रह सौ बानवे हुए। एक

३ २

जुदा रखे गुणकारके प्रमाणमें-से इनको घटानेपर पाँच सौ सत्तानवे और दोका छठा भाग रहा। शेष जो पाँच गुणकार रहे थे उनका प्रमाण ग्यारह हजार नौ सौ छियालीस और चारका छठा भाग हुआ। उनमें मिलानेपर बारह हजार पाँच सौ चौवालीस हुआ। इतना प्रथम गुणहानिमें ऋण जानना। जो राशि घटाने योग्य होती है उसे ऋण कहते हैं। और जो विवक्षितका प्रमाण होता है उसे धन कहते हैं। सो प्रथम गुणहानिके ऋण सहित धनमें

गुणगुणियं । ६४०० । ८ । २ । आदि । १०० । ८ । २ । विहीणं । ६३०० । ८ । २ । रूऊणुत्तर भजियमेंदु तावन्मात्रमेयक्कुं । प्रथमगुणहानिनिक्षिप्त शुद्धऋणमं नोडलु द्वितीयादि गुणहानिगळोळु ऋणमर्द्धार्द्धक्रममप्पुदु । संदृष्टि :—

२ ८ १ ५ ८ । ८ ६	
२ ८ २ ५ ८ । ८ ६	
२ ८ ४ ५ ८ । ८ ६	
२ ८ ८ ५ ८ । ८ ६	
२ १६ ८ ५ ८ । ८ ६	
२ ३२ ८ ५ ८ । ८ ६	

८ ऋणं निक्षिप्य द्वाभ्यां भित्त्वा— १०० । ८ । २
२०० । ८ । २
४०० । ८ । २
८०० । ८ । २
१६०० । ८ । २
३२०० । ८ । २

५ अन्तधणं ३२०० । ८ । २ । गुणगुणियं ६४०० । ८ । २ । आदि १०० । ८ । २ विहीणं ६३०० ।

अन्तकी गुणहानिके ऋण सहित धनको घटाकर उसका आधा द्वितीय गुणहानिका धन होता है । इसी प्रकार आगे भी सब गुणहानियोंका धन जानना । सो प्रथम आदि गुणहानियोंका धन तिरसठ सौ गुणित आठ, इकतीस सौ गुणित आठ, पन्द्रह सौ गुणित आठ, सात सौ गुणित आठ, तीन सौ गुणित आठ और सौ गुणित आठ हुआ । इन सबमें अन्तकी गुणहानि-
१० का प्रमाण मिलानेपर और दोसे भेदन करनेपर क्रमसे प्रथमादि गुणहानियोंमें बत्तीस सौ, सोलह सौ, आठ सौ, चार सौ, दो सौ और सौका आठ गुणा तथा दो गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना प्रमाण हुआ ।

३२००×८×२।१६००×८×२।८००×८×२।४००×८×२।२००×८×२।१००×८×२।

इन सबको 'अन्तधणं गुणगुणियं' इत्यादि सूत्रसे जोड़ो । सो अन्तका धन प्रथम गुण-
१५ हानिका प्रमाण है । उसको गुणकार दोसे गुणा करो । उसमें आदि जो अन्तकी गुणहानिका धन है उसे घटाइए । तब तिरसठ सौको आठ से गुणा करके दोसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो

थिवं संकलिसिवोडे प्रथमरुणमिनितक्कुं। अंतधणं ३२।८।५।८।८ गुणगुणियं। ६४

२ ०
८।५।८।८ आदि १।८।५।८।८ विहीणं ६३।८।५।८।८ रूऊणुत्तरभजियमेंदु

८।२ रूऊणुत्तरभजियमिति तावदेव स्यात्। द्वितीयादिगुणहानिधनादर्धार्धं संदृष्टिः—

२– ० १।८।५।८।८ ६
२– ० २।८।५।८।८ ६
२– ० ४।८।५।८।८ ६
२– ० ८।८।५।८।८ ६
२– ० १६।८।५।८।८ ६
२– ० ३२।८।५।८।८ ६

२– ० २– ० २– ०
तदप्यंतधणं ३२।८।५।८।८ गुणगुणियं ६४।८।५।८।८ आदि १।८।५।८।८
६ ६ ६

उतना हुआ ६३००×८×२। यहाँ तिरसठ सौ तो समयप्रबद्धका प्रमाण है। आठ गुणहानि- ५
का प्रमाण है। और दोका गुणा दो गुणहानिका प्रमाण है। इस प्रकार दो तथा आठ गुण-
हानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण जोड़ हुआ। अब इसमें-से जो ऋण घटाना है उसे
लाते हैं—

प्रथम गुणहानिमें ऋण इस प्रकार है—बत्तीसको आठ, पाँच, एक हीन आठ तथा
आठसे गुणा करो। उनमें-से एक गुणकार जुदा रखा था तथा उसमें दो बार संकलनमात्र १०
चय घटानेपर जो प्रमाण हुआ था उसको मिलाने और छहका भाग देनेपर बारह हजार
पाँच सौ चौवालीस हुआ। क्योंकि पाँच सौ बारहका निषेक सात पंक्तियोंमें घटा। चार
सौ अस्सी छह पंक्तियोंमें घटा। चार सौ अड़तालीस पाँचमें घटा। चार सौ सोलह चारमें
घटा। तीन सौ चौरासी तीनमें घटा। तीन सौ बावन दोमें घटा। तीन सौ बीस एकमें
घटा। दो सौ अट्ठासीका निषेक आठों ही पंक्तियोंमें है अतः घटा नहीं। इन सबोंको १५

तावन्मात्रमेयक्कुं। सव्वंत्र गुणहानिघनपंक्तियोळिक्किद द्वितीयऋणंगळुमिनि तप्पुवु

१००।८
१००।८
१००।८
१००।८
१००।८
१००।८

इवं संकलिसिदोडे नानागुणहानिगुणितगुणहानिमात्रसमयप्रबद्ध चरमगुणहानिद्रव्यमक्कुं १००।८।६। मी धनराशियुमं प्रथमऋणमुमं द्वितीयऋणमुमं क्रमदिंस्थापिसि। ६३।०।०।८।२।

ऋ ६३।८।५।८।८ द्वितीयऋण। १००।८।६ ई मूरुं राशिगळं समयप्रबद्धशलाकेगळं माडिदोडे मूरुं राशिगळितिप्पुंवु

६३००।८।२	६३।८।५ ८।८	१००।८।६
६३००।	६३।०० ६	६३००

ई मूरुं राशिगळनपवर्त्तिसि स्थापिसिवोडितिप्पुं-। स।०।८।२। ऋ स०।८।५।८। स०।८।६

१००।६ ६३

विहीणं- ६३।८।५।८।८ रूऊणुत्तरभजियमिति तावदेव स्यात्। द्वितीयऋणानि १००।८ संकलितानि

१००।८
१००।८
१००।८
१००।८
१००।८

नानागुणहानिगुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिघनमात्राणि स्युः १००।८।६। एवमुक्तधनप्रथमर्ण-द्वितीयऋणानि च क्रमेण संस्थाप्य समयप्रबद्धशलाकाः कृत्वा ६३००।८।२ ६३००। ६३।८।५।८।८ ६३००। ६

१० १००।८।६ अपवर्त्यैवं स्युः स।०।८।२ ऋ स०।८।५।८।८ १००। ६ स०।८।६ तत्र ६३००। ६३।

३५८४+२८८०+२२४०+१६६४+११५२+७०४+३२०+२८८ जोड़नेपर बारह हजार पाँच सौ चौवालीस होते हैं। तथा प्रथम गुणहानिके ऋणसे द्वितीय आदि गुणहानियोंमें आधा-आधा ऋण होता है। सब गुणहानियोंका जोड़ 'अन्तधणं' के अनुसार अन्तधन प्रथम गुणहानिका ऋण। उसे दोसे गुणा करो। तथा उसमें आदि जो अन्तिम गुणहानिका ऋण घटाओ। सो अन्तधन बारह हजार पाँच सौ चौवालीसको दोसे गुणा करनेपर पचीस हजार अट्ठासी हुए। उसमें आदि तीन सौ बानवे घटानेपर चौबीस हजार छह सौ छियानवे हुए। यही सब गुणहानियोंका ऋण है। तथा अन्तकी गुणहानिके धन प्रमाण सब गुणहानियों-में ऋण मिलाया था। उसको जोड़ देनेपर नानागुणहानिसे गुणित अन्तकी गुणहानिके धन

वी मूरं राशिगळोळु मध्यमप्रथमऋणराशियं शतषट्कहारंगळं रूपाधिकत्रिगुणहानियं माडि चतुष्कमं द्विकदिदं गुणिसिगुणहानियनुत्पादिसियपवर्त्तिसिदोडितक्कु स अ ८।५।८ मी राशि-

८।३।३

योळिद्दं ऋणरूपधनमेंदु तेगेदु पार्श्वदोळु स्थापिसिदोडिदु स अ।८।५।८।स अ।८।५।१

८।३।३ ८।३।३

ई एरडुं राशिगळ मेलिद्दं द्विरूपं तंतम्म केळगे स्थापिसि :—

स अ।८।५।८।स अ।८।५।१
८।३।३।८।३।३
स अ।२।८।स अ।२।१
८।३।३।८।३।३

प्रथमद्विकमं केळगेयुं मेगेयुं त्रिगुणिसि स अ।६।८ अल्लिं पंचरूपुगळं तेगेदु मेलण ऋणदोळिक्कि ५

८।३।३।३

स अ।८।३।५।८ अपवर्त्तसिदोडितक्कुं स अ।८।५ शेषैकऋणरूपं स अ।८।१ उपरि- ९

८।३।३।३ ८।३।३।३

प्रथमर्णस्य हारं शतषट्करूपाधिकत्रिगुणगुणहानिं कृत्वा चतुष्कं द्वाभ्यां संगुण्य गुणहानिमुत्पाद्यापवर्त्य—

स।अ।८।५।८। अत्रस्थमृणरूपं धनमित्यपनीय पार्श्वे संस्थाप्य स अ।८।५।८ स।अ।८।५

८।३।३ ८।३।३ ८।३।३

उभयत्र स्थितरूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य स अ।८।५।८ स अ।८।५ प्रथमद्विकमुपर्यधस्त्रिभिः

८।३।३ ८।३।३

स अ।२ स।अ।२

८।३।३ ८।३।३

संगुण्य स।अ।६।८ पंचरूपाण्यपनीयउपरितनर्णमध्ये निक्षिप्य स।अ।८।३।५।८ १०

८।३।३।३ ८।३।३।३

प्रमाण दूसरा ऋण हुआ। सो अन्तका धन आठ गुणा सौ है उसे नानागुणहानि छहसे गुणा करनेपर अड़तालीस सौ हुए। इन दोनों ऋणोंको जोड़नेपर कुछ अधिक आधी गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण हुआ। सो उनतीस हजार चार सौ छियानबे हुआ। क्योंकि

तनपाश्र्वधनदोळु समच्छेदमं माडि कळेदोडिदु स अ । ८ । १५ – १ द्वितीयधनद्विकमं कळगेयुं
८ । ३ । ३ । ३
मेगेयुमोंभत्तरिं गुणिसि स अ १८ यिल्लिपदिनाल्कु रूपुगळं तेगेदुकोंडु पूर्व्वधनदोळु मूरिरवं
८ । ३ । ३ । ९
समच्छेदमं माडि कूडिदोडुभयधनमिदु स । अ । ८ । ३ । १४ । इदर भागहारदोळेकरूपहीनत्व-
८ । ३ । ३ । ३ । ३
मनवगणिसि १४ अपवर्त्तिसिदोडे समयप्रबद्धार्द्धमक्कु स अ । १/२ मिल्लि शेषधनरूपचतुष्कम ।
५ स । अ । ४ निदं समयप्रबद्धासंख्यातैकभागमं स अ । १/अ साधिकं माडिदु स अ । १/२ ईधनमं
८ । ३ । ३ । ९
द्वितीयऋणदोळु कळेदु अपवर्त्तिसिदोडे किंचिदून संख्यातवग्गंशलाका मात्रमक्कुं । स अ । व १ ।

अपवर्तितमेतावत्स्यात् स । अ । ८ । ५ शेषैकर्णरूपं स । अ । ८ । १ उपरितनपार्श्वधने समच्छेदेनापनीय
९ ८ । ३ । ३ । ३
स । अ । ८ । १५–१ अस्मिन्नुपर्यधस्त्रिभिर्गुणिते स । अ । ८ । ३ । १४ द्वितीयधनद्विकादुपर्यधो
८ । ३ । ३ । ३ ८ । ३ । ३ । ३ । ३
नवभिर्गुणितात् स । अ । १८ चतुर्दशरूपाणि गृहीत्वा प्रक्षिप्तेष्वेवं स । अ । ८ । ३ । १४ अस्य भागहारे
८ । ३ । ३ । ९ ८ । ३ । ३ । ३ । ३
१० एकरूपहीनत्वमवगणय्यावर्तने समयप्रबद्धार्धं स्यात् स । अ १/२ अत्र तच्छेषधनरूपचतुष्कं स । अ । ४
८ । ३ । ३ । ९

गुणहानि आठके आधे चारसे समयप्रबद्धको गुणा करनेपर पच्चीस हजार दो सौ हुए। शेष चार हजार दो सौ छियानबे अधिकका प्रमाण जानना। इस प्रकार इन दोनों ऋणोंको जोड़नेपर जो प्रमाण हुआ उसको पूर्वोक्त दो गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्धमें-से घटानेपर किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानिसे गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण हुआ। सो दो गुणहानि गुणित

---

१५ १. स अ । ८ । ६/६३ यो द्वितीयऋणमर्थसंदृष्टियोलितिक्कुं स अ प १/प/व यिदं तक्कुमें—दोडे नानागुण-

हानियिं गुणहानियं गुणिसि विवक्षितस्थितियप्पुदरिनिल्लि विवक्षित सा ७० को २ । स्थितिगे संख्यातपल्य-मक्कुं । रूपहीनत्वमनवगणिसियन्योन्याभ्यस्तराशिहारमागि यितिक्कुं प/व ॥

मत्तमा प्रथमऋणमं स अ । ८ । ५ । यिदं संदृष्टिनिमित्तं केळगेयुं मेगेयुं द्विगुणिसि स अ ८ । १०
९ ९ । २
अल्लि एकरूपं तेगेदु बेरिरिसि स अ । ८ । १ शेषमनिद स अ । ८ । ९ नपवर्त्तिसिदोडे गुण-
१८ १८
हान्यर्द्धमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पु । स अ ८ । १ ववं प्रथमधनराशियोळु दोगुणहानिमात्रसमयप्रबद्ध-
२
दोळु कळेदोडे द्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धंगळप्पु । स अ । ८ । ३ । वल्लि मुन्नं तेगेदु बेरिरिसिद
२
गुणहान्यष्टादशभागऋणदोळु । स अ । ८ । १ । द्वितीयऋणमं किंचिदून संख्यातवर्गशलाकामात्र- ५
१८
समयप्रबद्धंगळं साधिकं माडि । स अ । ८ । १ द्वयर्द्धगुणहानियोळु किंचिदूनं माडिदोडे त्रिकोण-
० १८
रचना संकलितसर्व्वधनं समयं प्रति किंचिदूनद्वयर्द्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं सत्वमक्कुमेंदु
पेळल्पट्टागमार्थं सुघटितमादुदु ॥

समयप्रबद्धासंख्यातैकभागमात्रं स अ । १ साधिकं कृत्वा स । अ । १ इदं धनं द्वितीयर्णमध्येऽपनीयापवर्त्य
अ अ
किंचिदूनसंख्यातवर्गशलाकामात्रं स्यात् । स अ । व १–पुनस्तत्प्रथमर्णं स अ । ८ । ५ संदृष्टिनिमित्तमुपर्यधो १०
९
द्वाभ्यां संगुण्य– स । अ । ८ । १० तत्रैकरूपं पृथग्धृत्वा स । अ । ८ । १ शेषं स । अ । ८ । ९ अपवर्तितं
९ । २ १८ १८
गुणहान्यर्धमात्रसमयप्रबद्धं भवति स अ ८ १ तस्मिंश्च प्रथमधनराशौ दोगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धेऽपनीते
२
द्वयर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धा भवन्ति स । अ । ८ । ३ तत्र प्राक्पृथग्धृतगुणहान्यष्टादशभागर्णं स । अ । ८ । १
२ १८
द्वितीयर्णं किंचिदूनसंख्यातवर्गशलाकामात्रसमयप्रबद्धं साधिकं कृत्वा स । अ । ८ । १ द्वयर्धगुणहानौ
१८
किंचिदूनितं त्रिकोणरचनासंकलितसर्वधनमुक्तप्रमाणं स्यात् । स । अ । १२– ॥ ९४४ ॥ १५

समयप्रबद्धका प्रमाण एक लाख आठ सौ है। उसमें-से दोनों ऋणोंका प्रमाण उनतीस हजार चार सौ छियानबे घटानेपर इकहत्तर हजार तीन सौ चार रहे। इतनी ही त्रिकोणरचनाका जोड़ है। यह तो अंक संदृष्टिसे हुआ।

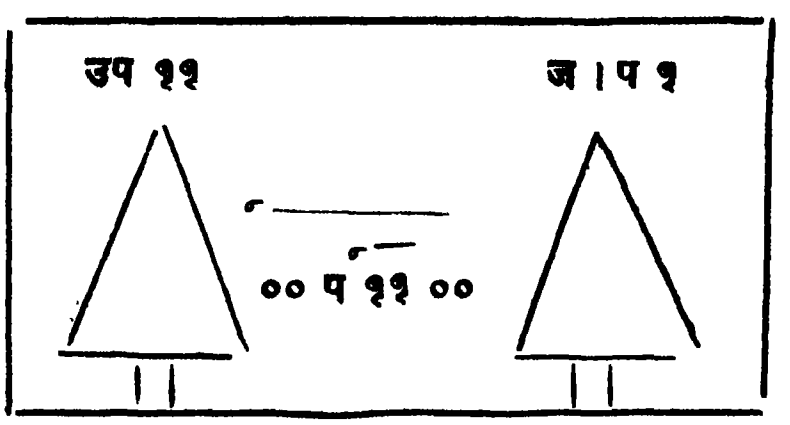
यथार्थमें तो दो गुणहानिमें-से आधा गुणहानि और एक गुणहानिका अठारहवाँ भाग तथा संख्यात वर्गशलाका घटानेपर जो किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानिमात्र प्रमाण रहा, उससे २० समयप्रबद्धको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतना सर्व त्रिकोणरचनाका जोड़ होता है। सो किंचित् न्यून डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व द्रव्य होता है। यहाँ जोड़नेमें गुणकार दो गुणहानिमें-से आधा गुणहानि और एक गुणहानिका अठारहवाँ भाग तथा संख्यात वर्गशलाका कैसे घटे इसका विधान जीवतत्त्वप्रदीपिका टीकासे जानना चाहिए। कठिन होनेसे यहाँ नहीं लिखा है। केवल सारमात्र लिखा है ॥९४४॥ २५

अनंतरं ज्ञानावरणादिकर्म्मप्रकृतिस्थितिविकल्पंगळनुपपत्तिपूर्व्वकं पेळ्दपरु । :—

अंतो कोडाकोडिट्ठिदित्ति सव्वे णिरंतरट्ठाणा ।
उक्कस्सट्ठाणादो सण्णिस्स य होंति णियमेण ॥९४५॥

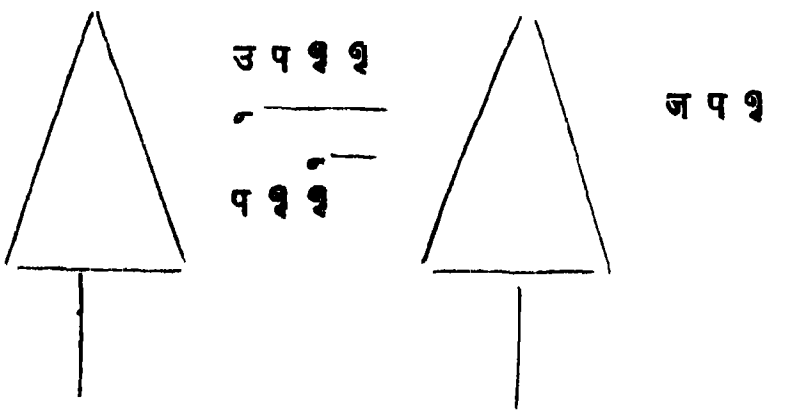
अंतः कोटीकोटिस्थितिपर्य्यंतं सर्व्वाणि निरंतरस्थानानि । उत्कृष्टस्थानात्संज्ञिनो भवेयुर्न्नियमेन ॥

ज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिगळ उत्कृष्टस्थितिमोदळ्गोंडु अंतःकोटीकोटिस्थितिपर्य्यंतं समयोनक्रमदिनिर्द्द सर्व्वस्थितिविकल्पंगळुवेनितोळवनितुं नियमदिंदं संज्ञिजीवंगळप्पुवु । अवुं संख्यातपल्यमात्रंगळप्पुवु । संदृष्टि :—



अथ सोपपत्तिस्थितिविकल्पानाह—

सप्तकर्मणामुत्कृष्टस्थितेरा अन्तःकोटाकोटिसमयोनक्रमेण सर्वे निरन्तरस्थितिविकल्पाः संख्यातपल्यमात्रा नियमेन संज्ञिजीवानां भवन्ति । संदृष्टिः—



आगे स्थितिके भेद कहते हैं—

आयुके बिना सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति पर्यन्त क्रमसे एक-एक समय हीन सब निरन्तर स्थितिके भेद संख्यात पल्य मात्र हैं। वे नियमसे संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवके होते हैं।

इल्लि अंतःकोटीकोटिगळु प्रतिभागदिंदं ज्ञानावरणादिगळगे साधिसल्पडुवुवल्लि त्रैराशिकमिदु। प्र सा २०। को २। फ अंतः को २। सा इ सा ३०। को २॥ लब्धज्ञानावरणादिगळंतः कोटीकोटिप्रमाणमिनितक्कुं। सा अंतः को २। ३। इंतु प्रतिभागदिंदमंतः कोटीकोटिगळु साधिसिकोळल्पडुवुवु॥

अनंतरं श्रेण्यारूढनोळु सांतरस्थितिविकल्पंगळप्पुवेंदु पेळ्दपरु। :— ५

संखेज्जसहस्साणिवि सेढीरूढम्हि सांतरा होंति।
सगसग अवरोत्ति हवे उक्कस्सादो दु सेसाणं॥९४६॥

संख्यातसहस्राण्यपि श्रेण्यारूढे सांतराणि भवंति। स्वस्वजघन्यपर्यंतं भवेदुत्कृष्टात्तु शेषाणां॥

सम्यक्त्वाभिमुखनप्प मिथ्यादृष्टियुं संयमासंयम संयमाभिमुखनप्पऽसंयतनुं संयमाभिमुखनप्प देशसंयतनुं श्रेण्याभिमुखनप्प अप्रमत्तनुमपूर्व्वकरणनुमनिवृत्तिकरणनुं सूक्ष्मसांपरायनुमेंबिवर्गंळु श्रेण्यारूढरेंदु पेळल्पट्टखर्गंळोळु संभविसुव सांतरस्थितिविकल्पस्थानंगळु संख्यातसहस्रंगळप्पुवु। १०००। येंतेंदोडधः प्रवृत्तकरणपरिणामदोळु तत्प्रथमसमयं मोदल्गोंडु १०

अत्र प्र-सा २० को २ फ-सा अन्तः को २। इ-सा ३० को २ लब्धमन्तः को २। ३। इति
२
ज्ञानावरणादीनामन्तःकोटीकोटिं साधयेत्॥९४५॥ अथ सान्तरस्थितिविकल्पानाह— १५

सम्यक्त्वदेशसकलसंयमश्रेण्यभिमुखाः क्रमशो मिथ्यादृष्ट्यसंयतदेशसंयताप्रमत्ताः, अपूर्वकरणादित्रयश्च श्रेण्यारूढाः तेषु सान्तरस्थितिविकल्पस्थानानि संख्यातसहस्राणि स्युः १००० तद्यथा—

जिन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी भी जघन्य स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागर है और जिन कर्मोंकी स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर है उनकी भी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है। किन्तु दोनोंमें अन्तर है और उसे त्रैराशिक द्वारा जानना २० चाहिए। यदि बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागर है तो तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी उत्कृष्ट स्थितिवाले कर्मोंकी जघन्य स्थिति कितनी होगी। ऐसा करनेपर डयोढ़ी अन्तःकोटाकोटी सागर स्थिति होती है॥९४५॥

आगे सान्तर स्थितिके भेद कहते हैं—

सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम, उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणीके अभिमुख हुए २५ क्रमसे मिथ्यादृष्टि, असंयत, देशसंयत, अप्रमत्त, अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती जीव तथा उपशम अथवा क्षपकश्रेणीपर चढ़े जीवोंके सान्तर स्थितिके भेद संख्यात हजार हैं।

वही कहते हैं—

---

१. अधःप्रवृत्तकरणपरिणामे तत्प्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धिवृद्धि सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया चतुःस्थानानुभागबन्धं असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनन्तगुणहान्या द्विस्थानानुभागबन्धं बन्धापसरणं च करोति। किंनाम बन्धापसरणं? ज्ञानावरणादीनां स्वयोग्यान्तःकोटीकोटिस्थितिं तद्योग्यान्तर्मुहूर्तपर्यंतं बध्नन् ततस्तदनन्तरसमये पल्यसंख्यातैकभागोनामन्तर्मुहूर्तपर्यंतं बध्नातीति। अमी स्थितिविकल्पा अधःप्रवृत्तकरणकाले संख्याताः त्रैराशिकेनानेन—

तत्कालचरमसमयपर्य्यंतं नाल्कावश्यकंगळप्पुववावुवें दोडें प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धि वृद्धि सातादि-प्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणवृद्धया चतुःस्थानानुभागबंध असाताद्यप्रशस्तप्रकृतिगळगे प्रतिसमयमनंतगुणहान्यादिस्थानानुभागबंध बंधापसरणमुमेंब नाल्कावश्यकंगळोळु बंधापसरणावश्यकदोळु बंधापसरणमें बुदें तें दोडे ज्ञानावरणादिप्रकृतिगळगे स्वयोग्यस्थितियंतः कोटीकोटि-
५ प्रमितमक्कुमा स्थितियुं प्रथमसमयं मोदल्गोंडु तद्योग्यांतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं समस्थितिबंधमं माडि तदनंतरसमयदोळु पल्यसंख्यातैकभागमात्रस्थितियं कुंदिसि कट्टि तावन्मात्रसमस्थितिबंध-मनंतर्म्मुहूर्त्तकालपर्य्यंतं माळ्कु । मितु बंधापसरण कालांतर्म्मुहूर्त्तक्कों दोदु स्थितिविकल्पमागलधः-प्रवृत्तकरणकालमंतर्म्मुहूर्त्तमादोडमदं नोडलु संख्यातगुणमक्कुमदक्केनितु स्थितिबंधविकल्पंगळप्पु-वेंदु त्रैराशिकमं माडि प्र । २ । १ । इ । का । २ । १ १ १
बंधापसरण फ । श ला । १ अधःप्र = काल

१० बंद लब्धं संख्यातस्थितिबंधविकल्पंगळप्पु ।१११।।

इंतपूर्व्वकरणनोळमी नाल्कावश्यकंगळुसहितमागि मत्तं स्थितिकांडकघात, मनुभागकांडक-घातगुणश्रेणि, गुणसंक्रममेंब नाल्कावश्यकंगळु सहितमागि अष्टावश्यकंगळप्पुववु कारणदिंदमिंत-निवृत्तिकरणनोळं सूक्ष्मसांपरायनोलं बंधापसरणंगलिदं संभविसुव सांतरस्थितिविकल्पस्थानंगळु उत्कृष्टदिंदमंतःकोटीकोटि । अंतःकोटि = २ प । जघन्यदिंद "मपरा द्वादशमुहूर्त्ता वेदनीयस्य ।
१५ नामगोत्रयोरष्टौ । शेषाणामंतर्म्मुहूर्त्तः" येंदितुत्कृष्टं मोदळ्गोंडु स्वस्वजघन्यपर्य्यंतं स्थितिविकल्प-

---

अधःप्रवृत्तकरणे प्रथमसमयादन्तर्मुहूर्तं ज्ञानावरणादीनां स्वयोग्यांतःकोटाकोटिस्थितिं बध्नाति । तदग्रेऽन्तर्मुहूर्तं पल्यासंख्यातैकभागोनां पुनस्तदग्रेऽन्तर्मुहूर्तं तावतोनामिति संख्यातसहस्रवारं नीत्वा तं करणं समाप्यापूर्वानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायेऽप्या स्व-स्वबन्धं तदालापवारमपसृत्य वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्तांतं नाम-गोत्रयोरष्टान्तर्मुहूर्तांतं शेषाणामन्तर्मुहूर्तांतं च बध्नातीति तानि तावन्त्युक्तानि । शेषद्वादशजीवसमासानां एयं

---

२० अधःप्रवृत्तकरणमें पहले समयसे अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंकी अपने योग्य अन्तःकोटी-कोटि सागर प्रमाण स्थिति बाँधता है । उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त पल्यके असंख्यातवें भाग हीन स्थितिको बाँधता है । उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त उससे भी उतनी ही हीन स्थितिको बाँधता है । इस प्रकार संख्यात हजार बार करके उस करणको पूरा करता है । उसके पश्चात् अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्परायमें भी
२५ अपने-अपने स्थितिबन्धको उतनी-उतनी ही बार घटाकर वेदनीयकी बारह मुहूर्तपर्यन्त, नाम

प्र २ १ फ श १ इ का २ १ १ १
बन्धापसरण अधःप्र = काल

भवन्ति १ १ । अपूर्वकरणे तानि आवश्यकानि च स्थितिकाण्डकघातानुभागकाण्डकघातगुणश्रेणिगुण-संक्रमणानि चेत्यष्टौ संतीति कारणात् । अनिवृत्तिकरणे सूक्ष्मसाम्परायेऽप्यन्तःकोटाकोटितः वेदनीयस्य
३० द्वादशमुहूर्तपर्यंतं नामगोत्रयोरष्टान्तर्मुहूर्त्तपर्यंतं शेषाणामन्तर्मुहूर्त्तपर्यंतं च बन्धापसरणानि स्युरिति संख्यातसहस्राणीत्युक्तं । पाठोऽयं श्रीमदभयचन्द्रनामांकितायां टीकायां ।

स्थानंगळु तद्योग्य संख्यातसहस्रंगळप्पुवें बु पेळल्पट्टुदु । तु मत्ते शेषद्वादशजीवसमासंगळगे "एयप्पण कादि पण्णं = बासूपबासू अवरट्ठिदीओ" येंदोत्यादि स्थितिगळगे निरंतरस्थितिस्थानविकल्पंगळेयप्पुवु ॥ अनंतरमी स्थितिविकल्पबंधकारणंगळु कषायाध्यवसायंगळेंदवं मूलप्रकृतिगळगे पेळ्दपरु—

आउट्ठिदिबंधज्झवसाणठाणा असंखलोगमिदा ।
णामागोदे सरिसं आवरणदु तदियविग्घे य ॥९४७॥

आयुस्थितिबंधाध्यवसायस्थानान्यसंख्यलोकमितानि । नामगोत्रयोः सदृशमावरणद्वयतृतीयविघ्ने च ॥

आयुस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु सर्व्वंतस्तोकंगळप्पुवंतागुत्तलुं तद्योग्यासंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । नामगोत्रंगळगे तम्मोळु पल्यासंख्यातैकभागत्वदिदं समानंगळप्पुवु । ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायंगळगेयुं तम्मोळु पल्यासंख्यातैकभागमात्रत्वदिदं समानंगळप्पुवु ॥

सव्वुवरि मोहणीये असंखगुणिदक्कमा हु गुणगारो ।
पल्लासंखेज्जदिमो पयडिसमाहारमासेज्ज ॥९४८॥

सर्व्वोपरि मोहनीये असंख्यातगुणितक्रमाणि खलु गुणकारः । पल्यासंख्यातैकभागः प्रकृतिसमाहारमाश्रित्य ॥

पणकदीत्यादि वासूपेत्यादिसूत्रोक्तानि तु तानि निरन्तराणि ॥९४६॥ अथ स्थितिविकल्पकारणकषायाध्यवसायान्मूलप्रकृतीनाह—

आयुःस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि सर्वतः स्तोकान्यपि तद्योग्यासंख्यातलोकमात्राणि । नामगोत्रयोस्ततः पल्यासंख्यातैकभागगुणत्वेन समानानि । ततः ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामपि तथा समानानि ॥९४७॥

और गोत्रकर्मकी आठ मुहूर्तपर्यन्त, शेष कर्मोंकी एक मुहूर्तपर्यन्त स्थितिको बाँधता है। इस प्रकार सान्तर स्थितिके भेद संख्यात हजार होते हैं। संज्ञीपर्याप्त और अपर्याप्तके बिना शेष बारह जीव समासोंमें 'एयं पणकदि पण्णं' तथा 'वासूप' आदि गाथाओंके द्वारा पहले स्थितिबन्धके कथनमें जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति कही है। सो उत्कृष्ट स्थितिसे जघन्य स्थिति पर्यन्त क्रमसे एक-एक समय घाट निरन्तर स्थितिके भेद जानना ॥९४६॥

आगे स्थितिके भेदोंमें कारणभूत कषायाध्यवसायस्थान कहते हैं—उन्हें स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान भी कहते हैं—

आयु कर्मके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान यद्यपि सबसे थोड़े हैं। फिर भी यथायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनसे नाम और गोत्रके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं। इस तरह परस्परमें दोनोंके समान हैं। उनसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अन्तरायके स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान हैं। चारोंके परस्परमें समान हैं ॥९४७॥

सबसे ऊपर मोहनीयमें स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान उनसे पल्यके असंख्यातवें भाग गुणे हैं। यहाँ प्रसंगवश सिद्धान्तके वचन कहते हैं—

एल्लवरिंदं मोहनीयदोळु प्रकृतिसमाहारमनाश्रयिसि प्रकृतिस्थितीनां विकल्पाः प्रकृतिसमाहारस्तमाश्रित्य प्रकृतिविकल्पंगळनाश्रयिसि कषायाध्यवसायस्थानंगळितु मूरेडेयोळमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवा गुणकारप्रमाणमुं पल्यांसंख्यातैकभागमक्कुं। संदृष्टि :—

मोहनीय	≡ə प प प ə ə ə
णा. दं. वे. अं.	≡ə प प ə ə
नाम गोत्र	≡ ə प ə
आयुष्य	≡ । १

इल्लिगे प्रस्तुतमप्प सिद्धांतवाक्यंगळु :—ण च सव्वमूलपयडीणं समाणाणं कसायोदयट्ठाणाणमेत्थ गहणं। कसायोदयट्ठाणेण विणा मूळपयडिबंधाभावेण सव्वपयडिट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं समाणत्तप्पसंगादो। तम्हा सव्वमूळपयडीणं सगसगसगउदयदो समुप्पण्णप्पपरिणामाणं सगसगट्ठिदिबंधकारणं तेण ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणसण्णिदाणमुत्तरपच्चयाणमेत्थ गहणं। पयडिसमाहारमासेज्ज णाणावरणादीणं पयडीणं सगसगठिदिबंधकारणज्झवसाणट्ठाणाणि सव्वाणि ? एगत्तं काऊण पमाणं परूविदं ण ट्ठिदिं पडि एसा परूवणा होदि। उवरिमसुत्तेहि ठिदिं पडि अज्झवसाणपमाणस्स परूविज्जमाणत्तादो। हेट्ठिमेहिंतो उवरिमाणि किमट्ठमसंखेज्जगुणाणि साहावियादो। मिच्छत्तासंजमकसायपच्चयेहि सव्वाणि कम्माणि सरिसाणि। तेण एदेसिं कम्माणमज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणित्ति ण घडदे। हेट्ठिमाणं ठिदिबंधट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं ठिदिबंधट्ठाणाणि अहियाणित्ति असंखेज्जगुणत्तं ण

सर्वोपरि मोहनीये प्रकृतीनां स्थितिविकल्पसमूहमाश्रित्य कषायाध्यवसायस्थानानि त्रिषु स्थानेष्वसंख्यातगुणितैकभागः अत्र प्रस्तुतसिद्धान्तवाक्यानि—

ण य सव्वमूलपयडीणं समाणाणं कसायोदयट्ठाणाणमेत्थ गहणं। कसायोदयट्ठाणेण विणा मूलपयडिबन्धाभावेण सव्वपयडिट्ठिदिबन्धज्झवसाणट्ठाणाणं समाणप्पसंगदो। तह्मा सव्वमूलपयडीणं सगसगउदयादो समुप्पण्णपरिणामाणं सगसगट्ठिदिबन्धकारणत्तेण ठिदिबन्धज्झवसाणट्ठाणसण्णिदाणमुत्तरपच्चयाणमेत्थ गहणं। पयडिसमाहारमासेज्ज णाणावरणादीणं पयडीणं सगसगठिदिबन्धकारणज्झवसाणट्ठाणाणि सव्वाणि एगत्तकाऊण पमाणं परूविदं। ण ट्ठिदिं पडि एसा परूवणा होदि। उवरिमसुत्तेहि ट्ठिदिं पडि अज्झवसाणपमाणस्स

यहाँ सब मूलप्रकृतियोंके समान कषायोदय स्थानोंका ग्रहण नहीं; क्योंकि कषायके उदयस्थानोंके बिना मूलप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे सब प्रकृतियोंके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंकी समानताका प्रसंग आता है। अर्थात् यदि सब मूलप्रकृतियोंके कषायोदय स्थान समान होंगे तो सबके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान भी समान होंगे क्योंकि कषायके उदय स्थानोंके बिना मूलप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता। अतः सब मूलप्रकृतियोंके अपने-अपने उदयसे उत्पन्न हुए परिणाम अपने-अपने स्थितिबन्धके कारण होते हैं। इससे उन्हें स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान कहते हैं, उनका यहाँ ग्रहण है। प्रकृतियोंके स्थिति भेदरूप समुदायको लेकर ज्ञानावरण आदि प्रकृतियोंके अपने-अपने स्थितिबन्धके कारणभूत जो अध्यवसाय स्थान हैं उन सबको एकत्र करके प्रमाण कहा है। यह कथन स्थितिकी अपेक्षा नहीं है।

जुज्जदे। हेट्ठिमहेट्ठिमकम्माणं ठिदिबंधट्ठाणा पाओग्गकसायेहिंतो उवरिमउवरिमाणं कम्माणमहियट्ठिदिबंधट्ठाणपाओग्गकसायउदयट्ठाणाणं असमाणाणमणुवलंभेण असंखेज्जगुणत्ताणुववत्तीदो। ण एस दोसो हेट्ठिमाणं उदयट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं उदयट्ठाणबहुत्तेण असंखेज्जगुणत्ताविरोहादो।

न च सर्व्वमूलप्रकृतीनां समानानां कषायोदयस्थानानामत्र ग्रहणं। कषायोदयस्थानेन विना मूलप्रकृतिबंधाभावेन सर्व्वप्रकृतिस्थितिबंधाध्यवसायस्थानानां समानत्वप्रसंगात्। तस्मात्सर्व्वमूलप्रकृतीनां स्वस्वोदयतः समुत्पन्नपरिणामानां स्वस्वस्थितिबंधकारणत्वेन स्थितिबंधाध्यवसायस्थानसंज्ञितानामुत्तरप्रत्ययानामत्र ग्रहणं। प्रकृतिसमाहारमाश्रित्य ज्ञानावरणादीनां प्रकृतीनां स्वस्वस्थितिबंधकारणाध्यवसायस्थानानि सर्व्वाण्येकीकृत्य प्रमाणं प्ररूपितं। न स्थितिं प्रत्येषा प्ररूपणा भवेत्। उपरितनसूत्रैः स्थितिं प्रत्यध्यवसायप्रमाणस्य प्ररूप्यमाणत्वात्। अधस्तनेभ्य उपरिमाणि किमर्थमसंख्येयगुणानि स्वाभाव्यात्। मिथ्यात्वासंयमकषायप्रत्ययैः सर्व्वाणि कर्म्माणि सदृशानि। तेनैतेषां कर्म्मणामध्यवसायस्थानानि असंख्येयगुणहीनानीति न घटते। अधस्तनानां स्थितिबंध-

---

परूविज्जमाणत्तादो हेट्ठिमेहिंतो उवरिमाणि किमट्ठमसंखेज्जगुणाणि। साहावियादो मिच्छत्तासंजमकसायपच्चयेहिं सव्वाणि कम्माणि सरिसाणि तेण एदेसिं कम्माणमज्झवसाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणित्ति ण घडदे हेट्ठिमाणं ठिदिबन्धट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं कम्माणं ठिदिबन्धट्ठाणाणि अहियाणित्ति असंखेज्जगुणत्तं ण जुज्जदे। हेट्ठिमहेट्ठिमकम्माणं ठिदिबन्धट्ठाणपाउग्गकसायेहिंतो उवरिमउवरिमाणं कम्माणयहियट्ठिदिबन्धट्ठाणं पाओग्गकसायउदयट्ठाणाणं असमाणाणमणुवलंभेण असंखेज्जगुणत्ताणुववत्तीदो। ण एस दोसो। हेट्ठिमाणं उदयट्ठाणेहिंतो उवरिमाणं उदयट्ठाणबहुत्तेण असंखेज्जगुणताविरोहादो।

न च सर्वमूलप्रकृतीनां समानां कषायोदयस्थानानामत्र ग्रहणं कषायोदयस्थानेन विना मूलप्रकृतिबन्धाभावेन सर्वप्रकृतिस्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानां समानत्वप्रसंगात्। तस्मात् सर्वमूलप्रकृतीनां स्वस्वोदयतः समुत्पन्नात्मपरिणामानां स्वस्वस्थितिबन्धकारणत्वेन स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानसंज्ञितानामुत्तरप्रत्ययानामत्र ग्रहणं प्रकृतिसमाहारमाश्रित्य ज्ञानावरणादीनां प्रकृतीनां स्वस्वस्थितिबन्धकारणाध्यवसायस्थानानि सर्वाण्येकीकृत्य प्रमाणं प्ररूपितं। न स्थितिं प्रत्येषा प्ररूपणा भवेत्। उपरितनसूत्रैः स्थितिं प्रत्यध्यवसायप्रमाणस्य प्ररूप्यमाणत्वादधस्तनेभ्य उपरिमाणि किमर्थमसंख्येयगुणानि स्वाभाव्यात्। मिथ्यात्वसंयमकषायप्रत्ययैः सर्वाणि कर्माणि सदृशानि तेनैतेषां कर्मणामध्यवसायस्थानान्यसंख्येयगुणानि इति न घटते। अधस्तनानां

क्योंकि आगेके सूत्रोंके द्वारा स्थितिकी अपेक्षा अध्यवसायोंके प्रमाणका कथन किया है।

शंका—पहले कहे आयु आदि कर्मोंके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंसे पीछे कहे कर्मोंके स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान असंख्यात गुणे कैसे हैं? क्योंकि स्वभावसे ही मिथ्यात्व, असंयम, कषायरूप प्रत्ययोंके द्वारा सब कर्म समान हैं। इनसे हीन जो कर्म हैं उनके अध्यवसाय स्थान असंख्यात गुणे कैसे हो सकते हैं? पहले कहे आयु आदि कर्मोंके स्थितिबन्धके स्थानोंसे पीछे कहे कर्मोंके स्थितिबन्धके स्थान अधिक हो सकते हैं किन्तु असंख्यात गुणे नहीं हो सकते? पहले-पहले कहे कर्मोंके स्थितिबन्ध स्थानके योग्य कषायोंसे पीछे-पीछे कहे कर्मोंकी अधिक स्थितिबन्धके स्थानोंके योग्य कषायके उदयस्थान असमान नहीं पाये जाते अतः असंख्यात गुणापना नहीं बनता।

स्थानेभ्य उपरितनानां कर्म्मणां स्थितिबंधस्थानान्यधिकानीति असंख्येयगुणत्वं न युज्यते। अधस्तनाधस्तनकर्म्मणां स्थितिबंधस्थानप्रायोग्यकषायेभ्य उपरितनोपरितनानां कर्म्मणामधिकस्थितिबंधस्थानप्रायोग्यकषायोदयस्थानानामसमानानामनुपलंभेनासंख्येयगुणत्वानुपपत्तितः। नैष दोषः। अधस्तनानामुदयस्थानेभ्य उपरितनानां कर्म्मणामुदयस्थानबहुत्वेनासंख्येयगुणत्वाविरोधात् ॥

अनंतरं जघन्यादिस्थितिविकल्पं प्रति कषायाध्यवसायंगळं पेळ्दपरु :—

अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा ।
अहियक्कमा उक्कस्सट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥९४९॥

जघन्यस्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकमितानि। अधिकक्रमाण्युत्कृष्टस्थितिपरिणामपर्य्यंतं नियमेन ॥

जघन्यस्थितियंतःकोटीकोटिसागरोपममदक्के संख्यातपल्यंगळप्पुवु। प १। तदुत्कृष्टस्थिति मोहनीयक्के सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममदक्के जघन्यस्थितियं नोडलु संख्यातगुणितपल्यंगळप्पुवु। प ११। मध्यमस्थितिविकल्पंगळु एकैकसमयाधिकक्रमंगळप्पुवु। ई स्थितिविकल्पंगळेनितक्कुमेंदोडे आदौ। प १। अंते प ११। सुद्धे। प $\overset{\circ}{११}$। वड्ढिहिदे। प $\overset{\circ}{१}\overset{\circ}{१}$। रूवसंजुदे ठाणा। प $\overset{\circ}{१}\overset{\circ}{१}$। एंदितु सर्व्वस्थिति निरंतरविकल्पंगलिनितप्पुवल्लि सर्व्वजघन्यस्थितिबंधाध्यव-

---

स्थितिबन्धस्थानेभ्य उपरितनानां कर्मणां स्थितिबन्धस्थानान्यधिकानि इत्यसंख्येयगुणत्वेन युज्यते अधस्तनाधस्तनकर्मणां स्थितिबन्धस्थानप्रायोग्यकषायेभ्यः, उपरितनोपरितनानां कर्मणामधिकस्थितिबन्धस्थानप्रायोग्यकषायोदयस्थानानामसमानानामनुपलंभेनासंख्येयगुणत्वानुपपत्तितः। नैष दोषः अधस्तनानामुदयस्थानेभ्य उपरितनानां कर्मणां उदयस्थानबहुत्वेनासंख्येयगुणत्वाविरोधात् ॥९४८॥ अथ जघन्यादिस्थितिविकल्पं प्रत्याह—

मोहनीयस्य स्थितिः जघन्यांतःकोटीकोटिसागरोपमासंख्यातपल्यमात्री प १ उत्कृष्टा सप्ततिकोटाकोटिसागरोपमा। ततः संख्यातगुणा प $\overset{\circ}{१}\overset{\circ}{१}$ तद्विकल्पा एतावंतः प $\overset{\circ}{१}\overset{\circ}{१}$ एतेषु सर्वजघन्यस्य स्थितिबन्धाध्यवसाय-

---

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है; क्योंकि नीचेके उदयस्थानोंसे ऊपरके कर्मोंके उदयस्थान बहुत होनेसे असंख्यात गुणे होनेमें कोई विरोध नहीं है। उक्त कथनका सारांश यह है कि अपने-अपने उदयसे होनेवाले आत्माके परिणामोंका नाम स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान है। सो आयु आदि कर्मोंके उदयस्थानोंसे नाम आदि कर्मोंके उदयस्थान बहुत हैं इससे असंख्यात गुणे कहे हैं ॥९४८॥

आगे जघन्य आदि स्थितिकी अपेक्षा स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण कहते हैं—

मोहनीय कर्मकी जघन्यस्थिति तो अन्तःकोटाकोटी सागर प्रमाण है सो संख्यात पल्य प्रमाण है। और उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। यह जघन्य स्थितिसे

सायस्थानंगळु असंख्यात लोकमात्रंगळप्पुवु। मेले मेले उत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतं चयाधिकंगळप्पुवु नियमदिदं ॥

अनंतरमा विशेषप्रमाणंगळं पेळ्दपरु :—

अहियागमणणिमित्तं गुणहाणी होदि भागहारो दु।
दुगुणं दुगुणं वड्ढी गुणहाणिं पडि कमेण हवे ॥९५०॥

अधिकागमननिमित्तं गुणहानिर्भवेद् भागहारस्तु। द्विगुणं द्विगुणं वृद्धिर्गुणहानिं प्रति क्रमेण भवेत् ॥

तच्चयागमननिमित्तमागि गुणहानिभागहारमक्कुमेंतप्प गुणहानियें दोडे द्विगुणं द्विगुणितमप्प दोगुणहानि येंबुदत्थंमा दोगुणहानियिदं जघन्यस्थितिबंधनिबंधनाध्यवसाय प्रथमगुणहानि चरमनिषेकमं १६। भागिसुत्तं विरलु १६ तत्प्रथमगुणहानिसंबंधिचयप्रमाणमक्कु । १ । मथवा
16
तु शब्ददिदं रूपाधिकगुणहानियिदं प्रथमादिगुणहानिगळ प्रथमनिषेकंगळं भागिसुत्तं विरलु तत्तद्गुणहानिसंबंधिचयंगळप्पुवु। अदु कारणमागि गुणहानिं प्रति चयंगळु द्विगुणंगळु क्रमदिदंमक्कुं

९	१८	३६	७२	१४४	२८८
८	८	८	८	८	८
१	२	४	८	१६	३२

स्थानान्यसंख्यातलोकमात्राणि तत उपरि उत्कृष्टपर्यंतं चयाधिकानि भवन्ति ॥९४९॥

अधिकः चयः तमानेतुं विवक्षितगुणहानौ चरमनिषेके दोगुणहानिः, तुशब्दात् प्रथमनिषेके रूपाधिकगुणहानिश्च भागहारो भवति। तत एव स गुणहानिं प्रति द्विगुणद्विगुणक्रमेण स्यात्। तत्संदृष्टिः—

संख्यात गुणी है। उत्कृष्ट स्थितिमें-से जघन्यस्थितिको घटाकर उसमें एक मिलानेसे जो प्रमाण हो उतने स्थितिके भेद हैं। इन भेदोंमें-से सबसे जघन्य स्थितिबन्धके कारणभूत अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण है। उससे ऊपर उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त नियमसे एक-एक चय अधिक हैं। सो जघन्यस्थितिके कारण अध्यवसाय स्थानोंके प्रमाणमें एक चयका प्रमाण मिलानेपर जघन्यस्थितिसे एक समय अधिक स्थितिके कारण अध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण होता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त जानना ॥९४९॥

अधिक रूपको चय कहते हैं। उसे लानेके लिए विवक्षित गुणहानिमें अन्तिम निषेकको दो गुणहानिका भाग दीजिए। और 'तु' शब्दसे प्रथम निषेकको एक अधिक गुणहानिका भाग दीजिए। तब चयका प्रमाण आता है। जैसे अंकसंदृष्टिमें अन्तिम गुणहानिमें अन्तिम निषेकका प्रमाण सोलह है। उसमें दूनी गुणहानिके प्रमाण सोलहका भाग देनेपर एक आता है। अथवा प्रथम निषेकका प्रमाण नौ है। उसको एक अधिक गुणहानि नौका भाग देनेपर भी एक आता है। वही उस गुणहानिमें चयका प्रमाण होता है। उससे प्रत्येक गुणहानिमें दूना-दूना चयका प्रमाण होता है; क्योंकि प्रत्येक गुणहानिमें आदि निषेक और अन्तिम निषेकका प्रमाण दूना-दूना होता है ॥९५०॥

अनंतरमा भागहारभूतगुणहानिप्रमाणमं पेळ्दपरु :—

ठिदिगुणहाणिपमाणं अज्झवसाणम्मि होदि गुणहाणी ।
णाणागुणहाणिसला असंखभागो ठिदिस्स हवे ॥९५१॥

स्थितिगुणहानिप्रमाणं अध्यवसाये भवेद्गुणहानिः । नानागुणहानिशलाका असंख्यभागः स्थितेर्भवेत् ॥

ई कषायबंधाध्यवसायदोळु गुणहानिप्रमाणमेनितेंदोडे आलापापेक्षेयिंदं स्थितिरचनेयोळ् पेळल्पट्ट दशकोटीकोटयादिस्थितिगळ्गे पेळ्द प्रमाणमे स्थितिबंधाध्यवसायगुणहानिप्रमाणमक्कुं ।

परमार्थदिंदमिनितक्कु $\frac{\text{प १ १}}{\text{छे व छे}}$ मिदं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानियक्कुं— $\frac{\text{प १ १}}{\text{छे व छे}} \times २$ नानागुणहानिशलाकाप्रमाणमुमंते स्थितिगे पेळ्द नानागुणहानिशलाकाऽसंख्यातैकभागमक्कु । नाना $\frac{\text{छे व छे}}{\text{अ}}$ मी नानागुणहानिशलाकेगळिंदं स्थितियं भागिसिदोडे गुणहान्यायाममक्कुमप्पुदरिंदमध्यवसायविषयदोळु गुणहानिप्रमाणं सामान्यालापापेक्षेयिंदं स्थितिगुणहानिप्रमाणमें दु पेळल्पट्टुदें दवधारिसल्पडुगुमेकें दोडे नानागुणहानिशलाकेगळु स्थितिय नानागुणहानिशलाकेगळं नोडलुमसंख्यात-

१६ ८।२	३२ ८।२	६४ ८।८	१२८ ८।२	२५६ ८।२	५१२ ८।२
९	१८	३६	७२	१४४	२८८
८	८	८	८	८	८
१	२	४	८	१६	३२

गुणहानिप्रमाणं तु प्राग्बन्धावसरे कर्मस्थित्युक्तगुणहानिप्रमाणवदत्र कषायध्यवसायेऽपि भवति $\frac{\text{प १ १}}{\text{छे–व–छे}}$ तदेव द्विगुणं दोगुणहानिः $\frac{\text{प १ १}}{\text{छे–व–छे}} \times २$ नानागुणहानिशलाकाप्रमाणं स्थितिनानागुणहानि-
अ

पूर्वमें बन्धके कथनमें कर्मस्थितिकी रचनामें जैसे गुणहानिका प्रमाण कहा है वैसे ही यहाँ कषायाध्यवसायस्थानके कथनमें भी गुणहानिका प्रमाण जानना । अर्थात् पूर्वमें कहा था कि स्थितिके प्रमाणमें नानागुणहानि शलाकाके प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वही गुणहानिका प्रमाण है वैसे ही यहाँ जानना । सो यहाँ जघन्यस्थितिसे उत्कृष्ट स्थिति-पर्यन्त जितने स्थितिके भेदोंका प्रमाण है वही स्थितिका प्रमाण है । उसमें नानागुणहानि शलाकाके प्रमाणका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वही एक गुणहानि आयामका प्रमाण जानना । उससे दूना दो गुणहानिका प्रमाण जानना । तथा नानागुणहानिका प्रमाण, स्थिति रचनामें जो नानागुणहानिका प्रमाण कहा था उसके असंख्यातवें भाग जानना । सो विव-

गुणहीनंगळें दु पेळल्पट्टुवप्पुदरिंदमा नानागुणहानिगळिंदं स्थितियं भागिसिदोडे गुणहान्यायाम-मप्पुदरिंदं ॥

अनंतरमा स्थितिबंधाध्यवसायविषयप्रचयमुं महाराशियक्कुमेकें दोडा प्रथमगुणहानि-संबंधिजघन्यचयस्थानंगळोळसंख्यातलोकमात्रषट्स्थानवारंगळप्पुवें दु पेळ्दपरु :—

लोगाणमसंखपमा जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा ।
ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं ॥९५२॥

लोकानामसंख्यप्रमाणं जघन्यवृद्धौ तस्यां षट्स्थानानि । स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानां भवेयुः सप्तानां ॥

आयुर्व्वर्ज्जितज्ञानावरणादिसप्तमूलप्रकृतिगळस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळ प्रथमादिगुण-हानिगळ प्रचयंगळोळु प्रथमगुणहानिजघन्यवृद्धिप्रमाणं पेळल्पट्टुददरोळु असंख्यातलोकमात्रषट्-स्थानवारंगळप्पुवु ॥

अनंतरमायुष्यस्थितिबंधाध्यवसायंगळोळु विशेषमं पेळ्दपरु :—

आउस्स जहण्णट्ठिदिबंधणजोग्गा असंखलोगमिदा ।
आवलियसंखभागेणुवरुवरिं होंति गुणिदकमा ॥९५३॥

आयुषो जघन्यस्थितिबंधनयोग्या असंख्यातलोकमिताः । आवल्यसंख्यभागेनोपर्य्युपरि भवेयुर्ग्गुणितक्रमाः ॥

शलाकानामसंख्यातैकभागः नाना छे—व—छे ॥९५१॥ तज्जघन्यचयस्य महत्त्वं दर्शयति —

अ

विनायुः सप्तमूलप्रकृतीनां स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानां सर्वगुणहानिप्रचयेषु प्रथमो जघन्यवृद्धिः तत्रासंख्यातलोकमात्रषट्स्थानवारा भवन्ति ॥९५२॥ आयुःस्थितिबन्धाध्यवसायेषु विशेषमाह—

क्षित मोहनीयकी स्थिति रचनामें नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण पल्यके अर्द्धच्छेदोंमें-से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेद घटानेपर जो प्रमाण हो उतना कहा था। उसमें असंख्यात-का भाग देनेपर जो प्रमाण रहे वही यहाँ कषायाध्यवसायकी रचनामें नानागुणहानिका प्रमाण जानना।

विशेषार्थ—स्थितिरचनामें जैसे अंकसंदृष्टिके द्वारा कथन किया था वैसे ही यहाँ भी जानना। यहाँ जो स्थितिके भेदोंका प्रमाण है वही स्थितिका प्रमाण जानना। जितना गुण-हानि आयामका प्रमाण है उतने जघन्यसे लेकर जो स्थितिके भेद हैं उनमें प्रथम गुणहानि जानना। तथा जघन्यस्थितिका कारण जो अध्यवसायोंका प्रमाण है वही प्रथम निषेकका प्रमाण जानना। उसमें एक चय मिलानेपर एक समय अधिक जघन्यस्थितिके कारण अध्यवसायोंके प्रमाणरूप दूसरा निषेक होता है। प्रथम निषेकमें एक अधिक गुणहानि आयामका भाग देनेपर जो प्रमाण हो वही चयका प्रमाण है। इस प्रकार एक-एक चय अधिक प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेक पर्यन्त जानना। उसके ऊपर उतने ही स्थितिके भेदोंकी दूसरी गुणहानि होती है। उसमें भी निषेक चय आदिका प्रमाण प्रथम गुणहानिसे दूना जानना। इसी प्रकार अन्तकी गुणहानि पर्यन्त जानना ॥९५१॥

आगे जघन्य चयका महत्त्व दिखाते हैं—

आयुःकर्म्मक्के सर्व्वजघन्यस्थितिबंधयोग्यंगळप्प अध्यवसायस्थानंगळु असंख्यातलोकमितंगळप्पुवु । द्वितीयादिस्थितिविकल्पंगळोळु मेले मेले आवल्यसंख्यातैकभागदिंदं गुणितक्रमंगळप्पुवल्लि स्थितिगे षोडशमंकसंदृष्टि । असंख्यातलोकक्के अंकसंदृष्टि द्वाविंशति । २२ । आवल्यसंख्यातगुणकारक्के नाल्कु रूपुगळु संदृष्टि :—

△जं|२२	२२।४।१	२२।४।२	२२।४।३	२२।४।४	२२।४।५	२२।४।६
अनु ४	५	६	७	४ २२।४–१	५ २२।४।२।१	६ २२।४।३।१
अनु ५	६	७	४ २२।४।–१	५ २२।४।२–१	६ २२।४।३-१	७ २२।४।४।१
अनु ६	७	४ २२।४।१	५ २२।४।२।१	६ २२।४।३।१	७ २२।४।४।१	४ २२।४।१ २२।४।५-१
अनु ७	४ २२।४।१	५ २२।४।२।१	६ २२।४।३।१	७ २२।४।४।१	४ २२।४।१ २२।४।५।१	२२।४।२–१ २२।४।६–१

२२।४।७	२२।४।८	२२।४।९	२२।४।१०	२२।४।११	२२।४।१२	२२।४।१३
७ २२।४।४-१	४। २२।४।१	५ २२।४।२।१	←	२२।४।१४	२२।४।१५	
४ २२।४-१ २२।४।५-१	५ २२।४।२।१	६ २२।४।३।१				
५ २२।४।२-१ २२।४।६-१	६ २२।४।३।१	७ २२।४।४-१				
६ २२।४।३१ २२।४।७-१	७ २२।४।४।१	४ २२।४-१ २२।४।५।-१				

५ आयुःकर्मणः सर्वजघन्यस्थितिबन्धयोग्याध्यवसायस्थानान्यसंख्यातलोका भवन्ति । द्वितीयादिस्थितिविकल्पेष्वावल्यसंख्यातैकभागेन गुणितक्रमाणि भवन्ति । तत्रांकसंदृष्टया स्थितिः षोडश १६ । असंख्यातलोको द्वाविंशतिः २२ । आवल्यसंख्यातश्चतुष्कं ४ । अनुकृष्टिपदमपि चतुष्कं । ४ । संदृष्टिः—

आयुके बिना सात मूलप्रकृतियोंके जो स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हैं उनके सर्व गुणहानि सम्बन्धी प्रचयोंमें जो प्रथम जघन्य वृद्धि होती है उसमें असंख्यात लोकप्रमाण १० षट् स्थानपतित वृद्धियाँ होती हैं ॥९५२॥

आयुकर्मके स्थितिबन्धाध्यवसायोंमें विशेषता बतलाते हैं—

आयुकर्मकी सबसे जघन्य स्थितिबन्धके योग्य अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं । उसको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जघन्यसे एक समय अधिक दूसरी स्थितिके योग्य अध्यवसाय स्थान होते हैं । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त क्रमसे

इल्लि आयुस्थितिबंधाध्यसायंगळोळु जघन्यस्थितिबंधयोग्यासंख्यातलोकमात्राध्यवसाय-स्थानं मोदल्गों डावल्यसंख्यातगुणितक्रमदोळुत्कृष्टस्थितिबंधाध्यवसायंगळ संबंधि अनुकृष्टिखंडंगळोळु सर्व्वजघन्यस्थितिबंधप्रायोग्यासंख्यातलोकमात्राध्यवसायंगळगंकसंदृष्टि द्वाविंशतियप्पुदरिंद-मनुकृष्टिपदक्कंकसंदृष्टि नाल्कुरूपुगळप्पुवल्लि चयधन । ६ । होनं द्रव्यं । २२ । ६ । पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं १६ लब्धं नाल्कु रूपुगळप्पुवा नाल्कुं रूपुगळु आदिप्रमाणमक्कुं। तत्तो ५
४

V ज । २२	२२ । ४ । १	२२ । ४ । २	२२ । ४ । ३	२२ । ४ । ४	२२ । ४ । ५	२२ । ४ । ६
अनु ४	५	६	७	४ २२ । ४–१	५ २२।४।२–१	६ २२।४।३–१
अनु ५	६	७	४ २२ । ४–१	५ २२।४।२–१	६ २२।४।३–१	७ २२।४।४–१
अनु ६	७	४ २२ । ४–१	५ २२।४।२–१	६ २२।४।३–१	७ २२।४।४–१	४ २२।४–१ २२।४।५–१
अनु ७	४ २२।४।१–१	५ २२।४।२–१	६ २०।४।३–१	७ २२।४।४–१	४ २२ । ४–१ २२।४।५–१	५ २२।४।२–१ २२।४।६–१

२२ । ४ । ७	२२ । ४ । ८	२२ । ४ । ९	२२ । ४ । १०
	२२ । ४ । ११	२२ । ४ । १२	२२ । ४ । १३
७ २२।४।४–१	२२ । ४ । १४	२२ । ४ । १५उ	

४ २२।४–१ २२।४।५–१
५ २२।४।२–१ २२।४।६–१
६ २२।४।३–१ २२।४।७–१

तत्र चय ६ हीनद्रव्यं २२–६ । पदभक्ते १६ जघन्यस्थितिजघन्यानुकृष्टिखण्डं स्यात् । ४ तत
४

आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित अध्यवसाय स्थान होते हैं। इस कथनको अंकसंदृष्टिसे दिखाते हैं—

आयुकर्मकी स्थितिके भेद संख्यात पल्यप्रमाण हैं। उनकी कल्पित संख्या सोलह १६ मान लीजिए। जघन्यस्थितिके योग्य अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाणकी संख्या १०
बाईस मान लीजिए। द्वितीय आदि स्थितिमें गुणकार आवलीका असंख्यातवाँ भाग है

विसेस अहियकमम बिंदु जघन्यस्थितिजघन्यानुकृष्टिखंडं मोदलगों डु उत्कृष्टखंडपर्य्यंतमेकैकचयाधिकक्रमदिदं स्थापिसुत्तं विरला द्वाविंशति रूपुगळुं संपूर्णंगळप्पुवु । ४ । ५ । ६ । ७ ॥ मत्तं द्वितीयस्थितिविकल्पबंधप्रायोग्यंगळि । २२ । ४ । विल्लिएकरूपं तेगेदु बेरे स्थापिसि । २२ । १ । अवशिष्टमिदु । २२ । ४—१ मत्तमा उद्धृतरूपं ।

२२।१। मुनिनंते विभागिसि मोदलगों डु स्थापिसिदोडिंतिप्पुंवु । ५।६।७ । अवशिष्टचतुष्टयमनिदर । २२ । ४ ।—१ । मेलिरिसि कडेयोळु स्थापिसिदोड्डुत्कृष्टखंडमितिक्कुं २२।४

२२ । ४—१

मत्तं तृतीयस्थितिविकल्पबंधप्रायोग्यंगळिवरोळु । २२ । ४ । ४ । मुनिनंतेकरूपंतेगेदु बेरिरिसि । २२ । ४ । १ । अवशिष्टमनिदं । २२ । ४ । ४—१ । कडेयोळु बरेदु मत्तमा तेगेदिरिसिद रूप । २२ । ४ । १ । मिदरोळु एकरूपंतेगेदु बेरिरिसि । २२ । १ । अवशिष्टमनिदं । २२ । ४ । १ । उपांतदोलिरिसिल्पडुगुं । मत्तमा बेरिरिसिदुदनिदं । २२ । १ पूर्व्ववद्विभागिसि । ४ । ५ । ६ । ७ ।

उत्कृष्टखण्डपर्यंतमेकैकचयाधिकक्रमेण दत्ते ५ । ६ । ७ । द्वाविंशतिरूपाणि परिसमाप्नुवन्ति । द्वितीयविकल्पे तत्प्रायोग्याणीमानि २२ । ४ । अत्रैकभागं गृहीत्वा २२ । १ । विभज्य पंचादितो दत्वा ५ । ६ । ७ । अवशिष्टे चतुष्कं बहुभागस्य २२ । ४–१ । उपरि दत्ते उत्कृष्टखण्डं स्यात् । ४

२२ । ४–१

तृतीयविकल्पे २२ । ४ । ४ । एकभागं गृहीत्वा २२ । ४ । १ । शेषं २२ । ४ । ४–१ । अन्ते दत्वापनीतभागे २२ । ४ । १ अप्येकभागमुद्धृत्य २२ । १ । शेष २२ । ४–१ । मुपान्ते दत्वोद्धृतैकभागं २२ । १ ।

उसका प्रमाण चार मान लीजिए। नीचेकी स्थितिके बन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंमें और ऊपरकी स्थितिके बन्धके कारण अध्यवसाय स्थानोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा समानता भी पायी जानेसे यहाँ अनुकृष्टिका विधान भी सम्भव है। क्योंकि ऊपर और नीचेमें समानताका नाम ही अनुकृष्टि है। सो अंकसंदृष्टिमें अनुकृष्टिके गच्छका प्रमाण चार जानना। स्थितिकी रचना तो ऊपर-ऊपर होती है और एक-एक स्थितिरचनाके बराबरमें अनुकृष्टि रचना होती है। जघन्यस्थितिकी अनुकृष्टिमें चयका प्रमाण एक है। चयधन छह है। प्रथम स्थितिके द्रव्य बाईसमें छह घटानेपर सोलह रहे। उसमें अनुकृष्टि गच्छ चारका भाग देनेपर चार पाये। यही जघन्यस्थितिमें अनुकृष्टिका जघन्य खण्ड है। इससे उत्कृष्ट खण्डपर्यन्त एक-एक चय अधिक होता है। सो दूसरे, तीसरे, चौथे खण्डका प्रमाण पाँच, छह, सात क्रमसे जानना। चारों खण्डोंका जोड़ बाईस होता है। स्थितिके दूसरे भेदका भी द्रव्य बाईस और चौगुने अध्यवसाय होनेसे अट्ठासी हुए। उनमें-से एक भाग बाईसको लेकर पहले आदि अनुकृष्टि खण्डोंमें क्रमसे पाँच, छह, सात दो। शेष रहे चार तथा तीन बाईस = ६६। उनको अन्तिम चतुर्थ उत्कृष्ट खण्डमें देनेसे सत्तर हुए। सब मिलकर अट्ठासी हुए। तीसरे स्थिति भेदमें अध्यवसाय बाईसका दो बार चौगुना है। अतः तीन सौ बावन हुए। उसमें-से एक भाग चौगुना बाईसको जुदा रखकर शेष चौगुना बाईसका तिगुना अर्थात् दो सौ चौंसठ अन्तके खण्डमें दो। और जुदे रखे चौगुना बाईसमें-से एक भाग बाईसको जुदा रखकर शेष तीन गुणा बाईस अर्थात् छियासठ तीसरे खण्डमें दो। जुदे रखे बाईसमें-से पहले और दूसरे

इवरोळु तिर्य्यग्रचनानिमित्तमागि षट्सप्तकंगळं । ६ । ७ । मोदल्गोंडु बरेदु अवशिष्टचतुःपंचकंगळं

४ ५
४ । ५ । क्रमविंदमुपांत्यांतंगळ मेले बरेदोडिंतिप्पुंवु । २२ । ४—१ । २२ । ४ । ४ । १ । मत्तं चतुर्थंस्थितिविकल्पबंधप्रायोग्यंगळिवरोळु । २२।४।४।४ । येकरूपं तेगेदोडिदु । २२ । ४ ।४—१ । अवशिष्टमनिद । २२ । ४ । ४। ४ । १ । नंत्यदोळु बरेदु मत्तं तेगेदेकरूपिनोळिदरोळु । २२ । ४ । ४ । १ एकरूपं तेगेदु बेरिरिसि । २२ । ४ । १ । शेषमनिद । २२ । ४ । ४।१ । नुपांत्यदोळु बरेदु मत्तं बेरिरिसि देकरूपिनोळिदरोळु । २२ । ४ । १ । मत्तमेकरूपं तेगेदु बेरिरिसि । २२ । १ । शेषमनिदं द्वितीयखंडदोळु बरेदु एकरूपनिदं मुन्निनंते विभागिसि । ४ । ५ । ६ । ७ । सप्तकम । ७ । नादियोळ्बरेदु शेषचतुःपंचषट्कंगळं द्वितीयतृतीयचरमखंडंगळ मेलिरिसिदोंडितिप्पुंवु ।

४ ५ ६
२२ । ४—१ । २२ । ४ । ४—१ । २२ । ४ । ४ । ४—१ । पंचमस्थितिविकल्पबंधप्रायोग्यंगळि-

---

प्राग्वद्विभज्य ४ । ५ । ६ । ७ । षट्समांको क्रमेणादितो दत्वा चतुष्पंचाको ४ । ५ । उपान्त्यान्त्ययोरुपरि दद्यात् ।

४
२२ । ४–१
चतुर्थविकल्पे २२ । ४ । ४ । ४ । एकभागमुद्धृत्य २२ । ४ । ४ । १ । शेष २२ । ४ । ४ । ४–१ ।

५
मन्ते दत्त्वोद्धृतैकभागे २२ । ४ । ४ । १ ऽप्येकभागमुद्धृत्य २२ । ४ । १ शेषं २२ । ४ । ४–१ । उपान्ते

२२ । ४ । ४–१
दत्त्वोद्धृतैकभागे २२ । ४ । १ ऽप्येकभागं गृहीत्वा २२ । १ शेषं २२ । ४–१ द्वितीयखण्डे दत्त्वैकभागं पूर्ववद्विभज्य ४ । ५ । ६ । ७ सप्तांक ७ मादौ दत्त्वा चतुष्पंचषडंकान् द्वितीयतृतीयचरमाणमुपरि दद्यात् ।

४ ५ ६
७ २२ । ४–१ । २२ । ४ । ४–१ । २२ । ४ । ४ । ४–१ एवं ।

खण्डमें क्रमसे छह और सात दो । तथा तीसरे और चौथे खण्डमें जो पूर्वमें दिया था उसमें चार और पाँच मिलाओ। ऐसा करनेसे प्रथम खण्डमें छह, दूसरेमें सात, तीसरेमें सत्तर और चौथे खण्डमें दो सौ उनहत्तर हुए। सबको जोड़नेपर ६+७+७०+२६९=३५२ तीन सौ बावन हुए। चौथे स्थिति भेदमें बाईसको तीन बार चौगुना करनेपर चौदह सौ आठ अध्यवसाय हैं। उनमें-से एक भाग बाईसका दो बार चौगुनाको जुदा रखकर शेष बाईसके दो बार चौगुनाको तिगुना करनेपर एक हजार छप्पन हुए। इसे अन्तके चतुर्थ खण्डमें दो। जो बाईसका दो बार चौगुना जुदा रखा था उसमें-से एक भाग बाईसका चौगुना रखकर शेष चौगुना बाईसका तिगुना दो सौ चौंसठ हुआ। उसे तीसरे खण्डमें दो। जो बाईससे चौगुना जुदा रखा था उसमें-से एक भाग बाईसको जुदा रखकर शेष तिगुना बाईस अर्थात् छियासठ दूसरे खण्डमें देना। जो बाईस जुदा रखा था उसमें-से सात प्रथम खण्डमें और चार, पाँच, छह दूसरे, तीसरे, चौथे खण्डमें मिलाना। ऐसा करनेपर प्रथम खण्डमें सात, दूसरेमें सत्तर, तीसरेमें दो सौ उनहत्तर और चौथेमें एक हजार बासठ हुए। सबको जोड़नेपर ७+७०+२६९+१०६२=चौदह सौ आठ हुए।

बरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । एकरूपं तेगेदोडिदु । २२ । ४ । ४ । ४ । १ । अवशिष्टमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ ।—१ । चरमखंडदोळु बरेदु एकरूपमनिद । २२ । ४ । ४ । ४ । १ । रोळु मत्तमेकरूपं तेगेदु बेरिरिसि । २२ । ४ । ४ । १ । शेषमनिद । २२ । ४ । ४ । ४ ।—१ । नुपात्यंतदोळु बरेदु एकभागमनिद । २२ । ४ । ४ । १ । रोळेकरूपं तेगेदु बेरिरिसि । २२ । ४ । १ । शेषमनिदं । २२ । ४ । ४—। १ । द्वितीयखंडदोळु बरेदु एकभागमिदरोळु । २२ । ४ । १ । एकरूपं तेगेदु बेरिरिसि । २२ । १ । बहुभागमनिदं । २२ । ४ । १ । प्रथमखंडदोळु बरेदु एकभागमनिदं । २२ । १ । मुन्निनंते भागिसि । ४ । ५ । ६ । ७ । इदं प्रथमखंडं मोदल्गोंडु चरमखंडपर्य्यंतं मेले इरिसुत्तं विरलु क्रमदिंनितिप्पुंवु । २२ । ४ ४—१ । २२ । ४ । ५ ४—१ । २२ । ४ । ६ । ४ । ४—१ । २२ । ४ । ४ । ४ । ७ ४—१ । षष्ठस्थितिविकल्पबंधनिबंधनप्रायोग्याध्यवसायंगळिवरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ एकरूपं तेगेदु बहुभागमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।—१ । चरमखंडदोळु बरेदु एकभागमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगेदु बहुभागमनिदं २२ । ४ । ४ । ४ । ४ ।—१ । उपांत्यदोळु बरेदु शेषैकभागमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । १ । द्वितीयखंडदोळु बरेदु एकरूपिनोळिदरोळु । २२ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं प्रथमखंडदोळु बरेदु एकभागमिदरोळु । २२ । ४ । १ । एकरूपं तेगेदु शेषमनिदं । २२ । ४ । १ । चरमखंडद मेलिरिसि एकभागमनिदं । २२ । १ । पूर्व्वोक्तप्रकारदिदं विरळिसि । ४ । ५ । ६ । ७ । पंचक षट्कसप्तकंगळं क्रमदिंदं प्रथमादिद्विचरमपर्य्यंतं मेलिरिसि शेषचतुष्कमं चरमखंडद मेलिरिसुवुदंतिरिसुत्तं विरलु प्रथमादिखंडंगळितिप्पुंवु ।

५	६	७
२२।४।४—१	२२।४।४।४—१	२२।४।४।४।४—१

४
२२ ४—१
२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ —१

सप्तमस्थितिविकल्पबंधकारणंगळप्प कषायपरिणामंगळिवरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । एकरूपं तेगेदु शेषमनिवं । २२।४।४।४।४।४।४।—१

	४	५	६	७
पंचमविकल्पे	२२ । ४–१ ।	२२ । ४ । ४–१ ।	२२ । ४ । ४ । ४–१ ।	२२ । ४ । ४ । ४ । ४–१
		५	६	७
षष्ठविकल्पे		२२ । ४ । ४–१	२२ । ४ । ४ । ४–१	२२ ४ । ४ । ४ । ४–१

४
२२ । ४–१
२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४–१

इसी प्रकार क्रमसे पाँचवें, छठे, सातवें, आठवें इत्यादि अन्तके स्थिति भेदमें अनुकृष्टि रचना जाननी। सर्वत्र जो नीचेके स्थिति भेदके दूसरे, तीसरे, चौथे अनुकृष्टि खण्डमें हो वही ऊपरके स्थितिभेदके पहले, दूसरे, तीसरे अनुकृष्टि खण्डमें लिखना। ऊपरके स्थिति

चरमदोळु बरेदु एकरूपिनोळिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।—१ । एकरूपं तेगदु शेषमनिद । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । नुपांतदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । द्वितीयखंडदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु २२ । ४ । ४ । ४ । १ एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४–१ । प्रथमखंडदोळबरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४—१ । चरमखंडद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिद । २२ । ४ ।—१ । नुपांतदोळु मेल्लिरिसि एकभागमनिदं । २२ । १ । विरळिसि । ४ । ५ । ६ । ७ । षट्कसप्तकंगळं । ६ । ७ । क्रमदिदं प्रथमद्वितीयखंडंगळ मेलिरिसि चतुष्कपंचकंगळं । ४ । ५ । क्रमदिदमुपांतांतखंडंगळ मेलिरिसिदोडे यथाक्रमदिदमिंतिप्पुंदु ।

६
२२ । ४ । ४ । ४ ।—१

४	५
← ७	२२ । ४ ।—१	२२ । ४ । ४—१
२२ । ४ । ४ । ४ । ४—१	२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१	२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१

अष्टमस्थितिविकल्पबंधयोग्याध्यवसायिगंळिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । । ४ । ४ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं चरमखंडदोळु बरेदु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । उपांतदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं द्वितीयखंडदोळु बरेदु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४ । ४—१ । प्रथमखंडदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४ । ४ । १ । चरमखंडद मेलिरिसुवुदु । एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४—१ । द्विचरमखंडद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२।४—१ ।

सप्तमविकल्पे

६	७
२२ । ४ । ४ । ४–१	२२ । ४ । ४ । ४ । ४–१ ।

४	५
२२ । ४–१	२२–४ । ४–१
२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४–१	२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४–१

अष्टमविकल्पे

७	४
२२ । ४ । ४ । ४ । ४–१ ।	२२ । ४–१
२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४–१	

भेदके सर्वद्रव्यमें-से तीनों खण्डोंका प्रमाण घटानेपर जो अवशेष रहे उसे चौथे खण्डमें लिखना। इस प्रकार नीचेकी स्थितिके और ऊपरकी स्थितिके अध्यवसायोंमें समानता पायी जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी जीवके जिन अध्यवसायोंसे नीचेकी स्थिति बँधती है उन ही अध्यवसायोंसे किसी जीवके ऊपरकी स्थिति बँधती है। इस समानताके

द्वितीयखंडद मेलिरिसि एकरूपमनिदं । २२ । १ । विरळिसि । ४ । ५ । ६ । ७ । चतुष्कपंचक षट्कंगळं । ४ । ५ । ६ । क्रमदिंदं द्वितीयादिखंडगळ मेलिरिसि सप्तकमं । ७ । प्रथमखंडद

मेलिरिसिदोडे क्रमदिनिप्पुंवु

७	४
२२ । ४ । ४ । ४ । ४—१ ।	२२ । ४ । —१
	२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । —१

५	६
२२ । ४ । ४—१	२२ । ४ । ४ । ४ – १
२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । —१	२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४—१

ई प्रकारदिंदंनडेदु चरमोत्कृष्टस्थितिविकल्पस्थितिबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळिवरोळु । २२ । ४ । १५ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । १५—१ चरमानुकृष्टिखंडदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १४ । —१ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । १४—१ । उपांतखंडदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १३ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । १३—१ । द्वितीयखंडदोळु बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १२ । १ । एकरूपं तेगदु बेरिरिसि शेषमनिदं । २२ । ४ । १२—१ । प्रथमखंडदोळ्बरेदु एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ११ । १ । एकरूपं तेगदु बेरिरिसि शेषमनिदं । २२ । ४ । ११—१ । चरमडखंड मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १० । १ । एकरूपं तेगदु बेरिरिसि शेषमनिदं । २२ । ४ । १०—१ । उपांतद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ९ । १ । एकरूपं तेगदु बेरिरिसि शेषमनिदं । २२ । ४ । १ द्वितीयखंडद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ८ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ८ । —१ । प्रथमखंड मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ७ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ७—१ । चरमखंडदो मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ६ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ६—१ । उपांतद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ५ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ५ । —१ । द्वितीयखंडद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ४—१ । प्रथमखंडद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । ३ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । ३ । —१ । चरमखंडद मेलिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । २ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४ । २—१ । उपांतदोळिरिसि एकरूपमिदरोळु । २२ । ४ । १ । एकरूपं तेगदु शेषमनिदं । २२ । ४—१ । द्वितीयखंडद मेलिरिसि एकरूपमनिदं । २२ । १ ।

५	६
२२ । ४ । ४–१	२२ । ४ । ४ । ४–१
२२ । ४ । ४ । ४ ४ । ४ । ४–१ ।	२२ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४–१ ।

एवं गत्वा द्विचरमचरमविकल्पयोः—

होनेसे ही अनुकृष्टि रचना कही है । किन्तु नीचेकी स्थितिका जघन्य खण्ड ऊपरकी स्थितिके खण्डोंसे समान नहीं है । इसी प्रकार ऊपरकी स्थितिका सर्वोत्कृष्ट खण्ड नीचेकी स्थितिके खण्डोंसे मेल नहीं खाता ।

विरळिसि । ४ । ५ । ६ । ७ । चतुष्कपंचकषट्कंगळं । ४ । ५ । ६ । क्रमदिदं द्वितीयादिखंडंगळोळिरिसि शेषसप्तकमं । ७ । प्रथमखंडद मेलिरिसि उत्कृष्टायुःस्थितिबंधप्रायोग्यकषायपरिणामस्थानंगळ अनुकृष्टि प्रथमादिखंडंगळपरिणामपुंजंगळु क्रमदिर्निनितिर्प्पुवु :—

	७	४	५	६
अंतानुकृष्टि १६ नेय	२२।४। ४–१	२२।४। –१	२२।४।४ –१	२२।४।४।४–१
	२२।४। ८–१	२२।४।५ –१	२२।४।६ –१	२२।४।७ –१
स्थितिय कोष्ठगळु	२२।४।१२–१	२२।४।९ –१	२२।४।१०–१	२२।४।११–१
		२२।४।१३–१	२२।४।१४–१	२२।४।१५–१
	६	७	४	५
उपांतानुत्कृष्टि १५ नेय	२२।४।३ –१	२२।४।४ –१	२२।४। –१	२२।४।४ –१
	२२।४।७ –१	२२।४।८ –१	२२।४।५ –१	२२।४।६ –१
स्थितिय कोष्ठ	२२।४।११–१	२२।४।१२–१	२२।४।९ –१	२२।४।१०–१
			२२।४।१३–१	२२।४।१४–१

यितायुष्यकर्म्मस्थितिबंधाध्यवसायंगळु पेळल्पट्टुवनंतरं ज्ञानावरणादिसप्तप्रकृतिगळोळु स्थितिबंधाध्यवसायंगळु पेळल्पडुगुमदें तें दोडे मोहनीयकर्म्मजघन्यस्थितियंतःकोटीकोटिसागरोपम ५
प्रमितमक्कु । सा अंतः को २ । ओंदु सागरोपमक्के पत्तु कोटीकोटियद्धारपल्यगलागुत्तं विरलु मोहनीयजघन्यस्थितियंतःकोटीकोटिसागरोपमंगळगेनितद्धारपल्यं गळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडिदोडे प्र सा १ । फ । पल्य १० । को २ । इ । सा । अंतः को २ । लब्धमोहनीयजघन्यस्थितिगिनितद्धारपल्यंगळप्पुवु । प १० । सा १ । को २ । सा अंतः को २ । इदनपवर्त्तसिदोडे सागरोपमक्के सागरोपम पोगि शेष पल्यंगळिनितप्पुवु । प १० । को २ । अंतः को २ । यिवं संख्यातपल्यमेंदु १०
स्थापिसल्पडुगु । प १ । मत्तमेकसागरोपमक्के पत्तु कोटीकोटियद्धारपल्यंगळागुत्तं विरलु मोहनी-

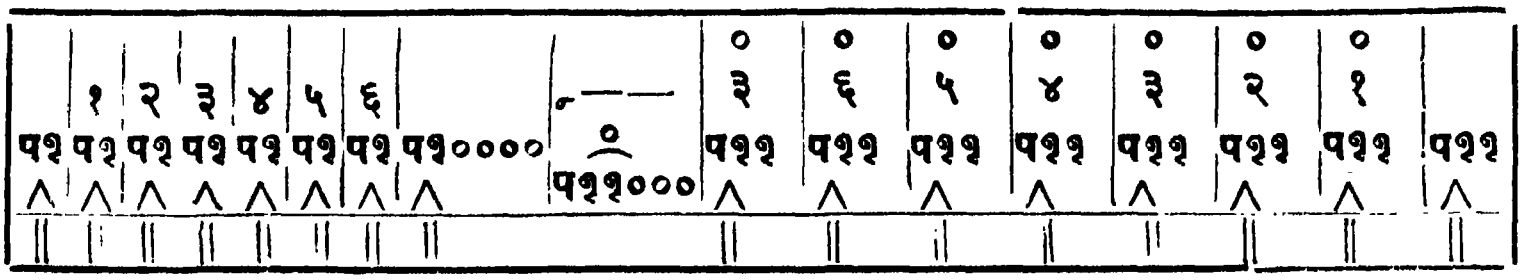
	७	४	५	६
अन्तानुकृष्टिः—	२२।४।४-१	२२।४-१	२२।४।४–१	२२।४।४।४–१
	२२।४ ८–१	२२।४।५–१	२२।४।६–१	२२।४।७–१
	२२।४।१२–१	२२।४।९–१	२२।४।१०–१	२२।४।११–१
		२२।४।१३–१	२२।४।१४–१	२२।४।१५–१
	६	७	४	५
उपान्तानुकृष्टिः—	२२।४।३–१	२२।४।४–१	२२।४–१	२२।४।४–१
	२२।४।७–१	२२।४।८–१	२२।४।५–१	२२।४।६–१
	२२।४।११–१	२२।४।१२–१	२२।४।९–१	२२।४।१०–१
			२२।४।१३–१	२२।४।१४–१

आयुषः स्थितिबन्धाध्यवसाया उक्ताः शेषकर्मणामुच्यन्ते—तत्र मोहनीयस्य निरन्तरस्थितिविकल्परचनेयं—

इस प्रकार आयुके बन्धके अध्यवसाय कहे । शेष कर्मोंके कहते हैं—

उनमें-से मोहनीयकी जघन्य स्थिति संख्यात पल्य प्रमाणसे लगाकर एक-एक समय १५
बढ़ते हुए उस जघन्यस्थितिसे संख्यात गुणी उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त जो स्थितिके भेद होते हैं उनकी स्थिति रचनामें ऐसा △ आकार जानना । इसमें जो नीचेकी सीधी लकीर है उसे

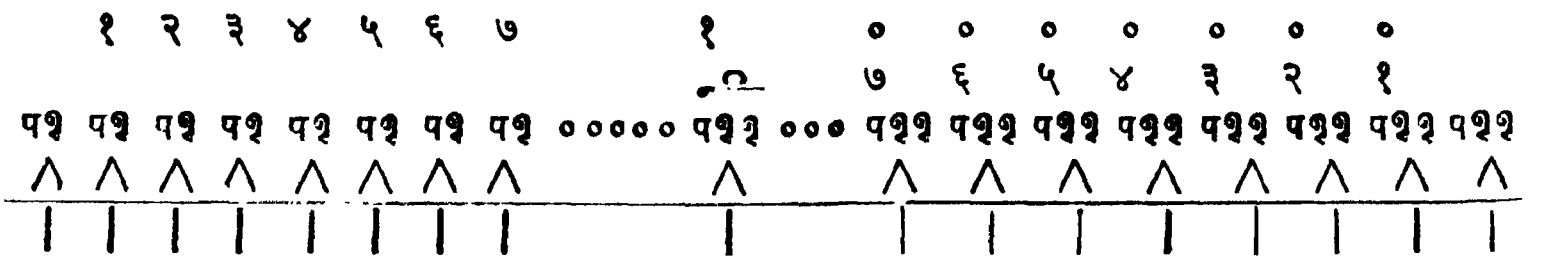
योत्कृष्टस्थिति सप्ततिकोटाकोटिसागरोपमंगळ्गे येनितद्धारपल्यंगळप्पुवेंदु त्रैराशिकमं माडिदोडे। प्र। सा। फ। प १०। को २। इ। सा ७०। को २। बंद लब्धं मोहनीयोत्कृष्टस्थितिगिनितद्धार-पल्यंगळप्पुवु। प १०। को २। ७० को २। यिनितुं पल्यंगळं जघन्यस्थितियं नोडलु संख्यात-गुणितपल्यंगळेंदु स्थापिसल्पट्टुदु। प १ १। जघन्यस्थितियमेलें समयोत्तरक्रमदिदमुत्कृष्टस्थिति-
५ पर्य्यंतं निरंतरस्थितिविकल्पंगळितिप्पुवु :—



इल्लि आदि प १। अंते प १। १। सुद्धे प १। १। वड्ढिहिदे प १। १। रूवसंजुदे

ठाणा प १। १ एदिनितुं मोहनीयस्थितिस्थानविकल्पंगळप्पुवु। स्थितिविकल्पंगळ नानागुण-
१

हानिशलाकेगळिंदं भागिसुत्तं विरलु गुणहान्यामममक्कु प १ १ मिदं द्विगुणिसिदोडे दोगुणहानि-
छे व छे
अ



अस्यां नानागुणहानिशलाकाभिर्भक्तायां गुणहान्यायामः प १ १ अयं च द्विगुणितो दोगुणहानिः
छे व छे
अ

१० आबाधाकालके समय जानना। उसके ऊपर प्रथम समयसे लगाकर अन्तिम समय पर्यन्त निषेक घटते जाते हैं। इसीसे नीचेसे चौड़ा और ऊपरसे सकरा आकार बनाया है। यहाँ जितने स्थितिके भेद होते हैं उन्हें मोहनीयकी स्थितिबन्धाध्यवसाय रचना स्थितिका प्रमाण जानना। उसको नानागुणहानि शलाकासे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे गुणहानि

---

१. अत्र आदौ प १ अन्ते प १ १ सुद्धे प १ १ वड्ढिहिदे— प १ १। १ रूवसंजुदे ठाणा प १ १। १
१

१५ अधिकोऽयं पाठः।

यक्कुं $\overset{\circ}{\underset{\text{छे व छे}}{\underset{\text{अ}}{\text{प १ १}}}}$ नानागुणहानिशलाकेगळ्गे द्विकसंवग्गंमं माडिदोडन्योन्याभ्यतराशियक्कुं $\underset{\text{अ}}{\text{प}}$ मोह-

नीयविवक्षेयिंदं कर्म्मस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळु द्रव्यमे बुदक्कुं $\equiv \underset{\text{अ अ अ}}{\text{अ प प प}}$ स्थितिविकल्पं-

गळु स्थितियक्कुं। यिवर समुच्चयसंदृष्टि :—

द्रव्य	स्थिति	गुण	दो गुण		अन्यो $\underset{\text{अ}}{\text{प}}$
$\equiv \underset{\text{अ अ अ}}{\text{अ प प प}}$	$\overset{\circ}{\underset{}{\underset{}{\text{प १ १}}}}$	$\overset{\circ}{\underset{\text{छे व छे}}{\underset{\text{अ}}{\text{प १ १}}}}$	$\overset{\circ}{\underset{}{\underset{}{\text{प १ १ । २}}}}$	नाना गु $\underset{\text{अ}}{\text{छे अ छे}}$	
६३००	४८	गु ८	१६	६	६४

इंतागुत्तं विरलु रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशियिंदं द्रव्यमं भागिसिदोडधिकसंकलनविवक्षेयिंदं प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं $\equiv \underset{\text{अ अ अ}}{\overset{\circ}{\underset{\text{१}}{\underset{\text{अ}}{\text{अ प प प}}}}}$ द्वितीयादिगुणहानिद्रव्यंगळु द्विगुणद्विगुणक्रमदिंदं पोगि ५

चरमगुणहानिद्रव्यमिनितक्कुं $\equiv \underset{\text{अ अ अ गु २}}{\overset{\circ}{\underset{\text{१}}{\underset{\text{अ}}{\text{अ प प प अ}}}}}$ ई सर्व्वगुणहानिद्रव्यंगळोळु प्रथमगुणहानि-

---

प १ १ । २ । नानागुणहानिशलाकामात्रद्विकसंवर्गेऽन्योन्याभ्यस्तः $\underset{\text{अ}}{\text{प}}$ स्थितिबन्धाध्यवसायस्थानानि द्रव्यं $\underset{\text{छे-व-छे}}{\underset{\text{अ}}{}}$

$\equiv \underset{\text{अ अ अ}}{\text{अ प प प}}$ रूपोनान्योन्याभ्यस्तेन द्रव्ये भक्तेऽधिकसंकलनविवक्षया प्रथमगुणहानिद्रव्यं $\equiv \underset{\text{अ अ अ}}{\overset{\Omega}{\underset{\text{अ}}{\text{अ प प प}}}}$

द्वितीयादिगुणहानिषु द्विगुणद्विगुणं भूत्वा चरमायामेतावत् $\equiv \underset{\text{अ अ अ अ २}}{\overset{\Omega}{\underset{\text{अ}}{\text{अ प प प अ}}}}$ तत्र प्रथमगुणहानिद्रव्ये $\equiv \underset{\text{अ अ अ अ}}{\overset{\Omega}{\underset{\text{अ}}{\text{अ प प प}}}}$

आयाम जानना। यहाँ पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेदोंसे हीन पल्यके अर्द्धच्छेदोंके प्रमाणका १०
असंख्यातवाँ भाग गुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना। गुणहानि आयामका दूना दो गुण-
हानिका प्रमाण होता है। तथा नानागुणहानि शलाका प्रमाण दोके अंक रखकर परस्परमें
गुणा करनेसे जो प्रमाण हो वही अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण है। सो पल्यके असंख्यातवाँ
भाग प्रमाण अन्योन्याभ्यस्त राशि है। असंख्यात लोकको तीन बार पल्यके असंख्यातवें
भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान हैं। वही यहाँ द्रव्यका १५
प्रमाण जानना। इस द्रव्यमें एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशिसे भाग देनेपर जो प्रमाण आवे

द्रव्यमनिदं $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}$ अद्धाणेण गु सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}$

तं रूऊण अद्धाण अद्धेण $\overset{\frown}{\text{ग}}_{२}$ ऊणेण णिसेयहारेण $\overset{\frown}{\text{गु}}\ ३_{२}$ मज्झिमधणमवहरिदे पचयं—

$\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{गु}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ ३_{२}$ तस्मिन् प्रचये अधिकसंकलनविवक्षया रूपाधिकगुणहान्या गुणिते प्रथम-

निषेको भवेत् $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ \text{गु}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ ३_{२}$ एंवितिदु प्रथमनिषेकमक्कुं। द्वितीयादिनिषेकंगळेकैकचयाधि-

कंगळागुत्तं पोगि प्रथमगुणहानिचरमनिषेकं रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळिं नधिकमक्कुं—

$\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{गु}\ \overset{\frown}{\text{गु}}\ ३_{२}$ ई प्रकारदिंदं गुणहानि प्रति द्रव्यमं चयमुं द्विगुणद्विगुणंगळ रचनाविशेषं-

गळागुत्तं पोगि चरमगुणहानिद्रव्यमिदु $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ २$ इदं अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिम

अद्धाणेण खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}$ तं रूऊणअद्धाण $\overset{\frown}{८}_{२}$ अद्धेण $\overset{\frown}{८}$ ऊणेण णिसेयभागहारेण

$\overset{\frown}{\text{गु}}$ ३ अवहरिदे पचयो $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{गु}\ \text{गु}\ ३_{२}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \overset{\frown}{\text{—}}$ अयमधिक $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}$ संकलनविवक्षया रूपाधिकगुणहान्या

गुणितः प्रथमनिषेकः $\equiv \overset{\frown}{\text{अ}}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{ə}\ \text{गु}\ \text{गु}\ ३_{२}\ \text{प}\ \text{प}\ \text{प}\ \overset{\frown}{\text{गु}}$ द्वितीयादिषेका एकैकचयाधिका भूत्वा चरमनिषेको रूपोनगुणहानि-

---

वही प्रथम गणहानिका प्रमाण है। इस प्रथम गुणहानिसे द्वितीयादि गुणहानियोंमें अन्तकी गुणहानि पर्यन्त दूना-दूना द्रव्य जानना।

प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें गुणहानि आयामका प्रमाणरूप गच्छका भाग देनेपर मध्यम धनका प्रमाण आता है। गच्छके बीचके निषेकोंके प्रमाणको मध्यमधन कहते हैं। मध्यम-धनको—एक हीन गुणहानि प्रमाणका आधाको निषेक भागहार जो दो गुणहानि है उसमें घटाकर जो शेष रहे उससे भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है। यहाँ निषेकोंका प्रमाण

धणमागच्छदि ≡ ə प प प अ तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə गु ३/२

पचयं ≡ ə प प प अ ई प्रचयमधिकसंकलनविवक्षेयिदं रूपाधिकगुणंगळप्पुवु। गुणहानियिदं
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə गु गु ३/२२

गुणिसिदोडे चरमगुणहानिप्रथमनिषेकमक्कुं। ≡ ə प प प अ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ द्वितीयादिनिषेकंगळु एकै-
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə $\overset{\frown\frown}{\text{गु}}$ ३/२

कचयाधिकंगळा गुत्तं पोगि चरमगुणहानिचरमनिषेकदोळु रूपोनगुणहानिमात्रचयंगळु—

≡ ə प प प अ $\overset{\circ}{\text{गु}}$ अधिकंगळप्पुवु। कूडिदोडधिक चरमनिषेकं दोगुणहानि मात्रचयंग- ५
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə २ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ $\overset{\frown\frown}{\text{गु}}$ ३/२

मात्रचयाधिको भवति— ≡ ə प प प गु २ एवं गुणहानिं गुणहानिं प्रति द्विगुणद्विगुणचयाभ्यां रचनां कृत्वा
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə $\overset{\frown}{\text{गु}}$ $\overset{\frown\frown}{\text{गु}}$ ३/२

चरमगुणहानौ द्रव्ये ≡ ə प प प अ अद्धाणेण खण्डिदे मज्झिमधणमागच्छादि ≡ प प प अ
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə २ $\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə २ गु

तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेयहारेणवहरिदे पचयो ≡ ə प प प अ अयं रूपाधिकगुणहान्या गुणितः
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə $\overset{\frown}{\text{गु}}$ $\overset{\frown\frown}{\text{गु}}$ ३ २/२

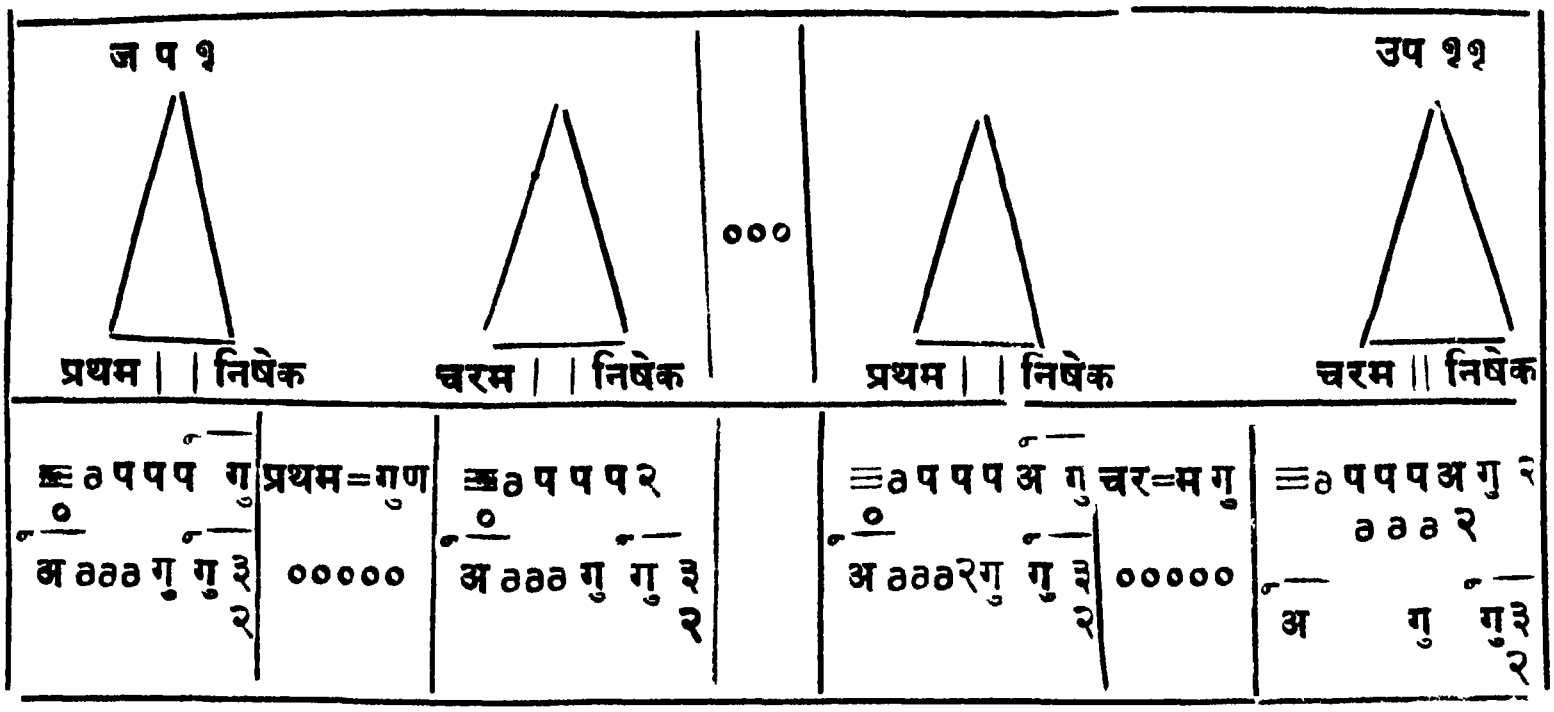
प्रथमनिषेकः ≡ ə प प प अ $\overset{\frown}{\text{गु}}$ द्वितीयादिनिषेका एकैकचयाधिका भूत्वा चरमनिषेको
$\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{}}$ ə ə ə २ $\overset{\frown\frown}{\text{गु}}$ ३/२

अधिक-अधिक है अतः उस चयके प्रमाणको एक अधिक गुणहानि आयामके प्रमाणसे गुणा ३०
करनेपर जो प्रमाण हो वही प्रथम निषेकका प्रमाण जानना। उसमें क्रमसे एक-एक चय
मिलानेपर द्वितीयादि निषेकोंका प्रमाण होता है। एक हीन गुणहानि प्रमाण चय मिलनेपर
अन्तिम निषेक होता है। प्रत्येक गुणहानिमें चयका प्रमाण दूना-दूना होता जाता है। इस
प्रकार रचना करें। प्रथम गुणहानिके द्रव्यको अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधे प्रमाणसे गुणा

१. म °डे डरै°।

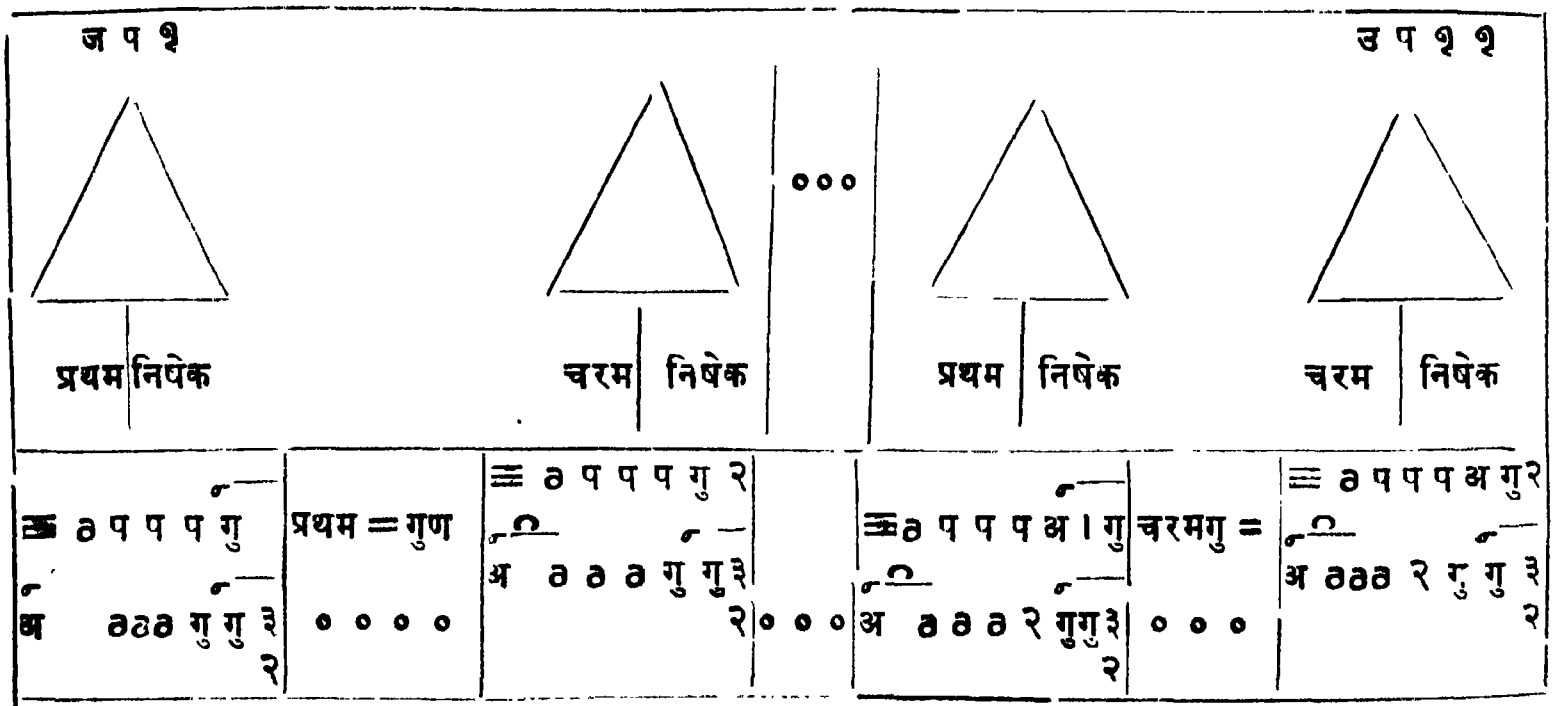
ळप्पुवु। ≡ ० ∂ प प प अ गु २ अंकसंदृष्टियुं तोरल्पडुगुमन्नेवरमर्त्थसंदृष्टिय समुच्चय-
अ ∂∂∂ गु गु ३/२

रचनेयिदु :—



रूपोनगुणहानिमात्रचया ≡ ० प प प अ गु धिको भवति ≡ ० प प प अ गु २
अ ∂∂∂ गु गु ३ २ अ ∂∂∂ गु गु ३ २
२ २

समुच्चयरचना।



करनेपर अन्तिम गुणहानिमें द्रव्यका प्रमाण होता है। उसमें गुणहानि आयामरूप गच्छका भाग देनेपर मध्यमधन होता है। उस मध्यमधनमें एक हीन गच्छके आधेसे हीन दो गुण-हानिका भाग देनेपर चयका प्रमाण होता है। उसको एक अधिक गुणहानि आयामसे गुणा

अंकसंदृष्टियोळु "रूऊणण्णोण्णब्भत्थवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं" एंदु चरमगुणहानिद्रव्य-
मधिकसंकलनविवक्षेयिंदं प्रथमगुणहानिद्रव्यमिनितक्कुं। संदृष्टि ६३०० मेले चरमगुणहानिपर्य्यंतं
६३

द्विगुण क्रमंगळागि पोगि चरमगुणहानिद्रव्यमन्योन्याभ्यस्तार्द्धगुणितमक्कुं १००।१ इल्लि
१००।२
१००।४
१००।८
१००।१६
१००।३२

प्रथमगुणहानिद्रव्यमं १०० अद्धाणेण खंडिदे मज्झिम धणमागच्छदि १०० तं रूऊण अद्धाण अद्धेण
८
ऊणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं १०० तं रूवहियगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयं ५
८।८

१००/८ यिदनपवर्त्तिसिदोडे रूपाधिकगुणहानिमात्र चयंगळप्पुवु।/८। द्वितीयादिनिषेकंगळेकैक-
८।/८ ३
२

अंकसंदृष्टौ रूऊणण्णोण्णभत्थवहिददव्वं, अधिकसंकलनविवक्षया प्रथमगुणहानिद्रव्यं ६३०० उपरि
६३

द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा चरमगुणहानावन्योन्याभ्यस्तार्धगुणितं स्यात् १००।१ अत्र प्रथमगुणहानिद्रव्यं १००
१००।२
१००।४
१००।८
१००।१६
१००।३२

अद्धाणेण खण्डिदे मज्झिमधणमागच्छदि १०० तं रूऊणद्धाणद्धेण ऊणेण णिसेयहारेण अवहरिदे पचयं १००
८
/—
८।८।३
२

तं रूवाहियगुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेयो १०० । /८ अपवर्तितो रूपाधिकगुणहानिमात्रचयः स्यात् /८ १०
/—
८।८।३
२

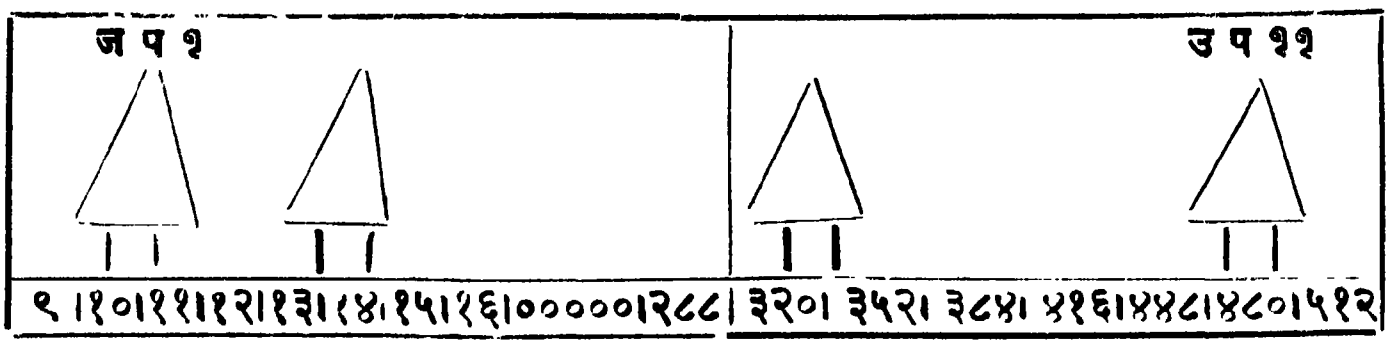
करनेपर प्रथम निषेक होता है। द्वितीयादि निषेकोंमें क्रमसे एक-एक चय अधिक होता है। एक हीन गुणहानि प्रमाण चय मिलनेपर अन्तिम निषेक होता है। इस प्रकार स्थितिके भेदोंमें स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानका बँटवारा कहा। अब इसी कथनको अंक संदृष्टि द्वारा दिखाते हैं—

सब स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान तिरसठ सौ हैं। उसमें एक हीन अन्योन्याभ्यस्त १५
राशि तिरसठसे भाग देनेपर सौ पाये। सौ प्रथम गुणहानिका द्रव्य जानना। सौमें गच्छ

चयाधिकंगळागुत्तं पोगि प्रथमगुणहानिचरमनिषेकदोळु दोगुणहानिमात्र चयंगळप्पुवु । ८ । २ ॥ चरमगुणहानि द्रव्यमुमनिवं । ३२०० । गुणहानियिंदं भागिसिदोडे मध्यमधनमक्कु ३२०० मा
८
मध्यमधनमं रूपोनगुणहान्यर्द्धरहित दोगुणहानियिंदं भागिसिदोडे चरमगुणहानिसंबंधि प्रचयमक्कु

३२०० मिदं रूपोनगुणहानियिंदं गुणिसिदोडे चरमगुणहानिप्रथमनिषेकमक्कुं ३२०० । ८
८ ८३ ८।८।३
२ २

अपवर्त्तितमिदु ३२ । ८ । मेले द्वितीयादि निषेकंगळोळु एकैकचयाधिकमागुत्तं पोगि चरमगुणहानि चरमनिषेकदोळु दोगुणहानिमात्रचयंगळप्पुवु । ३२ । ८ । २ । मितिनितक्कुं । संदृष्टि :—



द्वितीयादिनिषेकः एकैकचयाधिको भूत्वा चरमो दोगुणहानिमात्रचयो भवति ८ । २ चरमगुणहानौ द्रव्यं ३२००
८
गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं ३२०० तदेव रूपोनगुणहान्यर्धोनदोगुणहान्या भक्तं प्रचयः ३२०० स एव रूपाधिक-
८ ८।८।३
२

गुणहानिना गुणितः प्रथमनिषेकः— ३२०० । ८ अपवर्तितः ३२ । ८ । ततो द्वितीयादिनिषेकः
८।८।३
२

एकैकचयाधिको भूत्वा चरमो दोगुणहानिमात्रचयो भवति ३२ । ८ । २ संदृष्टिः—

गुणहानि आठसे भाग देनेपर साढ़े बारह मध्यधन जानना। एक हीन गच्छ सातका आधा साढ़े तीनको दो गुणहानि सोलहमें-से घटानेपर साढ़े बारह रहे। मध्यधनमें साढ़े बारहका भाग देनेपर एक पाया सो चयका प्रमाण जानना। उसको एक अधिक गुणहानिके प्रमाण नौसे गुणा करनेपर नौ पाया। यही प्रथम निषेक जानना। द्वितीयादि निषेकोंमें एक-एक चय अधिक होता है। एक हीन गुणहानिका प्रमाण सात है। सात चय मिलनेपर सोलह हुए। यही अन्तिम निषेक जानना। द्वितीयादि गुणहानियोंमें द्रव्य निषेक चय सब दूना-दूना होते हैं। अन्तिम गुणहानिमें प्रथम गुणहानिके द्रव्य सौको अन्योन्याभ्यस्त राशिके आधे बत्तीससे गुणा करनेपर बत्तीस सौ तो द्रव्य जानना। उसमें गच्छ आठसे भाग देनेपर मध्य धन चार सौ हुआ। उसमें एक हीन गुणहानिके आधेसे हीन दो गुणहानिके प्रमाण साढ़े बारहका भाग देनेपर बत्तीस पाया। वही चय जानना। द्वितीयादि निषेकोंमें एक-एक

इंतु स्थितिविकल्पंगळुमवर स्थितिबंधाध्यवसायंगळुं स्थापिसल्पट्टुवल्लि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळगे अनुकृष्टिविधानमुंटें दु पेळ्दपरु :—

पल्लासंखेज्जदिमा अणुकड्डी तत्तियाणि खंडाणि ।
अधियकमाणि तिरिच्छे चरिमं खंडं च अहियं तु ॥९५४॥

पल्यासंख्यातैकभागोनुकृष्टिस्तावन्मात्राणि खंडान्यधिकक्रमाणि तिर्य्यक्चरमखंडं चाधिकं तु ॥

जघन्यस्थिति मोदल्गोंडु तदुत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतमिद्दं स्थितिविकल्पंगळ स्थितिबंधाध्यवसायंगळगे प्रत्येकमनुकृष्टि विधानमुंटा अनुकृष्टिपदप्रमाणमेनितक्कुमेंदोडे स्थितिबंधाध्यवसाय-

गुणहान्यायाममिदं $\frac{\text{प}\ \overline{\text{१}}\ \overline{\text{१}}}{\text{छे व छे}}$ नोडलु संख्यातैकभागमक्कुमप्पुदरिंदं $\frac{\text{प}\ \overline{\text{१}}\ \overline{\text{१}}}{\text{छे व छे १}}$ इदनपवर्त्ति-



९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । ० ० ० । २८८ । ३२० । ३५२ । ३८४ । ४१६ । ४४८ । ४८० । ५१२ ।

तेषामनुकृष्टिविधानमाह—

अनुकृष्टिपदं पल्यासंख्यातैकभागः $\frac{\text{प}}{\text{अ}}$ स्थितिबन्धाध्यवसायगुणहान्यायामस्य $\frac{\text{प}\ \overline{\text{१}}\ \overline{\text{१}}}{\text{छे-व-छे}}$

चय मिलाते हुए एक हीन गुणहानि प्रमाण सात चय मिलानेपर पाँच सौ बारह अन्तिम निषेक जानना। यह कथन अंक संदृष्टिसे जानना।

यहाँ भी प्रथम गुणहानिके प्रथम निषेकरूप अध्यवसाय स्थान जघन्य स्थितिके कारण जानना। द्वितीय निषेक प्रमाण अध्यवसाय स्थान एक समय अधिक स्थितिके कारण जानना। इसी प्रकार अन्तिम गुणहानिके अन्तिम निषेक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान उत्कृष्ट स्थितिके कारण जानना ॥९५३॥

यहाँ एक स्थिति भेद सम्बन्धी अध्यवसायोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा खण्ड पाये जाते हैं। अथवा किसी जीवके जिन अध्यवसायोंसे नीचे की स्थिति बँधती है किसी अन्यके उन्हींसे ऊपरकी स्थिति बँधती है। इस प्रकार ऊपर-नीचेमें समानता होनेसे अनुकृष्टि विधान कहते हैं—

स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंमें जो गुणहानि आयामका प्रमाण कहा है उसमें संख्यातका भाग देनेपर पल्यका असंख्यातवाँ भाग होता है। उतना ही अनुकृष्टि रचनामें गच्छका प्रमाण जानना। उतने ही अनुकृष्टिके खण्ड होते हैं। विवक्षित भेदरचनामें उन खण्डोंकी

सिदोडे पल्यासंख्यातैकभागमक्कुमें दु पेळल्पट्टुदु प अनुकृष्टिखंडंगळु तावन्मात्रंगळेयप्पुवंतागुत्तळं
ə
तिर्य्यक्कागिचयाधिकक्रमंगळप्पुवेन्नेवरं चरममन्नेवरं अंतुचयाधिकक्रमंगळादोडं स्वस्वजघन्यानुकृष्टिखंडमं नोडलुं स्वस्वोत्कृष्टानुकृष्टिखंडं विशेषाधिकमेयक्कुं। द्विगुणत्रिगुणमागदें बुदत्थं ॥ आविशेषप्रमाणविज्ञापनात्थं मुंदणगाथासूत्रमं पेळ्दपरु । :—

लोगाणमसंखमिदा अहियपमाणा हवंति पत्तेय ।
समुदायेणवि तच्चिय ण हि अणुकट्ठिढम्मि गुणहाणि ॥९५५॥

लोकानाममसंख्यमितान्यधिकप्रमाणानिभवंति प्रत्येकं । समुदायेनापि तावन्मात्रं न ह्यनुत्कृष्टौ गुणहानिः ॥

अनुकृष्टि तिर्य्यक् प्रचयप्रमाणंगळुं गुणहानिं प्रति द्विगुणद्विगुणंगळादोडमाळापसामान्यदिंदं प्रत्येकमसंख्यातलोकप्रमाणंगळप्पुवु । एंतेंदोडे प्रथमगुणहानिप्रचयमनिदं ≡ə प प प अणुकट्ठिढपदेण हिदे पचये पचयंतु होदि तेरिच्छे एंदितनुकृष्टिपदर्दिद·

$$\frac{\text{अ ə ə ə गु गु ३}}{\text{२}}$$

मूध्वंप्रचयमं भागिसिदोडेतिर्य्यगनुकृष्टि प्रचयप्रमाणमक्कु ≡a प प प मिदनपवर्त्तसि-

$$\frac{\text{अ a a a गु गु ३ प}}{\text{२ ə}}$$

दोडसंख्यातलोकमात्रमक्कुमप्पुदरिंदमधिकप्रमाणसंख्यातलोकमात्रमें दितु पेळ्दपट्टुदु । ईयसंख्यात-

---

संख्यातैकभागे $\frac{\text{प}}{\text{छे-व}}$ । $\frac{\text{१}}{\text{छे}}$ $\frac{\text{१}}{\text{२}}$ अपवर्तिते तत्सिद्धे । अनुकृष्टिखंडानि तावन्ति तिर्यक् चयाधिकक्रमाणि । तथापि ə

तज्जघन्यात्तदुत्कृष्टविशेषाधिकमेव न द्विगुणादि ॥९५४॥ तद्विशेषप्रमाणं ज्ञापयति—

अनुकृष्टिप्रचयस्य गुणहानिं गुणहानिं प्रति द्विगुणत्वेऽपि तत्प्रमाणान्यालापसामान्येन प्रत्येकमसंख्यातलोका

रचना तिर्यक्रूपसे बराबरमें होती है। तथा प्रथम खण्डसे लेकर क्रमसे उनमें एक-एक चय अधिक होता है, फिर भी जघन्य प्रथम खण्डसे उत्कृष्ट अन्तिम खण्ड कुछ अधिक प्रमाणवाला है, दुगुना-तिगुना नहीं है ॥९५४॥

उस विशेष प्रमाणको कहते हैं—

अनुकृष्टिका चय प्रत्येक गुणहानिमें दूना-दूना होता है फिर भी सामान्यसे असंख्यात लोकमात्र है; क्योंकि विवक्षित गुणहानिकी ऊर्ध्वरचनामें जो चयका प्रमाण है उसमें अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर अनुकृष्टिके चयका प्रमाण आता है, सो स्थूलरूपसे असंख्यात लोकप्रमाण ही है। उसमें प्रथम खण्डसे एक-एक चय अधिक द्वितीयादि खण्ड होते हैं।

---

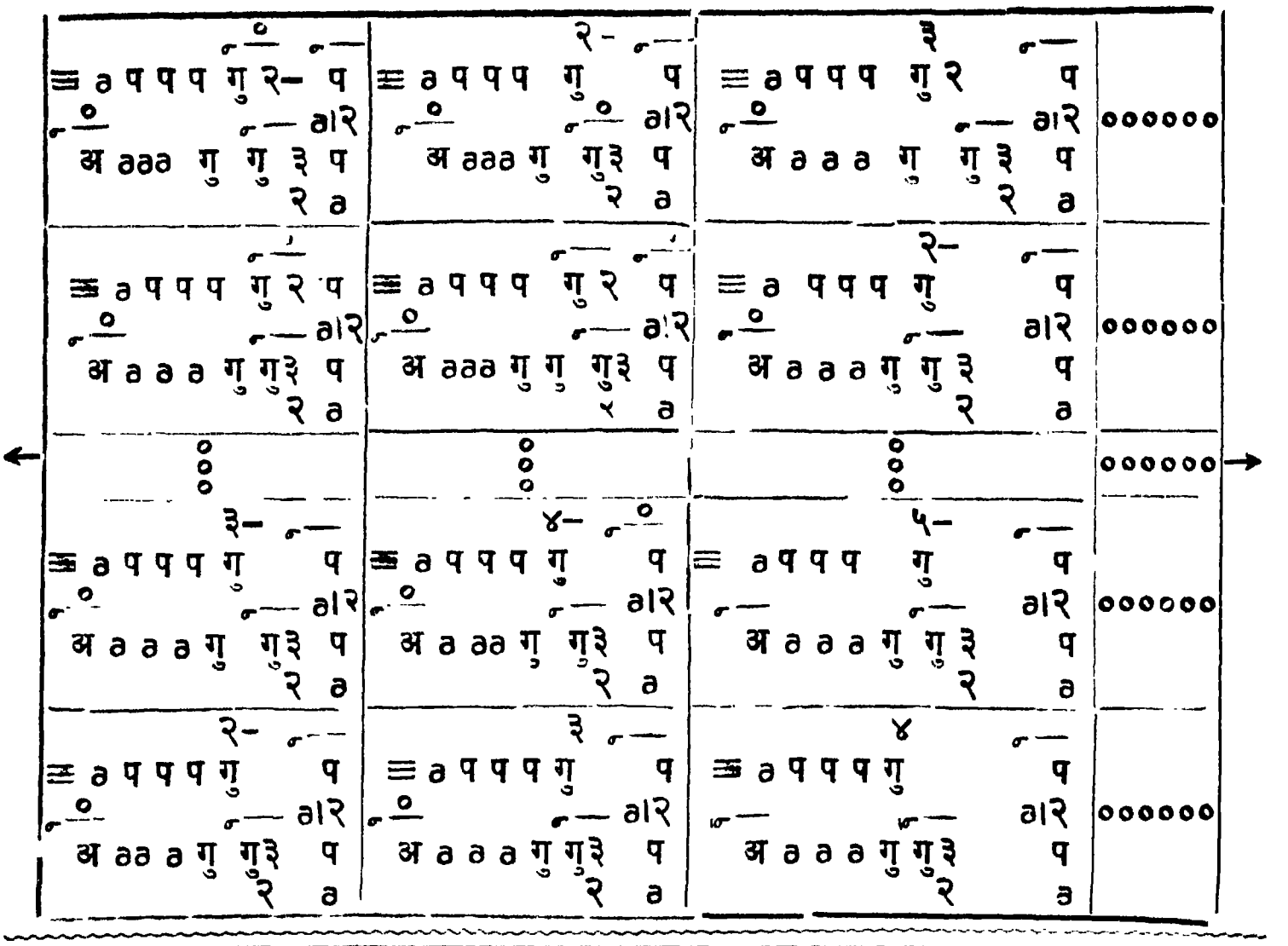
१५ १. मु. अणुकिट्ठिम्मि ।

लोकमात्रप्रचयर्दिदं खंडंगळु प्रत्येकमधिकंगलादोडमा चयसहितमागियुं तावन्मात्रमेयक्कुमसंख्यात-लोकमात्रमेयक्कु मनंतमागदें बुदत्थं। मेकें दोडसंख्यातलोकंगळसंख्यातलोकमात्रविकल्पंगळप्पुदरिंद। मदु कारणदिंदं तिर्य्यगनुकृष्टिपददोळु गुणहानि यें बुदिल्लें दु पेळल्पट्टुदु। सर्व्वखंडंगळु उत्कृष्टंगळु रूपोनपदमात्रचयाधिकंगळप्पुदरिंदं। यितनुकृष्टिपदमुमनुकृष्टिचयमुमरियल्पडुत्तं विरलु इन्ननुकृष्टि-खंडंगलोळु स्थितिबंधाध्यवसायंगळु पेळल्पडुगु। मदें तें दोडे मोहनीय सर्व्वस्थितिविकल्पंगळोळु प्रत्येकमूर्द्ध्वरूपदिनिर्द्द स्थितिबंधाध्यवसायंगळनुत्कृष्टिरचने बरेदु बळिक्कं पेळल्पडुगुं।

उत्कृष्ट स्थितिगुणहानि चरम १६ △ ||	≡ ə प प प गु २ ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २	≡ ə प प प गु २ । ⌜ प ⌝ ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २ १— ə । २ प ə
गुणहानि द्विचरम १५ △ ||	≡ ə प प प गु २ ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २	≡ ə प प प गु २ ⌜ ० ⌝ ⌜ ० ⌝ प ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २ — ə । २ प ə
० ० ०	० ० ०	० ० ०
गुणहानि द्वितीयस्थिति १० △ ||	≡ ə प प प गु ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २	२— ⌜ ० ⌝ ≡ ə प प प गु प ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २ — ə । २ प ə
गुणहानि प्रथमजघन्य-स्थिति क ९ △ ||	≡ ə प प प ⌜ ⌝ गु ⌜ ⌝ ० अ ə ə ə गु ⌜ ⌝ गु ३ २	≡ ə प प प ⌜ ⌝ ⌜ ⌝ गु प ⌜ ⌝ ० अ गु ⌜ ⌝ गु ३ २ — ə । २ प ə

एव भवन्ति। तत्तद्गुणहान्यूर्ध्वप्रचये तदालापेऽनुकृष्टिपदेन भक्ते तत्तत्प्रमाणत्वप्रसिद्धः। तेन तेनाधिकखंडान्यपि तदालापानि। असंख्यातलोकानामसंख्यातलोकविकल्पत्वात्। न चानुकृष्टादे गुणहानिरस्ति सर्वेषामुत्कृष्टखंडानां रूपोनपदमात्रचयैरेवाधिक्यात्। एवमनुकृष्टेः पदचयौ ज्ञापयित्वा तत्खंडेषु स्थितिबन्धाध्यवसाया उच्यन्ते। तद्रचितसंदृष्टिरियं—

तथापि उन सबका प्रमाण असंख्यात लोक ही कहा जाता है; क्योंकि असंख्यात लोकके भेद भी असंख्यात लोक ही होते हैं। तथा अनुकृष्टिके गच्छमें गुणहानि रचना नहीं है; क्योंकि सर्वोत्कृष्ट खण्डोंमें जघन्य खण्डसे एक हीन गुणहानिके गच्छ प्रमाण चयोंकी अधिकता पायी जाती है। इस प्रकार अनुकृष्टिके गच्छ और चयका प्रमाण बतलाकर उस अनुकृष्टिके खण्डोंमें स्थितिबन्धाध्यवसायोंका प्रमाण कहते हैं—


उ गुणहानिचरम १६
गुणहानिद्विचरम १५
गुणहानिद्वितीय स्थिति १०
गुणहानि प्रथम जघन्यस्थिति ९
मूलधनं

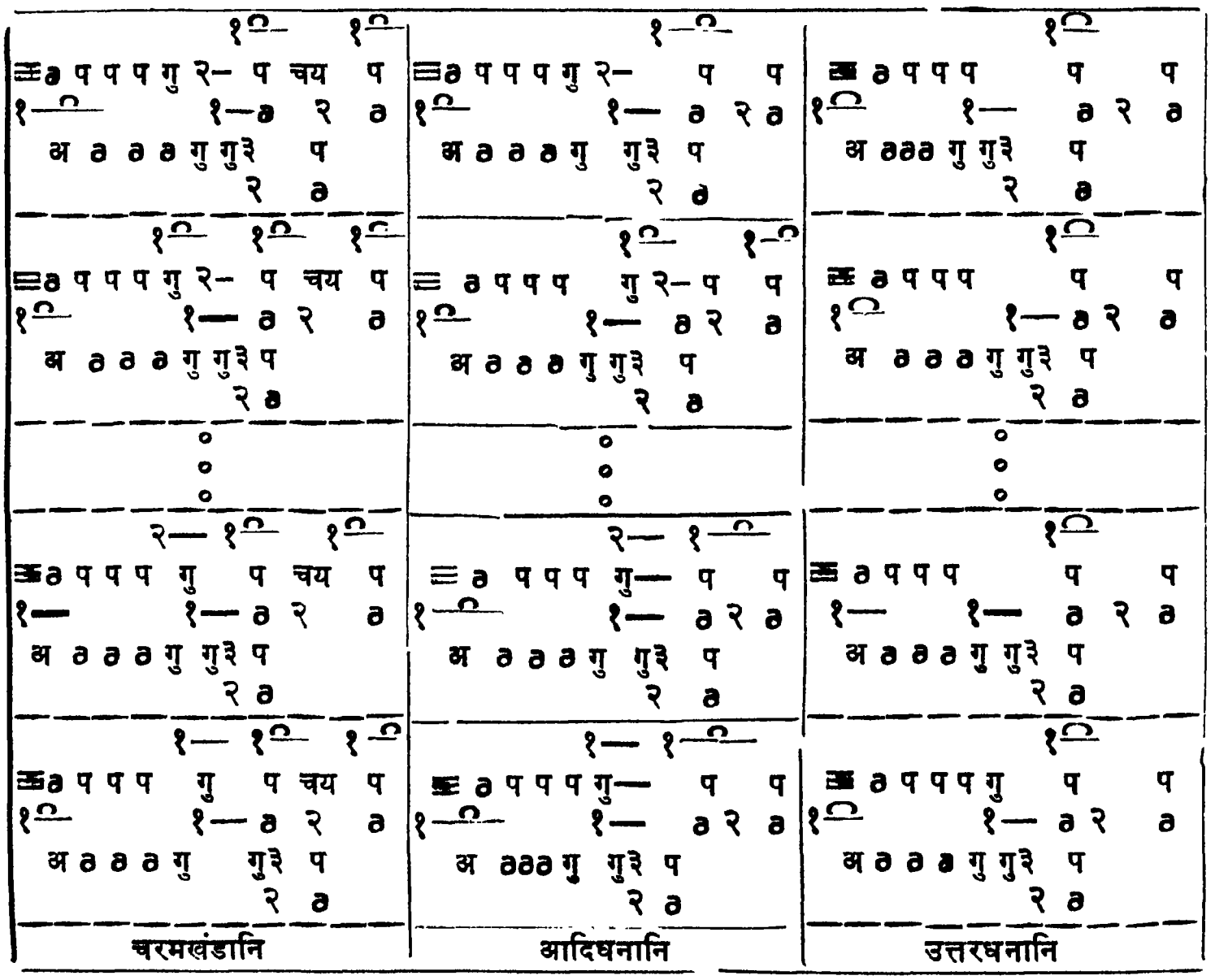
	पदहतमुखमादिधनं	व्येकपदार्द्धघनचयगुणोगच्छ उत्तरधनं ।
० ० ≡अ प प प चय प गु२ प ० — अ अ/२ अ अअअ गु गु३ प २ अ	१— ≡अ प प प गु २– प प १० १— अ/२ अ अअअ गु गु३ प २ अ	१— ≡ अ प प प प प ० १अ/२ अ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ
० ० — ≡अ प प प प गु२ प ० — अ/२ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ	१— १— ≡ अ प प प गु २– प प १० १— अ/२अ अ अअअ गु गु३ प २ अ	१० ≡ अ प प प प प १० १अ/२ अ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ
⋮	⋮	⋮
१० २ १० ≡ अ प प प चय प गु प १० १— अ/२ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ	२— १० ≡ अ प प प गु प प १० १— अ/२अ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ	१० ≡ अ प प प प प १० १अ/२ अ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ
१० १— १— ≡अ प प प चय प गु प १० अ १—२ अ/२ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ	१— १० ≡ अ प प प गु— प प १० १— अ/२अ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ	१० ≡ अ प प प प प १० १— अ/२ अ अ अअअ गु गु३ प २ अ

उभयधनयुतिनिषेकप्रमाणमक्कु ।

१– ० ≡अ प प प गु २– प ० १–अ २ अ अ अ अ गु गु ३ प २ अ	२– ० ≡ अ प प प गु २–प ० ०अ २ अ अ अ अ गुगु ३ प २ अ	३— १० ≡ अ प प प गु २– प १० १— अ २ अ अ अ अ गु गु३ २	०
० ≡अ प प प गु २–प ० १–अ २ अ अ अ अ गु गु ३ प २ अ	१– ० ≡ अ प प प २–प ० १– अ २ अ अ अ अ गुगु ३ प २ अ	२— १० ≡ अ प प प गु २– प १० १— अ २ अ अअअ गु गु३ प २ अ	• ० ०
⋮	⋮	⋮	⋮
३– ० ≡ अ प प प गु प ० १– अ २ अ अ अ अ गु गु ३ प २अ	४– ० ≡ अ प प प गु प १– १– अ २ अ अ अ अ गु गु ३ प २ अ	५— १० ≡ अ प प प गु – प १० १— अ २ अ अअअ गु गु ३ प २ अ	० ० ०
२– ० ≡ अ प प प गु प ० १– अ २ अ अअअ गु गु ३ प २ अ	३– ० ≡ अ प प प गु प ० १– अ २ अ अ अ अ गु गु ३ प २ अ	४ – १० ≡ अ प प प गु– प १० १— अ २ अ अ अ अ गु गु३ प २ अ	० ० ०

जघन्यस्थितिबंधप्रायोग्यकषायपरिणामस्थानविकल्पंगळिवं $\equiv^{\circ}_{\text{अ}}$ a प प प गु$^{\text{गु३}}_{\text{२}}$ द्रव्यमें बुदु

प्रथमगुणहानिचयमनिदं $\equiv^{\circ}_{\text{अ}}$ a प प प a a a गु गु$^{\text{३}}_{\text{२}}$ अनुकृष्टिपदविदं भागिसिदोडे तिर्य्यंगनुकृष्टिचयमक्कु।



जघन्यस्थितिबन्धप्रायोग्यकषायपरिणामाः $\equiv^{\circ}_{\text{अ}}$ a प प प गु$^{\text{गु३}}_{\text{२}}$ द्रव्यं प्रथमगुणहानिचयः

जघन्य स्थितिबन्धके योग्य कषाय परिणाम तो द्रव्य है। प्रथम गुणहानिमें जो चय-
५ का प्रमाण है उसको अनुकृष्टि गच्छ-पल्यके असंख्यातवें भागसे भाग देनेपर अनुकृष्टि चयका प्रमाण होता है। तथा 'व्येक पदार्धघ्न' इत्यादि सूत्रके अनुसार एक हीन अनुकृष्टि

≡ a प प प मिवर चयधनमेनितक्कुमें दोडे व्येकपद प अर्द्ध प घनचय
अ a a a गु गु ३ प
२ a

≡a प प प प गुणो गच्छ ≡a प प प प उत्तरधनमें दितु तंदचयधनमनिदं "चय-
अ a a a a।२ अ a a a२ a a
गु गु ३ प गु गु ३ प
२ a २ a

धणहीणंदव्वं पदभजिदे होदि आदिपरिमाणं" येंदिताचयधनव अनुकृष्टिपद पल्यासंख्यातैकभागमं भाज्यभागहारभूतंगळनपवर्त्तिसि कळेदु शेषधनमनिदं

≡a प प प प प्रथमगुणहानिजघन्यस्थितिप्रतिबद्धस्थितिबंधाध्यवसायंगळिवरोळु । ५
अ a a a a।२ गु गु ३
२

≡ a प प प अनुकृष्टिचयः ≡ a प प प व्येकपदा प र्द्ध प
अ a a a गु गु ३ अ a a a गु गु ३ प a a २
२ २ a

घनचयः ≡ a प प प प गुणो गच्छ उत्तरधनं ≡ a प प प प प प
अ a a a गुगु ३ प अ a a a गुगु ३ प a २ a
२ a २ a

पल्यासंख्यातभाज्यभागहारापवर्तिते एवम् ≡ a प प प प
अ a a a गु गु ३ १—a २
२

गच्छके आधेको अनुकृष्टि चयसे गुणा करके अनुकृष्टि चयसे गुणा करनेपर चयधनका प्रमाण होता है।

प्रथम गुणहानिमें जघन्य स्थितिसम्बन्धी स्थितिबन्धाध्यवसायोंका जो प्रमाण है उसमें प्रथम धनका प्रमाण घटानेपर जो शेष रहे उसको अनुकृष्टि गच्छका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे उसे प्रथम गुणहानिमें जघन्य स्थितिसम्बन्धी अनुकृष्टिका प्रथम खण्ड १० जानना। द्वितीयादि खण्डमें एक-एक अनुकृष्टि सम्बन्धी चय अधिक होता है। जघन्य

१. म चयद।

$\equiv a\ \overset{\frown}{प}\ प\ प\ \overset{\frown}{गु}$ रूपोनानुकृष्टि पदार्द्धप्रमितविशेषगळं कळेदु $\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{३}}\ \overset{\frown}{प}^{ə\,२}$

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{३}}$

अनुकृष्टिपदर्दिदं भागिसिदोडे प्रथमपदहानिजघन्यस्थितिप्रतिबद्धस्थितिबंधाध्यवसायजघन्यानुकृष्टि-

प्रथमखंडप्रमाणमक्कुं $\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ प\ प\ प\ \overset{\frown}{गु}\ \overset{\frown}{प}_{ə\,|\,२}$ द्वितीयादिखंडंगळोळेकैकचयाधिक(ग)ळागुत्तं-

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{३}}\ \underset{२\ ə}{प}$

पोगि चरमखंडदोळु रूपोनानुकृष्टिपदमात्रचयंगळधिकंगळप्पुवु $\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ प\ प\ प\ \overset{\frown}{गु}\ \overset{\frown}{प}_{ə\,|\,२}$ ई प्रथम-

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{३}}\ \underset{२\ ə}{प}$

---

५ प्रथमगुणहानिजघन्यस्थितिप्रतिबद्धस्थितिबन्धाध्यवसायेषु

$\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ प\ प\ प\ \overset{\frown}{गु}_{१-}$

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{१-}}$

रूपोनानुकृष्टिपदार्धगुणितानुकृष्टिपदप्रमितविशेषानुद्धृत्य शेषे-

$\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ प\ प\ प\ \overset{\frown}{गु}_{१-}\ \overset{\frown}{प}$

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{१-}}\ ə\ २$

ऽनुकृष्टिपदेन भक्ते प्रथमगुणहानिजघन्यस्थितिप्रतिबद्धानुकृष्टिप्रथमखण्डं स्यात्।

$\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ प\ प\ प\ \overset{\frown}{गु}_{१-}\ \overset{\frown}{प}$

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{१-ə}}\ २$

द्वितीयादिखण्डमेकैकचयाधिकं भूत्वा चरमं रूपोनानुकृष्टिपदमात्रचयाधिकं भवति

$\equiv \overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ प\ प\ प\ \overset{\frown}{चय}\ \overset{\frown}{प}_{१-}$

$\overset{\circ}{\underset{\frown}{अ}}\ ə\ ə\ ə\ गु\ \overset{\frown}{गु_{२}^{१-ə}}\ \underset{२\ ə}{प}$

खण्डमें एक हीन अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय अधिक होनेपर अन्तका उत्कृष्ट खण्ड होता
१० है। 'पदहतमुखमादिधनं' के अनुसार पद जो अनुकृष्टिका गच्छ है उससे मुख जो प्रथम खण्ड है उसे गुणा करनेपर आदिधन होता है। 'व्येकपदार्धघ्न' इत्यादि सूत्रके अनुसार

निषेकानुकृष्टिखंडंगळंसंकलिसुत्तं विरलु लब्धं पूर्व्वोक्तमोहनीयकर्म्मंजघन्यस्थितिप्रतिबद्धस्थितिबंधाध्यवसायस्थानंगळ प्रमाणमेयक्कुमदं तें दोडे पदहतमुखमादिधनं एंदितनुकृष्टिपदंदिदं प्रथमजघन्यानुकृष्टियं गुणिसिदोडादि धनमिनितक्कुं ≡ अ प प प गु प प व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणोगच्छ एंदित्तुत्तर धनमंतंदोडे इनितक्कु।

≡ अ प प प प प मी उत्तरधनमुमनादिधनमुमं कूडिदोडे मूलधनमपवर्त्तितमिनितक्कुं— ५

अ अ अ अ अ

गु गु

≡ अ प प प गु ई प्रकारदिंदं द्वितीयादिनिषेकंगनुत्कृष्टिखंडंगळं मुन्न रचनेयोळु बरेदंते

अ अ अ अ गु गु

रचियिसुत्तं पोगि प्रथमगुणहानिचरमनिषेकमिदरोळु ≡ अ प प प गु पूर्व्वोक्तक्रमदिंदं

अ अ अ अ गु गु

एतेषु पुनः संकलितेषु पूर्वोक्तमेव जघन्यस्थितिबन्धाध्यवसायप्रमाणमायाति। तद्यथा—

पदहतमुखमादिधनं ≡ अ प प प गु— प प व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ

अ अ अ अ गु गु

उत्तरधनं ≡ अ प प प प प तयोर्योगो मूलधनमपवर्तितमेतावत् ≡ अ प प प गु १०

अ अ अ अ गु गु अ अ अ अ गु गु

एवं द्वितीयादिनिषेकाणामप्यनुकृष्टिखण्डानि रचयित्वा प्रथमगुणहानिचरमनिषेके ≡ अ प प प गु

अ अ अ अ गु गु

एक हीन गच्छके आधेको चयसे तथा गच्छसे गुणा करनेपर चयधन होता है। आदिधन और चयधनको मिलानेपर जघन्य स्थितिसम्बन्धी अध्यवसायोंके प्रमाणरूप सर्वधन होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि निषेकोंमें अनुकृष्टिरचना क्रमसे करके प्रथम गुणहानिके अन्तके निषेक-

तंबपवर्त्तितचयधनमिदं ≡ अ प प प प ए ए ए

≡ ə प प प १ भूमि ≡ ə प प प प ० भोग ≡ ə प प प प
ə ə ə ə ə ə ə ə।२ ə ə ə ə
० — ० —
अ ə ə ə गु गु ३ प अ गु गु ३ प ० अ गु गु ३ प
२ ə २ ə २ ə

दळे ≡ ə प प प प प
ə ə ə ə।२ ə
०
अ गु गु ३
२

पदगुणिदे पदधणं होदि एंदिदु चयधनमक्कुं—

≡ ə प प प प ⌒प
ə ə ə ə।२ ə
०
अ गु गु ३।प
२ ə

इल्लियुभयधनंगळ भाज्य भागहार भूतानुकृष्टिपदपल्यासंख्यातंगळ-

नपवर्त्तिसि रूपोनानुकृष्टिपदार्द्धमाविधनदोळु प्रक्षेपिसुत्तं विरलु मूलधनमिनितक्कुं—

≡ ə प प प गु २
ə ə ə
० —
अ गु गु ३
२

अंकसंदृष्टियोळु प्रथमगुणहानिद्रव्यंगळिवु १६ अनुकृष्टयायाम ४ विशेष
१५
१४
१३
१२
११
१०
९

मुखमेकचयः ≡ ə प प प
० १—
अ ə ə ə गु गु ३ प
२ ə

रूपोनपदमात्रचयो भूमिः ≡ ə प प प
० १—
अ ə ə ə गु गु ३
२

१० ५
प
ə
प
ə

योगः ≡ ə प प प
० १—
अ ə ə ə गु गु ३ प प
२ ə ə

दलं ≡ ə प प प
० १—
अ ə ə ə गु गु ३ प प
२ ə २ ə

पदगुणितं चयधनं ≡ ə प प प
० १—
अ ə ə ə गु गु ३ प प ə
२ ə २ ə

तयोराद्युत्तरधनयोः भाज्यभागहारौ पल्यासंख्यातावपवर्त्य रूपोनानुकृष्टिपदार्धे आदिधने प्रक्षिप्ते मूलधनं स्यात्

≡ ə प प प गु २
० १—
अ ə ə ə गु गु ३
२

गुणा करनेपर आदिधन होता है। चयधनका प्रमाण लानेके लिए 'मुहभूमि' इत्यादि सूत्रके अनुसार मुख हुआ एक चय और भूमि हुई एक हीन अनुकृष्टिका गच्छ प्रमाण चय। इनको

१ चयधनमिदु १।३।४ अपवर्त्तितमिदं ३ द्रव्यदोळु कळेदोडिनितक्कु- ८ ३ मिदं पदर्दिदं
४ ४।२ २ २
३
२

भागिसिदोडादि धनमक्कु ८-३ द्वितीयादिखंडंगळेकैकचयाधिकंगळप्पुवु। द्वितीयनिषेकद्रव्यमिदु
४।२

१
२ चयधनमनिदं ३ कळेदु पदर्दिदं भागिसि दोडादिखंडप्रमाणमिनितक्कु ८—३ द्वितीयादि
८ २ ४।२
खंडंगळेकैकचयाधिकंगळप्पुवु। प्रथमगुणहानिचरमनिषेकद्रव्यमिदु। ८।२। चयधनमनिदं। ३
२
५ कळेदु पदर्दिदं भागिसिदोडादिखंडप्रमाणमिनितक्कुं ८।२।३ द्वितीयादिखंडंगळु मेकैकचयाधि-
४।२
कंगळागुत्तं पोगि चरमखंडदोळु रूपोनगच्छमात्रचयंगळधिकंगळप्पुवु। समुच्चयसंदृष्टि :—

१— १—
अंकसंदृष्टी प्रथमगुणहानौ प्रथमनिषेके ८ चयधनेना १।३।४ पवर्तितेनो ३ ने ८-३ पदेन ४
४।२ २ २

१—
भक्ते प्रथमखण्डं भवेत् ८।३ द्वितीयादिखण्डमेकैकचयाधिकं भवति। समुच्चयसंदृष्टिः—
४।२

जोड़कर आधा करो। फिर एक हीन अनुकृष्टिके गच्छ प्रमाण गच्छसे गुणा करो तब चय-
१० धनका प्रमाण होता है। सो आदिधन और चयधनको मिलानेपर प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकका प्रमाण होता है। इस प्रकार प्रथम गुणहानिमें अनुकृष्टि रचना कही। अब इस कथनको अंकसंदृष्टिके द्वारा दिखाते हैं—

प्रथम गुणहानिमें प्रथम निषेकका प्रमाण नौ है। यही द्रव्य है। ऊर्ध्वचय एक है उसमें अनुकृष्टि गच्छ चारका भाग देनेसे अनुकृष्टि चय एकका चतुर्थांश हुआ। 'व्येकपदार्धघ्न'
१५ इत्यादि सूत्रके अनुसार चयधन डेढ़ हुआ। उसे सर्वधन नौमें-से घटानेपर साढ़े सात रहे। उसमें अनुकृष्टि गच्छ चारसे भाग देनेपर प्रथम खण्डका प्रमाण एक अष्टमांशसे हीन दो हुआ। उसमें चतुर्थांश प्रमाण अनुकृष्टिका एक-एक चय मिलानेपर द्वितीयादि खण्ड होते हैं। चारों खण्डोंको जोड़नेपर नौ होता है। इसी प्रकार अन्तिम निषेकका द्रव्य सोलह है। उसमें चय-धन डेढ़ घटानेपर साढ़े चौदह शेष रहे। उसमें अनुकृष्टि गच्छ चारका भाग देनेपर एक-
२० अष्टमांश अधिक साढ़े तीन पाये। यही प्रथम खण्डका प्रमाण है। उसमें चतुर्थांश मात्र एक-एक चय बढ़ानेपर द्वितीयादि खण्ड होते हैं। चारों खण्डोंका जोड़ सोलह होता है। यहाँ जो आधा या चौथाई कहा है सो अर्थसंदृष्टि द्वारा समझनेके लिए कहा है। अर्थसंदृष्टि तो महापरिमाणरूप है अतः उसमें आधा चौथाई-जैसा कुछ नहीं है।

१६	७+	१	२	३
	९ ३	७+	७+	७+
	४०२	९ ३	९०३	९०३
		४+२	४ २	४०२
	००	०३	४०	५०
	९०३	९+३	९। ३	९+३
११	४+२	४+२	४। २	४। २
	१	२	३	४
१०	९+३	९+३	९+३	९+३
	४+२	४। २	४। २	४। २
	९+३	१	२	३
९	४+२	९+३	९+३	९+३
		४। २	४। २	४। २

२२२	५४	५५	५६	५७		
२१८	५३	५४	५५	५६		
२१४	५२	५३	५४	५५		
२१०	५१	५२	५३	५४		
२०६	५०	५१	५२	५३		
१०२	४९	५०	५१	५२		
१९८	४८	४९	५०	५१		
१९४	४७	४८	४९	५०		
१९०	४६	४७	४८	४९		
१८६	४५	४६	४७	४८		
१८२	४४	४५	४६	४७		
१७८	४३	४४	४५	४६		
१७४	४२	४३	४४	४५		
१७०	४१	४२	४३	४४		
१६६	४०	४१	४२	४३		
१६२	३९	४०	४१	४२		

		१—	२—	३—
	७	७	७	७
१६	९—३	९—३	९—३	९—३
	४। २	४। २	४। २	४। २
	००	००	००	००
	२	३	४	५
११	९—३	९—३	९—३	९—३
	४। २	४। २	४। २	४। २
	१	२	३	४
१०	९—३	९—३	९—३	९—३
	४। २	४—२	४। २	४। २
		१	२	३
९	९—३	९—३	९—३	९—३
	४। २	४। २	४। २	४। २

अथवा अंकसंदृष्टियोळु स्वेच्छासंदृष्टिकरणमुंटप्पुदरिंदं अधःप्रवृत्तकरणरचनेयं सर्व्वमनवतरिसिकोंडु अनुकृष्टिरचनेयं व्याख्यानमं माळ्पुदु। अत्यंतपरोक्षात्थंगळं मनंबुगिसुवल्लिगुपाय-

यदि स्वेच्छानुसार अंकसंदृष्टि करना हो तो त्रिकरणचूलिका अधिकारमें अधःप्रवृत्तकरणकी रचनामें जैसी अंकसंदृष्टि है वैसी करना। तब प्रथम गुणहानिमें सब अध्यवसाय तीन हजार बहत्तर। गुणहानि आयाम सोलह। उसमें जघन्य स्थितिसम्बन्धी प्रथम निषेक ५

मप्पुदरिंदं। यितु स्थितिबंधाध्यवसायंगळ प्रथमगुणहानियोळत्थंसंदृष्टियुमंकसंदृष्टियुमनुकृष्टि-विधानदोळु तोरल्पट्टुदिते द्वितीयादिगुणहानिगळोळं विचारं माडल्पडुवुदों दु विशेषमुंटदावुदें दोडे गुणहानिं प्रति द्रव्यमुं चयमुं द्विगुणद्विगुणक्रमंगळप्पुवु ॥

एक सौ बासठ। प्रत्येक निषेकमें चयका प्रमाण चार। प्रथम निषेकके द्रव्य एक सौ बासठमें चयधन छह घटानेपर एक सौ छप्पन रहे। उसमें अनुकृष्टि गच्छ चारका भाग देनेपर उनतालीस पाये। यही प्रथम खण्ड हुआ। द्वितीयादि खण्डोंमें एक-एक चय अधिक जानना। चारों खण्डोंका जोड़ एक सौ बासठ होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि निषेकोंकी रचना करना। अन्तिम निषेकका द्रव्य दो सौ बाईस। उसमें चयधन छह घटानेपर दो सौ सोलह रहे। उसमें अनुकृष्टिगच्छ चारका भाग देनेपर चौवन पाये। यही प्रथम खण्ड है। द्वितीयादि खण्डोंमें एक-एक चय अधिक जानना। चारों खण्डोंका जोड़ दो सौ बाईस हुआ। इसी प्रकार द्वितीयादि गुणहानियोंमें भी अनुकृष्टिका विधान कर लेना। प्रथम गुणहानिके अनुकृष्टि चय, द्रव्य आदिसे द्वितीयादि गुणहानियोंमें अनुकृष्टि चय आदिका प्रमाण दूना-दूना होता है।

अंकसंदृष्टिकी अपेक्षा स्थितिबन्धाध्यवसाय रचना

जघन्यादि स्थितिबन्ध-की ऊर्ध्व रचना	प्रथम खण्ड	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

अनंतरमुक्त प्रथमगुणहानियोळनुकृष्टि खंडंगळोळल्पबहुत्वमं सूचिसिदपं :—

पढमं पढमं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरिच्छं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५६॥

प्रथमं प्रथमं खंडं अन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशं । अधस्तनोत्कृष्टादनंतगुणस्तूपरितनजघन्यं ॥

अंतु रचियिसलुपट्ट प्रथमादिगुणहानिगळोळनुकृष्टि प्रथमं प्रथमं खंडं स्वोत्कृष्टपर्य्यंतं गुणहानिचरमनिषेकप्रथमानुकृष्टिखंडपर्य्यंतं निरंतरविशेषाधिकंगळप्पुदरिंद संख्येयिंदं परस्परं विसदृशंगळप्पुवु । शक्तिविशेषदिंदमुं परस्परं विसदृशंगळेयप्पुवु । शक्तिविशेषदिनें तु विसदृशंगळें-दोडे स्वस्वाधस्तनोत्कृष्टस्थानमं नोडलुपरितनजघन्यस्थानमनंतगुणमप्पुदरिंदं ॥

विदियं विदियं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरिच्छं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५७॥

द्वितीयं द्वितीयं खंडमन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशमधस्तनोत्कृष्टादनंतगुणस्तूपरितनजघन्यं ॥

गुणहानिप्रथमादि निषेकंगळ द्वितीयं द्वितीयं खंडं गुणहानिचरमनिषेकद्वितीयखंडपर्य्यंतं परस्परं निरंतरं चयाधिकं गळप्पुदरिंदं विसदृशंगळप्पुवु । स्थानविकल्पंगळिंदमु शक्तिविशेषदिंद-मुमेकें दोडे स्वस्वाधस्तनोत्कृष्टमं नोडलुपरितनजघन्यस्थानमनंतगुणमप्पुदरिंदं ॥

ई प्रकारदिंदं रूपोनानुत्कृष्टिपदप्रमितंगळु नडेदुः—

चरिमं चरिमं खंडं अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरिच्छं ।
हेट्ठिल्लुक्कस्सादोणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥९५८॥

चरमं चरमं खंडमन्योन्यमवेक्ष्य विसदृशं अधस्तनोत्कृष्टादनंतगुणस्तूपरितनजघन्यं ॥

एवंरचितप्रथमादिगुणहानिष्वनुकृष्टेः प्रथमं प्रथमं खण्डमन्योन्यमपेक्ष्य संख्यया विसदृशं भवति । तिर्यगुपरि च तत्तच्चरमखण्डपर्यंतं तेषामेकैकचयाधिक्यात् । तथा शक्त्याऽपि स्वस्वाधस्तनोत्कृष्टस्थानादुपरितनजघन्यस्थानस्याप्यनन्तगुणत्वात् ॥९५६॥

गुणहानिप्रथमादिनिषेकाणां द्वितीयं द्वितीयं खण्डं गुणहानिचरमनिषेकद्वितीयखण्डपर्यंतं परस्परं निरन्तरं चयाधिकमिति विसदृशं स्थानविकल्पैः शक्तिविशेषैश्चासदृशं स्वस्वाधस्तनोत्कृष्टादुपरितनजघन्यस्थानस्याप्यनन्तगुणत्वात् ॥९५७॥ एवं रूपोनानुकृष्टिपदमात्राणि नीत्वा—

इस प्रकार रचित प्रथमादि गुणहानियोंमें अनुकृष्टिका पहला-पहला खण्ड परस्परकी अपेक्षा करनेपर विसदृश है—संख्यारूपसे समान नहीं हैं; क्योंकि तिर्यक्रूप रचनामें ऊपर-ऊपर रचनारूप जो पहला-पहला खण्ड है वह अपने-अपने अन्तिम खण्ड पर्यन्त एक-एक चय अधिक है। तथा शक्तिकी अपेक्षा भी अपने-अपने नीचेके उत्कृष्ट स्थानसे ऊपरका जघन्य स्थान भी अनन्त गुणा है। अतः पहला खण्ड समान नहीं है ॥९५६॥

गुणहानिमें प्रथमादि निषेकोंका दूसरा-दूसरा खण्ड गुणहानिके अन्तिम निषेकके दूसरे खण्ड पर्यन्त निरन्तर एक-एक चय अधिक है अतः स्थानभेद और शक्तिभेदसे समान नहीं है। अर्थात् नीचेके दूसरे खण्डके उत्कृष्टसे ऊपरका दूसरे खण्डका जघन्य भी अनन्त गुणा है। इसी प्रकार तीसरे आदि खण्डोंकी भी असमानता जानना ॥९५७॥

गुणहानिप्रथमादिनिषेकानुकृष्टि चरमं चरमं खंडंगळ गुणहानिचरमनिषेकानुकृष्टि चरमखंड-पर्य्यंतं निरंतरं विशेषाधिकक्रमंगळप्पुदरिंदं स्थानविकल्प संख्येयिंदं विसदृशमक्कुं। शक्त्यपेक्षेयिंदं स्वस्वाधस्तनोत्कृष्टस्थानशक्तियं नोडलु स्वस्वोपरितनजघन्यस्थानमनंतगुणितमक्कु-। मितनंत-गुणत्वक्के कारणमेनेंदोडे पेळ्दपरु :—

हेट्ठिमखंडुक्कस्सं उव्वंकं होदि उवरिमजहण्णं।
अट्ठंकं होदि तदोणंतगुणं उवरिमजहण्णं ॥९५९॥

अधस्तनखंडोत्कृष्टमुर्ध्वंको भवेदुपरितनजघन्यमष्टांको भवेत्ततोऽनंतगुणमुपरितनजघन्यं ॥

स्वस्वजघन्यानुकृष्टिखंडमोदल्गोंडु स्वस्वोत्कृष्टखंडपर्य्यंतमेकैकतिर्य्यग्विशेषदिंदमधिक-क्रमंगळप्पुवा विशेषप्रमाणमिदु $\frac{\text{ड}\,\text{प}\,\text{प}\,\text{प}\,१}{१०}$ ई चयवोळमसंख्यातलोकमात्र-$\frac{}{१—}$

अ ड ड ड गु गु ३ प
२ ड

षट्स्थानंगळप्पुदे दोडिल्लि त्रैराशिकं माडल्पडुगुमदेंतेंदोडे :—

एक्कं खलु अट्ठंकं सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा। रूवहियं कंडयेण य गुणियकमा जाव उव्वंक। मेंवितोंदु षट्स्थानदोळोंदष्टांकमक्कं। १। सप्तांकंगळु कांडक प्रमितंगळप्पुवु २ षडंक
ड

पंचांकचतुरंकमुर्ध्वंकगळु क्रमदिंदं रूपाधिककांडकदिंदं गुणितक्रमंगळप्पुवु २ । २ । २ । २ । २
ड ड ड ड ड

४ उ
२ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ । २ अष्टांकसहितमागनितुमं कूडिदोडों दु षट्-
ड ड ड ड ड ड ड ड ड

स्थानदोळिनितु स्थानंगळप्पुवु २ । २ । २ । २ । २ यिन्नु त्रैराशिकमं माडल्पडुगु
ड ड ड ड ड

चरमं चरमं खण्डं गुणहानिचरमनिषेकस्य चरमखण्डपर्यन्तं निरन्तरं विशेषाधिकत्वात् संख्यया विसदृशं। शक्त्याप्यधस्तनोत्कृष्टस्थानादुपरितनजघन्यस्थानमप्यनन्तगुणं ॥९५८॥ तत्र किं कारणमिति चेदाह—

यतः कारणात्तिर्यगुपरि चाधस्तनाधस्तनखण्डोत्कृष्टाध्यवसायस्थानमूर्वकः अनन्तभागवृद्धयात्मकं भवति।

गुणहानिके प्रथमादि निषेकोंका अन्तिम-अन्तिम खण्ड अन्तिम निषेकके अन्तिम खण्ड पर्यन्त निरन्तर एक-एक चय अधिक होनेसे संख्यासे समान नहीं है। शक्तिकी अपेक्षा भी नीचेके अन्तिम खण्डके उत्कृष्ट स्थानसे ऊपरके अन्तिम खण्डका जघन्य स्थान भी अनन्त गुणा है ॥९५८॥

इसका कारण क्या है ? यह कहते हैं—

क्योंकि तिर्यक्रूप रचनामें ऊपर-ऊपर लिखे खण्डोंके अपने-अपने नीचे लिखे खण्डों-का उत्कृष्ट अध्यवसाय स्थान ऊर्वक अर्थात् अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए है और ऊपर-

प्र २ २ २ २ २ फ १ इ ≡ अ प प प ई त्रैराशिकदिंदं बंद लब्धं
अ अ अ अ अ १० १— अ अ अ गु गु ३ प २ अ

चयदोळु नडेद षट्स्थानवारंगळ संख्येयक्कुं २।६२। ५ २ । २ । २ । ४ २ । २ । २ । २
अ अ अ अ अ अ अ अ अ

० १— ० ≡ अ प प प गु गु ३ प २ २ २ २ २ यिवनपर्वत्तिसिदोडेयुमसंख्यात-
० अ अ अ अ २ अ अ अ अ अ अ

लोकमक्कुमेकें दोडे लोकक्के गुणकारभूतासंख्यातं भाज्यं अदु भागहारभूतरूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातंगळ वर्ग्गमात्रघनराशियं सरिगळेदु मत्तमसंख्यातगुणकारमिक्कु-। मिदनें तरियलक्कुमें दोडे :— ५

लोगाणमसंखपमाजहण्ण उड्ढिम्मि तम्मि छट्ठाणा। ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सण्णह ॥ मे दिती सूत्रप्रमाणदिंदमरियल्पडुगुं। जघन्यानुत्कृष्टिखंडदोळेनितु षट्स्थानंगळप्पुववर मेले प्रतिखंडमिनितिनितु षट्स्थानवारंगळधिकंगळागुत्तमुत्कृष्टखंडपर्य्यंतं पोपुवदु कारणमागि स्वस्वजघन्यानुकृष्टिमोदल्गोंडु स्वस्वोत्कृष्टखंडपर्य्यंतं स्वस्वखंडजघन्यमष्टांकमक्कुमुत्कृष्टस्थान- विकल्पमुर्व्वंकमक्कुमधस्तनखंडोत्कृष्टमुर्व्वंकमं नोडलुपरितनखंडजघन्यमष्टांकमप्पुदरिंदं प्रथमं १० प्रथमं खंडमन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशं स्यात्। अधस्तनोत्कृष्टादुपरितनजघन्यमनंतगुणमें दितु पेळल्पट्टुदु। अहंगे द्वितीयं द्वितीयखंडमन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशं स्यादधस्तनोत्कृष्टादुपरितनजघन्यमनंतगुणमें दितु नडेदु चरमं चरमंखंडमन्योन्यमपेक्ष्य विसदृशं स्यादधस्तनोत्कृष्टादुपरितनजघन्यमनंतगुणमें दितु पेळल्पट्टुदु।

३९ ५७
अनंतरं जघन्यस्थितिप्रतिबद्धजघन्यखंडमुत्कृष्टस्थितिप्रतिबद्धमुत्कृष्टखंडमुं पोरगागि १५ शेषसर्व्वखंडंगळूर्ध्वरूपदिंदं सदृशंगळप्पुवें दु मुंदणसूत्रदिंदं पेळ्दपरु :—

अवरुक्कस्सट्ठिदीणं जहण्णमुक्कस्सयं च णिव्वग्गं।
सेसा सव्वे खंडा सरिसा खलु होंति उड्ढेण ॥९६०॥

जघन्योत्कृष्टस्थित्योर्जघन्यमुत्कृष्टकं च निर्व्वर्ग्गं। शेषाणि सर्व्वाणि खंडानि सदृशानि खलु भवेयुरूर्द्ध्वेन ॥ २०

उपरितनोपरितनखण्डजघन्याध्यवसायस्थानमष्टांकः अनन्तगुणवृद्ध्यात्मकं भवति ततः कारणात्तदधस्तनोत्कृष्टात्तदुपरितनजघन्यमनन्तगुणं ॥९५९॥

ऊपरके खण्डका जघन्य अध्यवसाय स्थान अष्टांक अर्थात् अनन्त गुणवृद्धिको लिये हुए है। इस कारणसे नीचेके खण्डके उत्कृष्टसे ऊपरके खण्डका जघन्य अनन्त गुणा कहा है ॥९५९॥

---

१. वर्ग्गः समयसादृश्यं ततो निःक्रांतं निर्व्वर्ग्गं। २५

जघन्योत्कृष्टस्थिति क्रमदिदं जघन्यखंडमुमुत्कृष्टखंडमुमेरडुं सर्व्वथा निर्व्वर्गमक्कुमेल्लियुं विसदृशंगळेयप्पुवु । शेषसर्व्वखंडंगळुसदृशंगळप्पुवूर्ध्वरूपदिंदं ॥

अट्ठण्हं पि य एवं आउजहण्णट्ठिदिस्स वरखंडं ।
जाव य ताव य खंडा अणुकड्ढिपदे विसेसहिया ॥९६१॥

अष्टानामप्येवमायुर्ज्जघन्यस्थितेर्व्वरखंडं । यावत्तावत् खंडानि अनुकृष्टिपदे विशेषाधिकानि ॥

ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्म्मंगळ्गेल्लमितुत्करचनाविशेषं समानमक्कुमेन्नेवरमायुर्ज्जघन्यस्थितिवरखंडमन्नेवरमनुकृष्टिपददोळु विशेषाधिकंगळेयप्पुवु ।

अनंतरमनुकृष्टिपददोळायुष्यकर्म्मंक्के विशेषमं पेळ्दपरु :—

तत्तो उवरिमखंडा सगसगउक्कस्सगोत्ति सेसाणं ।
सव्वे ठिदीण खंडाऽसंखेज्जगुणक्कमा तिरिये ॥९६२॥

तत उपरितनखंडानि स्वस्वोत्कृष्टपर्य्यंतं विशेषाणां सर्व्वाणि स्थितीनां खंडानि असंख्यगुणक्रमाणि तिर्य्यक् ॥

ततः आयुष्यकर्म्मजघन्यस्थितिसंबंधि वरखंडमाउदों डु अदरमेलिर्द्द स्थितिखंडंगळु तंतम्म उत्कृष्टखंडपर्य्यंतं तिर्य्यगसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवु । आ जघन्यादिस्थितिखंडंगळ्गे संदृष्टिरचने :

४	५	६	७
२२।४ १	२२।४।४ १	२२।४।४।४। १	२२।४।४।४।४ १
७	४ २२।४। १	५ २२।४।४ १	६ २२।४।४।४ १
०	७	४ २२। ४ १	५ २२।४।४ १
०	०	७	४ २२।४। १
०	०	०	७

जघन्यस्थितेर्जघन्यखण्डमुत्कृष्टस्थितेरुत्कृष्टखण्डं च निर्वर्गं सर्वथा असदृशं । शेषसर्वखण्डानि खलूर्ध्वरूपेण सदृशानि भवन्ति ॥९६०॥

अष्टानामपि कर्मणामेवमुक्तरचनाविशेषः सर्वोऽपि समानः । किन्त्वायुषोऽनुकृष्टिपदे खण्डानि यावज्जघन्यस्थितिचरमखण्डं तावदेव विशेषाधिकानि । ततस्तद्वरखण्डादुपरितनस्थितिखण्डानि स्वस्वोत्कृष्टखण्डपर्यंतानि

जघन्य स्थितिका कारण प्रथम निषेकका जघन्य-प्रथम खण्ड और उत्कृष्ट स्थितिका कारण अन्तिम निषेकका अन्तिम उत्कृष्ट खण्ड, ये दोनों तो निर्वर्ग हैं अर्थात् किसी भी खण्डके समान नहीं हैं, सर्वथा असमान हैं । शेष सब खण्ड ऊर्ध्वरचना रूपसे अन्य खण्डोंके समान हैं ॥९६०॥

आठों ही कर्मोंकी उक्त रचना विशेष सब समान हैं । अर्थात् जैसे मोहनीयका कहा वैसा ही ज्ञानावरणादिका भी जानना । किन्तु आयुकर्मके अनुकृष्टिगच्छमें जो खण्ड हैं वे

मेले शेषस्थितिगळ खंडंगळु स्वस्वजघन्यखंडंमोदल्गोंडु स्वस्वोत्कृष्टखंडपर्य्यंतमनुकृष्टिखंडगतिळ-र्य्यंग्रूपंदिंदमसंख्यातगुणितक्रमंगळायुष्यकर्म्मदोळप्पुवु। संदृष्टि :—

४ ७ २२।४।४।४।४ १	४ २२।४–१ २२।४।४।४।४।४ १	५ २२।४।४–१ २२।४।४।४।४।४।४ १	६ २२।४।४।४।–१ २२।४।४।४।४।४।४।४ १
५ ६ २२।४।४।४ १	५ ७ २२।४।४।४।४ १	५ २२।६।१ २२।४।४।४।४।४ १	५ २२।४।४–१ २२।४।४।४।४।४।४ १
४ ५ २२।४।४। १	४ ६ २२।४।४।४ १	४ ७ २२।४।४।४।४। १	४ २२।४।–१ २२।४।४।४।४।४ १

यितायुष्योत्कृष्टस्थिति अनुकृष्टिखंडंगळ्पर्य्यंतं स्वस्वजघन्यखंडमं मोदल्गोंडु स्वस्वोत्कृष्ट-खंडपर्य्यंतं तिर्य्यग्रूपंदिंदमसंख्यातगुणितक्रमंगळप्पुवें दरियल्पडुवुवु।

अनंतरमनुभागबंधाध्यवसायंगळं जघन्यस्थितिप्रतिबद्धस्थितिबंधाध्यवसायंगळोळु सर्व्व- ५
जघन्यस्थितिपरिणामस्थानक्के पेळ्दपरु :—

रसबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखलोगमेत्ताणि।
अवरट्ठिदिस्स अवरट्ठिदिपरिणामम्मि थोवाणि ॥९६३॥

रसबंधाध्यवसायस्थानानि असंख्यलोकमात्राणि। अवरस्थितेरवरस्थितिपरिणामे स्तोकानि ॥ १०

रसबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळाळापसामान्यर्दिंदप्पुवु। ≡ a ≡ a। जघन्यस्थितिबंधप्रायोग्यकषायपरिणामंगळुमसंख्यातलोकमात्रंगळ्पूर्व्वोक्तंगळिनितप्पु। ९। विवरोळु

तथा शेषस्थितीनां स्वस्वजघन्यखण्डात् स्वस्वोत्कृष्टखण्डपर्यंतानि च सर्वाणि तिर्यगसंख्यातगुणितक्रमाणि भवन्ति ॥९६१–९६२॥ अथानुभागबन्धाध्यवसायान् जघन्यस्थितिप्रतिबद्धाध्यवसायेषु सर्वजघन्यस्याह—

रसबन्धाध्यवसायस्थानान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a ≡ a तत्र जघन्यस्थितिबन्धप्रायोग्यपरिणामेषु १५

जघन्य स्थितिके अन्तिम खण्ड पर्यन्त तो चय अधिक हैं। उससे आगे उत्कृष्ट खण्डसे ऊपरकी स्थितिके खण्ड अपने-अपने उत्कृष्ट खण्ड पर्यन्त तथा शेष स्थितियोंके अपने-अपने जघन्य खण्डसे अपने-अपने उत्कृष्ट खण्ड पर्यन्त सब तिर्यक् रचनारूप असंख्यात गुणे-असंख्यात गुणे हैं ॥९६१–९६२॥

आगे अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थानोंका कथन करते हुए जघन्य स्थितिसम्बन्धी २०
अध्यवसायोंमें सबसे जघन्य सम्बन्धी अनुभागाध्यवसाय स्थानोंको कहते हैं—

अनुभागाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकमात्र हैं। अर्थात् असंख्यात लोकसे गुणित असंख्यात लोकमात्र हैं। उनमें जघन्य स्थितिसम्बन्धी स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानमें जघन्य स्थितिबन्धयोग्य अध्यवसायोंके प्रमाणसे असंख्यातलोक गुणे अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान हैं फिर भी वे अन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय सम्बन्धी अनुभागाध्यवसायोंसे थोड़े हैं। वही २५
कहते हैं—

जघन्यस्थितिबंधप्रायोग्यजघन्यपरिणामप्रतिबद्धंगळनुबंधाध्यवसायस्थानविकल्पंगळवं नोडल-संख्यातलोकगुणितंगळप्पु । ९ । = a । विवु स्तोकंगळप्पुवेंतेंदोडे मेले मेले जघन्यस्थितिबंधप्रायोग्योत्कृष्टकषायपरिणामपर्य्यंतमनुभागाध्यवसायंगळु निरंतरं विशेषाधिकंगळप्पुदरिंद-। मदेंतेंदोडे द्रव्यं स्थितिगुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्तमेंबिवारुं राशिगळ प्रमाणमरियल्पडुवुवल्लि विवक्षितमोहनीयजघन्यस्थितिबंधकारणाध्यवसायस्थानंगळिवर ज ०००० उ ९

जघन्यपरिणाममोदल्गोंडुत्कृष्टपरिणामपर्य्यंतमिर्द्द सर्व्वस्थितिबंधपरिणामप्रतिबद्धसर्व्वानुभागबंधाध्यवसायंगळ समुच्चयमसंख्यातलोकमात्रंगळप्पुवु । द्रव्यमेंबुदक्कुं । जघन्यस्थितिबंधप्रायोग्यकषायपरिणामंगळु । ९ । स्थिति येंबुदक्कु-। मुपदेशगम्यमप्प नानागुणहानिशलाकेगळावल्यसंख्यातैकभागमक्कुमदं नोडलन्योन्याभ्यस्तमसंख्यातगुणमक्कुमादोडमावल्यसंख्यातैक भागमात्रमेयक्कुं । स्थितियं नानागुणहानिशलाकेगळिंदं भागिसिदोडे गुणहान्यायामक्कु-। मदं द्विगुणिसिदोडे निषेकहारप्रमाणमक्कुमिवक्के संदृष्टि :—

≡ a ≡ a द्रव्य	स्थिति ९	गु २ / a । a	दो । ९ । २ / a । a	नाना । २ / a । a	अन्योन्य २ / a

यिन्नु रूपोनान्योन्याभ्यस्तदिंदं द्रव्यमं भागिसिदोडेकभागं प्रथमगुणहानिद्रव्यमक्कुं । द्वितीयादिगुणहानि द्रव्यंगळु चरमगुणहानिपर्य्यंतं द्विगुणक्रमंगळप्पुवु यिल्लि

≡ a ≡ a । अ / अ / २
०
०
०
≡a ≡a । १ / ० / अ

जघन्यपरिणामे तेभ्योऽसंख्यातलोकगुणा ९ ≡ a न्यपि स्तोकानि । तद्यथा द्र ≡ a ≡ a स्थि ९ । गु ९ दो ९ । २ । नाना २ अन्यो २ द्रव्यं जघन्यस्थितिसम्बन्धयनुभागबन्धाध्यवसायमात्रेऽन्योन्याभ्यस्तेनावल्य-
२ २ a a a
a a a । a
संख्येयभागेन रूपोनेन भक्ते प्रथमगुणहानिद्रव्यं द्वितीयादिगुणहानीनां द्विगुणं भवति ≡ a ≡ a अ तत्र

∩ ०
अ ० २
०
≡a≡a । १ / ∩ / अ

जघन्य स्थितिसम्बन्धी स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंकी रचना दिखाते हैं। जघन्य स्थितिसम्बन्धी स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंके प्रमाणसे असंख्यातलोक गुणा अनुभागबन्धा-

अद्धाणेण | गु | सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि। $\left|\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{\equiv}}\text{ə}\equiv\text{ə}\,।\,१\right|_{\text{गु}}$ | तं रूऊणद्धाद्धेण

$\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}$ ऊणेण णिसेयहारेण $\overset{\circ}{\underset{२}{\text{गु}}}^{३}$ मज्झिमधणमवहरिदे पचयं। $\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{\equiv}}\text{ə}\equiv\text{ə}\,\underset{\text{गु}}{}\,\overset{३}{\underset{२}{\text{गु}}}$ तं रूवहिय-

गुणहाणिणा गुणिदे आदिणिसेय $\overset{\circ}{\underset{\text{अ}}{\equiv}}\text{ə}\equiv\text{ə}\,\underset{\text{गु}}{}\,\overset{३}{\underset{२}{\text{ग}}}$ मेंविदु जघन्यस्थितिबंधकारणकषाय-

परिणामंगळोळु जघन्यपरिणामस्थितिप्रतिबद्धानुभागबंधाध्यवसायंगळप्पुविवंमनदोळिरिसि अवरि-ट्ठिदिपरिणामम्मि थोवाणि एंदिदाचार्य्यनिं पेळल्पट्टुदेकेंदोडे मेलें स्वस्थानचयदिंदं विशेषाधि- ५
कंगळागुत्तं परस्थानचयदिंदं संख्यातासंख्यातगुणंगळागुत्तं पोपुदप्पुदरिंदं।

प्रथमगुणहानिद्रव्ये गुणहान्यायामेनावल्यसंख्येयभागभक्तजघन्यस्थितिकारणकषायाध्यवसायसंख्येन भक्ते

मध्यमधनं $\overset{\circ}{\underset{\text{अ}\,।\,\text{गु}}{\equiv}}\text{ə}\equiv\text{ə}\,१$ इदं रूपोनगुणहान्यायामार्धेन $\underset{२}{\text{गु}}$ निषेकहारेण $\underset{२}{\text{गु}}^{३}$ भक्तं प्रचयः

$\equiv\text{ə}\equiv\text{ə}$ अयं रूपाधिकगुणहान्या गुणित आदिनिषेकः स्यात् $\overset{\circ}{\underset{\text{अ}\;\text{गु}\;\text{गु}}{\equiv}}\text{ə}\equiv\text{ə}\,\underset{२}{\overset{१-}{\text{गु}}}^{३}$ इति ॥९६३॥

ध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण है। वही यहाँ द्रव्य है। तथा जघन्य स्थितिसम्बन्धी स्थितिबन्धा- १०
ध्यवसाय स्थानोंका प्रमाण यहाँ स्थितिका प्रमाण है। आवलीमें दो बार असंख्यातका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वह नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना। स्थितिके प्रमाणमें नानागुणहानिका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वही गुणहानि आयामका प्रमाण जानना। उसका दूना दो गुणहानिका प्रमाण है। आवलीके असंख्यातवें भाग अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण है। उक्त द्रव्यमें एक हीन अन्योन्याभ्यस्त राशिका भाग देनेपर जो प्रमाण आवे वही १५
प्रथम गुणहानिके द्रव्यका प्रमाण है। उससे दूना-दूना द्वितीयादि गुणहानियोंका द्रव्य होता है। प्रथम गुणहानिके द्रव्यमें गुणहानि आयामका भाग देनेपर मध्यम धनका प्रमाण होता है। उसमें एक हीन गुणहानि आयामके आधेसे हीन दो गुणहानिका भाग देनेपर चय आता है। इस चयको एक अधिक गुणहानि आयामसे गुणा करनेपर प्रथम निषेक होता है ॥९६३॥

---

१. म °णामप्रति°। २०

अनंतरमीयनुभागबंधाध्यवसायप्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकद मेलें असंख्यातलोकमात्रचयदिंदं तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्य्यंतमेकादृशमप्प चयदिंदं पेच्चुंववेंदु पेळ्दपरु :—

तत्तो कमेण वड्ढदि पडिभागेण य असंखलोगेण ।
अवरट्ठिदिस्स जेट्ठट्ठिदिपरिणामो त्ति णियमेण ॥९६४॥

ततः क्रमेण वर्द्धन्ते प्रतिभागेन चासंख्यलोकेनावरस्थितेर्ज्येष्ठस्थितिपरिणामपर्य्यंतं नियमेन ॥

ततः आ जघन्यस्थितिजघन्यपरिणामप्रतिबद्धानुभागबंधाध्यवसायंगळत्तणिदं जघन्यस्थिति-द्वितीयादिपरिणामप्रतिबंधाध्यवसायंगळ्मसंख्यातलोकमात्रप्रतिभागदिंदं पुट्टिद विशेषदिं निरंतरं पेच्चुंत्तं पोपुर्वन्नेवरं जघन्यस्थितिप्रतिबद्धकषायपरिणामंगळोळु प्रथमगुणहानिचरमपरिणाममन्नेवरं अल्लिवं मेले गुणहानिं गुणहानिं प्रतियादियं नोडलादिद्विगुणमक्कुं । विशेषमं नोडलु विशेषमुं द्विगुणमक्कु—। मितु द्वितीयस्थितिमोदल्गोंडुत्कृष्टस्थितिपर्य्यंतमिद्दं स्थितिबंधकारणजघन्योत्कृष्ट-

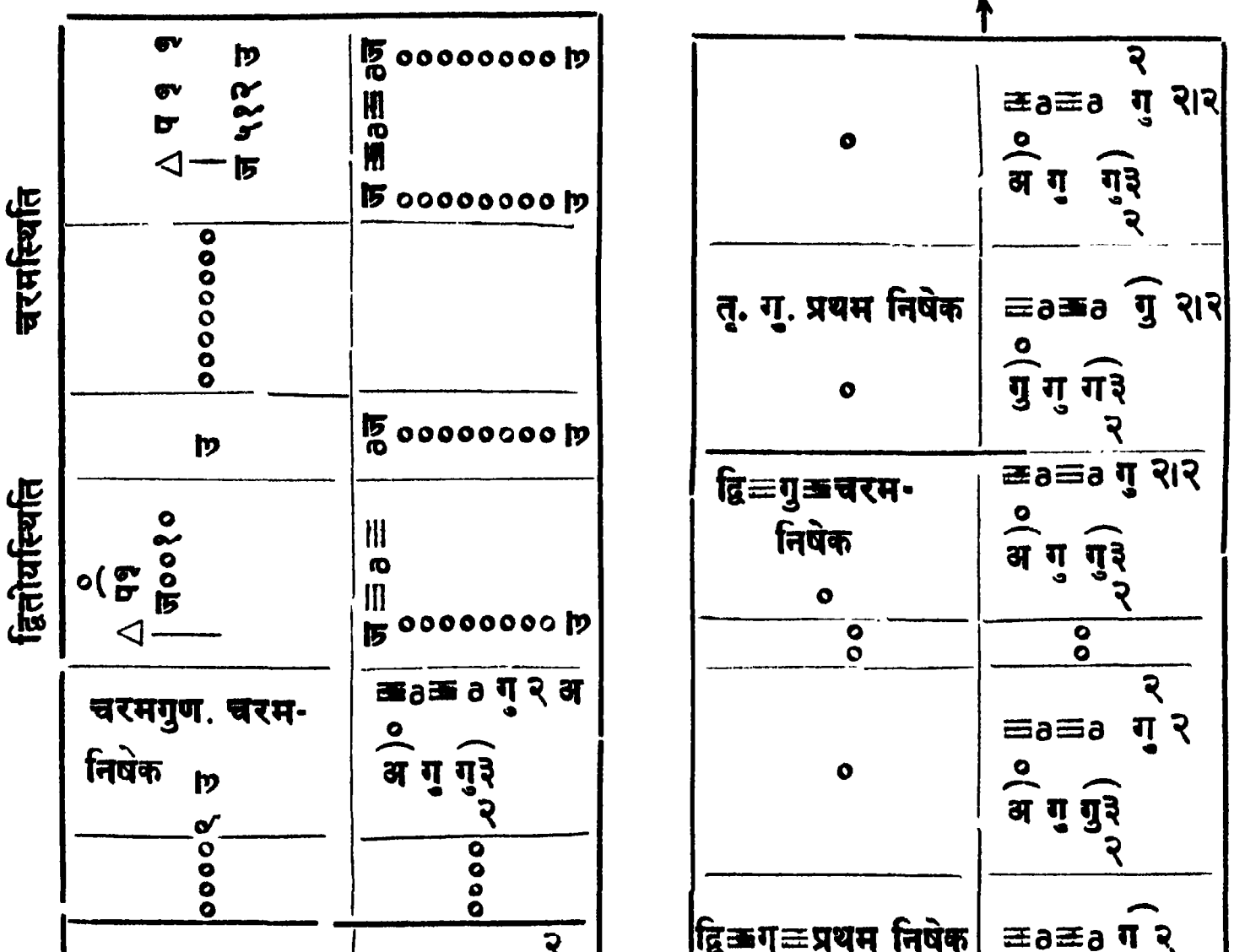
० १०	११	०।०।०।
स्थि = बं = ज ।०। उ	ज ।०। उ	०।०।०।०। ज ० ० उ
अनु = ज ० ज	ज ।०। ज ०	० ० ० ज ज
० ०	० ०	० ०
० ०	० ०	० ०
० ०	० ०	० ०
उ उ	उ उ	उ उ

परिणामप्रतिबद्धानुभागबंधाध्यवसायंगळ रचनाविशेषमरियल्पडुगु—। मनुभागबंधाध्यवसायंगळ्गे नानागुणहानिशलाकेगळु उंदु इल्ल येंदितुपदेशद्वयमुंदु । अदं सर्व्वज्ञररिवरु ।

ततो जघन्यस्थितिजघन्यपरिणामप्रतिबद्धानुभागबन्धाध्यवसायेभ्यस्तद्द्वितीयादिपरिणामप्रतिबद्धानुभाग-बन्धाध्यवसायाः प्रथमगुणहानिचरमपरिणामपर्यंता असंख्यातलोकमात्रप्रतिभागोत्पन्नविशेषेण निरन्तरं वर्द्धमाना गच्छन्ति । ततोऽग्रे गुणहानिं गुणहानिं प्रति आदित आदिर्विशेषतो विशेषश्च द्विगुणो द्विगुणः । एवं द्वितीयादि-स्थितावुत्कृष्टस्थितिपर्यंतायामपि ज्ञातव्यं । अनुभागबन्धाध्यवसायानां नानागुणहानिशलाकाः सन्ति न

तत्पश्चात् जघन्य स्थितिके जघन्य परिणाम सम्बन्धी प्रथम निषेकरूप अनुभागाध्यवसायस्थानोंसे उस जघन्य स्थितिके द्वितीयादि परिणामसम्बन्धी द्वितीयादि निषेकरूप अनुभागाध्यवसाय स्थान प्रथम गुणहानिके अन्तिम निषेकरूप अन्तिम परिणाम पर्यन्त एक-एक चय प्रमाण निरन्तर वृद्धिको लिये होते हैं। यहाँ असंख्यात लोक मात्र प्रमाण प्रतिभाग सर्वद्रव्यमें देनेसे चयका प्रमाण होता है। उससे आगे प्रत्येक गुणहानिमें प्रथम निषेकसे प्रथम निषेक तथा चयसे चयका प्रमाण दूना-दूना होता है। इसी प्रकार द्वितीयादि स्थिति योग्य द्वितीयादि निषेकोंमें भी उत्कृष्ट स्थिति रूप अन्तिम निषेक पर्यन्त रचना जानना। यहाँ जघन्य स्थितिसम्बन्धी जघन्य स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थानोंमें प्रथम निषेक प्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान होते हैं। उसीके दूसरे स्थानमें द्वितीय निषेक प्रमाण होते हैं। अनुभागबन्धाध्यवसायों-

उक्तार्थसंदृष्टिरचनेयिदु । :—



सन्तीत्युपदेशद्वयमस्ति ॥ संदृष्टिः—

में नानागुणहानिशलाका हैं और नहीं भी हैं ऐसे दो उपदेश विभिन्न आचार्योंके हैं ॥९६४॥

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं ।
कम्माण णिज्जरट्ठं तच्चट्ठवधारणट्ठं च ॥९६५॥

गोम्मटसंग्रहसूत्रं गोम्मटदेवेन गोम्मटं रचितं । कर्म्मणां निर्जरार्थं तत्त्वार्थावधारणार्थं च ॥

ई गुम्मटसारसंग्रहसूत्रं गुम्मटदेवर्निदं श्रीवीरवर्द्धमानदेवर्निदं गुम्मटनयप्रमाणविषयमें तप्पुदंते रचितं रचिसल्पट्टुदेकें दोडे ज्ञानावरणादिकम्मंगळ निर्ज्जरानिमित्तमागियुं तत्त्वार्थंगळ निश्चयनिमित्तमागियुं ।

जम्हि गुणा विस्संता गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं ।
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरू जयउ सो राओ ॥९६६॥

यस्मिन्गुणा विश्रांता गणधरदेवादिऋद्धिप्राप्तानां । सोऽजितसेननाथो यस्य गुरुर्जयतु स राजा ॥

गणधरदेवादिऋद्धिप्राप्तरुगळ गुणंगळावनोव्वंनोळु विश्रमिसल्पट्टुवंतप्पजितसेननाथनावनोव्वंगे व्रतगुरुवा राजं सर्व्वोत्कर्षदिदं वर्त्तिसुत्तिर्क्कें ।

इदं गोम्मटसारसंग्रहसूत्रं गोम्मटदेवेन श्रीवर्धमानदेवेन गोम्मटं नयप्रमाणविषयं रचितं । किमर्थं ? ज्ञानावरणादिकर्मनिर्जरार्थं च ॥ ९६५॥

गणधरदेवादीनां ऋद्धिप्राप्तानां गुणा यस्मिन् विश्रान्ताः सोऽजितसेननाथो यस्य गुरुः स राजा सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् ॥९६६॥

ग्रन्थकार प्रशस्ति

आगे ग्रन्थकार आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ग्रन्थ समाप्तिके सम्बन्धमें कहते हैं—

यह गोम्मटसार नामक संग्रह गाथा गोम्मटदेव . श्रीवर्धमानदेवने कर्मोंकी निर्जराके लिए और तत्त्वार्थके अवधारणाके लिए रचा है। नय और प्रमाणके विषयको लेकर रचा है ॥९६५॥

विशेषार्थ—टीकाकारने गाथामें आये गोम्मटदेवका अर्थ वर्धमान स्वामी किया है। वह हमें ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि ग्रन्थ रचनाका एक उद्देश्य कर्मोंकी निर्जरा भी है। भगवान् महावीर कर्मोंकी निर्जराके लिए ग्रन्थ क्यों रचेंगे ? इसी प्रकार दूसरे गोम्मटका अर्थ 'नय प्रमाण विषय' किया है। किन्तु इस ग्रन्थमें नय-प्रमाणकी चर्चा तो नहीं है। गुणस्थान और मार्गणाओंकी चर्चा है। या कर्मसिद्धान्तकी चर्चा है।

इसीसे पं. टोडरमलजी साहबने इसके भावार्थमें कहा है कि यह ग्रन्थ वर्धमान स्वामीकी वाणीके अनुसार बना है।

ऋद्धिको प्राप्त गणधरदेव आदिके गुण जिसमें पाये जाते हैं ऐसे अजितसेनाचार्य जिसके गुरु हैं वह राजा गोम्मट—चामुण्डराय जयवन्त होओ ॥९६६॥

सिद्धंतुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया।
गुणरयणभूसणंबुहिमइवेला भरउ भुवणयलं ॥९६७॥

सिद्धांतोदयतटोद्गतनिर्म्मळवरनेमिचंद्रकरकलिता। गुणरत्नभूषणांबुधिमतिवेला पूरयतु भुवनतलं ॥

अथवा भुवनयलं भुवने अलमतिशयेन। सिद्धांतमें बुदयाद्रियोळुदयिसल्पट्ट निर्म्मलवरनेमिचंद्रकिरणंगळिदं पेच्चिद गुणरत्नभूषणांबुधिय चामुंडरायनें बंबुनिधिय मतियें बवेलें भुवनतलमं तीवुगे। अथवा भुवनदोळतिशयविंद पसरिसुगे।

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरायविणिम्मिय दक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥९६८॥

गुम्मटसंग्रहसूत्रमुं चामुंडरायन देहारदोळेकहस्तमितेंद्रनीलरत्ननेमीश्वरन प्रतिमेयुं गुम्मटराय चामुंडरायं विनिर्म्मिसिद दक्षिणकुक्कुटजिननुं। सर्व्वोत्कृष्टदिंद वर्त्तिसुगे ॥

सिद्धान्तोदयाचले उदितनिर्मलवरनेमिचन्द्रकिरणैर्वर्धिता गुणरत्नभूषणाम्बुधेश्चामुण्डरायसमुद्रस्य मतिवेलाभुवनतलं पूरयतु, अथवा भुवनेऽतिशयेन प्रसरतु ॥९६७॥

गोम्मटसंग्रहसूत्रं च चामुण्डरायविनिर्मितप्रासादस्थितैकहस्तप्रमेन्द्रनीलमयनेमीश्वरप्रतिबिम्बं च चामुण्डरायविनिर्मितदक्षिणकुक्कुटजिनश्च सर्वोत्कर्षेण वर्तेताम् ॥९६८॥

सिद्धान्तरूपी उदयाचलपर उदयको प्राप्त निर्मल और उत्कृष्ट आचार्य नेमिचन्द्ररूपी चन्द्रमाके वचनरूपी किरणोंसे वृद्धिको प्राप्त 'गुणारत्नभूषण' अर्थात् चामुण्डरायरूपी समुद्रकी मतिरूपी वेला भुवनतलको पूरित करे।

विशेषार्थ—जैसे उदयाचलपर उदित चन्द्रमाकी किरणोंके सम्पर्कसे समुद्रमें लहरें उठकर समुद्रके तटको लाँघ जाती हैं और सर्वत्र फैल जाती हैं वैसे ही आचार्य नेमिचन्द्रका उदय षट्खण्डागम सिद्धान्तरूपी उदयाचलसे हुआ और ज्ञानरूपी किरणोंसे राजा चामुण्डरायरूपी समुद्र आप्लावित होकर सर्वत्र फैले ऐसा ग्रन्थकारका आशीर्वाद है। उन्होंने चामुण्डरायके लिए ही यह ग्रन्थ रचा था। उसीके नामपर ग्रन्थका नाम गोम्मटसार रखा गया है ॥९६७॥

गोम्मटसाररूपी संग्रह ग्रन्थ जयवन्त हो। गोम्मट शिखरके ऊपर गोम्मटजिन जयवन्त हो। अर्थात् चन्द्रगिरि पर्वतपर चामुण्डरायके द्वारा बनवाये गये जिनालयमें विराजमान एक हाथ प्रमाण इन्द्रनीलमणि निर्मित नेमिनाथ भगवान्का प्रतिबिम्ब जयवन्त हो। तथा गोम्मटराजा चामुण्डरायके द्वारा निर्मापित दक्षिण कुक्कुट जिन अर्थात् बाहुबलिका प्रतिबिम्ब जयवन्त हो ॥९६८॥

जेण विणिम्मिय पडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं ।
सव्वपरमोहिजोगिहि दिट्ठं सो गोम्मटो जयऊ ॥९६९॥

आवनोर्व्वनि निर्म्मिसलुपट्ट प्रतिमावदनं सर्व्वार्त्थसिद्धिदेवरुगळिदमुं सर्व्वपरमावधियोगिगळिदमुं काणल्पट्टदंतप्प गोम्मटं सर्व्वोत्कृष्टदिदं वर्तिसुत्तिर्क्के ॥

वज्जयलं जिणभवणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु ।
तिहुवणपडिमाणेक्कं जेण कयं जयउ सो राओ ॥९७०॥

वज्रावनितलं भूमितलमीषत्प्राग्भारं सुवर्णकलशमितु। त्रिभुवनप्रतिमानमद्वितीयं जिनभवनमार्वनि कृतमाराजं विराजिसुत्तिर्क्के ॥

जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया ।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ ॥९७१॥

आवनोर्व्वं नेत्तिव स्तंभद मेलण यक्षमकुटाग्रकिरण जलदिंदं प्रक्षालिसल्पट्टुवु । सिद्धपरमेष्ठिगळ शुद्धपादंगळा राजं चामुंडरायं गेलुत्तिर्क्के ॥

येन विनिर्मितप्रतिमावदनं सर्वार्थसिद्धिदेवैः सर्वपरमावधियोगिभिः दृष्टं स गोम्मटः सर्वोत्कर्षेण वर्तताम् ॥९६९॥

वज्रावनितलं ईषत्प्राग्भारं सुवर्णकलशमिति त्रिभुवनप्रतिमाने अद्वितीयं जिनभवनं येन कृतं स राजा विराजताम् ॥९७०॥

येनोद्भोकृतस्तम्भस्योपरि स्थितयक्षमुकुटाग्रकिरणजालेन धौतौ सिद्धपरमेष्ठिनां शुद्धपादौ स राजा चामुण्डरायो जयतु ॥९७१॥

जिसके द्वारा निर्मापित उत्तुंग बाहुबलिकी प्रतिमाका मुख सर्वार्थसिद्धिके देवोंके द्वारा अथवा सर्वावधि परमावधि ज्ञानी योगियोंके द्वारा देखा गया, वह राजा चामुण्डराय सर्वोत्कर्ष रूपसे प्रवर्तमान रहें ॥९६९॥

जिस राजाने ऐसा जिनभवन बनवाया जिसका भूमितल वज्रके समान सुदृढ़ है, सुवर्णके कलशसे शोभित है और तीनों लोकोंमें जिसकी कोई उपमा नहीं है वह राजा जयवन्त हो ॥९७०॥

जिसके द्वारा (गोम्मटेशकी मूर्तिके द्वारके सामने) स्थापित उत्तुंग स्तम्भके ऊपर स्थित यक्षके मुकुटके अग्रभागसे निकलनेवाली किरणरूपी जलसे सिद्धपरमेष्ठियोंके शुद्ध चरण युगल धोये गये हैं वह राजा चामुण्डराय जयवन्त हो ॥९७१॥

गोम्मटसुत्तं लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी ।
सो राओ चिरकालं णामेण य वीरमत्तंडी ॥९७२॥

ई गोम्मटसारसूत्रलेखनदोळु गोम्मटरायनिंदमाउदों दु देशीभाषे माडल्पट्टुदा रायं नामदिंदं वीरमार्त्तंडं चिरकालं जयसुत्तिर्क्कं ॥

[मत्तेभ विक्रीडित वृत्त :]

सुगमं वार्द्धियनोवविक्कलिपुदुं मेव्वंग्रभागक्कयुं ।
नेगेदुल्लंघिपुदुं करं सुगममा लोकांतदाकाशमम् ॥
सुगमं पोगि बेरल्गळिं मिडिददं नोळपंदमावंदिं ।
सुगमं तानिनितल्तु गोम्मटमहाशास्त्राब्धिपारंगमं ॥१॥

[कंद पद्य :]

मण्णं पिडिदोडे कैयाळु मण्णुं पोन्नप्पुदेन्न जैनतनक्के ।
बण्णहरियण्णनोदिन डोण्णेय घायक्के बेदरदण्णगळोळरे ॥२॥

गोम्मटसूत्रलेखने गोम्मटराजेन या देशी भाषा कृता स राजा नाम्ना वीरमार्तण्डश्चिरकालं जयतु ॥९७२॥

संस्कृतटीकाकारप्रशस्ति

श्रीवृषभोऽजितो भक्त्या शंभवोऽभिनन्दनः । सुमतिः पद्मभासः श्रीसुपार्श्वश्चन्द्रभः स्तुतः ॥१॥
सुविधिः शीतलः श्रेयान् सुपूज्यो विमलेश्वरः । अनन्तो धर्मनाथो नः शान्तिः कुन्थुररप्रभुः ॥२॥

गोम्मटसार ग्रन्थके लिखे जानेपर गोम्मटराज चामुण्डरायने जो देशी भाषामें टीका रची, जिसका नाम चामुण्डरायकी उपाधिपर वीरमार्तण्डी था, वह राजा चिरकाल तक जीवित रहे ॥९७२॥

सागरको बिना किसी कष्टके पार करना, मेरु पर्वतके शिखरपर चढ़कर उसको पार करना, लोकान्त तक फैले हुए विशाल आकाशके अन्ततक पहुँचकर अपनी अँगुलियोंसे छूकर उसका अनुभव करना, ये सब काम सुलभ साध्य हैं। परन्तु गोम्मटसारके शास्त्र समुद्रको पार करना सुलभ नहीं ॥१॥

विशेषार्थ—प्रपंचमें जो दुःसाध्य कार्य हैं उन्हें चाहे हम कर सकेंगे, लेकिन गोम्मटसारके सिद्धान्त सागरको पार करना असाध्य काम है। इन बातोंसे स्पष्ट है कि गोम्मटसारके अर्थ लगानेमें, विवरण देनेमें पढ़नेवालेको जो पाण्डित्य और संस्कार चाहिए उसका दिग्दर्शन केशवण्णा दे रहा है। साथ ही वैसे संस्कारको मैंने प्राप्त किया है, ऐसे आत्मविश्वासकी ध्वनि भी यहाँ प्रतिध्वनित होती है ॥१॥

जैनागमकी प्रतिभाके कारण अगर मैं अपने हाथमें मिट्टी भी ले लूँ वह सोना बन जायेगी। विद्वान् केशवण्णकी विद्वत्ताको देखकर कौन ऐसा है जो डर न जाय ॥२॥

---

१. नाभेयमजितं देवं शम्भवं भवतारकम् । घातिकर्मप्रणाशाय प्रणमाम्यहमादरात् ॥१॥
अभिनन्दनमानन्दरूपं सुमतिमच्युतम् । पद्मप्रभं प्रभुं वन्दे रत्नत्रयविशुद्धये ॥२॥

नानेन्न मतिय पर्वणिगेनुं किरिविल्लवरिवे जैनागममं ।
ज्ञानं मत्यनुसारं ज्ञानिगळेनगेवरुळिवरें बंगंगं ॥३॥
अरिवेनगादोडे तिण्णं बरिबिट्टियोळेके धनमनीवेनेनुत्ति ।
प्परिविन कणि बोडप्पं गुरुवरे किरिकिरिदनरिव केशण्णंगळु ॥४॥
सेसेगोळल्वेळ्दं कोललोसुगलेन्नं दुरात्मनी केशण्णं ।
दोसियेनुंतितु तोरेदं पेसि जिनागममनरिवनं गोपण्णं ॥५॥

श्रीमल्लिः सुव्रतः स्वामी नमिर्नेमिः श्रीपार्श्वकः । वीरस्त्रिकालजोऽप्यर्हन् सिद्धः साधुः शिवं क्रियात् ॥३॥
यत्र रत्नैस्त्रिभिर्लब्ध्वार्हन्त्यं पूज्यं नरामरैः । निर्वान्ति मूलसंघोऽयं नन्द्यादाचन्द्रतारकम् ॥४॥
तत्र श्रीशारदागच्छे बलात्कारगणोऽन्वयः । कुन्दकुन्दमुनीन्द्रस्य नन्द्याम्नायोऽपि नन्दतु ॥५॥

विशेषार्थ—केशववर्णीके समकालीन पण्डितवर्ग एवं विद्वानोंके लिए यह सवाल है और चुनौती है। इससे उसके आत्मविश्वासका अंश प्रकट होता है और वह कहता है कि मेरा पाण्डित्य प्रश्नातीत है ॥२॥

वह कहता है कि मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार अगाध जैनागमका अध्ययन किया है। ज्ञान तो हमेशा सतताध्ययनसे और संस्कारसे प्राप्त होता है। क्या बिना संस्कारके लोग मेरी बराबरी कर सकते हैं ? ॥३॥

विशेषार्थ—केशववर्णी अपनी अध्ययनप्रवृत्ति और संस्कार विशेष पर अभिमानसे कहता है कि मेरी विद्वत्ता किसीसे कम नहीं है ॥३॥

ज्ञान तो सदा मुफ्तमें नहीं मिलता। मेरी निश्चित धारणा है कि मैंने धन देकर ही ज्ञान प्राप्त किया है। ऐसोंका ज्ञान पाण्डित्य पूर्ण है ॥४॥

विशेषार्थ—ऊपरकी पंक्तियोंसे यह स्पष्ट विदित होता है कि केशववर्णीके समकालीन कोई विद्वान् उसकी विद्वत्ताको वक्रदृष्टिसे देखनेवाला था। वह व्यक्ति आगेके पद्य (नं. ५) में सूचित गोपण्ण ही शायद हो। लेकिन अपनी गोम्मटसारकी टीकाके अन्तिम भागमें इस अंशका उल्लेख करनेका औचित्य क्या था यह एक कुतूहलकी बात मनमें रह जाती है। शायद उसका आशय यह रहा होगा कि वह अपने प्रतिस्पर्धियोंकी सत्त्वपरीक्षामें खरा उतरा है और अगाध पाण्डित्यवाला है ॥४॥

दुरात्मा गोपण्णने मुझे मारनेके लिये मन्त्राक्षत स्वीकारनेके लिये कहा। आखिर वही दोषी ठहराया जाकर जिनागमको त्यागकर केशवण्णको (मुझे) छोड़कर चला गया। उसकी हार हुई ॥५॥

विशेषार्थ—ऊपरके पद्यसे यह वार्ता स्पष्ट हो जाती है कि गोपण्ण नामका समकालीन व्यक्ति था जिसका सम्बन्ध केशवण्णके साथ मधुर नहीं था। साथ ही जैनागमके ज्ञाता गोपण्ण जैसे व्यक्तिने अपने ऊपर जो झूठा अपवाद लगाया है उसकी चोटका दुःख भी केशवण्णको था। लेकिन स्पष्ट था कि वह अपवाद बेबुनियाद था ॥५॥

सुपार्श्वमनघं चन्द्रप्रभं त्रिभुवनाधिपम् । पुष्पदन्तं जगत्सारं वन्दे तद्गुणसिद्धये ॥३॥
शीतलं सुखसाद्भूतं पुण्यमूर्ति नमाम्यहम् । श्रेयाग्सं वासुपूज्यं च केवलज्ञानसिद्धये ॥४॥

[मत्तेभविक्रीडित वृत्त :]

पोणद्दों धूर्त्तजनोपसर्गगंमनिशं बें बत्ते बें बोळवा-
नोणद्दें गोम्मटसार वृत्तियनिदं कन्नाटवाक्यंगळि ।
प्रणुतर्द्धीधनरुं बहुश्रुतरिवं तिद्दिबुधर्द्धर्म्मभू-
षणभट्टारकदेवराज्ञेयनिदं संपूर्णमं माडिदें ॥६॥

नेरेवु शकाब्दमिंदुवसुनेत्रशशिप्रमितं(१२८१)गळागि सं- ।
विरुतिरेयुं विकारिवरवत्सरचैत्रविशुद्ध पक्ष भा-
सुरतरपंचमीदिवसदंदिदु गोंम्मटसारवृत्ति भा-
स्करनोगेंदं विनेयजनहृत्सरसिजमनुल्लसच्चुतं ॥७॥

यो गुणैर्गणभृद्गीतो भट्टारकशिरोमणिः । भक्त्या नमामि तं भूयो गुरुं श्रीज्ञानभूषणम् ॥६॥
कर्णाटप्रायदेशेशमल्लिभूपालभक्तितः । सिद्धान्तः पाठितो येन मुनिचन्द्रं नमामि तम् ॥७॥

यद्यपि धूर्त जनोंने सदा उपद्रव मचाया फिर भी बिना डरे मैंने उसका सामना किया और धर्मभूषण भट्टारक देवकी आज्ञा पाकर गोम्मटसारकी कन्नड भाषामें टीका रची। इसमें यदि कोई त्रुटि रह जाय तो श्रुतपारंगत विद्वान् पण्डितगण उसको ठीक बनानेका अनुग्रह करें ॥६॥

विशेषार्थ—कृति निर्माण कालमें केशवण्णने स्वयं जिन समस्याओंका सामना किया था, यहाँ उसका उल्लेख किया है। वह कहता है कि मैंने अपवादोंको जीत लिया और इस कृति रचनामें मुझे मेरे गुरु धर्मभूषण भट्टारककी कृपाका अनुग्रह प्राप्त हुआ है। इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि केशवण्णको कृतिरचनामें अनेकों कष्ट सहने पड़े, फिर भी गुरुके अनुग्रहसे उनने ग्रन्थको सम्पूर्ण किया। यहाँ केशवण्णकी बातोंमें विनयपूर्ण आत्मविश्वास-की झलक दीख पड़ती है ॥६॥

यह पद्यकृति रचनाकारकी न होकर प्रतिलिपिकारकी जान पड़ती है। प्रसिद्ध शालिवाहन शक वर्ष इन्दु-वसु-नेत्र-शशि (१८२१ उलटा करें तो १२८१ में) के विकारि संवत्सरके चैत्र शुदी पंचमीके शुभ दिनमें इस गोम्मटसारकी कर्नाटक वृत्तिको शिष्योंके हृदयको प्रफुल्लित करनेवाले श्रीभास्करने सम्पूर्ण किया ॥७॥

विशेषार्थ—इस गोम्मटसार वृत्तिकी प्रतिलिपि शालिवाहन शक संवत् १२८१ के विकारि संवत्सरके चैत्र शुक्ल पंचमीके पवित्र दिन भास्करने लिखकर पूर्ण किया ॥७॥

विमलं निर्जितानङ्गं प्राप्तानन्तचतुष्टयम् । अनन्तं धर्मनाथं च वन्दे स्वात्मोपलब्धये ॥५॥
शान्तिनाथं च कुन्थुं च अरं चेशान्नमाम्यहम् । यथाख्यातगुणोपेतान् यथाख्यातप्रसिद्धये ॥६॥
नेमिनाथं च पार्श्वं च वर्धमानं जिनेश्वरम् । त्रिकालमभिवन्देऽहं नवक्षायिकलब्धये ॥७॥
त्रिकालगोचराः सर्वेऽनन्तार्हत्सिद्धसाधवः । निःश्रेयसपदं दद्युः शरणोत्तममङ्गलम् ॥८॥
यमाराध्यैव भव्यौघाः प्राप्ताः कैवल्यसम्पदः । शाश्वतं पदमापुस्तं मूलसंघमुपाश्रये ॥९॥
तत्र श्रीशारदागच्छे बलात्कारगणोऽन्वयः । कुन्दकुन्दमुनीन्द्रस्य नन्द्याद्याचक्रतारकम् ॥१०॥

नाभेयमजितं देवं शंभवं भवतारकं । घातिकर्म्मप्रणाशाय प्रणमाम्यहमादरात् ॥
अभिनंदनमानंदरूपं सुमतिमच्युतं । पद्मप्रभं प्रभुं वंदे रत्नत्रयविशुद्धये ॥
सुपार्श्वमनघं चंद्रप्रभं त्रिभुवनाधिपम् । पुष्पदन्तं जगत्सारं वंदे तद्गुणसिद्धये ॥
शीतलं सुखसाद्भूतपुण्यमूर्त्ति नमाम्यहम् । श्रेयांसं वासुपूज्यं च केवलज्ञानसिद्धये ॥
विमलं निर्ज्जितानंगं प्राप्तानंतचतुष्टयम् । अनंतं धर्म्मनाथं च वंदे स्वात्मोपलब्धये ॥
शांतिनाथं च कुंथुं च अरं चेशान्नमाम्यहम् । षट्खंडवसुधाचक्रधर्म्मचक्रप्रणायकान् ॥
मल्लिं सुव्रततीर्त्थेशं नमिं भक्त्या नमाम्यहम् । यथाख्यातगुणोपेतान्यथाख्यातप्रसिद्धये ॥
नेमिनाथं च पार्श्वं च वर्द्धमानं जिनेश्वरम् । त्रिकालमभिवंदेऽहं नवक्षायिकलब्धये ॥
श्रीपंचगुरुभ्यो नमः । श्रीमल्लिनाथाय नमः ॥ * ॥ * ॥ * ॥
श्रीमच्चौंडरसुपाध्याय सुपुत्र समंतभद्रदेवानां ग्रंथः परिसमाप्तोऽयं ॥

ज्ञाता घरघ्नागतवर्षयुक्ता पापोनितास्याच्छककालसंख्या ।
चालुक्ययुक्ता मुनिचित्समेता श्रीवर्द्धमानस्य समा भवेयुः ॥
श्रीमद्वंशसमुद्भवाः प्रविलसद्वृत्तोज्ज्वला निर्म्मलाः
प्रांचत्कांतिभरास्सदाप्तरुचयो भव्याः सुसेव्याः सतां ।
ये ते लोकशिरोमणित्वमधिकं संप्राप्य मुक्तोपमा (मुक्ता इवाऽऽ-)
भांतु स्वात्यमलामृतोदयभवैर्भास्वद्गुणैर्भूषिताः ॥

योऽभ्यर्च्य धर्मवृद्ध्यर्थं मह्यं सूरिपदं ददौ । भट्टारकशिरोरत्नं प्रभेन्दुः स नमस्यते ॥८॥
त्रिविद्यविद्याविख्यातविशालकीर्तिसूरिणा । सहायोऽस्यां कृतौ चक्रेऽधीता च प्रथमं मुदा ॥९॥
सूरेः श्रीधर्मचन्द्रस्याभयचन्द्रगणेशिनः । वर्णिलालादिभव्यानां कृते कर्णाटवृत्तितः ॥१०॥
रचिता चित्रकूटे श्रीपार्श्वनाथालयेऽमुना । साधसांगासहेसाभ्यां प्रार्थितेन मुमुक्षुणा ॥११॥

तत्र श्रीमज्जिनधर्माम्बुधिवर्धनपूर्णचन्द्रायमानश्रीज्ञानभूषणभट्टारकशिष्येण सौगतसांख्यकणादभिक्षिक्षुपादप्रभाकरादिपरवादिगजगंडमेरुंडप्रमाचन्द्रभट्टारकदत्ताचार्यपदेन त्रैविद्यविद्यापरमेश्वरमुनिचन्द्रावार्यमुखात् कर्णाटदेशाधिनाथप्राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीनिवासजैनोत्तममल्लिभूपालयत्नादधीतसिद्धान्तेन वर्णिलालाविहिताग्रहाद् गौर्जरदेशाच्चित्रकूटजिनदाससाहनिर्मापितपार्श्वप्रभुप्रासादाधिष्ठितेनामुना नेमिचन्द्रेणाल्पमेधसाऽपि भव्यपुण्डरीकोपकृतीहानुरोधेन सकलज्ञातिशेखरायमाणखंडेल्लवालकुलतिलक-साधुवंशावतंसजिनधर्मोद्धरणधुरीणसाहसांगसाहसहसाविहितप्रार्थनाधीनेन विशदत्रैविद्यविद्यास्पदविशालकीर्तिसहायादियं यथाकर्णाटवृत्ति व्यरचि ।

यावच्छ्रीजिनधर्मश्चन्द्रादित्यौ च विष्टपं सिद्धाः ।
तावन्नन्दतु भव्यैः प्रपाठ्यमाना त्वियं वृत्तिः ॥
निर्ग्रन्थाचार्यवर्येण त्रैविद्यचक्रवर्तिना ।
संशोध्याभयचन्द्रेणालेखि प्रथमपुस्तकः ॥

॥ इत्यभयनन्दिनामाङ्कितायाम् ॥

श्रीसर्व्वज्ञसुबोधवज्रतलभाक् स्यात्कार तीरोदुरो
गंभीरो वरनेमिचंद्रविसरद्वाक्चंद्रिकावर्द्धितः ।
विस्तीर्णो गुणरत्नभूषणभरस्सारार्थपूर्णो महा-
न्नित्यं गोम्मटसारसंज्ञितसुधांभोधिश्शिवायास्तु वः ॥
श्रीमद्धर्म्मसुधासमुद्रविजयोल्लासस्तमस्तोमभित्
भास्वद्भव्यचकोरसम्मदकरः प्रध्वस्ततापोत्करः ।
प्रांचत्पंचसुसंग्रहस्त्रिभुवनोद्योती सदानंदनो
जीयाद्भासुरबोधमाधवबलश्रीनेमिचंद्रोदयः ॥

गोम्मटसारवृत्तिर्हि नन्द्याद्यैः प्रवर्तिता । शोधयन्त्वागमात् किञ्चित् विरुद्धं चेद् बहुश्रुताः ॥१२॥
निर्ग्रन्थाचार्यवर्येण त्रैविद्यचक्रवर्तिना । संशोध्याभयचन्द्रेणालेखि प्रथमपुस्तकः ॥१३॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रकृतायां गोम्मटसारापरनाम पञ्चसंग्रहवृत्तौ कर्मरचनास्वभावो नाम
नवमोऽध्यायः समाप्तः ।

संस्कृत टीकाकारकी प्रशस्तिका आशय

चौबीस तीर्थंकरोंको नमस्कार करनेके पश्चात् टीकाकार कहते हैं—जिसमें रत्नत्रयके द्वारा पूज्य अर्हन्तपदको प्राप्त करके मोक्ष जाते हैं वह मूल संघ जयवन्त हो। उसके सरस्वती-गच्छमें बलात्कारगण है। उसमें कुन्दकुन्द मुनीन्द्रका नन्दिसंघ है वह भी जयवन्त होओ। मैं अपने गुरु भट्टारक शिरोमणि ज्ञानभूषणको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। कर्णाट देशके मल्लि राजाकी भक्तिसे जिसने मुझे जिनागम पढ़ाया है उन मुनिचन्द्रको नमस्कार करता हूँ। जिनने धर्मवृद्धिके लिए मुझे सूरिपद दिया उन प्रभाचन्द्र भट्टारकको नमस्कार करता हूँ। त्रैविद्य विशालकीर्ति सूरिने इस टीकाके रचनेमें सहायता की और बड़े हर्षसे प्रथम उसे पढ़ा। यह टीका चित्रकूटमें श्री पार्श्वनाथ जिनालयमें धर्मचन्द्र सूरि अभयचन्द्र भट्टारक वर्णीलाला आदि भव्य जीवोंके लिए साधुसांग और सहेसकी प्रार्थनापर कर्णाट-वृत्तिसे रची।

परिशिष्टः

गोम्मटसार ग्रन्थकी गणितात्मक प्रणाली

षट्खण्डागम ग्रन्थ सम्भवतः ईसाकी दूसरी सदीमें आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलिकी अद्भुत कृति है। इसमें-से प्रथम पाँच खण्डोंपर नवीं सदीमें आचार्य वीरसेन द्वारा विशाल धवला नामक टीका रची गयी। छठा खण्ड महाधवलके नामसे भी विख्यात है और महाबन्ध कहलाता है। ग्यारहवीं सदीमें नेमिचन्द्राचार्यने इन ग्रन्थोंके गणितीय सार रूप गोम्मटसार जीवकाण्ड तथा कर्मकाण्ड रूपमें रचना की। इन्हीं ग्रन्थोंकी केशववर्णी कृत कर्णाटवृत्ति जीवतत्त्वप्रदीपिका विलक्षण प्रतीकोंसे भरी हुई है और गणितज्ञोंके लिए अभूतपूर्व सामग्री प्रदान करती है।

इस टीकाके अतिरिक्त एक अपूर्ण टीका मन्दप्रबोधिका है और पण्डित टोडरमल कृत सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका है। पण्डित टोडरमलने अन्तःप्रज्ञासे अनेक प्रतीकोंके अर्थ समझनेका प्रयास किया, तथा अर्थ संदृष्टि अधिकार उक्त टीकाके अतिरिक्त निर्मित किया, जिसमें उन्होंने प्रायः प्रत्येक कठिन प्रतीकबद्ध पदको सरल वाक्यों या शब्दों द्वारा समझाया है। यह कार्य अठारहवीं सदीमें सम्पूर्ण किया गया।

प्रस्तुत निबन्धमें पण्डित टोडरमलके अभिप्रायकी सिद्धिके लिए उन्हींकी रचनाके आधारपर लोकोत्तर प्रमाणकी गणितात्मक प्रणालीको सरलतापूर्वक समझाया गया है। आशा है कि इसके द्वारा न केवल शोधार्थी अपितु जिज्ञासु मुमुक्षु भी लाभान्वित हो सकेंगे। इसके साथ ही विभिन्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षणके पठन-पाठन हेतु यहाँ प्रायः सभी गणितीय परिभाषाएँ दे दी गयी हैं। संदृष्टियोंके प्रयोग भी निर्दिष्ट कर दिये गये हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक रूप से लेकर आवश्यक गणितीय सामग्रीको समझाते हुए, शोधार्थी अथवा मुमुक्षुको लब्धिसारकी बड़ी टीकामें गति हेतु तैयारी कराने का भी अवसर प्राप्त हो सकेगा।

§ १. भूमिका

किसी भी गणितीय प्रणालीमें अध्ययनके पूर्व उसमें प्रविष्ट प्रतीकोंकी जानकारी आवश्यक है। गोम्मटसारादि ग्रन्थोंकी टीकाओंमें इस प्रणालीके सार संक्षेपरूप अध्ययन हेतु, साथ ही उन्हें स्मरण रखने हेतु प्रतीकमय सामग्री निर्मित की गयी, जो पूर्ववर्ती ग्रन्थोंमें उपलब्ध नहीं है। तिलोयपण्णत्ती जैसे ग्रन्थोंमें कुछ प्रतीकबद्ध सामग्री है और कुछ धवला टीका ग्रन्थोंमें भी उपलब्ध होती है। किन्तु विशाल पैमाने पर यह सामग्री अंक संदृष्टि, अर्थ संदृष्टि तथा रेखा संदृष्टि रूपमें केशववर्णीकी कर्णाटकीटीकामें दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार लब्धिसार क्षपणासारकी टीकामें सम्भवतः माधवचन्द्र त्रैविद्य तथा ज्ञानभूषणके शिष्य नेमिचन्द्र (१६ वीं सदी) द्वारा जो संदृष्टि प्रयोग हुआ वह भी विलक्षण है और विशेषकर धर्मके मर्मको कर्मके गणित द्वारा प्रकट करता प्रतीत होता है।

सर्व प्रथम ऐसे समस्त प्रतीकोंका स्वरूप दिखाना आवश्यक होनेसे उन्हें मूल रूपमें प्रस्तुत करना लाभप्रद होगा। साथ ही ऐसे प्रतीक उनके स्थानमें लेना आवश्यक होगा जो उनके स्थानमें अगले गहरे अध्ययनमें उपयोगी हों। ऐसे नवीन कार्यकारी प्रतीकोंको आधुनिक गणित के तारतम्यमें रखना भी अनिवार्य है, क्योंकि प्राचीन सामग्रीका प्रायोगिक रूप इसी आधारपर निखर सकेगा।

इसके पूर्व जो महत्त्वपूर्ण आधार है वह वैकल्पिक (Abstract) इकाइयोंको लेकर बनता है। प्रारम्भ परमाणुसे करते हैं जो अविभागी पुद्गल है और जो विश्राम अवस्थामें जितनी जगह घेरता है उसे प्रदेश कहते हैं। प्रदेशोंके आधारपर, उनकी सूचि, प्रतर अथवा घनमें समाये नये क्षेत्रमान स्थापित करता है जो उपमा मानके लिए आधारभूत हैं। इस प्रकार अंगुल, जगश्रेणीके उक्त तीनों रूप किसी भी राशि की गणात्मक संख्याका प्रतिनिधित्व अथवा निर्वाचन करते हैं। निश्चयकालकी पर्यायको समय कहते हैं, जो व्यवहारकालकी सर्वाल्पतम इकाई है। इसे दूसरी तरह भी परिभाषित करते हैं। जितने कालमें कोई परमाणु दूसरे संलग्न परमाणु-प्रदेशका मन्दतम गतिसे अतिक्रमण करता है, उसे एक समय कहते हैं। इसी एक समयमें तीव्रतम गतिसे चलायमान परमाणु चौदह राजु गत प्रदेशोंका अतिक्रमण कर सकता है। इस प्रकार समय राशियोंसे पल्य तथा सागरके कालमान स्थापित करते हैं और उनका उपयोग अन्य अज्ञात राशियोंकी गणात्मक संख्याका निरूपण या प्रतिनिधित्व करनेमें होता है। यह कालमान भी उपमामान कहलाता है।

दूसरा मान संख्यामान है जिसमें गणना द्वारा संख्येय, असंख्येय तथा अनन्तकी अनेक प्रकारकी क्रमात्मक राशियाँ उत्पन्न कर उनके द्वारा अनेक अज्ञात राशियोंके द्रव्य प्रमाणको स्थापित करते हैं। इस प्रकार किसी भी अध्ययन योग्य राशिको द्रव्य प्रमाण, क्षेत्र प्रमाण और काल प्रमाणसे तौलते हैं तथा भाव प्रमाणमें स्थापित करते हैं। भावका तात्पर्य ज्ञानके उतने अविभाग-प्रतिच्छेद-राशिसे है जो केवल ज्ञान अविभागी प्रतिच्छेद राशिकी एक उपराशि ही होती है। सभी राशियाँ केवलज्ञानकी अविभागी प्रतिच्छेद राशिमें समायी हुई होती हैं और उससे छोटी ही होती हैं।

यहाँ अविभागी प्रतिच्छेद का अर्थ समझ लेना आवश्यक है। गुणोंमें गुणांशका विकल्प अविभागी प्रतिच्छेदको जन्म देता है। वैसे भी पुद्गल पदार्थको छेदते हुए अविभागी प्रतिच्छेदकी कल्पना वीरसेनाचार्यने धवल ग्रन्थ (पु. ४) में की है, जहाँ लोकके आयतनका सन्दर्भ है। कर्म सिद्धान्तके अध्ययनमें भी एक और विकल्प है जो परमाणुओंके स्निग्ध-रुक्ष स्पर्शके अविभागी प्रतिच्छेदोंसे परे है। वह है अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदकी कल्पना जिसका सम्बन्ध स्निग्ध-रुक्ष स्पर्शके अविभागी प्रतिच्छेदोंसे जोड़ा जा सकता है, पर स्पष्ट है कि दोनों तादात्म्य सम्बन्ध नहीं रखते होंगे। यदि हो तो उसे सिद्ध किया जाये।

इस प्रकार विभिन्न प्रमाणोंका वर्णन सिद्धान्त ग्रन्थोंमें है और उन्हें संदृष्टियों द्वारा दर्शाया गया है। उन्हें ठीक रूपमें समझने हेतु पण्डित टोडरमलने अलगसे अर्थ संदृष्टियोंपर दो अधिकार लिखे थे। एक गोम्मटसार जीवकाण्ड कर्मकाण्ड प्रकरणपर है तथा दूसरा लब्धिसार क्षपणासार प्रकरणपर है। इन्हीं अधिकारोंके आधार पर संदृष्टियोंका स्पष्टीकरण करेंगे ताकि विभिन्न कर्म सिद्धान्त सम्बन्धी गणितीय प्रणाली-का रूप समझा जा सके। संदृष्टि कभी-कभी एक ही होते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें भिन्न-भिन्न अर्थ प्ररूपित करती है। अतएव अंक, अर्थ एवं आकाररूप संदृष्टियोंको बड़ी सावधानीसे समझ लेनेपर कर्म सिद्धान्त का अधिकांश भाग स्मृतिमें रखना सरल हो जाता है। साथ ही अनेक प्रकरणोंका आधुनिक गणितसे तुलनात्मक अध्ययन भी सम्भव हो जाता है। यह भी प्रकट हो जाता है कि इन संदृष्टियोंमें क्या सुधार किया जाये ताकि आधुनिक ढंगसे गणित पढ़नेवाले कर्म सिद्धान्तकी गणितीय प्रणालीको भलीभाँति समझकर उसके प्रायोगिक रूप पर अनुसन्धान भी कर सकें।

§ २. संदृष्टियों का स्पष्टीकरण

विवक्षित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावोंके जो प्रमाण आदि हैं उसे अर्थ कहते हैं। अर्थकी संदृष्टि अथवा सहनानीको अर्थ संदृष्टि कहते हैं।

शब्दोंके द्वारा अंकोंका बोध भी कराया जाता है। यथा : विधु = १, निधि = ९, अन्तरिक्ष = ०, इन्द्रिय = ५, करणीय = ५, कर्मन् = ८, कषाय = ४, गति = ४, जिन = २४, तत्त्व = ७, दिक् = ८, द्रव्य = ६, नय = २, पदार्थ = ९, रत्न = ३, (रत्न = ९ भी), रस = ६, लब्धि = ९, वर्ण = ५, व्यसन = ७, व्रत = ५, इत्यादि। विशेष वर्णनके किए महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह (शोलापुर, 1963) देखा जा सकता है।

अक्षरोंके द्वारा भी कहीं-कहीं अंकोंका निरूपण किया जाता है। इनमें एक पद्धति कटपयादि है।

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनव पंचाष्टकल्पितैः क्रमशः।
स्वर अन शून्यं संख्यामात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ॥

अर्थात्, निम्नरूपमें क आदि अक्षरों द्वारा संख्याओंका निरूपण होता है—

क	ख	ग	घ	ङ		च	छ	ज	झ	ञ	
१	२	३	४	५		६	७	८	९	०	
ट	ठ	ड	ढ	ण		त	थ	द	ध	न	
१	२	३	४	५		६	७	८	९	०	
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	६	७	८
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ		ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ
०	०	०	०	०	०		०	०	०	०	०	०
			ओ	औ	अं		अः					
			०	०	०		०					

अक्षरकी मात्रा ऊपर कोई अक्षर होनेका भी कोई प्रयोजनीय अर्थ नहीं होता है।

प्रभृति अथवा इत्यादिको निर्दर्शित करनेके लिए = चिह्नका उपयोग हुआ है। उदाहरणार्थ ६५ $=^{४}$ का अर्थ पणट्ठी अथवा ६५५३६ अथवा $(२)^{२}$ है। यह $२^{१६}$ का मान है। इसी प्रकार वादालको ४२ $=^{५}$ द्वारा प्ररूपित किया जाता है जिसका मान $(२)^{२}$ अथवा $(२)^{३२}$ है। इसी प्रकार एकट्ठी अथवा १८ $=^{६}$ का मान $(२)^{२}$ अथवा $(२)^{६४}$ है। जघन्यको भी ज = लिखा जाता है।

कर्मस्थिति रचनामें बीचकी संख्याओंको दर्शानेके लिए बिन्दुओं अथवा शून्योंका प्रयोग किया जाता है। यदि आदि निषेककी संख्या ५१२ हो और अन्तनिषेकको ९ द्वारा प्ररूपित किया गया हो तो बीचके निषेकोंका इसी प्रकार निदर्शन है—

९ कहीं नामका आदि अक्षर ही संदृष्टि बन जाता है। यथा लक्षके ल, कोटिके लिए को,
० जघन्यके लिए ज, इत्यादि। लक्ष कोटिको ल को, जघन्य ज्ञानको ज ज्ञा द्वारा निरूपित
० करते हैं।
० इसी प्रकार कोटाकोटिके लिए को २ (अर्थात् कोटिवर्ग) द्वितीय मूलके लिए
५१२ मू २ (अर्थात् किसी राशिके वर्गमूलका वर्गमूल) प्रयुक्त है। अंतःकोटाकोटिको

अं को$^{१४}_{२}$ द्वारा निरूपित करते हैं जिसका अर्थ १ और (१०) के बीच स्थित कोई भी प्राकृत संख्या होता है। ६५००० को लिखने हेतु ६ ५ $^{३}_{०}$ का उपयोग किया गया। यह बिन्दु बढ़ानेकी प्रक्रियाके लिए नवीन संकेतनाका उपयोग है। इसी प्रकार तिलोयपण्णत्ती (९, १२४–२४) में

९०।९६।५००।८।८।८।८।८।८।८।८। का अर्थ $(१०००)(९६)(५००)(८^{८})$ है।

अब संख्यामान संबंधी प्राचीन संकेतोंका उल्लेख करेंगे—संख्यातको १ द्वारा, असंख्यातको ० द्वारा, और अनन्तको ख द्वारा प्ररूपित किया जाता रहा है। इसी प्रकार जघन्य संख्यातके लिए २, उत्कृष्ट संख्यातके लिए १५, जघन्य परीत असंख्यातके लिए १६ सहनानी रूप है। आवलीकी सहनानी भी २ है। उत्कृष्ट परीत असंख्यातके लिए $\tilde{२}$ अथवा आवली ऋण एक संकेत है। जघन्य युक्त असंख्यात भी आवलीके समान २ संकेत द्वारा निरूपित होता है। वह उत्कृष्ट परीत असंख्यातसे एक अधिक है।

उत्कृष्ट युक्ता संख्यातकी सहनानी ४ है, अर्थात् प्रतरावली ऋण एक। यह जघन्य असंख्यात असंख्यातसे एक कम है, क्योंकि यह प्रतरावली मात्र अथवा ४ है जो आवलीका वर्ग है। घनावलीका संकेत ८ है। यह आवली समय राशिका घन करनेपर प्राप्त होती है।

उत्कृष्ट असंख्यात असंख्यात की सहनानी $\tilde{२५६}$ है। यह जघन्य परीतानन्तसे एक कम है। जघन्य परीतानन्तका संकेत २५६ है। उत्कृष्ट परीतानन्तकी सहनानी $\tilde{ज\ जु\ अ}$ है। जघन्य युक्तानन्तका संकेत ज जु अ है। वर्ग का संकेत व है। इस प्रकार उत्कृष्ट युक्तानन्तका संकेत $\tilde{ज\ जु\ अ\ व}$ है। यह जघन्य अनन्तानन्तसे एक कम है क्योंकि जघन्य अनन्तानन्तका संकेत ज जु अ व है। जघन्य अनन्तानन्त वास्तवमें जघन्ययुक्त अनन्तका वर्ग होता है।

अब निम्नलिखित सहनानियाँ प्रकृत रूपमें सरलतासे समझी जा सकती हैं—

सम्पूर्ण जीव राशि	१६	: स्पष्ट है कि संसारी जीवराशि और सिद्ध जीव
संसारी जीव राशि	१३	मिलकर सम्पूर्ण जीवराशि बनती है।
सिद्ध जीव राशि	३	
पुद्गल परमाणु राशि	१६ ख	: स्पष्ट है कि यह राशि सम्पूर्ण जीव राशिसे अनन्त गुणी है।
काल समय राशि	१६ ख ख	: यहाँ काल समय राशि पुद्गल परमाणु राशिसे अनन्त गुणी निर्दिशित है।

आकाश प्रदेश राशि	१६ ख ख ख	: स्पष्ट है कि आकाश प्रदेश राशि वस्तुतः काल समय राशिसे अनन्तगुणी है ।
केवलज्ञान अथवा उत्कृष्ट अनन्तानंत	के	: केवलज्ञानकी अविभागी प्रतिच्छेद राशिको उत्कृष्ट अनन्तानन्त संख्यामानवाली माना गया है । इससे बड़ी कोई राशि नहीं है ।
केवलज्ञानका प्रथम मूल	के मू १	: इसे (के) $\frac{1}{2}$ द्वारा निरूपित कर सकते हैं ।
केवलज्ञानका द्वितीय मूल	के मू २	: इसे (के) $\frac{1}{4}$ द्वारा निरूपित कर सकते हैं ।
पल्य	प	
सागर	सा	
सूच्यंगुल	२	: यह संकेत आवलीका भी है । यह अंगुलमें समाविष्ट प्रदेश राशि है ।
प्रतरांगुल	४	: अंगुल प्रदेश राशिका वर्ग ।
घनांगुल	६	: अंगुल प्रदेश राशिका घन ।

नोट : यदि अंगुल के लिए अं और आवलिके लिए आ संकेत लिये जायें तो विशेष सुविधा हो सकेगी । इसी प्रकार जगश्रेणी के लिए भी श्रे का संकेत सरल पाया जायेगा । हम इन तीन संदृष्टियोंका उपयोग आगे करेंगे ।

जगश्रेणी	—	: इस क्षैतिज रेखा द्वारा जगश्रेणीमें स्थित प्रदेश राशि प्ररूपित की जाती है ।
जगप्रतर	=	: इन दो रेखाओं द्वारा श्रेणीके वर्ग में स्थित प्रदेश राशि निरूपित की जाती है ।
घनलोक	≡	: इन तीन क्षैतिज रेखाओं द्वारा जगश्रेणीसे बने घनमें स्थित प्रदेश राशि प्ररूपित होती है ।
रज्जु	— ७	: क्षैतिज रेखा के नीचे लिखे ७ का भाग जगश्रेणी राशिमें देने पर रज्जु अथवा रज्जुमें स्थित प्रदेश राशिका निरूपण होता है ।
रज्जु प्रतर	= ४९	: उपर्युक्त रज्जु राशिका वर्ग रज्जु प्रतर राशि होता है । यहाँ अंश तथा हर, दोनों ही वर्गित किये गये हैं ।
रज्जु घन	≡ ३४३	: यहाँ रज्जु राशिका घन निरूपित है । अंश और हर जो रज्जुको निरूपित करते हैं, उनके घन करनेपर रज्जुघन स्थित प्रदेश राशि संख्या उत्पन्न होती है ।

पल्य राशिकी अर्द्धच्छेद राशि	छे	: पल्य राशिको तबतक अर्द्धित किया जाता है जबतक १ प्राप्त न हो। जितने बार इस विधिमें अर्द्धित किया गया वही संख्या अर्द्धच्छेद है। यथा—१६ या $२^४$ के अर्द्धच्छेद ४ होते हैं। इसका संकेत $\log_२$ प सरल है।
पल्यकी वर्गशलाका राशि	व	: पल्यकी अर्द्धच्छेद राशिकी भी अर्द्धच्छेद राशिको वर्गशलाका राशि कहते हैं। इसे $\log_२ \log_२$ प द्वारा भी निरूपित किया जा सकता है।
सागरकी अर्द्धच्छेद राशि	छे १	: यहाँ सागरकी अर्द्धच्छेद राशि पल्यकी अर्द्धच्छेद राशिसे संख्यात अधिक है। अस्तु इसे सरल रूपमें $\log_२$ प + १ भी लिखा जा सकता है।
सागरकी वर्गशलाका राशि		: इसे $\log_२ \log_२$ सा लिखा जा सकता है। पण्डित टोडरमलने लिखा है कि सागरकी वर्गशलाका राशि नहीं होती है।
सूच्यंगुलकी अर्द्धच्छेद राशि	छे छे	: इसे $\log_२$ प $\log_२$ प भी लिखा जा सकता है क्योंकि पल्यकी अर्द्धच्छेद राशिका वर्ग ही सूच्यंगुलकी अर्द्धच्छेद राशि है। पुनः इसे $\log_२$ अं भी लिखा जा सकता है। इस प्रकार अंगुल स्थित प्रदेश राशिका सम्बन्ध पल्य गत समय राशिसे स्थापित किया गया है।
सूच्यंगुलकी वर्गशलाका राशि	व २	: इसे $\log_२ \log_२$ अं लिखा जा सकता है। वस्तुतः पल्यकी अर्द्धच्छेद राशि $\log_२$ प के वर्ग $\log_२$ प $\log_२$ प के अर्द्धच्छेद पुनः करनेपर २ $\log_२ \log_२$ प प्राप्त होता है जो पल्यकी वर्गशलाका राशिका द्विगुणित है।
प्रतरांगुलकी अर्द्धच्छेदराशि	छे छे २	: इसे $\log_२ (अं)^२$ लिखा जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह अंगुलकी अर्द्धच्छेद राशिका द्विगुणित है। logarithm के नियमोंसे समझ लेना चाहिए। (धवला पु० ४ में शलाका गणन (लघुरिक्थ) के नियम डा. ए. एन. सिंहके प्रस्तावना रूप लेखमें देखिए)
प्रतरांगुलकी वर्गशलाका राशि	१—व २	: इसे $\log_२ \log_२ (अं)^२$ भी लिखा जा सकता है। स्पष्ट है कि इसका मान १ + $\log_२ \log_२ (अं)$ अथवा १ + व २ है। इसे १ + २ $\log_२ \log_२$ प भी लिख सकते हैं।

घनांगुलकी अर्द्धच्छेद राशि	छे छे ३	: इसे $\log_2 (अं)^3_{\frac{}{}}$ भी कहते हैं। यह ३ $\log_2$ (अं) है अर्थात् ३ $\log_2$ प $\log_2$ प अथवा ३ छे छे है।
घनांगुलकी वर्गशलाका राशि	व २	: इसे $\log_2 \log_2 (अं)^3$ लिख सकते हैं। यह $\log_2$ (३ $\log_2$ (अं)) है अथवा $\log_2$ ३ + $\log_2$ $\log_2$ अं है जिसे निकटतः १ + २ $\log_2$ $\log_2$ प अथवा १ + २ व रूपमें लिखना सही है।

(नोट : यहाँ पण्डित टोडरमलने लिखा है कि द्विरूप वर्गधारामें जितने स्थान जानेपर सूच्यंगुल प्राप्त होता है, उतने ही स्थान जानेपर द्विरूप घनधारामें घनांगुल होता है। स्पष्ट है कि यहाँ अनुमानसे १ को विलुप्त कर दिया गया है जो निकटतः $\log_2$ ३ का मान हो सकता है।)

जगश्रेणीकी अर्द्धच्छेद राशि	छे छे छे ३ ə	: इसे वि छे छे ३ भी लिखा जाता है जहाँ वि का अर्थ विरलन राशि है। इसका मान $\frac{\log_2 प}{ə}$ $\log_2 (अं)^3$ माना गया है।

[नोट : हम इसे $\log_2$ श्रे भी लिख सकते हैं। वस्तुतः इसका मान तिलोयपण्णत्तिमें-से इस आधारपर किया गया है कि राशितः ($\log_2$ पल्य/असंख्यात)

जगश्रेणी = [घनांगुल]

$$[\log_2 प / ə]$$

अथवा श्रे = [अं^{3}]

$$\therefore \log_2 श्रे = \frac{\log_2 प}{ə} \log_2 (अं)^3 = \frac{\log_2 प}{ə} (३) (\log_2 अं)$$

$$= \frac{\log_2 प}{ə} (३) (\log_2 प) (\log_2 प)]$$

जगश्रेणीकी वर्गशलाका राशि	व १६।२ व २	: इसे $\log_2 \log_2$ श्रे भी लिख सकते हैं। इसे $\log_2$ $\frac{\log_2 प}{ə}$ $\log_2 (अं)^3$] भी लिख सकते हैं। अर्थात् यह $\log_2 \log_2 प - \log_2 ə + \log_2 \log_2 अं^3$ है।

[नोट : पण्डित टोडरमलने इसे इस रूपमें लिखा है कि १६ जघन्यपरीत असंख्यात लेकर $\frac{\log_2 \log_2 प}{२ (\text{जघन्य परीतासंख्यात})} + \log_2 \log_2 अं^3$ रूपमें बतलाया है।']

जगप्रतरकी अर्द्धच्छेद राशि	छे छे छे ६ ə	: इसे $\log_2$ श्रे^{2} लिखते हैं। स्पष्ट है कि यह २ $\log_2$ श्रे होता है अर्थात् जगश्रेणीकी अर्द्धच्छेद राशिसे द्विगुणित होता है।

जगप्रतरकी वर्गशलाका राशि	१— व १६।२ व २	: इसे $\log_2 \log_2 (\text{श्रे})^2$ लिख सकते हैं। अस्तु यह $\frac{1+\log_2 \log_2 \text{प}}{\text{२ (जघन्य परीतासंख्यात)}}$ + $+\log_2 \log_2 (\text{अ}')^3$ लिखा जा सकता है।)
घनलोककी अर्द्धच्छेद राशि	छे छे छे ९ ə	: इसे $\log_2 (\text{श्रे})^3$ लिख सकते हैं। स्पष्ट है कि यह ३ $\log_2$ श्रे होनेसे जगश्रेणीकी अर्द्धच्छेद राशिसे त्रिगुणित होता है।
घनलोककी वर्गशलाका राशि	व १६।२ व २	: इसे $\log_2 \log_2 (\text{श्रे})^3$ लिख सकते हैं। इस प्रकार इसका मान $\log_2 ३ + \frac{\log_2 \log_2 \text{प}}{\text{२ (जघन्यपरीत असंख्यात)}}$ $+\log_2 \log_2 (\text{अ}')^3$ है। स्पष्ट है कि प्राचीन प्रतीकोंमें कुछ त्रुटि रह गयी है।

[नोट : पण्डित टोडरमलने $\log_2$ ३ की उपेक्षा की है, वह इस आधारसे कि अनुमानतः असंख्यातकी तुलनामें १ उपेक्षित हो सकता है। कारण यह भी है कि द्विरूप घनधारामें जितने स्थान जानेपर जगश्रेणी प्राप्त होती है, उतने-उतने ही स्थान द्विरूपघनधारामें होनेपर घनलोक होता है।]

संख्यात	४ अथवा ५	: कहीं-कहीं संख्यातके लिए ४ अथवा ५ सहनानी रूप लिये गये हैं।
असंख्यात	९	: इसी प्रकार ९ के सम्बन्धमें भी है।
आवली / असंख्यात	९	
संकलन	—	: क्षैतिज रेखाका प्रयोग धनके लिए अथवा योगके लिए हुआ है।
एक अधिक लक्ष	१— १ ल अथवा ल	
दो अधिक लोक	२—	: यह स्पष्ट है, क्योंकि ≡ घनलोककी संदृष्टि है।
घनलोक अधिक अनन्त	≡ ख	: वास्तवमें यहाँ ख के ऊपर एक उदग्र लकीर भी आवश्यक थी। इसे $\text{श्रे}^3/\text{ख}$ भी लिखा जा सकता है।
अजीव द्रव्य परिमाण	३ ≡ १६।ख	: यहाँ १६ ख पुद्गल द्रव्य है, ≡ काल द्रव्यका परिमाण है, शेष धर्म, अधर्म एवं आकाश हेतु ३ का उपयोग किया गया प्रतीत होता है।
किंचित् अधिक अनन्त	| ख	: यहाँ ख के ऊपर उदग्र लकीर अनन्तके कुछ कम राशि बतलानेके लिए है।

दो राशि अधिक संख्यात	॥ १	: दो राशियाँ संख्यातमें संयुक्त करने हेतु यहाँ दो उदग्र लकीरें संख्यातकी संदृष्टिके ऊपर रखी गयी हैं।
घटाना या व्यवकलन क्रियाकी संदृष्टियाँ अलग-अलग	० ⌐० — ~~~	: इन चारों सहनानियों द्वारा घटानेकी गणितीय प्रक्रिया दर्शायी जाती है। उदाहरण आगे दिये गये हैं।
एक कम कोटि	० १ को अथवा ⌐० को	: यहाँ कोटि ऋण एकको उदाहरण रूपमें निरूपित किया गया है। १ के ऊपर ० का चिह्न बतलाता है कि १ को कोटि को में-से घटाया जाना है। इसी प्रकार नीचे भी।
एक कम अनन्त	⌐० ख	: यहाँ अनन्त ऋण एकका निदर्शन है।
दो कम घनलोक	० २ ≡	: स्पष्ट है कि घनलोक ≡ है तथा इस प्रदेश राशिमें-से २ घटाया जाना है, अस्तु उसके ऊपर शून्य संकेत बनाया है। स्थानमान पद्धतिके विकासका इस उदाहरणसे पता चलता है।
एक कम लक्ष	० ल ० १	: यहाँ १ की स्थिति बदल दी गयी है।
दो कम लक्ष	ल—२	: यहाँ ऋण चिह्नने आधुनिक रूप लिया है। हालाँकि यह प्राचीन है।
दो कम कोटि	को ~~~ २ अथवा को ० २	: यहाँ ऋणके लिए लहरिया लकीरको क्षैतिज रूपमें लिया है। साथ ही ० की स्थिति बदल दी गयी है। २ ये सब क्रमिक विकासके चिह्न हैं, अथवा स्थानान्तर विकासक्रममें हैं।
किंचित् ऊन अनन्त	ख —	: किंचित् ऊनके लिए यह चिह्न वैज्ञानिक है, क्योंकि वह जिसे घटाया जाना है, लेखीमें नगण्य है, ख की तुलनामें।
एकेन्द्री जीवराशि	१३ =	: यहाँ संसारी जीवराशि १३ में से विकलेन्द्री और सकलेन्द्री जीवराशियाँ घटायी गयी हैं।

पाँच कम लक्ष	ल ~ ५ अथवा ल ५	: यहाँ सीधी लकीरके स्थानमें चन्द्रकलाका संकेत दिया है।
पल्यकी वर्गशलाकाकी अर्द्धच्छेद राशिसे हीन पल्यकी अर्द्धच्छेदराशि	छे व छे	: इसे Log_2 प– Log_2 Log_2 Log_2 प लिख सकते हैं।
पाँच गुणा लाख	ल ५	: यहाँ ५ का गुणा इकाई की ओरसे किया गया है।
असंख्यातगुणा घनलोक	≡ व	: इसे श्रे ३ व भी लिख सकते हैं।
पल्यका संख्यातवाँ भाग	प / १	: विभाजनकी यह संदृष्टि बहुधा उपयोगमें लायी जाती रही है। इसे $\frac{प}{१}$ रूपमें भी लिखा जा सकता है।
जगश्रेणीका संख्यातवाँ भाग	___ / १	: इसे श्रे ÷ १ भी लिखा जा सकता है।
केवलज्ञानका अनन्तवाँ भाग	के / ख	: इसे $\frac{के}{ख}$ रूपमें लिख सकते हैं।
बादाल वर्ग	४२ = ४२ =	: स्पष्ट है कि यहाँ बादालको वर्गित किया गया है। यह $[{}_{२}३२]^{२}$, राशि है।
घनांगुलके संख्यातवें भागके घनकी संदृष्टि	६।६।६ / १ १ १	: इसे $\frac{अं^3}{१}$ $\frac{अं^3}{१}$ $\frac{अं^3}{१}$ रूपमें भी लिखा जा सकता है। इस प्रकार घनके लिए उसी राशिको तीन बार उक्त रूपमें लिखा जाता है।

अब कुछ उदाहरण देते हुए उपर्युक्त संदृष्टिके प्रयोग दिखाते हैं—

१—

ल ३ ल १००
४ ८

१० ल १००
५

इसे $\frac{ल\,(३)^{\frac{ल}{४}}\,(१०००+१)}{(१०)^{\frac{ल}{५}}\,(१००-१)}$ रूपमें समझेंगे।

१—

६।८।व
व ८

प ८
व व

इसे $\frac{अं^3\,आ^3\,(अ+१)}{अ}$ अथवा $\frac{\frac{अं^3\,आ^3\,(अ+१)}{अ}}{\frac{प}{अ}\left(\frac{आ^3}{अ}-१\right)}$ रूपमें होगा।

$\frac{६}{प}^{-ठ}$	अथवा	अं^{3} ÷ $\left(\frac{प}{ठ}\right)^{-ठ}$	रूपमें होगा ।
$\frac{=}{४}^{२}_{ठ}$	अथवा	$\frac{श्रे^{२}}{अं^{२}} \div \frac{आ}{ठ}$	रूपमें होगा ।
$ल^{-ठ}$ ५ । ४ । ३	अथवा	ल [(५) (४) (३) – १]	
$ल^{-\underline{ठ}}$ ५ । ४ । ३ ।	अथवा	ल (५) (४) [(३) – १]	
अन्तर्मुहूर्त या २ १	अथवा	संख्यात आवली	
	अथवा	आवली + १ समयसे लेकर मुहूर्त – १ समय या भिन्न मुहूर्त तक	

षट्स्थानपतित हानिवृद्धि

अनन्तभाग उर्वक	उ	वृद्धि	$\frac{वृ}{ख}$
		हानि	$\frac{हा}{ख}$
असंख्यात भाग	४	वृद्धि	वृ ÷ ठ
		हानि	हा ÷ ठ
संख्यात भाग ५		वृद्धि	वृ ÷ १
		हानि	हा ÷ १
संख्यात गुण ६		वृद्धि	वृ १
		हानि	हा १
असंख्यात गुण ७		वृद्धि	वृ ठ
		हानि	हा ठ
अनन्त गुण ८		वृद्धि	वृ ख
		हानि	हा ख

पुद्गल परिवर्तन संदृष्टि

गृहीत	१	एक
अगृहीत	०	बिन्दु
मिश्र	×	हंसपद
सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग बार अनन्त	उ उ	$\frac{वृ}{ख}$ $\frac{वृ}{ख}$ $\left(\frac{अं}{०}\right)$ बार
भाग वृद्धि		

करण

अनिवृत्तिकरणकाल	२ १	: संख्यात आवली अथवा आ १
अपूर्वकरणकाल	२ १ १	: आ १ १
अधःकरण काल	२ १ १ १	: आ १ १ १

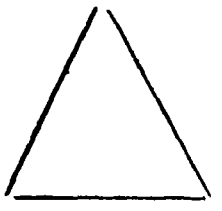
कर्म सम्बन्धी संदृष्टि

समय प्रबद्ध	स	
उत्कृष्ट समय प्रबद्ध	स ९ अथवा स ३२	
सत्त्व : किंचिदूनद्वयर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्ध	स ० १२ —	स्पष्ट है कि ८ संदृष्टि गुणहानिका प्रतीक है।

कर्म स्थिति रचना सम्बन्धी संदृष्टि (विशेष परिभाषाएँ बादमें दी गयी हैं।)

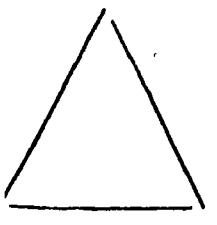
आबाधा काल	|	: यह एक उदग्र रेखा है। इसे टाइम लेग भी कह सकते हैं।
अचलावली	|	: यही चिह्न है। आवली गत निषेक यहाँ अचल होते हैं।

निषेक हानि



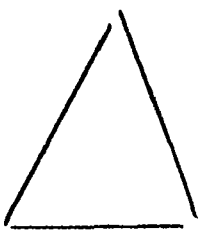
: आधारसे ऊपरकी ओर निषेक कम होते जाते हैं।

उदयावली



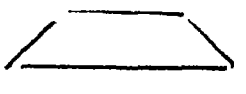
: संकेत वही है। यहाँ ऐसी आवली गत निषेकोंका संकेत है जो उदयमें आनेवाले होते हैं।

उच्छिष्टावली



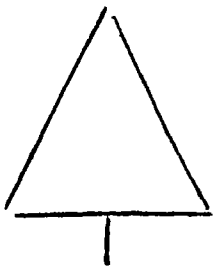
: इसका भी वही संकेत है। यह ऐसी आवली गत निषेकोंका संकेत है जो उच्छिष्ट होते हैं।

उपरितन स्थिति

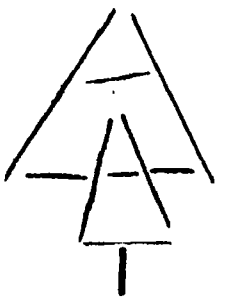


: ऊपरकी स्थितिवाले निषेकोंका संकेत इसके द्वारा मिलता है।

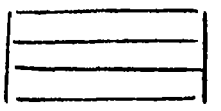
आबाधाके ऊपर निषेक रचना

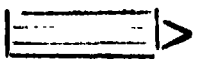


संयुक्त रचना

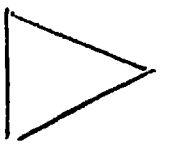


वर्गणा अनुभाग

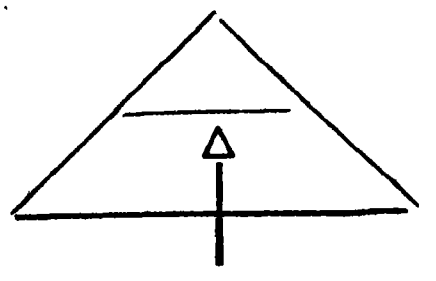


संयुक्त 

वर्ग



संयुक्त रचना



परिणाम सम्बन्धी श्रेणियोंमें प्रयुक्त सूत्र

गणितसार संग्रह (महावीराचार्य) में कुछ विधियाँ समीकरण हल करनेकी दी गयी हैं जिनसे कूटस्थिति या अनुमानसे अज्ञात राशिका मान निकाला जाता है। इनका उपयोग करण आदिसे सम्बन्धित गणितमें होता है—

$$\left.\begin{matrix}\text{सर्वधन या}\\ \text{श्रेणियोग}\end{matrix}\right\} = \frac{\text{गच्छ}}{२}\left[२\,(\text{आदि}) + (\text{गच्छ}-१)\,\text{चय}\right]$$

$$\text{चय} = \frac{\text{श्रेणियोग}-(\text{गच्छ})\,(\text{आदि})}{\frac{(\text{गच्छ}^{२}-\text{गच्छ})}{२}}$$

$$= \frac{\text{श्रेणियोग}}{(\text{गच्छ}^{२}} \times \frac{१}{\text{संख्यात}}$$

$$\text{चयधन} = \text{सर्वधन} - (\text{गच्छ})\,(\text{आदि})$$

$$\text{आदि} = \frac{\text{सर्वधन} - \text{चयधन}}{\text{गच्छ}}$$

$$\text{आदिधन} = \text{सर्वधन} - \text{चयधन} = \text{आदि} \times \text{गच्छ}$$

अंग्रेजी में
सर्वधन = sum
गच्छ = number ofterms
आदि = first term
चय = common differnnce

यथा अधःप्रवृत्तकरणमें

सर्वधन	≡ə	अथवा श्रे^{३} ə
गच्छ	२१११	अथवा आ १११
चय	≡ə २१११।२१११।१	अथवा $\frac{\text{श्रे}^{३}\text{ə}}{(\text{आ १११})(\text{आ १११})\,(१)}$
चयधन	~ ⊂ ≡a।२१११ २१११।१।२	अथवा $\frac{\text{श्रे}^{३}\text{ə}\,(\text{आ १११}-१)}{(\text{आ १११})\,१\,(२)}$
आदिधन	१——~⊂ ≡ə।२१११।१।२ २१११।१२	अथवा $\frac{\text{श्रे}^{३}\,\text{व}\,[१ + \text{आ १११}\,(२१-१)\,]}{(\text{आ १११})\,(१)\,(२)}$
प्रथम समय सम्बन्धी परिणामपुंज	१—— ~⊂ ≡ə२१११ । १२ २१११।२१११।१।२	अथवा $\frac{\text{श्रे}^{३}\,\text{ə}\,[१ + \text{आ १११}\,(२१-१)\,]}{(\text{आ १११})\,(\text{आ १११})\,(१)\,(२)}$
अंत समय सम्बन्धी परिणाम पुंज	१—⊂—~— ≡ə । २१११ । १।२ २१११।२१११।१।२	अथवा $\frac{\text{श्रे}^{३}\,\text{ə}\,[\text{आ १११}\,(२१+१)-१]}{(\text{आ १११})\,(\text{आ १११})(१)\,(२)}$

अनुकृष्टि अथं संदृष्टि

गच्छ २ १ १

अथवा आ १ १

ऊर्ध्वचय ≡ a
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3\ a}{(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)}$

अनुकृष्टिचय ≡ a
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3 a}{(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)\ (\text{आ}\ १\ १)}$

चय धन ≡ a । २ १ १ । २ १ १
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3 a\ (\text{आ}\ १\ १ - १)}{(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)\ (२)}$

आदिधन ≡ a । २ १ १ १ $\overset{२ - \sim\Omega}{१}$ $\sim\Omega$ १ २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ २

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3 a[२ \times \text{आ}\ १\ १(१\ (२१ - १) - १)]}{(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (\text{आ}\ १\ १\ १)\ (२)\ (२)}$

प्रथम समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड

$२ - \sim\Omega\ \sim\Omega$
≡ a । २ १ १ १ । १ । १ २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3 a\ [\ ४ + \text{आ}\ १\ १\ \{१(२१ - १) - १\}\ ]}{(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)\ (\text{आ}\ १\ १)\ (२)}$

प्रथम समय सम्बन्धी अन्तका खण्ड

$\sim - \sim\Omega$
≡ a । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3\ a\ [\ \text{आ}\ १\ १\ \{\ १\ (२१ - १) + १\}\ ]}{(\text{आ}\ १\ १\ १)(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)\ (\text{आ}\ १\ १)\ (२)}$

अन्त समय सम्बन्धी प्रथम खण्ड

$\sim\ \Omega$
$\sim$
≡ a । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ १ १ । २

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3\ a\ [\text{आ}\ १\ १\ \{१\ (२१ + १) - १\}]}{(\text{आ}\ १\ १\ १)(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)\ (२)\ (\text{आ}\ १\ १)}$

समय सम्बन्धी अन्त खण्ड

$\sim\ \Omega$
$\sim$
$\sim$
≡ a । २ १ १ १ । १ । २
२ १ १ १ । २ १ १ १ । १ । २ । २ १ १

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3\ a\ [\text{आ}\ १\ १\{१(२१ + १) + १\} - २]}{(\text{आ}\ १\ १\ १)(\text{आ}\ १\ १\ १)\ (१)(२)(\text{आ}\ १\ १)}$

उपर्युक्त परिणामोंमें षट्स्थान राशि

≡ a

$$\begin{array}{ccccccc} & १- & १- & १- & १- & १- \\ ४१ & २ & २ & २ & २ & २ \\ & a & a & a & a & a \end{array}$$

अथवा $\frac{\text{श्रे}^3\ a}{\text{अं}^२\ १\ \left(\frac{\text{अं} + १}{a}\right)^५}$

सूक्ष्म साम्पराय विवरणमें

जघन्य वर्गणा	व
एक गुणहानिमें स्पर्धक प्रमाण	९
नाना गुणहानि	ना
अनन्त	ख
अपकर्षण भागहार	उ
असंख्यात गुणा अपकर्षण भागहार	उ । ə
एक स्पर्धकमें वर्गणाओंका प्रमाण	४
उत्कृष्ट पूर्व स्पर्धकके वर्गकी संदृष्टि	व ९ ना
जघन्य पूर्व स्पर्धकके वर्गकी संदृष्टि	व
उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धक के वर्गकी संदृष्टि	व ख
जघन्य अपूर्व स्पर्धक के वर्गकी संदृष्टि	व ख ९ उ ə
उत्कृष्ट बादर कृष्टिके वर्गकी संदृष्टि	व ख ९ ख उ ə
जघन्य बादर कृष्टिके वर्गकी संदृष्टि	व ख ९ ख ४ उ ə ख
उत्कृष्ट सूक्ष्म कृष्टि के वर्गकी संदृष्टि	व ख ९ ख ४ ख उ ə ख
जघन्य सूक्ष्मकृष्टिके वर्गकी संदृष्टि	व ख ९ ख ४ ख ४ उ ə ख ख

गुणश्रेणी निर्जरामें संदृष्टियाँ इसी प्रकार सरल हैं। ये अर्थ संदृष्टि अधिकारमें प्राप्य हैं।

§ ३. अर्थ एवं संज्ञाका स्पष्टीकरण

गोम्मटसारके दूसरे भाग कर्मकाण्डमें जैनकर्मसिद्धान्तका वर्णन है। उसके प्रारम्भमें कहा है कि शरीर सहित जीव प्रति समय सर्वांगसे कर्म और नोकर्मको ग्रहण करता है, जैसे आगसे तपा हुआ लोहपिण्ड जलको ग्रहण करता है। सभी शरीरोंकी उत्पत्तिके कारण कार्मणशरीरको कर्म या द्रव्यकर्म कहते हैं और शेष चार शरीरोंको नोकर्म कहते हैं। यहाँ 'नो' शब्दका प्रयोग ईषत् अथवा स्तोकके अर्थमें है। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजसनाम कर्मके उदयसे चार शरीर होते हैं। ये आत्मगुणोंके घातक नहीं होते। इसलिए इन्हें नोकर्मशरीर कहते हैं। ये कर्मशरीरके सहायक होते हैं (गो. जी. २४४)।

कर्म शब्दके अनेक अर्थ हैं। वीर्यान्तराय और ज्ञानावरणके क्षयोपशमकी अपेक्षासे आत्माके द्वारा निश्चयनयकी अपेक्षा आत्मपरिणाम और पुद्गलके द्वारा पुद्गल परिणाम तथा व्यवहारनयसे आत्माके द्वारा पुद्गल परिणाम और पुद्गलके द्वारा आत्मपरिणाम जो किये जाते हैं वह यहाँ कर्म विवक्षित है। वे जीवको परतन्त्र करते हैं अथवा उनके द्वारा जीव परतन्त्र किया जाता है अतः उन्हें कर्म कहते हैं। अथवा मिथ्यादर्शन अविरति, कषाय और योगरूप परिणामोंके द्वारा जीवके द्वारा किये जाते हैं अतः वे कर्म कहे जाते हैं।

कर्मके मुख्य भेद दो हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म। ज्ञानावरण आदि पुद्गल द्रव्यका पिण्ड द्रव्यकर्म है। और उसमें जो शक्ति है वह भावकर्म है, अथवा कार्यमें कारणका उपचार करके उस शक्तिके निमित्तसे आत्मामें उत्पन्न मिथ्यात्व राग, द्वेष आदि भाव भावकर्म हैं। द्रव्यकर्म और भावकर्ममें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होनेसे द्रव्यकर्मसे भावकर्म और भावकर्मसे द्रव्यकर्मकी परम्परा अनादि है।

शुभ और अशुभ कर्मोंके आनेके द्वार रूप **आस्रव** हैं। आत्मा और कर्म प्रदेशोंका परस्परमें एक क्षेत्रवगाह **बन्ध** है। आस्रवका रोकना **संवर** है। कर्मोंका एक देश पृथक् होना **निर्जरा** है। सर्व कर्मोंका आत्मासे अलग हो जाना **मोक्ष** है।

संज्ञाके अनुसार गुण रहित वस्तुमें व्यवहार हेतु स्वेच्छा की गयी संज्ञाको **नाम** कहते हैं। काष्ठ कर्म, पुस्तककर्म, चित्रकर्म और अक्ष विक्षेप आदिमें "यह वह है", इस प्रकार स्थापित करनेको **स्थापना** कहते हैं। जो गुणोंके द्वारा प्राप्त हुआ था, या गुणोंको प्राप्त हुआ था अथवा जो गुणोंके द्वारा प्राप्त किया जायेगा या गुणोंको प्राप्त होगा उसे **द्रव्य** कहते हैं। वर्तमान पर्यायसे युक्त द्रव्यको **भाव** कहते हैं। प्रमाण और नयोंसे पदार्थोंका **ज्ञान** होता है।

किसी वस्तुके स्वरूपका कथन करना **निर्देश** है। **स्वामित्व**का अर्थ आधिपत्य है। जिस निमित्तसे वस्तु उत्पन्न होती है वह **साधन** है। आधारको **अधिकरण** कहते हैं। जितने काल तक वस्तु रहती है वह **स्थिति** है। **विधान**का अर्थ प्रकार या भेद है। इनसे पदार्थोंका ज्ञान होता है।

सत् अस्तित्वका सूचक है। **संख्या**से भेदोंकी गणना होती है। वर्तमान काल विषयक निवासको **क्षेत्र** कहते हैं। त्रिकाल विषयक निवासको **स्पर्शन** कहते हैं। मुख्य और व्यावहारिक प्रकारसे दो **काल** होते हैं। विरह कालको **अन्तर** कहते हैं। **भाव**से औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक एवं पारिणामिक भावोंका भी अर्थ ग्रहण होता है। एक दूसरेकी अपेक्षा न्यूनाधिकका ज्ञान **अल्पबहुत्व** कहलाता है। इनके द्वारा भी पदार्थोंका ज्ञान होता है।

इन्द्रिय और मनके द्वारा यथायोग्य पदार्थ जिसके द्वारा मनन किये जाते हैं, जो मनन करता है या मनन मात्र **मति-ज्ञान** है। श्रुत ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम होनेपर निरूप्यमाण पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है या सुननामात्र **श्रुत** ज्ञान है। - अधिकतर नीचेके विषयको जाननेवाला होनेसे या परिमित विषयवाला होनेसे **अवधि ज्ञान** नाम सार्थक है। दूसरेके मनोगत अर्थमें परिगमन करनेवाला ज्ञान **मनःपर्यय** है। अर्थी जन जिस असहाय ज्ञानके लिए बाह्य एवं आभ्यन्तर तप द्वारा मार्गका केवल या सेवन करते हैं वह **केवलज्ञान** है।

विषय और विषयीके सम्बन्धके बाद होनेवाले प्रथम ग्रहणको अवग्रहमति कहते हैं। अवग्रह द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थमें उसके विशेषके जाननेकी इच्छा **ईहामति** है। विशेषके निर्णय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है वह **अवाय मति** है। जानी हुई वस्तुका जिस कारण कालान्तरमें विस्मरण नहीं होता वह **धारणा मति** है। चक्षु आदि इन्द्रियोंके विषयको **अर्थ** कहते हैं। ये चारों मति ज्ञान अर्थके होते हैं। अव्यक्त शब्द-समूह **व्यंजन** है, जो केवल अवग्रहमति रूप है। चक्षु और मनसे व्यंजन अवग्रह नहीं होता है। केवलज्ञानकी प्रवृत्ति सब द्रव्यों और उनकी सभी पर्यायोंमें होती है।

आत्मामें कर्मकी निज शक्तिका कारणवशसे प्रकट न होना **उपशम** है। कर्मोंका आत्मासे सर्वथा दूर हो जाना **क्षय** है। उभय भाव रूप **मिश्र** है। द्रव्यादि निमित्तके वशसे कर्मोंका फल प्राप्त होना **उदय** है। जिसके होनेमें द्रव्यका स्वरूपलाभमात्र कारण है वह **परिणाम** है। ये भाव जीवके हैं, जो अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके निमित्तोंसे होता है। और चैतन्यका अन्वयी परिणाम **उपयोग** कहलाता

है। उपयोग ज्ञान और दर्शन रूप है। गुण अन्वयी होते हैं, पर्याय व्यतिरेकी होती है। अथवा द्रव्यमें भेद करनेवाले धर्मको गुण और द्रव्यके विकार को पर्याय कहते हैं। द्रव्य इन दोनोंसे संयुक्त, अयुत सिद्ध और नित्य होता है।

काय, वचन और मनकी क्रिया योग है जिससे आस्रव होता है जिसकी विशेषता तीव्र, मन्द, ज्ञात, अज्ञात भावों, अधिकरण और वीर्यसे होती है।

जो आत्माका घात करती है, वह कषाय है। चारित्रमोहके भेदरूप कषायवेदनीयके उदयसे आत्मामें जो कलुषता क्रोधादिरूप होती है उसे आत्मविघातक होनेसे कषाय कहते हैं। हास्यादि कषायवत् न होनेसे नोकषाय कहलाती हैं। क्रोधादिकी तीव्रताको लेश्या द्वारा निर्दिष्ट करते हैं, और आसक्तिकी तीव्रता मन्दताको अनन्तानुबन्धी आदि द्वारा निर्दिष्ट करते हैं। जो क्रोधादिक जीवके सुख-दुख रूप अनेक प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूप खेतको कर्षण करते हैं अर्थात् जोतते हैं और जिनके लिए संसारकी चारों गतियाँ मर्यादा—मेंढ रूप हैं, इसलिये उन्हें कषाय कहते हैं। वे कर्मोंके श्लेषका कारण हैं—निक्षेपादिकी अपेक्षा योग और कषायके अनेक भेद हैं।

कर्मोंके संयोगके कारणभूत जीवके प्रदेशोंके परिस्पन्दको भी योग कहते हैं, अथवा मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिके प्रति जीवका उपयोग या प्रयत्न विशेष योग है। योग, समाधि, ध्यान, सम्यक् प्रणिधान एकार्थवाची हैं। क्रियाकी उत्पत्तिमें जो जीवका उपयोग है वही योग है। (विशेष विवरणके लिए जैन सि. कोष देखें)।

कषायसे अनुरंजित जीवकी योगकी प्रवृत्तिको भावलेश्या कहते हैं। शरीरके रंगको द्रव्य लेश्या कहते हैं। जो कर्मोंसे आत्माको लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं। मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये बन्धके हेतु हैं। कषाय सहित होनेपर जीव कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है, वह बन्ध है। अथवा कर्म प्रदेशोंका आत्मप्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाह हो जाना बन्ध है। वाचक शब्दोंकी अपेक्षा बन्ध संख्यात, अध्यवसाय स्थानोंकी अपेक्षा असंख्यात, तथा कर्मप्रदेशोंकी अथवा कर्मोंके अनुभाग अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा अनन्त प्रकार है। ज्ञानावरणादिक कर्मबन्ध है और औदारिकादि नोकर्मबन्ध है। क्रोधादि परिणाम भावबन्ध है।

ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मोंके उस कर्मके योग्य ऐसा जो पुद्गल द्रव्यका स्व-आकार (?) वह प्रकृति बन्ध है। योगके वशसे कर्म स्वरूपसे परिणत पुद्गल स्कन्धोंका कषायके वशसे जीवमें एक स्वरूपसे रहनेके कालको स्थितिबन्ध कहते हैं। शुभाशुभ कर्मकी निर्जराके समय सुखदुःख रूप फल देनेकी शक्तिवाला अनुभाग बन्ध है। कर्मरूपसे परिणत पुद्गल स्कन्धोंका परिमाणुओंकी जानकारी करके निश्चय करना प्रदेश बन्ध है।

अधःप्रवृत्तकरण वह है जिसमें-से ऊपरके समयवर्ती जीवोंके परिणाम नीचेके समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके सदृश—अर्थात् संख्या और विशुद्धिकी अपेक्षा समान होते हैं। अपूर्वकरणमें भिन्न समयवर्ती जीवोंमें विशुद्ध परिणामोंकी अपेक्षा कभी भी सादृश्य नहीं पाया जाता, किन्तु एक समयवर्ती जीवोंमें सादृश्य और वैसादृश्य दोनों पाये जाते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान वह है जिसके कालके प्रत्येक समयमें एक ही परिणाम होता है। कृष्टिका अर्थ कर्म अनुभागको कृश करना होता है।

प्रतिसमय बँधनेवाले कर्म या नोकर्मके समस्त परमाणुओंके समूहको समयप्रबद्ध कहते हैं। विवक्षित समयप्रबद्धमें समान अनुभाग शक्तिके अंश—अविभाग प्रतिच्छेद जिस परमाणुमें पाये जायें उसे वर्ग कहते हैं। जिन परमाणुओंमें समान संख्यावाले अविभाग प्रतिच्छेद पाये जायँ उन सब वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते हैं। जिनमें अविभाग प्रतिच्छेदोंकी समान वृद्धि पायी जाये उन वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक

कहते हैं। गुणाकार रूपसे हीन-हीन द्रव्य जिसमें पाया जाये उसको **गुणहानि** कहते हैं। गुणहानिके समय-समूहको **गुणहानि आयाम** कहते हैं। गुणहानियोंके समूहको **नानागुणहानि** कहते हैं। दो गुणहानि आयामके प्रमाणको **निषेकहार** कहते हैं। नानागुणहानि प्रमाण दोके अंक रखकर परस्पर गुणा करनेसे जो राशि उत्पन्न हो उसे **अन्योन्याभ्यस्त राशि** कहते हैं। समान वृद्धि या हानिके प्रमाणको **चय** कहते हैं। 'निषेचनं निषेकः' इस निरुक्तिके अनुसार कर्म परमाणुओंके स्कन्धोंके निक्षेपण करनेका नाम **निषेक** है। आयुर्वर्जित सात कर्मोंकी अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिमें-से उन-उनका आबाधाकाल घटाकर जो शेष रहता है, उतने कालके जितने समय होते हैं उतने ही उस-उस कर्मके **निषेक** जानना चाहिए। आयुकर्मकी स्थिति प्रमाण कालके समयों जितने उसके **निषेक** हैं, क्योंकि आयुकी आबाधा पूर्वभवकी आयुमें व्यतीत हो चुकती है। प्रथम निषेक अवस्थित हानिसे जितनी दूर जाकर आधा होता है उस अध्वान (अन्तराल या काल) को **'गुणहानि'** कहते हैं। जहाँ अपनी-अपनी द्वितीयादि वर्गणाके वर्गोंमें अपनी-अपनी प्रथम वर्गणाके वर्गोंसे एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद बढ़ता अनुक्रमसे है, ऐसे स्पर्धकोंका समूह **प्रथम गुणहानि** कहलाता है। इस प्रथम गुणहानिके प्रथम वर्गमें जितने परमाणु पाये जायें, उनमें एक-एक चय प्रमाण घटते द्वितीयादि वर्गणाओंमें वर्ग जानना चाहिए। इस क्रमसे जहाँ प्रथमगुणहानिकी प्रथम वर्गणाके वर्गोंसे आधा जिस वर्गणामें वर्ग हों वहाँसे **दूसरी गुणहानिका** प्रारम्भ होता है। वहाँ द्रव्य चय आदिका प्रमाण भी आधा-आधा होता है।

एक जीवके एक कालमें जितनी प्रकृतियोंकी सत्ता पायी जावे उनके समूहका नाम **स्थान** है। उस स्थानकी एक-सी समान संख्या रूप प्रकृतियोंमें जो संख्या समान ही रहे परन्तु प्रकृतियाँ बदल जायें तो उसे **भंग** कहते हैं। जिस कर्मके बन्धका अभाव होकर फिर वही कर्म बँधे उसे **सादिबन्ध** कहते हैं। जिसके बन्धका अभाव नहीं हुआ वह **अनादिबन्ध** है। जिस बन्धका आदि तथा अन्त न हो वह **ध्रुवबन्ध** है और जिस बन्धका अन्त आ जाये वह **अध्रुव बन्ध** है। जिन कर्म प्रकृतियोंमें कोई प्रकृति विरोधी नहीं होती हैं उन्हें अप्रतिपक्षी कहते हैं। जिन प्रकृतियोंमें आपसमें विरोधीपना है वे **सप्रतिपक्षी** कहलाती हैं।

जीवोंकी उत्कृष्ट आबाधासे भाजित जो अपने-अपने कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति है उसके प्रमाणको **आबाधा काण्डक** कहते हैं। पर्याय धारण करनेके पहले समयमें तिष्ठते हुए जीवके **उपपाद योगस्थान** होते हैं। शरीर पर्याप्तिके पूर्ण होनेके समयसे लेकर आयुके अन्त तक **परिणाम योगस्थान** कहलाते हैं। **एकान्तानुवृद्धि योगस्थान** पर्याय धारण करनेके दूसरे समयसे लेकर एक समय कम शरीर पर्याप्तिके अन्तर्मुहूर्तके अन्त समय तक होते हैं, जिनमें नियमकर समय-समयप्रति असंख्यातगुणी अविभाग प्रतिच्छेदोंकी वृद्धि होती है।

बँधे हुए कर्मकी दश अवस्थाएँ अथवा दश करण होते हैं। कर्मोंका आत्मासे सम्बन्ध होना **बन्ध** है। जो कर्मोंकी स्थिति तथा अनुभागका बढ़ना है वह **उत्कर्षण** है। जो बन्ध रूप प्रकृतिका दूसरी प्रकृतिरूप परिणम जाना है वह **संक्रमण** है। जो स्थिति तथा अनुभागका कम हो जाना वह **अपकर्षण** है। उदयकालके बाहर स्थित, अर्थात् जिसके उदयका अभी समय नहीं आया है ऐसा जो कर्म द्रव्य उसको अपकर्षणके बलसे उदयावली कालमें प्राप्त करना **उदीरणा** है। जो पुद्गलका कर्मरूप रहना वह **सत्त्व** है। जो कर्मका अपनी स्थितिको प्राप्त होना अर्थात् फल देनेका समय प्राप्त हो जाना वह **उदय** है। जो कर्म उदयावलीमें प्राप्त न किया जाये अर्थात् उदीरणा अवस्थाको प्राप्त न हो सके वह **उपशान्तकरण** है। जो कर्म उदयावलिमें भी प्राप्त न हो सके और संक्रमण अवस्थाको भी प्राप्त न हो सके उसे **निधत्तिकरण** कहते हैं। जिस कर्मकी उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण और अपकर्षण ये चारों ही अवस्थाएँ न हो सकें उसे **निकाचितकरण** कहते हैं।

जो प्रकृतियाँ अपने ही रूप उदय फल देकर नष्ट हो जायें वे **स्वमुखोदयी** हैं, उनका काल एक समय अधिक आवलि प्रमाण है, वही क्षयदेश है। जो प्रकृतियाँ अन्य प्रकृतिरूप उदयफल देकर विनष्ट हो जाती

हैं, वे **परमुखोदयी** हैं, उनके अन्तकाण्डककी अन्त फालि क्षयदेश है। एक समय मात्रमें संक्रमण होनेको **फालि** कहते हैं। समय समूहमें संक्रमण होना **काण्डक** है।

अधःप्रवृत्त आदि तीन करण रूप परिणामोंके बिना ही कर्म प्रकृतियोंके परमाणुओंका अन्य प्रकृति रूप परिणमन होना वह **उद्वेलन संक्रमण** है। मन्द विशुद्धतावाले जीवकी, स्थिति अनुभागके घटानेरूप, भूतकालीन स्थितिकाण्डक और अनुभाग काण्डक तथा गुणश्रेणी आदि परिणामोंमें प्रवृत्ति होना **विध्यात संक्रमण** है। बन्धरूप हुई प्रकृतियोंका अपने बन्धमें सम्भवती प्रकृतियोंमें परमाणुओंका जो प्रदेश संक्रम होना वह **अधःप्रवृत्त संक्रमण** है। जहाँपर प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणीके क्रमसे परमाणु-प्रदेश अन्य प्रकृतिरूप परिणमें सो **गुण संक्रमण** है। जो अन्तके काण्डककी अन्तकी फालिके सर्व प्रदेशोंमें-से जो अन्य प्रकृतिरूप नहीं हुए हैं उन परमाणुओंका अन्य प्रकृतिरूप होना वह **सर्व संक्रमण** है। उत्तर प्रकृतियोंमें ही संक्रमण होता है, किन्तु दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयका तथा चारों आयुओंका **परस्परमें संक्रमण** नहीं होता। संसारी जीवोंके अपने जिन परिणामोंके निमित्तसे शुभकर्म और अशुभ कर्म संक्रमण करें, अर्थात् अन्य प्रकृति रूप परिणमें उसको **भागहार** कहते हैं।

त्रिकोण रचनामें समयप्रबद्धका प्रमाण विवक्षित वर्तमान समयमें तिर्यक् रूप हर एक समयमें एक समयप्रबद्ध बँधता है और एक समयप्रबद्ध ही उदय रूप होता है। **सर्व द्रव्य** कुछ कम डेढ़ गुणहानि कर गुणा हुआ समयप्रबद्ध प्रमाण है जो त्रिकोण रचनाके सब द्रव्यको जोड़ देनेसे नियमसे इतना ही होता है।

उपर्युक्त परिभाषाएँ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, जैन लक्षणावली, राजेन्द्र अभिधान कोश, षट्खण्डागम, धवल, गोम्मटसार, जीव तत्त्व प्रदीपिका टीका आदि ग्रन्थोंसे ली गयी हैं। इतनी जानकारीके पश्चात् लब्धिसार एवं क्षपणासारकी पूर्व पीठिका बाँधने हेतु अगला अधिकार दिया जा रहा है जो मुख्यतः पण्डित टोडरमलका प्रयास है। उसे याद करनेके पश्चात् ही गणितीय प्रणालीमें प्रवेश करना लाभप्रद होगा। उपर्युक्त लक्षण केवल संकेत मात्र हैं जिनके आलम्बनसे कर्म सिद्धान्तका अनुभव वृद्धिगत हो सके।

§ ४. अर्थके प्रयोजन

पं. टोडरमलने निम्न पद्यमें अर्थसार निर्दिष्ट कर दिया है—

"नेमिचन्द आह्लादकर माधवचन्द प्रधान।
नमौं जास उज्जास तैं जाने निज गुण थान॥
लब्धिसार कौं पायकैं करिकैं क्षपणासार।
हो है प्रवचनसार सो समयसार अविकार॥"

सम्यक्दर्शनका सहकारी सम्यक्ज्ञान है। मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक्ज्ञानका संयुक्त रूप, आत्मस्वरूप है। सम्यक्दर्शन तीन प्रकार—औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक प्रकारका है। सम्यक्चारित्र दो प्रकार—देशचारित्र और सकलचारित्र प्रकारका है। देशचारित्र क्षायोपशमिक ही है और सकलचारित्र तीन प्रकार है—क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक। इस प्रकार सम्यक्दर्शन सम्यक्चारित्रकी लब्धि होनेपर केवलज्ञान पाकर सयोगी, अयोगी जिन और सिद्धपद प्राप्त होता है।

जीवोंके परिणमनके साथ-साथ कर्मोंके बन्ध, सत्त्व उदय अवस्था किस प्रकार परिणमन करती है, विशेष रूपसे ज्ञात करना युक्त है। इसी प्रकार चौदह गुणस्थानोंका स्वरूप भी विशेष जानने योग्य है। दशकरणोंका भी विशेष प्रयोजन होता है इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

नवीन पुद्गलोंका कर्म रूप आत्माके साथ सम्बन्ध होना बन्ध है। यह चार प्रकारका है—प्रकृति-बन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध। कर्मरूप होने योग्य जो कार्मण वर्गणा रूप पुद्गलका ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृति रूप परिणमना सो **प्रकृतिबन्ध** है। जितनी प्रकृतियोंका जहाँ बन्ध सम्भव हो वहाँ उतनी प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए। उन प्रकृतिरूप जितने पुद्गल परमाणु परिणमें उनका प्रमाण रूप प्रदेशबन्ध है, क्योंकि प्रदेश नाम पुद्गल परमाणुका है। वह अभव्य राशिसे अनन्तगुणा तथा सिद्धराशिके अनन्तवाँ भागमात्र प्रमाण होता है। इनको मिलकर एक **कार्माण वर्गणा** होती है। उतनी ही वर्गणाएँ मिलकर एक **समयप्रबद्ध** होता है। इतने परमाणु प्रति समय कर्मरूप होकर एक जीवके बँधते हैं इसलिए इसे समयप्रबद्ध कहते हैं। यह सामान्य प्रमाण है। विशेष योगोंकी अधिक और हीनताके अनुसार समयप्रबद्धमें परमाणुओंकी अधिक और हीनताका अनुपात जानना चाहिए।

एक समयमें ग्रहण किया हुआ जो समयप्रबद्ध है वह यथासम्भव मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति रूप परिणमता है। इन प्रकृतियोंके परमाणुओंके विभागका विधान, बन्ध सत्त्व तथा उदय द्वारा प्रदेशबन्ध रूपमें होता है। जिस प्रकृतिके जितने परमाणु बँटनमें आते हैं उस प्रकृतिका उतने परमाणुओंका समूह मात्र समयप्रबद्ध जानना चाहिए।

जो परमाणु प्रकृतिरूप बँधे, वे परमाणु उस रूप जितने कालके लिए बँधते हैं उस स्थिति प्रमाणके लिए **स्थिति बन्ध** होता है। वहाँ एक समयमें जो स्थिति बन्ध होता है उसमें बन्ध समयसे लगाकर आबाधा-काल तक वहाँ बँधी हुई परमाणुओंके उदय आनेकी योग्यताका अभाव है, इसलिए वहाँ निषेक रचना नहीं है। उसके पश्चात् प्रथम समयसे लेकर बँधी हुई स्थितिके अन्तिम समय तक प्रत्येक समयमें एक-एक निषेक उदय आने योग्य हो जाता है। इसलिए प्रथम निषेककी स्थिति एक समय अधिक आबाधाकाल मात्र होती है। द्वितीय निषेककी स्थिति दो समय अधिक आबाधाकाल मात्र होती है। इस क्रमसे द्विचरम निषेककी स्थिति एक समय कम स्थिति बन्ध प्रमाण होती है। अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्धकी समय राशि प्रमाण होती है।

उदाहरण : मोहकी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी स्थिति बँधी हो तो आबाधाकाल सात हजार वर्षका होगा। प्रथमनिषेककी स्थिति एक समय अधिक सात हजार वर्ष होगी। द्वितीयादि निषेकोंकी क्रमसे एक-एक समय अधिक होगी और अन्तिम निषेककी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति होगी। इस प्रकार आयु कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंके लिए यह विधान है।

आयुकी स्थितिबन्धमें आबाधाकाल नहीं गिनते हैं क्योंकि उसका आबाधाकाल पूर्व पर्यायमें ही व्यतीत हो चुका होता है। वहाँ उस कालके उदय होनेकी योग्यता नहीं होती इसलिए आयुके प्रथम निषेककी स्थिति एक समय, द्वितीय निषेककी दो समय आदि होती है। इस क्रमसे अन्तिम निषेककी स्थिति सम्पूर्ण स्थितिबन्ध मात्र स्थिति होती है। निषेक रचनाका वर्णन गोम्मटसार कर्मकाण्डमें उपलब्ध है। त्रिकोणयन्त्र रचनाका विवरण द्रष्टव्य है।

बन्ध होनेपर शक्ति ऐसी होती है जो उदयकालमें हीनाधिक विशेष लिये जीवके ज्ञान आच्छादित करती है, इत्यादि। इस प्रकार बन्ध होते हुए शक्तिके होनेका नाम **अनुभाग बन्ध** है। वहाँ एक प्रकृतिके एक समयमें जो परमाणु बँधते हैं उनमें नाना प्रकारकी शक्ति होती है। शक्तिके अविभागी अंशका नाम

अविभागी प्रतिच्छेद है। उनके समूह द्वारा युक्त जो एक परमाणु होता है उसे **वर्ग** कहते हैं। समान अविभाग प्रतिच्छेदों युक्त जो वर्ग हैं उनके समूहका नाम **वर्गणा** है। यहाँ स्तोक अनुभाग युक्त परमाणुका नाम **जघन्य वर्ग** है। उनके समूहका नाम **जघन्य वर्गणा** है। जघन्य वर्गसे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद युक्त जो वर्ग उनके समूहका नाम **द्वितीय वर्गणा** है। इस क्रमसे एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक वर्गोंकी समूह रूप वर्गणा जहाँ तक होती है वहाँ तक उन वर्गणाओंके समूहका नाम **जघन्य स्पर्धक** होता है। जघन्य वर्गसे द्विगुणित अविभागी प्रतिच्छेद युक्त वर्गोंके समूहरूप **द्वितीय स्पर्धक** की प्रथम वर्गणा होती है। उसके ऊपर एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक क्रम लिये जो वर्ग हैं उनके समूह रूप वर्गणा जहाँ तक होती हैं वहाँ तक उन वर्गणाओंका समूह रूप द्वितीय स्पर्धक होता है। इसी प्रकार तृतीय, चतुर्थ आदि स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गमें जघन्य स्पर्धकसे तिगुणे, चौगुणे आदि अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं। यहाँ सर्व परमाणुओंका प्रमाण उपरिलिखित एक-एक अधिक क्रममें होता है। ऐसा विधान जब तक सम्पूर्ण परमाणु पूर्ण न हो जायें तबतक चलता है। इस क्रमसे गुणहानिशलाकाएँ, स्पर्धकशलाकाएँ, वर्गणा शलाकाएँ तथा वर्गोंकी शलाकाओंकी संख्या प्राप्त की जा सकती है।

त्रिकोण यन्त्रमें स्पर्धकोंकी रचना इस प्रकार होती है कि प्रथमादि स्पर्धक पहलेवाले, निचले स्पर्धक कहलाते हैं। पिछले स्पर्धकोंको ऊपरले स्पर्धक कहते हैं। प्रथमादि स्पर्धकोंमें क्रमसे परमाणुओंका प्रमाण घटता-घटता है अनुभाग बढ़ता-बढ़ता है। वहाँ प्रथमादि सर्वस्पर्धकोंके चार विभाग करते हैं। घातियोंके चार भाग लता, दारु, अस्थि और शैलके समान शक्ति रखते हैं। अप्रशस्त अघातियोंके निंब, कांजीर, विष, हलाहल शक्तिवाले होते हैं। प्रशस्त अघातियोंके गुड़, खंड, शर्करा और अमृत समान शक्तिवाले होते हैं। घातियोंमें लता भागके और कुछ दारु भागके स्पर्धक देशघाती हैं। अवशेष सर्वघाती हैं। स्थितिके पहले निषेक पहले उदय आते हैं, पिछले बादमें उदयमें आते हैं। उसी प्रकार अनुभागके पहले स्पर्धक पहले उदय आनेका, या पिछले स्पर्धक पीछे उदय आनेका नियम नहीं है।

अनेक समयोंमें बँधे हुए कर्मोंका विवक्षित कालादिमें जीवमें अस्तित्व होना **सत्त्व** है। यह चार प्रकारका है : प्रकृतिसत्त्व, प्रदेशसत्त्व, स्थितिसत्त्व और अनुभागसत्त्व। यहाँ अनेक समयों में बँधी ज्ञानावरणादिक मूल प्रकृति वा उनकी उत्तर प्रकृतियोंका जो अस्तित्व है उसे **प्रकृतिसत्त्व** कहते हैं। उन प्रकृति रूप परिणमें तथा अनेक समयोंमें बँधे, ग्रहण किये गये पुद्गल परमाणुओंका अस्तित्व **प्रदेशसत्त्व** कहलाता है। प्रत्येक समयमें एक-एक समयप्रबद्ध ग्रहण किये गये परमाणुओंके एक-एक निषेक क्रमसे निर्जरित होते हैं। यदि समयप्रबद्धके सर्व निषेक गल जायें तो उनका अस्तित्व समाप्त हो जाये। यहाँ त्रिकोण यन्त्र रचनामें किसी समयप्रबद्धके अन्य निषेक गलनेपर एक निषेक अवशेष रहता है, किसी अन्यके अन्य निषेक गलनेपर दो निषेक अवशेष रहते हैं। इस क्रमसे जिस समयप्रबद्धका एक निषेक गला हो तो उसके बिना सर्व निषेक अवशेष रहते हैं। जिसका कोई भी निषेक नहीं गला हो उसके सर्व ही निषेक अवशेष रहते हैं। ऐसे सभी अवशेष रहे निषेकोंका कुछ प्रमाण सत्त्व है जिसका प्रमाण किंचित् ऊन ड्योढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सिद्ध होता है। (देखिए, गोम्मटसार जीवकाण्ड)।

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि उपर्युक्त विवक्षा एक प्रकृति सम्बन्धी है। ऐसे ही सर्व प्रकृतियों सम्बन्धी समयप्रबद्धोंका वर्णन होगा।

पुनः उन अनेक समयोंमें बँधी प्रकृतियोंकी स्थितिका नाम **स्थिति सत्त्व** है। उन प्रकृतियोंका जिस समयप्रबद्धका एक निषेक अवशेष रहा उसकी एक समयकी स्थिति है। जिसका दो निषेक अवशेष रहा उसके प्रथम निषेककी एक समय और द्वितीय निषेककी दो समय स्थिति है। इस क्रमसे जिसका एक भी निषेक नहीं गला है उसकी प्रथमादि निषेकोंकी एक, दो आदि समयोंसे अधिक आबाधाकाल मात्र स्थितिके क्रमसे

अन्तिम निषेककी सम्पूर्ण स्थितिबन्ध मात्र स्थिति होती है। यहाँ सत्त्वमें अनेक समयप्रबद्धोंके एक समयमें उदय आने योग्य अनेक निषेक मिलकर जितना हो ,उसे एक निषेक जानना चाहिए (पं. टोडरमलके अनुसार)। इनमें परमाणुओंका प्रमाण निकाला जा सकता है। सामान्यतः यदि एक प्रकृतिकी विवक्षा हो तो उसके पहले बँधे तथा बादमें बँधे समयप्रबद्धोंमें जिसके बहुत निषेक सत्तामें पाये जायें उस समयप्रबद्धके अन्तिम निषेककी जो स्थिति हो उस प्रमाण स्थितिसत्त्व होता है। यदि सर्व प्रकृतियोंकी विवक्षा हो तो जिस प्रकृतिके समयप्रबद्धके अन्तिम निषेककी बहुत स्थिति हो, उसके अन्तिम निषेककी स्थिति प्रमाण स्थिति सत्त्व कहना चाहिए।

उन अनेक समयोंमें बँधी जो प्रकृतियाँ हैं उनका जो अनुभाग अस्तित्व रूप है उसका नाम **अनुभाग सत्त्व** है। वहाँ एक समयमें उदय आने योग्य अनेक समयप्रबद्धोंके निषेक मिलकर सत्ता सम्बन्धी एक निषेकके परमाणुओंमें; अथवा अनेक समयप्रबद्धोंमें बँधे समयप्रबद्धोंके गलनेके पश्चात् अवशेष रहे उन सभी परमाणुओंमें पूर्वोक्त प्रकार अविभाग प्रतिच्छेद वर्ग वर्गणा, स्पर्धक रूप अनुभागका विशेष गणित ज्ञातव्य है। वहाँ परमाणुओंका प्रमाण भी पूर्वोक्त प्रकार लाना चाहिए।

इसी प्रकार कर्मोंका अपने काल आये फल देने रूप खिरनेको सम्मुख होना **उदय** है, जो चार प्रकार है—प्रकृति उदय, प्रदेश उदय, स्थिति उदय तथा अनुभाग उदय। जिस समयप्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला हो उसका प्रथम निषेक उदयमें आता है। जिसका प्रथम निषेक पहले गला हो उसका द्वितीय निषेक वहाँ उदय होता है। इस क्रमसे जिसके दो निषेक अवशेष रहे उसका वहाँ उपान्त निषेक उदय होता है। जिसका एक निषेक अवशेष रहा हो उसका वही अन्तिम निषेक वहाँ उदयमें आता है। इस प्रकार सभी निषेक मिलकर एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणुओंका उदय होता है।

अब विशेषता लिये हुआ विवरण उदीरणा आदिका निम्न रूपमें प्रस्तुत है—ऊपरके नीचेके अन्य समयोंमें उदय आने योग्य निषेकोंके परमाणु, उस विवक्षित समयमें उदय आने योग्य निषेकोंमें मिलाया गया हो तो वे परमाणु भी उन्हींके साथ उसी समयमें उदयमें आते हैं। इसी प्रकार घटानेकी प्रक्रिया है। इसी प्रकार अनुभाग उदयका मिश्रप्रभाव सम्भव होता है।

अपक्व पाचन, उदय कालको प्राप्त न हुआ जो कर्म है उसका पाचन उदय कालमें प्राप्त करना **उदीरणा** है। वहाँ वर्तमान समयसे लगाकर आवली मात्र कालमें उदय आने योग्य जो निषेक हैं उनका नाम **उदयावली** है। उसके ऊपरवर्ती निषेकोंको **उदयावली बाह्य** कहते हैं। उदयावली बाह्यमें जो तिष्ठे हुए निषेक हैं उनके परमाणुओंको उदयावलीके निषेकोंमें मिलाते हैं। इस प्रकार बहुत कालमें उदय आनेवाले अपक्व निषेकोंको उदयावलीके निषेकोंके साथ ही उदय आने योग्य करना, वही पाचन जैसा कार्य जिस समय हो उसी समयमें **उदीरणा** कहलाती है। उसी समयमें वही द्रव्य सत्तारूप वा उदयरूप है।

स्थिति, अनुभागका बढ़ना उत्कर्षण है। वहाँ स्तोककालमें उदय आने योग्य जो नीचेके निषेक, उनके परमाणु, बहुत कालमें उदय आने योग्य जो ऊपरके निषेकोंमें मिलें, तो इस प्रकार स्तोक स्थितिका बहुत स्थिति होनेका नाम **स्थिति उत्कर्षण** है। पुनः स्तोक अनुभाग युक्त जो नीचेके स्पर्धक, उनके परमाणु जब बहुत अनुभागवाले ऊपरके स्पर्धकोंमें मिलते हैं; तब स्तोक अनुभागका बहुत अनुभाग होनेका नाम **अनुभाग उत्कर्षण** होता है। इसी प्रकार **अपकर्षण**का विवरण है। गणितीय प्रक्रिया इस प्रकार है—यहाँ विवक्षित सर्व परमाणुओंके समूहको उत्कर्षण और अपकर्षण भागहार द्वारा विभाजित करनेपर, एक भाग मात्र परमाणुओंका ग्रहण कर उन्हें यथायोग्य नीचे अथवा ऊपर मिलाया जाता है। ये भागहार गुणसंक्रम भागहारसे असंख्यात गुणा और अधःप्रवृत्त संक्रम भागहारके असंख्यातवें भाग रूप पल्यके अर्द्धच्छेदोंके असंख्यातवें भागमात्र जानना चाहिए।

अन्य प्रकृतिका परमाणु अन्य प्रकृति रूप होनेकी प्रक्रिया **संक्रमण** कहलाती है। जैसे संक्लेशपनेसे पूर्वमें असाता वेदनीय बँधी-थी, बादमें विशुद्धताके बलसे उसके परमाणु साता वेदनीय रूप होकर परिणमन करते हैं। इसी प्रकार यथायोग्य अन्य प्रकृतियोंका संक्रमण भी ज्ञातव्य है। उद्वेलन प्रकृतिके जो परमाणु उन्हें उद्वेलन भागहारका भाग देनेपर, एक भाग मात्र परमाणु जहाँ अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करते हों वहाँ **उद्वेलन संक्रमण** होता है। जहाँ मन्द विशुद्धता युक्त जीवके जिसका बन्ध न पाया जाये ऐसी जो विवक्षित प्रकृति हो, उसके परमाणुओंमें विध्यात भागहारका भाग देनेसे प्राप्त एक भागमात्र परमाणु अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करनेको **विध्यात संक्रमण** कहते हैं। जहाँ जिसका बन्ध सम्भव हो ऐसी जो विवक्षित प्रकृति, उसके परमाणुओंमें अधःप्रवृत्त भागहार द्वारा भाग देनेसे प्राप्त एक भागमात्र परमाणुओंका अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करना **अधःप्रवृत्त संक्रमण** कहलाता है। जहाँ विवक्षित अशुभ प्रकृतिके परमाणुओंको गुणसंक्रमण भागहार द्वारा विभाजित करनेसे प्राप्त एक भाग मात्र परमाणु अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमन करें; कि प्रथम समय जितने परमाणु परिणमें, उसके दूसरे समय असंख्यात गुणे परिणमें, इत्यादि, वहाँ **गुणसंक्रमण** है। जहाँ विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृति रूप समय-समय परिणमते हुए अन्त समयमें अन्तिम फालिरूप ही अवशेष परमाणु जो हों वे सभी अन्य प्रकृति रूप होकर परिणमें, तो वहाँ **सर्वसंक्रमण** कहलाता है। भागहारोंका प्रमाण गोम्मटसारादि ग्रन्थोंसे ज्ञातव्य है।

इसी प्रकार उपशान्तकरण, निधत्तिकरण और निकाचितकरणका विवरण है। **बन्ध सत्त्वकी हानि** होनेपर **संवर-निर्जरा** होती है। ये दर्शनचारित्र लब्धिपर आधारित हैं। दर्शनचारित्र लब्धिके निमित्तसे प्रथम ही मिथ्यात्व, नारक गति आदि अति अप्रशस्त प्रकृतियोंका और बादमें ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियों वा प्रशस्त प्रकृतियोंके बन्धका अभाव हो जाता है। वहाँ प्रकृति बन्धका क्रमसे घटनेका नाम **प्रकृतिबन्धापसरण** है। प्रदेशबन्ध योगोंके अनुसार है इसलिए योगोंकी चंचलता हीन होनेपर **प्रदेशबन्ध** हीन हो जाता है। सर्वथा योग नाश होनेपर प्रदेशबन्धका भी सर्वथा अभाव हो जाता है। स्थितिबन्ध कषायोंके अनुसार होता है इसलिए मिथ्यात्वादि कषायोंके कम होनेपर स्थितिबन्ध क्रमसे हीन हो जाता है जिसे **स्थितिबन्धापसरण** कहते हैं। पूर्वमें जितना स्थितिबन्ध होता था उससे विवक्षित कालमें जितना स्थितिबन्ध घटा उसी प्रमाण लिये स्थितिबन्ध अपसरण है। स्थितिबन्धापसरण होनेपर जितने कालमें समान स्थितिबन्ध सम्भव हो वह स्थितिबन्धापसरण काल है। **उदाहरण** : पूर्वमें १ लाख वर्ष मात्र स्थितिबन्ध सम्भव था। उसके एक हजार वर्ष प्रमाण मान लो स्थितिबन्धापसरण हुआ। तब अवशेष ९९००० वर्ष मात्र स्थितिबन्ध रहा। स्थितिबन्धापसरणके कालके पहले समयमें इतना स्थितिबन्ध होता है। इतना ही दूसरे समय, इत्यादि समान स्थितिबन्ध होता रहता है। बादमें मान लो ८०० वर्ष मात्र अन्य स्थितिबन्धापसरण हुआ, तब ९८२०० वर्ष मात्र शेष स्थितिबन्ध रहा। उस स्थितिबन्धापसरण कालके प्रथमादि समयोंमें उतना समान स्थितिबन्ध होता रहेगा। इस प्रकार स्थितिबन्ध घटते अपनी व्युच्छित्ति होनेके समयमें जघन्य स्थितिबन्ध होता है। बादमें **स्थितिबन्धका नाश** होता है। यह आयु बिना सर्व प्रकृतियोंका उपरोक्त क्रममें होता है। आयुका स्थितिबन्धापसरण सम्भव नहीं होता है क्योंकि नरक बिना तीन आयुका स्थितिबन्ध विशुद्धिसे अधिक होता है। पुनः अन्य सर्व शुभाशुभ प्रकृतियोंका स्थितिबन्ध संक्लेशतासे बहुत होता है और विशुद्धतासे स्तोक होता है।

अनुभाग बन्ध पापप्रकृतियोंका संक्लेशसे बहुत होता है और विशुद्धतासे स्तोक होता है। पुण्य प्रकृतियोंका संक्लेशतासे स्तोक होता है विशुद्धिसे अधिक होता है। इस प्रकार अनन्तगुणा वा यथासम्भव घटता वा बढ़ता अप्रशस्त वा प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध अधिक हीन क्रमसे जैसे जहाँ सम्भव होता है वहाँ वैसे जानना चाहिए। पुनः प्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग बन्ध अधिक होनेसे आत्माका कथंचित् बुरा

नहीं होता इसलिए संसारमें रहना तो स्थिति बन्धके अनुसार है। घातियोंके द्वारा आत्मगुणोंका घात होनेसे घातिया अप्रशस्त ही है इसलिए दर्शन चारित्रकी लब्धिसे प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागकी अधिकता, अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागकी हीनता होती है। इस प्रकार कषायोंका अभाव होनेपर **अनुभाग बन्धका अभाव** होता है।

सत्त्व नाशका क्रम इस प्रकार है—दर्शनचारित्र लब्धिके निमित्तसे सर्वप्रथम मिथ्यात्वादि अति अप्रशस्त प्रकृतियोंका, तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि अप्रशस्त प्रकृतियोंका और फिर प्रशस्त प्रकृतियोंका सत्त्व नाश होता है। सत्त्व नाश स्वमुख उदय द्वारा तथा परमुख उदय द्वारा दोनों प्रकार होता है। वहाँ जो प्रकृति अपने ही रूप रहकर अपनी स्थिति सत्त्वके अन्त निषेकका उदय होनेपर अभावको प्राप्त होती है उसका स्वमुख उदय द्वारा सत्त्व नाश होता है। जैसे संज्वलन लोभ प्रकृति, क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तमें अपने ही रूप उदय होकर नाशको प्राप्त होती है। जो प्रकृति संक्रमणके वशसे अन्य प्रकृति रूप परिणमन कर अपने अभावको प्राप्त होती है उसका परमुख उदय द्वारा सत्त्व नाशको प्राप्त होता है। एक-एक सत्ताके निषेकोंके परमाणु एक-एक समयमें उदय रूप होकर निर्जरित होते हैं। दर्शनचारित्र लब्धिके निमित्तसे ऊपरके निषेकोंके परमाणु निचले निषेक रूप होकर परिणमते हैं। वहाँ एक-एक समयमें साधिक समयप्रबद्धकी वा अनेक समय प्रबद्धोंकी निर्जरा होती है। इस प्रकार निर्जरा अधिक किन्तु बन्ध थोड़ा होता है। यहाँ तक कि किसी कालमें किसी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता है, केवल निर्जरा ही होती है। इस प्रकार सर्व कर्म परमाणुओंका नाश होनेपर **सर्वथा प्रदेश सत्त्व नाश** होता है।

अब स्थिति सत्त्व नाश क्रमका वर्णन है। एक-एक समय व्यतीत होते स्थिति सत्त्व एक-एक समय घटता है। दर्शनचारित्र लब्धिके निमित्तसे स्थिति काण्डक विधानसे और अपकृष्टि विधानसे स्थिति सत्त्वका घटना होता है।

काण्डक विधान : बहुत प्रमाण लिये स्थिति सत्त्व था, उसके समय-समय प्रति उदय आने योग्य बहुत ही निषेक थे, उनमें कितने एक ऊपरके निषेकोंका नाश कर स्थिति सत्त्व घटाया जाता है। वहाँ उन नाश करने योग्य निषेकोंके जो सर्व परमाणु हैं उनका नाश करनेके पश्चात् जो स्थिति रहेगी उसके आवली मात्र ऊपरके निषेक छोड़कर सर्व निषेकोंमें मिलते हैं। वहाँ उन सर्व परमाणुओंमें कितने एक परमाणु पहले समयमें मिलते हैं, कितने एक दूसरे समयमें मिलते हैं, इस प्रकार यथासम्भव अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त परमाणुओंको निचले निषेकमें प्राप्त करते हैं। वहाँ अन्त समयमें अवशेष रहे सर्व परमाणुओंको निचले निषेकमें प्राप्त होते रहते उन नाश करने योग्य निषेकोंका नाश हुआ, तब जितने निषेकोंका नाश हुआ उतने समय प्रमाण स्थिति सत्त्व वहाँ घट जाता है।

उदाहरण—मान लो स्थिति सत्त्व ४८ समय मात्र था। उसके ४८ ही निषेक थे। उन सर्व निषेकोंके मान लो २५००० परमाणु थे। उनमें ८ निषेकोंका नाश करनेपर वहाँ उन निषेकोंके १००० परमाणु हैं। अवशेष ४० निषेकोंमें ऊपरके दो निषेक छोड़कर नीचेके ३८ निषेकोंमें वे १००० परमाणु मिलते हैं। वहाँ उन निषेकोंमें कई परमाणु पहले समयमें, कई दूसरे समयमें, इस प्रकार चार समय पर्यन्त मिलते हैं। वहाँ चौथे समय अवशेष सर्व परमाणुओंको उन ३८ निषेकोंमें मिलनेपर उन ८ निषेकोंका अभाव हो जाता है। उनका अभाव होनेपर ४८ समयका स्थिति सत्त्व था वह अब ४० समयका शेष रहा।

इस प्रकार निषेकोंको क्रमसे निचले निषेक रूप परिणमाकर स्थितिका घटाना **स्थिति काण्डक** है। इस एक काण्डकमें निषेकोंका नाश कर जितनी स्थिति घटायी गयी उसके प्रमाणका नाम **स्थिति काण्डक आयाम** है। उपरोक्त उदाहरणमें आठ समय यह आयाम है। उसके नाश करने योग्य निषेकोंका जो सर्व द्रव्य है उसका नाम **काण्डक द्रव्य** है, यहाँ उदाहरणमें १००० है। इस द्रव्यको अवशेष स्थितिके निषेकोंमें

मिलाते हैं। वहाँ आवली मात्र निषेकोंमें नहीं मिलाया जाता है, इस आवलीको **अतिस्थापनावली** कहते हैं। यहाँ उदाहरणमें यह दो निषेक हैं। पुनः इसके बिना अवशेष स्थितिके ३८ निषेकोंमें उस काण्डक द्रव्यको मिलाना **काण्डकोत्करण अथवा काण्डकघात** संक्रिया (?) कहलाती है। एक काण्डकका उत्कर्षण अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा पूर्ण होता है। जिसका नाम **काण्डकोत्करण काल** है, यहाँ उदाहरणमें यह चार समय है। पुनः इस कालके प्रथम समयमें उस काण्डक द्रव्यका ग्रहण कर जितने परमाणु अवशेष निषेकोंमें मिलाये गये उसका नाम **प्रथम फालि** है। द्वितीय समयमें मिलाये गये परमाणु, **द्वितीय फालि** कहलाते हैं। इसी प्रकार क्रमशः अन्तिम समयमें मिलाये गये का नाम **चरम फालि** है। इस तरह एक काण्डक समाप्त होनेपर द्वितीय काण्डक प्रारम्भ होता है। ऐसे ही अनेक काण्डक होनेपर, स्तोक स्थिति सत्त्व अवशेष रहनेपर काण्डक क्रिया नहीं होती है। इस अवशेष स्थितिका नाश एक-एक समय व्यतीत होते कम (?) होता है।

अपकृष्टि विधान—विवक्षित कर्म प्रकृतिके सर्व निषेक सम्बन्धी सभी परमाणु राशिमें अपकर्षण भागहारका भाग देनेपर एक भाग मात्र परमाणु ग्रहण करनेपर **अपकृष्ट द्रव्य**का प्रमाण होता है। उस अपकृष्ट द्रव्यमें कितने एक परमाणु उदयावलीमें मिलते हैं, कितने एक प्रमाण गुणश्रेणी आयाममें मिलते हैं, अवशेष परमाणु उपरितन स्थितिमें मिलाते हैं। वहाँ वर्तमान समयसे लगाकर आवलीमात्र समय सम्बन्धी जो निषेक हैं उनका नाम **उदयावली** हैं। उन निषेकोंमें उदयावलीमें देने योग्य जो द्रव्य है, उसको निषेक निषेक प्रति एक-एक चय घटता क्रम-क्रमसे मिलाते हैं। पुनः उन आवली मात्र निषेकोंके उपरिवर्ती, यथा-सम्भव अन्तर्मुहूर्तके समय सम्बन्धी जो निषेक हैं उनका नाम **गुणश्रेणी आयाम** है।

गुणश्रेणी आयाम निषेकोंमें देने योग्य जो द्रव्य है उसे निषेक-निषेक प्रति असंख्यातगुणा क्रम लिये मिलाते हैं। उनके उपरिवर्ती अवशेष सर्व स्थति सम्बन्धी निषेकोंका नाम **उपरितन स्थिति** है। उनमें अन्तके आवली मात्र निषेकोंमें तो द्रव्य नहीं मिलाते हैं, इस आवलीका नाम **अतिस्थापनावली** है। उसके बिना अन्य निषेकोंमें उपरितन स्थितिमें देने योग्य जो द्रव्य है उसे **नानागुणहानि** रचना द्वारा निषेक प्रतिचय घटते क्रमसे मिलाते हैं।

उदाहरण—मान लो विवक्षित कर्म प्रकृतिकी स्थिति ४८ समय है। उसके ४८ निषेक हैं तथा परमाणु २५००० हैं। इसमें अपकर्षण भागहार प्रमाण (मान लो) पाँचका भाग देनेपर ५००० हुए। सर्व परमाणुओंमेंसे इतने ५००० परमाणु ग्रहण कर उनमेंसे २५० परमाणु उदयावलीमें देते हैं। इस प्रकार ४८ निषेकोंमेंसे प्रथमादि चार निषेक उदयावलीके हैं, उनमें चय घटते क्रमसे मिलाते हैं। पुनः १००० परमाणु गुणश्रेणि आयाममें देते हैं। इसलिए पाँचवाँ आदि बारहवें पर्यन्त जो ८ निषेक गुणश्रेणी आयामके हैं उनमें असंख्यात गुणाक्रम लिये मिलाते हैं। ३७५० परमाणु उपरितन स्थितिमें देते हैं, वहाँ ३६ निषेक अवशेष रहनेवालोंमें अन्तके ४ निषेक छोड़ देते हैं क्योंकि वे अतिस्थापनावलीके हैं। अवशेष तेरहवाँसे लेकर चवालीस पर्यन्त ३२ निषेकोंमें नानागुणहानिकी रचना लिये चय घटते क्रममें मिलाते हैं। मिलानेका विधान आगे वर्णित है।

कहीं **उदयादिक गुणश्रेणि आयाम** होता है। अपकृष्ट द्रव्यमें कितने एक द्रव्यको तो गुणश्रेणी आयाम प्रमाण जो वर्तमान समय सम्बन्धी निषेकसे लगाकर निषेकोंमें असंख्यात गुणाक्रमसे मिलाते हैं। अवशेषको उपरितन स्थितिमें मिलाते हैं। इस प्रकार यहाँ गुणश्रेणि आयाममें उदयावली गर्भित होती है।

गुणश्रेणि आयाममें कहीं गलितावशेष और कहीं अवस्थित होता है। गलितावशेष गुणश्रेणिका प्रारम्भ करनेके लिए प्रथम समयमें जो गुणश्रेणि आयामका प्रमाण था, उसमेंसे एक-एक समय व्यतीत होते उसके द्वितीयादि समयोंमें गुणश्रेणि आयाम क्रमसे एक एक निषेक घटता हुआ अवशेष रहेका नाम **गलितावशेष** है। **अवस्थित** गुणश्रेणि आयामके प्रारम्भ करनेके प्रथम-द्वितीयादि समयोंमें गुणश्रेणि आयाम जितनाका तितना

बना रहता है। ज्यों-ज्यों एक-एक समय व्यतीत होता जाता है, त्यों-त्यों गुणश्रेणि आयामके अनन्तरवर्ती ऐसे उपरितन स्थितिके एक-एक निषेक गुणश्रेणि आयाममें मिलते जाते हैं—इसीका नाम **अवस्थित गुणहानि आयाम** है। इसी गुणश्रेणि आयामके अन्तके बहुतसे निषेकोंका नाम कहीं **गुणश्रेणि शीर्ष** कहा गया है। कहीं-कहीं अन्तके एक निषेकका ही नाम **गुणश्रेणी शीर्ष** है क्योंकि शीर्ष नाम उपरितन अंगका ही है। इस प्रकार यथासम्भव **गुणश्रेणी निर्जरा**का विधान जानना चाहिए।

यहाँ उदयावलीमें दिये गये द्रव्यका नाम **उदीरणा** जानना चाहिए। जहाँ स्तोक स्थिति सत्त्व अवशेष रहे वहाँ गुणश्रेणीका भी अभाव होता है। अपकृष्ट द्रव्यमें कितना एक द्रव्यको उदयावलीमें देकर अवशेषको उपरितन स्थितिमें देते हैं। एक समय अधिक आवली मात्र स्थिति शेष रहे, आवलीके उपरिवर्ती जो एक निषेक—उसके द्रव्यका अपकर्षण कर उदयावलीके निषेकोंमें एक समय कम आवलीका उपरिवर्ती जो एक निषेक—उसके द्रव्यका अपकर्षण कर उदयावलीके निषेकोंमें एक समय रूप कम आवलीके दो त्रिभाग मात्र निषेकोंको अतिस्थापना रूप छोड़कर समय अधिक आवलीको त्रिभागमात्र निषेकोंमें मिलाते हैं। वहाँ **जघन्य उदीरणा** नाम पाते हैं। ऐसा अपकृष्टि विधान है।

काण्डक विधानमें स्थिति सत्त्वका घटना मूलसे होता है क्योंकि ऊपरके अनेक निषेकोंका नाश कर स्थिति सत्त्वका घटना मूलसे है। पुनः **अनुकृष्टि विधान**में ऊपरके निषेकोंके अनेक परमाणुओं ही की स्थिति घटाना होती है। मूलसे निषेक नाश नहीं होता, इसलिए मूलसे स्थिति सत्त्वका घटाना नहीं होता है। स्थिति सत्त्वमें आवली मात्र अवशेष रहनेका नाम **उच्छिष्टावली** है। उसमें उदीरणा आदि कार्य नहीं होते हैं। पूर्वमें ये कार्य हुए थे जिनके द्वारा एक-एक समयमें उदय आने योग्य ऐसे अनेक समयप्रबद्ध मात्र परमाणुओं-के समूह रूप निषेक हुए, उन्हींके द्वारा एक समयमें गलने और निर्जरित होते हैं। इसका नाम **अधोगलन** है। इस प्रकार उच्छिष्टावली व्यतीत होनेपर सर्वथा स्थिति सत्त्व नाश होता है।

सत्ता रूप विवक्षित कर्म प्रकृतिके परमाणुओंमें अनुभागकी अधिकता हीनता लिये स्पर्धक रचना होती है। वहाँ नीचेके स्पर्धक स्तोक अनुभागयुक्त होते हैं। ऊपरके स्पर्धक बहुत अनुभाग युक्त होते हैं। वहाँ जो निषेक उदयमें आते हैं उनके अनुभागका भी उदय पूर्वोक्त प्रकार होता है। दर्शन चारित्र लब्धिके द्वारा अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनुभाग घटाना सम्भव होता है। वहाँ जिस प्रकार स्थिति घटाने हेतु काण्डक विधान कहा गया है वैसे यहाँ भी विधान जानना चाहिए। वह निम्न प्रकार है—

बहुत अनुभागयुक्त ऊपरके बहुत स्पर्धकोंका अभाव कर उनके परमाणुओंको स्तोक अनुभाग युक्त नीचेके स्पर्धकोंमें क्रमसे मिलाकर अनुभागके घटानेका नाम **अनुभाग काण्डक** है अथवा **अनुभाग खण्डन** है। अनुभागको लांछित करना अथवा खण्डित करना **अनुभाग काण्डकोत्करण** अथवा **अनुभाग काण्डक घात** कहते हैं। एक अनुभाग काण्डकका घात अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्पूर्ण होता है। इस कालका नाम **अनुभाग काण्डकोत्करण काल** है। इस काल अन्तरालमें नाश करने योग्य स्पर्धकोंके परमाणुओंको ग्रहण कर नाश करनेके पश्चात् जो अवशेष स्पर्धक रहें उनमें कितने एक ऊपरके स्पर्धक अतिस्थापना रूप छोड़कर अन्य सर्व निषेकोंमें मिलाते हैं।

उदाहरण : मान लो विवक्षित प्रकृतिके पाँच सौ स्पर्धक थे। उनमें अनन्तके प्रमाण प्रतीक ५ का भाग देनेसे प्राप्त बहुभाग प्रमाण ४०० स्पर्धकोंका नाश करते हैं। वहाँ उनके परमाणुओंको अवशेष १०० स्पर्धकोंमें इस प्रकार मिलाते हैं कि १० स्पर्धक अतिस्थापना रूप छोड़कर ९० स्पर्धकोंमें उक्त निक्षिप्त हो जायें।

यहाँ एक अनुभाग काण्डक द्वारा जितना अनुभाग घटाया गया उसका नाम **अनुभाग कांडक आयाम** है। पुनः नाश करने योग्य स्पर्धकोंके सर्व परमाणुओंको ग्रहण कर अनुभाग काण्डकके प्रथम समयमें जितनी परमाणु राशि अवशेष स्पर्धकोंमें मिलायी उसका नाम **प्रथम फालि** है। द्वितीय समय जो मिलायी गयी उसका नाम **द्वितीय फालि** है। इत्यादि क्रम है। इस प्रकार एक काण्डककी समाप्ति कर अन्य काण्डकका प्रारम्भ होता है। इस तरह अनेक अनुभाग काण्डकों द्वारा अनुभाग घटाते हैं। जहाँ विशुद्धता बहुत होती है वहाँ अन्तर्मुहूर्तमें होता था जो काण्डकघात उसके अनुभागका **समयापवर्तन** होता है। वहाँ समय-समय प्रति अनन्त गुणे क्रमसे अनुभाग घटाते हैं। पूर्व समयमें जो अनुभाग था, उसमें अनन्तका भाग देनेसे प्राप्त बहुभाग-का नाश कर एक भाग मात्र अनुभाग अवशेष रखते हैं। इस प्रकार समय-समय प्रति अनुभागका घटाना होनेसे इसका नाम **अनुसमयापवर्तन** है। [काण्डक पोरको कहते हैं। कुछ अनुभागके हिस्से करके, एक-एक हिस्सेका फालिक्रमसे अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा अभाव करना **अनुभाग काण्डक घात** है। प्रतिसमय अनन्त बहुभाग अनुभागका अभाव करना **अनुसमयापवर्तन** है।]

संज्वलन कषायमें अनुभाग घटनेके क्रमसे अपूर्व स्पर्धक रचना और बादर कृष्टि रचना होती है। संज्वलन लोभमें सूक्ष्म कृष्टि रचना होती है। सर्वत्र स्तोक अनुभाग युक्तकी रचना नीचे होती है और बढ़ती अनुभाग रचना ऊपर होती है। उसकी अपेक्षा स्पर्धकोंकी कृष्टियोंको नीचे ऊपर कहते हैं। इस क्रमसे अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभाग सत्त्वका नाश होता है। प्रकृति सत्त्वका नाश होनेपर सर्वथा उनके अनुभाग सत्त्वका नाश होता है। प्रशस्त प्रकृतियोंका काण्डकादि विधानसे अनुभाग सत्त्वका नाश करते हैं। प्रकृति सत्त्वके साथ उनके अनुभाग सत्त्वका नाश जानना चाहिए। इस क्रमसे निर्जराका विधान है।

प्रयोजित संज्ञाएँ

कर्म प्रकृतियोंके कथनमें उनके परमाणुओंका नाम **द्रव्य** है। बन्धरूप परमाणुओंका नाम **बन्ध द्रव्य** है। सत्त्व रूप परमाणुओंका नाम **सत्त्व द्रव्य** है। स्थिति काण्डकके निषेकोंके परमाणुओंका नाम **काण्डक द्रव्य** है। वहाँ प्रथमादि फालियोंके परमाणुओंका नाम प्रथमादि **फालि द्रव्य** है। ऊपरके वा नीचेके निषेक छोड़कर बीचके कितने एक निषेकोंका अभाव करनेरूप **अन्तरकरण** होता है। वहाँ अभाव करने रूप निषेकों-के परमाणुओंका नाम **अन्तरकरण द्रव्य** है। उदय आनेके अयोग्य किये परमाणुओंका नाम **उपशम द्रव्य** है। विवक्षित सत्ता रूप निषेक थे, उनमें नवीन मिलाये गये परमाणुओंको **दीयमान द्रव्य** कहते हैं। सत्तारूप थीं, उनमें नवीन परमाणुओंके मिलने पर जो सर्वपरमाणुओंका समूह बना उसे **दृश्यमान द्रव्य** कहते हैं (?)। काण्डकका नाम **पर्व** (पोरा) भी है। जिस प्रकार गन्नेको पेरा जाता है उसी प्रकार मर्यादारूप स्थानका नाम **पर्व** है। जिस प्रकार स्थितिमें घटनेका मर्यादारूप स्थान होता है, उसका नाम **स्थिति काण्डक** है। अनुभागमें भी घटनेका मर्यादा रूप स्थान होता है, उसका नाम **अनुभाग काण्डक** है। अनन्तानुबन्धीकी स्थितिमें चार स्थान ही चार पर्व कहे जाते हैं। पुनः अपकृष्ट द्रव्यके मिलानेके जहाँ तीन स्थान है वहाँ तीन **पर्व** कहे जाते हैं।

आयाम का दूसरा नाम लम्बाई है जो युगपत्से भिन्न कालके प्रमाणकी संज्ञा रूप है। कहीं ऊपर-ऊपर रचना होती है वहाँ उनके प्रमाणमें भी आयाम संज्ञा होती है। जैसे, स्थितिके प्रमाणका नाम **स्थिति आयाम** है। स्थिति काण्डकके निषेकोंके प्रमाणका नाम **स्थिति काण्डक आयाम** है। अन्तरकरणमें जितने निषेकोंका अभाव किया गया हो उसका नाम **अन्तरायाम** है। गुणश्रेणिके निषेकोंके प्रमाणका नाम **गुण श्रेणि आयाम** है।

गुण नाम **गुणकार** का है। गुणकारकी पंक्ति लिए जहाँ निषेकोंमें द्रव्य देते हैं उसका नाम **गुणश्रेणी** है। समय-समय गुणकार लिये विवक्षित प्रकृतिके परमाणु अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करनेका नाम **गुणसंक्रम** है। गुणकार लिये हानि अथवा हीनता या घटवारी जहाँ होती है उसका नाम **गुणहानि** है।

विवक्षित कर्मस्थितिमें निषेकोंके उपरिवर्ती निषेकोंका नाम **उपरितन स्थिति** है गुणश्रेणीके कथनमें गुणश्रेणी आयामसे उपरिवर्ती निषेकोंका नाम उपरितनस्थिति है। केवल उदीरणाके कथनमें उदयावलीसे उपरिवर्ती निषेकोंका नाम उपरितन स्थिति है।

विवक्षित प्रमाण लिये निचले निषेकोंका नाम **प्रथम स्थिति** है। पुनः उपरिवर्ती सर्वस्थितियोंके निषेकोंका नाम **द्वितीय स्थिति** है। उदाहरणार्थ, अन्तरायामसे निचले निषेकोंका नाम **प्रथम स्थिति** है। उपरले निषेकोंका नाम द्वितीय स्थिति है। अथवा संज्वलन क्रोधका जितना प्रमाण लिये प्रथमस्थिति स्थापित की गयी हो उसके निषेकोंका नाम प्रथम स्थिति है। अवशेष सर्व स्थितियोंके निषेकोंका नाम द्वितीय स्थिति है।

समुदाय रूप एक क्रियामें अलग-अलग खण्ड कर विशेष करनेका नाम **फालि** है। उदाहरणार्थ, काण्डक द्रव्यको काण्डकोत्करण कालमें अन्यत्र प्राप्त करना। वहाँ प्रथम समय जो प्राप्त किया वह काण्डककी **प्रथम फालि** है। द्वितीय समयमें जो प्राप्त किया वह **द्वितीय फालि**, इत्यादि। इसी प्रकार उपशमन कालमें प्रथम समय जितना द्रव्य उपशमाया, वह उपशमकी **प्रथम फालि** है; द्वितीय समय जो उपशमाया, वह **द्वितीय फालि** है, इत्यादि।

अन्य निषेकोंके परमाणुओंको अन्य निषेकोंमें मिलानेको अथवा देनेको **निक्षेपण** कहते हैं। दिये हुए निषेकोंको **निक्षेपण** रूप जानना चाहिए। द्वितीय स्थितिवाले निषेकोंके द्रव्यको प्रथम स्थितिवाले निषेकोंमें मिलानेकी **आगाल** संज्ञा है। प्रथम स्थितिवाले निषेकोंके द्रव्यको द्वितीय स्थितिके निषेकोंमें मिलानेकी **प्रत्यागाल** संज्ञा है। विवक्षितके कालका जो प्रमाण हो वही उसका काल है। उदाहरणार्थ, एक काण्डक के घात करनेका जो काल है उसका नाम **काण्डकोत्करण काल** है। वहाँ प्रथम समयमें प्रथम फालिका **पतन** जो निचले निषेकोंमें प्राप्त होना सो होता है। इसलिए प्रथम समयको प्रथम फालिका **पतन काल** कहते हैं। द्वितीय समयको द्वितीय फालिका पतनकाल कहते हैं। इसी प्रकार अन्त समयको **चरमफालि** का पतनकाल कहते हैं। उसके पूर्व समयको द्विचरमफालि पतन काल कहते हैं। जिस कालमें अन्तरकरण करते हैं उसका नाम **अन्तरकरण काल** है। जिस कालमें क्रोधको वेदता है, उसके उदयको भोगता है, उसका नाम **क्रोध वेदन काल है**।

आवली मात्र कालका अथवा उतने काल सम्बन्धी निषेकोंका नाम **आवली** है। वहाँ वर्तमान समयसे लेकर आवली मात्र कालको **आवली** कहते हैं। आवलीके निषेकोंको भी **आवली** या **उदयावली** कहते हैं। उसके उपरिवर्ती जो आवली है उसे **द्वितीयावली** कहते अथवा **प्रत्यावली** कहते हैं। बन्ध समयसे लगाकर आवली पर्यन्त उदीरणादि क्रिया जहाँ न हो सके उसका नाम **बन्धावली** या अचलावली अथवा **आबाधावली** है। द्रव्य निक्षेपण करते समय जिन आवली मात्र निषेकोंमें निक्षेपण नहीं करते हैं उसका नाम **अति-स्थापनावली** है। स्थिति सत्त्व घटते हुए जो आवलिमात्र स्थिति अवशेष रह जाये उसका नाम **उच्छिष्टावली** है। जिस आवलीमें संक्रमण पाया जाये उसे **संक्रमणावली** और जहाँ उपशमन करना पाया जाये उसे **उपशमावली** कहते हैं।

अन्तः नाम माहीका (?) है। उक्त प्रमाणसे कुछ कम होना—इसे **अन्तः** संज्ञा दी जातीहै। जैसे कोडाकोडीके नीचे और कोडीके ऊपर प्रमाणको **अन्तःकोटाकोटी** कहते हैं। मुहूर्तसे कम और आवलीसे

अधिकको **अन्तर्मुहूर्त** कहते हैं। दिवससे कुछ कमादिको अन्तर्दिवस कहते हैं। तीनके ऊपर और नौके नीचे प्रमाणका नाम पृथक्त्व है। दृष्टान्त अपेक्षा भी संज्ञाएँ होती हैं—जहाँ एक-एक चय घटते क्रममें निषेक पाये जाँय वहाँ **गोपुच्छ संज्ञा** है। द्रव्य देनेमें जहाँ ऊँटकी पीठिवत् हीनाधिकपना हो वहाँ **उष्ट्रकूट संज्ञा** है। जहाँ समान पट्टिकाके आकारवत् सर्वस्थानमें समान रचना हो वहाँ **समपट्टिका** संज्ञा है।

कर्म स्थिति वा अनुभाग रचनाओंमें एक-से करणसूत्रोंका उपयोग होता है। आय और व्यय द्रव्योंके सम्बन्धमें भी संक्रिया (?) जानने योग्य है।

करण सूत्रोंकी संप्रयुक्ति

नाना गुणहानिके सम्बन्धमें चय, घटते हुए क्रमरूप द्रव्यके विभागका विधान है। सर्वप्रथम द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दो गुणहानि और अन्योन्याभ्यस्त राशियोंका स्वरूप और प्रमाण जानना चाहिए। स्थिति रचनाके सम्बन्धमें यह उल्लेख है। विवक्षित समयमें ग्रहण किये समयप्रबद्ध प्रमाण परमाणु राशिका **द्रव्य** कहते हैं। उसकी आबाधा रहित स्थिति बन्धके समय राशिका प्रमाण है वह **स्थिति** है। वहाँ एक गुणहानिमें निषेकोंकी राशि प्रमाणको **गुणहानि आयाम** कहते हैं। स्थितिमें गुणहानियोंके प्रमाणको **नानागुणहानि** कहते हैं। गुणहानि आयामसे दुगुना प्रमाण **दो गुणहानि** कहलाता है। नाना गुणहानि मात्र दूवा (२ के अंक) विरलित कर, परस्पर गुणित करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे **अन्योन्याभ्यस्त** राशि कहते हैं। **उदाहरण**—मिथ्यात्वका द्रव्य अपने समय प्रबद्ध मात्र है। स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। स्थितिमें नानागुणहानिका भाग देनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो वह गुणहानि आयाम है। पल्यके अर्द्धच्छेदोंमें-से पल्यकी वर्गशलाकाके अर्द्धच्छेद घटानेपर जो प्रमाण प्राप्त हो वह नानागुणहानि है। गुणहानि आयामसे दूना **निषेकहार** है। पल्यमें पल्यकी वर्गशलाकाओंका भाग देनेपर जो प्राप्त हो वह अन्योन्याभ्यस्त राशि (?) है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंका विवरण है।

अनुभाग रचनाके सम्बन्धमें विवक्षित कर्म प्रकृतिके परमाणुओंका प्रमाण **द्रव्य** है। सर्व वर्गणाओंका जो प्रमाण है वह **स्थिति** है। एक गुणहानिमें वर्गणाओंके प्रमाणको **गुणहानि आयाम** कहते हैं। स्थितिमें गुणहानियोंके प्रमाणको **नानागुणहानि** कहते हैं। दूना गुणहानि मात्र **निषेकहार** है। नाना गुणहानि मात्र दूवोंको विरलित कर परस्पर गुणित करनेपर **अन्योन्याभ्यस्त** राशि प्राप्त होती है। इन छहोंका प्रमाण हीनाधिकपन लिये अनन्त प्रमाण है।

काण्डकादि द्रव्य ग्रहण कर यथायोग्य निषेकोंमें निक्षेपण करने सम्बन्धी निम्नप्रकार है। जितना द्रव्य ग्रहण किया हो वह प्रमाण मात्र **द्रव्य** है। जितने निषेकोंमे देना हो उनका प्रमाण मात्र **स्थिति** है। **गुणहानिका** प्रमाण बन्धकी स्थिति रचनामें जितना कहा उतना है। इसका भाग यहाँ सम्भव स्थितिमें देनेपर **नानागुणहानिका** प्रमाण प्राप्त होता है। दूना गुणहानि मात्र निषेकहार है। नानागुणहानि मात्र दूवों (२ के अंकों) को विरलित कर परस्पर गुणित करनेपर **अन्योन्याभ्यस्त** राशि है।

उदाहरण : अंकसंदृष्टि अनुसार मान लो द्रव्य ६३००, स्थिति ४८, गुणहानि ८, नानागुणहानि ६, दो गुणहानि १६, अन्योन्याभ्यस्त राशि $२^{६}$ अथवा ६४ है। निषेकोंमें द्रव्यका प्रमाण लानेके लिए सूत्र, "दिवड्ढगुणहानिभाजिदे पढमा" है। अर्थात् सर्व द्रव्यमें साधिक डेढ़ गुणहानिका भाग देनेपर प्रथम निषेकका द्रव्य होता है। जैसे ६३०० में साधिक १२ का भाग देनेपर ५१२ होता है। पुनः, "तं दो गुणहाणिणा

भजिये पचयं" सूत्रसे प्रथम निषेकमें दो गुणहानिका भाग देनेपर चयका प्रमाण आता है। जैसे ५१२ में १६ का भाग देनेपर ३२ होता है। यह द्वितीयादि निषेकोंमें एक-एक चय घटता प्रमाण प्राप्त कराता है। यथा, ४८० आदि।

इस क्रममें जिस निषेकमें प्रथम निषेकसे आधा प्रमाण द्रव्य हो वहाँसे दूसरी गुणहानि प्रारम्भ हो जाती है। जैसे यहाँ दूसरी गुणहानिका प्रथम निषेक ५१२ ÷ २ = २५६ होगा। यहाँ चयका प्रमाण भी प्रथम गुणहानिके चयसे आधा होगा, अर्थात् १६ होगा। इत्यादि।

अन्तिम गुणहानिका अन्तिम निषेक	९	१८	३६	७२	१४४	२८८	प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक
	१०	२०	४०	८०	१६०	३२०	
	११	२२	४४	८८	१७६	३५२	
	१२	२४	४८	९६	१९२	३८४	
	१३	२६	५२	१०४	२०८	४१६	
	१४	२८	५६	११२	२२४	४४८	
	१५	३०	६०	१२०	२४०	४८०	
	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	

इसी प्रकार अनुभाग रचना होती है। जैसे यहाँ द्रव्यादिका प्रमाण जानते हैं उसी प्रकार अनुभाग रचनामें भी जानते हैं। जैसे यहाँ निषेकोंमें परमाणु संख्याका प्रमाण निकालते हैं, वैसे ही अनुभाग रचनामें वर्गणाओंमें परमाणु संख्याका प्रमाण प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार देने योग्य द्रव्यमें भी।

उदाहरण : एक योग्य स्थानमें नानागुणहानि दो बार असंख्यात द्वारा भाजित पल्य मात्र; एक गुणहानिमें स्पर्धकोंका प्रमाण दो बार असंख्यात द्वारा भाजित श्रेणिमात्र; एक स्पर्धकमें वर्गणाओंका प्रमाण असंख्यात द्वारा भाजित श्रेणिमात्र; एक वर्गणामें वर्गोंका प्रमाण असंख्यात जगत्प्रतर मात्र; तथा एक वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेद असंख्यात लोकमात्र हैं। इनकी अर्थ संदृष्टि और अंक संदृष्टि निम्नप्रकार है—

नाम	एक वर्गमें अविभाग प्रतिच्छेद	एक वर्गणामें वर्ग	एक स्पर्धकमें वर्गणा	एक गुणहानिमें स्पर्धक	एक स्थानमें गुणहानि (नाना गुणहानि)	स्थान
अर्थ संदृष्टि	≡ a	= a	$\overline{a}$	$\overline{a\,a}$	$\overline{a\,a}^{p}$	१
अंक संदृष्टि	८	२५६	४	९	५	१

एक स्थानमें स्पर्धकों और वर्गणाओंके प्रमाण निकालने सम्बन्धी त्रैराशिक—

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
गुणहानि	स्पर्धक	गुणहानि	एक स्थान स्पर्धक
१	—	प	—— प
	अ अ	अ अ	अ अ अ अ
स्पर्द्धक	वर्गणा	स्पर्द्धक	एक स्थान वर्गणा
१	—	— प	— प —
	अ	अअ अ अ	अअ अ अ अ

यहाँ एक स्थानमें वर्गोंका प्रमाण जीव प्रदेश मात्र ≡ हैं। अविभागी प्रतिच्छेदोंका प्रमाण असंख्यात लोकमात्र ≡ अ हैं। यहाँ द्रव्यादिका प्रमाण निम्न प्रकार है—

नाम	द्रव्य	स्थिति	गुणहानि	नाना गुणहानि	दो गुणहानि	अन्योन्याभ्यस्त
अंक संदृष्टि	३१००	४०	८	५	१६	३२
अर्थ संदृष्टि	≡	— अ	— अअ	प अअ	— २ अअ	प अ

उपरोक्त प्रकार सूत्रोंसे यह सिद्ध होता है। विशेष विवरणके लिए गो. सा. अर्थसंदृष्टि, पृ. २३२ आदि देखिये।

यदि द्रव्य स्तोक हो और उसे निषेकोंमें निक्षेपित करना हो वहाँ गुणहानिकी रचना सम्भव नहीं है। वहाँ निम्नविधि अपनाते हैं—

जिस प्रकार एक गुणहानिके निषेकोंमें द्रव्यके प्रमाण लानेका विधान है, उसी प्रकार, "अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदि" इत्यादि विधानसे वहाँ प्रथमादि निषेकोंका प्रमाण प्राप्त करना चाहिए। विशेष इतना है कि यहाँ जितने निषेकोंमें द्रव्य देना हो उतने ही प्रमाण गच्छ स्थापित करना चाहिए। और जितना द्रव्य वहाँ देने योग्य हो उस प्रमाण द्रव्यको स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार करनेपर जो प्रथमादि निषेकोंका प्रमाण आवे उतने द्रव्यको विवक्षितके पूर्व वाले सत्तारूपी जो प्रथमादि निषेक पाये जायं उनमें मिला देना चाहिए। उदयावलीमें द्रव्य देना हो वहाँ, अथवा स्तोक स्थिति शेष रहने पर उपरितन स्थितिमें द्रव्य देना हो वहाँ; अथवा अन्यत्रके लिए ऐसा विधान जानना चाहिए।

पुनः गुणश्रेणि आयाम आदिमें द्रव्य निक्षेपित करनेका निम्न विधान है—"प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिण्डं प्रक्षेपाकाणां गुणको भवेदिति।" जैसे सीरके द्रव्यका नाम मिश्र पिण्ड है। सीरीनिके विसवाओंका नाम प्रक्षेप है। सो प्रक्षेपको जोड़कर उसका भाग मिश्रपिण्डको देते हैं। जो एक भाग प्रमाण आता है वह प्रक्षेपक अपने-अपने विसवेका गुणकार होता है। इनको परस्पर गुणित करने पर जो जो प्रमाण आवे वही वही अपने अपने विसवाके स्वामी जो सीरी है उनका द्रव्य जानना चाहिए। यहाँ सीरका द्रव्य मिश्रपिण्ड १७०० है, सीरीनिके विसवेका एकका १, दूसरेके ४, तीसरेके १६, चौथेके ६४, ये प्रक्षेप हैं। इनका योग ८५ है। ८५ का भाग मिश्रपिण्डको देनेपर २० प्राप्त हुआ। इसके द्वारा अपने अपने प्रक्षेप विसवोंको गुणित करनेपर पहलेका २०, दूसरेका ८०, तीसरेका ३२०, चौथेका १२८० द्रव्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार गुणश्रेणी आयाममें जितना द्रव्य देना हो उसे मिश्रपिण्ड जानना चाहिए। पुनः गुणश्रेणी आयामके प्रथम समयकी एक शलाका, द्वितीय समयकी उससे असंख्यात गुणी शलाकाएँ, तृतीय समयकी उससे भी असंख्यात गुणी

शलाकाएँ—ऐसे ही असंख्यात गुणा क्रम लिये उसके अन्तिम समय पर्यंतकी शलाकाएँ जानना चाहिए। इसका नाम **प्रक्षेपक** है। इनको जोड़नेपर जो प्रमाण आवे उसका भाग उस सर्वद्रव्यको देनेपर जो प्रमाण हो उसके द्वारा अपनी अपनी शलाकाओंके प्रमाणको गुणित करनेपर गुणश्रेणी आयामके प्रथमादि समय सम्बन्धी निषेकोंमें द्रव्य देनेका प्रमाण आता है। इतना-इतना द्रव्य गुणश्रेणी आयामके प्रथमादि निषेकोंमें मिलाना चाहिए। यह विधान **गुणसंक्रम**में भी जानना चाहिए। वहाँ जो गुणसंक्रमण कालके प्रथमादि समय सम्बन्धी एक आदि क्रमसे असंख्यातगुणी शलाकाएँ **प्रक्षेपक** हैं। जो गुणसंक्रमण द्वारा अन्य प्रकृति रूप परिणमावने योग्य सर्वद्रव्य **मिश्रपिण्ड** है। प्रक्षेपकोंके जोड़का भाग मिश्रपिण्डमें देकर लब्ध द्वारा अपनी अपनी शलाकाओंको गुणित करने पर संक्रमणकालके प्रथमादि समयोंमें अन्य प्रकृतिरूप परिणमावने योग्य द्रव्यका प्रमाण आता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी यथासम्भव मिश्रपिण्ड और प्रक्षेपकोंका प्रमाण जानकर जैसा जहाँ सम्भव हो वहाँ वैसा जानना चाहिए। सत्तामें प्राप्त निषेकोंके द्रव्यको ज्ञात करनेका विधान निम्न प्रकार है—

विवक्षित कोई समयमें जो सत्ता रूप कर्मपरमाणुओंका द्रव्य हो वहाँ स्थिति सत्त्वका प्रथम समय वर्तमान है। उसीमें उदय आने योग्य जो द्रव्य है वही प्रथम निषेकका द्रव्य है। उसका प्रमाण सम्पूर्ण समय प्रबद्ध मात्र साधारणतः है।

[अंक संदृष्टि द्वारा सत्त्वका निरूपण—यहाँ केवल एक समय प्रबद्ध आस्रवको लेकर सबसे सरल रचना की गयी है। वास्तवमें योग कषाय एवं परिणाम गत फल दुर्गम है।]

वर्तमानसे सम्पूर्णस्थिति पर्यन्त रचना ←	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	० ० ०	५	४	३	२	१
														९
													९	१०
												९	१०	११
											९	१०	११	१२
										९	१०	११	१२	१३
										१०	११	१२	१३	१४
										११	१२	१३	१४	१५
										१२	१३	१४	१५	१६
										०	०	०	०	०
										०	०	०	०	०
										०	०	०	०	०
								९	० ० ०	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८
							९	१०	० ० ०	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०
						९	१०	११	० ० ०	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२
					९	१०	११	१२	० ० ०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४
				९	१०	११	१२	१३	० ० ०	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६
			९	१०	११	१२	१३	१४	० ० ०	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५	० ० ०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०
विभिन्न समयोंमें शेष परमाणुओंका योग ←	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	० ० ०	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
	९	१९	३०	४२	५५	६९	८४	१००		४४४४	४८६०	५३०८	५७८८	६३००

↓ उदय

प्रथम गुणहानि ↓ आस्रव ↓ अन्तिम गुणहानि

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है। पूर्ववर्ती समय समय प्रति समय प्रबद्ध बाँधे उनमें जिस समय-प्रबद्धका एक भी निषेक पूर्वमें नहीं गला है उसका प्रथम निषेक इस वर्तमानमें उदय होने योग्य ५१२ है। जिसका एक निषेक पूर्वमें गल गया उसका दूसरा निषेक ४८० इस वर्तमान समयमें उदय होने योग्य है। इसी क्रमसे जिस समयप्रबद्धका एक निषेक छोड़कर अवशेष सर्व निषेक पूर्वमें गल चुके हों उसका अन्तिम निषेक ९ इस समयमें उदय होने योग्य है। इस प्रकार इन सभी ४८ समयप्रबद्धोंके एक एक निषेक मिलकर इस विवक्षित वर्तमान समयमें उदय आने योग्य सम्पूर्ण एक समय प्रबद्ध मात्र द्रव्य हुआ—यही सत्ताका प्रथम निषेक है। इसका प्रमाण ६३०० है। पुनः स्थितिसत्त्वके दूसरे समयमें उदय आने योग्य द्रव्य प्रथम निषेक घटा हुआ समयप्रबद्ध मात्र होता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रथममें जिस समयप्रबद्धका प्रथम निषेक गले उसका दूसरा निषेक है। जिसका दूसरा निषेक गले उसका तीसरा निषेक इत्यादि क्रमशः दूसरे समय उदय आने योग्य निषेक होते हैं—ये सभी मिलकर प्रथम निषेक ५१२ कम समयप्रबद्ध मात्र अर्थात् यहाँ ५७८८ होता है। इसी प्रकार स्थितिसत्त्वके तृतीय समयमें उदय आने वाला निषेक ५१२ एवं ४८० कम समयप्रबद्ध मात्र, अर्थात् ५३०८ होता है। अन्ततः अन्त समयमें उदय आने वाला निषेक यहाँ ९ होगा।

उपर्युक्त सत्ताके सभी निषेकोंका योग किंचिद् ऊन द्वयर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्ध मात्र होता है। यही सत्त्व द्रव्य है। यहाँ अंक संदृष्टि अनुसार ६३०० + ५७८८ + ५३०८ + ... + ११ + १० + ९ का योग ७१३०४ है। गुणहानि आयाम ८ के ड्योढ़े १२ से कुछ कमका गुणा समय प्रबद्ध प्रमाण ६१०० में करने पर भी ७१३०४ आता है। यह विवरण गोम्मटसारमें विशदरूपसे वर्णित है।

जिस प्रकार स्थिति सत्त्व रचनामें आय व्ययका विधान है, उसी प्रकार अनुभाग सत्त्व रचनामें भी वर्गणाओंका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार लाना चाहिए और वर्गणाओंमें यथा सम्भव द्रव्य निकालते अथवा मिलाते पूर्वोक्त प्रकार चय घटता क्रमका रहना अथवा न रहना ज्ञात करना चाहिए।

उपरोक्त विवरण मुख्यतः पण्डित टोडरमल कृत लब्धिसारकी टीकाकी पीठिकासे लिया गया है।

स्पष्ट है कि त्रिकोण यन्त्र सम्बन्धी रचना जब अर्थ संदृष्टि मय रूप लेगी तब उपरोक्त विवरणमें बीजगणितका प्रवेश हो जावेगा। और भी गहराईमें जानेहेतु आधुनिक रूपमें विकसित मेट्रिक्स यान्त्रिकी, नवीन बीजगणित, स्थलविज्ञान (Topology), तथा अन्य विश्लेषक कलनोंका उपयोग करना होगा। कारण यह है कि समयप्रबद्धमें विभिन्न प्रकृतियों मय कर्म परमाणुकी प्रदेश संख्या, उनकी स्थिति तथा अनुभाग अंश न केवल योग कषायादिके अनुसार परिणमित होते हैं, किन्तु इनकी मन्दता होनेपर विशुद्धिके अनुसार भी परिणमित होने लगते हैं। और ये घटनाएँ सूक्ष्म जगत्में होनेके कारण, साथ ही समूह रूपमें होनेके कारण, सहज होते हुए भी कूटस्थ विश्लेषणका विषय बन जाती हैं।

अगले पृष्ठोंमें अर्थ संदृष्टि मय कुछ प्रकरण प्रस्तुत किये जायेंगे जिनसे उन विधियोंका ज्ञान हो सकेगा जो जैन स्कूलमें कर्म सिद्धान्तके सूक्ष्म विवेचन हेतु उपयोगमें लायीं गयीं। मुख्यतः वे वही हैं जिन्हें पारिभाषिक रूपसे ऊपर वर्णित किया जा चुका है, और अब उन्हें प्रयोग रूपमें गणितीय परिधानमें कुछ चुने हुए प्रकरण लेकर स्पष्ट किया जायेगा। गणितीय प्रणालीके इस प्राचीन रूपको आधुनिक सांचेमें ढालनेका प्रयास किया जा रहा है और आने वाली पीढ़ीके शोधार्थीके लिए इस गूढ़ विषयको और भी अधक एवं अगम्य प्रयासों द्वारा विश्लेषित करने हेतु यह सामग्री एक दिशा दे सकेगी।

विगत पृष्ठोंमें अधःप्रवृत्तकरण सम्बन्धी संदृष्टि बतलायी गयी है। यहाँ अपूर्वकरणके सम्बन्धमें गणितीय प्रक्रिया बतलायेंगे।

अर्थ संदृष्टि द्वारा अपूर्वकरणमें समस्त परिणामधन श्रे^{3} ə श्रे^{3} ə होता है। गच्छ दो बार संख्यात गुणित आवली प्रमाण, अपूर्वकरणका कालमात्र आ १ होता है। यहाँ १ संख्यात है। आ आवलि, श्रे जगश्रेणी और ə असंख्यात है।

[1]इस प्रकार चय $= \frac{\text{सर्व द्रव्य}}{(\text{गच्छ})^2\ (\text{संख्यात})} = \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्र}^3\ ə}{(\text{आ}\ १)\ (\text{आ}\ १)\ (१)}$

इसी प्रकार,

$$\text{चयधन} = \left(\frac{\text{गच्छ}-१}{२}\right)\ (\text{चय})\ (\text{गच्छ})$$

$$= \left(\frac{\text{आ}\ १ - १}{२}\right)\left(\frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə}{(\text{आ}\ १)\ (\text{आ}\ १)\ (१)}\right)(\text{आ}\ १)$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ (\text{आ}\ १ - १)\ (\text{आ}\ १)}{(\text{आ}\ १)\ (\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ (\text{आ}\ १ - १)}{(\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

आगे, सर्वधन–चयधन

$$= \text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə - \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ (\text{आ}\ १ - १)}{(\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ (\text{आ}\ १)\ (१)\ (२) - \text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ (\text{आ}\ १ - १)}{(\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ [\text{आ}\ १\ \{(१)\ (२) - १\} + \text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə}{(\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ [\text{आ}\ १\ \{(१)\ (२) - १\} + १]}{(\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

अब प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम संख्या

$$= \frac{\text{सर्वधन} - \text{चयधन}}{\text{गच्छ}}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3\ ə\ \text{श्रे}^3\ ə\ [\text{आ}\ १\{(१)\ (२) - १\} + १]}{(\text{आ}\ १)\ (\text{आ}\ १)\ (१)\ (२)}$$

---

१. यहाँ चय निकालनेमें सूत्रमें जो संख्यातका उपयोग हुआ है, वह महत्त्वपूर्ण है। कुट्टीकार विधिसे इसका ठीक मान निकालना महावीराचार्यने गणितसार संग्रहमें बतलाया है, क्योंकि यह एक अज्ञात राशि है।

द्वितीय समय सम्बन्धी परिणाम संख्या

$$= \text{प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम संख्या} + \text{चय}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ } [\text{आ } ११ \{(१)(२) - १\} + १]}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)(२)} + \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ}}{(\text{आ}११)(\text{आ } ११)(१)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ } [\text{आ } ११\{(१)(२) - १\} + ३]}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)(२)}$$

इस प्रकार एक-एक चय मिलाते एक कम गच्छ मात्र चय प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम संख्यामें मिलानेपर अन्त समय सम्बन्धी परिणाम संख्या होती है ।

अन्त समय सम्बन्धी परिणाम संख्या

$$= \text{प्रथम समय सम्बन्धी परिणाम संख्या} + (\text{गच्छ} - १)(\text{चय})$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ } [\text{आ } ११ \{(१)(२) - १\} + १]}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)(२)} + (\text{आ } ११ - १)\frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ}}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ } [\text{आ } ११\{(१)(२) + १\} - १]}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)(२)}$$

उपर्युक्तमें-से दो द्वारा समच्छेद किया हुआ एक चय घटानेपर उपान्त समय सम्बन्धी परिणाम पुंज प्राप्त होता है ।

उपान्त समय सम्बन्धी परिणामपुंज

$$= (\text{अन्त समय सम्बन्धी परिणाम संख्या}) - (\text{चय})$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ } [\text{आ } ११\{(१)(२) + १\} - १]}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)(२)} - \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ}}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)}$$

$$= \frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ श्रे}^3 \text{ अ } [\text{आ } ११ \{(१)(२) + १\} - ३]}{(\text{आ } ११)(\text{आ } ११)(१)(२)}$$

इस प्रकार अपूर्वकरणमें संदृष्टि कही गयी है । इसमें अनुकृष्टि रचना नहीं होती है । अधःप्रवृत्तकरणमें विशेष विशुद्धता किये हुए परिणामोंके होनेपर भी गुणश्रेणी निर्जरा, गुण संक्रमण, स्थितिकाण्डोत्करण, अनुभागकाण्डोत्करण—ये चार आवश्यक नहीं होते हैं, परन्तु अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा ये होते हैं । कारण कि त्रिकालवर्ती नाना जीव सम्बन्धी अपूर्वकरण रूप विशुद्ध परिणाम सर्व भी अधःप्रवृत्त परिणामोंसे असंख्यात लोक गुणित होकर इस योग्यताको प्राप्त होते हैं । अपूर्वकरणके कालमें प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त परिणाम स्थान असंख्यात लोक बार षट्स्थान पतित वृद्धिको लिये हुए जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे युक्त होते हैं । उनके प्रतिसमय और प्रत्येक परिणामस्थानके प्रति विशुद्धिके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण अवधारण हेतु अल्पबहुत्व निम्न प्रकार है—

प्रथम समयवर्ती सबसे जघन्य परिणामकी विशुद्धि अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समय सम्बन्धी अन्तिम खण्डकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे यद्यपि अनन्तगुणे अविभाग प्रतिच्छेदोंको लिये हुए है, तथापि अपूर्वकरणके अन्य परिणामोंकी विशुद्धिसे स्तोक है। उससे प्रथम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धि अनन्तगुणी है। उससे द्वितीय समयवर्ती जघन्य परिणाम विशुद्धि अनन्त गुणी है। कारण यह है कि प्रथम समय सम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धिसे असंख्यात लोकमात्र षट्स्थानोंका अन्तराल $\frac{\text{श्रे}^3 \text{ अ } \text{श्रे}^3 \text{ अ}}{\left(\frac{\text{आ}+१}{\text{अ}}\right)^५}$ देकर वह द्वितीय समवर्ती जघन्य विशुद्धि उत्पन्न होती है। उससे उसी द्वितीय समयकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धि अनन्त गुणी है। इस तरह उत्कृष्टसे जघन्य और जघन्यसे उत्कृष्ट विशुद्धि स्थान अनन्त गुणे हैं। इस प्रकार सर्प गतिकी भाँति अपूर्वकरणके चरम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धि पर्यन्त जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धिका अल्पबहुत्व है।

अपूर्वकरण गुणस्थानके प्रथम भागमें निद्रा और प्रचलाके बन्धकी व्युच्छित्ति मनुष्य आयुके विद्यमान होते होती है। उपशम श्रेणिपर आरोहण करनेवाले अपूर्वकरणवाले जीवका प्रथम भागमें मरण नहीं होता है। यदि ऐसे मनुष्य उपशम श्रेणीपर आरोहण करते हैं तब वे नियमसे चारित्र मोहनीयका उपशम करते हैं। यदि क्षपक श्रेणिपर आरोहण करते हैं तो वे नियमसे चारित्रमोहनीयका क्षपण करते हैं। क्षपक श्रेणिमें सर्वत्र नियमसे मरण नहीं है।

अनिवृत्तिकरणमें परिणाम विशेषके अभावसे विशेष संदृष्टि नहीं है। इसका काल आ १ है। इसके कालके एक समयमें वर्तमान त्रिकालवर्ती नाना जीव जैसे शरीरका आकार वर्ण, वय, अवगाहना, ज्ञानोपयोग आदिसे परस्परमें भेदको प्राप्त होते हैं, उस प्रकार विशुद्ध परिणामोंके द्वारा भेदको प्राप्त नहीं होते हैं। अनिवृत्तिकालके प्रथम समयसे लेकर प्रतिसमय वर्तमान सर्व जीव हीन अधिक परिणामसे रहित समान विशुद्ध परिणामवाले होते हैं। वहाँ जो प्रति समय अनन्तगुणी अनन्तगुणी विशुद्धि लिये परिणाम होते हैं उनसे दूसरे समयमें होनेवाले परिणामोंकी विशुद्धि अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी है। अनिवृत्तिकरण परिणामवाले जीव विमलतर ध्यानरूपी अग्निकी ज्वालासे कर्मरूपी वनको जलाकर चारित्रमोहका उपशम अथवा क्षपण करते हैं।

उपर्युक्त तीन करणोंके निमित्तसे होनेवाले सत्त्वादि द्रव्य प्रदेश, प्रकृति, अनुभाग एवं स्थितिमें परिवर्तन की गणितीय प्रणालीके लिए यहाँसे लब्धिसारका अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए।

सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानके विवरणमें हम नवीन प्रतीक निम्न प्रकार लेकर निरूपण कर सकते हैं।

जघन्य वर्गणा	$व_{ज}$
एक गुणहानिमें स्पर्द्धक	$गु_{स्प}$
नानागुणहानि	ना
अनन्त	ख
अपकर्षण भागहार	उ
एक स्पर्धकमें वर्गणाएँ	$स्प_{व}$

स्पर्धक शलाकाओंमें असंख्यात अपकर्षण भागहारका भाग देने पर $गु_{स्प}$ ÷ उ ० का प्रमाण प्राप्त होता है। अविभागी प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा नाना गुणहानि और स्पर्धक शलाका गुणि जघन्य वर्गमात्र उत्कृष्ट पूर्व स्पर्धक वर्गोंकी संदृष्टि $व_{ज}$ $गु_{स्प}$ ना होती है। जघन्य वर्गमात्र जघन्य पूर्व स्पर्धकके वर्गकी संदृष्टि $व_{ज}$ है। इसमें अनन्तका भाग देनेपर उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धकका प्रमाण $व_{ज}$ ÷ ख प्राप्त होता है। इसे असंख्यात गुणित अपकर्षण भागहार द्वारा भाजित स्पर्धक शलाकाका भाग देनेपर जघन्य अपूर्व स्पर्धकका प्रमाण $व_{ज}$ ÷ (ख $गु_{स्प}$ ÷ उ ०) प्राप्त होता है। उपर्युक्तमें अनन्तका भाग देनेपर उत्कृष्ट बादर कृष्टिके वर्गोंका प्रमाण $व_{ज}$ ÷ (ख $गु_{स्प}$ ख ÷ उ ०) प्राप्त होता है। इसमें वर्गणाशलाकाके अनन्तवें भागका भाग देनेपर जघन्य बादर कृष्टिके वर्गोंका प्रमाण $व_{ज}$ ÷ [(ख $गु_{स्प}$ ख $स्प_{०}$) ÷ (उ ० ख)] प्राप्त होता है। इसमें अनन्तका भाग देनेपर उत्कृष्ट सूक्ष्म कृष्टिके वर्गोंका प्रमाण $व_{ज}$ ÷ [(ख $गु_{स्प}$ ख $स्प_{०}$ख) ÷ (उ ० ख)] प्राप्त होता है। इसमें वर्गणा शलाकाके अनन्तवें भागका भाग देनेपर जघन्य सूक्ष्म कृष्टिके वर्गोंका प्रमाण $व_{ज}$ ÷ [{ख $गु_{स्प}$ ख $स्प_{०}$ख $स्प_{०}$} − (उ ० ख ख)] प्राप्त होता है।

अनिवृत्तिकरणमें की गयी सत्तामें सूक्ष्म कृष्टि, जब उदयरूप होती है तब सूक्ष्म साम्पराय होता है।

यहाँसे गुणश्रेणि निर्जरा प्रारम्भ होती है जो उत्तरोत्तर असंख्यात गुणी बढ़ती जाती है। इसका प्रमाण इस प्रकार प्राप्त करते हैं—

अनादि संसारका कारण जो बन्ध, उसकी परम्परामें बँधा जगत्श्रेणीके घन प्रमाण $श्रे^{3}$, एक जीवके प्रदेशोंमें स्थित; ज्ञानावरणादि मूल और उत्तर प्रकृतियोंके सत्ता रूप द्रव्य त्रिकोण रचनाके अभिप्रायसे कुछ कम डेढ़ गुणहानि आयामसे समयप्रबद्धको गुणित करनेपर स ० $\frac{3}{2}$ गु — है, जहाँ स जघन्य समयप्रबद्ध है, स ० उत्कृष्ट समयप्रबद्ध है, $\frac{3}{2}$ डेढ़ है तथा गु— कुछ कम गुणहानि आयाम है। इतने द्रव्यमें आयुकर्मके द्रव्यको घटा दिया गया है। इसलिए यह ज्ञानावरणादि सात कर्मोंका द्रव्य है। इसमें ७ का भाग देनेपर ज्ञानावरण कर्म द्रव्यका प्रमाण $\frac{स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—}{७}$ प्राप्त होता है। इसमें अनन्तका भाग देनेपर एक भागका प्रमाण $\frac{स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—}{७\ ख}$ होता है जिसे सर्वघाती केवल ज्ञानावरणका द्रव्य कहते हैं। अवशेष बहुभाग प्रमाण $\frac{स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—}{७} - \frac{स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—}{७\ ख} = \frac{(स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—)\ (ख-१)}{७\ ख}$ मतिज्ञानावरण आदि देशघाति प्रकृतियोंका द्रव्य होता है। इस देशघाति द्रव्यको मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञानावरण रूप चारसे भाजित करनेपर एक भाग मतिज्ञानावरणके द्रव्यका प्रमाण $\frac{स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—}{७\times४}$ अनुमानतः हुआ। कारण यह है कि (ख—१) और (ख) का अनुपात १ लिया जा सकता है। इस मतिज्ञानावरण द्रव्यमें अपकर्षण भागहार उ का भाग देनेसे प्राप्त बहुभागका प्रमाण $\frac{(स\ ०\ \frac{3}{2}\ गु—\ (उ—१)}{७\times४\ उ}$

होता है जो जैसेका तैसा तिष्ठता है। अवशेष एक भाग $\frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{3}{2}}\,\text{गु}-)}{(७)\,(४)\,(उ)}$ होता है जिसे निम्नलिखित रूपमें परिणमाते हैं।

इसमें पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण $\frac{\text{प}}{\text{अ}}$ का भाग देनेपर बहुभाग $\frac{(\text{स}\text{अ}^{\frac{3}{2}}\,\text{गु}-)\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}-१\right)}{(७)\,(४)\,(उ)\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)}$

प्राप्त होता है जिसे उपरितन स्थितिमें देते हैं। पुनः अवशेष एक भाग प्रमाण $\frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{3}{2}}\,\text{गु}-)}{(७)\,(४)\,(उ)\,\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)}$

है जिसे असंख्यात लोकप्रमाण श्रे^{3} अ द्वारा भाजित करनेपर बहुभाग $\frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{3}{2}}\,\text{गु}-)\;\;(\text{श्रे}^{3}\,\text{अ}-१)}{(७)\,(४)\,(उ)\,\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)\,(\text{श्रे}^{3}\text{अ})}$

प्राप्त होता है जिसे गुण श्रेणि आयाममें देते हैं। अवशेष एक भाग $\frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{3}{2}}\,\text{गु}-)}{(७)\,(४)\,(उ)\,\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)\;\;(\text{श्रे}^{3}\text{अ})}$

प्रमाण होता है जिसे उदयावलीके निषेकोंमें देते हैं। द्रव्यको निक्षेपित करनेके सूत्रादि पूर्वमें ही बतला चुके हैं। पुनः जो यह उदयावलीमें द्रव्य दिया है उसे यहाँ आवली आ द्वारा भाजित करनेपर मध्यधनका प्रमाण $\frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{3}{2}}\,\text{गु}-)}{(७)\;\;(४)\;\;(उ)\;\;\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)\;\;(\text{श्रे}^{3}\text{अ})\;\;(\text{आ})}$ होता है। पुनः एक कम आवलीके अर्द्धभागका भाग दो गुणहानिमें-से घटानेपर २ गु $-\frac{\text{आ}-१}{२}$ प्राप्त होता है जिसके द्वारा मध्यधनको भाजित करनेपर चयका प्रमाण आता है—चय = [मध्यधन] ÷ [निषेकहार $-\frac{\text{आवली}-१}{२}$]

$$= \frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{३}{२}}\,\text{गु}-)}{(७)\,(४)\,(उ)\,\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)\,(\text{श्रे}^{3}\text{अ})\,(\text{आ})\left[२\,\text{गु}-\left(\frac{\text{आ}-१}{२}\right)\right]}$$

होता है। इसे दो गुणहानि २ गु द्वारा गुणित करनेपर प्रथम निषेकका प्रमाण

$$= \frac{(\text{स}\,\text{अ}^{\frac{३}{२}}\text{गु}-)\;\;(२\,\text{गु})}{(७)\,(४)\,(उ)\;\;\left(\frac{\text{प}}{\text{अ}}\right)\,(\text{श्रे}^{3}\text{अ})\,(\text{आ})\left[२\,\text{गु}-\left(\frac{\text{आ}-१}{२}\right)\;\;\right]}$$

प्राप्त होता है। इसमेंसे एक, एक चय घटानेपर क्रमशः द्वितीयादि निषेकका प्रमाण प्राप्त होता है।

इस प्रकार एक-एक चय घटाते हुए एक कम आवली प्रमाण चय प्रथमनिषेकमें-से घटानेपर अन्तिम निषेक = प्रथम निषेक – चय (आवली – १)

$$= \frac{(\text{स}\,\text{ड}\,\frac{३}{२}\text{गु}-)(२\,\text{गु})}{(७)(४)(\text{उ})\left(\frac{\text{प}}{\text{ड}}\right)(\text{श्रे}^{3}\text{ड})(\text{आ})\left[२\,\text{गु}-\left(\frac{\text{आ}-१}{२}\right)\right]}$$

$$- \frac{(\text{स}\,\text{ड}\,\frac{३}{२}\text{गु}-)}{(७)(४)(\text{उ})\left(\frac{\text{प}}{\text{ड}}\right)(\text{श्रे}^{3}\text{ड})(\text{आ})\left[२\,\text{गु}-\left(\frac{\text{आ}-१}{२}\right)\right]}$$

$$= \frac{(\text{स}\,\text{ड}\,\frac{३}{२}\,\text{गु}-)[२\,\text{गु}-(\text{आ}-१)]}{(७)(४)(\text{उ})\left(\frac{\text{प}}{\text{ड}}\right)(\text{श्रे}^{3}\,\text{ड})(\text{आ})\left[२\,\text{गु}-\left(\frac{\text{आ}-१}{२}\right)\right]}$$ होता है।

अब गुणश्रेणि आयाम अन्तर्मुहूर्त मात्र जिसमें दिया गया द्रव्य $\frac{(\text{स}\,\text{ड}\,\frac{३}{२}\,\text{गु}-)(\text{श्रे}^{3}\,\text{ड}-१)}{(७)(४)(\text{उ})\left(\frac{\text{प}}{\text{ड}}\right)(\text{श्रे}^{3}\,\text{ड})}$ है। इसको समय प्रतिसमय असंख्यातसे गुणित करनेपर निषेक रचना निम्न प्रकार होती है। यहाँ असंख्यातकी संदृष्टि (४) करने पर प्रथम समय सम्बन्धी (१), दूसरे समय (४), तीसरे समय (१६), अन्त समय (६४) होती है, जिन सभीका योग (८५) होता है। इस प्रकार समानुपातमें बँटनेपर निषेकोंका प्रमाण निम्न रूपमें होता है—

प्रथम निषेक

$$= \frac{(\text{स}\,\text{ड}\,\frac{३}{२}\,\text{गु}-)(\text{श्रे}^{3}\,\text{ड}-१)((१))}{(७)(४)(\text{उ})\left(\frac{\text{प}}{\text{ड}}\right)\text{श्रे}^{3}\,\text{ड}\,((८५))}$$

इसी प्रकार अन्तिम निषेक

$$= \frac{(\text{स}\,\text{ड}\,\frac{३}{२}\,\text{गु}-)(\text{श्रे}^{3}\,\text{ड}-१)((६४))}{(७)(४)(\text{उ})\left(\frac{\text{प}}{\text{ड}}\right)(\text{श्रे}^{3}\,\text{ड})((८५))}$$

होता है। यहाँ अन्तर्मुहूर्तके भेदोंमें जघन्य अन्तर्मुहूर्त आ १ है जिससे संख्यात गुणा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त आ ११ होता है। दोनोंका अन्तर आ ११ – आ १ होता है। इसके ऊपर एक समय और जोड़नेपर समस्त अन्तर्मुहूर्तोंके भेदोंका प्रमाण आ १ (१ – १) + १ होता है।

इस प्रकार गणितके रूपको भलीभाँति समझकर लब्धिसार ग्रन्थमें प्रवेश करना लाभप्रद होगा। उपरोक्त सामग्री गोम्मटसारादि ग्रन्थोंमें गति देनेमें समर्थ होगी।

प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय,
सिहोरा (जबलपुर)